Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय
साहित्य
कोश

संपादक
डॉ. नगेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
१.२
न १३ भा

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73564

पुस्तकालय प्रभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या. R 9.12 आगत संख्या....
न 13 भा

पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अंकित है
इस तिथि सहित 15 वें दिन तक यह पुस्तक
पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिये अन्यथा
10 पैसे के हिसाब से विलम्ब दण्ड देय होगा

24 JAN 1984
23 JUL 1990

24 NOV 1984

28 JUL 1988

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73564

भारतीय
साहित्य-कोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73564

R1.2, N13BH
73564

भारतीय साहित्य कोश

संपादक
डॉ. नगेन्द्र

सहायक संपादक
श्री महेन्द्र चतुर्वेदी : डॉ० महेन्द्र कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
34, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-3

R
1.2
न 13 भा

पुस्तकालय
पुस्तक सं०
आगत सं०
तिथि
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मूल्य : 350.00

स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्राइवेट लिमिटेड के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : 1981 / सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-110053 से मुद्रित।

BHARTIYA SAHITYA KOSH (Dictionary of Indian Literature)
Edited by Dr. Nagendra Price : Rs. 350.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है :—उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू; पूर्व में उड़िया, बँगला और असमीया; मध्य-पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम; इनके अतिरिक्त कतिपय और भी भाषाएँ हैं जिनका साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं है— जैसे कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, कोंकणी, तूरू आदि। इनमें से प्रत्येक का—विशेषत: पहली बारह भाषाओं में से प्रत्येक का, अपना साहित्य है जो प्राचीनता, वैविध्य, गुण और परिमाण—सभी की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के ही संपूर्ण वाङ्मय का संचयन किया जाये तो मेरा अनुमान है कि वह यूरोप के संकलित वाङ्मय से किसी भी दृष्टि से कम नहीं होगा। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृतों और अपभ्रंशों का समावेश कर लेने पर तो उसका अनंत विस्तार कल्पना की सीमा को पार कर जाता है। ज्ञान का अपार भाण्डार —हिंद-महासागर से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी व्यापक, हिमालय के शिखरों से भी ऊँचा। इनमें प्रत्येक साहित्य का अपना स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्ट्य है जो अपने प्रदेश के व्यक्तित्व से मुद्रांकित है। पंजाबी और सिंधी, इधर हिंदी और उर्दू की प्रदेश-सीमाएँ कितनी मिली हुई हैं। किंतु उनके अपने-अपने साहित्य का वैशिष्ट्य कितना प्रखर है। इसी प्रकार गुजराती और मराठी का जन-जीवन परस्पर ओतप्रोत है किंतु क्या इन भाषाओं के बीच में किसी प्रकार की भ्रांति संभव है? दक्षिण की भाषाओं का उद्‌गम एक है: सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं, परंतु क्या कन्नड़ और मलयाळम या तमिल और तेलुगु के स्वारूप्य के विषय में शंका हो सकती है? यही बात बँगला, असमीया और उड़िया के विषय में सत्य है। बँगला के गहरे प्रभाव को पचाकर असमीया और उड़िया अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये हुए हैं।

इन सभी साहित्यों में अपनी-अपनी विभिन्न विभूतियाँ हैं। तमिल का संगम-साहित्य, तेलुगु के द्वि-अर्थी काव्य और उदाहरण तथा अवधान-साहित्य, मलयाळम के संदेश-काव्य एवं वीर-गीत (किलिप्पाट्टु) तथा मणि-प्रवालम् शैली, मराठी के पवाड़े, गुजराती के आख्यान और फागु, बँगला का मंगल-काव्य, असमीया के बड़गीत और बुरंजी साहित्य, पंजाबी के रम्याख्यान तथा वीर-गीत, उर्दू की ग़ज़ल और हिंदी का रीति-काव्य तथा छायावाद आदि, अपने-अपने भाषा-साहित्य के वैशिष्ट्य के उज्ज्वल प्रमाण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी कदाचित् यह पार्थक्य आत्मा का नहीं है। जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचारधाराओं और जीवन-प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण से अनेक भाषाओं तथा अभिव्यंजना-पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी, सहज-संभव है। भारतीय साहित्य का प्राचुर्य और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी यह मौलिक एकता और भी रमणीय है। यहां इस एकता के आधार-तत्त्वों का विश्लेषण करना आवश्यक है।

दक्षिण में तमिल और उधर उर्दू को छोड़ भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं का जन्म-काल प्रायः समान ही है। तेलुगु-साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात कवि हैं नन्नय, जिनका समय है ईसा की ग्यारहवीं शती। कन्नड़ का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है 'कविराजमार्ग', जिसके लेखक हैं राष्ट्रकूट-वंश के नरेश नृपतुंग (814-877 ई०); और मलयालय की सर्वप्रथम कृति है 'रामचरितम्' जिसके विषय में रचना-काल और भाषा-स्वरूप आदि की अनेक समस्याएँ हैं और जो अनुमानतः तेरहवीं शती की रचना है। गुजराती तथा मराठी का आविर्भाव-काल लगभग एक ही है। गुजराती का आदि ग्रंथ 1185 ई० में रचित शालिभद्र भारतेश्वर का 'वाहुबलिरास' है और मराठी के आदिम साहित्य का आविर्भाव बारहवीं शती में हुआ था। यही बात पूर्व की भाषाओं के विषय में सत्य है। बँगला के चर्या-गीतों की रचना शायद दसवीं और बारहवीं शती के बीच किसी समय हुई होगी; असमीया-साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण प्रायः तेरहवीं शती के अंत के हैं जिनमें सर्वश्रेष्ठ हैं हेम सरस्वती की रचनाएँ 'प्रह्लादचरित्र' तथा 'हरगौरीसंवाद'। उड़िया भाषा में भी तेरहवीं शती में निश्चित रूप से व्यंग्यात्मक काव्य और लोकगीतों के दर्शन होने लगते हैं। उधर चौदहवीं शती में तो उत्कल-व्यास सारलादास का आविर्भाव हो ही जाता है। इसी प्रकार, पंजाबी और हिंदी में ग्यारहवीं शती से व्यवस्थित साहित्य उपलब्ध होने लगता है। केवल दो भाषाएँ ऐसी हैं जिनका जन्मकाल भिन्न है—तमिल, जो संस्कृत के समान प्राचीन है (यद्यपि तमिल-भाषी इसका उद्गम और भी पहले मानते हैं) और उर्दू, जिसका वास्तविक आरंभ शायद पंद्रहवीं शती से पूर्व नहीं माना जा सकता, यद्यपि उर्दू के इतिहासकार भी अब ग्यारहवीं-बारहवीं शती में ही उसके आविर्भाव की चर्चा करने लगे हैं।

जन्मकाल के अतिरिक्त, आधुनिक भारतीय साहित्यों के विकास के चरण भी प्रायः समान ही हैं। प्रायः सभी का आदि काल पंद्रहवीं शती तक चलता है: पूर्व-मध्यकाल की समाप्ति मुग़ल-वैभव के अंत अर्थात् सत्रहवीं शती के मध्य में तथा उत्तर-मध्यकाल की अँगरेज़ी सत्ता की स्थापना के साथ होती है और तभी से आधुनिक युग का आरंभ हो जाता है। इस प्रकार, भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्यों का विकास-क्रम लगभग एक-सा ही है; सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त हैं।

इस समानांतर विकास-क्रम का आधार अत्यंत स्पष्ट है, और वह है भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विकास-क्रम। बीच-बीच में व्यवधान होने पर भी भारतवर्ष में शताब्दियों तक समान राजनीतिक व्यवस्था रही है। मुग़ल-शासन में तो लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम में घनिष्ठ संपर्क बना रहा। मुग़लों की सत्ता खंडित हो जाने के बाद भी यह संपर्क टूटा नहीं। मुग़ल-शासन के पहले भी राज्य-विस्तार के प्रयत्न होते रहे थे। राजपूतों में कोई एकछत्र भारत-सम्राट तो नहीं हुआ, किंतु उनके राजवंश भारतवर्ष के अनेक भागों में शासन कर रहे थे। शासन भिन्न होने पर भी उनकी सामंतीय शासन-प्रणाली प्रायः एक-सी थी इसी प्रकार, मुसलमानों की शासन-प्रणाली में भी स्पष्ट मूलभूत समानता थी। बाद में अँगरेज़ों ने तो केंद्रीय शासन-व्यवस्था क़ायम कर इस एकता को और भी दृढ़ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से भारत के विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य रहा है।

राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का साम्य और भी अधिक रहा है। पिछले सहस्राब्द में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन ऐसे हुए जिनका प्रभाव भारतव्यापी था। बौद्ध धर्म के ह्रास के युग में उसकी कई शाखाओं और शैव-शाक्त धर्मों के संयोग से नाथ-संप्रदाय उठ खड़ा हुआ जो ईसा के द्वितीय सहस्राब्द के आरंभ में उत्तर में तिब्बत आदि तक, दक्षिण में पूर्वी घाट के प्रदेशों में, पश्चिम में महाराष्ट्र आदि में और पूर्व में प्रायः सर्वत्र फैला हुआ था। योग की प्रधानता होने पर भी इन साधुओं की साधना में, जिनमें नाथ, सिद्ध और शैव सभी थे, जीवन के विचार और भाव-पक्ष की उपेक्षा नहीं थी और इनमें से अनेक साधु आत्माभिव्यक्ति एवं सिद्धांत-प्रतिपादन दोनों के लिए कवि-कर्म में प्रवृत्त होते थे। भारतीय भाषाओं के विकास के प्रथम चरण में इन संप्रदायों का प्रभाव प्रायः विद्यमान था। इनके बाद इनके उत्तराधिकारी संत-संप्रदायों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवागत मुसलमानों के सूफ़ी-मत का प्रसार देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने लगा। संत-संप्रदाय वेदांत दर्शन से प्रभावित थे और निर्गुण-भक्ति की साधना तथा प्रचार करते थे। सूफ़ी धर्म में भी निराकार ब्रह्म की ही उपासना थी, किंतु उसका माध्यम था उत्कट प्रेमानुभूति। सूफ़ी संतों का यद्यपि उत्तर-पश्चिम में अधिक प्रभुत्व था, फिर भी दक्षिण के बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों में इनके अनेक केंद्र थे और वहाँ भी अनेक प्रसिद्ध सूफ़ी संत हुए। इनके पश्चात् वैष्णव आंदोलन का आरंभ हुआ जो देश भर में बड़े वेग से व्याप्त हो गया। राम और कृष्ण की भक्ति की अनेक मधुर पद्धतियों का देश भर में प्रसार हुआ और समस्त भारतवर्ष सगुण ईश्वर के लीला-गान से गुंजरित हो उठा। उधर मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव भी निरंतर बढ़ रहा था। ईरानी संस्कृति के अनेक आकर्षक तत्त्व—जैसे वैभव-विलास, अलंकरण-सज्जा आदि भारतीय जीवन में बड़े वेग से घुल-मिल रहे थे और एक नयी दरबारी या नागर संस्कृति का आविर्भाव हो रहा था। राजनीतिक और आर्थिक पराभव के कारण यह संस्कृति शीघ्र ही अपना प्रसादमय प्रभाव खो बैठी और जीवन के उत्कर्ष एवं आनंदमय पक्ष के स्थान पर रुग्ण विलासिता ही इसमें शेष रह गई। तभी पश्चिम के व्यापारियों का आगमन हुआ जो अपने साथ पाश्चात्य शिक्षा-संस्कार लाये और जिनके पीछे-पीछे मसीही प्रचारकों के दल भारत में प्रवेश करने लगे। उन्नीसवीं शती में अँगरेज़ों का प्रभुत्व देश में स्थापित हो गया और शासक वर्ग सक्रिय रूप से योजना बनाकर अपनी शिक्षा, संस्कृति और उनके माध्यम से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अपने धर्म का प्रसार करने लगा। प्राच्य और पाश्चात्य के इस संपर्क और संघर्ष से आधुनिक भारत का जन्म हुआ।

भारत के आधुनिक साहित्य का विकास-क्रम भी कितना समान है! विदेशी धर्म-प्रचारकों और शासकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के साथ संपर्क एवं संघर्ष—और उससे पुनर्जागरण युग का उदय, राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरणा से साहित्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का उत्कर्ष, साहित्य में नीतिवाद एवं सुधारवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया और नयी रोमानी सौंदर्य-दृष्टि का उन्मेष, चौथे दशक में साम्यवादी विचारधारा के प्रचार से द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव, इलियट आदि के प्रभाव से नये जीवन की बौद्धिक कुंठाओं और स्वप्नों को शब्द-रूप देने के नये प्रयोग, स्वतंत्रता के बाद विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का विस्तार और अंत में व्यापक संत्रास तथा मोहभंग—यही संक्षेप में आधुनिक भारतीय वाङ्मय के विकास की रूपरेखा है जो सभी भाषाओं में समान रूप से लक्षित होती है।

अब साहित्यिक पृष्ठाधार को लीजिए। भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं है, फिर भी उनका साहित्यिक रिक्थ समान ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात साहित्य—अर्थात् कालिदास, भवभूति, बाण, श्रीहर्ष, अमरुक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला है। शास्त्र के अंतर्गत उपनिषद्, षड्दर्शन, स्मृतियाँ आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक अमर ग्रंथ—'नाट्यशास्त्र', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', 'रसगंगाधर' आदि की विचार-विभूति का उपयोग भी सभी ने निरंतर किया है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये अक्षय प्रेरणा-स्रोत हैं और प्रायः सभी को समान रूप से प्रभावित करते रहे हैं। इनका प्रभाव निश्चय ही अत्यंत समन्वयकारी रहा है और इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता स्वतः आ गई है। इस प्रकार समान राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आधारभूमि पर पल्लवित-पुष्पित भारतीय साहित्य में जन्मजात समानता एक सहज घटना है।

अब तक हमने भारतीय वाङ्मय की केवल विषयवस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर संकेत किया है; किंतु काव्य-शैलियों और काव्य-रूपों की समानता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारत के प्रायः सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य-शैलियाँ—महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश-परंपरा की भी अनेक शैलियाँ, जैसे चरितकाव्य, प्रेमगाथा-शैली, रास, पद-शैली आदि प्रायः समान रूप में मिलती हैं। अनेक वर्णिक छंदों के अतिरिक्त अनेक देशी छंद—दोहा, चौपाई आदि—भी भारतीय वाङ्मय के लोकप्रिय छंद हैं। इधर आधुनिक युग में पश्चिम के अनेक काव्य-रूपों और छंदों का—जैसे प्रगीत-काव्य और उसके अनेक भेदों, संबोधन-गीत, शोक-गीत, चतुर्दशपदी का, और मुक्तछंद, गद्य-गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओं में हो चुका है। यही बात भाषा के विषय में भी सत्य है। यद्यपि मूलतः भारतीय भाषाएँ दो विभिन्न परिवारों—आर्य और द्रविड़ परिवारों की भाषाएँ हैं, फिर भी प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में संस्कृत, और प्राकृत अपभ्रंशों के और आधुनिक युग में अँगरेज़ी के प्रभाव के कारण उनमें रूपों और शब्दों की अनेक प्रकार की समानताएँ सहज ही लक्षित हो जाती हैं। भारतीय भाषाएँ अपनी व्यंजनात्मक तथा लाक्षणिक शक्तियों के विकास के लिए, चित्रमय शब्दों और पर्यायों के लिए तथा नवीन शब्द-निर्माण के लिए निरंतर संस्कृत के भांडार का उपयोग करती रही हैं और आज भी कर रही हैं। इधर वर्तमान युग में अंगरेज़ी का प्रभाव भी अत्यंत स्पष्ट है। अँगरेज़ी की लाक्षणिक ओर प्रतीकात्मक शक्ति बहुत विकसित है। पिछले आठ-दस दशकों से भारत की सभी भाषाएँ उसकी नवीन प्रयोग-भंगिमाओं, मुहावरों, उपचार-वक्रताओं को सचेष्ट रूप से ग्रहण कर रही हैं। उधर गद्य पर तो अँगरेज़ी का प्रभाव और भी अधिक है; हमारी वाक्य-रचना प्रायः अँगरेज़ी पर ही आश्रित है। अतः इन प्रयत्नों के फलस्वरूप साहित्य की माध्यम भाषा में एक गहरी आंतरिक समानता मिलती है जो समान विषय-वस्तु के कारण और भी दृढ़ हो जाती है।

इस प्रकार, यह विश्वास करना कठिन नहीं है कि 'भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है।' देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति तक विदेशी प्रभाव के कारण अनेकता को ही बल मिलता रहा। इसकी मूलवर्ती एकता का सम्यक् अनुसंधान अभी होना है। इसके लिए अत्यंत निस्संग भाव से, सत्य-शोध पर दृष्टि केंद्रित रखते हुए, भारत के विभिन्न साहित्यों में विद्यमान समान तत्त्वों एवं प्रवृत्तियों का विधिवत् अध्ययन पहली आवश्यकता है। यह कार्य हमारे अध्ययन और अनुसंधान की प्रणाली में परिवर्तन की अपेक्षा करता है। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए; वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यंत अपूर्ण रहेगा। उदाहरण के लिए, मधुरा भक्ति का अध्येता यदि अपनी परिधि को केवल हिंदी या केवल बँगला तक ही सीमित कर ले तो वह सत्य ही शोध में असफल रहेगा। उसे अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में प्रवाहित मधुरा भक्ति की धाराओं में भी अवगाहन करना होगा। गुजराती, उड़िया, असमीया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयाळम सभी की तो भूमि मधुर रस से आप्लावित है। एक भाषा तक सीमित अध्ययन में स्पष्टतः अनेक छिद्र रह जाएँगे। हिंदी-साहित्य के इतिहासकार को जो अनेक घटनाएँ सांयोगिक-सी प्रतीत होती हैं, वे वास्तव में वैसी नहीं हैं। आचार्य शुक्ल को हिंदी के जिस विशाल पद-साहित्य की परंपरा का मूलस्रोत प्राप्त करने में कठिनाई हुई थी वह अपभ्रंश के अतिरिक्त दक्षिण की भाषाओं में और बँगला में सहज ही मिल जाता है। सूर का वात्सल्य-वर्णन हिंदी-काव्य में घटने वाली आकस्मिक या ऐकांतिक घटना नहीं थी; तमिल के आलवार भक्तों ने अनेक पदों में, गुजराती कवि भालण ने अपने आख्यानों में, पंद्रहवीं शती के मलयाळम कवि ने कृष्णगाथा में, असमीया कवि माधवदेव ने अपने बड़गीतों में अत्यंत मनोयोगपूर्वक कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है। भारतीय भाषाओं के रामायण और महाभारत काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन न जाने कितनी समस्याओं को अनायास ही सुलझाकर रख देता है। रम्याख्यान-काव्यों की अगणित कथानक-रूढ़ियाँ विविध भाषाओं के प्रेमाख्यान-काव्यों का अध्ययन किये बिना स्पष्ट नहीं हो सकतीं। सूफ़ी काव्य के मर्म को समझने में फ़ारसी के अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम की भाषाओं—कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी और उर्दू—में विद्यमान तत्संबंधी साहित्य से अमूल्य सहायता प्राप्त हो सकती है। तुलसी के 'रामचरित-मानस' में राम के स्वरूप की कल्पना को हृद्गत किये बिना अनेक भारतीय भाषाओं के रामकाव्य का अध्ययन अपूर्ण ही रहेगा। इसी प्रकार, हिंदी के अष्टछाप कवियों का प्रभाव बंगाल और गुजरात तक व्याप्त था। वहाँ के कृष्ण-काव्य के सम्यक् विवेचन में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस अंतःसाहित्यिक शोधप्रणाली के द्वारा अनेक लुप्त कड़ियाँ अनायास ही मिल जाएँगी, अगणित जिज्ञासाओं का सहज ही समाधान हो जायेगा और उधर भारतीय चिंताधारा एवं रागात्मक चेतना की अखंड एकता का उद्घाटन हो सकेगा।

किंतु यह कार्य जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही कठिन भी है। सबसे पहली कठिनाई तो भाषा की है। अभी तक भारतीय अनुसंधाताओं का ज्ञान प्रायः अपनी भाषा के अतिरिक्त अँगरेज़ी और संस्कृत तक ही सीमित है। प्रादेशिक भाषाओं से उनका परिचय नहीं है। ऐसी स्थिति में डर है कि प्रस्तावित योजना कहीं पुण्य इच्छा मात्र होकर न रह जाये। पर यह बाधा अजेय नहीं है। व्यवस्थित प्रयास द्वारा इसका निराकरण करना कठिन नहीं है। कुछ भाषावर्ग तो ऐसे हैं जिनमें अत्यल्प अभ्यास से काम चल सकता है, जिनमें रूपांतर, यहाँ तक कि लिप्यंतर भी, आवश्यक नहीं है। जैसे बँगला और असमीया, या हिंदी और मराठी में, या तेलुगु और कन्नड़ में कुछ शब्दों अथवा शब्द-रूपों के अर्थ आदि लेकर काम चल सकता है। हिंदी, उर्दू और पंजाबी में लिप्यंतर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिन शब्दार्थ से समस्या सुलझ सकती है। यही हिंदी और गुजराती तथा तमिल और मलयाळम के विषय में प्राय: सत्य है। अन्य भाषाओं के लिए अनुवाद का आश्रय लिया जा सकता है। साहित्यिक इतिहास, परिचय-लेख, तुलनात्मक अध्ययन, तुलनात्मक अनुसंधान, अंत:-साहित्यिक गोष्ठियाँ आदि की सम्यक् व्यवस्था द्वारा भी परस्पर आदान-प्रदान की सुविधा हो सकती है। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो और महत्त्वपूर्ण प्रयास किये जा सकते हैं—(1) संपूर्ण भारतीय साहित्य के समेकित इतिहास का प्रकाशन, तथा (2) भारतीय साहित्य-कोश का निर्माण।

आज देश में इस प्रकार की चेतना प्रबुद्ध हो गई है और कतिपय संस्थाएँ इस दिशा में अग्रसर हैं। किंतु अभी तक यह अनुष्ठान आरंभिक अवस्था में ही है। इसके लिए जैसे व्यापक एवं संगठित प्रयत्न की अपेक्षा है, वैसा आयोजन अभी नहीं हो रहा। फिर भी 'भारतीय साहित्य' की चेतना की प्रबुद्धि ही अपने-आप में शुभ लक्षण है। भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक एकता का सबसे दृढ़ एवं स्थायी आधार है साहित्य। जिस प्रकार अनेक निराशावादियों की आशंकाओं को विफल करता हुआ भारतीय राष्ट्र निरंतर अपनी अखंडता में उभरता आ रहा है, उसी प्रकार एक समंजित इकाई के रूप में 'भारतीय साहित्य' का विकास भी धीरे-धीरे हो रहा है। यदि मूलवर्ती चेतना एक है तो माध्यम का भेद होते हुए भी साहित्य का व्यक्त रूप भी भिन्न नहीं हो सकता।

□

कुछ शब्द प्रस्तुत कोश के विषय में भी लिखना अप्रासंगिक न होगा :

इस विराट् अनुष्ठान के समापन पर, हमें, स्वभावत:, एक महायज्ञ की पूर्ति के पुण्य-लाभ का अनुभव हो रहा है। वास्तव में, इस प्रकार की परियोजना अपने आप में इतनी विस्तीर्ण और जटिल—श्रमसाध्य तथा व्ययसाध्य होती है कि बहुविध साधन-संपन्न संस्थाएँ ही इनका दायित्व वहन कर सकती हैं। फिर भी, हमने व्यक्तिगत स्तर पर कतिपय मित्रों के सहयोग और एक-मात्र प्रकाशक के उत्साह के बल पर यह संकल्प किया और अनेक प्रकार की कठिनाइयों के बाद अंत में उसे पूरा कर लिया।

प्रस्तुत कोश में 18 भाषाओं की साहित्यिक प्रविष्टियों का अंतर्भाव है। इनमें सिंधी और कश्मीरी को मिलाकर 14 आधुनिक भाषाएँ और 4 प्राचीन भाषाएँ हैं—संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश। इनके अतिरिक्त काव्यशास्त्र तथा भाषाविज्ञान—इन दो विषयों का भी स्वतंत्र रूप से समावेश किया गया है। सभी भाषाओं और विषयों की शब्दावली का प्रारंभिक चयन अधिकारी विद्वानों ने किया है, इसके बाद विभिन्न भाषाओं के विशेषज्ञ लेखकों ने उन पर टिप्पणियाँ तैयार की हैं। प्रविष्टियों को लेखक, कृति, पात्र, प्रवृत्ति तथा पारिभाषिक शब्दावली—इन पाँच वर्गों में विभक्त कर, प्रत्येक प्रविष्टि पर उसके साहित्यिक महत्त्व के अनुसार टिप्पणी प्रस्तुत की गयी है। लेखक सभी द्विभाषी हैं : हिंदी के विद्वान होने के अतिरिक्त वे सभी अपनी-अपनी भाषा के विशेषज्ञ भी हैं।—इस प्रकार, अपनी ओर से हमने कोशगत सामग्री को प्रामाणिक बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। किंतु यह कार्य इतना बिखरा हुआ है कि हमारे प्रयत्न के बावजूद अनेक त्रुटियाँ रह जाना सर्वथा संभाव्य है, जिनका परिहार हम विशेषज्ञों की सहायता से दूसरे संस्करण में ही कर पायेंगे। कोश की उत्तर-सीमा योजना के आरंभ वर्ष अर्थात् 1970 तक है। अतएव विगत दस वर्षों के लेखकों और कृतियों का समावेश इसमें नहीं है। ग्रंथ का मुद्रण 1976 में ही आरंभ हो गया था, पर अनेक प्रकार की बाधाओं के कारण यह अब पूरा हुआ है। इस अवधि में विभिन्न भाषाओं के अनेक साहित्यकार दिवंगत हो गये हैं। चूंकि उनसे संबद्ध प्रविष्टियाँ पहले ही मुद्रित हो चुकी थीं, इसलिए उनके निधन-वर्ष नहीं दिये जा सके। इन सभी रिक्तियों की पूर्ति अगले संस्करण में ही हो सकेगी।

हम अपनी उपलब्धि की अपेक्षा कोश के अभावों के प्रति अधिक सतर्क हैं। इसलिए यह मानकर चलते हैं कि 'भारतीय साहित्य-कोश' का यह प्रथम प्रारूप मात्र है जिसे हम जिज्ञासु पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

अंत में, मैं अपने दोनों सहयोगी संपादकों—श्री महेन्द्र चतुर्वेदी और डॉ० महेन्द्र कुमार—को तथा अन्य विद्वान लेखकों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। ग्रंथ का समायोजन मैंने किया है, शेष संपूर्ण कार्य का श्रेय इन्हीं को है। हिंदी की प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था नेशनल पब्लिशिंग हाउस और उसके स्वत्वाधिकारी भी साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस बृहद् योजना को मूर्त रूप देने में विशेष साहस एवं धैर्य का परिचय दिया है।

— नगेन्द्र

सुमित्रानंदन पंत जयंती
दिल्ली : 19 मई, 1981

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप-संकेत

अ०	असमिया
अप०	अपभ्रंश
उ०	उड़िया
उर्दू	उर्दू
क०	कन्नड़
कश्०	कश्मीरी
काव्य०	काव्यशास्त्र
गु०	गुजराती
त०	तमिल
ते०	तेलुगु
पं०	पंजाबी
पा०	पालि
प्रा०	प्राकृत
भाषा०	भाषाविज्ञान
म०	मराठी
मल०	मलयाळम
सं०	संस्कृत
सिं०	सिंधी
हिं०	हिंदी
+	
दे०	देखिए—अंतःसंदर्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहयोगी

प्रविष्टि

असमीया	प्रो० हेम बरुवा (स्व०)
अपभ्रंश	डॉ० हरिवंश कोचर
उड़िया	डॉ० खगेश्वर महापात्र
उर्दू	डॉ० मोहम्मद हसन
कन्नड़	प्रो० एन० नागप्पा
कश्मीरी	श्री जानकीनाथ मान
काव्यशास्त्र	डॉ० सत्यदेव चौधरी
गुजराती	डॉ० चन्द्रकान्त मेहता
तमिल	डॉ० एम० वरदराजन (स्व०)
	डॉ० महालिंगम
तेलुगु	डॉ० पांडुरंग राव
पंजाबी	डॉ० हरभजन सिंह
पालि	डॉ० रामचन्द्र पांडेय
प्राकृत	डॉ० रामचन्द्र पांडेय
बँगला	डॉ० इन्द्रनाथ चौधुरी
भाषाविज्ञान	डॉ० भोलानाथ तिवारी
मराठी	डॉ० एम० ए० करन्दिकर
मलयाळम	डॉ० ओ० एम० अनुजन
संस्कृत	डॉ० त्र्य० म० माइनकर
सिंधी	डॉ० एम० के० जेतली
हिंदी	डॉ० निर्मला जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखन

असमीया	डॉ० रमानाथ त्रिपाठी
अपभ्रंश	डॉ० हरिवंश कोचर
उड़िया	डॉ० शिवप्रिया महापात्र
उर्दू	श्री सत्यपाल बेदार
	डॉ० रामदास नादार
	डॉ० राणा प्रताप सिंह गन्नौरी
कन्नड़	प्रो० एन० नागप्पा
	डॉ० दक्षिणमूर्ति
	डॉ० कृष्णमूर्ति
कश्मीरी	डॉ० जानकीनाथ मान
काव्यशास्त्र	डॉ० सत्यदेव चौधरी
	डॉ० कृष्णबल
	डॉ० प्रतिमा कृष्णबल
गुजराती	डॉ० सुरेश त्रिवेदी
	डॉ० श्रीराम नागर
	डॉ० रणधीर उपाध्याय
	डॉ० महेन्द्र दबे
तमिल	प्रो० राजगोपालन
	डॉ० जे० पार्थसार्थी
	डॉ० के० ए० जमुना
तेलुगु	डॉ० पांडुरंग राव
	डॉ० सूर्यनारायण
	डॉ० हनुमच्छास्त्री अयाचित
	डॉ० भीमसेन निर्मल
	डॉ० जे० लक्ष्मी रेड्डी
पंजाबी	डॉ० महीप सिंह
	डॉ० ओम्प्रकाश शास्त्री
	डॉ० नरेन्द्र मोहन
	डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा
	डॉ० रामप्रकाश
	डॉ० तिलकराज बढेरा
पालि	डॉ० रामसागर त्रिपाठी
प्राकृत	डॉ० रामसागर त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला	डॉ० इन्द्रनाथ चौधुरी
	डॉ० निरंजन चक्रवर्ती
	डॉ० सत्येन्द्र तनेजा
	डॉ० रामेश्वर मिश्र
भाषाविज्ञान	डॉ० भोलानाथ तिवारी
मराठी	डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त
	डॉ० मनोहर काले
	डॉ० लक्ष्मीनारायण भारद्वाज
	कु० सुरेखा धोत्रेत्तर
मलयाळम	प्रो० विश्वनाथ अय्यर
	डॉ० के० भास्करन नायर
	डॉ० ओ० एम्० अनुजन
	श्री नीलकंठन नम्बूतिरी
संस्कृत	प्रो० राममूर्ति शर्मा
	डॉ० व्रजमोहन चतुर्वेदी
	डॉ० सत्यदेव चौधरी
	श्री विशालप्रसाद शर्मा
सिंधी	डॉ० एम० के० जेतली
हिंदी	डॉ० सत्यदेव चौधरी
	डॉ० रामदत्त भारद्वाज (स्व०)
	डॉ० जगदीश कुमार
	डॉ० हर गुलाल
	डॉ० ओम्प्रकाश सिंहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य-कोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य-कोश

अंकीयानाट (*अ० पारि०*)

असमीया ही नहीं अपितु किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में सबसे पहले श्री शंकरदेव (दे०) ने नाटकों का प्रवर्तन किया था। इन्होंने असम के बाहर के प्रदेशों में रामलीला, यात्रा आदि का अभिनय देखकर उन्हें प्रचार के लिए अधिक प्रभावशाली समझा था। दूसरी ओर असम प्रदेश में 'ओजापाली' (दे०) का अभिनय होता ही था। इसी को संस्कृत-नाटकों के अनुरूप परिमार्जित कर इन्होंने अंकीयानाट लिखे। अंकीयानाटों की ये विशेषताएँ हैं—(1) सूत्रधार की प्रधानता, (2) काव्यात्मक गीत-श्लोक और पयार छंदों का प्रयोग, (3) ब्रजावली अथवा ब्रजबुलि भाषा का प्रयोग, और (4) लयात्मक गद्य का व्यवहार। सूत्रधार का प्रयोग संस्कृत नाटकों जैसा ही है, किंतु इन्होंने दर्शकों के अनुरूप कुछ परिवर्तन किये हैं। यहाँ सूत्रधार गायक, नर्तक, परिस्थितियों का व्याख्याता और अभिनय-संचालय भी होता है। वह दर्शक और पात्रों का मध्यस्थ होता है। आधुनिक नाट्यकार मंचीय निर्देशों द्वारा जो कार्य करता है, वह सूत्रधार स्वयं करता है। अंकीयानाट में तीन प्रकार के गीतों का प्रयोग होता है: (1) भक्तिप्रधान गंभीर भटिमा (दे०) गीत, (2) कथा के अंगीभूत राग-ताल-युक्त अनुभूतिशील गीत, (3) वर्णनात्मक पयार छंद। शंकरदेव ने ये अंकीयानाट लिखे थे—'पत्नीप्रसाद' (दे०), 'कालियदमन', 'केलिगोपाल', 'रुक्मिणी-हरण', 'पारिजात-हरण नाट' (दे०) और 'राम-विजय' नाट (दे०)। इनके शिष्य माधवदेव (दे०) ने भी अंकीयानाट लिखे थे।

अंग (*प्रा० कृ०*)

जैन धर्म के वेद-स्थानीय सर्वाधिक प्रामाणिक आगम (दे० जैन-आगम) ग्रंथ 'अंग' कहलाते हैं। इनको द्वादशांग और गणिपिटक के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इनकी भाषा अर्धमागधी, आर्ष या प्राचीन प्राकृत मानी जाती है। यह महावीर (दे०)-वाणी है और सुधर्मा प्रभृति गणधर (दे०)-प्रणीत मानी जाती है। इनकी संख्या 12 है जिसमें 14 पर्वों के विच्छिन्न भाग से निर्मित दिट्ठिवाद भी सम्मिलित है किंतु इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इन अंगों में गद्य, पद्य और मिश्रित सभी शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं। गद्य की अपेक्षा पद्य में कलात्मकता अधिक पाई जाती है। 12 अंग ये हैं—(1) 'आयारंग' (आचारांग) : इसके तीन भाग हैं—प्रथम श्रुतस्कंध में जैन साधुओं के लिए कठोर नियम बतलाये गये हैं। दूसरे भाग चूल (परिशिष्ट) के प्रथम दो भागों में भिक्षाटन इत्यादि के नियम हैं और तीसरे भाग में महावीर स्वामी की जीवनचर्या है। (2) 'सूयगडंग' (सूत्रकृतांग) : यह सिद्धांत-निरूपण-परक अंग है। इसमें विभिन्न पाखंडियों और नास्तिकों के विभिन्न वादों का खंडन किया गया है और धर्म-मार्ग में आनेवाले विभिन्न विघ्नों का निरूपण कर उनसे दूर रहने का उपदेश दिया गया है। (3) 'ठाणांग' (स्थानांग) और (4) 'समवायांग' : इन दोनों अंगों में संख्या के आधार पर उपदेश दिये गये हैं—गणांग में 1 से 10 तक संख्याएँ हैं और समवायांग में संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है। (5) 'भगवती वियाह-पन्नहिं' (व्याख्या-प्रज्ञप्ति) : कहीं-कहीं इसे केवल भगवती नाम से अभिहित किया जाता है। कुछ तो प्रश्नोत्तर रूप में और कुछ प्रवचन (इतिहास-संवाद) के रूप में लिखा हुआ यह ग्रंथ सिद्धांत-प्रतिपादन, महावीर स्वामी की जीवनचर्या, इतिहास, पुराण, कथा और देश-वर्णन इत्यादि की दृष्टि से जैन अंगों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इसमें कवित्व भी पर्याप्त मात्रा में है। (6) 'नया धम्म कहाओ' (ज्ञात धर्मकथा) : इसमें सभी प्रकार की छोटी-बड़ी, कथाओं, यात्रा-विवरणों, काल्पनिक कथाओं के माध्यम से संयम, तप इत्यादि का उपदेश दिया गया है। (7) 'उपासक दसाओ' (उपासक दशा)। (8) 'अंतगउदसाओ' (अंत-कृद्दशा) और (9) 'अणुत्तरोववायदसाओ' (अनुत्तरोप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ा) : इन तीन ग्रंथों में जैन धर्मानुयायियों की कथाएं हैं। (10) 'पण्हवागरणाङ' (प्रश्न व्याकरण): इसमें प्रश्नोत्तर न होकर 'आश्रव' (दे०) और 'संवर' (दे०) द्वारों का वर्णन किया गया है। पहले खंड में 'आश्रयद्वार' है और दूसरे में 5 'संवत् द्वार'। (11) 'विवागसुय' (विपाकश्रुत): इसमें कर्म-विपाक का वर्णन है। (12) 'दिट्ठिवाद' (दृष्टि-वाद): इसमें विभिन्न दृष्टियों से मतमतांतर का वर्णन है।

अंगदम् *(त० पारि०)*

यह एक काव्य-विधा है। इसके दो भेद हैं— एक जिनमें प्रत्यक्ष निंदा-वचन हों और दूसरा जिसमें निंदा ध्वनित होती हो। इस काव्य का वर्ण्य विषय ही निंदा है जो प्रकट या प्रच्छन्न रहती है। यह आधुनिक 'पैरोडी' या अन्य इसी प्रकार की हास्य-व्यंग्य रचना के समकक्ष काव्य-विधा है। यहाँ चरणों की संख्या अनिर्धारित रहती है। छंदःशास्त्र में इसका लक्षण तो दिया गया है परंतु कोई अच्छा उदाहरण प्राप्त नहीं होता।

अंचल, रामेश्वद शुक्ल *(हिं० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म-स्थान किशनपुर, ज़िला फ़तेहपुर (उ० प्र०) है। 1942 में एम० ए० करके 1945 में इन्होंने अध्यापन आरंभ किया। आजकल ये महाकौशल कला महाविद्यालय के प्राचार्य और जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं।

इन्होंने निबंध, कहानी और उपन्यास-साहित्य का सृजन भी किया है परंतु इनकी ख्याति का मुख्य आधार कविता है। इनकी दृष्टि विकासशील रही है। छायावादी (दे० छायावाद) रस-रोमांस के प्रभाव में आकर इन्होंने 'मधुलिका' और 'अपराजिता' का प्रणयन किया। 'किरण-बेला' और 'करील' की भावभूमि प्रगतिशील है। 'विराम-चिह्न' से ये 'अरविंद-दर्शन' की ओर उन्मुख हुए हैं। 'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी' और 'अनुपूर्वा' इनके नये कविता-संग्रह हैं। भाव के धरातल पर इनकी कविता का केंद्रीय बिंदु प्रेम और सौंदर्य है। इनका प्रेम-निवेदन उन्मुक्त और सौंदर्य-चित्रण मांसल है। शिल्प की दृष्टि से ये उत्तर-छायावादी गीतकारों के निकट हैं।

अंडेरी गंडेरी टीचरी टेन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

यह बाल नाटक, नृत्य और गीति-नाट्य है। एक बालक ज़बरदस्ती अंक और पहाड़े याद करने से तंग आ जाता है। वह स्वप्न देखता है और सारा नाटक उसके स्वप्न के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के सारे अंगों—अभिनेयता, गति, दृश्यक्षमता, गीत, वेशभूषा, संवाद द्वारा निरूपित पात्र की विशेषता—इत्यादि का मधुर मेल है। बालक पहाड़े याद करते-करते सो जाता है, तब तीन के प्रतिनिधि-रूप में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आते हैं, छह के प्रतिनिधि रूप में छह ऋतुएँ आती हैं। गुजराती के नाट्य-साहित्य में इस नाटक का विशिष्ट स्थान है।

अंतरपट *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1960 ई०]

'अंतरपट' गुजराती के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक एवं शिक्षाशास्त्री श्री स्नेहरश्मि (दे०) का गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यास है। इसे अर्ध आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें हरिजन नायक और नायिका के माध्यम से हरिजनों की छुआछूत की समस्या के साथ अंचल का वातावरण और उसकी समस्याओं का विस्तृत निरूपण किया गया है। नायक तथा नायिका के स्थूल एवं सूक्ष्म प्रणय का चित्रण उन्होंने यथार्थ की भूमिका पर किया है। उपन्यास का कारुणिक अंत भी इसी अर्थ की परिपुष्टि करता है।

'अंतरपट' की रचना लेखक ने आधुनिक शैली में की है। उपन्यास का अधिकांश भाग आत्मकथात्मक शैली में है। अंतिम भाग में लेखक ने डायरी-शैली का आश्रय लिया है।

अंतरीक्षम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1943 ई०]

'अंतरीक्षम्' प्रसिद्ध समालोचक और शिक्षाविद् प्रो० जोज़फ़ मुंटश्शेरि (दे०) का समालोचना-ग्रंथ है। इस में मलयाळम के तीन यशस्वी आधुनिक कवियों (दे० कवित्रयम्) द्वारा तीन समानधर्मी कथावस्तुओं के आधार पर लिखे गये खंडकाव्यों का तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इस पुस्तक में समीक्षाहीन खंडकाव्य कुमारन् आशान् (दे०) की 'करुणा' दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) की 'मग्द-लन मरियम्' (दे०) और उळ्ळूर् की 'पिंगळा' (दे०) हैं। तीनों के इतिवृत्त प्रख्यात हैं और तीनों में पश्चात्तापग्रस्त वेश्याओं के मनःपरिवर्तन और सद्गति की कथा चित्रित हैं। प्रो० मुंटश्शेरि अपने ग्रंथ में विस्तार से चर्चा करते हैं कि इन तीनों कवियों ने अपने-अपने संदर्भों को किस कुशलता के साथ निभाया है। उन्होंने प्रतिपादन किया है कि आशान् का काव्य इन तीनों में श्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रख्यात काव्यों की तुलनात्मक समालोचना के क्षेत्र में 'अंतरीक्षम्' सर्वप्रथम गंभीर प्रयास था और इसी लेखक की अन्य कृति 'माट्टोलि' (दे०) ही इस ग्रंथ के समकक्ष मानी जा सकती है। समालोचना में पश्चिमी और भारतीय मानदंडों के समुचित समन्वय की दृष्टि से भी इस ग्रंथ का बड़ा महत्व है।

अंतर्जनम्, ललितांबिका *(मल० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

जन्म-स्थान—काट्टारक्करा।

'अंतर्जनम्' का मतलब है केरलीय ब्राह्मण जाति की महिला। केरलीय ब्राह्मणों की पारिवारिक रूढ़ि-रीतियों के बंधन अत्यंत जटिल और अहितकारी थे। बीसवीं शती के सुशिक्षित नंपूतिरि लोगों ने इसमें क्रांति की। श्रीमती अंतर्जनम् सुशिक्षित पिता की लाड़ली बेटी थीं। साहित्यिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में प्रसिद्ध बंधुजनों से उन्हें यथोचित प्रेरणा मिली। रूढ़ि के कारण ये उच्च शिक्षा तो न पा सकीं पर स्वाध्याय के द्वारा इन्होंने पर्याप्त ज्ञानार्जन कर लिया। संयोग से अंतर्जनम् के पति भी साहित्य-प्रेमी एवं उदार हैं। अतः गृहस्थी के व्यस्त जीवन में अवकाश की घड़ियों का सदुपयोग कर वे कविता, कहानी आदि प्रस्तुत करती रही हैं। अब तक इनके नौ कहानी-संग्रह, छह कविता-संकलन, एक लघु उपन्यास और दो बाल-साहित्य-ग्रंथ निकल चुके हैं।

पंद्रह वर्ष की अवस्था में इनकी प्रथम कहानी 'पार्थसारथी' प्रकाशित हुई जिसकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक आंदोलन का प्रसार था। आगे इन्होंने नंपूतिरि परिवारों की चहारदीवारीं के अंदर के संसार को—जिसमें कट्टर रूढ़ियों का बोलबाला था, बहनों के आँसू और आहें थीं—अपनी कहानियों का क्षेत्र बनाया। ये स्त्री-सहज करुणा, सहानुभूति और आत्मीयता से प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत कर सकी हैं। अतएव इस क्षेत्र की ये ही अनन्य कहानी-लेखिका हो गई हैं। 'मूटुपटत्तिल्', 'मनुष्यपुत्रि' आदि इसके उदाहरण हैं। अपने चारों ओर के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक वातावरण से प्रेरणा ग्रहण करके भी ये कहानियाँ लिखती आई हैं। इनका स्वर मानवता की प्रतिष्ठा के प्रति समर्पित रहा है। इनकी गद्य-शैली में सहज आत्मीयता एवं भाव-प्रवणता है जो स्त्रीत्व की कोमलता से समन्वित होकर मन पर छाप छोड़े बिना नहीं रहती।

अंदमान कैदी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1945 ई०]

यह तमिल के आरंभिक प्रसिद्ध सामाजिक नाटकों में से है। इसके रचयिता कु० चा० कृष्णमूर्ति हैं। कृष्णमूर्ति सफल नाटककार होने के साथ-साथ कुशल अभिनेता भी थे। उनका यह नाटक पाठ्य भी है और अभिनेय भी। इस नाटक में मुख्यतः अनमेल विवाह की समस्या का और समाज-सुधारकों के कष्टों का अंकन किया गया है। नाटककार ने बाल-विवाह का विरोध करते हुए प्रबल शब्दों में प्रेम-विवाह एवं नारी के पुनर्विवाह का समर्थन किया है। 1952 ई० में तमिल वळर्च्चि कषगम (तमिल विकास सभा) ने इसे तमिल के श्रेष्ठ सामाजिक नाटक का पुरस्कार प्रदान किया। तमिल संगीत नाटक अकादमी ने इसके लेखक को अपने समय का श्रेष्ठ नाटककार घोषित किया। इस नाटक को चलचित्र के रूप में भी प्रस्तुत किया जा चुका है। कु० चा० कृष्णमूर्ति ने समाज-सुधार-संबंधी इस नाटक की रचना द्वारा नाट्य सभाओं को सामाजिक नाटकों के विकास की दिशा में प्रेरित किया।

अंदाज़े *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1949 ई०]

यह एक समीक्षा-ग्रंथ है। इसके रचयिता महान् साहित्यकार रघुपतिसहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी (दे०) हैं। फ़िराक़ साहब अँग्रेज़ी साहित्य के विद्वान होने के अतिरिक्त उर्दू के एक महान् कवि और आलोचक हैं।

इस पुस्तक में उन्होंने कुछ सुप्रसिद्ध कवियों, लेखकों तथा उनके काव्य और साहित्य की समीक्षा की है। इस पुस्तक की रचना का एकमात्र उद्देश्य स्वयं लेखक के शब्दों में यह है कि 'नयी पीढ़ी को पुरानी साहित्य-निधि से अवगत कराया जाए, ताकि हमारे समय के नवयुवक नये साहित्य तथा नयी काव्य-धाराओं में बहकर पुराने साहित्य से अनभिज्ञ न रह जायें।' इस पुस्तक के द्वारा लेखक प्राचीन कवियों के काव्य में विद्यमान सौंदर्य, रस तथा आनंद के समुचित प्रभाव को दूसरों तक पहुँचाना चाहता है और वैसी आनंदानुभूति पाठकों को भी कराना चाहता है जैसी स्वयं उसने की है।

अपनी आलोचना-दृष्टि को लेखक ने 'अनुमान' की संज्ञा दी है और इसी आधार पर इस पुस्तक का नाम 'अंदाज़े' रखा गया है। यह पुस्तक उर्दू साहित्य का बहुमूल्य ग्रंथ है।

अंदादि *(त० पारि०)*

तमिल में प्राप्त 96 काव्यविधाओं में एक है 'अंदादि'। जहाँ किसी काव्य में किसी पद के अंतिम शब्द या शब्दांश की आवृत्ति दूसरे पद के आरंभ में होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे 'अंदादि' कहते हैं। इसे 'चोल तोडर निलै' भी कहा जाता है। जब एक ही पद के प्रथम चरण के अंतिम शब्द या शब्दांश की आवृत्ति दूसरे चरण के आरंभ में होती है तब उसे 'अंदादित्तोडै' कहते हैं। अंदादि शैली की यह विशेषता कलंबकम् (दे०), इरट्टैमणिमालै, मुम्मणिक्कोवै, नान्मणिमालै आदि अन्य काव्यविधाओं में भी प्राप्त होती है। अंदादि शैली का जन्म ईसा की दूसरी शती के आसपास हुआ था। पुरनानूरु (दे०), अकनानूरु (दे०), शिरुपाणाट्रुप्पडै, आदि प्राचीन कृतियों में इस शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली में रचित कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—कैलैपादि कासत्तिपादि अंदादि, शिवपेरुमान् तिरुवंदादि, अर्पुदतिरुवंदादि (दे०), पोन्वण्णत्तंदादि, मुदल, इरंडाम्, मून्राम तिरुवंदादि, तिरुनूट्रंदादि, तिरुत्तोंडर तिरुवंदादि, तिरुक्करुवै पदिट्रुप्पत्तु अंदादि आदि। अंदादि शैली के अन्य भेद हैं—वेण्बा अंदादि, कलित्तुरै अंदादि, पदिट्रुप्पत्तु अंदादि आदि।

अंधगळिर अंधकार *(उ० क्रु०)*

यदि रवि पटनायक की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में हमारे आधुनिक जीवन की शून्यता एवं अर्थहीनता की ओर इंगित किया गया है। ये कहानियाँ लेखक द्वारा किए गए बहुविध भाषिक प्रयोगों की भी साक्षी हैं। इनमें हमारी सामाजिक वास्तविकता का विद्वत्तापूर्ण और तीखा अनुशीलन है जो अपनी सच्चाई के कारण रुक्षता की सीमा तक पहुँच गया है।

अंधा युग *(हिं० क्रु०)*

धर्मवीर भारती (दे०) के इस काव्य-नाटक में काव्य और नाटक दोनों की शक्तियों का उत्कर्ष मिलता है। 'महाभारत' (दे०) की युद्ध-कथा का आधार लेकर कवि ने अपने युग की मूल्यांधता का सशक्त प्रतिपादन किया है। विशेषता यह है कि इस युग का प्रश्न द्वापर के सशक्त वातावरण में उभारा गया है। प्रतिपाद्य के संबंध में एक आपत्ति बार-बार उठाई गयी है और वह यह कि लेखक अंधेपन में कुछ ज्यादा उलझ गया है और फलतः कृष्ण का चरित्र भी विकृत हो गया है। वस्तुतः इस आपत्ति के मूल में लेखक की वह प्रक्रियागत अनास्था है जिसमें से गुज़र कर वह ज्योति की परिणति पर पहुँचना चाहता है। कृष्ण को अंधों ने बुरा-भला कहा है ज़रूर, परंतु अंत में उनके महत्व को भी इन अंधों ने देख लिया है अपनी आँखों से। इतना ही नहीं, उनके अंतिम शब्द हैं—'जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार-बार।' अंधे युग में आस्था की खोज का यह प्रयत्न बर्डेव आदि अस्तित्ववादियों से प्रभावित है। व्यंजक प्रतीक-विधान, व्यावहारिक भाषा, भावसघन संवाद और नये नाटकीय प्रयोगों के कारण यह रचना हिंदी-नवलेखन की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

अँधेरे बंद कमरे *(हिं० क्रु०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यह मोहन राकेश (दे०) का पहला और अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत कृति में लेखक ने मधुसूदन, हरबंस, नीलिमा (दे०), शुक्ला आदि पात्रों के माध्यम से दिल्ली के आधुनिक जीवन को भारतीय नागरिक जीवन के प्रतीक-रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ दिल्ली के उच्च एवं निम्नमध्यवर्गीय जीवन को पृष्ठभूमि के रूप में अपनाते हुए कॉफ़ी हाउस तथा ला बोहीम में बैठकर सिगरेट के धुएँ एवं कॉफ़ी की चुस्कियों के बीच घुटन और निराशा से संत्रस्त रहनेवाले मध्यवर्गीय कुंठित व्यक्तियों के उस अंतर्मन को रूपायित किया गया है जो ट्रैंक्विलाइज़र्स, नींद की गोलियों तथा रात-भर शराब की बोतलों के सेवन के बावजूद अनिश्चय, बेबसी तथा अकेलेपन की भावना से निस्तार पाने में सर्वथा असमर्थ हैं। कॉफ़ी हाउस में बैठकर 'क्षण की अनुभूति' तथा 'अनुभूति के राज' पर लंबी बहस तथा हर किसी की निंदा करनेवाले असफल लेखकों, पत्रकारों, चित्रकारों एवं कलाकारों द्वारा काल्पनिक सुख की आशा में चारों ओर दौड़धूप करने के बावजूद मानसिक अशांति से छुटकारा पाने में सर्वथा असमर्थ मध्यवर्गीय व्यक्ति के सामाजिक संघर्ष तथा मानसिक अंतर्द्वंद्व और खोखली हँसी, बनावटी आँसू, औपचारिकता के बाँध पर टिकी ज़िंदगी के प्रत्यंकन के साथ-साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों, राजनीतिक दाँव-पेचों एवं पारिवारिक जीवन के अँधेरे-बंद कमरों को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में भी उपन्यासकार को पूर्ण सफलता मिली है। उपन्यास का कथानक अत्यंत शिथिल है और उसका प्रवाह बहुत धीमा है। प्रमुख पात्रों के विदेश-यात्रा-विषयक प्रकरण से कथानक गतिमान अवश्य हुआ है; किंतु यह ऐसा प्रकरण है जिसे छोड़ देने पर भी औपन्यासिक कथ्य को कोई विशेष क्षति नहीं पहुँचती। हरबंस तथा मधुसूदन का विषम परिस्थितियों के समक्ष घुटने टेकने तथा देश के साथ विश्वासघात करने के स्थान पर निरंतर संघर्ष के लिए तत्पर रहने से स्वाभिमानी भारतीय नागरिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चित्र उजागर होता है। समग्रतः स्वतंत्र भारत के नागरिक जीवन को रूपायित करनेवाले उपन्यासों में इस कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अंबपालि *(प्रा० पा०)*

यह वैशाली नगर की अनिंद्य सुंदरी वेश्या थी। यह एक माली को आम के पेड़ के नीचे पड़ी मिली थी, इसीलिए इसका नाम अंबपालि पड़ा था। बड़ी होकर जब यह अभूतपूर्व सुंदरी बनी तब राजपुत्रों ने परस्पर संघर्ष मिटाने के लिए इसे रूपाजीवा जनपद-कल्याणी बनाया। यह एक रात के लिए 50 मुद्राएँ लेती थी। एक बार भगवान् के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हें शिष्यों सहित भोजन के लिए आमंत्रित कर इसने अपना प्रमोद आराम प्रदान कर दिया। अपने पुत्र विमल कौडिन्य के प्रव्रजित होने पर स्वयं प्रव्रज्या ले ली। 'थेरीगाथा' (दे०) में इसने वृद्धावस्थाजन्य सौंदर्य-परिवर्तन का बड़ा ही भावुक वर्णन किया है।

अंबोपदेशम् *(मल० कृ०)*

इसके रचयिता मावेलिक्करा पुत्तन् कोट्टरत्तिल् उदयवर्मा तंपुरान हैं। इसका रचना-काल बीसवीं शती है।

अकनानूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

अष्ट पद्य-संग्रहों में 'अकनानूरु' का बहुत महत्त्व है। तत्कालीन अकम् काव्यों में सर्वाधिक विस्तृत होने के कारण इसे 'नेडुंत्तोगै' कहा गया। इसमें विभिन्न कवियों द्वारा रचित 400 पद हैं जो अहवल छंद में रचित हैं। रचना के आरंभ में मंगलाचरण के पद हैं जिसके रचयिता पेरुंदेवनार हैं। संपूर्ण कृति कळिट्रियानैनिरै, मणिमिडै पवळम् और नित्तिलक्कोवै नामक तीन भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः 120, 180 और 100 पद हैं। ये पद 120 से लेकर 37 पंक्तियों तक हैं। इसमें पाँचों भूभागों और उनके निवासियों के जीवन का विस्तृत वर्णन है। कुरिंजि (दे०)-संबंधी पदों में पूर्वराग, मुल्लै (दे०) नेयपल, (दे०) और पालै (दे०)-संबंधी पदों में प्रेमी-प्रेमिका की विरहानुभूतियों और मरुदम (दे०)-संबंधी पदों में सुखी वैवाहिक जीवन तथा उसमें आनेवाली बाधाओं का वर्णन है। कवियों ने विभिन्न भूभागों का और विभिन्न मनोभावों का वर्णन इतने सुंदर, सजीव और मर्मस्पर्शी ढंग से किया है कि हमें ने वर्णन कवि के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित प्रतीत होते हैं। पदों में चित्रात्मकता है। उपमा अलंकार का तथा सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग-सौष्ठव दर्शनीय है। इसमें प्राचीन तमिल लोगों की सभ्यता, संस्कृति, प्रथाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कुछ पदों में द्रविड़ों के मौलिक विवाह-संस्कार का वर्णन है। अकनानूरु में तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओं और सामंतों के शासनादि से संबंधित पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। यह सामग्री तत्कालीन तमिल समाज का प्रामाणिक इतिहास तैयार करने में सहायक सिद्ध होती है।

अकबर *(मल० कृ०)*

अकबर की यह जीवनी केरलवर्मा वलिय कोयितंपुरान् (दे०) की रचना हैं। रचना-काल 1842 और 1915 ई० के बीच में माना जाता है। अँग्रेज़ी से इसका अनुवाद किया गया है। कहा जाता है, इस ग्रंथ को पूरा लिखने में लेखक को बारह वर्ष लगे। फलतः शैलीगत वैविध्य और वैभिन्न्य इसमें स्पष्ट परिलक्षित होता है।

'अकबर' इलाहाबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1846 ई०, मृत्यु 1921 ई०]

जन्म-स्थान—मौज़ा बारा (ज़िला इलाहाबाद); नाम—सैयद अकबर हुसैन, उपनाम—'अकबर', लक़ब—लिसान-उल-अस्र (अपने युग का भाषा-मर्मज्ञ)। इन्होंने साधारण क्लर्क के पद से उन्नति करते-करते न्यायाधीश का सम्मान प्राप्त किया था। तत्कालीन अँग्रेजी शासन ने इन्हें 'ख़ान बहादुर' की उपाधि प्रदान की थी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय का 'फ़ेलो' भी नियुक्त किया था। ये हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र में उर्दू साहित्य के अन्यतम कवि हैं। 'कुल्लियात-ए-अकबर' (दे०) के नाम से इनका काव्य-संकलन चार भागों में प्रकाशित हो चुका है। हास्य-एवं व्यंग्य-प्रधान शैली में कल्पना और बुद्धि का अपूर्व सामंजस्य इनके काव्य की विशेषता है। इनका काव्य नैतिकता-प्रधान होते हुए भी इतना मनोमुग्धकारी है कि पाठक चमत्कृत हुए बिना नहीं रहता। तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय परिस्थितियों का व्यंग्यात्मक चित्रण इनके काव्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है। ये प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के उपासक थे। अतः पाश्चात्य सभ्यता के खोखलेपन की इन्होंने खुलकर खिल्ली उड़ाई है; यहाँ तक कि सर सैयद अहमद ख़ाँ के आंदोलन का भी इन्होंने यथाशक्ति विरोध किया था। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला को जीवन के लिए उपयोगी मानने के पक्ष में थे, अतः इनका अपना काव्य भी आद्योपांत सोद्देश्य ही है।

अक्करैच्चीमैयिल् *(त० कृ०)*

इस शीर्षक का अर्थ है 'उस किनारे की भूमि में' और यह साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत यात्रा-संस्मरण-ग्रंथ है। लेखक 'चोमु' आकाशवाणी के मद्रास केंद्र के प्रमुख अधिकारी हैं तथा कवि, उपन्यासकार एवं निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत कृति (1969 ई० में तीसरा संस्करण) लेखक की छह महीनों की विदेश-यात्रा का वर्णन करती है। 'इंपीरियल रिलेशंस ट्रस्ट' नामक संस्था के प्रोग्राम के अंतर्गत पुस्तक-रचयिता ने इंग्लैंड, स्काड्लेंड, आयरलैंड, फ्रांस, आस्ट्रिया, जर्मनी इत्यादि ग्यारह देशों का भ्रमण करते हुए वहाँ की सांस्कृतिक संस्थाओं से संबंध स्थापित किया तथा रेडियो-भाषण आदि दिये। लेखक ने इस यात्रा के अपने अनुभवों को चुटकीली शैली में प्रस्तुत किया है और अन्य देशों की संस्कृति की विशिष्टताओं को तमिल-भाषियों के रहन-सहन की पृष्ठभूमि में रखकर अपने बर्णनों को और रोचक बना दिया है।

अक्का *(ते० पा०)*

यह महाकवि तेनालि रामकृष्ण (दे०) (1500-1570 ई०) द्वारा रचित प्रौढ़ प्रबंधकाव्य 'पांडुरंग महात्म्यमु' (दे०) के निगमशर्मोपाख्यानमु की एक प्रधान पात्र है। 'पांडुरंग महात्म्यमु' अनेक भक्तों एवं तीर्थ-स्थानों की महिमा का वर्णन करनेवाला उत्तम काव्य है।

'अक्का' का अर्थ है बड़ी बहिन। यहाँ अक्का ब्राह्मण होकर भी नाना (दे०) व्यसनों में पड़कर स्वेच्छाचार करनेवाले निगम शर्मा की बड़ी बहिन है। कवि ने उसका कोई नाम नहीं दिया है। अतः वह अपने प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के कारण 'अक्का' नाम से विख्यात हुई है और घर-घर से उसका स्मरण किया जाता है।

'अक्का' अपने छोटे भाई के दुराचरण से खिन्न होकर उसे उस मार्ग से विरत करने के लिए पति एवं संतान के साथ मायके आती है, दुःखी माता-पिता को सांत्वना देती है, घर की धन-संपत्ति को नष्ट होने से बचाने के लिए उचित प्रबंध करती है, पशु, शिशु, नौकर, चाकर आदि को संतुष्ट करती है, धूल से लिपटी हुई घर की वस्तुओं को सजाती है और भाई की पत्नी के दुःख को दूर करने के लिए तथा भाई को उचित मार्ग पर लाने के लिए बड़ी चतुराई एवं सूझबूझ से काम लेती है। भाई को वह अनेक प्रकार के दृष्टांत देकर, वंश की प्रतिष्ठा, सदाचरण, सामाजिक प्रतिष्ठा, आत्मोन्नति, काम-प्रवृत्ति का सच्चा स्वरूप आदि अनेक विषयों के संबंध में अत्यंत सद्भावना एवं सौहार्द के साथ समझाकर अनुभव करती है कि वह अपने आपको सुधारे और धर्मपत्नी, पिता एवं माता के प्रति अपना कर्तव्य निभाये। 'अक्का' का यह प्रयास सफल नहीं हुआ किंतु आंध्र के प्रत्येक सहृदय के हृदय में उसके लिए सम्माननीय स्थान बन गया है।

अक्कित्तम् *(मल० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका पूरा नाम है अक्कित्तम् नंपूतिरि। इनका जन्म कुमरनळ्ळूर् नामक गाँव में हुआ था। प्रारंभ में इन्होंने परंपरागत वेदाध्ययन किया। बाद में संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। बीच में इन्होंने संगीत एवं ज्योतिष का सामान्य ज्ञान भी प्राप्त किया। कथकलि का इन्हें खास शौक रहा है। शारीरिक अस्वस्थता के कारण कालिजीय शिक्षा थोड़े दिनों के बाद स्थगित हो गयी थी।

अक्कित्तम् की कारयित्री प्रतिभा बड़ी सशक्त एवं सक्रिय रही है। इनकी 'वीरवादम्', 'मनोरथम्' आदि प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह अब 'अरंहोट्टम्' नाम से नये सिरे से प्रकाशित है। इनके 22 ग्रंथ संकलित हैं जिनमें प्रसिद्ध हैं—'मधुविधु', 'पंचवर्णक्किळिकळ', 'इरुपताम्-नूट्टांटिटे इतिहासम्' (दे०) और 'ओरु कुला मुंतिरिङ्ङा'। इन्होंने कुछ बालोपयोगी रचनाएँ भी लिखी हैं। अब ये कोषिक्कोड के आकाशवाणी केंद्र में साहित्यिक लेखन का कार्य कर रहे हैं।

सनातनी विचारों के लिए प्रसिद्ध नंपूतिरि परिवार में जन्मे श्री अक्कित्तम् के विचार अत्यंत प्रगतिशील रहे हैं। संसार की परिवर्तनशील युगचेतना से जो क्रांति मचती आई है उसका इतिहास इनकी 'इरुपताम्-नूट्टांटिटे इतिहासम्' (बीसवीं सदी का इतिहास) में वर्णित है। 'पंटत्ते मेशांति' (भूतपूर्व पुजारी) इनकी प्रसिद्ध एवं प्रगतिशील रचना है। इसमें यह दर्शाया गया है कि जहाँ पहले अभिजात समाज के श्रेष्ठ केंद्र मंदिर आदि थे वहाँ अब व्यापार-भवन और कारखाने ही उनकी जगह लेते हैं। अक्कित्तम् मलयाळम की नयी कविता के सशक्त समर्थकों एवं समीक्षकों में अन्यतम हैं। इन्होंने मलयाळम कविता के नये भाव, रूप, गीतितत्त्व, ताल, लय आदि की व्याख्या एवं समर्थन बराबर सशक्त रूप से किया है। ये कभी उथले नहीं रहे। इनके विचार एवं स्थापनाएँ गहरी विद्वत्ता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण हैं।

अक्तेयन् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

ओ० एम० अनुजन् (दे०) की चार सुदीर्घ कविताओं का संग्रह। इन कविताओं की विषय-वस्तु प्राचीन यूनानी साहित्य के पात्रों और यूनानी पुराण-पुरुषों की कथा है।

'अक्तेयन्' की कविताओं में यूनानी कथाओं का विकास और पात्रों का चरित्र-चित्रण भारतीय वातावरण में हुआ है। कुछ पात्रों में भारतीय महाकाव्यों के पात्रों की छाया दर्शनीय है— यथा सूर्यपुत्र कर्ण और अपोलोनंदन 'अक्तेयन्' की समांतर कथा आदि। यूनानी सभ्यता को भारतीय पृष्ठभूमि में समझने के लिए यह काव्य-संग्रह अत्यधिक उपयोगी है और इस दृष्टि से मलयाळम में इसका ऊँचा स्थान है।

अक्षरमाला *(क० पारि०)*

कन्नड में कुछ ऐसे काव्य हैं जिनमें अकारादि क्रम से पद्यों की रचना हुई है। ऐसे काव्यों को 'अक्षर-माला' कहते हैं। इन काव्यों में चमत्कार के अतिरिक्त कवि-प्रतिभा भी प्रकट हुई है। रत्नत्रय (पंप, पोन्न और रन्न) में प्रसिद्ध पोन्न की 'ज़िनाक्षरमाला' इसका उदाहरण है। इसमें 39 पद्यों में जिनकी स्तुति प्रस्तुत की गई है। सत्रहवीं शती के कवि चिक्कुपाध्याय की रचना 'अक्षर-मालिका सांगत्य' भी इसी प्रकार का काव्य है। उसमें 103 पद्यों में भगवान् रंगनाथ की स्तुति की गयी है। कन्नड में ऐसे काव्य और भी हैं।

अख़्तरिस्तान *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1946 ई०]

किताब मंज़िल, लाहौर द्वारा प्रकाशित यह कृति अख़्तर शीरानी (दे०) का द्वितीय काव्य-संग्रह है। श्रृंगार रस से परिपूर्ण इस कृति में ग़ज़लों और गीतों की भरमार है। बड़ी नज़्में भी देखने में आती हैं। प्रेम, यौवन, सौंदर्य, संगीत, नारी और प्रकृति-चित्रण इस कृति के मुख्य विवेच्य विषय हैं। 'सिलमा' के सौंदर्य का अखंड उपासक 'अख़्तर' शीरानी इस कृति में अपनी समस्त अतृप्त कुंठाओं के साथ मार्मिक स्वर में अपने श्रृंगारिक मनोभावों की अभिव्यक्ति करता हुआ दिखाई देता है। इस दृष्टि से उसकी—'जमाल-ए-सिलमा', 'सिलमा' (नूरजहाँ के मज़ार पर), 'वक़्त की क़द्र' (बहार बीतने वाली है आ भी जा सिलमा), 'इंतज़ार' (सुना है मेरी सिलमा रात को आएगी वादी में), और 'सिलमा' आदि शीर्षक कविताएँ अत्यंत भावुकतापूर्ण हैं। इन कविताओं के अतिरिक्त—'ओ देस से आनेवाले बता', 'गुज़री हुई रातें', 'जहाँ रेहाना रहती थी', 'एक हादसा', 'ईद का चाँद', 'प्यारी चली जाओगी क्या ?', 'दुनिया की बहारें', 'औरत' आदि शीर्षक कविताएँ भी पूर्णतः श्रृंगार रस में डूबी हुई हैं। संगीतात्मकता इस काव्य-कृति की प्रमुख विशेषता है। नून मीम राशिद के अनुसार अख़्तर शीरानी उर्दू का कीट्स है और इसी संदर्भ में इस कृति को देखा जाना चाहिए। संगीत, नृत्य और उद्दाम मादकता का संचार इस कृति की प्रायः प्रत्येक कविता में हुआ है।

अख़्तरुल ईमान *(उर्दू० ले०)*

समसामयिक कवियों में अख़्तरुल ईमान की शायरी का बड़ा महत्त्व है। इनकी शायरी में ज़िंदगी की विविध अवस्थाओं का निरूपण हुआ है और इनकी कविता कहीं-कहीं आत्मकथा के निकट आ जाती है। यहाँ कवि के बचपन की झलक भी है, जवानी का रंग-रूप थी। अख़्तरुल ईमान विजनौर के एक गाँव में पैदा हुए, मुश्किलों में बचपन बीता, शिक्षा के लिए इधर-उधर भटकते रहे, साहित्य-जगत् में क़दम रखा तो भी शोषित हुए—दूसरों के नाम से भी लिखना पड़ा। पर कभी स्वाभिमान, प्रेम और मानवता का दामन नहीं छोड़ा। ज़िंदगी की ऊँच-नीच के साथ ही समाज की कुरीतियों-कुव्यवस्था के भी सबल संकेत इनमें मिलते हैं। मौजूदा आर्थिक व्यवस्था पर तो इन्होंने भरपूर चोटें की हैं। नज़्मनिगार की हैसियत से इस दौर में इनसे बेहतर कवि कम ही होंगे। 'गरदाब', 'तारीक सितारा', 'आबजू', 'सबरंग', 'यादें', 'बिनते लमहात' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। 'यादें' (दे०) साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कृति है।

अखाड़ा घरर बैठक (उ० कृ०)

'झंकार' मासिक पत्रिका में श्री कृष्ण प्रसाद बसु (दे०) का जात्रा (दे०)-साहित्य का आधुनिक इतिहास 'अखाड़ा घरर बैठक' के नाम से प्रकाशित हुआ था। यह इतिहास उड़िया-गद्य का सशक्त रूप प्रस्तुत करता है। इनकी शैली उच्च कोटि की है। इसमें ग्राम्य एवं शिष्ट भाषा का सुंदर सम्मिश्रण मिलता है—वाक्यों में आश्चर्यजनक सावलीलता एवं अपूर्व वर्णन-क्षमता मिलती है। सूक्ष्म हास्य रस से ओतप्रोत इनकी गद्य-शैली अत्यंत सुखपाठ्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखिलन् *(त० ले०)* [जन्म— 1922 ई०]

अखिलन् का जन्म तिरुच्चि ज़िले में स्थित पेरुंगळूर में हुआ। इनका पूरा नाम पी० वी० अखिलांडम् है। अखिलन् को तमिल के साथ-साथ अँग्रेज़ी भाषा और साहित्य का भी अच्छा ज्ञान है। इन्होंने लगभग 30 कृतियों की रचना की जिनमें 'पावै विळक्कु' (दे०), 'पोन मलर्', 'पुदु वेळ्ळम्', 'वेंगैयिन् मैंदन' आदि (उपन्यास), 'निलविनिले' (कहानी-संग्रह), 'वाळ्विल इंदम' (नाटक), 'इळैत्ज्जक्कु' (निबंध-संग्रह), 'तंग नगरम' (बाल साहित्य) आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'आस्कर वाइल्ड' के उपन्यास 'सालोम' का 'दाहम्' नाम से और मोपासाँ की कहानियों का 'मुळु निलवु' नाम से अनुवाद किया। 'स्नेहिदी' और 'पेण्' नामक इनके उपन्यास हिंदी, कन्नड़, बँगला और मलयाळम में, 'पोन मलर्' कन्नड़ और मलयाळम में, 'नेत्ज्जिन अलैकळ' कन्नड़ में अनूदित हो चुके हैं। 'पावै विळक्कु' और 'वाळवुएंगे' नामक उपन्यासों के आधार पर चलचित्र बन चुके हैं। इनके 'पेणु', 'नेत्ज्जिन अलैकळ' और 'वेंगैयिन मैंदन' उपन्यास पुरस्कृत हो चुके हैं। अखिलन् की अनेक कहानियाँ रूसी, जर्मन, चेक, अँग्रेज़ी, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। अखिलन् की रचनाओं की मूल विशेषताएँ हैं भाषा की सरलता, विचारों की गंभीरता और स्पष्ट चिंतन। ये रोमांटिक धारा के लेखकों में से हैं। आजकल अखिलन् आकाशवाणी के मद्रास केंद्र में वार्ता-संयोजक के रूप में कार्य कर रहे हैं। ये वर्तमान प्रसिद्ध तमिल साहित्यकारों में गिने जाते हैं।

अखे गीता *(गु० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती]

गुजराती के मध्ययुगीन निर्गुणवादी, ज्ञानी व संत कवि 'अखो' (दे०) की रचना 'अखे गीता' वेदांतपरक रचना है। ज्ञान, वैराग्य, निर्गुण का निरूपण, झूठे आडंबरों का विरोध, सुधार-भावना तथा बाह्याचार पर प्रखर प्रहार आदि अखो की विशेषताएँ हैं।

विष्णुप्रसाद त्रिवेदी तथा व्रजराज देसाई संपादित 'अखे गीता' का प्रथम संस्करण 1957 में गुर्जर ग्रंथ कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ था

चालीस कड़वकों में रचित इस रचना में हरि गुरु-संत की स्तुति, वेदांती कवियों की स्तुति, प्राचीन अधिकारी श्रोता-वक्ता, अज्ञानी जीव की दुर्दशा, जीव को माया से प्राप्त धोखा, मायाविष्ट, जीव का संसार-बंधन, माया से ब्रह्मांड की उत्पत्ति, बंधन-मुक्ति के लिए सद्गुरु की उपासना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का माहात्म्य, प्रेम-लक्षणा भक्ति, गुरुकृपा से ज्ञान-प्राप्ति, जीवन्मुक्तावस्था, जीवन्मुक्त की महिमा, ब्रह्म-निरूपण, जीव-ब्रह्मैक्य, शिव में जीव का आत्मसात् होना, जीव और मन, ईश्वर और जीव, ज्ञाता-ज्ञेय व ज्ञान का अभेद, परब्रह्म का भेद, शून्यवादी का वितंडावाद, ज्ञानी का अनुभव, विदेही के लक्षण, महापद-वर्णन, षड्दर्शन, षड्शास्त्र, षड्-उपशास्त्र, सत्संग का फल, अद्वैतपद, अखे गीता का माहात्म्य, आदि अनेक वेदांत-विषयक विषयों का पद्यात्मक निरूपण है।

अखो वेदांती एवं ज्ञानी कवि थे। कबीर की भाँति ब्रह्मवादी, अद्वैतवादी होने से वह भी पूजा, जयमाला, छाया-तिलक, कंठी आदि बाह्य विधि-विधानों के भजक व प्रखर विरोधी थे।

गुजराती भक्ति-साहित्य की निर्गुण परंपरा में 'अखे गीता' एक महत्त्वपूर्ण रचना है। अखो की वेदांती विचारधारा तथा दार्शनिक मान्यताओं को यह रचना भली भाँति प्रकट करती है।

अखो *(गु० ले०)* [समय—1591-1656 ई०]

गुजराती के ज्ञानमार्गी, निर्गुणवादी संत व वेदांती कवि 'अखो' अहमदाबाद के निवासी सुनार थे। अपनी जन्मभूमि जेतलपुर को छोड़कर ये 16 वर्ष की ही अवस्था में पिता के साथ अहमदाबाद आ गये। बचपन में ही ये मातृहीन हो गये थे। पिता भी इन्हें बीस वर्ष का छोड़ चल बसे थे। बहन की मृत्यु, क्रमशः दो पत्नियों की असामयिक मृत्यु, धर्म-भगिनी का अविश्वास एवं बादशाह की टकसाल में प्रतिद्वंद्वियों का इनके विरुद्ध षड्यंत्र—इन घटनाओं ने 'अखो' के हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर दिया और ये घर छोड़कर निकल पड़े।

श्री वल्लभाचार्य के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी से इन्होंने मंत्र-दीक्षा ली किंतु वैष्णव भक्ति में मन रमा नहीं। फलतः ज्ञानमार्ग ग्रहण कर लिया। काशी में मणिकर्णिका घाट पर एक झोंपड़ी के बाहर बैठकर संन्यासी का उपदेश ग्रहण करते थे। कहते हैं वे ही उनके गुरु हुए। अखो के नाम से प्राप्त कृतियाँ हैं—अखेगीता, अनुभव-बिंदु, केवल्य गीता, गुरु-शिष्य-संवाद, पंजीकरण, ब्रह्म-लीला, संतप्रिया।

इन रचनाओं में अध्यात्मज्ञान, अधिकतम बौद्धिकता, आत्म की सूझबूझ एवं ब्रह्मविषयक चिंतन की प्रधानता है। कवित्त, छप्पय, दोहा, परजिया-दूहा, पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि का इनकी रचनाओं में प्रयोग किया गया है। गुरु की महत्ता वे सर्वत्र स्वीकार करते हैं। इनकी 'संतप्रिया' और 'ब्रह्मलीला' हिंदी में रचित हैं।

विषय की दृष्टि से इनकी रचनाओं में निर्गुण ब्रह्म व वेदांत-चिंतन की अधिकता है। भक्ति के क्षेत्र में इन्होंने गोपी भाव को ही आदर्श स्वीकार किया है।

कबीर की भाँति इनकी रचनाओं में भी 'गुरु को अंग', 'साखी को अंग', 'निहकरमी पतिव्रता को अंग' आदि अंगों की व्यवस्था पाई जाती है।

अख़्तर मुहीउद्दीन *(कश्० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

भारत-पाक-विभाजनोत्तर काल के कश्मीरी सांस्कृतिक नवजागरण के आंदोलन की लपेट में आकर इन्होंने 1954-55 से कश्मीरी भाषा में लिखना आरंभ किया। कश्मीरियों के सामाजिक जीवन पर इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इनके कहानी-संग्रह 'सत संगर' (सात चोटियाँ) पर इन्हें 1857 ई० में साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। कश्मीरी गद्य को समृद्ध करने वाले इनके अन्य दो उपन्यास हैं 'सोज़ल' (इंद्रधनुष) तथा 'दोद दग' (दर्द और कसक) जो अपने साहित्यिक मूल्यों के कारण बहुत ही सराहनीय हैं। अख़्तर साहब की लेखनी में ओज है, और ये मनोवैज्ञानिक आधार के कथाकार हैं। इनकी भाषा में प्रवाह है और इन्होंने पहली बार चलती भाषा या बोल-चाल की भाषा, मुहावरों आदि का प्रयोग किया है। इनकी शैली मौलिक एवं मार्मिक है। इन्होंने कई नाटकों का भी कश्मीरी में अनुवाद किया है, जिनसे से 'इबसन' के एक नाटक का अनुवाद 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ है।

अख़्तर शीरानी *(उर्दू० ले०)*

इनका नाम अख्तर ख़ाँ और तखल्लुस 'अख़्तर' है। इनके पिता का नाम हाफ़िज़ महमूद ख़ाँ शीरानी था। ये रियासत टौंक में पैदा हुए थे किंतु होश लाहौर में सँभाला। ये ख़ालिस रोमानी शायर हैं। इनके काव्य में आत्म-विस्मृति का भाव पाया जाता है। इनकी नज़्में अधिकतर संवेदनात्मक शैली में होने के कारण मन को मोह लेती हैं। इनकी नज़्में एक मधुर संगीत लिए होती हैं किंतु उनमें ऐसा गांभीर्य नहीं होता जो शाश्वत हो सके। इनकी भावनाओं में कोई विह्वल कर देनेवाला तूफ़ान नहीं है। इनकी नज़्में श्रम-साध्य प्रतीत होती हैं, सहज नहीं। 'अख़्तर' की शायरी में दर्द और निराशा नहीं, भावुकता और आशा का तीव्र स्वर है। कवि अलमस्ती और भावुकता का पुजारी है। 'शेरिस्तान', 'सुबह-ए-बहार', 'नग़्म-ए-हरम', 'तयूर-ए-आवारा', 'अख़्तरिस्तान' (दे०) और 'लाल-ए-तूर' के नाम से इनके विभिन्न काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'अख़्तर' वाजिद अली शाह *(उर्दू० ले०)*

दे० वाजिद अली शाह।

अगमनिगम *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1959 ई०]

'अगमनिगम' गुजराती के रहस्यवादी लेखक यशोधर मेहता के रहस्यपरक निबंधों का एक संग्रह है। इस ग्रंथ के भूमिका-लेखक प्रसिद्ध गांधीवादी मगनभाई देसाई हैं जिनकी भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि इस संग्रह में संग्रथित अधिकांश लेख समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। 32 लेखों के इस संग्रह में लेखक ने उस मार्ग का स्पष्टीकरण किया है जो गूढ़ है और अंतर का है, एकांत का है—सर्वव्यापी चेतना की 'वेवलेंग्थ' पकड़ने का मार्ग है। यही कारण है कि लेखक ने चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन से लेकर अभिनवगुप्त, गौतम, महावीर तथा श्रीकृष्ण तक सभी विचारकों के विचारों में—यहाँ तक कि इस्लाम और जरथुस्त्र के विचारों में भी—उस परम चेतना को ही देखा है और सभी की समान भूमियों को स्पष्ट करने का उपक्रम किया है। 'अगमनिगम' के भीतर ही श्रेयस् और प्रेयस् की भी चर्चा उठाई गयी है। इन सभी निबंधों में लेखक की स्पष्ट विचारधारा के दर्शन होते हैं; उलझाव कहीं नहीं है। भाषा सरल और कहीं-कहीं लेखक की प्रकृति के अनुकूल उच्छ्वासमय हो गयी है।

अगरा *(पं० ले०)* [समय—अठारहवीं शती का अंतिम चरण]

यह कवि 1796 ई० में विद्यमान था। कवि की जाति सेठी खत्री थी पर जीवन-सामग्री के संबंध में कुछ पता नहीं चलता। इस कवि ने 'हक़ीक़त राय दी वार' (दे०) पुस्तक लिखी है। पुस्तक की भाषा ठेठ पंजाबी है, इससे अगरा का लाहौर क्षेत्र-वासी होना संभावित है। अगरा पंजाबी साहित्य में वार-साहित्य के सर्वप्रथम लेखक माने जाते हैं।

अग्नि-परीक्षा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

दंडिनाथ कलिवा (दे०) के इस नाटक की कथावस्तु वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) से ली गयी है, किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्तिवासी 'बँगला रामायण' (दे०) और 'भट्टिकाव्य' (दे०) का भी इस पर प्रभाव है। इसमें सीता-स्वयंवर से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा और राम के अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन तक की कथा का वर्णन हुआ हुआ है। चरित्र-चित्रण में मौलिकता का प्रयास दिखाई पड़ता है। रावण को अहंकार और गांभीर्य की प्रतिमूर्ति तथा मेघनाद को साहसी और देशभक्त दिखाया गया है। राम-लक्ष्मण का चरित्र परंपरागत है। छंदोबद्ध संवादों में काव्य-गुण है किंतु नाट्य-गुण नहीं है। इसे पौराणिक नाटक कहा जाना चाहिए।

अग्निपुराण *(सं० कृ०)*

महर्षि वेदव्यास (दे० व्यास, बादरायण) के नाम से प्रणीत अठारह पुराणों में 'अग्निपुराण' का सर्वाधिक महत्त्व इस दृष्टि से है कि यह महान् ग्रंथ भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा साहित्य का विश्वकोश है। इसमें अठारह विद्याओं का वर्णन है। इसमें 382 अध्याय हैं, और श्लोक-संख्या लगभग 15,000 है। इस पुराण की जो विषय-सूची 'नारदीय पुराण' में दी गयी है, वह इसके उपलब्ध संस्करण के अनुकूल है। इसमें आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, कोश आदि के अतिरिक्त काव्यशास्त्रीय सामग्री भी अत्यधिक मात्रा में (11 अध्यायों—337 से 347 तक) में प्रस्तुत की गयी है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऐसे अनेक काव्यांग विद्वानों की चर्चा के विषय बने हुए थे, जिनका उल्लेख अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में प्रायः नहीं मिलता। इसके कुछ अंश भोजराज (दे० भोज) प्रणीत 'सरस्वतीकंठाभरण' में अवश्त मिल जाते हैं। इस पुराण में छंदःशास्त्र पर भी विचार किया गया है। इसमें 'रामायण' (दे०) 'महाभारत' (दे०) आदि के अतिरिक्त 'हरिवंश' आदि ग्रंथों का सार भी प्रस्तुत किया गया है।

अग्निबीणा *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1922 ई०]

'अग्निबीणा' नज़रुल इस्लाम (दे०) का प्रथम एवं श्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ है। इस काव्य-ग्रंथ की 'विद्रोही', 'प्रलयोल्लास', 'कमालपाशा', 'आनोवार', 'कोरबानी', 'खेया-पारेक तरणी', 'शातिल आरब', 'मोहर्रम' आदि कविताओं के कारण संपूर्ण बँगला प्रदेश में इसे अभूतपूर्व जनप्रियता प्राप्त हुई। खिलाफ़त एवं गांधीजी के असहयोग आंदोलन के परिवेश में इन कविताओं की रचना हुई थी। सब प्रकार के बंधनों के विरुद्ध इसमें मुक्त जीवन का उच्छल स्वर ध्वनित है। 'अग्निबीणा' की 'धूमकेतु' कविता को लेखक ने उसी वर्ष प्रकाशित 'धूमकेतु' पत्रिका (पाक्षिक) में स्थान दिया जिसके फलस्वरूप कवि को एक वर्ष का कारावास भोगना पड़ा।

'अग्निबीणा' शीर्षक कवि ने रवींद्रनाथ (दे०) के एक गीत से चुना था। उनके इन गीतों की उद्दाम दाह-शक्ति, स्वतःस्फूर्तता एवं सुस्पष्ट स्वातंत्र्य-भावना ने भाव-प्रवण बंगाली के मन को सरलता से जीत लिया। जो कुछ निर्जीव है, निश्चेष्ट है, निष्पेषित है, उसके विरुद्ध प्राणवान् चित्त की असहिष्णुता प्रकट हुई है इन गीतों में। 'अग्निबीणा' में कुल मिलाकर 22 गीत हैं और यह ग्रंथ उस युग के स्वदेश आंदोलन के वीरपुत्र बारींद्रकुमार घोष को समर्पित है। इन गीतों में धर्मनिर्विशेष भारत माता का जय-गान है, इसीलिए 'रक्तांबर-धारिणी मां' एवं 'आगमनी' के साथ-साथ 'कोरबानी' एवं 'मोहर्रम' पर कविताएँ इकट्ठी संकलित करने में कवि ने संकोच अनुभव नहीं किया है। यहीं से नज़रुल को 'विद्रोही कवि' की उपाधि मिली। 'अग्निबीणा' के गीतों में आवेगमय विद्रोह का स्वर है, यह स्वर बीणा का नहीं रणभेरी का है। कदाचित् समय की कसौटी पर कविताएँ इतनी महत्त्वपूर्ण प्रमाणित न हों परंतु इससे इनके अवमूल्यन की कोई आशंका नहीं है।

अग्निमित्र *(सं० पा०)*

अग्निमित्र कालिदास (दे०) के प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) का नायक है। यह एक ऐतिहासिक पात्र है। अग्निमित्र प्रथम शती ई० पू० में समूचे उत्तर भारत पर शासन करता था। इसके पिता 'पुष्यमित्र' शुंग मौर्यो के मुख्य सेनापति थे। पुष्यमित्र मौर्यवंश के अंतिम शासक बृहद्रथ को मारकर स्वयं शासक बन बैठा था। इसने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से हटाकर विदिशा में स्थापित कर ली थी।

अग्निमित्र एक धीरोदात्त नायक है पर कला-पारखी भी है। यद्यपि उसे एक शृंगारी नायक के रूप में चित्रित किया गया है पर वह बहुत ही नीति-निपुण प्रतीत होता है। कवि यही दिखाना चाहता है कि अंतःपुर में विद्यमान मालविका के प्रति उसका प्रणय-व्यापार उसके गंभीर व्यक्तित्व की क्रीड़ामात्र है। देश की सुरक्षा एवं प्रजापालन में ही उसकी गहन निष्ठा है। अग्निमित्र के समय में यवनों का आक्रमण हुआ था तथा उत्तर के शासक भी विद्रोह कर उठे थे। स्वयं पुष्यमित्र उत्तर की विजय के लिए गया था तथा यवनों को अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजित किया था। अग्निमित्र ने अश्वमेध यज्ञ भी किया जिसका उस समय के राजनीतिक परिवेश में बहुत महत्व था। इस प्रकार अग्निमित्र एक कुशल राजनीतिज्ञ, वीर योद्धा एवं रसिक नायक के रूप में चित्रित हुआ है।

अग्रवाल, वासुदेवशरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1904 ई०, मृत्यु —1972 ई०]

भारतीय साहित्य, संस्कृति, पुरातत्त्व आदि विषयों पर मौलिक चिंतन करने वालों में इनका नाम अग्रगण्य है। विचारों को आत्मीयता के रस में पाग कर तथा भारतीय ज्ञान-बोध से संयुक्त करके सरल किंतु तत्सम-प्रधान भाषा के माध्यम से व्यक्त करना इनकी शैलीगत विशिष्टता है। 'पृथ्वी पुत्र', 'कला और संस्कृति', 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष', 'कादंबरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन' इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

अचला *(बँ० पा०)*

बाह्य धर्मावलंबी अचला ने ब्राह्मण महिम से अपने पिता के विरोध के बावजूद प्रेम किया था। प्रेम की शक्ति के आधार पर उसने महिम से विवाह किया। महिम का चरित्र निस्तरंग प्रशांति की मौन महिमा से युक्त था। एक ही साथ अचला का मन सुरेश के प्रति भी अनुराग-सिक्त हुआ था। परंतु सुरेश की उद्दामता अचला के प्रेम को जीत न सकी। फिर भी अचल के अंतर में जिस प्रकार महिम को स्थान मिला था उसी प्रकार सुरेश भी सर्वथा अवहेलित नहीं हुआ। अनुराग की शय्या में महिम और सुरेश दोनों को ही उसने चाहा था। परिणामस्वरूप विवाहिता अचला सुरेश की भोगतृष्णा के सम्मुख सहज ही आत्म-समर्पण करती है। अचला का प्रेम-सौध भस्मीभूत हो जाता है, महिम का भी। सुरेश के आवेग-उद्दामता के आश्रय में अचला आती है। सुरेश की आकस्मिक मृत्यु ने उसे महिम के द्वारप्रांत में ला उपस्थित किया है। आत्मसमीक्षा-मग्ना अचला की परिणति का संकेत लेखक ने दिया है। अचला की चित्तवृत्ति की परिणति को अनुताप के द्वारा परिशुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। वहाँ मानो प्रेम एवं काम के द्वंद्व की परिणति सहज ही प्रकट हुई है। जीवनाग्नि के दारुण दाह ने आत्मा के स्वरूप को सुगंभीर प्रशांति की महामौन महिमा से सुचिह्नित किया है।

अच्च तेलुगु रामायणमु *(ते० कृ०)*

गंगनामात्य और लच्चमांबा के पुत्र कवि सार्वभौम कूचिमंचि तिम्मकवि (दे०) (1648-1757 ई०) गोदावरी ज़िले में पिठापुर रियासत के कंदराड़ा नामक गाँव के निवासी थे। युग-प्रभाव के अनुरूप तिम्मकवि ने श्लेष, यमकामुप्रासयुक्त चित्ररचना, गर्भ कविता आदि की हैं।

पंडिताऊ शैली को अपनाने पर भी तिम्मकवि के वर्णन बड़े सरस और मृदु-मधुर हैं। राजाओं के आश्रय में न रहकर, इन्होंने अपनी रचनाएँ कुक्कुटेश्वर को समर्पित की हैं।

तिम्मकवि की रचनाओं में 'अच्च तेलुगु रामायणमु' (दे०) 'नीलासुंदरी परिणयमु' (दे०), 'सर्वलक्षण सार संग्रहमु' (1750) प्रसिद्ध हैं।

'अच्च तेलुगु-रामायणमु' ठेठ तेलुगु में तत्सम शब्दों से मुक्त काव्य है।

इनकी अन्य रचनाएँ ये हैं : 'राजशेखर विलासमु', 'रुक्मिणी परिणयमु', 'सिंहाचल माहात्म्यमु', 'सारंगधर चरित्रमु', 'सागरसंग माहात्म्यमु', 'रसिक जन मनोभिराममु', 'सर्पपुर माहात्म्यमु', 'शिवलीला विलासमु', 'कुक्कुटेश्वर शतकमु'।

अच्छनुम् मकळुम *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

इसके वळ्ळत्तोळ् (दे०) आधुनिक मलयाळम कवियों की बृहत्त्रयी में अन्यतम हैं। आभिजात्य प्रवृत्ति को क्रमशः छोड़कर स्वच्छंदतावादी मलयाळम शब्दावली, द्राविडी छंद और नये सामाजिक विचारों का समन्वय वळ्ळत्तोळ् की कविता में विशेषतः दर्शनीय है।

अच्छनुम् मकळुम् पिता और पुत्री पौराणिक कथावस्तु पर आधारित लघु खंड-काव्य है। इसमें पिता विश्वामित्र हैं और पुत्री शकुंतला। पति-तिरस्कृता शकुंतला के कश्यपाश्रम-निवास के दिनों में एक दिन विश्वामित्र शिष्य सहित संयोग से वहाँ आ पहुँचे। जब शकुंतला और विश्वामित्र एक-दूसरे का वास्तविक परिचय पा सके तब दोनों के तन-मन पुलकित हो उठे। पुत्री की दीन दशा के प्रतिशोध के लिए अत्याचारी पर वार करने को पराक्रमी ऋषि की भुजाएँ फड़क उठीं। परंतु शकुंतला का यह प्रत्युत्तर सुनकर कि वह भूल की आवृत्ति भर थी विश्वामित्र शांत हो गये। विश्वामित्र भी कभी मेनका के रूप पर मोहित होकर अपने संयम से हाथ धो बैठे थे और कर्त्तव्यपूर्ति के बजाय उन्होंने कातर की तरह मुँह मोड़ लिया था। दुष्यंत ने दूसरे ढंग से यही किया था। विश्वामित्र ग्लानि-पीड़ित हो उठे। अपने अप्रकृत व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उन्हें पश्चात्ताप और लज्जा की अनुभूति होती है और वे मेनका व उनकी कन्या से क्षमा-याचना करते हैं।

काव्य के लघु होने पर भी पात्रों की मानसिक भाव-तरंगों का ज्वार-भाटा दर्शाने में कवि ने पारंगति का परिचय दिया है। कई भावपूर्ण शब्द-चित्र बहुत स्तुत्य बन पड़े हैं। पिता तथा पुत्री की ममता का अनुपम चित्र इस रचना में अंकित है। इसमें पौराणिक पात्र केवल कथा-दृष्टि से पौराणिक हैं। उन्हें समसामयिक समाज में भी आसानी से ढूँढ़ा-पहचाना जा सकता है। यौवन-सुलभ विषय लोभ के कारण संयम को तिलांजलि देना और बाद में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के विचार से अपने स्खलन को नकारना स्वार्थी समाज के सहज-सामान्य अनुभव की बात है। कवि ने महर्षि विश्वामित्र तक को वात्सल्य-आर्द्र दिखाकर यह प्रमाणित करना चाहा कि नैसर्गिक प्रेरणाओं का दमन कर कृत्रिम संतता की सिद्धि का प्रयास सफल नहीं हो सकता।

'अच्छनुम् मकळुम्' कविता की क्लासिक परंपरा से स्वच्छंदतावादी परंपरा की ओर प्रयाण का प्रमाण है। इसी तरह की अन्य वळ्ळत्तोळ्-कविताएँ 'बंधन रूप नाम', 'अनिरुद्धन' एवं 'शिष्यनुम्मकलुम्' हैं। ललित शब्दावली, वैदर्भी रीति आदि वळ्ळत्तोळ काव्य की जो विशेषताएँ हैं वे इस खंड-काव्य में भी प्राप्त है। इस लघ्वाकार काव्य में प्रयुक्त 'केका' छंद द्राविड़ी छंदों में प्रमुख है।

अच्युतानंददास *(उ० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

अच्युतानंददास, जिन्होंने प्रताप रुद्रदेव के शासन-काल को गौरवान्वित किया था, पंचसखाओं में से थे। इनका जन्म कटक ज़िले में नेपाल के पास तिलकणा ग्राम में हुआ था। पिता का नाम दीनबंधु खुंटिया व माता का नाम पद्मावती था। आज भी नेपाल में इनका मठ है और इनके वंशज क्रमशः उसके महंत होते आ रहे हैं। बाल्यावस्था से ही भक्ति की ओर इनका झुकाव था।

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है 'शून्य-संहिता'। यहाँ शून्य रिक्तता का सूचक नहीं है, वरन् समस्त सर्जना का उद्गम है। शून्यवादी होते हुए भी इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम-तत्त्व को शून्यवाद में रूपायित किया है। यह काव्य दार्शनिक विचारों व नीति-सिद्धांतों से परिपूर्ण है। 'हरिवंश', 'गुरुभक्ति गीता' आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं। अपनी रचनाओं में ये कवि की अपेक्षा तत्त्व-विवेचक अधिक रहे हैं। अतः इनकी रचनाओं में विचार-विश्लेषण की शुष्कता मिलती है। केवल 'गोपालक ओगाळओं लउड़ी खेळ' काव्य इसका अपवाद है, जिसमें कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का सरस चित्रण हुआ है। यह कृति इनकी संगीतात्मक क्षमता को प्रकट करती है। इनके द्वारा रचित 'अच्युतानंद माळिका' विगत 400 वर्षों से उड़ीसा के जन-जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करती आ रही है।

अज़मतुल्ला ख़ाँ *(उ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

जन्म-स्थान : दिल्ली, पूरा नाम : मुहम्मद अज़मतुल्ला ख़ाँ। सर सैयद अहमद ख़ाँ, मुफ़ती सदरुद्दीन आजुर्दा, मौलाना रशीदुद्दीन ख़लीफ़ा, शाह अब्दुल अज़ीज़ और मौलवी समीउल्ला ख़ाँ इन्हीं के पूर्वज थे। राजनीति, पत्रकारिता और साहित्य-सेवा इनका कार्य-क्षेत्र था। कुछ वर्षों के पश्चात् इन्होंने राजनीति में सक्रिय योगदान बंद कर दिया था और स्थायी रूप से अपना ध्यान साहित्यिक और शैक्षिक सेवाओं पर केंद्रित कर दिया। हैदराबाद से एक पत्रिका 'जाम-ए-जमशेद' निकाली; फिर एक और पत्रिका 'नुमायश' का संपादन किया। यह पत्रिका इनके जीवन-काल में निकलती रही। ये एक सरकारी पत्रिका 'अलमुअल्लम' के सहायक संपादक भी रहे। जामिया उसमानिया में 'दार-उल-तर्जुमा' और 'दार-उल-तबा' की स्थापना में इनका विशेष योगदान था। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने अँग्रेज़ी, फ़ारसी और अरबी के अतिरिक्त हिंदी, बँगला और फ़्रांसीसी भाषाओं में भी यथेष्ट अभिरुचि का परिचय दिया। इन भाषाओं के साहित्य और संगीत कला की जानकारी से ये अपने कार्य-क्षेत्र में पर्याप्त लाभान्वित हुए। उर्दू-काव्य और छंद-विधान-विषयक इनके सुझाव प्रगतिशील हैं। हिंदी के अनुकरण में उर्दू में गीत लिखने का इन्होंने प्रयास किया। हिंदी के मात्रिक छंदों को अपनाने के लिए इनका विशेष आग्रह रहा है। इस संदर्भ में इनकी कृति 'सुरीले बोल' (दे०) अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है। गद्य-लेखन में भी इन्होंने अनेक प्रयोग किए हैं। मनोवैज्ञानिक विषयों को भी अनूठी और प्रभावशाली शैली से उर्दू में प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। इनकी अन्य कृतियों में 'इंतख़ाब-ए-मज़ामीन-ए-अज़मत', 'ड्रामा और अफ़साने', 'हज़रत ख़्वाजा मीर दर्द', 'बच्चों की अज़मत', 'मरीज़-ए-वहम', 'इल्मदोस्त ख़वातीन' और 'पस-ए-पर्दा' आदि उल्लेखनीय हैं।

अजवाणी, लालसिंह हरिसिंह *(सिं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म-स्थान खैरपुर मीरस (सिंध) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंधी के साथ-साथ ये अँग्रेज़ी साहित्य के भी माने हुए विद्वान हैं। इनके जीवन का अधिक भाग कालेजों में अध्यापन कार्य करने में व्यतीत हुआ है। नेशनल कालेज बंबई में भी कई वर्षों तक ये मुख्याध्यापक के नाते कार्य करते रहे हैं। इन्होंने सिंधी साहित्य में आलोचक और निबंधकार के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त की है। इनके लिखे हुए निबंध सिंधी गद्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी सर्वोत्तम कृति है—अँग्रेज़ी भाषा में लिखा हुआ सिंधी-साहित्य का इतिहास, जिसे साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली ने 1970 ई० में प्रकाशित किया था। सिंधी-साहित्य के इतिहास पर अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं से यह निराले ढंग की कृति है। सिंधी-गद्य के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

अजातशत्रु (*हिं० कृ०*) [रचना-काल—1922 ई०]

बौद्धकालीन सामग्री को समेटे 'अजातशत्रु' प्रसाद (दे०) जी की प्रारंभिक कृति है। इससे पूर्व 'राज्यश्री' और 'विशाख' का प्रकाशन हो चुका था। जिस तरह 'राज्यश्री' और 'विशाख' के प्रथम और द्वितीय संस्करणों में भेद है, उसी तरह 'अजातशत्रु' के द्वितीय संस्करण में नाटककार ने कथा-प्रवाह के अवरोधक कुछ गीतों को हटा दिया है।

'अजातशत्रु' का समग्र कथानक तीन स्थानों पर घटित होता है—मगध, कोशल और कौशांबी। इस दृष्टि से इन तीनों स्थानों से संबंधित कथानक नाटक के आदि, मध्य और अंत भाग की संसृष्टि करते हैं। ये तीनों भाग एक-दूसरे से विशृंखलित न होकर एक ही मुख्य कथा के अंग हैं और परस्पर सुसंबद्ध हैं। मगध में सम्राट बिंबसार (दे०) बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर महात्मा बुद्ध के कहने से अपना सारा राज्य उद्धत युवराज अजात (दे० अजातशत्रु) को सौंपकर स्वयं संन्यास ग्रहण कर लेते हैं। इनकी प्रतिक्रिया कोशल और कौशांबी में होती है। कोशल में युवराज विरुद्धक अपने पिता प्रसेनजित के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठा लेता है और कौशांबी में मागधी का प्रभाव उदयन और पद्मावती को कुछ समय के लिए अलग कर देता है। बुद्ध के विचारों के समर्थक बिंबसार, वासवी, प्रसेनजित, मल्लिका और उदयन तथा विरोधी छलना (दे०), अजात, शक्तिमती, विरुद्धक और मागधी आदि का घात-प्रतिघात, एक-दूसरे को परास्त करने के लिए विरोधी चालें, प्रतिहिंसा, स्पर्धा आदि नाटक की मूल शक्ति हैं। अतर्द्वंद्व सारे नाटक का संपोषक तत्त्व है। यह भी दो प्रकार का है—एक बिंबसार का वैचारिक मानसिक संघर्ष और दूसरा स्वार्थों के टकराव से उत्पन्न राजनीतिक संघर्ष। सारा नाटक राजनीतिक अंधड़ में तिनके की तरह उड़ा-उड़ा फिरता है, परंतु प्रसाद की संयोजन-शक्ति ने सब कुछ शांत कराके विरोधी और उद्धत पात्रों को पूर्ण मनुष्य बना दिया है। अजातशत्रु वजिरा से विवाह-बंधन में बँधकर माता-पिता से अपने अपराध के लिए क्षमा माँग लेता है और इस तरह राज्य तथा पुत्रादि फल का उपभोक्ता बनता है। विरुद्धक भी उसी के चरण-चिह्नों पर चलता है और कौशांबी में भी बिंबसार की पुत्री पद्मावती को अपना पूर्व स्थान प्राप्त हो जाता है।

आलोचक इसके अंतर्द्वंद्व में पश्चिमी नाटकों का प्रभाव खोजते हैं। इसके शांतिपरक पर्यवसान में निश्चय ही संस्कृत नाटकों का प्रभाव प्रमुख हो उठा है। तीन स्थानों पर कथानक के विभक्त होने पर इसका स्थान-ऐक्य थोड़ा-सा बाधित होता है, वरना संकलन-त्रय की दृष्टि से इसका काल-ऐक्य और गति-ऐक्य बेजोड़ है। समग्र नाटक असत् के ऊपर सत् की विजय का प्रतीक है और बौद्ध धर्म के दया, करुणा, अहिंसा आदि सिद्धांतों की सफल अभिव्यंजना की दृष्टि से यह बेजोड़ है एवं अपनी कोटि के सारे नाटकों का मार्गदर्शक है।

अजातशत्रु (*हिं० पा०*)

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'अजातशत्रु' का नायक तथा मगध-नरेश बिंबसार (दे०) का पुत्र है। स्वतंत्र विचार तथा कर्तृत्व से विहीन इस पात्र के चरित्र में क्रूरता, कठोरता, दुर्विनीतता संस्कारगत एवं संसर्गजन्य दुर्बलताएँ हैं। अपनी क्रूरता तथा कठोरता के कारण यदि यह घायल तथा पराजित प्रसेनजित को मार डालना चाहता है तो दुर्विनीतता के कारण पिता, विमाता तथा ज्येष्ठा भगिनी का अपमान करने से भी नहीं चूकता। लेकिन इन दुर्बलताओं के होते हुए भी इसमें सात्त्विक अंश का सर्वथा अभाव नहीं है। इसीलिए तो यह मल्लिका के माधुर्यपूर्ण व्यक्तित्व के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। यह शूरवीर तथा पराक्रमी भी है। अपनी शूरवीरता के कारण ही यह प्रसेनजित को पराजित कर पाता है तथा दीर्घकारायण तथा मर्यादा का उल्लंघन करने पर द्वंद-युद्ध के लिए चुनौती देता है। एक बार ग्लानि का अनुभव कर लेने के बाद यह अपनी भूलों को स्वीकारता हुआ सारी कुटिलता एवं क्रूरता को तिलांजलि देकर पिता, विमाता तथा बहिन पद्मा से क्षमा-याचना करता है तथा पूर्ण मनुष्यत्व को प्राप्त कर सबके स्नेह का पात्र बन जाता है। समग्रतः अजातशत्रु के सहज एवं स्वाभाविक चरित्र-निरूपण में प्रसादजी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजितनाथपुराण *(क० कृ०)*

'अजितनाथपुराण' कन्नड़ के रत्नत्रय में से एक कविवर रत्न (दे०) की महान कृति है। इसमें दितीय तीर्थंकर अजितनाथ की कथा चंपू शैली में वर्णित है। इसमें द्वितीय चक्रवर्ती सगर की कथा भी है। इसे तत्कालीन दानचिंतामणि जैन साध्वी अतिमब्बे ने लिखवाया था। उसके गंगा के समान पवित्र निर्मल चरित्र का अत्यंत मार्मिक चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। इस पुराण की एक विशेषता यह है कि इसमें भावावलियों की उलझन नहीं है। अजितनाथ के केवल एक पूर्व-जन्म की कथा यहाँ आती है। मार्मिक सन्निवेशों व पात्रों के अभाव में यह कृति बहुत प्रभावशाली तो नहीं बन पड़ी, फिर भी अजितनाथ के वैराग्य-वर्णन में कवि ने कमाल किया है। वह अपने पूर्वजन्म में विमल वाहन नामक राजा थे। दर्पण में अपने चेहरे के सफेद बाल देखकर वे विरक्त हो जाते हैं। इस संदर्भ में रत्न ने वैराग्य का एक गीतिकाव्य ही रच दिया है। इससे बढ़कर वैराग्य-वर्णन संपूर्ण कन्नड़ साहित्य में दुर्लभ है। अपने साठ हज़ार पुत्रों को खोने वाले सगर चक्रवर्ती का चित्रण भी मार्मिक है। इस तरह 'अजितनाथपुराण' शांत रस-प्रधान है। विदानों का कहना है कि यह रत्न की परिपूर्ण कृति नहीं है फिर भी वैराग्य-निरूपण में उनकी भावतीव्रता एवं गाढ़ जीवनस्पर्श की अवहेलना नहीं की जा सकती।

अज़ीज़, लेखराज किशिनचंद मीरचंदाणी *(सिं० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

'अजीज़' साहब का जन्म हैदराबाद सिंध के एक ज़मींदार वंश में हुआ था। बचपन से ही इनकी रुचि साहित्य के प्रति थी। सिंधी और अँग्रेज़ी के साथ-साथ ये फ़ारसी और अरबी के भी बड़े विद्वान थे। ये अपनी ज़मीनों की देखभाल करने के साथ-साथ साहित्य-सेवा में सतत लीन रहे थे। देश-विभाजन के पश्चात् ये बंबई में स्थायी रूप से रहने लगे वे और वहाँ कुछ वर्षों तक इन्होंने सिंधी प्राध्यापक के रूप में एक कालेज में सिंधी पढ़ाने का कार्य किया था। इनकी मुख्य मौलिक रचनाएँ इस प्रकार हैं—**कविता :** कुल्लियात-अज़ीज़, गुलजार अज़ीज, शाहराणी शमा, पैग़ास-अज़ीज़, आबशार, सुराही; **नाटक :** मिस्टर मजनू, गरीबांमार, कुमार अजीतसिंह; **निबंध :** अदबी आईनो; **आलोचना:** गुल व खार, सामी। सिंधी-साहित्य में इनको नाटककार की अपेक्षा एक कवि और निबंधकार के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त हुई है। 1967 ई० में इनको 'सुराही' नामक कविताओं के संग्रह पर साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली से पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी अधिकांश कविताएँ फ़ारसी काव्य-शैली से प्रभावित और श्रृंगार रस से पूर्ण हैं। इन्होंने समय के अनुसार राष्ट्रीय चेतना, देश-प्रेम, दलित वर्ग से सहानुभूति, सिंध देश की स्मृति आदि विषयों को भी अपनी कविताओं में उचित स्थान दिया है। कला की दृष्टि से इनकी कविताएँ उत्तम श्रेणी की रचनाएँ हैं।

अजीत कौर *(पं० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

पंजाबी की कथा-लेखिकाओं में अपने कथ्य में यौन-विषयों के चयन की साहसिकता को लेकर अजीत कौर की विशष ख्याति है। इनकी कहानियों की पीड़ित नारी युग के अभिशाप को भावनात्मक स्तर के साथ ही साथ शारीरिक स्तर पर भी झेलती है।

अजीत कौर की अधिकांश कहानियों की नायिका प्रेम-प्राप्ति की उत्कट लालसा में डूबी हुई परित्यक्ता या प्रवंचिता नारी है जिसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अनेक पुरुषों के बीच भटकना पड़ता है।

लेखिका के अभी तक तीन कहानी-संग्रह—'गुलबानो' (दे०), 'बुतकिशन', 'मलिक दी मौत' और एक लघु उपन्यास 'धूप वाला शहर' प्रकाशित हुए हैं।

अज़ीम बेग़ चुगताई *(उर्दू० ले०)* [मृत्यु—1941 ई०]

हास्य रस को कहानियाँ लिखने वालों में अज़ीम बेग़ चुग़ताई का विशिष्ट स्थान है। ये पुरानी रीतियों के कटु आलोचक हैं। इनकी कहानियों के प्लाट विशेष रोचक होते हैं। इनके पात्र बड़े सक्रिय दिखाई पड़ते हैं पर कहीं-कहीं स्वाभाविकता से हटे हुए भी प्रतीत होते हैं। चुग़ताई अपनी कहानियों के माध्यम से शादी-ब्याह, तलाक तथा पर्दा आदि की रस्मों को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहे। 'कुरान और पर्दा' जैसी गंभीर कृति लिखकर भी इन्होंने इसी उद्देश्य की पूर्ति चाही है। 'शरीर बीवी' और 'कोलतार' इनकी ख्याति का आधार हैं। भाषा और मुहावरे का इन्होंने विशेष ध्यान नहीं रखा किंतु कथानक तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इनका उच्च स्थान है। चुग़ताई का प्लाट ही हमारे हृदयों में हास्य का रस घोल देता है। इनकी पुस्तकों की सूची बहुत लंबी है।

अज़ीम बेग चुग़ताई रियासत जोधपुर के चीफ़ जस्टिस भी रहे थे। यक्ष्मा के रोगी रहे, और इसी रोग से इनकी मृत्यु हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अज्ञेय', सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन *(हिं० ले०)*
[जन्म-सन् 1911 ई०]

इनका जन्म-स्थान कसया, ज़िला देवरिया है। इनके पिता पुरातत्त्व विभाग में एक उच्च पदाधिकारी थे। फलतः इनका शैशव अनेक नगरों में बीता। लाहौर से बी० एस-सी० करने के पश्चात इन्होंने एम० ए० (अँग्रेज़ी) में प्रवेश लिया परंतु क्रांतिकारी आंदोलन से संबद्ध हो जाने के कारण उसे बीच में छोड़कर जेलयात्रा की और नज़रबंद भी रहे। 'विशाल भारत', 'प्रतीक', 'दिनमान' आदि पत्रों का संपादन कर चुके हैं। राजसेवा और विदेश-यात्रा के अनेक अनुभव इन्हें उपलब्ध हैं।

ये बहुज्ञ और बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। कवि और कथाकार के रूप में इन्हें विशेष ख्याति मिली है। इतर विधाओं में यात्रा-संस्मरण, ललित निबंध और आलोचना साहित्य की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इनकी कथा-कृतियों में 'शेखर : एक जीवनी' (दे०), 'नदी के द्वीप' (दे०) और 'अपने अपने अजनबी' वस्तु और शिल्प की दृष्टि से क्रांतिकारी रचनाएँ हैं। 'शेखर' में विद्रोही व्यक्तित्व का अध्ययन है, 'नदी के द्वीप' में प्रेम और विवाह की समस्या है तथा 'अपने अपने अजनबी' में मृत्यु का साक्षात् अनुभव है।

कवि अज्ञेय ने छायावादी संस्कारों में लिखना आरंभ किया था परंतु शीघ्र ही वे नयी राहों की खोज कर प्रयोगवाद (दे०) के प्रवर्तक-रूप में प्रतिष्ठित हो गये। 'हरी घास पर क्षणभर' (दे०) नयी पद्धति की प्रथम उल्लेखनीय रचना है। तत्पश्चात् 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

आधुनिक काल के अहंवादी साहित्यकारों में ये शीर्षस्थ हैं। इनका अहं परिष्कृत और उन्नत है, और सामाजिक यथार्थ की नितांत उपेक्षा इन्होंने नहीं की है। ये अपने कवि-व्यक्तित्व को उस सेतु के समान मानते हैं जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है। कथ्य के अन्वेषण की अदम्य प्रवृत्ति ने इन्हें नवरहस्यवाद की ओर भी उन्मुख किया है जिसके अंतर्गत इन्होंने बौद्धिक धरातल पर, भारतीय अध्यात्मवाद और पाश्चात्य अस्तित्ववाद (दे०) के अनेक तत्त्वों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।

बौद्धिक निर्लिप्तता और कलात्मक संयम इनके शिल्प की प्रमुख विशेषताएँ हैं। शब्द-चयन, छंद-विधान और अप्रस्तुत-योजना में इन्होंने महत्त्वपूर्ण नये प्रयोग किये हैं। इनकी लघु कविताएँ साहित्यिक महत्त्व में अद्वितीय हैं। 'अज्ञेय' आधुनिक हिंदी-साहित्य के अग्रणी कलाकार हैं।

अट्ठकथा *(पा० कृ०)*

'त्रिपिटक' (दे०) पर जो अर्थ (व्याख्या)-परक साहित्य लिखा गया था उसकी कथा (विवेचन) को इस संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह साहित्य लंका में अनुराधपुर के महाविहार में सुरक्षित रहा और परवर्ती साहित्यकारों ने उसका आश्रय लेकर बौद्ध धर्म की व्याख्या की। भारत में त्रिपिटकों की सत्ता स्वीकार की जाती थी किंतु 'अट्ठकथा का होना अनुराधपुर में ही प्रसिद्ध था। वहाँ की परंपरा के अनुसार प्रथम संगीत के बाद ही 'त्रिपिटक' पर व्याख्या और व्याख्या की व्याख्या लिखी गयीं। 'त्रिपिटक' के साथ ही ये समस्त व्याख्याएँ लंका पहुँचीं। पाली से सिंहली भाषा में उनका अनुवाद किया गया और उसे अनुराधपुर के महाविहार में सुरक्षित रखा गया। बाद के लेखकों ने सिंहली से पुनः पालि में उसकी अवतारणा की। लंका के साहित्य में पालि का 'त्रिपिटक' की भाषा के लिए और सिंहली का अट्ठकथा की भाषा के लिए प्रायः प्रयोग होता है किंतु यह विश्वास करना कठिन है कि यह सारा साहित्य त्रिपिटक के साथ ही लंका गया और प्रथम संगीत के बाद ही इसकी रचना की गयी। यद्यपि यह माना जा सकता है कि इतने प्राचीन काल में भी कुछ-न-कुछ व्याख्या-परक साहित्य लिखा ही गया होगा किंतु बाद में परिवर्तन-परिवर्धन भी बहुत हुआ होगा और लंका के भिक्षुओं का भी इस दिशा में योगदान रहा होगा। बुद्धघोष ने 'त्रिपिटक की व्याख्याएँ इसी आधार पर प्रस्तुत की हैं तथा अन्य भी अनेक कृतियाँ सामने आयीं। गद्य भाग का ही सिंहली में अनुवाद हुआ; गाथाएँ तो संभवतः अपने मूल रूप में ही बनी रहीं ('त्रिपिटक' की कई पुस्तकों का उद्धार भी इसी (अट्ठकथा) आधार पर हुआ—जैसे जातक कथाएं 'जातकत्थवण्णना' के आधार पर लिखी गयीं।) इनमें पौराणिक कथाओं के साथ ऐतिहासिक सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में मिली है। लंका की परंपरा के अनुसार राक्षसों और सर्पों आदि से भरी हुई लंका में स्वयं भगवान बुद्ध इस धर्म को लाये थे। अब मूल अट्ठकथाएँ अस्त-व्यस्त हो गयी हैं किंतु उनका कुछ परिचय पालि अनुवादों से प्राप्त किया जा सकता है।

अट्ठसालिनी *(पा० कृ०)*

यह 'अभिधम्मपिटक' (दे०) के प्रथम खंड 'धम्मसंगनी' की व्याख्या है। इसकी रचना बुद्धघोष (दे०) ने की थी। जनश्रुति के अनुसार यह रचना बुद्धघोष ने भारत से लंका जाने के पहले ही की थी किंतु इस पुस्तक में 'विसुद्धिमग्ग' (दे०) का भी नाम आता है जो लंका में लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। ज्ञात होता है कि बुद्धघोष ने टीका की रूपरेखा पहले ही बना ली होगी और बाद में लंका जाकर इसे पूर्णता प्रदान की। इसमें धार्मिक तत्त्वों के वर्गीकरण और उनकी परिभाषाओं की व्याख्या की गयी है और धर्म, दर्शन तथा मनोविज्ञान को आधार बनाकर धर्म का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। यह एक विद्वत्तापूर्ण रचना है। इस टीका में बुद्धघोष की शैली के पूर्ण रूप से दर्शन होते हैं। उसी प्रकार की उपमाएँ हैं, कथानकों का वैसा ही समावेश है, पशु-पक्षियों की छोटी-चोटी कहानियाँ भी उस प्रकार कही गयी हैं। अतः इसके बुद्धघोष-कृत होने में संदेह का अवसर नहीं रह जाता।

अठराशेसत्तावन चैं स्वातंत्र्य युद्ध *(म० कृ०)*

भारतीय क्रांतिकारियों को निरंतर स्फूर्ति देने वाला यह अमर ग्रंथ 1857 के स्वातंत्र्य युद्ध का इतिहास प्रस्तुत करता है। विनायक दामोदर सावरकर (दे०) ने 1908 ई० में केवल 23 वर्ष की आयु में इंग्लैंड में रहते हुए सशस्त्र क्रांति का संदेश-वाहक इतिहास अपनी ज्वलंत लेखनी से लिखा था।

यह ग्रंथ इतना असामान्य था कि प्रकाशन से पूर्व ही अनेक राष्ट्रों की सरकारों ने इसे ज़ब्त कर लिया, क्योंकि उन्हें भय था कि इस दाहक ग्रंथ को पढ़कर कहीं जनता विप्लव के लिए तैयार न हो जाए।

वीर सावरकर ने ग्रंथ को मुद्रित कराने के लिए इंग्लैंड से भारत भेजा परंतु मुद्रण असंभव होने के कारण ग्रंथ वापस भेज दिया गया। तब उन्होंने अँग्रेज़ी अनुवाद कर इंग्लैंड, फ्रांस तथा भारत सरकारों द्वारा उत्पन्न बाधाओं को सहते हुए ग्रंथ का प्रकाशन हॉलैंड से कराया। खेद की बात है कि इसकी मूल मराठी प्रतिलिपि अब नष्ट हो गयी है जिससे निःसंदेह मराठी-साहित्य की अपार हानि हुई है।

1857 ई० के स्वातंत्र्य-समर की घटना के साथ पूर्णतः तन्मय होकर सावरकर जी ने उन घटनाओं का सजीव रूपांकन किया है। नाट्यमय पद्धति से विशेष प्रसंगों के जीवंत चित्रण में सावरकर जी का लेखन-कौशल अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है।

भारत के राष्ट्रीय संग्राम में आत्मोत्सर्ग करने वाले क्रांतिकारियों के लिए यह ग्रंथ अत्यंत स्फूर्तिप्रद सिद्ध हुआ और आगे आने वाली पीढ़ियों को भी अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने एवं आवश्यकता पड़ने पर सशस्त्र क्रांति करने की प्रेरणा देता रहा।

अड़खे पड़खे *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1964 ई०]

'अड़खे पड़खे' जयन्ति दलाल द्वारा रचित कहानियों का संग्रह है। 'आ घेर पेले घेर' के आठ बरस के बाद यह कहानी-संग्रह पाठकों के समक्ष आया। इस कहानी-संग्रह में 18 कहानियाँ —अड़खे पड़खे, न भूतो, बे बंगड़ी, दर्शन, टपुभाई रातड़िया, जडया-पडया, पंखीनी जातमां, कवि अने राजा, क्या जइए, कहुं ? न कहुं ?, अने ने शुं कहुं, माणस एटले माणस, जगतकाजी, खपनो छोछ, विजय, गरदनमां आंखों बेसाड़ो, वरदी, सेकेंड हैंड ढोलक : और एक 'पंड पूरंतु' लेखकीय वक्तव्य है। 'पंड पूरंतु' में कथा की रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है और कहानीकार के दायित्व आदि की चर्चा की गयी है। कहानियों में कुछ कहानियाँ, यथा 'अड़खे पड़खे', 'माणस एटले माणस' आदि व्यंग्यप्रधान हैं; कुछ कहानियाँ मानव-जीवन की गंभीर संवेदना को धारण किए हुए हैं। इस प्रकार की कहानियोंमें प्रमुख हैं—'बे बंगड़ी', 'टपुभाई रातड़िया', 'कवि अने राजा'। इस कहानी-संग्रह को सबसे बड़ी विशेषता है कि इसकी कहानियाँ जीवन के परिवेश और संवेदनाओं के गहरे हल्के रंगों को बड़ी कुशलता से व्यक्त करती हुई दिखाई देती हैं।

अडिग, गोपालकृष्ण *(क० ले०)*

दे० गोपालकृष्ण अडिग।

अडियारक्कु-नल्लार *(त० ले०)* [समय—अनुमानतः तेरहवीं शती ई०]

तमिल के व्याख्याकार विद्वानों में इनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह इनका उपनाम प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है 'संतों या भगवदन्यायियों का सुहृत्'। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं लगता। इसकी प्रसिद्ध व्याख्या तमिल के उपलब्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दूसरी शती ईसवी) पर लिखित है जो संगीत, नाट्य, वास्तु, कविता आदि विविध ललित कलाओं के संबंध में अनेक उपयोगी विवरण देती है। इससे स्पष्ट है कि ये साहित्य के अतिरिक्त इन कलाओं के बड़े मर्मज्ञ विद्वान थे। 'शिलप्पदिकारम्' में माधवी की नृत्यकला के वर्णन-प्रसंग में इस व्याख्याकार की लेखनी भी मुक्त नृत्य करती हैं। तमिल के अतिप्राचीन नाट्यशास्त्र 'जयन्तम्' और 'बरतम्' जैसे ग्रंथों का उल्लेख इस व्याख्याकार ने किया है। महाकाव्य के सौंदर्य को समझने में ही नहीं, अपितु तमिल के प्राचीन वाङ्मय के अनेक महत्त्वपूर्ण, किंतु अब अनुपलब्ध, ग्रंथों की जानकारी में भी इस व्याख्या से पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अड्डणशाह *(पं० ले०)* [जन्म—1680 ई०, मृत्यु—1751 ई०]

भाई अड्डणशाह का प्रामाणिक जीवन-वृत्त अज्ञात है। सेवा-पंथ के संस्थापक भाई सेवाराम (सत्रहवीं शती उत्तरार्द्ध) के बारह शिष्यों में, पंथ के प्रचार में अपने महत्त्वपूर्ण योगदान के बूते पर, ये सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। बाद में इन्हीं के नाम पर उसे 'अड्डणशाही पंथ' भी कहा जाने लगा। ये वेदांत और सूफ़ी सिद्धांतों के मर्मज्ञ और परदुःख-कातर, अपरिग्रहशील, संतवृत्ति के महापुरुष थे। इनकी प्रेरणा से पंजाब में विपुल साहित्य की सर्जना हुई और इनके द्वारा रचित 'पारसभाग' (दे०) को सेवापंथ का आधार-ग्रंथ माना जाने लगा। इसके अतिरिक्त 'विवेकसार' (अड्डण-शाह-दइयाराम प्रश्नोत्तरी) और 'साखीआँभाई अड्डण-कीआँ' नामक दो गद्य-कृतियाँ भी उपलब्ध हैं। इनका विषय वेदांत है, शैली तर्कनिष्ठ और विश्लेषणात्मक। अठारहवीं शती के पंजाबी गद्य का स्वरूप, जो कि समकालीन हिंदी गद्य से मिलता-जुलता है, इनकी रचनाओं में सुरक्षित है।

अणपरखे हीरे *(पं० कृ०)*

पंजाबी साहित्य-आलोचना के पुराने और भूले-बिसरे तथ्यों की खोज के क्षेत्र में डा० जसबीरसिंह दिल का यह प्रयत्न सराहनीय है। इस कृति में उन्नीसवीं शती के अनजाने कवियों का परिचय कराया गया है और उनकी कविता के कुछ उदाहरण संकलित किये गये हैं।

अणविआही मां *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1942 ई०]

'अणविआही मां' (अनब्याही माँ) गुरुबख्शसिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) का लघु उपन्यास है। इसके माध्यम से विवाह की समस्या को 'प्रीति-सिद्धांतों' के आधार पर प्रति-पादित किया गया है। नायिका प्रभा समाज में प्रचलित मूल्यों की अवहेलना करते हुए अपने सहपाठी चितरंजन के साथ जेल में एक रात्रि व्यतीत करने पर स्वयं को विवाहित मानने लगती है। एक बच्चे को जन्म देकर समाज-सेवी बन जाती है। चितरंजन भी जेल से बाहर आकर समाज में नवीन चेतना जागृत करता हुआ प्रभा से मिलता है। कथा विचारों से बोझिल तथा घटनाएँ संगठित होने के कारण सिद्धांतों का प्रचार प्रतीत होती हैं। पात्र कठपुतली मात्र हैं, उनका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इसमें समूची मानवता के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुए सांप्रदायिक विश्वासों का खंडन किया गया है और सदाचार तथा परं-पराबद्ध संकल्पों पर करारी चोट की गई है। यह सामा-जिक कुरीतियों को उद्घाटित कर आशावादी दृष्टिकोण से उनका समाधान प्रस्तुत करने वाली आदर्शवादी रचना है।

अण्णादुरै, सी० एन० *(त० ले०)* [जन्म—1909 ई०, मृत्यु—1969 ई०]

जन्म-स्थान तमिलनाडु का प्रसिद्ध नगर कांची-पुरम। बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न। अण्णादुरै गंभीर चिंतक, श्रेष्ठ वक्ता, संपादक, साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, समाज-सेवी और कुशल अभिनेता थे। तमिल साहित्य में इनका प्रवेश 'नवयुगन', 'जस्टिस', 'कुडियरशु', 'विडुदलै' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित इनके लेखों से हुआ। 'द्राविड़नाडु' और 'कांची' नामक पत्रों के संपादन के साथ अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना द्वारा इन्होंने तमिल साहित्य को समृद्ध किया। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'रंगोन राधा', 'पार्वती बी० ए०' (उपन्यास) और 'इरवु' (दे०) 'वेलैक्कारी', 'चन्द्रोदय' (नाटक), 'शेव्वालै', 'राजपार्ट रंगदुरै भागवदर', 'कपोतिपुरक्कादल', 'कुमरिक्कोट्टम' (कहानी) आदि।

अण्णादुरै की कृतियों में तमिल जाति और तमिल समुदाय के लिए उपयोगी तथ्यों का प्रतिपादन और युगीन ज्वलंत समस्याओं का चित्रण है। 'रंगोन राधा' में मनुष्य की धनलिप्सा और उससे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण है। 'पार्वती बी० ए०' में पाठकों को मिथ्या गौरव की आकांक्षा करने वाले व्यक्तियों से दूर रहने के लिए सावधान किया है; जातिभेद और वर्गभेद का विरोध किया गया है। 'रोमापुरी राणिहळ' में समाज में नारी के लिए समान अधिकार की माँग की गई है। इनके नाटकों में समाज-सुधार का स्वर प्रधान है। 'द्राविड़नाडु', 'कांची' आदि पत्रिकाओं में तम्बी (छोटे भाई) के नाम पत्र के रूप में प्रकाशित निबंधों में राजनीति, अर्थशास्त्र, कला, साहित्य, इतिहास-संबंधी महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन किया गया है। अण्णादुरै यथार्थवादी साहित्यकार हैं। इन्होंने साधारण जनता को ध्यान में रखते हुए अभिधा-प्रधान, हास्य-व्यंग्यपूर्ण, सरस-सरल शैली में अपनी कृतियों की रचना की है। इनकी कृतियों में भाव-वैभव भी है और कल्पना-वैभव भी।

अण्णादुरै श्रेष्ठ तमिल-वक्ताओं में से थे। तमिल नाटक, रंगमंच और चलचित्रों के विकास में इनका महत्त्व-पूर्ण योगदान रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अण्णामलै रेड्डियार *(त० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती]

ये तिरुनेल्वेलि ज़िले के 'चेट्रूर' 'ऊट्रुमलै' ज़मींदारों के आश्रित 'आस्थान' (दरबारी)-कवि थे। इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'कुळ्कुमलै' नामक पर्वतीय मंदिर पर संस्थित स्कंद (अथवा सुब्रह्मण्य) भगवान की स्तुति के रूप में रचा गया 'कावटिंच्चितु' नामक गीत है। इस गीत की शैली एक विशेष लोक-परंपरा की अनुगामिनी है। आज भी स्कंद देव के भक्तजन 'स्कंदषष्टी' आदि विशेष पर्वों पर 'कावटि' (काँवर) अपने कंधों पर लेकर कूदते-गाते हुए मंदिरों को पैदल जाया करते हैं और मार्ग में इष्टदेव के स्तुति-गीत गाते चलते हैं। ऐसी पदयात्राओं में गाने के उपयुक्त गीतों के रूप में 'कावटिंच्चितु' की गीत-विधा उत्पन्न हुई है। सामान्यत: इस गीत-विधा में उपलब्ध भक्ति-तन्मयता तथा सरल लोकरंजक अभिव्यंजना के तत्त्व प्रस्तुत गीत में आकर्षक ढंग से हमारे सामने आते हैं। इनके अतिरिक्त इसकी अपनी विशेषता कूद-कूद कर चलने वाली 'कावटि' पद-यात्रा का स्मरण दिलाने वाले लयबद्ध छंद का विधान है। लेखक की अन्य दो पद्य-रचनाएँ 'शंकर-नारायणन् कोयिर तिरिपंताति' तथा 'नवनीत किरुट्टि-नन्पिळ्ळैतमिल' हैं। ये दोनों दो प्रसिद्ध मंदिरों के संबंध में स्तुति-गीत हैं।

अण्णाराव, मिर्जी *(क० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

कन्नड के विख्यात उपन्यासकार श्री अण्णाराव का जन्म बेलगाँव ज़िले में शेडवाल में 1918 ई० में हुआ। संस्कृत, प्राकृत हिंदी, मराठी आदि इन्होंने अपने स्वाध्याय से सीखीं। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'निसर्ग', 'राष्ट्रपुरुष', 'अशोकचक्र', 'प्रतिसरकार', 'भस्मासुर' आदि प्रमुख हैं। 'निसर्ग' आपका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। राष्ट्र-पुरुष' स्वातंत्र्य-संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा बृहत् उपन्यास है। 'दत्तवाणी' में आपने कन्नड के महाकवि श्री बेंद्रे (दे०) के कृतित्व की आलोचना की है। 'भस्मासुर' एक राजकीय विडंबनात्मक उपन्यास है। 'प्रतिसरकार' में भी आपने स्वतंत्रता-संग्राम का चित्रण किया है। 'श्रेणिक' आपका ऐतिहासिक उपन्यास है। 'मुहम्मद पैगंबर' प्रसिद्ध जीवनी है। इसके अतिरिक्त आपने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं। 'विमर्श' आलोचना का सैद्धांतिक ग्रंथ है। 'जैनधर्म' आपका एक बृहत् ग्रंथ है जिसमें जैन धर्म का ऐतिहासिक एवं अन्य धर्मों के संदर्भ में तुलनात्मक विवेचन है। अण्णाराव हमारे वैचारिक उपन्यासकारों में प्रमुख हैं। उनका 'निसर्ग' कन्नड की एक प्रतिनिधि रचना है।

अतरसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

प्रो० अतरसिंह की गणना नई पीढ़ी के मूर्द्धन्य आलोचकों में होती है। प्रो० संतसिंह सेखों (दे०) की आलोचनात्मक पद्धति को आधार बनाकर, पूर्व-सेखों आलोचकों के साथ स्वर मिलाते हुए, अतरसिंह ने मध्यकालीन और आधुनिक पंजाबी साहित्य-संबंधी विषयों को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। इस युग की विविध वैज्ञानिक सुविधाओं के परिणामस्वरूप उपलब्ध विश्व-दृष्टि को अपना कर अपने देश की साहित्यिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने की इनके मन में प्रबल आकांक्षा है; इनके आलोचनात्मक निबंध इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। प्रसिद्ध आलोचक होने के साथ-साथ आप पंजाबी के ख्याति-प्राप्त अध्यापक हैं। आपने 'आधुनिक पंजाबी काव्य में इहलोकवादी भावना' विषय पर दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है।

'काव्य-अध्ययन', 'दृष्टिकोण' (दे०) आपकी प्रसिद्ध आलोचना-कृतियाँ हैं। आजकल आप पंजाब विश्व-विद्यालय के अँग्रेज़ी-पंजाबी कोश-विभाग के मुख्य संपादक हैं।

अतियथार्थवाद *(हिं० पारि०)*

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद रूढ़ि के बंधनों को तोड़ने की जो नकारात्मक प्रवृत्ति दादावाद में अभिहित हुई, उसी ने फ़्रांस में अतियथार्थवाद को जन्म दिया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आपोलिनेर ने किया, पर उसको निश्चित अर्थ और उसकी सम्यक् व्याख्या (1924 ई०) करने का श्रेय आन्द्रे ब्रेंतों को है। बर्गसाँ के रचनात्मक विकास, फ़्रायड के अचेतन मन, और मार्क्स के इतिहास की व्याख्या के सिद्धांतों और तत्त्वों को समाहित करने वाला अतियथार्थवाद चेतन मन के स्थान पर अवचेतन मन को महत्त्व देता है। यह प्रचलित नैतिक मान्यताओं को खोखला बनाता है तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की मान्य परंपराओं का तिरस्कार कर अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की माँग करता है। प्रकृतवाद (दे०) के समान यह भी मनुष्य को पशु मानता हुआ इस बात की सिफ़ारिश करता है कि मनुष्य के आवेगों को यथासंभव स्वतंत्रता दी जाये। अतियथार्थ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी साहित्य कृत्रिमता के आवरण को हटाकर समाज और मानव को उसके यथार्थ, कहीं-कहीं नग्न रूप में उद्घाटित करता है। मनोविश्लेषणात्मक **यथार्थवाद** (दे०) के समान यह मानव-दुर्बलताओं के प्रति अरुचि उत्पन्न न कर रस ले-लेकर उनका चित्रण करता है जिससे कहीं-कहीं यह बीभत्स और जुगुप्साकारक हो उठता है।

अतिविशाल महिलाएं *(म० पा०)*

पु० ल० देशपांडे (दे०) ने अपने नाटक, 'तुझें आहे तुज पाशी' (दे०) में आधुनिक महिलाओं की मिथ्या प्रदर्शन और आडंबरप्रियता को 'अतिविशाल महिलाएं' के चरित्र में निरूपित किया है। सादा जीवन और उच्च विचार की प्रबल समर्थक ये आधुनिकाएँ किस प्रकार सादा जीवन व्यतीत करती हैं और उनके उच्च विचार किस स्तर के हैं, इन नारी-चरित्रों के द्वारा सहज स्पष्ट हो जाता है। परनिंदा इन आधुनिकाओं के उच्च विचार हैं तथा 'फ़ैंसी-ड्रेस' इनके सादा जीवन के प्रतीक हैं। अपने थोथे अभिमान के कारण ये स्वयं को उपहासास्पद स्थिति में पाती हैं। मिथ्या-डंबर एवं दूसरों के चरित्रों में छिद्रान्वेषण इनके चरित्र के प्रधान गुण हैं—नाच-गाने तथा मात्र लंबे-लंबे भाषण-प्रवचन आदि जीवन के सहज अंग हैं। समसामयिक नारी-समाज में 'कथनी-करनी' में अंतर रखने वाली विचार-धारा पर कटु व्यंग्य करने की दृष्टि से ही नाटककार ने 'अतिविशाल महिलाएं' की चारित्रिक सृष्टि की है। निवृत्ति की संयोजना के लिए ही 'अतिविशाल महिलाएं' के चरित्र का नाटककार ने समावेश किया है।

अतिशयोक्ति *(सं०, हिं० पारि०)*

'अतिशयोक्ति' काव्य में उपमेय के प्रकर्ष की स्थापना के लिए उपमेय तथा उपमान के मध्य परस्पर अभेद की कल्पना पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण अर्थालंकार है। इसका शाब्दिक अर्थ है अतिशयतापूर्ण कथन—दूसरे शब्दों में उपमेय का उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए लोक-सीमा का अतिक्रमण करने वाली कथन-भंगिमा। सामान्यतः प्रत्येक अलंकार के मूल में वैचित्र्य-सृष्टि की भावना विद्यमान रहती है, इसलिए आलंकारिकों ने अतिशयोक्ति का प्रयोग उक्ति-सौंदर्य के व्यापक अर्थ में करते हुए इसे समस्त अलंकारों का मूल माना है। भारतीय अलंकार शास्त्र में अतिशयोक्ति के अर्थ में क्रमिक परिवर्तन हुआ है। भामह (दे०) ने इसका प्रयोग केवल लोकसीमा को अतिक्रांत करने वाली कथन-शैली के अर्थ में किया है (काव्यालंकार 2-81)। क्रमशः इसका सीमा-क्षेत्र संकुचित होता गया। संक्षेप में, इसके लिए (1) उपमान द्वारा उपमेय को अपने में निगीर्ण कर लिया जाना, (2) किसी असंभावित अर्थ की प्रकल्पना तथा (3) कारण-कार्य के मध्य उपस्थित पूर्वापर-क्रम की विपरीतता, आदि तत्त्व आवश्यक हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र में अतिशयोक्ति के छह भेद निरूपित हैं : अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशोक्ति, अत्यंतातिशयोक्ति, संबंधातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति तथा रूपकातिशयोक्ति।

अतीत के चलचित्र *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1941 ई०]

यह महादेवी वर्मा (दे०) के रेखाचित्रों का प्रथम उल्लेखनीय संग्रह है जिसमें ग्यारह रचनाएँ संकलित हैं। यद्यपि इस कृति के साहित्य-रूप के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है और समय-समय पर इसे संस्मरण, वैयक्तिक निबंध आदि की संज्ञा दी जाती रही है, किंतु आज अधिकांश विद्वान इसे संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का संकलन ही मानते हैं। लेखिका ने अपनी इस रचना में रामा, घीसा, लछमा, रधिया, बदलू, अलोपी आदि शीर्षकों से भारतीय समाज के सर्वहारा वर्ग के दुःख-दैन्य की अत्यंत करुण झाँकी प्रस्तुत की है। महादेवी जी मूलतः कवयित्री हैं और उनके संवेदनशील भावुक मन की झलक इस कृति में भी यथास्थान परिलक्षित है। भावानुकूल, कवित्वपूर्ण एवं चित्रोपम भाषा इस कृति की शिल्पगत विशेषताएँ हैं।

अतुकांत छंद *(हिं० पारि०)*

यह अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध 'ब्लैंक वर्स' का हिंदी-अभिधान है। यह पाँच आघातों से युक्त चरणों के 'आयम्बिक पैंटामीटर' छंद का तुकविहीन (दे० तुक) रूप होता है। अँग्रेज़ी के 'हीरोइक' छंद का तुकविहीन रूप भी 'ब्लैंक वर्स' में सम्मिलित किया जाता है, किंतु बहुत ही कम। अंत्यानुप्रास से मुक्त होने के कारण अतुकांत छंद का प्रवाह अन्य छंदों की अपेक्षा अधिक तरल और लोच-पूर्ण होता है। इसमें कथ्य, भाव और विचार के एक बिंदु का विस्तार एक ही चरण तक न होकर अनेक चरणों तक रहता है। विराम-चिह्नों की योजना चरणांत में न होकर भाव-खंड की समाप्ति पर ही होती है, इसलिए इसमें अंतर्यति का महत्त्व अधिक है। इस प्रकार की कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पदांतरप्रवाही' का रूप धारण कर लेती है; एक पंक्ति दूसरी पंक्ति से जा मिलती है। फलतः चरण के अंत में न तो भाव-प्रवाह बाधित होता है और न उसका नैरंतर्य ही भंग होता है।

अतुकांत छंद अँग्रेज़ी-साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रिय छंद है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग सरे ने इतालवी छंद 'वर्सी स्किओल्ती' से परोक्ष प्रभाव ग्रहण कर सन् 1940 में किया था। बाद में मार्लो और शेक्स-पियर ने बहु-प्रयोग द्वारा इसका रूप-संस्कार किया। इसके बाद तो असंख्य रचनाकारों ने कथाओं और नाटकों में इसका प्रयोग किया। मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैले, टेनीसन, ब्राउनिंग, स्विनबर्न, टी० एस० इलियट, वाल्ट ह्विटमैन और फ़्रॉस्ट इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के काव्य में भी अतुकांत छंद का बहुत प्रयोग हो रहा है, किंतु यहाँ का अतुकांत छंद केवल 'हीरोइक' या 'आयम्बिक पेंटामीटर' तक ही सीमित नहीं है, वह किसी भी छंद का अतुकांत रूप हो सकता है।

अत्रे, प्र० के० *(म० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

ये बहुमुखी प्रतिभा के नाटककार हैं। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से सवाक् चित्रपटों की चकाचौंध से दिग्भ्रमित दर्शकों के मन में मराठी रंगमंच के प्रति औत्सुक्य एवं ममत्व उत्पन्न किया है। दैनंदिन जीवन के असंगतिपूर्ण घटना-प्रसंगों को इन्होंने अपने नाटकों और प्रहसनों में उरेहा है। 'प्रह्लाद', 'गुरुदक्षिणा', 'वीरवचन', 'साष्टांग नमस्कार' (दे० रायबहादुर शेपाद्रि, भद्रायु भाटकर), 'भ्रमाचा भोपळा', 'पराचा कावळा', 'लग्नाची बेडी', (दे० रश्मि), 'पाणिग्रहण', 'घराबाहेर', 'उद्याचा संसार', (दे०) और 'जगकाय म्हणेल' इनकी प्रमुख रच-नाएँ हैं। अपने नाट्य-साहित्य के माध्यम से इन्होंने सामा-जिक कुरीतियों का भंडाफोड़ किया है। 'साष्टांग नमस्कार' में ज्योतिष एवं काव्य के प्रति दुराग्रही व्यक्ति की सनक का उल्लेख है तो 'लग्नाची बेडी' में वैवाहिक बंधनों की अनिवार्यता का निरूपण। 'पाणिग्रहण' अँग्रेज़ी भाषा के अल्पज्ञान के कारण अशुद्ध भाषा का सतत प्रयोग करने वालों पर कटु व्यंग्य है, 'घराबाहेर' में पुत्र के प्रति माँ के ममत्व का उल्लेख है, 'उद्याचा संसार' में मातृत्व का जय-घोष है, 'वंदेमातरम्' में हिंदुओं में ऐक्य-भावना की उपेक्षा का चित्रण है तथा 'मी उभा आहें' में मतदान तथा संवैधानिक संरचना पर कटु व्यंग्य है। समाज के विविध वर्गों सहित विभिन्नस्तरीय पात्रों एवं मार्मिक घटना-प्रसंगों का निरूपण इन्होंने अपने नाटकों में किया है, परंतु कहीं-कहीं संवादों में अश्लीलता अवश्य आ गई है। कथा की सरलता को दूर करने के लिए हास्यादि अवांतर कथा-प्रसंगों की संश्लिष्ट योजना इनकी रचनाओं में आयासलब्ध बनकर उपस्थित हुई है। कथा-विकास हेतु जहाँ पाश्चात्य नाटकों के संघर्ष-तत्त्व का आधार लिया गया है, वहां दूसरी ओर पात्रों का चारित्रिक निरूपण भी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर हुआ है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य नाटकों का-सा अंक-विधान तथा कथा का दुःखमय पर्यवसान भी इनके नाट्य-तंत्र पर पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के प्रभाव का परि-चायक है। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने 'कऱ्हेचे पाणी' (दे०) नाम से आठ खंडों में आत्मकथा लिखने की योजना बनाई थी जो इनके देहांत के कारण अपूर्ण रह गई। 'भेंडूचीं फुलें' (दे०) नामक विडंबना-काव्य भी इन्होंने लिखा है। यह मराठी का प्रथम विडंबना-काव्य समझा जाता है।

अथर्वणाचार्युडु *(ते० ले०)* [समय—अनुमानतः तेरहवीं शती ई०]

समालोचकों के अनुसार ये कविब्रह्म तिक्कना (दे०) के समकालीन थे और कदाचित् जैनधर्मावलंबी थे।

कृतियाँ : 1—संस्कृत महाभारत (दे०) का काव्यानुवाद; तथा 2—विकृतिविवेकमु।

संस्कृत महाभारत के काव्यानुवाद के कतिपय छंद ही अब उपलब्ध हैं। ये छंद परवर्ती रीतिकवियों द्वारा लक्षण-ग्रंथों में उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इनसे पता चलता है कि अथर्वणाचार्युडु ने 'महाभारत' का काव्यानुवाद संस्कृतनिष्ठ एवं समासजटिल भाषा में किया था। काव्य-शैली ओज-प्रधान है। 'विकृतिविवेकमु' संस्कृत भाषा में सूत्र शैली में निबद्ध तेलुगु का व्याकरण-ग्रंथ है परंतु अनेक समालोचकों के अनुसार यह इनकी कृति नहीं है।

अदबे-लतीफ़ *(उर्दू० पारि०)*

'अदबे-लतीफ़' की तहरीक एक विशेष मानसिक प्रवृत्ति का परिणाम है। इसकी विशेष शैली है। इस तह-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73564

रीक के अनुयायी 'अदब बराए अदब' अथवा 'कला कला के लिए' के समर्थक हैं।

'अदबे-लतीफ़' की तहरीक पारिभाषिक दृष्टि से उस आंदोलन को कहते हैं जिसमें न पश्चिमी मूल्यों की दासता थी और न ही पूर्वी सभ्यता व संस्कृति का अंधाधुंध अनुकरण। हर उस 'तहरीक' को 'अदबे-लतीफ़' कहा गया जिसका 'ज़िक्र व फ़लसफ़ा' अर्थात् 'चिंतन एवं दर्शन' से कोई संबंध न था और 'जो सौंदर्य-भावना' की पोषक थी।

'अदबे-लतीफ़' के लिखने वाले सौंदर्य के पुजारी थे। उनकी सौंदर्यप्रियता उस जमाने के उपयोगितावादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया मात्र थी जो कभी साहित्य व भाषा पर बुरी तरह छाया हुआ था। 'अदबे-लतीफ़' और इसकी सुंदरता का संबंध रूमानियत से है। यह रूमानियत सर्जनात्मक या क्रांतिकारी न होकर पलायनवादी है।

अदियमान् *(त० पा०)*

अदियमान् सेलम ज़िले के उत्तरी भाग में स्थित तहडूर नामक समृद्ध राज्य का शासक था। इसका वास्तविक नाम अंजि था। यह आंदियर कुल में उत्पन्न होने के कारण अदियमान और इस वंश के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण अदियमान नेडुमान् अंजि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी गणना संघकालीन सात प्रसिद्ध दानी राजाओं में होती है। इसकी वीरता और दानशीलता का वर्णन अव्वैयार (दे०), भरणर्, पेरुशित्तिनार्, नल्लूर् नत्तनार आदि संघकालीन कवियों ने किया है। इसकी दानशीलता का वर्णन करती हुई अव्वैयार कहती है कि अदियमान् पुरस्कार लेने में चाहे विलंब कर दे परंतु वह पुरस्कार देने में कभी नहीं चूकता। संघकालीन कवियों ने उसके शारीरिक सौंदर्य, वीरता, पराक्रम, शौर्य, युद्ध-कौशल आदि का, उसकी विशाल चतुरंगिणी सेना का विस्तृत वर्णन किया है। विभिन्न पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी।

अदियमान् कलाकारों का बहुत सम्मान करता था। प्रसिद्ध तमिल कवयित्री अव्वैयार का अधिकांश समय इसके दरबार में ही बीता था। प्रसिद्ध है कि इसने बड़ी कठिनता से प्राप्त शक्तिदायक, आयुवर्द्धक आँवले का फल स्वयं न खाकर अव्वैयार को दे दिया था। अव्वैयार द्वारा आँवला खा चुकने पर अदियमान् ने उस दुर्लभ फल के गुणों का वर्णन किया और कहा कि संसार कलाकारों के ज्ञान के बल पर ही जीवित है, उनका सदा के लिए रहना आवश्यक है। इसी से उसने वह आयुवर्द्धक फल उन्हें दिया था। अदियमान् की मृत्यु पर अव्वैयार द्वारा रचित करुण रस-प्रधान गीत पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह एक आदर्श राजा था। अपनी वीरता और दानशीलता के कारण वह जन-जन के मन में बस गया था। तमिल में इसके चरित्र को लेकर अनेक कविताएँ, नाटक, कहानी, निबंध आदि लिखे जा चुके हैं जिनमें प्रसिद्ध है पं० गोविन्दन-कृत 'कोडै मन्नर पनुवल' नामक काव्यकृति।

अदिवीररामपांडियन् *(त० ले०)*

सोलहवीं शती ई० के आसपास तमिल प्रदेश के पांड्य राजा अपनी पुरानी राजधानी 'मतुरै' (मधुरै) छोड़कर तिरुनेल्वेलि ज़िले के दक्षिण काशी के अर्थवाले 'तेंकाचि' नामक स्थान पर रहकर सीमित क्षेत्र का शासन करने लगे थे। इन्हीं राजाओं में से अधिक प्रसिद्ध नरेश 'अदिवीररामपांडियन' हैं। ये संस्कृतज्ञ और सिद्ध तमिल-कवि भी थे। इनकी पद्य-रचनाओं में कुछ संस्कृत-साहित्य और धर्मग्रंथों के अनुवाद हैं, और कुछ नीति एवं भक्ति-विषयक हैं। इन्होंने संस्कृत 'नैषध' काव्य का सुंदरतम तमिल प्रतिरूप 'नैटतम्' प्रस्तुत किया है। इसमें मूल काव्य की अलंकारमयी शैली तथा शृंगार-वर्णन-पद्धति का पूर्णतः निर्वाह किया गया है। 'काचिक्काण्टम्' नामक रचना काशी तीर्थस्थान के माहात्म्य का छंदबद्ध वर्णन है। 'लिंकपुराण', 'भागपुराण' आदि रचनाएँ संस्कृत पुराणों के तमिल रूप हैं। 'वेररिवेंरके' जीवनोपयोगी शाश्वत नीतियों को सुकंठ्य छंद में प्रस्तुत करती है। लेखक का व्यक्तिगत भक्ति-भावातिरेक और भगवान के समक्ष आत्मसमर्पण की भावना करुवैप्पतिररुप्पत्तंताति' नामक स्तुति-गीत में प्रस्फुटित हैं। 'करुवै' नामक स्थान के मंदिर के शिव भगवान पर अनन्य भक्ति का प्रकाशन इस गीत में द्रष्टव्य है। पाठक को द्रवीभूत करने की शक्ति के कारण इसे 'लघु तिरुवाचकम्' कहा जाता है।

अदीब (उर्दू० ले०)

[दे० मसऊदहसन रिज़वी]

अद्दंकि गंगाधर कवि *(ते० ले०)*

केदारगुरु के शिष्य, गोलकोंडा के निवासी गंगाधर कवि (सोलहवीं शती उत्तरार्द्ध) ने 'तपतीसंवरणोपाख्यानमु' नामक शृंगार-प्रधान प्रबंध-काव्य की रचना की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। पाँच आश्वासों के इस काव्य की शैली प्रौढ़, अलंकृत एवं प्रवाहयुक्त है। सरस, सुंदर कल्पनाओं से युक्त इस काव्य में तपती का संवरण के पास कीर को दूत बनाकर भेजने का प्रसंग अति रमणीय है।

यह काव्य गोलकोंडा के बादशाह इब्राहीम कुली कुतुबशाह को (शासन-काल 1550-80 ई०) समर्पित किया गया है। किसी मुसलमान बादशाह को समर्पित किया गया यह प्रथम तेलुगु काव्य है।

अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) *(अप० ले०)* [समय—बारहवीं शती ई० के लगभग]

अद्दहमाण पश्चिम में पूर्वकाल के प्रसिद्ध मलेच्छ नामक देश के वासी मीरसेन नामक तन्तुवाय (जुलाहे) का पुत्र था। यह प्राकृत-काव्य और गीतों की रचना में प्रसिद्ध था; संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का विद्वान था। इसने मध्यवर्गीय पात्रों के लिए 'संदेश रासक' की रचना की थी। अपनी कृति में एक स्थान पर इसने प्राकृत-काव्य और वेद का उल्लेख किया है। इसी प्रकार इसने 'नलचरित्र', 'भारत', 'रामायणादि' का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि अद्दहमाण को भारतीय साहित्य का ज्ञान था। इसने बड़ी सहृदयता के साथ हिंदुओं के तीर्थ-स्थानों, सामाजिक प्रथाओं, उत्सवों, स्त्रियों के आभूषणों तथा अनेक शास्त्रीय तथा लौकिक बातों के उल्लेख किए हैं, जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि यह पहले हिंदू रहा होगा, या समन्वयकारी उदारहृदय मुसलमान होगा। 'संदेश-रासक' (दे०) में किए गए नाना स्थानों के उल्लेखों से अनुमान किया गया है कि कृतिकार मुलतान का रहने वाला था।

उपलब्ध अपभ्रंश ग्रंथों में से यही एक ग्रंथ है जो एक मुसलमान का लिखा हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि इस युग तक मुसलमान इस देश की भाषा से पूर्णरूपेण परिचित ही नहीं थे, अपितु उसमें काव्य-रचना भी करते थे। अद्दहमाण की किसी अन्य कृति का पता नहीं लगा है।

अद्भुत परिणाम *(उ० कृ०)*

मृत्युंजय रथ (दे०) कृत 'अद्भुत परिणाम' उपन्यास में उन्नीसवीं शताब्दी के बीच उड़ीसा में मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार के परिणाम का चित्रण हुआ है। दरिद्र हिंदुओं को अनेक प्रकार के प्रलोभनों द्वारा ईसाई बना लिया जाता था किंतु क्या परिस्थितिवश धर्म-परिवर्तन कर लेने के बाद भी वे उसे मन से स्वीकार कर पाते हैं?—यही दर्शाना लेखक का उद्देश्य है।

मोहन हिंदू माता-पिता का एकमात्र पुत्र है। वह उच्च शिक्षा के लिए कटक आता है। बेन नामक एक अँग्रेज़ पादरी के प्रभाव से वह लिली नामक क्रिश्चियन लड़की से शादी कर लेता है। दो बच्चे होते हैं। धीरे-धीरे उसके मन में ईसाई धर्म के प्रति प्रतिहिंसा जाग्रत होती है। एक दिन समुद्र दिखाने के बहाने वह लिली एवं दोनों बच्चों को समुद्र में ढकेल देता है। दैवयोग से लिली एवं एक बच्चे की जान बच जाती है। हत्या के अपराध में मोहन को आजीवन कारावास मिलता है।

अद्वैतसिद्धि *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई०]

'अद्वैतसिद्धि' वेदांत सिद्धांत का अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ है। इसके लेखक मधुसूदन सरस्वती हैं। इस ग्रंथ पर गौड़ ब्रह्मानंद ने 'लघु चंद्रिका' नामक टीका लिखी है।

'अद्वैतसिद्धि' में वृत्ति एवं जगन्मिथ्यात्व से संबंधित सिद्धांतों का अत्यंत मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आध्यात्मिक वृत्ति का निरूपण करते हुए 'अद्वैत-सिद्धि' में कहा गया है कि जिस प्रकार योद्धा को देखकर भीरु भट भाग जाता है, उसी प्रकार वृत्ति की उत्पत्ति होने पर अविद्या का आवरण नष्ट हो जाता है। जगत् के मिथ्यात्व के संबंध में भी 'अद्वैतसिद्धि' में यह मौलिक उद्भावना की गई है कि अद्वैत-तत्त्व की सिद्धि के लिए मिथ्यात्व के भी मिथ्यात्व की आवश्यकता है। अद्वैतसिद्धिकार का कथन है कि केवल जगत का मिथ्यात्व प्रतिपादन करने से जगत का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। अतः मिथ्या जगत के मिथ्यात्व के मिथ्यात्व का प्रतिपादन आवश्यक है।

'अद्वैतसिद्धि' का विषय-विवेचन एवं भाषा-शैली दोनों ही दुरूह हैं। वेदांत एवं न्याय का प्रौढ़ विद्वान ही इस ग्रंथ-रत्न से दीप्ति ग्रहण कर सकता है।

अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों का जैसा सूक्ष्म विवेचन 'अद्वैतसिद्धि' में उपलब्ध है, वसा अन्यत्र नहीं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

यह तुंचत्त एषुत्तच्छन् (दे०) रचित राम-काव्य है और मलयाळम का सर्वप्रमुख गौरव-ग्रंथ। यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संस्कृत के 'अध्यात्मरामायण' का स्वतंत्र अनुवाद है, तो भी 'वाल्मीकि-रामायण' (दे०) और 'रघुवंश' (दे०) आदि अन्य अनेकों रामकाव्यों और मलयाळय के ही 'कण्णश्श रामायण' (दे० निरणम्, राम, पणिक्कर) से भी कवि ने अपनी रचना के लिए प्रेरणा ग्रहण की है। प्रत्येक कांड के आरंभ में कवि शुकी से रामकथा-कथन की प्रार्थना करता है, और तदनुसार शुकी-गान (किळिप्पाट्टु) (दे०) के रूप में कथा विकसित होती है। 'रामायण' की संपूर्ण कथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से वर्णित है और पाठकों में भक्ति-रस उद्दीप्त करने के लिए उद्दिष्ट है।

सोलहवीं शताब्दी में समस्त भारत में जो भक्ति-आंदोलन प्रचलित हुआ था उसी के अंतर्गत इस राम-काव्य की भी रचना हुई है। अन्य भक्त कवियों की तरह एषुत्तच्छन् ने भी यह उचित समझा था कि जनता की भाषा में ही काव्य-रचना होनी चाहिए जिससे कि अधिक-से-अधिक लोगों को दैवी मार्ग पर लाया जा सके। न केवल एषुत्तच्छन् अपने प्रयत्न में सफल हुए, वरन् भविष्य के लिए काव्य-भाषा का मानक रूप भी निर्धारित हो गया।

'अध्यात्मरामायणम्' की काव्य-शैली और अलंकार-योजना भक्ति-रस की निष्पत्ति के लिए अभिलक्षित है। उनके आध्यात्मिक विचार सुस्पष्ट और बोधगम्य हैं और भक्ति-मार्ग के प्रेरक हैं। औचित्यादि काव्यगुणों के पौष्कल्य से भी इसका अत्यधिक महत्त्व है।

'अध्यात्मरामायणम्' साहित्यिक और धार्मिक महत्त्व की दृष्टि से मलयाळम के सभी काव्यों में अन्यतम है। यह काव्य भारतीय वाङ्मय में 'रामचरितमानस' (दे०) और 'कम्बरामायणम्' (दे०) के समकक्ष है।

अध्यात्मरामायणमु *(ते० कृ०)*

'अध्यात्मरामायणमु' के रचयिता मुनिपल्लि सुब्रह्मण्य कवि अठारहवीं शती ई० के मध्य काल में कालहस्ति में वहाँ के स्थानीय राजा के आश्रय में विराजमान थे। ये तिरुपति वेंकटेश्वर के परम भक्त थे। इनके पूर्वज तंजोर ज़िले के मुनिपल्लि नामक ग्राम के निवासी थे। ये मुलिकिनाटि ब्राह्मण थे।

'अध्यात्मरामायणमु' की प्रशस्ति तेलुगु जनता में बहुत है—विशेषकर स्त्रियों में इस काव्य का प्रचार सर्वाधिक है। कवि ने संस्कृत-'अध्यात्मरामायण' के आधार पर मौलिक रूप से पदों में इस कृति की रचना की। भक्ति-भाव से विभोर होकर ये इन पदों को सुष्ठु संगीत-पद्धति से गाया करते थे। इन्होंने अपनी कृति का समर्पण बालाजी वेंकटेश्वर भगवान के श्रीचरणों में किया है।

'अध्यात्मरामायणमु' के पद तेलुगु के लोकसाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गए हैं। उपलब्ध कीर्तनों की संख्या 104 है। लगता है इनकी संख्या अवश्यमेव अधिक होनी चाहिए। युद्धकाण्ड में सर्वाधिक पद हैं। इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें संगीत तथा शिष्ट साहित्य का अच्छा सम्मिश्रण पाया जाता है। सभी रसों का सम्यक् परिपाक इसमें पाया जाता है। इनकी रचना-शैली श्रुति-सुभग है और अनुप्रास की छटा से ओतप्रोत है। इन संगीतप्रवण कीर्तनों को तेलुगु कन्याएँ क्रमबद्धता से सीखती हैं। इस कृति का प्रचार और महत्त्व इस बात से स्पष्ट होता है कि कुछ परिवार इनके गायन मात्र से ही अपनी जीविका चलाते हैं। इसकी कोमलकांतपदावली लुभावनी है अतः जनता इनकी ओर आकृष्ट होती है। "विनवे शौरि चरितमु गौरी सुकुमारि गिरिवरकुमारी" आदि पदों की पल्लवियाँ बहुत ही मनमोहक होती हैं। ये पद अपनी प्रांजल भाषा, भावशुद्धि तथा प्रवाहमयी शैली के लिए प्रसिद्ध हैं।

अनंगहर्ष *(सं०ले०)* [समय—आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध]

अनंगहर्ष 'तापसवत्सराज' नामक नाटक के रचयिता थे। इनका दूसरा नाम मातृराज था। इनके पिता का नाम नरेन्द्रवर्धन था।

राजशेखर (दे०) की एक स्तुति के अनुसार इनका समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

'तापसवत्सराज' इनकी एकमात्र कृति है। उदयन विषयक रूपकों में इसका पाँचवाँ तथा अंतिम स्थान है।

उक्त रूपक काव्य-सौष्ठव एवं नाट्यकला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यही कारण है कि लगभग सभी प्रमुख आलंकारिकों ने अपने ग्रंथों में इसके पद्य उद्धृत किए हैं। कुंतक (दे०) तथा अभिनव गुप्त (दे०) ने तो इसके आख्यान का भी अपने ग्रंथों में विश्लेषण किया है। इसकी कथावस्तु बड़ी ही रोचक तथा हृदयस्पर्शी है। उदयन (दे०) वासवदत्ता (दे०) के जल जाने की खबर पाकर तापस बन जाता है और प्रयाग में आत्महत्या करने को उद्यत हो जाता है। किसी प्रकार उसे इससे रोका जाता है। वह घूमता हुआ आश्रम में पहुँचता है। वहाँ उसकी भेंट वासवदत्ता से हो जाती है। अंत में मगध की राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी पद्मावती के साथ उसका विवाह हो जाता है।

इसकी भाषा अत्यंत सुबोध तथा सरल है।

अनंत *(म० ले०)*

इनका गाँव था 'मेथवड' जो कि सतारा ज़िले में है। ये रामदास (दे०) संप्रदाय के अनुयायी और विट्ठल के भक्त थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ—'सुलोचनाख्यान', 'रामदासस्तुति'—भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हैं। इनके कुल मिलाकर 1500 पद उपलब्ध हैं।

अनंतकृष्ण शर्मा राल्लपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1893 ई०]

ये समालोचक एवं कवि हैं। योगी 'वेमना' (दे०) की कविता पर इनके समीक्षात्मक ग्रंथ ने इनको साहित्य-जगत में उत्तम समालोचक के रूप में प्रतिष्ठित किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'नाटकोपन्यसमुलु', 'सारस्वतावलोकनमु' आदि सुंदर समालोचनाएँ लिखी हैं। 'तारादेवी' और 'मीराबाई' इनके काव्य हैं। 'गाथा सप्तशती' (दे० 'गाहासत्तसई') का इन्होंने तेलुगु में अनुवाद किया है। ये संगीत के भी अच्छे ज्ञाता हैं। अतः तेलुगु की संगीतपरक रचनाओं के विषय में ये अधिकारी विद्वान माने जाते हैं।

अनंतनाथपुराण *(क० कृ०)*

यह जन्न (दे०) की एक महान कृति है जो चंपूशैली में रची गई है। इसमें चौदहवें तीर्थंकर अनंतनाथ की कथा चौदह अध्यायों में कही गई है। संस्कृत का उत्तरपुराण, कन्नड का चावुंडराय-पुराण इसके आधार-ग्रंथ रहे होंगे। 'चंपूकाव्य' के अष्टादश वर्णनों व जैन पुराण की अष्टांग रूढ़ियों से यह ओतप्रोत है। बीच-बीच में जन्न की कविता-शक्ति अवश्य झलक मारती है। 'अनंतनाथपुराण' का सार है चंडशासन का कथानक, जिसके कारण इस पुराण का महत्त्व बढ़ा है। एक बार चंडशासन अपने मित्र वसुदेव के घर जाता है और उसका आतिथ्य पाता है; उसकी पत्नी सुनंदा पर मोहित होता है और धोखे से उसे घर ले जाता है। भाँति-भाँति से उसे अपने प्रति अनुरक्त करने का प्रयत्न करता है किंतु वह साध्वी डिगती नहीं। अंत में वह जादू से वसुदेव का कटा सिर उसके सामने उपस्थित कराता है जिसे देखकर वह मर जाती है। किंतु चंडशासन का मोह यहीं समाप्त नहीं होता। वह स्वयं सुनंदा के शव के साथ जल मरता है। तब युद्ध के लिए आया हुआ वसुदेव वैराग्य ग्रहण कर लेता है। काम कितनी अप्रतिहत शक्ति है—इसे विशिष्ट दृष्टि से जन्न ने यहाँ चित्रित किया है।

अनंतनारायण, एस० *(क० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

श्री एस० अनंतनारायण जी का जन्म 1925 ई० में मैसूर में हुआ। इनका साहित्य-सृजन छात्र-जीवन से ही आरंभ हो गया था। 'पयणद हादियल्लि', 'मुरुक मंटप' आदि आपके उपन्यास हैं। आपकी कविताएँ स्वच्छंदतावादी हैं तथा देश-प्रेम एवं प्रकृति-प्रेम से ओतप्रोत हैं। 'मंगलारती' आदि आपके नाटक रंगमंच पर सफल बने हैं। 'मैथिली' में आपकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त आपने निबंध भी लिखे हैं। 'मुन्तुहवल' नामक एक निबंध-संकलन आपने तैयार किया है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद की जीवनी भी इन्होंने लिखी है। भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का कन्नड अनुवाद भी आपने किया है। 'होस कन्नड कवितेय मेले इंग्लीष प्रभाव' (आधुनिक कन्नड कविता पर अँग्रेज़ी प्रभाव) आपका एक श्रेष्ठ शोध-प्रबंध है। आपकी भाषा ओजवती है।

अनंतफंदी *(म० ले०)* [जन्म—1744 ई०, मृत्यु—1819 ई०]

कहा जाता है कि होळकर प्रदेश की महारानी अहिल्याबाई होळकर के उपदेश के प्रभावस्वरूप ये तमाशा-प्रदर्शन का कार्य छोड़कर कीर्तनकार बन गये थे।

'माधवग्रंथ' या 'माधवनिधन' ओवी-छंदोबद्ध ग्रंथ में माधवराव पेशवा के निधन के उपरांत राज्याधिकारी के चुनाव के प्रश्न पर जो तनावपूर्ण वातावरण उपस्थित था, उसका चित्रण है।

'अनंतफंदी' मराठा शासन के पतनोन्मुख युग के कवि हैं। सवाई माधवराव पेशवा के दरबार में इन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त था। अतः दरबारी कवि की मनोवृत्ति के अनुकूल इन्होंने पेशवा दरबार के अनेक पराक्रमी तथा साहसी योद्धाओं पर पोवाड़े लिख उनको गौरव दिया है। यथा 'नाना फडणवीसाचा-पोवाडा', 'खड्या ची लढ़ाई' आदि।

इनकी लावणियों में चन्द्रावल की लावणी तमाशबीनों में अत्यंत लोकप्रिय है। 'बारबरस का पट्ठा देखा' 'छान छबेली अजबरंगेली, मुख में चाबे पानविडा' जैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी-प्रकृति के अनुकूल लिखी कुछ हिंदी लावणियाँ भी मिलती हैं।

भावावेश के प्रबल क्षणों में कवि अभिव्यक्ति के लिए शब्द या अलंकार नहीं खोजता वरन् उसे तत्काल सहज अनलंकृत रूप में निर्भीकता से व्यक्त करता है। इसमें एक तड़प है, जिसकी स्वाभाविकता में ही अपूर्व सौंदर्य है।

अनंतमूर्ति, यू० आर० *(क० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

कन्नड के प्रतिभाशाली युवा साहित्यकारों में अनंतमूर्ति का मूर्द्धन्य स्थान है। आपने महाराजा कालेज से अँग्रेज़ी में एम० ए० किया; फिर इँगलैंड से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपकी रचनाओं में प्रमुख हैं—'संस्कार' (उपन्यास), 'प्रश्ने', 'एंदुमगियद कते' (कभी न खत्म होनेवाली कहानी), 'हदिनैदु पद्यगळु' (कविता), 'आवाहने' (नाटक) तथा 'प्रज्ञेमत्तु परिसर' (आलोचना)। इनके उपन्यास 'संस्कार' ने कन्नड साहित्य में एक युगांतर उपस्थित कर दिया था। यथार्थवाद, तीव्र सांकेतिकता, सरल किंतु प्रभावी भाषा इनके लेखन की विशेषता है। इन्हें होमी भाभा फ़ेलोशिप भी मिली।

अनंतराय रावल *(गु० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

समीक्षक प्रो० अनन्तराय मणिशंकर रावल सुदीर्घ अवधि तक गुजरात राज्य व भूतपूर्व बंबई राज्य के शिक्षा-विभाग में विभिन्न पदों पर—प्रमुखतः प्राध्यापक पद पर—रहे हैं। सम्प्रति ये गुजरात यूनिवर्सिटी के गुजराती विभाग के प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष-पद पर आसीन हैं। विगत लगभग चार दशकों से प्रो० रावल अपनी समीक्षाओं द्वारा गुजराती साहित्य की अनवरत सेवा कर रहे हैं।

'साहित्य-विहार', 'गंधाक्षत', 'साहित्य-निकष', 'साहित्य-विवेचन', 'समालोचना', 'राई नो पर्वत नुं विवेचन', 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य', 'मदनमोहना', 'कलापी नो काव्य-कलाप', 'प्रेमानंद-कृत नलाख्यान' आदि इनके समीक्षा ग्रंथ व संपादित ग्रंथ हैं।

ये शिष्ट, संतुलित, समन्वयवादी समीक्षक हैं। मध्ययुगीन गुजराती साहित्य एवं भाषा के ये सम्यक् अध्येता हैं। दोष-दर्शन कराने की इनकी प्रकृति सौम्य व रुचिकर है। स्वपक्ष-समर्थन की उग्रता तथा टीका-टिप्पणी की वृत्ति इनमें नहीं है। तत्त्वनिष्ठा व सत्य के प्रति आग्रह इनकी विशिष्टता है। जनपदीय एवं शिष्ट गुजराती का मिश्र प्रयोग, आडंबरहीन कथन-पद्धति, सटीक व सुग्राह्य समीक्षा इनकी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

अनजोड़ *(पं० कृ०)*

प्रस्तुत रचना नाटककार हरचरणसिंह (दे०) की एक लोकप्रिय नाट्यकृति है। इसे अनेक बार रंगमंच पर अभिनीत किया जा चुका है। इसमें अनमेल विवाह की समस्या सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत की गई है। लेखक ने इस समस्या को त्रासदी के रूप में ढालने का यत्न किया है और उसका प्रभाव अतिरंजित है; फलस्वरूप गहरी करुणा की टीस दर्शक को अभिभूत करती है। नाटक में नाटकीयता अथवा नाट्य-कौशल का कुशल संयोजन नहीं हो पाया; इसलिए यह रचना परिपक्व साहित्यिक रुचि के पाठकों को आकर्षित करने में सफल नहीं हो सकी।

अनत्तन *(पा० पारि०)*

[सं० अनात्मन्] यह एक बौद्ध सिद्धांत है जिसमें आत्मा की सत्ता का प्रतिषेध किया गया है। भगवान बुद्ध के मत में ऐसा कोई तत्त्व नहीं है जो सर्वदा विद्यमान रहे और शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट न हो तथा मृत्यु के बाद एक शरीर से दूसरे शरीर में संक्रांत होता जाए। आवागमन से मोक्ष का सिद्धांत भी भगवान बुद्ध को मान्य नहीं। इनके मत में सभी पदार्थ क्षणिक हैं किंतु उनकी परंपरा बनी रहती है जिससे उसकी एकता का मिथ्या प्रतिभास होता रहता है। रात भर जलने वाली दीपशिखा एक नहीं है; प्रतिक्षण बदलने वाली दीपशिखा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। इसी प्रकार एक दीपशिखा से दूसरी प्रज्वलित कर ली जाती है और उसकी परंपरा बनी रहती है। जिस प्रकार रथ चक्र, दण्ड, धुरी इत्यादि का समूह है, उसी प्रकार मनुष्य भी शरीर-क्रिया, चित्त इत्यादि से भिन्न और कुछ नहीं। बौद्धों के मत में स्कंध-पंचक से भिन्न कोई आत्मा नहीं—(1) रूपस्कंध अर्थात् शरीर के विभिन्न अवयव, (2) वेदना-स्कंध अर्थात् सुख-दुःख की अनुभूति, (3) संज्ञा-स्कंध अथवा बोध, (4) संस्कार-स्कंध अथवा स्मृति; और (5) विज्ञान-स्कंध या चेतना। यही नाम-रूप आत्मा है।

अनस्तिकाय *(प्रा० पारि०)*

जैन मतानुयायी काल को 'अनस्तिकाय' तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं, क्योंकि न यह दिखाई पड़ता है, न विभाजित किया जा सकता है और न स्थानकृत दूरी में यह घटता-बढ़ता है। सभी स्थानों पर हर समय एक ही काल उपस्थित रहता है और अनुमान के द्वारा जाना जाता है। यही ऐसा तत्त्व है जिससे द्रव्य की निरंतरता, परिवर्तनशीलता, नवीनता-प्राचीनता इत्यादि संभव हो सकती है। द्रव्यों में गुणों का उदय-अस्त भी काल के अधीन होता है। जैन लेखकों ने काल के दो भेद किए हैं—पारमार्थिक काल और व्यावहारिक काल। इस दूसरे भेद को ही ये लोग 'समय' शब्द से अभिहित करते हैं। निरंतरता और वर्तना पारमार्थिक काल के लक्षण हैं जबकि सभी प्रकार के परिवर्तन व्यावहारिक काल अथवा समय की विशेषता हैं। घंटा, मिनट, सेकंड, दिन, मास, वर्ष, क्षण, इत्यादि रूप में विभाजन समय का ही होता है। पारमार्थिक काल सर्वदा एकरूप अविभाज्य है। पारमार्थिक काल में घंटा, मिनट इत्यादि का आरोप करके ही व्यावहारिक काल की कल्पना की जाती है।

अनहद नाद *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1964 ई०]

डाक्टर गोपालसिंह (दरदी) (दे०) को इस कविता-संग्रह पर राष्ट्रीय साहित्य अकादेमी से पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। आधुनिक जीवन की विडंबनाओं पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए स्वस्थ नैतिक और वैज्ञानिक मूल्यों को पुनःस्थापित करना इन कविताओं का विषय है। दृष्टिकोण की उदारता एवं सार्वभौम मूल्यों का विवेचन इसकी मुख्य विशेषता है। इन कविताओं से भारतीयता का विराट् संकल्प उभरता है; संभवतः इसीलिए पंजाबी भाषा के क्षेत्र से बाहर भी इसे प्रशस्ति प्राप्त हुई है। 'रब्बी लीला' इस संग्रह की अत्यंत प्रभावशाली कविता है जिसे कवि ने 'दांते' की 'डिवाइन कामेडी' की रूप-विधि में रचा है। 'अनस्ट्रक मैलोडी' शीर्षक से इस कविता-संग्रह का अँग्रेज़ी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

अनारकली *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल 1922 ई०]

यह उर्दू का सुप्रसिद्ध नाटक है। इसके लेखक सैयद इम्तियाज़ अली 'ताज' (दे०) हैं। इसकी नायिका एक नर्तकी नादिरा बेगम है जिसे अकबर ने 'अनारकली' (दे०) की उपाधि प्रदान की थी। शाहज़ादा सलीम अनारकली के प्रेम-पाश में फँस गया था। एक दिन अकबर बादशाह ने उसे सलीम के साथ संकेतों में बातें करते देख लिया। अनारकली को बंदी बना दिया गया और बाद में उसे जीवित ही दीवार में चिनवा दिया गया। सलीम उसके वियोग में विक्षिप्त-सा हो गया। बाद में अकबर को जब अनारकली के प्रति अपने बेटे के वास्तविक प्रेम का ज्ञान हुआ तो उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ।

नाटक बहुत हृदयग्राही है। भाषा प्रौढ़ तथा संवाद सजीव हैं। कहीं-कहीं तो शब्द मर्म की गहराइयों में उतर जाते हैं। लेखक अनारकली को ऐतिहासिक पात्र नहीं मानता; उसने तो केवल सुनी-सुनाई कथा के आधार पर इस नाटक की रचना की है।

उर्दू-साहित्य में 'अनारकली' नाटक का एक विशेष स्थान है।

अनारकली *(उर्दू० पा०)*

अनारकली सैयद इम्तियाज़ अली 'ताज' (दे०) के सुप्रसिद्ध नाटक 'अनारकली' (दे०) की नायिका है। इसका वास्तविक नाम नर्तकी नादिरा बेगम है। अकबर बादशाह ने ही उसे 'अनारकली' की उपाधि प्रदान दी थी। कुछ लोगों को अनारकली के एक ऐतिहासिक पात्र होने में संदेह है। अन्य लोग इसे एक ऐतिहासिक पात्र मानते हैं और उनका कथन है कि अकबर ने नर्तकी नादिरा बेगम को 'अनारकली' की उपाधि इसलिए प्रदान की थी कि वह इतनी सुंदर एवं आकर्षक प्रतीत होती थी कि उसे अनार की खिली कली की संज्ञा दी जा सकती थी।

नाटककार 'अनारकली' का एक नायिका के रूप में सुंदर चरित्र-चित्रण करने में पूर्ण सफल हुआ है। उसके मुख से निकले शब्द मर्म को छूते हैं।

अनार्यना अडपलां *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1955 ई०]

गुजराती साहित्य के गद्य एवं पद्य दोनों क्षेत्रों में पारसियों की सेवा उल्लेखनीय है। 'अनार्यना अडपलां' गुजराती के पारसी लेखक व समीक्षक श्री जहाँगीर संजाणा (दे०) के समीक्षात्मक लेखों का संग्रह है। इस संग्रह में संकलित समीक्षात्मक लेखों में लेखक का गांभीर्य, सूक्ष्म विवेचन, बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण तथा व्यंग्यपूर्ण शैली एवं परिहासमूलक कटाक्ष स्पष्ट प्रकट होता है।

'अनार्य' श्री संजाणा का उपनाम है। 'अनार्यना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अडपलां' का अर्थ है 'अनार्य की छेड़खानी'।

इसमें संकलित लेख हैं—(1) अनार्यना अडपलां, (2) तीस वर्ष पूर्व की एक छंद-चर्चा, (3) पारसी व गुजराती भाषा, (4) 'उगती जुवानी' की पारसी बोली, (5) पारसी गुजराती और साक्षरी गुजराती, (6) आधुनिक गुजराती साहित्य, (7) साहित्य का ध्येय, (8) गुजराती और संस्कृत, (9) विविध विचार, (10) फलिका और प्रयत्न-बंध, (11) कवि खबरदार (दे०) का महाछंद, (12) नर्मद साहित्य-सभा के साथ पत्र-व्यवहार, (13) छबि-छबी का शब्दार्थ, (14) विक्रमादित्य।

इन लेखों में श्री संजाणा का संस्कृत-प्रेम, संस्कृत का गंभीर ज्ञान, छंदःशास्त्र का गहन अध्ययन, विविध विषयों के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा अभिव्यक्त हुई है। विशुद्ध ज्ञानोपासक, निर्भय समीक्षक का व्यंग्य-विनोदपूर्ण रूप क्या हो सकता है—इसका परिचय इन समीक्षात्मक लेखों में मिल जाता है।

एक पारसी-गुजराती समीक्षक के महत्त्वपूर्ण समीक्षा-ग्रंथ के रूप में यह ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है।

अनिल, आत्माराम रावजी देशपांडे *(म० ले०)*
[जन्म—1901 ई०]

अनिल आधुनिक मराठी कविता को व्यक्ति-निष्ठ वैयक्तिक प्रेम-कविता से समाज-प्रेम एवं मानवता-वाद की ओर ले जाने वाले कवि हैं।

अनिल की काव्य-चेतना की प्रवृत्ति शृंगारात्मक प्रगीतों से क्रांतिकारी गीतों की ओर रही है। इनका 'फुलवात' काव्य-संग्रह व्यक्तिगत प्रेम-गीतों का संग्रह है। इनके प्रेम में एकनिष्ठा है, इस कारण उसमें उच्छृंखलता नहीं, भावोत्कटता है।

'भग्नमूर्ति', 'निर्वासित चीनी मुलास', और 'पेर्तेव्हा' इनके तीन खंडकाव्य हैं। इनकी कविता में विचार तथा भावना का सुंदर मिश्रण है।

मराठी कविता में ये मुक्त छंद (दे०) के जनक एवं सफल प्रयोक्ता हैं। 'भग्नमूर्ति' और 'निर्वासित चीनी मुलास' खंडकाव्यों की रचना मुक्त छंद में कर इन्होंने आधुनिक खंडकाव्यों की रचना में छंद-विषयक नवीन प्रयोग किया है। मान्य ग्यारह रसों के अतिरिक्त अनिल 'प्रक्षोभ' को बारहवाँ रस मानते हैं।

अनीस *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1800 ई०, मृत्यु—1874 ई०]

इनका पूरा नाम मीर बब्बर अली और उपनाम 'अनीस' था। इनका जन्म फ़ैज़ाबाद, मुहल्ला गुलाबबाड़ी, में हुआ। बाद में ये लखनऊ चले गए। ये बहुत स्वाभिमानी व्यक्ति थे और अपने परिवार की मान-मर्यादा का बहुत ध्यान रखते थे—बिना बुलाए कभी किसी के पास नहीं गए। काव्य-गुण इनकी पैतृक धरोहर थी और योग्य तथा उच्च कोटि के कवि जितने इनके परिवार में हुए, उतने और किसी में नहीं हुए। इसलिए इनका अपने परिवार पर गर्व करना स्वाभाविक था। अनीस ने बाल्यकाल में ही काव्य-रचना आरंभ कर दी थी। पहले 'हज़ी' उपनाम से और बाद में 'अनीस' उपनाम से।

मरसिया (शोक-गीत) (दे० मरसि-ए-अनीस) लिखने में इनका कोई जवाब नहीं। इन्होंने हज़ारों मरसिये, सलाम, कितआत, रुबाइयाँ आदि लिखीं। इनका काव्य-संग्रह अभी पूरा प्रकाशित नहीं हुआ। फिर भी जो छपा है वह पाँच भागों में है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने कोई ढाई लाख पद लिखे हैं जिनमें कुछ ग़ज़लें भी हैं। इनकी कविता-पाठ की शैली भी निराली थी जिसे सुनकर श्रोताओं की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी।

अनीस का काव्य संतुलित तथा समतल है। ये उर्दू साहित्य में प्रथम श्रेणी के कवि माने जाते हैं। इनकी भाषा दिल्ली तथा लखनऊ की प्रामाणिक भाषा है। ये युद्ध का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से करते हैं। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण और मानवीय मनोवेगों की अभिव्यक्ति में इनकी तुलना किसी अन्य से करना कठिन है। भाषा सरल, सजीव तथा स्पष्ट होती है। विषय पुराना होने पर भी हर बार नया प्रतीत होता है। ये ऊहाओं से काम नहीं लेते। बात को सीधे-सादे ढंग से कहना ही इनकी विशेषता है।

अनुकरण *(हिं० पारि०)*

यह ग्रीक 'मिमेसिस' का हिंदी पर्याय है। ग्रीक विद्वान कला-सृजन की प्रक्रिया को अनुकरण मानते थे। प्लेटो के शब्दों में वह 'प्रकृति के सामने दर्पण रख देने' की क्रिया मात्र है और चूंकि कलाकार कृति में सत्य की छाया की छाया मात्र प्रस्तुत करता है, अतः कला (दे०) मूल्यहीन एवं त्याज्य है। अरस्तू ने 'अनुकरण' शब्द में नया अर्थ भरा। अनुकरण से उसका अभिप्राय स्थूल भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति का अनुकरण न होकर प्रकृति के उन आंतरिक नियमों का अनुकरण है जिनके अनुसार प्रकृति सृजन करती है। कलाकार प्रकृति के अधूरे काम को पूरा करता है, वस्तु के सार्वभौम एवं आदर्श रूप को प्रस्तुत करता है और ऐसा करने में संवेदना, अनुभूति, कल्पना (दे०) और आदर्श का प्रयोग करता है। इसी प्रकार वह मानव को नहीं 'कार्यरत मानव' को अनुकरण का विषय बताता है। अतः अरस्तू के अनुकरण का अर्थ किया गया कल्पनात्मक पुनःसृजन, रचनात्मक प्रक्रिया, जीवन का पुनर्निर्माण। परवर्ती यूनानी तथा रोमानी अलंकारशास्त्रियों ने 'अनुकरण' का अर्थ माना प्राचीन महान कृतियों का अनुकरण। केवल लोंजाइनस ने अनुकृति या निर्देश देते समय प्राचीन महान साहित्यकारों की अंतर्दृष्टि और दिव्य विशेषताओं को आत्मसात् करने और उनसे तादात्म्य स्थापित करने की बात कही। अठारहवीं शताब्दी तक पूर्वस्थित आदर्शों के अनुकरण पर ही बल दिया जाता रहा। अठारहवीं शती में डा० जॉनसन ने इस सिद्धांत को पुनः नया आयाम देते हुए कहा कि अनुकरण विशिष्ट का न होकर सामान्य एवं सार्वभौम प्रकृति का होना चाहिए। उन्नीसवीं शती में गद्य-कृतियों को केंद्र मानकर यथार्थवाद (दे०) और प्रकृतवाद (दे०) का समर्थन किया गया। अनुकरण-सिद्धांत की नवीनतम व्याख्या में कलाकृति की अंतस्संगति पर विशेष बल दिया जा रहा है। प्राचीन संस्कृत-काव्यशास्त्र में भी काव्य-सृजन के मूल में अनुकरण को स्वीकार किया गया है, पर वहाँ जिन शब्दों 'अनुव्यवसाय' और 'अनुकीर्तन' का प्रयोग हुआ है, उनसे स्पष्ट है कि वे यांत्रिक अनुकरण को न मानकर कल्पनात्मक पुनःसृजन को ही काव्य-रचना की प्रक्रिया का मूलाधार मानते थे।

अनुजन्, ओ० एम० (*मल० ले०*) [जन्म—1928 ई०].

ओट्टपालम् में प्रसिद्ध ओळप्पमण्णा मना (नंपूतिरि परिवार) में इनका जन्म हुआ। डा० अनुजन् प्रमुखतः कवि हैं। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं—(1) मुकुळम्, (2) चिल्लुवातिल्, (3) अगाधनीलिमकळ्, (4) वैशाखम्, (5) सृष्टि और (6) अक्तेयन् (दे०) हैं। 'मलयाळिच्चि' तथा 'मधुवुमूरमयुम् राजावुम्' छोटे खंडकाव्य हैं। इनका 'मेघम्', 'मेघसंदेश' का संक्षिप्त भावानुवाद है। अनुजन् की काव्य-रचना का प्रारंभिक काल श्री चङ्ङंपुषा (दे०) की कीर्ति का काल रहा। उन दिनों सभी कवि यथासंभव संस्कृत के प्रभाव से बचे रहना चाहते थे और विषय-वस्तु की पुरानी धारा के कट्टर आलोचक होते थे। अनुजन् भी रूढ़िवादी धनी नंपूतिरि परिवार की संतान होने के बावजूद पुरानी अर्थ-व्यवस्था एवं समाज-व्यवस्था की कठोर आलोचना अपनी रचनाओं में करते आए हैं। इस विचारशील कवि की रचनाओं में कोरी भावुकता की जगह बौद्धिकता भी है।

अनुप्रास (*सं०, हिं० पारि०*)

अनुप्रास काव्य में वर्ण-संगीत एवं नाद-सौंदर्य की सृष्टि करने वाला एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण शब्दालंकार है। 'अनु' और 'प्र' उपसर्ग तथा √ अस् के संयोग से व्युत्पन्न अनुप्रास अलंकार का पूर्व-इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। अनुप्रास का शब्दार्थ है—काव्य में वर्णनीय रस की प्रकृति के अनुकूल वर्णों (व्यंजनों) का पुनः-पुनः परस्पर समीप विन्यास (अनु=वर्णनीय रस के अनुकूल; प्र=समीपता; आस=बार-बार रखा जाना)। दूसरे शब्दों में इस शब्दालंकार का आधार वर्ण-साम्य तथा व्यंजना की आवृत्ति है। अनुप्रास में रसानुकूल वर्णावृत्ति में स्वर की समानता का कोई प्रतिबंध नहीं है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में अनुप्रास के पाँच भेदों का उल्लेख है—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अंत्यानुप्रास। रुद्रट (दे०), मम्मट (दे०) आदि ने इसका विस्तार से निरूपण किया है।

अनुभव मुकुर (*क० कृ०*)

इसका एक अन्य नाम 'मोहानुभव मुकुर' है। यह स्मरतंत्र या कामशास्त्र-संबंधी एक छोटा-सा ग्रंथ है जिसमें एक सौ नौ छंद हैं। इसे एन० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री ने प्रकाशित किया है। इसमें तोटक, कलकंठ आदि विविध छंद हैं। कवि ने इसमें नायिकाभेद के वर्णन के बदले स्त्री-रूप की प्रशंसा, स्त्री-भोग के महत्त्व आदि पर ज़ोर दिया है। कवि का दावा है कि स्त्री से सर्वसौख्य प्राप्त होंगे—यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त होगा। संसार में रम्यतम वस्तु नारी है। प्रसंगतः कवि ने रसों की चर्चा करते हुए तेरह रस बताए हैं। नये रस हैं—वाक्शैया मोहरस, भक्ति रस तथा आनंद रस। स्त्रियों की विकृतियों के ज्ञाता को कवि ने सर्वज्ञ माना है। इस तरह कुछ नयी बातों के होने पर भी ग्रंथ साधारण है। शैली में काफ़ी सरसता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभवामृत *(क० कृ०)*

इसके लेखक महलिंग रंग या रंगनाथ हैं जिनका समय 1675 ई० ठहराया गया है। कन्नड में इससे पहले जैन, वीरशैव, माध्व एवं श्रीवैष्णव कवियों ने विशेष रूप से काव्य-रचना की थी। अद्वैत तत्त्व-निरूपक ग्रंथ नहीं के बराबर थे और इस अभाव को यह ग्रंथ पूरा करता है। इसमें कन्नड की भक्ति बहुत सुंदर ढंग से गाई गई है। इस ग्रंथ में अधिकार-लक्षण, वैराग्य, त्वंपद, तत्पद, अस्तिपद, सप्तभूमिकाएँ, परमात्मा, मायावाद, जीवत्रय, जीवन-मुक्ति, निर्गुणराधना आदि का निरूपण एक स्वतंत्र अध्याय में हुआ है। संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों के लिए अद्वैतमत-बोधक ग्रंथ इस से सरल एवं सुबोध और कोई नहीं। दृष्टांत-संपत्ति इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। विपुल लोक दृष्टांतों के कारण अत्यंत गहन दार्शनिक बातें भी सुबोध बन गई हैं। भगवद्गीता, महाभारत, रामायण, एवं शंकर-भाष्य से कवि ने सामग्री अवश्य ली है किंतु फिर भी उसका लोकानुभव विस्तृत है, प्रतिभा काफ़ी प्रखर है। यह ग्रंथ 'भामिनी षट्पदी' में लिखा गया है। शैली अत्यंत सरल एवं प्रसादगुण से परिपूर्ण है।

अनुभाव *(सं०, हिं० पारि०)*

भरत (दे०) मुनि के प्रसिद्ध रस-सूत्र में निर्दिष्ट एक सर्वमान्य रसावयव है 'अनुभाव'। जैसा कि नाम से स्वतः व्यक्त है रस-प्रक्रिया में अनुभावों की स्थिति भाव की अनुवर्तिनी होती है। अतः यदि विभाव रस-प्रतीति के कारण-रूप है तो अनुभाव कार्यरूप। संस्कृत-काव्यशास्त्रियों के अनुभाव वाणी एवं अंग-संचालन आदि के वे व्यापार विशेष हैं जो आलंबन, उद्दीपन आदि के कारण आश्रय के मन में उद्बुद्ध भावों का बाह्य प्रकाशन करते हैं (साहित्य-दर्पण 3/132)। मन, शरीर, वेशभूषा तथा वाणी आदि से संबद्ध ये अनुभाव सामान्यतः—कायिक, मानसिक, आहार्य, वाचिक तथा सात्त्विक—पाँच प्रकार के माने गए हैं।

अनुरुद्ध *(पा० ले०)* [समय—बारहवीं शताब्दी का अंत]

इनके जीवन-वृत्त के विषय में केवल इतना ही ज्ञात है कि इनका कार्य-स्थल ब्रह्मदेश था और वहीं इन्होंने साहित्य-रचना की थी। वस्तुतः 'अभिधम्म पिटक' (दे०) इनकी लिखी हुई एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक तत्त्वों का उच्चकोटि का संग्रह किया गया है और 'अभिधम्म' की जटिलताओं को सरल करने की चेष्टा की गई है। आज भी लंका और ब्रह्मा में इस अभिलेख को सर्वाधिक महत्त्व की दृष्टि से देखा जाता है। इस पुस्तक की महत्ता इसी से सिद्ध होती है कि इसकी जितनी टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं उतनी किसी अन्य पुस्तक की नहीं। इस पुस्तक के अनुवादों की संख्या भी बहुत है। इनका एक दार्शनिक काव्य 'नामरूप परिच्छेद' भी प्रसिद्ध है जिसमें 1855 पद्य हैं।

अनुरूपा देवी *(बँ० ले०)* [जन्म—1882 ई०, मृत्यु—1958 ई०]

अनुरूपा देवी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व समृद्ध है। उनकी रचनाओं का उत्तरोत्तर विकास एवं विस्तार तो हुआ ही; उनकी कथाभूमि भी कम व्यापक नहीं है। ऐतिहासिक उपन्यासों में 'त्रिवेणी' उल्लेखनीय रचना है। इन उपन्यासों में लेखिका प्राचीन मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए ही प्रयत्नशील रही है परंतु तत्कालीन संघर्ष एवं उत्तेजना को प्रस्तुत करने में वह अधिक सफल रही है। अनुरूपा देवी ने सामाजिक उपन्यास में पारिवारिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को उठाया है। 'माँ' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है परंतु साहित्यिक उत्कर्ष की दृष्टि से 'यंत्रशक्ति' अन्यतम उपलब्धि है। परवर्ती रचनाओं में प्रतिभा का ह्रास ही हुआ है।

अनुरूपा देवी के उपन्यासों का केंद्र-बिंदु है नारी। पाश्चात्य प्रवाह के दूषण से बचाकर लेखिका नारी को त्याग एवं भक्ति-पूजा के शांतिमय वातावरण में रखना चाहती है। धर्मानुष्ठान के प्रति मोह तो है ही, साथ में वैसे ही पात्रों की कल्पना की गई है। इनकी रचनाएँ नारी-स्पर्श से स्निग्ध हैं और नारी-हृदय के सूक्ष्म एवं सजीव चित्रांकन के कारण चिरस्मरणीय रहेंगी।

अनोखे ते अकल्ले *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1940 ई०]

'अनोखे ते अकल्ले' गुरुबख़्शसिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) का कहानी-संग्रह है जिसमें उनकी सात कहानियों और सात पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं के अनुवाद संकलित हैं। इन कहानियों की मूल चेतना 'प्रीत' का प्रचार है। सृष्टि-संरचना के प्रारंभ से पदार्थों, संबंधों एवं मान्यताओं के महत्त्व में परिवर्तन होता रहा है लेकिन आज तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के 'प्रीत-हृदय' में कोई भी परिवर्तन लक्षित नहीं हुआ है। इनमें जीवन में घटित होने वाली विविध प्रकार की घटनाओं का 'प्रीत' से संबंध स्थापित करते हुए पात्रों के आचरण तथा चरित्र में जो परिवर्तन दिखाया गया है वह धर्म-परिवर्तन से कम नहीं है। पात्रों का चरित्र-चित्रण इन कहानियों में एकांगी एवं आदर्शवादी है। सभी कहानियों का मूल स्वर प्रगतिशील समाज की स्थापना है। जीवन को स्वच्छ, पवित्र और प्रसन्न बनाने के जो संकेत इन कहानियों से व्यक्त होते हैं उनमें कहानीकारों का आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रतिफलित हुआ है।

अन्ननटा *(मल० पारि०)*

मलयाळम कविता में प्रयुक्त एक द्राविड छंद। इसमें दो पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में गुरु और लघु के क्रम से दो-दो अक्षरों के छह गण होते हैं। तुंचत्त् एष़ुत्तुच्छन (दे०) के 'महाभारत' के कर्णपर्व और मौसलपर्व इस छंद में निबद्ध हैं। 'किळिप्पाट्टु' (दे०) शैली की शोभा बढ़ाने वाला यह छंद आधुनिक कवियों में भी काफ़ी लोकप्रिय है।

अन्नदामंगल *(बँ० कृ०)*

भारतचन्द्र (दे०) का 'अन्नदामंगल' बँगला साहित्य की एक स्मरणीय संपत्ति है। 'अन्नदामंगल' तीन अंशों में विभक्त है। पहले अंश में शिव-संकीर्तन एवं देवीमंगल, दूसरे भाग में कालिकामंगल अर्थात् विद्यासुंदर का प्रणयोपाख्यान, एवं अंतिम भाग में मानसिंह-प्रतापादित्य-भवानन्द की कहानी है तथा कवि के आश्रयदाता अशेपगुणग्राही महाराज कृष्णचन्द्र राय की वंश-प्रशस्ति है।

यह ठीक है कि मंगल-काव्य के भावाकाश के बीच ही यह काव्य प्रसारित है किंतु यह बात भी सही है कि इसकी ग्रंथि दृढ़बद्ध नहीं है। दैव-निर्भरता का युग उस समय अपनी महिमा से विच्युत होकर आघात-वेदना से विपण्ण दिखाई पड़ रहा था। उस विषण्णता की गहराई में मानवीयता की पदध्वनि ने भारतचंद्र को आलोड़ित किया था। इसीलिए मंगलकाव्य की नूपुर-ध्वनि 'अन्नदामंगल' में सुनाई पड़ने पर भी उसका प्राधान्य-विस्तार यहाँ नहीं हो पाया है। यही 'अन्नदामंगल' का वैशिष्ट्य है।

अन्नमाचार्युलु *(ते० ले०)* [समय—1424-1503 ई०]

जन्म से स्मार्त, संस्कार से वैष्णव और साधना से संगीतकार ताल्लयाक अन्नमाचार्युलु तेलुगु साहित्य में भक्ति और श्रृंगार से युक्त गीतों (पदों) की रचना के एक अभिनव मार्ग का उन्मेष करके 'पदकविता-पितामह' के रूप में प्रसिद्ध हुए। सोलह साल की किशोर अवस्था से ही अन्नमाचार्युलु ने तिरुपति के अधिष्ठाता भगवान बालाजी के गुणगान में गीत लिखना शुरू कर दिया था। कहते हैं कि इन्होंने कुल मिलाकर बत्तीस हज़ार गीत रचे और उन्हें ताम्रपत्रों में खुदवाकर भगवान को समर्पित कर दिया, जो भगवान के मंदिर के एक विशिष्ट मंडप में सुरक्षित हैं। पर आज केवल डेढ़ हज़ार पद उपलब्ध हैं। 'अन्नमाचार्युलु' के गीत 'आन्ध्रवेद' के रूप में प्रख्यात हुए। भक्त अपने आपको नायिका के रूप में प्रस्तुत करके भगवान के प्रति अपनी अनन्य भावना और अनुराग की निष्ठा को कई प्रकार से प्रकट करता है। इन पदों में भगवान की अनेक लीलाओं का हृदयग्राही वर्णन मिलता है। अध्यात्म और श्रृंगार के इन पदों के अतिरिक्त अन्नमाचार्युलु ने दो और रचनाएँ की थीं। 'श्रृंगारमंजरी' में परम प्रेमरूपा भक्ति का वर्णन किया गया है और दूसरी रचना 'वेंकटेश्वरशतकमु' में बाला जी और उनकी आह्लादिनी शक्ति अलवेलुमंगा का आत्मनिवेदन वर्णित है।

अन्निमित्जिलली *(त० पा०)*

संघ साहित्य के अनुसार अन्निमित्जिलली एक ग्वालिन थी जिसने राजा तिदियन् की सहायता से कोशर् का वध कर अपने निर्दोष पिता की हत्या का बदला लिया था। वर्तमान काल में शालै इळन्तिरैयन-कृत कथाकाव्य 'अन्निमित्जिलली' में इसका रूप झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई कासा है। वह पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए स्वयं रणक्षेत्र में कूद पड़ती है। तमिल में 'अन्निमित्जिलली' के चरित्र से संबंधित अनेक साहित्यिक कृतियाँ हैं।

अन्नैक्कु *(त० कृ०)*

यह डा० मु० वरदराजन (दे०) के निबंधों का संग्रह है। ये सभी निबंध पुत्र एषिल द्वारा अपनी माँ के नाम लिखे गए पत्रों के रूप में हैं। विभिन्न निबंधों में तमिलनाडु में होने वाले परिवर्तन, दो पीढ़ियों की विचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा में अंतर, वर्तमान समाज में संयुक्त परिवार-प्रथा की अमान्यता आदि विषय वर्णित हैं। इन निबंधों के माध्यम से निबंधकार ने यही बताने का प्रयास किया है कि पुराने विचार पुराने समाज के लिए भले ही उपयोगी रहे हों किंतु नये समाज के लिए पूर्णतः उपयोगी नहीं हो सकते तमिल में निबंध नामक साहित्य-विधा विशेष विकसित नहीं है। इस दृष्टि से डा० वरदराजन के इन निबंधों का तमिल के निवंध-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

अन्योक्ति *(सं०, हिं० पारि०)*

जहाँ उपमान के कथन से उपमेय का ज्ञान हो उसे अन्योक्ति कहते हैं। कई आलंकारिक इसे अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार का एक भेद मानते हैं।

जैसे—

संतुष्ट आक पर नित्य रहो सहर्ष,
हे ग्रीष्म, सन्तत करो उसका प्रकर्ष।
है कौन हेतु पर होकर जो कराल,
हो नष्ट भ्रष्ट करते तुम ये तमाल ।।

—सियारामशरण गुप्त

यहाँ प्रस्तुत व्यक्ति वह है जो किसी अनधिकारी अनुचर पर तो कृपा कर रहा है और अधिकारी अनुचर पर अकारण कुपित हो रहा है।

अन्योक्ति-रूपक *(हिं० पारि०)*

इस शब्द का सर्वप्रथम व्यवहार भाषणशास्त्र में हुआ, जहाँ इसका अर्थ था व्यंग्यपूर्ण शब्दावली में बात कहना। भारतीय काव्यशास्त्र में पहले अन्योक्ति एक अलंकार मात्र माना जाता था जिसमें प्रत्यक्ष अर्थ के साथ-साथ कोई अन्य अर्थ भी जुड़ा होता है। बाद में अन्योक्ति शब्द का प्रयोग ऐसी संपूर्ण कलाकृति के लिए भी किया जाने लगा जिसकी प्रत्यक्ष कथा नीति और उपदेश भी दे। अन्योक्ति-रूपक (एलेगरी) से आज अभिप्राय है उस द्व्यर्थक कथा-काव्य से जिसमें प्रस्तुत कथा स्थूल और भौतिक घटनात्मक होती है तथा अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म-सैद्धांतिक। संस्कृत का 'प्रबोध-चन्द्रोदय' (दे०), अँग्रेजी के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' तथा 'फ़ेयरी क्वीन' अन्योक्ति-रूपक के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

अपभ्रंश *(भाषा—पारि०)*

एक मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा, जिसका काल मोटे रूप से 500 ई० से 1000 ई० तक है। पर साहित्य में इसका प्रयोग और बाद तक भी होता रहा है। 'अपभ्रंश' का अर्थ है 'बिगड़ा हुआ'। संस्कृत के शब्दों और रूपों (तत्सम) के जनता में प्रयुक्त परिवर्तित या विकसित रूप अपभ्रंश या अपभ्रष्ट कहलाए और उसी आधार पर भाषा के उस रूप को 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' नाम से अभिहित किया गया। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है। अपभ्रंश के क्षेत्रीय रूप कम-से-कम उतने तो अवश्य रहे होंगे, जितने प्राकृत के थे। इन्हीं रूपों से आधुनिक आर्य-भाषाएँ विकसित हुई हैं: ब्राचड़ से सिंधी; पैशाची से लहँदा और पंजाबी; शौरसेनी से गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी और पहाड़ी; महाराष्ट्री से मराठी; अर्धमागधी से पूर्वी हिंदी तथा मागधी से बिहारी, असमिया, बँगला और उड़िया। अपभ्रंश साहित्य में अपभ्रंश के मुख्यतः केवल दो ही रूप मिलते हैं: पश्चिमी और पूर्वी। अपभ्रंश के इन दोनों रूपों में पर्याप्त साहित्य मिलता है।

अपरान्हर आकाश *(उ० कृ०)*

'अपरान्हर आकाश' ज्ञानीन्द्र वर्मा (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। इसमें ज़मींदारी-उन्मूलन का चित्रण है। लेखक ने बड़ी सहानुभूति और संवेदना के साथ सामंतीय प्रथा के दुर्गुण एवं सद्गुणों पर प्रकाश डाला है। ज़मींदार घराने का आभिजात्य, शालीनता, उदारता, क्षमाशीलता, सांस्कृतिक गौरव-रक्षा की वृत्ति के साथ उनके द्वारा अपव्यय, जन-शोषण और लौह-शासन का भी चित्रण हुआ है।

अपु *(बँ० पा०)*

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय (दे०) के 'पथेर पांचाली' (दे०) एवं 'अपराजित' उपन्यासों का नायक अपूर्व या अपु है। इस चरित्र का स्वरूप-संधान विश्लेषण के द्वारा नहीं, केवल अनुभूति के द्वारा ही संभव है। प्रकृति की पटभूमिका में जीवन के समस्त आनंद, सविस्मित मुग्धता एवं अनंत वेदना के शुचिस्निग्ध सौरभ का आस्वाद इससे पहले बँगला साहित्य में नहीं मिला था। जीवन-पथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विचित्र गाथाकार विभूतिभूषण ने अपु के चरित्र के माध्यम से शैशव जीवन के रस-रहस्य की दीपावली को उज्ज्वलतर बनाकर प्रकट किया है एवं उसी के क्रम-विवर्तन का चित्र खींचते हुए कौतूहल से भरे कैशोर जीवन की विचित्रता का अंकन निपुण शिल्पी की अपरिमेय शक्ति से किया है। मनसापोत गाँव को छोड़कर अपु जब काशी की समस्याकीर्ण गली में निष्ठुर यथार्थ के विचित्र अनुभवों से परिचित होता है तब कैशोर-चेतना विचित्र अभिज्ञता के आवर्त में वेदना-चंचल हो उठी है किंतु दिशाहीन नहीं। फिर प्रकृति की निःसीम शांति के कमलकुंज में उसके जीवन का अभिसार दिखाया गया है। प्रकृति की वाणी ही उसके अंतर की वाणी है। प्रकृति-मंत्र से दीक्षित अपु ने महा-जीवन के आह्वान को ग्रहण किया है। राजधानी कलकत्ते की जीवन-तरंग उसके बहिर्जीवन को द्रुतगति से असहनीय दारिद्रय की ओर खींच ले गई है। माँ की मृत्यु ने उसे शोक-स्तब्ध कर दिया है तो दूसरी ओर युवक अपूर्व की बाल्यसंगिनी लीला ने उसे मुग्ध किया है। अपर्णा के आगमन से अननुभूत जीवनचर्या नवछंद में स्पंदित हो उठी है। अपर्णा की अकाल मृत्यु एवं संतान काजल के प्रति अपु की मनोग्रंथि नये आवेग एवं नये आलोक में स्पंदित हुई है। विरक्त मन रास्ते में निकल पड़ा है अपने को ढूँढ़ने; किंतु उसे आश्रय मिला है वहीं निकितपुर की परमप्रकृति में। प्रकृति के साथ प्राण के नित्यकाल के संबंध को अपु के चरित्र में वाणीमूर्ति प्राप्त हुई है।

अप्पकवीयमु *(ते०कृ०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

काकुनूरि अप्पकवि, पंडित-वंश में पैदा हुए तथा इनकी परवरिश बचपन में इनके मातामह के ग्राम कामेपल्ली में हुई। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत, एवं तेलुगु में असाधारण पांडित्य प्राप्त किया। कांडूरि गिरय्या के पास व्याकरण की शिक्षा पायी, कोलिचेल सिंगन्ना से पौरोहित्य के स्मार्त कर्मों का मर्म सीखा तथा मंचिकंटि ओबन्ना से लक्षणग्रंथों का अध्ययन किया। इस प्रकार अप्पकवि कई विषयों के मर्मज्ञ पंडित हुए। इन्होंने 'आपस्तंबषट्कर्मनिबंधनम्' नामक स्मार्त ग्रंथ की रचना संस्कृत में की। 'कालामृत' नामक संस्कृत के ज्योतिष-ग्रंथ पर 'कालवालार्णवसंहिता' नामक व्याख्या रची। इनकी अन्य कृतियों में 'अम्बिकावादमु' नामक यक्षगान तथा 'अनंतव्रतकल्प' नामक काव्य का भी ज़िक्र है। परंतु खेद का विषय है कि इनमें से कोई ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।

इनके साहित्यिक यश का आधारभूत ग्रंथ अब एकमात्र 'अप्पकवीयमु' नामक लक्षण-ग्रंथ है। इसमें भी आठ आश्वासों के स्थान पर आज केवल पाँच आश्वास मिल रहे हैं। 'अप्पकवीयमु' की रचना की पृष्ठभूमि कवि के अनुसार एक प्रेरणा-प्रसंग था। कृष्णाष्टमी के दिन व्रत एवं पूजा करके वे सारी रात पुराण-श्रवण में बिता रहे थे। पर बीच में कुछ समय गहरी नींद आ गई। उसमें कृष्ण से साक्षात्कार हुआ। कवि को नन्नय्य भट्टु (दे०) कृत 'आंध्रशब्दचिंतामणि' (दे०) का अनुवाद करने का आदेश मिला। तदनुसार अप्पकवि ने इसका अनुवाद किया। वास्तव में यह कोई अनुवाद नहीं, परंतु एक बृहद् व्याख्या-ग्रंथ माना जा सकता है। मूल ग्रंथ में केवल बयासी आर्या छंद थे। अनुवाद में छंदों की कुल संख्या, प्राप्त पुस्तक में 1602 है। इस अंश के मूल छंद केवल पचास थे। 'अप्पकवीयमु' का रचनाक्रम इस प्रकार है :

प्रथमाश्वास में 1. प्रामाणिक लक्षण ग्रंथों की सूची, 2. लक्षणवेत्ताओं का वर्गीकरण, 3. 'विश्वश्रेयः काव्यम्' इस सूत्र का विवरण, 4. कविकर्म के लिए योग्यताओं का उल्लेख, 5. शब्द और अर्थ का विवेचन, 6. चतुर्विध कविताओं का विवरण, 7. अलंकारों एवं रसों का वर्णन आदि समाविष्ट हुए हैं। द्वितीय आश्वास में वर्ण-परिच्छेद का विस्तृत वर्णन मिलता है। उच्चारण तथा वर्तनी-संबंधी नियमों की बड़ी सूक्ष्मता के साथ इसमें चर्चा मिलती है। तृतीय आश्वास में तेलुगु के छंदो-विधान पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। तेलुगु के छंदों की विशेषता यह है कि इसके वर्णवृत्तों में प्रास और यतिमैत्री का पालन अनिवार्यतः करना पड़ता है। किसी चरण का द्वितीयाक्षर प्रास माना जाता है। यति चरण का प्रथमाक्षर है। इकतालीस यतिमैत्री भेदों का वर्णन इसमें है। सत्रह प्रास-भेदों का वर्णन भी है।

चौथे आश्वास में छंदःप्रस्तार तथा मुख्य छंदों के लक्षण आदि का विवेचन किया गया है। इसमें कवि ने 186 समवृत्तों का वर्णन दिया है।

पाँचवें आश्वास में संधि के विविध रूपों का ज़िक्र है। यह संधि-परिच्छेद कहलाता है। 'अप्पकवीयमु' का प्रभाव तेलुगु पंडितों पर आज भी अक्षुण्ण है। इसके एक-मात्र अध्ययन से तेलुगु के व्याकरण तथा छंदों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्पय दीक्षितुलु *(सं० एवं तें० ले०)* [जन्म—1525 ई०, मृत्यु—1598 ई०]

'अद्वैतमुकुर', 'विवरणदर्पण' के रचयिता रंगराजाध्वरी के पुत्र अप्पयदीक्षित का जन्म तमिलनाडु के कांचीपुर के निकटस्थ अडयप्पलम में हुआ था। दीक्षित ने कुल मिलाकर 104 ग्रंथ लिखे हैं जिनमें काव्य, नाटक, व्याख्याएँ, लक्षण-ग्रंथ और वेदांत-ग्रंथ हैं। इनमें 'आत्मार्पणस्तुति' नाम से प्रसिद्ध 'शिवपंचाशिका', 'आर्याशतक', 'शिवकर्णामृत', 'वैराग्यशतक', 'आनन्दलहरी', 'वसुमती-चित्रसेनविलासम्' (नाटक), वेदांत देशिक के काव्यों, गोविन्द दीक्षित के 'हरिवंशसारचरित', कृष्ण मिश्र के 'प्रबोधचन्द्रोदय' (दे०) की व्याख्याएँ उल्लेखनीय हैं।

'कुवलयानंद' (दे०) तथा 'चित्रमीमांसा' काव्यशास्त्र के ग्रंथ हैं। शब्दार्थ-संबंध का विवेचन करनेवाला ग्रंथ 'वृत्तिवार्तिक' है। 'मीमांसक-मूर्धन्य' की प्रशंसा प्राप्त करने वाले दीक्षित ने 'पूर्वमीमांसा-विषयक संग्रह दीपिका', 'धर्म-मीमांसा-परिभाषा', 'विधिरसायन', 'मयूखावली', 'चित्रपट' आदि पूर्वमीमांसा को प्रतिपादित करने वाले ग्रंथ भी लिखे हैं। स्मार्त होते हुए भी इन्होंने शैव-वेदांत की व्याप्ति के लिए प्रयास किया है। 'शिवार्क-मणिदीपिका' 'शिवाद्वैत-निर्णय' आदि में शैव-विशिष्टाद्वैत को प्रतिपादित किया है। इनके दर्शन-ग्रंथों में 'न्यायरक्षामणि', 'वेदांतकल्पतरुपरिमल', 'सिद्धांत-लेश-संग्रह' प्रधान हैं। सर्वतोमुखी पांडित्य तथा अद्वितीय प्रतिभा से युक्त अप्पय दीक्षित ने अपनी मातृभाषा तमिल होते हुए भी, यह कहकर कि 'आंध्रत्वमांध्रभाषाच नालपस्य तपसःफलम्' आंध्रत्व और आंध्र-भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अप्पर *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवीं शताब्दी]

तमिल प्रांत में आविर्भूत 63 शैव संतों (नायन्मारों) में अप्पर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्हें तिरुनावुक्करशर् अर्थात् 'पवित्र वाणी का अधिपति' भी कहा जाता है। वस्तुतः इनकी वाणी में अपार शक्ति थी। बचपन से ही मातृ-पितृ-स्नेह से वंचित अप्पर अपनी शिव-भक्त बहिन तिलकवती को छोड़कर जैन बन गए थे। कालांतर में घोर शारीरिक कष्ट सहने के उपरांत इन्होंने शैव धर्म अपना लिया था। अपने दीर्घकालिक जीवन में इन्होंने विविध अनुभव प्राप्त किये। विभिन्न शिव-मंदिरों का भ्रमण करते हुए इनके द्वारा रचित 311 पद 'तेवारम्' नामक कृति में संगृहीत हैं। तेवारम् का शाब्दिक अर्थ है 'व्यक्तिगत उपासना'। विभिन्न पदों में इन्होंने अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। इनकी भक्ति दास्य-भाव की थी। इन्होंने व्यक्तिगत सत्य द्वारा तथा पदों के गायन द्वारा प्रभु की उपासना पर बल दिया है। इनमें धार्मिक सहिष्णुता थी। शैव धर्म की महिमा का प्रतिपादन करते हुए भी इन्होंने अन्य धर्मों की निंदा नहीं की। एक पद में इन्होंने शिव के उस रूप का वर्णन किया है जिसमें शिव के शरीर में ही विष्णु के दर्शन भी होते हैं। प्रभु के इस रूप को हरिहर रूप कहते हैं। अप्पर की रचनाओं में उनका पांडित्य और कवित्व झलकता है। अप्पर शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में पटु थे। इन्होंने विरुत्तम्, तिरुनेरिशै, तिरुतांडकम् आदि छंदों का सुंदर-सफल प्रयोग किया है। तमिलनाडु में आविर्भूत शैव संत कवियों में अप्पर अग्रगण्य हैं।

अप्पाराव, गुरजाडा *(तें० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

विशाखापट्टणम् ज़िले के रायवरम् नामक गाँव में गुरजाडा अप्पाराव का जन्म हुआ। एक सफल सुधारक तथा उच्चकोटि के लेखक का जीवन बिताने के बाद 53 साल की अवस्था में इनकी मृत्यु हो गई। अध्यापक-वृत्ति के अतिरिक्त इन्होंने कई अन्य विभागों में नौकरी की। इनकी उन्नति में विजयनगर के ज़मींदार आनंद गजपति महाराजा का बड़ा हाथ था। अप्पाराव की रचनाएँ इस प्रकार हैं—'पूर्णम्मा' (दे०), 'डामन-पिथियस', 'कन्यका' और 'लवणराजु कला' आदि कथात्मक, 'दिद्दुबाटु' (भूल-सुधार), 'नी पेरेमिटि ?' (तुम्हारा नाम क्या है?), 'मेटिलडा' तथा 'संस्कर्ताहृदयमु' (सुधारक का हृदय) आदि कहानियाँ, 'कन्याशुल्कमु, (दे०) (संपूर्ण), 'कोंडुभट्टीयमु और 'बिल्हणीयमु' (अपूर्ण) नामक नाटक, 'मुत्यालसरालु' (कविता-संग्रह) (दे०), लेख तथा कई देशभक्तिपरक गीत आदि।

इनकी रचनाओं में भाषा, भाव, कथानक तथा रचना से संबद्ध स्वतंत्र दृष्टि पग-पग पर देखने को मिलती है। 'कन्याशुल्कमु' जैसी रचनाओं के द्वारा इन्होंने सरल तथा सजीव बोलचाल की भाषा को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। और अँग्रेज़ी साहित्य का परिचय प्राप्त कर साहित्य में नये-नये प्रयोग किये। चरित्र-चित्रण में भी ये सिद्धहस्त हैं। 'पूर्णम्मा' तथा 'कन्याशुल्कमु' नाटक में गिरीशम (दे०) आदि पात्रों के चित्रण इसके उदाहरण हैं। 'दिद्दुबाटु',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नी पेरेमिटि' आदि के द्वारा इन्होंने तेलुगु में कहानी-रचना का भी श्रीगणेश किया। इनकी रचनाओं में नवीनता के साथ विविधता है तथा सरलता के साथ सजीवता। अप्पाराव की प्रायः सभी रचनाएँ तत्कालीन समाज की किसी-न-किसी स्थिति-विशेष को लेकर सुधारात्मक दृष्टि से ही लिखी गई हैं। इस दिशा में कंदुंकूरि वीरेशलिंगमु पंतुलु (दे०) इनके मार्गदर्शक थे।

परंपरानुयायी साहित्य को एक नई दिशा की ओर मोड़ने तथा उसे जनजीवन के साथ घनिष्ठ रूप में संबद्ध करने में अप्पाराव का योग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए आधुनिक तेलुगु साहित्य के युग-प्रवर्तकों में इनका प्रमुख स्थान है।

अप्फंटे मकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

मूत्तिरिङ्ङोट्टु भवत्रातन् नम्पूतिरिप्पाड (दे०) का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास। इसमें समसामयिक नम्पूतिरि-समाज में विद्यमान कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने के साथ-ही-साथ एक प्रणय-कथा भी अंतर्ग्रथित है।

मलयाळम के सामाजिक उपन्यासों के इतिहास में चंतुमेनन् (दे०) के उपन्यासों के बाद, नवयुग के आरंभ काल से पहले की कृतियों में 'अप्फंटे मकळ्' सर्वप्रमुख है। इसके प्रकाशन के समय लेखक के प्रगतिवादी आदर्शों के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हुई थी, परंतु बाद के उपन्यासकारों के लिए उनका मार्ग प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। इस उपन्यास की भाषा सरल, प्रवाहमय और प्रभावशाली है।

अप्रतिम वीरचरित (क० कृ०)

इसके रचयिता मैसूर-नरेश चिकदेवराज ओडेयर के अमात्य तथा दरबारी कवि तिरुमलार्य हैं। 'अप्रतिम वीरचरित' एक अलंकार-ग्रंथ है जिसमें काव्य-निरूपण, रीतिशय्यादि-निरूपण, अर्थालंकार-निरूपण तथा नवीनालंकार-निरूपण—ये चार प्रकरण हैं। 'अलंकार-निरूपण' सबसे बड़ा प्रकरण है। अप्पय दीक्षित (दे०) के 'कुवलयानंद' (दे०) के आधार पर उसी सरणि में वहाँ प्रोक्त अलंकार तथा रसालंकारों का निरूपण किया गया है। तिरुमलार्य का प्रधान उद्देश्य अलंकार-निरूपण है, न कि समग्र काव्य-लक्षण-निरूपण, अत: ध्वनि, रसमीमांसा, दोष-निरूपण आदि की इसमें चर्चा नहीं है। कवि ने हिंदी के रीति-कवियों की भाँति अपने आश्रयदाता के शौर्य-औदार्य का वर्णन किया है। उदाहरण काफ़ी सरस हैं किंतु काव्य के जीव-स्वरूप रस, ध्वनि, आदि को छोड़कर कवि केवल अलंकारों में उलझ कर रह गया है जिससे इस ग्रंथ का महत्त्व घट गया है।

'अफ़ज़ल' झंझानवी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1665 ई०, मृत्यु—1725 ई०]

मुहम्मद अफ़ज़ल इनका नाम और 'अफ़ज़ल' तख़ल्लुस था। ये झंझाना, ज़िला मेरठ में उत्पन्न हुए थे। झंझाना के संदर्भ से ही ये झंझानवी कहलाए। 'अफ़ज़ल' झंझानवी ने अकबर और जहाँगीर का शासन-काल देखा था। ये किसी हिंदू स्त्री के प्रेम-पाश में बँध गए थे। इन्होंने अपनी प्रणय-गाथा एक लंबी मसनवी के रूप में बड़े मार्मिक ढंग से लिखी है। इन्होंने एक बारहमासे की रचना भी की थी।

'अफ़सोस' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1732 ई०, मृत्यु—1809 ई०]

मीर शेर अली 'अफ़सोस' दिल्ली में जन्मे थे। इनके पिता का नाम मीरअली मुज़फ़्फ़र ख़ाँ था। ये अपने पिता के साथ पटना तथा लखनऊ में भी रहे। लखनऊ से कर्नल स्कॉट ने इनको फ़ोर्ट विलियम कालेज की नौकरी के लिए कलकत्ते भेजा। इन्होंने वहाँ अनुवाद का सराहनीय कार्य किया। शेख़ सादी की 'गुलिस्तान' (फ़ारसी) का 'बाग़े-उर्दू' के नाम से उर्दू में अनुवाद किया। इन्होंने इसमें भाषा की सरलता तथा अनुवाद की सहजता को बड़ी सफलता से बनाए रखा है। 'आराइशे महफ़िल' इनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृति है जो भारत के इतिहास तथा भूगोल से संबंधित है और हैदरी (दे०) की 'आराइशे महफ़िल' से पूर्णतया भिन्न कृति है। इन्होंने 'सौदा' के 'कुल्लियात' (पूरा संग्रह) को शुद्ध करके पुनः प्रकाशित किया था। ये स्वयं भी अच्छे कवि थे। इनका अपना दीवान इनकी यादगार है।

'अबधूत' *(बँ० ले०)*

'अबधूत' छद्मनाम से पाँचवें दशक में एक लेखक 'मरुतीर्थ हिंगलाज' (दे०) (1955), 'उद्धारण पुरेर घाटे' (1956), 'पियारी' (1962), 'बशीकरण', 'भूमिकालिपि पूर्ववत्' (1963) आदि उपन्यासों एवं कहानी-संग्रहों की रचना कर रातों-रात ख्याति के चरम शिखर पर पहुँच गए थे। इनकी रचानाओं में धर्म-जीवन, धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्यारत संन्यासी, तीर्थयात्री, गुरु-प्रभृति मनुष्यों की गाथाएँ लिपिबद्ध हैं। 'मरुतीर्थ हिंगलाज' को छोड़ इनकी बाक़ी रचनाओं में धर्माचारियों की आत्म-प्रवंचना, अवरुद्ध यौन-कामना, प्रतिष्ठा-लोलुपता आदि मानव की गोपन दुर्बलताओं का ही अधिक चित्रण हुआ है। बीभत्स एवं भयानक भावों के आश्रय से लेखक ने साधुओं के गोपन-मार्ग एवं श्मशान-साधना के नए कथा-रूपों को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मगत कृच्छ्र साधना के साथ इंद्रिय-विकार अभेद्य रूप से जुड़ा हुआ है। निर्मल धर्म-साधना के चित्र इनके उपन्यासों में कम ही मिलते हैं।

'अबधूत' के उपन्यासों से ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन का इन्हें गहरा अनुभव है परंतु ये अनुभव अधिकतर कदर्थ रुचि-विरोधी हैं यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति में निश्चय ही एक मादकता है जो निषिद्ध वस्तु की तरह प्रबल रूप से आकर्षित करती है। क्लेदाक्त जीवन एवं अनुभव के प्रति इनका भी आकर्षण तीव्र है, परंतु इस आकर्षण में भी इनकी उदासीनता एवं निर्शिचत मनोवृत्ति रचना को एक अपूर्व सार्थकता प्रदान करती है। इनकी तीक्ष्ण रचना-शक्ति के बारे में किसी को कोई संशय नहीं है परंतु यदि ये क्रमागत धर्म-जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म असंगतियों का उद्घाटन कर एकरसता का प्रचार करते रहेंगे तो निश्चय ही रसिक पाठक-गोष्ठी इन्हें भुलाने में देरी नहीं करेगी।

अबधूतस्वामी, नारायणानंद *(उ० ले०)* [समय—अनुमानतः चौदहवीं शती ई०]

इनकी प्रसिद्ध कृति है 'रुद्रसुधानिधि' (दे०) जो प्राचीन गद्य-साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचना है। नारायणानंद अबधूतस्वामी सारलादास (दे०) के पूर्ववर्ती लेखक हैं। विद्वानों का मत है कि स्वामीजी भुवनेश्वर के एक प्रसिद्ध योगी, घुमक्कड़ साधु व शिक्षक थे। इन्होंने अपनी तपस्या से शिव-पार्वती को संतुष्ट कर लिया था तथा वरदान भी पाया था। इन्हें वेद, शास्त्र, व्याकरण, पुराण, गीता, स्मृति, नाटक, वैद्यकशास्त्र, तंत्र, मंत्र आदि का अगाध ज्ञान था। युद्ध-विद्या में भी ये निपुण थे। 'रुद्रसुधानिधि' इनकी युवावस्था की रचना है।

यह कृति लेखक के अगाध पांडित्य एवं उड़िया साहित्य में उनकी आश्चर्यजनक दक्षता की द्योतक है। इसमें गद्य और पद्य का सुमधुर समन्वय हुआ है। 'रुद्रसुधानिधि' आलंकारिक छंदोमय गद्य-ग्रंथ है, जिसमें योग, तंत्र, मंत्र तथा दार्शनिक तथ्यों का सरस, मधुर, प्रवाहमयी शैली में विद्वत्तापूर्ण विवेचन हुआ है। ग्रंथ में प्रतिपादित शैवधर्म की महिमा एवं भाषा की प्राचीनता को देखते हुए विद्वान इसके रचयिता को चतुर्दश शताब्दी का कवि मानते हैं।

अबलोकन *(उ० कृ०)*

'अबलोकन' उदीयमान कवि श्री बिजयकुमार दास (दे०) की एक उत्कृष्ट काव्य-कृति है। सन् 1972 ई० में प्रकाशित इस रचना में 32 कविताओं का संकलन है। कवि का युगबोध गहरा है। उसने युगीन संवेदना की जटिलता को उसकी सूक्ष्मता के साथ ग्रहण किया है। किंतु यह एक बौद्धिक प्रक्रिया होकर नहीं रह गई है, वरन् कवि की तरल अनुभूति बन गई है। यही कारण है कि उसके कथन में दुर्बोधता कहीं नहीं है।

कवि की सरल सावलील प्रकाशभंगी के अंतर में अनेक प्रकार के द्वंद्व और संघात से पीड़ित कवि-मानस देखा जा सकता है। यह द्वंद्व केवल कवि का नहीं है, यह आधुनिक मानव व सांप्रतिक युग का द्वंद्व है और इस द्वंद्व का क्षेत्र-विस्तार अत्यंत व्यापक है। युग-चेतना अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रही है; किंतु क्या अभिमन्यु चक्र-व्यूह से निकल सकेगा? इस युग की अव्यक्त यंत्रणा ही इस युग का असहाय शून्यता-बोध है, अकेलापन और निस्संगता की अनुभूति है, स्वप्नभंग की हताशा है। आज मानव ने अपने आपको खो दिया है; किंतु कहाँ? वह स्वयं नहीं जानता।

अप्रतिहत लय-योजना के कारण इसमें मुक्त छंद का सफल प्रयोग हुआ है। कवि के चित्रकल्प की सशक्त रेखाएँ सुदक्ष-तालिका से अंकित हैं, इसमें संदेह नहीं। कहीं-कहीं 'कॉस्मिक इमेजरी' मिलती है। मुहावरों के सटीक प्रयोग तथा यत्र-तत्र उर्दू पदावली के प्रयोग से भाषा में अपूर्व कथन-भंगिमा आ गई है।

अब्दुर्रहमान *(गु० ले०)* [समय—पंद्रहवी शती ई०]

प्राचीन गुजराती के सर्वप्रथम जैनेतर मुसलमान कवि अब्दुर्रहमान (अद्दहमाण—दे०) मीर हुसैन के पुत्र थे। कवि ने स्वयं ही मुलतान को अपना मूल स्थान बताया है। कुछ विद्वान इन्हें मोडासा ग्रामवासी बताते हैं।

'संदेश रासक' या 'संदेशक रास' (दे०) अब्दुर्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमान की प्रसिद्ध कृति है। ग्रंथ से पता चलता है कि कवि भारतीय संस्कृति तथा भारतीय काव्य-परंपराओं से घनिष्ठ रूप से संबद्ध व परिचित रहा है। इस दूत-काव्य में कवि का वर्णन-कौशल व विरह-निरूपण बराबर पाठक का ध्यान आकृष्ट करता रहता है। अवहट्ट भाषा की ओर रचनाकार का विशेष झुकाव है। अपने समसामयिक जीवन को प्रतिबिंबित करने में यह कवि अत्यंत सफल हुआ है।

अब्दुर्रहमान बिजनौरी *(उर्दू ले०)*

डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में साहित्य की सेवा करते रहे। इन्होंने अलीगढ़ में शिक्षा प्राप्त की और उच्चतर शिक्षा के लिए यूरोप-यात्रा भी की तथा अँग्रेज़ी एवं फ़्रांसीसी साहित्य का गहरा अध्ययन किया।

लेखन-कौशल इनका अपना निराला ही था। इनके लेख पांडित्यपूर्ण हैं। फ़ारसी तथा अरबी वाक्या-वली का प्रयोग करने में ये सिद्धहस्त हैं। ग़ालिब (दे०) को नये सिरे से सामने लाने में इनका विशेष योगदान है और हाली (दे०) के पश्चात् इनकी गणना की जा सकती है। 'मुहसिन-ए-कलामे-ग़ालिब' (दे०) इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है जो इनकी प्रभाववादी समीक्षा-पद्धति की परि-चायक है। इनकी दूसरी ऐतिहासिक पुस्तक 'वाक़ियात-ए-बिजनौरी' है जो इनके लेखों, पत्रों तथा कविताओं का अनूठा संकलन है। यह पुस्तक इनकी मृत्यु के बाद रशीद अहमद सिद्दीक़ी (दे०) के दीवानों के साथ प्रकाशित हुई है। उर्दू आलोचकों में इनका विशेष स्थान है। पश्चिमी आलोचना का इन पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अब्दुल ख़ालिक़ टाक जैनागीरी *(कश्० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

इन्हें उर्दू, फ़ारसी और अँग्रेज़ी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने प्रारंभ में कश्मीरी भाषा में ग़ज़ल और रुबाइयाँ लिखीं जो कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इनके 'अज़िच्य कशीर' नाम के रचना-संग्रह के दो भाग भी प्रकाशित हुए हैं। टाक जैनागीरी साहब की कश्मीरी भाषा और भाषाविज्ञान-संबंधी अनुसंधान की महान कृति है 'काशिर्युक अलाक:वादफेर: त काशिर ज़बान' जो अपने ढंग की प्रथम स्तुत्य रचना है। इस रचना के चार भाग हैं—(1) कश्मीरी भाषा का स्रोत—जिसमें विद्वान् लेखक का प्रतिपादन विवादास्पद है; (2) तहसीलवार बोली जाने वाली कश्मीरी के भेद-प्रभेद; (3) कश्मीर घाटी के चारों ओर के द्विभाषा-भाषी क्षेत्रों की कश्मीरी; और (4) बढ़ई, राज, लोहार, जुलाहे आदि शिल्पियों द्वारा बोली जानेवाली भाषा एवं उनके औज़ारों आदि के नाम। विद्वान् लेखक का काम निश्चय ही शोधपूर्ण है। कश्मीरी शब्दों के उच्चारण, उनके इतिहास, उनकी शाखा-प्रशाखाओं के भेद तथा उसकी अनेक बोलियों के रूप तथा पर्यायवाची शब्दों आदि की यह बहुमूल्य कृति अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हुई है। इनकी भाषा में फ़ारसी का ख़ासा गाढ़ा पुट रहता है। संप्रति ये जम्मू-कश्मीर राज्य के राजस्व विभाग में काम कर रहे हैं।

अब्दुलग़फ़्फ़ार, क़ाज़ी *(उर्दू ले०)*

इनका जन्म-स्थान उत्तर प्रदेश है। पत्रकारिता के माध्यम से मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' (दे०), मौलाना मुहम्मद अली, और हकीम अजमल ख़ाँ के साथ इन का घनिष्ठ संपर्क रहा था। हैदराबाद में इन्होंने 'पयाम' नामक दैनिक समाचार-पत्र का संचालन कर कांग्रेस को सक्रिय योग प्रदान किया था। पत्रकारिता के क्षेत्र में न्याय और सत्य का मार्ग अपना कर इन्होंने एक क्रांति पैदा कर दी थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ये अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू के कर्णधार के रूप में सामने आये और उर्दू के प्रचार तथा प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ—'मजनूं की डायरी' और 'लैला के ख़तूत' (दे) उर्दू साहित्य की श्रेष्ठ कृतियां हैं। इनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से इनकी प्रगतिशीलता तथा प्रगतिवादी दृष्टिकोण के प्रति अगाध श्रद्धा स्पष्ट परिलक्षित होती है। राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक जागरण की दृष्टि से इस कुशल गद्य-लेखक ने स्तुत्य कार्य किया है। इनकी भाषा-शैली तथा अभिव्यंजना-पद्धति अत्यंत सशक्त एवं मार्मिक है।

अब्दुल वदूद, क़ाज़ी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1897 ई०]

इनका जन्म सन् 1897 में पटना में एक धार्मिक विचारों वाले घराने में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा अरबी से आरंभ हुई। बाद में अँग्रेज़ी भी पढ़ी और बैरिस्टरी पास करने विलायत गये किंतु स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस लौट आये और फिर सारा जीवन लिखने-पढ़ने में लगा दिया।

क़ाज़ी अब्दुल वदूद का उर्दू के वर्तमान अनुसंधान-कर्त्ताओं में एक विशिष्ट स्थान है। देश भर में उनकी विद्वत्ता और योग्यता का लोहा माना जाता है। फ़ारसी भाषा पर गौरवपूर्ण कार्य करने के लिए 1964 ई० में इन्हें राष्ट्रपति-पुरस्कार भी मिल चुका है। इन्होंने अनेक कवियों तथा साहित्यकारों के विवरण दिए हैं और पुस्तकों पर समीक्षाएँ लिखी हैं। इनका एक विस्तृत निबंध 'ग़ालिब बहैसियत मुहक्किम' कम-से-कम ढाई सौ पृष्ठों में पूरा हुआ है। इनकी आलोचनात्क कृतियाँ 'अमीरिस्तान' और 'उस्तुर व सोजन' प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्होंने कुछ पुस्तकों को उपयोगी एवं पांडित्यपूर्ण भूमिकाओं के साथ प्रकाशित किया है जिनमें 'दीवान-ए-जोशिश', 'इब्ने तूफ़ाँ' कृत 'तज़-किरा-ए-शोरा', 'दीवान-ए-दिलदार' आदि उल्लेखनीय हैं।

शोध-कार्य का क्षेत्र विस्तृत करने में इनकी विशेष रुचि एवं योगदान है।

अब्दुल वहाब परे 'वहाब' हाजिन *(कश्० ले०)* [जन्म—1845 ई०, मृत्यु—1914 ई०]

कश्मीर-स्थित गाँव हाजिन के एक मध्यवर्गीय परिवार में इनका जन्म हुआ। इन्होंने अनेक फ़ारसी रचनाओं का कश्मीरी छंदों में अनुवाद किया जिनमें उल्लेखनीय हैं: फ़िरदौसी का 'शाहनामा' और हमीदुल्लाह का 'अकबर-नामा'। इनकी मौलिक कृतियों में से उल्लेखनीय हैं : 'हफ़्त किस्सा मकरेज़न', 'किस्सा-ए-चहारदरवेश', 'किस्सा-ए-बहरामग़र', 'सैलाबनामा' और 'कारिपटवार'। वहाब साहब का एक दीवान भी है जिसमें कश्मीरी भाषा में लिखे गये 767 मुक्त छंदों के उदात्त गीतिकाव्य या संबोधगीति हैं। इनको कश्मीरी साहित्य का फ़िरदौसी कहा जाता है। शायद ही ऐसा कोई रस होगा जो 'वहाब' की लेखनी से अछूता रह गया हो। भाषा, भावाभिव्यक्ति, रसमर्मज्ञता, अलंकार-प्रयोग आदि में इन्हें कमाल हासिल था। कश्मीरी साहित्य के कई इतिहासज्ञों के अनुसार यह 'वहाब ख़ार' के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

अब्दुल हक़ *(उर्दू ले०)*

डा० अब्दुल हक़ ने दकन में साहित्यिक अनु-संधान का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यद्यपि इनकी लिखी हुई कोई बड़ी पुस्तक हमारे सामने नहीं आई तथापि जो भूमिकाएँ अनेक पुस्तकों में इन्होंने लिखी हैं वे किसी भी बड़ी और महत्त्वपूर्ण पुस्तक से कम नहीं हैं। अब ये भूमि-काएँ दो भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके पढ़ने से ज्ञात होता है कि इनके ज्ञान का विस्तार बहुमुखी है।

डा० अब्दुल हक़ के गद्य की भाषा दिल्ली की टकसाली भाषा है। शैली सादा तथा प्रवाहमयी है। सीधे-सादे शब्दों से ही बात में ज़ोर पैदा कर देना इनकी शैली की विशेषता है। विशेष स्थलों पर अवसरानुकूल अरबी, फ़ारसी तथा हिंदी के शब्द भी प्रयुक्त करते हैं।

'उर्दू' उनके द्वारा संपादित पत्र है जो उर्दू की साहित्यिक एवं इल्मी खोज से भरा रहता है। इस पत्र ने उर्दू-प्रेमियों की जानकारी में भारी वृद्धि की है।

सन् 1937 ई० में इनकी सेवाओं के कारण इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने अपनी स्वर्णजयंती के अवसर पर इन्हें डाक्टर ऑफ़ लिट्रेचर की मानार्थ उपाधि प्रदान की।

भूमिकाओं के अतिरिक्त इनकी कुछ समीक्षाएँ 'चंद तन्कीदाते अब्दुल हक़' और 'खुतबाते अब्दुल हक़' के नाम से छप चुकी हैं। अब ये पाकिस्तान के नागरिक है और कराची में रहते हैं।

अभिज्ञानशाकुंतलम् *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः प्रथम शताब्दी ई० पू०]

'शाकुंतलम्' संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि और कालिदास (दे०) की सर्वोत्कृष्ट नाट्यकृति है। कालि-दास की अत्यंत प्रौढ़ रचना होने के नाते इसमें उनकी नाट्य-कला का पूर्ण विकास हुआ है।

इसकी मूलकथा 'महाभारत' से ली गई है। पर कालिदास ने यथास्थान इसमें परिवर्तन कर लिया है। शिकार खेलता हुआ दुष्यंत कण्व (दे०) ऋषि के आश्रम के पास पहुँचता है। आश्रम के भीतर जाकर वह तापस-कन्या शकुंतला (दे०) को देखकर उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है तथा उससे गान्धर्व विवाह कर लेता है। महर्षि कण्व उस समय तीर्थ-यात्रा पर गए हुए हैं। लौटकर वे वस्तुस्थिति से अवगत होते हैं तो अप्रसन्न नहीं होते। वे शकुंतला को महाराज दुष्यंत के पास भेजते हैं पर दुष्यंत दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण शकुंतला को पहचान नहीं पाता। शकुंतला निराश होकर दरबार से जाने लगती है तो उसकी माता मेनका उसे साथ ले जाती है। बाद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्यंत को याद आती है तो वह शकुंतला को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है। अंत में इंद्र की सहायता करके लौटते हुए वह महर्षि मारीच के आश्रम में अपने पुत्र सर्वदमन के साथ शकुंतला को पुन: प्राप्त करता है।

नाटक दुष्यंत के साथ शकुंतला के प्रेम से आरंभ होकर उसी बिंदु पर समाप्त भी होता है। इसमें वस्तु, नेता तथा रस तीनों का सुंदर विनियोग हुआ है। इसका नायक उदात्त चरित्रवाला दुष्यंत है और नायिका नि:सर्ग कन्या शकुंतला। दोनों के चरित्र कालिदास की लेखनी के चमत्कार से निखर उठे हैं। अन्य चरित्रों का भी कालिदास ने बड़ी कुशलता से निर्वाह किया है। 'शाकुंतलम्' का अंगी रस है—श्रृंगार। साथ ही अन्य रसों का भी इसमें समुचित परिपाक हुआ है।

'शाकुंतलम्' कालिदास की नाट्यकला का चरम उत्कर्ष है। अपने भाषा-लालित्य, कल्पना-वैभव तथा मनोवेगों के मार्मिक विश्लेषण आदि के कारण इसका स्थान विश्व की मूर्धन्य कृतियों में है। आज विश्व की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसमें 'शाकुंतलम्' का अनुवाद न हो गया हो।

अभिधम्मपिटक *(पा० कृ०)*

यह 'त्रिपिटक' (दे०) का अंतिम तथा परवर्ती भाग है। प्रथम संगीति में इसकी सत्ता प्राप्त नहीं थी। इस ग्रंथ की पूर्ति तृतीय संगीति के अवसर पर पाटलिपुत्र में तिस्सा 'मोग्गलिपुत्त' की अध्यक्षता में हुई। इसमें बुद्ध के अतिरिक्त अन्य लेखकों की कृतियाँ भी सन्निविष्ट हो गई हैं। जिनमें मोग्गलिपुत्त की 'कथावत्थु' भी सम्मिलित है और कच्चान (दे० कच्चायन) की भी दो कृतियाँ बाद में जुड़ गईं। अभिधम्म का अर्थ है उच्चकोटि का धर्म। यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के बाद की रचना है और इसमें धार्मिक विषयों को अधिक विद्वत्ता, अधिक शास्त्रीयता, अधिक मनोवैज्ञानिकता और अधिक दार्शनिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। मुख्य प्रवृत्ति वर्गीकरण और परिभाषा प्रस्तुतीकरण की है और शब्दों के पर्याय संकलित करने पर अधिक बल दिया गया है तथा नैतिकता की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। किंतु इसे आधुनिक अर्थ में न तो वैज्ञानिक परीक्षण कहा जा सकता है और न दार्शनिक या आध्यात्मिक विवेचन ही कहना उचित जँचता है।

इसमें सात खंड हैं—(1) अभिधम्म संगनी में धर्म की परिभाषा दी गई है। विद्वानों ने इसे मनोवैज्ञानिक नैतिकता का संग्रह कहा है; (2) 'विभंग' प्रथम खंड की परंपरा में है; (3) 'धातुकथा' में तत्त्वों का विवेचन और उनके पारस्परिक संबंध पर विचार किया गया है; (4) 'पुग्गल पन्नहि' का विषय मानव-व्यक्तित्व है, (5) 'कथावत्थु' तिस्सामोग्गलिपुत्त की रचना है जो बौद्ध धर्म के इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है; (6) 'यमक' में प्रश्न और उत्तर दो रूपों में प्रस्तुत किए गए हैं; और (7) 'पत्थानपकरण' या 'महापकरण' के दो भाग हैं : एक को 'टीकापत्थान' कहा जाता है और दूसरे को 'दु:खपत्थान'। दोनों भागों में कारणवाद की व्याख्या की गई है।

'अभिधम्मपिटक' को बौद्ध धर्म के सभी संप्रदाय प्रामाणिक नहीं मानते किंतु जो लोग प्रामाणिक मानते हैं उनकी दृष्टि में इसका महत्त्व बहुत अधिक है। अभिधम्म को सुना देना ही अनेकशः विद्वत्ता का लक्षण माना गया है और इस पर अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। बर्मा में इसका अध्ययन अब भी चल रहा है।

अभिनवदशकुमारचरित *(क० कृ०)* [समय—लगभग 1100 ई०]

इसके रचयिता 'चौंडरस' नामक एक ब्राह्मण कवि हैं जिनका समय 1100 ई० ठहराया गया है। यह दंडी के संस्कृत गद्य-ग्रंथ का कन्नड रूप है जो चंपू शैली में है। मूलानुसारी होने पर भी कवि ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किए हैं। यहाँ आनेवाले राजवाहन, सोमदत्त, पुष्पोद्भव, उदय वर्मा आदि राजकुमारों की कहानियाँ कुछ सरस हैं। चोरी, डाका, हत्या, व्यभिचार आदि यहाँ कथा की पृष्ठभूमि में आते हैं जो दंडीकालीन सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं। चौदहवें आश्वास में विश्रुत की कथा में वह पंढरपुर जाकर विट्ठल के दर्शन करते हैं। यहाँ कवि विश्रुत के बहाने अपने इष्टदेव का वर्णन करता है। इन पद्यों में कवि की स्वानुभूति मुखर हो उठी है। 'कादंबरी' के कन्नड अनुवाद में जो काव्यमयता है, सिद्धि है, वह इसमें नहीं है। वैसी प्रौढ़िमा एवं लालित्य इसमें नहीं है। प्राचीन कन्नड एवं मध्यकालीन कन्नड की संक्रमणावस्था के दर्शन इसकी भाषा में होते हैं। चौंडरस की कविता-शक्ति मध्यम श्रेणी की है। उद्देश्य की एकता के अभाव के कारण वह एक महान कृति नहीं बन सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिधा *(सं०, हिं० पारि०)*

'अभिधा' शब्द की प्राथमिक शक्ति है। 'अभिधा' शब्दार्थ है। यह शक्ति वर्ण्य वस्तु, दृश्य अथवा व्यक्ति का बिंब प्रस्तुत कर पद और पदार्थ के पारस्परिक संबंध का ज्ञान कराती है। अभिधा शब्द के साक्षात् संकेतित मुख्यार्थ का बोधक व्यापार है। इस शक्ति के द्वारा व्याकरणशास्त्र में वर्णित रूढ़, यौगिक और योग-रूढ़—तीन प्रकार के शब्दों का अर्थबोध होता है। प्रकृति और प्रत्यय की दृष्टि से जिन शब्दों के सार्थक खंड नहीं किए जा सकते वे रूढ़ शब्द हैं (जैसे घोड़ा, घर, कक्ष आदि); प्रकृति-प्रत्यय रूप में जिनका खंड-विभाजन संभव है वे यौगिक शब्द हैं, (जैसे 'भूपति' शब्द का विभाजन भू और पति खंडों में किया जा सकता है), और जो मूलतः यौगिक होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं, वे योगरूढ़ कहलाते हैं (जैसे 'पीताम्बर' शब्द पीत और अम्बर पृथक्-पृथक् शब्दों के योग से निर्मित होता हुआ भी श्रीकृष्ण के अर्थ में रूढ़ हो गया है)। संदर्भ के अनुरूप एक से अधिक अर्थों का बोध कराने वाले श्लिष्ट शब्द के सभी अर्थ अभिधार्थ ही कहलाते हैं, क्योंकि वे सभी अर्थ कवि को समान रूप से अभीष्ट होते हैं। काव्य के अंतःप्रेरित अनलंकृत रसात्मक शब्द-प्रयोगों के मूल में अभिधा शक्ति ही कार्य करती है।

अभिधानचिन्तामणि *(त० कृ०)* [रचना-काल—1910 ई०]

विषयवस्तु और आकार की दृष्टि से यह तमिल का प्रथम महत्त्वपूर्ण 'कलै कळञ्जियम्' (शब्दकोश) है। इसके रचयिता आ० शिंगारवेलु हैं। लेखक ने 'पुराणचन्द्रिकै' नामक कृति से प्रेरणा ग्रहण कर सन् 1890 ई० में इसकी रचना आरंभ की थी और इसे 'पुराण नामावली' नाम दिया था। कालांतर में विविध विषयों का वर्णन करने वाली इस विशालकाय कृति को 'अभिधान-चिन्तामणि' नाम दिया गया। इसमें 1048 पृष्ठ हैं। आरंभिक 940 पृष्ठों में विभिन्न विद्वानों, वस्तुओं, देवी-देवताओं, राग-रागिनियों आदि का वर्णन है। इसके उपरांत कुछ पृष्ठों में शिवक्षेत्र और विष्णुक्षेत्र की महिमा का वर्णन किया गया है। अंत में 'अनुबंध' शीर्षक एक अध्याय है। इसकी रचना लेखक ने बाद में की थी। इस अध्याय के आरंभ में कुछ छूटे हुए शब्दों को लिया गया है। इसके बाद राजाओं की परंपरा, आळ्वार-नायन्मार, दक्षिण में स्थापित विभिन्न मठादि से संबंधित विवरण हैं। अंत में शिलालेख, हस्तलिखित कृतियों के आधार पर राजवंश से संबंधित विवरण दिए गए हैं। विभिन्न शब्दों के स्वरूप का विवेचन करते हुए लेखक ने अपने अथक परिश्रम का परिचय दिया है। 'स्वदेश आचार विवहारम्' शीर्षक के अंतर्गत देश के विभिन्न प्रांत के लोगों के आचार-व्यवहार संबंधी कुछ मनोरंजक विवरण दिए गए हैं। मदंगळ् शीर्षक के अंतर्गत विभिन्न मतों का उल्लेख करने के साथ-साथ उनके प्रमुख सिद्धांत, विभिन्न मतानुयायियों के निवास-स्थल, उनके रीति-रिवाज आदि का वर्णन है। इसमें प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्यकारों और साहित्यिक कृतियों से संबंधित विस्तृत विवेचन है। संपूर्ण कृति अत्यंत सरस-सरल शैली में रचित है। 'अभिधान-चिन्तामणि' की विशिष्टता इस बात में है कि यह एक व्यक्ति की रचना है।

अभिधावृत्तिमातृका *(सं० कृ०)* [समय—900 ई० के आसपास]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के कुछ ग्रंथ विशुद्ध रूप से शब्दशक्तियों का ही विवेचन करते हैं। 'अभिधावृत्ति-मातृका' उन सबका नेतृत्व करती है। इसके कर्ता मुकुल-भट्ट प्रसिद्ध मीमांसक हैं। ये अभिनवगुप्त (दे०) के साहित्य-गुरु प्रतिहारेंदुराज (दे०) के गुरु रहे हैं। अतः इनका समय नवम शती का अंतिम भाग है।

'अभिधावृत्तिमातृका' बहुत ही लघुकृति है। इसमें कुल 15 कारिकाएँ तथा उन पर पर्याप्त वृत्ति है जिस में अभिधा एवं लक्षणा का विवेचन गहन शास्त्रीय पद्धति पर हुआ है। मुकुल भट्ट के अनुसार लक्षणा अभिधा का ही एक अंग है। अभिधा एवं लक्षणा के भेद का मुख्य आधार एक का शब्द-व्यापार तथा दूसरे का अर्थ व्यापार होना है। शब्द के मुख्य व्यापार के चार प्रकार तथा गौण व्यापार लक्षणा के छह प्रकार होते हैं। इससे ही दस प्रकार का अभिधावृत्त कहा है।

मुकुल भट्ट मीमांसक होते हुए भी ध्वनि(दे०) के विरोधी नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने अपनी इस कृति में अपनी व्यंजना का निरूपण नहीं किया है तथापि उनका कहना है कि लक्षणा का यह सारा प्रपंच मैंने ध्वनि को समझाने के लिए ही किया है। ग्रंथकार ने वृत्ति में उद्भट (दे०), कुमारिल भट्ट(दे०) आनन्दवर्धन (दे०), भर्तृमित्र, विज्जवा और वृतिर स्वामी जैसे ग्रंथकारों एवं 'महाभाष्य'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) तथा 'वाक्यपदीय' (दे०) प्रभृति कृतियों की चर्चा की है। 'अभिधावृत्तिमातृका' शब्द-शक्ति के विषय में एक प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करती है।

अभिनयदर्पण *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः दूसरी-तीसरी शताब्दी ई०]

आचार्य नंदिकेश्वरकृत 'अभिनयदर्पण' अपने विषय का मौलिक ग्रंथ है। यद्यपि भरत (दे०) के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) एवं 'भरतार्णव' में अभिनय-संबंधी विशद विवेचन प्राप्त है फिर भी अभिनय-संकेतों, अभिनय-सिद्धांतों आदि की मौलिक व्याख्या के कारण 'अभिनयदर्पण' का अपना स्वतंत्र महत्त्व है।

यह ग्रंथ ईसवी दूसरी-तीसरी शती के मध्य का लिखा होने पर भी शताब्दियों तक इसका कोई ज़िक्र नहीं मिलता। तेरहवीं शती में शार्ङ्गदेव ने इसे अतिप्राचीन कहकर इसका स्मरण किया। मद्रास, अडियार और शांतिनिकेतन के संग्रहालयों में इस ग्रंथ की पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ तेलुगु लिपि में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री मनोमोहन घोष ने उक्त पांचों पांडुलिपियों का अनुशीलन कर देवनागरी लिपि में इस ग्रंथ का संस्करण सन् 1934 में प्रकाशित कराया था।

अभिनव काव्यप्रकाश *(स० कृ०)*

लेखक हैं—श्री रा० श्री जोग। यह रचना प्रथम बार 1930 ई० में प्रकाशित हुई थी और अब तक इसकी छह आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। इसमें मराठी काव्य के संदर्भ में संस्कृत-काव्यशास्त्र के सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या का प्रयत्न किया गया है। लेखक की दृष्टि संतुलित है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की मान्यताओं का भी कहीं-कहीं व्याख्या में उपयोग किया गया है। ग्रंथ में काव्यशास्त्र के प्राय: सभी अंगों की मीमांसा की गई है। चूंकि अधिकांश उदाहरण मराठी-काव्य से प्रस्तुत किए गए हैं इसलिए इनके सैद्धांतिक चिंतन का धरातल प्राय: व्यावहारिक ही रहा है।

अंत में मराठी में प्रचलित प्राय: सभी काव्य-प्रकारों के स्वरूप और उनकी विशेषताओं का विवेचन किया गया है और नई कविता के मूल्यांकन का भी प्रयत्न है।

अभिनवगुप्त *(सं० ले०)*

ये कश्मीर शैवदर्शन (प्रत्यभिज्ञा अथवा त्रिक-शास्त्र) के प्रमुख आचार्य थे। इनका आविर्भाव-काल 950 ई० के आस-पास तथा सर्जन-काल 990-91 से 1014-15 तक माना जाता है। इनके पिता का नाम नरसिंह गुप्त (पखुलक) तथा माता का नाम विमलकला था। इनका परिवार शैव-आस्थावादी था। इनके आदि पूर्वज अत्रिगुप्त मूलत: कन्नौज (उ० प्र०) के निवासी थे। इनको कश्मीर नरेश ललितादित्य आठवीं शताब्दी में कश्मीर लाये। इसी परिवार में जन्मे बराहगुप्त इनके पितामह थे। इनके दादा तथा पिता संस्कृत के उद्भट विद्वान थे। होनहार बालक अभिनव ने अपने पूर्वजों में प्राप्त रिक्थ को निभाया और संस्कृत-जगत् में नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की धाक जमाई। एक परंपरा के अनुसार ये एक दिन अपने 1200 शिष्यों के साथ भैरवगुफा में प्रविष्ट हो गए और फिर कभी बाहर नहीं निकले। यह आचार्य शंकर के (दे० शंकराचार्य) के समकालीन (कामरूप-निवासी शाक्त) अभिनवगुप्त से सर्वथा भिन्न थे।

कुल मिलाकर इनकी इकतालीस कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। इनमें 'ध्वन्यालोकलोचन', 'अभिनवभारती', 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी', 'तन्त्रालोक' (दे०), 'तन्त्रसार', 'परमार्थसार', 'मालिनीविजयवार्तिक', 'परात्रिंशकाविवृति' तथा 'भगवत्गीतार्थसंग्रह' प्रमुख हैं। भारतीय समीक्षा के क्षेत्र में इनकी प्रतिष्ठा इनके 'लोचन' तथा 'अभिनवभारती' के कारण तथा दर्शन के क्षेत्र में 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' और 'प्रत्यभिज्ञाविवृतविमर्शिनी' के कारण हुई।

इनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर कांतिचन्द्र पांडेय (दे०) ने इनको 'विश्वकोशात्मक व्यक्तित्व' की संज्ञा से विभूषित किया (अभिनवगुप्त—ए हिस्टॉरिकल ऐंड फिलसॉफ़िकल स्टडी)। इनकी लेखनी काव्यशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के क्षेत्र में समान रूप से चली। शैवागमों एवं तंत्रों से प्रस्फुटित कश्मीर शैव-दर्शन की तीनों शाखाओं—क्रम, त्रिक तथा कुल पर क्रमशः चिंतन करके इन्होंने अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ प्रदान किए। 'विमर्शिनी' की रचना इन्होंने सामान्य जन को प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का सरल ढंग से बोध कराने के लिए की और विवृति-विमर्शिनी' की रचना उत्पल (दे०)-देव के प्रत्यभिज्ञा-सिद्धातों की विशद व्याख्या के लिए। प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं समीक्षाशास्त्र को इनकी देन अमूल्य है। प्रत्यभिज्ञादर्शन का ज्ञान तो, वस्तुतः, इनकी व्याख्याओं के अभाव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव ही न होता।

अभिनवपंप *(क० ले०)* [समय—बारहवीं शती पूर्वार्द्ध]

बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कविवर नागचंद्र को इसलिए 'अभिनवपंप' अथवा 'पंप द्वितीय' के नाम से समादृत किया गया कि इनकी वाणी में महाकवि पंप के वैभव, गरिमा और कल्पना-शक्ति का पुनरुज्जीवन हुआ। इन्होंने वैष्णव राजा (होयसळ्-नरेश) विष्णुवर्धन (1104-1141 ई०) के आश्रय में रहते हुए 'मल्लिनाथपुराण' और 'रामचंद्रचरित्रपुराण' का प्रणयन किया। 'मल्लिनाथ-पुराण' में उन्नीसवें तीर्थंकर की कथा है। 'रामचंद्रचरित्र-पुराण' 'पंपरामायण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इन कृतियों में 'पुराण' शब्द का प्रयोग धार्मिक दृष्टि से नहीं वरन् कथाधार के संदर्भ में किया गया है। इन कृतियों पर 'अभिनवपंप' के रचना-कौशल, वाणी पर उनके अद्भुत अधिकार और समग्र कथा को एकान्वित सूत्र में बाँध पाने के समाहार-कौशल की स्पष्ट छाप है।

अभिनेता *(हिं० पारि०)*

नाटक में पात्र-विशेष का अभिनय कर जो नट अनुकार्य और प्रेक्षक के बीच संबंध स्थापित करता है, प्रेक्षक को रसास्वादन कराता है, वह अभिनेता कहलाता है। इसके लिए सफल अभिनय आवश्यक है और सफल अभिनय के लिए आवश्यक है कि यह नाटक और पात्र को पूर्ण रूप से समझे। इसके लिए यह कवि-प्रणीत अनुकार्य के चरित्र को पढ़ता है, इसके विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करता है। अनुकार्य के चरित्र एवं कृतित्व की मीमांसा करता हुआ यह उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है। यह अनुकार्य की स्थिति में अवबोध के लिए परंपरा-गत ज्ञान और लोक-व्यवहार की भी सहायता लेता है। इसके बाद यह अभिनय का अभ्यास करता है और चार प्रकार के अभिनय—आंगिक, आहार्य, वाचिक और सात्त्विक—के द्वारा पात्र के व्यक्तित्व को यथार्थ रूप प्रदान करता है, उसे सजीव एवं जीवंत रूप में प्रस्तुत करता है। अभिनेता के अभिनय को सफल बनाने में स्वयं उसकी प्रतिभा (दे०), मानव-स्वभाव का ज्ञान, रंगमंच-शिल्प से परिचय तो सहायक होते ही हैं, निर्देशक का निर्देशन, जो समग्र नाट्यप्रभाव के अनुरूप विविध पात्रों के अभिनय की योजना करता है, भी पर्याप्त उपयोगी होता है।

अभिमन्यु *(सं० पा०)*

यह पाँच पांडव-भ्राताओं में से दूसरे भ्राता अर्जुन (दे०) का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुभद्रा था। इसकी अस्त्रविद्या की शिक्षा अर्जुन की देखरेख में हुई। यह अति पराक्रमी और अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में अति निपुण था। महाभारत के युद्ध में जब द्रोण ने बड़ी कुशलता से अर्जुन को अन्य पांडवों से विलग कर दिया तो युधिष्ठिर (दे०) को चिंता हुई कि कौरवों के चक्रव्यूह का भेद कैसे किया जाएगा! अभिमन्यु को जब यह ज्ञात हुआ तो वह भीम (दे०) की सहायता से यह कार्य करने को तैयार हो गया। उसे व्यूह में प्रवेश करने की विधि तो ज्ञात थी, पर उससे बाहर आने की विधि ज्ञात न थी। फिर भी उसने धैर्य न छोड़ा। अभिमन्यु शत्रु-सैन्य की पंक्तियों को तोड़ता हुआ तथा शत्रुओं का संहार करता हुआ आगे बढ़ता चलता गया, यहाँ तक कि भीम आदि भी बहुत पीछे रह गए। अब व्यूह में उसे अकेला देखकर द्रोण, कृप, कर्ण जैसे महारथी इस पर टूट पड़े और बड़ी कठिनता से इसे विरथ किया। अभिमन्यु ढाल और तलवार लेकर युद्ध करने लगा, पर द्रोण ने इन्हें भी तोड़ डाला। तभी दुःशासन (दे०) के पुत्र के साथ उसे गदा-युद्ध करना पड़ा। लड़ते-लड़ते जब वह श्रांत हो गया तो उस पर मूर्च्छा छाने लगी। उस पर इसी अवस्था में ही दुःशासन ने गदा का प्रहार किया और इसका वध कर दिया।

अभिमन्यु-बध *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1875 ई०]

रमाकांत चौधरी (दे०) का यह असमीया भाषा में रचित सर्वप्रथम काव्य है, जिसमें अतुकांत छंदों का प्रयोग हुआ है। इस पर बंगाल के मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव है। इसकी कथा 'महाभारत' (दे०) से ली गई है किंतु शिल्प नवीन है। लेखक की मौलिकता एवं सहज अभिव्यक्ति के दर्शन इस कृति में मिलते हैं।

अभिरामि अंदादि *(त० कृ०)* [समय—17वीं-18वीं शती]

'अभिरामि' उमादेवी के नामों में से एक है और 'तिरुक्कटवूर' नामक गाँव के मंदिर में विराजमान मूर्ति-विशेष के लिए प्रयुक्त है। यह गाँव तमिल प्रदेश के तंजा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वूर ज़िले में कावेरी नदी के सागर-संगम के समीप स्थित है। इस स्थल का विशेष माहात्म्य इसलिए माना जाता है कि यहाँ पर शिव ने लिंगमूर्ति से प्रकट होकर मार्कंडेय की रक्षा की थी। आलोच्य कृति 'अभिरामि' देवी पर उनके अनन्य उपासक 'अभिरामभट्टर' द्वारा रचित स्तुति-गीत है। इसमें 'कट्टळै कलित्तुरै' छंद में रचित 102 पद्य हैं और 'अंदादि' काव्य-विधा के अनुसार पूर्ववर्ती पद्यों के अंतिम शब्द या शब्दांश से परवर्ती पद्यों का आरंभ होता है।

अभिरामि 'नारायणी', 'वैष्णवी', 'भैरवी', 'शांभवी', 'शिव-शक्ति' आदि नामों से अभिहित तत्त्व है जिसकी एकमात्र सत्ता स्वीकारने के पश्चात् गीत-रचनाकार अन्य देवता पर ध्यान देना असह्य मानते हैं। वे 'अभिरामि-धर्म' के ही अनुयायी हैं। उनकी भक्ति-तल्लीनता तथा आत्मसमर्पण की भावनाएँ इस लघु काव्य में अत्यंत मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट हुई हैं। कहा जाता है कि तत्कालीन 'तंजावूर' रियासत के मराठा राजा ने पहले इस महाभक्त रचनाकार की उपेक्षा की थी पर साक्षात् देवी द्वारा एक स्वप्न में वस्तुस्थिति समझाए जाने पर वे इनका आदर करने लगे थे।

अभिव्यंजनावाद *(हिं० पारि०)*

यह बीसवीं शताब्दी के इतालवी आत्मवादी दार्शनिक एवं सौंदर्यशास्त्री क्रोचे द्वारा प्रतिपादित कला का एक विशिष्ट सिद्धांत है। इसके अनुसार आत्मा की एक अलौकिक शक्ति—सहजानुभूति (दे०)—कलाकार को क्षण-भर में किसी भाव, अनुभूति या पदार्थ का समग्र मानस-दर्शन कराती है। यह सहज-ज्ञान सहज ही घट में उतर कर प्रभावों और बिंबों की सृष्टि करता है। यह सहज संवेदन से भिन्न होता है क्योंकि संवेदन अरूप और अमूर्त होते हैं, वे अभिव्यक्त नहीं होते जबकि सहजानुभूति अभिव्यंजना होती है। क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति अभिव्यंजना है और अभिव्यंजना ही कला है; इस सहजानुभूति को शब्द, रंग, रेखा, स्वर-ग्राम, पत्थर की सहायता से मूर्त रूप देना आवश्यक नहीं। अनुभूति के वाह्य प्रकाशन तो, जिसें सामान्य जन कला कहते हैं, वह अतिरिक्त क्रिया या स्मृति की सहायक वस्तु है जिसका कवल व्यावहारिक उपयोग है; अभिव्यंजना ज्ञान-रूप है और काव्य-कृति कर्म-रूप। वह कला को नैतिक एवं सामाजिक दायित्व से मुक्त मानता है और संप्रेषण के प्रति उदासीन है।

अभिव्यंजनावाद कला-सिद्धांत के रूप में दोषपूर्ण है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से कलाकार संप्रेषण और समाज के प्रति दायित्व की अवहेलना नहीं कर सकता, उसे कला-जगत में अराजकता और अव्यवस्था फैलाने का भय है। इसलिए बाद में क्रोचे को भी अपने मन में कुछ परिवर्तन करने पड़े।

अमड़ाबाट *(उ० कृ०)*

यह बसंतकुमारी पटनायक (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। इसकी प्रधान पात्र माया (दे०) उच्च शिक्षिता लड़की है। उसका जन्म एवं लालन-पालन सुशिक्षित परिवार में हुआ है। उसकी भाभी भी उच्च शिक्षिता है। सभी की प्रशंसा व आदर पाकर भी अपनी नीच मनोवृत्ति के कारण वह पारिवारिक सुख-शांति को नष्ट कर देती है। और माया—लज्जा-संकोचविहीना वह मर्दानी लड़की—प्रकट होती है एक निष्ठावती सुगृहिणी के रूप में। आधुनिक उड़िया उपन्यासों में यह एक उल्लेखनीय कृति है, जिसमें उच्च शिक्षा प्राप्त नारी की समस्या को प्रधान रूप से उठाया गया है।

अमरकोष *(सं० कृ०)* : [रचना-काल—पहली शताब्दी ई० पू०; लेखक : **अमरसिंह**]

'अमरकोष' को ही 'नामलिंगानुशासन' भी कहते हैं। 'अमरकोष' में स्वरादिकाण्ड, भूम्यादिकाण्ड तथा सामान्यकाण्ड, ये तीन काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड वर्गों में विभक्त है। प्रथम काण्ड में 13 वर्ग, द्वितीय काण्ड में 11 तथा तृतीय काण्ड में 7 वर्ग हैं। 'अमरकोष' पर 50 से भी अधिक टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें भट्टक्षीर स्वामी की टीका अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रख्यात है।

'अमरकोष' में स्वर्ग आदि शब्दों के अधिकाधिक प्रामाणिक पर्याय दिये गये हैं। उदाहरण के लिए, इस ग्रंथ में स्वर्ग के 'स्वः' आदि नौ तथा देव के 'अमर' आदि 26 पर्याय दिए गए हैं। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अध्येता के लिए अमरकोष का अध्ययन परम आवश्यक है। 'अमरकोष' का महत्त्व समझ कर ही इसे 'जगत्-पिता' कहा जाता है—'अमरकोषो जगत्पिता'। 'अमरकोष' का छंद अनुष्टुप् होने के कारण इस ग्रंथ की शैली-सरल बन पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरत (गु० पा०)

ईश्वर पेटलीकर (दे०) की 'लाहीनी सगाई' एक सुप्रसिद्ध कहानी है जिसमें मंगु नामक एक पगली लड़की की माता अमरत काकी हैं। काकी ही कहानी की मुख्य पात्र हैं। अमरत काकी का पगली मंगु पर असीम स्नेह है। वे घर के किसी कार्य में मन नहीं लगातीं। पगली बेटी मंगु की सेवा-शुश्रूषा करना, उसका साज-शृंगार करना, उससे तरह-तरह की बातें करना और सयानी की तरह उससे व्यवहार करना—यही अमरत काकी की जीवन-चर्या है। मंगु काफ़ी बड़ी है; उसके पागलपन के बेहूदे काम सारे परिवार को तंग करते हैं, पर अमरत काकी का मातृहृदय उससे तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं करता। लेखक ने इस पात्र द्वारा माँ की ममता का बड़ा ही प्रभावपूर्ण चित्रण किया है।

जब मंगु की करतूतें असह्य हो जाती हैं तब उसे पागलखाने में रखने का निर्णय किया जाता है। इस निर्णय से अमरत काकी पर कुठाराघात होता है। वह सहमति नहीं देतीं। ईश्वर पेटलीकर यहाँ अमरत काकी के अंतर्द्वंद्व का बड़ी ही कुशलता से उद्घाटन किया है जो जितना प्रतीतिजनक है, उतना ही हृदयस्पर्शी भी है। काकी की अंतर्वेदना की परिसीमा तो उस समय आती है जब मंगु पागलखाने में रखी जाती है। भग्नहृदय अमरत काकी हृदय कठोर बनाकर वहाँ की परिचारिका को मंगु की प्रकृति, रुचि और दिनचर्या का विस्तृत परिचय देती हैं, उसकी आवश्यकताओं और सुविधाओं का ध्यान रखने की सूचनाएँ देती है। इस मार्मिक प्रसंग को पढ़ते-पढ़ते कठोरहृदय पाठक भी द्रवित हो जाता है। अंत में हृदय की घनीभूत पीड़ा के असह्य भार से अमरत काकी स्वयं पागल हो जाती हैं और कहानी का शोक में पर्यवसान होता है। अमरत काकी यथार्थतः वात्सल्यमयी माता हैं।

अमरुशतक *(सं० कृ०)* [समय—सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध]

कवि अमरु या अमरुक की कविता से तो संस्कृत-जगत् सुपरिचित है पर उनके जीवनवृत्त पर कोई भी प्रामाणिक तथ्य आज तक सामने नहीं आया। आचार्य वामन (दे०) तथा आनन्दवर्धन (दे०) ने अपने ग्रंथों में इनके पद्य उद्धृत किए हैं; अतः इनका समय निश्चित रूप से पूर्व का रहा होगा।

'अमरुशतक' के विभिन्न संस्करणों में इसके पद्यों की संख्या 90 से 105 तक मिलती है। यह शतक मूलतः प्रेम-चित्रों का संग्रह है। भर्तृहरि (दे०) अपने शृंगार-शतक (दे० 'भर्तृहरिशतक') में प्रेम के सामान्य पक्षों तथा स्त्रियों का जीवन के अंगभूत रूप में वर्णन करते हैं, जबकि अमरुक प्रेमियों के संबंध को चित्रित करते हैं और जीवन के अन्य पक्षों के संबंध में कोई विचार नहीं करते।

आचार्य आनन्दवर्धन अमरुक के पद्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। अमरुक ने अपने पद्यों में भावों की वह विभूति भर दी है जो अन्यत्र दुर्लभ है। एक-एक पद्य अनुभूतियों के आगार हैं। इन्हें पढ़कर पाठक का हृदय शृंगार रस में सराबोर हो जाता है। इन्होंने कामी तथा कामिनियों की विभिन्न अवस्थाओं तथा विभिन्न मनोवृत्तियों का सूक्ष्म सुंदर विवरण प्रस्तुत किया है।

आलोचकों ने इन पद्यों को साहित्य की कसौटी पर कसकर इन्हें खरा सोना पाया है। ये पद्य ध्वनि-काव्य के सुंदर नमूने हैं। इन्होंने अमरुक को उच्च कोटि के कवियों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

'अमानत' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1805 ई०]

नाम—सैयद आग़ा हुसैन; उपनाम—'अमानत'; पिता का नाम—मीर आग़ा रज़वी। ये 'दिलगीर' के शिष्य थे। बीस वर्ष की आयु में दुर्भाग्यवश ये अपनी वाणी खो बैठे थे। कहा जाता है कि दस वर्ष पश्चात् इनका यह रोग स्वतः जाता रहा। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनके उर्दू नाटक 'इंदर सभा' (दे०) और 'वासोख़्त' हैं। इनके काव्य में लखनवी शैली के दर्शन होते हैं। शब्दाडंबर और शब्दालंकारों के प्रति इनका अत्यधिक मोह था। यही कारण है कि इनका काव्य शब्दों की प्रदर्शनी मात्र बनकर रह गया है। शुद्ध, स्पष्ट, सरल और सरस पद भी इनके काव्य में हैं, परंतु बहुत कम।

अमाबास्यार चंद्र *(उ० कृ०)*

यह गोबिन्ददास (दे०) का उपन्यास है। इसके चन्द्र काउल को समझना आशान्वित नारियों के लिए जैसा कठिन है, वैसा ही पाठक तथा लेखक के लिए भी। उपन्यासकार ने एक रहस्यमय परिवेश में काउल (दे०) का प्रवेश जैसे कराया है उसे वैसे ही हटा भी लिया है। किंतु इसके कारण इसकी कथावस्तु विघटित नहीं हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। काउल यद्यपि शराबी और असामाजिक है, तथापि वह मनुष्य है।

अमासना तारा *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1953 ई०]

किशनसिंह चावडा (दे०) की यह कृति तथ्य और शिल्प की नवीनता के कारण गुजराती साहित्य में विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है। इसमें प्रस्तुत प्रसंगों को रेखाचित्र भी कहा जा सकता है और संस्मरण भी। इसमें वर्णित सारी घटनाएँ और व्यक्ति लेखक के साथ अभिन्नरूपेण संपृक्त हैं, अतः प्रकारांतर से इस रचना को लेखक के निजी जीवन-प्रसंगों का मर्मस्पर्शी चित्रण भी कहा जा सकता है।

'अमास' यानी अमावस्या, घनघोर रात्रि, जबकि चंद्रमा का प्रकाश नहीं होता और छोटे-छोटे तारे अपने सीमित तेज से तिमिर को दूर कर आकाश को दीप्तिमान बनाते हैं। चावडा के 'अमासना तारा' में चंद्र के समान प्रकाशपूर्ण व्यक्तित्व नहीं है, पर नक्षत्रों के-से ऐसे नर-पुंगव इसमें अवश्य हैं जो सर्वत्र शुभ्रता, उज्ज्वलता और पवित्रता का प्रसारण करते हैं। नन्नु उस्ताद, फ़ैयाज़ख़ाँ, हाजी मुहम्मद, अफ़लातून, फक्कड़ चाचा, अमृता, नर्मदा बा इत्यादि अमावस्या के ऐसे तारे हैं जो अगणित दोषों और भ्रष्टाचारों के अंधकार से ढके हुए समाज को आशा, श्रद्धा और स्नेह का प्रकाश देते हैं। इन्हीं के कारण हमारा समाज अविभक्त और विकासोन्मुख है। इस कृति के सभी प्रसंग और पात्र पावनकारी और प्रेरणादायी हैं। लेखक ने 'अमासना तारा' में गद्यकाव्य की शैली का सुंदर प्रयोग किया है। इसके रेखाचित्र 'हृदय के गीत' हैं जो पाठक को भावविभोर कर देते हैं। इसका आकर्षण इसकी चित्रात्मक शैली और मर्मस्पर्शी संस्मरण हैं। सभी दृष्टियों से 'अमासना तारा' गुजराती में विशिष्ट रचना मानी जाती है।

अमितराय *(बं० पा०)*

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) के उपन्यास 'शेषेर कविता' (दे०) में अमितराय, विकल्प से 'अमिट राये', एक स्वतंत्र भाव-मूर्ति में प्रतिष्ठित है। 'शेषेर कविता' के काव्य-सरोवर में अमितराय कवि-हृदय का सहस्रदल कमल है एवं अमितराय के हृदय-सरोवर में लावण्य नित्य-कालीन स्वर्ण-शतदल के रूप में विकसित है। प्रत्येक मनुष्य की अपार भावकल्पना का माधुर्य एवं स्नेह अमित के चित्त को घेर कर कलगुंजन में मुखर है। यह काव्य-मूर्ति मुहूर्त के सत्य का महिमामय रूप में आविष्कार कर आनंद-मग्न होती है। जीवन के चंचल मुहूर्त शांत-संयत होने का अवकाश नहीं देते हैं। अमित तेज बुद्धि के चातुर्य से आश्चर्यजनक सुंदर भाषा में कवि-प्राण के सहयोग से पाठक के चित्रलोक में बिजली की चमक जगाता है परंतु इसमें संदेह नहीं कि वह विद्युत् की क्षणदीप्ति मात्र है। इस क्षणिक दीप्ति का भाव-स्फुलिंग ही अमित के चित्त का मर्म-संगीत है। विवाहबद्ध प्रेम के जगत में इसीलिए उसका कोई स्थान नहीं है। प्रेम की उदारता में, व्याप्ति में, विरह-वेदना में उसकी निःसीम सान्त्वना प्रकट हुई है। प्रतिदिन की मौत के ऊपर इस प्रेम ने जीवन को महाजीवन की अपरूप शिल्पमहिमा की सार्थकता प्रदान की है।

अमित्राक्षर छंद *(बँ० पारि०)*

'ब्लैंक वर्स' के लिए रूढ़ार्थ में 'अमित्राक्षर' शब्द का प्रयोग होता है। बँगला में माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने इस छंद का आविष्कार किया। यह अतुकांत छंद है। पयार छंद (14 अक्षर) में अमित्राक्षर (अतुकांत) तथा यति-अनिश्चय को लेकर यह छंद बना है। इस छंद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक विचार के समाप्त होने पर इसमें यति पड़ती है। अमित्राक्षर छंद ने बँगला में मुक्त छंद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। बँगला में मुक्त छंद का प्रवर्तन गिरीश घोष ने किया था। मुक्त छंद में तुकों का न कोई विचार है और न चरणों में नियत मात्रा का आग्रह। मुक्त छंद से भिन्न मुक्त गीत है जिसे 'बलाका छंद' भी कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) इसके प्रवर्त्तक हैं। मुक्त गीत वास्तव में असमपदी मित्राक्षर (तुकयुक्त) छंद है। बँगला में, इस प्रकार, छंदों के नये रूपों के प्रवर्त्तन में अमित्राक्षर छंद की देन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

अमीर-उल-लुग़ात *(उर्दू कृ०)* [रचना-काल—1891 ई०]

लेखक एवं संपादक—अमीर अहमद साहब 'अमीर' मीनाई (दे०) लखनवी। उर्दू भाषा के इस सुवि-स्तृत शब्दकोश के संबंध में सर सैयद अहमद ख़ां का कथन है कि उर्दू का ऐसा विशद तथा सवर्गांपूर्ण शब्द-कोश इससे पूर्व नहीं रचा गया है। विद्वान लेखक का परिश्रम अत्यंत स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है। बृहद् आकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शब्दकोश में उर्दू में प्रयुक्त अरबी, फ़ारसी, तुर्की, हिंदी, अँग्रेज़ी और संस्कृत के शब्दों का विशद विवेचन है। प्रत्येक शब्द को व्याकरण की विशेषताओं, उपमाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों, उदाहरणों के संदर्भ में विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। इसे देखने से उर्दू भाषा की व्यापकता और समृद्धि का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें यथावसर शब्दों के पारस्परिक विरोध एवं उनकी उस भिन्नता का भी सम्यक् विश्लेषण किया गया है जो प्राय: लखनऊ और दिल्ली की उर्दू में विद्यमान है। प्रत्येक तथ्य को प्रमाणित करने के निमित्त सुप्रसिद्ध कवियों के तत्संबंधी उदाहरण भी दिये गये हैं; नई और पुरानी उर्दू का अंतर भी सर्वत्र स्पष्ट किया गया है। कवियों और साहित्यकारों के लिए इस शब्दकोश की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। वैज्ञानिक शैली में लिखित उर्दू का यह प्रथम उपयोगी शब्दकोश आज भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रंथ है।

अमीर खुसरो *(उर्दू एवं हिं० ले०)* [जन्म—1255 ई०, मृत्यु—1325 ई०]

हज़रत अमीर खुसरो तेरहवीं शताब्दी में पटियाली, ज़िला एटा (उत्तर प्रदेश) में पैदा हुए। इनका असली नाम था अबुल हसन। ये उर्दू भाषा के सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं। इनका फ़ारसी काव्य भी प्रसिद्ध है। ये अरबी, फ़ारसी, तुर्की, हिंदी अनेक भाषाओं के विद्वान् थे। इन्हें 'तूती-ए-हिंद' की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। सबसे पहली ग़ज़ल का रचयिता इन्हें ही माना जाता है। इनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दोहे आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। कुछ रचनाएँ ठेठ हिंदी में लिखी गई हैं जो संस्कृत छंदों में हैं। इन्होंने यों तो कई पुस्तकें लिखीं पर 20-22 प्राप्य हैं। जिनमें 'ख़ालिक़बारी' और 'चहारदरवेश' विशेष उल्लेखनीय हैं। तुर्की, अरबी, फ़ारसी और हिंदी का एक पर्यायकोश भी प्रसिद्ध है।

अमीर खुसरो दिल्ली के विभिन्न बादशाहों के दरबार में उच्च पदों पर नियुक्त रहे। उनके गुरु प्रसिद्ध सूफ़ी संत हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया थे। उनके स्वर्गवास के कुछ ही दिन बाद उनके शोक में अमीर खुसरो का भी स्वर्गवास हो गया। बलबन बादशाह उनकी बड़ी क़द्र करता था और उनके काव्य का बड़ा प्रेमी था। अमीर खुसरो उर्दू भाषा के विख्यात कवि एवं साहित्यकार ही नहीं, वे उर्दू भाषा के निर्माता भी हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में भी इनके नाम का उल्लेख बड़े आदर के साथ किया जाता है।

'अमीर' मीनाई *(उर्दू ले०)* [जन्म—1828 ई०, मृत्यु—1900 ई०]

नाम—अमीर अहमद; उपनाम—'अमीर'; पिता का नाम—करम मुहम्मद। जन्मस्थान—लखनऊ। ये विनयशील प्रकृति के साधुस्वभाव और ईश्वर-भक्त व्यक्ति थे। दाग़ देहलवी (दे०) के साथ ये रामपुर के अतिरिक्त अल्पकाल के लिए हैदराबाद में भी रहे थे। ये उच्चकोटि के कवि थे। 'मसनवी', 'नूर तजल्ली', 'दीवान-ए-मरातुल ग़ैबे', 'सनमख़ाना-ए-इश्क़', 'अब्र-ए-करम', 'शाम ए-अवद' और 'मुसद्दस सुबह-ए-अज़ल' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। लखनऊ की टकसाली भाषा में इन्होंने सौंदर्य एवं प्रेम के भावों का बहुत सजीव चित्रण किया है। इनका कल्पनाजगत् विराट, गंभीर एवं मनोरम है। इनके काव्य में सूफ़ी तत्त्व भी विद्यमान हैं। ग़ज़ल-लेखन में ये विशेष रूप से सिद्धहस्त थे। इन्होंने उर्दू शब्दकोश 'अमीर-उल-लुग़ात' (दे०) का भी संकलन-संपादन आरंभ किया था किंतु उसके केवल दो भाग प्रकाशित हो सके।

अमीर-हमज़ा *(उर्दू पा०)*

अमीर हमज़ा 'दास्तान-ए-तिलिस्म-ए-होशरुबा' (दे०) का नायक है। इसके व्यक्तित्व में वीरता तथा मानवता का सुंदर समन्वय है। यह एक वैभवशाली वीर शासक है जो अनेक बलिदानी सामंतों द्वारा घिरा हुआ है। यह 'कोह-काफ़' (एक पर्वत) पर चढ़ाई करता है और अपने निपुण गुप्तचर-विभागाध्यक्ष उमरो-ऐयार (दे०) के प्रयत्नों तथा वीर सहयोगियों के साहस के बल पर सारे कोह-काफ़ को जीत लेता है। होशरुबा नाम की तिलिस्मी नगरी को जीतने में यह अपने ऐयार साथियों की कर्मठता के कारण सफल होता है। इस की जीत बुराई पर भलाई की जीत का प्रतीक है।

अमीर-हमज़ा दीन-हीन जन को प्रश्रय प्रदान करना अपना कर्त्तव्य समझता है। अनेक देशों में इस्लाम धर्म का प्रकाश फैलाता हुआ इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करता है कि जिसकी कल्पना भी कठिन है। अमीर हमज़ा और उसके सामंत नेकी के पुतले हैं तथा उनके विरोधी 'अफ़रासियाब' और 'लक़ा' तथा उनके साथी बदी अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुराई के प्रतीक हैं। नेकी का बदी से युद्ध होता है जिसमें नेकी की जीत होती है। अमीर हमज़ा अनेक मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक गुणों से युक्त है। इसके पास 'हस्म-ए-आजम' तथा 'हर्ज़-ए-हेकल' नाम के दो ऐसे युद्धास्त्र हैं जिन पर जादू का प्रभाव नहीं हो सकता। इसका चरित्र वैयक्तिक भी है और प्रातिनिधिक भी। यह वीर, निडर, अद्वितीय योद्धा, उदार स्वाभिमानी तथा अतिथिपरायण है। अरबी वीरों के परंपरागत गुणों के साथ-साथ इसमें भारत की लखनवी सभ्यता की विलासिता के लक्षण भी हैं।

अमुदवल्ली *(त० पा०)*

पुरट्शि कवि तमिल के क्रांतिकारी कवि भारतीदासन (दे०) की प्रसिद्ध रचना है। अमुदवल्ली इस कथा-काव्य की नायिका है। तमिल भाषा के प्रति अनन्य प्रेम होने के कारण वह अपने तमिल शिक्षक उदारन् की ओर आकृष्ट होती है। इसे बहका दिया जाता है कि उदारन् अंधा है। एक दिन पर्दे के पीछे खड़े उदारन् के मुख से चाँदनी रात के सौंदर्य का वर्णन सुन अमुदवल्ली अपने मन का संदेह मिटाने के लिए उसके पास जाती है और उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो जाती है। अमुदवल्ली और उदारन् के प्रेम के विषय में जानकर राजा कुपित होता है और उन्हें प्राण-दंड देता है। अमुदवल्ली अपने प्रेमी के साथ मरने के लिए तैयार हो जाती है। भारतीदासन ने अमुदवल्ली के रूप में एक आदर्श प्रेमिका का चित्रण करने के साथ-साथ उसके माध्यम से अपने तमिल भाषा-प्रेम की सफल अभिव्यक्ति की है।

अमृतमति *(क० पा०)*

यह जन्न (दे०) की श्रेष्ठ कृति 'यशोधरचरिते' (दे०) की नायिका है। उसके एक अन्य कारुणिक नायक चंडशासन के समान यशोधर राजा की पत्नी अमृतमति भी काम-विकृति को बिंबित करनेवाला एक दुरंत चरित्र है। वह एक दिन राजमहल के कोढ़ी महावत के गायन पर रीझकर उसे अपना दिल दे बैठती है। राजा के सो जाने पर वह रात्रि में कोढ़ी से मिलती है। एक रात राजा उसका पीछा करता है। वहाँ देर से आने के कारण महावत अमृतमति को कोड़े से मारता है। वह मार भी उसे सहन हो जाती है। राजा का मन वैराग्य से भर उठता है। मनसिज की माया वीचिविलास का सहयोग पाएगी तो क्या वह मानव को मारकर हुंकार नहीं भरेगी? कवि के इस प्रश्न में अप्रतिहत काम एवं दुर्विचार इन दोनों के बीच फँसी एक अबला का चित्र उपस्थित होता है। अमृतमति का मोह असाधारण, असामान्य एवं विकृत है। काम के इस नग्न एवं भग्न चित्रण में कवि ने अप्रतिम शक्ति दिखाई है। वादिराज के प्रति कवि अवश्य ऋणी है पर फिर भी अमृतमति जन्न की अपनी विशिष्ट सृष्टि एवं देन है।

अमृतराय की कविता *(म० कृ०)*

कवि अमृतराय विदर्भ के साखरखेडा नामक देहात के निवासी थे। कीर्तन के माध्यम से भक्ति-भावना का प्रचार करने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने नाद-मधुर सरस पदों की रचना की है। ये आशु कवि थे और कीर्तन करते समय ही पदों का निर्माण कर लेते थे। 'कटाव' छंद में पद-रचना करके मराठी के पद-साहित्य को इन्होंने समृद्ध किया है। हिंदी में भी इनके नाद-मधुर अनेक पद मिलते हैं। इन्होंने हिंदी में 'शुकचरित्र', 'सुदामाचरित्र', 'द्रौपदीवस्त्रहरण', 'जीवदशा,' 'रामचन्द्र-वर्णन' आदि लंबी वर्णनात्मक कविताएँ रची हैं। सानुप्रासिक शब्द-योजना इनके पदों की विशेपता है।

अमृत लहरां *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

यह अमृता प्रीतम (दे०) का दूसरा कविता-संग्रह है। इससे पूर्व इन का एक कविता-संग्रह 'ठंडिया किरनां' सन् 1935 में प्रकाशित हो चुका था। इस संग्रह में अमृता प्रीतम की प्रारंभिक कविताएँ हैं। ये कविताएँ उन्होंने अपने पिता के संरक्षण और निर्देशन में लिखी थीं और यही कारण है कि इनमें धार्मिक संदेश और उपदेश अधिक हैं और इसी कारण इतिवृत्तात्मकता भी है। इन कविताओं की शैली भी पुरानी और परिपाटीबद्ध है। कवयित्री ने प्रायः दोहा, चौपाई, कवित्त और रूबाई आदि छंदों में ये कविताएँ लिखीं हैं। विषयवस्तु, संवेदना और भाषा-शैली की दृष्टि से ये कविताएँ परंपरावादी ही हैं। इस संग्रह को कवयित्री की काव्य-चेतना का पहला चरण कह सकते हैं। यह संग्रह कवयित्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व और काव्य-प्रतिभा का कोई विशेष परिचय नहीं देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-संतान *(उ० कृ०)*

'अमृत-संतान' श्री गोपीनाथ महांति (दे०) का उपन्यास हैं। इसमें दर्शाया गया है कि पृथ्वी के आदिम शिशु, बनवासी आदिवासी, ही अमृत-संतान हैं क्योंकि वे अमृतोपम गुणों से विभूषित अमर जीवन लिये हैं किंतु प्रगति के नाम पर आज मानव उससे बहुत दूर जा पड़ा है और दूर होता जा रहा है। सभ्य दुनिया से दूर, प्रगति से अनभिज्ञ, जंगली आदिवासी अब भी उस अमृत-तत्त्व के निकट हैं; कम-से-कम वह सभ्य मानव के समान इतनी दूर नहीं चला गया है, जहाँ मानव पदार्थों में बदल जाता है। उसकी आरण्यक प्रकृति, आदिवासियों की सरल सुंदर, रोमांचकारी विचित्र जीवनधारा गहन और मनोरम है। इस उपन्यास की कथा इस प्रकार है—

चार हज़ार फ़ुट ऊँचे शिखर पर स्थित पल्ली में बैठा है सरबु साउँता दूर उसकी दृष्टि न जाने कहाँ खो गई है। यह कुल-वृद्ध इस गाँव का मुखिया है। इसकी भाषा अति प्राचीन कुंभी है, और उसका गोत्र है मणिआकी। उसके गाँव का नाम है मणिआपायू। शरीर पर वस्त्र के नाम पर केवल लँगोट, सिर पर हवा में उड़ते हुए ताँबे से बाल, ओठों के किनारों से अविराम गिरती तम्बाकू की थूक की धार, यही है उसका रूप; और यही है उसका परिचय। फिर भी वह सरदार है—जिलाने को, मरवाने को। राजा छोटा भाई, कंध बड़ा भाई, प्रजा बड़ा भाई। सभ्यता का यह लाल रास्ता न जाने किस खतरे की सूचना देता है।···अब वे स्वाधीन नहीं रह सकते···सभ्यता की यह सड़क उस बीहड़ वन-प्रदेश में जा पहुँची है। उसकी सरलता शोषित है, उसका स्वप्न आज व्यतीत है, उसके जीवन-संगीत की अंतिम स्वर-लहरी की भाँति शून्य में विलीन होती हुई मंद, फीकी अनुगूँज मात्र है।

दिउड़ साउँता सरबु का लड़का है, पीयू उसकी कुलवधू। समय बदलता है। दिउड़ साउँता दूसरी स्त्री कर लेता है। पीयू का सरल विश्वास न जाने कहाँ भटक जाता है। वह गृह-त्यागिनी बन जाती है।

किंतु पांडुसारिका को यह मंजूर नहीं। प्राचीन मूल्यों पर उसकी अब भी आस्था है। दोषी दंडित होना चाहिए, निर्दोष पीयू क्यों? इतना दुःख क्यों? आनंद के लिए हमारा जन्म है किंतु पांडुसारिका तो जीवन-यात्रा में पिछड़ गया है।

छोटे बच्चे को डिसारी के घर में छोड़कर पीयू निकल पड़ती है। सामने न जाने सब क्या हुआ जा रहा है—नया युग, नयी-दुनिया। किंतु यह द्वंद्व क्यों? यह कोलाहल क्यों?···नहीं, नहीं, जीवन में स्वाद है—मरण नहीं, दुख नहीं!

आधुनिक उड़िया साहित्य में उपन्यास-रचना की दृष्टि से फकीरमोहन सेनापति (दे०) जितने समादृत हैं, गोपीनाथ महांति उतने ही अविस्मरणीय हैं। ऊबड़-खाबड़ जीवन, पथरीली भाषा, पहाड़ी नदी-सी शैली आदि बातें उनके युगांतरकारी औपन्यासिक व्यक्तित्व की सूचक हैं। पीयू-पुबलि नारियाँ, देउड़ एवं लेंजु जैसे पुरुष उनके उपन्यास को सक्रियता प्रदान करते हैं। भाषा सहज सरल है। वाक्य छोटे, आकर्षक एवं शक्तिशाली हैं। संवाद जीवंत एवं मार्मिक हैं। सन् 1957 ई० में भारतीय साहित्य अकादमी ने इसे पुरस्कृत कर इसका समुचित सम्मान किया था।

अमृता प्रीतम *(पं० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

पंजाबी की सुप्रसिद्ध कवयित्री अमृता प्रीतम का प्रथम कविता-संग्रह 'ठंडिया किरनां' (दे०) सन् 1935 में प्रकाशित हुआ था जिसमें धार्मिक संदेश और उपदेश अधिक हैं। इसके बाद 'अमृतलहरां' (36) (दे०) की प्रारंभिक कविताओं में कवयित्री की किशोर भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। इन की काव्य-कला उत्तरोत्तर विकसित होती गई है। 'जीऊंदा जीवन' (39), 'लोकपीड़ा' (44), 'पत्थर गीटे' (46), 'लेम्मियां वाटा' (49), 'मैं तवारीख हां हिन्द दी' (49)', 'सरघी वेला' (51) इन के महत्त्वपूर्ण कविता-संग्रह हैं। 'सुनेहड़े', 'अशोका चेती', और 'कस्तूरी' भी इन की विशिष्ट काव्य-कृतियाँ हैं। 'सुनेहड़े' (दे०) पर इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

अमृता प्रीतम की कविताएँ आत्मानुभूति की कविताएँ हैं। पर इनका 'आत्म' व्यक्तिबद्ध न होकर 'पर' या 'लोक' से जुड़ा हुआ है। इनका काव्य मूल रूप से प्रेम का काव्य है। प्रेम के विविध रूपों का चित्रण इन्होंने पूरी संवेदनात्मकता के साथ किया है।

'मैं तवारीख हां हिन्द दी' देश-विभाजन के विषय पर लिखी हुई एक उच्च कोटि की रचना है। 'सरघी वेला' उत्कृष्ट कविताओं का संग्रह है जिसमें अधिकतर प्रेम के कोमल गीत संगृहीत हैं। 'सुनेहड़े' की कविताओं में निजी पीड़ा और विषाद का स्वर है जिसे कवयित्री ने व्यापक मानवीय संदर्भ देने का प्रयत्न किया है।

अमृता प्रीतम की काव्य-प्रतिभा निरंतर विकास-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान है। इन्होंने बदलते हुए संबंधों की विडंबना और मूल्यमूढ़ता को अपनी इधर की कविताओं में सफलतापूर्वक व्यक्त किया है।

अमे बधां *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1934 ई०]

'अमे बधां' गुजराती साहित्य के हास्यरस के सुप्रसिद्ध लेखक श्री ज्योतीन्द्र दवे (दे०) तथा श्री धनसुखलाल महेता (दे०) का उत्तम हास्य-प्रधान उपन्यास है।

सूरत के इस लेखक-युगल के उपन्यास में नायक विपिन आत्मकथात्मक शैली में हास्य रस में अपने जन्म से लेकर अपनी शादी तक की कथा कहता है। किंतु लेखकों का उद्देश्य इस शताब्दी के प्रथम पच्चीस वर्ष के सूरत का जीवन निरूपित करना है और अपने इस उद्देश्य में उन्हें बहुत सफलता मिली है। हास्य एवं व्यंग्य द्वारा गत पीढ़ी की लुप्त होती जीवन-प्रणालियों और जीवन-रीतियों का यथावत् चित्र इसमें दिखाया गया है। इसमें कथानायक तथा कथा-तत्त्व दोनों ही गौण हैं किंतु स्थल और काल का विशेष महत्त्व है। इस स्थल और काल का यहाँ हास्यपरक चित्रण किया गया है जिससे कृति की विशेषता बढ़ गई है।

अम्मन देहलवी, मीर *(उर्दू ले०)*

इनके पूर्वज सम्राट हुमायूँ के समय से मुग़लिया शासन से संबद्ध थे। शासन की ओर से इन्हें जागीर भी मिली हुई थी। जिन दिनों अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण हुए उन दिनों इनका घर भी लूटा गया था। आक्रमणकारियों द्वारा इनकी जागीर ज़ब्त कर ली गई थी। तब इन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़ कुछ समय के लिए अज़ीमाबाद और तदुपरांत कलकत्ता को अपना निवास-स्थान बनाना पड़ा था। कलकत्ता में मीर बहादुर अली हुसैन ने डा० गिलक्राइस्ट से इनका परिचय कराया था। परिणामस्वरूप फ़ोर्ट विलियम कालेज (दे०) में इनकी नियुक्ति हो गई थी। वहाँ इन्हें 'किस्सा-चहार दरवेश' को सरल गद्य में लिखने का कार्य सौंपा गया था। यह अनुवाद 'बाग़-ओ-बहार' (दे०) के नाम से अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। यह अनुवाद पहले के सभी अनुवादों से अनेक दृष्टियों से अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसमें यथातथ्यता, उद्देश्य-संगति और प्रवाहमही भाषा की विशेषताएँ सर्वत्र देखने को मिलती हैं। सरलता और सरसता के साथ-साथ इनकी भाषा बड़ी मुहावरेदार और सप्रवाह है। कहीं भी फ़ारसी और अरबी के क्लिष्ट शब्दों की भरती नहीं की गई। कथोपकथन की स्वाभाविकता से ओतप्रोत यह कृति अत्यधिक रोचक एवं विद्वत्तापूर्ण है। उर्दू को लोकप्रिय बनाने में इस कृति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीर अम्मन की दूसरी कृति 'गंज-ए-खूबी' है, जो 'अनवार सहेली' का अविकल अनुवाद है। परंतु इस कृति को 'बाग़-ओ-बहार' जैसी प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी।

अम्मूवनार् *(त० ले०)* [समय—प्रथम शताब्दी ई०]

इनका वास्तविक नाम 'मूवन्' है; 'अम्' प्राशस्त्यबोधक विशेषण है। इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि ये भारत के पश्चिमी समुद्र-तट के निवासी थे। चेरदेश (वर्तमान केरल) के अनेक प्राचीन नगरों के नाम इनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं। समुद्र-तट का वर्णन करने में तत्कालीन प्रसिद्ध दो कवियों में 'उलोच्चनार्' के साथ इनका भी आदर के साथ उल्लेख किया जाता है। 'ऐङ्कुरु-नूरु'—'लघुपद्यपंचशती'—नामक संकलन में इनके द्वारा रचित एक सौ पद्य उपलब्ध हुए हैं तथा अन्य संकलनग्रंथों में 27 पद्य।

एक उदाहरण : "हे प्रियतम! दक्षिणावर्त शंखकीट जहाँ के तट पर सिकता को जोतते रहते हैं और जहाँ पर बिखरे उज्ज्वल किरणवाले मोती चमककर अंधकार मिटाते रहते हैं, ऐसे समुद्र-तट के हे निवासी! तुम तो ये दो कंकण पुनः लाकर मुझे दे रहे हो! क्या ये ऐसे कंकण हैं कि विरह में फिर कभी खिसककर कहीं गिर न जाएँगे!'

अयल्कार *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

'अयल्कार' पी० केशवदेव (दे०) का विस्तृत उपन्यास है जो साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत हो चुका है। इसमें दो पड़ौसी परिवारों में पीढ़ियों तक चलनेवाले परस्पर वैर के फलस्वरूप दोनों परिवारों के पतन की कथा चित्रित है।

'अयल्कार' में बीसवीं सदी के आरंभ से केरलीय सामाजिक जीवन के क्रमिक विकास का प्रामाणिक और सरस वर्णन है। लेखक ने दर्शाया है कि व्यक्तियों, परिवारों और जातियों के पारस्परिक संघर्षों के दौरान, मान्यताएँ और प्रतिष्ठाएँ कैसे मिट्टी में मिलती हैं और इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखदायी विघटन के बीच सौहार्द और मानविकता की झलक भी उपन्यास में यत्र-तत्र दर्शनीय है।

मलयाळम के सामाजिक उपन्यासों में समग्रता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'अयल्कार' का स्थान प्रमुख है।

अय्यंगार, गोरूरु रामस्वामी *(क० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

कन्नड के सुप्रसिद्ध रेखाचित्रकार एवं ग्राम-साहित्य के मर्मज्ञ गोरूरु रामस्वामी अय्यंगार का जन्म 1904 ई० में हासन ज़िले के गोरूरु ग्राम में हुआ। ये अपने विद्यार्थी जीवन के दौर में ही गांधीजी के असहयोग-आंदोलन में कूद पड़े। फलतः कई बार जेल गये। इनके सुपुत्र भी देश-प्रेम की बलि चढ़ गये। ये गांधीजी के सच्चे अनुयायी, खद्दरप्रेमी तथा गांधीवादी साहित्यकार हैं। गाँव में रहकर रचनात्मक कार्य कर रहे हैं। 'नम्मूरि-नरसिकर' आपके सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्रों का संग्रह है जिसमें आपने गाँव के लोगों का सरस चित्र प्रस्तुत किया है। आप कन्नड के श्रेष्ठ हास्य-साहित्यकारों में हैं। 'हेमावती' आपका प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें सत्याग्रह की भूमिका में हरिजन-समस्या आदि का चित्रण है। एक हरिजन कन्या के साथ ब्राह्मण का विवाह कराके इस उपन्यास में आपने अपनी गांधीवादी निष्ठा व्यक्त की है। 'हेमावमिय तीर-दल्लि', 'वैयारि' आदि आपकी अन्य कृतियाँ हैं जिन सबमें ग्राम्य जीवन की मधुर झाँकी है। आप एक सफल कहानीकार भी हैं। 'विमेयमनन्ने हेररिसितु' (बीमा ने मन को ही डराया) आपकी एक श्रेष्ठ कहानी है। निबंध-रचना में भी आपको विशेष सफलता मिली है। 'मडि' आपका एक श्रेष्ठ निबंध है। आपने शापेनहावर के लेखों का एक अनुवाद-संग्रह प्रकाशित किया है। के० एम० मुंशी जी के 'भगवान कौटिल्य' का कन्नड अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। आपकी भाषा में चलबुलाहट है, और हँसने की अद्भुत शक्ति है।

अय्यप्पन् *(मल० पारि०)*

केरल में 'शबरीमला' नामक एक तीर्थस्थान है। वहाँ की एक आराध्य मूर्ति अय्यप्पन् है। इसके विषय में कई दंतकथाएँ प्रचलित हैं और उन कथाओं के आधार पर कई कविताएँ भी लिखी गयी हैं। भक्तप्रवर के० जी० मेनन की कविता रसपूर्ण है। कहा जाता है कि 'अय्यप्पन्' के दर्शन करके प्रसन्न हो उनके भक्ति-स्वर फूट उठते थे।

अय्यर, के० वी० *(क० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

कोलार वेंकटेश अय्यर का जन्म 1898 ई० में कोलार में हुआ। ये उत्कृष्ट नाटककार तथा उपन्यासकार हैं। 'शांतला' (दे०) तथा 'रूपदर्शी' (दे०) आपकी श्रेष्ठ उपन्यास-कृतियाँ हैं। 'शांतला' में आपने होयसळ सम्राज्ञी नाट्यसरस्वती शांतला देवी के जीवन को लेकर एक सरस ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत किया है। होयसळयुगीन संस्कृति के चित्रण में यह अत्यंत सफल कृति मानी जाती है। आपकी भाषा अत्यंत संयत किंतु विषयानुकूल है। सुरुचिपूर्णता आपकी कृतियों की विशेषता है।

अय्यर, कोमार अप्पा सुब्रह्मण्य *(सं० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

प्रो० को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर का जन्म केरल के पालघाट अंचल में 7 सितम्बर, 1896 को एक तमिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज मूलतः तंजौर (तमिलनाडु) के रहने वाले थे और चार-पाँच शताब्दी पूर्व केरल में आकर बस गये थे। इसीलिए केरलवासी इनको परदेशी कहते हैं। ये लोग द्विभाषी हैं अर्थात् घर तमिल और बाहर मलयाळम बोलते हैं। प्रो० अय्यर का बाल्यकाल धार्मिक संप्रदायों के बीच में व्यतीत हुआ। पितृ-पक्ष की ओर से ये शैव थे और मातृ-पक्ष की ओर से वैष्णव। इस समन्वयवादी दृष्टि का परिणाम यह हुआ कि इन्होंने अपना विवाह पोलेंड की एक महिला से किया।

इनकी प्राथमिक शिक्षा पालघाट और माध्यमिक शिक्षा कालिकट में हुई। साथ ही ये अपने पिता के मित्र श्रीनारायण शास्त्री से संस्कृत की शिक्षा भी लेते रहे। लेकिन इनकी उच्च शिक्षा पेरिस तथा जर्मनी में ही हुई।

यूरोप से लौटते ही 19 जुलाई, 1921 को इनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में रीडर तथा अध्यक्ष के पद पर हुई। बाद में ये इस विश्वविद्यालय के कुलपति बने और 1960 में यहाँ का कुलपति-पद छोड़ने के बाद वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का कुलपति-पद सुशोभित किया।

प्रो० अय्यर इतने निष्ठावान अध्यापक तथा प्रशासनिक कार्यों में इतने दत्तचित्त रहे कि अपने सक्रिय जीवन में इन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा। अवकाश प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के उपरांत इन्होंने भर्तृहरि के 'वाक्य-पदीय' का आठ खंडों में जो प्रामाणिक अनुवाद तथा समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त मण्डन मिश्र (दे०) की 'स्फोटसिद्धि' का अँग्रेज़ी अनुवाद तथा व्याख्या भी अप्रतिम है। उत्पल की 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी' का 'भास्करी टीका' सहित डा० कांतिचन्द्र पाण्डेय (दे०) के साथ संपादन तथा प्रकाशन भी इनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त अनेक देशी तथा विदेशी शोध-पत्रों में इनके भाषा एवं भाषाशास्त्र-विषयक निबंध समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। आज भी ये सक्रिय रूप से व्याकरण-दर्शन के शोध-कार्य में लगे हुए हैं।

अरण्यफसल *(उ० कृ०)*

'अरण्यफसल' श्री मनोरंजन दास (दे०) का सफल एवं सशक्त नाटक है। नाम प्रतीकात्मक है। सभ्यता की खोज में आदिम मानव ने 'अरण्य जीवन' को छोड़ दिया था, अणुयुग का मानव आत्मप्रकाशन के लिए 'अरण्य जीवन' को लौट जाना चाहता है। मानव मन 'अरण्य' है जहाँ चिन्ताओं की फ़सल है।

इस अपार्थ नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) में मानव की अवस्था एवं उसकी अनुभूति की व्याख्या की चेष्टा मिलती है। इसमें मानव को, उसकी चिर-अतृप्त यौन आकांक्षा को, मूल रूप में समझने का प्रयास मिलता है। जीवन इतना छलनामय हो गया है कि बाहर से दुर्बोध एवं विचित्र दिखाई पड़ता है। हमारी प्रतिदिन व्यवहृत भाषा में संगतिहीनता, निरर्थकता और अनुपयुक्तता मिलती है। यह असंलग्नता व चेतनारहितता ही हमारे भीतर संयोग-स्थापना के लिए प्रयुक्त भाषा है।

मानव अभिनेता है और वह पृथ्वीरूपी मंच पर अभिनय करता है। वह कई बार मरता है, किंतु अचेतन रूप से। जिस समय उसके मन में जीवन की जिज्ञासा प्रबल हो उठती है, वह दार्शनिक हो जाता है, आत्महत्या कर लेता है, जिस प्रकार नाटक में संग्राम ने किया है। वह मरकर भी नहीं मरता। बेनी जीवित रहकर भी कई बार मर चुकी होती है। नाटक के अंत में बेनी के व्यक्तित्व की मृत्यु हो जाती है एवं उससे बहुत पूर्व उसके आदर्शों की मृत्यु हो चुकती है। नाटक के अंत में संग्राम की मृत देह पकड़ कर वह चीख उठती है—ना···ना···ना···ना! अर्थात् संग्राम नहीं मरा है। इस नाटक की वास्तविक नाटकीयता वहाँ से प्रारंभ होती है जहाँ नाटक समाप्त होता है।

अर नाषिक नेरम् *(मल० कृ०)* [रचयिता : पारप्पुरत्तु (दे०)]

'अर नाषिक नेरम्' का मतलब है आधी घड़ी। इसमें नब्बे वर्ष की अवस्था के ग्रामीण गृहस्थ 'कुञ्ञोनाच्चन्' की कथा है जो खटिया पर लेटे आधी घड़ी में ईसा मसीह का बुलावा सुनने का इंतज़ार कर रहे हैं। जीवन के अखाड़े में नब्बे वर्ष तक का पूरा पुरुषार्थ आज़माने और सुख-दुःख देखने के बाद अब यह विशाल वटवृक्ष अपनी छाया में कई परिवारों को विकसित होते देखकर खुश है। बुढ़ापे में 'कुञ्ञोनाच्चन्' के संगी सिर्फ़ दो हैं—अफ़ीम और अफ़ीम लाने वाला कुरुप। इस गृहस्थ में हम मध्य-केरल के परिश्रमी, चतुर, जीवन के सुख-दुःख के लिए तैयार और रविवार के दिन गिरजाघर जाने तथा बात-बात पर बाइबिल उद्धृत करने की प्रवृत्ति से युक्त मध्य-वर्गीय ग्रामीण ईसाई सज्जन को पाते हैं।

उपन्यास का विशाल पट बुनने में लेखक ने घटनाओं और पात्रों के ताने-बाने से खूब काम लिया है। कुञ्ञचेरुक्कन्, कुट्टियम्मा, कुरुप, दीनाम्मा, गीवर्गीस आदि पात्र केवल जाति-पात्र नहीं हैं, व्यष्टि-पात्र हैं और इसीलिए कभी भुलाये नहीं जा सकते। इसमें तीन-तीन पीढ़ियों की कथा है, पर वह बोझिल नहीं लगती। विगत कथांशों को 'फ़्लैश-बैक' की शिल्पविधि से प्रस्तुत करने के कारण वह बोझिल होने से बच गयी है। आदर्शों की दीवारें उस गृहस्थ के देखते-देखते ढहती जा रही थीं। उनकी प्यारी बहू दीनाम्मा के सतीत्व-त्याग ने उनके हृदय पर सबसे गहरा आघात किया। वे उसका भंडाफोड़ तक नहीं कर सके क्योंकि कुरुप ने, जो कि इस प्रेम-नाटक का नायक था, अफ़ीम में ज़हर मिला दिया था।

पारप्पुरत्तु की कथाख्यान-शैली कभी बोझिल या कृत्रिम नहीं होती। ईसाई लोगों के पारिवारिक जीवन का वातावरण सुरक्षित रखते हुए ठेठ उन्हीं की बोली का व्यवहार इस ग्रंथ में लेखक की विशेष प्रवृत्ति है।

अरप्पळीसुर शतकम् *(त० कृ०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

'यह 'शतकम्' (शतक) पद्धति की रचना है, जिसमें नीति, उपदेश, स्तुति आदि विविध विषयों पर सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्य 'आचिरिय विरुत्तम्' छंद में रचित होते हैं। रचनाकार 'अम्पलवाणक्कविरायर' प्रसिद्ध 'इरामनाटकम्' (दे०) के प्रणेता 'अरुणाचलक्कविरायर' (दे०) के सुपुत्र थे। सौ पद्यों वाली अपनी कृति में प्रत्येक पद्य में इन्होंने अपने आश्रयदाता 'मतवेळ' और उनके उपास्यदेव 'कोलुलि', पर्वत-स्थित 'अरप्पळ्ळी' मंदिर के विग्रह-रूपी शिव दोनों के नामों का उल्लेख संबोधन में किया है। काव्य की प्रसिद्धि का मुख्य कारण उसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन-संबंधी नाना प्रकार की ज्ञान-सामग्री का आकर्षक रूप से छंदोबद्ध होना है—यथा मनुष्य-जन्म का सुकृत, उत्तम पत्नी, पुत्र, भ्राता, गुरु, शिष्य, आदि के लक्षण, धनार्जन एवं व्यय का आदर्श, पुण्यात्मा और पापात्मा लोगों के स्वभाव, अच्छे-बुरे नगर और शकुन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा कृषक जातियों के धर्म एवं स्वभाव इत्यादि। लेखक वैदिक धर्म और मनु-धर्मशास्त्र के अनुयायी हैं। पचपनवें पद्य में इन्होंने ब्राह्मण जाति तथा संस्कृत भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

अरब-ओ-हिन्द के तअल्लुकात *(उर्दू कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

हिंदुस्तानी एकेडेमी (उत्तर प्रदेश) इलाहाबाद से प्रकाशित इस महान् कृति में लेखक मौलाना सैयद सुलेमान नदवी के उन भाषणों को संगृहीत किया गया है जो उन्होंने 22 तथा 23 मार्च, सन् 1929 ई० को हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद के समक्ष दिए थे। इस कृति के प्रकाशन में लेखक का दृष्टिकोण ज्ञान-वृद्धि के अतिरिक्त भावात्मक और सांप्रदायिक एकता भी रहा है। संगृहीत लेखों में हिंदुओं और मुसलमानों को उस स्वर्ण युग का स्मरण कराया गया है जबकि अरब और भारतवर्ष में अनेक दृष्टियों से परस्पर मैत्री, सौहार्द, आत्मीयता और एकता की विभिन्न श्रृंखलाएँ विद्यमान थीं। उस अतीत का गौरव गान लेखक ने ठोस तथ्यों और प्रामाणिक तत्त्वों के आधार पर किया है। इस कृति में उल्लिखित सभी तथ्यों एवं घटनाओं का आधार अरबी भाषा की विश्वस्त, ऐतिहासिक और प्रामाणिक पुस्तकें हैं। कहीं-कहीं अँग्रेज़ी और फ़ारसी पुस्तकों से भी लाभ उठाया गया है। यह कृति पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय का विवेच्य विषय है—संबंधों का प्रारंभ और हिंदुस्तान के अरब पर्यटक। द्वितीय अध्याय में व्यापारिक संबंध, तृतीय अध्याय में शैक्षिक संबंध, चतुर्थ अध्याय में धार्मिक संबंध और पंचम अध्याय में—हिंदुस्तान में मुसलमानी विजयों से पूर्व की परिस्थितियों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक महत्त्व की यह पुस्तक निष्पक्ष निर्णयों और निष्कपट निष्कर्षों पर आधृत है। इस कृति में भारत और अरब के अतीत का गौरव-गान तथ्यों के आलोक में बड़ी तन्मयता के साथ किया गया है। इस प्रकार अँग्रेज़ी शासन-काल में हिंदू-मुस्लिम एकता का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत कर अत्यंत स्तुत्य कार्य किया गया।

अरबिप्पोन्नु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

'अरबिप्पोन्नु' एम० टी० वासुदेवन (दे०) नायर और एन० पी० मुहम्मद के संयुक्त कर्तृत्व में प्रकाशित उपन्यास है। इसमें मलाबार के समुद्र-तटों में वर्षों से चलने वाली सोने की तस्करी की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। अंतर्राष्ट्रीय तस्करीय संघों द्वारा अरब देशों से देशी नौकाओं में चोरी-छिपे लाए जाने वाले सोने का व्यापार केरल के लिए एक अभिशाप है। इस समस्या पर लिखे गए उपन्यास के रूप में तथा दो लेखकों के संयुक्त प्रयास के रूप में यह एक नूतन रचना है।

अरमुग़ान-ए-हिजाज़ *(उर्दू कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

'अरमुग़ान-ए-हिजाज़' डा० इक़बाल (दे०) की अंतिम कृति है। यह कृति उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित हुई। इसमें कुछ फ़ारसी-काव्य भी संकलित है और कुछ भाग उर्दू का भी है। इसमें प्रेम (इश्क), रसूल (पैगंबर) तथा सफ़र-ए-हिजाज़ के शौक के बारे में शेर अधिक संख्या में हैं। उर्दू भाग में 'इब्लीस की मजलिस-ए-शोरा' एक महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें इब्लीस अर्थात् शैतान की कारिस्तानियां का विचित्र शैली में वर्णन किया गया है।

धार्मिकता, दार्शनिकता तथा भाषा की जटिलता इस काव्य-संग्रह की विशेषताएँ हैं।

अरळु मरळु *(क० कृ०)*

यह आधुनिक कन्नड के महान् कवि द० रा० बेंद्रे (दे०) की उत्तरकालीन कविताओं का संग्रह है। 'अरळु मरळु' उनके पाँच कविता-संकलनों का गुच्छ है। ये संकलन हैं—सूर्यदान, हृदय-समुद्र, मुक्त कंठ, चैत्यालय तथा जीवलहरी। इस ग्रंथ को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है। बेंद्रेजी ने अपने 'गरि' (पंख) 'उय्याले' (भूला)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नादलीला' आदि कविता-संकलनों द्वारा कन्नड कविता में अपूर्व माधुरी घोल दी है, एक नया आयाम जोड़ दिया है। इनकी कविताओं की विकास-यात्रा का अध्ययन कन्नड कविता की विकास-परंपरा का अध्ययन करना है। इनके 'गरि', 'उय्याले', 'सरवीगीत', 'नादलीला' आदि में रोमांटिक कविताएँ हैं। इनकी अर्थ एवं नाद-माधुरी चकित करने वाली है। ये हमारे सर्वश्रेष्ठ रोमांटिक कवि हैं। 'रुद्रवीणे', 'मुत्तिनचीले', 'अंशावतार' आदि में वे प्रगतिवादी बनकर आते हैं। 'सच्चिदानंद', 'लावण्य' आदि उनकी रहस्यवादी कविताएँ हैं। बेंद्रेजी अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। 'अरळु मरळु' में यही अध्यात्मवाद प्रधान स्वर है। इसकी दृष्टि आर्य दृष्टि है। 'अरळु मरळु' कन्नड में सठियाने को कहते हैं। साठ वर्ष की देहली पर की कविताएँ यहाँ हैं। आनंद की दृष्टि से ही यहाँ विश्व एवं निसर्ग का सौंदर्य दर्शित है। बेंद्रेजी की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है लोकतर्ज़। उनके गीत लोक-गीतों की तर्ज़ में हैं, लोक-साहित्य का लालित्य एवं गाढ़ जीवन-स्पर्श उनमें है। वे हमारी लोकगीत-शैली के सम्राट् हैं। 'हृदय-समुद्र' उनकी इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कविता है। 'महाप्रस्थान', 'इन्द्र-जाल', 'चैत्यालय' आदि में एक नवीन अंतर्दृष्टि है। 'रमणहृदय', 'अमृतानुभव', 'आनंदलहरी' आदि उनके श्रेष्ठ अनुवाद हैं। उनकी कुछ विडंबनात्मक कविताएँ भी हैं। 'सप्तकला', 'स्वप्न नौके' आदि में ताल एवं लय का एक नया स्रोत उमड़ता है। 'संख्यांकिता' में सांख्य को ही एक उत्तम काव्य बनाया गया है। रूपक बेंद्रेजी के लिए द्वितीय भाषा है। श्लेष—सभंग एवं अभंग—समान रूप से अपने आप फूट पड़ते हैं। किंतु बेंद्रेजी की प्रारंभिक कविताओं में जो भाव-पुष्टि, जो ताज़गी है वह इसमें नहीं है। इसमें चमत्कार एवं बौद्धिकता-दार्शनिकता की प्रधानता है। फिर भी बेंद्रे का स्पर्श तो है ही।

अरहत् *(पा० पारि०)* [सं० अर्हत्]

यह शब्द अर्ह धातु से बना है जिसका अर्थ होता है योग्य होना, पूजनीय होना आदि। बौद्ध धर्म में जब कोई व्यक्ति आर्य मार्ग पर चल कर दुःखों से पूर्ण विमुक्ति प्राप्त कर लेता है तथा निर्वाण पदवी पर आरूढ़ हो जाता है—जोकि इस जीवन में ही होता है—तब वह अरहत् कहा जाता है। हीनयान (दे०) शाखा में यह जीव की सर्वोच्च दशा मानी जाती है जबकि महायान (दे०) में इस पद के अधिकारी को बोधिसत्व (दे०) कहा जाता है। यह पद स्वयं साधना से प्राप्त होता है, किसी की कृपा से नहीं। इसकी चार अवस्थाएँ होती हैं—(1) सोतापन्न अर्थात् अर्हत् पद प्राप्त करने की धारा में पड़ जाने वाला व्यक्ति। यह तीन बंधनों से रहित हो जाता है—आत्मा का मोह, संदेह और मिथ्या विश्वास। यह कभी नरक, पशु योनि या प्रेत योनि में जन्म नहीं लेता। (2) सकदागमी (एक बार पुनर्जन्म लेने वाला)—यह चेतना-मोह और दुर्भावना इन दो बंधनों से रहित हो जाता है। (3) अनागमी—यह भौतिक जीवन के अनुराग तथा भावी जीवन की आकांक्षा से रहित हो जाता है और कभी आकांक्षा-जगत् में जन्म नहीं लेता। (4) अरहत्—जो शेष तीन दोषों, अर्थात् अभिमान, आत्मौचित्य की भावना और अज्ञान, से रहित होकर जन्म की संभावना से मुक्त हो जाता है।

अरिच्चन्दिरपुराणम *(त० कृ०)* [रचना-काल—1523 ई०]

इसके रचयिता वीरकविरायर हैं। इसमें इतिहास-प्रसिद्ध सत्यनिष्ठ राजा हरिश्चंद्र की कथा वर्णित है। संपूर्ण काव्यकृति दस कांडों में विभाजित है। विवाहकांडम्, इंद्रकांडम्, वंजनैवकांडम् वेट्टंशेय कांडम्, शूळविनैक्कांडम्, नगरनींगिय कांडम्, काशीकांडम्, भयानक कांडम्, मीट्शिकांडम् और उत्तरकांडम् शीर्षक दस कांडों में कोशलराज हरिश्चन्द्र की वीरता, धीरता, शासन-पटुता आदि गुणों का, कन्नौजराज की पुत्री चंद्रमती से उसका विवाह, इंद्रलोक में वसिष्ठ मुनि का हरिश्चंद्र को भूलोक का सर्वश्रेष्ठ राजा घोषित करना, विश्वामित्र द्वारा इस बात को नकारा जाना, इंद्र का आदेश पा हरिश्चंद्र की परीक्षा लेना, परीक्षा में राजा हरिश्चंद्र की विजय, देवताओं द्वारा उसकी जयजयकार आदि घटनाएँ वर्णित हैं। शैवमतानुयायी होने के कारण कवि ने ग्रंथारंभ में गणपति, शिव, काली, पार्वती आदि देवी-देवताओं की वंदना की है। नगर-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि में कवि को विशेष सफलता मिली है। विभिन्न प्रसंगों में वीर, श्रृंगार, हास्य, करुण आदि रसों की व्यंजना हुई है। संपूर्ण कृति सरस, कोमलकांत पदावली में रचित है। शब्द-योजना भावानुरूप है। यत्र-तत्र संस्कृत शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। यह कृति वेण्बा छंद में रचित है परंतु कुछ प्रसंगों में कवि ने विविध छंदों का प्रयोग किया है। यथास्थान अलंकारों का सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है। भाव एवं भाषा-सौंदर्य, कल्पना-वैभव, छंद-योजना सभी दृष्टियों से कृति का निजी महत्त्व है। इसे तमिल की शिरुकाप्पियम (दे०) कही जाने वाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

अरिजमाल *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1750-52 ई०, मृत्यु—अनुमानतः 1800 ई०]

अद्भुत सौंदर्य और प्रखर बुद्धि की धनी अरिजमाल का जन्म कुलीन कश्मीरी पंडित परिवार में हुआ था। ये शैशव से ही विचारशील और भावुक थीं। पिता के घर पर ही शिक्षा-दीक्षा हुई। श्रीनगर स्थित रैणा-वारी के विद्वान काचरू-परिवार के मुंशी भवानीदास काचरू 'निक्कू' से इनका विवाह हुआ। मुंशी जी में जहाँ बहुमुखी प्रतिभा थी वहाँ वे भ्रमर प्रकृति के रसिक भी थे। अरिजमाल उन पर इतनी रीझ गईं कि उनका दाम्पत्य-प्रेम पिया-पुजारिन या प्रेयसी-प्रियतम की आसक्ति में परिणत हो गया। नये वातावरण में अरिजमाल की वाणी और स्वर का अद्भुत संगम 'लोल' (प्रेम) गीतों में फूट पड़ा। किंतु जल्दी ही मुंशी जी की रसिकता ने नये गुल खिलाए, तब इस विवश पतिव्रता कश्मीरी हिंदू नारी की विरह-वेदना दर्द-भरे गीतों में प्रस्फुटित हुई। इनकी उपमाएँ ठेठ कश्मीरी की हैं और कश्मीरी गीतों-ग़ज़लों पर इनकी शैली की छाप सदा अमिट रहेगी। शब्द-चयन, भाषा-सौष्ठव, भाव-सरलता, प्रवाह और शैली की दृष्टि से अरिजमाल का स्थान अनुपमेय है। अरिजमाल को कश्मीरी साहित्य में प्रेम-सुधि-परम्परा (लोल काल) की प्रवर्त्तिका कहा जा सकता है।

अरुणगिरि नादर *(त० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई० का पूर्वार्ध]

प्रसिद्ध शैव भक्त अरुणगिरि नादर का जन्म तिरुवण्णामलै नामक स्थान में हुआ। इन्होंने 'तिरुप्पुहळ, 'कन्दर अन्दादि', 'यमक अन्दादि', 'कन्दर अलंकारम्', 'कन्दर अनुभूति' नामक कृतियों की रचना की। 'तिरुप्पुहळ' और 'कन्दर अनुभूति' में भगवान सुब्रह्मण्य की महिमा का गान है। 'कन्दर अन्दादि', 'कन्दर अलंकारम्' भक्तिरसात्मक रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में उर्दू, संस्कृत के अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'तिरुप्पुहळ' है।

अरुणाचलक्कविरायर *(त० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

ये 'तंजावूर' जिले के 'चीरकाळि' नामक तीर्थ-स्थान के निवासी थे और उसी स्थान के विख्यात मंदिर का माहात्म्य-गान एवं उसमें विराजमान शिव-मूर्ति की स्तुति 'चीरकाळिप्पुराणम्' तथा 'चीरकाळिक्कोवै' नामक दो पद्य-रचनाओं में इन्होंने प्रस्तुत किया है। इनकी तीसरी रचना 'रामनाटकक्कीर्त्तनै' रामायण के कथा-प्रसंगों को गेय पदों द्वारा प्रस्तुत करती है। यह कर्नाटक संगीत के रागों के अनुकूल निबद्ध गेय कृति है और इसमें नाटकोचित संवादों और प्रसंगों का सशक्त प्रस्तुतीकरण है। इस विलक्षणता के कारण इस रचना की प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि स्थिर हो चुकी है।

अरुणाचलम्, के० सी० एस० *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म कोयम्बतूर ज़िले के पोळ्ळाच्चि नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने सन् 1940 में साहित्य-जगत् में प्रवेश किया था। इन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के लिए कविता, कहानी, निबंध आदि की और रेडियो के लिए एकांकी नाटकों की रचना की थी। सन् 1968 में इन्हें अपने प्रथम कविता-संग्रह 'कविदैयन् कैवाळ्' पर सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'पूर्वीग सोत्तु' इनका प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है। इन कहानियों में कोयम्बतूर के कृषकों के जीवन का सजीव चित्रण है। कुछ कहानियों का आधार संघकालीन काव्यकृतियाँ हैं। 'महायात्तिरै', 'यमलोक लंजम्' नामक इनके प्रसिद्ध नाटक अनेक बार अभिनीत हो चुके हैं। श्री अरुणाचलम् 'मादमणि', 'अमुदम्', 'मनोरंजिदम्' नामक साहित्यिक पत्रिकाओं और 'नीदि' नामक राजनीतिक पाक्षिक पत्रिका के संपादक रह चुके हैं। इन्होंने कुछ समय तक साम्यवादी दैनिक पत्र 'जनशक्ति' के सहसंपादक के रूप में भी कार्य किया था। आजकल ये 'सोवियत पलकणि' नामक पत्रिका के संपादक-मंडल के सदस्य हैं। श्री अरुणाचलम् तमिल साहित्य में मूलतः कवि के रूप में विख्यात हैं।

अरुणोदय *(म० कृ०)* [रचना-काल—1854 ई०]

यह बाबा पद्मनजी (दे०) द्वारा लिखित आत्म-चरित्र है। बाबा पद्मनजी हिंदू थे पर मिशनरियों से प्रभावित होकर ईसाई बन गए थे, अपने इसी धर्म-परिवर्तन के कारण को स्पष्ट करने के लिए इन्होंने 'अरुणोदय' आत्म-चरित्र लिखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें हिंदू धर्म के दोषदर्शन तथा ईसाई धर्म के गुणों का गान किया गया है। मराठी के आद्यकथाकार बाबा पद्मनजी ने अपनी 'यमुना पर्यटण' (दे०) नामक कथात्मक कृति में जैसे हिंदू धर्म के केवल दोषों का उद्घाटन किया है वैसे ही उनके आत्मचरित्र में हिंदू धर्म के गुण तथा ईसाई धर्म के दोष उनकी दृष्टि से सर्वथा ओझल हैं। निश्चय ही आत्मचरित्र-लेखन में लेखक का यह एकांगी दृष्टिकोण दोषपूर्ण है।

आधुनिक काल के आरंभ में नवीन पद्धति से रचित आत्मचरित्र होने के कारण ही इसका महत्त्व है। अरुणोदय से अभिप्राय ईसाई धर्म रूपी अरुण के उदय से है।

अर्जुन *(सं० पा०)*

यह 'महाभारत' (दे०) का महत्त्वपूर्ण पात्र है। इसके पिता का नाम पांडु और माता का नाम कुंती (दे०) था। कुंती का यह तीसरा पुत्र था। इसके गुरु द्रोणाचार्य थे जो सभी कौरवों और पांडवों को शस्त्रविद्या सिखाते थे। इसके शस्त्र-कौशल के कारण द्रोण का इस पर सर्वाधिक स्नेह था। अर्जुन का पराभव कोई भी न कर सके इसलिए द्रोण ने एकलव्य का अँगूठा माँग लिया था। इसके शस्त्र-कौशल की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बार इसने लगातार पाँच बाण ऐसे छोड़े कि पाँचों मिलकर एक ही बाण नज़र आए। एक लटकते और हिलते सींग में इसने इक्कीस बाण भर दिए। प्रसिद्धि है कि अर्जुन ने पंद्रह वर्ष की आयु में दिग्विजय की। इसने द्रौपदी (दे०) के स्वयंवरार्थ लगाए गए मत्स्य-यंत्र का भेदन किया तथा द्रौपदी ने अर्जुन का वरण किया।

अर्जुन ने तीर्थाटन-काल में कौरव्य नाग की उलूपी नामक कन्या से पाताल में विवाह किया। इसके बाद यह हिमालय और बिंदुतीर्थ गया। फिर उसने उत्पलिनी नदी, नंदा, अपरनंदा, कौशिकी, महानदी, गया और गंगा नामक तीर्थस्थान देखे। फिर अंग, वंग, कलिंग देश देखे। फिर महेन्द्र पर्वत से होता हुआ मणिपुर राज्य में प्रविष्ट हुआ, जहाँ इसने मणिपुर के राजा चित्रवाहन की चित्रांगदा नामक कन्या से विवाह किया। वहाँ से गोकर्ण गया; वहाँ से प्रभास क्षेत्र में जाने पर इसका कृष्ण (दे०) से मिलन हुआ। वहाँ से द्वारका जाकर इसने कृष्ण की सहायता से सुभद्रा का हरण किया।

अर्जुन ने अपनी दिग्विजय में कुलिंद-देश के राजा को जीता, आनर्त और कालकूट देशों पर सत्ता स्थापित की, सुमण्डल राजा को हराया। फिर शाकलद्वीप और प्रतिविन्ध्य, सप्तद्वीप, प्राग्ज्योतिष, उलूक, गंधर्व, हरिवर्ष, चौल आदि देशों के राजाओं को जीता।

इसने किरात वेशधारी शंकर से युद्ध कर उनसे पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया। स्वर्ग में जाकर इंद्र से इसने अनेक अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। वहाँ उर्वशी (दे०) की संभोग-याचना को ठुकराने पर शापवश इसे एक वर्ष तक बृहन्नला नाम से नपुंसकत्व ग्रहण करना पड़ा और अपने को द्रौपदी की परिचारिका प्रसिद्ध किया। इस स्थिति में भी इसने सारथि रूप में विराट् की सहायता की तथा पुरस्कार-स्वरूप उत्तरा को अपने पुत्र अभिमन्यु (दे०) के लिए स्वीकार किया।

महाभारत के युद्ध के लिए अर्जुन ने कृष्ण की दशकोटि गोपालों की नारायणी नामक सेना न चुनकर निश्शस्त्र कृष्ण को सारथि-रूप में चुना और उक्त सेना दुर्योधन (दे०) को मिली। कृष्ण ने सारथि-रूप में युद्ध-भूमि में अर्जुन को कर्त्तव्य-च्युत होने से परावृत्त करने के लिए जो उपदेश दिया वह 'भगवद्गीता' (दे० गीता) नाम से विश्व-विख्यात है। इस युद्ध में अर्जुन ने सर्वाधिक पराक्रम दिखाया, यहाँ तक कि शिखण्डी को भीष्म के आगे रखकर उन्हें इसने ही नीचे गिराया, तथा उनके लिए तीन बाणों का तकिया तैयार किया और भूमि में बाण मारकर उनके लिए जल प्राप्त कराया। इसने जयद्रथ-वध द्वारा अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लिया। इसने कर्ण (दे०) का बध किया। महाभारत-युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर (दे०) ने अर्जुन की देखरेख में अश्वमेध का अश्व छोड़ा। इस प्रकार अर्जुन को 'महाभारत' में अपने समय के एक महान् पराक्रमी व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। जब पांडव हिमालय पर जा रहे थे तो इसकी मृत्यु 106 वर्ष की आयु में हुई। अर्जुन और द्रौपदी से उत्पन्न श्रुतिकीर्ति की मृत्यु महाभारत युद्ध में हुई। सुभद्रा से उत्पन्न पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह में मारा गया, और चित्रांगदा का पुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर का राजा बना। उलूपी का पुत्र इरावत भी युद्ध में मारा गया। अंततः अर्जुन का पौत्र परीक्षित् राजा बना।

अर्जुनदेव, गुरु *(पं०ले०)* [जन्म—1563 ई०, मृत्यु—1606 ई०]

ये सिख-पंथ के पाँचवें गुरु थे। इनका जन्म गुरु रामदास जी के घर, बीबी भानी के गर्भ से गोइंदवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक स्थान पर हुआ। 16 वर्ष की आयु में कृष्णचन्द्र की पुत्री गंगादेवी से इनका विवाह हुआ। इनके सुपुत्र हरगोविन्द जी सिख-पंथ के छठे गुरु कहलाए।

गुरु अर्जुनदेव 2 सितम्बर सन् 1581 को गुरु-गद्दी पर विराजमान हुए। इन्होंने पंथ की कार्य-प्रणाली को व्यवस्थित रूप दिया। तरनतारन, संतोख-सर, करतारपुर तथा रामसर इनके जीवन-स्मारक हैं। इन्होंने सन् 1604 ई० में 'गुरु ग्रंथ साहब' की प्रथम हस्तलिखित प्रति तैयार करवाई और उसी वर्ष उसे सिख धर्म के पवित्र ग्रंथ के रूप में हरिमन्दिर (अमृतसर) में प्रतिष्ठित करके बाबा बुड्ढा जी को पहला ग्रंथी बनाया। इस प्रकार पौने पच्चीस वर्ष तक पंथ की अनेकविध सेवा और गुरु-मत के नियमों की रक्षा करते हुए 43 वर्ष तक की आयु में इन्होंने रावी के तट पर शरीर-त्याग किया।

गुरु अर्जुनदेव न केवल महान धार्मिक नेता, सात्त्विक संत एवं कुशल जाति-सगंठक थे अपितु एक उत्कृष्ट कवि, राग एवं छंदविद्या-निष्णात तथा साहित्य और संस्कृति के सच्चे साधक भी थे। 'गुरु ग्रंथ साहब' में इनकी वाणी इन शीर्षकों के अंतर्गत प्राप्त है—बावन-अक्खरी (दे०), जैत सरीदी वार, सुखमनी (दे०) साहिब, गाथा, फुनहे (दे०), मारू, डरवणै (दे०), अठवारा, राग माझ, सहस्कृती, अष्टपदियाँ (दे०), और शवद (दे०) आदि। इनके काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति-वैराग्य, मानव-सेवा और शांति है और भाषा में भावानुकूल शब्द-चयन का कौशल परिलक्षित होता है।

अर्जुन-भंजन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शताब्दी] (दे०)

इस नाटक की कथावस्तु 'भागवतपुराण' और 'विल्वमंगलस्रोत' से ली गई है। यशोदा उबलते हुए दूध को उतारने के लिए कृष्ण को गोद से उतार कर दौड़ी जाती है। इससे रुष्ट होकर कृष्ण मटकी फोड़ देते हैं। वे मक्खन खाते हैं और बंदरों को बाँट देते हैं। यशोदा उन्हें उलूखल से बाँध देती हैं। जैसे ही वे दो अर्जुन वृक्षों के पास पहुँचते हैं, वृक्ष टूट कर गिर पड़ते हैं। नाटककार माधवदेव के अन्य नाटकों के समान इस नाटक का उद्देश्य भी कृष्ण की बाललीलाओं का चित्रण करना है। यह असमीया के प्राचीन नाटकों में एक है।

अर्णोस पातिरि (मल० ले०)

वास्तविक नाम जोण एरणस्तस है। ये हंगरी देश के मूल निवासी हैं और सन् 1622 में केरल आए। सन् 1732 में इनकी मृत्यु मध्य केरल में हुई। नंपूतिरि समुदाय के पंडितों से इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। फिर मलयाळम पढ़कर उस भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'णत्तन पाना' में ईसा मसीह का चरित्र लिखा गया है। पूंतानम् (दे०) की 'ज्ञानप्पाना' (दे०) नामक कृति से प्रभावित होकर इन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की है। लोक सृष्टि से लेकर ईसा के स्वर्गारोहण तक की कथा इसमें वर्णित है। इनके अतिरिक्त 'मरणपर्वम्', 'विधिपर्वम्', 'नरकपर्वम्', 'मोक्षपर्वम्', 'उमापर्वम्' अथवा 'देवमातृचरितम्' जैसी कविताएँ भी इन्होंने लिखीं। विदेशी होने पर भी केरली का अध्ययन कर उसमें सहज काव्य-रचना करना इनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है।

अर्थप्रकृतियाँ *(सं० पारि०)*

नाटक की कथावस्तु में फल-सिद्धि के साधनों की दृष्टि से संस्कृत-नाट्यशास्त्र में वस्तु को पाँच अवस्थाओं में विभक्त किया जाता है, जिनका शास्त्रीय अभिधान 'अर्थप्रकृति' है। पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं : बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य। 'नाट्यदर्पण' (दे०) में अर्थप्रकृति को कारण मानकर 'उपाय' की संज्ञा दी गई है। धनिक और विश्वनाथ (दे०) के अनुसार ये नाटक में 'प्रयोजन-सिद्धि की हेतु हैं (प्रयोजन-सिद्धि हेतवः)।

'बीज' वस्तुतः कथानक का बीज है जिसमें फल की संपूर्ण संभावनाएँ पहले से ही निहित रहती हैं। प्रारंभ में ही अंकुरित होकर नाटक के विकास के साथ-साथ यह क्रमशः वस्तु-वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। 'बिंदु' की प्रकल्पना में तैलबिंदु का रूपक है। जिस प्रकार जल के धरातल पर तेल की बूंदें स्वतः विस्तार प्राप्त कर लेती हैं उसी प्रकार नाट्य-प्रयोजन की सिद्धि का यह दूसरा हेतु नाटकीय वस्तु पर छा जाता है। 'पताका' व्यापक, किंतु प्रासंगिक इतिवृत्त है जिससे प्रधान फल की सिद्धि में सहायता मिलती है। 'प्रकरी' कुछ कम व्यापक इतिवृत्त है, जिसके नायक के समस्त कार्यकलाप अपने 'फल' की सिद्धि के लिए न होकर 'आधिकारिक' वस्तु के नायक के लिए उद्दिष्ट होते हैं। 'कार्य-बीज' के रूप में उपक्षिप्त नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मूल उपाय की अंतिम परिणति है। इस अवस्थान में नाटक के सुदीर्घ कलेवर में परिव्याप्त विभिन्न साधनों और कार्यकलापों को पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। इसका संघटन 'निर्वहण' संधि (दे० नाट्यसंधियाँ) और 'फलागम' के समानांतर होता है।

अर्थविज्ञान *(हिं० पारि०)*

अर्थविज्ञान भाषाविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है जिसमें भाषा के अर्थ-पक्ष का अध्ययन होता है। भाषा के अन्य पक्षों की तरह अर्थ का अध्ययन भी वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक तीनों प्रकार का हो सकता है। साथ ही यह अध्ययन सैद्धांतिक भी हो सकता है और प्रायोगिक भी। अर्थविज्ञान के अंतर्गत जिन विषयों का अध्ययन होता है उनमें कुछ प्रमुख हैं : शब्द और अर्थ का संबंध; किसी शब्द, शब्दबंध, पद, पदबंध, उपवाक्य या वाक्य आदि का अर्थ-निर्धारण; अभिधार्थ तथा लक्ष्यार्थ-व्यंग्यार्थ, अनेकार्थी शब्दों का अर्थ-वितरण; अर्थ-परिवर्तन—उसके कारण और दिशाएँ [(अर्थ-संकोच (दे०), अर्थविस्तार (दे०), अर्थादेश (दे०)], पर्यायवाची शब्द, विलोम शब्द आदि।

अर्थ-विस्तार *(हिं० पारि०)*

किसी भाषा में सभी शब्दों का अर्थ हमेशा एक-सा नहीं रहता। उसमें परिवर्तन होता रहता है। 'अर्थ-विस्तार' अर्थ-परिवर्तन की एक मुख्य दिशा है। अर्थ-विस्तार का अर्थ है किसी शब्द के अर्थ में विस्तार हो जाना। उदाहरण के लिए 'स्याही' शब्द का मूल अर्थ 'काली स्याही' है, क्योंकि 'स्याह' का अर्थ 'काला' है, किंतु अब हरी, नीली, लाल स्याहियों को भी स्याही ही कहते हैं। इस तरह इस शब्द के अर्थ में विस्तार हो गया है। इसी तरह संस्कृत 'कल्य' का अर्थ था 'आने वाला कल' किंतु 'कल्य' से ही निकला हिंदी शब्द 'कल' आने वाले तथा बीते हुए दोनों 'कल' का द्योतक है। यों शब्दों में अर्थ-विस्तार अपेक्षाकृत कम होता है।

अर्थशास्त्र *(सं० कृ०)* [लेखक कौटिल्य (दे०), रचना-काल—300 ई० पू०]

डा० काणे ने अर्थशास्त्र का रचना-काल 300 ई० पू० माना है। डा० जॉली विंटरनिट्ज़ तथा कीथ (दे०) कौटिल्य को अर्थशास्त्र का लेखक नहीं मानते।

अर्थशास्त्र राजनीति का अद्भुत ग्रंथ है। अर्थशास्त्र में 'अर्थ' शब्द का आशय राजा और प्रजा से है। इस प्रकार अर्थशास्त्र का उद्देश्य राजा और राष्ट्र दोनों को समृद्ध बनाना है। अर्थशास्त्र के अधिकरण-क्रम से प्रमुख विषय—विनयाधिकारिक, अध्यक्षप्रचार, धर्मस्थीय, कण्टकशोधन, योगवृत्त, मण्डलयोनि, षाड्गुण्य, व्यसनाधिकारिक, अभियास्यत्कर्म, सांग्रामिक, संघवृत्त, आबलीयस, दुर्गलभ्योपाय, औपनिषदिक तथा तन्त्रयुक्ति आदि हैं। विनयाधिकारिक के अंतर्गत राजर्षि, अमात्य, गुप्तचर तथा राजदूतों की नियुक्ति आदि का वर्णन है। अध्यक्ष-प्रचार के अंतर्गत दुर्गविधान, सुवर्णाध्यक्ष के कार्य तथा शुल्काध्यक्ष आदि का विवेचन है। धर्मस्थीय के अंतर्गत दीवानी-फ़ौजदारी संबंधी विवादों का उल्लेख है। कण्टक-शोधन के अंतर्गत भ्रष्टाचार मिटाने, कन्या-संबंधी अपराध आदि का वर्णन किया गया है। योगवृत्त में राजकोष बढ़ाने के उपाय तथा भृत्यों के भरण-पोषण की विधि का वर्णन है। मण्डलयोनि के अंतर्गत राजा तथा मंत्री आदि का वर्णन है। व्यसनाधिकारिक के अंतर्गत राज्य पर आने वाले संकटों, अभियास्यत्कर्म के अंतर्गत सेना की तैयारी आदि, सांग्रामिक के अंतर्गत व्यूह और प्रतिव्यूह आदि, संघवृत्त के अंतर्गत भेद प्रयोग आदि, आबलीयस के अंतर्गत राजदूत के कर्म आदि, दुर्गलभ्योपाय के अंतर्गत विजित प्रांतों में शांति-स्थापना आदि औपनिषदिक के अंतर्गत औषधि प्रयोग आदि तथा तन्त्रयुक्ति के अंतर्गत अर्थशास्त्रीय शब्दों की परिभाषा प्रस्तुत की गई है।

वस्तुतः अर्थशास्त्र प्राचीन राजनीति-विषयक ग्रंथों का सारभूत ग्रंथ है। अर्थशास्त्र में समाज-कल्याण एवं व्यक्तिगत त्याग की समुचित योजना प्रस्तुत की गई है।

अर्थ-संकोच *(हिं० पारि०)*

भाषाओं में अनेक शब्दों के अर्थ परिवर्तित होते रहते हैं। जब किसी शब्द का अर्थ पहले की तुलना में संकुचित हो जाता है तो उस अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-संकोच' कहते हैं। अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति सभी भाषाओं में अपेक्षाकृत बहुत अधिक मिलती है। उदाहरण के लिए 'मृग' का पुराना अर्थ था पशु (मृगराज=पशुओं का राजा, शाखामृग=शाखा पर रहने वाला पशु अर्थात् बंदर, मृगया=पशुओं का शिकार) किंतु हिंदी में यह केवल एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु 'हिरन' का वाचक है। इसी तरह मुर्ग (शुतुरमुर्ग=ऊँट जसी (गर्दन वाला) पक्षी, मुर्गाबी=पानी का पक्षी) मूलतः सभी पक्षियों का वाचक है किंतु अब यह केवल एक पक्षी का नाम है। पंकज, जलज, वेदना आदि अनेक अन्य शब्दों में भी 'अर्थ-संकोच' की प्रक्रिया देखी जा सकती है।

अर्थादेश *(हिं० पारि०)*

कभी-कभी कुछ शब्दों का अर्थ कुछ-से-कुछ हो जाता है। अर्थ के ऐसे परिवर्तन को 'अर्थादेश' कहते हैं। उदाहरण के लिए मूलतः 'हरिजन' शब्द भक्त का पर्याय है, किंतु अब यह 'अछूत' का समानार्थी हो गया है। इसी तरह संस्कृत का 'वाटिका' शब्द बँगला में मकान का द्योतक 'बाड़ी' हो गया है। दूल्हा (मूलतः दुर्लभ=जिसका मिलना कठिन हो), पाखंड (मूलतः पाषंड=एक संप्रदाय), बुद्धू (मूलतः बौद्ध) तथा भद्दा (मूलतः भद्र=अच्छा, भला) आदि भी इसी के उदाहरण हैं।

अर्थानुरणन *(आनोमैटोपोइया) (हिं० पारि०)*

भाषाशास्त्र के अनुसार यह भाषा की एक विशेषता है तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र में यह काव्यालंकार कहा गया है। ध्वनि के आधार पर सार्थक शब्दों का निर्माण तथा ध्वनि के अनुकरण पर वस्तुओं, भावों और विचारों का नामकरण 'अर्थानुरणन' है। काव्य में इसके प्रयोग का आशय है ध्वनि-निर्मित चित्र अर्थात् ध्वनि के माध्यम से ऐसे चित्र का निर्माण जो अर्थोद्बोधन तथा भावोद्बोधन में पूर्णतः समर्थ हो, जैसे—नूपुर का काव्यात्मक चित्रण 'रणन-रणन' शब्दों के द्वारा तथा प्रचंड अग्नि का अर्थ-बोधन 'दहक' शब्द के द्वारा किया जाता है। भाषा के बहुत से शब्दों की रचना अनुरणन के सिद्धांत के आधार पर हो जाती है, जैसे 'पुचकारना', 'छलकाना' (छलकना), 'सरपट दौड़ना', 'झटपट' इत्यादि। वस्तुओं की स्वरूपगत विशेषता की अतिसार्थक व्यंजना भी इसी प्रकार के शब्दों द्वारा की जाती है, जैसे—'सपाट'। यह शब्द सड़क और मैदान के लिए तो सार्थक है ही, विचारों और चरित्रों के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। अर्थानुरणनपूर्ण शब्दों के निर्माण का आधार मूलतः ऐंद्रिय है। काव्य में इसके प्रयोग द्वारा एक ओर नाद-सौंदर्य की सृष्टि तथा दूसरी ओर अर्थ-व्यंजना-सामर्थ्य की संवृद्धि होती है।

अर्द्धनेमिपुराण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता नेमिचंद्र हैं जिनका समय 1200 ई० के क़रीब माना जाता है। इनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति है 'लीलावती'। यह बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ पर लिखा गया एक 'चंपूग्रंथ' है। इस जिनकथा में कवि वसुदेवाच्युत एवं कंदर्प की कथा भी सँजोई गई है। आठवें आश्वास के अंत तक अर्थात् कंसबध प्रकरण तक यह काव्य उपलब्ध है। शेष अंश अनुपलब्ध है। अनुमान किया जाता है कि कवि इसे अपूर्ण छोड़कर ही दिवंगत हो गया होगा; अतः इस काव्य का नाम 'अर्द्धनेमिपुराण' पड़ा है। इसमें नेमि तीर्थंकर के पूर्वजन्मों की कहानी थोड़ी-सी आती है; उपकथाएँ बहुत-सी हैं जिनके निरूपण में कवि को सफलता मिली है। प्राप्तांश में कृष्णचरित्र ही प्रधान है। कृष्ण यहाँ अन्य आख्यानों के समय देवताओं की सहायता से प्रवर्द्धमान बालक नहीं हैं, स्वार्जित यशःमंडित शूर हैं। वामनावतार में आने वाले त्रिवि का वर्णन अत्यंत भव्य है। चाणूर एवं कृष्ण-मल्लयुद्ध तथा कंसवध अत्यंत सरस प्रसंग है। यहाँ के वसुदेव एवं कृष्ण आदि परिवेश में नहीं ढके गये हैं। वसुदेव केवल विलासी नहीं हैं, वीर हैं। कंस केवल दुष्ट नहीं है; उसमें भय, स्नेह, गुरुभक्ति आदि अन्य गुण भी हैं। इस प्रकार चरित्र-निर्माण में कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इसके वर्णन भी प्रसंगोचित एवं भावदीप्त हैं। अलंकार भी सहज रूप में आए हैं। इसमें महाकाव्य का सत्त्व अवश्य है किंतु सिद्धि नहीं है। इसकी मृदुपद-बंधुरता तथा प्रौढ़िमा श्लाघ्य है। इस दृष्टि से यह 'लीलावती' से श्रेष्ठ कृति है।

अर्द्धशताब्दीर ओड़िशा ओ तहिंरे मो स्थान *(उ० कृ०)*

अनुभूति की निष्कपट सरस अभिव्यक्ति सरल, चित्ताकर्षक भाषा-शैली, रोमांचक अभिज्ञता आदि की दृष्टि से श्री गोदावरीश मिश्र (दे०) की 'अर्द्धशताब्दीर ओड़िशा ओ तहिंरे मो स्थान' आत्मजीवनियों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसकी भूमिका में ग्रंथकार ने लिखा है—

"क्या लिखूँ ? मेरे जीवन में रोमांचकारी घटनाएँ नहीं हैं। मेरी लेखन-परिपाटी बहुत ज़्यादा न होते हुए भी अत्यल्प भी नहीं है। यह तो नहीं है किंतु उसके बल पर लिखना शुरू करूँ, तो उपन्यास ही लिखूँगा; आत्मजीवनी नहीं। फलतः परिपाटी छोड़कर मुझे केवल साधारण दुखी जीवन की घटनावलियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन ही करना पड़ेगा।

मरे हुए धान से चावल कम ही निकलता है, भूसी अधिक निकलती है। अतः इस लेख में मेरे लिए छिलका निकालकर फेंक देने का रास्ता नहीं है, क्योंकि ऐसा करने पर शायद सभी फेंक देना पड़ेगा। किंतु जिस धान में थोड़ा-थोड़ा चावल होता है, उससे खीलें बनती हैं, जो गरीबों का भोजन है। मेरे समान अनेक दीन एवं दरिद्र समाज के निम्न स्तर पर निरंतर जीवन-संग्राम में संलग्न हैं। उन्हीं लोगों को शायद इस लेख से उपादान मिले। वैभवशाली एवं सुविधाभोगियों के लिए यह नहीं है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस आत्मस्वीकृति में उपर्युक्त रचना की समस्त विशेषताएँ अंतर्निहित हैं। लेखक जातीयतावादी है; इसीलिए विषयवस्तु एवं अभिव्यंजना में गणचेतना अभिव्यक्त हुई है। इस ग्रंथ की भाषा यद्यपि सर्वजनसुलभ है तथापि शैली में प्रांजलता, और अपूर्व भंगिमा के दर्शन होते हैं।

यह आत्मचरित असमाप्त होते हुए भी साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत है। इसका प्रकाशन सन् 1962 में मिश्र जी की मृत्यु के बाद हुआ था।

अर्पुदत्तिरुवंदादि *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की छठी शताब्दी]

यह प्रसिद्ध शिवभक्त कवयित्री कारैक्काल अम्मैयार की स्फुट कविताओं का संग्रह है। विद्वानों ने इनका समय ईसा की छठी शताब्दी माना है। विभिन्न कविताओं में कवयित्री ने अपने रहस्यात्मक अनुभवों का वर्णन किया है। भगवान शिव में अनन्य भाव से अनुरक्त होने के कारण कवयित्री अपनी एक कविता में कहती हैं कि वे बचपन से ही अपने प्रियतम शिव के वियोग में तड़प रही हैं। इस कृति के विभिन्न पदों में भगवान शिव के रूप का जो वर्णन मिलता है उसको पढ़ने से यह सिद्ध हो जाता है कि उस समय तमिलनाडु में कापालिक शैवों की परंपरा विद्यमान थी। संपूर्ण कृति वेण्बा छंद में रचित है। जिन पदों में कवयित्री ने श्मशान भूमि में शिवजी के नृत्य का वर्णन किया है वे संगीतात्मकता की दृष्टि से अति सुंदर बन पड़े हैं। शैव-मतानुयायी बड़े आदर के साथ इन पदों का पाठ करते हैं। ये पद शैव-मतानुयायियों के पावन धर्मग्रंथ 'तिरुमुरै' के ग्यारहवें खंड में संगृहीत हैं। अंतादि तमिल की *16* गौण काव्य-विधाओं में से है। इसे अंतादि विधा में रचित आरंभिक कृतियों में परिगणित किया जाता है।

अर्वाचीन कविता *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

काव्य-सर्जन के विषय में कवि का निजी प्रत्यक्ष अनुभव उसे कविता के अंगोपांगों की विवेचना करने में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है। कवि सुंदरम् (दे०) के समीक्षा-ग्रंथ 'अर्वाचीन कविता' का अध्ययन करने पर यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है। सुंदरम् ने 'अर्वाचीन कविता' में अर्वाचीन युग के सभी कवियों की लगभग ग्यारह सौ काव्यकृतियों का बड़ी गहराई से अध्ययन कर और उनके गुण-दोषों का विश्लेषण कर बड़ी तटस्थता, निर्भीकता और स्पष्टता से सबका यथोचित मूल्यांकन किया है। इसीलिए यह ग्रंथ अत्यंत मूल्यवान और प्रामाणिक माना जाता है। इसमें बालाशंकर, नानालाल इत्यादि की कृतियों का परंपरागत मानदंडों के आधार पर विवेचन नहीं हुआ है। इसलिए इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पर काव्य के आभ्यंतर तत्त्वों को आधारभूत बनाकर अर्वाचीन गुजराती कविता की जो विकास-रेखा इस ग्रंथ में अंकित की गई है, वह गुजराती समीक्षा साहित्य को सुंदरम् का स्थायी योगदान है।

अर्वाचीन काव्य साहित्यनां वहेणो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

इसके रचयिता श्री रामनारायण पाठक (1887-1955 ई०) (दे०) ने बंबई विश्वविद्यालय की ठक्कर माधवजी वसनजी व्याख्यानमाला में 1936 ई० में पाँच व्याख्यान दिए थे जिनका प्रकाशन 1939 ई० में बंबई विश्वविद्यालय से हुआ। इन व्याख्यानों में उन्होंने अँग्रेज़ी कविता के प्रभाव से नई कविता के उद्भव से लेकर 1935 ई० तक की कविता की आलोचना की है। इस पुस्तक में उन्होंने काव्य-विषय, छंद, अलंकार, काव्यशिल्प, भाव, रस और भाषा आदि की दृष्टि से कविता की आलोचना की है और प्रत्येक दृष्टि से काव्य का विकास-क्रम दिखाया है। गुजराती काव्य-विवेचन में यह पुस्तक नए मापदंड प्रस्तुत करती है। कौन-से परिवेश और परिस्थितियाँ काव्यधारा को नए-नए मोड़ देने में सक्रिय थीं—इसका विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण लेखक ने किया है। गुजराती साहित्यालोचना में इस पुस्तक का बड़ा महत्त्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने आलोचना में भारतीय और पश्चिम के काव्य-सिद्धांतों का समन्वित उपयोग किया है और काव्य-विवेचन की नई दिशा दिखाई है।

अर्वाचीन चरित्रकोश *(म० कृ०)*

इसके संपादक सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव हैं। इसमें सन् 1818 से 1945 तक के प्रसिद्ध आधुनिक व्यक्तियों के चरित्रों का उल्लेख है।

लेखक ने तीन खंडों में चरित्रकोशों के निर्माण की जो योजना बनाई थी वह प्राचीन, मध्यकालीन और तदुपरांत, अर्वाचीन चरित्रकोश की निर्मिति के साथ समाप्त हुई।

यह संदर्भ-ग्रंथ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह कोश आधुनिक पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करता हुआ उनके ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालता है।

अलंकार *(सं०, हिं० पारि०)*

'अलंकार' का सामान्य अर्थ है भूषण या भूषित करने वाला, सज्जा या सज्जित करने वाला। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार को काव्य का उत्कर्ष विधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है; अलंकारवाद के अनुसार अलंकार काव्य का प्राणतत्त्व है।

'अलं' (भूषण) और 'कार' के योग से निर्मित अलंकार शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ प्रसिद्ध हैं: (1) 'अलंकरोतीति अलंकारः' (2) 'अलंक्रियतेऽनेन इति अलंकारः', (3) 'अलंकारणं इति अलंकारः'। प्रथम व्युत्पत्ति में अलंकार काव्य-सौंदर्य का कारक-धर्म है, द्वितीय में उसकी प्रकलपना केवल साधन-रूप में की गई है और तृतीय में उसे एक स्वतंत्र धर्म का रूप दे दिया गया है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा में काव्य-सौंदर्य के 'कर्त्ता' और 'साधन'—अलंकार के इन दो रूपों को लेकर विवाद रहा है। भामह (दे०), दण्डी (दे०), उद्भट (दे०), रुद्रट (दे०), रुय्यक (दे०), तथा जयदेव (दे०) आदि शुद्ध अलंकार-वादियों की दृष्टि में अलंकार काव्य-शोभा का कारण ही नहीं, प्रत्युत काव्यात्मा है। दूसरी ओर, ध्वनिवादी आनंद-वर्धन (दे०), वामन (दे०), कुन्तक (दे०), मम्मट (दे०), विश्वनाथ (दे०), तथा जगन्नाथ (दे०) ने अलंकार को महत्त्व प्रदान करते हुए भी उसे काव्य-सौंदर्य का साधन मात्र माना है।

अलंकार का शास्त्रीय स्वरूप-विश्लेषण प्रायः सभी प्रमुख आचार्यों ने किया है। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार के दो रूप प्रचलित रहे हैं: विभूषक अथवा शोभाकारक धर्म तथा काव्य-सौंदर्य। वामन ने इसके लिए 'सौंदर्य' तथा महिम भट्ट (दे०) ने 'चारुत्व' शब्द का प्रयोग किया है। भामह के अनुसार 'वक्र' शब्द और अर्थ का प्रयोग ही अलंकार हैं' (काव्यालंकार, 1/36)। यहाँ 'वक्र' का अर्थ है विचित्र अर्थात् साधारण से भिन्न। दूसरे शब्दों में, शब्दार्थ का विचित्र एवं असाधारण प्रयोग ही अलंकार है। दण्डी के अनुसार अलंकार 'काव्य के सौंदर्य-कारक धर्म' (काव्यादर्श, 2/1) तथा उद्भट के अनुसार 'चारुत्व के हेतु' हैं। मम्मट के मतानुसार 'अलंकार हार आदि की भाँति आभूषण के समान हैं तथा रस का उपकार करते हैं' (काव्यप्रकाश, 8/67)। विश्वनाथ ने इन्हें 'काव्य के सौंदर्य और रस का उत्कर्ष करने वाले अस्थिर धर्म' माना है।

अलंकार निश्चय ही काव्य का अत्यंत महत्त्व-पूर्ण तत्त्व है। इसके द्वारा अभिव्यक्ति में सौंदर्य, चमत्कार, मार्मिकता, सार्थकता, पैनापन व अनूठापन आता है। इस प्रकार यह भाव-संप्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण—कदाचित् सर्वा-धिक महत्त्वपूर्ण—उपकरण, साधन है। किंतु इसे काव्य-सर्वस्व अथवा काव्यत्व का आधार भी नहीं माना जा सकता।

अलंकार दो प्रकार के माने गए हैं: शब्द द्वारा सौंदर्य का उत्कर्ष करने वाले 'शब्दालंकार' तथा अर्थ के उत्कर्ष द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने वाले 'अर्थालंकार'। जिन उक्तियों के सौंदर्य में शब्द और अर्थ दोनों के अलं-कारों का समान योग होता है, उन्हें उभयालंकार कहा जाता है। अलंकार की संख्या अनिश्चित है, आचार्यों ने समय-समय पर अपनी उद्भावनाओं द्वारा इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि की है। अलंकारों का वर्गीकरण भी अनेक आचार्यों ने किया है। इनमें सर्वप्रथम उल्लेखनीय रुद्रट हैं, जिन्होंने वैज्ञानिक आधार पर अलंकारों के चार वर्ग निश्चित किए: वास्तव, औपम्य, अतिव्यम और श्लेष। रुय्यक द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण भी बहुत समय तक मान्य रहा: सादृश्य-गर्भ, विरोध-गर्भ, श्रृंखलाबद्ध, न्याय-मूल, गूढ़ार्थ प्रतीतिमूल।

अलंकारमंजूषा *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ का रचना-काल सन् 1931 है। लेखिका है कु० वाळूताई खरे। इसमें शब्दालंकारों तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थालंकारों का विस्तृत विवेचन है और आरंभ में अलंकारों की उत्पत्ति व उनके विकास का इतिहास दिया गया है। प्रत्येक अलंकार के लक्षण और स्वरूप के निर्देशन में भामह (दे०) से लेकर आचार्य जगन्नाथ (दे०) तक की विशिष्ट मान्यताओं का उल्लेख है।

अलंकारसर्वस्व *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती मध्य]

'अलंकारसर्वस्व' के रचयिता राजानक रुय्यक (दे०) हैं। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'अलंकारसूत्र' भी है। रुय्यक की कीर्ति का यही एकमात्र आधार है। अलंकार-निरूपण के लिए यह बड़ा प्रौढ़ तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें दो नवीन अलंकारों—विकल्प और विचित्र—का समावेश भी किया गया है। रुय्यक ध्वनि-सिद्धांत के अनुयायी हैं तथा ग्रंथारंभ में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों की सारगर्भित समीक्षा की है। इनकी अलंकार-संख्या मम्मटाचार्य (दे० मम्मट) से अधिक तथा अधिक व्यापक एवं विस्तृत है। विश्वनाथ (दे०) कविराज, अप्पयदीक्षित (दे०) तथा विद्याधर आदि पिछले आलंकारिकों ने रुय्यक के इस मान्य ग्रंथ से प्रेरणा प्राप्त कर स्वमत-पुष्टि के लिए इसके उदाहरण दिए हैं।

अळकिन् शिरिप्पु *(त० कृ०)*

यह भारतीदासन् (दे०) की कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं में कवि ने विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन किया है जैसे लहरीला समुद्र, शीतल मंद दाक्षिणात्य पवन, पहाड़ी के पीछे छिपता हुआ सूर्य, कमलों से युक्त तड़ाग आदि। कुछ कविताओं में मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों के क्रियाकलापों का वर्णन है जैसे कमल-तड़ाग में युवतियों का स्नान करना, नदी में जल-प्रवाह के बढ़ जाने पर शिशुओं का प्रसन्न होकर अपने माता, पिता, मामा, दादा आदि को पुकारना, बंदरों का पेड़ों पर उछलना, भौंरों का गुंजार आदि। अंतिम कविता में कवि ने स्वयं को भौंरे के रूप में और संपूर्ण सृष्टि को पुष्पों के उद्यान के रूप में चित्रित किया है। जिस प्रकार भौंरा विविध पुष्पों से रसपान करता है ठीक उसी प्रकार कवि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ से रस प्राप्त करता है। इनमें प्राचीन तमिल गीतों के भाव-सौंदर्य के दर्शन होते हैं। विभिन्न कविताओं में प्राप्त कल्पना-चित्र अत्यंत प्रभावशाली है। ये कविताएँ सरल शैली में रचित हैं। इस कृति में कवि ने अपने इस नवीन दृष्टिकोण को व्यक्त किया है कि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में सौंदर्य है। उस सौंदर्य के अनुभव की तीव्र इच्छा होने पर हम उसका अनुभव कर सकते हैं।

अषगिरिसामी, कु० *(त० ले०)* [जन्म—1923 ई०, मृत्यु—1970 ई०]

इनका जन्म तिरुनेलवेली जिले में स्थित इडैशेवल नामक स्थान में हुआ। इनके उपनाम हैं—सारसांगी, जी० चेल्लैया और कुवळै। अषगिरिसामी तमिल और अँग्रेज़ी भाषा के पंडित हैं। इन्होंने लगभग पच्चीस कृतियों की रचना की जिनमें 'कर्पक वृक्षम्', 'दैवम पिरन्ददु' (कहानी-संग्रह), 'कविच्चकवर्त्ती', 'वैकुण्डत्तिल वाल्मीकि-कम्बर' आदि (रंगमंचीय नाटक), 'मुक्कुडळ पळ्ळु', 'विल्लिभारदम्' (नृत्य नाटक), 'तमिल तन्द कवियमुदम' (निबंध-संग्रह), 'मून्रु-पिळ्ळैहळ्' (बाल-साहित्य) आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने ग्यारह अँग्रेज़ी रचनाओं का तमिल में अनुवाद किया। अषगिरिसामी ने कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संपादक और गांधी साहित्य प्रकाशन समिति में सह-संपादक के रूप में भी कार्य किया है। ये गांधीवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। इनकी कुछ कहानियाँ देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। इन्हें 'अन्बळिप्पु' (कहानी-संग्रह) पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है।

अलाहुणीयाँ *(पं० पारि०)*

यह शोकपूर्ण लोकगीत है। किसी की मृत्यु पर स्त्रियाँ मिलकर इसे गाती हैं। एक स्त्री (प्रायः नाइन) इसे गाती जाती है और समूह की शेष नारियाँ इसकी एक तुक विशेष को बार-बार दुहराकर छाती पीटती हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में वडहंस राग में रचित कुछ अलाहुणीआँ संगृहीत हैं।

उदाहरण :

मस अजे न फुट्टी, शेर सरूं जेहा
हाय हाय, शेर सरूं जेहा ॥
लुट्टी वे मैं लुट्टी, शेर सरूं जेहा।
हाय हाय शेर सरूं जेहा ॥
रोवे चूड़े वाली, शेले सरूं जेहा
हाय हाय शेर सरूं जेहा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अळिदमेले (क० कृ०)

यह कन्नड के महान् उपन्यासकार श्री शिवराम कारंत (दे०) के श्रेष्ठ उपन्यासों में से है। यह उनकी अद्यतन कृतियों में है। कारंत की जीवन-दृष्टि उनकी हाल की कृतियों में अधिक स्पष्ट और मुखर रूप में प्रकट हुई है। उनके सारे नवीन उपन्यास मनुष्य के पुरुषार्थों का मूल्यांकन करने वाले हैं।

'अळिदमेले' (मरने पर) उपन्यास की शिल्प-विधि अनोखी है। कथानायक को छोड़कर बाकी सब चरित्र गौण हैं। कथानायक यशवंतराव अपने अवसान के समय अपने पास बचे पंद्रह हज़ार रुपये तथा एक आत्मवृत्तपूर्ण पत्र अपने एक मित्र के पास छोड़ गए हैं। इस तरह कथानायक के अंत से कहानी का आरंभ होता है। उस पत्र में धन का विनियोग कैसे हो—इस बारे में भी निर्देश है। उस मित्र को यशवंतराव के जीवन के कुछ ही अंश मालूम हैं। वे एक बड़े चित्रकार थे, अपनी गृहिणी एवं गृहस्थी छोड़कर वे बंबई आ बसे थे। दादा तथा रीमा जैसे अपरिचित व्यक्तियों से संबंध स्थापित किया था। यह मित्र उस पत्र के आदेशानुसार उन व्यक्तियों की खोज में चल पड़ता है। जैसे-जैसे वह खोज करने जाता है वैसे-वैसे कथा बढ़ती है। यशवंतराव के व्यक्तित्व के अन्य सूत्र आ जुड़ते हैं। यशवंतराव का चरित्र इस तरह वैयक्तिक संबंधों के द्वारा पुनर्निर्मित होता है। बहुत से लोगों की सद्भावना उनके प्रति नहीं है। उनकी पत्नी, पुत्र, सगे-संबंधी उनकी संपत्ति पर आँखें लगाये बैठे हैं। उनकी दृष्टि में यशवंतराव अपव्ययी, फक्कड़ तथा पथभ्रष्ट व्यक्ति थे। उनके दामाद मंजैया, पुत्री जलजाक्षी, प्रेयसी धारेश्वर सरसी की इंदुमती, मित्र विष्णुपंत घाटे आदि पात्र अपने स्वभाव का परिचय देते हुए यशवंतराव का चरित्र-निर्माण करते हैं। उनकी दैनिकी तथा मित्र यही बताते हैं कि संसार में वैयक्तिक संबंध से बड़ा कुछ भी नहीं है। जीवन में प्रीति ही एकमात्र सार्थक वस्तु है। जीवन की हर वस्तु उन्हें प्यारी है।

यशवंतराव जी का चित्र इस प्रकार अत्यंत मानवीय है। जीवन और मरण में उनकी दृष्टि में एकमात्र शाश्वत सत्य है मानवता। मानवता को छोड़कर सत्य भी उनके लिए अनावश्यक है। इस तरह मानवतावाद की यह एक विराट् कृति है। मानवतावाद को दर्शन की कसौटी पर कसने पर उठनेवाली सारी उलझनें यहाँ भी हैं। लेखक यशवंतराव के व्याज से नैतिकता और अनैतिकता की छानबीन करने लगते हैं। किंतु उपन्यास में द्वंद्व सत् तथा असत् के बीच नहीं, स्वतंत्र दृष्टि तथा रूढ़िवाद के बीच है। यशवंतराव के प्रियजनों में रूढ़िवादी भी हैं किंतु मानवतावाद ही उनकी प्रिय वस्तु है। किंतु क्या मानवतावाद ही हमारी नैतिक समस्याओं का उत्तर बन सकेगा? यही एक प्रश्न है जिसका उत्तर देने में लेखक विफल है। अभिव्यंजना-कौशल, पात्र-निर्माण आदि में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है।

अलीगढ़ तहरीक (उर्दू पारि०)

'अलीगढ़ तहरीक' के प्रवर्तक सर सैयद अहमद (दे०) थे। उन्होंने मुसलमानों को अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी। 'अलीगढ़ तहरीक' एक व्यापक तहरीक थी जिसने लोगों के विचारों और अमल को प्रभावित किया। 'तहज़ीबुल इख़लाक' और 'इन्स्टीट्यूट गज़ट' नामक पत्रिकाएँ जारी की गईं जिन्होंने जहाँ मुसलमानों में आर्थिक सुधारों एवं नैतिकता के बीज बोए वहीं शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उर्दू गद्य के लिए स्वस्थ और गंभीर मानदंड भी स्थापित किए। इससे भाषा में सादगी, गांभीर्य, लोच और शक्ति उत्पन्न हुई।

1862 ई० में सैयद साहब ने 'साइंटेफ़िक सोसाइटी' की नींव रखी। इस सोसाइटी की स्थापना का उद्देश्य यह था कि प्रसिद्ध और विश्वस्त पुस्तकों का अँग्रेज़ी से उर्दू में अनुवाद कराया जाए ताकि मुसलमान पाश्चात्य विचारधारा से अवगत हो सकें। 1864 में जब सर सैयद अलीगढ़ पहुँचे तो यह सोसाइटी भी उनके साथ अलीगढ़ आ गई। धार्मिक अंधविश्वासी लोगों ने सर सैयद का खूब विरोध किया। इनकी मासिक पत्रिका 'तहज़ीबुल इख़लाक' ने भारतीय मुसलमानों के विचारों में एक क्रांति पैदा कर दी और इससे उनके धार्मिक विचारों में विस्तार एवं सुधार हुआ।

अली डोसो (गु० पा०)

धूमकेतु (दे०) कृत 'तणखा मंडल' (दे०) भाग एक की पहली कहानी 'पोस्ट ऑफ़िस' का मुख्य पात्र 'अली डोसा' है। इसी के द्वारा धूमकेतु यह प्रतिपादित करते हैं कि 'मनुष्य अपनी दृष्टि छोड़कर दूसरों की दृष्टि से देखे तो आधा जगत शांत हो जाय।' अली एक कार्यमुक्त वृद्ध कोचमैन है जिसकी पुत्री मरियम शादी करके ससुराल गई है। कई साल बीतने पर भी उसका कोई पत्र नहीं आता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए अली चिंता, पीड़ा और बेचैनी का शिकार बना रहता है। कहानीकार ने उसे बड़े कलात्मक ढंग से अंकित किया है। इसी के साथ अली का यौवनावस्था का शक्ति-संपन्न व्यक्तित्व चित्रित किया गया जो उसकी वर्तमान वृद्धावस्था को विशेष दयनीय बनाता है। प्रतिदिन प्रातः-काल बूढ़ा अली पोस्ट आफ़िस जाता है और बेटी की चिट्ठी की आशा में खिड़की के पास बैठता है। पाँच-छह घंटों के बाद पोस्ट आफिस की खिड़की खुलती है और डाकिया उसे बेटी का पत्र न आने की सूचना देता है। वह निराश होकर घर लौटता है। इस दैनिक कार्यक्रम के कारण डाक-कर्मचारी उसे पागल मानते हैं और उसका मज़ाक किया करते हैं। पर अली की दिनचर्या में कोई परिवर्तन नहीं होता। वार्द्धक्य के कारण अली का शरीर क्षीण हो जाता है, हाथ-पैर काँपने लगते हैं; चलना-फिरना कठिन हो जाता है। एक दिन वह पोस्ट आफ़िस के लक्ष्मी-दास नामक क्लर्क को पाँच गिनी देकर यह प्रार्थना करता है कि इस जर्जरित शरीर से अब मैं तो डाकघर नहीं आ पाऊँगा। मौत नज़दीक है, अगर मरियम की चिट्ठी आ जाए तो उसे मेरी क़ब्र पर रखवा देना। यों कहकर अली चला जाता है और फिर कभी नहीं आता।

इधर वह पोस्ट मास्टर चिंतित रहता है जो अली के साथ अशिष्ट व्यवहार करता था। उसे भी उसकी शादी-शुदा बेटी का कुशल-पत्र प्राप्त नहीं होता। एक दिन अली कोचमैन की बेटी का पत्र आता है। पोस्ट मास्टर पितृ-हृदय की वेदना को स्वयं अनुभव करने के कारण अली के प्रति सहानुभूति रखता है। लक्ष्मीदास को वह पत्र देता है। लक्ष्मीदास जब अली के यहाँ जाता है तब ज्ञात होता है कि अली का तीन मास पूर्व निधन हो चुका है। पोस्ट मास्टर और लक्ष्मीदास दोनों अली की क़ब्र पर पत्र रख देते हैं। इस प्रकार अत्यंत गंभीर और विषादमय वाता-वरण में 'पोस्ट आफ़िस' कहानी पूरी होती है और अली की मूक वेदना और अंतःस्पर्शी वाणी से पाठक अभिभूत हो जाता है। वस्तुतः 'अली डोसा' साकार कारुण्य-मूर्ति है।

अली मुहम्मद लोन *(कश्० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

ये बाल्यकाल के मेधावी छात्र और आज एक परिश्रमी लेखक और पैनी दृष्टि के विश्लेषक हैं। कश्मीरी भाषा का उपन्यास 'अँसि ति छि इनसान' (हम भी इनसान हैं) प्रकाशित हुआ है। 'विज़ छः सॉनी' (अब हमारी बारी है) नाटक लिखकर इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण दिया है। इन्होंने रवींद्र ठाकुर के प्रसिद्ध नाटक 'मुक्तधारा' का कश्मीरी भाषा में अनुवाद किया और सुय्या (अवन्तिवर्मन के दरबारी इंजीनियर) के जीवन से संबद्ध एक नाटक भी लिखा।

अलै ओशै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1953 ई०]

'अलै ओशै' कृष्णमूर्ति कल्कि (दे०)-कृत एक विशालकाय उपन्यास है। यह उपन्यास तीन भागों में विभाजित है। यह मूलतः कल्कि नामक मासिक पत्रिका में धारावाहिक कहानी के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें ललिता, सीता, तारिणी, सूरिया, सौंदर राघवन आदि की कथा वर्णित है। कथा की पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन है जिसमें सन् 1930 से 1947 तक देश में घटित विभिन्न घटनाएँ वर्णित हैं। कल्कि ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन, अहिंसा-नीति आदि का वर्णन भी किया है। 'अलै ओशै' वस्तुतः तमिल की आवाज़ है, उसका जय-घोष है। इसमें हमारी संस्कृति, शिक्षा, रीति-रिवाज, देशीय आंदोलन, न्याय, ईश्वर, विश्वास, विभिन्न मतवाद, ग्रामीण एवं नागरिक जीवन आदि की चर्चा है। लेखक ने उत्तरी भारत के कुछ प्रमुख नगरों का ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट किया है। इसमें ईश्वरभक्ति, जेल में कैदियों की दशा, निम्न एवं मध्यवर्गीय लोगों का जीवन, दांपत्य जीवन के सुख-दुःख, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम आदि भाव-नाओं के स्वरूप आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। उपन्यास में अनेक पात्र हैं। उनकी प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। अधिकांश पात्र धर्म, नीति, सदाचार, न्याय भक्ति आदि के आदर्श हैं। पात्रों में सजीवता है। इसमें विविध घटनाओं का सजीव चित्रण है। कथोपकथन प्रभाव-शाली हैं। उपन्यास में वातावरण की सजीवता है। मूल कथा का वर्णन करते हुए लेखक ने पृष्ठभूमि में स्वदेश में हुए संघर्षों का चित्रण किया है। उपन्यास की शैली सरस, सरल और प्रभावशाली है। 'अलै ओशै' कल्कि के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी गणना तमिल के प्रसिद्ध उपन्यासों में होती है।

अल्पजीवि *(तें० कृ०)*

'अल्पजीवि' राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री (दे०) का उपन्यास है। यह तेलुगु के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें मध्यवर्ग के एक नौकरी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेशा व्यक्ति के जीवन की असमर्थता, विवशता तथा भीरुता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। बचपन में जब वह गुंडों द्वारा अपने पिता को अँधेरे में पिटता देखते है तब से उसमें भय दृढ़ रूप से घर कर लेता है और अंत तक उसकी समस्त प्रतिक्रियाओं में केंद्र रूप में वह प्रस्तुत रहता है। उसके भय का कारण घर के बाहर का समाज ही नहीं, घर के अंदर स्वयं उसकी पत्नी भी है, जिसके सामने वह कभी आत्मविश्वास के साथ बात नहीं कर सकता। इस प्रकार भय के बोझ से दबकर, अपनी असमर्थता की निंदा करता हुआ अपने चारों ओर दिखाई देने वाले व्यक्तियों के संबंध में नाना प्रकार की कल्पनाएँ करता हुआ वह दयनीय जीवन व्यतीत करता है।

अल्लम प्रभु *(क० ले०)* [आविर्भाव-काल—बारहवीं शती ई०]

अल्लम प्रभु या प्रभुदेव कन्नड के महान् संत हैं। बारहवीं शती ई० में कर्नाटक के धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में वीरशैव संतों की वाणी ने एक बहुत बड़ी क्रांति उपस्थित कर दी थी। इस क्रांति के अगुआ थे संत बसवेश्वर (दे०)। प्रभुदेव बसवेश्वर के गुरु माने जाते हैं। 'हठयोग प्रदीपिका' के नाथों की सूची में इनका नाम भी है। इनके जीवन, शिक्षा-दीक्षा आदि के बारे में कुछ विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं।

वीरशैव होने पर भी ये समयनिरपेक्ष थे। ये सत्य के भूखे थे, जहाँ भी सत्य के दर्शन हुए इन्होंने उसकी पूजा की, असत्य और अन्याय पर इनकी वाणी वज्रपात करती थी। बसवेश्वर द्वारा संस्थापित 'अनुभव-सत्य' के अध्यक्ष बनकर इन्होंने तत्कालीन संतों का मार्गदर्शन किया था। इस महान् संत पर कन्नड के पुराण और चरितकाव्य लिखे गए हैं जिनमें चामरस (दे०) का 'प्रभुलिंगलीले' प्रमुख है। इनका व्यक्तित्व और कृतित्व विश्वसाहित्य के लिए कन्नड की अनुपम देन है।

वीरशैव संतों ने अपनी अनुभूतियों को सरल व सुंदर गद्य के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह गद्य 'वचन' कहलाता है। प्रभुदेव की बानियों में रहस्यवाद, समाज-विडंबन तथा निर्गुण एवं शून्य का वर्णन है। इनके वचन तथा पद सहस्राधिक हैं। इनके प्रत्येक 'वचन' में 'गुहेश्वर' अंकित मिलता है। इनकी बानियाँ कबीर आदि संतों की बानियों के समान प्रखर हैं। इनकी बानियों में रूपकों की प्रधानता है; एक विलक्षण मस्ती और अल्हड़पन है। इनकी सैकड़ों बानियाँ उलटबाँसियों की भाँति हैं जो 'वेडगिन वचन' कहलाती हैं। इनमें संध्याभाषा की शैली में सूक्ष्म को स्थूल का बाना पहनाने का प्रयत्न है, जहाँ 'शून्य', 'सहज' आदि योगमार्ग के पारिभाषिक शब्दों का विशेष प्रयोग हुआ है।

इनके नाम पर मिलने वाली एक और कृति है 'शून्य संपादने'। किंतु यह उनकी कृति नहीं है। यह प्रभुदेव तथा अन्य समकालीन वचनकारों को सँजोकर संवाद-शैली में लिखा एक चरितकाव्य है जिसके रचयिता पंद्रहवीं व सोलहवीं शती के गुळूरु सिद्ध वीरणाचार्य हैं। प्लेटो के संवादों की भाँति इसमें इनके व्यक्तित्व का भव्य निरूपण है। प्रभुदेव ही इसकी केंद्रीय विभूति हैं और उन्हीं की वाणी की इसमें प्रधानता है।

प्रभुदेव पर लिखे ग्रंथों में प्रभुदेव तथा गोरक्षनाथ के बीच हुए वाद-विवाद का वर्णन है जिसमें प्रभुदेव शून्य को वज्र से भी श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। मध्ययुगीन धर्मसाधना के इतिहास में प्रभुदेव का स्थान अविस्मरणीय है।

अळ्ळूर नन्मुल्लै *(त० ले०)* [समय—ईसा की पहली, दूसरी शताब्दी]

अळ्ळूर नन्मुल्लै संघकालीन प्रसिद्ध कवयित्रियों में से हैं। इनकी कविताएँ अहनानूरु, पुरनानूरु, कुरुन्तोगै आदि प्रसिद्ध संघकालीन कृतियों में संगृहीत हैं। इनकी कविताओं में प्रेम एवं पारिवारिक जीवन की समस्याओं का चित्रण है। इनकी कविताओं की नायिकाएँ संघकालीन नारी-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसके अधिकार अत्यंत सीमित हैं। इन्होंने एक गृहिणी की दृष्टि से ही नारी के जीवन का चित्रण किया है जो कि समसामयिक सामाजिक नियमों का विरोध करना चाहती है परंतु ऐसा करने में अपने आपको असमर्थ पाती है। इनकी कविताओं में निराशा का स्वर प्रबल है। अधिकांश कविताओं में प्रेमी या पति के प्रवास पर नायिका की विरह-वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी कविताओं में दस अकम से और एक पुरम से संबंधित हैं। पुरनानूरु में प्राप्त इनकी पुरम-संबंधी कविता से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि संघकाल में वीर योद्धाओं की याद में नडुक्कल या वीरक्कल गाड़े जाने की और उसके पूजे जाने की प्रथा विद्यमान थी। अळ्ळूर नन्मुल्लै अपने नारी जीवन के सजीव चित्रण के लिए विख्यात हैं।

अवधान कविता *(ते० प्र०)*

यह तेलुगु की साहित्यिक परंपरा में एक विलक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्ति है, जो किसी भी अन्य साहित्य में प्राप्त नहीं होती। 'अवधान' में कवि की चमत्कारी धारणाशक्ति की परीक्षा होती है। उसको एक ही साथ अनेक वस्तुओं को स्मृति में रखकर विभिन्न विषयों में आशु कविता रचनी पड़ती है।

'अवधान' मुख्यतः दो प्रकार का होता है— अष्टावधान और शतावधान। सहस्रावधान का भी प्रचलन है, किंतु कम। अष्टावधान करने वाले व्यक्ति (जिसे अष्टावधानी कहा जाता है) के चारों ओर आठ विद्वान पृच्छक (प्रश्न-कर्ता) बैठते हैं। उनमें से एक अवधानी को कोई एक विषय देकर उस पर कविता करने के लिए कहता है। दूसरा कोई एक समस्या देता है। तीसरा चार असंबद्ध शब्दों को देकर उनका प्रयोग करते हुए कविता करने के लिए कहता है। चौथा किसी एक पुराण का पाठ करके, उसकी व्याख्या करने के लिए कहता है। पाँचवाँ पीछे से बीच-बीच में घंटी बजाता रहता है या अवधानी पर फूल फेंकता रहता है, जिनको अवधानी गिनकर अंत में उनकी संख्या बताता है। छठा कोई-न-कोई असंबद्ध प्रलाप करके, अवधानी के मस्तिष्क की एकाग्रता भंग करने का प्रयत्न करता है। सातवाँ किसी विषय पर जब अवधानी कविता कहने लगता है, तो एक अक्षर के बाद अगले अक्षर के रूप में किसी एक अक्षर को निबद्ध करता रहता है और आठवाँ साहित्यिक चर्चा करता रहता है। अवधानी को अंत तक इन सभी का ध्यान रखकर बीच-बीच में एक-एक पृच्छक को एक-एक कविता की पंक्ति आशु रूप में कहते हुए अंत में सारी कविताओं को दुहराना होता है। शतावधान में भी इसी प्रकार सौ पृच्छकों को आशु रूप में सौ छंद सुनाने पड़ते हैं। यह अवधानी की विद्वता, कठोर साधना एवं धारणा-शक्ति से ही संभव होने वाला साहित्यिक इंद्रजाल है।

अवधी *(हिं० पारि०)*

अवधी पूर्वी हिंदी वर्ग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बोली है। इस बोली का 'अवधी' नाम 'अवध' के आधार पर पड़ा है। 'अवध' शब्द 'अयोध्या' का तद्भव रूप है। अवधी नाम का प्राचीनतम प्रयोग अमीर खुसरो के 'नूहसियर' ग्रंथ में मिलता है। अवधी का विकास ग्रियर्सन (दे०) ने अर्ध-मागधी से माना था, किंतु डा० बाबूराम सक्सेना (दे०) के अनुसार अर्धमागधी की तुलना में पालि से इसकी अधिक समानता है। वस्तुतः इस प्रश्न का अभी कोई अंतिम निर्णय नहीं हुआ है। अवधी का क्षेत्र ठीक अवध प्रदेश नहीं है। एक ओर तो अवध के कुछ भाग (जैसे हरदोई ज़िला) में अवधी नहीं बोली जाती तो दूसरी ओर फ़तेहपुर, इलाहाबाद आदि अवध के बाहर हैं, किंतु वहाँ भी अवधी बोली जाती है। इसका मुख्य क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फ़ैज़ाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी आदि हैं। अवधी की उत्पत्ति 1000 ई० के आस-पास हुई थी। चौदहवीं सदी से इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। अवधी के मुख्य कवि मुल्लादाऊद, लालच-दास, कुतुबन, जायसी, तुलसी, उसमान आदि हैं। तुलसी आदि कुछ कवियों को छोड़ दें तो अवधी का प्रयोग मुख्यतः मुसलमान कवियों द्वारा प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना में हुआ है। हिंदी के मध्यकालीन साहित्य में ब्रजभाषा के बाद सबसे अधिक ग्रंथ अवधी में ही लिखे गए हैं जिनमें तुलसी का 'रामचरितमानस' सर्वश्रेष्ठ है।

अविमारक *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शताब्दी ई०, ले० भास (दे०)।

'भासनाटकमृक्रम' में 'अविमारक' को बारहवाँ स्थान दिया गया है।

'अविमारक' छह अंकों का नाटक है। इसका वृत्त किसी लोककथा पर आधृत है। इसमें राजकुमार अविमारक का कुंतिभोज की पुत्री कुरंगी के साथ प्रणय का वर्णन है। राजकुमार होते हुए भी अविमारक शापवश किसी अंत्यज के यहाँ रह रहा है; अतः पहले तो दोनों के विवाह में कुछ कठिनाइयाँ आती हैं। पर अंत में नारद द्वारा रहस्योद्घाटन करने पर जब अविमारक के सही कुल का पता चलता है तो प्रणय-बंधन परिणय-बंधन में परिणत हो जाता है।

'अविमारक' प्रणय-कथा पर आधृत एक सुंदर नाटक है पर इसमें अभिव्यंजना तथा घटना अप्रौढ़ है और भावावेश इतना अधिक है कि नाटक का सौंदर्य विकृत हो गया है। 'अविमारक' श्रृंगार-प्रधान नाटक है। अन्य नाटकों की भाँति यहाँ भी भास क्षिप्र व्यापारों के प्रति अधिक आकृष्ट प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार घटनाओं और स्थितियों की आवृत्ति भी स्पष्ट नज़र आ जाती है। नायक दो बार आत्महत्या करना चाहता है तथा नायिका एक बार। चरित्रों के अंकन में वे यहाँ विदूषक को काफ़ी ऊँचा उठा देते हैं। उसका चरित्र इस नाटक में एक स्थिर स्वरूप प्राप्त करता है। भाषा विषयानुकूल तथा संवाद सशक्त हैं। कुल मिलाकर यह एक मनोरंजक नाटक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्यय *(हिं० पारि०)*

'अव्यय' का शब्दार्थ है 'जो व्यय न हो'। व्याकरण में अव्यय प्राय: उन शब्दों को कहते हैं जिनमें विकार या परिवर्तन न हो। इस तरह 'व्यय' का अर्थ यहाँ 'परिवर्तन' या 'विकार' है। संस्कृत का प्रसिद्ध श्लोक है : 'सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु, वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्'। आधुनिक भाषाओं में क्रियाविशेषण, संयोजक, संबंधबोधक तथा विस्मयादिबोधक इन चारों को अव्यय के अंतर्गत रखते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि 'अव्यय' नाम रूप-रचना पर आधृत है, अर्थात् इस नाम के अधिकारी वे शब्द हैं जिनमें लिंग, वचन, कारक के कारण परिवर्तन न हो। इसीलिए आधुनिक भाषाओं में 'अव्यय' संज्ञा बहुत उपयोगी नहीं रह गई है। हिंदी की ही बात लें। हिंदी में एक ओर तो बहुत से क्रियाविशेषण ऐसे हैं जिनमें परिवर्तन होता है (राम **दौड़ता** आया, सीता **दौड़ती** आई, लड़के **दौड़ते** आए), दूसरी ओर ऐसे बहुत से संज्ञा शब्द (कोदो, रासो) तथा विशेषण (**सुंदर** लड़का, **सुंदर** लड़की, **सुंदर** लड़के) हैं जिनमें परिवर्तन नहीं होता। इस तरह हिंदी में एक तरफ़ तो कुछ क्रियाविशेषण भी अव्यय नहीं हैं, यद्यपि सामान्यत: सभी क्रियाविशेषण इसी के अंतर्गत माने जाते हैं, और दूसरी ओर कुछ संज्ञा या विशेषण शब्द ऐसे हैं जो अपनी 'अव्ययता' के कारण इस वर्ग में रखे जाने के अधिकारी हैं, यद्यपि संज्ञा या विशेषण कभी भी इस वर्ग में नहीं रखे जाते। वस्तुत: प्राचीनकालीन संयोगात्मक भाषाओं के प्रसंग में ही अव्यय नाम अधिक सार्थक था।

अव्वैयार (संघकाल) *(त० ले०)* [समय—अनुमानत: ईसा-पूर्व दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

अव्वैयार तमिल की प्रसिद्ध कवयित्रियों में से हैं। इनका वास्तविक नाम अव्वैयार ही था या लोगों ने इन्हें इस नाम से पुकारना आरंभ कर दिया था, इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। अव्वैयार द्वारा रचित उनसठ कविताएँ उपलब्ध हैं जिनमें से चार 'अकनानूरु' (दे०), पंद्रह 'कुरुन्तोगै' (दे०), सात 'नाट्रणै' और तेंतीस 'पुरनानूरु' (दे०) नामक कृतियों में संग्रहीत हैं। इन्हें चेर, चोल और पांड्य तीनों राजवंशों से संबंधित राजाओं के यहाँ पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ था। इनका अधिकांश समय पांड्य राजा अदियमान् नेडुमान् अंजि के यहाँ व्यतीत हुआ था। अपने अधिकांश पदों में इन्होंने अदियमान् की वीरता, दानशीलता, उदारता, युद्ध-कौशल आदि की प्रशंसा की है। इन्हें अपनी कला-चातुरी पर गर्व था। एक बार अदियमान् द्वारा पुरस्कार देने में विलंब किए जाने पर ये कह उठी थीं—'कलाकार अपनी कला के बल पर कहीं भी जी सकता है।' अदियमान् की मृत्यु पर इनके द्वारा रचित करुण रस-प्रधान कविता अत्यंत मार्मिक एवं प्रभावशाली है। इसका तमिल के कारुणिक गीतों में विशिष्ट स्थान है। अव्वैयार की कविताओं में कुछ 'अहम्' अर्थात् जीवन के आंतरिक पक्ष से और कुछ 'पुरम्' अर्थात् जीवन के बाह्य पक्ष से संबद्ध हैं। अहम् कविताओं में गंभीर शैली में बड़े विस्तार के साथ कन्या के मन में उठने वाली भावनाओं का वर्णन किया गया है। 'पुरम्' कविताओं में प्राय: अदियमान् के जीवन से संबद्ध नाना घटनाएँ वर्णित हैं। इनकी कविताओं में इनका प्रकृति-प्रेम और व्यापक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। इनमें भाव-सौंदर्य और कला-सौंदर्य का अपूर्व समन्वय है। अव्वैयार और उनकी कविताओं का तमिल साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

अव्वैयार *(त० ले०)* [समय—ईसा की बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी]

संघकालीन अव्वैयार के समान मध्यकाल में भी अव्वैयार नामक एक कवयित्री थीं। इनके वास्तविक नाम, जन्म, माता-पिता आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। संघकालीन अव्वैयार के समान इनके संबंध में भी समाज में अनेक विनोदपूर्ण काल्पनिक कथाएँ प्रचलित हैं। इन कथाओं में सत्य का अंश है अथवा नहीं, और यदि है तो कितना है—इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'आत्तिशूडि', 'कोन्रैवेंदन्', 'मूदुरै या वाक्कुण्डाम्', 'नल्वळि', 'अव्वैक्कुरळ्', 'विनायकर् अकवल्', 'ज्ञानक्कुरळ्' आदि। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट गेय पदों की रचना की है। 'आत्तिशूडि' और 'कोन्रैवेंदन्' उपदेशात्मक रचनाएँ हैं। विषय-वस्तु और रचना-शैली की दृष्टि से इन्हें सूक्ति-संग्रह कहा जा सकता है। ये सूक्तियाँ समाज में लोकोक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'वाक्कुण्डाम्', 'नल्वळि' और 'अव्वैक्कुरळ्' नीति-ग्रंथ हैं। विषय का प्रतिपादन करते हुए इनमें जीवन से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। 'नल्वळि' की गणना तमिल के प्रसिद्ध नीति-ग्रंथों में होती है। 'विनायकर् अकवल्' में भक्तिरसपूर्ण स्फुट गेय पद संग्रहीत हैं। ज्ञानक्कुरळ् में तमोमहिमा, ज्ञानी के अनुभव आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्णन है। अव्वैयार ने स्फुट गेय पदों में अपने जीवनानुभवों का वर्णन किया है। अव्वैयार सामान्य जनता के दु:ख-सुख से परिचित थीं। इनके पदों में समकालीन राजाओं, वीरों और महापुरुषों से संबंधित विवरण प्राप्त होते हैं। सरस और आकर्षक शैली में गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति में सक्षम अव्वैयार का तमिल साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अशांत इलेक्ट्रन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

सौरभ चलिहा (दे०) के इस संग्रह की कहानियों के पात्रों के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं, उत्तर खोजने का प्रयास किया जाता है; किंतु समाधान नहीं मिलता। एक का दृष्टिकोण दूसरे से नहीं मिलता। हमारा जीवन मानो एक-एक सौर-जगत् है। कहानियों में कोई गंभीर सत्य निहित नहीं है, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि का प्रवेश दिखाई देता है। लेखक की दृष्टि यथार्थवादी है। इनकी 'ज्यामिति' कहानी में पात्रों के नाम क, ख, ग देकर रोमांटिक कहानी का बौद्धिक विश्लेषण किया गया है। ये वैज्ञानिक चिंतन की कहानियाँ हैं और असमीया साहित्य में इनका विशेष स्थान है।

अशोक *(उ० पा०)*

'बनहंसी' में नाटककार मनोरंजन दास (दे०) ने आधुनिक मानव के जटिल व्यक्तित्व को उजागर करने की कोशिश की है। मनोवृत्तियों के उलझे लोक में पहुँचकर लेखक अशोक के माध्यम से कहता है—"इतने शब्द—भाषा—बातें—आदि के बाद भी व्यक्ति व्यक्ति को नहीं पहचान पाता है···एक दूसरे को समझ नहीं पाते हैं···एक दूसरे को ग़लत समझते हैं···शांति नहीं मिलती।"

अशोक इस नाटक का छाया-चरित्र (शैडो कैरेक्टर) है। यद्यपि वह हमारे सामने कभी नहीं आता पर नाटक के अंत:स्वर को सबसे शक्तिशाली रूप से वही मूर्त करता है।

आधुनिक स्त्री-पुरुष के वास्तविक संबंधों का एक ग्लानिजनक चित्र है 'बनहंसी'। इस नाटक का हर पात्र मानसिक रूप से एक रोगी है। डा० प्रवीर चौधुरी और उषा की प्रेम-कहानी, मतभेद, उषा का संतोष शर्मा के साथ विवाह, एक मोटर-दुर्घटना में संतोष शर्मा की मृत्यु, उमा का अंतर्द्वंद्व, डा० प्रवीर चौधुरी के पास पुनः उसका प्रत्यावर्तन, एवं उनके पास से पुनः पलायन आदि बातों की पुनरावृत्ति होती है डा० प्रवीर चौधुरी के पुत्र राजीव, एवं उषा की प्रणय-कथा में।

राजीव एवं गीता के संबंधों के बीच जब गीता को मालूम पड़ता है कि उसकी माँ और डा० चौधुरी के बीच प्रेम-संबंध था, तो वह परेशान हो उठती है और राजीव को छोड़कर पहुँचती है अशोक के पास। पर वहाँ भी वह संशयरहित नहीं हो पाती। अशोक संगी-साथियों में बदनाम है। सभी उससे घृणा करते हैं। प्रथम परिचय में गीता उससे पूछती है—"···अशोक, तुम बदनाम हो···क्या मैं तुम पर विश्वास कर सकूँगी?" अशोक कहता है—"तुम दूसरों की बातों पर क्यों विश्वास करती हो?" कुछ दिनों के संपर्क के बीच अशोक गीता का कभी अनादर नहीं करता। परिचय प्रगाढ़ होता जाता है। दौरे से वापस आते ही दोनों का विवाह हो गया होता पर नहीं, लौटती राह पर गीता गाड़ी को जानबूझकर दुर्घटनाग्रस्त कर देती है। अशोक को राजीव की क्लिनिक में लाया जाता है। ऑपरेशन टेबिल पर जब अशोक का निर्जीव शरीर पड़ा होता है तब उसका प्रेत संतोष शर्मा के प्रेत को अपना क्षणवादी जीवन-दर्शन समझाता है—"जीवन में मैंने कभी आपत्ति नहीं की है। भविष्य पर मुझे विश्वास नहीं है। वर्तमान ही मेरा सभी कुछ है।" अशोक को मालूम था कि गीता एक्सीडेंट करेगी, पर फिर भी उसने गाड़ी की गति को कम करने को नहीं कहा। कारण, वह समय था उनके लिए 'वर्तमान'। उस समय अशोक को बड़ा अच्छा लग रहा था। "बेपरवाही से गाड़ी चलाने में गीता को आनंद आ रहा था। उनकी खुशी में मैंने कभी बाधा नहीं डाली।"

अशोक पाप में विश्वास करता है तथा अपने और गीता के बीच किसी और की उपस्थिति पसंद नहीं करता। अशोक के मर जाने पर गीता कहती है—"अशोक के जीवित रहने पर मैं यहाँ शांति से जीवित रह सकती थी···" पुनश्च: "···अशोक के चले जाने के बाद लगता है मेरे लिए समय बहुत दूर चला गया है—लगता है सभी कुछ मेरी ही भूलें हैं···सब पाप हैं···तुम, मैं, हम, यहाँ सभी कुछ पाप है।"

अशोक के फूल *(हिं० कृ०)*

यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) के निबंधों का एक उल्लेखनीय संग्रह है जिसमें उन्होंने 'अशोक के फूल', 'वसंत आ गया है', 'आलोचना का स्वतंत्र मान', 'भारतीय संस्कृति की देन', 'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक एवं अन्य अनेक विषयों को कथ्य के रूप में संकलित करते हुए अपनी स्वच्छंद कल्पना-शक्ति, व्यापक दृष्टिकोण एवं अध्ययन-क्षेत्र की विविधता का अत्यंत पुष्ट परिचय दिया है। अत्यंत सामान्य एवं संक्षिप्त से प्रतीत होने वाले विषय को इतिहास, संस्कृति, लोक-जीवन, धर्म, पुरातत्त्व आदि के द्वारा वैशिष्ट्य प्रदान करते हुए कथा-साहित्य की-सी रोचकता तथा वैयक्तिकता की छाप से मंडित कर देने में लेखक को कमाल हासिल है। ये निबंध लेखक के मानवतावादी दृष्टिकोण तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति में उसकी अडिग आस्था को भी रूपायित करते हैं। तत्सम शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करते हुए भी लेखक ने उर्दू, अँग्रेज़ी आदि के शब्दों का सर्वथा बहिष्कार नहीं किया है और इस प्रकार अपनी रचना के प्रवाह को बनाए रखा है।

अश्क, उपेंद्रनाथ *(हिं० ले०)* [जन्म—14 दिसंबर, 1910 ई०]

इनका जन्म पंजाब प्रांत के जालंधर शहर में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। इन्होंने सन् 1931 में डी० ए० वी० कालेज, जालंधर से बी० ए० की परीक्षा पास की। बाल्यावस्था से ही ये अध्यापक, लेखक, संपादक, वक्ता, वकील, अभिनेता और डायरेक्टर बनने तथा फ़िल्मों में काम करने के स्वप्न देखते रहते थे। यही कारण था कि बी० ए० पास करते ही ये जालंधर के ही एक स्कूल में अध्यापक हो गये। लेकिन इन्होंने अध्यापन-कार्य दो वर्ष तक ही किया, तदनंतर ये 'भूचाल' पत्रिका का संपादन करने लगे। एक वर्ष तक संपादन-कार्य करने के बाद ये सब कुछ छोड़छाड़कर लॉ कालेज में दाखिल हो गए तथा सन् 1936 में एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी वर्ष इनकी पत्नी का देहांत हो गया। तदुपरांत इनके लेखकीय जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उर्वर युग प्रारंभ हुआ। दो-ढाई वर्ष के अत्यल्प समय में ही इन्होंने दो नाटक, सात-आठ एकांकी, एक काव्य-संग्रह, 'पिंजरा' कहानी-संग्रह की सभी रचनाएँ तथा 'छींटे' कहानी-संग्रह की कुछ रचनाएँ लिखीं। यद्यपि अश्कजी ने साहित्य की सभी विधाओं को अपने लेखन से समृद्ध किया है किंतु इनका प्रमुख प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र में है। 'छठा बेटा', 'अंजो दीदी', 'क़ैद', 'उड़ान' आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं तो 'तूफ़ान से पहले', 'देवताओं की छाया में', 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ' इनके प्रसिद्ध एकांकी-संग्रह हैं। सजीव चरित्र-सृष्टि, सरल, मर्मस्पर्शी तथा विषयानुरूप संवाद-योजना और रंगमंचोपयुक्त शिल्प-विधान इनकी नाट्यकला की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

अश्लील *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

पद्म बरकटकी (दे०) के इस असमीया गल्प-संग्रह में बारह स्केच कहानियाँ हैं। अश्लील नाम एक व्यक्ति-वाचक सर्वनाम का पर्याय है। कहानियों में अश्लीलता नहीं है। कहानी में शिल्प की अपेक्षा यथार्थ जीवन की क्रूर नग्नता के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। कहानियों में व्यंग्य निहित है।

अश्वघोष *(सं० ले०)* [78 ई०]

महाकवि अश्वघोष सम्राट कनिष्क के समकालीन थे। ये जन्म से ब्राह्मण थे और बाद में बौद्ध हो गये थे। इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था और इनका जन्म साकेत में हुआ था। ये वैदिक साहित्य के साथ ही 'महाभारत' (दे०) तथा 'रामायण' (दे०) के मर्मज्ञ विद्वान् थे। डा० कीथ (दे०) तो इनको लौकिक संस्कृत का प्रथम कवि मानते हैं।

अश्वघोष की तीन प्रामाणिक कृतियाँ हैं—'बुद्धचरित' (दे०), 'सौंदरनंद' (दे०) तथा 'शारिपुत्रप्रकरण' (दे०)। इनमें प्रथम दो महाकाव्य हैं तथा अंतिम रूपक। इसके अतिरिक्त बौद्ध दार्शनिक होने के नाते इनके नाम के साथ चार बौद्ध ग्रंथ भी जोड़ दिए जाते हैं—(1) महायान श्रद्धोत्पादसंग्रह, (2) वज्रसूची, (3) गाण्डीस्तोत्रगाथा, तथा (4) सूत्रालंकार। पर ये चारों विवादास्पद हैं।

'बुद्धचरित' महात्मा बुद्ध के निर्मल सात्त्विक जीवन का सरल तथा सरस विवरण है। 'सौंदरनंद' में उनके छोटे सौतेले भाई सुंदरनंद के प्रव्रज्या-ग्रहण का वर्णन है। 'शारिपुत्रप्रकरण' में तथागत के पटुशिष्य शारिपुत्र के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कथा है। इस प्रकार इन तीनों ग्रंथों का मूल स्रोत एक है। इन तीनों में केवल 'सौंदरनंद' ही पूरा उपलब्ध है। 'बुद्धचरित' का केवल आधा भाग ही मूल संस्कृत में मिलता है और 'शारिपुत्रप्रकरण' के कुछ अधूरे पृष्ठ ही।

अश्वघोष की कविता में स्वाभाविकता एवं सहज प्रवाह है। कवि एक विशेष उद्देश्य से तत्त्वज्ञान से हटकर कोमल काव्यकला का आश्रय लेता है और उसमें वह पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफल है। तथागत के चरित्र के प्रति कवि की आस्था बड़ी प्रबल है, साथ ही संसार की अनित्यता की भावना भी बड़ी बलवती है—यही कारण है कि वह इन काव्यों के मार्मिक अंशों की रचना में बड़ा उत्साह दिखाता है।

अश्वघोष में तीन गुण हैं। स्वभाव से वे कवि हैं, शिक्षा द्वारा मर्मज्ञ मनीषी और आस्था के कारण धार्मिक व्यक्ति। इनकी कविता में इन तीनों पक्षों का सही समन्वय उपलब्ध होता है। इनकी कविता में प्रबल जीवनी-शक्ति है। छोटे-छोटे चुने हुए रमणीय शब्दों द्वारा अपने धार्मिक संदेश को काव्य का रूप देने में ये सिद्धहस्त हैं।

अश्वति तिरुनाळ् *(मल० ले०)* [जन्म—1031 ई०, मृत्यु—1077 ई०]

पूरा नाम—अश्वति तिरुनाळ् इळय तंपुरान्। इनका जन्म राजवंश में हुआ था और ये संगीत तथा साहित्य में निष्णात और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनकी कृतियाँ हैं : 'वंचीश-स्तवम्'—महाविष्णु तथा अपने मातुल के प्रति लिखित स्तोत्र-ग्रंथ; (2) 'कार्त्तवीर्यविजयम् चंपु'; (3) 'संतानगोपालम् चंपु'; (4) 'श्रृंगार सुधाकरम् भाणम्'; (5) 'रुक्मिणीपरिणयम् नाटकम्'—जो कवि की सबसे उत्तम रचना है; और (6) 'दशावतारदंडकम्' जिसमें विष्णु के दस अवतारों का वर्णन है। वे कंपकलि साहित्य के प्रथम श्रेणी के कवि हैं और उन्होंने इस विधा के लगभग चालीस ग्रंथों की रचना की है जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं—'नरकासुरवधम्' (उत्तर भागम्), 'रुक्मिणी-स्वयंवरम्', 'पूतनामोक्षम्', 'अंबरीषचरितम्' आदि। ये बड़े भक्त और ज्ञानी थे। इनकी अधिकांश कृतियाँ केरली भाषा एवं साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं।

अश्वत्थ *(क० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

'अश्वत्थ' उपनामधारी अश्वत्थ नारायण राव, बी० ई० कन्नड के प्रसिद्ध कथाकार तथा नाटककार हैं। ये मैसूर में रहते हैं। 'सण्णकथेगलु' नाम से इनकी कहानियों के चार खंड प्रकाशित हुए हैं। नवीनता-बोध की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उत्कृष्ट कही जा सकती हैं। उनमें केवल कर्नाटक के जनजीवन का वर्णन नहीं है, अपितु भारत के अन्यान्य प्रदेशों के विषय भी विद्यमान हैं। कला की दृष्टि से इनकी कहानियाँ अपनी ही विशिष्टताएँ रखती हैं। इनके 'मुनियन मादरि' (मुनिया का आदर्श), 'मर्यादि महलु' (मर्यादा का महल) और 'रंगनायकी' अच्छे उपन्यास हैं। इन्होंने 'भगु' (बच्चा) और 'बहुमान' आदि नाटक भी लिखे हैं।

अश्वत्थामन् *(क० कृ०)*

यह आधुनिक कन्नड-साहित्य के नवोदय के पुरोधा एवं मंत्रदाता स्व० श्रीकण्ठय्या (दे०) का लिखा एक दुःखद नाटक है। यह ग्रीक कवि सोफ़ोक्लीज़ के 'एजाक्स' का भारतीयकरण है। ट्राय-युद्ध में मृत एचिलीज़ के शस्त्र इसे देने के बदले यूनानियों ने ओडिसियस को दे दिए जिससे एजाक्स अपमानित अनुभव करता है। बदला लेने के प्रयत्न में असफल होकर अपनी ही तलवार पर गिरकर वह आत्महत्या कर लेता है। उसके शवसंस्कार में भी बाधा पड़ती है। उसके उपरांत उसका सौतेला भाई आकर केनिलेयस तथा अगमेमनॉन का सामना करता है। इतने में ईडिपस आता है, अगमेमनॉन को सांत्वना देकर ले चलता है, उत्तर क्रियाओं के साथ नाटक समाप्त होता है।

महाभारत में अश्वत्थामा की कहानी इससे मिलती-जुलती है। नाटक की उदात्तता, उसकी अतिशोधी मनोवृत्ति, विधिविलास, विधि का उल्लंघन करने के कारण होने वाले युद्ध आदि की दृष्टि से दोनों कथाओं में अपूर्व साम्य है। लेखक ने अश्वत्थामा के जीवन में दुःखांत तत्त्व पहचाना है तथा उसे एक अत्यंत सफल दुःखांत नायक के रूप में चित्रित किया है। उसके लिए कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं। महाभारत का ब्रह्मचारी अश्वत्थामा यहाँ विवाहित है। उसके एक पुत्र भी है। और भी अनेक भारतीय एवं यूनानी पात्रों को समानांतरता के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है। कवि की कल्पना है कि अश्वत्थामा तथा एकलव्य कर्नाटक के वीर थे जो उत्तर में जाकर महाभारत युद्ध में लड़े थे। अश्वत्थामा के व्यक्तित्व में ही 'ट्रैजेडी' के बीज निहित हैं। वह महान् वीर है किंतु हठी है। उसका हठ उसे विचारांध बना देता है। दैव-विरोधी कार्य करने के कारण वह असफल होता है। अंत में अपनी करनी पर वह पछताता है। किंतु केवल पश्चात्ताप से उसे तृप्ति नहीं होती। अतः वह आत्महत्या करने की ठानता है। उसका पुत्र उसके पास आता है, उसे आशीर्वाद देकर वह उसे अपने अस्त्र देता है, एकलव्य को उसका रक्षक नियुक्त करता है और अंत में तीर्थयात्रा का बहाना बनाकर वहाँ से चला जाता है। अंत में चिरंजीवी अश्वत्थामा यहाँ अभिमन्यु-प्रदत्त खड्ग को टेककर उस पर गिर पड़ता है और इस प्रकार आत्महत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उसका अंत होता है। उसके उपरांत एकलव्य अपने गुरुपुत्र की खोज में आता है। उसका शव-संस्कार करने का प्रयास करता है। किंतु भीम उसे रोकता है, एकलव्य और भीम के बीच झगड़ा बढ़ता है। अंत में श्रीकृष्ण आकर अश्वत्थामा का गुणगान करते हैं और भीम को शव-संस्कार-विरोध से विरत करते हैं। अश्वत्थामा का पतन तथा पुनरुद्धार इस नाटक की प्रधान वस्तुएँ हैं। महापुरुष अश्वत्थामा में हठ एक दुरंत दोष है जिसके कारण उसका सर्वनाश होता है। अंत में वह आत्माहुति से परिशुद्ध बनता है। महाभारत में वह चिरंजीवी है, किंतु उसकी चिरंजीविता उसके लिए शाप बन जाती है।

'अश्वत्थामन्' एक श्रेष्ठ नाट्य कृति है। इसकी भाषा प्राचीन कन्नड है जो बहुत ही ओजमय है। ट्रैजेडी, कल्पना तथा दुःखांत तत्त्व के निरूपण के लिए एक सफल माध्यम बनाकर स्व० बी० एम० श्रीकंठय्याजी ने कन्नड को एक अद्‌भुत कृति दी है।

अश्वथतमन् *(क० पा०)*

'अश्वत्थामन्' स्व० बी० एम० श्रीकंठय्याजी (दे०) की महान् नाट्य-कृति 'अश्वत्थामन्' (दे०) का नायक है। वह दुखांत नायक है। दो प्राचीन इतिहासों के मेल से जन्मे अश्वत्थामा का चरित्र दोनों का सार ग्रहण कर अधिक जीवंत बना है। महाभारत के अनुसार वह अपने सर्वस्वभूत जीवरत्न को खोकर हज़ारों सालों तक भटकता रहता है। वही यहाँ आत्महत्या के द्वारा अपने कलंक का क्षालन कर मनुष्यत्व से देवत्व प्राप्त करता है। वह तीरश्री के मंगलकलश द्रोण का एकमात्र पुत्र है। बालपन में ही उसने अपनी माँ को खोया। गरीबी से दर-दर भटकने वाले पिता के साथ रहकर अस्त्र-विद्या-पारंगत बना; वह अप्रतिम शूर है, आत्मपौरुष से युक्त है, महान् रणयोद्धा है, रुद्रावतार है।

पिता के साथ कुरुक्षेत्र आकर वह दुर्योधन का आश्रय ग्रहण करता है। महाभारत युद्ध में पराक्रम के साथ लड़ता है, किंतु उससे वही सुखी नहीं हुआ। पांडवों से और विशेषत: कृष्ण और भीम से प्रतिशोध लेने के प्रयत्न में वह अपकीर्ति के सागर में डूब जाता है। अंत में वह अपनी जन्मभूमि कर्णाटक में जाकर मर भी नहीं सकता क्योंकि अपकीर्तियुत वह वहाँ लौटने से हिचकिचाता है। द्रोण का पुण्य भी उसकी रक्षा नहीं कर सका। वह सर्वत्र हताश है। जीवन से हताश है, मित्रों से हताश है, दैव से हताश है। इस तरह सर्वत्र हताश हो वह आत्महत्या कर लेता है। अश्वत्थामा के देव-प्रताड़ित जीवन को कवि ने अत्यंत आत्मीयता के साथ चित्रित किया है। उसके प्रति पाठकों की अजस्र सहानुभूति उमड़ पड़ती है। दैव के हाथ में पड़कर अपनी समस्त शक्ति खोने वाले महान् तेजस्वी का पतन पाठक के मन को करुणा और सहानुभूति से भर देता है। इस तरह दो परंपराओं एवं संस्कृतियों के सार-तत्त्व से अनुप्राणित अश्वत्थामा का चरित्र कन्नड के अन्यतम चरित्रों में है।

अषीक्कोड, सुकुमार *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

मलयाळम के इस प्रतिभा-संपन्न और निर्भीक समालोचक का कार्यक्षेत्र पत्रकारिता और अध्यापन रहा है। आजकल ये कालिकट विश्वविद्यालय में आचार्य हैं। 'रमणनुम् मलयाळकवितयुम्', 'आशांटे सीताकाव्यम्', 'जी० शंकर कुरुप्प् विर्मशिक्कप्पेट्टुन्नु' आदि इनके समीक्षात्मक ग्रंथ हैं। इन्होंने अपने समालोचनात्मक लेखन में सदा ही नूतन और मौलिक मत प्रस्तुत किए हैं। जी० शंकर कुरुप (दे०) की खंडनात्मक आलोचना करते हुए इन्होंने जो उपर्युक्त कृति रची वह साहित्यकारों के बीच सुदीर्घ चर्चा का विषय रही है। नई पीढ़ी के समालोचकों में इनका प्रमुख स्थान है।

अष्टछाप *(हिं० ले०-वर्ग)*

कृष्णकाव्य के अंतर्गत पुष्टि मार्ग के संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार और उनके पुत्र विट्ठलनाथ के चार प्रधान शिष्य भक्तकवि क्रमशः कुंभनदास, सूरदास (दे०), कृष्णदास, परमानंददास (दे०), गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, नंददास (दे०) और चतुर्भुजदास 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस संप्रदाय के इष्टदेव श्रीनाथ जी हैं। अपने इष्टदेव के अत्यंत निकटवर्ती ये कीर्तनकार भक्तकवि सखा भाव से उनकी प्रेमभक्ति में इतने अनुरक्त रहते थे कि श्रीनाथ जी के अष्टसखा भी कहे गए हैं। अष्टछाप के भक्तकवि विभिन्न जातियों और वर्गों के थे, लेकिन सभी अच्छे गायक थे। ये भक्तकवि सांसारिक जीवन में पूर्ण निर्द्वंद्व और निःस्पृह थे।

अष्टछाप काव्य प्रधानतः स्फुट और गीतिकाव्य है। लगभग सभी कवियों ने मंगलाचरण, गुरुमहिमा, नाम-माहात्म्य, यमुना एवं ब्रज-माहात्म्य आदि से संबंधित पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचे हैं। इन कवियों ने तानपूरा पर श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन के समय आत्मा की मधुरतम उद्वेलित होने वाली भावलहरियों को गा-गाकर जीवन के परे जो सत्य और सुंदर है उसे बहुत ही सहज भाव से उद्घाटित किया है। कृष्ण को काव्य का आलंबन बनाकर इन कवियों ने समाज को एक नई दिशा दी थी। निश्चय ही इन्होंने जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में मानवता के नवीन मूल्यों की स्थापना करके 'अलख' की पुकार लगाने वालों को जिस ढंग से निष्क्रिय और निरुत्तर किया था वह सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

अष्टदिग्गज *(तें० ले०-वर्ग)* [समय—सोलहवीं शताब्दी ई०]

विजयनगर राज्य के शासक श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के आठ सभाकवि 'अष्टदिग्गज' के नाम से विख्यात हुए। श्रीकृष्णदेवरायलु 'आंध्रभोज' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके दरबार की कवि-पंडित-सभा का नाम ही 'भुवन-विजयमु' (दे०) है। इस सभा की आठों दिशाओं में आठ विशिष्ट स्थान आयोजित रहते थे तथा उन पर आठ प्रसिद्ध कवि आसीन रहते थे। पृथ्वी का भार धारण करने में आठों दिशाओं के हाथियों की तरह कविता-जगत् की प्रतिष्ठा के लिए ये आठ कवि आधार माने जाते थे। इसीलिए ये 'अष्ट-दिग्गज' के नाम से विख्यात थे।

'अष्टदिग्गज' नाम से विख्यात कवि कौन-कौन थे, इस विषय में साहित्य के इतिहासकारों में मतभेद है। अल्ल-सानि पेद्दना (दे०), नंदि तिम्मना (दे०), धूर्जटि (दे०), अय्यलराजु-रामभद्रुडु (दे०), मादय्यगारि मल्लना (दे०) नामक पाँच तेलुगु-कवियों को अष्टदिग्गजों के अंतर्गत मानने में वे प्रायः सहमत हैं। पर भट्टुमूर्ति (राजराजभूषणुडु (दे०) इनका दूसरा नाम है), तेनालि रामकृष्ण कवि (दे०) तथा पिंगळि सूरना (दे०) नामक तीन कवियों के बारे में विवाद है। कारण, श्रीकृष्णदेवरायलु का शासन-काल 1509 ई० से लेकर 1530 ई० तक था और उपर्युक्त तीनों कवि 1530 तक तरुण अवस्था के थे। अधिकांश आलोचकों का मत है कि भट्टुमूर्ति तथा तेनालि रामकृष्ण युवक कवियों के रूप में श्रीकृष्णदेवरायलु के दरबार में सम्मानित रहे और अष्टदिग्गज के अंतर्गत इन दोनों की गणना की जा सकती है। दूसरा मत यह है कि अष्टदिग्गजों के अंतर्गत तेलुगु कवियों के अतिरिक्त कन्नड, तमिल आदि अन्य भाषाओं के कवि भी सम्मिलित रहे होंगे।

अष्टदिग्गजों में अल्लसानि पेद्दना का स्थान सर्वोपरि है। ये 'आंध्र-कवितापितामह' की उपाधि से विभूषित थे। इनके काव्य का नाम 'मनुचरित्र' (दे०) है। इसमें वर्णन, रचना-पद्धति तथा चरित्र-चित्रण इतने मार्मिक हैं कि इससे प्रभावित तेलुगु कवि शताब्दियों तक इसी प्रकार की रचनाएँ करते रहे थे। तेलुगु में इस प्रकार का काव्य 'प्रबंध' कहलाता है। उपर्युक्त आठों कवियों की प्रशस्ति का प्रमुख कारण प्रायः उनके द्वारा लिखे गए प्रबंध ही हैं। इनसे प्रभावित होकर श्रीकृष्णदेवरायलु ने भी 'आमुक्त-मालयदमु' (दे०) नामक एक प्रबंध लिखा। तिम्मना-कृत 'पारिजातापहरणमु' (दे०), भट्टुमूर्ति-कृत 'वसुचरित्र' (दे०), रामकृष्ण-कृत 'पांडुरंगमाहात्म्यमु' (दे०), धूर्जटि-कृत 'कालहस्तिमाहात्म्यमु' (दे०) नामक प्रबंध (काव्य) उच्च-कोटि के साहित्यिक महत्त्व के हैं। सूरना-कृत 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) का कथानक कल्पित है। कल्पना तथा रचना संबंधी चमत्कार के लिए ये अत्यंत प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त रामचंद्र कवि ने 'रामाभ्युदयमु' (दे०) तथा मादय्यगारि मल्लना ने 'राजशेखरचरित्र' नामक प्रसिद्ध काव्यों की रचना की।

'अष्टदिग्गज' नाम से विख्यात उपर्युक्त कवियों तथा उनके आश्रयदाता श्रीकृष्णदेवरायलु के द्वारा लिखे गए इन उत्कृष्ट प्रबंधों (काव्यों) के कारण 'प्रबंधयुग' का अवतरण हुआ तथा यह तेलुगु-साहित्य का 'स्वर्ण-युग' भी कहलाने लगा। पेद्दना, तिम्मना और भट्टुमूर्ति आदि के प्रबंध आंध्र-साहित्य रूपी नंदनोद्यान के कल्पवृक्ष हैं।

अष्टपदी *(उ० कृ०)*

'अष्टपदी' श्री सीताकांत महापात्र (दे०) का कविता-संग्रह है। इसका समग्र स्वर प्रभु, स्वर्ग, श्मशान, यमदंड आदि से परिपूरित है। इसकी 'सोयन' कविता में एक विजन सामुद्रिक द्वीपवासी की निस्संग परिपूर्णता का चित्रण है। समुद्र के साथ आत्मा के संपर्क के लिए आत्मा द्वारा एक उन्मुक्त ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का संधान आवश्यक है। इसकी विभिन्न कविताओं के नायक आधुनिक नरक की अग्नि से दग्धीभूत हैं, जहाँ न तो जीवन है और न मृत्यु—एक ऐसी अवस्था है जहाँ पाप-पुण्य की अनुभूति भ्रष्ट और विपर्यस्त है। इस आशंका में कवि ने गहरी चिंता व्यक्त की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टपदी *(पं० पारि०)*

आदिग्रंथ (दे०) में दुपदे, तिपदे, चउपदे, पंचपदे, छिपदे, अष्टपदे तथा सोलहे शीर्षकों से अनेक पद संकलित हैं। इनमें संख्या और विषय की दृष्टि से अष्टपदियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। सिद्धांततः आठ मुक्तक पदों के एकक को अष्टपदी माना जाता है परंतु 'आदिग्रंथ' की अनेक अष्टपदियों में आठ से अधिक पद संकलित हैं। उनमें प्रतिपद चरण-संख्या अथवा प्रति अष्टपदी पदसंख्या भी भिन्न-भिन्न हैं। ये अष्टपदियाँ विविध छंदों और विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'आदिग्रंथ' की अष्टपदियाँ बंधनमुक्त हैं और इस संज्ञा की सार्थकता गुरु-विवक्षी पर ही निर्भर है। इनका विषय गुरु, प्रभु, नाम, सत्य आदि का उपदेशात्मक महिमा-गान है। विद्वानों के अनुसार चउपदों में विरह की मार्मिकता की व्यंजना रहती है और साधना मार्ग का निर्देशन अष्टपदियों का वर्ण्य विषय है। गुरुओं के अतिरिक्त कबीर आदि भक्तों द्वारा लिखित अष्टपदियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

अष्ट-प्रबन्धम *(त० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शताब्दी ई०]

यह श्रीरंगम के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त और तमिल एवं संस्कृत के विद्वान् 'दिव्यकवि' पैरुमाळ् अय्यंगार विरचित आठ 'प्रबंध' कृतियों का संकलन है। 'अष्ट-प्रबंध' नामकरण बाद के किसी संकलनकर्ता ने किया है। 'प्रबंध' तमिल-काव्य की एक विधा है। इसमें संकलित प्रबंध हैं— (1) 'श्रीरंग कलंबकम्' (100 पद्य) जिसमें श्रीरंगनाथ के प्रति भक्त के प्रणयभाव की अभिव्यक्ति और माधुर्य भक्ति की विविध दशाओं का चित्रण है; (2) 'श्रीरंग-माला' (111 पद्य) जिसमें भगवान के प्रति आत्मनिवेदन है; (3) 'श्रीरंग अन्तादि' (100 पद्य), 'अन्तादि' का अर्थ है पद्यों की इस प्रकार योजना कि एक पद्य के अंतिम चरण का अंतिम भाग अगले पद्य के प्रारंभ में हो; इस कृति में यमक और श्लेष की अद्भुत छटा है; (4) 'श्री रंगनायक-डोलिका' (झूला) (32 पद्य); (5) श्री वेंकटेशमाला' (100 पद्य) : तिरुपति के मंदिर में विराजमान वेंकटेश्वर के प्रति आत्मनिवेदन और भक्तिभाव के उद्गार; (6) 'श्रीवेंकटेश अन्तादि' (100 पद्य); (7) 'अळकर् अन्तादि' (मदुरै के पास एक प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ-स्थान में स्थित) भगवान का वर्णन; (8) 'अष्टोत्तरशत तीर्थ' (108 पद्य)—वैष्णवों में मान्य एक सौ आठ तीर्थ-स्थानों का वर्णन।

यमक, श्लेष आदि अलंकारों की (जिन्हें तमिल काव्यशास्त्र में छंद की विशेषता माना गया है) विशेषताओं के लिए यह कृति तमिल जगत में अत्यंत प्रसिद्ध है। आळ्वार तमिल-संतों की रचना-परंपरा में 'अष्टप्रबन्धम्' का प्रमुख स्थान है और विशिष्टाद्वैत दर्शन में भी इसका बड़ा महत्त्व है।

अष्टाध्यायी *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600 ई० पू० लेखक : पाणिनि (दे०)]

अष्टक, शब्दानुशासन और वृत्तिसूत्र 'अष्टाध्यायी' के ही दूसरे नाम हैं। चीनी यात्री इत्सिंग ने 'अष्टाध्यायी' के लिए 'वृत्तिसूत्र' नाम का प्रयोग किया है।

जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, 'अष्टाध्यायी' के अंतर्गत आठ अध्याय हैं। 'अष्टाध्यायी' के सूत्र ही समस्त पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के मूल आधार हैं। यद्यपि पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती समस्त व्याकरणशास्त्र का उपयोग 'अष्टाध्यायी' की रचना के संबंध में किया है, परंतु पाणिनीय व्याकरण का प्रधान आधार आपिशल व्याकरण ही कहा जाएगा। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' की रचना में शब्दलाघव तथा अर्थलाघव को विशेष महत्त्व दिया है। 'अष्टाध्यायी' के अंतर्गत वर्णित 'टि' तथा 'घु' संज्ञाएँ पाणिनि की लाघव शैली की परिचायक हैं। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में अनेक सूत्र यथावत् प्राचीन व्याकरण से लिये गए हैं। यह 'अष्टाध्यायी' की समन्वयात्मक शैली है।

'अष्टाध्यायी' व्याकरणशास्त्र के क्षेत्र में एक महान् देन है। 'अष्टाध्यायी' व्याकरणशास्त्र का प्रमुख द्वार है जिसमें प्रवेश किए बिना व्याकरणशास्त्र का बोध असंभव है।

असंग *(सं० ले०)* [समय—450 ई०]

असंग की प्रमुख रचना 'योगाचारभूमिशास्त्र' है। असंग योगाचार विज्ञानवाद के प्रधान आचार्य हैं। विज्ञानवादी बौद्धों ने जब योग का अभ्यास आरंभ कर दिया था तो वे योगाचार कहलाने लगे थे, ऐसा अनेक विद्वानों का विचार है।

असंग के मतानुसार बाह्य विषयों की सत्यता का निषेध किया गया है। बाह्य विषयों को असंग विज्ञान मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं। विज्ञानवादी असंग के अनुसार बाह्य विषय अनमिलाट्य तथा निःस्वभाव हैं। बाह्य विषयों के बोध का कारण 'आलयविज्ञान' है।

असंग ने परिकल्पित सत्ता, परतंत्र सत्ता तथा परिनिष्पन्न सत्ता के रूप में तीन प्रकार की सत्यता का निरूपण किया है। इनमें परिनिष्पन्न सत्ता तथ्यता-रूप है। यही परिनिष्पन्न सत्ता विज्ञानवादी का सर्वोच्च सत्य है। असंग के अनुसार यह सर्वोच्च सत्य 'विज्ञप्तिमात्रता' के रूप में वर्णित हुआ है। असंग की प्रमुख देन चित्तविज्ञान का निरूपण है। समस्त सांसारिक विषयों का आधार, असंग के अनुसार, चित्त ही है।

असंलग्न *(उ० ले०)*

'असंलग्न' श्री यतींद्रकुमार महापात्र (दे०) का चेतनाप्रवाहमूलक उपन्यास है तथा नूतन सरणि की पुस्तकों में अन्यतम है। इसका नायक विजय शैशव से पृथ्वी का आविष्कार करता चलता है। अवाक् विस्मित नेत्रों से संवेदनशील हृदय को पाथेय कर आयु की राह पर वह चलता ही जा रहा है। जितना वह आगे चलता जाता है, उतना ही अधिक वह अपना अन्वेषण करता जाता है। झील के समान गहरा और समुद्र के समान रहस्यमय है उसका मानस। आंग्लोइंडियन समाज की प्रतिनिधि डरोथी, केथोलिक फ़ादर, संस्कृत पंडित, नन इमा, पुलिस साहेब की स्त्री, सभी उसके सम्मुख एक-एक विभक्त व्यक्तित्व लिये विशिष्ट चरित्र के रूप में प्रकट होते जाते हैं।

असग *(क० ले०)* [समय—853 ई०]

पंपपूर्व युग के इस कवि का समय 853 ई० ठहराया गया है। इनकी प्रशंसा बहुत-से कन्नड कवियों ने की है। इन्होंने संस्कृत में 'शांतिपुराण' तथा 'वर्धमानपुराण' की रचना की है। दसवीं शती के अपभ्रंश कवि धवल ने अपने 'हरिवंश पुराण' में असग की प्रशंसा यों की है—

"असगु महकइ जें सुमणोहर।
वीर जिणेन्द्र चरिउ किलु सुंदर।
केत्तिय कहमि सुकइ गण आपर।
गेम कव्व जहिं विरहम सुंदर॥"

इनके 'शांतिपुराण' एवं कन्नड कवि पोन्न के 'शांतिपुराण' में बहुत साम्य है। जयकीर्ति (900 ई०) ने अपने छंदानुशासन नामक संस्कृत ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है कि असग ने 'कर्णाटक कुमारसंभव' नामक अपने काव्य में कई कन्नड वृत्तों का प्रयोग किया है। इसी 'कुमारसंभव' के कई पद्य नागवर्मा के काव्यावलोकन में उद्धृत हुए हैं। केशिराज ने अपने 'शब्दमणिदर्पण' में प्रमाणभूत कवियों के रूप में इसकी गणना की है।

असग़र गोंडवी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1884 ई०, मृत्यु—1936 ई०]

गोंडा में जन्मे, प्रारंभिक शिक्षा सामान्य रही, कुछ अँग्रेज़ी भी पढ़ी किंतु मैट्रिक की परीक्षा न दे सके। फिर भी नैसर्गिक प्रतिभा के बल पर इतना ज्ञानार्जन कर लिया कि स्वतंत्र रूप से अरबी, फ़ारसी और अँग्रेज़ी साहित्य पढ़ने, समझने और उससे आनंद-लाभ करने की क्षमता आ गई। संयमी और इंद्रियनिग्रही होते हुए भी स्वभाव में रंगीनी और विनोदप्रियता थी तथा तसव्वुफ़ से विशेष प्रेम था। नौकरी के सिलसिले में इलाहाबाद रहे और हिंदुस्तानी एकेडमी की पत्रिका 'हिंदुस्तानी' का संपादन करते रहे।

इनकी भाषा, भाव और शैली में अनूठापन है। प्रारंभ में अनुकरण के तत्त्व विद्यमान थे, किंतु कालांतर में इनका एक स्वतंत्र स्वर उभरने लगा। असग़र की प्रमुख विशेषता इनके स्वर की वह रंगीनी है जो पाठक को एक सुखद ढंग से छेड़ती और प्रभावित करती है। दूसरी विशेषता स्थिरता और व्याकुलता का समन्वय है। प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर अंतर्द्वंद्व और मानवीय भावनाओं का अभाव है जो आधुनिक ग़ज़ल का एक सामान्य अभाव बन गया है। इनके समस्त काव्य में आनंद और उन्माद की स्थिति विद्यमान है। इनके वे शेर विशेष रूप से सुंदर बन पड़े हैं जिनमें जड़ पदार्थों को चेतन मान लिया जाता है। उपमा तथा अलंकारों के प्रति कवि विशेष रूप से सजग है किंतु उसमें भी सामान्य तथा घिसे-पिटे अलंकारों से हटकर ऐसी नवीनता ले आता है कि काव्य का सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है।

आशावादिता, युक्तियुक्तता और रंगीनी असग़र के काव्य के वे अनिवार्य तत्त्व हैं जो न केवल इनके विचारों में वरन् इनकी शैली में भी दृष्टिगत होते हैं। इनके यहाँ तथ्य से अधिक महत्त्व शैली का है। इनमें एक विशेष प्रकार का सौंदर्य-बोध है जिसका उर्दू के अन्य कवियों में अभाव है। उर्दू काव्य की उदासी, विषाद और नैराश्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर करने में असग़र का अपना योगदान रहा है। 'निशाते-रूह्' इनका प्रसिद्ध संग्रह है।

असमर्थुनि जीवितयात्रा *(ते० कृ०)*

'असमर्थुनि जीवितयात्रा' गोपीचंदुडु (दे०) का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिकता, सत्य एवं न्याय को देखने की आशा रखने वाले इस उपन्यास के नायक को हर क्षण निराशा एवं वितृष्णा का ही अनुभव होता है। वास्तविक जीवन के संग्राम में दिखाई देने वाले स्वार्थ, कपट, मिथ्या आडंबर आदि से क्षुब्ध होकर वह अपनी अत्यल्प शक्ति से इनके विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है और समाज में धर्मात्माओं के रूप में प्रतिष्ठित व्यक्तियों के जीवन की वास्तविकता का भंडाफोड़ भी करना चाहता है किंतु उस असमर्थ का विद्रोह अंततः एक विक्षिप्त का हास्यास्पद प्रलाप मात्र बनकर रह जाता है। उसके विचारों का आदर नहीं होता और वह संसार में अकेला पड़ जाता है। इसके उपरांत ज्यों-ज्यों उसका आक्रोश बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों समाज के विरुद्ध उसका प्रलाप बढ़ता जाता है। इसी प्रक्रिया में उसकी दयनीय जीवन-लीला समाप्त हो जाती है और उसकी क्रांति का कोई अवशेष बच नहीं पाता। इस प्रकार इस उपन्यास में समाज में बहुतायत से पाये जाने वाले उदारचेता किंतु समाज की क्रूरताओं को सहने की दृष्टि से अल्प एवं असमर्थ व्यक्तियों के एक प्रतिनिधि का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रायः सभी साहित्यकार केवल जीवन में सफलता पाने वाले समर्थ चरित्रों का वर्णन करते हैं। किंतु गोपीचंदुडु ने यहाँ जीवन के संघर्ष में छिन्न-भिन्न होने वाले असमर्थों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

'असर' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1885 ई०]

जन्म-स्थान—लखनऊ, पिता का नाम—हकीम मिर्ज़ा अफ़ज़ल हुसैन ख़ाँ। 1919 ई० में ये डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त हुए थे। उर्दू के श्रेष्ठ कवियों में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनकी कविताओं का संग्रह 'रंगबस्त' सन् 1944 ई० में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये ग़ज़ल और नज़्म दोनों के शहसवार हैं। इनकी कविताओं में ओजगुण के साथ-साथ सशक्त भाषा-शैली के दर्शन होते हैं। इनकी काव्य-शैली पर 'मीर' (दे०) की छाया दीखती है। कवि के अतिरिक्त ये अच्छे आलोचक भी हैं। 'छानबीन' और 'मीर अनीस की मरसियानिगारी' इनकी आलोचना-कृतियाँ हैं।

असले ते ओहले *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

डा० जसवंतसिंह नेकी (दे०) के इस प्रथम काव्य-संग्रह के प्रकाशन से पंजाबी आलोचना-जगत में वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। इसमें कवि का बल शैली-शिल्प की अपेक्षा चिंतन के नये आयाम प्रस्तुत करने की ओर अधिक रहा है। एक ओर वैज्ञानिक दृष्टिकोण और दूसरी ओर व्यक्तिगत नैतिक मूल्यों के द्वंद्व में जी रहे आज के मनुष्य के अनुभव को काव्यबद्ध करने में डा० नेकी को अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। इस कविता में 'टिब्बे', 'पब्बां दे नक़्श', 'थल' आदि बिंब हमारी लोक-संस्कृति के अनुभव को रूपायित करते हैं जो आज भी आधुनिक मनुष्य के जीवन में जीवित है और इनके साथ-साथ अणु, परमाणु के नवीन बिंब आधुनिक मनुष्य की दुश्चिंता और संकट को प्रकट करते हैं। नवीन पंजावी कविता में यह रचना विशेष महत्त्व की अधिकारिणी है।

असाइत *(गु० ले०)* [समय—चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

मध्यकालीन गुजराती के सर्वप्रथम जैनेतर कवि, गायक, वक्ता, कथाकार, असाइत ठाकर (समय—लगभग 1370 ई०] सिद्धपुर ग्रामवासी राजाराम ठाकर के पुत्र थे।

अपने उंझा-निवासी यजमान की रूपवती कन्या गंगा को मुसलमान सरदार जहानरोज़ से छुड़ाने के लिए, उसे अपनी भानजी घोषित कर, इन्होंने एक ही थाली में उसके साथ भोजन किया। तब से ये अपने तीनों पुत्रों—माडण, जयराज और नारण—समेत जाति से बहिष्कृत हुए और उंझा में जा बसे। इन्हीं से आगे 'तरगाला' जाति का विकास हुआ जो आज भी भवाई व रामलीला खेलती है।

इनकी प्रसिद्ध रचना है 'हंसाउली'। इन्होंने भवाई के 360 वेश भी लिखे। 'हंसाउली' चार खंडों में है। प्रथम खंड में हंसावली तथा नरवाहन का विवाह तथा शेष तीन खंडों में उनके दोनों पुत्रों—हंसराज और बच्छराज—का पराक्रम वर्णित है। हंसराज की मृत्यु पर बच्छराज का करुण विलाप बड़ा हृदयस्पर्शी है। कवि के कवित्व का यथार्थ दर्शन यहीं होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती 'लोक-नाट्य' भवाई के आदि प्रवर्तक के रूप में इनका विशेष महत्त्व है।

'असीर' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1800 ई०, मृत्यु—1881 ई०]

नाम—सैयद मुज़फ़्फ़र अली ख़ाँ, उपनाम—'असीर'; पिता का नाम—सैयद इमदाद अली। ये 'मुसहफ़ी' (दे०) के शिष्य थे। वाजिद अली शाह के निकट संपर्क में ये आठ-नौ वर्ष तक रहे थे। उन्हीं के द्वारा ये 'तद्बीर-उद्-दौला' तथा 'मुक़द्दर-उल-मुल्क' की उपाधियों से अलंकृत किए गए थे। प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के बाद नवाब कलब अली ख़ाँ और फिर उनके सुपुत्र नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ ने इनका संरक्षण किया था। इन्हें 'अमीर' मीनाई (दे०) के काव्यगुरु होने का श्रेय भी प्राप्त था। इनके छह दीवान (काव्य-संग्रह) हैं। इन काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त इनका एक काव्य-संग्रह फ़ारसी में भी है। छन्दःशास्त्र और भाषा पर इन्हें अधिकार था। मरसिया और कसीदा लिखने में भी ये सिद्धहस्त थे। अपने काव्य-सृजन में ये लखनवी शैली का अनुसरण किया करते थे।

असुरवित्तु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

यह एम० टी० वासुदेवन् नायर (दे०) का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसमें मलाबार के एक मध्यवर्गीय युवक की कहानी है जो समाज के तिरस्कार का पात्र बनता है—आसुर बीज से उत्पन्न कहलाता है। परंतु विपत्ति के समय में गाँव वालों के लिए वही एकमात्र सहारा बन जाता है।

इस उपन्यास में लेखक ने अपनी सहज प्रवाह-युक्त शैली में मलाबार के ग्राम्य जीवन का सुंदर चित्रण किया है। यद्यपि गाँव का वातावरण असहायों को धोखा देने वाले धनिकों और मनुष्य को परस्पर लड़ाने वाले सांप्रदायिकतावादियों के दुष्कर्मों से कलुषित है फिर भी मानव के मौलिक सद्भाव की धारा कभी नहीं बुझती, यही तथ्य इस उपन्यास का मुख्य संदेश है। वासुदेवन् नायर के उपन्यासों में इसका मुख्य स्थान है।

अस्तिकाय *(प्रा० पारि०)*

जैन-सिद्धांत के अनुसार द्रव्य दो प्रकार का होता है—विकासशील और विकासहीन। दूसरे प्रकार का द्रव्य तो केवल 'काल' होता है; शेष सभी द्रव्य विकासशील होते हैं जिन्हें सशरीर या शरीरवत् होने के कारण 'अस्तिकाय' कहा जाता है। ये अस्तिकाय द्रव्य दो प्रकार के होते हैं—जीव और अजीव। जीव अनंत शक्ति, ज्ञान और आनंद का अक्षय भांडार होता है, किंतु कर्मजन्य बंधन उसकी सर्वज्ञता और सर्वप्रमुख विशेषता 'चेतना' को उसी प्रकार सीमित कर देते हैं जैसे सूर्य का अनंत प्रकाश बादलों से ढक जाता है। उस समय जीव कर्मजन्य शरीर से आवृत रूप में ही प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार प्रकाश आवरणीय द्रव्य में समा जाता है और उसी की आकृति धारण कर लेता है उसी प्रकार जीव शरीर के प्रत्येक अवयव में समाया होता है और उसकी वृद्धि के साथ उसके शरीर को घेरता जाता है। मिट्टी, पत्थर, वृक्ष, पौधे इत्यादि के एकेंद्रिय जीव हैं क्योंकि इनमें 'स्पर्श' की ही इन्द्रिय होती है। इन एकेंद्रिय जीवों को 'स्थावर' जीव कहा जाता है। जिन जीवों में एक से अधिक इंद्रियाँ होती हैं उन्हें 'त्रस' जीव की संज्ञा प्राप्त होती है। कीड़ा इत्यादि स्पर्श और रस की दो इंद्रियों वाले जीव होते हैं; चींटी इत्यादि स्पर्श, रस और गंध की तीन इंद्रियों के जीव होते हैं, मक्खी इत्यादि में स्पर्श, गंधरस, गंध और रूप की चार इंद्रियाँ होती हैं और पक्षी, पशु, मनुष्य इत्यादि बड़े जीवों में श्रवण के सहित चार इंद्रियाँ होती हैं। ये सभी बद्धजीव हैं। जैन वचनों पर विश्वास और उन पर आचरण से कर्मबंधन ढीले पड़ते जाते हैं। तब धीरे-धीरे जीव को पूर्ण प्रकाश की अवस्था प्राप्त हो जाती है। ये सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आनन्दघनजीव, 'मुक्तजीव' कहे जाते हैं। जैन धर्म में इन्हें ही तीर्थंकर (दे०) कहा जाता है। इनसे भिन्न कोई ईश्वर नहीं होता। इस प्रकार सब से अधिक स्थूल रूप निचली सीमा से ऊपर उठाकर ईश्वर बना देने तक का आश्वासन जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। ये सब जीव पदार्थ हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय अजीव पदार्थ भी होते हैं। विकास के लिए तथा अपने को प्रकट करने के लिए जीव को इनकी आवश्यकता पड़ती है। ये हैं—पुद्गल या शरीर-रचना के उपकरण प्रकृति तत्त्व, आकाश और वस्तु। धर्म-अधर्म जीव को कर्म का अवसर उसी प्रकार देता है जिस प्रकार जल मछली को तैरने का अवकाश प्रदान करता है। ये सभी तत्त्व अस्तिकाय कहलाते हैं।

अस्तित्ववाद *(हिं० पारि०)*

'अस्तित्ववाद' उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध और वर्तमान शती के पूर्वार्द्ध में विकसित एक व्यक्तिवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य दार्शनिक अवधारणा है जिसके अनुसार मनुष्य का वैयक्तिक अस्तित्व ही समस्त जागतिक व्यापार का केंद्रीय सत्य है। यद्यपि संत आगस्तीन एवं सुकरात जैसे प्राचीन तथा पास्कल जैसे मध्ययुगीन विचारकों के चिंतन में भी अस्तित्ववादी विचारधारा का आभास खोजा जा सकता है, किंतु एक चिंतन-पद्धति और साहित्यिक मतवाद के रूप में इसका विकास अपेक्षाकृत एक आधुनिक घटना है, जिसके साहित्यिक आंदोलन में अनेक डेनिश, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, अमरीकी और अँग्रेज़ लेखकों ने विवेचनात्मक और सर्जनात्मक दोनों रूपों में योगदान किया।

अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य के लिए एक-मात्र महत्त्वपूर्ण एवं केंद्रीय सत्य सामाजिक गतिविधान, नियमों, अनुशासनों, धारणाओं तथा गतानुगतिक एवं पूर्व-निर्मित संस्कारों आदि से पूर्णतया निरपेक्ष उसका निजी अस्तित्व है, जिसका निर्वचन अथवा विश्लेषण पहले से बन बनाई चिंतनात्मक अथवा वैज्ञानिक शब्दावली में नहीं किया जा सकता। 'अस्तित्व' की स्थिति तत्त्व से पूर्व की है, नितांत निजी अस्तित्व का स्वामी व्यक्ति किसी पूर्व प्रतिष्ठित संसार एवं सुनिर्धारित स्थिति में आविर्भूत नहीं होता, बल्कि वह स्वयं अपने 'स्वतंत्र' संसार के निर्माण के लिए निरंतर क्रियाशील रहता है और अंत में जब यह 'निज' का स्वनिर्मित 'स्वतंत्र' 'संसार' पूर्णतया मूर्त हो जाता है तो वह व्यक्ति उसके लिए 'प्रामाणिक', बल्कि एक-मात्र प्रामाणिक वस्तु बन जाता है। व्यक्ति के लिए उसकी अपनी अस्मिता के वृत्त में ही सार्थकता है। अपने अस्तित्व के वैयक्तिक वृत्त में व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र एवं दायित्व-पूर्ण है, किंतु उसकी यह स्वतंत्रता एवं दायित्व-भावना केवल उसके अपने लिए है।

अस्तित्ववादियों के अनुसार मनुष्य के इस वैयक्तिक अस्तित्व को अपनी सत्ता और स्वरूप की अक्षुण्णता की रक्षा के लिए 'समूहवाद', सिद्धांतवाद, वस्तुवाद, निर्वैयक्तिकता, सामाजिकता और रीतिबद्ध चिंतन-पद्धति आदि से निरंतर संघर्षशील रहना पड़ता है (अस्तित्ववाद के शास्त्र में संघर्ष के लिए 'एंगेजमेंट' शब्द का व्यवहार किया गया है)! व्यक्ति के निजी अस्तित्व को बनी-बनाई लीक तथा सुनिश्चित 'विवेक-सम्मत' आधार पर समझने का प्रयास व्यर्थ है। इस प्रकार अस्तित्ववाद मनुष्य के लिए बाहर के अशुद्ध प्रभावों से सुरक्षित वैयक्तिक अस्तित्व का एक अलग अनुभव-संसार बनाने में विश्वास करता है। इन अनुभवों में यंत्रणा, संत्रास, अपराध-भाव और मृत्यु-बोध का विशेष स्थान है, जो 'अस्तित्व' के रक्षण के लिए व्यक्ति को विशेष 'सजग, दायित्वपूर्ण और क्रियाशील रखते हैं।

अस्तित्व की दो धाराएँ हैं : ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी। ईश्वरवादी अस्तित्ववाद (पाश्चात्य समीक्षा में इसका एक बहुप्रचलित अभिधान है : क्रिश्चियन एग्ज़िस्टेंशियेलिज़्म) के अनुसार मनुष्य का वैयक्तिक अस्तित्व और उससे संबद्ध संघर्षशीलता अनिवार्यतः ईश्वरीय पथ की अनुगामी है। अस्तित्ववाद के इन दोनों रूपों को अलग-अलग कारणों से मार्क्सवाद और धार्मिक मतवादों का विरोध सहना पड़ा है। आधुनिक भारतीय साहित्य में अस्तित्ववाद का प्रभाव प्रायः 'बौद्धिक' चर्चाओं तक ही सीमित है; नये सर्जनात्मक कथा एवं कथा-साहित्य पर इसका कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है, किंतु वह अधिकांशतः आरोपित है, वास्तविक जन-जीवन के भीतर से उद्भूत नहीं।

अस्पष्ट-आख्यान *(उ० कृ०)*

डा० मन्मथनाथ दास (दे०) कृत यह नाट्य-उपन्यास (ड्रामा नॉवेल) उड़िया उपन्यास-जगत् में एक प्रयोग है। डा० प्रकाश (दे०) मानव का अध्ययन करने के प्रयास में अपने अंतरंग एवं निकटतम व्यक्ति को समझने में असमर्थ सिद्ध होते हैं। जिस गवेषणा के पीछे वे जीवन का समस्त सुख छोड़कर अनुसंधानरत रहते हैं, वह अंततोगत्वा दयनीय रूप से मिथ्या प्रमाणित होती है। इस गवेषणा के द्वारा किसी भी सिद्धांत या निष्कर्ष पर पहुँचना संभव नहीं है; यह सदा से एक अस्पष्ट आख्यान रहा है और रहेगा।

अस्बाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द *(उर्दू ले०)* [रचना-काल—1958 ई०]

'अस्बाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द' सर सैयद अहमद खाँ (दे०) की रचना है। इसमें सन् 1857 के युद्ध के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। अँग्रेज़ सरकार की त्रुटियों और अनियमितताओं को ही इसके लिए उत्तरदायी ठहराते हुए उसके समस्त अनाचार गिनाए गए हैं।

सर सैयद ने लिखा है कि भारत के लोग और सेना सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र में रत नहीं थे बल्कि वर्षों से ऐसी बातें हो रही थीं जिन से लोगों का दिल भारत सरकार से फटता जा रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत के शासन एवं संविधान के निर्माण में भारतीयों को कोई स्थान एवं महत्त्व प्राप्त न था। लोग सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार के इरादों को समझ न सकते थे और उन्हें समझाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। एक तो सरकार भारतीयों का शोषण कर उन्हें दीन-हीन बनाना चाहती थी और दूसरे उनके धर्म में हस्तक्षेप कर उन्हें ईसाई बनाना चाहती थी। इन्हीं सब तत्त्वों से मिलकर 1857 ई० की क्रांति का विस्फोट हुआ था।

सर सैयद की यह रचना इस क्रांति की पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत करने वाली एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके आधार पर एक ओर उन्हें भारतीयों का हितचिंतक और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार का ग़द्दार कहा जाने लगा था।

अहद ज़रगर *(कश्० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

इनकी कविता के विषय हैं तसव्वुफ़ और ऐहिक प्रेम। शैली सामान्य किंतु व्यंग्य और हास्य से पूर्ण है। इनकी कृतियाँ हैं: 'कलाम-ए-अहद ज़रगर' (दस खंडों में), 'अकनन्दुन कलान', 'गुल-ओ-सनोबर' और 'मौलवीनामा'। इसके अतिरिक्त इनका सूफ़ियाना कलाम भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा में प्रवाह है और इनकी रचनाओं की विशेषता है शब्द की लक्षणा शक्ति। आधुनिक युग में सूफ़ी संत-परंपरा को निभाने वाले यह विरले कवि हैं।

अहनानूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा पूर्व दूसरी शती से ईसा की दूसरी शताब्दी तक]

अष्ट पद्य-संग्रहों में अहनानूरु का बहुत महत्त्व है। तत्कालीन अहम् काव्यों में सर्वाधिक विस्तृत होने के कारण इसे नेडुन्तोगै कहा गया। इसमें विभिन्न कवियों द्वारा रचित 400 पद हैं जो अहवल् छंद में रचित हैं (रचना के आरंभ में मंगलाचरण के पद हैं जिसके रचयिता पेरुदेवनार हैं)। संपूर्ण कृति कलिट्रियानैनिरै, मणिमिडै पवलम् और नित्तिलक्कोवै नामक तीन भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः 120, 180 और 100 पद हैं। ये पद 13 से लेकर 37 पंक्तियों तक के हैं। इसमें पाँचों भू-भागों और उनके निवासियों के जीवन का विस्तृत वर्णन है। कुरिंजि संबंधी पदों में पूर्वराग, मुल्लै, नेयदल, और पालै-संबंधी पदों में प्रेमी-प्रेमिका की विरहानुभूतियों और मरुदम-संबंधी पदों में सुखी वैवाहिक जीवन तथा उसमें आने वाली बाधाओं का वर्णन है। कवियों ने विभिन्न भू-भागों का और विभिन्न मनोभावों का वर्णन इतने सुंदर, सजीव और मर्मस्पर्शी ढंग से किया है कि हमें वे वर्णन कवि के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित प्रतीत होते हैं। पदों में चित्रात्मकता है। उपमा अलंकार का तथा सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग-सौष्ठव दर्शनीय है। इसमें प्राचीन तमिल लोगों की सभ्यता, संस्कृति, प्रथाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कुछ पदों में द्राविड़ों के मौलिक विवाह-संस्कार का वर्णन है। अहनानूरु में तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओं और सामंतों के शासनादि से संबंधित पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। यह सामग्री तत्कालीन तमिल समाज का प्रामाणिक इतिहास तैयार करने में सहायक सिद्ध होती है।

अहप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य दो भागों में विभाजित है—'अहम्' और 'पुरम्'। अहम् साहित्य में व्यक्तिगत जीवन और पुरम् साहित्य में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन होता है। नायक-नायिका के परस्पर समान प्रेम से उत्पन्न भावनाओं, उनके व्यक्तिगत आनंद, वैवाहिक जीवन, कालांतर में उत्पन्न उनके मानसिक प्रेम आदि का वर्णन 'अहप्पोरुळ्' कहलाता है। अहप्पोरुळ् के तीन भाग हैं—कैक्किळै, ऐंतिणै और पेंरुतिणै। कैक्किळै से तात्पर्य है एकपक्षीय प्रेम। नायक-नायिका में से किसी एक के मन में प्रेम का उदय, उनका विवाह, वैवाहिक जीवन आदि का वर्णन कैक्किळै के अंतर्गत आता है। कुल, गुण, रूप, धन, यौवन, प्रेम-भाव आदि की दृष्टि से समान नायिक-नायिका का स्वयमेव मिलन, विवाह, वैवाहिक जीवन आदि का वर्णन ऐंतिणै के अंतर्गत आता है। समान प्रेम-रहित नायक-नायका का मिलन, माता-पिता द्वारा उनकी इच्छानुसार या इच्छा विरुद्ध विवाह, वैवाहिक जीवन आदि का वर्णन पेंरुतिणै के अंतर्गत आता है। यहाँ नायक-नायिका में ऐंद्रिय प्रेम की प्रधानता होती है और उनकी आयु में भी पर्याप्त अंतर होता है। साहित्यकारों ने ऐंतिणै के अंतर्गत वर्णित विवाह-पद्धति और वैवाहिक जीवन को सर्वश्रेष्ठ माना है। अहम् साहित्य में मुख्यतः उरिप्पारुळ् का ही वर्णन होता है। इसमें तलैवन् (नायक) और तलैवी (नायिका) के आवश्यक लक्षणों का निर्देश भी है। अहप्पोरुळ् के दो भाग हैं—कळवु अर्थात् विवाह-पूर्व उत्पन्न प्रेम और कर्पु अर्थात् दाम्पत्य जीवन। इनका वर्णन भी अहम् साहित्य में होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमद नदीम कासिमी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1916 ई०]

जन्म-स्थान—अंगा ग्राम, ज़िला—शाहपुर (पंजाब)। इन्होंने सन् 1935 में बी० ए० पास किया था। सन् 1939 ई० में मुलतान के सिंचाई विभाग में तीन वर्ष तक काम करते रहे। तदुपरांत ये सन् 1942 में 'फूल' और 'तहज़ीब-ए-नसवाँ' के संपादक बने थे। इसके अनंतर शीघ्र ही कुछ समय के लिए 'अदब-ए-लतीफ़' के संपादक हो गए थे। ये 'पाकिस्तान लेखक संघ' के सचिव के रूप में भी कार्य करते रहे हैं। आजकल ये लाहौर में शुद्ध शैक्षिक एवं साहित्यिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

प्रगतिवादी कवि के रूप में इन्होंने उर्दू साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। ये पद्य-रचना के अतिरिक्त गद्य-लेखन भी करते हैं। ग़ज़ल और नज़्म इनकी विशिष्ट काव्य-विधाएँ हैं। भाव और कल्पना का सुंदर समन्वय इनकी कृतियों की विशेषता है। इनकी तीन कृतियाँ—'जलाल-ओ-जमाल', 'शोला-ए-गुल' और 'रिमझिम' उर्दू जगत् में यथेष्ट लोकप्रिय हो चुकी हैं। इनकी संबोधन शैली अत्यंत चित्ताकर्षक और हृदयस्पर्शी है। अरबी-फ़ारसी से अधिक प्रभावित होने पर भी इनकी भाषा मुहावरेदार और टकसाली है। सशक्त अभिव्यंजना-शैली ने इनकी कृतियों को सर्वत्र नवीनता और प्रभविष्णुता प्रदान की है। भावुकता की अतिशयता इनकी स्वभावगत विशेषता है जिसके कारण इनके काव्य में सच्ची आत्मीयता और उद्दाम उत्साह दोनों के तत्त्व प्रभूत मात्रा में मिलते हैं। इनकी ग़ज़लों में प्राकृतिक तत्त्व अधिक हैं और शृंगारिकता तथा प्रेम-निरूपण अपेक्षाकृत कम हैं।

अहमदयार *(पं० ले०)* [जन्म—1768 ई०, मृत्यु—1845 ई०]

अपनी रचनाओं की विशाल संख्या के प्रति गर्व-सजग कवि अहमदयार का जन्म ज़िला गुजरात (अब पाकिस्तान) के एक कृषक-परिवार में हुआ। ये बाल्यकाल से ही अध्ययनशील थे। स्वरचित 'हातमनामा' में इन्होंने अपने को चौदह विधाओं और चौदह लिपियों का ज्ञाता कहा है परंतु इनके कृतित्व में अरबी-फ़ारसी का ज्ञान ही मुखरित हुआ है। लगभग पचास वर्षों के सक्रिय साहित्यिक जीवन में इन्होंने 'हीर-राँझा', 'सस्सी-पुन्नू', 'लैला-मजनूँ', 'सोहणी-महीवाल', 'कामरूप', 'चंदरबदन-महियार', 'राज बीबी-नामदार', 'अहसनुलक़स्सिस', 'हातमनामा', 'वफ़ातनामा', 'मैराजनामा', 'जंग अहमद', 'जंगबदर', 'सैफुल मुलुक', 'तमीम अंसारी', 'क़िस्सा तीतर' प्रभृति पचास से भी अधिक प्रेमाख्यानक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की। इनकी अनेक कृतियों का स्रोत इस्लाम का धार्मिक साहित्य और फ़ारसी मसनवियाँ हैं। रचना-पद्धति में भी इन्हीं का अनुकरण किया गया है। 'यूसुफ़ ज़ुलेखा' के वृत्त पर आधारित 'अहसनुलक़स्सिस' में इन्हने कुरान और हदीसों के उद्धरणों को छंदोबद्ध किया है; फलस्वरूप काव्य-सौंदर्य और छंदप्रवाह बाधित हुए हैं। इनकी भाषा फ़ारसी शब्दावली से बोझिल है। काव्य के भाव-पक्ष अथवा कला-पक्ष की अपेक्षा कवि की रुचि घटना-वैचित्र्य की योजना में है। इनकी विद्वत्ता और ख्याति से प्रभावित होकर सन् 1840 के आसपास काश्मीर नरेश महाराजा गुलाबसिंह ने इनसे सिक्ख-इतिहास लिखने का आग्रह किया परंतु किन्हीं कारणों से यह योजना क्रियान्वित न हो सकी। रचनाओं की विशाल संख्या, विविध विषयात्मकता और धार्मिक ज्ञान के कारण कवि अपने समय में प्रख्यात और लोकप्रिय थे।

अहमदशाह गुज्जर *(पं० ले०)* [समय—सत्रहवीं शताब्दी ई०]

पंजाबी में हीर-राँझा की प्रेमकथा को छंदोबद्ध करने वाले ये प्रथम मुसलमान कवि हैं। जनश्रुति के अनुसार ये गूजर थे। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'हीर अहमद' (रचना-काल—1692 ई०) में कुल 183 छंद हैं। हीर और राँझा के आकर्षण, हीर के विवाह, ससुराल-गमन और वहाँ से राँझा के साथ पलायन पर आधारित कहानी की जो रूपरेखा अहमद ने निर्धारित की, वह इनके पूर्ववर्ती दमोदर (दे०) से पर्याप्त भिन्न थी फिर भी परवर्ती मुसलमान कवियों ने उसे ही अपनाया। प्रबंध-परिकल्पना की दृष्टि से साधारण होते हुए भी हीर-काव्य के मुख्य गुण—लौकिक शृंगार की प्रमुखता, संवादात्मकता और सामंती मूल्यों के प्रति असंतोष—इस रचना में सन्निविष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबी क़िस्सा-काव्य में बैंत छंद के पहले प्रयोगकर्त्ता होने के नाते भी अहमदशाह का उल्लेख आवश्यक है।

अहलिकै (अहल्या) *(सं०, त० पा०)*

अहल्या पौराणिक नारी पात्रों में से है। वाल्मीकि रामायण (दे०) में अहल्या-शाप-मोचन प्रसंग को लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिल में अनेक कृतियों की रचना हुई है जिनमें प्रसिद्ध हैं—कम्बर् कृत 'कम्ब रामायणम्' (दे०), वे० प० शु० मुदलियार् कृत 'अहलिकै वेण्पा' (दे०), श० तु० शु० योगियार् कृत 'अहल्या' और पुदुमैप्पित्तन् कृत दो कहानियाँ 'अहल्यै' और 'शापविमोचनम्'।

वाल्मीकि की अहल्या साधारण नारी है जो अपराध करती है और प्रायश्चित कर अपराध से मुक्त हो जाती है। कम्बर् ने अहल्या को कामुक नारी के रूप में चित्रित किया है। 'अहलिकै वेण्पा' में अहल्या ऐसी नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो कि अपनी अबोधता के कारण पुरुषों की कामुक वृत्ति का शिकार बनती हैं। 'अहल्या' नामक शिरुकाप्पियम् (दे०) (लघु महाकाव्य) में योगियार् (दे०) ने अहल्या को सतीत्व की रक्षा करने वाली नारी कहा है। उन्होंने नारियों का पक्ष लेकर पुरुष-वर्ग को फटकारा है। काव्य में राम गौतम से कहते हैं कि अहल्या ने अपनी आँखों से तुझे देखा, इंद्र को नहीं। उसने तेरा ही ध्यान धरा, इंद्र का नहीं, अत वह पवित्र है। योगियार् के मत में यदि व्यक्ति का मन पवित्र है तो उसका तन भी पवित्र है। इस प्रकार उन्होंने अहल्या को तन-मन से पवित्र एक सती नारी घोषित किया है। 'अहल्यै' कहानी में अहल्या तन-मन से पवित्र पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित की गई है। 'शापविमोचनम्' में अहल्या राम की चरण-धूलि के स्पर्श से शाप-मुक्त होकर भी अपने को अपराधिनी मानती है और अंत में पुनः शिला-रूप धारण कर मानसिक व्यथा से मुक्ति पा लेती है। यहाँ लेखक ने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति तब तक अपने अपराध के भार से मुक्त नहीं हो सकता जब तक संसार उसके अपराध को न भुला दे।

तमिल की इन विभिन्न कृतियों में अहल्या के माध्यम से विभिन्न युगों की स्थिति और सतीत्व के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

अहलिकै वेण्पा *(त० कृ०)*

यह वे० प० शुप्पिरमणिय मुदलियार् का खंड-काव्य है। अहल्या के आख्यान का नवीकरण इस काव्य के तीन कांडों में प्रस्तुत है जिसके अनुसार वह मनोमालिन्य-रहित सती महिला थी जिसे इंद्र का अत्याचार सहना पड़ा। मुख्य घटना—अहल्या का शील-भंग—मध्यवर्ती कांड में है और उसकी प्रारंभिक और परिणाम-रूपी स्थितियाँ प्रथम और तृतीय कांडों में वर्णित हैं। केंद्रीभूत दूसरे कांड में अहल्या-इंद्र के संवाद का नाटकोचित ढंग से निर्वाह किया गया है। सती अहल्या इंद्र के सामने कई तर्क रख देती है; उसे रोक देती है; धिक्कारती है पर कामातुर देव ज़्यादती कर ही देता है। गौतम मुनि को उसके निर्दोष होने का विश्वास होने पर भी इस कलंक के लिए उसे पत्थर बनाना पड़ता है। काव्य प्रौढ़ आभिजात्यपूर्ण 'वेण्बा' छंद में रचित होकर 'कुरळ्', 'कम्बरामायणम्' आदि पूर्ववर्ती श्रेष्ठ तमिल काव्यों का प्रभाव लिये हुए है। 'नलवेण्पा' की प्रसिद्ध कृति का 'वेण्बा' छंद-विधान इस काव्य का आदर्श अवश्य रहा होगा। (दे० 'पुहळेन्ति') कथावस्तु-योजना तथा शैली में भी अँग्रेज़ी कवि शेक्सपियर की 'लुक्रीस का शील-भंग' नामक प्रसिद्ध काव्य का यथोचित अनुकरण भी हुआ है। समग्र दृष्टि से इस काव्य को प्राचीन तमिल साहित्यिक परंपरा की एक सफल आधुनिक उपलब्धि कहा जा सकता है।

अहल्यासंक्रंदनमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शताब्दी ई०]

इस काव्य के लेखक समुखं वेंकट कृष्णप्प नायकुडु हैं। ये मधुरा के शासक विजयरंग चोक्कनाथुडु (शासन-काल 1704-1731 ई०) के सेनाध्यक्ष थे। इन्होंने कुछ गद्य-काव्यों के अतिरिक्त 'अहल्यासंक्रंदनमु' नामक तीन आश्वासों का एक श्रृंगार-काव्य भी लिखा था। गौतम की पत्नी अहल्या के साथ इंद्र का समागम, उनके अनुचित श्रृंगार आदि से संबद्ध कथा ही इसका प्रधान विषय है। पुराण, इतिहास आदि से इस प्रकार की अनुचित श्रृंगार से संबद्ध कथाएं लेकर मधुरा के कवियों ने अनेक काव्य लिखे। इस वर्ग के अन्य श्रृंगार-काव्यों की तरह प्रस्तुत कृति में भी सरस रचना तथा मुहावरेदार भाषा जैसे उत्तम कविता के गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। परंतु 'ताराशशांक विजयमु' जैसे काव्यों में श्रृंगार-वर्णन औचित्य की सीमा के बाहर हो गए हैं तो 'अहल्यासंक्रंदनमु' में वे अपेक्षाकृत सीमा के भीतर ही हैं। इसकी कथा अत्यंत प्रचलित है। मधुरा के श्रृंगार-काव्यों के अंतर्गत औचित्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत 'अहल्यासंक्रंदनमु' श्रेष्ठ माना जा सकता है।

अहल्ये *(क० कृ०)*

यह श्री पु० ति० नरसिंहाचार्य (दे०) का सर्वश्रेष्ठ गीतिनाटक है। श्री नरसिंहाचार्य कन्नड के श्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों में हैं। उन्होंने रामायण की अभिशप्ता अहल्या के वृत्त के आधार पर यह गीतिनाटक लिखा है। संगीत में भी लेखक की बड़ी गति है। अतः इसके गीत राग-तालबद्ध हैं। संगीत एवं साहित्य का अप्रतिम संगम इसमें हुआ है। कवि ने मूल का ज्यों का त्यों अनुकरण नहीं किया है बल्कि नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं। मूल कथा के अनुसार अहल्या निर्दोष है; इंद्र गौतम के रूप में आकर उसका सतीत्व हरता है। इसमें अहल्या को ज्ञात है कि आनेवाला इंद्र है। गौतम प्रवृत्तियों का दमन करके अपनी पत्नी की अभिलाषाओं की ओर से आँखें मूँदे तपस्या में लीन रहते हैं। अहल्या सुंदरी है, तरुणी है। उसकी काम की भूख अतृप्त है। काम उसे चंचल बनाता है। अंत में इंद्र को देखकर उसकी समस्त लालसाएँ अनायास जाग पड़ती हैं। वह आत्मसमर्पण कर बैठती है। अंत में अपने क्षणिक दौर्बल्य पर पश्चात्ताप प्रकट करती है। पश्चात्ताप से जब उसकी आत्मा परिपूत बनती है, तब राम की कृपा होती है और पति का शापविमोचन होता है। पाषाणी अहल्या का पुनरुद्धार होता है। प्रवृत्ति-निवृत्ति के संतुलन का संदेश कृतिकार ने दिया है। अहल्या का चरित्र अत्यंत मनोवैज्ञानिक है, उसके प्रति पाठकों की अजस्र सहानुभूति रहती है। गौतम का चरित्र भी सुंदर बन पड़ा है। काम जीवन में वर्ज्य नहीं है। इंद्र जैसे व्यक्ति आज भी मिलते हैं। उसका चरित्र भी अत्यंत यथार्थ बन पड़ा है। नाटकीयता, गेयता एवं कलात्मकता की दृष्टि से यह अत्यंत सुंदर नाटक है और कन्नड की प्रतिनिधि कृतियों में से है।

अहल् विळक्कु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

अहल् विळक्कु मु० वरदराजन् (दे०) कृत चरित्र-प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें समकालीन समाज की ज्वलंत समस्याओं का अंकन किया गया है। इसके पुरुष एवं नारी पात्र क्रमशः तत्कालीन समाज में प्राप्त भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों वाले स्त्री-पुरुषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चन्द्रन् उन व्यक्तियों में से है जो अपनी बुद्धिमानी के कारण आरंभ में उन्नति करते हैं और लोगों की प्रशंसा के पात्र बनते हैं परंतु शीघ्र ही वैयक्तिक दुर्बलताओं के कारण पतन की ओर उन्मुख होते हैं। वेलैयन् सामान्य व्यक्ति है। वह परिश्रम के बल पर ऊँचा उठता है। जीवन में असफल होने पर भी हिम्मत नहीं हारता। मालन् स्वार्थी व्यक्तियों का प्रतीक है। नारी पात्रों में पाक्कियम्मा आदर्श नारी-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। अल्पायु में ही विधवा हो जाने पर, आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा से, वह बच्चों का एक स्कूल चलाती है। इस प्रकार वह आत्मोद्धार करने के साथ-साथ दूसरों का मार्गदर्शन भी करती है। हिमावती पाश्चात्य सभ्यता के रँग में रँगी हुई नारी का प्रतिरूप है। मणिमेखलै महत्त्वाकांक्षी नारी है। लेखक की दृष्टि में उपन्यास के नाना पात्रों में वेलैयन् आदर्श पात्र हैं। उन्होंने चन्द्रन् और वेलैयन् को क्रमशः 'कुत्तु विळक्कु' (पीतल का दीया) और 'अहल् विळक्कु' (मिट्टी का दीया) कहा है। पीतल का दीया सतत जलते रहने पर अपना सौंदर्य खो बैठता है और मिट्टी का दीया सदा एक-सा रहता है। ठीक इसी प्रकार चन्द्रन् जैसे शिक्षित किंतु गुणहीन व्यक्ति आरंभ में प्रशंसित होते हैं परंतु बाद में लोगों की निंदा के पात्र बनते हैं। और वेलैयन् जैसे अल्पशिक्षित किंतु गुणी व्यक्ति सदा लोगों की प्रशंसा के पात्र बनते हैं। लेखक ने इस बात पर भी बल दिया है कि नैतिकता जीवन के लिए अनिवार्य है। यह मु० वरदराजन् के प्रसिद्ध उपन्यासों में से है। उन्हें इसी उपन्यास पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। तमिल के उपन्यास साहित्य में 'अहल् विळक्कु' का विशिष्ट स्थान है।

'अहसन' लखनवी *(उर्दू ले०)*

सैयद मेंहदी हसन 'अहसन' लखनवी नवाब मिर्ज़ा शौक लेखक 'ज़हर-ए-इश्क' (दे०) व 'बहार-ए-इश्क' के दौहित्र थे। 'अल्फ्रेड ड्रामेटिक कंपनी' के सर्वप्रथम नाटककार ये ही थे। ये न केवल एक योग्य नाटककार थे बल्कि एक प्रसिद्ध कवि एवं अच्छे संगीतज्ञ भी थे। इनके नाटकों की भाषा परिमार्जित एवं मुहावरेदार होती थी। भाषा पर इन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इनकी एक कृति 'वाकिआत-ए-अनीस' है जिसमें मीर अनीस के जीवन का वृत्तांत अत्यंत सुंदर एवं प्रभावशाली ढंग से लिखा गया है। इनकी नाट्य-रचनाओं में 'फ़िरोज़-ए-गुलज़ार', 'चन्द्रावली', 'दिलफ़रोश', 'भूलभुलयाँ', 'बकावली' तथा 'चलता-पुर्ज़ा' विशेष उल्लेखनीय हैं।

अहोबल पंडितुडु *(तें० ले०)*

अहोबल पंडित सत्रहवीं शती में जीवित थे। इनका रचना-काल ई० 1658-1668 के मध्य माना जाता है। इनका असली नाम ओबलय्य अथवा औबल पंडित था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका संस्कृतीकरण अहोबल के रूप में किया गया है।

अहोबल पंडित ने नन्नय भट्टु (दे०) कृत 'आंध्रशब्दचिंतामणि' (दे०) के लिए 'कवि शिरोभूषणम्' नाम से संस्कृत में समग्र और विस्तृत व्याख्या लिखी है। संस्कृत में अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का जो संबंध है, वही संबंध 'चिंतामणि' और 'कवि शिरोभूषणम्' का है। यह व्याख्या ग्रंथ अपने लेखक के नाम पर 'अहोबल पंडितीयमु' के नाम से प्रख्यात है। इस ग्रंथ की रचना कर इन्होंने आंध्र भाषा की अपूर्व सेवा की है। इनकी शैली मृदु-मधुर, सरल तथा प्रसाद गुणयुक्त है।

आंचलिक उपन्यास *(हिं० प्र०)*

हिंदी आंचलिक उपन्यास स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की उपलब्धि है। यद्यपि 'आंचलिक उपन्यास' हिंदी में फणीश्वरनाथ 'रेणु' (दे०) के 'मैला आँचल' (दे०) 1954 के प्रकाशन के उपरांत ही प्रचलित हुआ तथापि उसका अभ्युदय नागार्जुन के 'बलचनमा' से माना जाता है और आंचलिकता का आभास उससे भी पूर्व प्रेमचन्द (दे०), वृन्दावनलाल वर्मा (दे०), अमृतलाल नागर (दे०) की कतिपय कृतियों में मिलता है।

आंचलिक उपन्यास में देश, काल, परिस्थिति और प्रकृति का चित्रण साधन रूप में न होकर साध्य रूप में होता है। उपन्यासकार उसमें प्रदेश-विशेष की भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, रीति-नीति, रहन-सहन, वेशभूषा, धार्मिक रूढ़ियों, त्यौहार, पर्व, मेले-तमाशे, नृत्य-गीत, बोली-बानी, राजनीतिक चेतना, आर्थिक कठिनाइयों आदि का सूक्ष्म निरीक्षण कर स्वानुभव से उनका चित्रण करता है। उसका कथानक और पात्र अंचल की देन होते हैं—पात्र धरती-पुत्र होते हैं और पाठक उसे पढ़ते समय मिट्टी की सोंधी महक और ताजगी का अनुभव करता है। उपन्यासकार विशिष्ट काल-खंड को चुन केवल स्थितियों का ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत नहीं करता, उनके प्रति सजग जनता की प्रतिक्रिया, उत्क्रांति की लहर और नई चेतना का भी वर्णन करता है।

हिंदी में आंचलिक उपन्यास आरंभ करने का श्रेय बिहार के साहित्यकारों—नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु आदि को है। नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे', रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' (दे०), रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', उदयशंकर भट्ट (दे०) का 'शेष-प्रशेष', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये', रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर', शैलेश मटियानी का 'हौलदार' प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास हैं। इस परंपरा में राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' का 'सूरजकिरण की छाँह', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली', बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ', 'मुक्तावली' और 'नेपाल की बेटी' भी उल्लेखनीय हैं।

आंचलिक उपन्यास पाठकों को अंचल-विशेष की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक चेतना और भौगोलिक विशेषता से तो परिचित कराता ही है, भारत की विभिन्न आंचलिक संस्कृतियों के भेद में अभेद दिखाकर सांस्कृतिक एकीकरण और भावात्मक एकता का भी स्तुत्य प्रयास करता है। उनकी सीमाएँ भी प्रत्यक्ष हैं। अपनी जाति-वर्ग और धर्म-संस्कृति के प्रति कट्टरता और अंध-मोह के कारण लेखक की दृष्टि संकुचित हो समाज में विघटन के बीज बो सकती है, भाषा के कारण उसकी संप्रेषणीयता उस अंचल-विशेष के पाठकों तक ही सीमित रह सकती है, उपन्यास स्थानीय बोलियों का व्यवस्थाहीन जमघट मात्र बन सकता है, गीत-नृत्य के अनुपातहीन वर्णन और यथार्थ लाने की उमंग में निरर्थक ध्वनियों को ज्यों-का-त्यों उतार देने का मोह औपन्यासिकता को आघात पहुँचा सकता है। हिंदी में आंचलिक उपन्यासों में ये दोष मिलते हैं। अनेक उपन्यासों में शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणियों में दिए जाने पर भी दुरूहता और बोझिलता आ गई है, पात्रों की भावुकता और आदर्शवादिता यथार्थ-बोध को आघात पहुँचाती है, उनमें ऐसे पात्रों की सृष्टि नहीं हुई है जो देशकाल की उपज होकर भी सार्वभौम बन सकें, और पाठक की चेतना पर छा सकें। उनमें प्रायः गंभीर तात्त्विक विवेचन का भी अभाव है जिसके बिना कोई रचना महान् नहीं बन सकती।

आंचलिक उपन्यास के संबंध में अनेक प्रश्न उठाए गए हैं—क्या आंचलिक उपन्यास ग्रामीण अंचल से ही संबद्ध होता है या वह नगर के अंचल पर भी लिखा जा सकता है? क्या वह पश्चिम की प्रेरणा का फल है अथवा शुद्ध भारतीय विधा है? सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास से उसका क्या भेद है? हमारा मत है कि नगर के अंचल से संबद्ध उपन्यास में भी यदि वे ही विशेषताएँ हों जो ग्रामीण अंचल से संबद्ध उपन्यास में, तो उसे आंचलिक कहने में कोई आपत्ति नहीं क्योंकि शहर के उपनगरों अथवा मुहल्लों में बसने वाली जाति (जन्मगत अथवा व्यवसायगत) की भी अपनी संस्कृति, बोली-बानी और नितांत अपनी समस्याएँ हो सकती हैं। विदेशों में स्थानीय रंग और प्रादेशिक स्पर्श वाले उपन्यास तो हैं, पर आज जिसे आंचलिक उपन्यास कहते हैं वह पश्चिम में विशेषतः अमरीका में इधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ही वस्तु है, अतः उसे विशुद्ध भारतीय विधा कहने में हमें कोई संकोच नहीं। वह व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यास की प्रतिक्रिया का परिणाम भी नहीं है क्योंकि हिंदी का आंचलिक उपन्यास प्रेमचन्द और वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में प्राप्त आंचलिकता का ही विकसित रूप है जो स्वतंत्रता के बाद अपनी संस्कृति के प्रति बढ़ते ममत्व का खाद-पानी पाकर पुष्ट हुआ। सामाजिक उपन्यास और आंचलिक उपन्यास के पीछे दृष्टि-भेद ही नहीं होता, उनके प्रणयन की प्रेरणा और सृजन-प्रक्रिया भी भिन्न होती है। ऐतिहासिक उपन्यास पुस्तकीय ज्ञान अथवा अनुमान पर आधारित होता है जबकि आंचलिक उपन्यास के लिए लेखक का सूक्ष्म निरीक्षण, स्वानुभव और अंचल के प्रति आत्मीयता आवश्यक हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में आंचलिकता हो सकती है जैसे वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में, पर वे आंचलिक नहीं हैं। अतः आंचलिक उपन्यास एक स्वतंत्र विधा है।

आंजनेयुलु, कुंदुर्ति *(ते० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

कामय्या और वेंकटनरसम्मा के पुत्र आंजनेयुलु का जन्म सन् 1922 ई० को गुंटूर ज़िले में हुआ। आंध्र क्रिश्चियन कालेज, गुंटूर से बी० ए० (अर्थशास्त्र) करने के बाद, सन् 1946 से 1956 तक ये गुंटूर मार्केटिंग कमेटी के 'सुपरिंटेंडेंट' के पद पर रहे। उसके बाद से आंध्र प्रदेश के सूचना तथा जनसंपर्क विभाग में वरिष्ठ अनुवादक के रूप में काम कर रहे हैं। कुछ समय के लिए ये नव्य कला-परिषद् के अध्यक्ष रहे। ये अभ्युदय रचयितल-संघ, नव्य साहित्य-परिषद् आदि साहित्यिक संस्थाओं के भी सदस्य हैं। ये कविसम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण और गुर्रमु जोषुवा (दे०) के विद्यार्थी रहे। अतः उनका इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

क्लासिकल कविता से प्रगतिवाद की ओर उन्मुख होकर, वचन-कविता (मुक्त छंद) आंदोलन के अगुआ बनकर वचन-कविता को सुस्थिर रूप देने के लिए इन्होंने सफल प्रयास किया। 'सौप्तिकमु' और 'ना प्रेयसी' नामक क्लासिकल पद्धति में लिखी कविताओं को स्वयं ही नष्ट कर दिया। इन्होंने बेल्लंकोंडा रामदासु, एल्चूरि सुब्रह्मण्यमु के साथ मिलकर 'नयागरा' नामक काव्यसंग्रह में वचन-कविता को सर्वप्रथम प्रस्तुत किया था। अष्टादश पर्वों (प्रस्तावना, सिंहासन, बीजोत्पन्न, संघोदय, प्रजोद्यम, दौत्य, बहिष्कार, अज्ञात, मानभंग, गृहदहन, प्रतिघटना, दिग्विजय, भूमिदान, न्यायदान, रजाकार, दुरागत (आत्माचार), आक्रमण, उपसंहार) ये युक्त 'तेलंगाणा' नामक (वचन) काव्य में इन्होंने निज़ाम के विरुद्ध मज़दूर-किसानों के लिए किए गए संघर्ष का सजीव चित्रण किया है। इस काव्य में 'संघ' कम्युनिस्ट पार्टी का प्रतीक है। वचन-कविता को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला यह प्रथम महाकाव्य है। इन्होंने 'आशा' (नाटक) की रचना भी वचन-कविता में की है। 'युगे-युगे', 'नगरं लो वाना' (नगर में वर्षा), 'ना लोनि नादालु' (मेरे भीतर के स्वर) इनकी वचन-कविताओं के संकलन हैं। 'नगरं लो वाना' साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत है। वचन-कविता के समर्थन में इन्होंने कई लेख लिखे हैं। 'वचन-विनय' नामक एक पुस्तक का संपादन भी इन्होंने किया है। इसमें वचन-कविता से संबंधित लेख संकलित हैं।

आंजनेयुलु, कोडालि *(ते० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

ये कृष्णा ज़िले के निवासी प्रसिद्ध पत्रकार तथा कवि हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में इनको कई बार जेल-यात्रा भी करनी पड़ी थी। इन्होंने नौकरी छोड़कर असहयोग आंदोलन में भाग लिया। इनकी रचनाएँ हैं—'पेंड्लिकूतुरु', 'जैलुलो चंदमामा' आदि काव्य-ग्रंथ और 'हिस्टरी ऑफ़ द कांग्रेस' तथा 'गांधी ऐंड गांधिज़्म' के तेलुगु अनुवाद। अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं और अनुभवों के बल पर इन्होंने मार्मिक कविताएँ रची हैं।

आंडाळ *(त० ले०)* [समय—ईसा की आठवीं शती का पूर्वार्द्ध]

वैष्णव भक्त-कवियों के वर्ग में आंडाळ एकमात्र नारी हैं। इन्हें पेरियाळवार की पोष्य पुत्री कहा जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार आंडाळ पेरियाळवार की कल्पना-सृष्टि हैं। आंडाळ के अन्य नाम हैं—कोदै या गोदा, शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार, आदि। किंवदंती है कि आंडाळ के विवाह-योग्य हो जाने पर पेरियाळवार, उनके आदेश पर, उन्हें श्रीरंगम ले गए और वे रंगनाथन की मूर्ति में विलीन हो गईं। आंडाळ की दो रचनाएँ हैं: तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोळि। तिरुप्पावै में गौरी-व्रत के समान एक व्रत-विशेष का वर्णन है जिसे पावै नोन्बु कहते हैं। इस व्रत का साम्य भागवत पुराण में वर्णित कात्यायनी व्रत से है। तिरुप्पावै आंडाळ की कल्पना-शक्ति का द्योतक है। इसमें वे अपनी कल्पना-शक्ति के बल पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल एवं स्थान की परिधि पार कर कृष्ण-लोक पहुँच जाती हैं और गोपीकृष्ण-लीला का आस्वादन करती है। आंडाळ ने श्रीरंगनाथ (कृष्ण) को अपना पति मानकर जिन सरल एवं मधुर पदों की रचना की वे ही नाच्चियार तिरुमोळि में संगृहीत हैं। आंडाळ की इन दोनों रचनाओं का धार्मिक एवं साहित्यिक महत्त्व अक्षुण्ण है। वैष्णव परिवार में विवाह के अवसर पर स्वप्न में आंडाळ के नारायण से विवाह-के पदों का गायन होता है।

आंध्रपुराणमु *(ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—पूर्वार्द्ध 1954 ई० तथा उत्तरार्द्ध 1964 ई०]

इसके लेखक मथुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री (दे०) हैं। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं। इन्होंने तेलुगु कवियों का इतिहास भी लिखा है। 'आंध्रपुराणमु' आंध्र जाति के इतिहास से संबद्ध काव्य-रचना है। इसके पूर्वार्द्ध के अंतर्गत उदयपर्व, सातवाहनपर्व, चालुक्यपर्व तथा काकतीय नामक चार पर्व हैं और उत्तरार्द्ध के अंतर्गत पुनः प्रतिष्ठापर्व, विद्यानगरपर्व, श्रीकृष्णदेवरायपर्व, विजयपर्व तथा नायक-राजपर्व नामक पाँच पर्व हैं। आदि से लेकर आधुनिक युग तक आंध्र जाति के इतिहास का वर्णन प्रस्तुत करना ही इस काव्य का ध्येय है। अन्य बातों के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र में आंध्रों की उन्नति को भी दृष्टि में रखकर इस ग्रंथ के अंतर्गत रचना-संबंधी योजना बनाई गई है। आंध्र जाति के इतिहास से संबद्ध विशिष्ट घटनाओं अथवा परिस्थितियों के नाम न लेकर उनसे संबद्ध प्रमुख राजवंशों के नाम लिये गए हैं। एक-एक राजवंश से संबंद्ध इतिहास विवादपूर्ण है। इससे संबंद्ध विषय उदयपर्व में है। ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद तीसरी शताब्दी तक लगभग साढ़े चार सौ साल आंध्र शातवाहन राजाओं का शासन-काल रहा, जिसका इतिहास अत्यंत उज्ज्वल है। पूर्वचालुक्य राजाओं के प्रोत्साहन से ही आंध्र साहित्य का श्रीगणेश किया गया था। काकतीय नरेशों के राज्य-काल के अंत तक धार्मिक अव्यवस्था तथा कुछ अन्य हेतुओं से आंध्र-जाति की उन्नति में बाधा पड़ गई थी। ऐसे समय पर रेड्डि-राजाओं ने उसकी पुनः प्रतिष्ठा की। यही 'पुनः प्रतिष्ठापर्व' के अंतर्गत वर्णित है। आंध्रों के इतिहास में विजयनगर राज्य की स्थापना, श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) का राज्याभिषेक और उनकी राजनीतिक तथा साहित्यिक उपलब्धियों आदि का विशेष महत्त्व है। कृष्णदेवरायलु ने दूर दक्षिण तक अपने राज्य का विस्तार करके उन प्रांतों में अपने आश्रितों को शासक बना दिया था। तंजावूर का शासन-भार नायक राजाओं को सौंप दिया गया था। उन्होंने कृष्णदेवरायलु के अनुकरण पर तेलुगु साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की। उसके बाद अँग्रेज़ी हुकूमत की स्थापना के समय तक किसी शक्तिशाली राजवंश का नाम विशेष रूप से लेने योग्य नहीं रहा।

'आंध्रपुराणमु' के नाम से अभिहित होने पर भी प्रस्तुत रचना पुराण नहीं है। इसे एक ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है। ऐतिहासिक विवरणों का चयन करने में तथा उनको काव्य-रूप देने में लेखक का प्रयास सफल तथा प्रशंसा योग्य है।

तेलुगु के ऐतिहासिक काव्य-साहित्य के अंतर्गत 'आंध्र-पुराणमु' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आंध्रभाषाविकासमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०

इसके लेखक प्रसिद्ध भाषाशास्त्री गंटिजोगि सोमयाजी (दे०) हैं। काल्डवेल जैसे पश्चिमी विद्वानों के शोधकार्य के फलस्वरूप यह प्रमाणित कर दिया गया है कि तेलुगु द्रविड़ भाषा-परिवार से संबद्ध है जो आर्यभाषा-परिवार से भिन्न तथा स्वतंत्र है। तेलुगु मूल द्रविड़ भाषा से अलग होकर उसी से उत्पन्न तमिल, कन्नड़, मलयाळम आदि अन्य भाषाओं से कुछ समानता तथा कुछ भिन्नता भी रखती है। वह संस्कृत, अँग्रेज़ी आदि के भाषा-साहित्यों के संपर्क में क्रमशः विकसित होती आई है। इन सभी बातों का स्पष्ट तथा सैद्धांतिक विवरण देना ही इस ग्रंथ का लक्ष्य है। तेलुगु के भाषाशास्त्र-संबंधी ग्रंथों में इसका स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आंध्रमहाभारतमु (ते० कृ०) [रचना-काल—ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी ई० के बीच]

'आंध्रमहाभारतमु' तेलुगु की सर्वप्रथम काव्य-कृति है। इसके पहले का साहित्य पुस्तकाकार नहीं मिलता। नन्नयभट्टु, (दे०), तिक्कन सोमयाजी (दे०) और एर्राप्रगड (दे०) नामक तीन कवियों के सम्मिलित प्रयास से इसकी रचना हुई है। इन तीन कवियों में नन्नयभट्टु सर्वप्रथम थे जिन्होंने ग्यारहवीं शती में इस रचना का प्रारंभ किया था। आदिपर्व, सभापर्व और वनपर्व का कुछ अंश इनके द्वारा लिखा गया था। बाद में तेरहवीं शती में तिक्कन सोमयाजी ने वनपर्व के बाद के पंद्रह पर्वों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना कर ग्रंथ को समाप्त तो कर दिया था, पर वनपर्व अधूरा ही रह गया था। वनपर्व के इस शेष भाग की रचना बाद में चौदहवीं शती में एर्राप्रगड नामक कवि ने की और 'आंध्रमहाभारतमु' को समग्र रूप दिया। इस प्रकार यह ग्रंथ तीन विभिन्न शताब्दियों में तीन प्रसिद्ध कवियों के अलग-अलग किंतु परस्पर संबद्ध प्रयास का परिणाम है। इन तीन कवियों को सम्मिलित रूप में कवित्रय कहा जाता है। भिन्न-भिन्न रुचियों के तीन महाप्राण कवियों की साधना का सार लेकर भी यह रचना एक अद्भुत कलात्मक सौष्ठव और एकनिष्ठता का आदर्श प्रस्तुत करती है। विशेषकर, एर्राप्रगड ने वनपर्व के शेष भाग की रचना करते समय अपनी शैली को एक ऐसा रूप दे दिया है कि वह अपने पूर्ववर्ती नन्नयभट्टु से भी मिलती-जुलती है और परवर्ती तिक्कनार्य से भी।

'आंध्रमहाभारतमु' यों तो संस्कृत के 'महाभारत' (दे०) का ही रूपांतर है पर वास्तव में यह स्वतंत्र रचना-सी लगती है। मूल कथा-विधान में किसी प्रकार का विपर्यय किये बिना औचित्य का पालन करते हुए आवश्यक विस्तार या संक्षेप के द्वारा मौलिक सौंदर्य का अपनी भाषा में अनुसृजन करना ही इन तीनों का आदर्श रहा है। इसमें न तो मूल का अंधानुकरण है और न मूल से दूर हो जाने वाली स्वच्छंदता। संस्कृत का 'महाभारत' पुराण या इतिहास है जबकि तेलुगु का 'महाभारत' काव्यमंजरी के रूप में प्रस्तुत है। स्तोत्र, उपदेश, नामगणना आदि को जहाँ तक हो सका है काव्योचित और सरस बनाने का प्रयास किया गया है। फिर भी मूल की वस्तु-व्यंजना, दार्शनिक गंभीरता ज्यों-की-त्यों और कहीं-कहीं मूल से भी अधिक सुंदर बन पड़ी है। तेलुगु-भाषी समाज में 'आंध्रमहाभारतमु' अत्यंत लोकप्रिय है। तेलुगु में एक कहावत है, "पढ़ना हो तो (महा) भारत पढ़ो और खाने हों तो बड़े खाओ।"

आंध्रविज्ञानसर्वस्वमु *(ते० कृ०)*

यह 16 भागों में प्रकाशित बृहत् विश्वकोश है। विश्व के प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को साधारण जनता तक पहुँचाने के उद्देश्य से श्री कोमर्राजु लक्ष्मणराव (दे०) ने सन् 1915 में अकारादि अक्षरक्रम से 'आंध्रविज्ञानसर्वस्वमु' का प्रकाशन आरंभ करके 1917 तक प्रथम तीन भागों का (अ से अहि तक) प्रकाशन कर लिया था। चौथे भाग के प्रकाशन से पहले ही 1923 में उनका निधन हो गया। उसके उपरांत श्री काशीनाथुनि नागेश्वर रावु ने इस योजना के पुनरुद्धार का यत्न किया। परंतु 1928 में वे भी दिवंगत हो गये। फलतः यह कार्य स्थगित हो गया। 1947 में मद्रास में 'तेलुगु समिति' की स्थापना हुई और उसने इस विराट् योजना को अपने हाथों में लिया। इस समिति ने दो कारणों से अक्षरक्रम को अधिक लाभदायक नहीं समझा। पहला कारण यह था कि उस स्थिति में जब तक संपूर्ण विश्वकोश का प्रकाशन नहीं हो जाता, तब तक उसकी उपयोगिता अत्यंत सीमित रहेगी। दूसरा कारण यह था कि जब तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से सारी शिक्षा नहीं दी जायेगी और सभी विषयों के सुनिश्चित पारिभाषिक शब्दों का निर्माण नहीं होगा, तब तक उस प्रकार की योजना सफल नहीं होगी।

अतः इस विश्वकोश का निर्माण विषयानुक्रम से किया गया है। इसके प्रत्येक भाग के प्रथम खंड में उस भाग से संबंधित सभी विषयों का पूरा विवरण पाठ्यपुस्तक की पद्धति में दिया गया है और उसके दूसरे खंड में उन विषयों के विविध विवरण विश्वकोशों की परिपाटी के अनुरूप अक्षरक्रमानुसार दिए गए हैं। इस प्रकार विषयानुक्रम में विश्वकोश का प्रकाशन किसी भी भारतीय भाषा में नहीं हुआ है।

To be included

आंध्रशब्दचिंतामणि *(ते० कृ०)*

यह 'आंध्रमहाभारतमु' (दे०) के प्रणेता 'कवित्रय' में से एक महाकवि नन्नयभट्टु (दे०) (ग्यारहवीं शताब्दी) द्वारा रचित तेलुगु का प्रथम व्याकरण है। तेलुगु में नन्नय से पूर्व की कोई साहित्यिक रचना अभी तक उपलब्ध न होने के कारण ये तेलुगु के 'आदिकवि' माने जाते हैं। इन्होंने व्यासरचित 'महाभारत' (दे०) के आदि एवं सभा पर्वों तथा अरण्यपर्व के कुछ अंश का स्वतंत्र रूप से अनुवाद किया है और यह तेलुगु की श्रेष्ठतम रचनाओं में से है।

'आंध्रशब्दचिंतामणि' के कर्तृत्व के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है और बाल सरस्वती (1575-1625 ई०) के द्वारा इसकी टीका की रचना होने से पहले इसके अस्तित्व का परिचय विद्वानों को नहीं था। अधिकांश विद्वानों का मत है कि अपने साहित्य-सर्जन का आरंभ करने से पहले नन्नय ने तेलुगु भाषा में व्यवस्था एवं स्थिरता लाने के उद्देश्य से इसकी रचना की थी। तेलुगु भाषा को एक निश्चित व्याकरणिक व्यवस्था प्रदान करने का श्रेय इसी रचना को है। नन्नय के समय में संस्कृत का ही

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलबाला था और तेलुगु में रचना करना किसी कवि के लिए गौरव की बात नहीं मानी जाती थी। फिर भी नन्नय ने अत्यंत साहस एवं दूरदृष्टि से तेलुगु में रचना की और परवर्ती कवियों के लिए मार्गदर्शक बन गये।

आँसू *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1925 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) की इस पहली महत्त्वपूर्ण कृति का दूसरा संस्करण पर्याप्त परिवर्तित रूप में 1933 ई० में प्रकाशित हुआ। यह परिवर्तन छंदों की संख्या और क्रम में ही नहीं, प्रतिपाद्य में भी दिखाई देता है। वर्तमान रूप में उसका स्वर उतना निराशापूर्ण नहीं रहा है। 'आँसू' का आलंबन भी 'झरना' (दे०) और 'लहर' (दे०) की अनेक रचनाओं के समान निर्दिष्ट नहीं है। अधिकांश आलोचक उसे व्यक्तिगत अनुभूति से प्रेरित विप्रलंभ-श्रृंगार का काव्य मानते हैं। मूल अनुभूति लौकिक रही हो तो भी प्रसाद की प्रबुद्ध सांस्कृतिक चेतना का स्पर्श पाकर वह रहस्यमय हो गई है। शिल्प की दृष्टि से उसकी कल्पनाएँ मनोरम हैं और चित्र-विधान व्यंजक है। उक्तियों में अलंकारों का चमत्कार और लक्षण का वैचित्र्य है। मसृण पदावली का विन्यास भावावेग के अनकूल प्रवाहमय और प्रसन्न है।

आईना-ए-बलाग़त *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

'आईना-ए-बलाग़त' मिर्ज़ा मुहम्मद असकरी लखनवी की कृति है। यह पुस्तक उर्दू-काव्यशास्त्र की महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें उर्दू गद्य तथा पद्य के विभिन्न भेदोपभेदों तथा विभिन्न अलंकारों का उल्लेख वर्णमालाक्रम से किया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में उर्दू बह्र (छंदों) पर भी विस्तार से विचार किया गया है। पुस्तक के अंत में गद्य एवं पद्य-संबंधी पारिभाषिक शब्दावली फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी भाषाओं में दी गई है। इसका उद्देश्य अँग्रेज़ी तथा उर्दू फ़ारसी काव्य में पाई जाने वाली समानताओं का उल्लेख करना है। अलंकार समझाने के लिए फ़ारसी तथा उर्दू काव्य से उदाहरण दिए गए हैं।

'आईना-ए-बलाग़त' में बहुत ही लाभप्रद जानकारी अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत की गई है। लेखक ने घिसी-पिटी परंपरा से हटकर अलंकार-शास्त्र-विषयक ज्ञातव्य बातों को अधिक बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। उदाहरणों की भरमार करने की प्रवृत्ति को लेखक ने त्याग दिया है, बल्कि यथास्थल तालिकाएँ देकर अपने कथन को अधिक स्पष्ट तथा सशक्त एवं रोचक बना दिया है।

आखड़ाइ तथा हाफ़-आखड़ाइ *(बँ० पारि०)*

'आखड़ाइ गान' बैठक में गाया जाने वाला गायन है। लगभग 300 वर्ष पूर्व जब शांतिपुर के कतिपय भद्रपुरुषों ने आखड़ाइ गान का सूत्रपात किया तब टप्पा (दे० टप्पा) के स्वर में अश्लील श्रृंगारात्मक गायन या तुकबंदी की ही पद्धति थी। बाद में राजा नवकृष्ण सेन की पृष्ठपोषकता में कुलुइचंद्र सेन एवं रामनिधि गुप्त (निधुबाबू) ने आखड़ाइ को स्वतंत्र मर्यादा दी। संगीतज्ञ एवं मार्जित रुचि के भद्रजनों की बैठकों में विशेष भावमूलक गाढ़बद्ध तथा स्वर-समृद्ध रचना के रूप में आखड़ाइ गायन की पद्धति चल पड़ी। इसके तीन भाग हैं—पहले मालसी अर्थात् देवी-विषयक, उसके बाद प्रणयगीत एवं अंत में प्रभाती। इनमें ध्रुपद-ख़याल की तरह राग का आलाप एवं स्वर का वैचित्र्य दीर्घ-विलंबित होता है। आखड़ाइ गायन में बाजे एवं संगीत की विशेष परिपाटी रही है। यहाँ भी दो दलों में गायन होता है यद्यपि प्रतिद्वंद्वी दलों में उत्तर-प्रत्युत्तर की रीति नहीं अपनाई जाती। जिस दल का गायन, वाद्य एवं स्वर श्रेष्ठ प्रमाणित होता है उसे ही विजयी घोषित किया जाता है।

आभिजात्यपूर्ण रूप के कारण एवं जनसाधारण के आनुकूल्य के अभाव में तथा सर्वोपरि कविगान आदि की जनप्रियता के फलस्वरूप जब आखड़ाइ गायन की जनप्रियता एकदम समाप्त होने लगी तब निधु बाबू के शिष्य मोहनचांद बसु ने कविगान के कतिपय अंगों को जोड़कर और आखड़ाइ-गायन के कतिपय अंगों को तोड़कर 'हाफ़-आखड़ाइ' की स्थापना की। 'हाफ़-आखड़ाइ' में गायन के स्वर एवं रागों की परिपाटी कम है। इसमें हल्की तालों का प्रयोग होता है और वाद्य का प्रयोग कम होता है। 'कबिगान' (दे०) की तरह इसमें उत्तर-प्रत्युत्तर का प्रवर्तन किया गया एवं 'कबिगान' के छंद तथा गीतक्रम का भी अनुसरण हुआ—केवल 'कबिगान' से भिन्न इसके गीतक्रम में 'फुका' के स्थान पर 'डबल फुका' रहता है और अंतरा अनुपस्थित रहता है। मोहनचांद बसु श्रेष्ठ 'हाफ़-आखड़ाइ-कार' माने जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यायिका *(सं० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र के अनुसार गद्य-काव्य के दो भेदों में से एक। दूसरे भेद का नाम कथा है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में दण्डी (दे०) ने सर्वप्रथम आख्यायिका का विवेचन किया है किंतु उन्होंने गद्य-काव्य के आख्यायिका (दे०) और कथा नामक दो अवांतर भेदों का केवल उल्लेख ही किया है—उनके बीच के स्वरूपगत और तात्त्विक अंतर को स्पष्ट नहीं किया। विश्वनाथ (दे०) ने कथा और आख्यायिका के मध्य क्रमशः 'सरस इतिवृत्त' और स्वयं कवि के वंश के अनुकीर्तन का अंतर माना है। आधुनिक शब्दावली में इसका अर्थ यह हुआ कि कथा का इतिवृत्त काल्पनिक और आख्यायिका का कथानक वास्तविक एवं इतिहास-सम्मत होना चाहिए। संस्कृत-वाङ्मय की परंपरा में 'कादम्बरी' (दे०) और 'हर्षचरित' (दे०) को क्रमशः कथा और आख्यायिका का उदाहरण माना जाता है। 'अमरकोष' (दे०) के अनुसार आख्यायिका 'ज्ञात अथवा उपलब्ध' विषय पर आधृत गद्यकाव्य है ('आख्यायिकोपलब्धार्था···1/9)। आचार्य विश्वनाथ ने आख्यायिका के परिच्छेद-विभाजन और छंद-विधान को भी शास्त्रबद्ध करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार परिच्छेदों का नाम 'आश्वास' होना चाहिए तथा उसके आरंभ में आर्या, वक्त्र, अपवक्त्र छंदों में से किसी एक के द्वारा वर्ण्य-विषय की सूचना भी दी जानी चाहिए। आधुनिक भारतीय साहित्य में संस्कृत आचार्यों द्वारा निरूपित लक्षणों से युक्त आख्यायिका-लेखन की परंपरा नहीं है।

आग का दरिया *(उर्दू० कृ०)*

'आग का दरिया' कुर्रतुलऐन हैदर का एक संदर साहित्यिक उपन्यास है। इस उपन्यास में 2500 वर्ष पूर्व की और वर्तमान सभ्यता की तुलना की गई है। भारतीय सभ्यता किन-किन स्थितियों से गुज़रती आई है—इस उपन्यास में इसका विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन किया गया है। इस सभ्यता को वर्तमान रूप तक पहुँचने में एक 'आग का दरिया' पार करना पड़ा है—यह भाव ही इस उपन्यास का मूलभाव है और इसकी सार्थकता का द्योतक है।

प्रस्तुत उपन्यास लगभग 500 पृष्ठ की बृहत् कृति है। इसकी भाषा रसीली तथा सशक्त है। ग्रंथ उर्दू साहित्य की एक मूल्यवान कृति है।

लेखिका सैयद सज्जाद हुसैन मलदरम (दे०) की बेटी हैं। इन्हें अँग्रेज़ी भाषा का अच्छा ज्ञान है तथा भारतीय संस्कृति और इतिहास की ख़ूब जानकारी है।

'आग का दरिया' नामक उपन्यास भारतीय सभ्यता के विकास की विश्वस्त जानकारी प्रदान करता है। इस उपन्यास के फलस्वरूप लेखिका को पाकिस्तान के विदेश-विभाग में अपने उच्च पद से हाथ धोना पड़ा था।

आगगाड़ी *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1934 ई०]

चंद्रवदन मेहता (दे०) का 'आगगाड़ी' नाटक गुजराती का सबसे पहला यथार्थवादी नाटक है जो अभिनेयता के भी गुणों से समलंकृत है। इसके कई प्रयोग हो चुके हैं। गुजराती साहित्य में सर्वप्रथम इस नाटक में चंद्रवदन मेहता ने निम्नस्तर के दरिद्र श्रमजीवी लोगों को पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया है। इसका नायक बाघरजी रेलवे का ग़रीब आगवाला है जिस पर एक ही दिन में एक साथ तीन मुसीबतें टूट पड़ती हैं। बारह घंटे की नौकरी के बाद थका-माँदा बाघरजी जब घर आता है तो लाट साहब की स्पेशल के साथ उसे पुनः विवश होकर जाना पड़ता है। उसका दुश्मन शराबी जोन्स, जो रेल का ड्राइवर है, उसकी हत्या करता है। उसी समय रेलगाड़ी को सिग्नल देने के लिए खड़े हुए बाघरजी के बेटे वारणजी की सर्पदंश से मृत्यु होती है और उसी गाड़ी से बाघरजी की गाय कट जाती है। इस प्रकार यह नाटक शोक-पर्यवसायी है। विषाद की घनीभूत छाया आद्योपांत छाई रहती है। इसमें अकिंचनों और प्रपीड़ितों के प्रति सहानुभूति शाब्दिक या प्रचारात्मक नहीं है वरन् कृति के अंतर्भूत अंग के रूप में विद्यमान है। कृतिकार की निस्संगता और तटस्थता श्लाघनीय है।

'आगगाड़ी' में रेलवे से संबद्ध व्यक्तियों के व्यवहार, यात्रियों की असुविधाओं, कर्मचारियों की घूसखोरी, रेलवे के बाबुओं की उच्छृंखलता और अहंकार आदि का बड़ी ही यथार्थता के साथ निरूपण हुआ है। बाघरजी, जोन्स और रामचरण भैया का चरित्रांकन औचित्यपूर्ण एवं प्रतीतिजनक है। भाषा-शैली, संवाद-योजना, संघर्ष-तत्त्व का निर्वाह, कार्य-व्यापार में सक्रियता इत्यादि सब-कुछ कुशलतापूर्वक संयोजित हैं। वस्तुतः 'आगगाड़ी' एक अच्छा यथार्थवादी नाटक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरकर, गोपाल गणेश *(म० ले०)* [जन्म—1856 ई०, मृत्यु—1895 ई०]

आगरकर का जन्म सतारा ज़िले के टेमू गाँव के एक निर्धन परिवार में हुआ था। इन्होंने आत्मबल से एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी पर बाद में अपने जीवन को लोकहिताय अर्पित कर दिया था।

ये राजनीतिक नेता और समाज-सुधारक थे। अपने जीवन-काल में इन्हें कृष्ण शास्त्री चिपळूणकर (दे०) और बालगंगाधर टिळक (दे०) जैसे विचारकों का सहयोग प्राप्त हुआ। सन् 1880-1887 तक इन्होंने 'केसरी' पत्रिका का संपादन किया। पर टिळक से वैचारिक मतभेद होने पर स्वतंत्र रूप से 'सुधारक' पत्र निकाला। 'इष्ट कहना और संभाव्य कर दिखाना, 'सुधारक' का उद्देश्य था, इसी बल पर इन्होंने तर्कसंगत समाज-सुधारों का समर्थन किया था।

मराठी साहित्य के क्षेत्र में आगरकर क्रांतिकारी निबंधकार के रूप में प्रख्यात हैं। इनके निबंध सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं।

आगरकर के निबंध चार भागों में संगृहीत हैं। निबंधों के अतिरिक्त इन्होंने 'विकारविलसित' (दे०) नाम से शेक्सपियर के 'हेमलेट' का अनुवाद भी किया है।

सहशिक्षा, बालविवाह, विधवा-विवाह, अस्पृश्यता-निवारण, स्त्री-अधिकार जैसे ज्वलंत विषयों पर इन्होंने स्वच्छंदतापूर्वक भावावेशपूर्ण शैली में लिखा है। इनकी शैली ओजस्वी और तर्कनिष्ठ है।

इनके निबंधों में विचारों की प्रौढ़ता और शैली की प्रगल्भता है। समाज में प्रचलित रूढ़ियों पर इन्होंने कठोर व्यंग्य किया है। इनकी निबंध-शैली भाषण-कर्ता जैसी है जिसमें जोशपूर्ण शब्द, लंबे वाक्य-विन्यास हैं। लेखक की कसमसाहट इनके द्वारा पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है।

आगरवाला, आनंदचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1874 ई०, मृत्यु—1940 ई०]

जन्मस्थान : तेज़पुर कलंपुर, मौज़ा बरंगाबारी। ये एफ़० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सके थे। इन्होंने क्रमशः इन पदों पर कार्य किया—शिक्षक, कांस्टेबिल, पुलिस सब-इंस्पेक्टर, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, प्रिंसिपल (पुलिस ट्रेनिंग स्कूल), पुलिस सुपरिंटेंडेंट। इन्हें क्रमशः रायसाहब और रायबहादुर उपाधियाँ मिली थीं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संपादन में ये सहयोग देते रहे। इन्होंने 'श्रीहर्ष' नाम से 'जोनाकी' पत्रिका में कविताएँ भी लिखी थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'कोमल पाठ' (1910), 'आदिपाठ' (1920), 'जिलिङनि' (1920), इनके अनेक ग्रंथ अप्रकाशित हैं। इनका 'कामरूपर पुरावृत्त' 'बांही' पत्रिका और 'अरुंधती-उपाख्यान' लेख 'जयंती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

'कोमलपाठ' औधर ,अपाठ' शिशु-साहित्य के अंतर्गत आते हैं। इनकी एकमात्र कविता पुस्तक 'जिलिङनि' है। इनकी कविताओं में मनोरम अनुभूति और सावलील प्रकाश-भंगिमा का परिचय तथा लोकगीतों की गूंज मिलती है। इन्हें मौलिक कविताओं से अनूदित कविताओं में अधिक सफलता मिली है—विदेशी कविता के सौंदर्य की रक्षा करते हुए इन्होंने अनुवाद कर असमीया साहित्य-जगत् में ख्याति पाई है। इनकी अनेक अनूदित कविताएँ असमीया काव्य की मौलिक संपत्ति समझी जाएँगी।

इन्होंने कविताएँ कम लिखी हैं किंतु आधुनिक असमीया कविता की परंपरा-सृष्टि में इनका योगदान कम नहीं है।

आगरवाला, चंद्रकुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1867 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

जन्मस्थान : तेज़पुर। कालेज स्तर तक की शिक्षा प्राप्त कर इन्होंने छापेखाने का व्यवसाय चलाया था। ये प्राचीन असमीया साहित्य के प्रकाशक श्री हरि-विलास आगरवाला के द्वितीय पुत्र थे। 'जोनाकी' नामक पत्रिका के ये प्रथम संपादक थे। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं की सहायता की थी। इनके प्रेस ने अनेक लेखकों को सुविधाएँ प्रदान की थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'प्रतिमा' (दे०) (1914), 'बीणा बरागी' (1923)।

ये असमीया रोमांसवादी कविता के प्रथम होता कहे जाते हैं। 'जोनाकी' में प्रकाशित 'बनकुँवरी' इनकी प्रथम रोमांटिक कविता है। श्री आगरवाला ने अपनी कविता में विश्व-प्रकृति के प्रेममय रूप और निर्मम चिरंतनता की उपलब्धि की थी। अँग्रेज़ी कवि शैली से इनका साम्य है। इनकी कविता में दार्शनिक तत्त्व और लोकगीत-सौंदर्य एक साथ मिलता है। 'बीण बरागी' देशभक्तिपूर्ण उच्च-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तरीय कविताएँ हैं। इनकी कविताओं की उपलब्धि है—सौंदर्य की खोज, मानव-प्रीति, वेदांत-प्रभाव, नूतन समाज का आह्वान और आशावाद।

आगरवाला, ज्योतिप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1903 ई०, मृत्यु—1951 ई०]

जन्म-स्थान : तमोलवाड़ी, डिब्रूगढ़। शैशवावस्था से ही ये राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेते रहे थे। सन् 1922 में इन्होंने प्रेस का कारोबार किया। 1926 ई० में ये विलायत गए। एडिनबरा विश्वविद्यालय में पढ़कर 1927 में बर्लिन जाकर इन्होंने चलचित्र-कला की शिक्षा ग्रहण की। 1932 में ये कांग्रेस-सेवक-वाहिनी के अधिनायक बने और इन्हें 15 महीने का कारावास हुआ। 1934 में इन्होंने चित्रलेखा मूवीटोन की स्थापना की। 1937 में इन्होंने जोनाकी सिनेमा हाल का संचालन किया। ये कलकत्ता में अज्ञातवास करते हुए शांतिवाहिनी के अधिनायक के रूप में कार्य करते रहे।

प्रकाशित रचनाएँ—नाटक : 'शोणित कुँवरी' (दे०) (1925), 'करेङ्र लिगिरी' (1934), 'लभिता' (दे०) (1948), 'रूपालीम' (मरणोपरांत प्रकाशन, 1961); प्रबंधसंग्रह : 'ज्योतिर्धारा' (मरणोपरांत प्रकाशन, 1961)। इनकी कई रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

'उषा-अनिरुद्ध' की कथा पर आधारित प्रथम नाटक 'शोणित कुँवरी' में नाटकीय तत्त्व है। अल्पायु में लिखित इस पौराणिक नाटक में आधुनिक भावों का चित्रण है। 'करेङ्र लिगिरी' मध्ययुगीन चरित पर लिखित है किंतु इसमें परंपरा और अंधविश्वासों का विरोध है। 'लभिता' में भारतीय स्वातंत्र्ययुद्ध और भारतीय नारी के गौरव का वर्णन है। 'रूपालीम' नाटक का विषय प्रेम है।

इन्होंने कविताएँ भी लिखी थीं, जिनमें अतीत से प्रेरणा लेकर असम की सर्वप्रकार की उन्नति करने के लिए युवकों का आह्वान किया गया है। इनके निबंध-संग्रह में असम के इतिहास और सभ्यता का अध्ययन है।

आग़ा 'हश्र' काश्मीरी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1879 ई०, मृत्यु—1935 ई०]

जन्म-स्थान : बनारस। ये गद्य और पद्य दोनों के समर्थ लेखक थे और काव्य-सृजन तथा नाटक-लेखन दोनों में इन्हें यथेष्ट यश प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से इन्हें उर्दू भाषा का शेक्सपियर कहा जाता है। प्रारंभ में ये न्यू अल्फ्रेड थिएट्रिकल कंपनी से संबद्ध रहे परंतु बाद में इन्होंने अपनी शेक्सपियर थिएट्रिकल कंपनी की स्थापना कर ली थी। इस कंपनी के विघटन के बाद ये कलकत्ता चले गए और वहाँ फ़िल्मी नाटकों का प्रणयन करने लगे। इनके उर्दू नाटकों में 'शहीद-ए-नाज़', 'असीर-ए-हिर्स', 'ख़ूबसूरत बला', 'तुर्की हूर' और 'सफ़ेद ख़ून' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। 'सीता बनवास' और 'गंगावतरण' आदि कतिपय हिंदी नाटक रचने का श्रेय भी इन्हें प्राप्त है। इनका पहला नाटक 'आफ़ताब-ए-मुहब्बत' के नाम से प्रकाशित हुआ था। यह बहुत लोकप्रिय हुआ। इन्होंने अनेक विदेशी नाटककारों की प्रसिद्ध कृतियों के उर्दू अनुवाद भी किए थे। उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का उर्दू-पद्यानुवाद इनकी कवित्व-प्रतिभा का ज्वलंत उदाहरण है। इनकी मौलिक रचनाओं में 'शुक्रिया योरुप' नामक कविता राष्ट्रीय एवं राजनीतिक कविता है जिसमें सर्वत्र वीर रस उमड़ा पड़ता है। नाटकीय शैली में लिखित इस कविता में उपमाओं, प्रतीकों और अलंकारों की प्रभविष्णुता, सुगठित पद-विन्यास और शैली का औदात्य देखते ही बनता है। इसके अतिरिक्त 'मौज-ए-ज़मज़म' इनकी अत्यंत सफल कविता है। आग़ा हश्र अनेक पत्रिकाओं के संपादक-मंडलों के सक्रिय सदस्य भी रहे हैं।

आघोनी बाइ *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई०, लेखक : बीणा बरुआ (बिरिंचिकुमार बरुआ (दे०) का छद्म नाम)]

इस कहानी-संग्रह में ग्राम्य जीवन के सुख-दुःख और विरह-व्यथा मिश्रित यौन-जीवन का चित्रण है। 'आघोनी बाइ' एक ऐसी ग्रामीण महिला की कहानी है जो स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों की सहायता करती है। कहानियाँ यथार्थवादी हैं, इनके चरित्र स्पष्ट हैं। घटनाओं के घात-प्रतिघात द्वारा चरित्रों का अंतर्द्वंद्व दिखाने की चेष्टा नहीं है।

आचार्य आत्रेय *(ते० ले०)*

ये तेलुगु के श्रेष्ठ एकांकीकार हैं। यथार्थ को सदा दृष्टि में रखकर, जीवन का वास्तविक चित्रण इन्होंने अपने एकांकियों में प्रस्तुत किया है। नित्य हमारी आँखों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने दिखाई देने वाले मध्यवर्ग का यथातथ्य चित्रण इनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। समाज में सर्वत्र दृष्टिगत होने वाली आर्थिक विषमता का विनाश करके, समता एवं विश्व-शांति की स्थापना करने का संदेश इनकी रचनाओं में व्यक्त होता है। रोचक कथा-निर्माण, चरित्रों का सहज स्वाभाविक चित्रण तथा पात्रानुकूल भाषा, इनके एकांकियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनकी बहुचर्चित रचनाएँ हैं— 'वास्तवम्', 'प्रगति', 'विश्वशांति', 'गुमास्ता' आदि।

आचार्य पोफळे गुरूजी (म० पा०)

पु० ल० देशपांडे (दे०) के प्रसिद्ध नाटक 'तुझ आहे तुजपाशी' (दे०) में आचार्य पोफळे गुरूजी सर्वोदयी सिद्धांतादर्शों के प्रतिपादक हैं। महात्मा गांधी द्वारा निर्धारित सिद्धांतादर्शों को व्यक्तिगत जीवन में उतारने की महती भावना के कारण ही ये आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जीवन-यापन करते हैं। जीवन-पर्यन्त सिद्धांतों के प्रति अपनी अडिग आस्था एवं विश्वास के कारण इन्हें अपने सहयोगियों का कोप-भाजन होना पड़ता है। सिद्धांतादर्शों से लोगों को विमुख होते देखकर इन्हें अत्यधिक दुःख होता है, इसी से इनका स्वभाव क्रोधी एवं चिड़चिड़ा-सा है। नियम-उपनियमों के प्रति अत्यधिक कठोर होते हुए भी ये सरल एवं उदार-हृदय हैं। अपनी इन्हीं उदार भावनाओं के कारण ये अपने मित्र की अनाथ कन्या का पालन-पोषण करते हैं। यह बात दूसरी है कि इनके कठोर नियंत्रण के कारण उस कन्या का व्यक्तित्व संकुचित-सा हो गया है। मतवैभिन्न्य के कारण ही अन्यायी लोगों से इनकी पटरी नहीं बैठती। इसी से जब-तब अप्रिय घटनाएँ घटित हो जाती हैं। जीवन के उतार पर जब ये अपने विचारों का पुनर्निरीक्षण करते हैं तब सोचते हैं कि त्यागमय जीवन के महत् आदर्श सामान्य लोगों के लिए नहीं हैं, ये सिद्धांतादर्श तो गौतम बुद्ध सरीखे विशिष्ट लोगों के लिए ही हैं। इस वैचारिक दिशा-परिवर्तन के उपरांत भी ये व्याहारिक जीवन में इस नूतन परिदृष्टि को अंगीकार करने में नितांत असफल रहते हैं। यद्यपि अपने इन आदर्शवादी सिद्धांतों के कारण जीवन की विफलता का इन्हें घोर पश्चात्ताप भी होता है। तथापि अंत में गीता को मंगलमय भविष्य का आशीर्वाद देकर ये एकाकी अपने जीवन-पथ पर बढ़ जाते हैं। समसामयिक परिस्थितियों के बदलते जीवन-मूल्यों की स्पर्द्धा में परंपरा-प्राप्य जीवनादर्शों की स्थिति की सहजाभिव्यक्ति इनके चरित्र में हुई है। पूर्वनिश्चित सिद्धांतादर्शों के संवहन के कारण आचार्य पोफळे गुरूजी का चरित्र नाटककार द्वारा ही परिचालित हुआ है।

आचार्य, शांतनुकुमार (उ० ले०) [जन्म—1933 ई०]

श्री शांतनुकुमार आचार्य उड़िया के यशस्वी उपन्यासकार हैं। सांप्रतिक मानव का बौद्धिक संकट, मानसिक, विश्लेषण, तकनीकी सभ्यता की विडंबना आदि का चित्रण इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा व शैली में आधुनिक दृष्टि-भंगी मिलती है। सन् 1962-63 में उपन्यास 'नर किन्नर' पर इन्हें उड़ीसा राज्य साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था। विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण इनकी गद्य-भाषा में वैज्ञानिक बिंब एवं प्रयोगशाला के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं—'शताब्दीर नचिकेता' (उप०) 'तिनोटि रात्रिर सकाल, (उप०) (दे०), 'दुर्बार' (कहानी), 'शेष संवाद' (कहानी), 'मन-मर्मर' (कहानी) आदि। संप्रति ये रसायन-शास्त्र के अध्यापक हैं।

'आज़ाद' (उर्दू० ले०) [जन्म—1831 ई०, मृत्यु—1910 ई०]

इनका पूरा नाम मौलवी मुहम्मद हुसैन और उपनाम 'आज़ाद' था। इनके पिता मुहम्मद बाकर दिल्ली के राज्यमान्य व्यक्तियों में से थे। आज़ाद ने दिल्ली कालेज में अरबी, फ़ारसी का अध्ययन किया। विद्यार्थी-काल में ही इन्हें कविता और निबंध लिखने का शौक हो गया था। इन्होंने सन् 1876 में दिल्ली से सर्वप्रथम उर्दू-समाचार-पत्र प्रकाशित किया। अपने काव्य का संशोधन यह उस्ताद 'ज़ौक' से कराते थे। सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् 'आज़ाद' हैदराबाद दक्कन चले गए और फिर वहाँ से लाहौर आ गये और शिक्षा-विभाग में नौकरी कर ली। कुछ वर्षों तक सरकारी समाचार-पत्र का संपादन भी किया। इसके बाद ये काबुल भी गये और वहाँ से लौट कर लाहौर के राजकीय कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1857 में इन्हें 'शम्सुल-उलमा' की उपाधि प्रदान की गई। 'आज़ाद' को फ़ारसी के अतिरिक्त अँग्रेज़ी तथा हिंदी का भी अच्छा ज्ञान था।

उर्दू गद्य में इनकी शैली का अपना अलग स्थान है। उर्दू में ये आधुनिक काव्य तथा निबंध-लेखन के प्रवर्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माने जाते हैं। 'उर्दू का क़ायदा', 'उर्दू की पहली-दूसरी किताब', 'जामिअ-उल-क़वायद', 'आब-ए-हयात (दे०), दरबार.ए-अकबरी', (दे०) 'सुखनदान-ए-फ़ारस' (दे०) तथा नैरंग-ए-खयाल (दे०) आदि इनके अमूल्य ग्रंथ हैं। इनकी शैली मनोहर, व्यंग्य से ओतप्रोत तथा काव्यमय है। हास्य का पुट भी वे यदा-कदा देते चलते हैं। 'आब-ए-हयात' इनका अमर ग्रंथ है।

आज़ाद *(उर्दू० पा०)*

आज़ाद पं० रतन नाथ 'सरशार' (दे०) के 'फ़साना-ए-आज़ाद (दे०) का नायक है। सारा कथानक इसी पात्र के चारों ओर घूमता है। आज़ाद घुमक्कड़ प्रकृति का व्यक्ति है। यह जहाँ जाता है अपनी लच्छेदार बातों से लोगों को मोह लेता है। इसकी वंश-परंपरा का सरशार ने कोई परिचय नहीं दिया; केवल इतनी सूचना दी है कि इसका एक कश्मीरी मुस्लिम घराने से संबंध है।

आज़ाद का चेहरा-मोहरा कुछ इस तरह का है—भरे हुए गाल, लंबा क़द, हृष्ट-पुष्ट शरीर, सेब की तरह दमकता हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी मूँछे, सिर पर तुर्की टोपी, पांव में लखनवी नक्केदार जूती, पाजामा, शेरवानी या कभी-कभी लखनवी ढंग का अँगरखा पहने हुए दिखाई देता है। 'सरशार' आज़ाद का रूप धर कर स्वयं भागते-दौड़ते हुए प्रतीत होते हैं।

आज़ाद स्वभाव से प्रगतिशील है, दृढ़निश्चयी है। यह मौलवियों के पास गंडे-तावीज़ लेने नहीं जाता, छींक आने या बिल्ली के रास्ता काट जाने पर लक्ष्य-सिद्धि के प्रयत्न से विरत नहीं होता। यह मुल्लाओं और पंडितों को प्रमाद-मुक्त देखना चाहता है। यह प्रारंभ से ही स्त्री-शिक्षा का प्रचारक है। समाज की गंदगी को छिपाना उसे रुचिकर नहीं। यह सब कुछ होते हुए भी वह एक अनपढ़ और आवारा व्यक्ति है। अतः इसका चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक-सा लगता है। यह पढ़ा-लिखा नहीं, फिर भी देश की चार-पाँच भाषाओं से परिचित है। यह अपने मुसलमान भाइयों के हित-साधन के लिए तुर्की भी जाता है किंतु वापस लौटता है तो इसकी पहली वाली स्फूर्ति इसके साथ नहीं लौटती। 'खोजी' (दे०) इसका एक मसखरा साथी है।

'आज़ाद', मौलाना अबुल कलाम *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1888 ई०, मृत्यु—1956 ई०]

मौलाना आज़ाद न केवल उर्दू के मूर्धन्य साहित्यकार और ओजस्वी वक्ता थे वरन् अपने समय में राजनीतिक क्षेत्र के शीर्षस्थ महारथी भी थे। यौवनावस्था में ही इन्होंने कांग्रेस पार्टी में सम्मिलित होकर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1942 ई० में ये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान बनाए गए थे। जीवन-भर ये कांग्रेस पार्टी से संबद्ध रहे और पाकिस्तान के निर्माण का अंत तक घोर विरोध करते रहे थे। उर्दू के अतिरिक्त ये अरबी और फ़ारसी के भी बहुत बड़े विद्वान् थे। कलकत्ता से प्रकाशित 'अलहिलाल' नामक साप्ताहिक पत्रिका द्वारा इन्होंने अपनी बहुज्ञता और विद्वत्ता का सिक्का देश भर में जमा दिया था। खिलाफ़त आंदोलन के युग में ये मुसलमानों के अन्यतम नेता थे। इन्होंने राजनीति को और साहित्य को सदैव अलग रखा था। इनके द्वारा प्रणीत अनेक कृतियों में से 'गुबार-ए-खातिर' (दे०), मज़ामीन-ए-अबुलकलाम', 'कुर्बानी' 'कारवान-ए-खयाल', 'ताज़ा मज़ामीन-ए-अबुलकलाम' 'तर्जुमान-ए-कुरान' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी साहित्यिक, धार्मिक, शैक्षिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक सूझबूझ उच्च कोटि की थी। काव्य के प्रति इनकी अत्यधिक श्रद्धा थी। आरंभिक जीवन में इन्होंने कुछ काव्य-साधना भी की थी परंतु बाद में स्थायी रूप से गद्य को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। इनकी स्मरण-शक्ति इतनी विलक्षण थी कि इन्हें उर्दू, फ़ारसी और अरबी के सहस्रों उत्कृष्ट पद आद्योपांत कंठस्थ थे। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् ये भारत के शिक्षा-मंत्री के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन रहे। राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण के कर्णधारों में इनका नाम सदा आदर के साथ लिया जाएगा।

'आज़ाद', अब्दुल अहद *(कश० ले०)* [जन्म—1902 ई०, निधन—अप्रैल, 1948 ई०]

कश्मीर के बड़गाम तहसील में स्थित रांगर (रांगल) नाम के गांव में जन्मे 'आज़ाद' क्रांतिकारी स्रष्टा और सांस्कृतिक नवजागरण के प्रमुख स्तंभ थे। इनके पिता का नाम सुल्तान दरवेश था जो स्वयं साहित्यिक जगत् में प्रसिद्ध थे। इन्हें अँग्रेज़ी का ज्ञान नहीं था और न यह महजूर साहब (दे०) की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्मीर से बाहर रहे थे, और न इन्हें दुनिया की हवा लगी थी। मौलाना हफ़ीज और रूमी के महान् ग्रंथों और पिता की धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित थे, अतः प्रारंभ में इनका जीवन बहुत ही धार्मिक रहा। प्रारंभ में इनका उपनाम 'अहद' था जिसे बदलकर इन्होंने बाद में 'जाँबाज़' कर लिया। पुत्र-शोक के आघात से कवि का हृदय टूट गया और यहीं से इनका दृष्टिकोण भी बदला। यह निराशावादी बने, फिर तार्किक और बारीकी से देखा जाये तो अपने अंतिम दिनों में यह आस्तिकता-नास्तिकता से बहुत दूर रहे। अब इन्होंने 'आज़ाद' उपनाम से काव्य-रचना की। सन् 1942 में 'समाजवादी' दृष्टिकोण के संपर्क में आकर इनके कवित्व का स्रोत फूटा। आज़ाद साहब सभी दकियानूसी अंधविश्वासों, सिद्धांतों, पूर्व-धारणाओं से मुक्त हो गये। इन्होंने तथाकथित धर्म, धर्मशास्त्रों और ईश्वरवादी विचारावली को भी चुनौती दी। सामाजिक शासनतंत्र के प्रति विद्रोह किया और पूरे क्रांतिकारी बने। इनकी रचनाओं को तीन श्रेणियों या भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) प्रेम-गीत एवं भक्ति गीत, जिन पर उर्दू-फ़ारसी कवियों का प्रभाव है; (2) प्रकृति के सौंदर्य की प्रशंसा में—'यहाँ इन पर महजूर की कविताओं का प्रभाव मालूम देता है; और (3) द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी एवं क्रांतिकारी मूर्तिभंजक। इनके कई प्रकाशित एवं अप्रकाशित गीतों का संग्रह अब अकादेमी ने प्रकाशित किया है। शैली, भाव एवं भाषा की दृष्टि से 'आज़ाद' का बहुत ऊँचा स्थान है और इन्हें कश्मीरी साहित्य के आधुनिक युग का एक प्रमुख सूत्रधार कहा जा सकता है। इन्होंने जीवन के अंतिम क्षणों में कश्मीरी साहित्य के इतिहास पर उर्दू भाषा में 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' की रचना की जो तीन खंडों में प्रकाशित हुई है।

आज़ाद, अवतारसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

आज़ाद की काव्य-कृतियाँ हैं—'शांत बूंदां', 'सावण पीघां', 'विश्वी वेदना', 'कन सोआं', 'सोन सवेरा' और 'जीवन नाद'। इनकी कविताओं पर स्वतंत्रता-आंदोलन का गहरा प्रभाव है जिनमें समग्र सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना अभिव्यक्त हुई है। इनकी कविता का मूल स्वर आशा और आस्था का है। इन्होंने तीन महाकाव्य भी लिखे हैं—'मरद अगंमडा' (दे०) 'विश्व नूर', तथा 'महाबली'।

आज़ाद ने पंजाबी कविता को जन-जीवन से जोड़ा है और उसमें यथार्थ को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य पैदा की है।

आज़िम, मुज़फ़्फ़र *(कश० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

इनका जन्म कश्मीर के बारहमूला ज़िले के गोटलीपुरा गाँव में सन् 1934 ई० में हुआ। कच्ची आयु में मानव की पशुता का अनुभव हुआ और उपचेतन मन के आघात को 20-21 वर्ष की आयु में वाणी मिली। तभी से सामाजिक अन्याय और मनुष्य की पाशविक भावनाओं के प्रति आक्रोश की ज्वाला फूटी। इनकी रचनाओं में जहाँ दर्द और भावुकता है वहाँ अभिव्यक्ति ओजमयी है। इनकी शैली मार्मिक है और उसमें ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग हुआ है। 'ज़ोलानः' (बेड़ियाँ) नाम के इनके कविता-संग्रह पर इन्हें 'कश्मीर कल्चरल अकादेमी' की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

आजिर मानुह *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1952]

हितेष डेका (दे०) के 'आजिर मानुह' (आज का मनुष्य) उपन्यास में वर्तमान जीवन और भूमि-संबंधी समस्याओं का वर्णन है। इसमें मानव के अधिकारों के मूल्य-निर्धारण का प्रयास है। यह लेखक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

आज्ञा-पत्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1716 ई०]

कोल्हापुर के श्री राजा शंभु छत्रपति की प्रेरणा से उनके अमात्य रामचंद्र पंत ने इसकी रचना की थी। इसमें कुल प्रकरण हैं—नौ। प्रथम प्रकरणों में शिवाजी द्वारा स्वराज्य की स्थापना और संभाजी तथा राजाराम द्वारा उसके संरक्षण-स्थिरीकरण की चर्चा है। तीसरे प्रकरण से राजनीतिशास्त्र से सम्बद्ध गंभीर-यथार्थ विवेचन आरंभ होता है। इसमें राजा के गुणों-उत्तरदायित्वों की चर्चा है। चौथे प्रकरण में राजा के प्रधान सचिव के महत्व, उसके गुण-अवगुणों की मीमांसा अधिक यथार्थ रूप में अवतरित हुई है क्योंकि रचनाकार स्वयं इसी पद पर दीर्घ काल से कार्यरत रहा था। पाँचवें में सेठ-व्यापारियों के प्रति राजा के दृष्टिकोण की मार्मिक चर्चा है। छठे-सातवें में तत्कालीन देशमुख, कुलकर्णी, पाटिल आदि जागीरदारों के साथ राज-व्यवहार का विवेचन है, राज्य-संरक्षण की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से इन्हें भूमिदान देने की अपेक्षा द्रव्य-दान को ही अधिक उचित ठहराया गया है। आठवें में दुर्ग-निर्माण तथा उसके संरक्षण की विधि का विवेचन है तथा नौवें प्रकरण में नौ-सेना (आरमार) की तैयारी और उसके महत्त्व का निरूपण है। रामचंद्र पंत के उपर्युक्त विवेचन में सर्वत्र स्वानुभव का पुष्ट आधार है। श्री शिवाजी, संभाजी तथा इनके परवर्ती अनेक मराठा शासकों के प्रशासन को नज़दीक से जानने-परखने का इन्हें अवसर प्राप्त हुआ था। तत्कालीन राजनीतिशास्त्र का यह अत्यन्त मौलिक और सर्वांग सुंदर ग्रंथ है।

आट्टक्कथा *(मल० पारि०)*

यह विश्व-प्रसिद्ध नृत्यकला रूप कथकलि का आधार-साहित्य है। आट्टक्कथाएँ मलयाळम के दृश्यकाव्य होते हैं। इन काव्यों की विषय-वस्तु प्रायः पुराण-प्रसिद्ध कथाएँ होती हैं। कथांश संक्षेप रूप में श्लोकों में दिए होते हैं जिनका अभिनय से प्रायः संबंध नहीं होता। श्लोक के बाद संगीतबद्ध पद हैं जिनका गायन पार्श्वगायक करते हैं और उसके अनुसार अभिनेता आंगिक अभिनय करते हैं। 'गीतगोविंद' (दे०) की श्लोक-पद पद्धति का प्रभाव आट्टक्कथा में दर्शनीय है।

आट्टक्कथा-साहित्य का मलयाळम के साहित्येतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सोलहवीं सदी ई० के कोट्टारक्करा तंपुरान प्रथम आट्टक्कथा लेखक हैं जिन्होंने 'रामायण' (दे०) को आठ भागों में प्रस्तुत किया था। कोट्टयत्तु तंपुरान (दे०), उंणायि वारियर (दे०), इरयिम्मन् (दे०) तंपि आदि मुख्य आट्टक्कथाकार हैं। महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) द्वारा कथकलि का पुनरुद्धार करने के बाद इन आट्टक्कथाओं का महत्त्व और बढ़ गया है।

✓ **आट्टप्रकारम्** *(मल० कृ०)*

संस्कृत नाटकों के प्राचीन रंगमंचीय रूप 'कुटियाट्टम' के अभिनय की विधि को व्यक्त करने वाले ग्रंथों की परंपरा। 'मंत्रांकम्', 'मत्तविलासम्', 'शूर्पणखांकम्', 'अशोकवनिकांकम्' आदि इसके कई भाग हैं। परंपरागत रूप से इसे राजा कुलशेखर वर्मा के सभासद् तोलन (दे०) द्वारा रचित माना जाता है, परंतु विद्वानों के मत में इसके भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा रचित हैं और नवी से पंद्रहवीं सदी तक के बीच में लिखे गए हैं। इनकी भाषा को तमिल और संस्कृत के संतुलित मिश्रण से विकसित मानक भाषा मान सकते हैं।

आट्रुप्पडै *(त० पारि०)*

आट्रुप्पडै का शाब्दिक अर्थ है मार्ग-निर्देशक कविताएँ। संघकालीन दस दीर्घ कविताओं (पत्तुप्पाट्टु) में पाँच 'आट्रुप्पडै' हैं। इनमें किसी दानी आश्रयदाता से पुरस्कार प्राप्त कर लौटता हुआ कलाकार अपने किसी निर्धन मित्र से मिलने पर उसे उस आश्रयदाता तक पहुँचने का मार्ग बताता है। उसे लगता है कि आश्रयदाता की राजधानी तक पहुँचाने वाले मार्ग का प्रत्येक पदार्थ उसका स्वागत-सत्कार कर रहा है; अतः वह उसका वर्णन उसी रूप में करता है। कवि या कलाकार को संपूर्ण सृष्टि में उस दानी एवं उदार आश्रयदाता की झलक दीख पड़ती है। इन कृतियों में कवि राजा या सामंत की उदारता का वर्णन करने के लिए पाँचों भू-भागों का वर्णन भी करता है। कविता के अंत में नगर के सौंदर्य, आश्रयदाता के अपूर्व प्रेम, राजमहल में आयोजित प्रीति-भोज, आश्रयदाता द्वारा कलाकार का स्वागत, उसको दिये गये नाना उपहार और अंतिम विदाई का वर्णन होता है। पुरनानूरु के कुछ मुक्त पदों में तथा परवर्ती युग की स्फुट कविताओं में आट्रुप्पडै का एक तत्त्व—राजा या आश्रयदाता की उदारता का वर्णन—प्राप्त होता है।

आडुगापट्टि अम्मैयप्प पिळ्ळै *(त० पा०)*

अम्मैयप्प पिळ्ळै तमिल में रचित दूसरे और पी० आर० राजम अय्यर के एकमात्र उपन्यास 'कमलांबाल चरित्तिरम' (दे०) के प्रमुख पात्रों में से है। इसका सम्बन्ध उपन्यास के प्रायः सभी प्रमुख पात्रों एवं घटनाओं से है। अम्मैयप्प पिळ्ळै आडुगापट्टि नामक गाँव के रहने वाले थे और मदुरै की एक पाठशाला में तमिल प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहे थे। उनकी आयु 50 वर्ष के लगभग थी। शरीर गठा हुआ था। वे अत्यन्त बुद्धिमान और तर्क-पटु थे। उनका तमिल-ज्ञान अपार था। वे संगीत-प्रेमी थे। तर्क करते समय प्रायः गीतों द्वारा अपने विरोधियों का मुंह बंद किया करते थे। अम्मैयप्प पिळ्ळै गम्भीर प्रकृति के सज्जन थे। भोले स्वभाव के कारण वे अपनी कमियों को गुण मानकर जी रहे थे। उनके चारित्रिक गुणों को स्पष्ट करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासकार ने अनेक रोचक प्रसंगों का उल्लेख किया है; जैसे—अम्मैयप्प पिळ्ळै को कथा बाँचने का बहुत शौक था। एक बार वे कंब रामायण का पारायण कर रहे थे। प्रसंग था राम-सीता-विवाह। उस मार्ग से होकर जाता हुआ एक रामभक्त श्रोताओं के बीच आ बैठा। कथा-वाचक के आवेग को देख उसने सोचा कि राम-रावण-युद्ध का प्रसंग चल रहा है। थोड़ी देर बाद अम्मैयप्प पिळ्ळै गंभीर स्वर में बोले "और राम ने सीता से विवाह कर लिया।" रामभक्त कुपित हो उन्हें मारने दौड़ा। उस दिन तो वे जैसे-तैसे मार खाने से बच गये परंतु इस घटना के बाद उन्होंने सामूहिक स्थलों पर खड़े होकर कथा बांचना छोड़ दिया।

पात्रों का चरित्र-चित्रण राजम अय्यर की प्रमुख विशेषताओं में से है। इस पात्र के चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार को अपूर्व सफलता मिली है। यह उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के तमिलनाडु के तमिल पंडितों एवं तमिल प्राध्यापकों का प्रतिनिधित्व करता है। यह तमिल साहित्य के अविस्मरणीय पात्रों में से है।

आढ़ा किसना *(हिं० ले०)* [जन्म और मृत्यु का समय अज्ञात]

ये आढ़ा गोत्र के चारण थे तथा मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के आश्रय में रहते थे। इनके पिता का नाम 'दूलह' था। 'भीमविलास' एवं 'रघुवरजस-प्रकास' नामक इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी कुछ फुटकर कविताएँ भी मिलती हैं। 'भीमविलास' की रचना 1722 ई० में हुई थी। इसमें महाराणा भीमसिंह के जीवन का ऐतिहासिक वर्णन है। 'रघुवर-जस-प्रकास' छंदःशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें डिंगल के छंदों का भी वर्णन किया गया है। इसकी रचना 1724 ई० में हुई थी। किसना जी डिंगल के अच्छे कवि तथा रीतिग्रन्थों के ज्ञाता थे। इन्होंने कर्नल टाड को ऐतिहासिक सामग्री एकत्र करने में पर्याप्त सहायता दी थी।

आणलदे *(गु० पा०)*

सोरठी गीत-कथाओं और लोक-कथाओं की नायिका आणलदे देवरा से प्रेम करती थी, पर उसका विवाह एक अन्य पुरुष से होता है। पर विवाह के बाद उसका पति आणलदे की मनःस्थिति समझता है और दयार्द्र होकर स्वयं आणलदे को देवरा के घर ले जाता है तथा अपनी पत्नी उसे सौंप आता है। सच्चे प्रेम की यह अनन्य कथा है। आणलदे अपने पति के प्रेम की प्रतीति करती है और अपने प्रेमी को पुनः प्राप्त करती है। उस घटना में ही उसकी शक्ति का परिचय होता है। आज भी सौराष्ट्र के घर-घर में आणलदे के नाम से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है।

आतर्थी, प्रेमांकुर *(बँ० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

प्रेमांकुर आतर्थी के उपन्यास या कहानियाँ अनुभवाश्रित एवं वास्तवनिष्ठ हैं। इनमें जीवन के जटिल पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है। जटिलता का आश्रय लेने पर भी इनकी रचनाओं का साम्य कहीं-कहीं नष्ट हो गया है और अवान्तर वर्णना-धर्मी प्रसंगों की अभिव्यक्ति हुई है। इनके उपन्यास 'चाषार मेये' (1924) में समकालीन समाज-जीवन में नारी की दुःख-वेदना-व्यर्थता की विभिन्न समस्याओं का उद्घाटन हुआ है। इनके दूसरे उपन्यासों में 'बाजीकर' (1922), 'अचलपथेर यात्री' (1932), 'आतसी' आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमांकुर की रचनाओं में सर्वाधिक आकर्षक है महास्थविर जातक (दे०) (1944)। तीन खंडों में संपूर्ण यह एक जीवनस्मृतिमूलक उपन्यास है। आज से 50-60 साल पहले के मनुष्य के बाल्य या शिक्षा-जीवन का यथार्थ चित्र इसमें अनावृत किया गया है। इस प्रकार की रचनाओं में लेखक का अनायास भाव-विह्वल हो जाना स्वाभाविक है परंतु कौतुक एवं श्लेष-मिश्रित रचना-कौशल से पाठकों का कौतूहल एवं आग्रह क्षीण नहीं हो पाता। इसमें लेखक की यथार्थानुभूति के साथ-साथ कौतुक एवं रोमानी मनोभाव की सफल अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक चिंतनधारा एवं नव्य रीति के प्रवर्तकों में प्रेमांकुर का निःसंदेह महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आता, गोपाल *(अ० ले०)* [जन्म 1540 ई०, मृत्यु—1661 ई०] जन्मस्थान : उजनि के गडगाँव के पास।

सन् 1552 ई० में कोच-आक्रमण के समय इनके माता-पिता बरपेटा अंचल भवानीपुर में आ बसे थे। माधवदेव (दे०) द्वारा नियुक्त 12 धर्माचार्यों में ये एक थे। ये महापुरुषीया धर्म की अन्यतम शाखा काल-संहति के प्रवर्तक थे। धर्म-प्रचारक के अतिरिक्त ये एक सुकवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नाट्यकार भी थे।

रचनाएँ—अंकीयानाट, जन्मयात्रा, नंदोत्सव और उद्धवयान; रचना-काल—1590 ई० के आसपास।

इनके तीनों नाटक भागवतपुराण पर आधारित हैं। भवानीपुर के कीर्तन-घर में जन्मयात्रा और नंदोत्सव नाटकों के अभिनय देखकर माधवदेव प्रभावित हुए थे। 'जन्मयात्रा' में कृष्ण के जन्म का वर्णन है। कुछ लोग 'नंदोत्सव' नाटक को स्वतंत्र नाटक न मानकर जन्मयात्रा का ही उत्तर भाग मानते हैं। 'उद्धवयान' (गोपी-उद्धव-संवाद) निम्नकोटि का नाटक है। श्री हेम बरुआ (दे०) इसे नाटक की अपेक्षा लयात्मक रैंपसोडी (ग्रीस में एक ही बैठक में गाया जाने वाला महाकाव्य अथवा उसका अंश) मानते हैं। इसमें नाटकीय कार्य कम और गोपियों की विरहदशा का वर्णन अधिक है। नाटकों के गीत मधुर हैं। नाटकों के अतिरिक्त भी गीत और घोषा छन्दों की रचना श्री गोपाल आता ने की थी।

'आतिश' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1778 ई०, मृत्यु—1846 ई०]

नाम—ख़्वाजा हैदर अली, उपनाम—आतिश, जन्मस्थान—फ़ैज़ाबाद। ये मुसहफ़ी (दे०) के शिष्य थे। इनके काव्य में लखनऊ स्कूल की प्राय: सभी विशेषताएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। कुल मिलाकर ये नासिख़ (दे०) की टक्कर के शायर थे और दोनों में बहुधा स्पर्द्धा भी रहती थी। इनकी कविता में उच्च कोटि के सूफ़ी तत्त्व और आध्यात्मिक अनुभुति के सजीव चित्र दृष्टिगोचर होते है। 'दीवान-ए-आतिश' में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं।

आतिश-ए-गुल *(उर्दू० कृ०)*

'जिगर' मुरादाबादी की इस काव्य-कृति का प्राक्कथन प्रो० रशीद अहमद सिद्दीक़ी (दे०) द्वारा और भूमिका आलेअहमद 'सरूर' (दे०) द्वारा लिखित है। कृति में ग़ज़ल और नज़्म के पृथक्-पृथक् दो भाग हैं। प्रथम भाग में कवि की श्रृंगार रस-प्रधान ग़ज़लें संगृहीत हैं। दूसरे भाग की नज़्मों का विषय व्यापक है। इसमें बंगाल का दुर्भिक्ष, गांधीजी की याद, एलान-ए-जमहूरियत आदि शीर्षकों के अंतर्गत सुंदर कविताएँ कही गई हैं। 224 पृष्ठ की इस काव्य-कृति का अधिकांश अर्थात् 190 पृष्ठ श्रृंगारिक ग़ज़लों से सम्बद्ध हैं। नज़्मों (कविताओं) में भी श्रृंगारिकता के दर्शन होते हैं। परंतु इनमें राष्ट्रवादी और प्रगतिवादी विचारधारा की भी कहीं-कहीं झलक दिखाई देती है। 'जिगर' मूलतः श्रृंगारी कवि हैं। उनके यहाँ जीवन का सबसे बड़ा सत्य सौंदर्य है। इसी सत्य का उद्घाटन उन्होंने अपने काव्य में सर्वत्र किया है। वे मीर (दे०), मोमिन (दे०) दाग़ (दे०), और हसरत (दे०) की श्रेणी के शायर हैं। उनमें ग़ालिब और इक़बाल जैसी दार्शनिक गहनता और कल्पना की गंभीरता का सर्वथा अभाव है। परंतु उनका सौंदर्य-प्रेम अत्यंत सुलझा हुआ और स्वस्थ है। भावुकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता इस कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। आले अहमद 'सरूर' के अनुसार 'जिगर' के यहाँ इस कृति में जो कुछ है वह ख़ून-ए-जिगर से लिखा गया है। इसमें आत्मीयता भी है और उद्दाम समर्पण का भाव भी।

आत्मकथा *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1958 ई०]

गुजरात के लोकप्रिय नेता व साहित्यकार इंदुलाल याज्ञिक (दे०) ने अपने जीवन की सन् 1935 ई० तक की घटनाओं का चार भागों में आत्मकथा के रूप में निरूपण किया है। शेष प्रसंगों के लिए अन्य दो भाग लिखने की लेखक की योजना है। साहित्य, राजनीति, लोक-सेवा तथा भ्रमण ये इन्दुलाल के प्रिय विषय हैं।

अपनी इस आत्मकथा में उन्होंने अपनी कथा कम; किंतु अपने माध्यम से समग्र देश, विशेषत: गुजरात के पिछले 5-6 दशकों की सर्वांगीण कथा व विकास-गाथा गाई है। इनमें गुजरात के राजनीतिक जीवन व उत्थान-पतन का विश्वसनीय, रोचक एवं प्रभावशाली निरूपण हुआ है।

प्रथम भाग 'जीवन-विकास' में सन् 1892 से 1917 ई० तक की प्रमुख घटनाएँ वर्णित हैं। अपनी जन्मभूमि नड़ियाद का इतिहास व विकास निरूपित करते हुए लेखक ने अपनी 25 वर्ष की अवस्था तक के अपने जीवन-विकास का—कालेज-जीवन तक का—परिचय दिया है। दूसरे भाग 'गुजरात मां नवजीवन' में 1917 से 1921 ई० तक की घटनाएँ वर्णित हैं। बम्बई छोड़कर सेवाव्रत धारण कर गुजरात में सार्वजनिक कार्य करने का पूरा विवरण इसमें है। तीसरे भाग 'कारावास' में 1921 से 1924 ई० तक की जेलयात्राओं का, गांधीजी के निकट परिचय का;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तज्जन्य विकास का वर्णन किया गया है। चौथे भाग 'जीवन-संग्रह' में 1924 से 1935 ई० तक की घटनाएँ वर्णित हैं। विदेश यात्राएँ, असफल वैवाहिक जीवन, पत्नी की मृत्यु, सरदार व गांधीजी के मतभेद आदि प्रमुख घटनाएँ हैं।

एक निर्भीक साहित्यकार व अच्छे शैलीकार के रूप में गुजराती साहित्य में इंदुलाल की प्रतिष्ठा इस आत्मकथा व अन्य रचनाओं के कारण है।

आत्मकथा (*हिं० पारि०*)

जीवन-चरित्र के दो रूप हैं—जीवनी (दे०) और आत्म-कथा। लेखक के अपने जीवन से संबंधित ब्यौरेवार विवरण, संस्मरण (दे०), डायरी, पत्रावली आदि सभी आत्म-कथा के अन्तर्गत आती हैं, पर आत्म-कथा प्राय: उसी पुस्तक को कहते हैं जिसमें लेखक स्वयं अपने संपूर्ण जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, भले ही उसमें आन्तरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल दिया गया हो। कार्लाइल के शब्दों में, 'सफल चरित्र का लिखना उतना ही कठिन है जितना सफल जीवन का अपने जीवन में निभाना; आत्म-कथा लिखना तो और भी दुष्कर है क्योंकि प्रथम तो व्यक्ति की स्मृति सदा विश्वसनीय नहीं होती; दूसरे कटु सत्यों का उद्घाटन करना, अपने दोषों और चारित्रिक छिद्रों को प्रस्तुत करना कठिन है और तीसरे अपना पौरुष और महत्व जताने का लोभ संवरण करना दुष्कर होता है। फिर भी विश्व-वाङ्मय में अनेक प्रामाणिक आत्म-कथाएँ—जैसे रूसो तथा गांधी की आत्म-कथाएँ—लिखी गयी हैं जो रोचक होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी हैं।

आत्मचरित (*म० कृ०*)

यह कवयित्री बहिणाबाई की रचना है। इसमें लगभग सात सौ कविताएँ हैं। इनकी कविताओं का प्रथम संकलन 1913 ई० में और दूसरा 1926 में प्रकाशित हुआ था। इस आत्मचरित का विशेष महत्त्व है। संत तुकाराम (दे०) का सान्निध्य और साक्षात्कार कवयित्री को प्राप्त था अत: इसमें उपलब्ध संत तुकाराम के विषय में जानकारी प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण है। इसकी रचना अभंग छंद में हुई है। भक्ति-भावना की उत्कटता की दृष्टि से भी इसका महत्त्व है।

आत्मचरित्र (*म० कृ०*)

राजनीति के क्षेत्र के सजग कार्यकर्त्ता नाना फडणवीस ने अपना आत्मचरित लिखा था। नाना फडणवीस का जन्म सन् 1742 में हुआ था और मृत्यु सन् 1800 में। लेखक ने बाल्यकाल से सन् 1761 तक के अपने जीवन को आत्मचरित में लिया है। यह आत्मवृत्त रूपाकार की दृष्टि से अत्यंत लघु है। इसकी रचना कब हुई यह निश्चित नहीं कहा जा सकता।

मूल कृति मोडी लिपि में थी। प्रकरण के प्रारंभ में श्रीष्कृण ने प्रसन्न शीर्षक तथा श्रीसांबसदाशिवाला को नमस्कार कर लिखना प्रारंभ किया गया है। नाना फडण-वीस की उत्तर प्रदेश यात्रा, पानीपत प्रसंग, पूना में आगमन आदि इस ग्रंथ के मुख्य भाग हैं। इसमें इनके वैयक्तिक-कौटुंबिक जीवन के संस्मरणों का विशेष उल्लेख नहीं हुआ है।

नाना फडणवीस स्वयं कवि या लेखक नहीं थे। वे तो एक कूटनीतिक राजनीतिज्ञ ही थे। परंतु उनकी साहित्य-लेखन-शैली वैशिष्ट्यपूर्ण है। ग्रंथारंभ में पहले आध्यात्मिक विचार व्यक्त कर मानव-देह की घृणास्पद स्थिति चित्रित कर अपनी देह के संबंध में आत्मनिवेदन आरंभ किया गया है। सब वर्णन वास्तविक हैं उनमें कहीं चमत्कार अथवा वैचित्र्य नहीं है।

अभिव्यक्ति में प्रांजलता तथा अत्यंत आत्मीयता है। चरित्रकार ने अपने प्रति ईमानदार रहकर ईमानदारी से इसका लेखन किया है—व्यक्ति-विषयक उद्गार, विविध जीवनानुभव, अंतर्द्वंद्व तथा गुण दोषों का संतुलित विवेचन उपस्थित किया है। इसकी भाषा सीधी-सादी तथा अनलंकृत है।

इस प्रकार लघु आकार वाला यह अपूर्ण ग्रंथ महत्त्वपूर्ण हैं।

आत्मजीवनी (बँ० कृ०) [रचना-काल—1898 ई०]

ब्राह्मधर्म प्रचार-आंदोलन के पुरोधा महर्षि देवेंद्रनाथ (दे०) की 'आत्म-जीवनी' नाना कारणों से बँगला साहित्य का एक अविस्मरणीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में हृदय का समस्त कलकोलाहल निविड़ शांति का परमाश्रय पाकर गहरी-गंभीर ध्यानमग्नता में अपनी पूर्णता की उपलब्धि करता है। मनोजगत् तथा अध्यात्मजगत् का एक अपरूप रेखांकित मानचित्र मनोदर्पण पर सहज ही प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भासित होता है। जीवन एवं जीवन-रहस्य की गंभीरता इस ग्रंथ की विशेषता है। ग्रंथ की अनायास-सुंदर, शिल्प-सुषमान्वित एवं अपरूप वर्णनाभंगी इस ग्रंथ के पाठकचित्त को सहज ही सानंद मुग्धता से विस्मित कर देती है। समकालीन समाज-धर्म एवं जीवन के वास्तविक रूप का गहन-गंभीर अन्वेषण एवं उसके मुक्तिपथ का नव-निर्देश इस ग्रंथ के सकल ऐश्वर्य का चिरंतन उत्स है। देवेन्द्रनाथ के भक्त एवं कवि-हृदय का निविड़ सान्निध्य इस ग्रंथ में सर्वत्र देखा जा सकता है।

आदक, रामदास *(बँ० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती के तीसरे दशक से सातवें-आठवें दशक तक]

रामदास आदक का जन्म हुगली ज़िला के हायातपुर ग्राम में अनुमानतः सन् 1920-30 के मध्य हुआ था। इनके पिता का नाम रघुनंदन था और ये जाति के केवट थे।

इन की कृति 'अनादि मंगल' (अनाद्य मंगल) अथवा 'धर्मपुराण' है। 1962 ई० में यह कृति पूर्ण हुई। धर्मठाकुर के आदेश से कवि ने धर्म मान रचना प्रारंभ की। कवि में कवित्व-शक्ति भी धर्मठाकुर के आशीर्वाद से ही प्रकट हुई।

ग्रंथ में कवि का आत्म-परिचय भी पूर्ववर्ती धर्ममंगल-काव्य के कवियों के अनुकरण पर मिलता है जो नाना वैचित्र्यपूर्ण अद्भुत घटनाओं से युक्त है। रूपराम तथा अन्य धर्ममंगल-काव्यों का प्रभाव इस ग्रंथ में यथेष्ट है।

कहानी एवं चरित्र-चित्रण में रचना-कौशल एवं सतत प्रवाह है। स्निग्ध पद-लालित्य गुणों से युक्त कृति में कवि की कवित्व-शक्ति प्रकट होती है। ग्रंथ की भाषा सरल है। संस्कृत पुराण तथा काव्य-शास्त्र में कवि की गति थी—यह निर्विवाद स्वीकार करना होगा।

आदर्श पीठ *(अ० कृ०)* : [रचना-काल—अज्ञात, लेखक—दैबचंद्र तालुकदार (दे०)]

यह उपन्यास इस शताब्दी के चतुर्थ दशक के शेष भाग में 'आह्वान' पत्रिका में खंडशः प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हो सका। इसमें एक आदर्शवादी युवक के समाज-सुधार और स्वावलंबी उद्योग की शोकपूर्ण परिणति दिखायी गयी है। जैसे ऊसर भूमि पर बीज का बोना निष्फल जाता है, उसी प्रकार शिक्षा और ज्ञान का प्रकाश किए बिना समाज का सुधार करना निष्फल होता है। उपन्यास का कथा-भाग दुर्बल है। कहानी के मध्य व्यावहारिक ज्ञान से रहित अति-उत्साही आदर्शवादी युवक की सफलता ही प्रकट होती है। इस युवक में गंभीर निष्ठा, आत्म-विश्वास और दृढ़ संकल्प का अभाव है।

आदर्शवाद *(हिं० पारि०)*

भारत तथा यूनान देशों में यह विचार अत्यन्त प्राचीन है कि साहित्य का सर्वप्रथम प्रयोजन शिक्षा देना है। पश्चिम में प्लेटो से भी पूर्व एरिस्टोफ़ेनीज़ ने कहा था कि कवि-विशेष यश का अधिकारी तभी हो सकता है जब उसका परामर्श सत् हो और वह मानव को उत्कृष्टतर बनाकर राष्ट्र के उत्थान में सहायक हो। आरंभिक मॉसेयस, हेसिप्रोड और हेराक्लिटस ने भी इसी बात पर बल दिया कि महान् कवि का कार्य प्रौढ़ों को परामर्श देना तथा अपनी रचना द्वारा मानव को सभ्य तथा उदात्त बनाना है। रोमन आचार्यों ने भी आदर्श स्थापना पर बल दिया। होरेस ने काव्य का उद्देश्य आनंद प्रदान करने के साथ-साथ शिक्षा देना भी माना। इस विचारधारा का प्रभाव नवशास्त्रवादी युग से होता हुआ आज भी किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है। ड्राइडन ने आनंद के बाद शिक्षा को दूसरा स्थान दिया; जानसन ने संसार को पहले से अधिक सुंदर बनाना कवि का कर्त्तव्य माना; स्वच्छंदतावादी वर्ड्सवर्थ तक ने कवि का कर्त्तव्य पाठक की भावनाओं का परिष्कार कर उसकी संवेदना का विस्तार करना कहा। आधुनिक युग में रिचर्ड्स ने कला और नीति का परस्पर संबंध स्वीकार किया—यद्यपि उनका नैतिकता संबंधी दृष्टिकोण न आध्यात्मिक है और न आधिदैविक ही। भारत में भी प्रारंभ से ही काव्य का प्रयोजन व्यवहार ज्ञान, शिवेतर से रक्षा, कांतासम्मित उपदेश बताकर कला के आदर्शवादी सिद्धांत पर बल दिया गया और यह मत प्रेमचंद (दे०) के कथन, '……कला को भी उपयोगिता की तुलना पर तोलता हूँ,' शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचन्द्र) जी के 'लोकमंगल की साधना' पर बल तथा प्रसाद (दे०) जी की उक्ति 'श्रेय की प्रेममय अभिव्यक्ति' में भी विद्यमान है। कला के आदर्शवादी सिद्धांत की मान्यताएँ हैं—कला में नीति-संबंधी मूल्यों का पालन अनिवार्य है; उसमें मानव का यथार्थ चित्र उपस्थित न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उसके भव्य गुणों का निरूपण होना चाहिए ; मानव-भविष्य की उज्ज्वल संभावनाओं के प्रति आस्था रखते हुए उसका चित्रण होना चाहिए ।

आदवाणी, कल्याण बूलचंद *(सिं० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म हैदराबाद सिंध में हुआ था । सिंध में ये प्राध्यापक थे और विभाजन के पश्चात् बंबई के जयहिंद कालेज में अध्यापन-कार्य करने लगे थे । आजकल भी ये उसी कालेज में हैं । ये सिंधी के साथ-साथ अँग्रेज़ी और फ़ारसी के भी अच्छे विद्वान् हैं । इनकी कविताओं का एक संग्रह 'राज़ व न्याज़' नाम से प्रकाशित हो चुका है । सिंधी-साहित्य-जगत में कवि की अपेक्षा आलोचक और निबंधकार के रूप में अधिक विख्यात हैं । शाह-लतीफ़, सचल और सामी पर इनकी आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । 'शाह जो रिसालो' (दे०) नाम से सिंध के प्रसिद्ध सूफ़ी संत कवि के काव्य का आलोचनात्मक संस्मरण तैयार करने पर इन्हें साहित्य अकादमी से सन् 1968 में पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था ।

आदवाणी, भेरुमल महिरचंद *(सिं० ले०)* [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1950 ई०]

भेरुमल का जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है । बीस वर्ष की आयु में ये सरकारी विभाग में नियुक्त हुए थे और उस पद पर रहकर इन्होंने सिंध का काफ़ी भ्रमण किया था । 1924 ई० में ये कराची के दयाराम जेठमल सिंध कालेज में सिंधी प्राध्यापक के रूप में कार्य करने लगे थे । देश-विभाजन के पश्चात् ये पूना में जाकर रहे थे और वहीं इनका देहावसान हुआ । इन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं जो सिंधी पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित की गई हैं और काफ़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं । परंतु कवि की अपेक्षा ये सफल गद्य-लेखक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं । गद्य में कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, निबंध, आलोचना, यात्रा-वर्णन और संस्मरण के क्षेत्र में भेरुमल जी की रचनाएँ मिलती हैं । सिंधी साहित्य में इन्हें सबसे अधिक ख्याति 'सिंधी बोली, अजी तारीख' (दे०) नामक पुस्तक लिखने के कारण प्राप्त हुई है । अनुसंधान के क्षेत्र में इनकी रुचि अधिक थी । इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—लतीफ़ी सैरु (शाह लतीफ़ के काव्य का भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन); सिंध जो सैलानी (सिंध की यात्रा का वर्णन); गुलकंद (सिंधी मुहावरों और कहावतों का संग्रह); हिंदुनिजी तारीख (दो भागों में); कदीम सिंध (प्राचीन सिंध का इतिहास) । इनकी भाषा सरल, मुहावरेदार और ओजपूर्ण है । इनकी रचनाओं से इनके गंभीर अध्ययन की स्पष्ट झलक मिलती है ।

आदवाणी, हीरानंद शौकीराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1863 ई०, मृत्यु—1893 ई०]

हीरानंद का जन्म हैदराबाद सिंध में हुआ था । वे बचपन से ही बड़े निर्भीक, सत्यवादी और धार्मिक वृत्ति के थे । हीरानंद और इनके बड़े भाई नवलराय सिंध में ब्रह्मसमाज के प्रमुख प्रचारक थे । हीरानंद ने सन् 1890 ई० में हैदराबाद से सिंधी में मासिक पत्रिका 'सरस्वती' शुरू की थी । यह सिंधी भाषा में पहली मासिक पत्रिका है । इस पत्रिका में हीरानंद साहित्यिक, शैक्षणिक, सामाजिक तथा नैतिक विषयों पर लिखा करते थे । हीरानंद की कहानियों का संग्रह उनकी मृत्यु के पश्चात् 'हीरे जूँ कण्यूँ' (हीरों के टुकड़े) नाम से 1926 ई० में भेरुमल महिरचंद आदवाणी (दे) ने प्रकाशित किया था । हीरानंद की गद्य-शैली सरस, बोलचाल की तथा मुहावरेदार है । समाज-सुधार आदि कार्यों के अतिरिक्त सिंधी-गद्य के क्षेत्र में इनका योगदान हमेशा याद रहेगा ।

आदि उला *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की नवीं शताब्दी]

'आदि उला' शीर्षक का शाब्दिक अर्थ है प्रथम उला काव्य । इसके रचयिता चेरमान पेरुमाळ हैं । इन्हें नवीं शताब्दी के शैव भक्तों में परिगणित किया जाता है । संपूर्ण कृति में भगवान् शिव की स्तुति की गई है । लेखक ने शिवजी को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी सत्ता के रूप में चित्रित किया है । इस कृति के विभिन्न पदों में शिवजी का अपने भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए अन्य अनेक देवताओं और किन्नरों के साथ नगर-भ्रमण का वर्णन है । ज्ञान-संबंधी विभिन्न विषयों की चर्चा होने के कारण इसे 'ज्ञान उला' भी कहा जाता है । आदि उला के पद शैवमतानुयायियों के पावन धर्मग्रंथ 'तिरुमुरै' के ग्यारहवें खंड में संग्रहीत हैं । चेरमान पेरुमाळ की अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—पोन वण्णत्तु अंतादि और तिरुवारूर मुम्मणिक्कोवै ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकवि वाल्मीकि *(क० कृ०)*

यह कन्नड़ के कहानी-सम्राट् डा० मास्ति वेंकटश अय्यंगार (दे०) का आलोचनात्मक ग्रंथ है। हमारे आदिकाव्य रामायण तथा उसके प्रणेता वाल्मीकि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की अत्यंत सरस विवेचना इसमें है। मास्ति जी ने इसमें यह सिद्ध किया है कि रामायण पहले काव्य है, पीछे मतवादी ग्रंथ। मतवादी ग्रंथ बनने के कारण उसका क्षेत्र कैसे सीमित हुआ—यह बताते हुए मास्ति जी कहते हैं इस कारण जिसे सब लोगों में प्रसारित होना था, वह एक देश मात्र के लिए सीमित होकर रह गया; जिसे सम्राट् बनना था, वह एक राज्य का राजा मात्र बना; जिसे एक देश का राजा बनना था वह केवल एक गाँव का मुखिया बना। रामायण की महत्ता की चर्चा करते हुए मास्ति जी उसके उदय की सुंदर कहानी देते हैं। 'रामायण उपोद्घात' इस ग्रंथ का एक सुंदर अध्याय है। इसके बाद रामायण के क्षेपकों की चर्चा है, प्रामाणिकता की कसौटी पर उसे कसा गया है। अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि सातवाँ कांड क्षेपक है। बालकांड के आरंभ में मरने वाले ऋष्य शृंग वृत्तांत, भरद्वाज के आश्रम में राम का जाना, रामावतार की बातें, विष्णु तथा शिवपारम्य-बोधक प्रसंग तथा बातें आदि प्रक्षिप्त हैं। किंतु यह चाहे प्रक्षिप्त हो या न हो रामायण की महिमा इसी में है, वाल्मीकि की कविता का शिखर यही है। इसी भाग में रामायण संसार की समस्त साहित्य-संपदा में श्रेष्ठ है। इसके उपरांत अयोध्या कांड की दीर्घ चर्चा एवं आलोचना है। मास्ति जी का विचार है कि अयोध्याकांड सर्वश्रेष्ठ कांड है क्योंकि उसमें जीवन-लीला का जितना विस्तृत वर्णन है उतना विश्व-साहित्य की किसी भी कृति में नहीं है। चरित्र-चित्रण में वाल्मीकि विश्व-साहित्य में बेजोड़ हैं। बाली-वध प्रसंग को लेकर विद्वानों में तरह-तरह की बातें फैली हैं। बाली-वध, सीता का अग्नि-प्रवेश तथा उसका निर्वासन—ये तीन प्रसंग बहुत ही विवादास्पद रहे हैं। मास्ति जी ने इनका समाधान देने का प्रयास किया है। सीता का अग्नि-प्रवेश, वन-गमन आदि बातों को मास्ति जी ने प्रक्षिप्त बताया है। राम देवकल्प हैं, पर मनुष्य हैं। अतः उनके अनेक गुणों के समक्ष यह दोष नगण्य है। राम सभ्य थे। एक असभ्य शाखमृग बाली के साथ ऐसा ही बरताव करना है—ऐसा नियम कहाँ है? इस प्रकार उन्होंने इसका उत्तर उदारतावादी दृष्टिकोण से दिया है। फिर भी वह उतना संतोषजनक नहीं है। सीता पवित्र है उसे आग भी जला नहीं सकती—इस प्रकार का विश्वास राम में था। अतः उन्होंने उसके शील को प्रमाणित करने के लिए उससे अग्नि-प्रवेश करने को कहा। वस्तुतः सीता-परित्याग की समस्या का उत्तर उतना सरल नहीं है। पात्र-परिशीलन मास्ति जी ने बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। वाल्मीकि के प्रकृति-चित्रण, कथन-कौशल आदि की सुंदर चर्चा है। संस्कृति के अंतरंग को दिखाने में मास्नि जी सिद्धहस्त हैं। 'केलवु समस्येगळु' में मास्ति जी ने राम की ऐतिहासिकता, पुष्पक विमान, दशशिर, कपि आदि की चर्चा कर उनका वास्तविक तात्पर्य समझाया है। अंत में मास्ति जी ने यह सिद्ध किया है कि वाल्मीकि ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं योग्यता में भी भारतवर्ष के आदिकवि हैं, कविगुरु हैं।

मास्ति जी कन्नड़ के कहानी-सम्राट् हैं—उनका यह आलोचनात्मक ग्रंथ भी कथा-ग्रंथ के समान रोचक बन गया है।

आदि ग्रंथ *(पं० कृ०)* [स्थापना-वर्ष—1604 ई०]

प्रथम संग्रहकर्त्ता गुरु अर्जुन देव (दे०), तदनंतर भाई गुरुदास (दे०) संपादक।

इसमें गुरुओं की वाणियों के अतिरिक्त फ़रीद, कबीर (दे०), जयदेव (दे०), नामदेव, त्रिलोचन, परमानंद, सदना, वेणी, रामानंद, धन्ना जाट, पीपा, सैन, रविदास, मीरांबाई (दे०), पाखन तथा सूरदास (दे०) जैसे भक्तों एवं भट्ट समुदाय के मथुरा, जालप, वल्ह, हरिवंश, तल्ह, सल्ह, जल्ह, भल्ह, कल्ह, सहार कल्ह, जल्लण, नल्ह, कीरत, दास, गयंद, सदरंग तथा भिखा आदि की रचनाएँ सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त सुंदर, मरदाना सत्ता और वलचंद्र की वाणी भी इसमें संकलित है।

सिक्ख धर्मावलंबियों के सभी धार्मिक तथा दार्शनिक विचार इसी ग्रंथ से अनुप्राणित हैं। इस ग्रंथ में 1430 पृष्ठ हैं। सन् 1604 ई० में आदि ग्रंथ की स्थापना हर मंदिर अमृतसर में की गई थी। इस ग्रंथ का पूरा नाम 'आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब जी' है और 'गुरु ग्रंथ साहिब' भी इसी की संज्ञा है। भाई गुरुदास द्वारा संपादित आदि ग्रंथ की प्रति को करतारपुर वाली प्रति माना जाता है। दूसरा संस्करण भाई मनीसिंह द्वारा संपादित 'दमदमा' वाला है। अर्नेस्ट ट्रम्प, मैकालिफ़ तथा साहिबसिंह ने आधुनिक काल में आदि ग्रंथ के संपादन-कार्य में अपना योग दिया है। आदि ग्रंथ में तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक जीवन का सुंदर चित्रण है, परंतु भक्ति का ही स्वर प्रधान है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम-जप को महत्त्व दिया गया है। इसकी भाषा पंजाबी एवं ब्रजभाषा-मिश्रित सधुक्कड़ी है और लहंदी पोठोहारी, माझी आदि पंजाबी की विविध बोलियों के शब्द भी इसमें उपलब्ध हैं।

आदि जुगादि *(पं० कृ०)*

'आदि जुगादि' प्रीतमसिंह 'सफ़ीर' (दे०) का चौथा काव्य-संकलन है। इस संग्रह में कवि ने अपनी अध्यात्मवादी तथा प्रगतिवादी कविताएँ प्रस्तुत की हैं। कुछ कविताओं में आदर्शवादी प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। कवि ने प्रगतिवादी चेतना को भी अपनी कविता में व्यक्त किया है। प्रगतिवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली उसकी कुछ कविताओं के नाम हैं—'नील' (नदी का नाम), 'हिरोशीमा नागासाकी', 'अमन' (शांति), 'सल्तनत' तथा 'कुआर गंदल' (एक पौधे का नाम) आदि।

आदिपुराण *(क० कृ०)*

कन्नड़ के आदिकवि पंप (दे०) (940 ई०) ने दो काव्य लिखे : एक लौकिक, दूसरा धार्मिक। उनकी धार्मिक या आगमिक कृति है 'आदिपुराण' जो चंपूशैली में है। जिनसेनाचार्य का संस्कृत 'पूर्वपुराण' इसका आकर-ग्रंथ है। उसमें वर्णित प्रथम तीर्थंकर की कथा ही इसकी कथ्य वस्तु है। कथावस्तु, भावसंपत्ति तथा मततत्त्व इन सबमें आदिपुराण 'पूर्वपुराण' का ऋणी है। इतना होते हुए भी आदिपुराण अपने काव्य-कौशल के कारण एक स्वतंत्र कृति है। पूर्वपुराण में काव्य की अपेक्षा पुराण-दृष्टि अधिक है तो 'आदिपुराण' में काव्यत्व अधिक है। पहला एक सरल पद्य-काव्य है तो दूसरा प्रौढ़ चंपू-काव्य है। पहले का विस्तार दूसरे में नहीं है। आदिपुराण में भवावलियों में भटककर, उनसे तंग हो भोग से त्याग की ओर आकृष्ट हो, अपना कर्म-क्षालन कर अंत में वैराग्य-परिणति के कारण केवल ज्ञान एवं मुक्ति को प्राप्त करने वाले प्रथम तीर्थंकर या आदिदेव की मनुजयात्रा की, परम सिद्धि की, मनोरम कथा है।

पंप ने अपने काव्य में स्वयं घोषित किया है कि 'आदिपुराण' में काव्य-धर्म एवं मत-धर्म का समन्वय है। यह यथार्थ है। दर्शन और काव्य दोनों दृष्टियों से आदिपुराण कन्नड़ की एक अक्षय निधि है। 'पंपभारत' (दे०) आदिपुराण से भी श्रेष्ठ माना जाता है किंतु भव्यता की दृष्टि से यह पंपभारत से श्रेष्ठतर है। आदिपुराण मार्गी-शैली का श्रेष्ठ काव्य है। इसमें संस्कृत समास-शैली की ही भरमार है। फिर भी कन्नड़ के अपने छंदों का भी स्तुत्य प्रयोग है। शास्त्रीय अंश, धार्मिक होने के कारण अनिवार्यत: आ गये हैं किंतु उनके बावजूद यह एक महाकाव्य है, एक महान् कृति है। यह कन्नड़ की प्रतिनिधि कृतियों में है।

आदिल मंसूरी *(गु० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल में जिन लेखकों ने अपनी प्रतिभा एवं सर्जक शक्ति से गुजराती साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, उनमें आदिल का स्थान प्रमुख है। अब तक इनके चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें मुक्तक और ग़ज़ल में इनको विशेष सफलता मिली है। इन्होंने जापानी काव्य-प्रकार 'हाइकू' का भी प्रणयन किया है। इनकी कविताएँ प्रायः अछांदस हैं।

इनकी कविता में क्रांति के स्वरों को वाणी मिली है किंतु मुख्यतः उसमें जीवन की उस हताशा की ही अभिव्यक्ति हुई है जिसमें मृत्यु के प्रति अत्यंत तीव्र आकर्षण होता है।

कविता के अतिरिक्त इन्होंने 'एब्सर्ड' एकांकी भी लिखे हैं। 'मारा हाथ पग बँधायला छे' नामक संग्रह में इनके पाँच एकांकी संगृहीत हैं जिनमें आधुनिक जीवन की विच्छिन्नता, दंभ तथा दुराव इत्यादि का आलेखन किया गया है।

समग्रतया गुजराती कविता और नाट्य साहित्य में नयी पीढ़ी की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने वाले प्रयोगशील लेखक के रूप में इनका विशिष्ट स्थान है।

आधुनिक ओड़िआ साहित्यर गतिपथ *(उ० कृ०)*

यह विभिन्न विषयों पर डा० गोपाळचंद्र मिश्र (दे०) के दस साहित्यिक आलोचनात्मक निबंधों का संकलन है। लेखक ने वर्ण्य विषय को उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है। इसमें संगृहीत दस निबंधों में इन्होंने आधुनिक उड़िया-साहित्य के जिन प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डाला है, उससे आधुनिक उड़िया-साहित्य की एक सामान्य धारणा अवश्य बन जाती है। समय के विकास-क्रम में संपूर्ण भारतीय साहित्य को उड़िया साहित्य का जो अवदान है, उसका भी परिचय मिलता है। तुलनात्मक एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रसादगुण-मयी है।

आधुनिकतार क ख ओ अन्यान्य आलोचना *(उ० कृ०)*

'आधुनिकतार क ख ओ अन्यान्य आलोचना' में चिंतामणि बेहेरा (दे०) के निबंध हैं। इनमें आधुनिक साहित्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम कुछ निबंधों में लेखक ने आधुनिकता को परिभाषित किया है और रोमांटिक संवेदना की अपेक्षा आधुनिक संवेदना को सिद्ध करने का प्रयास किया है। कतिपय महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों के विस्तृत विवेचन द्वारा उन्होंने अपनी बात की भलीभाँति स्थापना की है। इस पुस्तक में संस्कृति के प्रति उनकी गहरी चिंता, उनका उदात्त मानवीय दृष्टि-कोण तथा सूक्ष्म विवेचना-बुद्धि आदि को सफल अभिव्यक्ति मिली है।

आधुनिक पंजाबी कविता *(पं० कृ०)* [प्रकाशन—1941 ई०]

अपनी इस कृति में डा० मोहनसिंह (दे०) ने काव्य-रचना संबंधी कुछ विषयों पर प्रकाश डालने के अनंतर उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी की पंजाबी कविता के कुछ अंश परिचयात्मक टिप्पणियों सहित प्रकाशित किए हैं। इसके प्रथम भाग में आधुनिक कविता की उन विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है जिनके कारण उसे मध्ययुगीन कविता से पृथक् किया जा सकता है। भारतीय साहित्य, विशेष रूप से उर्दू एवं हिंदी साहित्य, के संदर्भ में नई पंजाबी कविता के वैशिष्ट्य पर अत्यंत सुंदर-संतुलित रीति से विचार प्रकट किए हैं। दूसरे भाग में भिन्न-भिन्न धाराओं में आधुनिक काव्य के कुछ अंशों का संकलन और उन पर परिचयात्मक टिप्पणियाँ हैं। इसमें कुछ कवि ऐसे भी हैं जिनसे पंजाबी पाठक का परिचय पहली बार हुआ। इस प्रकार ज्ञान एवं सूचना की दृष्टि से यह रचना अपने समय की बहुचर्चित कृति रही है।

आनंद *(क० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

कन्नड़ के श्रेष्ठ कहानीकार श्री आनंद जी का वास्तविक नाम है अज्जंपुर सीताराम। इनका जन्म मैसूर राज्य के अज्जंपुर में एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में 1904 ई० में हुआ। कुछ समय तक नौकरी करने के बाद वे साहित्य-रचना में लग गए। कन्नड़ साहित्य में श्रेष्ठ कहानीकार के रूप में वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। 'माटगाति', 'सरिसिय गोंबे', 'वेनुबेल्ल' आदि आपके विख्यात कहानी-संकलन हैं। आप सुकुमार वृत्तियों के शिल्पी हैं। आपकी कहानियों में कौटुंबिक जीवन के सुंदर एवं सरल चित्र मिलते हैं। 'ना कोंद-हुडुगि' (लड़की जिसे मैंने मारा) देवदासी प्रथा पर लिखी आपकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'हेंडतिया कागद' (पत्नी की चिट्ठी) कला की दृष्टि से अतीव उत्कृष्ट एवं मार्मिक कृति है। आनंद कन्नड़ के रोमांटिक कहानीकार हैं। 'आनंद-लहरी' में आपके रेखाचित्रों व निबंधों का संकलन है। 'पक्षिगान' इनका गद्यकाव्य-संकलन है। 'राबिसन क्रूसो, 'उग्रपरीक्षे' तथा 'ईसाप की कहानियाँ' आदि अनूदित कृतियां हैं। इनकी शैली अत्यंत रोचक है और भाषा विषयानुकूल।

आनंद *(पा० पा०)*

आनंद बुद्ध के पितृव्य शुक्लोदन के पुत्र तथा बुद्ध के सर्वाधिक निकटवर्ती शिष्य थे। इन्होंने भगवान् से प्रव्रज्या ली और उनके जीवन के अंतिम 25 वर्ष पर्यंत उनके उपस्थापक (सेवक) रहे। बाद में आर्हत (दे० अर-हत्) पद ग्रहण किया। ये बौद्ध धर्म प्रतिपादित समस्त गुणों के आकर तथा बौद्ध धर्म के अनन्य अन्वाख्याता थे। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद त्याग-वृत्ति के कारण ही उनके स्थानापन्न नहीं बने। सुंदरियों के जाल को 'कुशल मृग' की भाँति बचा जाते थे। भगवान् बुद्ध को इन्होंने ही भिक्षुणी-संघ-स्थापना के लिए बाध्य कर दिया था।

आनंदतनय *(म० ले०)*

ये दक्षिण भारत में स्थित तंजौर के अरणी ग्राम के निवासी थे। पिता का नाम था आनंदराव। इन्होंने लगभग बीस आख्यान काव्यों की रचना की जिनमें 'सीता स्वयंवर', 'राधा-विलास', 'पूतना-वध' उत्कृष्ट हैं। इनकी रचनाओं में अलंकारों की प्रचुरता है, अर्थ-चमत्कृति की अपेक्षा शब्द-चमत्कृति पर अधिक बल है। सर्वत्र भक्ति रस की प्रधानता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनंद मठ *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1882 ई०]

यह बंकिमचंद्र (दे०) का लोकप्रिय उपन्यास है। मुसलमान शासक अकर्मण्य, विलासी तथा प्रजाहित की भावना से वंचित थे। इन विकट परिस्थितियों में संतान-संप्रदाय का उदय हुआ। इनका एक व्यापक प्रशिक्षित दल है जिसकी गतिविधियाँ गुप्त एवं रहस्यमय हैं। इनके शत्रु हैं मुसलमान जिनके अत्याचारों एवं शोषण से हिंदू पीड़ित हैं। संतान संप्रदाय का अँग्रेज़ों से कोई विरोध नहीं। अँग्रेज़ों के संपर्क से हिंदुओं का बहिर्ज्ञान बढ़ेगा, नवीन वातावरण मिलेगा, वे सुधरेंगे और जागेंगे। संतान संप्रदाय की शक्ति का स्रोत है सत्यानंद। जीवानंद और भवानंद की मानसिक उथल-पुथल प्रभावशाली है। संतान संप्रदाय के बाहर के तीन पात्र हैं—महेंद्र, कल्याणी, शांति। तीनों का चित्रांकन बहुत सजीव और स्वाभाविक हुआ है।

इस उपन्यास की उपलब्धि है भक्ति और मुक्ति। भक्ति सनातन धर्म के प्रति और मुक्ति है जातीय उत्थान के लिए स्वराज्य। इसकी राष्ट्रीय भावना 'बन्दे मातरम्' के गीत से मुखरित हुई जिसे बाद में राष्ट्रीय गान बनने का उपयुक्त गौरव प्राप्त हुआ।

आनंद, यादव *(म० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

पूना के श्री आनंद व्यवसाय से अध्यापक हैं। एम० ए० करने के बाद आजकल ये पी-एच० डी० की उपाधि के लिए शोध-कार्य कर रहे हैं। इनके उपन्यासों का विषय ग्रामीण जीवन है। यांत्रिक खेती के आगमन से ग्रामीण जीवन पर, वहाँ के रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति पर पड़ने वाले कुप्रभाव का चित्रण इनके उपन्यासों का विषय है। 'गोतावळा' उपन्यास में ट्रैक्टर के आगमन से गाँव में बेकारी के फैलने की समस्या का चित्रण है। उपन्यासों के अतिरिक्त रेखाचित्र, कहानियाँ तथा बाल-साहित्य भी इन्होंने लिखा है। बँगला ने इनकी कहानियों का अनुवाद कर इनका सम्मान किया है।

आनंदवर्धन *(सं० ले०)* [समय—लगभग 855-880 ई०]

काश्मीर-नरेश 'अवन्ति वर्मा' के सभासद आचार्य आनंदवर्धन कवि और आलोचक दोनों रूप में अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

स्वयं आनंदवर्धन के उल्लेख के अनुसार इनकी चार कृतियाँ थीं—'अर्जुन चरित', 'विषमबाणलीला' तथा 'देवीशतक' नामक तीन काव्य एवं 'ध्वन्यालोक' (दे०) नामक ग्रंथ जो साहित्यशास्त्र पर अद्भुत कृति है तथा केवल यही उपलब्ध भी है।

'ध्वन्यालोक' संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में एक ऐसी क्रांतिकारी रचना है जिसने आनंदवर्धन को अमर कर दिया। इसमें ध्वनि-सिद्धांत (दे० ध्वनि) का प्रतिपादन किया गया है। आनंदवर्धन ही ध्वनिसिद्धांत के उद्भावक हैं। इनकी स्थापना है कि काव्य की आत्मा उसकी व्यंजनीयता में है, न कि गुण या अलंकार में। रस ही काव्य का अंगी तत्त्व है जिसकी निष्पत्ति व्यंजना से होती है। जिस काव्य में व्यंग्य अर्थ की प्रधानता होती है अर्थात् वाच्य की अपेक्षा वह चारुतर होता है, उसे ध्वनि कहते हैं। व्यंग्य के तीन प्रकार होते हैं—वस्तु, अलंकार तथा रस। इनमें रस ही मुख्य है। व्यंजना शब्द एवं अर्थ की एक शक्ति है।

यद्यपि आनंदवर्धन ने ध्वनि को ही शब्द की आत्मा कहा है पर काव्य के आधायक तत्त्वों में रस को सर्वोपरि माना है जो मात्र व्यंग्य ही होता है। गुण रस के धर्म हैं जो रस में ही पाये जाते हैं तथा अलंकार काव्य के शरीरभूत तत्त्व शब्द और अर्थ में रहकर भी रस की ही शोभा बढ़ाते हैं। उन्हें अलंकार इसीलिए कहते हैं कि वे दूसरों की शोभा बढ़ाने का काम करते हैं। इनके द्वारा जो अलंकार्य है वही काव्य का सर्वस्व है और वह रस ध्वनि ही है। काव्य-दोषों का संबंध अंशतः रस से ही होता है। पद, पदांश, वाक्य या अर्थ दोष अंग के द्वारा अंगीरस का ही अपकर्ष करते हुए दोष कहे जाते हैं। इनसे जहाँ रस का अपकर्ष नहीं होता वे दोष नहीं माने जाते। आचार्य की मान्यता है कि औचित्य का ठीक-ठीक निर्वाह ही रस-निष्पत्ति का रहस्य है। जहाँ वह नहीं हो पाता है उसे अनौचित्य कहते हैं और वहाँ रस भंग होता है। इसीलिए अनौचित्य ही मुख्य दोष है, शेष गौण।

व्यंजना काव्य की एक अद्भुत शक्ति है जो शब्द की अभिधा एवं लक्षणा नामक वृत्तियों से सर्वथा भिन्न है। यह व्यंजनावृत्ति ही ध्वनि सिद्धांत का प्राण है। इसकी उद्भावना व्याकरण के स्फोट के सिद्धांत से हुई है जिसका श्रेय आचार्य आनंदवर्धन को ही है। आनंदवर्धन का ध्वनि-सिद्धांत संस्कृत-साहित्य-शास्त्र में मूर्धन्य माना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार काव्य के सभी तत्त्वों की व्याख्या सुचारु रूप से हो जाती है। आचार्य की मान्यता है कि सहृदय-हृदयाह्लादरूप आनंद ही काव्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम प्रयोजन है तथा कवि की जन्मजात प्रतिभा ही काव्य का मुख्य हेतु है।

आनंदवर्धन के ध्वनिसिद्धांत के विरोधी भी हुए हैं जिनमें भट्टनायक (दे०) एवं महिमभट्ट (दे०) दो मुख्य हैं तथा दोनों ही रसवादी हैं।

आनंदवृंदावन चंपू *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवीं शताब्दी ई०]।

इस चंपू की रचना कविकर्णपूर ने की है। यह कृष्णकथा को लेकर लिखा गया अत्यंत मनोहारी काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण, राधा, चंद्रावली, ललिता, एवं श्यामा प्रमुख पात्र हैं। इसका प्रधान रस श्रृंगार है तथा इसमें विभिन्न रास-नृत्यों का सजीव वर्णन किया गया है। गद्य-भाग में यमकालंकार का बाहुल्य कृत्रिम-सा प्रतीत होता है।

आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव *(गु० ले०)* [जन्म—1869 ई०, मृत्यु—1942 ई०]।

आनंदशंकर ध्रुव का जन्म अहमदाबाद में सन् 1869 में हुआ था। उन्होंने एम० ए० एल-एल० बी० तक विधिवत् अध्ययन बंबई विश्वविद्यालय में किया। तदुपरांत मिथिला के पंडितों से भारतीय षड्दर्शनों से संबद्ध संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया। गुजरात कॉलेज, अहमदाबाद के संस्कृत प्राध्यापक कोथवटे के नौकरी से निवृत्त होने पर ये उनके स्थान पर नियुक्त हुए। इसके बाद सन् 1920 में महामना मालवीय जी की माँग पर गांधी जी ने इन्हें काशी हिंदू विश्वविद्यालय में समकुलपति के पद पर कार्य करने के लिए भेजा था। सन् 1928 में ये गुजराती साहित्य परिषद् तथा चौथी फ़िलॉसोफ़ीकल कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। ध्रुवजी इण्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड के अध्यक्ष भी रहे थे। मणिलाल नभुभाई (दे०) की मृत्यु के बाद इन्होंने कुछ समय तक 'सुदर्शन' पत्र का संचालन किया।

आनंदशंकर ध्रुव स्वभाव से संस्कृत-प्रेमी, स्वदेशवत्सल, धर्मचिंतक तथा सौम्य, सरल और स्वस्थ व तटस्थ रहकर वस्तुओं के व्याख्यान करने की क्षमता से संपन्न व्यक्ति थे। 'वसंत' पत्र में प्रकाशित, साहित्य, शिक्षा व समाज-संबंधी प्रश्नों पर शाश्वत मूल्यों से युक्त इनके समीक्षात्मक लेखों के संग्रह इस प्रकार हैं—काव्यतत्त्व-विचार' (दे०), 'साहित्य-विचार', 'दिग्दर्शन', विचार-माधुरी'। इनके द्वारा रचित 'नीतिशिक्षण', 'धर्मवर्णन' तथा 'हिंदू धर्मनी बालपोथी' आदि ग्रंथ सभी धर्मों व प्राचीन हिंदू धर्म से संवद्ध आकर ग्रंथ हैं। गुजरात की धर्म-संबंधी चिंता-धारा में इनका योग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इनमें वस्तुओं के पुनराख्यान करने की क्षमता इतनी विलक्षण थी कि ये विविध धारणाओं में भी विरोध का परिहार कर उनमें निहित समानताओं की ओर संकेत करते हुए समन्वय स्थापित करने में समर्थ हो जाते थे। इनकी साहित्य-चिंता एकांगी नहीं थी; पूर्व और पश्चिम की समादृत धारणाओं का उसमें समन्वय था। इन्होंने काव्य-नाटकादि साहित्यांगों को विशाल भूमिका पर रख कर परखा है। इनकी आलोचनाएँ इतिहास और तत्त्वज्ञान-रूपी कूलों को स्पर्श कर प्रवाहित होने वाली धाराओं के समान हैं। जटिल और उलझे हुए तथ्यों में से सत्य को ढूँढ़ लाने की इनमें प्रवृत्ति लक्षित होती है। गुजरात की धर्म-चिंता और साहित्य-तत्त्व-विवेचना के क्षेत्र में इनका स्थान अद्वितीय है।

आनंद, स्वामी *(गु० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

इन्होंने संन्यास ले लिया था, इसीलिए इनके नाम से पहले स्वामी शब्द जोड़ा गया है। गांधी जी 1915 ई० में भारत आये और तभी से स्वामी आनंद गांधी जी के साथ रहे हैं। उनके साप्ताहिक 'नवजीवन' के संपादक भी वे बहुत समय तक रहे। उन्होंने गांधी जी की मृत्यु के बाद हिमालय में अल्मोड़ा के पास कौसानी में पहाड़ी प्रदेश के लोगों की सेवा की और पिछले आठ वर्षों से उन्होंने दक्षिण गुजरात में आदिम जातियों के लिए आश्रम स्थापित किया हुआ है। उनकी चौदह पुस्तकें अब तक प्रकाशित हुई हैं। इनमें से 'कूलगाथाओ' (दे०) को 1969 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और 'गुजराती साहित्य परिषद्' का श्रेष्ठ कृति का पुरस्कार भी मिला था, लेकिन संन्यासी होने के नाते उन्होंने पुरस्कार अस्वीकृत कर दिये। उनकी पुस्तकों में प्रवास-वर्णन है, विचारात्मक निबंध हैं, स्वानुभाव के रोचक प्रसंग हैं, और बड़े परिवार के बलिदान तथा मानवता की घटनाएँ हैं; और अतीत के गौरव के विस्तृत प्रसंग नये ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। उन्होंने शिष्ट साहित्य में लोकबोली का प्रयोग किया है।

आपणो धर्म *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1916 ई०]

'आपणो धर्म' नामक ग्रंथ आचार्य आनंदशंकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापूभाई ध्रुव (दे०) के धर्म और तत्त्वज्ञान को लेकर लिखे गए सभी लेखों का संग्रह है। आर० आर० शेठ कम्पनी, बम्बई द्वारा प्रकाशित इस संग्रह में विद्वान् लेखक के सिद्धांत-निरूपण संबंधी चौबीस निबंध हैं, 'सिद्धांत-निरूपण : वार्तिको' शीर्षक के अंतर्गत चौदह अन्य निबंध संकलित हैं। इनके अलावा 17 निबंध 'शास्त्र-चर्चा', 13 निबंध 'ग्रंथावलोकन', 19 निबंध 'प्रासंगिक चर्चा अने नोंध' तथा 11 'व्याख्यानो' नामक शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत हैं। उक्त सभी निबंधों के विषय में लेखक ने प्रथम आवृत्ति की प्रस्तावना में ठीक ही कहा है कि यह पुस्तक अपने धर्म का प्रकरणबद्ध ग्रंथ नहीं है और न अपने इस धर्म को ही लेकर व्यवस्थित रूप से लिखे गए निबंधों की माला है। समय-समय पर 'वसंत' तथा 'सुदर्शन' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों को इस संग्रह में यथासंभव व्यवस्था देने का प्रयत्न किया गया है। आनंदशंकर स्वभावतः स्वदेश-प्रेमी, संस्कृत-प्रेमी और धर्म-चिंतक थे—अतः इस ग्रंथ में समाविष्ट लेखों के द्वारा उन्होंने स्वधर्म की महिमा पुनः स्थापित करने की चेष्टा की है। भारतीय दर्शन तथा धर्मादि पर समय-समय पर जो गंभीर आरोप लगाए गए उनका निराकरण करते हुए उन्होंने धर्म की विशाल व्याख्या देकर उसे जीवन की सभी प्रवृत्तियों के केंद्र में स्थित किया है। प्रस्तुत निबंधों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक में वस्तु को विशाल फलक पर रखकर उसका सूक्ष्मता से पोस्टमार्टम करने और समभाव से न्याययुक्त बात कह डालने की अद्भुत शक्ति और तटस्थता वर्तमान थी। समस्त दार्शनिक चिंता लेखक की केवलाद्वैत संबंधी श्रद्धा को ही व्यक्त करती है; सभी दार्शनिक चर्चा का निगमन-स्थान अद्वैत है। 866 पृष्ठ की इस पुस्तक में सभी स्थानों पर विषय-निरूपण स्पष्ट और प्रमाणपुष्ट है।

आपटे, नारायण हरि *(म० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

इनका उपन्यास-साहित्य जितना विपुल है उतना ही वैविध्यपूर्ण। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, रम्याद्भुत और कल्पनारम्य उपन्यास लिखे हैं। ये पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर उपन्यास लिखते थे, अतः कुछ प्रौढ़ाओं के लिए हैं तो कुछ युवतियों के लिए और कुछ विद्यार्थियों के लिए। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों का विषय है—मराठी एवं राजपूत काल का शौर्य एवं पराक्रम, परंतु इनमें इतिहास बहुत कम, कल्पना और मनोरंजन तत्त्व अधिक है। इनमें जीवंत भावना के स्थान पर बाह्य अलंकरण अधिक है, ऐतिहासिक ज्ञान कला से एकात्म नहीं हो पाया है। कथानक-शिल्प एवं पात्र-रचना की दृष्टि से ये सभी उपन्यास एक जैसे हैं। सभी में अनैतिहासिक एवं अद्भुत तत्त्व, कल्पना और उत्कट श्रृंगार है; इनके नायक तरुण, शूरवीर, नायिकाएँ सौंदर्यवती, कोमल पर वीर, सेवक स्वामिनिष्ठ और कर्मठ तथा खलनायक दुर्गुणों के भंडार हैं। सामाजिक उपन्यासों के कथानक एवं पात्र-रचना में भी यही यांत्रिकता है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में रँगे पात्रों को अंत में राष्ट्रीय भावना तथा भारतीय संस्कृति का भक्त दिखाकर लेखक ने भारतीयता के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है, दूसरी ओर नायिकाओं को विद्रोह का झंडा खड़े करते दिखाकर क्रांतिकारी विचारों के साथ सहानुभूति व्यक्त की है। उपदेश देने की वृत्ति उनकी सभी कृतियों में है जिससे कला को आघात पहुँचा है। इन्होंने कहानियाँ तथा समीक्षात्मक ग्रंथ भी लिखे हैं।

प्रमुख ग्रंथ अजिंक्यतारा, लांछित चंद्रमा, संधिकाल, दुरंगा दुनिया, अर्वाचीन रामराज्य, सुखाचा मूलमंत्र, अमर संग्राम, पांच ते पांच, न पटणारी गोष्ट आदि उपन्यास; 'विदग्ध वाङ्मय', 'मराठी वाङ्मयाचा अभ्यास' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ।

आपटे, हरिनारायण *(म० ले०)* [1864—1919 ई०]

पूना निवासी, 'उपन्यास-सम्राट्' उपाधि से विभूषित हरिनारायण आपटे मराठी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार हैं। बचपन से ही माँ की मृत्यु हो जाने के कारण ये दादी की स्नेह-छाया में पले। 1880 ई० में इन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में प्रवेश लिया और बाद में डैकन-कॉलेज में अध्ययन किया। बचपन में ही इनका विवाह हो गया था। छात्रावस्था में उन पर विष्णु शास्त्री चिपळूणकर (दे०) का और बड़े होने पर 'कानिटकर दंपति' का प्रभाव पड़ा। इनका अध्ययन व्यापक था। मिल-स्पेंसर के स्त्री-स्वातंत्र्य-संबंधी विचारों का भी इन पर प्रभाव पड़ा। सामाजिक विचारों में ये सुधारवादी गो० ग० आगरकर (दे०) से और राजनीतिक विचारों में लोकमान्य टिळक (दे०) से प्रभावित थे। इनके मुख्य ग्रंथ हैं : सामाजिक उपन्यास—'गणपतराव', 'भयंकर दिव्य' (दे० प्रो० डंडी), 'विधवा-कुमारी' (दे०) 'पण लक्षांत कोण' 'घेतो' (दे०) (कौन ध्यान देता है ?), 'मी' (दे० ताई, भावानंद)। ऐतिहासिक उपन्यास—'उषःकाल' (दे०), 'गड आला पण सिंह गेला (दे० उदयभान, जगतसिंह; कमलकुमारी) (गढ़ मिला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सिंह मारा गया), 'सूर्योदय', 'रूपनगर ची राजकन्या' 'चन्द्रगुप्त', 'वज्राघात'। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों का लक्ष्य था पाठकों में स्वराज्य की प्राप्ति और संरक्षण की चेतना जगाना, अतः इन्होंने इतिहास की उतनी ही सहायता ली जो इनके इस ध्येय की पूर्ति कर सके। इतिहास के अतिरिक्त दंतकथाओं, लोककथाओं, स्वामी रामदास (दे०) के ग्रंथों आदि का भी इन्होंने उपयोग किया। केवल इतिहास के महान् व्यक्तियों का ही चित्रण इनके उपन्यासों में नहीं है, साधारण जन के सुख-दुःख, सौंदर्य एवं कुटिलता का भी चित्रण है। इनके उपन्यासों में भी रम्याद्भुत तत्त्व हैं पर वह केवल सुखवादी और रोमांचकारी न होकर जीवन की कठिनाइयों से टक्कर लेकर दुःख को सुख में बदलने के प्रयत्नों से उत्पन्न अद्भुत रस है। वातावरण-निर्मिति के लिए आपटे ने युग से तादात्म्य ही स्थापित नहीं किया, युगानुरूप एवं पात्रानुरूप विचारधारा एवं भाषा का भी प्रयोग किया है।

इन्होंने अपने सामाजिक-राजनीतिक उपन्यासों में युगीन समस्याओं—विवाह से संबंधित दहेज आदि समस्याओं, विधवा की दयनीय स्थिति, स्त्री-परतंत्रता, अशिक्षा, सामाजिक अनाचार, ढोंग, राजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता आदि का चित्रण तो किया ही है, साथ ही उनसे मुक्त होने की प्रेरणा भी दी है। इसीलिए कहा गया है कि इन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा आगरकर और लोकमान्य टिळक के कार्य में सहायता दी।

आब-ए-हयात *(उर्दू० ले०)* [रचना-काल—1878 ई०]

'आब-ए-हयात' मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (दे०) की रचना है। उसमें उर्दू शायरों की परिस्थितियों की विस्तार से चर्चा की गई है। विशेष तौर पर कवियों की नोंक-झोंक, व्यक्तिगत-रोष, स्वभाव और चरित्र-संबंधी चुटकुले बड़े अन्वेषण के बाद जुटाकर लिखे गए हैं जिनके स्रोत पूर्ववर्ती ग्रंथ और व्यक्ति दोनों हैं।

आज़ाद का गद्य सरल-सुबोध एवं सशक्त है। गद्य में पद्य की-सी मनोहारिता है। इस ग्रंथ का गद्य सजीव, मुहावरेदार, काव्यात्मक पदावली और नूतन कल्पना से पुष्ट है। आज़ाद की अपनी विशिष्ट शैली है जो उर्दू में बेजोड़ है। शब्द-औचित्य, हास्य, सहज आलंकारिकता एवं प्रभावशालिता उनके गद्य की विशेषताएँ हैं। उनके गद्य में प्राचीन एवं नवीन दोनों रंगों का सामंजस्य पाया जाता है। कहीं-कहीं अँग्रेज़ी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

'आब-ए-हयात' मौलाना की सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसने उन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया है। इसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि-सम्मेलन एवं साहित्यिक-गोष्ठियाँ हमारी आँखों के सामने हो रही हैं और कविगण आ-जा, उठ-बैठ और हँस बोल रहे हैं, कविता-पाठ कर रहे हैं। दाद दे रहे हैं।

'आब-ए-हयात' के रचयिता पर एक आरोप यह लगाया गया है कि कवियों के वृत्तांत लिखने में उसने पक्षपात से काम लिया है और ज़ौक (दे०) का वृत्तांत सबसे अधिक विस्तार से लिखा है किंतु इस प्रकार की रचनाओं में थोड़ी बहुत व्यक्तिपरकता क्षम्य होती है।

आबरू *(उर्दू० ले०)*

नाम—शाह नज्मुद्दीन उर्फ़ शाह मुबारक; उपनाम—'आबरू'; जन्म-स्थान—ग्वालियर। ये शेख़ मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी के वंशज थे। इनका बचपन दिल्ली में बीता था। ये उच्चकोटि के उर्दू कवि थे। सिराजुद्दीन अली ख़ान 'आरज़ू' का सान्निध्य इन्हें प्राप्त हुआ था और अपनी काव्य-साधना में उन्हीं से ये पथ-प्रदर्शन प्राप्त करते रहे थे। इनका एक काव्य-संग्रह दिल्ली में विनष्ट हो गया था। 'आराइश-ए-माशूक' नामक मसनवी इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है। इनके काव्य में शब्दालंकारों तथा उपमाओं की उत्कृष्टता दर्शनीय है। मुहावरेदार, सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली भाषा का प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है।

आबिद सुरती *(गु० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

श्री आबिद सुरती स्वातंत्र्योत्तर काल के क्रांतिकारी लेखक तथा सशक्त व्यंग्यकार हैं। वे यशस्वी व्यंग्यचित्रकार भी हैं। उनके दस उपन्यास प्रसिद्ध हैं। उनके उपन्यासों में यौन-संबंध को महत्त्व दिया गया है। सुरती ने अपने उपन्यासों में समाज की सड़ी-गली मान्यताओं तथा आधुनिक स्वच्छंद समाज की विकृतियों पर गहरे वार किये हैं। उन्होंने दिखाया है कि एक ओर तो हमारा समाज पश्चिम की अंधाधुंध नकल करने में लगा हुआ है, दूसरी ओर हमारे संस्कारों ने हमें कहीं गहरे में आज भी जकड़ रखा है—इस द्वंद्व के फलस्वरूप हम कहीं के भी नहीं रह गये हैं। 'दीकरा के दीपड़ा'; 'महापुरुष कापुरुष' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनकी कुछ कृतियाँ हिंदी में भी अनूदित हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आबिद हुसैन *(उर्दू० ले०)*

डा० सैयद आबिद हुसैन जामिया मिलिया इस्लामिया में प्रोफ़ेसर थे और अब सेवा-निवृत्त हो चुके हैं। वह एक प्रख्यात नाटककार हैं। उन्होंने गांधी जी की पुस्तकों के 'लाशेहक़' और 'तारीख़-ए-फ़लसफ़ा-इस्लाम' के नाम से अनुवाद किए हैं जिससे उन्हें प्रसिद्धि और ख्याति मिली है। 'पर्दा-ए-गफ़लत' (दे०) इनका प्रसिद्ध नाटक है। इसमें मुसलमान परिवारों की अर्थ-व्यवस्था एवं रहन-सहन का वास्तविक चित्रण हुआ है। रस्मो-रिवाज के कारण निर्धन लोगों पर जो विपत्तियाँ आती हैं उन्हें चित्रित करने में उन्होंने कमाल कर दिया है। डा० आबिद हुसैन ने जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक 'गेटे' के 'फ़ाऊस्ट' का अनुवाद भी बड़ी कुशलता से किया है। उर्दू के क्षेत्र में वे एक सफल शैलीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

आबोल-ताबोल *(बँ० प्र०)*

आधुनिक युग में शिशु साहित्य के अंतर्गत एक नए ढंग की काव्य-रचना का क्रम शुरू हुआ है जिसे 'आबोल-ताबोल' कहा जाता है। बच्चों के मनोविनोद के लिए, बँगला 'छड़ा' (दे०) के अनुरूप आबोल-ताबोल की रचना की जाती है। भेद केवल इतना है कि छड़ा में तर्कबुद्धि का योग रहता है और आबोल-ताबोल तर्कसंगत नहीं होता। इसमें असंबद्ध भाव एवं बुद्धिहीनता के आधार पर कविता रची जाती है जो गेय न होकर अंत्यानुप्रास-युक्त होती है और एक विशेष लहजे में इसकी आवृत्ति की जाती है जिसे सुनकर हास्यानुभूति उत्पन्न होती है।

'आबोल-ताबोल' का अर्थ दुर्बोध तुकबंदी नहीं है। जिन कविताओं का कोई अर्थ ही न हो (दुर्बोध गीत में अर्थ तो होता है) उन्हें ही आबोल-ताबोल कहा जाता है। इसीलिए आबोल-ताबोल की रचना काफ़ी कठिन है क्योंकि हास्य और अद्भुत के मणिकांचन योग से इसकी रचना होती है और साथ ही उसे अर्थहीन होना पड़ता है। उसकी कविता में प्राकृतिक जगत् एवं यथार्थ जीवन का विरोध होता है। वहाँ सब कुछ अर्थहीन है। यदि अर्थ है भी तो मानो एक विशेष परिहास के लिए उसे कविता में संबद्ध किया गया है। एक अर्थहीन जगत के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता जिसे पढ़ते हुए बच्चे खुश होते हैं और प्रौढ़ यह सोचते हैं कि सचमुच क्या हम इतने ही मूर्ख हैं। बँगला में सुकुमार राय (दे०) आबोल-ताबोल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं जिनके गीतों में फूल 'ठासठास द्रम द्राम' जैसे पटाके की आवाज करते हुए खिलते हैं और उनकी खुशबू तीर की तरह शनशन करती हुई भागती चलती है।

आब्दुल मालिक *(अ० ले०)* [जन्म—1909 ई०; जन्म-स्थान—देवगाँव नाहरणि]

इन्होंने गौहाटी विश्वविद्यालय से 1951 ई० में असमीया में एम० ए० किया था। कई संस्थाओं में इन्होंने अध्यापन किया था। ये आकाशवाणी में प्रोग्राम असिस्टेंट भी रहे। श्री मलिक ने 1945-46 में 'पायगाम' का संपादन किया था। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** बेदुइन (1948)। **कहानी-संग्रह :** परशमणि (1946), ए जनी नतून छोवाली (1952), रड़ा गड़ा (1953), मरहा पापरि (1954)। **उपन्यास :** रथर चकरि घुरे (1958), बन जुइ (1958), छबिघर (1959), जीयाजुरिर घाट (1960), सूरजमुखीर स्वप्न (दे०) (1960), कंठहार (1961), अन्य आकाश अन्य तारा (1962), रूपतीर्थर यात्री (1963)। **नाटक :** राजद्रोही (1958)।

इनकी कविताओं में जनता का स्वर मिलता है। कहानियों में शब्दचयन आकर्षक है, यौनक्षुधा से लेकर शोषित समाज की अनेक समस्याओं तक पर इन्होंने लिखा है। उपन्यासों में रोमांसवाद और सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। शिल्प की दृष्टि से इनके नाटक सफल नहीं हैं। कथाकार के रूप में ही इनकी ख्याति अधिक है। 'अघरी आत्मार काहिली' पुस्तक साहित्य अकादमी द्वारा (1973) पुरस्कृत हुई थी।

आभिजात्यवाद *(हि : पारि०)*

आभिजात्यवाद पाश्चात्य साहित्य में बहुचर्चित शब्द 'क्लासिसिज़्म' का हिंदी रूपांतर है। यह वस्तुतः साहित्य के संदर्भ में एक ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और दार्शनिक अवधारणा है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन यूनानी-रोमी साहित्य के आदर्श पर स्थायी कलात्मक मूल्यों, उदात्त विचारों, उच्च जीवनादर्शों और विशिष्ट प्रकार के भव्य संस्कारों से युक्त साहित्य की रचना जिन कालों में हुई वे सभी आभिजात्यवादी युग कहे जाने चाहिए, जैसे होमर, प्लेटो, अरस्तू का प्राचीनतम यूनानी साहित्य-युग तथा ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पू० 320 से लेकर 330 ई० तक के हेलेनिस्टिक लेखकों का वर्ग जिसने होमर और अरस्तू आदि के आदर्श पर साहित्य-रचना की। प्राचीन यूनानी साहित्य से प्रेरित ऑगस्टन युग के रोमी साहित्य को भी आभिजात्यवादी युग ही कहा जायेगा। इसके पश्चात् इटली, फ़्रांस और इँग्लैंड के पुनर्जागरण-युग और नव्यशास्त्रवादी (दे०) युग भी प्रकृत्या आभिजात्यवादी युग ही थे। इटली में इसका समारंभ पंद्रहवीं शताब्दी के अंत और सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में यूनानी विद्वानों के आगमन के साथ हुआ। अरस्तू के अमर ग्रंथ 'पेरि पोइतिकेस' की स्केलिजर और कास्तेलवेत्रों द्वारा की गई व्याख्याओं के प्रकाशन के प्रभावस्वरूप फ़्रांस में सत्रहवीं शताब्दी में आभिजात्यवाद ने साहित्य और कला (दे०) दोनों क्षेत्रों में अपनी जड़ें जमा लीं। इसके प्रबलतम प्रवक्ता बुअलो ने 1674 ई० में प्रकाशित अपनी कृति 'आर्त पोएतीक' में यूनानी साहित्य-सिद्धांतों की बहुत सशक्त और प्रांजल व्याख्या की। फ़्रांसीसी आभिजात्यवाद का प्रभाव अँग्रेज़ी साहित्य पर भी पड़ा। ड्राइडन और लॉक ने अँग्रेज़ी आभिजात्यवाद की भूमि का निर्माण किया। इसके पश्चात् एडीसन, डा० जॉन्सन और पोप ने इसके उत्थान में सक्रिय योग दिया। लगभग इसी समय जर्मन साहित्य में भी आभिजात्यवाद का आविर्भाव हुआ जिसका पल्लवन प्राचीन यूनानी साहित्य-मूल्यों से किंचित् भिन्न और स्वतंत्र अपने ही देशकाल के अनुरूप साहित्य के चिरंतन मूल्यों से आधार पर हुआ। लेसिंग, हर्डर, वॉस, वुल्फ़ आदि के प्रयत्नों से अभिनव जर्मन आभिजात्यवाद का जन्म हुआ। होल्डरलीन जर्मन आभिजात्यवाद के समर्थतम कवि हैं।

सैद्धांतिक रूप में आभिजात्यवाद प्राचीन यूनानी-रोमी साहित्य-मूल्यों और जीवनादर्शों को आदर्श मानता है। इसके अनुसार साहित्य में विचार, संवेदना और शिल्प आदि के सभी धरातलों पर औदात्य और भव्यता के साथ उच्चतम एवं चिरंतन मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा होना आवश्यक है। इन गुणों से संपन्न साहित्य की रचना इतिहास के युगों से निरपेक्ष रूप में की जा सकती है क्योंकि आभिजात्यवाद के अनुसार आभिजात्य का अर्थ ही साहित्य का कालजयी होना है।

दार्शनिक दृष्टि से आभिजात्यवाद चिंतन और जीवनानुभव के उच्चतम स्तरों का स्पर्श करने का प्रयत्न करता है। 'उच्चता', 'भव्यता' और 'औदात्य' आदि की दार्शनिक भूमियों पर ऐकांतिक बल दिए जाने के कारण ही संभवतः पाश्चात्य साहित्य के स्वच्छंदतावादी युग में इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई और स्वच्छंदतावादियों ने आभिजात्यवाद को 'प्रतिक्रियावादी', 'प्रगति-विरोधी', 'अनुकरणमूलक' और 'सामंतवादी' आदि कहकर उसकी भर्त्सना की।

आमच्चा आयुष्यांतील कांही आठवणी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1910 ई०]

देशसेवक तथा समाजसुधारक न्यायमूर्ति म० गो० रानडे की सहधर्मिणी रमाबाई रानडे ने 'आमच्चा आयुष्यांतील काही आठवणी' नामक आत्मचरित्र की रचना की थी। इसमें रानडे तथा लेखिका के जीवन की वैयक्तिक तथा पारिवारिक घटनाओं की स्मृतियों का प्रत्यांकन हैं। इसके पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके है।

रानडे भारत के राष्ट्रोन्नति-आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्ता थे। कुशाग्र बुद्धि, विद्वत्ता तथा अटूट देशभक्ति-भाव के कारण इनकी गणना देश की ही नहीं वरन् विश्व की महान् विभूतियों में की जाती है। लेखिका ने जीवन के सत्ताईस वर्ष इस महान् विभूति के साथ बिताए थे। इस आत्मचरित्र-लेखन में पूज्यबुद्धि तथा विभूति-पूजा का भाव है, परंतु लेखिका की दृष्टि सर्वत्र तटस्थ एवं संतुलित रही है।

रमाबाई रानडे ने अपने पति के स्वभाव का हूबहू वर्णन किया है—पति की स्वभाव-संबंधी न्यूनताओं का मार्मिक उद्घाटन भी इसमें किया गया है। इस आत्मचरित्र को पढ़कर रानडे का चरित्र जितना स्पष्ट होता है उतना रमाबाई रानडे का भी।

इस कृति की भाषा सीधी-सादी, प्रवहमान, परंतु अत्यंत हृदयहारी है। इसमें सर्वत्र आत्मीयतापूर्ण शैली का निर्वाह हुआ है। पत्नी की ओर से पति के चरित्र का वर्णन प्रस्तुत करने वाला यह पहला मराठी ग्रंथ है।

आमुक्तमालयदा *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1520-25 ई० के लगभग]

इसके लेखक विजयनगर राज्य के शासक कृष्णदेवरायलु (दे०) (शासन-काल—1509-1530 ई०) हैं। ये संस्कृत तथा तेलुगु के बड़े विद्वान् तथा कवि थे। इनके द्वारा लिखे गये अनेक संस्कृत काव्यों का उल्लेख पाया जाता है। किंतु इनके द्वारा विरचित ग्रंथों में 'आमुक्तमालयदा' ही अब उपलब्ध होता है। इसका दूसरा नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विष्णुचित्तीयमु' है। यह पाँच आश्वासों का तेलुगु प्रबंध (काव्य) है। इसका कथानक इस प्रकार है : श्रीविल्लि-पुत्तूरु में विष्णुचित्तुडु नामक एक अर्चक था। वह अत्यंत निष्ठा के साथ भगवान् विष्णु की सेवा करता था। एक समय पांड्य देश के राजा ने अपने दरबार में उपस्थित विद्वानों से मोक्ष-प्राप्ति का उपाय पूछा। वटपत्रशायी ने अपने अर्चक विष्णुचित्तुडु को राजसभा में जाने तथा विष्णु-भक्ति की विशिष्टता स्थापित करने को प्रोत्साहित किया। विष्णु की महिमा से विष्णुचित्तुडु ने राज्यसभा में अन्य विद्वानों को परास्त कर विष्णुभक्ति की सर्वोच्चता स्थापित कर दी। राजा भी विष्णुभक्त बन गया।

विष्णुचित्तुडु की पुत्री गोदादेवी (दे०) भगवान् विष्णु को ही पति मानकर उनके विरह में संतप्त हो जाती थी। वटपत्रशायी की आराधना के लिए उसका पिता जो माला गूँथकर रखता था उसे वह पहले ही पहन कर रख देती थी। वही माला बाद में भगवान् को अर्पित की जाती थी। इसी से गोदादेवी आमुक्तमालयदा कही गई है और काव्य भी उसी नाम से अंकित किया गया। अपनी कन्या की स्थिति से चिंतित विष्णुचित्तुडु को भगवान् की महिमा से यह मालूम हुआ कि गोदादेवी भूदेवी का अवतार है तथा वह विष्णु को अपना पति बनाने के लिए विह्वल है। भगवान् के आदेशानुसार वह अपनी कन्या को श्रीरंगस्थित रंगनाथ स्वामी के पास ले गया। अंत में गोदादेवी तथा श्री रंगेश का विवाह संपन्न हो गया। इस काव्य में जगह-जगह पर प्रसंग के अनुसार विष्णुभक्ति की महिमा तथा भक्तों की कथा भी वर्णित की गई। 'खांडिक्य केशिध्वजोपाख्यानमु,' 'यामुनाचार्य-चरित्र' तथा 'मालदासरि-कथा' आदि इसी प्रकार के प्रसंग हैं। इनकी रचना पांडित्यपूर्ण है पर वर्णन सहज और सुंदर तथा चरित्र-चित्रण मार्मिक हैं। संस्कृत पंच-काव्यों की तरह तेलुगु में प्रसिद्ध पाँच काव्यों में 'आमुक्त-मालयदा' भी एक है। इसकी रचना के द्वारा ही राजकवि कृष्णदेवरायलु कविराज की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके।

आमेरिका अनुभूति (*उ० कृ०*)

यह श्री गोळख बिहारी धळ (दे०) द्वारा विर-चित भ्रमण-कहानी है जो उड़िया में लिखित भ्रमण कहा-नियों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। श्री धळ की गद्य-रचना-शैली एकांत रूप से निजी है तथा पाठक को संपूर्ण रूप से अभिभूत कर लेने की उसमें शक्ति है। श्री धळ के अमरीका प्रवास के समय कौतूहल जाग्रत करनेवाली उनकी अनुभूतियों को रूप देने वाली यह पुस्तक अत्यंत सुख-पाठ्य है।

आयन शिर्पी (*त० पा०*)

आयन शिर्पी कृष्णमूर्ति 'कल्कि' (दे०) के सर्व-श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवकामियिन शपदम' (दे०) के प्रसिद्ध पात्रों में से है। इतिहास की पृष्ठभूमि में कुछ ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों की सहायता से लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। इस उपन्यास की मूल घटना है शिवकामी द्वारा वादापी के नाश की प्रतिज्ञा। आयन शिर्पी नायिका शिवकामी का पिता है। उपन्यास के काल्पनिक पात्रों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक मूर्तिकार और कला-प्रेमी है। इसके कला-प्रेम को देखकर पाठक विस्मय-विमुग्ध रह जाता है। अजंता की गुफाओं में प्राप्त चित्रों का विवरण सुनकर उनके मन में उन्हें देखने की तीव्र इच्छा जाग्रत होती है। जब वह पिछले नौ वर्षों से वादापी के किले में कैद हुई अपनी कन्या को लेकर लौटता है उस समय इसके मन में कन्या को सुरक्षित घर पहुँचाने की नहीं अपितु अजंता की गुफ़ाओं के चित्र को देखने की इच्छा बलवती हो उठती है। परंतु इसका कला-प्रेम अनुचित नहीं प्रतीत होता। लेखक ने कारणवश ही इसे कला के पीछे पागल प्रदर्शित किया है। इसके कलाप्रेम के कारण ही उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ घटित होती हैं। इसी कारण इस उपन्यास का खलनायक अपने उद्देश्यों में सफल होता है। वह इसकी पुत्री शिवकामी को पा लेता है। कथा में आने वाले नाना मोड़ों का कारण इसका कला-प्रेम ही है। इसी कारण खलनायक नाहनंदी (दे०) अपने षड्यंत्रों में सफल होता है। आयन शिर्पी लेखक की कल्पना-सृष्टि है। इसका नाटक के विकास में विशिष्ट योगदान है।

आयरे, ला० कृ० (*म० ले०*)

ज़मींदारों के चंगुल में फँसे अपढ़ ग्रामीणों की व्यथा-कथा को ला० कृ० आयरे ने अपने नाटकों में उरेहा है। 'मायेचा संसार', 'फिर्याद', 'जुलूम', 'मंगलदिव्य', 'वडील माणसे', 'बुद्धिभेद', 'लाखमाणूस' आदि इनकी महत्त्वपूर्ण नाट्यकृतियाँ हैं। ज़मींदारों के अमानुषीय अत्या-चारों की व्यथा-कथा 'जुलूम' में तथा भूमि के बँटवारे के लिए मुकदमेबाज़ी में बरबाद हुए कौटुम्बिक व्यक्तियों के ज़मींदार के चंगुल में फँसने का उल्लेख 'फिर्याद' में हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कथा के विन्यस्त प्रारूप की अपेक्षा कथ्य-केंद्रित दृष्टि के कारण इनके नाटकों में चारित्रिक विकास प्रायः उपेक्षित ही रह गया है, परंतु परवर्ती रचनाएँ इस आक्षेप से किसी सीमा तक मुक्त अवश्य रही हैं। शेक्सपीयरी पद्धति पर आधारित इनके नाटकों में श्रमिक-वर्ग की समस्याओं का चित्रण हुआ है, इसी से जन-साधारण में वे अत्यधिक लोकप्रिय भी हुए हैं।

आयेषा (बँ० पा०)

बंकिमचंद्र (दे०) के प्रथम उपन्यास दुर्गेशनंदिनी (दे०) के दो मुख्य नारी-चरित्र हैं—तिलोत्तमा एवं आयेषा। आयेषा की विद्युद्दीप्ति का अविस्मरणीय समुन्नत प्रकाश पाठकचित्त को विस्मयविमूढ़ कर देता है। आयेषा की धीर महिमा एवं सुगंभीर आत्मसंयम पाठक की श्रद्धा एवं प्रीतिबोध को नवतर महिमा में सुप्रतिष्ठित करता है। तिलोत्तमा की शांत यौवनश्री के विपरीत आयेषा का चरित्र बिजली के समान है परंतु वह अंतर को जलाती नहीं, अंतर को नये आवेग एवं प्रणय के द्वारा एक नया शिल्प-रूप प्रदान कर समुन्नत महिमा में प्रतिष्ठित करती है। दुर्गेशनंदिनी की आयेषा इसीलिए बँगला उपन्यास के क्षेत्र में काफ़ी समय तक अपना प्रभाव बनाये रखने में समर्थ हुई थी। बंकिमचंद्र ने अपनी कवि-भावना की प्रेरणा से मुसलमानी आयेषा एवं हिंदू जगतसिंह के बीच प्रेम का निरूपण किया था; इसीलिए आयेषा अनन्य साधारण कवि-प्रतिभा के रूप में सार्थकता प्राप्त कर सकी है।

आरज़ू लखनवी, सैयद अनवर हुसैन (उर्दू० ले०) [जन्म—1872 ई०, मृत्यु—1951 ई०]

लखनऊ में इनका जन्म हुआ; पाँच वर्ष की आयु से शिक्षा प्रारंभ हुई और फ़ारसी तथा अरबी पढ़ी। बारह वर्ष की आयु से शेर कहने लगे। इन्होंने कविता के साथ गद्य में भी नाम कमाया और 'मतवाली जोगन', 'दिलजली बैरागन' आदि नाटकों की रचना की। आर्थिक कठिनाइयों के कारण कलकत्ता और बंबई के थियटरों के लिए नाटक भी लिखे। 'निज़ाम-ए-उर्दू' नामक पुस्तिका उर्दू व्याकरण पर लिखी। ग़ज़ल, कसीदा, मसनवी और रूबाई के अतिरिक्त सलाम और मर्सिए भी बहुत लिखे किंतु विशेष ख्याति इनकी ग़ज़ल के कारण ही हुई। इनके काव्य में विषाद और निराशा की भावना बड़ी प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त हुई है। सुंदर छंद, कोमल और मधुर शब्दावली, आकर्षक तरकीबों के साथ सोज़-गुदाज़ का तत्त्व इनके शेर को बहुत प्रभावशाली बना देता है। भाषा सुथरी और मधुर है—हिंदी शब्दों के प्रयोग से कविता में और भी आकर्षण पैदा हो जाता है। 'ज़ौक़' की तरह इन्हें कहावतों और मुहावरों के प्रयोग का भी शौक़ है। इन्होंने अरबी, फ़ारसी से बचते हुए केवल उर्दू के मुहावरों का प्रयोग बड़ी सफलता से किया है। इनका उद्देश्य उर्दू ग़ज़ल को सरल बनाना तथा हिंदी-उर्दू की दूरी को कम करना था।

ये भाषाविज्ञान के अधिकारी विद्वान् और लखनऊ की भाषा के विशेषज्ञ माने जाते थे। इनके चार कविता-संग्रह 'फ़ुगान-ए-आरज़ू', 'ज़हान-ए-आरज़ू', 'बयान-ए-आरज़ू,' और 'सुरीली बाँसुरी' (दे०) प्रकाशित हो चुके हैं।

आरण्यक (उ० कृ०)

मनोज दास (दे०) के कहानी-संग्रह 'आरण्यक' की विभिन्न कहानियों में मनुष्य के अंतरंग को विभिन्न कोणों से देख लेने व समझ लेने का प्रयास मिलता है। 'आरण्यक' इस पुस्तक की पहली कहानी है। लेखक ने इसमें अंतरिक्ष-युग के गर्वोन्नत मानव के स्खलन-क्षयी रूप का पर्दा फ़ाश किया है। बाहर से सभ्य दीखने वाला यह मनुष्य अंदर से कितना जंगली, कितना खूँख्वार है यह देखकर स्तब्ध रह जाना पड़ता है। पहले जंगलीपन आवश्यकता से प्रेरित था, किंतु आज···वह चित्तविनोद है। 'जह्लरातिर गल्प' में एक ऐसे कलाकार का चित्रण है जो चंद्रज्योत्स्ना से प्रभावित अपने दुर्बोध्य अंतर की अबूझ अनुभूति को अभिव्यक्ति न दे पाने के कारण उसी विक्षिप्ति एवं अकुलाहट में खो जाता है। 'रार्यासहर डायरी' में पुरुष का अहंकार व उसकी हिंस्र ईर्ष्या वर्णित है जो पर-पीड़न में क्रूर आनंद का अनुभव करती है। 'संगोपन कहानी' में मानव की सुप्त एवं गोपनीय इच्छाएँ चित्रित हैं। समय बीत जाने के बाद व्यक्ति उन्हें पुनः पा लेना चाहता है। अतीत में जी लेने को वह अकुला उठता है। किंतु सामाजिक परिवेश इसकी छूट नहीं देता। शरत बाबू वृद्ध हो जाने पर लुक-छिपकर अपने अतीत को जी लेना चाहते हैं, किंतु अंततोगत्वा असफल होते हैं। 'उपग्रह' में वैज्ञानिक सफलताओं द्वारा परंपरागत रागात्मक आस्थावादी सरल जीवन-मूल्यों पर हुए आघात का चित्रण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरण्यक (बँ० कृ०) [रचना-काल—1938 ई०]

'आरण्यक' उपन्यास की परिकल्पना एकदम नूतन है। प्रकृति की सूक्ष्म कवित्वपूर्ण अनुभूति को यहाँ परिपूर्णता मिली है। अरण्य-प्रकृति की विचित्र रहस्यात्मक पटभूमिका में बिभूतिभूषण बंद्योपाध्याय (दे०) ने मानव-चरित्रों की प्रतीक-व्याख्या की है। सारल्य, प्रकृति-मुग्धता, विश्वबोध एवं जीवन-रहस्य-बोध इस उपन्यास का उपजीव्य है। प्रकृति के साथ मानव-मन के इस प्रकार के अंतरंग संपर्क की कहानी बँगला के और किसी उपन्यास में नहीं है।

'आरण्यक' के नायक की अरण्य के प्रति असीम श्रद्धा है—अरण्य उसे मुग्ध करता है, इस मुग्धता-बोध में उसे परिपूर्णता मिली है। विस्तीर्ण वनांचल में बस्ती बसाने का दायित्व लेकर लेखक अरण्यांचल में आ उपस्थित हुआ है और तभी लेखक 'अपूर्व सुंदरी वन्यनायिका' से प्रेम करने लगा है। अरण्य के अपरिसीम रहस्य के बीच लेखक ने नाना प्रकार के मनुष्यों को देखने और समझने का प्रयत्न किया है। ये सब मनुष्य जीविका-संलग्न नहीं, अरण्य जीवन-संलग्न हैं। अरण्य की प्रकृति एवं वैचित्र्य की छाया आरण्यक के इन नाना चरित्रों पर फैली हुई है। बस्ती बसाने के काम में लेखक ने नाना प्रकार से विलम्ब किया है जिससे प्रकृति का स्वप्नकुंज नष्ट होने से बच सके परंतु वे अरण्य की मृत्यु को रोक नहीं पाए। मनुष्य की अर्थ-तृष्णा के विरुद्ध प्रकृति का निष्क्रिय प्रतिरोध विजयी नहीं हो सकता, यह जान कर एक दिन अरण्य को छोड़कर वह चला आता है।

उपन्यास में प्रारंभ से लेकर अंत तक अरण्य प्रकृति का विशाल रहस्य व्याप्त है। लेखक ने यहाँ जीवन के समस्त विक्षोभ एवं जटिलता से दूर आकर आश्रय लिया था और प्रकृति ने अपने रहस्य से विस्मयाभिभूत करते हुए लेखक को जीवन की नयी संज्ञा दी थी और इसी में उसने जीवन की समग्रता का अनुभव किया।

आरण्यक (*सं० कृ०*) [रचना-काल—लगभग 2000 ई० पू०]

आरण्यकों के अंतर्गत विभिन्न ऋषियों के ऐसे अनुभव वर्णित हुए हैं जिनमें याज्ञिक प्रक्रियाओं से संबद्ध आध्यात्मिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। आरण्यकों का अध्ययन अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थों के लिए निश्चित था इसीलिए इन्हें आरण्यक कहा जाता है। आरण्यकों ने उपनिषदों (दे० उपनिषद्) को पूर्ववर्ती वैदिक साहित्य से जोड़ने का महान् कार्य किया है। 'ऐतरेय,' 'बृहदारण्यक,' 'तैत्तिरीय आरण्यक' और 'तलवकार आरण्यक' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आरण्यकों का पक्ष दर्शन-प्रधान है। आरण्यकों में प्राण-विद्या का विवेचन भी उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त आरण्यकों में ब्रह्म-संबंधी विवेचन भी मिलता है। उदाहरणार्थ, तैत्तिरीय आरण्यक में ब्रह्म के तीन स्वरूप निर्दिष्ट हुए हैं: पृथ्वी आदि के रूप में स्थूल, मनस आदि के रूप में सूक्ष्म एवं प्रणव के रूप में शुद्ध भेद से ब्रह्म के तीन स्वरूप-भेद हैं। आरण्यकों के अनुसार ब्रह्म सत् एवं अज्ञानियों के लिए असत् है। प्रणवस्वरूप ब्रह्म में समस्त जगत का लय हो जाता है तथा उसी से पुनः जगत की उपलब्धि होती है।

यहाँ यह विशेष रूप से निर्देश करने योग्य है कि आरण्यकों में ब्रह्म शब्द का प्रयोग ब्राह्मणों की तरह देवता के अर्थ में नहीं हुआ है। आरण्यकों में प्रयुक्त ब्रह्म शब्द वेदांत-दर्शन में प्रयुक्त ब्रह्म शब्द के पर्याप्त समीप है। इस प्रकार आरण्यक-साहित्य ब्रह्म शब्द क्रमिक विकास की दिशा को पूर्णतया स्पष्ट करता हैं।

आरसी प्रसाद सिंह (*हिं० ले०*) [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्मस्थान ऐरोत, रोसड़ा, जिला दरभंगा (बिहार) है। ये कोशी कालिज, खड़गिया (मुंगेर) में प्राध्यापक और आकाशवाणी में हिंदी कार्यक्रम के आयोजक रहे हैं। इनकी रचनाएँ छायावादी (दे० छायावाद) ढंग की हैं जो 'कलापी' 'शतदल' आदि में संगृहीत हैं। प्रकृति का चित्रण करने या मार्मिक वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने में ये कुशल हैं। इनके गीतों की भाषा कोमल, मधुर और अलंकृत है। उत्तर-छायावादी गीतकारों में इनका विशेष स्थान है।

आरिफ़, किशन सिंह (*पं० ले०*) [जन्म—1836 ई०, मृत्यु—1900 ई०]

इनके पिता भाई नरैण सिंह अमृतसर में पुस्तक-विक्रेता थे। पिता की दुकान पर उपलब्ध विविध ग्रंथों के अध्ययन द्वारा कवि की विचार-शक्ति में प्रांजलता और कल्पना में औदार्य का समावेश हुआ। ये पंजाब के प्रसिद्ध अद्वैतवादी संत गुलाब दास (1809-1873) के शिष्य थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके प्रभावस्वरूप कवि की रचनाओं में भाव-पक्ष की अपेक्षा विचार-पक्ष प्रायः प्रबल हो गया है। इनकी लगभग 26 कृतियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें 'शीरीं फ़रहाद', 'पूरन भगत', 'राजा भरथरी', 'राजा रसालू', 'दुल्ला भट्टी', और 'हीर राँझा' आदि किस्सा-कृतियों के अतिरिक्त 'बारामांह', 'सतवार', 'पैंती अखरी', 'बिबेकाबाल', 'ज्ञान चरखा', 'जीव सियापा', 'क्शिन कटार' आदि धर्म, दर्शन और सदाचार-संबंधी अनेक रचनाएँ हैं। 'दुल्ला भट्टी' की वीररस-प्रधान कथा को सर्वप्रथम काव्यबद्ध कर इन्होंने बड़ी लोकप्रियता अर्जित की। इनकी रचना 'हीरा-राँझा' (1889 ई०) अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध रही है। किस्सा-काव्य के श्रृंगार प्रधान स्वरूप में नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा अद्वैतवादी विचारधारा का सन्निवेश कवि का विशिष्ट योगदान है।

आरुद्रा *(ते० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

ये तेलुगु 'अभ्युदयमु' (प्रगतिवादी) काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। समाज में व्याप्त विषमता एवं शोषण का अंत करके, सबको न्याय दिलाकर मानव की गरिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए आतुर रहने वाली सूक्ष्म एवं तीव्र सामाजिक चेतना इनकी सभी रचनाओं में प्रतिफलित हुई है। प्रायः इनके सभी विषय आधुनिक हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ 'त्वमेवाहम्' (दे०), 'गायालु-गेयालु', 'ग्रामायणमु' आदि है। 'त्वमेवाहम्' इनकी 'अभ्युदय' कविताओं की प्रतिनिधि रचना है। 'ग्रामायणमु' रामायण के पात्रों को एक सामान्य किसान-परिवार के पात्रों के समानांतर बनाकर उनके सामाजिक जीवन को चित्रित करने वाला उपन्यास है। इनकी रचनाओं में सदा एक चमत्कार एवं एक प्रकार की ताज़गी व्यक्त होती रहती है। अपने भावों को चुभने वाली रीति से ये अभिव्यक्त करते हैं। इनपर अँग्रेज़ी साहित्य का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। आजकल चलचित्रों के गीत-लेखक के रूप में भी इनको ख्याति मिली है।

आरुमुह नावलर *(त० ले०)* [जन्म—1823 ई०, मृत्यु—1879 ई०]

इनका जन्म लंका-स्थित नल्लूर में हुआ था। ये अपने समय के श्रेष्ठ वक्ता थे। इसी से तिरुवावडुदुरै मठ के अधिकारियों ने इन्हें नावलर (श्रेष्ठ वक्ता) की उपाधि प्रदान की थी। इन्होंने तिरुक्कुरळ, तोलकाप्पियम्, तिरुक्कोवैयार, पुरिय पुराणम्, कंदपुराणम्, चूडामणि निघण्टु, नन्नूल विरुत्ति उरै आदि प्राचीन कृतियों का संपादन करने के साथ-साथ उन पर टीकाएँ भी लिखी थीं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—बाल पाडम् (चार भाग), शैव विनाविडै, इलक्कण शुरुक्कम, इलंगै भूमि शास्त्रम्, चिदम्बर मान्मिय वचनम्, आदि। इन्होंने अनेक निबंधों की रचना की थी जो 'उदय तारकै' और 'इलंगै नेशन्' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इन्होंने कोयिल पुराणम्, शैव समयनेरि, वाक्कुण्डाम्, नलवळि, नन्नेरि आदि कृतियों पर भाष्य लिखे थे। इन्होंने रेवरेंड पेरसीवल के साथ मिलकर अँग्रेज़ी बाइबिल का तमिळ में अनुवाद किया था। यह बाइबिल का प्रथम प्रामाणिक तमिळ अनुवाद माना जाता है। ये कट्टर शैव थे। ईसाई धर्म को तेज़ी से फैलता देख इन्होंने शैव धर्म के प्रचार के लिए नाना कृतियों की रचना की थी। इन्होंने अँग्रेज़ी स्कूलों के 'मॉडल' पर जाफना, चिदम्बरम् आदि स्थानों पर स्कूल खोले थे। इन स्कूलों में बालकों का परिचय भारतीय सभ्यता और संस्कृति से कराया जाता था। ये जीवन भर अविवाहित रहे। इन्होंने अपना संपूर्ण जीवन तमिळ भाषा और शैव धर्म के प्रचार-प्रसार में लगा दिया था। प्राचीन साहित्यिक कृतियों के संपादन और प्रकाशन करने वालों में ये अग्रगण्य हैं। ये तमिळ गद्य के जनक कहे जाते हैं। ये पाठ्यक्रमोपयोगी कृतियों की रचना करने वाले प्रथम साहित्यकार हैं।

आरोग्य-निकेतन *(बँ० कृ०)*

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे०) का यह एक उत्कृष्ट उपन्यास है। इसमें जीवन की चरम परिणति मृत्यु के गहन रहस्य को प्रकट करने वाले जीवन महाशय की जीवनी अंकित की गई है। इस उपन्यास की नायिका है रहस्यमयी मृत्यु जिसको लेकर विविध एवं विचित्र प्रतिक्रियाएँ इस कथा का ताना-बाना बुनती हैं। इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में नायक के विगत जीवन के प्रभावशाली प्रसंगों को उठाया गया है। उपन्यास की मूल समस्या है प्राचीन-नवीन चिकित्सा-प्रणाली में अंतर। आयुर्वेद में कविराज परा-अपरा विद्या को एकात्मक भाव से ग्रहण करता है और उसकी सफलता आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि, ध्यानोपलब्धि, कल्याण-कामना आदि पर निर्भर करती है। एलोपैथी बहिर्मुखी एवं व्यावसायिक है। विज्ञान को अंतिम कसौटी एवं सत्य मानने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण यहाँ आंतरिक मूल्यों का महत्व नहीं है । इस तरह लेखक ने दूसरे स्तरों पर भी नयी-पुरानी पीढ़ी की भिन्न जीवन-दृष्टि का प्रश्न उठाया है । इस रचना का सप्राण एवं अद्वितीय पात्र है जीवन महाशय जिसके माध्यम से ताराशंकर अंततः आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं । नवीन समस्या तथा सजीव प्रस्तुति के कारण यह रचना लेखक की विशिष्ट उपलब्धि है ।

आर्या भारत *(म० कृ०)*

यह व्यास (दे० व्यास, बादरायण) 'महाभारत' (दे०) का आधार लेकर आर्यावृत्त में लिखित प्रबन्ध-काव्य है । कवि ने काव्य के आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया है कि उसका हेतु अति विशाल 'महाभारत' का सरस संक्षिप्तीकरण करना है । मूल 'महाभारत' में एक लाख श्लोक हैं तो इस काव्य में 17000 आर्यावृत्त हैं । इस काव्य को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि यह संस्कृत का मराठी में भाषांतरण मात्र नहीं है वरन् इसमें कवि मोरोपंत की निजी मौलिकता के विशेष क्षेत्र हैं—कथा-निरूपण की पद्धति, पात्रों के संवाद, तथा उनके चरित्र-चित्रण । वीर, रौद्र, भयानक, शृंगार, हास्य, शांत आदि रसों का प्रसंगानुरूप परिपुष्ट वर्णन किया गया है जिनमें भक्ति की अंतर्धारा सर्वत्र व्याप्त है । सामान्यतः इसमें मूल काव्य का कलात्मक संक्षिप्तीकरण ही है, कहीं-कहीं कलात्मक विस्तार भी किया गया है; इसलिए इसे मौलिक प्रबंधकाव्य मानने में भी कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए । भाषा और शैली दोनों पर कवि-व्यक्तित्व की गहरी छाप है । अलंकार-योजना सरस और सहज है । मोरोपंत की प्रतिभा, पांडित्य और अध्यवसाय का इस काव्य में अद्भुत समन्वय मिलता है ।

आर्यासप्तशती *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शताब्दी]

संस्कृत-गीति-काव्यधारा में गोवर्धनाचार्य द्वारा रचित 'आर्यासप्तशती' का विशिष्ट स्थान है । गोवर्धन बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (1116 ई०) के आश्रित कवि थे ।

इस रचना में शृंगार-विषयक सौ मुक्तक पद्य आर्याछंद में अकारादि-क्रम से दिए गए हैं । इसकी रचना की प्रेरणा आचार्य गोवर्धन को प्राकृत भाषा में लिखी सातवाहन हाल की 'गाथा सप्तशती' (दे०) से मिली थी । इसको इन्होंने कई भागों में बाँट रखा है, जिनका नाम इन्होंने 'ब्रज्या' रखा है ।

गोवर्धन आर्या की रचना में अत्यंत निष्णात हैं । इनके पूर्व किसी भी कवि ने इस छंद की इतनी सफल रचना नहीं की थी । इनमें शृंगार की नाना अवस्थाओं का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है । नागरिक बालाओं की शृंगारिक चेष्टाएँ जितनी रसमयी हैं उतनी ही ग्रामीण युवतियों की स्वाभाविक उक्तियाँ भी । कवि मानव-वृत्तियों का सच्चा पारखी है । निष्कर्ष यह कि आर्या जैसे छोटे छंद में भावों का विशाल भंडार भर कर इन्होंने संस्कृत-साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है ।

आलम *(हिं० ले०)*

ये मुग़ल बादशाह अकबर के समकालीन थे । भ्रमवश कुछ लोग दूसरे आलम का अस्तित्व औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़मशाह के समय में भी निर्धारित करते हैं । इनके द्वारा रचित तीन कृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं— 1. माधवानलकामकंदला (दे०), 2. श्यामसनेही, तथा 3. आलम के कवित्त या आलमकेलि । प्रथम ग्रंथ में सूफ़ी प्रभाव के साथ माधवानल और कामकंदला का पारस्परिक प्रेम, द्वितीय ग्रंथ में दोहा-चौपाई में रुक्मिणी-विवाह की कथा हैं तथा 'आलम केलि' रीतिशैली के स्फुट पद्यों का संग्रह है । ब्रज भाषा के मुसलमान कवियों एवं रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) प्रमी कवियों में आपका स्थान महत्वपूर्ण है । भिखारी दास (दे०) ने 'काव्यनिर्णय' (दे०) में आलम को रहीम, (दे०) रसखान (दे०) और रसलीन (दे०) से भी पूर्व गिनाया है ।

आलम प्रारंभ से ही एक विख्यात कवि रहे हैं कहते हैं कि 'गुरु-ग्रंथ साहब' (दे०) के अंतिम भाग में दी हुई 'रागमाला' इनके ग्रंथ 'माधवानल कामकंदला' का अंश है । आलम की ख्याति अधिकतर मुक्तकों के कारण मानी जाती है । कवि ने कवित्तों के माध्यम से 'आलमकेलि' में भावात्मक तीव्रता को सूफ़ीकाव्य (दे०) की प्रकृति के परिवेश में अतिशयता के साथ उभारा है । कवि के भीतर प्रेम-पिपासा के साथ-साथ उत्सर्ग-भावना और तन्मयता का जो स्वरूप पाया जाता है वह कवि की निजी विशेषता है । कवित्त (दे०) सवैया (दे०) की पद्धति में आलम का विशेष स्थान है, रीतिमुक्त कवियों में वे हमेशा सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते रहेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलमगीर *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1921 ई०]

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद (दे०) के ऐतिहासिक नाटकों में ही नहीं, समस्त नाट्य साहित्य में 'आलमगीर' उल्लेखनीय रचना है। कथा का केंद्रबिंदु है आलमगीर औरंगज़ेब। इसमें दो धाराएँ समानांतर चलती है—आलमगीर-उदिपुरी की तथा राजसिंह-भीमसिंह-जयसिंह की। दोनों का विकास अवश्य हुआ है परंतु परस्पर तारतम्य नहीं बन पाया। वास्तव में क्षीरोदप्रसाद का वस्तु-विन्यास तथा गठन-कौशल सफल नहीं रहा। इसीलिए ये असंभवप्राय कल्पना के द्वारा कथानक को सँभालते है। शील-निरूपण की दृष्टि से आलमगीर का अद्वितीय रेखांकन हुआ है। उसका मानसिक संघर्ष एवं उथल-पुथल सजीव है। वह स्वयं अपने अच्छे-बुरे कार्यों का आलोचक है। उदिपुरी का व्यक्तित्व अधिक सहज-स्वाभाविक होने के कारण सशक्त है। अधिकांश पात्र भाव-प्रवण हैं। इस नाटक को नई गरिमा प्रदान करने का श्रेय शिशिर कुमार भादुड़ी की असाधारण अभिनय-क्षमता को है। उनके अभिनय-कौशल ने तत्कालीन समाज को मुग्ध कर दिया था। इससे आलमगीर के दोष छिप गए तथा इसकी नाटकीय क्षमता एवं शक्ति को नई दिशा मिली।

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) से अनुप्रेरित होकर क्षीरोदप्रसाद ने आलमगीर का रेखांकन किया परंतु वह यथेष्ट प्रभावशाली नहीं बन पाया। राय का नाट्य कौशल यहाँ नहीं है परंतु अभिनय की दृष्टि से इसकी प्रसिद्धि क्षीरोदप्रसाद की सफलता की दृष्टि से ही नहीं, युग-ख्याति की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है।

आलाओल सैयद, (बँ० ले०) [जन्म—लगभग 1592;—निधन—1673 ई०]

सैयद आलाओल पूर्व बंगाल के चट्टग्राम (चटगाँव) के निकट स्थित आरकान राज्य की राजधानी रोसांग के राजा श्रीचंद्र सुधर्मा के राज-कवि थे। आलाओल मूलतः अनुवादक कवि हैं। अरबी, फ़ारसी तथा हिंदी काव्य-कहानियों को लेकर इन्होंने छह काव्य-ग्रंथों की रचना की। 'पद्मावती' (1646 ई० के आसपास रचित), 'लोरचंद्रानी उत्तरांश' (1659), 'सयफुलमुलुक—बदिउज्जमाल' (1658 से 70 के बीच), सप्त (दृप्त) पयकर (1660), तोह्फा (1663. 69), सेकेंदारनामा (167-)। 'पद्मावती', हिंदी के सूफ़ी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' काव्य का अनुवाद है। उनके बाकी चार काव्य-ग्रंथ मुसलमान पुराण या धर्मग्रंथ हैं।

आलाओल की कई भाषाओं में गति थी और हिंदू तथा सूफ़ी मतादि से काफ़ी घनिष्ठ परिचय था। 'पद्मावत' जैसे दुरूह काव्य-ग्रंथ का अनुवाद कर उन्होंने अपनी अभिनिवेश-क्षमता का प्रमाण दिया है। उनकी पुस्तकों से उनके संस्कृत-ज्ञान का भी परिचय मिलता है। 'पद्मावत' का अनुवाद कहीं अक्षरशः, कहीं भावानुगत, तो कहीं स्वाधीन है। आलाओल ने ग्रंथ के प्रारंभ में जायसी को प्रणाम करते हुए कहा भी है कि कहीं-कहीं मैं अपनी बात भी कहना चाहता हूँ। 'पद्मावती' में नाना स्थानों पर कवि ने जायसी के अनुरूप सूफ़ी प्रेम-साधना के बारे में गहरी तथा रसगर्भित उक्तियाँ की हैं। आलाओल ने अपने काव्य-ग्रंथ में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का कम-से-कम प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण-लीलाविषयक कतिपय पद-कविताओं की रचना कर बंगाली-प्रेम-स्वभाव का सार्वजनीन स्वरूप भी प्रकट किया है। उनकी रचनाओं में पांडित्य और शब्दाडंबर तो है, अवांतर कहानियाँ भी भरी पड़ी हैं किंतु उनमें प्रांजलता तथा स्वाभाविकता का अभाव है।

आलालेर घरेर दुलाल *(बँ० कृ०)* (रचना-काल—1858 ई०)

'आलालेर घरेर दुलाल' प्यारी चाँद मित्र (दे०) (छद्मनाम : टेकचांद ठाकुर) रचित बँगला साहित्य का प्रथम उपन्यास है। इससे पहले 1821 ई० में 'समाचार-दर्पण' में 'बाबु' प्रकाशित हुआ था अथवा प्रमथनाथ शर्मा के 'नबबाबु बिलास' (दे०) का उल्लेख किया जा सकता है परन्तु उन्हें उस समय के जीवन का चित्ररूप (नक़्शा) कहा जा सकता है—उपन्यास नहीं। इसी प्रसंग में हाल ही में प्रकाशित कैथारिन म्यूर्लेस रचित 'फूलमणि औ करुणारविवरण' (1852 ई०) का उल्लेख किया जा सकता है। परंतु इनमें से किसी को भी सार्थक उपन्यास की कोटि में नहीं रखा जा सकता। 'आलालेर घरेर दुलाल' में नाना प्रकार के दोषों के रहते हुए भी उपन्यास की दृष्टि से सार्थकता अधिक है।। प्यारी चांद मित्र का यही सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस ग्रंथ के एक चरित्र 'ठक चाचा' (दे०) के अनुरूप कोई अन्य चरित्र बँगला साहित्य में दुर्लभ है। इस ग्रंथ में समसामयिक समाज-जीवन का सार्थक प्रतिफलन हुआ है। साधुभाषा तथा कथ्यभाषा के परीक्षामूलक सम्मिश्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयास इस ग्रंथ का अन्यतम वैशिष्ट्य है।

आलूरू वेंकटराव *(क० ले०)* (समय —1880-1964 ई०)

'कर्णाटक कुलपुरोहित' नाम से विख्यात आलूरू वेंकटराव कर्णाटक के प्रातःस्मरणीय व्यवितयों में हैं। कर्णाटक की जनजागृति में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इनका जन्म 12 जुलाई, 1880 ई० को उत्तर कर्णाटक के बीजापुर में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा धारवाड़ में पाकर आपने पूना के फ़र्गुसन कालेज से बी० ए०, एल एल०बी० किया। वहीं आपका परिचय वीर सावरकर, सेनापति बापट आदि क्रांतिकारियों से तथा लोकमान्य टिळक से हुआ। आपने टिळक के 'गीता रहस्य' का कन्नड़ अनुवाद भी प्रस्तुत किया। टिळक के साथ आपकी मैत्री आजीवन रही। कर्णाटक के लिये आपने एक अलग होमरूल तथा कांग्रेस की स्थापना की। 1906 ई० में आपने कर्णाटक-जनजागृति के लिए 'वाग्भूषण' नामक एक मासिक पत्र निकाला। 1907 ई० में आपने 'श्री विद्याख्यर चरित्रे' नामक पुस्तक लिखी। 1917 ई० में आपने 'कर्णाटक गत-वैभव' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसने कर्णाटक के जनजागृति में अद्‌भुत काम किया। कर्णाटक काव्य-साहित्य, इतिहास, राजनीति, एवं संस्कृति का यह रत्नदर्पण है। इन्हीं के परिश्रम से 1915 ई० में वेंगलूर 'कर्णाटक साहित्य परिषद्' की स्थापना हुई। 1915 ई० में आपने 'भ्रमनिरसन नामक नाटक लिखा। 'कर्णाटक गत वैभव' ने आधुनिक गद्य-साहित्य का पथ प्रशस्त किया। उसकी शैली अत्यंत ओजो-मय है। 'कर्णाटक वीर रत्नगळु' में इन्होंने कर्णाटक की वीरपरंपरा का परिचय दिया है। 'गीता प्रकाश', 'गीता परिमल', 'गीत संदेश, 'गीता कुसुममंजरी' इनके मौलिक चिंतन के फल हैं। 1920 ई० में इन्होंने जय कर्णाटक' नामक पत्रिका शुरू की। कर्णाटक के सांस्कृतिक पुनरुत्थान में इनका योगदान अद्‌भुत है। फ़रवरी 25, 1964 ई० को आपका स्वर्गवास हुआ। वेंकटराव एक व्यक्ति नहीं, शक्ति थे। आपकी अर्धशताब्दी से भी अधिक की तपस्या ने कर्णाटक के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व जागृति पैदा की। ये कन्नड़ के श्रेष्ठ गद्यकारों में परिगणित हैं।

आले अहमद 'सरूर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

जन्म-स्थान : बदायूँ। इन्होंने—1932 ई० में सेंट जान्स कालेज से बी० एस-सी० और तदुपरांत अलीगढ़ से 1934 ई० में एम० ए० की परीक्षाएं उत्तीर्ण की थीं। दो वर्ष तक इन्होंने अलीगढ़ कालेज में अंग्रेज़ी प्राध्यापक के रूप में कार्य किया था परंतु उसके पश्चात् उर्दू विभाग में नियुक्ति प्राप्त कर ली थी। कुछ समय तक यहाँ कार्य करने के पश्चात् लखनऊ विश्वविद्यालय में रीडर होकर चले गए थे और 1955 ई० में प्रोफ़ेसर के रूप में फिर मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ में चले आये थे। इन्होंने विज्ञान और अँग्रेज़ी की जानकारी के फलस्वरूप उर्दू साहित्य को व्यापक और वैज्ञानिक रूप देने में अत्यंत स्तुत्य भूमिका निभाई है। कवि से अधिक आलोचक के रूप में इन्होंने विशिष्ट ख्याति प्राप्त की है। इनकी कृतियों में—'तकनीकी इशारे', 'तनकीद क्या है'? 'अदब और नज़रिया', तथा 'नये और पुराने चिराग़' उच्च कोटि की आलोचना का सुंदर उदाहरण हैं। इनकी तर्क-शैली बड़ी प्रभावशाली है। प्रतिपाद्य विषय का स्पष्टीकरण बड़ी कलात्मकता से ही नहीं, अपितु तथ्यों के आलोक में बड़ी निर्भीकता से भी करते हैं। धाराप्रवाह और प्रसाद-गुण-सम्पन्न शैली में अपने मंतव्य को स्पष्ट करने में ये पूर्णतः समर्थ हैं। इन्होंने अपने लेखों में कवित्वपूर्ण अभिव्यंजना और भावुकतापूर्ण वर्णन-शैली का न तो सहारा लिया है और न इसकी कहीं वकालत ही की है। इनके यहाँ कविता की पंक्तियों के उद्धरणों की अतिशयता नहीं मिलती परंतु उन पंक्तियों के संदर्भ, कृतियों के नाम, साहित्यिक व्यक्तियों की परिचर्चा, साहित्यिक आंदोलनों से संबद्ध संकेत आदि से इनकी आलोचना उत्कर्ष को प्राप्त करती हुई चलती है।

आल्हखंड *(हिं० कृ०)*

इस ग्रंथ के लेखक जगनिक हैं जोकि महोबे के राजा परमर्दिदेव के आश्रित कवि थे। इन्होंने परमाल के दो सामंतों आल्हा और ऊदल नामक बनाफर क्षत्रियों के वीर चरित्र का विस्तृत वर्णन एक वीरगीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था। ये गीत 'आल्हा' अथवा 'आल्हखण्ड' नाम से प्रसिद्ध हैं, और प्रायः उत्तर-भारतीय ग्रामों में गाये जाते है। परंतु इस समय जो आल्हा की प्रति मिलती है वह जगनिक की कृति न होकर उसी के आधार पर अथवा अनुकरण पर लिखी गयी रचना प्रतीत होती है। भाषा, भाव, शब्द आदि सभी बदले हुए हैं। असली प्रति का पता नहीं चलता। उपलब्ध प्रति का 'आल्हखंड' नाम इस तथ्य का सूचक प्रतीत होता है कि यह भाग किसी विशालकाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबंध-काव्य का एक खंड होगा। उपलब्ध आल्ह-खंड' को फ़र्रुखाबाद के डिप्टी कमिश्नर मि० चार्ल्स इलियट ने 1967 में लोक-गीतों से संगृहीत कर छपवाया था।

'आशा' दयाल *(सिं० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

इनका जन्म-स्थान खैरपुर मीरस (सिंध) है। इन्होंने विभाजन के पश्चात् उच्च शिक्षा महाराष्ट्र में प्राप्त की। ये उल्हासनगर में रहते हैं और वहाँ के चाँदीबाई कालेज में सिंधी विभाग के अध्यक्ष एवं प्राध्यापक हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—देशु पुकारे थो; पुष्प पंखुड्यूं (कविता-संग्रह), लालबहादुर शास्त्री (जीवनचरित)। इन्हें जिन रचनाओं पर पुरस्कार प्राप्त हुए हैं उनके नाम हैं—बापुअ जे बाग़ मां; लाल बहादुर शास्त्री; शाल अहिड़ा लाल जमीन; मुश्कदंड मुखिड्यूं। इन्होंने कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' का सिंधी में सुंदर अनुवाद भी किया है। कवि होने के साथ-साथ ये अच्छे गायक भी हैं और अपने रचित गीतों को मधुर स्वर में गाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर लेते हैं। सिंधी साहित्य में ये कवि, निबंधकार और बाल साहित्य-रचयिता के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं।

आशान्, अय्यिप्पिळ्ळ *(मल० ले०)* [जीवन-काल—पंद्रहवीं सदी ई०]

तमिल मिश्रित मलयाळम में लिखे गए दाक्षिणात्य गीतों (तेक्कन् पाट्टुकळ्) के अंतर्गत प्रसिद्ध कृति 'रामकथप्पाट्टु' (दे०) के रचयिता। इनका जन्म-स्थान त्रिवेंद्रम के पास आवाटु तुरा है। इनकी काव्य-भाषा दक्षिण-केरल की बोलचाल की भाषा का उदाहरण है।

आशान्, कुमारन् *(मल० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

ये मलयाळम की आधुनिक काव्यधारा के प्रवर्तक महाकवि हैं। कलकत्ता में संस्कृत पढ़ते हुए इन पर बंगाल के आध्यात्मिक और सामाजिक सुधारकों और बंकिमचंद्र (दे०), रवीन्द्र नाथ (दे०) आदि भारतीय एवं शैली, कीट्स, टेनीसन आदि पाश्चात्य साहित्यकारों का गहरा प्रभाव पड़ा। ये केरल के सामाजिक और आध्यात्मिक नेता श्रीनारायण गुरु के शिष्यत्व में अपनी अस्पृश्य जाति के समुत्थान के लिए सेवारत रहे। इनका निधन अल्पायु में ही दुर्घटनावश हुआ था।

आशान् के खंडकाव्य 'नळिनी', (दे०) 'चिंताविष्टयाय सीता' (दे०) 'लीला', 'प्ररोदनम्', 'दुरवस्था' (दे०) 'चंडाल भिक्षुकी' और 'करुणा' (दे०) हैं। इनकी अन्य कविताएँ, गीत, एवं स्तोत्र 'वीणापूवु', (दे०), 'वनमाला,' 'मणिमाला', पुष्पवाटी' इत्यादि में संगृहीत हैं। 'बालरामायणम्' बालोपयोगी काव्य है। 'बुद्धचरितम्' (लाइट आफ़ एशिया) और 'प्रबोधचंद्रोदयम्' अनूदित ग्रंथ हैं।

आशान् ने मलयाळम में स्वच्छंदतावादी आंदोलन प्रचलित करके कविता में नवयुग का उद्घाटन किया था। इनकी कविता मानवता के गरिमामय भावों को दार्शनिक पृष्ठभूमि में अभिव्यक्त करती है। ये स्नेहगायक के नाम से प्रसिद्ध हैं। जातिभेद से कलुषित सामाजिक व्यवस्था को इन्होंने अपनी कविताओं में चुनौती दी है और सामाजिक नियमों को बदल देने का आह्वान किया है। इन्होंने सीता जैसे पौराणिक कथापात्रों को नवीन मनोवैज्ञानिक परिवेश में प्रस्तुत किया है।

कौतूहलपूर्ण उक्ति-वैचित्र्य के अलावा और कुछ न मानने वाली प्रवृत्ति से मलयाळम-काव्य को बचाकर मानवीय भावनाओं को सर्वोच्च स्थान प्रदान करने वाली नई धारा के प्रवर्तक के रूप में आशान् का स्थान अद्वितीय है।

आशापूर्णा देवी *(बँ० ले०)*

स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में सही अर्थों में आधुनिक तथा अग्रणी लेखिका होने का गौरव आशापूर्णा देवी को प्राप्त है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इनका कथा-पटल पारिवारिक जीवन तथा केंद्रबिंदु नारी है। फिर भी, इनकी अंतर्दृष्टि कहीं अधिक सूक्ष्म, तथा साधारण सी दिखाई देने वाली पर प्रभाव में बड़ी एवं गहरी और घटनाओं एवं प्रसंगों के चुनाव तथा रेखांकन में सफल रही है। नर-नारी में समानता की माँग, कोमलता और भावुकता से मुक्ति, आत्मनिर्भरता तथा स्वच्छंदता की ललक, रोमांस के स्थान पर व्यावहारिक लाभ के परिप्रेक्ष्य में उभर रही विकृतियों और विसंगतियों की प्रस्तुति से आशापूर्णा देवी की रचनाएँ प्रभावशाली हो गई हैं। इन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं परन्तु 'आंशिक', 'छाड़ पत्र', 'उन्मोचन' श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। शिल्प की दृष्टि से भी लेखिका ने कई सफल प्रयोग किए हैं। वास्तव में नारी जीवन के बदलते परिवेश और जटिल जीवन की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति के कारण आशापूर्णा देवी का स्थान अग्रणी रहेगा। इनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ववर्ती लेखिकाएँ परंपरा-मोह से मुक्त नहीं हो सकीं।

आश्रव *(प्रा०पारि०)*

प्राकृतिक परमाणुओं का वस्तु-जगत् में पूंजी-भाव जैन दर्शन में 'आश्रव' कहलाता है। क्रोध, मान, माया लोभ-ये कषाय (चिपकाने वाले तत्त्व) हैं जिनसे आत्मा में प्राकृतिक तत्त्व चिपक कर प्रकृति में आत्मभाव उत्पन्न करते हैं। कर्म परमाणुओं को आकृष्ट करते हैं; कषाय संयोजित करते हैं और उनका आश्रव (पुंजीभाव) कार्य-रूप में वस्तु-जगत् की रचना करता है। यह दो प्रकार का होता है—भावबंध या आंतरिक बुरे विचार और द्रव्य-बंध या प्राकृतिक तत्त्वों का बाह्य संघात जो आत्मा को बंधन में डालते हैं।

आषाढ़ का एक दिन *(हिं० कृ०)*

यह मोहन राकेश (दे०) की अत्यधिक लोकप्रिय एवं रंगमंचीय दृष्टि से पूर्णतः सफल नाट्यकृति है जिसमें कालिदास के समग्र जीवन को रूपायित किया गया है। नाटक का प्रारंभ तथा अंत दोनों आषाढ़ मास के प्रथम दिन से जुड़े हुए हैं और इसीलिए इसका नाम 'आषाढ़ का एक दिन' रखा गया है। अतीत को वर्तमानयुगीन संदर्भों से जोड़कर तथा अंक-विभाजन की प्राचीन भारतीय नाट्य-पद्धति को अपनाते हुए भी संकलन-त्रय का समुचित निर्वाह करके नाटककार ने नाट्य-शिल्प के क्षेत्र में नूतन प्रयोग करते हुए अपनी नाट्य-प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है।

आसार-उस्सनादीद *(उर्दू०कृ०)* [प्रकाशन-काल 1847 ई०]

'आसार-उस्सनादीद' सर सैयद अहमद (दे०) की रचना है। इसमें देहली के भवनों का विशद वर्णन है। इसमें नगर के बाह्य-क्षेत्र के भवनों, लाल क़िले तथा उसके अंदर के भवनों, देहली शहर के भवनों—हवेलियों, मस्जिदों, मंदिरों, बाज़ारों, बावलियों, कुओं आदि तथा उनके नक़्शे, चित्र, कुतबे, देहली के प्राचीन दुर्गों एवं प्रासादों के वर्णन के अतिरिक्त देहली की विभूतियों—शेखों उलेमाओं, फ़क़ीरों, कवियों, चित्रकारों और संगीतज्ञों का उल्लेख है।

'आसार-उस्सनादीद' सर सैयद की एक अद्भुत कृति है और उर्दू में यह अपनी तरह की पहली रचना है। लेखक ने इसे बड़े परिश्रम और साधना से लिखा है। अधिकतर भवनों के परिमाप प्राप्त करना, अभिलेखों के चरबे उतारना, टूटी-फूटी इमारतों के नक़्शे खिंचवाना और इस प्रकार सवा सौ से अधिक भवनों के विषय में अनुसंधान करना निश्चय ही कठिन काम था। प्रथम संस्करण की भाषा-शैली कुछ कठिन, तुकांतमयी और दुरूह हो गई थी जिसे द्वितीय संस्करण में सरल और सुबोध बना दिया गया था।

यह कृति ऐतिहासिक तथा पुरातत्व-ज्ञान के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्यिक दृष्टि से भी इसका अपना महत्व है।

आसिय जोति *(त०कृ०)* [प्रकाशन—1941 ई०]

यह तमिल के प्रसिद्ध कवि देशिक विनायकम् पिळ्ळै द्वारा विरचित खंड काव्य है। यह अँग्रेज़ी में 'एडविन आर्नल्ड'-विरचित 'लाइट ऑफ़ एशिया' की अनुकृति है। इसका प्रथम प्रकाशन 1941 ई० में हुआ था। इसमें भगवान बुद्ध के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन है। बुद्ध-अवतार, करुणा का अधिकार, प्रेम-उदय की कहानी, सिद्धार्थ का सुना हुआ देव-गीत, सिद्धार्थ का त्याग, बुद्ध तथा दरिद्र बालक, करुणा का समुद्र, बुद्ध तथा सुजाता, बुद्ध तथा पुत्र की खोई माँ—इन शीर्षकों के अंतर्गत विविध छंदों में रचित गीत हैं। चलती, सरल तथा लयात्मक भाषा में करुण प्रसंगों का मार्मिक चित्रण इस काव्य की विशेषता है। कवि की अनेक रचनाओं में यह मूर्धन्य कृति है तथा अनेक अन्य कवियों तथा विद्वानों के द्वारा प्रशंसित है।

'आसी', अब्दुल सत्तार *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1882-85 ई०; मृत्यु—1951ई०]

श्रीनगर के एक गुज्जर परिवार में इनका जन्म हुआ। उन्होंने केवल कुछ धार्मिक शिक्षा और प्रारंभिक कक्षाओं की शिक्षा ही पाई थी। शैशव से ही ये मेधावी थे और परिस्थितियों के प्रति इनका क्रांतिपूर्ण दृष्टिकोण था। प्रारंभ में इन्होंने फ़ारसी ग़ज़लों की रचना की। 'विधवा' गीत की रचना करके इन्होंने विशेष प्रसिद्धि पाई। इनकी 47 प्रमुख रचनायें हैं। यह 'बज़्मे कश्मीर' के अध्यक्ष-पद पर भी रहे। श्रीनगर (कश्मीर) में सन् 1947 के तुरंत बाद बने 'नेशनल कलचरल फ्रंट' (राष्ट्रीय सांस्कृतिक मोर्चा) के मंच से जनकवि के रूप में इन्हें प्रसिद्धि मिली। 'कश्मीर छोड़ो' आंदोलन में 'सियासी क़ैदी' कविता की रचना पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंदी भी बनाये गये। पेशे से ये हम्माल थे और मज़दूरों, हम्मालों, कुलियों, पत्थर ढोने वाले मज़दूरों, हाजियों आदि का, यों कहना चाहिए कि सर्वहारा वर्ग का, प्रतिनिधित्व करते रहे। ईश्वर में इनका अडिग विश्वास और मनुष्य में अटूट श्रद्धा थी। इनकी रचनाओं में सुंदर पदों एवं ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग हुआ है। इनकी कविता में दार्शनिक की-सी पैनी दृष्टि मिलती है।

आहंग *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

लेखक : (असरार-उल-हक़) 'मजाज़' लखनवी (दे०)। आज़ाद किताबघर, कलां महल, देहली द्वारा प्रकाशित यह काव्य-कृति शृंगार रस और वीर रस की श्रेष्ठ कविताओं का संकलन है। इन कविताओं के रचयिता 'मजाज़' लखनवी अपने युग के अत्यंत लोकप्रिय कवि थे। उनकी इस कृति में 'शमशीर' की झनझनाहट, 'साज़' की संगीतात्मकता और 'जाम' की मादकता का सुंदर समन्वय हुआ है। यही कारण है कि उनके काव्य में कहीं भी क्लांति और श्रांति की अनुभूति नहीं होती। प्रत्येक स्थल पर मादकता ही मादकता है, आशावादिता ही आशावादिता है। श्रेष्ठ प्रगतिवादी कवि होने के नाते 'मजाज़' की बहुत-सी कविताएँ क्रांतिकारी भावनाओं से ओतप्रोत हैं। परंतु फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' (दे०) के अनुसार उनकी क्रांतिकारिता अन्य क्रांतिकारी कवियों से सर्वथा भिन्न है। वे सामान्य क्रांतिकारी क्रांति के लिए गर्जते हैं, ललकारते हैं, छाती कूटते हैं, परंतु क्रांति के लिए गा नहीं सकते। वे केवल क्रांति की भयानकता को देखते हैं, उसके सौंदर्य को नहीं पहचानते। 'मजाज़' इस प्रकार के कवियों से सर्वथा भिन्न क्रांति में सौंदर्य ही नहीं देखते, बल्कि क्रांति के सौंदर्य की अभिव्यक्ति में भी पूर्णतः समर्थ हैं। वे क्रांति के ढिंढोरची नहीं, क्रांति के अमर गायक हैं। भाषा, भाव, कल्पना और शैली—हर दृष्टि से यह कृति उर्दू साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

इंदर सभा *(उर्दू० कृ०)*

लेखक : 'अमानत' (दे०)। यह उर्दू भाषा का पहला नाटक है जो 1853 ई० में लिखा गया था। लखनऊ में उन्नीसवीं शती में हिंदू-मुसलमानों के मेलजोल के फलस्वरूप जो मिश्रित सभ्यता उभरी थी, यह नाटक उसी का प्रतीक है। इसमें इंद्र को इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है मानो वह कोई ईरानी या मुग़ल सम्राट हो, ईरान के देव राक्षसों का रूप धारण करते हैं और अप्सराएँ परियाँ बन जाती हैं और मुसलमान महिलाओं के वस्त्र पहनकर मंच पर आती हैं। इसमें ग़ज़लों के साथ-साथ गीत और ठुमरियाँ भी हैं। नाटक का नायक गुलफ़ाम अपने आहार-व्यवहार और बातचीत में अवध का कोई राजकुमार जान पड़ता है। इसकी भाषा सरल, गीत मधुर और कथा रोचक हैं। संगीत और नृत्य पर आधारित यह काव्य-रचना विशेष ऐतिहासिक महत्त्व की है।

मदारीलाला (दे०) ने भी 'इंदर सभा' के नाम से एक रचना की है। मदारीलाल लखनऊ से दस कोस दूर कस्बा मोहान का रहने वाला एक ऐसा लेखक था जिसका साहित्यिक जगत में कुछ विशेष नाम न था। इस 'इंदर सभा' का रचनाकाल ज्ञात नहीं। इस कृति के दो संस्करण क्रमशः 1862 ई० में आगरा से और 1863 ई० में लखनऊ से प्रकाशित हुए।

मदारीलाल की इंदर-सभा के संवाद बहुत लंबे तथा पात्र अत्यंत वाचाल हैं। एक-एक बात को दोहों, छंदों, शेरों, ग़ज़लों और मुसद्दसों में कहते ही चले जाते हैं। यह बात गंभीर पाठक को खटकती है। मदारीलाल की 'इंदर-सभा' लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के सामने भी खेली गई थी। अमानत की 'इंदर-सभा' की तुलना में इसका कोई महत्व नहीं। इस कृति का असल नाम 'माहे मुनीर मारुफ़ व इंदर-सभा' है अर्थात् असल नाम 'माहे मुनीर' है किंतु लोग इसे 'इंदर-सभा' कहते हैं। अनपढ़ जनसाधारण के लिए यह कृति विशेष रुचिकर है। सैयद मसऊद हसन रिज़वी लिखते हैं—'मदारीलाल की इंदर-सभा इब्तदा में (प्रारंभ में) चंद बार एक मुस्तकिल किताब की हैसियत से तनहा (अलग) छापी गई लेकिन बाद को वह अमानत की इंदर-सभा के साथ हाशिए पर छपती रही।'

इंदिरा *(म०कृ०)*

'इंदिरा' काव्य की रचना श्री कान्होबा रणछोड़-दास कीर्तिकर ने सन् 1884 ई० में की थी। यह कृति अँग्रेज़ी कवि टेनिसन की 'प्रिंसेस' रचना पर आधारित है।

मूल कथा संक्षेप में इस प्रकार है—राजकुमारी तथा उसकी शिक्षिका पुरुष-द्वेषी थी। एक राजकुमार राज-कुमारी से प्रेम करता था, परंतु प्रत्युत्तर में उसे अवहेलना ही मिली थी। राजकुमार ने मित्रों के सहयोग से राजकुमारी के राज्य पर आक्रमण किया। राजकुमारी के राज्य में पुरुष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश में जाने का अर्थ था प्राणों से हाथ धोना। अतः राजकुमार अपने साथियों के साथ स्त्री-वेश में गया और अपने अभियान में सफल हुआ।

कीर्तिकर ने भारतीय समाज को दृष्टि-पथ में रख उक्त कथा में यत्र-तत्र परिवर्तन किए हैं। 'इंदिरा' काव्य में महिलाओं के समानाधिकार का समर्थन और पुरुष-जाति की अहम्मन्यता की विगर्हणा कर दलित, पीड़ित, अत्याचारों को सहने वाले नारी-वर्ग की शोचनीय अवस्था का करुण चित्र अंकित किया गया है।

गेय छंदों में रचित होने के कारण यह कृति विशेष प्रसिद्ध हुई है। इसका महत्त्व एक अन्य कारण से भी है और वह यह कि इसके द्वारा मराठी काव्य में समाज-सुधार-विषयक काव्य लिखने की परंपरा का शुभारंभ हुआ है।

इंदिरा, एम० के० *(क०ले०)* [जन्म—1917 ई०]

सुश्री एम० के० इंदिरा कन्नड़ के उपन्यास-क्षेत्र के प्रतिभावान हस्ताक्षरों में से हैं, यद्यपि उन्होंने साहित्य क्षेत्र में विलंब से पदार्पण किया। आपका जन्म 1917 ई० में मलेनाडु की सुरम्य भूमि तीर्थहळ्ळी में हुआ। तीर्थहळ्ळी के प्राकृतिक सौंदर्य ने अपनी अमिट छाप आपकी कृतियों पर छोड़ी है। आपके पिता कृष्णराव एक संपन्न तथा सुसंस्कृत घराने के थे। कन्नड़ के प्रसिद्ध शिशुसाहित्य-लेखक 'होयसळ' आपके बंधुओं में एक थे जिनसे आपको लिखने की प्रेरणा मिली। हाई स्कूली शिक्षा के पश्चात् आप गृहिणी बनकर गृहस्थी में जुट गयीं किंतु स्वाध्याय से आपने हिंदी आदि भाषाएँ सीखीं, प्रेमचंद आदि लेखकों से प्रभावित हुईं। आपके अब तक बीस उपन्यास छप चुके हैं जिनमें प्रमुख हैं—'गेज्जेपूजे', 'सदानंद', 'नागवीणा'। 'गेज्जेपूजे' में वेश्या-जीवन की समस्याओं का मार्मिक चित्रण है। इसकी नायिका चंद्रा कन्नड़ के अन्यतम चरित्रों में एक है। आपके दो कहानी-संग्रह भी निकल चुके हैं। अन्य कृतियों में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं आशाओं व आकांक्षाओं के चित्रण में आपको अद्भुत सफलता मिली है। नारी के अंतरंग के पारदर्शी चित्रण में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषा में विलक्षण रोचकता है। आपने कहानी तथा निबंधों के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी सफलतापूर्वक आज़माई है।

इंदु *(हिं० पत्रिका)*

अपने कवि-जीवन का प्रारंभ करते हुए जयशंकर प्रसाद (दे०) ने एक मासिक पत्र के प्रकाशन की व्यवस्था की और उसके संपादन का भार अपने भानजे अंबिकाप्रसाद गुप्त को सौंपा। इसका प्रथम अंक कला 1, किरण 1, श्रावण शुक्ल द्वितीया संवत् 1966 (सन् 1909) को प्रकाशित हुआ। इसका लक्ष्य बताते हुए कहा गया : 'काव्य महोदधि ते प्रकट्यो रस रीति कला दुत पूरण इंदु है।' इसी अंक में प्रसाद की ब्रजभाषा में लिखित कविता 'शारदाष्टक' तथा 'प्रकृति-सौंदर्य' लेख प्रकाशित हुए। 'इंदु' का महत्व इस दृष्टि से है कि उसके साथ ही प्रसाद के जीवन की साहित्य-साधना का विकास हुआ। आरंभ में भक्तिपूर्ण ब्रजभाषा के कवित्त पौराणिक आख्यानों पर 'बनवासिनी बाला', 'अयोध्योद्धार', 'सत्यव्रत', 'भारत' आदि कविताएँ, प्रणयगीत और रीतिकालीन विषयों पर कविताएँ लिखीं। 'भारत' में राष्ट्रीय भावना और 'राजराजेश्वर' में राजभक्ति का स्वर भारतेंदु (दे०) की याद दिलाता है।

धीरे-धीरे ब्रजभाषा छूट गयी। खड़ी बोली में काव्य-रचना के साथ-साथ प्रसाद जी ने जड़ में चेतन का आरोप, अहं का इदं से समन्वय, रहस्योन्मुखता, प्रेम, करुणा आदि से अपने स्वतंत्र जीवन-दर्शन का निर्माण किया। 'विस्मृत प्रेम' में कवि ने अपने प्रेम-दर्शन का प्रतिपादन किया। 'महाक्रीड़ा' से रहस्यवादी प्रवृत्तियों का आभास मिलता है। 'कल्पना सुख' कविता में अन्य छायावादी कवियों के समान कल्पना का स्तवन किया गया है। अतुकांत कविता के आरंभ का श्रेय भी 'इंदु' को है। एक ओर यदि 'महाराणा का महत्व' तुकविहीन प्रबंध-काव्य है, तो दूसरी ओर जिज्ञासा, रहस्य और स्वच्छंदता की ओर भी प्रसादजी अतुकांत कविताओं द्वारा बढ़े। 'रमणी हृदय' और 'खोलो द्वार' सानेट के आधार पर लिखे गये काव्य-प्रयोग हैं।

'इंदु' की फाइलों का अनुशीलन करने से प्रसाद जी की मानसिक स्थिति का भी पता लगता है। कला 2 किरण 1 में छपी 'शंकर की वंदना' में कवि का आत्म-समर्पण-परिस्थितिजन्य भक्ति-भावना का निदर्शन है। प्रसाद के नाटक—सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होने से पूर्व 'इंदु' में ही छपे। इसी प्रकार उनकी पहली पौराणिक कथाएँ—ब्रह्मर्षि, पंचायन और बभ्रुवाहन तथा सामाजिक कहानियाँ—'ग्राम' और 'चंदा' प्रकाशित करने का श्रेय भी 'इंदु' को ही है। उनके अनेक लेख, जिनमें से कुछ का ऐतिहासिक तथा सैद्धांतिक महत्व अक्षुण्ण है, इसी पत्रिका द्वारा प्रकाश में आये। 'कवि और कविता', 'कविता-रसास्वाद' तथा 'कविता का विकास' लेख उनके कविता-संबंधी मौलिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंतन एवं क्रांतिकारी दृष्टि के परिचायक हैं।

समय के साथ 'इंदु' ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। 'इंदु' के द्वारा अपने साहित्य का प्रचार करना प्रसाद जी का उद्देश्य नहीं था, पर आरंभ में प्रकाशन-सामग्री की कठिनाई के कारण उन्हें अपनी ही रचनाएँ प्रकाशित करनी पड़ीं। बीच-बीच में 'इंदु' को बंद भी करना पड़ा। श्रावण-भाद्र संवत् 1968 (1911 ई०) का अंक नहीं छपा। अगस्त, 1915 के बाद एक वर्ष तक बंद रहने के उपरांत प्रसाद ने पुनः सितंबर, 1916 में उसका प्रकाशन कराया। अक्टूबर-नवंबर 1916 के अंक के बाद वह फिर 10 वर्ष तक तिरोहित रही। पुनः प्रसाद जी के प्रयत्नों से निकली और मार्च 1927 के बाद सदा को अंतर्धान हो गयी।

'इंदु' की फाइलों में प्रसाद के व्यक्तित्व-विकास का इतिहास छिपा है। उसके साथ छायावाद-युग का आरंभ होता है। इन दो दृष्टियों से उसका महत्व अविस्मरणीय है।

इंदु-बिंदु *(म० पा०)*

रामगणेश गडकरी (दे०) के 'भावबंधन' नाटक में इंदु-बिंदु के चरित्र की सृष्टि हास्य-प्रसंगों के संयोजनार्थ हुई है। इंदु-बिंदु शारीरिक दृष्टि से दीन-हीन है। अत्यधिक कुरूप होने के कारण ही वह चाहकर भी वैवाहिक बंधनों में नहीं बँध पाती। अपनी इस अतृप्त आकांक्षा की परिपूर्ति हेतु वह नानाविध प्रयत्नशील रहती है। किसी पुरुष-हृदय को जीतकर यह वैवाहिक जीवन में पदार्पण करना चाहती है और इसके लिए यह नाना प्रकार की चेष्टा-कुचेष्टा करती है, परंतु इसकी कुरूपता के कारण ही इसके संपर्क में आने वाला प्रत्येक पुरुष दूरी बनाए रखता है। इसके माध्यम से अतृप्त नारी-जीवन का मनोहारी चित्रण हुआ है। इंदु-बिंदु के मन की विविध अंतर्दशाओं में विविधता एवं विदग्धता का सहज समावेश हो गया है। मराठी चरित्र सृष्टि में इंदु-बिंदु कुरूपता का पर्यायवाची बन गया है।

इंदुलेखा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1889 ई०]

इसके लेखक श्री ओय्यारत्तु चंतुमेनन (दे०) का जन्म मलाबार के तलश्शेरी तालुके में हुआ। शिक्षा-दीक्षा के सामान्य होते हुए भी इन्होंने अपने अध्यवसाय के कारण पदोन्नति की। कानून की बारीकियों में इनकी विलक्षण पैठ थी। अँग्रेज़ी उपन्यास पढ़ने का इन्हें बड़ा शौक रहा। किसी अनुवाद की अपूर्णता और जटिलता से खिन्न होकर श्री मेनन को सूझा कि अँग्रेज़ी के ढंग पर मलयाळम में एक रचना क्यों न प्रस्तुत की जाये। इसी अभिलाषा के फलस्वरूप 'इंदुलेखा' की रचना हुई।

मातृसत्तावादी प्राचीन अभिजात नायर परिवार के बुज़ुर्ग वृद्ध पंचुमेनन हृदय से निष्कपट, किंतु ऊपर से बड़े क्रोधी और वाणी से उग्र व्यक्ति थे। उनकी छोटी भानजी इंदुलेखा ही वात्सल्य के कारण उनके क्रोध से बची थी। 'इंदुलेखा' सौंदर्य की मूर्ति, प्रतिभा की धनी, तर्कशक्ति में पटु और अत्यंत संयतचरित्र की कन्या थी। उसे उसी परिवार के 'माधवन्' से प्रेम था जो हर तरह से उसके लायक था—ऊँची उपाधि, रूप, पुरुषार्थ, आदर्श चरित्र और अभिजातता सब कुछ उसमें था। उनका ब्याह पंचुमेनन तक को स्वीकार था। किसी छोटी बात पर क्रुद्ध पंचुमेनन ने प्रतिज्ञा की कि इंदुलेखा माधवन् को नहीं दूँगा। उन्होंने बड़े धनी-नामी, पर अधेड़ और बहुपत्नीक, सूरिनंपूतिप्पाड् (दे०) को अपनी कन्या स्वीकार करने के निमित्त निमंत्रित कर डाला। उन्हें इंदुलेखा से डर भी था। इंदुलेखा ने सूरिनंपूतिप्पाड् को ऐसा करारा जवाब दिया कि वे लज्जित हुए पर प्रतिष्ठा के विचार से वे चुपचाप उस घर की नौकरानी की बेटी को वधू-रूप में स्वीकार कर चले गये।

मद्रास-स्थित माधवन् ने गाँव लौटते वक्त रास्ते में ये बातें सुनीं तो ग़लतफ़हमी के कारण एकदम निराश हुआ। अंत में कथा की परिणति इंदुलेखा-माधव के विवाह में हो जाती है।

इस उपन्यास में आधुनिक क्रियाकल्प या कोई और चमत्कारपूर्ण बात नहीं। फिर भी, इसके कथापात्रों के प्रति हमारे मन में विशेष ममता रहती है। इसका सूरिनंपूतिरप्पाड् प्रसंग अतिविस्तृत परंतु बहुत ही हास्यपूर्ण है। मलयाळम साहित्य में यह पात्र अमर हो गया है। 'इंदुलेखा' की गणना अब भी लोकप्रिय उपन्यासों में की जाती है।

इंद्रनाथ *(बँ० पा०)*

इंद्रनाथ (दे० 'श्रीकांत' उपन्यास) हमारी जागृत चेतना का मूर्त प्रकाश है। केवल शरत्-साहित्य में ही नहीं, अन्यत्र भी इंद्रनाथ के अनुरूप आश्चर्य-सुंदर बलिष्ठ चरित्र दूसरा नहीं है। इस किशोर के चित्ततट पर सत्य-समुद्र का कलगान नित्य-ध्वनित है। हृदयबोध के राज्य में उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरंतर अभिषेक होता है। मानवता-बोध का जयोच्चारण-मंत्र ही उसका प्राणमंत्र है। जिस श्रीकांत की रक्षा के लिए इंद्रनाथ का प्रथम आविर्भाव हुआ था वह श्रीकांत तत्कालीन समाज के प्रत्येक साधारण मनुष्य का प्रतीक है, जो मनुष्य समाज के शत-सहस्र अनुशासन के द्वारा निरंतर परिबद्ध है। इंद्रनाथ इस प्रकार की दलित-निपीड़ित मानवात्मा का रक्षक है। वह प्रत्येक के हृदय में प्रदीप्त प्राणवह्नि संचारित करता है। डर किसे कहते हैं—वह यह नहीं जानता। मरण उसके सामने तुच्छ है। जीवन में जागृति का छंद उसके चित्रलोक की अमृतवाणी है। बाँसुरी के स्वर में, रात्रि के अभिमान में वह कवि एवं दुःसाहसी है। इंद्रनाथ का किशोर-प्राण अन्नदा दीदी की दृष्टि के आलोक में बहुत ही अधिक स्वच्छ है। इस महत्-प्राण की महिमा पाठक-चित्त को चकित विस्मय से, श्रद्धा से, प्यार से एवं स्नेह-ममत्व से एकदम संपूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेती है। इसीलिए इंद्रनाथ सर्वकाली, जागृत-चित्त का सार्थक प्रतीक है।

इंद्र, राजा *(उर्दू० पा०)*

इंद्र हिंदू-देवमाला के सर्वश्रेष्ठ, सशक्त योद्धा, दीनों के रक्षक तथा दुष्टों के संहारक देवता हैं। अपने इन उदात्त गुणों के कारण यह एक वैभवशाली शासक अथवा राजा के प्रतीक हैं। इंद्र इंद्रपुरी के राजा हैं। लावण्यमयी परियाँ उनके अखाड़े की शोभा हैं। इसी राजा इंद्र के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करने वाला 'अमानत' (दे०) द्वारा उर्दू में लिखित 'इंदर सभा' नाटक का नायक है इंद्र।

'इंदर सभा' में राजा इंद्र सिंहलद्वीप का राजा बताया गया है। वह बड़ा समृद्ध तथा वैभवशाली है। उसके आदेश पर विभिन्न परियाँ—जैसे पुखराज, नीलम और लालपरी आदि बारी-बारी उसके सामने नृत्य-संगीत प्रस्तुत कर उसका मनोरंजन करती हैं। अंत में 'कोह-काफ़' की परियों की सरदार (नायिका) 'सब्ज़परी' (दे०) भी आती है और अपने मादक रूप तथा मोहक नृत्य-संगीत से राजा इंद्र का मन बहलाती है।

राजा इंद्र का तेज तथा क्रोध विख्यात है। उनकी परियों के अखाड़े में सर्वसाधारण का पहुँचना संभव नहीं। जब 'गुलफ़ाम' परियों का नाच देखने के लिए उनके अखाड़े में जा पहुँचता है तो इंद्र की आज्ञा से वह दंडित किया जाता है। 'गुलफ़ाम' को काफ़-पर्वत स्थित भयानक कुएँ में बंदी बना दिया जाता है और उसे लाने वाली 'सब्ज़परी' के बाल और पर नोच कर उसे अखाड़े से निकाल दिया जाता है। जोगिन बनी हुई सब्ज़परी का करुणगान सुनकर राजा इंद्र उसे पुरस्कृत करना चाहता है। जब वह गुलफ़ाम की मुक्ति का प्रस्ताव करती है तो क्षमाशील इंद्र उसे मुक्ति प्रदान करता है।

इंद्रवज्रा *(हिं० पारि०)*

इंद्रवज्रा छंद के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण—दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से—रहते हैं। उदाहरण—

मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र-सा है।
देखूँ उसे मैं नित नेम से ही,
मानो मिला मित्र मुझे पुराना।

(हरिऔध)

इस पद्य के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से ग्यारह वर्ण हैं।

इंशा *(उर्दू० ले०)* [जन्म—अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध, मृत्यु—1818 ई०]

इनका पूरा नाम इंशा अल्ला खाँ और उपनाम 'इंशा' था। इनके पिता का नाम माशा अल्ला खाँ था। दिल्ली के पतन के समय इनके पिता को मुरशिदाबाद जाना पड़ा। वहीं इनका जन्म हुआ था। इनके पिता ने इनके लालन-पालन तथा शिक्षा में बहुत रुचि ली और इन्हें विभिन्न कलाओं की शिक्षा दिलाई। इंशा दिल्ली तथा लखनऊ दोनों ही स्थानों में रहे। इन्होंने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे और जीवन के अंतिम दिनों में बहुत कष्ट सहन किए तथा उसी अवस्था में इनका देहावसान हुआ।

सयद इंशा को अरबी, फ़ारसी, हिंदी और भारत की अन्य कई भाषाओं का पूरा ज्ञान था। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। इन्हें भारत की प्राचीन संस्कृति से विशेष प्रेम था। हास्य और विनोद इनके स्वभाव के अभिन्न अंग थे। इनकी ये 11 मुख्य रचनाएँ हैं—

(1) उर्दू ग़ज़लों का दीवान, (2) दीवान-ए-रेख़ती, (3) कसीदे, (4) दीवान-ए-फ़ारसी, (5) दीवान-ए-बे-नुक़त, (6) फ़ारसी मसनवी बे-नुक़त, (7) मसनवी आशिकाना, (8) हाथी और चंचल प्यारी हथनी की शादी, (9) मुर्ग़नामा, (10) फ़ारसी मसनवी शेरो-ब्रज (इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौलाना रूमी की शैली पर धार्मिक तथा सूफ़ी सिद्धांतों का हास्य-शैली में वर्णन है); (11) शिकारनामा—इसमें चिड़ों, खटमलों, मक्खियों तथा मच्छरों की निंदा में कई हिज्व लिखी गई हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने पहेलियों आदि की भी रचना की। एक कहानी शुद्ध हिंदी में भी लिखी जिसमें उर्दू-फ़ारसी का एक भी शब्द नहीं आया। उर्दू का प्रथम व्याकरण ग्रंथ 'दरया-ए-लताफ़त' भी इन्हीं की रचना है। हिंदी के आदि गद्यकारों में इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी 'रानी केतकी की कहानी' (दे०) हिंदी की आदि गद्यशैली का नमूना प्रस्तुत करती है और अपनी रवानगी के लिए अन्य समकालीन गद्यकृतियों से सर्वथा भिन्न और विशिष्ट है।

यद्यपि साहित्यकार और कवि के रूप में इनका बहुत ऊँचा स्थान है तथापि प्रहसनों की दृष्टि से ये अत्यंत साधारण कोटि में आते हैं। इनकी प्रवृति हिंदी की ओर अधिक थी। वह काव्यविधाओं के नाम अरबी से हिंदी में बदल देना चाहते थे इसीलिए 'मुसल्लस' का नाम 'दुकड़ा' तथा 'मुरब्बअ' का नाम 'चौंकड़ा' रख दिया। इसी प्रकार इन्होंने अरबी के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हिंदी शब्द प्रयोग करने का प्रयास किया।

गद्य-लेखन में भी कई चीजें इनकी देन हैं। मौलाना आज़ाद (दे०) ने अपनी पुस्तक 'आबे-हयात' में इन्हें उर्दू का अमीर खुसरो कहा है।

इक़बाल *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

इनका पूरा नाम मुहम्मद इक़बाल और उपनाम 'इक़बाल' था। इनका जन्म सियालकोट में हुआ और वहीं आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए इन्हें लाहौर आना पड़ा। कुछ समय ये यहाँ के राजकीय कालेज में प्राध्यापक भी रहे। सन् 1905 ई० में ये इँगलैंड गए और वहाँ से वकालत तथा दर्शन में पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की.

बाल्यावस्था से ही इक़बाल को काव्य-रचना में रुचि थी। ये हज़रत दाग़ (दे०) के शिष्य थे और उनसे अपने काव्य का संशोधन कराते थे। इनकी भाषा पर दाग़ का प्रभाव स्पष्ट है। इनकी प्रतिभा ने शीघ्र ही इन्हें एक सर्वप्रिय कवि बना दिया। भाषा के माधुर्य गुण के साथ कल्पना की ऊँची उड़ान इनकी विशेषता है।

इनके काव्य में निराश लोगों के लिए कर्मण्यता देशभक्ति तथा स्वाभिमान का संदेश है। इन गुणों के कारण इनकी ख्याति केवल भारत तक ही सीमित न रही बल्कि अन्य देशों—जैसे अफ़गानिस्तान, ईरान, अमरीका तथा इँगलैंड—में भी पहुँच गई। इक़बाल ने उर्दू काव्य को नए विचार और नया मोड़ प्रदान किया। दृश्य-चित्रण में ये दक्ष चित्रकार प्रमाणित हुए। इनकी कविताओं में विचारों की गहनता के साथ-साथ संगीतात्मकता भी विद्यमान है। इन्हें उर्दू, फ़ारसी, अरबी, तथा अँग्रेज़ी पर पूरा अधिकार प्राप्त था। उर्दू में 'बाँग-ए-दरा' (दे०), 'बाले-जिब्रील' (दे०), 'ज़र्बे-ए-कलीम' (दे०), इनके काव्य-संग्रह हैं और फ़ारसी में 'मसनवी इसरारो रमूज़', 'पयामे मशरिक', 'जबूरे अज़्म', 'जावेदनामा', 'मनसवी पस-चे-बामद कर्द', 'मसनवी मुसाफिर' और 'अर्मुगान-ए-हिजाज़' प्रसिद्ध हैं। इक़बाल ने कुछ अँग्रेज़ी कविताओं का उर्दू में अनुवाद भी किया।

'इक म्यान दो तलवारां' *(पं० कृ०)* [प्रकाशन—1960 ई०]

नानकसिंह (दे०) विरचित 'इक म्यान दो तलवारां' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसके माध्यम से सन् 1914-15 के 'ग़दर' में उल्लेखनीय योग देने वाले शहीदों की स्मृति को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया गया है। स्वतंत्रता-संग्राम में पंजाब के वीरों ने जो साहसिक कार्य किए, और पंजाब की धरती पर जो घटनाएँ घटित हुई उन्हीं को नानकसिंह ने इस कृति का आधार बनाया है। इसमें जिन घटनाओं एवं व्यक्तियों का चित्रण किया गया है वे सभी ऐतिहासिक रिपोर्टों तथा टिप्पणियों पर आधृत हैं। 'करतारसिंह सराभा' देश-प्रेम एवं पराधीनता-विरोधी भावना से अनुप्राणित हैं। सुखदेवसिंह सोढ़ी के द्वारा तत्कालीन सामंतशाही और धार्मिक नेतृत्व की भावना को प्रस्तुत किया गया है। घटनाओं एवं विवरणों पर अधिक बल देने के कारण पात्रों का चरित्र-चित्रण उभर नहीं सका है। इसमें जनजीवन का समुचित चित्रण नहीं हुआ है और देश-काल की असंगतियों का स्पष्ट आभास होता है। ऐतिहासिक उपन्यास में शोध-दृष्टि तथा कल्पना-प्रवणता की अपेक्षा होती है जिसका इसमें अभाव परिलक्षित होता है। अकाली लहर से प्रभावित इस कृति में सिख जाति में व्याप्त कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के खंडन का प्रयास भी मिलता है। लेखक को साहित्य-एकादमी की ओर से इस कृति पर पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छाबती *(उ० कृ०)*

यह धनंजय भंज (दे०) कृत शृंगार-काव्य है जो छोटे-छोटे दस छंदों में विरचित है। इसमें शापग्रस्त एवं स्वर्गच्युत गंधर्व कलावत एवं अप्सरा कलावती के मर्त्य जीवन का चित्रण है। काव्य के मध्य में प्राचीन परंपरा के अनुसार विरह एवं प्रेम-विह्वलता का चित्रण है। काव्य सुखांत है। इसमें संस्कृत के 'पंचाशिका' एवं विल्हण कृत 'चौरपंचाशिका' (दे०) नामक दो ग्रंथों का अनुवाद हुआ है। प्रथम छंद से पंचम छंद तक कवि की अपनी रचना है। शेष समस्त श्लोक अनूदित हैं। अनुवाद सुंदर हुआ है।

इच्छाबरण *(उ० कृ०)*

यह कमळाकांत दास (दे०) का सामाजिक उपन्यास है, जिसमें मुख्य रूप से प्रेम विवाह की समस्या उठाई गई है। लेखक ने बड़ी तटस्थता और सहानुभूति के साथ इसकी अच्छाइओं और बुराइयों पर प्रकाश डाला है। शहरीकरण का हमारे सामाजिक जीवन पर पड़ने वाला कुप्रभाव भी इसमें चित्रित है। आज की आर्थिक समस्या भी उठाई गई है—तेज़ी से गिरती आर्थिक स्थिति तथा आज की अर्थप्रधान जटिल सभ्यता, तज्जनित चारित्रिक, एवं नैतिक पतन आदि का सफल चित्रण हुआ है। नारी-मुक्ति की भ्रांत धारणा और उसके कुपरिणाम की ओर भी लेखक ने संकेत किया है। नारी की शक्ति और साहस का भी चित्रण हुआ है। जीवन की भूल-चूक पर मानवीय संवेदना की विजय बताई गई है।

इछामती *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1939 ई०]

'इछामती' विभूतिभूषण (दे०) की अंतिम महत् सृष्टि है। अपने गाँव के निकटवर्ती मोल्लाहाटि की पुरानी नीलकुटि के ध्वंसावशेष को देखकर लेखक के मन में 'इछामती' रचना की प्रेरणा जगी थी। उस युग के अत्याचारी, धनवान नील-व्यवसायी—अँग्रेज़ साहब-मेमों के अल्पस्थायी औज्ज्वल्य के साथ इछामती नदी के किनारे की शाश्वत जीवन-धारा को प्रकट करने के अभिप्राय से ही इस उपन्यास की रचना हुई थी।

इसमें भारतवासी अँग्रेज़ों के दोष-गुण, अभ्यास तथा चिंतन-धारा का यथासाध्य विश्वसनीय परिचय दिया गया है। अँग्रेज़ों की अपेक्षा अँग्रेज़ों के कर्मचारी दीवान, कारिंदे, मुख़तार, बैरे, साईस, रसोइये आदि चरित्रों का वर्णन ही इसमें अधिक है। इन कर्मचारियों के अत्याचार, अर्थ-लोभ एवं धूर्तता के साथ-साथ इनके व्यक्तिगत जीवन में हिंदू आचार-आचरण की निष्ठा का विरोधाभासात्मक वर्णन है और साथ ही इनके आश्रित गाँव के निष्क्रिय भद्र-समाज का असहनीय वर्णन है। जशोर के ग्रामांचल की दुःख-दुर्दशा का वर्णन करते हुए क्रमशः किसान-संप्रदाय का संघबद्ध आंदोलन एवं उसी के प्रभाव-स्वरूप कलकत्ते में सभा-समितियों का आह्वान एवं अँग्रेज़-शासकों की उद्विग्नता को लेखक ने बहुत ही हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किया है। परंतु उपन्यास के विशिष्ट चरित्र भवानीचरण के सम्मुख नीलकुटि का चित्र गौण हो जाता है। विषय-लोभ-जटिल नीलकुटि की जीवनधारा की अभिव्यक्ति वस्तुतः भवानी-चरण के उच्च मानसिक गौरव को प्रकट करने के लिए ही की गई है। भवानीचरण लेखक की भावकल्पना का पूर्णविग्रह है और उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता हैं कि बृहत् समाज-जीवन की अपेक्षा वह भवानीचरण एवं उसकी गृहस्थी के माध्यम से आदर्श मानवत्व का परिचय देना चाहता है। कहना न होगा कि इसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है।

इज़ाफ़ियत *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

इसके लेखक हैं डा० रज़ी-उद्-दीन सिद्दीक़ी (प्रो० जामिया उसमानिया, गणित विभाग)। अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद) दिल्ली द्वारा प्रकाशित इस कृति में प्रसिद्ध दार्शनिक 'आइन्स्टाइन' के दृष्टिकोण को सरल-सुबोध शैली में वर्णित किया गया है। लेखक का कथन है कि उर्दू के अन्यतम कवि डा० इक़बाल (दे०) की हार्दिक इच्छा की पूर्ति के लिए इस पुस्तक का प्रणयन किया गया है। मौलवी अब्दुलहक़ साहब (दे०) की प्रेरणा का भी इसमें यथेष्ट योगदान रहा है। दर्शन और विज्ञान से संबद्ध इस कृति के आरंभिक तीन अध्याय किंचित् दुर्बोध, शुष्क और क्लिष्ट हैं, परंतु चतुर्थ अध्याय से यह यथेष्ट सरल, सुबोध और रोचक हो जाती है और इस भाग को समझ लेने के पश्चात् आरंभिक भाग के पुनः अध्ययन और मनन में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। इस कृति में पारिभाषिक शब्दों, गणित के चिह्नों अथवा प्रमेयों के प्रयोग यथासंभव नहीं किए गए है। कहीं-कहीं ऐसे पारिभाषिक शब्द अवश्य दिए गए हैं जो प्रायः समा-चार-पत्रों और लेखों में प्रयुक्त होते रहते हैं। फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक स्थान पर पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या इतनी विस्तृत और सुस्पष्ट कर दी गई है कि उन्हें समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। यह महत्वपूर्ण कृति 11 अध्यायों में लिखित है। इसके अंत में प्रयुक्त उर्दू पारिभाषिक शब्दों में अँग्रेज़ी पर्याय भी दे दिए गए हैं।

इट्टश्शेरि, गोविंदन नायर *(मल० ले०)* [जन्म—1906 ई०, मृत्यु—1974 ई०]

ये मलयाळम के कवि तथा नाटककार हैं। जन्म दरिद्र परिवार में हुआ और पहले एक वकील के गुमाश्ते बने। बाद में ये स्वयं वकील बने। स्वतंत्रता-आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया है।

इट्टश्शेरि के कविता-संग्रह 'काविले पाट्टु' (दे०) को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। 'अळकावली', 'करुत्त चेट्टिच्चिकेळ', 'ओरुपिटि मेळ्ळिक्का' आदि अन्य कविता-संग्रह हैं। 'कूट्टुकृषि' (दे०) आदि छह नाटकों की भी इन्होंने रचना की है।

इट्टश्शेरि की कविता की मुख्य धारा मानव-प्रेम की है। मानवीय अनुभूतियों की तीव्रता इनकी कविता में प्रकाशित होती है। इनके नाटक सामाजिक समस्याओं का हल ढूँढते हैं।

कवि और नाटककार के रूप में मलयाळम साहित्य में इट्टश्शेरि गोविंदन नायर का विशेष स्थान है।

इड़ा *(हिं० पा०)*

इस नारी-पात्र का चित्रण 'कामायनी' (दे०) में वैदिक सूत्रों के आधार पर प्रतीक-रूप में किया गया है। 'शतपथब्राह्मण' (दे० ब्राह्मण) के अनुसार उसका जन्म मनु (दे०) के पाकयज्ञ से हुआ था। उस पर पूर्णाधिकार करने के इच्छुक मनु को देवताओं का कोप-भाजन होना पड़ा। ऋग्वेद (दे० संहिता) के अनुसार वह भारती और सरस्वती के समान एक प्रमुख देवी है, जो चेतना प्रदान करती है। इन्हीं सूत्रों को लेकर प्रसाद (दे०) ने उसका प्रत्यक्ष और प्रतीकात्मक वर्णन किया है। प्रत्यक्ष रूप में वह तर्कमयी ज्ञान-विज्ञान का विकास करती हुई सुख-साधनों की वृद्धि करती है। इस कल्याणमयी की असफलता प्रजा की भेदबुद्धि और प्रजापति मनु की अतृप्ति के विकास में है। श्रद्धा (दे०) के संपर्क में आकर वह अपनी दुर्बलता से अवगत हो जाती है और श्रद्धामय मननशील मानव को साथ लेकर पुनः प्रजापालन में संलग्न होती है। श्रद्धा के आशीर्वाद से समरसता का प्रचार करती हुई संतापमुक्त होकर वह गैरिकवसना प्रजासहित मानसरोवर पहुँच जाती है। स्पष्ट है कि प्रसाद (दे०) ने इड़ा (दे०) को बुद्धवाद या विवेकवाद का प्रतीक बनाया है। उनकी मान्यता के अनुसार यह विवेकवाद अपने चरम रूप में कल्याणकर होते हुए भी व्यावहारिक धरातल पर दुःख उत्पन्न करता है; इसलिए उस पर श्रद्धा या आनंदवाद का शासन आवश्यक है।

इदय ओलि *(त० कृ०)* [रचना-काल—1941 ई०]

इदय ओलि टी० के० चिदंबरनाथ मुदलियार के बीस निबंधों का संग्रह है। निबंधों में वर्णित विषय हैं—सौंदर्य-प्रेरित वीरता, तमिल-प्रेम, शिक्षा-प्रणाली, कवि और विचार, कवि और रूप, संगीत और साहित्य आदि। कुछ निबंधों में 'त्यागराज विलासम', 'कुट्राल कुरेवजि' आदि तमिल की साहित्यिक कृतियों का विवेचन है। एकाध निबंधों में तिरुवळ्ळुवर (दे०) जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों के कृतित्व का विवेचन है।

चिदंबरनाथ मुदलियार ने जब इन निबंधों की रचना की उन दिनों साहित्यकारों और उच्च वर्ग के लोगों में बहुत दूरी थी। विविध विषयों से संबद्ध इन निबंधों की रचना द्वारा लेखक ने उस दूरी को मिटाने और उच्च वर्ग के लोगों को साहित्य की ओर आकृष्ट करने का सफल प्रयास किया। ये निबंध लेखक के व्यापक अनुभव के परिचायक हैं। इसमें हास्य और व्यंग्य का पुट है। सभी निबंध सरस सरल शैली में रचित हैं। इन निबंधों का तमिल निबंध साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

इदयनादम्, चिदंबर सुब्रह्मण्यम *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1952 ई०]

इदयनादम् का यह उपन्यास आधुनिक तमिल साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसके शीर्षक का अर्थ 'हृदय-नाद' है और कृति संगीतकारों की आत्मानुभूति का परिचय देती है। तंजावूर ज़िले के एक गाँव का बालक 'किरुष्णन' (कृष्ण) जन्म से ही संगीत-प्रेमी है। मामूली पढ़ाई में मन न लगने से वह पास वाले गाँव में भाग जाता है जहाँ वह एक प्रसिद्ध संगीतकार (तमिल शब्द 'पाकवतर्) के शिष्य के रूप में जमकर दीर्घकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुलाभ्यास करता है। वह अपने गुरु परिवार का अभिन्न अंग बनकर उनकी एकमात्र पुत्री से विवाह भी कर लेता है। गुरु का देहांत होने पर वह स्वयं पुत्रवत् उसके दाह-संस्कार और अन्य क्रियाएँ संपन्न करता है। इस प्रसंग पर लेखक ने जलती चिता तक का मार्मिक वर्णन किया है। गुरु के निधन के बाद वह 'किरुष्णपाकवतर्' के नाम से संगीत-जगत का सम्राट बनकर स्थान-स्थान पर अपनी गायन-सभाओं द्वारा संगीत-रसिकों को आनंद-विभोर करता आता है। इस प्रकार संगीतोपासक कलाकार अपनी साधना की चोटी पर पहुँचता है किंतु अकस्मात् वह एक विचित्र आघात का शिकार बन जाता है। एक गायन-सभा में राग आलापते-आलापते, जिस मधुर स्वर के लिए उसकी जगत्प्रसिद्धि है, वह धीमा पड़ जाता है और उसका कंठ बैठ जाता है। किंतु इससे वह निराश नहीं होता। वह ईश्वरीय प्रेम एवं सेवा के लिए अपने आपको अर्पित कर देता है।

इस उपन्यास में वस्तु-विन्यास की चमत्कारिता नहीं है। इसकी मुख्य विशेषताएँ 'तंजावूर' ज़िले के ब्राह्मण-परिवारों का सादगीपूर्ण पर आदर्शनिष्ठ जीवन का जीता-जागता चित्रण, और उससे संलग्न उस अंचल का ग्राम-वातावरण, बोलीविशेष आदि का यथार्थपरक प्रस्तुतीकरण हैं। लेखक के कथनानुसार इसकी कथा उन्हीं के संगीतोपासक परिवार की पूर्वघटित आत्म-कथा है। इसका हिंदी रूपांतर भी हो चुका है।

इनामदार ना० सं० *(म० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

आधुनिक मराठी उपन्यासकारों में जिन्होंने थोड़ा लिखकर महान् ख्याति प्राप्त की है उनमें श्री इनामदार अग्रण्य हैं। आरंभ में ये कहानी-लेखक थे, बाद में उपन्यास-लेखन की ओर मुड़े। अब तक इनके 6 कहानी-संग्रह तथा 3 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। तीनों उपन्यासों पर इन्हें महाराष्ट्र-शासन से पुरस्कार मिल चुका है।

मुख्यकृतियाँ—झुंज, मंत्रोवेगळा तथा झेंप।

इफ़ादात-ए-मेंहदी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1899-1919 ई०]

यह ग्रंथ सुप्रसिद्ध निबंधकार एम० मेंहदी हसन (दे०) का निबंध-संग्रह है। इसे मेंहदी बेगम ने संकलित किया है और प्राक्कथन-लेखक है मौलाना अब्दुल माजिद साहब। इस पुस्तक में मेंहदी साहब के वे निबंध संकलित हैं जो उन्होंने 1899 से 1919 तक के बीस वर्ष के समय में लिखे थे। कुछ निबंधों के शीर्षक ये हैं: (1) शेरुल-अज़्म पर एक फ़लसफ़ाना नज़र, (2) उर्दू लिट्रेचर के अनासिरे ख़मसा, (3) हैदराबाद की बज़्मे-अदब, (4) आधा घंटा अल्लामा शिबली के साथ, (5) मशरिक और इंशापरदाज़ी का दौर-ए-जदीद, (6) इरतका-ए-उर्दू अदब।

निबंध यद्यपि आकार में छोटे हैं किंतु साहित्यिक दृष्टि से अनमोल हैं। इनके निबंधों से इनके पत्र अधिक मूल्यवान हैं। उनकी एक-एक पंक्ति में साहित्य का गौरव अंतर्भूत है। यह ग्रंथ उर्दू साहित्य की एक बहुमूल्य निधि है।

इनामदार, वी० एम० *(क० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

कन्नड़ के विख्यात उपन्यासकार श्री वेंकट माधूराव इमामदार का जन्म उत्तर कर्नाटक में 1913 ई० में एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में हुआ। अँग्रेज़ी में एम० ए० करके ये प्राध्यापक बन गये। अब तक इन्होंने एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे हैं जिनमें प्रमुख हैं 'शाप', 'कनसिनमने', 'मूराबट्टे', 'उर्वशी', 'ई परिय सरेबगु', 'कट्टिदमने', 'बाडिदहू' आदि। इनके उपन्यासों में सुशिक्षित जीवन की समस्याओं का अतीव मार्मिक चित्रण है। कथा-रचना का चमत्कार, मनोविश्लेषण, मोहक संभाषण और परिष्कृत भाषा आपकी विशेषताएँ हैं। 'मूराबृट्टे' उपन्यास में विवाहित नारी अपनी ससुराल की रस्मों से तथा पति से स्वतंत्र रहने की इच्छा से किस प्रकार पथभ्रष्ट होती है—इसका स्पष्ट चित्रण है। कहीं-कहीं उनके चित्र अवास्तविकता एवं भावातिरेक से धूमिल बन गए हैं। 'शाप' में माँ-बाप का दूषित जीवन बच्चों के लिए कैसे अभिशाप बन सकता है—इसका चित्रण है। कन्नड़ उपन्यासों में मनोविज्ञान का अतीव सरस निरूपण आपकी कृतियों में ही हुआ है। विषम दांपत्य के चित्रण में श्री इनामदार अत्यंत तटस्थ किंतु सहानुभूतिपूर्ण हैं। आधुनिक समाज की सूक्ष्मातिसूक्ष्म समस्याओं के प्रति वे खूब सजग हैं।

इब्न-उल-वक्त *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1880 ई०]

'इब्न-उल-वक्त' मौलवी नज़ीर अहमद (दे०) का अपने ढंग का उपन्यास है। इसमें अँग्रेज़ी सभ्यता के अंधा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुकरण के परिणाम चित्रित किए गए हैं—ऐसा व्यक्ति (इब्न-उल-वक्त जैसा) न तो अँग्रेज़ ही बन सकता है और न भारतीय रह जाता है।

'इब्न-उल-वक्त' इस उपन्यास का नायक है। वह एक अँग्रेज़ मि० नोबल के प्रभाव में आकर अपना भारतीय ढंग का रहन-सहन छोड़ अँग्रेजी चाल-ढाल अपनाता है। कुछ लोगों को 'इब्न-उल-वक्त' पर सर सैयद की छाप दृष्टिगोचर हुई है।

लेखक ने शुद्ध देहलवी भाषा का प्रयोग किया है। 'हास्य-व्यंग्य का पुट उसकी रचना शैली की विशेषता है।

इब्न-उल-वक्त *(उर्दू० पा०)*

इब्न-उल-वक्त नज़ीर अहमद साहब के उपन्यास इब्न-उल-वक्त (दे०) का नायक है। उपन्यास में उसके व्यक्तित्व का केंद्रीय स्थान है। अन्य सभी पात्र उसके चरित्र के पोषक हैं। इब्न-उलवक्त एक सजीव पात्र है जो अपने परिवेश से प्रभावित होता है; उसमें परिवर्तन आता है। और वह आगे बढ़ता है व उभरता है। मौलवी नज़ीर अहमद इब्न-उलवक्त को ख़ुदा का बेटा समझते हैं और उससे प्यार करते हैं।

नाम से तो इब्नुल बेपैंदे का लोटा एवं सिद्धांतहीन दिखाई देता है किंतु वास्तविकता यह नहीं। वह अपने आप को जाति-हितैषी समझता है और मुसलमानों का भला चाहता है। वह नेक, साहसी और संवेदनशील है; सिद्धांत का पक्का एवं कर्तव्यपरायण है; न किसी से वह डरता है, न दवता है। वह अपने पद का भी अनुचित लाभ नहीं उठाता और न किसी को हानि पहुँचाता है। उसका घरेलू जीवन सर्वथा बेदाग़ है। अपने आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को वह सदा तत्पर रहता है। उसमें आत्मविश्वास एवं अन्य सभी गुण मौजूद हैं किंतु सौ बुराइयों की बुराई यह है कि वह पाश्चात्य सभ्यता का अनुरागी एवं समर्थक है। अपने धार्मिक विश्वासों की अपेक्षा बुद्धि तथा विज्ञान की ओर उसकी अधिक प्रवृत्ति है।

इब्न-ए-निशाती *(उर्दू० ले०)*

आरंभ में ये गद्य-लेखक थे परंतु बाद में काव्य साधना की ओर प्रवृत हो गए थे। इसी काव्य-साधना के बल पर इन्हें अमरत्व प्राप्त हुआ। 'फूलवन' (दे०) नामक मसनवी इनका कीर्तिस्तंभ है। यह मसनवी भाषा की उत्कृष्टता और अभिव्यंजना-सामर्थ्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें तत्कालीन जीवन के रीति-रिवाज, सभ्यता तथा परंपरा का भी सजीव वर्णन हुआ है। दक्षिण भारत के प्राचीन उर्दू कवियों में 'इब्न-ए-निशाती' का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

इमामबख्श *(पं० ले०)* [जन्म—1778 ई०, मृत्यु—1863 ई०]

इनका जन्म जिला सियालकोट ग्राम पसियांवाला के सैयद कुल में हुआ और लाहौर के मियाँ बड्डा नामक सूफ़ी फ़कीर से इन्होंने शिक्षा ग्रहण की। जीविकोपार्जन के लिए ये बढ़ई का काम करते थे और बच्चों को क़ुरान शरीफ़ पढ़ाते थे। इनकी प्रसिद्धतम रचना 'शाह बहराम हुसन वानो' (दे०) में एक नवीन और चमत्कारपूर्ण विदेशी कथा काव्यबद्ध की गई है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'लैला मजनूँ', 'मलिकज़ादा शाहपरी', 'गुलसनोबर', 'गुलबदन', 'चंदरबदन महियार' प्रभृति प्रेमाख्यानक और 'मुनाज़ात मियाँ बड्डा', 'बदीउल जमाल' आदि आचार-प्रधान कृतियाँ भी रचीं। इनकी रचनाओं का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार है और स्रोत फ़ारसी साहित्य। 'लैला मजनूँ' (1830 ई०) में निज़ामी और खुसरो के अनुकरण को स्पष्टतः स्वीकार किया है। 'मलिकज़ादा शाहपरी' में भी फ़ारसी की किसी मसनवी के अनुकरण की स्वीकृति है। इस रचना की कथा हिंदी कवि कुतबनकृत 'मृगावती' (1503 ई०) से मिलती है। प्रायः सभी रचनाओं में फ़ारसी की मसनवी-पद्धति का अनुकरण है और शीर्षक भी फ़ारसी में ही हैं। भाषा की क्लिष्टता और वातावरण की अभारतीयता के कारण इनकी अधिकांश कृतियाँ एक वर्ग-विशेष तक ही सीमित रहीं।

इम्तियाज़ अली 'ताज' *(उर्दू० ले०)*

सैयद इम्तियाज़ अली 'ताज' आधुनिक उर्दू-साहित्य के प्रामाणिक नाटककार और उपन्यासकार हैं। सुप्रसिद्ध नाटक 'अनारकली' (दे०) इनकी अमर कृति है। इस कीर्ति-स्तंभ का प्रणयन इन्होंने सन् 1922 ई० में किया था। उर्दू नाट्य-साहित्य में इस नाटक का स्थान बहुत ऊँचा है। इसमें भावानुकूल भाषा-शैली, सशक्त कथोपकथन, उद्देश्य-संगति और सजीव वातावरण की अवतारणा कलात्मक ढंग से हुई है। आग़ा 'हश्र' काश्मीरी (दे०) ने इस नाटक का यथेष्ट गुणगान किया है। 'अनारकली'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रणयन के उपरांत इन्होंने कोई ऐसा नाटक नहीं लिखा जिसे पूर्णतः रंगमंचीय नाटक कहा जा सके। किंतु रेडियो-रूपक और एकांकी नाटक इन्होंने विपुल मात्रा में लिखे हैं। इन नाटकों में कुछ तो पूर्णतः मौलिक हैं और कुछ अविकल अनुवाद मात्र। कलात्मक दृष्टि से इन सभी रूपकों का स्तर उच्च कोटि का है। फ़िल्मी कहानियों एवं फ़िल्मी कथनोपकथन के लेखन में भी इन्होंने सफलता प्राप्त की है। ये निदेशक बनकर चित्रपट-निर्माण में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दे चुके हैं। स्वातंत्र्य-पूर्व युग में पंचोली फ़िल्म कंपनी, लाहौर के लिए 'धमकी' और 'शहर से दूर' आदि चित्रों का निर्माण इन्होंने ही किया था। पाकिस्तानी फ़िल्मों में इनके द्वारा निर्मित 'गुलनार' नामक फ़िल्म का एक विशिष्ट स्थान है। उच्चस्तरीय समालोचनाओं द्वारा भी इन्होंने नाट्य साहित्य की सेवा की है।

इयल *(त॰ पारि॰)*

तमिल विद्वानों ने साहित्य के तीन प्रकार माने हैं—इयल (काव्य), इशै (संगीत) और नाडहम् (नाटक एवं नृत्य)। इयल के दो भेद हैं—इलक्कणम् (व्याकरण ग्रंथ या लक्षण ग्रंथ) तथा इलक्कियम् (लक्ष्य ग्रंथ)। इलक्कणम् में अक्षरों की संख्या, उनके स्वरूप, शब्दों की व्युत्पत्ति, शब्दों के प्रकार, काव्य के विविध विषय, छंदों एवं अलंकारों की संख्या तथा उनके लक्षणादि का वर्णन होता है। इलक्कियम् के अंतर्गत समस्त साहित्यिक कृतियों की चर्चा होती है। तमिल में साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ व्याकरण-ग्रंथ भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। कुछ प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रंथ हैं—तोलकाप्पियम् (दे॰), अहप्पोरुळ इलक्कणम्, याप्परुंगलम्, याप्परुंगलकारिकै, नन्नुल, वीर चोळियम्, आदि। प्राचीन इयल कृतियाँ पद्य में हैं। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के बाद व्याकरण-ग्रंथों एवं साहित्यिक कृतियों की रचना गद्य में भी होने लगी थी।

इयारुइंगम *(अ॰ कृ॰)* [रचना-काल—1960 ई॰]

लेखक : बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य (दे॰)। इस विशाल उपन्याप में टांग्खुल नगाओं का वर्णन है। नगा पहाड़ियों से जापानियों की वापसी से कथा का आरंभ होता है। युद्ध के तुरंत पश्चात् की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का इसमें चित्रण है। लेखक ने नगाओं की समस्या को मनोवैज्ञानिक एवं सहानुभूति-पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें प्रेम-प्रीति, विरह-मिलन, शासन-शोषण सभी कुछ का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास पर लेखक को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। श्री चित्र महंत ने इसका हिंदी अनुवाद किया है।

इरट्टैयर *(त॰ ले॰)* [समय—पंद्रहवीं शती का मध्य भाग]

यह नाम दो ऐसे कवियों के लिए प्रचलित है जो संयुक्त जीवन विताते हुए एक दूसरे के शारीरिक अशक्तता-अभाव की पूर्ति करते थे। इनमें एक अंधा था और दूसरा पंगु। नेत्रहीन कवि गतिहीन भाई को अपने कंधे पर बैठाकर उसके पथ-प्रदर्शन के अनुसार चलता था। पारस्परिक सहयोग से दोनों ने तमिल प्रदेश के विभिन्न स्थानों की यात्रा की थी और मंदिर-दर्शन, आश्रयदाताओं की प्रशंसा तथा खल-निंदा आदि से संबद्ध अनेक पद्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की थीं। 'इरट्टैयर' 'कलंबकम्' नामक पद्य-रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें तमिल के विभिन्न छंदों का मिश्रण एक विचित्र का चमत्कार उत्पन्न करता है। तदनुकूल 'मिश्रित फूलों की माला' के अर्थ में इस काव्य-विधा का नामकरण किया गया है। कविद्वय की मुख्य रचनाएँ हैं—'तिरुवामात्तूरक्कलंबकम्,' 'तिल्लैक्कलंबकम्' (दो पुण्य तीर्थों में विद्यमान शिव भगवान की स्तुति) तथा 'एकाम्बर नातरुला' (कांचीपुरम् के शिवजी की सवारी का स्तुतिपरक वर्णन)।

इरयिम्मन तंपि *(मल॰ ले॰)* [जन्म—1782 ई॰, मृत्यु—1856 ई॰]

ये मलयाळम के कवि और गीतकार हैं। तंपि त्रावनकोर के राजपरिवार के निकट संबंधी थे और महाराजा स्वाति तिरुनाल् के दरबार में राजकवि थे। तीन आट्टक्कथाएँ (दे॰)—'कीचकवधम्', 'उत्तरास्वयंवरम्' एवं 'दक्षयागम्' इनकी रचनाओं में मुख्य हैं। इसके अलावा अनेक गीतों और मुक्तकों की रचना भी उन्होंने की है।

तंपि की आट्टक्कथाएँ औचित्यादि साहित्यिक गुणों की पुष्कलता के कारण कथकलि के आस्वादकों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इनकी कृतियों ने इस चिरप्रतिष्ठित नृत्यविद्या के महत्व को बढ़ाया है। लोक-शैली और कर्नाटक शैली के गान-रचयिताओं में भी उनका स्थान समुन्नत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरामनाटकम् *(त० कृ०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

यह रामायण कथा-प्रसंगों को सुंदर नाटक-ताव-युक्त गीतों द्वारा प्रस्तुत करने वाली कृति है। इसकी लोकप्रियता के दो कारण हैं—एक, नाटकीय संवादों के रूप में गीतों का प्रणयन-जैसे राम द्वारा लक्ष्मण, विभीषण आदि के प्रति संबोधन; दूसरा, गीतों का आकर्षक गेय स्वरूप जिसे तमिल में 'कीर्त्तनै' कहते हैं। ये गीत कर्नाटक संगीत में गाने के अनुकूल लय के साथ रचे हुए हैं। भाषा भी अत्यंत हृदयग्राही स्वच्छंद भाव-संप्रेषण तथा पिष्टपेषित काव्य-रूढ़ियों से मुक्त सरल सीधी अभिव्यक्ति से इस कृति को तमिल साहित्य-इतिहास के आधुनिक चरणों का सूत्रपात करने का श्रेय दिया जाता है। इसके रचयिता 'अरुणाचलक्कविरायर' हैं।

इरुपतां नूट्टांटिटे इतिहासम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

यह आक्कत्तम् (दे०) का प्रसिद्ध खंडकाव्य है। इसका नायक बीसवीं सदी का एक भावुक पुरुष है जो अन्यायों और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए साम्यवादी मार्ग ग्रहण कर लेता है। वैयक्तिक संबंधों, मधुर भावनाओं और मानवीय नैतिकताओं की बलि देते हुए सहस्रों निरीह सहजीवियों को क्रांति की आग में झोंक देने वाले इस आंदोलन से हताश होकर वह बीसवीं सदी के इस सर्वाधिक दुःखद मोहभंग पर आँसू बहाता है।

यह काव्य आदर्शों की चकाचौंध से आकृष्ट होकर सत्यदर्शन के लिए असमर्थ हो जाने वाले मनुष्य का भावपूर्ण और विचारोत्तेजक हृदयालाप है। कवि के अनुसार इस युग के भावुक मनुष्य की कुंठा का मुख्य हेतु मोहक प्रतीत होने वाले साम्यवादी सिद्धांतों की पराजय है। यह काव्य उनके व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों का भी दर्पण है। मलयाळम के आधुनिक काव्यों में इसका स्थान अद्वितीय है।

इर्गप्प हेग्गडेय प्रहसन *(क० कृ०)*

इसके रचयिता वेंकटरमण शास्त्री विघ्नेश्वर शास्त्री सूरि हैं (1852-1892 ई०)। इनका जन्म उत्तर कन्नड़ के कर्कि ग्राम में हुआ। 'इर्गप्प हेग्गडेय प्रहसन' आपके द्वारा रचित एक यथार्थवादी कृति है। इसकी रचना 1887 ई० में हुई। इसमें कन्याविक्रय-प्रथा पर मार्मिक कटाक्ष है। घरेलू बोली में लिखा इतना प्रभावी नाटक कन्नड़ में दूसरा नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में एक ब्राह्मण के द्वारा ऐसी क्रांतिकारी रचना सचमुच एक आश्चर्य है। नाटक में अद्भुत गति है।

इलंगेश्वरन *(त० कृ०)* [रचना-काल—1945-50 ई० के मध्य]

यह तुरैयूरमूर्ति का प्रसिद्ध पौराणिक नाटक है। रामायण पर आधृत इस नाटक में नाटककार ने रावण के चरित्र को सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। तमिलनाडु में द्रविड़ कषग के आंदोलनों ने जनता में रामायण-विरोधी भावनाएँ जगा दी थीं। उस समय समाज में एक ऐसा वर्ग भी था जो जनता की रामायण-विरोधी भावनाओं को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील था। इस वर्ग के व्यक्तियों ने एक ओर रामचन्द्र जी की चारित्रिक दुर्बलताओं का उद्घाटन किया, दूसरी ओर रामायण की कथा में परिवर्तन किए बिना असुर कहे जाने वाले पात्रों के चरित्र का उद्घाटन किया। उन्हें निजी व्यक्तित्व-सम्पन्न मानव के रूप में चित्रित किया।

इस नाटक में नाटककार ने रावण को संतप्त नायक के रूप में चित्रित किया है। इस नाटक के अनुसार रावण का बहनोई अर्थात् शूर्पणखा का पति रावण को एक दुर्घटना से बचाते हुए प्राण त्याग देता है। उस दिन से रावण शूर्पणखा से अधिक प्रेम करने लगता है और भावुक प्रकृति का व्यक्ति बन जाता है। शूर्पणखा की चालबाजियों में आकर ही रावण सीता-हरण जैसा निंदनीय कर्म करता है और समाज की नज़रों में गिर जाता है। इस नाटक में इलंगेश्वरन (लंकाधिपति) का जो चरित्र-चित्रण किया गया है वह यद्यपि तर्कसंगत एवं पूर्ण नहीं तथापि वह द्राविड़ी मूल की भावनाओं और विचारों से विशेष लगाव रखने वाले व्यक्तियों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। इस नाटक का तत्कालीन तमिल नाटकों में विशेष स्थान है। तमिलनाडु में और उसके बाहर भी इसका अभिनय अनेक बार हो चुका है।

इलंगैयरकोन् *(त० ले०)* [जन्म—1915 ई०, मृत्यु—1961 ई०]

इलंगैयरकोन् उपनाम से विख्यात शिवज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरम् का जन्म जाफना (लंका) के एक गाँव में हुआ था। इन्होंने 18 वर्ष की अल्पायु में साहित्य-जगत में प्रवेश किया। कुछ वर्षों तक इन्होंने लंका की सरकारी न्याय-पालिका में कार्य किया। सरकारी कर्मचारी के रूप में इन्हें लंका-भ्रमण का अवसर मिला जिससे इन्हें साहित्य-रचना करने के लिए नवीन विचार भी मिले और प्रेरणा भी। इनकी साहित्यिक कृतियों के तीन वर्ग हैं—अनुवाद, कहानियाँ और नाटक। इन्होंने प्रायः अँग्रेज़ी कहानियों का तमिल में अनुवाद किया है। कुछ रूसी कहानियों का अनुवाद भी किया है। इनकी अनूदित कृतियों का संबंध तमिल साहित्य के पुनरुत्थान-काल (सन् 1935 ई० से—1945 ई० तक) से है। इनकी कहानियों का संग्रह है—वेळ्ळि-पादसरम्। इलंगैयरकोन् ने अनेक अभिनेय नाटकों की रचना की है। इनके नाटक अनेक बार अभिनीत हो चुके हैं। मिस्टर गुहदासन् और माधवी मडंदै नामक इनके दो नाटक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। अपने जीवन-काल में इन्होंने 'वसन्त गान सभै' नामक नाट्य मंडली को प्रोत्साहन दिया था और उसके लिए हरिश्चंद्र कथा पर आधृत एक नाटक लिखा था। लंका में इस नाटक का अभिनय एक सहस्र से अधिक बार हो चुका है। लंका रेडियो ने दो वर्ष से अधिक समय तक इनके रेखाचित्रों का प्रसारण किया था। इन्होंने प्राचीन तमिल काव्यों को आधार बनाकर कुछ नाटकों और एकांकियों की रचना की थी। इलंगैयरकोन् मूलतः कहानीकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में समकलीन जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। लंका में प्राप्त तमिल साहित्य में यथार्थवादी विचार-धारा के समावेश का श्रेय इन्हीं को है। इलंगैयरकोन् लंकानिवासी तमिल कहानीकारों में अग्रगण्य हैं।

इळंगोवडिहळ् (त० ले०) [समय—ईसा की दूसरी शताब्दी]

इळंगोवडिहळ् चेर सम्राट् शेंगुट्टुवन के छोटे भाई थे। शेंगुट्टुवन वैष्णव थे और इळंगो जैन। मूलतः जैन होते हुए भी इळंगो ने सभी प्रकार के धार्मिक बंधनों से मुक्त होकर, उदारतापूर्वक विभिन्न देवी-देवताओं की महिमा का गान किया है। इळंगो की प्रसिद्ध कृति है 'शिलप्पदिकारम्' (दे०)। तमिल का प्रथम महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' पुहारक्कांडम्, मदुरैक्कांडम् और वंजिक्कांडम् नामक तीन कांडों में विभाजित है। इनमें क्रमशः चोल, पांड्य और चेर राज्यों का विस्तृत वर्णन है। इस महाकाव्य के नायक-नायिका कोवलन और कण्णकि हैं। इसमें कवि ने तमिल समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। विभिन्न कांडों में शृंगार, करुणा और वीर रस की अभिव्यंजना हुई है। तमिल विद्वानों द्वारा मान्य साहित्य के तीनों अंगों—इयल (काव्य), इशै (संगीत) और नाडहम् (नाटक, नृत्य)—का इसमें समावेश है। वर्णनात्मक काव्य होते हुए भी शिलप्पदिकारम् प्रगीति-काव्य की विशेषताओं से युक्त है। इसकी भाषा सरस, सरल, और परिष्कृत है। शैली प्रवाहमयी है। कहीं-कहीं लोकगीतों की शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है। शिलप्पदिकारम् पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। तमिल एवं तमिलेत्तर विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यह महाकाव्य अँग्रेज़ी, फ्रेंच और बँगला में अनूदित हो चुका है। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' का आधार यही महाकाव्य है। इळंगोवडिहळ् को तमिल का प्रथम महाकाव्यकार होने का गौरव प्राप्त है।

इलंरपूणर् (त० ले०) [समय—अनुमानतः बारहवीं शताब्दी]

तमिल के व्याख्याताओं या भाष्यकारों की परंपरा बारहवीं शताब्दी से प्रारंभ हुई थी और बारहवीं तथा पंद्रहवीं शती के मध्य में अनेक व्याख्याताओं ने तमिल के कई लक्षण-ग्रंथों और महाकाव्यों की व्याख्याएँ प्रस्तुत की थीं। इळंपूरणर् ऐसे भाष्यकारों में अन्यतम थे। 'तोलकाप्पियम्' पर इनका पूरा भाष्य उपलब्ध हुआ है। 'तोलकाप्पियम् की पाँच उपलब्ध व्याख्याओं में यह सबसे प्राचीन प्रतीत होती है क्योंकि अन्य व्याख्याओं ने इनके मत का उल्लेख किया है। इळंपूरणर् की भाषा सरल, अर्थवान तथा प्रवाहमय है। इन्होंने प्राचीन तमिल के अनेक ऐसे उदाहरण दिए हैं जिनके स्रोत-ग्रंथ अब अनुपलब्ध हैं; अतएव इनकी व्याख्या का शोधात्मक महत्व है। तमिल गद्यशैली के विकास में इनका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

इलबन (उर्दू० कृ०)

इसका लेखक है इब्न-ए-निशाती (दे०)—सत्रहवीं शताब्दी का, कुतुबशाही युग का, प्रमुख कवि जो फ़ारसी भाषा का ज्ञाता और काव्यशास्त्र का पंडित था।

प्रस्तुत रचना फ़ारसी शैली की मसनवी है। इसमें भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह एक प्रेम-कथा है जिसमें तत्कालीन सामाजिक स्थिति, रहन-सहन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीति-रिवाजों का बड़ा सुंदर चित्रण किया गया है।

इळमै विरुंदु (त० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

यह गद्य-ग्रंथ विशेषतः युवकों के प्रति उद्बोधन-भाषणों का संग्रह है। इसके रचयिता हैं स्व० तिरु० वि० कल्याणसुंदर मुदलियार जो पत्रकार, काँग्रेसी नेता, स्वतंत्र चिंतक तथा मज़दूर-संगठनकर्ता आदि के रूप में विख्यात हैं।

प्रस्तुत कृति में तमिल भाषा, प्रदेश एवं सभ्यता का गौरव-वर्णन है जिसके अंतर्गत वर्तमान जीवन के ज्वलंत प्रश्नों—जैसे महिला-सम्मान, शिक्षा-महिमा—का भी विवेचन हुआ है। ये भाषण प्रभावोत्पादक साहित्यिक शैली में लिखे गए हैं। यह कृति विद्यालयों में पाठ्य पुस्तक रही है।

इलहामात-ए-शाद (उर्दू० कृ०)

संपादक—अब्दुल मालिक आरवी। 'शाद' अज़ीमाबादी (दे०) के जीवन-चरित और काव्य-विवेचन से संबद्ध यह कृति एक ऐतिहासिक और साहित्यिक आलोचना की द्योतक है। इसमें 'शाद' से संबद्ध अनेक तथ्यों—यथा बिहार स्कूल, नाम-धाम, जन्म, जन्मस्थान, शिक्षा-दीक्षा आदि के अतिरिक्त उसकी कृतियों, काव्य-प्रतिभा, फ़ारसी कवियों का प्रभाव, उर्दू कवियों से लाभान्विति, सफ़ीर-ओ-शाद, शाद की करुणारस और हास्य रस की शायरी, विस्तृत छंद और शाद की भाषा आदि शीर्षकों के अंतर्गत अनुसंधान—लेख लिखे गए हैं। अंत में कवि की प्रतिनिधि ग़ज़लों को भी इस कृति में संगृहीत कर दिया गया है। इसमें अनेक उदाहरणों के माध्यम से सिद्ध किया गया है कि 'शाद' के काव्य पर हाफ़िज़, रूमी और खुसरो जैसे शीर्षस्थ फ़ारसी कवियों का प्रभाव है। 'शाद' ने अपने काव्य में जो संदेश दिया है। वह यह है कि मनुष्य को परम पिता परमात्मा के प्रति अटल विश्वास रखना चाहिए और उसे अन्य सभी सहारे त्याग देने चाहिए।

इशैनाटकम् (त० पारि०)

यह तमिल साहित्य की नाटक-विधा है जिसमें गीत का प्राधान्य होता है। पाश्चात्य साहित्य की 'ऑपेरा' शैली की यह अनुकृति है। यद्यपि भारत के नाटकों में भी संवादों के अतिरिक्त गीत, पद्य आदि की योजना होती थी किंतु ऑपेरा' की शैली में पात्रों के संवाद के स्थान पर वाद्य-गीत की ध्वनि नेपथ्य में से और किसी व्यक्ति के द्वारा सुनाई जाती है। ग्रीक नाटकों की यह एक शैली थी। फिर सत्रहवीं शताब्दी ई० में इताली में ऐसे गीति-नाट्यों की रचना हुई। पहले शेक्सपियर जैसे नाटककारों की कथावस्तु लेकर प्रेम और युद्ध-प्रधान गीति-नाट्य रचे गए, फिर हास्य-विनोद-प्रधान गीति नाट्य लिखे जाने लगे जिन्हें 'वोदवील्' (vaudeville) कहा गया।

तमिल प्रदेश में भरतनाट्य-पद्धति में रंगमंच पर अभिनयात्मक नृत्य और नेपथ्य में घटना-वर्णन-युक्त गीतों का गायन सम्मिलित रूप में चलता है। यह एक ही व्यक्ति के द्वारा किया जाने वाला विविध प्रकार का अभिनय है किंतु अनेक प्रबंधात्मक गेय पदों का प्रयोग लोगों ने भरतनाट्यम में किया है।

संत त्यागराज-कृत 'प्रह्लादजयम्' तथा 'नौका चरित्रम्' गीति-नाट्य कहे जा सकते हैं (अठारहवीं शती ई०)। उन्नीसवीं शती में गोपालकृष्ण भारती ने 'नंदनार-चरित्रोंरम्' तथा अरुणाचलक्कविराय ने 'रामनाटकम्' गीति-नाट्य शैली में लिखा था। परंतु पाश्चात्य देशों के समान तमिल गीति-नाट्य का विकास नहीं हो सका।

इस्मत चुग़ताई (उर्दू० ले०)

इस्मत चुग़ताई वर्तमान युग की सबसे लोकप्रिय लेखिका हैं। ये जोधपुर की रहने वाली हैं। अलीगढ़ में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी और अब बंबई के फिल्मी जगत में लेखिका के रूप में कार्य कर रही हैं। अपनी पहली ही दो-तीन कहानियों से इन्होंने पाठकों को चौंका दिया था। इनके विषय तथा शैली दोनों में नूतनना पाई जाती है। ये अपनी कहानियों में जीवन की उलझनों को प्रस्तुत करती हैं। मजनूँ गोरखपुरी (दे०) लिखते हैं—'यदि उन्होंने केवल यही दो कहानियाँ ('डायन' और 'बचपन') ही लिखी होतीं तो भी वह उर्दू कहानी में एक नए शीर्षक एवं अध्याय की वृद्धि समझी जातीं'।

इस्मत मध्यम वर्ग के मुसलमान-परिवारों के आंतरिक जीवन की इतनी जानकारी रखती हैं कि इनकी कहानियाँ पढ़कर उस श्रेणी के परिवारों का नैतिक, आर्थिक और मानसिक जीवन आँखों के सामने आ जाता है। यौन-संबंधी यथार्थ चित्रण के कारण इस्मत की प्रारंभिक कहानियों पर अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है। 'पर्दे के पीछे', 'लिहाफ़', 'गेंदा', 'ख़िदमतगार' इस्मत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थवादी कहानियाँ हैं। इनसे लेखिका के एक साहसिक विद्रोही होने का प्रमाण मिलता है। महिलाओं की बोल-चाल, उनका रहन-सहन, उनकी इच्छाओं और कामनाओं का चित्रण इस्मत से अच्छा कोई और नहीं कर सका है। इस्मत ने समाज के ठेकेदारों पर निर्भीक चोटें की हैं। 'कलियाँ', 'चोटें, 'एक बात', 'छुई-मुई' और 'दो हाथ' इस्मत के कहानी-संग्रह हैं।

ईरटि *(मल० पारि०)*

एक द्रविड़ वृत्त। दो चरणों में यह वृत्त पूरा हो जाता है।

ईश्वरचंदर *(सिं० ले०)*

विभाजन के पश्चात् ये स्थायी रूप से अजमेर में रहते हैं और सरकारी विभाग में कार्य करते हैं। सिंधी में इनकी लगभग सौ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'थधा चप' और 'मुअलु माकोड़ो।' इन्होंने अपनी कई कहानियों में प्रतीकों का सुंदर ढंग से प्रयोग किया है। नयी कहानी के क्षेत्र में भी इन्होंने सफल प्रयोग किए हैं। आधुनिक सिंधी कहानी के विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कुछ कहानियों के अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हो चुके हैं।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर *(बँ० ले०)* [जन्म—1820 ई०, मृत्यु—1891 ई०]

राजा राममोहन राय (दे०) ने बँगला गद्य को प्रौढ़ बनाने की दिशा में अनायास जो कार्य किया था, ईश्वर-चंद्र विद्यासागर ने सचेष्ट होकर वही कार्य किया और बँगला गद्य को कैशौर्य की अनिश्चितता तथा अस्थिरता से मुक्त कर उसे पूर्ण साहित्यिक रूप प्रदान किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर उन्नीसवीं शती के बंगाली साहित्यिकों में सबसे अधिक ख्यातिमान व्यक्ति हैं। अपार पांडित्य, दुःख-जयी पौरुष तथा कोमल मन उनके व्यक्तित्व के विविध उपादान हैं। फ़ोर्ट विलियम कालेज में उन्होंने बँगला के प्रधान पंडित (सन् 1841) तथा संस्कृत कालेज में अध्यक्ष (सन् 1850) के रूप में सम्मान के साथ कार्य किया। भाषा, शिक्षा तथा समाज-सेवाव्रती विद्यासागर ने जहाँ 'लोकशिक्षा' के लिए अँग्रेज़ सरकार से विद्यालय खुलवाए, वहाँ विधवा-विवाह के पक्ष में दो पुस्तिकाओं की रचना की और भाषा के क्षेत्र में 'वर्ण परिचय' (1854) तथा 'कथामाला' (1856) की रचना कर हमेशा के लिए बँगला वाङ्मय में अपना स्थान बना लिया।

विद्यासागर की पहली पुस्तक (सन् 1847) 'बेताल पंचविंशति' (दे०) हिंदी 'बेताल पचीसी' से संगृहीत है। उनके अनुवाद 'शकुंतला' सन् 1854 तथा 'भ्रांति विलास' सन् 1856 में प्रकाशित हुए। बँगला परि-देश में शेक्सपियर की 'कामेडी ऑफ़ एरर्स' का यह रूपांतर बहुत ही प्रसिद्ध है। उनका निबंध-संग्रह 'बोधोदय' सन् 1852 में प्रकाशित हुआ जिसमें ऐसा एक भी निबंध नहीं जो मनुष्य के सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक न हो। 'आख्यात मंजरी' (1863-68) में कहानी के द्वारा वक्तव्य को रसोज्ज्वल किया गया है। 'सीतार बनवास' (दे०) (सन् 1860) के उपाख्यान के चयन में विद्यासागर ने भवभूति का आश्रय लिया है। 'प्रभावती संभाषण' एक (सन् 1891) शोकोच्छ्वासपूर्ण पवित्र गद्य-काव्य है। उनकी अपूर्ण 'आत्मजीवनी' सन् 1891 में प्रकाशित हुई जिसकी भाषा आज भी बँगला की आदर्श गद्य भाषा है।

विद्यासागर ने अपने मनुष्यत्व, ओज तथा ज्ञान से बँगला गद्य-साहित्य में अपनी रचनाओं के द्वारा नये युग की प्रतिष्ठा की है।

ईश्वर पेटलीकर *(गु० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

साहित्यकार एवं समाज-सुधारक श्री ईश्वर पेटलीकर पेटली गाँव के निवासी हैं। पटेल जाति के श्री पेटलीकर ने स्व-जाति-सुधार के लिए अथक परिश्रम किया है। 'संसार' नामक पत्रिका का ये संपादन करते हैं। एक प्रखर समाज-सुधारक के रूप में इनकी विशेष ख्याति है।

'जनमटीप', 'लख्यालेख', 'कलियुग', 'भवसागर' 'मारी है या सगड़ी,' 'पंखीनो में अने पाताळ कूवो', 'आशा-पंखी' भा० 1-2, 'तरणा ओथे डुंगर', 'काजळ कोटडी', 'मधलाळ', 'कल्पवृक्ष' आदि उपन्यास 'ताणावाणां', 'मागता', 'काशी नुं करवत', 'पारसमणि', 'चिनगारी', 'लोहीनी सगाई', 'अभिसारिका', लोक सागर ने तीरे-तीरे' आदि रेखाचित्र; जीवनदीप पटलाई ना पेय, कंकु अने कन्या आदि सुधार-संबंधी इनकी रचनाएँ हैं।

इनकी 'जनमटीप' व 'लोहीनी सगाई' बहुत ही प्रसिद्ध लोकप्रिय एवं कलापूर्ण रचनाएँ हैं। लोहीनी सगाई कहानी अंतर्राष्ट्रीय कहानी-प्रतियोगिता में पुरस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हुई है।

ग्राम-जीवन के यथार्थ निरूपण में ये पर्याप्त सफल हुए हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में इन्हें बहुत कौशल प्राप्त है। गुजराती के आंचलिक-साहित्य में तथा समाज-सुधार के क्षेत्र में इनका गौरवपूर्ण स्थान है।

ईसरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1538 ई०, मृत्यु—1618 ई०]

जोधपुर-राज्य के भाद्रेस नामक ग्राम में रोहड़िया चारण-परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम अमरबाई तथा पिता का नाम सूजाजी था। ये संस्कृत भाषा तथा पुराणों के अच्छे ज्ञाता थे। लगभग 40 वर्ष ये जामनगर में रहे थे। इन्होंने डिंगल में 12 ग्रंथों की रचना की है, जिनमें 'हरिरस' तथा 'हालाँझालाँरा कुंडलियाँ' (दे०) अधिक प्रसिद्ध हैं। प्रथम ग्रंथ में भक्ति और द्वितीय में वीरता का चित्रण है। वीर रस और भक्ति का अद्भुत गायक यह कवि राजस्थान में अपनी अनूठी भाव-व्यंजना के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। भाषा पर ईसरदास का सहज अधिकार परिलक्षित होता है।

ईसवीख़ाँ *(उर्दू० ले०)* [समय—अनुमानतः अठारहवीं शती]

दे० 'क़िस्सए-महर अफ़रोज-व-दिलवर'।

ईहामगोई *(उर्दू० पारि०)*

'ईहामगोई' उर्दू-काव्यशास्त्र में अर्थालंकार का एक भेद है। इसका शाब्दिक अर्थ 'वहम में डालना' है। पारिभाषिक दृष्टि से इससे अभिप्राय वह काव्य है जिसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसके दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ समीप का अथवा प्रसिद्ध तथा दूसरा अर्थ दूर का अथवा अप्रसिद्ध होता है किंतु दोनों अर्थ अवसरानुकूल होते हैं। इसके दो भेद 'ईहाम तनासुब' तथा 'ईहाम तज़ार' हैं। 'ईहाम तनासुब' में सादृश्य के कारण वहम होता है तथा 'ईहाम तज़ार' में विरोध या विपरीत अर्थों के कारण।

उग्र, पांडेय बेचन शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1900ई०; मृत्यु—1967 ई०]

मिरज़ापुर ज़िले के चुनार नामक स्थान में जन्मे पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विविध साहित्य-विधाओं के लेखक होते हुए भी मुख्यतः उपन्यासकार के रूप में ही प्रख्यात हैं। 'चंद हसीनों के ख़तूत', 'दिल्ली का दलाल', 'सरकार तुम्हारी आँखों में', 'बुधुआ की बेटी' आदि इनकी कतिपय प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में ये अपने उग्र स्वर तथा यथार्थवादी दृष्टि के लिए प्रख्यात हैं। समाज की अप्रकृत वासनाओं तथा कुत्सित वृत्तियों का निर्ममतापूर्वक पर्दाफ़ाश करने में ये बेजोड़ हैं। सजीव एवं सशक्त पद-विन्यास और व्यावहारिक तथा प्रवाहपूर्ण भाषा-प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं।

उज्ज्वलनीलमणि *(सं० कृ०)* [समय—पंद्रहवीं-सोलहवीं शती]

पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य श्री रूपगोस्वामी (दे०)-कृत 'उज्ज्वलनीलमणि' एक ऐसी महत्वपूर्ण रचना है जिसमें भक्ति-तत्त्व का प्रथम बार सूक्ष्म एवं सैद्धांतिक विवेचन हुआ है। 15 प्रकरणों के इस विशाल ग्रंथ में नायक-भेद, नायक-सहायक-भेद, हरिवल्लभा श्रीराधा, नायिका-भेद, यूथेश्वरी-भेद, दूती-भेद, सखी-भेद, आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव, सात्विक भाव, व्यभिचारी भाव, स्थायी भाव तथा संयोग एवं विप्रलंभ श्रृंगार के विस्तृत विवेचन द्वारा मधुर रस को एक स्वतंत्र रस के रूप में सिद्ध कर उसको भक्तिरसराट् की उपाधि से विभूषित किया गया है। उक्त ग्रंथ में 'उज्ज्वल' शब्द अलौकिक मधुर भक्ति के लिए व्यवहृत किया गया है जिसमें श्रृंगार का पूर्णतः अंतर्भाव दिखाया गया है। 'उज्ज्वल' के साथ 'नीलमणि' शब्द तो है ही घनश्याम श्रीकृष्ण का स्पष्ट वाचक। अतः राधाकृष्ण इस उज्ज्वल रस के आलंबन हैं और ब्रज-वल्लभाएँ उसका आश्रय। उक्त ग्रंथ की दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं—जीवगोस्वामी-कृत लोचनरोचनी, और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत आनंदचंद्रिका या उज्ज्वलनीलमणिकिरण।

उण्णिनीलि *(मल० पा०)*

संदेश काव्यों में 'उण्णुनीलीसंदेशम्' (दे०) का स्थान महत्वपूर्ण है। नायिका उण्णिनीलि है। रचना-काल तथा रचयिता के संबंध में मतभेद है। प्रसिद्ध आलोचक उळ्ळूर् (दे०) का मत है कि इसके रचयिता वटक्कुमकूर्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य के राजा मणिकंठ हैं और उण्णिनीलि उन्हीं की पुत्री है। रचना-काल चौदहवीं शती है। नायिका की विरह-व्यथा तथा नायक के संदेश आदि प्रसंग मर्मस्पर्शी हैं। भक्ति रस के साथ श्रृंगार का पुट कौशल के साथ दिया गया है।

उण्णियच्ची *(मल० पा०)*

मलयाळम के प्रारंभिक चंपूकाव्य 'उण्णियच्चीचरितम्' (दे०) की नायिका उण्णियच्ची (दे०) तिरुमरुतूर मंदिर की देवदासी है और उसका सौंदर्य न केवल इस संसार में प्रसिद्ध है बल्कि उसके दर्शक गंधर्वलोक से भी आते हैं। प्रस्तुत चंपू में ऐसे ही एक गंधर्व का आगमन-वृत्तांत है।

उण्णियच्ची मलयाळम के संस्कृत-प्रभाव काल के आरंभ में केरल में प्रचलित सामंतवादी समाज-व्यवस्था का परिचय देती है। उण्णियाटी, उण्णिच्चितेवी जैसे अन्य पात्र भी इस प्रकार के काव्यों की नायिकाएँ हैं। उण्णियच्ची के चरित्र-चित्रण में श्रृंगार के उदात्त भाव का दर्शन कराना ही कवि का ध्येय रहा है।

उण्णियच्चीचरितम् *(मल० कृ०)*

तेरहवीं सदी ई० के उत्तरार्ध में श्रीकुमान् नामक कवि द्वारा रचित प्रथम मलयाळम चंपू-काव्य। इसमें तिरुमरुतूर मंदिर की देवदासी उण्णियच्ची (दे०) के सौंदर्य के आस्वादनार्थ आने वाले एक गंधर्व की कथा है। इसमें नायिका-वर्णन, नगरवर्णन आदि के अलावा समसामयिक समाज का चित्र भी प्राप्त होता है। मणिप्रवाळ (दे०) शैली के प्राचीन ग्रंथों में इस चंपू का प्रमुख स्थान है।

उण्णुनीलीसंदेशम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल चौदहवीं सदी ई०]

यह मलयाळम का एक प्राचीन मणिप्रवाळ (दे० मणिप्रवाळम्) काव्य है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है और अधिकतर इतिहासकार कवि को ही काव्य का नायक मानते हैं। यक्षिणी के पीड़न के कारण अपनी प्रिया उण्णुनीली (दे०) से विरहित नायक द्वारा अपने मित्र के हाथों भेजा गया संदेश इस काव्य की विषय-वस्तु है। काव्य में त्रिवेन्द्रम् से कट्टुतुरुत्ति तक के प्रदेशों का सुंदर वर्णन है।

'उण्णुनीलीसंदेशम्' 'मेघदूत' (दे०) की शैली में रचित सुंदर संदेश-काव्य है। इसके मार्ग-वर्णन में केरल के अनेक स्थानों, मंदिरों, स्त्री-पुरुषों का इतना स्वाभाविक और चमत्कारपूर्ण वर्णन है कि 600 वर्ष पूर्व के केरल का सजीव चित्र सामने आ जाता है। विरह-व्यथा का चित्रण और संदेश-वाक्य की मार्मिकता भी प्रसंशनीय है। 'उण्णुनीलीसंदेशम्' मलयाळम का एक मुख्य संदेश-काव्य है।

उत्कळ-प्रकृति *(उ० कृ०)*

'उत्कळ-प्रकृति' शशिभूषण राय (दे०) की उत्कलप्राणता एवं सौंदर्यप्रेम की अभिव्यक्ति है। इसका समर्पण भी कलाप्राण शशिभूषण ने उत्कल-जाह्नवी महानदी को किया है। शशिभूषण का प्रकृति के प्रति आत्मिक प्रेम था, इसलिए ये नागरिक जीवन का त्याग कर अपना अधिकांश समय महानदी के निकट प्रसारित, शांत, श्यामल, मनोरम द्वीप 'धवळेश्वर' में अपने निवास-स्थान निभृति-निळय पर बिताते थे। संपूर्ण उड़ीसा का कई बार भ्रमण करने के कारण उड़ीसा की प्रकृति से इनका घनिष्ठ एवं प्रत्यक्ष परिचय था और यही कारण है कि इनके साहित्य में प्रकृति के चित्र इतने प्राणवंत हैं।

'उत्कळ-प्रकृति' में शशिभूषण ने कहा है कि 'प्रकृति-वर्णन के साथ मन के नाना प्रकार के भाव इसमें समाविष्ट हैं। इसमें श्रृंखलाबद्ध चित्रण नहीं है। प्रभात, मध्याह्न, गोधूळि, संध्या, ज्योत्स्ना, अंधकार—इन छह कालों के अनुसरण पर पंद्रह स्थानों के विभिन्न प्राकृतिक दृश्य चित्रित हैं।'

इस पुस्तक के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचा जा सकता है: (1) प्रकृति के साथ लेखक की वास्तविक एवं प्रत्यक्ष अनुभूति, (2) राधानाथ राय (दे०)-साहित्य के प्रकृति-चित्रण का विशदीकरण, (3) दार्शनिक चिंतन तथा जीवन-विश्लेषण, (4) सौंदर्यानुभूति के साथ दर्शन का मधुर समन्वय, (5) कवि-कल्पना तथा गंभीर पांडित्यपूर्ण चिंतन, (6) प्राकृतिक दृश्य-वर्णन तथा भौगोलिक परिवेश के साथ अप्रत्यक्ष रूप से वहाँ के इतिहास का उल्लेख।

सौंदर्य-बोध, आत्मचिंतन, जीवन-विश्लेषण, प्रकृति के रूप का चित्रण, इन सभी बातों की सामूहिक रसपरिणति इस पुस्तक में हुई है। भाषा की गुरुता एवं गांभीर्य, अभिव्यक्ति की स्वच्छता एवं कमनीयता, काव्य-भाषा का आवेग एवं संगीतमयता आदि विशेषताएँ इस पुस्तक के निबंधों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आकर्षण प्रदान करती है। निबंध-साहित्य की कलात्मक परिपाटी, भावों की संयत सुषमा के भीतर से अभिव्यक्ति की मंजुलता का प्रस्फुटन, चिंतन की स्वच्छता के साथ आत्म-प्रकाशन का गुरु-गंभीर परिवेश आदि बातें शशिभूषण की गद्य-शैली की विशेषताएँ हैं।

उत्तम *(सिं० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। इनका पूरा नाम आसन जेठानंद उत्तमचंदाणी है, परंतु ये 'उत्तम' उपनाम से ही लिखा करते हैं। इन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सिंधी साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा को लाने वाले साहित्यकारों में इनका मुख्य स्थान है। ये सिंधी में प्रगतिशील साहित्यकारों के मासिक मुखपत्र 'नई दुनिया' के संपादक हैं, जो बम्बई से प्रकाशित होता है। इन्होंने निबंधकार, आलोचक और पत्रकार के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त की है। इनकी प्रमुख मौलिक रचनाएँ हैं—सरहद जो गांधी (1945), नओं चीन (1953), सोवियत सर्गु (1954), भारत-रूस दोस्ती (1965)। भारत में स्वातंत्र्योत्तर सिंधी साहित्य के विकास पर इनके आलोचनात्मक निबंधों का संग्रह हाल ही में 'सिंधी साहित्य' नाम से प्रकाशित हो चुका है। ये अपनी पत्रिका द्वारा कई नए सिंधी लेखकों को प्रोत्साहित कर उन्हें सिंधी साहित्य के क्षेत्र में लाने में सफल हुए हैं। भारत और पाकिस्तान के सिंधी साहित्य के बीच संपर्क स्थापित करने में इन्होंने प्रशंसनीय प्रयत्न किए हैं। संप्रति ये बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'सिंध समाचार' दैनिक सिंधी समाचारपत्र के सहयोगी संपादक के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। सिंधी साहित्य के विकास में इनकी देन हमेशा याद रहेगी।

उत्तमचंदाणी, सुंदरी *(सिं० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है और इन्होंने एम०ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। इन्होंने सन् 1947 में सिंधी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया था और थोड़े ही समय में ये सिंधी साहित्य में प्रमुख स्थान प्राप्त करने में सफल हो गईं। सिंधी उपन्यास और कहानियों के क्षेत्र में इनका योगदान अविस्मरणीय है। इन्होंने दो उपन्यास लिखे हैं—'किरन्दड़ दीवारूं' (1953) और 'प्रीति पुराणी रीति निराली' (1956)। इन दोनों उपन्यासों ने काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। पहले उपन्यास के उर्दू, हिंदी और बँगला भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने लगभग 100 कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें से कई का सिंधी में ऊँचा स्थान है। ये भी अपने पति 'उत्तम' (दे०) की तरह प्रगतिशील विचारधारा में विश्वास रखती हैं। इनकी रचनाओं में प्रगतिवाद के सिद्धांतों की झलक यत्र-तत्र मिल जाती है। कोमल मनोभावों को मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिव्यक्त करने में ये सिद्धहस्त हैं। इनकी अधिकांश रचनाओं में सिंधियों की घरेलू ज़िंदगी और विभाजन के पश्चात् भारत में सिंधी समाज की समस्याओं के वास्तविक और सजीव चित्र मिलते हैं। इन्होंने कुछ एकांकी नाटक भी लिखे हैं, परंतु इन्हें उपन्यास और कहानी-लेखिका के रूप में ही अधिक ख्याति प्राप्ति हुई है।

उत्तरकुमार *(क० पा०)*

'कुमारव्यास भारत' (दे०) कन्नड़ साहित्य की निधि और प्रतिनिधि कृतियों में से है। वह उज्ज्वल चरित्रों का एक महान कांतार है किंतु उसमें गंभीर चरित्र ही नहीं, उत्तरकुमार जैसे हास्य-प्रधान चरित्र भी हैं। कुमारव्यास ने प्रत्येक चरित्र के पीछे कोई तत्त्व देखा है। यदि भीम वीरत्व का पुरुष-रूप है तो द्रौपदी उसका नारी-रूप। उत्तरकुमार वाग्वीरता का प्रतीक है। इस प्रकार उसके प्रमुख पात्र किसी गुण या रस की साकार मूर्तियाँ हैं। फिर भी वे केवल प्रतिनिधि नहीं हैं, उनमें मनुष्य-सहज वैयक्तिक रागद्वेष आदि का अत्यंत मार्मिक स्वाभाविक चित्रण मिलता है। प्रो० बेंद्रे (दे०) के अनुसार कुमारव्यास का 'उत्तर' कन्नड़ साहित्य की अद्वितीय कृति है। उत्तर अपूर्व है। वह अंतःपुर में बैठा स्त्रियों के साथ अपनी सामर्थ्य की डींग हाँकता रहता है। उसे केवल इस बात की चिंता है कि उसके योग्य साथी नहीं है अन्यथा वह देवेंद्र को भी हरा सकता था, कौरव किस खेत की मूली हैं! किंतु उसके पौरुष के निकष-रूप में बृहन्नला उसका सारथी बनने के लिए तैयार हो जाता है। जब वह युद्ध-क्षेत्र में जाता है तो सागर-सदृश अपार सेना देखकर उसके छक्के छूट जाते हैं। वह थरथर काँप उठता है, रथ से कूद कर भागने लगता है। अंत में वह स्वयं अर्जुन का सारथी बनता है। इस तरह उत्तर अपने आचरण एवं वाणी के द्वारा हास्य की धारा बहाता है। कुमारव्यास की इस अद्भुत चरित्रचित्रण-कला के कारण उत्तर कर्णाटक के लोगों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय में बैठ गया है। 'उत्तरु पंथ' 'उत्तरप्रतिज्ञा' कन्नड़ में एक कहावत बन गई है।

उत्तररामचरित *(सं० कृ०)* [समय—आठवीं शताब्दी]

'उत्तररामचरित' भवभूति (दे०) की अत्यंत प्रौढ़ नाट्यकृति है।

सात अंक के इस नाटक में रामचरित के उत्तरार्द्ध भाग का विनियोग किया गया है। राम के वन से वापस लौटने से लेकर सीता-परित्याग तक की, एवं उनको अयोध्या लाने के पुनर्प्रयास आदि की घटनाएँ, कुछ कल्पना-प्रसूत घटनाओं के साथ बड़ी कुशलता के साथ पिरो दी गई हैं।

'उत्तररामचरित' की कथावस्तु में नाटकीय प्रविधि तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भवभूति के अन्य दो नाटकों की अपेक्षा अधिक परिपक्वता एवं प्रौढ़ता है। यद्यपि इसका स्रोत 'रामायण' (दे०) का उत्तरकांड है, पर भवभूति ने उस कथा को नाट्यानुकूल बनाने के लिए अनेक मौलिक परिवर्तन किए हैं। वाल्मीकि (दे०) की राम-कथा विषादोन्मुखी है क्योंकि उसका अंत परित्यक्ता सीता के पातालगमन से होता है जबकि भवभूति ने इसे हर्षोन्मुखी बनाने की चेष्टा की है। प्रथम अंक में चित्रदर्शन का दृश्य, दूसरे में राम का पुनः दण्डकारण्य में आना तथा वनदेवता बासंती (दे०) से भेंट करना, तीसरे में छाया-सीता की सृष्टि तथा सातवें के गर्भांक-दृश्य आदि सभी भवभूति की मौलिक उद्भावनाएँ हैं।

भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में बेजान पत्थरों तक को रुला दिया है (अपि ग्रावा रोदित)। इसी से नाटक की सफलता का अनुमान किया जा सकता है। इस कृति में इनकी नाट्य एवं काव्यप्रतिभा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। वस्तुतः उनका कवि उनके नाटककार पर हावी हो गया है, इसीलिए कतिपय आलोचक इसमें नाट्य-व्यापार की कमी महसूस करते हैं। भवभूति एक गंभीर एवं भावुक कलाकार थे—यही कारण है कि 'उत्तररामचरित' एक गीति-नाट्य बन गया है। काव्य-कला की दृष्टि से यह निस्संदेह भवभूति की सर्वश्रेष्ठ कृति है पर इसमें भी इनका कला-पक्ष प्रधान है। चरित्रचित्रण में भवभूति सिद्धहस्त हैं। अपनी गंभीर प्रकृति के अनुरूप ही इन्होंने राम और सीता जैसे पावन चरित्रों को अपने इस रूपक के लिए चुना है जो इनकी लेखनी के सहारे और भी ऊँचे हो गये हैं। भवभूति दाम्पत्य प्रणय के पवित्र आदर्श एवं जीवन की उदात्तता के पक्षधर हैं; अतः अपने पूर्ववर्ती अन्य नाटककारों की अपेक्षा यह मुक्त प्रणय की ओर उन्मुख नहीं होते। 'उत्तररामचरित' में भवभूति के पांडित्य, प्रतिभा तथा अनुभूति का समुचित समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

उत्तररामायणमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती का आरंभ]

यह कंकटि पापराजु (दे०) द्वारा रचित आठ आश्वासों में विभक्त 3000 गद्य-पद्यों से युक्त रचना है। प्रबंधकाव्य-शैली के अनुरूप विविध वर्णनों से युक्त इस काव्य में शृंगार, वीर और करुण रसों का निर्वाह हुआ है। संवाद-चातुर्य में पापराजु ने अपनी विशिष्टता का प्रदर्शन किया है। राम, लक्ष्मण, सीता और वाल्मीकि का चरित्र-चित्रण भी सजीव तथा प्रभावशाली हुआ है।

इस काव्य में सीताजी के शोक का वर्णन अत्यंत हृदयद्रावक है और इसी कारण से यह काव्य यशस्वी बना हुआ है।

उत्तरहरिवंशमु *(तें० कृ०)*

'उत्तरहरिवंशमु' काव्य के रचयिता नाचन सोमन्ना (दे०) महाकवि थे जो चौदहवीं शती ई० के मध्य काल में विद्यमान थे। इनके समय के संबंध में पंडितों में भारी मतभेद है परंतु अधिकांश यह मानते हैं कि ये एर्राप्रग्गड (दे०) महाकवि के या तो समकालीन थे या निकट पश्चाद्वर्ती। इनकी अन्य काव्यकृतियों में 'वसंतविलासमु' नामक काव्य का स्मरण किया जाता है परंतु वह उपलब्ध नहीं हो सका। अतः सोमन्ना महाकवि का यशस्तंभ 'उत्तरहरिवंशमु' महाकाव्य ही है।

'उत्तरहरिवंशमु' नाम से यह 'हरिवंश' काव्य का उत्तर भाग-सा लगता है परंतु अब तक यह पता नहीं चला कि इसका आधारभूत संस्कृत ग्रंथ कोई है अथवा नहीं। उपलभ्यमान संस्कृत 'हरिवंश' तथा इस काव्य की कतिपय कथाओं में आनुपूर्विका में भारी अंतर दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, हंसडिभक उपाख्यान संस्कृत हरिवंश में ग्रंथांत में है तो इसमें चतुर्थ आश्वास में है। कुछ विद्वानों के अनुसार सोमन्ना ने 'पूर्वहरिवंशमु' की भी रचना की थी जो कालकव-लित हो चुका है परंतु इस विचार के पीछे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। अतः यही मानना उचित होगा कि कवि ने 'हरिवंश' के कुछ रोचक प्रसंगों को लेकर अपनी मौलिक प्रतिभा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर काव्य की सर्जना की। चूँकि एर्राप्रग्गड की कृति 'हरिवंश' नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी और उसकी कृति बाद की है, इसलिए कवि ने अपने काव्य को 'उत्तरहरिवंशमु' नाम से अभिहित किया होगा। अस्तु।

उपलब्ध काव्य में छह आश्वास हैं। प्रथम आश्वास में नरकासुरवध का ओजस्वी वर्णन है। परवर्ती कवि बम्मेर पोतन्ना (दे०) ने अपने 'महाभागवतमु' (दे०) महाकाव्य में सोमन्ना के अनुकरण पर कई छंद लिखे— विशेषकर वे छंद उल्लेखनीय हैं जिनमें सत्यभामा युगपद्भाव से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण तथा वैरी नरकासुर की ओर देखते हुए युद्ध करती हैं। इन छंदों में श्रृंगार तथा वीर रसों की आयोजना युगपद् भाव से हुई है जो किसी भी साहित्य के लिए गर्व का कारण हो सकती है। सत्यभामा को तेलुगु साहित्य में एक गरिमामंडित स्थान प्रदान करने का श्रेय सर्वप्रथम नाचन सोमन्ना ही को है। द्वितीय आश्वास में विप्रकुमार रक्षण की कथा प्रधान है। तृतीय में पोण्डक वासुदेव की, चतुर्थ आश्वास में हंसडिंभक की कथा, पंचम आश्वास में उषा तथा अनिरुद्ध की कथा एवं षष्ठ आश्वास में बाणासुर तथा श्रीकृष्ण का युद्ध, शिवकेशव युद्ध आदि प्रधान रूप से अभिवर्णित हुए हैं। इस आश्वास में शिवज्वर का प्रयोग वैष्णवों पर तथा विष्णुज्वर का प्रयोग शैवों पर किया गया है जिससे तत्कालीन शैव-वैष्णव धर्मों के पारस्परिक संघर्ष का पता चलता है।

काव्य में सम्यगवलोकन से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं : 1—काव्य में अनिवार्य रूप से युद्धों का वर्णन प्रत्येक आश्वास में किया गया है जिससे काव्य में ओज-गुण तथा वीररस का प्राधान्य हो गया है। काव्यशैली की दृष्टि से भी सारा काव्य ओजपूर्ण है। कवि की समास-भूयिष्ठ रचना से यह तथ्य प्रमाणित होता है। 2—इनकी पदयोजना निराली है जिससे भाषा पर इनका अधिकार स्पष्ट होता है। 3—विचारधारा की दृष्टि से ये हरिहर-नाथीय अद्वैत भावना के थे, अतएव अपनी कृति का समर्पण हरिहरनाथ के चरणों में किया था। 4—तेलुगु में चित्र-कविता के छंद इन्होंने सर्वप्रथम लिखे। अतः ये तेलुगु के चित्रकविता-प्रवर्त्तक माने जा सकते हैं।

वास्तव में नाचन सोमन्ना तेलुगु साहित्य के इतिहास में ऐसे समय आये थे जब पौराणिक कविता को छोड़कर प्रबंध कविता-द्वार में तेलुगु कविता-कन्या पदार्पण करने वाली थी। 'उत्तरहरिवंशमु' काव्य के द्वारा प्रवेशमार्ग प्रशस्त हो सका।

उत्ति *(त० पारि०)*

तमिल भाषा के प्राचीनतम लक्षण-ग्रंथ 'तोल्-काप्पियम्' के अंतिम अध्याय 'मरपियल्' में तमिल भाषा एवं साहित्य की परंपरा में मानी गयी कुछ रूढ़ बातों पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें से एक 'नूल्' अर्थात् शास्त्रीय ग्रंथ के बारे में है। 'नूल्' ग्रंथों की दो विधाएँ— मूल एवं अनुवर्ती—मानी गयी हैं। 'नूल्' के विशिष्ट लक्षण बताए गए हैं कि वह सूत्र एवं सुबोध व्याख्या-शैली में दस दोषों से रहित तथा बत्तीस 'उत्तियों' से युक्त हो।

'मरपियल्' के अंतिम सूत्र 110 में बत्तीस 'उत्तियों' की सूची मिलती है। 'उत्ति' संस्कृत पारिभाषिक शब्द 'तंत्र-युक्ति' का तद्भव रूप है। महाविद्वान् रा० राकवैयंकार् ने (तमिळवरलारु, पृ० 321-3) इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित तंत्र-युक्तियों के साथ तमिल 'उत्तियों' की प्रायः एकरूपता है। बत्तीस में से अट्ठाइस 'उत्तियाँ' कौटिल्य की युक्तियों से अभिन्न मालूम होती हैं। ये अधिकरण, विधान, उद्देश्य, निर्देश, अर्थापत्ति, अनागतावेषण, अधिक्रांतवेषण, अपवर्ग, उपमान, एकांत, उपदेश, प्रसंग, अनुमत, प्रदेश, स्वसंज्ञा, संशय, योग, नियोग, विकल्प, समुच्चय, उत्तरपक्ष, पूर्वपक्ष, व्याख्या, विपर्यय, वाक्यशेष, अतिदेश, अपदेश तथा ऊहा हैं। इसकी संभावना भी है कि 'तोल्काप्पियम्' और 'अर्थशास्त्र' दोनों रचनाएँ एक और मूल परंपरा की ऋणी हैं जो आज लुप्त हो चुकी हो।

उत्पल *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः नवीं शताब्दी]

काश्मीर शैवदर्शन के आचार्यों में उत्पल का प्रमुख स्थान है। ये आचार्य सोमानंद (दे०) के पुत्र एवं शिष्य थे। वास्तव में शैवागम-शास्त्र को दर्शन के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय सोमानंद को ही है। इन्हीं के चरणों में बैठकर उत्पल ने इस शास्त्र का अध्ययन किया, अतः आगे चलकर इन्होंने अपने ग्रंथों में इस शास्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा की। वस्तुतः इस शास्त्र को 'प्रत्यभिज्ञा' नाम इन्होंने ही दिया।

इनके द्वारा रचित ग्यारह ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। उनमें से प्रमुख हैं—(1) ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-कारिका, (2) ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-वृत्ति, (3) ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-टीका, (4) स्तोत्रावली, (5) परमेशस्तोत्रावली। उक्त सभी कृतियों की विषयवस्तु प्रायः एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इनमें भगवान शंकर के गुणों की महिमा का बड़े सुंदर ढंग से बखान किया गया है। इन पद्यों के भाव अत्यंत उच्चकोटि के हैं। भगवान शंकर से संपर्क रखने वाली न्यूनातिन्यून वस्तु भी कवि को प्रिय है, पर उनके संबंध से रहित किसी भी वस्तु के प्रति उनके हृदय में कोई आकर्षण नहीं। दार्शनिक कृतियों में शिवस्तवन के साथ ही साथ शिवाद्वैतवाद का गंभीर विवेचन किया गया है। इनकी विशेषता एवं गंभीरता से हम तब परिचित होते हैं जब उन पर अभिनवगुप्त (दे०) आदि परवर्ती विद्वानों की विशद व्याख्याएँ पढ़ते हैं।

उत्पलदत्त *(बँ० ले०)*

आधुनिक बँगला रंगमंच के नाट्य-निदेशक एवं यशस्वी अभिनेता उत्पलदत्त की ख्याति एक अच्छे नाट्यकार के रूप में भी काफ़ी है। साम्यवादी चेतना-संपन्न नाट्यकार के रूप में उन्होंने जहाँ यथार्थ जीवन के सुख-दुःख, आशा-निराशा तथा गहरी वेदना को रूप दिया है वहाँ मानवीय धरातल पर आस्था और विश्वास की बात कहना भी नहीं भूले हैं। उनके प्रसिद्ध नाटकों में 'छायानट', 'अंगार' 'फेरारी फौज' 'कल्लोल' 'टिनेर तलबार' आदि उल्लेखनीय हैं।

'छायानट' में लेखक ने सिनेमा में काम करने वाले नायक-नायिका तथा अन्य अभिनेताओं की आशा-आकांक्षा, प्रेम-वंचना को कौतुक रस में डुबोकर इस ढंग से व्यक्त किया है कि कहानी में अंतर्निहित वेदना के स्वर को पहचानने में कठिनाई नहीं होती। उत्पलदत्त को 'अंगार' नाटक के लिए सर्वाधिक ख्याति मिली है। आसनसोल की कोयला-खानों में काम करने वाले खनिकों के जीवन के यथार्थ को इसमें बड़ी निर्ममता के साथ प्रकट किया गया है। परिच्छन्न चेतना, मर्मलब्ध जीवन-बोध एवं वैज्ञानिक दृष्टि-भंगी का बहुत ही सुंदर परिचय इस नाटक में मिलता है। 'फेरारी फौज', 'कल्लोल', 'बर्गी एल देशे', 'अजेय बियेतनाम', 'तीर' आदि नाटकों में लेखक ने राजनीतिक धरातल पर अपने साम्यवादी विचारों की अभिव्यक्ति की है। ये नाटक सरल प्रभविष्णु बन पड़े हैं।

हाल के उनके 'ठिकाना' नाटक में बाँगला देश की उत्पीड़ित जनता की चेतना के विभिन्न स्तरों की अभिव्यक्ति की गई है। इधर का उनका सबसे प्रसिद्ध नाटक है 'टिनेर तलबार'। उत्पलदत्त के नाटकों में जनता की जीवंत चेतना का स्पंदन ही मुख्य है।

उदयन *(सं० पा०)*

संस्कृत-साहित्य में उदयन का नाम अनेक कृतियों में नायक के रूप में आया है। भास (दे०) के 'प्रतिज्ञा-यौगंधरायण' (दे०) एवं 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) नामक नाटकों का नायक उदयन ही है। 'श्रीहर्ष' (दे०)-रचित 'रत्नावली' नाटिका का भी नायक उदयन ही है। इनके अतिरिक्त कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) एवं बाणभट्ट की 'कादंबरी' (दे०) में भी उदयन का उल्लेख हुआ है। सोमदेव-कृत 'कथासरित्सागर' (दे०) एवं क्षेमेंद्र (दे०) की 'वृहत्कथामंजरी' (दे०) में उदयन एवं वासवदत्ता के प्रणय की कहानी कही गई है।

उदयन वत्स का राजा था जिसकी राजधानी कौशांबी थी। वह एक उच्चकोटि के वीणावादक साहसिक युवक के रूप में सामने आता है जिसे हाथियों को पकड़ने का बड़ा शौक है—यहाँ तक कि वह प्रसिद्ध मालव-नरेश प्रद्योत के द्वारा पकड़वा लिया जाता है। वहीं कारागार में इसके पास प्रद्योत की अनिंद्य सुंदरी पुत्री वासवदत्ता को वीणा सीखने के लिए भेजा जाता है जिसकी परिणति प्रेम में हो जाती है और दोनों किसी तरह निकल भागते हैं।

उदयन का दूसरा विवाह मगधराज की पुत्री पद्मावती से भी होता है जिसे वह वासवदत्ता की प्रचारित मृत्यु के कारण स्वीकार करता है। पर वासवदत्ता को भुला नहीं पाता।

उदयन के चरित्र की विशेषता उसके प्रति मंत्रियों की असीम आस्था से प्रकट होती है। यौगंधरायण (दे०) एवं समण्वान उसके लिए प्राणोत्सर्ग करने को सतत प्रस्तुत रहते हैं। भास और श्रीहर्ष की लेखनियों से उदयन के चरित्र का चित्रण प्रखर प्रेमी के रूप में हुआ है। राजा होते हुए भी वह शंकालु स्वभाव का नहीं है। यही कारण है कि उसके परिजन अत्यंत विश्वासपात्र हैं। प्रेम और विश्वास की कहानी ही उदयन की कहानी है।

उदयनाचार्य *(सं० ले०)* [स्थितिकाल—1000 ई०]

उदयनाचार्य का जन्म मिथिला के 'करिओन' नामक ग्राम में हुआ था और उदयनाचार्य रचित ग्रंथों में प्रमुख 'तात्पर्यटीका' पर 'तात्पर्यटीका-परिशुद्धि', 'किरणावली' (दे०), 'न्यायकुसुमांजलि' तथा 'आत्मतत्त्वविवेक' हैं। उदयनाचार्य की 'न्यायकुसुमांजलि' पर वर्धमान की 'प्रकाश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीका' तथा रुचिदत्त की 'मकरंद टीका' (जो प्रकाशटीका की टीका है)—दो अत्यंत महत्वपूर्ण टीकाएँ भी लिखी गई हैं।

आचार्य उदयन ने 'आत्मतत्त्वविवेक' के अंतर्गत बौद्ध सिद्धांतों का खंडन किया है। इस ग्रंथ में इस उद्‌भट विद्वान ने आत्मा-संबंधी न्यायदर्शन-सम्मत सिद्धांत की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है। 'न्यायकुसुमांजलि' एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में उदयनाचार्य ने ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'न्याय-कुसुमांजलि' के अंतर्गत भी बौद्धों का खंडन किया गया है। उदयनाचार्य के ग्रंथों की भाषा-शैली वैज्ञानिक होते हुए भी दुरूह ही है।

उदयभान, जगत्सिंह *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गड आला पण सिंह गेला' (गढ़ तो जीत लिया पर सिंह मर गया) के ये पात्र परस्पर-विरोधी हैं। उदयभान उन स्वार्थी, सुखलोलुप राजपूत सरदारों का प्रतिनिधि है जो सांसारिक वैभव एवं सुख के लिए अपना धर्म त्यागने और मुसलमान बनने में संकोच नहीं करते थे। इसके विपरीत जगत्सिंह उन निष्ठावान राजपूतों का प्रतीक है जो भारी से भारी संकट, क्लेश और दुःख झेलने को प्रस्तुत थे, पर धर्म-परिवर्तन करने के लिए सहमत नहीं होते थे। कदाचित् धर्मांतरित और निष्ठावान राजपूतों में भेद बताने और जगत्सिंह जैसे वीर, निष्ठावान क्षत्रियों का अभिनंदन करने के लिए ही इन दो पात्रों की सृष्टि की गयी है। उदयभान ऐतिहासिक पात्र है। धर्म-परिवर्तन के बाद औरंगज़ेब ने उसे सिंहगढ़ का किलेदार बना दिया था। इसके विपरीत जगत्सिंह काल्पनिक पात्र है। वह उपन्यास की नायिका कमलकुमारी (दे०) की सहेली देवलदेवी का पति है; निष्ठावान, देशभक्त, जाति और धर्म के लिए मर मिटने वाला शूरवीर है तथा कमलकुमारी और ताना जी की समय पर सहायता करता है। अपनी पत्नी देवलदेवी के आत्मघात कर लेने पर स्वयं भी प्राण त्याग देता है। अतः उसके रूप में एक आदर्श राजपूत वीर की प्रतिष्ठा की गयी है।

उदयम् (त० कृ०) [रचना-काल—1969 ई०]

'उदयम्' जी० अप्पुलिंगम् 'कलैवाणन्' कृत एक कथाकाव्य है। 29 कथाखंडों में विभाजित इस कथाकाव्य में युगपुरुष महात्मा गांधी का जीवन-चरित प्रस्तुत किया गया है। काव्य का आरंभ बड़े नाटकीय ढंग से हुआ है। कवि ने यथास्थान भारतीय महापुरुषों, वेदादि प्राचीन कृतियों तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गौरव-गान किया है। कथा की पृष्ठभूमि में भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम से संबंधित विविध घटनाएँ प्रस्तुत हैं जिससे यह काव्य अत्यंत प्रभावशाली हो उठा है। इसमें कवि ने अपनी देश-भक्ति और गांधीवादी विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति की है। इसमें इतिहास एवं कल्पना का अपूर्व समन्वय हुआ है। प्रकृति के अनेक सुंदर चित्र हैं। 'उदयम्' में भावानुकूल सरल भाषा का प्रयोग है। भाषा में संगीतात्मकता का गुण है। यह कृति 'विरुतप्पा' छंद में रचित है। विभिन्न स्थलों पर रूपक-तत्त्व का प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से कवि गांधीजी के जीवन-चरित को प्रस्तुत करने के साथ-साथ भारतवासियों में देश-प्रेम की भावना को जगाने में सफल हुआ है।

उदात्त तत्त्व *(हिं० पारि०)*

'उदात्त तत्त्व' प्रसिद्ध प्राचीन यूनानी आचार्य लांजाइनस द्वारा प्रतिपादित काव्य-तत्त्व 'सब्लाइम' का हिंदी रूपांतर है। यों 'उदात्त' पाश्चात्य रीतिकारों द्वारा निरूपित काव्य के चार मूलभूत भावों में भी है—अन्य भाव हैं सुंदर, करुणा और हास्य; किंतु साहित्यालोचन में उदात्त तत्त्व का आशय प्रायः लांजाइनस-प्रतिपादित काव्य-तत्त्व विशेष ही होता है। लांजाइनस ने उदात्त तत्त्व का निरूपण अपने ग्रंथ 'पेरिइप्सुस' में किया है जो अँग्रेज़ी में 'ऑन द सब्लाइम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। मूल ग्रंथ का अब केवल दो-तिहाई अंश ही उपलब्ध है। यद्यपि इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय उदात्त शैली के आधारभूत तत्त्वों का ही विश्लेषण है तथापि विवेचन-क्रम में उनकी उदात्त-तत्त्व-विषयक अवधारणा भी बहुत स्पष्टता के साथ उभरी है।

लांजाइनस ने यद्यपि उदात्त की कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं दी, तथापि उनके विवेचन से यह स्पष्ट है कि उदात्त से उनका तात्पर्य मूलतः भव्य, गरिमापूर्ण एवं समुन्नत भाव ही था। अपने ग्रंथ के आठवें परिच्छेद में उन्होंने औदात्त्य के पाँच विधायक तत्त्वों का निरूपण किया है। इनमें से प्रथम दो उसके अंतरंग से संबद्ध हैं तथा शेष तीन अभिव्यंजना-शिल्प से। लांजाइनस अंतरंग तत्त्वों में विचारगत भव्यता को सर्वाधिक महत्व देतेहैं। दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतरंग तत्त्व है आवेगों का उद्दाम और प्रेरणास्फूर्त चित्रण। शैलीगत तत्त्वों में सर्वप्रथम है भव्य अलंकार-विधान; द्वितीय के अंतर्गत उपयुक्त शब्द-चयन एवं रूपक आदि अलंकरण-सामग्री से युक्त गरिमामयी काव्य-भाषा का प्रयोग आता है तथा उदात्त का अंतिम तत्त्व है समुन्नत और भव्य रचना-विधान। लांजाइनस ने काव्य में औदात्त्य के कुछ विघातक तत्वों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं : बचकानापन, चपलता, भव्यता एवं अनुशासन का अभाव और क्षुद्र अभिव्यक्ति आदि। रुचिहीन वाग्विस्तार और भावों एवं शब्दों के आडंबर को भी उन्होंने शैली के औदात्त्य का विघातक माना है। वे उदात्त काव्य-रूप को ही श्रेष्ठ मानते थे। इसके महत्व को रेखांकित करने के लिए ही उन्होंने एक अन्य काव्य-रूप 'उपहास्य' ('ल्यूडीक्रस') का विवेचन किया है जो उनकी दृष्टि में अत्यंत निकृष्ट है।

भारतीय काव्यशास्त्र में उदात्त तत्त्व का यथावत् विवेचन तो नहीं है, तो भी नायक (दे० नेता) के धीर एवं उदात्त चरित्र की कल्पना, वीर और अद्भुत रसों के उदात्त स्वरूप तथा ओजगुण आदि में औदात्त्य का अभाव नहीं है। 'उदात्त' अभिधान का एक प्राचीन गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूलक अर्थालंकार भी है जिसकी स्थिति मम्मट (दे०) के अनुसार वस्तु की समृद्धि और महान् व्यक्तियों के समायोग के चित्रण में होती है।

उदारन् *(त० पा०)*

उदारन् भारतीदासन् (दे०)-कृत पुरट्शि कवि नामक कथाकाव्य का नायक है। वह नायकोचित नाना गुणों से संपन्न है। नायिका अमुदवल्ली (दे०) के शब्दों में यह 'शब्दों का कुशल प्रयोक्ता' है। इसका तमिल-भाषा-प्रेम उल्लेखनीय है। ज्ञानी होने के नाते यह सहसा अमुदवल्ली के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाता है। धीरे-धीरे उनके प्रेम का विकास होता है। अमुदवल्ली और उदारन् के प्रेम के विषय में जानकर राजा कुपित होता है और दोनों को प्राणदंड का आदेश दे देता है। मरने के पूर्व उदारन् जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिए एक प्रभावशाली भाषण देता है। इसका यह भाषण शेक्सपियर-कृत नाटक 'जूलियस सीज़र' में मार्क एंटनी के भाषण के समान अत्यंत प्रभावशाली है। उदारन् प्रजातंत्र की स्थापना के लिए जनता को राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति करने की प्रेरणा देकर प्राण त्यागने के लिए तैयार होता है। अंत में इसका स्वप्न पूर्ण होता है। राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना हो जाती है। उदारन् वस्तुतः क्रांतिकारी कवि भारतीदासन् का प्रतिरूप है। इसके माध्यम से कवि ने अपनी क्रांतिकारी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

उदाहरण वाङ्मयमु *(ते० पारि०)*

लघुकाव्यों के अंतर्गत आने वाला 'उदाहरण' संस्कृत में बहुत कम पाया जाता है। पालकुरिकि सोमन के 'बसवोदाहरण' के साथ तेलुगु में उदाहरण-काव्य का आरंभ होता है। आंध्र के विद्यानाथ (दे०) नामक आलंकारिक ने अपने संस्कृत लक्षण-ग्रंथ 'प्रतापरुद्रीयम्' में इसका समग्र लक्षण भी दिया है। इसका लक्षण इस प्रकार है— सातों नाम-विभक्तियों के लिए अलग-अलग एक-एक, संबोधन के लिए एक, सातों विभक्तियों के लिए समष्टि में एक तथा अंत में कृति और कृतिकार के बारे में एक— इस तरह कुल दस भाग रहते हैं। इसमें वर्णिक तथा मात्रिक छंदों का मिश्रण है। नाम-विभक्ति वाले प्रत्येक भाग में क्रमशः एक वर्ण-छंद, कलिका, उत्कलिका नामक दो मात्रिक छंद रहते हैं। वर्ण-छंद के अंत में, कलिका के प्रत्येक चरण के अंत में तथा उत्कलिका के अंत में नाम-विभक्ति रखी जाती है। उपलब्ध तेलुगु उदाहरण अधिकांशतः भक्तिपरक अथवा स्तुतिपरक हैं। इस प्रकार की रचना की विशेषताएँ ये हैं—नाम-विभक्तियों की योजना से क्रमबद्धता तथा शब्दालंकार संबंधी-श्राव्यता, ताल-प्रधान मात्रिक-छंदों के प्रवेश से साहित्य तथा संगीत का समन्वय और संक्षिप्तता। तेलुगु साहित्य में 'बसवोदाहरण', 'वेंकटेश्वरोदाहरण' आदि देवस्तुतिपरक तथा 'वीरेशलिंगोदाहरण' जैसे महापुरुषों से संबद्ध उदाहरण प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

अधिक संख्या में न लिखे जाने पर भी सरस तथा संक्षिप्त लघुकाव्य के रूप में तेलुगु साहित्य के अंतर्गत 'उदाहरण' का एक विशेष स्थान है।

उदेरोलाल *(सिं० पा०)*

सिंधी साहित्य में 'उदेरोलाल' का अनोखा स्थान है। सिंधी हिंदू इन्हें वरुण का अवतार मानते हैं और सिंधी मुसलमान इन्हें ख़्वाजा ख़िज्र या ज़िंदा पीर के नाम से याद करते हैं। उदेरोलाल का जन्म सन् 950 ई० में सिंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नसरपुर शहर में हुआ था। इनके पिता का नाम राइ रतनचन्द और माता का नाम देवकी था। सिंध के ठट्टो नगर के मुसलमान हाकिम मरखशाह ने हिंदुओं पर बहुत अत्याचार किए थे। उदेरोलाल ने बड़े होकर मरखशाह को जुल्म करने से रोका और सिंध में धर्मसहिष्णुता और शांति का राज्य स्थापित किया। चैत्रमास में उदेरोलाल के जन्म-दिवस 'चेटीचंडु' से सिंधी हिंदू नए वर्ष का आरंभ मानते हैं और इस दिन को अब भारत में राष्ट्रीय पर्व के रूप में मानते हैं। उदेरोलाल की स्तुति में रचित कविताएँ 'पंजकिड़ा' नाम से प्रसिद्ध हैं। सिंधी ठक्कुरों ने उदेरोलाल के पीछे 'दरियापंथ' शुरू किया है। कई हिंदू इसके अनुयायी हैं। उदेरोलाल 'लाल साईं', 'अमरलाल', 'झूलेलाल' नामों से भी प्रसिद्ध हैं। सिंधी साहित्य में यत्र-तत्र उदेरोलाल का उल्लेख मिलता है।

उद्धवगीता *(म० कृ०)* [रचना-काल—1309 ई० के आस-पास]

इसका आधार-ग्रंथ है 'मूर्तिप्रकाश' जो केशव व्यास ने सन् 1298 में लिखा था। इसमें श्रीकृष्ण का उद्धव के लिए उपदेश है; अतः इसका नाम रखा गया—'उद्धवगीता'। भगवान कृष्ण ने उद्धव को ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का मार्मिक उपदेश दिया है। श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के एकादश स्कंध की कथा ही इस गीता की मूल वस्तु है। कवि ने इसमें अनेक रसों का सुंदर परिपाक किया है परंतु प्रधानता शांतरस को ही दी है। महानुभाव पंथ में दीक्षित होकर ही कवि ने उसकी रचना की थी।

उद्धवशतक *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

'उद्धवशतक' कवि रत्नाकर (दे०) की मार्मिक अनुभूतियों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। 118 घनाक्षरियों का काव्य लिखकर उन्होंने हिंदी साहित्य को मानो 118 रत्न प्रदान किये हैं। इस प्रबंध-मुक्तक दूतकाव्य की कथा श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के छियालीसवें और सैंतालीसवें अध्याय से ली गई है। उद्धव गोपियों के समक्ष निर्गुण का ज्ञान बघारते हैं और कृष्ण में अनुरक्त पूर्णतः जागरूक गोपियाँ तर्कों के अमोघ बाणों से उद्धव को निरुत्तर कर सगुण भक्ति का महत्व उपस्थापित करती हैं। यही इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य है। शृंगार एवं भक्ति से परिपूर्ण यह चित्रोपम काव्य लक्षणा और व्यंजना का सुंदर संगम है तथा इसमें सरसता, अर्थगौरव और मृदुल पदावली की मधुरता कूट-कूट कर भरी है।

उद्धवशतक का भावपक्ष भक्तिकाल और कलापक्ष रीति-काल की कविता से प्रभावित है। उद्धवशतक की भाषा अलंकृत व्रज भाषा है। इस ग्रंथ में कवि ने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है, पर वे न तो कहीं अर्थबोध में व्याघात उत्पन्न कर पाये हैं और न कहीं कथा-प्रवाह को ही अवरुद्ध कर सके हैं। निश्चय ही भक्तिकालीन भावुकता के साथ रीतिकालीन चमत्कार का अगर कहीं सुंदर समन्वय है तो वह 'उद्धवशतक' में है। कवि ने कृष्ण और गोपियों को एक-दूसरे के प्रेम में विह्वल दिखलाकर जिस उभयपक्षीय प्रेम की अभिव्यंजना की है वह उसकी मौलिकता की परिचायक है। इस ग्रंथ में एक साथ ही गोपियों के प्रेम की अनन्यता, उद्धव के परमज्ञानी रूप की बोझिल दार्शनिक उक्तियाँ, गोपियों के विरह-निवेदन की कातरता, उद्धव के अकाट्य तर्कों को निष्फल बनाती गोपियों के प्रेम की सांद्रता एवं प्रेमी के मनोभावों से अपने को एकाकार करती गोपियों की विश्वासपरक आत्मरति के दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं रसायन, वेदांत, तर्क, योग और विज्ञान-संबंधी कथन कवि की बहुज्ञता के परिचायक हैं।

उद्भट *(सं० ले०)* [समय—लगभग 800 ई०]

काश्मीर नरेश जयापीड के दरबार में पंडितों की सभा के अध्यक्ष भट्टोद्भट संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अन्यतम आचार्य हैं।

आचार्य उद्भट मूल ग्रंथ लेखक एवं टीकाकार दोनों हैं। इनकी ग्रंथात्मक कृति 'काव्यालंकारसारसंग्रह' (दे०) अलंकारों के स्वरूप एवं लक्षण के विषय में उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा अत्यंत प्रामाणिक मानी गई है। यह कृति विशुद्ध रूप से अलंकारों का ही विवेचन करती है। इसमें 41 अलंकारों का निरूपण 79 कारिकाओं को छह वर्गों में विभक्त कर किया गया है। इस ग्रंथ की टीका प्रतिहारेन्दुराज (दे०) ने की है जो मुकुलभट्ट के शिष्य थे।

भामह के 'काव्यालंकार' (दे०) नामक ग्रंथ की टीका 'भामह विवरण' के नाम से उद्भट ने की थी जो अनुपलब्ध है। उसके उद्धरण अवश्य मिलते हैं।

अर्थ-भेद से शब्दों का भिन्न होना, श्लेष अलंकार की प्रबलता, तीन प्रकार का अभिधा-व्यापार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा गुणों का संघटना धर्म होना'—ये भट्टोद्‌भट की संस्कृत काव्यशास्त्र को देन हैं ।

उद्‌भटकाव्य *(क० कृ०)*

इसके रचयिता वीरशैव कवि सोमराज हैं जिनका समय 1225 ई० के लगभग है । यह एक चंपूकाव्य है जिसमें कंद छंद की ही प्रधानता है । 'उद्‌भटकाव्य' का दूसरा नाम 'श्रृंगारसार' है । यह मूलतः एक प्रेमाख्यान है किंतु उसे भक्ति का मोड़ दिया गया है । महाकवि हरिहर के 'उद्‌भटरगळे' से इसकी कथावस्तु ली गई है । प्रौढ़काव्य के सामयिक वर्णनों से भरपूर इस काव्य में बारह आश्वास हैं । इसमें कुमारपाल गुर्जर अथवा उद्‌भट की कथा है । इसका पूर्वभाग कादंबरी आदि प्रेमाख्यानों से प्रभावित है । विस्तार यहाँ बहुत अधिक है । मुख्य कथा ग्यारहवें अध्याय से शुरू होती है । प्रकृति-वर्णन कहीं-कहीं रमणीय बन पड़ा है । शैली काफ़ी सरस-सरल है ।

उद्‌भट नाट्य-परंपरा *(उ० कृ०)*

रत्नाकर चइनी (दे०)-कृत इस पुस्तक में आधुनिक रंगमंच की बहुचर्चित विधा—उद्‌भट नाटक—का विवेचन किया गया है । यह तीन खंडों में है । प्रथम खंड में लेखक ने उद्‌भट का इतिहास प्रस्तुत किया है तथा इस शब्द का तदर्थ अर्थ भी प्रस्तावित किया है । दूसरे खंड में, जो संभवतः सर्वोत्तम है, वर्तमान भारतीय नाटक की एक समानांतर विधा को रेखांकित किया गया है । बादल सरकार (दे०), विजय तेंदुलकर (दे०), मोहन राकेश (दे०), गिरीश कर्नाड इत्यादि की कृतियों का विशद विवेचन मिलता है । चइनी के मत में इन दिग्गजों का प्रयोगात्मक रंगमंच न केवल भारतीय नाट्य-परंपरा के लिए उल्लेखनीय प्रदेय है वरन् वह सांप्रतिक भारतीय स्थिति के लिए अत्यंत समीचीन है । तृतीय खंड में उड़िया नाटक में मनोरंजनदास (दे०), बिजयकुमार मिश्र (दे०), विश्वजीत दास, कार्तिक रथ तथा रत्नाकर चइनी के द्वारा किए गए प्रयोगों का विवेचन है । इन नाटककारों के प्रयासों के फलस्वरूप उड़िया नाटक में पिछले एक दशक में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तथा इस क्षेत्र में हुए प्रयोगों का स्वागत भी हुआ है । लेखक ने इन प्रयोगों का सूक्ष्म विवेचन उद्‌भट विधा की दृष्टि से किया है । उड़िया भाषा में यह अपने प्रकार की एकमात्र पुस्तक है ।

उद्याचा संसार *(म० कृ०)* [प्रकाशन-काल—1935 ई०]

पारिवारिक दायित्वों के प्रति बढ़ती उपेक्षा-वृत्ति के कारण टूटते हुए भारतीय परिवार की व्यथा-कथा पर आधारित प्रह्लाद केशव अत्रे (दे०) का यह समस्या-प्रधान नाटक है । श्वसुर की अतुल संपत्ति को प्राप्त कर विश्राम का नैतिक पतन होता है । पति एवं पिता के अपने दायित्वों को भूलकर वह एक फ्रेंच महिला से विवाह कर स्वदेश लौटता है । पुत्री के गार्हस्थ्य जीवन की शांति के लिए चालीस हजार रुपए व्यय कर फ्रेंच महिला के स्वदेश लौटने की व्यवस्था तो कर देता है, परंतु उसका नैतिक सुधार नहीं होता । विश्राम की उपपत्नी नयना नामक पुत्री को जन्म देकर स्वर्ग सिधार जाती है, परंतु विश्राम ने इस कन्या को पुत्री रूप में स्वीकार नहीं किया । स्वच्छंद पारिवारिक परंपराओं के कारण विश्राम की औरस संतान पथभ्रष्ट हो जाती है । उसकी अविवाहित गर्भवती पुत्री शैला और अनजाने में अपने पिता की उपपत्नी की पुत्री से प्रणय-संबंध में असफल पुत्र शेखर दोनों घर छोड़कर चले जाते हैं । परिवार को इस प्रकार भग्न होते जानकर उसकी पत्नी करुणा की आत्म-हत्या से नाटक की परिसमाप्ति हुई है । इस प्रधान कथा के साथ ही गौतम तथा उल्लास की प्रासंगिक कथा की संयोजना भी हुई है । आधुनिक समस्या-नाटकों के पात्रों के अनुरूप करुणा, नयना, शैला, उल्लास आदि के चरित्रों का विकास आत्मविश्लेषणात्मक पद्धति से होने के कारण सहज स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक है । कथा-विकास पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है । अंतः एवं बाह्य-द्वंद्व के अनेक भव्य चित्र करुणा, विश्राम, नयना, शैला के संवादों में परिलक्षित होते हैं । पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद प्रभावान्विति की दृष्टि से सजीव एवं सटीक हैं । मराठी के समस्या नाटकों की समृद्ध परंपरा में 'उद्याचा संसार' कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से मानक कृति है ।

उद्योगविजयमुलु *(तें० कृ०)*

तिरुपति शास्त्री (1871-1919) (दे० तिरुपति वेंकट कवुलु) तथा वेंकटशास्त्री (1870-1950) (दे० तिरुपति वेंकट कवुलु) ने सम्मिलित रूप से रचनाएँ की हैं । ये अत्यंत प्रतिभावान कवि थे और समस्त आंध्र देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इन्होंने साहित्यिक दिग्विजय करके साहित्य-जगत् में अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की थी। ये तेलुगु की पुरानी काव्यधारा के अंतिम प्रतिभावान कवि थे और नवीन युग के लिए भूमिका इन्हीं की रचनाओं द्वारा बनी।

इन्होंने बीसों काव्यकृतियों एवं नाटकों की रचना की है जिनमें उपर्युक्त कृति के अतिरिक्त 'बुद्धचरितमु,' 'देवीभागवतमु', 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' आदि प्रमुख हैं।

'उद्योगविजयमुलु' महाभारत (दे०) की कथा-वस्तु के आधार पर रचे गये दो नाटक हैं। इनमें पांडवों के दूत के रूप में कृष्ण का हस्तिनापुर जाने और कौरवों से पांडवों का राज्य लौटाने का अनुरोध करके युद्ध को रोकने का यत्न करने की घटना तथा कर्ण को उसके जन्म का रहस्य बताकर उसे पांडव-पक्ष में सम्मिलित कर लेने के कृष्ण के यत्न तथा युद्ध में पांडवों की विजय आदि घटनाओं का ओजपूर्ण प्रस्तुतीकरण हुआ है। ये नाटक समस्त आंध्र में शतशत बार प्रदर्शित हुए और सर्वत्र इनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। तेलुगु के श्रेष्ठतम नाटकों में इनका स्थान है। तेलुगु में नाटक-रचना की परंपरा को बल प्रदान करने की दृष्टि से भी इनका ऐतिहासिक महत्व है। इन नाटकों की अपूर्व सफलता ने अनेक अन्य साहित्यकारों को भी नाटक-रचना की ओर प्रवृत्त किया।

उन्नयन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1950 ई०]

'उन्नयन' प्रसिद्ध कवि सुन्दरम् (दे०) का कहानी-संग्रह है जिसके द्वारा उन्होंने गुजराती कहानी को यथार्थ का दर्शन कराया। सुन्दरम् को गंभीर तथा हास्यरस-प्रधान दोनों प्रकार की कहानी-रचना में सफलता मिली है। संग्रह की 'मां की गोद में', 'पेकार्डनो प्रवास', 'आशा', 'नरसिंह' तथा 'खोलकी' प्रभृति कहानियाँ विविध भावभूमियों का संस्पर्श करती हैं।

मानव-मन के वैविध्यपूर्ण चित्रण के साथ इनकी कहानियों की शैली भी विविधता लिए है। वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पूर्वदीप्ति तथा डायरी प्रभृति शैलियों का इसमें सफल प्रयोग हुआ है।

उन्नैप्पोल ओरुवन् *(त० कृ०)*

जयकान्तन (दे०)-कृत इस लघु उपन्यास की नायिका तंगम है। शिट्टी उसका अवैध पुत्र है। काफ़ी वर्षों बाद तंगम द्वारा माणिक्कम् को घर लाये जाने पर शिट्टी घर से भाग जाता है। तंगम को दुःखी देखकर माणिक्कम् शिट्टी को ढूँढने निकलता है। स्वयं कभी न लौटने की प्रतिज्ञा कर उससे घर लौटने की प्रार्थना करता है। अपनी नवजात पुत्री को स्वाभिमानी शिट्टी के हाथ सौंपकर तंगम निश्चिंत हो सदा के लिए आँखें मूँद लेती है। इस सामाजिक उपन्यास का सबसे अधिक प्रभावशाली पात्र शिट्टी है। इस कथा के माध्यम से लेखक ने यही बताना चाहा है कि तंगम जैसी युवतियों को नीच व्यक्तियों के अत्याचार से बचाने के लिए, उनका उद्धार करने के लिए आज समाज को शिट्टी जैसे स्वाभिमानी पुत्रों की, भाइयों की, आवश्यकता है।

उपदेशरसायनरास *(अप० कृ०)*

यह जिनदत्त (दे०) सूरि द्वारा रचित 80 पद्यों की रचना है। इसमें मनुष्य-जन्म का महत्व तथा आत्मा के उद्धार पर बल दिया गया है। एतदर्थ सुगुरु की आवश्यकता बताई गई है। लेखक के विचार में गुरुरूपी नौका से ही संसार-सरिता को पार किया जा सकता है। कृति में धार्मिकों के कृत्यों के साथ नाना चैत्य-धर्मों एवं कर्मों का निर्देश किया गया है। गृहस्थों के लिए उपयोगी अनेक प्रकार के सदुपदेश इस कृति में प्राप्त होते हैं। इसमें पज्झटिका छंद का प्रयोग हुआ है।

उपनिषद् *(सं० कृ०)* [रचना-काल—लगभग 2000 ई० पू०]

उपनिषदों के रचयिता विभिन्न ऋषि हैं। 'उपनिषत्' शब्द का अर्थ रहस्यपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के समीप बैठना है। ब्रह्म-प्राप्ति की साधक होने के कारण ही ब्रह्मविद्या को 'उपनिषद्' कहते हैं। उपनिषदों की संख्या 220 है। ये उपनिषद् उपलब्ध हैं। इनमें ईशादि दस उपनिषद् सर्वाधिक प्रामाणिक एवं प्राचीन हैं।

उपनिषदों का विषय प्रधानतया दार्शनिक है। वैविध्य होने पर भी प्राचीन एवं प्रामाणिक उपनिषदों में कुछ ऐसे दार्शनिक सिद्धांत मिलते हैं जिनमें एकरूपता है। प्राचीन उपनिषदों में जगत् की ब्रह्मरूपता एवं आत्मवाद के विचार प्रमुख रूप से मिलते हैं। इन दार्शनिक विचारों के अतिरिक्त उपनिषदों में मनोविज्ञान, तत्त्वज्ञान, मृतक-ज्ञान, मोहिनी-विद्या, रोगनिवारण-विद्या तथा इंद्रजालविद्या का निरूपण भी मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि उपनिषद् वैदिक हैं, परंतु इनकी भाषा लौकिक संस्कृत है। उपनिषदों की विश्लेषण-पद्धति सूत्रात्मक तथा विश्लेषणात्मक दोनों प्रकार की है।

उपनिषद्-दर्शन के प्रमुख तत्त्व—'ब्रह्म' का निरूपण उपनिषदों में कहीं सत्-असत् रूप में, कहीं चित् रूप में और कहीं आनंद रूप में किया गया है। उपनिषदों के अनुसार आत्मा एक ऐसा भावात्मक, सर्वव्यापी एवं शाश्वत तत्त्व है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशाल से भी विशाल है। 'तत्त्वमसि' के विवेचन के द्वारा उपनिषदों में जीव और ब्रह्म की अद्वैतता का प्रतिपादन किया गया है। 'नेति नेति' की व्याख्या के द्वारा भी एकात्मवाद का ही प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषद् साहित्य समस्त भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं का स्रोत है। सांख्य एवं वेदांतादि सभी दार्शनिक संप्रदायों के बीज उपनिषदों में उपलब्ध हैं। अनेकानेक विदेशी दार्शनिकों ने भी उपनिषदों से प्रेरणा ग्रहण की है। जर्मन दार्शनिक शॉपेनहावर तो उपनिषदों पर अत्यंत मुग्ध था।

उपन्यास *(हिं० पारि०)*

'उपन्यास' गद्य में रचित दीर्घ कलेवर का कथात्मक साहित्य-रूप है जिसका उल्लेख प्राचीन भारतीय अथवा पाश्चात्य साहित्यशास्त्रों में नहीं है। कुछ विद्वानों ने 'उपन्यास' शब्द के 'उप' एवं 'नि' उपसर्गों तथा √अस् से निष्पन्न होने का उल्लेख किया है। यह सर्वथा असंगत है। भरत (दे०) के 'नाट्यशास्त्र (दे०) में भी यद्यपि यह शब्द उपलब्ध होता है, किंतु वहाँ भी यह प्रतिमुखसंधि (दे० नाट्य-संधियाँ) के अवांतर भेद के रूप में ही हैं, कथा-साहित्य के रूप में नहीं। पश्चिम में इसका जन्म पुनर्जागरण युग में हुआ। प्रारंभ में इसके इतालवी नाम 'नोवेला' तथा अँग्रेज़ी नाम 'नॉवेल' के शाब्दिक अर्थों—क्रमशः 'समाचार' और 'नवीन'—के अनुरूप ही किसी भी प्रकार की नई और ताज़ी, प्रायः कल्पित, सुविस्तृत और सांगोपांग कहानी को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था। बाद में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप निरंतर वर्द्धमान जीवन की जटिलताओं तथा मानसिक और भौतिक स्तरों पर घटित होने वाले व्यष्टि और समष्टि के जीवन-संघर्षों के चित्रण से वहाँ के उपन्यास में यथार्थ का रंग गहरा होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बँगला साहित्य के द्वार से उपन्यास ने भारत में प्रवेश किया तो यहाँ भी उसके प्रारंभिक चरण क्रमशः रोमानी, प्रेमाख्यानात्मक, घटना-प्रधान और समाज-सुधार-विषयक मार्गों पर बढ़ते हुए अब यथार्थ की भूमि में प्रवेश कर चुके हैं। आज का भारतीय उपन्यास व्यक्तिवादी है और उसमें गहन मनोवैज्ञानिक स्तर पर व्यक्ति के अंतर्मन का निगूढ़ बौद्धिक चित्रण रहता है।

उपन्यास के प्रमुख तत्त्व हैं: कथानक, चरित्रांकन और भाषा-शैली। कथानक में रंग भरने के लिए देशकाल तथा उपन्यास के कथ्य को विशिष्ट और सार्थक आयाम में प्रस्तुत करने के लिए उद्देश्य को भी महत्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। इनमें कथानक और चरित्रांकन एक दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। कथानक के विकास का एकमात्र साधन कुशल घटना-विधान चरित्रों के अंकन के बिना संभव नहीं है और चरित्र-विकास के अंकन के लिए घटना-विधान अपरिहार्य है। यदि केवल तर्क के लिए 'साहित्यिकता' और 'लोकप्रियता' को परस्पर-विरोधी मान लिया जाए तो कहा जा सकता है कि 'साहित्यिक' उपन्यासों में निगूढ़ और सूक्ष्म चरित्रांकन पर अधिक ज़ोर रहता है और 'लोकप्रिय' उपन्यासों में मनोरम घटना-विधान पर। उपयोगितावादी अथवा लोकमंगलकारी उपन्यासकार की दृष्टि 'उद्देश्य' पर केंद्रित रहती है किंतु उपन्यास में इसी एक तत्त्व की प्रधानता हो जाने से कलात्मकता की क्षति होती है। शैली के विषय में उपन्यासकार की दृष्टि वस्तुमुखी अथवा व्यक्तिवादी हो सकती है। आज का औपन्यासिक लेखन अधिकाधिक व्यक्तिवादी होता जा रहा है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उपन्यास की श्रेष्ठता और सार्थकता का सर्वप्रमुख निकष उसमें चित्रित यथार्थ है जो आज के जीवन-संदर्भ में सामाजिक भी हो सकता है और वैयक्तिक भी।

उपन्यासों में चित्रित जीवन और प्रतिपादित विषयों के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है। प्रमुख प्रकार हैं: (क) सामाजिक; सामाजिक-आर्थिक; आर्थिक राजनीतिक; (ख) साहसिक; जासूसी-रहस्यपूर्ण; रोमांचकारी-अपराधमूलक; (ग) ऐतिहासिक-पौराणिक; (घ) जीवनीमूलक-आत्मकथात्मक; (ङ) रोमानी-प्रेमाख्यानात्मक। शैली की दृष्टि से प्रमुख प्रचलित प्रकार हैं: (क) समस्यामूलक या समस्या-प्रधान; (ख) आंचलिक; (ग) महाकाव्यात्मक; (घ) लोकवादी या जनवादी; (ङ) संलाप-शैली; (च) पत्र-शैली में रचित; (छ) चेतना-प्रवाही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमा *(हिं० पारि०)*

भारतीय वाङ्मय में 'उपमा' शब्द के प्रयोग तथा उसके सादृश्यमूलक अर्थ का पूर्व-इतिहास ऋग्वेद (दे० संहिता) जैसे आदि ग्रंथ में खोजा जा सकता है। भरत (दे०) के पूर्ववर्ती यास्क आदि वैयाकरणों ने भी उपमा शब्द का प्रयोग सादृश्य के अर्थ में ही किया है, किंतु यह सादृश्य दो परस्पर समान रूपाकृति अथवा धर्म वाली वस्तुओं का साम्य नहीं है जबकि अलंकारशास्त्र का उपमा अलंकार निर्भ्रांत रूप से दो समान वस्तुओं के रूपाकार, गुण, धर्म अथवा प्रभाव आदि के पारस्परिक साम्य को ही प्रदर्शित करता है। उपमा अलंकारशास्त्र में निरूपित कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण अलंकार है क्योंकि अलंकार मात्र के वैचित्र्य-कथन का प्रमुख आधार सादृश्य है और उपमा समस्त सादृश्यगर्भ अलंकारों का प्राणभूत अलंकार है। संस्कृत आचार्यों की उपमा-विषयक अनेक प्रशस्तियाँ इसका प्रमाण हैं। राजशेखर (दे०)ने उपमा को समस्त अलंकारों में शिरोभूषण के समान काव्य की संपत्ति और कविवंश की माता कहा है—(अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्। उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम।' रुय्यक (दे०) ने अनेकरूप वैचित्र्य के कारण उसे समस्त अलंकारों का बीजरूप घोषित किया है। इस प्रकार उपमा एक साम्यमूलक अलंकार है और यह साम्य तीन प्रकार का हो सकता है—रूपाकारगत (सादृश्य), गुण-धर्मगत(साधर्म्य)तथा प्रभावगत। उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक शब्द—उपमा के ये चार अंग हैं। इनके एक साथ उपस्थित रहने पर पूर्णोपमा होती है और जहाँ इनमें से किसी का अभाव होता है वहाँ लुप्तोपमा।

'उपवासी', भोगीलाल गांधी *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म साबरकांठा के भोड़ासा गाँव में हुआ था। सन् 1930 में गुजरात विद्यापीठ से स्नातक होकर सन् '35 में इन्होंने गुजरात प्रगतिशील लेखक-मंडल की स्थापना की थी। इसी बीच इन्होंने काँग्रेस समाजवादी पक्ष के राज्यकार्य में भी भाग लिया था। सन् '28 से '51 तक की समयावधि में इन्हें सात बार जेल जाना पड़ा था।

ये बहु-अधीत हैं। सन् '30 के आस-पास इनका स्थान प्रमुख कवियों में था। इनकी कविताओं में साम्यवाद के प्रति भक्ति होते हुए भी उनके केंद्र में मानव-प्रेम है। इन्होंने डा० ज़िवागो का संक्षिप्त रूपांतर, मार्क्सवादा जीवन-दृष्टि का संक्षिप्त किंतु सरल परिचय तथा विनोवा जी की जीवन-दृष्टि को समझने में सहायक संग्रह प्रकाशित किए हैं। इनकी आलोचना मूलगामी होने के साथ ही कृति के मर्म को भी पकड़ती है। वँगला से इन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) तथा शरत्चंद्र (दे०) की कृतियों के समर्थ अनुवाद किए हैं। समग्रतया इन्होंने ग्यारह मौलिक कृतियाँ, दो रूपांतर, छह संपादन-ग्रंथ, बँगला से तीन अनुवाद तथा अँग्रेज़ी से सात अनुवाद किए हैं। इसके अतिरिक्त ये पाँच पत्रिकाओं का संपादन कर चुके हैं। आजकल ये गुजरात में असाधारण प्रतिष्ठा प्राप्त 'विश्व-मानव' नामक द्वैमासिक के संपादक हैं।

उपसंपदा *(पा० पारि०)*

पाली में इस शब्द का प्रयोग होता है किंतु संस्कृत में कहीं-कहीं उपसंपद् शब्द भी आता है। इसका अर्थ होता है प्राप्ति। बौद्धधर्म में दीक्षा लेने वाला व्यक्ति पहले प्रव्रज्या धारण करता है, फिर उपसंपदा लेता है और बाद में भिक्षुभाव या भिक्षुणीभाव को प्राप्त होता है। उपसंपदा 4 प्रकार की होती है—(1) स्वाम् (संभवतः स्वयम्)-जो एक व्यक्ति लेता है; (2) एहिभिक्षुका जिसमें यह संबोधन किया जाता है; (3) दशवग्ग जिसमें दस व्यक्ति मिलकर उपसंपदा लेते हैं; और (4) पंचवग्ग जिसमें पाँच व्यक्ति मिलकर उपसंपदा लेते हैं।

उपसर्ग *(सं० पारि०)*

'उपसर्ग' उस भाषिक इकाई को कहते हैं, जो भाषा में स्वतंत्र रूप से नहीं आती तथा जो किसी शब्द के प्रारंभ में जुड़कर शब्द के अर्थ को परिवर्तित करती है। वैदिक संस्कृति में उपसर्ग मूल शब्द से अलग भी आते थे। हर भाषा के अपने उपसर्ग अलग होते हैं। उदाहरण के लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी संस्कृत शब्द का उपसर्ग हिंदी में भी उस शब्द में उपसर्ग माना ही जाये। इसके लिए आवश्यक है कि उस भाषा में उपसर्ग को अलगाने पर जो शेष बचे उसका स्वतंत्र भाषिक इकाई के रूप में उस भाषा में उससे संबद्ध अर्थ में प्रयोग हो। दो शब्द लें: प्रयत्न, प्रसन्न। संस्कृत में दोनों में 'प्र' उपसर्ग हैं, किंतु हिंदी में 'प्रयत्न' में तो 'प्र' उपसर्ग है, किंतु 'प्रसन्न' में 'प्र' उपसर्ग नहीं है, क्योंकि हिंदी में प्रसन्न यौगिक न माना जाकर रूढ़ शब्द माना जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाध्याय, बलदेव *(सं० ले०)*

इनका जन्म सोनवरसा नामक ग्राम (जिला बलिया, उत्तर प्रदेश) में सन् 1899 ई० में हुआ। इन्होंने हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में 38 वर्ष अध्यापन किया तथा इसके उपरांत भी अद्यावधि अध्ययन-अध्यापन में संलग्न हैं। हिंदी में इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं—भारतीय दर्शन, बौद्ध दर्शन-मीमांसा, भारतीय साहित्यशास्त्र, काव्यानुशीलन, आर्य संस्कृति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, संस्कृत आलोचना, संस्कृत वाङ्मय, धर्म और दर्शन, भागवत संप्रदाय, आचार्य सायण और माधव, आचार्य शंकर, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पुराण-विमर्श आदि। संस्कृत में इन्होंने 'देवभाषा निबंधावली' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—वेदभाष्यभूमिका-संग्रह, अग्निपुराण, कलिका-पुराण, भक्तिचंद्रिका, शंकरदिग्विजय, प्राकृत-प्रकाश, नाट्यशास्त्र, काव्यालंकार (भामह), नागानंद आदि। इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक और डालमिया पुरस्कार के अतिरिक्त राष्ट्रपति-पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। इनकी प्रमुख विशिष्टता है सहज-सुबोध शैली में विवेच्य विषय का विशुद्ध प्रतिपादन।

उपाध्याय, भगवतशरण *(हिं०ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के बलिया ज़िले में हुआ था। इनका सर्वाधिक महत्व प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, एशियाई तथा भारतीय संस्कृति-साहित्य आदि विषयों पर स्वतंत्र एवं मौलिक चिंतन-मनन करने की दृष्टि से है, यद्यपि इन्होंने संस्मरण, फ़ीचर और निबंध-साहित्य की श्रीवृद्धि में भी योग दिया है। आलंकारिकता तथा भाव-प्रवणता इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। अब तक इनकी शताधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'कालिदास का भारत', 'विश्व को एशिया की देन', 'विमेन इन ऋग्वेद' (अँग्रेज़ी में) प्रमुख हैं।

उपाध्याय, रामचरित *(हिं० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

ये गाज़ीपुर के थे। इन्होंने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया और खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा पर समान अधिकार प्राप्त किया। खड़ीबोली में इनकी स्फुट कविताएँ 'सरस्वती' (दे०) तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इनकी प्रशस्त सूक्तियाँ इनकी 'सूक्ति-मुक्तावली' में गंफित हैं। इन्होंने 'महाभारत' (दे०) के आधार पर 'देवी द्रौपदी' नामक उपन्यास लिखा, और अपने महाकाव्य 'रामचरित-चिन्तामणि' में श्रीराम को मानव के रूप में चित्रित कर राजनीतिक दृष्टिकोण को उपस्थित किया है। खड़ीबोली के विकास तथा राष्ट्रीय जागरण में इनका योगदान है।

उपायन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1962 ई०]

'उपायन' गुजराती के मान्य विद्वान एवं सुप्रसिद्ध आलोचक श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी (दे०) द्वारा रचित एवं उन पर लिखे गए लेखों का संग्रह है। अभिनंदन ग्रंथ-रूप इस संग्रह का प्रकाशन श्री त्रिवेदी की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर किया गया था।

चार खंडों में विभक्त इस ग्रंथ के प्रथम भाग में विष्णुप्रसाद के साहित्य-विषयक तात्त्विक लेख हैं। दूसरे खंड में उनके 'गुजरातनो चिंतनात्मक गद्य' नामक पुस्तक के लेख संगृहीत हैं। तीसरे तथा चौथे खंड में क्रमशः उनके समीक्षात्मक और उनके जीवन के विविध पहलुओं पर लिखे लेख संकलित हैं। आलोच्य संग्रह में संगृहीत उमाशंकर जोशी (दे०) के लेख में उनकी विवेचन-प्रवृत्ति का समुचित मूल्यांकन किया गया है। एक अन्य लेख इनके समग्र साहित्य का परिचय देने की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है। श्री विष्णुप्रसाद जी के 68 लेखों का अकादमी पुरस्कार-प्राप्त यह ग्रंथ इनकी संपूर्ण साहित्य-प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराने वाला महत्वपूर्ण प्रकाशन है।

उपालि *(पा० पारि०)*

यह पाटलिपुत्र का नापित कुमार था जो शाक्य-राजकुमारों के साथ भगवान् बुद्ध से प्रव्रज्या लेने गया था। इसके माता-पिता ने भिक्षुक व्यवसाय को सर्वसरल समझ कर इस वृत्ति को स्वीकार करने का आदेश दिया था। भगवान् ने इसे स्वयं 'विनयपिटक' (दे०) पढ़ाया था। 'विनय' में इसकी गति अप्रतिहत थी और उसमें इसे सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता था। अंतर्दृष्टि विकसित कर लेने के कारण इसे अरहंत (दे० अरहत्) पद प्राप्त हुआ था। प्रथम संगीति में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया था और यह स्वयं कई उदानों के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमयम्मराणी *(मल० पा०)*

महाकवि उळ्ळूर् (दे०) का ऐतिहासिक महाकाव्य 'उमाकेरळम्' (दे०) उमयम्मराणी तथा केरल-वर्मा की कथा के आधार पर रचा गया है। इस काव्य का अवलंब अंशतः जनश्रुति है। 'उमा' रानी अठारहवीं शताब्दी के त्रावनकोर-नरेश आदित्य वर्मा की दृढ़चित्त बहन थी। आदित्य वर्मा को कुछ छलप्रपंचियों ने षड्यंत्र करके मार डाला। तब रानी को शासन की बागडोर सँभालनी पड़ी। राजा की हत्या के बाद कपटियों ने रानी की पाँच नन्हीं संतानों को भी छल से मार डाला। तब, रानी सुरक्षा की ख़ातिर दूर-दूर और बचकर रहने लगी। इसी समय एक राज्यलोभी मुग़ल ने देश पर धावा बोला। इस पर रानी ने सच्चे हितकारी मंत्री तंपान की मदद से उत्तर केरल के वीर केरल वर्मा को सहायतार्थ बुलाया। रानी की रूपसी भानजी का आक्रमणकारी मुग़ल द्वारा हरण नयी विपत्ति का कारण बना। मगर उस राजकुमारी की सूझबूझ और वीरता ने मुग़ल की जीवनलीला समाप्त कर दी। केरल वर्मा की धाक से देश में शांति स्थापित हुई। रानी ने अब नवागंतुक अँग्रेज़ कंपनी को जरूरी सुविधाएँ देकर देश का वैभव बढ़ाया।

इस काव्य में उमयम्मराणी का चित्रण एक श्रेष्ठ कुलांगना और माता के रूप में किया गया है। त्रावनकोर राजवंश की किसी अन्य रानी को कथा का मुख्य पात्र बनाते हुए काव्य रचने का प्रयास इसके पहले नहीं हुआ।

उमर अलीशा *(तें० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

मोहिउद्दीन और चाँद बीबी के पुत्र उमर अलीशाह ने मातृभाषा उर्दू होते हुए भी, तेलुगु में लगभग 50 पुस्तकें लिखी हैं। वे सोलहवें वर्ष से ही लिखने लग गए थे और अठारह वर्ष की अवस्था में इनका 'मणिमाला' नामक नाटक प्रकाशित हो चुका था। ये स्वतंत्र स्वभाव के व्यक्ति थे, अतः कहीं कोई नौकरी नहीं की। 1934 से अखिल भारतीय शासन परिषद् के सदस्य मनोनीत हुए और आजीवन सदस्य बने रहे। 1939 में इंटरनेशनल अकेडेमी आफ़ अमेरिका की ओर से डी०लिट्० की उपाधि से गौरवान्वित हुए। उमर अलीशा प्रभावशाली वक्ता थे और उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था।

इनके नाटकों में 'मणिमाला', 'विचित्र बिल्हणीयमु', 'चंद्रगुप्त', 'महाभारत कौरवरंगमु', 'अनसूया देवी' और काव्यों में 'उमरखैयाम', 'पैग़म्बर मुहम्मद की जीवनी', 'सूफ़ी-वेदांत दर्शन', 'सर्गमाता', 'बर्हिणीदेवी', 'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण' (वाल्मीकि रामायण का अनुवाद) उल्लेखनीय हैं।

उमर अलीशा की कविता सरस, मनोहर तथा प्रवाहयुक्त होती है। इस मुसलमान कवि ने तेलुगु साहित्य की अपूर्व सेवा की है।

उमरवाडिया, बटुभाई *(गु० ले०)* [जन्म—1899; मृत्यु—1950 ई०]

बटुभाई उमरवाडिया गुजराती साहित्य के सर्वप्रथम एकांकीकार थे जिन्होंने 1922 में 'लोमहर्षिणी' नामक एकांकी लिखकर गुजराती साहित्य में एक सर्वथा नयी विधा का श्रीगणेश किया। इसके पश्चात् पाँच वर्ष की अवधि में इन्होंने 'मत्स्यगंधा अने बीजा नाटको' तथा 'मालादेवी अने बीजा नाटको' नामक दो एकांकी-संग्रह साहित्य-जगत को और भेंट किए। 'मत्स्यगंधा' को छोड़कर शेष सभी एकांकियों की कथावस्तु काल्पनिक है। इनके सभी नाटकों में इनकी सौंदर्यप्रियता और रोमानी प्रकृति के दर्शन होते हैं। इनके नारी पात्र अधिक गतिशील और आकर्षक हैं पर पुरुष पात्रों की अपेक्षा अधिक उदात्त नहीं हैं। इब्सन की भाँति कथावस्तु में चमत्कारपूर्ण विचार से आकस्मिक परिवर्तन लाने का कौशल इनके एकांकियों में सर्वत्र दिखाई देता है। एकांकी नाटकों के अतिरिक्त बटुभाई ने 'रसगीतो', 'वातोनुं वन', 'गुजरातना महाजनो' और 'कीर्तिदाने कमलना पत्रो' नामक ग्रंथों में काव्य, कहानी, रेखाचित्र तथा विवेचन प्रस्तुत कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होंने 1927 में अचानक लिखना बंद कर दिया किंतु फिर भी गुजराती एकांकी के क्षेत्र में इन्होंने जो सफल प्रयोग किए उनके कारण इनका नाम गुजराती नाटकों के विकास-कर्ताओं में सदा लिया जाता रहेगा।

उमराव-जान-अदा *(उर्दू० कृ०)*

उमराव जान अदा एक वेश्या थी। वह काव्य-प्रेमी होने के अतिरिक्त बहुत रसिक स्वभाव की युवती थी। मिर्ज़ा रुसवा का यह उपन्यास उसी वेश्या उमराव जान अदा को केंद्र-बिंदु बनाकर लिखा गया है। उमराव जान अदा की भेंट मिर्ज़ा रुसवा से एक कवि-सम्मेलन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। अपने संबंध में जो कुछ उमराव जान अदा ने मिर्ज़ा रुसवा को बताया, उसे लेखक ने वैसा ही लिख लिया और बाद में उसे एक औपन्यासिक कृति का रूप दे दिया।

उमराव जान अदा फ़ैजाबाद के किसी मुहल्ले में रहती थी। उसके पिता बहू बेगम के मक़बरे पर नौकर थे और लोग उन्हें जमादार कहते थे।

इस कृति में वेश्या-वृत्ति के परिणामों को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। एक वेश्या के मुँह से ही उसकी जीवन-गाथा औपन्यासिकता का परिधान देकर कहलाई गई है। कृति की भाषा परिमार्जित, मुहावरेदार तथा रसीली है। कहीं-कहीं संवाद भी हैं जिनमें तीखे व्यंग्य का विधान है—वेश्या-जीवन की विवशता और असहायता तथा लाचारी में इस नरक में पड़ी हुई स्त्री की मन:स्थिति का मार्मिक चित्रण इस रचना में हुआ है।

उमराव-जान-'अदा' *(उर्दू० पा०)*

'उमराव-जान-'अदा' मिर्ज़ा रुसवा के प्रसिद्ध उपन्यास 'उमराव-जान-अदा' की नायिका है जो अपनी व्यथा-गाथा स्वयं सुनाती है। इसका जन्म फ़ैज़ाबाद के एक सच्चे, सीधे और शरीफ़ मुसलमान-परिवार में हुआ है। इसका बचपन का नाम अमीरन था। दिलावर ख़ाँ नामी बदमाश द्वारा अपहृत की गई आठ वर्षीया अमीरन लखनऊ की प्रसिद्ध वेश्या ख़ानम के यहाँ बेच दी गई थी। ख़ानम ने ही इसका नाम अमीरन से उमराव-जान कर दिया था। शायरा अथवा कवयित्री होने के नाते 'अदा' इसका तख़ल्लुस (उपनाम) था। शरीफ़ घराने की भोली-भाली लड़की अमीरन, जिसका विवाह तय हो चुका था, भविष्य के मीठे-मीठे सपने सँजोती हुई अनायास पतन के इस गर्त में आ गिरी थी।

ख़ानम के घर उमराव जान को संगीत की शिक्षा मिली और काव्य-कला के प्रति रुचि विकसित हुई। ख़ानम के चकले पर अपने एक हमजोली गौहर मिर्ज़ा के प्रति इसके मन में अनायास ही मधुर भाव जाग उठे थे। यह वेश्या बन गई थी पर इसका स्वभाव वेश्याओं जैसा नहीं था। पर यह पूर्णतया सफल गृहिणी भी नहीं बन सकी थी। इसके स्वभाव में रुचियों के विरोधाभास पाए जाते हैं। यह अपने इस बाज़ारी जीवन से असंतुष्ट रहती थी। फ़ैज़ू के साथ इसका पलायन इसके मन की घुटन की प्रतिक्रिया है। यह फिर लखनऊ लौट आती है।

उमराव जान ने दुनियां देखी है। उसके अनुभव विकसित-व्यापक और परिपक्व हैं। यह अपने आपको दलित, घृणित एवं पतित अनुभव करती है। आत्म-सम्मान, दार्शनिक तथा धार्मिक भाव इसके चरित्र के आभूषण हैं। यह सहानुभूति की पात्र है।

उमरुप्पुलवर *(त० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

तमिल साहित्य के परवर्ती काल में विकसित मुस्लिम धारा के लेखकों में इनका नाम प्रमुख है। ये तमिलनाडु के 'रामनाथपुरम्' नगर के पास 'कीळैक्करै' गाँव में रहते थे। इस गाँव के प्रसिद्ध दानी मुस्लिम-सामंत 'चीतक्काति' इनके आश्रयदाता थे जिनके बारे में यह लोकोक्ति प्रचलित है कि 'मरने के बाद भी ये याचकों को दान देते रहे'। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'एट्टयापुरम्' के ज़मींदार से भी संभवत: आश्रय पाया था क्योंकि इस ज़मींदार के एक दरबारी कवि 'कटिकैमुत्तु' इनके गुरु माने जाते हैं।

इनकी महत्त्वपूर्ण काव्य-रचना 'चीराप्पुराणम्' है जो मुहम्मद नबी के जीवन-वृत्तांत को महापुराण के आकार में प्रस्तुत करती है। तमिल भाषा के सुप्रसिद्ध महाकाव्यों की शैली में इसकी रचना की गई है। इसमें कुल 5026 पद्य हैं जो तीन कांडों में विभाजित हैं। अरबी संस्कृति से संबंधित शब्द यथेष्ट मात्रा में इस काव्य में मिलते हैं पर साथ ही तमिल के प्रादेशिक वातावरण और रीति-नीतियों का उल्लेख भी इसमें द्रष्टव्य है। पूर्ववर्ती तमिल काव्यों से, विशेषकर 'कुरळ्' एवं 'कंबरामायणम्' से, प्रभाव-ग्रहण स्पष्टत: परिलक्षित है। उदाहरण के लिए मुहम्मद से शादी करने के पहले खदीजा बीबी के हृदय में 'पूर्वराग' जागृत होता है और प्रेमविह्वल नायिका के रूप में उसका सुंदर चित्रण हुआ है। यह प्रसंग विशुद्ध रूप से तमिल साहित्य की परंपरा के अनुकूल बैठता है।

'एक पंगु की आत्मकथा' के रूप में रचित 'नोणटि नाटकम्' (नृत्य के लिए योग्य पद्य-रचना) भी इनकी लिखी कही जाती है पर विद्वानों ने इसे प्रामाणिक नहीं माना।

उमरो-ऐयार *(उर्दू० पा०)*

आधुनिक राजनीति में जिसे गुप्तचर्या कहते हैं पुरानी दास्तानों में उसी का नाम ऐयारी था। तरह-तरह के रूप बदलकर शत्रु के संबंध में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त करने तथा शत्रु की योजनाओं को विफल करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धहस्त मात्र ऐयार कहलाते थे।

'तिलिस्म-ए-होशरुबा' में कार्य कर रहे गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष है उमरो-ऐयार। 'चालाक', 'बर्क', 'मेहतर कुरआन', 'जाँसोज़-बिन-कुरआत' और 'ज़रग़ाम' सब इसके सहयोगी हैं। ये सब लोग वही काम करते हैं जो प्रथम महायुद्ध में हिटलर के प्रतिनिधि करते थे।

उमरो-ऐयार अपने साथियों के साथ अमीर हमज़ा की विजयों का मार्ग प्रशस्त करता रहता है। उमरो-ऐयार एक सफल कूटनीतिज्ञ है। यह बड़ी होशियारी से सम्राट 'कोकब' को अपनी ओर गाँठ लेता है और उसकी सहायता से सेनापति 'असद' को शत्रु की क़ैद से मुक्त करता है। उमरो को अमीर-हमज़ा तथा उसकी संतान से हार्दिक प्रेम है। यह सदा उनका हित-साधन करता है। उसकी कल्पना अत्यंत उर्वर है जिससे वह नई-नई उद्भावनाएँ करता है। उसका चरित्र विरोधाभासपूर्ण है। उसमें हास्य भी है, गाम्भीर्य भी; कायरता भी है, साहस भी; निष्ठुरता भी है, मृदुता भी। कभी-कभी वह ऐसी चेष्टाएँ करता है कि सारा सम्मान नष्ट कर बैठता है और कभी ऐसा तेजस्वी रूप दिखाता है कि दिलों पर छा जाता है।

उमा *(त० पा०)*

'उमा' अखिलन् (दे०) कृत 'पावैविळक्कु' (दे०) नामक चरित्र-प्रधान उपन्यास की नायिका है। उपन्यास का शीर्षक पावैविळक्कु (दीपधारिणी) उमा की ओर ही संकेत करता है। उमा एक आदर्श नारी है। वह कलाप्रिय है। कला के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तत्पर हो जाती है। कलाकार तणिकाचलम् की कृतियों के माध्यम से वह उनकी ओर आकृष्ट होती है। धीरे-धीरे उनका प्रेम-संबंध दृढ़ होता जाता है। अंत में यह तणिकाचलम् को पति-रूप में पा लेती है। सुहागरात के समय वह अपने पति से कहकर कि 'आज मेरा जीवन सफल हो गया', अपने प्राणों का त्याग कर देती है। उमा आदर्श प्रेमिका है। उसका प्रेम मांसल एवं स्थूल नहीं अपितु अतींद्रिय एवं सूक्ष्म है। उमा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने यह बताना चाहा है कि भावुकता के बल पर प्राप्त सफलता अल्पकालिक होती है। उमा के रूप में अखिलन् ने एक आदर्श प्रेमिका, कला-प्रेमी और त्यागमयी नारी का चरित्र प्रस्तुत किया है।

उमाकेरळम् *(मल० कृ०)*

इसके रचयिता उळ्ळूर् (दे०) एस० परमेश्वरय्यर् हैं और प्रकाशन वर्ष 1914 ई०। मलयाळम के उत्तम महाकाव्यों में परिगणित तथा इतिहास के आधार पर रचित यह प्रथम महाकाव्य है। कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं के मार्मिक वर्णन की अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। घटनाओं की विशेषता, भावना की विदग्धता, अलंकार-प्रयोग आदि में इसका स्थान अग्रणी है। कथा के चयन में भी कहीं-कहीं कवि ने स्वतंत्र चेतना का प्रमाण दिया है। वर्णनाओं में विविध रसों का परिपाक दृष्टिगोचर होता है। इसके उन्नीस सर्ग, आदि से अंत तक आकर्षक हैं। इसकी रचना मणिप्रवाळ (दे०) शैली में हुई है। संस्कृत महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' (दे०) के समान प्रस्तुत कृति भी काव्यमंडल में अपनी आभा से प्रकाशमान है।

उम्माच्चु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

यह उरूब (दे०) का लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास है। इसका कथानक एक मध्यवर्गीय मुस्लिम गृहिणी उम्माच्चु (दे०) के संघर्षमय जीवन पर केंद्रित है। उम्माच्चु का विवाह उसके इष्ट पुरुष मायन् (दे०) से न होकर एक अन्य पुरुष से हो जाता है। बाद में उसके सहयोग से मायन् उसके पति की रहस्यपूर्ण हत्या करता है और उससे विवाह कर लेता है। परंतु मायन् को जब यह पता लग जाता है कि उम्माच्चु के पिछले दांपत्य से उत्पन्न पुत्र अपने पिता की हत्या का रहस्य जानता है तो वह आत्महत्या कर लेता है। उम्माच्चु के पुत्र आपस में लड़ते हैं और उसका जीवन दूभर हो जाता है।

यह उरूब का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है। यद्यपि इसकी कथावस्तु उपन्यासकारों के प्रिय विषय प्रेम-त्रिकोण पर आधारित है तथापि मानवीय पहलुओं पर इतना प्रकाश डालने वाले उपन्यास मलयाळम में दुर्लभ हैं। अंतर्द्वंद्वों में उलझे हुए व्यक्तियों के कष्टमय जीवन का प्रभावशाली चित्रण इसमें किया गया है। इसकी सहज सरल भाषा-शैली भी पुस्तक की लोकप्रियता का एक मुख्य कारण है। मलाबार के बहुरंगी ग्राम-जीवन का भी इसमें सुंदर चित्रण हुआ है।

मलयाळम में धारावाहिक रूप से प्रकाशित उपन्यासों में यह सर्वप्रथम है और प्रकाशन की इस विधा में अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों के लिए पथ-प्रदर्शक भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका फिल्मीकरण भी हुआ है ।

उम्माच्चु *(मल० पा०)*

यह उरूब (दे०) के इसी नाम के उपन्यास (दे०) की प्रमुख स्त्री-पात्र है । इसका लगाव मायन् (दे०) से है, पर इसका विवाह बीरान से हो जाता है । यह पति से विमुख होकर सारा स्नेह अपने पुत्र अब्दु को अर्पित करती है । मायन् इसकी सहायता से बीरान की हत्या करता और इससे विवाह करता है । बाद में वह अपनी अपराध-भावना का शिकार होकर आत्महत्या कर लेता है । यह दोनों पतियों से उत्पन्न संतानों की घृणा की पात्र बनती है । पुत्र आपस में लड़ते हैं और इसको चैन नहीं मिल पाता ।

यह नारी-जीवन के अनंत कष्टों का प्रतीक है । इसके भाग्य में सुख नहीं है । सुखद समझकर किए जाने वाले कार्य बाद में दुःखद सिद्ध होते हैं । हर दिशा से इस पर अविश्वास-भरी दृष्टियाँ पड़ती हैं । इसके मन को कभी भी शांति नहीं मिलती ।

उयिरोवियम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

'उयिरोवियम्' (सजीव चित्र) नारण दुरै कण्णन्-कृत एक सामाजिक नाटक है । लेखक ने मूलतः इसकी रचना उपन्यास के रूप में की थी । 1948 ई० में उन्होंने इसे नाटक का रूप दिया था । इसमें प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित नर-नारी के स्वतंत्र प्रेम को वर्तमान समाज के अनुरूप परिवर्तित कर प्रस्तुत किया गया है । नायिका कर्पकम् सामाजिक बंधनों के कारण नडराजन के प्रति अपने प्रेम को माता-पिता के सम्मुख नहीं अभिव्यक्त कर पाती है । चंद्रशेखर से विवाह हो जाने के उपरांत भी वह नडराजन को नहीं भुला पाती है । कर्पकम् और नडराजन के सच्चे प्रेम को देखकर चंद्रशेखर उन दोनों के मध्य से हट जाने का यत्न करता है । कर्पकम् के सम्मुख समस्या है कि अब वह क्या करे ? लेखक ने युवा दंपति द्वारा भाई-बहिन के रूप में रहने की प्रतिज्ञा कराके समस्या का नवीन समाधान प्रस्तुत किया है । इस नाटक के दो प्रभावशाली पात्र हैं—कर्पकम् और चंद्रशेखर । नाटक के कलेवर में द्रौपदी नामक अन्य लघु नाटक का समावेश कर लेखक ने अपने रचना-कौशल का परिचय दिया है । इस नाटक में अनेक दृश्य हैं परंतु वे लघु एवं सरस हैं । इसमें अनेक विनोदपूर्ण स्थल हैं । नाटक में प्राप्त गीतों की रचना कु० चा० कृष्णमूर्ति ने की है । इसमें तत्कालीन तमिल समाज में प्रचलित अँग्रेज़ी मिश्रित तमिल भाषा का प्रयोग किया गया है । नाटक का अंत बहुत प्रभावशाली है । इसके माध्यम से लेखक ने यही बताना चाहा है कि कन्या की इच्छा के विरुद्ध किसी युवक से उसका विवाह कर दिए जाने से उसका जीवन नष्ट हो जाता है । तमिल नाटक साहित्य में 'उयिरोवियम्' का विशिष्ट स्थान है ।

उरिप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

तमिल काव्य-परंपरा के उद्‌गम-काल से उसके दो बृहत् विभाग चले आ रहे हैं—एक 'अहम्' (श्रृंगार तथा तत्संबंधी विषय) और दूसरा 'पुरम्' (श्रृंगार तथा तत्संबंधी विषयों से इतर क्षेत्र) । इनका विवेचन प्राचीनतम 'तोलकाप्पियम्' नामक व्याकरण-ग्रंथ में 'पोरुळ्' शाखा के अंतर्गत मिलता है (दे० अहप्पोरुळ्) ।

ये दोनों विभाग, सात-सात उपविभागो में बाँट दिये जाते हैं । श्रृंगार-संबंधी उपविभागों के काव्य-लक्षणों के विवेचन 'मुतल पोरुळ्' (उपविभाग से संबंधित प्रदेश और समय) 'करुप्पोरुळ्' (संबंधित देवता, पशु-पक्षी,, इत्यादि) और 'उरिप्पोरुळ्' (नायक-नायिकाओं के आचरण विशेष) इन तीनों का पर्याप्त परिचय मिलता है ।

'अहम्' के सात उपविभागों के लिए नायक-नायिकाओं के आचरण विशेष इस प्रकार हैं—

उपविभाग	आचरण-विशेष
1. कैक्किळै	एकपक्षीय प्रेम जो बहुधा पुरुष द्वारा काम-वासना रहित बाला के प्रति अथवा अपने योग्य सुंदरी के प्रति पहली भेंट में जागता है ।
2. पेरुंतिणै	अनुचित प्रेम जो पुरुष के विशेष प्रकार के आत्मघात—'मडलेरुतल्'—में अथवा हिंसा-जन्य मिलन इत्यादि में परिणत होता है ।
3. कुरिंचि	पर्वतीय प्रदेश में प्रेमियों का मिलन और कामोपभोग ।
4. पालै	मरुभूमि में प्रेमियों का वियोग ।
5. मुल्लै	घरों से संबद्ध बगीचे आदि आराम-भूमि में प्रेमिका द्वारा गार्हस्थ्य जीवन का वियोग सहन ।
6. नेय्तल्	समुद्र-तटवर्ती प्रदेश में प्रेमिका द्वारा वियोग-जन्य दुःख की अभिव्यक्ति अथवा विलाप ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. कृषक भूमि में प्रेमीजनों के गार्हस्थ्य जीवन-गत पारस्परिक मनस्ताप ।

इन सात उपविभागों को आर्यजाति की आठ प्रकार की विवाह-पद्धतियों के समानांतर बताया गया है। प्रथम विभाग में ऐसे आचरण हैं जो आसुर, राक्षस तथा पैशाच विवाह-प्रथाओं के अनुकूल हैं। दूसरे में ऐसे कृत्य हैं जो ब्रह्म, प्राजापत्य आर्य तथा दैव वैवाहिक प्रथाओं के अनुकूल हैं। शेष पाँच उपविभाग, जो 'ऐंतिणै' कहलाते हैं, पारस्परिक प्रेम से संबंधित होकर गंधर्व-विवाह पद्धति के समकक्ष हैं। 'कैक्किळै' तथा 'पेरुंतिणै' दोनों असाधारण प्रेम से संबंधित हैं और तमिल कविता में इन पर बहुत कम पद्य मिलते हैं।

अधिकांश कविताओं का विषय पारस्परिक प्रेम के पाँच उपविभागों से जुड़ा हुआ है। 'मुतल्', 'करु' तथा 'उरिप्पोरुळ्'—ये तीनों लक्षण इन पाँच उपविधाओं पर नियमतः लागू होते हैं। प्रेमियों का सुखानुभव 'कुरिंचि' के पर्वतीय वातावरण में प्रस्तुत किया जाता है। उनका बिछोह जलती मरुभूमि पर चित्रित होता है। 'मुल्लै' नामक लघु-वनों की पृष्ठभूमि में प्रेमिका के गृहस्थ-जीवन एवं वियोग-सहन का वर्णन किया जाता है।

समुद्र तथा उसका आवरण-रूप तट चाँदनी एवं अंधकार के सदृश लगते हैं और प्रेमिका का विरह-दुःख बढ़ाते हैं। कृषक भूमि प्रेम-जीवन के वैवाहिक सुख तथा उसमें निहित साधारण कलह-विवादों का स्थान है। स्पष्ट है कि पाँचों उपविभागों में निहित प्रेमी-जीवन के जलवाता-नुकूल आचरण-विशेषों का समायोजन अत्यंत प्राचीनकाल में ही हो गया था जो अंततोगत्वा रूढ़ बनकर काव्य-लक्षण के रूप में व्याकरण-ग्रंथों में भी प्रतिष्ठित हुआ। 'उरिप्पोरुळ्' के नियम तमिल की स्वतंत्र परंपरा में उद्दीपन की सुगठित योजना के परिचायक हैं।' 'तोलकाप्पियम्' ने स्पष्टतः इन नियमों को 'कविसमय' के रूप में ग्रहण किया है जो साहित्यिक परंपरा तथा लोकव्यवहार दोनों पर आधारित हैं।

उरुभंग *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शताब्दी ई०]

महाकवि भास (दे०) की तेरह नाट्यकृतियों में 'उरुभंग' भी एक है। 'उरुभंग' एकांकी है जो 'उत्सृष्टिकांक' की कोटि में आता है। इसमें नाटककार ने समय और स्थान की अन्विति का पालन किया है। संस्कृत-नाट्य-परंपरा में दुःखांत नाटक के लिए स्थान नहीं है, पर भास ने यह एकांकी लिखकर उस परंपरा का अतिक्रमण किया है।

'उरुभंग' में भीम और दुर्योधन के भयंकर गदा-युद्ध की कथा वर्णित है। भीम द्वारा दुर्योधन की जंघाओं का भंजन ही इस नाटक का प्रतिपाद्य है। उरुभंग का दृश्य बड़ा लोमहर्षक है। दुर्योधन की करुण मृत्यु पर उसके पुत्र एवं पत्नियों का विलाप बड़ा ही हृदयद्रावक एवं करुणोत्पादक है।

संस्कृत में एकांकी परंपरा का यह प्रथम रूपक है। इससे परवर्ती नाटककारों को एकांकी रचना की प्रेरणा मिली।

उरूब *(मल० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

मलयाळम के प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार और कवि पी०सी० कुट्टिकृष्णन् बाद में 'उरूब' के नाम से प्रसिद्ध हुए। आजकल ये 'कुंकुमम्' साप्ताहिक के संपादक हैं।

उरूब का उपन्यास 'सुंदरिकळुम्' सुंदरन्मारुम्' (दे०) साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत रचना है। 'उम्मा-च्चु' (दे०) दूसरा मुख्य उपन्यास है। 'कुञ्ञम्मयुम् कूट्टु-कारुम्', 'मिंटाप्पेण' आदि उपन्यास, 'तेन्मुळ्ळुकळ', 'कति-र्कट्ट' आदि कहानी-संग्रह और 'पिरंनाळ' कविता-संग्रह इनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके कई उपन्यास और कहानियों का फिल्मीकरण भी हुआ है।

सामाजिक जीवन की विशाल पृष्ठभूमि में मानवीय प्रकृति के गहरे भावों को काव्य-भंगिमा के साथ चित्रित करने में उरूब सफल हुए हैं। उरूब की कहानियों के पात्र मलाबार के मध्यवर्गीय समाज के सदस्य हैं। सहज और अकृत्रिम रचना-शैली इनके लेखन का वैशिष्ट्य है। ग्रामीण वार्तालापों द्वारा घटनाओं के अंतस्तल तक पहुँचने की इनकी क्षमता बेजोड़ है। अनेक कहानीकारों और उपन्यासकारों के लिए ये पथ-प्रदर्शक रहे हैं।

उर्दू-ए-मुअल्ला *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1869 ई०]

'उर्दू-ए-मुअल्ला' मिर्ज़ा-असदउल्लाह-खाँ 'ग़ालिब' (दे०) के पत्रों का दूसरा संग्रह है। यह मिर्ज़ा के देहांत के पश्चात् दो खंडों में प्रकाशित हुआ था। प्रथम खंड 1869 ई० में मिर्ज़ा के निधन के केवल 19 दिन बाद छपा था। यही खंड दूसरी बार 1891 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें 464 पृष्ठ थे। दूसरा खंड 1899 ई० में प्रकाशित हुआ था। इस खंड को मौलाना 'हाली' (दे०) पानीपती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने व्यवस्थित रूप दिया था। इसमें कुल 56 पृष्ठ हैं। इस खंड में विशेषकर वे पत्र संगृहीत हैं जिनमें उन्होंने शिष्यों को इसलाहें दी हैं या काव्य-संबंधी मार्ग-दर्शन प्रदान किया है अथवा कोई विशेष उल्लेखनीय बात कही है। इसके अतिरिक्त कुछ पुस्तकों की भूमिकाएँ तथा समीक्षाएँ भी हैं।

सन् 1929 ई० में लाहौर से शेख मुबारिक अली ने दोनों खंडों को इकट्ठा करके प्रकाशित किया था। इसके अंत में एक परिशिष्ट भी सम्मिलित किया गया था जिसमें 23 अप्रकाशित पत्र थे।

मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के पत्रों का उर्दू-गद्य में महत्वपूर्ण स्थान है। 'ग़ालिब' मौलिक शैली के प्रवर्तक थे। उनकी पत्र-लेखक की निजी शैली है जिसका अनुकरण कोई अन्य लेखक नहीं कर सका। संवादात्मकता, सहजता, जीवन का प्रतिनिधित्व, हास्य तथा विदग्धता 'ग़ालिब' की शैली के विशेष गुण हैं। उन्होंने प्रचलित शैली के दीर्घ संबोधन त्याग दिए और हज़रत, भाई, यार, मियाँ, आदि शब्दों से संबोधन कर आशय व्यक्त कर देने की शैली अपनाई। ग़ालिब अपने पत्रों के कारण अमर रहेंगे।

उर्दू ज़बान और फ़नेदास्ताँगोई *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1944 ई०]

'फ़नेदास्ताँगोई' सुप्रसिद्ध लेखक कलीमुद्दीन अहमद (दे०) की उत्कृष्ट पुस्तक है। इस पुस्तक में सबसे पहले कथा-साहित्य की आलोचना की गई और कथा-साहित्य के विभिन्न पहलू उजागर किए गए हैं तथा कथा-साहित्य के विभिन्न स्वरूपों पर विचार किया गया है। यह पुस्तक लेखक की अनुसंधानात्मक सूझ-बूझ एवं आलोचनात्मक दृष्टि का संकेत देती है।

उर्दू ड्रामा और स्टेज *(उर्दू कृ०)* [प्रकाशन-काल—1957 ई०]

'उर्दू ड्रामा और स्टेज' सैयद मसऊद हसन रिज़वी 'अदीब' (दे०) की रचना है। जैसाकि इस पुस्तक के नाम से प्रकट होता है इसमें उर्दू नाटक तथा रंगमंच के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यह कृति उर्दू साहित्य के इतिहास में एक मूल्यवान योगदान है। 'उर्दू ड्रामा और स्टेज' पुस्तक के दो भाग हैं। प्रथम भाग है 'लखनऊ का शाही स्टेज' और दूसरा भाग है 'लखनऊ का अवामी स्टेज—अमानत और इंदर सभा'।

इस पुस्तक में लखनऊ के नाट्य-रंगमंच के प्रवर्तक मिर्ज़ा वाजिद अलीशाह (दे०) का संक्षिप्त परिचय तथा कला-संरक्षण, उर्दू नाटक का प्रारंभ, रामलीला, रहस, भाँडों की नक़्लों आदि का उल्लेख, रंगमंच का क्रमिक विकास, वाजिद अलीशाह द्वारा आयोजित विभिन्न जलसों का वर्णन, उर्दू का प्रथम नाटक, वाजिद अलीशाह द्वारा रचित 'राधा कन्हैया का किस्सा', अमानत तथा उसकी 'इंदर सभा' का उल्लेख विस्तार से किया गया है।

उर्दू तनक़ीद पर एक नज़र *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

स्वच्छंद समीक्षकों में कलीमुद्दीन अहमद (दे०) का नाम अग्रगण्य है और उनकी उत्कृष्ट कृति है 'उर्दू तनक़ीद पर एक नज़र'। इस ग्रंथ के प्रारंभिक वाक्य में कलीमुद्दीन ने यह कहकर लोगों को चौंका दिया कि उर्दू साहित्य के अंतर्गत जैसे पहले कविता केवल तफ़रीह का साधन थी, उसी प्रकार आलोचना भी महज़ गप का साधन है। किंतु उनका अभिप्राय केवल यह बताना था कि उर्दू में असली तनक़ीद पश्चिम से आई है। प्रस्तुत पुस्तक उर्दू आलोचना की एक महत्वपूर्ण कृति है।

इसके दूसरे, तीसरे और चौथे अध्यायों में उर्दू की प्राचीन आलोचना और तज़किरों के गुण-दोष का विवेचन है। पुराने तथा नये तज़किरे का अंतर स्पष्ट किया गया है। 'आबेहयात' (दे०) के संबंध में यह उक्ति ध्यान देने योग्य है : 'आबेहयात तनक़ीदी कारनामा नहीं महज़ तज़किरा है'। पाँचवें से सातवें अध्याय तक उर्दू के आधुनिक आलोचकों की समीक्षा-पद्धति पर विचार किया गया है। उसमें हाली (दे०), शिबली, (दे०) आज़ाद (दे०) और रशीद अहमद सिद्दीक़ी (दे०) के आलोचना-सिद्धांतों के गुण-दोष की चर्चा है। आठवें अध्याय में पाश्चात्य प्रभाव से समन्वित डा० ज़ोर (दे०) की पुस्तक 'रूहे तनक़ीद', और अब्दुल क़ादिर सरवरी की 'दुनियाए अफ़साना' के दोषों की ओर कड़ी नज़र डाली गई है। नवें अध्याय में प्रगतिशील समाक्षकों की आलोचना-पद्धति का मूल्यांकन है। इससे पूर्व शायद ही किसी ने मार्क्स और लेनिन की इतनी कड़ी आलोचना की हो।

उर्दू के तीन प्रगतिशील समीक्षकों—अख़्तर हुसैन रायपुरी, मजनूँ गोरखपुरी और सैयद एहतेशाम हुसेन (दे०) की समीक्षा-पद्धति पर भी विचार किया गया है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है पूर्वाग्रह-ग्रस्त दृष्टि से देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण इन आलोचकों की आलोचना का एक ही लक्ष्य उभर कर सामने आया है। प्रगतिवादी आंदोलन की अंधाधुंध नक़्ल पर कलीमुद्दीन काफ़ी रुष्ट हैं। अगले अध्यायों में प्रभाववादी समीक्षा की कड़ी से कड़ी आलोचना की गई है। इस ग्रंथ की रचना में कलीमुद्दीन के दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं।'

(1) उर्दू तनक़ीद की कमी सामने आ जाये जिससे उर्दू के विचारक उसे सही दिशा में बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हो सकें।

(2) पश्चिमी काव्य-रूपों से तुलना (जैसे उर्दू की ग़ज़ल और अँग्रेज़ी की ओड), जिससे लोग उर्दू में प्रबंधात्मक रचना में प्रवृत्त हों।

इस पुस्तक के अध्ययन से कलीमुद्दीन की आलोचना-विषयक मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। यह उर्दू के आलोचना-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में से है।

उर्दू शहपारे *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1929 ई०]

यह पुस्तक प्राचीन दक्कनी उर्दू साहित्य (पद्य व गद्य) का एक प्रकाशित इतिहास है। इसे सैयद मुहीउद्दीन क़ादिरी 'ज़ोर' (दे०) ने संकलित करके 1929 ई० में हैदराबाद से प्रकाशित किया था। उर्दू साहित्य में इसका एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। लेखक को इसकी रचना करने के लिए विभिन्न पांडुलिपियों का गहराई से अध्ययन करना पड़ा और कितने ही हस्तलिखित कवि-वृत्तांत पढ़ने पड़े। डा० ज़ोर ने यह पुस्तक लिखकर दक्कनी उर्दू साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है।

पुस्तक में उन्होंने कई प्रामाणिक चित्र भी प्रकाशित किए हैं और मुहम्मद कुली कुतुबशाह की कतिपय ग़ज़लों के सुंदर क़िते भी छापे हैं जिनसे पुस्तक के गौरव की वृद्धि हुई है। 'उर्दू शहपारे' में उर्दू साहित्य के प्रारंभ से कवियों तथा गद्य-लेखकों की महत्वपूर्ण कृतियों के सुंदर अंश चयन करके छापे गए हैं। पुस्तक के आरंभ में एक प्राक्कथन भी है जिसमें लेखक ने उन कठिनाइयों का वर्णन किया है जिनका सामना सामग्री एकत्र करने में उसे करना पड़ा। सारी पुस्तक चार अध्यायों में विभक्त है। यह कृति 'शहपारे' उर्दू साहित्य-प्रेमियों में बहुत लोकप्रिय हुई।

उर्दू शायरी पर एक नज़र *(उर्दू कृ०)*

उर्दू शायरी पर यह श्री कलीमुद्दीन अहमद की आलोचनात्मक पुस्तक है जिसमें उर्दू शायरी को आधुनिक ढंग से देखा-परखा गया है। एक नई शैली में उर्दू शायरी की समालोचना इस पुस्तक में प्रस्तुत की गई है। शायरी को परखने के लिए इसमें भारतीय और पश्चिमी दोनों ही दृष्टियों के समन्वय का सुंदर प्रयास किया गया है। शायरी के विभिन्न अंगों तथा रूपों, भाव, भाषा, शैली तथा मुहावरे आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इसकी शैली सहज-सरल है। भाषा में सुबोधता है। उर्दू, शायरी के जिज्ञासुओं के लिए यह एक सुंदर पुस्तक है और इस दिशा में उनका पथ-प्रदर्शन कर सकती है।

उर्मिला *(क० पा०)*

'रामायणदर्शन' (दे०) महाकाव्य के यशस्वी कवि श्री कुवेंपु (दे०) ने रामायण के अनेक 'काव्येर अनादर' का निराकरण करते हुए अनेक पात्रों में प्राण भर दिये हैं, जिनमें मुख्य हैं उर्मिला तथा मंथरा। यदि हिंदी साहित्य में चित्रित उर्मिला विरहिणा है तो कुवेंपु की उर्मिला तपस्विनी है। वह आशंका, प्रतीक्षा, भीति, खिन्नता तथा हताशा इन पंचाग्नियों के बीच तपस्या कर रही है। रामानुगामी होकर लक्ष्मण के वनगमन से लेकर उनके लौटने तक वह सरयू के किनारे पर्णकुटी बनाकर अपनी तपस्या की रक्षा दे रही है लक्ष्मण, राम और सीता को। वह पति से ख़ुद तपस्या की दीक्षा लेती है। उर्मिला के अचल व्यक्तित्व के समक्ष देवमानव-संस्तुत सीता भी झुक जाती है। शापग्रस्ता अहल्या के पीछे अचेतनता की रक्षा थी किंतु यहाँ वह भी नहीं। वह मूक सती है। साकेत की उर्मिला करुणा का पात्र बनती है तो यहाँ वह श्रद्धा एवं पूजार्ह बनी है। वह भारतीय नारी की जीवंत प्रतिमा है। कुवेंपु के अनुसार उर्मिला गोचरातीता है। उसे मंथरा के विषचक्र का दुष्परिणाम भोगना पड़ा। गुप्तजी की भाँति कुवेंपु ने भी उर्मिला एवं लक्ष्मण के सरस-कोमल जीवन की कल्पना की है। पुष्पवाटिका में सीता के साथ उर्मिला को भी कवि ने दर्शाया है। प्रेमकातरा सीता के आँसू पोंछ कर वह उसे सांत्वना देती है। उर्मिला का तप-त्याग कुवेंपु के इस काव्य का एक रमणीय रसस्थान है। साकेत की उर्मिला अपने गतयौवन की चिंता कर रही है किंतु कुवेंपु की उर्मिला दैहिक भूमिका से ऊपर उठी है। उर्मिला की चेतना सर्वव्यापी बनकर रामायण की सारी घटनाओं पर प्रभाव डालती है। यह 'रामायणदर्शन' की एक बड़ी विशे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षता है । उर्मिला की तपशक्ति राम, लक्ष्मण एवं सीता के लिए यहाँ वज्ररक्षा बनती है, लक्ष्मण जब मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं तब यही तपोलक्ष्मी उनकी रक्षा करती है । 'रामायणदर्शन' में उर्मिला का रोना-धोना नहीं है, वह तो एक परम उदार—गंभीर पात्र है ।

उर्मिला *(म० पा०)*

मामा वरेरकर (दे०) के पौराणिक नाटक 'भूमिकन्या सीता' (दे०) का यह चरित्र उपेक्षिता नारियों का प्रतिनिधित्व करता है । नाटककार ने परंपरा-प्राप्त उर्मिला के चरित्र में युगानुरूप कतिपय बौद्धिक परिवर्तन कर इसे तर्कशीला बना दिया है यह अपने पति से अपनी सतत उपेक्षा का स्पष्टीकरण माँगती है । सीता की अग्नि-परीक्षा प्रसंग पर इसका नारी-हृदय चीत्कार कर उठता है । पुरुष की शंकालु वृत्ति नारी-जीवन के लिए अभिशाप क्यों बने, इसके लिए यह गुरुजनों से तर्क करती है । अपने गत यौवन की चर्चा मात्र से इसका हृदय सिहर उठता है । और राम द्वारा सीता के परित्याग के दुःखद समाचार से अवगत हो यह राम-लक्ष्मण को अपने तर्कों से निरुत्तर कर देती है । इसका यह तर्क-वितर्क नारी के सहज अधिकारों के हेतु हैं, इसीलिए यह कह उठती है—निरंतर विडम्बना हो रही है—राम की पत्नी की नहीं, जनकसुता की नहीं, अयोध्या की रानी की नहीं, मेरी लाडली बहन की भी नहीं । क्यों हो रही है यह स्त्री जाति की विडम्बना ? संदेह ! संदेह ! केवल स्त्री-जाति पर ही क्यों संदेह किया जाता है ? उर्मिला के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने नारी-नवोत्थान की महत्ती भावनाओं को वाणी प्रदान की है । पूर्वनिश्चित प्रारूप में विकसित होने के कारण उर्मिला का चरित्र नाटककार के द्वारा ही परिचालित हुआ है ।

उर्मिला *(हिं० पा०)*

मैथिलीशरण गुप्त (दे०) के महाकाव्य 'साकेत' (दे०) की नायिका उर्मिला है । उसी के उपेक्षित चरित्र का उद्‌घाटन करने के लिए 'साकेत' का सृजन हुआ है । कवि ने उसके त्यागमय जीवन का ऐसा भव्य चित्रण किया है कि उसकी तपस्या के सामने राम को अपना वन-वास फीका लगता है । उसका यह त्याग संस्कारजन्य न होकर परिस्थितिजन्य है । एक आदर्श कुलवधू के समान उसने कर्तव्य-पालन के लिए अपनी भोगवृत्ति का संयमन किया है । इसी भोगवृत्ति से उसके विरह में भी 'यौवन-सुलभ विकलता और चंचलता' का समावेश हो गया है । कवि ने युग की माँग के अनुरूप उसके वीरांगना-रूप की कल्पना भी की है । संपन्न-सांस्कृतिक परिवार की पृष्ठभूमि में उसके चरित्र का विकास और मनःस्थिति का विश्लेषण इतनी सिद्ध लेखनी से किया गया है कि राम सीता के रहते हुए भी 'साकेत' उर्मिला-प्रधान काव्य वन गया है ।

उर्वशी *(सं० पा०)*

'ऋग्वेद' (दे० संहिता) में उर्वशी शब्द का प्रयोग अनेक बार व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में हुआ है । इस वेद के दशम मंडल में 'उर्वशी-पुरुरवा' संवाद है । सातवें मंडल में बताया गया है कि इससे वसिष्ठ उत्पन्न हुआ । पद्‌मपुराण, मत्स्यपुराण आदि में भी इससे वसिष्ठ और अगस्त्य की उत्पत्ति बतायी गयी है । नारायण की उरु (जंघा) से उत्पन्न होने के कारण इस अप्सरा का नाम उर्वशी पड़ा । अनेक पुराणों में उर्वशी और पुरुरवा (दे०) के प्रणय एवं विरह की गाथा विविध-रूपों में वर्णित है । इसके अतिरिक्त पुराणों में अनेक कथाओं के माध्यम से यह बताया गला है कि इंद्र ने मर्त्यलोक के अनेक ऋषियों को मोह जाल में फँसाने के लिए उर्वशी की सहायता ली । इंद्रलोक में एक बार अर्जुन (दे०) ने उर्वशी की मद-लालसा की अवहेलना की तो उर्वशी ने उसे एक वर्ष तक नपुंसक बनकर रहने का शाप दे दिया ।

उर्वशी (*हिं० पा०*) [प्रकाशन-काल—1961 ई०]

छायावादोत्तर काल के इस बहुप्रशंसित प्रेमाख्यानक काव्य-नाटक का सृजन डा० रामधारीसिंह 'दिनकर' (दे०) ने उर्वशी (दे०) और पुरुरवा की प्रेमकथा के आधार पर किया है । संयोग और वियोग के अनेक अनुभवों का उद्दाम और उदात्त चित्रण यहाँ सशक्त भाषा में हुआ है । संयोग पक्ष में काव्य के सभी प्रेमी पात्र उर्वशी के प्रकृत और निर्द्वंद्व भोग-सिद्धांत का समर्थन करते हैं । वियोग की विकट स्थिति तीन पात्रों के सामने आती है । उर्वशी उसे मर्त्यलोक का नियम मानकर स्वीकार करती है । पुरुरवा को उसे स्वीकार करने की मंत्रणा चन्द्रकुल का प्रारब्ध देता है । औशीनरी को सुकन्या समझाती है कि 'उन्मूलित वाटिका' के लिए आत्म-उत्पीड़िन व्यर्थ है । जो 'नया पादप' मिल गया है, उसे देखकर जीना चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार प्रेमी पात्रों का अनुभव यह है कि लब्धि के भोग और लुप्ति के सहन में ही जीवन की सार्थकता है। जहाँ तक सहिष्णुता की प्रक्रिया का संबंध है, कवि ने दो विकल्प रखे हैं। उर्वशी और औशीनरी जागतिक स्थितियों का निर्वाह करते हुए स्नेह-स्मरण का संकल्प लेती हैं। पुरुरवा अंतर्मुखी होने से संन्यास ग्रहण करता है। ये दोनों विकल्प क्रमशः भारतीय अद्वैतदर्शन की कर्मयोग और संन्यास नामक निष्ठाओं के प्रतीक हैं, जिनमें से किसी एक की ओर व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार झुक जाता है।

उर्वशी (हिं० पा०)

यह पौराणिक स्त्री-पात्र दिनकर के काव्य-नाटक 'उर्वशी' (दे०) की नायिका है। कवि ने उसके प्रख्यात प्रेमिका-रूप का चित्रण करते हुए उसके माध्यम से अपनी जीवन-दृष्टि को भी व्यंजित किया है। अपने समस्त रूप-वैभव के साथ पराक्रमी पुरुरवा के अंक में अवतरित होकर वह निर्द्वंद्व भोग का संदेश देती है। इस भोग के फल-स्वरूप उत्पन्न होने वाली बाधाओं (प्रजनन द्वारा कांति-हरण और विरह-दुःख) को वह धरती का नियम मानकर स्वीकार करती है। पुत्र की हित-कामना से किए गए त्याग ने उसे मातृत्व की दिव्यता से मंडित पूर्ण मानवी बना दिया है। यह त्याग निर्द्वंद्व न होने से सहज मानवीय है। इस प्रकार कवि ने अपने चित्रण-कौशल से इस प्रख्यात सामान्या को उसके प्रगल्भत्व की रक्षा करते हुए तन्मय प्रेमिका और उत्सर्गमयी जननी का प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है। फलतः वह धरती की 'सनातन' ही नहीं पूर्ण नारी का भव्य प्रतीक बनने में समर्थ है।

उलहम् ओरु कुडुंबम् (त० कृ०) [रचना-काल—1963 ई०]

इसमें शालै इळंतिरैयन् 25 निबंध संगृहीत हैं जिनमें प्रसिद्ध हैं—वळि वळि मक्कळ् उलहम् ओरु कुडुंबम्, शण्डैहळ, तलुम्बुहळ, सोन्द कुरल्, विळुदु वेरकळ्, एल्ले, मनिदन् ओरु कलै और एट्टाद उयरम्। इन निबंधों में मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण है। लेखक के मत में मानवतावाद और विश्व-बंधुत्व की भावना द्वारा ही सुखी संसार का निर्माण किया जा सकता है। आरंभिक कुछ निबंधों में वह कहता है कि दिन-प्रतिदिन विकसित होने वाले मानव-समाज के विकास में प्रत्येक व्यक्ति को योग देना चाहिए ताकि वह भावी पीढ़ी को एक विकसित समाज सौंप सके। कुछ निबंधों में समाज के विकास में बाधक मनुष्य की अनजाने की गई भूलों की चर्चा है। कुछ निबंधों में वह कहता है कि मनुष्य को वातावरण के अनुकूल अपने को ढालते हुए जीवन के प्रति अपनी मौलिक धारणा परिवर्तित कर लेनी चाहिए। अंतिम दो निबंधों में उसने निबंध की शैली और विषय को लेकर नूतन प्रयोग किए हैं। इस कृति का तमिल निबंध साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसमें प्रथम बार गंभीर विचारों को सरल शैली में प्रस्तुत किया गया है।

उलहवळक्कु (त० पारि०)

पारिभाषिक अर्थ में इस उक्ति का उपयोग तमिल के व्याकरण-ग्रंथों में, उनसे संबंधित टीका-टिप्पणियों में तथा अन्य समालोचनात्मक लेखन में किया जाता है।

तमिल व्याकरण-परंपरा का प्रथम परिचय देने वाले अति प्राचीन ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' में 'पोरुळ्' (काव्य-विषय) अध्याय के तिरेपनवें सूत्र में कहा गया है कि 'अहम्' (शृंगार) कविता की कल्पनात्मक साहित्यिक पद्धति की आधार-भूमि नाटक एवं सामाजिक व्यवहार है। मूल तमिळ पंक्तियं ये हैं—

'नाटक वलक्किनुम् उलकियल् वळक्किनुम्
पाडल् चान्र पुलनेरि वळक्कम्।

यहाँ 'नाटक' शब्द का अर्थ 'नृत्य अथवा गेय काव्य' की परंपरा ग्रहण करना चाहिए। 'उलहियल वळक्कु' का (जो 'उलह वळक्कु' से भिन्न नहीं है) तात्पर्य 'मानव-जगत का व्यवहार' है। आशय यह कि तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठित रीति-नीति तथा आचरण-विशेष के अनुकरण पर तथा कविता-परंपरा के पूर्व प्रमाण के बल पर तमिल साहित्य की कल्पनात्मक वर्णन-पद्धति का निर्माण हुआ है।

'तोलकाप्पियम्' के एक और प्रसंग में ('पोरुळ', सूत्र 647) तत्कालीन काव्य एवं लोक-भाषा के शब्द-प्रयोगों का आधार 'वळक्कु' बताया गया है। यह 'वळक्कु' (अर्थात् 'उपयोग') शिष्टजनों का व्यवहारगत उपयोग माना गया है।

इस प्रकार 'उलहवळक्कु' से तीन बातें अभिप्रेत हैं—

1. सामाजिक व्यवहार अथवा आचरण;
2. इस व्यवहार अथवा आचरण का शिष्ट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनों से संबंधित होना;

3. काव्यगत कल्पनात्मक वर्णन तथा कथन-पद्धतियों का प्रथम दोनों पर आधारित होना।

उला *(त० पारि०)*

तमिल की 96 काव्यविधाओं में एक है उला, जिसका मूल प्रतिपाद्य प्रेम है। उला में लेखक नगर की वीथियों में विचरण करते हुए राजा या स्वयं ईश्वर के प्रति विभिन्न आयु की कन्याओं के प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। आरंभिक उला-कृतियों में परमात्मा के प्रति जीवात्माओं के प्रेम का वर्णन है। भक्ति की सात स्थितियों का दिग्दर्शन कराने के लिए कवियों ने सात विभिन्न आयु की कन्याओं को नर-रूप में अवतरित ईश्वर पर अनुरक्त होते दिखाया है। परवर्ती काल में राजाओं की महिमा का गान करने के लिए यह शैली अपनाई गई। कवियों ने राजा के अपूर्व सौंदर्य को देखकर कन्याओं के मन और शरीर में होने वाले परिवर्तनों का वर्णन किया है। नवीनतम उला-कृतियों में ईश्वर को राजा या सुंदर युवक का प्रतिरूप माना गया है। तमिल की कुछ प्रसिद्ध उला कृतियाँ हैं—'तिरुकैलायज्ञान उला', 'मूवर उला', 'तिरुप्पूवणानादर उला', 'तिरुवानैका उला' आदि।

उळिनै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' काव्य-विभाग का उपविभाग है और 'वंचि' के बाद इसका स्थान है। 'तोलकाप्पियम्' के अनुसार इसके मुख्य विषय दुर्ग पर धावा तथा रक्षा दोनों हैं। धावा तथा रक्षा दोनों पक्षों के लिए चार-चार प्रकरण उल्लिखित हुए हैं। इनके अलावा बारह प्रकरण दोनों के लिए समान बताये गये हैं। इन प्रकरणों के उल्लेख से तत्कालीन दुर्ग-युद्ध के संचालन और परवर्ती आचरण का आभास मिलता है, यथा आक्रामक राजा द्वारा शत्रु-देश को जीता हुआ मानकर अपने पक्षवालों को भेंट कर देना, चमड़े के आयुध धारण करना तथा दूतों द्वारा अपनी अपार शक्तियों का परिचय करवाना, इत्यादि। वर्ण्य विषयों में से कुछ प्रतिरक्षाकारी राजा की विशेष संपत्तियाँ, दुर्ग की श्रेष्ठता आदि हैं। दुर्गयुद्ध की विभिन्न अवस्थाएँ (यथा दीवार पर तथा खाई के दोनों ओर के युद्ध), प्रतापी छत्र एवं खड्ग का विजयाभिषेक, तथा विजयी वीर-सेनाओं का सम्मान आदि बातों का भी उल्लेख है।

'तोलकाप्पियम्' की परवर्ती रचना 'वेण्पामालै' में (जो 'अगत्तियम्' की व्याकरण-परंपरा की कही जाती है) इस उपविभाग 'उळिनै को केवल दुर्ग पर धावे के पक्ष तक सीमित किया गया है और दुर्ग-रक्षा को अलग शीर्षक 'नोच्चि' में रखा गया है।

उवंग (उपांग) *(प्रा० कृ०)*

जैन आगमों (दे०) में इनकी गणना होती है। 12 अंगों के समान इनकी संख्या भी 12 है किंतु संख्या-साम्य के अतिरिक्त इनका कोई संबंध नहीं। इनका आगमन सीधा गणधारों से नहीं किंतु स्थविरों के माध्यम से हुआ है। इसीलिए इन्हें उपांग कहा जाता है। 12 उपांग ये हैं—(1) **'उववाइय'** (औपपातिक) : इसके प्रथम खंड में चम्पा में महावीर स्वामी के भिम्भसार पुत्त कुणिअ के साथ और द्वितीय खंड में गोमय इंदभूति के साथ प्रश्नोत्तर का वर्णन है। ये प्रश्नोत्तर उपपात अच्छे-बुरे कर्मों से विभिन्न लोकों की प्राप्ति के विषय में हैं इसलिए यह नामकरण हुआ है। (2) **'रायपसेणइय'** (राजप्रश्नीय) : इसमें प्रथम खंड में सूयभि के महावीर के पास जाने की कथा और दूसरे खंड में केशीकुमार और श्रावस्ती के राजा प्रदेशी के मध्य आत्मा संबंधी संवाद का वर्णन है। (3) **'जीवाजीवाभिगम'** : इसमें गोयम के प्रश्न और महावीर के उत्तरों में जीवन और अजीव का वर्णन है। अजीव वर्णन में भौगोलिक वर्णन आ गया है। (4) **'पन्नवणा'** (प्रज्ञापना) इसमें भी गोयम और महावीर के प्रश्नोत्तर हैं। इसके लेखक का नाम आर्यश्याम दिया हुआ है। यह विशाल ग्रंथ है और इसमें पृथ्वी, जल इत्यादि पदार्थों, विभिन्न आर्य-अनार्य जातियों, विभिन्न कर्मों इत्यादि का वर्णन है। (5) **'सुरियपन्नति'** (सूर्य प्रज्ञप्ति)। (6) **'जंबुद्दीवपन्नति'** (जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति); और (7) **'चंदपन्नदि'** (चंद्रप्रज्ञप्ति) : ये तीन पुस्तकें विज्ञानपरक हैं जिनमें गणित, ज्योतिष, भूगोल इत्यादि वैज्ञानिक तत्त्व दिखलाए गए हैं। 'चंदपन्नति' और 'सुरियपन्नति' दोनों में एक-जैसा ही खगोल का वर्णन है। 'जंबुद्दीवपन्नति' में पौराणिक शैली में भूगोल दिखलाया गया है। 8 से 12 तक उपांग पौराणिक शैली के कथानकों से ओत-प्रोत हैं (8) **'निरयावलिया'** में चंपा के कुणिय या अज्ञातशत्रु के 10 भाइयों का नरक-गमन। (9) **'कप्पवडंसिया'** (कल्पावतंसिका) में उसी वंश के 10 राजकुमारों का स्वर्ग-गमन, (10)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पुप्फिया' (पुष्पिका) में 10 देवों और देवियों का महावीर की पूजा के लिए पुष्पक विमान पर स्वर्ग से आगमन, (11) 'पुप्फचूलियाओं' (पुष्पचूलिका) में उसी प्रकार की 10 अन्य कथायें, और (12) 'वण्हिदसाओ' (वृष्णिदशा) में वृष्णिवंश के 12 राजकुमारों को अरिष्ट नेमि द्वारा दीक्षा देना वर्णित है। पहले 'निरयावलीसुत' नाम से ये ग्रंथ एक ही थे। बाद में 12 की संख्या पूरी करने के लिए इन ग्रंथों को 5 ग्रंथों के रूप में विभाजित कर दिया गया।

उवएस माल कहाणय छप्पय *(अप० कृ०)* [रचना-काल —बारहवीं-तेरहवीं शती ई०]

'उपदेश माल कथानक छप्पय' विनयचंद्र कृत 81 पद्यों की कृति है। इसमें प्राचीन तीर्थंकरों एवं धार्मिक पुरुषों के उदाहरण देते हुए धर्माचरण का उपदेश दिया गया है। जैसाकि कृति के नाम से प्रकट है इसमें छप्पय छंद का प्रयोग किया गया है।

उशनस *(गु० ले०)* [जन्म—सन् 1920 ई०]

इनका पूरा नाम है नटवरलाल पण्ड्या 'उशनस'। अध्ययन—बड़ौदा कालेज। बंबई विश्वविद्यालय से गुजराती तथा संस्कृत में एम० ए० करके नवसारी कालेज में प्राध्यापक हुए और तदुपरांत बलसाड कालेज में गुजराती के प्राध्यापक एवं आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए।

कालेज-जीवन में ही ये काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हो गए थे तथा अपनी काव्यकृतियों से इन्होंने नई तथा पुरानी दोनों पीढ़ियों का ध्यान आकर्षित किया था। अब तक इनके सात काव्य-संग्रह तथा दो आलोचना-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कविता में इन्होंने गीत, मुक्तक, सॉनेट तथा वर्णनात्मक प्रभृति काव्य-रचनाएँ की हैं। बौद्धिक आग्रह के कारण इनकी कतिपय रचनाओं में संवेदनशीलता दब गई है। 'नेपथ्य' नामक संग्रह में इन्होंने पौराणिक पात्रों को लेकर संवाद-काव्य लिखे हैं जिनपर रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के संवाद-काव्यों का प्रभाव लक्षित होता है।

इनकी आलोचना में अध्ययनशीलता जितनी दृष्टिगत होती है उतनी मौलिक दृष्टि नहीं दिखाई देती। हाँ, नाट्य-साहित्य-विषयक समीक्षा में इनकी मौलिकता असंदिग्ध है।

उषःकाल *(म० कृ०)* [रचना-काल 1895-1897]

शिवाजी-स्मारक के लिए चंदा एकत्र करने के लिए लोकमान्य टिळक (दे०) के आंदोलन और रायगढ़ के किले पर 1896 ई० में मनाए गए शिवाजयंती-समारोह से अनुप्रेरित हो हरिनारायण आप्टे (दे०) ने शिवाजी-संबंधी जो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं उनमें पहला उपन्यास 'उषःकाल' ही है। इसके द्वारा लेखक ने शिवाजी की व्यक्ति-रेखाओं को तो पाठकों के सम्मुख भास्वर किया ही है, शिवाजी-काल को भी साकार कर दिया है। इसके द्वारा लेखक ने पाठकों के मन में अतीत के प्रति गौरव-भाव और वर्तमान के प्रति क्षोभ जगाकर स्वातंत्र्य-प्राप्ति की उत्कट आकांक्षा जगाई है। उपन्यास पढ़ते समय पाठक का ध्यान मुग़ल-शासन में मराठों की दुर्दशा तथा उससे उत्पन्न नवजीवनोन्मेष के प्रति सहज ही आकृष्ट हो जाता है। नानासाहेब के कुटुम्ब की अवस्था द्वारा तत्कालीन मराठी कुटुम्बों की अवस्था, उनके क्षीण होते वैभव और शौर्य का वर्णन किया गया है तो देशमुख की विक्षिप्त पुत्रवधू के माध्यम से मुग़लों की सनक, दुष्कर्म एवं अत्याचारों का संकेत दिया गया है। मराठों में उस समय भी स्वामिभक्ति की भावना कितनी प्रबल थी, वे स्वामी के लिए अपनी संतान और अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहते थे, इसका आभास भी उपन्यास में मिलता है। उपन्यास में शिवाजी का चरित्र तो स्मरणीय है ही, सावळया (दे०) की व्यक्ति-रेखा भी स्मृति-पटल पर बहुत काल तक अंकित रहती है। चरित्र-चित्रण में लेखक ने विरोध-पद्धति का आश्रय लिया है। नानासाहेब के दोषों—अस्थिरता, अधैर्य, अविवेक, आवेश के सम्मुख शिवाजी के गुण-शांत-वृत्ति, विवेक, नेतृत्व-शक्ति और भी प्रभावशाली बन जाते हैं। यद्यपि उपन्यास में अलौकिक घटनाओं, प्रसंगों और रहस्यमय स्थानों का उल्लेख है फिर भी लेखक ने उन्हें इस प्रकार आयोजित किया है कि वे शिवा-काल से तद्रूप हो उठने के कारण अस्वाभाविक नहीं लगते। प्रारंभिक मराठी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का यह उत्कर्ष-बिंदु है।

उसमान *(हिं० ले०)* [अस्तित्व-काल—सत्रहवीं शती]

उसमान गाज़ीपुर निवासी शेखहुसेन के पुत्र थे। ये चिश्ती संप्रदाय के बाबा हाजी के शिष्य थे। इनकी एकमात्र रचना 'चित्रावली' (दे०) के अध्ययन से पता चलता है कि उसमान विनयी, गुणी तथा उदार थे। इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कृति में शाहे-वक्त जहाँगीर, अँग्रेजों, तत्कालीन उत्सवों, समाज, रीति-रिवाज, अनुष्ठान आदि का वर्णन किया है। 'चित्रावली' के प्रत्येक पद में कवि की काव्य-प्रतिभा, वाग्वैदग्ध्य, और रचना-कौशल का परिचय मिलता है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—'एक एक वचन मोति जनु पोवा। कोऊ हँसा कोउ सुनि रोवा'। हिंदी के सूफ़ी कवियों में इन्हें जायसी (दे०) के बाद स्थान दिया जा सकता है।

उळ्ळूर, परमेश्वरय्यर *(मल० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

इन्होंने एम० ए०, बी० एल० परीक्षाएँ पास कर सरकार के विविध विभागों में सेवा की। ये त्रावनकोर विश्वविद्यालय के पौरस्त्य भाषा-विभागों के संकायाध्यक्ष थे। इनकी प्रसिद्ध कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—'वंचीशगीति'; 'मंगळ मंजरी' (स्तोत्र-ग्रंथ); 'वर्णभूषणम्' (दे०) काव्य; 'पिंगळा' (दे०) (वेश्या पिंगळा (दे०) पर रचित काव्य); 'भक्तिदीपिका' (दे०) (कविता); 'चित्रशाला' (भारतीय वनिताओं के महत्व पर लिखित कविता), 'कविता संग्रह' (ताराहारम् किरणावलि, रत्नमाला, मणिमंजुषा, हृदयकौमुदी, तरंगिणी, कल्पशाखी अमृतधारा, दीपावलि) और 'उमाकेरलम्' (दे०) (महाकाव्य)। 'केरल-साहित्य चरित्रम्' (दे०) (पाँच भाग) केरली भाषा और साहित्य का सर्वांगपूर्ण गवेषणात्मक इतिहास है जिसके समकक्ष अभी तक और कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ। आर्ष संस्कारों के प्रति इनके मन में अटूट श्रद्धा थी—जीवन-भर ये सरस्वती की पूजा करते रहे।

ऊद-ए-हिंदी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1861 ई०]

'ऊद-ए-हिंदी' मिर्ज़ा असद-उल्लाह ख़ाँ 'ग़ालिब' (दे०) की रचना है। इसका प्रकाशन 1868 ई० में हुआ था।

'ऊद-ए-हिंदी' मिर्ज़ा ग़ालिब के 137 पत्रों का संग्रह है। ये पत्र मिर्ज़ा ने समय-समय पर अपने शिष्यों तथा इष्ट मित्रों को लिखे थे। इन पत्रों के अतिरिक्त इस पुस्तक में कुछ तकरीज़ें (समीक्षाएँ) तथा तीन पुस्तकों की भूमिकाएँ भी सम्मिलित हैं। इस पत्र-संग्रह के प्रकाशन के 4 मास पश्चात् फ़रवरी, 1869 ई० में मिर्ज़ा का देहांत हो गया था।

'ऊद-ए-हिंदी' 88 पृष्ठों में छपी है। प्रारंभ में मुंशी मुमताज़ अली ख़ाँ की लिखी भूमिका है और अंत में हकीम ग़ुलाम मौला साहब 'कलक' मेरठी की सम्मति तथा चार विभिन्न व्यक्तियों के कहे हुए चार तारीख़ी 'क़तए' (दे०) हैं। ये क़तए ऐसे हैं जिनके शब्दों के निश्चित मान अंकों में गिनकर सन्-विशेष निकाला जाता है।

मिर्ज़ा की-सी शैली के दर्शन अन्य किसी भी लेखक के यहाँ नहीं होते। मिर्ज़ा के ये पत्र उनके जीवन का दर्पण है। सहजता इनका विशेष गुण है। इनके एक-एक शब्द में एक जीवंत व्यक्तित्व बोलता है। मिर्ज़ा के पत्रों को पढ़कर लगता है जैसे कोई सामने बैठा बातें कर रहा है। मिर्ज़ा ने स्वयं लिखा है—'मैं चाहता हूँ तहरीर (लेख) तक़रीर (वक्तव्य) से कम न हो।' ग़ालिब के पत्रों की एक अन्य विशेषता है उनकी शोखी तथा हास्य का पुट। प्रयत्न करने पर भी ग़ालिब की शैली का अनुकरण कोई लेखक नहीं कर सका।

ऋतुसंहार *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शताब्दी ई० पू०]

'ऋतुसंहार' कालिदास (दे०) की सर्वप्रथम रचना है। यह गीतिकाव्य है जिसमें षड्ऋतुओं का सुंदर वर्णन किया गया है।

कुछ विद्वान् इसे कालिदास की कृति नहीं मानते क्योंकि मल्लिनाथ ने कालिदास के अन्य सभी ग्रंथों पर टीका की है, पर इस पर नहीं की। इसके अतिरिक्त साहित्यशास्त्रियों द्वारा इसका कोई भी पद्य उद्धृत नहीं किया गया। पर अब यह धारणा निर्मूल हो चुकी है तथा इसे सभी अब कालिदासकृत ही मानने लगे हैं।

6 सर्गों में उपनिबद्ध इस काव्य में 144 छंद हैं। इसमें 'ग्रीष्म' से लेकर बसंत तक षड्ऋतुओं का बड़ा स्वाभाविक, अकृत्रिम तथा सजीव वर्णन उपस्थित किया गया है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन में उस ऋतु का वृक्षों, लताओं और पशुपक्षियों पर होने वाला प्रभाव तथा उसके कारण कामीजनों की चित्तवृत्ति और व्यवहार में दिखाई देने वाले परिवर्तन तथा उनके हृदयों में उठने वाले तरह-तरह के विचारों आदि का बड़ा व्यवस्थित क्रम दृष्टिगोचर होता है।

यह काव्य यद्यपि उच्चकोटि का नहीं है किंतु इसे देखकर पाठक के हृदय में कवि के सृष्टि-निरीक्षण की शक्ति तथा विकासोन्मुख कलानैपुण्य की कल्पना स्वतः आ जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुसंहारमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

'ऋतुसंहारमु' विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का एक अल्पकाय काव्य-ग्रंथ है जिसमें कालिदास (दे०) के 'ऋतुसंहारम्' (दे०) की प्रेरणा से इन्होंने आंध्र में प्रकट होने वाली छह ऋतुओं एवं आंध्र के ग्रामीण एवं नागरिक जीवन के सौंदर्य का वर्णन किया है। जीवन एवं प्रकृति की एकरूपता एवं सामंजस्य को यह काव्य साठ 'सीसपद्यों' (तेलुगु का एक छंद) में प्रस्तुत करता है। ऋतु-वर्णन जैसे घिसे-पिटे विषय को भी रोचक एवं नवीन रूप में प्रस्तुत करना प्रतिभावान् कवि के लिए ही संभव है। आंध्र के पूजा-त्यौहार, वहाँ के कृषक, युवक एवं युवतियाँ, कारीगर, वर्षा में बच्चों का खेलकूद आदि अनेक ग्रामीण चित्र इसमें जीवंत होकर हमारे सामने प्रकट होते हैं।

एंकि *(तें० पा०)*

एंकि श्री नंडूरि सुब्बारावु (दे०) के 'प्रसिद्ध' 'एंकिपाटलु' (दे०) की नायिका है। यह अशिक्षित, निष्कपट और भोली-भाली ग्रामीण महिला है। यह प्रेमैक-मयी है जो नदी के किनारे एकांत में अपने प्रियतम के साथ मिलकर खेतों में काम करने तथा उसके सांगत्य-सुख में तल्लीन रहती है। अपने प्रियतम से अलग किसी संसार को यह नहीं जानती। इसका अबोध हृदय अपने प्रियतम के साथ किए गए पिछले जन्म के प्रेम-व्यवहारों की कल्पना करके लज्जावनत हो जाता है और अगले जन्म में वियोग की आशंका से भय एवं शोक से कंपित हो जाता है। यह विशुद्ध प्रेम, ममता और विश्वास का प्रति-निधित्व करने वाली सनातन भारतीय नारी का प्रतिरूप है।

एंकिपाटलु *(तें० कृ०)* [ले०—नंडूरि सुब्बारावु (दे०) रचना-काल—1930 ई०]

तेलुगु साहित्य में यह एक युगांतरकारी रचना है। यह परंपरागत साहित्य के विषय, विधान, छंद आदि सभी अंगों में आमूल परिवर्तन लेकर उपस्थित हुई थी। इसमें अत्यंत सरस और मर्मस्पर्शी लोकगीत हैं जिनकी संख्या लगभग एक-सौ है। इनमें कोई कथासूत्र नहीं है। 'वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्' की उक्ति को सार्थक करता हुआ एक-एक गीत एक-एक काव्य के समान रसमय है। इन गीतों में 'एंकि' (दे०) और 'नायुडु' दो ही प्रमुख पात्र हैं। इन दोनों का निवास नदी के किनारे का बगीचा है। परस्पर अनन्य अनुराग ही इनके जीवन का आधार है। इस प्रेमी-युगल के अत्यंत सीमित जीवन के छोटे-छोटे किंतु अतिमोहक चित्र इसके एक-एक गीत में प्रस्तुत किये गये हैं। इतने थोड़े से सरल-साधारण शब्दों में इतनी मर्मस्पर्शी भावना को व्यंजित करना किसी महाकवि के लिए ही संभव हो सकता है।

इन लोकगीतों में इन दो पात्रों द्वारा ग्रामीण जीवन के सुख-दुःख, स्नेह-प्रेम, आशा-निराशा, अबोधता आदि का स्मरणीय चित्रण कवि ने किया है। इन गीतों की भाषा भी विषय के अनुकूल अत्यंत साधारण ग्रामीण ही है। छोटे-छोटे और सीधे-सादे शब्दों में विशाल भाव-राशि का नर्तन कवि ने प्रदर्शित किया है। इस काव्य के अनु-करण में किसी कवि को सफलता नहीं मिली। इन गीतों की सफलता ने उस समय सरल व्यावहारिक भाषा को साहित्य-रचना के योग्य सिद्ध करने के आंदोलन को जितना बल दिया, उतना और किसी काव्यकृति ने नहीं दिया। यह तेलुगु साहित्य की अमर कृति है।

एकइ कि बोले सभ्यता *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1860 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) की नाट्य प्रतिभा का विकास एवं निखार प्रहसनों में और उनमें भी 'एकइ कि बोले सभ्यता' में हुआ है। इस प्रहसन के नव-कुमार तथा कालीनाथ ऐसे ही युवक हैं जो नवीनता और आधुनिकता के मोह में पड़कर पश्चिमी रहन-सहन की नक़ल करते हैं। इन युवकों के लिए हर पुरानी चीज़ निर-र्थक है; इसीलिए गृहस्वामी और बाबा जी का धर्माचरण, परिवार वालों का सरल-स्निग्ध व्यवहार दकियानूसी लगता है। इनकी ज्ञानतरंगिणी सभा परंपराओं और रूढ़ियों से स्वाधीनता एवं स्वच्छंदता अवश्य चाहती है परंतु यह स्वाधीनता सुरा-सुंदरी के उन्मुख व्यवहार तक ही सीमित है।

प्रहसन के दो अंक और प्रत्येक अंक के दो गर्भांक हैं। कथा में संघर्ष तथा प्रसंग-योजना में लेखक को सफलता मिली है। अंतिम दृश्य की योजना से नाटक-कार नई सभ्यता की कृत्रिमता और खोखलेपन को दिखा सका है। व्यंग्य का स्वरूप तीखा है जो कहीं शब्दों द्वारा ध्वनित हुआ है तो कहीं आचरणगत विसंगतियों के द्वारा। संवाद चुस्त तथा चुटीले हैं। भाषा सहज एवं पात्रानुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। व्यंग्य का प्रहार तीव्र करने के लिए अँग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग किया गया है। अभिनय की दृष्टि से यह प्रहसन लोकप्रिय रहा है।

यह प्रहसन माइकेल का ही नहीं, प्रथम चरण का सर्वश्रेष्ठ प्रहसन है। परवर्ती अधिकांश नाटककारों ने माइकेल से अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित होकर इस समस्या को उठाया। यह रचना युग की उपलब्धि है।

एक उन्दर अने जदुनाथ (गु० कृ०) [प्रकाशन—1964 ई०]

'एक उन्दर अने जदुनाथ' भूखी पीढ़ी के गुजराती संस्करण 'रे' मठ के प्रसिद्ध कवि और लेखक सर्वश्री लाभशंकर ठाकर (दे०) और सुभाष शाह का त्रि-अंकी नाटक है। नाटक के अंत में अँग्रेज़ी में एक छोटा सा वक्तव्य है: 'यह नाटक सभी के लिए नहीं है।' कुछ विशिष्ट लोगों के लिए लिखे गए इस 35 पृष्ठीय नाटक का प्रकाशन भी 'रे' मठ से ही हुआ है। वस्तुतः इस नाटक में दो ही अंक हैं: पहला और तीसरा; दूसरा अंक तो केवल अंतराल की व्यवस्था करता हुआ प्रतीत होता है और है भी अर्द्ध-पृष्ठीय। नाटक के पात्र 'अनआइडेंटीफ़ाइड' 'अ' और 'ब' हैं। दोनों का ही लगभग अंत तक संवाद चलता है तो बीच-बीच में वेतुके संवाद और अभिनय हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जेम्स ज्वायस की चेतना-प्रवाह वाली धारणा का नाटकीकरण कर दिया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अफ़ीमचियों के समान दिखाई देने वाले संवादों और अभिनयों में कहीं जीवन के गंभीर स्वर वर्तमान ही नहीं हैं! परिस्थितियों से मुक्त होने की व्याकुलता; न हो सकने की विफलताजन्य निराशा; मृत्यु और भय की मानसिक स्थितियों का प्रकाशन तथा अस्तित्व के स्वातंत्र्य को लेकर उत्पन्न वेदना आदि के स्वर इतस्ततः विद्यमान हैं। डा० मीनु कापडिया द्वारा नाटक अभिनीत हो चुका है। संभव है कुछ विशिष्ट वर्गों पर समग्रतः प्रभाव डालने में समर्थ भी हुआ हो। इसके मुद्रण की एक विशेषता है कि दोनों पात्रों के संवाद अलग-अलग स्याही में अंकित हैं। आवरण-चित्र में भी नवीनता है।

एक गधे की सरगुजश्त (उर्दू० कृ०)

'एक गधे की सरगुजश्त' उर्दू के लोकप्रिय कथाकार क्रुश्नचंदर (दे०) का व्यंग्य-प्रधान उपन्यास है। यही उपन्यास हिंदी में भी 'एक गधे की आत्मकथा' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

इस उपन्यास में लेखक ने गधे के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों पर तीखे व्यंग्य किए हैं। इसमें संकीर्ण एवं साम्प्रदायिक हिंदू-मुसलमानों, पुलिस कर्मचारियों, कर्तव्य-विमुख अधिकारियों, पाश्चात्य सभ्यता के उपासकों, सौंदर्य-प्रतियोगिताओं के आयोजकों, समाज की निष्ठुर पूँजीवादी-व्यवस्था तथा नौकरशाही का व्यंग्यपूर्ण शैली में अत्यंत रोचक चित्र प्रस्तुत किया गया है। लेखक का उद्देश्य यह दिखाना है कि समाज में पीड़ितों की सुध लेने वाला कोई भी नहीं।

क्रुश्नचंदर की भाषा भावपूर्ण, सरल, स्वाभाविक तथा सुमधुर है। प्रवाह तथा विषयानुकूलता उनकी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'गधा' शब्द जगह-जगह लाक्षणिक अर्थों में बड़ी सुंदरता से प्रयुक्त किया गया है। क्रुश्नचंदर की शैली रोचक तथा उद्देश्य जनता का कल्याण है।

एक चादर मैली सी (उर्दू० कृ०)

यह सुप्रसिद्ध लेखक राजेन्द्रसिंह बेदी का उपन्यास है। इसकी मूल भावना प्रगतिशील है। लेखक ने इसमें यह दर्शाने का प्रयास किया है कि किस तरह दबी-कुचली जाति अपने लिए लड़ सकती है तथा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकती है। उच्च जाति द्वारा उपेक्षित दबी-कुचली जाति अपने अस्तित्व का परिचय देने के लिए क्या कुछ नहीं कर गुज़रती! और उसे कितना जूझना पड़ता है। इस उपन्यास का केंद्र-बिंदु एक स्त्री है जो उपेक्षित और समाज द्वारा तिरस्कृत है। वह दृढ़ स्वभाव की स्त्री है। उसके विचार गहरे और दार्शनिक हैं। पंजाब का जनजीवन उसमें बड़ी ख़ूबी से उभारा गया है। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। कोई बँधी-बँधाई भाषा नहीं है। पात्र अपने विचार व्यक्त करने के लिए भाषा स्वयं चुन लेते हैं।

एकनाथ (म० ले०) [जन्म—1548 ई०; मृत्यु—1599 ई०]

इनका जन्म 'पैठण' में हुआ था। इनके पिता का नाम सूर्यनारायण और माता का रुक्मिणी था। इनकी बाल्यावस्था में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था। जनार्दन स्वामी से इन्होंने शिक्षा-दीक्षा ली थी। श्रीमद्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत (दे० भागवत) के दशमस्कंध के आधार पर इन्होंने 'एकनाथी भागवत' (दे०) की रचना सन् 1573 में वाराणसी में पूर्ण की थी। उन दिनों काव्य-रचना की माध्यम भाषाओं—संस्कृत-मराठी—में द्वंद्व चल रहा था। एकनाथ ने मराठी का आश्रय लिया था। संस्कृत-पंडितों को भी इनकी भाषा तथा काव्य-रचना के गुणों की मुक्तकंठ से प्रशस्ति करनी पड़ी थी। 'भावार्थ रामायण' (दे०) के अतिरिक्त 'रुक्मिणी स्वयंवर' भी इनका प्रसिद्ध काव्य है। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने संत ज्ञानेश्वर (दे०) की रचना 'ज्ञानेश्वरा' (दे०) के संशोधन का बड़ी निष्ठा के साथ पूर्ण किया था। सन् 1584 में ज्ञानेश्वरी की एक संशोधित प्रति उन्होंने तैयार की थी। इनके स्फुट पदों और 'अभंगों' की संख्या भी विपुल है। एकनाथ स्वयं एक श्रेष्ठ संत थे। एक ओर आध्यात्मिक साहित्य की रचना इन्होंने की थी तो दूसरी ओर ललित साहित्य की भी। भाषा-शैली में सर्वत्र प्रसारात्मकता और सरसता है। इन्होंने सांसारिक और पारमार्थिक जीवन में अद्भुत मिलन कर दिखाया था। संतभक्त, पुरुष, सत्कवि और संशोधक के रूप में एकनाथ का योगदान अत्यंत सराहनीय है।

× **एकलव्य** *(क० पा०)*

यह राष्ट्रकवि कुवेंपु (डा० के० वी० पुट्टप्पा) (दे०) के 'बेरळ्गे कोरळ्' नामक नाटक का अविस्मरणीय पात्र है। नाटक के अर्थगर्भित तीन दृश्य 'गुरु', 'कर्म' और 'यज्ञ' इसके व्यक्तित्व की महानता के तीन सोपान हैं। प्रथम दृश्य में इसकी गुरुभक्ति और इसकी माता के विशुद्ध प्रेम का परिचय मिलता है। यह माता की ममता की साकार मूर्ति है। यह गुरु को साक्षात् परब्रह्म मानने वाला है। इसे अश्वत्थामा की मैत्री प्राप्त होती है और इसकी धनुर्विद्या सीखने की इच्छा पूर्ण होती है। अर्जुन ने द्रुपद को बाँधकर द्रोण पर एहसान किया था। इस एहसान के कारण उन्होंने अर्जुन को वचन दे दिया था कि तुम्हें अद्वितीय धनुर्धारी बनाऊँगा। इस कारण वे अब व्यथित होते हैं क्योंकि इसका अँगूठा काटकर उस रक्तपंक में अर्जुन का कीर्ति-पंकज खिलाना है। वे जानते हैं कि उनका पुत्र अश्वत्थामा इसे स्वीकार नहीं करता। पर कर्म-पाश को कौन काट सकता है? वे अर्जुन की मत्सराग्नि के लिए इसके अँगूठे की आहुति लेने को बाध्य होते हैं। गुरु अत्यंत दुःख से गुरुदक्षिणा माँगते हैं तो शिष्य बड़ी ही प्रसन्नता से अपना अँगूठा काटकर दे देता है। यह पहले जो स्वप्न देख चुका था, उसमें अपने सम्मुख प्रकट हुए नीलदेहधारी परमात्मा को सर्वस्व समर्पित करने के लिए तैयार रहता है। अब क्या एक अँगूठा नहीं दे सकता! रक्त के पंक में पड़े हुए इसके अँगूठे को जब गुरु द्रोण झुककर देखते हैं तो उनको उसमें सिर-रहित धड़ दिखाई पड़ता है। एकलव्य के अँगूठे के बदले अपना सिर देना पड़ेगा, यह भविष्य उनके सम्मुख प्रकट होता है। इसके साथ ही एकलव्य की माता का शाप भी मिल जाता है। नाटक का नामकरण 'बेरळ्गे कोरळ्' (अँगूठे के लिए सिर) सार्थक हो जाता है।

एकनाथी भागवत *(म० कृ०)*

यह श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के ग्यारहवें स्कंध की टीका है जिसमें कुल 18800 ओवियाँ हैं। संत एकनाथ (दे०) ने इसकी रचना पैठण में आरंभ की थी और समाप्ति वाराणसी में की। वारकरी संप्रदाय में ज्ञानेश्वरी (दे०) के बाद इसी ग्रंथ की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। इस ग्रंथ में आध्यात्मिक विचारों का काव्यमयी शैली में अत्यंत सरस और मार्मिक प्रतिपादन है। इसमें भागवत-धर्म को अधिक उदार और मानवतावादी सिद्ध किया गया है: "सब प्राणियों में भगवद्भाव का अनुभव करना भागवत-धर्म की आत्मा है। अतः सब से मैत्री करो, प्रेम रखो और सबको समान समझो।" इसी मूल भावना को एकनाथ ने अपनी रचना द्वारा अभिव्यक्त किया है। सच्चे भक्त का स्वरूप, हरि-कीर्तन, नाम-स्मरण, साधना, निष्काम कर्म-योग, ज्ञानोत्तर भक्ति, आत्मज्ञान आदि अनेक आध्यात्मिक विषयों का इसमें अत्यंत सरल-सुबोध शैली में निरूपण-प्रतिपादन है। इस ग्रंथ का काव्य-सौंदर्य भी अप्रतिम है। इसमें कल्पना-वैभव और कथन-कौशल अपने उत्कर्ष पर हैं। रूपकों का अध्यात्मपरक प्रयोग करने में एकनाथ की समता शायद ही कोई अन्य कवि कर सका हो। भाषा अत्यंत प्रवाहमयी है। यह ग्रंथ आध्यात्मिक विचारों में जितना परिपूर्ण और समृद्ध है उतना ही काव्य-गुणों से भी ओतप्रोत है। टीका होने पर भी इसमें विचारों और काव्य-गुणों की मौलिकता सर्वत्र दिखाई देती है।

एकवीरा *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

'एकवीरा' दक्षिण के मध्ययुगीन सामंतीय वाता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरण की भूमिका पर रचा गया श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का ऐतिहासिक उपन्यास है। तत्कालीन भारत विदेशी व्यापारियों तथा मसीही-धर्म के प्रचार कोंसे संत्रस्त था। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य प्रेम और विवाह, अनुरक्ति एवं कर्तव्य के बीच के संघर्ष का चित्रण करके भारतीय दांपत्य-जीवन की मर्यादा की प्रतिष्ठा करना ही है। विधि-विधान से कुट्टानुडु का विवाह उसके अभिन्न मित्र वीरभूपति की प्रेमिका एकवीरा (दे०) के साथ और वीरभूपति का विवाह कुट्टानुडु की प्रेमिका मीनाक्षी के साथ हो जाता है। वे चारों व्यक्ति अपने विफल प्रेम के कारण बहुत दुःखी रहते हैं और वास्तविक स्थिति से समझौता कर लेने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार इनमें तीव्र मानसिक संघर्ष चलता रहता है।

एक आकस्मिक घटना के कारण एकवीरा से वीरभूपति का मिलन होता है। प्रेम के उत्ताप में दोनों एक दूसरे के आलिंगन में बँध जाते हैं। इस आलिंगन के कारण एकवीरा अपने को लोकधर्म की दृष्टि से घोर पापी मानती है और वैगै नदी में कूद कर प्राण त्याग देती है।

इस उपन्यास में सभी उदात्त चरित्र हैं। संघर्ष का कारण कोई बाहर का खलनायक न होकर अंतर की दो भिन्न प्रवृत्तियाँ हैं जिनमें से एक आत्मपरितोष का तथा दूसरा सामाजिक धर्म का प्रतिनिधित्व करती है। पचास वर्ष पूर्व लिखे जाने पर भी यह उपन्यास अभी तक लोकप्रिय बना हुआ है।

एकवीरा *(ते० पा०)*

यह श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) द्वारा रचित 'एकवीरा' (दे०) नामक बहुचर्चित ऐतिहासिक उपन्यास का प्रधान पात्र है। 'एकवीरा' जिस पुरुष को अपने जीवन-नायक के रूप में पाने की कामना करती है, उस व्यक्ति से इसका विवाह न होकर उसके एक परम मित्र से हो जाता है, जो स्वयं किसी अन्य सुंदरी में अनुरक्त है और उस सुंदरी का विवाह एकवीरा के प्रियतम के साथ हो जाता है। किंतु इस स्थिति का ज्ञान किसी को नहीं होता। एकवीरा और उसका पति पूर्व के अपने एकनिष्ठ प्रेम को भुला नहीं पाते और एक दूसरे से दूर रहकर अपने जीवन को तीव्र अंतर्द्वंद्व एवं वेदना से भर लेते हैं। अंत में जब एक आकस्मिक घटना के कारण एकवीरा का साक्षात्कार अपने प्रियतम से हो जाता है तो भावावेश एवं अतृप्त प्रेम की तीव्र वेदना से वह उसके आलिंगन में बँध जाती है। क्षणिक आवेग में अपने वैवाहिक धर्म से च्युत होने के कारण उत्पन्न ग्लानि एवं परिताप से यह आत्महत्या कर लेती है। एकवीरा के चरित्र में प्रेम और विवाह, आत्मसुख एवं लोकधर्म के बीच संघर्ष ही प्रमुख है।

एकांकी *(हिं० पारि०)*

उपन्यास, कहानी आदि अन्य गद्य-रूपों के समान एकांकी भी भारतीय साहित्यों को पश्चिम की देन है। उन्नीसवीं शती के अंतिम और बीसवीं के प्रथम चरण में 'प्रायोगिक' नाटकों एवं लघु नाट्यों के आंदोलन ने एकांकी को एक समृद्ध नाट्यरूप में विकसित होने में बहुत सहायता दी। एकांकी का कभी भी पूर्ण नाटक के अंग के रूप में अस्तित्व नहीं रहा। उसका जन्म स्वतंत्र रूप में हुआ और अपनी अंतरंग शक्ति से उसने सदा अपना अलग और विशिष्ट स्थान बनाये रखा। जीवन के किसी एक पक्ष अथवा एक घटना या पात्र-वैशिष्ट्य को रेखांकित करने के कारण उसमें बड़ी नम्यता और विविधता होती है। कहानी की तरह इकहरापन और प्रभावान्विति एकांकी का भी वैशिष्ट्य होता है। भारतीय भाषाओं में एकांकी का आरंभ प्रायः तीसरे दशक में या इससे कुछ आगे-पीछे हुआ। हिंदी में प्रथम एकांकी किसने लिखा—इसका निर्णय करना कठिन है। कुछ इतिहासकारों ने इसके प्रवर्त्तन का श्रेय डा० रामकुमार वर्मा को दिया है और कुछ ने भुवनेश्वर प्रसाद को।

एकांत सेवा *(ते० कृ०)* [ले०—वेंकट पार्वतीश्वर कुवुलु (दे०) अर्थात् वेंकटरावु तथा पार्वतीशमु; रचनाकाल—1922]

'एकांतसेवा' तेलुगु की 'गीतांजलि' (दे०) मानी जाती है और इसी से तेलुगु कविता में एक अभिनव रीति का सूत्रपात्र हुआ था। तत्त्वचिंतन में लौकिक व्यथाओं का विस्मरण करने के लिए तथा भगवत्-प्रेम के रसायन से जगत की व्यथा के घावों की चिकित्सा करने के लिए इसकी रचना की गयी है। हिंसा, स्वार्थ एवं मात्सर्य से दूषित वातावरण से यह रचना पाठक को किन्हीं दिव्य लोकों में ले जाती है। यह एक रससिक्त मृदु-मधुर कृति है जिसमें भक्ति की तन्मयता में अपने स्वामी परमात्मा को संबोधित करके भक्त के द्वारा गाये गये प्रणय-गीत हैं। इतनी स्वच्छता, कोमलता एवं माधुर्य के साथ तेलुगु शब्दावली का प्रयोग किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। अत्यंत सहज एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल भाषा में गंभीर भावों की अभिव्यक्ति पाठक को अपने प्रभाव से अभिभूत कर लेती है ।

एकाकी *(उड़ि० कृ०)*

ले० रबिनारायण महापात्र (दे०) संकल्प एवं निर्णय व्यक्ति के जीवन में कठिनतम परीक्षा के क्षण हैं। व्यक्तिगत ही क्यों सामाजिक जीवन में भी ऐसे क्षण चुनौती बनकर आते हैं। इस चुनौती को स्वीकार करने में ही वैयक्तिक एवं सामाजिक कल्याण एवं उत्थान संभव है। पर इसके लिये आवश्यक है—आत्म-विश्वास, दृढ़ इच्छाशक्ति, साहस एवं सजग सामाजिक चेतना। आज युवावर्ग के सामने ज्ञानेन्द्र (दे०) एक प्रश्न-वाचक चिह्न बनकर खड़ा है। क्या एकाकी संकल्प व निर्णय लेने का मनोबल उनमें है? और क्या दृढ़ कदमों से उस दुर्गम पथ पर अकेले चलने का साहस भी?

एकावली *(सं० कृ०)* [समय—लगभग 1280-1301 ई०]

'एकावली' संस्कृत-अलंकारशास्त्र की अन्यतम कृति है। इसके रचयिता विद्याधर हैं जो उत्कल-नरेश नरसिंह के दरबार में राज्याश्रय पाकर रहते थे। फलतः इनका समय तेरहवीं शताब्दी का अंत तथा चौदहवीं का आरंभ है। 'एकावली' मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) की सरणि पर रचित है जिसमें संकलन अधिक मौलिकता कम है। इस ग्रंथ में आठ अध्याय हैं जिनमें काव्यस्वरूप, वृत्तिविचार, ध्वनिभेद, गुणीभूत-व्यंग्य, गुणरीति, दोष तथा शब्दार्थालंकारों का विवेचन हुआ है। इसमें अलंकारों का निरूपण जहाँ रुय्यक (दे०) कृत अलंकारसर्वस्व' (दे०) के आधार पर हुआ है वहाँ शेष विषय 'काव्यप्रकाश' के विवेचन पर निर्भर हैं। इस ग्रंथ की अपनी विशेषता यह है कि इसमें उदाहृत सभी पद्य ग्रंथकार के स्वरचित हैं जो अपने आश्रयदाता की स्तुति में लिखे गये हैं।

'एकावली' पर उपलब्ध एकमात्र टीका 'तरला' है जिसके कर्त्ता महाकाव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार 'मल्लिनाथ' हैं। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने महाकाव्यों की टीका में यत्रतत्र एकावलीकार-कृत लक्षणों को ही उद्धृत किया है।

एच्चमनायक *(क० पा०)*

एच्चमनायक कन्नड़ के सुप्रसिद्ध नाट्यकार स्व० हिरियण्णैय्याजी के ऐतिहासिक नाटक 'एच्चमनायक' का नायक है। इसमें विजयनगर साम्राज्य के अंतिम दिनों का चित्रण है। विजयनगर-पतन के बाद राजवंश के लोग चंद्र-गिरि में आकर बसते हैं। वहाँ का निस्संतान राजा अपने भतीजे चिक्कराम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करता है। एच्चमनायक उसका आत्मीय वीर सरदार है—स्वामि-निष्ठ, कर्त्तव्यपरायण। उसका देश-प्रेम अनुपम है। अपने ससुर के षड्यंत्र को विफल कर वह अपनी राजभक्ति का परिचय देता है और अनेक प्रलोभनों के बीच भी किसी तरह अपने पथ से विचलित नहीं होता। जब राजद्रोह अपने पूरे ज़ोरों पर होता है और अनेक मंत्री और सेनानी साथ छोड़ जाते हैं तब भी पराक्रमी एच्चमनायक अपनी निष्ठा में अडिग रहता है। वह एक धीरोदात्त-चरित्र है और अपनी निष्ठावत्ता में अद्वितीय है।

एट्टुवीट्टिल् पिळ्ळमार् *(मल० पा०)*

आठ घरों के नायर समाज के प्रधानों को 'एट्टुवीट्टिल् पिळ्ळमार्' कहते हैं। मार्त्ताण्डवर्मा के राजत्व-काल में इन लोगों ने एक दल बाँधकर उन्हें सिंहा-सन से उतारने का सम्मिलित यत्न किया। राजा के मातुल के पुत्र को नेता बनाया गया था। 'मार्त्ताण्डवर्मा' (दे०) नामक उपन्यास में इनके बारे में खूब लिखा गया है।

एतुका *(मल० पारि०)*

एक विशेष शब्दालंकार है। श्लोक के प्रत्येक पद का दूसरा अक्षर जहाँ समान होता है वहाँ यह अलंकार होता है। इसका दूसरा नाम है द्वितीयाक्षरप्रास।

एदिरपाराद मुत्तम् *(त० कृ०)*

यह भारतीदासन (दे०) कृत कथाकाव्य है। इसमें निर्धन वणिक्-पुत्र पोनमुडि और अमीर वणिक-पुत्री पूंकोदै की प्रेम-कथा वर्णित है। इसमें कवि की कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है। इसमें अनेक सुंदर शब्द-चित्र हैं। रूपक, उपमा आदि अलंकारों का सफल प्रयोग है। सरस, सरल शैली में रचित यह कृति कवित्व की दृष्टि से कवि की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में परिगणित की जाती है। दुःखांत प्रेम-कथा का आश्रय लेने के कारण ही यह कृति प्रभावशाली बन पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन कदै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

'एन कदै' तमिल के प्रसिद्ध कवि नामक्कलकवित्जर का आत्मचरित है। यह आत्मचरित रोचक निबंध के रूप में रचित है। कृति की भूमिका में नामक्कल कवित्जर ने कहा है कि जीवनी प्रायः वे विद्वान लिखते हैं जो लोगों के आदर्श रहे हों तथा जिन्होंने लोगों के लिए अनुकरणीय महान कार्य किये हों। उन्होंने अपनी इस कृति में अपने जीवन-संबंधी ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो पाठकों का मनोरंजन कर सकें। वस्तुतः लेखक ने अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है। प्रत्येक घटना स्वतंत्र कहानी के रूप में वर्णित है। नामक्कल कवित्जर मूलतः कवि थे, अतः इस कृति में भी उनकी शैली अनेक स्थलों पर काव्यमय हो उठी है।

इस कृति में कृतिकार ने सन् 1900 से 1935 तक के अपने जीवनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करने के साथ-साथ इस कालावधि में अपने संपर्क में आये तमिलनाडु के राजनीतिक एवं सामाजिक नेताओं के जीवन का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। इस प्रकार इस कृति का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से विशेष महत्व है।

एन चरित्तिरम् *(त० कृ०)*

यह तमिल के प्रसिद्ध शोधकर्ता डा० उ० वे० सामिनाथ अय्यर की आत्मकथा है। तमिल-साहित्य के इतिहास में इसका अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं शताब्दी में तमिल भाषा तथा साहित्य के विकास के प्रेरक दो महान् व्यक्ति हुए—सामिनाथ अय्यर और सुब्रह्मण्य भारती। श्री अय्यर ने डाक्टर ऑफ़ लिटरेचर, महामहोपाध्याय, दाक्षिणात्य-कलानिधि इत्यादि अनेक उपाधियाँ तथा विरुद प्राप्त किये थे जो उनके साहित्यिक कार्यों के प्रमाण हैं। श्री अय्यर की जीवनी उस समय के तमिल-समाज, तमिल-साहित्य तथा साहित्य-विकास में निरत विभिन्न संस्थाओं का अत्यंत रोचक चित्रण प्रस्तुत करती है। तमिल के प्राचीन साहित्य के अनेक ग्रंथ, जो तालपत्रों में लिखित थे, उनके पढ़ने वालों के अभाव से उपेक्षित होकर दीमकों का भोजन बन रहे थे। श्री अय्यर ने गाँव-गाँव घूमकर अनेक व्यक्तियों के घर से खोज-खोजकर ऐसे अमूल्य ग्रंथों को प्राप्त कर प्रकाशित कराया था। ऐसे साहित्यिक अभियानों का रोमांचकारी वर्णन इस जीवनी की एक विशेषता है।

बचपन से ही श्री अय्यर में तमिल के प्रति अनुराग था; पहले अपने पिता से उन्होंने तमिल-साहित्य का अध्ययन आरंभ किया; फिर स्थान-स्थान पर जाकर अनेक विद्वानों से तालपत्र में अंकित किसी कृति का, या छंद-व्याकरण आदि के किसी ग्रंथ का अध्ययन किया था। अंत में मीनाक्षिसुन्दरम् पिळ्ळै के अंतेवासी शिष्य रहकर इन्होंने तमिल-साहित्य का अध्ययन किया। श्री मीनाक्षिसुन्दरम् तमिलनाडु के 'तिरुवावडुतुरै' नामक स्थान में स्थित प्रसिद्ध शैवमठ के 'आस्थान-कवि' थे। श्री अय्यर भी उसी मठ के आश्रय में रहे। बाद में मद्रास सरकार द्वारा ये स्नातक कक्षाओं में तमिल पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए थे—पहले 'कुंभकोणम्' के कालेज में और फिर मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में।

श्री अय्यर ने 'जीवन-चिन्तामणि' 'शिलप्पदिकारम्', 'मणिमखलै' जैसे प्राचीन ग्रंथों के पाठ-शोधन तथा नवीन संस्करण निकाले हैं। यद्यपि वे अँग्रेज़ी आदि भाषाओं से अनभिज्ञ थे तथापि जिस वैज्ञानिक ढंग से इन प्राचीन तालपत्रस्थ ग्रंथों का संपादन उन्होंने किया, वैसा किसी संस्था के द्वारा भी शायद ही संभव हो। इन ग्रंथों की भूमिकाएँ, इंडेक्स, टिप्पणियाँ, इत्यादि उनके अथक परिश्रम, गहन पांडित्य तथा वैज्ञानिक दृष्टि के प्रमाण हैं। आज का तमिल साहित्य उनका चिर-ऋणी है। यदि वे न होते तो आज के लोगों के सामने तमिल के अतिप्राचीन ग्रंथ भी प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत न होते।

श्री अय्यर अच्छे कवि, तथा गद्यकार भी थे। उनकी शैली सरल, सरस तथा प्रवाहमयी है। उनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों में पाँच महाकाव्य, तेरह पुराण, बयालीस लघु-प्रबंध, चार व्याकरण-ग्रंथ तथा उन्नीस गद्य-ग्रंथ हैं। गद्यकृतियों में उनकी आत्मकथा 'एन चरित्तिरम्' का विशिष्ट स्थान है।

ए बेलार नाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

बीणा बरुवा बिरिंचिकुमार बरुवा (दे०) का छद्म नाम है। इस नाटक में आधुनिक युग के पारिवारिक संघर्ष का चित्रण है। इसे पीढ़ियों का संघर्ष भी कहा जा सकता है। पिता रक्षणशील एवं आदर्शवादी है और पुत्र आस्थाहीन, वाक्पटु और उद्धत। इस द्वंद्व और बढ़े हुए रक्तचाप के कारण पिता की मृत्यु हो जाती है। लेखक ने आधुनिक अकर्मण्य और स्वार्थी युवकों तथा गृहस्थी के प्रति उदासीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिवादी नारियों पर कटाक्ष किया है। संवादों में बुद्धि-दीप्त वाक्-चातुर्य है।

एम० आर० के० सी० *(मल० ले०)* [जन्म—1882 ई०, मृत्यु—1940 ई०]

मलयाळम में पश्चिमी शैली की कहानियों के प्रमुख प्रवर्तक चेंकुलत्तु कुञ्ञिराम मेनन का उपनाम विलोम क्रम में लिखे गए उनके नाम के आद्यक्षर थे। वे राजनीतिक पत्र 'केरलपत्रिका' के संपादक और केरल-कल्पद्रुमम् प्रेस के संस्थापक भी थे। कुछ कहानी-संग्रहों के अलावा 'वळ्ळुवक्कम्मारन्' (उपन्यास), 'रघुवंशचरित्रम्', 'कंबरामायणम्' (अनुवाद) आदि उनकी रचनाएँ हैं।

एम० आर० के० सी० ने अपनी कहानियों को केरलीय जीवन और इतिहास की पृष्ठभूमि में ढाला है। कथानक चाहे कल्पित हो अथवा किसी अँग्रेज़ी कथा से आयातित, पाठकों के समक्ष प्राचीन केरलीय वातावरण को पुनरुज्जीवित करने का उनका कौशल स्तुत्य रहा है। मलयाळम में कहानी-साहित्य की प्रगति को देखते हुए इस नवीनविधा के प्रवर्तक एम० आर० के० सी० का स्थान महत्वपूर्ण और अग्रगण्य है।

एम० आर० बी० *(मल० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

मुळ्ळमंगलम् रामन् भट्टतिरिप्पाड्' केरल के प्रमुख समाज-सुधारक हैं। उनके नाटक 'मरक्कुटक्कुळ्ळले महानरकम्' में नम्पूतिरि-वनिताओं की दुर्दशा का चित्रण है। एक कहानी-संग्रह और कई निबंध-संग्रह भी प्रकाशित हैं। एम० आर० बी० की सरल और काव्यात्मक गद्यलेखन-शैली बहुत लोकप्रिय है। लघुयात्रा-विवरणों के लेखन में वे सिद्धहस्त हैं।

एर्राप्रगड *(ते० ले०)* [समय : तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दियों के बीच]

'आंध्रमहाभारतमु' (दे०) के तीन प्रसिद्ध कवियों में से एक एर्राप्रगड पोतमांबा और सूरनार्य के पुत्र थे। शिव के अनन्य भक्त होने के कारण इनको शंभुदास कहा जाता था। रचना-कौशल के कारण ये 'प्रबंधपरमेश्वरुडु' की उपाधि से भी विभूषित थे। 'आंध्रमहाभारतमु' के अरण्य (वन) पर्व के उत्तरार्द्ध की रचना इनके द्वारा हुई जबकि प्रारंभ से वन पर्व के पूर्वार्द्ध की रचना नन्नयभट्टु (दे०) ने की थी और बाकी पंद्रह पर्वों की रचना तिक्कना सोमयाजी (दे०) ने की थी। यद्यपि 'आंध्रमहाभारतमु' की रचना में एर्राप्रगड का योगदान परिमाण की दृष्टि से बहुत कम था, फिर भी दो महाप्राण कवियों की साधना में संधायक के रूप में अपनी शैली को दोनों की शैलियों के मंजुल सामंजस्य से सँवारकर इस महान ग्रंथ की रचना को समग्र रूप देना कोई साधारण कार्य नहीं था। इनका जन्मकाल 1280 ई० के आसपास माना जाता है। 'आंध्र-महाभारतमु' की रचना के अतिरिक्त 'रामायणमु', 'हरिवंशमु' (दे०) 'नृसिंहपुराणमु', और 'कविसर्पगारुडमु' नाम की चार रचनाएँ और इस कवि की लिखी हुई बताई जाती हैं। पर पहली और अंतिम रचनाएँ अप्राप्य हैं। 'हरिवंशमु' और 'नृसिंहपुराणमु' इनकी प्राप्त प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'हरिवंशमु' नामक काव्य वेमारेड्डी के नाम समर्पित था और 'नृसिंहपुराणमु' अहोबिल के स्वामी नृसिंह देव के प्रति। इनके द्वारा रचित वनपर्व के उत्तरार्द्ध में रामायण का प्रसंग आता है। इस खंड की रचना देखकर पाठक के मन में उनकी स्वतंत्र रचना 'रामायणमु' को पढ़ने का कुतूहल सहज ही पैदा होता है परंतु लक्षण-ग्रंथों में उसके कुछ उद्धरण मात्र मिलते हैं।

एशिया दा चानन *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

यह एडविन आर्नल्ड के 'लाइट आफ़ एशिया' का पंजाबी में काव्यानुवाद है। इसका अनुवाद प्रो० मोहन-सिंह (दे०) ने सात वर्षों में पूरा किया। काव्य-कृति आठ खंडों में विभक्त है। इसका प्रयोग-खंड ऐसा लगता है मानो एक स्वतःपूर्ण कृति हो। इसका प्रधान छंद दोहा है। अन्य छंदों में से सिरखंडी का प्रयोग अधिक है। यह वार्तालाप एक चित्रण-शैली का सफल अनुवाद है। महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित काव्य होने पर भी इसमें तत्कालीन रीति-रिवाज, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का सफल चित्रण किया गया है। अनुवाद होते हुए भी यह रचना मौलिक कृति का सा आनंद देने में समर्थ है।

एषुत्तच्छन्, तुंचत्त् *(मल० ले०)* [जीवन-काल सोलहवीं सदी ई०]

ये मलयाळम साहित्य के जनक कहे जाते हैं तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोलहवीं सदी में भारत-भर में प्रवर्तित भक्ति-आंदोलन के प्रमुख कवि थे। ये जाति से शूद्र थे और अपने ही ज्येष्ठ भ्राता के शिष्य थे—इतना अंतस्साक्ष्य और जन-श्रुति दोनों से पुष्ट होता है। कहा जाता है कि इनका व्यवसाय अध्यापन था, इन्होंने तीर्थयात्रा और ज्ञानार्जन-हेतु देश-भ्रमण किया था और केरल में लौटकर चिट्टूर नामक स्थान पर एक गुरुमठ की स्थापना की थी। यह मठ और 'तुंचन् परम्पु' नामक कवि का जन्मस्थान आज भी साहिती-भक्तों का तीर्थ स्थान है।

ए.षुत्तच्छन् की सर्वप्रसिद्ध कृति 'अध्यात्म रामायणम् किळिप्पाट्टु' (दे०) है जो 'रामचरितमानस' (दे०) की तरह सभी घरों में पढ़ी जाती है। काव्य-गुणों में 'महाभारतम् किळिप्पाट्टु' (दे०) 'रामायणम्' से भी उत्कृष्ट माना जाता है। 'श्रीमद्भागवतम्', 'ब्रह्मांड-पुराणम्, 'देवीमाहात्म्यम्', 'हरिनाम कीर्त्तनम्' (दे०) 'रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्' (दे०) आदि भी इनके द्वारा रचित माने जाते हैं, यद्यपि इनमें किसी-किसी के बारे में इतिहासकार एकमत नहीं हैं।

ए.षुत्तच्छन् भारतीय संत-कवियों की परंपरा में प्रमुख हैं। ये अद्वैत वेदांत के अनुयायी थे और इन्होंने जनता में रामभक्ति संचारित की थी। धार्मिकता और नैतिकता की स्थापना में इनका योगदान ऐतिहासिक है। इन्होंने किळिप्पाट्टु (दे०)-शैली को प्रवर्तित करके और भाषा के एक मानक रूप को प्रस्तुत करके आगे के कवियों के लिए आदर्श स्थापित किया जिसका आज के कवि भी अनुसरण करते हैं। इन्होंने पांडित्य-प्रकर्ष के प्रदर्शन के लिए कभी कलम नहीं चलायी, भक्ति-रस का जागरण ही इनका लक्ष्य था।

मलयाळम की काव्य-भाषा के वर्तमान रूप के स्थापक, साहित्य-जगत में नए लक्ष्य-बोध के द्रष्टा तथा प्रतिभाशाली कवि-मूर्धन्य के रूप में ए.षुत्तच्छन् का स्थान मलयाळम के साहित्यकारों में सर्वप्रथम है।

ए.षुत्तच्छन्, सूर्यनारायणन् *(मल० ले०)* [जीवन-काल सोलहवीं सदी ई०]

तुंचत्त् एषुत्तच्छन् द्वारा स्थापित गुरुकुल 'चिट्टूर मठम्' की गुरु-परंपरा के एक प्रमुख आचार्य। अपने शिष्यों को योगविद्या और अध्यात्मविद्या की शिक्षा देने के अलावा उन्होंने आध्यात्मिक ग्रंथों की भी रचना की है। 'स्कंदपुराणम्' और 'तत्वज्ञानामृतम्' उनकी कृतियाँ समझी जाती थीं, परंतु आधुनिक शोधों से इस मत का खंडन हो गया है।

एहतिशाम हुसैन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

जन्म-स्थान : कस्बा माहल, ज़िला आज़मगढ़। आधुनिक उर्दू साहित्य के शीर्षस्थ आलोचकों में इनकी गणना होती है। इन्होंने इलाहाबाद से एम० ए० पास कर सन् 1938 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय में उर्दू प्राध्यापक के रूप में अपनी आजीविका प्रारंभ की थी। तब से इन्होंने अपने लेखों और उपन्यासों के द्वारा उर्दू साहित्य की श्रीवृद्धि में मनोयोगपूर्वक सक्रिय सेवा का व्रत लिया हुआ है। इन्होंने पाश्चात्य साहित्य का गहन अध्ययन कर उर्दू साहित्य को प्रगतिशील बनाने का स्तुत्य कार्य किया है। इनकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति 'तनक़ीदी जायज़े' उर्दू के आलोचना साहित्य की अमूल्य निधि है। इनकी अन्य कृतियों में 'अदब और समाज', 'वीराने' (उपन्यासों का संकलन), 'रिवायत और बग़ावत', 'तनक़ीद और अमली तजक़ीद' और 'उर्दू लिसाबियात का ख़ाका' उल्लेखनीय हैं। इनकी एक और कृति 'साहिल और समंदर' के नाम से भी प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होंने अमरीका और ब्रिटेन की यात्रा के अपने अनुभव व्यक्त किए हैं और आँखों देखा हाल भी लिखा है। इनका अभिव्यंजना-कौशल न केवल परिमार्जित और परिष्कृत है अपितु एक विशिष्ट नवीनता, सूक्ष्मता और रोचकता का द्योतक भी है।

'एहसान' दानिश *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

जन्म-स्थान—कांधला (ज़िला मुजफ़्फ़रनगर); पूरा नाम—एहसान-उल-हक़, पिता का नाम—क़ाज़ी दानिश अली। इनका वास्तविक निवास-स्थान बाग़पत (ज़िला मेरठ) था। उर्दू के प्रगतिवादी कवियों में इनका ऊँचा स्थान है। इनके काव्य पर डा० इक़बाल की अभिव्यंजना-शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। ये उर्दू के प्रथम मज़दूर शायर हैं। इनका आरंभिक जीवन बहुत कठिनाइयों एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। इनके पिता इनके बचपन में ही अत्यंत निर्धन हो गए थे। अतः इन्हें अपनी शिक्षा का क्रम त्याग कर मजदूरी करनी पड़ी तथा नगरपालिका में चपरासी का काम भी करना पड़ा। परंतु उच्च पदाधिकारियों के दुर्व्यवहार के कारण नौकरी छोड़ देनी पड़ी। तदुपरांत ये लाहौर पहुँचे और वहाँ मज़दूरी करने लगे। बाद में वहाँ गेलानी बुक डिपो में नौकरी प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में सफल हो गए । अपनी स्वाध्यायशील प्रवृत्ति के बल पर इन्होंने उर्दू काव्य-जगत में काफ़ी नाम पैदा किया है। इनकी कृतियों में 'नवा-ए-कारगर', 'आतिश-ए-ख़ामोश', 'जादा-ए-नौ', 'नफ़ीर-ए-फ़ितरत' और 'चिराग़ाँ' महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं ।

ऐंकुरुनूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी तक]

'ऐंकुरुनूरु' की गणना संघकालीन अष्ट गद्य-संग्रहों (एट्टुत्तोगै) में होती है । इसमें तीन से लेकर छह पंक्तियों तक के 500 पद संग्रहीत हैं । कृति पाँच भागों में विभाजित है जिनके रचयिता क्रमशः ओरंपोगियार, अम्मूवनार, कपिलर (दे०), ओदलआंदैयार और पेयनार हैं। मंगलाचरणात्मक पद के रचयिता पेरुंदेवनार हैं। विभिन्न कवियों के पदों का संग्रह पुलत्तरै मुट्रिय कूडळूर विळार नामक कवि ने किया। ऐंकुरुनूरु की गणना संघकालीन अहम काव्यों में होती है। इसके पाँच भागों में क्रमशः अहम काव्यों में वर्णित कुरिंजि, मुल्लै, मरुदम्, पालै और नेयदल नामक भूभागों का और उनसे संबंधित मनःस्थितियों का वर्णन है। विभिन्न भूभागों का वर्णन करते समय कवियों ने उस भूभाग-विशेष में स्थित नगरों, वहाँ के मुखियों तथा सामान्य जनता का वर्णन किया है। कवियों ने प्रदेश-विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य, सामाजिक प्रथाओं, उत्सवों एवं पर्वों, वृक्षों, लताओं, पुष्पों, देवी-देवताओं आदि का वर्णन किया है । संपूर्ण कृति 'अह्‌वल' छंद में रचित है । ऐंकुरुनूरु के अध्ययन से तत्कालीन तमिल समाज की विभिन्न प्रथाओं एवं उत्सवों-जैसे किसी वीर योद्धा की यादगार में शिला गाड़ा जाना, इंद्रोत्सव, नारियों की देवी की पूजा, देवी-व्रत, पावै नोन्बु,, नारियों के विविध आभूषणों, बालकों की क्रीड़ाओं आदि का ज्ञान प्राप्त होता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-काल—1857 ई०]

भूदेव मुखोपाध्याय (दे०) के 'ऐतिहासिक उपन्यास' ग्रंथ से बँगला साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास-रचना का सूत्रपात हुआ। 'सफल स्वप्न' तथा 'अंगुरीय विनिमय' के नाम से दो कहानियाँ इसमें लिपिबद्ध हैं। 'अंगुरीय विनिमय' के आख्यान में ऐतिहासिक उपन्यास का रूपविधान एवं मूल-चेतना का प्रयोग किया गया है। शिवाजी, औरंगज़ेब, शाहजहाँ', रोशिनारा, जयसिंह, रामदास स्वामी आदि इतिहास-प्रसिद्ध चरित्रों के माध्यम से जिस कहानी का विन्यास किया गया है, उसके साथ कल्पना का बहुत ही सुंदर सामंजस्य है । यह अनुमान किया जाता है कि भूदेव की इस ऐतिहासिक आख्यान-वस्तु का बंकिमचंद्र (दे०) पर परोक्ष प्रभाव पड़ा था । यह निश्चित है कि रमेशचंद्र दत्त (दे०) पर निश्चय ही इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था । भूदेव मुखोपाध्याय की इन दोनों कहानियों का आधार-स्थान है कन्टार का 'रोमांस ऑफ़ हिस्ट्री—इंडिया' । गठन एवं विन्यास की दृष्टि से भूदेव बाबू की विशेषता इसमें स्पष्ट है ।

ऐतिहासिक पत्रव्यवहार *(म० कृ०)*

विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (दे०) द्वारा संकलित 'मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें' ग्रंथ के 21 खंड हैं । लगभग 5500 पृष्ठों में लिखित इन 21 खंडों में 4417 ऐतिहासिक पत्र उद्धृत हैं जिनका अभूतपूर्व महत्त्व है ।

इसमें सहस्रों ऐतिहासिक पत्रों को खोज कर तथा उनका संपादन कर मराठों के इतिहास के अध्ययन तथा लेखन के लिए प्रामाणिक सूत्र उपलब्ध कराए गए हैं । इन महत्वपूर्ण तथा दुर्लभ ऐतिहासिक पत्रों की उपलब्धियों के लिए राजवाडे जी को अनिकेत होकर संपूर्ण हिंदुस्तान का भ्रमण करना पड़ा था । उन्होंने निष्ठापूर्वक इन पत्रों को हस्तगत किया था। इस कार्य के लिए उन्हें जन्मकाल में तो विशेष ख्याति न मिली थी परंतु मरणोपरांत उनकी गणना भारत के गण्यमान्य इतिहासकारों में हो गई।

'ऐतिहासिक कागदपत्रें' नामक उनका विशाल संग्रह है जिसमें महाराष्ट्र के इतिहास-पट पर उदित हुए अनेक कर्मठ कुटुम्बों और घरानों से संबंधित पत्र संकलित हैं । महाराज शिवाजी, नाना साहब पेशवा, मल्हारराव होळकर, नाना फडणीस आदि अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों के पत्र हैं। इस ग्रंथ की सामग्री इतनी विपुल है कि इस पर कई शोध-प्रबंध लिखे जा सकते हैं ।

इस प्रकार मराठों का शुद्ध इतिहास देने के प्रयास में राजवाडे ने जो कार्य किया वह ऐतिहासिक शोध के इतिहास में केवल अभूतपूर्व ही नहीं, विशिष्ट भी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक पोवाडे *(म० कृ०)*

यशवंत नरसिंह केळकर ने प्राचीन ऐतिहासिक पोवाडों का बड़े परिश्रम से अनुसंधान किया है। अपनी खोज से उपलब्ध संपूर्ण पोवाडों को उन्होंने तीन खंडों में प्रकाशित किया है। प्रथमखंड का प्रकाशन-काल है—1928 ई०। इसकी प्रस्तावना 97 पृष्ठों की है, जो पोवाडों की सर्वांगीण समीक्षा की दृष्टि से बहुत मूल्यवान है। उपलब्ध पोवाडों की संख्या लगभग 300 है, इनमें से शिवाजी से लेकर प्रथम शाहू महाराज तक के सात, पेशवाओं के समकालीन 150 और शेष अँग्रेज़ों के आरंभिक काल से संबद्ध है। इन्होंने पोवाडों का संग्रह मात्र नहीं किया है वरन् इनके पाठ-संशोधन में भी बहुत गंभीर कार्य किया है। प्राचीन पोवाडों की लिपि 'मोडी' थी, इसका देवनागरी में परिवर्तन किया है; कठिन शब्दों के अर्थों का निर्देश किया है। अन्य ऐतिहासिक साधनों से इनकी प्रामाणिकता की परीक्षा की है। यह संग्रह एक तथ्य को प्रमाणित कर देता है: जैसे इतिहास में काव्यत्व की अवस्थिति संभव है वैसे ही काव्य में इतिहास की उपलब्धि भी सर्वथा संभव है। द्वितीय खंड का प्रकाशन-काल है सन् 1944 ई०। इसमें संकलित पोवाडों की संख्या है—26। विशेष उल्लेखनीय पोवाडे हैं—'सेखोजी आंग्रे' 'नाना फडणीस' 'महादजी शिंदे' 'अहिल्याबाई होळकर', 'गायकवाड' आदि। तृतीय खंड का प्रकाशन-काल है सन् 1969 ई०। इसमें कुल मिलाकर 131 पोवाडे संकलित हैं। इनमें निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबद्ध पोवाडे अधिक महत्वपूर्ण हैं—'संभाजी महाराज', 'दौलतराव शिंदे', 'यशवंतराव होळकर', 'टीपू सुल्तान', 'प्रतापसिंह महाराज', 'खंडेराव गायकवाड़' आदि।

ऐतिह्यमाला *(मल० कृ०)*

इसके आठ भाग हैं और रचयिता कोट्टारत्तिल् (दे०) शंकण्णि हैं। रचना-काल सन् 1832 और सन् 1937 के बीच में माना जाता है। देवालय की स्थापना, देश का इतिहास, महानों की जीवनियाँ आदि कई विषयों पर इस ग्रंथ में लिखा गया है। भाषा सहज-सुंदर है।

ऐ वे मध्य बंचिछि *(उ० कृ०)*

श्री गोदावरीश महापात्र (दे०) के इस कहानी-संकलन में आधुनिक भारतीय जीवन की अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ सामने आई हैं। पश्चिम के अंधानुकरण पर भारत ने जिस तकनीकी सभ्यता, यांत्रिक संस्कृति को अपनाया है, वह उसके लिए कितनी ग्राह्य है, इसे समझने का प्रयास इसमें दिखाई पड़ता है। भारत की अर्थव्यवस्था, भारतीय समाज की संरचना यहाँ की मिट्टी-पानी से उद्भूत होकर ही हमारे लिये उपयोगी हो सकती है, अन्यथा मागुणि की मृत्यु के समान भारतीय जीवन का भी करुण अंत होगा। भारतीय संदर्भ में गोदाबरीश महापात्र ने विश्वजनीन समस्या उठाई है। अमानवीय यांत्रिक सभ्यता के दानवी पंजों में फँसकर मानव की बृहत उपलब्धि किस प्रकार चकनाचूर हो रही है, इसकी भी स्पष्ट झनझनाहट सुनाई पड़ती है।

ऐह हमारा जीवना *(पं० कृ०)*

दलीपकौर टिवाणा के इस उपन्यास में नारी-जीवन की करुणा को सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास की नायिका भानी के जीवन-क्रम में यह करुणा व्यक्त होती है। उपन्यास की विशेषता इस बात में है कि लेखिका नायक के त्रिब-चित्रण द्वारा मानवीय भावों को व्यक्त करती है। इस उपन्यास में मानव-भाषा की बजाय चरित्रों के हाव-भाव तथा उनका मूक व्यवहार अधिक व्यंजक है।

यह उपन्यास साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत है।

ओंकार *(पं० पारि०)*

प्रणव। आद्य बीजमंत्र। बीजमंत्र में परमात्मा का गुणवाचक दूसरा शब्द 'ओंकार' है। 'आदि ग्रंथ' में इसे 'एकंकार' तथा 'ओ अंकार' रूप में संबोधित किया गया है: 'आंनक भाँति होइ पसरिआ नानक एकंकार'। पातंजलि के 'योगसूत्र' में परमात्मावाची शब्द 'प्रणव' की भाँति ही गुरु नानक देव ने 'ओंकार' शब्द को माना है। यह परमात्मा का प्रतीक पद है। गुरु नानक ने ओंकार से सृष्टि का जन्म-पालन माना है—

"ओ आंकारि सबदि उघरे ओं अकारि गुरुमुखि तरे।
ओनम अखर सुणहु बीचारू, ओनम अखरु त्रिभवण सारु॥"

गुरु अर्जुन देव (दे०) ने भी सारी सृष्टि की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओंकार से ही मानी है । उनकी उक्ति है—'एकंकार एक पासारा, एकै अपरअ पारा ।

ओगाळ *(उ० पारि०)*

ओगाळ का अर्थ है पथ-अवरोध । इस प्रकार की कविताओं में अनेक प्रकार के तात्त्विक एवं कौतुकपूर्ण प्रश्न एवं उत्तर रहते हैं । संस्कृत-साहित्य में कवियों के काव्य-विवाद में इस प्रकार प्रश्नोत्तर दिखाई पड़ते हैं । अच्युतानन्द दास (दे०) विरचित ओगाळ इसका एकमात्र दृष्टांत है ।

ओजापाली *(अ० पारि०)*

असम में यह अनुष्ठान 10वीं-11वीं शताब्दी के पश्चात् प्रचारित हुआ था । कालिकापुराण में पांचालिका बिहार एवं शिशु-कौतुक के आयोजन द्वारा देवी को प्रसन्न करने का विधान है । पांचालिका शब्द कठपुतली के नाच की ओर संकेत करता है । इधर यह भी ध्यान देने योग्य है कि ओजापाली में जो कथा प्रस्तुत की जाती है उसे 'पांचाली' कहते हैं । ओजापाली दो प्रकार की होती है : एक में 'महाभारत' (दे०) और 'रामायण' (दे०) के गीत गाये जाते हैं, दूसरे में मनकर, दुर्गावर आदि के पद्मपुराण के । ओजापाली में कम-से-कम पाँच व्यक्ति रहते हैं—एक ओजा, एक दाइना पाली और तीन साधारण पाली । ओजा सिर पर पगड़ी, पैरों में नूपुर, शरीर पर चोला-चद्दर, माथे पर चंदन और कान में बाला धारण करता है । ओजा ही गा-गा कर कथा आगे बढ़ाता है, हाथ की मुद्रा और पैरों की ताल के साथ । पाली के लोग मँजीरा बजाते हैं । कभी-कभी वह दाइनापाली के साथ संलाप करता है । इस प्रकार ओजापाली में गीत, नृत्य, मुद्रा, संलाप आदि नाट्यांग की अभिव्यक्तियाँ होती हैं । इसका प्रचार किसी-न-किसी रूप में बंगाल में भी रहा है । श्री शंकर-देव (दे०) ने ओजापाली को संस्कृत नाटकों के अनुरूप परिमार्जित कर अंकीयानाट (दे०) में परिवर्तित किया था ।

ओझा, गौरीशंकर हीराचंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1863; निधन—1947 ई०]

इतिहास, पुरातत्त्व, प्राचीन लिपि, तथा अनेक भाषाओं के विद्वान म० म० पं० ओझा जी पहले उदयपुर के राजकीय पुरातत्त्व-विभाग के अध्यक्ष तथा बाद में राज-पूताना म्यूज़ियम, अजमेर के क्यूरेटर थे । आपने दो दर्जन से अधिक अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं या संपादित कीं जिनमें मुख्य 'प्राचीन लिपि-माला', 'नागरी अंक और अक्षर', 'भारतीय प्राचीन लिपि-माला', 'अशोक की धर्म-लिपियाँ', 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', 'राजपूताने का का इतिहास' (चार खंड), 'पद्यरत्नमाला', 'गद्यरत्नमाला', 'जयानक-प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' (सटीक) आदि हैं । प्राचीन लिपि-माला, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त ग्रंथ है, जिसमें ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त, कुटिल, नागरी, शारदा, बँगला, पश्चिमी, मध्य प्रदेशी, तेलुगु, कन्नड़, ग्रंथ कलिंग, तमिल आदि लिपियों की उत्पत्ति और उनका क्रमिक विकास प्रामाणिक संदर्भों के आधार पर दिखाया गया है । भारतीय लिपियों पर आज भी यही सबसे प्रामा-णिक ग्रंथ है । इतिहास भाषा और लिपि का सहारा लेते हुए ओझा जी ने 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) को अप्रामा-णिक ग्रंथ सिद्ध किया था ।

ओटक्कुषल् *(मल० कृ०)*

'ओटक्कुषल्' कवि जी० शंकर कुरुप (दे०) की लिखी कविताओं का संग्रह है । इनका रचना-काल सन् 1920 और सन् 1950 के बीच में है । साठ कविताएँ इसमें संगृहीत हैं । भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार सबसे पहले इसी ग्रंथ पर दिया गया । 'ओट-क्कुषल्' (वंशी) इस ग्रंथ की पहली कविता है । इसकी कविताएँ विचार और भाव की समृद्धि की दृष्टि से महाकवि के साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं ।

ओटयिल् निन्नु *(मल० कृ०)*

यह पी० केशवदेव (दे०) का प्रसिद्ध उपन्यास है । इसमें एक रिक्शा वाले पप्पु (दे०) की कथा वर्णित है जिसका बाहरी व्यवहार रुक्ष है, पर जो एक निरीह लड़की के पालन-पोषण में अपना सब कुछ समर्पित कर देता है । उस लड़की का विवाह उसके इष्ट कामुक से करवाकर राजयक्ष्मा से पीड़ित पप्पु खाँसते-खाँसते राजमार्ग में अंत-र्धान हो जाता है ।

इस उपन्यास में मज़दूर पर किए जाने वाले अत्याचार और मज़दूरों के वर्ग-संघर्ष की समस्या उठाकर यद्यपि प्रगतिवादी विचार प्रकट किए गए हैं तो भी मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा दरिद्र मानव में अंतर्लीन उच्च मानवता का प्रकाशन ही है। मलयाळम उपन्यास की नवीन दशा के आरंभ में निकलने वाली कृतियों में 'ओटयिल् निन्नु' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ओट्टकूत्तर *(त० ले०)* [समय—ईसा की बारहवीं शताब्दी]

ओट्टकूत्तर तमिल के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। इनकी अपार कवित्व-शक्ति से प्रभावित होकर विद्वानों ने इन्हें 'कवि-राक्षस', 'कवि-चक्रवर्ती', 'सर्वज्ञ कवि' आदि उपाधियाँ प्रदान कीं। ओट्टकूत्तर की कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—ईट्टि एषुपदु, मूवर उला, तक्कयाग परणि, अरुंबै, तोळ्ळायिरम्, गांगेयन नालायिर कोवै, कुलोत्तुंगन्चोळ्न पिळ्ळैतमिल (दे०) आदि। अधिकांश विद्वानों का मत है कि 'कंबरामायणम्' के उत्तरकांड की रचना ओट्टकूत्तर ने की थी। ईट्टि-एषुपदु में कवि ने अपनी जाति का वर्णन किया है। 'मूवर उला' उला (दे०) शैली में रचित है। इसमें विक्रम चोळ, उसके पुत्र कुलोत्तुंग चोळ द्वितीय और उसके पुत्र राजराज चोळ द्वितीय से संबंधित कुछ विवरण प्राप्त होते हैं। 'तक्कयाग परणि' 'भरणी' नामक काव्य-शैली में रचित है। यह एक युद्ध-काव्य है। इसमें दक्ष प्रजापति के यज्ञ तथा शिवजी के तांडव-नृत्य का वर्णन है। 'अरुंबै तोळ्ळायिरम्' और 'गांगेयन नालायिर कोवै' नामक कृतियाँ अप्राप्य हैं। 'कुलोत्तुंग चोष्न पिळ्ळेतमिल' में चोळ राजा कुलोत्तुंग के युद्धों एवं विजयों का वर्णन है। यद्यपि ओट्टकूत्तर से पूर्व पेरियाळवार ने कृष्ण की बाललीलाओं से संबंधित अनेक पदों की रचना की तथापि पिळ्ळैतमिल (दे०)-शैली में एक रचना प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं को है। ओट्टकूत्तर की रचनाओं में चोळ राजाओं के काल के उत्तरार्द्ध से संबंधित पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

ओट्टन् तुळ्ळल् *(मल० पारि०)*

यह कुंचन् (दे०) नम्पियार रचित तुळ्ळ कथाओं के तीन प्रकार-भेदों में एक है। अन्य दो प्रकारों की अपेक्षा इसमें द्रुत-गान के लिए योग्य छंदों का प्रयोग हुआ है, यथा तरंगिणी, अर्धकेका, वक्त्र, स्वागता, सुमंगला, शिताग्रा, अजगरगमन आदि। मलयाळम में 'ओट्टम्' का अर्थ दौड़ अथवा तीव्र गति है जो शायद इन छंदों के गुण की ओर संकेत करता है। इन कथाओं के आख्याता नर्तक हरे रंग से मुख-सज्जा करते हैं और मुकुट पहनते हैं। नम्पियार की कथाएँ अधिकतर इसी विधा में है और अन्य दोनों विधाओं के स्थान पर भी सामान्य रूप से इसी विधा का नाम लिया जाता है, अर्थात् तुळ्ळल् के पर्याय के रूप में भी ओट्टन तुळ्ळल् शब्द का प्रयोग होता है।

ओड़िआ गीतिकाव्य *(उ० कृ०)*

इन गवेषणामूलक पुस्तक के रचयिता डा० जानकीवल्लभ महान्ति (भारद्वाज) (दे०) है। इसमें प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक उड़िया गीतिकाव्य-परंपरा एवं उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरणों से समृद्ध यह रचना उड़िया-साहित्य पर एक उपादेय रचना है।

ओड़िया भाषा तत्त्व *(उ० कृ०)*

'ओड़िया भाषा तत्त्व' श्री गोपीनाथ नन्दशर्मा की (दे०) उड़िया-साहित्य को महत्वपूर्ण देन है। इसमें उड़िया भाषा का पांडित्यपूर्ण विवेचन मिलता है। यद्यपि लेखक संस्कृत के ही विद्वान थे, अँग्रेज़ी उन्हें नहीं आती थी, किंतु भाषा-विज्ञान के विवेचन में उन्होंने जिस सूक्ष्मता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह असाधारण है तथा उनकी पैनी प्रतिभा और मौलिक सूझबूझ का परिचायक है। यह ग्रंथ अन्य भारतीय भाषाओं के एततसंबंधी गिने-चुने ग्रंथों में से एक है।

ओड़िया भाषार उत्पत्ति ओ क्रमबिकाश *(उ० कृ०)*

'ओड़िया भाषार उत्पत्ति ओ क्रमबिकाश' श्री बंशीधर महान्ति (दे०) की विद्वत्तापूर्ण गवेषणात्मक रचना है। इसमें विभिन्न भारतीय भाषा-गोष्ठियों का परिचय देते हुए उड़िया भाषा की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डाला गया है। उड़िया भाषा की निजी विशेषताएँ, उसका विशिष्ट स्वरूप, उसकी समाहार-शक्ति, उसकी रक्षण-शीलता, आदिवासी, द्रविड़, मुसलमानी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के प्रभाव के बावजूद, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से उसका क्रमिक विकास, प्राचीन शब्दों का अपरिवर्तित रूप तथा इनके कारण उसका विशाल शब्द-भांडार, (आर्कायिक कैरैक्टर) आदि का इसमें पांडित्यपूर्ण विवेचन हुआ है। उड़िया लिपि का उद्भव और विकास तथा उसकी विशेषताओं का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय इसमें मिलता है। अंत में आजकल की भाषा-संबंधी कतिपय समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। उड़िया भाषा पर यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

ओड़िआ लोकगीत ओ कहाणी *(उ० कृ०)*

'ओड़िया लोकगीत ओ कहाणी' डा० कुंज-बिहारी दास (दे०) के विशाल अध्ययन एवं गंभीर मनन का परिचायक है। यह बृहादाकार ग्रंथ केवल उड़िया लोक-गीतों के स्वरूप, उद्भव और विकास पर ही प्रकाश नहीं डालता, वरन् साथ ही भारतीय पृष्ठभूमि में भी उड़िया लोक-गीतों का अध्ययन करता है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य के कारण जहाँ उड़िया-लोक-गीतों का वैशिष्ट्य प्रकट हो जाता है, वहीं व्यापक भारतीय संदर्भ में उसके स्वतंत्र योग-दान का परिचय भी मिल जाता है।

ओड़िया साहित्यर इतिहास *(उड़ि० कृ०)*

यह ग्रंथ उड़िया साहित्य के इतिहास के क्षेत्र में पं० सूर्यनारायण दास (दे०) का स्तुत्य प्रयत्न है। अभी तक इसके बृहदाकार चार भाग प्रकाशित हो चुके हैं। इसका विषय-प्रतिपादन विशद एवं सर्वांगीण है। युगीन परिस्थिति के साथ साहित्यिकों एवं उनकी कृतियों का इसमें विस्तृत विवरण मिलता है। इतिहासकार की तटस्थता इस ग्रंथ की विशेषता है। यदाकदा जहाँ पर इतिहासकार की ओर से टिप्पणियाँ अथवा समीक्षात्मक वैयक्तिक धारणायें व्यक्त हुई हैं, वे इतिहासकार की तटस्थ विवेचना ही प्रस्तुत करती हैं। इसकी भाषा प्रसादगुण-मयी है तथा शैली अत्यंत ऋजु-सरल है। यह ग्रंथ आलो-चनात्मक नहीं है—विवरणात्मक ऐतिहासिक ग्रंथ है।

इस प्रकार के विराट् ग्रंथों में विचारों की जितनी गूढ़ गुंफित परंपरा होनी चाहिए, भाषा में जितनी कसावट व शैली में जितनी सामासिकता होनी चाहिए, वह इसमें नहीं हैं। वर्णन-विस्तार के कारण यह ग्रंथ बोझिल हो गया है।

फिर भी उड़िया साहित्य में इस ग्रंथ का बड़ा महत्व है। इस क्षेत्र में अब तक जो भी काम हुआ है वह अत्यल्प हैं। इस विषय में अन्य ग्रंथ इतने समग्र एवं व्यापक भी नहीं हैं। उड़िया साहित्य के इतिहास की सर्वांगीण रूप-रेखा देने के लिए यह ग्रंथ मील के पत्थर के समान है।

पं० सूर्यनारायण दास की योजना इसके दस भाग लिखने की है। इस कार्य का संपादन हो जाने पर, यह निश्चित है कि, पाठक को उड़िया साहित्य के इतिहास के परिचय के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। एकाकी प्रयास से इतने भागों में इस ग्रंथ की रचना लेखक के अध्यवसाय एवं लगनशीलता की सूचक है।

ओड़िया साहित्यर इतिहास *(उ० कृ०)*

श्री विनायक मिश्र (दे०) कृत 'ओड़िआ साहित्यर इतिहास' एक गंभीर गवेषणात्मक ऐतिहासिक रचना है। श्री विनायक मिश्र पुरातात्त्विक गवेषणा एवं ताम्रशासन की संपादना से उड़ीसा के इतिहास एवं उड़िया-साहित्य के इतिहास के विवेचन में अनेक नवीन तत्त्वों का समावेश कर गये हैं। सूक्ष्म गवेषणामूलक अंतर्दृष्टि के कारण उनका ऐतिहासिक विवेचन अधिक यथार्थ, तलस्पर्शी एवं यथार्थपूर्ण हो सका है। इसकी शैली संस्कृतनिष्ठ एवं पांडित्यपूर्ण है।

ओफ़ाइदां *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

लक्ष्मीनाथ फुकन के इस कहानी-संग्रह में मध्यवित्त-वर्ग के जीवन के सुख-दुःख का चित्रण व्यंग्य एवं करुणासिक्त हास्य के साथ हुआ है। इसमें छह लघु-कथाएँ हैं। 'महिमामयी' कहानी में क्लर्क की एक कंजूस पत्नी का वर्णन है जो अपने संबंधी के द्वारा ठगी जाती है। एक अन्य कहानी में एक टाइपिस्ट की मृत्यु हो जाने पर उसके आफ़िस में 300 रु० का उसका चित्र टाँगा जाता है, यदि इस धनराशि का एक तिहाई भाग भी उसे दे दिया जाता तो उसकी मृत्यु न होती। कहानियों में बोलचाल की भाषा के शब्दों एवं मुहावरों का प्रयोग है जो पाठकों पर सीधा प्रभाव डालते हैं।

ओरुविलापम् *(मल० कृ०)*

दो कवियों ने एक ही नाम से दो विलाप-काव्य लिखे हैं। एक के रचयिता सि० एस० सुब्रह्मण्यन् पोट्टि ने अपनी प्रिय संतान के असामयिक निधन पर इसकी रचना की और इसका प्रकाशन सन् 1903 में हुआ। दूसरी कृति वि०सि० बालकृष्ण पणिक्कर (दे०) की है और विलाप-कृतियों में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सन् 1905 की 'कवन कौमुदी' नामक पत्रिका में इसका प्रकाशन हुआ। पाठकों का मर्मस्पर्श करने में यह कृति पूर्णतः सफल हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्रत्येक छंद एक साथ सहृदय पाठक का मन शोक सागर की तरंगों में गहरे डूबता चला जाता है। यह कृति अपनी विधा में सचमुच बेजोड़ है।

ओळपमण्णा *(मल० ले०)*

ओळप्पमण्णा सुब्रह्मण्यन् नंपूतिरि का जन्म सन् 1923 ई० में मलानार के वेल्लिनेषि नामक गाँव में हुआ था। इनका परिवार भूस्वामिता एवं कवि-प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध रहा है। छोटी अवस्था में ही इनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी थी। विश्वविद्यालय की शिक्षा पूरी करने और सरकारी सेवा करने की धुन छोड़कर इन्होंने उद्योग और व्यापार का स्वतंत्र क्षेत्र चुना, और उसमें ये सफल भी हुए हैं। परंतु इनका मनोरंजन तो साहित्य के अध्ययन एवं काव्य-सृजन से ही होता है। 'कथकलि' में इनकी विशेष रुचि रही है।

प्रारंभ में ये काव्य के बाहरी सौंदर्य-विधान पर मुग्ध थे किंतु बाद में ये काव्यगत संवेदना के पक्षपाती हो गये। समसामलिक जीवन के ताल व सम इनकी कविताओं में गूँज उठते हैं। वर्तमान नागरिक जीवन के खोखलेपन का भी इन्होंने उद्घाटन किया है। प्राचीनता के जो पक्षपाती नयी रचनाओं की विलक्षणता एवं दुरूहता पर कटाक्ष व टीका करते हैं, उन्हें आक्रोशपूर्वक चुनौती देने में ये पीछे नहीं। इनके छोटे काव्यों में नङ्ङेमक्कुट्टि (दे०) कथा-नूतनता व भाव-तीव्रता के लिए प्रसिद्ध है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—इलत्ताळम्, पांचालि कथा-कवितकळ्।

औचित्य *(हिं० पारि०)*

'उचित' के भाव को औचित्य कहते हैं—'उचितस्य भावः औचित्यम्', तो उचित के अभाव को अनौचित्य। व्यक्ति, देश काल आदि से संबद्ध किसी प्रकार की अनुचितता यदि सहृदय के आह्लाद में बाधा उपस्थित करती है तो वह त्याज्य है। आनंदवर्धन (दे०) के शब्दों में अनौचित्य से बढ़कर और कोई (तत्त्व) रसभंग का कारण नहीं है—'अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्।' (ध्वन्या० 3.24 वृत्ति)। क्षेमेन्द्र (दे०) ने औचित्य-सिद्धांत का प्रवर्तन करते हुए औचित्य के 27 भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने के साथ-साथ इनके प्रत्युदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। अतः प्रकारांतर से अनौचित्य के भी 27 भेद मान सकते हैं। क्षेमेन्द्र के शब्दों में रसों के पारस्परिक संयोजन से औचित्य की रक्षा करनी चाहिए, अनौचित्य से स्पृष्ट रसों का संकर रुचिकर नहीं होता। (औचित्य-विचारचर्चा, 18)। महिमभट्ट (दे०) ने 'दोष' शब्द का प्रयोग न करते हुए 'अनौचित्य' शब्द का प्रयोग किया है तथा इसके प्रमुख भेद माने है—अंतरंग (अर्थ-विषयक) और बहिरंग (शब्द-विषयक)। अंतरंग अनौचित्य का कारण है—रसों में विभाव, अनुभाव (दे०) और व्यभिचारिभावों (दे०) का अनुचित विनियोग (प्रयोग)। बहिरंग अनौचित्य के अंतर्गत उन्होंने निम्नोक्त पाँच दोष गिनाये गये हैं—विधेयामर्श, प्रक्रम-भेद, क्रम-भेद पौनरुक्त वाच्यावचन। नाट्यदर्पण (दे०)-कार रामचंद्र-गुणचंद्र ने रस-दोषों में प्रथम दोष अनौचित्य गिनाया है जिसका लक्षण है: वह कर्म जो सहृदयों के मन में विचिकित्सा (शंका अथवा (संदेह) का कारण बने उसे 'अनौचित्य' कहते हैं—'सहृदयानां विचिकित्सा हेतु कर्मानौचित्यम्' मम्मट (दे०) और विश्वनाथ (दे०) के अनुसार रसाभास (दे०) और भावाभास तभी माने जाते हैं जब क्रमशः रस और भाव का अनौचित्य रूप से वर्णन किया जाए—अनौचित्य-प्रवृतत्व आभासो रसभावयोः। (सा० द० 3.262) उदाहरणार्थ, नायिका का नायकेतर पुरुषों में अनुराग रसाभास का विषय है तो वेश्यादि में लज्जा आदि का वर्णन भावाभास का, आदि। इसी प्रकार तिर्यग्योनिगत रति में भी रसाभास माना जाता है।

औचित्यविचारचर्चा *(सं० कृ०)* [समय अनु०—1050-75 ई० के बीच]

'औचित्यविचारचर्चा' के लेखक क्षेमेन्द्र (दे०) हैं। क्षेमेन्द्र का साहित्यिक काल ग्यारहवीं शताब्दी का द्वितीय और तृतीय चरण है। अनुमान है कि 'औचित्य विचारचर्चा' की रचना ग्यारहवीं शती के तृतीय चरण में हुई होगी।

'औचित्यविचारचर्चा' में काव्य-तत्त्वों का सैद्धांतिक विवेचन नहीं। इसे एक प्रकार से व्यावहारिक समीक्षा का ग्रंथ कहना चाहिए। इस ग्रंथ में क्षेमेन्द्र की निजी वृत्ति सहित कारिकाएँ दी गई हैं। इसमें अनेक लेखकों तथा रचनाओं से उदाहरण लिए गए हैं जिनमें कुछ तो क्षेमेन्द्र की अपनी ही रचनाओं से हैं। उनका कथन है कि औचित्य रस का जीवित है तथा चमत्कार का कारण है। औचित्य की परिभाषा इस प्रकार की गई—'उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किलयस्ययत्। उचितस्य च यो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते' । काव्य के समग्र तत्त्वों का महत्व उनके उचित विधान (औचित्य) के कारण ही है । काव्य में रमणीयता तभी आ सकती है जबकि उसके तत्त्वों—रस, गुण, अलंकार आदि—का उचित प्रयोग किया जाए । औचित्य के नियम का अनुपालन काव्य में सर्वत्र अपेक्षित है । लेखक ने औचित्य के प्रयोग के प्रभूत उदाहरण दिए हैं और उसका संबंध पद, वाक्य, प्रबंधार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, उपसर्ग, काल, देश आदि 27 तत्त्वों से प्रदर्शित किया है । इस विवेचन की विशेषता यह है कि लेखक ने उपर्युक्त प्रत्येक विषय के संबंध में पहले तो उपयुक्त उदाहरण (जिसमें औचित्य का पालन किया गया है) दिए हैं और उसके बाद अनुपयुक्त (औचित्य-रहित) उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं । क्षेमेन्द्र की औचित्य-संबंधी मूल प्रेरणा 'ध्वन्यालोक' (दे०) के रसौचित्य प्रसंग से प्राप्त हुई जो इस प्रकार है—अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम् । प्रसिद्धौचित्यबंधस्तु रसस्योपनिषत्परा' । लेखक ने इसी मूल सूत्र को अत्यंत व्यापक रूप प्रदान कर दिया ।

काव्यशास्त्र में क्षेमेन्द्र तथा उनके औचित्य सिद्धांत का योगदान बहुत अधिक नहीं है तथा इसका प्रभाव भी काव्यशास्त्र पर अधिक नहीं पड़ा । यह कोई पृथक् सिद्धांत न होकर विभिन्न काव्यांगों को परिष्कृत तथा उपादेय बनाने का हेतुमात्र है । औचित्य की विशेषता यह है कि इसमें अलंकार के परंपरागत सैद्धांतिक विवेचन के मार्ग से हटकर वास्तविक समीक्षा की व्यावहारिक प्रवृति दिखाई देती है जो संस्कृत में प्रायः दुर्लभ है । क्षेमेन्द्र ने कवियों की प्रशंसा या निंदा की है और किसी भी कवि के साथ पक्षपात नहीं दिखाया ।

औचित्य संप्रदाय *(सं० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र के पाँच प्रसिद्ध काव्य-संप्रदायों—रस (दे०), अलंकार (दे०), रीति (दे०), ध्वनि (दे०) और वक्रोक्ति (दे०) के अतिरिक्त आचार्य क्षेमेन्द्र (दे०) (ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध) द्वारा एक स्वतंत्र सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित 'छठा' काव्य-संप्रदाय । यद्यपि क्षेमेन्द्र से पूर्व भी भरत (दे०), भामह (दे०), रुद्रट (दे०) आदि ने प्रकारांतर से तथा आनंदवर्धन (दे०), अभिनवगुप्त (दे०) आदि ने प्रत्यक्षतः काव्य में औचित्य का महत्व स्वीकार किया है तथापि औचित्य-सिद्धांत को काव्य के व्यापक सिद्धांत एवं समीक्षा-मूल्य के रूप में प्रकलिपत करने तथा उसे एक व्यापक काव्य-संप्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय वस्तुतः आचार्य क्षेमेन्द्र को ही है । औचित्य की स्वरूप-व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि 'आचार्यों' ने उसे ही उचित कहा है जो जिसके अनुरूप हो । इसी उचित का भाव औचित्य कहलाता है' (—'उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् । उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।'—औचित्य-विचार-चर्चा 1/7) । सारांशतः आचार्य क्षेमेन्द्र के औचित्य-संप्रदाय के अनुसार काव्य का स्थिर जीवित औचित्य ही है; अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य-तत्त्वों का सौंदर्य औचित्य पर आश्रित है तथा काव्य की चारु चर्वणा का हेतु औचित्य ही है । क्षेमेन्द्र ने पद, वाक्य, प्रबंधार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण और उपसर्ग आदि औचित्य के विभिन्न प्रभेदों की चर्चा की है ।

कंक भट्ट *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) के नाटक 'कीचक वध' का पात्र है । इसके चरित्र-विकास में तत्कालीन परिस्थितियों ने योग दिया है । दूसरे शब्दों में इसका चरित्र समसामयिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का नमूना है । यह गांधीवादी विचारधारा का प्रतीक है । इसी से वल्लभ (दे०), (भीम) तथा सैरंध्री (दे०) (द्रौपदी) द्वारा कीचक की असहनीय उद्दंडता का प्रतिकार करने को सतत प्रोत्साहित करने पर भी शांति का उपदेश देता है । कीचक द्वारा सैरंध्री पर बल-प्रयोग देख कर भी इसका सत्यवादी मन प्रतिशोध की भावना से आलोड़ित नहीं होता । यहाँ तक कि बल्लभ द्वारा कीचक-वध की सौगंध खाने पर भी यह उसे महाराज विराट के उपकारों का स्मरण दिलाता है । इसके जीवन की उद्योगशीलता और चरित्र की महानता का द्योतक है । इस प्रकार इसका चरित्र उदात्त, समुन्नत एवं मानवतावादी आधारों पर विकसित होने के कारण चारित्रिक विकास के जगतमें ठिठका-सा दिखाई पड़ता है ।

संक्षेप में, कंक भट्ट का चरित्र गांधीवादी अहिंसा-दर्शन के आधार पर गढ़ा होने पर भी अकर्मण्य और निष्क्रिय नहीं हो पाया है ।

कंकावती *(बँ० कृ०)*

बँगला उपन्यास में त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय (दे० मुखोपाध्याय, त्रै०) ने पहले-पहल अद्भुत कल्पना के आश्रय से भौतिक (भूत-प्रेत-संबंधी) एवं मानवीय घटनाओं के सम्मिश्रण के द्वारा हास्यरस-प्रधान कहानी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवर्तन किया था। बँगला साहित्य में अद्‌भुत रस के स्रष्टा के रूप में त्रैलोक्यनाथ का एक विशिष्ट स्थान है। उनके उपन्यास 'कंकावती' में यथार्थ एवं कल्पना-जगत् के संभव एव असंभव को विशेष कौशल के साथ चित्रित किया गया है। 'कंकाबती' का पहला खंड गार्हस्थ्य-जीवनमूलक है एवं द्वितीय खंड एकदम अवास्तव कल्पनाश्रित है। अंत में 'कंकाबती' के ज्वरविकार के साथ उसके अप्राकृत अनुभवों को संपृक्त कर ग्रंथ की मनोवैज्ञानिक मर्यादा की रक्षा की गई है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि अवास्तव भौतिक (भूत-प्रेत-संबंधी) कथावस्तु के होते हुए भी इसमें पात्र अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य नहीं खोते। लेखक ने प्राकृत और अप्राकृत घटनाओं के सम्मिश्रण के द्वारा अद्‌भुत उद्‌भावना-शक्ति का परिचय दिया है।

कंकाल (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-काल—1929 ई०]

यह हिंदी के सर्वतोमुखी प्रतिभासंपन्न कलाकार जयशंकरप्रसाद (दे०) की चरित्र-प्रधान औपन्यासिक कृति है जिसमें विजय, महंत निरंजनदेव, मंगल, सेठ श्रीचंद, पादरी बाथम, घंटी, यमुना, किशोरी, गाला आदि पात्रों के माध्यम से अत्यंत कलात्मक शैली में प्रयाग, काशी, हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन आदि धार्मिक स्थानों पर पल रहे पापाचार, धर्म के ठेकेदारों द्वारा किए जाने वाले घृणित कार्यों, वर्तमान भारतीय समाज में नारी की स्थिति आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए कृत्रिम सामाजिक मूल्यों पर अत्यंत निर्मम प्रहार किया गया है। लेकिन पात्रों को मनमानी स्थितियों में डालते रहने तथा घटनाओं की बहुलता के फलस्वरूप इसके औपन्यासिक शिल्प को क्षति पहुँची है तथा अनेक स्थलों पर कथाक्रम अत्यंत शिथिल एवं विश्रृंखल हो गया है। उपदेशात्मक शैली के स्थान पर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग इसकी शैलीगत विशेषता है। समग्रतः यह सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करने वाला एक मार्मिक उपन्यास है।

कंटा ओ फुल (उ० क०)

गोदावरीश महापात्र (दे०) सत्यवादी (दे० सत्यवादी साहित्य) काव्य-धारा के कवि हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में हम देशात्मबोध एवं जातीयतावाद का प्रसार पाते हैं। 'कंटा ओ फुल' उनकी प्रमुख रचना है। यह उनकी गीति कविताओं का संकलन है। यद्यपि ये कविताएँ रोमांटिकधर्मी हैं, तथापि इनमें महापात्र जी की जातीय एवं राष्ट्रीय चेतना ही प्रमुख रूप से प्रतिफलित हुई हैं। भाषा सहज, प्रतिदिन बोली जाने वाली है। शैली व्यंग्यात्मक और ओजपूर्ण है।

व्यंग्योक्तियों के माध्यम से गोदाबरीश महापात्र सामाजिक दुर्बलता, नेतृत्व-पराङ्मुखता, व्यक्ति की निस्सहायता को प्रकाशित करना चाहते हैं। इनकी 'मेरा जीवन केंद्रापड़ा रास्ता' ऐसी ही रचना है जिसमें केंद्रापड़ा रास्ता महत्वपूर्ण होते हुए भी सदा से अवहेलित रहा है। इसमें वैयक्तिक जीवन तो रूपायित है ही, किंतु उससे भी महत्त्वपूर्ण है सामाजिक स्थिति का संकेत। इस इंगितधर्मी गूढ़ व्यंजना के कारण उनकी सहज, सरल भाषा प्राणस्पर्शी हो गई है।

'कंटा ओ फुल' की कविताओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अवस्था की आलोचना है। किंतु यह प्रचारात्मक नहीं है। हास्य एवं व्यंग्य के अंतराल से जीवन के अनेक कठोर सत्य इसमें उद्‌भासित हो उठते हैं। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में वह दुर्दमनीयनद-प्रवाह है, जो पाठक को बहा ले जाता है। उनकी कविताएँ छंदोबद्ध एवं कलात्मक हैं। उन्हें गद्य-गीत नहीं कहा जा सकता।

शुद्ध कविता की दृष्टि से अवश्य ही इन कविताओं को उच्च स्थान नहीं दिया जा सकता, किंतु उड़िया कविता के विकास की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण हैं। इस मनस्वी कलाकार की आवेशमयी वाणी स्वतः ही कविता बन गई है।

कंदली, माधब (*अ० ले०*) [जीवन-काल—चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी]

जन्मस्थान : नौगाँव जिले का कोई गाँव। ये ब्राह्मण थे और इन्होंने किसी महामाणिक्य नामक अथवा उपाधिधारी बराली राजा के अनुरोध से 'रामायण' की रचना की थी। रचनाएँ—असमीया रामायण, देवजित, ताम्रध्वज। इनकी रामायण के मूल पाँच कांड प्राप्त हैं। श्री शंकरदेव (दे०) ने स्वयं उत्तरकांड लिखकर और अपने शिष्य माधवदेव (दे०) से आदि कांड लिखाकर इसमें जोड़ दिया था। आज असम में यही सप्तकांडीय रामायण प्रचलित है। कंदली ने वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) का शब्दशः अनुवाद नहीं किया है; उसे पढ़कर इन्होंने अपने ढंग से लिखा है। लेखक पर 'अध्यात्म-रामायण' (दे०) का भी प्रभाव है। ये राम के भक्त थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण के मर्मस्पर्शी स्थलों की इन्हें पहचान थी। कथा-वर्णन के मध्य कहीं-कहीं स्थानीय लोकरीतियों, उपमाओं, वनस्पति एवं जीव-जंतुओं का परिचय भी मिल जाता है। पूर्वांचलीय रामकथाकारों के मध्य कंदली ही ऐसे लेखक हैं जिन्होंने रामकथा-लेखन में वाल्मीकि के वर्णन से बहुत दूर न जाने की चेष्टा की है। 'देवजित' में अर्जुन और इन्द्र के युद्ध का वर्णन है। 'ताम्रध्वज' जैमिनी महाभारत का अनुवाद है। ये दोनों रचनाएँ माधव कंदली की नहीं लगतीं। हो सकता है किसी अन्य माधब कंदली ने इनकी रचना की हो।

ये असमीया के प्रथम एवं प्रतिभा-संपन्न रामायण-लेखक हैं।

कंदली, श्रीधर (अ० ले०) [काल—अनुमानतः सोलहवीं शताब्दी]

इनका जन्म गौहाटा से 16 मील दूर हाजो गाँव में हुआ था। ये वैष्णव कवि थे।

रचनाएँ—काव्य : 'घुनुचा', 'कानखोवा', 'अश्वमेघपर्व' का अनुवाद।

'घुनुचा' काव्य में इंद्रद्युम्न की कन्या घुनुचा (गुंडिचा) की कथा है। यह कथा 'स्कंदपुराण' के उत्कल-खंड में है। श्री कंदली के काव्य में घुनुचा के प्रति रुक्मिणी का सौतिया डाह तथा कृष्ण के प्रति क्रोध का सजीवता के साथ वर्णन किया गया है। इसमें ग्राम्य स्त्री-कलह का प्रतिबिंब मिल जाता है। कंदली की महत्वपूर्ण कृति है 'कानखोवा' (कानखाने वाला, कनकटा)। यशोदा कृष्ण को डराने के लिए कहती हैं, 'सो जा रे कन्हाई, कनकटा आ रहा है। कृष्ण डर कर पूछते हैं, यह कनकटा कौन है? मैंने तो किसी अवतार में उसे नहीं देखा। यशोदा भीत कृष्ण को देख दुःखी होती हैं और कृष्ण लपककर उनकी गोद में चढ़कर दूध पीने लगते हैं। सूरदास (दे०) की यशोदा भी कृष्ण को 'हाऊ' से डरवाती हुई कहती हैं—'कान तोरि वह लेत सबनि के लरिका जानत जाहि'। यहाँ भी कृष्ण अपने अवतारों का उल्लेख कर हाऊ का परिचय पूछते हैं। कंदली ने इस प्रसंग पर अधिक ध्यान दिया है। इनकी कृति एक प्रकार से लोरी-काव्य है।

कँवर (सिं० कृ०)

'कँवर' सिंधी के प्रसिद्ध गद्यलेखक तीर्थ वसंत (दे०) की अमर कृति है। इस पर उन्हें सन् 1959 ई० में साहित्य अकादमी से पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इस पुस्तक में बीसवीं शताब्दी ई० के प्रसिद्ध भक्त कवि कँवर (कमल) साहिब का जीवन-चरित्र अति रोचक और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। भक्त कँवर का इस शताब्दी के सिंधी संत कवियों में प्रमुख स्थान है। वे सिंध के गाँव-गाँव में जाकर लोगों के हृदय में भक्तिभावना भरते थे और अपने मधुर गीतों से जनता को मंत्रमुग्ध कर देते थे। हिंदू और मुसलमान इस भक्त कवि के व्यक्तित्व और मधुर स्वर से प्रभावित थे। खेद है कि ऐसे महान् संत को दिसंबर 1939 ई० में एक दिग्भ्रांत मुसलमान ने गोली का निशाना बनाकर मार डाला था। तीर्थ वसंत ने अपनी कृति में कँवर का जीवन-चरित्र और उसके भजन तथा गीत भी दिए हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने इस महान् भक्त के प्रति अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति भी की है। यह कृति लेखक के सशक्त गद्य और रोचक शैली का उत्तम उदाहरण है।

कँवल, जसवंतसिंह (पं० ले०) [जन्म—1919 ई०]

नानकसिंह (दे०) के पश्चात् पंजाबी उपन्यासकारों की जो पीढ़ी उभरी, उसमें जसवंतसिंह कँवल का नाम सबसे पहले लिया जाता है। कँवल प्रगतिशील विचार-धारा के लेखक हैं और पंजाब का ग्रामीण जीवन उनकी अभिव्यक्ति का प्रेरणा-स्रोत है। उस जीवन में उभरते हुए जन-जागरण का बड़ा गहरा और सूक्ष्म विश्लेषण इनके कथा-साहित्य में हुआ है।

'सच नू फाँसी' और 'पाली' लेखक के प्रारंभिक उपन्यास हैं। इन्हें विशेष प्रसिद्धि अपने तीसरे उपन्यास 'पूरनमाशी' (दे०) से प्राप्त हुई। पंजाब के खेतों, मेलों, ऋतुओं तथा लोक-जीवन का निरूपण उपन्यास के कथा-तंतुओं में बड़ी सहजता से गुँथा हुआ है।

'कँवल' एक सफल कहानीकार भी हैं। 'कंडे', 'जिंदगी दूर नहीं', 'संधूर', आदि इनके कहानी-संग्रह हैं।

कंठीरवनरसराजविजय (क० कृ०) [लेखन-काल—लगभग 1650 ई०]

इसके रचयिता गोविंदवैद्य नामक एक ब्राह्मण कवि माने जाते हैं जो मैसूर-नरेश कंठीरवनरसराज ओडेयर के समय में विद्यमान थे। यह सांगत्य (दे०) छंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लिखा कन्नड़ का सर्वप्रथम ऐतिहासिक काव्य हैं। इसके रचयिता गोविंद वैद्य हैं या भारतीकंज—इस बारे में काफ़ी विवाद है। यह भी हो सकता है कि भारतीकंज इसके वाचक रहे हों। यह सच्चे अर्थ में रासो शैली में लिखा गया वीरकाव्य है। इसमें मैसूर-नरेश कंठीरवनरस-राज ओडेयर के शौर्य और औदार्य का वर्णन है। कवि का दावा है कि वनरसराज नृसिंह के अवतार हैं। वनरसराज का राज्य, उनका वंश, उनकी राजधानी श्री रंगपट्टण, उसके दुर्ग आदि का बहुत ही सजीव वर्णन इसमें हुआ है। शृंगार-प्रसंग मदनमोहिनी की सृष्टि करके जोड़ दिया गया है। इस काव्य की महत्ता उसमें चित्रित जनजीवन एवं राजनीतिक जीवन के वास्तविक चित्रण में है। कर्णाटक पर चढ़ आनेवाले रणदुल्लारूणि तथा उसका सामना कर उसे पराजित करने वाले कंठीरवनरसराज के पौरुष का अत्यंत औजोमय वर्णन इसमें हुआ है। मुसलमानी सेना के द्वारा रास्ते में होने वाले अत्याचार, लोगों की घबराहट आदि का आँखों देखा वर्णन भी इसमें है। मुसलमानी वातावरण के निर्माण में कवि ने अरबी-फ़ारसी शब्दों का यथेष्ट प्रयोग किया है। दुर्गयुद्ध का इतना सजीव चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-साहित्य में इस ग्रंथ का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

कंति *(क० ले०)* [समय—1100 ई०]

कन्नड़ की प्रथम कवयित्री कंति का समय 1100 ई० माना जाता है। यह कवि नागचन्द्र (दे० अभिनव पंप) की समसामयिक थीं। सोलहवीं शदी के बाहुबलि (दे०) नामक कवि ने अपने 'नागकुमारचरित्र' में 'अभिनव वाग्देवी' कंति का स्मरण किया है। देवचन्द्र (1838 ई०) ने अपनी 'राजावली-कथे' में इसकी कथा दी है। 'कंतिहंयन समस्येगळु' नामक एक समस्यापूर्ति काव्य-संकलन मिला है। नागचन्द्र ने कंति का उल्लेख कहीं नहीं किया है। अतः विद्वानों ने कंति के अस्तित्व पर शंका की है। इस ग्रंथ की भापा नागचन्द्र के समय की नहीं है। हो सकता है कि परवर्ती प्रतिलिपिकारों के हस्तक्षेप के कारण भापा पर आधुनिकता का रंग चढ़ गया हो। उसमें कविता से अधिक चमत्कार की प्रधानता है। किंतु इस संबंध में निश्चित रूप में कुछ भी बताना कठिन है।

कंदपुराणम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी]

इसके रचयिता श्री कच्चियप्प शिवाचारियार हैं। कंदपुराणम्' सात खंडों में विभक्त है जिनमें भगवान मुरुगन का जन्म, उनकी बाल-लीलाएँ, उनके द्वारा देवों के घोर शत्रु शूरपद्मन का वध और देवों की संकट-मुक्ति, वळ्ळी और देवयानै नामक युवतियों से भगवान मुरुगन के विवाह आदि घटनाओं का वर्णन है। 'कंदपुराणम्' में कवि ने शैव धर्म के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। उसका काव्यत्व अक्षुण्ण है। संस्कृत स्कंदपुराण में प्राप्त भगवान सुब्रह्मण्य के जीवन-चरित को आधार-रूप में ग्रहण करते हुए कवि ने जहाँ-तहाँ मौलिक पुट देने का सफल प्रयास किया है। सोलह सहस्र से अधिक पदों से युक्त यह कृति तमिल के बृहत्काव्यों में परिगणित की जाती है। (दे० कच्चियप्पर)

कंदसामी पिळ्ळै *(त० पा०)*

कंदसामी पिळ्ळै पुदुमैप्पित्तन् (दे०)-कृत 'कडवुलुम् कंदसामी पिल्लैयुम्' शीर्षक कहानी का नायक है। इस कहानी की रचना का मूल उद्देश्य कंदसामी के चरित्र का स्पष्टीकरण है। कंदसामी पिळ्ळै एक वर्ग-पात्र है। यह वर्तमान समाज में मध्यवित्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। लेखक ने मध्यवर्गीय व्यक्तियों में जो प्रवृत्तियाँ देखी हैं उन्हें कंदसामी पिळ्ळै के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन में आनंद चाहता है परंतु आनंद-प्राप्ति के लिए धन का व्यय उसे सह्य नहीं है। ठीक इसी प्रकार कंदसामी पिळ्ळै बिना टिकट बस में सफ़र करना चाहता है। ईश्वर से भेंट होने पर चाहता है कि वे ही होटल का बिल चुका दें और रिक्शे का किराया दे दें। मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी दुर्बलता दूसरे पर व्यक्त नहीं होने देता। कंदसामी पिळ्ळै अपनी दुर्बलता अपनी पत्नी के सम्मुख भी प्रकट नहीं होने देता है। वह ईश्वर से कहता है कि वे घर जाकर उसकी पत्नी के सम्मुख अपने को ईश्वर न बतायें अन्यथा वह उन्हें पागल समझ लेगी। वैद्य के रूप में इसके इलाज का ढंग भी निराला है। उसका सिद्धांत है न रोगी मरे, न रोग दूर हो ताकि उसे निरंतर धन मिलता रहे। मध्यवर्गीय व्यक्तियों के समान कंदसामी पिळ्ळै बड़े-बड़े अमीरों से संबंध बनाये रखता है ताकि उसे समय-समय पर लाभ होता रहे। वह जीवन में किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता। यह जिस स्थिति में है उसी स्थिति में सदा रहना चाहता है। कंदसामी पिळ्ळै पुदुमैप्पित्तन् की अमर कल्पना-सृष्टि है। इसके चरित्र-चित्रण में लेखक को अपार सफलता मिली है। यह आधुनिक समाज में मध्यवर्गीय व्यक्ति का सच्चा प्रतिनिधि है।

कंबर (त० ले०) [समय—ईसा की नवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच; अधिकांश के मत में बारहवीं शताब्दी]

कंबर का जन्म चोलनाडु तिरुवषुन्दूर नामक स्थान में एक वैष्णव परिवार में हुआ था। कंबर के जन्म उनके माता-पिता, जाति, आदि के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं। तिरुवेण्णेयनल्लूर के शडैयप्प वळ्ळल इनका बहुत सम्मान करते थे। इन्होंने अपनी रामायणम् में उनकी प्रशंसा में दस पद लिखे हैं। इनके द्वारा रचित प्रमुख कृतियाँ हैं—'रामायणम्' (दे०), 'शठकोपरंदादि', 'एर एषुपदु, 'शिलै एषुपदु', 'तिरुक्कैवषक्कम्', 'सरस्वतीअंदादि' आदि। इनकी कीर्ति का आधार है 'रामायणम्' जो कि तमिल साहित्य में 'कंबरामायणम्' (दे०) के नाम से विख्यात है। यद्यपि इन्होंने वाल्मीकि-रामायण को अपनी कृति का आधार बनाया था तथापि अपनी मौलिक प्रतिभा, प्रखर कल्पना-शक्ति और अपूर्व पांडित्य के बल पर उसे सर्वथा नवीन रूप दे दिया। तमिल में इनसे पहले और इनके बाद जिन रामायणों की रचना हुई वे 'कंबरामायणम्' की तुलना में नहीं ठहर पाती हैं। 'शठकोपरंदादि' में इन्होंने शठकोपर (नम्माळवार दे०) की महिमा का गान किया है। ये तमिल के ही नहीं अपितु संस्कृत के भी प्रकांड पंडित थे। इन्होंने अपनी रामायणम् में संस्कृत और तमिल काव्य-शैलियों का समन्वय किया है। अपने बहुभाषा-ज्ञान के बल पर इन्होंने तमिल की अभिव्यंजना-शक्ति की श्रीवृद्धि कर उसे नवीन सौष्ठव और सौंदर्य प्रदान किया। अपनी अपूर्व प्रतिभा के कारण ये कविचक्रवर्ती, ज्ञानंसागर आदि उपाधियों से भूषित किए गए थे। तमिल के महाकवियों में इनकी गणना की जाती है।

कंबरामायणम् (त० कृ०) [रचना-काल—ईसा की नवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच]

'कंबरामायणम्' कंबर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। कंबर ने इस कृति को 'रामावतार' नाम दिया था परंतु परवर्ती काल में इसे 'कंबरामायणम्' कहा गया। कंबरामायणम् बालकांडम्, अयोध्याकांडम्, आरण्यकांडम्, किष्किंधाकांडम्, सुंदरकांडम् और युद्धकांडम् नामक छह कांडों और 113 पडलमों (अध्यायों) में विभाजित है। इसमें 10,500 पद हैं। कंबर ने यद्यपि वाल्मीकि रामायण से कथा ग्रहण की तथापि अपनी अपूर्व प्रतिभा और प्रखर कल्पना-शक्ति के बल पर, तमिल सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप इसकी कथा में परिवर्तन किये। 'कंबरामायणम्' में प्राप्त कुछ मौलिक प्रसंग इस प्रकार हैं—धनुष-यज्ञ से पूर्व राम-सीता की भेंट एवं उनका पूर्वानुराग, अगत्स्य के आश्रम से निकलकर पंचवटी के लिए प्रस्थान करते समय मार्ग में जटायु से मिलन, रावण का पर्णशाला-समेत सीता जी का अपहरण, राम द्वारा कैकेयी-निंदा आदि। यह कृति नाटकीय सौंदर्य से युक्त है। कंबर ने पात्र एवं प्रसंग के अनुकूल स्वाभाविक संवादों की योजना की है। कंबर की वर्णन-पटुता का परिचय उलावियर पडलम्, पूवकोय पडलम्, नीर विलैयाट्टुपडलम्, कळियाट्टु पडलम् आदि में मिलता है। चरित्र-चित्रण में कंबर अद्वितीय हैं। उन्होंने बड़ी सजगता से पात्रों के स्वभाव, मनोभाव, गुण-दोष आदि का विवेचन किया है। कंबर प्रकृति-प्रेमी थे। 'कंबरामायणम्' में चराचर प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र हैं। कंबर का तमिल भाषा-ज्ञान अद्वितीय था। उन्होंने विषयानुकूल शब्दों का तथा प्रसंग एवं विषय के अनुकूल छंदों का प्रयोग किया है। इस कृति में अलंकारों का सुंदर सफल प्रयोग हुआ है। 'कंबरामायणम्' कंबर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसकी गणना तमिल के श्रेष्ठ महाकाव्यों में होती है।

कंसा-कबाट (उ० कृ०)

यह ब्योमकेश त्रिपाठी (दे०) का सामाजिक नाटक है। स्वतंत्रता के बाद राज्यों का विलयन होता है और यह परिवार अपनी प्रभुता एवं ऐश्वर्य से वंचित हो जाता है। सुबीर, तत्कालीन महाराजा तथा महारानी इस परिवर्तन के साथ चलने का प्रयत्न करते हैं, किंतु छोटा भाई प्रवीर परंपरागत राजसी हुकूमत एवं दुर्गुणों का शिकार बना रहता है। उसके कारण सारा परिवार बिखर जाता है। इस ध्वंसावशेष-जन्य उत्थान-पतन के बीच महाराज का परिवार एक सामान्य कुलीन संभ्रांत परिवार के रूप में उभर कर आता है।

इसमें राष्ट्रीय चेतना तथा उदार मानवतावाद का संदेश है; क्षुद्र स्वार्थ और बेईमानी पर तीखा व्यंग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथा स्त्री-शिक्षा का महत्व दर्शाया गया है और बहु विवाह-प्रथा के दुष्परिणामों का निरूपण है।

रंगमंच की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है।

क:पंथा (अ० कृ०) [रचना-काल—1934 ई०]

कमलाकांत भट्टाचार्य (दे०) के इन निबंधों में लेखक के गंभीर विचार और मनीषा का परिचय मिलता है। इनमें देश और संस्कृति-प्रेम की छाप भी उपलब्ध होती है। संस्कृत भाषा के शब्दों का बहुप्रयोग न कर गुरु-गंभीर भावों के लिए भी असमीया जन-भाषा का प्रयोग किया गया है।

कच-सच (पं० कृ०) [प्रकाशन-काल—1950 ई०]

यह मोहन सिंह (दे०) की एक प्रौढ़ रचना है जो सन् 1950 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता-संग्रह की कविताओं द्वारा कवि ने अपने निजी अनुभव के संसार को अधिक व्यापक बनाया है। यह कविता-संग्रह उनकी काव्य-यात्रा के तीसरे पड़ाव का द्योतक है जहाँ वे अपनी कविता को भौतिक और यथार्थवादी धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं—भावुक आदर्शवादी ढंग से नहीं, बल्कि तर्कसंगत और यथार्थपरक ढंग से। 'कच' से आशय मानव-प्रेम से है और 'सच' से क्रांतिकारी सिद्धांतों से। इस संग्रह की ज़्यादातर कविताएँ मानव-प्रेम से संबद्ध हैं। ऐसी कविताएँ बहुत थोड़ी हैं जो क्रांतिकारी विचारों से जुड़ी हुई हों पर थोड़ी होने के बावजूद ये कविताएँ कवि के प्रगतिवादी रुझान को स्पष्ट कर देती हैं। 'लोहा' कवि की प्रगतिवादी चेतना की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है।

इस संग्रह में कवि ने प्रेम-संबंधी वैयक्तिक अनुभूतियों को सामाजिक संदर्भ में रखकर व्यक्त किया है। प्रेमानुभूतियों को सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों में रखकर कवि ने प्रेम-भाव का मार्मिक चित्रण किया है।

इस संग्रह में आकर वे निजी पीड़ा के कवि ही नहीं रहे हैं, मानव-मात्रकी पीड़ा के कवि बन गए हैं।

कच्चायन (पा० ले०) [समय—ई० पू० चौथी शताब्दी]

इनको कच्चान, महाकच्चान, महाकच्चायन नामों से भी *अभिहित* किया जाता है। ये महावैयाकरण वार्तिककार कात्यायन से अभिन्न प्रतीत होते हैं। इनके नाम पर गोत्र भी चलता है और बौद्ध साहित्य में कई व्यक्तियों का कच्चायन गोत्र बतलाया गया है। इन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। सबसे पहले इन्होंने ही बुद्ध-वचनों की व्याख्या की। इन्होंने 'नेहिपकरण' नामक ग्रंथ की रचना की जिसे 'नेहिगंध' और केवल 'नेहि' नाम से भी पुकारा जाता है। यही पहली रचना है जिसमें बुद्ध के उपदेशों को सुसंबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। त्रिपिटक (दे०) की कई पुस्तकों से भी यह प्राचीन रचना है और 'मज्झिम-निकाय' (दे० सुत्तपिटक) में कच्चान को बुद्धवचनों का व्याख्याता बतलाया गया है। 'नेहि' की परंपरा को सुरक्षित रखते हुए इन्होंने 'पिटकोपदेश' (दे० 'पेटकोपदेस') की भी रचना की। बाद में श्रीलंका में इन दोनों पुस्तकों को भी 'त्रिपिटक' में सम्मिलित कर लिया गया।

कच्चियप्पर (त० ले०)

कुछ विद्वानों के अनुसार इनका समय बारहवीं ई० शती है पर डा० मीनाक्षिसुंदरम् जैसे अधिकारी विद्वान सत्रहवीं सदी ई० के पक्ष में हैं। 'कच्चियप्पर' अपनी वंश-वृत्ति के अनुसार मंदिरों में भगवान शिव के पुजारी थे।

अपने आराध्यदेव 'स्कंद' के पौराणिक वृत्तांतों को लेकर इन्होंने एक बृहत्-काव्य की रचना की थी। यह काव्य मूल संस्कृत 'शंकर-संहिता' में उपलब्ध वृत्तांतों का पद्यबद्ध अनुवाद होकर 'कंदपुराणम्' (दे०) के नाम से तमिलभाषी जनता में (और उससे भी अधिक लंका के शैव-धर्मावलंबी समाज में) प्रचलित हो चुका है। छह कांडों में विभक्त इस पुराण में 10,346 पद्य हैं। लेखक के शिष्य 'कोनेरियप्प मुदलियार' द्वारा रचित सातवाँ कांड बाद में जोड़ा गया था।

तमिल के नौ पुराण-रत्नों में से एक 'कंदपुराणम्' हैं। इसकी विशेषताएँ बृहत् आकार, महाकाव्योचित अलंकारादि-युक्त शैली-सौष्ठव, यत्र-तत्र शैव-सिद्धांत-तत्त्वों का प्रतिपादन इत्यादि हैं। वैयापुरिप्पिळ्ळै, मीनाक्षिसुंदरम् आदि पारखी विद्वानों ने कहा है कि इस काव्य की कथा-योजना एवं शैली में तमिल काव्य-विधा की अन्यतम उपलब्धि 'कंबरामायणम्' (दे०) का अनुकरण स्पष्टतः द्रष्टव्य है। यद्यपि 'कंबरामायणम्' का साहित्यिक गौरव इस ग्रंथ को मिल नहीं सकता, तो भी इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कंदपुराणम्' के संबंध में किंवदंती है कि खुली विद्वत्सभा में काव्य के प्रस्तुतीकरण के समय एक विवादास्पद शब्द 'तिकटचक्करम्' का संधि-नियम (जिसके अनुसार 'ळ्' और 'त' 'ट' में परिवर्तित हुए) स्वयं भगवान स्कंद द्वारा स्पष्ट किया गया था।

कच्छ नुं सांस्कृतिक दर्शन (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

श्री रामसिंह जी राठौर-रचित यह ग्रंथ कच्छ की संस्कृति पर प्रामाणिक रचना है। सन् 1958 ई० में उसका प्रथम संस्करण निकला था। भूमिका आदि के उपरांत 301+54 पृष्ठों का यह ग्रंथ कच्छ के विषय में 'एनसाइक्लोपीडिया' के समान है।

इस ग्रंथ में कच्छ का शिल्प, स्थापत्य, उद्योग, बुनाई-गुँथाई, कढ़ाई, चित्रकला, संगीत, गायकी (विशेष गाने की पद्धति), लोक-समाज, प्रकृति-सृष्टि-सौंदर्य, वनस्पति-वैभव, पशु-पक्षी, वन्य प्राणी, जहाज़ी-व्यापार खनिज, काठी वीरों का वीरत्व, भूस्तर-रचना, जलवायु, भौगोलिक विस्तार, दर्शनीय स्थल, कच्छ का इतिहास, मंदिर, ऐतिह्य लेख, लोक-साहित्य, अध्ययन-सामग्री आदि का सचित्र विवरण है। नारायण सरोवर, कोटेश्वर मंदिर, भद्रेश्वर, गुंतरी, व्रजवाणी, माता नो गढ़, मणियारो गढ़, रो नो गढ़ आदि अनेक स्थानों का महत्व, इतिहास वगैरह सचित्र वर्णित है। कच्छी भाषा, लिपि, साहित्य, कला, काव्य आदि का भी इसमें सोदाहरण रसास्वाद कराया गया है। कच्छ की लोककथाएँ, स्थानों के इतिहास की नींव में पड़ी दंतकथाएँ आदि भी यथास्थान एवं यथावसर बताई गई हैं।

युद्ध, इतिहास, भूगोल, संस्कृति, कला, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र में कच्छ का महत्व, योगदान स्पष्ट करने में यह ग्रंथ काफ़ी सफल हुआ है।

भारतीय—विशेषतः गुजरात के—इतिहास एवं संस्कृति के क्षेत्र में इस ग्रंथ का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

कटक-बिजय (उ० कृ०)

'कटक-बिजय' भिखारीचरण पटनायक (दे०) का ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें सन् 1803 ई० में उड़ीसा पर अँग्रेज़ी राज्य की स्थापना का चित्रण हुआ है। इसमें ऐतिहासिक कथा-वस्तु अत्यल्प है। चरित्र-चित्रण, ऐतिहासिक परिवेश-चित्रण, संवाद, प्रयुक्त गद्य आदि की दृष्टि से इसकी सीमाएँ स्पष्ट हैं, किंतु यह मानना पड़ेगा कि इससे नाटक के एक विशेष अंग की पुष्टि हुई है तथा प्रारंभिक रचना की दृष्टि से यह उपेक्षणीय नहीं है।

कट्टक्कयम् चेरियान् माप्पिळा (मल० ले०) [जन्म—1859 ई०, मृत्यु—1936 ई०]

ये मलयाळम के प्रतिभाशाली महाकवि हैं। प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्य-पोषक कंटत्तिल् वर्गीस माप्पिळा (दे०) के प्रोत्साहन से इन्होंने साहित्यसर्जना प्रारंभ की थी। उस युग में काव्य-जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कवि-प्रतिभा के अलावा आभिजात्य भी अपेक्षित था। ईसाई होने पर भी चेरियान् माप्पिळा साहित्याचार्यों के समाज में सुप्रतिष्ठित बन गए थे।

कट्टक्कयम् की मुख्य कृति 'श्रीयेशुविजयम्' महाकाव्य है। चार रूपक, तीन खंडकाव्य और एक आट्टक्कथा (दे०) की भी इन्होंने रचना की है।

बाइबिल पर आधारित मलयाळम-काव्यों की रचना के मार्गदर्शक कट्टक्कयम् हैं। 'श्रीयेशुविजयम्' में नए टेस्टामेंट का इतिवृत्त प्रसन्न-मधुर भाषा में वर्णित है। यह मलयाळम की एक महत्वपूर्ण कृति है। इन्होंने मलयाळम के क्लासिक शैली के काव्यों में एक नई कड़ी जोड़ दी है।

'कट्टी होई पतंग' (पं० कृ०) [प्रकाशन-काल—1952 ई०]

नानकसिंह (दे०) का यह उपन्यास सामाजिक यथार्थ पर आधृत है। प्रस्तुत कृति में अनमेल विवाह की समस्या को आर्थिक विषमता के प्रश्न के साथ जोड़कर नारी को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र और अपने अधिकारों के प्रति सहज होने की प्रेरणा दी गई है। सुशिक्षित कामनी (दे०) अपने दुराचारी पति ब्रजमोहन से अपमानित एवं प्रताड़ित होकर गीतकार सुखवीर की सहायता से एक सफल फ़िल्म-अभिनेत्री बन जाती है। बंबई में कामनी श्रमिक आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेती है और आर्थिक दृष्टि से उनकी सहायता करती है। कामनी, सुखवीर, ब्रजमोहन, आदि पात्र परिस्थितियों के प्रवाह में बहते हुए अस्थिर चरित्र हैं। कहीं-कहीं सहसा परिवर्तन से उनमें अस्वाभाविकता की प्रतीति भी होती है। नानकसिंह ने नारी की स्थिति एक कटी हुई पतंग के समान लक्षित करते हुए उसे सबल, अपने अधिकारों के प्रति प्रबुद्ध, और पुरुष के स्वार्थी तथा लोलुप स्वभाव से मुक्त रूप में चित्रित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कड़वक *(अप० पारि०)*

संस्कृत प्रबंध-काव्यों में सर्गबद्ध रचना होती थी। महाकाव्य के लक्षणों में 'सर्गबद्धो महाकाव्यम्' कहकर महाकाव्य में कथा का अनेक सर्गों में विभाजन आवश्यक माना गया है। प्राकृत-महाकाव्यों में कथा अनेक आश्वासों में विभक्त की जाती थी। संस्कृत के सर्ग शब्द के स्थान पर प्राकृत में आश्वास शब्द का प्रयोग किया गया। संस्कृत की सर्गबद्ध शैली के समान अपभ्रंश के प्रबंध-काव्य अनेक संधियों में बद्ध होते हैं। प्रत्येक संधि अनेक कड़वकों से मिलकर बनती है। कड़वक की समाप्ति 'घत्ता' (दे०) से होती है। दो कड़वकों का विभाजन 'घत्ता' से होता है। कहीं-कहीं संधि के आरंभ में 'दुवई' या 'घत्ता' भी मिलता है, इसमें संक्षेप से संधि का सार अभिव्यक्त होता है। संधियों की संख्या का कोई निश्चित नियम नहीं। नरसेन की 'सिद्धचक्ककहा' में दो संधियाँ हैं तो धाहिल (दे०) के 'पउमसिरीचरिउ' (दे०) में चार संधियाँ हैं। पुष्पदंत (दे०) के 'महापुराण' में 102 संधियाँ हैं और धवल के 'हरिवंशपुराण' में 122 संधियाँ हैं। कई महाकाव्यों का विभाजन कांडों में मिलता है। प्रत्येक कांड कई संधियों से मिलकर बनता है। कड़वक का मूलभाग पज्झटिका, पादाकुलक, वदनक, पाराणक, अलिल्लह आदि छंदों से निर्मित होता है। कड़वक में प्रयुक्त छंद की संख्या का कोई निश्चित नियम नहीं। कड़वकों के प्रयोग से विभक्त कथा-वस्तु कड़वकबद्ध शैली की रचना मानी जाती है। कड़वक किसी छंद का नाम नहीं, एक विशिष्ट रचना-प्रक्रिया है। यद्यपि अपभ्रंश-काव्य संधियों में कड़वकबद्ध मिलते हैं, किंतु कड़वक की रचना में पंक्तियों की संख्या के नियम का परिपालन नहीं दिखाई देता। यद्यपि स्वयंभू (दे०) के अनुसार एक कड़वक में 8 यमक एवं 16 पंक्तियाँ होनी चाहिए, किंतु इस नियम का पालन कवियों ने नहीं किया। इसी प्रकार प्रबंधकाव्य में या एक संधि में कितने कड़वक हों, इसका भी कोई निश्चित नियम नहीं।

कड़वक की रचना में कवियों ने 16 से कम या अधिक पंक्तियों का इच्छानुसार प्रयोग किया है। कड़वक के मुख्य भाग में भी पद्धड़िया के अतिरिक्त अन्य छंदों का भी प्रयोग होता रहा है। कड़वक के अंत में भी घत्ता-रूप में नाना छंदों का प्रयोग होता रहा। संधि के आरंभ में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न छंदों को ध्रुवक कहते हैं, परंतु कड़वक के आरंभ में प्रयुक्त होने वाले स्वतंत्र छंद का कोई विशेष नाम नहीं—विभिन्न छंद अपने ही नाम के प्रयुक्त होते हैं।

कणाद *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—150 ई०]

विद्वानों का कथन है कि गिरे हुए दानों (कणों) को खाकर जीवन बिताने के कारण ही इनका नाम कणाद पड़ गया था। इन्होंने 'वैशेषिक-सूत्र' की रचना करके वैशेषिक दर्शन की प्राणप्रतिष्ठा की है। वैशेषिक दर्शन का ही दूसरा नाम 'औलूक्य दर्शन' भी है। वैशेषिक सूत्र में 10 अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक हैं।

कणाद के अनुसार जिससे लौकिक सुख तथा निःश्रेयस (पारलौकिक सुख) दोनों की सिद्धि होती है, वही धर्म है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण एवं कर्म—इन तीन पदार्थों तक दृष्ट हेतुओं का प्रवेश है, अन्यत्र अदृष्ट आश्रय लिया गया है। कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छह पदार्थ माने हैं। इन्हीं छह पदार्थों के ज्ञान से वैशेषिक मत में मुक्ति की प्राप्ति बतलाई गई है। वैशेषिक दर्शन के अंतर्गत अविद्या के संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय तथा स्वप्न—ये चार भेद स्वीकार किए हैं। इसी प्रकार वैशेषिक में चार प्रकार की विद्या है। विद्या के भेद—प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति तथा आर्ष हैं। वैशेषिक दर्शन में सत्प्रत्ययकर्म, असत्प्रत्यय कर्म तथा अप्रत्यय कर्म रूप से कर्म के तीन विशेष रूप प्रदर्शित किए गए हैं। 'सत्प्रत्यय कर्म' प्रयत्न से और 'असत्प्रत्ययकर्म' बिना प्रयत्न से होते हैं। जो कर्म पृथिवी आदि महाभूतों में बिना किसी प्रयत्न के होते हैं, वे अप्रत्यय-कर्म हैं। वैशेषिक में ईश्वर को न मानकर अदृष्ट के द्वारा परमाणुओं की गति आदि की समस्या का समाधान किया गया है।

वैशेषिक दर्शन का यह वैशिष्ट्य है कि इसमें ईश्वर को अस्वीकार करते हुए भी आत्मा को स्वीकार किया गया है।

कणामांमु *(उ० कृ०)*

'कणामांमु' लक्ष्मीकांत महापात्र का उपन्यास है और कणामांमु (दे०) इसका विलक्षण पात्र है। संपूर्ण उपन्यास में इसका चरित्र यद्यपि पूर्णरूप से विकसित नहीं हो सका है, तथापि जितना भी प्रकाशित हुआ है, वह अद्भुत है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कणामांमु का नाम पहिले किणा था। पटाके से एक आँख नष्ट हो जाने से किणा कणा (काना) में बदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। कानेपन के कारण विवाह-मंडप में इसका विवाह रुक जाता है। यह दादा, पिता, अथवा पुत्र सबका, चंदा मामा की तरह, जगत मामा है। इसकी उम्र का न तो किसी को पता है और न इस के शरीर पर ऐसा चिह्न ही है जिससे उसका अनुमान लगाया जा सके। चिर-नवीनता, चिरयौवन, चिरस्फूर्ति, सदावहार—इन शब्दावलियों की रचना स्यात् इसके लिए ही हुई है। सारा गाँव इसका घर है। इसका बाह्य रूप यद्यपि भयंकर है, किंतु भीतर से यह साहस, वीरत्व, परोपकार, उग्र देशभक्ति आदि गुणों का भंडार है। जात्रा, सर्कस, थियेटर, संगीत सभी से इसका परिचय है—केवल लिखने-पढ़ने से इसका कोई संबंध नहीं है। इसने एक अखाड़ा खोला है जहाँ दंड, बैठक, लाठी, कुश्ती, तलवार, संगीत आदि की शिक्षा दी जाती है। स्वयं उस्ताद है। अखाड़े से सच्चा देश-सेवक उत्पन्न करना ही इसका उद्देश्य है। विदेशी सरकार और उसके पिट्ठू इस अखाड़े के दल को आतंकवादी घोषित कर देते हैं। गद्दार मुंशी जी को स्वयं तमाचा जड़कर यह ग़ायब हो जाता है।

दूसरी ओर पटनायक की नीचता से विवाह टूट जाने के कारण प्रधान की बेटी अन्नू तालाब में कूदकर प्राण त्याग देना चाहती है, किंतु यह कहीं से आकर उसे निकाल लेता है तथा अपने अखाड़े के युवक अभिराम से उसका विवाह करा देता है। अभिराम के घर आग लगने पर हवा के तेज़ झोंके के समान यह पुनः कहीं से आ जाता है और जलते हुए घर से उसकी भानजी को निकाल लेता है। इसका चिरवसंत शरीर बुरी तरह झुलस जाता है। फिर भी अभिराम को इसका उपदेश है—

"देश में अधर्म, अनाचार के घने बादल घिर आये हैं। सात समंदर पारकर विदेशी हमारे सिर पर आसीन हैं। धर्म डूब गया है। अपने घर के मालिक हम स्वयं होंगे। इसके लिए संन्यासी बनना होगा। तिलक, जटा, गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी नहीं, वरन् जिसे कहते हैं सच्चा त्यागी। काम सरल नहीं है—जीवन लेना होगा, जीवन देना होगा। मार-पीटकर, ख़ून की नदी बहाकर, इसे निकाल बाहर करना होगा।"

पुलिस यद्यपि इसे थाने में ले जाती है जहाँ इसका उपचार होता है किंतु कुछ दिनों बाद गाँव के चौकीदार से पता चलता है कि मामा जेल से भाग गये हैं। इसके बाद इसका किसी को पता नहीं चल पाता।

कणामामुँ *(उ० पा०)*

कणामामुँ श्री लक्ष्मीकांत महापात्र (दे०) के उपन्यास 'कणामामुँ' (दे०) का महत्वपूर्ण पात्र है। शिशु-चपल-मन, निःस्वार्थ व्यक्तित्व, उदार-करुण हृदय, वीरता-पूर्ण देशभक्ति, उच्छल भाव-राशि, सूक्ष्म चिंतना—इन्हीं उपकरणों से यह निर्मित है। इसके मन में न गर्व है, और न आहें, न मोह है और न अनासक्ति ही। ग्रामीण परिवेश की उन्मुक्तता एवं अनगढ़पन एवं उद्दंड सरलता इसके व्यक्तित्व में अंतर्निहित है। यह जगत्-मामा है। यह वृद्ध हैं या जवान, कौन जाने? सदावहार रहना ही इसकी विशेषता है। यह अनेक विद्याओं में पारंगत है—संगीत, थियेटर, जात्रा, सर्कस, कसरत आदि। केवल पढ़ने-लिखने के साथ इसका कभी कोई संबंध नहीं रहा। इसके शरीर में असीम बल है, और मन में अद्भुत साहस। यह 'किणा' से 'कणा' (काना) कैसे बना, लेखक इसका वर्णन करता हुआ कहता है—'प्राणी में प्राकृतिक नियमानुसार बंदर के पूँछ गिराकर मनुष्य बनने के समान 'किणा मामूँ' ने मात्रा काटकर 'इवोल्यूशन' की सीढ़ियाँ ही पार की हैं।' इस कानेपन के कारण ही यह विवाह नहीं कर पाता। इसके पितृकुल में कोई न था। बासु पटनायक ने इसे रखा था। यह बासु पटनायक के बहनोई के मामा का साला लगता है।

कणामामुँ अपने जीवन-काल में ही किंवदंती बन जाता है। इसके बारे में अनेक कहानियाँ प्रचलित हो जाती हैं। यह परदुःखकातर है, बहुकर्मी है। प्रधान की पुत्री को यह आत्महत्या से बचाता है तथा अपने शिष्य अभिराम से उसका विवाह करा देता है। एकबार अभिराम की भानजी को भी जलते हुए घर से बचाने में स्वयं भी बुरी तरह झुलस जाता है। मुमूर्ष अवस्था में भी राष्ट्र के प्रति उत्सर्जित हो जाने का उपदेश यह देता है। स्वयं भी देश के लिए मरने-मारने को सदा प्रस्तुत रहता है। अखाड़ा-घर खोलकर ऐसे स्वस्थ-पुष्ट युवा-वर्ग का निर्माण करना चाहता है, जो देश के लिए जिए, देश के लिए मरे। देशद्रोही मुंशी जी को भरपूर तमाचा जड़ता है पर पुलिस इसे कभी नहीं पकड़ पाती। बुरी तरह जला होने पर यदि पकड़ भी ले जाती है, तो तनिक अच्छा होने पर यह फ़रार हो जाता है। गाँव का युवक-वर्ग सबसे अधिक इसी से भयभीत रहता है—यद्यपि वह इसके आंतरिक स्नेह का अधिकारी होता है। अपनी कुरूपता के कारण समाज के हर क्षेत्र में उपेक्षित एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपमानित होता हुआ भी यह व्यक्ति निराश या कुंठित नहीं है। इसी निर्मम, अनुदार, संकीर्ण समाज पर ही यह अपने स्नेह की वर्षा करता रहता है। उपन्यास के असमाप्त होने के कारण इसके चरित्र की अंतिम परिणति हम जान नहीं पाते हैं, किंतु फिर भी जो कुछ प्रत्यक्ष है, वह अनुपम है, अद्भुत है।

कणँक्कळ इरुंपोरै *(त० पा०)*

चेर-सम्राट कणँक्कळ इरुंपोरै सूर्यनारायण शास्त्री (दे०)-कृत ऐतिहासिक नाटक 'मानविजयम्' (दे०) का नायक है। इसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने 'मान' को प्राणों से भी बढ़कर माना है और मानहानि होने पर प्राणों को त्याग देता है। इसके द्वारा रचित एक पद 'पुरनानूरू' (दे०) में है। उसमें यह कहता है कि 'हमारे सभी वंशजों ने वीरों की तरह प्राण त्यागे हैं। स्वाभाविक रूप से मृत्यु को प्राप्त होने पर, अपाहिज होने पर भी उसे अस्त्र से काट कर ही गाड़ा जाता है।'

कण्णकि *(त० पा०)*

कण्णकि तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) की नायिका है। यह कावेरिप्पूंपट्टिनम् के मानायकन् नामक व्यापारी की पुत्री और कोवलन् नामक वणिक-पुत्र की पत्नी है। कण्णकि आदर्श पत्नी है। इसका पति कोवलन् वेश्या माधवी के आकर्षण में पड़कर अपना सर्वस्व खोकर इसके पास लौटकर आ जाता है। यह अतीत की सभी बातों को भुलाकर सहर्ष उसका स्वागत करती है। अपने आभूषणादि देकर उसकी सहायता के लिए तत्पर होती है। दैववशात् दोनों मदुरै पहुँचते हैं और एक ग्वालिन के घर ठहर जाते हैं। इस बीच पांड्य रानी का नूपुर चोरी हो जाता है। कण्णकि के नूपुर सहित बाजार में भटकता हुआ कोवलन् पांड्य राजा के सिपाहियों द्वारा पकड़ लिया जाता है। राजा उसे अपराधी जानकर उसका वध करवा देता है। ग्वाल-बस्ती में अपशकुन होते हैं। निरपराध कोवलन् के वध का समाचार पाकर क्रुद्ध कण्णकि पांड्य राजा के दरबार में पहुँचती है। प्रबल प्रमाणों के आधार पर वह कोवलन् को निरपराध सिद्ध करती है और राजा के निर्णय को अन्यायपूर्ण घोषित करती है। अपनी भूल का ज्ञान होने पर पांड्य राजा और उसकी पत्नी प्राण त्याग देते हैं। सती कण्णकि अपने शाप से संपूर्ण मदुरै नगरी को भस्म कर देती है। जनता इसके सतीत्व की शक्ति से परिचित हो जाती है। कालांतर में चेर-सम्राट् शेंगुट्टुवन् हिमालय से लाये गये पत्थरों से कण्णकि की प्रतिमा का निर्माण करवाता है। पत्नी देवी के रूप में कण्णकि की उपासना होने लगती है। आज भी दक्षिण भारत एवं लंका में स्थान-स्थान पर पत्नी देवी के रूप में सती कण्णकि की उपासना होती है।

वर्तमान काल में कण्णकि के चरित्र को लेकर अनेक काव्य, नाटक, निबंध आदि रचे जा चुके हैं। इनमें सर्वप्रसिद्ध है भारतीदासन् (दे०)-कृत महाकाव्य 'कण्णकिपुरट्शि'। इसमें कवि ने 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) की कथा को अपने क्रांतिकारी नूतन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है; साथ ही कण्णकि के चरित्र को उभारा है। विभिन्न साहित्यिक कृतियों में कण्णकि के चरित्र के माध्यम से आदर्श पत्नी (पत्नी देवी) के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

कण्णदासन् *(त० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्म रामनादपुरम ज़िले के शिरुकूडलपट्टि में हुआ। कण्णदासन् तमिल साहित्य-जगत में मूलतः कवि के रूप में विख्यात हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—ईषत्तु राणी (कहानी-संग्रह), आयिरम् दीवु अंगयर्कण्णी (उपन्यास), कण्णदासन् कविदैहळ् (कविता-संग्रह), तैपावै, मांकणी (कथा-काव्य), कवितांजलि (काव्य-रूपक), वनवासम् (संस्मरणात्मक निबंध) आदि। कण्णदासन् ने 'कण्णदासन्' नामक मासिक और 'तेन्रल्' नामक साप्ताहिक पत्रिका का संपादन किया। राजनीति में इनकी विशेष रुचि है। अपने 'कडिदम्' नामक राजनीतिक दैनिक पत्र में ये अपने राजनीति-विषयक विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं। तमिलनाडु के 'स्वमर्यादा आंदोलन' से इनका संबंध रहा है। कण्णदासन् तमिल के सजग, सशक्त साहित्यकारों में से हैं।

कण्णन्, प० *(त० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्म सेलम् ज़िले में स्थित जलकंठपुरम् में हुआ था। सन् 1930 ई० से इनका संबंध 'स्वयमर्यादै इलक्कम्' (सेल्फ़रेस्पेक्ट मूवमेंट) से है। अल्पायु से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनय, संगीत और कविता-रचना में इनकी रुचि थी। कण्णन् मूलतः अपने नाटकों—ऐतिहासिक नाटकों—के लिए प्रसिद्ध हैं। ये कुशल नाटककार होने के साथ-साथ कुशल अभिनेता और कुशल निर्देशक भी हैं। इसी से तमिलनाडु की संगीत नाटक अकादमी ने इन्हें 'नाडह कलैमामणि' की उपाधि दी थी। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं—वीर बाली, पाण्डिय मकुडम् और नंदिवर्मन्। चलचित्र के रूप में प्रदर्शित इनके नाटक हैं—जमींदार पास वलै, भोजन (राजा भोज) आदि। कण्णन् बाल-साहित्य की रचना करने वालों में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों की निंदा की है। इनके नाटकों और कुछ कहानियों में यथार्थवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। कण्णन् पर मार्क्सवाद का प्रभाव भी है। कण्णन् मूलतः नाटककार हैं। ये आजकल संगीत और नाटक के प्रचार-प्रसार से संबद्ध एक संस्था 'वळ्ळुवर कलैयहम्' के स्वत्वधारी और निर्देशक हैं।

कण्णन् पाट्टु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1917 ई०]

कण्णन्पाट्टु भारतियार (सुब्रह्मण्य-भारती दे०) की प्रसिद्ध कृतियों में से है। इसमें उनकी 23 कविताएँ संगृहीत हैं। इन कविताओं में भारती ने भक्त कवियों के समान इष्टदेव कन्हैया (कण्णन्) की महिमा गाई है। भक्त भगवान से नाना प्रकार के संबंधों की कल्पना करता है; ठीक इसी प्रकार भारती ने भी 'कण्णन्' को माता, पिता, गुरु, मित्र, स्वामी, सेवक, बालक, प्रेमी, प्रेमिका आदि रूपों में देखा है। 'कण्णन्पाट्टु' शीर्षक से संगृहीत 23 कविताओं में भारती ने आदर्श माता, पिता, गुरु, मित्र, प्रेमी, प्रेमिका आदि के रूपों को अंकित किया है। भक्त भगवान से जिन संबंधों की स्थापना करता है उनमें सर्वप्राचीन एवं लोकप्रिय संबंध है प्रेमी-प्रेमिका का संबंध। भक्त और भगवान के इस प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति करते हुए भारती ने पराभक्ति का वर्णन न कर लौकिक प्रेम का ही वर्णन किया है। 'कण्णम्मा एन कुषदै' कविता के माध्यम से पाठकों में भक्ति-भावना जगाने का सफल प्रयास किया गया है। कण्णन्-संबंधी ये कविताएँ अत्यंत सरस हैं। उनमें संगीतात्मकता है। विभिन्न कविताओं में शृंगार, अद्भुत, भयानक, रौद्र, करुण, आदि रसों की अभिव्यंजना हुई है। इन कविताओं में अनेक सुंदर शब्द-चित्र हैं। इनमें से कुछ कविताएँ 'नोंडि चिंदु' नामक साधारण शैली में रचित हैं। कुछ कविताएँ 'आशिरियप्पा' छंद में रचित हैं। 'कण्णन् पाट्टु' में महाकवि भारती की प्रखर कल्पना-शक्ति और भक्ति-भावना का सम्मिलन दीख पड़ता है। इन कविताओं में पाठकों को हठात् आकृष्ट करने की शक्ति है।

कण्णुनीर्त्तुळ्ळि *(मल० कृ०)*

'कण्णुनीर्त्तुळ्ळि' (आँसू की बूँद) के रचयिता श्री नालप्पाट्टु नारायण मेनन (दे०) मलयाळम के प्रमुख स्वच्छंतावादी कवि थे। अँग्रेज़ी उपन्यासों के सफल अनुवादक के रूप में भी इनको अपार यश प्राप्त था। इन्होंने अँग्रेज़ी-साहित्य की इन विशेष प्रवृत्तियों से यशस्वी मलयाळम कवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) को परिचित कराया था। वळ्ळत्तोळ् के सत्संग से इन्हें काव्य-सृजन का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

कण्णुनीर्त्तुळ्ळि श्री मेनन के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित व्यथापूर्ण कथा की छंदोमय अभिव्यक्ति है। प्रसवकाल में अपनी बाल-सखी और प्राणप्रिय पत्नी के निधन-जन्य भीषण एकांत तथा चिरंतन विरह-व्यथा की काव्याभिव्यक्ति इस कृति में हुई है। माया-मोह को छुड़ाने वाली दार्शनिकता कवि का दिल हल्का नहीं कर पा रही थी। इस बोझ को उतारने के लिए कवि ने अपने मन के उद्गार कविता के रूप में सुनाये हैं। उचित ही था कि इस रचना का नाम 'आँसू की बूँद' रखा गया।

दुःखावेग से कवि-हृदय में बिना किसी क्रम या अंकुश के जो विचार उठते हैं, वे ही काव्य में ढल गये हैं। इस शोकगीत की विशेषताएँ हैं: अनुभूति एवं पीड़ा की तीव्रता तथा मौलिक अभिव्यंजना। गहरी दार्शनिकता की व्यापक पृष्ठभूमि इसे गंभीर बनाती है। भावों के योग्य तत्सम प्रौढ़ भाषा काव्य का महत्व बढ़ाती है। एक-एक पद्य एक-एक स्वतंत्र छंद है—आँसू की बूँद का मोती है, मानो प्रत्येक छंद में एक-एक भाव-रत्न निहित है। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि प्रसाद (दे०) जी के छायावादी शोकगीत 'आँसू' (दे०) से इस काव्य की तुलना कुछ-कुछ की जा सकती है।

कण् तिरक्कुमा *(त० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

विंदन (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यासों में परिगणित। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण है। उपन्यासकार के मत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समाज में सभी अवसरवादी और स्वार्थी हैं। समाज में पर-उपदेश-कुशल व्यक्तियों की संख्या अधिक है। जो उनका विरोध करते हैं उन्हें वे बड़ी चातुरी से अपने पक्ष में कर लेते हैं। उपन्यासकार प्रश्न करता है क्या लोगों की आँखें खुलेंगी ? (कण् तिरक्कुमा ?)। गांधी जी के सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए लेखक इस बात पर बल देता है कि यदि समाज में सभी दूसरों को उपदेश न देकर अपने आपको सुधारने का यत्न करें तो सारा समाज अपने आप सुधर जाएगा।

इस उपन्यास में डायरी-शैली और पत्र-शैली का प्रयोग किया गया है। इसे तमिल के प्रभावशाली सामाजिक उपन्यासों में परिगणित किया जाता है।

कण्व *(सं० पा०)*

कण्व किसी की कल्पना नहीं अपितु वास्तविक व्यक्ति थे। 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) में कालिदास (दे०) ने इनका चित्रण कुलपति के रूप में किया है। हिमालय की तराई में मालिनी नदी के तट पर इनका आश्रम था जो वर्तमान रानीखेत के आसपास का प्रदेश है। सहशिक्षा इनके आश्रम की एक विशेषता थी।

ऋषि कन्व आबाल ब्रह्मचारी थे पर जीवन के सभी पहलुओं से पूर्ण रूप से अभिज्ञ थे। कालिदास के संकेतों के अनुसार वे त्रिकालज्ञ थे। शकुंतला (दे०) के प्रति उनका विशेष स्नेह उसके गुणों के कारण था। उसके ये धर्मपिता थे तथा उसकी विदाई पर उन्हें किसी भी पिता से कम कष्ट नहीं हुआ। उनके आश्रम का वातावरण सौम्य एवं सहृदयतापूर्ण था। व्यक्तित्व के विकास के लिए वहाँ समुचित अवसर था। कण्व एक मनीषी थे। राजा भी उनके तेज से डरता था और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना कर्तव्य समझता था। कालिदास ने इन्हें त्रिकालज्ञ महर्षि के रूप में चित्रित किया है।

कण्हपा (कृष्णपाद) *(अप० ले०)*

चौरासी सिद्धों में कण्हपा या कृष्णपाद का भी प्रमुख स्थान है। कर्णाटक देश में एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण कण्हपा को कर्ण पा और श्याम शरीर होने के कारण कण्ह पा या कृष्ण पा कहते हैं। विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार ये जुलाहे थे। कवित्व और विद्या की दृष्टि से चौरासी सिद्धों में ये सबसे बड़े सिद्ध माने जाते थे। इनके अनेक शिष्य थे। इनके दर्शन पर लिखे छह और तंत्र पर लिखे चौहत्तर ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। इनमें से 'काण्हपादगीतिका,' और 'दोहाकोश' (दे०) अपभ्रंश में लिखित हैं। इनके गुरु जालंधरपाद थे। जालंधरपाद और कृष्णपाद की शैव सिद्धों में भी गणना की जाती है। इससे प्रतीत होता है कि सिद्धों में इनकी पहले प्रतिष्ठा थी।

इन्होंने आगम, वेद, पुराण और पंडितों की निंदा की है। मन को निश्चल कर सहज मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है। यह मार्ग कठिन है इसलिए मार्ग-दर्शन के लिए गुरु की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

क़तआ *(उर्दू० पारि०)*

'क़तआ' का शाब्दिक अर्थ है टुकड़ा। साहित्यिक अर्थों में 'क़तआ' मुक्तक का पर्यायवाची है। यह विधा अपने आप में सार्थक होती है। प्रबंध-काव्य की-सी विशदता एवं विस्तार इसमें नहीं होता।

'क़तआ' दो शेरों का भी हो सकता है और दो से अधिक का भी किंतु इसमें कम-से-कम दो शेर अवश्य होते हैं। क़तए में दूसरे, चौथे और छठे अर्थात् सम चरणों में तुक होती है। कुछ कवियों ने पहले और दूसरे चरणों में भी तुक रखने का समर्थन किया है : जैसे 'जिगर' मुरादाबादी का यह क़तआ 'रुबाई' जैसा है—

मस्त-ए-जाम-ए-शराब होना था,
बेख़ुद-ए-इज़तराब होना था।
तेरी आँखों का कुछ कसूर नहीं,
हाँ, मुझी को ख़राब होना था॥

'रुबाई' (दे०) और 'क़तआ' में सीधा और स्पष्ट अंतर यही है कि रुबाई में पहले और दूसरे चरणों में तुक अनिवार्य है जबकि क़तए में ऐसा बंधन नहीं है। फिर रुबाई में 24 छंद निश्चित है जबकि क़तए के लिए छंद का कोई बंधन नहीं।

क़तए के लिए विषय का भी कोई बंधन नहीं है। श्रृंगार, नीति, दर्शन, स्तुति, निंदा, आदि सभी क़तए के विषय बन सकते हैं। रुबाई की तरह क़तए का आख़िरी मिसरा (अंतिम चरण) सशक्त होना चाहिए ताकि पाठक पर प्रभाव छोड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कत्रे, सुमित्र मंगेश [जन्म—1906 ई०]

डा० कत्रे बहुत दिनों तक डकन कालिज, पूना के निदेशक रहे हैं। इनके मुख्य विषय भाषाविज्ञान तथा पाठविज्ञान हैं। इनके मुख्य ग्रंथ 'फार्मेशन आफ़ कोंकणी', 'सम प्रॉबलम्स आफ़ हिस्टॉरिकल लिग्विस्टिक्स इन इंडो-आर्यन', 'प्राकृत लैंग्वेजिज़ ऐंड देयर कांट्रीब्यूशन टु इंडियन कल्चर', 'इंट्रोडक्शन टु इंडियन टेक्स्चुअल क्रिटिसिज़्म', 'इंट्रोडक्शन टु मॉडर्न इंडियन लिंग्विस्टिक्स' तथा 'लैक्सिकोग्राफ़ी' आदि हैं। डा० कत्रे के निर्देशन में ही भारत सरकार की सहायता से संस्कृत के बृहद् ऐतिहासिक कोश का आरंभ हुआ था। इस कोश का कार्य चल रहा है। पूरा होने पर यह कोश विश्व में अपने ढंग का पहला कोश होगा। 1950 ई० के बाद भारत में आधुनिक भाषा-विज्ञान के प्रचार तथा प्रशिक्षण में डा० कत्रे का मुख्य योगदान रहा है।

कथा *(हिं० पारि०)*

भामह (दे०) के अनुसार कथा उस (गद्यबद्ध) रचना को कहते हैं जो संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश में लिखित हो, जिसमें अवसर के अनुकूल छंदों का प्रयोग हो, किंतु वक्त्र, अपरवक्त्र छंद का प्रयोग न हो, जिसमें उच्छ्वास न हों, जिसमें किसी अन्य के द्वारा नायक का चरित्र-वर्णन हो। (काव्यालंकार 1, 28-29)। इन्होंने कथा और आख्यायिका (दे०) में भेद माना है। किंतु दंडी (दे०) के अनुसार इन दोनों में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। कथा में किसी भी छंद का प्रयोग हो सकता है। नायक स्वयं भी अपने चरित्र का वर्णन कर सकता है। यदि यह माना जाये कि नायक अपना चरित्र-वर्णन करते समय अपना गुण-कथन भी करने लगेगा तो किसी सत्य घटना के वर्णन में स्वयं उसका गुण-कथन हो भी जाए तो इसमें कोई दोष नहीं है। स्वयं भामह ने आख्यायिका के लक्षण में यह कहा है कि इसमें नायक अपना वृत्तांत स्वयं कहता है, तो अपने मुख से गुण-कथन तो आख्यायिका में भी संभव है। इसी प्रकार कथा में सर्गबंध (महाकाव्य) (दे०) (तथा आख्यायिका) के ही समान कन्याहरण, युद्ध, विप्रलम्भ आदि का वर्णन भी हो सकता है। इसी प्रकार कथा में अन्य छंदों के समान वक्त्र-अपवक्त्र (अपरवक्त्र) छंद का भी प्रयोग हो सकता है। कथा में यदि कथानक का विभाजन लम्भ नाम से किया जाता है तो उच्छ्वास नाम से कर देने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अतः कथा और आख्यायिका दोनों की विशेषताओं को एक ही मानते हुए ऐसी रचना को दोनों नाम दे सकते हैं। (का० अ० 1. 24-30) विश्वनाथ (दे०) के अनुसार कथा में सरस विषय गद्य में कहा जाता है। इसमें कहीं-कहीं आर्या छंद और कहीं वक्त्र अथवा अपवक्त्र छंद होते हैं। प्रारंभ में पद्यमय नमस्कार और खल आदि का चरित्र निवद्ध रहता है—जैसे कादंबरी (दे०) (सा० द० 6.332-333)

कथा-ओ कहानी *(बँ० कृ०)*

यह 'कथा' तथा 'कहानी' नाम से सन् 1899 ई० में अलग-अलग प्रकाशित रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) के काव्य-संग्रह हैं। सन् 1905 में दोनों संग्रहों को मिलाकर 'कथा-ओ-कहानी' नाम से एक संग्रह प्रकाश में आया था।

देशात्मबोध को जाग्रत करने के लिए कवि ने भारतवर्ष के इतिहास एवं पुराण से ऐसी कथाओं का चयन किया है जो अपूर्व स्वार्थ-त्याग से युक्त थीं, जिनमें वीर-धर्म का पालन, शत्रु को क्षमा, सत्य एवं धर्म के लिए प्राण-दान आदि के आदर्श थे।

बौद्ध साहित्य, राजपूत, सिख एवं मरहठों के इतिहास से भी ऐसी कथाओं का चयन कर कवि ने इन्हें काव्य-रूप दिया था। महान आदर्शों की स्थापना एवं मनुष्यत्व का श्रेष्ठ प्रकाश इन कथाओं एवं कहानियों का लक्ष्य है। गाथा एवं गाथागीत जाति की ये कविताएँ हैं। अनेक कविताओं में कवि ने कल्पना का आश्रय लिया है। ये कविताएँ अत्यंत सुबोध भाषा में लिखी गई हैं।

कथागीता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1598-99 ई०]

लेखक भट्टदेव (दे०) (कविरत्न वैकुंठनाथ भट्टाचार्य)।

गुरु दामोदर की प्रेरणा से लेखक ने शूद्रों और स्त्रियों के प्रयोग के लिए गीता का गद्यानुवाद 'कथागीता' नाम से किया था। वस्तुतः यह अनुवाद नहीं है, मूलग्रंथ के भावों को आत्मसात् कर लेखक ने उन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें तर्कपूर्ण किंतु बोधगम्य शैली में गहन तत्त्वों का विवेचन है। कवि ने दार्शनिक तत्त्वों को समझाने के लिए जन-प्रचलित उपमाओं का प्रयोग किया है। संस्कृत-शब्दों के साथ कथ्य भाषा से भी शब्द लिए गए हैं। भाषा सरस, मधुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ओजस्वी है। श्री शंकरदेव (दे०) के ब्रजबुलि गद्य के पश्चात् शुद्ध असमीया गद्य का प्रयोग सर्वप्रथम भट्टदेव की पुस्तकों में हुआ है। आचार्य प्रफुल्ल राय ने कथागीता के गद्य को अमूल्य निधि बताते हुए कहा है कि सोलहवीं शताब्दी में इंगलैंड के हुकर और लेटिमर के पश्चात् विश्व में बस यही लेखक सामने आता है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी (दे०) ने भी भट्टदेव के गद्य की प्रशंसा की है।

कथानक *(सं०, हिं० पारि०)*

सभी प्रकार के कथात्मक साहित्य-रूपों की वस्तु का एक सुनिश्चित योजना एवं क्रम के अनुसार युक्तियुक्त कार्य-कारण-श्रृंखला में सुसंबद्ध नियोजन कथानक है। पाश्चात्य साहित्यालोचन में इसके लिए 'प्लॉट' शब्द का प्रयोग होता है। नाटक (दे०), उपन्यास (दे०), कहानी (दे०), और महाकाव्य (दे०) की कथा-वस्तु उसका अंतरंग तत्त्व होता है, किंतु कथानक वस्तुतः उसके शिल्प-तंत्र से संबद्ध अपेक्षाकृत एक बहिरंग तत्त्व है। यह वस्तु का कथन न होकर उसके मध्य की घटनाओं और स्थितियों का कलात्मक एवं कुशल विन्यास है। इसके विधान की कला का चरित्रांकन से प्रत्यक्ष संबंध है। घटनाओं के कुशल संयोजन द्वारा ही पात्रों की मनःस्थितियों और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन संभव है।

कथा-साहित्य में कथानक को साहित्यालोचन की प्राचीनतम परंपरा से लेकर मध्ययुग तक कृति का मेरुदंड होने का गौरव प्राप्त था। अरस्तू ने कथानक को त्रासदी (दे०) की आत्मा घोषित कर चरित्र-चित्रण को उसकी अपेक्षा गौण स्थान दिया था। उन्होंने घटना-विधान में सुनिश्चित प्रारंभ, मध्य और अंत से युक्त कार्य की एकता को सर्वाधिक महत्व दिया था। आगे नव्यशास्त्रवाद (दे०) के आचार्यों ने कार्य की एकता के साथ देश और काल की एकता को जोड़कर 'संकलन-त्रय' (दे०) की अवधारणा प्रस्तुत की। किंतु उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में कथानक के महत्व के प्रति शंकाएँ उठाई जाने लगीं और उसकी अपेक्षा चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति बढ़ी। आधुनिक कथाकारों और समालोचकों का एक वर्ग कथानक को अब सर्वथा नगण्य मानने लगा है।' 'शुद्ध उपन्यास' के आंदोलन के प्रवर्तक आंद्रे जीद तथा वर्जीनिया वुल्फ़, मातरलिंक और स्ट्रिंडबर्ग आदि आधुनिक लेखक भी कथानक को सर्वथा अवांछनीय मानते हैं। 1960 ई० के बाद से तो 'कथानक-विहीन' कथा-साहित्य का प्रचार बहुत बढ़ गया है। अब तो बिना कथानक के ही किसी विशेष संवेग, मनःस्थिति, भाव (दे०), यहाँ तक कि अरूप संवेदनाओं को ही कथा-साहित्य में विश्रृंखलित रूप में व्यक्त करना काफ़ी मान लिया जाता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के अधुनातन कथा-साहित्य में भी अब यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगी है। 'मुक्त-चेतना-प्रवाह' (दे० चेतना-प्रवाह) तथा प्रकृतवादी (दे० प्रकृतवाद) चित्रण-प्रणालियों ने इसमें सहयोग दिया है किंतु सामान्य पाठक के स्तर पर सुनिश्चित मूर्त घटना-विधान अब भी आकर्षण की वस्तु बना हुआ है।

कथासरित्सागर *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शताब्दी]

'कथासरित्सागर' सोमदेव द्वारा रचित प्रसिद्ध लोककथा-संग्रह है। सोमदेव क्षेमेंद्र (दे०) के समकालीन तथा काश्मीर-नरेश अनंत के आश्रित थे। इसका रचना-काल 1037 ई० है।

यह कथा-संग्रह गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' (दे०) का संस्कृत रूपांतर है। विश्व-कथा-साहित्य में यह विशालतम संग्रह है तथा कथा की सुव्यवस्थित योजना के कारण बृहत्कथा के अन्य संस्कृत रूपांतरों की अपेक्षा इसका महत्व अधिक है।

इसमें चौबीस हज़ार श्लोक हैं। यह पूरा ग्रंथ 18 खंडों और 24 उपखंडों में विभक्त है। इसमें मूर्ख, धूर्त एवं शठ पात्रों की कहानियों के अतिरिक्त कुछ आश्चर्य-जनक घटनाओं पर आधृत कहानियाँ हैं।

'कथासरित्सागर' की शैली बहुत ही सुंदर प्रवाह-मयी तथा वस्तुप्रधान है। इसमें कथाकार अपने छोटे-छोटे शब्दों को अलंकृत करने में दत्तचित्त नहीं है, प्रत्युत कथानक को सुंदर ढंग से कहना ही उसका लक्ष्य प्रतीत होता है। इसमें बाह्य आडंबर की अपेक्षा मूलवस्तु की रक्षा का ही विशेष उद्योग है। कथा कहने का इसका ढंग बड़ा ही रोचक है। बीच-बीच में प्राकृतिक दृश्यों के सजीव एवं मनोरम चित्रण इसे और रमणीय बना देते हैं।

कथोपकथन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1969 ई०]

'कथोपकथन' अद्यतन गुजराती साहित्य के अग्रणी आलोचक श्री सुरेश जोशी (दे० जोशी) की उपन्यास तथा कहानी-विषयक समीक्षाओं का संग्रह है। लेखक ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती उपन्यास-साहित्य एवं तद्विषयक समीक्षा की भी समीक्षा की है। उपन्यास तथा उससे संबंधित अधुनातन पश्चिमी विवेचना से अवगत लेखक गुजराती में उपन्यास-साहित्य की प्रगति पर संतोष व्यक्त करता हुआ कहता है कि गुजराती में उत्कृष्ट औपन्यासिक साहित्य का प्रणयन हुआ है। किंतु यहीं वह गुजराती उपन्यास-साहित्य की मानक कही जाने वाली कृति 'सरस्वतीचंद्र' (दे०) के औपन्यासिक रूप पर प्रश्नचिह्न लगा देता है। अब तक इसे सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहने की जो भावना रही है उस संबंध में लेखक का स्पष्ट मंतव्य है कि अब तक आलोचकों के पास उपन्यास की आलोचना का कोई निश्चित मापदंड नहीं था।

कथोपकथन *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1801 ई०]

विलियम केरी बँगला भाषा-चर्चा के इतिहास में विदेशी भारत-प्रेमियों के पुरोधा हैं। 'कथोपकथन' ग्रंथ उनकी उल्लेखनीय सृष्टि है। यह पुस्तक 'डायलॉग' या 'कॉलोक्वीइज़' के नाम से भी प्रसिद्ध है। केरी ने बँगला में इस ग्रंथ को नाम दिया था—'कथोपकथन'। बंगाली-रचित प्रथम मुद्रित गद्य-ग्रंथ रामरामबसु (दे०) के 'प्रतापादित्य-चरित्र' से यह पुस्तक एक महीने पहले प्रकाशित हुई थी। इस ग्रंथ में बंगालियों के दैनंदिन जीवन की विचित्रता का परिचय दिया गया है। इसमें संलापमय चलित भाषा का प्रयोग किया गया है। बँगला मुहावरे तथा प्रवचन के प्रयोग में भी इस ग्रंथ ने विशिष्टता प्राप्त की है। इस ग्रंथ में उस युग की सामाजिक एवं व्यावहारिक रीति-नीति का स्वाभाविक चित्रण है। सिफ़ारिश, औरतों की लड़ाई, विवाह के मामले में नाइयों का काम आदि विचित्र विषयों में रचनाकार का असाधारण नैपुण्य प्रकट हुआ है। प्राचीन बँगला गद्य के इतिहास में 'कथोपकथन' विशेष उल्लेखनीय ग्रंथ है।

कदमकलि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1913 ई०]

इस संग्रह में कवि लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) की रोमांटिक कविताएँ उच्च स्तर की हैं। पुराने लोक-गीतों के आधार पर लिखे प्रेमगीत इसमें संगृहीत हैं। 'धनबर रतनी' इस संग्रह की एक लोकप्रिय रचना है। 'प्रेम' और 'प्रियतम' शृंगारिक रचनाएँ हैं। कवि ने कृपा-वर बरुआ नाम से अनेक व्यंग-कविताएँ लिखी थीं, ये भी इस पुस्तक में समाविष्ट हैं। हास्य-कविताओं में कवि को विशेष सफलता नहीं मिली, किंतु प्रेम और देशभक्ति की रचनाएँ उच्च कोटि की हैं। कविताओं में दुःख और निराशा का वर्णन नहीं मिलेगा। असमीया की रोमांटिक कविताओं में इस काव्य-संग्रह का विशेष स्थान है।

कदमराव और पदम *(उर्दू० कृ०)*

'कदमराव और पदम' दकन के प्रसिद्ध शायर 'निज़ामी' की एक मसनवी (दे०) है जो सुलतान अलाउद्दीन बहमनी के शासन-काल में लिखी गई। इसकी भाषा प्राचीनतम तथा प्रारंभिक दकनी उर्दू है। नियमानुसार इस मसनवी में भी सर्वप्रथम ईश-स्तुति, तत्पश्चात् शासक (अलाउद्दीन बहमनी की) प्रशस्ति और तब कथा-वर्णन है। इस मसनवी में अरबी-फ़ारसी की अपेक्षा हिंदी शब्दों का प्रयोग अधिक है किंतु भाषा प्राचीन होने के कारण कुछ जटिल है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि निज़ामी अपने युग का श्रेष्ठ कला-कुशल कवि था।

कदिरै वेर पिळ्ळै, बा० *(त० ले०)* [जन्म—1844, मृत्यु—1907 ई०]

श्रीलंका के 'याल्पाण' नाम से विख्यात (तमिल) प्रदेश में इनका जन्म हुआ था। ये शैव-संप्रदाय के अनुयायी 'वेलाल' (भूस्वामी) जाति के थे। इन्होंने संस्कृत तथा तमिल का अच्छा अध्ययन किया था। 'अवधान' नामक विद्या (एक साथ आठ-आठ कार्य करने की विद्या) में ये निपुण थे। इनके ग्रंथों 'शैवचंद्रिका', 'शैव-सिद्धांत-संग्रह', 'सुब्रह्मण्यपराक्रम', 'नैषध-व्याख्या' आदि प्रसिद्ध हैं। 'याल्पाण अकारादि' नामक शब्दकोश का निर्माण इन्होंने ही किया था।

कनकदास *(क० ले०)* [समय— सोलहवीं शती ई०]

कनकदास के जीवन एवं समय के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। कहा जाता है कि ये विजयनगर-सम्राट् कृष्णदेवराय के गुरु व्यासतीर्थ के शिष्य थे। इस आधार पर अनुमान लगाया गया है कि ये 1550 ई० के लगभग विद्यमान रहे होंगे। ये उत्तर कर्णाटक के धारवाड़ ज़िले के बाड़ नामक गाँव में एक गड़रिए के कुल में पैदा हुए थे। कहा जाता है कि ये दंडनायक थे। किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध के कारण इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। ये 'कागिनेले' नामक ग्राम के 'आदिकेशव' के भक्त थे। विरक्त होने पर ये अपना सर्वस्व ग़रीबों में लुटाकर सद्‌गुरु की खोज में विजयनगर जाकर व्यासतीर्थ के शिष्य बन गए। कुछ लोग इन्हें श्रीवैष्णव मानते हैं जबकि कुछ अन्य विद्वान इन्हें माध्वाचार्य का अनुयायी कहते हैं। पर वास्तव में ये एक सारसंग्रही हरिहराद्वैती थे।

कनकदासजी ने सैंकड़ों गेय पदों की रचना की है। इन पदों के अतिरिक्त इन्होंने कई प्रबंधकाव्य भी रचे हैं। 'हरिभक्तिसार' हरिभक्ति-प्रतिपादक 110 षट्पदी छंदों का संग्रह है। 'रामध्यानचरित्रे' (दे०) 'नलचरित्रे' (दे०), 'मोहनतरंगिणि' (दे०) इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'नृसिंहस्तव' भी इनकी एक अन्य कृति मानी जाती है। इन रचनाओं में 'रामध्यानचरित्रे' एक कल्पित कथा है जिसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि ईश्वर दीनबंधु और भक्तवत्सल है। कथा इस प्रकार है—'रागी' (एक प्रकार का अनाज जो सरसों जैसा होता है और जिसका प्रयोग ग़रीब लोग ही अधिक करते हैं) तथा धान के बीच झगड़ा होता है कि उनमें कौन बड़ा है। वे अपनी-अपनी महिमा का बखान करते हैं और अंत में निर्णय के लिए श्रीराम के पास जाते हैं। रामचंद्र जी उन दोनों को एक भंडार में रख देते हैं। छह महीने बाद देखा जाता है तो धान सड़ जाता है और रागी ठीक रहता है। खुश होकर राम उसे अपना नाम राघव→राघी→रागी दे देते हैं।

'नलचरित्रे' (दे०) नलदमयंती की विख्यात कहानी है। प्रेमाख्यान होने पर भी उसमें भक्ति का महत्व प्रतिपादित है। राज्यभ्रष्ट दंपति के कष्टकंटकों तथा उनके चरित्र की उदात्तता का इसमें मार्मिक चित्रण है। कवि ने मूलकथा में कहीं-कहीं यथोचित परिवर्तन भी किये हैं। यह षट्पदी (दे०) छंद का एक सफल प्रबंध-काव्य है।

'मोहन तरंगिणि' (दे०) आकार तथा गुण में 'नलचरित्रे' से भी बड़ा है। महाभारत तथा भागवत में निरूपित कामदहन, उषा-अनिरुद्ध-प्रणय तथा कृष्ण-बाणासुर-युद्ध आदि के बाद हरिहर-समानता के प्रतिपादन के साथ इसकी कथा समाप्त होती है। यह सांगत्य (दे०) छंद में है। संवादशैली में लिखित इस काव्य में भारतीय कथानक-रूढ़ियों की भरमार है। कवि ने इसकी कथा को 'कृष्णकथा' कहा है जिस पर कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि इसमें विजयनगर सम्राट् कृष्णदेवराय की कथा अन्योक्ति-क्रम में कही गयी है। राजनीतिक ध्वनि तथा समकालीन जीवन के चित्रण में इसे अद्भुत सफलता मिली है। इसकी शैली अत्यंत सरस और प्रांजल है। पौराणिक कथा के ब्याज से समकालीन जीवन का चित्रण कर भक्ति का संदेश देने में यह कृति सफल रही है।

कनकदास की 'भक्तितरंगिणि' कीर्तन या गेय-पदों में उमड़कर बही है। ये पहले भक्त हैं, पीछे कवि। इनकी भक्ति संकीर्ण नहीं है। यहाँ आत्मसमर्पण की प्रधानता है। कृष्ण तथा गोपिकाओं के बारे में इन्होंने बीसियों गीत रचे हैं जो अपनी नादमाधुरी तथा वर्णन-कौशल के कारण जनता के कंठहार हैं।

कनकदास ने कूटकाव्य जैसे कुछ पद भी रचे हैं जो 'मुंडिगे' कहलाते हैं। 'उलटबासियों' की भाँति ये विरोधमूलक अर्थ देने वाले कूटकाव्य हैं। इनकी भाषा जनभाषा के अधिक निकट है। संस्कृत तथा कन्नड़ शब्दों का मणिकांचन योग इनके प्रबंधकाव्यों की भाषा में है। महाकवि कनकदास कर्णाटक संस्कृति के रत्नदीपों में से हैं।

कनकलता (उ० कृ०)

'कनकलता' नंदकिशोर बळ (दे०) का सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास है। सामाजिक परंपराओं में जकड़े हुए व्यक्ति की असहायता एवं करुण अंत की यह कहानी है। उमा एवं राजेंद्र के जीवन की बर्बादी हमारी सामाजिक व्यवस्था पर एक प्रश्नवाचक चिह्न है। सामाजिक सुधार के नेता भी समय आने पर किस प्रकार पीछे हट जाते हैं, सामाजिक विरोध का सामना करने का साहस अपने में नहीं जुटा पाते, धनंजय के आचरण से यह स्पष्ट हो जाता है। ऐसे दुर्बलमन नेताओं से भला कोई भी बड़ा कार्य कैसे संपन्न हो सकता है? विचार एवं क्रिया की एकता के बिना कुसंस्कार दूर करने का अभियान सफल नहीं हो सकता। राजेंद्र एवं धनंजय के चरित्रों द्वारा लेखक ने यथार्थ क्रांतिकारी एवं कृत्रिम सुधारक का पर्दाफ़ाश किया है।

हीरापुर के ज़मींदार ब्रजधर हरिचंदन के चार पुत्र एवं एक कन्या है। कनिष्ठपुत्र राजेंद्र बी० ए० का विद्यार्थी है। बेटी कनकलता सुंदर होने के साथ गुणवती एवं सुशिक्षिता भी है।

मोतीझर के ज़मींदार इंद्रजित के पुत्र धनंजय वकील होते हुए भी देश-सेवा को प्रधानता देते हैं। कनकलता का विवाह धनंजय से होता है। धनंजय की बहन उमा बालविधवा सुंदरी युवती है। राजेंद्र उसके साथ विवाह का प्रस्ताव धनंजय के समक्ष रखते हैं। किंतु धनं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय को ऐसा क्रांतिकारी समाज-विरोधी क़दम उठाने में हिचक होती है। वे राजेंद्र से कुछ दिन और प्रतीक्षा करने को कहते हैं। इसी बीच उमा की मृत्यु हो जाती है; राजेंद्र संन्यासी हो जाते हैं।

प्रसंगानुकूल लेखक ने राजेंद्र के द्वारा रूढ़ि, परंपरा, कुसंस्कार, दहेज़-प्रथा आदि पर प्रहार किया है।

कनक सेंदिनादन *(त० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म जाफना (लंका) में हुआ। सन् 1940 ई० से ये लंका के सरकारी महाविद्यालय में तमिल-प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ कहानी-रचना से किया। इनका प्रथम कहानी-संग्रह है—कडवुळ् तीर्पु। इनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—ईषत्तु कवि मलरहळ् (कविता-संग्रह), ईषत्तु इलक्किय वळर्च्चि (साहित्य का इतिहास), वेण्शंगु (कहानी-संग्रह) आदि। इन्होंने रेडियो के माध्यम से श्रीलंका के प्रसिद्ध तमिल कवियों और साहित्यकारों का परिचय प्रस्तुत किया है। इस पर इन्हें 'रसिकमणि' की उपाधि मिली। इन्होंने कुछ पाठ्य-पुस्तकों की रचना भी की है। बाल-साहित्य के क्षेत्र में इनका योगदान उल्लेखनीय है। इनकी कुछ कहानियाँ अँग्रेज़ी, रूसी आदि भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। कनक सेंदिनादन साहित्य एवं समालोचना की विभिन्न संस्थाओं से संबद्ध हैं। ये लंका के तमिल आलोचकों में सर्वप्रमुख हैं।

कन्नड कैपिडि *(क० कृ०)*

यह मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित कन्नड भाषा तथा साहित्य की एक लघु पुस्तिका है। इसके दो संपुट हैं। प्रथम संपुट में प्राचीन कन्नड का व्याकरण, प्राचीन कन्नड वैयाकरणों के अनुसार, आधुनिक कन्नड में दिया गया है। द्वितीय भाग में कन्नड पिंगल का निरूपण है। इसमें संस्कृत के वर्णवृत्तों एवं मात्रावृत्तों तथा कन्नड के अपने 'अंश गण' छंद की चर्चा है। पहली बार यह सिद्ध किया गया है कि कन्नड का छंद न तो मात्रा गण है, न वर्णवृत्त बल्कि वह 'अंश गण' है अर्थात् उसमें प्रत्येक अक्षर की मात्रा नियत नहीं है। इसके तीसरे भाग में अलंकारों की चर्चा, संस्कृत के विविध संप्रदाय, काव्य-विभाग, स्थायी, संचारी, रस आदि तथा रीति, शैया, पाक, काव्यदोष, गुण, कवि-समय आदि इस प्रकार काव्य की सर्वांगीण विवेचना है। उदाहरण प्राचीन कन्नड के ग्रंथों से दिए गये हैं। चौथे भाग में कन्नड भाषा का वैज्ञानिक इतिहास है। कन्नड की वर्णमाला की चर्चा करते हुए यह दिखाया गया है कि महाप्राण कन्नड की अपनी ध्वनियाँ नहीं हैं, शब्द-प्रकरण के अंतर्गत, तद्भव, तत्सम तथा देश्य का विवेचन है। सर्वनाम एवं विभक्तियों का वैज्ञानिक विवेचन है। क्रिया की चर्चा करते हुए यह दिखाया गया है कि कन्नड में वास्तव में क्रिया है ही नहीं; वर्तमान काल भी नहीं है। अंत में अव्ययों का सम्यक् विवेचन है। कन्नड भाषा का अत्यंत प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक विवेचन इसमें मिलता है। इसके द्वितीय संपुट में कन्नड साहित्य का इतिहास है जिसके लेखक हैं कन्नड के विख्यात कवि प्रो० बी० एम० श्रीकंठय्या (दे०)। इसमें केवल कन्नड साहित्य के आदि-काल का विवेचन है। इसमें साहित्य के इतिहास से संबंधित कई मौलिक उद्भावनाएँ हैं।

कन्नड-ग्रंथ-संपादने *(क० कृ०)*

यह डा० डी० एल० नरसिंहाचार्य (दे०) की पाठानुसंधान-विषयक शास्त्रीय कृति है। प्रो० नरसिंहाचार्य कन्नड के मूर्धन्य विद्वानों में से थे। वे कन्नड के 'जंगम-कोश' कहे जाते थे। प्राचीन कन्नड साहित्य के तलस्पर्शी अध्ययन, पाठसंशोधन, अनुसंधान आदि में उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था। उक्त ग्रंथ उनकी अर्धशताब्दी की सारस्वत तपस्या का फल है। कन्नड पाठालोचन की इस पुस्तक में बारह परिच्छेद हैं। प्रथम में पाठानुसंधान का इतिहास है। 'लेखनसामग्री' नामक द्वितीय अध्याय में लेख्यवस्तुओं जैसे भूर्जपत्र, ताड़पत्र, काग़ज़ आदि की चर्चा है। तीसरे में लिपिकार तथा उनके आदर्श का परिचय है। चौथे में पांडुलिपियों के स्वरूप तथा वर्गीकरण का विवेचन है। पाठांतरों का संकलन कैसा हो, क्षेपक, पाठभेद आदि की चर्चा आगे के प्रकरणों में है। आगे पांडुलिपियों के बीच के पारस्परिक संबंध तथा उनकी पीढ़ियों आदि की अत्यंत सुंदर विवेचना है। पाठ-संस्करण नामक अध्याय में उसके प्रकारों का सोदाहरण परिचय दिया गया है। दुष्टपाठ, पाठग्रंथि आदि की सोदाहरण चर्चा भी है। दसवें अध्याय में ग्रंथ-संपादक को दृष्टि में रखकर कई सूचनाएँ दी गयी हैं। ग्यारहवें में मुद्रित ग्रंथों के संपादन की समस्याओं की चर्चा है। इन विषयों की चर्चा करते हुए साहित्यालोचन एवं पाठालोचन के बीच क्या संबंध है?—इसकी सरस विवेचना है। नरसिंहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार्य जी ने संस्कृत-कन्नड-अँग्रेज़ी आदि ग्रंथों से प्रभूत मात्रा में उदाहरण देते हुए इस ग्रंथ की रोचकता एवं महत्ता बढ़ाई है। उनके दिए उदाहरण अत्यंत सरस हैं। उनके द्वारा सुझाए गए पाठ सतर्क एवं सटीक हैं। ग्रंथ में पग-पग पर उनकी पैठ, परिश्रम एवं प्रगाढ़ ज्ञान का परिचय मिलता है। कन्नड में अपनी तरह का इतना सुंदर ग्रंथ एकमात्र यही है। नरसिंहाचार्य जी की भाषा में वैज्ञानिक विषय को भी रोचक एवं सरस बनाने की अद्भुत शक्ति है।

कन्नडदल्लिभावगीते (क० कृ०)

यह डा० प्रभुशंकर का शोध-प्रबंध है। इसमें गीति-काव्य (lyric) के उद्गम तथा विकास एवं कन्नड में उसके प्रसार का गवेषणात्मक निरूपण है। 33 अध्यायों वाले इस वृहत् ग्रंथमें गीतिकाव्य की व्याख्या, उसकी प्रगति तथा विकास की विस्तृत चर्चा है। उसके विविध प्रकार तथा उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद, उपनिषद्, तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि धार्मिक ग्रंथों में गीतिकाव्य के तत्त्वों को ढूँढकर उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। व्यक्ति-निष्ठता, गेयता, संक्षिप्तता एवं ध्वनिरम्यता को गीति-काव्य की प्रेरणा माना गया है; संस्कृत के स्तोत्र-साहित्य से गीति-तत्त्वों का उदाहरण देकर यह बताया गया है कि गीतिकाव्य हमारे लिए नया नहीं है। कन्नड के चंपूकाव्य में गीति-तत्त्व कितना है—इसकी सुंदर आलोचना है। जैन कवियों की कविताओं में विद्यमान गीति-तत्त्व का भी उल्लेख हैं। वचन यद्यपि गद्य में लिखे गए हैं तथापि उनमें भी गीतितत्त्व, भावतीव्रता, गेयता आदि विद्यमान है—इस तथ्य को सप्रभाव सिद्ध किया गया है। हरिदासों के गेयपद तो श्रेष्ठ गीतिकाव्य हैं ही। निजगुण-शिवयोगी (दे०), षड्क्षरी (दे०) आदि वीरशैव-गीतकारों के गेय पदों की सुंदर आलोचना है। लोकगीतों में गीति तत्त्व, एक बहुत ही सुंदर अध्याय है। इसके उपरांत आधुनिक कन्नड कविता में नवोदय की चर्चा करते हुए स्व० बी० एस० श्रीकंठय्याजी (दे०) के 'इंगलीष गीतेगळु' आदि ने जो नये तार हिलाए, उनकी चर्चा की गई है। नवोदयकालीन अन्य कवि कुवेंपु (दे०), बेंद्रे (दे०) आदि के गीतिकाव्यों की भी चर्चा है। प्रकृति गीत, प्रेम गीत, कौटुंबिक गीत, सामाजिक गीत, देश एवं भाषा-प्रेम के गीत, गण्य-व्यक्ति-गीत, दास्य गीत, तत्त्व-चिंतन, अध्यात्मगीत—इस प्रकार आधुनिक गीति-काव्यों के विषम-वैविध्यपूर्ण छंदों, विविधताओं आदि की चर्चा है। 'कन्नड की प्रयोगवादी कविता में गीतितत्त्व' बहुत ही उपादेय अध्याय है। इस प्रकार लेखक ने इस ग्रंथ में गीति-काव्य की सर्वांगीण विवेचना की है। उनकी शैली की मधुरिमा ने विषय-निरूपण में भी माधुर्य घोल दिया है। गीति-काव्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की निधि है। उसने हमारे साहित्य की गहराई एवं व्यापकता बढ़ाई है। इसके विश्लेषण एवं अनुशीलन में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

कन्नडभगवद्गीते (क०कृ०) [रचना-काल—1650 ई० के लगभग]

इसके रचयिता नागरस नामक ब्राह्मण कवि हैं जिनका समय 1650 ई० अनुमानित किया गया है। इनके जन्म-स्थान आदि के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ये भागवत संप्रदाय के स्मार्त थे। इन्होंने 'भगवद्गीता' का अनुवाद भामिनी-षट्पदी छंद में किया है। भगवद्गीता के मूल में जहाँ कुछ बातें स्पष्ट नहीं है वहाँ अनुवाद में शंकराद्वैत की बात जोड़ दी गयी है। नागरस का अनु-वाद बहुत ही संवेद्य है। भगवद्गीता का यही प्रथम कन्नड अनुवाद है। गीता के प्रत्येक श्लोक का सम्यक् मनन कर उसे स्वच्छ कन्नड के छंदों में ढालने का सफल प्रयास किया गया है। कुल मिलाकर इसे हम एक सफल ग्रंथ कह सकते हैं।

कन्नड़ भागवत (क० कृ०)

इस ग्रंथ के कवि के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। 'कविचरिते' के लेखक स्व० रा० नरसिंहाचार्य (दे०) जी के अनुसार इसके लेखक 'चाटुविट्ठलनाथ' नामक कवि हैं जो 1530 ई० के करीब विद्यमान थे। इन्होंने 'महाभारत' का भी एक भाग कन्नड में अनूदित किया था। किंतु श्री बेटगेरी कृष्ण शर्मा (दे०) जी का विचार है कि इस भागवत का लेखक कोई एक व्यक्ति नहीं है—नित्यात्मनाथ, विद्यानाथ, सदानंदयोगी, निर्वाणनाथ तथा चाटुविट्ठलनाथ नामक पाँच लोग इसके भिन्न-भिन्न भागों के प्रणेता है। इन सबको एकत्रित करने का श्रेय चाटु-विट्ठलनाथ को ही है। श्री बेटगेरीजी का कथन है कि ये सब संन्यासी थे और नाथ पंथ के अनुयायी थे। वर्तमान रूप में यह ग्रंथ भामिनी-षट्पदी नामक छंद में लिखा गया है। इसमें 12 हज़ार से भी अधिक छंद हैं, 280 संधियाँ या अध्याय हैं।

इसमें लेखक ने तुलसी (दे०) जैसी हरिहर-अभे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दता दिखाई है। यह विराट् ग्रंथ एक दृष्टि से हरिभक्ति-कोश है। कृष्णकथा-निरूपण में मूल भागवत का ही निष्ठा के साथ अनुगमन किया गया है। कवि का कथन है कि हरि-गुण-चरित के वर्णन में भाषा-भेद की बाधा नहीं है। प्रथम दो स्कंध पीठिका-रूप में हैं। तृतीय स्कंध से ठीक तरह से भागवत का आरंभ होता है। तृतीय से दशम तक ब्रह्मा का उदय, जय-विजय की कथा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, प्रियव्रत, जड़भरत, अजामिल, वृत्रासुर, प्रह्लाद, त्रिपुरासुर, गजेंद्र, समुद्र-मंथन, मोहिनी, वामन, मत्स्य आदि की कथाएँ हैं। नवम में अंबरीष, भगीरथ, राम, परशुराम आदि की कथाएँ हैं। दशम स्कंध में कृष्ण की कथा विस्तृत रूप में वर्णित है। ग्यारहवें स्कंध में कृष्ण के निर्वाण की कथा है। बारहवें सर्ग में भविष्यत् राजा का वर्णन है। इसका कवि समर्थ अनुवादक है। वह तुलसी की भाँति अत्यंत विनयी है। इसके अनुसार काव्य का फल काव्य ही है। व्यास और शुक इन दोनों को छोड़कर और किसी की स्तुति इसमें नहीं है। कवि ने अपने काव्य में मूल का अनुसरण करते समय कहीं-कहीं परिवर्धन व परिवर्धन भी किये हैं। भागवतों की कहानियों के निरूपण में तो कवि ने बहुत उत्साह दिखाया है। रास-क्रीड़ा, बाल-लीला आदि प्रसंगों का मार्मिक निरूपण है। कंस भी यहाँ वैर से कृष्ण का नामस्मरण अहर्निशि करने वाले भक्त के रूप में आया है। यह उसकी नूतन कल्पना है। कवि का काव्य प्रसाद-गुण-संपन्न है, अनावश्यक वर्णन-अलंकार आदि के लिए यहाँ स्थान नहीं है। भाषा कहावतों और मुहावरों से पुष्ट और प्रवाहमयी है।

K **कन्नड शासनगळु सांस्कृतिक अध्ययन** (क० कृ०)

यह डा० चिदानंद मूर्ति का शोध-प्रबंध है। इसमें उन्होंने 450 ई० से 1150 ई० तक उपलब्ध कन्नड के अभिलेखों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। कर्नाटक में शिला-लेखों की प्रभूत संपदा है। उन्हें खोज निकालकर प्रकाशित करने का श्रेय फ़्लीट, राइस, रा० नरसिंहाचार्य, एम० एच० कृष्ण, आर० ए० पंचमुखी आदि विद्वानों को है। ये शिलालेख इतिहास की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही, इनका साहित्यिक सौंदर्य भी कम नहीं है। डा० मूर्ति ने अपने कठोर अध्यवसाय से उनका गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें चौदह अध्याय हैं। प्रथम तीन में शासनों के महत्व, विषय आदि की चर्चा है। चौथे में कर्णाटक में जैन धर्म के आगमन तथा विकास पर शिलालेखों के आधार पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। पाँचवें में बौद्ध धर्म का इतिहास है। छठे तथा सातवें में शैव धर्म तथा वैष्णव धर्म का इतिहास है। आठवें में एक सामाजिक संस्था के रूप में देवमंदिरों के महत्व तथा योगदान पर प्रकाश डाला गया है। नवें में शिक्षा का इतिहास है। दसवें में युद्ध-कला पर बहुत ही सुंदर सामग्री प्रस्तुत की गई है। ग्यारहवें में कर्णाटक की कुछ वीर-प्रथाओं, यथा सती आदि का परिचय है। बारहवें में राज्य-व्यवस्था का परिचय है। तेरहवें में आर्थिक व्यवस्था, कर आदि की चर्चा है; चौदहवें में सामा-जिक स्थिति—स्त्री-शिक्षा, उनके स्थान-मान आदि—की चर्चा है। कला पर एक अनुबंध है। डा० मूर्ति एक आदर्श अनुसंधित्सु हैं। उनकी दृष्टि कहीं भी पूर्वाग्रह-दूषित नहीं है और शैली सहज तथा संतुलित है।

K **कन्नड-साहित्य-चरित्रे** (क० कृ०)

इसके लेखक हैं डा० रं० श्री० मुगली (दे०)। इसे साहित्य अकादमी-पुरस्कार भी मिल चुका है। यह कन्नड साहित्य का सर्वप्रथम आलोचनात्मक इतिहास है। इसके पहले कन्नड में रा० नरसिंहाचार्य (दे०) जी का 'कविचरिते' तथा बी० एम० श्रीकंठय्या (दे०) जी का 'कन्नडसाहित्य चरित्रे' (आदिकाल)—केवल ये दो ग्रंथ उपलब्ध थे। रा० नरसिंहाचार्य जी के ग्रंथ में लेखकों की आलोचना प्रधान विषय नहीं है। लेखकों के देशकाल आदि की छानबीन कर उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य था। यहाँ उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मुगली जी ने रा० नरसिंहाचार्य जी के काल-विभाजन को स्वीकार नहीं किया। रा० नरसिंहा-चार्यजी ने धर्म के आधार पर जैनयुग, वीरशैवयुग, ब्राह्मण युग—इस प्रकार वर्गीकरण किया था। मुगली जी ने इसे स्वीकार नहीं किया और युगप्रवर्तक कवियों के आधार पर वर्गीकरण किया है। इसके अनुसार कन्नड साहित्य का वर्गीकरण यों हुआ—पंपयुग (दे०), बसवयुग (दे०), कुमारव्यास युग (दे०)। मुगली ने इसमें केवल प्राचीन एवं मध्यकालीन कन्नड साहित्य का इतिहास लिखा है, आधुनिक युग का नहीं। साहित्य अकादमी की ओर से उन्होंने जो कन्नड साहित्य का इतिहास लिखा है, उसमें आधुनिक युग की चर्चा भी है। उन्होंने अपने विवेचन में उपलब्ध सामग्री को अद्यतन बनाया है। निर्णय लेने में वे बहुत ही तटस्थ एवं संयत रहे हैं। कन्नड साहित्य की प्राचीनता आदि की चर्चा करते समय उन्होंने निस्संग दृष्टि से काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है। 'कन्नड-साहित्य-चरित्रे' एक युगांतरकारी कृति है।

कन्निक्कोय्त्तु *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-काल—1949 ई०]

यह वैलोप्पिळ्ळि श्रीधर मेनन (दे०) का प्रथम कविता-संग्रह है। इसमें माम्पषम्, 'सह्यन्टे मकन्', 'कन्निक्कोय्त्तु', 'पश्चिम समुद्रम्', 'आसाम पणिक्कार' जैसी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ संगृहीत हैं। 'माम्पषम्' में पुत्र की मृत्यु से तप्त मातृहृदय का और 'सह्यन्टे मकन्' में अपने अतीत की स्मृति से उन्मत्त गजराज की मानसिक स्थिति का चित्रण है। 'कन्निक्कोय्त्तु' में मनुष्य के सृष्टि-परिणाम के वैज्ञानिक बोध से संबद्ध दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण है।

मलयाळम में कवित्रय (दे० कवित्रयम्) के उत्कर्ष-काल के बाद जहाँ जी० शंकर कुरुप्प (दे०) की प्रतीकवादी दार्शनिकता और चङ्ङंपुषा (दे०) की अति-भावुकता मलयाळम-कविता की दो प्रवृत्तियाँ थीं, वहाँ वैलोप्पिळ्ळ के इस संग्रह की कविताओं ने वैज्ञानिक दृष्टि-कोण और मानवीय महत्व का स्वर मुखरित किया। उनकी नवीन धारा का साहित्य-जगत में भव्य स्वागत हुआ और इस कविता-संग्रह को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

कन्याशुल्कमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1897 ई०]

इसके लेखक का नाम गुरजाडा अप्पाराव (दे०) है। तेलुगु साहित्य के आधुनिक-युग-प्रवर्तक कंदुकूरि वीरे-शलिंगमु पंतुलु (दे०) की तरह ये भी सुधारक थे। इन्होंने समाज-सुधार के लिए सशक्त उपकरणों के रूप में अपनी रचनाओं का निर्माण किया था। 'कन्याशुल्कमु' इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर लिखा गया एक सामाजिक नाटक है। इसके द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना में अप्पाराव ने लिखा था कि समाज-सुधार-संबंधी आंदोलन को शक्तिसंपन्न बनाना तथा तेलुगु भाषा की नाटकरचनोपयोगिता को प्रमाणित करना—ये दोनों इस नाटक की रचना में प्रमुख प्रेरणाएँ थीं। विवशता के कारण बूढ़े दूल्हों के साथ छोटी-सी लड़कियों की शादी करने की सामाजिक दुःस्थिति तथा उसके परिणामों का मार्मिक चित्रण ही इस नाटक का प्रधान लक्ष्य है। दहेज़ देकर जैसे कन्या के लिए वर को लाते हैं वैसे ही पैसे देकर वर के लिए कन्या को लाने की प्रथा भी थी। आर्थिक दुःस्थिति तथा अन्य कारणों से विवश होकर कहीं-कहीं माँ-बाप पैसे लेकर अपनी कन्या को किसी बूढ़े को दे देते थे। यही 'कन्याशुल्क' कहा जाता है। कन्याशुल्क लेने वालों की तथा उक्त प्रकार के पति-पत्नी के दांपत्य जीवन की विकट परिस्थितियों का संपूर्ण तथा स्पष्ट चित्रण इस नाटक में पाया जाता है। इस निंद्य परंपरा के कारण स्त्री के जीवन में भयानक आघात होते हैं। बुच्चम्मा तथा मीनाक्षी नामक पात्रों के चित्रण के द्वारा लेखक ने इसका मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस नाटक के पात्र सजीव हैं, संभाषण सहज तथा मार्मिक हैं और शैली व्यावहारिक तथा सरस है। अँग्रेज़ी शब्दों का भी इसमें प्रचुर प्रयोग किया गया है और यह मिश्रण शैली एक प्रकार के चमत्कार का कारण बन गया है। इसमें हास्यरस का सुंदर समावेश है। सुधारात्मक दृष्टिकोण की प्रमुखता के कारण कहीं-कहीं संभाषण दीर्घ हो गए हैं। नाटक-रचना के लिए इस प्रकार के दीर्घ भाषण अनुकूल नहीं हैं। पर इनके द्वारा पात्रों के स्वरूप-स्वभाव आदि का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में अधिक सहायता मिली है। इस नाटक के दो पात्र—गिरीशमु (दे०) तथा मधुरवाणी (दे०)—तेलुगु साहित्य के अंतर्गत अमर रहेंगे। सरस व्यावहारिक शैली का एक आदर्श प्रस्तुत करने में भी उक्त नाटक की सफलता कुछ कम महत्व की नहीं है। तेलुगु के मौलिक सामाजिक नाटकों में 'कन्याशुल्कमु' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी *(गु० ले०)* [समय—*1887-1971 ई०*]

भड़ौंच के भार्गव ब्राह्मण कन्हैयालाल माणिक-लाल मुंशी के जीवन के प्रथम चरण में इनके आप्तजनों को यह कल्पना भी नहीं थी कि ये एक दिन भारत के महान् सांस्कृतिक एवं राजनीतिक नेता, समर्थ संविधान-शास्त्री, सफल शिक्षा-शास्त्री एवं गुजराती भाषा के मूर्द्धन्य साहित्यकार बनेंगे। अपनी असाधारण प्रतिभा और कार्य-दक्षता से इन्होंने सभी क्षेत्रों में यशोपार्जन किया। भड़ौंच से मैट्रिक किया, बड़ौदा से बी० ए० और बंबई से एल-एल० बी० की परीक्षा पास कर ये भूलाभाई देसाई के अधीन एडवोकेट के रूप में कार्य सीखने लगे। मुंशीजी को अपने जीवन में श्री अरविंद, महात्मा गांधी, सर चिमन-लाल सेतलवाड़, भूलाभाई देसाई, सरदार पटेल, प्रभृति महानुभावों के निकट संपर्क में आकर जीवन-निर्माण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आध्यात्मिक ग्रंथों ने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें प्रभावित किया था। भारतीय विद्या भवन मुंशीजी का अमर स्मारक है।

क० मा० मुंशी की साहित्य-साधना का श्रीगणेश बंबई में सन् 1915 में हुआ जबकि उन्होंने 'घनश्याम' उपनाम से पहला उपन्यास 'वेरनी वसूलात' गुजराती साप्ताहिक पत्र 'वीसमी सदी' में क्रमशः छपवाना शुरू किया। तत्पश्चात् इन्होंने 'पाटणनी प्रभुता' (दे०), 'गुजरातनो नाथ', 'राजाधिराज', 'जय सोमनाथ', पृथ्वीवल्लभ', 'भगवान परशुराम' इत्यादि कई श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की। यद्यपि मुंशीजी ने व्यंग्य-विनोदपूर्ण शैली में 'समालोचना' में कई आख्यायिकाएँ भी प्रकाशित कराईं; पर उनकी प्रतिभा का चरम उत्कर्ष उनके उपन्यासों में ही देखा जाता है। उनकी उपन्यास-रचना-शक्ति गुजराती में अतुलनीय है।

कन्हैयालाल मुंशी ने पौराणिक एवं सामाजिक नाटकों का प्रणयन भी किया है जिनका रूप-विधान, वस्तु-विधान अत्यंत कलात्मक तथा रसात्मक है। किसी भी वस्तु या व्यक्ति के अंतर्लोक में प्रवेश कर उसकी सूक्ष्मतम विशिष्टताओं को उजागर करने में नाटककार मुंशी सिद्धहस्त हैं। 'काकानी शशी', 'ब्रह्मचर्याश्रम', 'पीड़ाग्रस्त प्रोफेसर', 'छीए तेज ठीक' आदि सामाजिक नाटकों में हास-उपहास द्वारा तथा 'तर्पण', 'अविभक्त आत्मा', 'लोपामुद्रा', 'पुत्रसमोवड़ी' इत्यादि पौराणिक नाटकों में प्रौढ़-गम्भीर शैली द्वारा इन्होंने मानव के 'आभ्यंतर जीवन' को रूपायित किया है। आत्मकथा, इतिहास, समालोचना, विविध-विषय निबंध आदि की सृष्टि में भी क० मा० मुंशी सफल हुए हैं। वे वस्तुतः भारतीय संस्कृति के उद्गाता थे।

कपालकुंडला *(बँ० कृ० पा०)*

'कपालकुंडला'—उपन्यास एवं चरित्र दोनों ही—उपन्यासकार बंकिमचंद्र पर कवि बंकिमचंद्र की आधिपत्य-प्रतिष्ठा के स्मारक हैं। बंकिमचंद्र ने एक विशेष तत्त्व की प्रतिष्ठा की कामना से इस चरित्र की कल्पना की थी। शकुंतला एवं मिरांडा के चरित्रों के शिल्पकौशल ने उन्हें मुग्ध किया था और इसी मुग्धता की अपरूप अभिव्यक्ति हुई है कपालकुंडला उपन्यास एवं कपालकुंडला चरित्र में। शकुंतला आश्रम-जीवन में प्रतिपालित हुई थी और मिरांडा पितृ-हृदय की सरसता से स्निग्ध थी। वस्तुतः शकुंतला प्रकृति की गोद में ही पली थी तथा दैव-शक्ति के नियंत्रण में थी। स्वस्थ, स्वाभाविक मानव-समाज से कपालकुंडला अपरिचित है। कापालिक मानवसमाज का व्यतिक्रम है। कपालकुंडला का जगत प्रकृति-जगत है, जिस जगत में अरण्य की मर्मर तान एवं समुद्र का कल गर्जन नित्य-स्पंदित है। यह स्पंद 'कपालकुंडला' का आंतर-स्पंदन भी है।

नवकुमार से विवाह होने के उपरांत प्रकृति के अरण्य से कपालकुंडला जीवन के अरण्य में उपस्थित होती है। इस उन्मूलित तरु की आत्मकहानी को ही बंकिमबाबू ने 'कपालकुंडला' उपन्यास में प्रकट किया है। प्रकृतिपालिता कपालकुंडला स्वभावतः संसार से अनभिज्ञ है। उसके चरित्र की स्नेहपरायणता, परदुःखकातरता, विषयभोगराहित्य एवं भक्ति-भाव प्रकृति के प्राणरस से धन्य है। इसीलिए नवकुमार की स्त्री होने पर भी कपालकुंडला बंधनहीन है, लौकिक अनुशासन के स्पर्श से वह मुक्त है। 'ब्राह्मण-वेशधारी' के साथ मिलने में उसके मन में कोई बाधा नहीं है और फिर मति बिबि कीप्रार्थना पर सहज ही स्वामी को छोड़ने का संकल्प कर लेती है।

कपालकुंडला का चरित्र बंकिम बाबू की एक विशिष्ट चरित्र-सृष्टि है। समुद्र की तटभूमि से उठाकर जिसे उन्होंने जीवन के मरूद्यान में प्रतिष्ठित किया था उस मूर्ति की स्वाभाविक परिणति दिखाने के लिए लेखक ने अंत में उसे गंगा की गोद में समर्पित कर दिया है।

कपिल *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—400 ई०; रचना—सांख्यसूत्र]

यों तो, 'श्वेताश्वतर' उपनिषद् के अंतर्गत कपिल के नाम का उल्लेख हुआ है, परंतु इससे इन्हें बुद्ध (दे०) का पूर्ववर्ती नहीं माना जा सकता। 'श्वेताश्वतर' उत्तरकाल की रचना मानी गई है। 'श्रीमद्भागवत्' (दे०) में कपिल को 24 अवतारों में बतलाया गया है। कपिल के पिता का नाम कर्दमऋषि तथा माता का नाम देवहुति बतलाया जाता है।

औपनिषद दर्शन की तरह कपिल का दर्शन आत्मवाद का पोषक नहीं है। चेतन पुरुष एवं जड़ प्रकृति—ये दो सांख्य दर्शन के प्रमुख तत्त्व हैं। प्रकृति का दूसरा नाम सांख्य दर्शन में प्रधान है। जगत की समस्त वस्तुएँ नित्य प्रकृति के विकार-रूप हैं। इसीलिए सांख्यदर्शन कार्य-कारणवाद की विचारधारा के संबंध में परिणामवाद या विकारवाद का समर्थन करता है। इस सिद्धांत के अनुसार कार्य की सत्ता कारण से पृथक् नहीं है। यद्यपि कार्य और कारण पृथक् सत्ता धारण करते हैं, परंतु कारण में कार्य की सत्ता अव्यक्त रूप से वर्तमान रहती है। जीव के स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कपिल पुरुषबहुत्ववाद सिद्धांत के समर्थक थे। कपिल का विचार है कि पुरुष के सामीप्य मात्र से ही प्रकृति में क्रिया उत्पन्न होती है। इसी क्रिया के द्वारा विश्व की वस्तुओं की उत्पत्ति तथा विनाश होता है।

प्रकृति एवं पुरुष के संबंध की योजना, कारण में कार्य की सत्ता का निर्धारण एवं पुरुषबहुत्ववाद सिद्धांत की स्थापना कपिल के दर्शन की मुख्य देन है।

कपिलर *(त० ले०)* [समय—ईसा-पूर्व दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती के बीच]

कपिलर की गणना संघकालीन प्रसिद्ध कवियों में होती है। इनका जन्म तिरुवादवूर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी बुद्धि अत्यंत तीक्ष्ण थी। समयानुसार कपिलर ने तमिल साहित्य और व्याकरण का अध्ययन किया और तृतीय संघ के सदस्य बन गये थे। संघ के सदस्य के रूप में इनका परिचय अव्वैयार, भरणर जैसे महान् कवियों से हुआ। इन्होंने अपने समय के कुछ राजाओं और आश्रयदाताओं का यशोगान कर जीविकोपार्जन किया। इन राजाओं में प्रसिद्ध हैं पारि। इनके पद संघकालीन 'एट्टुत्तोगै' (अष्टपद्यसंग्रह), 'पत्तुप्पाट्टु' (दस दीर्घ कविताएँ) और 'पदिनेण् कीष् कणक्कु' (अठारह गौण रचनाएँ) में संगृहीत हैं। इन पदों के अध्ययन से इनकी अपार कवित्व-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। ये पर्याप्त समय तक विद्याप्रेमी सम्राट् पारि के दरबार में रहे थे। तदुपरांत ये कलनाडु पहुँचे। कलनाडु के राजा वेलपेगन ने अपनी पत्नी को त्याग दिया था। वह किसी वेश्या में अनुरक्त था। इनके पदों को सुनकर राजा को अपनी भूल मालुम हुई और उसने वेश्या को त्याग दिया। इन्होंने तिरुक्कोइलूर के राजा कारि के दरबार में भी कुछ समय व्यतीत किया था। कहा जाता है कि पारि की मृत्यु के उपरांत इन्होंने उसकी दो कन्याओं का विवाह तिरुक्कोइलूर के राजा के पुत्रों से करा दिया था और सतत उपवास द्वारा अपने प्राणों का अंत कर दिया था। कपिलर अपने समय के लोकप्रिय कवियों में से हैं। इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि नक्कीरर् (दे०) जैसे दर्पपूर्ण कवि ने भी इनकी विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति की प्रशंसा की है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने 'कुरिंजिपाट्टु' की रचना आर्य राजा वृहत्तन को तमिल संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराने के लिए की थी। यद्यपि इन्होंने अपने पदों में पाँचों भू-भागों का वर्णन किया है तथापि ये कुरिंजि (दे०) प्रदेश से संबंधित विवरण के लिए प्रसिद्ध हैं। संघकालीन कवियों में इन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

कपिली परीया साधु *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

नवकांत बरुवा (दे०) के इस उपन्यास में नदीतटवर्ती मानव के हास्य-क्रंदन का चित्रण है। नदी कवि-कल्पना की मनोरम भूमि है तो कभी वह अभिशाप भी बन जाती है। फिर भी मनुष्य उसका त्याग नहीं कर पाता। नदी और मनुष्य का संग्राम चिरंतन है। उपन्यास का मुख्य पात्र रूप ही है। जब वह अपने पिता धीरसिंह का श्राद्ध नहीं कर पाता तो कहानी चरमसीमा पर पहुँच जाती है। श्री हेम बरुवा (दे०) के शब्दों में यह 'तरल सौंदर्य का उपन्यास' है।

कपूर सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

पंजाबी निबंध-रचना के क्षेत्र में सरदार कपूर सिंह के प्रवेश से चिंतन-प्रधान गद्य की श्रीवृद्धि हुई। पंजाबी गद्य में चिंतन की कमी बड़ी तीव्रता से अनुभव की जा रही थी। उसी को दृष्टि में रखकर सरदार कपूर सिंह ने लिखना आरंभ किया। उनके निबंध पृथक्-पृथक् आयु-वर्ग और बौद्धिक स्तर के पाठकों को दृष्टि में रखकर लिखे गए हैं। कई निबंधों में तो कुछ सूचनाएँ मात्र होती हैं और कइयों में परंपरा-प्राप्त ज्ञान-सामग्री का एकत्रीकरण। भारतीय सभ्यता की उदात्तता और विशालता का प्रशंसापूर्ण आख्यान करके वे पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-भावना अभिव्यक्त करते हैं। उनकी व्याख्यात्मक गद्य-शैली में प्रायः भारीपन और थकावट की अनुभूति होती है। साहित्य-सिद्धांत, धर्म, इतिहास, भारतीय दर्शन आदि विषयों पर आपके विचार विद्वत्तापूर्ण और गांभीर्य से ओतप्रोत हैं।

'सप्तशृंग', 'पुंडरीक' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

कबच *(उ० पारि०)*

'कबच' का अर्थ है अभेद्य आवरण या 'ढाल'। दुर्भाग्य से बचने के लिए भगवद्भक्तिमूलक संगीत रचनाएँ 'कबच' के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'कवच' मंत्र या साधारण स्तोत्र से भिन्न है। इसका अपना स्वतंत्र स्वरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़िया-साहित्य में दो कबच-रचनाएँ मिलती हैं—अच्युतानंद दास (दे०)-कृत 'अभय कबच' तथा दीनकृष्ण दास (दे०)-कृत 'राधा कबच'।

कबर आरु कंकाल *(उ० कृ०)*

स्वातंत्र्योत्तरकालीन लेखक कुमार किशोर ने अपने इस ऐतिहासिकता पर आधारित काल्पनाप्रवण उड़िया-उपन्यास में इतिहास, कर्मवाद और आधुनिकता को एक साथ जोड़ा है।

कबि *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

रोमानी भावापन्न उपन्यास 'कवि' में ताराशंकर बन्द्योपाध्याय (दे०) ने बंगाल में ग्रामांचल के 'कविआलों' (ग्राम्य कवि—कविता ही जिनकी जीविका होती है) को लेकर इस उपन्यास की रचना की है। कविआल-संप्रदाय की जीवन-यात्रा के परिवेश में लेखक ने रोमांटिक प्रेम का चित्र उपस्थित किया है। निम्न श्रेणी का युवक निताइ एक कविआल है जिसकी कवित्व-शक्ति से आकर्षित होकर दो स्त्रियों ने उससे प्रेम किया है। इस प्रेम-वर्णन में लेखक ने नैतिक चिंतन-धारा की कोई परवाह नहीं की है। कवि निताइ किसी प्रकार के नीति-बोध या श्रेय-बोध से परिचालित नहीं है। उसके उन्मुक्त प्रेम के सम्मुख समाज-नीति का कोई मूल्य नहीं। निताइ के लिए कविता ही सबसे बड़ी चीज़ है और इन दोनों स्त्रियों ने अपने प्रेम के द्वारा उसकी कवित्व-शक्ति का ही विस्तार किया है। अपनी कवित्व-शक्ति के लिए उसे स्त्रियों के प्रेम की आवश्यकता होती है। इस तरह वह स्वतःस्फूर्त आवेग में बहता चलता है और यहाँ यदि कहीं समाज-नीति ने आकर अवरोध-सृष्टि की है तो लेखक ने समाज को ही दोषी ठहराया है। प्रेम की उच्छलता पर विहित यवनिकापात होता है—निताइ की दोनों ही प्रेमिकाओं की मृत्यु हो जाती है। परंतु कवि निताइ को अपना जीवन अर्थहीन या शून्य प्रतीत नहीं होता। इन स्त्रियों से उसे जो मिला है, उसी महती प्राप्ति के आनंद में वह नित्य-आनंदित है। उपन्यास में इस प्रकार निम्न श्रेणी के प्रतिनिधि के माध्यम से कवित्व-शक्ति-स्फुरण की कहानी का विस्तार हुआ है।

कबिकंकन *(बँ० ले०)*

दे० चक्रवर्ती, मुकुंदराम

कबिगान *(बँ० प्र०)*

सन् 1760 अर्थात् भारतचंद्र (दे०) के तिरोधान से लेकर आगामी एक सौ वर्ष तक बँगला साहित्य क्षेत्र में भारतचंद्र द्वारा प्रवर्तित निम्नरुचि की धारा के अनुसरण पर गेय तुकबंदी के एक ग्रामीण संस्करण का विशेष प्रचलन हुआ जिसे 'कबिगान' कहा जाता है। कवियों के दो दलों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर के माध्यम से पहले-पहल राधा-कृष्ण-विषयक प्रेम-गीतों की रचना के द्वारा ही कबिगान का सूत्रपात हुआ था। इस 'कबिगान' में उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में पहले गुरु एवं देवीवंदना, फिर 'सखी-संवाद' (श्रीकृष्ण के जीवन से युक्त घटनावली), उसके उपरांत 'विरह' (भद्ररुचि-सम्मत नरनारियों की प्रेम-कथा) एवं अंत में 'खेउड़' (प्रश्नोत्तर-मूलक शृंगार-रसाश्रित अश्लील गान) गाने की पद्धति थी।

उन्नीसवीं शती के पहले चरण में कविगान की विषयवस्तु एवं रूप दोनों में ही परिवर्तन हुआ। उस समय कबिगान का नया नामकरण हुआ 'दाँडाकबि' (खड़े होकर कविता करने वाले कवि अथवा प्रचलित पद्धति)। सभास्थल पर खड़े होकर पौराणिक, सामाजिक प्रणय-घटित अथवा सामयिक घटना को ले कर के सद्यः तुकबंदी करना ही दाँडाकबि की विशेषता थी। पहले 'मालसी' या भवानी-विषयक गान, फिर ब्रजलीला-विषयक सखी-संवाद एवं अंत में 'खेउड' गाया जाता था। यह खेउड़ ही कबिगान-श्रोताओं का श्रेष्ठ आकर्षण था जो उत्तर-प्रत्युत्तर से गुज़र कर गाली-गलौज तक पहुँच जाता था। अठारहवीं शती के बीच से उन्नीसवीं शती के मध्य भाग तक 'कवियोआलाँ' (कबिगान करने वाले) का स्वर्णयुग था जिनमें रामबसु, हरु ठाकुर, नरसिंह, निताइ, बैरागी, भोला मयरा, एंटनि फिरिंगी, यज्ञेश्वरी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें रामबसु ही सबसे अधिक शक्तिशाली थे। इन्होंने ही सभास्थल में खड़े होकर गाने के द्वारा प्रश्न एवं उत्तर देने की प्रथा का प्रवर्तन किया। वाक्चातुरी तथा शब्दालंकार के प्राणवान् प्रयोग इन कवियों की विशेषता थी।

कबिताबळी *(उ० कृ०)*

'कबिताबळी' की कविताएँ आधुनिक कविता की आद्य प्रतिनिधि हैं। आधुनिक शिक्षा के कारण जिस नूतन लोकरुचि का विकास हुआ, उसी का बाह्य प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधानाथ राय (दे०) और मधुसूदन राओ (दे०) की 'कबिताबळी' है। राधानाथ एवं मधुसूदन आधुनिक कविता के जनक, प्रवर्त्तक एवं प्रतिष्ठापक हैं। पुरातन एवं आधुनिक युग के संधिकाल में प्रकट होने का सौभाग्य प्राप्त करने के कारण ये दोनों पुरातन का संस्कार एवं आधुनिकता का प्रवर्त्तन करने को बाध्य हुए थे। पाश्चात्य साहित्य की भावधारा एवं कलाभिव्यक्ति सर्वप्रथम इनकी 'कबिताबळी' की कविताओं में प्रस्फुटित हुई थी तथा भविष्य की काव्यधारा को इन्होंने एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान की थी। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1876 ई० में दोनों के सहयोग से हुआ था। उस समय की सैकड़ों पाठ्य पुस्तकें आज हमारे सामने से लुप्त हो गई हैं, परन्तु पाठ्य पुस्तक होने पर भी 'कबिताबळी' अपनी साहित्यिक गंभीर उपलब्धियों के कारण आज भी महत्वपूर्ण बनी हुई है। इस पुस्तक की कविताएँ भाव और शैली की दृष्टि से सर्वथा नूतन, स्वतंत्र और मौलिक काव्यप्रतिभा की द्योतक हैं।

राधानाथ की 'बेणीसंहार' कविता पुरानी रीति पर लिखित होने पर भी प्रांजल भाषा, सुनियंत्रित यति आदि की दृष्टि से विशिष्ट है। 'अलेक्ज़ेंडर सेल कार्क' नामक अँग्रेज़ी कविता पर आधारित मधुसूदन की 'निर्बासितर विळाप' कविता को अपनी शब्दयोजना, ललित स्वर-झंकार और भावाभिव्यक्ति की स्वाभाविकता के कारण विशेष गौरव प्राप्त हैं। इसमें प्राचीन छंदों के आधार पर कुछ सरल छंदों के साथ-साथ, अँग्रेज़ी छंदों (जैसे 'आकाश-प्रति', 'एकांतर मित्र' और 'निशीथ चिंता' में)', 'स्पेंसीरियन स्टेंज़ा' का अनुसरण किया गया है। राधानाथ की 'भारतेश्वरी' कविता में तुकांत पदों का आग्रह मिलता है, फिर भी वह अँग्रेज़ी छंदों से प्रभावित है। मधुसूदन की कविता 'भारतीवंदना' का रूपगत तथा छंदगत वैचित्र्य उड़िया साहित्य में एक बिलकुल नयी चीज़ है।

'कबिताबळी' की कविताओं का भावपक्ष तो और भी महत्वपूर्ण है। श्रृंगारबहुल मध्ययुगीन उड़िया-साहित्य में कहीं-कहीं वीर रस की झलक मिल जाती है; किंतु लघु कविता में इसका सम्यक् विकास राधानाथ की 'वेणी संहार' एवं 'शिवाजिक उत्साहवाणी' कविताओं में दिखाई पड़ता है। मध्ययुगीन साहित्य में करुण रस श्रृंगार रस के आधीन था। किंतु 'निर्बासितर विळाप', 'सीता बनवास' में इसकी स्वतंत्र प्रतिष्ठा हुई है। 'जिबनचिंता' में ब्राह्म मत से परिपुष्ट भारतीय धार्मिक चिंता दिखाई पड़ती है। 'शरत् प्रभात' में ग्रामीण विषयवस्तु की प्रतिष्ठा है।

वस्तुतः यह आधुनिक उड़िया काव्यक्षेत्र का प्रथम और सार्थक अवदान है। इसका आधुनिक उड़िया-काव्य-साहित्य में वही स्थान है जो वर्ड्सवर्थ एवं कोलरिज की सम्मिलित कृति 'पेस्टोरल बैलड' का अँग्रेज़ी साहित्य में है।

कबित्त *(पं० पारि०)*

यह चार चरणों का पंजाबी छंद है और चारों चरणों की तुक मिलती है। प्रत्येक चरण चार भागों में विभक्त होता है। पहले तीन में प्रत्येक में आठ-आठ अक्षर और अंतिम में प्रायः सात और कभी-कभी आठ अक्षर होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक चरण 31-32 व्यंजनों का होता है। कवियों ने नाद-सौंदर्य के लिए इसके कई और नियम भी तय किए हैं। उदाहरण :

हाए रब्बा मेरिया तूँ शीशा ही बणाए दें दों।
मैंनूं मेरे यार दा मैं; होंदा किसे कार दा।
उत्थे ही खड़ो रहिंदा, कंध नाल लग के मैं।
जित्थे मैंनूं आप जानी, फड़ के खल्हार दा।
चढ़दा उमाह मैंनू, रीझ सारी लहि जांदी।
हुंदा जदों चाअ उहनूं, हार ते शिंगार दा।
सारी उमर इडदाना, महिंदी वाले हत्थ कदीं,
सड़ी होई हिक्क नूँ मैं, रज्ज रज्ज ठारदा।
(शरफ कवी)

कबींद्र परमेश्वर *(बँ० ले०)*

कबींद्र परमेश्वर का कोई परिचय नहीं मिलता। अनुमान है कि इनका नाम था परमेश्वर, उपाधि थी 'कबींद्र'। किसी के मत से इनका नाम श्रीकरनंदी था। गोपीनाथ शास्त्री के मतानुसार इनका नाम बाणीनाथ था और कबींद्र उपाधि थी। ये कूच-बिहार राज्य में मंत्री थे और मूलतः चटगाँव के निवासी थे।

'पांडब विजय' अथवा 'विजय पांडब' इनकी कृति है। हुसेनशाह के सेनापति लस्कर परागलखान ने चटगाँव-विजय कर इन्हें 'महाभारत' की कथा लिखने का आदेश दिया था।

'पांडव-विजय' 'महाभारत' की समस्त कथा का अनुवाद है। यह 'महाभारत' का प्राचीनतम अनुवाद है। अनुमान है कि इसका रचना-काल सोलहवीं शताब्दी का दूसरा या तीसरा दशक है। उत्तर बंग में इनका 'महाभारत' अत्यंत लोकप्रिय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर (*हिं० ले०*) [1398—1518 ई०]

कबीर का आविर्भाव ऐसे समय हुआ जब भारत में राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सुव्यवस्था न थी। 'कबीर-चरित्र-बोध' के अनुसार उनका जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार 1455 वि० (अर्थात् 1398 ई०) को हुआ, जो गणना से ठीक है। अनंतदास कृत 'श्री कबीर साहब की परिचई' के अनुसार वे काशी के जुलाहे, बघेल राजा वीरसिंह (दे०) के समकालीन तथा आचार्य रामानंद के शिष्य थे। उन्होंने एक मत से 96 वर्ष की और दूसरे से 120 वर्ष की आयु पाई। जनश्रुति है कि 1518 ई० में वे मगहर गये। मूर्ति-भंजक, कट्टर मुसलमान शाह सिकंदर लोदी ने उन्हें अनेक कष्ट दिए और उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाए थे।

'मसिकागद छूयो नहीं कलम गही नहिं हात'—इस उक्ति के आधार पर यह धारणा है कि कबीर निरक्षर थे। परंतु प्रश्न है कि उन्होंने वर्णक्रम से 'ज्ञान चौंतीसा' कैसे लिख दिया और यह कैसे कह दिया कि 'ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होइ'? उन्होंने देश-भ्रमण खूब किया था और उनका ज्ञान विस्तृत था। अतएव उनकी सधुक्कड़ी भाषा में पूर्वी जनपदी, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली का मिश्रण है। कभी-कभी वह उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, यमक आदि से अलंकृत भी है। रूपकों, प्रतीकों और उलटबाँसियों के कारण उनकी अभिव्यक्ति अत्यंत सशक्त है। उनके विचार सबदों और साखियों में व्यक्त हैं।

कबीर ने हिंदू-मुसलमान दोनों के बाह्याडंबरों की आलोचना की है। ऐसी धारणा है कि उन्होंने वेद, अवतार, मूर्तिपूजा का खंडन किया। किंतु 'कबीर बीजक' के विद्वान् टीकाकार श्री ब्रह्मलीन मुनि ने अंतःसाक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कबीर स्वयं अवतार थे; वेदादि तथा अवतारों में उनकी अनास्था न थी; वे ब्राह्मण-विरोधी न थे; और मूर्ति-पूजा के मितमूल्य को समझते थे किंतु अद्वैतवादी होने के कारण वे सगुण की अपेक्षा निर्गुण को अधिक महत्व देते थे। आडंबर की अपेक्षा वे आभ्यंतर भक्ति को अधिक श्रेयस्कर समझते थे। कबीर का ब्रह्म निर्गुण-सगुण से परे एक है, द्वितीय नहीं। जो कुछ दृश्यमान है वह माया और मिथ्या है। कामिनी और कांचन पथभ्रष्ट करते हैं। ब्रह्मोपासना योग द्वारा, विशेषकर भक्ति से, की जा सकती है। ब्रह्म को गुरु, राजा, स्वामी, पिता, पति किसी भी रूप में देखा जा सकता है। यदि परमात्मा पति है तो जीवात्मा पत्नी है। कबीर का रहस्यवाद उक्त प्रियतम और प्रेयसी के दाम्पत्य-प्रेम में निहित है। हिंदी-जगत में 'भागवत' (दे०) की मधुरा-भक्ति कबीर में अंकुरित होकर वैष्णव-साहित्य में पल्लवित हुई।

कबीर के संत-संप्रदाय में दादूदयाल (दे०) सुंदरदास (दे०), गरीबदास और चरणदास प्रसिद्ध हैं।

कबीर-बाणी (*उर्दू० कृ०*)

'कबीर बाणी' का संपादन उर्दू के प्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि अली सरदार जाफ़री (दे०) ने किया है। यह कृति हिंदुस्तानी बुक ट्रस्ट, बंबई से प्रकाशित हुई है। इसका प्रकाशन अगस्त, 1965 में हुआ।

इस पुस्तक में प्रारम्भ में कबीर की जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, निधन-काल तथा स्थान का उल्लेख है। प्रथम 65 पृष्ठों में विस्तृत भूमिका है; उसके पश्चात् 235 पृष्ठ तक कबीर के 128 पद अर्थ-सहित छापे गये हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि एक पृष्ठ पर उर्दू लिपि में तथा उसके सामने के पृष्ठ पर देवनागरी लिपि में छपाई की गई है। पुस्तक के अंतिम 70-72 पृष्ठों में टिप्पणियाँ हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य उर्दू के पाठकों को कबीर के हिंदी-काव्य का रसास्वादन कराना है।

कब्बिगर काव (*क० कृ०*)

यह कन्नड के जैनकवि आंडय्या (1225 ई०) का लिखा चंपूकाव्य है। आंडय्या कन्नड के क्रांतिकारी कवियों में से हैं। उन्होंने कन्नड में संस्कृत शब्द मिलाने के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इस काव्य में उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वे इसमें एक भी संस्कृत-शब्द का प्रयोग न करेंगे। किंतु संस्कृत शब्दों के बदले उन्होंने प्राकृत शब्दों को अपनाया। 'कब्बिगर काव' जिन-कथा नहीं है। ऊपरी तौर पर वह एक प्रेमाख्यान है। उसके आरंभ में कामदेव की स्तुति है। लोकजीवन के प्रेरक काव्य, उससे अतीत जिन-मुनि, उससे पराश्रित शिव—इन तीनों से युक्त यह एक ध्वनिकाव्य है। लौकिक और आगमिक इन दोनों को एक ही काव्य में कवि ने साधा है। शिव ने काम के परिवार के सदस्य चंद्रमा का हरण किया है। उसे वापस देने के लिए काम संधान करता है। वह शिवजी पर चढ़ाई करता है, उन्हें हराकर अर्द्धनारी बनाता है। शिव भी उसे शाप देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जिसके कारण उसे अज्ञातवास करना पड़ता है। किंतु यही काम शिव पर आक्रमण करने के लिए जाते समय राह में मिले एक श्रवण को सताने के बाद स्वयं उससे डर कर उसके चरणों में पड़ता है। यह कहानी कवि की अपनी है, कल्पित है। वैदिक एवं जैन-परंपरा की कई बातें यहाँ गुंफित हैं। यहाँ काम शिव को जीतने वाला है, किंतु जैन श्रमण के आगे वह मात खा जाता है। इस प्रकार श्रमण को शिव से भी बड़ा दिखाने का प्रयत्न किया गया है। चंद्रमा का अपहरण कलह का बीज हुआ—यह बात भारतीय साहित्य में ही नई एवं मनोहर है। यह सारी कथा कामदेव के प्रेमाख्यान से संगुंफित है। कामदेव की सेना, शस्त्रास्त्र, रण-प्रयाण आदि का अतीव मार्मिक वर्णन इसमें है। आंडय्या कदंबराजा कामदेव का आश्रित था। अतः उसने अपने आश्रयदाता की कहानी ही समासोक्ति के रूप में लिखी है। कवि बेंद्रे (दे०) का कहना है कि यह सारा काव्य एक रूपक है जिसमें काम है रति, श्रमण है विरक्ति, शिव है शक्ति। इस त्रिकूट का द्वंद्व ही इसका उद्देश्य है। काम की विजय ही काव्य-तत्त्व है, शिव की जीत ही सृष्टि-तत्त्व है और श्रमण की विरक्ति मुक्ति-तत्त्व है।

आंडय्या की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी भाषा-शैली। संस्कृत शब्दावली-परिहार के लिए उन्होंने कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा है, मरोड़ा है और नये-नये शब्द गढ़े हैं। उनकी 'देशी'-प्रचुर शैली कहीं-कहीं कृत्रिम लगने पर भी समष्टि-रूप में अत्यंत हृदयहारी है और उसका प्रभाव आगे चलकर अन्य कवियों पर भी पड़ा।

कमल *(गु० पा०)*

शिवकुमार जोशी (1916 ई०) रचित 'आपरूवे रानी नवलखधारे' उपन्यास की नायिका। गुजराती उपन्यास में यह प्रथम परप्रांतीय नायिका है जिसने गुजराती से विवाह किया है। उसका पति उसके विवाह की बात प्रकट करने के लिए तत्पर नहीं है तो वह पति-धर्म का पालन करते हुए जब तक उसका पति प्रकट रूप में उसे स्वीकार न करे तब तक उसके साथ रहने के लिए तैयार नहीं होती। अंत में पति को झुकना पड़ता है, पर उसी समय उसकी मृत्यु हो जाती है। वह आधुनिक बंगाली युवती है जो एक ओर समाज का विरोध करती है तो दूसरी ओर अपने पति की पलायनशीलता का। उसकी पति-प्रेम-भावना परंपरागत होते हुए भी वह अपना आत्मसम्मान बनाये रखती है और नारी-स्वातंत्र्य की भावना का ध्यान रखती है। अन्याय के सामने वह झुकने के लिए तैयार नहीं। इस दृष्टि से यह नारी-पात्र अपने वैशिष्ट्य की महिमा से मंडित है।

कमलकुमारी *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुपरिचित ऐतिहासिक उपन्यास 'गड आला पण सिंह गेला' की यह नायिका एक काल्पनिक पात्र है। उसकी सृष्टि आदर्श क्षत्राणी के रूप में की गयी है। काल्पनिक और आदर्श होते हुए भी उसमें उन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा की गयी है जो सामान्यतः मध्यकाल की राजपूत वीरांगनाओं में पाये जाते थे। वीर राजपूत, पतिव्रता नारी के समान वह भी पति की मृत्यु पर सती होना चाहती है पर उदयभान (दे०) की कामलिप्सा के कारण सिंहगढ़ में बंदी बनाकर रखी जाती है। उदयभान उसके साथ ज़बर्दस्ती निकाह पढ़ना चाहता है पर ऐन मौके पर ताना जी के आक्रमण के कारण यह नहीं हो पाता और अंत में कमलकुमारी सती हो जाती है।

कमलम्मा *(क० पा०)*

यह कन्नड-नाटककार कैलासम् (दे०) के 'अम्मावगंड' (माँ जी का पति) नामक नाटक के पात्रों में मुख्य है। कमलु और सरोजा सहपाठिनें हैं। सरोजा सुब्वण्णा से विवाह कर शालीन जीवन व्यतीत करने लगती है। 'लेडीज़ एसोसिएशन' की प्रेसिडेंट होकर स्त्रियों के उद्धार का बीड़ा उठाती है। पति के प्रति किंचित् भी आदर प्रदर्शित नहीं करती। इसके विपरीत कमलु बी० ए० पास करके नरसिंह की पत्नी और तीस वर्ष की ही आयु में सात बच्चों की माँ बनती है। इसका पति नरसिंहय्या सार्थक नामवाला है जो नर-रूप सिंह ही है। इसके हाथ में उसके परिजन पिस जाते हैं। परंतु इसकी कोमलता और सद्व्यवहार से वह बदल जाता है। वह सरोजा के साथ अपनी पत्नी की तुलना कर, और सरोजा अपने पति के साथ नरसिंहय्या की तुलना कर दोषपूर्ण मार्ग से विरत होते हैं। इसके द्वारा लेखक ने यह दिखाया है कि स्त्री कोमलता के बल पर पति को सन्मार्ग पर ला सकती है एवं पारिवारिक जीवन को सुखमय बना सकती है। इसके विषय में आलोचकों का कथन है कि 'यह कन्नड महिला-लोक की महारानी है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलांबाल चरित्तिरम(त० कृ०) [रचना-काल—1893 ई०]

तमिल के आरंभिक प्रसिद्ध उपन्यासों में परिगणित। रचयिता पी० आर० राजम अय्यर (1872 ई०—1898 ई०)। यह उपन्यास सर्वप्रथम सन् 1893 ई० में 'विवेक चिंतामणि' नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। सन् 1897 ई० में इसका पुस्तक-रूप में प्रकाशन हुआ।

उपन्यास की मूल कथा कल्याणी एवं श्रीनिवास नामक आदर्श दंपति के जीवन से संबद्ध है। किसी सती नारी के सतीत्व पर संदेह करने से उसके परिवार पर क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं—इसी का विस्तृत वर्णन इस उपन्यास में है। पात्रों का चरित्र-चित्रण इस उपन्यास की मूल विशेषताओं में से है। विभिन्न पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीव एवं प्रभावशाली बन पड़ा है। उपन्यास का सबसे प्रभावशाली पात्र है आडुशापट्टि अम्मैयप्प पिळ्ळै। यह उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के तमिल पंडितों एवं तमिल प्राध्यापकों का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास की शैली अत्यंत सरस, सरल एवं कवित्वमय है। इसमें तमिल-प्रेम और दार्शनिक ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। विभिन्न स्थलों पर गुरु-शिष्य-संबंध, चिदंबर-रहस्य, ज्ञान-प्राप्ति के आनंद की अनुभूति आदि का वर्णन है। यह तमिल में रचित दूसरा उपन्यास है। वर्तमान तमिल उपन्यासों का मूल रूप सर्वप्रथम इसी में दीख पड़ता है।

कमलाकांत (बँ० पा०)

बंकिमचंद्र (दे०) द्वारा रचित 'कमलाकांत का दफ़्तर' (कमलाकांतेर दफ़्तर) हमेशा रसिकचित्त को आकर्षित करता है, उस पर आघात करता है, उसे असमंजस में डालता है परंतु उसे विरक्ति नहीं होती क्योंकि कमलाकांत कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है, वह एक भावना का रससुंदर शाश्वत प्रतीक है। यह भावना हमारी राष्ट्रीय चिंतन-भावना की द्योतक है। आत्मानुसंधान ही कमलाकांत का मनोधर्म है एवं उसका जीवन-दर्शन है। यह जीवन-दर्शन जीवन को महाजीवन में रूपांतरित करता है। व्यंग्य-मुखर कमलाकांत के विकट शब्दबाण की तीक्ष्णता एवं तीव्रता मर्मभेदी है। अफ़ीम खाना उसके लिए आवरण-मात्र है जिसके नशे में की गई बातें सामान्य हास्य प्रतीत होने पर भी विद्रूप का ही भिन्न रूप हैं। मूढ़ता, नीचता, क्षुद्रता के विरुद्ध मर्मभेदी शाणित शब्द-बाण का अविराम क्षेपण केवल आत्मानुसंधान एवं जीवन से महाजीवन के परमराज्य में पहुँचने का अमोघ पथ-निर्देश है। मंदिर मनोमंदिर में, धर्म मानव-धर्म में परिणति प्राप्त कर धन्य हुए हैं। इसीलिए बंकिम का कमलाकांत क्रांतदर्शी ऋषि की तरह श्रद्धा एवं प्रेम से नित्य-अभिनंदित है।

'कमलाकांतेर दप्तर' (बँ० कृ०)

बंकिमचंद्र (दे०) की रचनाओं में हास्य-व्यंग्य के रंगीन चित्र कई स्थानों पर मिलते हैं परंतु इस प्रवृत्ति की सशक्त अभिव्यक्ति 'कमलाकांतेर दप्तर' में हुई है। इसमें जीवन के विविध रंगों के चित्र हैं। 'मनुष्य फल', 'पतंग', 'बड़ बाज़ार', 'बिडाल', 'बांगालीर मनुष्यत्व' में अनुभूति की तीव्रता के साथ रंगीन कल्पना का कोमल प्रवाह है। 'बसंतेर कोकिल', 'फूलेर विवाह', में उच्छ्वास-पूर्ण कल्पना का व्यापक क्षेत्र है। 'आमार दुर्गोत्सव' तथा 'एकटि गीत' का स्वर राष्ट्रीय है। लेखक की प्रतिभा का परिचय कहीं नवीन हास्यपूर्ण प्रसंगों की कल्पना में है, कहीं कटाक्ष-परिहास में और कहीं तीव्र व्यंग्य एवं विद्रूप में। सरस चुटीली भाषा तथा सटीक उपमा एवं सादृश्य-विधान ने इस रचना को नई भंगिमा प्रदान की है। विषयगत एवं भागवत अन्विति नहीं है परंतु वक्ता कमलाकांत का सप्राण व्यक्तित्व चरित्रगत एकता लाने में सफल रहा है। दार्शनिकता, नैतिकता और समसामयिक राजनीति के परिप्रेक्ष्य में उसका स्वरूप उभरा है। डिकंस के 'पिकविक' के समान कमलाकांत बंकिम की अमर सृष्टि है। जीवन के सामान्य संघर्ष तथा घात-प्रतिघात का सजीव रेखांकन करने के कारण यह रचना अपनी सीमाओं में सफल एवं हास्य-रस-प्रधान है।

कमळायन (उ० कृ०)

डॉ० मायाधर मानसिंह (दे०) लिखित 'कमळायन' महाकाव्य विषयवस्तु एवं अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से एक अभिनव कृति है। कवि के युगीन जीवनबोध एवं मानवात्मा के वेदनाबोध का बृहत्तर चित्र हम इसमें पाते हैं। नवयुग की आशा, आकांक्षा, आनंद-वेदना का यह जीवंत प्रतीक है। इसमें वेदनाबिद्ध मानवात्मा का सजल संगीत प्राणों को झकझोर देता है। आज की सृष्टि विशृंखलताओं को नष्ट कर देने का यह मौन आह्वान और मूक निर्देश है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित मानवता के प्रति सहानुभूतिशील कवि का शिल्पी-प्राण स्वयं भी निःशेष हो जाना चाहता है। कवि की संवेदनशील आत्मा एवं सजग बौद्धिक चेतना भौगोलिक परिवेश से मुक्त मानवात्मा की मुक्ति का संधान करती है।

इस काव्य में नायक और नायिका, कमल एवं करुणा, के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का अतीत एवं वर्तमान एवं विपर्यस्त विश्व-जीवन के वर्तमान एवं भविष्य का चित्रण हुआ है। प्रथम भाग में कमल एवं करुणा न्यूयार्क-जीवन से वापस आकर भारत-ग्राम-उन्नयन में प्राण-विसर्जन करते हैं। द्वितीय भाग में उनकी एकमात्र संतान कन्या विश्वमित्रा की आक्सफोर्ड में शिक्षा, यूक्रेनियन तरुण सेपिलको के साथ प्रणय एवं सन् 1956 ई० में कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद के विरोध में होने वाले हंगेरियन विप्लव में सेपिलको का उत्सर्ग, हंगेरियन नेता की स्त्री मेरिया से विश्वमित्रा के नाम दीर्घ-करुण पत्र आदि का चित्रण हुआ है। यथार्थ की इन्हीं विशेषताओं के कारण 'कमळायन' काव्य समसामयिक लोकतंत्रीय मानवतावाद का महाकाव्य बन सका है।

विषय-वस्तु की उदात्तता के साथ उदार चरित्र, गरिमामयी भाषा-शैली, उपयुक्त छन्द-योजना रचना को महाकाव्योचित गंभीरता एवं गुरुता प्रदान करने में समर्थ हैं। भाषा पर मानसिंह का असाधारण अधिकार है। कवि के गहन एवं विस्तृत अध्ययन एवं मनन का प्रभाव उनकी वर्णन-शैली पर दिखाई पड़ता है। प्रकृति का चित्रमय सौंदर्य मानसिंह के काव्य को चित्रमय मनोज्ञता प्रदान करता है।

'कमळायन' आधुनिक महाकाव्य के क्षेत्र में एक प्रयोग है। इसमें विश्व-जीवन का वर्तमान एवं भविष्य दोनों रूपायित हैं।

करंदीकर, गोविंद विट्ठल *(म० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जन्मस्थान : रत्नगिरी, व्यवसाय : प्राध्यापक। ये प्रतिष्ठित नये कवि हैं। साहित्य-क्षेत्र में ये विंदा करंदीकर नाम से जाने जाते हैं। 'स्वेदगंगा' नामक इनका एकमात्र काव्यसंग्रह है। विषय-चयन की दृष्टि से इनकी कविता वैविध्यपूर्ण है। 'आवाहन', 'विजयी-भारत', 'उठाउठा तयार व्हा' आदि इनकी कुछ राष्ट्र-प्रेम संबंधी ओजस्वी कविताएँ हैं और 'नारद', 'वागुलवुवा' जैसे इनके शिशुगीत हैं। इसी संग्रह की 'मजूर', 'कीर्तन', 'साक्षात्कार' आदि कविताएँ अत्यंत शक्तिशाली हैं। इन कविताओं में नयी कविता का स्वर उभरा है। सामाजिक विषमता के विरुद्ध नये कवियों के समान ही इन्होंने आवाज़ उठाई है। इस प्रकार इनके काव्य में समाजवादी स्वर उभरा है।

नये कवि होते हुए भी ये आशावादी हैं। नयी कविता की दुर्बोधता एवं अस्पष्टता इनके काव्य में नहीं है। नवीन प्रतिमानों के प्रयोगों के कारण कहीं-कहीं इनकी कल्पनाएँ विद्रूप एवं विक्षिप्त हो गई हैं। ऐसे स्थलों पर पाठक की बुद्धि चमत्कृत हो जाती है। वहाँ बुद्धि-चातुर्य प्रधान हो गया है, और अनुभूति गौण। इन्होंने मुक्तछंद (दे०) में काव्य-रचना की है।

करंदै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग का उपविभाग है और 'वेट्चि' (दे०) के पश्चात् रक्खा जाता है। प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) ने इस उपविभाग का पृथक् उल्लेख नहीं किया है और 'वेट्चि' में ही इसे समाविष्ट कर दिया है। परवर्ती काल के 'पुरप्पोरुळ् (दे०) वेण्पामालै' नामक लक्षण-ग्रंथ में यह पृथक् उपविभाग के रूप में प्रस्तुत है। विश्वास है कि इसमें 'तोल्काप्पियम्' से पहले की 'अगत्तियम्'-व्याकरण-परंपरा का अनुसरण किया गया। 'वेट्चि' (दे०) में युद्धारंभ-सूचक गोमंडलियों के अपहरण के प्रकरण हैं पर इस 'करंदै' में गोमंडलियों को छुड़वाकर वापस ले जाने के प्रकरण हैं। 'वेट्चि' के अंतर्गत जितने प्रकरण बताये गये हैं, वे 'करंदै' के लिए भी प्रसंगानुकूल परिवर्तनों के साथ लागू किये जा सकते हैं।

करकंडुचरिउ (करकंडु-चरित) *(अप० कृ०)* [रचनाकाल—1065 ई०]

'करकंडुचरिउ' मुनि कनकामर (दे०) द्वारा दस संधियों में रचित काव्य है। करकंडु जैनों के दोनों संप्रदायों में मान्य हैं। बौद्ध धर्म में भी ये आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इस ग्रंथ में करकंडु के चरित्र के आधार पर पंचकल्याण-विधान नामक व्रतोपवास की महत्ता प्रदर्शित की गयी है।

चंपाधिपति धाड़ीवाहन और उसकी रानी पद्मावती से विचित्र परिस्थिति में एक श्मशान में करकंडु का जन्म हुआ। उसके हाथ में कंडु होने के कारण बालक का नाम करकंडु रखा गया। आगे चलकर करकंडु के नाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाहों और अनेक देशों पर उसकी विजय का वर्णन है। चिरकाल तक राज्य-सुख का उपभोग कर वह अंत में संसार से विरक्त हुआ और घोर तपश्चर्या द्वारा उसने केवल ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया। कृति में चरित-नायक की प्रधान कथा के अतिरिक्त नौ अवांतर कथाएँ भी हैं। 'करकंडु-चरिउ' अनेक अलौकिक और चमत्कारपूर्ण घटनाओं से युक्त है।

इस कृति में मानव-जगत् और प्राकृतिक जगत् के अनेक सुंदर वर्णन उपलब्ध होते हैं। प्रसंगानुकूल रति, उत्साह और निर्वेद के सरस वर्णन मिलते हैं। भाषा में भावानुकूल शब्दों की योजना है। स्थान-स्थान पर ध्वन्यात्मक शब्दों की योजना द्वारा भाषा को भावानुकूल बनाया गया है। बीच-बीच में अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा में छोटे-छोटे हृदयस्पर्शी वाक्य और सुभाषित भी गुँथे हुए हैं। कृति में प्रधान छंद प्रज्झटिका और घत्ता (दे०) हैं।

ग्रंथ में प्रयुक्त अनेक कथाएँ संभवतः तत्कालीन समाज में लोक-कथाओं के रूप में प्रचलित रही होंगी। इनमें से अनेक कथाएँ प्राकृत और संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध होती हैं। कथानक रूढ़ियों के अध्ययन की दृष्टि से यह ग्रंथ अतीव महत्वपूर्ण है।

करण घेलो *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1866 ई०]

श्री नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता (1835-1905 ई०) (दे०) रचित 'करण घेलो' गुजराती का प्रथम उपन्यास है। गुजराती में ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा भी इसी उपन्यास से शुरू होती है।

शिक्षा विभाग के तत्कालीन अधिकारी मि० रसेल से सर वाल्टर स्कॉट जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्राप्त कर लेखक ने इसे लिखा था। उपन्यास में गुजरात के वाघेला वंश के अंतिम राजपूत राजा 'करणदेव' की विलासिता, पापाचार, तज्जन्य दुष्परिणाम तथा करणदेव का पतन और करुण अंत का निरूपण है। इस कृति के द्वारा लेखक अपनी सुधार-वृत्ति एवं सोद्देश्यता भी सिद्ध करता है। 'पाप की पराजय तथा पुण्य की विजय'—यह सिद्धांत निरूपित करना लेखक का लक्ष्य प्रतीत होता है। समसामयिक जीवन का सफल चित्रांकन, उत्तम वर्णन, सरल सुंदर व प्रासादिक गद्य-शैली का अभिनिवेश—ये सब इस उपन्यास की उपलब्धियाँ हैं। शिथिल वस्तु-संगठन, दुर्बल चरित्रांकन और निर्जीव से संवाद व कहीं-कहीं निबंध-शैली का विस्तृत गद्य इस रचना की सीमाएँ हैं किंतु आज से शताधिक वर्ष पूर्व की रचना के रूप में इस पर विचार करने पर ये सीमाएँ गौण बन जाती हैं। ट्रैजेडी का आस्वाद इसमें सहज ही उपलब्ध है।

गुजराती उपन्यास व गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास की दृष्टि से प्रस्तुत रचना का महत्व अक्षुण्ण है।

करणीदान *(हि० ले०)*

ये मेवाड़ के अंतर्गत शूलवाड़ा ग्राम के निवासी और जोधपुर-नरेश अभयसिंह के आश्रित कवि थे और अठारहवीं सदी के दूसरे चरण में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने 'सूरजप्रकाश' तथा 'विड़द सिणगार' नामक ग्रंथों की रचना की है। 'सूरजप्रकाश' 7500 छंदों में लिखित डिंगल का उत्कृष्ट ग्रंथ है। 'विड़द सिणगार' 'सूरजप्रकाश' का संक्षिप्त रूप है जो महाराजा को सुनाने के लिए 126 पद्धरी छंदों में लिखा गया था। दोनों काव्यों में महाराजा की वीरता का चित्रण है। युद्ध का सजीव वर्णन, तदनुकूल वीर-रस-पूर्ण भाव-व्यंजना तथा अत्यंत प्रभावशाली शब्द-चयन इन काव्य-कृतियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'सूरज-प्रकाश' का विषय वीरभाण-कृत 'राजरूपक' से मिलता है; परंतु करणीदान ने अपनी कृति में इतिहास की अपेक्षा काव्य के भाव-पक्ष पर विशेष बल दिया है।

करबल-कथा *(उर्दू कृ०)*

फ़ज्ल-अली-फ़ज़्ली ने 'करबल-कथा' की रचना 1732-33 ई० में की थी किंतु सन् 1748-49 ई० में इसे वर्तमान रूप दिया गया।

'करबल-कथा' फ़ारसी के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रोज़ातुल-शोहदा' का उर्दू भावानुवाद है। हज़रत इमाम हुसैन तथा उनके साथियों पर करबला के रणक्षेत्र में जो नृशंस अत्याचार किए गए, उन्हीं का मार्मिक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। मुहर्रम के दिनों में 'मज़लिस-ए-इअज़्ज़ा (शोक-सभा) में 'रोज़ातुलशोहदा' का पाठ किया जाता है जिसे सुनकर सहृदय श्रोता फूट-फूट कर रोते हैं और इस प्रकार हज़रत इमाम हुसैन के प्रति अश्रु-पुष्पों की श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

'रोज़ातुलशोहदा' की कथा सुनकर प्रायः लोग कहा करते थे…'सदहैफ़-ओ-सदहज़ार अफ़सोस जो हम कमनसीब इबारत-ए-फ़ारसी नहीं समझते और रोने के सवाब (पुण्य) से बेनसीब रहते हैं। ऐसा कोई साहिब-ए-शऊर (प्रतिभावान) होवे कि किसी तरह हम से बेसमझों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को समझाकर रुला दे'।

अतः 'फ़ज़्ली' ने इस परम पुनीत कार्य को संपन्न किया। उसने 'रोज़ातुलशोहदा' का सरल-सुबोध उर्दू में भावानुवाद किया और करबला की घटनाओं का वृत्तांत होने के कारण इसका नाम 'करबल-कथा' रखा। 'करबल-कथा' उत्तरी भारत में उर्दू गद्य की प्राचीनतम कृति है। इसमें देहलवी भाषा का सर्वप्रथम रूप प्राप्त होता है। इसका रचयिता 'फ़ज़्ली' मुहम्मदशाह रंगीले का समसामयिक था।

कर, बिमल *(बँ० ले०)*

नैराश्य, विच्छिन्नता-बोध एवं विषाद बिमल कर के कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। चार खंडों में विस्तीर्ण लेखक के सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'देओयाल' (1956-60) में द्वितीय विश्वयुद्ध की पटभूमिका में रचित मनुष्य के दुःख, उसकी वेदना, एवं नानाविध प्रकृतियों का उल्लेख किया गया है, जिनका निराकरण मनुष्य की शक्ति के बाहर है। जीवन-दुःख के गहरे उत्स का संधान करते हुए लेखक ने युद्धकालीन परिवेश का अतिक्रमण कर ईश्वर, नियति, मृत्यु आदि विषयों पर उपन्यास लिखना शुरू किया है। 'खड़कुटो', 'पूर्ण-अपूर्ण', 'ग्रहण', 'परिचय', 'यदुवंश', आदि उपन्यास इन विषयों से आलोड़ित हैं। इनकी रोमानी विषादमयता के मूल से इनके जीवन-रहस्य-अन्वेषी शिल्पी-मन का यह रूप ही प्रकट हुआ है। 'बालिका-बधु' के नाम से इन्होंने एक सुंदर 'उपन्यासिका' की रचना की है। मल्लिका (1960) उपन्यास में लेखक ने मध्यवित्त बंगाली समाज के अर्थसंकट एवं मिथ्या संभ्रम-बोध की अस्वस्थकर परिणति का निरूपण किया है।

कहानियों की रचना में बिमल बाबू ने मनन-प्रधान लेखक के आत्मप्रकाश को तीव्रता से प्रतिष्ठित किया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है स्वोपार्जित ख्याति एवं प्रतिष्ठा को छोड़कर नये क्षेत्र के आविष्कार के प्रति हमेशा सचेत रहना। 'आत्मजा', 'दरजा', 'सुधामय', 'निषाद', 'पितृघ्न', 'पलाश', 'उद्भिद' आदि कहानियों में लेखक ने अंतर-उन्मोचन का दुःसाहस किया है। कहानियों में मनन को, तीव्र-तीक्ष्ण निर्मोह तथा चिर-अतृप्त जीवन-जिज्ञासा को, प्रधानता मिली है। मनुष्य के अंतर की जो जटिलता है, अंतर-बाह्य का जो सूत्र-संबंध है, स्वप्न एवं चिंतन में उसका जो अद्भुत प्रकाश है, निःसंग अंतरजीवन की जो वेदना एवं असहायता-बोध है उसी की अभिव्यक्ति के द्वारा इन्होंने कहानियों में अपने स्वतंत्र-शिल्पी मन को प्रकट किया है। छठे दशक में बँगला कहानी को नया रूप प्रदान करने वालों में इनका नाम सबसे पहले आता है।

कर, बिश्वनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1864; मृत्यु—1934 ई०]

ये ब्राह्मण थे। मधुसूदन राओ (दे०) के प्रभाव से इन्होंने ब्राह्मधर्म स्वीकार कर लिया था। संपादक बिश्वनाथ कर प्रायः 50 वर्षों तक आधुनिक उड़िया-साहित्य के केंद्रबिंदु रहे हैं। 'उत्कल-साहित्य' मासिक पत्रिका के संपादक के रूप में इन्होंने तीन पीढ़ियों के साहित्यकारों को प्रभावित किया है। ये मधुसूदन, राधानाथ राय (दे०) और फकीर मोहन सेनापति (दे०) के मित्र, समालोचक और प्रकाशक थे। उनके अतिरिक्त सन् 1930 ई० तक उड़िया साहित्य के प्रमुख कवि एवं लेखकों के भी ये मित्र, समर्थक और समीक्षक थे। 'उत्कल साहित्य' के संपादकीय में प्रकाशित बिश्वनाथ जी के निष्पक्ष, निर्भय विचार, सदा आदृत रहे हैं। ये विचार इनकी मौलिक चिंतना एवं स्वतंत्र विचारणा के द्योतक हैं। इन्होंने नये कवियों को प्रोत्साहन दिया तथा उन्हें प्रकाश में लाये। 'विविध प्रबंध' इनकी एकमात्र पुस्तक है। उसमें चिंतन-प्रधान विचारोत्तेजक कुछ ऐसे निबंध हैं, जो अन्यत्र दुष्प्राप्य हैं। उपेंद्र भंज (दे०) पर इनके निबंध अन्यतम हैं। इनकी गद्य-शैली अयत्नज, निरंलकृत, तर्क-सिद्ध, स्पष्ट एवं प्रभावशालिनी है।

करसनदास माणेक *(गु० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

रोमानी प्रकृति और शैली के कवि करसनदास माणेक अपने मुक्त शृंगार और हास्य-निरूपण के लिए प्रसिद्ध हैं। अब तक इनके चार कविता-संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। 'आलबेल', 'वैशम्पायननी वाणी', 'महोबतने मांडवे' और 'मध्याह्न' (दे०)। इन्होंने वैशम्पायन बनकर आख्यान-शैली में नये विषयों को हल्के ढंग से किंतु हास्य-कटाक्षमय वाणी में व्यक्त किया। इनकी कविताओं से देशभक्ति, युयुत्सा और साम्यवादी विचारधारा का परिचय मिलता है। हल्के-फुल्के और गंभीर भावों को अभिव्यक्त करने में करसन माणेक जी ने गीत, भजन, ग़ज़ल और आख्यानप्रधान देशी शैली को अपनाया। 'नचिकेता' मासिक में इन्होंने अनेक अंग्रेज़ी और संस्कृत कृतियों के अनुवाद प्रस्तुत किए। इनकी कविता में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपाकृति-मुक्त प्रणय-चेष्टा और रोमानी दृष्टि आकर्षक बिंदु हैं। वेलाग वातों के धनी करसन जी अपने हास्य-व्यंग के कारण और आख्यानकार के रूप में इस पीढ़ी के सबसे समर्थ कवि हैं।

करहले *(पं० पारि०)*

'करहले' शीर्षक से गुरुवाणी में कुछ शब्द (दे०) संगृहीत हैं। करहले का शाब्दिक अर्थ 'हल्ला करना' या 'हलाशेरी' (उत्साह) देना है। एक अन्य व्युत्पत्ति से इस शब्द का कोशार्थ 'ऊँट' बताया जाता है। इन शब्दों में शीघ्रता, बेसब्री में भटकते जीव की ओर संकेत है जो गुरुशरण प्राप्त कर भटकाव से मुक्त हो जाता है।

करुणा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का अंतिम काव्य है। बौद्ध भिक्षु उपगुप्त द्वारा वारांगना वासवदत्ता को प्रदत्त जीवन्मुक्ति की कथा इसमें वर्णित है। वासवदत्ता उपगुप्त पर अनुरक्त होती है, परंतु उपगुप्त यथासमय आने का वचन मात्र देकर चला जाता है। वासवदत्ता को एक हत्या के अभियोग में मृत्यु-दंड मिलता है और उसे हाथ-पैर काटकर श्मशान में फेंका जाता है। उपगुप्त यथासमय पहुँच जाता है और वासवदत्ता को मुक्तिमार्ग का उपदेश देकर इहलोक से विदा करता है। उसकी चिता-भस्म में भिक्षु के अश्रुओं की दो बूंदें गिर जाती हैं।

आशान् की दार्शनिक और भावोत्तेजक प्रतिपादन-शैली की चरम सीमा 'करुणा' में देखने को मिलती है। वासना के अपार्थिव प्रेम के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को कवि ने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। जीवकारुण्य पर आधारित बौद्धदर्शन का प्रभाव इस काव्य में स्पष्ट है। 'करुणा' मलयाळम साहित्य की एक अमूल्य रचना है।

करुणानिधि *(त० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

करुणानिधि का जन्म तमिलनाडु के तिरुवारूर नामक स्थान में हुआ। सन् 1937 में हिंदी-विरोधी आंदोलन में भाग लेने से इनके राजनीतिक जीवन का आरंभ हुआ। करुणानिधि द्र० मु० क० दल के नेता हैं। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—तूक्कु मेडै, मणिमकुडम (नाटक), पुदैमलै, वेळ्ळिक्किषमै, रोमापुरी पाण्डियन (उपन्यास), पषक्कूडै, वाषमुडियादवरहळ (कहानी), आरु माद कंडुकावल (डायरी), मेडैयिले वीशुम मेल्लिय काट्र (निबंध), कवियरंगिल कलैत्ज्जर (अतुकांत छंदों का संग्रह), नेंजुक्कु नीदि (आत्म-कथा) आदि। करुणानिधि ने चलचित्रों के लिए कहानी और संवाद भी लिखे हैं।

इनकी विभिन्न रचनाओं में रूढ़ धार्मिक परंपराओं के प्रति विरोध प्रकट किया गया है। उपन्यास, नाटक और कहानियों में अछूतोद्धार, वर्गभेद, जातिभेद, आर्थिक वैषम्य आदि सामाजिक समस्याओं का सजीव चित्रण है। इनमें समाज-सुधार का स्वर प्रबल है और भावुकता की प्रधानता है।

करुणानिधि कुशल राजनीतिज्ञ और उच्चकोटि के साहित्यकार हैं। तमिल नाटक और रंगमंच तथा चलचित्रों के विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

करुत्तम्मा *(मल० पा०)*

तकषि (दे०) शिवशंकर पिळ्ळा के सामाजिक उपन्यास 'चेम्मीन्' (दे०) की नायिका का नाम करुत्तम्मा है वह बचपन में ही परीक्कुट्टि नामक मुसलमान से प्यार करती है। दोनों के धर्म भिन्न-भिन्न होने के कारण समाज उन दोनों के विवाह में बाधा डालता है। करुत्तम्मा को अपनी जाति के एक पुरुष से विवाह करना पड़ता है। अंत में दोनों सागर में कूदकर एक दूसरे के प्रति प्रेम का निर्वाह करते हैं। करुत्तम्मा के संदर्भ से मछुए जाति की जीवन-झाँकी इस उपन्यास में प्रस्तुत की गई है।

करुप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

यह 'अकम्' अथवा शृंगारी कविता के लक्षणों में से एक है। अन्य लक्षण 'मुतर्पोरुळ्' तथा उरिप्पोरुळ् (दे०) हैं।

'करुप्पोरुळ्' से तात्पर्य 'अकम्' कविता के उप-विभागों के अनुकूल उल्लेखनीय देवता, पशु-पक्षी, फूल, वृत्ति इत्यादि से है। हर एक उप-विभाग के लिए उचित वातावरण की व्यवस्था और उद्दीपन की योजना इन लक्षणों में हम देख सकते हैं।

'कुरिंचि' की कविताएँ पर्वतीय प्रदेश के वातावरण से प्रभावित हैं। इनमें उल्लेख करने योग्य देवता 'चेयोन' अथवा 'मुरुगन्' (स्कंद देव) और अदृश्य देव-वनिताएँ हैं। एक विशेष फूल 'कुरिंचि' है जो बारह साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक बार खिलता है। व्याघ्र, हाथी, मर्कट, हरिण, कोयल आदि का वर्णन प्रसंगानुसार किया जाता है। प्रेमियों के मिलन के उपयुक्त पर्वतीय वातावरण में चंदन, अशोक, आम, कटहल, आदि का उल्लेख है।

'मुल्लै' (दे०) की कविताओं के उपयुक्त वातावरण वन तथा बस्तियों से संलग्न उपवन इत्यादि प्रदेश हैं। यहाँ लोग गाय-बकरी चराते हैं। इस प्रदेश के रहने वाले चरवाहों के देवता 'तिरुमाल' अथवा 'विष्णु भगवान' हैं।

'मरुदम्' (दे०) उपविभाग का संबंध कृषक-भूमि और जलाशयों से समृद्ध जल-वितरण-परिपुष्ट कृषि-वातावरण से हैं। भैंस, गाय, घोड़े इत्यादि के साथ जलाशयों में पनपने वाले विशेष फूलों—कमल, कांचि, मरुदम् आदि—का उल्लेख है। इस भूमि के देवता इंद्र हैं।

'नेयदल्' (दे०) वरुण देवता के अधीन है और समुद्र तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश होने से यहाँ के लोग मछुए हैं। इनका व्यवसाय समुद्रगत आखेट है और इन बस्तियों में तिमिंगल (ह्वेल) मछली आदि धूप सेंने के के लिए पड़ी रहती थीं। नमक व्यापारी ('उमणर्') इस प्रदेश से अपना माल ले आया करते थे। समुद्रतट-प्रदेश प्रेमिकाओं के वियोग को तीव्रतर बनाते थे।

'पालै'(दे०) की भूमि वस्तुतः 'मुल्लै' के जंगल और 'कुरिंचि के पहाड़ मिल जाने से उत्पन्न बंजर प्रदेश है जहाँ धूप की उग्रता से सूखे जलाशय, तथा नष्टप्राय वृक्ष-गुल्म दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ के रहने वाले धनुर्धारी लुटेरे हैं जो इस मरुभूमि को भूल-भुलैयों जैसे मार्गों पर पथिकों को निर्मम भाव से लूटते हैं। मृतकों पर टूट पड़ने वाली चीलें और सियार इस प्रदेश की विशेषताओं में से हैं। इस वातावरण में हिरन एवं हिरनी तथा हाथी एवं हथिनी के युगलों का प्रेम-वर्णन भी प्रस्तुत किया जाता है। 'कोर्रवै' (काली) इस प्रदेश की देवी है।

'कैक्किळै' तथा 'पेरून्तिणै' के लिए वातावरण-गत लक्षणों का बंधन नहीं है। इन दोनों की कविता में शेष पाँच उपविभागों के देवता, पशु-पक्षी, वृत्ति, और लक्षण यथोचित रूप में आ सकते हैं।

कर्कशराव (म० पा०)

शंकर परशुराम जोशी कृत 'खडाष्टक' नाटक का यह पात्र महाराष्ट्र के पश्चिमी किनारे के लोगों के एक वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। नाटक के इस पात्र की स्थिति नायिका के पितामह के रूप में चित्रित की गई है। यह अत्यंत उदारहृदय एवं स्नेहशील व्यक्ति है परंतु इसकी वाणी अत्यधिक कर्कश है। परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति इसके कठोर व्यक्तित्व से अभिभूत रहता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य को अपने कठोर अनुशासन में रखने की इसकी बलवती इच्छा है और इसी से यह सभी सदस्यों को परिवार की मानमर्यादा के अनुकूल बनाए रखने का नानाविध उपाय भी करता है। पारिवारिक उत्तर-दायित्व के प्रति अपनी पुत्रवधू के सर्वथा उदासीन रहने के कारण विवश होकर समस्त पारिवारिक कार्यों के सूत्र-संचालन को अपने हाथ में ले लेता है। कविश्वर एवं गौरी को वैवाहिक बंधनों में बाँधने के लिए बहुविध उपाय करता है और अंत में दोनों के विवाह-सूत्र में बँधते ही यह उन्हें आदर्श गृहस्थ के उपदेश देकर अपने कार्य से कृत-कार्य हो जाता है। नाटककार के पूर्वनिश्चित सिद्धांतादर्शों के संवहन के कारण यद्यपि कर्कशराव का चरित्र निश्चित प्रारूप में ही विकसित हुआ है तथापि यह अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण ही दर्शकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ने में सफल हुआ है।

कर्ण *(सं० पा०)*

'महाभारत' (दे०) के अनुसार कर्ण कुंती (दे०) का सूर्य से उत्पन्न पुत्र था तथा जन्मते ही उसने इसे नदी में फेंक दिया था, किंतु धृतराष्ट्र के सारथि अधिरथ ने इसे निकालकर पुत्रवत् पाला। जन्म से ही कर्ण अमृत से बने कवच और कुंडल धारण किये था, अतः वह नदी में नहीं डूबा। द्रोणाचार्य से इसने शस्त्रास्त्र-विद्या सीखी, किंतु यह अर्जुन (दे०) से कहीं बढ़ न जाए अतः द्रोण से इसे ब्रह्मास्त्र-प्राप्ति नहीं हुई। अर्जुन की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की आकांक्षा से इसने क्षत्रिय-द्वेष्टा परशुराम से यह झूठ बोलकर कि वह क्षत्रिय नहीं, ब्राह्मण है, ब्रह्मास्त्र-विद्या सीखी। एक बार इसने अर्जुन को द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारा तो इसके जन्मवृत्त तथा लालन-पालन के विषय में ज्ञात होने पर इसे सूत-पुत्र आदि कहकर अपमानित किया गया। किन्तु दुर्योधन (दे०) ने अपने पक्ष में मिलाने के लिए अंगदेश का राज्य देकर सम्मानित किया और कर्ण ने आमरण हर स्थिति में कौरवों का साथ दिया। मल्लयुद्ध में इसने जरासंध का जोड़ ढीला कर दिया था, अतः जरासंध ने इसे मालिनी नगर देकर सम्मानित किया। 'महाभारत'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के युद्ध में अर्जुन कहीं कर्ण से परास्त न हो जाए, अतः इंद्र ने छद्म रूप में ब्राह्मण बनकर इससे कवच-कुंडलों का दान माँगा तो कर्ण ने तुरंत इन्हें देकर उदारता का परिचय दिया। इंद्र ने इसे अमोघ शक्ति प्रदान की। इसका प्रयोग कर्ण ने कौरव-शत्रु घटोत्कच पर करके उसका वध किया। द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद कर्ण ने ही प्रधान सेनापति का कार्य-भार सँभाला था। अंत में अर्जुन के साथ युद्ध करते समय शापवश इसके रथ का पहिया भूमि में धँस जाने के फलस्वरूप इसकी मृत्यु हो गयी।

कर्णपार्य (क० ले०) [समय—अनुमानतः बारहवीं शती]

इस नाम के दो कवि हुए हैं। इनमें एक का उल्लेख दुर्गसिंह (दे०) (1030 ई०) ने किया है जिसके 'मालती-माधव' नामक नाटक का उल्लेख मिलता है किंतु ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत कर्णपार्य का समय 1150 ई० माना जाता है। यह शिलाहारवंशी राजा विजयादित्य के मंत्री लक्ष्मण का आश्रित था। इसने 'नेमिनाथपुराण' चंपू की रचना की है। इसमें हरिवंश-कुरुवंश एवं नेमितीर्थंकर का चरित है। कथा जैन-परंपरा के अनुसार है। संस्कृत में गुणभद्र-कृत 'उत्तरपुराण' तथा कन्नड का 'चावुंडरायपुराण' (दे०) इसके आधार-ग्रंथ हैं। कवि पंप(दे०) से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। उसी के पद-प्रयोग, संदर्भ-सन्निवेश, तथा अलंकार भी जहाँ-तहाँ मिलते हैं। कथासरणि भावावलियों के भार से दब-सी गई है। सरल चंपू की गति इसमें अवश्य है। अष्टादश-वर्णन इसमें नहीं मिलते। शैली में पांडित्य की प्रौढ़िमा नहीं है—सरलता है, सहजता है।

कर्णभार (सं० कृ०) [समय—तीसरी शताब्दी ई०]

'कर्णभार' भासनाटकचक्रम् का सातवाँ पुष्प है। यह उत्सृष्टिकांक भास (दे०) के नाट्य-प्रयोगों का उपन्यास-निदर्शन है। इसका स्रोत 'महाभारत' (दे०) है। इसमें भास ने कर्ण के द्वारा ब्राह्मण-वेशधारी इंद्र को अपना कवच और कुंडल देने की घटना का चित्रण बड़ी ही मार्मिक एवं कलात्मक शैली में किया है।

कर्ण के उज्ज्वल चरित्र एवं दानशीलता का जितना उदात्त तथा प्रभावशाली वर्णन इस एकांकी में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। भास की नाट्यकला इस रूपक में और भी निखरे रूप में अभिव्यक्त हुई है।

कर्णभूषणम् (मल० कृ०)

इसके रचनाकार हैं महाकवि उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वर अय्यर। आधुनिक मलयाळम साहित्य के पंडित कवि के खंडकाव्यों में सबसे लोकप्रिय 'कर्णभूषणम्' महाभारत (दे०) के एक कथा-प्रसंग के आधार पर रचा गया है। कवि ने 'तब और अब' शीर्षक मुक्तक कविता में महादानी कर्ण को अपना विषय बनाया था। उसी का विस्तृत रूप है 'कर्णभूषणम्'।

कवि एक सुनहरे प्रभात की घड़ियों का अलंकारपूर्ण वर्णन करता हुआ हमें कर्ण के गगनचुंबी राज-प्रासाद पर ले जाता है। यहाँ ज्योतिर्मय आदित्य विप्ररूप में प्रवेश करते हैं। कर्ण उस अतिथि को अर्घ्य आदि से सम्मान देते हुए आगमन का प्रयोजन पूछते हैं। भगवान भास्कर उन दोनों का सच्चा संबंध बताने लगते हैं किंतु कर्ण के मुख की कांति न बढ़ती है, न कुम्हलाती है। वे उन्हें प्राण-रक्षक कवच-कुंडल देकर चेतावनी देते हैं कि इन्हें कभी दान में न दें। उधर इंद्र की ठीक यही योजना थी। कर्ण सूर्य की चेतावनी या अपने जीवन की क्षणिकता से तनिक भी चिंतित नहीं होते। वे पांडवों द्वारा अपने अपमान एवं दुर्योधन की सहायता से अंग-राज्य पर अपने अभिषेक की घटना का उल्लेख करते हुए शपथ लेते हैं कि कवच-कुंडल तो क्या, योग्य व्यक्ति के माँगने पर मैं अपना सर्वस्व दे देने को तैयार हूँ। इंद्र जैसा याचक मिलने पर वे 'नहीं' करना नहीं चाहते थे।

पिता-पुत्र के इस संवाद के प्रसंग पर सूर्य तथा कर्ण के शब्दों के माध्यम से कवि ने कितने ही पौराणिक अवतरण, बिंब व प्रतीक प्रस्तुत किये हैं। चूँकि इसमें कथा-वस्तु अपेक्षाकृत क्षीण है, इसलिए कवि ने प्रत्येक पंक्ति में अलंकारों की वर्षा-सी कर दी है। कवि को उज्ज्वल-शब्दाढ्य तथा उल्लेख-चतुर के जो विशेषण दिये गये, वे इस काव्य में सार्थक निकले हैं। 'कर्णभूषणम्' तथा 'दिनकर' (दे०) कृत 'रश्मिरथी' की अंशतः तुलना हो सकती है।

कर्णाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् (क० कृ०)

भारत की सभी आधुनिक भाषाओं के समान कन्नड नाटक का आरंभ अनुवाद से—मुख्यतः संस्कृत नाटकों के अनुवाद से—हुआ। मैसूर संस्कृति-ज्ञान का केंद्र था और राजदरबार में कन्नड और संस्कृत दोनों का सम्मान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। फ़ारसी थियेटरों के मुकाबले में भारतीय रंगमंच-पद्धति भी विकसित होने लगी थी। विद्वानों ने संस्कृत के सभी नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत किया।

कविकुलगुरु कालिदास (दे०) के 'शाकुंतलम्' का अनुवाद विशेष जनप्रिय रहा। 'शाकुंतलम् का अनुवाद कन्नड में सात व्यक्तियों ने किया। उनमें चार के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं: बसप्प शास्त्री, नरहरि शास्त्री, शेषगिरिराव और बी० कृष्णप्पा। इनमें कृष्णप्पा ने गद्य और आधुनिक कन्नड में शकुंतला का रूपांतर मात्र प्रस्तुत किया। अतः यह 'रंगमंच' के लिए विशेष अनुकूल नहीं। नरहरि शास्त्री का अनुवाद भी केवल रूपांतर है जिसमें मूल श्लोकों को कन्नड रूप देने का प्रयास किया गया है परंतु उसमें कालिदास का पद-लालित्य और प्रौढ़ता दिखाई नहीं देती। शेषगिरिराव के अनुवाद की प्रशंसा हुई है परंतु बसप्प शास्त्री का अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है। शास्त्री जी संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के साथ-साथ सहृदय कवि और सफल अभिनेता थे। उन्हें राज्याश्रय भी मिला और शकुंतला के अभिनय के अनुकूल रंगमंच भी। शास्त्री जी ने मूल नाटक के गद्य को गद्य के रूप में और पद्य को पद्य के रूप में सुललित और सुमधुर तथा प्रांजल कन्नड भाषा में अनुवाद किया। शास्त्री जी के इस अनुवाद से संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों ने भी 'शाकुंतलम्' का सही रसास्वादन किया। उन्होंने शाकुंतलम् को आत्मसात् करके अनुवाद प्रस्तुत किया है। राजदरबार ने उन्हें 'अभिनव कालिदास' अथवा 'कन्नड नाटक के पितामह' की उपाधियों से सम्मानित किया। 'शाकुंतलम्' के इस अनुवाद ने अनुवाद का एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया और भविष्य में आने वाले नाटकों के अनुवादों का मार्गदर्शन किया।

कर्णाटक कविचरिते (क० कृ०)

यह कर्णाटक के महान् विद्वान महामहोपाध्याय रावबहादुर रा० नरसिंहाचार्य (दे०) की महान् कृति है। नरसिंहाचार्य जी ने इसके तीन भागों में कन्नड साहित्य का सर्वप्रथम इतिहास प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम भाग 1907 ई० में प्रकाशित हुआ। द्वितीय भाग 1919 ई० में तथा तृतीय भाग 1929 ई० में। इसके प्रारंभ में उन्होंने कन्नड भाषा का, तथा उसकी प्राचीनता का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है। उन्होंने अँग्रेज़ी में भी अलग-अलग कन्नड भाषा और कन्नड साहित्य के इतिहास लिखे हैं। प्रथम संपुट में कन्नड साहित्य के आरंभ से लेकर चौदहवीं शती तक का इतिहास है, द्वितीय में सत्रहवीं शती के अंत तक का तथा तृतीय में अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शती के अंत का इतिहास है। इस ग्रंथ के निर्माण में आचार्य जी ने हज़ारों शिलालेखों तथा ताड़पत्रों का अवलोकन किया है। प्रत्येक कवि का ज़िक्र करते समय उसका समय-निर्धारण, उससे संबंधित जनश्रुतियों-किंवदंतियों आदि का हवाला देते हुए उस सामग्री का विश्लेषण अत्यंत प्रामाणिकता के साथ किया गया है। अंतःसाक्ष्यों और बहिःसाक्ष्यों के आधार पर कवियों के देश, वंश, मत, गुरु, पोषक, विरुद आदि का उल्लेख भी है। कवि के ग्रंथ का परिचय देते समय उसका स्वरूप, प्रतिपाद्य विषय, कथागर्भ, आश्वास-संख्या, इष्टदेवता-स्तुति, गुरु-परंपरा, ग्रंथरचना का कारण, आदि लिखकर आश्वासांत में प्राप्त गद्य के भी उद्धरण दिये हैं। इस तरह यह बहुत ही परिश्रमसाध्य ग्रंथ अकेले एक ही व्यक्ति ने लिखा—यह सचमुच आश्चर्य की बात है। उसके पहले किसी ने भी कन्नड में कन्नड साहित्य का इतिहास नहीं लिखा था। श्री नरसिंहाचार्य कन्नड, तेलुगु, तमिल, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने सर्वप्रथम यत्र-तत्र मठ-मंदिरों में विकीर्ण कन्नड साहित्य की रत्नराशियों को संगृहीत कर हमारे समक्ष रखा। उनकी प्रतिभा ने विद्वानों को चकित भी किया, आकृष्ट भी। इसका प्रकाशन ही एक ऐतिहासिक घटना है। रा० नरसिंहाचार्य सुरुचिसंपन्न थे, विलक्षण प्रतिभा वाले थे। उनकी भाषा संयत, संतुलित और उत्कृष्ट है।

कर्णाटक कादंबरी (क० कृ०) [रचना-काल—लगभग दसवीं शती]

यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है कि नागवर्मा प्रथम (दे०) ही 'कर्णाटक-कादंबरी' का लेखक है। इतिहासकारों का कथन है कि दसवीं शताब्दी के आरंभ में उसने इसकी रचना की होगी। वह पंप (दे०) के समान लेखनी तथा तलवार दोनों का धनी था परंतु वह वैदिक ब्राह्मण था। उसने अपने समकालीन या पूर्व-कवियों के समान कोई धार्मिक विषय नहीं चुना। 'कर्णाटक कादंबरी' के अतिरिक्त उसका दूसरा प्रसिद्ध शास्त्र ग्रंथ 'छंदोम्बुधि' (दे०) है। 'कर्णाटक कादंबरी' बाण (दे०) की कादंबरी का कन्नड रूपांतर है। बाण की कादंबरी संस्कृत गद्य की श्रेष्ठतम रचना है। उसका कन्नड रूपांतर प्रस्तुत करना साहस का कार्य है। नागवर्मा को इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य में आशातीत सफलता मिली है। पूर्णतः गद्यात्मक मूल को गद्य-पद्य-मिश्रित चंपू-रूप में बदलने की उसकी प्रवृत्ति का परिणाम बहुत सफल हुआ है। यह रूपांतर मूल से बहुत दूर भी नहीं है और शब्दशः अनुवाद भी नहीं है। नागवर्मा ने मध्यम मार्ग अपनाकर अनुवाद-कला का एक अनोखा रूप प्रस्तुत किया है। उसने जहाँ उचित प्रतीत हुआ, वहाँ मूल के कुछ भागों को छोड़ दिया है, कुछ का संक्षेप किया है और कुछ का मूल के आधार पर अपनी कल्पना से विस्तार कर दिया है। कहीं-कहीं समर्थ रूपांतरकार की तरह मूल से भी सुंदर भाव व्यक्त किये गये हैं।

इसकी भाषा बहुत मधुर है, वह गंगा के गंभीर प्रवाह के समान चलती है। सामान्यतः उसने मूल के संस्कृत शब्दों को अधिक नहीं लिया और अपनी ओर से संस्कृत शब्द मिलाकर शैली को उलझाया नहीं है। आलोचकों का यहाँ तक कहना है कि नागवर्मा की भाषा का क्रम मूल से अधिक माधुर्य प्रदान करता है। निश्चित रूप से कन्नड साहित्य में कादंबरी जैसा उच्च कोटि का रूपांतर दूसरा नहीं है।

कर्णाटक भाषाभूषण (क० कृ०)

इसके रचयिता नागवर्मा द्वितीय (दे०) हैं जिनका समय 1150 ई० के करीब माना जाता है। यह संस्कृत में लिखा कन्नड भाषा का व्याकरण है। इसके सूत्र तथा वृत्तियाँ संस्कृत में हैं। उदाहरण कन्नड के पूर्व-कवियों के काव्यों से दिये गये हैं। इनमें कुल मिलाकर 280 सूत्र हैं। संज्ञा, संधि, विभक्ति, कारक, शब्द-रीति, समास, तद्धित, आख्यात, नियम, अव्यय-निरूपण एवं निपात-निरूपण—कुल दस परिच्छेद हैं। इन्होंने अपने दूसरे ग्रंथ 'शब्दस्मृति' में जो बातें कही हैं उससे भी अधिक विस्तृत ढंग से व्याकरण-प्रक्रिया यहाँ बताई गई है। शैली सरल एवं समासबद्ध है। आगे चलकर इसी ग्रंथ की प्रेरणा से भट्ट अकलंक ने संस्कृत में (कर्नाटक) 'शब्दानुशासन' (दे०) नामक एक व्याकरण की रचना की। पूर्व-कवियों के उदाहरण देने के कारण कवियों के काल-निर्णय में इसका ऐतिहासिक महत्व भी है।

कर्णाटक शब्दानुशासन (क० कृ०)

इसके रचयिता भट्ट अकलंक हैं जिनका समय 1604 ई० के करीब माना गया है। 'कर्णाटक शब्दानुशासन' प्राचीन कन्नड का एक प्रामाणिक ग्रंथ है जो पाणिनि के ढंग पर लिखा गया है। भट्ट अकलंक ने संस्कृत के द्वारा कन्नड की महिमा का प्रसार किया। कन्नड की महानता एवं इसकी प्राचीन कृतियों पर उन्हें गर्व है। उनका दावा है कि कन्नड शास्त्रानुपयोगिनी नहीं है। उसमें 'चूडामणि' जैसे 17,000 ग्रंथ-परिमाण की कृतियाँ विद्यमान हैं। भट्ट अकलंक तर्क, नाटक, अलंकार आदि शास्त्रों के परम पंडित थे। वे जैन धर्मावलंबी थे और संस्कृत, प्राकृत, कन्नड, अर्द्धमागधी आदि भाषाओं के पंडित थे। 'कर्णाटक शब्दानुशासन' में 593 सूत्रों में कन्नड का व्याकरण है। इस पर उन्होंने 'भाषामंजरी' नामक वृत्ति की भी रचना की और 'मंजरीमकरंद' नामक एक व्याख्या भी संस्कृत में लिखी। भट्ट अकलंक ने पूर्व-कवियों से यथेष्ट उदाहरण लिए हैं जिसके कारण इसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, साथ ही कर्णाटक की नाट्य-संगीत आदि कलाओं के इतिहास-निर्माण में भी इसका योगदान महत्वपूर्ण है।

कर्णाटक संस्कृति समीक्षे (क० कृ०)

यह डा० एच० तिप्पेरुद्रस्वामी की प्रौढ कृति है जिस पर उनको 1969 ई० का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। दस अध्याय वाले इस बृहत् ग्रंथ के प्रथम अध्याय में पृष्ठभूमि के रूप में भारतीय संस्कृति का परिचय है जिसमें सैंधव संस्कृति, वेदयुग, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, स्मृति तथा आगमों का विवेचन करते हुए उसकी समन्वयात्मिका प्रवृत्ति पर ज़ोर दिया गया है। द्वितीय अध्याय में कर्णाटक राज्य की प्राचीनता का प्रतिपादन है। तीसरे में कन्नड जनपद के अंतर्गत राज्यशासन, धार्मिक परिस्थिति, सामाजिक जीवन-विकास आदि का सर्वेक्षण है। चौथे में कन्नड शिलालेखों का सांस्कृतिक अध्ययन है। पाँचवें में आरंभ ले लेकर आज तक के कन्नड साहित्य का स्थूल विवेचन है। छठा अध्याय कन्नड के लोकसाहित्य पर है। इसमें लोक-साहित्य में बिंबित लोक-जीवन, कार्मिकता, गार्हस्थ्य जीवन, आदि का विवेचन है। लोक-साहित्य के सौंदर्य का मर्मोद्घाटन है, कहावतों के सौंदर्य का काफ़ी व्यापक विवेचन है। सातवें अध्याय में कर्णाटक के वास्तुशिल्प एवं शिल्प का विवेचन है। इसके अंतर्गत चालुक्य युग, होयसळ शैली, विजयनगर का वास्तुशिल्प, मुस्लिम शैली, मूर्तिशिल्प आदि का विस्तृत विवेचन है। आठवें में संगीत और नृत्यकलाओं का परिचय देते हुए कर्णाटक के योगदान पर विचार किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवें अध्याय में भारतीय चित्र-परंपरा तथा उसमें कर्णाटक के योगदान का परिचय है। दसवाँ अध्याय समारोहों पर है। इस बृहत् सर्वेक्षण में भरती की सामग्री भी बहुत है। भाषा में पकड़ कम है, नीरस इतिवृत्तात्मकता अधिक।

कर्णाटक हरिरासरु *(क० कृ०)*

यह डॉ० एच० के० वेदव्यासाचार्य का शोध-ग्रंथ है। इसमें कर्णाटक के महान् आचार्य माध्व के द्वैत-वेदांत के प्रमेय तथा उनके अनुयायी वैष्णव भक्तों की, जो 'हरिदास' कहलाते हैं, कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन है। प्रारंभ में भक्ति एवं रहस्यवाद की चर्चा करते हुए प्राच्य एवं पाश्चात्य दार्शनिकों का हवाला देते हुए द्वैत-दर्शन का महत्व प्रतिपादित किया गया है। इसके उपरांत माध्व, जयतीर्थ, व्यासतीर्थ, आदि संस्कृत ग्रंथकर्ताओं की चर्चा है। उसके बाद कन्नड में गेयपदों की रचना करने वाले हरिदासों—जिनमें श्रीपादराज व्यासराज, पुरंदरदास (दे०), कनकदासों (दे०), विजयदासों (दे०), आदि सैकड़ों हरिदासों—का आलोचनात्मक परिचय है। हरिदासों ने कन्नड में वैष्णव भक्ति का आंदोलन चलाया। उनकी प्रतिपाद्य वस्तु, क्षेत्रस्थ देवताओं की स्तुति, तार-तम्य, जगत् का सत्यत्व, हरिदासों द्वारा वर्णित कृष्णभक्ति का स्वरूप, उनके पदों की गेयता, उनके द्वारा संपन्न समाज-सुधार आदि का गंभीर विवेचन है। कर्णाटक संस्कृति को उनकी देन, भारतीय संस्कृति में उनका योगदान, आदि पर भी कई तथ्य मिलते हैं। कर्णाटक के हरिदासों का इतना गंभीर एवं व्यापक अध्ययन अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रंथ-कार ने कई अप्रकाशित ग्रंथों का भी उपयोग किया है। आधुनिक युग में वेदव्यासाचार्य जी के इस प्रयत्न में संस्कृत एवं कन्नड दोनों के वैदुष्य और स्वारस्य का समन्वय परि-लक्षित होता है।

कर्णिक, मधुमंगेश *(म० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

इनका जन्म रत्नगिरी जिले के कणकवली नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने केवल मैट्रिक परीक्षा पास की थी। आजकल ये महाराष्ट्र स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन में नौकरी करते हैं।

ये स्वातंत्र्योत्तर काल के बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। 'कोकणी ग वस्ती', 'पारक', 'गुंजा', 'डोलकाठी', 'भईचाफा', 'मांडव' आदि इनके लघु कथा-संग्रह हैं। 'माहीमची खाडी' औपन्यासिक शैली का कथा-संग्रह है जिसमें झोंपड़ियों में रहने वाले दलित वर्ग का यथार्थ बीभत्स चित्रण है। इस कथा-संग्रह पर महाराष्ट्र राज्य ने इन्हें पुरस्कार प्रदान किया था। 'सूर्यफूल' और 'देवकी' उपन्यास हैं तथा 'देवकी' नामक नाटक भी है। 'लागेबांधे' में व्यक्तियों के रेखाचित्र हैं।

कर्पियल् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य अहम् और पुरम् नामक दो भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः जीवन के आंत-रिक और बाह्य पक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। अहम् साहित्य में कलवु—विवाह पूर्व उत्पन्न प्रेम, और कर्पु—दांपत्य जीवन, का वर्णन भी प्राप्त होता है। कर्पु से तात्पर्य है वैवाहिक जीवन। परस्पर एक दूसरे में अनुरक्त, कुल, आयु, गुण, रूप, धन आदि की दृष्टि से समान नायक-नायिका के स्वयं विवाह कर लेने पर अथवा माता-पिता द्वारा उनका विवाह कर दिये जाने पर उनके दांपत्य जीवन का आरंभ होता है। दांपत्य जीवन में पदार्पण करने के लिए विवाह आवश्यक समझा गया है। साहित्य में दांपत्य जीवन के दो रूप वर्णित हैं। कळविन् वळि वंद कर्पु—विवाह-पूर्व प्रेम, विवाह और दांपत्य जीवन का आरंभ। कळविन् वळि वारा कर्पु—विवाह के उपरांत प्रेममय दांपत्य जीवन का आरंभ। साहित्यकारों ने दांपत्य जीवन का वर्णन करते हुए नायक-नायिका के संयोग, वियोग, मान आदि का वर्णन किया है। नायक-नायिका के वियोग के अनेक कारण हैं; जैसे—शत्रु द्वारा देश पर आक्रमण, नायक द्वारा शत्रु-देश पर आक्रमण, नायक का राजदूत बनकर जाना, जीविको-पार्जन के लिए परदेश-गमन, नायक की वेश्या या परनारी में अनुरक्ति, आदि। साहित्यकारों ने कुल-नारी को सदा पतिव्रता के रूप में चित्रित किया है। माता-पिता और कुल वृद्धों के इच्छानुसार किये जाने वाले विवाह और विवाह-परवर्ती दांपत्य जीवन का वर्णन भी 'कर्पु' के अन्त-र्गत आता है। कर्पु की चर्चा करते हुए साहित्यकारों ने शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति और आदर्श गृहस्थ-जीवन-यापन के उपाय भी बताए हैं।

'कर्पूरमंजरी' *(सं० कृ०)* [समय—दसवीं शताब्दी]

'कर्पूरमंजरी' संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार तथा काव्यशास्त्रकार राजशेखर (दे०) की महत्वपूर्ण कृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी रचना प्राकृत भाषा में हुई है। इस सट्टक में भैरवानंद नामक तांत्रिक की तंत्रविद्या के चमत्कार तथा अनिन्द्य सुंदरी कर्पूरमंजरी की प्रणयगाथा एवं उस समय के एक राजा के अंत:पुर की अठखेलियों का वर्णन है। अनेक व्यवधानों के बाद राजा भैरवानंद की तंत्रविद्या की सहायता से घनसार मंजरी के रूप में कर्पूरमंजरी को प्राप्त कर लेता है।

कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में राजशेखर अपने को सर्वभाषाचतुर (सव्वभासा चउरो) मानते हैं। वे कहते हैं कि पुरुष की भाँति परुष संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत नारी की भाँति सुकुमार है। इसीलिए उन्होंने प्रस्तुत कृति में इसे अपना माध्यम बनाया है। राजशेखर छंदों के बड़े कलात्मक एवं विविध प्रयोग करते हैं। कर्पूरमंजरी के कुल 144 छंदों में 17 प्रकार के छंद हैं। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। उनको शब्दों का ऐन्द्रजालिक कहें तो अत्युक्ति न होगी। वे विविध जनभाषाओं के शब्दों का प्रयोग कर्पूरमंजरी में स्वच्छंदतापूर्वक करते हैं पर कहीं-कहीं शौरसेनी तथा मराठी में ठीक-ठीक भेद नहीं कर पाते। 'कर्पूरमंजरी' में राजशेखर की अभिव्यंजना-शक्ति विलक्षण है।

कर्पूरमंजरी में पात्रों के चयन में तो वैविध्य है, पर कहीं-कहीं उनके पात्र शिथिल हैं। कहीं-कहीं अभिनय-दोष भी है। खास तौर से पात्रों का प्रवेश तथा निष्क्रमण इतना अव्यवस्थित एवं अनियोजित है कि उसे मंचायित करने में कठिनाई हो सकती है।

कर्पूरवसंतरायलु (*ते० कृ०*) [कृतिकार—सी० नारायण रेड्डी (दे०), रचना-काल—1958 ई०]

नारायण रेड्डी तेलुगु के प्रमुख युवक कवियों में से हैं। ये मुख्य रूप से प्रणय एवं श्रृंगार के कवि हैं तथा आंध्र के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृत के प्रति विशेष रूप से अनुराग रखने वाले हैं। 'कर्पुरवसंतरायलु' इनका एक लघु प्रबंध-काव्य है जिसमें इन्होंने आंध्र के एक विख्यात शासक 'कर्पूरवसंतरायलु' की प्रणयकथा का वर्णन अत्यंत मधुर एवं प्रभावशाली शैली में किया है। इसमें तत्कालीन आंध्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुंदर प्रतिपादन हुआ है। ये मुख्य रूप से गेय कवि हैं। अतः इस काव्य की रचना इन्होंने शास्त्रीय छंदों में न करके मात्रा, लय एवं ताल के नियमों से आबद्ध गेय रूप में की है। प्रणय-काव्यों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

कर्म (*पा० पारि०*)

अन्य भारतीय विचारधाराओं की भाँति बौद्ध धर्म में भी कर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म के सापेक्षिक कारणतावाद के अनुसार वर्तमान जीवन अतीत का कार्य और भविष्य का कारण है। कर्म दो प्रकार का होता है—कुशल और अकुशल। जिस प्रकार यज्ञ में प्रयोज्य कुश अविधि प्रयोग करने पर प्रयोक्ता के हाथों को दोनों ओर से काट देते हैं तथा विधिपूर्वक प्रयोग करने पर ठीक स्थान पर काटने का काम करते हैं, उसी प्रकार कुशल कर्म ठीक रूप में किये जाने पर क्लेशों और बुरी इच्छाओं को भी काटते हैं और सत्ता को काटकर मोक्ष प्रदान करते हैं। अकुशल कर्म दो प्रकार के होते हैं—वस्तुकाम और क्लेशकाम। वस्तुकाम में पाँचों इन्द्रियों के विषयों की कामना सन्निहित रहती है; इसलिए इसे पाँच प्रकार का माना जाता है। वस्तुकामकर्मा में वस्तु की आसक्ति का भाव होता है जबकि क्लेशकामकर्मा में सत्ता की आसक्ति का भाव रहता है। दोनों प्रकार के अकुशल कर्म मिलकर कायावचर कर्म कहलाते हैं। बौद्ध धर्म में कायावचर कर्मों की 11 अवस्थाएँ बतलाई गई हैं। कुशल और अकुशल से भिन्न कर्म अव्याकृत कर्म कहलाते हैं।

कर्वे, इरावती (*म० ले०*) [जन्म—1905 ई०]

इनका जन्म ब्रह्मदेश में हुआ था। इन्होंने बर्लिन से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इनके प्रबंध का विषय 'समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र' पर आधारित था। इन्होंने प्राणिशास्त्र, तत्त्वज्ञान तथा संस्कृत भाषा में प्रावीण्य पाया है। सन् 1926 में इनका पाणिग्रहण संस्कार डा० दिनकर घोंडो कर्वे से हुआ था। सन् 1931 में ये ठाकरसी महिला विद्यापीठ की रजिस्ट्रार थीं और सन् 1939 में पूना के डेक्कन कॉलेज के पोस्ट-ग्रेजुएट इंस्टिट्यूट में समाज तथा मानवशास्त्र-विभाग में रीडर के पद पर थीं।

सन् 1949 ई० में प्रकाशित इनका 'परिपूर्ति' नामक लघु निबंधों का संग्रह है। इस संग्रह के प्रकाशन के साथ इन्होंने साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था और इनका यह पहला क़दम ही अत्यंत प्रबल एवं पटु रहा। इन निबंधों में व्यक्त भावनाएँ संयत हैं और विचार समाजशास्त्र के अध्ययन से परिष्कृत हैं।

'मराठी लोकांची संस्कृति' नामक इनके अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ में महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

कर्‌हेचे पाणी *(म० कृ०)*

आचार्य प्र० के० अत्रे (दे०) ने 'कर्‌हेचे पाणी' शीर्षक से सात-आठ खंडों में बृहद् आत्मकथा लिखने का निश्चय किया था। पहला खंड 1963 ई० में प्रकाशित हुआ था तथा दूसरा 1964 में। इन दो खंडों के प्रकाशन के उपरांत कुछ ही वर्षों में अत्रे जी का देहांत हो गया जिससे आत्मकथा-लेखन का यह स्तुत्य प्रयास अधूरा ही रह गया।

सन् 1953 में इन्होंने 'मी कसा झालों' शीर्षक आत्मचरित लिखा था जिसमें इनके जीवन के किन्हीं गिने-चुने पहलुओं एवं घटनाओं का वर्णन है। 'कर्‌हेचे पाणी' आत्मचरित में अपने कुल का प्रारंभ देकर, अपने बाल्यकाल, विद्यालय एवं महाविद्यालय की अपनी शिक्षा तथा व्यावसायिक जीवन का सर्वांगपूर्ण निवेदन करने की इनकी योजना थी।

प्रकाशित दोनों खंड स्वतंत्र रूप से लगभग 400 पृष्ठों में हैं। पहले खंड में प्रारंभिक तीस वर्षों का इतिहास है और दूसरे खंड में अगले दस वर्षों का। इनकी लेखन-शैली विनोदी, भावपूर्ण तथा प्रसन्न है।

कलं आजि ओ बय *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०, ले०—वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य (दे०)]

उपन्यास-शैली में लिखी इस लंबी कहानी में कलं नदी के तटवासी मानवों के अनवरत संघर्ष और उनकी वेदना की गाथा है। नदी, रोग तथा अन्य प्राकृतिक विनाशों के कारण ठगीराम आदि ग्रामवासी विद्रोह कर देते हैं। अनेक गोली के शिकार होते हैं, कई गिरफ़्तार कर लिए जाते हैं। स्वतंत्रता मिलती है, किंतु आर्थिक कठिनाइयाँ पहले के ही समान रहती हैं। नदी बहती रहती है और इसी प्रकार मानव-जीवन भी प्रवाहित होता रहता है।

कलंबकम् *(त० पारि०)*

'कलंबकम्' तमिल में प्राप्त एक साहित्य-विधा है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'विभिन्न पुष्पों से गूँथी गई माला'। 'कलंबकम्' में साहित्यिक और लोक-गीतों की शैली का मिश्रण पाया जाता है। इस शैली में रचित प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—नंदिकलंबकम् (दे), तिरुक्कलंबकम्, तिल्लैक्कलंबकम्, मुदुरै कलंबकम्, नाकैक्कलंबकम्, सिरुवरंग कलंबकम, आदि। आरंभ में कवियों ने कलंबकम् की रचना साहित्यिक और लोक-गीतों की शैली का मिश्रण करने की दृष्टि से की थी। बाद में इस विधा के प्रचलित हो जाने पर भक्तों ने अपने इष्टदेव की महिमा का गान करने के लिए इस विधा का उपयोग किया। इस विधा में रचित सर्वप्रसिद्ध कृति 'नंदिकलंबकम्' (दे०) है।

कलभाषिणी *(ते० पा०)*

यह पिंगळिसूरना (दे०) के प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) का एक प्रमुख पात्र है। पिंगळिसूरना की अद्भुत कथा-कल्पना-शक्ति इस युग के किसी कवि में नहीं मिलती। इसमें कलभाषिणी सहज सुंदरी, संगीत-नृत्यादि कलाओं में निपुण, प्रेम-लोलुप एवं त्यागशील एक विलक्षण वेश्या है। वह सम्मोहक गान-विद्या में पारंगत एवं कवि मणिकंधर में तीव्र रूप से अनुरक्त होकर उससे सांगत्य-सुख पाने के लिए लालायित रहती है। फिर भी बीच ही में नलकूबर के अलौकिक सौंदर्य को देखकर उस के प्रति भी कलभाषिणी में प्रबल कामना जागृत हो जाती है। नारद द्वारा प्राप्त कामरूप-धारण-शक्ति से वह नलकूबर की प्रेयसी रंभा के रूप में उसका सामीप्य पाती है। परंतु बेचारी का दुर्भाग्य, और विधि का परिहास! वह नलकूबर के रूप में उसका पुराना प्रेमी मणिकंधर ही निकलता है। मणिकंधर इस प्रकार कलभाषिणी की मनोकामना को विफल करता है और स्वयं नलकूबर के रूप में रंभा से सुख भोगता है। फिर भी कलभाषिणी यह सब सह लेती है। वह रंभा से ईर्ष्या नहीं करती, न उसकी निंदा ही करती है। वह नलकूबर को रंभा के लिए त्याग भी देती है। अंत में नलकूबर के प्रति अपने प्रेम को भी त्यागकर भावी जन्मों में उसे पाने की आशा करती है। मणिस्तंभ के भाग्योदय के लिए अपना सिर कटवाने को निर्भयतापूर्वक तैयार होकर वह त्यागशीलता का भी परिचय देती है।

कलभाषिणी पिंगळिसूरना की एक विचित्र सृष्टि है। वह मानव-मनोविज्ञान में कवि की अंतर्दृष्टि की परिचायक भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलम का सिपाही *(हिं० कृ०)* [लेखक—अमृतराय; प्रकाशन-वर्ष 1968 ई०]

प्रस्तुत कृति में प्रेमचंद (दे०) के सुपुत्र अमृतराय ने पिता-पुत्र के संबंध को यथासंभव बचाते हुए अत्यंत तटस्थतापूर्वक प्रेमचंद-विषयक पत्रों, संस्मरणों तथा युगीन संदर्भों के परिवेश में प्रामाणिक तथ्यों और विवरणों के आधार पर मुहावरेदार व प्रवाहपूर्ण भाषा तथा संस्मणात्मक-रेखाचित्रपरक शैली में प्रेमचंद के जीवन और युग का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। जीवनी लिखते समय लेखक ने स्थूल प्रत्यंकन के स्थान पर विशृंखलित सूत्रों के संधान तथा संयोजन द्वारा प्रेमचंद के जीवन के पुनः सृजन का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है। इस कृति का महत्व केवल इस दृष्टि से ही नहीं है कि इसके माध्यम से हमें प्रेमचंद की रचना-प्रक्रिया, उनके भावनात्मक विकास एवं वैचारिकता को सोचने-समझने में सहायता मिलती है अपितु इसलिए भी है कि इसमें प्रेमचंदयुगीन भारत की राष्ट्रव्यापी हलचल का सप्राण प्रत्यंकन है।

कलम दी करामात *(पं० कृ०)*

डा० बलवीर सिंह (दे०) रचित 'कलम दी करामात' में विभिन्न अवसरों पर लिखे गये आलोचनात्मक लेख, रेडियो-वार्ताएँ और भाषण संगृहीत हैं। सिख इतिहास, आध्यात्मिक कविता, साहित्य-दर्शन, कलाशास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर लिखे गये इन लेखों का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। पंजाबी की रोमांचक कविता के अतिरिक्त इस रचना में सिख गुरु-काव्य, सूफ़ी-काव्य और भाई वीर सिंह (दे०) के काव्य की भी, विशाल पृष्ठभूमि देकर, समीक्षा की गई है। 'भाई वीर सिंह के काव्य में कुदरत' शीर्षक लेख में पश्चिमी रोमांचक प्रकृति-काव्य के संदर्भों को दृष्टि में रखते हुए वीर सिंह के प्रकृति-काव्य का महत्व निरूपित किया गया है। गुरु नानक (दे०) की कविता के दार्शनिक और सामाजिक पक्ष को भी विशाल परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत स्थापित कर देखने का यत्न किया गया है। विचारों की स्पष्टता, गहन विद्वत्ता तथा सूक्ष्म दार्शनिक बिंदुओं की गंभीर व्याख्या इन लेखों के उल्लेखनीय गुण हैं।

कळवियल् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य 'अहम्' और 'पुरम्' नामक दो भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः जीवन के आंतरिक और बाह्य पक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। अहम् साहित्य में कलवु—विवाह-पूर्व प्रेम; और कर्पु—दाम्पत्य जीवन का वर्णन भी प्राप्त होता है। 'कलवु' का शाब्दिक अर्थ है चोरी। नायक-नायिका का बिना माता-पिता की अनुमति के चोरी-छिपे एक दूसरे से मिलन, प्रेमोदय, प्रेम का विकास आदि कलवु के अंतर्गत आते हैं। प्राचीन तमिल समाज में इस स्वच्छंद प्रेम को अनुचित नहीं समझा गया क्योंकि परस्पर एक-दूसरे में अनुरक्त नायक-नायिका प्रायः विवाह-सूत्र में बँध जाया करते थे। कलवु की चार अवस्थाएँ हैं। समान प्रेम वाले नायक-नायिका का दैववशात् एक-दूसरे से मिलन 'इयर्कै पुणर्च्चि' कहलाता है। एक बार मिलने के उपरांत दोनों के मन में पुनर्मिलन की इच्छा जागृत होती है। उनका यह पुनर्मिलन 'इडंतलैप्पाडु' कहलाता है। कभी-कभी नायक-नायिका स्वयमेव एक-दूसरे से नहीं मिल पाते तब वे अपने सखा या सखी की सहायता से एक-दूसरे से मिलते हैं। सखा की सहायता से संपन्न उनका मिलन 'पांगर्कूट्टम' और सखी की सहायता से संपन्न मिलन 'पांगियर्कूट्टम' कहलाता है। नायक-नायिका के प्रेम के विकास में इन चारों अवस्थाओं का होना आवश्यक नहीं। जब परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका का स्वयमेव मिलन या पुनर्मिलन संभव नहीं होता तो वे अपने सखा या सखी की सहायता से एक-दूसरे से मिलते हैं और उनका प्रेम विकसित होता है। इस प्रकार नायक-नायिका के प्रेम-विकास में नायक के सखा और नायिका की सखी का विशेष योगदान रहता है।

कळसा चउतिशा *(उ० कृ०)*

उपलब्ध चउतिशाओं (दे० चउतिशा) में बच्छादास (दे०)-कृत 'कळसा चउतिशा' प्राचीनतम है। मादळापांजी (दे०) के समान यह भी विवादास्पद है। सारळादास के महाभारत (दे० सारळामहाभारत) में इसका उल्लेख हुआ है।

यह 'रुद्रसुधानिधि' (दे०) एवं 'सोमनाथ व्रत-कथा' के समान शैव काव्य है। इसकी भाषा उड़िया है तथा अंगीरस हास्य है। इसका विषय है वृद्ध शिव का हिमवंत-नंदिनी सुंदरी उमा के साथ विवाह।

वस्तुतः यह जातीय साहित्य के प्रारंभ का सूचक है। छोटे-छोटे वैयक्तिक दुःख-सुख की इसमें अभिव्यक्ति हुई है। इसका राग निर्दिष्ट नहीं है। परवर्ती युग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका पर्याप्त अनुकरण हुआ तथा इसमें प्रयुक्त राग को कळसा-राग कहा गया। कळसा-राग की अनेक कविताएँ उड़िया साहित्य में मिलती हैं।

गौरी को विवाह-योग्य समझकर हिमवंत शिव के साथ उनका विवाह निश्चित करते हैं। शिव वृद्ध के छद्मवेश में आते हैं। उन्हें विवाह-मंडप पर देखकर सभी का मन फीका पड़ जाता है। उमा, उनकी सखियाँ, उनकी माँ सभी क्रंदन करने लगती हैं। सभी हिमवंत को दोषी ठहराती हैं। हिमवंत के बहुत समझाने के बाद विवाह होता है। शिव छद्मवेश का परित्याग कर देते हैं। सभी को संतोष होता है।

इसमें जिन भावों का निरूपण हुआ है, वे उड़िया जातीय जीवन के चिरपरिचित भाव हैं। इसकी भाषा सरल एवं लोक-प्रचलित है।

कला *(हिं० पारि०)*

'कला' शब्द का मौलिक अर्थ है कौशल अथवा हुनर : किसी कार्य के निष्पादन में मनुष्य द्वारा व्यवहृत एवं प्रदर्शित दक्षता, प्रवीणता अथवा विशेषज्ञता, जिसकी प्राप्ति अभ्यास, अध्ययन, पर्यवेक्षण और प्रशिक्षण से होती है। पश्चिम में काव्य, नाट्य, संगीत, चित्र, मूर्ति-शिल्प और स्थापत्य के साथ ही वक्तृता आदि को भी कलाओं में समाविष्ट किया जाता है। प्राचीन भारतीय दृष्टि के अनुसार कला एक हीनतर विद्या या उपविद्या है, जिसकी सर्जना प्रशिक्षण और अभ्यास के आधार पर मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से की जाती है। उसमें प्रतिभा (दे०) और कल्पना (दे०) का योग नहीं रहता। पश्चिम में भी अठारहवीं शताब्दी तक कला को लगभग इसी अर्थ में मान्यता प्राप्त थी। किंतु अपने आधुनिक अर्थ में 'कला' मानवीय अनुभूति के सूक्ष्मतम रूपों, प्रगाढ़ जीवनानुभूति और उत्कृष्ट भावबोध की सुंदर अभिव्यक्ति है, जिसकी प्रक्रिया में प्रातिभ सर्जनात्मकता तथा स्वरूप में सौंदर्यानुभूति का अनिवार्य योग रहता है। कलास्वाद रसानुभूति (दे० 'रस') और आत्मास्वाद के समतुल्य है। इसका प्रयोग आनंद और सौंदर्य की सृष्टि है।

सृजन से लेकर उसके आस्वादन तक 'कला' की समस्त प्रक्रिया आनंद और सौंदर्यानुभूति से तरंगायित रहती है। यह स्रष्टा के अंतर्मन के संवेगों-संवेदनों, विचारों-कल्पनाओं के अभिमूर्त्तन और बिंबन की प्रक्रिया है जिसके संख्यातीत माध्यम हो सकते हैं : शब्द-अर्थ (काव्य), रेखा-रंग (चित्र), स्वर (संगीत), मंच (नाट्य) और प्रस्तर-खंड (मूर्ति) आदि। यह मूलतः आत्माभिव्यक्ति है।

'कला' के प्रयोजन को लेकर उसके जीवन-संदर्भ और जीवनोपयोग के विषय में सदा से ही संदेह प्रकट किये जाते रहे हैं। इससे दो अतिवादों का जन्म हुआ है—एक है कला को जीवन से असंपृक्त शुद्ध कल्पना-प्रसूत सूक्ष्म-अमूर्त मानसिकता मान लेने की प्रवृत्ति का प्रचलन और दूसरे कलात्मक सृजन में 'भावपक्ष' और संवेद्य से पृथक् एवं स्वतंत्र 'कलापक्ष' कल्पित करने की भ्रांति का जन्म। वास्तव में यह न तो जीवन-निरपेक्ष है और न जीवनातीत।

'कला' के दो वर्ग किये गये हैं : ललित कला और उपयोगी कला। ललित कलाओं में कलाकार की प्रतिभा से युक्त सर्जनात्मकता और कल्पना-शक्ति का योग रहता है। वे एक प्रकार से शुद्ध सौंदर्यकर्म हैं। उपयोगी कलाएँ जीवन के व्यवहार-पक्ष से प्रत्यक्षतः संबद्ध होती हैं। जीवन के लिए सुख-सुविधा का उपार्जन ही इनका मुख्य प्रयोजन है। वे भी, यद्यपि अपने स्रष्टा की प्रतिभा और कल्पना से सर्वथा रिक्त नहीं होतीं, तथापि वे अभ्यास पर अधिक अवलंबित होती हैं। ललित कलाओं के अंतर्गत काव्य, संगीत, वास्तु, स्थापत्य, मूर्ति, चित्र और नाट्य को समाविष्ट किया जाता है और उपयोगी कलाओं में भवन-निर्माण और पाक-विद्या से लेकर फ़र्नीचर बनाने तक के सभी व्यापार आ जाते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा में वर्णित चौंसठ कलाओं में से अधिकांश उपयोगी कलाएँ ही हैं।

कलापमु *(ते० पारि०)*

आंध्र का एक प्रकार का नृत्य-रूपक ही 'कलापमु' के नाम से प्रसिद्ध है। सत्रहवीं शताब्दी ई० में विद्यमान सिद्धेंद्र योगी इसके प्रवर्तक थे। इनका नृत्य-प्रदर्शन देखकर गोलकोंडा के बादशाह ने कूचिपूडि नामक एक गाँव इन्हें पुरस्कार के रूप में दिया था। तब से सिद्धेंद्र योगी तथा उनके अनुयायियों के ये प्रदर्शन 'कूचिपूडि भागवतमु' के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'कलापमु' नामक यह नृत्य-रूपक 'भामा-कलापमु' तथा 'गोल्लकलापमु' के नाम से दो प्रकार का होता है। 'भामाकलापमु' में भरतनाट्य-संबंधी शास्त्रीय नियमों का अनुसरण किया जाता है। इसमें भामा शब्द का अर्थ सत्यभामा है। इसका कथानक पारिजात की कथा से संबद्ध है। नारद स्वर्ग से पारिजात का कुसुम लाकर कृष्ण को देते हैं। कृष्ण भी उसे पास बैठी हुई रुक्मिणी को दे देते हैं। यही मानिनी सत्यभामा के क्रोध का कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन जाता है। सत्यभामा का विरह, स्वप्न-प्रसंग, सखियों से दुःख-निवेदन, नायक के पास सखी को भेजना तथा बाद में सपत्नी रुक्मिणी के साथ झगड़ा आदि इसमें प्रधान हैं। इसमें तीन ही पात्र होते हैं—नायक, नायिका तथा सखी। रचना शृंगार-प्रधान है। 'भामाकलापमु' की अपेक्षा 'गोल्लकलापमु' कुछ अर्वाचीन है। 'गोल्लकलापमु' दो प्रकार का होता है। एक में गोपी (ग्वालिन) पात्र के द्वारा पिंडोत्पत्ति से लेकर अनेक दार्शनिक विषयों का विवरण दिया जाता है तथा दूसरे में समुद्र-मंथन की कथा पाई जाती है। इसमें 'सुंकरि कोंडडु' नामक पात्र के द्वारा हास्य-रस का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है।

वीथि भागवतमु तथा यक्षगानमु (दे०) के रूप में प्रचलित देशी अभिनय-रूपों में भरत-नाट्य संबंधी शास्त्रीय पद्धतियों का समावेश करके सिद्धेंद्र योगी ने 'कलापमु' की सृष्टि की थी। उस समय से लेकर इन प्रदर्शनों का स्तर ऊँचा होने लगा तथा इनकी रचना प्रौढ़ होने लगी। 'भामाकलापमु' भरत-विद्या के तथा 'गोल्लकलापमु' षट्-शास्त्रों के आकर होते हैं। कुछ परिवर्तन होने पर भी 'यक्षगान' में प्रयुक्त देशी छंद, कथोपकथन आदि 'भामा-कलापमु' में भी प्रयुक्त होते हैं। अंतर यह है कि अधिकतर साधारण जनता के बीच प्रचलित प्रदर्शन-रूपों को इन में शास्त्रानुगामी तथा नियमबद्ध बना दिया गया। स्वरूप तथा स्वभाव की दृष्टि से 'कलापमु' को केवल साधारण देशी-अभिनय तथा पूर्ण रूप से शास्त्रानुगामी रूपक के बीच रखा जा सकता है।

प्रदर्शन की दृष्टि से 'भामाकलामु' में भामा' (सत्यभामा) की भूमिका अत्यंत आकर्षण तथा महत्व की होती है। एक पुरुष ही इस स्त्री-पात्र की भूमिका का निर्वाह करता है। यह 'माधवी' नाम से प्रसिद्ध है। वैसे ही 'गोल्लकलापमु' में 'सुंकरि कोंडडु' नामक हास्य-पोषक पात्र अत्यंत लोकप्रिय रहता है। प्रदर्शन-संबंधी लोकप्रियता के साथ-साथ शास्त्रानुगामी होने के कारण 'कलापमु' नामक यह नृत्य-रूपक साहित्य-क्षेत्र में भी गणनीय स्थान प्राप्त कर चुका है।

कलापी (गु० ले०) [समय—1874-1900 ई०]

'कलापी' का पूरा नाम सुरसिंह जी तख्तसिंह जी गोहेल था। वे सौराष्ट्र के अंतर्गत लाठी नामक छोटे-से राज्य के राज-परिवार में पैदा हुए थे। अठारह वर्ष की आयु में उन्होंने काव्य-सर्जना की। 1889 ई० में उन्होंने राजकुमारी रमा के साथ विवाह किया जिसके साथ शोभना नाम की एक दासी भी आई। कलापी उसके सौंदर्य पर मुग्ध हुए और धीरे-धीरे उसके साथ प्रणय-संबंध में बँध गये। इस प्रणय-त्रिकोण ने कलापी के जीवन में भीषण संघर्ष और तीव्र मनोमंथन पैदा किया जिसे इन्होंने 'हृदय-त्रिपुटी' कविता में शब्दबद्ध किया है। इसमें कवि का 'भावप्रवाह स्वाभाविक स्रोत में प्रवहमान' है। आठ-नौ वर्ष की कठोर यातना के परिपाक-रूप उनका 'कलापीनो केकारव' (दे०) (1903) प्रकाशित हुआ। इस प्रणयाकांक्षी कवि के 'केकारव' में 'हृदय के अपक्व-अर्द्धपक्व स्नेहोद्‌गार' हैं। 'काश्मीर नो प्रवास', 'मालामुद्रिका', 'हमीरजी गोहेल', 'कलापीनी पत्र-धारा' (दे०) इत्यादि कवि कलापी की अन्य कृतियाँ हैं।

इस कवि पर वर्ड्सवर्थ और शेली का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है। 'केकारव' की कतिपय रचनाओं में इन दोनों अँग्रेज़ी कवियों के प्रकृति-वर्णनों की छाप है। कलापी के प्रकृति-काव्यों में से कुछ आध्यात्मिकता एवं रहस्यात्मकता के तत्त्वों से ओतप्रोत हैं। 'बिल्व-मंगल','भरत', 'महात्मा मूलदास', 'वीणानो मृग', 'कन्या अने क्रौंच' इत्यादि इनके प्रभावशाली खंडकाव्य हैं। कलापी प्रधानतः वियोग के गायक हैं। इनके पद्यात्मक प्रेमोद्‌गार गुजरात के शिक्षित वर्ग में बहुत लोकप्रिय हैं।

कलापीनी पत्रधारा (गु० कृ०)

गुजराती के रोमानी व प्रणय-कवि 'कलापी' (दे०) (लाठी नरेश सुरसिंह जी तख्तसिंह जी गोहेल) द्वारा लिखे गये अनेक पत्रों में से 535 पत्र उनके पुत्र जोरावरसिंह जी की संक्षिप्त प्रस्तावना सहित सन् 1931 ई० में प्रथम बार 'कलापीनी पत्रधारा' (दे०) नाम से प्रकाशित हुए। ये पत्र जिन्हें लिखे गये हैं वे व्यक्ति हैं—

सर्वश्री मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, शोभना (उनकी प्रेमिका), उनकी रानी, उनकी दूसरी रानी रमा, वाजसुरवाला, रूपशंकर ओझा, सरदारसिंह, आनंदराय देव, जन्म ांकर बुच, गोवर्द्धनराम त्रिपाठी (दे०), गिरधरदास देसाई, कैप्टन ओल्डफ़ील्ड, हरिशंकर पंड्या, विजयसिंह, मोरबी-नरेश।

पत्नियों, प्रेमिकाओं, मित्रों, सगे-संबंधियों; साहित्यकारों आदि को लिखे गये इन पत्रों में कलापी के व्यक्तित्व के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। गुरु-प्रेम, पत्नी-प्रेम, प्रेमिका के प्रति अपूर्व स्नेह; साहित्य व अध्यात्म-प्रेम; मित्र के प्रति सच्ची ममता, अँग्रेज़ी के वर्ड्सवर्थ, टेनिसन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेली, कीट्स तथा संस्कृत के समर्थ कवि कालिदास, भवभूति आदि की कृतियों के प्रति अगाध आदर व निष्ठा से ये पत्र ओतप्रोत हैं।

अनन्य प्रणयी, मस्त कवि, सौजन्यशील पति, सन्मित्र, सच्चे साहित्य-प्रेमी व सेवी—ये कलापी के व्यक्तित्व के कुछ रूप हैं जो इन पत्रों में उभर कर आते हैं। गुजराती पत्र-साहित्य की यह अमूल्य निधि हैं।

कलापीनो केकारव *(गु० कृ०)*

इसके रचयिता कलापी (दे०) का वास्तविक नाम श्री सुरसिंह तख्तसिंह गोहेल है और उनका समय है 1874-1900 ई०। कवि लाठी नाम की रियासत के राजा थे। इनकी इस पुस्तक का प्रकाशन 1924 ई० में हुआ। कलापी के काव्य ने गुजराती कविता को रोमानी तत्त्व दिया। कलापी का जीवन अत्यंत करुण जीवन था, और उनकी करुणा का विषय उनका प्रणय था। उन पर सूफ़ीवाद का प्रभाव भी विशेष था। करुण-कोमल भावों का निरूपण कवि ने अत्यंत रोचक ढंग से किया है। कवि का काव्य प्रणय और भक्ति दोनों भागों में बाँटा जा सकता है। ग़ज़ल कवि की अत्यंत प्रिय काव्य-विधा है। उनके भक्ति-काव्यों पर सूफ़ीवाद का गहरा प्रभाव है। प्रणय-काव्यों में प्रणय-त्रिकोण का निरूपण है। कोमल भावों का निरूपण कवि की विशेषता है। निराशा, अवसाद, कुंठा इत्यादि भाव कवि ने रोचकता के साथ निरूपित किये हैं।

कलापूर्णोदयमु *(ते० कृ०)* [ले०—पिंगळिसूरना (दे०) रचना-काल—1550 ई०]

यह काव्य आंध्र-जनता द्वारा अत्यंत समादृत हुआ है। इसमें कवि की अपूर्व कथा-कल्पना का चमत्कार विशेष रूप से द्रष्टव्य है। प्रबंध काव्य के लिए स्वतंत्र और मौलिक कथा की सृष्टि करने वाले ये सर्वप्रथम कवि थे। इस कारण से इस काव्य को 'कृत्रिम रत्न' होने का आक्षेप भी सहना पड़ा। यह आठ सर्गों का एक अद्भुत काव्य है जिसमें श्रृंगारिक जीवन के अनेक पहलुओं का चित्रण किया गया है। कलभाषिणी (दे०) नामक वेश्या तथा मणिकंधर का प्रणय इसकी मूल कथा-वस्तु है। कलभाषिणी के रूप में कवि ने तेलुगु साहित्य में एक विशिष्ट पात्र की सृष्टि की है। इस काव्य का श्रृंगार शास्त्र-निर्दिष्ट नियमों का अनुसरण करने वाला नहीं, संसार में सहज रूप से साक्षात् दिखाई देने वाला है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि श्रृंगार रस की उत्पत्ति ब्रह्मलोक में ब्रह्मा और सरस्वती की हृदय-लीलाओं में हुई है, और वह अमृतरस का प्रवाह उस दिव्यलोक से निकलकर गंधर्वलोक, मर्त्यलोक, तथा पाताललोक तक प्रवाहित होता हुआ उन लोकों के स्वभाव तथा आलंबन के अनुरूप पवित्रता एवं स्वाद की दृष्टि से परिवर्तित होता है और अंत में कलुषित भी हो जाता है। इस प्रकार वासनाहीन दिव्य लीला से राक्षस कामभोग तक की अवस्थाएँ इस काव्य में चित्रित हुई हैं।

पाठक को सदा उत्कंठित रखती हुई, पात्रों के वश में रहकर विकसित होने वाली कथा, पात्रोचित भाषा, मनोहर कथा-प्रसंग आदि अनेक गुणों से युक्त होकर यह काव्य 'कला की परिपूर्णता' के रूप में प्रकट हुआ है। कथाकथन में कवि ने परंपरागत काल-क्रम की पद्धति का अनुसरण नहीं किया है। आधुनिक उपन्यास के समान कार्य-कारण-पद्धति का अनुसरण करके कथा के मध्य वृत्तांत से कवि ने इस काव्य का आरंभ किया है। तेलुगु साहित्य की यह एक अमर कृति है।

कलावती *(त० कृ०)* [रचना-काल—1957 ई०]

सूर्यनारायण शास्त्री (दे०)-कृत इस नाटक में चोळ राजकुमारी कलावती की कथा वर्णित है। इस नाटक के सभी पात्र काल्पनिक हैं परंतु वातावरण ऐतिहासिक है। मूलतः गद्य में रचित इस नाटक में बीच-बीच में पद्यों का समावेश किया गया है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य-शैलियों का समन्वय दृष्टिगत होता है। चंद्रोपालंभ, वसंत-वर्णन आदि भारतीय काव्य-रूढ़ियों का भी प्रयोग किया गया है। चरित्रों के स्वाभाविक विकास, पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग आदि के कारण यह नाटक प्रभावशाली बन पड़ा है।

कळा संस्कृति ओ साहित्य *(उ० कृ०)*

इसमें वैष्णव चारण सामल के कला, संस्कृति और साहित्य से संबंधित उन्नीस समीक्षात्मक निबंधों का संकलन है। लेखक ने वर्ण्य-विषय का विवेचन समग्रता एवं गहराई से किया है। मुख्य रूप से तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। जहाँ भी आवश्यकतानुसार वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है वह स्मरणीय है और विषयवस्तु का परिचय रोचक ढंग से देती है। भाषा सुबोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं वैचारिक निवंधों के अनुरूप है। फलतः ये निवंध सुग्राह्य हैं।

कळिंग कविसम्राट् ओ कळिंग-भारती (*उ० कृ०*)

'कळिंग कविसम्राट् ओ कळिंग-भारती' में श्री बिच्छंदचरण पटनायक (दे०) ने कवि-सम्राट् उपेन्द्रभंज (दे०) के साहित्य एवं उसकी महान उपलब्धियों पर विचार किया है। कवि-सम्राट् की महान् साधना, अनुपम प्रतिभा, अगाध पांडित्य ने उड़िया भाषा को संस्कृत की समकक्षता दी है; उड़िया-साहित्य को महान् साहित्य की योग्यता प्रदान की है, तथा उसे काव्य-कला की वह स्थायी आधार-भूमि दी है कि वह किसी भी उन्नत भाषा की समकक्षता कर सकता है। उनके साहित्य के विवेचन में इन्हीं तत्त्वों की ओर दृष्टि आकर्षित की गई है। विषय की प्रतिपादन शैली पांडित्यपूर्ण है।

कलिंगत्तुप्परणी (*त० कृ०*) [रचना-काल—ईसा की बारहवीं शती का पूर्वार्द्ध]

जयंकोंडार की कृति 'कलिंगत्तुप्परणी' एक प्रकार का वीर-काव्य है जिसमें 'भरणी-काव्य' की सभी विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। इस कृति में राजा कुलोत्तुंग प्रथम की कलिंग-विजय का वर्णन है। इस कृति की एक विशेषता यह है कि इसका नामकरण विजयी राजा के स्थान पर पराजित राजा के नाम के आधार पर हुआ है। ईश-वंदना से काव्य का आरंभ होता है। तदुपरांत कुछ पदों में कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है। इन पदों में स्थूल श्रृंगारिक वर्णनों की प्रधानता है। इसके बाद मरुभूमि और काली देवी के मंदिर का वर्णन किया गया है। कलिंगत्तुप्परणी के विभिन्न पदों में वीरता, भय, क्रोध, हास्य, करुणा, श्रृंगार, आदि भावों तथा वीर रस की सरस अभिव्यंजना हुई है। कवि ने रसों और भावों के अनुकूल कहीं ललित कोमल-कांत पदावली का, तो कहीं परुष शब्दावली का प्रयोग किया है। कवि का शब्द-चयन अनूठा है। इस कृति की शैली सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण है। शैली में संगीतात्मकता का भी गुण है। विभिन्न पदों में लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियों का प्रयोग दर्शनीय है। इसमें कवि ने विषयानुकूल छंदों का प्रयोग किया है। इसमें कवि की प्रखर कल्पना और अद्भुत कवित्व-शक्ति के दर्शन होते हैं। काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का अपूर्व समन्वय हुआ है। इतिहास में 'द्वितीय स्वर्ण युग' कहे जाने वाले परवर्ती चोळ राजाओं के राज्य-काल से संबंधित शोध के लिए यह कृति बहुत उपयोगी है। 'कलिंगत्तुप्परणी' तमिल के भरणी काव्यों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

कलिंग-शिल्पी (*उ० कृ०*)

'कलिंग शिल्पी' राजकिशोर राय (दे०) की अनुपम कृति है। कलिंग-शिल्पी उत्कल की कलामयी धरती की अंतश्चेतना को समझ लेना चाहता है; उस कलाप्रेरणा को मूर्त कर देना चाहता है जो उसके कलात्मक उत्कर्ष की विधायिका है। विंध्या (दे०) की लास्यमयी मूर्ति ओठों पर रहस्यमयी मुस्कान लिए खड़ी है—कितनी सुंदर! कितनी अबूझ!

उत्कल के गहन वनप्रांतर से उसके निराश-चरणों की पगध्वनि आज भी सुनाई पड़ रही है। ध्वंस और विनाश पर वह आज भी जीवन की लाली बिखेर देने को आतुर है। पर कौन उसे आश्रय देगा? वह कला-मयी है, कला से ही चरितार्थ होगी। जीवन में रूपायित होने की उसकी स्पृहा एक दुर्लभ कल्पना-विलास मात्र है। महाराज के यहाँ से वह विफल-मनोरथ लौट जाती है। शायद उसी के साथ मानव की जीवन-चेतना भटक गई है—किस अरण्य प्रदेश में, कौन जाने?

क्या आज की युद्ध-त्रस्त वसुधा उसे ढूँढ सकेगी?

कलिता, दंडिनाथ (*अ० ले०*) [जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1950 ई०। जन्म-स्थान—तेजपुर का एक गाँव।]

ये बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर तेजपुर सरकारी हाई स्कूल में अध्यापन करते थे। 'साधना' उपन्यास पर इन्हें असम-साहित्य सभा का श्रेष्ठ उपन्यास-पुरस्कार मिला था। इन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें कई अप्रकाशित हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'रहधरा' (1916), 'रगर' (1922), 'बहुरूपी' (1926), 'असम सन्ध्या' (1949); **नाटक** : 'सतीर तेज' (1927), 'अग्नि-परीक्षा' (दे०) (1937), 'कीचकवध' (1950), 'पोहनीया कुकुर' (1946); **कहानी** : 'सतसरी' (1925); **उपन्यास** : 'फुल' (1908), 'साधना' (दे०) (1928), 'हत्याकारी कौन?' (1947), 'परिचय', 'आविष्कार' (1950), 'गणविप्लव' (1951)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य-कवि श्री कलिता का व्यंग्य सामाजिक अधिक है। 'असम सन्ध्या' राजा चंद्रकांत सिंह पर लिखित खंडकाव्य है। इन्होंने छात्रावस्था में 'फुल' जैसा कोमल उपन्यास लिखा था। इनके उपन्यास 'साधना' पर गांधी-वादी प्रभाव है। इसकी तुलना श्री प्रेमचंद (दे०) के 'प्रेमाश्रम' से की जा सकती है। 'हत्याकारी कौन ?' जासूसी उपन्यास है। श्री कलिता कवि, नाट्यकार और कथाकार थे।

कलित्तोगै *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी तक]

'कलित्तोगै' को भी संघकालीन अष्ट-पद्य-संग्रहों में परिगणित किया जाता है। इसमें कलि छंद में रचित 149 पद हैं। यह कृति पाँच भागों में विभाजित है। तमिल विद्वानों के अनुसार कुरिंजिक्कलि (दे० कुरिंजि), मुल्लै-क्कलि (दे० मुल्लै), मरुदक्कलि (दे० मरुदम्), पालैक्कलि (दे० पालै) और नेयदल (दे०) कलि नामक पाँच भागों के रचयिता क्रमशः कपिलर (दे०), चोषन् नल्लुरुत्तिरन्, मरुदनिळ नागनार, पेरुंकडुंको (दे०) और नल्लन्दुवनार हैं। इस कृति का मूल प्रतिपाद्य प्रेम है तथा इसमें कुछ नैतिक उपदेश भी हैं। 'कलित्तोगै' के विभिन्न पदों में कवियों ने पाँच भूभागों के निवासियों के रहन-सहन, स्वभाव, प्रथाओं आदि का विस्तृत एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कुछ पदों में तत्कालीन समाज में प्रचलित विवाह की विशिष्ट रीतियों का वर्णन है। इसमें प्राचीन तमिल समाज की 'तैनी-राडल' प्रथा की ओर संकेत किया गया है। एक पद में तमिल संघ का उल्लेख है। कुछ पदों में ऐतिहासिक तथ्यों और पौराणिक प्रसंगों की ओर संकेत किया गया है। 'कलित्तोगै' में अनेक शब्दचित्र प्राप्त होते हैं। कविगण व्यक्ति के आंतरिक तथा बाह्य जीवन के सुंदर और सजीव चित्र प्रस्तुत करने में विशेष सफल हुए हैं। इस वर्ग की अन्य कृतियाँ नाटकीय एकपक्षीय वार्तालाप के रूप में रचित हैं परंतु 'कलित्तोगै' की रचना कथोपकथन-शैली में हुई है। तोलकाप्पियम् में वर्णित प्रेम के दो प्रमुख रूप कैक्किलै और पेरुंतिणै के यथार्थ रूप का परिचय 'कलित्तोगै' में ही प्राप्त होता है। विभिन्न वैयाकरणों ने इस कृति को अपने विवेचन का आधार बनाया है।

कलियच्छन् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

महाकवि पी० कुञ्ञिरामन् नायर का विख्यात कविता-संग्रह है 'कलियच्छन्'। इसकी कविताएँ कुञ्ञि-रामन् नायर की रचनाओं में एक नये मोड़ और युगांतर का प्रतिनिधित्व करती हैं। आध्यात्मिक गीतों की रचना करके 'भक्त कवि' का नाम अर्जित करने के उपरांत वे और अधिक दार्शनिकता-समन्वित कविताओं की रचना करने लगे। उदात्त मानव-प्रेम और केरलीय जीवन का चित्रण उनके भक्ति-रस और आध्यात्मिकता को अधिक सहृदय-संवेद्य बनाते हैं। 'कलियच्छन्' महाकवि की सर्वप्रमुख रचना और मलयाळम साहित्य की एक महत्वपूर्ण निधि है।

कळुवे वीरराजु *(ते० ले०)*

ये सत्रहवीं शती के अंतिम भाग में जीवित थे। ये यादव-वंशी क्षत्रिय थे तथा मैसूर के चिक्कदेवरायलु के मंत्री तथा सेनापति थे। ये वीर और अनेक भाषाओं के विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत और कन्नड भाषाओं में रच-नाएँ की हैं। तेलुगु साहित्य को इनकी सबसे बड़ी देन 'महाभारत' (दे०) का वचन (गद्य) रूप है। यह तेलुगु की प्रथम समग्र गद्य-रचना है और कलुवे ग्राम में स्थित भग-वान गोपालकृष्ण को समर्पित है। इस रचना में तुपाकुल अनंतभूपाल ने इनकी सहायता की है। संप्रति इसके सभापर्व तथा भीमपर्व ही उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने कन्नड में 'वैद्यसंहितासारार्णव' तथा 'वीरराजोक्ति-विलासमु' नामक दो वैद्यक ग्रंथों की रचना की है। 'महा-भारत' का अनुवाद मूलानुसारी है और बहुत शुद्ध है। लंबे-लंबे वाक्य तथा समासों से युक्त शैली उस युग की विशे-षता है। किंतु इस प्रभाव के होते हुए भी इनकी शैली मृदु, मधुर और मोहक है।

इनके पुत्र नंजराजु भी संस्कृत, तेलुगु और कन्नड भाषाओं के विद्वान् तथा पंडितों-कवियों के आश्रय-दाता थे। नंजराजु ने संस्कृत में 'नंजराजुयशोभूषणमु' नामक अलंकारशास्त्र की रचना की थी।

कल्कि *(त० ले०)* [जन्म—1899 ई०, मृत्यु—1954 ई०]

रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' का जन्म पुत्तमंगलम् नामक स्थान में हुआ था। इंटर पास करने के उपरांत शिक्षा का त्याग कर ये गांधी जी के असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। कुछ समय तक कांग्रेस कार्यालय में कार्य करने के उपरांत ये तमिल साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। इन्होंने 'नवशक्ति' नामक पत्रिका के सहसंपादक के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना साहित्यिक जीवन आरंभ किया। कल्कि मद्य-निषेध प्रचार के लिए आरंभ की गई 'विमोचनम्' नामक पत्रिका के संपादक भी रह चुके हैं। इन्होंने अपनी 'आनंद विकटन' पत्रिका द्वारा तमिल भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष योग दिया है, जनता को व्यंग्य वचनों की शक्ति से परिचित कराया है तथा उसमें देश-प्रेम की भावना जाग्रत की है। कुछ वर्ष बाद इन्होंने अपने उपनाम 'कल्कि' से एक मासिक पत्रिका भी आरंभ की थी। कल्कि बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे परंतु इन्हें उपन्यासकार के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'कळ्वनिन् कादली', 'पार्थीपन् कनवु', 'शिवकामीयिन् शपदम्', 'अलै ओशै', 'पोन्नियिन् चेल्वन्' आदि। कल्कि ने गांधी जी और राजा जी की जीवनी लिखी है। कविवर भारती (दे०) के यश के प्रसार में इनका विशेष हाथ रहा है। कल्कि का संबंध तमिल संगीत-आंदोलन से रहा है। इनकी 'संगीतयोगम्' नामक कृति में तमिल संगीत और तत्कालीन तमिल संगीत-सभाओं से संबंधित हास्य-व्यंग्य शैली में चरित्र-निबंध संगृहीत हैं। तमिल साहित्य-जगत में ये अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं। तमिल भाषा और साहित्य के प्रति सामान्य जनता की रुचि जगाने में इनका विशेष हाथ रहा है।

कल्पना (*हिं० पारि०*)

'कल्पना' अँग्रेज़ी के 'इमेजिनेशन' शब्द का पर्याय है और 'इमेज' से बना है। 'इमेज' का अर्थ है चित्र अथवा छवि। आधुनिक साहित्यालोचन में इसके लिए 'बिंब' (दे०) शब्द का प्रयोग किया जाता है। अतः काव्य के संदर्भ में कल्पना का अर्थ हुआ बिंब-सृष्टि अथवा रूप-सृष्टि करने में समर्थ कवि की उद्भावना-शक्ति। भारतीय काव्य-शास्त्र में कल्पना को प्रतिभा (दे०) का गुण माना गया है। प्रतिभा को अपूर्व वस्तु का निर्माण करने वाली प्रज्ञा अथवा 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' कहा गया है जो पाश्चात्य साहित्यालोचन में प्रतिपादित 'सर्जनात्मक कल्पना' (क्रिएटिव इमेजिनेशन) तथा 'उद्भावना-शक्ति' (इन्वेंटिव फ़ैकल्टी) के समकक्ष है। कल्पना नूतन उद्भावना तो करती है, वह विश्रृंखलता में सामंजस्य और विसंगति में संगति भी स्थापित करती है। कल्पना के अन्य कार्य हैं अमूर्त को मूर्त एवं निर्जीव को सजीव बनाना, पूर्वपरिचित विषयों का नव-संस्कार तथा प्रचलित उपकरणों का नवीन प्रयोग। काव्य-सृजन के संदर्भ में कल्पना-शक्ति कवि को अभिव्यंजना-वक्रता, चारुत्व, कौशल और अप्रस्तुत-विधान की सामर्थ्य प्रदान करती है। काव्य-भाषा का विशिष्ट और सटीक प्रयोग भी कवि की उर्वर कल्पना का परिणाम होता है। काव्यास्वादन के लिए प्रमाता में भी कल्पना-शक्ति का होना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना वह काव्य में निहित सूक्ष्म अर्थ-व्यंजनाओं और वक्रताओं को ग्रहण नहीं कर सकता। इस प्रकार कल्पना के कर्म-क्षेत्र का प्रसार काव्य-सृजन से लेकर काव्यास्वादन तक है।

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र में कल्पना का विवेचन प्रतिभा के अंतर्गत ही हुआ है, स्वतंत्र रूप से नहीं, तथापि न तो उसका महत्व कभी विवाद का विषय रहा है और न उसे कभी हेय वस्तु ही माना गया है। पश्चिम में प्रारंभ से ही कल्पना को शंका की दृष्टि से देखा जाता रहा है। प्लेटो ने उसे 'फ़ेंटेसी' (मूल शब्द फ़ेंटेसिया) अभिधान देकर मिथ्याभास उत्पन्न करने वाली विकृत मन की दुष्ट क्रिया कहा तो दान्ते आदि कुछ आलोचकों को छोड़कर मध्य युग तक कल्पना को माया, छल, भ्रांति आदि कहकर तिरस्कृत किया जाता रहा। पुनर्जागरण काल में भी कल्पना को प्रायः विवेक-सम्मत जीवन-मूल्यों के लिए घातक माना जाता रहा। सत्रहवीं शती के 'प्रत्यक्षवाद' ('एंपिरिसिज़्म') और 'तर्कवाद' ('रैशनेलिज़्म') से भी कल्पना को काफ़ी चोट पहुँची। इस युग में ड्राइडन (सन् 1631 ई०-1700 ई०) ही पहले समालोचक थे जिन्होंने प्रबल शब्दों में काव्य-क्षेत्र में कल्पना की महत्व-प्रतिष्ठा की। पाश्चात्य समालोचना के परवर्ती युग को कल्पना की दृष्टि से स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। एडिसन, केम्स, डैल्यू ले और एलिसन आदि ने इसके महत्व का प्रतिपादन और शास्त्रीय विवेचन किया। अठारहवीं शती के अंत और उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में प्रादुर्भूत स्वच्छंदतावाद (दे०) ने इसे सर्वाधिक महत्व दिया। कोलरिज, वर्ड्सवर्थ, शेली और कीट्स के काव्य में कल्पना का स्थान सर्वोपरि है। वाल्टर पेटर, ब्रैडले और कोलरिज आदि ने साहित्यालोचन तथा कांट, हीगेल और शिलर आदि ने सौंदर्यशास्त्र के सिद्धांत-निरूपण में कल्पना-तत्त्व का अत्यधिक उपयोग किया। ब्लेक आदि कुछ कवियों ने कल्पना को दोहरी अंतर्दृष्टि कहकर उसे प्रत्यक्ष और वैज्ञानिक तत्त्वों से भी महत्तर वस्तु घोषित किया। आधुनिक भारतीय साहित्य में हिंदी के छायावादी काव्य (दे० छायावाद) में कल्पना ने अपने उत्कर्ष के चरमबिंदु का स्पर्श कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्पना' मोहन, बूलचंद लाला *(सिं० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

इनका जन्म सिंध के कोटड़ी नामक शहर में हुआ था। विभाजन के पश्चात् ये स्थायी रूप से उल्हास नगर (महाराष्ट्र) में रहते हैं। इन्होंने सिंधी साहित्य में कहानीकार के रूप में प्रवेश किया था और बाद में ये उपन्यास भी लिखने लगे थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं— **उपन्यास** : 'आवारा', 'लगन', 'औरत', 'जिंदगी', 'विश्वासु', 'पथर जो जिगरू', 'मेणु जी दिलि'; **कहानी-संग्रह** : 'मोही-निर्मोही', 'चाँदनी रों ज़हरु', 'फ़रिश्तनि जी दुनिया'; **निबंध** : 'सिंधी लेखकनि में नज़रयाती कशमकश'। इनकी गिनती सिंधी के प्रमुख उपन्यासकारों और कहानीकारों में होती है। आरंभ में ये प्रगतिशील विचारधारा से अधिक प्रभावित थे, परंतु बाद में रोमानवाद की ओर झुक गये थे। इनकी कई रचनाएँ पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से उत्तम श्रेणी की मानी गई हैं। हाल ही में इन्होंने नई कविता लिखने के भी सफल प्रयोग किये हैं।

कल्पसूत्र *(सं० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० 600-300]

कल्पसूत्रों के अंतर्गत कल्प नामक वेदांत से संबंधित सूत्र आते हैं। प्रधानतया कल्पसूत्रों का संबंध यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कृत्यों से है। कल्पसूत्रों में श्रौत-सूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्बसूत्र आते हैं।

कल्पसूत्रों के अंतर्गत यज्ञ संबंधी अनेकानेक विधियों एवं यज्ञवेदी के निर्माण आदि का निरूपण मिलता है। उदाहरणार्थ, कल्पसूत्रों के अंगरूप श्रौतसूत्रों में श्रुति (ब्राह्मणग्रंथ)-सम्मत-यज्ञसंबंधी अनुष्ठानों का वर्णन है। श्रौतसूत्रों में आश्वलायन आदि श्रौतसूत्र आते हैं। कल्प-सूत्रों के ही दूसरे अंग गृह्यसूत्रों के अंतर्गत गृहस्थ के द्वारा बिना पुरोहित के संपादित होने वाले सरल दैनिक यज्ञों के विधि-विधान का वर्णन है। कल्पसूत्र के तीसरे अंग धर्म-सूत्रों के अंतर्गत शुद्ध धार्मिक वर्णन मिलता है। धर्मसूत्रों में माता, पिता, पुत्र एवं गुरु आदि के धर्मों का विवेचन मिलता है। कल्पसूत्र के चतुर्थ अंग शुल्बसूत्र के अंतर्गत यज्ञवेदी की रचना एवं परिमाण आदि का विवेचन किया गया है। शुल्बसूत्रों में भारतीय रेखागणित का प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है।

वेद एवं ब्राह्मण-साहित्य के अधिक विशाल होने के कारण एक ऐसे प्रयास की आवश्यकता थी जो वैदिक वाङ्मय के यज्ञादि से संबंधित विषय को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर सके। यही कार्य कल्पसूत्रों द्वारा संपन्न हुआ। इसके अतिरिक्त कल्पसूत्रों के द्वारा हमें भारतवर्ष के प्राचीन धर्म एवं हिंदू-संस्कृति का बोध होता है। इस प्रकार धर्म, संस्कृति एवं यज्ञविधि की दृष्टि से कल्पसूत्रों का महत्व अनन्य है।

कल्याणी *(त० पा०)*

कल्याणी पुदुमैप्पित्तन् (दे०)-कृत 'कल्याणी' कहानी की नायिका है। युवा कल्याणी का विवाह पैंतालीस वर्षीय शुप्पुवैयर से कर दिया जाता है। इसका पति इसकी कोमल भावनाओं को कुचल डालता है तथापि वह आदर्श पत्नी के समान पति की सेवा करती है। इसका मन पवित्र है। सहसा घर में आए हुए युवा चित्रकार सुंदर शर्मा को यह भाई तुल्य मानती है। कालांतर में दोनों एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। पति-प्रेम, पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाएँ इसे शर्मा को ठुकरा देने के लिए विवश कर देती हैं। इसके माध्यम से लेखक सामाजिक मर्यादाओं में बँधी हुई एक युवती की मानसिक अवस्था के चित्रण में सफल हुआ है।

कळि्ळच्चेल्लम्मा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह जी० विवेकानंदन् का सामाजिक उपन्यास है। इसकी नायिका चेल्लम्मा सब्ज़ी बेचने वाली है। अपने मनोबल से वह अपने चरित्र और आत्मसम्मान की रक्षा मुहल्ले के गुंडों से करती रहती है। उसका एक प्रेमी उसे धोखा देता है और वह आत्महत्या के लिए प्रेरित हो जाती है। उसको इस स्थिति से बचाने वाले पुरुष के साथ वह शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय करती है। बाद में जब उस पुरुष की पहली पत्नी और बच्चे मंच पर आ जाते हैं तब भी वह विचलित नहीं होती।

इस उपन्यास में निरीह युवतियों द्वारा समाज में अनुभव किये जाने वाले कष्टों का अच्छा चित्रण हुआ है। बाज़ारू औरत मानी जाने पर भी अपने सम्मान की रक्षा करने वाली चेल्लम्मा के चरित्र-चित्रण में विवेकानंदन् को सफलता प्राप्त हुई है। इस उपन्यास की फ़िल्म भी बनी है।

कल्वि गोपालकृष्णन् *(त० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

संप्रति ये बालोपयोगी साहित्य-लेखकों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम श्रेणी के माने जाते हैं। ये मद्रास नगर के एक संभ्रांत 'श्रीवैष्णव' परिवार के हैं। इन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन में माध्यमिक विद्यालयों के लिए उपयोगी सामग्री देने वाली 'कल्वि' (यानी 'शिक्षा') नामक पत्रिका चलायी थी और बाद में स्वतंत्र लेखन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गये थे। ये मद्रास शहर के बाल-साहित्य-लेखक-संघ के अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

नवसाक्षरों तथा नन्हे-मुन्नों के लिए कथाओं, जीवनियों, तथा विभिन्न प्रकार के ज्ञानवर्धक साहित्य के निर्माण में इन्होंने अपूर्व सफलता पायी है। इनकी 64 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें से अधिकांश भारत सरकार, यूनेस्को एवं अन्य संस्थाओं की प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत भी हुई हैं। एक गुड़िया के विशेष अनुभवों के रोचक वर्णन के रूप में इनकी तीन पुस्तकें हैं—'परक्कुम् पाप्पा' (उड़ती हुई काग़ज़ी गुड़िया द्वारा विश्व-परिचय), 'पण्टै उलकिल् परक्कुम् पाप्पा' (उक्त गुड़िया द्वारा मानव-जीवन के विकास का परिचय) तथा 'मिट्टाय् पाप्पा' (चीनी की गुड़िया द्वारा मधुमक्खी, चींटी आदि जंतु-जीवन का वर्णन)। विज्ञान के अद्भुत संसार का सरल बालरंजक प्रस्तुतीकरण इनकी 'मंतिरवातियिन् मकन्' ('जादूगर का पुत्र'—जंतु-विज्ञान), 'मायाविकळ्' ('मायावी जीवाणु'—जीवाणु-विज्ञान), 'चंतिरनुक्कुच् चेल्वोम्' ('चंद्रमा को जायेंगे'—अतरिक्ष-विज्ञान), 'चुंटुविरल् चीमा' ('अंगुष्ठ के भ्रमण की कहानी'—भौतिक-रासायनिक विज्ञान) इत्यादि पुस्तकों में द्रष्टव्य है। नैतिक आदर्शों का कथात्मक रूप 'कळिकाट्टिय उत्तमर' ('मार्गदर्शक महात्मा'—गांधी जी की जीवनी के 100 प्रसंग) तथा 'कनकु उलकक्कुळन्तैकळ' ('स्वप्नसंसार के बच्चे'—वन्य प्राणियों का परिचय और उनके साथ अच्छे व्यवहार के आदर्श का प्रतिपादन)—इन दोनों प्रकाशनों में किशोरों के लिए चित्ताकर्षक ढंग से प्रस्तुत है।

कल्हण (सं० ले०) [समय—बारहवाँ शतक]

कल्हण काश्मीर-नरेश हर्ष (1049-1101 ई०) के प्रधान अमात्य चपणक के पुत्र थे। इनका वास्तविक नाम कल्याण था। इन्होंने अलकदत्त नामक किसी प्रतिष्ठित एवं विद्वान् व्यक्ति की छत्रच्छाया में अपना अधिकांश समय बिताया था और वहीं इन्होंने साहित्य-सर्जन की प्रेरणा ग्रहण की। ये चाहते तो अपने पिता की भाँति उच्च पद प्राप्त कर सकते थे, किंतु तत्कालीन राजनीतिक संघर्ष के युग में इन्होंने राजाश्रय न ग्रहण कर स्वतंत्र जीवन-यापन करना ही श्रेयस्कर समझा और राजदरबारों की गाथा को उपनिबद्ध करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाया। यद्यपि ये शव (प्रत्यभिज्ञा) आस्थावादी थे, किंतु बौद्ध धर्म को भी आदर की दृष्टि से देखते थे।

इनका एकमात्र प्राप्त ग्रंथ है—'राजतरंगिणी' (दे०)। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसकी रचना इन्होंने सुस्सल के पुत्र महाराज जयसिंह के राज्यकाल (1127-1159 ई०) में की। इन्होंने इसकी रचना 1148 ई० में प्रारंभ की और 1150 ई० में पूरी की।

वैदर्भी रीति में लिखे गये इस काव्य में आठ तरंगें हैं। इसमें इन्होंने अत्यंत प्राचीन-काल से लेकर बारहवीं शती तक के इतिहास का अत्यंत प्रामाणिक वर्णन किया है। कल्हण की ऐतिहासिक दृष्टि अर्वाचीन इतिहासवेत्ता की शोधक दृष्टि के समान है जो अपने साधनों को पर्याप्त परीक्षण के पश्चात् ही ग्रहण करता है। इन्हें अपने देश की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान है। अपने ग्रंथ में इन्होंने प्राचीन ग्यारह ग्रंथों का उपयोग किया है। उनमें से केवल 'नीलमत पुराण' आज उपलब्ध है।

कल्हण मूलतः कवि हैं, इतिहासकार बाद में। वे कवि के महान् गुणों से सर्वथा परिचित हैं। यही कारण है कि 'राजतरंगिणी' काव्य-दृष्टि से सर्वथा खरी उतरती है। वे अपने इतिहास-ज्ञान को अपना काव्य-कौशल प्रदर्शित करने तथा जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं। वे अपने पूर्ववर्ती कवि विल्हण (दे०) से बहुत प्रभावित हैं। उनकी कविता में सहज प्रभाव है, अलंकार के अनावश्यक प्रयोग तथा सहज शब्दों के चमत्कार आदि से वे कोसों दूर हैं। वे अपनी बात सरल तथा सहज ढंग से कहते हैं। चरित्र-चित्रण में वे अत्यंत सफल हैं।

यद्यपि अधिकांशतः समस्त ग्रंथ अनुष्टुप में उपनिबद्ध है तथापि कहीं-कहीं अन्य छंदों का प्रयोग भी किया गया है। काश्मीर-नरेशों की संघर्षमय गाथा को स्निग्ध काव्य-शैली में प्रस्तुत करके कल्हण ने बड़ा श्लाघनीय कार्य किया है।

कलीम (उर्दू० पा०)

कलीम डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) के सामाजिक उपन्यास 'तोबातुन्नसूह' (दे०) का एक पात्र है। यह नसूह का ज्येष्ठ पुत्र है। विवाहित है किंतु अक्खड़पन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण पत्नी से झगड़कर अलग हो गया है। शायर बहुत अच्छा है। सारे नगर में इसकी शायरी की बहुत प्रसिद्धि है। इसे भाव, भाषा, छंद तथा अलंकार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। शायरी और ताश के अतिरिक्त इसकी किसी कार्य में रुचि नहीं है। यह धर्म, ईश्वर तथा नैतिकता का उपहास करता है। अश्लील तथा यौन-विषयों पर पुस्तकें पढ़ने में इसकी विशेष रुचि है। मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग जैसे दमबाज़, (ज़ाहिरदार अर्थात् आडंबरप्रिय), बातूनी, निकम्मे और बेफ़िक्र लोग इसके दोस्त हैं। पिता के शत्रु 'फ़ितरत' जैसों से इसका मेल है। पिता की अवज्ञा करने में यह अपना बड़प्पन समझता है। इसका आत्मविश्वास दंभ की सीमाओं में प्रविष्ट हो चुका है। इसे यह गुमान है कि संसार में इस-जैसे योग्य व्यक्ति कम उत्पन्न होते हैं। वास्तविकता यह है कि इसे न अच्छे-बुरे की पहचान है, न सामाजिक शिष्टता का ज्ञान। कलीम उन नवयुवकों का प्रतिनिधि है जिनकी अल्प शिक्षा उन्हें औरों को नितांत अयोग्य समझने की प्रेरणा देती है।

कलीमुद्दीन अहमद *(उर्दू० ले०)*

आलोचक-प्रवर प्रो० कलीमुद्दीन अहमद ने अँग्रेज़ी साहित्य के आलोक से उर्दू साहित्य को गरिमा प्रदान की है। आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने काव्य और साहित्य की अन्य विधाओं में लिखित उल्लेखनीय सामग्री के अवगुणों और दोषों का उद्घाटन किया है। इनके विचारों की अभिव्यक्ति में निर्भीकता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। 'उर्दू शायरी पर एक नज़र' (दे०) और 'उर्दू तनकीद पर एक नज़र' (दे०) इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन कृतियों में ये अपने युग के आलोचकों की पंक्ति में सर्वथा भिन्न व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं। इन्होंने जिस शैली से उर्दू साहित्य का मूल्यांकन किया है, वह निश्चय ही चौंका देने वाली है। इनके यहाँ किसी भी साहित्यकार के प्रति कोई रू-रियायत नहीं है। इन्होंने उर्दू को अपने विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश और स्वभावगत विशेषताओं के संदर्भ में न देखकर प्रायः अँग्रेज़ी साहित्य के चश्मों से देखने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप ये उर्दू साहित्य के आंतरिक सौंदर्य तक पहुँचने में कहीं-कहीं असफल रहे हैं। श्री नसीम कुरैशी के अनुसार ये उच्च कोटि के विद्वान, आलोचक और स्पष्टवक्ता होते हुए भी उर्दू साहित्य की आत्मा से पूर्णरूपेण परिचित नहीं हैं। उर्दू आलोचना के संबंध में इन्होंने जो कुछ लिखा है वह बहुत-कुछ ठीक होते हुए भी उद्देश्य की ठीक से पूर्ति नहीं कर पाता।

कल्लोलयुग *(बँ० प्र०)*

सन् 1923 में प्रकाशित 'कल्लोल' पत्रिका से ही बँगला साहित्य में वास्तविक आधुनिकता का सूत्रपात हुआ। 'कल्लोल' पत्रिका केवल सात वर्ष तक प्रकाशित हुई परंतु इन्हीं सात वर्षों में 'कल्लोल'-गोष्ठी के लेखकों ने विद्रोह, विरोध, अस्वीकृति तथा रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के आदर्श को नकार कर एक नये युग की स्थापना कर डाली। बीसवीं शती के तीसरे दशक के इन लेखकों ने परोक्ष रूप से फ्रायडीय मनःसमीक्षण एवं मार्क्सीय राजनीतिक समाज-चेतना को साहित्य में स्थान दिया। कल्लोल-मंडल के अन्यतम अग्रणी अचिंत्यकुमार सेनगुप्त (दे०) ने अपनी पुस्तक 'कल्लोल' में कहा है कि पहले हम सोचते थे कि रवींद्रनाथ ही बँगला साहित्य के अंत हैं परंतु 'कल्लोल' की विद्रोह-वह्नि में नया पथ, नयी दुनिया दिखाई पड़ी। और भी आदमी हैं, और भी भाषा है, इतिहास है।

कल्लोल-मंडल की निर्भीकता, नवीनता, मानवोन्मुख भाव-धारा की तीव्रता को कोई अस्वीकार नहीं कर सका। कल्लोल ने एक युग की ही रचना कर डाली जिसके लेखकों में सीमाबद्ध जीवन-बोध, अल्प अभिज्ञता एवं किताबी बोहेमियन आदर्श के प्रति अनुरक्ति का प्रदर्शन होने पर भी उनके द्वारा बँगला साहित्य में नये वातायन उन्मुक्त हुए। कल्लोल-मंडल के लेखकों में नज़रुल इसलाम (दे०), अचिंत्यकुमार सेनगुप्त (दे०), बुद्धदेव बसु (दे०), प्रेमेंद्र मित्र (दे०), शैलजानंद मुखोपाध्याय (दे०), ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे०), प्रबोधकुमार सान्याल (दे०) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

कविकोंडल वेंकटराव *(ते० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1969 ई०]

ये राजमहेंद्रवरमु नामक शहर के रहने वाले थे। इन्होंने कुछ समय अध्यापकी तथा बाद में वकील की वृत्ति गृहण की थी। आंध्र आंदोलन और 'होमरूल' आंदोलन आदि ने इनमें स्वतंत्रता की भावना जगाई थी। ये प्रकृतिप्रेमी कवि थे। निम्न वर्ग के लोगों तथा ग्रामीण जीवन के प्रति इनकी गहरी सहानुभूति तथा अभिरुचि थी। इनकी अधिकांश रचनाएँ इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्य का उदाहरण हैं। ये वर्ड्सवर्थ जैसे अंग्रेज़ी कवियों की रचनाओं से प्रभावित थे। इनकी रचनाएँ ये हैं— 'विविध कुसुमावली' (संग्रह), 'जनपदमुलु', 'मातृदेश-संकीर्तनमु', 'प्रकृतिचंदनमु', 'नर्लबालुडु' आदि कविताएँ; 'भारतीय संदेशमु', 'अनाथाभ्युदयमु' आदि नाटक; 'विजयसदनमु', इनुपकोटा' आदि कुछ उपन्यास और असंख्य कहानियाँ। इनकी कविता अधिकतर मात्रिक छंदों में निबद्ध हैं। इनकी भाषा में सरसता के अतिरिक्त सरलता तथा स्पष्टता सर्वत्र परिव्याप्त है। इनकी रचनाएँ प्रकृति-प्रेम से पूर्ण तथा समकालीन साधारण जन-जीवन के निकट की होती हैं। वेंकटराव प्रधानतः एक सफल गीतकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

कविच्चक्रवर्त्ती *(त० कृ०)* [रचना-काल —1963 ई०]

'कविच्चक्रवर्त्ती' कु० अषगिरिसामी (दे०)-कृत एक ऐतिहासिक नाटक है। इसके लेखक को कहानी एवं निबंध के समान नाटक-रचना के क्षेत्र में भी पर्याप्त सफलता मिली है। यह उनका प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। इस संपूर्ण नाटक का अभिनय एवं प्रकाशन एक साथ हुआ था। इसमें लेखक ने प्रथम बार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त विवरण, शिलालेख, साहित्यिक विवरण, किंवदंतियों और विद्वानों के शोध के फलस्वरूप प्राप्त सामग्री के आधार पर तमिल महाकवि कंबर् का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। नाटक में इतिहास और कल्पना का अपूर्व समन्वय हुआ है। लेखक ने विभिन्न प्रसंगों का चयन करते हुए कंबर् की महानता, अपनी ऐतिहासिक रुचि और सरसता का पूरा ध्यान रक्खा है। अषगिरिसामी ने कंबर् को स्वतंत्र विचारों वाले एक कवि के रूप में चित्रित किया है। कंबर चोळ-राजाओं के शासन-काल में आविर्भूत हुए थे। उस काल के अन्य कवि जहाँ राजाओं की प्रशंसा में लगे रहे वहाँ कंबर् ने अपनी 'रामायणम्' में भगवान् राम की महिमा का गान किया। कंबर् के जीवन-वृत्त से संबद्ध एक अन्य कृति रा० पलनिसामी-कृत 'कवि चक्रवर्त्ती कंबर्' में कंबर् को ऐसे मानव के रूप में चित्रित किया गया है जो मानव-मात्र से प्रेम रखता है और जो आयुपर्यंत अपने मान की रक्षा करना चाहता है। इस नाटक में कंबर् द्वारा 'रामायणम्' की रचना, राज-दरबार, उसका प्रस्तुतीकरण आदि घटनाओं को ही विस्तार दिया गया है।

अषगिरिसामी कृत 'कविच्चक्रवर्त्ती' नाटक का तमिल नाटक साहित्य में विशेष स्थान है। एक नाट्य-कृति के रूप में ही नहीं अपितु तमिल के एक महाकवि की जीवनी को प्रस्तुत करने वाली कृति के रूप में इसका महत्व असंदिग्ध है।

कविजनरंजनमु *(ते० कृ०)*

यह भास्करामात्य के पुत्र अडिदमु सूरकवि (दे०) (1720-1785 ई०) का काव्य है। इस पर सुप्रसिद्ध श्लेष-काव्य 'वसुचरित्र' (दे०) [श्री कृष्णदेवरायलु (दे०) के समय के कवि रामराजभूषणुडु (दे०) की कृति] का अत्यधिक प्रभाव है। अतः इसे 'पिल्ल (छोटा) वसुचरित्र' कहते हैं। यह तीन आश्वासों का प्रबंध-काव्य है। इसमें चंद्रमती-हरिश्चंद्र के विवाह की कथा वर्णित है। इस काव्य में युगीन काव्यों के अनुरूप भावपक्ष की अपेक्षा रचना-शिल्प को प्रधानता दी गई है।

कवित्त *(हिं० पारि०)*

यह वर्णिक दंडक छंद है। इसमें 26 से लेकर 33 तक वर्ण प्रत्येक चरण में होते हैं। अंत में गुरु-लघु का कहीं-कहीं भेद कर लिया जाता है। 31 अक्षर का कवित्त 'मनहरण', 32 का 'जलहरण' और 'रूपघनाक्षरी' तथा 33 का 'देवघनाक्षरी' कहलाता है। 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) में 'छप्पय' (दे०) कहे जाने वाले छंद को ही 'कवित्त' संज्ञा दी गई है। हिंदी में इस छंद का सर्वाधिक प्रयोग सगुण भक्ति-काव्यधारा के कवियों ने किया है। संस्कृत के वर्णिक दंडकों के अक्षर-परिमाण तथा दूसरी ओर प्राकृत-छंदों के आधार-'ताल' के समन्वित रूप का ही परिणाम यह छंद है। आगे चलकर संस्कृत के दंडक छंद प्राकृतों के प्रभाव से तालबद्ध करके गाये जाने के कारण लोक-गीतों की अक्षय निधि बन गये। परंतु आज 'प्राकृत पैंगलम्' के अतिरिक्त प्राकृत में अन्य समवर्णिक छंद प्राप्त नहीं होते हैं। इसीलिए प्राकृत में प्रचलित दंडकों और हिंदी में प्रचलित दंडकों में कोई साम्य बिठाना कठिन हो गया है। फिर भी 'सूरसागर' (दे०) के कुछ पद बीच की कड़ी सिद्ध होते हैं—

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अंगुरियाँ छबीली छोटी
नख-ज्योति मोती मानो, कमल-दलनि पर।
ललित-अंगन खेलै ठुमकि ठुमकि डोलै
झुनुक-झुनुक बोलै, पैंजनी मृदु मुखर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवित्त-रत्नाकर *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1649 ई०]

यह सेनापति (दे०) के स्फूट पदों का संग्रह ग्रंथ है। इसकी पाँच तरंगों अथवा अध्यायों में कुल 394 छंद हैं। इसकी 11 हस्तलिखित प्रतियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से 9 भरतपुर के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। डा० उमाशंकर शुक्ल ने 1936 ई० में हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा इसका प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करवाया था।

'कवित्त-रत्नाकर' की पहली तरंग में 89 श्लेष-परक छंद हैं। ब्रजभाषा की साधारण शब्दावली का ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रयोग कवि ने किया है कि प्रत्येक छंद के दोहरे अर्थ निकलते हैं। द्वितीय तरंग के अधिकांश पदों में रूप-वर्णन एवं नायिका-भेद का उल्लेख होने के कारण श्रृंगार की प्रधानता है। तीसरी तरंग में षड्ऋतु-वर्णन है और वसंत को ऋतुराज के अनेक प्रतीकों में बाँधकर प्रस्तुत किया गया है। चौथी तरंग में रामकथा है और पाँचवीं तरंग में प्रकृति का आलंबन-रूप में सरस चित्रण करने के कारण सेनापति अपना सानी नहीं रखते हैं। हिंदी-साहित्य में प्रकृति-चित्रण के लिए सेनापति एक अलग शैली के धनी के रूप में जाने जाते हैं।

कवित्रयम् *(मल० पारि०)*

बीसवीं सदी के आरंभ में मलयाळम कविता में नयी प्रवृत्तियों का प्रवर्त्तन और उन्नयन करने वाले तीन प्रमुख कवियों—कुमारन् आशान् (दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) नारायण मेनन, और उळ्ळूर (दे०) परमेश्वर अय्यर् (दे०) केरल साहित्यचरितम्)—को साहित्य के विद्यार्थी 'कवित्रयम्' के नाम से जानते हैं।

जब तक इन कवियों ने काव्य-जगत में पदार्पण किया था तब तक कविता का नवोत्थान अवश्य हो चुका था, परंतु चमत्कारपूर्ण रचना-कौशल को सर्वोपरि महत्व देने वाली क्लासिक शैली के कवियों की ही उस समय प्रतिष्ठा थी। इन तीनों कवियों ने भी पहले क्लासिक काव्य लिखकर नाम कमाया था, परंतु इनका वास्तविक महत्व तभी प्रकट हुआ जब इन्होंने आंतरिक अनुभूतियों को व्यक्त करने वाले गीत और खंडकाव्य लिखकर मलयाळम में रोमांटिक आंदोलन को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया।

सन् 1909 ई० में प्रकाशित आशान् की कविता 'वीण पूवु' (दे०) ने कविता की इस नयी धारा का प्रवर्त्तन किया था। बाद में उन्होंने जातिगत असमत्वों के विरोध में और मानवीय महत्व के समर्थन में कई रचनाएँ प्रकाशित कीं। वळ्ळत्तोळ् की कविता का मुख्य स्वर भारतीय राष्ट्रीयता और गांधीवाद था। सिद्धहस्त क्लासिक कवि उळ्ळूर ने भी बाद में इन दोनों की तरह रोमांटिक आंदोलन को पुष्ट किया और समसामयिक विषयों पर भावपूर्ण कविताएँ लिखीं।

इन तीनों कवियों ने जो मार्ग दिखाया, वह मलयाळम कविता के लिए उज्ज्वल सिद्ध हुआ। अनेक कवि इनके प्रभाव-क्षेत्र में आए और मलयाळम की काव्य-शाखा परिपुष्ट हुई। इस त्रिमूर्ति को आधुनिक मलयाळम कविता का प्रवर्त्तक-प्रतिष्ठापक कहा जा सकता है।

कवित्व तत्त्व विचारमु *(ते० कृ०)*

यह आधुनिक तेलुगु आलोचना के प्रवर्तक डा० कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (दे०) की रचना है। इसमें प्राच्य और पाश्चात्य आलोचना-पद्धतियों का समन्वय कर, काव्यांगों—रस, भाव, चरित्र-चित्रण आदि का विश्लेषण किया गया है। 'आंध्रमहाभारतमु' (दे०) की विशिष्टता, पिंगळि सूरना (दे०) के 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) काव्य के कथा-रचना-कौशल की प्रशंसा (इस काव्य की कथा शेक्सपियर के 'कॉमेडी आफ़ एरर्स' के समान लगती है), काव्यों के अश्लील श्रृंगार-वर्णन की निंदा आदि विषयों से युक्त यह ग्रंथ रेड्डी जी की पक्षपात-रहित तथा सुनिश्चित आलोचना का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

तेलुगु में आधुनिक आलोचना का श्रीगणेश इसी पुस्तक से हुआ है।

कविनी साधना *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यह ग्रंथ उमाशंकर जोशी (दे०) की आलोचक दृष्टि का परिचायक है। सन् 55 में 'नडियाद' में लेखक ने साहित्य-परिषद् के साहित्य-विभाग के अध्यक्ष के रूप में 'कविनी साधना' नामक जो महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था वह इस संग्रह का प्रथम लेख है जिसके आधार पर समग्र कृति का नाम रखा गया है।

लेखक ने कवि की साधना के तीन सोपान स्वीकार किये हैं: (1) कवि जगत के पदार्थों को विशेष भाव से ग्रहण करता है; (2) कवि की चेतना में संचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सामग्री का किसी विशेष प्रक्रिया से रूप बनता है; तथा (3) कवि इस रूप को यथातथ्य शब्दस्थ करने का प्रयास करता है। किसी अलौकिक परिस्पंद के कारण जब बाह्य जगत के पदार्थ कवि-चित्त में भावमय मूर्ति के रूप में प्रकट होते हैं तो वह इस मूर्ति को वाङ्मय-रूप देता है।

इस संग्रह के 'मंत्र-कविता' नामक लेख में अरविंद की काव्य-भावना का विवेचन किया गया है। श्री अरविंद का कथन है कि 'सौंदर्य और रस के अतिरिक्त कविता में दर्शन की दीप्ति हो तब यह मंत्र-रूप होती है।' उमाशंकर 'सावित्री' को इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। 'वर्ड्सवर्थ के काव्य-विचार' नामक लेख में 'वास्तविक जीवन के शब्द से कविता की निर्मिति होनी चाहिए'— इस कथन की समीक्षा करते हुए लेखक कहता है कि स्वयं वर्ड्सवर्थ की कविता ने इस कथन को असत्य सिद्ध कर दिया है।

उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त इसमें 'वास्तववाद', 'कविता शिक्षक बलवंतराय', 'पद्यानुवाद नी समस्या', प्रख्यात आलोचक श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी (दे०) की 'विवेचन नी साधना', 'विश्वमानवनो उद्‌गाता टैगोर', 'सरस्वतीचन्द्र' (दे०) और 'अर्नेस्ट हेमिंग्वे' पर आलोचनात्मक लेख हैं। श्री जोशी ने काव्य-तत्व तथा अन्यान्य कृतियों का कितना गहन अध्ययन किया है यह ग्रंथ इसका प्रमाण है।

'कविनी साधना' गुजरात के उच्चकोटि के कविता तथा अन्य सृजनात्मक साहित्य-विधाओं के प्रति एक विचारों का परिचय देने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

कविपुष्पमाला *(मल० कृ०)*

यह वेण्मणि महन् नंपूतिरिप्पाड् (दे० नंपूतिरिप्पाड्, अच्छन्, वेण्मणि) का खंडकाव्य है जिसमें मलयाळम के तत्कालीन कवियों की उपमा विभिन्न पुष्पों से दी गई है। कात्तुळ्ळि अच्युत मेनन के इसी नाम और विषयवस्तु के पूर्वप्रकाशित काव्य में प्रस्तुत कवि और इनके पिता के लिए निर्धारित स्थान से असंतुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया के रूप में कवि ने इसकी रचना की थी। वेण्मणि की सहज व्यंग्यमय रचना-शैली और ऋजु भाषा का यह काव्य अच्छा उदाहरण है। इसी शैली में 'कविभारतम्', 'कवि रामायणम्', 'कविमृगावली' आदि काव्य विभिन्न कवियों द्वारा बाद में रचे गये।

कवि-प्रिया *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शताब्दी ई० का अंतिम भाग]

'कवि-प्रिया' के लेखक आचार्य-कवि केशवदास (दे०) हैं। ग्रंथ में 16 अध्याय हैं। इनमें अलंकार, दोष और कवि-शिक्षा पर विशेष प्रकाश डाला गया है तथा अन्य काव्यांगों की चर्चा-मात्र है। केशव ने वर्ण्य विषय को तथा उसे भूषित करने वाले साधनों को अलंकार कहा है— प्रथम को 'साधारण' अलंकार और द्वितीय को 'विशिष्ट' अलंकार। अलंकार के संबंध में उनकी प्रमुख धारणा है कि नारी के समान सर्वगुण-संपन्न कविता भी अलंकार के बिना शोभा नहीं देती—

जदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त॥

उनका यह दृष्टिकोण संस्कृत के अलंकारवादी आचार्यों— भामह (दे०), दंडी (दे०) और उद्‌भट (दे०) के अनुरूप माना जाता है। पर इतना होते हुए भी उनका रस के प्रति समादर-भाव कुछ कम नहीं है (दे० 'रसिकप्रिया')। प्रस्तुत ग्रंथ का लक्षण-पक्ष अधिक पुष्ट नहीं है। कहीं वह अस्पष्ट और अव्यवस्थित है तो कहीं अशास्त्रीय और असंगत। फिर भी, हिंदी की काव्यधारा को भक्ति-पथ से रीति-पथ की ओर मोड़ने का श्रेय यदि केशव को दिया जाता है तो केवल इस ग्रंथ के कारण।

कवि माधव यांची कविता *(म० कृ०)*

कवि माधव अर्थात् मा० के० काटदरे का जन्म सन् 1892 ई० में हुआ था और मृत्यु सन् 1958 में। इन्होंने उत्कृष्ट ऐतिहासिक कविताओं का प्रणयन किया है। मराठों के इतिहास से नाटकीय प्रसंगों को चुनकर इन्होंने कलात्मक गीत लिखे हैं। इनकी रचनाओं में सफ़ाई तथा प्रभावक्षमता है। अपनी कविता में इन्होंने अर्थालंकारों का समुचित विनियोग किया है। सामान्य रूप से इनके काव्य का कलापक्ष अधिक संपन्न है। 'शनिवारवाड्यापुढे', 'तारापूरचा संग्राम' आदि इनके स्फूर्तिप्रद ओजस्वी ऐतिहासिक गीत हैं।

'ध्रुवावरील फुलें' तथा 'फेकलेलीं फुलें' इनकी स्फुट कविताओं के संकलन हैं। इन्होंने यद्यपि शिशुगीत, प्रेमगीत, विनोदी तथा मृत व्यक्ति को संबोधन कर गीत भी लिखे हैं तथापि इनकी ऐतिहासिक कविताएँ ही विशेष प्रसिद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियरंग कविदै *(त० पारि०)*

यह तमिल की नवीनतम काव्य-विधाओं में से है। इसका प्रचलन सन् 1940 के बाद हुआ है। कवियरंगम् कवि-सम्मेलन के समान एक सामूहिक आयोजन है। इसमें कविगण पूर्व-निश्चित विषयों पर कविताएँ पढ़ते हैं। संगोष्ठी के समान कवियरंगम् में भाग लेने वाले कविगण एक ही विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित कविताएँ पढ़ते हैं। 'कवियरंग कविदै' (कवियरंगम् में पढ़ी जाने वाली कविताएँ) में तमिल काव्य की विषय और शैलीगत रूढ़ियों का पालन नहीं किया जाता है। 'कवियरंग कविदै' की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—कवियरंगम् में कवियों को, श्रोताओं को आकृष्ट करने के लिए, स्वयं अपनी कविताओं का पाठ करना पड़ता है; अतः वे सरल शैली और सरल नवीन छंदों का प्रयोग करते हैं। 'कवियरंग कविदै' में हास्य का पुट अनिवार्यतः रहता है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विचारधाराओं और क्रिया-कलापों की ओर संकेत रहता है।

'कवियरंग कविदै' की अपनी सीमाएँ भी हैं। कवियरंगम् में प्रथम बार भाग लेने वाले कवि अथवा किसी विशिष्ट राजनीतिक दल या सामाजिक, धार्मिक संस्था से संबद्ध कवि कभी-कभी कवियरंगम् की मर्यादा का उल्लंघन कर देते हैं। वे उक्त आयोजन के अवसर पर अपने विरोधी दल या संस्था से संबद्ध व्यक्तियों की निंदा या तिरस्कार करने में नहीं चूकते। इतना होते हुए भी 'कवियरंग कविदै' युगीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक विचारों के प्रचार का एक प्रबल माध्यम बन गया है। यद्यपि सामान्य कविता और 'कवियरंग कविदै' में विभाजन-रेखा खींचना कठिन है तथापि इसका लक्षण बहुत स्पष्ट है। इसे एक नवीन काव्य-विधा माना जाता है। अनेक तमिल कवि जिन्हें परंपराबद्ध काव्य-रचना में विशेष सफलता नहीं मिली, उन्हें 'कवियरंग कविदै' की रचना में विशेष सफलता मिली है। आज तमिल प्रांत में विभिन्न सामाजिक उत्सवों, विवाह आदि के अवसर पर 'कवियरंगम्' का आयोजन किया जाता है।

कविरत्न, सत्यनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1918 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के सराय नामक ग्राम में हुआ था। इनका पालन-पोषण ताजगंज (आगरा) के बाबा रघुवरदास के यहाँ हुआ था। इनका गार्हस्थ्य जीवन अधिक सुखकर नहीं रहा था। सेंट पीटर्स कालेज से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। ये धर्म से सनातनी थे और इन पर स्वामी रामतीर्थ के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था।

इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' नाम से श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित कराया है। इनकी कविताओं में राजभक्ति, राष्ट्रीयता, देशगौरव, जाति-उत्थान एवं अतीत-गौरव-गान का स्वर पाया जाता है। 'भ्रमर दूत' पुराने कथ्य को लेकर आधुनिकता के साँचे में ढालकर लिखी गयी सुंदर प्रबंध कविता है। इन्होंने 'उत्तररामचरित' (दे०), 'मालतीमाधव' (दे०) और 'होरेशस' नामक ग्रंथों का अनुवाद किया था। समन्वयवादी कवि होने के कारण इन्होंने रसिया, पद, छप्पय, लावनी, कुंडलियाँ, ग़ज़ल, अष्टक, षट्पदी, दोहावली, स्तवन, अन्योक्ति आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग अपने काव्य में किया था। इनकी भाषा ब्रज है और उसमें ग्रामगीतों का लोच और मार्दव स्तुत्य है। निश्चय ही ये राष्ट्र-गौरव के आख्याता एवं ब्रजभाषा के उत्थान में बृहत्त्रयी [रत्नाकर (दे०), भारतेंदु (दे०), कविरत्न] के कवि हैं।

कविराजमार्ग *(क० कृ०)*

कन्नड भाषा के उपलब्ध ग्रंथों में 'कविराजमार्ग' सर्वप्रथम है। इसके रचयिता राष्ट्रकूट-सम्राट् नृपतुंग अमोघवर्ष (814-866 ई०) माने जाते थे। किंतु अद्यतन खोजों से यह पता चलता है कि इसके रचयिता नृपतुंग के सभासद श्रीविजय रहे होंगे।

'कविराजमार्ग' दंडी के काव्यादर्श (दे०) के आदर्श पर लिखा गया एक लक्षणग्रंथ है। इसमें दोषानुदोष-वर्णन- निर्णय, शब्दालंकार-वर्णन-निर्णय तथा अर्थालंकार प्रकरण-नाटक तीन परिच्छेद हैं। लक्षण-निरूपण के अतिरिक्त इसमें कन्नड भाषा, पिंगल-साहित्य, कर्णाटक की सीमाएँ आदि की चर्चा भी है। इसमें उस समय प्रचलित कन्नड काव्य-भेदों का भी परिचय दिया गया है। कविराजमार्गकार भामह की कृति से परिचित थे; उद्भट और वामन से उनका परिचय नहीं था। दंडी उनका आदर्श लक्षणकार है और दंडी के सुर में सुर मिलाकर उन्होंने भी कहा है, 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते'। किंतु उसने दंडी की कृति की नकल नहीं की है। उसमें लेखक की मौलिक विचारधारा भी है। जहाँ दंडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने दोषों का स्पर्श मात्र किया है, वहाँ कविराजमार्गकार ने दोषों की विस्तृत चर्चा की है। उसने गुणों को रसपरक माना है जो उसकी मौलिक उद्भावना है।

दंडी के समान कविराजमार्गकार ने भी रसों को रसवदालंकारों के अंतर्गत माना है। अंतर यह हैं कि जहाँ दंडी में केवल आठ रस प्रोक्त हैं वहाँ 'कविराजमार्ग' में शांत को भी मिलाकर नौ रस बताये गये हैं। शांत रस के इतिहास का स्मरण करने पर ज्ञात होगा कि ग्रंथकर्ता के जैन होने के कारण यहाँ शांत का उल्लेख हुआ होगा।

भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से दूसरी महत्वपूर्ण बात है 'कविराजमार्ग' में ध्वनि का उल्लेख। 'कविराजमार्ग' तथा 'ध्वन्यालोक' की रचना प्रायः एक ही समय हुई होगी। किंतु सुदूर कश्मीर से यह इतने शीघ्र कर्णाटक कैसे आ पहुँचा—यह आश्चर्य की बात है, किंतु 'कविराजमार्ग' में कहीं भी यह सबूत नहीं मिलता कि उसके लेखक ने 'ध्वन्यालोक' का अवलोकन किया था। लेखक के अनुसार ध्वनि का क्या अभिप्राय है—यह स्पष्ट नहीं होता। उसने पैंतीस अलंकारों के साथ छत्तीसवें अलंकार के रूप में ध्वनि को भी जोड़ दिया है। एक ही छंद में उसने लक्ष्य तथा लक्षण को सँजो दिया है। विद्वानों का विचार है कि कविराजमार्गकार ने ध्वन्यालोक की तो बात ही नहीं, ध्वनिकारिकाओं को भी नहीं देखा होगा।

कविराजमार्गकार ने केवल संस्कृत आलंकारिकों की नकल न कर कन्नड भाषा की प्रकृति का सम्यक् अनुशीलन कर कन्नड काव्यों की विशेषताएँ भी बताई हैं। उसके अनुसार कन्नड कविता में यति अनिवार्य नहीं है, निदर्शनालंकार कन्नड की प्रकृति के अनुकूल है। अलंकारों क अतिरिक्त भाषा-विज्ञान की कई बातें भी इसमें मिलती हैं। अपने समय से पूर्व की भाषा को लेखक ने 'पळगन्नड' कहा है। उसके अनुसार उत्तरी तथा दक्षिणी उसके दो भेद भी थे। पूर्व-सूरियों का उल्लेख करते हुए किसी प्राचीन रामायण के छंदों का उद्धरण भी दिया है। 'कविराजमार्ग' कन्नड भाषा एवं संस्कृति का रत्न-दर्पण है।

कवि शेखर *(बँ० ले०)*

कवि के जन्म-स्थान तथा समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। इतना तो निश्चित है कि ये महाप्रभु चैतन्य के परवर्ती हैं। इनका प्रकृत नाम देवकीनंदन था। इनके पिता का नाम चतुर्भुज एवं माता का हीरावती था। ये सिंह वंश के थे।

इनकी चार पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। 'गोपाल चरित'(महाकाव्य), 'गोपीनाथ विजय' (नाटक)। दोनों उपबब्ध नहीं हैं। अन्य दो कृतियाँ हैं: 'गोपाल-कीर्तनामृत' एवं 'गोपाल-विजय'।

'गोपाल-विजय' अंतिम एवं महत्वपूर्ण कृति है। यह ग्रंथ मूलतः वर्णनामूलक काव्य है, अन्य कृष्ण-मंगल काव्यों के समान गीतिमूलक नहीं। भागवत के कृष्ण के ऐश्वर्य को गौण कर मधुरा-भक्ति के वर्णन की इन्होंने चेष्टा की है। अधिकांश ग्रंथ 'पयार' छंद में लिखा गया है; कहीं-कहीं त्रिपदी में भी वर्णन है।

'गोपाल-विजय' की भाषा सरल है एवं वर्णन हृदयग्राही। इनमें कवित्व-प्रतिभा थी, अतः इनमें पांडित्य-प्रदर्शन नहीं है। उपमा आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग मिलता है। 'गोपाल-विजय' में स्थान-स्थान पर 'चैतन्य-चरितामृत' की प्रतिध्वनि है।

कृत्तिबास की रामायण (दे०) तथा काशीराम दास के 'महाभारत' (दे०) के समान 'गोपाल-विजय' को कृष्णायन कहना अधिक समीचीन होगा।

कवि-समय *(हिं० पारि०)*

कवि-समय से आशय है कवियों में परंपरागत रूप से प्रचलित मान्यताएँ, परिपाटियाँ और विचार-पद्धतियाँ। भारतीय काव्यशास्त्र में इसका समग्र, सुचिंतित और सविस्तर शास्त्रीय विवेचन राजशेखर(दे०) ने किया है। यद्यपि उनसे पूर्व वामन (दे०) ने 'काव्य-समय' अभिधान से कवियों की व्याकरण और छंद-विषयक परिपाटियों का उल्लेख किया था, तथापि कवि-परंपराओं को बृहत्तर क्षेत्र में शास्त्रीय रूप प्रदान करने का श्रेय राजशेखर को ही है। उनके अनुसार 'परंपरा-प्रचलित, कवियों द्वारा व्यवहृत, अशास्त्रीय और अलौकिक बातों को 'कवि-समय' कहा जाता है' (काव्यमीमांसा)। राजशेखर ने तीन प्रकार के कवि-समयों का निरूपण किया है: स्वर्ग से संबद्ध चंद्र, कामदेव, शिव, नारायण, दामोदर आदि विषयक 'स्वर्ग्य' कवि-समय; नाग, सर्प, दानव, दैत्य से संबद्ध 'पातालीय' कवि-समय तथा पृथ्वी से संबद्ध विविध 'भौम कवि-समय'। राजशेखर ने भौम कवि-समय को बारह प्रकारों में विभक्त किया है जिनमें जलाशय, हंस का नीर-क्षीर विवेचन, रत्न, वसंत, अशोक, अंधकार की सुभेद्यता, मलयगिरि को चंदन का स्थान मानना, चकवा-चकवी-विषयक प्रकरण, चकोर की चंद्रमा में आसक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं ग्रंगार चुगना आदि स्वर्ग और पाताल से इतर सभी कवि-समय समाविष्ट हैं।

कवींद्रवचन-समुच्चय *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शताब्दी ई०]

'कवींद्रवचन-समुच्चय' संस्कृत का सबसे प्राचीन सूक्ति-संग्रह है। इसके संग्रहकर्ता के विषय में कोई जानकारी नहीं है। इसमें जिन कवियों की उक्तियाँ संकलित हैं उनका समय 1000 ई० के बाद का नहीं है। अतः इस आधार पर इसका रचना-काल ग्यारहवीं शताब्दी का प्रथम चरण ठहरता है। इसमें कुछ अप्रसिद्ध बौद्ध कवियों के पद्य भी संगृहीत हैं; अतः कुछ लोग इसके संग्रहकर्ता को बौद्ध मानते हैं।

इसमें अनेक नीतिविषयक तथा शिक्षाप्रद पद्य संगृहीत हैं जो मनुष्य के जीवन को व्यावहारिक बनाने में सहायक हैं। इसके बाद ऐसे संग्रहों की परंपरा चल पड़ी और इस प्रकार के अनेक ग्रंथ लिखे गये।

कषिञ्ञ कालम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

रचनाकार के० पी० केशवमेनन (दे०)। 'कषिञ्ञ कालम्' का अर्थ है अतीत के दिन। यह यशस्वी पत्रकार, सार्वजनिक नेता तथा केरलीयों में अग्रणी केशव मेनन की सत्तर वर्ष की जीवन-कथा है। मलाबार के मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे श्री मेनन ने सामान्य शिक्षा केरल व मद्रास में पाई। उन्होंने विलायत जाकर बैरिस्टरी की शिक्षा ग्रहण की। आगे वे कांग्रेस के कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। उनके जीवन में कितनी ही घटनाएँ घटीं। अब तिरासी वर्ष की पक्व अवस्था में भी नियमित जीवन के कारण दृढ़चित्त व दृढ़ शरीर हैं। नयनों की शक्ति वर्षों पहले नष्ट हो चुकी तथापि अध्ययन-लेखन जारी है। 'मातृभूमि' में प्रति सोमवार उनका लेख आता है। सार्वजनिक सभा में भाषण भी देते हैं। उनकी आत्मकथा केरल तथा भारत के अतीत राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों के चुने हुए मार्मिक प्रसंगों की कथा है।

मेनन जी इस ग्रंथ में बचपन की स्मृतियों से लेकर केरल प्रदेश की स्थापना (1957) तक की बातें स्मरणमंडल और दैनंदिनी के आधार पर सुनाते हैं। इस ग्रंथ में वर्णित महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्रसंगों में कुछ निम्नलिखित हैं—मलाबार लहळा (माप्पिळा आंदोलन) 'मातृभूमि' की स्थापना, वैक्कम सत्याग्रह, द्वितीय विश्वयुद्ध, आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना तथा ऐक्य केरल आंदोलन। प्रत्येक प्रसंग पर अपने अनुभव के आधार पर ही मेनन जी ने लिखा है। मलाबार लहळा का सही विवरण इसमें मिलता है, वेक्कम सत्याग्रह का भी। आज़ाद हिंद फ़ौज की सेवा के काल में मेननजी को जेल का जो कड़ा अनुभव हुआ वह विशेष रूप से वर्णित है। 'मातृभूमि' में वे पुनः आये और वहीं कार्य करते हैं। लंबे सार्वजनिक जीवन ने उन्हें सुख एवं दुःख का अनुभव कराया। दोनों को स्वीकार कर वे जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण से ही आगे बढ़े।

सरल भाषा और अकृत्रिम शैली इस ग्रंथ में शुरू से अंत तक पाई जाती है तथापि कुछ व्यक्तिगत मार्मिक प्रसंगों पर उसमें भावुकता का पुट भी है। मलयाळम साहित्य की चुनी हुई सफल आत्मकथाओं में यह ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है।

क़सीदा *(उर्दू० पारि०)*

इस काव्य-विधा के माध्यम से कवि किसी राजा, सम्राट्, महापुरुष धनाढ्य व्यक्ति अथवा किसी वस्तु का प्रशस्तिगान करता है। इसके लिए विशिष्ट छंद का बंधन नहीं है। रचना-शैली की दृष्टि से यह ग़ज़ल का सर्वांगसम रूप है, परंतु आकार, विषय-वस्तु और भाषा की दृष्टि से दोनों में मिलता है। ग़ज़ल में कम-से-कम पाँच और अधिक-से-अधिक पंद्रह शेरों का विधान है परंतु क़सीदा में कम-से-कम पंद्रह शेर अपेक्षित होते हैं और अधिक-से-अधिक की कोई सीमा नहीं है। ग़ज़ल में प्रायः श्रृंगारिक भावनाओं का मार्मिक चित्रण होता है जबकि क़सीदा किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का गौरव-गान होता है। ग़ज़ल की भाषा माधुर्य और प्रसाद-गुण-संपन्न तथा अत्यंत कोमल होती है परंतु क़सीदा की भाषा-शैली ओज-गुण-प्रधान होती है। शब्दों के लालित्य से अधिक उनकी भव्यता एवं औदात्य का ध्यान रखा जाता है। क़सीदा को विषयवस्तु की दृष्टि से प्रायः चार भागों में विभक्त किया जाता है—'तशबीब', 'गुरेज़', 'मदह' और 'हुस्न-ए-तलब'। भूमिका रूप में लिखी गयी पंक्तियाँ 'तशबीब' कहलाती हैं। भूमिका के पश्चात कवि 'गुरेज़' की ओर प्रवृत्त होता है। यहाँ कवि विवेच्य व्यक्ति अथवा वस्तु की प्रशंसा की ओर मुड़ता है। तदुपरांत प्रशस्ति-गान फूट पड़ता है। और इस प्रकार 'मदह' में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया जाता है। यह वर्णन कहीं-कहीं अत्युक्ति की सीमा का स्पर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगता है। अंत में 'हुस्न-ए-तलब' के संदर्भ में कवि अपनी हार्दिक इच्छाओं, मनोकामनाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति का निवेदन अत्यंत कलात्मक शैली में करता है। क़सीदा का वह वैत जो अत्यंत प्रभावशाली, कवित्वपूर्ण और मार्मिक होता है, 'शाहबैत' कहलाता है।

कस्तूरि नारायण (क० ले०) [जन्म—1897 ई०]

कस्तूरि नारायण मलयाळम-भाषाभाषी होते हुए भी कन्नड के प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। इनका जन्म केरल के त्रिपुणिसुरा में हुआ था। ये मैसूर विश्वविद्यालय में इतिहास के अध्यापक रहे और कुछ दिन दावणगेरे के डी० आर० एम० कालेज के प्रिंसिपल भी रहे। इन्होंने बीस से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। 'अणकु मिणकु' इनकी कविताओं का संग्रह है। 'उपाय वेदांत' इनके निबंधों का संग्रह है जिसमें मृदु हास्य है। 'अनर्थ कोश' इनकी उत्तम हास्य शैली का प्रमाण है। 'गाळि गोपुर' और 'चक्रदृष्टि' इनके मौलिक उपन्यास हैं तो 'पातालदल्लि पापन्चि' (पाताल में मुन्ना) और 'नींद जीवि' (दुःखी मनुष्य) इनके अनूदित उपन्यास हैं। 'दिल्लीश्वरन दिनचरि' में बाबर की स्मृतियों का वर्णन किया है। इनका 'गग्गय्यन गड़िबिड़ि' (गग्गय्या की गड़बड़ी) नाटक लोकप्रिय आ है।

कस्तूरि रंगकवि (ते० ले०)

फ्रेंच गवर्नर डूप्ले के दुभाषिये आनंदरंग पिल्लै के दरबार में रहने वाले कस्तूरि रंगकवि (वेंकट-कृष्णार्य के पुत्र) ने (सन् 1736-1790 ई०) अपने आश्रय-दाता के नाम पर आनंदरंग राट्छंदस् अथवा लक्षण-चूड़ामणि के नाम से लक्षण-ग्रंथ की रचना की थी। 'सांब' मुकुट से सीस (देशी छंद) पद्यों में, ठेठ तेलुगु शब्दों के 'सांब निघंटु' (शब्दकोश) की रचना की। इनके अति-रिक्त 'कृष्णार्जुनचरित्रमु', 'पद्मनायकचरित्रमु', 'गयोपा-ख्यानमु' नामक काव्यों की रचना भी की। ये काव्य अभी प्रकाशित नहीं हैं।

अपने लक्षण-ग्रंथ में रंगकवि ने प्राचीन ग्रंथों से ही लक्ष्य और लक्षणों का संकलन किया है। चतुर्थ और अंतिम आश्वास में संधि, शब्दस्वरूप आदि व्याकरण-विषयों की चर्चा की है। उनकी शैली सरल और सुबोध है।

कहानी (*हिं० पारि०*)

कहानी गद्य में रचित एक लघु कलेवर कथा-त्मक साहित्य-रूप है जिसमें भाव (दे०) अथवा विचार के किसी एक बिंदु को केंद्र बनाकर मुख्यतया तीव्र प्रभा-वान्विति के उद्देश्य से कथानक की संघटना की जाती है। यद्यपि भारतीय वाङ्मय में ऋग्वेद के कथा-वृत्तों, संस्कृत में महाकाव्यों के उपाख्यानों, आख्यायिकाओं (दे०), नीति-कथाओं, बौद्ध अवदान-ग्रंथों और जातकों में कहानी का आदिम रूप उपलब्ध है, तथा मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों और मुस्लिम संस्कृति के प्रभावस्वरूप लिखे गये 'लैला-मजनूं', 'यूसुफ़-ज़ुलेखा', 'शीरीं-फ़रहाद' आदि किस्सों में भी कथा-प्रवाह पूरी रसात्मकता के साथ विद्यमान है, तथापि अपने विशिष्ट रूपाकार के कारण 'कहानी' अभिधान प्राप्त करने वाली आधुनिक कथा-विधा उपन्यास (दे०) की भाँति पश्चिम के प्रभाव से आधुनिक भारतीय भाषाओं में बीसवीं शती के प्रथम दशक में ही प्रायः विकसित हुई है।

पश्चिम में भी यद्यपि कथात्मकता से युक्त साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है, किंतु आधुनिक कहानी का विकास उन्नीसवीं शती की ही घटना है। कहानी को एक सुनिश्चित अर्थ देने का सुव्यवस्थित प्रयास सबसे पहले सन् 1842 में प्रसिद्ध कहानीकार एडगर एलन पो ने किया। उन्होंने किसी एक भाव की केंद्रीयता, कहानी की संक्षिप्तता और समग्र प्रभाव को अत्यधिक महत्व दिया। कहानी की कथाओं, रेखाचित्रों (दे०), शब्द-चित्रों, रिपो-र्ताजों (दे०), गल्पों और चुटकुलों आदि से शैली-शिल्प के आधार पर नितांत पृथक् रूप प्रदान करने का कार्य ब्रेंडर मैथ्यूस ने सन् 1885 में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द फ़िलॉ-सॉफ़ी ऑफ़ शॉर्ट स्टोरी' में किया। उसके बाद से कहानी एक स्वतंत्र साहित्य-विधा के रूप में विकास को प्राप्त हुई है।

कहानी में भी उपन्यास (दे०) के समान कथा-नक, चरित्रांकन, देशकाल एवं वातावरण और अभिव्यंजना-शिल्प आदि तत्त्व माने गये हैं। जीवन से संदर्भित करने अथवा जीवनोपयोगी बनाने के लिए कहानी लिखने वाले मूल्यवादी कहानीकारों के लिए 'उद्देश्य' भी एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। किंतु कहानी-तत्त्वों का इस प्रकार का व्यक्तित्व-विश्लेषण न तो उपयोगी है और न सार्थक ही। कहानी की प्राणवत्ता उसकी प्रभावान्विति में ही निहित होती है। प्रभाव की अन्विति यदि कथ्य के संप्रेषण से होती है तो कहानी का एकमात्र तत्त्व उसकी संवेदना को ही माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएगा, फिर कथानक, चरित्रांकन और वातावरण-सृष्टि कितने ही अपूर्ण और धूमिल क्यों न हों। यदि कहानी की प्रभविष्णुता का कारण शिल्प का विशिष्ट प्रयोग है, तब उस कहानी के लिए उसका एकमात्र महत्वपूर्ण तत्त्व शिल्प ही होगा। वस्तुतः कहानी अपने यथासंक्षिप्त कलेवर में मूल संवेदना को तीव्रतम ढंग से संप्रेषित करने की कला है। यदि कथानक के बिना ही यह कार्य संपन्न हो सके तब कहानी अपनी अरूपता में भी सार्थक हो सकती है। पश्चिम में और भारतीय भाषाओं के अति आधुनिक कहानी-साहित्य में 'एब्सर्ड', 'फ़ैंटास्टिक', 'अमूर्त' और 'फ़ार्स' आदि कहानियों का बहुप्रचलन इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

कहानी के लघु आकार को विशेष महत्व दिया जाता है और कथ्य इसे (आकार को) निर्धारित करता है। कहानीकार जितने कम शब्दों में जितना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सके वह उतना ही सफल माना जाएगा। इसी प्रकार कहानी के प्रकारों या भेदों का वर्गीकरण और परिगणन भी व्यर्थ है क्योंकि कहानी विशाल जीवन के किसी भी कोने से अपना भावसूत्र ले सकती है। शैलियों की संख्या भी मर्यादित नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रत्येक कहानी की अपनी अलग शैली हो सकती है।

'कहानी तिनिबंधर' *(उड़ि० कृ०)*

'कहानी तिनिबंधर' ब्रजमोहन महांति (दे०) का का एक सफल प्रयोगवादी उपन्यास है। इसमें तीन बंध हैं—मुखबंध, कटिबंध एवं पादबंध। स्वयं उपन्यासकार इसका एक पात्र है। अतः शैली की दृष्टि से यह एक नूतन प्रयोग है। कहानी, चरित्र-चित्रण, भाषा-आदि पर बल न देकर कतिपय साधारण संलापों के माध्यम से मन की विकृत अवस्था का अत्यंत कुशलतापूर्वक चित्रण हुआ है।

मानव जीवन का एक क्षण विराट् जीवन का अंश है। यही अंश पुनः जीवन के बीच से आकर जीवन की सूचना देता है। जीवन के एक-एक क्षण पर बल देकर उसकी क्षणिक प्रतिक्रियाओं का संकलन कर इस उपन्यास के अंतःस्वर को सशक्त बनाया गया है।

कांचन भट्ट *(म० पा०)*

यह गोविंद वल्लाल देवल (दे०) के नाटक 'संगीत शारदा' का पात्र है। यह धन के प्रति अपने विशेष आग्रह के कारण जीवन-मूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण मूल से टूटे हुए रूप में चित्रित हुआ है। इसके चरित्र का विकास भद्रेश्वर दीक्षित के संसर्ग का परिणाम है क्योंकि इसके द्वारा दिये गये प्रलोभनों के कारण ही यह जहाँ अपनी धनेच्छा को अनायास पूर्ण होते देखता है, वहाँ पुत्री का विवाह कर सामाजिक उत्तरदायित्व से भी मुक्त हो जाना चाहता है। स्वार्थांध कांचन भट्ट धन-प्राप्ति की संभावना मात्र से विवेक भ्रष्ट हो जाता है। नानाविध प्रयत्नों से पत्नी को पुत्री शारदा का विवाह वृद्ध भुजंगनाथ से करने को तैयार कर लेता है। अपने चक्रव्यूह में भुजंगनाथ को फँसाने के लिए ही यह अपनी पुत्री शारदा को लेकर उसके घर उपस्थित होता है। विवाह के अवसर पर पुलिस द्वारा भद्रेश्वर दीक्षित और भुजंगनाथ को कैद कर लेने पर अपने धन-प्राप्ति के व्यूह को असफल होते देख कर यह विक्षिप्त हो जाता है। इस चरित्र के माध्यम से नाटककार ने स्वार्थांध व्यक्ति के एक विशेष पक्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

कांचि *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग का उपविभाग है जो प्राचीनतम लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' के अनुसार 'वाकै' उपविभाग के पश्चात् आता है। इसके अंतर्गत ऐसे प्रकरण (तुरै) रक्खे गये हैं जो कि संसार की नश्वरता से संबंधित हैं। ये प्रकरण नर एवं नारी के पक्षों के लिए दस-दस बनकर कुल बीस होते हैं। ये तत्कालीन युद्ध के साहसिक कार्यों एवं करुण दृश्यों के परिचायक हैं—यथा, युद्धवीर द्वारा वीरता की पराकाष्ठा-स्वरूप अपने ही घाव चीरकर प्राणत्याग करना, वीरगति-प्राप्त पुरुष के सिर पर अपनी छाती लगाकर हृदय-विदीर्ण पत्नी का अपने प्राण छोड़ना, वीर पति के वियोग पर नारी-समूह का क्रंदन तथा वीरगति-प्राप्त पुत्र के शोक से माता का देहांत, इत्यादि। इन मार्मिक प्रकरणों का भावमय प्रस्तुतीकरण संगम्कालीन 'पुरम्' पद्य-संग्रहों में उपलब्ध है।

'अकत्तियम्' की लक्षण-शास्त्रीय परंपरा की 'पुरप्पोरुळ् वेण्पामालै' के अनुसार 'कांचि' उपविभाग 'वंचि' के पश्चात् आकर उससे संबद्ध पक्ष प्रस्तुत करता है। 'वंचि' आक्रमण से और 'कांचि' प्रतिरक्षा से संबंधित हैं। प्रतिरक्षा के बाईस प्रकरण बताये गये हैं और इनमें से कई 'तोल्काप्पियम्' (दे०) में उक्त प्रतिरक्षा के प्रकरणों से मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांची कावेरी (उ० कृ०)

'कांची कावेरी' रामशंकर राय (दे०) का प्रथम नाटक है। उड़िया इतिहास की यह सर्वश्रेष्ठ रोमांचकारी कहानी युगों से उड़िया-चित्त को आकर्षित करती आ रही है। इस नाटक की विषय-वस्तु के निर्वाचन के पीछे तीन उद्देश्य परिलक्षित होते हैं—(1) जातीयता, (2) भक्ति और (3) आधुनिक रुचिबोध। विषयवस्तु ऐतिहासिक नहीं है, यह पूर्णतः किंवदंतीमूलक है। किंतु नाटक में नाट्यरस के परिपाक के लिए वह सुसंयत एवं सुसंगत रूप से नियोजित है। दैवी शक्ति इसे प्रत्येक पद पर नियंत्रित करती हुई भी लोक-रुचि के विरुद्ध नहीं है। कांची राणी की प्रार्थना एवं संकल्प कि उनकी पुत्री पुरुषोत्तम देव की रानी बने, तथा पुरुषोत्तम देव की भीष्म-प्रतिज्ञा कि कांची-राजकुमारी चांडाल को सौंपी जाये, एक-साथ पूर्ण हुई है। और इसी में निहित है नियति के विद्रूप की एकांत कमनीयता एवं रमणीयता तथा इस नाटक के प्राण-स्पंदन की नाटकीयता।

कांची-नरेश अपनी पुत्री पद्मा के साथ पुरी दर्शनार्थ आते हैं। वहाँ रथयात्रा के समय महाराजा को जगन्नाथ जी के रथ के सामने झाड़ू देते हुए देखते हैं। महाराजा पुरुषोत्तम देव कांची-कुमारी की ओर आकर्षित होते हैं, तथा उनके लौट जाने के बाद विवाह का पैगाम भेजते हैं। कांची-नरेश विवाह के प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा देते हैं कि कांची-राजकुमारी एक चांडाल को सौंपी नहीं जा सकती। अपमानित पुरुषोत्तम देव कांची पर आक्रमण करते हैं। पहली बार उनकी हार होती है किंतु दूसरी बारी जगन्नाथ जी के आशीर्वाद एवं कृपा से कांची-अभियान में वे विजयी होते हैं। राजकुमारी बन्दिनी बनती हैं, तथा महाराज का महामंत्री को आदेश होता है—'पद्मावती चांडाल को सौंप दी जाय'। महामंत्री को राजाज्ञा शिरोधार्य है। एक वर्ष बाद—आज उड़ीसा का राष्ट्रीय पर्व-रथयात्रा है, महाराज बने हैं चांडाल—महामंत्री पद्मावती को चांडाल को सौंप देते हैं। महाराज स्तब्ध हैं, महामंत्री हर्षोत्फुल्ल, प्रजा आनंद-विह्वल।

ऐतिहासिक पुरुषोत्तम देव में मानव पुरुषोत्तम देव की प्रतिष्ठा कर, उनके अंतर्द्वंद्व को रूपायित करने का प्रयास नाटककार ने किया है। एक ओर राज्यापमान का प्रतिशोध, दूसरी ओर पद्मावती के प्रति प्रेम। एक ओर आहत अहं की फूत्कार है—पद्मावती चांडाल को समर्पित हो; दूसरी ओर निभृत अंतर का प्रगाढ़ स्नेह पद्मावती की इस दुर्दशा से व्यथित है। नाटकीय शिल्प में यह द्वंद्व स्वतः प्रस्फुटित हो नाटक को मनोज्ञता प्रदान करता है। इसी के कारण नाटकीय चमत्कार की सृष्टि हुई है। जातीयता एवं भक्तिभाव इसके सहायक हैं। पुरुषोत्तम देव का अंतःसौंदर्य तथा नाटक का ललित कलावैभव निखर उठा है।

इसमें शास्त्रीय नियमों का पूर्ण पालन हुआ है। पाँच अंक हैं और सुसंघटित कथा-वस्तु है। अपमान एवं प्रतिशोध की प्रतिज्ञा से यह प्रारंभ होता है। यहीं से अंतर्द्वंद्व चल पड़ता है। प्रथम अंक में इस द्वंद्व की सूचना मिलती है, दूसरे अंक में उसका प्रसार एवं तीसरे अंक में चरम सीमा है तथा चौथे अंक में पद्मा संगीत के माध्यम से उग्र उद्वेलन की तीव्रता का चित्रण हुआ है। पंचम अंक में पद्मावती के भाग्य-विपर्यय से राजा विकल होते हैं, किंतु मंत्री की विलक्षण नीति के कारण इस द्वंद्व का अंत में सुखांत पर्यावसान होता है।

इसकी भाषा एवं शैली भी विषयानुरूप उदात्त हैं।

कांतम् (ते० पा०)

यह पात्र श्री मुनिमाणिक्यम् नरसिंहरावु (दे०) की अमर सृष्टि है, जो उनकी अनेक रचानाओं की केंद्रबिंदु है। कांतम् कोई कल्पित चरित्र नहीं है। यह नरसिंह रावु की पत्नी ही थीं। कांतम् ने अपने पति को साहित्यिक प्रेरणा दी थी और उनके पति ने अपनी रचनाओं द्वारा उनको अमर कर दिया है। कांतम् भारतीय नारी का सुंदर प्रतिनिधि है। यह अपनी चतुरता, वाक्पटुता, रसिकता, त्याग एवं कर्तव्य-भावना से हमारे मन पर गहरा प्रभाव डालती है। यह बचपन में अपने अल्हड़पन से, यौवन में अपने स्निग्ध, सरस एवं मोहक व्यवहार से, तथा मातृत्व की प्राप्ति के उपरांत अपने त्याग एवं कर्तव्यशीलता से हमें मुग्ध करती है। इसने बहुत थोड़ी शिक्षा पायी है। फिर भी यह एक अत्यंत सफल गृहिणी है। पति को सुख देने में, पति से झगड़ने में, वादविवाद करने में, तथा पति के क्रोध को शांत करने में जहाँ एक ओर वह अपनी बुद्धि-चातुरी से हमें चकित करती है, वहाँ दूसरी ओर यह अल्पशिक्षित होने के कारण शिक्षित संसार के अनेक विषयों के प्रति अपनी अबोधता को व्यक्त करके हास्य की सृष्टि कर, हमारे मन को मोह लेती है। कांतम् आंध्र का एक स्त्रीरत्न है जिसका स्वरूप घर-घर में पाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांता *(त० पा०)*

कांता स्वर्गीय सी० एन्० अण्णादुरै (दे०)-कृत 'गुमास्ताविन् पेण्' नामक उपन्यास की नायिका है। सन् 1940 ई० में टी० के० एस० ब्रदर्स ने 'गुमास्ताविन् मकळ्' नामक नाटक का अभिनय कराया था। उस नाटक से ही अण्णादुरै को उपन्यास रचने की प्रेरणा मिली। उन्हें नाटक की नायिका सीता का चरित्र प्रभावशाली नहीं लगा। अतः उन्होंने अपने उपन्यास में नायिका के चरित्र में कुछ परिवर्तन किए, इसीलिए कथा में भी जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। सीता के समान कांता भी अपने माता-पिता की विवशता को देख अपने युवाप्रेमी को भुलाकर वृद्ध से विवाह कर लेती है और विवाह के अगले वर्ष ही विधवा हो जाती है परंतु वह सीता के समान वैधव्य को अपना दुर्भाग्य न मानकर समाज का क्रूर कर्म मानती है। एक अमीर युवक की सहायता से वह अपने परिवार का भरण-पोषण करती है। पहले प्रेमी द्वारा इसका विरोध किए जाने पर वह उसका वध कर देती है। सीता समाज से डरती है परंतु कांता समाज का विरोध करती है। अपने प्रेमी के वध के उपरांत जज के सम्मुख खड़ी होकर सामाजिक ढकोसलों का विवरण देती है। वृद्ध-विवाह, लोगों द्वारा निर्धनों को उपदेश, समाज में विधवा की दुर्दशा, समाज द्वारा युवती विधवा के माता-पिता को उपदेश, समाज द्वारा नारी के वैधव्य की रक्षा का प्रयत्न आदि विषयों को लेकर वह समाज पर कटु व्यंग्य करती है। कांता के रूप में अण्णादुरै ने आधुनिक जागरूक नारी की कल्पना की है। कांता अण्णादुरै की अमर कल्पना-सृष्टि है।

कांताराव, बलिवाड *(ते० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

ये तेलुगु के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। इन्होंने अपने लेखन का आरंभ 1947 ई० से किया है। 'गोडमीदि बोम्मो' (दीवार पर गुड़िया), 'दगा पडिन तम्मुडु' (वंचित भ्राता), 'प्रवाहमु', 'संपंगि' (चंपक), 'इदे दारि' (यही रास्ता), 'पुण्यभूमि', 'नालगुमंचालु' (चार पलंग) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त 'मत्स्यगंधी', 'सगुणा', 'अन्नपूर्णा', 'पराजयमु' आदि छोटी उपन्यासिकाएँ और डेढ़ सौ के करीब कहानियाँ। ये कभी-कभी रेडियो रूपक भी लिखते हैं। मानव-जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण, सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण इनकी रचना का प्रमुख ध्येय है। सरल और सशक्त काव्य-व्यंजना के लिए कांताराव प्रसिद्ध हैं।

काउल *(उ० पा०)*

बैरिस्टर गोबिंददास (दे०) की रचना 'अमावास्यार चंद्र' (दे०) का चंद्र है काउल। इसके चारों ओर अनेक चंद्रमाओं का घेरा है—मिस मीरा, मनीषा आदि। सभी सकलंक हैं तथापि इसकी महान् मानवीयता से समग्र ग्रंधकार उजला है।

काउल एक अद्भुत चरित्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे गटर से इसकी उत्पत्ति हुई है तथा वही इसका जीवन-दर्शन है। किंतु पृथ्वी की समस्त शुभ्रताओं से यह अधिक धवल, अधिक शुक्ल है। काउल को यंत्रणा नहीं, और न है अनुशोचना; भाग्य के विरुद्ध नहीं है उसका विद्रोह अथवा आत्मसमर्पण। विजय के लिए नहीं है आग्रह, और नहीं है पराजय का भय। उसका जीवन है अनंत पाप की कभी न खत्म होने वाली कथा। इस अतल-स्पर्शी कलंक के बावजूद उसके चरित्र में है एक सशक्त मर्यादा।

एक नारी का अवैध उपभोग कर अनेक नारियों के मुंह में इसने हँसी प्रस्फुटित की है। सबके निकट वह पूज्य है। पाप की प्रतिमूर्ति काउल मनीषा के निकट देवता हो गया है। वास्तव में काउल शैतान भी है और देवता भी। देवत्व निजस्व है, और शैतान इस पृथ्वी के वातावरण से उद्भूत अनिच्छाकृत रूप।

मनीषा कहती है—"काउल, तुमने त्याग सीखा है, उपभोग भी सीखा है; किंतु दावा नहीं सीखा। तनिक इंगित पर ही तुम्हारे पद-तल में मैं लुटा देती अपना समस्त विश्व।" किंतु काउल इतना नीच नहीं है कि निस्सहायता का सुयोग पाकर नारीत्व की प्रताड़ना करे। काउल ने जीवन देखा है—नरक से स्वर्ग तक।

काकति, बाणीकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1894 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

ये ग्रँग्रेज़ी, ग्रीक और संस्कृत साहित्य के पंडित थे। काकति जी तीक्ष्ण बुद्धि-संपन्न आलोचक एवं निबंधकार थे। इनके अनेक निबंध 'आवाहन', बाँही', 'चेतना' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। ग्रँग्रेज़ी में रचित ग्रंथ 'असमीया भाषा, इसका गठन और विकास' से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी ख्याति बढ़ी थी। असमीया भाषा और व्याकरण पर यही एकमात्र विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ है।

'प्रकाशित रचनाएँ'—'पुरणि असमीया साहित्य' (1940), 'साहित्य आरु प्रेम' (1948), 'पुरणि कामरूपर धर्मरधारा' (1955), 'कलिता जातिर इतिवृत्त', 'मा कामाख्या'।

इन्होंने असमीया के पुराने और नये दोनों काल के साहित्यों पर लिखा है। प्राचीन साहित्य की दार्शनिक, साहित्यिक और तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी गहन अध्ययन इन्होंने किया है। नये साहित्यकारों के अध्ययन में इन्होंने पाश्चात्य तुलनात्मक शैली अपनायी है। इनकी भाषा चित्रात्मक और सरस है, स्थान-स्थान पर काव्यात्मक गद्य का निदर्शन मिल जाता है। शैली सहज और सरल है।

ये असमीया में वैज्ञानिक आलोचना और निबंध-लेखन के प्रवर्तक माने जाते हैं।

काकभट *(गु० पा०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के अमर उपन्यास 'गुजरातनो नाथ' में प्रवहमान तीन कथाओं में से एक कथा का नायक काकभट है। छोटी किंतु तेजयुक्त आँखें, पतला पर दृढ़ और ऊँचा शरीर, संकल्पशीलता की छाप वाला पतली-नुकीली नाक, गरुड के समान झपट्टा मारने की शक्ति, निर्भीक व सावधान स्वभाव वाले व्यक्ति के रूप में लेखक ने काक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। लाट प्रदेश के मंडलेश्वर त्रिभुवनपाल के अत्यंत विश्वासपात्र व उनके सतत परामर्शदाता की हैसियत से लाट प्रदेश का यह ब्राह्मण पाँच-छह वर्षों से युद्धों और राजनीति के दाँवपेच में व्यस्त रहने के कारण निर्भीक, यत्किंचित अभिमानी और आत्मनिष्ठ हो गया था। काक की ही राजनीतिक सूझबूझ के कारण पाटण जूनागढ़ के नवघण को पराजित करने में सफल हुआ। पाटण की राजनीति में अपना स्थान निर्दिष्ट करने में काक को उदय महेता जैसे मंत्री और मुंजाल (दे०) के समान नीति-निपुण महामात्य से टक्कर लेनी पड़ी और अंततः उदय महेता का हिसाब चुकता कर वह महामात्य का विश्वास प्राप्त करने में सफल हुआ; और स्वयं मुंजाल को भी यह कहना पड़ा कि अगर काकभट पाटण में रहा होता तो उसका (मुंजाल का) काम थोड़ा हल्का हो जाता। काक की राजनीतिक प्रखरता को देखकर महाराज जयदेव को केवल ईर्ष्या ही नहीं हुई अपितु उन्हें यह लगा कि अगर काक पाटण में रहा तो वे कभी स्वतंत्र राजा नहीं बन सकेंगे। इस दृष्टि से उनका यह कथन महत्वपूर्ण है: "जहाँ किसी की नज़र नहीं पहुँचती वहाँ इसकी पहुँचती है; जो काम कोई नहीं कर सकता वह यह कर सकता है···आप तो पितातुल्य हो···पर मुझे दो मुंजाल महेता नहीं चाहिए।···वह अगर यहाँ रहेगा तो मुझे उसके हाथ का खिलौना बना रहना पड़ेगा।" इसके अलावा काकभट का एक दूसरा रूप भी है जो मंजरी (कविकुलशिरोमणि रुद्रदत्त वाचस्पति की अपूर्व सुंदरी कन्या) के रक्षक, प्रेमी और पति होने के कारण हमारे सामने आता है। आरंभ में काक मंजरी की विद्वत्ता से प्रभावित होता है, उसे पूरा सम्मान देता है। उस रमणी के प्रति काक के मन में जो आकर्षण पैदा हुआ है उसे साकार देखने की इच्छा उसके मन में बलवती होती है। विवाहित होने पर वह मंजरी के साथ बल-प्रयोग की धमकी देता है किंतु बार-बार उस अहंकारी नारी से अपमानित होने के कारण उसका अपना अभिमान भी जाग्रत होता है जो मंजरी के मान-भंग के साथ समाप्त होता हुआ दिखाई देता। संक्षेप में, काक स्वाभिमानी, राजनीतिविद्, कुशल योद्धा, निर्भीक व देशभक्तिपूर्ण सैनिक, किसी के भी दुःख में अपने को ख़तरे में डाल उसे उबारने वाला, सामान्यतः दृढ़चित्त और विनयी है।

काकळी *(मल० पारि०)*

काकळी एक द्रविड़ वृत्त का नाम है। इसमें बारह अक्षर होते हैं।

काका कालेलकर *(गु० ले०)* [जन्म—1885 ई०]

मराठीभाषी काका कालेलकर (दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर) के निर्माण में लोकमान्य तिळक (दे०), स्वदेशी और स्वराज्य के आंदोलन, परांजपे की समाज-सुधार प्रवृत्ति, प्रार्थना-समाज, विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, आनंद कुमारस्वामी, भगिनी निवेदिता, हेवेल और अवनींद्र ठाकुर (दे०) के नये कला-संप्रदाय ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इनकी धारणा थी कि शिक्षा के द्वारा ही देशोद्धार का काम किया जा सकता है। परिणामतः बड़ौदा के गंगनाथ भारती विद्यालय में सन् 1908 में इन्होंने अपना कार्यारंभ किया। राजनीतिक कारणों से यह विद्यालय 1911 ई० में बंद हो गया। इसके पश्चात् स्वामी आनंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) के साथ इन्होंने हिमालय का प्रवास किया। वहाँ से लौटने पर अनेक संस्थाओं में घूमते हुए कालेलकर जी शांतिनिकेतन पहुँचे और वहाँ शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। सन् 1915 ई० में इनका साक्षात्कार गांधी जी से यहीं पर हुआ और 1917 ई० में ये गांधी जी के आश्रम में आकर रहने लगे। स्वराज्य के आंदोलनों में कालेलकर जी कई बार जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। शिक्षा, समाज, राजनीति, साहित्य और संस्कृति आदि पर लिखे गए इनके निबंध 'कालेलकर लेखों' के नाम से ग्रंथ-रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनके अन्य निबंध-संग्रह हैं: 'जीवन-विकास', 'जीवनसंस्कृति', 'जीवनभारती', 'जीवनप्रदीप', तथा 'जीवनचिंतन', सौंदर्य-दर्शन और संस्कार-उद्बोधन की दृष्टि से प्रवास-वर्णन करने का शुभारंभ काका साहब ने किया है। इनका 'हिमालयनो प्रवास' (दे०) गुजराती यात्रा-साहित्य की अनुपम पुस्तक है। अपने निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाला इनका आत्मचरितात्मक ग्रंथ है—'स्मरणयात्रा'। इनकी दृष्टि में कला का मूल्यांकन जीवन के परिवेश में ही होना चाहिए, उससे कटकर नहीं। इन्होंने कला को धर्म का विरोधी न मानकर सच्चरित्रता से संपृक्त कर दिया है। काका कालेलकर जी की शैली सरल, तेजयुक्त, प्रसादमय, सात्त्विक, संयत कल्पना से संस्पर्शित, सौंदर्य को आत्मसात् करती हुई एक 'सूक्ष्मदर्शी' भाषापारखी का परिचय दे जाती है।

काक्कै-पाडिनियार् *(त० ले०)* [समय—प्रथम शताब्दी]

'काक्कै' का अर्थ है—'कौआ' और 'पाडिनियार्' का अर्थ है—'वर्णन करने वाली महिला'। इनका वास्तविक नाम 'नच्-चैळ्ळै' प्राप्त होता है। किंतु इन्होंने एक कविता में कौए का अत्यंत मनोरम उल्लेख किया है; इसीलिए इनका नाम 'काकवर्णनशील' प्रख्यात हो गया था। संघकालीन कवयित्रियों में इनका भी अमर स्थान है। इनके द्वारा रचित दो ही पद्य प्राप्त हुए हैं पर दोनों अत्यत सुंदर हैं। एक में विरह और दूसरे में वीरता का वर्णन हैं। उदाहरण—'हे सखि! इस कौए ने बोलकर, मेरी भुजाओं की कृशता के कारणभूत उस व्यक्ति (मुझे विरह-निमग्न करने वाले) के आगमन की सूचना दी है; इस कौए को सात मन श्वेत तंडुल में प्रभूत मात्रा में घी मिलाकर बलि समर्पित करूँ—तो भी वह कम होगी।'

"उस वृद्धा से किसी ने कहा—'युद्धभूमि में तुम्हारा पुत्र मरा पड़ा है।' वह वृद्धा यह कहती हुई निकल पड़ी—'यदि पीठ पर घाव लगने से वह मर गया है तो मैं इन स्तनों को, जिनका दूध पीकर वह बड़ा हुआ, काट डालूँगी।' युद्धभूमि में क्षत-विक्षत पड़े अपने पुत्र का शव देखकर वह पुत्रजन्म के समय से भी बढ़कर आनंदित हुई।"

क़ाज़ी क़ाज़न *(सिं० ले०)* [जन्म—1463 ई० के आसपास; मृत्यु—1551 ई०]

क़ाज़ी क़ाज़न के पूर्वज सिंध में सेव्हण और ठटो नामक नगरों के निवासी थे, परंतु क़ाज़ी ने अपने जीवन का अधिक समय सिंध के बखर नगर में बिताया था। ये इस नगर के प्रसिद्ध क़ाज़ी थे और इनके जीवन-काल में चार हाकिमों ने सिंध पर राज्य किया था, जो थे—समा वंश के हाकिम ज़ाम नंदी और ज़ाम फ़रोज़ तथा अरग़ून-वंश के हाकिम शाह बेग अरग़ून और शाह हुसैन अरग़ून। क़ाज़ी साहिब वाराणसी के प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश सैयद मुहम्मद के शिष्य थे।

क़ाज़ी क़ाज़न का फ़ारसी भाषा में लिखा हुआ एक दीवान मिलता है। सिंधी में भी इन्होंने कई बैत कहे होंगे जिन में से केवल सात बैत प्राप्त हुए हैं। क़ाज़ी साहिब पहले सिंधी कवि हैं जिनके लिखित रूप में इतने बैत प्राप्त हुए हैं। ये बैत 'बयान-अल्-आरिफ़ीन व तंबीह अल्-गाफ़िलीन' नामक फ़ारसी की एक पुस्तक में शाह अब्दुल-करीम के जीवनवृत्त तथा बैतों के साथ दिए हुए हैं। क़ाज़ी क़ाज़न के उपलब्ध सात बैत सूफ़ी मत के जगमगाते हुए सात रत्न हैं, जिनसे सिंध के परवर्ती अन्य सूफ़ी कवियों को भी प्रकाश मिला है। हिंदी दोहा छंद से सिंध बैतों के विकास के कुछ उदाहरण भी इन सात बैतों में मिलते हैं।

काट्टुकुरङ्ङु *(मल०कृ०)* [रचना-काल —1962 ई०]

के० सुरेंद्रन (दे०) का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास। यह उनके प्रथम उपन्यास 'ताळम्' (दे०) का अगला भाग है। प्रभाकरन् और सौदामिनी के संघर्षमय दांपत्य में एक और स्त्री-पात्र अम्पिलि का आविर्भाव होता है जिसके प्रति प्रभाकरन् के मन में आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। अम्पिलि उस दांपत्य को बचाने के लिए पीछे हटने के प्रक्रम में कुचक्र में फंसकर वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश हो जाती है। अंततः वह अपने परिश्रम से विजय पाती है।

इस उपन्यास में लेखक अपने इस मत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन करता है कि मानव-मन किसी निर्धारित लक्ष्य का अनुसरण करने में असमर्थ है और वह जंगली बंदर के समान चंचल है। अपने विश्लेषण में लेखक को सफलता मिली है और इस प्रकार उपन्यास महत्वपूर्ण बन गया है।

काठनिबारी घाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल—अज्ञात, ले०—महिमबरा।]

यह 12 कहानियों का संग्रह है। इसकी 'अपराजित' और 'चक्रवत' हास्य रस की कहानियाँ हैं। 'माछ आरु मानुह' में नायक एक प्रकांड मछली से जूझता और पराजित होता है; इस पर हेमिंग्वे का प्रभाव है। 'काठनिबारी घाट' नारी के करुण जीवन की एक छोटी कहानी है। लेखक की कथा-शैली अत्यंत सरल है, उसमें वक्रता नहीं है।

काणे, पी० वी० *(सं० ले०)*

इनका जन्म 7 मई, 1880 ई० को एक मध्यवर्गीय कोंकण परिवार में हुआ। एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने कुछ समय के लिए एक गवर्नमेंट सेकण्डरी स्कूल में अध्यापक के रूप में कार्य किया। फिर ये बम्बई हाई कोर्ट में वकील रहे। इसके बाद इन्होंने बम्बई यूनिवर्सिटी में क्रमशः 'विल्सन फ़ाइलॉलोजिकल लेक्चरर', 'स्प्रिंगर रिसर्च स्कालर' तथा 'प्रोफ़ेसर ऑफ़ लॉ' के रूप में कार्य किया। इनके अमूल्य ग्रंथ-रत्नों में से प्रमुख ग्रंथ हैं—

(1) एंशिएट ज्यॉग्रफ़ी ऐंड सिविलाइज़ेशन ऑफ़ महाराष्ट्र;
(2) हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र;
(3) हिंदू कस्टम्स एंड मॉडर्न लॉ;
(4) हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोइटिक्स;
(5) वैदिक बेसिस ऑफ़ हिंदू लॉ;
(6) ए ब्रीफ़ स्कैच ऑफ़ पूर्वमीमांसा सिस्टम;
(7) भारत-रामायणकालीन समाज-स्थिति।

इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक संस्कृत-ग्रंथों का संपादन तथा अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया। इनके अनेक निबंध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए तथा इनके दो प्रसिद्ध ग्रंथों—'हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र' और 'हिस्ट्री ऑफ़ पोइटिक्स' का हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत हुआ है।

कात्यायन *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—600 ई० पू०]

कुछ विद्वान् कात्यायन का स्थिति-काल विक्रम से 2900-3000 वर्ष पूर्व मानते हैं। कात्य, पुनर्वसु, मेधाजित्, वररुचि भी कात्यायन के नाम बतलाए जाते हैं। प्राचीन वाङ्मय में कौशिक, आंगिरस तथा भार्गव आदि के नाम से अनेक कात्यायनों का उल्लेख मिलता है। वार्तिककार कात्यायन पाणिनि (दे०) के शिष्य बतलाए जाते हैं। 'कथासरित्सागर' (दे०) में कात्यायन को कौशंबी का निवासी कहा गया है। 'स्कंदपुराण' के अनुसार कात्यायन के पिता याज्ञवल्क्य का आश्रम गुजरात में था। याज्ञवल्क्य के मिथिला चले जाने पर कात्यायन महाराष्ट्र चले आये थे।

पाणिनीय व्याकरण पर कात्यायन के वार्तिक उत्कृष्ट कोटि की रचना हैं। इन वार्तिकों के कारण ही कात्यायन वार्तिककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। पाणिनि और कात्यायन का यह शैली-भेद देखा जाता है कि जहाँ पाणिनि अनेक स्वतंत्र पदों के द्वारा प्रायः कार्य का विधान करते हैं, वहाँ कात्यायन अपने वार्तिकों में समस्त शैली में ही कार्य का विधान करते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखने में आता है कि शुक्लयजुः प्रातिशाख्य के अनेक सूत्र कात्यायन के वार्तिकों के समान हैं।

कात्यायन के वार्तिक पाणिनीय व्याकरण को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। इन वार्तिकों की रचना करके कात्यायन ने व्याकरण-शास्त्र को एक अमूल्य समृद्धि प्रदान की है।

कादंबरी *(सं० कृ०)* [समय—सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध]

संस्कृत गद्यकाव्य के क्षेत्र में बाण (दे०) भट्ट की 'कादंबरी' का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना 'हर्षचरित' (दे०) के बाद की है। 'कादंबरी' के पूर्व भाग की रचना करके ही बाण परलोकगामी हुए; अतः उत्तर-भाग की रचना उनके सुपुत्र पुलिंदभट्ट ने की।

'कादंबरी' को कथा की कोटि में रखा जाता है। यह एक प्रेमाख्यान है। इसमें कादंबरी और चंद्रापीड़ तथा महाश्वेता (दे०) और पुंडरीक इन दो युग्मों की प्रणय कथा अनुस्यूत की गई है। शापवश पुंडरीक की मृत्यु हो जाती है और वह वैशंपायन नाम से जन्म लेता है तथा चंद्रापीड़ का मित्र बनता है। चंद्रापीड़ तथा वैशंपायन का संयोग से देहावसान हो जाता है और वे राजा शूद्रक (दे०) तथा तोते के रूप में जन्म लेते हैं। कादंबरी और महाश्वेता सखियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कादंबरी का चंद्रापीड़ से तथा महाश्वेता का पुंडरीक से प्रेम होता है। उनके पुर्नमिलन के संबंध में आकाशवाणी होती है। एक दिन वैशंपायन तोता राजा शूद्रक के दरबार में लाया जाता है। वह पूर्वजन्म की घटनाओं का वर्णन करता है और पुंडरीक बन जाता है। राजा शूद्रक भी यह कथा सुनकर चंद्रापीड़ हो जाता है। दोनों का अपनी प्रियाओं से मिलन एवं परिणय हो जाता है।

बाण ने कादंबरी में सजीवता तथा प्रभाव-शालिता लाने के लिए समासबहुल शैली अपनायी है पर अन्यत्र लघु वाक्यों का प्रयोग भी करके उन्होंने अपनी शैली को सशक्त तथा प्रभावोत्पादक बनाया है। उनकी शैली विषय के सर्वथा अनुरूप उचित एवं सरस है। जहाँ हृदय के भावों की अभिव्यंजना है वहाँ न तो समासों का प्रयोग है, न दीर्घवाक्यों का। पं० चंद्रशेखर पांडेय ने कादंबरी को संस्कृत-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। इसकी सारी कथा कौतूहलमय रोचकता से ओतप्रोत है। काव्य सौष्ठव के अतिरिक्त हमें तत्कालीन समाज के संबंध में अनेक बातों का पता चलता है। स्त्रियों द्वारा संतान-प्राप्ति के लिए जादू-टोने का प्रयोग, राज्याभिषेक की परिपाटी, शैव-शाक्त और क्षयपरक वर्ण-व्यवस्था, सती-प्रथा आदि सामाजिक जीवन के अंगों पर इसमें पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

कादंबरी *(सं० पा०)*

महाकवि बाण (दे०) भट्ट की सुप्रसिद्ध कृति 'कादंबरी' (दे०) की नायिका का नाम भी कादंबरी ही है जो कवि-कल्पित पात्र है। कादंबरी गंधर्वराज की पुत्री है। उज्जयिनी के राजा तारापीड़ का पुत्र चंद्रापीड़ जब किन्नरयुगल का पीछा करते हुए हिमालय के घोर अंतराल में स्थित आच्छोद सरोवर तक पहुँच जाता है तो उसका परिचय महाश्वेता (दे०) नाम की तपस्विनी से होता है जो अपने प्रियतम के वियोग में कालयापन कर रही थी। वही चंद्रापीड़ को अपनी सखी कादंबरी से परिचित कराती है।

प्रथम मिलन से ही दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं। दोनों सखियों के आग्रह पर चंद्रापीड़ कुछ दिन के लिए वहीं ठहर जाता है जिससे कादंबरी के साथ उसका प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है। चंद्रापीड़ के वहाँ से प्रस्थान करने पर कादंबरी अपनी परिचारिका पत्रलेखा को चंद्रापीड़ के पास भेजती है; साथ में एक पत्र भी दे देती है जिसे पत्र-लेखा ने उचित समय पर प्रस्तुत किया। अंत में जब चंद्रापीड़ के शाप की अवधि समाप्त हो जाती है तो दोनों का विवाह हो जाता है।

जिस कादंबरी का निरूपण करने के लिए प्रतिभा के धनी महाकवि बाणभट्ट ने 'कादंबरी' नामक कथा-कृति की रचना की, उसके चरित्र का पूर्ण रूप से चित्रण किए बिना ही वे यशःशेष हो गये। अनंतर उनके ही पुत्र पुलिंदभट्ट ने यद्यपि अपनी सारी शक्ति लगा कर उसे जिस किसी प्रकार पूरा कर दिया है तथापि वह कादंबरी के चरित्र का उसी रूप में चित्रण नहीं कर सके जिस रूप में बाण ने सोचा होगा।

कादंबरी *(गु० कृ०)*

प्रसिद्ध रामोपासक कवि भालण (दे०)-रचित कादंबरी' संस्कृत की प्रसिद्ध गद्य-रचना बाणभट्ट-रचित 'कादंबरी' का गुजराती में पद्यानुवाद है। यह पंद्रहवीं शती ई० की रचना है। इसका भाषा-सौष्ठव और वर्णन-कौशल द्रष्टव्य है।

संभवतः समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में यह प्रथम पद्यानुवाद है। क्षेमेंद्र ने कादंबरी का संस्कृत पद्य में 'पद्य कादंबरी' के नाम से रूपांतर किया है, किंतु वर्तमान भारतीय भाषाओं में यह प्रथम प्रयास ही है।

क़ादरयार *(पं० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1805-6 ई०; मृत्यु—1850 ई०]

क़ादरबख़्श 'क़ादरयार' का जन्म ज़िला गुजराँ-वाला (पाकिस्तान) के एक कृषक जाट-परिवार में हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा सामान्य कोटि की थी। 'पूरन भगत' (दे०), 'राजा रसाल' (दे०), 'सोहणी-महीवाल', 'सीहरफी हर्रिसिह नलुआ' जैसी प्रसिद्ध क़िस्सा-कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने 'महिराजनामां', 'रोज़ानामा' आदि कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं। क़िस्सा-काव्य में मुस्लिम कथा-वृत्तों के स्थान पर हिंदू वीरों के चरित्र को वर्ण्य बना कर क़ादरयार ने क़िस्सा-काव्य में एक नई प्रवृत्ति का सूत्र-पात किया जो किशनसिंह आरिफ़ (दे०), कालिदास, आदि परवर्ती हिंदू कवियों द्वारा विशेष समादृत हुई। घटनाओं को विस्तार देने में कवि सिद्धहस्त हैं। इनकी रचनाओं में किसी गंभीर जीवन-दर्शन अथवा मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करने की अपेक्षा कथागत औत्सुक्य को शांत करने की प्रवृत्ति प्रबल है, फिर भी अनेक प्रसंगों में मानवीय संवेदनाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मनोहारी अभिव्यंजना के कारण सुंदर काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। प्रस्तुत कवि की भाषा केंद्रीय (माझी) पंजाबी है जिसमें फ़ारसी के प्रचलित तत्सम और तद्भव शब्दों का पुट है। अधिकांश रचनाएँ सीहरफ़ी (दे०) (ककहरा)-शैली तथा 'बैंत' (दे०) और 'दोहिरा' (दे०) छंदों में हैं। भाषा की सफलता तथा नवीन वर्ण्य विषय के कारण 'सीहरफ़ी हरिसिंह नलुआ' और 'पूरन भगत' विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। इन्हीं के कारण पंजाबी साहित्य में 'क़ादरयार' को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

काना हरिदत्त (बँ० ले०)

काना हरिदत्त के जन्म-काल एवं जन्म-स्थान के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता। अनुमान से ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी के मध्य किसी समय ये विद्यमान थे। परोक्ष प्रमाणों से लगता है कि ये पूर्वी बंग के कवि थे। माता-पिता के संबंध में भी कुछ ज्ञात नहीं।

काना हरिदत्त 'मनसा मंगल' (दे०) काव्य के आदि कवि हैं। इनके गीत मनसा को स्वीकृत न हुए—ऐसा परवर्ती कवि विजय गुप्त (दे० गुप्त, विजय) के उल्लेख से ज्ञात होता है। विजय गुप्त के समय काना हरिदत्त के गीत लुप्त हो चुके थे। हरिदत्त के गीत गाथा-गीत (बैलड) थे—यह भी परवर्ती वृत्त से ज्ञात होता है। इनका छंद-विधान सदोष था और शब्द-योजना सुश्राव्य नहीं थी—ऐसा विद्वानों का अनुमान है।

कानीया कीर्त्तन (अ० कृ०) [रचना-काल—1861 ई० ले०—हेमचंद्र बरुवा (दे०)]

आधुनिक असमीया नाट्य-साहित्य में इसका दूसरा स्थान है (प्रथम स्थान 'रामनवमी' (दे०) का है)। अँग्रेज़ों के भारत आने पर अफ़ीम का प्रयोग बढ़ गया था, इससे देश की आर्थिक और शारीरिक शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ रहा था। तालुकेदार भद्रेश्वर बरुवा का परिवार अफ़ीम-सेवन के दुष्परिणाम से किस प्रकार बरबाद हुआ, इसमें इसका चित्रण है। लेखक ने धर्म की आड़ में अनैतिक कार्य करने वाले महंत-साधुओं पर भी प्रहार किया है। नाटक में चुभते हुए व्यंग्य हैं। इसमें नाटकीय गुण कम हैं, किंतु सुधारवादी उद्देश्य एवं मनोरंजन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

कानूरु हैग्गडिति (क० कृ०)

कानुरु हैग्गडिति कन्नड के महाकवि श्री के० वी० पुट्टपा (दे०) का एक महान् उपन्यास है। क़रीब साढ़े छह सौ पृष्ठों के इस उपन्यास को हम कर्णाटक के मलेनाडु (पार्वत्य प्रदेश) सह्यांचल का 'महाभारत' कह सकते हैं। इस दृष्टि से यह एक आंचलिक उपन्यास है। 'मलेनाडु' सह्याद्रि के आंचल का वह प्रदेश है जहाँ साल में सबसे अधिक वर्षा होती है। अतः वहाँ सदाबहार सस्यों का बड़ा जंगल है। वहाँ आबनूस, चंदन आदि की उपज विशेष रूप से होती है। काफ़ी, मिर्ची, ऊख, धान आदि भी होता है। ऐसे जंगलों में बड़े-बड़े अमीर अपना घर बनाकर रहते हैं। उनका एक घर ही एक गाँव होता है। उनके पास बीसियों कुली रहते हैं। खेती के साथ शिकार भी उनके जीवन का अनिवार्य अंग होता है। वहाँ रहने वाले कुनबी (ओक्कलिग) ज़मींदारों की विराट् गाथा है यह उपन्यास। उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है। यहाँ के ज़मींदार चंद्रय्य गौड अन्य ज़मींदारों की भाँति हमेशा शिकार, शराब आदि में व्यस्त रहते हैं। उनका घर सम्मिलित परिवार है। एक-एक करके उनकी तीन शादियाँ होती हैं। तीसरी पत्नी ही उपन्यास की नायिका सुब्बम्मा है जो वास्तव में कन्या-शुल्क देकर खरीदी जाती है। गरीब परिवार की यह कन्या इस घर में आकर सबकी सहानुभूति खो देती है। चंद्रय्य गौड में दिमागी संतुलन का अभाव है, उनमें ज़मींदार की सारी कमजोरियाँ हैं और इसका दुरुपयोग करते हैं पुरोहित वेंकथय्या है। इन ज़मींदारों के घर में काम करने वालों में बेगारे भी हैं। अज्ञान, अंधकार आदि का बोलबाला है। चंद्रय्य गौड का भतीजा हूवय्या इस उपन्यास का नायक है। वह कवि-हृदय है। उस पर गांधी जी की अपेक्षा बुद्ध, रामकृष्ण, विवेकानंद, वर्ड्सवर्थ, मैथ्यू आर्नल्ड आदि का अधिक प्रभाव है। गांधी के प्रभाव के कारण वह भूत-प्रेत-बलि आदि का विरोध करता है; भगवद्गीता का पारायण करता है; खद्दर पहनता है। वह भावजीवी है, प्रकृति-प्रेमी है। कभी-कभी वह भाव-समाधि में लीन रहता है। उसका प्रेम 'सीता' से होता है। किंतु परिस्थितियों के कारण उसका विवाह उससे न होकर चंद्रय्य गौड की पुत्री रामय्या से जबरदस्ती किया जाता है। रामय्या, सीता तथा हूवय्या इन तीनों का जीवन इसी कारण दुःखमय बनता है। पारिवारिक समस्याओं से दुखी होकर वे अपनी संपत्ति का बंटवारा करते हैं; सम्मिलित परिवार टूटता है। इन सब कारणों से हूवय्या का मन वैराग्य की ओर प्रवृत्त होता है। अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरण में आई हुई सीता से वह आध्यात्मिक ढंग से गठ-बंधन कर चुका है, शारीरिक रीति से नहीं करता। इस तरह दोनों शारीरिक संबंधविहीन दांपत्य जीवन-यापन करते हैं। समाज-सेवा में अपना सारा समय बिताते हैं। उनके कारण गाँव में नये युग का जन्म होता है। उधर सुब्बम्मा अपने पति की मृत्यु के बाद अपने घर के प्रबंधक सेरेगार के साथ सहवास कर गर्भिणी बनती है, उसे छिपा न पाकर दवा लेती है जिससे उसका शरीरांत हो जाता है। रामय्या भी आत्महत्या कर लेती है। अंत में हूवय्या टूटे हुए घर को जोड़ता है, 'तेनत्यक्तेनभुञ्जीथा' जैसा त्यागमय जीवन उसका आदर्श बनता है। कुनबी जाति के लोगों के वैभव, कमजोरियाँ, उनके विश्वास, आशा-अभिलाषा आदि का रत्नदर्पण है यह उपन्यास। जंगल के जीवन के वर्णन में कवि की शैली अत्यंत लोमहर्षक है। यह कन्नड की प्रतिनिधि कृतियों में से है।

कानेटकर, बसंत *(म० ले०)*

आज के प्रयोगधर्मी सफल नाटककारों में बसंत कानेटकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इतिहास-पुराणों से कथा-प्रसंगों का चयन कर इन्होंने समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों को मुखरित किया है। इनकी 'रायगडाला जेव्हा जाग येते', 'वहातो ही दुखांची जुडी', 'बेड्याचे कर उन्हात', 'दुरिताच्ये दुरिजावो', 'मलाकाहि सागिच्याहे' आदि महत्व-पूर्ण रचनाएँ हैं। 'रायगडाला जेव्हा जाग येते' में मराठा वीर शिवाजी और शंभा जी के पारस्परिक संबंधों का मनोवैज्ञानिक आकलन हुआ है। पुलिस के प्रति सामान्य जनता की सहज भावना तथा आदर्श पुलिस अफ़सर की कर्तव्यपरायणता का मनोहारी चित्रण 'अंगवात पुलला पारिजात' तथा 'अश्रंची फूली' नाटकों में हुआ है। पाश्चात्य समस्या नाटककार इब्सन के नाट्यतंत्र का इनकी रचनाओं पर प्रभूत प्रभाव है अवश्य परंतु समस्याओं के निराकरण की शैली भारतीय ही रही है। सामान्य भारतीय परिवारों की व्यथा-कथा की अभिव्यक्ति के साथ ही पौराणिक कथा-प्रसंगों की युगानुकूल व्याख्या के कारण इनकी रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

सहज-सरल प्रसंगानुकूल भाषा-संवाद, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-निरूपण तथा नाटकीय प्रभावान्विति आदि की दृष्टि से बसंत कानेटकर का नाम आधुनिक नाटककारों में अग्रगण्य है।

कानेटकर, बसंत *(म० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

चेतनाप्रवाह-पद्धति में उपन्यास लिखने वाले नये मराठी उपन्यासकार श्री कानेटकर अवचेतन मन के सूक्ष्म चित्रण के लिए विख्यात हैं। जेम्स जॉइस से प्रभावित होते हुए भी इनके उपन्यासों में न तो शब्दों का विचित्र प्रयोग मिलता है और न वाक्य-विन्यास-संबंधी वैचित्र्य ही प्रदर्शित हुआ है। अतः उन्हें समझने के लिए पाठक को माथापच्ची नहीं करनी पड़ती। इसके विपरीत काव्यमयता एवं प्रतीक-वादी शैली ने इनके उपन्यासों को सुग्राह्य ही नहीं, मार्मिक एवं आकर्षक भी बना दिया है। मनोविज्ञान और सोद्देश्यता के संगम के कारण इनकी अभिव्यक्ति-शैली ही नई नहीं है, ये रचनाएँ कथ्य की दृष्टि से भी पाठक को मोह लेती हैं। इनमें यथार्थ अंकन तथा सहानुभूतिपूर्ण चित्रण का मेल सर्वत्र मिलता है। इनकी तीन कृतियाँ हैं—घर, पंख (दे० मास्तर) और पोरका। 'घर' में एक ऐसे मध्यवर्गीय व्यक्ति की मनःस्थिति का चित्रण है जिसे वर्षों तक घर के अभाव में अपने बाल-बच्चों से अलग होटल के कमरे में रहना पड़ता है। 'पंख' में नाटक के पीछे पागल बने अध्यापक के शोकपूर्ण जीवन का मार्मिक चित्रण है, और 'पोरका' में सितारवादन के पीछे पागल बनी सुमित्रा नाम की स्त्री का प्रभावपूर्ण चित्रण है। इन तीनों में पात्रों के मनोव्यापारों और मानसिक स्थिति का अत्यंत मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म चित्रण काव्यमय भाषा में किया गया है।

कान्हड़दे *(गु० पा०)* [तेरहवीं शती]

कवि पद्मनाभ (दे०) के आश्रयदाता व जालौर के शासक अखेराज चौहान के पराक्रमी पूर्वज तथा पद्नाभ-रचित वीररसप्रधान ऐतिहासिक चरित-काव्य 'कान्हड़दे प्रबंध' के नायक कृष्णदेव चौहान ही लोक और काव्य में 'कान्हड़दे' के नाम से विश्रुत हैं।

वीर, विजिगीषु राजा कान्हड़दे ने गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई अलाउद्दीन की सेना का प्रतिरोध किया तथा सेनानायक अलफ़ख़ान को दूसरा मार्ग ग्रहण करने को बाध्य किया।

गुजरात-विजय के बाद लौटते समय अलफ़ख़ान ने जालौर पर आक्रमण किया। कान्हड़दे ने पुनः डट कर मुकाबला किया। मुसलमान सेना एक बार फिर पराजित हुई। खीझ कर अलाउद्दीन ने तीसरी बार स्वयं आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। फूट के कारण राजा कान्हड़दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पराजय हुई। युद्ध में कान्हड़दे तथा उनके पुत्र वीरमदेव ने वीर गति प्राप्त की। रानियों ने चिता पर चढ़ कर आत्माहुति दी। राजपूती आन-बान और शान की रक्षा करने वाले स्वाभिमानी वीर कान्हड़दे क्षत्रियों के गौरव थे।

कान्हड़दे-प्रबंध *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1456 ई०]

'कान्हड़दे प्रबंध' जालौर (राजस्थान) के अखेराज चौहाण के आश्रित नागर जाति के जैनेतर कवि पद्नाभ (दे०) रचित वीररसपूर्ण ऐतिहासिक चरित-काव्य है।

माधव मंत्री के बुलाने पर अलाउद्दीन खिलज़ी ने गुजरात के कर्णदेव पर आक्रमण किया। उसकी सेना को जालौर के शासक कान्हड़दे (दे०) ने रोका व दूसरे मार्ग से जाने को बाध्य किया। लौटते समय अलफ़ख़ान ने जालौर पर आक्रमण किया। फूट के कारण कान्हड़दे पराजित हुए। वे और उनके पुत्र वीरमदेव मारे गए। इस प्रबंध-काव्य में कान्हड़दे की वीरता का वर्णन है।

कथा कड़वकों में विभाजित न होकर चार खंडों में विभाजित है। तथ्य और कल्पना का सुंदर समन्वय इस कृति में हुआ है। वीररसप्रधान इस काव्य में युद्ध का अतिशयोक्तिपूर्ण सजीव वर्णन है। रौद्र, अद्भुत व विप्रलंभ श्रृंगार का भी इसमें पर्याप्त परिपाक हुआ है। अलाउद्दीन की शाहज़ादी पीरोज़ा तथा कान्हड़दे के पुत्र वीरमदेव के प्रेम की कल्पित कथा का रोचक वर्णन तथा वीरमदेव की मृत्यु पर पीरोज़ा का विलाप बहुत मर्मस्पर्शी है। दोहा, चौपाई, पवाड़ु, सोरठा, झूलणा, आदि छंदों तथा रामगिरि, धन्यासि, देशाख रागों का प्रयोग इसमें हुआ है।

भूगोल, सांस्कृतिक इतिहास, लोक-जीवन के यथार्थ निरूपण व भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

कान्हा *(पं० ले०)*

यद्यपि इनका निश्चित समय ज्ञात नहीं तथापि इनका सम्राट् जहाँगीर और गुरु अर्जुनदेव (दे०) (1563-1606 ई०) का समकालीन होना प्रमाणित है। ये लाहौर के एक प्रसिद्ध वेदांती भक्त और कवि थे। जिन दिनों गुरु अर्जुनदेव 'आदिग्रंथ' का संकलन कर रहे थे, तब ये भी उसमें अपनी वाणी सम्मिलित कराने के उद्देश्य से शाह हुसैन (दे०), छज्जू और पीलो भक्त के साथ अमृतसर पहुँचे थे किंतु गुरु जी ने इनकी वाणी को गुरु-सिद्धांत के अनुकूल न पाकर अस्वीकार कर दिया। तब ये गुरु जी को 'वैरियों के बंदी बनकर कष्ट सहते हुए शरीर त्याग करने' का शाप देकर लाहौर लौटते समय मार्ग में फिसलकर मर गए।

इनकी कविता स्फुट रूप से और स्वल्प परिमाण में प्राप्त है जिसमें प्रेम-भक्ति और वैराग्य का स्वर प्रमुख है। भाषा मुहावरेदार ठेठ पंजाबी है।

कान्होपात्रा *(म० ले०)*

कवयित्री कान्होपात्रा का निवास-स्थान बीदर के निकट 'मंगलवेढ़ा' नामक ग्राम था। माता का नाम था श्यामा जो एक वेश्या थी। माँ के भ्रष्ट जीवन के भयानक चित्र देख कान्होपात्रा को सांसारिक जीवन से विरक्ति हो गई और ये पंढरपुर में रहने लगी थीं। इन्होंने विट्ठल की भक्ति में सरस, मधुर अभंगों की रचना की है। भगवान के सम्मुख गायन और नृत्य में ये आजीवन निमग्न रहीं।

काफ़ियाँ *(पं० कृ०)*

सूफ़ी-संत बुल्लेशाह द्वारा रचित 'काफ़ियाँ' पंजाबी लोक-काव्य की अमूल्य निधि हैं। ये काफ़ियाँ अधिकांशतः मौखिक रूप से ही पंजाब में प्रचलित रही हैं। क़सूर-निवासी श्री प्रेमसिंह ज़रगर ने इनकी वाणी संकलित कर उसे पुस्तकाकार छपवाया था जिसमें इनकी अनेक काफ़ियाँ भी सम्मिलित हैं। फ़ारसी-लिपि में प्रकाशित 'कानून-ए-इश्क' नामक कृति में भी बुल्लेशाह की अनेक प्रेमपरक काफ़ियाँ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न पंजाबी काव्य-संग्रहों में भी इनकी कुछ चुनी हुई काफ़ियाँ स्फुट रूप से मिलती हैं।

बुल्लेशाह-कृत काफ़ियों का प्रतिपाद्य प्रमुखतः अलौकिक प्रेम है। इनके कवि की आत्मा प्रियमय हो गई है। यथा—

राँझा राँझा करदी ती मैं आपे राँझा होई।
सद्दो नी मैनूँ राँझा, हीर न आखो कोई॥

यद्यपि गुरु-महिमा, बाह्याडंबरों का विरोध एवं सर्व-धर्म-समन्वय की भावना भी बुल्लेशाह ने अपनी काफ़ियों में व्यक्त की है तथापि इन सभी का समाहार अंततः प्रभु-प्रेम में हो जाता है।

बुल्लेशाह-कृत काफ़ियों का अनुभूति-पक्ष जितना गहन और मार्मिक है, अभिव्यक्ति-पक्ष उतना ही सहज और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-सामान्य के स्तर के सर्वथा अनुकूल है। इसीलिए ये काफ़ियाँ प्रौढ़ सूफ़ी-काव्य की अपेक्षा लोक-काव्य के अधिक निकट हैं। लहिंदा-पंजाबी की सरल व्यावहारिक शब्दावली, सामान्य जीवन से गृहीत उपमान एवं प्रतीक तथा लोक-वाणी में प्रचलित मुहावरों के प्रयोग के कारण ये काफ़ियाँ पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं।

काफ़ियाँ *(पं० कृ०)*

शाह हुसैन द्वारा रचित 'काफ़ियाँ' पंजाबी सूफ़ी काव्य की अमूल्य निधि हैं। डा० मोहनसिंह ने पर्याप्त अनुसंधान के पश्चात् इनकी 165 काफ़ियों का एक संकलन प्रकाशित कराया है। इन 'काफ़ियों' का एक-एक शब्द कवि के दिव्य प्रेम-रस से सिक्त है। इन्हें एक प्रकार से पंजाबी सूफ़ी-काव्य का प्रथम सक्षम उदाहरण माना जा सकता है। अज्ञात प्रिय के प्रति जिज्ञासा, उसके अद्भुत, अनिर्वचनीय सौंदर्य के साक्षात्कार की उत्कट लालसा और मिलनातुरता इन काफ़ियों में साकार हो उठी है। उदाहरण—

दरद विछोड़े दा हाल, नी मैं कैनूँ आखाँ।
सूली मार दिवानी कीती
बिरह पिआ साडे ख्याल, नी मैं कनूँ आखाँ।

इन काफ़ियों की भाषा भावानुरूप है। यहाँ कोमल, मधुर शब्दावली में प्रचलित मुहावरे और लोक-जीवन से संबद्ध प्रतीक (चरखा-रहँट, अनाज आदि) सहज रूप में गुँथे हुए हैं।

क़ाफ़िया *(उर्दू० पारि०)*

क़ाफ़िया का शाब्दिक अर्थ है 'पीछे आने वाला'। पारिभाषिक अर्थों में क़ाफ़िया तुक समानार्थक है। 'क़ाफ़िया-बंदी करना' तथा 'क़ाफ़िया मिलाना' मुहावरे क्रमशः तुक-बंदी करना तथा तुक जोड़ना के अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। शेर के प्रत्येक चरण के पीछे अर्थात् अंतिम भाग में ध्वनि-साम्य किंतु अर्थ-वैषम्य से युक्त शब्द आते हैं जो 'तुक' या 'क़ाफ़िया' कहलाते हैं, जैसे—

बेवक्त किसी को कुछ मिला है?
पत्ता कहीं हुक्म बिना हिला है?

काफ़ी *(पं० पारि०)*

काफ़ी के पंजाबी-साहित्य में दो अर्थ हैं :

(1) एक रागिनी, जो 'काफ़ी' ठाठ की संपूर्ण रागिनी है। गांधार-शुद्ध और कोमल—दोनों में इसकी रचना होती है। निषाद कोमल और शेष सभी शुद्ध स्वर हैं। पंचम वादी और षड्ज संवादी है। इसका गायन-समय दिवस का चौथा प्रहर है। कुछ विद्वान् 'काफ़ी' को ही 'धमार' भी कहते हैं।

(2) 'काफ़ी' का अर्थ है—पीछे चलना वाला, अनुचर, अनुगामी। इस प्रकार 'काफ़ी' वह पद्य-रूप है जिसमें प्रथम चरण स्थायी होता है और उसे गाते समय अन्य तुकें पीछे जोड़ दी जाती हैं तथा स्थायी पाद को छंद की ताल और विराम के पश्चात् दुहराया जाता है।

बुल्लेशाह की एक 'काफ़ी' का उदाहरण प्रस्तुत है—

उठ जाग घुराड़ मार नहीं। (स्थायी)
तूँ एस जहानों जावेंगी,
फिर कदम न एथे पावेंगी,
इह जोबन रूप लुटावेंगी,
तूँ रहिणा विच संसार नहीं।
उठ जाग..............।

इस छंद में प्रायः 16 मात्राएँ होने के कारण, कुछ विद्वान् इसे हिंदी के 'चौपाई' अथवा 'नाटक' छंद के समानांतर मानते हैं किंतु वास्तव में 'काफ़ी' कोई पृथक् छंद न होकर गायन की पद्धति-विशेष है। प्रायः सूफ़ी-संत जो प्रेम-भरे पद गाते हैं, और जिन्हें सारी मंडली प्रमुख गायक के स्वर के साथ दुहराती है, वे 'काफ़ियों' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

काव्य-नायिका *(उड़ि० कृ०)*

'काव्य-नायिका' राधामोहन गड़नायक (दे०) की सर्वश्रेष्ठ काव्य-रचना है। काव्यात्मक कल्पना और भावना की आधुनिक दृष्टि-भंगी अभिव्यंजना की पारदर्शिता और शैली की रमणीयता ने इसे मोहक और रसात्मक बना दिया है। विषय-वस्तु का चयन अत्यंत व्यापक क्षेत्र से हुआ है। भावों, विचारों और अनुभूतियों की कल्लोल-क्रीड़ा, चल-चंचल छंदों, प्रवाहमयी शैली और गत्यात्मक भाषा में नृत्य-मुखर हो उठी है। उड़िया भाषा की निजी विशेषताओं से इसकी भाषा कांतिमान है। इसमें छोटी कविताओं के साथ कतिपय गाथा-कविताएँ भी हैं। वस्तुतः यह कृति गड़नायक के काव्य-जगत की नायिका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामण्णा *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०) के 'प्रेम संन्यास' नाटक का पात्र है जो अपने क्रियाकलापों से हास्य की सृष्टि करता है। नायिका लतिका को प्राप्त करना इसके जीवन का लक्ष्य है। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही यह नायिका के घर वेश बदल कर रहता है और नायिका के हृदय-परिवर्तन की राह देखता है। इसके अतिरिक्त अंधा होने तथा कन्नडभाषी होने का स्वाँग रचकर भी अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है; परंतु धैर्य एवं बुद्धि-चातुर्य के अभाव में अपने ही बिछाए जाल में स्वयं फँस जाता है। लतिका से विवाह का स्वप्न लेते-लेते इसके गले कुरूप इंदु (दे०) पड़ जाती है। रंगमंच पर कामण्णा के चरित्र का अभिनय करने वाला अभिनेता दिनकर ढेरे कालांतर में दिनकर कामण्ण के नाम से ही विख्यात हो जाता है। हास्य-परिपोषण के कारण यह चरित्र-सृष्टि मराठी पात्रों में अनूठा स्थान रखती है।

कामदी *(पारि०)*

कामदी पाश्चात्य साहित्य में नाटक (दे०) के दो प्रमुख प्रकारों में से एक कॉमेडी (Comedy) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हिंदी-शब्द है। कामदी यद्यपि मूलतः नाट्य-विधा है, तथापि आज टेलीविज़न, सिनेमा, हास्यमंच, बैलेड आदि अनेक नाट्येतर विधाओं में प्रयुक्त हास्य-तत्त्व के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। कामदी का उद्गम निश्चय ही त्रासदी (दे०) की भाँति यूनानी साहित्य में है। प्राचीन यूनान में अभिलषित फल प्रदान करने वाले देवता डायोनीसस के सम्मान में आयोजित उल्लासपूर्ण उत्सव में 'कोमो' कहलाने वाले कुछ मस्त गायकों द्वारा हास्य की तरंग में गीत गाए जाने की प्रथा थी। इसी क्रम में दर्शकों और गायकों के बीच व्यंग्यपूर्ण वार्ता-कटाक्ष भी होते थे। विद्वानों ने यूनानी कामदी के आदि रूप का संधान इन्हीं कोमो-वृंद के हास्यपूर्ण उत्सव-गीतों में किया है।

कामदी के मूल तत्त्व ये हैं: (1) कामदी का मूल भाव (दे०) हास्य है, हर्ष नहीं। वह प्रायः सुखांत होती है, किंतु यह उसका अनिवार्य अनुबंध नहीं है: जिस प्रकार त्रासदी सुखांत हो सकती है उसी प्रकार कामदी भी दुःखांत हो सकती है। (2) कामदी में चित्रित जीवन यथार्थ होता है। निकृष्ट कामदियों के चरित्र भले ही नितांत मूर्ख, फूहड़, अभिहस्य और विरूप हों, किंतु श्रेष्ठ कामदियों के पात्र सामान्य जीवन के सामान्य जन होते हैं, विदूषक नहीं। (3) यद्यपि मैरेडिथ के अनुसार कामदी बुद्धि को प्रभावित करती है और त्रासदी भावना को, तथापि आधुनिक युग की मर्मस्पर्शी श्रेष्ठ कामदियों के विषय बौद्धिक ही होते हैं। कामदी की कला का रहस्य वस्तु-संगठन की अपेक्षा चरित्र-निर्माण में होता है। (4) कामदी में कामद-तत्त्व का संप्रेषण और प्रभावान्वय हास्यपूर्ण दृश्य-विधान के माध्यम से न होकर, वस्तुतः भाषा के व्यंग्य-गर्भित मार्मिक प्रयोग द्वारा होता है।

विषय-वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से कामदी के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया जाता है जिनमें प्रमुख हैं सहज बोध पर आश्रित कामदी (कॉमेडी ऑफ़ कॉमन सेंस); भ्रांत चरित्रों पर आश्रित कामदी (कॉमेडी ऑफ़ ह्यूमर), आचार-विषयक कामदी (कॉमेडी ऑफ़ मैनर्स); घटना-वैचित्र्य पर आश्रित या संयोगाश्रित कामदी (द कॉमेडी ऑफ़ इंट्रीग)। इसके अतिरिक्त कामदी के और भी अनेक प्रकार हो सकते हैं, जैसे संवेदनात्मक, रोमानी (शेक्सपियर आदि), यथार्थवादी (मोलियर आदि), विद्रूपात्मक (मॉम और गोगोल आदि), सामाजिक (चेख़व आदि) और विचारात्मक या दार्शनिक आदि। अत्याधुनिक अमूर्त नाटक ('एब्सर्ड प्ले') को भी कामदी का ही एक रूप माना जा सकता है जिसका अधुनातन उदाहरण है सैम्यूअल बैकेट कृत 'वेटिंग फ़ॉर गोदो'। (कामदी के बृहत्तर वृत्त में प्रहसन (दे०) (फ़ॉर्स), विडंबन (आयरनी), व्यंग्य (सैटायर) और विदग्ध (विट) आदि को भी समाविष्ट किया जा सकता है।

कामनी *(पं० कृ०)*

'कट्टी होई पतंग' (दे०) उपन्यास की नायिका कामनी नानकसिंह (दे०) के नारी-संबंधी प्रगतिशील विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। पति ब्रजमोहन के अत्याचारों तथा दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर यह उसे त्याग कर आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बन जाती है। संगीत और अभिनय-कला में विशेष कुशलता प्राप्त कर लोकप्रिय एवं सफल अभिनेत्री बन जाती है। साम्यवादी विचारों से प्रेरित होकर यह श्रमिक आंदोलन का नेतृत्व करती हुई अपनी समस्त संपत्ति उनके हितार्थ प्रस्तुत कर देती है और नारी को 'कटी हुई पतंग' के स्थान पर सबलता तथा आर्थिक स्वातंत्र्य की प्रतीति कराती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

छायावाद (दे०) के सर्वोत्तम महाकाव्य 'कामायनी' का प्रणयन जयशंकर प्रसाद (दे०) ने मनु (दे०), श्रद्धा (दे०) और इड़ा (दे०) की कथा के आधार पर किया है। वैदिक साहित्य में उपलब्ध कथासूत्रों का चयन करके कवि ने उन्हें इस प्रकार नियोजित किया है कि 'मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें…।' कथा का आरंभ जल-प्रलय की पृष्ठभूमि में हुआ है। चिंताग्रस्त मनु को श्रद्धा का संपर्क और संदेश क्रियाशील बनाता है। किलाताकुलि उन्हें बलि-यज्ञ में प्रवृत्त करते हैं। श्रद्धा के अहिंसात्मक विचारों से वे रूठ जाते हैं और उस गर्भिणी का त्याग कर देते हैं। सारस्वत प्रदेश में उनकी भेंट इड़ा से होती है। उसके सहयोग से वे सारस्वत नगर का भौतिक विकास कर शासक बन जाते हैं। इड़ा पर भी पूर्णाधिकार का प्रयत्न उन्हें देवताओं का कोपभाजन बना देता है। प्रजा विद्रोह करती है और वे घायल हो जाते हैं। इसी समय पुत्रवती श्रद्धा आकर उनकी सुश्रूषा करती है। लब्ध-संज्ञ मनु आत्मग्लानि से पीड़ित होकर फिर निकल जाते हैं। श्रद्धा उन्हें फिर ढूँढ़ लेती है और मानसरोवर तक ले जाती है, जहाँ वे सामरस्य-लाभ करते हैं। रूपक-तत्त्व की दृष्टि से मनु अर्थात् मन के दोनों पक्षों, हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।

श्रद्धा की सृष्टि आधुनिक हिंदी काव्य की अन्यतम उपलब्धि है। दया, ममता, मंगल-कामना, त्याग और सेवा आदि मानवीय गुणों का चरमोत्कर्ष उसके चरित्र में दिखाई देता है। इड़ा अपने ऐतिहासिक स्वरूप के अनुरूप बुद्धि की प्रतीक और कर्म-मार्ग की प्रेरयित्री हैं। मनु का चरित्र आदि पुरुष के गौरवानुकूल तो नहीं है परंतु परिस्थिति के अनुरूप गतिशील रहने से सहज मानवीय है।

काव्य-शैली में महाकाव्योचित गरिमा है। दृश्यांकन और भाव-चित्रण में उदात्त कल्पना और चित्रात्मक भाषा का वैभवपूर्ण प्रयोग हुआ है। प्रलय, लज्जा, रात्रि, इड़ा, त्रिपुर, सामरस्य आदि के चित्रण की कलात्मक समृद्धि अतुलनीय है।

'कामायनी' की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका प्रतिपाद्य है। कवि ने अपने गंभीर चिंतन-मनन के फलस्वरूप उपलब्ध आनंदवाद की दार्शनिक पीठिका उसे प्रदान की है। युगद्रष्टा कवि की चेतना ने बुद्धिवाद से दग्ध आधुनिक विश्व को श्रद्धावाद या आनंदवाद का जो अमृत संदेश दिया है, वह अपने महत्व में अद्वितीय है।

कामिनीकांतर चरित्र (*अ०कृ०*) [रचना-काल—1877 ई०; ले० : ए० के० गर्नी (दे०)।]

उपन्यास के नायक कामिनीकांत का विवाह सरला से होता है। वह ईसाई धर्म से प्रभावित होकर धर्मान्तरण कर लेता है। उसका पिता उसे त्याग देता है। वह अपनी पत्नी से पत्र-व्यवहार कर अनेक तर्क प्रस्तुत करता है, अंत में पत्नी पराजित होकर ईसाई धर्म स्वीकार कर लेती है। इस उपन्यास के 15 अध्यायों में 8 अध्याय केवल पत्र-व्यवहार और ईसाई धर्म के प्रचार पर लिखे गये हैं। कथा में नीरसता है। कामिनीकांत को जान-बूझकर ब्राह्मण दिखाया गया है ताकि हिंदुओं पर प्रभाव पड़ सके। प्रचारात्मक दृष्टिकोण इतना प्रबल है कि साहित्यिक सौंदर्य पीछे छूट जाता है। अतः इसे असमीया का प्रथम उपन्यास नहीं कहा जा सकता।

कामिनी राय (*बँ० ले०*) [जन्म—1864 ई०, मृत्यु—1933 ई०]

उन्नीसवीं शती की कवयित्रियों में कामिनी राय की विशेष ख्याति थी। इनका पहला काव्य-ग्रंथ 'आलो ओ छाया' (1889) है। इसके उपरांत इनके 'निर्मान्ति' (1891), 'पौराणिकी' (1897), 'माल्य ओ निर्माल्य' (1913), 'अशोक संगीत' (1914) आदि ग्रंथ प्रकाशित हुए जिससे ये काव्य-क्षेत्र में मर्यादा के साथ सुप्रतिष्ठित हो सकीं। गद्यनाटिका 'सितिमा' (1916), जीवनी-ग्रंथ 'श्राद्धिकी' (1913), कहानी-संकलन 'धर्मपुत्र' (1907), 'ठाकुमार चिठि' (1923) एवं शिशुओं के लिए काव्य-संग्रह 'गुंजन' (1905) उस युग के सुप्रचारित ग्रंथों में से हैं।

कामिनी राय के काव्य में नारी-हृदय का माधुर्य एवं सलज्जित भाव अपरूप स्निग्धता के साथ प्रकट हुआ है। नैतिक मानदंड पर आधृत बृहत्तर आदर्श के प्रति आनुगत्यता कवि की काव्य-चेतना का अन्यतम वैशिष्ट्य है। प्रियतम के प्रति परिपूर्ण आत्म-निवेदन से इनके काव्य में अपरूप माधुर्य का संचार हुआ है। प्रेम के पवित्र गीतों में कवयित्री की मुखरता स्पष्ट है। शैली की भावानुभूति के साथ इनकी कविता का काफ़ी निकट का संबंध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामेश्वर रावु, भमिडिपाटि *(ते० ले०)* [जन्म—1897, मृत्यु—1958 ई०]

ये राजमहेंद्रवरमु के रहने वाले थे और वृत्ति से अध्यापक थे। इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और बी० ए० पास करके अँग्रेज़ी साहित्य का भी परिचय प्राप्त कर लिया। ये विनोदी प्रकृति के थे। इनकी रचनाएँ ये हैं—'बागुबागु', 'एप्पुडूइंतै', 'कचटतपलु', 'पेल्लि ट्रेनिंगु' आदि नाटक; 'अद्दे कोंपलु' जैसे हास्यरसपूर्ण निबंध; 'त्यागराजु आत्मविचारमु', 'आंध्र नाटक पद्यपठनमु' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ। इनकी सभी रचनाएँ सरस तथा कोमल हास्य से ओत-प्रोत हैं। घटनाएँ, पात्र, कथोपकथन तथा कहीं-कहीं शीर्षक भी हास्यरस-पोषक होते हैं। इनके चालीस नाटक हैं जिनमें कुछ मौलिक हैं, कुछ अनुवाद हैं तथा कुछ अनुकरण। पश्चिमी नाटककारों में मेटरलिंक, शेरिडन, गोल्डस्मिथ आदि के नाटकों को इन्होंने अनूदित किया है। इनकी रचनाओं में भास (दे०) के नाटकों के अनुकरण भी हैं।

आधुनिक तेलुगु-साहित्य में एक सफल नाटककार के रूप में इन्होंने अत्यधिक प्रशस्ति पाई है। आधुनिक साहित्य में हास्यरस को योग्य स्थान प्रदान कराने वालों में ये भी एक हैं। इनको 'हास्यब्रह्म' कहा जाता है।

कामेश्वर रावु, श्रीपाद *(ते० ले०)*

दर्शन में एम० ए० पास करके कामेश्वर रावु राजमहेंद्री के ट्रेनिंग कालेज में प्राध्यापक बने। ये एक साथ लेखक, अभिनेता और संगीतज्ञ थे। नाटक के अभिनय की शास्त्रीय आलोचना का श्रीगणेश करके इन्होंने अंक देने की पद्धति का प्रवर्तन किया था। इस विषय का समग्र विवेचन करते हुए इन्होंने 'आंध्र-पत्रिका' के (1914) उगादि विशेषांक में एक लेख प्रकाशित कराया था। 1908 ई० इन्होंने राजमहेंद्री में 'राजमंड्री अमेच्योर्स' नामक नाटक-मंडली की स्थापना की थी और उसे 10-12 वर्ष चलाया था। कूल्ड्रे नामक अँग्रेज़ की देखरेख में इन्होंने अँग्रेज़ी नाटकों में भी भाग लिया। 1927 में डी० एल० राय (दे०) की 'नाटक की आलोचना' नामक बँगला पुस्तक का इन्होंने तेलुगु-अनुवाद प्रकाशित किया था।

इन्होंने 'चंद्रगुप्तडु' (1922), 'सोहराबरुस्तुम', 'भारतरमणी', 'सीता', 'राणाप्रतापसिंहुडु', आदि मौलिक अभिनय योग्य नाटकों की रचना की है। परंतु अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध नाटकों के तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत करने वालों में इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने 'विल्वमंगल' (बँगला), 'लीलावती सुलोचनम्' (तमिल), 'श्रीमाधवाचार्य विद्यारण्य', 'डिटेक्शन', 'शिवाजी शीलमु', 'शंभा जी निर्याणमु' (मराठी), 'काला पहाड़' (उड़िया), 'पुर्नविवाह' (पंजाबी) आदि नाटकों के तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ-साथ डी० एल० राय के कुछ प्रहसनों का भी तेलुगु अनुवाद किया है।

कायकोबाद *(बँ० ले०)* [जन्म—1854 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

'कायकोबाद' उपनाम से ही मुहम्मद काज़ेम सर्वाधिक जाने जाते हैं। 'भारती' (1897) पत्रिका में इनकी दो कविताएँ प्रकाशित होते ही इनकी ख्याति फैल गई थी। पानीपत के तृतीय युद्ध एवं मराठा-शक्ति के पतन की कहानी के आश्रय से इन्होंने 1904 ई० में महाकाव्यात्मक ढंग से 'महाश्मशान' ग्रंथ की रचना की थी। इनके दूसरे प्रसिद्ध कविता-संकलन का नाम है 'अश्रुमाला' (1897)।

'कायम' चाँदपुरी *(उर्दू० ले०)*

शेख मुहम्मद इनका नाम और 'कायम' इनका तखल्लुस था। ये चाँदपुर के निवासी होने के कारण 'चाँदपुरी' कहलाते थे। रेख़्ता (दे०) अर्थात् उर्दू के उस्ताद माने जाते थे। आरंभ में ख्वाजा मीर दर्द से इस्लाह लेते थे पर बाद में सौदा से इस्लाह लेने लगे। 'कायम' चाँदपुरी का काव्य प्रवाहशील, स्वच्छ एवं सरस है। 'बंदिश' विशेष तौर पर चुस्त होती है। यद्यपि 'कायम' ने कविता के विभिन्न रूपों में रचना की है किंतु इनकी विशेष रुचि ग़ज़ल और मसनवी के प्रति रही है। इनका दीवान, मौलवी सैयद मुहम्मद साहब के कथनानुसार भरा हुआ 'अशआरे-आबादार से है'। इनका निधन हिजरी सन् 1210 (ई० (1832) में हुआ।

कायाकल्प *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1928 ई०]

प्रेमचंद (दे०) ने अपने इस उपन्यास में लौकिक तथा अलौकिक कथानक को आधार बनाते हुए अपने युग की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का सशक्त अंकन किया है। उपन्यास का मुख्य पात्र चक्रधर अहिंसात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपायों का अवलंब ग्रहण करता हुआ गो-हत्या रोकने तथा हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न करता है। सजीव चरित्र-सृष्टि तथा नाटकीय वर्णन-कौशल इस उपन्यास की अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। लेकिन जगदीशपुर रियासत की विधवा रानी देवप्रिया से संबद्ध पुनर्जन्म विषयक अलौकिक कथानक ने कथावस्तु की स्वाभाविकता पर निर्मम प्रहार करते हुए पूरे औपन्यासिक कौशल को पर्याप्त क्षति पहुँचाई है जिसके फलस्वरूप इसे प्रेमचंद का प्रतिनिधि उपन्यास नहीं माना जाता।

काया लाकडानी माया लुगडानी (गु० कृ०)

'काया लाकडानी माया लुगडानी' जयंति दलाल के लेखों का संग्रह है। रवाणी प्रकाशनगृह, अहमदाबाद, ने इसे 1963 ई० में प्रकाशित किया था। इसमें 1940 से 1963 ई० तक की अवधि में लिखे गये लेखक के 14 निबंध संकलित हैं: 'पडदा उपडे छे त्यारे', 'नाटक निहालवानो आनंद', 'स्व० डाह्याभाई धोलशाजी झवेरी', 'एक वात : शताब्दीकोनी ?', 'अहमदाबादना नाट्यगृहो', 'रमणलाल देसाईनुं नाट्यविधान', 'वैष्णवी अने मरजादी', 'पूर्वरंग', 'प्रवेश-रचना', 'एकांकीनी भोंय भांगनारा', 'नेपथ्य', 'एकांकीमां पहेलो प्रवेश', 'भजवणी' और 'स्वाध्याय'। इसमें कुछ व्यंग्य-लेख, कुछ स्तरीय सैद्धांतिक चर्चा और कुछ व्यक्तियों की व्यक्तिगत नाट्य-उपलब्धियों की चर्चा समाविष्ट है। प्रेक्षक के दायित्व और नाटक में प्राप्त होने वाले आनंद की प्रक्रिया, विभिन्न नाटककारों के योगदान, गुजराती नाटक की अपेक्षाओं, गुजराती रंगमंच की उपलब्धियों, अभिनय, आदि पर लेखक ने मुक्त भाव से विचार किया है। इस संग्रह में संगृहीत सभी लेखक नाटक के विभिन्न पहलुओं का स्पर्श करते हैं। लेखक की भाषा-शैली विषय-वस्तु के अनुरूप सरल, व्यंग्यप्रधान और गंभीर है।

कारैक्काल्-अम्मैयार् (त० ले०) [समय—अनुमानतः छठी शताब्दी ई०]

प्रसिद्ध शैव-भक्त 63 'नायन्मार्' में इनका भी नाम है। ये 'कारैक्काल्' नामक समुद्रतटीय व्यापार-केंद्र में एक धनी वणिज की पुत्री थीं और शिव की उपासना में निरत रहती थीं। इनके पिता ने अपनी इकलौती पुत्री का विवाह एक धनी वणिज से किया था और दोनों को अपने यहाँ रख लिया था। इनके यहाँ सदा ही शैवसंतों का सत्कार होता था। एक दिन एक भक्त ने इनके पति के हाथ दो आम दिये जिन्हें लेकर इन्होंने घर के भीतर रखा। इतने में एक शैवसंत अन्न माँगते आये तो उन्हें एक आम उठाकर इन्होंने दे दिया। जब इनके पति घर पर भोजन के लिए आये तो उन्हें बचा हुआ आम अच्छा लगा। उन्होंने दूसरा आम माँगा। तब इन्होंने शिवजी से प्रार्थना की। इनके हाथ एक अत्यंत मधुर आम आ गया। उसके विलक्षण रस से मुग्ध होकर पति ने पूछा तो इन्होंने कह दिया कि स्वयं शिवजी ने यह फल दिया है। संदेहग्रस्त पति की माँग पर पुनः इन्होंने एक और आम शिवजी की कृपा से प्राप्त किया जो पति के हाथ में जाते ही अदृश्य हो गया। इनकी दैवी शक्ति से अभिभूत पति कुछ दिनों के पश्चात् जब व्यापार करने विदेश गये तो वहीं पर उन्होंने एक वणिक्-कन्या से विवाह कर लिया; उससे उन्हें एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम उन्होंने अपनी पूर्वपत्नी के नाम पर 'पुनितवती' रखा। कुछ दिन पश्चात् उसका समाचार पाकर इनको लेकर परिवार के लोग इनके पति के नगर पहुँचे। इनके पति ने गृहस्थी से विरक्त संत के रूप में इनका परिचय देते हुए इनका स्वागत-सत्कार किया। इसी समय भगवान से प्रार्थना करके इन्होंने भौतिक शरीर त्याग दिया। उसी रूप में इन्होंने शिवजी का साक्षात्कार किया। विश्वास किया जाता है कि अब भी 'तिरु आलङ्काडु' नामक पुण्य स्थान में स्थित नटराज के चरणतल में ये उपस्थित हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'उनट्युत अन्तादि' तथा 'इरट्टैमालै अंतादि'।

कारंत, शिवराम (क० ले०) [जन्म—1902 ई०]

बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार शिवराम कारंत जी का जन्म दक्षिण कन्नड ज़िले के कोटा नामक स्थान में हुआ था। ये बाल्यकाल में ही अपनी प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध हो गये थे। 1921-22 ई० में जब गांधी जी के असहयोग-आंदोलन की लहर देश में सर्वत्र व्याप्त हुई तभी इन्होंने इंटरमीडिएट से पढ़ना छोड़ दिया था। कुंदापुर में इन्होंने खादी की दुकान चलायी। फिर पुत्तूर में एक पाठशाला खोली। तब से ये पुत्तूर में ही निवास करते रहे हैं। इन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा-विवरण, विज्ञान कोश, विश्वकोश, आलोचना आदि सभी विषयों पर लिखा है। इनका एकमात्र कविता-संग्रह है 'राष्ट्रगीत सुधाकर'। इनके 42 नाटकों में 'गर्भगुडि' (गर्भगृह), 'कृष्णार्जुन', 'गीत-नाटकगळु' (गीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक), 'दृष्टि-संगम', 'नवीन नाटकगळु' (नवीन नाटक) 'नारद गर्वभंग', 'मुक्तद्वार', 'हृणेबरह' (ललाट-रेखा) और 'हागदरेनु' (वैसा हो तो क्या) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके 32 उपन्यासों में 'अळिदमेले' (दे०) ('मिटने पर'—हाल में प्रकाशित उपन्यास), 'औदार्यद उरुळल्लि' (औदार्य के लपेटों में), 'कन्याबलि अथवा सूळॆय संसार' (कन्याबलि अथवा वेश्या का जीवन), 'चोमन दुडि' (चोम का ढोल), 'देवदूतरु' (देवदूत), 'नंबिदवर नाक, नरक' (विश्वस्तों का नाक, नरक)', 'निर्भाग्य जन्म', 'बेट्टद जीव' (पहाड़ी जीव), 'मरळि मण्णिगे' (दे०), 'फिर मिट्टी की ओर), 'मुगियद युद्ध', 'संन्यासिय बदुकु' (संन्यासी का जीवन) और 'हेत्तळा तायि' (जन्म दिया उस माता ने) के नाम अत्यंत प्रसिद्ध हैं। 'तेरेय मरेयल्लि' (परदे के पीछे), 'हसिवु' (भूख) और 'हावु' (साँप) इनकी कहानियों के संग्रह हैं। इनके छह व्यंग्यात्मक निबंध-संग्रहों में 'ग्नान' ('ज्ञान' का तद्‌भव-रूप), 'चिक्कदोड्डवरु' (छोटे-बड़े) और 'मैलिकल्लिनोडने मातुकतेगळु' (मील के पत्थर के साथ बातचीत) उल्लेखनीय हैं। तीन भागों में प्रकाशित 'बाल-प्रपंच' (बाल-लोक) और चार भागों में प्रकाशित 'विज्ञान प्रपंच' (विज्ञान-लोक) नाम के इनके विश्वकोश सचमुच ही विस्मयकारी हैं। यात्रा-साहित्य, बाल-साहित्य, धर्म-दर्शन, कला-विज्ञान इत्यादि विषयों से संबंधित इनके ग्रंथ इनके विशाल अध्ययन, गंभीर चिंतन-मनन और जीवन-दर्शन के सुपरिणाम हैं। इन्होंने संपादन-कार्य भी किया है। 'यक्षगान' (कन्नड-साहित्य की विशेष विधा, कर्णाटक की प्रसिद्ध लोक गीत-नाट्य-संबंधी) के तो ये सिद्धहस्त कलाकार और अधिकारी विद्वान् हैं। इनके 'यक्षगान बयलाट' (दे०) (यक्षगान खुले मैदान का खेल) ग्रंथ के लिए ही इनको 1958 ई० में साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। 1968 ई० में इनको 'पद्मभूषण' की उपाधि भी मिली थी। कन्नड तथा अँग्रेज़ी में इनके दो सौ से भी अधिक लेखों का प्रकाशन हुआ है।

कन्नड साहित्य में उपन्यासकार और नाटककार के रूप में कारंत जी की विशेष ख्याति है। ये अग्रगण्य उपन्यास-लेखक हैं। इनके उपन्यासों का विषय प्रायः सामाजिक होता है। उनमें सामाजिक समस्याओं के विविध रूपों के चित्रण हैं। कारंत जी यथार्थवादी लेखक हैं, पर आदर्शप्रिय भी हैं। इनके उपन्यास इनके अनुभवों के आधार पर लिखित हैं; उनमें इनके जीवन-दर्शन का प्रतिपादन है। कथानक की दृष्टि से इनके उपन्यास मलेनाड अथवा पश्चिमी समुद्रतट के प्रदेश से संबंधित हैं; इस कारण वे आंचलिक हो गये हैं। 'मरळि मण्णिगे', 'बेट्टद जीव' और 'कुडियर कूसु' (अछूतों का बच्चा) जैसे उपन्यास इसके उदाहरण हैं। 'मरळि मण्णिगे' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। हाल में प्रकाशित इनके उपन्यास 'अळिद मेले' को (जिसमें कुछ लोगों के अनुसार इनके जीवन की झाँकी है) कुछ लोग इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं।

कारंत जी के नाटकों में रंगमंच की दृष्टि से नये प्रयोग विद्यमान हैं। इन्होंने नाट्य में 'गीति' का प्रयोग किया है। इनके एकांकियों में पद्यनाटक, गीतिनाटक और छायानाटक के प्रयोग द्रष्टव्य हैं। अंत में, यह न कहना होगा कि साहित्य के विविध अंगों को परिपुष्ट करने वाले महान् कलाकार कारंत जी का कन्नड साहित्य में, निश्चित रूप से, श्रेष्ठ स्थान है।

कार्य-व्यापार *(हिं० पारि०)*

नाटक में प्रस्तुत या अभिनीत घटनावली को नाटक का कार्य-व्यापार कहते हैं। अरस्तू ने कार्य-व्यापार को नाटक का मूलाधार कहा था, 'कार्य-व्यापार के अभाव में त्रासदी (दे०) असंभव है, पात्र (दे०) के बिना उसकी रचना हो सकती है।' आरंभ में कार्य-व्यापार के कई अर्थ किये गये—द्वंद्व, विवर्तन, बाह्य क्रिया-कलाप, पर आज कार्य-व्यापार के अंतर्गत बाह्य क्रिया-कलाप के साथ पात्र के आंतरिक जीवन, आध्यात्मिक व्यक्तित्व, अन्तः-संघर्ष को व्यक्त करने वाली मानसिक और शारीरिक स्थिति और भाव-क्रियाओं को भी समाविष्ट किया जाता है। अरस्तू ने जब यह कहा कि त्रासदी में अनुसरण मनुष्य का नहीं, कार्यरत मनुष्य का होता है, तो उसका यही अभिप्राय था। नाटक (दे०) में कथानक को सर्वाधिक महत्व देने का कारण भी यह था कि वह मानता था कि कथानक में कार्य-व्यापार का सार-तत्त्व निहित रहता है। उसका मत है कि त्रासदी का कार्य-व्यापार गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम वाला होना चाहिए।

कार्यावस्थाएँ *(हिं० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाट्यबंध का मूल तत्त्व नायक (दे० नेता) द्वारा फल-प्राप्ति है। फलसिद्धि के लिए किए गए कार्य की विभिन्न अवस्थाओं को 'कार्यावस्थाएँ' अथवा 'अवस्थापंचक' का अभिधान दिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ये पाँच हैं : आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

'आरंभ' में फलप्राप्ति के लिए उत्सुकता और उत्कंठा रहती है। 'प्रयत्न' में नाट्यफल की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले व्यावहारिक प्रयत्नों में उत्सुकता के साथ ही त्वरा का योग हो जाता है। यह अवस्था एक प्रकार से नाटकीय वस्तु के विकास के अंतर्गत होने वाले विभिन्न व्यापारों के विनियोजन की अवस्था भी है। 'प्राप्त्याशा' में फलसिद्धि की संभावनाएँ तो बढ़ जाती हैं, किंतु वे आशंका और अनिश्चय से धूमिल रहती हैं। 'नियताप्ति' की अवस्था में विभिन्न विघ्न-बाधाएँ निराकृत हो जाती हैं और फल-प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट, अबाधित और सुनिश्चित हो जाता है। कार्य की अंतिम अवस्था 'फलागम' है जिसमें आरंभ से ही उद्दिष्ट फल अंतिम और समग्र रूप से प्राप्त हो जाता है। भारतीय दृष्टि से नाटक का समापन इसी स्थल पर होना चाहिए।

कालकेतु *(बँ० पा०)*

'चंडीमंगल' (दे०) काव्य के आक्षोटिक अंश का नायक कालकेतु है। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) 'चंडीमंगल' काव्य के श्रेष्ठतम कवि हैं। द्विज माधव, द्विज रामदेव आदि कवियों के काव्य में भी मुकुंदराम का 'कालकेतु' प्रायः अपरिवर्तित है।

कालकेतु व्याध है। व्याध वेशधारी कालकेतु के साहस एवं उसकी दृप्त भंगिमा का परिचय अतुलनीय है। दरिद्र व्याध-जीवन का सार्थक प्रतीक है कालकेतु। किंतु जिस क्षण देवी के साथ कालकेतु का परिचय हुआ है वहाँ कालकेतु के स्वभाव-दौर्बल्य ने चरित्र को यथार्थनिष्ठ बना दिया है। देवी के द्वारा दी गई धन-संपत्ति बटोरने में वह देवी का भी विश्वास नहीं कर सका है। कालकेतु जब राजा बना है उस समय भी उसके व्याध-रूप सारल्य ने कौतुकमय परिस्थिति की सृष्टि की है। मुरारीशील, भांडुदत्त (दे०) का वह सहज शिकार बना है। उसकी पराजय के मुहूर्त में भी कवि ने इस चरित्र के प्रति एक स्निग्ध ममत्वबोध का संचार किया है। जय-पराजय, दुःख-सुख में कालकेतु की व्यर्थता एवं साफल्य अतिसाधारण होने पर भी वह अनन्यसाधारण महिमा में प्रतिष्ठित है। मध्ययुगीन काव्य-साहित्य में इस व्याध-चरित्र का निरूपण असाधारण सफलता से अभिनंदित है।

कालचक्रयान *(पा० पारि०)*

यह तिब्बत में महायान (दे०) संप्रदाय की वज्रयान (दे०) से मिलती-जुलती एक शाखा है। 'कालचक्र' का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है—समय का घेरा और मृत्यु का घेरा (the circle of time or death)। पहले पशुओं के नाम पर वर्ष-गणना होती थी—श्वान-वर्ष, गर्दभ-वर्ष, इत्यादि। बाद में इसमें प्राकृतिक तत्त्व भी जुड़ गये। काष्ठ-श्वान वर्ष, अग्नि-श्वान वर्ष इत्यादि। इसीलिए इसे कालचक्र कहा गया। दूसरी ओर अतिश ने मृत्यु को केंद्र मानकर अपने उपदेश दिए और उन्हीं से इसका विस्तार हुआ। इसलिए इसे मृत्यु का घेरा (कालचक्र) कहा गया। दीपंकर इस यान के महत्वपूर्ण उन्नायक हुए।

इस यान के अनुयायी नागार्जुन को इसका प्रवर्तक मानते हैं जिन्हें स्वयं इसका ज्ञान वैरोचन बुद्ध से प्राप्त हुआ था। किंतु सातवीं शताब्दी में बुद्ध तथा उनकी शक्तियों की मूर्तियाँ बनने लगी थीं जिनकी सत्ता ह्वेनसांग ने भी पाई थी। कुछ भी हो दसवीं शताब्दी के मध्य में इस का जन्म भारत में हुआ था जहाँ से काश्मीर होते हुए यह शाखा तिब्बत पहुँची। कुछ लोग इसकी उत्पत्ति मध्य एशिया में बतलाते हैं जहाँ से काश्मीर होते हुए यह शाखा तिब्बत पहुँची। तिब्बत में इसका प्रवर्तन 1027 ई० में हुआ जबकि कालचक्र की विमला नामक टीका लिखी गई।

इस शाखा के अनुयायी इसे अलौकिक तत्त्व से परिपूर्ण मानते हैं जिसमें योग-साधना प्रधान बतलाई जाती है किंतु यह एक अत्यंत साधारण विचारधारा है जिसमें दानव, दैत्य, राक्षस और असुरों की कल्पना है। भूतनाथ भगवान् शिव की जैसी बुद्ध की भयानक मूर्ति और उससे भी भयानक काली इत्यादि उनकी शक्तियों की कल्पना है जिन्हें निरर्थक मंत्रों के बल पर वश में किया जाता है। भगवान् बुद्ध ने ही उत्पादिका शक्तियों को जन्म दिया जिनमें प्रमुख हैं—डाकिनी, सर्वहारा, इत्यादि। पुरुष दानवमूर्तियों में वज्र भैरव, संबर, हयग्रीव, गुह्यकाल इत्यादि प्रमुख हैं। बुद्ध के तंत्र-मंत्रों से इन्हें वश में किया जाता है और ये उपासक के शत्रुओं का नाश करते हैं। ल्हासा से तीन मील पश्चिम में धान्यकंटक नामक इनका प्रधान मठ है।

काळपुरुष *(उड़ि० कृ०)*

'काळपुरुष' गुरुप्रसाद महांति (दे०) की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। टी० एस० इलियट के 'वेस्टलैंड' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसरण पर यह विरचित है, किंतु यह उसका अनुवाद नहीं है। इसमें स्थानीय तत्त्वों की प्रमुखता है। इसमें आधुनिक उत्कलीय जीवन एवं शहरीकरण आदि का चित्रण हुआ है तथा तज्जनित समस्याएँ उभर कर आयी हैं। प्रतीकों के प्रयोग में गंभीरता एवं मननशीलता मिलती है। चित्रकल्प (बिंबों) का सुंदर प्रयोग हुआ है। आधुनिक बिंब-संबंधी असंलग्नता इसमें नहीं है। इसमें भाव प्रक्षेपित बिंबों का सफल प्रयोग हुआ है। इसमें गति, स्थिति, स्पर्श, दृष्टि, मनःस्थिति आदि सभी के चित्र मिलते हैं जो मूल कथा के साथ संहिति बनाए रखते हैं—सांकेतिक संयोग-क्रम की रक्षा करते हैं।

काळमेकम (त० ले०) [समय—पंद्रहवीं शती का उत्तरार्ध]

ये पंद्रहवीं सदी के 'इरट्टैयर' (दे०) नामक कविद्वय के समकालीन थे। इनके आश्रयदाता 'तिरुमलैरायन्' का समय 1450-1480 ई० है। किंवदंती है कि ये 'चोळिय' ब्राह्मण थे और 'श्रीरंगम्' के रंगनाथ भगवान के विशाल मंदिर की पाकशाला में सेवा करते थे। समीपवर्ती 'तिरुवानैक्का' के शिव-मंदिर की देवदासी के प्रेम के कारण इन्होंने शैवधर्म अपना लिया था। इनका नाम 'काळमेकम्' (सघन मेघ) सार्थक ही है क्योंकि इनकी वाणी से सघन मेघ के समान तमिल पद्यों की वर्षा होती थी। आशु कविताओं की स्वाभाविक रचना-शक्ति के साथ-साथ इनमें चमत्कारिक श्लेषादि शब्दालंकारों की रचना की भी अपूर्व क्षमता थी। 'समस्यापूर्ति' में इनका प्रतिद्वंद्वी नहीं था। इनकी प्रखर वाणी ने उन लोभी धनवानों पर प्रहार किया है, जो विद्वानों को निराश लौटा देते थे। विभिन्न अवसरों के अनुकूल रचित इनके स्फुट पद्य अत्यंत लोकप्रिय हैं। निंदात्मक पद्य-रचना के लिए इनकी प्रसिद्धि लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है।

इनकी काव्यकृतियाँ हैं—'तिरुवानैक्काउला' ('तिरुवानैक्का' मंदिर की शिव-मूर्ति की सवारी का वर्णन), 'चित्तिरमडल्' (आश्रयदाता की प्रशस्ति) तथा 'कडल् विलासम्' (समुद्र-वर्णन), जो प्राप्त नहीं है। उक्ति-वैचित्र्य के कारण तमिल भाषा के उत्तरकालीन काव्य के इतिहास में 'काळमेकम्' का नाम अमर है।

कालस्वरूप कुलक (अप० कृ०)

यह जिनदत्त (दे०) सूरि द्वारा रचित 32 पद्यों की छोटी-सी कृति है। इसका विषय धर्मोपदेश है। इसमें सुगुरु-वाणी और जिन-वाणी में श्रद्धा रखने का आदेश है और माता-पिता के प्रति आदर-भावना का उपदेश देते हुए सुगुरु-प्राप्ति से यम-भय मिट जाने का निर्देश किया गया है।

कालहस्तिमहात्म्यमु (ते० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शताब्दी ई०]

इसके लेखक का नाम धूर्जटि (दे०) है जो विजयनगर के राजा श्रीकृष्ण-देवरायलु (दे०) के दरबारी कवि थे। 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ महाकवियों में धूर्जटि भी एक थे। ये परम शिवभक्त थे। 'कालहस्तिमहात्म्यमु' तथा 'श्रीकालहस्तीश्वरशतकमु' नामक इनकी दोनों रचनाएँ शिवभक्ति से ओतप्रोत हैं। 'कालहस्तिमहात्म्यमु' चार आश्वासों का काव्य है। संस्कृत 'स्कंदपुराण' इसके कथानक का आधार है। शिव का जंगम (शिवभक्त) के रूप में आकर, नारायणवन के राजा वीर-नृसिंह यादव को श्रीकालहस्तिमाहात्म्य से संबद्ध कथाओं को सुनाना ही प्रस्तुत काव्य का मुख्य विषय है। यह काव्य जिन दस भक्तों से संबद्ध है वे हैं: वसिष्ठ, ब्रह्मा, मकड़ी, साँप, हाथी, तिन्नडु नामक आटविक, ब्राह्मण पुजारी, नत्कीर नामक कवि, दो वेश्या-पुत्रियाँ तथा यादव राजा। संस्कार-शून्य होकर जंगल में जीवन बिताने वाले तिन्नडु की उत्कट तथा स्वच्छ शिवभक्ति का इसमें बड़ा ही सहज और मार्मिक वर्णन है। श्री (मकड़ी), काल (साँप) और हस्ती (हाथी)—इन तीनों भक्तों का जहाँ शिव ने उद्धार किया वही क्षेत्र 'श्रीकालहस्ति' के नाम से विख्यात हुआ। इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन करने वाला काव्य ही 'कालहस्तिमहात्म्यमु' है। इसमें स्थानीय वातावरण का सुंदर चित्रण है। तिन्नडु का गाँव तथा आटविक जातियों के जीवन आदि का वर्णन हृदयहारी है। शैली सरस तथा कोमल है और चरित्र-चित्रण सजीव है। अनेक कथाओं को शिवभक्ति-रूपी सूत्र में गूँथकर संपूर्ण काव्य में एकता प्रतिपादित करने में लेखक ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है।

संबद्ध कथाओं के वर्णन द्वारा क्षेत्रमाहात्म्य का वर्णन प्रस्तुत करने वाले अनेक तेलुगु काव्य उपलब्ध होते हैं। 'क्षेत्रमाहात्म्य' कहलाने वाले इस वर्ग के तेलुगु काव्यों के अंतर्गत धूर्जटि (दे०)-कृत 'कालहस्तिमहात्म्यमु' का विशेष स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालापुरुष अथवा राणोजीराव *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'उषःकाल' (दे०) का यह पात्र अत्यंत रहस्यमय है और जासूसी उपन्यासों का स्मरण कराता है। जासूसी उपन्यासों के नायक के समान ही वह वेश बदलकर घूमता है और ऐन मौके पर बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से प्रकट हो जाता है। वह एक वीर मराठा सरदार था परंतु पत्नी के अपहरण के उपरांत बीजापुर सरदार से बदला लेने के लिए वेश बदल कर रहने लगता है। जब कभी शिवाजी पर संकट आता है, वह तुरंत आ उपस्थित होता है और उनकी सहायता करता है। इसीलिए आलोचकों ने उसे 'हैंड ऑफ़ फ्रेट' कहा है। पत्नी के विष-पान करने पर वह स्वयं भी आत्मघात कर लेता है।

कालिंदी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

'कालिंदी' उपन्यास में ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे०) ने एक ओर ज़मींदारों की समस्या का और दूसरी ओर सरल-प्राण संथालों के धर्मविश्वास एवं समाज-जीवन के माध्यम से पारिवारिक, विरोध, प्रजा-विद्रोह, मुक़दमेबाज़ी, आधुनिक यंत्र-सभ्यता के अभिशाप, दैवी अभिशाप आदि घटनाओं का जटिल विवरण प्रस्तुत किया है। घटना-प्रवाह में चरित्र अप्रधान हो गए हैं, फिर भी मानव रामेश्वर एवं जड़ प्रकृति कालिंदी नदी का कछार दोनों ही अपने प्राधान्य की प्रतिष्ठा में सफल हुए हैं। रामेश्वर ने अपने अभिशप्त जीवन की दुर्दशा की अपनी संतानों को वसीयत कर दी है और कालिंदी के कछार ने विरोध का क्षेत्र प्रस्तुत कर दुर्दशा का विस्तार किया है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता इसकी नाटकीयता है। संथालों की विचित्र समाज-व्यवस्था के चित्रण में लेखक ने वर्णन एवं विश्लेषण-शक्ति का परिचय दिया है। इस उपन्यास में अंधकार के गर्भ में से उदित होने वाले विद्रोह के एक रोमानी स्वप्न को लेखक ने रूप प्रदान किया है।

कालिकामंगल *(बँ० कृ०)*

'कालिकामंगल' विद्यासुंदर-विषयक एक काव्य-ग्रंथ है। कवि कृष्णराम दास (दे०) ने केवल 20 साल की अवस्था में इस ग्रंथ की रचना की थी। बंगाल के चौबीस परगना के निमता ग्राम में इनका जन्म हुआ था और इस ग्रंथ की रचना कदाचित् सन् 1664 से सन्-1676 के बीच हुई थी। अष्टादश शती में रचित कालिकामंगल काव्य के एक कवि (प्राणराम चक्रवर्ती) ने अपने काव्य में कृष्णराम दास को कालिकामंगल के आदि कवि रूप में श्रद्धांजलि अर्पित की है।

मंगलकाव्य की धारा का अनुसरण करते हुए कालिकामंगल काव्य में विद्यासुंदर की कहानी का वर्णन हुआ है। कृष्णराम दास के 'रायमंगल' (दे०), 'शीतला-मंगल', 'षष्ठीमंगल', 'कमलामंगल' आदि काव्यों के साथ मध्ययुग का पाठक परिचित है। 'कालिकामंगल' ही इस प्रकार के काव्यों का प्रेरणा-स्रोत है। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती, मु०) का नैपुण्य एवं भारतचंद्र (दे०) का वैदग्ध्य इस काव्य में यद्यपि नहीं है तथापि सरलता और सरसता की दृष्टि से यह काव्य हीन नहीं है।

कालिदास *(सं० ले०)* [समय—अधिक मान्य ई० पू० प्रथम शताब्दी]

महाकवि कालिदास संस्कृत कवियों में सर्वोपरि हैं। इनको 'कविकुलगुरु' कहा जाता है। जर्मन कवि गेटे भी कालिदास की प्रतिभा से अभिभूत था, तभी उसने इन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग लाने वाला कवि कहा था। कालिदास ने अपने ग्रंथों में कहीं भी अपने जीवन एवं स्थिति-काल के संबंध में कोई संकेत नहीं दिए; अतः यह प्रश्न बड़ा विवाद-ग्रस्त बन गया। अनेक जनश्रुतियों के आधार पर ये महाराज विक्रमादित्य के नवरत्नों में अग्रणी थे। इनके—'शाकुंतलम्' का अभिनय किसी राजा की 'अभिरूपभूयिष्ठा' परिषद् में हुआ था। कहा जाता है कि वह राजा विक्रमादित्य ही था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। परंतु इतिहासकारों में विक्रमादित्य के संबंध में मतैक्य न होने के कारण कालिदास की स्थिति-काल के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हो गए। इनमें तीन मत प्रमुख हैं—

1. ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी।
2. दूसरी से चौथी शताब्दी ई०।
3. छठी शताब्दी ई०।

इसी प्रकार इनके जन्मस्थान के विषय में भी अनेक मत प्रचलित हैं। अधिकांश लोग इनको मालवा के आसपास का निवासी मानते हैं। इनके विषय में यह मत भी प्रचलित है कि ये तथा इनका आश्रयदाता विक्रम दोनों शैव थे।

इनकी सात प्रामाणिक कृतियाँ उपलब्ध हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋतुसंहार' (दे०), 'मेघदूत' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०) तथा 'रघुवंश' (दे०)—चार काव्य, तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) 'विक्रमोर्वशीयम्' (दे०) और 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' तीन नाटक।

वैसे तो कालिदास अपनी सभी कृतियों में बड़े सक्षम एवं सफल कवि के रूप में प्रकट होते हैं पर इनके 'रघुवंश' तथा 'शाकुंतलम् तो अद्वितीय ग्रंथ हैं। काव्यकला एवं नाट्य-चातुरी दोनों में ये बेजोड़ ठहरते हैं। 'शाकुंतलम्' ने इन्हें विश्वकवियों की पंक्ति में खड़ा कर दिया। इनकी कृतियों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि नागरिक जीवन के प्रति इनके हृदय में अधिक आकर्षण है। इनका दृष्टिकोण अत्यंत कलावादी है। ये रसवाद के पोषक हैं तथा बाह्य अलंकरण को व्यर्थ समझते हैं। इनका आदर्श है—'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्'। कालिदास का सबसे प्रिय रस है—शृंगार तथा प्रिय अलंकार हैं उपमा एवं अर्थान्तरन्यास। इनकी शैली बड़ी कोमल तथा प्रसाद गुण से युक्त है। ये वैदर्भी रीति के मूर्धन्य कलाकार है। इनकी भाषा व्यंजना-प्रधान होते हुए भी सहज एवं स्वाभाविक है। कुल मिलाकर ये एक सफल एवं उत्कृष्ट कलाकार हैं।

कालिदास राय *(बँ० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

रवींद्र-वनस्पति की बृहत् छाया के आश्रय में रहते हुए भी कवि कालिदास राय के कविधर्म के स्वातंत्र्य तथा वैशिष्ट्य को अस्वीकारा नहीं जा सकता। ये कवि के साथ-साथ समालोचक हैं। बंग-भारती की सारस्वत-साधना में उनका जीवन समर्पित है। अर्धशताब्दी से भी अधिक समय से ये कविताओं की रचना में संलग्न हैं। इनका काव्य-नैवेद्य हृदय-नैवेद्य का नामांतर-मात्र है। इनके 'कुंद' (1907), 'किशलय' (1911), 'पर्णपुट' (प्रथम) (1914), 'ब्रजबेणु' (1915), 'बल्लरी' (1916), 'ऋतुमंगल' (1920), 'पर्णपुट' (द्वितीय) (1921), 'क्षुद्रकुंडा' (1922), 'लाजांजलि' (1924), 'रसकदंब' (1925), 'चित्तचिता' (1925), 'आहरणी' (संकलन : 1932), 'हेमवती' (1936), 'वैकाली' (1938), 'ब्रजबाँशरी' ((1945), 'आहरण' (संकलन : 1950), 'गाथांजलि' (1957), 'संध्यामणि' (1958) एवं 'पूर्णाहुति' काव्य-ग्रंथों के अतिरिक्त 'गीतागोविंद' (1930), 'गीतालहरी' (1932), 'शकुंतला' (1944), 'कुमार संभव' (1952), एवं 'मेघदूत' (1955) काव्य-अनुवाद भी विशेष समादृत हैं। 'प्राचीन बंग-साहित्य परिचय', 'पदावली परिचय' आदि ग्रंथों ने भी इन्हें समालोचक के रूप में सुख्याति प्रदान की है।

कवि कालिदास राय की रचना वैष्णवीय भाव-गंध की अमृतधारा से पुण्यस्नात है। प्रकृति-वंदना में कवि मुखर है। किंतु इनके मनोविहंग ने मात्र प्रकृति के बहिरंग रूप में अपना नीड़ नहीं रचा है। प्रकृति के आश्रय से प्राणरंग भूमि में स्वच्छंद विचरण किया है। युगजीवन की यंत्रणा की अस्थिरता वहाँ दिखाई नहीं पड़ती परंतु जीवन के गहरे में इनका निःशब्द पदसंचार अनुभवगम्य है। समालोचक-कवि ने विदग्धता के राज्य में जिस प्रकार अपने को प्रतिष्ठित किया है वहाँ दूसरी ओर जीवन नदी के किनारे बैठकर ममतामयी वसुंधरा के अश्रुसंगीत को साधारण जीवन में संचारित कर अपने कवि-कर्म को नवतर स्वातंत्र्य तथा महिमा प्रदान की है।

कालीकीर्तन *(बँ० कृ०)*

वैष्णव पदावली की पथरेखा का अनुसरण करते हुए कविरंजन रामप्रसाद सेन (दे० सेन) ने जिस देवी लीला-कीर्तन की रचना की, उसे ही 'कालीकीर्तन' कहा जाता है। श्रीकृष्ण की गोष्ठ-लीला, रासलीला के अनुरूप ही यहाँ भी शक्ति-देवी की जीवनचर्या के विचित्र अध्यायों की अपरूप कथा वर्णित हुई है। कहानी को यहाँ वृत्त के रूप में संपूर्णता प्राप्त नहीं हुई है परंतु विषय-वैचित्र्य एवं वर्णना की दृष्टि से रामप्रसाद के 'कालीकीर्तन' का ऐतिहासिक गुरुत्व निर्विवाद है।

कालीप्रसन्न सिंह *(बँ० ले०)* [जन्म—1840 ई०; मृत्यु—1870 ई०]

उन्होंने 30 वर्ष की अल्पायु में ही 'हुतोम प्यांचार नक्सा' (दे०) की रचना कर प्रारंभिक बँगला-गद्यकारों में अपना स्थायी स्थान बना लिया था। धनी परिवार के इस नवयुवक ने पहले-पहल अपनी 'विद्योत्साहिनी सभा' में मधुसूदन दत्त (दे० माइकेल मधुसूदन दत्त) की कवि-प्रतिभा का खुलकर अभिनंदन किया तो दूसरी ओर 'नीलदर्पण' (दे०) के अँग्रेज़ी अनुवादक पादरी लांग पर हुए 1000 रुपये के जुरमाने को स्वयं चुका कर अपने सहृदय व्यक्तित्व का परिचय दिया। उनके सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है 'हुतोम प्यांचार नक्सा', जो दो भागों में सन् 1862 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की रचना उन्होंने हुतोम प्यांचा (बड़ा उल्लू) के छद्म-नाम से की थी।

'हुतोम प्यांचार नक्सा' में कालीप्रसन्न सिंह ने अपनी ही श्रेणी के वित्तवान तथा प्रतिष्ठावान समाज के सदस्यों की दुर्बलता तथा दैन्य पर पैने व्यंग्य का भरपूर आघात किया है। इसी ढंग का उनका एक नाटक 'बाबू' सन् 1854 में प्रकाशित हुआ। किंतु कालीप्रसन्न सिंह की अक्षय कीर्ति का स्तंभ है उनका 'महाभारत' का बँगला अनुवाद (सन् 1860-66 ई०)। वस्तुतः 'हुतोम प्यांचार नक्सा' तथा 'महाभारत' के अनुवाद का उद्देश्य एक ही था—लोकमंगल तथा समाज की हित-साधना।

प्यारीचाँद मित्र ने बँगला गद्य को दैनंदिन जीवन के मुहावरे के निकट लाने का प्रयत्न किया था और उसमें सफलता भी पाई थी परंतु विशुद्ध व्यावहारिक भाषा के प्रयोग में पूर्ण सफलता कालीप्रसन्न सिंह को ही मिली। चलाऊ भाषा का प्रयोग करने पर भी उनकी भाषा संयत-संतुलित है, और उसका यह गुण हास्य-प्रधान गद्य में ही नहीं, गुरु-गंभीर लेखन में भी परिलक्षित होता है।

कालू (गु० पा०)

'मानवीनी भवाई' (दे०) नामक आंचलिक उपन्यास का प्रमुख पात्र कालू झाकलिया गाँव के बालाभाई पटेल की वृद्धावस्था में उत्पन्न एकमात्र संतान है। बालक के पैदा होने के बाद ही एक ब्राह्मण ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक 'आत्मकर्मी' होगा; औपचारिक रूप से भले ही चौधरी न हो पर चौधराई उसी की चलेगी; इसके घर के दरवाजे पर घोड़ी बँधेगी; जाति और राज्य में यह लड़का अत्यंत प्रसिद्ध होगा; बड़ा बहादुर होगा; इसकी उम्र अपने पिता से भी लंबी होगी; दो स्त्रियों से विवाह करेगा तथा उसकी सगाई बालाभाई के जीवन-काल में ही हो जायेगी। 'राजा के कुँवर के समान' कालू नामक लड़के की सगाई फूली काकी के उद्योग से गयलाभाई की लड़की राजू के साथ हो जाती है और ब्राह्मण की भविष्यवाणी फलने लगती है। कालू के पिता उसे बहुत ही छोटी उम्र में छोड़कर चल बसते हैं। किसी का सहारा नहीं रहता। माँ रूपा को उसकी देवरानी अपमानित करती है; अपमान न सह सकने के कारण कालू को लेकर रूपा हल-बैलों के साथ खेत पर पहुँच जाती है। यहीं से ब्राह्मण की दूसरी भविष्यवाणी के सही होने का श्रीगणेश होता है। लड़का 'आत्मकर्मिता' का पहला पाठ पढ़ता है। साहस की उसमें कमी नहीं है। चाची माली की अवकृपा, ईर्ष्या और द्वेष के कारण कालू की सगाई टूट जाती है और उसका विवाह भली के साथ होता है और उसकी मँगेतर का विवाह होता है भली के काका के साथ; और इस प्रकार कालू और राजू की एक ही ससुराल बन जाती है। कालू अपनी ससुराल की निर्धनता देखकर द्रवित हो उठता है और उन्हें सभी प्रकार की सहायता देने लगता है। यह हृदय की द्रवणता केवल अपने सगे-संबंधियों के लिए ही नहीं है, उसका आधार संपूर्ण मानव-समाज है। अनावृष्टि होती है और सारा गाँव दुष्काल से पीड़ित है। भील गाँव की गाय-भैंसों को जबरदस्ती उठा ले जाते हैं। कालू उनका पीछा करता है और उन्हें—भूख से अत्यंत पीड़ित भीलों को कच्चा मांस खाते देखता है, और देखता है उनकी बेसब्री को; तो उन लोगों को जो पत्थर से गाय को मार कर खाना चाहते थे, अपनी तलवार देकर घर चला आता है। इसी प्रकार तलकचंद कारभारी की धान्य से भरी गाड़ियाँ गाँव से होकर निकल रही हैं और सारा गाँव भूखा मर रहा है। कालू से नहीं देखा जाता। अपने एक हाथ को खोकर भी कालू उस गाड़ी को गाँववालों के लिए बलात् लूट लेता है और उसका अन्न सभी गाँववालों में बाँट देता है। दरियादिली और साहसिकता में कालू बेजोड़ है। स्वाभिमान उसमें कूट-कूट कर भरा है। भली के ताने मारने पर वह अपनी ससुराल जाना स्थगित कर देता है और डेगडिया नगर में जब सभी कणबी पटेल भूख से हार मानकर भीख माँगने के लिए तैयार हो जाते हैं, उस समय भी वह यह कह कर कि 'जिस अन्न को हमने कमाकर इन महाजनों को दिया उसी अन्न के लिए वह हाथ नहीं पसार सकता' भीख माँगना टाल देता है। पर सेठ के समझाने पर पीड़ा और कृषक की विवशता का अनुभव करने वाला कालू किसान रो उठता है। राजू से उसका प्रेम है। वह इसे व्यक्त नहीं कर पाता पर सतत अनुभव करता रहता है। अपने मन की भावनाओं के अनुकूल वह राजू के साथ जैसे जीवन जीने के सपने देखता है; निराश होता है। राजू को राजू बनाए रखने में कालू का बहुत बड़ा हाथ है। भूख की पीड़ा न सह पाने की स्थिति में जब कालू जीवन से निराश हो जाता है तो राजू ही उसे प्रोत्साहित करती है। भयंकर दुष्काल के बाद वर्षा की बूँदें आने से उसमें पुनः उत्साह आ जाता है और राजू को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यह कहना पड़ता है कि अब इसे यमराज भी नहीं मार सकता। इस तरह देखने से कालू हमारे समक्ष सच्चा प्रेमी, किसान की पीड़ा को जानने वाला, गरीबों का सहायक और किसी की विपत्ति में कूद पड़ने वाला साहसिक युवक है। उदारमना इस चरित्र में धरती की गंध भरी हुई है। गुजराती उपन्यास साहित्य में इस प्रकार का कोई दूसरा पात्र शायद ही मिले।

काळेले, रामचंद्र अनंत *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

ये इंदौर राज्य के राजकवि थे। इनके काव्य-संग्रह हैं—'वाग्वसंता', (1934), 'ओळखीचे सूर' (1941), 'भावपूर्णा' (1943), 'गीतनिर्वाण' तथा 'हिमांगार'।

इनके प्रारंभिक गीत प्रेमगीत हैं। परंतु 'हिमांगार' रचना से काळेले की काव्य-चेतना ने प्रेम के स्तर से क्रांतिकारी भावनाओं के नवीन स्तरों में प्रवेश किया। शोषित वर्ग के नाम पर प्रायः मजदूर तथा किसान की व्यथा मुखर की जाती है, परंतु इन्होंने एक सामान्य आय वाले क्लर्क की मनोव्यथा को भी वाणी प्रदान की है।

काळेले का काव्य विचार-प्रधान है। इन्होंने मुक्त छंद (दे०) में काव्य-रचना की है। काव्य-भाषा प्रसन्न, ऋजु एवं प्रसादमय है।

कावडिंच्चिदु *(त० पारि०)*

'चिंदु' या 'शिंदु' गेय पदों की एक शैली है। छंदों के जिन चरणों में तीन-तीन अक्षरों के गण होते हैं, उन्हें तमिल छंदःशास्त्र में 'चिंदु' या 'चिदडि' कहा जाता है। आरंभ में इसी विशेषता के कारण गीतों को 'चिंदु' कहते थे। बाद में, समान चरणों से युक्त किसी भी तरह के गेय पद को 'चिंदु' कहा जाने लगा। दक्षिण में मुरुग या सुब्रह्मण्य भगवान के दर्शन के लिए मनौती करके भक्त लोग छोटी-छोटी काँवरिया कंधे पर लिये यात्रा पर चलते हैं। इनमें मुरुग भगवान को समर्पित करने के लिए आवश्यक पूजा-सामग्री और दूध रख लिया जाता है। इस यात्रा में लोग भजन गाते हैं। बाद में ऐसे गीत 'कावडिंच्चिदु' कहे गए। उन्नीसवीं शताब्दी में अण्णामलै रेड्डियार नामक कवि ने एक जमींदार-परिवार की यात्रा के समय गाने के लिए 'कावडिंच्चिदु' नामक एक गीत-कृति निर्मित की। यह प्रबंधकाव्यवत् रचना है। प्रकृति-वर्णन, 'मुरुग' की प्रियतमा का उसके वियोग में दुःख भोगना, प्रियतम से मिलन इत्यादि प्रसंगों का मार्मिक चित्रण है। यह संस्कृत तथा तमिल के शब्दों से युक्त व्यावहारिक भाषा-शैली में लिखी गई है और जनप्रिय हो गई है। इसके अनुकरण पर कुछ अन्य कवियों ने 'रामायण', 'महाभारत' आदि कहानियों को लेकर 'कावडिंच्चिदु' रचे हैं।

काविले पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1968 ई०]

'काविले पाट्टु' इटश्शेरि (दे०) गोविंदन् नायर् का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कविता-संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं का मुख्य विषय केरल की ग्रामीण जनता का जीवन और उनकी आशाओं-अभिलाषाओं, विश्वासों और व्यथाओं-वेदनाओं का सुंदर प्रस्तुतीकरण है। आशावाद और मानव-प्रेम इटश्शेरि की कविता के मुख्य स्वर हैं। उनकी भाषा ऋजु-सहज और संवेदनक्षम हैं और वे अलंकारों से सप्रयास बचते हैं। उनकी इन विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करने वाला यह ग्रंथ मलयाळम का एक महत्वपूर्ण कविता-संग्रह है।

काव्य *(हिं० पारि०)*

भारतीय दृष्टि के अनुसार वाङ्मय का एक भेद। दूसरा भेद है शास्त्र। संस्कृत-व्याकरण में 'काव्य' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कवि-कर्म के रूप में नई धातुओं से व्युत्पन्न माना गया है : कवि-पु०; (1) कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति', सर्वं सर्वतो गच्छति वा। √कव+इन्। (2) कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा। √कव+इन्। (3) कवति शब्दायते इति। √कु (शब्दे)+इ (हलायुध कोश) अर्थात् 'कवि' शब्द (1) √कव् में इन् प्रत्यय के संयोग से बना है; 'कव्' धातु का प्रयोग सर्वज्ञता एवं वर्णन-कौशल के अर्थ में होता है। इस दृष्टि से 'कवि' से तात्पर्य हुआ सर्वज्ञ एवं वर्णन-कला में निपुण व्यक्ति। (2) √कु+इन् से भी 'कवि' की व्युत्पत्ति मानी गई है; √कु का अर्थ है शब्द करना और इस आधार पर 'कवि' शब्द से आशय है शब्द के माध्यम से भाव एवं अर्थ व्यक्त करने वाला व्यक्ति।

संस्कृत-काव्यशास्त्र में 'काव्य' शब्द के अर्थ का विकास व्याकरण-सम्मत अर्थ के आधार पर ही हुआ है। अभिनवगुप्त (दे०) ने 'ध्वन्यालोकलोचन' में कवि-कर्म को ही 'काव्य' की संज्ञा प्रदान की है : 'कवनीयं काव्यम्।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकावली टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई 'कवयतीति कविः तस्य कर्म काव्यं'। मम्मट (दे०) ने 'कवि' शब्द को √कव् से व्युत्पन्न मानते हुए 'लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि के कर्म को काव्य माना है : 'काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणं कविकर्म।' भट्टगोपाल के अनुसार 'कवि' शब्द √कु से बना है और रस एवं भावों को शब्द रूप में प्रस्तुत करने वाले कवि का कर्म ही काव्य है : 'कौति शब्दायते विमृशति रसभावान् इति कविः तस्य कर्म काव्यं'। संस्कृत-काव्यशास्त्र में कवि के लिए 'स्रष्टा', 'प्रजापति' तथा काव्य के लिए 'सृष्टि' आदि शब्द काव्य-प्रक्रिया की सर्जनात्मकता की ओर इंगित करते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य को मूलतः शब्दार्थ-रूप माना गया है : 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' (भामह), 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' (रुद्रट)। इस आधार पर संस्कृत-काव्यशास्त्र के अंतिम एवं अन्यतम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ (दे०) ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना ('रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्—रसगंगाधर, प्रथम आनन)। रस को काव्य-सर्वस्व मानने वालों में कविराज विश्वनाथ (दे०) की काव्य-परिभाषा अत्यंत प्रसिद्ध है : रसात्मक वाक्य काव्य है। (वाक्यं रसात्मकं काव्यम्)।

काव्य का अनिवार्य अंतस्तत्त्व अनुभूति है; इसके दूसरे मौलिक घटक हैं कल्पना एवं विचार। भारतीय दृष्टि से काव्य की उत्तमता का निकष रसात्मकता और ध्वन्यात्मकता है। काव्य के बहिरंग को महत्व देने वाले संप्रदायों में अलंकरण और उक्ति-चारुत्व को भी काव्यत्व की कसौटी माना गया है। ध्वनिवादियों ने व्यंजकता के आधार पर काव्य की उत्तम, मध्यम और अधम तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं। रूप की दृष्टि से काव्य के दो भेद हैं दृश्य और श्रव्य। दृश्य के भी दो प्रकार हैं—रूपक (दे०) और उपरूपक। श्रव्य के भी दो भेद हैं—प्रबंध और मुक्तक (दे०)। प्रबंधकाव्य का सर्वप्रमुख भेद महाकाव्य (दे०) साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप है। भारतीय वाङ्मय का 'काव्य' शब्द वस्तुतः रस के समस्त साहित्य का पर्याय है; छंदोबद्धता उसका अनिवार्य अनुबंध नहीं है।

काव्य आणि काव्योदय (म० कृ०) [रचना-काल—1909 ई०]

श्री वा० ब० पटवर्धन इसके लेखक हैं। इसमें पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों के आधार पर आधुनिक मराठी काव्यकृतियों की समीक्षा की गई है।

इसमें भारतीय और पाश्चात्य काव्यरचना के मूलगत भेद का स्पष्टीकरण किया गया है। पश्चिम की भौतिक, राजनीतिक परिस्थितियों ने साहित्य रचना की गतिविधि को किस प्रकार प्रभावित किया है, इसकी चर्चा करते हुए इसमें बताया गया है कि अँग्रेज़ी साहित्य की रचना नैसर्गिक और लोकजीवाभिमुख होने के कारण लौकिकानंद देने में समर्थ है। इसके विपरीत भारत में अस्थिर राजनीति के कारण प्राचीन भारतीय साहित्य गंभीर एवं निवृत्तिपरक बताया गया है। 'प्रतिभा' (दे०) की नई व्याख्या भी इसमें की गई है। इनके अनुसार मनोविकारों के प्रकर्ष को 'प्रतिभा' कहना चाहिए और उक्त मनोविकारों का सहजाविष्कार ही काव्य या साहित्य है।

इसमें काव्य के शाश्वत गुणों का उल्लेख किया गया है। विषय-विवेचन उत्तम कोटि का है। लेखक की मौलिकता तथा व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। इस ग्रंथ से ही वास्तव में मराठी में आधुनिक साहित्य-तत्त्व-विवेचन का श्रीगणेश हुआ है।

काव्यकल्पद्रुम (हिं० कृ०)

इस ग्रंथ के दो भाग हैं—रसमंजरी और अलंकारमंजरी, जिनके प्रणेता कन्हैयालाल पोद्दार (दे०) हैं। वर्तमान युग में मम्मट (दे०) रचित 'काव्यप्रकाश' (दे०) और विश्वनाथ (दे०) रचित 'साहित्यदर्पण' (दे०) का आधार ग्रहण कर जिन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन हुआ है, उनमें से विषय-प्रतिपादन की स्वच्छता एवं प्रामाणिकता की दृष्टि से 'काव्यकल्पद्रुम' का विशिष्ट स्थान है। काव्य-लक्षण, काव्य-भेद, ध्वनि (दे०), गुणीभूत-व्यंग्य (दे०), शब्दशक्ति, रस (दे०), गुण (दे०), दोष (दे०) एवं अलंकार (दे०)—इन सभी काव्यांगों को इस ग्रंथ में स्थान मिला है। काव्यांगों एवं उनके भेदोपभेदों के लक्षण व्यवस्थित खड़ीबोली-गद्य में प्रस्तुत किए गए हैं, फिर इनका यथावश्यक रूप में स्वच्छ विवेचन किया गया है, और अंततः प्रायः मम्मट अथवा विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों का ब्रजभाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया गया है। रीतिकालीन रीति-ग्रंथ शास्त्रीय दृष्टि से शिथिल एवं अपरिपक्व थे, किंतु यह ग्रंथ इस दृष्टि से सर्वथा पुष्ट एवं समर्थ है। यद्यपि इसमें मौलिकता का अभाव है, फिर भी, हमारे विचार में, हिंदी का प्रथम प्रौढ़ काव्यशास्त्रीय पाठ्य-ग्रंथ यही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यतत्त्वविचार *(गु० कृ०)*

रामनारायण वि० पाठक (दे०) द्वारा संपादित और गुर्जर-ग्रंथ-रत्नाकर द्वारा प्रकाशित 'काव्यतत्त्व-विचार' नामक ग्रंथ आचार्य डा० आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव द्वारा लिखे गए 'गरुड़' और 'वसंत' नामक पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित लेखों का मुद्रित रूप है। इस ग्रंथ में विद्वान लेखक के 'कविता', 'कविता अने भाषण', 'सुंदर अने काव्य', 'संस्कारी संयम अने जीवननो उल्लास', 'काव्यशास्त्रना थोडाक सिद्धांतो', 'रसास्वादनो अधिकार', 'साहित्य', 'सौंदर्यनो अनुभव', 'हिंदुस्थानमां वर्षाऋतु' (प्रकृतिकाव्य), 'साहित्य अने राष्ट्र', 'साहित्य अने काव्य', 'केलवणी अने साहित्य', 'साहित्य अने साक्षर', 'साक्षर अेटले शुं ?', 'साहित्यमां गाजवीज ?', 'साहित्यनुं पुनरावर्तन', गुजरात कालेजमां वार्तालाप : 1. 'साहित्य अने जीवन', 2. 'साहित्य अने शीत', 'पृथुराजरासाना एक अवलोकन-माथी उद्‌भवती चर्चा' तथा 'कविता संबंधी थोड़ा विचार' नामक विषयों पर उत्प्रेरक लेख या व्याख्यान संग्रथित हैं। आनंदशंकर ध्रुव के लिए कविता अमृतस्वरूप, आत्मा की कला और वाग्देवी-रूप है; प्रत्येक कवि सुंदर (श्रीमत्) और भव्य (ऊर्जित) को अपने काव्य में मात्रा-भेद से स्थान देता है। संस्कारी जीवन और जीवनोल्लास की चर्चा करते हुए लेखक शास्त्रीयता और स्वच्छंदता की चर्चा उपस्थित करता है। 'रसास्वादनो अधिकार' नामक लेख में ध्रुव जी ने मुंशी द्वारा इसी विषय पर दिए भाषण से कुछ तथ्य निकाल कर शास्त्रीयतावाद और स्वच्छंदतावाद के परिप्रेक्ष्य में उनकी चर्चा की है। 'साहित्य' शब्द की व्याख्या में भी पूर्व और पश्चिम की कुछ धारणाओं को आगे रख कर समता-सिद्धांत (क्लासिकल [संस्कृतिनो संयम] और रोमांटिक [जीवननो उल्लास] शैलियों की समता के सिद्धांत) को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। सौंदर्यानुभव की विचारणा करते हुए लेखक जगन्नाथ, कालिदास और एडिथ सिट्‌वेल के उद्धरण देकर पुनः शास्त्रीयतावाद और स्वच्छंदतावाद में अपनी चर्चा को समेट लेता है। 'केलवणी अने साहित्य' तथा 'साहित्य अने साक्षर' लेखक द्वारा दिए गए भाषण हैं। भीमराव भोलानाथ द्वारा रचित 'पृथुराजरासा' नामक ग्रंथ पर रमणभाई द्वारा लिखित विवेचना को लेकर लेखक ने कुछ समस्याएँ उठाई हैं। इन सभी लेखों व भाषणों को देखने से पता चलता है कि लेखक की आलोचना में पूर्व और पश्चिम की विचारधाराओं का अद्‌भुत समन्वय है; जटिल-से-जटिल विषकों में सत्य खोज लेने की पैनी दृष्टि के दर्शन होते हैं और किसी वस्तु का मूल्यांकन करते समय जिस ऐतिहासिक और तत्त्वान्वेषी दृष्टि की आवश्यकता होती है वह दृष्टि लेखक में सर्वत्र दिखाई देती है। रामनारायण पाठक की यह बात ठीक ही लगती है कि अगर ध्रुव जी के इन लेखों को पुस्तकाकार न प्रकाशित किया गया होता तो गुजराती के एक बहुत बड़े विद्वान की विद्वत्ता से गुजराती पाठक वंचित रह जाता। गुजराती साहित्य के इतिहासकार और साहित्य के अध्येताओं के लिए ध्रुव जी के निबंध बहुत अधिक उपयोगी हैं।

काव्यनिर्णय *(हिं०क्र०)* [रचना-काल—1746 ई०]

इसके रचयिता भिखारीदास (दे०) हैं। ग्रंथ में 25 उल्लास हैं, जिनमें विभिन्न काव्यांगों का निरूपण है। सबसे अधिक सामग्री अलंकार-विषयक है और इसके बाद रस तथा नायक-नायिका-भेद-विषयक। इस ग्रंथ की कतिपय मौलिकताएँ उल्लेख्य हैं—वामन (दे०)—सम्मत दस गुण चार वर्गों में विभक्त किए गए हैं, 'स्वाधीनपतिका' आदि आठ नायिकाएँ दो वर्गों में, तथा इक्यानवे अलंकार बारह वर्गों में। किंतु अलंकारों का वर्गीकरण शास्त्र-सम्मत एवं वैज्ञानिक नहीं है। इस ग्रंथ में शृंगार रस के ये नूतन भेद प्रस्तुत किए गए हैं—सम तथा मिश्रित, सामान्य तथा संयोग, और नायक-जन्य शृंगार और नायिका-जन्य शृंगार। ग्रंथ-निर्माण में हिंदी के लक्ष्य-ग्रंथ भी सामने रखे गए हैं और—काव्य-हेतु, 'तुक' तथा ब्रजभाषा-प्रसंग में उनको आधार बनाया गया है, और इस दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। किंतु इसमें दोष भी कम नहीं हैं। काव्य-लक्षण, शब्दशक्ति-प्रकरण में संकेत-गृह, उपादानलक्षणा आदि स्थल तथा व्यंग्य-प्रकरण शिथिल हैं। फिर भी, हिंदी रीतिकालीन ग्रंथों में केशव की 'कविप्रिया' के बाद इस ग्रंथ का विशेष स्थान है।

काव्यप्रकाश *(सं० कृ०)* [समय—1075-1100 ई०]

'काव्यप्रकाश' के लेखक राजानक मम्मट (दे०) हैं। मम्मट का स्थिति-काल ग्यारहवीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है। अतः अनुमान है कि काव्यप्रकाश की रचना ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुई होगी।

अलंकारशास्त्र के क्षेत्र में 'काव्यप्रकाश' एक महनीय कृति है। इसमें कुल 142 कारिकाएँ किंवा सूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जिनमें काव्यशास्त्र के सभी अंगों का विवेचन आ गया है। ग्रंथ दस उल्लासों में विभाजित है और कारिका, वृत्ति तथा उदाहरण इसके तीन भाग हैं। इसके प्रायः सभी उदाहरण पूर्ववर्ती ग्रंथों से लिये गए हैं। प्रथम उल्लास में काव्य के प्रयोजन, हेतु, परिभाषा तथा उसके तीन भेदों का निरूपण किया गया है। काव्य के छह प्रयोजन (यश, अर्थलाभ, व्यवहारज्ञान, अमंगल का निवारण, सद्यः पर-निर्वृत्ति और कांतासम्मित उपदेश) और तीन हेतु (शक्ति, निपुणता और अभ्यास) बताए गए हैं। काव्य की परिभाषा में 'काव्यप्रकाश' की समन्वयवृत्ति द्रष्टव्य है। ऐसे शब्द और अर्थ को काव्य बताया गया है जो दोषरहित और गुणयुक्त हों; वह यत्रतत्र अलंकाररहित भी हो सकता है। काव्य के तीन भेद—उत्तम (ध्वनि), मध्यम (गुणीभतव्यंग्य) और अवर (चित्रकाव्य) किए गए हैं। द्वितीय उल्लास में शब्द के वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक तीन प्रकार और उनके वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तीन प्रकार के अर्थों का भेदपूर्वक निरूपण किया गया है। तृतीय उल्लास में यह बताया गया है कि सभी प्रकार के अर्थ व्यंजक कैसे हो सकते हैं। चतुर्थ उल्लास में उत्तम काव्य (ध्वनिकाव्य) का भेदोपभेदपूर्वक निरूपण किया गया है। रस के स्वरूप तथा तत्संबंधी विभिन्न सिद्धांतों का विवेचन इसी उल्लास में किया गया है। पंचम उल्लास में मध्यम काव्य तथा छठे उल्लास में अवर काव्य के भेदों का निरूपण किया गया है। सातवें उल्लास में दोषों का निरूपण है और यह बताया गया है कि कतिपय स्थलों में दोष किस प्रकार रमणीयता-प्रतिपादक हो जाते हैं। आठवें उल्लास में गुण और शब्दालंकार के अंतर तथा गुणों के तीन प्रकारों (माधुर्य, ओज, प्रसाद) का निरूपण किया गया है। अन्य गुण या तो इन्हीं में अंतर्भूत हैं या वे दोषाभाव मात्र हैं। नवें उल्लास में 7 अलंकारों तथा तीन वृत्तियों (उपनागरिका, परुषा और कोमला) का तथा दसवें उल्लास में 61 अर्थालंकारों का भेदोपभेदपूर्वक विवेचन किया गया है।

'काव्यप्रकाश' मम्मट की समन्वयवादिनी दृष्टि का परिचायक है। ध्वनिवादी होते हुए भी लेखक ने इसमें अलंकार, गुण, रीति-वृत्ति आदि का व्यवस्थित मूल्यांकन कर उन्हें अपनी व्यवस्था में यथोचित स्थान प्रदान किया है।

काव्यप्रकाशखंडन (सं० कृ०) [समय—सोलहवीं शती]

सिद्धिचंद्रगणी द्वारा लिखित 'काव्यप्रकाशखंडन' में दस उल्लास हैं। पंडितराज जगन्नाथ (दे०) के समकालीन होने के कारण इन्हें भी सोलहवीं शती का माना जा सकता है। इनके स्वयं के मतानुसार इनकी लेखन-विधि अनुवादपूर्वक खंडन की है यद्यपि इनके सभी खंडन समीचीन नहीं हैं।

काव्यप्रयोजन (सं० पारि०)

काव्य-रचना के बाद की उपलब्धि को काव्य-प्रयोजन कहते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट (दे०) ने अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा परिगणित विभिन्न काव्य-प्रयोजनों को निम्नोक्त रूप में प्रस्तुत किया—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात् काव्य का प्रयोजन है यश और धन की प्राप्ति, व्यवहार का ज्ञान, कष्ट-निवारण, तुरंत परम आनंद (रसास्वाद) की प्राप्ति, तथा कांतासम्मित (सहज रूप से प्राप्त) उपदेश। इनमें से मम्मट ने सद्यःपरनिर्वृत्ति (रसास्वाद) को सर्वोपरि स्थान दिया, और उसके बाद दूसरा स्थान कान्तासम्मित उपदेश को। उक्त प्रयोजनों में से यश, अर्थ और कष्ट-निवृत्ति—ये तीन प्रयोजन कवि को प्राप्त होते हैं और शेष तीन प्रयोजन सहृदय को। यों, ये सभी प्रयोजन किसी-न-किसी रूप में कवि और सहृदय दोनों को प्राप्त हैं।

काव्यमीमांसा (सं० कृ०) [समय—अनुमानतः दसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध]

राजशेखर (दे०)-कृत 'काव्यमीमांसा' का संस्कृत-साहित्यशास्त्र में अत्यंत गौरवमय स्थान रहा है। यह ग्रंथ 18 अधिकरणों में लिखा गया था किंतु आज इसका प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध होता है जिसके 18 अध्याय हैं।

इसमें कवि तथा आलोचक के स्वरूप, प्रकार, काव्यभेद, रीतिविवेचन, काव्यार्थ की योनि, शब्दहरण तथा अर्थाहरण विचार आदि अनेक उपादेय विषयों का अत्यंत प्रभावशाली विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ में कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की गई हैं—यथा वेद-पुरुष के आधार पर काव्यपुरुषोत्पत्ति एवं साहित्यविधा-वधू के साथ उसका विवाह संबंध। इस ग्रंथ का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमें अनेक अज्ञात एवं अप्रसिद्ध आचार्यों के नामोल्लेख हैं जिससे भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा एवं साहित्य-विषयक संकेत मिलता है। यह केवल सैद्धांतिक विषय-विवेचन का ग्रंथ नहीं, व्यावहारिक विषयों का ग्रंथ भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-विचार *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1941 ई०]

इसके मूल लेखक श्री सुरेंद्रनाथ दास गुप्त और अनुवादक श्री नगीनदास पारेख हैं। अनुवाद मूल बँगला ग्रंथ से किया गया है। भारत में यों तो भरत (दे०) से लेकर विश्वनाथ (दे०) तथा जगन्नाथ (दे०)-पर्यंत काव्य की सैद्धांतिक चर्चा हुई है किंतु पश्चिम के समान काव्य का समग्ररूपेण विवेचन करने की पद्धति हमारे यहाँ नहीं रही। तीन सौ पृष्ठों के इस ग्रंथ में दासगुप्त ने समस्त काव्य-विचारधारा को व्यापक तथा पाश्चात्य पद्धति से प्रस्तुत किया है। उनके इस ग्रंथ का प्रणयन उस समय हुआ था जब सहृदय पाठक की ज्ञान-पिपासा की परितुष्टि करने वाले ग्रंथ स्वर्गीय डा० दे (दे०), काणे (दे०), जैकोबी, शोवानी तथा अतुलचंद्र के प्रयासों तक ही सीमित थे। उस समय इस ग्रंथ ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की थी। दासगुप्त के इस ग्रंथ में समग्रता और गहनता है।

स्वयं अनुवादक भी काव्यशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान हैं तथा गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनकी शैली स्पष्ट और सरल है। गुजराती साहित्य परिषद् ने वर्षों पूर्व इस ग्रंथ को सुलभ कर विद्वत् समाज की महत्वपूर्ण सेवा की थी।

काव्यशास्त्र *(हिं० पारि०)*

काव्य के मूलभूत सिद्धांतों तथा उसके विभिन्न भेदोपभेदों के रचना एवं मूल्यांकन-संबंधी नियमों का उपस्थापन, निरूपण, विवेचन एवं विश्लेषण करने वाला शास्त्र। काव्यशास्त्र काव्य का शास्त्र है। भारतीय आचार्यों ने शास्त्र को वाङ्मय के दो भेदों में से एक माना है ('इह वाङ्मयं उपभया शास्त्रं काव्यं च'—राजशेखर)। शास्त्र के अंतर्गत वेद, वेदांग, आन्वीक्षिकी, दंडनीति, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विद्याओं के साथ ही 'साहित्य-विद्या' भी समाविष्ट है जिसे राजशेखर (दे०) ने सभी विद्याओं का सार कहा है।

काव्यशास्त्र का प्राचीनतम भारतीय अभिधान 'अलंकारशास्त्र' है, यद्यपि भामह (दे०) ने इसके लिए एक स्थान पर केवल 'अलंकार' शब्द का प्रयोग भी किया है—'काव्यालंकार इत्येष यथाबुद्धि विधीयते'। दूसरा प्राचीन नाम है 'काव्य-विद्या'। राजशेखर ने 'साहित्य-विद्या' शब्द का प्रयोग किया है। प्राचीन युग में एक अन्य प्रचलित नाम था 'काव्यमीमांसा'। रुद्रट ने काव्य के स्थान पर 'साहित्य' का प्रयोग करते हुए इसे 'साहित्यमीमांसा' का अभिधान दिया है। अल्प प्रचलित नामों में क्रियाकल्प उल्लेखनीय है जिसे कामशास्त्र में वर्णित चौंसठ कलाओं में से एक माना गया है। मध्य युग में 'साहित्यशास्त्र' और 'रीतिशास्त्र' बहु-प्रचलित नाम रहे। आधुनिक युग में इसके लिए 'आलोचना-शास्त्र' के अतिरिक्त 'साहित्यविज्ञान' और 'काव्य-विमर्श' नामों का प्रयोग भी होता है, किंतु इनका प्रचलन अपेक्षाकृत कम है। इन सबमें 'काव्यशास्त्र' सबसे अधिक व्यापक और अर्थव्यंजक होने के कारण अब प्रायः सर्वमान्य हो गया है।

पश्चिम में प्राचीनतम नाम है 'पोयटिक्स'। अरस्तू ने अपने ग्रंथ का नाम ही 'पेरि पोइतिकेस' रखा था जो 'काव्यशास्त्र' का यूनानी पर्याय है। दूसरा प्राचीन नाम है काव्य-कला ('आर्स पोएतिका') जो रोमी काव्यशास्त्र में बहुत समय तक प्रचलित रहा। आधुनिक युग में कुछ प्रचलित उल्लेखनीय नाम हैं : 'थिअरी आफ़ पोइट्री', 'साइंस आफ़ पोइट्री', 'थिअरी आफ़ लिट्रेचर', 'थिअरी आफ़ क्रियेटिव लिट्रेचर', 'लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म' और 'प्रिंसिपल्ज़ ऑफ़ लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म'। इनमें से अंतिम दो सर्वमान्य और प्रचलित हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र की अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध परंपरा है जिसमें कवि, काव्य एवं प्रमाता का उनके व्यापकतम आयामों में सुविस्तृत, व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ इस प्रकार हैं : 'नाट्यशास्त्र' (दे०) (भरत), 'काव्यालंकार' (दे०) (भामह), 'काव्यादर्श' (दे०) (दंडी), 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, (दे०) (वामन), 'दशरूपक' (दे०) (धनंजय), 'काव्यालंकार' (दे०) (रुद्रट), (काव्यमीमांसा' (दे०) (राजशेखर), 'ध्वन्यालोक' (दे०) (आनंदवर्द्धन), 'ध्वन्यालोकलोचन' एवं 'अभिनवभारती' (अभिनवगुप्त), 'वक्रोक्तिजीवित' (कुंतक), 'नाट्यदर्पण' (दे०) (रामचंद्र गुणचंद्र), 'काव्यप्रकाश' (दे०) (मम्मट), 'साहित्यदर्पण' (दे०) (विश्वनाथ), तथा 'रसगंगाधर' (दे०) (जगन्नाथ)।

काव्यसार *(क० कृ०)*

इसके रचयिता जैनधर्मावलंबी अभिनववादी विद्यानंद (1550 ई०) हैं जो विजयनगर-सम्राट कृष्णदेवराय के समसामयिक थे 'काव्यसार' एक संग्रह-ग्रंथ है जिसमें अष्टादश वर्णनों के लिए भिन्न-भिन्न कृतियों से छाँटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण दे दिए गए हैं। इसमें पैंतालीस अध्याय तथा एक हज़ार से भी अधिक पद्य हैं। अतः साहित्य के इतिहास में इसका विशिष्ट स्थान है। 'सूक्तिसुधार्णव' के बाद यही दूसरा ग्रंथ है जिसमें पूर्वकवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। जन्न (दे०), नेमिचंद्र, रुद्रभट्ट (दे०) आदि ज्ञात कवियों की कृतियों के ही नहीं, वरन् गुणवर्मा के 'शूद्रक' जैसे अज्ञात ग्रंथ के भी 30-40 पद्य इसमें मिलते हैं। इस प्रकार एक ऐतिहासिक ध्वनिरम्य काव्य का पता लगाने में इस संग्रह-ग्रंथ का विशिष्ट स्थान रहा है। इससे यह भी आशा बढ़ती है कि विद्यानंद के समय प्राप्त यह ग्रंथ पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुआ होगा—उसके मिलने की संभावना है।

काव्यहरिश्चंद्र *(ते० कृ०)*

यह कवि-सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का रेडियो नाटक है। इसमें अपने वचन के पालन के लिए सब कुछ खोने वाले—यहाँ तक कि श्मशान तक में काम स्वीकार कर लेने वाले—राजा हरिश्चंद्र की कथा है। लेखक ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा इसे आध्यात्मिक बना दिया है। हरिश्चंद्र मोक्षपथगामी जीव का प्रतीक है। वह अरिषड्वर्ग तथा ईषणत्रय पर विजय प्राप्त कर, शिवत्व को प्राप्त करता है। इसमें सत्य-साधना के साथ-साथ मोक्षसाधना भी समान रूप से वर्णित है।

काव्यहेतु *(सं० पारि०)*

काव्य-निर्मिति के कारण को 'काव्यहेतु' कहते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट (दे०) से पूर्व जिन काव्यहेतुओं की परिगणना की गई थी उन्हें इन्होंने निम्नोक्त तीन काव्यहेतुओं में समाविष्ट कर दिया—(1) शक्ति अर्थात् प्रतिभा (दे०) अथवा प्रज्ञा। इसे मम्मट ने 'कवित्वबीजरूप संस्कारविशेष' कहा है। (2) लोक, काव्य, शास्त्र आदि के अवेक्षण से प्राप्त निपुणता अथवा व्युत्पत्ति। (3) काव्य के मर्मज्ञों से प्राप्त शिक्षा के द्वारा अभ्यास। वस्तुतः इन तीनों को काव्य के हेतु न मानकर इनके समन्वित रूप को ही मम्मट ने काव्य का एक हेतु माना है—

शक्तिर्निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेस्तुतदुद्भवे॥

किंतु उनकी यह धारणा आगे चलकर मान्य नहीं हुई। परवर्ती आचार्यों के अनुसार प्रतिभा तो काव्य-हेतु है, और व्युत्पत्ति और अभ्यास संस्कारक (परिष्कारक) हेतु हैं—'प्रतिभाऽस्य हेतुः। व्युत्पत्त्यभ्यासाभ्यां संस्कार्या।' (काव्यानुशासन—हेमचंद्र)।

काव्यादर्श *(सं० कृ०)* [समय—छठी शती का उत्तरार्द्ध]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के ख्यातनामा आचार्य दंडी (दे०) की कृति 'काव्यादर्श' का अपना विशेष महत्व है। छठी शताब्दी के अंतिम भाग में लिखे गए इस ग्रंथ में पूर्ववर्ती कृति भामह (दे०) के 'काव्यालंकार' (दे०) के साथ साम्य एवं वैषम्य दोनों हैं। 'काव्यादर्श' में कुल 660 श्लोक हैं जिसमें उपमा-रूपक प्रभृति 35 अलंकारों, 16 प्रकार की प्रहेलिकाओं तथा दस प्रकार के दोषों का विवेचन विस्तारपूर्वक उपलब्ध होता है।

दंडी का 'काव्यादर्श' रीति एवं अलंकार-संप्रदायों का मिश्रित प्रतिनिधित्व करता है। रसवत् आदि अलंकारों की मान्यता तो भामह से ही चली आ रही थी, दंडी ने उसे परिपुष्ट किया। 'काव्यादर्श' में अनेक काव्य-शास्त्रेतर विषयों का भी विवरण उपलब्ध है।

काव्यानुशासन *(सं० कृ०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र के इतिहास में 'काव्यानुशासन' नाम से दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। एक हेमचंद्र (दे०) की, दूसरी वाग्भट द्वितीय की। हेमचंद्र का समय 1150 ई० है और वाग्भट द्वितीय का चौदहवीं शती के आसपास।

'काव्यानुशासन' नाम से उपलब्ध दोनों ग्रंथ सूत्रात्मक पद्धति से लिखे गए हैं। हेमचंद्र का काव्यानुशासन एक संग्रह-ग्रंथ है जिसमें 'काव्यमीमांसा' (दे०), काव्य-प्रकाश (दे०), ध्वन्यालोक (दे०) लोचन तथा अभिनव-भारती के लंबे-लंबे उदाहरण दिए गए हैं। आठ अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, लक्षण तथा शब्द और अर्थ-स्वरूप-विवेचन, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार, काव्यभेद, नायक-नायिका-वर्णन तथा उपदेशों का वर्णन विभिन्न ग्रंथकारों के 1500 पद्यों सहित किया गया है जबकि वाग्भट द्वितीय के 'काव्यानुशासन' में पाँच अध्याय हैं और इसके भी प्रतिपादित विषय मुख्य रूप से हेमचंद्र वाले ही हैं।

हेमचंद्र ने अपने काव्यानुशासन पर स्वयं 'विवेक'-वृत्ति लिखी जबकि वाग्भट द्वितीय ने अपने काव्यानुशासन पर 'अलंकार तिलक' नामक वृत्ति लिखी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यालंकार *(सं० कृ०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र के इतिहास में 'काव्यालंकार' नाम से दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—एक भामह (दे०) की तथा दूसरी रुद्रट (दे०) की। भामह का समय छठी शताब्दी तथा रुद्रट का नवीं शताब्दी ई० है।

भामह की कृति अलंकारशास्त्र के इतिहास में एक नया प्रयोग है। काव्यालंकार के पूर्व की आलंकारिक कृतियों में 'नाट्यशास्त्र' (दे०) तथा 'विष्णुधर्मोत्तर' एवं 'अग्निपुराण' के कुछ अंश ही थे जिनमें काव्य की दृश्य एवं श्रव्य दोनों विधाओं का विवेचन हुआ है। पर भामह ने विशुद्ध रूप से श्रव्य काव्य को लेकर उसका विवेचन किया है। 396 श्लोकों के 6 परिच्छेदों में विभक्त यह ग्रंथ काव्यशरीर, अलंकार, दोष, काव्यन्याय, शब्दशुद्धि नामक विषयों का सम्यक् रूप से विवेचन प्रस्तुत करता है इस कृति ने उत्तरकालीन आनंदवर्द्धन (दे०), कुंतक (दे०), मम्मट (दे०) प्रभृति अलंकारशास्त्रियों को प्रभावित किया।

रुद्रट का काव्यालंकार एक संग्रहात्मक ग्रंथ है। इसके सोलह अध्यायों में विभक्त 734 आर्या छंदों में काव्य-शास्त्र के प्रायः सभी विषयों का विस्तारपूर्वक विवेचन है।

काव्यालंकारसारसंग्रह *(सं० कृ०)* [समय—नवीं शती का पूर्वार्ध]

नवीं शती के पूर्वार्ध में रचित 'काव्यालंकार सारसंग्रह' ग्रंथ में केवल अलंकारों का ही विस्तृत विवेचन किया गया है। 6 वर्गों में विभाजित उक्त ग्रंथ में लगभग 79 कारिकाएँ हैं जिनमें 41 अलंकारों का लक्षणोदाहरण सहित निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ में अलंकारनिरूपण का प्रायः वही क्रम रखा गया है जो भामह (दे०) के 'काव्यालंकार' (दे०) में उपलब्ध है तथापि ग्रंथकर्ता उद्भट (दे०) ने इसमें अलंकारों की कुछ नवीन उद्-भावनाएँ भी की हैं, यथा पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, काव्यलिंग, संकर आदि।

यद्यपि भामह (दे०), दंडी (दे०) के समान इस ग्रंथ के कर्ता ने भी रस, भाव आदि को रसवदादि अलंकारों के अंतर्गत माना है किंतु इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि हमें सर्वप्रथम यहीं पर उनका व्यवस्थित विवेचन मिलता है। इस ग्रंथ में जो उदाहरण मिलते हैं वे अधिक-तर ग्रंथकर्ता के स्वरचित काव्य 'कुमारसंभव' (दे०) से ही उद्धृत हैं। इस प्रकार 'काव्यालंकारसारसंग्रह' अलंकार-वाद का एक प्रामाणिक एवं प्रबल समर्थक ग्रंथ है जिसकी दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं : (1) प्रतिहारेंदुराज (दे०)-कृत लघुवृत्ति तथा (2) राजानक तिलक-कृत 'उद्भटविवेक'।

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति *(सं० कृ०)*

यह ग्रंथ वामन (दे०) (समय लगभग 800 ई०) द्वारा रचित है, जो काश्मीरी राजा जयापीड़ के सभापंडित थे। यह ग्रंथ सूत्रबद्ध है, और इसकी वृत्ति भी स्वयं वामन ने लिखी है। इस ग्रंथ में 5 अधिकरण हैं और पाँचों अधि-करणों में कुल 12 अध्याय तथा 319 सूत्र हैं। प्रथम अधि-करण में काव्य-प्रयोजन आदि के उल्लेख के उपरांत रीति के तीन भेदों तथा काव्य के विभिन्न प्रकारों का निरूपण है (दे० रीति)। अगले तीन अधिकरणों में क्रमशः दोष, गुण और अलंकारों का विवेचन है, तथा अंतिम अधिकरण में क्रमशः शब्द (दे०)-शुद्धि-समीक्षा है। प्रस्तुत ग्रंथ में रीतिवाद का विवेचन किया गया है और रीतिवाद के अनु-सार गुण रीति के आश्रित हैं। गुण काव्य के नित्य अंग हैं अलंकार और अनित्य। गुण दस शब्दगत हैं और दस अर्थगत, और इन्हीं गुणों के अंतर्गत वामन के अनुसार काव्य का समस्त सौंदर्य समाविष्ट हो जाता है, और इसी आधार पर रीतिकाव्य की आत्मा है। रस को वामन ने कांति नामक गुण से अभिहित किया है। वामन पहले आचार्य हैं जिन्होंने वक्रोक्ति को लक्षणा का पर्याय मानते हुए इसे अर्थालंकारों में स्थान दिया है। इस ग्रंथ की संस्कृत-टीका गोपेंद्र त्रिपुर हरभूपाल ने लिखी है और हिंदी-टीका आचार्य विश्वेश्वर ने।

काव्यावलोकन *(क० कृ०)*

इसके रचयिता नागवर्मा द्वितीय (1150 ई०) (दे०) हैं। ये चालुक्य-नरेंद्र जगदेकमल्ल के कटको-पाध्याय थे। 'काव्यावलोकन' कन्नड-काव्यशास्त्र के इतिहास में एक प्रकाश-स्तंभ है। इसमें शब्दस्मृति, काव्यमलव्यावृत्ति, गुण-विवेक, रीतिरस-निरूपण और कविसमय नामक पाँच अधिकरण हैं। नागवर्मा हिंदी के रीति कवियों की भाँति अपने सूत्रों के लिए आप ही उदाहरण नहीं गढ़ते, अन्य कवियों की कृतियों से उद्धरण देते हैं। 'शब्दस्मृति' में संग्रह-रूप में कन्नड का व्याकरण निरूपित है। कन्नड का यही सर्वप्रथम व्याकरण है। 'काव्यमलव्यावृत्ति' नामक द्वितीय अधिकरण में काव्य के दोष तथा उनके परिहारो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पायों का वर्णन है। 'गुणविवेक' नामक तृतीय अध्याय में काव्यगुणों का विवेचन है, साथ ही शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का भी इसमें विवेचन है। यहाँ नागवर्मा ने रुद्रट (दे०) का अनुगमन किया है। 'रीतिरस-निरूपण' नामक चतुर्थ अधिकरण में 'पदरचनातिशयं रीति' कहकर वामन (दे०) के 'विशिष्टापदरचनारीतिः' का अनुसरण किया है। किंतु वैदर्भी, गौडी, पांचाली आदि रूपों में रीति का वर्गीकरण करते समय रुद्रट का आदर्श ग्रहण कर समास-प्राचुर्य, गुणगुंफन, रसदृष्टि आदि को भी स्थान दिया गया है। नागवर्मा के अनुसार रीति के केवल तीन भेद हैं। रुद्रट-प्रोक्त 'लाटीया' का नाम तक इन्होंने नहीं लिया है। भरत (दे०) के रस-सूत्र का निरूपण करते समय ये स्थायी भाव को भी विभावादि के साथ जोड़ते हैं।

रसों की संख्या नागवर्मा ने केवल आठ बताई है किंतु निरूपण करते समय अद्भुत के साथ शातंरस को भी सोदाहरण प्रस्तुत किया है। पंचम प्रकरण में राजशेखर की देखादेखी नागवर्मा ने 'कवि-समय' का निरूपण किया है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि नागवर्मा ने अपने पूर्ववर्ती ग्रंथ 'कविराजमार्ग' (दे०) का उल्लेख तक नहीं किया। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि 'कविराज-मार्ग' जैसे अत्यंत प्राचीन ग्रंथ तक में 'ध्वनि' का उल्लेख हुआ है किंतु नागवर्मा ने उसकी कोई चर्चा नहीं की। संस्कृत लाक्षणिकों के सिद्धांतों का उपयोग उन्होंने ज्यों का त्यों नहीं किया। वामन के अनुसार उन्होंने काव्य-शोभाकर धर्म को ही गुण माना है। किंतु श्लेष अर्थ-व्यक्ति, मधुर आदि दस गुणों का लक्षण दंडी के अनुसार दिया है। चतुर्थ अधिकरण में नागवर्मा ने एक बहुत पते की बात कही है। उनके अनुसार 'रीति-काव्य की आत्मा नहीं, शरीर है'। उसका जीव रस ही है। यह भारतीय साहित्य-शास्त्र के लिए उसकी महती देन है। उसके पूर्व संस्कृत में भी यह बात किसी ने नहीं कही थी कि रीति काव्य की देह है। नागवर्मा के उदाहरणों से उसकी सदभिरुचि का पता लगता है। उनको पढ़ना ही एक अनुभव है—आनंद है। नागवर्मा कन्नड के प्रतिनिधि आचार्य एवं रीतिकार हैं।

काशिका (सं० कृ०) [रचना-काल—600-700 ई० के अंतर्गत]

'काशिका' के रचयिता जयादित्य तथा वामन हैं। चीनी यात्री इत्सिंग ने केवल जयादित्य को 'काशिका' का लेखक कहा है। परंतु यह अनुचित है। 'काशिका' का अष्टम अध्याय निश्चय ही वामन द्वारा रचित है। ये वामन-अलंकारशास्त्र के विद्वान् वामन (दे०) से भिन्न हैं। 'काशिका' की रचना काशी में संपन्न हुई थी। काशिका को ही एक वृत्ति तथा प्राचीन वृत्ति भी कहते हैं। 'काशिका' आठ अध्यायों में विभक्त है। 'काशिका' में पाणि-नीय क्रम के अनुसार लौकिक तथा वैदिक सूत्रों की यथा-स्थान व्याख्या की गई है।

काशिकावृत्ति अत्यंत महत्वपूर्ण वृत्ति है। काशिका से प्राचीन कुणि आदि वृत्तियों में जिस गण पाठ का अभाव था वह 'काशिका' में वर्तमान है। इस कृति में अनेक सूत्रों की व्यवस्था प्राचीन वृत्तियों के आधार पर लिखी गई है। 'काशिका' के उदाहरणों तथा प्रत्युदाहरणों से अनेक प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्वों का भी बोध होता है। 'महाभाष्य' (दे०) तथा काशिका में विरोध भी यत्र-तत्र मिलता है परंतु जहाँ यह विरोध दृष्टिगोचर होता है वहाँ काशिका का आधार प्राचीन वृत्तियाँ ही हैं। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र के जिज्ञासु के लिए काशिका का ज्ञान अत्यंत लाभप्रद है।

काशीखंडमु (ते० कृ०)

'काशीखंडमु' महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) (1380-1460) (दे०) द्वारा रचित काशी-क्षेत्र की महिमा का वर्णन करने वाला काव्य है। कवि ने इसकी रचना 'स्कंदपुराण' से कथावस्तु ग्रहण करके की है। यह रचना सहज स्वाभाविक वर्णनों से युक्त है, और श्रीनाथुडु की काव्य-प्रतिभा के कारण काव्यत्व की पूर्णता को प्राप्त कर सकी है। शिव में अनन्य भक्ति रखने वाले कवि श्रीनाथ ने शिव की महिमा को प्रकाशित करने वाली तथा काशी-क्षेत्र की पावनता को प्रमाणित करने वाली कथाओं को काव्य-रूप में प्रस्तुत किया है। ओज और प्रवाहमयता का काव्य-गुण इस कृति में भी परि-लक्षित होता है। भाषा संस्कृतनिष्ठ, प्रौढ़-प्रांजल तेलुगु है।

काशीरामदास (बँ० ले०)

अनुमान से सोलहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में वर्द्धमान ज़िलांतर्गत इंद्राणी परगना के सिंगि ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम कमलाकांत देव एवं पितामह का सुधाकर था। ये जाति के कायस्थ थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा देव इनकी उपाधि थी। ये तीन भाई थे। ज्येष्ठ भ्राता कृष्णदास ने 'श्री कृष्ण विलास' नामक कृष्ण-लीला विषयक काव्य एवं कनिष्ठ भ्राता गदाधर ने 'जगत मंगल' अथवा 'जगन्नाथ मंगल' नामक नीलांचल माहात्म्य-ग्रंथ लिखा था।

इनका ग्रंथ 'पांडव-विजय' अथवा 'पांडव-विजय-कथा' अथवा 'भारतपांचाली' है। इस ग्रंथ की लोकप्रियता का कारण इसके मूल का 'महाभारत' (दे०) से घनिष्ठ संबंध है। अनुमान है, इन्होंने आदि, सभा, वन एवं विराट केवल चार पर्वों की रचना की थी—शेष पर्व इनके पुत्र तथा भाई के पुत्र ने पूर्ण किए थे। विद्वानों के अनुसार अन्य कवियों ने भी अनाम रूप से 'महाभारत' के अनेक प्रसंगों में योगदान किया है। अतएव कितना अंश प्रक्षिप्त है, कहना कठिन है।

इनके नाम से प्रचलित महाभारत (दे०) ने बंगाल में अनुपमेय लोकप्रियता अर्जित की है। महाभारत की कहानी को सरल कर पारिवारिक एवं सामाजिक आदर्शों को सर्वजन-बोध्य बना देना कवि-कौशल सिद्ध करता है। दर्शन एवं राजनीति जैसे विषयों को सर्वथा छोड़ दिया गया है। स्थान-स्थान पर घटना-विन्यास की नाटकीयता, सरस उक्ति एवं हास्य रस की सृष्टि द्वारा यह पाठकों का मनोरंजन करता है। अनेक प्रसंगों में 'महाभारत' के श्लोकों का अनुवाद मूल के सौंदर्य को बनाये रखता है। स्वच्छंद, सरल-पयार त्रिपदी छंद में 'महाभारत' की रचना करके इन्होंने अमृत-वर्षा की है।

महाभारतेर कथा अमृत समान।
हे काशी, कवीश दले तुमि पुण्यवान॥
अथवा
काशीराम दास कहे शुने पुण्यवान॥

किंचित (उ० कृ०)

'किंचित' अनंत पटनायक (दे०) की गीति-कविताओं का संकलन है। इसमें प्रेम, उद्‌बोधन, नव-जागरण तथा शाश्वत-जीवन-संगीत की प्राण-विमोहक मूर्च्छना की सृष्टि का संदेश है। इसमें प्रेम की अकुंठित अभिव्यक्ति 'तृष्णा' नामक कविता के अंतर्गत हुई है। कहीं पर नवयुग-आगमन हेतु उद्‌बोधन और क्रांति का आह्वान है। 'झर रे रुधिर' 'शहीद नुहें', 'शांतिर हेमानळे' आदि में कवि का उग्र विद्रोही स्वर मुखर है। 'स्वप्न देखुच' में कवि ने नव-संसार का स्वप्न देखा है, जो कल्पना-प्रसूत आदर्श पर निर्मित नहीं, वरन् ठोस यथार्थ पर प्रतिष्ठित है। 'शांतिर हेमानळे' में शांति की होमाग्नि शिखा प्रज्वलित करने के लिए तरुण वर्ग का आह्वान-है। जीवन को अरुणिम कांति के जयदीप से स्वच्छ-आलोकित कर लेने का संदेश है। मृत्यु की वर्जना द्वारा सुंदर शिव के आह्वान का उपदेश है। भाषा पूर्णतः उड़िया है। सहज भाव-स्फूर्त कल्पना-चित्र इन कविताओं के स्वाभाविक अलंकरण हैं।

किट्टल कन्नड-इंगलिश निघंटु (क० कृ०)

भारत की समस्त भाषाओं में ईसाई धर्म-प्रचारक पश्चिम के विद्वानों ने बाइविल के अनुवाद के साथ-साथ कोशों का भी निर्माण किया। जर्मन-निवासी किट्टल कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले पश्चिमी लेखकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे 21 वर्ष की आयु में ईसाई धर्म-प्रचार के लिए भारत आए। आरंभ में उन्होंने मंगलूर में धर्म-प्रचार का काम किया। उन्होंने संस्कृत, फ़ारसी, कन्नड, तमिल, कोंकणी तथा मराठी भाषाओं का विशेष रूप से अध्ययन किया और अपने धर्म-प्रचार के प्रथम बीस वर्ष में कन्नड में बाइविल के अनुवाद के अतिरिक्त कन्नड में ही 210 पृष्ठों का एक संगीत-ग्रंथ लिखा, कन्नड व्याकरण-लेखन के अतिरिक्त अनेक प्राचीन कन्नड-ग्रंथों का संपादन भी किया और साथ ही कन्नड भाषा में एक सचित्र मासिक पत्रिका का भी संपादन किया।

किट्टल भारतीय साहित्य, और विशेषकर कन्नड साहित्य में अपने कन्नड-इंगलिश कोश के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे। उन्होंने कन्नड के कुछ विद्वानों की सहायता से 1824 ई० में रचित विलियम रीब के इंगलिश कन्नड और उन्हीं के 1830 ई० में रचित कन्नड-इंगलिश कोश से लाभ उठाकर 1762 पृष्ठों का एक बृहत्काय कोश बीस वर्षों में तैयार किया। किट्टल ने इसमें कर्णाटक में प्रचलित जनसामान्य के शब्द, मुहावरों और कहावतों के अतिरिक्त प्राचीन कन्नड में प्रयुक्त शब्दों का संकलन किया और शब्दों के अर्थ के अतिरिक्त उनकी व्युत्पत्ति एवं प्रयोग भी बतलाने का सफल प्रयास किया। इसकी विशेषता यह भी है कि इसमें उन्होंने कन्नड में प्रयुक्त अन्य द्रविड़ भाषाओं के अर्थ और रूप भी दर्शाए हैं। इस कोश की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। विद्वान लेखक ने कोश-संबंधी उन मूल द्रविड़ शब्दों की विशेष रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चा की है जो संस्कृत भाषा के अंग बन गए हैं। किट्टल की यह कृति कन्नड का एक प्रामाणिक वैज्ञानिक और सर्वश्रेष्ठ कोश है जिसकी प्रशंसा पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी विद्वानों ने की है।

किट्टल, फ़र्डिनेंड *(क० ले०)*

फ़र्डिनेंड किट्टल कर्णाटक के चिरस्मरणीय व्यक्तियों में से हैं। ये जर्मन धर्म-प्रचारक थे। इनका जन्म उत्तर जर्मनी में 7-8-1832 ई० को हुआ था। इनके पिता लूथर संप्रदाय के पादरी थे। शिक्षा समाप्त कर यह स्विट्ज़रलैंड के बासेल मिशन की नौकरी में लग गए। 1853 ई० में मैसूर आए और धर्मप्रचार-कार्य में प्रवृत्त हुए। इन्होंने मैसूर की भाषा कन्नड अच्छी तरह सीखी, उसमें पांडित्य अर्जित किया। बासेल मिशन, भारत सरकार तथा मैसूर सरकार की सहायता से इन्होंने कन्नड-अँग्रेज़ी के एक कोश की योजना बनाई और उसके पीछे अपना सारा जीवन ही लगा दिया।

किट्टल ने साठ वर्ष की उम्र में इस कोश का आरंभ किया। उनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति ने इस काम में विशेष योग दिया। दक्षिण की भाषाओं पर जर्मन मिशनरियों ने विशेष रूप से काम किया है। यह कोश तैयार करने में उन्हें पूरे बीस वर्ष लगे। इसके पूर्व किट्टल ने कन्नड का एक व्याकरण तैयार किया, नागवर्मा (दे०) के छंदोंबुधि, केशिराज (दे०) के 'शब्दमणिदर्पण' (जो कि कन्नड का अत्यंत प्रामाणिक व्याकरण है) आदि का संपादन किया। प्राचीन कन्नड कवियों का एक काव्य-संग्रह भी उन्होंने निकाला जिसकी अँग्रेज़ी भूमिका में उन्होंने कन्नड साहित्य की अत्यंत प्राचीन सामग्री से लेकर अधुनातन साहित्य तक की चर्चा और सर्वेक्षण किया है। इनके अतिरिक्त वीरशैव मत पर जर्मन में एक पुस्तक भी उन्होंने लिखी है।

किंतु किट्टल का नाम सदा के लिए अमर करने वाली कृति है उनका 'कन्नड-अँग्रेज़ी कोश'। उसका प्रथम संस्करण 1894 ई० में निकला। किसी ने ठीक ही कहा है कि यह कोश बीसवीं शती के लिए उन्नीसवीं शती की भेंट है। किट्टल ने इस ग्रंथ की 50 पृष्ठ की विस्तृत भूमिका लिखी है जिसका भाषा-वैज्ञानिक महत्व है। इसमें संस्कृत में आए हुए द्रविड़ शब्दों को खोज निकालने का प्रयास किया गया है। इस कोश की खूबी यह है कि इसमें प्रत्येक शब्द कन्नड तथा रोमन लिपियों में लिखा गया है। संस्कृत से निष्पन्न देशी आदि विभिन्न शब्दों के लिए विभिन्न अक्षरों का प्रयोग है, विभिन्न अर्थों के साथ ही प्रत्येक शब्द के लिए अन्य द्रविड़ भाषाओं में उपलब्ध ज्ञाति शब्द (Cognates) दिए गए हैं। यथासंभव प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति देने का प्रयास भी किया गया है। ऐसा प्रयास भारतीय भाषाओं के बहुत ही कम कोशों में पाया जाता है। किसी शब्द की अर्थ-विवक्षा देते समय उसके समर्थन में प्राचीन काव्यों के उद्धरण तथा कहावतों का हवाला दिया गया है। कहीं-कहीं हिंदी तथा मराठी के संवादी शब्द भी मिलते हैं। किट्टल की भूमिका का छठा भाग, जिसमें द्रविड़ तथा संस्कृत के संबंध की विवेचना है, आधुनिक भाषा-विज्ञान के लिए अनुपम देन है। 1752 पृष्ठों वाले इस बृहत् ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ में किट्टल के गहरे अध्यवसाय, सहानुभूति, व्यापक ज्ञान आदि का प्रमाण मिलता है।

किन्नेरसानि *(ते० पा०)*

यह श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) के गीतकाव्य 'किन्नेरसानि पाटलु' (दे०) की नायिका है। यह महान् पतिव्रता है और प्रेममयी है। किंतु अपने पुत्र या पुत्रवधू के सुख का ध्यान न रखने वाली इसकी सास इससे अकारण वैर-भाव रखती है। इस कारण वह इसको नाना प्रकार से पीडित करने और इसके चरित्र पर कलंक लगाने का यत्न करती है। इन यातनाओं से इसका कोमल हृदय शोक का पारावार बन जाता है। शोकावग में यह अरण्यमार्गों पर दौड़ने लगती है। इसे रोकने के लिए इसका पति इसे अपने आलिंगन में बाँध लेता है। यह पति के आलिंगन में द्रवित होकर कलकल नाद करती हुई एक निर्झरिणी के रूप में प्रवाहित होने लगती है। पत्नी के वियोग में इसका पति वहीं शिला के रूप में परिवर्तित हो जाता है और यह अपनी तरंग बाहुओं से पति की प्रतिमा का आलिंगन करती हुई उसके चारों ओर बार-बार परिक्रमा करती हुई शोकावेग में तीव्र गति से प्रवाहित होती है। किन्नेरसानि गोदावरी की एक उपनदी है जिसके संबंध में उपर्युक्त लोककथा प्रचलित है।

किन्नेरसानि पाटलु *(ते० कृ०)* [कृतिकार—विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०); रचना-काल—1924 ई०]

'किन्नेरसानि पाटलु' (किन्नेरसानि के गीत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तेलुगु के गीतकाव्यों में बहुत ऊँचा स्थान है। गोदावरी की एक छोटी-सी उपनदी किन्नेरसानि से संबंधित एक लोक-कथा के आधार पर इसकी रचना की गई है। किन्नेरा (दे० किन्नेरसानि) पतिव्रता और प्रेममयी ग्रामीण युवती है। सास के अत्याचारों से उसका जीवन दूभर हो गया है। वह घर छोड़कर जंगलों की ओर दौड़ पड़ती है। उसका पति उसे रोकते हुए उसका आलिंगन करता है। पति के आलिंगन में द्रवित होकर वह एक निर्झरिणी के रूप में प्रवाहित होने लगती है और उसका पति दुःख में शिलारूप हो जाता है।

सरल स्वाभाविक शैली में रचा गया यह गीतकाव्य अत्यंत कोमल भावनाओं से ओतप्रोत है और इसमें तेलुगु भाषा का समस्त माधुर्य मानो एकत्र हो गया है। द्रवित होकर प्रवाहित होने वाली किन्नेरा की हृद्गत भावनाओं एवं उसके कातर प्रणय का अत्यंत मार्मिक वर्णन कवि ने एक निर्झरिणी के संगीत के रूप में किया है। अनेक समालोचकों का मत है कि यह श्री सत्यनारायण की सर्वोत्तम रचना है।

किरणमयी *(बँ० पा०)*

शरत् (दे०) साहित्य में किरणमयी ('चरित्र-हीन' दे०) आत्म-स्वातंत्र्य की विद्युद्दीप्ति से उज्ज्वल है। विधवा किरणमयी स्वस्थ स्वाभाविक जीवन से वंचित है। उसका हृदय कामज वासना से उद्वेलित है। उसने उपेंद्र से प्रेम किया है, दिवाकर के साथ झूठे दुर्नाम के फलस्वरूप उपेंद्र के द्वारा वह लांछित एवं अपमानित हुई है। इसके बदले में उसने उन्मत्त आक्रोश से तरलमति दिवाकर को पंकगह्वर में ला फेंका है। अप्राप्य की वेदना से, भाग्यवंचिता रूपसी गर्विणी आधुनिका किरणमयी का जीवन रिक्तता का हाहाकार है। इसी से वह पागल हो गई है। आत्मस्वातंत्र्य-प्रतिष्ठा की निरंतर आवेगाकुल प्रचेष्टा ने उसे भ्रांत पथानुसारिणी बना दिया है। समाज की कठिन शृंखला को तोड़ने जाकर वह संग्राम में स्वयं ही निःशेष हो गई।

किरातार्जुनीय *(सं० कृ०)*

संस्कृत के इस महाकाव्य के लेखक भारवि (दे०) हैं, जिनका समय लगभग 600 ई० माना जाता है। संस्कृत-महाकाव्यों की बृहत्त्रयी ['किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध' (दे०) और 'नैषधीयचरित' (दे०)] में इसका प्रमुख स्थान माना जाता है। इसमें 18 सर्ग हैं तथा कवि ने महाकाव्य के लक्षणानुसार इसे प्रस्तुत करने का सुप्रयास किया है। इसका कथानक 'महाभारत' (दे०) के वन-पर्व से लिया गया है। कथा का प्रमुख भाग वह स्थल है जिसमें अर्जुन (दे०) महर्षि वेदव्यास (दे० व्यास, बादरायण) के परामर्श से पाशुपत अस्त्र पाने के लिए इंद्रकील पर्वत पर गए, जहाँ उन्होंने घोर तपस्या की, जिसका भंग सुरांगनाएँ भी न कर सकीं। अंततः अर्जुन को किरातवेशधारी शिव से युद्ध करना पड़ा, जिन्होंने उनके शौर्य और साहस से प्रसन्न होकर उन्हें उक्त दिव्यास्त्र अर्पित कर दिया। इस महाकाव्य में अनेक वर्णन कवि की कवित्वप्रतिभा, वर्णना-शैली, अलंकारप्रियता आदि के द्योतक हैं; जैसे—अर्जुन की तपस्या, सुरांगना-विहार, किरात और अर्जुन के बीच युद्ध, शरद्‌ऋतु-वर्णन, सूर्यास्त, जलक्रीड़ा आदि। रोचक संवाद इस ग्रंथ की एक अन्य विशेषता है। यह महाकाव्य वीर रस और ओज गुण का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। भारवि अलंकारप्रियता के लिए प्रसिद्ध हैं, किंतु कहीं-कहीं अलंकारों का अतिशय तथा अनावश्यक प्रयोग विषयवस्तु के स्पष्ट निर्देश में बाधक भी सिद्ध हुआ है; विशेषतः वे स्थल, जिनमें इन्होंने सर्वतोभद्र, विलोम, यमक आदि का प्रयोग किया है। फिर भी, यह ग्रंथ अर्थ-गौरव के लिए अति प्रसिद्ध है—भारवेरर्थ-गौरवम्।

किळिप्पाट्टु *(मल० पारि०)*

किळि=शुक; पाट्टु=नाम

पूरा अर्थ शुक-गान या वीर-गीत।

इस प्रकार शुक के माध्यम से कथा-गान की प्रवृत्ति को किळिप्पाट्टु कहते हैं। शुक वस्तुतः कवि की अभिव्यंजना का वाहक और माध्यम बन जाता है। मलयाळम के जनक रामानुजन् ए. पुत्तच्छन् (दे०) के पहले कई प्रकार की गान-शैलियाँ प्रचलित थीं। किंतु प्रस्तुत शैली कथा-वर्णन में कहीं नहीं अपनाई गई थी। इस रीति का सबसे पहले ए. षुत्तच्छन् ने आविष्कार किया था जिससे वे 'किळिप्पाट्टु' (दे०)-पद्धति के जनक माने जाते हैं। संस्कृत तथा तमिल भाषाओं में भी ऐसी रीति प्रचलित है। किळिप्पाट्टु, केका (दे०), काकळि, कळकांचि और अन्ननटा—इन चार वृत्तों में लिखे गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशनसिंह चावडा (गु० ले०) [जन्म—1904 ई०]

'जिप्सी' के उपनाम से प्रसिद्ध किशनसिंह चावडा ने देश-विदेश की यात्राएँ कर उसके परिपाक-रूप 'अमासना तारा' (दे०) नामक जो कृति प्रकाशित की है, वह गुजराती साहित्य में रेखाचित्र, संस्मरण और आत्मकथा के त्रिवेणी-संगम-सी है। अपनी निजी अनूठी शैली में यायावर चावडा ने अत्यंत सजीव और सशक्त स्वानुभव भी इसमें अंकित किए हैं। उन्हें कई कलाकारों, कवियों, संतों, साधुओं और राजा-महाराजाओं के निकट संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे उनका व्यक्तित्व समृद्ध हुआ है और प्रतिभा विशेष सजग हुई है। ये संगीत के मर्मज्ञ हैं, चित्रकला के ज्ञाता हैं, साहित्य के सर्जक हैं, प्रकृति के पुजारी हैं, आध्यात्मिकता के उपासक हैं और प्रबुद्ध जीवन के साधक हैं। महात्मा गांधी, श्री अरविंद और गुरुदेव रवींद्रनाथ के सान्निध्य में रहने के कारण तीनों युग-पुरुषों का इन पर स्पष्ट प्रभाव है। इसका प्रमाण हमें इनके कथ्य और शिल्प दोनों में प्राप्त होता है। 'शर्वरी' इनका कहानी-संग्रह है। वैसे तो इनका निवास-स्थान बड़ौदा है, पर वर्ष का अधिकांश भाग ये हिमालय में व्यतीत करते हैं।

किशोर चंद्रानन चंपू (उ० कृ०)

कविसूर्य बळदेवरथ (दे०)-रचित 'किशोर चंद्रानन चंपू' उड़िया संगीत की श्रेष्ठतम पुस्तक है। यद्यपि उड़िया में अनेक चंपू-रचनाएँ हैं, किंतु चंपू कहने का मतलब लोग 'किशोरचंद्रानन चंपू' ही समझते हैं। इसमें 34 गीतों का समाहार है। वर्णमाला-रीति से लिखित इस पुस्तक को पढ़ते समय पाठक किसी भी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं करता। नायक एवं नायिका के क्षिप्र अनुराग-प्रवाह में वह बह जाता है। प्रत्येक गीत में भावानुरूप एक नवीन राग का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक गीत के परिवेश के अनुरूप प्रयुक्त अनुपम शब्द-योजना पाठक को मोहित कर लेती है। चउतिशा (दे०)-रीति के सीमित परिवेश में प्रत्येक गीत एक सुगठित स्वयंपूर्ण सुंदर चित्र हो गया है। आकार में लघु होते हुए भी यह काव्य सुनियोजित, सुगठित एवं सुशोभित है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह एक ही अविच्छिन्न काव्यमयी प्रेरणा की परिणति है। इसी काव्य-यथार्थ के कारण उत्कल में यह काव्य इतना सम्मानित है। काव्य-गुणों के अतिरिक्त अपने सांगीतिक महत्व के कारण भी 'कविसूर्य' उड़िया संगीत-उस्तादों को अत्यंत प्रिय हैं।

राधाकृष्ण केलि-वर्णन इसका प्रतिपाद्य है। विषय-वस्तु जयदेव की रचना 'गीत गोविंद' (दे०) के अनुरूप है परंतु इसकी उपस्थापना की रीति अभिनव है। जयदेव राधाकृष्ण केलि-वर्णन में शृंगार रस में इस सीमा तक परिप्लावित हो गए हैं कि श्लीलता की रक्षा नहीं हो सकी है; किंतु कविसूर्य ने उसी शृंगार रस के परिवेश-निरूपण में यथेष्ट संयम एवं परिमार्जित रुचि का परिचय दिया है।

इसका पद्यांश उड़िया में एवं गद्यांश संस्कृत भाषा में है। इसके गीत ऐश्वर्यशालिनी संस्कृत गीतिकाओं के समकक्ष रखे जा सकते हैं। कविसूर्य ने इन गीतों की सृष्टि में भंजीय (दे० भंज, उपेंद्र) शैली अपनाई है। इसकी नाटकीयता एवं कथोपकथन की भंगिमा अपूर्व है।

क़िस्सए महर अफ़रोज़ व दिलबर (उर्दू० कृ०)

उर्दू की पुरानी दास्तानों में इसे बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। इसकी पांडुलिपि आगा हैदर हसन के पुस्तकालय में मौजूद थी जिसे डा० मसूद हुसैन ख़ाँ (दे०) ने संपादित करके छापा है। अजीब बात यह है कि लेखक के रूप में ईसवी ख़ाँ बहादुर के नाम के अलावा न तो रचना-तिथि है, न प्रतिलिपि-तिथि। खुद ईसवीं ख़ाँ बहादुर के बारे में बहुत कम जानकारी है। मुगल शासन-काल में इस नाम के बहुत लोग मिलते हैं। डा० मसूद हुसैन ख़ाँ ने मोहम्मद हुसैन आज़ाद (दे०) के हवाले से और अंतः-साक्ष्य के बल पर यह नतीजा निकाला है कि यह दिल्ली की पुरानी दास्तान है। इसमें क़िलएमुअल्ला के बाग़ और महल के नाम और पूरे वातावरण के निरूपण से ज्ञात होता है कि यह दास्तान दिल्ली की ज़ुबान में सबसे पहले लिखी गई। मसूद साहब ने इसे 'तबाज़ात' कहा है।

क़िस्सा-काव्य (पं० प्र०)

मध्यकालीन पंजाबी साहित्य की इस सशक्त धारा की अद्यावधि उपलब्ध प्रथम रचना 'हीर दमोदर' (दे०) है। अकबर-कालीन कवि दमोदर (दे०) की यह कृति हीर-राँझा (दे०) की प्रेम-कथा पर आधारित है। इसमें लोक-तत्त्वों की प्रमुखता है जो परवर्ती कवि पीलू (दे०) और हाफ़िज़-बरख़ुरदार (दे०) के प्रेमाख्यानों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिगोचर होती है। हाफ़िज़ बरख़ुरदार ने फ़ारसी कवि जामी के अनुकरण पर 'यूसुफ़ जुलेखा' (दे०)की रचना कर पंजाबी के क़िस्सा-साहित्य को एक भिन्न दिशा की ओर मोड़ दिया। परिणामस्वरूप हाशम (उन्नीसवीं शती पूर्वार्द्ध) (दे०) तक अधिकांश कवियों की भाषा, अलंकार-विधान और छंद-व्यवस्था पर फ़ारसी साहित्य का प्रभाव लक्षित होता है किंतु इसके साथ ही इन कृतियों में पंजाब का ग्रामीण वातावरण भी रूपायित होता रहा है। फ़ारसी मसनवियों जैसे दीर्घ वंदना-प्रकरणों और विषम प्रेम-पद्धति को भी इनमें स्वीकार नहीं किया गया परंतु हाशम के समकालीन और परवर्ती अनेक मुसलमान कवियों ने फ़ारसी साहित्य को ही प्रेरणा-स्रोत मान लिया और उन्हीं की कथाएँ उसी रचना-पद्धति में काव्यबद्ध करने लगे। कुछ कवियों ने इन कथाओं को इस्लाम के प्रचार का साधन बना लिया और क़ुरान के मूल उद्धरण भी पंजाबी छंदों में उद्धृत होने लगे। इस दृष्टि से अहमदयार (दे०)-कृत 'अहसनुल क़स्सिस' और फ़ज़ल शाह (दे०)-रचित 'हीर-राँझा' (दे०) विशेष उल्लेखनीय हैं। दूसरी ओर, इन्हीं के समकालीन हिंदू-सिख कवियों ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश कर अपने वीरों का यशोगान करते हुए हिंदू विचारों से युक्त अनेक रचनाएँ लिखीं। इनमें कालिदास, दौलतराम (दे०) और किशनसिंह आरिफ़ (दे०) विशेष प्रसिद्ध हैं। बीसवीं शताब्दी में पं० किशोरचंद ने कई तिलस्मी क़िस्सों की रचना की।

इस धारा के कवियों ने अनेक कथाओं को छंदोबद्ध किया परंतु हीर-राँझा की कथा सर्वाधिक प्रख्यात रही है। लोकप्रियता की दृष्टि से वारिस की हीर (दे०), पीलू-कृत 'मिरजा साहिबा' (दे०), हाशम (दे०) की 'सस्सी-पुन्नु' (दे०) और फ़ज़ल शाह (दे०)-रचित 'सोहणी-महीवाल' (दे०) के अतिरिक्त 'शाह बहराम-हुस्न बानो' (दे०) (इमामबख़्श (दे०)-कृत), 'पूरनभगत' (क़ादरयार रचित) (दे०) और 'रूप-बसंत' (दे०) (कवि दौलतराम) (दे०) भी उल्लेखनीय हैं। क़िस्सा-काव्य में प्रेमाख्यानों की संख्या अधिक है और उनमें विप्रलंभ शृंगार का स्थान प्रमुख है। इसके अतिरिक्त शांत, करुण और भयानक रसों के भी कई सुंदर प्रसंग मिलते हैं। ये रचनाएँ प्रायः एकछंदात्मक हैं। हिंदू कवियों की कृतियों में विविध छंदों का प्रयोग अवश्य हुआ है। सांस्कृतिक गांभीर्य, दार्शनिक चिंतन अथवा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से महत्वपूर्ण न होते हुए भी कथा-वर्णन और चटपटे संवादों द्वारा सामान्य लोक-रुचि को उत्तेजित करने के कारण शताब्दियों तक इन रचनाओं की लोकप्रियता अक्षुण्ण रही है।

कीथ *(सं० ले०)*

आर्थर बैरिडोल कीथ का जन्म 1879 ई० में ब्रिटेन के डैनाबार प्रदेश में हुआ था। एडिनबरा और ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालयों में संस्कृत तथा भाषा-विज्ञान आदि की शिक्षा ग्रहण करके ये भारतीय विद्या में निष्णात हो गए। शिक्षा समाप्त करते ही इनकी नियुक्ति एडिनबरा विश्वविद्यालय में संस्कृत-प्राध्यापक पद पर हुई और वहाँ ये लगातार 30 वर्षों तक कार्य करते रहे। इनका सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिट्रेचर' है। इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत को 'संस्कृत ड्रामा', 'रिलीजन एंड फ़िलॉसफी ऑफ़ वेद एंड उपनिषद्स', 'बुद्धिस्ट फ़िलॉसफ़ी इन इंडिया एंड सीलोन' आदि महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रदान करके संस्कृत समाज के प्रति बड़ा उपकार किया है।

कीर्तन *(बँ० प्र०)*

बंगाल में कीर्तन लोक-संगीत का एक विशिष्ट अंग है। आधुनिक कीर्तन-गान की जन्मभूमि बंगाल ही है। विद्वानों के अनुसार छोटा नागपुर के आदिवासी ओराओं जाति के नृत्य-संवलित लोकसंगीत के एकांश का नाम-कीर्तन था। ओराओं गण द्रविड़-भाषी थे और बंगाल में उनके प्रभाववश कीर्तन-गान का विकास हुआ। कीर्तन-गान मूलतः प्रेम-विषयक खंड-गीत था। चैतन्य महाप्रभु के आगमन के उपरांत वैष्णव धर्म के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप बंगाल का समस्त लौकिक प्रेमसंगीत ही राधाकृष्ण के प्रेम-संगीत में बदल गया। राधाकृष्ण की प्रेम-कहानी कीर्तन-गान में इतनी गहनता के साथ संयुक्त हो चुकी है कि आज कीर्तन-गान का अर्थ राधाकृष्ण-विषयक संगीत ही स्वीकार किया जाता है। आदिम जाति के आर्थिक प्रेम के आश्रय से इस अपार्थिव प्रेम-संगीत की रचना होने के कारण हमें इसमें पार्थिव वेदना की अनुभूति होती है।

कीर्तन-गान पर वैष्णव धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप क्रमशः इसका लोक-वैशिष्ट्य रूप धूमिल पड़ गया है। वैष्णव पद-रचयिताओं न कीर्तन के लिए एक सुनिर्दिष्ट कहानी की धारा स्थिर कर दी और साथ ही इसके गायकों ने इसे एक सुनिर्दिष्ट संगीत का रूप प्रदान किया जिसके फलस्वरूप बंगाल के चार विभिन्न अंचलों में कीर्तन-गान की चार धाराएँ विकसित हुईं, जैसे, गड़ाण हाटि धारा, मनोहरसाही,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणीहाटि एवं मांदारिणी धारा। क्रमशः कीर्तन-संगीत इन सुनिर्दिष्ट धाराओं का अनुसरण करता हुआ विकसित होता रहा एवं इसका लोक-संगीत का स्वाधीन एवं स्वतःस्फूर्त रूप समाप्त हो गया। बहुत से विद्वान अनुभव करते हैं कि कीर्तन शब्द संस्कृत से बँगला में आया है परंतु संस्कृत में इसका जो अर्थ है वह बँगला-अर्थ से मेल नहीं खाता। बँगला में इसका अर्थ है विशेष प्रकार का संगीत एवं आजकल इसका अर्थ है कृष्णलीला-विषयक संगीत।

कीर्तन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1531-1553 ई० के मध्य कभी; ले०—शंकरदेव (दे०)]

गोस्वामी तुलसीदास (दे०) के 'मानस' (दे० रामचरितमानस) के समान ही असम के जन-जीवन में इस ग्रंथ का प्रचार है। इसमें 27 काव्यों का समावेश है, कुल 2261 पद हैं। इसमें सृष्टि के आदि से लेकर कृष्ण के जन्म, लीला तथा बैकुंठ-गमन तक का वर्णन है। शंकरदेव के दार्शनिक सिद्धांतों का यह महाकोश है। नवधाभक्ति में कीर्तन को विशेष महत्ता दी गई है। इस महाकाव्य को स्वर और लय के साथ गाए जाने के योग्य बनाया गया था। इसमें हर्ष, विषाद, प्रेम, विरह, क्रोध क्षमा आदि का वर्णन है, नव रसों का भी प्रतिपादन है, किंतु किसी एक रस की प्रधानता नहीं है। इसमें प्रह्लाद की निर्मल भक्ति, हिरण्यकश्यपु का अग्नि-सम क्रोध, नृसिंह की भैरव मूर्ति, ग्राह-ग्रस्त गजेंद्र की स्तुति, उद्धव गोपी-संवाद आदि का वर्णन है। यह ग्रंथ पूर्वी असमीया जीवन का आध्यात्मिक दर्शन है। यह गीता, भागवत और मूर्ति है। शंकर देव के संप्रदाय के अनुसार प्रार्थना के समय मूर्ति के स्थान पर इसे ही रखा जाता है। श्री हेम बरुआ (दे०) के शब्दों में 'कीर्तन' ने ही श्री शंकरदेव को ऊँचा उठाया था और यह उनका कीर्ति-स्तंभ है।

कीर्तिकौमुदी *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

'कीर्तिकौमुदी' के प्रणेता सोमेश्वर के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं। इतना कहा जा सकता है कि इन्होंने इस काव्य की रचना वस्तुपाल के जीवन-चरित को दृष्टि में रखकर उन्हीं की कीर्ति का बखान करने के लिए की है। भाषा तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह अच्छा काव्य है। पर इसकी शैली कुछ ऐसी है कि कुछ लोग इसे चंपू कहते हैं।

कीर्तिदाने कमलना पत्रों *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

इसके कृतिकार हैं बटुभाई उमरवाडिआ (1899-1950) गुजराती साहित्य में पत्र-रूप में आलोचना की यह प्रथम पुस्तक है। इसमें कई लेखकों और पुस्तकों पर कड़ी आलोचना लिखी गई है। कीर्तिदा नाम के काल्पनिक पात्र के प्रति कमल नाम के व्यक्ति-द्वारा लिखे गए पत्रों में आलोचना हुई है। काल्पनिक प्रसंगों द्वारा संवाद के रूप में लेखक और कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। मूल्यांकन में तटस्थ दृष्टि है और हास्य का उपयोग करके विवेचन को रोचक रूप दिया गया है। लेखक के पास मर्मवेधी दृष्टि है, प्रतीतिकर तर्क-शक्ति है और आलोचना के सिद्धांतों का समुचित ज्ञान है। इस पुस्तक से लेखक ने आलोचना-साहित्य को एक नया मोड़ दिया है।

कीर्तिदेव *(गु० पा०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी-कृत 'गुजरातनो नाथ' उपन्यास में कीर्तिदेव एक आदर्शप्रिय, स्वप्नद्रष्टा पात्र है। वह मालवदेश का निष्कपट, निःस्वार्थ और स्पष्टवादी योद्धा है। अपने जन्म, जाति, माता, पिता, आदि के विषय में उसे कोई ज्ञान नहीं। इस रहस्य को जानने की अदम्य इच्छा से वह तंत्रविद्या सीखता है और काक (दे० काक भट्ट) की सहायता से यह जान जाता है। उसके मृदु, सात्त्विक व्यवहार, मोहक स्वरूप और सरल व्यक्तित्व से प्रभावित काक उससे स्नेह करता है। काक ने काल-भैरव से यह संवाद प्राप्त किया कि कीर्तिदेव जब बालक था तब उसे सज्जन मेहता ने अनाथ मानकर यात्रा के लिए आए हुए सेनापति उबक को सौंप दिया था। वह पाटण के प्राग्वाट कुल का था और वस्तुतः वही मुंजाल (दे०) का पुत्र था। फूलकुँवरबा उसकी माता थी। अवंती का योद्धा कीर्तिदेव मुंजाल का पुत्र है—इस तथ्य के उद्घाटन से सभी आश्चर्य एवं आनंद से गद्‌गद हो जाते हैं। मुंजाल दौड़कर पुत्र कीर्तिदेव को जब गले लगाता है तब यह पहली बार का पिता-पुत्र-मिलन उपन्यास में रोचकता पैदा करता है। कीर्तिदेव इस सुख का त्याग कर अपना कर्तव्य निभाने के लिए निराश होकर अवंती की ओर प्रस्थान करता है। यह उसकी कर्तव्यपरायणता का उदाहरण है। वह आर्यावर्त की एकता का आराधक है। अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए वह अहर्निश उद्योग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है । कीर्तिदेव के चरित्रांकन में मुंशी जी ने बड़ी सतर्कता और कुशलता का परिचय दिया है । उसके मन में सदैव अंतर्द्वंद्व चलता रहता है—आदर्श और यथार्थ का, स्वप्न और सत्य का, कर्तव्य और भावना का । उसी के सत्प्रयत्नों से पाटण और अवंती एक सूत्र में अनुस्युत होते हैं । यवनों के आक्रमण से देश की रक्षा करने की चिंता लेकर वह पाटण आता है और आर्यावर्त की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध होने के लिए शासकों एवं सामंतों का आह्वान करता है । मुंजाल से लोहा लेता है, कैदी बनता है, यातनाएँ सहता है । पर आर्यावर्त की एकता का महामंत्र जपना नहीं छोड़ता । यही उसके चरित्र की विशेषता है ।

कीर्तिनाथ कुर्तुकोटि *(क० ले०)*

डॉ० कीर्तिनाथ दत्तात्रेय कुर्तुकोटि का जन्म कर्णाटक में हुआ । कीर्तिनाथ कुर्तुकोटि कन्नड की आशा हैं, मेधावी साहित्यकार हैं । आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'ऊर्मिले', 'स्वप्नदर्शिमत्तु', 'इतर गीतनाटकगलु', 'साहित्य मत्तु युगधर्म', 'वेंद्रेयवर कविते', 'रामायण दर्शनम्' (आलोचना) तथा 'नडेदु बंद दारि' के तीन संपुट । आप कन्नड की नयी पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक हैं । 'नडेदु बंद दारि' की भूमिकाओं ने कन्नड में युगांतर उपस्थित किया है । 'मन्वंतर' नामक श्रेष्ठ साहित्य त्रैमासिक का आप सफलतापूर्वक संपादन कर रहे हैं । 'स्वप्नदर्शी' एक सफल गीतिनाटक है जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि समाज संतों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, किंतु उनकी पूजा करता है । सत्यकाम के जीवन की यह मार्मिक कहानी अत्यंत सांकेतिकता के साथ निरूपित है । 'रामावसान', 'महाप्रस्थान', 'महाश्वेते', 'शोकचक्र' इस संग्रह के अन्य उल्लेखनीय गीतिनाटक हैं । तीव्र सांकेतिकता, चुभती भाषा आदि इनकी विशेषताएँ हैं । 'उर्मिले' में काव्य में अनादृत उर्मिला की मार्मिक कथा है । कुर्तुकोटि ने हिंदी में भी कुछ कविताएँ लिखी हैं । रससृष्टि, संतुलित भाषा तथा वैचारिकता आपकी शैली की विशेषताएँ हैं ।

कीर्त्तिलता *(अप० कृ०)*

विद्यापति (दे०) रचित 'कीर्त्तिलता' एक ऐतिहासिक चरित-काव्य है । इसमें कवि ने अपने प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्त्तिसिंह का गुण-गान किया है । यह विद्यापति की सर्वप्रथम रचना है और इसकी रचना कवि ने 20 वर्ष की अवस्था में की थी । जैनेतर कवियों द्वारा लिखित जो कतिपय कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं उनमें से यह भी एक है ।

यह कृति चार पल्लवों में विभक्त है । प्रथम पल्लव में राजा कीर्त्तिसिंह के दानशील स्वभाव और आत्माभिमान की ओर संकेत किया गया है । दूसरे पल्लव में पितृघाती राज्यापहर्त्ता तुरुक असलान से बदला लेने के लिए कीर्त्तिसिंह तथा उनके भाई वीरसिंह के जौनपुर के नवाब से सहायता के लिए वहाँ जाने का वर्णन है । तीसरे और चौथे पल्लवों में सेना के प्रस्थान, युद्ध तथा कीर्त्तिसिंह की विजय, पराक्रम और राज्याभिषेक का वर्णन है ।

कृति में वर्णनात्मकता अधिक है । विभिन्न वर्णन स्वाभाविक हैं । बीच-बीच में अनेक वर्णन काव्य-सौंदर्य से अलंकृत हैं; किंतु ऐसे स्थल अल्प हैं । वर्णनों में संवेदना और हृदयस्पर्शिता का अभाव है । कवि की प्रथम रचना होने के कारण संभवतः उसका काव्य-सौंदर्य निखर नहीं पाया ।

कृति में स्थान-स्थान पर गद्य का भी प्रयोग हुआ है । यह गद्य संस्कृत-ग्रंथ के आदर्श पर अवलंबित है । पद्य-भाग की गाथाओं में प्राकृत का यथेष्ट प्रभाव है । कृति की अपभ्रष्ट-अवहट्ठ भाषा मैथिल अपभ्रंश है जो उत्तरकालीन अपभ्रंश का रूप है। इसमें संस्कृत-पदावली, प्राकृतिक शब्द-योजना, अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग और मैथिली का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

इस कृति के संस्कृत-पद्यों में मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, आदि संस्कृत के छंदों का प्रयोग हुआ है । अन्यत्र दोहा, छप्पय, मणबहला, गीतिका, णाराच, अरिल्ल इत्यादि छंद प्रयुक्त हुए हैं ।

कीष्कणक्कु *(त० पारि०)*

संघकालीन कृतियों का एक वर्ग कीष्कणक्कु (गौण रचनाएँ) कहलाता है । इस वर्ग की कुछ रचनाएँ संघ काल में और कुछ संघमोत्तर काल में रचित हैं । इस वर्ग की विभिन्न रचनाओं के नाम और उनके प्रपाद्य विषय इस प्रकार हैं—'तिरुक्कुरल्' (दे०) और 'नालडियार' (दे०) नीति-ग्रंथ हैं जिन्हें तमिल साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है । 'नान्मणिक्कडिहै विळम्बि नाहनार' की रचना है । इसमें 140 नीति-विषयक पद हैं । प्रत्येक पद में मणिवत् सुंदर चार (नान्कु) तथ्यों की अभिव्यक्ति है । 'इनियवै नार्पदु' के रचयिता पूदचेंदनार हैं । नीति-विषयक चालीस पदों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त इस रचना में बताया गया है कि संसार में कौन-कौन से कार्य इनियदु (मधुर) अर्थात् करणीय हैं। कपिलर (दे०)-कृत 'इन्ना नार्पदु' नामक नीति-ग्रंथ में 40 पद हैं। इसमें निषिद्ध कर्मों की चर्चा है। कण्णन् कुत्तनार की कृति 'कार नार्पदु' के 40 पदों में वर्षा ऋतु में प्रकृति के सौंदर्य का सजीव एवं मनोहारी वर्णन प्राप्त होता है। 'कळवषि नार्पदु' के रचयिता पोयगै कवि हैं। उन्होंने इस कृति की रचना चोल सम्राट् शेंगणान द्वारा बंदी बनाए गए अपने मित्र कणैंकक्ल इरुंम्पोरै (दे०) को क़ैद से मुक्त करने के लिए की थी। ऐंतिणै ऐम्बदु, तिणैमोषि ऐम्बदु, ऐंतिणै एषुपदु, तिणैमालै नूट्रैंबदु के रचयिता क्रमशः मारन् पोरैयन, कण्णन् चेंदनार, मूवादियर और कणियन् मेदावियार हैं। इन कृतियों में पाँच भूभागों का वर्णन है। विभिन्न कृतियों में पाँचों भूभागों से संबंधित पद बराबर मात्रा में हैं। 'तिरिकडुकम' नल्लादनार की कृति है। इसके प्रत्येक पद में तीन उत्कृष्ट विचार व्यक्त हुए हैं। 'आचारक्कोवै' के 100 पदों में पेरुवायिन मुळ्ळियार ने करणीय एवं अकरणीय विषयों की चर्चा की है। मुन्रुरैयरैयनार (दे०)-कृत 'पषमोषि' (कहावत) के प्रत्येक पद के अंत में एक कहावत का प्रयोग हुआ है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों एवं पौराणिक प्रसंगों की ओर संकेत किया गया है। कारियाशान-कृत 'शिरुपंचमूलम्' के प्रत्येक पद में जीवन के लिए उपयोगी पाँच बातें बताई गई हैं। पुल्लंकाडनार-कृत 'कैन्निलै' में पाँच भूभागों का वर्णन है। कूडलूर किषार-कृत 'मुदुमोलिक्कांजि' में मनुष्य के लिए उपयोगी सुंदर तत्त्वों का तथा कणि मेदावियार-कृत 'एलादि' के प्रत्येक पद में छह महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन है।

कुंकुमप्पोट्टु कुमारस्वामी *(त० पा०)*

यह तमिल के प्रसिद्ध कहानीकार (बी० एस०) रामय्या (दे०) की इसी नाम से प्रकाशित कहानी-माला की कहानियों का नायक है। सभी कहानियाँ अपने आप में स्वतंत्र हैं परंतु सभी में कुमारस्वामी की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन है। इसका चरित्र बहुत कुछ सर कानन डायल की कहानियों के नायक 'शरलाक होम्स' की तरह है। कुमारस्वामी खुफ़िया पुलिस (सी० आई० डी०) का कर्मचारी है। विभिन्न कहानियों में उसकी सफलताओं और विफलताओं का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया गया है। वह जहाँ अपराधियों के संपर्क में आता है वहाँ अमीर लोगों के संपर्क में भी आता है। विभिन्न कहानियों में अपराध-संबंधी गुत्थियों को सुलझाने और अपराधियों को पकड़ने में उसकी सामर्थ्य का प्रभावशाली वर्णन है। उसमें पुलिस वाले के लिए अपेक्षित सभी गुण—जैसे कार्यकुशलता, चातुरी, व्यवहार-कुशलता आदि—हैं। इस चरित्र के माध्यम से कहानीकार ने अँग्रेज़ों के शासन-काल के उत्तरार्ध में मदुरै ज़िले के पुलिस वालों के जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। कहानी में उसके तीस वर्षों के जीवन का चित्रण है।

कुमारस्वामी दृढ़ विचारों का व्यक्ति है। बड़े-से-बड़ा प्रलोभन भी उसे अपने कर्तव्य से नहीं डिगा पाता है। वह वस्तुतः एक वफ़ादार पुलिस वाला है। उसके जीवन का चित्रण करते हुए कहानीकार ने बीसवीं शती के प्रथम चार दशकों में मदुरै ज़िले के लोगों के जीवन का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

कुंचन नंपियार *(मल० ले०)* [जीवन-काल—अठारहवीं शती ई० का आरंभ]

ये मलयाळम के प्रथम जनकवि हैं और तुळ्ळल् नामक दृश्य-कला रूप के प्रवर्तक हैं। ये त्रावनकोर के महाराजाओं—मार्त्तंड वर्मा और धर्मराजा कवि-सभा में सदस्य थे। कहा जाता है कि इन्होंने 'चाक्यार कुत्तु' की प्रतियोगिता में तुळ्ळल्-नामक नृत्यात्मक कथाख्यान-विधा का उपज्ञापन किया था और स्वयं मंच पर अपना कौशल दिखाकर प्रथम बार ही प्रेक्षकों को मुग्ध कर दिया था। विद्वानों में इस विषय में मतभेद है कि 'राघवीयम्' आदि संस्कृत-काव्यों के रचयिता राम पाणिवाद कवि से अभिन्न हैं अथवा नहीं।

नंपियार की मुख्य कृतियाँ 'शीतंकन्' (दे०), 'परयन्', 'ओट्टन' (दे०)—इन तीनों शैलियों में रचित चालीस से अधिक तुळ्ळल् (दे०)-कथाएँ हैं। ये पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। 'श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्' बालोपयोगी महाकाव्य है जिसको अनेक पीढ़ियों से प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में स्थान मिलता रहा है। इन्होंने आट्टकथाएँ भी लिखी हैं।

नंपियार कवि ही नहीं, समाज-सुधारक भी थे। सुधारक के लिए उनका हथियार था हास्यरस। उद्धृत राजाओं, भ्रष्टाचारी राजसेवकों, डरपोक सैनिकों पर इन्होंने जो व्यंग्य किया और जिस कुशलता से इस व्यंग्य को प्रेक्षकों और श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया उससे न केवल हँसी के फव्वारे फूटे थे वरन् समाज-सुधार के भी साधन जुट गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। पौराणिक कथाएँ इसके लिए निमित्त-मात्र थीं। असली पात्र तो जनता के भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि ही थे जिनमें हिंदुस्तानी बोलने वाले गोसाईं भी सम्मिलित हैं। पौराणिक पात्रों में भी वृद्ध वानर की पूँछ को हिलाने में असमर्थ भीमसेन, बाली की पूँछ में बँधे रावण जैसे कुंठित-वीर्य पात्रों का चित्रण ही इनको अधिक प्रिय था। शायद नंपियार ही प्रथम भारतीय कवि हैं जिन्होंने यूरोपीय व्यापारियों के साथ भारतीय नरेशों की मैत्री पर असंतोष प्रकट किया था।

कुंचियम्मा *(मल० पा०)*

पी० के० राजराज वर्मा (दे०) द्वारा सर्जित स्त्री-पात्र जो 'पंचुमेनवनुम् कुंचियम्मयुम्', 'प्रेसिडेंट कुंची' आदि अनेक हास्य-कृतियों में पाठकों का मनोरंजन करता है। कुंचियम्मा मध्य वर्ग की औसत गृहिणी की तरह कभी अपने पति पंचु मेनन (दे०) को उलाहना देती है तो कभी उससे लड़ती-झगड़ती है। अपने पति की तरह वह भी कभी-कभी हास्यास्पद स्थितियों में फँस जाती है। कुंचियम्मा एक भोली-भाली महिला है जो अपने पति और बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य खूब जानती है, परंतु उनको निभाने के प्रयत्न में पाठकों को हास्य की सामग्री प्रदान करती है। कुंचियम्मा मलयाळम के हास्य-कथा-पात्रों में प्रमुख है।

कुञ्ञिक्कुट्टन् तंपुरान *(मल० ले०)* [जन्म—1864 ई०, मृत्यु—1912 ई०]

ये केरल-व्यास के नाम से प्रख्यात हैं। ये उस कोटुङ्ङल्ळर् के ऐतिहासिक राजवंश के सदस्य थे जहाँ अनेक विद्वानों ने जन्म लिया था और उससे भी अधिक विद्वानों को काव्य-सपर्या में शिक्षण प्राप्त हुआ था। तत्कालीन कवियों-मूर्धन्यों में से कई इनके सहयोगी थे और ये इन सब में शिरोमणि थे।

तंपुरान् का सबसे मुख्य साहित्यिक प्रयत्न संपूर्ण 'महाभारत' (दे०) का छंदानुछंद अनुवाद (दे० भाषा-भारतम्) है। इसके अलावा इन्होंने साठ से अधिक मौलिक एवं अनूदित ग्रंथों की भी रचना की है जिनमें काव्य, रूपक, गीत, शास्त्र आदि सभी सम्मिलित हैं। ये अपने सहयोगियों से पत्र-व्यवहार भी कविता में ही करते थे। संस्कृत में भी इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए भी इन्होंने एक भी संस्कृत शब्द का प्रयोग न करते हुए भी इन्होंने काव्य-रचना की है।

मलयाळम की काव्य-भाषा को सहज-सरल, प्रवाहपूर्ण और प्रसन्न-मधुर शैली प्रदान करने वालों में तंपुरान् प्रमुख हैं। इनके पिता वेण्मणि (दे०) अच्छन् नंपूतिरिप्पाड द्वारा प्रवर्तित और वैमात्रेय भ्राता वेण्मणि (दे०) महन् नंपूतिरिप्पाड वळ्ळत्तोळ् (दे०) द्वारा पोषित नूतन आंदोलन 'वेण्मणि प्रस्थानम्' को इन्होंने पूर्ण रूप से विकसित किया था जिसका वळ्ळत्तोळ् जैसे आगे के कवियों ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। तंपुरान का द्रुत-कविता-पाटव अद्भुत था।

'महाभारत' के अनुवादक के रूप में, काव्य-शैली के परिमार्जनकर्ता के रूप में और महान् कला-पोषक के रूप में तंपुरान् का स्थान अद्वितीय है।

कुंडलियां *(हिं० पारि०)*

कुंडलियां छंद में भी छप्पय (दे०) की भाँति छह चरण होते हैं, और प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं। पर ये चौबीस मात्राएँ एक छंद की न होकर—दोहा (दे०) और रोला (दे०)—इन दो छंदों की होती हैं। ये दोनों छंद मानो कुंडली रूप से एक दूसरे से गुँथे होते हैं, इसलिए इसे 'कुंडलियां' छंद कहते हैं। जिस शब्द से यह छंद प्रारंभ होता है, उसी से इसका अंत भी होता है, साथ ही दोहे का चौथा चरण रोला छंद के पहले चरण का एक भाग होकर आता है। हिंदी-साहित्य में दीनदयाल गिरि (दे०) और गिरधर (दे०) कविराय की कुंडलियाँ प्रसिद्ध हैं। उदाहरण—

दौलत पाय न कीजिये सपनेहुँ अभिमान,
चंचल जल दिन चारि को, ठोउ न रहत निदान
(दोहा)

ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में जस लीजै
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै
कह गिरधर कविराय, अरे, यह सब घट तौलत,
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत ॥
(रोला)

कुंतक *(सं० ले०)* [समय—संभवतः 980-1000 ई०]

राजानक कुंतक, जैसा कि इनकी राजानक उपाधि से ही प्रतीत होता है, कश्मीरी थे। इनका समय आनंदवर्धन (दे०) के बाद तथा महिमभट्ट (दे०) के पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशक का अंतिम चरण एवं एकादश शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध प्रतीत होता है। कुंतक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। कुछ हस्तलेखों में इनका नाम कुंतल या कुंतलक मिलता है जो निश्चित रूप से भ्रांति है।

आचार्य कुंतल के नाम से केवल एक ही ग्रंथ उपलब्ध है—'वक्रोक्तिजीवित' (दे०) (दे० वक्रोक्ति भी) जो साहित्यशास्त्र-परक है। कुंतक साहित्य के बड़े ही मर्मज्ञ आचार्य थे। महिमभट्ट ने इन्हें 'सहृदयमानी' कहा है जिसका अभिप्राय यह है कि ये अपने को बहुत बड़ा सहृदय मानते थे। 'वक्रोक्तिजीवित' साहित्यशास्त्र की एक मूर्धन्य कृति है जो अभी भी अपूर्ण रूप में ही उपलब्ध है। संपूर्ण ग्रंथ संभवतः चार उन्मेषों में था पर तृतीय उन्मेष भी पूरा उपलब्ध नहीं हो सका है। ग्रंथ में कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण शैली को अपनाया गया है। उपलब्ध कुल 104 कारिकाओं पर वृत्ति एवं यथास्थान उदाहरण श्लोक हैं। उदाहरण 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) एवं भास (दे०), कालिदास (दे०), भवभूति (दे०) तथा राजशेखर (दे०) आदि अनेक कवियों की कृतियों से लिये गए हैं।

कुंतक व्यापारवादी आचार्य हैं। इनके अनुसार कवि का वक्तृ-व्यापार ही काव्य का सर्वस्व है। उक्ति के दो प्रकार होते हैं—स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति शास्त्रों एवं पुराणों की रचना का प्रकार है तो वक्रोक्ति काव्य का। इसी से सहृदय को आह्लाद होता है। वाक्य से रसानुभूति का रहस्य भी यही वक्रोक्ति ही है। कुंतक ने ध्वनि का वक्रोक्ति में ही अंतर्भाव माना है। पर महिमभट्ट ध्वनि एवं वक्रोक्ति दोनों का अंतर्भाव भक्ति अर्थात् लक्षणा में करके अनुमान में ही सबको गतार्थ मानते हैं।

कुंती *(सं० पा०)*

इसका पिता युद्धकुलीन राजा शूर था और यह श्री कृष्ण (दे०) के पिता वसुदेव की भगिनी थी। दुर्वासा के वर के कारण इसने विवाह से पूर्व एक बार सूर्य का आवाहन किया तो उससे इसे कवच-कुंडल-युक्त कर्ण (दे०) नामक पुत्र हुआ, जिसे इसने लोकलाजवश अश्व नदी में त्याग दिया, किंतु वह बच गया। इसका पांडु के साथ विवाह हुआ, तथा इसके तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर (दे०), भीम (दे०) और अर्जुन (दे०)। कुंती ने अनेक उपायों से कर्ण को पांडवों के पक्ष में करना चाहा परंतु कर्ण ने सदा कौरवों का साथ दिया। स्वयंवर में अर्जुन ने द्रौपदी (दे०) को जीता तो घर आते ही युधिष्ठिर ने कुंती से कहा कि 'हम भिक्षा ले आये हैं' तो कुंती ने सहजभाव से कहा कि इस भिक्षा को पाँचों में समान रूप से बाँट लो। कुंती के वचन का पालन करने के लिए द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी बनी रही। एक बार इसने ब्राह्मण-कुटुंब को संकट से मुक्त करने के लिए भीम द्वारा बकासुर का वध कराया। इससे इसकी परोपकारी वृत्ति का पता चलता है।

कुंदकुंद *(प्रा० ले०)*

दिगंबर-संप्रदाय में इनका नाम अत्यंत गौरव के साथ लिया जाता है। महावीर और गोयल के बाद इस संप्रदाय में इन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। श्वेतांबरों में जो गौरव भद्रबाहु (दे०) को प्राप्त है दिगंबरों में वही इन्हें प्रदान किया जाता है। इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास माना जाता है। इनका वास्तविक नाम पद्मनंदि है किंतु कोंडकुंड के निवासी होने के कारण इन्हें इस नाम से अभिहित किया जाता है। इनकी एक उपाधि 'गृह पिच्छमी' है जो इनकी शिष्य-परंपरा को भी प्राप्त हुई है। कहा जाता है कि इन्होंने 83 ग्रंथ लिखे थे जिनमें केवल सात का ज्ञान है। 'पंचत्थिअसार' (पंचास्तिकायसार) या 'पवयनभार', 'पंचत्थिअसंग्रह' और 'समयसार' ये तीन ग्रंथ मिलकर 'प्राभृतत्रय' या 'नाटकत्रय' की संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। इनमें 'पंचत्थिअसंग्रह' के दो भाग हैं—'प्रवचनसार' और 'पंचास्तिकायसंग्रह'। ये दोनों पृथक् ग्रंथ माने जाते हैं। 'नियमसार', 'रत्नसार' और 'षट्प्राभृत' भी इनके ही ग्रंथ माने जाते हैं। इन ग्रंथों में प्राकृत गाथाएँ, सदाचार, नीति और जैन नियमावली आदि का वर्णन है।

कुंदनिका कापडिया *(गु० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल की कहानी और उपन्यास-लेखिका के रूप में कुंदनिका कापडिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है। संप्रति वे 'नवनीत' मासिक पत्रिका के गुजराती संस्करण की संपादिका हैं। अंतर्राष्ट्रीय कहानी-प्रतियोगिता में उनकी कहानी 'प्रेमनां आँसू' पुरस्कृत हुई थी। उनके दो कहानी-संग्रह 'प्रेमनां आँसू' और 'वंधनिशाओं' और दो उपन्यास 'परोठथतां पहेला' तथा 'अगनपिपासा' प्रकाशित हुए हैं। उनके उपन्यास और कहानियों का रूप मनोवैज्ञानिक है। विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग उनके कृतित्व का वैशिष्ट्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंदमाला *(सं० कृ०)* [समय—1000 ई०]

यह एक रामकथात्मक नाटक है। इसके रचयिता दिङ्नाग (दे०) अरारालपुर के निवासी थे। ये बौद्ध तार्किक दिङ्नाग से सर्वथा भिन्न हैं। इनका दूसरा नाम वीरनाग भी है।

'कुंदमाला' में राम के जीवन के उत्तरकालीन भाग को उपजीव्य बनाया गया है। इसमें तथा 'उत्तर-रामचरित' (दे०) के कथानक में बहुत-कुछ समानता है। दिङ्नाग ने स्पष्ट रूप से भवभूति (दे०) का अनुकरण किया। 'कुंदमाला' के वर्णन रूढ़िसम्मत एवं कविता मध्यम कोटि की है। परंतु क्रियाशीलता एवं शैली की सरलता की दृष्टि से यह नाटक बड़ा प्रभावोत्पादक है। इसमें संवाद और चरित्र-चित्रण अपना वैशिट्ष्य लिये हुए हैं। परित्यक्ता सीता के दुःख से समस्त वन के पशु-पक्षी रो पड़ते हैं। सीता के प्रति राम के विलाप की भी इसमें बड़ी मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। वस्तुतः इस नाटक में चरित्र-चित्रण में नाटककार का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। अतः यह नाटक दर्शकों के मानस पर बड़ा स्थायी प्रभाव डालता है।

कुंभकर्णन् *(त० पा०)*

वाल्मीकि रामायण (दे०) में प्राप्त कुंभकर्ण के चरित्र को लेकर तमिल में अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना हुई है जिसमें प्रसिद्ध हैं कंबर-कृत 'कंब-रामायणम्' (महाकाव्य), रा० पि० सेतुपिल्लै-कृत 'कर्णनुम् कुंभकर्णनुम्' (निबंध), कदकैयिन् कादल् (काव्य-ग्रंथ), शालै इलंतिरैयन्-कृत 'कोट्टियुम् आंबलुम् नेयदलुम् पोलवे' (कथाकाव्य) आदि।

कंबर का कुंभकर्णन् एक आदर्श योद्धा है। वह अत्यंत शक्तिशाली है। उसे करणीय-अकरणीय का ज्ञान है। अपना पेट पालने वाले भाई के प्रति उसमें सम्मान की भावना है। उस भाई के लिए वह अपने प्राण त्याग देता है। कुंभकर्ण के भ्रातृ-प्रेम की भावना को कवि ने विशेष महत्व नहीं दिया। इसके दो कारण हैं। प्रथमतः 'कंब-रामायणम्' में कुंभकर्ण गौणपात्र है, अतः कवि को उस की भावनाओं के विस्तृत वर्णन का अवकाश नहीं मिला। द्वितीयतः कंबर का आविर्भाव चोळ राजाओं के शासन-काल में हुआ था जबकि लोग अपना पेट पालने वाले के लिए प्राणों का त्याग अपना उद्देश्य समझते थे। इस प्रकार 'कंब-रामायणम्' में कुंभकर्णन् का चित्र अपूर्ण है। 'कर्णनुम् कुंभकर्णनुम्' शीर्षक निबंध में लेखक ने राजा कर्ण से कुंभकर्ण की तुलना करते हुए उसे वीर, कर्तव्यपरायण एवं आदर्श व्यक्ति सिद्ध किया है। 'केदकैयिन् कादल्' नामक काव्य-ग्रंथ में प्रथम बार कुंभकर्ण के पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि ने उसे काल्पनिक पात्र न बनाकर सामान्य मानव का रूप दिया है। 'कोट्टियुम् आंबलुम् नेयदलुम् पोलवे' नामक कथाकाव्य में कुंभकर्णन् को आदर्श भ्राता, आदर्श योद्धा और बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वह रावण की विजय पर प्रसन्न होता है। उसे गर्व है कि वह रावण जैसे महान् व्यक्ति का भाई है। वह युद्ध-क्षेत्र में प्राण त्याग कर लोगों को यह कहने का अवसर नहीं देना चाहता कि रावण के मन में अपने भाइयों के प्रति तनिक भी प्रेम नहीं था। इस कथाकाव्य में कुंभकर्णन् को आदर्श भाई के रूप में चित्रित किया गया है। स्पष्ट है कि तमिल में कुंभकर्णन् के चरित्र से संबंधित अनेक साहित्यिक कृतियाँ हैं। विभिन्न कृतियों में उसका रूप भिन्न-भिन्न है।

कुंरणगार, के० जी० *(क० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

कन्नड के प्रतिष्ठित आलोचक एवं विद्वान् प्रो० कल्लप्पा कुंरणगार का जन्म बेलगाँव ज़िले के कौजलगी ग्राम में 1895 ई० में हुआ। आपका बाल्य जीवन बहुत गरीबी में बीता। कन्नड में एम० ए० पास कर आप धारवाड़ के कर्णाटक कालेज में प्राध्यापक और फिर कोल्हा-पुर के राजाराम कालेज में कन्नड विभागाध्यक्ष बने। वहीं रहकर इन्होंने शोध की। शोध की दृष्टि से 'इंस्क्रिप्शंज़ फ़ॉम कोल्हापुर एंड नार्दर्न कर्नाटक' आपकी उल्लेखनीय कृति है। आपके संपादित ग्रंथों में 'आदि पुराण' (दे०), 'कुमुदेंदु रामायण' (दे०), 'पूर्व-पुराणम्', 'हरिहर देव' आदि प्रमुख हैं। 'महादेवियाक्क' इनका सुंदर नाटक है। 'सरस्वती' पर भी आपने एक ग्रंथ लिखा है। इनके अति-रिक्त, इन्होंने कन्नड व अँग्रेज़ी में कन्नड-साहित्य, भाषा व संस्कृति से संबंधित शताधिक लेख लिखे हैं। पुरातत्त्व के अंतर्गत शिलालेख, ताम्रपत्रों, आदि में इनकी विशेष रुचि रही है। आपने पुरातात्त्विक अन्वेषण-अध्ययन के बल पर कर्णाटक के शातवाहनकालीन जनजीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रो० कुंरणगार कन्नड साहित्य की जैन, वीरशैव और ब्राह्मण सभी धाराओं के अधिकारी विद्वान् थे। छंदः-शास्त्र में आपकी विशेष पैठ थी। कर्णाटक के शैवधर्मों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—उनमें भी पाशुपतों पर—आपने विशेष प्रकाश डाला है। आपके निधन से कन्नड-साहित्य की विशेष क्षति हुई।

कुटुंबरावु, कोडवगंटि *(तें० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

ये तेलुगु के प्रमुख कथाकार एवं उपन्यासकारों में से एक हैं। इन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को प्रतिबिंबित करने वाले अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों एवं कहानियों की रचना की है। इन्होंने सामाजिक प्रयोजन को दृष्टि में रखकर साहित्यिक साधना की है। आज के बदलते हुए सामाजिक मूल्यों का चित्रण इनकी रचनाओं का प्रमुख विषय है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'चदुवु', 'आडजन्मा', 'निलुवनीरु', 'मोंडिवाडु', 'वरप्रसादमु', 'कलुषं लेनि मनिषि', 'अरुणोदयमु' आदि।

'चदुवु' स्वतंत्रता-संग्राम के सत्याग्रह की भूमिका पर लिखा गया इनका राजनीतिक उपन्यास है। कांग्रेस के आंदोलन के कारण पढ़ाई छोड़ने वाले एक युवक की दुःख-गाथा के साथ-साथ जीविका के किसी भी साधन का प्रबंध करने में असमर्थ हमारी शिक्षा-पद्धति का भी इसमें मार्मिक चित्रण किया गया है। इसी प्रकार इनकी अन्य रचनाओं में यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन मिलता है। छोटे उपन्यास के रूप में लिखी गई इनकी लंबी कहानियाँ चरित्र-चित्रण तथा कथा के चमत्कार की दृष्टि से विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करती हैं। इन्होंने अन्य भाषाओं से अनेक कहानियों के अनुवाद भी किए हैं। तेलुगु के उपन्यास एवं कथा-साहित्य को इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

कुटियोषिक्कल *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

वैलोप्पिळ्ळि श्रीधर मेनन (दे०) का खंड-काव्य। इस काव्य का नायक एक मध्यवर्गीय स्वप्नद्रष्टा कवि है जो दलित-दरिद्रों की उन्नति तो चाहता है, परंतु अपने आदर्शों का कार्यान्वयन तो दूर, उलटे वह उन मज़दूरों से घृणा ही कर पाता है और स्वार्थवश उन्हें सताता है।

कृषकों और मज़दूरों की क्रांति के इस युग में मध्यवर्गीय भावुक व्यक्तियों की इस क्रांति के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया का प्रस्तुत काव्य में सुंदर विश्लेषण किया गया है। किसी भी सहृदय व्यक्ति को इस क्रांति से सहानुभूति होगी, परंतु उसके कार्य इसके विरुद्ध ही परिणत होते हैं। यह अंतर्द्वंद्व आधुनिक मनुष्य की मानसिक स्थिति का मुख्य लक्षण है। इस अंतर्द्वंद्व को स्वर देने वाले इस काव्य का मलयाळम कविता में मुख्य स्थान है।

कुडुंब विळक्कु *(त० कृ०)*

यह भारतीदासन (दे०)-कृत एक वीट्टियल् काव्यम् (गृहस्थ जीवन से संबंधित काव्य) है। पाँच भागों में विभक्त इस कृति में गृहस्थ के जीवन के आदि से लेकर अंत तक की विभिन्न घटनाओं का वर्णन है। प्रथम भाग में गृहस्थ-जीवन में घटित होने वाली नाना घटनाओं का वर्णन करते हुए एक आदर्श गृहस्वामिनी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। अतिथि-सत्कार नामक द्वितीय भाग में गृहस्वामिनी द्वारा अतिथियों के स्वागत-सत्कार आदि का वर्णन है। यहाँ कवि ने नारी-शिक्षा एवं भोजन संबंधी कुछ सुंदर विचार व्यक्त किए हैं। तृतीय भाग में वेडप्पन और नाहमुत्तु के प्रेम तथा विवाह का वर्णन है। लेखक ने इन दोनों के माता-पिता को आदर्श माता-पिता के रूप में चित्रित किया है। वे अपने बच्चों के प्रेम को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। चतुर्थ भाग में नाहमुत्तु द्वारा गर्भधारण, शिशु-जन्म आदि की घटनाएँ वर्णित हैं। अंतिम भाग इस कृति का सर्वश्रेष्ठ अंश है। 'वृद्धों का प्रेम' शीर्षक इस भाग में कवि ने नर-नारी के प्रेममय जीवन और गृहस्वामिनी की महिमा का गान किया है। इस भाग के विभिन्न पद एक दीर्घ कविता के रूप में हैं। विभिन्न पदों में अभिव्यक्त विचारों एवं भावों में तारतम्य है। इस भाग के प्रत्येक पद में कवि का कवित्व अपनी पूर्ण शक्ति के साथ प्रकट हुआ है। उसने सबल शब्दावली में अपने विचारों और भावों को व्यक्त किया है। ये पद अत्यंत प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी हैं। 'कुडुंब विळक्कु' एक नवीन काव्य-विधा में रचित है। इसमें एक ओर कवि की कवित्व-शक्ति का तथा दूसरी ओर गृहस्थ-जीवन के प्रति उसकी गहन अभिरुचि का परिचय मिलता है। इसे भारतीदासन की कृतियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

कुचेलवृत्तम् वंचिप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह रामपुरत्तु वारियर (दे०) का वंचिप्पाट्टु (नौका-गीत) है। कहा जाता है कि महाराजा मार्त्तंड वर्मा की नौका-यात्रा के दौरान कवि ने इस काव्य की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी और महाराज ने प्रसन्न होकर कवि को बताए बिना ही उनके लिए महल बनवाया था। काव्य में सुदामा-चरित की कथा संगृहीत है। आरंभ में कवि के अभिभावक महाराजा की प्रशंसा भी की गई है।

'कुचेलवृत्तम्' में कवि की आत्मानुभूतियों की गहरी छाप है। सुदामा, उनकी धर्मपत्नी एवं श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण हृदयस्पर्शी हुआ है। वंचिप्पाट्टु रीति के काव्यों में 'कुचेलवृत्तम्' का स्थान अद्वितीय है। सुदामा-चरित पर आधारित जितनी भी कृतियाँ मलयाळम में रचित हैं उन सबमें भी इस काव्य का स्थान अग्रणी है।

कुट्टनीमत *(सं० कृ०)* [समय—आठवीं शती ई०]

'कुट्टनीमत' दामोदरगुप्त की हास्योपदेशक काव्यकृति है। वे काश्मीर-नरेश जयापीड़ के प्रधान अमात्य थे।

इस ग्रंथ में दामोदरगुप्त ने तत्कालीन राजाओं की लंपटता, विलासिता तथा कुट्टनियों के प्रभाव आदि का सजीव चित्रण किया है। 1059 आर्याओं के इस काव्य में कवि ने अत्यंत रोचक शैली में तत्कालीन समाज का नग्न चित्र खींचा है।

श्री दामोदरगुप्त ने इसकी रचना समाज-सुधार को दृष्टि में रखकर की थी। इसमें विकराला नामक कुट्टनी के रूप का चित्रण इतनी कुशलता से किया गया है कि उसकी आकृति नेत्रों के सामने नाचने लगती है। विकराला मालती को कामीजनों से धन ऐंठने की शिक्षा इस ढंग से देती है कि यह काव्य कामशास्त्र का एक शास्त्रीय ग्रंथ बन गया है। पाटलिपुत्र तथा वाराणसी की काम-प्रवृत्ति का चित्रण करने के कारण इस ग्रंथ का सांस्कृतिक महत्व भी है।

कुतबन *(हिं० ले०)* [अस्तित्व-काल—ईसा की पंद्रहवीं शती के अंत से सोलहवीं शती के प्रथम चरण तक]

ये शेख़ बुड्ढन के शिष्य थे। शाहेवक्त की प्रशंसा में इन्होंने जौनपुर के शासक हुसेनशाह का उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी रचना 'मृगावती' (दे०) के माध्यम से काव्य-रूढ़ि तथा कथानक-रूढ़ियों में भारतीय परंपरा का निर्वाह किया है। कवि ने पूर्व-प्रचलित कथा को दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल, आदि छंदों में बड़ चातुर्य से अवधी भाषा के योग से उरेहा है। अभी तक ज्ञात सूफ़ी कवियों में ये मुल्ला दाऊद के बाद द्वितीय कवि ठहरते हैं। अपने संप्रदाय के कवियों का इन्होंने पर्याप्त मार्गप्रदर्शन किया है।

कुप्पुस्वामी शास्त्री, एस० *(सं० ले०)*

इनका जन्म 15 दिसंबर, 1880 ई० को गनपति अग्रहरम् (ज़िला तंजौर) में हुआ। एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ये सन् 1906 से 1910 तक मायलापुर संस्कृत कालिज और राजा संस्कृत कालिज तिरुवाडि के प्रिंसिपल रहे। फिर 1914 से 1935 तक प्रेसिडेंसी कालेज, मद्रास में संस्कृत तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के प्रोफ़ेसर रहे। इन्हें 'विद्यावाचस्पति', 'महामहोपाध्याय' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया था। इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं—

1. हिंदू फ़िलॉसफ़ी विद स्पेशल रेफ़रेंस टु द न्याय एंड वैशेषिक सिस्टम्स;
2. इंडियन एपिस्टोमोलोजी;
3. मैथड्स एंड मैटिरियल ऑफ़ लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म;
4. द प्रभाकर स्कूल ऑफ़ कर्ममीमांसा;
5. इंडियन थीइज़्म;
6. द फ़िलॉसफ़ी एंड एक्सीजैटिक्स ऑफ़ द मीमांसा सिस्टम;
7. हाइवेज़ एंड बाइवेज़ ऑफ़ संस्कृत लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म;
8. पुराणिज़्म इन इंडियन थॉट।

इनके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का संपादन किया तथा प्राक्कथन लिखे। इन्होंने अनेक संस्थाओं के अध्यक्षीय भाषण दिए जिनका विषय संस्कृत वाङ्मय रहा।

कुमणन् *(त० पा०)*

कुमणन् एक प्रसिद्ध दानी शासक था। इसका समय संघकालीन सात प्रसिद्ध दानी राजाओं के बाद का है। 'पुरनानूरु' (दे०) में संगृहीत पेरुंचित्तिरनार् की कविताओं में कुमणन् की दानशीलता का विस्तृत वर्णन है। प्रसिद्ध है कि अपने छोटे भाई के अत्याचारों से तंग आकर कुमणन् जंगल में रहने लगा था। उस समय कवि पेरुंतलैचात्तनार् पुरस्कार पाने की इच्छा से इसके पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। उस अवस्था में भी इसने कलाकार की सहायता करना अपना धर्म समझा था। इसने तुरंत अपनी तलवार उन्हें दे दी थी और कहा था कि आप मेरा सिर काटकर मेरे छोटे भाई को देकर तुरंत पुरस्कार-रूप में अपार धनराशि प्राप्त कर लें। लोगों का विश्वास है कि कुमणन् की इस दानशीलता को देखकर उसके नीच भाई का मन भी बदल गया होगा। तमिल में कुमणन् के चरित्र को लेकर अनेक नाटक, रेडियो-नाटक, कहानी, निबंध आदि लिखे जा चुके हैं। विभिन्न साहित्यिक कृतियों में कुमणन् के नाना गुणों का, विशेषकर दानशीलता का ही, वर्णन है।

कुमरगुरुपरर *(त० ले०)* [समय—ईसा की सत्रहवीं शती]

कुमरगुरुपरर का जन्म एक शैव परिवार में हुआ था। प्रसिद्ध है कि ये जन्म के उपरांत पाँच वर्ष तक गूंगे रहे। तिरुचेंदूर के भगवान सुब्रह्मण्य की कृपा से इन्हें वाक्-शक्ति मिली। कुमरगुरुपरर तमिल के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—मीनाक्षीयम्मै पिळ्ळैत्तमिल (दे०), मुत्तुक्कुमारस्वामी पिळ्ळैत्तमिल, कयिलै कलम्बकम्, मदुरै कलम्बकम्, काशी कलम्बकम्, नीतिनेरि विळक्कम्, तिरुवारूर नान्मणिमालै, चिदम्बर मुम्मणिक्कोवै, पंडार मुम्मणिक्कोवै, सकलकलावल्लि मालै, इरट्टै मणिमालै, चेय्युट् कोवै, आदि। इन रचनाओं में विविध विषयों का वर्णन है। अधिकांश कृतियों में विविध स्थलों पर प्रतिष्ठित देवताओं की महिमा का गान है—उदाहरणतया, 'मीनाक्षीयम्मै पिळ्ळैत्तमिल' में इन्होंने मदुरै मीनाक्षी देवी की बाललीलाओं का सरस एवं हृदयहारी वर्णन करने के साथ-साथ उनकी महिमा का गान किया है। 'नीतिनेरि विळक्कम्' एक नीतिग्रंथ है। इस कृति से कवि के अनुभव-ज्ञान और उपमा-प्रयोग में कौशल की सृष्टि हुई है। इनकी अधिकांश कृतियाँ इनके प्रकांड पांडित्य, प्रखर कल्पना-शक्ति और अपार भाषा-ज्ञान की अभिव्यक्ति करती हैं। इनकी सहज प्रवाहमयी भाषा-शैली में अनूठा माधुर्य पाया जाता है जो कि पाठकों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इनका तमिल भाषा-प्रेम सराहनीय है। ये उसे देवभाषा कहते थे। इनकी रचनाओं में हिंदी-शब्दों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने उत्तर भारत का भ्रमण किया था। इन्होंने हिंदी भाषा का अध्ययन कर उसके माध्यम से शैवधर्म का प्रचार उत्तर भारत में किया था। इन्होंने काशी में एक मठ की स्थापना भी की थी जो कि अब भी विद्यमान है।

कुमरेश-शतकम *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की अठारहवीं शती]

यह भगवान कार्तिकेय के परम भक्त गुरु-पाददासर की प्रसिद्ध रचना है। इस कृति में प्राप्त सौ पदों में कवि ने एक ओर नैतिक विचारों की और दूसरी ओर इष्टदेव के प्रति अपनी अनन्य भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। प्रत्येक पद में कवि भगवान कार्तिकेय को संबोधित करके, पौराणिक कथाओं के सहारे, उनकी महिमा का उद्घाटन करता है; तदुपरांत नैतिक विषयों का वर्णन करता है। ये विषय हैं—सुखी पारिवारिक जीवन के लिए अपेक्षित आचार-व्यवहार, न्यायशील राजा की शासन-कुशलता, आदि। विभिन्न पदों में साधुओं की आडंबर-प्रियता, आधुनिक विद्वानों के ज्ञान का उथलापन, अमीरों का निर्दयतापूर्ण व्यवहार, नारी की अस्थिर बुद्धि, युवकों द्वारा बड़ों का अनादर, छात्रों द्वारा गुरु का आदर न किया जाना, आदि बातों की निंदा की गई है। तमिल में रचित नीति-प्रधान शतकों में 'कुमरेश-शतकम' सर्वप्रमुख है।

कुमारदास *(सं० ले०)* [समय—620 ई०]

महाकवि कुमारदास का जन्म सिंहलद्वीप में हुआ था। उनके पिता का नाम मानित और दो मामाओं का नाम मेघ तथा अग्रबोधि था। दोनों ही बड़े वीर तथा संस्कृत-प्रेमी थे। इनका कुमारदास के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

इनका केवल एक ग्रंथ प्राप्त होता है—'जानकी-हरण'। यह अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं। सिंहली भाषा में प्राप्त उसके शब्दकोश के आधार पर इसकी फिर से रचना की गई। राजशेखर (दे०) ने कुमारदास के महाकाव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि कालिदास (दे०) के 'रघुवंश' (दे०) के वर्तमान रहते हुए कुमार-दास ने 'जानकीहरण' की रचना करके अपने कौशल का परिचय दिया है। उनके ऊपर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव था। उन्होंने अपने काव्य में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है तथा अनेक अलंकारों के चमत्कार से अपने काव्य को सजाया है। बीस सर्ग के अपने महाकाव्य में कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय बालप्रकृति के स्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन में दिया है। राम के सलोने बालस्वभाव के अनेक मनोहारी वर्णन इस महाकाव्य में विद्यमान हैं।

कुमार राम (क० पा०)

यह मध्यकाल के कवि नंजुंड (दे०) के 'कुमार राम सांगत्य' नामक काव्य का नायक है। यह पराक्रमी, वीर, शीलवान, नीतिवान और सुंदर पुरुष है—कर्णाटक के राजा कंपिल का पुत्र होने के कारण क्षात्रधर्म का ज्वलंत प्रतीक है। एक दिन जब इसकी गेंद सौतेली माँ रत्नजी के अंतःपुर में जा गिरी और यह अपनी गेंद लेने अंतः-पुर में जाता है तो उसकी कामलालसा इसे घेर लेती है। किंतु यह अपना नैतिक बल नहीं खोता। परिणामतः इसे असंतुष्ट रानी के प्रतिशोध का शिकार बनना पड़ता है। रानी की बात सच मानकर राजा मंत्री को आज्ञा देता है कि इसे मौत के घाट उतार दिया जाए। मंत्री बैचप्पा बड़ी बुद्धिमत्ता से इसे बचाकर सुरंग में सुरक्षित रखता है। मुसलमानों को जब ज्ञात होता है कि कंपिल के राज्य में राम के समान वीर नहीं, तब वे धावा बोल देते हैं। उस समय यह बाहर प्रकट होकर मुसलमानों के छक्के छुड़ा देता है। अद्‌भुत पराक्रम प्रदर्शित कर यह वीरगति प्राप्त करता है।

कुमारवालचरिय (कुमारपालचरित) (प्रा० कृ०)

यह प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध महावैयाकरण हेम-चंद्र (दे०) का लिखा हुआ महाकाव्य है और इसका उद्देश्य 'कुमारपाल' के चरित्र-स्तवन के अतिरिक्त 'सिद्धहेमव्या-करण' के नियमों को उदाहरणबद्ध करना भी है। इसके दो भाग हैं—प्रथम भाग के 20 सर्गों में कुमारपाल के पूर्वजों का वर्णन करते हुए 'सिद्धहेमव्याकरण' के प्रथम 7 अध्यायों में उल्लिखित नियम समझाए गए हैं और दूसरे भाग के 8 सर्गों में आठवें अध्याय के नियम कुमारपाल के वर्णन के माध्यम से समझाए गए हैं। इसीलिए इसे द्वयाश्रयकाव्य कहा जाता है। इसका कुछ भाग प्राकृत से भिन्न मागधी, पैशाची, अपभ्रंश इत्यादि में भी लिखा गया है।

कुमारवालपडिवोह (कुमारपालप्रतिबोध) (प्रा० कृ०)

यह रचना हेमचंद्र (दे०) के परवर्ती सम-कालीन सोमप्रभसूरि (दे० सोमप्रभाचार्य) की लिखी है। अनहिलवाड़ा के चालुक्य सम्राट कुमारपाल को प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र ने जिस उपदेश के द्वारा जैन धर्म में दीक्षित किया था उसी का इसमें वर्णन है। इसमें 5 प्रस्ताव हैं—प्रथम में पापों से विरति, द्वितीय में गुरु देवोपासना, तृतीय में सद्धर्मनिरूपण, चतुर्थ में 12 व्रत और पाँचवें में दुर्गुणों का वर्णन है। अधिकांश रचना जैन महाराष्ट्री में है, किंतु बीच-बीच में संस्कृत और अपभ्रंश भी आ जाती है। पाँचवाँ प्रस्ताव अपभ्रंश में है। जैन-कथा-साहित्य का भी इसमें पर्याप्त समावेश है।

कुमार वाल्मीकि (क० ले०) [समय—1500 ई० के लगभग]

कुमार वाल्मीकि या नरहरि का जन्म उत्तर कर्णाटक में बिजापुर के पास तोखे ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये हरिहराद्वैती भागवत संप्रदाय के अनुयायी थे तथा अपने गाँव के नरसिंह के भक्त थे। इनके दो ग्रंथ हैं—'तोखे रामायण' तथा 'ऐरावण काळग'। 'तोखे रामायण' पाँच हज़ार से भी अधिक षट्पदी छंदों में लिखा एक विशालकाय ग्रंथ है। इसमें 'वाल्मीकि रामायण' की ही कथा है किंतु कवि की दृष्टि में अंतर है। उसने यहाँ राम को विष्णु के अवतार के रूप में देखा है। तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाँति इसके आदि में रामनाम की महिमा बताई गई है और उसके उपरांत शिव-पार्वती संवाद चलता है जिसमें शिवजी पार्वती को राम की कथा सुनाते हैं। कथा का संक्षेप में निरूपण करना ही कवि का उद्देश्य है। किंतु युद्ध-वर्णन का प्रसंग आते ही वह अनुपात को भूल गया है। परिणामतः आधे से भी अधिक भाग इस कांड ने ले लिया है। कवि ने अपनी कथा में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन भी किए हैं, किंतु वे उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। इसकी मंथरा दासी नहीं है, माया की अवतार है। चरित्र-चित्रण में भी कुछ परिवर्तन है। इसका रावण युद्ध में जाने के पहले ग़रीबों में अपनी संपत्ति का दान करता है, बंदियों को छोड़ देता है और विभीषण को लाने की बात कहता है और कहता है कि मैं कामांध हो गया था जो मैंने विभीषण की बातें नहीं सुनीं। इस तरह वह पश्चात्ताप करता है।

'वाल्मीकि रामायण' को कन्नड में प्रस्तुत करने वालों में कुमार वाल्मीकि ही सर्वप्रथम हैं। किंतु इन्होंने इसमें जितनी भक्ति दिखाई है उतनी कवित्व-शक्ति इनमें नहीं है। ये मध्यम श्रेणी के कवि हैं। अतएव इनका काव्य भी मध्यम कोटि का है। वैसे इनकी शैली पर्याप्त समर्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारव्यास *(क० ले०)* [आविर्भाव-काल—पंद्रहवीं शती]

'कुमारव्यास' कन्नड के महाकवि नारणप्पा का उपनाम है। इनके जीवन व समय के विषय में काफ़ी विवाद है। ये गदुग के वीरनारायण के भक्त थे। इन्होंने अपने जीवन का बहुत-सा भाग गदुग में बिताया था। वहाँ के वीरनारायण के मंदिर में आज भी एक जगह दिखाई जाती है जहाँ बैठकर ये लिखा करते थे।

कुमारव्यास का विख्यात ग्रंथ है 'महाभारत' जो 'गदुगिन भारत' के नाम से अधिक प्रख्यात है। 'ऐरावत' इनकी दूसरी कृति मानी जाती है। किंतु विद्वानों को इसकी प्रामाणिकता पर संदेह है। इनकी प्रतिनिधि रचना 'भारत' ही है। षट्पदी छंद में लिखित इस ग्रंथ में केवल दस पर्व हैं। कथा गदापर्व तक है। इसकी शेष कथा को विजयनगर-नरेश कृष्णदेव राय के दरबारी कवि निम्मण (1510 ई०) ने पूर्ण किया था। यह ग्रंथ कर्णाटक भारती का हृदयहार है। कन्नड साहित्य के भीतर इसका प्रचार गोपाल से लेकर भूपाल तक में, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' (दे०) के समान, है।

कुमारव्यास ने इसे 'कृष्णकथा' कहा है। अपनी विनय प्रकट करते हुए इन्होंने कहा है कि वीरनारायण ही कवि है, मैं तो केवल उनका लिपिकार हूँ। इनका दावा है कि इस ग्रंथ में राजाओं के लिए वीररस, द्विजों के लिए वेदों का सार, मंत्री-जनों के लिए बुद्धि-विचार है और विरहियों के लिए शृंगार है। वास्तव में इस समन्वयवादी भक्त कवि ने मूल 'महाभारत' (दे०) की कथा को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि कथा-संघटन, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से कहीं-कहीं यह मूल से भी वैशिष्ट्यपूर्ण हो गया है। इसके साथ ही निर्गुण-सगुण के समन्वय द्वारा इसमें जो दर्शन प्रस्तुत किया गया है वह हिंदी के तुलसी के समान प्रभावकारी है।

कुमारव्यास मूलतः भक्त हैं। अतः भक्ति के प्रसंगों में आत्मविभोर हो परमात्मा का गुणगान करने लग जाते हैं। यद्यपि इनका दावा है कि इस कृति में नौ के नौ रस हैं तथापि वीर तथा भक्ति इसके प्रधान रस हैं; शृंगार का तीसरा स्थान है और चौथा स्थान हास्य का है। इनकी शैली में अद्भुत प्रवाह है। षट्पदी (दे०) (भामिनी) छंद के तो ये सम्राट् हैं। यद्यपि समस्त काव्य एक ही छंद में है तथापि नीरस नहीं हो पाया। इस प्रकार भाषा जलप्रपात की भाँति गतिशील है। देशी तथा संस्कृत शब्दों का सामंजस्य अत्यंत मंजुल है। अलंकारों में रूपक इनका प्रिय अलंकार है। विद्वानों ने इन्हें 'रूपक-साम्राज्य-चक्रवर्ती' के नाम से अभिहित किया है। शब्दों के नूतन निर्माण एवं प्रयोग में भी इनकी पटुता देखने को मिलती है। नये प्रयोगों के साथ कहीं-कहीं शब्दों की तोड़-मरोड़ तो है ही, अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। कुमारव्यास कर्णाटक के महाकवियों में हैं।

कुमारव्यास-भारत *(क० कृ०)*

कुमारव्यास (दे०) की गणना कन्नड के सर्वश्रेष्ठ कवियों में है। उनका नाम वीरनारायण था और वह गदुग के निवासी थे। व्यास के 'महाभारत' (दे०) के आधार पर कन्नड में महाभारत लिखने की वजह से उन्होंने 'कुमारव्यास' नाम धारण किया और इसी नाम से प्रसिद्ध हो गए। उनका लिखा भारत 'गदुगिन भारत' (गदु का भारत या कुमारव्यास-भारत) कहलाता है। इसका समय लगभग पंद्रहवीं शती बताया जाता है।

कन्नड के तीन भारत प्रसिद्ध हैं—

1. 'विक्रमार्जुन-विजय' अथवा पंप भारत (दे०)
2. गदु का भारत या 'कुमारव्यास-भारत', और
3. लक्ष्मीकृत 'जैमिनी-भारत' (दे०)

'कुमारव्यास-भारत' में केवल दस पर्व हैं। लेखक ने दसवें पर्व (गदापर्व) तक लिखकर अपना ग्रंथ समाप्त कर दिया है। 'कुमारव्यास-भारत' पर व्यास के भारत तथा पंप (दे०) के भारत का पूर्ण प्रभाव है। परंतु इसकी अपनी विशेषताएँ भी हैं। अपने सब पूर्व महाकवियों से लाभ उठाने पर भी कुमारव्यास ने अपनी मौलिकता दिखाई है। व्यास का कृष्ण मानव है, पंप ने जैनी होने के कारण कृष्ण को मानव के रूप में ही देखा है परंतु कुमारव्यास का कृष्ण भगवान है। वह सर्वशक्ति-संपन्न है। कृष्ण का गुणगान ही कुमारव्यास का उद्देश्य है। 'कुमारव्यास-भारत' में कृष्ण केवल महाभारत के सूत्रधार ही नहीं हैं अपितु नायक हैं। कुमारव्यास ने लिखा है कि कर्णाटक में भारत की मंजुल मंजरी है और मैं कृष्णकथा स्वच्छ तथा निर्मल ढंग से कहूँगा। कुमारव्यास ने महाभारत के प्रत्येक पर्व के प्रमुख भागों का अनुकरण किया है परंतु उसमें कहीं संक्षेप और कहीं विस्तार तथा परिवर्तन करके अपना चमत्कार दिखलाया है।

संस्कृत भारत में पांडु की मृत्यु संक्षिप्त है पर कुमारव्यास ने उसका बहुत ही सुंदर ढंग से विस्तार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन किया है। इसी प्रकार युद्ध पर्व में संस्कृत भारत में दुःशासन के अत्याचार से पीड़ित द्रौपदी कृष्ण का स्मरण करती है। किंतु कुमारव्यास ने उसे बहुत ही स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी बनाते हुए लिखा है कि उस दुष्ट ने जब द्रौपदी का आँचल पकड़ा तो द्रौपदी ने आँसू बरसाते हुए पहले तो पतियों की ओर देखा, फिर भीष्म आदि सबसे गिड़गिड़ाई और अंत में कृष्ण की शरण में गई।

'कुमारव्यास-भारत' में कथा-रचना की अपेक्षा चरित्र-चित्रण में कवि अधिक सफल हुए हैं। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त भीम, द्रौपदी, उत्तर कुमार और कर्ण का चरित्र-चित्रण विशेष महत्व का है। इसमें कुमारव्यास की श्रेष्ठता अपने आप व्यक्त होती है। आलोचक उनके कौशल पर मुग्ध हो गए। एक ने लिखा है, 'एक भीम पात्र ही साक्षी है कि कुमारव्यास महाकवि था', दूसरा लिखता है कि 'द्रौपदी के गुणों को पाठकों के सामने ला खड़ा करने वाला कुमार-व्यास महाकवि है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं।' तीसरा लिखता है कि 'कुमारव्यास का उत्तर कुमार कन्नड साहित्य में अपूर्व है।'

कुमारव्यास को आलोचकों ने 'रूपक-साम्राज्य-चक्रवर्ती' कहा है। उदाहरण के लिए यह : 'राजा दुर्योधन ने मंत्रणा-रूपी आभूषण को अपने पिता की मन-रूपी कसौटी पर कसकर कर्ण की स्मृति-रूपी अग्नि पर उसके सोने को तपाकर, शकुनि की नीति में उसे खींचकर सीधा करके, छोटे भाई की सम्मति से उसे फैलाकर, साले की सम्मति से चमकाकर अपनी अपकीर्ति रूपी अंगना को पहनाया।'

'कुमारव्यास-भारत' की कहानी समस्त कर्णा-टक में इतनी प्रचलित है कि तुलसी-रामायण के समान वह जनता के जीवन का एक अंग बन गया है।

कुमारव्यास-युग *(क० पारि०)* [पंद्रहवीं से उन्नीसवीं शती तक]

कन्नड के प्रसिद्ध साहित्यकार डा० रं० श्री मुगळि ने अपने कन्नड साहित्य के इतिहास में युग का प्रतिनिधित्व करने वाले महाकवियों के महत्व को स्वीकार करते हुए कन्नड-साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार किया है : पंप-युग (दे०), बसव-युग (दे०) और कुमारव्यास-युग। पंप-युग के पूर्व के साहित्य को उन्होंने 'पंप-पूर्व युग' में रखा है। आधुनिक काल के नामकरण के विषय में उन्होंने कोई विचार व्यक्त नहीं किया। पंद्रहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक के काल को 'कुमारव्यास-युग' कहा जाता है। इस युग में सभी जाति-संप्रदाय के लोगों की रचनाएँ प्रकाश में आईं और साहित्य की विविध विधाओं का विकास हुआ। 'देसि' (दे०) (देश्य) के प्राचुर्य के कारण यह युग 'देसियुग' भी कहलाता है। षट्पदी, सांगत्य, त्रिपदी तथा गेय पदों की रचना इस युग में विशेष रूप से हुई है। इस युग के साहित्य को विजयनगर के राजाओं तथा मैसूर के नरेशों का राजाश्रय प्राप्त हुआ था जिससे वह समृद्ध बना। इस युग के प्रथम महाकवि कुमारव्यास (दे०) देसिनिष्ठा के श्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि हैं। उनका महाभारत कन्नड का एक ग्रंथरत्न है। इस युग के अन्य प्रमुख कवि हैं—देपराज, भास्कर, लक्कन दंडेश (दे०), मग्गेय मायिदेव, चामरस (दे०), गुरु बसव, गुब्बि मल्लण्णा, कुमार वाल्मीकि (दे०), श्रीपादराय (दे०), निजगुण शिवयोगी (दे०), सुरंग कवि (दे०), तृतीय मंगराज (दे०), गुब्बि मल्लणार्य, व्यासराय, नंजुंड (दे०), चाटु विट्ठलनाथ, पुरंदरदास (दे०), कनकदास (दे०), साल्व (दे०), लक्ष्मीश (दे०), रत्नाकर वर्णि (दे०), वादिराज, विरुपाक्ष पंडित, भट्टाकलंक, षडक्षरदेव (दे० षडक्षरी), चिक्कदेवराज (दे०), चिक्कुपाध्याय (दे०), सिंगराय (दे०), होन्नम्मा (दे०), सर्वज्ञ (दे०), जगन्नाथ-दास (दे०), तृतीय कृष्णराज (दे० मुम्मडिकृष्णराज), कम्पुनारायण और मुद्दणा (दे०)। यह युग मुख्य रूप से भक्ति के प्राधान्य को घोषित करता है। पुरंदरदास (दे०), कनकदास दे०) आदि भक्तकवियों की रचनाएँ साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस युग के अंतिम कवि मुद्दणा प्राची-नता और आधुनिकता के संधिकाल की प्रवृत्तियों के प्रति-निधि हैं।

कुमुदेंदुरामायण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता कुमुदेंदु नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय अनुमानतः 1275 ई० ठहराया गया है। यह षट्पदी (दे०) छंद में लिखा ग्रंथ है जिसमें षट्पदी के सभी भेद मिलते हैं। यह जैन रामायण है। इसके लेखक नागचंद्र से प्रभावित हैं। कथा में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन भी है किंतु ग्रंथ का महत्व उसके छंदों के वैविध्य में है। प्रत्येक संधि में एक-एक प्रकार की षट्पदी प्रयुक्त है जिसके राग और कहीं-कहीं ताल भी बनाए गए हैं। प्रौढिमा एवं गेयता का सम्मिश्रण करने का इसका प्रयास स्तुत्य है किंतु 'पंपरामायण' (दे०) के मुक़ाबले यह कृति ठहर नहीं सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारसंभव *(सं० कृ०)* [समय—पहली शती ई० पू०]

'कुमारसंभव' कालिदास (दे०) का प्रथम महाकाव्य है। इसकी रचना 'रघुवंश' (दे०) से पहले की है।

सत्रह सर्गों के इस महाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म तथा तारकासुर के वध की कथा वर्णित है। मल्लिनाथ ने इसके केवल आठ सर्गों पर टीका की है, अतः अनुमान किया जाता है कि कालिदास ने इसके आठ ही सर्गों की रचना की है। शेष नौ सर्ग प्रक्षिप्त हैं।

प्रथम आठ सर्गों में कालिदास की कला अपने निखरे हुए रूप में हमारे सामने आती है। इन सर्गों में कवि ने एक समग्र एवं समन्वित कथावस्तु को चित्रित किया है। शिव-पार्वती की प्रणय-गाथा को काव्यभूमि पर लाना सरल काम नहीं था। कालिदास ने इस प्रणय को दैवी रूप न देकर मानवीय रूप दिया है। मूल कथा 'महाभारत' (दे०) से लेकर महाकवि ने उसे काव्यानुकूल बनाने के उद्देश्य से यथावश्यक परिवर्तन कर लिये हैं। आरंभ में हिमालय का सजीव वर्णन, तृतीय सर्ग का वसंत वर्णन, चतुर्थ सर्ग का रतिविलाप तथा पंचम सर्ग का पार्वती-ब्रह्मचारी-संवाद 'कुमारसंभव' के अत्यधिक मार्मिक स्थल हैं। 'कुमारसंभव' पूर्णतः रसवादी कृति है। यौवन की सरस क्रीड़ा का चित्रण ही कवि को यहाँ अभीष्ट है। कालिदास की वर्णना-शक्ति इस महाकाव्य में पूर्णरूप से अभिव्यक्त हुई है। इस महाकाव्य में कवि का कोई गंभीर उद्देश्य नहीं प्रतीत होता; और यदि है भी तो वहाँ काव्य के प्रवाह में दब-सा जाता है।

वास्तव में 'कुमारसंभव' के साथ संस्कृत में एक उत्कृष्ट एवं सुसंबद्ध महाकाव्य का जन्म होता है जो बाद के कवियों के लिए एक प्रेरणा-स्रोत बन गया।

कुमारसंभवमु *(ते० कृ०)* [कृतिकार—नन्नेचोडुडु (दे०)]

यह तेलुगु का प्रथम शैव-काव्य है जो तत्कालीन दक्षिण भारत में प्रचलित वीरशैव-संप्रदाय के प्रतिपादन एवं प्रचार के लिए शिव-संबंधी इतिवृत्त के आधार पर लिखा गया था। यह कालिदास (दे०) के 'कुमारसंभवम्' (दे०) का अनुवाद नहीं है। दोनों कृतियों में कथावस्तु की यत्किंचित् समता होने पर भी यह एक स्वतंत्र कृति है। इसका आधार उद्भट-रचित संस्कृत ग्रंथ है। इसमें मूल कथा के अतिरिक्त दक्षिण भारत में प्रचलित शिव-संबंधी अनेक कथाओं का समावेश है। 'कुमारसंभव' की कथा मुख्यतः स्कंदपुराण, शिवपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, 'महाभारत' (दे०) तथा 'रामायण' (दे०) में मिलती है। इन कथांशों का भी इस काव्य में उपयोग किया गया है। सती का जन्म, गुडाधीश का जन्म, दक्ष-यज्ञ का विनाश, पार्वती का जन्म, शिव की तपस्या, देवता एवं ब्राह्मणों का क्षोभ, काम-दहन, पार्वती की तपस्या, शिव-पार्वती-विवाह, उनकी रति-क्रीड़ाएँ, गणेश का जन्म, कुमार का जन्म, तारकासुर-वध, आदि अनेक सरस प्रसंगों से युक्त इस प्रौढ़ प्रबंध-काव्य में बारह सर्ग हैं। इसके वस्तु-वर्णन, कथावस्तु की प्रस्तावना, चरित्र-चित्रण, भाषा आदि में कवि की प्रतिभा स्पष्ट लक्षित होती है। भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा क्लिष्ट न होकर प्रायः सरल एवं सहज तेलुगु ही है। परवर्ती प्रबंध काव्यों के लिए यह ग्रंथ आदर्श रहा है। इसकी कविता ओज-प्रधान एवं रजोगुण-युक्त है। राजस प्रवृत्ति तथा भक्ति का आवेग यहाँ सहज वाणी में अभिव्यक्त हुआ है। वीर-शैव-संप्रदाय का प्रचलन कन्नड प्रांत में अधिक रहने के कारण इस काव्य में कन्नड के शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं। तेलुगु के परवर्ती प्रबंध-काव्यों के आरंभ में इष्ट देवता की प्रार्थना, पूर्वकवि-स्तुति, कुकवि-निंदा, ग्रंथ-लेखक का आत्मपरिचय, कृति-समर्पण, आदि की पद्धति का आरंभ इसी के आधार पर किया गया है।

कुमारिल भट्ट *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—800 ई०]

कुमारिल भट्ट के प्रमुख ग्रंथों में 'श्लोकवार्तिक' (दे०), 'तंत्रवार्तिक' तथा 'टुप्टीका' हैं। इन्होंने 'वृहट्टीका' तथा 'मध्यटीका' की रचना भी की थी किंतु ये अनुपलब्ध हैं। कुमारिल का 'श्लोकवार्तिक' वृहद्वार्त्तिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कुमारिल ने विविध दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण किया है। 'तंत्रवार्तिक' केअंतर्गत 'मीमांसासूत्र' के प्रथम अध्याय द्वितीय पाद से लेकर तृतीय अध्याय के अंत तक के ग्रंथ पर वार्त्तिक रचना की गई है। टुप्टीका मीमांसासूत्र के चतुर्थ अध्याय से बारहवें अध्याय के अंत तक के ग्रंथ के ऊपर वार्त्तिक का नाम है। यह ग्रंथ अत्यंत लघुकाय है।

कुमारिल मीमांसक थे। कुमारिल के स्वयं के कथनानुसार उनका उद्देश्य मीमांसाशास्त्र को आस्तिक पथ पर लाना है। 'शंकरदिग्विजय (दे०) के अनुसार यह भी कहा जाता है कि मीमांसक कुमारिल एवं शंकरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार्य (दे०) का शास्त्र-वार्तालाप प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर हुआ था। कुमारिल के प्रमुख शिष्यों में प्रभाकर (दे०) मिश्र थे। कुमारिल ने इनके वैदुष्य से प्रसन्न होकर इन्हें गुरु की उपाधि प्रदान की थी। इसीलिए प्रभाकर का मत 'गुरुमत' के नाम से प्रसिद्ध है।

कुरत्तिप्पाट्टु *(मल० पारि०)*

मलयाळम में लोकगीतों की एक विधा जो 'कुरत्ति' अथवा हस्तरेखा देखकर भाग्यविवेचन करने वाली जिप्सी कविताओं के रूप में गाया जाता था। इन लोक-गीतों के छंद श्रुतिमधुर हैं और आधुनिक कवियों ने इस छंद को और अधिक लोकप्रिय बनाया है।

कुरवंजि *(त० पारि०)*

'कुरवंजि' तमिल नाटकों के प्राचीन रूपों में से है। इसे 'कुरत्तिप्पाट्टु' (दे०) भी कहते हैं। इसमें प्रायः धार्मिक कथाओं एवं घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। कुरवंजि नाटकों में वर्णित कथा की रूपरेखा इस प्रकार है—नायक (देवता या मनुष्य) द्वारा नगर-भ्रमण, नायिका का उसे देख कामासक्त होना, उसके विरह में व्याकुल होना, दूती को नायक के पास भेजना, कुरत्ती (बनजारिन) का आना, कुरि अर्थात् लक्षण देखकर नायिका से मिलन का आश्वासन देना, कालांतर में नायक-नायिका-मिलन एवं विवाह तथा कुरत्ती का अपने पति कुरवन (बनजारे) के साथ नाचते-गाते लौट जाना।

कुरवंजि संगीत-नाटक का एक प्रकार है। इसमें संगीतात्मकता और कल्पना की प्रधानता होती है। इसमें अकवल, वेण्बा, कलिप्पा, कलित्तुरै, विरुत्तम आदि छंदों का प्रयोग होता है। इसकी रचना शिंदु, कीर्तनै आदि गेय पद-शैली में होती है। चौदहवीं एवं पंद्रहवीं शती में तमिल में अनेक कुरवंजि नाटक लिखे गए जैसे कुट्राल कुरवंजि, अषहर कुरवंजि ज्ञान कुरवंजि, मीनाक्षी अम्मै कुरम, शरपेंदिर भूपाल कुरवंजि, आदि। इनमें सर्वप्रसिद्ध है तिरुक्कूडराशप्पर-कृत 'कुट्राल कुरवंजि'।

कुर्रिजि *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य में पाँच भूभागों का वर्णन प्राप्त होता है जिनमें कुर्रिजि भी एक है। अकम् (दे०) और पुरम् (दे०) दोनों वर्गों की रचनाओं में इन भूभागों का वर्णन हुआ है। कुर्रिजि से तात्पर्य है 'पहाड़ी प्रदेश'। यहाँ के निवासी 'कुरवर' या 'कानवर' कहलाते हैं। कुर्रिजि प्रदेश के निवासियों का प्रमुख व्यवसाय है खेती करना, शहद एकत्र करना, आदि। इनके आराध्यदेव शेयोन् (कार्त्तिकेय) हैं। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ शरत् (आश्विन और कार्तिक) और हेमंत (अगहन और पौष) हैं और अनुकूल वेला है रात्रि का दूसरा प्रहर। यहाँ के पशु-पक्षी हैं मोर, तोता, बाघ, रीछ, हाथी, आदि। कुर्रिजिवासियों का वाद्ययंत्र है कुर्रिजियाष्। यहाँ के लोग तोंडकप्पर नामक ढोल का प्रयोग करते हैं। कुर्रिजि नामक पुष्प-विशेष के प्रभूत मात्रा में पाए जाने के कारण ही इस प्रदेश को तथा यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति को कुर्रिजि नाम दिया गया है। कुर्रिजि प्रदेश से संबंधित अकम् काव्यों में प्रेमी-प्रेमिकाओं की प्रेम-क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रेमी-प्रेमिकाओं की भावना को स्पष्ट करने के लिए प्रदेश-विशेष की प्राकृतिक अवस्था का वर्णन किया जाता है। इस प्रदेश में पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ नायक-नायिका की प्रेम-भावना को व्यक्त करने में सहायक होती हैं। कुर्रिजि पुष्प बारह वर्ष में एक बार खिलता है; ठीक इसी प्रकार बारह वर्ष की अवस्था हो जाने पर कन्या के ऊपर गृहस्थी का उत्तर-दायित्व आ जाता है।

कुर्रिजित्तेन *(त० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

राजम कृष्णन (दे०) का यह उपन्यास आरंभ में तमिल की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'कलैमगळ' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास चार खंडों में विभाजित है। इसमें लेखिका ने नीलगिरि प्रदेश के आदिवासी पडगु लोगों के प्राचीन इतिहास, उनके गाँव, उनके घरों के रूप, उनके विश्वास, रीति-रिवाज, खान-पान, व्यवसाय, उनकी जीवन-पद्धति, जीवनोद्देश्य, उनके यहाँ होने वाले संस्कार आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं—जोगी, उसका तयेरा भाई रंजन, उसकी पत्नी पारु, करियमल्लर, आदि। बारह वर्ष में एक बार कुर्रिजि पुष्पों से घिर जाने वाले नीलगिरि-प्रदेशवासियों के जीवन में परिवर्तन आता है। वे चामै, रागी, किषंगु के स्थान पर चाय की खेती कर अपार धनराशि एकत्रित करने के लिए लालायित हो उठते हैं। पुरातन प्रेमी लिंगैयन और उनके पुत्र का परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछड़ जाता है। इसके विपरीत समय के साथ आगे बढ़ने वाले करियमल्लर का परिवार उन्नति करता चलता है। इन दोनों परिवारों की कथा के माध्यम से लेखिका ने पुरानी पीढ़ी के अंतःबाह्य संघर्ष, उनकी समस्याओं तथा प्राचीन परंपराओं से सर्वथा अनभिज्ञ नवीन पीढ़ी के संघर्ष का सजीव चित्रण किया है। कथा-वर्णन, पात्रों के चरित्र-चित्रण, वातावरण के सजीव चित्रण में उपन्यास-लेखिका को अपूर्व सफलता मिली है। नीलगिरि प्रदेश के पडगु लोगों से संबद्ध इस आंचलिक उपन्यास का तमिल उपन्यास-साहित्य में, विशेषतः तमिल के आंचलिक उपन्यासों में, विशिष्ट स्थान है। यह उपन्यास 'कुरिंजि का मधु' शीर्षक से हिंदी में अनूदित हो चुका है। इस कृति का साहित्यिक महत्व तो है ही, समाजशास्त्रीय महत्व भी अक्षुण्ण है।

कुरुंतोगै *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

कुरुंतोगै का शाब्दिक अर्थ है 'लघु कविताओं का संग्रह'। इसकी गणना संघकालीन एट्टुतोगै (अष्टपद्य-संग्रह) में होती है। इसमें 203 कवियों के 400 पद संगृहीत हैं। इन कवियों में से कुछ चोल, चेर और पांड्य राजवंशों से संबंधित थे। चार से लेकर छह पंक्तियों तक ये पद अहवल छंद में रचित हैं। इन पदों का संग्रह पूरिक्को नामक कवि ने किया। कुरुंतोगै अकम् (दे०) वर्ग की रचना है। अकम् काव्यों के समान इसमें भी कुरिंजि (दे०), मुल्लै (दे०), मरुदम (दे०), पालै (दे०) और नेयदल (दे०) नामक पाँचों भूभागों का वर्णन प्राप्त होता है। इस कृति में कवियों ने व्यक्ति की बाह्य परिस्थितियों और विविध मनःस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कुछ पदों में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है। इस कृति के अध्ययन से तत्कालीन तमिल-समाज में प्राप्त विभिन्न जातियों, उनके व्यवसायों, उनकी वेशभूषाओं, प्रथाओं एवं विश्वासों आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। कुरुंतोगै के विभिन्न पद अत्यंत सरस-सरल शैली में रचित हैं। कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। विभिन्न अलंकारों, विशेषकर उपमा अलंकार, का प्रयोग प्रभूत मात्रा में हुआ है। कुरुंतोगै संघकालीन अष्टपद्य-संग्रहों में पर्याप्त प्राचीन एवं प्रसिद्ध कृति है। परवर्ती व्याख्याकारों और वैयाकरणों ने अपनी कृतियों में कुरुंतोगै के पदों का प्रयोग अन्य पद्य-संग्रहों के पदों की अपेक्षा अधिक मात्रा में किया है।

कुरुंबा *(त० कृ०)* [रचना-काल—1966 ई०]

'कुरुंबा' महाकवि (दे०) उपनाम से प्रसिद्ध रुद्रमूर्ति की प्रसिद्ध रचना है। इसमें 100 लघु पद हैं। इन पदों के विषय हैं—मिथ्याचार, दहेज-प्रथा, घूसख़ोरी, मनुष्यों की अधिकार और धन-लोलुपता, वर्तमान साहित्य की निस्सारता और छिछलापन, विश्व की महान शक्तियों का ढोंग-भरा व्यवहार, आदि। संपूर्ण कृति में समाज के विभिन्न पक्षों पर व्यंग्य है। हास्य का समावेश होते हुए भी कवि की ये व्यंग्योक्तियाँ प्रभावशाली बन पड़ी हैं। 'कुरुंबा' पाश्चात्य तुक्तक (लिमरिक) की शैली में रचित है। 'कुरुंबा' तमिल में तुक्तक शैली में रचित प्रथम काव्यकृति है।

कुरुक्षेत्र *(गु० कृ०)*

कवि न्हानालाल दलपतराम (दे०) द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य का एक प्रयोग है। इसकी रचना एक दिन में या एक साथ किसी कालावधि में नहीं हुई बल्कि इसकी रचना में 1926 से 1940 ई० तक का यानी लगभग पंद्रह वर्ष का समय लग गया था। दूसरी बात यह है कि इसकी रचना व्यवस्थित रूप से क्रमशः नहीं हुई। रचना-काल को देखने से पता चलता है कि संपूर्ण महाकाव्य दो कालखंडों में लिखा गया है: 1926-30 ई० और 1939-40 ई०। इसके कांड भी जब-तब लिख दिए गए हैं। कुल ग्रंथ बारह कांडों के अतिरिक्त 'अर्पण अने प्रस्तावना' तथा 'समंत-पंचक अने महाप्रस्थान' में विभक्त है। कांडों का वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है—पहला कांड : युग पलटो; दूसरा कांड : हस्तिनापुरना निर्घोष; तीसरा कांड : निर्धार; चौथा कांड : योधपर्वणी; पाँचवाँ कांड : प्रतिज्ञाद्वंद्व; छठा कांड : आयुष्यदान; सातवाँ कांड : चक्रव्यूह; आठवाँ कांड : मायावी संध्या; नौवाँ कांड: सहोदरनां बाण; दसवाँ कांड : रौद्री अथवा कालनो डंको; ग्यारहवाँ कांड : शरशैया; बारहवाँ कांड : महासुदर्शन। लगभग ग्यारह हज़ार चरणावलियों वाले इस महाकाव्य में कवि न्हानालाल ने महाभारत की कथा को निबद्ध करने का प्रयास किया है। अपनी प्रस्तावना के चौबीसवें खंड में कवि ने स्पष्ट किया है कि जब तक पशुता के अंश-अवशेष मानव-मन में बसे हुए हैं तब तक यह पशु-क्रीड़ा होती ही रहेगी और जब मन से पशुता विदा ले लेगी तभी कुरुक्षेत्र का अंत हो जाएगा। इससे समस्त 'कुरुक्षेत्र' के वस्तु-तत्त्व को एक प्रकार की प्रतीकात्मकता सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार के कुछ अन्य संकेत 'छेल्लो बोल' में निहित हैं जहाँ कवि कहता है कि 'मनुष्य जीवन-संग्राम में महावीर बनना' 'अथवा कुरुक्षेत्र अर्थात् कालरमणा'। कवि स्वयं यह स्वीकार करता है कि कुरुक्षेत्र के लिखे जाने के पूर्व मुक्त छंद गुजराती में स्थापित हो चुका था पर महाकाव्य में उसके प्रयोग को लेकर कवि की यह गर्वोक्ति द्रष्टव्य है : 'एकवीस वर्षना एक गुजराती जूवानडाए 2200 वर्षना श्री पिंगलाचार्यना चक्रवर्तित्वनीस्ना मे बलवा कीधो।' मुक्त छंद में सर्वप्रथम महाकाव्य लिखने का श्रेय न्हानालाल को दिया जा सकता है। यह ग्रंथ कवि द्वारा अपने पिता श्री दलपतराम को समर्पित है। प्रेमभक्ति ग्रंथमाला के अंतर्गत इसका प्रकाशन किसी एक स्थान से न होकर अलग-अलग संस्थाओं द्वारा हुआ है। गुजराती में यों भी थोड़े से ही महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यों में कुरुक्षेत्र का स्थान सदा के लिए सुरक्षित है।

कुरुक्षेत्र *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

रामधारी सिंह दिनकर (दे०) ने इस प्रबंध-काव्य का सृजन युद्ध की अनिवार्यता के 'पागल कर देने वाले प्रश्न' को उपस्थित करने के लिए किया है। इस प्रश्न के दो पक्ष अत्यंत प्राचीनकाल से हमारे सामने रहे हैं—निवृत्ति-मूलक और प्रवृत्तिमूलक। पहले के अनुसार युद्ध सभी अवस्थाओं में त्याज्य है। दूसरे के अनुसार न्याय-स्थापना के लिए धर्मयुद्ध मनुष्य का कर्त्तव्य है। आधुनिक काल में पूर्वपक्ष का प्रतिनिधित्व हमारे युग के महामानव गांधी ने किया था। उत्तरपक्ष का कुछ मेल समाजवादी विचारधारा से बैठ जाता है। इन विरोधी आस्थाओं का अंतर्द्वंद्व ही 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से व्यक्त हुआ है। 'शंकाकुल हृदय' के इस अंतर्द्वंद्व ने समस्त कृति को असाधारण आवेगात्मक अन्विति प्रदान कर दी है। कलात्मक दृष्टि से इस रचना की प्रौढ़ता और समृद्धि असंदिग्ध है। अप्रस्तुत-विधान चित्रात्मक और व्यंजक है। शब्दयोजना में वक्रता का सार्थक और सर्जनात्मक प्रयोग है। आवेगानुकूल प्रवाह तो दिनकर के समस्त कृतित्व का प्राण है, पर इस कृति में यह प्राण-धारा अपेक्षाकृत सर्वाधिक वेगवती दिखाई देती है। हिंदी के आधुनिक युद्ध-काव्यों में 'कुरुक्षेत्र' का स्थान अद्वितीय है।

कुरुप्प्, जी० शंकर *(मल० ले०)* [समय—1902 ई०]

कालरी नामक गाँव में प्रकृति के सरस गायक महाकवि शंकर कुरुप्प् का जन्म हुआ। छात्रावस्था से ही उनकी कविमेधा प्रस्फुटित हो आई। महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) की काव्य-चेतना का प्रभाव और प्रकृति-प्रेम के संस्कार उनमें आरंभ से ही परिलक्षित होते हैं। 'प्रेमगीत' लिखने में कवि की प्रतिभा विलक्षण है। 'स्वातंत्र्य-गीत' देशभक्ति से ओतप्रोत कविताओं का समाहार है। उनकी 1920 ई० तक की चुनी हुई कविताओं का संग्रह 'ओटक्कुष़ल्' (दे०) (वंशी) नाम से प्रकाशित किया गया जिस पर उन्हें ज्ञानपीठ-पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'पाथेय' एक और कविता-संकलन है। रहस्यवादी और प्रतीकवादी कवि के रूप में वे खूब प्रसिद्ध हुए हैं। 'एन्टे वेळि' नामक कविता उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। विप्लवात्मक कविताओं में 'तूप्पुकारी' (झाड़ू लगाने वाली) का अद्वितीय स्थान है। चिंतन की सामग्री देने में 'पेरुन्तच्चन्' (दे०) अद्वितीय है। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति आपका प्रेम सर्वविदित है। कुरुप्प् की वक्तृत्व-शक्ति भी अद्भुत रही है। वे राज्यसभा के नामित सदस्य रहे हैं। उन्हें नवयुग का प्रतिनिधि कवि कहना सर्वथा समीचीन होगा।

कुरुप्प्, मुंषि राम *(मल० ले०)* [जन्म—1848 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

यह मलयाळम के प्रसिद्ध हास्य-नाटककार एवं सफल अध्यापक थे। उनका हास्य-नाटक 'चक्कीचंकरम्' 1893 ई० में प्रकाशित हुआ था और उस समय तक मलयाळम का साहित्य अनेक निम्न कोटि के नाटकों के आविर्भाव से दूषित हो चुका था। कुछ सफल नाटककारों की देखादेखी अनेक नाटककारों ने सस्ते नाटकों की रचना करके उनका रंगमंच में अभिनय कराना शुरू किया था। 'चक्कीचंकरम्' इन नाटककारों के लिए एक प्रहार था। इसमें दो हास्य-पात्रों, चक्की और चंकरन्, की प्रणय-कथा है। उनके विवाह के अवसर पर आई हुई नाटक-कंपनियों को शिवजी का भूत कुभांड डंडे से मार भगाता है। इस नाटक ने साहित्यकारों को नाटक के मूल्यों पर विचार करने की प्रेरणा दी और बाद में निम्न कोटि के नाटकों का प्रकाशन ही बंद हो गया।

साहित्य के शोधन-संस्कार के उद्देश्य से रचित प्रथम कृति के लेखक के रूप में मलयाळम साहित्य में राम कुरुप्प् का स्थान महत्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्रतुल-एन-हैदर *(उर्दू० ले०)*

कुर्रतुल-एन-हैदर एक अच्छी उपन्यास एवं कहानी-लेखिका हैं। इन्होंने अपने कहानी-लेखन का श्रीगणेश बुर्जुआ वातावरण की रोमानियत और उस रोमानियत के अंक में पलने वाली बेज़ारी के चित्रण से किया है। पाकिस्तान बनने के पश्चात् भी इनकी कला का अंदाज़ वही रहा है जो विभाजन से पूर्व था। इनकी कहानियों में कहीं-कहीं परिवेश के काव्यात्मक चित्र हैं और इन कहानियों में लुकमान की-सी सरलता, एंडरसन की कहानियों-जैसी जादूगरी फ़िज़ा और अमीर खुसरो (दे०) के दोसुखनों जैसी ताज़गी और इन सब चीज़ों से मिल-जुल कर पैदा होने वाली एक अनोखी शान है।

इनका 'आग का दरिया' (दे०) उपन्यास एक सुंदर-सशक्त साहित्यिक कृति है।

कुर्रालक्कुरवंचि *(त० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह तमिल प्रदेश के 'तिरुनेल्वेलि' ज़िले के 'कुर्रालम्' नामक पर्वतीय ग्राम में अवस्थित शिव-मंदिर के भगवान की स्तुति के रूप में तमिल भाषा की प्राचीन 'अकम्' (दे०)-पद्धति पर रचा हुआ काव्य है। इस रचना में शिव भगवान नायक हैं और उनकी शोभा-यात्रा के दर्शन के पश्चात् उनसे गुप्त प्रेम करने वाली नायिका के रहस्य-पूर्ण रोग के निदान के लिए एक ज्योतिषी पर्वतीय नारी (कुरत्ति) बुलाई जाती है जो अपने प्रदेश का परिचय देते हुए नायिका के संबंध में भविष्यवाणी करती है। ज्योतिषी नारी की उक्तियों के माध्यम से मनोहारी प्रकृति-वर्णन, व्यंग्य-मिश्रित स्तुति आदि अभिव्यक्त हैं। इसकी विशेषता नाटक-तत्त्वयुक्त वार्तालाप की योजना तथा कई पुराने साहित्यिक छंदों के साथ नये गेय 'कीर्त्तनै' छंदों के सम्मिश्रण में है। लोक-भाषा का भी प्रयोग दर्शनीय है। यह कुल सोलह भागों में विभक्त है।

कुळकर्णी, विनायक महादेव *(म० ले०)*

ये सौंदर्यवादी रोमानी कवि हैं। 'विसर्जन' इनका एक दीर्घ विरहगीत है, और 'पहाटवारा' तथा 'कमळवेल' दो काव्य-संग्रह हैं। इनके काव्य का मूल स्वर प्रेममय है, परंतु 'श्रमदेवता', 'एक महात्मा होउनि गेला', 'अणुस्फोटक' आदि कुछ कविताएँ अपवाद-रूप भी हैं जिनमें युगीन चेतना का प्रतिबिंब है। इनकी भावनाभिव्यक्ति मनोहर है; लालित्यपूर्ण भाषा एवं कल्पना-विलास इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

ग्रामोद्धार की समस्या को लेकर कुळकर्णी ने 'आहुति' नामक उपन्यास भी लिखा है और 'न्याहरी' इनका एक कथा-संग्रह है। अपने 'साहित्य-दर्शन' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में कुलकर्णी ने पद्य-रूप का विवेचन किया है।

कुलपति *(हिं० ले०)*

कुलपति आगरा-निवासी थे और बाद में जयपुर के महाराजा राजसिंह के दरबार में चले गए थे। इनके बनाए पाँच ग्रंथ उपलब्ध हैं—'द्रोणपर्व', 'युक्तितरंगिणी' 'संग्रामसार', 'नखशिख' और 'रसरहस्य'। इनमें से अंतिम दो ग्रंथ काव्यशास्त्रीय हैं। इनकी ख्याति का आधार 'रस-रहस्य' है जिसमें मम्मट के 'काव्यप्रकाश' (दे०) की पद्धति पर काव्य के विविध अंगों का निरूपण आठ अध्यायों में किया गया है। कहीं-कहीं गद्य का भी आश्रय लिया गया है। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य कोटि का है, अनेक गंभीर प्रसंगों को या तो स्थान नहीं मिला, मिला भी है तो अतिसंक्षेप में, और कहीं-कहीं अपूर्ण, भ्रांत तथा अशुद्ध रूप में भी। ग्रंथकार का उद्देश्य मम्मट (दे०) एवं विश्वनाथ (दे०) की शास्त्रीय सामग्री को सरल एवं सुबोध अनुवाद के रूप में ढाल देना है, और इसमें वे प्रायः सफल सिद्ध हुए हैं। कवित्व की दृष्टि से भी कुलपति को साधारण कोटि का कवि मानना चाहिए। कल्पना-वैभव और चित्रयोजना जैसी कि मतिराम (दे०) आदि रीति-ग्रंथकारों में पाई जाती है, इनके ग्रंथ में उसका प्रायः अभाव है। समग्रतः कुलपति आचार्य अधिक हैं, और कवि कम।

कुलशेखर आळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की आठवीं शती तथा सांप्रदायिक ग्रंथों के अनुसार—कलियुग 3075 ई० पू०]

कुलशेखर आळवार का जन्म चेर-सम्राट दृढ़व्रत के घर हुआ। पेरुमाळ कहे जाने वाले राम के प्रति अपार प्रेम होने के कारण इन्हें कुलशेखर पेरुमाळ कहा गया। इन्हें विष्णु के वक्ष पर स्थित कौस्तुभ मणि का अवतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता है। इन्होंने तमिल तथा संस्कृत का अध्ययन कर इन भाषाओं में क्रमश: पेरुमाळ तिरुमोळि और मुकुंदमाला की रचना की। पेरुमाळ तिरुमोळि के विभिन्न पदों में विष्णु के अर्चावतार और विभवावतार का, रामावतार एवं कृष्णावतार-लीलाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस रचना के एक दशक में यशोदा के समान कृष्ण की बाल-लीलाओं का रसास्वादन न कर सकने के कारण दुखी माता देवकी का करुण विलाप वर्णित है। यह वर्णन कुलशेखर की मौलिक सूझ है। कुलशेखर आळवार कुशल कलाकार हैं। इनकी रचनाओं में अनेक सुंदर शब्दचित्र प्राप्त होते हैं।

कुली कुतुबशाह *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1550 ई०; मृत्यु—1611 ई०]

कुतुबशाही वंश में मुहम्मद कुली कुतुबशाह का शासन-काल सन् 988 हि० से सन् 1020 हि० माना जाता है। इनकी गणना प्राचीन काल के उर्दू कवियों में की जाती है। इनके दीवान (काव्य-संग्रह) में ग़ज़लें, मर्सिये, मसनवियाँ, तरजीअबंद और कसीदे आदि अनेक काव्य-विधाएँ इनकी काव्य-प्रतिभा की द्योतक हैं। इनकी भाषा-शैली अत्यंत सरल और प्रसाद-गुण-संपन्न है। प्रांतीय प्रभाव इनके काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होते हैं। भारतीय रीति-रिवाज, परंपरा और मर्यादा का ध्यान इनके काव्य में विशेष रूप से रखा गया है—यहाँ तक की भारतीय पक्षियों, मेवों और सब्ज़ियों तक का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर हुआ है। इनकी ग़ज़लों में अभिव्यक्त प्रेम-भावना सूक्ष्मानुभूति से ओतप्रोत है। हिंदी-काव्य का प्रभाव भी इन्होंने अपने काव्यों में प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया है।

कुलीन-कुल-सर्वस्व *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1851 ई०]

रामनारायण तर्करत्न (दे०) का यह पहला ख्याति-प्राप्त नाटक है। इसमें तर्करत्न ने अपने युग की ज्वलंत समस्या को उठाया है। भद्र समाज का एक व्यक्ति अपनी चार विवाह-योग्य कन्याओं के लिए उपयुक्त वर ढूँढने में असमर्थ है। कुलीनता के मोह में पड़कर वह, विवश-सा, अपनी लड़कियों का विवाह एक वृद्ध से कर देता है। कथा पाँच भागों में विभक्त है। पाँच भागों में अंतर्व्याप्त कथा में एकसूत्रता का अभाव है। वास्तव में इस नाटक का कोई कथानक नहीं, केवल प्रसंगों का विषम मिश्रण है। लेखक कौतुक बनाए रखने में अवश्य सफल हुआ है। पात्र सांकेतिक तथा प्रतीकात्मक हैं जैसे—अनृताचार्य, अधर्मरुचि, विवाहवणिक, आदि। प्रत्येक भाग में एक विचित्र पात्र की कल्पना की गई है। संभवत: इसीलिए संवादों में अपेक्षित औचित्य का अभाव मिलता है। बीच-बीच में नाटककार संस्कृत-श्लोकों के गद्यानुवाद प्रस्तुत करता है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से संस्कृत नाट्यशास्त्र का पालन भी किया गया है। नांदी-प्रस्तावना है, भाषा पात्रानुसार है अर्थात् मुख्य पात्र संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते हैं और स्त्री-पात्र साधारण भाषा का।

यह नाटक तर्करत्न ने कालीचंद्र रायचौधुरी के 'दूसरे विज्ञापन' के उत्तर में लिखा था। यह नाटक यद्यपि रंगमंच के लिए नहीं लिखा गया था फिर भी अभिनय की दृष्टि से सफल और प्रभावशाली है। समस्या-प्रस्तुति में नाटककार की दृष्टि यथार्थोन्मुख रही है। इसीलिए इसको पहला सफल सामाजिक नाटक माना जाता है।

कुलोत्तुंगन् पिळ्ळैत्तमिष् *(त० ले०)* [रचना-काल—ईसा की बारहवीं शती]

इस कृति के रचयिता ओट्टकूत्तर् (दे०) हैं। इसमें उन्होंने कुलोत्तुंगचोष द्वितीय की वीरता, युद्धकौशल आदि गुणों का वर्णन किया है। इस कृति में 103 पद हैं और यह 10 भागों में विभाजित है। ओट्टकूत्तर् ने इस कृति में कुलोत्तुंग चोल द्वितीय और उनके पूर्वजों के वीरतापूर्ण कर्मों का और अपने नायक के समकालीन लंका, जावा, सुमात्रा और उत्तर भारत के राजाओं का उल्लेख किया है। यह कृति पिळ्ळैत्तमिष् शैली में रचित है। इस शैली में रचित अन्य काव्यकृतियों के समान इस कृति के दस भागों में वय:क्रम से नायक की विभिन्न चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। इस कृति के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ओट्टकूत्तर् गौडी रीति में काव्य-रचना करने में पटु थे। इसमें अनेक नाद-व्यंजक शब्दों का प्रयोग हुआ है। शिलालेखों और अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री से इसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। इसमें चोल साम्राज्य के उत्तरकाल से संबंधित पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। कुलोत्तुंगन पिळ्ळैत्तमिष् की शैली में रचित प्रथम काव्य-कृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल्लियात-ए-अकबर (उर्दू० कृ०)

'कुल्लियात-ए-अकबर' सैयद अकबर हुसैन 'अकबर' इलाहाबादी (दे०) का संपूर्ण काव्य-संग्रह है। यह कुल्लियात तीन खंडों में है। इस संग्रह में अकबर की ग़ज़लें, नज़्में, क़ते, और रूबाइयाँ इत्यादि सम्मिलित हैं। अकबर उर्दू-काव्य में हास्य-व्यंग्य के अद्वितीय रचयिता हुए हैं। इनकी अपनी शैली थी जिसका अनुकरण भी कोई अन्य कवि नहीं कर सका।

अकबर के काव्य में सुधारात्मकता का पक्ष प्रबल है। वे अपनी व्यंग्योक्तियों द्वारा समाज की कुरीतियों की सफल 'शल्यचिकित्सा' करते हैं। नई सभ्यता अर्थात् पाश्चात्य सभ्यता एवं फ़ैशन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर वे प्रबल प्रहार करते हैं। बुद्धू, जुम्मन, कल्लू, शेख़, ऊँट, रेलगाड़ी आदि सरल एवं हलके-फुलके शब्दों द्वारा वे प्रतीकात्मक शैली में गंभीर व्यंग्य कर जाते हैं। अकबर के काव्य की भाषा सरल एवं सहज है। अंग्रेज़ी के अनेक शब्द कवि ने बड़ी निपुणता से जगह-जगह जड़ दिए हैं जो नगीनों को-सी शोभा रखते हैं।

सुधारात्मक रचनाओं के अतिरिक्त अकबर की कुल्लियात में 'जल्वए-दरबारे-देहली', 'पानी का बहाव', 'बर्के-कलीसा' आदि कई शुद्ध साहित्यिक महत्व की कविताएँ भी सम्मिलित हैं।

कुल्लियात-ए-जुर्रत (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1805 ई०]

क़लंदर बख़्श 'जुर्रत' की कविताओं के इस संकलन में ग़ज़ल, रूबाई, मुख़म्मस, वासोख़्त और हिज्व आदि से संबद्ध रचनाएँ तो हैं किंतु क़सीदा का सर्वथा अभाव है। काव्य-कौशल की दृष्टि से जुर्रत का काव्य अनेक विशेषताओं का परिचायक है। इसमें मुहावरों का सशक्त प्रयोग और मनोरंजन का पुट देखते ही बनता है परंतु कहीं-कहीं उच्छृंखलता और अश्लीलता बहुत खटकती है। भाषा की शुद्धता और सरलता पर उन्होंने विशेष परिश्रम किया है। कला की दृष्टि से इनका काव्य यथेष्ट प्रौढ़ है। इसी प्रौढ़ता के कारण इनकी गणना काव्य-गुरुओं में भी की जाती है परंतु भाव-पक्ष दुर्बल है। काव्य में न तो गंभीरता है और न अनुभूति की प्रखरता ही है। शृंगारिक वर्णनों से भरपूर यह संकलन सामान्य कोटि का है। इसमें सर्वत्र इतिवृत्तात्मकता का ही प्राधान्य है। इसमें ऐसी सभी अभिरुचियों का परिचय मिल जाता है जो किसी पतनोन्मुख समाज में स्वाभाविक और अवश्यंभावी होती हैं।

कुल्लियात-ए-'नज़ीर' अकबराबादी (उर्दू० कृ०)

अठारहवीं शती के इस लेखक का पूरा नाम शेख़ वली मुहम्मद नज़ीर 'अकबराबादी' था। उच्च कोटि के कवि एवं कलाकार होने के कारण इन्हें 'तूती-ए-हिंद' के नाम से भी स्मरण किया जाता है। 'नज़ीर' की इस कृति में उनका समस्त काव्य संगृहीत है। रचयिता के अप्रकाशित काव्य को भी बड़े परिश्रम से इसमें संकलित किया गया है। मौलाना अब्दुलबारी साहब 'आसी' और मौलवी अशरफ़ अली लखनवी ने यथावसर पाद-टिप्पणियों एवं अन्य आवश्यक संकेतों से इस कृति की उपादेयता में अभिवृद्धि की है। बड़े आकार के 959 पृष्ठों की यह विशालकाय 'कुल्लियात' (काव्य-संकलन) अपनी कवित्व-शक्ति के बल पर यथेष्ट लोकप्रिय हुई है और इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इस कुल्लियात में 'नज़ीर' का फ़ारसी काव्य भी संगृहीत है। इसमें संकलित उर्दू काव्य भी मनोहारी और हृदयस्पर्शी है। कवि का प्रकृति-चित्रण बड़ा समृद्ध और सजीव है। साधारण-से-साधारण विषय को भी अपनी कला की तूलिका से उसने इस प्रकार चित्रित किया है कि वह असाधारण बन गया है। हिंदी-शब्दों का विन्यास इस काव्य में देखते ही बनता।

कुवलयानंद (सं० कृ०) [समय—सोलहवीं-सत्रहवीं शती]

'कुवलयानंद' प्रसिद्ध दार्शनिक, विद्वान् एवं आलंकारिक अप्पय दीक्षित की संभवतः अंतिम रचना है। अप्पय दीक्षित का समय सोलहवीं शती का अंत एवं सत्रहवीं का आरंभ है।

'कुवलयानंद' जयदेव की आलंकारिक कृति 'चंद्रालोक (दे०) के मूल पर आश्रित अर्थालंकारों का लक्षण उदाहरणपूर्वक सम्यक् विवेचन करती है। मूल कारिकाएँ प्रायः 'चंद्रालोक' की ही हैं; कुछ नई भी हैं जिनमें अलंकारों का लक्षण किया गया है। अनंतर वृत्ति में उसका विवेचन सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं गहन हुआ है। इस ग्रंथ में कुल 123 अलंकारों का निरूपण हुआ है जिनमें से 100 तो वे अलंकार हैं जिनका लक्षण चंद्रालोककार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ही किया था। अप्पय दीक्षित ने उनमें यथास्थान कुछ परिवर्तन करके उनकी व्याख्या लिखी है तथा काव्यों से उदाहरण देकर उसे निरूपित भी किया है। शेष 23 अलंकारों के लक्षणों एवं उदाहरणों का निरूपण इन्होंने स्वयं किया है। इनमें अनेक तो इनकी ही नवीन कल्पना हैं।

'कुवलयानंद' संस्कृत-अलंकारशास्त्र की उन तीन कृतियों में से एक है जो अलंकारों के विवेचन के लिए सर्वाधिक प्रामाणिक मानी गई हैं। सबसे बाद की होने से इसमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की मान्यताओं का सम्यक् रूप से विवेचन उपलब्ध होता है।

श्री अप्पय दीक्षित की मान्यता है कि लक्षण घट जाने मात्र से कोई रचना अलंकार की कोटि में नहीं आ जाती, अपितु उसे काव्य पहले होना चाहिए, अलंकार-विशेष बाद में। अप्पय दीक्षित ध्वनि-विरोधी आचार्य तो नहीं हैं परंतु रसवत् आदि के स्वतंत्र रूप से अलंकार होने का इन्होंने विधान किया है। अलंकारों के ज्ञान के लिए 'कुवलयानंद' का पठन-पाठन पर्याप्त प्रचलित है। यह एक लोकप्रिय रचना है।

कुवेंपु *(क० ले०)*

दे० पुटप्पा, के० वी०।

कुशल कोंवर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०; लेखक—सुरेंद्रनाथ शइकीया]

सन् १942 ई० के आंदोलन में शहीद कुशल कोंवर पर यह नाटक लिखा गया है। इसमें 1942 की दो समानांतर स्थितियों का चित्रण है : (1) स्वतंत्रता-आंदोलन की घटना, और (2) महायुद्ध के फलस्वरूप दुर्नीति और व्यभिचार की स्थिति। अतः आरंभ में नायक उपेक्षित हो गया है। नाटक के शेष भाग में नायक में गांधीवादी निर्भीकता एवं ईश्वर-विश्वास दिखाया गया है। सेना के भ्रष्ट ठेकेदारों और कर्मचारियों की जो चरित्र-हीनता चित्रित की गई है, उसका नायक के जीवन से कोई संबंध नहीं है। नायक को फाँसी दी गई है। इसमें ट्रेजडी का घनीभूत रस नहीं हैं, किंतु कारुण्य यथेष्ट है।

कुशळ लाभ *(गु० ले०)* [समय—1560 ई० के आसपास]

कुशळ लाभ जैन कवि थे। बहुत काल तक ये राजस्थान में, विशेषतः जैसलमेर में, रहे। 'माधवानल कामकंदला चउपइ' एवं 'ढोला मारूरी चउपइ' नामक दो प्रसिद्ध रचनाएँ इनके नाम से प्राप्त हैं। इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार कही जाती हैं—तेजसार रास, अगउदत्त चउपइ, स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन, गौड़ी छंद, नवकार छंद, भवानी छंद, पूज्य वाहण गीत, जिन-पालित जिन-रक्षित संधि गाथा, पिंगल शिरोमणि, देवीसातसी, शत्रुंजय संघ विवरण।

'ढोला मारूरी चउपइ' एक उत्तम प्रणय-विरह-काव्य है। 'माधवानल कामकंदला चउपइ' भी विप्रलंभ श्रृंगार की एक उत्तम रचना है। दोनों रचनाओं में विप्रलंभ श्रृंगार का सुंदर निरूपण हुआ है। इन दोनों रचनाओं में प्राचीन राजस्थानी का स्वरूप द्रष्टव्य है।

विप्रलंभ-श्रृंगार व प्राचीन राजस्थानी की भाषा-भूमिका के विचार से कुशळ लाभ व उनकी रचनाओं का प्राचीन गुजराती-भाषा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

कुसुमाग्रज, वि० वा० शिरवाडकर *(म० ले०)* [जन्म 1912 ई०]

ये नासिक के निवासी हैं और मराठी साहित्य क्षेत्र में कवि तथा नाटककार के रूप में विख्यात हैं।

काव्य-संग्रह—'जीवनलहरी,' 'विशाखा,' 'किनारा' 'मराठी माती'। 'जीवन-लहरी' इनका प्रथम काव्य-संग्रह है। इसमें रम्याद्‌भुत तत्त्व का प्राधान्य है। अन्य संग्रहों में कवि की व्यापक जीवन-दृष्टि पूर्णतः प्रतिफलित हुई है।

कुसुमाग्रज प्रगतिशील कवि हैं। इन्होंने दलितों के लिए अपार सहानुभूति व्यक्त की है और 'बळी', 'लिलाव' आदि कविताओं में अन्याय का उग्रता से विरोध किया है। सामाजिक-आर्थिक विषमता के निराकरण और अन्याय के प्रतिकार के लिए कवि क्रांति करने का पक्षपाती है। उसने शोषण-रहित शुद्ध मानवतावादी धरातल पर आधृत राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थापना का समर्थन किया है।

कुसुमाग्रज क्रांतिकारी कवि हैं। इनकी कविताएँ उद्‌बोधक, विद्रोही एवं राष्ट्रीय अभिमान को उत्तेजित करने वाली हैं। इनमें अपार स्वाभिमान की भावना है। सन् 1939 में डमडम कारागार में आमरण अनशन करने वाले क्रांतिकारियों के अदम्य उत्साह एवं भव्य भाव को लक्ष्य कर लिखी गई 'गर्जा जयजयकार क्रांतिचा गर्जा जयजयकार' कविता भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के वीरों की जिह्वा पर थी।

नाटक : 'दुसरा पेशवा' तथा 'कौंतेय' मौलिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक हैं। 'दूरचे दिवे' 'वैजयंती' तथा 'राजमुकुट' रूपांतरित हैं।

उपन्यास : 'वैष्णव' तथा' 'जाह्नवी'।

कुसुमावलि *(क० कृ०)*

इसके रचयिता देव कवि माने जाते हैं जिनका समय 1225 ई० ठहराया गया है। यह चिक्कराज चमूप के आश्रित एक ब्राह्मण कवि थे। 'कुसुमावलि' एक प्रेमाख्यान-काव्य है जो चंपूशैली में रचा गया है। इसकी कथा यों है—मदनावती नामक नगरी का राजा मणिकुंडल एक दिन चित्रकूट की तराई में कपिल ऋषि के यहाँ एक सुंदरी को देखता है। उसकी खोज में राजा और मंत्री चल पड़ते हैं। कपिलाश्रम में पहुँचने पर उन्हें वहाँ एक स्त्री की प्रतिमा दीख पड़ती है। ऋषि से उसके बारे में पूछने पर वे यों कहते हैं—विमल पुरी के राजा विश्वंभर ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ के द्वारा कंदर्प नामक पुत्र प्राप्त किया था। जब वह बड़ा हुआ तो उसने कहीं टँगे हुए कुसुमावति के चित्र को देखा, उस पर मोहित हुआ और कुसुमावलि की खोज में मंत्रीपुत्र के साथ चल पड़ा। रास्ते में कौशिक ऋषि से उसने दिव्यास्त्र प्राप्त किए। पद्मपुर आकर वहाँ के राजा वज्रजंघ के वैरी सिंहवर्मा को मारा और उससे कुसुमावलि का पता जान लिया। चक्रवाकपुर के राजा चंद्रोदय की पुत्री कुसुमावलि भी कंदर्प देव पर मोहित हो चुकी थी। सखी के माध्यम से काली के मंदिर में दोनों का मिलन हुआ। कंदर्प अपने साथी को वहीं छोड़ कर कुसुमावलि के साथ घोड़े पर चढ़े अपने घर लौट रहा था कि रास्ते में एक सिंह से सामना हो गया। वह उससे जूझने लगा। घोड़ा डर गया। वह कुसुमावलि को लेकर भागा और कुसुमावलि धीवरों के हाथों में पड़ गई। वहाँ से भाग कर वह कपिल ऋषि की शरण में आई। उन्होंने उसे बचाने के लिए एक शिलामूर्ति के रूप में परिणत कर दिया। इधर कंदर्प सिंह को मार कर लौटा तो कुसुमावलि गायब थी। उसकी खोज में भटकते हुए वह भी कपिलाश्रम में आया। कुसुमावलि और कंदर्प का समागम हुआ। दोनों के माँ-बाप वहाँ आए। कहानी बहुत ही रोचक है। इस पर नेमिचंद्र की 'लीलावती' (दे०) का विपुल प्रभाव है। शृंगार इसका प्रभावी रस है। यह मध्यम श्रेणी का काव्य है। शैली में प्रवाहमयता है।

कुहर सिंह (केअर सिंह) *(पं० ले०)*

इस कवि का समय सन् 1734 माना जाता है। इसका निवास-स्थान लाहौर था। ये 'गुरुविलास' (छठी पातशाही) के लेखक भाई मनीसिंह के लाहौर बंदी-गृह में रखे जाने के समय (1738 ई०) लाहौर में ही उपस्थित थे। भाई मनीसिंह के द्वारा 'गुरुविलास' (दे०) कथा अपने बंदी साथियों को सुनाई गई। कथा पहरेदार तुर्क सिपाही ने कुहर सिंह कलाल को सुनाई थी। इस लेखक ने श्रुत कथा को सन् 1741 में ग्रंथ-रूप में बाँध दिया। रचनाकार के ग्रंथ लिखने के संबंध में ये शब्द प्रमाण हैं—

संवत् सत्रह सहस इकावन।
मास अषार सुकल वर पावन।
दहै बीच तुरकान को मेला।
तब ही मिरल गुरु संग चेला।
पंचम मित भूमन सुभ वारो।
लवपुर माहँ देह बिनसारो।
जाहि निखासत खाना कह्यौ।
सौदागर को थान सुलह्यौ।
सीस दइ सिंहन लियो थाना।
बली सहीद भये तिंह माना।
सरब अस्थान सिंहन कहिये।
जोय नखासत खाना लहिये।
तिन की लिखी सु साखी होई।
बदूअन बीच जात अति सोई।
करे टहल तिन की बड़ माना।
खिजमत खान बहादर जाना।
राखा तितकर रहै अपारा।
सरन न आयो खालसा मारा।
कुहर सिंह कलाल अति जोई।
रहै कंबोअन आँगन सोई।
नाम मन्नी सिंह हौ भाई।
पूख खंडे पाहल न खाई।
जब नौकरी ते भये बैरागी।
सुनत साखियन मन अनुरागी।
मनी सिंह ऐ बचन अखाए।
सुनो खालसा जी चितलाये।
इह धरमग्ग कथा मैं भाखी।
बड़ विस्थार सूखम कर भाखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो०—अठदस सम्मत प्रथम वर मास कुआर जो आहि ।
पुस्तक भयो संपूरन चंद सनज दिन माहि ।
असूज वदी एकादशी बुधवार संवत 1808 ॥
(पन्ना 219)

कूट्टुकृषि *(मल० कृ०)*

यह इटश्शेरि (दे०) गोविंदन् नायर् का सामाजिक नाटक है। इसमें एक गाँव के किसानों के जीवन में होने वाली कठिनाइयों की करुण कथा कही गई है। अंत में सारे कृषक मिलकर अपनी समस्या का हल निकालते हैं; और वह हल है सहकारी कृषि।

कृषक-जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण मलयाळम के और किसी नाटक में नहीं हुआ है। मिट्टी से युद्ध करने वाले इन अपाहिजों में हुई नई चेतना के वर्णन में भी नाटककार सफल हुए हैं। इस दृष्टि से इसे राजनीतिक नाटकों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

मलयाळम के सामाजिक-राजनीतिक नाटकों में 'कूट्टुकृषि' का स्थान महत्वपूर्ण है।

कूत्तु *(त० पारि०)*

कूत्तु का शाब्दिक अर्थ है नृत्य। प्राचीन तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) के पुहारक्काण्डम् में तत्कालीन तमिल समाज में प्रचलित ग्यारह प्रकार के नृत्यों का वर्णन है। वे नृत्य हैं—कोडुकोट्टि आडल्, पाण्डरंगक्कूत्तु, अल्लिय तोकुदि, मल्लाडल, तुडिक्कूत्तु, कुडैक्कूत्तु, कुडक्कूत्तु, पेडिक्कूत्तु, मरक्कालकूत्तु, पावैक्कूत्तु और कडैयक्कूत्तु। विभिन्न कालों में देवताओं द्वारा असुर-संहार के लिए अपनाई गई युद्ध-रीतियों के रूप में इन नृत्यों की चर्चा होती है। इन नृत्यों के अतिरिक्त 'आयच्चियर कुरवै' शीर्षक अध्याय में अहीर बालाओं द्वारा किए गए कुरवैक्कूत्तु का वर्णन है।

संघकालीन कृतियों में वर्णित कुछ अन्य कूत्तु के नाम इस प्रकार हैं: वेट्टुव वरिक्कूतु—शिकारियों का सामूहिक नृत्य; वळ्ळिक्कूत्तु—स्कन्द देव के मंदिर में नारियों का नृत्य; अल्लिक्कूत्तु—किसी राजा की विजय पर किया जाने वाला नृत्य; वेलनक्कूत्तु—स्कन्द द्वारा आवेशित व्यक्ति का नृत्य आदि। वरिक्कूत्तु पति-पत्नी की प्रेम-भावनाओं को व्यक्त करने वाला नृत्य है। इसके आठ प्रकार होते हैं।

कूलकथाओ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

सामान्य व्यक्तियों के महान गुणों की सच्ची घटनाएँ स्वामी आनंद (दे०) के इस के ग्रंथ में प्रस्तुत की गई हैं। बड़े-बड़े उद्योगपतियों के पूर्वज अत्यंत निर्धन अवस्था में किस तरह बंबई आए और कठिनाइयाँ सहकर धीरे-धीरे किस प्रकार महान उद्योगपति बने—इसकी रोचक कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं। खटाऊ, ठाकुरसी, वसनजी इत्यादि के पूर्वजों की कथाएँ दी गई हैं। इस पुस्तक को गुजराती साहित्य-परिषद् तथा साहित्य-अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

कृत्तिवास ओझा *(बँ० ले०)*

अनुमान से इनका जन्म पंद्रहवीं शताब्दी के शेषार्द्ध में हुआ था। नदिया ज़िले का फुलिया ग्राम इनका जन्म-स्थान है। इनके पिता का नाम वनमाली एवं माता का मेनका कहा जाता है। इनके पितामह मुरारि ओझा विख्यात और कुलीन पंडित थे। ये जाति के ओझा. उपाध्याय-ब्राह्मण, थे। गौड़ेश्वर की सभा से इनका संबंध था—ऐसा विद्वानों का अनुमान है।

इनकी प्रसिद्ध कृति 'रामकथा-काव्य' अथवा 'श्रीराम-पांचाली' (दे०रामायण) है। वाल्मीकि रामायण का जो कथा-रूप बंगाल में प्रचलित है उसको आधार बनाकर इन्होंने राम-कथा लिखी थी। इनकी मूल रचना नहीं मिलती। अब से डेढ़ सौ–दो सौ वर्ष पूर्व लिपिकारों ने स्वेच्छानुसार परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किए हैं, अतः ग्रंथ मूल रूप में तथा भाषा के स्तर पर विकृत मिलता है। अनेक अंश प्रक्षिप्त हैं।

ये बंगाल के लोकप्रिय, प्रसिद्ध तथा प्राचीनतम कवि हैं। बंगाल के घर-घर में श्रद्धा एवं भक्ति से रामायण पढ़ी जाती है। यह अत्यंत रोचक, सरस एवं मधुर काव्य है। 500 वर्षों से यह ग्रंथ बंगालियों के हृदयों में भक्ति एवं श्रृंगार का संचार कर रहा है।

कृत्तिवास *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

'कृत्तिवास' शिवकुमार जोशी (दे०) द्वारा रचित एक त्रि-अंकी नाटक है। हाथी की खाल लपेटने के कारण शंकर (जो भीलनी पर मोहित हो गए थे) का एक नाम कृत्तिवास है। इसी आशय को ध्यान में रख लेखक ने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक में प्रियंकर नामक पात्र के माध्यम से, भौतिक उन्नति और विज्ञान की असीम उपलब्धियों के बीच में रहता हुआ मनुष्य किस प्रकार अपनी सीमाओं से परेशान है, इसका मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है। वर्षों से साधु और निःस्पृह जैसे दिखाई देने वाले प्रियंकर के चरित्र का उद्‌घाटन उषसी के द्वारा प्रयुक्त दो प्रतीकों से हो जाता है। वह अपने पति प्रांजल से बात करती हुई कहती है कि 'उन्हें (प्रियंकर को) कवर की नहीं कवच की आवश्यकता है; छबड़ी में पूरियाँ ही रखी जा सकती हैं, दाल के लिए तो कमंडल ही चाहिए।' इन्हीं मर्मभेदक सूक्तियों से प्रियंकर चिंतित हो उठता है और अवंतिका के साथ विवाह करने की बात छोड़ कर निश्चय करता है कि मुझे अपने को तपा कर अपना कवच खुद बनना होगा। मनुष्य ने जो ओढ़ रखा है वह गैंडे की खाल नहीं, हाथी की है जो अभेद्य नहीं है।

कृपाराम *(हिं० म०)* [समय—सोलहवीं शती]

कृपाराम का प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिततरंगिणी' (दे०) है जिसकी रचना सन् 1541 में हुई। यह ग्रंथ नायक-नायिका-भेद विषयक है, जिसमें अधिकांशतः भानुमिश्र की 'रसमंजरी' (दे०) का आधार ग्रहण किया गया है तथा कुछ भेद भरत के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) से भी गृहीत हैं, जिसकी ओर स्वयं लेखक ने भी संकेत किया है। यद्यपि वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इस ग्रंथ में कोई विशेषता नहीं है, इसके परवर्ती सभी नायक-नायिका-भेद-विषयक ग्रंथ लगभग इसी प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करते हैं, फिर भी, हिंदी साहित्य में अपने प्रकार का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ होने के कारण इसका निजी महत्व है। इसकी रचना भक्तिकाल में ही हो गई थी। भक्तिकालीन अन्य सभी रचनाएँ—'साहित्यलहरी' (दे०) (सूरदास), रसमंजरी (नंददास), बरवै नायिका-भेद (रहीम) इसके बाद की हैं, और रीतिकाल में आकर तो इस प्रकार के ग्रंथों की बाढ़-सी आ गई। इस दृष्टि से कृपाराम का ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट है। उदाहरणों की सरसता की दृष्टि से भी यह ग्रंथ उल्लेखनीय है।

कृपासागर, लाला *(पं० ले०)* [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1939 ई०)

लाला कृपासागर की कीर्ति का आधार है उनका महाकाव्य 'लक्ष्मीदेवी' (दे०)। यह महाकाव्य अँग्रेज़ी कवि सर वाल्टर स्कॉट की रचना 'लेडी ऑफ़ द लेक' पर आधृत है। परंतु, इस महाकाव्य में कवि ने नवीन प्रसंगों की उद्‌भावना और मौलिक कल्पना द्वारा कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण का जैसा नूतन विधान किया है, वह इसे एक श्रेष्ठ काव्य-कृति बना देता है। यह पंजाबी का पहला महाकाव्य है जिसमें रूपक-पक्ष का भी सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। इस दृष्टि से यह नवरस सिद्ध महाकाव्य है जिसमें प्रकृति का भव्य और सुंदर चित्रण है।

इनकी छोटी कविताओं का एक संग्रह 'मन-तरंग' भी छप चुका है।

कृशनचंदर *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1914 ई०; मृत्यु—1977 ई०]

उर्दू के प्रगतिशील लेखकों में कृशनचंदर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म पंजाब में हुआ और बचपन कश्मीर में बीता। उच्च शिक्षा इन्होंने लाहौर में पाई। कृशनचंदर प्राकृतिक दृश्यों को लेकर अपनी कहानी की आधारभूमि तैयार करते हैं। इन दृश्यों का अवलंब लेकर ये पाठकों का जीवन के तीखे और कड़वे यथार्थ से सामना करा देते हैं, जैसा कि 'गुलफ़रोश' कहानी में है। कृशनचंदर यथार्थवादी लेखक हैं। 'ज़िंदगी के मोड़ पर' (दे०) इनके जीवन-दर्शन की द्योतक है। वे वर्तमान समाज पर कठोर आघात करते हैं और उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करते हैं। कभी-कभी इनके लेखन में इनका भावावेश भी अभिव्यक्त होता है।

कृशनचंदर की कहानियों में रोमान और यथार्थ का सुंदर समन्वय, विस्तृत अध्ययन, समाज की वर्तमान आर्थिक व्यवस्था से घृणा, एक साथ तीखे व्यंग्य तथा हास्य का आनंद और मनोविज्ञान का गंभीर अध्ययन पाया जाता है। भाषा तथा शैली के विचार से ये मुंशी प्रेमचंद के कार्य को और आगे बढ़ाने वाले हैं।

कृशनचंदर के कई कहानी-संग्रह हैं जिनमें 'ज़िंदगी के मोड़ पर' (दे०) और 'टूटे हुए तारे' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी साम्यवादी विचारधारा की कहानियों का संग्रह 'नज़ारे' प्रशंसनीय है। देश-विभाजन की पीड़ा को इन्होंने 'हम वहशी हैं' में संगृहीत कहानियों में अछूते ढंग से व्यक्त किया है। 1977 ई० के पूर्वार्ध में 63 वर्ष की अवस्था में इनका निधन हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण *(सं० पा०)*

कृष्ण 'महाभारत' (दे०) के प्रमुख पात्र हैं। ये वसुदेव और देवकी के पुत्र थे। इनका जन्म मथुरा में वसुदेव के शत्रु कंस के कारागार में हुआ और लालन-पालन गोकुल में नंद और उसकी पत्नी यशोदा द्वारा किया गया। इन्होंने बाल्यकाल में पूतना, तृणावर्त, बकासुर, वत्सासुर, अघासुर धेनुकासुर, प्रलंबासुर अरिष्ट, व्योम तथा केशि का वध किया। कालियनाग का मर्दन किया। कुपित इंद्र द्वारा कराई गई अतिवृष्टि के प्रकोप से इन्होंने गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठाकर गोकुलवासियों की रक्षा की। कंस द्वारा भेजे गए चाणूर और मुष्टिक मल्लों का वध किया। कुवलयापीड हाथी को भी मार गिराया। अंततः कंस का भी वध किया। इन्होंने सांदीपनी नामक गुरु से शिक्षा ग्रहण की, तथा 64 दिनों में ही वेदों का तथा धनुर्वेद का अध्ययन किया।

इन्होंने भीष्मक राजा की कन्या रुक्मिणी का हरण किया। जांबवती तथा सत्यभामा से इनका विवाह हुआ तथा कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या (नाग्नजिती), भद्रा, कैकेयी तथा लक्ष्मणा (सुलक्षणा) का हरण करके इन्होंने इनसे विवाह किया। नरकासुर का वध करके उसके कारागार में कैद सोलह हज़ार स्त्रियों को मुक्त कर इन्होंने उनसे विवाह किए। कृष्ण के 80 हज़ार पुत्र थे।

कंस-वध से क्रुद्ध जरासंध ने (जो कि कंस का दामाद था), इन्हें पर्याप्त भयभीत किया तथा इन्होंने अंततः इसका भीम (दे०) द्वारा वध करा दिया। इन्होंने राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का सुदर्शन-चक्र से वध किया।

महाभारत के युद्ध में इन्होंने पांडवों के पक्ष में होकर अर्जुन (दे०) के सारथि रूप में कार्य करते हुए जो उपदेश दिया वह 'भगवद्गीता' (दे० गीता) नाम से प्रसिद्ध है। इससे अर्जुन को पर्याप्त उत्साह मिला। इस युद्ध में इन्होंने पांडवों की अनेक रूपों से सहायता की। रथ के अश्वों की सेवा की। रथ को पाँच अंगुल धरती में गाड़कर कर्ण के सर्पयुक्त बाण से अर्जुन की रक्षा की। अंधकार उत्पन्न करके अर्जुन द्वारा जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा पूरी करायी। द्रोण-वध के लिए युधिष्ठिर (दे०) को असत्य-भाषण की सलाह दी। दुर्योधन (दे०) की जांघ पर भीम द्वारा गदा-प्रहार कराके उसका वध कराया। अश्वत्थामा के अस्त्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा की।

इनकी मृत्यु जरा नामक व्याध द्वारा तलुवे में तीर लगने से हो गई। उस समय इनकी आयु 125 वर्ष से अधिक थी।

इन्हें हिंदू लोग भगवान् का अवतार मानते हैं, तथा बालकृष्ण, मुरलीधर, गोपाल, भगवान् कृष्ण आदि अनेक रूपों में इनकी उपासना करते हैं। इन्होंने अपने जीवन-काल में अनेक बार विश्व रूप का दर्शन कराकर विकट समस्याओं का समाधान कर विपत्ति का निवारण किया। भक्तजन इनके इस रूप की भी उपासना करते हैं। इनकी बाल-सखी राधा भी भक्तों की उपास्या है, तथा 'राधाकृष्ण' की भी भक्तजन उपासना करते हैं। इनके भाई (नंद-पुत्र) बलराम को भी इनके नाम के साथ जोड़कर कृष्ण-बलदेव की जयजयकार की जाती है। द्रौपदी (दे०) के कौरवों द्वारा चीर-हरण के समय ये अपने अद्भुत चमत्कारपूर्ण कृत्य से उसकी साड़ी में इतनी अधिक वृद्धि करते गए कि वह समाप्त होने में न आई—भक्तजन इन्हें 'द्रौपदी-रक्षक' रूप में भी स्मरण करते हैं। भारतीय जन-जीवन में राम के अतिरिक्त कृष्ण के जीवन को भी एक आदर्श माना जाता है। भारत की सभी भाषाओं के कविगण शताब्दियों से इनकी गौरव-गाथा वर्णित करते चले आए हैं।

कृष्णकांतेर उइल *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1878 ई०]

'विषवृक्ष' (दे०) के समानांतर रचना होते हुए भी यह अपेक्षाकृत परिपक्व एवं यथार्थोन्मुख उपन्यास है। कथा का ढाँचा मिलता-जुलता है। गोविंदलाल अपनी पत्नी भ्रमर के साथ सुखी जीवन बिता रहा है। उसका परिचय रोहिणी से होता है। वह विधवा है। उसका सम्मोहन बढ़ने लगता है, इसलिए भ्रमर यह अपमान न सहकर पिता के घर चली जाती है। गोविंदलाल रोहिणी से विवाह करता है। उसके बाद उसकी आँखें खुलती हैं। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से बंकिम ने अपने कौशल का परिचय दिया है। पात्रों का रेखांकन अधिक यथार्थ एवं प्रभावशाली है। गोविंद, भ्रमर और रोहिणी तीनों सशक्त पात्र हैं।

उपन्यास का लक्ष्य नैतिक मूल्यों की स्थापना है। यहाँ लेखक ने नियति से कहीं अधिक नीति का आश्रय लिया है। यह बंकिम की सर्वश्रेष्ठ सामाजिक रचना है जिसमें उन्होंने अपनी औपन्यासिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण-काव्य *(पं० प्र०)*

आदि ग्रंथ में श्रीकृष्ण का नाम शाम आदि के अभिधान से आया है। काव्य-परंपरा में गुरु गोविंदसिंह (दे०) का 'चौबीस अवतार' कृति में 'कृष्णावतार' महत्व-पूर्ण रचना है। श्रीकृष्ण के लीलामय रूप के अतिरिक्त योगिराज का रूप अधिक आकर्षक चित्रित हुआ है। केशवदास-कृत 'बारह माह कृष्ण जी का' दूसरी कृति है। दोनों कृतियों की भाषा ब्रज है।

कृष्णकुमारी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1861 ई०]

यह माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इसकी कथा 'टॉड राजस्थान' में से ली गई है। उदयपुर के राजा भीमसिंह की बेटी कृष्ण-कुमारी के दो प्रणय प्रार्थी हैं—जयसिंह तथा मानसिंह। भीमसिंह विचित्र संकट एवं तनाव में है। अगर वह कृष्णकुमारी का विवाह उसकी पसंद के व्यक्ति मानसिंह से करे तो जयसिंह शांत नहीं रहेगा और सारा देश द्वेष एवं क्रोध के युद्ध से जल उठेगा। यदि वह देश की एकता, शांति और गौरव की रक्षा करे तो बेटी के जीवन की आहुति देनी पड़ेगी। कृष्णकुमारी ने अपने जीवन की बलि अवश्य दी थी परंतु भीमसिंह दुःख और ग्लानि से बच न सका। नाटक में संघर्ष बाह्य एवं आंतरिक दोनों स्तरों पर उभरा है। सर्वाधिक सशक्त पात्र है भीमसिंह जो पिता की ममता तथा राजा के कठोर कर्तव्यनिष्ठ आचरण के द्वंद्व में फँसा हुआ है। कृष्णकुमारी का व्यक्तित्व भी प्रभाव-शाली है परंतु साधारण पात्रों में धर्मदास तथा मदनिका उल्लेखनीय हैं। इस नाटक का वातावरण स्वच्छंद है। इस पर पश्चिमी नाट्य-शिल्प का गहरा प्रभाव पड़ा है। अभिनय की दृष्टि से यह निर्दोष नहीं है।

'कृष्णकुमारी' बँगला का पहला सर्वश्रेष्ठ ऐति-हासिक नाटक है जिसमें युग के संदर्भ में जातीय गौरव और त्याग की भावना प्रस्तुत की गई है। 'कृष्णकुमारी' को पहला सफल दुःखांत नाटक होने का भी गौरव प्राप्त है।

कृष्णगाथा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

यह मलयाळम का सर्वप्रथम महाकाव्य है। चेरुश्शेरि (दे०) नम्पूतिरि की इस कृति के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि इसकी रचना कवि के अभिभावक राजा उदयवर्मा के आदेश पर हुई थी। कहा जाता है कि जब कवि और राजा शतरंज खेल रहे थे तो रानी ने लोरी के बहाने कुछ गुनगुनाया था जिसमें शतरंज की एक चाल का संकेत था। राजा ने संकेत ग्रहण करने के अलावा रानी के मुख से निकले छंद में एक कृष्ण-काव्य की रचना का आदेश भी कवि को दिया था।

'कृष्णगाथा' के साथ ही मलयाळम की साहि-त्यिक भाषा परिपक्वता के स्तर पर पहुँच गई थी। कवि ने उस समय प्रचलित संस्कृत-मंडित मणिप्रवाल (दे०) शैली के स्थान पर लोक-शैली के छंद और काव्य-भाषा को अपनाया था। यद्यपि कवि ने काव्य-लक्षणों के सूत्रों के आधार पर काव्य-रचना का प्रयत्न नहीं किया था, तो भी इसमें उत्तम काव्य के सभी लक्षण दर्शनीय हैं। 'कृष्ण-गाथा' तुंचत्त् एवुत्तच्छन (दे०), कुंचन् (दे०), नंपियार जैसे कवियों के लिए मार्गदर्शक रही है। सरस और मधुर भाषा काव्य की लोकप्रियता में सहायक रही है। कवि की चमत्कारपूर्ण रस-व्यंजना के अतिरिक्त उनका सन्मार्ग-प्रेरक दार्शनिक भी काव्य के महत्व को बढ़ाता है। मलया-ळम का यह गौरव-ग्रंथ भारतीय भाषाओं के कृष्णकाव्यों के मध्य मुख्य स्थान को अलंकृत करता है।

कृष्ण-चरित्र *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1892 ई०]

नई शिक्षा-दीक्षा के उद्दाम प्रवाह में नव्य हिंदू समाज अपने धर्म की चर्चा से वितृष्णा करने लगा था। उसे पश्चिम की प्रत्येक प्रवृत्ति अनुकरणीय लगती है। ऐसे आत्म-विस्मृति के युग में बंकिम (दे०) ने पश्चिम की वैज्ञानिक दृष्टि और नई विचारधारा का अध्ययन किया और अपने अवतार-पुरुष को 'पश्चिमी परिप्रेक्ष्य' में प्रस्तुत किया ताकि अँग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त समाज उसे समझे और ग्रहण कर सके। इस दृष्टि से उन पर कई पश्चिमी दार्शनिकों का—विशेषतः कांट का प्रभाव पड़ा। लीलाकार कृष्ण की अविश्वसनीय सी अलौकिक लीलाओं को उन्होंने निकाल दिया और इसके स्थान पर उन्होंने ऐसे कृष्ण की कल्पना की जो महामानव हैं। उनके निष्काम कर्म तथा लोक-हित-भावना जैसे आदर्शों की उपयोगिता आज भी उतनी ही है। बंकिम को साफ़ दिखाई दे रहा था कि इस समाज को हरिकृष्ण की नहीं, कर्मयोगी कृष्ण की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति के प्रति अबाध आस्था से अनुप्राणित होकर ही बंकिम ने अपने युग को नया संदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। उनके इस अविस्मरणीय योगदान की सही सराहना रवींद्र (दे०) ने की है।

कृष्ण चैतन्य (के० के० नायर) *(मल० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

श्रीकृष्ण चैतन्य मलयाळम और अँग्रेज़ी के प्रमुख समालोचक हैं। इन्होंने विश्व की अनेक भाषाओं के साहित्यों का गंभीर अध्ययन किया है और उनके शोधपूर्ण इतिहास प्रकाशित किए हैं। अरबी, लेटिन, यूनानी, मेसोपोटेमियन, यहूदी, रोमन और संस्कृत के साहित्यों के इतिहास इन्होंने मलयाळम में प्रकाशित किए हैं। ये पुस्तकें बीस भागों वाली विश्व-इतिहास-माला के अंतर्गत अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित हो रही हैं। कृष्ण चैतन्य उच्च कोटि के कला-मर्मज्ञ और पत्रकार भी हैं।

कृष्ण दयार्णव *(म० ले०)*

इनके पिता का नाम नारायण और माता का बहिणादेवी था। दुर्भाग्य से कवि रक्तपित्त की व्याधि से अंत में जर्जर हो गया था, दारिद्र्य की दारुण व्याधि से भी वह आजीवन पीड़ित रहा। फिर भी काव्य-रचना की भी अदम्य लालसा उसमें अंत तक प्रबल बनी रही। कृष्ण दयार्णव ने 'भागवत' (दे०) दशम स्कन्ध पर 'हरिवरदा' (दे०) शीर्षक भाष्य लिख कर अपने को साहित्य-इतिहास में चिर-स्थायी बना लिया है। इसमें 87 अध्याय और बयालीस हज़ार ओविया हैं। ग्रंथ पूर्ण होने से पूर्व ही इनका स्वर्गवास हो गया था और बाद में इनके शिष्य उत्तम श्लोक ने शेष ग्रंथ को पूर्ण किया था। इस सरस ग्रंथ के अतिरिक्त इन्होंने 'तन्मयानंद बोध' नामक एक अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ की रचना की है।

कृष्णदास कविराज *(बँ० ले०)*

कृष्णदास कविराज का जन्म अनुमानतः सन् 1517 के आसपास हुआ था। इनके पिता का नाम भगीरथ था। ये वैद्य (ब्राह्मण) वंश के थे एवं वर्द्धमान ज़िले के झामटापुर ग्राम के निवासी थे। जब ये छह वर्ष के थे तब इनके पिता का देहांत हो गया। ये वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गए थे और फिर इन्होंने विवाह नहीं किया। शैशवावस्था से ही कष्टमय जीवन व्यतीत करने के बाद प्रौढ़ आयु में ये वृंदावन में आकर बस गए थे।

कृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरितामृत' (दे०) गौड़ी वैष्णव-साधना एवं वैष्णव-तत्त्व का प्रामाणिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ इन्होंने 80-85 वर्ष की आयु में पूर्ण किया था। इनका एक ग्रंथ 'गोविंद लीलामृत' संस्कृत में है।

कृष्णदास कविराज विद्वान, रसवेत्ता एवं कवित्व-प्रतिभा-संपन्न महापुरुष थे। इन्होंने सनातन (दे०) एवं रूप गोस्वामी (दे०) से आध्यात्मिक शिक्षा और श्रीदास, लोकनाथ गोस्वामी, गोपालभट्ट प्रभृति व्यक्तियों से चैतन्य महाप्रभु का मौखिक वृत्त प्राप्त किया था। चैतन्य भागवत (दे०) (वृंदावनदास), चैतन्य चंद्रोदय (कवि कर्णपुर) तथा मुरारि गुप्त और स्वरूप दामोदर के कड़छा को आधार बना कर इन्होंने 'चैतन्य चरितामृत' (दे०) की रचना की है।

'चैतन्य चरितामृत' में काव्य, नाटक, व्याकरण, स्मृति, पुराण, सांख्य, वेदांत, तंत्र, रामायण, महाभारत, सभी संस्कृत-ग्रंथों के संदर्भ यथा-प्रसंग मिलते हैं। पयार एवं त्रिपदी छंद में इन्होंने वैष्णवोचित विनय, भक्ति की व्याख्या एवं संस्कृत ग्रंथों का सार एकत्र कर दिया है। कवि की बँगला भाषा पर वृंदावन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। वैष्णव साहित्य के श्रेष्ठ ग्रंथों में 'चैतन्य चरितामृत' का स्थान अन्यतम है।

कृष्णदेवरायलु *(ते० ले०)* [समय—1471-1530 ई०]

ये दक्षिण के विजयनगर राज्य के सुप्रसिद्ध राजा थे। इन्होंने दक्षिण में मुसलमानी प्रभुसत्ता को अत्यंत सफलतापूर्वक रोक दिया था और कटक से कन्याकुमारी तक अपने राज्य का विस्तार किया था। ये न केवल एक शक्तिशाली राजा थे बल्कि बड़े विद्वान तथा विख्यात कवि भी थे। ये अच्छे कलाकार थे और साथ-साथ कलापोषक भी। इनकी साहित्य-सभा 'भुवनविजय' (दे०) नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसमें 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ महाकवि विराजमान रहते थे। बताया जाता है कि ये लड़ाई के मैदान में जाते समय भी कवियों को साथ ले जाते थे। इन्होंने कई काव्य लिखे तथा अपने दरबार के कवियों से लिखवाए थे। इन्होंने 'आमुक्तमालयदा' (दे०) नामक प्रसिद्ध तेलुगु काव्य की रचना की। इसकी अवतारिका से पता चलता है कि इन्होंने 'मदालसचरित्र', 'सत्यावधूप्रीणन', 'सकलकथासारसंग्रह',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्ञानचिंतामणि', 'रसमंजरी' आदि अनेक संस्कृत-काव्यों की भी रचना की थी। किंतु ये ग्रंथ आज अनुपलब्ध हैं।

ये विष्णु के उपासक थे। अत: इनकी रचनाएँ प्रायः विष्णुभक्ति से संबद्ध हैं। 'आमुक्तमालयदा' का कथानक गोदादेवी (दे०) तथा श्रीरंगेश्वर की प्रणयकथा से संबद्ध है। इस तेलुगु प्रबंध (-काव्य) के अंतर्गत पाए जाने वाले खांडिक्य केशिध्वजोपाख्यान, यामुनाचार्य-चरित्र, मालदासरिकथा आदि अनेक अंश विष्णु-भक्ति से ओतप्रोत हैं। इस रचना में पांडित्य-प्रदर्शन के कारण कुछ क्लिष्टता अवश्य आ गई है किंतु सरस तथा सहज वर्णनों और मार्मिक चरित्र-चित्रण के द्वारा यह अपनी विशिष्टता प्रकट करती है। एक शासक होते हुए भी प्रकृति-परिशीलन और साधारण जन-जीवन के चित्रण में इन्होंने जो क्षमता दिखाई है वह सचमुच अनुपम तथा प्रतिभापूर्ण है।

कृष्णदेवरायलु और उनके दरबारी कवि अपनी-अपनी रचनाओं के द्वारा तेलुगु साहित्य के अंतर्गत 'स्वर्णयुग' के प्रवर्तक बन गए हैं। ये 'आंध्र भोज' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कृष्णपक्षमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1925 ई०; कृतिकार—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री (दे०)]

'कृष्णपक्षमु' भावकविता (दे०) की सर्वोत्तम रचना है। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत देश में फैली हुई निराशा एवं अवसाद के फलस्वरूप आत्माश्रयी काव्यधारा —भावकविता का प्रादुर्भाव हुआ था। कृष्णपक्षमु का यह प्रगीत-संग्रह इस धारा का प्रतिनिधि है। इसमें कवि ने समाज का पूर्ण तिरस्कार कर केवल अपने हृदय में उठने वाली भावतरंगों को स्वच्छंद होकर अभिव्यक्त किया है। इसमें असफल प्रेम, आध्यात्मिक दृष्टि, विषाद, किसी अलौकिक सौंदर्य की लालसा की पीड़ा, प्रकृति-प्रेम, उसके पत्रों, फूलों, शाखाओं एवं पक्षियों के साथ एकाकार होकर दिव्य आनंद पाने की कामना आदि की अभिव्यक्ति अत्यंत मौलिक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से हुई है।

सर्वथा नूतन भावों के साथ-साथ तेलुगु भाषा के सहज सौंदर्य का निखार भी इस काल में प्रकट हुआ है। भावों की स्निग्धता एवं सूक्ष्मता के अनुरूप भाषा भी अपूर्व मार्दव एवं व्यंजना-शक्ति को लेकर इसमें प्रकट हुई है। कृष्णशास्त्री ने अपनी एक विशिष्ट शैली का निर्माण इसी के प्रगीतों में किया था। जीवन के अंधकारमय 'कृष्ण-पक्ष' के रोदन को उदात्त एवं भव्य अभिव्यक्ति देकर, शोक में ही अतींद्रिय सुख का अनुभव करके, कवि ने यहाँ परम सिद्धि प्राप्त की है।

कृष्ण पिळ्ळा, ई० वी० *(मल० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध निबंधकार और नाटककार थे। महान उपन्यासकार सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) इनके श्वशुर और साहित्यिक गुरु थे। ये सरकारी नौकर, वकील और संसद-सदस्य रहे हैं। 'मलयाळ राज्यम्', 'मनोरमा' आदि समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं से इनका संबंध था और 'सेविनी' नामक एक मासिक का संपादन भी इन्होंने किया है। ये सफल अभिनेता भी थे।

इनके महत्वपूर्ण लेख 'चिरियुम् चिंतयुम्' (दे०) में संगृहीत हैं। 'राजा केशवदासन्' (दे०), 'इरविक्कुट्टि पिळ्ळा', आदि ऐतिहासिक नाटक हैं और 'बी० ए० मायावि', 'प्रणय कमीशन' आदि प्रहसन। 'जीवितस्मरण-कळ्' आत्मकथा है। इन्होंने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं।

ई० वी० कृष्ण पिळ्ळा का व्यंग्य प्रखर और प्रभावशाली है। पाठक को हँसाकर उसकी चिंता को उत्तेजित करने की शक्ति उनको नैसर्गिक रूप से प्राप्त थी। उन्होंने गद्य को नई शैली प्रदान की थी। नाटककारों में भी उनका स्थान प्रमुख है। वे अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय गद्यकार थे।

कृष्ण पिळ्ळै *(त० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1900 ई०]

ये तमिल प्रदेश में कृषक जाति के वैष्णव धर्मावलंबी परिवार में उत्पन्न हुए थे। तमिल भाषा एवं साहित्य के विशेष ज्ञाता होने कारण 'तिरुनेल्वेलि' ज़िले के पादरी बिशप कॉल्डवेल ने इन्हें अपने अधीन 'सायरपुरम्' स्थित महाविद्यालय में तमिल-शिक्षक के रूप में नियुक्त किया था। वहाँ काम करते-करते तीस वर्ष की आयु में इन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और उसकी सेवा में शेष जीवन व्यतीत किया।

तमिल भाषा में ईसाई धर्म-संबंधी साहित्य-सृजन में 'कृष्ण पिळ्ळै' का योगदान महत्वपूर्ण है। इनका महाकाव्य 'इरट्चणिय-यात्तिरिकम्' है जो प्रसिद्ध जॉन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्यन के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' की अन्योक्तिपरक कथा का तमिल महाकाव्य शैली में रूपांतर है। पद्यों की संख्या 3800 है और अनेक पद्यों में यमक, श्लेषादि का चमत्कार भी दर्शनीय है। पापी जीव की यात्रा तथा प्रभु ईसा की कृपा का काव्य में अनेक रूपों में वर्णन किया गया है।

इनकी शेष रचनाएँ—'इरट्चणिय मनोकरम्', 'इरट्चणियसमय निर्णयम्' तथा 'इर्टचणियक्कुरळ्'—भी ईसाई धर्म-तत्त्व का प्रतिपादन करती हैं।

कृष्णभट्ट, सेडिकापु *(क० ले०)*

दक्षिण कन्नड ज़िले के विख्यात विद्वान् सेडिकापु कृष्णभट्ट एक सफल कवि, कहानीकार एवं समर्थ विद्वान हैं। आपका जन्म दक्षिण ज़िले के एक गाँव में सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में हुआ। सत्याग्रह के कारण आपकी शिक्षा अधूरी रह गई। 'कृष्णकुमारी', 'श्वमेध', 'तरुणधमनि', 'पुण्यलहरी अथवा शबरी' आदि आपके श्रेष्ठ कविता-संकलन हैं। 'कृष्णकुमारी' में राजस्थान की ऐतिहासिक गाथा है तो 'पुण्यलहरी' में शबरी की भक्ति का मार्मिक निरूपण है। 'पळमंगळु' उनकी कहानियों का संग्रह है। 'चित्रदयेळु', 'येन्नेकमे' आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। कन्नड के वर्ण तथा विभक्ति-प्रत्ययों पर उन्होंने मौलिक खोजपूर्ण लेख लिखे हैं। उनकी भाषा सरल एवं उदात्त है।

कृष्णमाचार्य, श्रीरंगपट्टणमु *(क० ले०)*

श्री कृष्णमाचार्य का जन्म 1800 ई० में हुआ था। वे मद्रास सदर अदालत में वकील थे। कन्नड भाषा तथा व्याकरण पर उन्होंने विशेष काम किया है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—'धातुमंजरी', 'शब्दमंजरी', 'हळमन्नड', 'नुडिगन्नडि', 'होसगन्नड'। गत शताब्दी में लिखा इनका 'कन्नड व्याकरण' ग्रंथ अत्यंत वैज्ञानिक एवं प्रमाणभूत माना जाता है।

कृष्णमाचार्युलु *(ते० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

प्रसिद्ध यात्रास्थल सिंहाचल के निवासी कृष्णमाचार्युलु तेलुगु में 'वचन साहित्य' के प्रवर्तक माने जाते हैं। कन्नड में यह 'वचन वाङ्मय' अत्यंत विख्यात है परंतु तेलुगु में इसका अधिक प्रचार नहीं। इस विधा से आंध्रभारती को अलंकृत करने का श्रेय इसी कवि को है। काकतीय सम्राट् द्वितीय प्रतापरुद्र (1295-1326) के ये समकालिक माने जाते हैं। सिंहाचल के स्वामी वराह नरसिंह का गुणगान करते हुए इस कवि ने कई वचनों, चूर्णिकाओं (विशेष छंद) और भजन-संकीर्तन के उपयुक्त कई गीतों की रचना की। प्रसिद्ध गीतकार अन्नमाचार्युलु (दे०) ने भी इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

कृष्णमूर्ति, के० *(क० ले०)*

डा० के० कृष्णमूर्ति का जन्म 1923 ई० में मैसूर राज्य के केरलापुर में एक संसुस्कृत ब्राह्मण परिवार में हुआ। ये भारत के विख्यात संस्कृत विद्वानों में हैं। 'ध्वन्यालोक' को पहली बार अँग्रेज़ी अनुवाद के द्वारा जगत् के सामने रखने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। संप्रति आप कर्णाटक विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष हैं। आपने संस्कृत के सभी श्रेष्ठ काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का कन्नड अनुवाद प्रस्तुत किया है, जिनमें प्रमुख हैं—'ध्वन्यालोक', 'काव्यालंकार', 'काव्यादर्श', 'काव्यप्रकाश', 'काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति', 'काव्यमीमांसा' आदि। इनकी भूमिकाएँ बहुत ही विद्वत्तापूर्ण, मौलिक एवं उपादेय हैं। डा० कृष्णमूर्ति ने 'उत्तररामचरित', 'किरातार्जुनीय', आदि ग्रंथों का सफल अनुवाद कन्नड में किया है। 'रसोल्लास', 'संस्कृतकाव्य', 'कन्नड रलिकाव्य-तत्त्व' आपकी अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। आपकी भाषा प्रौढ़ एवं विचारक्षम है।

कृष्णमूर्तिशास्त्री, शिष्टु *(ते० ले०)* [जन्म—1790 ई०; मृत्यु—1840 ई०]

सर्वशास्त्री और गवरम्मा के पुत्र कृष्णमूर्ति शास्त्री पूर्वी गोदावरी ज़िले के गोल्लपालेम के निवासी थे। ये उसी ज़िले के रामचंद्रपुरम के ज़मींदार के आश्रित थे। रामेश्वरम की यात्रा से लौट आते समय कालहस्ति (तिरुपति के निकट) के प्रभु दामेर्ल वेंकटपति राय ने इन्हें अपने यहाँ 17 वर्ष के लिए आश्रय दिया था। ये संस्कृत और आंध्र भाषाओं के प्रकांड पंडित और प्रसिद्ध कवि थे—संगीत के भी अच्छे ज्ञाता थे। इनके संस्कृत ग्रंथों में 'यक्षोल्लासमु' (काव्य), वल्लवीवल्लवोल्लासमु', 'मदनाभ्युदयमु' (भाण), 'कंकणबंधमु' (रामायण की कथा), 'अश्वशास्त्रमु', 'हरिकारिकावलि', 'नीलशैलानाथीयमु' उल्लेखनीय हैं। तेलुगु ग्रंथों में 'सर्वकामदा परिणयमु', 'वेंकटाचल महात्म्यमु', 'स्त्रीनीतिशास्त्रमु', 'पंचतंत्रमु',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नाटक दीपमु', 'वायुपुत्र शतकमु', 'वसुचरित्र' (दे० 'वसुचरित्रमु') की व्याख्या, कुछ दंडक, मालिकाएँ, स्तोत्र आदि हैं। तुलसीदास (दे०) के 'रामचरितमानस' (दे०) का इन्होंने मंड नरहरि अथवा कामय्या के सहयोग से तेलुगु भाषा में अनुवाद किया था। इस अनुवाद की विशिष्टता दोहा-चौपाई आदि हिंदी छंदों में तेलुगु भाषा को ढालने में है। अनुवाद सरस तथा प्रवाहयुक्त है।

कृष्णमूर्तिशास्त्री, श्रीपाद *(तं० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

ये तेलुगु और संस्कृत के प्रकांड पंडित और प्रतिभासंपन्न कवि थे, तथा राजमहेंद्रवरम नामक शहर के रहने वाले थे। अष्टावधान और शतावधान में भी ये कुशल थे। आधुनिक युग से प्रभावित होने पर भी इन्होंने प्रधानतः परंपरा का अनुसरण किया है। ये आंध्र के राष्ट्रकवि के रूप में राज्य सरकार के द्वारा तथा संस्कृत के बड़े विद्वान के रूप में केंद्र सरकार के द्वारा सम्मानित किए गए थे। इनकी रचनाएँ लगभग दो सौ हैं। उनमें प्रमुख ये हैं—'श्रीकृष्ण महाभारतमु', 'श्रीकृष्ण रामायणमु', 'श्रीकृष्ण महाभागवतमु', और 'गणेशपुराणमु' आदि पुराण-इतिहास संबंधी रचनाएँ; 'गौतमी महात्म्यमु', 'गजाननविजयमु', 'श्रीकृष्णकविराजीयमु' जैसे कुछ काव्य; 'ब्रह्मानंदमु' नामक स्वच्छ तेलुगु में लिखित काव्य; 'बोब्बिलियुद्धमु', 'वेणीसंहारमु', 'कलभाषिणी', 'श्रीनाथकविराजीयमु' आदि नाटक; 'लेडारि बुच्चिगाडु' जैसे कुछ प्रहसन; 'संस्कृतकविजीवितमुलु', 'तेनालिरामकृष्णचरित्र' आदि गद्यबद्ध जीवनियाँ; 'श्रीकृष्ण स्वीयचरित्र' आत्मकथा और 'महाभारतचरित्रनिराकरणमु', 'महाभारतरहस्यविमर्शनमु' आदि आलोचनात्मक रचनाएँ। इन्होंने कलावती नामक मुद्रण संस्था की स्थापना की थी तथा 'गौतमी', 'वज्रायुधमु', 'मानवसेवा', 'वंदेमातरम्' नामक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

कृष्णमूर्तिशास्त्री की रचनाओं में विस्तार के साथ वैविध्य भी है। विस्तार की दृष्टि से पूरे तेलुगु साहित्य के इतिहास में इतनी मात्रा में ग्रंथ-रचना करने वाला दूसरा कवि मिलना कठिन है। इनकी कविता में पांडित्य तथा परंपरा का प्रभाव अधिक है। इनके भारत, भागवत तथा रामायण के संपूर्ण अनुवादों में परंपरा का प्रभाव और नाटक, प्रहसन, आत्मकथा तथा आलोचनात्मक रचनाओं में आधुनिकता का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इनका 'बोब्बिलियुद्धमु' आंध्र के सर्वश्रेष्ठ रंगमंचीय नाटकों के अंतर्गत माना जाता है। इन्होंने अनुवादों के साथ-नाथ अनेक मौलिक रचनाएँ भी करके अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

सैकड़ों ग्रंथों के रचयिता तथा एक महान पंडित के रूप में इनकी प्रशस्ति अनन्य है। ये कलाप्रपूर्ण, महामहोपाध्याय तथा कविसार्वभौम आदि उपाधियों से विभूषित थे, पर इनके ग्रंथों की जितनी अधिक संख्या है उतना इनका प्रचार नहीं हो पाया।

कृष्णराज, मुम्मडि *(क० ले०)* [जन्म—1794 ई०; मृत्यु—1868 ई०]

'मुम्मडि' का अर्थ है 'तृतीय'। कृष्णराज ओडेयर तृतीय मैसूर के महाराजा थे। जब ये छह वर्ष के थे तभी इनका राज्याभिषेक हो गया था। महामंत्री पूर्णय्या की देखरेख में ये बड़े हुए। संस्कृत, कन्नड, मराठी और फ़ारसी के ये अच्छे विद्वान थे। काव्य, संगीत और शिल्प-कलाओं में ही नहीं ज्योतिषशास्त्र में भी इनकी विशेष रुचि थी। कर्णाटक सिंहासनाधीश्वर होकर कन्नड के विकास के लिए इन्होंने पर्याप्त कार्य किया तथा विद्वानों को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। ये विद्याप्रेमी, प्रजावत्सल, न्यायप्रिय और लोककल्याणाकांक्षी नरेश थे। इन्होंने यक्षगान-कला को प्रोत्साहन दिया और अपने प्रासाद में नाटक-मंडली की स्थापना भी की थी। इनके ग्रंथों की संख्या पचास के लगभग है जिनमें निम्नांकित मुख्य हैं—

(1) 'अखंड कावेरी माहात्म्य', (2) 'अध्यात्म रामायण', (3) 'उत्तरगीता', (4) 'उत्तररामचरित-कथा', (5) 'कादंबरी', (6) 'काशीखंड', (7) 'कृष्णकथारत्नाकर', (8) 'कृष्णराज-वाणी-विलास' (कन्नड भगवद्गीता), (9) 'महाभारत कन्नड-टीका', (10) 'तत्त्वनिधि' (संस्कृत विश्वकोश, कन्नड टीका के साथ) (11) 'भारतसार-संग्रह-टीका', (12) 'रामायण-टीका', (13) 'रामायण-तात्पर्यदीपिका-टीका', (14) 'ललितोपाख्यान', (15) 'लिंग-पुराण', (16) 'विक्रमोर्वशीय', (17) 'शंकरसंहिता', (18) 'सौगंधिका परिणय' (पद्यकाव्य तथा गद्यकाव्य), (19) 'हरिवंश', (20) 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' तथा फुटकल पद।

इन ग्रंथों में अधिकांश गद्य में हैं, पद्य में कम हैं। कन्नड-गद्य-शैली के विकास में इनका विशेष योगदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इनके महाभारत, रामायण, आदि ग्रंथ काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं।

कृष्ण राजानक (राज़दान) *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानत: 1850-55 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

कृष्ण राजानक (राज़दान) कश्मीर-स्थित 'वनपोह' (वन-पुष्प) के निवासी थे और प्रकृति के सौंदर्य में जन्मे और पले-बढ़े थे। कश्मीरी के वरिष्ठ कवि परमानंद के शिष्य थे। इन्होंने जीवन-भर आराध्य की भक्ति की और तदनुसार 'लीलाएँ' अर्थात् 'स्तुति-भजन' की रचना की। भक्तिभावना, आराध्य के प्रति आत्मसमर्पण और तैल-धारावत् 'तत्पद' में रमते रहना—ये ही हैं इनके भजनों की विशेषताएँ। काव्य-शिल्प की दृष्टि से इनका बहुत ही ऊँचा स्थान है। छंद एवं अलंकार का इनके काव्य में सुंदर प्रयोग है और भाषा भी ठेठ कश्मीरी है। ये सगुण-उपासक थे और इनके हज़ारों शिष्य थे जो इनकी भजन-मंडली में कश्मीरी साज़ पर ईश्वर के भजन एवं स्तुतियाँ गाते रहते थे। इन्होंने सगुण उपासना को ही परलोक सुधारने का साधन माना है। इन्होंने कश्मीरी के प्रसिद्ध ग्रंथ 'शिवलग्न' की रचना की। 'हरी (हर) कल्याण' में इनकी भक्ति-रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

कृष्णरामदास *(बँ० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध]

कृष्णरामदास का जन्म-स्थान कलकत्ता से उत्तर की ओर बेलघरिया के निकट निमता अथवा निमिता ग्राम था। इनका जन्म अनुमानत: 1656 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम भगवतीदास था। ये कायस्थ थे।

इनकी तीन कृतियाँ 'कालिकामंगल' (दे०) (1676 ई०), 'षष्ठी-मंगल' (1679-80) तथा 'रायमंगल' (दे०) (1686 ई०) मिलती हैं। इनमें 'कालिकामंगल' (दे०) महत्वपूर्ण है। देवी के माहात्म्य के प्रचार के माध्यम से विद्यासुंदर की कथा का वर्णन 'कालिकामंगल' में मिलता है। 'षष्ठी-मंगल' व्रत-कथा का छोटा-सा काव्य है। 'रायमंगल' अनुमान से अंतिम रचना है जिसमें व्याघ्र देवता का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

इनके काव्य में अनेक त्रुटियाँ हैं। कवि में प्रतिभा नहीं है। काव्य में ग्राम्यता मिलती है। पर यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि इनमें रचना-शक्ति का सर्वथा अभाव न था।

कृष्णराव, अ० न० *(क० ले०)* [जन्म—1908 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

अ० न० कृष्णराव का जन्म एक संभ्रात ब्राह्मण परिवार में नुमकूर में हुआ था। इनके पिता नरसिंहराव साहित्य एवं ललितकलाओं के मर्मज्ञ थे। ये कभी कालेज में नहीं पढ़े—स्वाध्याय से ही इन्होंने बहुत कुछ सीखा था। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'मदुवेदो हाळो (शादी) या बरबादी)' नामक एक नाटक लिखा था। पहली ही कृति में इनका स्वर विद्रोही था। तब से ये निरंतर गतिशील रहे हैं। इन्होंने विभिन्न विषयों पर दो सौ से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, आलोचना, आदि सभी में इन्होंने जमकर काम किया है। साहित्य की ऐसी कोई भी विधा नहीं जिस में इनकी लेखनी सक्रिय न हुई हो। किंतु इनको सदा के लिए अमर बनाने वाले हैं इनके उपन्यास। ये कन्नड के उपन्यास-सम्राट् कहलाते थे। इन्होंने एक सौ से भी अधिक उपन्यास लिखे हैं। 'संध्याराग' (दे०), 'उदयराग', 'नर सार्वभौम', 'साहित्य-रत्न', 'बेण्णद बदुकु' आदि में क्रमश: गायक, चित्रकार, नट, साहित्यकार तथा नर्तक के जीवन की समस्याओं का चित्रण है। जीवन की ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जिसका स्पर्श इन्होंने न किया हो। इनसे पूर्व कन्नड उपन्यास-क्षेत्र प्रेमचंद-पूर्व उपन्यास-क्षेत्र की भाँति था। इन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा लाखों पाठकों का निर्माण किया उनमें वाचनाभिरुचि जगाई तथा उपन्यास को ऐयारी और तिलस्मी के रंगमहल से बाहर निकाल कर उसे यथार्थ की ठोस भूमि पर ला खड़ा किया। संवाद-कौशल की दृष्टि से इनके उपन्यास अद्वितीय हैं।

प्रेमचंद की देखादेखी इन्होंने भी कर्णाटक में प्रगतिशील साहित्यकारों का संगठन किया और स्वयं उनके अध्यक्ष बने। इसके बाद ये प्रकृतवाद की ओर झुके। 'नग्न सत्य', 'शनिसंतान', 'संजेगत्तलु', आदि में इन्होंने वेश्या-जीवन का नग्न चित्र प्रतुत किया। इसका विरोध भी हुआ। अपने पक्ष के समर्थन में इन्होंने 'साहित्य तथा काम प्रचोदन' नामक एक पुस्तक लिखी। ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में भी इन्हें काफ़ी सहायता मिली।

'अग्निकन्ये', 'किडी', आदि इनके दस कहानी-संकलन हैं जिनमें प्रगतिवाद का ही बोलबाला है। 'गोमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याघ्र', 'बेण्णर बीसणिगे' आदि इनके प्रख्यात नाटक हैं। 'स्वामी विवेकानंद', 'कैलासम्' (दे०), 'दीनबंधु कबीर', 'बापू' आदि इनके द्वारा लिखित श्रेष्ठ जीवनियाँ हैं। पोरके (झाड़ू) 'होसहोट्टू' आदि में इनके श्रेष्ठ निबंध संगृहीत हैं। 'बरहगारू बदुकु' इनकी आत्मकथा है। ये अच्छे समालोचक थे। 'साहित्य और जन-जीवन', 'साहित्य और संस्कृति', 'साहित्य समाराधन' आदि में साहित्यिक समस्याओं पर मौलिक ढंग से प्रकाश डाला गया है। वीर-शैव साहित्य के ये अधिकारी विद्वान् थे। 'वीरशैव साहित्य भक्त-संस्कृति' इनकी श्रेष्ठ कृति है।

कृष्णराव कन्नड साहित्य में विद्रोह के प्रतीक थे। ये सफल पत्रकार भी थे। समस्याओं की गहराई में न जाने के कारण सत्य के स्थान पर ये छाया मात्र को पकड़ पाते हैं—इसी कारण इनकी कृतियों में स्थायित्व नहीं है।

कृष्णरावु, जी० वी० *(ते० ले०)*

श्री कृष्णरावु का योगदान यों तो अनेकमुखी है परंतु आलोचक और उपन्यासकार के रूप में इनकी विशेष प्रसिद्धि है। ये विजयवाड़ा के आकाशवाणी केंद्र से संबंधित हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'कीलुबोम्मलु', 'चैत्ररथ' (उपन्यास), 'आदर्शशिखरालु' (नाटक-संग्रह), 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) की समीक्षा, 'काव्यजगत्' (आलोचनात्मक ग्रंथ) और अन्य कई नाटक, कहानी, कविता आदि। 'प्लेटो आदर्शराज्यमु' इनका अनुवाद-ग्रंथ है। 'कीलुबोम्मलु' में लेखक ने ग्रामीण जीवन की भावनाओं की मार्मिक व्यंजना की है। 'भिक्षापात्र' नामक नाटक में इन्होंने साम्यवादी दृष्टिकोण से एक पौराणिक घटना का पुनर्नियोजन किया है। अपने काव्य-जगत में इन्होंने मार्क्स के सिद्धांतों के आधार पर आधुनिक काव्य-जगत की समीक्षा की है। 'कलापूर्णोदयमु' नामक तेलुगु काव्य की समीक्षा में इनकी आलोचनात्मक क्षमता का पूरा परिचय मिलता है। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास और आलोचना आदि विविध साहित्यिक विधाओं में इनकी समान गति है।

कृष्णरावु, मुटनूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

इनका निवास-स्थान मछलीबंदर था। बचपन में ही इन्होंने अपने माँ-बाप को खो दिया था। 1896 ई० में मैट्रिक परीक्षा में पास हुए। एफ़० ए० के लिए ये नोबेल कालिज में पढ़े परंतु पास नहीं हो सके।

कृष्णरावु जी का सामाजिक एवं दार्शनिक व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है। ये बंगदेश के महान् नेता बिपिन चंद्रपाल आदि के संपर्क में रहे तथा इनकी विचारधारा अरविंद घोष (दे०) से भी काफ़ी प्रभावित रही। गांधीवाद से भी ये अत्यंत प्रभावित हुए। आंध्रप्रदेश के उस समय के गण्यमान्य नेताओं में इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

साहित्यिक क्षेत्र में इनकी आलोचनात्मक कृति 'समीक्षा' का बहुत आदर विद्वज्जगत् में है। वास्तव में तेलुगु गद्यनिर्माताओं में इनका अन्यतम स्थान है। ये बहुत समय तक 'कृष्णा' पत्रिका के संपादक रहे। और इनके अग्रलेख साहित्यिक गरिमा से शोभित रहते थे। इनकी कलम की छटा इनके अग्रलेखों में पाई जाती है।

इनकी दार्शनिक विचारधारा ब्राह्मसमाज तथा अरविंद से प्रभावित रही। फलतः इनकी लेखमाला 'लो वेलुगुलु' (आंतरिक प्रकाश-रेखाएँ) अपने गहरे विचारों एवं अध्ययन-गंभीरता के लिए प्रसिद्ध हुई है।

कृष्णशर्मा, बेटगेरी *(क० ले०)*

बेटगेरी कृष्ण शर्मा का काव्यनाम 'आनंदकंद' है। आपका जन्म 1900 ई० में बेलगाँव ज़िले के गोकाक तालुके के बेटगेरी गाँव में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। अल्पायु में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने से वे स्थानीय परीक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके पर उन्होंने स्वाध्याय से बहुत-कुछ सीखा। धारवाड़ में उन दिनों बेंद्रेजी (दे०) के नेतृत्व में 'गेळेयर गुंपु' के नाम से विख्यात तरुण-कवियों की एक मंडली थी जिसके वे सक्रिय सदस्य बन गए। कृष्ण शर्मा जी ने लोक-साहित्य से अधिक प्रेरणा पाई है। कर्णाटक की सांस्कृतिक जागृति में उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक एवं संपादक के नाते आपने बहुत बड़ी साधना की है। 'मुद्दनमातु', 'अरुणोदय', 'विरहिणी, 'ओडनाडि', 'कारहुण्णिवे' आदि आपके प्रमुख कविता-संकलन हैं। 'मुद्दनमातु' रवींद्रनाथ की 'Gescent Moon' से प्रभावित शिशुकाव्य हैं। 'विरहिणी' और 'ओडनाडि' (साथी) में प्रणय-जीवन का चित्रण है। आनंदकंद जी के गीतों में देश-प्रेम, भाषा-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि की उत्कट व्यंजना है। कन्नड में ग़ज़ल-शैली का प्रयोग करने वालों में आप सर्वप्रथम हैं। आपने करीब तीस कहानियाँ भी लिखी हैं। 'मातनाडुवकल्लुगळु'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बोलते पत्थर) में शिलालेखों के आधार पर रचित कहानियाँ हैं। लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति से ये अनुप्राणित हैं। 'सुदर्शन', 'राजयोगी', 'अशांतिपर्व', 'मल्लिकार्जुन' आदि आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'कर्णाटक जन-जीवन' आपका शोधग्रंथ है। अपनी बहुमुखी प्रतिभा से आपने कन्नड साहित्य की अनवरत सेवा की है।

कृष्णशर्मा, सिद्धवनहल्लि *(क० ले०)*

कन्नड के महान गांधीवादी साहित्यकार सिद्धवनहल्लि कृष्णशर्मा का जन्म 1904 ई० में हुआ। आप अल्पावस्था में ही महात्मा जी की पुकार सुनकर स्वराज्य-संग्राम में कूद पड़े और अपना जीवन राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—'पर्णकुटि', 'सरदार वल्लभभाई', 'स्थितप्रश्न', 'दर्शन', 'होसयुगधर्म' (नवीन युगधर्म) आदि। आप कन्नड के सर्वश्रेष्ठ वैचारिक निबंधकार हैं। आपने बाबू राजेंद्रप्रसाद की आत्मकथा का सफल अनुवाद किया है। बापूजी के पत्रों का तथा 'हरिजन' के सैकड़ों लेखों का कन्नड अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया है। 'पर्णकुटि' में बापू के आश्रम तथा आश्रमजीवी बापू के अतीव मार्मिक चित्र हैं। इतने सुंदर रेखाचित्र कम ही मिलेंगे। विचार एवं अनुभूति का मंजुल सामंजस्य आपकी शैली की विशेषता है। आपकी भाषा विषयानुकूल, प्रखर एवं प्रभविष्णु है।

कृष्णशास्त्री, डा० ए० आर० *(क० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

कन्नड के धीमंत आलोचकों में श्री ए० आर० कृष्णशास्त्री का विशेष स्थान है। इनका जन्म चिक्कमंगलूर जिले के अंबळे नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री रामकृष्णशास्त्री मैसूर की संस्कृत पाठशाला में व्याकरण के प्रोफ़ेसर थे। संस्कृत तथा कन्नड का ज्ञान इन्होंने अपने पिता से प्राप्त किया। महाराजा कालेज, मैसूर से बी० ए० करके मद्रास वि० वि० से इन्होंने एम० ए० किया था। सेंट्रल कालेज, बेंगलूर तथा महाराजा कालेज, मैसूर में इन्होंने कन्नड अध्यापक के रूप में काम किया। अंत में कन्नड प्रोफ़ेसर की हैसियत से ये सेवा-निवृत्त हुए। ये कन्नड के गंभीर विद्वानों में से हैं। कन्नड, तमिल संस्कृत, बँगला, अँग्रेज़ी तथा जर्मन भाषाओं पर इनका अच्छा अधिकार था। ये कवि नहीं, कविजनों के निर्माता थे। डा० पुट्टप्पा (दे०) जैसे कवि इनके शिष्य रहे हैं। ये 'प्रबुद्ध कर्णाटक' नामक त्रैमासिक पत्र के जन्मदाता तथा यशस्वी संपादक थे। हैदराबाद में संपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन के ये अध्यक्ष थे।

कृष्णशास्त्री जी की प्रसिद्ध रचनाओं में 'भासकवि', 'संस्कृत नाटक', 'हरिश्चंद्र-काव्य-संग्रह', 'सर्वज्ञ', 'कथामृत', 'वचनभारत', 'बंकिमचंद्र', 'निर्मलभारती', 'श्रीपतियकतेगळु', 'भाषणगळु मत्तु लेखनगळु' आदि प्रमुख हैं।

इनकी पकड़ अद्भुत थी। ग्रंथ के गुण-दोषों पर तुरंत इनकी नज़र पड़ती थी। इन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था। उसका निचोड़ इन्होंने 'कन्नड कैपिडि' (दे०) के प्रथम संपुट में दिया है। 'संस्कृत नाटक' में संस्कृत नाटक-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास है। प्रत्येक कवि के नाटकों का सुंदर सारांश तथा तटस्थ आलोचना है। 'भासकवि' में संस्कृत-कवि भास-विषयक वाद-विवाद तथा उसके सभी नाटकों की सारग्राही एवं प्रौढ़ आलोचना है। 'बंकिमचंद्र' इनकी सर्वश्रेष्ठ आचार्य कृति है। बंकिमचंद्र जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का इतना सुंदर अध्ययन शायद ही किसी भाषा में हो। ये कन्नड के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार हैं। 'कथामृत' में इन्होंने जनप्रिय शैली में 'कथासरित्सागर' की कहानी लिखी है तो 'वचनभारत' कर्णाटक के जन-जन का कंठहार है। 'श्रीपतियकतेगळु' में इनकी मौलिक कहानियाँ हैं। 'भाषणगळु मत्तु लेखनगळु' में समय-समय पर लिखे इनके लेखों का संग्रह है। ये आदर्श शैलीकार हैं। संस्कृत नाटकों पर लिखते समय इनकी शैली अत्यंत प्रौढ़ है तो बच्चों के लिए इन्होंने अत्यंत सरल शैली में महाभारत लिखा है। आधुनिक कन्नड के कर्मठ सेवी तथा दिग्गज विद्वान के रूप में इनका नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

कृष्णशास्त्री, देवुलपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म विद्वान् कवियों के वंश में हुआ था और ये बंगाल में कुछ समय रह कर वहाँ से ब्राह्मसमाज के सिद्धांतों तथा वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों से प्रेरणा ग्रहण करके आए थे।

ये तेलुगु की 'भावकविता' (दे०) के विशुद्ध उदाहरण एवं उसके सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। इस प्रवृत्ति की कविता को जो प्रतिष्ठा तेलुगु साहित्य में मिली, उसका अधिकांश श्रेय इन्हीं को दिया जाना चाहिए। स्वच्छंद प्रवृत्ति, भग्नप्रेम, निर्वेद, दार्शनिक दृष्टि, अलौकिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंदर्य-प्राप्ति की लालसा, आदि अनेक प्रवृत्तियाँ इनकी कविता में अभिव्यक्त हुई हैं। इन्होंने रोदन को भी कलात्मकता प्रदान करके, उसे उदास एवं स्पृहणीय बना दिया है। इस शाखा के अनेक युवक कवियों के लिए ये सदा आदर्श बने रहे हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'कृष्णपक्षमु' (दे०), 'प्रवासमु', 'उर्वशी' आदि। ये भाव, वचन, लेखन सभी में कविता की मानो साकार मूर्ति हैं। जो समाज व्यक्ति को नाना प्रकार के बंधनों से मुक्त करके सुख एवं शक्ति प्रदान नहीं कर सकता, उस समाज के विरुद्ध विद्रोह करके, इन्होंने केवल अपने सुख-दुःखों को ही काव्य-वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। कभी ये छोटे अवसाद में गा उठते हैं: 'मैं शोक-तिमिर के भयंकर लोकों का राकैकपति हूँ', और कभी मधुर उल्लास में मुक्त कंठ से गाने लगते हैं: 'आज मुझमें वृंदावन की शोभा प्रदीप्त हो रही है।' छंदोबद्ध कविता एवं प्रगीत दोनों में इनकी कारीगरी की तुलना तेलुगु के किसी अन्य कवि से नहीं की जा सकती; भाव एवं भाषा, कोमलता एवं माधुर्य एक दूसरे से आगे बढ़ी हुई-सी दिखाई देती हैं। निस्संदेह, कृष्णशास्त्री आधुनिक तेलुगु कविता के एक युगपुरुष हैं।

कृष्णसिंह *(उड़ि० ले०)* [जन्म—1739 ई०; मृत्यु—1788 ई०]

गंजाम ज़िले के धराकोट राजवंश में कृष्णसिंह ने जन्म लिया था। पिता नीलाद्रि सिंह के तीन पुत्रों में ये द्वितीय थे। संस्कृत भाषा का इन्हें अच्छा ज्ञान था। राजा की अपेक्षा एक भक्त एवं सुविज्ञ पंडित के रूप में ये अधिक विख्यात हैं। राजकार्य मनोनीत व्यक्ति को सौंप कर ये आजीवन धर्म-साधना और साहित्य-सेवा में लीन रहे। कृष्णसिंह वैष्णव धर्मावलंबी थे।

जो दो उड़िया महाभारत उड़ीसा में सर्वत्र आदृत हैं, उनमें पहला है सारलादास (दे०) का और दूसरा है राजकवि धर्मप्राण कृष्णसिंह का। महाभारत के आक्षरिक अनुवादकों में ये सर्वप्रमुख हैं। सारला-महाभारत (दे०) एक स्वतंत्र मौलिक रचना है और निश्चित रूप से कृष्णसिंह के अनूदित महाभारत से अधिक महत्वपूर्ण है, किंतु संस्कृत महाभारत का आनंद कृष्णसिंह के महाभारत (दे०) से ही प्राप्त हो सकता है। भाषा प्रतिपाद्य के अनुरूप पांडित्यपूर्ण है, किंतु साथ ही उड़िया भाषा की *विशिष्टता की* रक्षा भी हुई है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट कविताओं और चौपदियों की रचना भी की है।

केंद्रसभा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

सत्यनाथ बरा के इस संग्रह में अनेक स्केच संगृहीत हैं, जिनमें लेखक ने अपने समाज के अंधविश्वासों और कुरीतियों पर व्यंग्य किया है। इनके व्यंग्य में हास्य भी है।

केका *(मल० पारि०)*

यह एक द्रविड़ वृत्त है। प्रत्येक पंक्ति में चौदह अक्षर होते हैं। मात्राएँ 28 होती हैं और सातवें अक्षर के अंत में यति होती है।

केकारव *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1903 ई०]

'केकारव' श्री सुरसिंह तख्तसिंह गोहिल कलापी (दे०) (लाठी नरेश) की कविताओं का एकमात्र संग्रह है। इसका संपादन व प्रकाशन कलापी की मृत्यु के उपरांत उनके मित्र कांत के हाथों संपन्न हुआ। 'केकारव' की चौथी आवृत्ति के अनुसार इस संग्रह में कलापी की 241 कविताएँ संगृहीत हैं। कलापी काव्य के मूल में प्रेम को स्वीकार करते थे और कविता लिखने की प्रवृत्ति उनके लिए हृदय के आवेग को वाणी दे कर इच्छा तृप्त करने का साधन थी। 'एकांत आनंद' को निजी वस्तु बना लेना ही इनके लिए कला थी। अँग्रेज़ी कवि वर्डस्वर्थ, शेली, कीट्स और बायरन आदि की रोमानी वृत्ति से परिचित-प्रभावित, तीव्र राग-विराग से संसक्त, प्रकृति-सौंदर्य पर मुग्ध, प्रेम की पीर से भरपूर, सूफ़ियाना मस्ती में डूबे और एकांततः वैयक्तिक अनुभूति को वाणी देने वाले कलापी की इन कविताओं में उक्त स्वर ही प्रमुख है। इनकी रचनाओं में संस्कृत के शार्दूलविक्रीडित, उपेंद्र-बज्रा, मालिनी, स्रग्धरा, हरिगीत वसंततिलका, शिखरिणी, मंदाक्रांता, इंद्रवज्रा आदि छंदों का, फ़ारसी की ग़ज़लों का और गीत शैली का मुक्त प्रयोग मिलता है। रुदन-प्रेम, विषाद का अतिरेक, भावातिशयता और कला की अनगढ़ता के उपरांत भी कलापी का 'केकारव' पिछले छह दशकों से साहित्य-प्रेमियों के लिए सतत आकर्षण का विषय बना रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केकावली *(म० कृ०)*

कवि मोरोपंत की वृद्धावस्था की यह रचना है। इनका यह लगभग अंतिम काव्य है। इसमें कथानक नहीं, यह स्फुट काव्य है। इसकी मौलिकता असंदिग्ध है। 'केका' का अभिप्राय है—मोर की आवाज़। मेघों के दर्शनार्थ मोर आर्तस्वर में चिल्लाता है। कवि मोरोपंत भगवान के दर्शनों के लिए आर्तवाणी में अपनी आतुरता व्यक्त कर रहे हैं। 'केकावली' भक्ति रस और करुण रस से परिपूर्ण काव्य है। भगवान की असीम शक्ति पर कवि को दृढ़ विश्वास है। वार्धक्य-जर्जर शरीर में एक ही शक्ति अवशिष्ट रही है—वह है वाणी। कवि ने अंतर्मन से भक्ति भाव में डूबकर अपनी वाणी में यथासंभव प्रभविष्णुता उत्पन्न कर दी है। इस काव्य को पढ़ते हुए पाठक का मन रसार्द्र हो उठता है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक पांगरकर ने इस काव्य के विषय में लिखा है, 'केकावली' पढ़ते ही मोरोपंत के काव्यगुणों के विषय में जो संदेह हो उसका तत्काल निराकरण हो जाता है। ध्वनिकाव्य का यह आदर्श उदाहरण है। परिणतप्रज्ञ की यह वाणी है। शब्द-रचना, नाद-माधुर्य, भावार्द्रता सभी का इसमें मणि-कांचन संयोग है।'

केतकरचरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

इस चरित्र के लेखक श्री द० न० गोखले हैं। चरित्रकार ने निवेदन में ही स्वीकार किया है कि इस चरित्र के रूप में ज्ञानकोशकार डॉ० श्री० व्यं० केतकर (दे०) का सत्य तथा सजीव चरित्र लिखने का संकल्प किया गया है। गोखले जी के पी-एच० डी० शोध-प्रबंध का विषय केतकर से संबंधित ही था। शोध करते हुए ही इन्हें चरित्र लिखने की सूझी थी। यह चरित्र, चरित्र-लेखन का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। इसमें चरित्र-नायक संबंधी गंभीर चर्चा प्रमुख न होकर, विभिन्न घटनाओं के निर्देश द्वारा केतकर जी के चरित्र का स्पष्टीकरण ही महत्वपूर्ण है।

लेखक ने केतकर के जीवन से संबंधित विविध सामग्री का संकलन प्रकाशित वाङ्मय, लिखित संस्मरण, पत्र तथा स्मृतियों के आधार पर किया है। केतकर का व्यक्तित्व बहुमुखी था एवं उनकी कर्तृत्व-शक्ति प्रचंड थी। इसमें केतकर के बाल्यकाल, उनकी महत्वाकांक्षा, उनके स्वभाव, अमरीका में अध्ययन करते समय की उनकी दीर्घ परिश्रमशीलता, 'ज्ञानकोश-रचना' का प्रारंभ, रचना में आने वाली उनकी कठिनाइयों, उनके कौटुंबिक जीवन, उनकी अनन्य देश-निष्ठा आदि पहलुओं का मार्मिक उद्‌घाटन किया गया है।

तटस्थ दृष्टि एवं सत्यकथन का आग्रह इस चरित्र की सफलता का मर्म है। यह संग्रहणीय चरित्र-ग्रंथ है।

केतकर, व्यं० *(म० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

ज्ञान-मार्ग से देशभक्ति की साधना करने वाले डा० केतकर का जन्म अमरावती में हुआ था। वहीं से मैट्रिक कर इन्होंने बंबई के विल्सन कालिज से इंटर किया और फिर अमरीका जाकर समाजशास्त्र में बी० ए० और एम० ए० किया। 'द हिस्ट्री ऑफ़ कास्ट्स इन इंडिया' विषय पर शोध प्रबंध लिख कर इन्होंने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। प्रारंभ से ही इन्हें व्यापक अध्ययन के प्रति रुचि थी और विस्तृत ज्ञान के कारण इन्हें 'चलता-फिरता ज्ञानकोश' कहा जाता था। जिन विषयों पर इन्होंने लेखनी उठाई है—उदाहरणार्थ : समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, हिंदू लॉ, इतिहास, काव्य, राजनीति आदि—उनसे भी इनके विस्तीर्ण ज्ञान-क्षेत्र का पता चलता है। निरंतर ग्यारह वर्ष के परिश्रम से तेईस खंडों का 'ज्ञानकोश' प्रकाशित करने के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, कहानी और कविता लिखकर इन्होंने सरस्वती के भंडार को समृद्ध किया है। इनके उपन्यास भाषा-लालित्य और विषय-सौंदर्य के कारण ही नहीं अपितु गंभीर समाजशास्त्रीय विषयों के कारण प्रसिद्ध हैं। कला की दृष्टि से इन्हें अधिक सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनके पात्र, प्रसंग और भाषा स्वाभाविक नहीं हैं। चार-पाँच पात्रों, दो-चार प्रसंगों की योजना कर ये उपन्यास के बहाने अपने शास्त्रीय और ऐतिहासिक विचार गंभीर भाषा में व्यक्त करते हैं। एक अन्य दोष जो इनके उपन्यासों में मिलता है वह है सम-सामयिक जीवित व्यक्तियों—लाला लाजपतराय, रवींद्रनाथ (दे०) टैगोर, इतिहासकार वि० का० राजवाडे (दे०) आदि का नाम बदलकर उनकी कटु आलोचना। उत्पीड़ितों के प्रति अनुकंपा जाग्रत करने तथा विचारोत्तेजक होने पर भी इनके उपन्यास कला की दृष्टि से सफल नहीं हैं अतः ये उपन्यासकार की अपेक्षा कोशकार के रूप में ही स्मरण किए जाएँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध रचनाएँ—'महाराष्ट्र ज्ञानकोश', 'परांगदा' (दे० लाला गणपतराय), 'गांवसासू', 'ब्राह्मण-कन्या', 'विचक्षणा', 'गोंडवनांतील प्रियंवदा' (दे० बैजनाथ शास्त्री), 'आशावादी' (दे० स्वामी) आदि ।

केतकादास क्षेमानंद *(बँ० ले०)*

अनुमान है इनका नाम क्षेमानंद अथवा क्षमानंद था और केतकादास अर्थात् 'मनसा का सेवक' इनकी उपाधि थी परंतु परवर्ती काल में भ्रम से ये दो व्यक्ति समझ लिये गए । दक्षिण राढ़ में दामोदर नदी के दक्षिण अथवा पश्चिम तट पर इनका निवास-स्थान था । जाति के ये कायस्थ थे। अनुमानतः इनके पिता का नाम शंकर मंडल था।

इनकी कृति 'मनसा-मंगल' है जो अनुमान से 1640-50 के मध्य लिखी गई थी । 'मनसा-मंगल' के कथानक में कोई मौलिकता नहीं परंतु इसमें पूर्ववर्ती मनसा-मंगल-काव्यों के प्रसंगों को कहीं अच्छे रूप में प्रस्तुत किया गया है । कवि की रचना रीति एवं परिकल्पना में पूर्ववर्ती कवि मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती, मुकुंदराम) का प्रभाव देखा जा सकता है ।

क्षेमानंद मनसा-मंगल के ये सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । पश्चिम बंग में इनके ग्रंथ का सर्वाधिक प्रचार है । इनकी रचना में उत्कृष्ट पांडित्य .एवं कवित्व के दर्शन होते हैं । इनकी विशेषता है सरलता एवं सहृदयता । जिस प्रकार कृत्तिवास (दे०) की रामायण का बंगाल के घर-घर में प्रचार है, उसी प्रकार 'मनसा-मंगल' परंपरा के बंग प्रदेश में इनका अपना विशिष्ट स्थान है ।

केतना *(ते० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

ये महाकवि तिक्कना (दे०) के समसामयिक थे। इनका पूरा नाम मूलघटिक केतना है । 'आंध्र-महाभारतमु' (दे०) के अनुवादकर्त्ता तिक्कना के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए इन्होंने अपने 'दशकुमारचरित्र' को उन्हें अर्पित किया था। ये न केवल संस्कृत के काव्य-साहित्य के मर्मज्ञ थे, अपितु शास्त्र-साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। ये परम शिवभक्त थे । इनकी रचनाएँ हैं : 'दशकुमारचरित्र', 'आंध्रभाषाभूषणमु' और 'विज्ञानेश्वरीयमु' (दे०) । इनमें 'दशकुमारचरित्र' 12 आश्वासों का एक कथात्मक तेलुगु काव्य है । दंडी (दे०)-कृत संस्कृत 'दशकुमारचरित्र' (दे०) इसका आधार है । संस्कृत-गद्यकाव्य को इन्होंने तेलुगु में चंपू शैली में प्रस्तुत किया । इसकी साहसपूर्ण कथाओं में श्रृंगार तथा हास्य का सुंदर समन्वय पाया जाता है । 'आंध्रभाषाभूषणमु' व्याकरण ग्रंथ है । इनके पहले तेलुगु भाषा के लिए जितने व्याकरण लिखे गए उन सबकी भाषा संस्कृत थी । तेलुगु के लिए तेलुगु भाषा में ही लिखित व्याकरणों में 'आंध्रभाषाभूषणमु' ही सर्वप्रथम है। संस्कृत में याज्ञवलक्य मुनि ने आचार कांड, प्रायश्चित कांड, तथा व्यवहार-कांड से युक्त एक स्मृति-ग्रंथ की रचना की और उसकी 'मिताक्षरी' नामक व्याख्या भी लिखी । केतना का 'विज्ञानेश्वरीय' उक्त व्याख्या सहित मूलग्रंथ का तेलुगु अनुवाद है । इनमें 'दशकुमारचरित्र' की रचना के आधार पर ही इनको उत्तम कवि की ख्याति प्राप्त हुई । ललित शब्दों के प्रयोग के लिए संस्कृत-साहित्य में दंडी ने जो यश प्राप्त किया वही तेलुगु-साहित्य में केतना को भी मिला । इनको 'अभिनव दंडी' कहा जाता है । श्रृंगार और हास्य रसों से युक्त साहसपूर्ण कहानियों के वर्णन में केतना ने मूलग्रंथ के लेखक की ही तरह अनुपम प्रतिभा दिखाई है । व्याकरण, धर्मशास्त्र और कविता रूपी भिन्न स्वभाव वाले क्षेत्रों में समान प्रतिभा प्रदर्शित करना इनकी विशेषता है। तेलुगु में लिखित सर्वप्रथम व्याकरण (तेलुगु भाषा से संबद्ध), धर्मशास्त्र-ग्रंथ तथा कथात्मक काव्य भी इन्हीं के हैं ।

केतेकी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1918 ई०]

रघुनाथ चौधारी के इस संग्रह की कविताओं में पक्षियों के कलरव में विश्वरागिनी का स्वर बताया गया है । पक्षियों की प्रत्येक चेष्टा में अपरूप शाश्वत सौंदर्य के दर्शन किए गए हैं । संस्कृत शब्दावली का प्रयोग है । लेखक पर कालिदास (दे०) का विशेष प्रभाव है । विहंग-संबंधी कविताओं की दृष्टि से पुस्तक भारतीय साहित्य में विशेष स्थान रखती है ।

केतोटि कथा *(उड़ि० कृ०)*

यह नंदिनी शतपथी (दे०) की समय-समय पर लिखी कतिपय कहानियों का संकलन है । कहानियाँ साधारणतः आकार में लघु तथा अत्यंत प्रभावशाली हैं । भाषा-प्रयोग में लेखिका की पारदर्शिता उल्लेखनीय है । कहानियों की विषय-वस्तु सामान्यतः सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नारी समस्याओं से संबंधित है। उनमें प्रचुर मानवीय संवेदना देखने को मिलती है। संकलन की अंतिम कहानी 'जनपथ' में इसी संवेदना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। संवेदना के अंतराल से उद्भासित वैचारिक तीक्ष्णता इन कहानियों को तरल गांभीर्य प्रदान करती है।

केरल कौमुदी *(मल० कृ०)*

श्री कोवुण्णि नेटुङ्ङाडि (दे०) ने सन् 1878 में 'करल कौमुदी' नाम से एक व्याकरण-ग्रंथ की रचना की। इसके पहले जितने व्याकरण-ग्रंथों की रचना हुई है उनमें प्रस्तुत ग्रंथ का स्थान अन्यतम माना जाता है। चौदह अलंकार और कुछ वृत्तों के लक्षण और उदाहरण सुचारु रूप से दिए गए हैं। द्राविड़ वृत्तों पर प्रकाश डालने वाला यह प्रथम ग्रंथ है।

केरळत्तिले काळ सेवा *(मल० कृ०)*

इसके लेखक डा० चेलनाट अच्युत मेनन हैं। करल में प्राचीन काल से सर्वशक्ति-संपन्न काली (देवी) की उपासना की रीति परंपरा जन रूप से प्रचलित रही है। कई देवी-मंदिरों में उत्सव के समय भक्तिपूर्वक ये गीत गाए जाते हैं। मण्णन्, पाणन् आदि समाजों के स्त्री-पुरुषों के बीच इनका बड़ा प्रचार है।

केरलपाणिनीयम *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1896 ई०]

यह ए० आर० राजराज वर्मा (दे०) का प्रशस्त व्याकरण-ग्रंथ है। सन् 1896 में प्रकाशित इस ग्रंथ का संवर्द्धित रूप सन् 1917 में पुनः प्रकाश में आया था। मलयाळम भाषा के इस व्याकरण का निबंधन संस्कृत-वैयाकरणों की परंपरा में सूत्र रूप से हुआ है। प्रत्येक सूत्र की विशद चर्चा भी पुस्तक में सम्मिलित है। ग्रंथ चार कांडों में विभक्त है जिनमें क्रमशः शिक्षा, परिनिष्ठा, आकांक्षा और निरुक्ति की चर्चा है।

इस ग्रंथ के रचना-काल में जो चार-पाँच व्याकरण ग्रंथ उपस्थित थे वे पूर्ण या प्रामाणिक नहीं थे। 'केरलपाणिनीयम्' इस क्षेत्र का सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रंथ है और उसका यह स्थान आज भी अक्षुण्ण है। उन्होंने शब्दों को पांच शीर्षकों में विभाजित किया—नाम, कृति, भेदक, निपात और अव्यय। इस प्रकार की अनेक व्यवस्थाएँ लाकर केरलपाणिनि ने व्याकरण का अध्ययन सरल किया।

इस ग्रंथ के महत्व का यही प्रमाण है कि आज तक किसी अन्य विद्वान ने इसमें संशोधन की आवश्यकता नहीं समझी और किसी नए व्याकरण की रचना नहीं की।

केरलभाषयुटे क्विकासपरिणा मङ्ङळ् *(मल० कृ०)*

यह इळंकुळम् कुञ्ञन् पिळ्ळा (दे०) का भाषा-वैज्ञानिक ग्रंथ है। इसमें मलयाळम के विकास के संबंध में नूतन मत स्थापित किया गया है। कुञ्ञन् पिळ्ळा ने भाषा के रूप निर्धारण के लिए इतिहास का सहारा लिया है। उनकी सूचना और शोध के मूल स्रोत विभिन्न शिलालेख हैं। इन शिलालेखों का विश्लेषण करके लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि केरलीय भाषा का विकास तमिल और मलयाळम की एक मिश्र भाषा के रूप में हुआ है। भाषा-वैज्ञानिक शोधग्रंथों में इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

केरलभाषाविज्ञानीयम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1951 ई०]

यह डा० के० गोदवर्मा (दे०) का भाषावैज्ञानिक ग्रंथ है। इसमें भाषाओं की उत्पत्ति, विभिन्न शाखाओं में विभाजन, भारतीय आर्य और द्राविड़ भाषाओं की विशेषताएँ आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा के बाद मलयाळम के विकास के इतिहास और भाषावैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन किया गया है।

इस ग्रंथ में लेखक ने इस परंपरागत मत का खंडन किया है कि मलयाळम का विकास तमिल की एक उपभाषा के रूप में हुआ है। उन्होंने आट्टूर कृष्ण पिषारटी (दे०) के इस मत का समर्थन किया है कि तमिल और मलयाळम दोनों का विकास मूल द्राविड़ भाषा से स्वतंत्र रूप में हुआ है। आजकल के प्रायः सभी भाषाविज्ञ इस नूतन सिद्धांत से सहमत हैं। सामान्य भाषाविज्ञान की प्रामाणिक पाठ्य-पुस्तक के रूप में भी यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है।

केरलवर्मा रामायणम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः 1679 और 1696 ई० के बीच]

इसके लेखक केरलवर्मा तंपुरान हैं। केरलवर्मा (वीर केरलवर्मा) का जन्म तो उत्तर मलाबार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोट्टयम् में हुआ पर बाद में ये त्रावनकोर-राजपरिवार के सदस्य हो गए। श्री तुंचत्तेषुत्तच्छन (दे०) के पश्चात् उनके द्वारा प्रयुक्त किळिप्पाट्टु (दे०) में मलयाळम काव्य रचने का श्रेय सुप्रसिद्ध कवि केरलवर्मा को ही है। केरलवर्मा ने 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) का जो अनुवाद प्रस्तुत किया वह 'केरलवर्मा-रामायणम्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वाल्मीकि (दे०) की भाव-संपदा सुबोध शैली में मलयाळम काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करना कवि का ध्येय था। सुंदरकांड तक के खंड ही केरलवर्मा ने अनूदित किए थे, बाद में किसी ने युद्धकांड लिखकर जोड़ दिया जो काव्य-गुण की दृष्टि से कहीं नीचे है। इस काव्य क अनेक प्रसंग भावपूर्ण एवं सरस हैं। ठेठ मलयाळम तथा संस्कृत शब्दों के कई उत्तम उदाहरण इसमें मिलते हैं। मलयाळम साहित्य की रामकाव्य-धारा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

केरलसाहित्यचरित्रम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1953 ई०; लेखक—उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वरय्यर]

इस वृहत् इतिहास के रचयिता उळ्ळूर् अपने समय के अद्वितीय अनुसंधाता विद्वान थे। महाकवि के रूप में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है परंतु प्राचीन शिलालेखों, विवादग्रस्त पांडुलिपियों, दुर्लभ ग्रंथों आदि के क्षेत्र में तपस्साधक की तरह अथक अनुसंधान करने में भी वे बेजोड़ रहे हैं।

मलयाळम भाषा और साहित्य के इतिहास की केवल एक माला ही मिलती है। श्री गोविन्दपिल्लै, शेषगिरि प्रभु, आदि पहली पीढ़ी के इतिहासकार थे। श्री पिषारटि (दे०) नंपियार, आदि ने संक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तकें ही लिखीं। आधुनिक युग में श्री आर० नारायण पणिक्कर का कई जिल्दों में लिखा 'मलयाळम साहित्य का इतिहास' ही वर्षों तक उपलब्ध था। इसमें प्रामाणिकता और विवेचनात्मकता की कमी थी। महाकवि उळ्ळूर् ने वर्षों के परिश्रम से अपने साहित्य का इतिहास पूरा किया। अनुसंधान इनका प्रिय विषय था ही। ये इतिहास की सामग्री जुटाते ही रहे और विलक्षण साधना के फलस्वरूप समग्र इतिहास तैयार किया। यह पाँच जिल्दों में प्रकाशित हुआ है।

इसमें विद्वान लेखक ने साहित्य-धाराओं, कवियों-कृतिकारों और प्रमुख कृतियों का विशद विवेचन किया है। अव प्राचीन ग्रंथों के संवंध में संतोषजनक विवरण यदि कहीं एक जगह मिलता है तो उळ्ळूर के इस इतिहास में ही। आत्मगत तथ्यों के विस्तृत उल्लेख का मोह वे निश्चय ही संवरण नहीं कर सक परंतु इसमें संदेह नहीं कि यह इतिहास मलयाळम साहित्य का तो इतिहास है ही, केरल में रचित संस्कृत ग्रंथों का भी इतिहास है।

केरलसिंहम् *(मल० कृ०)*

यह आधुनिक युग के विशिष्ट साहित्यकार, राजनीतिज्ञ एवं इतिहासवेत्ता सरदार के० एम० पणिक्कर (दे०) द्वारा रचित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। केरलसिंह केरल के उत्तर भाग में स्थित कोट्टयम् केरलवर्मा पषश्शि राजा है। राजा बड़े शूरवीर तथा पक्के देशभक्त थे। सारे योरोप को कंपायमान करने वाले सम्राट नेपोलियन को पराजित करने वाले ड्यूक ऑफ़ विलिंगटन को केरलसिंह ने परास्त किया। यह कथा इसमें वर्णित है। साथ ही राजा के कथकलि-प्रेम का चित्रण भी किया गया है। पात्र-निर्माण तथा समसामयिक समाज एवं वातावरण के चित्रण में रचयिता ने पूरी सफलता पायी है।

केरलीय संस्कृत साहित्यचरित्रम् *(मल० कृ०)*

इसके रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान और कवि स्व० राजराज वर्मा हैं। इनका पूरा नाम है वटक्कुम्कूर् राजराज वर्मा (दे०) और जन्म-स्थान है वैक्कम। आचार्यों से इन्होंने न्यायशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया। गहरी विद्वत्ता के कारण इन्हें कोचीन की भाषा-परिष्करण समिति एवं त्रिवेंद्रम् के पांडुलिपि-संग्रहालय में विशेष रूप से नियुक्त किया गया था। कवि के रूप में ये क्लासिकल शैली के पोषक थे। इन्होंने अनेक प्राचीन कवियों एवं अन्य साहित्यिकों की समीक्षा-प्रधान जीवनियाँ लिखी हैं। व्याख्याकार, ग्रंथ-संपादक तथा समीक्षक की हैसियत से इनकी साहित्य-सेवा सराहनीय रही है।

श्री वटक्कुम्कूर् का सब से मुख्य मौलिक योगदान उनका 'केरलीय संस्कृत साहित्यचरित्रम्' है। यह ग्रंथ छह मोटे-मोटे खंडों में विभक्त है। इसमें केरलीय संस्कृत विद्वानों तथा कवियों का ऐतिहासिक परिचय और उनकी कृतियों का ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक वर्णन है। साथ ही इसमें केरल की प्राचीन संस्कृति, धर्म-भावना, सामाजिक, ऐतिहासिक आदि अनेकों विषयों का विस्तृत विवरण भी मिलता है। अतएव जिन्हें प्राचीन केरल के विभिन्न विषयों के प्रति जिज्ञासा है उनके लिए यह एक संदर्भ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ के समान है। कैरल ने वैदिक एवं लौकिक दोनों धाराओं में अनेक संस्कृत-ग्रंथ प्रस्तुत किए हैं। इन सब का परिचय, संक्षिप्त ही सही, अकेले एक विद्वान के द्वारा हो, यह बड़ी साधना ही है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रंथ का बड़ा महत्व है। परवर्ती विद्वानों को इस ग्रंथ से बड़ी सहायता मिली है।

केरी, विलियम *(बँ० ले०)* [जन्म—1761 ई०; मृत्यु—1834 ई०]

विलियम केरी ईसाई मिशनरी थे जिन्होंने फ़ोर्ट विलियम कालेज में बँगला-संस्कृत के अध्यक्ष के रूप में काम करते हुए बँगला भाषा में विविध विषयों पर सुपाठ्य ग्रंथों की रचना की व्यवस्था की और स्वयं भी 'व्याकरण', 'शब्दकोश' तथा 'कथोपकथन' (दे०) आदि पुस्तकों की रचना कर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पहले-पहल सुश्रृंखलित बँगला गद्य की प्रतिष्ठा की।

1801 ई० में इनका एक बँगला व्याकरण एवं 1825 ई० में एक 'बँगला-अँग्रेज़ी शब्दकोश' प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त केरी साहब के द्वारा संपादित दो महत्वपूर्ण ग्रंथ और भी हैं—'कथोपकथन' तथा 'इतिहासमाला'। इन दोनों पुस्तकों में केरी साहब की भूमिका अद्वितीय रही। 'कथोपकथन' में तत्कालीन कलकत्ता तथा श्रीरामपुर के प्रत्येक स्तर के स्त्री-पुरुषों की दिनचर्या, सामाजिक रीति-नीति, धर्म तथा आचार-व्यवहार का पूरा विवरण है। 'इतिहासमाला' देशी और विदेशी भाषा की 15 कहानियाँ संकलित हैं। इन दोनों ग्रंथों की रचना के द्वारा बँगला-गद्य के मौलिक रूप का उद्घाटन और साहित्य-रचना के लिए एक सुश्रृंखलित गद्य भाषा का आविष्कार ही केरी साहब का उद्देश्य था।

केरी ने अपने आप कितना लिखा है, इस संबंध में काफ़ी संदेह है एवं केरी की अपनी बँगला-रचना के उत्कर्ष-अपकर्ष के विषय में भी मतभेद हो सकता है किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि बँगला-गद्य के इतिहास में फ़ोर्ट विलियम कालेज के बँगला-विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम करते हुए उन्होंने एक विशेष लेखक-गोष्ठी की परिचालना की और बँगला गद्य को अरबी-फ़ारसी के प्रभाव से मुक्त कर उसे संस्कृत आदर्श का अनुगामी बना उसके गठन, सौष्ठव तथा अभिव्यंजना की श्रीवृद्धि की।

केरुर, वासुदेवाचार्य *(क० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1921 ई०]

ये बिजापुर ज़िले के बागलकोटे के निवासी थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई थी। सन् 1884 में मैट्रिक तथा सन् 1888 में एच० पी० परीक्षा पास करके बागलकोटे में इन्होंने वकालत करना शुरू किया था। ये प्रकांड पंडित, कलाकार और प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार थे। लोग इन्हें कन्नड के 'सर वाल्टर स्काट' नाम से पुकारते हैं। कन्नड-कथा-साहित्य को इनकी देन अद्भुत है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—'इंदिरा', 'तोळेद मुतु' (परिशुद्ध मोती),' 'नीळ्गतेगळु' (लंबी कहानियाँ), 'प्रेमविजय', 'बेळगिद दीपगळु' प्रकाशित दीप), 'भ्रातृघातकनाद औरंगजेब', 'यदु महाराज' और 'बाल्मीकि विजय'। इनके अतिरिक्त इनके 'नल-दमयंती' तथा 'पतिवशीकरण' एवं 'सुरतनगरद श्रेष्ठी' (सुरत नगर का सेठ) नामक नाटक भी पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। इनमें अंतिम दो गोल्डस्मिथ और शेक्सपियर के नाटकों पर आधारित हैं।

केळकर, नरसिंह चिंतामण *(म० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

इनका जन्म मिरज रियासत के मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। सन् 1894 में वे मिरज में ही वकालत करने लगे थे। टिळक से भेंट होने पर ये 'मराठा' पत्र के संपादक बने थे। सन् 1896-1947 तक 'मराठा', 'केसरी', 'सह्याद्रि' (मासिक) जैसे लोकप्रिय पत्रों के संपादक व संचालक रहे। राजनीति में ये टिळक की अपेक्षा गोखले की नरम नीति के समर्थक थे। साहित्य-जगत के ये 'साहित्य-सम्राट' कहलाते थे।

केळकर जी निबंधों के बादशाह हैं। इनके निबंध 'समग्र केळकर वाङ्मय' खंड 1-8 में हैं। इनकी निबंध-रचना विविध, विपुल एवं कलापूर्ण है। इनके पूर्व के लेखकों ने निबंध साहित्य को शक्ति प्रदान की थी और इन्होंने उसे कलात्मक सौंदर्य से मंडित किया। इनके निबंध वि० कृ० चिपळूणकर (दे०) के विचारप्रधान तथा ना० सी० फड़के (दे०) के ललित-मधुर लघु निबंधों को जोड़ने वाली श्रृंखला की कड़ी है। 'पाला-पाचोळा' निबंध-संग्रह में इनके व्यक्तिनिष्ठ निबंध हैं।

'तोतयाचें बंड', 'कृष्णार्जुन युद्ध', 'वीर विडम्बन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि इनके नाटक हैं, तथा 'नवलपूरचा संस्थानिक', 'कावळा आणिढापी', 'बालिदान' आदि उपन्यास हैं। इनके द्वारा लिखी गई लगभग पच्चीस कहानियाँ भी हैं। मनोविनोद के लिए कुछ कविताएँ भी इन्होंने लिखी थीं, पर अंततः उनमें वृत्ति नहीं रमी। कालिदास (दे०) की तरह इनकी उपमाएँ प्रसिद्ध हैं।

इतालवी राष्ट्रवीर ग्यारी बॉल्डी तथा आयरिश देशभक्तों के चरित्र भी इन्होंने लिखे थे। चरित्र-ग्रंथों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोकमान्य बालगंगाधर टिळक का त्रिखंडात्मक बृहत् चरित्र (दे० 'टिळक-चरित्र') है। यह चरित्र टिळक के जीवन का विशाल इतिहास है। सन् 1939 में इन्होंने 'गतगोष्टी' नामक आत्मकथा भी लिखी थी।

ये कलावादी साहित्यकार थे। इनके अनुसार साहित्य में नीतिबोध हो तो सोने में सुहागा होगा, पर यह कहना कि नीति के बिना साहित्य रचना संभव नहीं, असमीचीन है।

इनके 'सुभाषित आणि विनोद' तथा 'हास्य-विनोद मीमांसा' (दे०) साहित्यशास्त्र संबंधी पुस्तकों में हास्य रस का विवेचन है।

केळकर जी बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। काव्य, उपन्यास, नाटक, चरित्र, आलोचना, निबंध तथा साहित्यशास्त्र सभी साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलाकर इन्होंने मराठी साहित्य का उपकार किया है।

केलवु नेनपुगळु (क० कृ०)

स्व० नवरत्नं रामराव कर्णाटक के एक धीमंत व्यक्ति थे। वे मैसूर के एक सफल अधिकारी और राजा जी के सहपाठी थे। कला, संस्कृति आदि में उनकी विशेष रुचि थी। ऐसे सहृदय व्यक्ति के कुछ संस्मरण (केलवु नेनपुगळु) इसमें संगृहीत हैं। कन्नड में ऐसा ग्रंथ सब से पहली बार आया। इसमें श्री नवरत्न रामराव जी के उन दिनों के जीवन का चित्रण है जब वे तहसीलदार थे। ये संस्मरण केवल साहित्य नहीं हैं। काव्य, कला, दर्शन तथा जीवन-धर्म सभी-कुछ इसमें हैं। इसमें अर्द्धशताब्दी के मैसूर राज्य (स्वातंत्र्य-पूर्व) के शासन, जन-जीवन आदि का अत्यंत सुंदर निरूपण है। प्रचलित उर्दू-अँग्रेजी शब्दों के प्रयोग से वातावरण में एक विलक्षण आत्मीयता आ गई है, कृत्रिमता या अजनबीपन नहीं है। वे संगीत-प्रेमी थे, आस्तिक थे। पूर्ण जीवन के सभी उपादान और सामग्रियाँ आपको यहाँ मिलेंगी। उन दिनों मैसूर राज्य में दीवान बनकर आने वालों का स्वजन-पक्षपात, तमिलनाडु से आए हुए लोगों का दुरभिमान, अधिकारियों की पारस्परिक गुटबंदी आदि के साथ-साथ गाँव की गुटबंदी, डकैतों, चोरों के उपद्रव, ज़िलाधिकारियों का आडंबर, गाँव के मेले-ठेले, विवाह के समय बारातों में निकलने के लिए लोगों में विरोध, नवरत्न रामराव जी का ज्योतिष-प्रेम, उनकी इंग्लैंड-यात्रा, ग्रामीण नाटक, गाँव के विभिन्न पक्षों और चरित्रों का उद्घाटन, राजमाता की भक्ति, प्रजा-प्रेम—इस तरह हमारे गाँवों के लोगों के सैकड़ों जीवन-चित्र यहाँ हैं। इन चित्रों में जीवन है, गति है, संदर्भ है। इस तरह कर्णाटक की स्वातंत्र्य-पूर्व अर्धशताब्दी के ग्राम तथा नगर-जीवन एक उपन्यास की भाँति रोचक शैली में यहाँ मूर्तिमंत हुए हैं। उनका निर्मल हास्य बीच-बीच में सारे वातावरण को मधुर बना देता है। एक सुसंस्कृत-सहृदय व्यक्ति के साथ जीने का आनंद इस ग्रंथ से मिलता है। संस्मरण का इतना सुंदर ग्रंथ कन्नड में आज भी दूसरा नहीं है।

केलॉग, सैमुएल एस० [जन्म—1839 ई०; मृत्यु—1899 ई०]

न्यूयॉर्क के वैस्ट हैम्पटन में जन्मे पादरी केलॉग भारत में धर्म-प्रचार के लिए आए और 1872 तक इलाहाबाद के थियोलॉजिकल ट्रेनिंग स्कूल में पढ़ाते रहे। यों तो 'लाइट ऑफ़ एशिया', 'लाइट ऑफ़ द वर्ल्ड' आदि कई पुस्तकें इन्होंने लिखी किंतु इनका अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी व्याकरण' (A Grammar of the Hindi Language) है। इसका प्रथम संस्करण 1876 ई० में तथा दूसरा परिवर्तित-परिवर्धित संस्करण 1893 ई० में हुआ। हिंदी का यह प्रथम सुव्यवस्थित तथा विस्तृत व्याकरण है तथा आज भी कई दृष्टियों से सर्वोत्तम है। इसमें लिपि, ध्वनि तथा संधि के अतिरिक्त हिंदी के तत्कालीन परिनिष्ठित रूपों के साथ-साथ मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेरवाड़ी, जयपुरी, हाड़ौती, कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली, कन्नौजी, बैसवाड़ी, रीवाई, भोजपुरी, मगही और मैथिली आदि के भी रूप यथास्थान दिए गए हैं। वाक्य-रचना के विस्तृत प्रायोगिक नियमों के अतिरिक्त रूपों की व्युत्पत्ति और उनका विकास भी दिया गया है। केलॉग बहुत अच्छे अनुवादक भी थे। भारत की बाइबिल सोसायटी ने इन्हीं से बाइबिल की पुरानी पोथी का अनुवाद कराया था जो इनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवलज्ञान *(प्रा० पारि०)*

मुक्तात्माओं का ज्ञान जैन धर्म में 'केवल ज्ञान' कहा जाता है। सामान्यतया ज्ञान दो प्रकार का माना जाता है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष और उसके आधार पर होने वाला (अनुमान) ज्ञान परोक्ष माना जाता है। किंतु जैन धर्म के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान भी पूर्ण प्रत्यक्ष नहीं होता; क्योंकि उसमें भी वस्तु का आत्मा से प्रत्यक्ष संबंध हो कर इंद्रियों के माध्यम से ही होता है। आत्मा कर्मबंधनों को हटाकर जो पारमार्थिक ज्ञान अर्जित करता है वह इन दोनों प्रकार के ज्ञानों से भिन्न होता है। इस प्रकार के ज्ञान के तीन भेद माने जाते हैं—(1) आंशिक रूप में कर्मबंधन का अपाकरण कर जो सूक्ष्म तत्त्वों का अवलोकन किया जाता है वह सीमित होने के कारण 'अवधि-ज्ञान' कहलाता है। (2) जब व्यक्ति राग-द्वेष के ऊपर, उठ कर इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है कि दूसरे के मस्तिष्क में प्रवेश कर सके और अतीतानागत वस्तु को देख सके तब उसे मनःपर्याय कहा जाता है और (3) जब कर्मों का अत्यंताभाव होकर मुक्तात्माओं को आत्मा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है तथा उस प्रकार के ज्ञानों को 'केवली' की उपाधि प्राप्त होती है।

के० वी० एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1965 ई०]

इनका पूरा नाम कैप्पळ्ळि़ळ वासुदेव मूसद है। 'कैप्पळ्ळि़ळ' परिवार का नाम है और 'मूसद' उपजाति का इनका जन्म पोन्नानी तालुके के एक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकंठन् मूसद था और माता का 'आर्या'। श्री के० वी० एम० ने परंपरागत क्रम से प्रारंभ में संस्कृत के कुछ स्रोत, 'अमरकोश' अदि सीखे थे। इनकी अगली संस्कृत शिक्षा केरल के प्रशस्त आचार्य नीलकंठ शर्मा के पट्टांपी स्थित संस्कृत महाविद्यालय में संपन्न हुई थी। संस्कृत के अध्ययन के साथ विश्राम की घड़ियों में ये मलयाळम साहित्य का रसास्वादन भी करते थे। इस प्रकार अध्यापन-लेखन का भी कार्य शिक्षा के साथ-साथ चलता था।

सेवा-कार्य और धन-लाभ के विषय में इनका जीवन बड़ा ही अव्यवस्थित और कठोर था। कुछ वर्ष स्कूल के मलयाळम अध्यापक और कुछ वर्ष कोचिन रियासत की भाषापरिष्करण समिति के भाषा-पंडित रहे। मगर अधिकांश जीवन-काल तो स्वतंत्र साहित्य-सेवा में बीता। विविध विद्वत्समाजों ने इन्हें 'साहित्यनिपुण', 'साहित्यरत्न' आदि उपाधियों से विभूषित किया था। इनके ग्रंथों की विपुलता और विविध-विषयता के आधार पर इन्हें अभिनव क्षेमेंद्र तक कहा गया था। श्री के० वी० एम० की साहित्य-सेवा का प्रारंभ पालघाट से प्रकाशित 'सारबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से हुआ था। वह युग साहित्य-सेवा के सम्मान का तो था; पर अर्थलाभ इन्हें बिलकुल नहीं होता था। गंभीर से गंभीर विषयों के ग्रंथ लिखने के पारिश्रमिक के तौर पर भी श्री के० वी० एम० को प्रति फार्म दो रुपये ही मिलते थे। अर्थाभाव के कारण वह भी इन्हें स्वीकार करना पड़ता था। इनके ग्रंथों में से कुछ हैं—'मेप्पत्तूरभट्ट-तिरि', 'महाकवि', 'कालिदासम्', 'उर्वशी', 'शिवाजी', 'आनंद-'रामायणम्', 'साहित्यकौस्तुभम्', 'प्राचीन भारतम्' आदि। संपादित या अनूदित ग्रंथों में 'अर्थशास्त्र', 'आग्नेयपुराण', पूंतानम् (दे०) कृतियाँ' आदि प्रमुख रहे हैं। 'मंगलोदम्', 'वसु-मती' आदि पत्र-पत्रिकाओं के संपादक-प्रूफ़संशोधक आदि के रूप में भी इनकी सेवा कम महत्व की नहीं है। मलयाळम के परिनिष्ठित गद्य और संस्कृत की उत्तम कविता—दोनों पर इनका जबरदस्त अधिकार रहा है। श्री के० वी० एम० की तुलना कई दृष्टियों से हिंदी के बाबू शिवपूजनसहाय (दे०) से की जा सकती है।

केशव-कोइलि *(उड़ि० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः पंद्रहवीं शती; ले०—मार्कंडदास (दे०)]

अभिलिखित कोइलि-रचनाओं में प्राचीनतम होते हुए भी 'केशव कोइलि' उड़ीसा का सर्वाधिक प्रिय कोइलि गीत है। वस्तुतः कोइलि कहने से लोग 'केशव-कोइलि' ही समझते हैं। 'चउतिशा' (दे०) रीति से इसकी रचना हुई है। प्रत्येक पद के अंत में 'लो कोइलि' संबोधन होने के कारण इसको 'कोइलि-चउतिशा' कहते हैं। संस्कृत-दूतकाव्य में प्रयुक्त हंस, मेघ आदि के समान यहाँ कोयल दूत नहीं है। माँ यशोदा कृष्ण के वियोग में अपनी अंतर्व्यथा कोयल के समक्ष व्यक्त कर शांति-लाभ करती हैं। यह वात्सल्य रस की एक उत्कृष्ट रचना है। कृष्ण के प्रति उमड़ते मातृ-हृदय की अश्रुसिक्त ममता कोयल को संबोधित कर व्यक्त होने के कारण इसे 'केशव-कोइलि' कहते हैं।

कंस के आदेश से कृष्ण मथुरा जाते हैं। अपने माता-पिता को प्राप्त कर वापस ब्रज नहीं आते हैं। वृद्धा जननी के विरहोद्गार ही इसकी करुण-कथा हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दु:खिनी यशोदा के शोक-श्लोक के भीतर उड़िया घर के सामाजिक चित्र रीति-नीति, आचार-व्यवहार, सुख-दु:ख, चमत्कारिक ढंग से उभर आए हैं। मातृप्राण की भाव-ऊर्मियों से यह रचना संगीत-ऊर्मिल हो उठी है। 'केशव-कोइलि' की भाषा घरेलू एवं सरल है—विशुद्ध उड़िया पदावली। इसमें दो चरणों का एक पद है। आरंभ एवं अंत में कोइलि संबोधन मिलता है।

अतिवड़ी जगन्नाथदास (दे०) ने इसकी दार्शनिक व्याख्या 'अर्थ कोइलि' नामक अपनी टीका में प्रस्तुत की है। उनके अनुसार जीव, परमपिंड, पिंड में जीव की लीला, परमात्मा के विरह में जीव की वेदनानुभूति आदि इसमें वर्णित हैं। लौकिक बिंबों के माध्यम से कठिन दार्शनिक विषय को अत्यंत सरल रूप में समझाने का प्रयास पंच-सखाओं (दे०) ने किया था। उसी का प्रभाव-विस्तार हम मार्कंडेयदास में पाते हैं। जगन्नाथ दास द्वारा इसकी टीका में इस बात का द्योतन होता है कि उस समय (सोलहवीं शती) तक 'केशव-कोइलि' रचना प्रसिद्ध हो गई थी।

दार्शनिक गुरुता से परे 'केशव-कोइलि' की विशिष्ट मनोज्ञता उसकी घरेलू भाषा एवं घरेलू-साधारण परिचित चित्रों में है। शोक-विधुरा वृद्धा जननी यशोदा की यह वाणी अत्यंत करुण और रसमय है।

केशवदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1555 ई०]

इनका जन्म टेहरी में हुआ था। ये सनाढ्य ब्राह्मण थ और ओरछा नरेश के भाई इंद्रजीत सिंह के यहाँ आश्रित कवि के रूप में रहते थे। इनकी सात कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' (दे०) 'रामचंद्रिका' (दे०), 'धीरसिंह-देवचरित', 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी', और 'जहाँगीरजसचंद्रिका'। इनकी ख्याति के आधार प्रथम तीन ग्रंथ हैं। प्रथम दो काव्यशास्त्र-विषयक हैं, 'रामचंद्रिका' रामचरित से संबद्ध महाकाव्य है और साथ ही अलंकारों तथा छंदों का उदाहरण-संग्रह भी। शेष चार ग्रंथ साधारण कोटि के हैं। 'रसिकप्रिया' में शृंगार रस, उसके भेदोपभेद और नायक-नायिका-भेद का निरूपण है। अन्य रसों की भी सामान्य चर्चा है। पर इनका अंतर्भाव केशव ने शृंगार रस में कर दिया है। 'कविप्रिया' विविध-काव्यांग-निरूपक ग्रंथ है, जो कि अधिकांशत: दंडि (दे० दंडी)-प्रणीत 'काव्यादर्श' (दे०) के अनुकरण पर रचित है। हिंदी में अपने प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। इसी कारण कई आचार्य केशव को रीतिकाल का जन्मदाता मानते हैं। किंतु आगे चलकर 'कविप्रिया' की सरणि का अनुकरण नहीं हुआ, चिंतामणि (दे०)-कृत 'कविकुलकल्पतरु' का अनुकरण हुआ, अत: रीतिकाल का प्रवर्तक चिंतामणि को ही माना जाता है। 'कविप्रिया' में वर्ण्यविषय को 'साधारण' अलंकार कहा गया है, और इसे भूषित करने वाले साधनों को विशेष 'अलंकार'। साधारण अलंकार के चार भेद हैं—वर्ण, वर्ण्य, भू-श्री और राजश्री। इनके निरूपण में केशव ने संभवत: अमरचंद्र यति के ग्रंथ 'काव्यकल्पलतावृत्ति' और केशवमिश्र के ग्रंथ 'अलंकारशेखर' से सहायता ली है। विशिष्ट अलंकार से केशव का तात्पर्य है स्वभावोक्ति, विभावना आदि अर्थालंकार, जो कि प्राय: दंडी के काव्यादर्श पर और कहीं-कहीं रुय्यक (दे०) के 'अलंकारसर्वस्व' के आधार पर प्रतिपादित हैं। कहीं-कहीं यह प्रतिपादन अस्पष्ट, अपूर्ण एवं भ्रामक भी हो गया है। अलंकार के संबंध में केशव की यह प्रमुख धारणा उल्लेख्य है—

जदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥

स्पष्टत:, उनका यह कथन भामह (दे०) के निम्नोक्त कथन से प्रभावित है—'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।' प्रमुखत:, इसी धारणा के कारण केशव को अलंकारवादी आचार्य कहा जाता है, किंतु 'रसिकप्रिया' के निम्नोक्त उद्धरण के आधार पर उनका रसवाद के प्रति आग्रह भी कुछ कम नहीं है—

ज्यों बिन डीठ न शोभिये लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन बाणी न रसाल॥

वस्तुत:, केशव का ग्रंथ 'कविप्रिया' अलंकारवादी आचार्यों; विशेषत: दंडी के ग्रंथ का रूपांतर मात्र है, अत: उन्हें एक सीमा से आगे अलंकारवाद का समर्थक आचार्य नहीं मानना चाहिए। जो हो, हिंदी जगत् में काव्यशास्त्र के विविध अंगों पर शास्त्रीय चर्चा करने वाले प्रथम आचार्य केशव ही हैं। हिंदी की काव्यधारा को भक्तिपथ से रीतिपथ की ओर सर्वप्रथम मोड़ने का श्रेय केशव को ही है।

'रामचंद्रिका' के आधार पर केशव को हिंदी का एक प्रबंध काव्यकार भी माना जाता है, किंतु इस ग्रंथ के द्वारा राम की कथा को प्रबंधकाव्य का रूप देने में कवि को सफलता नहीं मिली। कथा का सुसंगत विकास, भावपूर्ण स्थलों का सुचित्रण और दृश्य-विघटन आदि विशेषताएँ जो एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित हैं, इस रचना में नहीं मिलतीं। वस्तुविकास की दृष्टि से यह ग्रंथ मुक्तकों का संग्रह प्रतीत होता है जिन्हें जोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबंधात्मक रूप दे देने का प्रयास किया गया है। इसमें राम की अनेक महत्वपूर्ण और प्रमुख घटनाओं का तो संकेत मात्र कर दिया गया है, किंतु अनावश्यक प्रसंगों को अति विस्तार से स्थान मिला है। मूलतः, केशव का लक्ष्य इस ग्रंथ के माध्यम से विभिन्न अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करना भी रहा है, इस कारण भी इस ग्रंथ में प्रबंध-कौशल लक्षित नहीं होता। बहुविध छंदों के उदाहरण प्रस्तुत करना भी कवि को अभीष्ट रहा है। इसके अतिरिक्त केशव की पांडित्य-प्रदर्शन-प्रवृत्ति, वाग्जाल के प्रति रुचि एवं दरबारी मनोवृत्ति भी इस ग्रंथ में स्पष्ट है। फिर भी, इस ग्रंथ में कई एक संवाद कुशल शब्द-योजना एवं सफल भावाभिव्यक्ति के कारण कवि की प्रतिभा का परिचय देते हैं। केशव हिंदी के प्रथम आचार्य कवि हैं।

केशवदेव, पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार और नाटककार हैं। अपने संघर्षमय जीवन में ये सदैव क्रांति के पक्षपाती रहे हैं और पारिणामस्वरूप इन को जेल-जीवन भी भुगतना पड़ा है। यद्यपि ये साम्यवादी आंदोलन के सजीव कार्यकर्ता थे तो भी बाद में अपने सहयोगियों के विपथगमन का इन्होंने कड़ा विरोध किया।

केशवदेव का उपन्यास 'अयल्कार' (दे०) साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कृति है। 'ओटयिल् निन्नु' (दे०), 'नटी', 'भ्रान्तालयम्' आदि इनके अन्य उपन्यास हैं। इनके सोलह कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने 'नाटककृत्', 'मुन्नोट्टु' आदि ग्यारह नाटक रचे हैं और 'एतिर्पु' में अपने साहित्यिक विचारों का संग्रह भी किया है।

केशवदेव की रचनाओं में सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखरित है। सार्वजनिक आंदोलनों में निहित स्वार्थ के हस्तक्षेप से होने वाली मलिनताओं के विरुद्ध आवाज़ उठाना इन्होंने अपना कर्तव्य समझा है। मानव-हृदय में रूढ़मूल सद्प्रवृत्तियों के प्रकाशन में भी ये समान रूप से सिद्धहस्त हैं।

आधुनिक गद्य-साहित्यकारों में केशवदेव का स्थान समुन्नत है।

केशवराम शास्त्री *(गु० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

विद्यावाचस्पति पंडित केशवराम काशीराम शास्त्री का जन्म मांगरोल (सौराष्ट्र) में हुआ। पिता काशीराम जी शास्त्री मांगरोल की संस्कृत पाठशाला के आचार्य थे। बचपन से ही शास्त्री जी को संस्कृत के प्रति प्रगाढ़ अनुराग था। 1925 ई० में मांगरोल में ही स्कूल में अध्यापक हुए। सन् 1936 में स्थायी रूप से अहमदाबाद में आकर बस गए। संप्रति वे भो० जे० विद्याभवन तथा बी० डी० गर्ल्स कालेज में कार्यरत हैं।

अब तक शास्त्री जी 113 ग्रंथ लिख चुके हैं। शास्त्री जी के प्रकाशित लेखों की संख्या 300 से भी अधिक है। उनके कतिपय प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—'आपणा कविओ', 'कविचरित' (भाग 1 और 2), 'अपभ्रंश व्याकरण', 'नळाख्यान' (दे०), (भालण-कृत), 'प्रेमानंद : एक अध्ययन', 'भालण : एक अध्ययन', 'जूनी पश्चिमी राजस्थानी' (तेस्सितोरी का अनुवाद), 'भाषाशास्त्र अने गुजराती भाषा', 'दयाराम-रसधारा' (भाग १) आदि। प्राचीन साहित्य, पाठ-शोध, अपभ्रंश व संस्कृत-साहित्य, भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, प्राचीन भारतीय संस्कृति, मध्ययुगीन गुजराती आदि विषयों के गंभीर अध्येता तथा प्रकांड पंडित केशवराम जी शास्त्री एक विद्या-पुरुष के रूप में सभी के द्वारा समादृत हैं। शोध के क्षेत्र में भी उनका स्तुत्य योगदान है।

सन् 1966 में राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने शास्त्री जी को 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया। उनका विद्याव्यसन आज भी यथावत् है।

केशवसुत, कृष्णाजी केशव दामले *(म० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1905 ई०]

श्री दामले साहित्य-जगत् में केशवसुत नाम से ही विख्यात हैं। इनका जन्म रत्नगिरी ज़िले के मालगुंड नामक ग्राम में हुआ था। इन्होंने प्रारंभिक विद्याध्ययन रत्नगिरी के खंडग्राम में किया था और तदुपरांत पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल से प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की थी। धनाभाव के कारण इन्होंने पूना, बंबई तथा फ़ैज़पुर में अध्यापन कार्य किया था। सरकारी नौकरी के प्रति इन्हें अश्रद्धा थी।

केशवसुत मूलतः कवि थे। इन्होंने अँग्रेज़ी की रोमांटिक कविता का गहन मनन-चिंतन किया था, जिसके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से आधुनिक मराठी कविता में स्वच्छंदतावाद, प्रकृति-प्रेम आदि नूतन प्रवृत्तियों का प्रवेश हुआ था। इन्होंने 134 स्फुट कविताएँ लिखी थीं। इनमें से 19 कविताएँ संस्कृत तथा अँग्रेज़ी का अनुवाद हैं। ये सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ 'केशवसुतांची कविता-संग्रह' में संगृहीत हैं।

युगकवि केशवसुत अर्वाचीन मराठी कविता के जनक हैं। ये संक्रांति-काल के कवि हैं। इन्होंने विशिष्ट साँचे में ढली परंपराबद्ध कविता का विरोध कर कविता के क्षेत्र में विचार, वस्तु तथा शैली विषयक क्रांति का सूत्रपात्र कर उसे नवीन मोड़ दिया है।

इनकी कविता स्वानुभूति से उत्प्रेरित है। कविता का विषय साधारण व्यक्ति का सुख-दुःख है—पर उसका अंकन यथार्थ है। इनके काव्य में तत्कालीन राष्ट्रीय एवं जातीय चेतना प्रतिबिंबित है। इनका काव्य क्रांति का उद्बोधक रहा है। इनकी 'तुतारी' (तुरही) कविता के आधार पर इनके साहित्य को 'तुतारी वाङ्मय'—अर्थात् क्रांति का प्रेरक कहा जाता है।

इनकी कविता के विषय वैविध्यपूर्ण हैं। कवि तथा कविता, प्रेम, नारी की अवस्था, प्रकृतिवर्णन, समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, संस्कृति, प्रेम, नीति, उपदेश आदि सभी विषयों पर इन्होंने लेखनी चलाई है। इन्होंने 'झपुर्झा', 'हरपले श्रेय', 'म्हातारी' जैसी कुछ रहस्यवादी कविताएँ भी लिखी हैं।

केशवसुत की रचना प्रगीतात्मक है। इन्होंने मुक्तक काव्य-रचना के क्षेत्र में विविध प्रयोग किए हैं। 'सॉनेट' जैसे अँग्रेज़ी-काव्य-रूप को 'सुनीत' नाम से मराठी में सर्वप्रथम लाने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। मराठी साहित्य में मुक्त छंद (दे०) का सफल प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया है।

केशवीयम् *(मल० कृ०)*

सरस गायक कवि-मणि के० सि० केशव पिळ्ळा (दे०) है। इसका रचना-काल सन् 1868 और 1914 के बीच में माना जाता है। प्रस्तुत कृति केरली के उत्तम काव्य ग्रंथों में परिगणित है। भागवत् की स्यमंतक कथा के आधार पर इस काव्य की रचना हुई है। इसी कथावस्तु के आधार पर यद्यपि कई कवियों ने काव्य लिखे हैं तो भी कवि ने इस ग्रंथ में स्वतंत्र रूप से कई बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिससे उनकी काव्य-मर्मज्ञता का आभास मिलता है। 'केशवीयम्' में यह दिखाया गया है कि राम तथा कृष्ण के प्रति भेद-भावना रखना निरी मूर्खता है। हास्य-वचनों का प्रयोग कवि ने कई प्रसंगों में किया है। शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का महत्व अधिक दिखाया गया है। ध्वनियुक्त सरस शब्दों के प्रयोग में कवि ने कमाल किया है। सारे प्रासों के प्रयोग में समान-भाव दिखाया गया है। संस्कृताचार्यों से निर्देश के अनुसार काव्य के सारे गुण अपने में काव्यों में लाने का रचयिता ने विशेष प्रयत्न किया है। भिन्न-भिन्न प्रकार की सरस घटनाओं के चित्रण में कवि ने अपनी प्रतिभा दिखाई है। यह कहने में जरा भी अत्युक्ति न होगी कि 'केशवीयम्' में केरलीय काव्यों की प्रथम पंक्ति में स्थान पाने की क्षमता है।

केशिराज *(क० ले०)* [समय—तेरहवीं शती का अंतिम चरण और चौदहवीं का प्रथम चरण]

ये प्राचीन कन्नड के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण थे। 'शब्दमणिदर्पण' (दे०) इनका प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रंथ है। 'चोलपालक चरित्रे', 'चित्रमाले', 'सुभद्राहरण', 'प्रबोधचंद्रोदय', 'किरात' आदि इनकी अन्य रचनाएँ मानी जाती हैं जो अब अनुपलब्ध हैं। 'प्रबोधचंद्र' इनका नाटक माना जाता है। केशिराज न केवल लक्षण-शिक्षणाचार्य थे, वरन् एक सफल कवि भी थे। वे यादव कटकाचार्य सुमनोवाण के दौहित्र थे तथा चिदानंद मल्लिकार्जुन के पुत्र थे। 'शब्द-मणिदर्पण' इनकी आचार्य कृति है। इसमें संधि, नाम, समास, तद्धित, आख्यात, धातु, अपभ्रंश एवं अव्यय प्रकरण हैं। इनके अतिरिक्त पीठिका-प्रकरण भी है। अंत में, पूर्व-कवियों द्वारा प्रयुक्त अपूर्ण शब्दों का अर्थ भी दिया गया है। केशिराज ने नागवर्मा (दे०) की 'शब्दस्मृति' तथा 'कर्णाटक-भाषा-भूषणम्' (दे०) का अनुगमन किया है। फिर भी इसमें बहुत-सी नई बातें कही गई हैं। अपभ्रंश प्रकरण इसका अपना है। उदाहरण-पद्यों को उन्होंने 'काव्यावलोकन' (दे०) तथा 'भाषा-भूषण' से भी लिया है। इनके उदाहरण व्याकरण-रूपी मरुभूमि में नंदन के समान रमणीय हैं। इनकी लेखनी के स्पर्श से इनका व्याकरण शास्त्र न रहकर काव्य हो गया है। 'केशिराज' के व्यक्तित्व की छाप इस शास्त्र-ग्रंथ पर स्पष्ट है। 'केशिराज की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी निस्संग शास्त्र-दृष्टि। अपने मामा जन्न (दे०) के काव्यों से उन्होंने साधु प्रयोगों के ही नहीं, असाधु प्रयोगों के भी उदाहरण दिए हैं। यह तटस्थता मीमांसक की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

केशिराज ने प्राचीन कन्नड के स्वरूप की रक्षा करने के लिए बहुत परिश्रम किया है। प्राचीन कन्नड के लक्षणों को अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय 'केशिराज' को है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैंकेयी *(सं० पा०)*

इसके पिता का नाम अश्वपति था, जो कि कैकेय देश का राजा था। यह आयोध्या नगरी के सूर्यवंशी अथवा इक्ष्वाकुवंशी राजा दशरथ की तीसरी पत्नी थी, और उसे सर्वाधिक प्रिय थी। इसके विवाह के समय दशरथ (दे०) ने इसके पिता से प्रण किया था कि इसका पुत्र युवराज बनेगा। इसके अतिरिक्त एक बार जब दशरथ देव-दानवों के युद्ध में देवताओं की सहायता करने गए तो रथ की कील टूट जाने पर कैंकेयी ने अपना हाथ देकर राजा को बचाया था। राजा ने प्रसन्न होकर उसे दो वर माँगने का वचन दिया। दशरथ जब राम (दे०) को युवराज बनाने की तैयारी में लगे थे तो अपनी मंथरा नामक दासी के भड़काने पर कैंकेयी ने दशरथ से ये दो वर माँग लिये कि राम को वनवास दिया जाए और भरत को राज्य दिया जाए। राजा ने वचन का पालन किया और पुत्र के विरह-शोक में उसकी मृत्यु हो गई। भरत ने अपनी माता की अति भर्त्सना की कि तू ऐश्वर्य-लोभी, अविचारी, क्रोधी और घमंडी है, आदि।

कैक्किळै *(त० पारि०)*

'अकम्' (दे०) काव्य-विभाग के सात उपविभागों के लिए तीन आधार हैं—एकपक्षीय काम-इच्छा (प्रथम उपविभाग), औचित्ययुक्त काम-इच्छा (द्वितीय से षष्ठ उपविभाग तक) तथा असंगत काम-इच्छा (अंतिम, सातवाँ उपविभाग)। 'कैक्किळै' प्रथम उपविभाग होकर एकपक्षीय काम-इच्छा प्रकाशन के प्रसंग प्रस्तुत करता है। तोल्काप्पियम्' (दे०) (सूत्र 105) के अनुसार आर्य जाति की आसुर, राक्षस, पैशाच विवाह-पद्धतियाँ (जो एकपक्षीय काम-व्यवहार वाली हैं) इस उपविभाग के प्रकरणों के समानांतर मानी जा सकती हैं। कामवासना-रहित अबोध आयु की बालिका के प्रति नायय द्वारा मोह प्रकट करना इस उपविभाग का विषय है। अबोध बालिका की ओर से प्रत्युत्तररूपी काम-इच्छा उठने की आशा बिल्कुल न होने पर भी नायक का निरुपाय मोह इसके लिए उसे बाध्य कर देता है (सूत्र 50)। ऐसा एकपक्षीय कामाचरण दास, सेवक, आदि वर्गों के लिए व्यवहारोचित बताया गया है (सूत्र 23)।

उपर्युक्त प्रकार से पृथक् उपविभाग होने के अतिरिक्त दो अन्य उपविभागों में एक प्रकरण के रूप में 'कैक्किळै' ने स्थान पाया है। 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग में पाटाण्' उपविभाग के अंतर्गत दानार्थी द्वारा आश्रय-दाता की प्रशंसा एकपक्षीय प्रकरण माना गया है। 'अकम्' काव्य-विभाग में 'कुरिंचि' उपविभाग के अंतर्गत नायिका से नायक की सर्वप्रथम भेंट के कतिपय प्रकरण नायिका के दर्शन, उसके देव-वनिता होने का संदेह तथा संदेह-निवृत्ति —एकपक्षीय प्रेम से संबंधित माने गए हैं।

'तोल्काप्पियम्' के बाद की रचना 'पुरम्-पोरुळ् वेण्पामालै' में 'कैक्किळै' को पूर्णतः 'पुरम्' काव्य-विभाग में ही प्रतिष्ठित किया गया है और उसमें पुरुष और स्त्री पर आधारित दो विभेद तथा कुल उन्नीस प्रकरण बताए गए हैं। ध्यान देने की बात है कि उपलब्ध 'संगम्' कविता-संग्रहों में 'कैक्किळै' के उदाहरण केवल 'कलित्तोकै' में चार पद्यों तक सीमित हैं। स्पष्ट है कि एकपक्षीय काम-व्यवहार की अस्वाभाविकता के कारण वह कविता से निष्कासित-सा रहा।

'क़ैफ़ी' *(उर्दू० ले०)*

पूरा नाम पं० ब्रजमोहन दत्तात्रेय, उपनाम 'क़ैफ़ी'। जन्म दिल्ली में सन् 1866 में हुआ था। कश्मीरी पंडितों के उच्च वंश से इनका संबंध था। उर्दू, फ़ारसी और अँग्रेज़ी का यथेष्ट ज्ञान इन्हें प्राप्त था। भाषा के मर्मज्ञ, अनुसंधाता, गद्य-लेखक और कवि की दृष्टि से उर्दू-साहित्य में इनका नाम सदा अमर रहेगा। पद्य के क्षेत्र में इनकी आरंभिक रचनाएँ परंपरागत ग़ज़ल-लेखक तक ही सीमित रहीं; परंतु कालांतर में इन्होंने गुल-ओ-बुलबुल तथा सुरा-सुंदरी-विषयक विलासपूर्ण अभिव्यंजना-शैली त्याग कर 'आज़ाद' (दे०), 'हाली' (दे०) तथा अन्य अनेक पाश्चात्य प्रभावग्राही साहित्यकारों के अनुकरण पर 'प्रकृत' काव्य का सृजन किया। इनकी दो महत्वपूर्ण गद्य-कृतियाँ— 'मनशूरात' और 'ख़मसा-ए-क़ैफ़ी' हैं। इनके अतिरिक्त क़ैफ़ी साहब के अनेक उपन्यास, नाटक और काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। उर्दू भाषा के प्रबल समर्थकों में इनका नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कैयट *(सं० ले०)* [समय—1100 वि० पू०]

ये कश्मीरी थे। इनके पिता का नाम जैयट उपाध्याय था। 'सुधासागर' के अनुसार ये काव्यप्रकाशकार मम्मट (दे०) के अनुज कहे जाते हैं। महाभाष्य (दे०) पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदीप इनकी विशिष्ट कृति है।

व्याकरणशास्त्र के क्षेत्र में प्रामाणिक विद्वानों में कैयट का परिगणन किया जाता है। भट्टोजिदीक्षित (दे०) इन्हें 'अस्तीति कैयटः' कहकर उद्धृत करते हैं। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र के शास्त्रीय पक्ष की दृष्टि से कैयट का विशिष्ट योगदान कहा जा सकता है।

कैयरुनिलै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग के 'कांचि' (दे०) नामक उपविभाग के अंतर्गत आने वाला एक प्रकरण ('तुरै') है।

इस प्रकरण का विषय मृत लोगों के वियोग से शोक-संतप्त प्रियजनों का असहाय विलाप है। 'कैयरुनिलै' का अर्थ है—असहाय शोकावस्था। 'संगम्' साहित्य में इस प्रकरण का प्रचलित उदाहरण 'अदियमान' (दे०) नामक दानी प्रभु के वियोग-दुःख पर कवयित्री 'अव्वैयार' (दे०) का गीत है जो 'पुऱनानूरु' (दे०) के कविता-संग्रह में मिलता है।

कैलासम् *(क० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

कैलासम् आधुनिक कन्नड रंगभूमि के कैलास पर्वत हैं, प्रहसन-पितामह हैं। इनका जन्म एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड गए थे। नाटक के प्रति इनका आकर्षण जन्मजात था। वहाँ की नवीनतम नाट्य-परंपरा से ये प्रभावित हुए और श्रेष्ठ नाट्य-प्रतिभाओं के संपर्क में आए। उनकी प्रेरणा से इन्होंने कन्नड में सामाजिक नाटकों की रचना की थी। पौराणिक वस्तुओं को लेकर इन्होंने अँग्रेज़ी में नाटक लिखे। कन्नड में इन्होंने अँग्रेज़ी मिश्रित कन्नड की अपनी ही एक शैली तथा रंगमंच का निर्माण किया था।

कैलासम् से पहले कन्नड में पौराणिक तथा संस्कृत से अनूदित नाटकों की भरमार थी। इन्होंने ही पहली बार कन्नड रंगमंच पर जनसाधारण की रुचि के नाटक प्रस्तुत किए। हास्य को इन्होंने सामाजिक रोगों का चिकित्सालय बनाया। इन्होंने लगभग साठ नाटक लिखे। उनमें कुछ गम्भीर हैं और कुछ हास्य-प्रधान। 'टोळ्ळु गट्टि', 'ताळीकट्टक्कूलीने', 'पोली किट्टी' (दे०), 'बंडवाळविल्लद बडायी', 'अम्मावेगंड', 'हुत्तदल्लि हुत्तु', 'सूळे' (दे०) आदि नाटकों में इन्होंने नूतन-पुरातन, पूर्व-पश्चिम, आदि के द्वंद, वर्तमान शिक्षा के खोखलेपन, स्त्रैणपति की असहायता, वेश्या-समस्या आदि का चित्रण किया है। सन्निवेश-सृष्टि, चरित्र-चित्रण, वाग्वैदग्ध्य, विडंबन आदि में ये सिद्धहस्त हैं। किंतु कहीं-कहीं सन्निवेशों में अतिकृत्रिमता आ गई है, चरित्र अतिरंजित हो गए हैं। अँग्रेज़ी तथा कन्नड की मिश्रित भाषा ने इनके नाटकों को अँग्रेज़ी जानने वाले वर्ग-विशेष के लिए सीमित कर दिया। 'सूळे' (वेश्या) वेश्या-जीवन की बीभत्सता का चित्रण करने वाला इनका अत्यंत सशक्त नाटक है। 'होंरूल' इनके छोटे नाटकों में बहुत ही सफल है। 'कीचक', 'एकलव्य' आदि नाटकों में इन्होंने महाभारत के चरित्रों को नवीन दृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया है। इनके नाटक रंगमंच की दृष्टि से अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं। नाट्य-कला की दृष्टि से ये उत्कृष्ट हैं। वातावरण एवं संवादों में बौद्धिकता की प्रधानता होने पर भी इनके चरित्र अत्यंत मानवीय हैं। मध्यवर्गीय जनता के जीवन की कुरूपता एवं कुंठाओं का उद्घाटन करने में ये बहुत सफल हुए हैं। ये कन्नड के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में से हैं।

कँवार, राजाराव *(क० ले०)*

नाटक-रचना के द्वारा समाज के नाना रूपों तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रण करने वाले नाटककारों में इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपने नाटकों में विशेष समस्याओं पर ही नहीं, साधारण समस्याओं पर भी विचार किया है। 'प्रेम परीक्षे' नामक नाटक इसका परिचायक है। इसमें इन्होंने सुंदर वातावरण-निर्माण द्वारा प्रेम के नाम से उत्पन्न होने वाली समस्या एवं अस्थिर मानव-स्वभाव का चित्रण किया है। इनके नाटकों में संवाद भी अत्यंत स्वारस्यपूर्ण होते हैं। 'गंडन जुल्माने' (पति पर जुर्माना), 'गळिसुव गृहिणी' (कमाने वाली गृहिणी) और 'वधू परीक्षे' जैसे नाटक उदाहरण के रूप में उल्लिखित हो सकते हैं। इन्होंने विदेशी नाटककारों से प्रेरणा ग्रहण की है। इनका 'प्रेरणा बुडुबुडिके' (छोटा डमरू) अनातोले फ्रांस के नाटक पर आधारित है। 'नव चदुरंग' (नई शतरंज) लागो बिरो के 'रिवोल्ट, नाटक पर आधारित है। इनके नाटकों में यथार्थ चित्रण के साथ-साथ आदर्श का भी चित्रण हुआ है। 'दिळ्ळियिंद हळ्ळियवरेगे' (दिल्ली से गाँव तक) इसका उदाहरण है। 'संसार सत्याग्रह अथवा हेंगसर बडायि' (गृहस्थी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्याग्रह अथवा स्त्रियों का डींग हाँकना) इनका अत्यंत सुंदर सामाजिक नाटक है। इनके 'अम्मा' और 'बाबरन पाठ' (बाबर का पाठ) नामक नाटक बच्चों के लिए है।

कोइलि *(उड़ि० पारि०)*

'कोइलि' एक प्रकार का संबोधन-गीत है। 'कोइलि' को संबोधित कर लिखे गए गीतों को 'कोइलि' कहते हैं। इसमें अन्य रीतियों की अपेक्षा चउतिशा (दे०) रीति अधिक प्रयुक्त हुई है। यह संस्कृत की दूत-कविता के समान नहीं है। दूत के रूप में कोइलि का प्रयोग बहुत कम हुआ है। वह एक श्रोता या साक्षी है। प्राकृत की 'लोली' कविता से कोइलि कविता समानता रखती है। यह कविता प्रधान रूप से आदिवासी गीतों से अनुप्रेरित है। आदिम जातियों में वृक्ष-लता, पशु-पक्षी को संबोधित कर गीत गाने की प्रथा है। 'कोइलि' कविता प्रायः करुणरसात्मक होती है और श्रोता मादा कोइलि होती है। 'कोइलि' कविताओं में बारहमासा-वर्णन भी मिलता है। असमिया, बँगला एवं हिंदी के समान बारहमासा-वर्णन की स्वतंत्र रीति उड़िया-साहित्य में नहीं है। कोइलि रचना की तुलना नाटकीय स्वगतकथन के साथ की जा सकती है। 'कोइलि' के अतिरिक्त मधुप, वउल, नवघन, सारंग आदि को संबोधित कर भी चउतिशाएँ लिखी गई हैं, किंतु कोइलि के समान लोकप्रिय नहीं हो सकीं। 'केशव-कोइलि' (दे०) (मार्कंडदास), 'कांत कोइलि' (बळरामदास) (दे०), 'बारमासी कोइलि' (शंकर), 'ज्ञानोदय कोइलि' (नाथिया), 'खर कोइलि' (अच्युतानंद दास) (दे०) आदि इस वर्ग की प्रसिद्ध कविताएँ हैं। आज भी प्रचारमूलक कविताओं में 'कोइलि' शैली का प्रयोग दिखाई पड़ता है।

कोकिला *(गु० पा०)*

कोकिला श्री रमणलाल देसाई (दे०) के 'कोकिला' उपन्यास की स्त्री-पात्र है। जीवन-संगिनी के रूप में इसे प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति अपना अहोभाग्य समझ सकता है। ऐसी मृदु, मनोहर, लावण्यमयी, प्रेमार्द्र और आदर्श गृहिणी-रूप इस नारी ने एक समय समस्त गुजरात का हृदय जीत लिया था।

कोकिला का समग्र दांपत्य-जीवन परिस्थितियों की विषमता के बीच व्यतीत होता है किंतु उसके मन में कभी कटुता नहीं आती। अपनी वाणी के माधुर्य से यह पति को ताज़गी देती है। इसके चेहरे पर ऐसा अपूर्व भाव रहता है, जहाँ लेखक के शब्दों में प्रेम और सौंदर्य तद्रूप हो जाते हैं।

पति के प्रति इसकी निष्ठा, विश्वास तथा प्रेम अटूट है। इसी कारण विजयालक्ष्मी संयम की सीमा नहीं लाँघती तथा नाथ बावा भी अपना वैर भूल जाते हैं। जब नाथबावा आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होते हैं तब यही उन्हें नया जीवन अर्पित करती है। इस समय इसका प्रेम बृहत्तर भूमिका पर पहुँच जाता है।

कोकिला सरल-सहज गृहिणी है और यही इसका आकर्षण है।

कोच्चु सीता *(मल० पा०)*

1921 में प्रकाशित महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) के इसी शीर्षक के खंडकाव्य की कथा-नायिका है कोच्चु सीता या चेम्पकवल्ली। वेश्याकुलोत्पन्न चेम्पकवल्ली श्री रामचंद्र की धर्मपत्नी सीता के समान पावन चरित बनने का प्रयत्न करती थी। देवमूर्ति के सम्मुख नृत्य करना उसकी कुल-वृत्ति थी। कोच्चु सीता की प्रवृत्ति रामायण-पाठ की ओर थी और उसकी नानी उसे वेश्या बनाने में सदा तत्पर रहती थी। एक दिन वह अपने घर से हमेशा के लिए गायब हो जाती है। अपने विदा-पत्र में वह अगले जन्म में स्वतंत्र भारतीयांगनाओं के बीच जन्म लेने की इच्छा प्रकट करती है। इस पात्र के द्वारा कवि ने भारतीय संस्कृति-प्रेम का संदेश दिया है।

कोटि ब्रह्मांड सुंदरी *(उड़ि० कृ०)*

'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी' उपेंद्र भंज (दे०) की रचनाओं में सर्वोत्तम तथा उड़िया साहित्य में बेजोड़ कृति है। इस कृति ने कवि-सम्राट भंज को भाषा-साहित्य के आलंकारिक कवि के रूप में अक्षय गौरव का अधिकारी बनाया है। भाव, भाषा, अलंकार-प्रयोग, वर्णन-चातुरी एवं पांडित्य सभी दृष्टियों से यह अद्वितीय है। इस काव्य-लता के मूल से शीर्ष तक शाखा, पत्र, फल, पुष्प सभी परम काव्यमय हैं। इसमें विराम के लिए अवकाश नहीं है।

यह एक काल्पनिक काव्य है। पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी की वंदना से काव्यारंभ होता है। यद्यपि यह शब्द-काठिन्य से भरपूर रचना है, किंतु मंगलाचरण की भाषा अपेक्षाकृत सरल है। चंपा नगरी के राजा विश्वनंदक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्री कोटि ब्रह्मांड सुंदरी का—जो ब्रह्मा जी की अनुकंपा से प्राप्त होती है—जीवन इसमें चित्रित है। पाटलिपुत्र के राजा दीप्तसागर के पुत्र पुष्यकेतु से राजकुमारी का प्रणय होता है और अंततोगत्वा वह विवाह में परिणत हो जाता है। कथावस्तु केवल इतनी ही है। इस काव्य की विशिष्टता एवं सौंदर्य कथावस्तु की गति एवं उस गति के बीच आए प्रत्येक स्थान, प्रत्येक प्रसंग के सालंकार वर्णन में है।

तत्कालीन समाज का चित्र भी इसमें उभर कर आया है काल्पनिक राज्य व्यवस्था एवं जनसमाज के चित्रण में कवि का अपना समाज ही प्रतिबिंबित हुआ है। राज्य का प्रशासन, अर्थव्यवस्था, सैनिक शक्ति, युद्ध-कला, सामाजिक रीति-नीति; लोगों का रहन-सहन, उनकी वेशभूषा, समाज में प्रचलित विश्वास एवं मान्यताओं (जैसे तंत्र-मंत्र, शून्यभ्रमण) आदि का इसमें चित्रण हुआ है।

प्रकृति का वर्णन सुंदर एवं जीवंत है। प्रकृति मानव के सुख में सुखी एवं दुःख में दुःखी दिखाई पड़ती है। षड्ऋतु-वर्णन सिद्धहस्त अनुभवी सूक्ष्म द्रष्टा शास्त्रादि कलाकार की तूलिका से निःसृत है।

इस की भावपूर्ण सरस-आलंकारिक पदावली सहृदय के मन को सुधासिक्त कर देती है। पदों और अर्थ-वैचित्र्य का संश्लेष-साधन अद्भुत है। 'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी' में 15 पदों में अपूर्व कौशल से तीनों ऋतुओं का वर्णन है। पूर्व पंक्तियों में वर्षा ऋतु का वर्णन है और छंद का राग 'चिन्तादेशाक्ष' है। पंक्तियों के आद्यवर्ण निकाल देने से छंद 'काफी कामोदी' में परिणत होकर शीत ऋतु के वर्णन को व्यक्त करने लगता है। फिर प्रत्येक पंक्ति के प्रथम दो-दो वर्ण निकाल देने से वह छंद 'मालबराड़ि' राग में परिणत होकर ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करने लगता है। यह जादू केवल लोकोत्तर प्रतिभा से संपन्न हुआ है। कवि की यह उक्ति सर्वथा ठीक है कि उसने अपनी इस रचना में रसाल भाव को कठिन शब्द-साँचे में रख दिया है, अतः अल्पार्थियों के लिए अर्थबोध सरल नहीं है।

इसमें 35 छंद हैं। इससे कवि की चिंतना की गंभीरता एवं विद्वत्ता प्रकाशित होता है। लेखनी कवि की आज्ञाकारिणी है।

कोट्टारत्तिल, शंकण्णि *(मल० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

जन्म-स्थान—कोट्टयम्। कोट्टारत्तिल इनका पारिवारिक नाम था। इनकी ठोस साहित्य-सेवा का प्रारंभ कोट्टायम-स्थित 'मलयाळ-मनोरमा' पत्रिका के कविता-स्तंभ के संपादन काल से होता है। ये अनेकों सुधी सज्जनों के संपर्क में आए और स्वयं बहुत बड़ी संख्या में कविताएँ रचीं। परंतु काव्य की गुण-दृष्टि से ये कविताएँ विशेष प्रभावशाली नहीं हैं। इनका चिरस्मरणीय योगदान तो आठ खंडों में प्रस्तुत 'ऐतिह्यमाला' (दे०) है। जनश्रुतियों पर आश्रित ऐसा विशाल कथा-संग्रह मलयाळम में कोई और नहीं है। जनश्रुति के नाते थोड़ी-सी रियायत यदि की जाय तो शेष बातें अत्यंत प्रभावशाली और प्रामाणिक हैं। इनका प्रथम प्रबंधकाव्य 'सुभद्राहरणम्' 1891 ई० में प्रकाशित हुआ था।

कोडियां *(गु० कृ०)* [प्रथम संस्करण—1934 ई०; द्वितीय संशोधित संस्करण—1957 ई०]

'कोडियां' श्रीकृष्णलाल श्रीधराणी (दे०) की काव्यकृति है। श्रीधराणी की काव्य-चेतना का विकास प्रमुखतया गांधीयुग में एवं गांधीवादी भावनाओं के अनुरूप हुआ है। 'पुजारी', 'देव' तथा 'मंदिर' इत्यादि इस संग्रह की ऐसी ही कविताएँ हैं जिनमें दीन-हीन जनवात्सल्य को अभिव्यक्ति मिली है। क्रांति तथा नवोन्मेष की शंखध्वनि करने वाली इन कविताओं का प्रमुख आकर्षण सुभग-ललित पदावली, भावप्रतीक, कल्पना की मनोहारिता, कलात्मकता तथा स्वाभाविकता में निहित है।

1948 ई० के पश्चात् इनकी कविता विषय, छंद, तथा भाषा सभी दृष्टियों से एक नवीन बानक पहनकर आई है। संग्रह की 'आठवुं दिल्ली' इसी प्रकार की प्रतिनिधि रचना है।

संक्षेप में कवि समस्त पुरानी परंपराओं को पचाकर नवयुग का संदेशवाहक बनकर इस कृति के भीतर प्रकट हुआ है।

कोणार्क *(उड़ि० कृ०)*

'कोणार्क' अश्विनीकुमार घोष (दे०) का ऐतिहासिक नाटक है। इसमें जातीय जीवन का गौरवमय पक्ष प्रस्तुत हुआ है। रंगमंच की दृष्टि से यह सफल नाटक है।

कोणार्क *(उड़ि० कृ०)*

कृपासिंधु मिश्र (दे०)-कृत 'कोणार्क' इतिहास और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से मूल्यवान है। अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रामाणिक गद्य रीति के द्वारा लेखक ने जिस इतिहास की रचना की है वह एकांत अभिनव है। कोणार्क के वर्णन के साथ ऐतिहासिक तथ्य स्वतः उद्घाटित होते जाते हैं। यही इसकी सुंदरता है। आलोचना की प्रांजलता, भाषा की अप्रतिहत गति, उच्चकोटि की सुखपाठ्य शैली के कारण इसमें शुष्क इतिहास सरस हो उठा है।

कोदैंत्तीवु *(त० कृ०)*

यह व० रामस्वामी का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसकी कथा उपन्यास के सर्वथा अनुरूप है। इसे उपन्यासकार के सुंदर स्वप्न का प्रतिफलन कहा जा सकता है। वह एक ऐसे आदर्श समाज की, राज्य की कल्पना करता है जहाँ नारी को समस्त अधिकार प्राप्त हैं। उस समाज को उसने 'कोदैंत्तीवु' नाम दिया है। इसमें वर्णित प्रमुख प्रसंग हैं—नारी पुरी नामक देश में माणिक्क कोदैंयार का शासन, वहाँ नर-नारी को समान अधिकार प्राप्त, सुखी पारिवारिक जीवन-यापन के मार्ग के बाधक जाति-भेद, दहेज-प्रथा आदि का उस देश में अभाव, गणपतिरामन और भूपतिरामन का नारीपुरी-गमन, वहाँ की स्थिति देख विस्मयविमूढ़ रह जाना, आदि। इस उपन्यास के द्वारा एक आदर्श समाज की सृष्टि करने के साथ-साथ उपन्यासकार ने पौराणिक मान्यताओं और ऐतिहासिक तथ्यों को नूतन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उसने 'हर पुरानी वस्तु सुंदर है' इस विचारधारा का विरोध किया है। व० रामस्वामी जीवन-भर नारी को उचित अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष करते रहे। इस उपन्यास में नारी के अधिकारों के विषय में उनके विचार व्यक्त हुए हैं। इसका तमिल के समाज-सुधार-प्रधान उपन्यासों में विशिष्ट स्थान है।

कोनो खेद नाइ *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1693 ई० लेखक—पद्म बरकटकी (दे०)]

शिवसिंह (1714-1736 ई०) की रानी फूलेश्वरी और उस समय के मरान-विद्रोह पर आधारित यह ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें इतिहास का नवीन दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है।

कोप्पेरुंचोळन *(त० पा०)*

ये संघकालीन प्रसिद्ध शासकों में से हैं। कोप्पेरुंचोळन, पिशिरांदैयार और पोत्तियार बिना एक-दूसरे को देखे प्राणसखा बन गए थे। प्रसिद्ध है कि तीनों ने एक ही समय प्राणों का त्याग किया था। ये कवियों का बहुत आदर करते थे। इन्होंने स्वयं कुछ सुंदर कविताओं की रचना की है। इनकी चार कविताएँ 'कुरुंतोगै' (दे०) में और तीन कविताएँ 'पुरनानूरु' (दे०) में संगृहीत हैं। इन कविताओं की रचना करके इन्होंने तमिल के राजा-कवियों में अपना स्थान बना लिया है।

कोमप्पन् *(मल० पा०)*

शुद्ध मलयाळम भाषा में कुंडूर नारायण मेनन (दे०) ने 'कोमप्पन्' नामक एक काव्य लिखा है जिसका कथा-नायक है कोमप्पन्। कोमप्पन् को केंद्र बनाकर कई लोक-गीत लिखे गए हैं। इनमें 'उत्तर केरल' में लोगों के आचार-विचार, विश्वास, सिद्धांत आदि की अभिव्यक्ति हुई है। खेत में काम करने वाली महिलाएँ काम करते समय इसके गीत गाकर अपनी श्रांति का परिहार करती हैं। 'कोमप्पन्' के गीत बहुत लोकप्रिय हैं।

कोयित्तपुरान्, किळिमानूर्, विद्वान् *(मल० ले०)* [जन्म—1812 ई०; मृत्यु—1845 ई०]

ये प्रमुख आट्टक्कथाकार हैं। इनका नाम राजराज वर्मा था और 'विद्वान्' की उपाधि महाराजा स्वाति तिरुनाल् द्वारा प्रदत्त थी। ये किळिमानूर् राजवंश के सदस्य थे और महाराजा के परम मित्र और राजकवि थे। 'रावणविजयम् आट्टक्कथा' इनकी कृतियों में मुख्य है। यह प्रथम कोटि की आट्टक्कथाओं में एक है और कथकलि के कलाकारों और प्रेक्षकों में अत्यधिक लोकप्रिय है। देवताओं और राजाओं को नायक का स्थान न देकर रावण को मुख्य पात्र का स्थान देना परंपरा के विरुद्ध होने पर भी इस दृश्य-काव्य का सहृदयों ने स्वागत किया था। कथकलि-साहित्यकारों में तंपुरान् का स्थान शीर्षस्थ है।

कोयित्तंपुरान् (वलिय), केरलवर्मा *(मल० ले०)* [जन्म—1845 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

ये केरल-कालिदास के नाम से प्रख्यात कवि, गद्यकार एवं शिक्षाशास्त्री हैं। ये तत्कालीन त्रावनकोर महाराजा के बहनोई थे, परंतु महाराजा की अप्रसन्नता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पात्र होने के कारण इन्हें पाँच वर्ष का कारावास भोगना पड़ा था। यह प्रवास-काल सुंदर संदेश-काव्य 'मयूर-संदेशम्' (दे०) की रचना के लिए प्रेरक बना। परवर्ती महाराजा के काल में इन्हें अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और इन्होंने साहित्यकारों के प्रोत्साहन और शिक्षा के विकास में शेष जीवन समर्पित किया।

इनकी मुख्य कृतियाँ 'मयूरसंदेशम्', 'दैवयोगम्' आदि काव्य, 'हनुमदुद्भवम्', 'ध्रुवचरितम्' आदि आट्टक्कथाएँ, 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०), 'अमरुकशतकम्' (दे०) आदि के अनुवाद और 'अकबर' (दे०) उपन्यास हैं। इन्होंने इतिहास, भूगोल आदि विषयों पर अनेक पाठ्य-पुस्तकों की भी रचना की है तथा अनेक संस्कृत-काव्य भी लिखे हैं जिनमें 'विशाखविजयम्' प्रमुख है।

केरलवर्मा मलयाळम कविता के नवोत्थान के प्रणेता हैं। इन्होंने नव-क्लासिक शैली में काव्य-रचना की और अनेक कवियों को इस शैली में दीक्षित किया। इनके नाम से एक साहित्यिक आंदोलन ही चालू हुआ था। इनके प्रोत्साहन में मलयाळम को अनेक सुंदर काव्य प्राप्त हुए थे। आधुनिक गद्य के विकास में भी इनका स्थान सर्वोपरि है। यद्यपि 'मयूरसंदेशम्' और 'भाषाशाकुंतलम्' के प्रतिभा-संपन्न कवि के रूप में केरलवर्मा का अद्वितीय स्थान है तथापि साहित्य-कला प्रोत्साहक के रूप में ही साहित्य में इनका यश अक्षुण्ण है।

'कोरटि', श्रीनिवासराव *(क० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इनका जन्म कर्णाटक के कोरटि नामक गाँव में हुआ था। ये 'कोरटि' के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। कन्नड के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने अब तक पच्चीस से भी अधिक उपन्यास लिखे हैं। 'जैत्रयात्रे', 'तुरिबंद तारे' (उड़ कर आई तारिका), 'मिस लीलावती', 'जगन्मोहिनी' और 'मैसूरु हुलि' (मैसूर का बाग) इनके लोकप्रिय उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण का अच्छा निरूपण हुआ है तथा संभाषणों में आकर्षण और पात्रों के चित्रण में रमणीयता है। इनके 'आदिमानव' का अँग्रेज़ी में अनुवाद भी हुआ है।

कोरड़ा *(पं० पारि०)*

यह पंजाबी का एक लोकप्रिय छंद है। प्रत्येक चरण में 13 वर्ण होते हैं, तथा 6 और 7 पर यति होती है। प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं।

तूड़ी तंद सांम, हाड़ी वेच वट के।
लंबड़ा ते शाहां दा हिसाब कट के।
कड़े मार वंझली अनंद छा गिआ।
मारदा दमामे जट्ट मेले आगिआ।

कोळूर कोडगूसु-षडक्षरिय *(क० पा०)*

कोळूर कोडगूसु की कहानी तमिल साहित्य में बहुत ही प्रसिद्ध है। वह एक शिवभक्त बालिका थी। इसकी कहानी भीम कवि के 'बसव पुराण' में भी आती है। षडक्षरी ने अपने 'वृषभेंद्रविजय' नामक काव्य में इसका बहुत ही सुंदर निरूपण किया है। इसके पिता परम शिव-भक्त थे। एक दिन उनको किसी दूसरे गाँव जाना पड़ा और उन्होंने भोग लगाने का काम बेटी को सौंप दिया। लड़की को क्या मालूम कि भोग लगाना क्या होता है। उसने समझा कि शिवजी काफ़ी दूध पिएँगे। दूध खूब गरम कर मंदिर में ले चली। किंतु मंदिर में पत्थर की मूरत दूध क्या पीती? उसने भाँति-भाँति से प्रार्थना की, गिड़-गिड़ाई, और अंत में आत्महत्या करने लगी। शिवजी उसकी भक्ति पर रीझे और दूध पी गए। फिर रोज़ ऐसा ही होने लगा। जब पिता लौटे तो उन्होंने दूध के नैवेद्य के बारे में पूछा। लड़की ने सारा हाल कह सुनाया। पिता को विश्वास नहीं हुआ। वे नाराज़ हो लड़की को मारने चले। अंत में दोनों मंदिर में चले। शिवजी भी आज जल्दी नहीं रीझे, अंत में अपनी भक्तिन को बचाने के लिए वे प्रकट हो दूध पीने लगे। आखिर उस परम भक्त को उन्होंने अपने में लीन कर लिया। लिंग में विलीन होते देख-कर पिता ने अपनी लड़की की चोटी पकड़ कर खींची। चोटी बाहर ही रह गई, शेष सब भाग लिंग में लीन हो गया। इसकी मूर्ति आज भी विद्यमान है। षडक्षरी ने कोडगूसु की कहानी में मुग्ध भक्ति का अत्यंत सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

कोल्हटकर, अच्युत बळवंत *(म० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

वाई के एक संभ्रांत परिवार में इनका जन्म हुआ था। ये टिळक के अनुयायी थे। इन्होंने नागपुर से निकलने वाले 'देशसेवक' पत्र में उग्र राजनीतिक विचारपूर्ण निबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे थे। ये निबंध अत्यंत लोकप्रिय हुए फलतः ये 'देश-सेवक' पत्र के संपादक बन गए। 1912 में इन्होंने 'संदेश' समाचारपत्र निकाला। कोल्हटकर जी ने एक नाट्यमंडली की स्थापना भी की थी जिसमें ये स्वरचित नाटकों का अभिनय प्रस्तुत करते थे।

इनका साहित्य-भांडार विपुल, वैविध्यपूर्ण और एक अद्भुत संग्रहालय की तरह है। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं: **ऐतिहासिक उपन्यास**—'इंग्रजांचा पराभव', **निबंध-संग्रह**—'अ० ब० कोल्हटकर स्मारक ग्रंथ' (भाग 1-3)। इनके अतिरिक्त इन्होंने राष्ट्राभिमानपोषक पोवाड़े और नाटक की भी रचना की।

इनके साहित्यिक यश का आधारस्तंभ 'संदेश' समाचारपत्र में प्रकाशित निबंध हैं जो 'अ० ब० कोल्हटकर स्मारक-ग्रंथ' में संगृहीत हैं। इनमें से कुछ स्वभाषी, स्वधर्म, एवं स्वदेश के उद्धार की प्रेरणा देने वाले गंभीर निबंध हैं और कुछ मनोरंजनार्थ ललित शैली में लिखे गए हैं। इनकी निबंध-शैली व्यंग्य, विनोदयुक्त, धाराप्रवाही एवं चित्ताकर्षक थी।

इनके कारण 'संदेश' इतना लोकप्रिय बन गया था कि लोग खरीदकर पढ़ते थे। इनका 'वत्सला वाहिनींची पत्रे' स्तंभ अत्यंत उद्बोधक था और लोकप्रिय भी। ये सामान्य बातों को भी विस्तारपूर्वक आवेशयुक्त शैली में लिखते थे जिसे पढ़ते ही पाठक उनका प्रयोजन समझ जाता था।

राष्ट्रोत्थान की प्रेरणा देने वाले पत्रकार एवं निबंधकार के रूप में इनका स्थान अन्यतम है।

कोल्हटकर, बाळ (म० ले०)

आधुनिक मराठी नाटककारों में बाळ कोल्हटकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी नाट्य-कृतियों में पारिवारिक जन-जीवन को उरेहा है। रंग-मंचीय दृष्टिकोण के प्राधान्य के कारण इनकी रचनाएँ नाटकीय प्रभावान्विति की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। त्यागमय जीवन का भव्य चित्रांकन इनके 'दुरिताचें तिमिर जावो' (दे० दिगू), 'व्हातो ही दूर्वांची दूरी' (दे० ताई), 'अंगाई', 'वेगळं व्हायचय मला', 'एखा दी तरी स्मिति रेखा', 'करायला गेलो एक' तथा 'लहान पण देगा देवा' आदि नाटकों में हुआ है। जनसामान्य से नाटकीय कथा एवं पात्रों का चयन कर जनसाधारण की भाषा में ही सहज-सरल संवादों की योजना से युक्त इनकी कृतियाँ परिपूर्ण हैं और यही कारण है कि नाटकीय प्रभावान्विति की दृष्टि से वे विशेष उल्लेखनीय हैं।

कोल्हटकर, श्रीपाद कृष्ण (म० ले०) [जन्म—1871 ई०; मृत्यु—1934 ई०]

इन्होंने अनूदित एवं पौराणिक नाटकों के भँवर-जाल से मराठी रंगमंच को निकालकर कल्पना-रम्य सामाजिक नाटकों का प्रचलन किया था। आगरकर के समाज-सुधारक विचारों का प्रतिपादन इनके नाटकों में हुआ है। 'वीर तनय' (1894), 'मूक नायक' (1897), 'गुप्त मंजूष' (1901), 'मतिविकार' (1906), 'प्रेमशोधन' (1908), 'वधू परीक्षा' (1912), 'जन्म रहस्य' (1918), 'सहचारिणी' (1917) आदि नाटकों में अनमेल, विधवा, बहु-विवाह आदि का निरूपण हुआ है। 'वीरतनय' में मद्य-निषेध तथा 'शिव पावित्र्य' में महाराज शिवाजी के महद् चरित्र का भव्यांकन हुआ है। शेक्सपियर तथा मौलियर के नाट्य तंत्र से ये अतिशय प्रभावित हैं। कथा-विकास चमत्कार एवं चमत्कारपूर्ण घटना-प्रसंगों के कारण जटिल अवश्य हो गया है, परंतु भाषा मनोहारी, व्यंग्यात्मक, सहज-सरल है तथा संवाद-योजना के कारण कहीं भी बोझिल नहीं हो पाई है। सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रबल आग्रह के कारण कथा का विकास पूर्व निश्चित योजना के अनुसार हुआ है। फलतः मार्मिक भावाभिव्यक्ति के स्थान पर चमत्कार एवं आलंकारिक प्रवृत्ति का अवलंब लेकर औत्सुक्य बनाए रखने की प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित होती है। वस्तुतः अपनी स्वच्छंदतावादी परंपरा से हटकर कथा-चयन के कारण इनकी रचनाओं में कतिपय शिल्पगत त्रुटियाँ अवश्य रह गई हैं, परंतु अद्भुत एवं संयोग के समावेश, सहज-सरल मार्मिक संवाद तथा अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण तर्कमयी भाषा के कारण इनके नाटक मराठी नाट्य-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने विनोदपरक लेख भी लिखे हैं। 'सुदाम्याचे पोहे' (दे०) में ये लेख संगृहीत हैं।

कोवूर, ई० एम० (मल० ले०) [जन्म—1906 ई०]

तिरुवल्ळा शहर के प्रतिष्ठित और आर्थिक दृष्टि से संपन्न सिरियन् परिवार में जन्मे कोवूर जी अपनी प्रतिभावती, प्रभावशीला और वात्सल्यमयी माता का स्मरण श्रद्धा तथा ममता से करते हैं, ये भौतिकी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून के स्नातक होने के बाद कुछ वर्षों तक वकालत करते रहे तथा अंततः ज़िला-जज के पद से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

श्री कोवूर जज से बढ़कर साहित्यकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। वे धारावाही वक्ता, सरस कहानीकार और उपन्यासकार हैं। कहानी व उपन्यास के अलावा व्यंग्य-विनोद, नाटक, जीवनी आदि अन्य विधाओं की रचनाएँ भी इनकी लिखी हुई हैं। बहुमुखी साहित्यकार होते हुए भी कोवूर जी साहित्य-साधना को अपनी 'हाबी' ही मानते हैं।

कोवूर जी की कहानियों के करीब तेरह संग्रह निकले हैं। इनकी कहानियों के विषय अनेक हैं और इनका प्रेरणा-स्रोत मानो अक्षय है। बहुमुखी जीवन-धाराओं का विशद परिचय शब्दबद्ध करना ही ये सृजनशील कलाकार का कर्तव्य समझते हैं। इनकी कहानियों में कम वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी, वैतनिक गवाह, धर्मप्रचारिणी महिलाएँ, कलाकार आदि समाज-जीवन के अनेक स्तरों और वर्गों के पात्र आते हैं। गुप्तन नायर के शब्दों में साधारण कोटि के जीवन के असाधारण भावों और प्रसंगों को देख लेना और उनके ज़रिये सूखे जीवन-प्रसंगों को आश्चर्य का गाढ़ा रंग देने का रोमांटिसिज़्म कोवूर जी की कहानियों में उपलब्ध है। यथार्थवाद की शुष्कता की जगह कल्पनामिश्रित मधुर कथा को कोवूर अधिक पसंद करते हैं। हास्य-व्यंग्य इनमें सहज है और इन्हें स्व० ई० वी० कृष्णपिळ्ळा (दे०) से इस विषय में बड़ी प्रेरणा मिली है। श्री कोवूर मलयाळम के अग्रणी कथाकारों में परिगणित हैं।

कोवूर-किषार् *(त० ले०)* [समय—अनुमानतः पहली शती]

ये कोऊर् नामक गाँव के एक किसान थे। इनके विरचित 17 पद्य विभिन्न संकलन-ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। इनकी रचनाओं से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का कुछ संकेत मिलता है। ये चोळ् राजा 'नलङ्-किळ्ळि' के आश्रय में रहते थे। जिस समय नलङ्-किळ्ळि' ने एक अन्य राजा 'नेडुङ्-किळ्ळि' पर आक्रमण किया था उस समय 'नेडुङ्-किळ्ळि' अपने दुर्ग में ही छिपा रहा था। इस कवि की एक कविता को सुनकर यह राजा अपना दुर्ग छोड़कर बाहर निकल आया था। हारने के बाद वह 'उरैयूर' नामक स्थान को चला गया था; 'नलङ्-किळ्ळि' ने वहाँ भी आक्रमण किया था। 'वेडुङ्-किळ्ळि' ने एक व्यक्ति को गुप्तचर होने की शंका पर मरवाना चाहा था; तब इसी कवि के कारण उसे छोड़ दिया गया था। इस कवि ने बाद में दोनों नरेशों में संधि करा दी थी। इसी प्रकार 'किळ्ळि वळ्वन्' नामक राजा ने जब किसी कारण से अन्य किसी राजा 'मलयमान्' के पुत्रों को हाथियों से कुचलवाने का दंड दिया था तो इस कवि ने अपनी एक कविता सुनाकर उसका मन-परिवर्तन कर दिया था और उन कुमारों को बचा लिया था। ऐसी अनेक घटनाएँ इनकी कविताओं से संबद्ध हैं।

कोवै *(त० पारि०)*

कोवै तमिल साहित्य की एक विधा है। इसकी गणना अकम साहित्य के अंतर्गत होती है। इसमें मुल्लै (दे०), कुरिंजि (दे०), पालै (दे०), मरुदम (दे०), नेयदल (दे०) इन पाँच भूखंडों में प्रेमी-प्रेमिका के अंतरंग जीवन का वर्णन होता है। कोवै में प्रेम के दोनों पक्षों, पूर्वराग और विवाहोपरांत प्रेम का विस्तृत चित्रण होता है। कोवै कृतियों में कट्टले कलि तुरै छंद में रचित प्रेम-संबंधी चार सौ पद होते हैं। प्रत्येक पद में प्रेमी-प्रेमिका अथवा भावी पति-पत्नी के जीवन की घटनाओं का वर्णन होता है। कोवै का एक प्रकार है 'ओरुत्तुरै कोवै'। इसमें 400 पदों में मात्र एक ही घटना का वर्णन होता है। कोवै के प्रत्येक पद में कवि अपने इष्ट देवता या आश्रयदाता राजा को संबोधित करता है। इस प्रकार इसे दरबारी कविता का एक रूप माना जा सकता है।

तमिल की कुछ प्रसिद्ध कोवै कृतियाँ हैं— तिरुक्कोवैयार, तंजैवाणन कोवै, तिरुवेंगै कोवै, पांडियन कोवै, असदि कोवै आदि।

कोशविज्ञान *(हिं० पारि०)*

प्रायोगिक भाषाविज्ञान (applied linguistics) की एक शाखा, जिसका संबंध कोश-निर्माण से है। पहले मानव को कोशों की आवश्यकता न थी, किंतु जैसे-जैसे एक भाषा-भाषी समाज के अपने ही पुराने शब्द अप्रचलन के कारण कठिन जान पड़ने लगे तथा अन्य भाषा-भाषियों या उनकी भाषाओं एवं साहित्यों से परिचय की आवश्यकता पड़ी—एकभाषिक, द्विभाषिक तथा बहुभाषिक कोशों का निर्माण होने लगा। निर्माण के साथ-साथ इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा में चिंतन भी बढ़ा और अब कोशविज्ञान (lexicology) तथा कोशकला (lexicography) दो रूपों में इस विषय पर विचार होता है। कोशविज्ञान का संबंध कोश-निर्माण-संबंधी सैद्धांतिक बातों से है तथा कोशकला का कोश-निर्माण-संबंधी व्यावहारिक बातों से। 'कोश' किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार एकभाषिक, द्विभाषिक, त्रिभाषिक आदि; शब्दकोश, चरित्रकोश, मुहावरा कोश, लोकोक्ति कोश; प्रयोग कोश, उद्धरण कोश, उच्चारण-कोश, पर्याय कोश, पारिभाषिक कोश आदि; सामान्य-कोश, ऐतिहासिक कोश, तुलनात्मक कोश, व्युत्पत्ति कोश आदि) होते हैं, उसके लिए प्रविष्टियों का चयन कैसे और कहाँ से करें, कोश-निर्माण में एकरूपता के लिए क्या कुछ करें, प्रविष्टियों को क्रमबद्ध कैसे करें, उच्चारण कैसे लिखें, व्याकरणिक संकेत में क्या-क्या लें, अर्थों का क्रम क्या रखें, किन-किन अर्थों को उदाहृत करें, उदाहरणों का संदर्भ कैसे दें, आदि अनेकानेक बातें इस प्रसंग में विचारणीय होती हैं। हिंदी में—तथा अन्य भारतीय भाषाओं में—कोश-विज्ञान, अपने आधुनिक संदर्भों में, अभी विकसित होना है।

कोहिली, सुरिंदर सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—१९१९ ई०]

डॉक्टर कोहली पंजाबी के प्रसिद्ध अध्यापक हैं। आपके अनुसंधान और आलोचना का अधिकतर भाग आपके अध्यापन के परिणामस्वरूप विरचित है। आपने परंपरा-प्राप्त आलोचना-सरणियों को ठोस आधार प्रदान कर विस्तार की ओर अग्रसर किया। मध्यकानीन साहित्य के कतिपय अंशों को संपादित कर इन्होंने पंजाबी पाठ्य-पुस्तकों की कमी पूरी करने का यत्न किया। इसके अतिरिक्त आधुनिक कविता के भी प्रतिनिधि संकलन तैयार कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया। आपने इतिहास, धर्म, धर्म-मर्यादा, साहित्य आदि भिन्न-भिन्न विषयों में रुचि ली परंतु इन सब के मौलिक प्रकृति-भेद की ओर विशेष ध्यान न दे पाने के कारण इनमें अपेक्षित गंभीरता का अभाव है।

आजकल आप पंजाब विश्वविद्यालय में पंजाबी विभाग के अध्यक्ष के पद पर कार्य कर रहे हैं। प्रसिद्ध रचनाएँ—'पंजाबी साहित्य दा इतिहास', 'पंजाबी साहित्य वस्तुते रूप', 'प्रो० पूरण सिंह जीवन ते रचना', 'पंजाबी साहित्य दे उसरैये', 'लाला किरपा सागर ते उन्हाँ दी रचना' आदि।

कौटिल्य *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—ई० पू० चौथी शती]

इनके विष्णुगुप्त और चाणक्य नाम भी मिलते हैं। इनका सर्वाधिक प्रख्यात ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' (दे०) है। इसके अतिरिक्त चाणक्य के नाम से 'चाणक्यशतक' एवं 'चाणक्य नीति' (340 श्लोकों का संग्रह), ये दो ग्रंथ मिलते हैं।

अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय राजनीति है। इस महान ग्रंथ में कौटिल्य ने राजनीतिशास्त्र के विषय में विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की है। अर्थशास्त्र के उत्तरवर्ती ग्रंथों —'कामन्दकीय नीतिसार' एवं 'नीति वाक्यामृत' आदि— पर कौटिल्य का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्राचीन अर्थशास्त्र के क्षेत्र में कौटिल्य की देन इस कारण से महत्वपूर्ण है कि इस विद्वान् ने अपनी प्रतिभा से पूर्ववर्ती बृहस्पति (दे०) एवं भारद्वाज आदि के अर्थ-शास्त्रीय सिद्धांतों का समन्वय प्रस्तुत करते हुए एक विस्तृत अर्थशास्त्र का निर्माण किया था। इस ग्रंथ में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहार्य राजनीतिक सिद्धांतों का विशद निरूपण मिलता है।

कौल, ज़िंद *(कश्० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1965 ई०]

मास्टर जी के नाम से प्रसिद्ध श्री ज़िंद कौल ने शैशव से ही अपनी मेधा का परिचय दिया। ये पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली से शिक्षित प्रारंभिक कश्मीरी छात्रों में थे जिन्होंने स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। परिणामतः आधुनिक विचारावली से ये प्रभावित थे। उर्दू, फ़ारसी, अरबी, हिंदी, संस्कृत और अँग्रेज़ी भाषाओं का इन्हें ज्ञान था। अँग्रेज़ी के ये प्रख्यात वैयाकरण थे। उर्दू और फ़ारसी में भी इन्होंने कविताएँ रची हैं। ईरानी विद्वानों ने इनकी फ़ारसी कविता को सराहा था। 'साबित' उपनाम से इन्होंने उर्दू और फ़ारसी में प्रारंभिक रचनाएँ कीं। कुछ समय तक अध्यापक रहे। इसीलिए 'मास्टर जी' कहलाए। अपनी सीधी-सादी शिशुसुलभ प्रकृति, मित-भाषिता', सात्त्विक स्वभाव एवं उच्च आदर्शों के कारण ये कश्मीरी जन-जन के स्नेहभाजन बने। कश्मीरी भाषा में इन्होंने सन् 1942 से 1950 तक रचनाएँ कीं। कश्मीरी के वरिष्ठ कवि परमानंद की कविताओं का सुंदर अँग्रेज़ी अनुवाद भी किया। कुल मिलाकर इन्होंने 37 कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी हैं। इनकी 35 कश्मीरी कविताओं के संग्रह 'सुमरन' पर इन्हें सन् 1956 में साहित्य-अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था। प्राचीन और अर्वाचीन विचारावलियों के सेतु-बंधन का श्रेय इन्हीं को है। इनमें भावगांभीर्य, पद-लालित्य एवं मार्मिकता का सुंदर सम्मिश्रण तथा अलंकारों का सुंदर प्रयोग है। सुंदर शब्दचयन; ठेठ कश्मीरी शब्दावली के होते हुए भी फ़ारसी और संस्कृत के तद्भव शब्द यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं। सदा आर्थिक विषमताओं से जूझते रहे और इनका गार्हस्थ्य जीवन दुःखी रहा, जवान बेटे की मौत हुई। कदाचित् इसी के परिणामस्वरूप जीवन का दृष्टिकोण बदला। मनुष्य की बेबसी और इसीलिए ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण का विश्वास उत्पन्न हुआ। मौलिक एवं मार्मिक शैली में जीवन के कटु अनुभवों को प्रतिबिंबित करने वाली इनकी कई कविताएँ अत्यंत लोक-प्रिय हुई हैं।

कौसल्या देवी कोड़ूरि *(तें० लें०)*

इनका निवासस्थान राजमहेंद्रवरमु है। ये प्रधानतः उपन्यास-लेखिका हैं। इनके उपन्यास 'आंध्रप्रभा', 'युवा', 'जयश्री' आदि तेलुगु पत्रिकाओं में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए हैं। पत्रिकाओं की ओर से आयोजित प्रतियोगिता में इनके 'चक्रभ्रमणमु' (दे०) नामक उपन्यास को पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'शांतिनिकेतनमु', 'धर्मचक्रमु', 'प्रेमनगर', 'कल्याण मंदिरमु', 'चक्रनेमि' आदि इनके अन्य उपन्यास हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त इनकी कुछ कहा-नियाँ तथा लेख भी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। शैली की सरलता तथा सरसता, आकर्षक घटनाओं का चयन और नियोजन तथा सजीव चरित्र-चित्रण इनके उपन्यासों की लोकप्रियता के आधार-तत्त्व हैं।

क्रांतिकल्याण *(क० कृ०)* [समय—बीसवीं शती का दूसरा चरण]

यह कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासकार श्री बी० पुट्ट स्वामय्या (दे०) जी की साहित्य अकादमी द्वारा पुर-स्कृत प्रतिनिधि उपन्यास-कृति है। यह एक सांस्कृतिक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें संत बसवेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आलोक में बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कर्णाटक के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया गया है। संत बसवेश्वर का आविर्भाव बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ। उन्होंने वीरशैव मत का प्रसार किया; वर्णाश्रम धर्म, छुआछूत, जाति-पाँति आदि का घोर विरोध किया और क्रांति का शंखनाद फूँका। वे सम्राट बिज्जल के मंत्री थे। बिज्जल जैन थे। सनातन धर्म का विरोध, अंतर्जातीय विवाह आदि को दिए गए प्रोत्साहन को देखकर सनातनियों ने उनका विरोध किया और बिज्जल के कान भरे। बिज्जल ने अंतर्जातीय विवाह कराने वाले हरलय्या मधुवय्या को दंड दिया। इससे जनता भड़क उठी। जनता ने विद्रोह किया। बिज्जल की हत्या हुई। बसव उस हिंसा-क्षेत्र से दूर चले गए। वहीं उनकी इहलीला समाप्त हुई। यह है संत बस-वेश्वर के क्रांतिकारी जीवन का झंझा-क्रम। महान संत बसवेश्वर ने अपने समय के महान चिंतकों व संतों को आश्रय दिया, तत्त्वचिंतन के लिए अनुभव-मंडप की स्थापना की। प्रभुदेव, सिद्धराम (दे०), चेन्नबसव (दे०), अक्क-महादेवी आदि संतजन इसी समय हुए। उन्होंने हज़ारों बानियाँ लिखीं जो वचनों के नाम से विख्यात हैं। बस-वेश्वर के वचनों में भक्ति, विचार एवं कर्म की त्रिवेणी है। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में यह बृहत् उपन्यास लिखा गया है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में ये तीन पुस्तकें आती हैं: उदय रवि, राज्यपाल, कल्याणेश्वर; द्वितीय में नागबंध, मुगियदकल्सु, तथा क्रांतिकल्याण। बिज्जल की कूटनीति एवं महत्वाकांक्षा, बसवेश्वर की निःस्पृहता, लोककाव्य आदि का अत्यंत मनोहर चित्रण यहाँ है। इससे भी बढ़कर बसव के समकालीन महान् संतों के जीवन भी इसमें गूँथे हुए हैं। उपन्यास की शैली रोमांटिक है। कोमल सन्निवेश, भावुकतापूर्ण घटनाओं आदि के चित्रण में वे कुशल हैं। उनकी कुशल लेखनी से बारहवीं शती के कर्णाटक का एक पूरी शती का विस्तृत जीवन प्रत्यक्ष हो उठा है। इतनी विशाल पटभूमि के कारण यह शिथिल-कथानक उपन्यास है। कहीं-कहीं भरती की चीजें भी हैं। फिर भी वीरशैव धर्मदीप्त संस्कृति के पुनर्निर्माण में यह उपन्यास सफल है।

क्रिया *(हिं० पा०)*

'क्रिया' शब्द का संबंध 'कृ' धातु से है और इसका अर्थ है 'कुछ किया जाना' या 'कर्म'। व्याकरण में क्रिया उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे कुछ होना या किया जाना व्यक्त हो। 'राम गया' और 'राम ने खाया' में 'गया', 'खाया' क्रियाएँ हैं। क्रिया के अकर्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जाना, गिरना, हँसना), सकर्मक (खाना, गिराना), द्विकर्मक (लिखना), प्रेरणार्थक (करवाना, लिखवाना), मूल ('राम गया है' में 'गया'), सहायक ('राम गया है' में 'है'), संयुक्त ('राम गिर गया' में 'गिर गया') आदि कई भेद होते हैं। हर वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक क्रिया का भाव अवश्य होता है, इस तरह भाषा में क्रिया बहुत महत्त्वपूर्ण है।

क्रियाविशेषण *(हिं० पारि०)*

व्याकरण में क्रिया-विशेषण उन शब्दों को कहते हैं जो क्रिया की किसी-न-किसी प्रकार की विशेषता व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, 'मोहन अच्छा गाता है' में 'अच्छा' शब्द 'गाता है' क्रिया की विशेषता बतला रहा है, अतः यह क्रियाविशेषण है। 'राम वहाँ गया', 'मोहन किधर जा रहा है', 'सीता अब चलेगी' में 'वहाँ' से स्थान, 'किधर' से दिशा तथा 'अब' से समय की अभिव्यक्ति हो रही है। स्थिति, स्थान, दिशा, समय आदि शब्द वस्तुतः क्रिया की विशेषता तो नहीं बतला रहे हैं, किंतु ये भी क्रियाविशेषण के अंतर्गत ही रखे जाते हैं। इस तरह इस प्रसंग में 'विशेषता' शब्द अपने सामान्य अर्थ से पर्याप्त व्यापक है। क्रियाविशेषण के अंतर्गत क्रिया के काल, स्थान दिशा, स्थिति, परिमाण, रीति, क्रम, हेतु, निश्चय, अनिश्चय, निषेध, आवृत्ति, गुण, अवगुण, तुलना, पर्याप्ति, न्यूनता आदि के बोधक शब्द आते हैं।

क्रीडाभिरामु *(ते० कृ०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) द्वारा रचित श्रृंगारपरक वीथीरूपक (दे० वीथिनाटक) है जिसका इनकी लघु रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह तेलुगु का प्रथम उपहासपरक काव्य है और साथ ही सभी लक्षणों से युक्त प्रथम रूपक भी। सरस परिहास एवं रसिकता इसके प्रमुख गुण हैं। समाज की कुरीतियाँ, दुर्बल मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों के धर्म-विरोधी आचरण आदि इसमें हास्य-शैली में प्रस्तुत किए गए हैं और इस प्रकार लेखक ने उन पर परोक्षतः प्रहार किया है। इसमें कोमल उपालंभ है, क्रुद्ध-शाप या दंड नहीं। इसमें दूसरे प्रतापरुद्र के समय के ओरुगल्लु के जनजीवन, नगर-वीथियों, बाज़ारों, वेश्यालयों, देवी-देवताओं आदि का सजीव चित्रण दो मित्रों के संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

क्षणदागीत चिंतामणि *(बँ० कृ०)*

'क्षणदागीत चिंतामणि' विश्वनाथ चक्रवर्ती-कृत वैष्णव पदसमूह का प्राचीनतम संकलन है। बंगाल के नदिया ज़िले के देवग्राम में लगभग 1586 ई० में बिश्वनाथ चक्रवर्ती का जन्म हुआ था। इन्होंने आजीवन वैष्णव-शास्त्र के प्रचार के लिए कार्य किया।

'क्षणदागीत चिंतामणि' में कुल मिलाकर 308 पद हैं। ये सब 'पूर्व-विभाग' से संबंधित पद हैं। वैष्णव-साधना के क्षेत्र में 'क्षण' भित्तीय गुह्य साधना की धारा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न इस ग्रंथ में दृष्टिगोचर होता है। यह गूढ़ 'आस्वादन' श्री चैतन्य धारा के अनुसार 'अंतरंग' आधारशिला है। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर 49 पदकर्ताओं के पद संकलित हैं परंतु चंडीदास (दे०) के पद इसमें नहीं हैं। विश्वनाथ चक्रवर्ती के पद 'हरिवल्लभ' के नाम से इसमें संकलित हैं।

क्षणार्ध *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1962 ई०]

'क्षणार्ध' चुनीलाल मड़िया (दे०) की तेईस कहानियों का संग्रह है। लेखकीय निवेदन के अनुसार प्रस्तुत संग्रह में लेखक की पिछले तीन-चार वर्षों में लिखी गई कहानियाँ संगृहीत हैं। इस पुस्तक का नामकरण हमारा ध्यान दो बातों की ओर आकृष्ट करता है: 'चक्रद्वार', 'विश्रांति', 'दिनोंदिन' आदि कहानियों में 'क्षणार्ध' के प्रयोग के साथ इसके नाम का संबंध जोड़ दिया गया है तथा 'डंख' और 'चांदूडियो' जैसी कुछ कहानियों में जो संवेदनपूर्ण क्षणार्ध को रूपायित किया गया है, वह द्रष्टव्य है। 'एक हतो गधेडो' के समान कुछ हलकी-फुलकी कहानियाँ भी इसमें संकलित हैं और 'प्रेम, कथा अने क़िस्सो' के समान शब्द-मुखर और करामाती कहानियाँ भी मौजूद हैं। 'क्षणे क्षणे' कहानी नागरिक जीवन के एक दूसरे ही माहौल को प्रकट करती है। लेखक का जिनतान का कैलेंडर अनेक स्थानों पर मौजूद है (शायद यही कैलेंडर उन्हें अधिक प्रिय हो!) प्रायः सभी कहानियाँ गुरु-गंभीर न हो कर सीधी-सादी जीवन-संवेदना को प्रकट करने वाली हैं। भाषा सरल और शैली प्रवाहपूर्ण है।

क्षमाराव, पंडिता *(सं० ले०)* [समय—1890-1954 ई०]

पंडिता क्षमाराव बीसवीं शती की संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखिका हैं। ये प्रख्यात संस्कृत विद्वान् पं० शंकर पांडुरंग की पुत्री थीं। इन्होंने गद्य तथा पद्य दोनों में आधुनिक विषयों पर सुंदर रचनाएँ की हैं। इन्होंने आधुनिक दृष्टि-कोण से संस्कृत में साहित्य-सर्जन किया।

इनकी मुख्य कृति 'कथामुक्तावली' है। यह सरल तथा सुबोध गद्य में रचित कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ रोचकता एवं घटना के वैचित्र्य की दृष्टि से आधुनिक युग के सर्वथा उपयुक्त हैं।

क्षितिमोहन सेन *(बँ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

वंगाल के विद्वत् समाज में आचार्य क्षितिमोहन सेन अपनी महिमा में सुप्रतिष्ठित हैं। कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) का घनिष्ठ संपर्क उन्हें प्राप्त हुआ था। शांतिनिकेतन के विद्याभवन की अध्यक्षता करते हुए एक ओर उन्होंने शिक्षा-विस्तार में अपना तन-मन-धन लगा दिया तो दूसरी ओर निरलस ज्ञानचर्चा के क्षेत्र में अपने कार्य का वास्तविक विस्तार किया। उनके रचित ग्रंथों में 'मध्य युगे भारतीय साधनार धारा' (1930), 'दादू' (1938), 'बाँगलार बाउल' (1954), 'बलाका काव्य परिक्रमा' (1952) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके 'दादू' ग्रंथ के कारण ही रवींद्रनाथ मध्ययुगीन हिंदी कविता के प्रति आकर्षित हुए थे। हिंदी में 'भारत में जातिवाद', गुजराती में 'तंत्र नि साधना', अँग्रेजी में 'मेडीवल मिस्टीसिज़्म' आदि की रचना कर क्षितिमोहन बाबू ने उज्ज्वल मनीषा का परिचय दिया है।

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद *(बँ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

इनकी रचनाएँ हैं—

गीतिनाट्य : 'फूलशय्या' (1894), 'प्रेमांजलि' (1895), 'आलि बाबा' (1897), 'वेदौरा' (1904), 'वरुणाम्व' (1908), 'भूतेर वेगार' (1908), 'वासन्ती' (1908), 'किन्नरी' (1918); **अरब-ईरान की कथाओं पर** : 'जूलिया' (1900), 'पलिन' (1911), 'मिडिया' (1922) तथा और कई नाटक; **पौराणिक नाटक** : 'सावित्री' (1902), 'रंज्ञावती' (1904), 'भीष्म' *(1913)*, 'रामानुज' (1916), 'नर-नारायण' (1926); ***ऐतिहासिक नाटक*** : 'रघुवीर' (1903), 'प्रतापादित्य' (1903), 'चांदबिबि' (1907), 'अशोक' (1908), 'आलमगीर' (1921) (दे०); **इतिहासाश्रित काल्पनिक नाटक** : 'खांजहान' (1912), 'आहेरिया' (1915), 'बंगेरांठौर' (1917)।

क्षीरोदप्रसाद के नाट्य साहित्य में वैविध्य एवं बिस्तार है।

विद्याविनोद के नाटक मूलतः रोमांटिक-धर्मी हैं। संभवतः इसीलिए ये अपने नाटकों में 'गल्प रस' उत्पन्न करने में सफल रहे हैं। (गिरीश) (दे०) घोष के नाटकों में भक्ति-रस माना जाता है)। इनके नाटकों में कहीं ऐति-हासिक विसंगतियाँ और कहीं-कहीं कष्ट-साध्य कल्पनाएँ मिलती हैं। वास्तव में इनकी नाट्य प्रतिभा का परिचय पात्रों के मानवीय पक्ष के उद्घाटन में मिलता है। पात्र ऐतिहासिक कम, वैयक्तिक अधिक हैं। इनके अंतर्जगत् का संघर्ष इनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता है। विद्या-विनोद के पौराणिक नाटकों में पातिव्रत्य, मातृ-पितृ-भक्ति, आदि परंपरागत आदर्शों की स्थापना है परंतु इनके कुछ ऐतिहासिक नाटकों का राष्ट्रीय पक्ष प्रबल है। जातीय गौरव तथा स्वाधीनता की भावना का आग्रह कहीं अधिक प्रखर एवं मुखर है।

इनकी भाषा आवश्यकता से अधिक तरल एवं भावप्रवण है। इनके नाटकों का मानवीय स्वरूप तथा रंगमंचीय सफलता उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

क्षेत्रय्या *(तें० ले०)* [समय—1600-1660 ई०]

आंध्र-विद्यापति' (दे० हिं० ले० विद्यापति) क्षेत्रय्या के पदों में संगीत और नृत्य का अद्भुत सामंजस्य है। आंगिक अभिनय के द्वारा आंतरिक भावों को आत्मीयता के साथ आह्लादकारिणी भाषा और रमणीय राग-रागिनियों में आराध्य के सामने प्रकट करने के उद्देश्य से ही क्षेत्रय्या ने अपने पदों की रचना की। इन पदों में भक्ति-भावना से मिश्रित श्रृंगार की अभिव्यंजना प्रधान है। प्रत्येक पद के अंत में पद-रचनाकार के आराध्य भगवान गोपाल का उल्लेख मिलता है। आंध्र के कृष्णा जिले में मुव्वा नाम का एक ग्राम क्षेत्रय्या का जन्मस्थान था। कहते हैं कि क्षेत्रय्या ने कुल मिलाकर चार हज़ार पदों की रचना की थी, पर आज केवल साढ़े तीन सौ पद मिलते हैं। इनके पदों में भक्ति-भावना प्रधान है या श्रृंगार की भावना—यह कहना कठिन है। जो लोग जिस दृष्टि से देखेंगे, उनको वही भावना प्रधान प्रतीत होती होगी। लेकिन रसात्मकता सभी पदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पाई जाती है। ये पद नृत्य-प्रदर्शन के अत्यंत अनुकूल प्रतीत होते हैं। नारी-हृदय की कोमल भावनाओं की बड़ी मार्मिक व्यंजना भी इन पदों की विशेषता है। नायक-नायिका के विविध भेदों के लक्षण भी इन पदों में परिलक्षित होते हैं। संगीत और नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत भक्ति और शृंगार की गंगा-जमुनी का यह रसात्मक प्रवाह भारतीय साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। सत्रहवीं शताब्दी के तंजौर नरेश रघुनाथ नायकुडु के दरबार में क्षेत्रय्या को राजाश्रय प्राप्त था और वहीं इन्होंने अपने अधिकांश पदों की रचना की।

क्षेमेंद्र *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1025-1075 ई०]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी क्षेमेंद्र कश्मीरी थे। इनका समय ग्यारहवीं शती ई० का द्वितीय और तृतीय चरण है। इनके पिता का नाम प्रकाशेंद्र तथा पितामह का नाम सिंधु था। इन्होंने साहित्य का अध्ययन अभिनवगुप्त (दे०) के चरणों में बैठकर किया था। ये मूलतः शैव थे परंतु बाद में वैष्णव बन गए थे। इन्होंने अपने ग्रंथों में अपने को 'व्यासदास' कहा है। ये शैव दार्शनिक क्षेमराज से भिन्न हैं।

क्षेमेंद्र ने अनेक विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उनकी कृतियाँ ये हैं—'औचित्यविचारचर्चा' (दे०), 'कविकंठाभरण', 'कविकर्णिका', 'सुवृत्ततिलक', 'अमृततरंग', 'अवसरसार', 'कनकजानकी', 'कलाविलास', 'क्षेमेंद्रप्रकाश', 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'चारुचर्या', 'चित्रभारतनाटक', 'दर्पदलन', 'दशावतारचरितकाव्य', 'देशोपदेश', 'दानपारिजात' 'नर्ममाला' (दे०), 'नीतिकल्पतरु', 'पद्यकादंबरी', 'पवनपंचाशिका', 'बृहत्कथामंजरी' (दे०), 'बौद्धावदानकल्पलता', 'भारतमंजरी', 'मुक्तावलीकाव्य', 'मुनिमतमीमांसा', 'राजावलि', 'रामायणमंजरी', 'ललितरत्नमाला', 'लोकप्रकाश', 'लावण्यवतीकाव्य', 'वात्स्यायनसूत्रसार', 'विनयवल्ली', 'वेतालपंचविंशति', 'व्यासाष्टक', 'शशिवंशमहाकाव्य', 'समयमातृका', 'सेव्यसेवकोपदेश'।

यद्यपि क्षेमेंद्र ने चालीस के लगभग ग्रंथ लिखे तथापि उनकी कीर्ति का विशेष और महत्वपूर्ण आधार अलंकारशास्त्र के क्षेत्र में उनका 'औचित्यवाद' है जिसका विशद प्रतिपादन 'औचित्यविचारचर्चा' (दे०) में किया गया है।

क्षेमेंद्र के औचित्यवाद में कोई मौलिकता नहीं है और न ही इसे अलंकारशास्त्र के क्षेत्र का मौलिक सिद्धांत माना जा सकता है। क्षेमेंद्र ने अपने प्रतिपादन द्वारा काव्याभिव्यक्ति में औचित्य का एक मानक स्थिर करने का प्रयास किया है। यह कोई पृथक् सिद्धांत न होकर विभिन्न काव्यांगों को परिष्कृत और उपादेय बनाने का हेतुमात्र है। उनके 'कविकंठाभरण', 'कविकर्णिका' (अनुपलब्ध) और 'सुवृत्ततिलक' भी कवि शिक्षा के ग्रंथ हैं। उनकी विपुल ग्रंथ-राशि उनकी बहुलता तथा विविध क्षेत्रों में उनके सर्जनकौशल की परिचायक है।

खंडकाव्य *(सं० पारि०)*

जीवन के अपार विस्तार को उसके बृहत्तम आयामों में चित्रित करने वाले महदाकार काव्य-रूप महाकाव्य से भिन्न जीवन का एकपक्षीय खंडचित्र प्रस्तुत करने वाला लघु आकार काव्य का रूप। सर्वप्रथम आनंदवर्धन (दे०) ने मुक्तक-प्रभेदों तथा पर्यायबंध, परिकथा, सकलकथा आदि काव्य के अन्य उपभेदों के साथ 'खंडकथा' रूप में इसका उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त (दे०) ने कथा के एक भाग के वर्णन को खंडकथा कहा है ('एकदेशवर्णना खंडकथा,—ध्वन्यालोकलोचन, तृतीय उद्योत)। कविराज विश्वनाथ (दे०) ने काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाले काव्य विशेष को खंडकाव्य का अभिधान दिया है ('खंडकाव्य भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च'। —साहित्य-दर्पण, 6।329)। लेकिन खंडकाव्य जीवन का न तो खंडित एवं विशृंखल चित्र है और न महाकाव्य का एक अंग मात्र ही। कहानी (दे०) और एकांकी (दे० नाटक) के समान खंडकाव्य भी जीवन के किसी एक पक्ष, महत्वपूर्ण घटना अथवा प्रसंग-विशेष का अपने सीमित आकार में संक्षिप्त, किंतु क्रमबद्ध एवं संपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है।

खगेंद्र मणिदर्पण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता मंगराज प्रथम हैं जिनका समय 1350 ई० के करीब है। यह जैन थे और हरिहर प्रथम के आश्रित थे। 'खगेंद्र मणिदर्पण' सोलह अधिकारों वाला वैद्यक ग्रंथ है। कवि का दावा है कि वैद्यक मोक्षसाधक है। मंत्रौषधि निरूपण ही उत्कृष्ट काव्य का उद्देश्य हो सकता है। शास्त्र-कविता होने पर भी इसमें कविता का बंध ललित है और गति प्रौढ़ है। अनुप्रास, यमक, आदि अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी बोली (*हिं० पारि०*)

खड़ी बोली नाम का प्रयोग दो अर्थों में हो रहा है। एक तरफ तो आज का साहित्यिक हिंदी को 'हिंदी या 'खड़ी बोली' कह रहे हैं और दूसरी तरफ मेरठ-मुरादाबाद में वहाँ की जनता द्वारा प्रयुक्त लोकभाषा को भी खड़ी बोली कह रहे हैं। इस गड़बड़ी को बचाने के लिए कुछ लोग लोक-भाषा को 'कौरवी' नाम से अभिहित करते है। 'खड़ी बोली नाम की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। इस नाम में 'खड़ी' शब्द को कुछ लोग 'खरी' या 'शुद्ध' मानते हैं तो कुछ लोग 'खड़ी' या 'खड़ी हुई'। ब्रजभाषा आदि की तुलना में (गयो-गया, कौ-का) खड़ी पाई या आकारांत की प्रधानता से भी कुछ लोग इस नाम का संबंध जोड़ते हैं। वस्तुतः ये सारे अनुमान मात्र हैं। किसी प्रमाण के अभाव में इस संबंध में कुछ कहना कठिन है। आज की खड़ी बोली हिंदी मूलतः शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। साहित्य में इसका प्रयोग हिंदी के आदिकाल में नहीं मिलता। मध्यकाल में भी अपवादतः ही इसका प्रयोग हुआ है। आधुनिक काल में पहले तो गद्य में इसका प्रयोग शुरू हुआ, फिर धीरे-धीरे कविता भी इसी में लिखी जाने लगी। अब 'खड़ी बोली' मानक हिंदी का पर्याय वन चुकी है तथा आधुनिक काल में 'हिंदी का अर्थ 'खड़ी बोली हिंदी' ही लिया जाता है।

खत्री, देवकीनंदन (*हिं० ले०*) [जन्म—1861 ई०; मृत्यु—1913 ई०]

इनका जन्म मुजफ्फरपुर में हुआ था। हिंदी उपन्यास के इतिहास में ये तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति,' (दे०), 'नरेन्द्र मोहिनी,' 'काजर की कोठरी' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। 'चंद्रकांता' इनका लोकप्रिय उपन्यास है। घटना-वैचित्र्य, जादू के करिश्मे, तिलस्मी करामातें तथा ऐयारों के ऊहापोह से भरपूर इस उपन्यास ने न केवल पाठकों का खाना-पीना भुला दिया था अपितु इसे पढ़ने के लिए हजारों लोगों ने हिंदी सीखी थी। यद्यपि यह निर्विवाद है कि खत्री जी के उपन्यास वास्तविक जीवन से संबंधित न होने के कारण न तो पाठकों के मानसिक विकास में किसी प्रकार का योग देते हैं और न औपन्यासिक कला की दृष्टि से ही विशेष महत्व रखते हैं, फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि हिंदी को लोकप्रिय बनाने में इनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

खबरदार, अरदेशर फरामजी (*गु० ले०*) [जन्म—1881 ई० मृत्यु—1953 ई०]

अंग्रेज़ी छठी कक्षा तक जिसने अध्ययन किया, जो गुजरात की मूलभूमि से दूर मद्रास में रहकर भी गुजराती साहित्य का सृजन करता रहा और जिसने अपने अंतिम पंद्रह-बीस वर्ष शैयाग्रस्त रहकर भी गुजराती साहित्य की सतत साधना की—ऐसे कवि खबरदार उन गिने-चुने पारसी गुजराती लेखकों में हैं जिन्होंने साहित्यिक गुजराती में लिखकर उसके साहित्य की श्रीवृद्धि की है। 'मनुराज' नाटक तथा 'गुजराती कविता की रचना कला' के अलावा खबरदार की सभी रचनाएँ काव्यकृतियाँ ही हैं। 'काव्यरसिका', 'विलासिका', 'प्रभातनो तपस्वी', 'कुक्कुटदीक्षा', 'संदेशिका','कलिका', 'भजनिका', 'रासचंद्रिका', 'दार्शनिका' (दे०), 'कल्याणिका' 'राष्ट्रिका', 'श्रीजी इरान शाहनी पवाड़ो', 'नन्दनिका', तथा 'कीर्तनिका' नामक इनके तेरह ग्रंथ हैं। इतना अधिक लिखने के बाद भी खबरदार नरसिंहराव (दे०) के समान प्रगीत नहीं लिख सके, क्रांतकलापी (दे०) की भांति खंडकाव्य में अपनी प्रतिभा का प्रकाश नहीं दिखा सके, 'दार्शनिका' का तत्त्वज्ञान भी अनेक स्थलों पर छायानुवाद-सा दिखाई देता है; प्रेम-निरूपण में भी अनेक स्थानों पर भावों की कृत्रिमता, कल्पना की शिथिलता, भाषा की विरूपता दिखाई देती है। फिर भी अनेक स्थलों पर इनके काव्य में सौंदर्य दृष्टि व प्रसादमयी अभिव्यक्ति के सुंदर दर्शन होते हैं।

'ख़याल', गुलाब नबी (*कश्० ले०*) [जन्म—1936 ई०]

स्वभाव से स्वतंत्रताप्रिय और विचारों से मूलतः राष्ट्रवादी। कश्मीरी भाषा के सर्वप्रथम साप्ताहिक 'वतन' के संपादक। अपनी विचारधारा के कारण इनको सन् 1958 में एक बार जेल भी जाना पड़ा था। इन्होंने 'उमर ख़ैयाम' का कश्मीरी पद्यानुवाद 1961 में प्रकाशित कराया। इन्होंने 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' का भी कश्मीरी भाषा में अनुवाद किया है। इनकी कविताओं का संग्रह 'प्रागाश' (भोर) नाम से प्रकाशित हुआ है। अपने कारावास के दिनों में इन्होंने कुछ कविताओं की भी रचना की थीं। जिनका संग्रह 'ज़ंजीर हुंद साज़' (बेड़ियों का संगीत) नाम से 1963 में प्रकाशित हुआ था। खयाल साहब अपनी पैनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि के कारण एक सफल शोधक, उच्च कोटि के आलोचक एवं गद्य-लेखक हैं। भावुक होते हुए भी बहुत ही स्वच्छंद हैं और उनकी शैली मौलिक, प्रौढ़ एवं ओजस्वी है। भाषा के प्रयोग में ये सिद्धहस्त हैं।

खरोष्ठी *(पारि०)*

एक प्राचीन लिपि, जिसके प्राचीनतम लेख शहबाज़गढ़ी और मनसेरा में मिले हैं। इसकी प्राप्त सामग्री मोटे रूप में चौथी सदी ई० पू० से तीसरी सदी ई० तक की है। खरोष्ठी नाम की उत्पत्ति पर विवाद है। एक मतानुसार खरोष्ठ नामक किसी व्यक्ति की बनाई होने से यह नाम पड़ा है। कुछ लोग 'खरोष्ठ' शब्द को 'काशगर' का संस्कृत रूप मानते हैं। काशगर कभी इस लिपि के प्रयोग-क्षेत्र का केंद्र था। एक मत यह भी है कि इसके अक्षर गदहे के ओष्ठ की तरह बेढंगे हैं, अतः यह (खर+ओष्ठ+ई) नाम पड़ा है। यह लिपि मूलतः आर्मेइक लिपि से निकली है। खरोष्ठी लिपि बड़ी ही अवैज्ञानिक है। दीर्घ स्वरों का इसमें सर्वथा अभाव है। इसमें लिखी सामग्री पढ़ने में पाठक को कई बातों में अनुमान से काम लेना पड़ता है।

खांडेकर, वि० स० *(मल० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

खांडेकर की प्रारंभिक शिक्षा साँगली में हुई। 1913 ई० में मैट्रिक करने के बाद ये पूना के फर्गुसन कॉलिज में दाखिल हुए। पाठ्य-क्रम की पुस्तकें पढ़ने के अतिरिक्त इन्हें अन्य पुस्तकें पढ़ने का भी बड़ा शौक था, विशेषतः नाटक-उपन्यास पढ़ने का। रोग, ग़रीबी, मुकदमेबाज़ी के बीच भी इन्होंने 16 वर्ष की वय से ही बहुविध साहित्य-रचना आरंभ कर दी थी, जिसे आलोचकों ने 'अष्टकोना-बँगला' कहा है क्योंकि कहानी, रूपक-कथा, कविता, आलोचना, निबंध, उपन्यास, नाटक और पटकथा सभी विधाओं की इन्होंने सफलतापूर्वक रचना की है। यदि ना० सी० फड़के (दे०) 'कला कला के लिए' मानने वाले लेखक हैं, तो खांडेकर 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के पुरस्कर्ता हैं। इनकी कोई भी कृति सदभिरुचि और नीति की लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन नहीं करती। इन्होंने सर्वत्र त्याग, समाज-सेवा और देशभक्ति के उदात्त विचारों का प्रतिपादन किया है। इनके नायक-नायिका ध्येयवादी हैं, किसी-न-किसी उदात्त विचार के संदेशवाहक। कहीं ग्राम-सेवा का, कहीं विधवा के उद्धार का तो कहीं गरीब मज़दूरों के उद्धार का संदेश है। आर्थिक विषमता को समाज के दोषों का मूल कारण मानने, तथा 'भविष्य सर्वहारा का होगा'—यह आवेशयुक्त संदेश देने के कारण इन्हें समाजवादी लेखक भी कहा गया है।

इनकी आरंभिक कृतियों की भाषा अलंकृत और कृत्रिम है—उसमें श्लेष उपमा, उत्प्रेक्षा, सुभाषितों की भरमार है पर बाद की रचनाओं में ये दोष बहुत कम पाए जाते है। खांडेकर कवि भी हैं अतः इनकी गद्य-रचनाओं में भी प्रकृति के चित्र अत्यंत रमणीय और मोहक हैं। इन्हें भारतीय संस्कृति से अपार प्रेम है अतः 'कांचन मृग' से 'ययाति' (दे०) तक इनके उपन्यासों में पौराणिक संदर्भ पाए जाते हैं। 'कला जीवन के लिए' के पुरस्कर्ता होने का परिणाम इनकी उपन्यास-कला पर भी पड़ा है। इनके पात्र प्रगतिनिधिक एवं प्रतीकात्मक होने के कारण निर्जीव हो गए हैं, उनके संवाद वादविवाद का रूप धारण करने के फल-स्वरूप कृत्रिम हैं, उद्देश्यमयता जीवन पर हावी हो उठी है और कथानक में विश्रृंखलता आ गई है। इनके 'ययाति' उपन्यास को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है और अनेक उपन्यास भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुके हैं।

मुख्य कृतियाँ—'कांचनमृग', 'उल्का', 'दोन ध्रुव', 'रिकामा देव्हारा', 'क्रौंच-वध', 'ययाति' आदि उपन्यास। 'नवमल्लिका', 'जीवनकला', 'पूजन', 'वनदेवता', 'मुरली' आदि कथा-संग्रह। 'गोपाल गणेश आगरकर', 'राम गणेश गडकरी' आदि जीवनी-ग्रंथ।

खाटनियार, यमुनेश्वरी *(अ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1924 ई०; जन्म-स्थान—गोलाघाट]

इनकी शिक्षा घर पर मिडिल तक हुई थी। मुदै-गाँव बालिका विद्यालय में इन्होंने अध्यापन किया था। इनका विवाह कवि भैरबचंद्र खाटनियार के साथ 1920 ई० में हुआ था। 1914-15 ई० से इन्होंने कविता लिखना आरंभ किया था।

प्रकाशित रचना —'अरुणा' (1919)।

अप्रकाशित—'सावित्री', 'रजा लियेर'।

यमुनेश्वरी जी प्रकृति में सौंदर्य देखती हैं, किंतु इसके मन में अतृप्ति अनुभव कर दुःखी होती हैं। ये आधुनिक असमिया साहित्य की एक-दो कवयित्रियों में से हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाडिलकर, कृ० प्र० *(म० ले०)* [जन्म—1872; मृत्यु—1948 ई०]

खाडिलकर मराठी नाट्य-साहित्य के उन उन्नायकों में हैं जिन्होंने टिळक (दे०) की राजनीतिक चेतना को अपनी कृतियों में उरेहा है। स्वाधीनता-संग्राम के सक्रिय सेनानी होने के कारण इन्होंने इतिहास-पुराण के संदर्भ में समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों का अंकन अपने गद्य एवं संगीत नाटकों में किया है। 'सवाई माधव-रायाचा मृत्यु' (दे० सवाई माधवराव) (1893), के 'कांचनगडची मोहना' (1898), 'वायकचि बंड' 'कीचक वध' (दे० वल्लभ, सैरंध्री, कंकभट्ट), 'भाउबंदकी' (1907), संगीत द्रौपदी' आदि इनकी विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'सवाई माधव रावाचा केशव शास्त्री' में षड्यंत्र, मानसिक विक्षिप्तता में माधवराव की मृत्यु; 'भाऊबंदकी' में आनंदी बाई के कुकृत्य, नारायणराव का रहस्योद्घाटन; 'कीचक वध' की प्रतीकात्मक कथा में लार्ड कर्जन की दमनकारी नीतियों का भंडा-फोड़ तथा 'बायकांचे' में नारी-स्वातंत्र्य का जयघोष है। इन्होंने अपने नाटकों में शास्त्रीय नाटकों के रस और नाट्य-वर्जनाओं के साथ ही पाश्चात्य नाटकों के व्यक्ति-वैचित्र्य का अवलंब लिया है। चारित्रिक, दृष्टि से माधवराव, आनंदीबाई, कीचक आदि प्रमुख पात्र ही प्रभावोत्पादक हो पाए हैं। जहाँ एक ओर अनावश्यक प्रसंगों, पात्रों एवं अस्पष्ट गीतों के कारण इनकी रचनाओं की नाटकीय प्रभान्विति बाधित हुई है, वहाँ दूसरी ओर कतिपय स्थलों पर निम्न स्तरीय हास्य-व्यंग्य भी दोष की सीमा तक पहुँच गया है। प्रमुख रचनाओं का कथा-विकास संघर्ष-संकेंद्रित है। संक्षेप में इनकी रचनाओं में जो कुछ नया है उसका मेरुदंड पुराना है और जो कुछ पुराना है उस पर रंग नया है। इसी से महाराष्ट्र मंडली और गंधर्व मंडली के मंच पर इनकी रचनाएँ विशेष रूप से समादृत हुई हैं।

'ख़ादिम', हरुमल ईसरदास सदारंगाणी *(सिं० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्मस्थान शहदादपुर (सिंध) है और इन्होंने बंबई तथा तेहरान विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की थी। सिंध के फ़ारसी कवियों पर शोध प्रबंध लिखने पर इन्हें बंबई विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। सिंध में ये प्राध्यापक थे और विभाजन के पश्चात् ये दिल्ली में स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं। गत कई वर्षों से आकाशवाणी दिल्ली में ये पारसी विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे हैं। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं—'रंगीन रुबाइयूं', 'रूह के दिनों रेलो' (दोनों कविता-संग्रह हैं); 'कख और काना' (निबंध); 'बाबरनामो' (अनुवाद)। सिंधी कविता के क्षेत्र में ये प्रधानतया फ़ारसी काव्यधारा के कवि हैं, यद्यपि समय के अनुसार इन्होंने नवचेतना से प्रेरित होकर विभिन्न विषयों पर भी कविताएँ लिखी हैं। सिंधी गद्य के क्षेत्र में इनके निबंधों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ख़ानम *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

'ख़ानम' एक रूमानी एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसके रचयिता अज़मत रज़ा हैं। लेखक का कहना है कि उन्होंने 'ख़ानम' की कहानी बड़ी निडरता से लिखी है और इसमें भाव तथा तकनीक दोनों दृष्टियों से अपने पुराने मित्रों व मेहरबानों के सुझावों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक संभव हो सका है, लेखक ने पात्र कम से कम रखे हैं और तीन मुख्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बड़ी गहराई से किया है।

ख़ानम *(उर्दू० पा०)*

'ख़ानम' मिर्ज़ा (दे०) के उपन्यास 'उमराव जान अदा' (दे०) की एक प्रमुख और प्रभावशाली स्त्री पात्र है। यह बड़े धड़ल्ले की औरत है और अपने सहकारियों पर इसका बड़ा रोबदाब है। लखनवी सभ्यता की पूरी शान इसमें दिखाई देती है। इसने लखनऊ में वेश्याओं का अड्डा स्थापित कर रखा है। इसका घर मानो परिस्तान है। यह नारी-स्वभाव को समझने में दक्ष है। शरीफ़ घरों की वेगमें अपने लड़कों को सुमार्ग पर लाने में इसकी सहायता की प्रत्याशा करती हैं। यह इस तरह की वेश्या है जिसके पास शरीफ़ों के लड़के सभ्यता का सबक सीखते हैं। गाने में बड़े-बड़े उस्तादों को टोक दिया करती है। महफ़िल में रंग जमाने के लिए पूरे गुर जानती है। धर्म में इसकी दृढ़ आस्था है यद्यपि बाद में यह आस्था कुछ कम हो जाती है।

ख़ाना जंगी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1949 ई०]

पाँच अंकों के इस नाटक के लेखक हैं प्रोफ़े-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर मुहम्मद मुजीब (दे०)। शाहजहां के शासन-काल के उत्तरार्द्ध में उसके बेटों के पारस्परिक मतभेदों के कारण मुग़ल साम्राज्य को बहुत बड़ा आघात लगा था। मुग़ल सत्ता की नींव हिल गई और मुसलमानों की जातीयता का ताना-बाना विशृंखल हो गया। प्रस्तुत नाट्य-कृति में उनके पारस्परिक मतभेदों और मुसलमानों की आपसी फूट का चित्रण किया गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर संरचित होने के बावजूद इस नाटक में रोचकता है। भाषा प्रौढ़ तथा कथोपकथन सजीव और जानदार हैं। उर्दू साहित्य की यह एक उल्लेखनीय कृति है और लेखक की पैनी दृष्टि एवं जागरूकता का प्रमाण उपस्थित करती है।

खिड़िया, जग्गा *(हिं० ले०)*

इनके पिता का नाम रतना जी था। इन्होंने 1658 ई० के लगभग 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी री महेसदासोत्तरी' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसका दूसरा नाम 'रतन-रासो' भी है। इसमें महाराजा जसवंतसिंह, औरंगज़ेब और मुराद के युद्ध का वर्णन है। यह डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) में लिखित वीर रस का श्रेष्ठ चंपू-काव्य है। जग्गा वीर रस के सिद्ध कवि माने जाते हैं; किंतु इन्होंने वचनिका के अतिरिक्त कुछ फुटकर छप्पय भी लिखे हैं जिनमें शांत रस का अच्छा परिपाक मिलता है। डिंगल के ओजस्वी स्वर तथा भावों की कोमलता का अद्भुत समन्वय इन्होंने अपने काव्य में किया है। गद्य लिखने में भी ये सिद्धहस्त थे।

खिलनाणी, कौड़ोमल चंदनमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1844 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

कौड़ोमल का जन्म सिंध के भिर्या नामक गाँव में हुआ था। बचपन से ही इन्हें विद्यार्जन की ओर अधिक रुचि थी। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण ये स्कूल में प्रसिद्ध थे। मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करके ये कुछ समय के पश्चात् शिक्षा विभाग में अध्यापन कार्य करने लगे थे, जहाँ से ये सरकारी विभाग में अनुवादक के पद पर नियुक्त किए गए थे। शिक्षा विभाग में और अनुवादक के पद पर रहने के कारण इन्होंने सिंधी भाषा और साहित्य की पाठ्य पुस्तकें तैयार की थीं जो काफ़ी लोकप्रिय सिद्ध हुईं। समाज-सुधार और नारी-शिक्षा के प्रसार के क्षेत्रों में इनकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने वेदांत मार्ग के प्रसिद्ध संत कवि सामी (दे०) के श्लोकों को प्रकाश में लाकर सिंधी जगत् को इस महान् कवि से परिचित कराया है। इसके सिवाय इन्होंने हर्षदेव के संस्कृत नाटक 'रत्नावली' तथा बँगला साहित्य की चुनी हुई कहानियों का सिंधी में अनुवाद किया है। गद्य के क्षेत्र में विशेषत: निबंध-लेखक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने विभिन्न विषयों पर लगभग 44 पुस्तकें लिखी हैं। इनकी चुनी हुई रचनाओं का संकलन 'साहित्यिक पुष्प' नाम से साहित्य अकादमी दिल्ली ने प्रकाशित किया है। प्रारंभिक सिंधी गद्य की भाषा और शैली को सुधारने, सँवारने और उसे स्थिर रूप देने वाले गद्य लेखकों में ये मुख्य हैं।

खिलनाणी, मनोहरदास कौड़ोमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

मनोहरदास जी सिंधी के प्रसिद्ध गद्य-लेखक श्री कौड़ोमल खिलनाणी (दे०) के सुपुत्र हैं। इनका जन्म स्थान सिंध का भिर्या नामक गाँव है। पिता की तरह इन्होंने भी जीवन का अधिक भाग देशसेवा और समाज-सेवा में व्यतीत किया है। ये कृषिविज्ञान के विशेषज्ञ हैं। इन्होंने सिंधी में विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे हैं। पुस्तक रूप में इनकी प्रामुख कृतियाँ हैं—'सैर जो सवादु', 'हिंदु जो सैरु' (दोनों यात्रा संस्मरण हैं), 'विचार', 'पच्छिमी नारी-चरित्र', 'मनं जा मण्या', 'अल्लाकी आखाण्यूं', 'मुल्हाइता मोती', 'साहित जो सींगार'। इन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं, परंतु ये निबंधकार के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

खुँटिया, बिश्वनाथ *(उड़ि० ले०)* [जन्म—अनुमानतः अठारहवीं शती ई०]

बिश्वनाथ खुँटिया द्वितीय दिव्यसिंहदेव (1779-1795 ई०) तथा उपेन्द्र भंज (दे०) के समसामयिक थे। इनकी 'विचित्र-रामायण' (दे०) अथवा 'बिशि-रामायण' (काव्य में प्रयुक्त नाम 'बिशि') अपनी सुपाठ्यता के कारण राम-साहित्य में अत्यंत लोकप्रिय है। रामलीला संबंधी रचनाओं में आज भी इसका सर्वोच्च स्थान है। भावों की सरलता, छंदों की तरल गति, शैली, मनोज भंगिमा आदि विशेषताओं के कारण यह काव्य सरस और सुपाठ्य बन गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ुतबात-ए-अहमदिया *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1870 ई०]

'ख़ुतबात-ए-अहमदिया' सर सैयद अहमद (दे०) की धर्म-विषयक रचनाओं में सर्वोत्तम कृति है। यह शुद्ध इस्लामी मान्यताओं से संबद्ध । इस्लाम पर ईसाई मिशनरियों के आक्रमणों और भारत में अँग्रेज़ी शिक्षा तथा सभ्यता के प्रचार-प्रसार से मुसलमानों की धार्मिक आस्थाओं को सुरक्षित रखने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई थी। इस पुस्तक में सर विलियम म्यूर की कृति 'लाइफ़ ऑफ़ मुहम्मद' के प्रत्युत्तर में लिखे गए बारह अँग्रेज़ी लेख संगृहीत हैं जिनको बाद में अधिक विस्तार के साथ उर्दू में छापा गया है।

'ख़ुतबात-ए-अहमदिया' इस्लाम की सेवा के उद्देश्य से लिखी गई अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है।

खुम्माण रासो *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1713 ई० और 1633 ई० के मध्य]

इसके रचयिता दलपत (दे०) विजय थे। इस काव्य में मेवाड़ के महाराजाओं का वर्णन है। बाप्पा से आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न कर्ण-सुत खुम्माण का चरित्र यहाँ सबसे अधिक विस्तार से वर्णित है। आचार्य शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) आदि कतिपय विद्वानों ने इसे वीरगाथा-काल की रचना माना था, किंतु नवीन खोजों से यह ग्रंथ उत्तर-मध्यकाल की कृति सिद्ध हो चुकी है। इसमें काल्पनिक घटनाओं तथा अलौकिक तत्त्वों का अद्भुत मिश्रण है। भाषा डिंगल-पिंगल (दे०) तथा अंगीरस वीर है।

खुल्लना *(बँ० पा०)*

मध्ययुगीन मंगल काव्य (दे०) (चंडीमंगल दे०) काव्यपरंपरा में 'खुल्लना' वास्तव में अनन्य चरित्र है। इसी एकमात्र नारी चरित्र को कवियों ने बाल्य, कैशोर्य से लेकर नारी-जीवन के प्रत्येक स्तर पर अंकित किया है। बाल्य काल की चपलता एवं कैशोर की रहस्यमयता ने उसे सहज ही प्रेयसी नारी की भूमिका में स्थान प्रदान किया है। स्वामी के प्रेम में वह विह्वल है। जीवन के दुर्योग में वह केवल स्वामी के सहवास से ही वंचित नहीं, दारिद्र्य-निपीड़न से निरंतर लांछित है। स्वामी के साथ पुनर्मिलन के माध्यम से सौभाग्य की किरणच्छटा ने उसका स्पर्श किया है परंतु केवल क्षणमात्र के लिए। संतानसंभवा नारी पति की वाणिज्य यात्रा की मंगल-कामना में चंडीपूजा के समय पति की क्रोधाग्नि में दग्ध होती है। उसके बाद फिर दुःखरात्रि की शुरुआत होती है। पुत्र श्रीमंत (दे०) के जन्म के पश्चात् लांछना, दारिद्र्य एवं हताशा में भी खुल्लना का मातृ-हृदय विकसित हुआ है। पुत्र की मंगल-कामना में अधीर इस प्रकार का नारी-चरित्र मंगल-काव्य में और नहीं। पितृ-अन्वेषण के लिए श्रीमंत यात्रा में निकल पड़ा है। मातृ-हृदय का आनंद और उपवेग क्रंदन में आश्रय ढूँढता है। कहानी के समाप्ति-लग्न में उसके जीवन के करुण-रंगीन पथ ने अश्रु के सागर में आनंद के स्वर्ण-कमल को प्रस्फुटित किया है। नारी-जीवन के प्रत्येक स्तर पर खुल्लना के विकास, व्याप्ति एवं गंभीरता की तुलना नहीं है।

खुल्ले लेख *(पं० कृ०)*

प्रो० पूरनसिंह (दे०) का यह एक महत्वपूर्ण निबंध-संग्रह है। इसमें कुल 13 निबंध हैं। तीन निबंध विशुद्ध साहित्यिक विषयों पर हैं। ये निबंध है: 'कविता' 'कवि का दिल' और 'आर्ट'। इन निबंधों से लेखक की साहित्यिक मान्यताओं का पता चलता है। लेखक ने अपनी धारणाओं को भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों से पुष्ट भी किया है। इनसे लेखक के चिंतन-मनन और अध्यवसाय का भी पता चलता है। लेखक की साहित्यिक मान्यताओं और जीवन-संबंधी अन्य मान्यताओं में कहीं कोई विरोध या असंगति नहीं दिखती।

इस संग्रह के कुछेक निबंध सांस्कृतिक विषयों पर भी हैं, जैसे 'मज़हब', 'वतन दा प्यार', 'कीमत ते मिट्ठा बोलना' तथा 'प्यार'। इन निबंधों में लेखक ने एक विश्व-संस्कृति के विकास की कल्पना की है जिससे देश-कालातीत सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा संभव हो सके। राजनीतिक विषयों में भी लेखक की अच्छी पैठ थी। उनका निबंध 'वोट ते पालिटिक्स' इसका प्रमाण है।

पूरनसिंह के ये निबंध उनके समग्र व्यक्तित्व को समाहित किए हुए हैं। उनके व्यक्तित्व का फक्कड़पन, मस्ती, उदात्तता, विशालता और महानता इस संग्रह के सभी निबंधों में विशेष रूप से 'कीरत' और 'मित्रता' आदि निबंधों के कथ्य और शैली दोनों में परिलक्षित होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुल्हे मैदान (पं० कृ०)

प्रो० पूरनसिंह (दे०) की यह काव्यकृति आधुनिक पंजाबी की प्रथम स्वच्छंद छंदात्मक रचना है। पंजाबी के परंपरावादी काव्य के निश्चित प्रतिमानों से अलग होकर इस काव्य-संग्रह में पहली बार आधुनिक संवेदना का स्वर उभरा है। अँग्रेज़ी सामाज्य के अधीन उत्पन्न होने वाले मानसिक एवं आत्मिक व्यामोह को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली यह प्रथम रचना है। इस कृति की काव्य-प्रक्रिया एवं रचना-विधि भी अपने आप में निराली है। मध्यकालीन पंजाबी लोक-जीवन एवं संस्कृति को कवि ने अनुभूति के अनुकूल ढालने का सफल यत्न किया है। आधुनिकता को स्वर देने हुए भी यह रचना समग्र पंजाबी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें मध्यकालीन पंजाब के लोक-जीवन में व्याप्त पौराणिक कथाओं और लोक-कथाओं को जिस कौशल से काव्य में ढाला गया है वह अपने आप में अभूतपूर्व कार्य है। कवि ने इन कथाओं के परंपरागत प्रसंगों के स्थान पर इनमें नवीन अर्थ-बोध भर दिया है। इसीलिए इस काव्य का प्रभाव एवं प्रचार जनसामान्य तक हुआ।

ख़ून-ए-नाहक (उर्दू० कृ०)

'ख़ून-ए-नाहक' उर्दू का एक प्राचीन नाटक है जिसके रचयिता मुंशी मेंहदी हुसैन 'अहसन' लखनवी हैं। इस नाटक का कथानक अँग्रेज़ी के विख्यात नाटककार शेक्सपियर के नाटक 'हैमलेट' से उधार लिया गया है। 'अहसन' लखनवी ने इस कथानक को स्वदेशी सामाजिक जीवन तथा भाषा-शैली का परिधान प्रदान करके मौलिक रूप दे दिया है। इस नाटक की भाषा-शैली सरल, सजीव तथा विषयानुरूप है। गानों में सरल हिंदी का प्रयोग किया गया है। इस नाटक में ग़ज़लें भी सम्मिलित हैं; संवाद सुंदर तथा सजीव हैं किंतु तत्कालीन प्रवृत्ति के अनुसार संवादों में तुकसाम्य की विशेषता पाई जाती है।

खेमाणी, आनंद प्रकाश (सिं० ले०)

ये दिल्ली में रहते हैं और राज्य सभा के हिंदी संपादन विभाग में अनुवादक का कार्य करते हैं। सिंधी साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने सन् 1957 के आसपास प्रवेश किया था लेकिन कुछ वर्षों के पश्चात् ही इनकी रचनाओं ने सिंधी साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'लुची' (कहानी-संग्रह), 'हिक शख़्स जी वासना' (उपन्यास), चेतना (आलोचनात्मक निबंधों का संकलन), 'साहित जा सिद्धांत' (संपादन)। ये कहानीकार और आलोचक के रूप में सिंधी साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नई कहानी और नई कविता के क्षेत्र में सिंधी साहित्य को सफल रचनाएँ दी हैं।

खेमी (गु० पा०)

रामनारायण विश्वनाथ पाठक 'द्विरेफ' (दे०)-रचित 'खेमी' कहानी की नायिका खेमी स्त्री जाति का शृंगार है। निम्नतम जाति में जन्म लेकर भी उसने पातिव्रत व सतीत्व का आदर्श स्थापित किया है।

अहमदाबाद की गलियों में झाड़ू देने व सफ़ाई करने का काम करने वाली भंगिन खेमी अपने पति—धनियो—से बेहद प्रेम करती है। उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है। अपने पति को कभी सत्पथ से विचलित नहीं होने देती। पति की असामयिक मृत्यु के बाद युवती विधवा खेमी के जाति वाले दुबारा 'घर करने' के लिए बहुत ज़ोर देते हैं। अनेक आकर्षक प्रस्ताव आने पर भी वह अपने निर्णय पर अटल रहती है—वैधव्य पालती है; इतना ही नहीं, दिवंगत पति के श्रेयार्थ वह अपनी शक्ति, सीमा व मति के अनुसार दानपुण्य भी करती रहती है।

'खेमी' के चरित्र में हमें पातिव्रत का आदर्श, पत्नी-धर्म की पराकाष्ठा व एकनिष्ठता का मानदंड प्राप्त होता है। विलक्षणता यही है कि अति निम्नवर्गीय समाज में उत्पन्न होने पर भी उसमें आभिजात्य के संस्कार हैं।

गुजराती कथा-साहित्य में जो गिने-चुने उच्चकोटि के स्त्री-पात्र हैं, 'खेमी' उनमें से एक हैं। उसकी आत्म-निर्भरता, स्पष्टता, निडरता, एकनिष्ठता और सबसे अधिक उत्सर्ग-भावना अनुकरणीय है। कीचड़ में खिले कमल के समान उसका निर्मल चरित्र स्त्री-जाति का गौरव है।

ख़ोजी (उर्दू० पा०)

ख़ोजी पं० रतननाथ 'सरशार' (दे०) की विख्यात कृति 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) का एक मसख़रा पात्र है जो हीन भावना का शिकार है किंतु अपने बड़प्पन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शेख़ी बघारता रहता है। इसके माध्यम से 'सरशार' ने तत्कालीन सभ्यता पर गहरा व्यंग्य किया है।

ख़ोजी का परिचय देते हुए 'सरशार' स्वयं लिखते हैं—'क़द कोई आध गज़ का, हाथ-पाँव दो-दो माशे के। हवा ज़रा तेज़ चले तो पत्ता हो जाएँ, कन्नी लगाने की ज़रूरत भी न पड़े। मगर बात-बात पर तीखे हुए जाते हैं। किसी ने ज़रा तिरछी नज़र से देखा और हज़रत ने करौली सीधी की। दुनिया की फ़िक्र न दीन की'''बस अफ़ीम हो और चाहे कुछ हो न हो। बाज़ार में उस अजीब-उल-ख़लकत पर जिसकी नज़र पड़ती है बेअख़्तियार हँस देता है।'

खोजी अपनी आदतों के गोरखधंधे में ऐसा उलझा हुआ है कि परिस्थितियों में अपने आप को ढाल नहीं सकता। इसमें मानव-स्वभाव की सहज लोच का सर्वथा अभाव है। यह सदा बलवान और विद्वान् होने का असफल अभिनय करता रहा है। बात-बात पर क़सम खाना, वीरता की मिथ्या कथाएँ कहना, बड़प्पन का झूठा स्वाँग भरना, अनुभवों से शिक्षा ग्रहण न करना, बौना और कुरूप होने पर भी सुंदरियों का प्रेम-पात्र होने का दावा करना, अपनी त्रुटियों तथा मूर्खताओं को जानते हुए भी डींगें हाँकना इसके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ हैं। यह लखनऊ की विलासिता, प्रमाद, अतिशय दंभ तथा आडंबरपूर्ण सभ्यता का प्रतीक है।

खोरघा इतिहास (*उड़ि० कृ०*)

'खोरघा इतिहास' श्री केदारनाथ महापात्र (दे०) की अन्यतम कृति है। यह उनकी जीवन-भर की साधना एवं अध्यवसाय की परिणति है।

अध्यवसाय, अनुसंधान तथा ऐतिहासिक निरपेक्ष दृष्टिकोण के कारण यह रचना अत्यंत मूल्यवान हो गई है। खोरघा इतिहास पर यह सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। अत्यंत ऋजु, सरल तथा रोचक शैली, अपनी निजता से प्राणवान प्रयुक्त भाषा, ऐतिहासिक सत्य की अकृत्रिम अभिव्यक्ति के द्वारा लेखक ने इसके द्वारा इतिहास-रचना की एक नवीन परिपाटी को जन्म दिया है।

ख्यात और वात (*हिं० पारि०*)

'ख्यात' और 'वात' राजस्थानी की गद्य-पद्य-रचना की शैलियाँ हैं; परंतु इनमें प्रधानता गद्य की ही रहती है। 'ख्यात' में इतिहास-कथाएँ लिखी जाती हैं, पर 'वात' में कल्पित कथानक भी रहते हैं।

'बात' के तीन मुख्य रूप मिलते हैं—गद्यमय, गद्य-गद्यमय तथा पद्यमय। राजस्थानी का वात-साहित्य बहुत समृद्ध है। ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर 'वातें' लिखी गई हैं। वस्तुतः 'वात' साहित्य की रचना कथन-श्रवण के लिए हुई है। अतः अनेक 'वातें' मौखिक रूप में मिलती हैं, जिनका विद्वानों ने बाद में संकलन कर दिया है।

ख्यातकर्णाटक (*क० पारि०*)

कन्नड के चम्पू-काव्यों में जिन छंदों का प्रयोग द्रष्टव्य है उनमें उत्पलमाला, चंपकमाला, स्रग्धरा, महास्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित विशेष विख्यात हैं, अतएव इनको 'ख्यातकर्णाटक' नाम से अभिहित किया जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि प्रायः सभी चम्पू-काव्यकारों ने अपने काव्यों में इन छंदों का प्रयोग किया है। यद्यपि ये छंद संस्कृत के हैं तथापि कन्नड के प्रबंधकाव्य-निर्माताओं ने इनको कन्नड छंदों के साथ-साथ बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान प्रदान किया है।

ख़्यालबंदी (*उर्दू० पारि०*)

'ख़्यालबंदी' का अर्थ है ख़्यालात का सिलसिला, ख़्याली तसवीर। मुग़लों के आख़िरी दौर में इसने तसव्वुफ़ में रवाज पाया और उस वक्त 'बेदिल', 'जलाल', 'असीर' (दे०) वग़ैरा का असर इस पर पड़ने लगा। 'बेदिल' के तसव्वुफ़ में 'मानी आफ़रीनी' थी। इनका असर उर्दू पर हुआ और ख़ास तौर पर लखनऊ के शायरों 'नासिख़' (दे०) और उनके दौर के शायरों में 'ख़्यालबंदी' का चलन ज़्यादा रहा। उदाहरणार्थ—

'आतिशे रंगेहिना से शम्मा हैं सब उँगलियाँ
दस्ते जाना में मेरा मंतकून परवाना हुआ।'

ख़्यालिस्तान (*उर्दू० कृ०*)

यह पुस्तक लघु कहानियों का एक सुंदर संग्रह है। इसमें कुछ कहानियाँ मौलिक हैं और कुछ अँग्रेज़ी व तुर्की भाषाओं से ग्रहण की गई हैं जिनमें लेखक ने अपने विवेक के अनुसार यथोचित काट-छाँट कर ली है। ख़ारि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तान व गुलिस्तान, सुहबते नर्जिस, निकाह-ए-सानी, सौदाए-संगीन आदि तो तुर्की भाषा से ली गई कहानियाँ हैं तथा 'मुझे मेरे दोस्तों से बचाओ' अँग्रेज़ी भाषा के एक निबंध का रूपांतर है।

'अज़दवाज-ए-मुहब्बत', 'चिड़िया-चिड़े की कहानी', 'हज़रत दिल की स्वानह उम्री', 'हिकायात-ए-लैला-मज़नूं', 'ग़ुर्बत-ए-वतन' आदि मौलिक कहानियाँ हैं।

इसके लेखक सुप्रसिद्ध उर्दू साहित्यकार सज्जाद हैदर (दे०) हैं। कहानियाँ रोचक और मनोरंजक हैं। भाषा मधुर तथा मुहावरेदार है। उर्दू के कहानी-साहित्य की यह एक प्रशंसनीय उपलब्धि है।

ख्रिस्तपुराण *(म० कृ०)*

ईसाई धर्म का मराठी-भाषी जनता में प्रचार करने के उद्देश्य से इसकी रचना सन् 1614 में हुई थी। रचनाकार फ़ादर स्टीफ़न इंगलैंड में पैदा हुए थे, किंतु मिशनरी बनकर महाराष्ट्र में रहने लगे थे। इस पुराण में दो भाग हैं और अनेक प्रकरण हैं। इसमें ओवी-छंदों की कुल संख्या 10,962 है। 'ख्रिस्तपुराण' की रचना-शैली 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) से पूर्णतः प्रभावित है। कवि ने मराठी भाषा के लालित्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इसकी भाषा-शैली में इतनी सरसता और स्वाभाविकता है कि कोई भी पाठक यह अनुमान तक नहीं लगा पाता कि इसका रचयिता कोई अ-मराठी तथा अ-भारतीय विद्वान् होगा।

गंग *(हिं० कृ०)* [जन्म—1538 ई० और मृत्यु—लगभग 1625 ई० के बाद]

अकबरी दरबार के कवियों में गंग की गणना एक प्रसिद्ध कवि के रूप में की जाती है। भिखारीदास (दे०) ने 'तुलसी गंग दुबो भये सुकविन के सरदार' कहकर मध्ययुगीन कवियों में इनका माहात्म्य प्रकट किया है। इनकी 'गंग पदावली', 'गंग पचीसी' तथा 'गंग रत्नावली' नामक तीन रचनाएँ प्राप्त हैं। 'चंद छंद वर्णन की महिमा' नामक खड़ी बोली की इनकी प्रथम गद्य की रचना कही जाती है। 'दिग्विजयभूषण' में बीरबल, रहीम (दे०) और भावसिंह की दानशीलता को लेकर इनके तीन पद संकलित हैं। गंग अपनी स्पष्टवादिता के लिए काफी प्रसिद्ध रहे हैं। 'गंग ऐसी गुनी को गयन्द से चिराइये' वाली उक्ति के आधार पर कुछ लोग अनुमान लगाते हैं कि किसी राजा ने असंतुष्ट होकर इन्हें हाथी के नीचे कुचलवा दिया था, पर यह राजा कौन था इतिहास इस बारे में मौन है। इन्होंने संयोग और वियोग के बड़े सरस, तीखे और नुकीले चित्रण प्रस्तुत किए हैं। भाषा पर इनका अपूर्व अधिकार था। काव्य में आलंकारिक चमत्कार, उक्तिवैचित्र्य तथा वाग्वैदग्ध्य के लिए इनकी गणना मध्ययुग में उच्च कोटि के कवियों के साथ की जाती रही है।

गंगावर्णन *(म० कृ०)* [रचना-काल—1874 ई०]

'गंगावर्णन' नामक विशुद्ध प्रकृति-सौंदर्य-वर्णनात्मक कृति चिंतामणि पेठकर की स्वतंत्र प्रज्ञा का फल है। 'दक्षिण प्रेज़ कमिटि' द्वारा दिए गए गंगावर्णन विषय पर चिन्तामणि पेठकर, कुरुंदवाडकर तथा हंस, इन तीन कवियों ने काव्य-रचना की थी जिसमें से पहले दो कवियों को पुरस्कार दिया गया था।

'गंगावर्णन' की रचना में कवि ने कुंटे की शैली का अनुकरण किया है। गंगा के उद्गम से लेकर उसके सागर में लीन होने तक के प्रवाह का वर्णन इस काव्य में हुआ है। गंगा-तट पर स्थित भौगोलिक स्थलों तथा इस तट पर घटित अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तृत तथा सरस वर्णन इसमें किया गया है। गंगा-प्रवाह का वर्णन पढ़ते हुए पाठक आत्मविभोर हो जाता है। इसमें गंगातट के आसपास की सृष्टि-शोभा का नयनाभिराम तथा चित्रात्मक वर्णन अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। 1857 के गदर में कानपुर में हुए भीषण हत्याकांड का क्रोधावेशपूर्ण वर्णन किया गया है। कानपुर-वर्णन में राजनिष्ठा का भाव प्रदर्शित है, जो कई लोगों को खटकती है, परंतु उस काल में आंग्ल शासकों के प्रति पूज्यबुद्धि होना सामान्य धर्म था।

एक विषय की समाप्ति तथा दूसरे के प्रारंभ का ज्ञान कराने के उद्देश्य से इसमें विभिन्न वर्णिक वृत्तों का प्रयोग किया गया है। वैसे शार्दूलविक्रीडित (दे०) छंद का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। लेखक ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि 'सच्ची' कविता के लिए तुक तथा छंद का बंधन आवश्यक नहीं। कृष्णाशास्त्री चिपळूणकर ने इस रचना की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगिरेद्दु *(तें० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1956 ई०]

इसके लेखक डॉ० पल्ला दुर्गय्या (दे०) हैं। 'गंगिरेद्दु' ग्रामीण जीवन से संबद्ध काव्य है। किसी-किसी बैल को खेती अथवा गाड़ी खींचने आदि के काम में न लाकर 'बसवन' के नाम से देवता के रूप में उसकी पूजा की जाती है। उसका मालिक उसे खूब सजाता है और प्रणाम करना तथा कुछ प्रश्नों के उत्तर के रूप में सिर हिलाना आदि सिखाता है। गली-गली में उसके करतब दिखाकर ही वह अपनी आजीविका कमाता है। इस प्रकार के बैल को 'गंगिरेद्दु' कहते हैं। प्रस्तुत काव्य ऐसे ही एक 'गंगिरेद्दु' की कहानी है। पिछले दो जन्मों में उसे गाय और बैल की योनि प्राप्त हुई और उसे बहुत दुःख उठाना पड़ा। अतः उसने भगवान से दया की प्रार्थना की। अब वह 'गंगिरेद्दु' का जन्म धारण करता है। इस काव्य में ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण तथा करुण रस की मार्मिक व्यंजना है।

गंगोपाध्याय, तारकनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1843 ई०; मृत्यु—1891 ई०]

बंकिम (दे०) युग के लोकप्रिय उपन्यास-कारों में तारकनाथ गंगोपाध्याय उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कई उपन्यास लिखे परंतु इनकी प्रसिद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण 'स्वर्णलता' (दे०) है। तारकनाथ ने अपने उपन्यासों में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के बंगाली जीवन की पारिवारिक जटिलताओं और दांपत्य जीवन की समस्याओं को उठाया है। अंततः लेखक नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों तथा आदेशों को प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसीलिए वस्तु-विधान में आकस्मिकता एवं भाग्य-निष्ठा है। 'स्वर्णलता' बंगाली गृहस्थ की कारुणिक कहानी है।

बंकिम के समान उन्नत प्रतिभा न होते हुए भी तारकनाथ ने शिल्प और शैली की दृष्टि से नई धारा का सूत्रपात किया है।

गंगोपाध्याय, नारायण *(बँ० ले०)* [जन्म—1918 ई०; मृत्यु 1971 ई०]

औपन्यासिक जीवन के आरंभ में ही नारायण गंगोपाध्याय ने पाठक-समाज को अपनी प्रतिभा का प्रमाण देकर प्रभावित किया था। लेखक के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'उपनिवेश' (तीन खंड) (1944), 'सम्राट ओ श्रेष्ठी' (1944), 'मंद्रमुखर' (1945), 'महानन्दा' (1947), 'लालमाटि' (1951), 'स्वर्णसीता' (1947), 'शिलालिपि', 'निर्जनशिखर' (1968), 'तृतीय नयन' (1969) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

उर्वर कल्पना एवं वेगवान अलंकृत भाषा लेखक की निजी विशेषताएँ हैं। जीवन के प्रचंड बहि-प्रकाश के चित्रांकन में उसकी दक्षता असाधारण है। पहले उपन्यास 'उपनिवेश' में आदिम प्रवृत्ति-शासित, प्रकृति-परिवेश के तीव्र प्रभाव से अभिभूत ऐतिहासिक पटभूमिका में मनुष्य-समाज की गति एवं परिवर्तन का चित्र उपस्थित किया गया है। 'लालमाटि' में समाज-चेतना की सार्थकतम अभिव्यक्ति हुई है। संत्रासवादी आंदोलन, मन्वंतर, अगस्त-विप्लव, कृषक-विद्रोह आदि महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं की पटभूमिका में 'स्वर्णसीता', 'सूर्यसारथी', 'शिलालिपि' आदि उपन्यासों की रचना हुई है। इनमें 'शिलालिपि' का महत्व सर्वाधिक है। संत्रासवादी आंदोलन एवं रोमांटिक मानसिकता का द्वंद्व तथा इसके फलस्वरूप यथार्थ परिणति में जो वैसा दृश्य प्रकट हुआ है, उसका सार्थक चित्र उपस्थित हुआ है। 'निर्जनशिखर' में निस्संगता-बोध, विच्छिन्नता-बोध एवं एक अनिवार्य विषाद से आक्रांत नायक के चित्रण में आधुनिकता की सर्वांगीण प्रतिष्ठा हुई है।

नारायण गंगोपाध्याय ने कहानियों की रचना कर विशेष ख्याति प्राप्त की है। उनकी कहानियों में घटनाओं की भयावहता तथा बीभत्सता, पाठकों की संवेदनशीलता को तीव्र बना देती है। 'टोप', 'हाड़', 'पुष्करा', 'बीतंस', 'बनज्योत्स्ना' में आँधी, तूफ़ान, विकारग्रस्त चरित्र के निर्माण के द्वारा इन्होंने जीवन के मर्मांतक एवं बर्बर रूप को प्रकट करने का सत्साहस दिखाया है। इनकी कहानियों में गंभीर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा चारित्रिक द्वंद्व एवं कहानी-रस का प्राधान्य होता है।

गंजीना *(उर्दू० कृ०)*

यह मिर्ज़ा 'यगाना' चंगेज़ी की काव्य-कृति है। इसमें रचयिता की ग़ज़लें और रुबाइयाँ संगृहीत हैं। ग़ज़लों की संख्या 121 है और रुबाइयों की 163। ग़ज़ल के विषय प्रायः शृंगार, प्रेम, संसार की बेवफ़ाई, संसार की असारता, प्रगतिशीलता, जागृति और प्राकृतिक चित्रण आदि हैं। बहुत-सी ग़ज़लें शुद्ध फ़ारसी भाषा में भी हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनसे रचयिता का फ़ारसी-ज्ञान और उसके प्रति उसकी आत्मीयता की भावना स्पष्ट लक्षित होती है। उर्दू ग़ज़लों की भाषा पर भी फ़ारसी का प्रभाव बहुत है। रुबाइयों की भाषा अपेक्षाकृत सरल है और कहीं-कहीं हिंदी भाषा के निकट है। काव्य की सशक्तता और सुगठित वाक्य-विन्यास इस कृति की विशेषता है। कहीं-कहीं व्यंग्य भी बड़ा चुटीला और तीखा है। उत्साह, स्वावलंबन, आत्म-विश्वास और मनोबल के बल पर जीवन में आने वाली आपत्तियों को चुनौती देने और उन पर छा जाने का स्वर सर्वत्र मुखर है। ग़ज़लों में अभिव्यक्त विचारों और मनोभावों के निरूपण में कवि द्वारा स्पष्टवादिता और निष्कपट अभिव्यक्ति से काम लिया गया है और शैली भी प्रभावशाली अपनाई गई है। परंतु रुबाई-लेखन में वह बुरी तरह असफल रहा है।

गंजू, दयाराम *(कश्० ले०)* [जन्म श्रीनगर में—अनुमानतः 1875-1880 ई० में; मृत्यु दिल्ली में—जून 1954 ई० में]

इन्हें उर्दू एवं फ़ारसी का बहुत अच्छा तथा संस्कृत और अँग्रेज़ी का सामान्य ज्ञान था। इनकी शैली व्यंग्य तथा वाग्विदग्धतापूर्ण है। इन्होंने विशेषतः उपदेशात्मक कविता लिखी है जिसमें रहस्यवाद अथवा निराशावाद की कोई झलक नहीं। स्वभाव से ये विशुद्धिवादी थे। इनकी भाषा भी ठेठ एवं विशुद्ध कश्मीरी है। गार्हस्थ्य जीवन की सफलता, स्वच्छता एवं शुद्धता तथा अच्छे आचार-विचार के संबंध में इन्होंने काव्य-रचना की है। आचार-संहिता के रूप में इन्होंने 'घर व्यज़ माल' की रचना की। 'मनषि जीवन' नाम की इनकी एक और रचना है। ठेठ कश्मीरी शब्दों के प्रयोग के बारे में ही सदा अपने समसामयिक कवियों और लेखकों को प्रेरणा देते रहे और सरल शब्दावली का ही प्रयोग करते रहे।

गंजेइ ओ गवेषणा *(उड़ि० कृ०)*

'गंजेइ ओ गवेषणा' महापात्र (दे०) नीळमणि साहू का अनूठा कहानी-संग्रह है। इन हास्यरसात्मक कहानियों की अपनी विशिष्ट दृष्टिभंगी है; विशिष्ट शिल्प-सौंदर्य है। दादी माँ आज के युग के बच्चों को कहानी सुना रही हैं—अपनी आपबीती, अपने युग की रीत समझा रही हैं। विषय-वस्तु हल्की, कल्पना-प्रधान एवं विनोदपूर्ण है। शैली अत्यंत रोचक एवं प्रवाहमयी है। किंतु इस सरलता एवं मनोरंजकता के झीने आवरण में से जैसे दोनों युगों का विराट् अंतर छन-छनकर बाहर आ जाता है। यही इसकी मनोज्ञता है।

गउडवहो (गौडवध) *(प्रा० कृ०)*

यह आठवीं शताब्दी का प्राकृत भाषा का अत्यंत प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसके रचयिता कन्नौज के यशोवर्मा के आश्रित कवि वाप्पइराआ (वाक्पतिराज) हैं। इसमें यशोवर्मा की प्रशस्ति गाई गई है। गौड़राज के वध का तो बहुत संक्षिप्त उल्लेख है किंतु उसकी पृष्ठभूमि के रूप में यशोवर्मा की दिग्विजय-यात्रा का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें बिहार, मगध, बंगाल, कोंकण, मरुदेश, महेंद्र पर्वत इत्यादि की विजय का भी वर्णन आ गया है। प्रसंगानुसार ऋतु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, विंध्यवासिनी देवी का वर्णन, शृंगार-भावना इत्यादि भी आ गई है।

गऊदान *(उर्दू० कृ०)*

[दे० गोदान : ले० प्रेमचंद।]

गगै, गणेश *(अ० ले०)* [जन्म—1907 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

ये काशी विश्वविद्यालय में पढ़ने गए थे किंतु बिना परीक्षा दिए लौट आए थे। कुछ दिन काठ का व्यवसाय किया था। ये शिकारी और प्रथम श्रेणी के खिलाड़ी थे। इनकी अल्पायु में ही मृत्यु हो गई थी।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'पापरि' (दे०) (1938), 'स्वप्न-भंग' (दे०) (1945), 'रूप-ज्योति' (दे०) (1945), **नाटक** : 'काश्मीर कुमारी', 'शकुनिर प्रतिशोध' (1939)।

'पापरि' इनकी आत्मकथात्मक प्रेम-कविता है। किसी नारी ने इनके प्रेम को ठुकरा दिया था। प्रेम की यह पीड़ा इन्हें उच्चस्तरीय प्रेम-कवि बना गई थी। प्रेमिका से मिलने की इच्छा और विरह की तीव्र अनुभूति इनकी कविता के विषय हैं। प्रेमिका का एक-एक अंग इनके लिए आकर्षक है। कहीं-कहीं एकरसता और पुनरावृत्ति आ गई है। संवादों और पात्रों की दृष्टि से इनके नाटक सुंदर हैं। 'शकुनिर प्रतिशोध' सफल मंचोपयोगी नाटक है। एक आलोचक के शब्दों में ये बहुत दृढ़ विद्युत्-धारा के दबाव से टूटे तार की तरह टूट गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गगै, लीला *(अ० ले०)* [जन्म—1927 ई०; जन्म-स्थान—शिवसागर]

इनकी शिक्षा बी० ए० तक हुई थी। ये अध्यापक हैं। ऐतिहासिक खोजों में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

प्रकाशित रचनाएँ—'बुरुंजीये परशा नगर' (1950), 'हेरो आ दिनर कथा' (1958), 'आहोम जाति आरु असमीया संस्कृति' (1961), 'सीमांतर माटि आरु मानुह' (1963), 'कर्पालि छिगा रेल' (1961)।

ऐतिहासिक खोजों के अतिरिक्त इन्होंने 'सीमांतर माटि आरु मानुह' में उत्तर-पूर्वी पर्वतों की जन-जातियों का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। 'कर्पालि छिगा रेल' 'बेले लेटर' शैली में लिखा ग्रंथ है। इन्होंने शिशु-साहित्य भी लिखा था।

ग़ज़ल *(उर्दू० पारि०)*

उर्दू-जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यविधा ग़ज़ल है। इसमें मुख्यतः श्रृंगारिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। संगीतात्मकता इसका विशिष्ट गुण है। लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के सौंदर्य का चित्रण इसके माध्यम से होता है। 'आज़ाद' (दे०) और मौलाना 'हाली' (दे०)ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत ग़ज़लों का भी प्रचलन किया परंतु वे इसमें 'ग़ालिब' (दे०) और मीर (दे०) जैसी प्रभविष्णुता और मार्मिकता की सृष्टि न कर सके। आधुनिक युग में ग़ज़ल के माध्यम से प्रायः राजनीतिक, सामाजिक, मानवतावादी और प्रगतिशील भावनाओं को स्वर दिया जाता है। यह प्रायः प्रत्येक छंद में लिखी जा सकती है। इसकी प्रथम दो पंक्तियाँ परस्पर तुकांत होती हैं। दो पंक्तियों के इस प्रथम शेर (पद) को 'मतला' कहा जाता है। इस प्रकार के अनेक मतले भी किसी ग़ज़ल में संभव हैं। ग़ज़ल के शेष शेरों (पदों) की केवल द्वितीय पंक्तियाँ आद्योपांत परस्पर तुकांत होती हैं। इसके आखिरी शेर (पद) को 'मक़ता' कहा जाता है। इसी 'मक़ता' में कवि अपना उपनाम प्रयुक्त करता है। ग़ज़ल के पदों में परस्पर पूर्वापर संबंध नहीं होता। प्रत्येक दो पंक्तियों का शेर (पद) भाव की दृष्टि से अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। एक ही छंद, क़ाफ़िया और रदीफ़ में लिखित एक ग़ज़ल के अतिरिक्त दूसरी और तीसरी ग़ज़ल को 'दोग़ज़ला' और सहग़ज़ला' कहा जाता है। ग़ज़ल के कम से कम पाँच और अधिक-से-अधिक पंद्रह शेरों (पदों) की सीमा का विधान है। इसमें शब्दों की मार्मिकता, भाषा की कोमलता, भावों की गरिमा, संक्षिप्तता और कल्पना के औदात्य का ध्यान विशेष रूप से अपेक्षित है।

गडकरी, रामगणेश *(मरा० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

श्री० कृ० कोल्हटकर (दे०) के नाटकों की स्वच्छंदतावादी काव्यमयी भाषा, संयत संश्लिष्ट हास्य-प्रसंग, कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) का सचरित्र-निरूपण एवं शास्त्रीय नाटकों की रस-प्रधान दृष्टि का मणि-कांचन संयोग रामगणेश गडकरी की रचनाओं में हुआ है। इनकी ये सात रचानाएँ हैं—'बेड्यांचा बाजार'(अपूर्ण) (1923), 'संगीत गर्वानिर्वाण' (अपूर्ण), 'राजसंन्यास' (दे० तुळसी) (अपूर्ण), 'प्रेम संन्यास' (दे० गोकुल, कामण्णा, लीला) (1912), 'संगीत पुण्यप्रभाव' (1917), 'संगीत एकच प्याला' (दे०) (1917), 'संगीत भावबंधन' (दे० इंदु-बिंदु, घुंडिराज) (1918)। इनमें 'बेड्यांचा बाजार' (दे० वालक्या छः पागलों से संबद्ध प्रहसन है, 'प्रेम संन्यास' अनमेल विवाह एवं वैधव्य की करुण गाथा है, और 'संगीत पुण्यप्रभाव' पातिव्रत्य-धर्म का महिमागान है। 'संगीत एकच प्याला' मद्यपान के दुष्परिणामों की करुण कहानी है और 'राजसंन्यास' सम्भा जी के जीवन से संबद्ध अपूर्ण ऐतिहासिक रचना है। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने हास्य-निबंध भी लिखे हैं।

सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण इनके नाटकों की कथावस्तु सामाजिक जीवन में परिव्याप्त कतिपय कुरीतियों के चित्रण की ओर ही रही है। शास्त्रीय नाटकों की रस-प्रधान दृष्टि के उपरांत भी कथा-विकास पाश्चात्य नाटकों के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है। मूल कथा की संघटनात्मकता के लिए ही प्रथमतः संश्लिष्ट हास्य-व्यंग्यमयी अवांतर कथाओं की संयोजना इनके नाटकों में उपलब्ध होती है। इनके पात्रों का चरित्र-निरूपण पूर्व-निश्चित प्रारूप के आधार पर हुआ है, परंतु मार्मिक भाव-पूर्ण स्थलों पर पात्र की दुबिधामयी स्थिति के मनोहारी चित्रण जहाँ उन्हें वाग्वैदग्ध्य एवं विविधता के कारण टाइप होने से बचा लेते हैं, वहाँ नाटकीय प्रभावान्विति को बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त शेक्सपियर के नाटकों में निरूपित प्रतिनायकों के अनुरूप चरित्रों का निरूपण इनके नाटकों में हुआ है। नाटकों में प्रयुक्त काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के छोरों को छूकर चलती हुई-सी एकरूप भाषा अभिनयोचित चांचल्य की दृष्टि से बोझिल होते हुए भी भावपूर्ण संवादों की अद्वितीय विशेषता से परिपूर्ण है। समग्र प्रभाव एवं वातावरण-निर्माण की दृष्टि से इनके दुःखात्मक नाटकों के दुःखमय पर्यवसान पर पाश्चात्य नाट्य-शिल्प का स्पष्ट प्रभाव है। शैलिपक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी इनके नाटक मराठी रंगमंच पर विशेष रूप से समाहित हुए हैं।

गड़नायक, राधामोहन *(उड़ि० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

आधुनिक उड़िया गाथा-काव्य में पं० गोदावरीश मिश्र (दे०) के बाद छंदमर्मज्ञ श्री राधामोहन गड़नायक सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त कवि हैं। उड़ीसा एवं भारत की अनेक घटनाएँ, इतिहास एवं किंवदंती के अनेक व्यक्ति तत्त्व गड़नायक के काव्य में जीवंत हो गए हैं। भावों की सशक्तता, छंदों की माधुर्यपूर्ण संरचना, भाषा का गंभीर प्रवाह, शैली का अपूर्व विन्यास आदि गुणों ने कवि की रचनाओं को चिरंतनता प्रदान की है। मनुष्य ही नहीं, इतर प्राणी-जगत् पर भी गड़नायक की सुंदर काव्य-रचनाएँ मिलती हैं।

गड़नायक का जन्म कळंडापाळ, अनुगोळ में हुआ था। यद्यपि उच्चशिक्षा की उपाधि इनके पास नहीं है, किंतु इनकी रचनाएँ इनके असाधारण पांडित्य की परिचायिका हैं। संस्कृत, उड़िया और बँगला के ये अच्छे विद्वान हैं। 'मेघदूत' (दे०) एवं 'गीतगोविंद' (दे०) का इन्होंने सुंदर अनुवाद किया है। 'कालिदास' (काव्य-नाटिका) 'विप्ळवी', 'राधानाथ', 'काव्य-नायिका' (दे०), 'उत्कळिका', 'दीपशिखा' (काव्य) 'पशुपखरिकाव्य' आदि इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

गड्डलिका *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

गड्डलिका परशुराम (दे०) (राजशेखर बसु) की हास्यरस-प्रधान कहानियों का सर्वप्रथम संग्रह है जिसके प्रथम आविर्भाव के समय रसग्राही पाठक-समाज में तहलका मच गया था। सभी ने एक स्वर में स्वीकार किया था कि बँगला साहित्य-क्षेत्र में ऐसा हास्यरसिक पहले पैदा नहीं हुआ। परशुराम की इन कहानियों की चरित्र-सृष्टि की प्रशंसा करते हुए रवींद्रनाथ (दे०) ने इस ग्रंथ को 'चरित्र-चित्रशाला' कहा था। इन चरित्र-चित्रांकनों में विशेष रूप से उनकी 'श्रीश्रीसिद्धेश्वरी लिमिटेड', 'चिकित्सा-संकट' एवं 'भुशंडीर माठे' कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। 'सिद्धेश्वरी लिमिटेड' में धर्म के नाम पर धोखेबाज़ी के प्रति लेखक ने कटाक्ष किया है। 'चिकित्सा-संकट' में नंददुलाल के रोग की उत्पत्ति, चिकित्सा की विचित्र प्रणाली एवं उपशम आदि का उल्लेख करते हुए विचित्र प्रकार के प्रहसन की सृष्टि की गई है। 'भुशंडीर माठ' में भूत-प्रेत-के जगत् के ऐसे रूप का उद्घाटन किया गया है जिसकी हास्यकर असंगति हमारी हँसी को तीव्र कर देती है। इन कहानियों में चरित्र एवं परिवेश के वर्णन के द्वारा लेखक ने हास्य की सृष्टि की है। इस हास्य-सृष्टि में नाटकीय संताप की सरसता ने कहानियों को और भी अधिक हास्य-मधुर बना दिया है।

'गड्डलिका' कहानी-संग्रह में लेखक की अद्भुत कल्पना ने हँसी को और भी अधिक प्रगाढ़ बनाया है। उसकी असामान्य उद्भावना-शक्ति, कल्पना का प्राचुर्य एवं हास्य-सृष्टि की निपुणता पाठकों के लिए एक विस्मयजनक घटना है।

गणदेवता *(बँ० ले०)* [रचना-काल—प्रथम खंड : 'चंडीमंडप'—1942 ई०; द्वितीय खंड : 'पंचग्राम'—1944 ई०]

देश के क्रांतिकारी वातावरण में लिखी इस महाकाव्योचित रचना में ताराशंकर वंद्योपाध्याय (दे०) ने अपने युग के नवजागरण को दो भागों में चित्रित किया है। गाँव के विशाल फलक पर बहुविध पात्र एवं प्रसंगों के द्वारा रचनाकार का मुख्य लक्ष्य उद्योग-व्यवस्था, नगरीकरण, यांत्रिकता के बढ़ते आघात को रेखांकित करना तथा लगभग कृषि पर निर्भर पुरानी अर्थ-व्यवस्था में उलट-फेर, परंपरा पर टिके रहन-सहन, आचार-विचार के जीवनगत मूल्यों में परिवर्तन एवं विघटन के स्वरूप को प्रकट करना है। लेखक स्वाधीनता-संग्राम के संघर्ष और बलिदान का जीवंत इतिहास भी चित्रांकित कर सका है। परिणामस्वरूप संघर्षशील आदर्शवादी युवक देबू घोष, जीविकाहीन, भूमिहीन अनिरुद्ध लुहार, न्यायरत्न, दुर्गा आदि अनगिनत पात्र धर्मभ्रष्ट तथा लक्ष्यभ्रष्ट जड़ समाज की खोखली तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

तारा बाबू बंकिम (दे०), रवींद्र (दे०) तथा शरत् (दे०) की परंपरा के महान लेखक हैं। उनके रचना-तंत्र की विशेषता है सूक्ष्म अंतर्दृष्टि, यथार्थवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण, अकृत्रिमता एवं स्वाभाविकता । भारतीय ज्ञानपीठ ने 'गणदेवता' को 1966 की सर्वश्रेष्ठ रचना होने के नाते पुरस्कृत कर उपयुक्त सम्मान प्रदान किया था ।

गणधर *(प्रा० पा०)*

जैन धर्म विभिन्न गणों और शाखाओं में विभाजित था और गणों के प्रधानों को 'गणधर' की संज्ञा दी जाती थी । इन गणधरों का 'नंदी', 'अनुयोगदार' (दे०), 'कल्पसूत्र' इत्यादि अनेक आगम (दे० जैन आगम) ग्रंथों में वर्णन किया गया है । महावीर स्वामी ने उपदेश 'गणधरों' को ही दिया था जो बाद में लोक में प्रतिष्ठा पा सका । मुख्य गणधर 11 हैं—इंद्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, आर्यव्यक्त, आर्य सुधर्मन्, मंदितपुत्र, मौर्यपुत्र, अंकपित, अचलभ्रात, येतार्य और प्रभास ।

गणपति शास्त्री, पिलका *(ते० ले०)*

इनका जन्म 1911 ई० में कट्टुंगा नामक ग्राम में हुआ । इन्होंने आंध्र विश्वविद्यालय से 'साहित्य-'विद्याप्रवीण' तथा 'उभयभाषाप्रवीण' नामक प्राच्य उपाधियाँ प्राप्त कीं । ये कुशल पत्रकार, कवि तथा समालोचक हैं । कई वर्ष 'आंध्रपत्रिका', 'भारती', आदि पत्र-पत्रिकाओं के संपादक रहे । कुछ वर्ष 'शिल्पि' नामक तेलुगु साहित्य पत्रिका का भी संपादन-कार्य किया । इनकी काव्यकृतियों में—'विभ्रांतामरुकमु' तथा 'रत्नोपहारमु' उल्लेखनीय हैं । 'मीनांबिका', 'अशोकवर्धनुडु' आदि इनके मौलिक उपन्यास हैं । 'गृहदाहमु', 'एरंकलुवु इनके अनूदित उपन्यासों में से हैं । पहला शरच्चंद्र (दे०) की बँगला कृति का अनुवाद है तथा दूसरा एनतोल फ्रांस की कृति का । इनकी 'प्राचीन गाथालहरी' पर्याप्त प्रसिद्ध है। आरंभ में ये आधुनिक शैली में गीत आदि लिखा करते थे । इन गीतों में 'श्री उपसि चरण मंजीराल' नामक इनका गीत बहुत ही प्रसिद्ध है ।

गणेशलिंगन्, से० *(त० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

इनका जन्म जाफ़ना (लंका) के एक ग्राम में हुआ था । ये आजकल श्रीलंका के राजकोष अनुभाग में कार्य कर रहे हैं । अब तक प्रकाशित इनके तीन कहानी-संग्रह हैं—'नल्लवन्', 'ओरे इनम्' और 'संगमम्' । इनके छह उपन्यासों में प्रसिद्ध हैं—'नीड पयणम्' और 'शडङ्गु' । इन्होंने एक अँग्रेज़ी उपन्यास का अनुवाद भी किया है । इनकी कृतियों में मार्क्सवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है । इनके अधिकांश उपन्यासों का संबंध लंका के तमिल-भाषी मज़दूर वर्ग या निम्न वर्ग के जीवन से है । इन्होंने अपने उपन्यासों में इस बात का प्रतिपादन किया है कि मज़दूर-वर्ग भी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उत्थान के लिए सजग हो उठा है । इन्होंने अपनी कहानियों में उत्तरी लंका की शिक्षित तमिल जनता की समस्यों का वर्णन किया है । 1966 ई० में इन्हें 'नीड पयणम्' पर 'लंका साहित्य मंडल' का पुरस्कार मिला था । इनकी कुछ कहानियाँ रूसी में अनूदित हो चुकी हैं । इनकी गणना लंका-निवासी प्रमुख तमिल उपन्यासकारों में होती है ।

गदायुद्ध *(क० कृ०)*

[दे०—'साहस भीम विजय']

गद्य *(हिं० पारि०)*

गद्य कहते हैं छंदोविहीन रचना को—'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम् ।' काव्य के बाह्याकार के आधार पर दो भेद होते हैं—गद्य-काव्य और पद्य-काव्य । गद्य-काव्य चार प्रकार का होता है—मुक्तक, वृत्तगंधि, उत्कलिका-प्राय और चूर्णक । पहला समास-रहित होता है । दूसरे में पद्यांश भी होते हैं । तीसरे में दीर्घ समास होते हैं, और चौथे में छोटे-छोटे समास होते हैं । (साहित्य-दर्पण, 330-332) ।

गद्य-काव्य *(हिं० पारि०)*

आधुनिक विशिष्ट अर्थ में गद्य-काव्य से अभिप्राय गद्य-रचना से है जिसमें काव्य-जैसी संवेदनशीलता और रसमयता हो । वैयक्तिक आत्मनिष्ठता, तीव्र भावात्मकता, अंतर्निहित संगीत आदि इसके अन्य गुण हैं । इसकी शैली अधिक लययुक्त, अलंकृत और काव्यमय होती है । हिंदी के प्रथम गद्यगीतकार हैं राय कृष्णदास (दे०) जिन्होंने 'गीतांजलि' (दे०) का प्रभाव स्वीकार किया है । गद्य-काव्य में कहीं प्राकृतिक घटनाओं को आध्यात्मिक रूप देकर दार्शनिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई तो कहीं भक्त की हृदय-तरंग का मार्मिक चित्रण है; कहीं देश को उद्बोधन दिया गया है, तो कहीं ऐतिहासिक तथ्यों पर अवलंबित अतीत के गौरवमय चित्र हैं; कहीं प्रवंचित और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराश नारी का हाहाकार है तो कहीं शोषितों पर आँसू बहाए गए हैं। हिंदी के गद्य-काव्य लेखकों में उल्लेखनीय हैं—राय कृष्णदास, माखनलाल चतुर्वेदी (दे०) और डा० रघुवीरसिंह (दे०)। अँग्रेज़ी में इसका अर्थ है, वह कविता जो गद्य की तरह मुद्रित हो। इसकी प्रेरणा फ्रेंच कवि पाल फ़ोर्त से मिली और इसके विकास का श्रेय ऍमी लावेल को है।

गद्य-रीति (*बँ० प्र०*)

बँगला 'गद्य-रीति' की यह विशेषता है कि इसमें दो भाषा-शैलियों का प्रयोग चलता है। बँगला बोलियों के लिए 'चलित भाषा' शब्द का प्रयोग किया जाता है एवं किताबी भाषा के लिए बँगला में 'साधु भाषा' का प्रयोग है। यह भाषा संस्कृतनिष्ठ है एवं इसके क्रियापद एवं कारक-चिह्न 'चलित' से भिन्न हैं। मध्ययुग के प्राचीन काव्य और गद्य से लेकर आधुनिक युग के काव्य और गद्य में इसी का प्रयोग होता रहा है यद्यपि व्यष्टि-लेखकों ने इसके कठिन-क्लिष्ट रूप को तोड़कर सरल और सहज बनाने के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया है। प्रमथ (नाथ) चौधुरी (दे०) एवं बाद में रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने किताबी भाषा के लिए 'चलित भाषा' को स्वीकार कर बंगला गद्य-रीति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। आजकल 'साधु भाषा' का प्रयोग गद्य-रीति में कम हो रहा है और 'चलित' का अधिक। ऐसा प्रतीत होता है कि आगामी युग में यह 'चलित भाषा ही सर्वजन-स्वीकृत साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करेगी।

गब्बिलमु (चमगादड़) (*तें० कृ०*) [कृतिकार—गुर्रमु जाषुवा (दे०) रचना-काल—1940-42 ई०]

'गब्बिलमु' एक खंडकाव्य है जो कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) की प्रेरणा से रचा गया है। इसमें एक दरिद्र और क्षुधार्त्त व्यक्ति अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहने वाले चमगादड़ के द्वारा परमात्मा के पास अपना अश्रुपूर्ण संदेश भेजता है। हंस और शुक जैसे उत्तम पक्षी तो दूत के रूप में राजाओं और कुलीनों को ही मिल सकते हैं। अतः इस असहाय कातर प्राणी का चमगादड़ द्वारा संदेश भेजा जाना स्वाभाविक ही है। 'मेघदूत' के समान ही कैलास तक के मार्ग के वर्णन में भारत देश की प्रकृति एवं उसके प्रमुख दर्शनीय स्थानों का मनोहर वर्णन इस कृति में भी प्रस्तुत किया गया है। समाज के दलित, शोषित एवं अनाथ वर्ग के प्रति कवि की तीव्र संवेदना का उफान इसमें तीव्रता से प्रकट हुआ है।

गयोपाख्यानमु (*तें० कृ०*) [रचना-काल—1889 ई०]

इसके लेखक चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु (दे०) हैं। प्रधानतः श्रेष्ठ नाटककार तथा उपन्यासकार के रूप में इनको अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। 'गयोपाख्यानमु' नाटक का कथानक इस प्रकार है : जलविहार करने के लिए कृष्ण सपरिवार यमुना जाते हैं। वहाँ सूर्य को अर्घ्य देते समय उनकी अंजलि में से शुक गिरता है। क्रुद्ध होकर कृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं कि अपराधी का संहार किया जाएगा। वह दोषी मणिपुराधीश गय नामक गंधर्व है। डर के मारे गय ब्रह्मा तथा शंकर से रक्षा माँगता है। पर वे दोनों अपनी असमर्थता प्रकट कर देते हैं। तब नारद की सलाह से वह पांडवों से शरण माँगता है। वस्तुस्थिति न जानते हुए भी अर्जुन उसे बचाने का वचन दे देता है। विषय समझते ही कृष्ण से विरोध करने संबंधी इस मामले में उलझ जाने के कारण पांडव बहुत पछताते हैं। पर वे गय की रक्षा का वचन किसी भी हालत में निभाना ही चाहते हैं। नतीजा यह होता है कि गय के कारण कृष्ण तथा पांडवों के बीच युद्ध होता है। अंत में भगवान शंकर प्रत्यक्ष होकर सबको शांत करते हैं।

इस नाटक में संभाषण सहज हैं तथा चरित्र-चित्रण मार्मिक। पहले संपूर्ण नाटक गद्य में लिखा गया था। बाद में नटवर्ग की अभ्यर्थना पर इसमें पद्य भी कई स्थानों पर जोड़ दिए गए। आंध्र के अत्यंत प्रचलित तथा सफल रंगमंचीय नाटकों में 'गयोपाख्यानमु' एक है।

गर्नी, ए० के० (*अ० ले०*) [जन्म—1845 ई०; मृत्यु—अज्ञात]

ये सन् 1874 ई० में संयुक्त राज्य से भारत आए थे और शिवसागर के बैपटिस्ट मिशन से संबद्ध हुए थे। सन् 1883 ई० तक इन्होंने 'अरुणोदय' का संपादन किया था। ये दो वर्ष के लिए स्वदेश चले गए थे और वहाँ से सपरिवार लौटकर शिवसागर में 1907 ई० तक रहे थे। इनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'एलोकेशी बेश्यार कथा' एवं 'कामिनीकांतरचरित्र' (दे०) (1877 ई०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एलोकेशी बेश्यार कथा' एक बँगला उपन्यास है, जिसमें हिंदू विधवा की दयनीय स्थिति का वर्णन है। एक नन के द्वारा इसका उद्धार होता है। गर्नी ने इसका असमीया अनुवाद किया था। दूसरा उपन्यास 'कामिनीकांतर चरित्र' गर्नी का मौलिक उपन्यास है। कामिनीकांत नामक बंगाली युवक ईसाई हो जाता है। पत्नी सरला से उसका वैचारिक संघर्ष चलता है। अंत में वह भी ईसाई हो जाती है। इससे उनकी आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। कामिनीकांत को जान-बूझकर ब्राह्मण दिखाया गया है, ताकि जनता पर प्रभाव पड़े कि उच्च जातीय हिंदू भी ईसाई बन जाते हैं। उपन्यास में प्रचारात्मक दृष्टिकोण इतना प्रबल है कि साहित्यिक सौंदर्य पीछे छूट जाता है। गर्नी ने हिब्रू से ओल्ड टेस्टामेंट का असमीया अनुवाद सन् 1899-1903 ई० के मध्य प्रकाशित किया।

दुर्बल शिल्प एवं मात्र प्रचारात्मक दृष्टिकोण रखने के कारण गर्नी का ग्रंथ असमीया का प्रथम उपन्यास नहीं कहा जा सकता, तथापि असमीया भाषा के विकास में इनका योगदान माना जाएगा।

गळगनाथ *(क० ले०)* [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

कन्नड उपन्यास साहित्य के पितामह गळगनाथ का वास्तविक नाम है वेंकटेश तिरको कुलकर्णी। उनका जन्म उत्तर कर्णाटक के धारवाड़ ज़िले के गळगनाथ में हुआ। व्यवसाय से वे अध्यापक थे। गळगनाथ कन्नड के उपन्यास-साहित्य के आद्य स्रष्टाओं में एक हैं। इस शताब्दी के आरंभ में कन्नड पाठकों को उपन्यास की ओर आकृष्ट करने वाले दो महापुरुष—बी० वेंकटाचार तथा गळगनाथ थे। गळगनाथ के 'ईश्वरी सूत्र', 'प्रबुद्ध पद्मनयने', 'कमलकुमारी', 'कन्नडगिर कर्मकथे' आदि अनूदित उपन्यासों ने महाराष्ट्र तथा राजपूत वीरों के जीवन के चित्रण के द्वारा कन्नड के लोगों में अभूतपूर्व देश-प्रेम जगाया। आपने कर्णाटक के इतिहास से संबंधित दो उपन्यास भी लिखे हैं—'माधवकरुणाविलास' और 'कुमुदिनी'। इन दोनों में विजयनगर का इतिहास है। 'दांपत्य', 'कुटुंब', 'हिंदू समाज-व्यवस्था', 'वर्णाश्रम धर्म' आदि निबंध भी आपके लिखे हुए हैं। श्री गळगनाथ ने आधुनिक कन्नड की गद्य-शैली को परिमार्जित रूप दिया। उपन्यास-साहित्य के उन्नायक तथा गद्य-निर्माता के रूप में उनके नाम का सदैव उल्लेख किया जाएगा।

गल्पगुच्छ *(बँ० कृ०)*

तीन खंडों में प्रकाशित 'गल्पगुच्छ' रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानियों का संग्रह है। रवींद्रनाथ के समग्र मानस का प्रकाश कहानियों में हुआ है। इन कहानियों की मूल प्रेरणा ग्राम-जीवन की यथार्थ अभिज्ञता रही है। मृत्तिका के प्राणरस एवं कवि-कल्पना की ऊर्ध्वगामी चेतना के अपूर्व समन्वय से ये कहानियाँ रस-सिंचित हो उठी हैं। ये कहानियाँ आख्यान-प्रधान, परिवेश-प्रधान, नाटकीयता-प्रधान या मनस्तत्त्व मूलक हैं। इनमें जहाँ विषय-वैचित्र्य है, वहीं विचित्र भावों की व्यंजना भी है—जैसे अहंकृत वश्यता, उद्धत प्रभुभक्ति या जयदीप्त पराभाव। काव्यानुभूति एवं मनस्तत्त्व का अपूर्व समन्वय इनमें दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति के माध्यम से अतिप्राकृत रससृष्टि में भी लेखक ने विशेष दक्षता दिखाई है। कुछ कहानियाँ समाज-आलोचना-मूलक हैं एवं कुछ उपन्यास-धर्मी नाट्यरसयुक्त कहानियाँ हैं।

रवींद्र की प्रसिद्ध कहानियों में 'खोकाबाबूर प्रत्यावर्तन', 'पोस्टमास्टर', 'क्षुधित पाषाण', 'काबुलिवाला', 'एक रात्रि', 'समाप्ति', 'कंकाल', 'छुटि', 'मेघ ओ रौद्र', 'अतिथि', 'माल्यदान', आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में चरित्र-सृष्टि की व्यापकता, कुशलता एवं वस्तुनिष्ठता का प्रमाण मिलता है। हमारे जीवन के सुख-दुःख की परिचित बातें तथा यह परिचित दुनिया ही 'गल्पगुच्छ' की कहानियों की आधार-पीठिका है जिसके आश्रय से व्यंजनामूलक गीतिधर्मिता-युक्त कहानियों को रच कर लेखक ने अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। ये कहानियाँ युग की होने के साथ ही युग-युग की भी हैं।

'ग़व्वासी' *(उर्दू० ले०)* [जन्म-स्थान—गोलकुंडा]

दक्षिण भारत के प्राचीन उर्दू कवियों में इनका ऊँचा स्थान है। इनका प्रामाणिक जीवनचरित अभी तक अनुसंधान का विषय बना हुआ है। मुहम्मद कुतुबशाह (दे०) के शासन-काल में इन्होंने सन् 1618 में मसनवी 'सैफ़-उल-मुलुक-ओ-बदी-उज्जमाल' (दे०) का प्रणयन किया था। अब्दुल्ला कुतुबशाह ने इन्हें 'फ़साहत आसार' की उपाधि से अलंकृत कर राजदरबार से संबद्ध कर दिया था। क़सीदा (दे०)-लेखन में ये सिद्धहस्त थे। 'तोतीनामा' का लेखक भी इन्हें बताया जाता है। इसके अतिरिक्त 'मैना सतवंती' और 'लैला-मजनूं' नामक दो अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसनवियों का लेखक भी इन्हीं को माना जाता है। इनकी कृतियों से इनकी कलात्मक प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। बीजापुर के कविसम्राट 'नुसरती' (दे०)और 'मुक़ीमी' ने अपनी कृतियों में इनकी चर्चा बड़े आदर तथा श्रद्धा के साथ की है। मीर तक़ी 'मीर' (दे०) और मीर हसन (दे०) ने भी इनके काव्य-कौशल का लोहा माना है।

गहमरी, गोपालराम *(हिं० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

इनका जन्म गाजीपुर ज़िले के गहमर गाँव में हुआ था। गहमर गाँव में जन्म लेने के कारण ही ये गहमरी कहलाए। यद्यपि ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे तथा इन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विभिन्न क्षेत्रों में साहित्य-सृजन किया था, किंतु इनकी प्रतिष्ठा जासूसी उपन्यासों के कारण ही है। इन्हें हिंदी के जासूसी उपन्यासों का जनक माना जाता है। इन्होंने दो सौ से अधिक उपन्यास लिखे थे तथा 'जासूस' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। 'अद्‌भुत लाश', 'बेगुनाह का ख़ून', 'डबल जासूस', 'जासूस पर जासूसी', 'जासूस की डाली' आदि इनकी कतिपय प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

गाँउली गळ्प *(उ० पारि०)*

पल्लीगळ्प अथवा गाँउली गळ्प उड़िया-साहित्य की एक बहुमूल्य संपदा है। अनादिकाल से परंपरा के रूप में ये कहानियाँ लोकमुख से प्रचारित होती आ रही हैं। ग्रामीण वृद्ध एवं वृद्धाएँ ही इन कथाओं को कहती हैं। संध्या के बाद अथवा रात्रि के भोजन के उपरांत कथाओं का कहना आरंभ होता है। कथा कहने वाले की बुद्धि एवं स्मरण-शक्ति के आधार पर इन कहानियों के आकार, प्रकार और रस में भिन्नता दिखाई पड़ती है। इन कहानियों की विषयवस्तु रामायण, महाभारत अथवा पुराण से गृहीत नहीं होती।

कभी-कभी कुछ लोग गल्पकथन को जीवन-निर्वाह का पेशा भी बना लेते हैं। इन लोगों की कहानियाँ साधारण कहानियों से भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से कुछ ऊँचे साहित्यिक स्तर की होती हैं। इनकी अधिकांश कहानियाँ पुराण एवं प्राचीन संस्कृत-गल्प-रचनाओं से गृहीत होती हैं। इन्हें गल्प-सागर कहा जाता है। ये गद्य-पद्य-मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं और इनकी कथा-शैली के श्लोक छंद ढगढमाळि (दे०) आदि से अलंकृत होते है। सभी आयु के व्यक्ति समान रूप से इसके श्रोता होते हैं।

'गाँउली गळ्प' के कई प्रकार हैं। कुछ गल्प देवी-देवता, भूत-प्रेत, वेताल, यक्ष, अप्सरा आदि से संबद्ध होती हैं; कुछ का संबंध इंद्रजाल आदि भौतिक विद्याओं से होता है, कुछ राजा, मंत्री, सामुद्रिक व्यापारी आदि के जीवन से संबंधित होती हैं और कुछ साधारण जीवन के विविध विषयों पर रचित हर्ष-विषादमयी अथवा व्यंग्यात्मक कहानियाँ होती हैं।

'साहाड़ा सुंदरी', 'कलेरेइफुल', 'चकुळिआ पंडा' आदि कुछ कहानियों की लोकप्रियता अवर्णनीय है। इन कहानियों की कथन-शैली चित्ताकर्षक है किंतु विषय-वस्तु के संक्षिप्त कलेवर के कारण कल्पना-प्रसार की अधिक संभावना नहीं रहती। मनोरंजन ही इनका प्रमुख उद्देश्य होता है। इन कहानियों में उड़ीसा के सामाजिक जीवन के विविध चित्र मिलते हैं।

गांगुलि, माणिकराम *(बँ० ले०)* [समय—अनुमानतः अठारहवीं शती]

माणिकराम हुगली, ज़िला आरामबाग, में वेलडिहा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम गदाधर, माता का कात्यायनी एवं पत्नी का शैव्या था।

'धर्म-मंगल' (दे०) इनकी कृति है। इनके काव्य के अधिकांश उपादान पुराणों से लिये गए हैं। वर्णन-क्रम गतानुगतिक है। काव्य को पढ़ने से कवि की वैष्णवता का बोध होता है। अनुमान है काव्य अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में लिखा गया है।

इस कवि ने अद्‌भुत और अनैसर्गिक कल्पना का आश्रय लिया है। काव्य में बीच-बीच में सरसता पाई जाती है। इन्होंने छोटे-छोटे जीवन-चित्र अंकित किए हैं किंतु कोई महत्वपूर्ण व्यापार (कार्य) उन पात्रों द्वारा पूर्ण नहीं किया गया।

गांधारी (सं० पा०)

कौरवों के पिता धृतराष्ट्र (दे०) थे। गांधारी उनकी पत्नी थीं। सुबल नामक गांधार राज की कन्या होने के कारण इन्हें गांधारी कहा जाता था। बाल्यकाल में रुद्र की उपासना करने के कारण वरस्वरूप इन्हें दुर्योधन (दे०) आदि सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई थी। इनकी एक कन्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी थी—दु:शला। दुर्योधन की पांडवों के प्रति बढ़ती शत्रुता को देखकर ये उसे सदुपदेश दिया करती थीं, किंतु उसने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया। धृतराष्ट्र जन्मांध थे। एक पतिव्रता पत्नी होने के नाते इन्होंने भी आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रखी। महाभारत (दे०) के युद्ध में दुर्योधन की मृत्यु पर कृष्ण (दे०) और व्यास ने इन्हें पर्याप्त सान्त्वना देने का प्रयास किया, किंतु इन्होंने अत्यंत शोक-संतप्त होकर कृष्ण को शाप दे दिया था।

गांधी महान कदै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०]

यह कोत्तमंगलम सुब्बु द्वारा रचित एक प्रसिद्ध कथा-काव्य है। शीर्षक के अनुसार यह गांधी जी की जीवन-गाथा नहीं क्योंकि इसमें उनके पारिवारिक जीवन का वर्णन नहीं है। कवि ने गांधी जी के विषय में जो कुछ देखा, सुना और तमिलनाडु की पत्र-पत्रिकाओं एवं विभिन्न कृतियों में पढ़ा था उसी को स्वतंत्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत कर दिया है। इस कृति में वर्णित प्रमुख राज-नीतिक घटनाएँ हैं—1857 का गदर, कांग्रेस की स्थापना, बंगभंग, असहयोग आंदोलन, चंपारन-सत्याग्रह, नमक-सत्याग्रह, गांधी-इरविन-समझौता और स्वतंत्रता-प्राप्ति। इस कृति के दूसरे संस्करण में कवि ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की छह महीने की घटनाओं को जोड़ दिया है। वर्तमान समाज को स्वतंत्रता-संग्राम की कथा सुनाने और गांधी जी की महानता बताने के उद्देश्य से ही इस कथा-काव्य की रचना की गई थी। इसकी भाषा अत्यंत सरल और गद्य के निकट है। कोत्तमंगलम सुब्बु लोक-छंदों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। इस कथा-काव्य में भी उन्होंने लोक-छंदों का सफल प्रयोग किया है।

गाओं बुढ़ा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1890 ई०; लेखक : पद्मनाथ गोहाजिबरुवा (दे०)]

लेखक का यह आरंभिक प्रहसन उसकी कृतियों में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें उन्नीसवीं शती की समाप्ति के अँग्रेज़ी शासन का यथार्थ चित्रण है। दीनबंधु मित्र के सुप्रसिद्ध बँगला नाटक 'नील दर्पण' से इसकी समता की जा सकती है। इसमें गाँव के मुखिया की दयनीय स्थिति का चित्रण है, जो अपना कर्तव्य-पालन करते हुए आर्थिक दृष्टि से कुछ नहीं पाता, अपितु गाँव के सभी लोगों के द्वारा अपमानित होता है। नाटक के हास्य के मध्य व्यथा भी छिपी हुई है। मंचीय व्यवस्था एवं यथार्थता के कारण यह नाटक लेखक के गंभीर नाटकों की अपेक्षा आज भी अपनी विशेषता रखता है।

गाडगीळ, गंगाधर *(म० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

मराठी कहानी को नया आशय और नई अभिव्यंजना प्रदान करनेवाले श्री गाडगीळ नई कहानी के मूर्धन्य लेखक हैं जो देश में ही नहीं, विदेशों में भी पुरस्कृत हो चुके हैं। आरंभ में बाल-मन की सूक्ष्मतम भावनाओं का मार्मिक विश्लेषण करने के लिए इन्हें प्रसिद्धि मिली, बाद में अपनी प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलता के लिए प्रसिद्ध हुए। प्रकृति और सामाजिक वातावरण पर पूर्णतया आधारित कथा लिखने, समूह के चित्र खींचने, मध्य-वर्गीय जीवन की असंगति, विकृति, पीड़ा, मानसिक वेदना को प्रकट करने, और सभी अवस्थाओं के व्यक्तियों की भावनाओं का विश्लेषण करने के लिए विख्यात श्री गाडगीळ की कतिपय कहानियों में निराशा, नग्नता, कुरूपता और विध्वंस के चित्र भी मिलते हैं जिनके कारण इन्हें नया कहानी-लेखक कहा जाता है। रचना-शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नये प्रयोग किए हैं जो साधारण पाठक को कभी चमत्कृत करते हैं तो कभी आघात पहुँचाते हैं।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'मानसचित्रें', 'कबूतरें', 'स्वप्न-भूमि', 'बंडू', 'काजवा' (जुगनू) आदि।

गाडगीळ, न० वि० *(म० ले०)*

इन्होंने राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया था और लगभग सात वर्ष तक कारावास में रहे थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ये केंद्रीय शासन में मंत्री पद पर रहे और बाद में पंजाब के राज्यपाल पद पर भी रहे। सन् 1935 से ये केंद्रीय धारा-सभा के सदस्य रहे थे। इन्होंने 'पथिक' (दे०) नामक आत्मचरित लिखा था। यह चार खंडों में है। चौथे खंड की पूर्ति इनके पुत्र ने की थी।

राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर भी इनकी सहृदयता लघुनिबंधों में प्रकट होती है।

'सालगुदस्त', 'अनगड मोती' तथा 'स्मृतिशेष' इनके निबंध-संग्रह हैं।

इन्होंने लोकरंजन के उद्देश्य से निबंध-रचना की है। इनके निबंध निजी अनुभवों से ओतप्रोत हैं। ये बहुपठित थे। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, संविधान-शास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे रूक्ष विषयों पर भी इन्होंने रोचक शैली में निबंध लिखे जिन्हें पढ़कर पाठक नीरसता का अनुभव नहीं करता।

संभाषण-पटु होने के कारण अपनी बात को बलपूर्वक कहने की विशेषता इनके निबंधों में देखने को मिलती है। इनकी निबंध-शैली धाराप्रवाही, प्रासादिक, अलंकृत है जिसमें यत्र-तत्र विनोद एवं व्यंग्य के प्रसंग भी हैं। व्यंग्य के कारण इनके निबंध सरस बन गये हैं।

गाथा *(मल० पारि०)*

यह चेरुश्शेरी (दे०) आदि कवियों द्वारा स्वीकृत प्रबंध-काव्य की एक विधा है। कृष्ण-गाथा और भारत-गाथा प्रसिद्ध गाथाएँ हैं। इनमें स्वीकृत छंद मंजरी है जो एक श्लथ और मधुर द्रविड़ छंद है।

'गाथा' शब्द का अर्थ पाट्टु (दे०) अथवा गान ही है। कृष्ण-गाथा का पर्याय कृष्णप्पाट्टु भी है। 'चेन्तमिष्' में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है। 'शिलप्पतिकारम्' और 'मणिमेखला' में सर्ग-विभाग के अर्थ में इस शब्द के द्रविड़ रूप का प्रयोग हुआ है।

गाथा-गीत (बैलॅड) [हिं० पारि०]

गाथा-गीत (बैलॅड) आख्यान एवं प्रायः लोक-गाथाओं पर आधारित सीधे, सहज एवं सामान्यतः अभिधात्मक शैली में रचित पारंपरिक गेय कविता का नाम है। अपने मूल रूप में गाथा-गीत लोक-तत्त्व से ही युक्त था. किंतु पाश्चात्य साहित्य के उत्तर-मध्य युग में साहित्यिक-कलात्मक गाथा-गीतों की रचना भी प्रभूत मात्रा में की गई। इस प्रकार गाथा-गीत के दो रूप हैं: (1) पारंपरिक लोक-गाथा-गीत, जो पौराणिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक वीरतापूर्ण अथवा शृंगारिक आख्यानों पर ही सामान्यतः आधारित होते हैं और पूरे के पूरे समाज-विशेष में लोकानुरंजन के उद्देश्य से गाए जाते हैं, कभी-कभी नृत्य के साथ भी; (2) साहित्यिक गाथा-गीत: व्यक्ति-तत्त्व से युक्त कलात्मक आत्माभिव्यक्ति के निमित्त रचित आख्यानात्मक कविता जिसके विषय प्रायः वीरतापूर्ण प्रसंग होते हैं। गाथा-गीत के इस रूप का ग्राहक संस्कारी पाठक-समाज होता है।

गाथा-गीत अँग्रेज़ी शब्द 'बैलॅड' का हिंदी पर्याय है जो लेटिन और इतालवी शब्द 'बलारे' (ballare) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है नर्तन। इसी-लिए गाथा-गीत प्रारंभ में नृत्य-गीत ही था जिसकी गेयता नृत्य की लय और वर्तुलता के निमित्त सहयोगी तत्त्व के रूप में ही सार्थक थी। संगीत एवं नृत्य से स्वतंत्र गेय कविता के रूप में गाथा-गीत का विकास पश्चिम में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी से माना जाता है: इंगलैंड, स्काटलैंड, स्पेन, डेनमार्क और रूस आदि प्रायः सभी यूरोपीय देशों में। आधुनिक काल में पाश्चात्य साहित्य में कलात्मक गाथा-गीतों की अत्यंत समृद्ध परंपरा है: जर्मन कवियों बर्गर, शिलर और गेटे तथा अँग्रेज़ कवियों स्कॉट, कोलरिज, कीट्स और स्विनबर्न आदि ने गाथा-गीत के साहित्यिक रूप के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

गारंबी चा बापू (गारंबी का बापू) *(म० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

श्री० ना० पेंडसे (दे०) का यह उपन्यास कोंकण प्रदेश के एक गाँव गारंबी के एक तेजस्वी, स्वाभिमानी, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करने वाले, प्रगतिशील युवक के संघर्ष की कहानी है। दरिद्र ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न बापू (दे०) पिता और मौसी के अतिरिक्त गाँव-भर की उपेक्षा और तिरस्कार का पात्र होने के कारण बचपन से ही विद्रोही स्वभाव का बन गया। कर्मठ, परिश्रमी और उग्र स्वभाव का यह युवक शीघ्र ही गाँव की नदी के पुल पर स्थित एक होटल वाले रावजी का कृपा-पात्र बन गया। उसका परिचय रावजी की सुंदर पत्नी राधा से भी हुआ और पहली भेंट में ही वह उसकी ओर आकृष्ट हो गई। बाद में रावजी की मृत्यु पर बापू ने विजातीय होते हुए भी उसे अपनी पत्नी बना लिया। सुपारी का व्यापार कर वह धनाढ्य हो गया पर उसकी महत्वाकांक्षा थी कि वह सरपंच बन जाय। इस आकांक्षा की पूर्ति के मार्ग में बाधक था गाँव का सरपंच अण्णा खोत जिसने उसके पिता विठोबा को छल उसकी माँ का (जब वह उसके गर्भ में था) उससे विवाह करा दिया था। बापू ने गाँव वालों की सहायता के लिए धर्मशाला, पाठशाला आदि खोलीं, पर गाँव के ब्राह्मण उसके शत्रु बने रहे। पर अंत में रहस्य खुल जाने के भय से अण्णा को बापू के सरपंच बनने में सहमति देनी पड़ी और बापू संघर्ष में विजयी हुआ।

कोंकण प्रदेश से संबद्ध यह उपन्यास वहाँ की प्रकृति, व्यवसाय, धर्म, रीति-रिवाज, रहन-सहन, वर्ग-संघर्ष आदि का चित्र उपस्थित करने तथा वहीं की बोली में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे जाने के कारण आंचलिक उपन्यास कहा जाएगा।

गार्गी, बलवंत *(पं० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

बलवंत गार्गी की गणना पंजाबी के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में की जाती है। पंजाबी में प्रगतिवादी विचार-धारा के प्रमुख लेखक के रूप में गार्गी की प्रतिष्ठा पंजाब और भारत के बाहर भी है। अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में ये भारतीय नाटक और रंगमंच का प्राध्यापन भी करते रहे हैं।

गार्गी को अपने पहले नाटक 'लोहाकुट्ट' (दे०) से ही पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। प्रारंभ में गार्गी पर इब्सन का बहुत प्रभाव था। फिर बाद में इनकी कला रूसी लेखक चेखव से प्रभावित हुई। गार्गी के अधिकांश नाटक दुःखांत हैं। इनकी धारणा है कि मृत्यु दुःखदायी नहीं है, वरन् वह समस्त दुःखों का अंत है। दुःखांत प्रभाव दुःखों में घुल-घुल कर जीने से उभरता है।

गार्गी ने प्राचीन भारतीय नाटक और रंगमंच का गहरा अध्ययन किया है। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक 'रंगमंच' (दे०) भारतीय रंगमंच-साहित्य की एक महत्व-पूर्ण उपलब्धि है। इस पुस्तक का हिंदी और अँग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और इस पर इन्हें साहित्य-अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

प्रमुख रचनाएँ—'लोहाकुट्ट', 'केसरी', 'सैल पत्थर', 'कणक दी बली' (नाटक), 'कुआरी टीसी', 'दो पासे', 'दसवंध पत्तण दी बेड़ी' (एकांकी-संग्रह), 'डुले बेर' (कहानी-संग्रह)।

गार्साँ-द-तासी *(हिं० ले०)*

फ्रांसीसी विद्वान् गार्साँ-द-तासी ने फ्रांसीसी भाषा में लगभग सत्तर हिंदी-कवियों का विवरण अँग्रेज़ी वर्णक्रम से 'इस्त्वार-द-ला लितरात्यूर एन्दुईऐ एन्दुस्तानी' नाम से दो भागों में लिखा था। पहला भाग 1839 ई० में और दूसरा भाग 1846 ई० में प्रकाशित हुआ। 1871 ई० में इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण तीन भागों में प्रकाशित किया गया। इस ग्रंथ में कवि-परिचय का क्रम इस प्रकार है—पहले कवियों का जीवन-वृत्त, फिर रचना-विवरण और उदाहरण। यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य का प्रथम इतिहास माना जाता है। इसके हिंदी से संबद्ध अंश का अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने किया है।

ग़ालिब *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1796 ई०; मृत्यु—1869 ई०]

पूरा नाम मिर्ज़ा असद-उल्ला-ख़ाँ। उपनाम पहले 'असद' और फिर 'ग़ालिब'। इनका जन्म-स्थान आगरा है। मिर्ज़ा के दादा सबसे पहले भारत में आए और शाह आलम के दरबार में मान प्राप्त किया। इनके पिता मिर्ज़ा अब्दुल बेग ख़ाँ अस्तव्यस्त जीवन व्यतीत करते रहे और 1801 ई० में अलवर के राजा की सेवा में उनका देहांत हुआ। उस समय मिर्ज़ा ग़ालिब पाँच वर्ष के थे। ग़ालिब का शैशव अपनी ननिहाल, आगरा, में ही बीता।

ग़ालिब ने अपने जीवन में बहुत कष्ट सहन किए। इसी कारण इनके काव्य में करुणा तथा पीड़ा का प्राधान्य है। हल्के व्यंग्य तथा हास्य के पुट इनकी काव्य-शैली को रोचक बना देते हैं। पद्य तथा गद्य-लेखन दोनों पर ग़ालिब का समान अधिकार है। इनकी कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) उर्दू-ए-हिंदी, (2) उर्दू-ए-मुअल्ला, (3) कुल्यात-ए-नज़्म-ए-फ़ारसी, (4) कुल्यात-ए-नस्र-ए-फ़ारसी, (5) दीवान-ए-उर्दू, (6) लतायफ़-ए-ग़ैबी, (7) तेग़-ए-तेज़, (8) क़ातिह बुरहान, (9) पंज आहंग, (10) नामा-ए-ग़ालिब, (11) मह्व-ए-नीमरूज़।

उर्दू काव्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। भावों की सूक्ष्मता तथा कल्पना की ऊँची उड़ान इनके काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। संक्षेप में ये बड़ी-से-बड़ी बात कह जाते हैं, दार्शनिक तथ्यों को सरलता तथा सादगी से अभि-व्यक्त करने में ग़ालिब अद्वितीय हैं। इनके भावों में नवीनता तथा मौलिकता सर्वत्र दृष्टिगत होती है। भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों की दृष्टि से इनकी रचनाएँ प्रथम कोटि की हैं। ग़ालिब की तुलना जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि 'गेटे' से की जा सकती है। ग़ालिब में दार्शनिक की प्रतिभा, सूफ़ी की दृष्टि तथा कुशल चित्रकार की कला तीनों गुण विद्यमान हैं।

'ग़ालिब—शख़्सियत और शायरी' *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1970 ई०]

'ग़ालिब—शख़्सियत और शायरी' प्रो० रशीद अहमद सिद्दीक़ी (दे०) के दो साहित्यिक वक्तव्यों का संकलन है। यह दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से 'ग़ालिब शताब्दी' के संदर्भ में प्रकाशित हुआ। इन दोनों व्याख्यानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ग़ालिब के विषय में उपयोगी सामग्री जुटाई गई है। प्रथम वक्तव्य में ग़ालिब के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है और दूसरे में ग़ालिब की शायरी पर। अतः, जैसा-कि पुस्तक का नाम है, 'शख़सियत और शायरी' उसी प्रकार पुस्तक के दो भाग हैं—प्रथम, ग़ालिब की शख़सियत और दूसरा, ग़ालिब की शायरी। यह पुस्तक 95-96 पृष्ठ की एक छोटी-सी पुस्तक है। इसकी भाषा सशक्त तथा शैली प्रभावपूर्ण है।

गाहा ओ दोहा *(उ० पारि०)*

ओड़िशा में 'दूहा' अथवा 'ढूआ' के रूप में अनेक रचनाएँ लोक-गीतों में दिखाई पड़ती हैं। प्राचीन 'बौद्धगान ओ दोहा' में कतिपय उड़िया-सिद्ध-आचार्यों के दोहे मिलते हैं। उपेंद्र भंज (दे०) ने 'गाहा एवं दोहा' की रचना की है।

गाहासत्तसई (गाथासप्तशती) *(प्रा० कृ०)*

उच्चकोटि की प्राकृत गाथाओं का यह सर्वोत्तम संग्रह है और हिंदी की 'बिहारीसतसई' (दे०) जैसे महान् मुक्तक संग्रहों का आदर्श रहा है। काव्यशास्त्र के उच्च-कोटि के आचार्यों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कहा जाता है कि ईसा की पहली शती में शातवाहन (दे० हाल) नरेश ने बिखरी हुई एक करोड़ गाथाओं से छाँट कर इन 700 गाथाओं का संकलन कर दिया था। इसमें नायक-नायिका-भेद, हाव, भाव, चेष्टा इत्यादि समस्त शृंगारिक तत्त्वों के अतिरिक्त प्रकृति-वर्णन, उत्सव, व्रत, नियम, इत्यादि अनेक विषय आ गए हैं। इससे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

गिदवाणी, मनु तोलाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म-स्थान बूबक (सिंध) है। सिंध में ये सरकारी विभाग में कार्य करते थे। सरकारी नौकरी में रहते समय इन्होंने सिंध के कई स्थानों का भ्रमण किया था जिसका उल्लेख इनकी कई रचनाओं में मिलता है। आज-कल ये स्थायी रूप से जयपुर में रहते हैं। इनके सैकड़ों गवेषणापूर्ण निबंध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक रूप में इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'वाणिको वहिं-वारु', 'विधवा जी वार्ता', 'सिंधी बोलीअ जी लिपीअ जो इतिहास'। सिंधी भाषा, लिपि, साहित्य और सिंध के इति-हास आदि विषयों पर शोध-कार्य करने के प्रति इनकी विशेष रुचि रही है। इनकी रचनाओं की भाषा सरल और स्वाभाविक है।

गिद्धा *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

पंजाबी लोकगीत और लोकनृत्य से संबद्ध इस पुस्तक में देविंदर (देवेंद्र) सत्यार्थी (दे०) ने बड़े परिश्रम से पंजाब के लोक-साहित्य और नृत्य-परंपरा का विश्लेषण किया है। लोक-जीवन में बिखरी भिन्न-भिन्न 'बोलियों' (काव्यांशों) की इस रचना में भावपूर्ण व्याख्या की गई है। लोक-साहित्य की खोज करने और उसे लोक-परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की सत्यार्थी जी के पास अद्भुत कला है। पंजाब के लोक-साहित्य की खोज और साज-सँवार की दृष्टि से इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है।

गिरिजाकल्याण *(क० कृ०)* [रचना-काल—1200 ई० के लगभग]

यह कन्नड के महाकवि हरिहर (दे०) (1200 ई०) का चंपूकाव्य है। हरिहर वीरशैव कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। कथा-विषय, वस्तु-रचना, वर्णन-शैली आदि में उन्होंने बहुत-कुछ परंपरा से लिया है और उसमें अपना भी कुछ जोड़ दिया है। शैवपुराण ही इसका आधार-ग्रंथ है। शिव-पार्वती-विवाह इसकी कथावस्तु है। गिरिजा इसकी नायिका हैं। कवि ने कालिदास के 'कुमारसंभव' (दे०) से भी कुछ सामग्री ली होगी किंतु 'कुमारसंभव' और 'गिरिजाकल्याण' के उद्देश्य में काफ़ी अंतर है। बृहस्पति का दौत्य, विष्णु का काम को फुसलाना, बहुवेशी शिव पर क्रुद्ध होकर उन पर गिरिजा का भभूत फेंकना, आदि हरिहर की मौलिक सूझें हैं। बृहस्पति का दौत्य नया होने पर भी कवि ने बृहस्पति के प्रति न्याय नहीं किया है। इसी प्रकार विष्णु और काम के संवाद में बेहूदापन अधिक है। 'गिरिजाकल्याण' शिव-लीला की, देवासुर-संग्राम की कथा है। एक दृष्टि से यह रूपक भी है। गिरिजा यहाँ मानवी गुणों से युक्त दैवी पात्र हैं। पर्वतराज-कुमारी तपःशक्ति हैं; शिवभक्ति हैं, किंतु साथ ही उसमें मानव-सहज स्वाभिमान, क्रोध, निष्ठुरता, आदि गुण भी हैं। उसने 'भवानी मानी' कहकर उस मान-वती का सही चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रो० मुगली (दे०) के अनुसार इसमें मार्गी काव्य की संप्रदायशरणता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी मौलिकताजन्य नवीनता के बीच संघर्ष हुआ है। जिसके कारण कई विसंगतियाँ भी आ गई हैं। पात्रों के दिव्य मानवीय गुणों के समन्वय में भी संतुलन नहीं रह पाया है। उत्साह हरिहर की स्थायी वृत्ति है। वेगवती कथन-कला हरिहर के जन्मजात गुणों में से एक है। भक्ति एवं वीरता के प्रसंगों में उसकी यह कला खुल कर खेली है।

गिरिधर कविराय *(हिं० ले०)* [कविता-काल—अठारहवीं शती का मध्य]

इनकी कुंडलियों में अवधी की प्रधानता देखकर इन्हें अवधी प्रदेश का रहने वाला कहा जाता है, बाद में कतिपय कारणों से ये इस प्रदेश को छोड़ गए। इन्होंने नीति की परंपरागत बातों एवं अनुभवगत सत्यों को लेकर अनेक कुंडलियाँ बनाई हैं। इनकी कुंडलियों के छोटे-बड़े लगभग दस संस्करण निकल चुके हैं। उत्तर भारत में इन की कुंडलियाँ सर्वाधिक प्रचलित हैं। सामान्यतः इनमें कवित्व का अभाव है, पर कुछ अन्योक्तियाँ काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट भी हैं। नीतिकारों में इनका विशेष स्थान है।

गिरिधर स्वामी *(म० ले०)*

ये समर्थ रामदास (दे०) से प्रभावित थे। उनका यशोगान करने के लिए इन्होंने 'समर्थप्रताप' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसमें रामदास के चरित्र का श्रद्धा-भक्ति-भाव-पूर्ण वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'निवृत्तिराम', 'श्रीसमर्थकरुणा' आदि छोटे-बड़े लगभग 40 ग्रंथों की रचना की है। इनकी प्रसिद्धि 'रामायण' (दे०) को विविध रूपों में रचने के कारण विशेष रूप से हुई है। 'अब्घ रामायण', 'मंगलरामायण', 'छंदोरामायण', 'सुंदररामायण' 'संकेतरामायण', 'करुणारामायण', इसके प्रमाण हैं। 'संकेतरामायण' में 6741 ओवियाँ हैं। समर्थ-संप्रदाय के अनुयायियों में 'समर्थप्रताप' ग्रंथ की रचना के कारण इनका विशेष स्थान है।

गिरींद्र मोहिनी (दत्त) दासी *(बँ० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

इनका जन्म भवानीपुर में अपनी ननसाल में हुआ था।

उन्नीसवीं शती की महिला-कवयित्रियों में गिरींद्र मोहिनी को विशेष ख्याति प्राप्त हुई थी। इनका पहला काव्य-ग्रंथ 'कविताहार' 1873 ई० में प्रकाशित हुआ था। 'भारत कुसुम' (1882), 'अश्रुकण' (1894), 'आमाष' (1897), 'शिखा' (1903), 'अर्घ्य' (1909), 'स्वदेशिनी' (1912), 'सिंधुगाथा' (1913), 'अलक' एवं नाट्यकाव्य 'संन्यासिनी' या 'मीरांबाई' (1892), की रचना कर गिरींद्र मोहिनी ने उस युग के काव्य-जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। 'हिंदू-महिला-पत्रावली' (1892) निबंध-ग्रंथ को उस युग में विशेष समादर प्राप्त हुआ था।

गिरींद्र मोहिनी के काव्य में सौंदर्य की सरल अभिव्यक्ति अतुलनीय है। बचपन से ही स्वर्णकुमारी (दे०) से उनकी मित्रता थी। रवींद्रनाथ (दे०) के प्रभाव से ये प्रभावित थीं। फिर भी इनकी स्वकीयता को स्वीकार करना पड़ता है। ग्राम्य जीवन के सहज-सरल सौंदर्य के अपरूप वर्णन में इन्होंने जो जादू किया है उससे आज भी बंगाली पाठकचित्त मुग्ध है।

गिरीशचंद्र घोष *(बँ० ले०)* [जन्म—1844 ई०; मृत्यु 1912 ई०]

इनकी रचनाओं को इन वर्गों में रखा जा सकता है—**पौराणिक तथा भक्तिमूलक:** 'रावणबध' (1881), 'अभिमन्यु-बध' (1881), 'पांडबेर अज्ञातबास' (1882), 'सीतार बनबास' (1882), 'रामेर बनबास' (1882), 'सीताहरण' (1882), 'चैतन्य लीला' (1886), 'नल-दमयंती' (1887), 'रूप सनातन' (1888), 'बिल्व-मंगल' (1888), 'पूर्णचंद्र' (1888), 'बिषाद' (1889), 'जना' (1894), 'करमे तिबाइ' (1895), 'नसीराम' (1896), 'काला पहाड़' (1896); **सामाजिक नाटक:** 'प्रफुल्ल' (1889), 'मायाबसान' (1899), 'बलिदान' (1905), 'शास्ति ओ शांति' (1908), 'गृहलक्ष्मी' (1912); **ऐतिहासिक नाटक:** 'भ्रांति' (1902), 'सलाम' (1904), 'बासर' (1906) 'सिराजुद्दौला' (1906), 'अश्जेक' (1911)।

गिरीश की साहित्यिक यात्रा के कई सोपान हैं। पहला: अनुवाद युग। बंकिम (दे०) के लोकप्रिय उपन्यासों का नाटकीय रूपांतर। यहाँ ये कुशल अभिनेता तथा सफल निर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। दूसरा: मौलिक नाटकों का सृजन। पौराणिक नाटकों की प्रेरणा राजकृष्ण राय तथा मनमोहन बसु (दे०) से ली। तीसरा: अवतार-महापुरुषमूलक नाटक। इस धारा का सर्वोत्कृष्ट नाटक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बिल्बमंगल' । चतुर्थ : दीनबंधु (दे०)से अनुप्रेरित होकर। इनका ध्यान सामाजिक समस्याओं की ओर गया। 'प्रफुल्ल' इनका कीर्ति-स्तंभ है । अंतिम चरण में तत्कालीन स्वदेशी आंदोलन से अनुप्राणित होकर इन्होंने भी समकालीन नाटककारों की तरह ऐतिहासिक नाटक लिखे । इनके नाटकों में नीति-भावना और धर्म-भावना का समन्वय है। आध्यात्मिक दृष्टि से ये रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद से प्रभावित हैं।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से ये दीनबंधु से प्रभावित हैं। इन्होंने नाटकों में साहित्यिकता और रंगमंचीयता का संतुलन रखा है। रंगमंच के बहुमुखी विकास का श्रेय सदा इनको मिलेगा ।

गिरीशमु *(ते० पा०)*

यह गुरजाडा अप्पाराव (दे०) (1861-1915) के प्रसिद्ध नाटक 'कन्याशुल्कमु' (दे०) का प्रसिद्ध पात्र है। यह ढोंगी, मिठबोले और धोखेबाज़ समाज-सुधारकों के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित है । अँग्रेज़ी और संस्कृत के टूटे-फूटे शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग करके यह अपनी विद्वत्ता बघारता रहता है। विधवा-विवाह की आवश्यकता के बारे में कन्याशुल्क (शुल्क देकर कन्या को खरीदने की प्रथा), वेश्या-प्रथा आदि के विरोध में, भाषण के समान बातें करके, लोगों को ठगता फिरता है। पूटकूळ्ळम (धन लेकर भोजन देने वाली औरत) के पैसे न चुका सकना, छुट्टियों का बहाना करके वेंकटेशम नामक भोले विद्यार्थी के साथ उसके गाँव जाना, वेंकटेशम की बहिन, बाल-विधवा बुच्चमा को भगा ले जाना, मधुरवाणी (दे०) नामक वेश्या के साथ संबंध आदि उसके खोखले चरित्र के प्रमाण हैं।

ढोंगी समाज-सुधारकों के जीते-जागते प्रतीक के रूप में अप्पाराव जी ने इस पात्र का चित्रण किया है।

गिरीश, शंकर केशव कानेटकर *(म० ले०)* [जन्म—1893 ई०]

घर की आर्थिक परिस्थिति संतोषजनक न होने के कारण गिरीश उच्च शिक्षा प्राप्त न कर सके। मैट्रिक के पश्चात एक स्कूल में अध्यापन-कार्य करते हुए एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और तदनंतर पूना के फ़र्ग्युसन महाविद्यालय में प्राध्यापक बने ।

इन्होंने मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार की काव्य-रचना की है । 'कांचनगंगा', 'फलभार', 'मानसमेघ', 'चन्द्रलेखा' इनके नाद-लयमधुर गेय प्रगीतों का संग्रह है। विषय की दृष्टि से ये प्रगीत प्रकृति-वर्णनात्मक, ईश्वर-विषयक, ग्रामीण जनता के सुख-दुःख तथा नारी समस्या को लेकर लिखे गए हैं।

गिरीश की प्रसिद्धि खंडकाव्य के निर्माता के रूप में अधिक है। इनसे पूर्व ऐतिहासिक खंडकाव्य लिखे जाते थे, परंतु सामाजिक खंडकाव्य लिखने की परंपरा का सूत्रपात इन्होंने ही किया । इनके खंडकाव्य सामाजिक खंडकाव्य का आदर्श हैं । इन्होंने 'अभागी कमल', 'आंबराई' और 'कला' नामक खंडकाव्यों की रचना की । पहले दो खंडकाव्यों का आधार यथार्थ है, और तीसरा कल्पनात्मक है। 'अभागी कमल' में विधवा की शोकपूर्ण स्थिति का उद्घाटन है तो 'आंबराई' ग्राम्य भाषा में ग्रामीण जीवन की करुण-गाथा है। गिरीश समाज-सुधारक थे, परंतु वे क्रांतिकारी न होकर विचारों में सौम्य और संयमी थे। इन खंडकाव्यों की रचना द्वारा आलोचकों के इस कथन का कि आधुनिक काल में दीर्घ काव्य-रचना संभव नहीं; खंडन हुआ है ।

शब्द-संगीत इनके काव्य का प्राण है । ये 'रविकिरण-मंडळ' के सदस्य थे। स्वरचित कविताओं के गायन द्वारा इन्होंने आधुनिक मराठी कविता को जनता में लोकप्रिय बनाया ।

गिलक्राइस्ट, जॉन बोर्थविक *(हिं० ले०)*

जॉन गिलक्राइस्ट को 18 अगस्त, 1800 ई० के पत्रानुसार फ़ोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में हिंदुस्तानी भाषा का प्रोफ़ेसर बनाया गया था। इस कालेज की स्थापना सन् 1800 में की गई थी। इन्होंने छोटे-बड़े 19 ग्रंथों की रचना की । उल्लेखनीय ग्रंथ हैं—'ए डिक्शनरी ऑफ़ इंगलिश एंड हिंदुस्तानी', 'ए ग्रामर ऑफ़ द हिंदुस्तानी लैंग्वेज', 'द ओरिएंटल फ़ेब्यूलिस्ट' (संपादित) । इनके ग्रंथों में तथा इन ग्रंथों की भूमिकाओं में इनके भाषा-संबंधी विचारों पर प्रकाश पड़ता है । 'हिंदुस्तानी' शब्द से उनका तात्पर्य उर्दू से था, किंतु साथ ही उनकी दृष्टि में हिंदी, उर्दू, उर्दूवी, रेख्ता, और हिंदुस्तानी—ये सभी शब्द समानार्थी थे। यहाँ 'हिंदी' शब्द से उनका तात्पर्य था 'हिंदी की' अर्थात् 'भारत की भाषा' अर्थात् हिंदुस्तानी । इसके अतिरिक्त ये हिंदवी अथवा ठेठ हिंदी और 'ब्रज-भाषा' को समानार्थी मानते थे । समग्र रूप से 'हिंदुस्तानी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा से इनका तात्पर्य उस भाषा से था जिसके संज्ञा-शब्द तो अरबी-फ़ारसी से लिये गए हों और जिसका व्याकरण 'हिंदवी' या 'ब्रजभाषा' के अनुरूप हो । इन्होंने खड़ी बोली की तीन शैलियाँ निर्धारित की थीं—(1) दरबारी या फ़ारसी शैली, (2) हिंदुस्तानी शैली, (3) हिंदवी शैली। इनमें से प्रथम सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न थी और हिंदवी शैली को ये गँवारू समझते थे । हिंदुस्तानी शैली इन्हें सर्वप्रिय थी । इसे ये 'द ग्रैंड पाप्यूलर स्पीच ऑफ हिंदुस्तान' कहते थे । जॉन गिलक्राइस्ट के संरक्षण में लल्लूलाल (दे०) और सदलमिश्र (दे०) ने अनेक हिंदी ग्रंथों (अथवा कहिए, हिंदुस्तानी ग्रंथों) की रचना की, जिनके फलस्वरूप इन दोनों लेखकों की गणना हिंदी खड़ी बोली-गद्य के जन्मदाताओं में की जाती है ।

गीतगोविंद (*सं० कृ०*) [समय—बारहवीं शती]

'गीतगोविंद' संस्कृत-साहित्य की अमर कृति है। इसके कर्ता जयदेव (दे०) पूर्वांचल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि एवं भोजदेव के सुपुत्र थे। इनका समय 1100 ई० के आसपास ठहराया जाता है।

'गीतगोविंद' में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है । 12 सर्गों के इस ग्रंथ का प्रत्येक सर्ग गीतों से समन्वित है। सर्गों को परस्पर मिलाने तथा कथासूत्र बतलाने के लिए कुछ वर्णनात्मक पद्य भी हैं ।

'गीतगोविंद' की रचना बौद्ध-सिद्धों के गीत की परंपरा से हुई । जयदेव के इस काव्य में उक्त परंपरा का चरमोत्कर्ष लक्षित होता है । इस ग्रंथ में इतना माधुर्य है कि संस्कृत न जानने वाला व्यक्ति भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इसकी कोमलकांत पदावली संसार के साहित्य में दुर्लभ है । जयदेव की इस कृति में शब्द और अर्थ का सामंजस्य मनोमुग्धकारी है और भक्तिरस का इसमें परम परिपाक हुआ है। उसके शृंगार प्रवाह के पीछे रहस्यमयी भावना अंतर्निहित है। इसमें भावों का अद्भुत गांभीर्य है। राधा और कृष्ण के प्रेम की निर्मलता यहां सुंदर शब्दों में अभिव्यक्त हुई है और उनका मिलन जीव और ब्रह्म का मिलन है। साधना-मार्ग के अनेक तथ्यों का रहस्य यहाँ स्वतः सुलझ गया है ।

'गीतगोविंद' का प्रभाव न केवल उत्तर भारत अपितु गुजरात, महाराष्ट्र तथा कन्नड साहित्य पर पर्याप्त रूप से पड़ा है । महाप्रभु चैतन्यदेव 'गीतगोविंद' की माधुरी के परम उपासक थे। संस्कृत में तो 'गीतगोविंद' के बाद ऐसे काव्यों की बाढ़-सी आ गई और इस शैली पर अनेक काव्यों की रचना हुई ।

गीतांजलि (*बँ० कृ०*)

यह रवींद्रनाथ (दे०) के 103 गीतों का संग्रह है । इंडिया सोसायटी, लंदन से नंवबर, 1912 में इसका प्रकाशन हुआ था। रवींद्रनाथ ठाकुर लिखित बँगला भाषा (1910) में प्रकाशित 'गीतांजलि' से यह भिन्न है। रवींद्रनाथ की विभिन्न कृतियों 'गीतांजलि', 'गीतिमाल्य', 'नैवेद्य', 'खेया', 'शिशु', 'चैतालि', 'स्मरण', 'कल्पना', 'उत्सर्ग' एवं 'अचलायतन' से लिये गए गीतों का यह अँग्रेज़ी अनुवाद है । 1913 ई० में इसी कृति पर उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला था। उन्होंने इन गीतों का स्वयं अनुवाद किया था तथा इसकी भूमिका कवि येट्स ने लिखी थी ।

'गीतांजलि' में मुख्य रूप से ये भावधाराएँ मिलती हैं—

(अ) भगवान को सहज न प्राप्त कर पाने के कारण हताश भावना तथा प्रबल विरह-वेदना की अनुभूति;

(आ) अहंकार त्यागकर दुःख-वेदना की अग्नि में स्वयं को निर्मल कर ब्रह्म से दया-प्रार्थना;

(इ) प्रकृति एवं मानव के विचित्र रूप-रस में भगवान का आभास एवं स्पर्श का अनुभव;

(ई) दीन-दरिद्र में भगवान का दर्शन करना;

(उ) असीम और ससीम की तथा उनके लीला तत्त्व की अनुभूति; आध्यात्मिकता, देशात्मबोध और मानवतावाद—ये सभी स्वर इसमें मिलते हैं । इसकी भाषा, भाव, छंद सब ब्रह्म के लिए रक्षित हैं—कुछ स्वतंत्र नहीं । इसमें ईश्वर और प्रकृति अत्यंत आश्चर्यजनक रूप से ओतप्रोत भाव से मिल गए हैं । प्रियतम की विरह वेदना छंद और स्वर में मुखरित है । कविताओं में ईश्वर मुख्य है, प्रकृति गौण । शब्द, छंद, भाव, भाषा सभी के प्रयोग में कवि अत्यंत कुशल है । रवींद्रनाथ ठाकुर के अपने शब्दों में आध्यात्मिक कविता एवं गान में जो श्रेष्ठ है, वही इसमें संकलित है ।

गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) (*सं० कृ०*) [रचना-काल—400 ई० पू०]

'गीता' 'महाभारत' (दे०) के महासागर का ही अत्यंत मूल्यवान ग्रंथ-रत्न है । इसमें अष्टादश अध्याय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गीता' के रचयिता वेदव्यास (दे० व्यास, बादरायण) हैं।

'गीता' भारतीय धर्म एवं दर्शन का प्रौढ़ एवं विश्वप्रख्यात ग्रंथ है। समस्त भारतीय वाङ्मय में धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से वेदों और उपनिषदों के बाद तीसरा स्थान 'गीता' का है। 'गीता' उपनिषदों का सारभूत ग्रंथ है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेशों का प्रधान महत्व है। युद्धोपरांत अर्जुन को श्रीकृष्ण ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का उपदेश दिया है। 'गीता' का कर्मवाद 'स्व' तथा 'पर' की भावना से ऊपर है। कर्मवाद के उक्त कर्त्तव्यपरक भाव से प्रेरित होकर ही अर्जुन कौरवों के साथ पारिवारिक संबंध की चिंता न कर कर्त्तव्य के पावन पथ पर अग्रसर हो जाता है। कर्मवाद के कारण ही 'गीता' संसार भर में शिरोधार्य है।

समग्र रूप से 'गीता' में कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग, इस त्रिविध योग का विवेचन मिलता है। कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय ही गीताकार का अभीष्ट है। निष्काम भावना एवं भगवद्बुद्धि से किया गया कर्म ही मानव के लिए सर्वथा श्रेयस्कर है।

इस प्रकार गीता का यह विशिष्ट महत्व है कि यह लौकिक एवं अलौकिक दोनों ही दृष्टियों से मानव की अप्रतिम पथप्रदर्शिका है। 'गीता' मनःशांति का अमोघ उपाय है।

गीता *(उ० पारि०)*

गुरु-शिष्य के बीच में होने वाला विचार-विनिमय, तर्क-वितर्क 'गीता' ग्रंथ में निबद्ध होता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के आदर्श पर उड़िया-गीता की रचना भी हुई है। प्रश्नोत्तर द्वारा शिष्य की भ्रांति का निराकरण तथा धर्म में आस्था-संस्थापन गुरु का लक्ष्य होता है। इसमें लेखक अपने को गुरु के माध्यम से व्यक्त करता है। केवल अच्युतानंद दास (दे०) ने ही 78 गीताओं की रचना की है। इससे यह सहज ही अनुमान हो जाता है कि उड़िया-साहित्य में गीताओं की बहुलता है। बळरामदास (दे०) की 'वेदांत-सारगुप्तगीता', अच्युतानंद की 'गुरुभक्ति-गीता', दिवाकर दास की 'जगन्नाथामृत गीता', दीनकृष्ण दास (दे०) की 'नवरत्नगीता', देवानंद की 'वैचंद्रगीता' आदि उल्लेख-योग्य हैं।

गीता-प्रवचनो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1951 ई०]

1951 ई० में परमधाम विद्यापीठ प्रकाशन, पवनार की ओर से प्रकाशित विनोबा जी के ग्रंथ 'गीता-प्रवचनो' में गीता-विषयक चिंतन-मनन की अभिव्यक्ति हुई है। गांधीजी के धार्मिक व दार्शनिक विचारों के उत्तराधिकारी विनोबा जी का चिंतन-मनन मौलिक व आत्म-स्फूर्त ही अधिक है। ज्ञान को जीवन के क्षेत्र से जोड़कर उसे आचरण में रखने पर विनोबा जी ने बल दिया है।

1932 ई० में धूळिया जेल में ये गीता के प्रवचन प्रस्तुत हुए थे। साने गुरु जी (दे०) ने इन्हें लिखित रूप में अंकित किया था। उसकी गुजराती में नागरी लिपि तथा गुजराती लिपि में दो आवृत्तियाँ (संस्करण) अलग-अलग प्रकाशित हुईं।

18 व्याख्यानों में समाविष्ट विषय-वस्तु इस प्रकार है—

(1)अर्जुन-विषाद; (2)आत्मज्ञान व समत्वबुद्धि (3)-(4) कर्मयोग; (5) योग और संन्यास; (6) चित्त-वृत्तियों का निरोध; (7) ईश्वर-शरणागति अर्थात् प्रपत्ति; (8) सातत्य-योग; (9) समर्पण योग; (10) विभूति-चिंतन; (11) विश्व-रूप-दर्शन; (12) सगुण-निर्गुण-भक्ति-विवेचन; (13) आत्म-अनात्म-विवेचन; (14)गुणोत्कर्ष एवं गुण-विस्तार; (15) पूर्णयोग; (16) परिशिष्ट : 1—दैवी और आसुरी वृत्तियों का झगड़ा; (17) परिशिष्ट : 2—साधना का कार्यक्रम; (18) उपसंहार : फल-त्याग की पूर्णता-ईश्वरप्रसाद; परिशिष्ट : 1—परमार्थ का सकल जनोपयोगी सुलभ विवेचन; परिशिष्ट 2—शंका-समाधान।

इन सब में विनोबा के स्वच्छ चिंतन व स्वच्छ हृदय का प्रतिबिंब झलकता है। नित्य-प्रति के जीवन-व्यवहार से ऐसे दृष्टांतों द्वारा गहन विषय को ऐसा सरल बना दिया गया है कि साधारण जन भी हृदयंगम कर सकें। इनमें केवल विचारवाद या तर्क के लिए तर्क नहीं है। ऐसा एक भी विचार प्रकट नहीं किया गया जिसका जीवन के आचरण-पक्ष से दैनंदिन संबंध न हो।

शिक्षित, अशिक्षित, ग्रामीण जन, नागरिक जन सबके लिए एक-सी सरल, यथायोग्य विचार-सामग्री इसमें संग्रथित है। भाषा बड़ी सरल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतारहस्य *(म० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

भारतवासियों के सांस्कृतिक जीवन में 'श्रीमद्-भगवद्गीता' (दे०) का महत्वपूर्ण स्थान है। 'गीता' पर रचित वाङ्मय में लोकमान्य टिळक (दे०)-रचित 'गीता-रहस्य' मील का पत्थर है। कई दृष्टियों से यह एक अनूठा ग्रंथ है। पहला कारण यह है कि एक महान् राजनीतिक नेता ने इसका प्रणयन कारावास में किया था। दूसरा, और सबसे मुख्य कारण यह कि इससे पूर्व हुई 'गीता' की टीकाओं से भिन्न नवीन ग्राह्य अर्थ का प्रतिपादन करने वाला यह भाष्य ग्रंथ है।

टिळक के अनुसार गीता निवृत्तिमार्गी संन्यास-मार्गोपदेशक ग्रंथ न होकर प्रवृत्तिपरक निष्काम कर्मयोग का समर्थन करता है। कर्म से अभिप्राय वेद-विहित कर्म नहीं वरन् उसमें लौकिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का अंतर्भाव है। कर्मयोग ज्ञाननिष्ठा का साधन नहीं वरन् स्वतंत्र मोक्ष-मार्ग है। कर्म-अकर्म क्या है? केवल आत्म-सुख के लिए कर्म करना नीचता है—आदि का प्रतिपादन इसमें मिलता है। यह कर्त्तव्यबुद्धि को जागृत करने वाला, लोगों को प्रोत्साहित करने वाला, क्रियाशील बनाने वाला, निराश एवं अस्वस्थ को आशा से स्फूर्त करने वाला एक विलक्षण ग्रंथ है।

टिळक ने इसमें अपने मत की बलपूर्वक स्थापना की है तथा प्रतिपक्ष के मत का खंडन करने में अपूर्व युक्ति-वाद का परिचय दिया है। इसकी भाषा पूर्ण एवं व्यवस्थित है। अतः यह सभी दृष्टियों से असाधारण है। उपसंहार में पाश्चात्य चिंतन-पद्धति से तुलना कर भारतीय चिंतन-पद्धति के श्रेष्ठत्व को सिद्ध करने का जो उपक्रम किया गया है वह मराठी तत्त्वज्ञान साहित्य में बेजोड़ है। 'गीता-रहस्य' लोकमान्य के तत्त्वचिंतन का आलोक है, कर्मयोगी टिळक के संतुलित जीवन-दर्शन का परिचायक है, गीता-भाष्यों में सिरमौर तथा तत्त्वज्ञान संबंधी ग्रंथों में अग्रगण्य है।

गीतार्णव *(म० कृ०)*

दासोपंत (दे०) की यह रचना सचमुच अर्णव जैसी विशाल है। 'गीता' (दे०) के अठारह अध्यायों पर इनका भाष्य है। भाष्य-रूप में लिखित ओवियों की संख्या सवा लाख है। कई आलोचकों के मन में इतना विशाल काव्यबद्ध भाष्य कदाचित् ही संसार की किसी अन्य भाषा में उपलब्ध हो। कवि का उद्देश्य सामान्य जनता को 'गीता' के मार्मिक उपदेशों-रहस्यों से अवगत कराना रहा है। यह भाष्य इतना विशाल कैसे बन गया? इसका एक उदाहरण लें, गीता में प्रयुक्त चिंता की कवि-व्याख्या है: 'चिंता पुरुषों के लिए एक बंधन है, पर जीते जी ही मृत्यु के समान है। चिंता सुखों का नाश कर पीड़ा देती है। चिंता जीवन का अंधकार और जीवन का कृष्ण पक्ष है ···चिंता बिना अग्नि के जलाती है और सुख को निगल जाती है', आदि-आदि। कवि ने स्वानुभव और चिंतन-मनन से भाष्य को जीवन-व्यवहारोपयोगी बनाया है।

गीतावली *(हिं० कृ०)*

यह गोस्वामी तुलसीदास (दे०)-कृत सप्तकांडों में विभाजित रामपरक गीतिकाव्य है, जिसे प्रबंधोन्मुख मुक्तक समझना अधिक समीचीन होगा। इसके रचना-काल के संबंध में विभिन्न कल्पनाएँ हैं; किंतु अधिक संभव है कि यह 1586 और 1593 ई० के मध्य रचा गया। इसमें लगभग इक्कीस रागों के व्यास-शैली प्रवृत्त 330 से अधिक मुक्तक हैं; जिनकी भाषा प्रायः संस्कृतनिष्ठ किंतु मुहा-वरेदार ब्रज है जिसमें 48 अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग भी है। यह उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, परिकर, संदेह, अनन्वय आदि अलंकारों से संकुल है; और चित्रकूट-संबंधी इसके कतिपय सांगरूपक मनोहर हैं, यथा 2.47-49; हनुमान् जी की यह उक्ति भी सुंदर है कि मैं रावण-रूपी पोरे को उसके शूरवीर-रूपी रसों के सहित फूँक कर लंका-रूपी खरल में घोंटता (5.13)। 'गीतावली' के कई संवाद मनोरम हैं; इसके कुछ स्थल 'कवितावली' से प्रभावित प्रतीत होते हैं। संयोग और वियोग दोनों प्रकार के वत्सल और शृंगार की, तथा पितृभक्ति, भ्रातृशोक, हर्षोल्लासु प्रपत्ति आदि अनेक भावों की अभिव्यक्तियाँ प्रशस्त हैं।

गीतिका *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

निराला जी (दे०) की बहुमुखी प्रतिभा ने जो अनेक प्रयोग किए हैं, उनमें से शास्त्रानुमोदित गीत-प्रयोगों की साक्षी रचना 'गीतिका' है। बँगला काव्य से प्रेरणा लेकर कवि ने अँग्रेज़ी शैली के गीत लिखे हैं, पर उनकी 'स्वरमैत्री हिंदुस्तानी है।' गीतों के विषय आत्मनिवेदन, नारी-सौंदर्य, प्राकृतिक वैभव, दार्शनिक चिंतन और राष्ट्र-भक्ति आदि हैं। अधिकांश गीतों में काव्यगुण की समृद्धि मिलती है, परंतु कहीं-कहीं अत्यधिक सामासिकता के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद-योजना दुरूह हो गई है। संगीत और कवित्व के दुर्लभ मिश्रण के कारण, यह कृति हिंदी काव्य में प्रसिद्ध है।

गीति-काव्य *(हिं० पारि०)*

कथ्य की दृष्टि से स्वानुभूतिनिरूपक और बंध की दृष्टि से मुक्तक (दे०) काव्य को गीति-काव्य कहा जाता है, आरंभ में संगीत उसका प्रधान तत्त्व था। यूनान में लाइर नामक वाद्ययंत्र के साथ गाया जाना और उसका राग-रागिनी में आबद्ध होना इसका प्रमाण है। पर अब यह तत्त्व स्थूल से सूक्ष्म होता जा रहा है। आज आंतरिक लय ही गीति-काव्य के लिए पर्याप्त है।

गीति-काव्य की आत्मा है भाव, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एकसाथ गीति में फूट पड़ता है। उसमें स्वभाव से ही हार्दिकता का तत्त्व रहता है। सच्ची गीति-कविता एक सरल, क्षणिक पर तीव्र मनोवेग का परिणाम होती है। वह कवि की निजी भावनाओं का प्रकाशन होती है, उसमें एक ही भाव होता है; अतः संपूर्ण गीत में रागात्मक अन्विति स्वतः आ जाती है और वह संक्षिप्त भी होता है, सहज आंतरिक प्रेरणा के कारण वह आत्मद्रव की अंतर्धारा से प्लावित होता है। इस प्रकार संगीतात्मकता, व्यक्तिगत अनुभूति की विकृति, भाव-प्रवणता, रागात्मक अन्विति, प्रवाहमयता और संक्षिप्तता उसके प्रधान तत्त्व हैं।

गीति-काव्य के असंख्य भेद हो सकते हैं पर मुख्य हैं—चतुर्दशपदी, संबोध-गीति, शोकगीत, व्यंग्य-गीत, शिशुगीत, आख्यान-गीति आदि।

गीति-नाटक *(हिं० पारि०)*

ग्रीक त्रासदी (दे०) को पुनरुज्जीवित करने के प्रयत्न में गीति-नाटक (ऑपेरा) का आविर्भाव 1594 ई० में ओतावियों रिन्युचीनी के 'दाफने' के प्रस्तुतीकरण के साथ हुआ था। थारोक-युग में यह यूरोप के अनेक स्थानों—वेनिस, रोम, नेपिल्स आदि में विकसित होकर प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था। अठारहवीं शती तक इसके विषय यूनानी पौराणिक कथाओं तथा प्राचीन इतिहास से लिये जाते रहे थे, और इसके द्वारा करुणा जगाने का प्रयत्न होता था; परंतु रोमांटिक आंदोलन के फलस्वरूप इसमें नये विषयों को अपनाया गया और इसका शिल्प भी बदला। अब इसमें कलात्मक गायन, नाटकीय उपस्थापन तथा प्रभावपूर्ण दृश्य-विधान की प्रधानता है। आज गीति-नाटक के अंग माने जाते हैं—प्रस्तावना, कथा, संवादाभिनय गीत और नृत्य। इसके प्रदर्शन में तीन दल होते हैं—अभिनेता (दे०), भावनट या भावनटी तथा गायक-वादक-मंडली (आर्केस्ट्रा)। इसकी संपूर्ण कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है और बीच-बीच में भाव-नृत्य होते हैं। उत्तर भारत में इनकी लोकप्रियता का श्रेय शांतिनिकेतन में होने वाले कवींद्र रवींद्र (दे०) के गीति-नाटकों को है।

गुंडप्पा, एल० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

श्री एल० गुंडप्पा जी का जन्म तुक्कूर ज़िले के मतिघट्ट में 1906 ई० में हुआ। 'भासन एकांक नाटकगळु', 'आदि पुराणसंग्रह', 'भारतियवर कवनगळु' आदि आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं। आपने भास (दे०) पर विशेष काम किया है। लोकगीतों के संग्रह एवं लोकसंस्कृति के अध्ययन में आपकी विशेष रुचि है। 'हळ्ळियहाडुगळु' आपका प्रसिद्ध लोकगीत-संग्रह है। इन्होंने टॉलस्टाय की कहानियों का अनुवाद भी किया है। तमिल के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्य भारती की कविताओं का कन्नड अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया है। पत्रकारों के लिए आपने एक कोश भी तैयार किया है। आपकी भाषा सहज-सरल है।

गुंडप्पा, डी० वी० *(क० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

श्री डी० वी० गुंडप्पा आधुनिक कन्नड की पुरानी पीढ़ी के कवि हैं। इनका जन्म कोलार ज़िले के मुळबागिल नामक स्थान में हुआ था। हाईस्कूल की शिक्षा पूर्ण कर ये कालेज में नहीं पढ़ पाए। स्वाध्याय से इन्होंने बहुत-कुछ सीखा-समझा। इन्होंने अपना जीवन पत्रकार के रूप में ही आरंभ किया था। बँगलौर में इन्होंने 'गोखले सार्वजनिक संस्था' नामक एक संस्था की स्थापना भी की थी। ये कन्नड साहित्य-सम्मेलन के दो बार अध्यक्ष भी बने। 'वसंत कुसुमांजलि', 'निवेदन अतःपुरगीते' आदि में इनकी श्रेष्ठ गीतिकाएँ संगृहीत हैं। उमरखैयाम की रुबाइयों का सफल अनुवाद इन्होंने 'उमरन ओसगे' नाम से किया है। 'अंतःपुरगीते' में बेलूर मंदिर की मदनिका-मूर्तियों से प्रेरित गीत हैं जो अपनी गेयता के कारण बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं। 'वनसुम', 'दारिहोकरु' आदि इनके सर्वाधिक लोकप्रिय गीत हैं। 'मंकुतिम्मन कग्ग' (दे०) इनका मुक्तक काव्य है जिसमें क़रीब एक हज़ार छंद हैं। इसे हम नये युग की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई 'गीता' कह सकते हैं। इसमें कवि का जीवन-दर्शन रस-रूप ग्रहण करके बह निकला है। विचारों की उदारता, शैली की गंभीरता तथा कल्पना की विराटता इसकी विशेषता है। 'गीतशाकुंतल' में इन्होंने 'शाकुंतल नाटक' को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। ये सफल आलोचक भी हैं। 'साहित्य-शक्ति', 'जीवन-सौंदर्य मत्तु साहित्य', 'संस्कृति' आदि में इन्होंने साहित्य की विशद व्याख्या करते हुए नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। 'राजनीति' के भी ये आचार्य हैं। 'राज्यशास्त्र' इस क्षेत्र में इनकी अनूठी देन है। इन्होंने 'विकारथ', 'रंगाचार्लु' आदि जीवनियाँ लिखी हैं। 'वन्दे-मातरम्' लिखकर सत्याग्रह के दिनों में इन्होंने मैसूर में क्रांति पैदा की थी। 'बाळिगोंड्रु नंबिके' इनकी चिंतन-प्रधान कृति है। शेक्सपियर के 'मैकबेथ' नाटक का अनुवाद भी इन्होंने किया है। 'जीवनधर्मयोग' इनका हाल ही में प्रकाशित गीताभाष्य है जिसमें इन्होंने गीता की व्याख्या नवीन दृष्टि से की है। यह इनकी अर्द्ध-शती से भी अधिक समय की साहित्यिक तपस्या का अमृतफल है। इस पर इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है। इन्होंने बाल-साहित्य में भी रुचि ली है। 'बेक्कोळि' इस क्षेत्र के लिए इनकी उल्लेखनीय देन है। इनकी शैली पांडित्यपूर्ण एवं प्रौढ़ है। विचार-गांभीर्य, भाव-गांभीर्य एवं भाषा-गांभीर्य इनकी विशेषता है।

गुंडर्ट निघंटु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1872 ई०]

यह जर्मनी-निवासी ईसाई धर्मप्रचारक और भाषावैज्ञानिक डा० हेरमन गुंडर्ट (दे०) द्वारा रचित मलयाळम-अँग्रेज़ी कोश है। केरलवासियों से निकट संपर्क का और सभी दाक्षिणात्य भाषाओं के ज्ञान का लाभ उठाकर वर्षों की निरंतर गवेषणा के उपरांत तैयार किए गए इस कोश में उस समय मलयाळम में प्रयोग में आने वाले सभी शब्दों का सही और संपूर्ण अर्थ व्युत्पत्ति-सहित दिया गया है। इसके लिए उस समय प्राप्य सभी पुस्तकों का अध्ययन इन्होंने किया था। आज भी भाषा और साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह कोश एक अमूल्य संदर्भ-ग्रंथ है।

गुंडर्ट व्याकरणम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1868 ई०]

यह जर्मन भाषा वैज्ञानिक हेरमन गुंडर्ट (दे०)-लिखित मलयाळम व्याकरण है। ईसाई धर्मप्रचारकों की सहायता से गुंडर्ट से पहले भी व्याकरण-ग्रंथों का प्रकाशन हुआ था परंतु यह व्याकरण इतना प्रामाणिक और विद्वत्ता-पूर्ण सिद्ध हुआ कि अन्य सभी व्याकरण शीघ्र ही लुप्त हो गए। आधुनिक मलयाळम के सर्वप्रथम प्रामाणिक व्याकरण के रूप में यह पुस्तक अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

गुंडर्ट, हेरमन *(मल० ले०)* [समय—1814-1903 ई०]

जर्मनी से आए इस ईसाई पादरी ने 1838 ई० में केरल में धर्म-प्रचार के साथ दक्षिणी भाषाओं में बड़ी प्रवीणता प्राप्त की तथा मलयाळम में एक अनूठे कोश का निर्माण किया। पदों के आगमन, उच्चारण, अर्थभेद आदि पर इन्होंने बड़ी गहराई से प्रकाश डाला है। पाठमाला, मलयाळम व्याकरण आदि ग्रंथ लिखकर इन्होंने केरल की महत्वपूर्ण सेवा की।

गुण *(सं० पारि०)*

काव्य की पुरुष-रूप में कल्पना कर संस्कृत-आचार्यों ने उसकी आत्मा एवं शरीर के साथ ही गुण-दोषों का भी विशद विवेचन किया। सामान्यतः गुण काव्योत्कर्ष के साधक हैं। भरत (दे०) के समय से ही गुणों का विस्तृत एवं सुव्यवस्थित विवेचन प्रारंभ हो गया था, किंतु उनकी सर्वप्रथम परिभाषा आचार्य वामन (दे०) ने दी: 'काव्य-शोभा के विधायक तत्त्व गुण कहलाते हैं' ('काव्य-शोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः'—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति : 3.1.1) संस्कृत काव्यशास्त्र में गुण-विषयक अवधारणा का विकास तीन अवस्थाओं में हुआ है: वामन आदि ध्वनि-पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुणों को काव्य-शोभा के विधायक शब्दार्थ के नित्य धर्म माना है; ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों का सीधा संबंध शब्दार्थ की अपेक्षा रस से माना है तथा ध्वनि की स्थापना के उपरांत अभिनवगुप्त (दे०) ने गुणों को अत्यंत सूक्ष्म रूप प्रदान करते हुए चित्तवृत्ति-रूप माना है। इस प्रकार गुण भी अलंकार और रीति की भांति काव्य के उत्कर्ष-विधायक ऐसे विशिष्ट तत्त्व हैं जो मूलतः रस से संबद्ध होते हुए भी व्यंजक-रूप में शब्दार्थ चमत्कार का आधार भी अनिवार्यतः लिये रहते हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र में भरत और दंडी (दे०) के दस गुणों से लेकर उनका विस्तार भोज (दे०) तक पहुँचते-पहुँचते 72 तक हो गया, किंतु बाद में गुणों के वैज्ञानिक विवेचन एवं वर्गीकरण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप मम्मट (दे०) तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते-आते उनकी संख्या तीन रह गई। मम्मट ने भामह (दे०) के विवेचन के आधार पर गुणों की संख्या तीन निर्धारित कर दी—माधुर्य, ओज और प्रसाद। इन्हीं में अन्य सभी गुणों का अंतर्भाव कर दिया गया। आज यही मत मान्य हैं।

गुणवर्मा प्रथम *(क० ले०)* [समय—900 ई० के लगभग]

इनका समय 900 ई० के लगभग माना जाता है। ये जैन थे। कन्नड के कवि नयसेन (दे०) (1112 ई०) ने इनका सर्वप्रथम उल्लेख किया है। इससे लगता है कि गुणवर्मा उस समय तक विख्यात हो चुके थे। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि ये गंगचक्रायुध, कामद आदि विरुदों से भूषित गंगराजा एरेयप्पा के दरबार में थे। इनके दो ग्रंथ 'शूद्रक' एवं 'हरिवंश' माने जाते हैं जो उपलब्ध नहीं हैं। परवर्ती संकलन-ग्रंथों में इनके बहुत से पद्य मिलते हैं। इनके आधार पर डाक्टर मुगली आदि विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि इनके ये दोनों ग्रंथ चंपू-काव्य थे (क्योंकि संग्रह-ग्रंथों में इन ग्रंथों के गद्य भाग भी मिलते हैं)। इनमें संकलित पद्यों में आखेट, समुद्र, पुर, कानन, स्त्रीरूप, वेश्यावाट, युद्ध, शौर्य, राजा आदि के वर्णन हैं। इससे लगता है कि यह एक वीरकाव्य है। साथ ही, एक लौकिक तथा एक आगमिक—इस प्रकार कृति-रचना करने की शैली भी इसी से शुरू होती है। इस तरह समासोक्ति-काव्य एवं लौकिक तथा आगमिक परंपरा इन दोनों के प्रवर्तक के रूप में गुणवर्मा का नाम स्मरणीय है। प्राप्त कविताओं की शैली प्रौढ़ है।

गुणाढ्य *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः प्रथम शती ई० के उत्तरार्द्ध में; मृत्यु-काल—अज्ञात]

भारत-आर्य कुल में भारत-ईरानी उपकुल की दर्द भाषा-परिवार की पैशाचिक भाषा में, जिसे 'पश्तो' का प्राचीन रूप समझा जाना चाहिए, 'बृहद्कथा' की रचना हुई। 'बृहद्कथा' में एक लाख श्लोक हैं और इस रचना से उस समय के सांस्कृतिक मूल्यों, जनविश्वास, जन-मानस की प्रवृत्तियों, कथाकार की कला आदि पर प्रकाश पड़ता है। यह एक विवादास्पद विषय है कि यह महान कृति गद्य में थी या पद्य में; किंतु दंडी (दे०) के अनुसार यह गद्य में थी। 'बृहद्कथा' की भाषा पैशाचिक होने के कारण इसे यदि कश्मीरी भाषा का आदि ग्रंथ माना जाए तो कदाचित् कोई अत्युक्ति नहीं होगी। कश्मीरी भाषा के साहित्य एवं उसके इतिहास में गुणाढ्य की 'बृहद्कथा' का वही स्थान है जो खड़ी बोली हिंदी या यों कहना चाहिए कि हिंदी भाषा के साहित्य एवं इतिहास में, चंदवरदाई के रासो का, अथवा डिंगल और पिंगल की कृतियों का। इस 'बृहद्कथा' रचना का आधार भले ही पिशाच भाषा हो किंतु शब्द-विन्यास, पद-विन्यास तथा क्रियापदों से इसे कश्मीरी भाषा का आदि-रूप समझा जा सकता है। इसी आदि-रूप को कई शताब्दियों बाद तक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं ने सींचा, और अंततः इसे आधुनिक कश्मीरी भाषा का रूप मिला। गुणाढ्य की इस 'बृहद्कथा' का पहली बार संस्कृत में अनुवाद करने वाले कश्मीरी पंडित थे—दसवीं-ग्यारहवीं शती के बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न दार्शनिक विद्वान लेखक राजानक क्षेमेंद्र (दे०)।

गुणीभूतव्यंग्य *(सं० पारि०)*

ध्वनिवादी आचार्यों के मतानुसार काव्य के सर्वोत्कृष्ट रूप ध्वनि (दे०) काव्य से भिन्न मध्यम कोटि का काव्य। 'गुणीभूत' का शाब्दिक अर्थ है गौण, अप्रधान हो जाना। इस दृष्टि से गुणीभूतव्यंग्य का अर्थ हुआ : जहाँ व्यंग्य से संबंध होने पर वाच्य का चारुत्व अधिक प्रकर्ष-युक्त हो जाता है, वह गुणीभूतव्यंग्य नामक काव्य का दूसरा भेद होता है ('प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यंग्यः काव्यस्य दृश्यते। यत्र व्यंग्यान्वये वाच्यचारुत्वं स्यात् प्रकर्षवत्।'—ध्वन्यालोक : 3.34)। विश्वनाथ (दे०) गुणीभूतव्यंग्य उसे कहते हैं जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम न हो ('अपरंतु गुणीभूतव्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये'—साहित्यदर्पण; 4.13)। व्यंग्य के गुणीभूत होने के कथित आठ कारणों के आधार पर गुणीभूतव्यंग्य के आठ भेद हैं : अगूढ़व्यंग्य, अपरांगव्यंग्य, वाच्यसिद्ध्यंगव्यंग्य, अस्फुटव्यंग्य, संदिग्ध-प्राधान्यव्यंग्य, तुल्यप्राधान्यव्यंग्य, काक्वाक्षिप्तव्यंग्य और असुंदरव्यंग्य।

गुप्त, ईश्वरचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1812 ई०; मृत्यु—1859 ई०]

नदिया ज़िले के काँचड़ापाड़ा ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम हरिनारायण दासगुप्त था। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं—'हित-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाकर' (गद्य एवं पद्य), 'बोधेंदु विकास' (नाटक), 'सत्यनारायण की पांचाली' तथा चार काव्य-संकलन।

ये 'संवादप्रभाकर' पत्रिका के संपादक थे जिसके माध्यम से बंकिमचंद्र चटर्जी (दे०) तथा दीनबंधु (दे०) जैसे साहित्यिक प्रकाश में आए थे।

इन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे, पाँचवें एवं छठे दशक में बँगला साहित्य में अपूर्व प्रभाव स्थापित किया था। ये नूतन एवं पुरातन के संधिस्थल में एक कड़ी के रूप में विद्यमान हैं और इनकी कृतियों में यह तथ्य भली प्रकार लक्षित होता है। ये विदेशी प्रभाव-रहित शुद्ध बंगाली कवि हैं। भाषा और छंद पर इनका असाधारण अधिकार है।

तत्कालीन बंगाली समाज के अनेक यथार्थ चित्र व्यंग्य-विद्रूप रूप से प्रस्तुत करने में इनकी समता करने वाला अन्य नहीं है। गंभीर विषयों पर भी व्यंग्यात्मक शैली में इन्होंने लिखा है।

गुप्त, नगेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1861 ई०; निधन —1940 ई०]

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण से लेकर बीसवीं शती के चौथे दशक तक रहस्य-रोमांचकारी, पारिवारिक रोमांटिक उपन्यासों के यशस्वी लेखक नगेंद्रनाथ गुप्त लेखन-रत रहे। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'पर्वतबासिनी' (1883), 'अमरसिंह' (1889), 'लीला' (1892), 'तमस्विनी' (1900), 'जयंती' (1929), 'आराताभा' (1930); 'ब्रजनाथेर बिबाद' (1938) उल्लेखनीय हैं। लीला में वर्णित पारिवारिक चित्र सुंदर हैं। 'तमस्विनी' में इन्होंने पहली बार यथार्थ यौन दृष्टि का परिचय दिया था। इन्होंने कुछ उत्कृष्ट कहानियाँ भी लिखी हैं। इनका कहानी-संग्रह 'संग्रह' अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय हुआ था। सहृदयता एवं औत्सुक्य को बनाए रखने की शक्ति इनकी कथाकृतियों का विशिष्ट गुण है।

गुप्तन् नायर, एस० *(मल० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

ये मलयाळम के प्रख्यात समालोचक हैं। केरल के विविध सरकारी कालेजों में मलयाळम के आचार्य और केरल भाषा-संस्थान के उपनिदेशक रहे हैं।

'आधुनिक साहित्यम्', 'समालोचना', 'क्रांतदर्शिकळ्' आदि इनके समालोचनात्मक ग्रंथ हैं। प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार जीतने वाले जी० शंकर कुरुप्प (दे०) के कविता-संग्रह 'ओटक्कुषल्' की भूमिका इन्होंने ही लिखी थी।

समालोचक गुप्तन् नायर की रुचि विवादास्पद तर्कों को प्रस्तुत करके ख्याति प्राप्त करने के प्रयत्न में न होकर विशुद्ध सत्यान्वेषण में है। इस कारण वे सर्व-सम्मत साहित्याचार्य हैं और पाठकों द्वारा अत्यधिक समादृत हैं।

गुप्त, बालमुकुंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1865 ई०; मृत्यु —1907 ई०]

इनका जन्म हरियाणा प्रांत के रोहतक ज़िले के गुड़ियाना गाँव में हुआ था। ये अत्यंत निर्भीक, ओजस्वी, राष्ट्रप्रेमी, ईमानदार एवं कर्त्तव्यनिष्ठ पत्रकार थे। ये जीवन-पर्यंत पत्रकार ही रहे तथा अपने जीवन-काल में इन्होंने दो उर्दू-पत्रों—'अख़बारे चुनार' और 'कोहनूर'—तथा तीन हिंदी पत्रों—'हिंदोस्थान', 'हिंदी बंगवासी' एवं 'भारतमित्र' का संपादन किया था। पत्रकारिता के अतिरिक्त ये हास्य-व्यंग्य से भरपूर दो कृतियों 'शिवशंभु के चिट्ठे' (दे०) एवं 'चिट्ठे और ख़त' के लिए भी प्रख्यात हैं। 'शिवशंभु के चिट्ठे' में इन्होंने शिवशंभू शर्मा उपनाम से लार्ड कर्ज़न की अहम्मन्यता पर तीखा प्रहार करते हुए आठ खुली चिट्ठियाँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण निबंध भी लिखे थे जो 'गुप्तनिबंधावली' में संकलित हैं। हिंदी गद्य के इतिहास में ये अपनी चुस्त, चुटीली और प्रवाहपूर्ण शैली तथा शब्दों की अंतरात्मा को पहचानने के लिए भी प्रख्यात हैं। इस संदर्भ में 'अनस्थिरता' तथा 'शेष' शब्दों को लेकर क्रमशः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) तथा लज्जाराम शर्मा मेहता के साथ हुआ इनका विवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गुप्त, मैथिलीशरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1965 ई०]

इनका जन्म चिरगाँव (ज़िला झाँसी) के एक सम्मानित वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरण राम-भक्त थे और अनुज सियारामशरण गुप्त (दे०) हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। काव्य-सृजन के आरंभ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने इनका मार्गदर्शन किया। इनके महाकाव्य 'साकेत' (दे०) की रचना में द्विवेदी जी के एक निबंध की प्रत्यक्ष प्रेरणा थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये परंपरा से सगुण राम के भक्त थे। अपनी सांप्रदायिक आस्थाओं में दृढ़ रहते हुए भी ये व्यवहार में अत्यंत उदार थे। इसी कारण इनका कृतित्व रामभक्ति की सांप्रदायिक सीमा में आबद्ध नहीं रहा। 'रामायण' (दे०) के साथ-साथ 'महाभारत' (दे०) की कथाएँ लेकर भी इन्होंने प्रबंधकाव्यों का प्रणयन किया है। 'साकेत', 'जयभारत' (दे०) आदि महाकाव्य और 'पंचवटी', 'जयद्रथवध' (दे०) आदि खंडकाव्य इनकी उल्लेखनीय प्रबंध-कृतियाँ हैं। इस्लाम, बौद्ध मत और सिक्ख संप्रदाय से संबद्ध रचनाएँ भी इन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना से प्रेरित होकर लिखी हैं। 'सिद्धराज', 'कुणाल-गीत' और 'विष्णुप्रिया' आदि रचनाएँ विभिन्न युगों के ऐतिहासिक पात्रों को आधार बनाकर लिखी गई हैं। 'भारत-भारती' और 'अजित' में राष्ट्रीयता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई है। 'अनघ' गांधीवादी सुधार-भावना से प्रेरित है।

इनका रचना-काल लगभग अर्द्ध-शती तक व्याप्त है। इस लंबी अवधि में हिंदी काव्य ने जो प्रगति की उसका प्रभाव इनकी रचना-शैली पर स्वाभाविक था। 'भारतभारती' जैसी प्रारंभिक रचनाओं में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता है और 'साकेत', 'यशोधरा' (दे०) आदि में छायावाद (दे०) युग की प्रगीतात्मक समृद्धि है।

प्रख्यात कथाओं में मौलिक उद्भावना करने और प्रसिद्ध पात्रों को पुनः स्पर्श से चमकाने में इनकी मेधा स्फूर्त हुई है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त बनाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी भाषा प्रसादगुणयुक्त और सर्वजनग्राह्य है। 'यशोधरा' का गीति-वैभव छायावादी युग में भी बेजोड़ है। 'साकेत' में राष्ट्रीय जीवन और विशेषतः गृहस्थ का जो समग्र चित्र अंकित हुआ है वह आधुनिक हिंदी काव्य में अप्रतिम है। समूचे राष्ट्र की भावनाओं को वाणी देने के कारण इन्हें राष्ट्रकवि का सम्मान प्राप्त हुआ था। काव्य और संस्कृति के दुर्लभ तत्त्वों का समन्वय इन्हें प्रथम कोटि का राष्ट्रकवि सिद्ध कर देता है।

गुप्त, बिजय *(बँ० ले०)*

बिजय गुप्त का जन्म अनुमानतः 1450 ई० के आस-पास हुआ था। इनके पिता का नाम सनातन एवं माता का रुक्मिणी था। इनका जन्म-स्थान था बारीसाल ज़िले में फूलश्री ग्राम।

इनकी कृति 'पद्मापुराण' (दे०) या 'मनसा-मंगल' (दे०) है। स्वप्न में देवी (मनसा) का निदेश पाकर इन्होंने 'मनसा-मंगल' के गीतों की रचना की थी। इनका संपूर्ण काव्य नहीं मिलता परंतु जितना मिलता है उसकी भी प्रामाणिकता में संदेह है। विभिन्न हाथों में पड़कर काव्य का मूल अंश भी संदेहास्पद हो गया है। काव्य का रचना-काल भी संदिग्ध है। अनेक अंश प्रक्षिप्त हैं। इनकी प्रतिभा उच्चतर किस्म की नहीं। काव्य में स्थान-स्थान पर अश्लीलता, ग्राम्यता एवं भद्दी रुचि का परिचय मिलता है। भाषा प्राचीन एवं अपरिमार्जित है। ग्राम्य जीवन की छाप काव्य में पदे-पदे मिलती है। इन दोषों के होते हुए भी यह काव्य पूर्व-बंग—विशेषकर बारीसाल, नोआखाली, त्रिपुरा अंचल—में अत्यंत लोकप्रिय है।

'मनसा-मंगल' कृति बंग देश के सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक तत्त्वों की मानो कुंजी है। इस कृति में बनावटी कुछ नहीं। 500 वर्षों से ये इस कृति के माध्यम से बंगालियों के हृदय-सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं।

गुप्त, सियारामशरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1895 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

इनका जन्म चिरगाँव ज़िला झाँसी में हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त (दे०) के अनुज थे अतः इन्हें वैष्णव संस्कार और साहित्यिक रुचि अपने पारिवारिक वातावरण से प्राप्त हुई। इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। आत्मीयों के निधन का आघात भी इन्हें अनेक बार सहना पड़ा। अग्रज के व्यापक प्रभाव के कारण इनका साहित्यिक व्यक्तित्व भी बहुत-कुछ उपेक्षित रहा। इन सब कारणों ने मिलकर इनके अंतर्जगत को करुणाप्लुत कर दिया। अतः इनके साहित्य में भी वेदना की अंतःसलिला सर्वत्र व्याप्त है। इतना अवश्य है कि आस्तिकता के संस्कार, गांधी के प्रभाव और चिंतन की रुचि ने इनकी वैयक्तिक वेदना को उन्नयित और परिष्कृत कर दिया है।

इन्होंने कविता, कथा, नाटक और निबंध की विधाओं में रचना की है। 'झूठ-सच' शीर्षक निबंध-संग्रह और 'नारी' शीर्षक उपन्यास को तो पर्याप्त ख्याति भी मिली है। फिर भी इन्हें 'कविता ही सर्वाधिक तृप्ति देती है।' काव्येतर सृजन को ये अपने काव्यकर्म का 'बाइप्रोडक्ट' मानते रहे हैं। मुक्तक या प्रबंध-शैली में लिखे गए काव्य-ग्रंथों में 'बापू', 'उन्मुक्त', 'नकुल' तथा 'गोपिका' आदि प्रसिद्ध हैं। 'बापू' में राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। 'उन्मुक्त' युद्ध की विभीषिका का चित्रण करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला काल्पनिक और प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है। 'नकुल' महाभारत (दे०) के वनपर्व की कथा के आधार पर लिखा गया खंडकाव्य है। 'गोपिका' में लोकोत्तर मधुर भाव की व्यंजना है।

इनके काव्य की मूल चेतना गांधीवादी है। इनके 'हृदय और बुद्धि दोनों का गांधी दर्शन के साथ पूर्ण सामंजस्य है⋯।' इसीलिए इनके काव्य में आधुनिक युग की अनास्था और पाशवता का चित्रण तो है, परंतु उसकी स्वीकृति नहीं है। इनके लिए वाङ्मय तप है, जिसके माध्यम से ये अपनी आत्मा का परिष्कार करते हैं।

इनके तपःपूत साहित्य का प्रभाव भी निभृत मंदिर के घृतदीप की भाँति सात्त्विक और शांतिप्रद होता है। उसमें न विचारों की उत्तेजना है न भावों की; न वासना की मांसल गंध है, न भोगोन्मुख कल्पना का ऐश्वर्य; न उद्दाम रूप का वैभव है, न रति-क्रीड़ाओं का चांचल्य। फलतः उसमें अमृत है परंतु जीवन का उतना रस नहीं है। 'वह गीतिमय न हो कर चिंतनमय है।' गांधीवादी साहित्यकारों में इनका अद्वितीय स्थान है।

ग़ुबार-ए-ख़ातिर *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

यह मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (दे०) की उत्कृष्ट कृति है। यह 9 अगस्त, 1942 ई० से 15 जून, 1945 ई० के बीच की अवधि में लिखे गए पत्रों का संकलन है। ये पत्र मौलाना आज़ाद ने अहमदनगर जेल से नवाब सदर यार जंग, मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ाँ साहब रईस भीकमपुर, ज़िला अलीगढ़, के नाम लिखे थे किंतु जेल में मित्रों से पत्र-व्यवहार की आज्ञा न होने के कारण एक फ़ाइल में सुरक्षित रखते चले गए थे।

15 जून, 1945 को मौलाना के जेल से मुक्त होने के पश्चात् हाली पब्लिशिंग हाउस, देहली की ओर से ये पत्र पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर दिए गए और इस संकलन को 'ग़ुबार-ए-ख़ातिर' नाम दिया गया।

मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष रहे हैं। वे एक साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, विचारक, लेखक तथा सुवक्ता सभी कुछ थे। उनका जीवन अनेकमुखी क्रियाकलाप का संगम था।

'ग़ुबार-ए-ख़ातिर' के पत्रों में मौलाना ने विविध विषयों पर लेखनी उठाई है। धर्म, दर्शन, इतिहास, नैतिकता आदि अनगिनत विषयों पर प्रकाश डाला है। हर विषय के लिए अपनी विशेष शैली का प्रयोग किया है। इस संकलन से उर्दू साहित्य की निश्चित श्रीवृद्धि हुई है।

यों इन पत्रों की भाषा बहुत क्लिष्ट है किंतु यह क्लिष्टता विशुद्ध साहित्यिकता तथा रसात्मकता के पीछे छिप जाती है। ये पत्र काव्यमय गद्य का अनुपम उदाहरण हैं।

'गुमनाम', बलदेव ताराचंद गाजरा *(सिं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म सिंध के प्रसिद्ध नगर शिकारपुर में हुआ था। विद्यार्थी जीवन से ही इनकी रुचि साहित्य के प्रति रही है। भारत के स्वातंत्र्यांदोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया। आजकल ये बंबई में रहते हैं और 'भारत-वासी' नामक पत्रिका का संपादन करते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: 'गुमनाम-सदा', 'फूल-ऐं-तराना' (दोनों कविता-संग्रह हैं)। गांधी शताब्दी के शुभ अवसर पर इन्होंने 'गांधी ग्रंथ' का संपादन एवं प्रकाशन कराया था। यह ग्रंथ सिंधी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनकी अधिकतर कविताएँ देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना से पूर्ण हैं। कविता, पत्रकारिता, निबंध-लेखन और आलोचना के क्षेत्र में इनकी देन महत्वपूर्ण है।

गुरचरणसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

डा० गुरचरण सिंह पंजाबी उच्च शिक्षण से उस समय संबद्ध हुए जबकि वह अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही था। आपने अपने विद्यार्थियों की माँग पूरी करने के लिए आलोचना का कार्य आरंभ किया। आपकी प्रारंभिक रुचि पंजाबी गल्प-साहित्य और नाट्य-साहित्य की ओर थी और आपने इन्हीं विषयों पर 'पंजाबी गल्पकार' और 'पंजाबी नाटककार' दो बृहदाकार ग्रंथ लिखे। ये दोनों रचनाएँ पंजाबी छात्र-जगत में पर्याप्त प्रसिद्ध रहीं। इनकी आलोचना किसी शास्त्रीय पद्धति पर आधारित नहीं, उसका स्वर अधिकतर प्रभावात्मक ही है।

इन्होंने एक उपन्यास 'वगदी सी रावी' भी लिखा है।

गुरचरन रामपुरी *(पं० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

प्रगतिवादी धारा के नवीन कवियों में गुरचरन सिंह का विशेष स्थान है। विचारों की दृष्टि से ये विद्रोही कवि हैं परंतु काव्य-रूप की दृष्टि से इनमें प्राचीन एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन काव्य-प्रक्रिया का संयोग है। पंजाब—विशेषतया मालवा—के लोक-जीवन की महक से इनके गीत सुवासित हैं। 'कणकां दी ख़ुशबो' और 'कौल करार' इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं।

गुरु, कामताप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1947]

गुरु जी मूलतः संस्कृत के विद्वान थे, किंतु आप का कार्य-क्षेत्र था हिंदी भाषा का विश्लेषण। आपकी प्रसिद्ध कृति है 'हिंदी व्याकरण' जिसमें हिंदी भाषा का अत्यंत गहराई और विस्तार से विश्लेषण किया गया है। हिंदी भाषा का इस स्तर का आज भी हिंदी में कोई दूसरा व्याकरण नहीं है। गुरु जी आजीवन शिक्षक रहे। आपकी एक अन्य कृति है : 'भाषा वाक्य-पृथक्करण'।

गुरु-काव्य *(पं० प्र०)*

'गुरु-काव्य' से तात्पर्य मूलतः गुरुओं के द्वारा लिखे गए काव्य से है जिसमें छह गुरुओं का साहित्य माना जाता है। जनसामान्य बाबा फ़रीद, कबीर आदि अन्य संतों की वाणी-संग्रह समेत गुरु-वाणी साहित्य को 'गुरु-काव्य' मानता है। परंतु 'गुरुमत-निर्णय' तथा 'गुरु-शब्द-रत्नाकर' में केवल गुरुओं की वाणी को ही 'गुरुकाव्य' की संज्ञा दी गई है। इस काव्य में गुरु नानकदेव (दे०), गुरु गोविंदसिंह (दे०), गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर की वाणी ही मान्य है। गुरु-काव्य के मूल विषय भक्ति, अहंकार-त्याग, नामजप, कर्म-परायणता आदि हैं तथापि गुरु-काव्य में सामाजिक शोषण एवं धार्मिक पाखंड को विडंबना माना गया है। इसमें आचार-विचार की पवित्रता पर बल दिया गया है। 'गुरु-काव्य' युग की भक्ति, समाज एवं धर्म-चेतना का प्रतीक है। इस गुरु-काव्य में वेद, उपनिषद् एवं अन्य भारतीय दर्शनों का तत्त्व-संग्रह है। ब्रजभाषा का प्रभाव गुरु-काव्य में परिलक्षित है।

गुरुचरन सिंह जसूजा (पं० ले०) [जन्म—1925 ई०]

इनकी गणना पंजाबी के अच्छे आधुनिक नाटक-कारों में होती है। इन्होंने संरचना-विधि की दृष्टि से नाटक के क्षेत्र में कई प्रयोग किए हैं। इन्होंने अनेक एकांकी एवं कुछ संपूर्ण नाटक लिखे हैं। 'गौमुखा शेरमुखा' इनका बहुत प्रसिद्ध एकांकी है। 'रेत दीआं कंधा' और 'अंधकार' इनके पूर्ण नाटक हैं।

गुरुचरित्र *(म० ले०)*

महाराष्ट्र में दत्त-संप्रदाय के प्रवर्तक थे—नृसिंह सरस्वती। किंतु दत्त-भक्ति का प्रसार करने में सर्वाधिक योगदान 'गुरुचरित्र' ने दिया जिसके रचनाकार थे सरस्वती गंगाधर। इस ग्रंथ का मूल आधार सिद्धमुनि रचित-संस्कृत का 'गुरुचरित्र' है। सरस्वती गंगाधर की भाषा कानड़ी थी, किंतु इन्होंने रचना की मराठी में। इस चरित्र ग्रंथ में गुरु के चमत्कारों का वर्णन है, साथ ही तत्कालीन महाराष्ट्र के सामाजिक जीवन की झाँकी भी मिल जाती है। इसमें दत्तात्रेय के अवतार-ग्रहण और उनके अलौकिक कार्यों का विस्तृत वर्णन है। दत्त-संप्रदाय के अनुयायी इसका नित्य पारायण करते हैं। यह ग्रंथ गुरु-शिष्य-संवादात्मक शैली में लिखा गया है। भाषा सरल है। इसकी रचना 1539 ई० में पूरी हुई थी और इसमें कुल 53 अध्याय हैं।

गुरुदयालसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

पंजाबी उपन्यास-साहित्य में गुरुदयाल सिंह का नाम नानकसिंह की परवर्ती पीढ़ी का सबसे प्रसिद्ध नाम है। पिछले कुछ समय से उनके उपन्यासों—'मढ़ी दा दीवा' (दे०), 'अय होऐ', 'रेते दी इक मुट्ठी', 'अध चानणी रात' की विशेष चर्चा है। 'संगी फुल्ल', 'ओपरा घर', 'कुत्ता ते आदमी' इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। गुरुदयाल से पूर्व पंजाबी उपन्यास अपनी अधकचरी अवस्था में था। इन्होंने उसकी आदर्शवादी प्रवृत्ति का निराकरण कर उसे यथार्थवादी स्वरूप की ओर मोड़ा। मालवा (पटियाला-नाभा)-निवासी होने के कारण आपके उपन्यासों एवं कहा-नियों का क्षेत्र भी वही प्रदेश है परंतु विशेषता यह है कि उनके पात्र जिन समस्याओं से जूझते हैं वे एक प्रदेश तक ही सीमित नही होतीं, वे संपूर्ण समाज की समस्याएँ होती हैं। उनके सभी उपन्यास एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं। वे नानकसिंह (दे०) अथवा जसवंतसिंह कँवल (दे०) के उपन्यासों की भाँति एक ही समस्या या घटना की परंपरा का निर्माण नहीं करते। इस प्रकार गुरदयाल सिंह पंजाबी के एक ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने पंजाबी उपन्यास को संकीर्ण क्षेत्र से निकाल कर विकास के मार्ग पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रसर किया।

गुरुदास, भाई *(पं० ले०)* [समय—संभवत: 1559 ई० से 1627 ई० तक]

भाई गुरुदास गुरु अमरदास के भतीजे थे। संस्कृत, ब्रजभाषा एवं फ़ारसी साहित्य के ज्ञाता थे। आपने गुरु ग्रंथ साहिब के संपादन में लेखन-कार्य किया था। भाई गुरुदास की दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। पहली रचना का नाम 'वारां' है। दूसरी रचना का नाम 'कवित्त-सवैये' है। इन रचनाओं में वाणी के गुह्य तत्त्व प्रकट किए गए हैं। इन की रचनाओं में वेद-शास्त्र, पुराण, ज्योतिष, गणित, भूगोल आदि विषयों का भी ज्ञान निहित है। इन्होंने 39 वारें लिखी हैं जिनमें वीर रस के साथ ही आध्यात्मिक चेतना को भी समन्वित किया है। इन वारों में सिख धर्म के सिद्धांतों एवं गुरुवाणी की व्याख्या भी की गई है।

भाई गुरुदास के साहिब को सिख धर्म में गुरु ग्रंथ साहित्य को समझने की कुंजी माना जाता है। सामान्य जीवन के उपमानों से आपका काव्य भरा पड़ा है। चातक, घर, कुआँ, अनाज, अनार, पतंग, आदि उपमानों से गूढ़ तत्त्वों को समझाने का प्रयास अत्यंत हृदयग्राही बन पड़ा है। काव्यभाषा में संस्कृत-फ़ारसी के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं परंतु ब्रजभाषा का पुट अत्यधिक है। इनकी वाणी के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

गिद्दड़ दाख न अपड़े आखे थूह कौड़ी।
नच्चण नच्चण जाणई आखे भूई सौड़ी॥

गुरु नानक-चमत्कार *(पं० कृ०)*

यह भाई वीरसिंह (दे०) की प्रसिद्ध धार्मिक गद्य-रचना है जिसमें गुरु नानकदेव जी के विभिन्न प्रेरणा-दायक जीवन-प्रसंग वर्णित हैं। पंजाबी जीवनी-साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रंथ स्वतंत्र रूप से नहीं लिखा गया अपितु भाई वीरसिंह द्वारा 'खालसा ट्रैक्ट-सोसाइटी' के निमित्त समय-समय पर लिखी गई छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का संकलन है जिसके प्रत्येक परवर्ती संस्करण में पूर्ववर्ती संस्करण के पश्चात् लिखे गए प्रसंग जुड़ते रहे हैं। प्रत्येक प्रसंग के पूर्व-प्रकाशन का शीर्षक और समय आरंभ में ही 'पाद-टिप्पणी' के अंतर्गत निर्दिष्ट है। विभिन्न प्रसंगों का संकलन करते समय यद्यपि उनमें एकसूत्रता बनाए रखने का संपादकीय दायित्व लेखक ने नहीं निभाया तथापि सम्यक् विषय-प्रतिपादन, उत्कृष्ट भाषा-सौष्ठव और धारा-प्रवाह शैली के कारण यह रचना पंजाबी-गद्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। निस्संदेह साहित्यिक दृष्टि से इसका उतना महत्व नहीं, जितना धार्मिक दृष्टि से है, फिर भी भाई वीरसिंह के गद्य-शिल्प का यह उत्कृष्ट नमूना है।

गुरुबखशाणी, होतचंद मूलचंद *(सिं० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

होतचंद का जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। एम० ए० तक शिक्षा-दीक्षा सिंध और बंबई में हुई थी। 1908 ई० में ये दयाराम जेठमल सिंध कालेज में फ़ारसी के प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। 1928 ई० में इन्हें अँग्रेज़ी कविता में तसव्वुफ़ विषय पर अनुसंधान करने पर लंदन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनका देहांत 11 फ़रवरी 1947 को कराची में हुआ था। ये 'शाह जो रिसालो' (दे०) का आलोचनात्मक संस्करण तैयार कर सिंधी साहित्य में अमर हो गए हैं। यह संस्करण चार भागों में प्रकाशित होने वाला था जिसके तीन भाग इनके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो चुके थे, परंतु चौथा भाग अप्रकाशित रह गया और वह अभी तक छप नहीं सका है। शाह लतीफ़ के काव्य का ऐसा सुसंपादित संस्करण और किसी ने तैयार नहीं किया है। इस संस्करण की भूमिका बाद में 'मुकदमें लतीफ़ी' नाम से अलग पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुई थी जिसमें शाह लतीफ़ के काव्य का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शाह लतीफ़ के काव्य में आई हुई प्रेमगाथाओं को आध्यात्मिक व्याख्या सहित इन्होंने 'रूह रिहाण' नाम से प्रकाशित कराया था। इनका लिखा हुआ ऐतिहासिक उपन्यास 'नूरजहान' सिंधी उपन्यासों के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनकी भाषा मँजी हुई, मुहावरेदार और प्रभावपूर्ण है।

गुरुमत-निर्णय *(पं० कृ०)*

भाई जोधसिंह (दे०) ने खालसा कालेज, अमृतसर में धर्मशास्त्र के अध्यापक के रूप में 'सिख धर्म और साधना' पर 1928 ई० में कुछ भाषण दिए थे। इन भाषणों के पुस्तकाकार-संकलन का नाम 'गुरमत निर्णय' रखा गया। इसमें भाई जी ने अति सहज-सरल भाषा में सिख धर्म के मौलिक सिद्धांत, मर्यादा और आचार-व्यवहार पर अपने विचार प्रकट किए हैं। 'अकाल पुरुष', 'सतिगुरु', 'नाम',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साध-संगत', 'भाई चारक-व्यवहार', 'करामात', 'आवागमन', 'शखसी जीवन का मनोरथ' आदि विषयों पर भाई जी के विचार अति विद्वत्तापूर्ण पद्धति से प्रस्तुत हुए हैं। यद्यपि उनका अध्ययन अति विशाल है परंतु कहीं भी इसके फल-स्वरूप इन लेखों में बोझिलता नहीं आई। यही उनकी शैली का कमाल है।

गुरुराजचरित्र (क० कृ०)

इसके रचयिता सिद्ध नंजेश नामक वीरशैव कवि हैं जिनका समय 1650 ई० के करीब माना गया है। 'राघवांक चरित्र' (दे०) इनकी एक और कृति है। यह वार्धक षट्पदी में लिखा एक छंद-ग्रंथ है जिसमें अनेक शिव-भक्तों की कहानियाँ हैं। कवि का दावा है कि उसने इसमें आचार्य-विभव, सदगुरुवंश, शिव की पंचविंशति लीला, शिवपूजा-विधान, गणसहस्रनाम, नूतन एवं पुरातन शिव-भक्तों की कहानी कही है। यह एक बहुविषय-गर्भित धार्मिक कोश-ग्रंथ सा है। इसके संपादक प्रो० भूसनूरुमठ जी का कहना है कि विविध कथाओं से युक्त यह ग्रंथ एक छोटा-सा 'शिवकथा सरित्सागर' है। कन्नड साहित्य तथा वीरशैव संप्रदाय के इतिहास के निर्माण में इसका विशेष महत्व है।

गुरु-विलास (पं० कृ०)

'गुरु-विलास' नाम से दो रचनाएँ प्राप्त हैं। इनके कर्ता तीन कवि माने जाते हैं: (1) भाई मनी सिंह, (2) भाई कुहरसिंह (केअरसिंह) तथा (3) भाई सुक्खासिंह। ग्रंथ के अध्ययन से पता चलता है कि भाई कुहरसिंह और भाई सुक्खासिंह (दे०) दोनों ही भाई मनीसिंह की शिष्य-परंपरा के कवि हैं। इन दोनों ने इस ग्रंथ का संपादन किया है। दोनों संस्करण मिलते हैं। 'गुरु-विलास' (छठी पादशाही) के निर्माण-काल के संबंध में यह पद प्रमाण है—

सत्रह सै वीते तपै वरष पचहत्तर जान।
सावन मास इक्कीस दिन गयौं सुखद पहिचान॥

इस पद से 'गुरु-विलास' (छठी पादशाही) का रचना-काल 1718 ई० निश्चित-हो जाता है। तब न तो भाई कुहरसिंह रचना करते थे, न ही भाई सुक्खासिंह। दोनों का कालांतर में ही संपादक होना संभव है।

'गुरु-विलास' (दशम पादशाही) नामक एक अन्य काव्य कृति की रचना केशवगढ़ के ग्रंथी भाई सुक्खासिंह (दे०) ने 1797 ई० में भी की है। इसमें दशम पादशाही का विस्तृत विवरण प्राप्त है। इसका रचना-काल निम्नलिखित पद से ज्ञात हो जाता है—

संमत सहस पुराण कहत तब।
अरथ सहित पुन गनस सब।
क्वार वदी पंचम रविवारा।
गुरु-विलास लीनो अवतारा॥

काव्य के लालित्य की दृष्टि से दोनों कृतियाँ सुंदर हैं परंतु सुक्खासिंह-कृत 'गुरु-विलास' (दशम पादशाही) अधिक लालित्यपूर्ण काव्य-कृति है। इसमें गुरु गोविंदसिंह का जीवन-चरित वर्णित है। यह एक पौराणिक प्रभाव-पुष्ट, सुदृढ़, ऐतिहासिक भित्ति पर लिखी गई कृति है। ग्रंथ तीस अध्यायों में विभाजित है। कुल छंद संख्या 4951 है।

गुरु-शबद (पं० प्र०)

ये संतों के कहे हुए उपदेशात्मक पद हैं। 'शबद' का तात्पर्य 'वचन', शिक्षा, उपदेश इत्यादि से है। 'गुरु-शबद' एवं गुरुवाणी एक ही अर्थ के बोधक हैं। 'गुरुवाणी' अथवा 'गुरु शबद' में अमृत का निवास माना जाता है। 'गुरु शबद' को न मानने वाले अंधे एवं बहरे कहे जाते हैं। आदि ग्रंथ (दे०) में 'वाणी गुरु गुरु वाणी विचि अमृतसारे' तथा 'सबदु न जाणहि अन्ने बोले से कितु आए संसारा' जैसी उक्तियाँ प्रमाण हैं। 'गुरु-शबद' के अनुसार जीवित ही मर जाने से परमात्मा का पवित्र नाम हृदय में आ बसता है। गुरु के शब्द से हरिनाम प्राप्त होता है। इस प्रकार पंजाबी साहित्य में 'गुरु-शबद' मुक्तिदाता माना गया है।

गुरु-शोभा (पं० कृ०) [रचना-काल—अठारहवीं शती का प्रथम चरण]

'गुरु-शोभा' गुरु गोविंदसिंह (दे०) के दरबारी कवियों में से एक प्रधान कवि सेनापति की रचना है। 'गुरु-शोभा' की रचना 1701 ई० में आरंभ हुई। कवि का ही यह पद प्रमाण है—

संवत सत्रह सै गए बरस अठावन बीत।
भादव सुद पंद्रह भई रची कथा करि प्रीत॥

इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ 'सिख रेफ़रेंस लायब्रेरी', अमृतसर में प्राप्त हैं। तीसरी प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति कौरसिंह द्वारा 1868 ई० संपादित होकर प्रकाशित हुई थी। 'गुरु शोभा' में गुरु गोविंदसिंह का जीवन-चरित वर्णित है। इसमें दसवें 'गुरु गोविंदसिंह के यशोगान, युद्ध, यात्रा एवं परलोक-यात्रा का वर्णन किया गया है।' इस रचना में प्रबंधात्मकता की दृष्टि से वीर रस प्रधान है। काव्य-भाषा खड़ी बोली शब्द-प्रधान ब्रज है। भाषा में विविधता की अपेक्षा एकरूपता का निर्वाह काव्य में कुशलता से हुआ है।

गुर्जर, वि० सी० (म० ले०) [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

1910 से 1926 ई० तक अर्थात् हरिनारायण आप्टे (दे०) के पर्यवसान से ना० सी० फड़के (दे०) के उदय से पूर्व तक की अवधि में मराठी पाठकों के बीच इनके उपन्यासों का बोलवाला रहा। इन्होंने केवल बँगला उपन्यासों का मराठी में अनुवाद ही नहीं किया है, अपितु बँगला कथा-साहित्य से कोमल भावना-विलास और वातावरण-चित्रण की पद्धति भी ग्रहण की है। मराठी उपन्यास में कोमल भावमयता तथा वर्णन-पद्धति का सौंदर्य लाने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं।

मुख्य ग्रंथ—'कांचनमाला', 'कुलकलंक', 'पतिपत्री', 'पौर्णिमेचा-चंद्र', 'देवता', 'स्वप्नभंग' आदि (सामाजिक उपन्यास); 'जीवन संध्या', 'शशांक' (ऐतिहासिक उपन्यास); 'द्राक्षांचे घोंस' (दे०) (कहानी-संग्रह)।

गुलज़ार-ए-इरम (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1778 ई०]

'गुलज़ार-ए-इरम' मीर हसन (दे०) की लिखी हुई मसनवी है। प्रसिद्ध विद्वान गार्सां द तासी (दे०) तथा ब्लूमहार्ड ने इसे मीर हसन की एक अन्य मसनवी 'सेह्रुलबयान से खल्त-मल्त कर दिया है किंतु वास्तव में यह एक अलग कृति है।

'गुलज़ार-ए-इरम' में शाहमदार के मेले की चूड़ियों का विस्तृत हाल लिखा गया है और 'सेह्रुलबयान' की तरह इसमें भी तत्कालीन रीति-रिवाजों, ज़नाने वस्त्राभूषणों, शादी-ब्याह और नाच-रंग आदि का रोचक वर्णन है। इसमें लखनऊ शहर की हज्व (निंदा) तथा फैज़ाबाद की अत्यंत प्रशंसा की गई है। इसकी भाषा सरल तथा मुहावरेदार लखनवी उर्दू है।

गुलज़ार-ए-नसीम (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1836 ई०]

'गुलज़ार-ए-नसीम' पं० दयाशंकर 'नसीम' (दे०) की अमर कृति है। इस मसनवी (दे०) का विशेष गुण है गागर में सागर का होना। कवि थोड़े में ही बहुत-कुछ कहने में सफल हुआ है। इसमें कला की प्रौढ़ता एवं कुशलता, सुंदर शब्दावली का समन्वय, मुहावरों का रोचक प्रयोग और अलंकारों (विशेषकर यमक एवं श्लेष अलंकार) का सफल तथा स्वाभाविक प्रयोग अत्यंत प्रशंसनीय है। 'गुलज़ार-ए-नसीम' में बाह्य सौंदर्य भरपूर है। साथ ही प्रवाह तथा सहजता के कारण इसमें आंतरिक आकर्षण भी उत्पन्न हो गया है। इसके अतिरिक्त कवि की गंभीर निरीक्षण-शक्ति भी श्लाघनीय है।

'गुलज़ार-ए-नसीम' में अत्यधिक आलंकारिक कला के कारण तड़प, पीड़ा एवं प्रभाव में कुछ कमी-सी अनुभव होती है। 'चकबस्त' (दे०) साहब के कथनानुसार 'नसीम के शेर ज़बान के सुथरे निखार, लफ़्ज़ों के ख़ूबसूरत मेल और समास की चुस्ती के कारण अपने असर में तिलिस्म बने हुए हैं।'

गुलबाँग (उर्दू० कृ०)

'गुलबाँग' बीसवीं शती के प्रख्यात उर्दू कवि तथा आलोचक जनाब रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी (दे०) का काव्य-संग्रह है जो प्रथम बार 1967 में साहित्य कला भवन इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह में 'फ़िराक़' साहब की नज़्मों, ग़ज़लों, रुबाइयों, दोहों तथा फुटकर शेरों का संकलन है। यह संग्रह उनके काव्य का एक महत्वपूर्ण चयन है। स्वयं 'फ़िराक़' साहब के कथनानुसार उनके लोकप्रिय काव्य का लगभग अस्सी प्रतिशत अंश इस में संगृहीत है। उन्होंने लिखा है—'मौजूदा नस्ल (वर्तमान पीढ़ी) या आइंदा नस्लें (भावी पीढ़ियाँ) अगर मेरी किसी एक किताब को मेरी यादगार समझना चाहेंगी तो वह किताब 'गुलबाँग' होगी।

'फ़िराक़' साहब की भाषा सरल, प्रवाहमयी तथा प्रभावपूर्ण है। भारतीयता उनके काव्य की विशेषता है।

गुलबाँग (उर्दू० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

'गुलबाँग' उर्दू के प्रसिद्ध उस्ताद कवि जनाब 'सेहर' इश्काबादी के काव्य-संग्रह का भी नाम है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादन जनाब नंदलाल 'परवाना' ने किया है। प्रस्तुत संग्रह में 128 पृष्ठ हैं। 'गुलबाँग' में 'सेह्‌र' साहब की नज़्में, ग़ज़लें, रूबाइयाँ और क़तआत संगृहीत हैं। इस पुस्तक के पढ़ने से कवि के काव्य-कौशल का प्रमाण मिलता है। भाषा साफ़-सुथरी तथा प्रवाहमयी है।

गुल मुहम्मद *(सिं० ले०)* [जन्म—1811 ई०; मृत्यु—1858 ई०]

गुल मुहम्मद का जन्म सिंध के हाला नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने बचपन से ही अरबी और फ़ारसी भाषाओं का अभ्यास कर इन पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। ये मृत्यु से कुछ महीने पूर्व हज के लिए रवाना हुए थे और बंबई में रहकर इन्होंने अपना पूरा काव्य 'दीवान-गुल' नाम से लिथो के रूप में प्रकाशित कराया था। इनके काव्य का मुख्य विषय है इश्क। इसके सिवाय प्रकृति-चित्रण, नीति-शिक्षा, इस्लाम मज़हब में श्रद्धा आदि विषयों पर भी इन्होंने शेर लिखे हैं। ये पहले सिंधी कवि हैं जिन्होंने 'दीवान' के रूप में अपना काव्य प्रकाशित कराया था। इनकी रचना पर फ़ारसी शायरी का अधिक प्रभाव पड़ा है। फ़ारसी छंदों के नियमों का पालन करने के मोह में पड़ कर इन्होंने कहीं-कहीं शब्दों के रूप बिगाड़ दिए हैं। सिंधी में फ़ारसी शायरी से प्रभावित काव्यधारा का प्रतिपादन करने वाले कवियों में इनका नाम अग्रगण्य है।

गुलराजाणी, जेठमल परसराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु 1948 ई०]

जेठमल का सिंधी गद्य-लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है। 1911 ई० के आस-पास ये अध्यापन कार्य छोड़कर साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय रूप से कूद पड़े थे। भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन में इनका कार्य अविस्मरणीय है। साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने लालचंद अमरदिनोमल के साथ 1914 ई० में 'सिंधी साहित्य सोसाइटी' की स्थापना की थी जिसने सिंधी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया है। 1917 ई० में इन्होंने 'हिंदवासी' नाम से एक समाचार-पत्र शुरू किया था जिसमें अँग्रेज़ सरकार की कटु आलोचना करने के कारण इन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ी थी। 1922 ई० में इन्होंने 'नई सिंधी लायब्रेरी' और 'सस्तो उम्दो साहित्यमाला' का आरंभ किया था जिसके अंतर्गत इन्होंने विश्व-साहित्य की कई उत्तम रचनाओं के सिंधी अनुवाद प्रकाशित किए थे। 1947 ई० में इन्होंने थियोसॉफ़ी और सूफ़ी मत के प्रचारार्थ 'रूह रिहाण' नामक पत्रिका शुरू की थी। विभाजन के पश्चात् शीघ्र ही बंबई में इनका देहांत हो गया था। कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, आलोचना और पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। आध्यात्मिक विषयों पर भी इनकी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ मिलती हैं। इनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—'चमड़ापोश जूं आखाण्यूं' (कहानियाँ), 'शाह जूं आखाण्यूं' (आलोचना), 'सचल सरमस्त' (आलोचना), 'सूफ़ी सगोड़ा' (जीवन-चरित्र)। इनकी भाषा सरल और स्वाभाविक है। इनके कई निबंधों में इनके सफल व्याख्याता और दार्शनिक होने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

गुलाबराय *(हिं० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

इनका जन्म इटावा में हुआ था। इनका मुख्य प्रदेय काव्यशास्त्र, आलोचना तथा निबंधों के क्षेत्र में है। 'नवरस', 'सिद्धांत और अध्ययन', 'काव्य के रूप', 'हिंदी नाट्य-विमर्श' इनकी प्रमुख काव्यशास्त्रीय कृतियाँ हैं जिनके माध्यम से इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समंजन द्वारा हिंदी काव्य के विश्लेषण एवं मूल्यांकन के लिए व्यापक एवं सुदृढ़ आधारभूमि प्रदान की है। व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में इनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं—'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास', 'अध्ययन और आस्वाद' तथा 'हिंदी काव्य विमर्श'। व्याख्यात्मक शैली का आश्रय लेते हुए दोष-दर्शन की अपेक्षा गुणों के संधान की ओर अपनी दृष्टि केंद्रित रखना इनकी आलोचना-शैली की मुख्य विशेषता है। निबंधकार के रूप में इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं—'ठलुआ क्लब', 'मेरी असफलताएँ', 'कुछ उथले, कुछ गहरे' आदि। मनोविश्लेषणशास्त्र का प्रश्रय लेकर वैयक्तिकता का पुट देते हुए हास्य-व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय का साफ़-सुथरा निरूपण इनकी निबंध-शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं। समग्रतः हिंदी गद्य के उन्नायकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

गुलाम अहमद शेख़ *(गु० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

इलियट आदि पश्चिम के काव्य-मनीषियों का गुजराती कविता पर जो प्रभाव पड़ा है, उसके दर्शन गुलाम अहमद शेख़ की कविता में होते हैं। शेख़ प्रधानतः चित्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और चित्रकला का प्रभाव उनके काव्य में भी परिलक्षित होता है। आधुनिकता का समग्र परिचय उनके काव्यों में मिलता है। अवसाद, बिखराव, खंडित व्यक्तित्व, अकेलापन इत्यादि काव्य के नये विषय उनकी कविता में दिखाई देते हैं तो काव्य के बाह्य स्वरूप में भी जो परिवर्तन आ गए हैं—जैसे शब्दों में तोड़-फोड़, नये ढंग की वाक्य-रचना इत्यादि—वे भी उनकी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने 1952 ई० के बाद काव्य-रचना शुरू की है। वे बड़ौदा में महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में चित्रकला के प्राध्यापक हैं।

गुलाम मुहम्मद, सूफ़ी *(कश्० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

: शैशव से ही चिंतनशील और मेधावी। उर्दू और फ़ारसी का अच्छा ज्ञान। कश्मीर के सामाजिक जीवन पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इनकी शैली में हास्य और व्यंग्य है, और ये अपनी लेखनी से पाठक के मर्म पर चोट करते हैं। यह अच्छे गद्यलेखक हैं और इनकी रचनाओं में भाषा का प्रवाह भी ख़ूब है। सूफ़ी साहब को इनके संग्रह 'लूसिमत्य तारख़' (अस्त हुए तारे) पर कल्चरल अकादमी-पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनकी कहानियों का एक और संग्रह 'शीशः त संगिस्तान' (काँच और प्रस्तर भूमि) भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा में फ़ारसीमय शब्दावली का पुट है और इनकी कहानियाँ विचारोत्तेजक हैं।

गुलेरी, चंद्रधर शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1883 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

हिंदी साहित्य के इतिहास में गुलेरी जी कहानीकार, निबंधकार, शोध-विद्वान्, समीक्षक आदि अनेक रूपों में प्रख्यात हैं किंतु इनकी प्रसिद्धि मूलतः कहानी के क्षेत्र में ही है। इन्होंने अपने जीवन-काल में कुल तीन कहानियाँ—'सुखमय जीवन', 'उसने कहा था', तथा 'बुद्धू का काँटा'—लिखी थीं। 'उसने कहा था' की गणना हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में की जाती है। प्रतिपाद्य विषय तथा रचना-शिल्प की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है तथा हिंदी-कहानी के क्षेत्र में इसे मील का पत्थर माना जाता है।

गृहदाह *(बँ० कृ०)*

परंपरा से कुछ हटे होने के कारण 'गृहदाह' शरत् (दे०) का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में शरत् ने दांपत्य जीवन तथा विशेष रूप से यौन समस्या को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। अचला चंचल स्वभाव की युवती है जो अस्थिरता के आवेश से महिम को सदा के लिए अपनाती है। धीरे-धीरे उसे महसूस होने लगता है कि वह महिम के बालसखा, एकाधिकार-वृत्ति वाले सुरेश की प्रभाव-परिधि से बाहर नहीं है। वह सुरेश के साथ अज्ञातवास के बाद पति के शीतल-सुखद आश्रय में लौट आती है। मृणाल में आस्था एवं विश्वास है। वह अस्थिरमना नहीं है, इसलिए मानसिक संघर्ष एवं यातना से वंचित है। महिम गंभीर, अंतर्मुखी एवं क्षमाशील युवक है जो परिस्थितियों के प्रवाह में बहता नहीं है। सुरेश में उत्तेजना, आवेश से कहीं अधिक प्रभुत्व-भावना है। अचला के द्वारा नई उभरती नारी का रेखांकन किया गया है जिसके दांपत्य की नींव विश्वास पर आधारित नहीं है। उसके सहज-अस्थिर स्वभाव एवं आचरण का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। अंततः शरत् नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए सुरेश को दंड देते तथा अचला को महिम के पास पहुँचाते हैं। इस चिपके तथा जोड़े गए आदर्श को छोड़कर यह उपन्यास अपने नाम की सही और सार्थक अभिव्यक्ति है।

गृह-प्रवेश *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1950 ई०]

श्री सुरेश जोशी (दे०) के इस प्रथम कहानी-संग्रह में कहानी-विषयक उनकी नवीन दृष्टि का परिचय मिलता है। संग्रह के प्रारंभ में 'नई कहानी' शीर्षक की लंबी प्रस्तावना में उन्होंने कहानी में घटना-तत्त्व के लोप पर विशेष बल दिया है।

'गृह-प्रवेश' की कहानियों में घटनाएँ नहीं, केवल संकेत हैं। इन कहानियों को मनोवैज्ञानिक कहानियों की संज्ञा दी जा सकती है। कारण, पात्रों की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं के चित्रणांतर्गत मानव-मन का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यौन संबंधों की विवृति में इन पर फ़्रायड का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। प्रतीक-योजना इनकी अन्य उल्लेखनीय विशेषता है।

वस्तुतः 'गृह-प्रवेश' की कहानियाँ कहानी-विषयक परंपरागत मान्यताओं का उच्छेदन कर गुजराती कहानी-साहित्य को नया मोड़ देने वाली प्रयोगात्मक कहानियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह्यसूत्र *(सं० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० 800 तथा पश्चाद्वर्ती काल]

लेखक—विभिन्न धर्मतत्त्ववेत्ता ऋषिजन एवं मनीषी। गृह्यसूत्र कल्पसूत्रों (दे० कल्पसूत्र) के ही अंगरूप हैं। गृह्यसूत्रों में आश्वलायन, शाङ्खायन, कौषीतकि, पारस्कर, बोधायन और भारद्वाज आदि गृह्यसूत्र गृहीत हैं।

गृह्यसूत्रों में गृह में संपन्न होने वाले धार्मिक कृत्यों का वर्णन है। गृह्यसूत्रों में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत, गोदानव्रत, समावर्तन, विवाह और अंत्येष्टि—इन 16 संस्कारों का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त सात प्रकार के गृह्य यज्ञों—पितृयज्ञ, पार्वण यज्ञ, अष्टक यज्ञ, श्रावणी यज्ञ, आश्वयुजी यज्ञ, आग्रहायणी यज्ञ तथा चैत्री यज्ञ का विवेचन भी गृह्यसूत्रों में वर्तमान है।

गृह्यसूत्रों में जिन स्मार्त संस्कारों का वर्णन है वे संस्कार गृहस्थ और उसके परिवार के लोगों के जन्म से मृत्युपर्यंत समय-समय पर की जाने वाली विभिन्न विधियाँ हैं। स्मार्त विधियों के निर्वतन के लिए स्मार्त अग्नि की ही अपेक्षा होती है। इस अग्नि को आवसथ्य या वैवाहिक अग्नि कहते हैं। यह अग्नि श्रौत विधि में अपेक्षित त्रेता अग्नि से भिन्न है। गृह्यसूत्रों में वर्णित गर्भाधान से विवाह तक के 19 संस्कार कायिक हैं। इसके अतिरिक्त 22 संस्कार यज्ञात्मक हैं।

गृह्यसूत्र प्राचीन भारत के गृहस्थ जीवन के संबंध में एक रोचक एवं उपयोगी विवरण प्रस्तुत करते हैं। मानव-सभ्यता के इतिहास में गृह्यसूत्रों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

गेसूदराज़ *(उर्दू० ले०)* [समय—अनुमानतः 1380 ई० —1430 ई०]

नाम—हज़रत सैयद मुहम्मद हुसैनी, प्रसिद्ध नाम—ख़्वाजा बंदानवाज़ 'गेसूदराज़'। ये दक्षिण भारत में सुल्तान फ़िरोज़शाह बहमनी के शासनकाल के कवि थे। आध्यात्मिक विषयों तथा सूफ़ी साहित्य पर इन्होंने अनेक कृतियों का प्रणयन किया। अरबी और फ़ारसी के प्रचार तथा प्रसार में ये सक्रिय योग देते रहे। 'मेराज-उल-आशिक़ीन', 'हिदायतनामा', 'तलावत-उल-वुजूद', 'रिसाला सहबारा' और 'शिकारनामा' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनकी भाषा-शैली प्राचीन ढंग की है। ख़्वाजा नसीर-उद्-दीन चिराग़-देहलवी के मुरीद (शिष्य) और ख़लीफ़ा होने के कारण इनका शिष्यमंडल बहुत बड़ा था। धर्म-प्रचार और समाज-सुधार इनके जीवन के लक्ष्य थे। इनके कतिपय संग्रहों में बीमारियों के नुस्खे भी काव्यबद्ध मिलते हैं। इनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता के तत्त्व प्रचुर मात्रा में हैं। कल्पना तथा भाव के औदात्त्य का इनमें अभाव है।

गोकाक, वि० कृ० *(क० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

विनायक कृष्ण गोकाक कन्नड के प्रतिभाधनी साहित्यकारों में से हैं। इनका जन्म धारवाड़ ज़िले के अंतर्गत सवणूर के एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। धारवाड़ तथा पूना में उच्च शिक्षा प्राप्त कर ये अँग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य के विशेष अध्ययन के लिए इंगलैंड गए। ऑक्सफ़ोर्ड में इनकी प्रतिभा खूब चमकी। लौटने पर आरंभ में बंबई, गुजरात, धारवाड़ आदि में अँग्रेज़ी के प्राध्यापक और बाद में बँगलौर विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। ये कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रहे। भारत सरकार की ओर से इन्हें 'पद्मश्री' से अलंकृत किया गया था।

ये कर्णाटक के महान् कवि बेंद्रेजी (दे०) के शिष्यों में से एक हैं। उनके द्वारा स्थापित 'गेळेयर गुंपु' के सक्रिय सदस्यों में ये भी एक हैं। 'कलोपासक', 'पयण', 'समुद्रगीतगळु', 'त्रिविक्रमर आकाशगंगे', 'नव्यकवितेगळु', 'द्यावापृथिवी' (दे०) आदि इनके उल्लेखनीय कविता-संकलन हैं। इनकी कविताओं पर अरविंद-दर्शन का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। मनुष्य की पहुँच से परे प्रकृति के विराट् सौंदर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति इनकी कविताओं की विशेषता है। 'शेले' इस दिशा की एक उल्लेखनीय कविता है। ये रहस्यवादी कवि हैं; 'हिगु' इनकी एक सुंदर रहस्यवादी कविता है। 'इल्लिम न्याय', 'नौकायंत्र' आदि कविताओं में सामाजिक विषय तथा यंत्रदारुणता आदि की यथार्थ विवृति है। 'समुद्रगीतगळु' में समुद्र तथा उसके चतुर्दिक् की प्रकृति की भंगिमाओं का विराट् चित्रण है। ये कन्नड में प्रयोगवाद या 'नव्य कविते' के प्रतिष्ठापकों में से हैं। 1950 ई० में इन्होंने बंबई में संपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन की कविगोष्ठी के अध्यक्ष-पद से प्रयोगवाद की आवश्यकता पर ज़ोरदार भाषण दिया था। 'नव्यकवितेगळु' में इनकी 'क्लोरोफ़ारम्' आदि सफल प्रयोगवादी कविताएँ हैं। 'द्यावापृथिवी' इनकी श्रेष्ठ कृति है जिस पर इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। 'नीरद' तथा 'इळागीत' नामक दो लंबी कविताएँ इसमें हैं। विषम लय, बिंबनिष्ठता आदि से भरपूर इनमें भूमि एवं आकाश की भव्यता का वर्णन है। ये एक सफल उपन्यासकार, नाटककार तथा आलोचक भी हैं। 'समरसवेजीवन' इनका 1500 पृष्ठ का बृहत् उपन्यास है जिसकी पटभूमि देश-विदेश तक छाई हुई है। अरविंद के समन्वय-दर्शन का संदेश इसमें है। 'जननायक', 'युगांतर' आदि इनके श्रेष्ठ नाटक हैं। 'जननायक' में एक नेता के कौटुंबिक तथा लोक-जीवन के द्वंद्व का चित्रण है। 'युगांतर' में साम्यवाद तथा अध्यात्मवाद के समन्वय का संदेश है। कविता में इन्हें भाषा-सिद्धि उतनी ही मिली है जितनी कि बेंद्रे (दे०), कुवेंपु (दे०) आदि को मिली है। ये एक सफल यात्रा-संस्मरण-लेखक भी हैं। 'इदिन काव्यदगोत्तु गुरिगळु', 'नव्यते हागू काव्य-जीवन', 'साहित्य दल्लि प्रगति', 'कविकाव्य महोगति' आदि में इनके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबंध हैं। समन्वय तथा विराट् दृष्टि आपके द्वारा प्रतिष्ठापित मूल्य हैं।

गोकुल *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०)-कृत 'प्रेम-संन्यास' नाटक का पात्र है। विदूषक-हत्या-षड्यंत्रों के घटाटोप जमघट ने कथा को बोझिल ही नहीं, बल्कि करुण रस से ओत-प्रोत कर दिया है। गोकुल अपनी भुलक्कड़ प्रवृत्ति के कारण अपनी कर्कशा पत्नी मथुरा के व्यवहार से त्रस्त रहता है, परंतु अपने आचार-व्यवहार से वह जहाँ अपने पारिवारिक जीवन को सहज-सुचारु रूप से चलाता है वहाँ अपने कार्य-कलापों से हत्या-षड्यंत्रों से बोझिल कथा में हास्यास्पद घटना-प्रसंगों से हल्का कर नाटकीय संघर्ष का निर्माण करता है। मंच पर गोकुल की उपस्थिति मात्र दर्शकों के हास्य की अपूर्व क्षमता रखती है। कृपण श्वसुर की दानशीलता का वर्णन वह इन शब्दों में करता है—

"'विजय दशमी' (दशहरे) के अवसर पर जब हम सोना (शम्मी वृक्ष की पत्तियाँ) लेने जाते हैं तो उसके हाथ से वह भी नहीं छूटती। कोई उन्हें संदेशा ही कहने को कह दे तो उनमें से भी चार शब्द तो वे दलाली के अपने पास रख ही लेंगे···।"

गोकुल की भुलक्कड़ प्रवृत्ति एवं मथुरा की कलहप्रियता ने नाटकीय संघर्ष को गति प्रदान की है। स्फुट हास्य-प्रसंगों के माध्यम से गोकुल का चारित्रिक विकास यथेष्ट स्पष्ट रूप से हुआ है।

संक्षेप में, गोकुल-मथुरा के अनमेल विवाह के माध्यम से नाटककार ने जिन अवांतर घटना-प्रसंगों की संयोजना की है, उनका मुख्य उद्देश्य विश्रृंखलित होती प्रधान कथा को सूत्रबद्ध करना रहा है। गोकुल अपनी हास्यास्पद क्रियाओं से हत्या, आत्म-हत्याओं के क्रूर घटना-प्रसंगों से सहृदय जनमानस पर पड़े प्रभावों को कम करता है। गोकुल के चरित्र-निरूपण में नाटककार ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है।

गोकुल-निर्गमन *(क० कृ०)*

यह कन्नड के विख्यात कवि श्री पु० ति० नरसिंहाचार्य जी (दे०) का गीतिनाटक है। इसमें श्रीकृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा जाने का प्रसंग चित्रित है। श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद विरहिणी व्रजांगनाओं की हृदयवेदना का चित्रण काफ़ी विस्तार से हुआ है, किंतु कृष्ण के दिल पर क्या बीती इसका उतना चित्रण नहीं हुआ है। नरसिंहाचार्य जी ने इस कमी को पूरा किया है। श्रीकृष्ण के संतत साहचर्य के, आत्मीय वस्तुओं के, प्रियजनों के त्याग में जो मर्मवेदना है उसका अत्यंत मार्मिक चित्रण यहाँ हुआ है। कृष्ण राजनीतिक कारणों से राजनीति के लिए ही मथुरा जा रहे हैं। वहाँ उन्हें मुरलीवादन के लिए फ़ुर्सत कहाँ! अतः मुरली के रूप में अपना हृदय भी यहीं छोड़कर जाते हैं। मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। राधा आदि गोपियों की वेदना की दारुणता तो अकल्पनीय है। कृष्ण के सान्निध्य में उनका हर्षोल्लास, वियोग में विषाद की तीव्रता आदि की अतिशय कलात्मक व्यंजना इसमें है। गीत संगीत के रागतालों में समन्वित हैं। कन्नड की अमर कृतियों में 'गोकुल-निर्गमन' का नाम उल्लेखनीय है।

गोखले, अरविंद *(म० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

सत्रह वर्ष की अल्प वय से कहानी लिखना आरंभ करने वाले देश-विदेश में पुरस्कृत श्री गोखले तब से सतत साहित्य-साधना करते आ रहे हैं और अब तक इसके लगभग 14 कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनका कथा-संसार अत्यंत विस्तृत है। सामयिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों—स्वतंत्रता-आंदोलन, द्वितीय महायुद्ध, भारत छोड़ो आंदोलन, देश-विभाजन, सांप्रदायिक दंगों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेकारी, महँगाई आदि पर लिखने के अतिरिक्त इन्होंने स्त्री जाति एवं समाज के निम्नतम वर्गों पर भी बड़ी तड़प के साथ लिखा है। जीवन के मार्मिक प्रसंगों का भावपूर्ण चित्रण, और मानव के अंतरंग का सूक्ष्म अंकन करने वाले श्री गोखले अपनी कहानियों में प्रगतिशीलता और प्रयोगशीलता के लिए विख्यात हैं।

प्रमुख रचनाएँ—'नजराणा', 'मिथिला', 'उन्मेष', 'माहेर', 'अनामिका' आदि।

गोडबोले, परशुराम तात्या *(म० ले०)* [जन्म—1799 ई०; मृत्यु—1874 ई०]

ये संक्रांतिकाल के आंग्लविद्या-विभूषित पंडित कवि हैं। ये श्रेष्ठ कवि, छंदःशास्त्रकार तथा सफल अनुवादक थे। इन्होंने 'सर्वसंग्रह' नामक मासिक पत्र प्रारंभ कर कुछ वर्षों तक उसमें प्राचीन मराठी कविता प्रकाशित कराई थी। इन्होंने 'ज्ञानेश्वर' (दे०) आदि प्राचीन कवियों के काव्य-समुद्र का मंथन कर काव्यामृत नवनीत निकाला था। इस 'नवनीत ग्रंथ' में संत, पंडित तथा शाहीर कवियों के काव्य के उत्कृष्ट अंगों का समावेश किया गया था। इस ग्रंथ के लगभग 20 संस्करण निकले थे, जिससे इसकी श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है।

इन्होंने छंदःशास्त्र पर 'वृत्तदर्पण' नामक ग्रंथ लिखकर उदीयमान मराठी कवियों का उपकार किया था। कवियों में पंडित कवि मोरोपंत इन्हें विशेष प्रिय थे। इन्होंने मोरोपंत के काव्यादर्श को अपनाकर 'नामार्थदीपिका', 'कादम्बरीसार', 'बालबोधामृत' आदि काव्य-ग्रंथों की रचना की थी। मोरोपंत की 'केकावली' रचना पर इन्होंने 'केकादर्श' नाम से सुंदर टीका लिखी।

इन्होंने अनेक संस्कृत नाटकों का मराठी में सफल अनुवाद कर मराठी साहित्य को समृद्ध तथा विविध गुण-संपन्न बनाया है। इन्होंने 'वेणीसंहार' (दे०) (1857) 'उत्तररामचरित' (दे०) (1859), 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०) (1861), 'नागानंद' (दे०) (1865), 'मृच्छकटिक' (दे०) (1862), 'पार्वती परिणय' (1872) आदि संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया था।

पंडित काव्य-परंपरा को आधुनिक काल तक प्रवाहित रखने का श्रेय परशुराम तात्या गोडबोले को है। कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (दे०) ने इनकी प्रशंसा की है। ये वृत्ति से रसिक होने के कारण मित्र-मंडली में रसिक तात्या नाम से ख्यात थे।

गोदादेवी *(तें० पा०)*

यह विजयनगर के प्रतापी सम्राट श्री कृष्णदेवरायलु (दे०) के सुप्रसिद्ध प्रबंधकाव्य 'आमुक्तमालयदा' (दे०) (सोलहवीं शती) की एक प्रधान पात्र है। यह भगवान् विष्णु के लिए बनाई गई मालाओं को पहले स्वयं पहनकर बाद में विष्णु को अर्पित करती थी। इसका नाम 'आमुक्तमालयदा' भी है। यह विष्णुचित्तुडु नामक एक भक्त-श्रेष्ठ की पुत्री है और लक्ष्मी का अवतार कही गई है। श्रीरंगेश्वर के रूप में विष्णु में यह गाढ़रूप से अनुरक्त होती है। पूर्ण-यौवना होकर यह प्रभु की सन्निधि में भेजी जाने वाली मालाओं को एकांत में धारण करके, कुएँ के जल में अपने सौंदर्य का अवलोकन करती है और श्रीरंगेश्वर से रूठती तथा मान करती हुई अपने प्रेम को सफल बनाने की चुनौती देती है। जब विरह असह्य होता है तब उनको उपालंभ भी देती है। अंत में यह श्रीरंगेश्वर को ही पति के रूप में पाकर उनमें एकरूप हो जाती है।

गोदान *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

यह प्रेमचंद (दे०) का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है जिसमें उन्होंने होरी (दे०) के माध्यम से भारतीय कृषक-जीवन का अत्यंत सशक्त चित्र प्रस्तुत किया है। भारतीय किसान अपने परिवार की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए ज़मींदारों, सूदखोरों के शोषण की चक्की में पिसता हुआ किस प्रकार अंततः अपने जीवन की बलि दे देता है इसका जैसा जीता-जागता चित्रण इस उपन्यास में किया गया है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। लेखक ने ग्रामीण जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ मालती, मेहता तथा उनके इष्ट मित्रों के माध्यम से नागरिक जीवन के विलास-वैभवपूर्ण जीवन को भी इस दृष्टि से उजागर किया है कि गाँव में रहने वाले व्यक्तियों की संघर्ष-गाथा का पूरा चित्र उभर कर आ सके। इस उपन्यास में पश्चिम में बढ़ते हुए प्रभाव तथा उसके दुर्बल पक्ष को रूपायित करने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताओं सेवा, त्याग आदि को भी अत्यंत सहज रीति से उपस्थित किया गया है। कतिपय विद्वानों ने ग्रामीण तथा नागरिक जीवन के कथासूत्रों के पारस्परिक संबंधों की क्षीणता की चर्चा करते हुए इसे औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से अत्यंत शिथिल कृति माना है किंतु वस्तुस्थिति यह है कि लेखक ने किसी परिवार अथवा वर्ग-विशेष को आधार बनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने उपन्यास की सृष्टि करने के स्थान पर समूचे राष्ट्र की समस्याओं तथा गतिविधियों को दृष्टिपथ में रखकर इस उपन्यास का प्रणयन किया है; और चूँकि राष्ट्र का जीवन पारिवारिक जीवन के समान सुगठित नहीं हुआ करता, फलतः इस उपन्यास के कथानक में भी कृत्रिम सुगठितता के स्थान पर एक स्वाभाविक बिखराव आ गया है। यह बिखराव भी वस्तुतः बिखराव न होकर पूरे परिदृश्य को प्रस्तुत करने का एक सफल माध्यम है।

होरी, धनिया (दे०), गोबर, मालती, मेहता आदि अजर-अमर पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद के जीवन-अनुभवों को अत्यंत कलात्मक ढंग से रूपायित करने वाला यह उपन्यास अपने रोचक, चुस्त तथा नाटकीय कथोपकथनों, प्रवाहपूर्ण भाषा-शैली तथा अत्यंत हृदयद्रावक अंत के लिए भी प्रख्यात है। समग्रतः यह उपन्यास प्रेमचंद तथा प्रेमचंदयुगीन भारत को जानने के लिए एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ का कार्य करता है।

गोन गन्ना रेड्डी *(ते० कृ० एवं पा०)*

यह काकतियों के समय (तेरहवीं-चौदहवीं शती) की कहानी के आधार पर श्री अडवि बापिराजु (दे०) द्वारा रचे गए प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गोन गन्ना रेड्डी' का नायक है। गोन गन्ना रेड्डी काकतीय साम्राज्य का विख्यात वीर है।

गोपबंधु (उ० ले०) [जन्म—1871 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

उत्कलमणि गोपबंधु उड़िया-प्राण के प्रतिनिधि व विराट् भारत के प्रतीक हैं। गोपबंधु गांधी जी के सच्चे अनुयायी और स्वतंत्रता-संग्राम के जननायक थे। 1921 ई० के प्रारंभ में इन्होंने बकुल-बन-बिद्यालय को इंडियन नेशनल कांग्रेस में मिला दिया। गांधीजी द्वारा परिचालित असहयोग आंदोलन में इन्होंने सक्रिय भाग ही नहीं लिया, नवयुवकों को इस महायज्ञ में उत्सर्गित हो जाने का आह्वान भी दिया। इस प्रकार महत्-प्राण गोपबंधु की जातीय भावना विराट् भारतीयता में पर्यवसित हो गई।

गोपबंधु के लिए साहित्य जन-सेवा व ईश्वर-भक्ति की अभिव्यक्ति का साधन मात्र था। अपने को महाएक में अंतर्लीन कर जातीय अंतराल से महामानव को वे देख सके थे। जनसेवा की आंतरिक इच्छा, धर्मनिष्ठा, उनके साहित्य की तीन आधारभूत वृत्तियाँ हैं। बिहार की हज़ारीबाग जेल में ही (1923-24 ई०) में इन्होंने 'काराकविता', 'बंदीर आत्मकथा', 'धर्मपद', (दे०), 'गो-माहात्म्य' आदि पुस्तकों की रचना की थी। इन सब काव्यों में उग्रजातीय भाव, विदेशी शासन के प्रति तीव्र विरोध, अपने अधःपतन के प्रति क्षोभ व देश के लिए उत्सर्गित हो जाने की प्रबल आकांक्षा आदि भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। शैली सहज, सरल, सावलील एवं मूर्तिविधायिनी है।

गोपबंधु ने 'समाज-पत्रिका' द्वारा उड़िया गद्य का विकास किया। बकुल-बन-विद्यालय स्थापित कर जातीय व राष्ट्रीय भावना का प्रसार किया। गणबंधु गोपबंधु का जीवनादर्श उड़िया जीवन को सदा अनुप्राणित करता रहेगा।

गोपाळ *(उ० पा०)*

गोपाळ कविचंद्र काळिचरण पटनायक (दे०) के सामाजिक नाटक 'परिवर्तन' (दे०) का प्रमुख पात्र है। वह मातृपितृहीन है। इसे ख्याति-संपन्न गौर बाबू आश्रय देते हैं किंतु गोपाळ अधिक समय तक गौर बाबू के पास नहीं रहता। वकालत से इसे प्रचुर अर्थलाभ होता है। अपना घर, अपनी शान-शौकत। शारीरिक अस्वस्थता के लिए ब्रांडी का उपयोग प्रारंभ करता है। किंतु इसके खल-बंधु राजू की संगत से गोपाळ बाबू के सोने का संसार नष्ट हो जाता है। शराब एवं वेश्या का आज इसके जीवन पर प्रमुख अधिकार है। अपनी सुंदरी पत्नी आरती के हाथ से चूड़ी खोल लेने में भी शिक्षित गोपाळ बाबू को तनिक संकोच नहीं होता। बंधुता की आड़ में राजू विष-वृक्ष का रोपण करता है। किंतु ठीक समय पर गोपाळ बाबू की आँखें खुल जाती हैं। आरती से छीन कर ली गई चूड़ियाँ लेकर यह पुनः आरती के पास वापस आ जाता है।

गोपाळ कृष्ण पदावली *(उ० कृ०)*

यह शुद्धाभक्ति के अन्यतम कवि गोपाळ कृष्ण पटनायक (दे०) के पदों का संग्रह है। इसकी सरल, तरल ललित, कोमल और लोक-प्रचलित भाषा के कारण ब्रज-रस का आस्वादन सर्वश्रेणी के पाठकों के लिए संभव हो सका है। कवि की राधाकृष्ण-प्रेम-संबंधी गहन गंभीर अनुभूति के कारण ही इसकी अभिव्यक्ति भी रसमय, प्रांजल एवं मनोज्ञ है। इसमें राग, ताल और लय का पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास हुआ है। इसमें कवि की विश्वजनीन कल्पना, भगवत्-निवेदन, गहन अनुभूति, आशा, निराशा का प्रांजल प्रकाशन हुआ है। राधाकृष्ण-प्रेम-चित्र मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक है। विशेषता यह है कि राधाकृष्ण, गोप-गोपियों ने उड़िया रूप धारण किया है और वहाँ भी प्रकृति एवं जन-जीवन से तदाकार हो गए हैं। इसका बालवर्णन सूर (दे०) के समान अनुपम है।

गोपाल कृष्णमूर्ति, श्रीपाद *(ते० ले०)* [जन्म —1908 ई०]

कामेश्वरराव और जोगम्मा के पुत्र गोपाल कृष्णमूर्ति का जन्म 1908 ई० में हुआ था। इनके एक भाई पिनाकपाणि कर्णाटक संगीत के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं गायक हैं। बी० ए० (राजमहेन्द्री), बी० एस-सी० (मद्रास विश्वविद्यालय), एम० ए० (फ़िज़िक्स) (तिरुचिरापल्ली), पी-एच० डी० (आंध्र विश्वविद्यालय) कर 1936 ई० से 1940 ई० तक ये आंध्र विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे। उसके बाद मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में फ़िज़िक्स के आचार्य रहे। तदनंतर आंध्र में कई सरकारी कालेजों के प्रिंसिपल रहकर 1963 ई० में इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। इन्होंने प्रो० रंगनाथरावु के तत्त्वावधान में 'ऐटोमिक स्पैक्ट्रा' पर शोध-कार्य किया तथा 'ऐटोमिक्स' और 'मॉलीक्यूलर स्पैक्ट्रा' पर वैज्ञानिक पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित कराए थे। पदार्थ-विज्ञान में शोधकार्य का निर्देशन भी इन्होंने किया है।

'तेलुगु एकांकी साहित्यमु' (5 लेख), 'स्त्रील साहित्यमु' (8 लेख), 'अर्द्धशती आंध्र-कविता' (18 लेख) पर इनके लेख 'भारती' (मद्रास से निकलने वाले मासिक पत्र) में प्रकाशित हुए हैं। इनके 'नेटि श्रेष्ठ एकांकिकलु', 'ग्रामीण गीत तालु', 'स्त्रील रामायण पाटलु', 'स्त्रील पुराण पाटलु' आदि संकलन-ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। संगीत से संबंध रखने वाले कुछ लेख भी इन्होंने लिखे हैं। इनकी विज्ञान से संबंधित कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इनमें 'विज्ञान वीथुलु' (चार खंड), 'वैज्ञानिक गाथाशती', 'आइन्स्टीन सापेक्षितावादमु', 'मनाभूमि-आकाश', 'राकेट-आकाश', 'गिमनमुवज्ञान-साधना' आदि उल्लेखनीय हैं।

अवकाश ग्रहण करने के बाद, ये आध्यात्मिक विषयों में रुचि लेने लग गए हैं। 'अम्मां और उनके वाक्य', 'अर्कपुरी की विशेषताएँ', 'सत्यसाई स्वामी की वाक्य-विभूति' इनके संकलन ग्रंथ हैं। आजकल ये 'मातृश्री' (अँग्रेजी) का संपादन कार्य कर रहे हैं। 'अम्मां का बताया नया मार्ग' इनकी मौलिक कृति है। 'जिज्ञासा' शीर्षक से इनके अध्यात्मपरक 18 लेख धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए हैं।

गोपालकृष्ण राव *(क० ले०)* [समय—1906-1967 ई०]

कन्नड के श्रेष्ठ कहानीकार श्री गोपालकृष्ण राव का जन्म 1906 ई० में बेंगलूर के समीप कोडगहल्ली में हुआ। मास्तिजी (दे०) से प्रेरणा पाकर आप कहानी-क्षेत्र में उतरे। आपकी प्रसिद्ध कहानियों में 'बंगारर डाबू' (सोने की करघी), 'कोंदवल मारु ?' (किसने मारा ?); 'मागडी रंग' आदि मुख्य हैं। आप मानवतावादी कहानीकार हैं। इन कहानियों में आपने मानव की सुप्त मानवता को जगाकर दिखाया है तो कहीं-कहीं सामाजिक वैषम्य पर भी कटाक्ष किया है। 'केंसिगटन पार्क' आपकी एक विशिष्ट कृति है जिसमें एक पार्क से स्फूर्त कहानी है, कविता है, निबंध है और दृश्य हैं। चरित्र-चित्रण में आपको अधिक सफलता मिली है। 'गीतगळु' में आपकी कविताएँ हैं।

गोपालदान *(हिं० ले०)* [जन्म—1815 ई०; मृत्यु—1888 ई०]

गोपालदान का जन्म सीकर के उदयपुरा ग्राम में खुमान के घर हुआ था। इन्होंने 'लावारासा' (कूर्मवंश-यशपुराण), 'शिखरवंशोत्पत्ति' (पीठीवार्तिक) एवं 'कृष्ण-विलास' नामक ग्रंथों तथा अनेक फुटकर कविताओं की रचना की है। इन ग्रंथों में गोपालदान ने बोलचाल की राजस्थानी का ऐसा रूप अपनाया है जो व्रजभाषा के बहुत निकट है। 'लावारासा' में वीर रस का अच्छा परिपाक मिलता है।

गोपाल बापा *(गु० पा०)*

श्री मानुभाई पंचोली 'दर्शक' (दे०)-रचित गुजराती उपन्यास 'झेर तो पीधां छे जाणी जाणी' (दे०) (भाग 1 और 2) के प्रमुख महत्वपूर्ण पुरुष पात्र गोपालदास परीख उपन्यास में गोपाल बापा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

दो महायुद्धों के बीच से भारतीय जीवन की विडंबनाओं का चित्रांकन करने वाले इस मधुर किंतु विषादांत उपन्यास के प्रथम 88 पृष्ठों तक ही विद्यमान गोपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापा का व्यक्तित्व इतना प्रखर है कि शेष उपन्यास की घटनाएँ, पात्र एवं विचार-प्रवाह इनसे प्रभावित हैं।

झरिया (बिहार) की कोयले की खानों के व्यापार में इन्होंने प्रपीड़ित मानव-जीवन का साक्षात्कार किया और विरक्त होकर अपनी जन्मभूमि सौराष्ट्र में द्वारिका के मार्ग पर तुलसी-श्याम के निकट शिंगोडो नदी के तट पर एक आश्रम स्थापित कर आजीवन मानव-सेवा का व्रत धारण कर लिया। पुत्री रोहिणी और अपने मित्र के पुत्र सत्यकाम को आश्रम में अपने पास रख कर इन्होंने उन दोनों में मानव-सेवा, जीवन-मूल्यों के प्रति गहरी आस्था के ऐसे गहरे संस्कार डाल दिए कि विकटतम परिस्थितियों में भी वे इनका त्याग न कर सकें। प्राचीन भारतीय ऋषि व उनके गुरुकुल की कल्पना गोपाल बापा और उनके आश्रम में साकार हुई है। गांधीवादी सेवाव्रती व मानव-कल्याण के चिर-आकांक्षी गोपाल बापा में आश्रम-संस्कृति व गांधी-विचार का मणिकांचन योग पाया जाता है।

अपने व अपने अंतेवासियों के आचरण से मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले व जीवन के प्रति गहरी आस्था वाले गृहस्थ-ऋषि गोपाल बापा गुजराती-साहित्य के एक अमर पात्र हैं।

गोपालरेड्डी, बेजवाडा *(ते० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

ये राजनीतिक नेता, बहुभाषाविद् एवं साहित्यकार हैं। इन्होंने रवींद्रनाथ (दे०) के समय में शांतिनिकेतन में शिक्षा पाई थी और स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था। इन्होंने रवींद्रनाथ की अनेक रचनाओं का सुंदर अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत किया है तथा कई स्वतंत्र रचनाएँ भी की हैं। 'चित्रागंदा', 'गीतांजलि' (दे०) आदि इनके प्रमुख अनुवाद हैं।

ये आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के तथा तेलुगु भाषा समिति के अध्यक्ष भी हैं। स्वयं साहित्य-रचना करने के साथ-साथ अनेक साहित्यकारों को इन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया है।

गोपालसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

यद्यपि डाक्टर गोपालसिंह ने कविता, कहानी, आलोचना, अनुवाद, कोश-रचना आदि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया है परंतु आपको विशेष सफलता आलोचना के क्षेत्र में प्राप्त हुई। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के अँग्रेज़ी अनुवाद से आपको अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। पंजाबी के अन्य प्रारंभिक प्राध्यापकों के समान आपने भी उच्च कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकों के संकलन-संपादन के काम में भी रुचि ली। 'पंजाबी साहित्य का इतिहास' लिखकर इस क्षेत्र में आपने प्रथम बार एक प्रणालीबद्ध कृति प्रस्तुत करने का यत्न किया। यद्यपि वहाँ भी कहीं-कहीं आप निजी भावुकता से अभिभूत होकर तथ्यों पर अपनी रुचि को प्रधान स्थान दे जाते हैं पर कुल मिलाकर वह रचना विषयपरक ही है। 'झनां', 'हनेरे सवेर' और 'अनहद-नाद' (दे०) आपकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। 'अनहद-नाद' पर आपको साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है। 'रोमांचक पंजाबी कवि' (दे०), 'साहित्त दी परख', 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यिक विशेषता' आदि आपकी आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

गोपीचंदुडु *(ते० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

ये तेलुगु के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार एवं कहानी-लेखक हैं। अपने चारों ओर के प्रबल वातावरण के सामने मनुष्य को झुकना ही पड़ता है—इस प्रकार की भावना इनकी अनेक रचनाओं में व्यक्त होती है। ये राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय रहे हैं। इस कारण इनके भावों एवं आदर्शों पर राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है।

'असमर्थुनि जीवितयात्रा' (दे०) और 'परिवर्तनमु' इनके प्रमुख उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कथा-संकलन भी प्रकाशित हुए हैं। इनके निबंधों में दार्शनिकता का पुट रहता है। इन्होंने कई जीवन-परिचय एवं चलचित्रों के संवाद भी लिखे हैं।

'असमर्थुनि जीवितयात्रा' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असफल रहकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति से द्वेष बढ़ाकर अंततः नष्ट होने वाले एक असमर्थ का कारुणिक किंतु पूर्णतः मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इनका गद्य अत्यंत सरल किंतु तीक्ष्ण भावों को अभिव्यक्त करने वाला है। अप्रिय किंतु बहुमूल्य हित के संकेत तथा न्यूनतम शब्दावली इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

गोपीचाँद *(बँ० पा०)*

गोपीचाँद मयनामती अथवा 'गोपीचाँद-गीतों'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मूल आख्यायिका का प्रधान पात्र है (नाथ साहित्य) अर्थात् इन गीतों का नायक गोपीचाँद ही है। गोपीचाँद की माता मयनामती के गुरु सिद्धाचार्य हाड़िपा हीनकार्य-रत हैं। नीच जाति से दीक्षा लेने के प्रश्न पर गोपीचाँद ने सहज ही असम्मति प्रकट की। उसके उपरांत सिद्धाइ की सहायता से उसे दीक्षा लेने के लिए सहमत किया जाता है। गुरु के साथ उसके जीवन के नाना स्तरों की अभिव्यक्ति में उस युग के सामाजिक जीवन की प्रतिच्छवि दिखाई पड़ती है। इस काव्य में गोपीचाँद का रूप वीर-साहसी का नहीं है, फिर भी, कभी माता के द्वारा या फिर वधू के द्वारा प्ररोचित होने पर उसने दुःसाहसिक कार्य कर दिखाया है। गोपीचाँद के चरित्र में स्वकीयता का अभाव खटकता है, अधिकतर वह कवि के हाथ का खिलौना-सा दिखाई पड़ता है। तो भी, सुंदरी वधू को छोड़कर संन्यास लेने पर पाठक व्याकुल हो उठता है। जीवन की विचित्र अनुभूतियों के साथ गोपीचाँद के क्रमोत्तरण का चित्र लगभग अभिन्न है। इसीलिए गोपीचाँद नाथ-साहित्य के सार्थक मार्मिक चरित्र के रूप में सुव्यक्त है।

गोपीचाँदेर गान (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—अठारहवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध]

यह दुर्लभ मल्लिक की रचना है और मयनामती अथवा गोपीचाँदेर गान के पहले कवि संभवतः दुर्लभ मल्लिक ही हैं। कहानी की प्राचीनता का निदर्शन जायसी (दे०) के 'पद्मावत' (दे०) और गुजरात तथा पंजाब की लोकगाथाओं में भी मिलता है। दुर्लभ मल्लिक ने मानिकचंद्र के साथ मयनामती के विवाह एवं उसके बाद मयनामती के अलौकिकत्व, पुत्र गोपीचाँद के संन्यास धर्म में दीक्षित होने, गुरु हाड़िपा एवं कानुपा के ज्ञानतंत्र की वर्णना, अदुना-पदुना के मर्मदाह आदि का सविस्तर, दृढ़-बद्ध कहानी के आधार पर, रुचिसम्मत ढंग से वर्णन किया है। इसमें गोरक्ष-पंथ के साधना-तत्त्व का भी विस्तार से परिचय मिलता है। (दे० मयनामतीर गान)।

गोपीनाथ कविराज (*बँ० ले०*) [जन्म—1857 ई०]

भारतवर्ष के वर्तमान विद्वत् समाज में महा-महोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज एक पुण्यनाम है। अपना समग्र जीवन उन्होंने ज्ञान की तपस्या में अर्पित कर दिया। भारतीय तंत्र साधना के मर्म-विचारक एवं दर्शन के व्याख्याता के रूप में उनकी अपार प्रसिद्धि है। उनके द्वारा रचित भारतीय साधना के विलक्षण दिक्-निर्देशक ग्रंथ इस युग की प्रतिभा का एक विस्मयकारी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अँग्रेज़ी, हिंदी एवं बँगला रचना में वे सिद्धहस्त थे। अध्यात्म-जगत् के बहुत-से सिद्ध-महात्माओं का उन्होंने सस्नेह सान्निध्य प्राप्त किया था। बँगला में लिखित ग्रंथों में 'अखंड-महायोग', 'साधुदर्शन ओ सत्प्रसंग' (दो खंड), 'स्वसंवेदन', 'तंत्र ओ आगम शास्त्रेर दिग्दर्शन' आदि उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। हिंदी में उनके प्रख्यात ग्रंथ का नाम है 'तांत्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि'।

गोम्मटस्तुति (*क० कृ०*)

इसके रचयिता हैं बोप्पण पंडित। इनका समय 1180 ई० माना जाता है। यह जैन धर्मावलंबी थे। इसमें श्रवणबेलगोल की विश्वविख्यात बाहुबली की मूर्ति की स्तुति है। यह श्रवणबेलगोल के 234 शिलालेखों में उत्कीर्ण है। इसमें सत्ताईस छंद हैं। भक्तिभाव से ओतप्रोत ये स्तोत्र बहुत ही सुंदर हैं। यह कवि के द्वारा बाहुबली के चरणों में अर्पित भक्ति-कुसुमांजलि है। आरंभ में बाहुबली-कथा-परिचय दिया गया है। प्रतिमायोग में स्थित उस मूर्ति के महत्व को कवि ने अपनी आँखों में भर लिया है और यह गीति-मालिका लिखी है। कर्णाटक-शिल्पों से प्रेरित हो काव्य-रचना करने वालों में बोप्पण सर्वप्रथम हैं। गोम्मटेश्वर के दर्शन से हृदय में उदित होने वाली उदात्त भावनाएँ अत्यंत सजीव ढंग से यहाँ बिंबित हुई हैं। कवि के अनुसार गोम्मटेश्वर की मूर्ति में सौंदर्य है, औन्नत्य है और आतिशय्य है। भाषा प्राचीन कन्नड है, शैली सहज एवं प्रासादिक है। कन्नड के स्तोत्र-साहित्य में इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

गोरखनाथ (*हिं० ले०*) [समय—चौदहवीं-पंद्रहवीं शती]

नाथ-संप्रदाय की गुरु-शिष्य-परंपरा में गोरखनाथ का विशेष स्थान है। इनकी रचनाएँ गद्य और पद्य दोनों रूपों में हैं जो कि 1400 ई० के आसपास लिखी गई थीं। इनकी उपलब्ध पुस्तकें ये हैं—'गोरख-गणेश गोष्ठी', 'महादेव-गोरख संवाद', 'गोरखजी की सत्रह कला', 'गोरखबोध', 'दत्तगोरख संवाद', 'योगेश्वर साखी', 'नरवई बोध', 'विराट्पुराण', 'गोरखसार' और 'गोरखवाणी'। वस्तुतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये ग्रंथ गोरखनाथजी के न होकर उनके शिष्य-संप्रदाय के हैं। इनमें से अधिकतर संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद हैं। 'साखी' और 'वाणी' के नाम से जो रचनाएँ मिलती हैं, वे संभवतः गोरखनाथ की हों। उक्त प्रायः सभी रचनाएँ इनकी सांप्रदायिक शिक्षा से संबद्ध हैं। अतः इन्हें शुद्ध साहित्यिक रचना नहीं कहा जा सकता। फिर भी, तत्कालीन ब्रजभाषा के पद्य तथा विशेषतः गद्य रूप की परिचिति के लिए इन ग्रंथों का निजी महत्व है।

गोरक्ष-विजय (फयजुल्ला) *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—संभवतः 1725-26]

गोरक्षनाथ की कहानी के आधार पर भारतीय भाषाओं में नाना ग्रंथों की रचना हुई है। विद्यापति (दें०) का 'गोरक्षविजय' नाटक इसका उल्लेखनीय दृष्टांत है। बँगला 'गोरक्ष-विजय' काव्य नाथ-साहित्य का एक विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथ है। 'गोरक्ष-विजय' काव्य में शेख फयजुल्ला की कविताओं के अतिरिक्त कबींद्रदास, भीमसेन एवं श्यामदास की कविताएँ हैं। यह निश्चित है कि 80 प्रतिशत कविताएँ फयजुल्ला की हैं, इसीलिए इसे फ़यजुल्ला-रचित काव्य मानना ही उचित है। अन्यान्य कविताएँ कदाचित् इसको गीताकार में गाने वालों की हैं। काव्य में निबद्ध कालज्ञापन श्लोक के अर्थानुसार यह काव्य लगभग 1725-26 ई० के बीच रचित है।

नाथ-साहित्य की कहानी मूलतः दो धाराओं में प्रसारित है—मत्स्येंद्रनाथ की कहानी एवं गोपीचंद-मयनामती की कहानी। 'गोरक्ष-विजय' काव्य में नाथ साहित्य के धर्मतत्त्व के साथ मीननाथ की कहानी वर्णित हुई है। गोरक्षनाथ देवता नहीं, देवोपम मानव थे—कदाचित् देवताओं की अपेक्षा उनका चरित्र और भी अधिक महिमान्वित था। मंगलकाव्य की देव-देवियों की ईर्ष्या, नीचता का स्पर्शमात्र भी यहाँ नहीं है। माधुर्य एवं विराटत्व से युक्त इतिहास-आश्रित 'गोरक्ष-विजय' कथा-काव्य नवरस का संवाहक है।

गोरा (बँ० कृ०) [रचना-काल—1909 ई०]

महाकाव्य की समग्रता समेटे इस उपन्यास में रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) ने अपने युग का सजीव एवं सर्वांगीण चित्रांकन किया है। हिंदू धर्म की संकीर्णता-वृत्ति तथा ब्राह्मसमाज की उदार दृष्टि के संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चेतना का उदय दिखाया गया है। कथा का केंद्र-बिंदु गोरा है जो धर्म-कर्म और बाह्यानुष्ठान के बारे में इतना कट्टर एवं असहिष्णु है कि किसी को क्षमा नहीं करता। उसके तर्क-वितर्क और मताग्रह से उपन्यास आक्रांत है। सुचरिता गोरा के प्रखर एवं उज्ज्वल व्यक्तित्व के प्रति समर्पणशील अवश्य है परंतु स्वभाव से सौम्य-सुकुमार एवं मितभाषिणी है। विनय गोरा के विपरीत स्नेहशील एवं उदार है परंतु ललिता निर्भीक, मुखर एवं प्रखर है। गोरा के जन्म-रहस्य के उद्घाटन द्वारा लेखक गोरा का स्वयं संतुलित रूप प्रकट करना चाहता है। गोरा का देशानुराग इस रचना को नई गरिमा प्रदान करता है। इसका प्रेरणा-स्रोत है उसकी माँ आनंदमयी जो भारतमाता का प्रतीक है। उसका सबल ओजस्वी व्यक्तित्व युगानुरूप है। इस प्रकार लेखक का मंतव्य उभरते बंगाल में धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं राष्ट्रीय परिवर्तनों का चित्रण करना है। शिल्प-विधि की दृष्टि से इसमें नये प्रयोग किए गए हैं। काव्यात्मक शैली के स्थान पर व्यंग्यपूर्ण शैली का आश्रय लिया गया है। यह रवींद्र का अलग-विशिष्ट उपन्यास है जिसे युग की उपलब्धि होने का गौरव प्राप्त है।

गोरा *(बँ० पा०)*

उपन्यास (दे० गोरा—बँ० कृ०) के नायक के नाम पर ही गुरुदेव रवींद्रनाथ (दे०) के इस महाकाव्यात्मक उपन्यास का नामकरण हुआ है। इस उपन्यास के प्रत्येक क्षेत्र में गोरा सार्थक रूप में प्रतिष्ठित है। आइरिश-संतान गोरा हिंदू धर्म के दृढ़ संस्कारों के बंधन में प्रतिपालित है। संस्कार के साथ हृदय का द्वंद्व स्वभावतः ही प्रकट होता है। गोरा का जीवन सहज ढंग से ही स्वदेश-आत्मा के वाणीमूर्ति-रूप में प्रतिफलित हुआ है। बृहत् सामाजिक समस्या की पटभूमिका में गोरा के चरित्र का माहात्म्य उसके बंधनों के छिन्न होने में और उसकी मुक्ति में प्रकट हुआ है। सुचरिता के साथ मिलन केवल बाह्य जीवन-चेतना के लिए ही नहीं; जीवनादर्श की मुक्ति की प्रतिष्ठा में उसकी सार्थकता निहित है। 'गोरा' ने नव्य-ब्राह्म समाज के आत्मानुसंधान को तीव्रतर किया है। गोरा चरित्र के विश्लेषण में कवि एवं औपन्यासिक रवींद्र ने एक होकर अपने उद्देश्य को सार्थक किया है। देशप्रेम की निष्ठा ने गोरा को कार्य, मन और वचन में अविचल महिमा प्रदान की है किंतु यहीं उसकी समाप्ति नहीं हुई है। गोरा के जन्म-रहस्य का उद्घाटन होते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकुचित परिधि से गोरा की मुक्ति होती है। भारतवर्ष की सीमारेखा पृथ्वी को और दूर हटा नहीं पाई है। गोरा को सहज ही स्वदेश-प्रेम, विश्व-प्रेम, मानवीय बोध, विश्वमानवीय बोध के राज्य में स्थान मिला है। सीमा असीम के राज्य से विलीन होकर महिमान्वित हुई है। गोरा के चरित्र में भी उस सीमा के अतिक्रमण के द्वारा असीम के साथ एकात्मता की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है।

गोरे, ना० ग० *(म० ले०)*

ये सफल राजनीतिक नेता और गंभीर साहित्यकार हैं। इनके द्वारा लिखित 'कारागृहाच्या भिंती' सफल डायरी है। गुलबर्गा कारागृह में रहते हुए इन्होंने अपने चेतन तथा अवचेतन मन की भाव-प्रक्रिया की अभिव्यक्ति इसमें की है। मन का अंतर्बाह्य अभिव्यक्त होने के कारण लेखक की मनोदशा तथा मन में होने वाले अंतर्द्वंद्व को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। इससे लेखक की बहुश्रुतता राजकारणाभिमुखता, विचारों की उदारता प्रमाणित होती है। इसमें इन्होंने अपनी पत्नी तथा पुत्री के लिए संदिग्ध तथा आत्मीय उद्‌गार व्यक्त किए हैं।

मराठी में डायरी-लेखन की प्रायः उपेक्षा हुई है। इस उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण को देखते हुए यदि 'कारागृहाच्या भिंती' को डायरी-लेखन का एकमेव अमूल्य भूषण कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। 'सीतेचेपोहे', 'डाली' इनके लघु निबंध-संग्रह हैं। 'शुभासपत्रें' में इनके अपनी पुत्र-पुत्री शुभा के नाम लिखे उपदेशपरक पत्र संकलित हैं।

गोलगोथा (क० कृ०)

स्व० गोविंद पै ने आधुनिक कन्नड को दो खंड-काव्य दिए हैं: 'गोलगोथा' तथा 'वैशाखी'। 'गोलगोथा' में ईसा मसीह के अंतिम समय का अतीव मार्मिक चित्रण है। उनके सूली पर चढ़ने का दृश्य करुण है, शांत है, अद्‌भुत है। एक भारतीय कवि ने अपने देश-काल से दूर के विषय को चुन कर उसके प्रत्येक ब्योरे को हृदयंगम कर उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर एक अत्यंत यशस्वी काव्य की रचना की है। यह अपने में एक आश्चर्य है। चार सौ पंक्तियों में लिखा यह काव्य अतुकांत पद्य में है। शुरू से लेकर अंत तक ईसा के अवसान का कारण सशक्त बिंबों तथा ब्योरों के साथ आया है। इसमें इतिहास का प्रगाढ़ अध्ययन है किंतु उसके काव्य-सौंदर्य में व्याघात नहीं पड़ा है। उपनामों की गरिमा है किंतु कहीं भी चमत्कार नहीं। तत्कालीन जीवन से अलंकारों की सामग्री चुनी गई है। इसमें महाकाव्य का विस्तार नहीं है किंतु उसका गांभीर्य है, दर्शन है। अतः आलोचक एस० अनंतराम ने इसे 'महाकाव्य-खंड' की संज्ञा दी है।

गोळे, पद्मा *(म० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्म सरदार पटवर्धन के कुलीन संस्कारी परिवार में हुआ था। महाविद्यालयी शिक्षा पूना में प्राप्त की और आजकल वहीं निवास करती हैं।

काव्यसंग्रह—'प्रीतिपथावर', 'नीहार'।

पद्मा गोळे की काव्य-प्रतिभा मूलतः प्रगीतात्मक है। स्त्री-मन तथा उसकी समस्याओं का पारदर्शी दृष्टि से किया गया सूक्ष्म विश्लेषण इनके काव्य का वैशिष्ट्य है। इनकी भाषा-शैली सरल, प्रासादिक एवं कोमलकांत पदावली-युक्त है। अब नई कविता की क्लिष्टता एवं लैंगिकता भी इनके काव्य में मिलती है।

ये आधुनिक कवयित्रियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कविता के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ, एकांकी एवं ललित निबंध भी इन्होंने लिखे हैं।

गोळे, महादेव शिवराम *(म० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु —1906 ई०]

इनका जन्म सातारा ज़िले के मर्ढे गाँव में हुआ था। 1883 ई० में इन्होंने एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके पश्चात् ये गो० ग० आगरकर (दे०) जी के आग्रह से डेक्कन एजुकेशन सोसायटी के कार्यकर्ता हो गए थे। आगरकर जी की मृत्यु के उपरांत ये पूना के फ़र्ग्युसन कॉलेज के प्रचानाचार्य बने थे।

गोळे जी हिंदू धर्म तथा भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रेमी तथा निष्ठावंत समाज-सुधारक के रूप में चिरविख्यात हैं। 'हिंदू धर्म आणि सुधारणा' तथा 'ब्राह्मण आणि त्यांची विद्या' नामक इनके अत्यंत प्रसिद्ध ग्रंथ रहे हैं। इनमें आगरकर की तरह प्रगतिशील तथा क्रांतिकारी समाज-सुधारों का तीव्रता से समर्थन किया गया है। इनके प्रकाशन से उस समय बड़ी ही खलबली मच गई थी।

'कुळाचा अभिमान', 'अमरसार', 'संस्कृत कोसेस' आदि इनके अन्य उल्लेख्य ग्रंथ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी भाषा सुसंस्कृत तथा सहज है एवं वर्णन-शैली सूक्ष्म एवं विवेचनात्मक है।

ये हिंदुत्व के अभिमानी समाज-सुधारक तथा मराठी के गद्यकार रहे हैं।

गोविंद कवीची कविता (म० कृ०)

इस काव्य-संग्रह के लेखक श्री गोविंद त्र्यंबक दरेकर हैं। यह संग्रह 1930 में प्रकाशित हुआ था।

ये राष्ट्रीय काव्यधारा के लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। मेले व तमाशे के लिए गीत-रचना कर इन्होंने अपार यश पाया था, पर इनके ये गीत आज उपलब्ध नहीं हैं। साहित्य की दृष्टि से भी इनका महत्व नहीं। सावरकर आदि क्रांतिकारियों के साहचर्य से इनके विचारों में परिवर्तन आया था। इन्होंने पारतंत्र्य का तिरस्कार कर, स्वतंत्रता की माँग करने वाले उद्बोधक गीत लिखे जो प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत हैं।

'रणावीण स्वातंत्र्य कोणा मिळाले' गीत महाराष्ट्र के प्रत्येक युवक की जिह्वा पर था। 'श्रीकृष्ण जन्मोत्सव', 'भारत-प्रशस्ति', 'मुरली' आदि दीर्घ कविताएँ हैं तथा 'सुंदर मी होणार', 'टिळकांची भूपाळी' आदि संक्षिप्त पर भावोत्कट रचनाएँ हैं।

ये स्वतंत्रता के कवि हैं। इनकी राष्ट्रीय कविताएँ प्रत्यक्षानुभव पर आश्रित हैं। गोविंद कवि स्वयं पंगु थे, परंतु राष्ट्र-निर्माण-कार्य करने की इनमें तीव्र उमंग थी। अतः इन्होंने कविताएँ लिखकर ही राष्ट्र-सेवा की।

इनका काव्यक्षेत्र सीमित और एकांगी है पर इनकी राष्ट्रीय कविताएँ उत्कृष्ट हैं। ये स्वातंत्र्य देवता के निष्ठावान आराधक रहे हैं। ओजस्वी गीतों के रचयिता के रूप में ये प्रसिद्ध हैं।

गोविंद ठक्कुर (सं० ले०) [समय—1450-1500 ई०]

'काव्यप्रकाश' (दे०) के टीकाकार गोविंद ठक्कुर मिथिला-निवासी थे। इनके पिता का नाम केशव तथा माता का नाम सोनोदेवी था। इनके छोटे भाई कवि श्रीहर्ष थे (जो नैषधकार से भिन्न हैं)। अनुमान है कि अपनी टीका की रचना उन्होंने पंद्रहवीं शती के अंतिम चरण में की होगी।

'काव्यप्रकाश' (दे०) पर गोविंद ठक्कुर की टीका का नाम 'प्रदीप' है। इसका पूरा नाम 'काव्यप्रकाशप्रदीप' है जिसे 'काव्यप्रदीप' भी कहा जाता है। यह टीका अत्यंत विद्वत्तापूर्ण है। इस टीका पर वैद्यनाथ तत्सत् और नागोजी भट्ट (दे०, नागेश) ने क्रमशः 'प्रभा' और 'उद्योत' नामक टीकाएँ लिखी हैं। गोविंद ठक्कुर ने 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत उदाहरणों पर 'उदाहरण-दीपिका' नामक एक और टीका लिखी है जिसे पूर्वोक्त बृहत् टीका (प्रदीप) का पूरक या परिशिष्ट समझना चाहिए। 'उदाहरण दीपिका' टीका पर भी वैद्यनाथ तत्सत् ने 'उदाहरण चंद्रिका' नामक टीका लिखी है।

गोविंददास (बँ० ले०) [समय—अनुमानतः 1537-1613 ई०]

इनका पैतृक निवासस्थान मुर्शिदाबाद ज़िले में तेलिया बुधिर नामक स्थान था। इनके पिता का नाम चिरंजीव सेन एवं माता का नाम सुनंदा था। ये रामचंद्र कविराज के छोटे भाई थे। अल्पायु में पिता का देहांत हो जाने के कारण इनके मातामह दामोदर सेन ने श्रीखंड में इनका पालन पोषण किया था। वे श्रीखंड के प्रधान पंडित, धनी एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे। प्रारंभिक काल में मातामह के कारण शक्ति के उपासक थे परंतु बाद में श्रीनिवास आचार्य के प्रभाव से वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गए थे। जीव गोस्वामी (दे०) ने इन्हें 'कवींद्र' कहकर संबोधित किया है।

ये उत्तर-चैतन्य युग के श्रेष्ठ पदकर्त्ताओं में से हैं। विद्यापति (दे०) की धारा का अनुसरण कर इन्होंने अलंकारपूर्ण पद-रचना की है। 'भक्तिरसामृतसिंधु' (दे०) एवं 'उज्ज्वलनीलमणि' (दे०) से इनके पद प्रभावित हैं। इनके पदों की भाषा विशुद्ध व्रजबुलि है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य पर इनका असाधारण अधिकार था। ये पंडित और विदग्ध कवि हैं। इनके गीतों में भावगांभीर्य, अलंकार एवं ध्वनि-प्राचुर्य तथा समास-बाहुल्य पाया जाता है। अपूर्व वाणी-झंकार, आवेगों के अनुसार सूक्ष्म भावों की व्यंजना तथा गीतों में अमृत-वर्षा में विद्यापति के अतिरिक्त अन्य कवि इनके समक्ष नहीं टिक सकते। छंद में इन्होंने जो वैचित्र्य एवं दक्षता प्रदर्शित की है वह बँगला काव्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

ये असाधारण जनप्रिय कवि थे। कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि व्रजबुलि के बिहारी कवि गोबिंददास तथा बँगाली कवि गोविंददास दो व्यक्ति थे जिसका कोई प्रमाण एवं साक्ष्य नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोविंददास *(हिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1974 ई०]

इनका जन्म मध्य प्रदेश के जबलपुर नगर के एक संपन्न, धर्मप्राण परिवार में हुआ था। इन्होंने घर पर ही अँग्रेज़ी, संस्कृत और हिंदी का अध्ययन किया। आरंभ में हिंदी उपन्यासकार देवकीनंदन खत्री की रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए। वल्लभ संप्रदाय के उत्सवों, पारसी नाटक, रामलीला आदि में भी इनकी बड़ी रुचि थी। इसी रुचि के कारण ये नाट्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुए तथा इन्होंने 1917 ई० में 'विश्वप्रेम' नाटक लिखा। तब से लेकर अंतिम समय तक ये निरंतर नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहे। संख्यात्मक दृष्टि से तो संभवतः हिंदी का कोई भी नाटककार इनकी समता नहीं कर सकता। 'कर्तव्य', 'विकास', 'नवरस', 'शशिगुप्त' आदि इनके उल्लेखनीय नाटक हैं तथा 'सप्तरश्मि', 'चतुष्पथ', 'एकादशी' आदि प्रतिनिधि एकांकी-संग्रह। साहित्य-स्रष्टा होने के साथ-साथ ये एक कर्मठ राष्ट्रीय नेता भी थे। इनके नाटकों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभूत प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्होंने अपनी कृतियों में लगभग सभी नाट्य शैलियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है तथा एकपात्री एकांकी नाटकों की रचना करने में यह अपना सानी नहीं रखते। नाट्य रचना के अतिरिक्त इन्होंने कविता, यात्रावृत्त आदि अन्य साहित्य-विधाओं को भी समृद्ध किया है किंतु इनका मुख्य प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र में ही है।

गोविंदन्, एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

ये मलयाळम साहित्य के विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा-प्राप्त साहित्यकार हैं। सुप्रसिद्ध साम्यवादी दार्शनिक एम० एन० राय के ये सहयोगी रहे। सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देकर ये साहित्य-सेवा कर रहे हैं। ये 'समीक्षा' मासिक का संपादन भी कर रहे हैं। ये अँग्रेज़ी में भी लिखते हैं।

'राणियुटे पट्टी' (कहानी-संग्रह), 'नी मनुष्यने कोल्लरुतु' (नाटक), 'मेनका' (काव्य), आदि इनकी सर्जनात्मक कृतियाँ हैं। इनके समालोचनात्मक और राजनीतिक विचारों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं।

ये कहानी के नवोत्थान-काल के कहानीकारों तथा कविता की नई पीढ़ी के उद्घाटकों में हैं। नये कवियों के प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

गोविंदन् कुट्टि *(मल० पा०)*

यह एम० टी० वासुदेवन (दे०) नायर के लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास 'असुरवित्तु' (दे०) का प्रमुख पात्र है। मध्यवर्ग का यह युवक अपने धनी रिश्तेदारों के कुचक्रों के फलस्वरूप एक गर्भवती से अनजाने ही विवाह कर लेता है। प्रतिशोध के रूप में यह इस्लाम धर्म स्वीकार करता है, परंतु इसके इस धर्म-परिवर्तन से फ़ायदा उठाने वाले सांप्रदायिकतावादियों से तंग आकर यह विचित्र मानसिक स्थिति में आ जाता है। लोग इसे चोर कहना शुरू करते हैं। आखिर जब गाँव में हैज़ा फैल जाता है तो मृतकों को दफ़नाने के लिए यही आगे आता है।

इस पात्र के चरित्र-चित्रण में लेखक ने समाज के ठेकेदारों के कुकर्मों और अत्याचारों से पीड़ित मनुष्यता को प्रस्तुत किया है। साथ ही कष्टों के निरंतर सहन से भी न बुझने वाले मानवीय गुणों की अंतर्धारा के अस्तित्व पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। सामूहिक घृणा का पात्र रहकर भी आखिर प्रत्येक के लिए इसकी सहायता अनिवार्य हो जाती है।

गोविंद पै, एम० *(क० ले०)* [जन्म—1883 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

गोविंद पै का जन्म दक्षिण कन्नड के मंजेश्वर में हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय से इन्होंने उच्च शिक्षा पाई। मद्रास सरकार ने इन्हें 'राजकवि' की उपाधि से विभूषित किया था। ये आधुनिक कन्नड कविता के प्रथम खेमे के कवि हैं। 'गिळिविंडु' नामक ग्रंथ में इनकी फुटकल कविताएँ संगृहीत हैं। प्राचीन कन्नड, संस्कृत, ग्रीक, जर्मन, अँग्रेज़ी, बँगला आदि दर्जनों भाषाओं पर इनका अधिकार था। इन्होंने कन्नड साहित्य की प्राचीनता आदि पर गंभीर गवेषणात्मक लेख लिखे हैं। 'कन्नडिगरतायि', 'मिंचुळ्ळि', 'बेकु बेड' आदि इनकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं। संसार के महापुरुषों के जीवन के निरूपण में इन्हें अद्भुत सफलता मिली है। ईसा मसीह की मृत्यु का चित्रण करने वाला 'गोलगोथा' (दे०) तथा बुद्ध के निर्वाण का परिचय देने वाली 'वैशाखी' इनके दो महाकाव्य-खंड हैं। दोनों मुक्तछंद में हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने बंगाल के कुछ काव्यों का भी सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'उमरखैयाम' इनकी दीर्घ कविता है। ये सफल नाटककार भी हैं। 'हेब्बेरळु' एकलव्य पर लिखा इनका अनूठा नाटक है। इनके अति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक्त इन्होंने कुछ निबंध भी लिखे हैं जिनमें 'बरहगारन हणेयबरह' (लेखक का ललाट-लेख) उल्लेखनीय है। 'गोम्मट-जिनस्तुति' इनकी एक और सशक्त कृति है जिसमें गोम्म-टेश्वर की कथा है। इनकी कृतियों में इनके प्रगाढ़ इतिहास-ज्ञान तथा भाषा-प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। इनकी कविता ओजोगुण-प्रधान है। 'कन्नडिगरतायि' आदि में प्रसाद गुण मिलता है। 1950 ई० में ये बंबई में संपन्न कन्नड साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष बनाए गए थे। ये कन्नड के धीमंत साहित्यकारों में से हैं।

गोविंदप्रभुचरित्र *(म० कृ०)*

इसकी रचना महिम भट्ट ने 1288 ई० के आस-पास की थी। श्री गोविंद प्रभु चक्रधर जी के गुरु थे। लेखक ने इनसे संबद्ध सैकड़ों आख्यायिकाएँ, लीलाएँ गाँव-गाँव घूमकर एकत्रित की थीं। अतः विदर्भ के अनेक स्थलों और ग्रामों का इसमें उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'ऋद्धपूरचरित्र' भी है। इस चरित्र-ग्रंथ का दो दृष्टियों से विशेष महत्व हैं— इसमें एक ओर प्राचीन मराठी गद्य तथा भाषा के स्वरूप के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की झलक मिलती है। महानुभाव पंथ के अनुयायी इसका बड़ी श्रद्धा से पारायण करते हैं।

गोविंद सिंह, गुरु *(हिं०, पं० ले०)* [जन्म—1666 ई०; मृत्यु—1708 ई०]

गुरु गोविंदसिंह सिखों के दसवें गुरु थे। गुरु नानकदेव (दे०) द्वारा प्रवर्तित मार्ग को सैनिक संगठन में परिणत कर उसे 'खालसा' का स्वरूप प्रदान करने के लिए ये विशेष रूप से प्रख्यात हैं। गुरु गोविंदसिंह का जन्म पटना में हुआ था। उस समय इनके पिता (गुरु तेगबहादुर) और माता (गूजरी) पूर्वी भारत की यात्रा पर थे।

गुरु गोविंदसिंह के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू अभी तक पूरी तरह मूल्यांकित नहीं हुआ है—वह है उनका भाषाविद् और कवि-रूप। ये अनेक भाषाओं के विद्वान थे। इन्होंने अपनी मातृभाषा (पंजाबी) तथा तत्का-लीन राजभाषा (फ़ारसी) में तो थोड़ी ही काव्य-रचना की है, इनका अधिकांश काव्य परिमार्जित ब्रजभाषा में है। गुरु गोविंदसिंह की सभी रचनाओं का संग्रह जिस ग्रंथ में है उसे 'दशम ग्रंथ' (दे०) कहा जाता है। इसके मुद्रित संस्करण के 1428 पृष्ठों में से 1350 पृष्ठों से अधिक की रचनाएँ ब्रज में हैं।

गुरु गोविंदसिंह की कविता के दो मुख्य स्वर हैं—एक है भक्ति-भाव और दूसरा है वीर-भाव। वस्तुतः इनकी भक्ति-भावना भी इनकी वीर-भावना की सहचरी है; इसलिए इनके संपूर्ण काव्य में भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति के लिए जिन इष्टवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है उनमें 'काल' सबसे प्रमुख है और 'केवल काल ही करतार' विश्वास की पुष्टि इनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। ईश्वर के काल-रूप की परिकल्पना इनके युग की माँग थी। विदेशी शासन से आक्रांत जनता में गुरु गोविंदसिंह नव-जीवन और जागरण का मंत्र फूंकना और उसे 'धर्मयुद्ध' के लिए तैयार करना चाहते थे। भागवत् के दशम स्कंध का भाषानुवाद करते हुए उन्होंने कहा भी है—

दशम कथा भागौत की भाषा कभी बनाइ।
अउर वासना नाहिं प्रभु धरमजुद्ध कौ चाइ॥

गुरु गोविंदसिंह की सभी रचनाओं को स्थूल रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) स्वयं-प्रेरित रचनाएँ—'जापु' (दे०), 'अकाल स्तुति', स्फुट पद और अधूरी आत्मकथा—'विचित्र नाटक', (2) प्राचीन आख्यानों से प्रेरित—'चंडी-चरित' (ब्रज) (दे०) और 'चौबीस अवतार' (दे०), 'रुद्र और ब्रह्मा के अवतार', 'ज्ञान प्रबोध', (3) 'शस्त्रनाममाला', (4) 'चरित्रोपाख्यान' (दे०)।

गोविन हाडु *(क० कृ०)*

यह कर्णाटक का सर्वाधिक लोककंठकूजित लोक-गीत है। कालिंग नामक एक ग्वाला था; उसके पास बहुत सी गायें थीं। उनमें एक थी पुण्यकोटि। एक दिन वह घास चरने गई। घास की खोज में वह थोड़ी पहाड़ी की ओर चली तो वहाँ अर्बुद नामक एक व्याघ्र दीख पड़ा। वह इस पर झपटा तो पुण्यकोटि ने कहा कि मेरा इकलौता बछड़ा है, उससे कहकर, उसे दूध पिलाकर आ जाऊँगी। थोड़ा समय दें। बाघ ने अविश्वास प्रकट किया तो उसने कसम खाई। उसकी बातों से आश्वस्त हो कर बाघ ने उसे छोड़ दिया। पुण्यकोटि अपने घर लौटी। उसने अपने बछड़े से कहा कि उसे व्याघ्र के पास जाना है, क्योंकि उसने वचन दिया है और वह उसे अंतिम बार देखने के लिए आई है। तब बछड़े ने कहा—माई, तुम काहे को जाकर मर रही हो! मत जाओ। तब गाय ने कहा—मैं अपने वचन से विमुख नहीं हो सकती। सत्य ही हमारे माँ-बाप हैं, सत्य ही बंधु-बांध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, सत्य वचन से चूके तो अच्युत हरि रुष्ट होंगे। बछड़े ने पुण्यकोटि को रोकने के बहुत प्रयास किए किंतु पुण्यकोटि नहीं रुकी। अंत में वह सबसे विदा लेकर बाघ के पास गई। बाघ उसकी सत्यनिष्ठा पर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार सत्यनिष्ठा की महिमा से मंडित यह कहानी कर्णाटक में आबाल-वृद्ध सबके कंठ में प्रतिष्ठित है। इससे बढ़कर धर्मोपदेश, दर्शन और क्या हो सकता है? पुण्यकोटि कर्णाटक संस्कृति की मर्म है। मकर संक्रांति के दिन आज भी ग्वाल-बाल इसे गाते हैं। इसका छंद कन्नड का अपना छंद है। अज्ञात कवि के इस अमर गीत में हमारी संस्कृति का अमृतकुंभ निहित है।

गोष्ठी (पं० प्र०)

गोष्ठी पंजाबी साहित्य के पुराने वार्तिक (गद्य)-साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। योगियों, मुसलमान फ़कीरों एवं सिद्धों से गुरु नानकदेव (दे०) की आध्यात्मिक चर्चाएँ ही गोष्ठी-साहित्य के रूप में प्रख्यात हैं। इन गोष्ठियों में आध्यात्मिक विषयों के विवेचन का स्वर प्रधान है। गुरु नानकदेव के गोष्ठी-साहित्य में गुरु नानकदेव की (1) 'अजिते रंधावा नाल गोष्ठी', (2) 'कलियुग नाल गोष्ठी', (3) 'राजा जनक नाल गोष्ठी', (4) 'निरंजन नाल गोष्ठी' एवं (5) 'कारूं नाल गोष्ठी' प्रसिद्ध हैं। मुख्यत: जन्म-साखियों, गोष्ठियों एवं टीकाओं के माध्यम से ही पंजाबी-गद्य का विकास हुआ है। मेहरबान नामक लेखक द्वारा रची 'जन्मसाखी' में एक सौ से अधिक गोष्ठियाँ संकलित हैं। इन गोष्ठियों में आदि ग्रंथ (दे०) में संकलित संत कवियों के जीवन-चरित अंकित हैं। बाबा लाल द्वारा लिखित 'दारा शिकोह दी गोष्ठी' एवं 'सिद्ध गोष्ठी' (दे०) काफ़ी प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा शुद्ध पंजाबी की अपेक्षा सधुक्कड़ी है और उस पर फ़ारसी शब्दावली का प्रभाव भी दिखाई देता है।

गोस्वामी, किशोरीलाल (*हिं० ले०*) [जन्म—1865 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

इनका जन्म काशी में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा भी वहीं पर हुई थी। इनके नाना गोस्वामी कृष्ण चैतन्य भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र के साहित्य-गुरु थे। अतएव भारतेंदु-मंडल के साहित्यकारों से इनका संबंध सहज ही हो गया था। इसी संबंध के फलस्वरूप इनके मन में भी साहित्य-सृजन का अंकुर प्रस्फुटित हुआ था। इन्होंने केवल उपन्यास-लेखन को ही अपना क्षेत्र बनाया था तथा न केवल साठ से अधिक उपन्यास लिखे थे अपितु 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। 'त्रिवेणी', 'प्रेममयी', 'तारा', 'चपला व नव्य समाज चरित्र', 'कटे मूड़ की दो-दो बातें या तिलस्मी शीशमहल', 'लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा' आदि इनके कतिपय प्रमुख उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों का मुख्य विषय प्रेम-मनोविज्ञान है जिसके फलस्वरूप इनके अधिकांश उपन्यास सम-विषम प्रेम के विविध रूपों की चहारदीवारी के भीतर घूमते रहते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास (*हिं० कृ०*)

गोस्वामी तुलसीदास (दे०) पर यह आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) की आलोचनात्मक कृति है। 'तुलसी ग्रंथावली' की भूमिका के रूप में इसका आविर्भाव हो चुका था; किंतु 1923 ई० में यह अलग पुस्तक के रूप में छपी। तब इसमें गोस्वामी जी का जीवन-चरित भी था। 1933 ई० में इसका जो संशोधित संस्करण निकला, उसमें जीवन खंड को छोड़ दिया गया। तदनंतर 1935, 1942, 1946, 1948 और 1951 ई० में इसके संस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) से प्रकाशित हुए। सप्तम संस्करण में तुलसीदास पर जिन विषयों की चर्चा हुई, वे हैं: भक्ति-पद्धति, प्रकृति और स्वभाव, लोकधर्म, धर्म और जातीयता का समन्वय, मंगलाशा, लोकनीति और मर्यादावाद, शील-साधना और भक्ति, ज्ञान और भक्ति, काव्य-पद्धति, भावुकता, शील-निरूपण और चरित्र-चित्रण, बाह्य दृश्य-चित्रण, अलंकार-विधान, उक्ति-वैचित्र्य, भाषाधिकार, कुछ खटकने वाली बातें, मानस की धर्म-भूमि, हिंदी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान। यों तो गोस्वामी जी पर प्राचीन काल से लिखा जाता रहा है, परंतु आधुनिक युग में नवीन पद्धति की आलोचनाओं में इसका महत्व है।

गोस्वामी, त्रैलोक्य (*अ० ले०*) [जन्म—1906 ई०; जन्म-स्थान—नलबारी]

इनकी शिक्षा एम० ए०, बी० एल० तक हुई थी। ये कामरूप ज़िले के नलबारी डिग्री कालेज के पूर्व-अध्यक्ष हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**कहानी :** 'अरुणा' (1948), 'मरीचिका' (1948), 'शिल्पिर जन्म' (1957), **उपन्यास :** 'जिया मानहु' (1954)। **आलोचना :** 'साहित्य आलोचना',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खंड (1950), 'संपूर्ण' (1961), 'आधुनिक गल्प-साहित्य (1965)।

ये अपनी कहानियों में गाँव के यथार्थ मानव के सुख-दुःख एवं गुण-दोप का चित्रण करते हैं। ये समाज-सचेतन लेखक हैं, पतित नर-नारी एवं विधवाओं के प्रति इनकी सहानुभूति है। इनकी कहानियों में व्यर्थ का आडंबर और वाक्-चातुर्य नहीं है। इन्होंने कम शब्दों का प्रयोग करते हुए प्रांजल शैली में रस-विचार और साहित्य का मौलिक विश्लेषण किया है। 'आधुनिक गल्प-साहित्य' में इन्होंने असमीया गल्प के साथ हिंदी, बँगला आदि भाषाओं की कहानियों के विकास का भी अध्ययन किया है। ये कथाकार और आलोचक हैं।

गोस्वामी, प्रफुल्लदत्त *(अ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनकी शिक्षा एम० ए०, डी० फिल० तक हुई है। ये अँग्रेज़ी-साहित्य से अधिक संबद्ध हैं। गोस्वामी जी अध्यापन-कार्य करते हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास :** 'कँचा पातर कँपनि' (1952), **आलोचना:** 'साहित्य आरु जीवन' (1955), 'असमीया जन-साहित्य' (1943); **संपादन :** 'शंकर देव का रुक्मिणीहरण नाट' (1948); **लोक-गीत-संग्रह :** 'बार माहर तेर गीत' (1962); **भ्रमण-साहित्य :** 'बिलातत सात माह' (1958), **कहानी :** 'निते नव रूप तार' (साठोत्तरी प्रकाशन) **कविता :** 'फिरिङ्ती'।

इनके उपन्यास में संवाद और चरित्र-चित्रण तो आकर्षक हैं पर रोचकता कम है। कविताओं में प्रतीकों के माध्यम से अँग्रेज़ों के प्रति घृणा अभिव्यक्त की गई है। इनका गद्य प्रवाहमय एवं सामान्यतः तर्कसंगत होता है। ये वर्तमान युग के अच्छे गद्य लेखक हैं।

गोस्वामी, मामनि *(अ० ले०)* [जन्म—1944 ई०; जन्म-स्थान—गौहाटी]

अत्यंत कुलीन वंश की। पिता विद्वान् एवं सत्राधिकार। आरंभिक शिक्षा शिलांग में। गौहाटी विश्वविद्यालय से 1964 में असमीया में एम० ए०। असमीया रामायण और मानस (दे० रामचरितमानस) पर शोध कार्य। 1970 से दिल्ली विश्वविद्यालय के असमीया विभाग में प्राध्यापिका हैं। इनका सत्य नाम इंदिरा गोस्वामी है। 100 से अधिक कहानियाँ प्रकाशित। 'असम वातरि' में दो उपन्यास धारावाहिक प्रकाशित। प्रकाशित **कथा-संग्रह** (1) 'सिनाकी मान', (2) 'कइना', (3) 'रिनिकि-रिनिकि देखेछि जमुना'।

ये भोगे यथार्थ पर लिखती हैं। भावुक अधिक हैं।

गोस्वामी, राधाचरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

ये ब्रजवासी थे तथा साहित्य-स्रष्टा होने के साथ-साथ संस्कृत के प्रकांड पंडित, समाजसुधारक एवं देशप्रेमी भी थे। इन्होंने खड़ी बोली का विरोध करते हुए ब्रजभाषा का समर्थन किया था। ये भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र से विशेषरूपेण प्रभावित थे और इसी के फलस्वरूप इन्होंने वृंदावन से 'भारतेंदु' पत्रिका भी निकाली थी। साहित्य-सृजन की दृष्टि से ये नाट्य-रचना के क्षेत्र में प्रवृत्त हुए थे। 'सुदामा नाटक', 'सती चंद्रावली', 'अमरसिंह राठौर', 'तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

गोस्वामी, शरत्चंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1945 ई०; जन्म-स्थान—नलबारी]

इन्होंने कलकत्ता से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। ये असम उपत्यका के स्कूल इंस्पेक्टर नियुक्त हुए थे। असम साहित्य-सभा के ये अन्यतम प्रतिस्थापक थे। इनकी मृत्यु दिल्ली में हुई थी।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास :** 'पानिपथ' (1930), **कहानी-संग्रह :** 'गल्पांजलि' (1914), 'मइना' (1920); 'बाजीगर' (दे०) (1930), 'परिदर्शन' (मरणोपरांत प्रकाशन) (1956)।

'पानिपथ' इनका ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें बाबर और संग्रामसिंह के युद्ध का वर्णन है। यह पूर्णतः ऐतिहासिक उपन्यास न होकर इतिहास पर आधारित काल्पनिक उपन्यास है।

इन्होंने कहानी के क्षेत्र को नया मोड़ यह दिया कि श्री लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) की लोक-कथाशैली छोड़कर एकदम पाश्चात्य शैली अपनाई। इन्होंने समाज-व्याप्त शोषण, पीड़ा आदि का चित्रण किया है। ये नियति-वादी थे और सारा दोष नियति पर छोड़ देते थे।

असमीया कहानी के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान माना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी, हेमचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1872 ई; मृत्यु—1928 ई०]

जन्मस्थान : गोलाघाट ढेकियाल।

इन्होंने कलकत्ता से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। शिक्षक, डिप्टी कलेक्टर एवं एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर पदों पर इन्होंने कार्य किया था। इन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया था। ये जोनाकी, कामरूप अनुसंधान-समिति, असम साहित्य-सभा आदि संस्थाओं से संबद्ध रहे थे। इनकी प्रथम कविता 'असमबंधु' 1907 ई० में प्रकाशित हुई थी। गोस्वामी जी असमीया के प्रथम सॉनेट-लेखक थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'फुलर चाकि', **संपादन** : 'कथागीता' (1918), 'पुरणि असम बुरंजी' (1922), 'असमीया साहित्यर चानेकि' (1929), 'हेमकोश'-प्रकाशन (1940)।

इन्होंने रोमांटिक कविताएँ लिखी हैं। सॉनेट छंद में इनकी प्रथम कविता 'प्रियतमार चिठि' है। 'पूवा' कविता में संयत कल्पना, गांभीर्य और आशावाद है। बाद में ये पुरातत्व एवं प्राचीन पोथियों की खोज में व्यस्त हो गए थे, अतएव कविता अधिक नहीं लिख सके।

इनके अनेक खोजपूर्ण निबंध पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। इन्होंने साहित्य, इतिहास, शिलालिपि और ताम्रलिपि तथा संस्कृत पोथियों पर लिखा था अथवा उनका उद्धार किया था। हेमचंद्र बरुवा (दे०) की मृत्यु के पश्चात् उनके अधूरे 'हेमकोश' का इन्होंने प्रकाशन कराया था। इन्होंने 'असमीया साहित्यर चानेकि' नामक ग्रंथ में असमीया साहित्य के विभिन्न कालों की चुनी हुई कविताओं का सश्रम संग्रह किया था। असमीया साहित्य में प्रथम सॉनेट-लेखक, रोमांटिक कविता के प्रवर्तक एवं विद्वान संपादक के रूप में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

गोहाञिबरुवा, पद्मनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1871 ई; मृत्यु—1946 ई०]

जन्म-स्थान : उत्तर लखीमपुर का नौकाँड़ी गाँव। ये कोहिमा हाई स्कूल और तेजपुर नार्मल स्कूल के हेडमास्टर रहे थे। 1933 ई० में साहित्य सभा द्वारा इनका अभिनंदन किया गया था।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'जुरणि' (1900); 'लीला' (1901), 'फुलर चानेकि' (1941); **उपन्यास** : 'भानुमती' (1892), 'लाहरी' (1892); **'ऐतिहासिक नाटक** : 'जयमती' (1900), 'गदाधरसिंह' (1907), 'साधनी' (1911), 'लाचित बरफुकन' (1915), **प्रहसन** : 'गाओं बुढ़ा' (दे०) (1897), 'भूत ने भ्रम' (दे०) (1924), **पौराणिक नाटक** : 'बाणरजा' (दे०) (1932)।

इनके 'जुरणि' और 'फुलर चानेकि' संग्रहों में चतुर्दशपदी और सोलहपदी कविताएँ हैं। 'लीला' पत्नी पर लिखा शोकगीत है। ये प्रथम ऐतिहासिक नाटककार हैं। लंबे कवित्वमय संवाद और स्वगतोक्तियों के कारण नाटक मंचोपयोगी कम हैं। प्रहसनों में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता पर व्यंग्य है। इनके उपन्यास 'भानुमती' में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक समस्या का चित्रण है। इन्हें असमीया का प्रथम ऐतिहासिक नाटककार और प्रथम उपन्यासकार माना जाता है।

गौड़पादाचार्य *(सं० ले०)* [समय—800 ई० के लगभग]

गौड़पादाचार्य शंकराचार्य (दे०) के परमगुरु थे। म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य ने गौड़पाद का समय 500 ई० माना है। गौड़पाद के बारे में यही पता चलता है कि वे नर्मदा के किनारे रहते थे। गौड़पादाचार्य का प्रमुख ग्रंथ 'गौड़पादकारिका' है। इसी को 'मांडूक्य-कारिका' भी कहते हैं। यह चार प्रकरणों में विभक्त है। 'गौड़पादकारिका' पर शंकराचार्य का भाष्य है।

यों तो, गौड़पादाचार्य अद्वैतवादी ही थे, परंतु उनका प्रमुख सिद्धांत अजातवाद है। अजातवाद सिद्धांत के अनुसार न किसी जीव की उत्पत्ति होती है और न कोई जीव की उत्पत्ति का कारण है। वस्तुतः परमार्थ सत्य रूप ब्रह्म में कुछ उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार परमार्थ दृष्टि से जीव अजात ही है। इसीलिए इस सिद्धांत का नाम अजातवाद पड़ा है।

गौड़पादाचार्य ने जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादन स्वप्न-सिद्धांत के आधार पर किया है। इनका कहना है कि जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में स्वप्नावस्था के समस्त भाव मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार परमार्थावस्था में जाग्रत के समस्त अनुभव मिथ्या सिद्ध होते हैं।

गौड़पादाचार्य के दार्शनिक सिद्धांत में परवर्ती आचार्य शंकर के अद्वैतवाद की पुष्ट पृष्ठभूमि मिलती है। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ शंकराचार्य ने माया को व्यावहारिक दृष्टि से सत् कहा है वहाँ आचार्य गौड़पाद ने माया को स्वप्न सदृश कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतम *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—250 ई०]

डा० सतीशचंद्र विद्याभूषण ने गौतम का स्थिति-काल 550 ई० माना है। उद्योतकर तथा वात्स्यायन (दे०) ने इन्हें अक्षपाद नाम से पुकारा है। किंतु श्रीहर्ष (दे०) के समय में इनका गौतम या गोतम नाम प्रख्यात हो चला था। 'न्यायसूत्र' गौतम का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। 'न्यायसूत्र' में कुल पाँच अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक हैं। 'न्यायसूत्र' में 533 सूत्र हैं।

गौतम ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द —ये चार प्रमाण माने हैं। इसके अतिरिक्त मन, आत्मा, इंद्रिय, शरीर, अर्थ, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख तथा अपवर्ग—ये प्रमेय हैं। गौतम पुनर्जन्म एवं परलोक भावना में भी विश्वास रखते थे। मृत्यु के पश्चात् आत्मा लोकांतर में जाता है, यह सिद्धांत गौतम ने स्वीकार किया है। कर्मफल के संबंध में गौतम का विचार है कि कर्मों का फल तुरंत नहीं, अपितु कालांतर में होता है। कर्मों के आधार पर ही धर्म एवं अधर्म का निर्माण होता है। मुक्ति के संबंध में गौतम का मौलिक विचार है कि दुःखाभाव ही मुक्ति है। गौतम का कथन है कि मिथ्याज्ञान के नाश से राग, द्वेष और मोह का, रागद्वेषादि के नाश से धर्म-अधर्म का, धर्माधर्म के नाश से जन्म-ग्रहण का और जन्म-ग्रहण की समस्या से छुटकारा पाने पर समस्त दुःखों का नाश हो जाता है। इस दुःख का नाश होने पर ही अपवर्ग या मुक्ति की प्राप्ति होती है। गौतम बुद्धिवादी न्यायशास्त्र के प्रतिपादक आचार्य कहे जा सकते हैं।

गौरना *(ते० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती]

ये पद्मनायक राजाओं के राचकोंड नामक राज्य में रहते थे। कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०) और गौरना दोनों समसामयिक थे। ये संस्कृत और तेलुगु के बड़े विद्वान तथा सरस कवि थे, ये बड़े शिवभक्त थे। और श्रीशैल के मल्लिकार्जुन इनके उपास्य देवता थे। इनकी रचनाएँ हैं: 'नवनाथचरित्र', 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' (दे०), और 'लक्षण-दीपिका'। इनमें प्रथम दोनों रचनाएँ 'द्विपदा' नामक देशी छंद में लिखे गए काव्य हैं। नौ सिद्ध पुरुषों की कहानियों से युक्त 'नवनाथचरित्र' मल्लिकार्जुन को समर्पित किया गया है। इन्होंने संस्कृत के स्कंद तथा मार्कंडेय पुराणों से हरिश्चंद्र की कथा लेकर एक स्वतंत्र काव्य की रचना की थी। तेलुगु में हरिश्चंद्र-कथा को स्वतंत्र काव्य के रूप में लिखने वालों में ये ही प्रथम थे। इनकी रचना की सरसता से आकृष्ट होकर बाद में शंकर कवि तथा शरभ कवि ने इसी कथा को लेकर पद्यकाव्य लिखे थे। हरिश्चंद्र की कथा अत्यंत प्रचलित है। पर गौरना का प्रस्तुत काव्य कुछ अपनी ही विशेषता रखने वाला है। इसकी भाषा मुहावरेदार, सरस तथा कोमल है। वर्णन सहज और सुंदर हैं, रस-पोषण तथा चरित्र-चित्रण मार्मिक हैं और छंद तथा शैली मधुर और प्रवाहयुक्त हैं। उचित मात्रा में कहीं-कहीं हास्य रस का भी सन्निवेश पाया जाता है। 'नवनाथचरित्र' में वंचक पुरोहित की कथा और 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' में कलहकंठी तथा कालकौशिक की कथा इसके अच्छे उदाहरण हैं। करुण रस के चित्रण में ये भवभूति (दे०) से समानता रखते हैं। प्रधानतः इन्हें आंध्र-साहित्य के श्रेष्ठ कवियों के अंतर्गत स्थान देने वाला काव्य 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' ही है। तेलुगु में जैसे पद्यबद्ध, गद्यबद्ध तथा चम्पूबद्ध साहित्य है वैसे ही 'द्विपदा' नामक देशी छंद में लिखा गया विस्तृत साहित्य भी एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित होता आया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तेलुगु-साहित्य के अंतर्गत हरिश्चंद्र की कथा की अथवा द्विपद-साहित्य की प्रशस्ति के लिए गौरना और उनका 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' आधारस्तंभ रहे हैं।

गौरा *(हिं० पा०)*

यह अज्ञेय (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'नदी के द्वीप' (दे०) की उल्लेखनीय चरित्र-सृष्टि है। आभूषणों से रहित अपने शरीर पर बहुत छोटे-छोटे बूटों वाली चिकन सफेद साड़ी को पहने हुए तपस्विनी-सी प्रतीत होने वाली, ईर्ष्या-द्वेष से सर्वथा परे, अपने प्रेमी के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पण की भावना से सर्वथा परिपूर्ण, अत्यंत आशावादी, मेधावी, विनीत, सहिष्णु, स्वाधीनचिंतिका, सहज स्नेह, अनुराग एवं सद्गुणों की साकार प्रतिमा गौरा के माध्यम से उपन्यासकार ने एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया है जो न केवल अपने पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में पूर्णतः सफल है अपितु उपन्यास के अन्य दो प्रमुख पात्रों—रेखा तथा भुवन (दे०) के चरित्र को उभारने में भी पूर्णतः सहायक है।

ग्रामगीतिका *(बँ० प्र०)*

बँगला लोक साहित्य के अंतर्गत 'ग्रामगीतिका' का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामगीतिका से तात्पर्य है आख्यान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलक लोकगीति जिसका स्थान निरक्षर समाज के मौखिक साहित्य के रूप में है। मध्ययुग में रचित बँगला ग्राम-गीतिका का जो संग्रह अभी तक प्रकाशित हुआ है उसके तीन भाग हैं—नाथ-गीतिका, मैमनसिंह-गीतिका (दे० पूर्व-बंग-गीतिका) तथा पूर्व-बंग-गीतिका (दे०)। नाथ-गीतिका में मूल रूप से नाथ गुरुओं की अलौकिक साधना-भजन की कहानी के साथ-साथ तरुण राजपुत्र गोपीचंद्र के संन्यास लेने की कहानी वर्णित है। प्रथमोक्त विषय को लेकर जो गीतिकाएँ अभी तक प्रकाशित हुई हैं वे 'गोरक्ष-विजय' (दे०), 'मीन चेतन' नाम से प्रसिद्ध हैं एवं दूसरे विषय को लेकर जो गीतिकाएँ प्रकाशित हुई हैं वे 'माणिकचंद्र राजार गान', 'गोविंदचंद्रेर गीत', 'मयनामतीर गान' (दे०), 'गोविंदचंद्रेर गान', 'गोपीचांदेर संन्यास' आदि नाम से परिचित हैं। नाथ-गीतिकाओं में सामयिक समाज का चित्र स्पष्ट नहीं है। इसके चरित्र गोरक्षनाथ, मीननाथ, शिव, चंडी, योगिनी, मंगला-कमला आदि यथार्थ जगत् के वासी प्रतीत नहीं होते। नाथ-गीतिका में वर्णित सामाजिक शुचि एवं संयम का उल्लेख अन्यान्य गीतिकाओं में नहीं है यद्यपि मैमनसिंह या पूर्वबंग-गीतिका की समाज-धर्म-निरपेक्षता नाथ-गीतिका में नहीं है। नाथ-गीतिका एक विशिष्ट संप्रदाय के उच्च नैतिक आदर्श की अभिव्यक्ति है। नाथ-गीतिकाओं का प्रचार उत्तर-बंग में ही अधिक हुआ है जहाँ यह 'युगीयात्रा' के नाम से प्रसिद्ध है। रंगपुर ज़िले के मुसलमान किसानों के मुँह से इसका गायन सुनकर ग्रियर्सन ने 1878 ई० में 'माणिकचंद्र राजार गान' के नाम से 'एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका' में इसे प्रकाशित किया था। बाद में इसके और भी बहुत-से पाठ संगृहीत हुए।

ग्रामायण (क० कृ०)

यह रावबहादुर कुलकर्णी जी का लिखा एक बृहत् यथार्थवादी उपन्यास है। गोदान (दे०) के बाद कदाचित् भारतीय साहित्य में यही एक उपन्यास है जिसमें ग्रामीणों के शोषण का नग्न एवं करुण चित्रण है। इस उपन्यास का कोई नायक नहीं है। गाँव 'पादळ्ळी' ही इसका नायक है। सामंतवाद के चंगुल से अभी गाँव मुक्त नहीं थे। यह गाँव किसी ज़मींदार के अधीन था। ज़मींदार के अधिकारी, सरकारी अमले, फ़ौजदार, कुलकर्णी आदि गाँव का शोषण करते हैं तो मठाधिपति पड्दय्या एक अबोध कन्या चिमणा का कौमार्य भंग करता है। उसके गुंडों द्वारा गाँव के भले मानस सताए जाते हैं। उनसे बदला लेने का प्रयत्न होता है। अंत में अमानुषिक हत्या, फ़ौजदारी, अकाल आदि के चंगुल में फँसकर नंदन-सा गाँव उजड़ जाता है। गाँव के नाश में बाहरी लोगों की अपेक्षा गाँव के लोगों का हाथ ही विशेष है। दुष्ट व्यक्तियों एवं शक्तियों के कारण हमारी ग्रामीण संस्कृति किस तरह ह्रासोन्मुख हो रही है, धर्म घर जोड़ने के बदले कैसे तोड़ रहा है—इन सब का अतीव मार्मिक चित्रण इसमें है। लेखक अंत में प्रेमचंद (दे०) की भाँति एक आदर्श की झाँकी प्रस्तुत करता है। समाधान ऊपर से थोपा लगता है किंतु उपन्यास की विस्तृत पटभूमि में वह बहुत गौण है। उच्चवर्गीय, मध्य एवं निम्न-मध्यवर्गीय ग्रामीण जनता के बड़े यथार्थ प्रभावशाली चित्र इसमें उपलब्ध हैं।

ग्राम्या (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1940 ई०]

इस रचना में प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) पंत (दे०) ने ग्राम-जीवन का चित्रण बौद्धिक सहानुभूति के साथ किया है। दृश्यांकन संश्लिष्ट और व्यक्ति-चित्र प्रखर हैं, किंतु बौद्धिक विवेचना के कारण 'द्रष्टा और दृश्य के बीच एक विशेष अंतर सदैव बना रहा है।' फिर भी यहाँ हार्दिकता का नितांत अभाव नहीं है। कुछ प्रकृति-चित्र तो पूर्वकालीन रचनाओं की तुलना में भी निश्चय ही समृद्ध हैं। शैली की व्यंग्यात्मकता और भाषा की सरल एवं सशक्त गति कृतिकार की नवीन कलात्मक उपलब्धियाँ हैं।

ग्रियर्सन [जन्म—1851 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

पूरा नाम जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन। जन्म आयरलैंड। 1871 में इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की तथा बंगाल में नियुक्त हुए। 1882 से 87 तक इन्होंने अपना 'सेवन ग्रामर्स ऑफ़ द डायलेक्ट्स एंड सब-डायलेक्ट्स ऑफ़ द बिहारी लैंग्वेज' प्रकाशित किया। इसके बाद ही इन्होंने भारत की सभी भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों तथा उप-बोलियों का सर्वेक्षण प्रारंभ किया जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया' नाम से 11 बड़ी-बड़ी जिल्दों में (1894-1927) प्रकाशित हुआ। आज तक किसी भी देश की सारी भाषाओं पर इस प्रकार का कार्य नहीं हुआ है। इसमें भाषाओं और बोलियों आदि का संक्षिप्त व्याकरण देने के साथ-साथ प्रत्येक के नमूने तथा मानचित्र भी दिए गए हैं। भारतीय भाषाओं और बोलियों आदि के सीमा-निर्धारण का भी प्रथम प्रयास इसी में है, जो कुछ अपवादों को छोड़कर आज तक भी प्रामाणिक हैं। इतना विस्तृत कार्य कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्यक्ति नहीं कर सकता था, अतः ग्रियर्सन को इसमें अन्य अनेक लोगों की सहायता लेनी पड़ी। इसी कारण इसमें यत्र-तत्र कुछ कमियाँ भी हैं किंतु इनसे इस ऐतिहासिक ग्रंथ का महत्व कम नहीं होता। संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं एवं लिपियों पर आपने लगभग 200 खोजपूर्ण तथा वैज्ञानिक लेख प्रकाशित किए थे। आपकी भाषाविज्ञान-विषयक अन्य मुख्य कृतियाँ हैं: 'बिहारी का तुलनात्मक कोश' (हार्नले के साथ 1889, अपूर्ण) 'पिशाच लैंग्वेज' (1906), 'ए मैन्युअल ऑफ़ कश्मीरी लैंग्वेज' (1911), 'कश्मीरी कोश' (4 खंडों में 1916-32)।

ग्वाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1792 ई०; मृत्यु—1867 ई०]

ये वृन्दावन-निवासी सेवाराम बंदीजन के पुत्र थे। इनके ग्रंथ 'रसिकानंद' में इनके पिता का नाम मुरलीधर राव मिलता है। ये फक्कड़ स्वभाव के थे। ग्वाल के छोटे-बड़े सब मिलाकर 50 ग्रंथ बतलाए जाते हैं, किंतु 'रसरंग', 'अलंकार भ्रम भंजन', 'कविदर्पण', 'प्रस्तार प्रकाश', 'रसिकानंद' तथा 'कृष्णाष्टक' मुख्य हैं। 'रसरंग' के दोहों में रस-रसांगों के लक्षण तथा 'अलंकार भ्रम भंजन' में अलंकारों का विवेचन है। 'प्रस्तारप्रकाश' में पिंगल-निरूपण तथा 'कविदर्पण' रीति ग्रंथ है। इनकी कविता में भोगविलास की वस्तुओं के परिगणन, षट्ऋतु-वर्णन तथा शृंगारोद्दीपक ऋतु-वर्णन से एक प्रकार की अस्वाभाविकता आ गई है। रसरसांग-विवेचन में इन्हें देव (दे०) और पद्माकर (दे०) की कोटि में नहीं बिठाया जा सकता, पर षट्ऋतु-वर्णन में सेनापति (दे०) के अलावा ये अपना सानी नहीं रखते हैं।

घत्ता *(अप० पारि०)*

घत्ता अपभ्रंश का प्रिय छंद है। इस छंद का प्रयोग कड़वक (दे०) के आरंभ में और अंत में किया जाता है। आरंभ में प्रयुक्त छंद ध्रुवा, ध्रुवक, 'घत्ता' कहलाता है। कड़वक की समाप्ति सूचित करने वाले या दो कड़वकों के विभेदक छंद को घत्ता कहते हैं। घत्ता में 31 मात्राएँ होती हैं। 10 और 8 पर यति होती है। द्विपदी, चतुष्पदी और षट्पदी रूप में इसका प्रयोग किया गया है। हेमचंद्र (दे०) ने 31 मात्राओं के इस छंद का नाम छड्डणिआ (छर्दनिका) दिया है। अपभ्रंश-काव्य में कड़वक के अंत में घत्ता का प्रयोग अतीव आवश्यक है। घत्ता का प्रयोग दोहा छंद के समान दो पंक्तियों में होता है। घत्ता मात्रिक अर्धसम छंद है, इसके विषम चरणों में 18 और सम चरणों में 13 मात्राएँ होती हैं। लक्षणकार घत्ता के स्वरूप के विषय में बहुत स्पष्ट नहीं हैं। वस्तुतः कड़वक के अंत में प्रयुक्त होने वाले किसी भी छंद को घत्ता कहा जा सकता है।

अपभ्रंश की कड़वक के अंत में घत्ता देने की परंपरा हिंदी-साहित्य में भी दृष्टिगत होती है। वहाँ कुछ चौपाइयों के बाद दोहों का प्रयोग हुआ है। तुलसी के 'रामचरितमानस' (दे०) और जायसी के 'पद्मावत' (दे०) में यह परंपरा सुरक्षित रही है।

घनादा (घनादार गल्प) *(बँ० पा०)*

प्रेमेंद्र मित्र के घनादा केवल किशोर-चित्त में नहीं, बड़ों के निकट भी सकौतुक विस्मय के आधार हैं। परशुराम (दे०) के बिरिंचिबाबा (दे०) की तरह इनकी उम्र का भी कोई ठीक-ठिकाना नहीं। इसीलिए कदाचित् इस ग्रंथमाला के अन्यतम ग्रंथ का सार्थक नामकरण हुआ है 'घनादा चतुर्मुख'। उम्र की जिस प्रकार कोई सीमा नहीं उसी प्रकार इनके अनुभवों का भांडार भी अलीबाबा के रत्नों से भरा हुआ गोपन गुफा से कम रहस्यपूर्ण नहीं। अलीबाबा के आश्चर्यजनक दिये का सृष्टिकर्ता शायद घनादा के नसवार के डिब्बे में बंद है। तेरह नंबर बनमाली नस्कर लेन की तीसरी मंज़िल के कोठे में घनादा का एकाधिपत्य एवं उनके कथामृत-पान की छद्म व्याकुलता की आधार चारमूर्ति बंगाली पाठक के लिए बहुत ही परिचित एवं प्रियजन है। दर्शन, साहित्य, शिल्प, विज्ञान, भूगोल, प्राणितत्त्व आदि सब विषयों में ही घनादा चतुर्मुख है। उसकी गप्प-कहानियों की सारहीनता पग-पग पर स्पष्ट होती है, फिर भी उसके श्रोता अनजान बनकर उसके सरस-कौतुक का उपभोग करते हैं एवं पाठक-समाज भी उस रस-भोग में पीछे नहीं रहता।

घनानंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1673 ई०; मृत्यु—1739 ई०]

ये रीतिकालीन कवि हैं। इनके जीवन-चरित्र का व्यवस्थित वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। ग्रियर्सन (दे०) ने इन्हें जाति का कायस्थ और बहादुरशाह का मीरमुंशी बतलाया है। नादिरशाह के आक्रमण के समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब सखीभाव (दे० सखी संप्रदाय) से ये कृष्ण की उपासना कर रहे थे, तब नादिरशाह के सिपाहियों ने तलवार से इनकी हत्या कर दी थी। इनके काव्य में प्रेम के उच्छ्वसित निर्बाध भावों की अभिव्यक्ति बड़ी सहज और विमल है। ये मुहम्मदशाह के दरबार में सुजान नामक नर्तकी (वेश्या) में अनुरक्त थे। दरबार से निष्कासन मिलने पर ये वृन्दावन आए थे और भक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर इन्होंने सुजान का रूपांतरण कृष्ण में कर डाला था। इन्होंने सुजान का अध्यात्मीकरण करके उसमें भगवान के नाना रूपों के दर्शन किए हैं। इनके नाम से 'सुजान हित' (दे०), 'वियोगवेलि', 'विरह लीला', 'इश्कलता', 'यमुनायश', 'प्रीतिपावस' तथा 'प्रेमपत्रिका' आदि ग्रंथ कहे जाते हैं।

भारतेंदु (दे०), रत्नाकर (दे०), काशी प्रसाद जायसवाल, शंभुप्रसाद बहुगुणा आदि ने इनकी रचनाओं के संग्रह प्रकाशित कराए हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानंद' नामक ग्रंथावली में इनके छोटे-बड़े लगभग तीन दर्जन ग्रंथों का प्रामाणिक संग्रह प्रकाशित कराया है। शुक्ल जी (दे० शुक्ल, रामचंद्र) ने कवि को रोमांटिक धारा का श्रेष्ठ कवि माना है। इनकी ब्रजभाषा सजीव, लाक्षणिकता तथा व्यंजना-प्रचुर एवं व्याकरण-सम्मत है। कवि ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग में पटु है। उदारतावादी नीति के आधार पर कवि ने फ़ारसी साहित्य से भी भाव ग्रहण किया है। रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) कवियों में घनानंद का स्थान विवाद से परे है और इसका श्रेय इनकी उन्मुक्त भावाभिव्यक्ति तथा सहज, सरल, व्यंजनापूर्ण भाषा को दिया जा सकता है।

घाटे, विट्ठलराव दत्तात्रेय *(म०ले०)* [जन्म—1895 ई०]

ये पूना स्कूल में अध्यापक एवं शिक्षणाधिकारी रहे हैं।

वि० द० घाटे 'रविकिरणमंडळ' के सदस्य कवि हैं। माधवराव पटवर्धन तथा घाटे ने मिलकर 'मधुमाधव' नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित कराया था। 'रविकिरणमंडळ' द्वारा प्रकाशित की गई 'किरण शलाका' पत्रिका में भी घाटे की कविताएँ थीं। इनकी कुल मिलाकर लगभग 25 कविताएँ हैं। इनमें से कुछ प्रेमगीत हैं और कुछ राष्ट्राभिमानी कविताएँ हैं जिनमें 'आई' 'मातृभूमि विषयक' कविता स्मरणीय हैं।

इन्होंने ललित निबंध-लेखन के द्वारा गद्य-लेखन में भी ख्याति प्राप्त की है। 'पांढरे हिरवी मने' नामक इनका लघु निबंध-संग्रह है, और 'कांही म्हातारे व एक म्हातारी' रेखाचित्रों का संकलन है जिसमें जीवन में संपर्क में आए व्यक्तियों के शब्द-चित्र हैं।

घुंडिराज *(म० पा०)*

रामगणेश गडकरी (दे०) के संगीत 'भावबंधन' नाटक का यह पात्र आदर्श पिता का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी सहज एवं उदार प्रवृत्ति के कारण वह अपने प्रति किए गए षड्यंत्रों से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण ही घनश्याम द्वारा अपनी पुत्री मालती के विवाह का प्रस्ताव सुनकर यह मालती की सम्मति लेना आवश्यक समझता है। घनश्याम और इसका भतीजा दोनों इसकी सरलता का अनुचित लाभ उठाते हैं तो भी इसकी सहज मानवीय भावनाएँ बाधित नहीं हो पाई हैं। तभी तो यह घनश्याम के षड्यंत्रों का भंडाफोड़ होने पर उसे पुलिस से बचा लेता है। कष्टमय जीवन ने इसके व्यक्तित्व को अत्यधिक भास्वर बना दिया है। मधुर-तिक्त जीवनानुभव एवं वात्सल्यपूर्ण पितृहृदय की उदारता के कारण घुंडिराज का चरित्र अपनी सहजता एवं सरलता के कारण मराठी नाट्य-जगत की अनूठी परिकल्पना है।

घुम्मण, कपूर सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

आधुनिक पंजाबी नाट्य-लेखन और रंगमंचीय गतिविधि को नई दिशा देने वालों में कपूर सिंह घुम्मण का नाम सर्वोपरि है। संश्लिष्ट, तनावपूर्ण कथानक तथा तीक्ष्ण चुभती भाषा में संवाद-योजना घुम्मण के नाटकों के दो सशक्त पक्ष हैं। 'घुम्मण' ने नाटक लिखे हैं, रंगमंच पर उनका निर्देशन किया है और प्रत्येक नाटक में स्वयं किसी-न-किसी प्रमुख पात्र का अभिनय किया है। आधुनिक पश्चिमी रंगमंच की कई प्रवृत्तियों से वे प्रभावित हैं। इनका प्रभाव उनके नाटकों में जगह-जगह पर मिल जाता है। कुछ प्रसिद्ध नाटकों के नाम इस प्रकार हैं: 'पुतलीघर', 'अतीत दे परछावें', 'बुझारत', 'बंदगली', 'अनहोनी'।

आजकल आप भाषा-विभाग पंजाब में सहायक निदेशक के पद पर कार्य कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घूरणीया पृथिवीर बेंका पथ (अ० क्र०) [रचना-काल अज्ञात; लेखक : उमाकांत शर्मा (दे०)]

इस कहानी-संग्रह की कहानियों में दार्शनिक चिंतन अधिक है जो साहित्यिक सौंदर्य को मलिन कर देता है। स्थान-स्थान पर यौन-आकर्षण के चित्र हैं, किंतु ये पात्रों के संस्कारों को पराभूत नहीं कर सके हैं। इनके नारी-चरित्र युक्तिवादी हैं। भाषा और भावों के क्षेत्र में संयम है।

घोष, अश्विनी कुमार (उ० ले०) [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1962 ई०]

अश्विनी कुमार घोष उड़िया नाट्य साहित्य के द्वितीय उत्थान (1920-45 ई०) के अग्रगण्य नाटककार हैं। प्रसिद्ध नाटककार रामशंकर राय (दे०) इनके नाना थे। रामशंकर के अग्रज श्री गौरीशंकर भी लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक थे। अपने पिता अक्षय कुमार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण इनका अधिकतर समय माता सुंदरमणि के साथ ननिहाल में बीता था। फलतः, दोनों नानाओं की नाट्य एवं साहित्यिक प्रतिभा का प्रभाव इनके बाल-मन पर पड़ना स्वाभाविक था। रेवेन्सा कालेज, कटक से एफ़० ए० पास करने के बाद इन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालय में बी० ए० में नाम लिखा लिया था, पर पिता की आर्थिक स्थिति के कारण इन्हें अध्ययन स्थगित कर जीवन-संग्राम में प्रवेश करना पड़ा। अँग्रेज़ी शिक्षा तथा बाद में अँग्रेज़ी साहित्य का गंभीर अध्ययन करने के कारण पश्चिमी नाट्य शैली का सुस्पष्ट प्रभाव इनके नाटकों में दिखाई पड़ता है।

इनका प्रथम नाटक 'भीष्म' 1911 ई० में प्रकाशित हुआ था। इनके नाटकों को पौराणिक, ऐति-हासिक, भक्ति-रसात्मक तथा सामाजिक, इन चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। घोष ने आधुनिक उड़िया रंगमंच पर गद्य को सुप्रतिष्ठित किया। 'कोणार्क' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इन्होंने छोटे-बड़े तीस नाटकों की रचना की है। इनका 'आर्ट थियेटर्स' से घनिष्ठ संबंध था। फलतः इनके नाटकों में रंगमंचीय कला मिलती है, यद्यपि वह इनके नाटकों की सीमा भी बन गई है।

घोष, संतोषकुमार (बँ० ले०)

इस युग के बिल्कुल आधुनिक कथाकार संतोष-कुमार घोष आधुनिक जीवन की नाना जटिलताओं के अन्वेषी हैं। निर्मोह वैज्ञानिक या निरासक्त दार्शनिक की तरह इन्होंने मध्यवित्त-समाज के मर्म एवं अस्तित्व का व्यवच्छेद किया है। इनके प्रारंभिक उपन्यासों में बहुचर्चित 'किनु गोयालार गलि' से इन्हें जनप्रियता का स्थायी आसन प्राप्त हुआ था। इनके आधुनिक उपन्यासों में 'मुखेर रेखा', 'जलदाओ', 'त्रिनयन', 'स्वयंनायक', 'शेष नमस्कार' आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में इनका स्वकीय शिल्प-विचार, जीवन-दृष्टि, अस्तित्व का अन्वेषण तथा शिल्प-रीति का अभिनवत्व आकर्षक है। 'स्वयंनायक' में आज के विभ्रांत, अस्थिर मनुष्य का आत्मोद्घाटन हुआ है। शून्यता एवं अंधकार, व्यर्थता एवं निराशा में भी जीवन के प्रति लेखक का प्रेम है।

संतोष बाबू की कहानियों में समाज-सचेतनता है। निर्मम हृदय-विश्लेषण के द्वारा इन्होंने समाज-जिज्ञासा के नाना पहलुओं का उद्घाटन किया है। 'शोक', 'एकमेव', 'शनि', 'कानाकड़ि', 'धात्री', 'दिनपंजि' आदि कहानियों में तीक्ष्ण लेखनी की सहायता से समाज के पर्तों को उघाड़ कर रख दिया गया है। तीक्ष्ण पर्यवेक्षण-शक्ति, समाज-सचेतन सहानुभूति, यथार्थ जीवन की दुःख-व्यथा, मूल्यबोध की परिवर्तनशीलता, निस्संगता की वेदना को इन्होंने अपनी कहानियों में अनन्यसाधारण ढंग से रूपायित किया है। इनकी कहानियों में आत्मजीवनी का स्वर ही प्रधान है।

घोष, सुबोध (बँ० ले०) [जन्म—1909 ई०]

सार्थक कहानीकार के रूप में आधुनिक बँगला साहित्य-क्षेत्र में सुबोध घोष का नाम विशेष उल्लेख के योग्य है। जीवन के नाना वैचित्र्यों को अद्भुत चारुत्व के साथ एवं कलात्मक ढंग से प्रकट कर इन्होंने अपने स्वा-तंत्र्य एवं वैशिष्ट्य को प्रकट किया है। इनके कहानी-संग्रहों में 'फसिल' (1944), 'परशुरामेर कुठार' (1942), 'शुक्लाभिसार' (1954), 'जतुगृह', 'मनभ्रमर', 'थिर-बिजुरी' आदि में कल्पना की मौलिकता, आलोचना का विस्मयकर वैचित्र्य एवं निर्मोह यथार्थ-दृष्टि पाठकों को अभिभूत कर लेती है। इनकी पहली कहानी 'अयांत्रिक' (1940) एवं दूसरी कहानी 'फसिल' बँगला साहित्य की विस्मयकारी सृष्टि है। इसके उपरांत 'सुंदरम', 'जतुगृह', 'गरल अमिय भेल' आदि कहानियों की रचना कर इन्होंने अम्लान ख्याति प्राप्त की है। वैपरीत्यों का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष संघर्ष इनकी कहानियों की मौलिक विशेषता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'फसिल' कहानी में श्रेणी-द्वंद्व, 'सुंदरम्' में नैतिकता के साथ उच्छृंखलता का द्वंद्व, 'अयांत्रिक' में यांत्रिकता के साथ मानवीय बोध का द्वंद्व, 'गरल श्रमिय भेल' में ढलते यौवन के साथ यौन-आकांक्षा का द्वंद्व प्रकट हुआ है—यद्यपि इस द्वंद्व-संघर्ष के माध्यम से इन्होंने जहाँ निर्मोह यथार्थ-दृष्टि का परिचय दिया है वहाँ कहीं-कहीं रोमानी मनोभाव की भी व्यंजना हुई है।

सुबोध घोष के प्रारंभिक उपन्यास 'तिलांजलि' (1944) एवं 'गंगोत्री' (1947) में राजनीतिक आंदोलन एवं हृदय-द्वंद्व का समन्वय किया गया है जिसमें इनकी सार्थकता बहुत अधिक प्रकट नहीं हुई है। परंतु परवर्ती उपन्यास 'त्रियामा' एक सांकेतिक रूपकाश्रयी सफल उपन्यास है। इनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'शतकिया' (1958) में रूपक-प्रयोग एवं उन्नततर कला-रीति का सुंदर निदर्शन मिलता है। पात्रों के स्वरूप के उद्घाटक एवं प्रकृति के निगूढ़ परिचय के वाहन के रूप में रूपक का प्रयोग हुआ है। सुबोध घोष निःसंदेह एक शक्तिशाली लेखक हैं।

चङ्ङंपुषा कृष्ण पिळ्ळा *(मल० ले०)* [जन्म—1911ई०; मृत्यु—1948 ई०]

मलयाळम के इस सर्वाधिक लोकप्रिय कवि का जीवन नैराश्य और आघातों का इतिहास है। इनके जीवन का प्रथम आघात इनके अंतरंग मित्र और उदीयमान युवा-कवि इटप्पळ्ळिल राघवन् पिळ्ळा की आत्महत्या था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी इनको कभी कोई उचित नौकरी नहीं मिली। सैंतीस वर्ष की आयु में राजयक्ष्मा से इनका देहांत हो गया।

चङ्ङंपुषा का प्रमुख काव्य 'रमणन्' (दे०) है। इटप्पाळ्ळिल राघवन् पिळ्ळा (दे०) की दुरंत प्रणय-कथा और आत्महत्या पर आधारित इस गोप शोक-गीति (pastoral elegy) ने अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की। 'यवनिका', 'सुधांगदा', 'वत्सला', 'मोहिनी', 'पाटुन्न पिशाच' आदि इनके अन्य खंडकाव्य हैं। 'बाष्पांजली' (दे०), 'रक्त-पुष्पङ्ङळ्', 'स्पंदिक्कुन्न अस्थिमाडम्', 'नीरुन्न तीच्चूळा', 'स्वररागसुधा' आदि में इनके गीत संगृहीत हैं। 'कलित्तोषि' इनका उपन्यास है।

चङ्ङंपुषा की कविता उनके संघर्षमय जीवन की अनुभूतियों का प्रतिबिंब है। वे विषादात्मक प्रेमकाव्य के कवि हैं। इस छलनामय संसार में अपने निष्कपट हृदय को ही वे अपनी पराजय का हेतु मानते हैं। समाज के अन्यायों और अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने क्रांतिकारी कविताएँ भी लिखी हैं और स्पष्ट शब्दों में मार्क्सवाद का समर्थन किया है। परंतु मलयाळम के प्रमुख प्रगतिवादी कवि होते हुए भी अपनी कविताओं की मूल प्रवृत्तियों के अंतिम विश्लेषण में वे भावुक स्वच्छंदतावादी कवि ही माने जाते हैं और माने जाएँगे।

कविता की भाषा और शैली को भी उन्होंने नया रूप दिया है। पुराने गीतात्मक द्रविड़ छंदों के प्रयोग ने उनकी कविता को और लोकप्रिय बनाया है। कवित्रय द्वारा विकसित स्वच्छंदतावाद को एक नूतन और अधिक संवेदनशील धरातल पर प्रतिष्ठित करने वाले चङ्ङंपुषा का युगप्रवर्तक स्वरूप इस तथ्य से सिद्ध है कि आने वाले कई वर्षों तक नए कवि उनकी शैली में रचना करते रहे।

चंडशासन *(क० पा०)*

यह कवि जन्न (दे०) 'अनन्तपुराण' (दे०) की प्रासंगिक कथा का एक नायक है। वह अपने मित्र वसुषेण के घर उसका अतिथि बनकर जाता है। उसकी पत्नी सुनंदा पर वह रीझ जाता है और उसे धोखे से हर ले जाता है। किंतु सुनंदा परम साहसी है। वह इसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती। अंत में वह जादूगरी से उसके पति का कटा सिर लाकर उसे दिखाता है। उसे देखकर वह तुरंत मर जाती है। किंतु चंडशासन का मोह मौत से भी छूटता नहीं। वह उसके साथ अपने शरीर को जलवाकर सहगमन करता है। अपनी पत्नी की प्राप्ति के लिए सेना लेकर आया हुआ वसुषेण यह जानकर वैरागी हो जाता है। चंडशासन अनुभयनिष्ठ रति का, धर्म-विरुद्ध प्रेम या काम का अत्यंत दारुण चरित्र है। उसे केवल कामी कह कर ठुकराया नहीं जा सकता। उसका प्रेम सचमुच उत्कट है। काम की प्रचंड शक्ति के सामने मनुष्य कितना कमज़ोर हो जाता है इसका दारुण चित्र यहाँ प्रस्तुत है। जन्न ने उसे 'विधि-विलास' कहा है। इस दृष्टि से वह विधि के हाथ में फँसे एक कारुणिक नायक (tragic hero) के रूप में आता है। उसका यह चरित्र असामान्य मनोविज्ञान की वस्तु है। पूरे कन्नड साहित्य में ऐसा दूसरा चरित्र दुर्लभ है।

चंडालिका *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

बौद्ध जातक-कथा के अनगढ़ प्रसंग को रवींद्र (दे० ठाकुर) ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत कर सफल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटकीय रूप प्रदान किया है। समाज द्वारा अपमानित तथा जाति द्वारा उपेक्षित चंडालिका का साधु आनंद के संसर्ग से एक तरह से पुनर्जन्म होता है। उसमें आत्म-हीनता की ग्रंथि दूर हो जाती है और संपूर्ण मानवीय भावना के साथ आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। आनंद उसके हृदय-परिवर्तन से अपरिचित रहता है। चंडालिका आनंद को पाने के लोभ में माँ से सम्मोहन-शक्ति का प्रयोग करवाकर उसे बुला तो लेती है परंतु अपने सुधारक के निष्प्रभ तथा विकृत मुख को देखकर उसे अपनी स्वार्थ-वृत्ति पर ग्लानि होती है। इस प्रकार रवींद्र ने मानवीय चेतना की जागृति के अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव का मनो-विश्लेषण किया है। काव्यात्मकता अधिक होने के कारण इसका नाटकीय रूप प्रखर नहीं है।

चंडीचरण मुंशी *(बँ० ले०)*

फ़ोर्ट विलियम कालेज के बँगला पंडितों में चंडीचरण मुंशी का भी उल्लेख किया जाता है। जन्म-समय का पता नहीं चलता है परंतु उनका देहांत 1808 ई० में हुआ था।

इन्होंने कादिरबख्श की फ़ारसी रचना 'तुति-नामा' का बँगला अनुवाद 'तोता इतिहास' (1805) के नाम से किया। पुस्तक इतनी जनप्रिय हुई कि इसके 12 संस्करण प्रकाशित हुए। इनमें से कई संस्करण लंदन से प्रकाशित हुए। इन्होंने 'भगवद्गीता' का बँगला अनुवाद भी प्रकाशित किया।

इनकी रचना में आरंभ में फ़ारसी शब्दों का प्रभाव था परंतु बाद में संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट होने लगा। इनका 'तोता इतिहास' सरल है एवं पुनराख्यान होने पर भी इसमें रोचकता है। इनकी भाषा में गति है और बँगला गद्य को सरल गति प्रदान करने में इनकी देन महत्वपूर्ण है, मगर साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि भाषा की सहज शैली पर लेखक का अधिकार नहीं था।

चंडीचरित (पं० कृ०)

'दशम ग्रंथ' (दे०) में चंडी-विषयक तीन प्रबंध रचनाएँ हैं। इनमें दो रचनाओं की भाषा ब्रज और एक की पंजाबी है। हिंदी (ब्रज) रचनाएँ अपने आकार में पंजाबी रचना से बड़ी हैं। दोनों हिंदी-रचनाओं, 'चंडी-चरित' (उक्तिविलास) और 'चंडी-चरित' (द्वितीय) में क्रमशः 233 एवं 262 छंद हैं। ये रचनाएँ मार्कण्डेयपुराण में अध्याय 81 से 93 तक वर्णित 'देवी-माहात्म्य' का स्वतंत्र अनुवाद हैं।

'चंडी-चरित' (उक्तिविलास) कवित्त-सवैया छंदों में लिखी गई अलंकार-प्रधान रचना है। यह रचना आठ अध्यायों में विभाजित है और इसमें महिषासुर, शुंभ-निशुंभ, धूम्रलोचन, चंड और मुंड, रक्तबीज आदि दानवों से चंडी का युद्ध होता है और अंत में चंडी की विजय होती है। यह रचना उक्ति-वैचित्र्य का एक सुंदर उदाहरण है। 233 छंदों की इस रचना में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की संख्या 170-180 के लगभग है। सवैया इस रचना का प्रधान छंद है। कवि ने साधा-रणतः सवैये की प्रथम तीन पंक्तियों में एक दृश्य चित्रित किया है और चतुर्थ पंक्ति में सादृश्यमूलक अलंकार की सहायता से एक समानांतर दृश्य उपस्थित कर भाव को तीव्र किया है।

'चंडी-चरित' (द्वितीय) का कथाधार पहले 'चंडी-चरित' की भाँति ही है, परंतु उसकी काव्य-शैली सर्वथा भिन्न है। इस रचना में युद्ध की द्रुत, अतिद्रुत और अल्प-द्रुत गतियों को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने छंद-वैविध्य और शीघ्र छंद-परिवर्तन का आश्रय लिया है। इस रचना में रसावल, भुजंगप्रपात, तोटक, कुलंक, बेलीबिद्रुम आदि 17 छंदों का प्रयोग हुआ है और 57 बार छंद-परिवर्तन किया गया है।

गुरु गोविंदसिंह (दे०)-रचित 'चंडी-चरित' यद्यपि दुर्गा सप्तशती पर आधारित है परंतु उसकी भावना सर्वथा भिन्न है। दुर्गा की स्तुति एवं दुर्गा सप्तशती के नियमित पठन एवं श्रवण से प्राप्त होने वाले माहात्म्य पर कवि का अधिक आग्रह नहीं है। वह इस बात को केवल यह कहकर समाप्त कर देता है—'जाहि नमित पढ़ै सुनिहै नर। सो निसचै करि ताहि दई है॥'

कवि द्वारा चंडी-चरित्रों की रचना का उद्देश्य भक्तों की संतुष्टि न होकर तत्कालीन परिस्थितियों में 'धर्मयुद्ध' के लिए सन्नद्ध हो रहे लोगों में वीर-भाव का उन्मेष करना था। इसलिए, कवि ने इस रचना में चंडी की अलौकिकता को यथाशक्ति बचाते हुए संपूर्ण वर्णन में तत्का-लीन परिस्थितियों का परिप्रेक्ष्य बनाए रखा है।

चंडीदास *(बँ० ले०)*

ये प्राचीन बँगला साहित्य के अत्यंत प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं विवादास्पद कवि हैं। चंडीदास, बडु चंडीदास, द्विज चंडीदास, दीन चंडीदास आदि विभिन्न उपाधियों से अलंकृत होने के कारण ये बँगला विद्वानों के लिए समस्या बने हुए हैं।

'श्रीकृष्ण-कीर्तन' (दे०) के रचयिता चंडीदास वासली देवी के सेवक थे। 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' बँगला के प्राचीन ग्रंथों में से है किंतु उसके अनेक अंश प्रक्षिप्त हैं तथा अनेक गीत सुरुचि का परिचय नहीं देते। 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' नाट्यगीति-काव्य है। इसके तीन पात्र हैं—कृष्ण, राधा और सखी (दूती)। विद्वानों के अनुसार इसको पुत्तलिका नृत्य के लिए निर्मित किया गया था। ग्रंथ में अनेक अंश अश्लील हैं। अधिकांश ग्रंथ पयार छंद में लिखा गया है। महाप्रभु चैतन्य ईश्वर-विरह से व्याकुल हो इनके पदों को सुनकर शांति-लाभ करते थे। ये पदकर्ता चंडीदास 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के रचयिता से भिन्न हैं, यह कहना कठिन है। इनके पदों में मोहिनी शक्ति है तथा बंगाल के लोग गायत्री मंत्र के समान इनके गीतों का पाठ करते हैं।

चंडीदास के पदों में प्रेम की विह्वलता, राधा का दुःख-निवेदन, कातर उक्तियाँ, अश्रुपात आदि प्रसंगों का अनुपम वर्णन मिलता है। इनके अनेक पदों में अलौकिक प्रेम का संकेत है जो लौकिक प्रेम में मिल गया है तथा लौकिक प्रेम क्षण-क्षण पर अलौकिक प्रेम की ओर अग्रसर होता है। इनके पदों में साहित्यिक सौंदर्य का आडंबर नहीं है। पद अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। इनकी वाणी सहज, सरल और सुंदर है।

चंडी दी वार *(पं० कृ०)*

गुरु गोविंदसिंह (दे०) द्वारा रचित 'दशम ग्रंथ' (दे०) में 'चंडी दी वार' एक वीररसपूर्ण लघु पंजाबी कृति है। इस रचना में पंजाबी-साहित्य के प्रसिद्ध काव्य-रूप 'वार' (दे०) का प्रयोग किया गया है जिसे मुख्य रूप से किसी भी योद्धा के वीरतापूर्ण कृत्यों के वर्णन के लिए व्यवहार में लाया जाता है।

'चंडी दी वार' में कुल 55 छंद हैं। इन छंदों में महिषासुर, शुंभ-निशुंभ, धूम्रलोचन, चंड और मुंड, रक्तबीज आदि दानवों से चंडी के युद्ध का वर्णन है।

पंजाबी साहित्य की यह प्रथम 'वार' है जिसकी नायिका एक स्त्री है। भगवती शक्ति-रूपा है और वह 'कालपुरुष' द्वारा दैत्यों का नाश करने के लिए उत्पन्न की गई है—

'तैंही दुरगा साजि कै, दैतां दा नासु कराइआ।'

[तुमने (कालपुरुष ने) दुर्गा की रचना करके दैत्यों का नाश करवाया।]

इसी के साथ ही 'कालपुरुष' देवताओं का अभिमान नष्ट करने के लिए दैत्यों का निर्माण करता है—

'अभिमान उतारन देवतिआ,
महिखासुर सुंभ उपाइआ।'

गुरु गोविंदसिंह के ब्रजभाषा में लिखे इस विषय के काव्यों (दे० 'चंडी-चरित') और 'चंडी दी वार' में पूरी तरह कथा-साम्य है। ये सभी रचनाएँ 'मार्कण्डेय-पुराण' में वर्णित 'माहात्म्य' पर आधारित हैं और इनका उद्देश्य सैनिकों में वीरभाव जाग्रत करना था।

चंडीमंगल *(बँ० कृ०)*

'मनसामंगल' (दे०) काव्य के उपरांत 'चंडीमंगल' बंगाल में सर्वाधिक प्रचारित काव्य है। 'चंडीमंगल' के आदि कवि संभवतः माणिक दत्त हैं। 'चंडीमंगल' काव्य के श्रेष्ठतम कवि मुकुंदराम हैं, जो कविकंकण मुकुंदराम चक्रवर्ती (दे०) के नाम से सर्वाधिक परिचित हैं।

'चंडीमंगल' काव्य के तीन खंड हैं। पहला देव-खंड है जिसमें सृष्टितत्त्व आदि की वर्णना के उपरांत इंद्रपुत्र नीलांबर को मर्त्यलोक में भेजा जाता है। द्वितीय खंड में कालकेतु व्याध का उपाख्यान है एवं समाप्ति खंड में धनपति सौदागर की कहानी वर्णित है। इस काव्य में समसामयिक समाज का अप्रत्यक्ष इतिहास काव्य की शिल्प-कला के साथ वर्णित है। 'चंडीमंगल' की ऐतिहासिकता के संबंध में आलोचक आस्थावान हैं। वर्धमान ज़िले के मंगलकोट, कोग्राम आदि स्थानों में धनपति सौदागर एवं उनके पुत्र श्रीमंत की वासभूमि को सभी स्वीकार करते हैं।

'चंडीमंगल' के सर्वश्रेष्ठ कवि मुकुंदराम हैं। मुकुंदराम आनंद के स्थान पर विरह के दक्ष कवि हैं। 1595 ई० में उन्होंने इस काव्य की रचना की थी। कविकंकण के काव्य में यथार्थानुभूति एवं मानवता-बोध का जो अपूर्व परिचय मिलता है, वह मध्ययुगीन बँगला काव्य में विरल है। भारतचंद (दे०) के अतिरिक्त और किसी भी कवि के साथ उनकी तुलना नहीं की जा सकती यद्यपि यथार्थानुभूति एवं मानवता-बोध के क्षेत्र में मुकुंदराम अप्रतिद्वंद्वी हैं। मुकुंदराम ने कहानी-विन्यास एवं चरित्रांकन में अपूर्व निपुणता का परिचय दिया है। मुकुंदराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुरारीशील, उसकी पत्नी 'वान्यानी' मांडुदत्त (दे०) आदि चरित्र सजीव हैं। बहुत-से आलोचक मुकुंदराम के काव्य को बँगला उपन्यास की पूर्वभूमिका के रूप में संवर्द्धित करते हैं। दुःख के चित्रण में कवि दक्ष है परंतु अश्रुतीर्थ के प्रांत से आलोक-शिखा की ओर चलना ही उनका उद्देश्य है। 'चंडीमंगल' काव्य के रचयिताओं की संख्या लगभग 19 है परंतु मुकुंदराम की काव्य-प्रतिभा के सम्मुख सभी म्लान हैं।

चंडेमद्दळे *(क० कृ०)*

यह कन्नड की प्रयोगवादी काव्यधारा के धुरंधर कवि श्री गोपालकृष्ण अडिग (दे०) की प्रतिनिधि कृति है। यह अडिगजी के नव्यकाव्य (प्रयोगवादी काव्य) का प्रथम संग्रह है। इसमें 'हिमगिरिय कंदर', 'गौंदलपुर दीपावली' आदि लंबी कविताएँ हैं। काव्य-बिंबों से भरपूर इस कविता में जीवन की यथार्थता की मानसिक कुंठा की अत्यंत सजीव अभिव्यक्ति है। एक क्लर्क की मनःस्थिति, उसकी असहायता एवं निराशा आदि यहाँ अत्यंत नाटकीय ढंग से वर्णित हैं। वर्तमान जीवन के साथ पार्वती की पंचाग्नि-तपस्या, कामदहन आदि का संबंध जोड़कर जीव की असहायता की मार्मिक विकृति है, वैराग्य की आंतरिक पुकार का संकेत है 'हिमगिरि की कंदरा'। आंतरिक पुकार तथा दैहिक ताप का संघर्ष यहाँ नाटकीय ढंग से वर्णित है। अतीत एवं वर्तमान को एक साथ रखकर उनका साधर्म्य एवं तारतम्य दिखाने का प्रयास किया गया है। 'गोंदलपुर' या 'गडबडनगर' में कम्युनिस्ट, अथवा कोई सर्वाधिकारी राजनीतिक पद्धति हो, यदि वह समष्टि दृष्टि की घोषणा करते हुए व्यक्ति को कुचलने का प्रयास करेगी तो उसके परिणाम बहुत ही विकट होंगे—इसी तथ्य का प्रतिपादन है। इस काव्य के नायक के सिर को गोंदलासुर काटता है। इससे आसुरी वृत्ति के प्रभावाधिक्य का बोध होता है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा कलाकारों की वैयक्तिकता को निर्मूल करने वाला भयंकर सन्निवेश यहाँ चित्रित है। ये सभी कविताएँ नाटकीय स्वगतों से भरी हुई हैं। ये कुछ पात्रों की सृष्टि करती हैं। इन पात्रों में दो विरोधी भावनाओं का अथवा विचारों का द्वंद्व छिड़ा रहता है। इस संग्रह में स्वच्छंद छंद का अत्यंत सफल प्रयोग हुआ है। भाषा में भी कवि ने अपनी प्रयोगवादी दृष्टि का परिचय दिया है। इसमें अँग्रेज़ी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत आदि के शब्द प्रभूत मात्रा में आए हैं। अडिगजी की शैली में विडंबना की प्रधानता है। उनके बिंब उनकी बौद्धिकता के परिचायक हैं तो बौद्धिक अस्वस्थता एवं अस्थिरता के भी परिचायक बन सकते हैं। 'चंडेमद्दळे' कन्नड की की एक क्रांतिकारी कृति है जिसने कन्नड साहित्य में नए आयाम खोल दिए हैं।

चंदनवाड़ी *(पं० कृ०)*

लाला धनीराम चातरिक (दे०) का यह कविता-संग्रह 1931 ई० में प्रकाशित हुआ था। कवि ने संगृहीत कविताओं को 10 भागों में बाँटा है जिनमें प्रमुख ये हैं: 'प्रार्थना', 'भक्ति', 'प्रेम बाण', 'राधा-संदेश', 'समाज', 'देशभक्ति', 'प्रकृति', 'साहित्य फुलवाड़ी' और 'फुटकर टोटके'। इससे लगता है कि चातरिक जी की कविता में विषयवस्तु की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है। पहले और दूसरे भाग की कविताओं में जहाँ कवि के विनीत और मधुर स्वभाव का पता चलता है वहाँ तीसरे भाग की कविताओं में उनके हृदय की प्रेम-वेदना का, कृष्ण-राधा और गोपियों के प्रेम-प्रसंगों के माध्यम से, मार्मिक चित्रण हुआ है। 'राधा-संदेश' कविता में कवि ने विरह-विदग्ध हृदय की वेदना और टीस की बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की है। 'शकुंतला' की चिट्ठी' में भी प्रेम और व्यंग्य का अद्भुत सामंजस्य है। चौथे भाग में इन्होंने समाज की कुरीतियों और कुप्रथाओं पर जम कर प्रहार किया है।

चातरिक की इस संग्रह की कविताओं में कल्पना की रंगीनी और उड़ान बहुत कम है पर कहीं-कहीं इन्होंने कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है, जैसे 'हिमालय' नामक अपनी कविता में।

चंदबरदाई *(हिं० ले०)*

चंदबरदाई का जीवन-वृत्त संदेहास्पद है। ये संभवतः लाहौर-निवासी थे, और एक जनश्रुति के अनुसार दिल्ली के शासक पृथ्वीराज (दे०) चौहान (बारहवीं शती) और इनका जन्म तथा मरण एक ही स्थान पर तथा एक ही दिन हुआ था—

'इक ठाम उप्पजै इकथल मरण निधानं।
एक दीह ऊपन्न इक्क दीहें समायकम ॥'

किंतु अनेक अंतःसाक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि ये पृथ्वीराज से आयु में काफ़ी बड़े थे। इनके पिता का नाम वेनराव अथवा मल्लराव था। इनके दस पुत्रों में एक का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम जल्हन था, जिसने इनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' (दे०) को इनकी आज्ञानुसार पूरा किया था— 'पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज'। किंतु कुछ विद्वान चंदबरदाई का अस्तित्व तक स्वीकार नहीं करते। प्रो० बूलर के अनुसार चंदबरदाई नामक कोई कवि नहीं था, क्योंकि जयानक-रचित 'पृथ्वीराज विजय' नामक संस्कृत-काव्य में वर्णित पृथ्वीराज की राज्य सभा में एक बंदीजन पृथ्वीभट्ट का तो उल्लेख है, पर चंद का नहीं है। इसके अतिरिक्त उक्त काव्य के निम्नोक्त पद्य से किसी 'चंद्रराज' कवि का होना सिद्ध होता है, पर यह नाम चंदबरदाई का सूचक प्रतीत नहीं होता—

तनयश्चन्द्रराजस्य चन्द्रराज इवाभवत्।
संग्रहं यः सुवृत्तानां सुवृत्तानामिव व्यधात्॥

म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा (दे०) इसे 'चंद्रक' कवि का सूचक बताते हैं, जिसका उल्लेख क्षेमेंद्र (दे०) कश्मीरी ने किया। पृथ्वीराजकालीन शिलालेखों में भी चंदबरदाई का कहीं उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार न तो नयनचंद सूरि-कृत 'हम्मीर महाकाव्य' में वर्णित चौहान वंश में चंद का उल्लेख है और न उनके 'रमामंजरी' नाटक में, जिसका नायक जयचंद है, रासो या चंद का उल्लेख है। किंतु इनके विपरीत म० म० हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों ने चंद का तो अस्तित्व स्वीकार किया ही है, उसके वंशधरों का पूरा वंशवृक्ष भी दिया है। उक्त 'पृथ्वीराजरासो' को एक अप्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है क्योंकि शताब्दियों तक इसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन होता रहा। इसमें वर्णित अधिकतर घटनाएँ भी इतिहास के प्रतिकूल सिद्ध होती हैं और संवत् भी इतिहास से मेल नहीं खाते। 'पृथ्वीराजरासो' हिंदी-भाषा का सर्वप्रथम विशालकाय महाकाव्य है, और इसी कारण चंदबरदाई को हिंदी का आदि महाकवि माना जाता है।

चंदा (गु० पा०)

ईश्वर पेटलीकर (दे०) के उपन्यास 'जनमटीप' (दे०) की नायिका चंदा में नारी-जीवन की भव्य भावनाओं और महान शक्तियों का निरूपण हुआ है। निम्न-वर्ग की गुनहगार पाटणवाडिया की प्रणय एवं प्रतिशोध-संबंधी घटनाओं को रूपायित करने वाले इस उपन्यास में चंदा का व्यक्तित्व 'मांगल्य की कौमुदी' की तरह जगमगाता है। वह साधारण स्त्री नहीं है। उसमें स्वाभाविक सौंदर्य है, मधुर वाणी है। आकर्षक व्यक्तित्व है और मादक यौवन है। इन सबके ऊपर उसमें स्वाभिमान की भावना तीव्रतम है और शक्ति-सामर्थ्य का भी अभाव नहीं है। चंदा में इतना साहस है कि वह अपनी जाति और गाँव के लोगों की परवाह न कर दुर्बल मनोरिया के बदले तेजस्वी भीमा से विवाह करती है। जब भीमा विवाह के समय की गई गंभीर प्रतिज्ञाओं को भंग करता है तो वह उसका भी त्याग कर पिता रयजी के पास चली जाती है, पर टेक निभाने के लिए जीवनपर्यंत 'भीमा की चूड़ियाँ' पहनने की बात कहती है। भीमा का पिता देवा भीमा का विवाह अंबा से करवा देता है पर चंदा आजीवन भीमा की पत्नी बनी रहती है। एक बार जब भीमा बीमार होकर अस्पताल में भर्ती होता है, तब अपने अपमान, रोष और तिरस्कार को भूलकर चंदा अस्पताल पहुँच जाती है और हृदय से भीमा की सेवा-सुश्रूषा करती है। चंदा का अपमान करने वाले पूंजा की हत्या के लिए भीमा और देवा आजन्म कारावास का दंड पाते हैं, तब चंदा भीमा के यहाँ पहुँच कर उसके सारे परिवार के लालन-पालन का दायित्व स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर अपनी कर्तव्यपरायणता का महान आदर्श उपस्थित करती है। इस प्रकार उपन्यासकार ईश्वर पेटलीकर ने 'जनमटीप' उपन्यास के इस मुख्य पात्र चंदा के द्वारा नारी के स्वाभिमान, समर्पण और सामर्थ्य का दिग्दर्शन कराया है। वस्तुतः चंदा का स्थान गुजराती उपन्यास-साहित्य में प्रथम पंक्ति के नारी-चरित्रों में है।

चंदुलाल सेलारका (गु० ले०) [जन्म—1931 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर युग के कहानीकार और उपन्यास-लेखक। इनकी कहानियाँ और उपन्यास विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक हैं। उनमें बहिरंग घटनाओं का तत्त्व बहुत क्षीण है और विशेष रूप से उनमें मनुष्य मन की अंतरंग सृष्टि का परिचय मिलता है। उनके तीन उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। अपने कहानी-संग्रह 'स्फुर्लिंग' में उन्होंने कहानी-लेखन में एक अभिनव प्रयोग किया है—बहुत छोटी कहानी लिखने का। आठ-दस पंक्ति की इन कहानियों में कहानी के नए स्वरूप का आरंभ हुआ है। अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'भीतर-सातसमंदर' में मानव के अंतर्जगत का परिचय देने के लिए उन्होंने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है जिसमें प्रत्येक पात्र अपनी विशिष्ट दृष्टि से बात करता-कहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रकांता (*हिं० पा०*)

यह देवकीनंदन खत्री (दे०) के अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास 'चंद्रकांता' की नायिका है। विजयगढ़ के राजा जयसिंह की अनुपम सुंदरी पुत्री चंद्रकांता नौगढ़ के राजकुमार वीरेंद्रसिंह से प्रेम करती है किंतु विजयगढ़ के वज़ीर का लड़का क्रूरसिंह इसमें बाधक बनता है और चुनारगढ़ के राजा शिवदत्त को भड़का कर अपने पक्ष में कर लेता है। लेकिन चंद्रकांता के रूप-सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर शिवदत्त के मन में भी उसे प्राप्त करने की लालसा जाग उठती है। इस प्रकार चंद्रकांता शत्रुपक्ष के चंगुल में फँस जाती है और शिवदत्त तथा क्रूरसिंह के ऐयारों द्वारा एक खोह में छिपा दी जाती है। चंद्रकांता धैर्य तथा साहस से काम लेती है और अपने प्रेम की पवित्रता की रक्षा करने के लिए कर्मक्षेत्र में कमर कस कर कूद पड़ती है। लेकिन खोह से क़िसी प्रकार मुक्त हो ज़ाने के बाद वह एक तिलस्म में फँस जाती है। अंततः वीरेंद्रसिंह ऐयारों की सहायता से इस तिलस्म को तोड़कर चंद्रकांता का उद्धार करता है और तदनंतर ये दोनों बहुत धूमधाम से विवाह-सूत्र में बँध जाते हैं। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों का मूल उद्देश्य पात्रों का चरित्र-चित्रण करना न हो कर पाठकों के लिए मनोरंजक और कौतूहलवर्धक कथा का निर्माण करना था। यही कारण है कि मुख्य पात्र होने पर भी चंद्रकांता का चरित्र उतना नहीं उभर पाया है जितना कि उसे उभरना चाहिए था। लेकिन फिर भी चंद्रकाता का अनुपम रूपलावण्य, उसका सात्त्विक प्रेम और क्षत्रियोचित वीरता पाठक के मानस-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में पूर्णतः समर्थ हैं।

चंद्रकांता संतति (*हिं० कृ०*)

यह देवकीनंदन खत्री (दे०)-विरचित एक ऐसा लोकप्रिय एवं रोचक उपन्यास है जिसे पढ़ने के लिए अनेक लोगों ने हिंदी सीखी। छह खंडों तथा चौबीस हिस्सों में विभक्त इस उपन्यास में लेखक ने अपने पहले उपन्यास 'चंद्रकांता' के कथानक का ही विस्तार किया है। राजा वीरेंद्र सिंह और रानी चंद्रकांता (दे०) के दो पुत्रों—राजकुमार इंद्रज़ीत सिंह एवं आनंद सिंह—और किशोरी एवं कामिनी-नाम्नी कुमारियों की प्रणय-कथा को निरूपित करना ही इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है। इस उपन्यास में शताधिक पात्रों की सहायता से अत्यंत रहस्यमय एवं वैविध्यपूर्ण नानाविध कथासूत्रों को ऐसे कलात्मक ढंग से नियोजित किया गया है कि पाठक अधीरतापूर्वक आगामी कथा को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इसके साथ ही उपन्यासकार ने यथास्थान समकालीन जीवन का ऐसा विस्तृत विवरण दिया है कि पाठक उसकी असाधारण प्रतिभा की प्रशंसा किए बिना नहीं रह पाता।

चंद्रगुप्त (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1911 ई०]

इस नाटक के कथा-स्रोत हैं पुराण, किंवदंतियाँ तथा ग्रीक इतिहास। यहाँ भी द्विजेंद्रलाल राय (दे०) ने ऐतिहासिक स्थापना के विरुद्ध चंद्रगुप्त को शूद्र-संतान माना है। इस नाटक में छाया के अतिरिक्त सभी पात्र इतिहास-सम्मत हैं परंतु वातावरण, प्रसंग-विधान तथा शील-निरूपण कल्पनासिक्त है। मुख्य कथा चंद्रगुप्त-चाणक्य-मुरा-नंद की है तथा प्रासंगिक कथा सेल्यूकस-ऐंटीगोनस-हेलन की। दोनों कथाएँ स्वतंत्र एवं समानांतर हैं। समन्वय-बिंदु है हेलेन का विवाह जो इस उद्देश्य का निर्वाह नहीं कर सका। घटना-क्षेत्र हैं यूनान, अफ़गानिस्तान तथा भारत। पात्रों की दृष्टि से चाणक्य का व्यक्तित्व सारे नाटक पर छाया हुआ है। चाणक्य एक ओर राजनीतिक कुचक्रों में कुशल, घटनाओं और पात्रों का नियंता, लक्ष्य-प्राप्ति के लिए नीति-अनीति की परवाह न करने वाला सशक्त पात्र है, दूसरी ओर ब्राह्मण-धर्म से भ्रष्ट, बेटी से बिछुड़ा निरीह एवं निरुपाय है। उसके प्रबल व्यक्तित्व के सामने चंद्रगुप्त का व्यक्तित्व निष्प्रभ लगता है। ऐंटीगोनस वीर, स्वाभिमानी एवं उदार है। वह निष्ठुर हेलेन से प्रेम नहीं पाता और दुर्भाग्य से, अपरिचित होने के कारण, पिता की हत्या कर बैठता है। उसके जीवन की विडंबना मार्मिक है। सेल्यूकस तथा मुरा में संतान के प्रति स्नेह-भावना है।

इस नाटक में त्रासदी तत्त्वों का सफल प्रयोग किया गया है। चाणक्य, ऐंटीगोनस और छाया की विषाद-गाथा मार्मिक है। इसी पृष्ठभूमि में चंद्रगुप्त का मानसिक संघर्ष द्रष्टव्य है। इस नाटक में अतिनाटकीय तत्त्वों का विशेष सहारा लिया गया है। भाषा पर्याप्त सुंदर एवं प्रभावशाली है। अभिनय की दृष्टि से यह नाटक बहुत सफल रहा है। परंतु नंद की निर्मम हत्या का दृश्य ग्लानि एवं वितृष्णा उत्पन्न करता है।

चंद्रगुप्त (*हिं० कृ०*) [रचना-काल—1931 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) के ऐतिहासिक नाटकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'चंद्रगुप्त' का स्थान अग्रगण्य है। मौर्य वंश का संस्थापक चंद्रगुप्त इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति है। विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' (दे०) एवं द्विजेन्द्रलाल राय (दे०) ने 'चंद्रगुप्त' नाटक में इसी चरित्र को ग्रहण किया है। प्रसाद ने इस नाटक की निर्मिति में ऐतिहासिक तथ्यों को आधार बनाकर कल्पनाओं के चटकीले रंगों का ऐसा प्रयोग किया है कि वे घुल-मिलकर ऐतिहासिक तथ्यों के साथ एकरूप हो गए हैं, उन्हें उनसे अलग करना एकदम असंभव-सा लगता है।

नाटककार ने 'चंद्रगुप्त' में पहले भारत और यूनान की संस्कृतियों का सीधा संघर्ष प्रकट किया है, बाद में सेल्यकूस की पराजय में यूनानी संस्कृति की पराजय और चंद्रगुप्त एवं कार्नेलिया के विवाह में दोनों संस्कृतियों का समन्वय तथा पारस्परिक प्रभाव चित्रित किया है। इस नाटक में चंद्रगुप्त (दे०) और चाणक्य (दे०) दो मुख्य चरित्र हैं। चाणक्य को ब्राह्मणत्व, तेजस्विता और बुद्धिमत्ता के त्रिकोण में इस तरह प्रस्तुत किया है कि अपनी प्रभावात्मक स्थिति को लेकर वह नायक प्रतीत होता है, जबकि नाट्यशास्त्र की बँधी-बँधाई परंपरा फल के उपभोक्ता एवं कथावस्तु को अग्रसरित करने के रूप में उच्च कुलोद्भव चंद्रगुप्त को ही प्रस्तुत नाटक का नायक मानती है। सिंहरण, राक्षस, सुवासिनी, कल्याणी, मालविका एवं कार्नेलिया आदि चरित्रों का अंकन भी प्रसाद जी ने विशेष कौशल से किया है। चाणक्य और सुवासिनी का प्रेम कर्मठता एवं भावुकता में समन्वय स्थापित करता है। चाणक्य जैसे कठोर व्यक्ति में भी भावुकता का एक स्तर पाया जाता है जो भले ही आगे चलकर दब गया हो, पर शुरू-शुरू में उसकी समाहृति ही नाटक की मौलिकता बनी है।

राष्ट्रप्रेम इस नाटक का मूल स्वर है। कार्नेलिया का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' तथा अलका का 'हिमाद्रितुंग श्रृंग से···' प्रयाण-गान इस नाटक में जहाँ एक ओर वातावरण के निर्माण में सहायक हुए हैं, वहाँ दूसरी ओर प्रसाद जी के राष्ट्रवादी स्वर की गरिमा का भी भार वहन करते हैं। चाणक्य जहाँ भाषा-सुधार को सर्वोपरि मानता है, वहाँ मनुष्य-सुधार को भी राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से सर्वथा अपेक्षित विचारता है। नाटक के आदि, मध्य और अंत को ध्यान में रखकर 'चंद्रगुप्त' में तीन अंक ही होने चाहिए थे, पर इतने से चाणक्य की वैराग्यमयी निष्काम स्थिति के दर्शन न होते और यह प्रसाद जी को भी काम्य न था। कार्नेलिया और चंद्रगुप्त का भारतीय पद्धति से विवाह दो संस्कृतियों के निकट आने की उपलब्धि है। ऐतिहासिक नाटकों में पूर्णतः साहित्यिक स्थिति लाने की दृष्टि से 'चंद्रगुप्त' का अपना महत्त्व है और इसे पीछे छोड़ आने का दावा हम उस दिन करेंगे जिस दिन ऐतिहासिक परिवेश में इससे बड़ी मानवीय संवेदना उत्पन्न कर सकेंगे।

चंद्रगुप्त *(हिं० पा०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र में धीरोदात्त नायक के लिए उल्लिखित सभी गुणों से संपन्न यह पात्र जयशंकर प्रसाद (दे०)-कृत 'चंद्रगुप्त' (दे०) नाटक का नायक है। वीरता, कुलीनता, उदारता आदि विभिन्न गुणों के कारण यह निर्भीक, राष्ट्रवादी, तेजस्वी तथा स्वाभिमानी पात्र शीघ्र ही सभी व्यक्तियों के अनुराग का पात्र बन गया है। देशप्रेम, स्वावलंबन एवं आत्मविश्वास की भावना इसके चरित्र की ऐसी केंद्रीय धुरी है जो इसे साधारण स्थिति से उठाकर समस्त उत्तरापथ के एकछत्र सम्राट् के पद पर आसीन कर देती है। इन्हीं दो गुणों के कारण यह अपने चिर सहचर सिंहरण और गुरुदेव चाणक्य (दे०) को भी रुष्ट करने की सामर्थ्य रखता है।

चंद्रगुप्त केवल एक कुशल योद्धा ही नहीं है अपितु एक प्रणयी भी है। परिस्थिति के अनुरूप उसके हृदय में प्रेम का स्रोत भी फूटता है तथा मालविका एवं कार्नेलिया के प्रति अभिव्यक्त होता है। मालविका की सरलता पर मुग्ध होकर युद्ध में जाने से पूर्व मुरली की मधुर तान सुनने की उसकी इच्छा को दिखाकर नाटककार ने उसके चरित्र में साधारण व्यक्ति की-सी दुर्बलता दिखाई है तो कार्नेलिया विषयक प्रेम-प्रसंग को अत्यंत मनोवैज्ञानिक रीति से रूपायित किया है। चंद्रगुप्त और कार्नेलिया दाण्ड्यायन के आश्रम में ही एक दूसरे से परिचित होते हैं। यदि कार्नेलिया अप्रतिम शील-सौंदर्य-समन्वित आदर्श भारतीय वीरता की प्रतिमूर्ति चंद्रगुप्त को देखकर आसक्त हो जाती है तो चंद्रगुप्त भी सिर से पैर तक भारतीय संस्कृति में पगी ग्रीक राजकुमारी कार्नेलिया के सहज सौंदर्य की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह पाता। राजनीतिक संघर्षों के फलस्वरूप इन दोनों का प्रेम प्रसंग कुछ समय तक मुरझाया-सा रहता है किंतु अंततः भारत और यूनान जैसे दो सबल राष्ट्रों के राजनीतिक संबंधों को स्थायित्व देने तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के द्वार खोलने में सहायक होता है।

समग्रतः श्रृंगार और रौद्र के संगम चंद्रगुप्त को प्रसाद जी ने अपने पूर्ववर्ती नाटककारों के समान चाणक्य के हाथ की कठपुतली भर नहीं दिखलाया है। उसका एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजी व्यक्तित्व है जिसका क्रमिक विकास होता है। अपने जीवन के विकासक्रम में वह चंचलता और उत्साह की सीढ़ियाँ लाँघता हुआ गंभीरता की स्थिति तक पहुँच जाता है।

चंद्रधर *(बँ० पा०)*

चंद्रधर अथवा चाँद सौदागर मध्ययुगीन बँगला कवियों द्वारा रचित प्रत्येक 'मनसामंगल' (दे०) काव्य का प्रधान चरित्र है। समुन्नत पुरुषाकृति के आदर्श का प्रतीक यह चरित्र मध्ययुगीन बँगला साहित्य में अद्वितीय है। शिव-पूजक चंद्रधर लौकिक देव-देवियों को अस्वीकार करते हैं; यहाँ तक कि साँपों की देवी मनसा (दे०) की भी परवाह नहीं करते। चाँद के चरित्र के इस मानवीय पौरुष एवं महिमा को 'मनसामंगल' के रचयिता प्रत्येक कवि ने प्रकट किया है। इस चरित्र के श्रेष्ठ चित्रकार हैं नारायण देव। एक अन्य विख्यात कवि विजय गुप्त (दे०) ने इस चरित्र को श्रृंगार-रस-मज्जित कर प्रकट किया है। इससे लौकिक दृष्टि से आकर्षक बन जाने पर भी उसकी चारित्रिक आदर्श-निष्ठा में शिथिलता आ गई है। 'मनसामंगल' की कहानी को बहुत-से विद्वानों ने प्रतीक-कथा के रूप में स्वीकार किया है जहाँ मनसा अत्याचारी राष्ट्रशक्ति की प्रतीक है एवं चाँद सौदागर अत्याचार-पीड़ित हिंदू समाज का प्रतिनिधि है। बेहुला के अनुरोध पर चाँद सौदागर के द्वारा मनसा की पूजा उसकी मानवीय उदारता का ही परिचय देती है। कदाचित् चाँद सौदागर के द्वारा अंत में मनसा की पूजा शिव के शक्ति-रूप की ही स्वीकृति है।

चंद्रधर के वाणिज्य-यात्रा-प्रसंग में तत्कालीन विनिमय-वाणिज्य तथा उपकूलवर्ती अंचल के व्यापार का परिचय मिलता है। प्रत्येक काव्यकार के 'मनसामंगल' में चंद्रधर मध्ययुगीन पुरुष-पात्रों में प्रमुख बनकर उपस्थित हुआ है।

चंद्रप्रभपुराण *(क० कृ०)* [समय—अनुमानतः 1189 ई०]

इसके रचयिता अग्गल नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय 1189 ई० के आसपास माना जाता है। यह आठवें तीर्थंकर की कहानी है। संस्कृत में वीर नंदि द्वारा रचित 'चंद्रप्रभपुराण' ही इसका आधार-ग्रंथ है। यह चंपू-काव्य है। इसमें श्रृंगार का काफ़ी विस्तार है। अतः यह काव्य 'अग्गल लीलावती' के नाम से भी विख्यात है। इसमें तीर्थंकर की भावावलियों का झंझट नहीं है। जिनपुराणों में आने वाले लोकस्वरूप-निरूपण, कालस्वभाव, पंचकल्याण, आदि का विस्तृत वर्णन है। जैन-समय और काव्य-समय के तीव्र प्रभाव में आकर इन्होंने अपनी प्रतिभा का ठीक उन्मेष नहीं किया है। इसके कुछ प्रकृति-वर्णन बहुत ही सरस हैं; आम, मल्लिका, चंद्रोदय, सूर्योदय, निदाघ, पावस आदि के वर्णन मार्मिक हैं। दुर्गयुद्ध, समर-क्रीड़ा आदि में तत्कालीन वीर जीवन की झाँकी मिलती है। इसकी शैली में संस्कृत का निर्घोष प्रधान है। अग्गल का यह काव्य मध्यम श्रेणी का है। इसी के प्रभाव से दौड्डय्या नामक एक कवि ने 'चंद्रप्रभसांगत्य' की रचना की है।

चंद्रालोक *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में बारहवीं शती के लेखक जयदेव के 'चंद्रालोक' का अपना विशिष्ट महत्त्व है। ध्वनि-संप्रदाय के उत्थान के अनंतर अलंकारों का काव्य-धर्म में स्थान नगण्य-सा हो गया था। आचार्य जयदेव ने 'चंद्रालोक' में अलंकारों की अनिवार्यता पर बल देते हुए भामह (दे०), 'दंडी' (दे०), रुद्रट (दे०) के मतवाद की पुनः स्थापना की। राजानक मम्मट (दे०) के काव्यलक्षण में आए हुए 'अनलंकृती पुनः क्वापि' की उन्होंने सोपहास आलोचना करते हुए कहा कि अलंकार-रहित शब्दार्थ को काव्यरूप में स्वीकार करने वाला अग्नि को उष्णता-रहित क्यों नहीं स्वीकार कर लेता? 'चंद्रालोक के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ के काव्यलक्षण में लक्षण का समावेश उपलब्ध नहीं होता। गुणों के निरूपण में जयदेव ने अपने 'चंद्रालोक' में भरत (दे०), वामन (दे०) आदि प्राचीन आलंकारिकों का अनुकरण किया है, भामह आदि का नहीं। 'चंद्रालोक' के पंचम मयूख में अलंकार-निरूपण किया गया है। प्रायः एक ही श्लोक की प्रथम पंक्ति में अलंकार का लक्षण तथा दूसरी पंक्ति में उसका उदाहरण दे दिया गया है।

चंद्रावती *(बँ० पा०)*

दे० रामायण।

चंद्रावली *(हिं० पा०)*

कृष्ण-भक्ति-परंपरा, उसके विभिन्न संप्रदायों तथा कृष्ण-साहित्य के अंतर्गत चंद्रावली की गणना राधा की मुख्य एवं अभिन्न सखी के रूप में की जाती है। 'पद्म-पुराण' के पाताल खंड तथा 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' में भी चंद्रा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वली का उल्लेख इसी रूप में किया गया है। मध्य युग में रास-लीलाओं तथा छद्मलीलाओं के अंतर्गत इसके चरित्र को अनेक मौलिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण-भक्त कवियों ने इसे सहचरी के उपास्य रूप का आदर्श मान कर प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग में भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र ने इसे नायिका का पद प्रदान करते हुए 'चंद्रावली' (दे०) नाटिका की रचना की है। यद्यपि प्रारंभ में तो वह एक साधारण प्रेमिका के रूप में ही परिलक्षित होती है किंतु आगे चलकर उसके चरित्र को निखार दिया गया है और इस प्रकार उसके चरित्र में भक्ति तथा शृंगार का अपूर्व एवं मनोहारी सम्मिश्रण कर दिया गया है। लौकिक बंधन उसकी उत्कट प्रेम-भावना को रोक पाने में सर्वथा असमर्थ हैं और वह माता-पिता, भाई-बंधु, गुरुजन, लोकलाज आदि सभी बंधनों को तोड़ कर अपने प्रेम पर दृढ़ रहती है। वह कृष्ण से मिलने के लिए अकुलाती है, छटपटाती है और उसे मनःशांति केवल तभी मिलती है जब उसका प्रेमी उसे अपनी भुजाओं में भर लेता है। लेकिन उसका यह प्रेम उस कृष्ण से है जिसे परमात्मा का स्वरूप मात्र माना जाता है। अतएव उसका यह प्रेम भक्ति तथा त्याग से परिपूर्ण है। इसी प्रेम के कारण वह कृष्ण की अनुकंपा प्राप्त करने में सफल होती है। समग्रतः चंद्रावली भारतेंदु की एक आदर्श पात्र-सृष्टि है।

चंद्रावली नाटिका (हिं० कृ०) [ले० भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र]

चार अंकों में विभक्त इस नाटिका में चंद्रावली (दे०) के प्रेम, विरह तथा मिलन को रूपायित करते हुए कृष्ण के प्रति उसके उत्कट प्रेम को अभिव्यक्ति दी गई है। यद्यपि चंद्रावली का उल्लेख 'भागवत' (दे०) तथा 'सूरसागर' (दे०) में भी उपलब्ध होता है किंतु भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह सर्वथा मौलिक है। इसमें उनका भक्त-हृदय व्यक्त हुआ है। इसमें प्राचीन भारतीय 'नाट्यशास्त्र' के नियमों के पालन तथा खड़ी बोली के प्रयोग के साथ-साथ समकालीन लोकमंच की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

चंद्रिका (म० कृ०)

यह राजकवि चंद्रशेखर की स्फुट कविताओं का संग्रह है। कवि केशवसुत (दे०) की तरह ये व्यक्तिगत अनुभूति को अभिव्यक्त करना ठीक नहीं मानते थे। इन्होंने वैयक्तिक भाव की भी अवैयक्तिक अभिव्यक्ति की है। इनका काव्य विचारप्रधान, दीर्घ एवं वर्णनात्मक है।

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते समय पश्चिमी कवि वर्ड्स्वर्थ की तरह प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से इन्होंने उपदेश दिए हैं। 'शरच्चंद्र-आणि चंद्रिका', 'सौंदर्या-विषयी', 'कोकिला' आदि कविताएँ इसका प्रमाण हैं। 'सुवि-चार समागम', 'मोह आणि जंतिलता', 'सौजन्य', 'निद्रो', आदि कविताओं में सूक्ष्म भाव एवं मनोविकारों का गहन विचारक्षम शैली में वर्णन किया गया है। 'दत्तावियोग' और 'माधवनिधन' विलापिकाओं की रचना भी इन्होंने की थी। 'इतिहास', 'कवितारति', 'उत्कंठिता' आदि कविताओं में भाव तथा विचार का अपूर्व अमिश्र योग है। 'गोदा-गौरव' भक्तिपरक रचना है। इन्होंने अपने काव्य में आध्यात्मिक तत्त्व के अनुभव का भी वर्णन किया है। चंद्रशेखर के काव्य की आत्मा विचार है। इन्होंने नवीन उपमानों की योजना की है। इनके काव्य में वाणी एवं अर्थ की चारुता है। इनका शब्द-शिल्प अनुपम तथा रचना-चातुर्य अप्रतिम है। इनका 'कार्य हो चमत्कार' नामक खंडकाव्य चित्रण-कौशल के लिए प्रसिद्ध है। यह आधुनिक मराठी का अभि-जात कथाकाव्य है।

चंद्रोत्सवम् (मल० कृ०)

यह मणि-प्रवाल (दे०) शैली में रचित शृंगार काव्य है। इसके रचयिता और रचना-काल के संबंध में मतभेद है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि इसकी रचना पंद्रहवीं शती में हुई थी और इसका रचनाकार कोई केर-लीय ब्राह्मण था। कथा-वस्तु : गंधर्व अपनी प्रेयसी के साथ विहार कर रहा था कि वहाँ सुगंध व्याप्त हो गई। प्रिया की इच्छा के अनुसार गंधर्व उस सुगंधि-स्रोत का अन्वेषण करते हुए केरल में त्रिचूर के निकट स्थित एक गाँव में पहुँचा जहाँ चंद्रोत्सव मनाया जा रहा था। वहाँ जाकर उसने पाया कि सुगंध एक वेश्या की दीपवर्तिका से निकल-कर फैली थी। गंधर्व वहाँ रह कर उत्सव में भाग लेता है और प्रिया के पास लौट कर वहाँ की घटनाएँ उसे सुनाता है।

इस काव्य में वेशभूषा आदि का सुंदर वर्णन है। रस-परिपाक आरंभ से अंत तक मिलता है। 'चंद्रोत्सवम्' की गणना मणि-प्रवाल शैली के उत्तम काव्यों में होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंपक बनर एलिजि *(उ० कृ०)*

'चंपक बनर एलिजि' रमेशचंद्र धळ (दे०) की 19 कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों की विषय-वस्तु बहुविध है—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोविश्लेषणात्मक। सभी कहानियाँ छोटी एवं प्रभोवात्पादक हैं। आज का आर्थिक दृष्टिकोण किस प्रकार मानवीय व्यवहारों का नियामक बन गया है, द्रुत अर्थ-व्यवस्था का मानवीय जीवन के विविध पक्षों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ रहा है, इसका भी संकेत है। संवाद एवं सांकेतिक शैली का अधिक प्रयोग करने के कारण कहानियों में प्रभविष्णुता एवं रमणीयता आ गई है। प्रसंगानुकूल प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली भी रोचक है। भाषा विषयानुकूल तथा संक्षिप्तता का गुण लिये हुए है।

चंपू *(सं० पारि०)*

संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित श्रव्य काव्य की एक गद्यपद्य-मिश्रित विधा जिसका उल्लेख भामह (दे०), दंडी (दे०), वामन (दे०), आदि प्राचीन आचार्यों के शास्त्रग्रंथों में नहीं मिलता। विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने भी चंपूकाव्य के गद्यपद्य-मिश्रित बाह्य कलेवर के अतिरिक्त इसकी किसी अन्य प्रवृत्तिगत विशेषता की ओर इंगित नहीं किया है ('गद्यपद्यमय' काव्यं 'चंपूरित्यभिधीयते'—साहित्यदर्पण 6/336) जिससे यह व्यक्त होता है कि शास्त्र में भी यह काव्यविधा अधिक मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी। त्रिविक्रम भट्ट-विरचित 'नलचंपू' (दे०) (दसवीं शती का पूर्वार्द्ध) सुप्रसिद्ध चंपूकाव्य है।

चंपू रामायण *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

भोजराज (दे० भोज)-कृत 'चंपू रामायण' किष्किधाकांड तक ही उपलब्ध होता है। लक्ष्मण भट्ट ने युद्धकांड तथा वेंकट राज ने उत्तरकांड की रचना करके इसकी पूर्ति की। इसमें कवि का शाब्दिक चमत्कार तथा अलंकार-प्राचुर्य दर्शनीय है। इस चंपू में वाल्मीकि 'रामायण' (दे०) के आधार पर राम-कथा को उसी के रूप में प्रस्तुत किया गया है; अतः इसके पद्यों की रामायण के पद्यों से समानता दृष्टिगोचर होती है।

चउतिशा *(उ० पारि०)*

चउतिशा उड़िया-साहित्य की सर्वाधिक जनप्रिय रचना-रीति है। यह संयोग की बात है कि उड़िया-साहित्य की प्रथम लिखित उपलब्ध रचना 'कळसा चउतिशा' (दे०) चउतिशा-शैली में लिखी गई है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक इसका प्रयोग देखा जा सकता है। रस, गुण, छंद, विषय-वस्तु आदि सभी दृष्टियों से यह एक अत्यंत समृद्ध रचना-शैली है। केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से भी इन चउतिशाओं से महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो सकते हैं।

'चउतिशा' अक्षर-क्रम रचना रीति है। इसमें 'क' से लेकर 'क्ष' तक चौंतीस व्यंजन-वर्णों का क्रमशः पद्य के आद्य वर्ण के रूप में प्रयोग होता है। अतः साधारणतः इसमें चौंतीस पदों की योजना होती है। किंतु इसमें अनेक स्थानों पर व्यतिक्रम दिखाई पड़ता है। उपेंद्र भंज (दे०) की 'चिटाउ-चउतिशा' छह पदों की तथा 'जगबंधु-जणाण-चउतिशा' 17 पदों की है। एक चउतिशा में एक ही राग का प्रयोग हो, इस नियम का पालन भी कठोरता से नहीं हुआ है। 'क्ष' से प्रारंभ होकर 'क' में समाप्त होने वाली चउतिशा को 'विपरीत चउतिशा' कहते हैं। कविसूर्य बलदेव रथ (दे०) की रचना 'किशोर चंद्रानन चंपू' (दे०) चउतिशा शली की रचनाओं में एक विशिष्ट कृति है। इसमें रीति-काव्य के अक्षर-क्रम के प्रयोग पर चउतिशा पद्धति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'कळसा चउतिशा', 'रसकुल्या चउतिशा', 'मथुराबिजे चउतिशा', 'मनबोध चउतिशा' आदि अत्यंत लोकादृत चउतिशाएँ हैं।

चउपदी *(उ० पारि०)*

चउपदी में सामान्यतः चार पाद होते हैं। जगन्नाथदास (दे०) की 'षोळ चउपदी', धनंजय भंज (दे०) की 'चउपदी भूषण', उपेंद्र (दे०) भंज की 'चउपदी चंद्र' प्रख्यात चउपदी रचनाएँ हैं।

चकबस्त *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

जन्मस्थान—फ़ैज़ाबाद। नाम—ब्रजनारायण; चकबस्त इनकी पारिवारिक उपाधि थी। इन्होंने अपना उपनाम कुछ रखा ही नहीं था। इन्होंने लखनऊ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बी० ए० पास कर 1907 ई० में वकालत की परीक्षा पास की थी। लखनऊ में ही ये वकालत करते रहे थे और यथेष्ट प्रसिद्धि भी प्राप्त की थी। इनकी गणना उर्दू के मूर्धन्य समर्थ कवियों में की जाती है। इनका पूरा काव्य देशभक्ति, राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक चेतना, सांप्रदायिक एकता और स्वराज्य-प्राप्ति की दिव्य अनुभूतियों का उज्ज्वल उदाहरण है। इनकी अमर कृति 'सुबह-ए-वतन' कवित्व से भरपूर अद्भुत ग्रंथ-रत्न है। इसमें भावानुकूल भाषा, अनुभूति की तीव्रता, शैली का उत्कर्ष, कल्पना का औदात्त्य और बुद्धि-तत्त्व का औचित्यपूर्ण अपूर्व समन्वय देखते ही बनता है। इनकी अधिकांश कविताएँ 'मुकद्दस-ए-हाली' (दे०) की शैली में लिखी हुई मिलती हैं जिनमें प्रेम व्यापार का चित्रण न होकर नैतिकता, गंभीरता, राष्ट्रीयता और अतीत-गौरव के गान की सजीव झाँकियाँ पाठक को मंत्र-मुग्ध कर देती हैं। समस्त उर्दू-साहित्य में भारतीय तत्त्वों के सर्वाधिक सजीव चित्रण यदि किसी समर्थ कवि में मिलते हैं तो वे अकेले चकबस्त ही हैं। ये 'सुबह-ए-उम्मीद' नामक एक साहित्यिक पत्रिका का संपादन भी करते थे। मसनवी 'गुलज़ार-ए-नसीम' (दे०) को लेकर 'शरर' (दे०) के साथ इनका साहित्यिक शास्त्रार्थ ऐतिहासिक महत्व का तथा अत्यंत प्रसिद्ध है। मर्सिया-लेखन के क्षेत्र में भी इन्होंने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। इनके द्वारा लिखित अधिकतर मर्सिये राष्ट्रीय नेताओं एवं स्वाधीनता-संग्राम के कर्णधारों से संबद्ध हैं जो अत्यंत हृदयस्पर्शी और मार्मिक हैं।

चक्की *(मल० पारि०)*

'चक्की चंकरम्' नाटक की प्रधान नायिका है चक्की। रचयिता पि० रामकुरुप्प् ने अपठित नाटककारों की हँसी उड़ाते हुए प्रस्तुत नाटक की रचना की है। हास्य-प्रधान नाटकों में इस रचना का स्थान सर्वोपरि माना जाता है।

चक्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

जयंत दळवी का यह उपन्यास झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वालों के दयनीय जीवन पर प्रकाश डालता है, नाली में कीड़ों की तरह गिजगिजाने वाले इन प्राणियों की जीवन-विधि की जानकारी पाठकों को देता है जिससे एक नया अनुभव-विश्व हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। लेखक ने अपनी सहज, स्वाभाविक और समर्थ शैली में इस नाटकीय जीवन का चित्रण करते हुए बताया है कि किस प्रकार इन निराधार प्राणियों की दैनिक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं, उन्हें पूरा करने के लिए वे कौन-कौन से अपराध करते हैं और पकड़े जाने के कारण उनके सुंदर सफल जीवन के स्वप्न किस प्रकार नष्टभ्रष्ट हो जाते हैं। यथार्थ चित्रण और निकट अनुभव पर आधारित होने के कारण यह उपन्यास पाठक को प्रभावित तो करता है पर अश्लीलता तथा भाषा-प्रयोग के कारण इसे पूर्ण निर्दोष नहीं कहा जा सकता।

चक्रध्वन सिंह *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

लेखक : लक्ष्मीकांत बेजबरुवा (दे०)।

इस नाटक में पाँच अंक और छब्बीस दृश्य हैं। इसमें बाह्य संघर्ष है किंतु मानसिक द्वंद्व नहीं है। इसका नामकरण ठीक नहीं है क्योंकि चक्रध्वनसिंह इसका प्रधान चरित्र नहीं है। नाटक का आकर्षक चरित्र गजपुरिया है, पर इस पर शेक्सपियर के फ़ाल्टस्टाफ़ पात्र का प्रभाव है। गजपुरिया स्थूलकाय, रसिक, वाक्पटु, मद्यप एवं भीरु है। पात्रों के आधिक्य के कारण यह मंचोपयोगी नहीं है। यह सुखांत ऐतिहासिक नाटक है।

चक्रभ्रमणमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

इसकी लेखिका कोडूरि कौसल्यादेवी (दे०) हैं। इन्होंने अनेक उपन्यास लिखे हैं। 'चक्रभ्रमणमु' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें चार प्रमुख पात्र हैं तथा कथानक एक ही प्रमुख घटना पर आधारित है। मित्र की पत्नी के स्नेह को अनुचित समझकर माधवी पर निंदारोप करती हुई निर्मला एक चिट्ठी लिखती है। इस घटना से उत्पन्न परिस्थिति तथा उसका परिणाम ही कथा का प्रधान विषय है। कथानक के विकास, चरित्र-चित्रण तथा शैली, सभी की दृष्टि से यह एक उत्तम उपन्यास है। इसके आधार पर चलचित्र भी निर्मित हुआ है।

चक्रवर्ती, अमिय *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

रवींद्रनाथ (दे०) की रहस्यमयी चेतना के एकमात्र उत्तराधिकारी होते हुए भी अमिय चक्रवर्ती ने अति आधुनिक कविता के क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखी है। विश्व-परिब्राजक के रूप में इन्होंने जीवन के वातायन-पथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से समग्र विश्व को देखा है एवं उसी का द्वंद्व-मुखर अपरूप चित्र प्रकट किया है। 'खसड़ा' (1938), 'एकमुठो' (1939), 'माटीर देयाल' (1942), 'अभिज्ञान्त बसंत' (1943), 'पारापार' (1953), 'पालाबदल' (1955), आदि इनके उल्लेखनीय काव्य-ग्रंथ हैं।

प्रारंभिक अवस्था में इन्होंने रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) की आध्यात्मिक रहस्य-चेतना को वैज्ञानिक चेतना के आश्रय से अभिव्यक्त किया था। रवींद्रनाथ ने इंद्रिय-ग्राह्य वस्तुजगत् से परे अतींद्रिय भावलोक में आत्मा और परमात्मा की एकात्मता का अनुभव किया था तो इन्होंने इंद्रिय-ग्राह्य जगत् के यंत्रों के घर्घर में एक अद्भुत विश्व-रहस्य का दर्शन किया। दूसरी अवस्था में इन्होंने यह अनुभव किया कि विज्ञान और भौतिक चेतना के द्वारा विश्व के समस्त रहस्य की उपलब्धि नहीं हो सकती—इसके लिए व्यक्ति को ध्यानमग्न होना पड़ेगा। 'माटीर देयाल' की कविताओं में इस प्रकार की चिंतनधारा की अभिव्यंजना हुई है। तीसरी अवस्था में ये विश्व-दर्शन के लिए निकल पड़े हैं। और भारत, यूरोप तथा अमरीका-परिदर्शन करते हुए इनकी यही उपलब्धि रही है कि विज्ञान में यदि मुक्ति नहीं तो ध्यान में भी मुक्ति नहीं। इन दोनों—ध्यान एवं विज्ञान—की संगति में ही मुक्ति है। यही प्रज्ञानियंत्रित रहस्य-चेतना इनकी कविताओं की आधार-भूमि है।

चक्रवर्ती, धनराम *(बँ० ले०)*

इनका जन्म-स्थान वर्द्धमान जिले में कृष्णपुर ग्राम है। इनका जन्म-समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। इनके पिता का नाम गौरीकांत एवं माता का सीतादेवी था। ये जाति के ब्राह्मण तथा राम के भक्त थे। इनकी प्रमुख कृति 'धर्म-मंगल काव्य' है। अनुमान से यह ग्रंथ 1711 ई० में पूर्ण हुआ था। इनका काव्य 24 खंडों में विभक्त विराट महाकाव्य है। इनके काव्य की भाषा प्रांजल है। भाषाभिव्यक्ति, भाषा-प्रयोग एवं रचना-कौशल में कवि अत्यंत पटु है। सहज, सरल, अबाधित पयार त्रिपदी छंद में लिखा यह मंगल-काव्य अठारहवीं शती के धर्ममंगल-काव्यों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। शृंगार, करुण एवं वीर रस का प्रयोग तथा अनुप्रास का आधिक्य इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य है। इन्होंने अपने ग्रंथ में तत्कालीन वर्द्धमान नरेश कीर्तिचंद्र की प्रशंसा की है। इससे अनुमान होता है संभवतः इनको राज्याश्रय प्राप्त था। अठारहवीं शती के धर्ममंगल-रचयिताओं में ये अत्यंत जनप्रिय कवि थे।

चक्रवर्ती, बिहारीलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1835 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

इनका जन्म कलकत्ता में नीमतल्ला पल्ली में हुआ था। इनके पिता का नाम दीननाथ चक्रवर्ती था। इनके दो विवाह हुए थे। ये ब्राह्मण जाति के थे। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं: 'स्वप्नदर्शन', 'बंगसुंदरी', 'निसर्ग संदर्शन', 'प्रेमप्रवाहिनी', 'बंधुवियोग', 'संगीत-शतक', 'साधेर आसन', 'बाउल विंशति' एवं 'सारदा-मंगल'। 'सारदा-मंगल' (दे०) इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। मैत्री-विरह, प्रीति-विरह एवं सरस्वती विरह का अपूर्व चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किया है। केवल यही ग्रंथ इनकी यशःकाया को धूमिल नहीं होने देगा।

इन्हें अपने जीवन-काल में यश प्राप्त नहीं हुआ था। यथार्थ में बँगला काव्यधारा में छंद, भाषा एवं भाव में युगांतर उपस्थित करने वाले एकमात्र व्यक्ति ये ही हैं। परवर्ती काव्य में इनका स्वर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ है। इनको नव्य गीतिकाव्य का प्रवर्तक कहा जाता है। रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने इनको 'भोरेर पाखि, अर्थात् 'प्रातःकालीन-पक्षी' की संज्ञा से अभिहित किया है। प्रकृति-वर्णन में स्वकीयता, अपरूप-रूप सृष्टि का निर्माण करने में ये अत्यंत कुशल हैं। भाषा शिशु के समान नग्न एवं अकृत्रिम है। इनकी उड़ान अत्यंत आत्मपरायण है। इनकी कविता साधारण कविता-प्रेमी पाठक के लिए नहीं है। रवींद्रनाथ ठाकुर इन्हें अपना काव्य-गुरु मानते थे।

चक्रवर्ती, मुकुंदराम *(बँ० ले०)*

'कविकंकन' मुकुंदराम चक्रवर्ती का जन्म अनुमान से सोलहवीं शती के अंत अथवा सत्रहवीं के प्रारंभ में हुआ था। वर्द्धमान जिले के अंतर्गत दामोदर नदी के तट पर दामुन्याग्राम इनका जन्म-स्थान था। यह राढ़ी श्रेणी के श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। इनके पिता हृदय मिश्र थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता कविचंद्र का उल्लेख भी आता है। स्थानीय शासक के अत्याचार से पीड़ित हो कवि ने जन्म-स्थान त्याग कर मेदिनीपुर जिले में आरता गाँव के ज़मींदार बाँकुड़ाराय का आश्रय ग्रहण किया था।

इनकी प्रमुख कृति 'चंडीमंगल काव्य' (दे०) है जिसमें कालकेतु (दे०), फुल्ला (दे०) तथा धनपति की कथा है। प्राचीन बँगला कवियों में इनका विशिष्ट स्थान है। सोलहवीं शती के लेखक होकर भी इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला भाषा को प्राचीनता से नवीनता की ओर मोड़ने का सफल प्रयास किया है। इनके काव्य में उस समय प्रचलित बँगला शब्दों का प्रयोग इस बात का प्रमाण है। शब्द की पकड़ इनकी अचूक थी—अतः उस समय की बँगला भाषा का शुद्ध रूप इनकी रचना में ही देखा जा सकता है। श्लेष और व्याजोक्ति का प्रयोग बँगला भाषा में सर्वप्रथम इनकी रचना में ही देखा जा सकता है।

प्राचीन बँगला भाषा में इनका विशिष्ट स्थान है। वस्तु-विधान, हास्य रस, यथार्थ-चित्रण एवं चरित्रांकन आदि अनेक विषयों में ये अत्यंत कुशल हैं। ये बँगला साहित्य के प्रथम आख्यान-शिल्पी हैं।

चक्रवर्ती, शिबराम *(बँ० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

शिबराम चक्रवर्ती हास्य-कथाकार के रूप में बँगला साहित्य में प्रसिद्ध हैं—यद्यपि बँगला साहित्य-क्षेत्र में इनका प्रवेश गंभीर कविता के रचयिता के रूप में ही हुआ था। इनके प्रारंभिक कविता-संग्रहों के नाम हैं 'मानुष' और 'चुम्बन' (1929)। इनमें दरिद्रों की वेदना एवं कामरति के जयोच्छ्वास का वर्णन है। इसके उपरांत इन्होंने हास्य-प्रधान उपन्यास या कहानियाँ लिखनी शुरू की थीं। इनका ध्यान विशेष रूप से शिशु-मन की ओर आकृष्ट हुआ था। इस संबंध में इनका यह कहना था कि मुझसे बड़ों के लिए हँसी की कहानी लिखने के लिए कहा गया पर छोटों में ही मुझे ज़्यादा आनंद आता है। उपन्यासों में इनका 'प्रेमेर पथ घोटालो' (1946) काफ़ी प्रसिद्ध है एवं कहानी-संग्रहों में 'आज एवं आगामी काल' (1929)', 'मेयेदेर मन' (1940), 'बड़देर हासिखुशि', 'शिबरामेर सेरा गल्प' आदि उल्लेखनीय हैं।

शब्दों के प्रयोग-चातुर्य के द्वारा अंतर की बात को स्पष्ट करना इनकी अपनी विशेषता है। इनके कौतुक-रस में व्यंग्य और विद्रूप के स्थान पर अनाविल हास्य प्रधान है। शिशु-मन की तरह इनका हास्य अकारण, अवारण गति की सरल उच्छलता को प्रकट करता है—यही इनकी प्राण-शक्ति है।

चचा छक्कन *(उर्दू० पा०)*

चचा छक्कन इम्तियाज़ अली ताज (दे०) की हास्य प्रधान रचना 'चचा छक्कन' का मुख्य-पात्र है। 'चचा छक्कन' उपन्यास की विभिन्न कथाओं का ताना-बाना इसी एक पात्र के गिर्द बुना गया है। लेखक ने 'थ्री मेन इन ए बोट' से प्रेरणा ली और उसी स्तर को सम्मुख रखकर चचा छक्कन के लिए इससे मिलती-जुलती परिस्थितियों का जाल बुना है।

चचा छक्कन हमारे सामने दाढ़ी-मूँछ से युक्त, अधेड़ उम्र के एक स्वाभिमानी गृहस्थ के रूप में आता है। यह अपने असंतुलित व्यवहार से अपनी परिस्थितियों को स्वयं उलझाता रहता है। पाठक इसकी फड़फड़ाहट देख कर हँस देता है। इसमें एक साधारण गृहस्थ की लोच-लचक नहीं है। इसकी करनी और कथनी का विशद अंतर हास्यास्पद है। यह नियम बनाता है, दूसरों पर उन्हें थोप देता है किंतु स्वयं उनका पालन नहीं करता।

सारांश यह कि चचा छक्कन उर्दू साहित्य का एक ऐसा पात्र है जो हास्यास्पद परिस्थितियों को स्वयं जन्म देता है। यह बड़प्पन तथा गंभीरता का असफल अभिनय करता है और नए वातावरण के अनुकूल अपने आप को ढाल नहीं पाता।

चटर्जी, सुनीतिकुमार *(भाषा० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1977 ई०]

दो दर्जन से अधिक भाषाओं के जानकार डा० चटर्जी अँग्रेज़ी के प्राध्यापक, कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में प्राध्यापक, वहीं भारतीय भाषाओं के खैरा प्रोफ़ेसर; बंगाल विधान परिषद् के अध्यक्ष आदि रहे। आप साहित्य अकादमी के अध्यक्ष भी रहे। यूरोप और एशिया की पचीसों संस्थाओं ने अपना सम्मान्य सदस्य बनाकर तथा अनेक ने उपाधियाँ देकर आपको सम्मानित किया। भारतीय भाषाविद् के रूप में अनेक बार आपने अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व किया। आपका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'ओरिजिन ऐंड डेवेलपमेंट आफ़ बंगाली लैंग्वेज' है जिसकी भूमिका को भारतीय आर्य-भाषाओं का विश्वकोश कहा गया है। आपके अन्य मुख्य ग्रंथ हैं: 'इंडो-आर्यन ऐंड हिंदी' (हिंदी अनुवाद: 'भारतीय आर्य-भाषा और हिंदी'), 'बंगाली फ़ोनेटिक रीडर', 'राजस्थानी, लैंग्वेज ऐंड लिंग्विस्टिक प्राबलम्स' (हिंदी अनुवाद: 'भारतीय भाषाएँ और भाषा-समस्याएँ'), 'लैंग्वेजिज आफ़ इंडिया'। पाणिनि के बाद डा० चटर्जी ही ऐसे भारतीय भाषाशास्त्री हैं जिन्हें विश्व में इतनी अधिक ख्याति मिली है।

1977 के पूर्वार्द्ध में सतासी वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर इनका निधन हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र *(बँ० ले०)*

दे० बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ।

चट्टोपाध्याय, शरत्‌चंद्र *(बँ० ले०)*

दे० शरत्‌चंद्र चट्टोपाध्याय ।

चट्टोपाध्याय, संजीबचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1834 ई०; मृत्यु—1889 ई०]

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) के अग्रज संजीबचंद्र चट्टोपाध्याय की प्रतिभा की तुलना में उनकी साहित्य-सृष्टि पर्याप्त नहीं है ।

संजीबचंद्र का प्रथम उल्लेखनीय उपन्यास है 'कंठमाला' (1877) यद्यपि उससे पहले वे 'रामेश्वरेर अदृष्ट' उपन्यास की रचना कर चुके थे । 'कंठमाला' के पूर्वभाग 'माधवीलता' का प्रकाशन पहले-पहल 'बंगदर्शन' पत्रिका में हुआ था। बाद में सन् 1884 ई० में वह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। वस्तुतः संजीब बाबू की विशेष प्रसिद्धि उनकी भ्रमण-कहानी 'पालामौ' (1880-81) (दे०) के कारण है । इस ग्रंथ के द्वारा लेखक ने यह प्रमाणित कर दिया है कि शुद्ध भ्रमण-कहानी के उपलक्ष्य में आख्यान-मात्र-वर्जित मनोरम साहित्य-रचना संभव है। उनके साहित्य-सृजन से यही पता चलता है कि कहानी कहने की शक्ति उनमें विद्यमान थी, इसलिए उपन्यासों की कथा-वस्तु जटिल होने पर भी कहानी की निबिड़ता तथा गति पाठकों को आकर्षित करती रही है । उनमें प्रतिभा थी परंतु अनुशासन और शृंखला का अभाव था, इसीलिए सृजन-क्षमता के रहते हुए भी वे बहुत नहीं लिख पाए ।

चतुरसेन शास्त्री *(हिं० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

इनका जन्म जिला बुलंदशहर के अनूपशहर क़स्बे में हुआ । लगभग 23 वर्ष की आयु में ये एक प्रसिद्ध कथाकार माने जाने लगे थे और इसके बाद लगभग 44 वर्ष तक इन्होंने उपन्यास, निबंध, इतिहास, धर्म, राजनीति, चिकित्सा, कामशास्त्र, पाकशास्त्र जैसे विषयों पर 186 ग्रंथ लिखे । अभी भी लगभग चार दर्जन ग्रंथ अप्रकाशित हैं ।

बौद्धकाल, मुग़लकाल एवं राजपूत काल से संबंधित इन्होंने लगभग 450 कहानियाँ लिखी हैं । 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' इनकी प्रसिद्ध कहानी है, जो शैली और गठन की दृष्टि से बेजोड़ है । इनका संपूर्ण कथा-साहित्य दिल्ली से पाँच भागों में प्रकाशित हुआ है— 1. 'बाहर-भीतर', 2. 'दुखवा मैं कासे कहूँ', 3. 'धरती और आसमान', 4. 'सोया हुआ शहर', और 5. 'कहानी खत्म हो गई' ।

'वैशाली की नगरवधू' (दे०), 'आत्मदाह', 'हृदय की प्यास', 'बगुला के पंख', 'गोली', 'सोना और खून' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं । कुल मिलाकर इनके 32 उपन्यास कहे गए हैं । इनके उपन्यास ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं । 'वयम् रक्षामः' इनकी प्रागैतिहासिक औपन्यासिक कृति है । 'अमर राठौर' तथा 'उत्सर्ग' इनकी नाट्यकृतियाँ हैं ।

अनेक विषयों पर लिखने के कारण इनमें विस्तार तो है, पर गहराई बहुत कम है । इनकी भाषा-शैली युगानुरूप साँचे में नहीं ढली और न पुरानेपन को त्याग सकी। इनकी रसाप्लुत शैली, जो कुछ ऐतिहासिक कहानियों में उमड़ी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण और अंधकारमय काल को अपना कथ्य बनाकर इन्होंने परतंत्रता के काल में हमें हमारे गौरवपूर्ण अतीत की झाँकी दिखाकर राष्ट्र-निर्माण की दिशा में जो कार्य किया है वह अत्यंत प्रशंसनीय है । भारतीय साहित्य और संस्कृति को इनका यही सच्चा योगदान है ।

चतुर्दशपदी (सॉनेट) *(हिं० पारि०)*

यह प्रसिद्ध पाश्चात्य प्रगीत-रूप 'सॉनेट' का बहुप्रचलित हिंदी-पर्याय है । जेकब शिपर के अनुसार 'सॉनेट ग्यारह वर्णों अथवा पंचपदियों में रचित चौदह पंक्तियों की एक ऐसी स्वतःपूर्ण लघु कविता है जिसमें कवि आद्यंत एक ही विषय, विचार अथवा विचार-शृंखला का प्रतिपादन करता हुआ अंत में किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है' । 'छोटे आकार के कारण सुरुचिपूर्ण एवं निर्भ्रांत-सुनिश्चित शब्द-चयन, लय (दे०), अंत्यक्रम, छंद (दे०) की नियमित योजना तथा विषय की पूर्ण अन्विति इसके सुसंहित, सघन और तीव्र प्रभाव की सृष्टि के लिए आवश्यक हैं ।

सॉनेट का उद्भव इटली में तेरहवीं शती के आरंभ में इतालवी सॉनेटों से माना जाता है । प्रारंभ में लंबी कविताओं के विभिन्न अनुच्छेदों के रूप में प्रयुक्त सॉनेट का कोई निजी स्वरूप नहीं उभर पाया था, यहाँ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसकी पंक्तियों की संख्या भी सुनिश्चित न हो सकी थी। तेरहवीं शती के अंत में रचित इतालवी कवि दुराते की प्रसिद्ध रचना 'रोमाँ दि ला रोज़े' में सॉनेट को अनुच्छेदों के छांदिक माध्यम के रूप में ही अपनाया गया है। अँग्रेज़ी में इसका प्रचलन सोलहवीं शती के प्रारंभ में हुआ। अँग्रेज़ी के प्रारंभिक सॉनेटकारों ने पंक्ति-संख्या की कोई चिंता नहीं की। स्पेंसर ने प्रायः बारह पंक्तियों में ही अतुकांत सॉनेटों की रचना की है। चौदह पंक्तियों का साग्रह निर्धारण उन्हीं के समकालीन फ़िलिप सिडनी के द्वारा किया गया। सत्रहवीं शती के प्रथम दशक में ही शेक्सपीयर के प्रसिद्ध सॉनेट प्रकाश में आए और तब से लगभग दो शताब्दियों तक सॉनेट अँग्रेज़ी साहित्य का अत्यंत लोकप्रिय गीतिरूप बना रहा। फ़्रांस में इसके स्वरूप-निर्धारण का मुख्य श्रेय मल्हर बेऔर सेंत ब्यब को है।

पश्चिम में विशिष्ट सॉनेट-रचयिताओं के नाम पर पैट्रार्कियन, स्पेंसेरियन और शेक्सपीरियन आदि अभिधान देने की परंपरा रही है। अधिकांश सॉनेट पैट्रार्क की भाँति दो चतुष्पदियों और दो त्रिपदियों में रचित हैं। आधुनिक भारतीय साहित्य में चतुर्दशपदियों का आविर्भाव और प्रचलन पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप ही हुआ है; यों आधुनिक कवियों—विशेषतः बँगला और हिंदी के कवियों—ने इसके रूप में अपने अनुरूप परिवर्तन कर लिये हैं।

चतुर्दशपदी कवितावली *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1866 ई०]

'चतुर्दशपदी कवितावली' की रचना कर माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने बँगला काव्य-क्षेत्र में पाश्चात्य काव्य-रूप सॉनेट का प्रवर्तन किया और बँगला काव्य को एक अभिनव अभिव्यंजना-रीति प्राप्त हुई। सॉनेट गीतिकविता का ही एक प्रकार-भेद है। गीति-कविता के तरल, स्वच्छंद-प्रवाहित भावोच्छ्वास को चौदह पंक्तियों में से प्रवाहित कर एक संहत रूप प्रदान करना पड़ता है। चतुर्दशपदी कवितावली के सॉनेटों में कवि-मन की सुगंभीर अनुभूति को इसी प्रकार एक संहत, अखंड रूप प्राप्त हुआ है।

मधुसूदन के इन सॉनेटों में उनका जातीय गौरव एवं स्वदेश-प्रीति ही अधिक प्रकट हुई है। आश्चर्य की बात है कि सुदूर फ़्रांस में रहते हुए रचित इन सॉनेटों में कवि ने जयदेव (दे०), कृत्तिवास (दे०) आदि के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। भारतीय देव-देवियों, पूजापार्वण का उल्लेख किया है। पीपल वृक्ष के नीचे स्थित शिव-मंदिर को वे नहीं भूले हैं एवं साँप, वृक्ष, नदी का किनारा आदि क्षुद्रातिक्षुद्र विषयों को लेकर कविता की रचना की है। इन सॉनेटों में आवेग की तीव्रता की अपेक्षा जीवन के संबंध में परिणत चिंतन अधिक प्रकट हुआ है। प्रज्ञा एवं मनन के माध्यम से कवि ने एक मुहूर्त की अनुभूति को स्थायी रूप प्रदान किया है। अपने ही छंद में अपनी बात कहने की रीति-भंगिमा के आश्रय में रचित चतुर्दशपदी कवितावली बँगला साहित्य की स्थायी संपत्ति है।

चतुर्वेदी, माखनलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1967 ई०]

इनका जन्मस्थान बावई, ज़िला होशंगाबाद (म० प्र०) है। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण ये उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। थोड़े दिन अध्यापन कार्य करने के पश्चात् इन्होंने पत्रकारिता में प्रवेश किया और 'प्रभा', 'कर्मवीर' एवं 'प्रताप' जैसे पत्रों का संपादन किया। स्वातंत्र्य-संग्राम में सक्रिय भाग लेने के कारण इन्होंने जेल-यात्रा भी की। इनकी रचनाओं में 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी' नामक काव्य तथा 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी कविताओं में राष्ट्रभक्ति का ओज और आस्तिक भावना की द्रवणशीलता दर्शनीय है। विषय जो भी हो, इनकी शैली में भावावेश का अप्रतिहत प्रवाह सदैव विद्यमान रहता है। इनकी शब्दावली प्रायः मुक्त और अनगढ़ है। भावसिक्त बिंबों की योजना करने में ये सिद्धहस्त हैं। उक्तियों में लाक्षणिक चमत्कार और अलंकृति का भी अभाव नहीं है। इस प्रकार भाव की दृष्टि से इनकी चेतना सांस्कृतिक है और शैली की दृष्टि से इनकी कविता में छायावादी (दे० छायावाद) तत्त्वों की प्रचुरता है। आधुनिक युग के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य में इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

चदुरंग *(क० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

कन्नड के श्रेष्ठ प्रगतिवादी साहित्यकार श्री सुब्रह्मण्यम राजे अर्स का काव्य-नाम है 'चदुरंग'। आपका जन्म 1916 ई० में मैसूर राजघराने से संबंधित एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ। महाराजा कालेज में उच्च शिक्षा पाने के पश्चात् ग्रामोद्धार के उद्देश्य से वर्षों अपने गाँव में रहे और ग्राम-सुधार में लगे रहे। 'सर्वमंगला' तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उय्याले' आपके श्रेष्ठ उपन्यास हैं जिनमें आपने कर्णाटक के कृषक-जीवन की समस्याओं का मानवीयता के आलोक में अंकन किया है। 'सर्वमंगला' कन्नड के अमर चरित्रों में से है। उसमें एक कृषक नारी के त्यागमय एवं सेवापरायण जीवन का मार्मिक चित्रण है। श्री चदुरंग एक अच्छे कहानीकार भी हैं। 'बण्णद बोंबे' में अमीरी और ग़रीबी की समस्या बालमन को भी कैसे आक्रांत करती है—इसका सशक्त निरूपण है। 'कुमार राम' आपका एक ऐतिहासिक नाटक है जिसमें विजयनगर पूर्व राज्य कुंटल के कुमार राम वीरोल्लास तथा मुसलमानों के आक्रमण आदि का सजीव निरूपण है। आपकी शैली बहुत ही चुटीली और सशक्त है।

चदुवु *(ते० कृ०)* [ले०— कोडवगंटि कुटुंबरावु (दे०)]

'चदुवु' (शिक्षा) कोडवगंटि कुटुंबरावु का भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन एवं सत्याग्रह की भूमिका पर रचा गया एक राजनीतिक उपन्यास है। इसमें काँग्रेस के आंदोलन में भाग लेने के लिए शिक्षा का त्याग करने वाले एक युवक की यातनाओं का यथार्थ वर्णन उपन्यासकार ने किया है। इसके साथ-साथ इसमें मनुष्य को अपनी जीविका चलाने के लिए समर्थ बनाने की ओर ध्यान न देकर उसे पंगु एवं निष्क्रिय बना डालने वाली हमारी व्यावहारिकता-शून्य शिक्षा-नीति पर भी कटाक्ष किया गया है।

चमनलाल 'चमन' *(कश्० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

विभाजनोत्तर काल के सांस्कृतिक नवजागरण से प्रभावित। 1957 ई० से कविताएँ लिखने लगे। प्रेमाख्यानक पृष्ठभूमि पर रोमानी गीतों की रचना। 1963 में 'शबनम्य शांर' नाम का कविता-संग्रह प्रकाशित। भावुक और कल्पना-प्रधान कविता। लय, सुर, तुक आदि की दृष्टि से अच्छे छंद जिनमें गेयता भी है और बारीकी भी। इस समय जम्मू व कश्मीर अकादमी, श्रीनगर में हैं।

चरक *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—ई० पू० 600 के लगभग]

चरक-रचित 'चरक-संहिता' अत्यंत प्रख्यात है। वस्तुतः 'चरक-संहिता', 'आत्रेयपुनर्वसु' द्वारा उपदिष्ट है। उनके शिष्य अग्निवेश ने 'चरक-संहिता' की रचना की है। महर्षि भरद्वाज के शिष्य दृढ़बल तथा चरक ने 'चरक-संहिता' का प्रतिसंस्कार किया है। 'चरक-संहिता' में आठ विभाग या स्थान हैं। ये हैं—1. सूत्रस्थान, 2. निदानस्थान, 3. विमानस्थान, 4. शरीरस्थान, 5. इंद्रियस्थान, 6. चिकित्सास्थान, 7. कल्पस्थान तथा 8. सिद्धिस्थान।

चरक ने 'चरक-संहिता' के अंतर्गत रोग के निदान एवं चिकित्सा के अतिरिक्त नैतिक एवं दार्शनिक पक्ष के संबंध में भी विचार किया है। 'चरक-संहिता' के सूत्रस्थान में ओषधि, पथ्य एवं वैद्य के कर्तव्य आदि का वर्णन किया गया है। निदानस्थान में ज्वर, रक्तस्राव, कुष्ठ एवं क्षय आदि का विवेचन है। विमानस्थान में रोगों के परीक्षण एवं ओषधि का वर्णन है। इंद्रियस्थान में इंद्रियों की विकृति, वाणी-संबंधी विकार तथा शक्ति-क्षय का उल्लेख है। चिकित्सास्थान में रोगों के निदान, स्वास्थ्य-वृद्धि तथा दीर्घ जीवन के उपाय आदि का वर्णन किया गया है। कल्पस्थान में शरीर-शोधन द्वारा रोगों के निवारण का वर्णन है। सिद्धिस्थान में विषय रोगों के चिकित्सा की लिए ओषधि के शरीर में प्रवेश कराने की व्याख्या है। इस प्रकार आयुर्वेदशास्त्र के अंतर्गत चरक का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। रोग के निदान और उसकी चिकित्सा के संबंध में चरक की देन सर्वथा अविस्मरणीय रहेगी। चरक ने कर्म-सिद्धांत एवं पुनर्जन्मवाद आदि सिद्धांतों का भी स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

चरणदास, भक्त *(उ० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

इनका जन्म 1780 में रणपुर राज्य के अंतर्गत सुनारवळा ग्राम में हुआ था। इनका पितृदत्त नाम वैरागी चरण पटनायक था। दीक्षा-ग्रहण के बाद ये भक्तचरण के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये पंचसखा (दे०)-मतावलंबी गृही वैष्णव थे।

चरणदास ने अपने लोकप्रिय काव्य 'मथुरा मंगळ' (दे०) में हृदय का नैवेद्य भावग्राही कृष्ण के चरणों में अर्पित किया है। मध्ययुगीन उड़िया साहित्य में 'मथुरा मंगळ' का स्थान अन्यतम है। भक्ति की दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है। 'मथुरा मंगळ' में यशोदा, राधा एवं गोपियों की कृष्ण-विरह-जनित व्यथा अत्यंत करुणार्द्र भाषा में वर्णित है। इसके छंदों की मूर्च्छना मर्मस्पर्शी है। गोपियों के विलाप में सहज भक्ति का चित्रण हुआ है। उद्धव का अद्वैतवादी ज्ञान वात्सल्यमयी माता यशोदा, प्रेम-विह्वला राधा, अनुरागमयी गोपियों के अनन्य प्रेम-प्रवाह में भावतरल बनकर निमग्न हो जाता है। वियोग-शृंगार का यह काव्य 'सूर-सागर' (दे०) का स्मरण दिलाता है। वैष्णवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की यह अमूल्य निधि है।

भक्त चरणदास की दूसरी रचना है 'मथुरा बिजे चउतिशा' जो मथुरा की नारियों के कृष्ण-दर्शन-जनित विभ्रम के वर्णन से मधुर व सजल बन गई है। इनके द्वारा रचित 'मनोबोध चउतिशा' नामक कृति शंकराचार्य (दे०) के 'मोहमुद्गर' की तरह वैराग्य व नीति-शिक्षा से परिपूर्ण है।

भक्त चरणदास की लोकप्रियता का रहस्य इनकी भाषा की रमणीयता, छंदों की संगीतात्मकता, तथा रचना की भाव-स्निग्धता में ढूंढा जा सकता है।

चरणसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1908 ई०]

डा० चरणसिंह भाई वीरसिंह (दे०) के पिता थे। वे अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान थे। इन्होंने ब्रजभाषा में कविता लिखना प्रारंभ किया था। ब्रजभाषा के प्रति इनके मन में अगाध प्रेम और सम्मान था। बाद में पंजाबी भाषा में रचित साहित्य से प्रभावित होकर इन्होंने पंजाबी में काव्य-रचना की। डा० चरणसिंह की कविताओं में आध्यात्मिक भावों को कलात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है। इन्होंने कालिदास के 'शकुंतला' नाटक का पंजाबी में सुंदर अनुवाद किया है।

चरिउ काव्य *(अप० पारि०)*

अपभ्रंश-साहित्य में कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जिन्हें 'पुराण' कहा गया है, कुछ ऐसे हैं जिन्हें 'चरिउ' संज्ञा दी गई है। कुछ ग्रंथों को 'पुराण' और 'चरिउ' दोनों संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। जैसे स्वयंभू-रचित 'पउम चरिउ' को कवि ने कई पुष्पिकाओं में 'पउम चरिउ' या 'पोम चरिउ' कहा है। अंतिम प्रशस्ति में त्रिभुवन स्वयंभू इसे 'रामायण पुराण' कहते हैं। इस ग्रंथ की कुछ पांडुलिपियों में इसे 'पद्मपुराण' कहा गया है। इसी प्रकार स्वयंभू (दे०) की 'रिट्ठणेमि चरिउ' (दे०) को चरिउ और पुराण दोनों ही नामों से अभिहित किया गया है। इसलिए कुछ विद्वान चरिउसंज्ञक और पुराणसंज्ञक काव्यों में भेद नहीं मानते। डा० हरिवल्लभ भायाणी दोनों में स्वरूपगत भेद न मानते हुए केवल आकारगत भेद ही मानते हैं। पुराण में विस्तार अधिक होता है चरिउ में अपेक्षाकृत कम। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने हिंदी साहित्य की भूमिका' (पृष्ठ 221) में सूचित किया है कि 63 महापुरुषों के चरित्रों के आधार पर लिखे गए ग्रंथों को दिगंबर लोग साधारणतः 'पुराण' कहते हैं और श्वेतांबर लोग 'चरिउ'। इस कथन की परीक्षा तभी संभव है जबकि अपभ्रंश के पुराण एवं चरितसंज्ञक ग्रंथों के कृतिकारों का दिगंबर और श्वेतांबर संप्रदायों की दृष्टि से अध्ययन किया जाए।

चरितकाव्यों की वही विशेषताएँ हैं जो पुराण शैली के काव्यों की हैं—जैसे वक्ता और श्रोता के संवाद रूप में कथा कहना; अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों और वस्तुओं का समावेश; साहसिक कार्यों और रोमांचक तत्त्वों का आधिक्य; नायक के जन्म से लेकर मरण-पर्यंत तक की अथवा भवांतरों की कथा; श्रृंगार, वीर तथा शांत रसों की व्यंजना करते हुए उनका शांत रस में पर्यवसान होना या प्रेम, वीरता और वैराग्य की भावनाओं का समन्वय; काव्य-रूढ़ियों का पालन; एक-आध अपवादों को छोड़ कर सभी चरितकाव्यों का कड़वक-बद्ध शैली में होना, इत्यादि। अपभ्रंश के चरितकाव्यों से हिंदी के चरितकाव्य भी प्रभावित हुए। उनमें भी ये विशेषताएँ कम-अधिक मिलती हैं।

चरितकाव्य *(हिं० पारि०)*

शास्त्रीय लक्षणों एवं नियमादि से मुक्त प्रबंध-काव्य का एक अशास्त्रीय रूप। पुराण (दे०), कथा एवं इतिहास से सर्वथा भिन्न चरितकाव्य आचार्यों, कोविदों और परिनिष्ठित-सुसंस्कृत अभिजात-वर्ग में कभी प्रिय नहीं रहा। तात्त्विक दृष्टि से इसे लोक-साहित्य के अंतर्गत ही माना जाता है। इसकी शैली जीवनचरितात्मक होती है। नायक के वंश, जन्म, घर-परिवार, शैशव, यौवन से लेकर जीवनांत तक की महत्वपूर्ण एवं महत्वहीन सभी प्रकार की घटनाओं का गतानुगतिक वर्णन इसकी एक विशेषता है। विषय श्रृंगार-शौर्य, धर्मवैराग्य आदि से संबद्ध होते हैं। कथारंभ में प्रायः प्रश्नोत्तरपूर्ण श्रोता-वक्ता की संवाद-योजना रहती है जिसमें अधिकतर कवि और उसकी पत्नी, तोता-मैना, शुक-शुकी और भृंग-भृंगी के साथ मानवीय चरित्र भाग लेते हैं। लोक-रुचि के अनुसार ही स्वभावतः इसमें अलौकिक दिव्य अतिमानवीय शक्तियों के अतिशयोक्तिपूर्ण कहीं-कहीं अस्वाभाविक कार्य-कलापों का अतिरंजनापूर्ण वर्णन रहता है। अभिव्यंजना, भाषा और अलंकार-प्रसाधन से रहित सीधी लोकभाषा होती है जिसमें प्रायः व्याकरण के प्रति उपेक्षा भी दिखाई पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीय महाकाव्यों की भाँति इसमें भी कवि उद्देश्य-प्रतिपादन के प्रति सजग रहता है, किंतु उद्देश्य सूक्ष्म एवं कलात्मक रूप से ध्वनित न होकर स्थूलतः कथित रहता है। यद्यपि संस्कृत में भी चरितकाव्य की परंपरा रही है ['पद्मचरित' (दे०), 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (दे०), 'विक्रमांक देवचरित' (दे०) आदि], तथापि इसकी सर्वाधिक लोकप्रियता प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में ही रही है। कुछ प्रसिद्ध चरितकाव्य हैं : 'पउमचरिउ' (दे०), 'रिट्ठणेमिचरिउ' (दे०), 'जसहरचरिउ' (दे०), 'पज्जुण्ण कहा', 'गउड वहो', 'मलयसुंदरी कहा' आदि। कुछ विद्वानों ने हिंदी के 'पृथ्वीराज रासो' (दे०), 'बीसलदेव रासो' (दे०), 'ढोला मारूरा दूहा' (दे०), 'रामचरितमानस' (दे०), 'पद्मावत' (दे०), 'मृगावती' (दे०) और 'मधुमालती' (दे०) आदि मध्ययुगीन प्रबंधकाव्यों को भी चरितकाव्य माना है, किंतु यह मत विवाद से मुक्त नहीं है।

चरित्रहीन *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1917 ई०]

'चरित्रहीन' में शरत् (दे०) ने हास-परिहास से उत्पन्न आकर्षण का तीव्र प्रभाव दिखाया है। सामाजिक तथा अवस्थागत वैषम्य होते हुए भी सतीश-सावित्री एक दूसरे को चाहने लगते हैं। प्रणयिनी होती हुई भी सावित्री संयत एवं कल्याण-कामना से अनुप्राणित है। इसीलिए वह स्वेच्छा से मिथ्या कलंक का प्रचार करती है तथा दीर्घ अज्ञातवास लेती है ताकि सतीश का उद्दाम आकर्षण द्वेष एवं घृणा में बदल जाए। निश्चय ही इससे सावित्री की चरित्र-गरिमा असाधारण प्रभाव छोड़ जाती है। ऐसे रोगजर्जर शेष जीवन में उपेंद्र उसका साथ देता है।

इस उपन्यास की तो बात ही क्या, संभवतः समस्त शरत्-साहित्य की अद्भुत सृष्टि है किरणमयी (दे०)। उसका संस्कारमुक्त कुंठाहीन तेजस्वी व्यक्तित्व प्रखर एवं मुखर है। डाक्टर के साथ उसकी गुप्त प्रेम-लीला, दिवाकर का अभिभावक बनना और उसके साथ बर्मा भागना, आदि वैविध्यपूर्ण व्यवहार में पतन एवं असंगति लास कती है परंतु उसकी स्वीकारोक्तियों में प्रवल, निर्भीक तथा यथार्थवादी व्यक्तित्व छिपा हुआ है। इसके विपरीत सरोजिनी तथा सुरबाला के आचरण में स्वच्छता एवं शीतलता है। वास्तव में वैध एवं अवैध प्रेम, चरित्रवान तथा चरित्रहीन की लक्ष्मण-रेखाएँ खींचना असंभव है। लेखक नैतिक मूल्यों के खोखलेपन को उजागर करना चाहता है।

चरित्रोपाख्यान *(पं० कृ०)*

गुरु गोविंदसिंह (दे०)-विरचित 'दशम ग्रंथ' (दे०) में चरित्रोपाख्यान सर्वाधिक दीर्घ और साथ ही इस विशाल ग्रंथ की सर्वाधिक विवादपूर्ण रचना है। चरित्रोपाख्यान कथाओं का एक बृहद् संग्रह है जिनकी संख्या 400 से अधिक है। डा० मोहन सिंह (दे०) के शब्दों में यह रचना मध्यकालीन भारत में प्रचलित सभी पंजाबी और ग़ैर-पंजाबी, भारतीय और अभारतीय कथाओं का विश्वकोश है।

इस रचना में सम्मिलित कथाओं के मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं—बहार दानिश, भारतीय पुराण, लोकगाथा, पंजाबी किस्सा-काव्य, भारतीय इतिहास, आदि। इन कथाओं का केंद्रीय विषय है स्त्री-चरित्र। यदि सभी नहीं तो लगभग अधिकांश कथाओं का केंद्रबिंदु कोई नारी पात्र है और अनेक रूपों में उसके पुरुष-संबंध के द्वंद्व को व्याप्त किया गया है। इसमें देशकाल की परिस्थितियों का अत्यंत सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया गया है।

'चरित्रोपाख्यान' में संगृहीत सभी चरित्र अपने आप में स्वतंत्र होते हुए भी एक बृहत्तर कथा-योजना के अंग हैं। ये सभी चरित्र राजा चित्रसिंह को उसके मंत्री द्वारा विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिए सुनाए गए थे। यह लक्ष्य था विमाता द्वारा लांछित राजकुमार हनुवंतसिंह की प्राणदंड से मुक्ति।

'चरित्रोपाख्यान' में संगृहीत सभी कथाओं को स्थूल रूप से चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (1) प्रेम-कथाएँ, (2) शौर्य-कथाएँ, (3) विनोद-कथाएँ, (4) काम और छल-कथाएँ। 'कृष्ण-रुक्मिणी, भर्तृहरि-पिंगला, माधवानल-कामकंदला, रत्नसेन-पद्मावती, हीर-राँझा, मोहिनी-असुर, उषा-अनिरुद्ध आदि अनेक लोकप्रिय कथानक इस संग्रह में उपलब्ध हैं।

प्रारंभ (मंगलाचरण) और अंत (महाकाल का दीर्घ दाढ़ ते युद्ध) का इस ग्रंथ के अध्ययन में विशेष महत्व है। यही वह अंश है जो इस रचना को दशम ग्रंथ की मूल सृजन-चेतना के साथ बाँधता है। तत्कालीन पीड़ित, पराधीन और शक्तिहीन समाज को प्राचीन भारतीय ग्रंथों, वीरप्रसंगों और ईश्वरीय शक्ति का आश्रय लेकर उसे संघर्ष के लिए सन्नद्ध करना दशम ग्रंथ के रचयिता का मूल उद्देश्य था। इस रचना का प्रारंभ—'तुही आपकौ निहकलंकी बनैहै। सभै ही मलेछान को नास कैहै ॥' के भाव से होता है। अंत में 'महाकाल' के दीर्घ दाढ़ से युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का लंबा वर्णन है—'दुस्ट जिते उठवत उतपाता, सकल मलेच्छ करो रणघाता।'

चर्चरी *(अप० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई० का उत्तरार्ध]

यह जिनदत्त (दे०) सूरि द्वारा रचित एक छोटी-सी कृति है। इसमें रचयिता ने 47 पद्यों में अपने गुरु जिनवल्लभ सूरि का गुणगान और चैत्य-विधियों का विधान किया है। यह धार्मिक कृति है। कृतिकार ने लिखा है कि यह कृति मंजरी भाषा-राग में गाते हुए और नाचते हुए पढ़ी जानी चाहिए।

चर्चरी *(अप० पारि०)*

चच्चरी तथा चाचरि, चर्चरी के ही पर्याय हैं। विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश-पद्यों में से कुछ पद्य चर्चरी नाम से अभिहित हैं। श्रीहर्ष की 'रत्नावली-नाटिका' में चर्चरी का उल्लेख है और उधर हरिभद्र (आठवीं शती से पूर्व) द्वारा लिखित 'समराइच्च-कहा' और उद्योतन सूरि-रचित 'कुवलयमाला कथा' (वि० सं० 836) नामक प्राकृत-ग्रंथों में भी इसका उल्लेख है। संस्कृत-प्राकृत के ग्रंथों के अतिरिक्त अपभ्रंश के वीर कवि (1019 ई०) द्वारा रचित 'जंबुसामिचरिउ' (दे०), नयनंदी (1043 ई०) के 'सुदंसण चरिउ' के वसंतोत्सव प्रसंग में, और श्रीचंद (1066 ई०) के 'रत्नकरंड शास्त्र' नामक अपभ्रंश-ग्रंथ में कुछ छंदों के साथ चच्चरि छंद भी मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि चर्चरी एक छंद विशेष का नाम होगा। कबीर के 'बीजक' (दे०) में चांचर का उल्लेख है जिसे कुछ टीकाकार एक प्रकार का खेल कहते हैं और जायसी के 'पद्मावत' (दे०) में भी फागुन और होली के प्रसंग में 'चांचरि' का प्रयोग हुआ है। वास्तव में 'चर्चरी' शब्द, ताल एवं नृत्य के साथ उत्सवादि में गाई जाने वाली रचना विशेष का बोधक है। कुछ विद्वानों के विचार में चर्चरी शृंगार-प्रधान लोकगीत था जो बारहवीं शती के लगभग वसंत के दिनों में गाया जाता था।

चर्या *(अप० पारि०)*

महायान के धर्म और साधना-पथ में बोधिचित्त को उत्पन्न करने के लिए पारमिताओं की साधना करनी होती है, जिनमें सबसे अंतिम और महत्वपूर्ण प्रज्ञापारमिता है। इसकी साधना के बाद बोधि चित्तोत्पाद होता है, उसके उपरांत उसे ऊपर की ओर उद्बुद्ध किया जाता है, तब अनंत करुणा का उदय होता है। यह समस्त प्रणाली 'चर्या' कहलाती है, जो जनसुलभ नहीं होती। चर्या तथा क्रिया, दोनों का ही उद्देश्य प्रजा तथा उपाय का अभ्युदय है। विविध देवी-देवता, उनकी साधनाएँ, दीक्षा, अभिषेक, मंडल आवेश आदि क्रियाओं और चर्याओं के अंतर्गत आते हैं।

चर्यापद *(बँ० कृ०)*

1882 ई० में राजा राजेंद्रलाल मित्र-रचित 'संस्कृत बुद्धिस्ट लिट्रेचर इन नेपाल' निबंध में नेपाल में संरक्षित संस्कृत पांडुलिपियों की एक सूची प्रकाशित हुई। राजेंद्रलाल मित्र की मृत्यु के उपरांत सरकारी अनुरोध पर महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री नेपाल गए। 1907 ई० में उनकी तीसरी यात्रा में नेपाल के राजदरबार से उन्होंने कतिपय मूल्यवान पांडुलिपियों का संग्रह किया और 1916 ई० में बंगीय साहित्य परिषद् की ओर से इन्हें ग्रंथाकार प्रकाशित किया जो बाद में 'चर्यापद' के नाम से विख्यात हुआ। 1926 ई० में सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय (चैटर्जी) (दे०) ने भाषातात्त्विक विचार के आधार पर इसे बँगला भाषा का प्राचीनतम रूप सिद्ध किया। बँगला पद, प्रवचन एवं मुहावरे की दृष्टि से एवं शब्द-रूप, धातु-रूप एवं बँगला भाषा की विशिष्ट विभक्ति की दृष्टि से चर्यापद समूह को बँगला भाषा के प्राचीनतम निदर्शन के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। बँगला भाषा के अतिरिक्त इस पर असमी भाषा के दावे को भी स्वीकार करना पड़ता है क्योंकि सोलहवीं शती तक बँगला एवं असमी भाषा का मौलिक पार्थक्य बहुत गहरा नहीं था।

चर्या का अर्थ है आचरणीय एवं अचर्य का अर्थ अनाचरणीय है, इसी अर्थ में इन पदों को 'चर्याश्चर्य' कहा जाता है। मुनिदत्त के संस्कृत टीका ग्रंथ में से इन पदों को उद्धृत किया गया है। ग्रंथ का नाम है 'चर्याश्चर्यविनिश्चय'। इन्हीं को ही चर्यापद या चर्यागीतिका कहा जाता है। यह खंडित टीका-ग्रंथ है। इसमें केवल 24 कवियों के 46 पूर्ण एवं एक असंपूर्ण पद समाहित हैं। प्रबोधचंद्र शास्त्री ने 1938 ई० में चर्यापद समूह का तिब्बती अनुवाद प्रकाशित किया। इस अनुवाद की सहायता से खंडित पांडुलिपि के लुप्त गीत-समूह आविष्कृत हुए। मुनिदत्त ने चौदहवीं शती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में टीका की रचना की। प्राचीनतम पदकर्ता हैं लुइपाद, जो ग्यारहवीं शती के हैं। इन पदों के लेखक लुइपाद, कानुपा, भुसुकु, सरहपाद आदि बौद्ध सहजिया मतावलंबी साधक हैं। इनमें महायान संप्रदाय की सहजयान नामक एक विशेष तांत्रिक योगसाधना की निवृत्ति है। इन गीतों में उपमा-रूपक के प्रयोग के द्वारा सिद्धाचार्यों के मतवाद को संकेत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन संकेतों का अर्थ यही है कि चित्त के साथ विषय के संपर्क का विच्छेद करके एवं समस्त भेदज्ञान को लुप्त करके चित्त को शून्यताबोध में प्रतिष्ठित करना है। शून्यताबोध के साथ करुणा के संयोग से चित्त निर्वाण प्राप्त करता है। इसकी भाषा सांध्यभाषा है क्योंकि इसमें प्रस्तुत अर्थ के साथ ही विशेष अभिप्रायमूलक एक दूसरा अप्रस्तुत अर्थ भी रहता है। दसवीं से बारहवीं शती के बीच रचित योगियों के ये गीत बँगला भाषा के प्राचीनतम उदाहरण हैं।

चलाबाट *(उ० कृ०)*

'चलाबाट' राजकिशोर पटनायक (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। उत्कलीय युवक अमरेंद्र और उत्तर-भारतीय युवती रीति अपने विश्वविद्यालयीय जीवन में निकट आते हैं तथा कालांतर में यह संबंध भावुकतापूर्ण प्रणय में बदल जाता है। रीति भाव-प्रवणतावश अमरेंद्र से दूर चली जाती है। विश्वविद्यालय की अन्यतम छात्रा सुमति अमरेंद्र को जीवन-साथी के रूप में चाहती है। इस त्रिकोण में अंत में तीनों ही अविवाहित एवं निस्संग जीवन बिताते हैं। यही इसकी विषयवस्तु है। कथावस्तु संक्षिप्त है। इसमें पात्रों की मनोवृत्ति, मानसिक द्वंद्व आदि का अच्छा परिचय मिलता है। लेखक के समाज-संबंधी विचार भी सामने आते हैं। शैली वैशिष्ट्यपूर्ण है। लेखक की तीक्ष्णबुद्धि, परिपक्व अभिज्ञता, रसज्ञता एवं जीवन की सत्योपलब्धि से यह उपन्यास समृद्ध है। उपमा, रूपक आदि से इसकी भाव-संपदा सुसज्जित है।

चलिहा, कमलेश्वर (अ० ले०) [जन्म—1904 ई०; जन्म-स्थान—डिब्रूगढ़]

इन्होंने 1922 में जोरहाट से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। कई कार्यालयों में इन्होंने नौकरी की। ये जोरहाट के गीतार्थी समाज के एक संस्थापक हैं। इन्होंने 'कच' छद्म नाम से रचनाएँ की हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'संसारी' (1922), 'कणभौ' (1927), 'मुकुति' (1927), 'गुणगुण' (1930), 'छंदिता' (1941)। **नाटक** : 'धुलि' (1928)। **उपन्यास** : 'प्रिया' (1939), 'बालिगड़ात' (1951), 'सुंदरर आघात' (1954)। **जीवनी** : 'विश्वरसिक बेजबरुवा' (1939), 'दीनबंधु एंड्रूज' (1940)।

इनकी कविताओं में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता है, अतः वे कुछ क्लिष्ट हैं। इन पर रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर का प्रभाव है। 'कणभौ' सरल शिशुकाव्य है। 'धूलि' एक प्रतीकात्मक नाटिका है जिसमें धूलि स्त्री की प्रतीक है। उपन्यासों के अतिरिक्त इन्होंने जीवनी-ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनमें श्री बेजबरुवा पर लिखा ग्रंथ विशेष उल्लेखयोग्य है।

चलिहा, सौरभ *(अ० ले०)*

श्री चलिहा स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के सशक्त कलाकार हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**कहानी-संग्रह** : 'अशांत इलेक्ट्रन' (दे०) (1962), 'दुपरिया' (दे०) (1963)।

इनकी कहानियों में बौद्धिकता अधिक है अतः वे जटिल हैं। इन पर हेमिंग्वे का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनका पहला कहानी-संग्रह अधिक जटिल है, इसकी एक कहानी 'ज्यामिति' में व्यक्तियों के नाम क, ख, ग हैं। 'दुपरिया' संग्रह की कहानियों में जटिलता नहीं है। देखना है कि भविष्य में इनकी कौन-सी दृष्टि विकसित होती है।

चाँद का मुँह टेढ़ा है *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1964 ई०]

नये कवि गजानन माधव मुक्तिबोध (दे०) के इस कविता-संग्रह का मूल स्वर प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) है। जन-क्रांति के लक्ष्य से तादात्म्य स्थापित करने में मध्यवर्गीय संस्कार किस प्रकार बाधा उत्पन्न करते हैं, इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण अनेक रूपक-कथाओं द्वारा किया गया है। कुछ कविताओं में सैद्धांतिक घोषणाएँ भी हैं। अप्रस्तुत सामग्री अधिकांशतः लोक-जीवन से गृहीत है परंतु भाषा में अप्रचलित संस्कृत शब्दों का भी अभाव नहीं है। 'अँधेरे में' आदि कुछ कविताओं में महाकाव्य जैसी गरिमा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाकनैया *(अ० कृ०)* [रचना-काल —1954 ई०]

लेखक : राधिका मोहन गोस्वामी । 'चाकनैया' (भँवर) उपन्यास में विवेक नामक आदर्शवादी युवक की निराशा-कहानी है । यह युवक वर्तमान समाज में अपने को अनुपयुक्त पाता है ।

चाक्को, आई० सी० *(मल० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक और वैयाकरण । अपने नब्बे वर्ष के जीवन में वे अंत तक साहित्य-सेवा करते रहे और उन्होंने विश्व की अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया । साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उनका व्याकरण-ग्रंथ 'पाणिनीयप्रद्योतम्' पाणिनीय (दे० पाणिनी और अष्टाध्यायी) व्याकरण पर लिखा गया आधिकारिक ग्रंथ है । उन्होंने कृषि आदि तकनीकी विषयों पर भी लिखा है और जीवनियाँ भी लिखी हैं । मलयाळम के प्रौढ़ लेखकों में आई० सी० चाक्को का स्थान महत्वपूर्ण है ।

चाटुर्ज्या, सुनीतिकुमार *(बँ० ले०)*

दे० चटर्जी, सुनीतिकुमार; दे० बँगला भाषा-तत्त्व ।

चाटुवुलु *(ते० पारि०)*

कभी-कभी किसी घटना से स्पंदित होकर समर्थ कवि तत्काल ही एक-दो छंद बोलते हैं । इसी प्रकार के छंद तेलुगु में 'चाटुवुलु' कहे जाते हैं । प्रायः सभी भाषाओं में हम इस प्रकार की कविता देख सकते हैं । संस्कृत में कालिदास (दे०) जैसे अनेक कवियों की तथा तेलुगु में भीमन, श्रीनाथुडु (दे०) आदि की चाटुकविताएँ प्रसिद्ध हैं ।

चाटुपद मुक्तक रचना के अंतर्गत आते हैं । फिर भी शतक, त्रिशति, सप्तशति आदि की तरह विस्तृत न होकर यह रचना अत्यंत संक्षिप्त रहती है । इसके लिए वस्तु, रस तथा छंद आदि से संबद्ध कोई विशेष नियम नहीं है । संक्षिप्तता, गति तथा पूर्णता इसकी विशेषताएँ हैं । दर्शन, श्रृंगार, नीति, वैयक्तिक अनुभूति आदि कुछ भी इसका विषय हो सकता है । कभी-कभी यह चमत्कारपूर्ण अथवा हास्य-प्रधान होती है । एक बार प्यासे श्रीनाथुडु (प्रसिद्ध तेलुगु कवि) ने अपनी चाटु कविता में कहा, "हे शंकर ! भीख माँगने वाले को दो (औरतों) की क्या ज़रूरत है ? पार्वती को पास रखो और गंगा को छोड़ दो ।" तेलुगु में वेमुलवाड भीमन के चाटुपद भी बहुत प्रसिद्ध हैं ।

संक्षिप्त साहित्यिक विधाओं में चाटुकविता का प्रमुख स्थान है । तेलुगु में अनेक कवियों के चाटुपद अत्यंत प्रचलित तथा लोकप्रिय हैं ।

चाणक्य *(बँ० पा०)*

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) के 'चंद्रगुप्त' नाटक में इतिहास का चाणक्य प्रायः अलक्ष्य-अदृश्य है । फिर भी 'चंद्रगुप्त' नाटक के चाणक्य चरित्र को ऐतिहासिक मर्यादा प्राप्त हुई है । कूटनीतिज्ञ चाणक्य की ख्याति ऐतिहासिक है किंतु इस ऐतिहासिक चरित्र के व्यक्ति-जीवन को द्विजेंद्रलाल ने रूपायित किया है । नाट्यकार ने कन्याहारा चाणक्य को एक अपूर्व आवेग-प्रवण मनुष्य के रूप में चित्रित किया है । उसके स्नेह में विघ्न पड़ने पर ही उसमें हिंसा जागी है । ब्राह्मण्य अहंकार व्यक्तिगत अपमान का बदला लेने के लिए व्यग्र हो उठा है । किंतु इस अहंकार ने उसे ग्रस नहीं डाला है । इसीलिए नंदवध के उपरांत ही चाणक्य का व्यर्थ हाहाकार प्रकट हुआ है । उसकी लड़की आत्रेयी के वापस मिलते ही चाणक्य नाटक से विदा ले लेता है । ऐतिहासिक चरित्र से यह भिन्नता काफ़ी स्पष्ट है किंतु चाणक्य के व्यक्तिगत जीवन को लेखक ने बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है और कदाचित् इसीलिए जनमानस ने हमेशा चाणक्य को अंतरंग होकर ग्रहण किया है । प्रख्यात नट शिशिरकुमार भादुड़ी ने चाणक्य के चरित्र को रूप देकर नाट्य-रसिकों के मन में उसे हमेशा के लिए आवेग और श्रद्धा के आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया है ।

चाणक्य *(सं० ले०)*

इसका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त है, तथा इसे कौटिल्य अथवा कौटिलेय भी कहते हैं । संभवतः इसके पिता का नाम चणक था, अतः इसका 'चाणक्य' नाम प्रसिद्ध हो गया । इसने मगध देश के नंद राजाओं का विनाश कर चंद्रगुप्त को राज्य पर प्रतिष्ठित किया तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना की । इसका प्रसिद्ध ग्रंथ 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' (दे०) है, जिसका प्रमुख विषय राजनीति है । इसमें पंद्रह अधिकरण हैं जिनमें राज्य शासन से संबद्ध विभिन्न विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अतिरिक्त परराष्ट्र, युद्धशास्त्र, विधान और वाणिज्य-व्यापार आदि विषयों पर सविस्तर प्रकाश डाला गया है। संस्कृत वाङ्मय में अपने विषय का यह अद्भुत ग्रंथ है तथा संस्कृत के कवियों एवं नाटककारों ने इससे पर्याप्त सामग्री ग्रहण की। सर्वप्रथम दाक्षिणात्य पं० डा० श्यामशास्त्री ने 1909 ई० में इस ग्रंथ की प्रामाणिक प्रति प्रस्तुत कर इसका पुनरुद्धार किया।

चाणक्य *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के ऐतिहासिक नाटक 'चंद्रगुप्त' (दे०) का अत्यंत गौरवपूर्ण पात्र है तथा नायक न होते हुए भी संपूर्ण नाटक में आद्यंत छाया रहता है। इसके माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने ब्राह्मणत्व का चरम निदर्शन किया है। सिद्धांतवादिता, दृढ़ता, कष्ट-सहिष्णुता, स्पष्टवादिता, दूरदर्शिता तथा राजनीतिक चातुर्य इसकी उल्लेखनीय चारित्रिक विशेषताएँ हैं। अपनी राजनीतिक प्रतिभा के फलस्वरूप ही यह गांधार से लेकर मगध तक के सारे उत्तरापथ को एक शासन-व्यवस्था में नियोजित करके चंद्रगुप्त (दे०) को उसका प्रथम आर्य-सम्राट् घोषित करता है। चंद्रगुप्त द्वारा सिल्यूकस को पराजित करवा कर यह पर्याप्त अवधि के लिए आर्यावर्त को बाहरी हमलों के संकट से निश्चित कर देता है। यह क्रूर तथा महत्त्वाकांक्षी भी है, किंतु इसकी क्रूरता स्वभावगत न होकर परिस्थितिजन्य है तथा महत्त्वाकांक्षा सर्वथा स्वार्थहीन। इसका चरित्र ब्राह्मणोचित विद्वत्ता के साथ-साथ ब्राह्मण-सुलभ उदारता तथा क्षमाशीलता के गुणों से भी युक्त है। इसीलिए यह किसी से द्वेष नहीं करता तथा पराजित सिकंदर के साथ मैत्री-भाव स्थापित हो जाने पर उसकी मंगल-यात्रा की कामना करता है। अपने घोर विरोधी राक्षस के शरणागत हो जाने पर यह उसे महामंत्री के पद पर प्रतिष्ठित करा देता है। राजनीति के जटिल चक्र में आजीवन व्यस्त रहने पर भी यदाकदाइ सके चरित्र का कोमल पक्ष उद्घाटित हो ही जाता है। तक्षशिला से विद्याध्ययन के बाद घर लौटने पर यह न केवल अपने माता-पिता का स्मरण करता है अपितु इसे बालसंगिनी सुवासिनी भी सहज स्मरण हो आती है। यद्यपि यह प्रारंभ में उसे विस्मृत करने का प्रयत्न करता है किंतु उसके सामने आ जाने पर इसकी आँखों से प्रणय-भाव अनायास झलक उठता है। लेकिन यह प्रेम में अंधा होकर अपना विवेक नहीं खोता और जब इसे यह विश्वास हो जाता है कि सुवासिनी राक्षस से प्रेम करके ही सुखी हो सकती है तो उसे राक्षस से विवाह करने का आदेश देकर अपनी त्यागपूर्ण उदारता का परिचय देता है। समग्रतः चाणक्य कर्मठता, सूझबूझ तथा त्याग का एक ऐसा प्रतीक है कि उसकी प्रशंसा अनुगामी ही नहीं अपितु पर्वतेश्वर, राक्षस, सिल्यूकस, सिकंदर आदि विरोधी भी करते हैं।

चातरिक धनीराम *(पं० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

इनका जन्म पसियावाल गाँव (ज़िला स्यालकोट) में हुआ था। ये उच्च शिक्षा तो प्राप्त न कर सके, फिर भी, इन्होंने हिंदी, उर्दू और अँग्रेज़ी का ख़ासा अध्ययन किया था।

इनके तीन काव्य-संग्रह हैं: 'चंदनवाड़ी' (दे०) (1931), 'केशर क्यारी' (1940), और 'नवां जहान' (1945)। इन तीनों काव्य-संग्रहों की कविताएँ लोक-चेतना से संपृक्त हैं। प्रगति, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीयता के स्वर इन कविताओं में प्रबल हैं।

चातरिक की कविता यथार्थवादी और प्रगतिशील है। इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का सुंदर चित्रण हुआ है। चातरिक के काव्य का मूलाधार भौतिक और लौकिक है। इसमें हर प्रकार के शोषण का विरोध किया गया है। कुछेक कविताओं में राष्ट्रीय भावनाएँ भी व्यक्त हुई हैं और राजनीतिक दासता से मुक्त होने की तीव्र छटपटाहट भी। इन कविताओं की भाषा ठेठ पंजाबी है और इनमें अभिव्यक्ति का खरापन है। इनके गीतों में लोकगीतों का-सा रस है।

चातरिक ने पंजाबी काव्य को ठोस भौतिक आधार दिया है। उनके काव्य में जीवन के वास्तविक संघर्ष, समाज की बुनियादी समस्याओं और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य चेतना को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। पंजाबी कविता के विकास में चातरिक का योगदान महत्वपूर्ण है।

चात्तन् *(मल० पा०)*

यह आधुनिक युग के प्रख्यात कवि स्व० उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वरय्यर् के खंडकाव्य 'भक्तिदीपिका' (दे०) का प्रमुख पात्र है। श्री शंकराचार्य (दे०) के शिष्य पद्मपाद भागवत के प्रह्लादोपाख्यान से प्रभावित हो नृसिंह की उपासना के लिए वन चले गए थे। इसी वन में निश्छल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय और प्रेममूर्ति चात्तन् रहता था। एक साधु को भूख-प्यास झेलते तथा तपते देख उसे दया आई और उसने उसकी सेवा करनी चाही। पद्मपाद ने बड़े विद्वत्तापूर्ण शब्दों में नृसिंह-मूर्ति का वर्णन किया परंतु चात्तन् ने केवल उसका हुलिया समझा—कि उस जीव का शरीर आदमी का होता है और सिर शेर का। वह उस जानवर की तलाश में चला। निश्छल वनवासी भील की सच्ची प्रार्थना से प्रसन्न होकर नृसिंह देव ने उसे दर्शन दिए। वह एक मोटी जंगली बेल उसके गले में बाँधे उसे साथ लेकर घूमने लगा। वह उसे प्रेम से कंदमूल खिलाता, नहर का पानी पिलाता। पद्मपाद के पास जाने की इच्छा न होने पर भी नृसिंह को उस भोले भक्त के अनुरोध के सामने सिर झुकाना पड़ा। पद्मपाद का ज्ञानगर्व भोले भील की भक्ति के सम्मुख चूर-चूर हो गया।

चात्तन् के द्वारा कवि ने जाति-पाँति विषयक ऊँच-नीच की भावना की निरर्थकता व्यक्त की है।

चानना, डा० देवराज *(पं० ले०)* [जन्म—1921 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

डा० चानना का जन्म लायलपुर (अब पाकिस्तान) में हुआ। शिक्षा ऋषिकुल महाविद्यालय, लायलपुर से शास्त्री, ओरिएंटल कालेज, लाहौर से एम० ए० संस्कृत। सॉरबॉन विश्वविद्यालय, पेरिस (फ़्रांस) से 'प्राचीन भारत में दास-प्रथा' विषय पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इनका शोध-प्रबंध अँग्रेज़ी एवं रूसी भाषा में अनूदित एवं प्रकाशित हुआ है। पंजाब विश्वविद्यालय कैंप कालिज, नई दिल्ली में संस्कृत विभाग में प्राध्यापक और तदनंतर दिल्ली विश्वविद्यालय के सांध्यकालीन स्नातकोत्तर महाविद्यालय में संस्कृत विभाग में रीडर पद पर रहे।

देश-विभाजन के पश्चात् दिल्ली से प्रकाशित 'साढा युग' पत्र का संपादन 1950 ई० तक किया। देश-विभाजन पूर्व 'प्रीतलड़ी' पत्रिका के संपादन-विभाग में भी सहयोगी रहे। वेद के सोमसूक्तादि भाग को पंजाबी पद्य में 'ऋग्वाणी' शीर्षक से अनूदित किया। 'ऋग्वाणी' प्रकाशित कृति है। अन्य ग्रंथों में फ़्रांसीसी भाषा से अनूदित—1. 'भारतीय चिकित्सा-सिद्धांतों का इतिहास', 2. 'मराठी भाषा की रूप-रचना', 3. 'डैस्टिनी आफ़ द वेदाज़'। संपादित कृति —'ऋग्भाष्य-संग्रह'। 19 मई, 1968 को हृदय-गति रुक जाने से देहावसान हो गया।

चापेकर, ना० गो० *(म० ले०)*

ये मराठी साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्य-समालोचक हैं। इन्होंने शासकीय सेवा करते हुए यथायोग्य समाज एवं साहित्य की भी निष्ठापूर्वक सेवा की है।

इनके समालोचनात्मक निबंध 'साहित्य-समीक्षण' में संकलित हैं। इनकी आलोचना-शैली का यह वैशिष्ट्य है कि समीक्ष्य ग्रंथ से पाठक का परिचय कराने के उपरांत तटस्थ दृष्टि से ये उसका मूल्यांकन करते हैं। ये निर्णयात्मक आलोचक हैं। आलोचना करते हुए तटस्थ वृत्ति होने पर भी विवेचन में इनके व्यक्तित्व का रागतत्त्व झलकता है। विविध ज्ञान-विस्तार तथा अन्य पत्रिकाओं में इनकी पुस्तक-समालोचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

1943 में इन्होंने 'जीवनकथा' नाम से आत्मचरितात्मक ग्रंथ लिखा था। इस आत्मचरित की प्रस्तावना में ये आत्मचरित-लेखन को दुष्कर कार्य मानते हैं। ये कहते हैं कि आत्मचरित लिखना तार पर कसरत करना है। निस्संदेह अपने मंतव्य के अनुरूप ही इनके लेखन में सर्वत्र संतुलित दृष्टिकोण दिखाई देता है।

जानपदगीतों के संकलनकर्ताओं में भी ये प्रमुख हैं।

चामरस *(क० ले०)* [आविर्भाव-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

चामरस के समय, जीवन आदि के बारे में अधिक बातें ज्ञात नहीं हैं। यह वीरशैव-मतावलंबी थे। विजयनगर-नरेश प्रौढ़देवराय के समय के विरक्तों में इनकी भी गणना की गई है। इन्होंने कर्णाटक के महान् संत अल्लम प्रभु (दे०) पर षट्पदी छंद में 'प्रभुलिंगलीले' नामक एक चरित-काव्य लिखा है। परम ज्ञानी प्रभुदेव के जीवन-निरूपण के लिए आवश्यक विरक्ति एवं स्वतंत्र दृष्टि उनमें थी।

अल्लम प्रभु पर कन्नड में और भी अनेक काव्य एवं पुराण मिलते हैं। चामरस से भी पूर्व हरिहर ने रगले छंद में 'प्रभुदेवर रगले' नामक एक चरित-काव्य लिखा था। उसमें प्रभुदेव को जन्मना सिद्ध के रूप में चित्रित किया गया है। वहाँ प्रभुदेव माया पर अनुरक्त होते हैं और उसके साथ कुछ समय तक सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। उसके उपरांत माया की मृत्यु हो जाती है जिससे प्रभुदेव में प्रगाढ़ वैराग्य पैदा हो जाता है। किंतु चामरस की दृष्टि ही भिन्न है। वह विश्वास ही नहीं कर सकता कि शिवजी के अवतार-रूप प्रभुदेव माया-जाल में कैसे फँस सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ माया उसे अपने मोहजाल में फँसाने का प्रयत्न करती है और उसमें विफल होकर कैलास लौट पड़ती है। इस तरह यहाँ सांप्रदायिक आग्रह अधिक है। किंतु इससे काव्य का महत्व घटा नहीं है। काव्य अपनी मूर्त कल्पना तथा महान् उद्देश्य के कारण एक श्रेष्ठ कृति बन गया है। अल्लम प्रभुदेव के चरित्र-निरूपण में कवि ने कमाल हासिल किया है। शून्यमूर्ति अल्लम के चित्रण में यथार्थ की अपेक्षा आदर्श अधिक है। इसमें चामरस की कल्पना-शक्ति तथा शब्द-शक्ति के सहज विलास को हम देख सकते हैं। अल्लम के साथ गोरक्षनाथ की मुठभेड़ होती है। इस संदर्भ में शून्य और वज्र की परीक्षा, माया-निरसन, संत रमणी, अक्क-महादेवी, प्रभुदेव संवाद आदि इस काव्य के रमणीक प्रसंग हैं। अल्लम प्रभु के समय वीरशैव संतों का एक नक्षत्रपुंज ही रहता है। उनमें से सब जैसे बसव (दे०), चेन्नबसव (दे०), सिद्धराय, अक्कमहादेवी आदि अल्लम के साथ आ मिलते हैं। मानो पर्वत आकर इस आकाश के सामने झुक जाते हैं। इन सबके निरूपण में चरितनायक की आंतरिक शक्ति के साथ इसके तादात्म्य, सूक्ष्मज्ञान आदि ने इसके काव्य में प्रासादिकता तथा कल्पना-प्रवाह का सन्निवेश कर दिया है। माया के सौंदर्य-वर्णन में तो इसने कलम तोड़ दी है।

चामरस की शैली सरल है। उसमें अलंकारों की अति या संस्कृत शब्दों की भरमार नहीं है। भामिनी षट्पदी छंद की प्रवाहमयता तथा रूपक संपत्ति में यह कुमारव्यास (दे०) के निकट आते हैं। इनकी दृष्टि में भी स्वतंत्रता के दर्शन होते हैं।

चार इयारी कथा *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1916 ई०]

'चार इयारी कथा' एक प्रसंग-सूत्र में बँधा हुआ चार कहानियों का संकलन है जिसके लेखक हैं श्री प्रमथ-नाथ चौधुरी (दे० चौधरी, प्रथमनाथ)। यह सबसे पहले 'सबुजपत्र' (दे०) में प्रकाशित हुआ था। विलायत से वापस आए हुए चार दोस्तों की व्यर्थ प्रणय-कहानी ही 'चार इयारी कथा' है। चारों नायिकाएँ विदेशिनी हैं। एक कहानी का घटनास्थल कलकत्ता है, दो का इंग्लैंड और अंतिम का इंग्लैंड और कलकत्ता दोनों है। नायक-नायि-काओं के अतिरिक्त इसमें कोई तीसरा पात्र नहीं है। नायकों की अनुभूति एवं विचार-विश्लेषण के बीच से कहानी की गति प्रवाहित है।

प्रमथ चौधुरी की इन कहानियों में कथावस्तु की व्याप्ति भले ही खटकने वाली हो परंतु गपशप की शैली में लिखी गई कहानियों की व्याप्ति के संबंध में लेखक एक-दम निरुद्वेग है एवं मूल कथा की संगति एवं समापन के विषय में भी उसकी कोई उत्कंठा नहीं है। कहानियों में अनंत गपशप की यह पद्धति बिल्कुल नई थी एवं आलो-चकों के लिए यह विस्मय की बात बन गई थी। लेखक ने हास्यरस-सृष्टि की एक अभिनव प्रणाली का प्रयोग किया है। इन कहानियों को पढ़ते हुए लेखक का मन हास्य-व्यंग्य से स्निग्ध हो उठता है परंतु कहानी की गंभीरता कहीं भी समाप्त नहीं होती। रचना-शैली का यह आपत्-विरोधी तत्त्व लेखक की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

चारुदत्त *(सं० पा०)*

राजा शूद्रक के नाम से उपलब्ध 'मृच्छकटिक' (दे०) नामक प्रकरण का नायक चारुदत्त उज्जयिनी के एक बड़े ही संपन्न परिवार का सदस्य है जो अब व्यवसाय में घाटा होने से निर्धन हो चला है। उसी नगर की अनिंद्य सुंदरी गणिका वसंतसेना (दे०) उसके गुणों पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करती है और इसे वह अपना सौभाग्य मानती है।

विधि की विडंबना कि उस सुंदरी के पीछे राजा का साला पड़ जाता है जिसका चारुदत्त से विरोध हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। एक बार उसी के चंगुल में फँसते-फँसते वसंतसेना को चारुदत्त के घर में त्राण मिलता है और वह अपने सभी आभूषण उसी के यहाँ न्यास के रूप में रख जाती है जो दुर्भाग्यवश चोरी चले जाते हैं। उसके बदले में चारुदत्त अपनी पत्नी की मोतियों की माला भिजवा देता है। दूसरी बार वसंतसेना चारुदत्त के घर जाती है और सोने की गाड़ी के लिए मचलते हुए चारुदत्त के पुत्र को अपने सभी आभूषण दे आती है जिनको लेकर चारुदत्त वसंतसेना का हत्यारा सिद्ध कर दिया जाता है। पर बध के ऐन मौके पर ही विप्लव हो जाने से तथा वसंतसेना के जिस किसी प्रकार उपस्थित हो जाने से वह मुक्ति ही नहीं पा जाता, विप्लवी राजा के व्यक्ति को त्राण देने के लिए पुरस्कृत किया जाता है तथा वसंतसेना को उसकी पत्नी के रूप में स्वीकृति भी मिल जाती है।

चारुदत्त मूलतः भास (दे०) की कल्पना है। सर्वसंपन्न व्यक्ति निर्धन हो जाने पर गरीबी का ही रोना रोता रहता है पर चारुदत्त को कष्ट इस बात का है कि अतिथि उसे निर्धन मानकर उसके घर आते नहीं। दूसरों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में असमर्थता का अनुभव उसे पीड़ित करता है। वह एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति है जो गृहदेवताओं की पूजा को अविच्छिन्न चलाते रहने के लिए आग्रहशील है। नगर में उसका बहुत सम्मान है। पुलिस के लोग उसकी सवारी की तलाशी नहीं लेते। न्यायालय में उसे बैठने के लिए आसन दिया जाता है। इन सबके साथ-साथ वह एक सहृदय प्रणयी भी है। वसंतसेना की प्रेम-दृष्टि को समझता ही नहीं, उसका उचित सम्मान भी करता है। वह इसकी परवाह नहीं करता कि इसका परिणाम क्या होगा। यद्यपि वह एक सच्चा प्रणयी है पर मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करता। यह जान लेने पर कि वसंतसेना मर गई वह सोचता है कि अब तो जीना ही व्यर्थ है और शकार (दे०) द्वारा लगाया गया वसंतसेना की हत्या का आरोप स्वीकार कर लेता है।

चावुंडराय-पुराण *(क० कृ०)*

'चावुंडराय पुराण' के रचयिता चावुंडराय का समय 978 ई० ठहराया गया है। ये गंगवंशी नरेश मारसिंह, रायमल्ल आदि के मंत्री और महान् योद्धा थे। 'समर परशुराम', 'समर मार्त्तंड' आदि इनके विरुद थे। श्रवणबेळगोल में स्थित गोम्मश्वर की मूर्ति का निर्माण इन्हीं ने कराया था। ये कवि भी थे और कवियों के आश्रयदाता भी। 'आचारसार' इनका संस्कृत ग्रंथ माना जाता है। 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषपुराण' इनकी प्रतिनिधि रचना है। 'वड्डाराधने' के पश्चात् यही कन्नड का अत्यंत प्राचीन गद्य-ग्रंथ है। इसी का दूसरा नाम है 'चावुंडरायपुराण'। जिनसेन तथा गुणभद्र के पूर्वपुराण तथा उत्तरपुराण इसके आधार-ग्रंथ हैं। आदिपुराण, शांतिपुराण, रामकथा, नेमिपुराण आदि का प्रमुखतः तथा अन्यों का गौणतः उपयोग किया गया है। इसमें जैन धर्म के विश्वासों, तत्त्व एवं इतिहासों का निरूपण है। इसे हम जैन धर्म की दीपिका कह सकते हैं। इसमें मुख्य रूप से 63 महापुरुषों—अर्थात् 24 तीर्थंकरों, 12 चक्रवर्तियों, 9 बलदेवों, 9 वासुदेवों तथा 9 प्रतिवासुदेवों—की कथा आई है। बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेवों में राम, लक्ष्मण, रावण, बलराम, कृष्ण एवं जरासंध आते हैं।

चावुंडराय की शैली कथा-गद्य एवं शास्त्र-गद्य की मिश्रित शैली है। बीच-बीच में संस्कृत शब्दों का प्रयोग, तथा लंबे-लंबे वाक्य गतिरोध उत्पन्न करते हैं। प्राचीन कन्नड के प्रयोग भी बीच-बीच में आ धमकते हैं। इसमें चंपूग्रंथों में पाए जाने वाले गद्य का आडंबर नहीं है, उसी तरह विशुद्ध कथागद्य की देशी शैली का विलास भी नहीं है। फिर भी उसमें एक सरल लालित्य है, गंभीर गति है। विषय की दृष्टि से मौलिक न होने पर भी प्राचीन कन्नड की गद्य-शैली का यह एक नमूना है। गंभीरता, मुक्तता एवं शुद्धता इस शैली की विशेषताएँ हैं।

चितानल *(अ० कृ०)* [रचना-काल—प्रथम खंड : 1890 ई०; द्वितीय खंड : 1922 ई०]

कमलकांत भट्टाचार्य (दे०) के इस काव्यसंग्रह की कविताएँ देशभक्ति के अग्नि-स्फुलिंग के समान हैं। इनमें असम के अतीत गौरव और वर्तमान के अधःपतन की ओर ध्यान आकृष्ट कर देशवासियों को उन्नति-पथ पर अग्रसर होने का आह्वान किया गया है। छंद सावलील एवं श्रुतिमधुर नहीं हैं, किंतु अनुभव की तीव्रता और कल्पना की मौलिकता का अभाव नहीं है। कविताओं की प्रत्येक पंक्ति स्वदेश-प्रेम के वज्रघोष से पूरित है। ओजस्वी कविता लिखने के कारण ही इस काव्य-ग्रंथ के रचयिता श्री कमलकांत 'अग्निऋषि' कहे जाते हैं।

चिंता दीक्षितुलु *(ते० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

इन्होंने पूर्वी गोदावरी जिले में रामचंदपुरु तहसील के दंगेरु नामक ग्राम में जन्म लिया। इन्होंने बी० ए० तथा एल० टी० की परीक्षाएँ पास कीं। आंध्रप्रदेश के प्रशासन के अंतर्गत ये कई स्थानों में शिक्षाधिकारी रहे।

तेलुगु-साहित्य में नवजागरण स्वच्छंदतावादी युग से आरंभ होता है। इस नवजागृति में सहायता तथा प्रेरणा पहुँचाने वाली साहित्यिक संस्थाओं में 'साहिती समिति' ने बड़ी प्रमुख भूमिका निभाई थी। दीक्षितुलु इनके प्रधान सदस्यों में से थे। जासूसी उपन्यासों से इनके साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश हुआ था परंतु आगे चल कर इस विधा को इन्होंने त्याग दिया। इन्होंने कहानी-कला में चार चाँद लगाए। ये कहानी-सम्राट् माने जाते हैं। इनकी कहानियों का संकलन 'एकादशी' नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें इनकी गिनी-चुनी ग्यारह कहानियों का संकलन हुआ था। 'वटीरावु' इनका अन्य कहानी-संग्रह है जिसमें आधुनिक नारियों की कुछ विलक्षण प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है। दीक्षितुलु एक सफल एकांकीकार भी थे। इनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वरूधिनी', 'शर्मिष्ठा' तथा 'रेणुका' उल्लेखनीय हैं। ये सभी कृतियाँ आधुनिक विचारधारा से ओतप्रोत हैं। इन्होंने एक नाटक का भी प्रणयन किया। 'शबरी' वास्तव में इनकी सभी कृतियों में शिरोमाणिक्य है। इसमें छंदों का अभाव है जो तेलुगु की नाटक-रचना में एक नई उद्भावना थी। प्रसिद्ध भक्तिन 'शबरी' का इतिवृत्त बड़ी मार्मिकता के साथ इसमें अंकित है।

दीक्षितुलु का पुण्यस्मरण तेलुगु के बालसाहित्य-निर्माता के रूप में अवश्य होना चाहिए। इनकी 'लीला-सुंदरी' नामक परीकथा बहुत प्रसिद्ध हुई। 'सूरि', 'सीती', 'वेंकी' नाम से रचित इनकी बाल-कहानियों का बड़ा आदर हुआ है। बालगीतकार के रूप में भी दीक्षितुलु ख्याति-प्राप्त थे। 'लक्कपिडतलु' बालगीतों की यशस्वी कृति है।

चिंतामणि *(तं० कृ०)* [रचना-काल—1921 ई०]

यह काळ्ळकूरि नारायणरावु, (दे०) का दस अंकों का सामाजिक नाटक है। 'कृष्णकर्णामृत' के कर्ता लीलाशुक से संबद्ध बताया जाने पर भी यह सामाजिक कुरीतियों की आलोचना करने वाला नाटक है। शांतरस-प्रधान इस नाटक में आदर्श चरित्र वाले बिल्वमंगळुडु (दे०) के चिंतामणि नामक वेश्या के जाल में फँसकर, अंत में श्रीकृष्ण के माहात्म्य के कारण, वैराग्य-भाव ग्रहण करने का वर्णन किया गया है। चिंतामणि भी बैरागिन हो जाती है।

वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों को चित्रित करते हुए इस सामाजिक कुप्रथा की आलोचना करने वाला यह नाटक रंगमंच पर अति लोकप्रिय रहा है।

चिंतामणि *(हिं० कृ०)*

यह हिंदी के युग-प्रवर्तक आलोचक एवं निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) के कृतित्व का प्रतिनिधित्व करने वाला बहुचर्चित एवं लोकप्रिय निबंध-संग्रह है। दो भागों में प्रकाशित इस निबंध-संग्रह में शुक्ल जी के प्रायः सभी श्रेष्ठ निबंध संकलित हैं। इसके पहले भाग में सत्रह निबंध हैं जिनमें से प्रथम दस भाव या मनोविकार-विषयक हैं, चार सैद्धांतिक आलोचना से संबंधित हैं तथा तीन व्यावहारिक समीक्षा-संबंधी हैं। दूसरे भाग में शुद्ध शास्त्रीय समीक्षा संबंधी तीन लंबे-लंबे निबंध हैं। मनोवैज्ञानिक निबंधों में मानव-मन की विभिन्न दशाओं—यथा श्रद्धा भक्ति, क्रोध, लोभ और प्रीति आदि—का सूक्ष्म और सुव्यवस्थित विवेचन किया गया है तो सिद्धांत-समीक्षा-संबंधी निबंधों में शुक्ल जी की आलोचना-विषयक उन मान्यताओं का निरूपण हुआ है जिनके आधार पर उन्होंने हिंदी साहित्य के कृतिकारों, कृतियों तथा प्रवृत्तियों की समीक्षा की है। व्यावहारिक समीक्षा-संबंधी निबंधों में उन्होंने अपनी सैद्धांतिक मान्यताओं के आधार पर किसी कृति या लेखक की अंतःप्रवृत्तियों में प्रवेश करके उसकी समस्त साहित्यिक चेतना का मूल्यांकन किया है। मौलिक चिंतन, सुनियोजित तार्किक विचार-शृंखला, भारतीय तथा वैयक्तिकता की छाप से युक्त, हास्य-व्यंग्य का पुट लिये विषयानुरूप एवं मुहावरेदार भाषा-शैली का प्रयोग इस कृति की कतिपय अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

चिंतामणि *(हिं० ले०)*

चिंतामणि तिकवाँपुर (कानपुर) के निवासी थे। ये शाहजहाँ के समय में विद्यमान थे। इनके बनाए पाँच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—'काव्यविवेक', 'कविकुलकल्पतरु', 'काव्यप्रकाश', 'रसमंजरी', 'पिंगल' और 'रामायण'। इनके अतिरिक्त इन्होंने संत अकबरशाह-रचित 'शृंगारमंजरी' की हिंदी-छाया भी तैयार की थी। इनमें से कवि की ख्याति का मूलाधार-ग्रंथ 'कविकुलकल्पतरु' है। इसमें आठ प्रकरण हैं, जिनमें काव्यशास्त्र के विविध अंगों—काव्य-भेद, काव्य-लक्षण, गुण, शब्दालंकार, रीति, दोष, शब्दशक्ति, ध्वनि, रस और नायक-नायिका-भेद—का निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ के निर्माण में मम्मट, (दे०) और विश्वनाथ (दे०) के अतिरिक्त धनंजय, (दे०) अप्पय्यदीक्षित (दे०), विद्यानाथ और भानुमिश्र के ग्रंथों से सहायता ली गई प्रतीत होती है। ग्रंथ का लक्षण-भाग सोरठा छंदों में है और उदाहरण-भाग कवित्त-सवैया छंदों में। चिंतामणि ने सर्वप्रथम मम्मट और विश्वनाथ की सरणि पर विविध काव्यांगों का निरूपण किया है, इसी कारण इन्हें रीतिकाल का प्रवर्त्तक आचार्य माना जाता है।

√**चिंताविष्टयाय सीता** *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का खंडकाव्य है। श्री रामचंद्र के अश्वमेध यज्ञ में पुत्रों को भेजकर वाल्मीकि के आश्रम में एकांत में बैठी सीता की विचार-परंपरा को इस काव्य में विकसित किया गया है। राम की न्याय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियता और राजधर्म पर सीता संदेह प्रकट करती है। उसके आदर्शों की उच्चता पर वह प्रश्न-चिह्न लगाती है। अंत में अपनी चिंता के लिए वह सबसे क्षमा माँगती है और इस संसार से ही बिदा ले लेती है।

इस काव्य में 'रामायण' (दे०) के इस प्रसंग पर नवीन परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करने के अलावा मानव-मनोविज्ञान का भी सुंदर विश्लेषण किया गया है। काव्य में करुण रस का निष्पादन कुशलतापूर्वक किया गया है और पाठक को चिंता की गहराइयों तक निमग्न होने का अवसर दिया गया है। यह सीता-काव्य आशान् की यशस्विता का मुख्य आधार है।

चिकवीरराज *(क० पा०)*

कन्नड के कहानी-सम्राट् मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) एक सफल उपन्यासकार भी हैं। उन्होंने 'चेन्नबसवनायक' (दे०) तथा 'चिकवीरराज' नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। 'चिकवीरराज' दूसरे उपन्यास का नायक है। वह कोडगु का राजा था। कोडगु वर्तमान मैसूर राज्य या कर्णाटक का एक ज़िला है। अँग्रेज़ों के ज़माने में वह एक स्वतंत्र राज्य था। चिकवीरराजेंद्र उसका अंतिम राजा था। वह एक अयोग्य शासक था। उसके उत्पीड़न से त्रस्त होकर वहाँ की जनता ने अँग्रेज़ों से शिकायत की। अँग्रेज़ ऐसे मौक़े की ताक में बैठे थे। तुरंत उन्होंने कोडगु पर चढ़ाई कर दी, राजा को पदच्युत कर दिया और वहाँ अपना कमिश्नर रखा। चिकवीरराज का कोई पुत्र नहीं था, बस एक पुत्री थी। पहले उसे कोडगु की राजधानी मडिकेरी से हटाकर वेल्लूर में रखा गया, फिर वहाँ से बनारस भेज दिया गया। बनारस में उसकी रानी गौरम्मा का देहांत हुआ तो राजा को उसकी बेटी के साथ, इंगलैंड भेज दिया गया। वहाँ उसकी बेटी को ईसाई बना लिया गया। अँग्रेज़ों ने पहले वादा किया था कि राजा की बेटी गद्दी पर बिठाई जाएगी। किंतु वे अपने वादे से फिर गए और इस प्रकार एक छोटे हिंदू राज्य को उन्होंने हड़प लिया।

कोडगु के इसी पराभव का चित्रण इस उपन्यास में है। चिकवीरराज का चरित्र-चित्रण मास्तिजी ने अत्यंत सजीव ढंग से किया है। उसके विलास-जर्जर जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का अत्यंत यथार्थ चित्रण है। व्यभिचार तो मानो उसे पित्रार्जित संपत्ति की तरह प्राप्त था। पिता भी लंपट थे परंतु पुत्र ने तो इस दिशा में पिता को मात कर दिया। उसका सहयोगी एक लड़का था—बसव जो लँगड़ा था।

वह अनाथ बालक वास्तव में राजा की जारज संतान था। शराब और सुंदरी ने उसे बरबाद किया था। उसकी पत्नी गौरम्मा एक परम साध्वी विवेकशील रमणी थी। किंतु राजा अपनी पत्नी पर भी विश्वास नहीं करता था। राजा के एक बहिन थी जो चेन्नबसव (दे०) से ब्याही गई थी। व्यभिचारी राजा ने उसे बंदी बना रखा था। चेन्नबसव ने अपनी पत्नी के साथ बच्चे को भी लेकर भाग जाने का प्रयत्न किया। राजा को ज्ञात हो गया कि शिशु कंसयोग में पैदा हुआ है। एक दिन रात को वह उस मासूम बच्चे की हत्या कर डालता है। इसके साथ ही उसकी व्यभिचार-लीला निरंतर चलती रही। उसके मंत्री इससे क्षुब्ध हुए। किंतु उसका तो सखा, सलाहकार सबकुछ लँगड़ा बसव था। अंत में वह नगर के संपन्न घरों की स्त्रियों पर भी अपनी वक्र दृष्टि डालने लगा। तब अँग्रेज़ों को बुलाने में जनता ने भी सहयोग दिया। राजा की चंचलता, अविवेक, अहंकार आदि की सीमा नहीं रही। वह 'किंग लियर' की तरह से यहाँ आया है। उसके प्रति जनता के मन में जितनी अश्रद्धा है, उसकी पत्नी के प्रति उतनी ही श्रद्धा और पुत्री के प्रति प्रेम है। अव्यवस्थितचित्त राजा जनता का विरोध मोल लेकर किसी तरह अपने ही पाँव में कुल्हाड़ी मार लेता है—इसका ज्वलंत चित्र यहाँ है। मास्ति जी का चरित्र-चित्रण-कौशल यहाँ चरम सीमा पर पहुँच गया है। वह कन्नड के अत्यंत जीवंत चित्रों में से एक है।

चिक्कदेवराज *(क० ले०)* [समय—1672-1704 ई०]

चिक्कदेवराज ओडेयर मैसूर के राजा थे। इनके समय में मैसूर राज्य में श्रीवैष्णव मत का महत्व बढ़ा। मराठों को हराकर इन्होंने औरंगज़ेब से दोस्ती कर ली थी तथा राज्य की संपत्ति को बढ़ाने के कारण इनका नाम नवकोटि नारायण पड़ गया था। ये न केवल स्वयं कवि थे वरन् कवियों के आश्रयदाता भी थे। इन्हीं के समय में चंपू-काव्य शैली का मार्ग काव्य पुनरुज्जीवित करने वाला बना था।

इनके तीन ग्रंथ माने जाते हैं—'चिक्कदेवराजविनय', 'गीत-गोपाल', 'भागवत, शेषधर्म तथा भारत'। 'चिक्कदेवराजविनय' में यदुगिरि नारायण को संबोधित करके लिखे गए 39 विनय-गद्य हैं। विनय के रूप में श्री-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णव मत का तत्त्व-निरूपण है । इसके गद्य में प्रौढ़ता तथा भक्ति का रसोद्रेक है । 'गीतगोपाल', 'गीतगोविंद' (दे०) के आदर्श पर लिखा एक गीति-प्रबंध है जिसमें सात सप्त-पदियाँ हैं। इसमें श्रीवैष्णव-तत्त्व के अनुसार भक्ति का निरूपण है । गोपालकृष्ण को जगाने वाले तथा गोपिकाओं के विरह का वर्णन करने वाले गीत अत्यंत मार्मिक हैं । इनकी शैली अत्यंत ललित एवं मधुर है । श्रीवैष्णव संप्रदाय संबंधी ये गीत कन्नड साहित्य में पहली बार लिखे गए हैं । इनकी भाषा में शुद्ध कन्नड का विलास देखा जा सकता है । भावतीव्रता तथा संगीतात्मकता के कारण ये श्रेष्ठ गीतिकाव्य बन पड़े हैं । भाव के भार से ये अवनत हैं और काव्य के गुणों से उन्नत । 'भागवत, शेषधर्म तथा भारत' टीका-ग्रंथ है । कुछ विद्वानों का कहना है कि चिक्कदेवराज के ये सब ग्रंथ उनके मंत्री तिरुमलाई द्वारा रचित हैं ।

चिक्कुपाध्याय (क० ले०) [समय—सत्रहवीं शती का पूर्वार्ध]

ये मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के मंत्री तथा दरबारी पंडितों में से थे । इनके ग्रंथों की संख्या तीस से ऊपर है । इन कृतियों में इन्होंने श्रीवैष्णव मत के सिद्धांत, संप्रदाय-इतिहास आदि लिखकर एक 'श्रीवैष्णव-कोश'-सा प्रस्तुत कर दिया है। इनकी कृतियों में 'कमलाचल-माहात्म्य', 'हस्तिगिरिय-माहात्म्य', 'रुक्मांगदचरिते', 'विष्णुपुराण', 'दिव्यसूरिचरिते', 'सात्विकब्रह्मविद्याविलास अर्थपंचक' आदि चंपुओं की एक श्रेणी है तो 'वेंकटगिरि-माहात्म्य', 'श्रीरंगमाहात्म्य', 'यादुगिरिमाहात्म्य' आदि गद्य-ग्रंथ हैं। 'पश्चिमरंगमाहात्म्य', 'शृंगारशतक', 'रंगधामस्तुति' आदि सांगत्य छंद में हैं। 'कामंदक नीति', 'तिरुवासमोषि टीके' आदि टीकापरक ग्रंथ हैं । इस प्रकार इनकी समस्त कृतियों को चार-पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है। इनके अतिरिक्त इन्होंने शृंगारी गीतों की भी रचना की है। इनमें चिक्कदेवराय की स्तुति है । इनके 'दिव्य-सूरिचरिते' में तमिलनाडु के बारह आळवारों की कथा है। यह इनकी श्रेष्ठ कृतियों में मानी जाती है। इनमें रामानुजाचार्य जी का भी चरित आता है । 'सात्त्विक ब्रह्मविद्याविलास' में विशिष्टाद्वैत का शास्त्रीय विवेचन है । इनके सभी ग्रंथों में 'रुक्मांगदचरिते' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिसमें भक्ति का सुंदर निरूपण है । 'विष्णु-पुराण' इन्होंने दो लिखे हैं : एक चंपू में और दूसरा गद्य में । 'शुकसप्तति' इनका एक गद्य-ग्रंथ है। इनकी चंपू-कृतियों की शैली प्रौढ़ एवं संस्कृत-बहुल है। किंतु सांगत्य कृतियों में सरल कन्नड का विलास है। पांडित्य और कवित्व-शक्ति से संपन्न होने पर भी इनमें काव्य-तत्त्व ऊँची श्रेणी का नहीं है। किंतु नष्टप्राय चंपू-परंपरा को पुनरुज्जीवित करने में इनका ऐतिहासिक योग-दान महत्वपूर्ण है । कन्नड भाषा की महिमा का वर्णन कर इन्होंने भाषा-प्रेम को भी उद्दीप्त किया ।

चिट्टा लहू (पं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1931 ई०]

यह नानकसिंह (दे०) का युगांतरकारी पंजाबी उपन्यास है । इसके माध्यम से उपन्यासकार ने युगीन समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं—अनमेल विवाह, विधवा, वेश्या, छुआछूत, जाति-पाँति, नशेबाज़ी से उत्पन्न सामाजिक विभीषिका, धर्मस्थानों की दुर्दशा, धार्मिक नेताओं का पतित आचरण, दूषित पुलिस व्यवस्था आदि—को संश्लिष्ट रूप से प्रस्तुत किया है । अकाली आंदोलन के आदर्शवाद और समाज-सुधार की भावना से अनुप्राणित इस रचना में नारी एवं शोषित वर्ग के प्रति अत्यधिक सहानुभूति मिलती है। लेखक ने इसमें मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग के शहरी और ग्रामीण पात्रों के साथ मानवेतर पात्र—लच्छो बँद-रिया—का भी चित्रण किया है । उपन्यास में गुरदेई और सुंदरी (दे०) द्वारा वर्णित कथा आत्मकथात्मक पद्धति में गुंफित हुई है और पत्रों तथा गीतों की सहायता से विगत कथा का उल्लेख किया गया है। वातावरण का चित्रण अत्यंत सजीव और स्वाभाविक है । उपन्यास में समाज-सुधार की भावनाओं का प्राधान्य है जिनके कारण कहीं-कहीं लेखक को अनावश्यक आत्महत्या तथा अस्वाभाविक मृत्यु आदि की घटनाओं का भी समावेश करना पड़ा है । 'चिट्टा लहू' रूसी, चैक आदि विदेशी एवं गुजराती कन्नड, तमिल, मलयाळम इत्यादि भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुका है । यह नानकसिंह का सर्वश्रेष्ठ दुःखांत सामाजिक उपन्यास है ।

चित्रकला (उ० पा०)

फकीर मोहन सेनापति (दे०) के 'मामूँ' (दे०) उपन्यास का एकांत गुरुत्वपूर्ण चरित्र है 'चित्रकला' । संपूर्ण उपन्यास चित्रकला के घटना-बहुल जीवन पर आधारित है, यह कहना अनुचित नहीं होगा । उपन्यास के अंत में सेशन जज की राय से ज्ञात होता है कि वस्तुतः अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त चरित्र (यथा—नाज़िर नटबर दास, प्रभुदयाल, राघव, महांति आदि) निर्दोष हैं, किंतु चित्रकला भयंकर बुद्धिमती, भयंकर दुश्चरित्रा, बाज़ारू औरत है ।

सर्वप्रथम वह नटबर दास के यहाँ नौकरानी रहती है। अनजान व्यक्ति इसे गृहस्वामिनी भी समझता है। इसके पास संयम को डिगा देने वाला सौंदर्य भी है और गुमराह कर देने वाली बुद्धि भी । अतः इसके लिए एक सामान्य स्थिति से ऊपर उठकर अपने प्रभाव-विस्तार से एक विराट् षड्यंत्र की नायिका बन जाना आश्चर्य की बात नहीं । चित्रकला अशिक्षिता अवश्य है; किंतु वह विलक्षण बुद्धिमती एवं प्रत्युत्पन्नमति है, यह असंदिग्ध है । खल-नायिका की दृष्टि से यह लेखक के 'छमाण आठगुंठ' (दे०) उपन्यास की नायिका चंपा (दे० मंगराज, रामचंद्र) को भी मात कर जाती है ।

आज भी ग्राम्यांचल में भयानक समस्याओं की सृष्टि करने वाली शतशत चित्रकलाओं की कमी नहीं है ।

चित्रकाव्य बंधोदय *(उ० पारि०)*

प्राचीन आलंकारिक 'चित्रकाव्य' (दे०) को पांडित्य का प्रतीक मानते थे । इसमें शब्द-ज्ञान के साथ शब्द-संघटना-कौशल भी अपेक्षित है । काव्य-गौरव की दृष्टि से इसका उतना ऊँचा स्थान न होने के कारण प्रायः कवियों ने इसकी उपेक्षा की है । कुछ कवियों ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देने के लिए अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ इसे भी अपनाया है । उड़िया में चित्रकाव्य लिखने वालों की संख्या अत्यल्प है । इनमें कवि सम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) सर्वश्रेष्ठ हैं । उड़िया साहित्य में उपेंद्र युग के पूर्व 'चित्रकाव्य' की रचना हुई थी या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उपेंद्र से पूर्व की इस प्रकार की कोई कृति अब तक उपलब्ध नहीं है। उपेंद्र के बाद कवियों ने इस ओर भी ध्यान दिया । सदानंद कविसूर्य ब्रह्मा (दे०) तथा अभिमन्यु सामंत सिंहार (दे०) आदि कवियों ने 'चित्रकाव्य' की रचना कर विशेष ख्याति पाई है ।

चित्रकाव्य *(हिं० पारि०)*

रस (दे०), भाव (दे०) और व्यंग्य (दे०) आदि से शून्य कोरे शाब्दिक चमत्कार पर जीवित अधम अथवा अवर कोटि के काव्य के लिए संस्कृत-आचार्यों द्वारा दिया गया एक नाम । इस संदर्भ में सर्वप्रथम उल्लेख्य मत ध्वनिकार आनंदवर्द्धन (दे०) का है जिन्होंने ध्वनि (दे०) अथवा व्यंग्य (दे०) के आधार पर ध्वनिकाव्य और गुणीभूतव्यंग्य (दे०) नामक उत्तम और मध्यम काव्य की दो कोटियों के उल्लेख के अनंतर व्यंग्यहीन 'वाचकवैचित्र्य' अथवा 'वाच्यवैचित्र्य' पर निर्भर अधम कोटि के काव्य को 'चित्र' संज्ञा प्रदान की है। मम्मट (दे०) ने मुख्यतया इसी आधार पर उत्तम और मध्यम के अतिरिक्त 'अव्यंग्य' काव्य के तीसरे प्रकार का निरूपण किया है जिसमें केवल शब्द-चित्रण अथवा अर्थ-चित्रण ही परिलक्षित होता है । इस प्रकार चित्रकाव्य के दो अवांतर रूप माने जा सकते हैं : शब्दचित्र और अर्थचित्र । आचार्य विश्वनाथ (दे०) ने मम्मट की चित्रकाव्य-विषयक प्रकल्पना का यह कहते हुए खंडन किया है कि जो आस्वाद्य है वह या तो ध्वनिकाव्य है अथवा गुणीभूतव्यंग्य, इससे इतर जो आस्वाद्य है वह काव्य ही नहीं है, उसे अलग से चित्रकाव्य की संज्ञा देना निरर्थक है ।

चित्रलेखा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1934 ई०]

भगवतीचरण वर्मा (दे०)-रचित 'चित्रलेखा' हिंदी के लोकप्रिय उपन्यासों में से है जिसका अनेक प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इस उपन्यास का अँग्रेज़ी रूपांतर भी प्रकाशित हो चुका है तथा फ़िल्म भी बन चुकी है। इस उपन्यास की मूल समस्या है : पाप क्या है और उसकी स्थिति कहाँ है ? इसी प्रश्न के समाधान के लिए रत्नांबर अपने दो शिष्यों श्वेतांक तथा विशालदेव को क्रमशः मगध के धनी सामंत बीजगुप्त तथा योगी कुमारगिरि के पास भेजते हैं । भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते हुए भी बीजगुप्त उसके ऊपर रहता है; किंतु इंद्रिय-दमन तथा संयम का मार्ग अपनाने वाला कुमारगिरि स्खलित हो जाता है । अंत में, रत्नांबर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विसंगति का दूसरा नाम है ।

चित्रलेखा *(हिं० पा०)*

यह भगवतीचरण वर्मा (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' (दे०) की नायिका तथा रूपगर्विता, अभिमानिनी एवं प्रत्युत्पन्नमति वाली एक ऐसी पात्रा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो जीवन के कठोर अनुभवों के फलस्वरूप संसार को समझने-परखने की अद्भुत क्षमता रखती है। यह नर्तकी होती हुई भी विदुषी है तथा वाग्वैदग्ध्य में इतनी निपुण है कि हास-परिहास में भी तीव्र व्यंग्य करने से नहीं चूकती। अपने पक्ष का सतर्क एवं सप्रमाण पोषण करने में भी यह पूर्णतः दक्ष है। इसमें आत्मसम्मान की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। इसे अपने रूप-वैभव की शक्ति का अत्यधिक गर्व है और यह अपने समक्ष किसी का तन कर खड़े रहना सहन नहीं कर पाती। यही अभिमान इसे प्रवंचित करता है। लेकिन इतना होते हुए भी यह इस उपन्यास की केंद्रीय धुरी है। उपन्यास की सारी घटनाएँ और सभी पात्र किसी-न-किसी रूप में इसके साथ अवश्य संबद्ध हैं और ये सभी इसके चरित्र को भास्वर बनाते हैं।

चित्रांगदा (क० कृ०)

यह 'कुवेंपु' उपनामधारी डा० के० वी० पुट्टप्पा (दे०) का छह पर्वों और 2496 पंक्तियों का सुंदर खंड-काव्य है। इसमें महाभारत के अश्वमेध पर्व और 'जैमिनि-भारत' (दे०) में वर्णित अर्जुन-चित्रांगदा के प्रेम, दोनों के गंधर्व-विवाह, अर्जुन के चले जाने पर बभ्रुवाहन का जन्म, युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को बाँध लेने के कारण अर्जुन और बभ्रुवाहन का युद्ध तथा बीच में आ जाने के कारण चित्रांगदा की मृत्यु का वर्णन अत्यंत सरस ढंग से किया गया है। कवि ने चित्रांगदा के व्यक्तित्व का अत्यंत भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। इस मनोहर काव्य की नायिका के रूप में वह पाठकों के मन में अंकित रह जाती है।

चित्रांगी (तें० पा०)

चित्रांगी एक काल्पनिक पात्र है जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। परंतु तेलुगु साहित्य में चित्रांगी का व्यक्तित्व निजंधरी बन गया है और तेलुगु के लोकजीवन में इसका अस्तित्व यथार्थ से भी बढ़कर यथार्थ बन गया है। चित्रांगी की लोकप्रचलित कथा इस प्रकार है: राजराजनरेंद्रुडु नामक राजा की द्वितीय पत्नी चित्रांगी अत्यंत रूपवती थी। राजा वृद्ध था, अतः वह चित्रांगी का प्रेम-भाजन नहीं बन सका। राजा का पुत्र सारंगधरुडु युवक तथा रूपवान था। चित्रांगी का मन इस पर अनुरक्त था। परंतु वह प्रेम एकनिष्ठ था क्योंकि सारंग-धरुडु शीलवान होने के कारण विमाता से प्रेम करना अनुचित समझता था। एक दिन अपने साथियों के साथ सारंगधरुडु मैदान में कबूतरों को आकाश में उड़ा रहा था। इनमें से एक कबूतर चित्रांगी के महल पर जा बैठा। चित्रांगी ने उसे पकड़े रखा। सारंगधरुडु उसे वापस लाने के लिए विमाता के घर पहुँचा। चित्रांगी इस प्रसंग से लाभ उठाना चाहती थी। उसने अपनी प्रेम-भावना व्यक्त की। पर सारंगधरुडु विचलित नहीं हुआ। उसे उचित उपदेश देकर वह वापस आ गया। अपने प्रेम को ठुकराने से चित्रांगी के मन में प्रतिकार की भावना जागी। उसने राजा से सारंगधरुडु के ख़िलाफ़ मनगढंत बातें कहीं और उसे बड़ा भारी दोषी ठहराया। राजा ने उसकी बातों में आकर, सारंगधरुडु को मौत की सज़ा दे दी। बधशिला पर पहुँचते-पहुँचते बधिकों के दिल पिघल गए और उन्होंने केवल हाथ-पैर काट डाले। कालांतर में जब राजा सत्य से अवगत हुआ तो उसने चित्रांगी को मौत के घाट उतरवाया। चित्रांगी का प्रथम परिचय हमें दोनेरुको-नेरुनाथकवि-कृत 'बालभागवत' में मिलता है जिसमें राज-राजनरेंद्रुडु, सारंगधरुडु (दे०), चित्रांगी तथा रत्नाजी का वर्णन है। तदनंतर अप्पकवीयमु (दे०) तथा चेमकूर वेंकट-कवि (दे०) के 'सारंगधरचरित्रमु' (दे०) नामक काव्य में हमें इस कथा का वर्णन मिलता है। वस्तुस्थिति यह है कि गौरन (दे०)-कृत 'नवनाथचरित्र' में वर्णित चौरंगी नामक सिद्ध की कथा ही कालांतर में विविध रूपों में विकसित हुई है। 'नवनाथचरित्र' में आंध्र के राजराजनरेंद्र से चौरंगी का कोई संबंध नहीं दिखाया गया।

आधुनिक काल में चित्रांगी का पात्रपोषण कृष्णमाचार्युलु-कृत 'विषाद सारंगधर' नाटक में अच्छे ढंग से हुआ है जिसमें चित्रांगी एक अभिमानी रूपगर्विता नायिका के रूप में हमारे सामने आती है।

चित्रा (बँ० कृ०)

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की 1893-95 ई० के मध्य लिखी कविताओं का संग्रह है। सन् 1895 में इसका प्रकाशन हुआ था। विचित्र भावों की कविताओं का संग्रह होने के कारण अथवा इसकी प्रथम कविता के नाम पर इसका नामकरण किया गया है।

रवींद्रनाथ ठाकुर की विकासोन्मुख प्रतिभा इसमें पूर्णतः परिलक्षित हुई है। इसमें सौंदर्य के संबंध में कवि की धारणा, स्नेह-प्रीति, प्रेम-संबंध में अनुभूति, कर्तव्य-निष्ठा तथा जीवन-देवता के संबंध में जिज्ञासा जैसे विषयों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ हैं।

कवि को सौंदर्यानुभूति ने विशेष प्रभावित किया है। उनकी सर्वप्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ कविता 'उर्वशी' तथा रहस्यवादी एवं विवादास्पद कविता 'जीवन-देवता' इसी में संगृहीत हैं। कृति विचित्र भावों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण है।

चित्रावली (*हिं० कृ०*) [रचना-काल—1613 ई०]

सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में 'चित्रावली' का स्थान महत्वपूर्ण है। इसके रचयिता उस्मान (दे०) थे। इसमें नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली के प्रेम और विरह का वर्णन है। कवि ने अत्यंत रोचक ढंग से कहानी कहते-कहते अपने काव्य-कौशल का भी परिचय दिया है। इसका कथानक पूर्णतः काल्पनिक है। कवि ने अपनी परंपरा के अन्य कवियों की तरह नख-शिख-वर्णन, षड्ऋतु-वर्णन आदि बहुत सहज भाव से किया है। 'चित्रावली' में किसी भी प्रकार की धार्मिक संकीर्णता के दर्शन नहीं होते।

मसनवी शैली के आधार पर ईश्वर-स्तुति एवं मुहम्मद साहब, प्रथम चार ख़लीफ़ाओं, तत्कालीन बादशाह जहाँगीर, शाह निज़ाम चिश्ती, गुरुबाबा हाजी आदि की प्रशंसा करके रूप, प्रेम और विरह शीर्षक देकर कवि ने कहानी जिस प्रकार से प्रारंभ की है वह उसकी अपनी विशेषता है। इस प्रकार की परंपरा हिंदी के अन्य सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में देखने को नहीं मिलती। प्रसिद्ध सूफ़ी कवियों में उस्मान को अंतिम उदारतावादी सूफ़ी कवि कहा जा सकता है।

चिदंबर सुब्रह्मण्यन्, न० (*त० ले०*) [जन्म—1912 ई०]

इनकी विशेष ख्याति उपन्यास तथा लघुकथा-लेखन के क्षेत्र में है। इन्होंने अपनी साहित्यिक साधना का आरंभ 1930 के पहले ही 'मणिक् कोटि' पत्रिका के लेखक-मंडल के सदस्य के रूप में किया था। निजी जीवन में ये लेखाकार के व्यवसाय में लगे हुए हैं पर इससे इनके साहित्य-सृजन में कोई गतिरोध नहीं हुआ। इनका विशिष्ट उपन्यास 'इदयनादम्' (दे०) एक ऐसे संगीतोपासनानिष्ठ त्यागपूर्ण व्यक्तित्व का सफल चित्रण करता है जो आज भी कतिपय तमिलभाषी ब्राह्मण परिवारों का जीवनादर्श है। इनकी अन्य रचनाओं में 'उर्वशी' (एकांकी), 'नागमणि' (उपन्यास) तथा 'सूर्यकांति' (लघु कथाएँ) शामिल हैं। इनका एक नवीन उपन्यास 'मण्णिल् तेरियुतु वानम्' (धरती पर दीखता है ऊपरी लोक) शीर्षक से निकला है जो गांधीयुगीन वातावरश में व्यक्ति-जीवन की कुछ प्रतिक्रियाओं को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करता है।

चिदंबरा (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

सुमित्रानंदन पंत (दे०) विश्वमंगल के प्रति सतत सर्मपित काव्य-चेतना के समर्थ कलाकार हैं। उनकी दृष्टि सौंदर्यमयी और आत्मा शिव-संकल्प है। इसीलिए वे दीर्घकाल से निरंतर सौंदर्य-साधना में लीन रह सके। 'चिदंबरा' इसी साधना के वीस वर्षों का गतिलेख है। 1937 ई० से 1957 ई० तक अर्थात् 'युगवाणी' से 'वाणी' तक के कविता-संग्रहों और काव्य-नाटकों की प्रतिनिधि रचनाएँ स्वयं कवि ने एक लंबी भूमिका (चरण-चिह्न) के साथ संकलित की है। कवि के अनुसार उसके इस संकलन का उद्देश्य पक्षधर आलोचकों द्वारा दिग्भ्रमित पाठकों के समक्ष अपने काव्य-विकास के द्वितीय उत्थान का पूर्वाग्रह-मुक्त चित्र प्रस्तुत करना है।

'चिदंबरा' शीर्षक संकलित रचनाओं के भाव-जगत् का सूक्ष्म संकेत देने में सफल है। इन कविताओं के माध्यम से कवि चेतना की ऐसी चादर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा है जो नैतिक संकीर्णता की कलंक-कालिमा से मुक्त, नवीन प्रकाश के जल से सिक्त और संस्कृति के व्यापक मूल्यों से मंडित होकर सबके ओढ़ने योग्य हो। प्रकारांतर से कह सकते हैं कि वह भूतवाद और आत्मवाद को संकीर्णताओं से मुक्त कर भू-जीवन में उनके संदेशों का समन्वय देखने की आकांक्षा से प्रेरित है। वर्तमान में इस आकांक्षा की पूर्ति संभव नहीं थी, इसलिए कवि स्वप्न-द्रष्टा हो गया है। प्रारंभ में अतृप्ति की विषण्णता या प्रार्थना की व्याकुलता भी कुछ सीमा तक है परंतु परवर्ती रचनाओं में भविष्य-स्वप्न की मोहक छाया उत्तरोत्तर बढ़ती गई है जो कवि की चिंतनमयी निष्कंप आस्था को ध्वनित करती है। उल्लेखनीय है कि आस्था के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही कवि के ये स्वप्न मानसिक विकार-मात्र न रहकर परिष्कृत आत्मा के निश्छल उद्गार बन गए हैं।

ऊर्ध्वमुखी सौंदर्य-चेतना की इन लयसिद्ध उद्गीतियों का कलात्मक महत्व निर्विवाद है। कवि की मेधा के विकास ने कला के नव्यतर उपादानों का प्रयोग करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अद्‌भुत सामर्थ्य भी उसे प्रदान कर दी है। भाषा में अर्थ-गौरव और अप्रस्तुत-विधान में विविधता तथा व्यंजकता उत्तरोत्तर बढ़ते गए हैं। उत्तरा के गीतों को तो स्वयं कवि ने सौंदर्यबोध तथा भाव-ऐश्वर्य की दृष्टि से अपना सर्वोत्कृष्ट सृजन स्वीकार किया है। हिंदी-काव्य में ही नहीं समसामयिक भारतीय साहित्य में 'चिदंबरा' का महत्व अक्षुण्ण है।

चिन्नयसूरि, परवस्तु *(ते० ले०)* [जन्म—1806 ई०; मृत्यु—1862 ई०]

ये मद्रास के रहने वाले थे और मद्रास के प्रसिडेंसी कालेज में तेलुगु के प्रधान अध्यापक थे। तेलुगु तथा संस्कृत में अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण विद्वत्ता के आधार पर इन्होंने 'सूरि' नामक उपाधि प्राप्त कर ली। ये व्याकरण, तर्क और अलंकारशास्त्र के अच्छे विद्वान थे। इनकी रचनाएँ हैं—'चिंतामणि वृत्ति', 'सूत्रांध्रव्याकरणमु', 'शब्द-लक्षण-संग्रहमु', 'आंध्र-शब्दशासनमु', 'विभक्तिबोधिनी', 'बालव्याकरणमु', 'आंध्र-धातुमाला', 'अकारादि निघंटु' आदि कोश-व्याकरण-संबंधी रचनाएँ; 'पच्चयप्प नृपयशोमंडन' जैसे काव्य; 'नीतिचंद्रिका', 'नीति-संग्रहमु', आदिपर्व का गद्यानुवाद, 'आंध्र-कादंबरी' आदि गद्य-रचनाएँ; अँग्रेज़ी क़ानूनी ग्रंथ का अनुवाद आदि। इनकी रचनाएँ अधिकांशतः व्याकरण से संबद्ध हैं। तेलुगु भाषा से संबद्ध होते हुए भी इनके कुछ व्याकरण-ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। संस्कृत-व्याकरण के क्षेत्र में सूत्रकार 'पाणिनि' (दे०), वार्तिककार 'वररुचि' तथा भाष्यकार 'पतंजलि' (दे०) प्रसिद्ध हैं। हम इन तीनों की विशेषताओं का समष्टि रूप चिन्नयसूरि में देख सकते हैं। प्रधानतः इनकी सूत्र-रचना-संबंधी निपुणता अनुपम है। इनकी लेखनी ने व्याकरण जैसे शास्त्र को भी सरस बना दिया है। इन्होंने तेलुगु में स्वतंत्र गद्य की भाषा को नियमबद्ध तथा सुस्थिर बनाने की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी 'नीतिचंद्रिका' तेलुगु के सर्वोच्च गद्य-काव्यों के अंतर्गत मानी जाती है। इसमें 'मित्रलाभ' और 'मित्रभेद' नामक दो भाग हैं। 'पंचतंत्र' (दे०) तथा 'हितोपदेश' पर आधारित कई तेलुगु रचनाएँ लिखी गई हैं किंतु चिन्नयसूरि की 'नीतिचंद्रिका' का स्थान उनमें सर्वोपरि है। 'नीतिचंद्रिका' की शैली प्रौढ़ है तथा अभिव्यंजना-पद्धति मार्मिक है। इसमें कहावतों तथा मुहावरों का सहज और सार्थक प्रयोग किया गया है। अँग्रेज़ी क़ानूनी ग्रंथ का तेलुगु अनुवाद ज्ञान-विज्ञान संबंधी विषयों पर उनकी रुचि का द्योतक है। इन्होंने 'सुजनरंजनी' नामक पत्रिका का संपादन कार्य भी किया था। शुद्ध तेलुगु भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहन देना ही इनका लक्ष्य था और इसी से इन्होंने प्रधानतः कोश-व्याकरण जैसे ग्रंथों की रचना की थी। तेलुगु में आधुनिक गद्य-युग के आरंभ से क़रीब बीस साल पहले ही 'नीतिचंद्रिका' जैसी स्वतंत्र तथा उत्कृष्ट गद्य-रचना का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। तेलुगु-व्याकरणकर्ताओं में चिन्नयसूरि का स्थान सर्वोपरि है। तेलुगु गद्य-शैली के विकास में इनकी 'नीतिचंद्रिका' का योगदान विशेषतः उल्लेखनीय है।

चिपळूणकर, कृष्णशास्त्री *(म० ले०)* [जन्म—1824 ई०; मृत्यु—1878 ई०]

पूना में जन्म, वहीं एक पाठशाला में उप-प्राध्यापक, बाद में ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल, संवाददाता और संपादक के रूप में भी कार्य किया। अलंकार, न्याय, धर्म, अर्थशास्त्र, अँग्रेज़ी, संस्कृत, मराठी आदि भाषाओं और उनके साहित्य का अध्ययन किया। 'विचार लहरी' तथा 'शालापत्रिका' में स्फुट निबंध लिखे।

मुख्य ग्रंथ—1. 'संस्कृत भाषा का संक्षिप्त व्याकरण', 2. 'अरबी भाषा की सरस एवं अद्‌भुत कहानियाँ', 3. 'रासेलस' (दे०), 4. 'साक्रेतीज़ का चरित्र', 5. 'अर्थशास्त्र परिभाषा', 6. 'पद्यरत्नावलि' (दे०)।

इनके लेखन में विस्तार ही नहीं, वैविध्य भी है। एक ओर अँग्रेज़ी के गद्य-ग्रंथों—'द प्रिंसिपल्स ऑफ़ पॉलिटिकल इकनॉमी' आदि का अनुवाद किया तो दूसरी ओर संस्कृत काव्य-ग्रंथों 'मेघदूत' (दे०) आदि का। शास्त्रीय विषयों पर भी लिखा, जैसे मराठी और संस्कृत व्याकरण पर और दूसरी ओर अर्थशास्त्र पर। अँग्रेज़ी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने वाली पीढ़ी के प्रतिनिधि लेखक, जिन्होंने मराठी की शैली को संस्कृतनिष्ठ, प्रौढ़, पुस्तकीय मोड़ दिया। इनकी कविता संस्कृत काव्य-ग्रंथों के आधार पर लिखी गई है, पर वह मूल से अधिक सरस एवं सुंदर है।

चिपळूणकर, विष्णुशास्त्री *(म० ले०)* [जन्म—1850 ई०; मृत्यु—1882 ई०]

प्रसिद्ध पंडित और कवि कृष्णशास्त्री चिपळूण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर (दे०) के ज्येष्ठ पुत्र विष्णुशास्त्री ने प्रारंभिक शिक्षा देहात में प्राप्त कर 16 वर्ष की आयु में मैट्रिक किया और फिर डैकन कॉलेज में पढ़ते हुए संस्कृत, अँग्रेज़ी और प्राचीन मराठी साहित्य का गहन अध्ययन किया। पिता की सिफ़ारिश पर ये पूना के राजकीय हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए पर राजकीय सेवा करते हुए इन्होंने अँग्रेज़ शासन एवं मिशनरी ईसाइयों की कटु आलोचना की। 1874 ई० में 'निबंधमाला' मासिक के अतिरिक्त इन्होंने 'काव्येतिहास संग्रह' और 'चित्रशाला' का भी संपादन किया। पिता की मृत्यु के उपरांत राजकीय सेवा से त्यागपत्र देकर ये पूर्णतः देश-सेवा एवं साहित्य-सेवा में लग गए। 1880 ई० में लोकमान्य टिळक (दे०) और गो० ग० आगरकर (दे०) के साथ 'न्यू इंग्लिश स्कूल' नामक राष्ट्रीय पाठशाला की स्थापना की और 'केसरी' तथा 'मराठा' नामक साप्ताहिक समाचारपत्रों का प्रकाशन किया। 1882 ई० में इस मराठी निबंध-भास्कर, प्रखर राष्ट्रवादी का 32 वर्ष की अल्पायु में देहांत हो गया। इनके अमर यश का आधार-स्तंभ है 'निबंधमाला' (दे०), जो अर्वाचीन मराठी साहित्य का वैभव एवं राष्ट्रप्रेम का स्रोत कहा जाता है। इसके उद्देश्य थे—स्वभाषा, स्वदेश, स्वधर्म, स्वसंस्कृति के प्रति श्रद्धा जगाना, पाठकों को बहुश्रुत करना, उनकी रुचि परिष्कृत करना और नए ग्रंथों की समालोचना कर सद्ग्रंथों की वृद्धि करना। प्रौढ़ निबंध-लेखक के अतिरिक्त ये जीवनी-लेखक, पश्चिमी पद्धति के समीक्षक, प्राचीन काव्य और इतिहास के शोधक और सफल अनुवादक भी थे। प्रसिद्ध रचनाएँ—'निबंधमाला' (दे०), 'संस्कृत-कविपंचक', 'ग्रंथाकर टीका'।

चिमळराव, गुंड्याभाऊ *(म० पा०)*

चिं० वि० जोशी (दे०) की विनोद-पुस्तक 'एरंडाचे गुर्‍हाळ' के ये दो पात्र मराठी विनोद-साहित्य के अमर पात्र हैं, जोशी जी की कल्पना द्वारा निर्मित ये नटखट पात्र मराठी पाठकों को हँसाने वाले मित्र बन गए हैं। श्री० कृ० कोल्हटकर (दे०) के पांडूतात्या (दे० सुदामा) और बंडूनाना (दे० सुदामा) के सदृश ये दोनों भी अपने निर्माता के मानस-पुत्र हैं और बाल-वृद्ध, ज्ञानी-अज्ञानी, स्त्री-पुरुष, सभी के स्वभाव-दोष-दंभ, लोभ, अहंकार, धोखा देने की प्रवृत्ति इत्यादि दिखाकर पाठकों को आनंद प्रदान करते हैं। चिमळराव की स्वभावरेखा जोशी जी की प्रतिलिपि जान पड़ती है क्योंकि दोनों के स्वभाव की सूक्ष्मातिसूक्ष्म लत, सनक और अन्य विशेषताएँ एक जैसी हैं। वह कलाकार न होकर लिपिक है, साठ रुपये में परिवार का पोषण करता है, उसकी भाषा सरल, सीधी, ग्रामीण पर यथार्थ का आभास निर्माण करने वाली है। उसके मित्र गुंड्याभाऊ के शब्द चित्र में लेखक ने अपने मित्र प्रो० ना० का० आपटे को आधार बनाया है—वह व्यायाम-प्रमी, परोपकारी एवं निर्भीक है। शिथिल बुद्धि पर उलट-पुलट करने का साहस रखने वाले और परोपकारी ये दोनों पात्र अपनी तत्त्वनिष्ठा एवं परोपकार के पराक्रम से पाठकों को खूब हँसाते हैं। इस जोड़ी के जीवनानुभवों में विविधता है। लेखक ने अपने जीवन के अनुभवों को ही उनमें रूपांतरित कर दिया प्रतीत होता है। गुंड्याभाऊ-संबंधी लेखों में चरित्र का एक सूत्र गुंफित होने के कारण उसके उपवास, रोग, नौकरी और आतिथ्य सबके प्रति पाठक की सहानुभूति उत्पन्न होती है। इस प्रकार इन दोनों पात्रों के माध्यम से जिस हास्य की सृष्टि की गई है वह सर्वसामान्य की समझ के भीतर होने के कारण उन्हें रुचिकर है।

चिरकुमार सभा *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्र (दे०) ठाकुर का लोकप्रिय प्रहसन है। इस सभा में ऐसे युवक सम्मिलित हैं जो आजीवन कुमार रहने का प्रण तो लेते हैं परंतु नारी के आकस्मिक एवं अप्रत्याशित आकर्षण के सामने विचलित हो जाते हैं। नाटककार की प्रतिभा अर्थपूर्ण संवादों में उभरी है जिनमें व्यंग्य, हास-परिहास तथा कौतुक छिपा है। भाषा आलंकारिक है तथा वाग्विदग्धता से वह तीखी हो गई है। इस प्रहसन का निर्बल पक्ष है वस्तु-विन्यास। नाटकीय कौतूहल का इसमें निर्वाह नहीं हुआ। कौमार्य नीति के उद्घोषक एवं संचालक चंद्र बाबू तक सभी साथी बिना संघर्ष किए बदल जाते हैं। इस तरह नाटक का आधार कमज़ोर पड़ गया है। रवींद्र के अनुसार जीवन का सुख सहज रहने में है। भोग-विमुख वैराग्य कितना हास्यास्पद एवं निरर्थक है—यही दिखाना इस प्रहसन का उद्देश्य है।

चिरियुम् चिंतयुम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1926ई०]

यह प्रसिद्ध हास्य-लेखक ई० वी० कृष्ण (दे०) पिळ्ळा के 'मलयाळ राज्यम्' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंधों का संग्रह है। यह दो भागों में है। इसमें विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली में चर्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गई है।

ई० वी० मलयाळम के प्रारंभिक निबंधकारों में से हैं और यह उनका सर्वप्रमुख निबंध-संग्रह है। इसमें पाठकों को विनोद की सामग्री प्राप्त कराने के साथ-साथ उनके चिंतन को भी समुद्दीप्त कराया गया है। मलयाळम की गंभीर हास्य-कृतियों में इस पुस्तक का स्थान महत्वपूर्ण है।

चिरुकाप्पियम् *(त० पारि०)*

इस शब्द का अर्थ 'लघुकाव्य' है और यह तमिल भाषा के आलोचना-क्षेत्र में महाकाव्येतर खंड-काव्यादि कृतियों के लिए प्रयुक्त होता है। यह मानी हुई बात है कि तमिल साहित्यिक परंपरा में संस्कृत काव्य-रूपों का प्रवेश परवर्ती काल में हुआ। ई० पू० की शतियों में तमिल साहित्य के जो अपने काव्य-रूप चलते थे, उनका आभास मात्र प्रसिद्ध लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' में मिलता है।

बारहवीं शती ई० के आसपास आचार्य दंडी के 'काव्यादर्श' के तमिल अनुकूलन-स्वरूप रचित 'दंडियलंकारम्' में सर्वप्रथम तमिल भाषा के अंतर्गत संस्कृत-परंपरा के काव्य-रूपों का शास्त्रीय विवरण प्रस्तुत हुआ है। इस ग्रंथ में काव्यों के दो भेद किए गए हैं—'पेरुङ्काप्पियम्' (महाकाव्य) तथा 'काप्पियम्' (काव्य)। 'चिरुकाप्पियम्' (लघुकाव्य) शब्द 'काप्पियम्' के समानार्थक रूप में बाद में चला है। 'चिरुकाप्पियम्' अथवा महाकाव्येतर काव्यों के उदाहरण के रूप में पाँच जैन धर्माश्रित तमिल काव्यों के नाम विद्वन्मंडलियों में कभी-कभी लिये जाते हैं। ये हैं : 'उदयणकुमारकाव्यम्', 'नागकुमारकाव्यम्', 'यशोधरकाव्यम्', 'चूळामणि' तथा 'नीलकेशि'।

चिरुतोंड नंबि *(ते० पा०)*

श्रीनाथुडु (दे०) कविसार्वभौम ने अपने काव्य 'हरविलासमु' (दे०) में, चिरुतोंड नंबि के भक्तिमय जीवन का गरिमामय वर्णन किया। यह वर्णन 'हरविलास' के द्वितीय आश्वास में उपलब्ध है। उनकी पत्नी तिरुवेंगनांचि तथा पुत्र सिरियाल तीनों वीरशैवव्रती थे। शिव और पार्वती ने चिरुतोंड नंबि से अतिथि के रूप में आकर पुत्रमांस बनाकर खिलाने का अनुरोध किया। वीरशैवव्रत के अनुसार अतिथि और शिव में अंतर नहीं है; अतिथि शिवाभिन्न ही नहीं शिव ही माने जाते हैं और उनकी मनोकामना पूरी करना वीरशैवव्रती का परम कर्तव्य है। तदनुसार इस कठोर परीक्षा में वे सफल हुए। गौरीशंकर साक्षात् हुए तथा चिरुतोंड नंबी को पुनः सजीव होकर सिरियाल प्राप्त हुए।

दक्षिण में कांचीनगरु वैष्णव धर्म तथा शैवधर्म दोनों के लिए प्रसिद्ध है। चिरुतोंड नंबि उसी नगर का निवासी था। कविसार्वभौम श्रीनाथुडु स्मार्त ब्राह्मण होते हुए भी शिवोन्मुखी भक्तिभावना के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः काव्य पढ़ते समय लगता है कि कवि का तादात्म्य अपने पात्र के साथ हुआ, तभी तो चिरुतोंड नंबि का पात्र-चित्रण इतना सफल बन सका। शंकर के साक्षात्कार पर भक्त चिरुतोंड नंबि की भक्ति-विह्वलता का अनुमान निम्न पंक्तियों से लगाइए—

"जय हालाहलनीलकंधर ! महेशा ! भक्तचिंतामणि !
जयगंगाधर ! चंद्रशेखर ! जगत्स्वामी ! कृपांबोनिधि !
जय नीहारधराधरेंद्र तनया चारु स्तनद्वंद्व सं—
श्रय संलग्न पटीरकुंकुमरजस्यसम्पन्न बाहांतरा !"

पात्र की विशेषता इस बात में है कि ये तुंबुरु के अवतार माने जाते हैं तथा भारत के विविध प्रदेशों के विभिन्न वैश्यकुलों के कूटस्थ पुरुष माने जाते हैं। काव्य के अनुसार चिरुतोंड नंबि 'कावेरीवल्लभ', 'उभयद्राविड', किष्किधा के 'चलक्रीड़ा विनोद' तथा अयोध्या-निवासी वैश्य-परिवारों के कूटस्थ पुरुष थे। शिवभक्ति में आपाततः ओजोगुण तथा वीररस का समावेश हो जाता है। चिरुतोंड के चरित्र-चित्रण में इन दोनों का निर्वाह कवि के द्वारा पुष्कल मात्रा में हुआ है।

चिवरकु मिगिलेदि *(ते० कृ०)*

'चिवरकु मिगिलेदि' (अंत में जो बचता है) बुच्चिबाबू (दे०) का उपन्यास है। यह तेलुगु के सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में से है। इसके नायक को अपनी माँ के जीवन में किसी कलंक की शंका हो जाती है और वह अनुभव करने लगता है कि वह कलंक छाया की तरह सदा उसका पीछा कर रहा है। वह अनेकों के साथ प्रेम एवं घनिष्ठता बढ़ाकर, अनेक साहसपूर्ण कार्य करके, तथा अनेक कठिनाइयों का सामना करके, अपने जीवन में उन्मुक्त आनंद को भरने का यत्न करता है किंतु अंततः उसका जीवन एक अव्यक्त वेदना एवं पीड़ा से भरा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुन्नाकम् कुमारसामिप्पुलवर् (त०ले०) [जन्म —1850 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

संस्कृत तत्सम शैली में इनका नाम 'कुमार-स्वामी' है और ये लंकाद्वीप के 'चुन्नाकम्' क्षेत्र के थे। ये संस्कृत तथा तमिल – इन दोनों चिरप्रतिष्ठित भाषाओं के विपुल पांडित्य वाले शिक्षक थे और अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान इनके शिष्य रह चुके हैं। बीसवीं शती के प्रथम चरण के साहित्यकारों के प्रभावशाली माध्यम के रूप में 'मदुरै' से चलाई गई 'चेन्तमिल्' नामक मासिक पत्रिका में इनके लेख निकलते थे। इन्होंने 'रामोदयम्', 'चाणक्य-नीति' तथा 'मेघदूत' इन तीनों संस्कृत कृतियों के सुंदर तमिल पद्यबद्ध रूपांतर प्रस्तुत किए थे। इनकी अन्य रचनाएँ 'तमिलप्पुलवर चरितम्' (तमिल कवियों के वृत्तांत) तथा 'विनैप्पकुति विळक्कम्' (तमिल क्रिया-धातुओं का विवरण) हैं।

चूनड़ी (अप० कृ०) [रचना-काल—1150-1196 ई०]

'चूनड़ी' भट्टारक विनयचंद्र (दे०) मुनि द्वारा रचित 31 पद्यों की छोटी-सी मुक्तक रचना है। चूनड़ी का अर्थ है स्त्रियों के ओढ़ने का दुपट्टा, जिसे रँगरेज़ रंग-बिरंगे बेलबूटे छाप कर रँगता है। चुण्णी, चूर्णी भी इसी के पर्याय हैं, जिसका अभिप्राय है इतस्ततः विक्षिप्त प्रकीर्णक विषयों का लेखन अथवा चित्रण।

प्रस्तुत 'चूनड़ी' में धार्मिक भावनाओं और आवरणों से रँगी चूनड़ी पहनने का उपदेश दिया गया है। एक मुग्धा पति से ऐसी चूनड़ी की प्रार्थना करती है जिसे ओढ़ कर जिन-शासन में विलक्षणता प्राप्त की जा सके।

इस कृति की भाषा सरल है। पद्धड़िया और द्विपदी छंदों का प्रयोग हुआ है।

यह कृति गृहस्थों के लिए धर्म और नीति का उपदेश देने वाली मुक्तक रचना का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

चेक्किषार् पिळ्ळैत्तमिल (त० कृ०) [रचना-काल—उन्नीसवीं शती]

यह कृति 'पिळ्ळैत्तमिल' काव्य-विधा की श्रेणी की है। इसके रचयिता महाविद्वान मीनाक्षिसुंदरम् पिळ्ळै (दे०) हैं जिन्होंने सात और 'पिळ्ळैत्तमिल' और अनेक 'कोवै', 'पुराण' आदि काव्य-ग्रंथों की रचना की है। इस कृति के द्वारा सम्मानित महापुरुष चेक्किषार हैं जो कृषक जाति के प्रभु तथ चोळ राजा 'कुलोत्तुंगन् द्वितीय' (1113-1150 ई०) के अमात्य थे। इनके द्वारा रचित 'पेरियपुराणम्' (दे०) नामक काव्य-रत्न भक्ति-रसार्द्र शैली में शैव-धर्म के प्रसिद्ध 73 संत-गुरुओं की कथाएँ प्रस्तुत करता है और इसे तमिल प्रदेश के बहुसंख्यक शैवमताव-लंबियों द्वारा समादरणीय धर्मग्रंथ माना जाता रहा है।

काव्य-नायक चेक्किषार् के निजी गाँव के दृश्य, उनकी विभिन्न महानताएँ, विशेषकर शिव-भक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ाने में उनकी बहुविध सेवाएँ, इत्यादि विषयों का सविस्तर उल्लेख इस कृति में शैशव वर्णनों के अंतर्गत द्रष्टव्य है। साहित्यिक दृष्टि से इस रचना की विशेषताएँ हैं—प्रवाहमय 'आचिरिय विरुत्तम्' छंद का निर्वाह, शब्द एवं अर्थालंकार का सुंदर उपयोग, तथा रीतिबद्ध वर्णनों में भी चमत्कार की झलक। उक्ति-सौष्ठव के लिए यह एक उदाहरण है—'सरोवरों के कमल-पुष्पों में हंसगण आसीन हैं जैसे सुधी लोग अच्छे आसनों पर विराजमान होते हैं तथा भैंसे उन तड़ागों के जल में एकाएक कूद पड़ते हैं जैसे सुधिजनों की मंडली में अधम लोग घुस जाते हैं।

चेतना-प्रवाह (हिं० पा०)

इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विलियम जेम्स नामक तत्त्वज्ञ ने 1884 ई० में किया था और इसकी व्याख्या करते हुए बताया था कि प्रसंग, घटना, क्रिया, परिस्थिति, बाह्य हलचल आदि ऊपरी बातें हैं, मनोव्यापारों में चमकने वाली प्रतिमा ही वास्तविक प्रेरक शक्ति है। अतः पात्र का स्वभाव-विश्लेषण मन के गहरे व्यापारों में से निरंतर उद्भूत होकर विलीन होने वाली प्रतिक्रियाओं की संगति होता है। कलाकार का कार्य उसी को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना है, सुप्तमन के चेतना-प्रवाह को, सुप्त संवेदनों को व्यक्त करना है। अतः चेतना-प्रवाह-पद्धति का प्रयोग करने वाला कलाकार अर्ध-चेतन मन में एक विशिष्ट कालखंड में उठने वाली संवेदनाओं, विचार-तरंगों और सहस्मृतियों का उसी क्रम से अंकन करता है जिस क्रम से वे उसके मन में आविर्भूत होती हैं; उनको निजी विशिष्ट उद्देश्य से छाँटने या व्यवस्थित करने की चेष्टा वह नहीं करता। वर्जीनिया वुल्फ़ कहती हैं, 'हमें उस प्रति-च्छाया को खोजना है जो प्रत्येक दृश्य और घटना के कारण हमारी चेतना पर पड़ती है, चाहे वह कितनी ही असंबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विश्रृंखलित क्यों न हो।' इस पद्धति का प्रयोग करने वाले कलाकार की भाषा सामान्य भाषा से भिन्न होती है। मराठी लेखक मर्डेकर के शब्दों में, 'भाषा की शब्द-संपत्ति और व्याकरण का सामान्य स्वरूप बदलना होगा, विकृत करना होगा, ऐसा किए बिना चेतना-प्रवाह की विलक्षण उलझनों को प्रतिबिंबित करना कठिन है।'

चेन्नप्पा उत्तंगि *(क० ल०)*

स्व० रेवरेंड उत्तंगि चेन्नप्पा का जन्म उत्तर कर्णाटक के बेलगाँव ज़िले के एक गाँव में 1881 ई० में हुआ था। ये मिशनरी थे किंतु फिर भी इन्होंने वीरशैव साहित्य पर महत्वपूर्ण काम किया है। इन्होंने कन्नड कवि सर्वज्ञ (दे०) की वाणियों का संपादन भी किया है। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'बनारसक्कं', 'बेल्लेहोमिनविनेति', 'हिंदू-समाजहितचिंतक', 'वामनतिलक' (जीवनी), 'बसवेश्वरन् अस्पृश्यर उद्धारवू', 'दृष्टांतदर्पण', 'अनुभव-मंटप' आदि। 'दृष्टांतदर्पण' में साधु सुंदरसिंह के दृष्टांत का संग्रह एवं विवेचन है। 'अनुभव-मंटप' में वीरशैव संत बसव (दे०), अल्लम (दे०), चेन्नबसव (दे०) आदि की आध्यात्मिक गोष्ठी तथा उसकी उपलब्धियों की चर्चा है। सर्वज्ञ (दे०) के इधर-उधर बिखरे हुए वचनों का संग्रह कर, उनका वर्गीकरण तथा विस्तृत आलोचना आदि आपने बहुत ही परिश्रम के साथ की है। पाठानुसंधान के सिद्धांतों के अनुसार न होने के कारण यह उतना प्रामाणिक नहीं है फिर भी नष्टप्राय रत्नों को अगली पीढ़ी के लिए संगृहीत कर रखने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया। इनकी भाषा में ठेठ कन्नड की शक्ति है।

चेन्नबसव (क० कृ०) [रचना-काल—अनुमानतः 1150 ई०]

बारहवीं शती में कर्णाटक में वीरशैव मत द्वारा एक बहुत बड़ी क्रांति हुई थी जिसमें साहसी संतों ने अपनी सरल व सुंदर वाणी द्वारा जनता को जगाया था। इस वाणी को 'वचन' कहते हैं। इस युग में पाँच संत अत्यंत प्रसिद्ध माने जाते हैं जिन्हें हम 'संतपंचक' कहते हैं। वे हैं—बसव (दे०), अल्लमप्रभु (दे०), चेन्नबसव, अक्कमहादेवी तथा सिद्धराम (दे०)। चेन्नबसव बसवेश्वर के भानजे थे। इनकी रचनाएँ ये हैं—'षट्स्थलवचन', 'करणहसुगे', 'मिश्रार्पण', 'मंत्रगोप्य', 'कालज्ञान' एवं 'रुद्र-भारत'। वीरशैव मत को तात्त्विक पृष्ठभूमि देने में इनका विशेष योगदान है। इनके वचनों में से कुछ बहुत ही लंबे हैं। सिद्धांत-निरूपण एवं मतप्रचार की दृष्टि के कारण उनकी शैली में यथेष्ट मर्मस्पर्शिता है। अन्य मत के प्रति व्यंग्य में उनकी शैली में मानो चमक आ जाती है तथा पाखंड-खंडन में बसवेश्वर के वचनों की भाँति उनकी वाणी में भी साहित्य-सत्त्व रहता है किंतु बसव की साहित्यिकता और मार्मिकता सर्वत्र गोचर नहीं होती।

चेम्मीन् *(मल० कृ०)*

यह उपन्यासकार ख्यात तकषि (दे०) शिवशंकर पिळ्ळा का एक प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें मछुओं के जीवन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया गया है। 1926 ई० में इसका पहला प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास का रूपांतर रूसी आदि विदेशी भाषाओं में भी हुआ है। मछुआ चेंपन् की बेटी करुत्तम्मा के जीवन की घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। वह अन्य जाति के पुरुष परीक्कुट्टि से प्रेम करती है जो उसकी जाति के लोगों को बुरा लगता है। यद्यपि उसका ब्याह हो जाता है तो भी करुत्तम्मा अपने बाल्यकाल के मित्र परीक्कुट्टि के साथ प्रेम-संबंध मृत्यु तक बनाए रखती है और अंत में दोनों एक-दूसरे के गले लगकर समुद्र में कूदकर अपने प्रेम का निर्वाह करते हैं। मछुआ-जाति की जीवन-चर्या, आचार-विचार, अंधविश्वास आदि का तन्मय चित्रण इसमें हुआ है। मलयाळम के सामाजिक उपन्यासों में इस कृति का स्थान बहुत ऊँचा है।

चेय्युषवषक्कू *(त० पारि०)*

इस शब्द का अर्थ 'कवितागत प्रयोग' है। पारिभाषिक शब्द के रूप में तमिल काव्य-परंपरा में ग्रहण करने योग्य परिष्कृत वर्णन तथा कथन-पद्धतियों को सूचित करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। तमिल में ई० पूर्व कालीन 'संगम' साहित्य में जिन रूढ़ियों अथवा 'कविसमयों' का पालन होता था और जो काव्य-रचना का लक्षण मानी गई हैं वे सब 'चेय्युषवषक्कु' के शीर्षक के अंतर्गत आ जाती हैं। इसके पर्यायवाची शब्द के रूप में 'नाटकवषक्कु' की उक्ति का भी उपयोग होता है। इन पर्यायों में अंतर इतना ही है कि 'नाटक' का संबंध 'नृत्य अथवा गेय काव्य' की परंपरा से है तथा 'चेय्युष' सामान्य कविता-परंपरा का द्योतक है। प्राचीन काल में ये दोनों परंपराएँ प्रायः अभिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं। 'कवितागत प्रयोग' के व्यतिरेक में 'उलकवषक्कु' (दे०) (लोकव्यवहाराश्रित प्रयोग) है।

चेरुकाटु *(मल० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

चेरुकाटु गोविंद पिषारटी प्रतिभाशाली नाटककार और कहानीकार हैं। अपने व्यावसायिक जीवन से निवृत्त होते समय ये संस्कृत महाविद्यालय के आचार्य थे। साम्यवादी आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर इन्हें कारागार भी हुआ था। इनके नाटकों में 'तरवाटित्तम', 'अटिमा', 'मनुष्य हृदयङ्ङळ्' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ भी लिखी हैं।

चेरुकाटु के नाटकों में शोषित जनता के विद्रोह का स्वर मुखरित है। केरल के परिवारों के आर्थिक शिथिलन का चित्र यथार्थ-बोध के साथ उतारने में उनको सफलता मिली है। आधुनिक नाटककारों में चेरुकाटु का प्रमुख स्थान है।

चेरुश्शेरि, नंपूतिरि *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सोलहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के प्रथम महाकाव्य 'कृष्णगाथा' के रचयिता हैं। इनके जीवन के संबंध में केवल इतना निर्विवाद कहा जा सकता है कि ये कोलत्तिरि राजा उदय वर्मा के आश्रित थे जिसके आदेशानुसार इन्होंने 'कृष्णगाथा' (दे०) की रचना की थी। 'कृष्णगाथा' के अलावा 'भारत-गाथा' भी चेरुश्शेरि की कृति मानी जाती है।

चेरुश्शेरि मलयाळम के प्रथम कवि हैं जिन्होंने भाषा को साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण बनाया। इन्होंने संस्कृत-छंदों का प्रयोग करने वाली मणिप्रवाल शैली के स्थान पर लोक-शैली के पाट्टु के छंद और काव्य-रीति को अपनाया। शृंगार और हास्य की अभिव्यंजना में इनका पाटव असामान्य था। इनकी अलंकार-योजना अकृत्रिम और हृदयावर्जक है। यद्यपि चेरुश्शेरि संत कवि नहीं माने जाते तो भी भक्ति-मार्ग के पोषण में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। भारत के कृष्णकाव्यकारों में, विशेषतः प्रबंध काव्यकारों में चेरुश्शेरि का स्थान समुन्नत है।

चेलियलिकट्टा *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

चेलियलिकट्टा (समुद्र की वेला) श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। श्री सत्यनारायण का प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा में अटूट विश्वास है तथा आधुनिक स्वच्छंदतावादी विचारधारा को ये भारत की प्रगति के लिए घातक मानते हैं। अपनी इसी विचारधारा को इन्होंने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

सीतारामय्या पैंतालीस वर्ष की उम्र में विधुर होकर रत्नावली नाम की कन्या से विवाह कर लेता है। सीतारामय्या के छोटे भाई रंगाराव ने अँग्रेज़ी शिक्षा पाई है और वह नई सभ्यता एवं विचारधारा में पला है। वह अपनी भाभी रत्नावली को अपने नए विचारों से प्रभावित कर लेता है और उसके साथ अनुचित संबंध स्थापित करके उसे भी मद्रास भगा ले जाता है। कुछ समय के पश्चात् वहाँ की स्वेच्छचारिता को देखकर रत्नावली के पुराने संस्कार सचेत हो जाते हैं। वह अपनी भूल को समझ जाती है और विश्वास करने लगती है कि विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है। वह अपने पति के पास लौट आती है। उसका क्षमाशील पति उसे आश्रय देता है। उसी समय एक भीषण समुद्र-तरंग में वह विलीन हो जाती है। जीवन रूपी समुद्र अपनी वेला तक मर्यादित रहकर ही अपने स्वरूप को बनाए रख सकता है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक प्रेम भी सामाजिक मर्यादा की सीमाओं में ही शांति प्रदान कर सकता है। यही संदेश इस उपन्यास में दिया गया है।

चेलुवांबे *(क० ले०)* [समय—1725 ई० के आसपास]

मैसूर-नरेश दोड्डकृष्ण राजा (1713-17) की पट्टमहिषी 'चेलुवांबे' का समय 1725 ई० के करीब माना जाता है। इनकी रचनाएँ हैं—'वरनंदी कल्याण', 'वेंकटाचल माहात्म्य', 'लालिपरगळु' तथा 'माहात्म्य टीके' आदि। 'वरनंदीकल्याण' इनकी उल्लेखनीय कृति है जो सांगत्य (दे०) छंद में है। रामानुजाचार्य के जीवन के बारे में कहा जाता है कि वे दिल्ली से अपनी आराध्यमूर्ति 'चेलुवराम स्वामी' को दक्षिण लाए। यह मूर्ति मैसूर के प्रसिद्ध श्री वैष्णव क्षेत्र मेलुकोटे में है। कहा जाता है कि यह दिल्ली सुल्तान की बेटी के पास थी जिसे इसमें वरनंदी कहा गया है। कवयित्री की कल्पना है कि वरनंदी पूर्वजन्म में सत्यभामा थी, वरनंदी अपने इष्टदेव के साथ खुद भी मेलुकोटे आई। उसी के साथ उसने विवाह किया। इसी की कहानी इसमें सांगत्य छंद में कही गई है। इसके सांगत्य काफ़ी ललित एवं हृदय-संवेद्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेल्लम्मा, सी० आर० *(क० ले०)*

ये उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में कन्नड की एक सरस कवयित्री थीं। इनका देहावसान 1910 ई० में हुआ। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में प्रमुख ये हैं—'गीतिकाल हर', 'द्वादशमंजरी स्तोत्र', 'पारिजातहरण', 'राजकलानिधि' 'रुक्मिणी-परिणय', 'वैराग्यमंजरी आदि। आधुनिक कन्नड में साहित्य-रचना करने वाली महिलाओं में, जिनकी संख्या कम ही है, इनका नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

चैतन्य

ये प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य थे। इनका समय पंद्रहवीं शती है। इन्होंने बंगाल में वैष्णव धर्म का प्रचार किया। ये राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनके दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन इनके शिष्य आचार्य जीवगोस्वामी ने 'षट्-संदर्भ में किया, तथा बलदेव ने 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) पर अपने 'गोविंदभाष्य' में किया। इनके अनुयायी रूपगोस्वामी (दे०) ने 'उज्ज्वलनीलमणि' (दे०) तथा 'भक्तिरसामृत सिंधु' (दे०) नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के माध्यम से वैष्णव सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इनके एक शिष्य कवि कर्णपूर (1543 ई0) ने 'चैतन्य-चंद्रोदय' (दे०) नामक नाटक में इनका जीवनचरित प्रस्तुत किया है।

चैतन्यचंद्रोदय *(सं० कृ०)* [समय—1579 ई०]

'चैतन्यचंद्रोदय' श्री परमानंद द्वारा रचित प्रतीक नाटक है। यह शिवानंद सेन के पुत्र तथा महात्मा चैतन्य देव (दे०) के पार्षद थे। चैतन्य ने इन्हें 'कर्णपूर' की उपाधि से विभूषित किया था।

'चैतन्यचंद्रोदय' कवि की प्रौढ़ रचना है। इसमें दस अंक हैं। महाप्रभु चैतन्य देव के जीवनवृत्त तथा सिद्धांतों को समझने के लिए यह नाटक बड़ा ही प्रामाणिक है। इसके पात्रों में मूर्त तथा अमूर्त दोनों का सम्मिश्रण है। अमूर्त पात्रों में भक्ति, विराग, कलि तथा अधर्म आदि प्रमुख हैं। मूर्त पात्रों में चैतन्य तथा उनके प्रसिद्ध शिष्य हैं। इसकी भाषा सरल तथा सुबोध गद्य है।

चैतन्यचरितामृत *(बँ० कृ०)*

वैष्णव समाज और साहित्य में कृष्णदास कविराज (दे०) अपने 'चैतन्यचरितामृत' ग्रंथ के कारण विख्यात हैं। उनके जीवन के बारे में आज भी संपूर्ण तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। वृंदावन उनकी जीवन-साधना का क्षेत्र था। छहों गोस्वामियों की कृपा उन्हें मिली थी। उनमें से श्रीरूप एवं रघुनाथ का उन्हें विशेष सान्निध्य मिला था। कदाचित् ये दोनों उनके दीक्षा-गुरु थे और शेष सभी शिक्षा-गुरु। विद्वानों के अनुसार 1496 ई० में उनका जन्म एवं 1582 ई० में उनकी मृत्यु हुई थी।

कृष्णदास की एकमात्र बँगला रचना 'चैतन्य-चरितामृत' है। आभ्यंतर प्रमाणों के अनुसार इस ग्रंथ की रचना 1612 ई० के आसपास हुई थी। वृद्धावस्था में उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की थी। कवि की मनस्विता का परिचय इस ग्रंथ में सर्वत्र मिलता है। यह काव्य पांडित्य, भक्ति एवं काव्यकुशलता का त्रिवेणी-संगम है। श्री चैतन्यदेव (दे०) के महान् जीवन के अंतिम पक्ष का चित्रण करना ही कवि का मंतव्य था और श्री चैतन्य-प्रवर्तित वैष्णव धर्म की दार्शनिक भित्ति एवं आदर्श का निष्ठापूर्वक प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य था। दुरूह दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या एवं इस धर्ममत के विश्लेषण और प्रतिष्ठा के संदर्भ में कवि ने जहाँ कौशल का परिचय दिया है वहाँ भाव-गंभीर काव्य-शैली की स्थापना में भी उनका अविस्मरणीय कृतित्व परिलक्षित हुआ है। वृंदावनदास (दे०) के चैतन्य-भागवत (दे०) में श्री चैतन्य के जीवन के प्रथमार्ध का चित्रण है एवं कृष्णदास के काव्य में शेषार्ध का। कृष्णदास ने श्री चैतन्य के प्रथम जीवन का सूत्राकार में वर्णन कर अन्त्यपर्व में अपने उद्देश्य को रूपायित किया है। कृष्णदास जीवनीकार के साथ-साथ दार्शनिक भी हैं। आदिलीला में 17 परिच्छेद हैं, मध्यलीला में 25 एवं अंतिम लीला 20 परिच्छेदों में वर्णित है। इतिहास, रसतत्त्व, दर्शन एवं काव्यरस की वर्णना में कवि का धर्मभाव, गहरी मननशीलता, सूक्ष्म और संहत विचार-बोध एवं रसज्ञान का सार्थक परिचय मिलता है।

चैतन्यदेव *(बँ० पा०)*

कृष्णदास कविराज (दे०)-प्रणीत 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) ग्रंथ में श्री चैतन्य (दे०) के जीवन के शेषार्ध का परिचय एवं उनके द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय वैष्णव धर्म के तत्त्वस्वरूप का विश्लेषण है। श्री चैतन्य (1486-1533 ई०) के जीवन का प्रथमार्ध वृंदावनदास (दे०) के 'चैतन्य-भागवत' (दे०) ग्रंथ में विशद रूप में वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चैतन्य-भागवत' एवं 'चैतन्य-चरितामृत' ग्रंथों के द्वारा महाप्रभु श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण परिचय विकसित हुआ है।

नवद्वीप में उनका जन्म हुआ। पिता ने नामकरण किया—विश्वंभर। श्री चैतन्य का दूसरा नाम था—निमाइ। संन्यास ग्रहण करने पर उनका नाम हुआ श्रीकृष्ण चैतन्य। परम भागवत माधवेंद्र पुरी के प्रियतम एवं प्रधान शिष्य ईश्वरपुरी से इन्होंने दशाक्षर गोपालमंत्र की दीक्षा ली। पहली स्त्री का नाम था लक्ष्मीप्रिया। बाद में विष्णुप्रिया के साथ उनका विवाह हुआ। इसके उपरांत पितृकार्य के उपलक्ष्य में उन्हें गयाधाम जाना पड़ा। वहीं उन्होंने दीक्षा ली। गयाधाम से वापिस आते ही उनका लोकोत्तर जीवन शुरू होता है। अंत में सन् 1510 में उन्होंने गृहस्थाश्रम त्याग दिया एवं काटोया में जाकर केशवभारती से संन्यास ग्रहण किया। इसके उपरांत उन्होंने नीलांचल (पुरी) की ओर यात्रा शुरू की। दाक्षिणात्य भ्रमण के उपरांत श्री चैतन्य नवद्वीप में फिर वापिस चले आए और बाद में बृंदावन-मथुरा का परिभ्रमण किया। अंतिम जीवन उन्होंने पुरी में ही व्यतीत किया। प्रारंभिक जीवन में अध्यापना एवं बाद में भक्ति-रस से समग्र देश को उन्होंने अनुप्राणित किया था। केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं, सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने बंगाल को दिशा दी। श्री चैतन्य प्रवर्तित प्रेमधर्म में नवमानवता-बोध के सुस्पष्ट बीज विद्यमान थे। गौड़ीय वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्री चैतन्य ने मनुष्य को स्वमहिमा में प्रतिष्ठित किया था।

श्री चैतन्य के महाप्रयाण का उल्लेख किसी भी ग्रंथ-रचयिता ने नहीं किया है। केवल कवि जयानंद (दे०) के 'चैतन्य-मंगल' (दे०) के संकेत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1533 ई० के जुलाई में वे तिरोहित हो गए थे।

चैतन्य-भागवत *(बँ० कृ०)*

बँगला भाषा में 'चैतन्यचरित' ग्रंथ-समष्टि में बृंदावनदास (दे०) के 'चैतन्य-भागवत' ग्रंथ की रचना सबसे पहले हुई थी। कृष्णदास कविराज (दे०) ने बृंदावनदास को 'चैतन्य-लीला के व्यास' के नाम से अभिनंदित किया है। कविराज ने इस ग्रंथ को 'चैतन्य-मंगल' के नाम से ही पुकारा है। कदाचित् कृष्णदास के 'व्यास' कहने पर परवर्ती युग में लोगों ने बृंदावनदास के काव्य को 'चैतन्य-भागवत' के नाम से पुकारना शुरू कर दिया था। और फिर बहुत-से लोग यह सोचते हैं कि उसी समय लोचनदास (दे०) ने 'चैतन्य-मंगल' की रचना की थी और इस तरह दोनों ग्रंथों का एक ही नाम हो गया था। माता नारायनी देवी ने पुत्र के ग्रंथ का नाम परिवर्तित कर इस समस्या का समाधान कर दिया।

कदाचित् श्री चैतन्य के गृहत्याग के बाद ही बृंदावनदास का जन्म हुआ। नित्यानंद के घनिष्ठ सहचर थे बृंदावनदास। श्री चैतन्य की अंतःलीला का विवरण इस ग्रंथ में नहीं है। कदाचित् ग्रंथ-समाप्ति के पहले ही श्री चैतन्य का तिरोधान हो गया था, इसीलिए अंतपर्व की बृंदावन ने रचना नहीं की। 'चैतन्य-भागवत' का रचना-समाप्ति-काल कदाचित् 1434-35 ई० है। वैष्णव साहित्य के अन्यान्य आभ्यंतर प्रमाणों से पता चलता है कि बृंदावन की मृत्यु 1580 के आसपास हुई थी।

'चैतन्य-भागत' में कवि ने चैतन्य-नित्यानंद को कृष्ण-बलराम के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। चैतन्य धर्म-तत्त्व का उल्लेख करना कवि का लक्ष्य नहीं था। चैतन्य के आख्यानमूलक जीवन-वृत्तांत की रचना ही कवि का उद्देश्य था। अवतारवाद की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने बहुत-सी अलौकिक कहानियों की अवतारणा की है। कवि के हृदय में चैतन्य के लिए अपार प्रेम भरा हुआ है। चैतन्य नित्यानंद उसकी आत्मा है। चैतन्य धर्म के विरोधी धर्मों पर उन्होंने आक्रमण किया है; इसीलिए उनके ग्रंथ में समसामयिक समाज का चित्र भी उभर आया है। श्री चैतन्य के सार्थक जीवनीकार के रूप में नहीं, प्रथम जीवनीकार के रूप ही में बृंदावनदास की ख्याति रहेगी।

चैतन्य-मंगल *(बँ० कृ०)*

'चैतन्य-मंगल' के नाम से लोचनदास तथा जयानंद दोनों ने ही अलग-अलग काव्य-ग्रंथों की रचना की है। बृंदावनदास (दे०) के 'चैतन्य-भागवत' (दे०) की रचना के उपरांत कदाचित् लोचनदास ने 'चैतन्य-मंगल' की रचना की थी। अनुमान किया जाता है कि 1560 ई० से 66 ई० के बीच इस ग्रंथ की रचना हुई होगी। प्राचीन मंगल-काव्य के अनुरूप चार खंडों में समाप्त इस ग्रंथ में चैतन्य (दे०) की जीवनी का आलेख प्रस्तुत किया गया है। नरहरि सरकार ठाकुर के प्रियतम शिष्य लोचन के गुरु की आज्ञा से ही इस ग्रंथ की रचना की थी। बृंदावनदास एवं विशेष रूप से मुरारिगुप्त के प्रति कवि ने अपना आनुगत्य बार-बार प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। इतिहासाश्रित सार्थक जीवनी-रचना का प्रयास इसमें नहीं है। कल्पना-प्रवण भक्त हृदय को इस काव्य में मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है। श्री गौरांग के 'नदीया नागरी भाव' के प्रवक्ता-रूप में लोचन को इस काव्य में प्रतिष्ठा मिली है।

जयानंद का 'चैतन्य-मंगल' भी 'मंगलकाव्य' (दे०)के रूपाश्रय में रचित है। कदाचित् 1560 ई० में इस ग्रंथ की रचना हुई थी। लोचन का काव्य एक विदग्ध कवि की रचना है जबकि जयानंद के काव्य में अवैदग्ध्य का परिचय स्पष्ट है। वीरभद्र प्रभु की सम्मति एवं श्रीगदाधर पंडित की आज्ञा से उन्होंने नौ खंडों में गीतोपयोगी इस ग्रंथ की रचना की थी। इसके विभिन्न खंडों में श्रृंखला का अभाव है। काल्पनिक कहानियों की भरमार भी है। फिर भी उस युग के सामाजिक जीवन का परिचय इस ग्रंथ में विशेष रूप से उपलब्ध है। वैष्णव समाज में इस ग्रंथ के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया गया था क्योंकि केवल इसी ग्रंथ में चैतन्यदेव के 'अप्रकट' होने का यथार्थ कारण दर्शाते हुए यह कहा गया है कि रथयात्रा के समय नाचते हुए चैतन्य के पैर में ईंट का टुकड़ा घुस गया था और उसी घाव से ही 1533 ई० में उनकी मृत्यु हुई थी। कवि रूप में अभिनंदित होने पर भी जयानंद ने ऐतिहासिकों की दृष्टि में सश्रद्ध स्वीकृति प्राप्त की है।

चोखामेला *(म० ले०)*

इनका निवास-स्थान था—मंगलवेढा। ये भगवान विट्ठल के अनन्य भक्त थे। जाति से ढेड़ होने के कारण इन्हें जीवन में अनेक बार अपमानित होना पड़ा था। परंतु भक्ति-भावना ने इन्हें सहज कवि बना दिया। इनके अनेक सरस और सालंकृत अभंग उपलब्ध हैं। पंढरपुर में पांडुरंग-मंदिर के सिंहद्वार के निकट इनकी समाधि बनी हुई है।

चोखेर बालि *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1903 ई०]

यह रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का ख्याति-प्राप्त सफल उपन्यास है। विनोदिनी चतुर एवं चंचल स्वभाव की बाल-विधवा है। महेंद्र अपनी सरल एवं निश्छल पत्नी आशा के गंभीर प्रेम से ऊबकर बिनोदिनी के प्रति आकर्षित होता है। बालसखा होने के नाते बिहारी अपने असंयत मित्र को सुधारने का प्रयास करते हुए स्वयं विनोदिनी के मोह-जाल में उलझ जाता है। रवींद्र का अभीष्ट वैध एवं अवैध प्रेम की उत्तेजना एवं संघर्ष को दिखाना है। उन्होंने नारी के दो रूपों का रेखांकन किया है। आशा सौम्य, शांत एवं गंभीर है। बिनोदिनी मुखर, चुलबुली एवं चतुर है। महेंद्र जैसा अस्थिर एवं असंयमी व्यक्ति विनोदिनी के गूढ़ आकर्षण में सब कुछ गँवा बैठता है; बिहारी बंधु-प्रीति के आवेश में बिनोदिनी के संपर्क में ऐसा आता है कि उससे अलग नहीं हो पाता। बहुविध द्वंद्व होने के कारण महेंद्र सर्वाधिक सशक्त पात्र है, बिनोदिनी का चित्रांकन भी पर्याप्त ईमानदारी से किया गया है। वास्तव में इस उपन्यास का वस्तु-कौशल इतना सुगठित तथा चरित्रांकन इतना तटस्थ भाव से किया गया है कि यह रचना बँगला उपन्यास में नए युग का सूत्रपात्र करती है। रवींद्र की प्रतिभा का प्रमाण है जटिल मानसिक संघर्ष एवं क्रिया-प्रतिक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण। यह रवींद्र की अन्यतम उपलब्धि है।

चोरघडे, वा० कृ० *(म० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

नाम से वामन पर कद में छह फुट शंबे श्री चोरघडे का आविर्भाव मराठी कथा-साहित्य में दीप्तिमान नक्षत्र के रूप में हुआ था। कहानी को प्रसंग, घटना, निर्जीव शिल्प से निकालकर उसे काव्यमय भावसमृद्ध और अंतर्मुख रूप प्रदान करने का श्रेय इनको ही है। इनकी कहानियों में मानव की स्वाभाविक उदारता, भव्यता तथा भीषणता का काव्यमय वर्णन है। इन कहानियों की एक अन्य विशेषता है—प्रादेशिकता। ग्रामीण जीवन और देहाती लोगों का स्वानुभूतिपूर्ण चित्रण बड़ा ही मार्मिक एवं प्रभावशाली बन पड़ा है और पाठक के मन में इस ग्रामीण जीवन के प्रति सहज ही सहानुभूति उत्पन्न हो उठती है। महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन का मार्मिक और कलापूर्ण प्रतिपादन भी इनकी कई कहानियों में हुआ है। इनकी भाषा-शैली में सर्वत्र संगीतमयता है क्योंकि वाक्य छोटे-छोटे हैं, उनमें नाद तथा लय का मणिकांचन संयोग है। अब तक इनके आठ कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रसिद्ध कथा-संग्रह—यौवन, हवन, पाथेय, प्रस्थान और संस्कार।

चोरघरा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती; लेखक : माधवदेव (दे०)]

श्री शंकरदेव (दे०)द्वारा प्रचारित अंकीया नाट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) की परंपरा में माधवदेव ने 'चोरघरा' नाट लिखा था। इसकी भाषा ब्रजबुलि मिश्रित असमिया है। शंकरदेव के नाटक के समान यह आख्यानमूलक न होकर परिस्थिति-मूलक नाटक है। माधवदेव नाटकीयता की ओर अधिक सजग थे। कृष्णत्व के प्रचार की अपेक्षा उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण अधिक किया है। नाटक का प्रसंग इस प्रकार है—कृष्ण ग्वालिन के घर दूध-दही खाते पकड़े जाते हैं। उसी समय सखाओं के वहाँ पहुँच जाने पर कृष्ण का साहस बढ़ जाता है, वे उल्टे ग्वालिन पर ही दोषारोपण करने लगते हैं। ग्वालिन डर कर उन्हें छोड़ देती है। कृष्ण कहते हैं कि तुमने तो मुझे छोड़ दिया किंतु मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। इस प्रकार वे थोड़ा मक्खन और पा लेते हैं। तब तक माता यशोदा वहाँ पहुँच जाती है। यहाँ माता के वात्सल्य का मनोहारी चित्रण है।

चौधुरी, प्रमथनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

रबींद्र (दे० ठाकुर) के समसामयिक प्रमथ चौधुरी का प्रधान परिचय 'सबुजपत्र' (दे०) प्रथम प्रकाशन : 1925 ई०) के संपादक के रूप में है एवं सर्वोत्तम परिचय कवि एवं प्रबंधकार के रूप में है। प्रमथ चौधुरी के संपादन में ही रबींद्रनाथ ठाकुर ने 'सबुजपत्र' में चलित भाषा का प्रयोग शुरू किया था।

'सबुजपत्र' के संपादक प्रमथ चौधुरी (छद्मनाम : बीरबल) नवीनों एवं नव्ययुग के अग्रणी रहे हैं। उन्होंने 'जयदेव' निबंध में प्राचीन चिंतनधारा के विरुद्ध मौलिक साहित्य-चिंतन की अभिव्यक्ति की। साहित्यिक निबंधों के अतिरिक्त सामाजिक निबंधों की रचना में भी उन्होंने दक्षता का परिचय दिया है। 'तेल नुन लकड़ी', 'बीरबलेर हालर-वाता' (द्र०), 'नाना कथा', 'नाना चर्चा' आदि ग्रंथ-समूह नवीन युग की चिंतनधारा के प्रतीक हैं। मननशीलता के क्षेत्र में शाणित-बुद्धिदीप्त तिर्यक व्यंग्योक्ति के माध्यम से प्रमथनाथ ने 'सबुजपत्र' में एक उन्नत आदर्श की स्थापना की थी। बुद्धिदीप्त यौवनोद्भासित तरुण समाज का मुख-पत्र था 'सबुजमत्र' एवं मुखपात्र—प्रमथ चौधुरी।

बँगला काव्य के क्षेत्र में प्रमथ चौधुरी के सर्वाधिक कृतित्व का परिचय उनकी सार्थक सॉनेट रचना में मिलता है। 'सॉनेट पंचाशत' (1913 ई०) एवं 'पद-चारण' (1919 ई०) कवि के कृतित्व के सार्थक निदर्शन हैं।

चौधुरी, प्रसन्नलाल *(अ० ले०)* [जन्म—1902 ई०; जन्म-स्थान—पलाशबाड़ी]

इन्होंने गौहाटी से स्नातक-परीक्षा उत्तीर्ण की। 1931 ई० में बारपेटा विद्यापीठ के हेडमास्टर नियुक्त हुए, बीच में गौहाटी के सरकारी प्रचार-विभाग में भी काम किया।

प्रकाशित रचनाएँ—'अग्निमंत्र' (कविता-संग्रह) (1952) 'नीलांबर' (नाटक) (1926)।

ये विद्रोही कवि हैं। समाज के प्राचीन संस्कारों का विरोध कर नये समाज की रचना का स्वप्न देखते हैं। इनका विद्रोह यौवन का विद्रोह है, कंकाल-सदृश किसान का विद्रोह है। उत्कट स्वदेश-प्रेमी होते हुए भी इन्हें विश्व के किसी भी प्रदेश के श्रमिकों के प्रति सहानुभूति है। अर्ध-ऐतिहासिक नाटक 'नीलांबर' साहित्यिक सौंदर्ययुक्त एवं मंचोपयोगी है। इसमें हत्या, प्रपंच आदि का प्रचुर वर्णन है। विद्रोही कवि श्री चौधुरी असम के नजरुल इस्लाम (दे०) कहे जाते हैं।

चौधरी, बहिणाबाई *(म० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

ये आधुनिक मराठी साहित्य में ग्रामीण गीतों की रचयित्री रूप में प्रसिद्ध सोपानदेव चौधरी (दे०) की माता हैं।

इनका 'बहिणाबाईची गाणी' नामक गीत-संग्रह प्रसिद्ध है।

बहिणाबाई एक अशिक्षित ग्राम्य गृहणी थीं, जो काव्य-रचना की प्रतिभा से संपन्न थीं। इनके गीतों की विषय-परिधि नित्यप्रति के व्यवहार में आने वाली वस्तुओं तथा दैनिक जीवन की अनुभूतियों तक ही सीमित थी। साधारण विषय की मधुरिमा प्लावित कर आकर्षक ढंग से व्यक्त करने की कला में पारंगत होने के कारण, इनके गीत आज भी सामान्य जन की जिह्वा पर नाचते हैं। काव्य के आशावादी दृष्टिकोण, भावनाओं की मौलिकता, आस्तिक बुद्धि, स्वाभाविक अलंकार-योजना, सरसता आदि गुणों के कारण इनका काव्य प्राचीन काव्य-परंपरा में तो गौरव का अधिकारी है ही, साथ ही आधुनिक काल में भी उसकी प्रतिष्ठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौधुरी, योगेशचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

पौराणिक कथावस्तु के आधार पर वर्तमान कालोपयोगी समस्यामूलक नाटक लिखकर योगेशचंद्र चौधुरी ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इनके प्रसिद्ध नाटकों के नाम निम्नलिखित हैं : 'सीता' (1924), 'दिग्बिजयी' (1928), 'श्री श्री बिष्णुप्रिया' (1931), 'बांगलार मेये' (1934), 'पतिब्रता' (1934), 'पथेर साथी' (1935), 'नंदरानीर संसार' (1936), 'माकड़सार जाल' (1934) आदि। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है 'सीता'। बंगाल के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता शिशिर भादुड़ि के कारण भी 'सीता' को बहुत प्रसिद्धि मिली थी। इस नाटक में शिशिर भादुड़ि ने राम का अभिनय किया था। इस नाटक में सीता की निर्वासन-कथा को लेकर नाट्यकार ने समाजधर्म तथा राजधर्म के साथ मानवधर्म के विरोध के एक उज्ज्वल चित्र का प्रदर्शन किया है एवं इसी के साथ मानवधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन हुआ है। योगेशचंद्र ने कतिपय सामाजिक नाटकों की भी रचना की थी। मोलेयर के नाटक 'स्कूल फार हस्बैंडस्' के अनुकरण पर इन्होंने 'पूर्णिमा-मिलन' प्रहसन की रचना की थी। इनका प्रथम सामाजिक नाटक 'नंदरानीर संसार' एक उपन्यास का नाट्यरूप है।

योगेशचंद्र ने नाट्य साहित्य के आधुनिक युग में मध्ययुग की धारा का अनुसरण किया है परंतु इनका कृतित्व इसी में है कि इन्होंने प्राचीनता के माध्यम से आधुनिक समस्याओं को प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है।

चौधरी, रमाकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1846 ई०; मृत्यु—1889 ई०]

जन्मस्थान : नलबारी।

रचनाएँ—**काव्य** : 'अभिमन्यु-बंध' (दे०) (1875); **नाटक** : 'सीताहरण नाटक', 'रावण-बध नाटक'।

इन्होंने 1875 ई० में मधुसूदन दत्त (दे०) से प्रेरणा लेकर अमित्राक्षर छंद में 'अभिमन्यु-बध' (दे०) काव्य की रचना की थी। उन्नीसवीं शती के अष्टम दशक में इन्होंने दो नाटक 'सीताहरण' और 'रावण-बध' लिखे थे। दोनों नाटक अभिनीत हुए थे। ये नाटक गंभीर हैं और अमित्राक्षर छंद में लिखित हैं। 'सीताहरण नाटक' असमीया का प्रथम नाटक है। अब इसकी प्रति उपलब्ध नहीं है। स्व० दुग्धनाथ खाउंड ने 1909 ई० में जो 'सीताहरण' नाटक संगृहीत किया था उसमें अमित्राक्षर छंद का प्रयोग और मधुसूदन दत्त का प्रभाव है, अतः यह श्री चौधरी का ही हो सकता है। 'रावण-बध नाटक' बाद में प्रकाशित हुआ था। इसमें श्री चौधरी ने मधुसूदन दत्त जैसा दृष्टिकोण न रखकर राम और रावण के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण ही रखा है, इसमें चरित्रों की नवीनता भले ही न आई हो, किंतु भारतीय मान्यताओं पर आघात नहीं है।

श्री रमाकांत चौधरी असमिया के प्रथम नाटककार हैं।

चौधरी, सोपानदेव *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

सोपानदेव चौधरी मूलतः खानदेश के निवासी थे, पर बाद में नासिक में जा बसे। 'काव्यकेतकी' तथा 'अनुपमा' इनके काव्य-संग्रह हैं।

इनकी रचनाएँ 'कला कला के लिए' सिद्धांत की प्रतिपादक हैं। नैसर्गिक रूप से प्रकृति की क्रोड़ में रहने वाले ग्रामीणों के मनोभावों का वर्णन अनेक प्रगीतों में किया गया है। ये जानपद गीतों के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इनके प्रगीत संगीतात्मक और नादमधुर हैं। इन्होंने बच्चों के लिए हास्य-गीत भी लिखे हैं।

चौधरी, रघुनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1967 ई०]

जन्म-स्थान : कामरूप का लाउपरा गाँव।

इन्होंने घर पर संस्कृत का तथा स्कूल में अँग्रेज़ी का अध्ययन किया था। एकाधिक शिक्षा-संस्थाओं में इन्होंने अध्यापन किया। 1920 ई० के आंदोलन में इन्होंने जेल-यात्रा की थी। इन्होंने अनेक सभाओं का सभापतित्व किया था। कई पत्रिकाओं का इन्होंने संपादन भी किया। इनकी प्रथम कविता 'जोनाकी' में निकली थी।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'सादरी' (1910), 'केतेकी' (दे०) (1918), 'कारबला' (1923), 'दहिकतरा' (1931), 'नवमल्लिका' (गद्यकाव्य) (1959)।

इनकी कविताओं में दो धाराएँ हैं—एक इंद्रियमुखी और दूसरी अंतर्मुखी। प्रथम में शारीरिक आकर्षण का वर्णन है। इस श्रेणी में विहंग और फूल-विषयक कविताएँ भी हैं। इन्होंने प्रकृति के प्रत्येक कार्य में सौंदर्य देखा है। द्वितीय धारा की कविताओं में वैराग्यतथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराशा का स्वर प्रमुख है। इन्होंने आधुनिक रोमांसवादी कविता में ध्रुपद शैली का प्रवर्तन किया था। इनकी शैली पाश्चात्य है, किंतु कालिदास (दे०) की कविताओं का इन पर प्रभाव है। कविताओं की भाषा संस्कृत-प्रधान है किंतु 'कारबला' और 'सादरी' में अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग है। 'कविरत्न' और 'विहगी कवि' इनकी उपाधियाँ थीं। ये असमीया के उच्चकोटि के कवि थे।

चौधुरी, निरोद *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के लेखक हैं।

रचनाएँ—**कहानी** : 'कोमल गांधार', 'मोर गल्प', 'अंगे-अंगे शोभा'। **संपादन** : 'प्रेमेर गल्प'।

इनकी कहानियों में संवेदनशील मनोवैज्ञानिक वर्णन हैं। इस युवा लेखक से अभी बहुत अपेक्षाएँ हैं।

चौपाई *(हिं० छं०)*

चौपाई के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। इसके चरण के अंत में जगण और तगण का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

तुलसीदास (दे०) ने रामचरितमानस (दे०) की रचना चौपाई छंद में कर उसे अमर कर दिया है। उदाहरण—

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रणधीरा, मनहुँ वीर रस धरे सरीरा॥

चौबीस अवतार *(पं० कृ०)*

'दशम ग्रंथ' (दे०) में प्राचीन पुराण-साहित्य में वर्णित विष्णु के चौबीस अवतारों की पद्यबद्ध कथा संगृहीत है। इन अवतारों की नामावली इस प्रकार है—1. मच्छ (मत्स्य), 2. कच्छ (कच्छप), 3-4. नर-नारायण, 5. मोहिनी, 6. बराह (वराह), 7. नरसिंह (नृसिंह), 8. बावन (वामन), 9. परसराम (परशुराम), 10. ब्रह्मा, 11. रुद्र, 12. जालंधर, 13. बिसन (विष्णु), 14. शेषशायी, 15. अरहंतदेव, 16. मान राजा, 17. धनतर (धन्वंतरि), 18. सूर्य, 19. चंद्रमा, 20. राम, 21. कृष्ण, 22. नर (अर्जुन), 23. बुद्ध, 24. निहकलंकी (कल्कि)। इन सभी अवतार-कथाओं में राम और कृष्ण का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है। रामावतार में कुल 864 छंद हैं और कृष्णावतार में 2492।

दशम ग्रंथ की अवतार-भावना सामान्यतः प्रचलित अवतार-भावना से थोड़ी भिन्न है। पौराणिक साहित्य में जो स्थान विष्णु को प्राप्त है, दशम ग्रंथ के रचनाकार ने वह स्थान 'कालपुरुष' को दिया है। विपत्ति पड़ने पर देवता 'कालपुरुष' के पास जाते हैं और 'कालपुरुष' विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है। उदाहरणस्वरूप कृष्णावतार के प्रसंग में—

ब्रह्मा गयौ धीर निध जहाँ॥
काल पुरख इसथित थे तहाँ॥
कह्यो बिसन कह निकट बुलाई॥
किसन अवतार धरो तुम जाई॥
कालपुरख के बचन ते संतन हेत सहाइ॥
मथरा मंडल कै बिखे जनमु धर्यो हरिराइ॥
(द० ग्रं०, पृ० 254)

'चौबीस अवतार' के रचयिता गुरु गोविंद सिंह (दे०) का उद्देश्य इन अवतार-कथाओं के माध्यम से अपने युग की पीड़ित और दलित जनता में आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न करना था तथा उन्हें परिस्थितियों का सामना करने के लिए तैयार करना था। इसलिए ये अवतार-कथाएँ बहुत एकांगी हैं। अधिकांश कथाओं में युद्ध-प्रसंगों को विशेष महत्व दिया गया है। कृष्णावतार में कवि रचना के उद्देश्य के संबंध में अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त करता है—

दशम कथा भागंउत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाँहि प्रभु धरम जुद्ध को चाइ॥
(द० ग्रं०, पृ० 570)

चौरपंचाशिका *(सं० कृ०)* [रचना-काल—ग्यारहवीं शती]

'विक्रमांकदेवचरितम्' नामक महाकाव्य के प्रणेता का नाम संस्कृत-जगत् में सुविख्यात है। 'चौर-पंचाशिका' उनका गीति-काव्य है।

इसमें पचास पद्य हैं। इनमें बिल्हण ने एक राजकुमारी के साथ गुप्त प्रेम का वर्णन किया है। शृंगार रस से भरपूर ये पद्य अत्यंत हृदयावर्जक तथा मार्मिक हैं।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता *(हिं० कृ०)*

ब्रजभाषा के प्राचीनतम गद्य की झाँकी प्रस्तुत करने के कारण वार्ता-साहित्य का अपना महत्व है। महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि (दे० पुष्टिमार्ग) संप्रदाय में भक्तों की चरितावलियाँ गाने के कारण भी वार्ताओं का बहुत महत्व है। 'चौरासी वैंष्णवन की वार्ता' में वल्लभ के शिष्यों की कथाएँ संकलित हैं। इस वार्ता के रचयिता वल्लभ के पौत्र और विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ माने गए हैं। कुछ विद्वान् इस वार्ता को गोकुलनाथ के मुख से निःसृत प्रवचन मानकर बाद में हरिराय द्वारा संपादित मानते हैं। शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) जी ने प्रारंभ में तो इसे गोकुलनाथ-कृत ही माना था, पर बाद में चलकर उनकी यह धारणा हो गई थी कि इसे उनके किसी गुजराती शिष्य ने लिखा था। इधर हिंदी के कुछ अन्वेषकों की ऐसी मान्यता हो गई है कि संदिग्ध रचनाओं के बाहुल्य के कारण सारा वार्ता-साहित्य अप्रामाणिक है। कुछ भी हो, मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति से अवगत होने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में वार्ता साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय है।

चौलादेवी *(गु० कृ०)*

श्री कन्हैयालाल मुंशी (दे०) के उपरांत 'धूमकेतु' (गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी) (दे०) ने गुजरात के इतिहास पर आधारित अनेक उपन्यास लिखे हैं। इसमें 'चौलादेवी' इनकी उत्कृष्ट कृति है। इस उपन्यास का समय सोमनाथ पर महमूद गज़नवी के आक्रमण का समय है।

चौलादेवी एक सुप्रसिद्ध नर्तकी तथा गायिका थी जिसे तत्कालीन गुर्जर शासक भीमदेव ने पत्नी के रूप में अपनाया था। उपन्यास में सर्वत्र चौलादेवी का व्यक्तित्व छाया हुआ है। वह अपने गुणों तथा कूटनीतिज्ञता से सर्वत्र विजयिनी होती है एवं अपनी सपत्नी का प्रेम भी जीत लेती है। भीमदेव की तो वह प्रेरणादात्री है। उसके सबल व्यक्तित्व के समक्ष भीमदेव का चरित्र अत्यंत निर्बल लगता है।

इस चरित्र-प्रधान उपन्यास की संरचना वर्णनात्मक शैली में हुई है। 'धूमकेतु' ऐतिहासिक सीमाओं के प्रति अत्यधिक सजग-सचेत रहने वाले लेखक हैं। अतः उपन्यास का प्रभाव कुछ-कुछ ऐतिहासिक ग्रंथ जैसा प्रतीत होता है परंतु इससे इसका महत्व क्षीण नहीं होता। गुजराती ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

क० मा० मुंशी के 'जय सोमनाथ' में भी चौला अनिंद्य सुंदरी नर्तकी के रूप में चित्रित है किंतु वहाँ उसके चारित्रिक विकास के लिए इतना अवसर नहीं मिला और उपन्यास के अंत में उसका चरित्र कुछ-कुछ अगम-अबूझ-सा हो उठा है।

चौहान, शिवदानसिंह *(हिं० ले०)*

हिंदी की प्रगतिवादी धारा से प्रभावित होने वाले मार्क्सवादी समीक्षा के पक्षधरों में सर्वप्रथम नाम शिवदानसिंह चौहान का आता है। प्रेमचंद (दे०) के बाद प्रगतिशील पत्र 'हंस' (दे०) का संपादन इन्होंने सँभाला और अपने संपादन और निबंधों से प्रगतिशील विचारधारा को स्पष्ट किया। 'हंस' का प्रगति-अंक (सं० 1943) इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास था।

श्री चौहान का प्रगतिशील दृष्टिकोण स्पष्ट, स्वस्थ और संतुलित है। उनके साहित्यिक मूल्य पिटे-पिटाए, एकांगी और दुराग्रहपूर्ण नहीं हैं। उन्होंने कविता, कहानी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, समीक्षा आदि पर सामाजिक दृष्टि से विचार किया है। कॉडवेल को आदर्श मान उन्होंने साहित्य-सिद्धांतों का संबंध तत्कालीन सामाजिक विकास की स्थिति से जोड़ा है। उन्होंने पहली बार घोषणा की कि सामयिक साहित्य भी शाश्वत हो सकता है। वे समाजविरोधी, निरपेक्षतावादी, मनोवैज्ञानिक फ़ायडीय मान्यताओं को अस्वीकार करते हैं क्योंकि ऐसे साहित्य में सामाजिक अभिव्यक्ति न होकर व्यक्ति-मानस में पड़ी हुई अतिरिक्त कुंठाओं का उन्मोचन मात्र होता है।

प्रगतिशीलता के संबंध में शिवदानसिंह चौहान और रामविलास शर्मा (दे०) में जो बहस छिड़ी उसमें चौहान का दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ और संतुलित प्रतीत होता है। वह प्रगतिशील साहित्य को प्रोलेतेरियन या सोवियत साहित्य का पर्याय न मानकर उस साहित्य को प्रगतिशील मानते हैं जो पाठक को स्वस्थ प्रेरणा दे, उसे जीवन-संग्राम में आगे बढ़ने का बल दे, मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाए, मानव-जीवन की मार्मिक और सारगर्भित स्थितियों का चित्रण करे, जिसमें कला-सौंदर्य और गहराई हो। स्पष्ट है कि उनकी प्रगतिशीलता मानववाद की विशाल पृष्ठभूमि पर अधिष्ठित है। प्रगतिवाद (दे०) के समर्थक होकर भी वे उसकी सीमाओं से परिचित हैं और कुत्सित समाजशास्त्रियों को प्रगतिवाद की संकीर्ण सीमा के रूप में मानते हैं; कलावादियों के एकांगी दृष्टिकोण के साथ ही समाजवादियों की अधकचरी समझ का विरोध करते हैं।

श्री चौहान की आलोचता प्रमुखतः सैद्धांतिक ही है, व्यावहारिक आलोचना उन्होंने बहुत कम लिखी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक आलोचना में भी प्रायः उनकी दृष्टि संतुलित रही है। पंत (दे०) पर लिखे उनके निबंध में जहाँ उनकी उपलब्धियों का निर्देश है, वहाँ उनकी सीमाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। 'छायावादी कविता में असंतोष की भावना' नामक निबंध उनकी इतिहास-दृष्टि का परिचायक है। अभिव्यंजना-शैली के संबंध में उनका मत है कि हमारे सामाजिक संबंध कभी-कभी बहुत जटिल हो उठते हैं और उन जटिलताओं को अभिव्यक्त करने के लिए पुरानी शैली छोड़कर हमें अभिव्यक्ति के नये रूप गढ़ने पड़ते हैं।

आलोचनात्मक निबंधों के अतिरिक्त श्री चौहान ने इंटरव्यू-साहित्य की समृद्धि में भी योगदान किया है।

उनके प्रमुख ग्रंथ हैं—'प्रगतिवाद' (1946 ई०), 'साहित्य की परख' (1948 ई०), 'साहित्य की समस्याएँ' (1959 ई०), और 'साहित्यानुशीलन'। इनमें मार्क्सवादी आलोचना के सैद्धांतिक पक्ष को स्पष्ट करने के साथ-साथ हिंदी साहित्य को उसकी कसौटी पर यथासंभव संतुलित ढंग से परखने का प्रयत्न किया गया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि वे प्रगतिशील सौंदर्यशास्त्र को व्यापक स्तर पर स्वीकार कर सभी युगों के लिए मानदंड प्रस्तुत करते हैं। वे साहित्यिक गुटबाज़ी के विरोधी हैं। जहाँ तक उनकी शैली का संबंध है, उसमें गंभीरता है, विचार-प्रौढ़ता है, पर बात को घुमा-फिराकर लंबे-लंबे भारी वाक्यों में कहने की प्रवृत्ति से उनकी शैली कॉडवेल के समान बोझिल हो गई है।

चौहान, सुभद्राकुमारी *(हिं० ले०)* [जन्म—1904 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

इनका जन्म प्रयाग में हुआ। उच्च शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् नवलपुर के प्रसिद्ध वकील ठाकुर लक्ष्मणसिंह से इनका विवाह हुआ। इन्होंने गृह-भार सँभालते हुए भी राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय योग दिया।

'झाँसी की रानी' की लेखिका सुभद्राकुमारी चौहान मुख्यतः कवयित्री थीं। इनकी प्रारंभिक कविताएँ 'त्रिधारा' में माखनलाल चतुर्वेदी (दे०) और केशवप्रसाद पाठक की रचनाओं के साथ संकलित हैं। 'मुकुल' इनकी कविताओं का अन्य संग्रह है। इन्होंने कहानियों और निबंधों की रचना भी की है। इनकी कृतियों का मूल स्वर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक है। कुछ रचनाओं में कोमल व्यक्तिगत (पारिवारिक) अनुभवों की अभिव्यक्ति भी हुई है। इनका काव्य प्रवाह, प्रसादगुण और सरसता की त्रिवेणी है।

छंद *(हिं० पारि०)*

छंद अक्षर एवं वर्ण, गति-यति, लय (दे०)-क्रम, ध्वनि-प्रबंध, स्वराघात आदि के तंत्र से नियमित पद्य-रचना का नाम है। भारतीय काव्यशास्त्र में छंदःशास्त्र एवं पिंगल (दे०) तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र में 'मीटर' एवं 'प्रोसोडी' के अंतर्गत इसका विवेचन हुआ है। छंद मूलतः लय का मूर्त और साकार रूप है। लय अपने-आप में एक इंद्रिय-संवेद्य, किंतु अमूर्त तत्त्व है जो शब्द, स्वराघात आदि से युक्त छंद में मूर्त आकार ग्रहण कर लेती है। अतः राग और भाव (दे०) के अतिरेक और आवेग से स्वभावतः उच्छ्वसित लयबद्ध छंद काव्य-रचना के सभी अंतरंग और बहिरंग उपकरणों की विशृंखलता में सामंजस्य उत्पन्न करता है। छंद के अंगभूत तत्त्व हैं—पंक्ति, वर्ण एवं चरण; तथा विधायक तत्त्व हैं—अक्षर, गति, यति, लय-क्रम और स्वराघात।

भारतीय वाङ्मय में 'छंद' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। 'छद्' धातु से व्युत्पन्न 'छंद' शब्द का अर्थ है आवृत्त करना, जो स्पष्ट ही इसके लयाधार को रेखांकित करता है। भारतवर्ष में छंद को वेद के छह अंगों में एक माना गया है। भारतीय छंदःशास्त्र में उसके दो प्रकार माने गए हैं—मात्रिक और वर्णिक।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी छंद को मूलतः आवृत्तिमूलक माना गया है। इतालवी और स्पेनी शब्द 'वर्सो' तथा लेटिन 'वर्सस' का व्युत्पत्त्यर्थ भी आवृत्ति करना ही है। प्राचीन यूनानी-साहित्य में महाकाव्य (दे०) के लिए हेक्सामीटर तथा नाटक (दे०) के लिए आयंबिक ट्राइमीटर बहुत लोकप्रिय छंद थे। प्राचीन रोमी साहित्य हेक्सामीटर के अतिरिक्त मुख्यतः 'एलिजियाक' (शोक गीति) (दे०) के लिए पेंटामीटर बहुप्रचलित छंद था। अँग्रेज़ी छंद का मुख्य तत्त्व है स्वराघात। इसी के आधार और इस पर बलाबल के आधार पर अँग्रेज़ी कवियों ने अनेक छंदों की उद्भावना की। आधुनिक अँग्रेज़ी-काव्य में 'मुक्त' और 'अतुकांत' छंदों के आविष्कार से छंद की मूल प्रकल्पना ही बदल गई है।

छंदोंबुधि *(क० कृ०)*

इसके लेखक नागवर्मा प्रथम हैं जिनका समय 990 ई० माना गया है। इसका दूसरा नाम 'कादंबरी' है। यह कन्नड का सर्वप्रथम छंदःशास्त्रीय ग्रंथ है। कवि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना है कि शिव द्वारा पार्वती को उपदिष्ट छंदःशास्त्र का विकास भूलोक में पिंगल द्वारा हुआ जिसे सीखकर स्वयं कवि ने अपनी पत्नी को इसका बोध कराया। इससे पता चलता है कि कवि ने पिंगल का अनुगमन किया है। किंतु आनुपूर्वी तथा वृत्तों के क्रम में भी पिंगल तथा नागवर्मा में काफ़ी अंतर है। 'वृत्तरत्नाकर', 'श्रुतबोध' आदि ग्रंथों की शैली में कवि ने एक ही पद्य में लक्ष्य-लक्षण को समन्वित कर लिखा है। इसके छह आश्वास हैं। प्रथम, संज्ञाधिकार में प्रास-गण आदि की चर्चा है। अंत में कन्नड में असाधारण 'जाति' छंदों की चर्चा है। दूसरे में उक्ता से लेकर उत्कृति तक 26 छंदों का विवरण है। तीसरे में शेष समवृत्त, अर्धसमवृत्त तथा मात्रा-छंदों का विवेचन है। चौथे में मात्रागण-छंदों का विवेचन है। पाँचवें में कन्नड के मात्रागण-छंदों का विवेचन है और छठे में षट्प्रत्ययों का विवरण है। प्रत्येक आश्वास के अंत में गद्य में पुष्पिका है। कन्नड के छंदस्वरूप तथा उसके प्रभेदों को समझने में यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है।

छंदोरचना *(म० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

इसके रचनाकार हैं माधवराव पटवर्धन। इसमें कुल आठ अध्याय हैं। अंतिम अध्याय में छंदःशास्त्र का इतिहास निरूपित है। पिंगल के छंदःसूत्रों से आरंभ कर रचनाकार के समसामयिक लेखकों तक की कृतियों का इसमें संक्षिप्त परिचय आ गया है। छंदःशास्त्र के 1500 वर्षों से भी अधिक प्राचीन इतिहास और उसके प्रमुख ग्रंथों का गंभीर अध्ययन करके यह ग्रंथ लिखा गया है। लेखक की मान्यता में पद्य की परिभाषा है—'लयबद्ध अक्षर-रचना'। इसी के त्रिविध रूप हैं—'वृत्त', 'जाति' तथा 'छंद'। पद्य के 'पद्मावर्तनी', 'अग्न्यावर्तनी', भृंगावर्तनी' और 'हरावर्तनी' इन चार भेदों की इसमें कल्पना की गई है। 'वृत्त' प्रकरण में इनका वर्गीकरण प्राचीन पद्धति—अक्षर-संख्यानुसारी के अनुसार नहीं है वरन् अभिनव पद्धति से किया गया है। वृत्तों के नामकरण में प्रचलित असंगतियों और भ्रमों का निवारण किया गया है। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का गंभीर मंथन करके प्रायः सभी वृत्तों के उदाहरण खोज निकाले गए हैं। जतिविषयक तथा छंदोविषयक प्रकरण भी लेखक के गंभीर अनुसंधान और मौलिक चिंतन के परिचायक हैं। इनका निष्कर्ष है कि कोई भी पद्य-रचना लयमुक्त नहीं हो सकती, लय-मुक्त पद्ध-रचना वास्तव में गद्य को विकृत करने की चेष्टा सिद्ध होती है।

छंदोलय *(गु० कृ०)*

उमाशंकर जोशी (दे०) तथा सुंदरम् (दे०) की पीढ़ी के बाद जो नई कवि-प्रतिभाएँ उभरी हैं उनमें निरंजन भगत (दे०) तथा राजेंद्र शाह (दे०) का नाम सर्वोपरि है। 'छंदोलय' निरंजन की कविताओं का प्रतिनिधि संग्रह है। निरंजन में जो नैसर्गिक कवि-प्रतिभा है, 'छंदोलय' में उसकी सक्षम अभिव्यक्ति हुई है। इसके अनेक गीतों और छंदोबद्ध कविताओं में कवि की विरह-वेदना की तीव्र अनुभूति उपयुक्त भावप्रतीकों द्वारा काव्यात्मक ढंग से हुई है। इसके निरूपण के लिए कवि ने प्राकृतिक परिवेश को पसंद किया है। उसके भाव-निरूपण में कोमलता है। कवि की छंद तथा लय-संबंधी सूझ असाधारण है। नादसौंदर्य, माधुर्य, चित्रात्मकता तथा भाव-समृद्धि इसकी रचनाओं की विशेषता है।

समग्रतया इस संग्रह की कविताओं में व्यापकता है। भावों की गहनता तथा निरूपण की नवीनता सहृदय भावक को असाधारण रूप से स्पर्श कर रचयिता को साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

छज्जू, भाई *(पं० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती]

लाहौर-निवासी एक भक्त जो भाटिया जाति के स्वर्णकार थे। ये जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में विद्यमान थे। इनका देहावसान 1638 ई० में हुआ। जहाँ इनकी दुकान थी वहाँ बाद में महाराजा रणजीतसिंह ने एक भव्य मंदिर स्मारक के रूप में बनवा दिया था। उसके निकट ही संगमरमर की बनी 'भगत छज्जू' की समाधि है। यह स्थान भक्तों और सत्संग-प्रेमियों में 'छज्जू का चौबारा' नाम से विख्यात है जिसके संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—'जो सुख छज्जू दे चौबारे, सो न बलख न बुखारे।'

छड़ा *(बँ० प्र०)*

'छड़ा' लोक-परंपरागत तुकबंदी है। यह अधिकतर गेय न होकर अंत्यानुप्रासयुक्त होती है—इसीलिए एक विशेष लहजे में इसकी आवृत्ति होती है। लोक-साहित्य के अंतर्गत पांचाली (दे०), 'कबिगान' (दे०) तथा 'तर्जा' (दे०) में छड़ा-शैली में वक्तव्य या उत्तर-प्रत्युत्तर की परंपरा बंगाल में विशेष दिखाई पड़ती है। कवि-लड़ाई में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका उपयोग शुरू हो जाने पर छड़ा का लक्ष्य मनोरंजन के साथ-साथ बुद्धिचातुर्य का प्रदर्शन भी माना जाने लगा। इस प्रकार की छड़ा-रचना में ग्राम्यता-दोष दिखाई पड़ता है।

बच्चों का मन बहलाने के लिए भी बँगला में प्राचीन काल से छड़ा-रचना की प्रवृत्ति रही है। शिशु-साहित्य में सहज-अकृत्रिम हृदयानुभूति की अनाडंबर अभिव्यक्ति होने के कारण बँगला-छड़ा की अद्‌भुत अनुभूति अत्यंत हृदयग्राही है। बँगला में रवींद्रनाथ (दे०), सुकुमार राय (दे०), अन्नदाशंकर राय (दे०) जैसे महान् व्यक्तियों ने साहित्यिक छड़ा की रचना की है जिसमें भाषा, छंद की शुद्धता के साथ-साथ ग्राम्यता-दोष भी नहीं है, यद्यपि मूलभूत दृष्टिकोण इन छड़ाओं का बच्चों का मनोरंजन करना ही है। छड़ा के संबंध में रवींद्रनाथ ने कहा है कि हमारे अलंकार-शास्त्र में नौ रस हैं, किंतु बच्चों के मन बहलाने वाला छड़ा का रस इसके अंतर्गत नहीं है। छड़ा में एक आदि सुकुमारता विद्यमान है। उस माधुर्य को बाल्यरस कहा जा सकता है। वह तीव्र नहीं, प्रगाढ़ नहीं, वह अत्यंत स्निग्ध, सरस एवं युक्तिसंगतिहीन होता है।

छप्पय *(हिं० पारि०)*

छप्पय छह चरणों का छंद है। इसके पहले चार चरणों में रोला (दे०) छंद और अंतिम दो चरणों में उल्लाला छंद रहता है। 'रोला' छंद के प्रत्येक चरण में ग्यारह और तेरह के विराम से चौबीस मात्राएँ होती हैं, और उल्लाला छंद के पहले और तीसरे चरणों में पंद्रह मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरणों में तेरह मात्राएँ होती हैं। उदाहरण :

नीलांबर परिधान, हरित पट पर सुंदर है,
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं,
बंदी जन खग वृंद शेष फन सिंहासन है॥ (रोला)
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥
(उल्लाला)

छप्पय छंत *(पं० पारि०)*

यह एक मिश्रित छंद है। इसके छह चरण होते हैं। पहले चार चरणों में 11, 13 के विभाग से 24-24 मात्राएँ होती हैं और अंतिम दो चरणों में दोहे के समान 13, 11 की यति पर 24-24 मात्राएँ होती हैं। कई बार अंतिम चरण 30 या 26 मात्राओं के भी होते हैं। तब इनमें 15-15 या 13-13 पर यति होती है। उदाहरण :

रही वासते घत्त, समें न इक न मन्नीं।
फड़ फड़ रही धरीक, समे खिसकाई कन्नीं।
किवें ना सकी रोक, अटकजो पाई भन्नीं।
त्रिखे आपणे वेग मिआ टप बग्ने-बन्नीं।
हो अजे संभाल इस समें नूं, कर सफल उडेंदा
जांवदा।
इह ठहि रन जाच ना जांणदा लंघागिआ ना मुड़के
आंवदा।

छबि *(अ० पारि०)*

पयार के पश्चात् छबि असमीया का प्राचीनतम छंद है। इसमें 8, 8, 10 वर्णों पर यति होती है और दो चरण होते हैं। उदाहरण :

सातकांड रामायण, पदवंधे निबंधिलो
लंबा परिहरि सारोधृत।
महामाणिकर बोले, काव्य रस किछो दिलों
दुग्धक मथिले जेन घृत।

छ माण आठ गुंठ *(उ० कृ०)*

'उत्कल-साहित्य' मासिक पत्रिका में 1898 ई० में छद्म नाम से प्रकाशित। 1901 ई० में पुस्तक रूप में प्रकाशित।

उड़िया-उपन्यास साहित्य के पिता फकीर मोहन सेनापति (दे०) का 'छ माण आठ गुंठ' उपन्यास श्रेणी-संघर्ष की सूचना देता है। एक और सर्वहारा वर्ग, दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग; तथा एक ओर परंपरा-युक्त प्राचीन सभ्यता, दूसरी ओर प्रगतिशील आधुनिक सभ्यता—इनकी खींचतान में उपन्यास में उत्कंठा की सृष्टि होती है। उपन्यास का नायक रामचंद्र मंगराज (दे०) भूमिलोभी अत्याचारी प्रजापीड़क ज़मींदार है। भागिआ एवं सारिआ जैसे दो निरीह प्राणी मंगराज के लोभ के किस प्रकार शिकार बनते हैं एवं उनकी अत्यल्प भूमि कैसे जमींदार की विराट् भूसंपत्ति का अंग बन जाती है, यही इसमें चित्रित है।

ज़मीन पल्ली-समाज के जीवन-संरक्षण का एकमात्र अवलंब है। धनी-वर्ग द्वारा इसका अपहरण जीवित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु है। उन्नीसवीं शती के प्रथम चालीस वर्षों में जातीय जीवन की गंभीर समस्या के रूप में यह समस्या प्रकट हुई थी। उसी की पृष्ठभूमि पर यह उपन्यास खड़ा है। उड़िया आभिजात्य श्रेणी पर मरहट्ठों ने कुठारावात किया था। मरहट्ठों के बाद उड़िया सामाजिक जीवन को और भी क्षत-विक्षत करने के लिए जिस बंगीय नवागत ज़मींदार वर्ग का जन्म हुआ, उन्होंने भी उड़िया गण-जीवन को चूस-चूस कर राख के ढेर में बदल दिया। बंगीय ज़मींदारों के प्रभाव में आकर मंगराज जैसे लोलुप ज़मींदारों की गोष्ठी भी दिखाई पड़ी। यह उपन्यास मंगराजी-संप्रदाय के विरुद्ध एक सुदृढ़ क्रांति का संकेत करता है।

सारिआ, भागिआ जैसे सरल चरित्र शोषित जनता के प्रतीक हैं। जीवन के लिए उन्हें मिट्टी से लड़ना पड़ता है, दूसरों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है और अंत में बनना पड़ता है धनिक वर्ग के लोभ का शिकार। मंगराजी सभ्यता की छद्म सहानुभूति परायी विवशता के प्रति सहानुभूति नहीं, वरन् पराया धन लूटने की विचित्र चालबाज़ी है।

सरल ग्रामीण जनता का शहरी सभ्यता से कोई संबंध नहीं है। जब सर्वहारा बनकर वे पुलिस या क़ानून का आश्रय लेते हैं, तब विलासमय, आलस्यपूर्ण शहरी जीवन के व्यापक एवं तीव्र शोषण-चक्र में वे पिसते जाते हैं, उनकी आवाज़ न तो 'स्वामियों' के पास पहुँचती है और न स्वामियों की सुनने की ऐसी कोई इच्छा ही है। यह 'छमाण आठ गुंठ' का सशक्त आत्म-दर्शन है।

इस उपन्यास का शिल्प-सौध कला-गर्भित सृष्टि-सौंदर्य से विभूषित है। संतानहीना जननी के वात्सल्य-बुभुक्षित हृदय को केंद्रित कर चंपा के द्वारा मंगराज अपनी शठता का जाल बिछा देता है। विषयवस्तु का समस्त वैचित्र्य इस धूर्तता पर आधारित है। कथा की सुश्रृंखलित योजना मिलती है। अवांतर एवं प्रासंगिक कथाएँ मूल कल्पना-विकास के अविच्छिन्न अंग हैं।

सेनापति भाषा-संस्कारक हैं। निरक्षर जनता की भाषा से सेनापति जी ने अपने साहित्य में जिस महत्वपूर्ण कार्य का संपादन किया है, वह सदा एक साहित्यिक विस्मय के रूप में विवेचित होगा। नूतन-पुरातन, भव्य-ग्राम्य, साधु-असाधु के समन्वय से उन्होंने सृष्टि की एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जो जाति की चिरकालिक प्रकृत भाषा बन गई, तथा जिसमें जातीय प्राण-रस स्पंदित एवं विकसित है। सेनापति-साहित्य उड़िया जीवन-स्पंदन का मूक प्रतीक है—शोषण-उत्पीड़न का मौन साक्षी है। वे सच्चे अर्थों में उड़िया-साहित्य के सर्वप्रथम 'प्रोलिटेरियाट' लेखक थे।

नैतिक आदर्श, विषयवस्तु का विस्तृत चित्रण, वर्णनों की प्रचुरता, उपन्यासकार की व्याख्या आदि के कारण कहीं-कहीं उपन्यास बोझिल हो गया है किंतु घटनाओं की साज-सज्जा हास्यरंजित व्यंग्य-व्यंजना, भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति, शैली की मार्मिकता औपन्यासिक कला की चरम सीमा का स्पर्श कर सकी है।

छलना *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'अजातशत्रु' (दे०) में अजातशत्रु (दे०) की माँ तथा मगध की राजरानी है। अपने को बवंडर घोषित करने वाली; प्रतिहिंसा, प्रमाद और महत्वाकांक्षा से परिपूर्ण यह कुटिल तथा क्रूर नारी मगध परिवार की अशांति का मूल कारण है। स्त्री-हृदय की सहज कोमल भावनाओं—यथा कोमलता, दया, आदि की उपेक्षा करती हुई यह पुरुषार्थ का ढोंग करती है और परिणामतः पति-विद्रोहिणी होकर अपने पुत्र को भी खो बैठती है तथा अनिष्ट का वरण करती है। इस घोर असफलता के बाद छलना की आँखें खुलती हैं और यह वासवी की कृपा से सद्बुद्धि प्राप्त कर अंततः अपने खोए हुए मातृत्व तथा पत्नीत्व को पुनः प्राप्त करने में सफल हो जाती है। समग्रतः छलना प्रसाद की जीवंत चरित्र-सृष्टि है।

छायावाद *(हिं० प्र०)*

1918 ई० से 1938 ई० तक का कालखंड हिंदी-साहित्य के इतिहास में छायावाद-युग के नाम से अभिहित किया जाता है। छायावाद नाम संभवतः उपहास करने के लिए रखा गया था परंतु तत्संबंधी काव्य की सफलता और छायावादी कवियों एवं आलोचकों के गंभीर चिंतन से उसमें अर्थगौरव का समावेश हो गया है। छायावाद का अभिप्राय उस काव्य-प्रवृत्ति से है जो द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध उत्पन्न हुई थी और वैयक्तिकता, अंतर्मुखता, परिष्कृत सौंदर्य-चेतना, कलात्मक अभिव्यंजना आदि जिसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। डा० नगेन्द्र (दे०) के शब्दों में स्थल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का मूल आधार है। पंत (दे०), प्रसाद (दे०), निराला (दे०) और महादेवी (दे०) प्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। 'पल्लव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०), 'गुंजन', 'लहर' (दे०), 'कामायनी' (दे०), 'परिमल', 'तुलसीदास' (दे०), 'यामा' आदि छायावाद की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

छायावादी काव्य के प्रमुख आलंबन प्रकृति, नारी, परोक्ष सत्ता और राष्ट्र हैं। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से छायावादी काव्य संस्कृत के प्राचीन और अँग्रेज़ी के स्वच्छंदतावादी काव्य के समकक्ष है। इस काव्य की प्रकृति जड़ न होकर चेतन है और मात्र उद्दीपन न होकर रागात्मक वृत्ति की आलंबन है। इस काव्य में नारी-सौंदर्य के ऐसे निर्मल चित्र मिलते हैं जिनमें रीतिकालीन मांसलता की गंध भी नहीं है। अज्ञात प्रियतम को लक्ष्य कर किया गया प्रणय-निवेदन भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी अनुभूतियों से प्रभावित है। राष्ट्रीय कविताओं में प्रायः देश के प्राकृतिक सौंदर्य और अतीत के सांस्कृतिक गौरव के कोमल-उदात्त चित्र अंकित किए गए हैं।

इस काव्य की कलात्मक समृद्धि का संस्तवन प्रायः सभी प्रतिष्ठित आलोचकों ने मुक्तकंठ से किया है। इसमें आधुनिक काल के सर्वोत्तम प्रगीत उपलब्ध होते हैं। प्रगीतों की पदावली वक्र, चित्रमय, लाक्षणिक और कोमल-कांत है। मानवीकरण (दे०), विशेषण-विपर्यय (दे०) आदि पाश्चात्य और समासोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि भारतीय अलंकारों का प्रचुर प्रयोग उसमें हुआ है। छंद-विधान में पंत और निराला ने अनेक प्रयोग किए हैं। निष्कर्षतः छायावाद-युग हिंदी काव्य की चरम समृद्धि और परिष्कृति का युग है।

छे घर *(पं० क्रु०)*

यह संतसिंह सेखों (दे०) का प्रथम एकांकी-संग्रह है और अपनी रचना-प्रौढ़ता के कारण महत्वपूर्ण है। इसमें लेखक का दृष्टिकोण मार्क्सवादी है तथा पंजाब के ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं पर लेखक ने दृष्टि केंद्रित की है। 'महातमा' एकांकी में गुरु नानक के जीवन से संबंधित उस कथा का आश्रय लिया गया है जिसमें उन्होंने धनी मलिक भागो के मालपूओं में से रक्त निचोड़ कर उन्हें खाने से इनकार कर दिया था और एक मज़दूर की सूखी रोटी से दूध निचोड़ कर दिखाते हुए उस ग्रहण किया था। 'पाँच ग्रामीण' पंजाब के घरेलू जीवन की निरीह अवस्था को बड़ी सहानुभूति से अभिव्यक्त करते हैं। उद्योगपति अनैतिक साधनों के द्वारा किस प्रकार मज़दूर-एकता को नष्ट करते हैं—यह 'हड़ताल' नामक अन्य एकांकी में प्रदर्शित किया गया है। 'भावी' एकांकी में 'दैव-प्रबलता'-संबंधी मध्ययुगीन अवधारणा को राजपूत घरानों के यथार्थ जीवन में रूपायित होते दिखाया गया है। इनके अतिरिक्त 'पुत्र', 'बाबा बोहल' जैसे एकांकी भी इसी संग्रह में हैं।

छेदसूत्र *(प्रा० क्रु०)*

जैन-आगमों (दे०) में गिने जाने वाले इन ग्रंथों की संख्या छह तो निश्चित है किंतु इनका क्रम और अंतर्भूत ग्रंथों के विषय में कुछ मतभेद है। इनमें कुछ ग्रंथ अत्यंत प्राचीन हैं और कुछ बाद में जोड़े गए हैं। बौद्धों के 'विनय-पिटक' (दे०) के समान इनमें जैनों का समस्त आचार-शास्त्र संकलित है और स्थान-स्थान पर पौराणिक कथाएँ भी सन्निविष्ट कर ली गई हैं। (1) पहला छेदसूत्र 'निसीह' (निशीथ) है। जिस प्रकार निशीथ (अर्धरात्रि) में सब कुछ अंधकारमय होता है उसी प्रकार गोपनीय तत्त्वों का इसमें संकलन किया गया है। यह ग्रंथ 20 उद्देशकों में विभक्त है और इसमें निषिद्ध कर्मों का प्रकथन किया गया है। (2) 'महानिसीह'—यह ग्रंथ 'निसीह' जैसा विशाल तथा महत्वपूर्ण नहीं है। संभवतः मूलग्रंथ लुप्त हो गया है। कुछ लोग इसे छठा छेदसूत्र मानते हैं। (3) वावहार (व्यवहार), (4) आयार दसाओ—जिसे दशश्रुत स्कंध या केवल दसा भी कहा जाता है, और (5) कप्प (कल्प या बृहत्-कल्प) ये तीन ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और 'दशाकप्प-वावहार' इस एक नाम से ही जाने जाते हैं। 'आयार दसाओ' के 10 अध्याय भद्रबाहु (दे०)-लिखित माने जाते हैं और उसका आठवाँ अध्याय 'कल्पसूत्र' तो निश्चित रूप से भद्रबाहु-लिखित माना जाता है। इस कल्पसूत्र के तीन खंड हैं—प्रथम खंड में महावीर स्वामी का जीवन-वृत्त है; द्वितीय में गणों, शाखाओं और गणधरों का प्रकथन किया गया है। कल्पसूत्र का तीसरा भाग 'समाचारी' नाम से प्रसिद्ध है और इसमें जैन महात्माओं द्वारा परिपालनीय नियम-विधि का विवेचन किया गया है। इसे 'पज्जोसणा-कप्प' (पर्यूषणकल्प) भी कहा जाता है। यह पूरा कल्प-सूत्र भाग ही 'पज्जोसणाकप्प' नाम से अभिहित किया जाता है; किंतु वर्षाकालीन नियम-विधि का निरूपण इसी अंतिम कल्प में है और यही व्रत के दिनों में सुनाया जाता है। कहा जाता है कि कल्पसूत्रों को देवर्द्धि ने आगमों में स्थान दिया था। पाँचवाँ 'छेदसूत्र' 'बृहत्कल्पसूत्र' है। संन्यासियों-संन्यासिनियों की आचार-विधि का यही प्रधान कल्प है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें दंडनीय अपराधों का उल्लेख है और दंड-विधान 'वावहार' नामक तीसरे छेदसूत्र में किया गया है। (6) छठा छेदसूत्र 'पंचकप्प' अब उपलब्ध नहीं होता। इसके स्थान पर जिनभद्र का 'जीयकप्प' माना जाता है। यह व्यक्तिगत नियमाति क्रमों पर पद्यबद्ध रचना है। कुछ लोग 'पिंड-निज्जुक्ति' और 'ओहा निज्जुक्ति' को भी छठे छेदसूत्र के रूप में स्वीकार करते हैं।

छोट बहुठाकुरानी *(बँ० पा०)*

बिमल मित्र (दे०) रचित 'साहेब बिबि गोलाम' (दे०) की छोटी बहूरानी का जीवन-मथित अश्रुसंगीत पाठक की हृदयतंत्री में सहज ही समवेदना का हाहाकार प्रस्फुटित करता है। स्वामी के प्रति उसके हृदय का प्रेम-पात्र एकदम भरा है, परंतु चरम अवहेलना के कारण यह नारी केवल वेदनादग्ध ही नहीं हुई है, गहरे मनस्तत्व-सम्मत परिणति-पथ की ओर भी बढ़ गई है। अपमानिता, वंचिता इस हतभागिनी को स्वामी को अपने वश में करने के लिए गणिकावृत्ति के अनुकरण के बीच से गुज़रते हुए मद्यपायिनी बनना पड़ा है। इस आत्महनन के द्वारा भी उसको स्वामी-प्राप्ति नहीं हुई वरन् गहरी निराशा और उद्भ्रांति ने उसके मन को रिक्तता की अंतिम सीमा तक खींच डाला है। वंचिता रमणी के अस्तोन्मुख प्रेम की दीप्ति ने भूत-नाथ को सचकित एवं अभिभूत किया है एवं उसी के आश्रय में छोटी बहूरानी का मनोविहंग जब परम निर्भरशील आश्रय मिलने की खुशी में खुश होने वाला है तब सारा वातावरण रक्त-रंजित हो उठता है—छोटी बहूरानी हमेशा के लिए खो जाती है। कलकत्ते के तत्कालीन सामाजिक जीवन की पटभूमिका पर चिरकाल की वंचिता नारी का चित्र अत्यंत वेदनामय है।

छोटराय, गोपाळ *(उ० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जगतसिंहपुर, कटक, इनका जन्म-स्थान है। कटक से इन्होंने मैट्रिक किया था। संप्रति एकांकी निर्देशक के रूप में आकाशवाणी, कटक में कार्य कर रहे हैं। अभी तक इनके 15 नाटक प्रकाशित हो चुके हैं।

गोपाळ छोटराय संवेदनशील एवं सजग नाटक-कार हैं। इनके मौलिक एवं रूपांतरित नाटक सार्थक शिल्प-गौरव से मंडित हैं। कथासंभार, चरित्र-चित्रण, गत्यात्मकता, आवेग की योजना, कौतूहल-सृष्टि, सशक्त संवाद, कलात्मक परिवेश, शिष्ट किंतु उच्छ्वसित हास्य, भाषा-सौष्ठव आदि की दृष्टि से ये नाटक बहुत सफल हैं। नाट-कीय कला के प्रति अत्यंत सचेतन होने के कारण व्याव-सायिक दृष्टि से आवश्यक चटपटे संवाद और सस्ते हास्य आदि को इन्होंने अपने नाटकों में स्थान नहीं दिया है। 'फेरिआ', 'परकलम', 'नष्ट उर्वशी', 'शंखा सिंदूर' 'भरसा' (दे०) आदि मौलिक नाटक हैं, और 'झंझा', 'अमड़ाबाट', 'मलाजन्ह', 'प्रतिभा' उपन्यासों के रूपांतर हैं। छोटराय ने कई एकांकियों की रचना भी की है। प्रथम एकांकी 'सहधर्मिणी' ने ही उन्हें सफल एकांकीकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। रेडियो-रूपक लिखने वालों में भी छोटराय प्रमुख हैं।

जंगनामा-काव्य *(पं० प्र०)*

यह काव्य हिंदी के 'वीरगाथा-काल' की भाँति युद्ध-काव्य का ही एक रूप है। 'जंगनामा' फ़ारसी का शब्द है जिसका अर्थ है 'युद्ध-वृत्तांत'। पंजाबी-साहित्य में इस शब्द का प्रचलन उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में दिखाई देता है जब शाह मुहम्मद ने सिखों और अँग्रेज़ों के प्रथम ऐतिहासिक युद्ध का वृत्तांत पद्यबद्ध किया। इससे पूर्व पंजाबी में युद्ध-काव्यों के लिए अधिकांशतः 'वार' (दे०) शब्द का प्रयोग मिलता है। पंजाबी-साहित्य के इतिहासों में कई कृतियाँ 'वार' और 'जंगनामा' दोनों के अंतर्गत उल्लिखित हैं किंतु 'वार-काव्य' (दे०) का क्षेत्र 'जंगनामा-काव्य' की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। उसमें युद्ध-शौर्य के अतिरिक्त दान-दया, धर्म-वीरता और यश-वर्णन भी हो सकता है जबकि 'जंगनामा-काव्य' केवल युद्ध-कथा-वर्णन तक ही सीमित रहता है।

पंजाबी में 'जंगनामा-काव्य' लिखने की परंपरा प्रमुख रूप से सिखों और अँग्रेज़ों की पहली लड़ाई के पश्चात् ही शुरू हुई। इस युद्ध-वृत्तांत को अनेक कवियों ने जंगनामे के रूप में पद्यबद्ध किया है। बाद में सिखों और अँग्रेज़ों के दूसरे युद्ध तथा 1857 ई० के स्वतंत्रता-संग्राम को प्रतिपाद्य बना कर भी कई जंगनामे लिखे गए। इन जंगनामों के ही अनुकरण पर पूर्ववर्ती और परवर्ती कई ऐसे वारकाव्य भी 'जंगनामा' के रूप में संकलित-संपादित हुए हैं जिनका प्रतिपाद्य कोई न कोई युद्ध है। कुछ युद्ध-वृत्तांतों को विजय-गाथा के रूप में चित्रित करते हुए 'फ़तह-नामा' के नाम से भी प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग की कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ इस प्रकार हैं—'जंगनामा भंगाणी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वार गुरु गोविंदसिंह), 'जंगनामा श्री गुरु गोविंदसिंह' (अणीराय), 'जंगनामा सिंघां ते फिरंगियां दा' (दे०) (शाह मुहम्मद और भटक), 'फतहनामा गुरु खालसा जी का' (गणेश), 'जंगनामा लाहौर' (कान्हसिंह बग्गा), 'जंगनामा दिल्ली' (खजानसिंह) आदि ।

जंगनामा सिंघां ते फिरंगियां दा *(पं० कृ०)*

शाह मुहम्मद (दे०)-कृत यह युद्ध-काव्य पंजाबी-साहित्य में 'किस्सा शाह मुहम्मद' के नाम से भी विख्यात है । इसमें 1845-46 ई० में सिखों और अँग्रेज़ों के मध्य सतलुज तट पर लड़े गए ऐतिहासिक युद्ध का रोमांचकारी वर्णन है । 1839 ई० में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् लाहौर के खालसा-दरबार को हथियाने के लिए विभिन्न राजवंशियों, सरदारों और राज्याधिकारियों ने एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचे जिससे कंपनी-अधिकारियों को पंजाब में अपने पैर जमाने का अवसर मिल गया । कलह-ग्रस्त खालसा-राज्य को हस्तगत करने के लिए अँग्रेज़ों ने लुधियाना और फ़िरोज़पुर में सेना एकत्र करके लाहौर की ओर बढ़ने का संकल्प किया जिसका सिखों ने डटकर विरोध किया । किंतु वे विफल रहे । पंजाब का पतन हुआ और लाहौर-दुर्ग पर अँग्रेज़ी झंडा फहराने लगा । कवि शाह मुहम्मद इन सभी परिस्थितियों और घटनाओं के प्रत्यक्ष-दर्शी थे । पंजाब के पतन से विक्षुब्ध उनके अंतरतम की वेदना ही प्रस्तुत रचना में व्यक्त हुई है ।

शाह मुहम्मद-कृत यह जंगनामा इतिवृत्त-प्रधान है जिसमें घटना-प्रवाह त्वरित गति से आगे बढ़ता है । बीच-बीच में अपने समय की सामाजिक अवस्था, पंजाबियों की पारस्परिक फूट, युद्धजन्य विनाश एवं विदेशी शासन की विवशता का चित्रण भी कवि की लेखनी अनायास ही करती गई है । चारित्रिक वर्णन में कवि ने यथाशक्ति तटस्थ भाव ग्रहण किया है । उसकी भाषा सरल और ठेठ पंजाबी है तथा उसमें ओजगुण की अपेक्षा प्रसादत्व की प्रधानता है । रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के स्वाभाविक समावेश से इस रचना का शिल्प निखर आया है । प्रचलित शब्दावली का प्रयोग कवि ने निस्संकोच किया है । ऐतिहासिक साक्ष्य की दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है ।

जंगम *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1953 ई०]

तीन खंडों में संपूर्ण बनफूल (दे०) का यह उपन्यास लेखक की उपन्यास-सृष्टि का सार्थकतम निदर्शन है । इसमें आधुनिक अस्थिरचित्त, बहुधा विभक्त समाज का एक पूर्णांग चित्र उपस्थित करने का सफल प्रयास किया गया है । राजनीति, साहित्य, गाँव, वेश्यालय, ज़मींदार का महल, शहर आदि विभिन्न परिवेशों एवं उनके साथ संयुक्त विभिन्न मनुष्यों एवं घटनाओं के विस्तार में मानव-जीवन का एक विशाल महाकाव्य रचा गया है। इस विस्तार में कहीं कोई स्पष्ट मतवाद प्रकट नहीं हुआ है । लक्ष्यहीन, आश्रयहीन, नीति या अनीति से परे आदर्शहीन अस्थिर आधुनिक जीवन को प्रकट करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है । आधुनिक जीवन की यह अस्थिरता-अशांति नायक शंकर के मस्तिष्क में प्रतिबिंबित है । विचित्र चरित्रों एवं घटना-संकुलता के अंकन के द्वारा एक अस्पष्ट अनिर्देश्य भावावेग की सृष्टि हुई है जिसके केंद्र में शंकर का चरित्र अवदमित यौन-कामना, साहित्यिक प्रतिभा, चारित्रिक स्वातंत्र्य एवं जन-कल्याण की प्रेरणा को लेकर उपस्थित हुआ है ।

चरित्रों की सृष्टि में लेखक ने विस्मयजनक शक्ति का परिचय दिया है । प्रत्येक चरित्र अपनी स्वल्प परिधि में सजीव है । लगता है जीवन के इस विशाल रंगमंच पर कितने नट-नटी मात्र जीवन-प्रेरणा के उच्छ्वास से असंपूर्ण नाटकों के दृश्यों का अभिनय कर रहे हैं । इन विभिन्न दृश्यों में कोई एकसूत्रता नहीं, कोई सुनिर्दिष्ट लक्ष्य नहीं; परंतु इनका आकर्षण तीव्र है । इतने जटिल घटना-पुंज एवं विराट कर्मचांचल्य की अभिव्यक्ति में लेखक की कल्पना-कुशलता का बहुत ही सुंदर परिचय मिलता है ।

जंगम-कथा *(ते० प्र०)*

इस गेय रूप में कथाकथन की एक विशेष प्रक्रिया है । इसमें गद्य एवं पद्य दोनों का सम्मिश्रण होता है किंतु इसके पद्यभाग में मुख्य रूप से 'रगड़' नामक तेलुगु छंद का प्रयोग किया जाता है । उन्नीसवीं शती से पहले इसके अस्तित्व के प्रमाण नहीं मिलते । इसमें प्रायः किसी एक पौराणिक कथा का गायन किया जाता है ।

जंत्रारूढ़ *(उ० कृ०)*

'जंत्रारूढ़' उपन्यास आधुनिक उड़िया-उपन्यास-साहित्य को चंद्रशेखर रथ (दे०) की एक महत्वपूर्ण देन है । आधुनिक जटिल मानव-निरपेक्ष यांत्रिक सभ्यता तथा सरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-केंद्रित पारंपरिक जीवन-दर्शन में मूलभूत रूप से जीवन-मूल्यों का जो पार्थक्य है, लेखक ने उस पर प्रकाश डाला है। तकनीकी सभ्यता के प्रसार के साथ मानव-केंद्रित जीवन-चेतना बड़ी द्रुत गति से मिटती जा रही है और इसका व्यापक प्रभाव जीवन पर दिखाई पड़ रहा है। मानव की शिशु-सरल आँखें चौंधिया गई हैं, उसकी भोली आत्मा शून्यता से भर उठी है।

स्वतंत्रता के बाद सारी पूर्व आशाओं पर तुषार-पात होना, गणतंत्र के नाम पर मुट्ठी भर लोगों द्वारा निरीह जनता के शोषण आदि का संकेत भी मिलता है। सनातनदास के जीवन के माध्यम से मानो उपन्यासकार सनातन जीवन-चेतना, सनातन जीवन-मूल्य को समझ लेना चाहता है। भाषा-शैली के उड़ियापन ने इस उपन्यास को निखार दिया है एवं ग्रामीण जीवन को सजीव व प्राणस्पर्शी बना दिया है।

जंबूसामि चरिउ *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1019 ई०]

'जंबूसामि चरिउ' वीर (दे०) कवि द्वारा रचित महत्वपूर्ण अपभ्रंश प्रबंध-काव्य है। इसमें जैन संप्रदाय के अंतिम केवली जंबू स्वामी के जीवन-चरित्र का ग्यारह संधियों में वर्णन किया गया है। इसकी रचना एक वर्ष में हुई थी।

इस कृति में जंबू स्वामी के पूर्वभवों तथा उनके विवाहों और युद्धों के वर्णन हैं। जंबू स्वामी महर्षि सुधर्मा से अपने पूर्वजन्मों का वृत्तांत सुनकर विरक्त हो घर छोड़ना चाहते हैं। उनकी माता उन्हें समझाती हैं; उनकी पत्नियाँ वैराग्य-विरोधी कथाएँ सुनाती हैं। वे उनसे प्रभावित नहीं होते। अंत में वे सुधर्मा स्वामी से दीक्षा लेते हैं और उनकी सभी पत्नियाँ आर्यिका हो जाती हैं। उनकी संगति से विद्युच्चर जैसा चोर भी सद्गति प्राप्त करता है। अंत में जंबू स्वामी केवल-ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण-पद प्राप्त करते हैं।

प्रस्तुत काव्य का कथानक सुगठित है। इसकी अंतर्कथाएँ मुख्य कथावस्तु के विकास में सहायक हैं। नायक के चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन करती हुई कथावस्तु को एक निश्चित उद्देश्य अर्थात् नायक को फल-प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। कवि ने इस कृति में प्रबंध-काव्योचित सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निंदा, संध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत, नदी, सरोवर एवं ऋतु आदि का स्वाभाविक, सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। प्रकृति के विभिन्न अंगों का नाना रूपों में विस्तार से चित्रण है। प्रकृति का कहीं उपदेशिका, कहीं आलंबन, कहीं उद्दीपन, कहीं अलंकार-विधान आदि रूपों में अत्यंत मनोहारी चित्रण उपलब्ध होता है।

कवि ने इस काव्य में सभी रसों की व्यंजना की है। इनमें श्रृंगार, वीर और शांत—ये तीन रस प्रधान हैं। यद्यपि कृतिकार ने अपनी कृति को 'श्रृंगार-वीर महाकाव्य' कहा है तथापि इन दोनों रसों का पर्यवसान शांत रस में होता है।

कवि ने अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए नाना अलंकारों की योजना की है किंतु कहीं-कहीं श्लेष के प्रयोग से भाषा कुछ क्लिष्ट और अस्वाभाविक हो गई है। वैसे भाषा का भावानुकूल प्रयोग किया गया है। इसमें सुभाषितों और लोकोक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। सामान्यतः इस कृति की भाषा वही नागर अपभ्रंश है जिसमें स्वयंभू (दे०), पुष्पदंत (दे०) प्रभृति कवियों ने रचना की है।

इस कृति में कृतिकार ने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है किंतु अधिकता मात्रिक छंदों की है।

ज़काउल्ला *(उर्दू० ले०)*

इनका जन्म 1832 ई० में दिल्ली में हुआ था। इनके पिता का नाम सनाउल्ला था। इन्होंने दिल्ली कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ इन्हें नज़ीर अहमद (दे०) तथा मुहम्मद हुसैन आज़ाद (दे०) का संसर्ग प्राप्त हुआ था। शिक्षा पूर्ण कर लेने के पश्चात् ये इसी कालेज में प्राध्यापक हो गए थे। बाद में आगरा कालेज और तत्पश्चात् म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद में अरबी-फ़ारसी के प्राध्यापक रहे। ये आजीवन पुस्तकें लिखने तथा संपादन करने का कार्य करते रहे। ज़काउल्ला ने जितनी तरह की रचनाएँ कीं उतनी तरह की उर्दू के किसी एक गद्यकार ने नहीं लिखीं। गणित, भौतिक-शास्त्र, भूगोल, नीतिशास्त्र, ज्योतिष, राजनीति, खनिज-विज्ञान आदि सब पर उनकी प्रतिभा ने अपना ज़ोर दिखाया है।

'सैरुल मुसन्नफ़ीन' में इनकी लिखी 143 पुस्तकें कही गई हैं। इनमें अधिकतर अनुवाद हैं। 'तारीख़-ए-हिंदोस्तान' (दे०) इनकी अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। ज़काउल्ला का गद्य सरस और प्रवाहमय है किंतु इतिहास लिखने में निर्भीकता से काम नहीं लिया गया। इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक सेवा को दृष्टिगोचर रखते हुए इन्हें 'खानबहादुर' और 'शमसुल-उलेमा' की उपाधियाँ प्रदान की गई थीं। 'हाली' ने ज़काउल्ला पर एक फबती कसी है—'ज़काउल्ला का दिमाग़ एक बनिये की दुकान है, जिसमें हर क़िस्म की जिंस मौजूद है।' इससे यह ध्वनि भी निकलती है कि बनिये की दुकान में उम्दा और सरस चीज़ें कम मिलती हैं। किंतु इस आलोचना में कुछ अन्याय किया गया जान पड़ता है।

जक्कना *(ते० ले०)* [समय—चौदहवीं शती]

इनकी प्रमुख रचना 'विक्रमार्कचरित्रमु' (दे०) है जो कुछ अंशों में ऐतिहासिक काव्य माना जा सकता है। यह कवि की एक मौलिक कृति है, जिसमें विक्रमादित्य के साहस और औदार्य-सूचक अनेक कार्यकलापों का वर्णन प्रचलित लोक-कथाओं को एकत्र करके किया गया है। विक्रमादित्य एक शक प्रवर्तक ऐतिहासिक पुरुष थे। किंतु उन पर अतिमानवीय क्रिया-व्यापार को आरोपित करके कवि ने उनको पुराण-पुरुष के रूप में चित्रित किया है।

शब्द-संगठन की प्रतिभा, पुनरुक्तिहीन वर्णन तथा आलंकारिक शैली इनकी कविता के प्रमुख गुण हैं। कविता में प्रौढ़ता है तथा अनेक प्रकार के वर्णनों को कवि ने अपने काव्य में सम्मिलित किया है। किंतु कवि का मन सहज-स्वाभाविक प्रकृति-वर्णन में नहीं, उत्प्रेक्षादि द्वारा इनका चित्रण करने में अधिक रमता रहा है। इनके शब्द-जाल में तीन-चौथाई संस्कृत शब्द होने से कविता में जटिलता आ गई है।

जगतविनोद *(हिं० कृ०)*

'जगतविनोद' के लेखक पद्माकर (दे०) हैं। यह एक रस-निरूपक ग्रंथ है, किंतु शृंगार रस को ग्रंथ का सर्वाधिक कलेवर अर्पित है, और उसमें भी नायक-नायिका-भेद को। प्रसंगवश षड्ऋतु-वर्णन को भी स्थान मिला है। अन्य रसों की चर्चा यद्यपि अति संक्षिप्त है, फिर भी उनके उदाहरण प्रभावशाली हैं। शृंगार-रस के उदाहरण तो अत्यंत कमनीय एवं मनोहारी हैं जो कि इस ग्रंथ की ख्याति का मूल आधार हैं। पद्माकर के कवित्व की दो विशेषताएँ प्रसिद्ध हैं—शब्द-योजना और दृश्य-योजना। 'जगतविनोद' में भी ये दोनों विशेषताएँ प्रायः प्रत्येक उदाहरण में एक साथ मिलती हैं, जो कि कवि की कल्पना-उर्वरता का परिचय देती हैं। इनमें नायिका का रूप-चित्रण, उसकी प्रणय एवं विरह-भावना तथा उसके आनंद एवं उल्लासमय क्षणों का सजीव तथा सरस चित्रण है।

जगत्याणी, लालचंद अमरदिनोमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

लालचंद सिंधी के प्रमुख गद्यकारों में से हैं। इन्होंने अध्यापन-कार्य के साथ-साथ समाज-सुधार, देश-सेवा और साहित्य-सृजन के क्षेत्र में सक्रिय भाग लिया है। देश-विभाजन के पश्चात् ये बंबई में आकर स्थायी रूप से रहने लगे थे। इनको अपनी जन्मभूमि सिंध से इतना प्रेम था कि मरते समय यह कह कह गए थे कि मेरी अस्थियाँ सिंधु नदी में विसर्जित की जाएँ, क्योंकि सिंधु नदी मुझे गंगा-जमुना से भी अधिक प्रिय है। इनके कथनानुसार बंबई में देहावसान हो जाने पर लालचंद जी की अस्थियाँ हैदराबाद के समीप सिंधु नदी में विसर्जित की गई थीं।

लालचंद जी का सिंधी साहित्य की प्रत्येक विधा में योगदान रहा है। इन्होंने 1914 ई० में जेठमल परसराम के साथ 'सिंधी साहित्य सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना की थी जिसके तत्त्वावधान में एक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के द्वारा इन्होंने सिंधी गद्य की भाषा और शैली को सुदृढ़ रूप प्रदान किया था। लालचंद की प्रमुख रचनाएँ हैं—'चोथि जो चंडु' (उपन्यास), 'किशिनीअ जा कष्ट' (कहानी), 'सदा गुलाबू' (पद्यात्मक गद्य), 'फुलनि मुठि' (निबंध), 'उमर-मारुई' (नाटक), 'शाहाणों शाह' (आलोचना), 'सूंहारो सचल' (आलोचना)। सिंधी गद्यकारों में इनकी भाषा-शैली असाधारण है। ठेठ सिंधी शब्दों का प्रयोग, मध्यकालीन कवियों की भाषा के सुंदर और प्रभावपूर्ण प्रयोगों को अपनी रचनाओं के द्वारा फिर प्रचार में लाना तथा मुहावरों और कहावतों का यथोचित प्रयोग, आदि इनकी भाषा-शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

जगदीशचंद्र बसु *(बँ० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

जगदीशचंद्र बसु वैज्ञानिक के रूप में विश्वविख्यात हैं। उनका संपूर्ण जीवन विज्ञान के प्रति अर्पित था। इसी नाते बँगला भाषा में विज्ञान-चर्चा को सुव्यवस्थित रूप देने में उनका योगदान अविस्मरणीय है। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमित रूप से बँगला मासिक पत्रिकाओं में गवेषणापूर्ण प्रबंधादि लिखा करते थे। उनके द्वारा रचित 'अव्यक्त' बँगला साहित्य की एक उत्कृष्ट पुस्तक है। बच्चों को विज्ञान-शिक्षा देने के लिए 'मुकुल' पत्रिका के प्रकाशन में भी उन्होंने सोत्साह काम किया।

जगन्नाथदास *(उ० ले०)* [समय—सोलहवीं शती]

पंच-सखा (दे०) में सर्वप्रमुख, उत्कल जातीय जीवन के प्रधान उन्नायक, उड़ीसा के प्रथम भागवतकार, योगी-प्रवर, भक्त व ज्ञानी कविवर जगन्नाथदास प्रताप रुद्रदेव के परम श्रद्धापात्र थे। इनके पिता का नाम भगवान था। पुरी में चैतन्य देव ने इनसे भागवत के दशम स्कंध की पांडित्यपूर्ण व्याख्या सुनकर इन्हें 'अतिबड़ी' की उपाधि दी थी। आज भी जगन्नाथदास के संप्रदाय को 'अतिबड़ी' संप्रदाय कहा जाता है।

इनके ग्रंथों में 'भागवत' (दे० 'जगन्नाथ भागवत') सर्वश्रेष्ठ है जो 'उड़ीसा का बाइबिल' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने भागवत का उड़िया भाषा में प्रणयन ही नहीं किया, वरन् उसे ऐसी मधुर व प्रसादगुणमयी शैली प्रदान की जिसने जातीय जीवन को विषम परिस्थिति में शताब्दियों तक एकता के सूत्र में बाँधे रखा। भागवत में जिस नवाक्षरी छंद का प्रयोग हुआ है, उसे भागवत छंद भी कहते हैं। अपने ललित छंद, प्रवाहपूर्ण शैली, सरल भाषा में अभिव्यक्त गंभीर दार्शनिक विचारों के कारण, यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रत्येक गाँव में एक भागवत-गृह बन गया। जो गाँव का पंचायत-घर, पुस्तकालय और मंदिर सभी कुछ होता था तथा जहाँ प्रत्येक संध्या को भागवतपाठ होता था। ग्रामीण जनता अपनी संतानों को इस उद्देश्य से शिक्षित करना चाहती थी, कि वे आगे चलकर उन्हें भागवत पढ़कर सुना सकें।

इसके अतिरिक्त 'नीलाद्रिशतकम्' (संस्कृत), 'तुलामिणा', 'दीक्षा-संवाद', 'गजस्तुति', 'ब्रह्मांड भूगोल' आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

जगन्नाथदास (क० ले०) [समय—अठारहवीं शती]

इनका समय अनुमानतः 1775 ई० के लगभग ठहराया गया है। पुरंदरदास (दे०), कनकदास (दे०) आदि के पश्चात् हरिदास-परंपरा को प्रोज्ज्वल बनाने वालों में ये अन्यतम हैं। संस्कृत के ये प्रकांड पंडित थे परंतु मातृभाषा के भी वैसे ही प्रेमी थे। इनमें संप्रदायनिष्ठा एवं उदारता, अपरोक्ष ज्ञान एवं भक्ति आदि का विलक्षण संयोग पाया जाता है। इनकी रचनाएँ ये हैं—'हरिकथामृतसार', 'तंत्रसार' तथा 'कीर्तन' एवं 'तत्त्वसुव्वाली'। कहा जाता है कि इन्होंने प्रस्थान-त्रयी का भी कन्नड में अनुवाद किया था। किंतु ये अनुवाद उपलब्ध नहीं। 'तंत्रसार' में विष्णु-स्तुति एवं मंत्र से युक्त 27 गीत हैं। 'हरिकथामृतसार' भामिनी षट्पदी में लिखा गया 32 संधियों वाला एक विशाल ग्रंथ है जिसमें माध्वमत के तत्त्वों का प्रतिपादन है। यह तात्त्विक काव्य है। जगन्नाथदास जी के कीर्तनों में हरि-गुरु-स्तुति, आध्यात्मिक अनुभूति, आदि का महत्व प्रतिपादित है। 'सुलभपूजे' नामक कीर्तन में ऐसी ही बात मिलती है जो निर्गुणिया संतों में सहज समाधि के नाम से प्रसिद्ध है। जगन्नाथदास की शैली काफ़ी ललित है। मतीय तत्त्वों का सार ग्रहण कर उसे अनुष्ठान में लाने वाले विशालहृदय उदारचेता रसयोगियों में जगन्नाथदास जी का नाम मूर्धन्य है।

जगन्नाथन, कि० वा० *(त० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

तिरुच्चि ज़िले के कृष्णरायपुरम नामक स्थान में उत्पन्न श्री जगन्नाथन तमिल साहित्य-जगत में 'अनुशम', 'कपिलन', 'जोति', 'कुम्बम' आदि उपनामों से प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित 150 कृतियों में 'कलैत्जन त्यागम्', 'अरुंद तंदि', 'पवल मल्लिकै' (कहानी-संग्रह), 'मेघमंडलम' (कविता-संग्रह), 'तमिल काप्पियंगळ्' (शोध-ग्रंथ), 'इलंगै काट्शिगळ्' (यात्रा-साहित्य); 'संघ नूर काट्शिगळ्' (साहित्यिक निबंध) आदि प्रमुख हैं। इनकी कहानियों में मानव-मन में उठने वाली भावनाओं का सजीव चित्रण हुआ है। कविताओं का संबंध मुख्यतः देवी-देवताओं से है। कुछ कविताओं में इनकी प्रखर कल्पना-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। श्री जगन्नाथन का अंग्रेज़ी ज्ञान भी पर्याप्त समृद्ध है। इन्होंने अँग्रेज़ी से राजनीतिशास्त्र की एक कृति का तमिल में अनुवाद भी किया है। इनकी 'अरुंद तंदि' और 'पवल मल्लिकै' को तमिलनाडु सरकार का और 'वीरर् उतगम्' को साहित्य-अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। ये आजकल 'कलैमगल्' नामक मासिक पत्रिका के संपादक हैं।

जगन्नाथ, पंडितराज *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1650 ई०]

पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत-अलंकारशास्त्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास के प्रसिद्ध अंतिम आचार्य हैं। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरुपट्ट तथा माता का नाम लक्ष्मी था। इन्होंने सर्वविद्या-विशारद पिता से ही व्याकरण, न्याय, मीमांसा एवं वेदांतादि शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया था। ये सभी शास्त्रों के प्रगाढ़ पंडित थे। दर्शन एवं साहित्य पर इनका अधिकार अद्भुत है। ये तत्कालीन सम्राट् शाहजहाँ के दरबार में बहुत दिनों तक रहे। संभवतः वहीं इन्हें पंडितराज की उपाधि से विभूषित किया गया। अप्पय दीक्षित (दे०) के समकालीन होने से भी इनका समय सत्तरहवीं शती का मध्य निश्चित होता है।

पंडितराज अनेक ग्रंथों के कर्ता हैं जिनमें से 'रसगंगाधर' (दे०) एवं 'चित्रमीमांसा खंडन' अलंकार-शास्त्र के ग्रंथ तथा 'सुधालहरी', 'गंगालहरी', 'जगदाभरण', 'आसफविलास', 'प्राणाभरण', 'भामिनीविलास' एवं 'यमुना-वर्णन' चंपू काव्य हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित (दे०) की कृति 'प्रौढ़ मनोरमा' की 'कुचमर्दिनी' नामक टीका भी लिखी है जिसमें मूल ग्रंथकार का खंडन किया गया है।

पंडितराज उच्च कोटि के कवि एवं समालोचक दोनों थे। इनकी लेखन शैली अतीव उदात्त तथा ओजस्विनी है। इनकी कृतियों में तर्क एवं नवीन युक्तियों की भरमार है। इनकी मान्यता है कि काव्य का लक्षण शब्द-प्रधान होना चाहिए। काव्यजन्य आनंद की अनुभूति मात्र रस से ही नहीं अपितु वस्तु एवं अलंकार से भी होती है। रत्यादि भावों से संवलित आत्मानुभव ही रसानुभूति है जिसका माध्यम व्यंजना नामक वृत्ति है। ये केवल प्रतिभा को ही काव्य-हेतु स्वीकार करते हैं तथा रसों की संख्या को आठ या नौ तक ही सीमित मानना उचित नहीं समझते।

जगन्नाथ-भागवत (उ० कृ०)

उड़िया जातीय जीवन पर जगन्नाथदास के भागवत का प्रभाव अपरिमेय है। इसने उड़िया जाति के नैतिक जीवन को गढ़ा है और आज भी उसे अपने रचनात्मक हाथों से सुष्ठु रूप देने में रत है। उत्कलीय जनता में भागवत की पंक्तियाँ जितनी उद्धृत होती हैं, उतनी अन्य किसी ग्रंथ की नहीं। चैतन्यदेव (दे०) के प्रभाव ने परवर्ती युग में उड़िया समाज के चरित्र को दुर्बल बना दिया था। यदि इस विघटन की स्थिति में उड़िया जातीय चरित्र की रक्षा हो सकी है, तो वह केवल जगन्नाथ-भागवत के कारण ही है। उड़िया जाति जब लघु गोष्ठियों में प्रभावशाली प्रतिवेशी प्रदेशों में बिखर गई थी, तब इस छिन्न-भिन्न अवहेलित जाति के प्राण-स्फुलिंगों को केवल इसी ग्रंथ ने बचाया था। यह उड़िया जातीयता का स्पष्टतम एवं साधारणतम प्रतीक है। यह उड़िया में साक्षरता का प्रधान स्रोत रहा है। पल्ली-समाज भागवत सुनने की अभिलाषा से अपनी संतानों को शिक्षित करता था।

जगन्नाथ-भागवत संस्कृत-भागवत का शाब्दिक अनुवाद नहीं है। मूल ग्रंथ के श्लोक-भाव को ग्रहण कर जगन्नाथदास ने अपनी स्वतंत्र रचना की है। अनेक स्थानों पर विषय-संस्थापन एवं भाव-प्रकाशन दोनों में अंतर दिखाई पड़ता है। मूल ग्रंथ के साथ इसकी न तो श्लोक-संख्या में समानता है और न अध्याय-संख्या में। तत्त्व-प्रतिपादन में भी इसमें स्वतंत्रता दृष्टिगोचर होती है। दास ने अपने ग्रंथ में ऐसे अनेक विषयों का उल्लेख किया है, जिनका वर्णन मूल ग्रंथ में नहीं है। उदाहरणस्वरूप मथुरा से कृष्ण की वापसी के समय पहले से सुदामा को भेजकर ब्रजवासियों को सूचित कर देना मूल ग्रंथ में नहीं है। कंसवध-प्रसंग में जगन्नाथदास की नवीनता असंदिग्ध है। मूल ग्रंथ के अनेक विषयों को त्याग भी दिया गया है। नंद एवं अक्रूर का वार्तालाप मूल ग्रंथ में है, किंतु जगन्नाथदास के भागवत में नहीं है।

यह उड़ीसा का 'बाइबिल' है। समस्त उड़िया-साहित्य में हम भागवत में ही पाते हैं बाइबिल की-सी रहस्यमय वाक्-सृष्टि। शिष्ट-संस्कृत पदावली के साथ सुमधुर एवं शालीन उड़िया-पदावली एवं वाक्यांश मिलाकर, भाषा की कलागत सुषमा को अक्षुण्ण रखते हुए, गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को बोधगम्य घरेलू भाषा में ऐसे चमत्कारपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है कि उसकी रहस्यमय सूक्ष्म-गंभीर मादकता पाठक को मंत्रमुग्ध कर लेती है।

जगन्नाथ-भागवत अनेक दृष्टियों से मूल्यवान है। जगन्नाथदास ने इसमें विष्णु, पद्म, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों से श्रेष्ठतम कहानियों का समाहार कर इसे अधिक श्री-संपन्न बना दिया है। सर्वोपरि इसमें एक मौलिक स्रष्टा, साधु-स्वभाव, निर्मल व्यक्तित्व के भावपूर्ण हृदय का संस्पर्श है।

जगन्नाथ-विजय (क० कृ०) [समय—लगभग 1180 ई०]

इसके रचयिता रुद्रभट्ट नामक एक ब्राह्मण कवि थे जिनका समय 1180 ई० के क़रीब माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये कन्नड के प्रथम कृष्ण-कवि हैं और 'जगन्नाथ-विजय' प्रथम कृष्ण-काव्य। यह अठारह आश्वासों का प्रौढ़ चंपू-काव्य है। इसमें विष्णु-पुराण के आधार पर कृष्ण-कथा निरूपित है। कृष्ण के जन्म से लेकर बाणासुर-वध तक की कथा इसमें है। 'रसकलिके' इनका एक और ग्रंथ है जो अनुपलब्ध है। विष्णुपुराण की कथा-सरणि सरल है तो इसकी विस्तृत प्रौढ़-काव्य की है। कवि ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन व परिवर्धन भी किए हैं। कृष्ण की बाल-लीला, मुरली-वादन-लीला, गोचारण-लीला, शिशुपालवध, आदि का काफ़ी प्रभावशाली वर्णन है। इसका प्रधान रस भक्ति है। अक्रूर का कृष्ण-साक्षात्कार तथा कृष्ण की रास-लीला इस ग्रंथ के अत्यंत मनोहर स्थल हैं। कवि हरिहराद्वैती भागवत पंथ के अनुयायी थे। अतः विशाल भागवत दृष्टि, उपनिषद्दर्शन आदि यहाँ पग-पग पर आते हैं। रुद्रभट्ट का दावा है कि उनकी कृति जब तक भूमि रहेगी तब तक वैष्णव-काव्य-रसार्णव को डुलाती रहेगी। रुद्र की शैली बहुत ही प्रौढ़ है, और बंधगौरव बहुत प्रशंसनीय है। किंतु वे अष्टादश वर्णनों के पीछे पड़ गए हैं और अलंकारों के मोह से मुक्त नहीं हैं। भक्ति रस के प्रसंगों में उनकी प्रतिभा अवश्य चमक उठती है। उनकी स्वतंत्र रूपक-शक्ति भव्य एवं संपन्न है।

जगस्सिर्पियन *(त० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

ये तंजौर ज़िले के निवासी हैं। तमिल कथा-साहित्य में इनकी कृतियों का अत्यंत समादृत स्थान है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इन्होंने ख्याति अर्जित की है। तमिल मासिक 'शिल्पी', 'चिरंजीवी' तथा पाक्षिक पत्र 'स्वतंत्र देवी' के संपादक के रूप में इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। तमिल की प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका के द्वारा आयोजित होने वाली कथा-लेखन-प्रतियोगिताओं में इन्हें एक लघुकथा के लिए 1957 ई० में द्वितीय पुरस्कार तथा एक उपन्यास के लिए 1958 ई० में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इनकी लघु-कथाओं के 14 संकलन, नाटिकाओं के तीन संकलन, 12 उपन्यास, 9 ऐतिहासिक उपन्यास तथा एक बड़ा नाटक अब तक पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनकी कुछ कथाओं का अनुवाद हिंदी में तथा अँग्रेज़ी-जर्मनी आदि विदेशी भाषाओं में हुआ है।

जग हें त्रिविध आहे (यह जग तीन प्रकार है) *(म० कृ०)* [रचना-काल—1913 ई०]

सी० के० दामले लिखित यह उपन्यास विचार-प्रधान उपन्यासों की श्रेणी में परिगणित किया जाता है क्योंकि इसमें विचारधारा और उपदेश-तत्त्व की प्रधानता है।

जज़्बी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

मुईन हसन इनका नाम, और 'जज़्बी' तख़ल्लुस है। ये आज़मगढ़ में पैदा हुए थे। झाँसी, लखनऊ, आगरा और देहली में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। एम० ए० करने के पश्चात् आजीविका की खोज में कई नगरों में कई वर्षों तक फिरते रहे। शायरी का शौक बाल्यावस्था से ही था। पहले ग़ज़लें कहते थे, बाद में नज़्में लिखने लगे। प्रगतिवादी कवियों में इनका उच्च स्थान है। आजकल अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में नियुक्त हैं। 'फ़िरोज़ाँ' के नाम से इनका काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इनकी भाषा साफ़, सरल एवं सशक्त है।

जड़कुच्चुलु *(ते० कृ०)*

'जड़कुच्चुलु' (वेणी के गुच्छे) रायप्रोलु सुब्बाराव (दे०) की समय-समय पर रची गई स्फुट रचनाओं का संग्रह है। ये रचनाएँ आत्माश्रयी काव्यगत प्रकृति की आराधना के सुंदर उदाहरण हैं। इस संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में वर्षा ऋतु, प्रवास, राधिका, मेघ, कोयल आदि हैं। कवि की शैली सुमधुर, सरस एवं सरल है।

जणाण *(उ० पारि०)*

भजन एवं जणाण दोनों का अर्थ है ईश्वर-प्रार्थना। किंतु जहाँ भजन में ईश्वर का नामोच्चारण बार-बार होता है, वहाँ जणाण में वैयक्तिक दुःख-दुर्दशा का निवेदन अधिक होता है। जणाण में दैन्य-बोधक, प्रार्थनामय उद्देश्य अंतर्निहित होता है। यद्यपि भजन एवं जणाण दोनों सामूहिक रूप से गाए जाते हैं, किंतु जणाण वैयक्तिक दीन दशा से करुणार्द्र होने के कारण व्यक्ति-विशेष द्वारा गाए जाने पर अधिक मर्मस्पर्शी बन जाता है। कविसूर्य बलदेव रथ का 'सर्प जणाण' प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जतोई, हैदरबख़्श अल्लाहदाद ख़ान *(सिं० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1970 ई०]

इनका जन्म लाड़काणों (सिंध) के एक छोटे-से गाँव बखो देरो में हुआ था। विद्यार्थी जीवन से ही इनकी अलौकिक प्रतिभा की अभिव्यक्ति कविता के माध्यम से होने लगी थी। सरकारी नौकरी के समय इन्हें सिंध के कई गाँवों का भ्रमण करने का अवसर मिला था। उन दिनों ही किसान और मज़दूरों के दुखी जीवन को देखकर इनके हृदय में उनके लिए सहानुभूति उत्पन्न हुई थी और दुःखी जनों के जीवन का यथार्थ चित्रण ये अपनी कविताओं और कहानियों में करने लगे थे। इनकी रचनाएँ सिंध देश के लिए असीम प्रेम और दलित वर्ग के लिए सहानुभूति से पूर्ण हैं। ये किसान और मज़दूरों को अधिकार दिलाने के लिए लगातार लड़ते रहे थे और इसी कारण इन्हें जेल-यात्राएँ भी करनी पड़ी थीं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'तोहफ़ा-ए-सिंध' (कविता-संग्रह), 'आज़ादी-ए-क़ौम' (काव्य), 'हारी कहाण्यूं' (कहानियाँ)। इनकी रचनाएँ ओजपूर्ण और सिंधी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

जनमटीप *(गु० कृ०)*

ईश्वर पेटलीकर (दे०) का यह सर्वप्रथम उपन्यास है जिसने उन्हें बहुत यशस्वी बनाया। उन्होंने स्वयं इसकी उत्कृष्टता का उल्लेख करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि 'इस कथा से ज़्यादा अच्छी कथा मैं कभी लिख सकूँगा या नहीं, मालूम नहीं।' इसकी कथावस्तु गुजरात के खेड़ा जिले के एक गाँव में रहने वाली निम्नवर्ग की पाटणवाडिया जाति के एक परिवार से संबद्ध है। इस जाति के लोग अपराध करने के आदि होते हैं। हत्याएँ करना, प्रतिशोध लेना, जेल जाना इत्यादि इनके प्रतिदिन के कार्य हैं। इस जाति के चंदा (दे०), भीमा, देवा आदि अशिक्षित, असंस्कृत, अपराध-दक्ष पात्रों के द्वारा लेखक ने इस रचना में प्रणय और प्रतिशोध की कथा के साथ-साथ नारी के स्वाभिमान और समर्पण को रूपायित किया है। चंदा इसकी नायिका है जिसमें ग्रामीण स्त्री की सुंदरता और शक्ति का समन्वित स्वरूप व्यक्त हुआ है। वह वस्तुतः अप्रतिम नारी-चरित्र है। कथा का ताना-बाना उसी को केंद्रीभूत बनाकर बुना गया है। 'जनमटीप' का वस्तुविधान कलात्मक है। संघर्षात्मक परिस्थिति के मध्य उपन्यास की विषय-वस्तु का विकास होता है जिसमें गति है, स्वाभाविकता है, सरसता है। प्रारंभ से अंत तक लेखक ने कौतूहल तत्त्व का निर्वाह किया है। उपन्यास की भाषा देहाती पात्रों और प्रसंगों के अनुरूप है। शैली प्रासादिक एवं प्रभावोत्पादक है। सभी दृष्टियों में 'जनमटीप' एक सफल कलाकृति है।

जनमसाखी *(पं० पारि०)*

यह शब्द जीवन-चरित या जीवनी का पर्याय है। पंजाबी-साहित्य और सिख-पंथ-संबंधी धार्मिक साहित्य में आदि गुरु नानकदेव (दे०) का जीवन-वृत्तांत 'जनमसाखी' के नाम से अभिहित है। गुरु नानकदेव की अनेक जनमसाखियाँ प्रचलित हैं जिनमें दो के नाम विशेष महत्वपूर्ण हैं—'जनमसाखी भाई बालो की' और 'जनमसाखी भाई मनीसिंह की'। किंतु आजकल इनका मूलरूप उपलब्ध नहीं। अनेक प्रक्षिप्त अंश इनमें जुड़ गए हैं। 1885 ई० में मैकॉलिफ़ ने जनमसाखियों की समग्र प्रामाणिक सामग्री संकलित कर 'जनमसाखी' का संपादन किया।

जना *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1894 ई०]

'जना' गिरीशचन्द्र घोष (दे०) के पौराणिक नाटकों में अन्यतम है। माईकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के 'नीलध्वजेर प्रतिजना' कविता के द्वारा प्रभावित लेखक ने इस नाटक में जना चरित्र के गौरवमय मातृत्व, स्वदेश-प्रेम एवं जीवन की करुण व्यथा की सुंदर अभिव्यक्ति की है। 'जना' का चरित्र-चित्रण ही नाटक का मुख्य आकर्षण है। जना आदर्श वीरांगना एवं वीरमाता है। पुत्र की मृत्यु के उपरांत प्रतिहिंसामयी जना की क्रुद्ध हृदय-ज्वाला एवं अंत में निरुपाय होकर गंगा में जलसमाधि नाटक की चरमोत्कृष्ट 'ट्रैजेडी' है। नाटक में दैवी घटनाओं का समावेश एवं अंत में भक्ति-धारा का प्रवाह नाटकीय द्वंद्व में रसाभास की सृष्टि करता है परंतु फिर भी जना के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस नाटक की सार्थकता सर्वत्र अक्षुण्ण रही है।

जनाबाई *(म० ले०)*

दक्षिण में गोदावरी के तट पर स्थित गंगाखेड नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ था। माता-पिता निर्धन थे। उनकी मृत्यु के उपरांत जनाबाई को संत नामदेव (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के घर में आश्रय मिला और उनके प्रभाव से दासी जनाबाई एक श्रेष्ठ कवयित्री बन गई। ये स्वयं पढ़ी-लिखी नहीं थीं, परंतु भक्ति-भावना के प्रबल आवेग से इनमें काव्य-प्रतिभा का स्फुरण हो गया था। इनके उपास्य देव विट्ठल थे। उनकी भक्ति में ही इनके अधिकांश अभंगों की रचना हुई है। जनाबाई के उपलब्ध पदों की संख्या 350 है। एक ओर इन्होंने ध्रुव, प्रह्लाद, शुक, शबरी आदि भक्तों का गुणगान किया है तो दूसरी ओर अपने समकालीन संत ज्ञानेश्वर (दे०), नामदेव, गोदा कुम्हार, सेनाबाई, चोखामेला (दे०), सोपानदेव, निवृत्तिनाथ आदि की भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

जन्न *(क० ले०)* [जीवन-काल—1225 ई० के लगभग]

जन्न का जन्म एक साहित्यिक जैन परिवार में हुआ था। इनके पिता सुमनोबाण स्वयं कवि थे। इनके बहनोई मल्लिकार्जुन 'सूक्तिसुधार्णव' के लेखक हैं तथा इनके भानजे केशिराज कन्नड के विख्यात वैयाकरण हैं। यह होय्सळ-नरेश नरसिंह के दरबार की शोभा थे—दंडाधीश, मंत्री और राजकवि। होय्सळ-नरेश बल्लाल ने इन्हें 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि दी थी।

जन्न ने शुरू-शुरू में कई शिलालेखों के लिए कविताएँ रची थीं। इसके उपरांत 'यशोधरचरिते' (दे०), 'अनंतनाथ पुराण' (दे०) और 'अनुभव मुकुर' (दे०) लिखे थे। 'अनुभवमुकुर' 'स्मरतंत्र' के नाम से विख्यात है। यह काव्यशास्त्र का ग्रंथ है।

'यशोधरचरिते' 310 कंदपद्यों वाला एक लघु काव्य-ग्रंथ है। वादिराज के संस्कृत 'यशोधरा-चरित' पर आधारित इस ग्रंथ में प्राणिहिंसा का विरोध करने वाली जीवदयाष्टमी की कथा है। कथनकला-निपुणता, चरित्र-चित्रण, विशिष्टता और जीवन के दुःखांत तत्त्व की मार्मिक पहचान के कारण यह ग्रंथ महाकाव्य की कोटि में गिनाया गया है। जन्न कवि रूपकों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं।

'अनंतनाथपुराण' चौदह आश्वास वाला चौदहवें तीर्थंकर पर लिखा चरितपुराण है। संस्कृत के उत्तर-पुराण तथा कन्नड के चावुंडराय पुराण के आधार पर लिखा यह चंपूकाव्य एक प्रौढ़ कृति है। 'यशोधराचरित' में जहाँ स्त्री के अनुभयनिष्ठ प्रेम तथा उसका दुरंत है तो इसमें पुरुष की अनुभयनिष्ठ रति का मनोरंजक चित्रण है। राजा चंडशासन अपने मित्र वसुषेण के यहाँ अतिथि बनकर जाता है और उसकी पत्नी सुनंदा के रूप को देखकर रीझ जाता है। भाँति-भाँति के प्रयत्नों से उसे पाने का प्रयत्न करता है। एक जादूगर के द्वारा उसके पति का (कृत्रिम) कटा सिर दिखाता है। उसे देखते ही सुनंदा की मौत हो जाती है। किंतु उसका मोह भंग नहीं होता। वह भी उसके शव के साथ जल मरता है। वसुषेण यह सब जानकर विरक्त हो जाता है। रसनिरूपण, चरित्र-चित्रण आदि में जन्न ने अद्भुत कौशल दिखाया है। धर्मविरुद्ध प्रणय, अनुभयनिष्ठ रति के स्त्री तथा पुरुष मुख को अत्यंत उज्ज्वल एवं परिणामकारी शैली में चित्रित करने में जन्न को अद्भुत सफलता मिली है।

जन्मदिने *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०)-रचित 29 कविताओं का 1941 ई० में प्रकाशित संग्रह है। इनमें से 1 कविता 1939 ई० में, 10 कविताएँ 1940 ई० में, 12 कविताएँ जनवरी, '41 से मार्च '41 तक रची हुई हैं तथा शेष का रचना-काल अनुल्लिखित है।

रवींद्रनाथ ठाकुर के जीवन-काल में प्रकाशित यह उनकी अंतिम कृति है। कवि ने इसमें विश्व-सृष्टि की अनादि, बहुविचित्र एवं आश्चर्यमयी धारा को व्यक्त किया है। अनेक कविताओं में विगत युद्ध की ध्वंसलीला की कवि-हृदय पर हुई प्रतिक्रिया का वर्णन भी है। कवि ने नवीन, आनंदविस्मय-दृष्टि से सब कुछ देखा है।

जपुजी *(पं० कृ०)*

आदिग्रंथ में '१ ॐ'—इस मंगल के अनंतर जपु जी गुरु नानकदेव (दे०) की सर्वप्रथम वाणी है। इसमें 38 पाउड़ियाँ हैं। आदि और अंत में एक-एक श्लोक है। सिक्ख धर्म में 'जपु जी' को धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व प्राप्त है। इस रचना को सिक्ख धर्म के मौलिक सिद्धांतों का आगार माना जाता है। आदि गुरु को परब्रह्म ने 'जपु' का उपदेश दिया; तदनंतर वही लोकहित में प्रचारित हुआ। जनमसाखियों में इस दिव्य अवतरण के संबंध में अनेक कथा-प्रसंग प्रचलित हैं। इस कृति को पैगंबरी-सूचक 'हजूरी निसाणु' माना जाता है। 'जपु' का प्रतिपाद्य नाम-संकीर्तन तथा प्रभु-स्तुति है। 'पावै को दाति जाणै नीसाणु। अमुलु बषसीस अमुलु नीसाणु' इसका प्रमाण है। जनमसाखीकारों ने अमूल्य बख्शीश और अमूल्य निशान को जपु के केंद्र-बिंदु के रूप में माना है। 'जपु' की अनेक टीकाएँ हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकी हैं जिनमें 'जपु-परमार्थ-टीका' अत्यधिक मान्य एवं प्रसिद्ध है। इस टीका का लेखक सिंभूनाथ (शम्भूनाथ) ब्राह्मण बताया जाता है। निहालसिंह ने 'जपु जी' की संस्कृत में टीका की है। टर्नर और मैकॉलिफ़ जैसे अनेक विद्वानों ने 'जपु जी' का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है। 'जपु जी' की आनंदघन-कृत टीका सन् 1795 में लिखी गई थी जो तत्काल मान्य हो गई। 'जपु जी' पंजाबी साहित्य की मूल बीजयंत्र समान कृति है। भाषा अनुस्वरांत संस्कृत-शब्द-समन्वित है।

ज़फ़र *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1775 ई०; मृत्यु—1863 ई०]

नाम—सेराजुद्दीन मुहम्मद, लक़ब बहादुरशाह, उपनाम—ज़फ़र। ये मुग़ल वंश के अंतिम नरेश थे और 1837 ई० में सिंहासनारूढ़ हुए थे। ये 1857 ई० के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के प्रमुख सेनानी थे। संग्राम असफल हो जाने पर विदेशी शासन ने इन्हें देश से निर्वासित कर रंगून भेज दिया था। वहीं इनकी मृत्यु हुई और वहीं दफ़नाए गए।

ये उच्च कोटि के उर्दू शायर थे। सुप्रसिद्ध उर्दू-शायर, 'ज़ौक़' (दे०) देहलवी का शिष्यत्व इन्हें प्राप्त था। इनकी कविताओं का संग्रह 'कुल्लियात-ए-ज़फ़र' के नाम से बड़े आकार के चार भागों में प्रकाशित हो चुका है। हिंदी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है। इनका काव्य मर्माहत वेदना और करुण अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है और सूफ़ी सिद्धांतों तथा सूफ़ी प्रवृत्तियों का उत्कृष्ट उदाहरण है। इनकी करुणाभावसिक्त ग़ज़लें अत्यंत प्रभावशाली, मार्मिक एवं लोकप्रिय हैं। इनके काव्य में कहीं-कहीं राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी अत्यंत मुखर है।

ज़फ़रअली ख़ाँ *(उर्दू० ले०)*

पंजाब से प्रकाशित होने वाले उर्दू के सुप्रसिद्ध दैनिक समाचार-पत्र 'ज़िमींदार' के साथ इनका विशेष संबंध था। पत्रकार होने के कारण इनका कार्यक्षेत्र राजनीतिक और संवैधानिक मामलों से संबद्ध रहा था। इसके अतिरिक्त इन्हें विज्ञान, धर्म, साहित्य—और विशेषतः काव्य-कला—के प्रति भी यथेष्ट अनुराग था। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। इनकी कविताओं का एक संकलन 'बहारिस्तान' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस संकलन में अधिकतर राजनीतिक और धार्मिक कविताएँ हैं। नवीन उपमाएँ, अलंकारप्रियता, लक्ष्य-निष्ठा और राजनीतिक चेतना इनके काव्य की विशेषताएँ हैं। मुहावरों के सशक्त प्रयोग पर इन्हें अद्‌भुत अधिकार प्राप्त है परंतु इनका वाक्य-विन्यास और शब्द-योजना फ़ारसी से अत्यधिक प्रभावित है। कहीं-कहीं अरबी और फ़ारसी का प्रयोग इन्होंने इतना अधिक किया है कि भाषा का स्वाभाविक लालित्य क्षीण हो गया है। इनके उपन्यासों में गृहस्थ जीवन के अत्यंत सजीव, स्पष्ट और यथार्थवादी चित्र उपलब्ध होते हैं। सन् 1956 ई० में इनका निधन हुआ।

ज़मीर *(उर्दू० ले०)*

नाम : मुज़फ़्फ़र हुसैन, उपनाम : 'ज़मीर'। लखनऊ के मर्सिया-लेखक दिग्गजों में इनका उच्च स्थान है। इन्होंने मर्सिया के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीर ख़लीक़ (दे०) और ये दोनों समकालीन थे। दोनों ने मर्सिया-लेखन में अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया है। मीर ख़लीक़ के मर्सिया में सरलता, सूक्ष्मता और मधुरता अधिक है जबकि 'ज़मीर' के मर्सिया में विद्वत्ता और पांडित्य-प्रदर्शन अधिक है। मर्सिया-लेखन के क्षेत्र को इन्होंने अत्यधिक व्यापक बना दिया है; नूतन विषयों, नूतन दिशाओं और नूतन परिकल्पनाओं से इस विधा की यथेष्ट अभिवृद्धि की है और इसे एक प्रकार से चारण-काव्य का रूप दे दिया है।

जयकांतन, त० *(त० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

जयकांतन का जन्म नैवेली में हुआ। जयकांतन मुख्य रूप से कहानीकार हैं। इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं—'उदयम्', 'देवन्', 'वरुवारा', 'युगसंधि' (दे०) आदि। 'शिल नेरंगळिल', 'शिलमनिदरहळ्', 'पारीसुक्कु पो' इनके बड़े उपन्यास हैं तथा 'वाषक्कै अळैक्किरदु', 'प्रलयम्', 'कै विलंगु' आदि लघु उपन्यास। इनकी कहानियों और उपन्यासों में भावना की प्रखरता तथा कला की सूक्ष्मता है। जयकांतन पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में पटु हैं। इनकी कहानियों में निम्न वर्ग के लोगों के जीवन का सजीव चित्रण है। प्रांतीय बोलियों के प्रयोग के कारण इनकी कहानियाँ एवं उपन्यास प्रभावशाली बन पड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी प्रारंभिक कृतियों में मार्क्सवादी विचारधारा के, क्रांतिकारी भावना के, और आधुनिक कृतियों में व्यक्तिवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। तमिल कहानी के द्वितीय उत्थान-काल के कहानीकारों में इनका विशिष्ट स्थान है।

जयदेव *(सं० ले०)* [समय—ग्यारहवीं शती]

'गीतगोविंद' (दे०) के कर्ता जयदेव का जन्म बंगाल में केंद्रबिल्व (केंगुली) नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम राधा था। ये राजा लक्ष्मण सेन के समकालीन तथा 'प्रसन्न-राघव' के रचयिता जयदेव (तेरहवीं शती) से भिन्न थे।

इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'गीतिगोविंद' अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसकी संगीत-योजना से प्रभावित होकर, पाश्चात्य विद्वान् सिलवां लेवी तथा पिशेल ने इसको 'संगीत-रूपक' की संज्ञा दी है। केंगुली में प्रतिदिन हज़ारों वैष्णव भक्त एकत्र होकर इनके संगीत में डूब जाते हैं तथा इस प्रकार इस कवि के प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करते हैं।

राधा और कृष्ण की प्रणयलीलाओं को लेकर लिखे गए इस काव्य में 12 सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग गीतों से ही समन्वित है। सर्गों को परस्पर मिलाने के लिए तथा कथा का सूत्र बतलाने के लिए कुछ वर्णनात्मक पद्य भी हैं। 'गीतिगोविंद' माधुर्य एवं सौंदर्य की पराकाष्ठा है। कहीं-कहीं तो जयदेव कालिदास (दे०) से भी आगे बढ़ जाते हैं। भावों के गांभीर्य की दृष्टि से भी यह बेजोड़ है।

जयदेव पुरी *(हिं० पा०)*

यह यशपाल (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'झूठा सच' (दे०) का प्रमुख किंतु दुर्बल चरित्र वाला पात्र है। निम्न मध्य वर्ग का यह पात्र प्रारंभ में एक आत्मविश्वासी, कर्मठ एवं आदर्शवादी के रूप में अनावरित होता है, किंतु परिस्थितियों के वात्याचक्र में पड़ कर स्वार्थ-पूर्ति के निमित्त काँग्रेसी नेताओं का पिछलग्गू बन जाता है और अपना दीन-ईमान खोकर पतन के मार्ग पर तेज़ी से अग्रसर होता हुआ अंततः अर्थ का दास बन कर रह जाता है। अपनी इन्हीं चरित्रगत दुर्बलताओं के कारण यह न केवल लेखकीय सहानुभूति से वंचित रहा है अपितु उसकी घृणा का पात्र बन गया है।

जयदेव मुनि *(अप० ले०)* [रचना-काल—तेरहवीं शती ई० के लगभग]

जयदेव मुनि शिवदेव सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'भावना-संधि-प्रकरण' (दे०) नाम की कृति की रचना की थी। इस कृति में इन्होंने बताया है कि जिनेश्वर-प्रतिपादित धर्म के पालन से संसार के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है। इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि ये जैन थे। इन्होंने अपनी कृति में मालव नरेंद्र मुंज (997 ई०) का उल्लेख किया है। इससे इनके दसवीं शती ई० के बाद में होने का अनुमान किया जा सकता है।

जयद्रथ-वध *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1910 ई०]

लोकप्रियता की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त (दे०) की प्रारंभिक रचनाओं में 'भारत-भारती' के पश्चात् 'जयद्रथ-वध' का स्थान है। हरिगीतिका छंद में लिखे गए इस खंडकाव्य की कथा 'महाभारत' (द्रे०) से ली गई है। प्राचीन कथा को यथावत् ग्रहण करके भी कवि ने प्रभावशाली प्रसंग-योजना की है। सुभद्रा और उत्तरा के विलाप का करुण प्रसंग अत्यधिक मार्मिक है। दृश्यांकन और अप्रस्तुत-विधान काव्यात्मक है। भाषा साफ़-सुथरी और प्रवाहपूर्ण है।

जयभारत *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1952 ई०]

इस महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त (दे०) ने अपनी पूर्वकालीन रचनाओं को आवश्यक परिवर्तनों के साथ अंतर्भुक्त कर और नए प्रकरणों की रचना कर 47 खंडों में 'महाभारत' (दे०) की संपूर्ण कथा के पुनराख्यान का प्रयास किया है। इस दृष्टि से यह प्रयास हिंदी-काव्य में अद्वितीय महत्व का है। इस महत्प्रयास में कवि ने चयन-क्षमता का कौशल दिखाया है। प्रतिपादन-शैली, घटना-क्रम-परिवर्तन और प्रकरण-वक्रता में कवि की मौलिकता असंदिग्ध है। युधिष्ठिर, कुंती, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, हिडिंबा आदि पात्रों के मानवीय चित्रण में भी कवि ने असाधारण सहृदयता और कल्पना से काम लिया है। इस काव्य का अंगी रस शांत-पर्यवसायी वीर है। जीवन की विविधता से करुण, शृंगार तथा रौद्र आदि की व्यंजना के अनेक अवसर भी कवि को मिल गए हैं। शिल्प-विधान में थोड़ा वैषम्य लक्षित होता है, जिसका कारण उसके विभिन्न प्रकरणों के रचना-काल में लंबा अंतराल है। कहीं कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गति शिथिल है और कहीं क्षिप्र, कहीं भाषा में अभिधा की प्रधानता है और कहीं लक्षणा-व्यंजना की, कहीं शैली व्यस्त है और कहीं समस्त। फिर भी यह महाकाव्य अपने आप में एक महत्वपूर्ण प्रयोग है।

जयमती कुँवरी (*अ० कृ०*) [रचना-काल—1915 ई०]

लेखक —लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०)। लेखक का यह सर्वश्रेष्ठ नाटक है। यह ऐतिहासिक दुःखांत नाटक है। इसमें राजकुमारी जयमती के आत्मोत्सर्ग की कहानी है जो अपने पति और देश के लिए स्वेच्छा से जीवन अर्पित कर देती है। इसमें नगा युवती डालिमा का चित्रण भी अत्यंत सुंदर है। यद्यपि नाटकीय तत्त्वों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है तथापि इसके संवाद और चरित्र-चित्रण अच्छे हैं।

जयरामदास दौलतराम (*सिं० ले०*) [जन्म—1892 ई०]

इनका जन्म-स्थान कराची (सिंध) है। एम० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् ये कुछ वर्ष वकालत करते रहे, परंतु 1921 ई० के आसपास महात्मा गांधी से प्रभावित होकर ये भारत के स्वातंत्र्यांदोलन में कूद पड़े और देशसेवा के कार्यों में सक्रिय भाग लेने लगे। साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने सिंधी तथा अँग्रेज़ी दैनिक पत्रों का कुछ वर्षों तक संपादन-कार्य भी किया है। विभाजन के पश्चात् इन्होंने खाद्यमंत्री (केंद्रीय सरकार), तत्पश्चात् असम के राज्यपाल के पद पर रहकर कार्य किया था। इनकी रचनाएँ अँग्रेज़ी तथा सिंधी भाषाओं में मिलती हैं। ये सिंधी भाषा एवं साहित्य और सिंध के इतिहास के विशेषज्ञ हैं और इन विषयों पर इन्होंने कई अनुसंधानपूर्ण निबंध लिखे हैं। इनका दृढ़ निश्चय है कि भारत में सिंधी भाषा देवनागरी लिपि अपनाने से ही विकसित हो सकेगी।

जया (*गु० पा०*)

कवि न्हानालाल (दे०)-कृत 'जया-जयंत' (दे०) नामक पद्यात्मक नाटक की नायिका जया गिरिराज—गिरि-देश के राजा—की कन्या है। विधि ने उसकी जन्मकुंडली में आजीवन कौमार्यव्रत लिख दिया है जिसका संकेत प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में गिरिराज और राजरानी की परस्पर बातचीत से मिलता है। जया ब्रह्मचारिणी रहेगी और साथ ही वह हृदय-रानी होगी—राजराजेंद्रों के राजेश्वर की। ये विरोधाभासी बातें इस बात का तो संकेत दे ही जाती हैं कि जया को इतना ऊँचा उठना है कि बड़े-बड़े राजा भी उसे ससम्मान हृदय में स्थान दें। मूलतः जया के चरित्र की यही कहानी है। अपने चरित्र के विकास की पहली मंज़िल पार करने से पहले ही जया के ये वाक्य ध्यान आकृष्ट किए बिना नहीं रह सकते—"विलासने हजी वार छे, आज नयी पाकी ऐनी अवध···दिलमांना दैत्योने जीत।" यह जानते हुए भी कि 'वायु बांधवों अने मन जीतवुं सरखुं' है, जया ने मन को जीतने का, शील के सौंदर्य को प्राप्त करने, यौवन को संयय से दीप्त करने तथा पुण्य की नींव पर जीवन-सिद्धि पाने के कष्टसाध्य मार्ग पर बढ़ने का दृढ़ निश्चय किया है। लेखक ने उसकी दृढ़ता को प्रमाणित करने के लिए भी जहाँ एक ओर जयंत जैसे प्रेमी के प्रणय और कविराज के समान राजा के साथ विवाह के प्रलोभनों को प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर वाममार्गी आचार्य, पारधी और पापमंदिर के तीर्थगोर के विषचक्र की विषम परिस्थितियों में उसे रखा है। जया को न तो प्रलोभन ही अपने पथ से विचलित कर पाए और न विषम स्थितियाँ ही। वह दृढ़ता से अपने स्वीकृत पथ पर बढ़ती गई और अंत में, जो काशिराज उससे विवाह करने को उत्सुक थे उन्हें भी जया में 'आर्यकुटुंब' की माता के दर्शन हुए। इसी के साथ जुड़ा हुआ जया का एक दूसरा चेहरा है—विश्व-मंगलाकांक्षिणी का। जयंत का स्वागत करते हुए वह कहती है कि "जिस प्रकार तूने अमरपुरी को उबारा है उसी प्रकार सभी को उबारते रहना।" जया परिस्थितियों में केवल भाग्य के भरोसे ही नहीं बच पाई है वरन् इसमें उसका अपना क्षात्र-तेज भी सहायता करता है अन्यथा पारधी से बचने का कोई उपाय नहीं था। न्हानालाल के इस नाटक में घटनाएँ बदलती हैं, जया नहीं। जन्म-दिन के अवसर पर वह थोड़े समय के लिए प्रकाश-अंधकार, सुख-पुण्य, रात-दिन, निवृत्ति-प्रवृत्ति और श्रेय-प्रेय की समस्याओं में उलझी हुई दिखाई देती है पर यह अवस्था बहुत ही क्षणिक है। जया का संपूर्ण चरित्र आदर्शमय, स्थिर और तत्कालीन स्थितियों को देखते हुए समाज-सुधार की भावना से रचित है और गुजराती साहित्य में ऐतिहासिक महत्व रखता है।

जया-जयंत (*गु० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1914 ई०]

जया-जयंत कवि न्हानालाल दलपतराम (दे०)-रचित व प्रेमभक्ति ग्रंथमाला के अंतर्गत डा० मनोहरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्हानालाल द्वारा प्रकाशित एक त्रिअंकी नाटक है। प्रस्तुत नाटक तीन अंकों, बीस दृश्यों और 179 पृष्ठों में फैला हुआ है। इस नाटक में कुल मिला कर 34 गीत हैं जो नाटककार के लक्ष्य की व्याख्या करते हुए प्रतीत होते हैं। जयंत की दैत्यों पर विजय दिखा कर लेखक गिरिदेश में उसके स्वागत की तैयारियों से नाटक आरंभ करता है। जया-जयंत का परस्पर स्नेहबंधन है पर दोनों की ही जन्म-कुंडलियों में विवाह का विधान लिखा हुआ नहीं है। जया (दे०) नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को महत्व देती है। उसके लिए देह-योग का महत्व नहीं है, केवल स्नेह-योग का है। रानी उसे काशिराज के साथ विवाहित कर देना चाहती है। इस विवशता से बचने के लिए जया (राजकुमारी) घर छोड़कर चली जाती है; आगे चलकर वाममार्गी आचार्य के फंदे में फँसती है जहाँ से उसे एक पारधी बचा लेता है और अपने साथ विवाह करने के लिए विवश करता है। तेजबा के शस्त्रों की सहायता से जया वहाँ से बच निकलती है। घूमते-घूमते वह काशी में पहुँचती है जहाँ पापमंदिर के 'तीर्थगोर' के हाथों में पड़ती है और जल में कूद कर अपनी रक्षा का प्रयत्न करती है। जयंत, जो काशी में ही तपस्या कर रहा है, उसे बचा लेता है। ब्रह्मकुमार जयंत और ब्रह्मकुमारी जया ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के लिए पृथक्-पृथक् आश्रम की स्थापना करते हैं और ब्रह्मयोग में सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध होते हैं। पुण्यजीवन की नींव पर खड़े होकर इन्होंने जीवन-सिद्धि प्राप्त की है। संपूर्ण नाटक चमत्कार और आकस्मिक घटनाओं से भरा पड़ा है। कुछ स्थानों पर पात्र भी प्रतीकात्मकता ग्रहण कर लेते हैं। इस नाटक में जया के अतिरिक्त नृत्यदासी भी गंभीर तर्कयुक्त भाषा में बात करती हुई दिखाई देती है। चूँकि संपूर्ण नाटक नैतिकता के आवेश में आकर लिखा गया है अतः बहुत-सी सूक्तियाँ स्वतः समाविष्ट हो गई हैं, यथा—'वस्तु पाप नयी, वस्तुनी वासनामां पाप छे। विलास अनिष्ट नयी, विलासनी तृष्णा अनिष्ट छे', 'सौंदर्य शोभे छे शील थी, ने यौवन शोभे छे संयम वडे', 'कालोदधिना तरंगो उपर जिंदगी एटले कल्याण-यात्रा' आदि। पद्यात्मक रूप में लिखा हुआ यह नाटक पारंपरीण कथनभंगिमा को लिये हुए है। गुजराती नाटकों में—विशेषतः पद्य नाटकों में—इस नाटक का अपना एक विशेष ऐतिहासिक महत्व है।

जयानंद *(बँ० ले०)*

अनुमानतः जयानंद मिश्र का जन्म 1511-13 ई० के बीच हुआ था। इनका निवास-स्थान वर्द्धमान ज़िला में आमाईपुर ग्राम था। पिता का नाम सुबुद्धि मिश्र एवं माता का नाम रोदनी था। दीक्षागुरु थे अभिराम गोस्वामी।

जयानंद की कृति 'चैतन्य-मंगल' (दे०) है। यह ग्रंथ इन्होंने नित्यानंद के पुत्र वीरभद्र एवं गदाधर पंडित के अनुरोध से लिखा था। इस काव्य में परिच्छेद नहीं हैं, और मंगलाचरण में देवी-देवताओं की वंदना है।

'चैतन्य-मंगल' की घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक विश्वसनीय हैं। चैतन्यदेव के तिरोधान के संबंध में सबसे अधिक विश्वसनीय तथ्य इसी ग्रंथ में मिलते हैं। इन्होंने श्री चैतन्यदेव (दे०) को श्रीकृष्ण का अवतार माना है।

'चैतन्य-मंगल' गेय रचना है। यह काव्य जनसाधारण के लिए है, शिक्षित वैष्णवों के लिए नहीं। जयानंद में कौशल अधिक नहीं था, अतः ग्रंथ काव्य-दृष्टि से सुंदर नहीं बन पड़ा। यह ग्रंथ मल्लभूमि प्रदेश में ही विशेष रूप से प्रचलित है।

'ज़रीफ़' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

नाम : सैयद मक़बूल हुसैन, उपनाम : 'ज़रीफ़'; जन्मस्थान : लखनऊ; पिता का नाम : सैयद फ़ज़ल हुसैन। 'सफ़ी' नाम के प्रसिद्ध उर्दू कवि इनके बड़े भाई थे। उन्हीं के सत्संग और आशीर्वाद से इन्होंने साहित्यिक जीवन में पदार्पण किया था। हास्य रस के कवियों में इनका विशिष्ट स्थान है। 'अकबर' इलाहाबादी (दे०) के काव्य की तरह इनका काव्य भी सोद्देश्य ही है। मनोरंजन के साथ-साथ राजनीति, समाज और साहित्य की कुरीतियों पर प्रबल व्यंग्य-बाणों का संधान करना इनके काव्य की विशेषता है। समाज-सुधार की भावना से ओतप्रोत इनका काव्य यथेष्ट आह्लादकारी, रोचक और मार्मिक है। इनकी भाषा बड़ी कलात्मक और मुहावरेदार है तथा अभिव्यंजना-कौशल अत्यंत प्रभावशाली है। इनका काव्य-संकलन 'दीवान जी' के नाम से इनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ था। अनुभूति की तीव्रता और कला की प्रौढ़ता इनके काव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अपने युग में उर्दू-जगत के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में इनकी गणना रही है।

ज़र्ब-ए-कलीम *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

ज़र्ब-ए-कलीम' डा० इक़बाल (दे०) के उर्दू काव्य का तीसरा संग्रह है। इसमें वर्तमान युग के विरुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह का आह्लादपूर्ण स्वर है अर्थात् वर्तमान युग की सभी त्रुटियों की आलोचना की गई है। इस कृति में संकलित कविताओं पर भी इक़बाल की दार्शनिकता की छाप विद्यमान है। इस्लामियत के प्रति आकर्षण भी इस कृति में झलकता है। 'मुसलमान का ज़िवाल', 'हिंदी मुसलमान', 'इस्लाम', 'हिंदी इस्लाम' आदि कविताएँ इस रुझान की ओर संकेत करती हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा-दीक्षा, सुधार एवं जागृति के भावों से ओतप्रोत रचनाएँ भी इस संग्रह में सम्मिलित हैं। नारी तथा पूर्वी-पश्चिमी राजनीति एवं मार्क्सवाद-संबंधी कविताएँ भी इस संग्रह में संकलित हैं।

जलधरसेन *(बँ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

सामयिक पत्र के संपादक के रूप में बँगला साहित्य-क्षेत्र में जलधरसेन का नाम अमर रहेगा। बंगाल की विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं—ग्रामवार्ता, बंगबासी, संध्या, बसुमती, हितवादी, सुलभ-समाचार एवं भारतवर्ष—का इन्होंने संपादन किया था। प्रारंभिक कृतियों में हिमालय प्रदेश एवं उसकी प्रकृति की वर्णना से युक्त इनके 'प्रवास-चित्र' (1899), 'हिमालय' (1899), 'पथिक' (1902), 'हिमालय बक्षे' (1903) आदि संकलित ग्रंथ काफ़ी प्रसिद्ध हुए थे। परवर्ती युग में इन्होंने 'विशुदादा' (1920), 'करिम शेख़' (1924), 'परश-पाथर' (1924), 'भवितव्य' (1925), आदि बहुत-से उपन्यासों की रचना की थी परंतु मनोहारिता एवं स्थायित्व की दृष्टि से इनकी हिमालय-भ्रमण-गाथाएँ ही श्रेष्ठ हैं। इनके बहुत-से कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए थे जिनमें 'नैवेद्य' (1900), 'पुरातन पंजिका' (1909), 'आशीर्वाद' (1925), 'एक पेयाला चा' (1924) आदि उल्लेखनीय हैं। सारल्य एवं स्वच्छता इनकी रचनाओं के विशेष गुण हैं।

'जलाल' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1832 ई०; मृत्यु—1909 ई०]

नाम—सैयद ज़ामिन अली, उपनाम—'जलाल', पिता का नाम—हकीम असग़र अली।

इन्होंने काव्य में 'नासिख़' (दे०) की शैली के अनुकरण का प्रयास किया है और कहीं-कहीं 'मीर' (दे०) के पद-चिह्नों पर भी चले हैं। अपने युग में उर्दू के श्रेष्ठ कवियों में इनका विशिष्ट स्थान रहा है। इनके चार काव्य-संग्रहों में 'शाहिद-ए-शोख़ तबा', 'करिश्माजात-ए-सुख़ुन', 'मज़मूनहा-ए-दिलकश' और 'नज़्म-ए-रंगी' के अतिरिक्त शब्दकोश और व्याकरण पर भी अनेक ग्रंथ आज उपलब्ध हैं जिनसे इनकी विद्वत्ता और बहुज्ञता का परिचय मिलता है।

जल्लण *(पं० ले०)*

यह पंजाब के अमृतसर ज़िले के एक गाँव के निवासी और सुथरा कवि (1615-1755 ई०) के समकालीन थे। इन्होंने सरल भाषा में कवितामय उक्तियाँ कही हैं जो क्षेत्रीय जनता ने कंठस्थ कर लीं और कालांतर में पंजाबी साहित्य में मान्य साहित्य के रूप में स्वीकृत हो गईं। इनकी उक्तियाँ पहले देवनागरी लिपि में लिखी गई थीं, तत्पश्चात् उनका रूपांतरण गुरुमुखी लिपि में किया गया। जल्लण की वाणी में हास्य रस का पुट है। इनकी वैराग्यमयी उक्तियाँ भी हृदय का स्पर्श करती हैं और अनेक लोकोक्तियों की भाँति प्रचलित हो गई हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण है—

खाये कणक ते पहिने पट,
उत्थे की करेगा जल्हण जट।
जल्हिया रब दा की पाउणा,
इधरों पुरणा उधर लाउणा॥

जल्हण *(सं० ले०)* [समय—बारहवीं शती]

ऐतिहासिक काव्यों की परंपरा में 'सोमपाल-विजय' का नाम भी आता है। इसके कर्ता जल्हण के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि वह काश्मीर-निवासी थे और सोमपाल नामक किसी राजा (बारहवीं शती) के दरबार में रहते थे। उसी की प्रशंसा में इन्होंने उक्त काव्य की रचना की। इस काव्य की मुख्य घटना तथा चरित्र विशुद्ध ऐतिहासिक हैं, किंतु कवि ने अनेक काल्पनिक घटनाओं की सृष्टि करके अपने नायक के चरित्र एवं उत्कर्ष का बड़ी मनोरम शैली में वर्णन किया है।

जवरे गौड, दे० *(क० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

आधुनिक कन्नड के श्रेष्ठ गद्यकार दे० जवरे गौड का जन्म 1918 ई० में बँगलूर ज़िले के चन्नपट्टण के पास एक गाँव में एक कृषक-कुटुंब में हुआ। आपका जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरंभ से संघर्ष का जीवन रहा है। अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी होने पर 1946 ई० में आप मैसूर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गए। अपनी कर्मठता एवं निष्ठा के कारण आप प्रोफ़ेसर बने, प्रिंसिपल बने और मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। आपने अब तक पचास से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें प्रमुख हैं—'ऐन्स्टीन', 'ऋषिकवि रवींद्र', 'मैडम क्यूरी', 'मोतीलाल नेहरू', 'गोपाल कृष्ण गोखले', 'राष्ट्रकवि कुवेंपु'। ये सब आपकी सफल जीवनियाँ हैं जो शैली के लालित्य के कारण लोकप्रिय हैं। 'कडुगलिकुमारगम', 'बेंगलूर केंपेगौड' आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। पात्र एवं भावानुकूल भाषा इनकी विशेषता है। 'नंजुंडकवि', 'षडक्षरदेव', आदि आपकी श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त आपने कई प्राचीन ग्रंथों का विद्वत्तापूर्ण संपादन भी किया है जिनमें प्रमुख हैं—'कब्बिगर काव' (दे०), 'अजित तीर्थंकर पुराण-तिलकं', 'गिरिजाकल्याण-संग्रह' आदि। इनकी गवेषणापूर्ण भूमिकाओं का अपना ही महत्व है। श्री गौड एक सफल अनुवादक भी हैं। 'अकबर', 'नेनपु कहियल्ल', 'हम्मु बिम्मु' (Pride and prejudice) तथा 'पुनरुत्थान' आपके प्रमुख अनुवाद हैं। 'होराटद बदुकु' (संघर्षमान जीवन) इनकी आत्मकथा है जिसमें इन्होंने अत्यंत तटस्थता एवं संयम के साथ अपने जीवन-क्रम का निरूपण किया है। श्री गौड हमारे प्रतिनिधि गद्यकारों में हैं। 'रामायणदर्शनं वचनचंद्रिके' आपकी श्रेष्ठ गद्य-शैली की सफल कृति है। संयत शैली, वैचारिकता तथा अनुभूति-प्रवणता आपकी शैली की विशेषताएँ हैं।

जसवंतसिंह (*हिं० ले०*) [जन्म—1626 ई०; मृत्यु—1678 ई०]

जसवंतसिंह मारवाड़ के प्रतापी राजा थे। इस साहित्य-मर्मज्ञ, गुणज्ञ और उदार शासक के दरबार में अनेक आश्रित कवि रहते थे। ये स्वयं भी कवि थे। इनका प्रख्यात ग्रंथ 'भाषा-भूषण' (दे०) है, जिसमें जयदेव-प्रणीत 'चंद्रलोक' (दे०) की संक्षिप्त शैली पर कुल 108 अलंकारों का निरूपण प्रायः एक-एक दोहे में किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें नायक-नायिका-भेद को स्थान दिया गया है। यद्यपि काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य कोटि का है, किंतु इसकी ख्याति का प्रधान कारण यह है कि इसकी शैली सुगम और सुबोध है। इनके द्वारा प्रणीत अन्य ग्रंथ भी कहे जाते हैं जिनका विषय तत्त्वज्ञान है—'अपरोक्ष-सिद्धांत', 'अनुभवप्रकाश', 'आनंद-विलास', 'सिद्धांत-बोध' और 'सिद्धांत-सार'। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक भी लिखा था।

जसहर चरिउ (*अप० कृ०*)

'जसहर चरिउ' चार संधियों में पुष्पदंत (दे०) द्वारा रचित काव्य है। इसका मुख्य उद्देश्य है हिंसा के दुष्परिणाम दिखाते हुए मानव को अहिंसा की ओर प्रवृत्त करना।

इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—राजा मारिदत्त ने भैरवानंद नामक कापालिकाचार्य से दिव्य शक्ति देने की प्रार्थना की। उसने एतदर्थ राजा से प्राणि-युग्मों की बलि देकर चंद्रमारी की आराधना का आदेश दिया। मनुष्य का जोड़ा न मिलने पर राजकर्मचारी अभयरुचि और अभयमती नामक क्षुल्लक श्रेणी के दो शिष्यों को पकड़ कर देवी के मंदिर में बलि के लिए लाया गया। उस बालक और बालिका के भोले और सुंदर मुख को देखकर राजा ने उनका परिचय पूछा। अभयरुचि ने सारी कथा सुनाई और बताया कि किसी पूर्व जन्म में वे दोनों क्रमशः यशोधर और उसकी माता थे। माँ ने आटे का कुक्कुट (मुर्गा) बनाकर पुत्र की मंगल-कामना के लिए उसको मारा था जिसके फलस्वरूप उन्हें कुक्कुट, साँप, नेवला आदि अनेक योनियों में भटकना पड़ा और अनेक जन्मों में कष्ट भोगने पड़े। हिंसा के दुष्परिणामों को सुनकर राजा मारिदत्त और भैरवाचार्य अपने पूर्वभवों को सुनकर, हिंसा को त्याग जैन-धर्म में दीक्षित हो गए। कालांतर में अभयरुचि और अभयमती भी भिक्षु और भिक्षुणी बनकर पावन जीवन व्यतीत करते हुए देवत्व को प्राप्त हो गए।

इस प्रकार इस ग्रंथ में हिंसामूलक धर्मों पर जैन धर्म की विजय प्रदर्शित की गई है। 'णायकुमार-चरिउ' की तरह इस कृति में अतिरंजित घटनाओं और रोमांटिक तत्त्वों का अभाव है। धार्मिक भावना और दार्शनिक विचारों के कारण कवित्व निखर नहीं पाया। फिर भी स्थान-स्थान पर वस्तु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि रोचक हैं।

जसीमउद्दीन (*बँ० ले०*) [जन्म—1903 ई०]

प्रकृति के कवि जसीमउद्दीन आधुनिक बँगला काव्य के क्षेत्र में गाथा-कविता की मधुर स्वरलहरी के अविश्रांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसार में आज भी साधनामग्न हैं। इनके 'नक्सी कांथार माठ' (दे०) (1919), 'सोजन बादियार घाट' (1930), 'राखाली' (1930), 'धानखेत' (1932) आदि काव्य-ग्रंथ बंगाल के गाँवों की सजल-कोमल स्निग्ध सुरभि के मंथर-स्पर्श से आवेग-आकुलित हैं। इनके स्मृति-ग्रंथ 'ठाकुर बाड़ीर आंगिना' में रवींद्र (दे० ठाकुर) के प्रति कवि का नव-नैवेद्य है। पूर्वी पाकिस्तान के निवासी कवि दोनों बंगाल के साहित्यकारों के निकट आत्मीय हैं। पूर्वी बंगाल के सांप्रतिक नवजागरण में कवि जसीमउद्दीन की काव्यधारा देशात्मबोध के जयगान से मुखरित है।

जसूजा, गुरुचरनसिंह *(पं० ले०)*

दे० गुरुचरनसिंह।

ज़हर-ए-इश्क *(उर्दू० क्र०)*

'ज़हर-ए-इश्क' नवाब मिर्ज़ा शौक़ की एक मसनवी है। इस मसनवी में एक प्रणय-गाथा का वर्णन है। नायक नायिका के रूप-लावण्य पर आसक्त हो जाता है। दोनों में प्रेम की पेंगें बढ़ने लगती हैं। परंतु भेद खुल जाने पर नायिका के माता-पिता उसे लखनऊ भेज देते हैं। वहाँ से लौटने के पश्चात् उसका विवाह कहीं और किए जाने की बात चलती है जिससे क्षुब्ध हुई नायिका आत्महत्या को उद्यत हो जाती है। आत्महत्या से पूर्व वह अपने प्रियतम से मिलकर उसे सांत्वना देते हुए धीरज धरने, शवयात्रा में सम्मिलित होकर भी शोक प्रकट न होने देने, व्यर्थ रोने-धोने की चेष्टा न करने तथा शीघ्र ही उसे भुला देने और अन्यत्र विवाह करके सुखपूर्वक जीवन बिताने की वसीयत करती है। प्रिया के आत्महत्या कर लेने पर नायक अधिक समय तक विरह-पीड़ा को सहन न कर सकने के कारण विष खा लेता है, किंतु उल्टी हो जाने के कारण विष के प्रभाव से बच जाता है। दो-तीन दिन बेहोश रहता है। इस बेहोशी की अवस्था में स्वप्न में नायिका उससे वसीयत का पालन न करने पर रोष प्रकट करती है। होश आने पर वह बड़ा प्रसन्नचित्त होता है जैसे उसके मन का विरेचन हो चुका हो।

इस मसनवी की भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। कुछ आलोचकों ने इस मसनवी के प्रणय-वर्णन पर नग्न हो जाने का आरोप लगाया है।

जहाँगीर संजाणा *(गु० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1965 ई०]

जहाँगीर संजाणा प्रमुखतः एक भाषा-मर्मज्ञ थे। पारसी होते हुए भी वे संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इसके अतिरिक्त मराठी और हिंदी भाषाओं पर भी उनका आश्चर्यजनक अधिकार था। गुजराती साहित्य के मूर्धन्य लेखकों की भाषा में व्याकरण-दोष दिखाकर उन्होंने सबको प्रभावित किया। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक नरसिंहराव भी बार-बार भाषा के बारे में उनका परामर्श लेते थे। उन्होंने वैदिक छंदों पर और उपनिषदों पर लेख लिखे हैं। उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय में गुजराती साहित्य पर पाँच व्याख्यान दिए थे और आलोचना-साहित्य में अपनी मौलिकता का परिचय दिया था। उनके ये व्याख्यान बंबई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किए गए। उनकी और अन्य पुस्तक 'अनार्यना अडपलां' (दे०) भी अत्यंत क्रांतिकारी पुस्तक थी जिसमें उन्होंने प्रचलित और परंपरागत मान्यताओं को ग़लत बताया है। वे भूतपूर्व बंबई राज्य में भाषानियामक थे।

जहाज़ का पंछी *(हिं० क्र०)* [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

यह इलाचंद्र जोशी (दे०) के साहित्यिक विकास को रूपायित करने वाला एक उल्लेखनीय उपन्यास है। इससे पूर्व के उपन्यासों में उपन्यासकार जहाँ काम-कुंठाग्रस्त, शंकालु, आत्मनिष्ठ, मानसिक रोगों के शिकार सदृश पात्रों को आधार बना कर अपने उपन्यास का ताना-बाना बुनता था वहाँ इस उपन्यास में उसने सामूहिक पीड़ा से दुःखी व्यक्ति के अंतर्मन की उलझनों को रूपायित किया है। महानगर कलकत्ता को आधार बनाते हुए तथा अपने युवक कथानायक को जीवन की विभिन्न स्थितियों में डालकर लेखक ने न केवल कृत्रिम शहरी जीवन की ही पोल खोली है अपितु स्वार्थांध एवं आत्मकेंद्रित व्यक्तियों पर भी करारी चोट की है। कथानक के अतिरिक्त लीला आदि कतिपय पात्रों के चरित्र पाठक को किंचित अस्वाभाविक अवश्य लगते हैं किंतु जहाँ कहीं मानसिक अंतर्द्वंद्व का निरूपण किया गया है वहाँ यह अस्वाभाविकता दूर हो गई है। घटना तथा पात्र-बाहुल्य इस उपन्यास की उल्लेखनीय दुर्बलताएँ हैं तथा मनोविज्ञान का प्रश्रय लेते हुए यथार्थ जीवन का जीवंत निरूपण इसकी सबसे बड़ी शक्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जांभेकर बाळशास्त्री *(म० ले०)* [जन्म—1810 ई०; मृत्यु—1846 ई०]

इनका जन्म राजापुर के समीप पोंमुलेग्राम में हुआ था। 1829 ई० में एलफिन्स्टन विद्यालय में इन्होंने गणित और ज्योतिष विषयों का अध्ययन किया था। सरकारी सेवा में रहते हुए भी मिशनरी लेखकों का मुँह बंद कर इन्होंने अपनी स्वाभिमानी प्रवृत्ति का परिचय दिया था। संस्कृत, मराठी, अँग्रेज़ी, ग्रीक, लेटिन आदि बारह भाषाओं पर इनका अधिकार था।

इन्होंने सदैव नारी के समानाधिकारों का समर्थन ही नहीं किया था, विधवा-विवाह तथा अछूतोद्धार को भी स्वीकार किया था। हिंदू धर्म से धर्मांतरित किए गए ईसाइयों को शुद्ध कर पुनः हिंदू बना कर पतित-परावर्तन का इन्होंने श्रीगणेश किया था। इन समाज-सुधारों के समर्थन द्वारा इन्होंने प्रगतिशील मनोवृत्ति का परिचय दिया।

अर्वाचीन मराठी गद्य-साहित्य की नींव डाल उसे समृद्ध करने वालों में जांभेकर जी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। ये आधुनिक मराठी के पहले निबंधकार हैं। इन्होंने 'व्याकरण', 'नीतिकाव्य', 'सारसंग्रह', 'भूगोल', 'विद्या', 'इंगलैंड का इतिहास' आदि ग्रंथों की रचना की।

लोकसेवा के लिए इन्होंने 'दर्पण' नामक मराठी-अँग्रेज़ी में साप्ताहिक निकाला तथा 'दिग्दर्शन' मासिक पत्रिका का भी प्रारंभ किया। सोद्देश्य पत्र-लेखन की नींव भी इन्होंने डाली थी। अपार पांडित्य, जाज्वल्य देश-प्रेम तथा अथक परिश्रम के कारण ये सदा स्मरणीय रहेंगे।

जागरी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

चतुर्थ दशक के उल्लेखनीय उपन्यासकार सतीनाथ भादुड़ी (दे०) का 'जागरी' उपन्यास राजनीतिक पटभूमिका पर अभिनव रूप-विधान में लिखी गई एक बहुत ही सशक्त औपन्यासिक रचना है। राजनीतिक संग्राम एवं राष्ट्र-चर्चा के स्तर पर लिखे गए उपन्यासों में 'जागरी' साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। सन् '42 के अगस्त-आंदोलन में फ़रार असामी बड़े भाई को साम्यवादी छोटा भाई पकड़ा देता है। फाँसी की रात दोनों भाई एवं उनकी माँ के मन में जो कुछ भी घटित हुआ उसी का विवरण इस उपन्यास में दिया गया है। मरण के करस्पर्श से जीवन के समस्त अनुभव, आशा-आकांक्षाएँ, मन के विचित्र स्वप्न-विलास, असंभव आदर्श को रूप देने के नाना असंपूर्ण प्रयास, कल्पना-अभिसार पात्रों की चेतना में पर्दे की तस्वीरों की तरह एक-के-बाद-एक उदित और अस्त होती दिखाई पड़ती है। चेतना-प्रवाह की रीति में बँगला साहित्य में इतना व्यापक प्रयास और पहले कभी नहीं हुआ था। चेतना-प्रवाह-रीति के आश्रय से लेखक ने माँ, और नायक (लड़का) तथा उसके भाई के अवचेतन मन के विक्षिप्त स्मृतिसूत्रों को उद्घाटित किया है। तीन विच्छिन्न निःसंग मन आसन्न मृत्यु के संपर्क में चिंताकुल हैं—उनकी विच्छिन्नता में भी घटनाओं एवं उनके निकट संबंध का एक गहरा संपर्क है। कथा-वस्तु की एक नाटकीय संभावना का लेखक ने उचित व्यवहार किया है। कथा की मौलिकता एवं औपन्यासिक रूप-विधान के अभिनवत्व की दृष्टि से 'जागरी' बँगला उपन्यास का शिलास्मारक है।

जातक *(पा० कृ०)*

'सुत्तपिटक' (दे०) के अंतर्गत खुद्दकनिकाय का यह एक खंड है। इसमें बुद्ध के पुराने जन्मों का वर्णन है। वस्तुतः तत्कालीन लोक-कथाओं का यह एक बहुत ही सुंदर संकलन है। लोक-प्रसिद्ध किसी कथा को ले लिया जाता है और उसे बुद्धपरक बना दिया जाता है। इनमें बुद्ध नहीं, 'बोधिसत्व' (दे० बोधिसत्त) का वर्णन किया गया है जिसका अर्थ है ऐसा तेजस्वी व्यक्ति जो बुद्धत्व को प्राप्त करने की क्षमता रखता है। किसी कहानी में किसी मुख्य या अमुख्य पुरुष को अथवा किसी पशु को बोधिसत्व के रूप में चित्रित किया जाता है और उसके लोकोत्तर गुणों का अभिख्यान किया जाता है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जिनका बौद्ध धर्म से संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता। इन कथाओं का प्रयोजन बौद्ध धर्म का प्रचार तो कम, कथा का आनंद देना अधिक प्रतीत होता है।

'जातक' की मूल प्रति प्राप्त नहीं हुई है, अतः यह कहना कठिन है कि इनमें कितनी गाथाएँ 'त्रिपिटक' (दे०) का भाग हैं। केवल इनकी व्याख्या की एक पुस्तक 'जातकत्थवण्णना' प्राप्त हुई है जिससे ज्ञात होता है कि 'जातकत्थ' नामक एक पुस्तक का इसमें विवेचन किया गया है। इस पुस्तक में व्याख्या के अंतर्गत 5 तत्त्व सभी में रहते हैं—पच्चपन्नवत्थु जिसमें बतलाया जाता है कि बुद्ध ने अमुक कथा कब कही, अतीतवत्थु या बुद्ध के पूर्वजन्म की कथा, गाथा या पद्य व्याकरण या व्याख्या और समोधान या वर्तमान का भूत से संबंध। श्रीलंका के किसी अज्ञातनामा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की यह कृति ही लगभग 500 उपलब्ध जातकों के स्वरूप-निर्धारण में कारण हुई है।

जातकों में भारतीय कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ पाई जाती हैं। इनमें उपदेशपरक काल्पनिक कथाएँ हैं, जीव-जंतुओं की लोक-कथाएँ हैं, हास्य-विनोदपरक घटनाएँ और काल्पनिक कथाएँ हैं, लंबे प्रेमाख्यान हैं जिनमें साहसिक कारनामे विशेष महत्व रखते हैं, नैतिकतापूर्ण उपाख्यान हैं, पौराणिक कथाएँ हैं। संक्षेप में तत्कालीन कथा-साहित्य के विविध रूप इनमें सुरक्षित हैं। इनका अधिकांश भाग बौद्ध धर्म से असंबद्ध है।

जातक-तिलक (क० कृ०)

इसके रचयिता श्रीधराचार्य नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय लगभग 1050 ई० ठहराया गया है। इनके दो ग्रंथ हैं—'जातक-तिलक' तथा 'चंद्रप्रभ-चरित'। दूसरा ग्रंथ अनुपलब्ध है। इसकी रचना चालुक्य-नरेश आहवमल्ल के आश्रय में हुई। यह कंद तथा वृत्तों में लिखा गया ज्योतिष-ग्रंथ है जिसमें 24 अधिकार हैं। ग्रंथारंभ में जिन एवं सरस्वती की स्तुति-है। अधिकारांत में गद्य में पुष्पिका है। इसकी शैली ललित है।

जात्रा (उ० पारि०)

जात्रा-साहित्य के उद्भव के संबंध में विद्वानों के दो मत हैं। प्रथम मत के अनुसार प्राचीन काल में पुण्य-प्राप्ति की लालसा से, तीर्थ-यात्रा के समय, पथ की क्लांति को दूर करने के लिए जिस नृत्य-गीत की व्यवस्था की जाती थी, उसे 'जात्रा' कहते थे। विद्वानों के दूसरे वर्ग का मत है कि तीर्थयात्रा पूरी करने के बाद जब यात्री एकत्रित होते थे, उस समय वे संगीतमय अभिनय के व्याज से तीर्थ-देवताओं की महिमा का वर्णन करते थे। ऐसे अभिनय को जात्रा कहते थे। निष्कर्ष यह है कि जात्राएँ मूलतः धार्मिक हुआ करती थीं। कालांतर में अनेक स्थलों पर समाजपरक घटनाओं पर उपहासात्मक आलोचनाएँ इस धार्मिक साँचे में सँजो दी गईं। इनका प्रदर्शन दृश्य-रहित नाटक के रूप में होता था। इनमें गीत एवं नृत्य की बहुलता रहती थी। बाद में ग्रामीण श्रोताओं का मनोरंजन ही इसका उद्देश्य हो गया, फलतः इनमें हास्यमय चुटकुलों और वाक्यपटु कथोपकथन की भरमार होने लगी। वेशभूषा, वाद्ययंत्र सभी पुराने ढंग के होते थे।

1881 ई० के बाद इसके नवीनीकरण का प्रयास हुआ। आधुनिक जात्रा-साहित्य में नाटकीयता एवं स्वाभाविकता अधिक है। इससे आधुनिक नाट्य-साहित्य के विकास में परोक्ष रूप से बड़ी सहायता मिली है।

जान-ए-आलम (उर्दू० ले०) [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1888 ई०]

पूरा नाम—वाजिद अली, उपनाम—अख्तर। ये अवध के अंतिम शासक थे। सिंहासनासीन होने से पूर्व इनकी उपाधि 'जान-ए-आलम' थी। राज्याभिषेक होने पर इन्हें 'सुलतान आलम' की उपाधि से अलंकृत किया गया था। इन्हें यों तो समस्त ललित कलाओं से अत्यधिक अनुराग था परंतु काव्य-कला के प्रति इनकी श्रद्धा चरम सीमा को स्पर्श करती थी। अपने युग के समर्थ कवियों में इनकी गणना होती थी। कसीदा, मसनवी, ग़ज़ल, मर्सिया, ठुमरी, गीत और दादरा इनके प्रिय विषय थे। इन सभी क्षेत्रों में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। गद्य और पद्य में इन्होंने लगभग 28 पुस्तकें लिखीं। ये सभी पुस्तकें इन्होंने अपने निजी प्रकाशन द्वारा छपवाई थीं किंतु आजकल दो-एक कृतियों को छोड़कर शेष सभी कृतियाँ अप्राप्य हैं। 'मसनवी हिज़्न-ए-अख्तर' इनकी प्रसिद्ध कृति है। इसमें लखनऊ से कलकत्ते तक की यात्रा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है और शासन के पतन का दुखड़ा अत्यंत मर्मभेदी स्वर में रोया गया है। इनका काव्य सरसता, सजीवता, वर्णनों की स्वाभाविकता और प्रवाहमयता का सुंदर उदाहरण है।

जान-ए-आलम (उर्दू० पा०)

(जान-ए-आलम अवध के बादशाह वाजिद अली शाह का लकब भी है और 'फ़साना-ए-अजायब' का प्रमुख पात्र भी। प्रस्तुत टिप्पणी में फ़साना-ए-अजायब के प्रमुख पात्र का उल्लेख अभीष्ट है।)

जान-ए-आलम रजब अली बेग 'सरूर' (दे०) द्वारा रचित उपन्यास 'फ़साना-ए-अजायब' का नायक है। यह बड़े लाड़-चाव में पला शाहज़ादा है; माता-पिता का इकलौता पुत्र होने के कारण सिंहासन का उत्तराधिकारी है। इसे सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा-दीक्षा प्रदान की गई है। यह सब प्रकार से योग्य, मधुभाषी, पराक्रमी तथा युद्ध-कला में निपुण है। सुंदरता और मृदुभाषिता इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो बड़े आकर्षक गुण हैं। लेखक ने इसके इन दोनों गुणों को खूब उजागर किया है। यह एक सफल वक्ता भी है। बंदर के भेष में संसार की क्षणभंगुरता पर इसका वक्तव्य इसके वक्तृत्व का प्रमाण है।

साधारण मानव की तरह इसके चरित्र की सीमाएँ हैं। सारे संकट इसके अपने ही उत्पन्न किए हुए हैं। मेह्रनिगार के कथनानुसार—'उसने जितनी मेहनत-ओ-मशक्कत उठाई, अपनी बाद-अक़्ली की सज़ा पाई।' मलका मेह्रनिगार इसे अहमक़ (मूर्ख) समझती है। कहती है—'शहज़ादा-सा अक़्ल का दुश्मन देखा न सुना।' जिन संकटों में जान-ए-आलम अपनी मूर्खता से फँसता है उनसे अपनी बुद्धिमत्ता से छूट नहीं पाता। साहिरा, मेह्रनिगार और सफ़ेद देव इसकी मुश्किलें आसान करते हैं। यह संदेह-शील भी है। फिर भी इसके संयत स्वभाव, नम्रता, शिष्टता तथा सभ्यता आदि गुण बड़े आकर्षक हैं। यह किसी अन्य की धनाढ्यता से प्रभावित तथा आतंकित नहीं होता।

जानकी रामन, ति० *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म तंजौर ज़िले के देवकुंडि नामक स्थान पर हुआ। जानकीरामन संस्कृत और अँग्रेज़ी के भी अच्छे विद्वान हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'कोट्टुमेळम्', 'शिवप्पुरिक्शा','अप्पर शास्त्री','यादुम ऊरे' (कहानी-संग्रह); 'अमिरदम्', 'मोहमुळ्', 'अम्मा वन्दाळ्', 'चेम्बस्ती', 'मलर मंजम्', 'उयिर तेन' (उपन्यास); 'नालु वेलि निलम्', 'वडिवेलु वाद्यार' (नाटक) आदि। 'कमलन्', 'तोडु' और 'अवलुम् उमियुम्' नामक तीन लघु उपन्यास हैं। प्राचीन संस्कृति और कला के विनाश को देखकर लेखक का मन वेदना से भर उठता है। उसी वेदना की अभिव्यक्ति इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से की है। इन्होंने अपनी रचनाओं में तंजौर ज़िले के ब्राह्मणों के जीवन का अंकन किया है। इनकी भाषा-शैली पर इनकी अपनी बोली का स्पष्ट प्रभाव है। जानकीरामन अपनी कहानियों और लघु उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके दोनों अभिनेय नाटक तमिल रंगमंच को विशिष्ट देन हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री *(हिं० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

1935 ई० तक ये संस्कृत में लिखते थे। इसके बाद हिंदी-साहित्य की अनेक विधाओं में दो दर्जन से अधिक रचनाएँ कर चुके हैं। इनकी प्रतिभा का पूरा उत्कर्ष गीतों में ही दिखाई देता है। इनके सहस्राधिक गीतों में 'प्रकृति, दर्शन, अध्यात्म सब गुँथ गए हैं।' भावोत्कर्ष, अर्थगांभीर्य, शब्द-सामंजस्य और संगीत-साधना की दृष्टि से इनके गीत सूर (दे० सूरदास), मीरा (दे० मीराबाई) और निराला (दे०), महादेवी वर्मा (दे०) की परंपरा को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। एकांत में रहकर संघर्ष-जर्जर जगत् में पीयूष-स्रोत बहाने वाले इस गीतकार की अविचल साधना का अपना मूल्य है।

जानी, ज्योतिष *(गु० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

इनका जन्म 9 नवंबर, 1928 ई० को हुआ था। इनकी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चशिक्षा सूरत में हुई और बंबई विश्वविद्यालय से इन्होंने बी० एस-सी० (आनर्स) की उपाधि प्राप्त की थी। बाद में इन्होंने गुजरात विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में डिप्लोमा प्राप्त किया। इन्होंने जब अपना 'फीणनी दीवालो' नामक 'काव्य-संग्रह' प्रकाशित कराया तो इनकी कीर्ति एक नूतन अग्रगण्य कवि के रूप में फैल गई। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियाँ हैं—'चार दीवालो', 'एक हंगर' (कहानी-संग्रह); 'चाखंडी ए चढी चाल्या हसमुखलाल' (उपन्यास); 'अभिनिवेश' (अन्य कहानी-संग्रह), 'मानव' (अनुवाद) और 'इब्सननां नाटको' (परिचय-पुस्तिका श्रेणी में)।

जीवन के प्रति इनकी दृष्टि इन्हीं के शब्दों में—'नास्तिक, असमाधानकारी, विस्मयजनक एवं निरर्थकता में अर्थ खोजने की व्याकुलता की है: संक्षेप में गहराई से जीने की है।' इनका साहित्य-सृजन का उद्देश्य विसर्जन एवं विसंवाद द्वारा सर्जन और संवाद का आलेखन करने का है।

व्यंग्य, वक्रोक्ति, विनोद और कटाक्ष-उपहास की भूमिका पर रह कर वास्तविक परिस्थितियों को कला-कृति में मूर्त करने का ये सदैव प्रयत्न करते हैं। आधुनिक गुजराती साहित्य में इनका एक निश्चित स्थान है। इन्होंने 'संज्ञा' नामक त्रैमासिक का संपादन भी किया।

जानी, विश्वनाथ *(गु० ले०)* [समय—1652 ई० के आसपास]

श्री विश्वनाथ जानी पाटण (उत्तर गुजरात) के निवासी थे।

'प्रेमपचीसी', 'सगाळ चरित्र', 'मोसाळा चरित्र'—ये इनके नाम से उपलब्ध प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रचनाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'कडवक' पद्धति का आश्रय लिया गया है। प्रत्येक 'कडवक' के अंत में कवि ने अपने नाम की छाप दे रखी है। साहित्यिक गुणों की दृष्टि से इनकी रचनाएँ प्रेमानंद (दे०) की रचनाओं के समकक्ष हैं। अलंकारों के प्रयोग में इन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है तथा करुण रस की उत्तम योजना इनका कृतिगत वैशिष्ट्य है। भालण (दे०), नरसिंह (मेहता—दे०), विष्णुदास (दे०) से ये प्रभावित भी हैं।

गुजराती के आख्यानकारों में इनका स्थान प्रेमानंद के समान ही महत्वपूर्ण है।

जाफ़र जटली *(उर्दू० ले०)*

मीर जाफ़र इनका नाम और 'जाफ़र' इनका तखल्लुस है। ये 'ज़टल' अर्थात् 'अश्लील' काव्य के रचयिता होने के कारण 'ज़टली' कहलाए। उर्दू के प्रारंभिक कवियों में से ये एक हैं। इनके पूर्वज नारनौल के सैयदों में से थे। 'जाफ़र ज़टली' को 'ज़टल' के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की कविता करना पसंद न था। ये कहा करते थे कि मैं यत्न करके शिष्ट काव्य की रचना कर भी लूँ तो 'सादी' अथवा 'फ़िरदौसी' नहीं बन सकता, अतः 'ज़टल' कहूँगा कि विश्व-विख्यात हो जाऊँ। ये काव्य-कला में निपुण थे।

स्वभाव के बड़े उदार थे। एक बार इन्हें बादशाह आज़मशाह के दरबार से एक लाख रुपया पुरस्कार-स्वरूप मिला जो इन्होंने रास्ते में ही दीन-जनों में बाँट दिया। 'ज़ाफ़र ज़टली' का अधिकतर काव्य फ़ारसी में है किंतु इसमें शब्दावली उर्दू की भी प्रयुक्त है। इनकी बहुत कम रचनाएँ अश्लीलता-दोष से मुक्त हैं।

जायसी *(हिं० ले०)* [रचना-काल—1550 ई० के लगभग]

ये सूफ़ी फ़क़ीर शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे और जायस में रहने के कारण जायसी कहलाए। उमेठी के राजघराने में इनका बहुत सम्मान था, वहीं इनकी मृत्यु हुई थी। ये देखने में काने और कुरूप थे और जब शेरशाह इनके अजीबो-ग़रीब रूप को देखकर हँसा था, तब इन्होंने कहा था—'मोहि का हँसेसि कि कोहरहि।' जायसी ने 'पदमावत' (दे०) 'आख़िरी कलाम' और 'अखरावट' नामक तीन ग्रंथ लिखे हैं, पर 'पदमावत' ही इनकी अक्षयकीर्ति का मुख्याधार है। 'पदमावत' में प्रेम की पीर, लोक-व्यवहार का प्रशस्त प्रारूप और अध्यात्म की गूढ़ व्यंजना दर्शनीय है। इन्होंने समग्र ग्रंथ को अन्योक्ति के रूप में जिस ढंग से प्रस्तुत किया है वह प्रत्येक दृष्टि से स्तुत्य है। इनकी भाषा पूर्णतः अवधी है। भावाभिव्यंजन के प्रति जो सचाई और ईमानदारी इनमें पाई जाती है वह बहुत कम कवियों में देखने को मिलती है। मसनवी शैली के अनुरूप 'पदमावत' के प्रारंभ में 'शाहेवक्त' शेरशाह की स्तुति गाई गई है। रतनसेन (दे०) और पद्मावती (दे०) की प्रेम-गाथा को इसमें लौकिक प्रतीकों और उपमानों में रखकर पूर्णतः अलौकिक बना दिया गया है। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धांत-संबंधी तत्त्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। इस ग्रंथ में, जीव, माया, सृष्टि, ईश्वर-प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। 'आख़िरी कलाम' में कयामत का वर्णन है।

कबीर (दे०) की फटकार हिंदू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित न कर सकी थी, किंतु जायसी ने हिंदू और मुसलमान दोनों को एक दूसरे के आमने-सामने रखकर इनका अजनबीपन मिटा दिया। कालक्रम से कुतबन (दे०) और मंझन (दे०) का काल जायसी से पूर्व भले ही गिना दिया जाय, पर 'पदमावत' के माध्यम से प्रेम की मीठी-मीठी पीर उठाते हुए कवि ने जिस ढंग से सामान्य जीवन की दशाओं को खोलकर सामने रखा है वह किसी कुशल कवि और पूर्ण व्यावहारिक व्यक्ति के जीवट का कार्य है। समग्रतः सूफ़ी कवियों में जायसी का स्थान सर्वप्रथम है और उनका 'पदमावत' प्रत्यक्ष जीवन की एकता का नयनाभिराम दृश्य प्रस्तुत करने के कारण काल के पट पर एक अमिट चिह्न बन गया है।

जायसी-ग्रंथावली की भूमिका *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि जायसी (दे०) को उत्कृष्ट कवि के रूप में प्रस्थापित करने का एकमात्र श्रेय हिंदी के समर्थ आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) को दिया जा सकता है। शुक्ल जी ने सर्वप्रथम 'पदमावत' (दे०), 'अखरावट', 'आख़िरी कलाम' नामक जायसी की तीनों कृतियों का 'जायसी-ग्रंथावली' नाम से संपादन किया था और दो सौ पृष्ठों से अधिक की विशाल भूमिका देकर कवि की विचारधारा, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि और काव्य-कौशल का विस्तृत परिचय दिया। शुक्ल जी ने इस भूमिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अंतर्गत सूफ़ी-परंपरा, जायसी का जीवनवृत्त, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, पदमावत की प्रेम-पद्धति, पदमावत में ईश्वरोन्मुख प्रेम, जायसी का रहस्यवाद, जायसी की भाषा आदि बाईस शीर्षकों पर अधिकारपूर्वक लेखनी चलाई है। अंत में 'संक्षिप्त समीक्षा' शीर्षक के अंतर्गत पाँच पृष्ठों में वही बात कही गई है जो लेखक पहले कह आया है।

लेखक की भाषा नितांत परिमार्जित और विचारानुकूल है। सारी भूमिका को पढ़ जाने के बाद यह तथ्य एकदम स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल जी भाव, भाषा और अभिव्यंजना-शैली के पूर्ण 'डिक्टेटर' हैं। अपनी बात को वे पूर्ण साहस और शक्ति से कहते हैं और दूसरों को अपनी बात मनवाने के लिए निरुत्तर कर देते हैं। एक स्थान पर वे लिखते हैं—'बिना किसी निर्दिष्ट विवेचन के यों ही कवियों की श्रेणी बाँधना और एक कवि को दूसरे कवि से छोटा या बड़ा कहना हम बहुत भौंड़ी बात समझते हैं।'···प्रेमगाथा की परंपरा के भीतर जायसी का नंबर सबसे ऊँचा ठहरता है।···'पदमावत' हिंदी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है। 'पदमावत' में प्रस्तुत-अप्रस्तुत के समन्वय की स्थापना, सारे 'पदमावत' को अन्योक्ति मानना, जायसी पर विभिन्न विचारधाराओं के प्रभाव का अन्वेषण आदि बातें शुक्ल जी की कवि के संबंध में दृढ़ मान्यताओं की प्रतीक हैं। शुक्ल जी के बाद डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (दे०) ने भी जायसी का सांस्कृतिक मूल्यांकन करते हुए 'पदमावत' का प्रामाणिक संकलन प्रस्तुत किया है। यों तो शुक्ल जी के बाद जायसी पर शोध-कार्य करने वालों का एक ताँता-सा लग गया है, पर जो बात शुक्ल जी अपने दो सौ पृष्ठों की भूमिका में कह गए हैं उसे पीछे छोड़ आने का दावा उसी दिन किया जा सकेगा जिस दिन इतनी ही बड़ी मानवीय संवेदना जगाकर जायसी-जैसे किसी अज्ञात कवि को उद्घाटित किया जाएगा।

जाषुवा, गुर्रमु *(ते० ले०)* [जन्म—1895 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

लघु कविताओं के लेखक के रूप में श्री जाषुवा को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। उत्कट राष्ट्र-प्रेम और आंध्र-प्रेम इनके प्रमुख गुण हैं। स्वयं निर्धन एवं अस्पृश्य होने के कारण समाज में इस वर्ग के साथ होने वाले अत्याचारों को देखकर ये मार्मिक पीड़ा का अनुभव करते हैं और समाज में इस पीड़ित वर्ग को मानवोचित सम्मान एवं गरिमा प्रदान करने के लिए अपनी रचनाओं द्वारा सचेष्ट रहे हैं।

'फ़िरदौसी (दे०), 'गब्बिलमु' (दे०),'बापूजी', 'नेताजी', 'खंडकाव्यमु' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। सरलता, माधुर्य एवं समगति इनकी भाषा-शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं। इनके भाव तीक्ष्ण एवं उष्ण बाणों की तरह सीधे पाठक के हृदय को वेधते हैं। लोकप्रिय इतिवृत्तों को लेकर एक निजी और जनरंजक शैली में इन्होंने रचनाएँ की हैं। चामगादड (दे० गब्बिलमु) जैसे क्षुद्र विषय भी इनकी कविता के विषय बन गए हैं। वास्तव में इनके व्यथा-पूरित हृदय का उफान ही इनकी रसार्द्र कविताओं के मूल में रहता है।

ज़िंदगी के मोड़ पर *(उर्दू० क्र०)* [रचना-काल—1962 ई०]

यह पुस्तक चालीस सच्ची कहानियों का संकलन है। इन कहानियों को अलग-अलग लेखकों ने लिखा है जिन्हें 'ज़िंदगी के मोड़ पर' शीर्षक के अंतर्गत श्री बशीर अहमद चौधरी ने संकलित किया है।

इन कहानियों से हमारे समसामयिक जीवन के तथ्यों का उद्घाटन होता है तथा व्यष्टि एवं समष्टि जीवन-विषयक सामग्री उपलब्ध होती है। इन कहानियों से जीवन के प्रति निष्ठा बढ़ती है, जीवन-मूल्यों का महत्व खुल कर सामने आता है और इनसे हिम्मत और हौसला बढ़ता है।

इनके लेखक हमारी अर्थव्यवस्था से संबद्ध विभिन्न व्यक्ति हैं।

जिकिर *(अ० पारि०)* [रचना-काल—1634 ई० अथवा 1734 ई०]

इन गीतों के साथ आजान पीर का नाम जुड़ा हुआ है। कोई इन्हें अरब देश से आया मानते हैं और कोई अजमेर से। प्रवादानुसार गीतों की संख्या 8 कोड़ी है। इनके दो रचना-काल दिए गए हैं: 1045 हिज़री (1634 ई०) और 1145 हिज़री (1734 ई०)। अनेक जिकिर गीतों में लोक-साहित्य और वैष्णव गीतों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। जिकिर में बाहर की नमाज़ आदि की जटिलता त्याग कर अंतर की ध्वनि को सुनने और एक ईश्वर के नाम लेने का निर्देश है। 'देह विचारर' (दे०) गीतों का भी इन पर प्रभाव पड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिगर अने अमी (गु० क्र०)

यह स्वर्गीय चुनीलाल वर्धमान शाह (दे० शाह) का सत्य घटनात्मक उपन्यास है जिसकी संरचना विश्वंभर (जिगर) उर्फ़ पंडित विश्वबंधु की डायरी के पृष्ठों के आधार पर हुई है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक है विश्वंभर (जिगर) तथा नायिका चंद्रावली (अमी) है। जिगर तथा अमी के वास्तविक और अद्भुत प्रेममय जीवन की यह कथा गुजरात में सुप्रसिद्ध है और इसका फ़िल्मीकरण भी हुआ है।

जिगर छोटी आयु में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गए थे और इनका पालन-पोषण इनके दादा शारदाचंद्र की छाया में हुआ था। 14-15 वर्ष की अल्प आयु में ही वे गृह त्याग कर चले गए थे किंतु बाद में वापस आए और इनका विवाह प्रिंसिपल चंद्रशेखर की गुणवती पुत्री चंद्रावली के साथ हुआ था। चंद्रावली की बहन चंद्रआभा तो अपने बहनोई के साथ शादी तक करने को उत्सुक थी किंतु ईर्ष्या की पराकाष्ठा तो वहाँ है जहाँ जिगर की चरित्र-भ्रष्ट सौतेली माँ दूध में विष मिलाकर जिगर के अनजाने में जिगर के ही हाथों अमी को पिलवा देती है जिससे अमी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु की वेला में अमी अपनी बहन चंद्रआभा को पत्नी-रूप में ग्रहण करने का प्रस्ताव रखती है। अमी की मृत्यु के आघात से पीड़ित जिगर स्वयं करेंट से आत्महत्या करने को प्रवृत्त होते हैं किंतु किसी तरह बचा लिये जाते हैं। अमी की चिता के समीप जिगर कांचन तथा कामिनी के परित्याग की प्रतिज्ञा करते हैं। बाद में वे किसी को सूचित किए बिना दिल्ली छोड़कर काश्मीर की ओर चले जाते हैं। यहाँ उपन्यास का पूर्वार्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्ध में जिगर अनेक लोगों के संपर्क में आते हैं। स्त्रियाँ उन्हें काम-विह्वल करने का प्रयत्न करती हैं किंतु अमी की प्रेम-निधि से संपन्न जिगर पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता तथा कांचन और कामिनी के परित्याग की इनकी प्रतिज्ञा बाधित नहीं होती। इस समय इनकी आयु बीस वर्ष की थी। इसी समय वे जैन धर्म के प्रति आकर्षित हुए और विशुद्ध विजय नाम से जैन साधु के रूप में दीक्षा ली। लेखक ने इस प्रसंग में एक ओर सात्त्विक दृष्टि-संपन्न साधु-साध्वियों का चित्रण किया है और दूसरी ओर शिथिलाचरणियों का। तैंतीस वर्ष की आयु में लेखक को अपनी अमी दूसरे जन्म में मिली। उसका नया जन्म बंबई में महाराष्ट्रीय कुल में पुष्पकांता नाम से हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। जिगर को पुष्पकांता की देह में विद्यमान अमी की आत्मा की पूर्ण प्रतीति हुई किंतु दुर्भाग्यवशात् दोनों का मिलन न हो सका। अतः पुष्पकांता ने अगले जन्म में पुनर्मिलन होगा—ऐसा मानकर अफ़ीम खाकर अपना शरीर त्याग दिया। पूरे सत्रह साल साधु-जीवन व्यतीत करने के पश्चात् इस आघात में जिगर अहमदाबाद आकर थियोसोफ़िस्ट बन समाज-सेवा की ओर प्रवृत्त हुए। जीवन-यापन के लिए मात्र चालीस रुपये मासिक में शिक्षक का व्यवसाय स्वीकार किया तथा पुनर्जन्म में अमी की प्राप्ति की श्रद्धा लिये शेष जीवन व्यतीत किया। 9 सितंबर, 1958 को इसी श्रद्धा तथा विश्वास को लिये उन्होंने शरीर त्याग दिया।

यही है जिगर तथा अमी के वास्तविक जीवन की मार्मिक कहानी।

जिगर मुरादाबादी (उर्दू० ले०)

इनका नाम अली सिकंदर और तख़ल्लुस 'जिगर' है। ये मुरादाबाद के रहने वाले थे और इनका जन्म उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक में हुआ था। इनके पिता मौलवी नज़र अली भी शायर थे। जिगर की शिक्षा बहुत साधारण थी। ये थोड़ी-सी फ़ारसी और अँग्रेज़ी भी जानते थे। रंगीनी, सौंदर्यप्रियता तथा भ्रमणशीलता इनके विशेष गुण थे। 13-14 वर्ष की आयु में शेर कहने लगे थे। पहले 'दाग़' (दे०) के और उनके बाद मुंशी अमीरुल्ला 'तस्लीम' के शार्गिद हुए।

'जिगर' की शायरी में शोख़ी, मामलाबंदी असर, सरूर और मस्ती एक ख़ास शान से पाई जाती है। 'जिगर' के कलाम का एक बड़ा गुण सादगी और रवानी है। इनका शब्दचयन प्रशंसनीय होता है। सादा फ़ारसी समासों का प्रयोग करते हैं जिससे प्रवाह में बाधा नहीं आती। इन्होंने मुहावरों का उचित तथा सुंदर प्रयोग किया है। जिगर की रचनाओं में शब्दों तथा भावों की आवृत्ति प्रायः पाई जाती है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी अस्वाभाविक भी हो जाती है।

'दाग़-ए-जिगर', 'शोल-ए-तूर' (दे०) तथा 'आतिश-ए-गुल' (दे०) इनके काव्य-संग्रह हैं जिनसे क्रमशः गंभीरता, शक्ति, प्रभाव तथा प्रौढ़ता का विकास होता गया है—भाषा भी उत्तरोत्तर फ़ारसी-मिश्रित होती गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिणदत्त चरिउ (जिनदत्त-चरित्र) *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1218 ई०]

'जिणदत्त चरिउ' पंडित लाखू या लक्खण (लक्ष्मण) (दे०) द्वारा रचित एक अप्रकाशित कृति है। कवि ने इसमें ग्यारह संधियों में जिनदत्त के चरित्र का चित्रण किया है। इस कृति की रचना श्रीधर के आश्रय में हुई थी।

जिनदत्त का विमलमती के सुंदर रूप को चित्र में देखकर उसकी ओर आकृष्ट होना और उससे विवाह कर लेना, समुद्र-यात्रा करते हुए सिंघलद्वीप पहुँच कर सुंदरी राजकुमारी श्रीमती को प्राप्त करना, वहाँ से प्रभूत धन-संपत्ति उपार्जित कर लौटते हुए इसके प्ररोहण के ध्वस्त हो जाने पर दोनों का वियुक्त हो जाना और कालांतर में भाग्यवश दोनों का पुनर्मिलन इत्यादि। कथानक-रूढ़ियों का सन्निवेश इस कृति में मिलता है।

जिनदत्त की कथा धर्म के आवरण से आवृत एक सुंदर प्रेम-कथा है। अपभ्रंश की प्रवृत्ति के अनुरूप इस कथा में अलौकिक घटनाओं का समावेश भी दृष्टिगत होता है।

इस कृति में स्थल-स्थल पर सुंदर वर्णन उपलब्ध होते हैं। क्या भौगोलिक वर्णन, क्या प्राकृतिक वर्णन और क्या नारी-सौंदर्य-वर्णन—सब अलंकृत भाषा में हैं। अंतिम संधियाँ कुछ नीरस हो गई हैं। कवि ने काव्योपयुक्त अलंकृत वर्णनों में अनुप्रास के साथ-साथ, श्लेष और यमक अलंकारों का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। इससे छंद लययुक्त होकर श्रवण-सुखद और हृदयहारी हो गए हैं। शब्द-योजना-चातुर्य से कृति की भाषा भी अत्यंत सरल बन गई है। इस कृति में कृतिकार ने अनेक मात्रिक और वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है।

ज़िद्दी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

यह आरिफ़ नारहवी द्वारा रचित उपन्यास है। इसका नायक राम एक अंतर्मुखी भावनाशील युवक है। वह सुखदेव-निवास के उजाड़ स्थान में शांति नाम की एक युवती को देखता है और उसके प्रेमपाश में फँस जाता है। शांति का विवाह एक बूढ़े खूसट सुखदेव नाम के व्यक्ति से हुआ था। लोग शांति को मृत समझते हैं और मानते हैं कि उसकी आत्मा प्रेतरूप में सुखदेव-निवास में रहती है। राम शांति के विरह में व्याकुल रहता है और अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। उसका विचार है कि ज़िद करने पर तो भगवान भी मिल जाते हैं। राम भी अपनी प्रेयसी के लिए ज़िद करता है और अंततः उसे प्राप्त कर लेता है। प्रारंभ में उपन्यास दुःखात्मक रहता है किंतु इसका अंत सुखात्मक है। इस उपन्यास में हिंदू स्त्री की पतिभक्ति का भी अच्छा वर्णन हुआ है। बेमेल विवाहों पर भी इसमें एक तीखा कटाक्ष विद्यमान है।

लेखक शब्दों द्वारा भयावह वातावरण का चित्रण करने में सफल रहा है। भाषा प्रौढ़ तथा प्रवाहमयी है। उपन्यास का आरंभ भयप्रद किंतु अंत सुखद है। यह उर्दू के सफल उपन्यासों में गिना जाता है।

जिनदत्त सूरि *(अप० ले०)* [जन्म—1075 ई०; मृत्यु—1153 ई०]

जिनदत्त सूरि जिनवल्लभ सूरि के शिष्य थे। ये संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के विद्वान् थे। अपभ्रंश भाषा में लिखित इनके तीन ग्रंथ—'उपदेश-रसायन-रस' (दे०), 'कालस्वरूप कुलक' (दे०) और 'चर्चरी' (दे०)—उपलब्ध हैं। इन्होंने संस्कृत और प्राकृत में भी रचना की है। जन्म का नाम इनका सोमचंद्र था। अपने गुरु जिनवल्लभ सूरि की मृत्यु के उपरांत इन्होंने सूरि-पद प्राप्त किया और अपना नाम जिनदत्त सूरि रखा। मरुदेश, नागपुर, अजमेर आदि स्थान इनके विहार-स्थल थे। ये स्थान-स्थान पर भ्रमण करते हुए धर्मोपदेश दिया करते थे।

जिनदत्त सूरि का प्रधान लक्ष्य श्रावक-श्राविकाओं के चरित्र का निर्माण करना तथा संघ के आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाना था। इन्होंने परलोक-सुधार की चिंता न कर इसी लोक में एक आदर्श समाज की स्थापना का प्रयत्न किया। यही कारण है कि इन्होंने गृहस्थों को संबोधित करते हुए अपनी कृतियों की रचना की है। इनकी कृतियों की भाषा साहित्यिक पश्चिमी अपभ्रंश है।

जिप्सी *(गु० ले०)*

दे० किशनसिंह चावड़ा।

ज़िलाज़ुगत *(उर्दू० पारि०)*

इसमें 'रियायते-लफ़्ज़ी' का ख़्याल किया जाता है; मसलन अगर धोबी का ज़िक्र आए तो इस्त्री, घाट,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलफ़ वग़ैरा इस तरह लाएँ कि ये लफ़्ज़ बोलने में तो आएँ लेकिन इनके वे मानी न लिये जाएँ बल्कि दूसरे मानी हों; जैसे 'छलिया' का ज़िक्र किया जाए तो इस तरह—

"छा लिया मुझको तेरे ग़म ने मैं ऐसा कतथा"

इसी से ईहाम (श्लेष) भी पैदा होता है।

जीमूतवाहन *(सं० पा०)*

महाराज हर्षवर्द्धन (दे० श्रीहर्ष)-कृत 'नागानंद' (दे०) नाटक का नायक जीमूतवाहन बौद्ध जातक-कथाओं की देन है। वह अत्यंत सुंदर एवं साहसी राजकुमार है। देशाटन का उसे बहुत शौक है। इसी प्रसंग में वह एक बार नागलोक पहुँच जाता है। वहाँ की राजकुमारी मलयवती का गीत सुनकर वह उस पर मुग्ध हो जाता है। मलयवती भी इसके व्यक्तित्व पर लुब्ध होकर इसे अपना पति वरण कर लेती है। जीमूतवाहन राजकीय अतिथि के रूप में वहाँ रहने लगता है।

एक दिन की बात है कि मलयवती को अपनी भावी पत्नी के रूप में पाकर वह अपना सौभाग्य सराहते हुए जा रहा है कि एक स्त्री का रुदन सुनकर उस ओर मुड़ जाता है। ज्ञात होता है कि गरुड़ के खाने के लिए सर्पराज ने सर्पों की बारी बाँध दी है और आज उसके एकमात्र पुत्र की बारी आ गई है। माँ इसीलिए रो रही है। जीमूतवाहन बिना किसी विलंब के वध्य-वस्त्रों को उठाता है और बिना कुछ कहे उन्हें पहनकर वध्य-शिला पर पहुँच जाता है और अपने को गरुड़ का आहार बना देता है। लेकिन ऐसे महापुरुष को पहचानने में गरुड़ को भी देर नहीं लगती। अंत में अमृत की वर्षा से वह पुनर्जीवित हो जाता है।

जीमूतवाहन को दयावीर का निदर्शन माना गया है। अपनी दया की भावना से द्रवित होकर वह अपनी प्रेमिका मलयवती को भी भूल जाता है। जीमूतवाहन में इसके अतिरिक्त भी कई श्लाघ्य गुण हैं। वह कला का उपासक एवं सौंदर्य का पारखी है तथा एक ऐसा राजकुमार है जो आम जनता के दुःख-सुख में हाथ बँटाता है।

जीवकचिंतामणि *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की दसवीं शती]

'जीवकचिंतामणि' जैन मुनि एवं महाकवि तिरुत्तक्कदेवर की अमर रचना है। इसे तमिल के पाँच प्रसिद्ध महाकाव्यों में परिगणित किया जाता है। इस कृति में 3145 पद हैं और यह 13 खंडों में विभाजित है। 'जीवक-चिंतामणि' में कवि ने जीवक नामक राजकुमार का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। काव्य का नायक जीवक आठ विवाह करता है। जीवन के सभी सुखों और दुःखों को भोगने के उपरांत वह राज्य और परिवार का त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लेता है। अंत में उसे सशरीर मुक्ति मिल जाती है। इसमें लेखक ने जैन मतानुसार गृहस्थ-जीवन के स्वरूप को स्पष्ट किया है। उसका कहना है कि गृहस्थ-जीवन के सुखों का उपभोग करते हुए भी हमारा ध्यान मोक्ष की ओर केंद्रित रहना चाहिए। इस ग्रंथ में मूलतः श्रृंगार रस की अभिव्यंजना हुई है। नायक के आठ विवाहों का वर्णन होने के कारण इसे 'मणनूल' (विवाह-ग्रंथ) भी कहा जाता है। इसकी भाषा सरस, सरल एवं मधुर है। विभिन्न स्थलों पर उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है। इसमें मुख्यतः 'विरुत्तम्' छंद का प्रयोग हुआ है यद्यपि इससे पूर्ववर्ती कुछ कृतियों में भी विरुत्तम छंद का प्रयोग हुआ है। परंतु इसे काव्योपयोगी बनाने का श्रेय तिरुत्तक्कदेवर को ही है। तमिल के परवर्ती कवियों ने इनकी शैली का अनुसरण किया है। यह काव्य-तत्त्व के नाना गुणों से युक्त है। इसमें पग-पग पर कल्पना-बाहुल्य और अर्थ-गांभीर्य दृष्टिगत होता है। इसका साहित्यिक, धार्मिक और ऐतिहासिक महत्व अक्षुण्ण है।

जीवक वषुदि *(त० पा०)*

जीवक वषुदि तमिल के प्रमुख नाटक 'मनोन्मणीयम' (दे०) के प्रमुख पात्रों में से है। 'मनोन्मणीयम' शेक्सपियर के नाटकों के समान एक पद्यबद्ध नाटक है। इसकी रचना सुंदरम् पिल्लै (दे० सुंदरम्) ने उन्नीसवीं शती में की थी। यह नाटक लार्ड लिट्टन के 'द सीक्रेट वे' पर आधृत है।

जीवक वषुदि पांड्य देश का राजा है। वह 'मनोन्मणीयम' नाटक का नायक है। नाटक में उसका चित्रण गुणों एवं दुर्गुणों से युक्त मनुष्य के रूप में किया गया है। वह अत्यंत वीर है। अपनी वीरता के बल पर बड़े-से-बड़े शत्रु को पछाड़ने की शक्ति रखता है। जीवक वषुदि प्रेमी पिता है। वह अपनी मातृविहीन एकमात्र पुत्री मनोन्मणी की सुख-सुविधा का हमेशा ध्यान रखता है। वह सिद्धांतवादी और दृढ़प्रतिज्ञ है। भीषण परिस्थितियों में भी मित्रों को दिए गए वचन से नहीं डिगता। वह अपने कुलगुरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुंदरवडिवेलु का बहुत आदर करता है।

जीवक वपुदि अत्यंत अबोध है। वह प्रत्येक सफ़ेद पदार्थ को दूध समझता है। उसकी सिद्धांतवादिता कहीं-कहीं ज़िद्दीपन की सीमा में पहुँच गई है। वह एक बार जिस विचारधारा को अपना लेता है उसे नहीं छोड़ता। आलोचकों ने इसे 'एडुप्पार कैंप्पिळ्ळै' अर्थात् 'शक्तिशाली के हाथ का खिलौना' कहा है। विचारों की दृढ़ता का अभाव होने के कारण वह सदा प्रबल व्यक्ति का पक्ष लेता है। अपने कुलगुरु सुंदरवडिवेलु द्वारा समझाए जाने पर भी वह नाटक के खलपात्र कुडिलन के कपट-जाल में फँस जाता है।

जीवनधर्मयोग *(क० क्र०)*

'जीवनधर्मयोग' अथवा 'भगवद्गीता-तात्पर्य' कन्नड के प्रतिभाशाली साहित्यकार डॉ० डी० वी० गुंडप्पा (दे०) की प्रौढ़ कृति है। विद्वानों का कहना है कि तिलक जी के 'गीता-रहस्य' के पश्चात् इस शती में भारतीय भाषाओं में गीता पर लिखे ग्रंथों में यह सर्वश्रेष्ठ है। उनके अनुसार गीता मोक्षशास्त्र भी है, जीवनशास्त्र भी। उन्होंने प्रत्येक अध्याय का शीर्षक अपने ही ढंग से दिया है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में उसका सारांश तथा सूचना दी जाती है। प्रत्येक षटक के अंत में उसका सारांश एक पद में पूरा दिया गया है। पारिभाषिक शब्दों की अर्थ-व्याप्ति बढ़ा दी गई है। कहीं पूर्वापर विरोधाभास-सा लगता है तो उसका ठीक समाधान भी वे देते हैं। प्रत्येक अध्याय के निरूपण में यह दिखाने का प्रयास है कि गीता जीवन का मार्गदर्शन भी करती है। उपनिषद्, भागवत आदि से गीता की उक्तियों की समनुरूपता भी दी गई है। उनका कहना है कि गीता का बोध एक ग्रंथ या ग्रंथकर्ता का बोध नहीं बल्कि एक संस्कृति में अभिनिवेश है। इस ग्रंथ में रचयिता का उद्देश्य है—हमारे मताचार्यों में किसी का भी विरोध न कर आत्मविलोकन करना। जहाँ कहीं भिन्नाभिप्राय है वहाँ व्यक्ति के अपने मतानुसार अभिप्राय चुनने की छूट है। अतः खंडन-मंडन के पीछे वे नहीं पड़े। उनके अनुसार द्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत स्वतःसमर्पणु, स्वतःसहभाग एवं स्वतःविलयन के तीन सोपानों को दर्शाते हैं। गुंडप्पा जी ने 'गीतोपदेश' का सार एक ही बात में यों दिया है—जीव-संस्कार। उत्तम गति के लिए कुछ संस्कार वांछित हैं, उन संस्कारों का समूह ही कर्म है। डी० वी० एक रस-सिद्ध कवि भी हैं, श्रेष्ठ मनीषी भी। उनकी वाणी में चिंतन, भावना तथा कल्पना की त्रिवेणी है। उनकी भाषा अत्यंत सरल किंतु सक्षम है।

जीवन नुंपरोढ *(गु० क्र०)*

महात्मा गांधी (दे०) के भतीजे छगनलाल गांधी के पुत्र प्रभुदास गांधी (दे०)-रचित 'जीवन नुंपरोढ' एक संस्मरणात्मक आत्मकथा है जिसमें आत्मकथा-लेखक ने अपने बचपन से लेकर किशोरावस्था की अनेक घटनाओं व प्रसंगों के माध्यम से बापूजी के दक्षिण अफ़्रीका के जीवन व कार्य का इतिहास प्रस्तुत किया है। जुलाई, 1914 ई० तक बापूजी अफ़्रीका में रहे। तब तक के कार्य का विवरण इसमें है। मूलतः ये संस्मरण आश्रम की हस्तलिखित पत्रिका 'मधपूडो' के लिए लिखे गए थे। इनके पीछे काका कालेलकर (दे०) की प्रेरणा व प्रोत्साहन का बल रहा है। प्रथम भाग के 21, दूसरे भाग के 21, तीसरे भाग के 21 तथा चौथे के 20 व 2 परिशिष्ट सब मिलाकर कुल 632 पृष्ठों की पाठ्य सामग्री है।

प्रारंभिक पृष्ठों में गांधी-परिवार के पूर्वजों का संक्षिप्त इतिहास, गांधी जी के बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा व भारत लौटकर अफ़्रीका जाने का विवरण है। तत्पश्चात् लेखक के बचपन की अनेक घटनाएँ वर्णित हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि वे बहुत ही सामान्य स्तर के, अभ्यास-पराङ्मुख, हठाग्रही व उपद्रवी रहे। उनके काका मगनभाई गांधी के क्रोध के वे प्रायः भाजन होते थे। इन्हीं से लेखक का चरित्र-गठन व चरित्र-निर्माण हुआ। महात्मा गांधी से अवश्य उन्हें स्नेह व सद्गुणों की प्राप्ति हुई। टालस्टाय आश्रम, गोखले जी का अफ़्रीका में भव्य स्वागत तथा गांधी जी वगैरा की जेल-यात्रा आदि का सरस व प्रामाणिक वर्णन-विवरण लेखक ने इसमें दिया है। गुजराती में लिखित गांधी-साहित्य तथा संस्मरण व आत्मकथा साहित्य में प्रभुदास गांधी की इस रचना का महत्वपूर्ण स्थान है।

जीवनर दावी *(अ० क्र०)*

लेखक : कामाख्या सभापंडित।

उदीयमान उपन्यासकार की इस कृति में एक साधारण प्रेस-मज़दूर की आशा-आकांक्षाओं और उसके जीवन की व्यर्थता का चित्र खींचा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनर बाटत *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1945 ई०]

लेखक : बिरिंचिकुमार बरुवा (दे०)।

जीवन की बाट, जीवन का गतिपथ ऋजु नहीं है—यही इस उपन्यास में बताया गया है। कथा इस प्रकार है—गाँव की भोली युवती तगर सहेली के विवाह में आए हुए एक शहरी युवक कमलाकांत से परिचित होती है। अत्यंत स्वाभाविक रीति से दोनों के मध्य प्रणय का विकास होता है। तगर के प्रेम में आधुनिक-काल की प्रगलभता नहीं है, वह लज्जाशीला है। कमलाकांत उसे अँगूठी पहना कर शहर चला जाता है और उसे दुष्यंत (दे०) के समान भूल जाता है। पिता भी पुत्री की इच्छा-अनिच्छा की चिंता न कर उसका विवाह धरणी मास्टर से कर देता है। तगर को अपनी विधवा सास के अत्याचार सहने पड़ते हैं। यहाँ सास की मनोदशा बहुत ही स्वाभाविक रीति से चित्रित है, वह अपने पुत्र को बहू की ओर उन्मुख देख दुखित होती है। तगर की शिशु-संतान सास-बहू के मध्य सेतु का कार्य करती है। सास के व्यवहार का परिवर्तन भी सूक्ष्मता के साथ दिखलाया गया है। आगे धरणी बंदी बनाया जाता है, यक्ष्मा से उसकी मृत्यु हो जाती है। सास भी मर जाती है। पुलिस तगर के घर की तलाशी लेती है, इसी बीच कमलाकांत को तलाशी में अँगूठी मिल जाती है और उसे अपने प्रणय की याद आ जाती है। इस प्रकार यह उपन्यास 'अभिज्ञान-शाकुंतल' (दे०) का आधुनिक संस्करण बन जाता है। इसमें असमीया की ग्रामीण प्रथा-रीति और सामाजिक परिवेश का सुंदर चित्र है। यह असमीया का प्रसिद्ध उपन्यास है।

जीवनलीला *(गु० कृ०)*

'जीवनलीला' नामक ग्रंथ काका कालेलकर (दे०) के लिखे हुए प्रकृति-संबंधी सत्तर लेखों का एक संग्रह है। लेखों के बाद श्री नगीनदास पारेख ने 'अनुबंध' शीर्षक के अंतर्गत 97 पृष्ठों में विभिन्न लेखों से संबंधित टिप्पणियाँ दी हैं। पुस्तक के अंत में एक सूची भी दे दी गई है। सर्वप्रथम इस ग्रंथ की सामग्री 'लोकमाता' के रूप में प्रकट हो चुकी थी। बाद में साहित्य अकादेमी के आग्रह पर मूल 'लोकमाता' में कुछ और लेखों को जोड़कर 'जीवन-लीला' तैयार हुई। इसका प्रकाशन 1956 ई० में हुआ था और इसकी दूसरी आवृत्ति 1959 ई० में प्रकाश में आई। काका कालेलकर ने स्वयं यायावरी जीवन अपना कर भारत के कोने-कोने का प्रवास किया था। प्रवास में आने वाले वे सभी स्थल जहाँ जल अपनी संपूर्ण सत्ता के साथ कल्लोल करता हुआ मिला, कालेलकर जी के संस्मरणात्मक लेखों के विषय बनते चले गए। लेखक की दृष्टि में यह लेखन केवल साहित्य-विलास नहीं है अपितु भारतभक्ति का एक प्रकार है। इन लेखों के माध्यम से लेखक ने भारत की नदियों, सरोवरों, संगमों—यहाँ तक कि मरुप्रदेश में जल का आभास देने वाली मरीचिकाओं को अपनी भक्ति-कुसुमांजलि अर्पित की है। जीवन द्विअर्थक है: ज़िंदगी और जल। जल के साथ ज़िंदगी किस प्रकार जुड़ी है, इसका प्रमाण लेखक के इन निबंधों में उपलब्ध होता है। लेखक स्वयं कहता है: "नदी और जीवन का क्रम समान है। नदी स्वधर्म के प्रति वफ़ादार रहती है और अपनी कुल-मर्यादा का रक्षण करती है; अतः प्रगति करती है। और अंत में नामरूप का त्याग कर सागर में अस्त हो जाती है। अस्त होने पर भी वह नष्ट नहीं होती। यह है नदी का क्रम! जीवन और जीवन-मुक्ति का भी यही क्रम है।" प्रस्तुत पुस्तक में लेखक की दृष्टि भक्ति की तो रही ही है, पर प्रकृति के संपूर्ण सौंदर्य को पी जाने और तद्भूत गहरे उल्लास का बोध भी प्रत्येक स्थल पर प्राप्त होता है। लेखक की शैली सर्वत्र बड़ी सजीव और भाषा अत्यधिक सरल है। वर्णनों की चित्रात्मकता दर्शनीय है। प्रकृति-वर्णन करने वाले प्रत्येक साहित्यकार को—भारतीय साहित्यकार को—इसे पढ़ जाने की संस्तुति की जा सकती है। यों प्रवास-साहित्य अब काफ़ी मात्रा में उपलब्ध होने लगा है पर अपनी यथार्थता, रमणीयता और वर्णन में उच्छलता के कारण 'जीवनलीला' का अपना एक अलग महत्त्व है।

जीवन-शोधन *(गु० कृ०)*

गांधी जी के प्रिय, गांधी-युग के चिंतक, श्री किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला (दे०)-रचित 'जीवन-शोधन' लेखक के तत्त्व-चिंतन का प्रामाणिक व आधारभूत ग्रंथ है। श्री किशोरलाल जी जीवनदर्शी चिंतक रहे हैं। उनके इस ग्रंथ में छह खंडों में अधिकांश दार्शनिक सिद्धांतों की मीमांसा की गई है।

प्रथम खंड में चतुर्थ पुरुषार्थ-मोक्ष, शोधार्थी के गुण, धार्मिक जीवन के सिद्धांत, आश्रम-धर्म व समाज-धर्म आदि का सम्यक् विवेचन किया गया है। दूसरे खंड में जगत्, उसकी उत्पत्ति का कारण, चित्त और चैतन्य, सगुण ब्रह्म, उसकी उपासना-पद्धति, परमात्मा की साधना, श्रद्धालु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नास्तिकता, उपासना, मरणोत्तर स्थिति आदि की मीमांसा है। तीसरे खंड में भक्ति, आराधना, भक्ति-धर्म, गुरु-सद्-गुरु-शरणागति, गुरु-भक्ति और पूजा-सद्भाव एवं सत्संग, भक्ति-प्रकरणों का तात्पर्य आदि की चर्चा की गई है। चतुर्थ खंड में वैराग्य, उपाधि, संन्यास, भिक्षा, अपरिग्रह, बाह्याडंबर, स्वाभिमान, कर्मवाद, अध्यात्मवाद, देहसंबंध, वासनाक्षय, पूर्वग्रह, जीव-ईश्वर, अवतारवाद, निर्गुण और गुणातीत, सर्वत्र मैं और सर्वत्र राम, मायावाद, लीलावाद, पूर्णता, अज्ञान का स्वरूप और सर्वज्ञता आदि विषय समाविष्ट हैं। पंचम खंड में सांख्य-दर्शन तथा वेदांत-दर्शन पर विचार किया गया है। प्रकृति, महत्व, अहंकार, महाभूत, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि आदि पंचमहाभूत तन्मात्राएँ, कर्मेंद्रिय, ज्ञानेंद्रिय, पुरुष, आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। षष्ठ खंड में योग-विचार किया गया है। योग का अर्थ, विरोध के लक्षण, योग मार्ग, फल, योग का महत्व, साक्षात्कार आदि का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

पुस्तक की प्रस्तावना स्वामी केदारनाथ जी ने लिखी है। पुस्तक का प्रकाशन नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से हुआ है। पृ० सं० 374 है। गुजराती भाषा में रचित दर्शनशास्त्र-संबंधी ग्रंथों में यह अति महत्वपूर्ण ग्रंथ है। एक ही स्थान पर विविध दर्शनों का इतना स्पष्ट, सरल, सूक्ष्म तथा जीवन से संपृक्त ऐसा विवेचन गुजराती में दुर्लभ है।

जीवन-संगीत (उ० कृ०)

जीवन-संगीत राजकिशोर राय (दे०) का कहानी-संकलन है। इसमें कहीं स्वतंत्र भारत की सर्वग्रासी दुर्दशा, आपाधापी और भयंकर निर्धनता का चित्रण है, तो कहीं जीवन के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चरित्रोद्घाटन का प्रयास मिलता है। कथन-भंगी अपूर्व है। कहानियों में कलात्मकता अधिक है। शैली रमणीय और गरिमामयी है। 'जीवन-संगीत' कहानी में छिद्रान्वेषी, पर श्री-कातर समाज का नग्न-चित्र है। 'क्षमा-प्रार्थना' में आधुनिक गुरु-शिष्य-परंपरा पर कठोर आघात है। 'आलोक-रंजित पथ' में महाप्राण अँग्रेज पादरी तथा हमारे समाज के क्षुद्रहृदय ईसाइयों का चित्रण है। 'रूपकथा' में मानव के वास्तविक रूप की संदिग्धता और अस्पष्टता चित्रित है। 'अखंड ज्योति' में स्वतंत्र भारत का अन्याय-चित्र है—पहले जहाँ आशा की अखंड ज्योति प्रज्वलित होती थी आज वहाँ मृत्यु और निराशा की अखंड ज्योति जल रही है। 'लारा फ्रांकलिन' में स्वाधीन भारत की भयंकर निर्धनता का चित्रण है, जहाँ जीवित रहने के लिए माँ को पुत्र को बेचना पड़ता है। समग्र रूप से यह एक सशक्त रचना है।

जीवनी (हिं० पारि०)

वैसे तो सभी साहित्यिक विधाओं का विषय मनुष्य होता है पर जीवनी-लेखक प्रसिद्ध व्यक्ति को अपने अध्ययन का विषय बनाकर, उसके संबंध में विभिन्न स्रोतों—व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखे गए पत्र, डायरी, पुस्तक आदि, समकालीनों के संस्मरण, उसके मित्रों, संबंधियों से वार्तालाप, पत्र-व्यवहार, उस व्यक्ति से संबद्ध स्थानों के भ्रमण तथा उस पर अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखे गए ग्रंथों—से आधिकारिक जानकारी प्राप्त कर उसके सर्वांगीण जीवन और व्यक्तित्व का चित्र उपस्थित करता है। वह व्यक्ति के गुण और दोष—सभी पर प्रकाश डालता है। डॉ० जॉनसन के शब्दों में, 'जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की उन घटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्ति-विशेष की बड़ी-से-बड़ी महानता से लेकर छोटी-से-छोटी घरेलू बातों से संबंधित होते हैं। जीवनी में व्यक्ति का संपूर्ण जीवन-वृत्त भी आ सकता है और वह उसके एक काल या चरित्र-पक्ष पर भी लिखी जा सकती है। वस्तुपरक वैज्ञानिक दृष्टि होते हुए भी जीवनी-लेखक जीवन का नीरस इतिहास मात्र प्रस्तुत नहीं करता; उसमें जीवनी-लेखक का व्यक्तित्व भी मुखरित हो उठता है। वह शास्त्रीय ग्रंथ न होकर कोमल साहित्यिक विधा है, इसीलिए लिटन स्ट्रैची ने कहा है, 'जीवनी लेखन-कला का सबसे सुकोमल और सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप है।' पर लेखक को राग-द्वेष से मुक्त होना चाहिए—नायक के प्रति अपने द्वेष एवं श्रद्धा-भाव दोनों को पीछे रख निष्पक्ष चित्र प्रस्तुत करना चाहिए।

जीव मनःकरण संलाप कथा (अप० कृ०) [रचना-काल—1184 ई०]

'जीव मनःकरण संलाप कथा', 'कुमारपाल प्रतिबोध' के अंतर्गत एक धार्मिक कथाबद्ध रूपक काव्य है। जैसा कि इस कृति के नाम से ही स्पष्ट है इसमें जीव, मन और इंद्रियों का परस्पर संलाप है। इन सबको पात्र-रूप में चित्रित किया गया है। देह नामक नगरी में लावण्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी का निवास है। इस नगरी के चारों ओर आयु-कर्म का प्राकार है। वहीं आत्मा नामक नरेंद्र बुद्धि की महादेवी के साथ राज्य करता है। उनका प्रधानमंत्री मन है। पाँचों इंद्रियाँ पाँच प्रमुख राजपुरुष हैं। एक बार राज्यसभा में दुःख के कारण पर विवाद उठता है। मन अज्ञान को, राजा मन को, मन इंद्रियों को दुःख का मूल कारण बताता है। इस प्रकार कभी इंद्रियों को, कभी मन को, कभी कर्मों को, कभी काम-वासना को दुःख का मूल कारण बताया जाता है। अंत में आत्मा स्वानुभूति से उन्हें प्रशम का उपदेश देता है।

इस कथा में उपदेश-भावना प्रधान है। कवित्व के सौंदर्य का अभाव है। कथा में मनोरंजन-तत्त्व भी नहीं हैं। बीच-बीच में सुभाषित अवश्य दृष्टिगत होते हैं।

जीवी *(गु० पा०)*

पन्नालाल पटेल (दे०)-रचित 'मळेला जीव' (दे०) नामक उपन्यास की नायिका जीवी जाँगीपरा गाँव की सीमा पर स्थित झोंपड़ी में रहने वाले एक वृद्ध नाई की बीस वर्षीया साग के सोटे-सी देहलता वाली स्वस्थ लड़की है जिसमें कौमार्य की लज्जा और यौवन की मस्ती के बीच द्वंद्व चल रहा है। पहले ही दर्शन में हमें जीवी हरी छींट का घाघरा और चोली पहने हुए दिखाई देती है। कस कर बँधे हुए कपड़े पर टँका हुआ गोटा पीन वक्ष-स्थल पर क्रीड़ा कर रहा है और उसकी लपकती चाल को और अधिक समृद्ध बना रहा है। इसी गोटे में कानजी का मन उलझा रह गया। प्रथम दर्शन में ही कानजी को ऐसा लगा कि जीवी की नज़र जैसे उसके हृदय से कुछ उठा कर ले गई और उसके बदले में अपना कुछ रख गई। तदुपरांत दोनों की निगाहें मिलीं और झुक गईं।

यही जीवी का कानजी से परिचय है जो विश्वास और समर्पण की उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जहाँ कानजी के कहने पर ही जीवी अपात्र धुला नाई के साथ भागकर उसके घर बैठने को तैयार हो जाती है। गाँव के संकुचित व्यवहार, कानजी की विवशता और धुला की ईर्ष्या के कारण वह रोज़ अपने पति की मार खाती है, चुप रहती है पर किसी से शिकायत नहीं करती—केवल इसी भरोसे कि कानजी उससे प्रेम करता है और शायद यह सब उसके प्रेम का ही अंग है। जीवी सभी कुछ सहती है; विवश हो कानजी के बाहर चले जाने पर धीरे-धीरे टूटती चली जाती है; आत्महत्या के लिए साधन जुटाती है जिसका अनचाहे ही शिकार बन जाता है उसका पति (दे० मळेला जीव) और तब वह वैधव्य को भी भोगने के लिए यंत्रवत् काम करने लगती है। पर जब एक बार कानजी गाँव आकर जीवी से बिना मिले ही चला जाता है; तो जैसे उसका रहा-सहा धीरज भी साथ छोड़ देता है। सभी कुछ सह लेने वाली जीवी 'निजानंद' में डूब जाती है—पागल हो जाती है। पागल होने पर भी जीवी की आत्मा तो कानजी के साथ ही रहती है इसीलिए तो लोग पूछते हैं कि 'तूने अपने पति को ज़हर क्यों दे दिया?' 'मेरा पति? वह तो परदेश कमाने गया है।' वह उत्तर देती है और लजा जाती है। अंततः जीवी कानजी को प्राप्त तो करती है पर उस समय जब उसमें प्राप्ति-बोध ही नहीं रहता। जीवी का संपूर्ण चरित्र जिस व्यथा से पूर्ण है वह पाठक को संवेदित किए बिना नहीं छोड़ती। उपन्यास का अंत होते-होते पाठक के हाथ केवल अवसाद के कण ही रह जाते हैं, कथा पीछे छूट जाती है। आत्माओं के मिलन की इस कथा में लेखक ने जीवी के चरित्र-निरूपण में पर्याप्त सहानुभूति से काम लिया है। जीवी का अंतर्द्वंद्व अनेक स्थानों पर अत्यंत मुखर हो उठा है। कुछ ही स्थल ऐसे हैं जहाँ घटनाएँ चरित्र पर हावी हो गई हैं और चरित्र घटनाओं के प्रवाह में बहता हुआ प्रतीत होता है। फिर भी यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि जीवी गुजराती साहित्य की अद्वितीय पात्र-सृष्टि है।

जुत्शी, सोमनाथ *(कश्० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

ये प्रारंभ से ही प्रगतिशील विचारधारा के लेखक रहे हैं। विभाजनोत्तर काल के सांस्कृतिक पुनर्जागरण युग में ये प्रगतिशील आंदोलन में सक्रिय रहे। प्रारंभ में ये उर्दू में लिखते रहे, बाद में कश्मीरी भाषा में कहानियाँ लिखीं। इनकी पहली कहानी है 'यलि गाश फ्वोल' (जब भोर हुई) जो ऊँचे स्तर की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने और तीन-चार कहानियाँ लिखीं। 'व्यथि हन्य बॅठ्य ज़:' (वितस्ता के दो किनारे), 'नोव मकान:' (नया मकान), 'अमानत' (धरोहर), 'पोछ़' (अतिथि), आदि अनेक रेडियो एवं मंच-नाटक हैं। इन्होंने प्रसिद्ध नाटककार इबसन के नाटक 'The Wild Duck' का अनुवाद भी किया है जो 'थुज' नाम से प्रकाशित हुआ है।

'जुरअत' *(उर्दू० ले०)*

इनका बचपन का नाम यहा अमान था परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद में ये कलंदर बख्श के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'जुरअत' इनका उपनाम था। वे शाह आलम सानी के सुपुत्र मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के दरबारी कवि थे। जाफ़र अली ख़ाँ 'हसरत' इनके काव्य-गुरु थे। इन्हें संगीत और ज्योतिष-शास्त्र में भी बड़ी रुचि थी। दुर्भाग्यवश यौवनावस्था में ही ये नेत्रहीन हो गए थे। अपने समय के समर्थ कवियों में इनकी गणना होती थी। इन्होंने ग़ज़ल, रुबाई, वासोख़्त, मुख़म्मस और हिज्व आदि अनेक काव्य-विधाओं में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी भाषा स्पष्ट, सरल, शुद्ध और मुहावरेदार है परंतु इनमें कल्पना की उड़ान और भावों की गंभीरता का अभाव है। इनके काव्य में तत्कालीन ह्रासोन्मुख विलासप्रिय समाज की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। इनका 'दीवान' (काव्य-संग्रह) दुर्लभ है।

जैंतली, कृष्णचंद्र टोपणलाल *(सिं० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। बचपन से ही इन्होंने सिंधी के साथ-साथ हिंदी तथा संस्कृत का भी अध्ययन किया है और इन भाषाओं पर इन्हें अच्छा अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त ये मराठी, गुजराती, पंजाबी, बँगला और अँग्रेज़ी भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता हैं। विद्यार्थी-जीवन से ही इनकी रुचि भाषाओं के अध्ययन और अनुसंधान के प्रति रही है। देश-विभाजन के पश्चात् ये पूना में स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं। भाषा, लिपि, सिंध के इतिहास, सिंधी साहित्य आदि विषयों पर इनके कई गवेषणापूर्ण निबंध सिंधी, हिंदी तथा संस्कृत भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी रचनाओं में 'सिंधी भाषा का संक्षिप्त परिचय' (1957) नामक पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसंधान के क्षेत्र में इनका कार्य अविस्मरणीय है।

जैंतली, मुरलीधर कृष्णचंद्र *(सिं० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। माध्यमिक स्तर तक सिंध में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने उच्च शिक्षा पूना विश्वविद्यालय में प्राप्त की है। डेक्कन कालेज, पूना में भाषाविज्ञान का अध्ययन कर इन्होंने सिंधी भाषा पर शोध-प्रबंध लिखकर 1966 ई० में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। आजकल ये दिल्ली विश्वविद्यालय में सिंधी का अध्यापन कार्य कर रहे हैं। इनकी रुचि सिंधी भाषा-साहित्य और सिंध के इतिहास का अनुसंधान करने के प्रति अधिक रही है। इस क्षेत्र में इनके लगभग चालीस निबंध विभिन्न सिंधी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। 1972 ई० में 'सिंधी साहित्य जो इतिहास' (दे०) नामक इनकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जो सिंधी साहित्य के इतिहास पर प्राप्त अन्य सभी रचनाओं से निराले ढंग की है। इसमें आरंभ से लेकर 1970 ई० तक सिंधी साहित्य की प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है और साथ-साथ सिंधी साहित्य के काल-विभाजन का भी आलोचनात्मक दृष्टि से निर्णय किया गया है।

जैन-आगम *(प्रा० क्रृ०)*

आर्ष अथवा अर्धमागधी प्राकृत में लिखे हुए जैन-सिद्धांत-ग्रंथों को मौखिक परंपरा में आगमन के कारण 'आगम' कहा जाता है। इनकी संख्या 45 या 46 है—12 अंग (जिनमें एक उपलब्ध नहीं होता), 12 उवंग (उपांग), 10 पइन्ना (प्रकीर्ण), 6 छेयसुत्त (छेद सूक्त), 4 मूल सुत्त और दो स्फुट ग्रंथ नंदी और अनुयोगदार। कहीं-कहीं इस संख्या में व्यतिक्रम भी पाया जाता है। कुछ लोग इनमें 30 प्रकीर्णक और 12 निज्जुत्तियाँ (निर्युक्तियाँ) और जोड़ देते हैं। यह समस्त साहित्य महावीर (दे०)-वाणी माना जाता है किंतु इसमें इतना परिवर्तन-परिवर्धन हुआ है कि निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि इनमें कितना अंश महावीर-वाणी है और कितना बाद में जोड़ा गया हैं। कहा जाता है कि महावीर स्वामी ने 11 गणधरों (दे०) को 14 पुव्वो (पूर्वों) का उपदेश दिया था जो काल-दोष से लुप्त हो गया। उनका ज्ञाता केवल एक व्यक्ति रह गया। उसी के माध्यम से इनका ज्ञान 6 पीढ़ियों तक बना रहा। चंद्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल में 12 वर्ष के भयानक दुष्काल में जैन प्रमुख भद्रबाहु (दे०) दक्षिण में कर्णाटक को चले गए। इससे पूर्वों के सर्वथा लुप्त होने की संभावना उत्पन्न हो गई। तब स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में एक सभा आयोजित की और 11 अंगों को लिपिबद्ध किया। पूर्वों का भी जो अंश याद था और जो नेपाल जाकर ज्ञात किया जा सका उसे 'दिट्ठिवाय' नाम से बारहवें अंग के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। तीसरी-चौथी शती में जब पुनः अकाल पड़ा और पुनः महावीर-वाणी के लुप्त होने की संभावना उत्पन्न हो गई तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य स्कंदिल ने मथुरा में दूसरी सभा आयोजित कर आगमों का उद्धार किया। उसके कुछ समय बाद वलभी (गुजरात) में देवर्धि क्षमा श्रमण की देखरेख में तीसरी सभा आयोजित की गई। उसमें इन पवित्र ग्रंथों का संकलन कर उन्हें लिपिबद्ध कर दिया गया। आज के उपलब्ध 'आगम' वे ही हैं जिनका वलभी में संकलन किया गया था। इसमें 'दिट्ठिवाय' को छोड़कर 11 अंग विद्यमान हैं। ये आगम दिगंबरों के मान्य ग्रंथ हैं। श्वेतांबर लोग इन्हें पूर्ण प्रामाणिक नहीं मानते क्योंकि उनके मत में महावीर-वाणी बहुत पहले लुप्त हो चुकी है।

जैनेंद्र कुमार *(हिं० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार, निबंधकार तथा विचारक हैं। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ ज़िले के कोड़ियागंज नामक स्थान में हुआ। अपने जन्म के दो वर्ष बाद ही इन्हें पितृ-स्नेह से वंचित होना पड़ा तथा माता एवं मामा ने ही इनका पालन-पोषण किया। इनकी प्रारंभिक शिक्षा हस्तिनापुर के उस गुरुकुल में हुई जिसकी स्थापना इनके मामा ने की थी। इन्होंने गुरुकुल में बहुत थोड़े समय तक ही अध्ययन किया और सन् 1919 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के निमित्त इन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया किंतु दो वर्ष बाद ही विश्वविद्यालय छोड़ दिया और काँग्रेस के असहयोग आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली चले आए। ये कुछ समय तक लाला लाजपतराय के 'तिलक स्कूल ऑफ़ पालिटिक्स' में भी रहे, लेकिन बाद में उसे छोड़कर व्यापार में प्रवृत्त हो गए। व्यापार में असफल रहने के बाद ये 1931 ई० में नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रों के संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। तद्युगीन ब्रिटिश सरकार ने इन्हें उसी वर्ष बंदी बना लिया और तीन मास जेल-प्रवास के बाद कलकत्ता आदि स्थानों पर आजीविका के निमित्त घूमते हुए अंततः ये लेखन की ओर प्रवृत्त हो गए। अब तक इन्होंने उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण आदि विविध विधाओं को अपने लेखन से समृद्ध करते हुए हिंदी साहित्य में अपना स्थायी स्थान बना लिया है। इन्होंने कतिपय महत्वपूर्ण नाटकों तथा कहानियों का अनुवाद भी किया है किंतु इनका मुख्य देय उपन्यास और कहानियों के क्षेत्र में ही रहा है। 'परख' (1929), 'सुनीता' (दे०) (1935), 'त्यागपत्र' (दे०) (1937), 'सुखदा' (1953), 'जयवर्द्धन' (1956), 'मुक्तिबोध' (1966) आदि इनके बहुचर्चित एवं उल्लेखनीय उपन्यास हैं तो 'फाँसी' (1929), 'वातायन' (1930), 'नीलम देश की राजकन्या' (1933), 'पाजेब' (1942) आदि संग्रहों में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ संकलित हैं। 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (1953), 'सोच-विचार' (1953) इनके उल्लेखनीय निबंध-संग्रह हैं तथा 'ये और वे' (1954) में इनके संस्मरण संकलित हैं। हिंदी उपन्यास के इतिहास में ये मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। घटनाओं की संघटनात्मकता के स्थान पर चरित्र-सृष्टि पर बल देते हुए पात्रों के अंतर्मन को रूपायित करना तथा मनोविज्ञान और दर्शन का समुचित समन्वय इनके उपन्यास-लेखन की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। इनके उपन्यासों में पुरुष पात्रों के स्थान पर नारी-पात्रों की प्रधानता है और ये नारी-पात्र भीषण मानसिक संघर्ष से गुज़रते हुए सारे उपन्यास में छाए रहते हैं। कहानी-लेखन के क्षेत्र में यद्यपि इन्होंने राष्ट्रीय, सामाजिक आदि विभिन्न प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं किंतु मुख्यता दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक कहानियों की ही रही है। उपन्यासों के समान इन कहानियों में भी बाह्य जीवन की हलचल के स्थान पर मन के भीतरी द्वंद्व को उभारने का प्रयत्न किया गया है। निबंधों के अंतर्गत इन्होंने साहित्य, कला, धर्म, दर्शन, समाज, राष्ट्र आदि की विभिन्न समस्याओं को कथ्य के रूप में संकलित करते हुए अपने मौलिक चिंतन के द्वारा विषय का स्पष्ट विवेचन किया है। विषयानुरूप भाषा तथा सूत्रों जैसे छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषता है।

जैमिनि *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—300 ई०]

रचना—मीमांसा-सूत्र। बादरायण (दे० 'व्यास', बादरायण) और जैमिनि दोनों ने एक-दूसरे के मत को उद्धृत किया है। अतः दोनों को समसामयिक मानना युक्तिसंगत होगा। जैमिनि के 'मीमांसा-सूत्र' में द्वादश अध्याय तथा 2500 सूत्र हैं। 'मीमांसा-सूत्र' पर शबर स्वामी (दे०) का भाष्य है।

जैमिनि ने मीमांसा-सूत्र का आरंभ धर्म की जिज्ञासा से किया है। धर्म की परिभाषा करते हुए जैमिनि ने कहा है कि जिसके लिए प्रेरणा हो वह धर्म है—'चोदनालक्षणार्थो धर्मः'। जैमिनि यज्ञ-संबंधी धर्म के विशेष प्रतिपादक थे। जैमिनि का यह यज्ञ संबंधी धर्म भी वैदिक है। इस प्रकार जैमिनि के अनुसार वेद जिस कर्म को इष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक समझता है, वही धर्म है और जो कर्म वैदिक दृष्टि से अहितकर है, वही अधर्म है। जैमिनि ने विधि एवं अर्थवाद की पद्धति से यज्ञ-कृत्यों का प्रतिपादन किया है। अर्थवाद से भी निंदा, प्रशंसा, परकृति एवं पुराकल्प रूप से चार भेद हैं।

मीमांसा दर्शन के अंतर्गत शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, संभव और अभाव, ये सप्त प्रमाण स्वीकार किए गए हैं। जैमिनि का मीमांसा दर्शन अनेकात्मवादी एवं अनीश्वरवादी है। जैमिनि वेद की स्वतः-प्रामाण्य सिद्धि के समर्थक हैं।

यह कहना उचित ही होगा कि अन्य दर्शनों की अपेक्षा विशाल होने पर भी मीमांसा-सूत्र में दर्शन का अंश न्यून रूप में ही मिलता है। परंतु वैदिक धर्म के प्रतिपादन एवं कर्मकांड-विचारधारा के पोषण की दृष्टि से जैमिनि का योगदान अत्यंत मूल्यवान कहा जाएगा।

जैमिनि-भारत (क० कृ०) [रचना-काल –सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

इसके रचयिता लक्ष्मीश (दे०) हैं जिनका समय अनुमानतः 1550 ई० के क़रीब ठहरता है। लक्ष्मीश के जीवन व मत के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार वे हरिहराभेदी भागवत संप्रदाय के अनुयायी थे। इसी कारण 'जैमिनि-भारत' संस्कृत 'जैमिनि-भारत' का संग्रहानुवाद है। मूल के 62 अध्यायों की सामग्री यहाँ 34 अध्यायों में संगृहीत है।

लक्ष्मीश की यह कृति मूल की अनुकृति नहीं है। यत्र-तत्र परिवर्तन व परिवर्धन भी किए गए हैं। शृंगार, भक्ति एवं वीर रस को विशेष महत्व दिया गया है। मूल के अनुसार बभ्रुवाहन घोड़े के ललाट-पट्ट के लेख को देखकर, अपने और अर्जुन के संबंध को जान, अर्जुन को घोड़ा सौंप देता है। किंतु इसमें अपनी माता चित्रांगदा के उपदेशानुसार वह वैसा करता है। सुधन्वा, मयूरध्वज, वीरवर्मा, चंद्रहास आदि वीर यहाँ परमभागवत के रूप में आते हैं। लक्ष्मीश का 'जैमिनि-भारत' वीर-भक्तों का कथा-कोश है। उसमें खड्ग-कमल में नाचने वाली भक्ति-वधू को हम देख सकते हैं। लक्ष्मीश की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने पुराण-प्रधान कथानक को काव्य-प्रधान कथानक के साँचे में ढाल दिया है। वे एक श्रेष्ठ कहानीकार हैं। कहानी सुनाते-सुनाते वह सुंदर चित्र खींचते हैं और उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा देते हैं। उनके काव्य की नाद-माधुरी सचमुच अद्भुत है। सीता-परित्याग, चंद्रहास का बाल्य, सुधन्वा का युद्ध, मयूरध्वज की भक्ति आदि ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं जिन्हें कर्णाटक के अपढ़ लोग भी जानते हैं। इसमें कथा की एकता की अपेक्षा भक्ति की एकता है। इन विशृंखलित कहानियों को जोड़ने वाला सुवर्ण-सूत्र है भक्ति। चंद्रहास की कथा में लक्ष्मीश की कथन-शैली का चरमोत्कर्ष है। लक्ष्मीश ने अपने काव्य को 'कृष्ण-चरितामृत' कहा है। वीर योद्धा अर्जुन को इसलिए ललकारते हैं कि उसकी रक्षा के लिए कृष्ण आएँगे और उनके दर्शनों का पुण्य मिलेगा। इस दृष्टि से कृष्ण ही इसके नायक हैं। वीरत्व एवं भक्ति का यह संगम कर्णाटकी भक्ति की एक विशेषता है।

लक्ष्मीश का 'जैमिनि-भारत' षट्पदी छंद में लिखा गया है। सचमुच इस छंद में षट्पदी के गुंजन को हम यहाँ सुन सकते हैं। देशी एवं मार्गी शैली का सुंदर समन्वय इसकी भाषा में है। डा० मुगली (दे०) ने लक्ष्मीश को महाकवि मानते हुए भी 'जैमिनि-भारत' को आंशिक रूप में महाकाव्य माना है। 'जैमिनि-भारत' कर्णाटक का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य है।

जैमिनीभारतमु (ते० कृ०) [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम संमुखवेंकट कृष्णप्प नायकुडु है। ये दक्षिण की मथुरा रियासत के शासक विजयरंग-चोक्कनाथुडु (शासन-काल 1704-1731 ई०) के सभाकवि तथा एक सेनाध्यक्ष भी थे। 'जैमिनीभारतमु' पाँच आश्वासों का एक गद्य-काव्य है। संस्कृत के 'जैमिनि-भारत' का अश्वमेध पर्व ही प्रचार में है। पिल्ललमर्रि पिनवीरभद्रुडु (दे०) ने इसे तेलुगु में पद्यकाव्य के रूप में लिखा। उक्त पद्यकाव्य को वेंकट कृष्णप्प नायकुडु ने गद्य-बद्ध किया। अश्वमेध-याग के लिए भीम तथा अर्जुन द्वारा की गई विजय-यात्राओं का वर्णन ही इस काव्य का कथानक है। इसकी रचना प्रौढ़ है और इसमें यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। इसमें उद्दालक की कथा, कुश-लवोपाख्यान तथा चंद्रहासोपाख्यान आदि अत्यंत मनोहर हैं। युद्ध-वर्णन भी सहज तथा सुंदर है। तेलुगु में परंपरा के रूप में सर्वप्रथम गद्यकाव्य लिखने की ख्याति मथुरा रियासत के शासकों तथा सभाकवियों को प्राप्त हुई। आज प्रचार में स्थित उस समय की इनी-गिनी गद्य-रचनाओं में 'जैमिनीभारतमु' सर्वश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानी जाती है।

जोडणीकोश *(गु० कृ०)* [प्रथम आवृत्ति—1929 ई०]

गुजराती जोडणीकोश गांधीजी (दे०) द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, का सबसे महत्व-पूर्ण प्रकाशन है। पहली आवृत्ति से लेकर अब तक जितनी भी आवृत्तियाँ पाठकों के समक्ष आ चुकी हैं उन सभी में भाषा की जीवंतता को ध्यान में रखकर न केवल शब्दों की संख्या में ही वृद्धि हुई है अपितु कुछ नियमों पर भी पुनर्विचार किया गया है। इस कोश में लगभग एक लाख संदर्भ हैं। पहली आवृत्ति में वर्तनी-संबंधी 33 नियम भी दिए गए हैं और जो शब्द इन नियमों में बँध नहीं पाए हैं उनके लिए अपवादों की भी चर्चा की गई है। इसके अति-रिक्त कोश का उपयोग करने वालों के लिए आवश्यक सूचनाएँ, अतिशय प्रयुक्त होने वाले संकेतों की जानकारी, व्युत्पत्ति-संकेत, उच्चारण-संकेत तथा दूसरे अन्य चिह्नों की जानकारी दी गई है। इस कोश की प्रथम दो आवृ-त्तियों का दायित्व काका कालेलकर जी के सबल कंधों पर रहा था और शेष आवृत्तियाँ मगनभाई देसाई के संपाद-कत्व में तैयार की गई थीं। गुजराती भाषा में वर्तनी की जो अराजकता विद्यमान थी उसे इस कोश ने बहुत अंशों तक दूर किया है। इसकी अन्यतम महत्ता को प्रद-र्शित करने वाले गांधी जी के ये शब्द उद्धरणीय हैं : "हवे पछी कोईने स्वेच्छाअे जोडणी करवानो अधिकार नथी" (अब किसी को स्वेच्छा से वर्तनी करने का अधिकार नहीं है)।

जोतवाणी, मोतीलाल वाधूमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

इनका जन्म सिंध के प्रसिद्ध नगर सक्खर में हुआ था। ये स्थायी रूप से दिल्ली में रहते हैं और वहाँ के देशबंधु कालेज (सायंकाल) में सिंधी का अध्यापन कार्य करते हैं। सिंधी साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने कहानी, कविता, निबंध और आलोचना की उल्लेखनीय कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। इनके अतिरिक्त सिंधी रचनाओं को अनुवाद के द्वारा अँग्रेज़ी और हिंदी जगत् के सामने लाने का भी इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। सिंधी में इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'ख्याल' (निबंध-संग्रह), 'राजधानीअ जा साहित्यकार' (संपादन), 'अलंकार ऐं छंद' (काव्यशास्त्र), 'अनासिरनि जी साज़िश' (नयी कविताओं का संग्रह), 'परंपराहीन' (कहानी-संग्रह)। सिंध के प्रसिद्ध सूफ़ी संत कवि शाह अब्दुल करीम पर हाल में अँग्रेज़ी भाषा में इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

जोधराज *(हिं० ले०)*

जोधराज अलवर के समीपवर्ती नीवागढ़ या नीम-राणा के राजा चंद्रभान के आश्रित कवि थे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'हम्मीर रासो' है, जिसका रचना-काल 1728 ई० है। यद्यपि यह ग्रंथ पद्य में ही लिखा गया है, तथापि बीच-बीच में वचनिका, वार्तिक या वार्ता के नाम से गद्य का प्रयोग भी हुआ है। इसमें मात्रिक और वृत्त दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। यद्यपि जोधराज रीतिकालीन कवि हैं, फिर भी उन्होंने भूषण (दे०), लाल (दे०) और सूदन (दे०) के समान वीररस-विषयक काव्य लिखकर राष्ट्र की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की है। यह एक वर्णन-प्रधान काव्य है। रासो-पद्धति के अनुरूप इसके कथानक में भी प्रेम और युद्ध दोनों का संगम है। प्रेम पूर्वपीठिका के रूप में है, जिसका पर्यवसान युद्ध में होता है। ग्रंथ की मुख्य कथा अलाउद्दीन और हम्मीर के युद्ध से संबंधित है। विषय के अनुरूप इस काव्य की वर्णन-शैली कोमल भी है और कठोर भी। इस ग्रंथ की एक विशेषता यह है कि इसमें ओजगुण एवं वीर-रस का वातावरण उत्पन्न करने के लिए जानबूझकर भाषा को द्वित्ववर्ण अथवा संयुक्तवर्ण-प्रधान नहीं बनाया गया, अपितु भाषा का सहज रूप में प्रयोग किया गया है।

जोधसिंह, भाई *(पं० ले०)* [जन्म—182 ई०]

पंजाब के शैक्षणिक जीवन में डा० (भाई) जोधसिंह का बहुत प्रमुख स्थान है। 1906 ई० में इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से गणित में प्रथम श्रेणी में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और गणित के अध्यापक के रूप में ही प्रतिष्ठित हुए परंतु पंजाबी भाषा के प्रति गहरे आंतरिक लगाव के कारण गद्य-लेखक के रूप में भी सम्मानित हुए। सोलह वर्ष तक खालसा कालेज, अमृतसर के प्रिंसिपल रहने के बाद ये पंजाबी विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति नियुक्त हुए।

भाई जोधसिंह का लेखन मुख्यतः धार्मिक-दार्श-निक क्षेत्र का लेखन है। गंभीर चिंतन और मनन तथा वैज्ञानिक दृष्टि ने जीवन के दार्शनिक प्रश्नों को तर्कपूर्ण विश्लेषण द्वारा सुलझाना चाहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख रचनाएँ—'जीवन दा अरथ', 'गुरमतनिरणै', 'गुरु साहिब ते वेद', 'प्राचीन बीड़ां बारे' आदि।

'ज़ोर', मुहीउद्दीन क़ादिरी *(उर्दू० ले०)*

डा० 'ज़ोर' उसमानिया विश्वविद्यालय में उर्दू साहित्य के प्रोफ़ेसर रहे हैं। दकनी साहित्य पर इनका काम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उपन्यास, आलोचना, अनुसंधान, भाषाविज्ञान और साहित्य के इतिहास-लेखन से उर्दू साहित्य की इन्होंने पर्याप्त सेवा की है। इनका ज्ञान बड़ा विस्तृत है। इंगलैंड से साहित्य पर अनुसंधान करने के कारण इन्होंने पाश्चात्य आलोचना-पद्धति से उर्दू साहित्य को परिचित कराने में भरसक प्रयत्न किए हैं। इनकी अभिव्यंजना-शैली में गंभीरता और सरलता के साथ-साथ तरलता भी है। इनकी विभिन्न कृतियों में 'तनक़ीदी मक़ालात', 'रूह-ए-तनक़ीद', 'उर्दू शहपारे' (दे०) और 'हयात मुहम्मद कुली कुतुबशाह' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। एक सफल उपन्यासकार के रूप में भी इनकी प्रसिद्धि रही है। इनके तीन उपन्यास 'सैर-ए-गोलकण्डा', 'गोलकण्डा के हीरे' और 'तलिस्म-ए-तक़दीर' पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। 'इदारा अदबियात-ए-उर्दू' की स्थापना कर इन्होंने उर्दू साहित्य की विशेष रूप से सेवा की है। इस संस्था के माध्यम से अनेक अनुपलब्ध पुस्तकों के अतिरिक्त 'कुलियात-ए-सराज' तथा 'कुलियात-ए-कुतुबशाह' जैसी महत्वपूर्ण कृतियों का प्रकाशन इन्हीं के प्रयत्नों से हुआ है।

'जोश' मलीहाबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

'जोश' मलीहाबाद, ज़िला लखनऊ में पैदा हुए थे। इनका नाम शब्बीर हसन और तखल्लुस 'जोश' है। शायरी इन्हें विरासत में मिली। शायरी के साथ-साथ गद्यकार की भी अद्भुत प्रतिभा इनमें विद्यमान है। ये एक योग्य आलोचक तथा सफल पत्रकार भी हैं। राजनीति तथा अर्थशास्त्र आदि में पर्याप्त रुचि रखते हैं।

'जोश' नज़्म कहने में सिद्धहस्त हैं। इनकी ग़ज़लों में भी नज़्म का अंदाज़ पाया जाता है। इनकी नज़्मों में दरिया की-सी रवानी होती है। भावानुकूल शब्दावली के प्रयोग में ये सिद्धहस्त हैं। फ़ारसी पदावली का प्रयोग भी ये बड़ी निपुणता तथा बहुलता से करते हैं। 'जोश' उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं से भाव को इतना दिलकश कर देते हैं कि उर्दू साहित्य में कोई दूसरा शायर इस मैदान में उनकी बराबरी करने वाला नहीं।

'जोश' के कलाम से उद्बोधन एवं स्वतंत्रता का संदेश मिलता है। ये प्राकृतिक दृश्यों के भी अत्यंत सुंदर चित्र खींचते हैं। निराशा एवं भीरुता को पास नहीं फटकने देते। आशा और उत्साह ही इनका संदेश है। उर्दू शायरी में साम्यवादी भावनाओं की नींव 'जोश' से पड़ी है। निर्भीकता इनके काव्य का विशेष गुण है। 'रूह-ए-अदब', 'नक़्शो-निगार (दे०), 'शोल-ओ-शबनम' (दे०), 'हर्फ़-ओ-हिकायत' (दे०), 'जनून-ओ-हिकमत', 'फ़िक्र-ओ-निशाव', 'आयात-ओ-नग़मात', 'सुम्बल-ओ-सलासिल' आदि इनके अनेक काव्य-संग्रह हैं। आजकल 'जोश' पाकिस्तान में रह रहे हैं।

जोशवा, फ़ज़लदीन *(पं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

जोशवा फ़ज़लदीन पंजाबी के उन साहित्यकारों में हैं जिनकी प्रतिभा बहुमुखी है। पश्चिमी पंजाब के जेहलम ज़िले में आपका जन्म हुआ था। लाहौर में वकालत करते हुए और पाकिस्तान की राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए भी ये साहित्य-सेवा में संलग्न हैं।

जोशवा का प्रथम कहानी-संग्रह 'अदबी अफ़साने' शीर्षक से प्राप्त हुआ था, परंतु इन्हें साहित्य में विशेष प्रतिष्ठा इनके उपन्यास 'प्रभा' के कारण प्राप्त हुई।

जोशवा एक सफल कवि भी हैं। उनकी कविता एक शीशे की तरह है जिसमें व्यक्ति को अपना आत्म-रूप ही झलकता मिलता है। इनकी कविताओं का संग्रह 'तारे' विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नाटकों और एकांकियों की भी रचना की। 'पिंड दे वैरी' इनका सुप्रसिद्ध नाटक है जिसमें ग्रामीण जीवन की विडंबनाओं को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

अन्य प्रमुख रचनाएँ—'पतिव्रता कमला' (उपन्यास), 'इखलाकी कहाणिआँ' (कहानी-संग्रह), 'मुंडे दा मुल्ल', 'देहाती तलवार' (एकांकी-संग्रह)।

जोशी, इलाचंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

इनका जन्म प्राकृतिक सुषमा से भरपूर पार्वत्य नगर अल्मोड़ा के एक मध्यवर्गीय किंतु प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने से पहले ही इन्होंने वाल्मीकि (दे०), व्यास (व्यास, बादरायण), शेली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीट्स, टालसटाय, चेखव आदि विश्वविख्यात लेखकों की रचनाओं का रसास्वादन कर डाला था तथा बँगला-अँग्रेज़ी कोश की सहायता से बँगला भाषा तथा साहित्य की श्रेष्ठ-तम रचनाओं से भली भाँति परिचित हो चुके थे। लेकिन पाठ्यपुस्तकें पढ़ने में इनका मन न लगता था और इसी-लिए हाईस्कूल परीक्षा पास करने के बाद ये कलकत्ता जा पहुँचे और वहाँ के दैनिक पत्र 'कलकत्ता समाचार' में कार्य करने लगे। तदनंतर ये 'चाँद', 'सुधा', 'सम्मेलन पत्रिका', 'भारत', 'धर्मयुग' (दे०) आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से संबद्ध रहने के साथ-साथ साहित्य-सृजन भी करते रहे। इनका मुख्य प्रदेय हिंदी कथा-साहित्य में मनोविश्लेषण-प्रणाली के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में है। 'घृणामयी', 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'जहाज का पंछी' (दे०), 'ऋतु-चक्र' इनकी उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं। तत्सम शब्दावली का बहुलता से प्रयोग करते हुए विकारग्रस्त व्यक्ति के अंतर्मन का गहराई से विश्लेषण करने में इन्हें कमाल हासिल है।

जोशी, उमाशंकर *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

जोशी जी कवि और चिंतक के रूप में गुजरात में ही नहीं, पूरे भारत में जाने-माने हैं। आप कई वर्षों से गुजराती की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका 'संस्कृति' का संपादन कर रहे हैं। आपने कहानी ('श्रावणी मेळो'), उप-न्यास ('परिकां जण्यां'), निबंध ('गोष्ठि' और 'उघडती बारी'), एकांकी ('सापना मारा' (दे०) और 'शहीद' संग्रह) इत्यादि विभिन्न साहित्य-रूपों को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। परंतु कवि और आलोचक के रूप में ये विशेष विख्यात हैं। 'महाप्रस्थान' (दे०) भी उनकी एक विशिष्ट कृति है। सन् 1930 में जोशी जी ने गुजराती कविता को नया मोड़ दिया और प्रगतिवादी चिंतन से प्रभावित होकर सामाजिक यथार्थ के प्रमुख रचनाकार बने। तदनंतर 1956 में 'हुं छिन्न-भिन्न हुं' जैसी अछांदस् नयी कविता लिखकर नये कवियों के अग्रणी बने और नयी कविता के वैचारिक समर्थन में प्रवृत्त हुए। उनकी चेतना ने सदैव मंगलकारी प्राचीन तत्त्वों के साथ नवनिर्माणकारी नूतन भावबोध एवं सौंदर्य-बोध का स्वागत किया है। इसीलिए वे नित नूतन रहे हैं। 'विश्वशांति', 'गंगोत्री', 'निशीथ' (दे०), 'प्राचीना', 'आतिथ्य', 'वसंत-वर्षा' जैसी श्रेष्ठ काव्यकृतियों के रचयिता उमाशंकर भाई आज भी ठहरे नहीं हैं; नयी दिशाओं, नये आयामों की खोज में आज भी वे बेचैन हैं।

'अखो : एक अध्ययन', 'समसंवेदन', 'अभिरुचि', 'शैली अने स्वरूप', 'श्री अने सौरभ', 'निरीक्षा', 'कविनी साधना' वग़ैरा जोशी जी के समीक्षा-ग्रंथ हैं। कविकर्म को व्यक्तिशः समझने और अनुभव करने के कारण वे आलोच्य कृतियों और कृतिकारों को कला-सर्जन की मूल भूमियों पर सही तौर से परख पाते हैं। फलतः उनकी समीक्षा सदैव रसलक्षी एवं वस्तुलक्षी होती है।

'निशीथ' काव्य-संग्रह पर जोशी जी को 1967 में ज्ञानपीठ का पचास हज़ार रुपए का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। जोशी जी न केवल साहित्यकार हैं, अपितु शिक्षा-शास्त्री, चिंतक, इतिहासवेत्ता और संस्कृति के अध्येता हैं। वे गुजरात की लगभग सभी उच्चस्तरीय साहित्यिक-सांस्कृ-तिक प्रवृत्तियों के प्राण, प्रेरणास्रोत और परिपोषक हैं परंतु साथ ही भीतर से उमाशंकर जी कितने अंतर्राष्ट्रीय और कितने आधुनिक हैं, निकट संपर्क में आने वाला व्यक्ति ही इसका अनुभव कर सकता है। संप्रति वे साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष भी हैं।

जोशी, गौरीशंकर गोवर्धनराम *(गु० ले०)*

दे० धूमकेतु।

जोशी, चिं० वि० *(म० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

पूना के 'नूतन मराठी विद्यालय' से मैट्रिक, फ़र्गुसन कॉलेज से बी० ए० तथा एम० ए० करने के उप-रांत इन्होंने पाली भाषा तथा बौद्ध ग्रंथों का गंभीर अध्य-यन किया। उमरावती, रत्नगिरि में चार वर्ष तक शिक्षक रहने के बाद ये 1920 ई० में बड़ौदा में कॉलेज के प्राध्या-पक रहे और 1928 ई० में डायरेक्टर ऑफ़ आर्काइव्स बने। यद्यपि इन्होंने विविध विषयों—शिष्टाचार, समाज-शास्त्र, बाल-साहित्य, इतिहास, जीवन-चरित आदि पर पुस्तकें लिखी हैं फिर भी इनकी सर्वाधिक प्रसिद्धि है अपने विनोदपूर्ण साहित्य के लिए। इन्होंने प्रतिदिन के प्रसंगों तथा सीधे-सादे पात्रों द्वारा हास्य-सृष्टि की है। इनकी भाषा-शैली भी सरल प्रसादगुण-संपन्न है। इन्होंने अपनी प्रत्येक हास्य-कथा द्वारा मानव-स्वभाव का दोष दिखाकर कोई सिद्धांत या संदेश दिया है और इस प्रकार जनता का कल्याण किया है। इनके विनोद के विशिष्ट गुण हैं यथार्थ और वैविध्य। झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक की घटनाओं का मज़ेदार वर्णन यहाँ मिलेगा। चिमळराव (दे०) और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुंड्याभाऊ (दे० चिमळराव) इनके साहित्य के अमर पात्र हैं।

अपने लेखों में श्लेष, नये-नये विचित्र शब्द, शब्दों की नयी व्युत्पत्ति, अतिशयोक्ति आदि का आश्रय लेकर इन्होंने हास्य-सृष्टि की है। भिन्न-भिन्न विभागों और व्यवसायों के व्यक्तियों की भाषा का प्रयोग भी इन्होंने सफलतापूर्वक किया है। पर शब्दनिष्ठ विनोद की अपेक्षा इनकी रचनाओं में कल्पनानिष्ठ विनोद अधिक है; इसीलिए अपने व्यंग्यबाणों से क्षतविक्षत करने की अपेक्षा ये ज़ख्मी हृदय पर सहानुभूति का शीतल स्पर्श ही अधिक करते हैं।

कहीं बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग करनेवाले विद्वानों, कहीं ढोंगियों, कहीं लोभियों और कहीं बेईमान अधिकारियों तथा डाक्टरों पर व्यंग्य किया गया है, तो कहीं मुद्रण-दोष के कारण अर्थ का अनर्थ किस प्रकार होता है, इसके द्वारा पाठकों को हँसाया गया है। मराठी के आधुनिक विनोद-लेखकों में जोशी जी का विशिष्ट स्थान है।

प्रमुख रचनाएँ—'एरंडाचे गूरहाल' (दे० चिमळराव) 'चिमळरावचें चर्हाट', 'आणखी चिमळराव', 'गुंडयाभाऊ, वायफळाचा मळा', आदि।

जोशी, महादेवशास्त्री *(म० ले०)*

नयी कहानी के युग में सोद्देश्य, आदर्शवादी और उदात्त-संदेशयुक्त कहानी लिखकर भी लोकप्रियता प्राप्त करनेवाले श्री जोशी की रचनाओं की पृष्ठभूमि गोमांत (गोआ) प्रदेश है। इन्होंने अपनी कहानियों में गोआ की रम्य प्रकृति और वहीं के विभिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को चुना है। प्राचीन धर्मशास्त्र और संस्कृति के अनन्य उपासक श्री जोशी की कहानियों के पात्र यदि सत्प्रवृत्त, परोपकारी और आत्म-बलिदानी हैं तो उनका प्रतिपाद्य है भारतीय संस्कृति और आदर्श। चरित्र-चित्रण और घटनाओं के मनोहर संगम के लिए इनकी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा काव्यात्मक, संस्कृत-मिश्रित और लालित्यपूर्ण है और निवेदन-शैली सहज है। श्री जोशी के अब तक नौ कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'वेल-विस्तार', 'घरनिधि', 'भारतीय संस्कृति कोश' (दे०) आदि।

जोशी, मा० ना० *(म० ले०)* [जन्म—1885 ई०]

प्रारंभ में मराठी के पौराणिक नाटक सरकार-विरोधी प्रतीकात्मकता के कारण अँग्रेज़ सरकार की शनि-दृष्टि के कोपभाजन तो बने थे, परंतु इससे वे अत्यधिक लोकप्रिय भी हो गए थे। पौराणिक नाटकों की इसी लोकप्रियता के कारण माधव नारायण जोशी ने 'कृष्णार्जुन' और 'कृष्ण विजय' (1910-11) नामक पौराणिक नाटकों की रचना की थी, परंतु उन्होंने कथा को अभिधार्थ रूप में ही ग्रहण किया था। नाटकों की अपेक्षा इनके एकांकी ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। समाज में व्याप्त कतिपय बुराइयों के विरुद्ध इन्होंने अपने प्रहसनों में भेरी-नाद किया है। 'विनोद' (1914), 'स्थानिक स्वराज अथवा सचित्र म्युनिसिपालिटी' (दे० पांड्या) (1925), 'हास्य तरंग' (1927), 'आनंद' (1946), 'मोरांचा नाच' (1946), 'प्रोफ़ेसर शाहणे' (1936), 'प्रेमळ लंफगे' (1946), 'नामधारी राजे' (1946) आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'स्थानिक स्वराज्य' अथवा म्युनिसिपालिटी' में नगरपालिका के स्वार्थी सदस्यों के कुकृत्यों का भंडाफोड़ है तथा 'बर्‍ों हाडचा पाटील' में साहूकार, वकील, डाक्टर तथा वेश्याओं के हाथों लुटे भोले ग्रामीण पटेल की व्यथा-कथा है। 'गिरणी वाला' में मालिक और मज़दूरों के पारस्परिक संघर्ष का अंकन हुआ है। सामाजिक परिवेश में व्याप्त बुराइयों का रहस्योद्घाटन तो इन्होंने किया है, परंतु मार्मिक स्थलों की पकड़ का इनमें सर्वथा अभाव लक्षित होता है। विशृंखलित कथा-विन्यास तथा सुधार भावना के पूर्वनिश्चित प्रारूप के कारण चरित्र-चित्रण, सर्वथा उपेक्षित रह गया है। प्रहसनों में कतिपय व्यंग्यात्मक संवाद एवं गीत मार्मिक अवश्य हैं, परंतु निम्नस्तरीय व्यंग्य के कारण इनकी रचनाएँ एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित होकर रह गई हैं।

जोशी, य० गो० *(म० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

अँग्रेज़ी भाषा एवं साहित्य से अल्प परिचित परंपरागत कथा-शिल्प के प्रति विद्रोही श्री जोशी अब तक डेढ़ सौ से अधिक कहानियाँ लिख चुके हैं जो आठ संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियों की विषय-परिधि संकुचित है— पारिवारिक जीवन ही इनकी कहानियों का विषय है। पर स्वानुभूति, आत्मीयता, भावोत्कटता, मानवता तथा लोकमंगल की भावना ने इन कहानियों को रसभीनी और साथ ही उद्बोधक बना दिया है। इनकी भाषा-शैली अपनी सात्त्विकता, चुभते और चटपटे संवादों और प्रवाहमयता के लिए प्रसिद्ध है। परंपरागत विषयों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्प के विरुद्ध, स्वच्छंद रचना-शैली में कहानी लिखने के कारण मराठी कथा-साहित्य में ये अविस्मरणीय रहेंगे।

प्रसिद्ध कृतियाँ—'पुनर्भेट', 'शेवग्याचा शेंगा' (मुनगे की फलियाँ)।

जोशी, रा० भि० *(म० ले०)*

ये व्याकरणाचार्य हैं। इन्होंने 1889 में मराठी का 'प्रौढ़ बोध व्याकरण' लिखा था। मराठी भाषा के पाणिनि दादोबा पांडुरंग (दे०) के व्याकरण-ग्रंथ के अनुरूप ही इन्होंने अपना ग्रंथ रचा है। इसमें संस्कृत के अनुसार मराठी शब्द-रूपों की व्यवस्था है तथा वर्तमान मराठी की प्रकृति का अँग्रेज़ी से साम्य लक्षित कर अँग्रेज़ी के व्याकरण की पद्धति पर उसका व्याकरण लिखा है।

इसमें भाषाशास्त्रीय अध्ययन पर बल नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ मराठी भाषा के बल पर लिखा गया है। तत्सम ह्रस्व शब्दों को दीर्घ लिख मराठी की स्वतंत्र प्रकृति प्रस्थापित की गई है। गो० ग० आगरकर (दे०) जी की 'वाक्य-मीमांसा' के आधार पर वाक्य का संपूर्ण विवेचन मराठी में सर्वप्रथम इन्होंने किया है। 'विविध ज्ञान-विस्तार' पत्रिका में गुंजीकर ने इस ग्रंथ के दोषों का उद्घाटन कर स्वयं सुबोध व्याकरण लिखा है।

जोशी, रामचंद्र भिकाजी *(म० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

इनका जन्म दक्षिण हैदराबाद में हुआ था। इन्होंने अमरावती, इंदौर तथा बंबई में अध्ययन कार्य किया था। आजकल सिद्धार्थ कालेज ऑफ़ कॉमर्स में अँग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं। कुछ वर्ष इन्होंने दिल्ली के आकाशवाणी केंद्र में भी नौकरी की थी।

साहित्य के क्षेत्र में लघु निबंध, लघु कथा तथा साहित्य-समालोचनात्मक ग्रंथ लिखे हैं। प्रवास करने में इसकी अत्यंत रुचि रही है। 'वाटचाल' इनके प्रवास-वर्णनात्मक निबंधों का संकलन है।

इन्होंने उर्दू कथाओं का मराठी में अनुवाद भी किया है।

जोशी, वामन मल्हार *(म० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1943 ई०]

विचारप्रधान मराठी उपन्यास के जनक जोशी जी जीवन को शुद्ध और स्वतंत्र जिज्ञासा-दृष्टि से देखते थे। उपन्यास के क्षेत्र में तात्त्विक विवेचन को स्वतंत्र महत्व देने का श्रेय उन्हीं को है। इनकी कृतियों में मूलग्राही जीवन-विश्लेषण और मौलिक दर्शन मिलता है। इनके उपन्यासों ने बुद्धिनिष्ठ अभिजात और उच्च शिक्षित पाठकों को शीघ्र ही आकृष्ट कर लिया क्योंकि इनके युग में जो नये विचार प्रचारित हो रहे थे, नये आदर्श निर्मित हो रहे थे, उन सबकी अभिव्यक्ति इनके कथा-साहित्य में मिलती है। स्त्री-स्वातंत्र्य, ईश्वर का अस्तित्व, ब्रह्म निर्गुण है या सगुण, उपयोगितावाद, स्वहितवाद, विश्वकुटुंब, समाजवादी विचार, कला और नीति का परस्पर संबंध इनके उपन्यासों के विषय हैं। तत्कालीन महाराष्ट्रीय वैचारिक जीवन में जो संघर्ष एवं बहुविधता पाई जाती थी, उसकी सर्वांगीण अभिव्यक्ति वा० म० जोशी की कृतियों में मिलती है। इनके उपन्यासों में एक ओर पाश्चात्य विचारकों—स्पेन्सर, बर्गसाँ आदि के और दूसरी ओर मनु, याज्ञवल्क्य आदि भारतीय दार्शनिकों के विचारों की छटा मिलती है। साथ ही उस युग में महाराष्ट्रीय सामाजिक एवं कौटुंबिक जीवन में जो नया मोड़ आ रहा था, उसका भी स्पष्ट प्रतिबिंब मिलता है।

इनके स्त्री-पात्र—रागिणी (दे०), उत्तरा, सुशीला—मराठी उपन्यास में चिरकाल तक स्मरण किए जाएँगे। उत्तरा अपने उद्धत तर्कप्रिय स्वभाव के लिए और रागिणी और सुशीला अपने शांत, निःस्वार्थ एवं आदर्शवादी सिद्धांतों के कारण। तत्त्व-दर्शन के कारण इनकी उपन्यास-कला को आघात पहुँचा है—अद्भुत घटनाओं, अस्वाभाविक वर्णनों एवं विवेचनात्मक प्रकरणों के कारण कथा बोझिल हो उठी है और कथानक में शिथिलता आ गई है। लेखक पहले विचारों का ढाँचा तैयार कर लेता है और फिर उसके लिए कथानक तैयार करता है। इससे कथानक की कड़ियाँ टूट जाती हैं और लेखक को उन्हें जोड़ने का प्रयत्न करना पड़ता है। वस्तुतः इनकी सत्यान्वेषी की वृत्ति अधिक थी, कथाकार की कम। इसीलिए इनके उपन्यासों में चित्रित जीवन में रंग-संगति, रेखा-सौंदर्य, नाद-माधुर्य कम है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ये मूलतः कलाकार न होकर तत्त्वज्ञ और विचारक थे।

मुख्य उपन्यास—'रागिणी' (दे०) अथवा 'काव्य-शास्त्रविनोद' (1915), 'आश्रमहरिणी' (1916), 'नलिनी' (1919), 'सुशीले चा देव' (1930), 'इंदुकाळे व सरला भोळे' (1934)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोशी, वीर वामन गोपाल (म० ले०) [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

ये मराठी रंगमंच के लोकप्रिय नाटककार हैं। इन्होंने अपने 'राक्षसी महत्त्वाकांक्षा' (1918), 'रण दुंदुभि' (1927) और 'धर्मसिंहासन' (1929) नाटकों में तत्कालीन राजनीतिक संचेतना का सजीव चित्रण किया है। अँग्रेज़ सरकार के विरुद्ध जनमत तैयार करने के महत् उद्देश्य से लिखे इनके नाटकों में वीर-रस का अंगी रूप में चित्रण हुआ है। मार्मिक घटना-प्रसंगों को भावानुकूल भाषा-संवादों में प्रयुक्त कर इन्होंने जहाँ कथा की एकरसता में वैविध्य-वैचित्र्य उत्पन्न कर पाश्चात्य नाटकों में प्रयुक्त नाटकीय संघर्ष को सतत बनाए रखा है, वहीं श्लिष्ट किंतु सीमित हास्य-प्रसंगों के माध्यम से युगीन परिस्थितियों पर प्रखर प्रहार भी किया है। सशक्त चरित्र-निरूपण और ओजमयी भाषा के होते हुए भी इनका कला-पक्ष भावनाओं के उद्दाम वेग को वहन करने में पूर्णरूपेण समर्थ नहीं हो पाया है।

जोशी, शं० बा० (क० ले०)

कन्नड के विख्यात विद्वान श्री शंकर बालदीक्षित का जन्म बेलगाँव ज़िले के गुर्लहोसूर में जनवरी, 1896 ई० में हुआ था। धारवाड़ में इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई और उसके उपरांत कुछ समय तक ये अध्यापक रहे। उसके उपरांत आपने 'कर्मवीर', 'जयकर्णाटक' आदि वृत्तपत्रों में काम किया। इसी बीच राष्ट्रीय संग्राम में भी सक्रिय भाग लिया। आप कन्नड, मराठी, संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं तथा साथ ही एक प्रौढ़ अनुसंधाता भी।

जोशी, शिवकुमार गिरिजाशंकर (गु० ले०) [जन्म—1916 ई०]

पिछले दो दशकों से प्रसिद्धि प्राप्त शिवकुमार जोशी गुजराती के आधुनिक साहित्यकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। बी० ए० (आनर्स) तक शिक्षा-प्राप्त श्री जोशी वर्षों से कलकत्ते में रहते हैं और लेखन के प्रतिकूल कपड़े का व्यापार करते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: 'पांख विनानां पारेवा', 'अनंत साधना', 'नीलांचल', 'नीरदछाया' (एकांकी-संग्रह); 'सुमंगला', 'अधारा उलेचो', 'अंगारभस्म', 'सांध्यदीपिका', 'दूर्वांकुर', 'घटा धीरी धीरी आई', 'एकने टकोरे', 'सुवर्णरेखा', 'शतरंज', 'कृत्तिवास' (दे०) (पूर्ण नाटक); 'रजनीगंधा', 'त्रिशूल', 'रहस्य नगरी', 'रात अंधारी ने तल छे काला', 'अभिसार', (कहानी-संग्रह); 'कंचुकीबध', 'अनंगराग', 'श्रावणी', 'आभ रूप्रे एनी नवलखधारे', 'दियो अभयनां दान' (उपन्यास), 'विराज-बहू' और 'देवदास' (बँगला से अनुवाद)। एकांकी-संग्रहों में कथा का चयन प्रायः नगर-जीवन से हुआ है। संभ्रांतता इसका प्रमुख लक्षण है। पात्र और घटनाएँ नगर-जीवन से संबद्ध होने के कारण कथा-फलक प्रायः अंतर्मुखता को ग्रहण कर लेता है। नाटकों के संघर्ष की स्थिति परिस्थितियों की टकराहट से नहीं अपितु पात्रों के मनोमंथन से जन्मी है। जोशी जी के सभी नाटक सामाजिक हैं, अतः वस्तु की दृष्टि से उनमें वैविध्य अधिक नहीं है। पर रंगमंच-संबंधी दृष्टि जितनी शिवकुमार जोशी की विकसित है उतनी गुजराती के कम ही एकांकीकारों की है। इन्होंने रेडियो-रूपक की तकनीक का भी समुचित उपयोग किया है। इनकी सभी कृतियाँ सामान्यतः लेखक के गंभीर व्यक्तित्व का परिचय देती है। इनके संवाद चुटीले, सजीव और आंचलिक भाषा के संस्पर्श से युक्त हैं। चरित्र-चित्रण भी बड़ा सजीव है। इनकी नाटक-योजना में 'फ़्लैशबैक' और 'डबल स्टेज' पद्धति के प्रयोग भी प्राप्त हो जाते हैं। शिष्ट हास्य, शृंगार और करुण—इनके नाटकों के प्रमुख रस हैं। समग्रतः यह कहा जाता है कि नाटक की स्वरूप-रचना में शिवकुमार जोशी सिद्धहस्त हैं। इनके उपन्यासों का मुख्य स्वर शृंगार का ही है। यौनपरक जीवन के सुंदर चित्र इनके उपन्यासों में मिल जाते हैं। मूलतः इनकी ख्याति का आधार नाटक ही है और नाटककार के रूप में इन्हें जो सफलता मिली है उसे देखकर इनसे अभी और सुंदर नाटकों की अपेक्षा है।

जोशी, सुरेश (गु० ले०) [जन्म—1921 ई०]

पिछले दशक के सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुजराती कवियों में सुरेश जोशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। श्री जोशी महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में गुजराती के प्राध्यापक के रूप में काम कर रहे हैं। व्यवसाय से शिक्षक सुरेशभाई की रचनाओं में आधुनिक साहित्य के सभी गुण-दोष वर्तमान हैं। इनकी रचनाएँ हैं: 'प्रत्यंचा' (काव्य-संग्रह), 'गृह-प्रवेश' (दे०), 'बीजी थोडीक' और 'अपि च' (कहानी-संग्रह), 'छिन्नपत्र' (उपन्यास)। 'प्रत्यंचा' नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता-संग्रह में निस्सहायता, हताशा, हतार्थताजन्य गहरी वेदना की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। समाज-निरपेक्ष व केवल सत्य-दर्शन के निमित्त ही कविता की रचना के नमूने जोशी की कविताओं में मौजूद हैं। सुरेशभाई ने नये कवियों का एक अर्थ में नेतृत्व किया है। नये कवियों ने इनके इस कथन से प्रभावित होकर कि अस्तित्ववाद के संदर्भ में कला और साहित्य का मूल्यांकन लेखक के वक्तव्य के आधार पर नहीं वरन् उसकी रचना के आधार पर होना चाहिए, अस्तित्ववाद और उसके प्रमुख विचारकों को सहृदयता से समझने की चेष्टा की है। नयी कविता की भाँति ही कहानी और उपन्यासों में प्रतीकात्मक प्रयोगों की वृद्धि हुई है। घटनाओं का महत्व कम होने लगा है और अभिव्यक्ति-पक्ष प्रमुख हो गया है। सुरेशभाई अर्थपूर्ण बिंबों के माध्यम से विषादमय संवेदनों का तटस्थ निरूपण करने में सिद्धहस्त हैं। मनुष्य की दौड़मदौड़ और उसके जीवन के नैरंतर्य के प्रत्येक क्षण को बाँधने का प्रयत्न कथा में घटनाविहीनता को जन्म देता है और कई बार अतिशय वेदनाजनित नर्वस ब्रेकडाउन में परिणत हो जाता है। 'छिन्नपत्र' में भी यह घटनाविहीनता मौजूद है। कथा के तंतु इस उपन्यास में बहुत बिखरे हुए हैं, व्यक्ति के विघटन को सूचित करने वाला वातावरण सर्वोपरि दिखाई देता है। परिशिष्ट रूप में प्रस्तुत कथांश अधिक स्पष्ट और सुसंबद्ध है जो उपन्यास को उसकी वायवीयता से मुक्ति दिलाता है। बाकी, विशदता के आग्रही सुरेशभाई की शैली संदिग्धता, क्लिष्टता और बिखराव से मुक्त नहीं है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि सुरेश जोशी की कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास—सभी रचनाएँ प्रतीकात्मकता, सामाजिक-निरपेक्ष सत्य-दर्शन, क्षण की अभिव्यक्ति के प्रति आग्रह और गहरे विषाद की छाया से अनुस्यूत हैं। 'कथोपकथन' (दे०) में उन्होंने उपन्यास और कहानी की विधाओं का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। श्री जोशी गुजराती साहित्य की नयी प्रवृत्तियों के पुरस्कर्ता रहे हैं और इसी रूप में वे अपना विशेष महत्व रखते हैं।

Done

ज़ौक (उर्दू० ले०) [जन्म—1789 ई०; मृत्यु—1854 ई०]

इनका नाम शेख इब्राहीम और उपनाम 'ज़ौक' था। इनके पिता का नाम मुहम्मद रमज़ान था। ज़ौक का जन्म दिल्ली में हुआ। बड़े होने पर इनके पिता ने इन्हें हाफ़िज़ गुलाम रसूल के पास विद्याध्ययन के लिए बैठा दिया। हाफ़िज़ रसूल स्वयं भी कवि थे। उनके संपर्क से ज़ौक भी काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए। ज़ौक स्वभाव से बहुत कोमल-हृदय और ईश्वर-भक्त थे। इन्हें संगीत, ज्योतिष और चिकित्सा-ज्ञान आदि में रुचि थी। इनकी भाषा परिमार्जित, सुस्पष्ट तथा मुहावरेदार है। वाक्यों में शब्दों को इस प्रकार सजाते हैं कि स्वतः संगीत प्रस्फुटित हो उठता है। दिल्ली की स्वच्छ एवं प्रसादगुण-युक्त भाषा ने इनके काव्य को और अधिक सरस बना दिया है।

ज़ौक का काव्य सूफ़ी सिद्धांतों से पुष्ट उच्च मानवीय गुणों से ओतप्रोत है। इनके पद स्पष्ट और सरल हैं। यह कल्पना की ऊँची उड़ानें भरने के साथ-साथ काव्य की रसात्मकता को भी नहीं त्यागते। इनके काव्य में नयी-नयी उपमाओं तथा रूपकों का बाहुल्य है। भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों की दृष्टि से इनकी रचनाएँ अद्वितीय हैं। अकबर बादशाह की स्तुति करने पर इन्हें 'मलिकुश्शोअरा ख़ाकानी-ए-हिंद' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनके क़सीदे उच्च कोटि के माने गए हैं। यह सर्वमान्य है कि इनके समान क़सीदा लिखने वाला कोई अन्य कवि नहीं हुआ। उर्दू साहित्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'जौहर', मुहम्मद अली (उर्दू० ले०) [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

'जौहर' रामपुर के निवासी थे। इन्होंने अलीगढ़ कालेज और ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। काव्य-साधना के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में भी ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। ये स्वाधीनता-संग्राम में अँग्रेज़ों के विरुद्ध सदा सक्रिय रहे। राष्ट्रीय और राजनीतिक आंदोलनों के फलस्वरूप इन्हें अनेक बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। 1931 ई० में जब ये लंदन में आयोजित गोलमेज़ कान्फ़्रेंस में भाग लेने गए थे तो वहीं इनका देहांत हो गया। ये गद्य और पद्य दोनों के समर्थ लेखक थे। 'रईस-उल-अहरार', 'हमदर्द' और 'कामरेड' का संपादन भी इन्होंने किया था। इनके काव्य में विद्यमान खरापन, स्पष्टवादिता, निर्भयता, प्रभावात्मकता, वेदना तथा कसक की विशेषताएँ पाठक को बलात् आकृष्ट कर लेती हैं। इनका 'दीवान' (काव्य-संग्रह) कवित्व की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

ज्ञानदास (बँ० ले०)

ज्ञानदास के जीवनवृत्त के संबंध में निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमान है 1520 से 1535 ई० के मध्य ब्राह्मण-वंश में इनका जन्म हुआ था। इनका निवास वर्द्धमान ज़िला (वीरभूमि के अंतर्गत) काँदड़ा ग्राम में था। ये गोबिंददास (दे०), बलरामदास (दे०) के समकालीन और संगीत तथा ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। ज्ञानदास नित्यानंद (दे०) के भक्त थे। वे नित्यानंद के साक्षात् संपर्क में आए थे। नरहरि चक्रवर्ती के 'भक्ति-रत्नाकर' एवं 'नरोत्तम विलास' के विवरण से जाना जाता है कि नित्यानंद की पत्नी जाह्नवी देवी के ये शिष्य थे। संभव है कि नित्यानंद के तिरोधान के अनंतर इन्होंने जाह्नवी देवी से दीक्षा ग्रहण की हो।

चैतन्य-परवर्ती वैष्णव-पदावली-साहित्य के स्रष्टाओं में ज्ञानदास का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रायः समस्त प्राचीन संग्रहों में इनके पद पाए जाते हैं। इन्होंने बँगला एवं ब्रज बुलि दोनों भाषाओं में पद रचना की है। ज्ञानदास के पदों में विद्यापति (दे०) एवं चंडीदास (दे०) का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। श्रीमद्भागवत के प्रति इनका अंतरंग अनुराग था; फलस्वरूप श्रीकृष्ण-लीला-संबंधी पदों का बाहुल्य इनके पदों में देखा जा सकता है। गोष्ठी-लीला, सख्य एवं वात्सल्य के पद, राधाकृष्ण का पूर्वराग, रूपानुराग, अभिसार, वसंत-विहार, होली, मान, प्रवास आदि विषयों पर इन्होंने पद-रचना की है।

ज्ञानदास की रचनाओं में आडंबर नहीं है। इनके पदों में गंभीर आंतरिकता, भावों में स्वाभाविकता, भाषा में सहज गांभीर्य मिलता है। ज्ञानदास के सर्वश्रेष्ठ गुण हैं व्यंजना, अपूर्व विस्मय-प्रकाश, अशरीरी चित्रण और नूतन शब्द-सृष्टि द्वारा रहस्य-भावना की अवतारणा। प्रथम श्रेणी के पदकर्ताओं में ज्ञानदास की गणना सदा होती रहेगी।

ज्ञानप्पाना *(मल० कृ०)*

भक्त कवि पून्तानम् (दे०) नंपूतिरि ने इसकी रचना की है। जैसे एषुत्तच्छन (दे०) ने 'किळिप्पाट्टु' (दे०) और श्री कुन्चन नंपियार ने 'तुळ्ळल्' (दे० ओट्टन तुळ्ळल्) पद्धति को जन्म दिया वैसे ही पून्तानम् ने 'पाना' (दे०)-पद्धति का सूत्रपात किया है। इस पद्धति में अन्य केरलीय कवियों ने भी अपनी कृतियाँ रची हैं। किंतु पून्तानम् ही को इसमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इसमें संसार की अनित्यता, मानव-जीवन का उद्देश्य, संसार के प्रति वैराग्य आदि विषयों का निरूपण बड़ी विद्वत्ता के साथ काव्यात्मक ढंग से किया गया है। एक प्रकार से इसमें सारे उपनिषदों का सार संगृहीत है। एक बार पढ़ने पर ही पाठक ग्रंथ की सरलता से प्रभावित हो उठेगा। इसकी शैली इतनी सरल और प्रसादपूर्ण है कि एक अपढ़ को भी इसकी भाषा और आशय समझने में कठिनाई नहीं होती।

ज्ञानसिंह, 'ज्ञानी' *(पं० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती]

यह सिख-पंथ के प्रसिद्ध इतिहासकार माने जाते हैं। इनका जन्म लोंगोवाला में हुआ था। यह विभिन्न भाषाओं के उद्भट विद्वान, कवि और धर्म-प्राण व्यक्ति थे।

इन्होंने 1868 ई० में सिख-पंथ का पद्यमय इतिहास लिखा जो नवीन 'पंथ-प्रकाश' (दे०) के नाम से विख्यात है। इससे पूर्व 1841 ई० में ज्ञानी रतनसिंह 'मंगू' (दे०) भी 'पंथ-प्रकाश' के नाम से पंथ का एक इतिहास लिख चुके थे जिसे छंदःशास्त्र के नियमों की दृष्टि से सदोष समझकर इन्होंने उसमें संशोधन-परिवर्द्धन किया।

ज्ञानेंद्र *(उ० पा०)*

श्री रबिनारायण महापात्र (दे०) के उपन्यास पर आधारित 'एकांकी' (दे०) नाटक [ले० बिजयकुमार मिश्र (दे०)] का नायक ज्ञानेंद्र अपने आदर्श में हिमालय-सा अडिग आधुनिक युवक है। यह गण-सेवक का जीवन अपने लिए चुन लेता है। समाज के कोलाहलपूर्ण परिवेश के बीच भी एक स्वतंत्र वैशिष्ट्य लिये यह आगे बढ़ता जाता है। दुर्जेय प्राणशक्ति से युक्त होकर यह आत्म-विभोर हो उठता है। किंतु यह लक्ष्यभ्रष्ट नहीं होता। उसी प्रकार गण-प्राण की शिथिलता व असहयोग के बीच भी यह टूटता नहीं बल्कि इसके कंठ से फूटती है वज्र-शपथ—'एकला चलो।'

इसी मंत्र की शपथ लेकर शहर के निम्न-स्तरीय जीवन में प्रवेश करता है—विश्वविद्यालय का डिग्री-धारी युवक ज्ञानेंद्र। गुंडा रमजान, पाकेटमार केलु, काला-बाज़ारिया जेकब, रिक्शावाले की लड़की फुल—इन्हीं के सहयोग से इसने निर्माण किया है अपना कर्म-केंद्र, धर्म, श्रेणी एवं गोष्ठी-निर्विशेष। संहिति के मंच पर इसने गढ़ा है सेवा और जागृति का अमर मंत्र। प्राण एवं प्रतिज्ञा की मशाल लेकर इसने सृष्टि करना चाहा है अंधकार में आलोक का वर्ण-वैभव। इसने सुनी है हृदय के परिवर्तन के बीच सामाजिक जागरण की जयझंकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु अतीत की सहपाठिनी, अभिजात समाज की प्रतिनिधि छवि, इसके यात्रा-पक्ष में सृष्टि करती है अचानक प्रलय। यह प्रलय क्या ज्ञानेंद्र को पथ-विमुख कर सकेगी ? निंदा, अपमान, लांछना की सीढ़ियाँ इसे सिद्धि के मंडप पर पहुँचा देती हैं।

ज्ञानेश्वर *(म० ले०)* [जन्म—1275 ई०; मृत्यु—1296 ई०]

पंडितों की प्राचीन नगरी पैठण के निकट आपेगाँव में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम विट्ठल पंत था, व्यवसाय था पटवारी का। माता का नाम था रुक्मिणी-बाई। विट्ठल पंत संन्यासाश्रम से पुनः गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए थे। अतः ज्ञानेश्वर के माता-पिता और सभी परिजनों को जाति-बहिष्कार की कठोर यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। बाल्यावस्था में ही ज्ञानेश्वर की अलौकिक प्रतिभा से पंडित-वर्ग प्रभावित हो गया था। केवल 15 वर्ष की अवस्था में ही ज्ञानेश्वर ने 'भावार्थदीपिका' की रचना की थी जो 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह श्रीमद्भगवद्गीता' (दे० गीता) पर मराठी भाषा में लिखित अनुपम टीका है। इनका मौलिक ग्रंथ है 'अमृतानुभव'। इसमें बौद्धों के शून्यवाद, सांख्यों के पुरुष-प्रकृतिवाद का खंडन कर मौलिक चिद्विलासवाद की स्थापना की गई है। यह ग्रंथ ज्ञानेश्वर के प्रखर दार्शनिक चिंतन का प्रतीक है। 'हरिपाठ' नामक इनकी रचना में सत्ताईस भक्तिपरक अभंग हैं। 'चांगदेव पासष्टी' में अष्टांगयोग से ब्रह्म-प्राप्ति का प्रतिषेध कर भक्ति के महत्व का निरूपण किया गया है। इनके अतिरिक्त सैकड़ों स्फुट अभंगों में इनकी सरस रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। ज्ञानेश्वर ने काव्य के क्षेत्र में मौलिकता का प्रमाण दिया है—और चिंतन के क्षेत्र में भी वे सर्वथा मौलिक रहे। भाषा-शैली की दृष्टि से तो ये युग-प्रवर्तक कवि थे। ज्ञानेश्वर ने प्रयाग, वाराणसी, गया, अयोध्या, गोकुल-वृंदावन आदि तीर्थों में भ्रमण किया था। 22 वर्ष की अल्पायु में ही ये पूना के समीपस्थ 'अलंदी' ग्राम में समाधिस्थ हो गए।

ज्ञानेश्वरी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1290 ई०]

1290 ई० में रचित यह ग्रंथ-रत्न 'भगवद्गीता' (दे० गीता) की काव्यमय टीका है। ज्ञानेश्वर (दे०) ने इसे 'भावार्थदीपिका' नाम दिया है क्योंकि इसमें गीता के सात सौ श्लोकों का मराठी के ओवी छंद में भावार्थ-निरूपण है। ओवियों की संख्या नौ हज़ार है। भाष्य के लिए शंकराचार्य (दे०), रामानुजाचार्य (दे०) आदि के दार्शनिक ग्रंथों का आधार लिया गया है। ज्ञानेश्वरी का प्रमुख प्रतिपाद्य है—ज्ञान तथा भक्तिप्रधान कर्मयोग। शंकराचार्य का दर्शन ज्ञान-प्रधान है तो रामानुज का भक्ति-प्रधान। दोनों के महत्व को समझकर 'ज्ञानेश्वरी' में ज्ञान-भक्ति-युक्त कर्मयोग की प्रतिष्ठापना की गई है। ज्ञानेश्वर की मान्यता में "गीता वाग्विलास मात्र का शास्त्र नहीं है वरन् संसार को जीतने का शस्त्र है। इसके अक्षर वे मंत्र हैं जिनसे आत्मा का उद्धार होता है।" 'ज्ञानेश्वरी' में चिंतन की प्रौढ़ता है, साथ ही काव्यत्व का उत्कृष्टतम रूप भी अंतर्भूत है। टीका में कथोपकथन या संवाद-शैली अपनाई गई है। इससे प्रबंधकाव्य जैसी रोचकता आ गई है। अध्यात्म और अष्टांग योग जैसे दुरूह विषयों को अत्यंत सरल-सुबोध तथा अलंकृत भाषा में समझाया गया है। 'ज्ञानेश्वरी' की नौ हज़ार ओवियों में से लगभग तीन हज़ार में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। भाषा में माधुर्य गुण और सरसता का चरम उत्कर्ष मिलता है। ज्ञानेश्वरी का आध्यात्मिक और साहित्यिक मूल्य दोनों ही एक-दूसरे से बढ़ कर हैं।

ज्यां त्यां पडे नजर मारी *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

ज्योतींद्र दवे (दे०) गुजराती साहित्य के श्रेष्ठ हास्यलेखक हैं। इस ग्रंथ में हास्यरस के निबंध हैं। विषय और कथन-रीति की प्रचुर विविधता उनके ग्रंथों में मिलती है। इनका हास्य कभी उपहास नहीं होता, हमेशा परिहास रहता है। हास्य निष्पन्न करने के लिए वे कभी तर्क का आश्रय लेते हैं, तो कभी शाब्दिक हास्य का प्रयोग करते हैं। हास्य-निर्माण के लिए कभी काव्य की विधा का—विशेष रूप से प्रतिकाव्य का, कभी संवाद, तो कभी डायरी, कभी आत्मकथा, तो कभी रेखाचित्र का प्रयोग करते हैं। इसलिए इस पुस्तक में विषय और निरूपण-रीति की विविधता प्रचुर मात्रा में है।

ज्योतिकणा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1938 ई०]

लेखक : नीलमणि फुकन (दे०)।

इसकी कविताओं की विशेषता है—रहस्यवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि विश्व के कण-कण में दैवी शक्ति का आभास पाता है। चूँकि लेखक राजनीतिक नेता है, अतः कविताओं में समाज-चेतना भी है। भावों की अपेक्षा बुद्धि पर अधिक ज़ोर देने के कारण कविताओं में सरसता का अभाव है।

ज्योतिपंत महाभागवत *(म० ले०)*

इनका जन्म-स्थान था—'वुध-मलवड़ी'। पिता का नाम था गोपालपंत और माता का गोदावरी। पानीपत की प्रसिद्ध लड़ाई के समय ये मराठा-सेना में थे। इन्हें संपूर्ण 'भागवत' (दे०) पर टीका लिखने का श्रेय प्राप्त है। यह टीका अभंगबद्ध और ओवीबद्ध है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट छंद भी रचे हैं। ज्योतिपंत विट्ठल-भक्त थे। एक हज़ार देवालय बाँधने की इनकी प्रतिज्ञा थी। लगभग साढ़े सात सौ विट्ठल-मंदिरों की स्थापना कर 1788 ई० में ये दिवंगत हो गए।

ज्योतिरेखा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

लेखक: सत्यप्रसाद बरुवा (दे०)। यह नाटक 1942 ई० के आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। निर्भीक शिक्षित युवक ज्योति वरुवा देश के आह्वान पर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर आंदोलन में कूद पड़ता है, उसे फाँसी होती है। 1942 ई० के आंदोलन के कई सजीव चित्र इसमें प्रस्तुत किए गए हैं। नाटक को नायकहीन ट्रेजेडी कहा गया है, क्योंकि जनांदोलन की अशरीरी मूर्ति ही इसका नायक है। यह कृति परिस्थिति प्रधान है। संवादों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

झड़र-झंकार *(उ० कृ०)*

यह श्रीमती तुलसीदास (दे०) की 67 कविताओं का संकलन है। इसमें जीवन-संग्राम की क्षत-विक्षत अनुभूति का आलेख है। कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने जिस तूफ़ान की चर्चा की है, उसकी सृष्टि होती है दुःखी व्यक्ति के हृदय में एवं उसकी झंकार वह जितने प्रत्यक्ष रूप से सुन सकता है, उतनी प्रत्यक्षता से दूसरों के लिए उसका सुनना संभव नहीं है। इन कविताओं में मानव-जीवन की व्यथा, असहायता तथा उसके प्रति कवयित्री की संवेदना सुंदर रूप से प्रतिफलित हुई है। देशात्मबोध और जन्म-भूमि के प्रति कतिपय कविताएँ भी इसमें संकलित हैं। 'सेमणिष', 'प्रतिशोध', 'जीवनर हाटे', 'सभ्यतार साज' एवं 'माटिर मोह' आदि इस संकलन की प्रतिनिधि कविताएँ हैं।

झरना *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1918 ई०]

'झरना' के प्रथम संस्करण में जयशंकर प्रसाद (दे०) की प्रारंभिक छायावादी (दे० छायावाद) रचनाओं का संग्रह किया गया था परंतु दूसरे संस्करण में परवर्ती काल की प्रौढ़ रचनाएँ भी सम्मिलित कर दी गईं। इसके वर्तमान रूप में रहस्यवाद, अभिव्यंजना का अनूठापन, व्यंजक चित्र-विधान सब कुछ मिल जाता है। प्रेम के व्यापारों की मधुरता पर कवि की दृष्टि अधिक रमी है। इस काव्य में छायावादी काव्य-पद्धति का मनोरम विकास करने वाली प्रतिभा का पूर्वाभास मिलता है।

झलकीकर वामन *(सं० ले०)*

मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) की अनेक टीकाओं का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है जिनमें से कुछ उपलब्ध तथा प्रकाशित भी हैं। आधुनिक काल में उपलब्ध 19 टीकाओं का सारसंग्रह करके झलकीकर वामनाचार्य ने 'बालबोधिनी' नामक टीका की रचना की है। इस टीका में वामनाचार्य ने राधाकृत 'अविचूरि टिप्पणी' तथा महेंद्र-कृत 'तात्पर्यविवरण' नामक टिप्पणी आदि 'काव्यप्रकाश' की टीकाओं का उल्लेख किया है।

झांग्याणी, संतराम मंघाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। ये दिल्ली विश्वविद्यालय के देशबंधु कालेज में सिंधी विभाग के अध्यक्ष हैं। इनकी कई रचनाएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तक के रूप में इनकी रचनाएँ हैं—'अदब जी राह में', 'जय गंगोत्री', 'हलु पुन्हल', 'पाप जी माया'। इन्होंने कहानी, कविता और निबंध के क्षेत्र में सुंदर रचनाएँ सिंधी साहित्य को दी हैं, परंतु इन्हें अधिक ख्याति निबंध-लेखक के रूप में प्राप्त हुई है। सिंधी भाषा और साहित्य पर अँग्रेज़ी में भी इनके कुछ निबंध प्रकाशित हो चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाँसी की रानी (*हिं० कृ०*) (प्रकाशन-वर्ष —1946 ई०]

यह हिंदी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा (दे०) का ऐसा उपन्यास है जिसमें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई (दे०) तथा उनके सहयोगियों द्वारा 1857 ई० में भारतीय स्वाधीनता के लिए किए गए प्रयत्नों का कलात्मक एवं चित्रोपम लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अनेक प्रामाणिक साक्ष्यों का प्रश्रय लेते हुए इस तथ्य की स्थापना की है कि रानी लक्ष्मीबाई के मन में बचपन से ही पराधीनता के प्रति विद्रोह के अंकुर विद्यमान थे और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए उन्होंने जो लड़ाई लड़ी वह विवशता की उपज न होकर जन्मजात भावना का प्रतिफल थी। लेखक ने अपने इस उपन्यास का ताना-बाना बुनते समय तथ्यों के प्रस्तुतीकरण पर इतना अधिक बल दिया है कि विवरणाधिक्य के फल-स्वरूप औपन्यासिक कला को क्षति पहुँची है। यह उपन्यास सजीव चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से भी पर्याप्त उल्लेखनीय है। लेखक ने रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य-पराक्रम का जीवंत चित्रण करने के साथ-साथ गंगाधर राव, सुंदर, मुंदर, मोती, झलकारी, ख़ुदाबख़्श आदि के स्मरणीय चरित्र प्रस्तुत किए हैं। ध्यातव्य है कि इस उपन्यास में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का चरित्रांकन अधिक विस्तार से हुआ है। उपन्यासकार तद्युगीन वातावरण की सशक्त अवतारणा में भी सफल रहा है। झाँसी के सामाजिक जीवन तथा पर्वों के साथ-साथ अँग्रेज़-छावनियों का भी सजीव वर्णन हुआ है। युद्ध-विषयक वर्णन इतने सजीव बन पड़े हैं कि उन्हें पढ़कर पाठक लेखक के एतद्विषयक ज्ञान की सराहना किए बिना नहीं रह पाता। बुंदेलखंडी भाषा के पुट ने तो उपन्यास की स्वाभाविकता में चार चाँद लगा दिए हैं।

झा, गंगानाथ (*सं० ले०*)

इनका जन्म 25 सितंबर 1872 ई० को हुआ था। ये एम०ए०, डी० लिट्०, एल-एल० डी० थे तथा इन्हें महामहोपाध्याय उपाधि से विभूषित किया गया था। ये इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के कुलपति रहे। इनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथ ये हैं—

(1) कतिपयदिवसोद्गमप्ररोहः (पद्य)

(2) वेलामाहात्म्य (पद्य)

(3) भक्तिकल्लोलिनी ('शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' पर पद्यबद्ध टीका)

(4) भावबोधिनी (जयदेव-प्रणीत 'प्रसन्न राघव' पर टीका)

(5) खद्योतः (वात्स्यायन-रचित 'न्यायभाष्य' पर टीका)

(6) मीमांसा-मंडनम् (मंडन-मिश्र-रचित 'मीमांसानुक्रमणिका' पर टीका)

(7) प्रभाकरप्रदीपः (पूर्वमीमांसा के प्रभाकर संप्रदाय पर विचार-विमर्श)

इनके अतिरिक्त अँग्रेज़ी में रचित इनके ये ग्रंथ हैं—

(1) प्रभाकर स्कूल ऑफ़ पूर्वमीमांसा,

(2) साधोलाल लेक्चर्स ऑन न्याय,

(2) फ़िलॉसॉफ़िकल डिसिप्लिन,

(4) हिंदू लॉ इन इट्स सोर्सिज़,

(5) शंकराचार्य एंड हिज़ वर्क फ़ॉर द अपलिफ़्ट ऑफ़ द कंट्री,

(6) पूर्वमीमांसा ऑफ़ जैमिनि।

इनके अतिरिक्त इन्होंने लगभग 30 ग्रंथों का अनुवाद तथा संपादन किया।

झूठा सच (*हिं० कृ०*) : [प्रकाशन-वर्ष, प्रथम खंड—1958 ई०]

यह हिंदी के प्रसिद्ध यथार्थवादी उपन्यासकार यशपाल (दे०) का उपन्यास है। 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' शीर्षक से दो खंडों में लिखित इस उपन्यास में 1942 से 1952 ई० तक के भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना को रूपायित किया गया है। प्रथम खंड में भारत-विभाजन से पूर्व के पंजाब के मध्यवर्गीय जीवन, वहाँ के सामाजिक एवं मानसिक गठन, सांप्रदायिक भावना की उत्तेजक आँधी के चलने पर देश-विभाजन की विकट समस्या तथा हिंदू-मुसलमानों के बीच बढ़ते हुए भेद-भाव आदि का वर्णन किया गया है तो दूसरे खंड में भारत-विभाजन, हिंदू-मुस्लिम दंगों, निरीह नारी का अपमान एवं तिरस्कार करने वाली जघन्य एवं कुत्सित घटनाओं, स्वाधीनता-प्राप्ति के अनंतर लाखों व्यक्तियों के बेघर-बार हो जाने तथा विभिन्न स्थानों पर चलने वाली धोखा-धड़ी, निम्न वर्ग की निराशा आदि को रूपायित किया गया है। इस समूचे परिदृश्य को प्रस्तुत करने के लिए यों तो लेखक ने अनेक छोटी-बड़ी कथाओं का आश्रय लिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु इसकी मुख्य कथा जयदेव (दे०) पुरी तथा उसकी बहिन तारा के संघर्षपूर्ण जीवन की कथा ही है। शीलो, उर्मिला, सत्यवंती, सीता, आदि से संबंधित गौण कथा-प्रसंगों को मूल कथा में धागे में मनके के समान इस प्रकार पिरोया गया है कि कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। जयदेव पुरी, तारा तथा कनक इस उपन्यास की उल्लेखनीय चरित्र-सृष्टि हैं। जयदेव पुरी को मध्यवर्गीय दुर्बलताओं से ग्रस्त व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो देश-विभाजन से पूर्व जहाँ अत्यंत आदर्शवादी था वहाँ विभाजन के बाद अपना दीन-ईमान खोकर स्वार्थी तथा खुशामदी प्रवृत्ति वाला व्यक्ति बन जाता है। कनक तथा तारा पुरुषों द्वारा किए गए अत्याचारों के विरोध में विद्रोह व्यक्त करने वाली स्त्री पात्र हैं। लेकिन लेखक ने इनकी चारित्रिक परिणति स्वाभाविक रूप में नहीं होने दी है जिसके फलस्वरूप कनक एक पुरुष के प्रति विद्रोह करने के बाद दूसरे पुरुष का प्रश्रय ढूंढ़ने लगती है और दूसरे पुरुष को पाने के बाद भी उसे चैन नहीं मिलता। तारा आजीवन पुरुषों से बचती हुई अंततः प्राणनाथ के प्रति अपने को समर्पित कर देती है। भावाभिव्यंजना में समर्थ तथा अत्यंत चुस्त भाषा-शैली का कलात्मक प्रयोग इसकी शिल्पगत विशेषता है।

झूलणां *(पं० पारि०)*

झूलणां छंद का प्रयोग पंजाबी में बहुत कम हुआ है। संभवतः यह पंजाबी प्रकृति और सुर-प्रणाली के अनुकूल नहीं। इस छंद में 40-40 मात्राओं के चार चरण होते हैं जिस में हर दस मात्राओं के बाद यति होती है। इसका एक अन्य रूप भी मिलता है जिसमें प्रति चरण 10+10+10+7 के विधान से 37 मात्राएँ होती हैं। भाई कान्ह सिंह ने इसे 'मणिधर' सवैया का रूप माना है। परंतु पंजाबी में इसे लयानुसारी मानकर ही प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण :

कौण सी नी सखी, साँवला कान्ह सी।
जावंदा-जावंदा, वंसरी वा गिआ॥
बोलदी बोलदी पावंदी जान सी।
उसदा बोल नीं जिंद नूं भीगिआ॥
लाडला नी चंद, लँगिआ चैन नूं।
कालजे ताँघ दे चीर है पा गिआ॥
प्रीत दी रीत मैं की कहाँ नीं सखी।
कान्ह दा प्रेम है, जान नूं खागिआ॥

झेंडूचीं फुलें *(म० कृ०)*

आचार्य प्र० के० अत्रे (दे०) द्वारा लिखित यह विडंबन-काव्य वस्तुतः मराठी में विडंबन-काव्य का श्रीगणेश करता है। इससे पूर्व भी हास्य-व्यंग्यपूर्ण गद्य-पद्य लिखा जाता था, पर अत्रे की कृति की विशेषता यह है कि काव्य-रचना की हास्यास्पद प्रवृत्तियों का उपहास सर्वप्रथम इसी रचना के द्वारा हुआ है। यदि 'संगीत हजामती' में नाट्य-शिल्प का ज्ञान न रहते हुए भी नाट्य-रचना करनेवालों का मज़ाक उड़ाया गया है तो अन्यत्र संग्राम-गीतों में प्रयुक्त अतिरंजित ओजपूर्ण भाषा का, रचना-दोष दिखाने के लिए लेखक ने संस्कृतनिष्ठ, सामाजिक शब्द-योजना का मज़ाक उड़ाया है। इसमें हास्य के सभी प्रकार—शुद्ध विनोद, परिहास, वैयक्तिक दोष-दर्शन, विडंबन आदि—उपलब्ध होते हैं। लेखक ने प्रायः संयम और परिष्कृत अभिरुचि का परिचय दिया है पर कहीं-कहीं, जहाँ संयम छूट गया है वहाँ, सुसंस्कृत रुचि के पाठक को आघात पहुँचता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण यह कृति शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई थी और आज भी विडंबन-काव्य के आदर्श रूप में उसकी मान्यता है।

झेर तो पीधा छे जाणी जाणी *(गु० कृ०)*

मनुभाई पंचोली 'दर्शक' (दे०) का यह एक श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है। 'दर्शक' की जीवन-साधना और साहित्याराधना का उत्कृष्ट परिपाक इस कृति में पाया जाता है। श्री डोलरराय मांकड (दे०) ने इसका विश्लेषण करते हुए कहा है कि—'बुद्ध के द्वारा प्रबोधित मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चार ब्रह्मविहारों का निदर्शन इस उपन्यास के पात्रों और प्रसंगों के माध्यम से होता है।' रोहिणी, सत्यकाम, हेमंत गोपाल बापा (दे०), नरसी भगत (दे०), शांतिमति और क्रीश्चाइना इस कृति के दिव्य चरित्र हैं। संसार में फैले हुए विसंवाद, वैमनस्य, अशांति और विसंगति का शमन कर ये पात्र सर्वत्र संवादिता, शांति, प्रेम और करुणा की धारा प्रवाहित करते हैं। इसकी नायिका रोहिणी और नायक सत्यकाम ऊर्ध्वगामी, आदर्श जीवन को चरितार्थ करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करते हैं। इसमें उन्हें गूढ़-गहन आंतर-वेदना भोगनी पड़ती है। इसका पूरा उत्तरदायित्व उस अदृष्ट का है जिसके क्रियाकलाप तर्कातीत हैं। लेखक ने अदृष्ट की माया को महत्ता प्रदान करते हुए कई आकस्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाओं को इस उपन्यास के कथानक में समाविष्ट किया है। इससे इसमें आद्यंत कारुण्यपूर्ण गंभीर वातावरण बना रहता है जो कभी-कभी पाठक को विह्वल और व्यग्र बना देता है। इस उपन्यास में सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक धरातल पर प्रस्तुत कर व्यष्टि और समष्टि के संघर्ष को उभारा गया है। इस रचना के प्रमुख पात्र रोहिणी, सत्यकाम और हेमंत के समक्ष श्रेय और प्रेय का चिरंतन प्रश्न उपस्थित रहता है जिससे अंतर्द्वंद्व की सृष्टि होती है। इस अंतर्द्वंद्व में रोहिणी सीता की तरह अग्निपरीक्षा में तपकर कांचन-सी शुद्ध, स्वच्छ और सात्त्विक बनती है। 'झेर तो पीधा' के दो भाग हैं। रचनाकार ने प्रथम भाग में वस्तु-विधान और रूप-विधान में बड़ी कुशलता का परिचय दिया है,परंतु दूसरे भाग में वस्तु-विन्यास में शिथिलता और विशृंखलता आ गई है। चरित्रांकन भी समुचितरूपेण नहीं हो पाया है। उपन्यास के सबसे आकर्षक पात्र गोपाल बापा हैं जिनका व्यक्तित्व उपकारक और तेजोमय है।

ज्ञानप्पिरकाशर, सामि (त०ले०) [जन्म —1875 ई०; मृत्यु— 1947 ई०)

स्वामी ज्ञानप्पिरकाशर (ज्ञानप्रकाश) श्रीलंका के तमिल प्रदेश के एक ईसाई साधु थे। इनका जन्म यद्यपि शैव धर्म के अनुयायी परिवार में हुआ था, किंतु इन्होंने ईसाई धर्म की दीक्षा ले ली थी। आरंभ में कुछ समय तक रेल-विभाग में नौकरी करने के पश्चात् ये धर्मगुरु बन गए थे। तमिल भाषा तथा साहित्य की इन्होंने बड़ी सेवा की। इनके विरचित अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें कुछ ये हैं—'शब्द-व्युत्पत्ति-निघंटु', 'तमिल का प्राचीन रूप और धर्म', 'याषप्याण (श्रीलंका के तमिल प्रदेश) का इतिहास', 'तर्कशास्त्र', 'संन्यास-दर्शन', 'ईसा की जीवनी का अध्ययन', इत्यादि। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी तमिल समाज, भारत के इतिहास आदि से संबद्ध अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इन ग्रंथों में 'शब्द-व्युत्पत्ति-निघंटु' का बड़ा महत्व माना जाता है। इसमें तमिल के ऐसे अनेक शब्दों का विवेचन किया गया है, जो संस्कृत में ही नहीं, यूरोप की भाषाओं में भी रूपांतरित होकर प्रचलित हो गए हैं।

ज्ञानांबाळ् (त० पा०)

उन्नीसवीं शती में वेदनायक पिळ्ळै द्वारा विरचित तमिल के प्रथम उपन्यास 'पिरतापमुदलियार् चरित्तिरम्' (दे०) की यह कथा-नायिका है। यह एक कल्पित पात्र है किंतु इसके चित्रण में एक आदर्श भारतीय महिला का रूप प्रस्तुत हुआ है। ज्ञानांबाळ् पिरताप-मुदलियार् के मामा की बेटी है। बचपन से ही विवेकपूर्ण तथा लिखने-पढ़ने में चतुर। 'प्रताप' के समान यह भी एक संपन्न ज़मींदार परिवार में जन्मी है। अपने पाँचवें वर्ष में ही यह अपने कंजूस, अनुदार पिता को यह कहकर बदल देती है कि 'मैं कंजूस की बेटी नहीं कहलाना चाहती'। इसके संग रहने से 'प्रताप' सुधर जाता है। कुछ समय तक प्रताप, ज्ञानांबाळ् तथा अध्यापक-पुत्र कनकसभै तीनों एक साथ पढ़ते-खेलते हैं, दिन बिताते हैं; तब एक दिन अकस्मात् कनकसभै जलाशय में गिर जाता है। ज्ञानांबाळ् बड़ी स्फूर्ति के साथ कार्य करती है और एक राहगीर संन्यासी को बुला लाती है जो कनकसभै को बचाता है। उसे बचाने के लिए यह अपने सारे आभरण उतारकर देने को तैयार हो जाती है। बड़ों के झगड़े के कारण प्रताप और ज्ञानांबाळ् का विवाह रुक जाता है; तब प्रताप के इस प्रस्ताव को वह ठुकरा देती है कि हम छिप कर कहीं चले जाएँ, किंतु साथ ही प्रताप से प्रेम भी करती है। दुष्ट लोगों द्वारा हरी जाने पर धीरता के साथ वह खिसक कर भाग जाती है और 'प्रताप' की सहायता से मुक्त होती है। फिर दोनों का विवाह संपन्न होता है।

कनकसभै को धनी ज़मींदार का बेटा प्रमाणित करने में अनेक अड़चनें आती हैं, तब ज्ञानांबाळ् धीरज के साथ गवर्नर से भेंट कर सारी बात समझाती है। इसके व्यवहार से प्रभावित होकर गवर्नर मामले को स्वयं जाँच कर निपटा देता है।

शिकार खेलने जाकर प्रताप एक मस्त हाथी की भगदड़ से जंगल में फँस जाता है और फिर किसी परदेश में लोगों से ठगा जाकर जेल में पड़ा रहता है। ज्ञानांबाळ् पुरुष-वेश में वहाँ जाती है और उसे छुड़ा देती है। संयोगवश वहाँ के लोगों द्वारा शासिका निर्वाचित होकर वह शासन-व्यवस्था को सुधारती है और अंत में प्रताप के संग अपने स्थान को लौट आती है।

ज्ञानांबाळ् के द्वारा लेखक ने तत्कालीन महिलाओं के सम्मुख सद्गुणों का अच्छा आदर्श प्रस्तुत किया है।

टप्पा (पं० पारि०)

यह एक लोक-प्रचलित काव्य है। इसमें प्रेमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रेमिका बारी-बारी एक-दूसरे से नोक-झोंक करते हैं। कभी-कभी इसमें गंभीर भावनाओं को भी अभिव्यक्ति मिल जाती है। इसमें प्राय: प्रथम पंक्ति निरर्थक होती है और वह केवल अन्य चरणों के साथ तुक मिलाने के लिए ही बोली जाती है। उदाहरण :

सोने दा दिल माहीआ।
लोकां दीआँ रोण अखीआँ
साडा रोदाँ दिल माहीआ।
दो पत्तर अनाराँ दे
इकवारी मिल माहीआ
दुख जान बीमाराँ दे।

टप्पा *(बँ० प्र०)*

बँगला में टप्पा का अर्थ है संक्षिप्ताकार के गीत-गायन। टप्पा हिंदी शब्द है जिसका आदि अर्थ था 'कूदना'। बाद में इसका रूढ़ार्थ हो गया संक्षेप; अर्थात् ध्रुपद एवं ख़याल की अपेक्षा जो गायन संक्षिप्त है, उसी का नाम हुआ टप्पा। उन्नीसवीं शती के प्रारंभिक काल में, रामनिधि गुप्त (निधुबाबू) हिंदुस्तानी संगीत सीखकर हिंदी गीतों को तोड़ कर संक्षिप्ताकार में बँगला गीतों की रचना करने लगे और इसी को 'टप्पा' कहा जाने लगा। बंगाल में यह धारणा है कि श्रृंगार-रसात्मक गीत ही टप्पा है परंतु यह भ्रम है। वस्तुतः टप्पा गाने की एक पृथक् रीति का नाम है। टप्पा का परिसर संक्षिप्त होने के कारण इसका भाव संहत एवं रसघन है। विरह-ज्वाला के अपूर्व माधुर्य का आस्वाद निधुबाबू के श्रेष्ठ गीतों में अभिव्यक्त हुआ है। निधुबाबू के अतिरिक्त श्रीधर कथक भी टप्पा-साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। कबिगान (दे०) में गाने के साथ-साथ दो-तीन पंक्तियों के संक्षिप्त गान या टप्पा का विशेष प्रचलन था।

टिपणीस, य० ना *(म० ले०)*

रंगमंच के व्यावहारिक ज्ञान एवं सर्जक कल्पना-शक्ति के बल पर य० ना० टिपणीस ने 'मत्स्यगंधा' (1913), 'राधा माधव' (1914), 'जरासंध' (1916), 'नारद' 'पौराणिक चंद्रहार' (1918), 'शहाशिवाजी' (1925), 'शिक्का कट्यार' (1927), 'शिवाजीलाशह' (1933), 'दक्खनचा दिवा' (1936) ऐतिहासिक; तथा 'कमला' (1911), 'राजरंजन' (1925), 'आशानिराशा' (1923), 'स्वास्तिक बैंक' (1932), सामाजिक नाटकों की रचना की है। 'मत्स्यगंधा' राजा शांतनु के प्रणय एवं भीष्म द्वारा आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा; 'जरासंध' रुक्मिणी-स्वयंवर तथा भीम द्वारा जरासंध-वध; तथा 'राधा-माधव' श्रीकृष्ण-राधा के प्रणय प्रसंगों पर आधारित रचनाएँ हैं। रचना-शिल्प की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी इनकी रचनाओं की मंचीयता स्तुत्य रही है। ऐतिहासिक नाटकों में मौलिक कल्पनाधिक्य के कारण ये ऐतिहासिक पात्रों के साथ न्याय नहीं कर सके हैं। शेक्सपीयरी नाट्यपद्धति पर रचित होने के कारण भावपूर्ण स्थलों पर पात्रों की द्वंद्वमयी स्थिति एवं अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण भाषा-संवादों ने इनकी रचनाओं को मंचीय गौरव अवश्य प्रदान किया है।

टिळक चरित्र *(म० कृ०)*

कथा, उपन्यास, कविता तथा निबंध-लेखक न० चिं० केळकर (दे०) की प्रसिद्धि का आधार उनका चरित्र-ग्रंथ 'टिळक चरित्र' है।

1920 ई० में टिळक बालगंगाधर (दे०) की मृत्यु हुई थी। टिळक के अनन्य सहयोगी केळकर ने उनका चरित्र लिखा, जो तीन भागों में प्रकाशित हुआ। पहला भाग 1923 ई० में निकला और दूसरा 1928 ई० में। तीनों भाग मिलाकर यह ग्रंथ 2000 पृष्ठों में है। एक ही व्यक्ति को लेकर लिखा गया इतना व्यापक तथा विशाल चरित्र-ग्रंथ मराठी में दूसरा नहीं है।

केळकर जी की लेखन शैली आकर्षक है। उन्होंने टिळक जी के जीवन की छोटी-से-छोटी घटना का भी उल्लेख किया है। मराठी व्यक्ति के लिए टिळक पूज्य होने के कारण इस ग्रंथ का महाराष्ट्र में स्वागत हुआ था तथा साहित्य-जगत में अनुकूल टीका-टिप्पणियाँ हुई थीं।

प्रस्तावना में लेखक ने स्वयं लिखा है कि घटित इतिहास के आलेखन के उद्देश्य से यह चरित्र लिखा गया है। इसकी शैली तथ्यात्मक एवं विवरण-प्रधान है। भारतीय राजनीति के क्रीड़ांगण में अग्रिम पंक्ति में कटिबद्ध लोकमान्य टिळक के जीवन के 40 वर्षों के इतिहास के प्रस्तुतीकरण द्वारा यह ग्रंथ भारत—विशेष रूप से महाराष्ट्र—के सांस्कृतिक, सामाजिक, जीवन की सचित्र झाँकी प्रस्तुत करता है।

टिळक के अलौकिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति आदर-भाव रखते हुए भी लेखक का दृष्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोण विभूतिपूजक का नहीं रहा है। केळकर जी ने टिळक को एक कर्मयोगी मानव के रूप में ही चित्रित किया है।

टिळक, बालगंगाधर *(म०ले०)* [जन्म—1856 ई०; मृत्यु—1920 ई०]

रत्नगिरि ज़िले के चिरवलगाँव के साधारण परिवार में इनका जन्म हुआ था। महाविद्यालय में पढ़ते हुए आगरकर (दे०) से इनकी मैत्री हो गई थी। सन् 1879 ई० में ये बी०ए०, एल-एल०बी० हुए थे। बाद में ये फ़र्ग्युसन कालेज में गणित तथा संस्कृत के प्राध्यापक हो गए परंतु 1890 में इन्होंने देशसेवा के उद्देश्य से नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

टिळक एक निःस्वार्थ देशसेवक, लोकनायक, वैदिक अनुसंधाता, 'गीता' (दे०) के श्रेष्ठ टीकाकार तथा प्रौढ़ निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। लोकजागृति के उद्देश्य से इन्होंने 'केसरी' और 'मराठा' पत्र निकाला था। 'केसरी' पत्र का संपादन आग से खिलवाड़ करना था। देश-कार्य के लिए जेल जाने की प्रथा का श्रीगणेश टिळक तथा आगरकर ने ही किया था। इनका देशप्रेम इतना प्रबल था कि हिंदुओं की संघशक्ति बढ़ाने के लिए इन्होंने गणेशोत्सव तथा शिवाजी-जन्मोत्सव को राष्ट्रीय उत्सव घोषित किया था। पत्रों में प्रकाशित दो संपादकीय निबंधों के कारण 1908 ई० में इन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर सरकार ने इन्हें बर्मा के मांडले-कारावास में बंदी बनाकर रखा था। कारावास में रहते हुए इन्होंने 'गीता-रहस्य' (दे०) नाम से 'श्रीमद्भगवद्गीता' की सर्वोत्कृष्ट टीका लिखी।

ये लोकमंगलकारी एवं जीवनवादी साहित्यकार थे। 'केसरी' में प्रकाशित इनके निबंध ग्रंथों में संगृहीत हैं। ये मराठी निबंध-साहित्य की अमूल्य संपत्ति हैं। इनमें से अधिकांश निबंध राजनीति पर हैं परंतु कुछ निबंध पुरातत्त्व, ज्योतिष, समाज-सुधार, तत्त्वज्ञान, गवेषणा आदि विषयों पर भी हैं।

टिळक ने निबंधों में अपने मत का आवेशयुक्त प्रतिपादन किया है। इनके निबंधों में दृढ़ आत्मविश्वास का भाव है। इनकी भाषा ओजस्वी और प्रभावोत्पादक है। जटिल विषय को सरल बनाने में सिद्धहस्त होने के कारण ही 'केसरी' पत्र अतिशय लोकप्रिय था। वकील के ढंग से तर्क करते हुए इन्होंने यथास्थिति सुभाषितों की मार्मिक योजना की है।

'ओरिऑन' तथा 'आर्क्टिक होम इन द वेदाज़' इनके वैदिक शोध संबंधी दो ग्रंथ हैं, जिन्हें पढ़कर मैक्स-मूलर भी मुग्ध हुए थे।

टिळक भारत में राजनीतिक क्रांति के जनक माने जाते हैं। जैसे राजनीति में ये उग्रदल के नेता तथा स्वराज संस्थापक रहे हैं, वैसी ही उग्रता तथा आवेग एवं अडिग आत्मविश्वास इनके निबंध-साहित्य में भी है, और यही उसकी आत्मा है।

टिळक, रेव्हरेंड नारायण वामन *(म० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

इनका जन्म रत्नागिरि ज़िले में स्थित करज़-गाँव के ब्राह्मण कुल में हुआ था। ईसाई धर्म-प्रचारकों से अत्यंत प्रभावित होकर इन्होंने धर्मांतर किया और ईसाई बन गए।

रेव्हरेंड टिळक संधिकाल के कवि हैं। लंबी कविता और तत्सम-बहुला शब्दावली के कारण जहाँ वे प्राचीन कविता से संबंध जोड़े हैं वहीं नवीन भाव-सामग्री, एवं विषयों के कारण आधुनिक भी हैं।

'बापा चे अश्रु', 'माझी भार्या', 'सुशीला'—ये तीन कल्पना-प्रवण प्रबंधात्मक कविताएँ हैं। 'वनवासी फूल' दीर्घ विचारात्मक प्रगीत है और 'अश्रुगुच्छ' एक लघु कविता है। 'रणशिंग' जैसी ओजस्वी कविता द्वारा समाज को जागृति के लिए स्फूर्त किया गया है। 'अभंगांजलि' में अनेक भक्तिपरक अभंग हैं। ईसाई धर्म से प्रभावित होकर इन्होंने 'ख्रिस्तायन' काव्य लिखा था जो अधूरा है। इसके अतिरिक्त सुंदर शिशुगीत भी इन्होंने लिखे हैं।

मराठी-साहित्य में ये फूल (प्रकृति) और बच्चों के कवि कहलाते हैं।

टीका *(उ० पारि०)*

टीका का अर्थ आलोचना अथवा अर्थ का प्रकाशन है। उड़िया-साहित्य में टीका रचनाओं की विपुलता होते हुए भी आलोचनात्मक टीकाओं की संख्या प्रायः नगण्य ही है। 'टीका-गोबिंदचंद्र' एक दीर्घ गाथा-कविता है। उड़िया-साहित्य में 'टिकी' (छोटी-सी वस्तु) के अर्थ में टीका शब्द का प्रयोग हुआ है। 'टीका महाभारत' इसका उदाहरण है। 'टीका' ग्रंथ के रूप में 'सप्तांग योग-सागर-टीका' एवं 'गणेशविभूति टीका' आदि महत्वपूर्ण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीका *(पं० पारि०)*

किसी दार्शनिक अथवा गंभीर अर्थ वाली रचना के अर्थ-विश्लेषण के साहित्य-रूप को 'टीका' कहा जाता है। यह मध्ययुगीन पंजाबी गद्य-रूपों में से एक है जिसके माध्यम से धर्म-पुस्तकों और आध्यात्मिक अर्थ वाली काव्य-कृतियों के अर्थ गद्य में प्रस्तुत किए जाते थे। पंजाबी आध्यात्मिक साहित्य के संदर्भ से अठारहवीं-उन्नीसवीं शती तक टीकाकारी की एक दीर्घ परंपरा बन चुकी थी। भाई गुरदास की दो वारों की टीका के रूप में भाई मनी-सिंह-रचित 'ज्ञान रत्नावली' और 'भगत रत्नावली' अपने समय की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पंजाबी में 'टीका' शब्द पुल्लिग है और इसका संबंध साहित्यिक और धार्मिक विद्वत्ता की परंपरा से है।

टीह-अखियूँ *(सिं० प्र०)*

'टीह-अखियूँ' का शाब्दिक अर्थ है 'तीस वर्णों वाली कविता'। यह एक प्रकार की वर्णनात्मक कविता है जिसकी रचना अरबी वर्णमाला के तीस वर्णों पर आधारित है। अरबी भाषा की वर्णमाला में मूलतः अट्ठाईस वर्ण होते हैं। अरबी के अध्यापकों ने अरबी वर्णों के लिखने का रूप बच्चों को सिखाने के लिए उसमें 'हम्ज़ा' और 'ला' (ल् में अलिफ़ मिलाकर 'ला' लिखने का एक विशेष रूप) के रूप अलग जोड़कर कुल तीस वर्णों की तालिका बना ली। अरबी वर्णमाला के अलिफ़-बे आदि तीस वर्णों को लेकर प्रत्येक वर्ण से क्रमानुसार एक-एक बंद (कड़ी) का आरंभ कर 'टीह अखियूँ' नामक कविता की रचना की जाती है। इस कविता की विधा फ़ारसी की 'से-हर्फ़ी' से प्रभावित है। फ़ारसी में भी 'से-हर्फ़ी' का अर्थ है 'तीस वर्ण'। डा० नबी बख्श ख़ान बलोच (दे०) ने 'टीह-अखियूँ' नाम से दो भागों में इस प्रकार की चुनी हुई सिंधी कविताओं का बृहत्-संग्रह तैयार किया है जो 1960 और 1961 ई० में सिंधी अदबी बोर्ड, हैदराबाद सिंध से प्रकाशित हो चुका है।

टेकाडेयांची कविता *(म० क्र०)*

आनंद कृष्णाजी टेकाडे (जन्म—1890 ई०) की तीन काव्य-रचनाएँ हैं—'आनंदगीत' भाग 1, 2, 3। 'आनंद कंद रसो' नामक ग़ज़ल के काव्य-गायन ने उन्हें रसिक काव्य-श्रोताओं में कवि-रूप में लोकप्रिय बना दिया है।

कवि ने प्राचीन पोवाड़ों की परंपरा को आधुनिक काल में पुनर्जीवित करने का सफल प्रयत्न किया है। महाराष्ट्र व उसका इतिहास इनके पोवाड़ों के विषय हैं। ये पोवाड़े ऐतिहासिक होते हुए भी साहित्यिक हैं। इन पोवाड़ों में सामयिक राजनीतिक घटनाओं एवं प्रसंगों की ही अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण इनका ऐतिहासिक महत्व है।

कृष्णपरक गीतों में भक्ति रस का प्राधान्य है। इनका काव्य परिमाण में विपुल है, पर वह प्रायः अभिधामूलक है। अधिकांश कविताएँ गेय हैं।

टेढ़ी लकीर *(उर्दू० क्र०)*

इसमत चुग़ताई (दे०) के इस उपन्यास में जीवन के निरूपण से अधिक चरित्रांकन पर ध्यान दिया गया है। एक विशेष पात्र अपने जन्मकाल से लेकर युवावस्था तक कुछ विशेष परिस्थितियों में से गुज़रता है और जीवन में पेश आने वाली छोटी-मोटी विभिन्न घटनाओं से उसके चरित्र का निर्माण होता है। इसमत चुग़ताई के उपन्यास की नींव इसी मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर रखी गई है कि उप-चेतन की प्रक्रिया का मानव-जीवन और उसके कार्यों से गहरा संबंध होता है। विभिन्न प्रकार के वातावरण से मानव-मन में जो मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ पड़ती हैं वे उसे प्रभावित करती हैं। अपनी रचना में इसमत ने बराबर उनका ध्यान रखा है। हमारे जीवन में राजनीति, अर्थ-व्यवस्था विचार-शक्ति एवं सहनशक्ति जिस प्रकार घुले-मिले हैं, उन सब पर इसमत की सजग दृष्टि है। इससे भी बढ़कर उनकी दृष्टि उस मानवीय प्रकृति पर है जो आत्माभिव्यक्ति के लिए सामाजिक बंधनों एवं नियमों की पाबन्द नहीं। इसमत का यह उपन्यास भी प्रेमचन्द (दे०), सज्जाद ज़हीर, कृश्न चंदर (दे०), अज़ीज़ अहमद की भाँति बढ़ते हुए जीवन और नित नयी राहें ग्रहण करती हुई कला का पोषक है। यहाँ भी केवल उसी जीवन को अपना विषय बनाया गया है जिसकी रगों में लिखने वाली की संवेदना अपना स्थान बना चुकी है। इसी जीवन को विचार-शक्ति द्वारा नयी कला के साँचे में ढाला गया है। यह कृति उर्दू-साहित्य की एक अमूल्य निधि है। उर्दू-उपन्यास-साहित्य में निश्चय ही इसका एक गौरवपूर्ण स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठक् चाचा (बँ० पा०)

'आलालेर घरेर दुलाल' (दे०) के नायक चरित्र का नाम है मतिलाल क्योंकि मतिलाल के जीवन की बात की ही लेखक ने वर्णना की है। किंतु इस ग्रंथ की समस्त घटनाओं के केंद्र में जो निवास कर रहा है अथवा जो समस्त घटनाओं का नियंत्रण कर रहा है उसका नाम है—ठक् चाचा (ठक् चाचा)। ठक् चाचा प्यारीचाँद मित्र (दे० मित्र) की अमर सृष्टि है। ठक् चाचा की धोखा-धड़ी की तुलना नहीं; कूटकौशल में वह अद्वितीय है; झूठी प्रशंसा करने में उसका मुकाबला नहीं, इसीलिए ठक् चाचा की तुलना एकमात्र ठक् चाचा ही है। संस्कारवादी रामलाल की सद्वृत्ति एवं शिक्षानुराग से ठक् चाचा आशंकित है, केवल लाभ-हानि के डर से नहीं क्योंकि उसका स्थिर विश्वास है—दुनिया सच्ची नहीं है। इतनी चाल-बाज़ी करने पर भी उसकी आशा भंग हो जाती है और यहीं ठक् चाचा की ज़िंदगी की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। ठक् चाचा प्रत्येक क्षेत्र में सजीव-प्राणवान है। उसके कितने तरीक़े हैं, कितने दाँव हैं; फिर भी शिकार आकर भाग जाता है। यथार्थ जगत् से चुना गया ठक् चाचा का चरित्र बँगला साहित्य में अद्वितीय है। वह प्राचीन साहित्य के भांडुदत्त (दे०) का समगोत्रीय है।

ठाकर, धारूभाई प्रेमशंकर (गु० ले०) [जन्म—1918 ई०]

धीरूभाई ठाकर मूलतः वीरमगाम के निवासी हैं। इनकी शिक्षा सिद्धपुर, अहमदाबाद और बंबई में हुई। 'मणिलाल नभुभाई' पर शोधप्रबंध लिखने के उपलक्ष्य में इन्हें बंबई विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। ठाकर जी आरंभ से ही एक तेजस्वी छात्र रहे थे। बी० ए० (गुजराती विषय लेकर) प्रथम श्रेणी में पास करने के पश्चात् ये एल्फ़िस्टन कॉलेज बंबई में अंशकालिक अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। आजकल ठाकर जी मोडासा आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज में प्राचार्य के पद को सुशोभित कर रहे हैं। इनकी रचनाओं में यदि संपादित रचनाओं को छोड़ दें तो मौलिक रचनाएँ इस प्रकार हैं: 'गुजराती साहित्यनी विकासरेखा', 'मणिलाल नभुभाई : साहित्य साधना' (पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध), 'मणिलाल नभुभाई : जीवनरंग', 'रंग कसुंबी', 'रस अने रुचि'। डॉ० धीरूभाई ठाकर सन्निष्ठ विद्वान अध्यापक के रूप के सुविख्यात हैं। सम्प्रति ये नाट्य-निर्माण तथा नाटक के साहित्य प्रकार और आधुनिक गुजराती साहित्य का बृहत् इतिहास लिखने में प्रवृत्त हैं। इनके विवेचन सूक्ष्म और अध्यापकीय व वैचारिक निष्ठा से पूर्ण हैं।

ठाकर, लाभशंकर (गु० ले०) [जन्म—1935 ई०]

इनका जन्म प्रख्यात वैद्य जादवजी निर्भयराम के यहाँ हुआ था 1957 ई० तथा 1959 ई० में इन्होंने क्रमशः बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। स्वयं रोगग्रस्त होने पर इन्होंने वैद्यक से संबंधित समस्त साहित्य का गहन अध्ययन कर वैद्यक का ज्ञान अर्जित किया था। सम्प्रति 'कामचिकित्सा' नामक रुग्णालय का संचालन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त 'पुनर्वसु' नामक सुप्रसिद्ध गुजराती समाचार-पत्र में आयुर्वेद-विषयक लोक-प्रिय लेख-माला भी चला रहे हैं। इससे पूर्व ये दस वर्ष तक गुजराती के प्राध्यापक पद पर भी प्रतिष्ठित रहे थे। किंतु परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करना रसहीन लगने के कारण इन्होंने इस पद को छोड़ दिया।

इनका वास्तविक परिचय एक साहित्यकार के रूप में है। नये कवियों के नेता होने के साथ-साथ ये उच्चकोटि के कवि हैं। 'वही जती पाछल रम्यघोषा' (दे०) इनका सुविख्यात काव्य-संग्रह है। 'एक उंदर अने जदुनाथ' (दे०) अर्थात् 'एक चूहा और जदुनाथ' नामक एब्सर्ड नाटक लिख कर इन्होंने गुजराती के रंगमंच पर बड़ी हलचल मचाई है। 'माणसनी वात' तथा 'तमारा नामना दरवाजे' इनके काव्य-ग्रंथ हैं। 'अकस्मात' और 'कौण' उपन्यास तथा 'इनर लाइफ़' तद्विषयक आलोचनात्मक ग्रंथ हैं।

इन्होंने प्रारंभ में परंपरागत ढंग पर काव्य-रचना की थी किंतु बाद में आयासपूर्वक इसका परित्याग कर दिया और छांदस-अछांदस रचनाओं में सहजता का भोग लिये बिना लय तथा प्रास की लीला द्वारा नये काव्य को वाणी देने लगे। उनके काव्य का बहुत-कुछ सौंदर्य, मार्दव तथा लालित्य उसमें निहित शिशु पर आवृत है। इस संबंध में एक आलोचक का यह कथन सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है कि लाभशंकर में जो शिशु है उसे यदि निकाल दिया जाए तो इनके काव्य में बहुत कम उल्लेख्य रह जाता है।

ठाकुर (हिं० ले०)

कवि ठाकुर के संबंध में असनी वाले पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुर (सोलहवीं शती का उत्तरार्ध), असनी वाले दूसरे ठाकुर (उन्नीसवीं शती का प्रारंभ) और बुंदेलखंडी तीसरे ठाकुर (1766 ई० से 1823 ई० तक) को लेकर विद्वानों में काफ़ी विवाद है। पहले ठाकुर ने ब्रजभाषा में मन की उमंग के अनुकूल रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) स्फुट रचनाएँ की हैं, दूसरे ठाकुर ने 'सतसई बरनार्थ' नामक 'बिहारी-सतसई' (दे०) की टीका लिखी है और तीसरे बुंदेलखंडी ठाकुर ने स्फुट पदों में वहाँ के रीति-रिवाजों की बहुत सुंदर अभिव्यंजना की है। इनके पिता गुलाबराय अपनी ससुराल ओरछा में आ बसे थे। वहीं इनका जन्म हुआ।

लाला भगवानदीन (दे०) ने 'ठाकुर ठसक' नाम से इनके पदों का संग्रह प्रस्तुत किया है, जिसमें कुछ पद पहले ठाकुरों के भी सम्मिलित कर लिये हैं। इन्होंने जैतपुर-नरेश परीछत के दरबार में बहुत सम्मान प्राप्त किया था और बाँदा के हिम्मत बहादुर गोसाईं के दरबार में पद्माकर से इनकी नोक-झोंक अनेक बार हो चुकी थी। ठाकुर सच्ची उमंग के कवि थे। बोलचाल की भाषा में भाव का यथातथ्य चित्रण करना इनकी सहज विशेषता है। इनके काव्य में लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सजीव प्रयोग पाया जाता है। प्रेम-निरूपक रीतिमुक्त कवियों में ये अग्रणी कवि हैं। भारतेंदु (दे०) के सवैयों पर ठाकुर की भाव-भंगिमा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सवैया (दे०) छंद में ठाकुर की सहजगति थी। 'मोतिन की सी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर जोरि बनावै', 'पंडित और प्रवीन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै' एवं 'बनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कवित्त की बो खेलकरि जानौ है' आदि पंक्तियों में कवि ने अपने समय की सुंदर-असुंदर कविता की परिभाषा प्रस्तुत की है। स्वभाव से निर्बंध होते हुए भी इस कवि ने लोक-चित्त की उपेक्षा नहीं की है; तभी तो लोक का यह अद्भुत चितेरा बुंदेलखंड की जनता के बीच में अक्षय तृतीया को पहुँचकर वट-पूजन कराना नहीं भूला है, पुरुष से पत्नी का और पत्नी से पुरुष का नाम लिवाना और न लेने पर गुलाब या चमेली की छड़ी से उपस्थित भीड़ द्वारा आघात करवाने की चुहल तक को अपने काव्य में समेट लाया है। कहना न होगा प्रेमरस में निमज्जित होकर हृदय की सहज समुच्छ्वसित भावनाओं का चित्रण जिस ढंग से इन्होंने किया है वह प्रत्येक दृष्टि से अद्वितीय और परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय है।

ठाकुर, अवनींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1871 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

अवनींद्रनाथ ठाकुर प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर के तृतीय पुत्र गिरींद्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र गुणेंद्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र थे। भारतीय शिल्पकला के इतिहास में अवनींद्रनाथ का स्थान अतुलनीय है। ये भारतीय शिल्प की नवजागृति के पुरोधा थे। अवनींद्रनाथ आंतर्जातिक क्षेत्र में प्रथम सार्थक भारतीय शिल्पी थे। शिल्पी तथा शिल्पी-गुरु के रूप में ये प्रसिद्ध हैं। परंतु केवल शिल्प के क्षेत्र में ही नहीं, साहित्य-क्षेत्र में भी इनका विशिष्ट स्थान है। शिशु-साहित्य तथा चिंतनशील प्रबंध-साहित्य के निर्माण में इन्होंने स्वकीय वैशिष्ट्य का परिचय दिया है। 'क्षीरेर पुतुल', 'शकुंतला', 'नालक', 'भूतपरीर देश', 'राजकाहिनी' (दे०), 'खाजांचिर खाता', 'बुडो आंग्ला', 'मासि', 'मारुतिर पुथि', आदि पुस्तकें शिशु-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। दूसरी ओर, 'भारत शिल्प' (1909), 'बांग्लार व्रत' (1919), 'प्रियदर्शिका' (1921), 'बागेश्वरी शिल्प-प्रबंधावली' (दे०) (1941) आदि विचित्र विषयों से संबंधित इनके चिंतन-प्रधान ग्रंथ हैं।

सहज स्वर में अपने मन की बात कहने एवं लेखक और पाठक के बीच के व्यवधान को मिटा देने की शक्ति अवनींद्रनाथ के साहित्य-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता रही है।

ठाकुर, ज्योतिरिंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1849 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

आधुनिक युग के प्रारंभिक चरण में ज्योतिरिंद्रनाथ ठाकुर ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर जो स्वाधीनता-बोध जगाने का प्रयत्न किया था वह बँगला साहित्य में बिल्कुल अभिनव एवं एक नये दृष्टिकोण का सूचक था। देश के प्रति लोगों का अनुराग एवं स्वदेश-प्रीति को उद्बोधित करने के लिए लेखक ने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से भारतवर्ष की गौरव-गाथा का कीर्तन किया है। उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटकों में 'पुरुविक्रम' (1874), 'सरोजिनी' (1875), 'अश्रुमती' (1879), 'स्वप्नमयी' (1882) बहुत ही प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक कहानियों को लेखक ने इन नाटकों में अपने आदर्श के अनुसार ढाला है; कदाचित् इसीलिए उनके 'पुरुविक्रम' नाटक के अतिरिक्त और किसी नाटक में नाटकीय रस एवं नाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का महत्व ऐतिहासिक घटनाओं एवं चरित्र पर निर्भर नहीं है। उस युग के लिए दुर्लभ आंगिक चेतना, स्वाभाविक एवं परिच्छन्न कथानक एवं संवाद-रचना लेखक का प्रधान वैशिष्ट्य रहा है।

ज्योतिरिंद्र के शिल्पी मानस में एक आभिजात्य भाव विद्यमान था और इस परिच्छन्न अभिजात रुचि का परिचय उनके द्वारा रचित प्रहसनों में विशेषतः मिलता है। उनके प्रहसनों में 'किंचित् जलयोग' (1872), 'एमन कर्म आर करब ना' (1877), 'हिते बिपरीत' (1896), 'हठात् नबाब' (1884) आदि उल्लेखनीय हैं। इन प्रहसनों में विद्रूप का आघात कहीं भी सुरुचि की सीमा का अतिक्रमण नहीं करता।

ठाकुर, देवेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1817 ई०; मृत्यु—1905 ई०]

आधुनिक बँगला प्रबंध-साहित्य के विकास-काल के साथ विशेष रूप से संबद्ध महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका की स्थापना कर बँगला गद्य-लेखकों के एक मंडल के निर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया।

ब्राह्मसमाजी, रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के पिता, देवेंद्रनाथ ठाकुर की प्राथमिक रचना मूल रूप से धर्माश्रित है। 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका से ही संकलित उनकी 'ब्राह्मधर्म' (1851), 'ब्राह्मसमाजेर वक्तृता' (1862), 'ब्राह्मधर्मेर व्याख्यान' (1869) पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आलोचकों का कहना है कि विद्यासागर (दे० ईश्वरचंद्र) ने नहीं बल्कि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने बँगला-गद्य को भाव-प्रकाशन की सरलता, स्पष्टता तथा सरसता प्रदान की थी। उनकी रचना में पांडित्य और शास्त्रज्ञान की अपेक्षा सौंदर्य-बोध तथा गहरी अध्यात्म-अनुभूति कहीं अधिक मात्रा में थी। उनकी 'आत्मजीवनी' (1898) में तथ्यों और युक्ति-तर्कों के साथ आत्मगत भावोच्छ्वास का सुर प्रतिध्वनित है। यह ठीक है कि महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर की रचना में विषय-वैचित्र्य नहीं है परंतु भावानुभूति की प्रगाढ़ता उनकी रचनाओं में स्वतः स्पष्ट है।

ठाकुर, द्विजेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1840 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

महर्षि देवेंद्रनाथ (दे०) के ज्येष्ठ पुत्र, कवि सार्वभौम रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) के अग्रज द्विजेंद्रनाथ अपनी वैचित्र्यमयी प्रतिभा के फलस्वरूप बँगला साहित्य के इतिहास में विशेष स्मरणीय हैं। चित्रकला, गणित, दर्शन, काव्य आदि नाना विषयों पर इनका अबाध अधिकार था। दार्शनिक आलोचना एवं मौलिक साहित्य-चिंतन से अनुप्राणित इनके ग्रंथ 'तत्त्वविद्या' (1866-69) (चार खंड), एवं 'गीतापाठेर भूमिका' तथा 'गीतापाठ' (1916) उल्लेखनीय हैं। इनकी प्राबंधिक श्रेष्ठता का निदर्शन दूसरे ग्रंथों में भी विद्यमान है। 'सोनार काठि रूपारि काठि' (1885), 'आर्यामि ओ साहे बियाना' (1890), 'सामाजिक रोगेर कविराजी चिकित्सा' (1891), 'अद्वैतमतेर प्रथम और दूसरी समालोचना' (1897-98), 'आर्य धर्म एवं बौद्धधर्मेर परस्पर घात-प्रतिघात और संघात' (1900), 'सारसत्येर आलोचना', 'हारामणिर अन्वेषण', 'नानाचिंता' (1922), 'प्रबंधमाला' (1921), 'चिंतामणि' (1923) इनके उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

कवि द्विजेंद्रनाथ भी बँगला-काव्य के क्षेत्र में सुप्रतिष्ठित हैं। 'स्वप्न प्रयाण' (1875) काव्य में परिकल्पना के साथ मनोदर्शन का अपरूप समन्वय घटित हुआ है। यौतुक न कौतुक' (1883) गाथा-काव्य में भी इनके कविधर्म का विचित्र परिचय उद्घाटित हुआ है।

ठाकुर, बलेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1899 ई०]

रवींद्र (दे० ठाकुर) के समकालीन एवं परवर्ती प्रबंधकारों में बलेंद्रनाथ सविशेष स्मरणीय हैं। स्वल्प जीवन की परिधि में इनकी प्रतिभा का थोड़ा प्रकाश भी विस्मयकारी है। इनके 'चित्र और काव्य' (1892 ई०) ग्रंथ ने इन्हें शिल्पी की मर्यादा प्रदान की है। इनके कविता-ग्रंथ 'माधविका' (1894 ई०) में वसंत एवं 'श्रावणी' में वर्षा की कविताएँ प्रेयसी के सौंदर्य से मुग्ध कवि-हृदय का स्तवगान हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इनके प्रबंधों में प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व, प्राचीन संस्कृति साहित्य, मध्ययुगीन बँगला साहित्य आदि विषयों से संपर्कित इनकी अनुसंधित्सा एवं विश्लेषण-शक्ति का अपूर्व परिचय उद्घाटित हुआ है। 'कणारक', 'जयदेव' आदि भी प्रसंगतः स्मरणयोग्य हैं।

बलेंद्रनाथ ने बँगला साहित्य को ऐश्वर्यशाली बनाया है। इनके प्रबंध-साहित्य में इनकी परिपूर्ण शिल्पी-सत्ता विराजमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुर, रवींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1861 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

मानव-इतिहास के पृष्ठों में कभी-कभी ऐसे कवि भी दिखाई पड़ जाते हैं जिनका प्रधान परिचय देशकाल की सीमा में आबद्ध नहीं रहता वरन् जिनका वास्तविक परिचय चिरंतन विश्व की व्यापकता में मिलता है। रवींद्रनाथ ठाकुर इसी प्रकार के कवि हैं।

बाल्यकाल में इन्होंने अपने पिता महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर (दे०) से ज्योतिष तथा व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी, अन्यथा स्कूल की शिक्षा इन्हें लगभग मिली ही नहीं थी। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने पद्य-रचना प्रारंभ कर दी थी। प्रारंभिक रचनाओं के अंतर्गत 'बनफुल' (1879), 'कवि-काहिनी' (1879), 'संध्या-संगीत' (1882), 'कड़ि ओ कोमल' तथा 'मानसी' (1890), हैं। बाद की अवस्था की रचनाओं में 'सोनार तरी' (दे०) (1894), 'चित्रा' (दे०) (1896), 'क्षणिका' (1900), 'खेया' (1906), 'गीतिमाल्य', 'गीतालि' तथा 'गीतांजलि' (दे०) (1910), 'बलाका' (दे०) (1916) का उल्लेख किया जाता है। 'गीतांजलि' के अँग्रेज़ी अनुवाद पर, जो इन्होंने स्वयं किया था, इन्हें 1913 ई० में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। 'गीतांजलि' में कवि-मन की व्याकुलता अनाविल भक्तिरस से अभिषिक्त हो उठी है। 'गीतांजलि' की संवेदनाओं की सचाई और भाव-चित्रों की सजीवता इनके पदों के संगीत से मिलकर एक ऐसे काव्य की सृष्टि करती है कि शब्दों के भूल जाने पर भी पद-संगीत पाठक के मन को विभोर किए रहता है। इसके उपरांत जो काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे, उनमें 'पलातका', 'पूरबी' (दे०), 'प्रवाहिनी', 'शिशु' (दे०), 'भोलानाथ', 'महुआ', 'वनवाणी', 'परिशेष', 'पुनश्च', 'वीथिका' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अंतिम काव्य-संग्रह 'आरोग्य' (1941) तथा 'शेष लेखा' (1941) मृत्यु-पथ-यात्री की विचित्र अभिज्ञता का वर्णन है।

पद्य की तरह गद्य की भी रचना रवींद्र ने शैशवकाल से प्रारंभ कर दी थी। इनका प्रथम गद्य-प्रबंध, 'भुवनमोहिन-प्रतिभा' 'ज्ञानांकुर' में 1883 ई० प्रकाशित हुआ था। इनका पहला उपन्यास था 'करुणा'। उसके बाद इन्होंने 'बौठाकुरानीर हाट', 'राजर्षि' (1886) की रचना की थी। फिर क्रमशः इन्होंने 'चोखेर बालि' (दे०), 'नौका डूबी' तथा 'गोरा' (दे०) उपन्यासों की रचना की। नाटकों में 'बाल्मीकि प्रतिमा', 'मायार खेला' गीतिनाट्य प्रसिद्ध हैं। स्वर के धागे में हृदयावेग को पिरो देना ही इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। 'विसर्जन' (दे०) तथा 'चित्रांगदा' में रवींद्रनाथ की नाटक-लेखनी ने मानो पूर्णशक्ति प्राप्त कर ली है। 'डाकघर' (दे०) तथा 'रक्तकरबी' (दे०) इनके प्रसिद्ध सांकेतिक नाटक हैं। जीवन की अंतिम अवस्था में लिखित नृत्य नाटक तो इनकी अपनी मौलिक सृष्टि हैं। 'नटीर पूजा' इसका उदाहरण है। 'चिरकुमारेर सभा' (दे०) में हँसी निरंतर अश्रु के साथ मिलकर चलती हुई अंतिम दृश्य में एक अपूर्व प्रहसन की सृष्टि करती है। मानव-जीवन में ऋतुक्रम का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया दिखाने के लिए इन्होंने 'शारदोत्सव', 'राजा', 'अचला यतन', 'फाल्गुनी' आदि नाटक लिखे थे। 1888 ई० में इन्होंने आधुनिक बँगला-साहित्य में लघु कहानी की सृष्टि करके एक नवीन एवं प्रधान धारा की सृष्टि की थी।

निबंध के क्षेत्र में भी इनकी देन बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा, भारतवर्ष, आत्मशक्ति, स्वदेश, समाज, धर्म, शांतिनिकेतन आदि इनके समस्यामूलक तथा दार्शनिक निबंधों का संकलन है। 'जीवन-स्मृति' इनकी आवेगमूलक गद्य-रचना का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। अपने साहित्य-तत्त्व-विषयक ग्रंथों, 'साहित्य', 'आधुनिक साहित्य', 'साहित्येर पथे' आदि में इन्होंने रस, सौंदर्य और बृहत् जीवनादर्श के आधार पर भारतीय साहित्य-विचार को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार साहित्य-सृजन में पारंगत कवि ने अपनी सृजन-कला से साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को उज्ज्वल बनाया है।

रवींद्रनाथ ठाकुर की चिंतनधारा के प्रमुखतया तीन आधार थे। प्रथम, भारतीय उपनिषद् का आध्यात्मिक आत्मवाद; द्वितीय, बंगाल के बाउल विचार जो सूफ़ी तथा अद्वैतवादी विचारधारा के अनुरूप हैं; और तृतीय, चिरंतन सौंदर्यवाद जिसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक विराट् कवि के लिए आवश्यक है। इन आधारों से अनुप्रेरित कवि ने जगत् की इस विचित्र सृष्टि के बीच परमब्रह्म के प्रकाश का अनुभव किया है। इसी को कवि ने सीमा अर्थात् सीमित 'हम' एवं असीम 'ब्रह्म' के साथ मिलन का अनुभव कहा है। कवि का संपूर्ण साहित्य इसी जीवन-दर्शन से अनुप्रेरित है।

ठाकोर, जया *(गु० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

जया ठाकोर अहमदाबाद के बी० डी० कालेज में अँग्रेज़ी साहित्य की प्राध्यापिका हैं। उनके दस उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। भारत-विभाजन पर आधारित उनका उपन्यास 'सती' इस विषय पर लिखा हुआ एकमात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी-जीवन की समस्याएँ विशेष रूप से ली हैं। 'मोटाघरनी बहु' उपन्यास में विवाह-विच्छेद की समस्या है। उनके उपन्यास विशेषतः मनोवैज्ञानिक हैं, और उन्होंने चेतना-प्रवाह शैली का प्रयोग किया है। उनके उपन्यासों के नारी-पात्र क्रांतिकारी हैं। वे पति के अन्याय को सहन नहीं करतीं, पति का त्याग करती हैं, अवैध प्रणय भी करती हैं और उसके लिए क्षोभ की भावना उनमें नहीं होती। आधुनिक नारी के दर्शन उनके 'सती', 'मोटाघरनी बहु', 'बेघर', 'कल्पनामूर्ति', 'नवप्रस्थान' इत्यादि उपन्यासों में होता है। उनके 'पायडु सलिवल्यु' उपन्यास ने बहुत हलचल मचाई थी।

ठाकोर, पिनाकिन *(गु० ले०)* [जन्म —1916 ई०]

पिनाकिन उदयलाल ठाकोर का जन्म ब्रह्मदेश (बर्मा) में हुआ था। 1938 ई० में बंबई विश्वविद्यालय से बी० ए-जी० (आनर्स) की डिग्री प्राप्त कर इन्होंने कुछ समय पुराने बंबई इलाके के कृषि-विभाग में नौकरी की थी। किंतु बाद में अपना पैतृक जौहरी-व्यवसाय अपना लिया। इन्होंने एक अच्छे कवि के साथ रेडियो-नाटककार एवं रेडियो-एकांकीकार के रूप में भी ख्याति अर्जित की है। 1956 ई० में इनकी नियुक्ति आकाशवाणी के अहमदाबाद केंद्र पर नाट्य-दिग्दर्शक के रूप में हुई थी।

उमाशंकर (दे०) तथा सुंदरम् (दे०) की पीढ़ी के बाद 1940 ई० से 1956 तक सौंदर्योन्मुख कवियों का युग आया था जिसमें राजेंद्रशाह तथा निरंजन भगत के साथ इनका नाम भी अग्रगण्य है। इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—'आलाप', 'रागिनी' और 'आंरवी अने पडछाया'। यों तो इन्होंने वर्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छंदों में काव्य-रचना की है किंतु इनकी विशेषता इनके प्रगीतों में है। सौंदर्य-भक्तिपूर्ण इनके प्रगीतों की पदावली अत्यंत कोमल-मधुर है। समग्रतया गुजराती कवियों में इनका स्थान एक रुचिर कवि के रूप में सुविख्यात है।

ठाकोर, बलवंतराय *(गु० ले०)* [जन्म—1869 ई०; मृत्यु 1953 ई०]

गोवर्धन युग के सबसे विलक्षण कवि, विवेचक एवं गद्यकार बलवंतराय कल्याणराय ठाकोर (ब०क०ठा०) इतिहास तथा अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे। 'सेहेनी' उपनाम से इन्होंने विचारमूलक कविताएँ लिखी हैं। इनका प्रसिद्ध कविता-संग्रह 'भणकार' (दे०) 1917 ई० में प्रकाशित हुआ। परंपरागत सरल, प्रासादिक, कल्पना-प्रचुर, रोमांटिक कविता-धारा के प्रति विद्रोहात्मक वृत्ति और क्रांतिकारी दृष्टि लेकर बलवंतराय ने गुजराती काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया और अपने विशिष्ट प्रयोगों द्वारा विचार-प्रधान, अर्थयुक्त, गहन-गंभीर सॉनेटों और अन्य कविताओं का सर्जन किया जिसमें कविता की यति, प्रास, छंद, लय आदि के बंधनों को तोड़ा गया। उन्होंने कविता में गेय तत्त्व का तिरस्कार किया और 'पद्य की प्रवाहिता' पर बल दिया। ब० क० ठाकोर ने 'पृथ्वी छंद' की शक्तियों का अन्वेषण कर उसे यतिमुक्त, अगेय, प्रवाही बनाकर सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया। 'भणकार' के कुछ सॉनेट अपने शब्द एवं अर्थ-गांभीर्य, सुव्यवस्थित कल्पना-वैभव और प्रवहमान शैली के कारण गुजराती के उक्त सॉनेटों में परिगणित होते हैं। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से बलवंतराय युगांतरकारी कवि हैं।

श्री ठाकोर उच्चकोटि के समीक्षक भी हैं। 'विविध व्याख्यानो भा० 1', 'सरस्वती-चंद्रमां वस्तुनी फूलगूंथणी', 'लिरिक' (दे०) इत्यादि ग्रंथों में इनकी उत्कृष्ट समालोचना-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। 'उगती जुवानी' और 'लग्नमां ब्रह्मचर्य' इनके मौलिक नाटक हैं। तदनंतर इन्होंने संस्कृत नाटकों के अनुवाद किए हैं और इतिहास-ग्रंथ लिखे हैं। वस्तुतः श्री ठाकोर बहुमुखी प्रतिभा के लेखक हैं।

ठोकळ, ग० ल० *(म० ले०)*

ये ग्राम्य जीवन तथा ग्रामीण परिवेश पर आधारित कथा लिखने वाले आंचलिक कथाकार हैं।

इनके बारह कथा-संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रसिद्ध हैं 'कडूसाखर', 'सुगंध', 'गोत्यांचा चारा', 'ठोकळ गोष्ठी' भाग 1-2 आदि।

इनकी कथाओं का आधार ग्रामीण जीवन है। देहाती जीवन के दुःख, कष्ट, दीनता, अज्ञान आदि समस्याओं का अद्भुत-रम्य चित्रण इन्होंने किया है। ग्रामीण जीवन के आश्रय से ग्रामीणों के अंतःकरण का अध्ययन कर अनेक रहस्य-कथाओं या अवास्तविक घटनाओं पर आधारित अतिरंजनात्मक कथाओं का सृजन भी इन्होंने किया है।

कथाओं में विनोद स्थूल है; कृत्रिम और अतिरंजित है। इन्होंने पात्रानुकूल ठेठ देहाती भाषा का प्रयोग किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये जानपद गीतकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। 'मीठभाकर' इनके जानपद गीतों का संग्रह है।

डंबाचारी विलासम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती का अंतिम दशक]

इसके रचयिता काशी विश्वनाथ मुदलियार हैं। इन्होंने उन्नीसवीं शती के अंतिम दशम में नाटक रचना प्रारंभ किया। 'डंबाचारी विलासम्' इनका सर्वप्रसिद्ध नाटक है। इसे तमिल का प्रथम सामाजिक नाटक माना जाता है। विद्वानों के मतानुसार यह नाटक उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में मद्रास-स्थित एक व्यक्ति के यथार्थ जीवन पर आधृत है। नाटक की कथा इस प्रकार है—एक व्यक्ति अपने पिता से उत्तराधिकार में अपार संपत्ति प्राप्त कर पाखंडी, ढोंगी और आडंबरप्रिय हो जाता है। अपने अवसरवादी मित्रों और वेश्याओं के साथ आनंद-क्रीड़ाएँ करते हुए मदिराव्यसनी होकर अपनी सारी संपत्ति नष्ट कर देता है। धीरे-धीरे मित्रगण उसका साथ छोड़ देते हैं और वह अनाथ बन जाता है। काशी विश्वनाथ मुदलियार अँग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त अफ़सर थे। उन्होंने देखा कि तत्कालीन समाज में अँग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त ऐसे अनेक अमीर नवयुवक हैं जो कि बाह्याडंबर में जीवन नष्ट कर रहे हैं। ये व्यक्ति तमिल-समाज की रूढ़ परंपराओं और तमिल-संस्कृति के लिए खतरा बन रहे थे। इनका व्यवहार और जीवन-मूल्यों के प्रति इनका दृष्टिकोण हिंदू समाज के अनुरूप बिलकुल नहीं था। भारतीय संस्कृति और परंपरा की रक्षा में लगे व्यक्तियों को सदा इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं ये लोग जीवन के व्यापक मूल्यों को नष्ट न कर दें। समाज को ऐसे ढोंगी युवकों से सावधान करने के लिए ही विश्वनाथ मुदलियार ने इस नाटक की रचना की थी।

प्रथम सामाजिक नाटक होने के कारण इसने दर्शकों एवं रंगकर्मियों को समान रूप से आकृष्ट किया। नाटक का नायक डंबाचारी तमिल-समाज में एक प्रतीक बन गया है। आज अत्यंत खर्चीले और निश्चिंत व्यक्ति को 'डंबाचारी' कहा जाता है। नाटक की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं: पात्रों का सजीव चरित्र-चित्रण और व्यंग्यात्मकता। विभिन्न पात्र यथार्थ जीवन के अत्यंत निकट दीख पड़ते हैं। विश्वनाथ मुदलियार ने यद्यपि 'तासिलदार नाडहम' और 'ब्राह्मसमाज नाडहम' नामक दो अन्य सामाजिक नाटक लिखे परंतु प्रसिद्धि एवं प्रभावशालिता की दृष्टि से 'डंबाचारी विलासम्' ही इनका सर्वश्रेष्ठ सामाजिक नाटक ठहरता है। इसका तमिल के सामाजिक नाटकों में विशिष्ट स्थान है। 1900 से 1925 ई० के बीच इसका अभिनय तमिलनाडु में अनेक बार हुआ।

डखणे *(पं० पारि०)*

'आदिग्रंथ' में इस शीर्षक के अंतर्गत गुरु अर्जुनदेव के कुछ छंद संकलित हैं, अतः इसे भ्रमवश किसी छंद अथवा काव्य-रूप का भेद समझ लिया जाता है परंतु यह शब्द एक विशेष शैली का परिचायक मात्र है। गुरु नानक की जन्मभूमि तलवंडी से दक्षिण की उपभाषा मुलतानी (लहंदी) में निबद्ध होने के कारण ये डखणे (दक्षिणे > दखणे > डखणे) कहलाते हैं। इस उपभाषा में 'द' और 'स' का 'ह' हो जाता है। डखणे का वर्ण्य ईश्वर-प्रेम की तीव्रता और छंद दोहा अथवा सोरठा है।

डमरुधर *(बँ० पा०)*

डमरुधर (त्रैलोकनाथेर गल्प) बँगला साहित्य की एक चमत्कारिक चरित्र-सृष्टि है। डमरु ने असंभव अवास्तविक कल्पना के साथ अपने चरित्र की संस्थापना कर एक नये रसलोक की सृष्टि की है। डमरु की नीचता, स्थूलत्व कूटबुद्धि, पाखंड एवं आत्मप्रसाद व्यंग्य-कौतुक-करुणा की रश्मित्रयी से सुनियंत्रित है। अपने को लेकर डमरु ने मज़ाक किया है किंतु आत्मविश्वास नहीं खोया है। डमरु की झूठी आत्मश्लाघा ने पाठक को धोखे में नहीं डाला है एवं पाठक ने भी घृणा तथा विरक्ति से अपना मुह नहीं फेरा है वरन् सकौतुक दिल खोलकर हँस लिया है। डमरु सेरवांते के डॉन क्वक्ज़ोट, कानन डायल के शर्लाक होम्स, एवं अर्नेस्ट ब्राम के काइलुंग की तरह विश्व-साहित्य की एक अमर सृष्टि है।

डहसु *(सिं० पारि०)*

'डहसु' का शाब्दिक अर्थ है 'दस का', 'दस वाला' (पद्य)। सिंधी लोक-साहित्य में 'डहसु' श्रृंगार रस से पूर्ण वह कविता है जिसमें कवि नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते समय किसी उपमेय अथवा उपमान का विभिन्न दस पर्यायवाची शब्दों में उल्लेख करता है। ये शब्द सिंधी, संस्कृत, प्राकृत, हिंदी, अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं से चुने जाते हैं। उदाहरणार्थ, नायिका की आँखों का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए कवि आँखों का अथवा आँखों के किसी उपमान का दस पर्यायवाची शब्दों में उल्लेख करता है। 'डहसु' के संग्रह को 'डहसुनामो' कहा जाता है। इन कविताओं पर हिंदी के रीतिकालीन शृंगार-काव्य का प्रभाव दृष्टिगत होता है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी 'डहसु' पद्य महत्व-पूर्ण हैं। जलाल नामक धोबी के 'डहसु' पद्य बहुत प्रसिद्ध हैं।

डाकघर *(बँ० क्रु०)*

प्रतीकात्मक नाटकों में सर्वाधिक लोकप्रियता 'डाकघर' को मिली है। इसमें रवींद्र (दे० ठाकुर) ने बाल-मनोविज्ञान का स्वाभाविक परंतु सशक्त विश्लेषण किया है। अमल एक ऐसा अद्भुत बालक है जिसमें सृष्टि के सौंदर्य एवं रहस्य को जानने की निरंतर जिज्ञासा है। उसकी निश्छल प्रकृति तथा बाल-सुलभ कल्पना घंटे वाले, दही वाले, सुधा आदि सब की बातों में नवीनता एवं उत्सुकता पाती है। स्थूल-व्यावहारिक बुद्धि का माधव उसकी इस मनोवृत्ति को नहीं समझ सकता। यही स्थिति कविराज की है। वह ऐसा जड़ अभ्यासी व्यक्ति है जो जीवन के सहज-सरल तत्त्व को नहीं समझ पाता। बाबा अमल की प्रकृति को तत्काल समझ जाता है। वस्तु-विन्यास कोई जटिल नहीं परंतु राजा के घर से चिट्ठी आएगी, इस प्रसंग का पूरा नाटकीय लाभ उठाया गया है। अंत में, अमल की यह इच्छा अवश्य पूरी हो जाती है। नाटक की समस्या बाल-मनोविज्ञान की है परंतु, वास्तव में, रवींद्र, सहज प्राकृतिक मूल्यों पर बल देना चाहते हैं। सबसे सशक्त पात्र अमल है जिसके रेखांकन में कहीं-न-कहीं रवींद्र का अपना बाल्यकाल उभर आया है। शेष पात्र निमित्त मात्र हैं। रंगमंच की दृष्टि से यह बहुत सफल और प्रभावशाली रचना है। अपने क्षेत्र में अद्वितीय होने के कारण यह चिरस्मरणीय रहेगी।

डा० आनंदीबाई जोशी *(म० क्रु०)*

1912 ई० में श्रीमती काशीबाई कानिटकर ने 'डा० आनंदीबाई जोशी' नामक चरित्र-ग्रंथ की सृष्टि की थी। आनंदीबाई के बारे में लेखिका ने आप्तजनों से जानकारी प्राप्त की है। अतः यह चरित्र-ग्रंथ विश्वसनीय है। नायिका द्वारा लिखित पत्रों के उल्लेख द्वारा इस ग्रंथ को अपूर्व बना दिया गया है। इन पत्रों के समावेश से चरित्र-नायिका की स्वभावगत विशेषताओं के मार्मिक उद्घाटन में सहायता मिलती है, साथ ही ग्रंथ की शोभा में वृद्धि भी हुई है।

इस चरित्र-ग्रंथ की शैली प्रसाद गुण-संपृक्त एवं सरस है। सहज-सुंदर भाषा में लिखित, हृदयस्पर्शी निवेदनों के संस्पर्श से सरस तथा भावनात्मक उद्गारों से युक्त यह चरित्र-ग्रंथ पर्याप्त रमणीय हो गया है।

इसके प्रकाशन के उपरांत पुस्तक तथा लेखिका दोनों ने मराठी साहित्य-जगत में प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस प्रकार की शैली का यह पहला मराठी चरित्र-ग्रंथ है।

डाबर आरु नाइ *(अ० क्रु०)* [रचना-काल—1955 ई०]

लेखक : योगेश दास (दे०)।

'डाबर आरु नाइ' (मेघ और नहीं) उपन्यास में महायुद्ध के प्रभाव से आदर्श-भ्रष्ट और नीति-भ्रष्ट समाज तथा चाय बाग़ान के जीवन का चित्रण है। नये लेखक की यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

डिंगल

राजस्थान में एकाधिक भाषाओं का साहित्य में प्रयोग होता रहा है जिनमें मुख्य मारवाड़ी या पश्चिमी राजस्थानी है। इसी के साहित्य में प्रयुक्त रूप को 'डिंगल' कहते हैं। डिंगल नाम का प्रथम प्रयोग बाँकीदास ने उन्नीसवीं शती में किया है। 'डिंगल' नाम कैसे पड़ा, इस पर बहुत विवाद है। 'बेलि क्रिसन रुक्मणरी' तथा 'ढोला मारूरा दूहा' डिंगल में लिखित मुख्य कृतियाँ हैं।

डिंगल-पिंगल *(हिं० पारि०)*

ये दोनों शब्द राजस्थान में भाषाशैलियों के लिए प्रचलित हैं। डिंगल नाम से राजस्थानी और पिंगल नाम से राजस्थानी-प्रभावित ब्रजभाषा का बोध होता है। वस्तुतः डिंगल नाम मारवाड़ी बोली की साहित्यिक चारण-शैली को दिया गया है। जोधपुर के कविराजा बाँकीदास (दे०) ने सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग किया था। यह वस्तुतः भाषा की एक कृत्रिम शैली है, जिसे चारणों ने गढ़ा था। इसी के अनुकरण पर राजस्थान की अन्य बोलियों से प्रभावित ब्रजभाषा को पिंगल कहा गया। कुछ लोग यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मानते हैं कि ब्रजभाषा का आरंभिक रूप पिंगल ही है।

डियोढ़ *(पं० पारि०)*

चार चरणों के ऐसे मात्रिक छंद को 'डियोढ़' कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण में 16+12+8=36 मात्राएँ हों। इसमें प्रत्येक चरण के दूसरे और तीसरे चरणांश की तुक मिलती है जिसके फलस्वरूप छंद की लय संगीतमयी एवं लचकदार हो जाती है। भाई कान्ह सिंह ने दुभंगी अथवा मदनमहर इसके दो अन्य नाम भी लिखे हैं। परंतु वे पंजाबी में प्रचलित नहीं हैं। इस छंद का प्रयोग अधिकतर श्रृंगार—विशेषतया विप्रलंभ श्रृंगार—में किया जाता है। महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन कवि हाशम (दे०) की डियोढ़ें बहुत प्रसिद्ध हैं। महाराजा की अतिप्रिय 'डियोढ़', जिसे वे कवि हाशम के मुख से बार-बार सुनते थे, इस प्रकार है :

कामल शौक माही दा मैंनू, रहे जिगर विच वसदा,
लूँ लूँ रसदा।
रांझण वेपरवाही करदा, कुई गुनाह ना दसदा,
उठ उठ नसदा।
जिउँ जिउँ सुणावाँ गेवाँ, वेख ततीवल हसदा,
ज़रा ना खसदा।
हाशम कम्म नहीं हर कसदा, आशक होण दरस दा,
बिरहों रस दा॥

डेका, हलिराम *(अ० ले०)* [जन्म—1901 ई०; मृत्यु—1960 ई०; जन्म-स्थान : ज़िला कामरूप]

इन्होंने कलकत्ता से एम० ए०, बी० एल० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। ये असम उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे थे।

प्रकाशित रचना—'अलकालै चिठि' (1949)।

यह ग्रंथ अलका नामक कल्पित नारी को संबोधित कर लिखे गए पत्रों का संग्रह है। अलग-अलग पत्रों के माध्यम से लेखक ने उपन्यास की कहानी बुननी चाही है। इन्होंने प्रेम-प्रणय-प्रधान जटिल और मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। कहानियों में बुद्धि-दीप्त हास्यरस और वाक्-चातुर्य भी पाया जाता है। 'मरा घोड़ा' इनकी विशिष्ट कहानी है।

ये गरिमामय एवं विचारपूर्ण गद्य के लेखक माने जाते हैं।

डेका, हितेष *(अ० ले०)* [जन्म—1924 ई०; जन्म-स्थान : ज़िला कामरूप]

व्यवसाय से ये अध्यापक हैं। प्रकाशित ग्रंथ—**कहानी**: 'प्रायश्चित्त' (1949), **उपन्यास** : 'आजिर मानुह' (दे०) (1952), 'नतुन पथ' (1954)', 'मारा घर' (1957),' 'माटि घर' (1958), 'एये तो जीवन' (1962)।

'आजिर मानुह' इनका श्रेष्ठ उपन्यास है। शेष कृतियों में ये अपने ही स्तर को स्थिर नहीं रख सके। इन्होंने ग्राम-जीवन और कृषक-समस्याओं के यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनकी प्रसिद्धि रचना-कौशल आदि के कारण न होकर कहानी के कारण है।

ढगढमालि *(उ० पारि०)*

'ढगढमालि' लोकोक्ति और मुहावरा नहीं है। यह उड़िया भाषा एवं साहित्य की एक ऐसी विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। जातीय सांस्कृतिक चेतना को सुरक्षित रखने का युग-युग से चला आने वाला यह जनप्रयास है, अत: अपने में अनूठा है—भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से। 'ढगढमालि' सैकड़ों वर्षों से अनेक पीढ़ियों द्वारा मौखिक रूप से संचित मानव-स्वभाव की व्याख्या है। युग-युग की अनुभूति से समृद्ध सहज एवं सरल भाषा में प्रकाशित 'ढगढमालि' को सांसारिक जीवन की दिशा-निर्देशिका कहना असंगत नहीं होगा। एक-एक 'ढग' में एक-एक पुस्तक छिपी है। किंतु 'ढगढमालि' सर्वदा उपदेशात्मक नहीं होती। इससे यदि कभी मनोहर ग्रामीण गल्प की सूचना मिलती है तो कभी ऐतिहासिक तथ्य की; कभी यह व्यंग्यात्मक होती है, तो कभी एकदम अर्थहीन।

'ढगढमालि' में गुरु और लघु के उच्चारण में निर्दिष्ट नियम नहीं दिखाई पड़ता श्रुति-मधुरता की दृष्टि से लघु के स्थान पर गुरु और गुरु के स्थान पर लघु का उच्चारण होता है। 'ढगढमालि' के लिए त्रय-अक्षरी से षडक्षरी तक के छंद प्रयुक्त हुए हैं। कविता में ऐसा प्रयोग नहीं दिखाई देता क्योंकि सप्ताक्षरी से कम वर्णों के छंद का प्रयोग कविता के लिए नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक समछंद भी दिखाई पड़ते हैं जिनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामकरण तक नहीं हो सका है।

ढप-कीर्तन (*बँ० प्र०*)

प्राचीन पांचाली (दे०) गायन में गायक के पैरों में नूपुर एवं हाथों में चामर-मंदिरा वाद्य रहता था। परवर्ती युग में कीर्तन (दे०) के आश्रय से पांचाली गान का प्रवर्तन हुआ। इस प्रकार के पांचाली गायन का एक विशेष रूप है ढप-कीर्तन। ढप-कीर्तन के उद्भव के बारे में एक दूसरा मत है कि कीर्तन-गान जब धार्मिक अनुष्ठान में बदल गया और लोग जब प्राचीन लोक पारंपरिक कीर्तन के प्रेम-संगीत को भूलने लगे तब इस ढप-कीर्तन का आविष्कार हुआ। ढप-कीर्तन में प्राचीन पांचाली के अनुसार गायक नूपुर या चामर-मंदिरा का प्रयोग नहीं करता। वह साधारण वेश में कीर्तन की तरह ही कथा एवं स्वर के समन्वय के द्वारा गीत की कथावस्तु को नाट्याकार में परिवर्तित कर देता है।

मधुकान (1813-1868) ढप-कीर्तन के प्रवर्तक उन्नायक थे। मधुकान के गीतों ने बँगला कीर्तन-गान को एक नया रूप प्रदान किया। परवर्ती युग में कीर्तन में बाउल (दे०) आदि लोक-गीतों की रीति के अनुप्रवेश का पूरा श्रेय इन्हीं को दिया जाता है।

ढेंकियालफुकन, आनंदराम (*अ० ले०*) [जन्म—1829 ई०; मृत्यु—1859 ई०]

जन्म-स्थान : गौहाटी। इनकी शिक्षा कलकत्ता के हिंदू कालेज में हुई थी। इन्हें अँग्रेज़ी, हिंदी, फ़ारसी और बँगला भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। फुकन जी ने क्रमश: दीवान, मुंसिफ़, एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर आदि पदों पर कार्य किया था। इन्होंने 1846 ई० से 'अरुणोदय' पत्रिका में लिखना आरंभ किया था। इसमें इनका 'इंगलैंड विवरण' धारावाहिक छपा था। 1849 ई० में इनके 'असमीया लरार' ग्रंथ का प्रकाशन हुआ था। असमीया भाषा को बँगला प्रभाव से मुक्त कर उसे स्वतंत्र भाषा का गौरव दिलाने का इनका प्रयास सराहनीय है। इन्होंने 1855 ई० में 'ए नेटिव' छद्म नाम से 'ए फ़्यू रिमार्क्स ऑन असमीज़ लैंग्वेज' पुस्तक लिखकर असमीया भाषा की स्वतंत्रता का प्रतिपादन किया था। ईसाई मिशनरियों के साहित्यिक प्रयासों में सबसे पहले इन्होंने सहयोग दिया था। इनके युक्तिसंगत विचार, तीक्ष्ण बुद्धि और देशभक्ति देखकर ही कर्नल हापकिन्स ने इनकी तुलना बँगला के राममोहन राय से की थी। इनकी योजना अँग्रेज़ी-असमीया और असमीया-अँग्रेज़ी कोशों के निर्माण की थी, किंतु इनकी असमय मृत्यु के कारण वह सफल न हो सकी थी।

साहित्य को इनकी देन कम है, किंतु ये असमीया भाषा के त्राता और निर्माता माने जाते हैं।

ढोला (*पं० पारि०*)

यह पश्चिमी पंजाब के ग्रामों का प्रख्यात लोक-गीत है जिसका वर्ण्य मुख्यत: विरह-वेदना अथवा उपालंभ होता है। विद्वानों का अनुमान है कि पश्चिमी पंजाब की वारों में आकर बसने वाले राजस्थानी परिवारों के साथ ही इस क्षेत्र में ढोला-मारू की कथा का प्रचार हुआ और उसके नायक ढोला के नाम पर ये लोक-गीत भी प्रचलित हुए। तुकांतता, स्वर के लोच और घोष वर्णों के बाहुल्य के अतिरिक्त एक विशेष प्रकार की लय इस गीत की मुख्य पहचान है। गायक कानों में उँगली डालकर, ठहराव के साथ, ऊँचे स्वर में ढोला गाता है। पहले इनमें केवल प्रेम और विरह का चित्रण रहता था किंतु आजकल ईश्वर-महिमा, धर्म, सूफ़ी विचारधारा, वीरता अथवा हास्य के प्रसंग भी इसकी परिधि में समाविष्ट होने लगे हैं।

ढोला मारू रा दूहा (*हिं० क्ृ०*) [रचना-काल—ग्यारहवीं शती]

यह राजस्थानी का अत्यंत लोकप्रिय प्रेम-काव्य है। हेमचंद्र (दे०) के व्याकरण में इस ग्रंथ के कतिपय 'दूहे' मिलते हैं, जिससे यह सिद्ध है कि यह उनके समय में प्रसिद्ध रहा होगा और इसका प्रणयन उससे काफ़ी पहले हुआ होगा। यह काव्य लोक-गीत के रूप में प्रचलित रहा है, अत: इसका रचयिता अज्ञात है और समय-समय पर इसके रूप में भी परिवर्द्धन होता रहा है। 'कल्लोल', 'लूणकरण' तथा 'कुशलनाभ' को इसके कुछ अंशों का रचयिता माना जाता है। यह श्रृंगार रस-प्रधान काव्य है जिसमें ढोला-मारू के प्रेमाख्यान का मुक्तक शैली में अत्यंत सरस तथा सजीव वर्णन किया गया है।

णायकुमारचरिउ (*अप० क्ृ०*)

इस ग्रंथ के लेखक पुष्पदंत (दे०) हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नौ संधियों का चरित-काव्य है । इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—मगध में राजा जयधर अपनी रानी विशालनेत्रा और पुत्र श्रीधर के साथ राज्य करता था । सौराष्ट्र में वह गिरिनगर की पुत्री पृथ्वीदेवी के चित्र पर मुग्ध हो गया और उसने उसे अपनी रानी बना लिया । इस रानी से राजा को एक पुत्र प्राप्त हुआ । इस बालक के अकस्मात् कुएँ में गिर जाने पर नाग ने उसकी रक्षा की थी, इसीलिए इस बालक का नाम नागकुमार रखा गया । इसने बचपन में ही अनेक अद्भुत कार्य किए तथा अनेक विद्याओं और कलाओं में दक्षता प्राप्त की । युवावस्था में इसने अनेक सुंदरियों से विवाह किए । श्रीधर उससे ईर्ष्या करने लगा । दोनों की माताओं में भी सपत्नीजन्य ईर्ष्या उत्पन्न हुई । अंत में नागकुमार ने अपने पूर्वजन्म की पत्नी लक्ष्मीमती से विवाह किया । इस प्रकार वह अनेक वर्षों तक अपनी अनेक पत्नियों के साथ आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए राज्योपभोग करता रहा और अंत में तपस्वी बनकर मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

ग्रंथकार ने इस चरित-काव्य की रचना श्रुत-पंचमी व्रत का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए की थी । नागकुमार ने जिस लौकिक सुख-समृद्धि और धन-संपदा का उपभोग किया था वह उसके पूर्वजन्म में इसी व्रत के अनुष्ठान का फल था ।

नागकुमार की कथा जैनों में वहुत प्रसिद्ध है । नागकुमार 24 कामदेवों में से एक है । पूर्वजन्म में श्रुत-पंचमी व्रत के अनुष्ठान के कारण उसने कामदेव के अवतार के रूप में जन्म लिया था । उसने अपनी वीरता से अनेक युद्ध जीते थे, अपने अप्रतिम सौंदर्य के कारण अनेक राजकुमारियों से विवाह किया था । डा० शंभूनाथ सिंह ने इसे रोमांचक खंड-काव्य कहा है जिसमें धर्मकथा, रोमांचक और काव्य तीनों की विशेषताओं का सुंदर सामंजस्य है ।

इस कृति के कथानक में सपत्नी-ईर्ष्या, सौतेले भाइयों में वैमनस्य आदि विषय प्रचलित लोककथाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं । अलौकिक एवं अतिमानवीय कार्यों का उल्लेख तो प्रायः सभी जैन-काव्यों में मिलता है । इसमें पृथ्वीदेवी का नख-शिख-वर्णन, उद्यान-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा आदि अनेक काव्यमय वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं । अनेक कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन की दृष्टि से भी यह काव्य महत्वपूर्ण है ।

तंगत्तम्मै *(त० पा०)*

'तंगत्तम्मै' भारतीदासन् (दे०)-कृत 'कुडुंब विळक्कु' नामक काव्य की नायिका है । 'कुडुंब विळक्कु' गृहस्थ जीवन का काव्य है । यह पाँच भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः गृहस्थ के घर में प्रतिदिन घटने वाली घटनाएँ, अतिथि-सत्कार, प्रेम-विवाह, शिशु-जन्म और वृद्धों का प्रेम वर्णित है । प्रथम भाग में यह गृहस्वामिनी के रूप में—एक घर की बहू के रूप में—हमारे सम्मुख आती है । यह सास, ससुर और पति की सेवा करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है । शिक्षित होने के कारण बच्चों को पढ़ाने का कार्य भी करती है । दिन-भर घर का कार्य करती है, घर और बाहर के कार्यों में पति की सहायता करती है । अतिथि-सत्कार करने में भी पटु है । यह आदर्श माता है—पुत्र द्वारा चुनी गई कन्या से ही उसका विवाह करा देती है; पुत्रवधू के गर्भधारण करने पर प्रसन्न होती है; शिशु का जन्म हो जाने पर बड़े उत्साह के साथ सभी उत्सवों-संस्कारों में भाग लेती है । अंतिम भाग में कवि ने इसे एक अनुभवी वृद्धा के रूप में चित्रित किया है और उसे तंगत्तम्मै कहा है । मातृत्व की मूर्ति वृद्धा तंगत्तम्मै के प्रति कवि श्रद्धा से प्रणत हो जाता है । तंगत्तम्मै पति से अनन्य प्रेम करती है—वृद्धावस्था में भी यथाशक्ति पति की सेवा करती है । इसमें कर्तव्यपरायणता, उदारता, दृढ़ता, कर्मठता आदि गुण हैं । काव्य के अंत में भारतीदासन कहते हैं कि यदि तंगत्तम्मै जैसी आदर्श नारियाँ देश की शासिका हों तो देश में दुःख की स्थिति नहीं रहेगी ।

तंजैवाणन कोवै (त० कृ०) [समय—ईसवी तेरहवीं अथवा चौदहवीं शती]

पोय्यामोषिप्पुलवर की यह काव्य-कृति 'कुलशेखर पांड्य' राजा (1268-1311 ई०) के अमात्य एवं दंडनायक 'चंतिरवाणन्' (जो स्वयं एक 'मारै' नामक उपप्रांत के राजा थे) के सम्मान में रचित है । 'कोवै' (दे०) नामक काव्य-विधा जिसमें प्रस्तुत रचना आती है, तमिल की प्राचीन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) काव्य-परिपाटी का यथावत् पालन करती है । इन रूढ़ियों का प्रथम प्रस्तुतीकरण ईसा पूर्व की शतियों के माने जाने वाले 'तोल्काप्पियम् (दे०) नामक लक्षण-ग्रंथ में मिलता है और इनका विशदीकरण 'इरै यनार् अहप्पोरुळ्' (ई० छठी शती) तथा 'नंपियहप्पोरुळ्' (ई० बारहवीं-तेरहवीं शती) नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो ग्रंथों में मिलता है। उक्त तीसरे परवर्ती लक्षण ग्रंथ के लिए एक लक्ष्य-ग्रंथ का कार्य इस कृति द्वारा संपादित हुआ है, अर्थात् जिन रूढ़ पात्रों एवं प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण 'नंपियकप्पोरुल्' में हुआ है, उनके उदाहरण-रूप पद्यों की श्रृंखला इसमें द्रष्टव्य है। इन पद्यों की संख्या 425 है और प्रत्येक पद्य संपूर्ण काव्य द्वारा सम्मानित व्यक्ति की उल्लेख-रूपी मुद्रा से अंकित हैं। हर पद्य सुगठित एवं उक्ति-सौष्ठव-संपन्न है।

यद्यपि यह काव्य रीतिबद्ध शैली में रचित है और प्राचीन रूढ़ पात्र एवं प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण है तो भी ध्वन्यर्थों के सुंदर उपयोग से तथा सूक्ष्म कल्पनापूर्ण उक्तियों से एक प्रकार से विशिष्ट बना हुआ है। कहा जाता है कि कवि द्वारा सुनाए जाते समय काव्य-नायक इसके हर पद्य पर माणिक्य-खचित स्वर्ण नारियल भेंट में चढ़ाते चले गए हैं।

तंत्रालोक *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

यह काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) का सबसे अधिक विस्तृत ग्रंथ है। इसमें अद्वैतवादी 64 आगमों के लगभग सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

सैंतीस आह्निक का यह ग्रंथ जयरथ की टीका के साथ बारह खंडों में काश्मीर संस्कृत सीरीज़ के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है। इसमें कर्मकांड तथा दर्शनों के विषयों का समान रूप से निरूपण किया गया है। यद्यपि इसका मुख्य प्रतिपाद्य कौल तथा आगमशास्त्र है, तथापि यह क्रमादि अन्य शाखाओं के विषय में भी बड़ा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करता है। काश्मीर संस्कृत सीरीज़ के अंतर्गत प्रकाशित बारह खंडों में से प्रथम पाँच, नवाँ तथा तेरहवाँ खंड दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में यह त्रिकशास्त्र का स्रोत ग्रंथ है।

तंपुरान्, अप्पन् *(मल० ले०)* [पूरा नाम—रामवर्मा अप्पन् तंपुरान्]

ये कोच्चि राजपरिवार के थे। साहित्य के विविध अंगों को इन्होंने अपने कृतित्व से समृद्ध किया है। इनकी आठ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो उपन्यास हैं: 'भास्कर मेनन'—जासूसी उपन्यास, 'भूतरायर्' (दे०)—ऐतिहासिक उपन्यास; एक नाटक है: 'मुन्नाट्टु वीरन्' (गद्य नाटक), और तीन निबंध-संग्रह हैं: 'प्रस्थान पंचक्रम-निबंध', 'कालविपर्ययम्', 'मंगळमाला' (दे०) (पाँच भाग)। 'द्रविड वृत्तङ्ङ्ळुम् अवयुटे परिणामङ्ङ्ळुम्' इनका प्रख्यात शोधप्रबंध है जिसमें द्रविड़ वृत्तों के उद्भव और विकास का गवेषणात्मक निरूपण किया गया है तथा 'संघक्कळि' शोध-प्रबंध है।

श्री तंपुरान् की गद्य-शैली प्रभावशाली है और ये गागर में सागर भरने में अत्यंत कुशल हैं। शास्त्रीय विषयों में इनकी गंभीर रुचि है। इनकी रचनाओं में प्रसाद और माधुर्य गुण का प्राधान्य है। आवश्यक स्थलों पर ओज का भी सन्निवेश है। पदावली सरल और कोमलकांत है। ये विशेष शैली के प्रवर्तक अपने युग के अनूठे लेखक थे।

तंपुरान्, कोच्चुण्णि *(मल० ले०)* [समय—1828 ई० से 1926 ई० तक]

देशी राज्य कोचीन के कोटुङ्ङल्लूर् राजघराने में इनका जन्म हुआ था। संस्कृत भाषा तथा मलयाळम दोनों में ये सिद्धहस्त थे। 'कल्याणी' नाटक रचकर इन्होंने लोगों का ध्यान समाज की ज्वलंत समस्याओं की ओर आकृष्ट किया। इसके पश्चात् इन्होंने 'उमाविवाहम्', 'मधुर मंगलम्', 'पांचाली स्वयंवरम्' आदि नाटक लिखे। इनके काव्य-ग्रंथों में 'गोश्रीशादित्य चरितम्', 'पांडवोदयम्', 'वंचीशवंशम्' आदि प्रमुख हैं।

तंपुरान्, कोट्टयत्तु *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सत्रहवीं शती ई०]

ये आट्टक्कथाओं की रचना करके कथकलि के साहित्यिक महत्व को प्रतिष्ठित करने वाले मलयाळम कवि हैं। ये उत्तर केरल के एक छोटे राजपरिवार के सदस्य थे। इनकी कृतियाँ 'महाभारत' (दे०) के चार प्रसंगों पर आधारित चार आट्टक्कथाएँ हैं—'बकवधम्', 'कल्याणसौगंधिकम्', 'कालकेयवधम्' और 'किर्मीरवधम्'। ये दृश्य-काव्य कथकलि के प्रेक्षकों और कलाकारों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। नाटकीय गुणों की दृष्टि से ये उत्तम कृतियाँ हैं। इनकी कविता संगीत के ताल-लयों की दृष्टि से परिपूर्ण हैं। कथकलि-साहित्य में इनका स्थान अनुपम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तंपुरान्, कोट्टारक्करा *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सत्रहवीं शती ई०]

ये प्रसिद्ध दृश्यकला-रूप कथकलि के आविष्कर्ता और उसके साहित्य के प्रथम रचयिता कहे जाते हैं। 'गीत-गोविंदम्' (दे०) के अनुकरण पर रचित संस्कृत-गीतों के अभिनय के साथ प्रचलित 'कृष्णनाट्टम्' के मुक़ाबले में इन्होंने स्वरचित मणिप्रवाल श्लोकों और गीतों के अभिनय पर आधारित 'रामनाट्टम्' प्रचलित किया जो आगे चलकर कथकलि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने 'रामायण' (दे०) की कथा को आठ भागों में बाँटकर आठ दिनों के अभिनय के लिए सामग्री तैयार की। ये मलयाळम के प्रथम स्वतंत्र दृश्य-काव्य माने जा सकते हैं। इनके रचयिता के रूप में इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

तकषियुटे कथकळ् *(मल० कृ०)*

मलयाळम के यशस्वी उपन्यासकार और कहानीकार तकषि (दे०) शिवशंकर पिळ्ळा के कथा-संग्रहों में अन्यतम। इसमें 'पट्टाळक्कारन्' (सिपाही), 'अवन्टे संपाद्यम्' (उसकी कमाई), 'इताणु सन्मार्गी' (यही सन्मार्गी है), 'अवळुटे प्रतीकारम्' (उसका प्रतिशोध) आदि कहानियाँ हैं। तकषि की कहानियों के दो पहलू हैं—(1) प्रगतिवादी चेतना; (2) मनोवैज्ञानिकता। प्रगतिवादी भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में तकषि का मन अधिक लगता है। शैतान लगने वाले मानव के मन की मनुष्यता, सज्जनता के स्वाँग के परदे में कपट, स्त्री की विलक्षण प्रतिशोध-भावना आदि भाव उनकी कहानियों में विविध पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। श्री तकषि अपने पात्रों से अभिन्न होना या अत्यधिक ममता बनाए रखना नहीं चाहते। विशद एवं तर्कयुक्त विवेचन करने तथा प्रभावशाली ढंग से कहानी सुनाने में वे निपुण हैं।

तकषि शिवशंकर पिळ्ळा *(मल० ले०)*

बीसवीं शती के विश्व-विख्यात उपन्यासकारों में तकषि का स्थान महत्वपूर्ण है। आलप्पुषा ज़िले के तकषि गाँव में उनका जन्म हुआ। उनके 'चेम्मीन्' (दे०) उपन्यास ने उन्हें विश्व-साहित्यकारों की पंक्ति में स्थान दिलाया। कई विदेशी भाषाओं में इस उपन्यास का रूपांतर हो चुका है। उनके दूसरे उपन्यास 'रण्टिटङ्ङषि' (दे०) का अनुवाद भी कई भाषाओं में हुआ है। ग्राम्य चरित्रों के चित्रण में तकषि बड़े समर्थ हैं। 'तोट्टियुटे मकन्' का अनुवाद हिंदी में 'चुनौती' नाम से प्रकाशित किया गया है। 'एणिप्पटिकळ्', 'त्याग देवता', 'तेण्डिवर्गम्', 'तलयोट्टु', 'औसेप्पिन्टे मक्कळ्' (औसेप्प के बेटे) आदि उनके कई अन्य उपन्यास हैं। उनकी पात्र-सृष्टि प्रतीतिकारी और प्रभावशाली है।

तक्कयागप्परणि *(त० कृ०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

इस काव्य-कृति में 'कलिप्पा' छंद के 815 द्विपदी पद्य ('ताळि चै') है। विषय-वस्तु दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पौराणिक कथा है। प्रासंगिक रूप में कवि के आश्रयदाता 'चोल' सम्राट 'राजराजदेव' का यत्र-तत्र अभिनंदन करना तथा शैवधर्म की महत्ता का प्रतिपादन करना इस रचना के उद्देश्य हैं। इतिवृत्त-कथन 'परणि' नामक तमिल काव्य-विधा की सुनिश्चित रूढ़ पद्धति पर आधारित है। इसके अनुसार काली देवी के अनुचर वैतालगण सदा क्षुधा-पीड़ित रहते हैं और किसी प्रमुख योद्धा द्वारा रणक्षेत्र पर गिराए जाने वाले मृतक शरीरांशों को पकाकर, विशेष रूप से 'भरणी' नक्षत्र के दिन, देवी को खिलाते हैं और स्वयं खाते हैं। कृतज्ञता-ज्ञापन-स्वरूप युद्धवीर का अभिनंदन भी इन वैतालों द्वारा किया जाता है। उक्त कथा-भाग को प्रधानता देकर इस काव्य-विधा में साधारणतः ये अंश सम्मिलित किए जाते हैं—ईश्वर-स्तुति, महिलाओं का आह्वान, काली देवी की सभा, देवी के सम्मुख वैतालों की उक्तियाँ, वैतालों द्वारा मांसाहार की तैयारी एवं विनियोग, तथा कथा-नायक का अभिनंदन। विवेच्य 'परणि' ग्रंथ में युद्ध के स्थान पर दक्ष-यज्ञ की परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन है जो एक वैताल द्वारा काली देवी को सुनाया जाता है। देवी की आज्ञा के अनुसार वैतालगण सीधे दक्ष-यज्ञ-स्थल पर चले जाते हैं जहाँ वीरभद्र द्वारा रचित घोर विनाश-संहार से इन्हें प्रभूत आहार मिल जाता है। दूसरी बात है कि कवि ने देवी के सान्निध्य में सरस्वती द्वारा प्रासंगिक रूप से शैवधर्म के प्रथम आचार्य ज्ञान संबंध का वृत्तांत कहलवाया है जिससे अपने धर्म पर उनका विशेष अनुराग स्पष्ट है। बात यह भी है कि काव्य-नायक वीरभद्र के देवता होते हुए भी कवि ने उनके रूप में अपने ही आश्रयदाता 'राजराज' का अभिनंदन वैतालों द्वारा करवाने के साथ-साथ पृथक् रूप से उपसंहार में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी चिरायु की कामनाएँ व्यक्त की हैं। इस काव्य में देवी और वैतालों के संबंध में अनेक अलौकिक उद्भावनाएँ हैं। कवि गौड़ी रीति की ओजपूर्ण शैली के लिए प्रसिद्ध हैं और उदात्तता-संपन्न लय का अनूठा उपयोग इस काव्य की विशेष आस्वाद्य वस्तु है।

तच्चोलि ओतेनन् *(मल० पा०)*

यह पात्र उत्तर के लोकगीत-संग्रह 'वटक्कन-पाट्टुकळ्' का प्रधान नायक है। इस कथा-पात्र की चर्चा अँग्रेज लोगन साहब ने अपनी कृति 'मलाबार मैनुअल' में की है। इसका चित्रण केरली 'रॉबिनहुड' के रूप में हुआ है। 'ओतेनन्' का जन्म नायर-समाज में हुआ। उसने अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए अथक संघर्ष किया और अपने शत्रुओं से विकट युद्ध कर अंत में वीरगति का वरण किया। 'ओतेनन्' के चरित्र में ग्रामीणों के स्वभाव, रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि का सुंदर चित्रण हुआ है।

तज़मीन *(उर्दू० पारि०)*

'तज़मीन' का शाब्दिक अर्थ है 'अंगीकार करना' अथवा 'अपनी शरण में लेना'। पारिभाषिक अर्थों में तज़मीन का अभिप्राय है—किसी और शायर का कोई प्रसिद्ध शेर, मिसरा अथवा पद्यांश अपनी काव्य-रचना में ले आना।

तणखा मंडल *(गु० कृ०)*

गौरीशंकर जोशी 'धूमकेतु' (दे०) की उत्कृष्ट कहानियाँ 'तणखा मंडल' के चार भागों में संगृहीत हैं। गुजराती कहानी को कलात्मक रूप देने का श्रेय 'धूमकेतु' को है और उनकी कलात्मकता के दर्शन इन कहानियों में होते हैं। इनमें अत्यंत मार्मिक ढंग से मानव-जीवन के सभी पहलुओं का निरूपण किया गया है। धूमकेतु की तीव्र संवेदना, मानवता और भावुकता इनमें पाई जाती है। समाज में जो लोग पददलित, प्रपीड़ित, उपेक्षित और अपमानित हैं वे इस कहानीकार की सहानुभूति के विशेष अधिकारी बने हैं। ग्राम-जीवन और शहरी जीवन की विषमता, दांपत्य जीवन की विसंवादिता, मध्यवित्त-वर्ग की आर्थिक कठिनाइयों तथा मानव-मन के विलक्षण व्यवहार, दीन-हीनों की विवशताओं आदि का जितना यथार्थ निरूपण धूमकेतु ने 'तणखा मंडल' में किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

इन कहानी-संग्रहों के पात्रों में वैविध्य और वैशिष्ट्य है। एक ओर जुम्मा भिश्ती, अली कोचमैन, देवु कोळण, पूनां रबारण, काळो रावळियो, केशी खवासण आदि निम्नवर्गीय पात्र हैं, तो दूसरी ओर प्रो० नंदप्रसाद, गुलाब भाभी, देवमणि, मंजुलाल, भूधर मेहतो वगैरा मध्य-वित्त वर्ग के पात्र हैं। कुछ कहानियों में पौराणिक और मध्ययुगीन पात्र भी दृष्टिगोचर होते हैं। सभी पात्रों की चारित्रिक विलक्षणता का धूमकेतु ने बड़ी कुशलता से उद्घाटन किया है। इनके कतिपय पात्र वैयक्तिक विशेपताओं से संपन्न हैं और कुछ समाज के विशेष वर्गों के प्रतिनिधि, हैं—'टाइप'।

धूमकेतु प्रधानतः रोमांटिक लेखक हैं। चरित्र-चित्रण, कथा-विकास, वातावरण, भाषा-शैली और अंत—ये सभी तत्त्व रोमांटिक भावना के रंग में रँगे रहते हैं। कल्पना और भावुकता के अतिरेक के कारण यदाकदा इनकी कहानियाँ यथार्थ प्रतीत नहीं होतीं किंतु इस पर भी उनकी प्रभावोत्पादकता में कमी नहीं आती। एक ज़माने में 'धूमकेतु' गुजराती कहानी-साहित्याकाश में धूमकेतु की तरह चमके थे।

तत्सम *(सं०, हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में बाँटा जाता है: तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। 'तत्सम' दो शब्दों के योग से बना है; तत्+सम। 'तत्' का अर्थ है 'संस्कृत' और 'सम' का अर्थ है 'समान', अर्थात् वह शब्द जो 'संस्कृत के समान' हो, 'वैसा ही हो जैसा संस्कृत में था': उसमें किसी भी प्रकार का ध्वन्यात्मक परिवर्तन न हुआ है; जैसे कृष्ण, गृह, दधि, संध्या आदि। यह उल्लेख्य है कि तत्सम शब्दों की तत्समता का संबंध शब्द के अर्थ से न होकर केवल ध्वनि से होता है।

तथागत *(पा० पारि०)*

'तथागत' भगवान् बुद्ध का नाम है जो तथा अर्थात् उस प्रकार के परिनिष्ठित मार्ग से लोकोत्तर भूमिका पर पहुँच गए (गत) हैं। चार आर्य सत्यों और सत्य को प्राप्त करने के सभी साधनों पर इनका पूरा अधिकार होता है। सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंद्रियों और उनके विषयों से ये सर्वथा मुक्त तथा स्वतंत्र होते हैं। इंद्रिय-ज्ञान, वेदना और विचार सभी पर उनका पूर्ण आधिपत्य होता है और वे नर रूप में जन्म लेकर भी लोकोत्तर सत्ता से विभूषित होते हैं। परमतत्त्व रूप होते हुए भी लोकोपकार के लिए ये सिद्धार्थ इत्यादि रूपों में अवतीर्ण होते रहते हैं।

तद्भव *(सं०, हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में बाँटा जाता है : तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। 'तद्भव' दो शब्दों के योग से बना है : 'तत्+भव'। 'तत्' का अर्थ है 'संस्कृत' और 'भव' का अर्थ है 'पैदा हुआ' या 'उद्भूत', अर्थात् वह शब्द जो किसी संस्कृत तत्सम शब्द से निकला हो, जैसे कन्हैया (संस्कृत-कृष्ण), घर (संस्कृत-गृह), दही (संस्कृत-दधि), साँझ (संस्कृत-संध्या) आदि। तत्सम शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन होने से तद्भव शब्दों का विकास होता है।

तनिप्पाडल तिरट्टु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की उन्नीसवीं शती]

इस कृति में अनेक कवियों के विविध विषयों से संबंधित पद संगृहीत हैं। पदों का संकलन एवं प्रकाशन कविराज पंडितर उपनाम से विख्यात चंद्रशेखर कविरायर ने किया है। इस संग्रह में कंबर (दे०), अव्वैयार (दे०), नक्कीरर (दे०)-जैसे महान् कवियों के साथ-साथ सामान्य कवियों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं। यह कहना कठिन है कि इन महाकवियों ने इस संग्रह में प्राप्त पदों की रचना की थी अथवा नहीं। इन स्फुट कविताओं में वर्णित घटनाएँ अत्यंत मनोरंजक हैं। इनमें अनुपम-उदात्त मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है। विभिन्न पदों की रचना करने वाले कवियों का समय भी भिन्न-भिन्न है। यदि कृति के रूप में ये स्फुट पद संगृहीत नहीं किए जाते तो अव्वैयार (दे०), काळमेहम (दे०), ओट्टक्कूत्तर, (दे०) पुहऴेन्दि (दे०) आदि महाकवियों के आत्मचरितात्मक पद संभवतः हमें उपलब्ध नहीं होते। इस संग्रह ने उन्नीसवीं शती के तमिल लेखकों को अत्यधिक प्रभावित किया। 1876 ई० में वीरासामि चेट्टियार (दे०) ने 'विनोदरस मंजरी' शीर्षक से सरस निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह के विभिन्न निबंध 'तनिप्पाडल तिरट्टु' के विभिन्न पदों के आधार पर लिखे गए हैं। शोधकर्ताओं और साहित्यिक निबंधों की रचना करने के इच्छुक व्यक्तियों को इस कृति में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। इस कृति में जिन कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं वे तमिलनाडु भर में प्रसिद्ध हैं। सभी कविताएँ रोचक हैं। उनमें विविध रसों की अभिव्यंजना हुई है। इन कविताओं का प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन-शैली दोनों दृष्टियों से अपार महत्व है।

तपस्विनी *(उ० कृ०)*

कवि गंगाधर मेहेर (दे०) की असाधारण कवि-प्रतिभा की विकच अभिव्यक्ति है 'तपस्विनी'। आदर्श नारी के रूप में सीता के जीवन को लेकर अनेक काव्यों का निर्माण हुआ है। किंतु 'तपस्विनी' की सीता अपने गौरव में भी जीवन-सुषमा-विशिष्ट है। यही उसकी जीवंत महिमा है। मेहेर के 'तपस्विनी' काव्य में वह सती एक ऐसे सूक्ष्म कोमल अलंकरण से आवृत है कि उसे अन्य भाषाओं में रूपांतरित करना उसे नष्ट करना है।

स्वेच्छा से राम के साथ वनवासिनी बनने के कारण सीता की जो महिमा प्रस्फुटित हुई थी, वह सीता-निर्वासन से सौरभमय हो उठी है। निर्वासन-कष्ट सहने से सीता की पतिभक्ति जिस प्रकार से और भी दृढ़ एवं तेजोदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार सीता की स्वर्ण-प्रतिमा रखकर अश्वमेध यज्ञ करने से राम का पत्नी-प्रेम और भी गौरवमय हो जाता है। सीता राम के हार्दिक प्रेम को समझती है। मिथ्यापवाद के कारण राम को निर्वासन का दंड देना ही पड़ता है। सीता इसे अपना भाग्य-दोष मानती है। इससे उसकी पति-भक्ति और भी गहरी और निश्चल हो जाती है। फलतः वनवास को पतिहित तपस्या में परिणत कर वह बनती है 'तपस्विनी'। इन्हीं सुकुमार तंतुओं से इस काव्य का रचनातंत्र गढ़ा गया है।

मंगलाचरण के बाद अत्यंत नाटकीय ढंग से इस काव्य का प्रारंभ होता है। भागीरथी-तट पर पति-विरह-विधुरा निर्वासिता सीता अश्रुपूर्ण नेत्रों से पूर्व की ओर देख रही हैं। संज्ञालाभ करते ही विषण्ण राम, व्यथित-मूक लक्ष्मण उनको चारों ओर दिखाई पड़ते हैं। राम लौटे हुए भाई से प्राणप्रिया साध्वी की बात पूछ नहीं सकते, लक्ष्मण वाक्रहित हैं। राम की दुविधा वे समझते हैं। अथाह प्रेम एवं अटल विश्वास के बाद भी राजा राम को सीता को निर्वासन देना पड़ा। सीता को उन पर क्रोध नहीं, शिकायत भी नहीं। उसे अपनी नहीं, गर्भस्थ संतानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चिंता है। उसका मातृत्व क्रंदन कर उठता है। मुनि कुमारियाँ क्रंदन सुनकर आती हैं। वाल्मीकि को समाचार मिलता है। मुनि उन्हें लिवा जाते हैं।

आश्रम की पल्लव-शैया पर तपस्विनी के मानस-पटल पर राम एवं लक्ष्मण उभर आते हैं। लव-कुश का जन्म होता है। दुःखिनी को आश्रय मिलता है। पुत्र-द्वय बड़े होते हैं, उसी के साथ तपस्विनी की तपस्या के प्रति एकाग्रता बढ़ती जाती है। राम के अश्वमेध-यज्ञ का निमंत्रण वाल्मीकि को मिलता है। लव-कुश उनके साथ जाते हैं। सीता उन्हें साग्रह शिक्षा देती है कि वे अपना परिचय तपस्विनी-धन के रूप में दें।

इस पर मूल रामायण एवं कालिदास के 'रघुवंशम्' (दे०) का प्रभाव है। भवभूति के 'उत्तररामचरित' (दे०) से भी यह प्रभावित है किंतु कथा का प्राण-केंद्र 'तपस्विनी' है।

विषय प्राचीन है। काव्य का निर्माण भी परंपरागत साँचे में हुआ है। किंतु निर्माण-कला का अनुपम ऐश्वर्य ही उसका वैशिष्ट्य है। भाषा व शैली महाकाव्योचित है। प्राचीन छंदों का युगानुरूप प्रयोग पद-संयोजन की शालीनता, प्रकृति का सजीव चित्रण, अलंकारों की सुसंगत योजना आदि तत्त्व इस काव्य को महाकाव्य का गांभीर्य प्रदान करते हैं।

तमिल ओळि *(त० ले०)* [जन्म—1924 ई०; मृत्यु—1965 ई०]

तमिल ओळि उपनाम से विख्यात विजयरंगन् का जन्म दक्षिणी आर्काट स्थित आडूर में हुआ था। इन्हें काव्य रचने की प्रेरणा कवि भारतीदासन् (दे०) से मिली थी। 1945 ई० में इन्होंने राजनीति में रुचि लेना आरंभ किया था और 1953 ई० में उससे नाता तोड़ पुनः साहित्य-सर्जना आरंभ कर दी। इनकी आरंभिक काव्य-कृतियाँ हैं—'निलै पेट्रशिलै', 'वीराषि' और 'कवित्ज्जनिन् कादल' (कथा-काव्य)। 'विधियो वीणैयो' 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) के कुछ दृश्यों पर आधृत एक नृत्य-नाटिका है। इनके अन्य महाकाव्य हैं—'कोसलै कुमरि', 'कण्णप्पन कीळिहळ्' और 'माधवी कावियम्'। 'तमिल ओळियिन कविदैहळ्' इनकी कविताओं का संग्रह है। इन्होंने बच्चों के लिए कुछ कहानियों और कविताओं की रचना करने के साथ-साथ कुछ एकांकियों और कुछ साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबंधों की रचना भी की है। तमिल काव्य—मुख्ततः कथाकाव्यों—के क्षेत्र में इनका योगदान अक्षुण्ण है।

तमिल शेल्वम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

यह कि० आ० पे० विश्वनादम्-कृत अभिनेय नाटक है। इसमें 11 अंक हैं। लेखक ने तमिल साहित्य का आश्रय लेते हुए प्राचीन तमिल सभ्यता और संस्कृति का वर्णन किया है। संपूर्ण कृति सरस-सुंदर शैली में रचित है। 'तमिलशेल्वम्' तमिल नाटक के क्षेत्र में एक नया प्रयोग है। यह मूलतः एक संपूर्ण नाटक है परंतु इसका प्रत्येक अंक एकांकी नाटक की शैली में रचित है, अतः इस नाटक का अभिनय पूर्ण रूप में, तथा आंशिक रूप में भी, हो सकता है। यह नाटक कन्नड भाषा में अनूदित हो चुका है।

तरंगवइ कहाइ *(प्रा० कृ०)*

यह प्राकृत-साहित्य का एक अति प्राचीन प्रेम-कथाकाव्य था। इसका भी नाम हाल की 'गाथासप्तशती' के साथ लिया जाता है। इसके लेखक पादलिप्त सूरि हाल के समान ही शातवाहन के सभारत्न थे। अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती; किंतु इसका उल्लेख जैन-आगम (दे०) ग्रंथों तक में पाया जाता है। इसका सार दसवीं शती में नेमिचंद्र गणि ने 'तरंग लोला' नाम से लिखा था। तरंगवती सुव्रता की शिष्या थी और भिक्षाटन के प्रसंग में उसने राजगृह की सेठानी तरंगवती को अपने पूर्वजन्म के चकोर-चकोरी वृत्तांत तथा इस जन्म की अपनी प्रणय-वार्ता सुनाई है।

तरंगिणी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1964 ई०]

'तरंगिणी' नारण दुरैकण्णन् (दे०)-कृत एक सामाजिक उपन्यास है। रचना के कुछ वर्ष पूर्व लेखक ने 'शारदा' नामक कहानी की रचना की थी। कहानी की नायिका शारदा एक निर्धन परिवार की कन्या है। माता-पिता उसका विवाह करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न करते हैं परंतु अपने प्रयत्नों में सफल नहीं होते। माता-पिता की संतुष्टि के लिए वह एक ईसाई युवक से विवाह कर लेती है। इस कहानी के प्रकाशन के बाद लेखकों एवं पाठकों द्वारा उठाए गए वादों और प्रतिवादों का परिणाम है 'तरंगिणी' उपन्यास। इस उपन्यास का अंत शारदा कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अंत से भिन्न है। उपन्यास की नायिका तरंगिणी जोसफ़ से विवाह की इच्छा न होते हुए भी उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखती है। युवा जोसफ़ इसे चुनौती मानता है; अतः वह अपने माता-पिता की सहायता से सौंदरराजन से तरंगिणी के विवाह का प्रबंध कर देता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने बताया है कि नारी की समस्याएँ, विशेषकर उसके विवाह की समस्या, चिरंतन है।

तरंगिणी *(मल० पारि०)*

एक द्रविड़ वृत्त का नाम है। इसमें आठ गण होते हैं। प्रत्येक गण की मात्राएँ दो-दो होती हैं और एक पंक्ति में चार गण होते हैं।

तरक़्क़ीपसंद अदब *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1951 ई०]

लेखक: 'सरदार' जाफ़री (दे०)। प्रकाशक: अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद), अलीगढ़। प्रगतिवादी आंदोलन और तत्संबंधी उर्दू साहित्य पर लिखी इस कृति में जिस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है उसका आधार लेखक के अनुसार लौकिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और यथार्थवादी चिंतनधारा है। इसमें प्रगतिवादी प्रवृत्तियों का मूल्यांकन आलोचना के स्तर पर किया गया है। इस कृति के निबंधों की सूची इस प्रकार है—प्रगतिवादी लेखकों का घोषणापत्र, दृष्टिकोण, कतिपय बुनियादी समस्याएँ, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, यथार्थ-चित्रण और श्रृंगार-वर्णन, प्रगतिवादी लेखकों का आंदोलन और मौलिक प्रवृत्तियाँ। प्रगतिवादी साहित्य के बाह्य निकष के निर्धारण की दृष्टि से इसका प्रणयन किया गया है। इसकी भाषा साहित्य और पत्रकारिता की भाषा का समन्वय है; अतः सुबोध और सरल है। इसमें मानव और स्वतंत्रता की रक्षा और तत्संबंधी संघर्ष प्रगतिवादी साहित्य का मुख्य उद्देश्य सिद्ध किया गया है। पलायनवादी दृष्टिकोण, प्रतिक्रियावादिता, तथा अश्लील लेखन के साथ प्रगतिवादी आंदोलन का समझौता संभव नहीं है, इस विषय पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। कृति के रचना-काल से 15 वर्ष पूर्व के प्रगतिवादी आंदोलन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में लेखक को यथेष्ट सफलता मिली है। नये साहित्य और प्रगतिवादी साहित्य के अंतर का स्पष्टीकरण संकीर्णता और सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर किया गया है।

तरह मिसरा *(उर्दू० पारि०)*

किसी भी प्रसिद्ध कवि के शेर का एक मिसरा अर्थात् शेर का पहला अथवा दूसरा चरण जो कवियों को काव्याभ्यास के लिए आदर्श रूप में दिया जाता है, 'तरह मिसरा' कहलाता है। इस मिसरे को सम्मुख रखकर ही कविगण अपनी कविता का निर्माण करते हैं। इसमें तुक (क़ाफ़िया) तथा रदीफ़ (तुक के साथ जिसकी पुनरावृत्ति की जाती है वह शब्द) निश्चित होती है। 'तरह मिसरा' के छंद को ही आधार मानकर उसी छंद में कविता करना अनिवार्य होता है। 'तरह मिसरा' प्रायः काव्य-गोष्ठियों के लिए दिया जाता है।

त० रा० सु० *(क० ले०)*

त० रा० सु० (त० रा० सुब्बाराव) कन्नड के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। कन्नड कथा-साहित्य को इनकी देन अनुपम है। इन्होंने ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का बड़ा रम्य चित्रण हुआ है। मैसूर राज्य के चित्रदुर्ग के छोटे-छोटे सामंत राजाओं के अंतःकलह का इन्होंने अपने 'कम्बनियकुयिलु' (आँसुओं की फ़सल), 'तिरगु बाण' (प्रतिक्रिया बाण) और 'रक्त रात्रि' नामक उपन्यासों में अच्छा वर्णन किया है। कन्नड साहित्य में प्रसिद्ध राष्ट्रकूट-नरेश नृपतुंग पर इन्होंने चित्ताकर्षक उपन्यास लिखा है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण-निर्माण और संभाषण-सरसता की विशेषता होती है। उनमें चित्रित पात्र हमारे मन को अपनी ओर खींच लेते हैं। 'हंस-गीते' इनका सुंदर उपन्यास है, जिसमें वेंकटसुब्बय्या नाम के एक प्रतिभावान और आत्माभिमानी संगीतज्ञ का हृदयस्पर्शी चित्रण है। वह राजा के लिए गीत नहीं गाता, भगवान के सामने गीत गाकर अंत में अपने ही हाथ से अपनी जीभ काट लेता है। 'पुरुषावतार' इनका सुंदर सामाजिक उपन्यास है। 'विडुगडेय वेडि' (मुक्ति की बेड़ी), 'चंदवल्लिय लोट' (चंदवल्लि का बाग), 'एरडु हेण्णु ओंदु गंडु' (दो स्त्रियाँ, एक पुरुष), 'नागर हावु' (नाग-साँप), 'सर्पमत्सर', आदि इनके लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास हैं। 'गिरिमल्लेगेय नंदनदल्लि' इनकी कहानियों का संग्रह है। इनके उपन्यासों की भाषा प्रसाद-गुण-संपन्न है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरिगोंडा (तरिकुंडा) वेंकमांबा *(ते० ले०)*

विदुषी और कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध वेंकमांबा उन्नीसवीं शती के मध्यभाग में जीवित थीं। ये कानालि कृष्णार्य और मंगमांबा की पुत्री थीं और कड़पा ज़िले के वायलपाडु के निकट तरिकुंडा या तरिगोंडा ग्राम में रहती थीं। ये बाल-विधवा थीं। ग्रासवासियों की यातनाएँ न सह सकने के कारण तिरुपति जाकर, वहाँ वेंकटाचलपति (बालाजी) को अपना पति मानकर, ये पारलौकिक चिंतन में मग्न रहने लगी थीं। वहीं 80 वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ। ये पढ़ी-लिखी नहीं थीं। भगवान की कृपा से ही इन्हें कविता करने की शक्ति प्राप्त हुई।

अंतःसाक्ष्य के आधार पर इनकी ये पंद्रह रचनाएँ बताई जाती हैं। 'नरसिंह-शतकमु', 'नरसिंहविलास-कथा', 'शिवनाटकमु', 'पारिजातापहरण संस्कृति', 'कृष्ण नाटकमु', 'रमापरियणमु', 'चेंचु नाटकमु', 'कृष्णमंजरी', 'श्रीरुक्मिणी नाटकमु', 'गोपिका नाटकमु', 'मुक्तिकांता-विलास नाटकमु', 'राजयोगसारमु', 'भागवतद्विपदा', 'वेंकटाचल महात्म्यमु'। परंतु संप्रति अंतिम तीन रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। इनमें कपिल और देवहूति के अंतर्गत तत्त्व-संबंधी वेदांत-परक संवाद राजयोगसार की कथावस्तु है। यह वेंकमांबा की प्रारंभिक रचना है। यह द्विपद छंद में लिखी गई है। इस काव्य में वेदांत की अनेक बातों को सरल और सुगम शैली में प्रतिपादित किया गया है। इस काव्य का जीवन्मुक्ति-विचार शीर्षक द्वितीय प्रकरण आद्यंत हृद्य है। भागवत द्विपद (द्वादश स्कंध) की शैली अपेक्षाकृत प्रौढ़ एवं सरस है। 'वेंकटाचल महात्म्यमु' सात आश्वासों का सुंदर प्रबंध-काव्य है। प्रबंध-काव्य के अनुरूप इसमें वर्णन, अलंकार आदि की भरमार है किंतु औचित्य का ध्यान रखा गया है। आश्वास के प्रारंभ में संस्कृत श्लोक भी हैं। इस काव्य में तिरुपति के क्षेत्र-माहात्म्य तथा पद्मावती और श्रीनिवास के विवाह की कथा वर्णित है।

इनके अतिरिक्त बालाजी की सन्निधि में रहते समय वेंकमांबा ने अनेक मधुर पदों की रचना की है। वास्तव में तत्त्व-प्रतिपादक-ग्रंथ, द्विपद-काव्य, प्रबंधकाव्य, नाटक, यक्षगान आदि साहित्य की अनेक विधाओं में सफलता के साथ लिखने वाली ये एकमात्र विदुषी कवयित्री हैं।

तर्जा *(बँ० प्र०)*

अठारहवीं शती के पहले से ही तुकबंदी के आश्रय से ढोलकांसि (एक प्रकार का बाजा) के साथ धर्मदेवता या शिवजी के गाजन (चैत के महीने में भगवान शिवजी की पूजा के निमित्त गाना-बजाना या स्वाँग भरना) में एक विशेष प्रकार की गायन-पद्धति प्रचलित थी। इस प्रकार के तुकबंदी-आश्रित गायन को 'तर्जा' कहा जाता है। अष्टादश शती में 'कविगान' के दरबार में 'तर्जा' का प्रयोग शुरू हो गया जिसके फलस्वरूप तर्जागान की तुकबंदी की सहायता से कवियों में उत्तर-प्रत्युत्तर की परंपरा चल पड़ी। इस पद्धति को 'दांड़ा कवि' (दे० कबिगान) कहा गया। तर्जा की एक विशेषता है कि इसमें गाने के साथ-साथ नृत्य भी एक प्रधान अंग है। 'खेउड़' (दे० कविगान) की तरह तर्जा में भी बाद में अश्लीलता आ गई। यद्यपि शिवजी के गाजन में तर्जा गायन का उद्देश्य भक्ति-भावना का प्रचार मात्र था। शिवजी के गाजन में तर्जा-तुकबंदी का विशिष्ट नाम था, बोलान।

'कविगान' में उत्तर-प्रत्युत्तर के लिए तर्जा का प्रयोग शुरू हो जाने पर 'कविगान' को लोग 'तर्जा की लड़ाई' कहने लगे। उन्नीसवीं शती के अंतिम भाग में तर्जा की जनप्रियता कम हो गई। तर्जा-लड़ाई के कवियों में बनमाली दास, ईश्वरचंद्र दास, नंदलाल राय, गोपालचंद्र पाल, तिनकड़ि विश्वास आदि उल्लेखनीय हैं।

तलैमुरैहळ *(त० क्र०)* [रचना-काल —1968 ई०]

यह नील पद्मनाभन का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। नील पद्मनाभन तमिल के आधुनिक प्रसिद्ध उपन्यासकारों में से हैं। इस आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने नांजिलनाडु के इरणियल नामक शहर के चेट्टियार (वणिक्) जाति के लोगों के जीवन का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है। एक परिवार की कथा के माध्यम से चेट्टियार जाति के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। उनकी परंपरा, रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास, अंधविश्वास, खान-पान, उत्सव-पर्व, मनोविनोद आदि का वर्णन करने के साथ-साथ विभिन्न संस्कारों जैसे सीमांतोन्नयन, विवाह, मृत्यु आदि का भी वर्णन किया है। उपन्यासकार ने 70 वर्ष की लंबी कालावधि को बड़ी चातुरी, से उपन्यास के कलेवर में समेट लिया है। घटना-वर्णन, पात्र-चरित्र-चित्रण में लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। पात्र व्यक्तित्व-संपन्न हैं। शैली की नवीनता इस उपन्यास की प्रमुख विशेषताओं में से है। जाति विशेष के लोगों की भाषा के प्रयोग से उपन्यास की प्रभावशालिता बढ़ गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने यही संदेश दिया है कि पतनोन्मुख समाज में दीनों का उद्धार तभी संभव है जबकि वे उस समाज से बाहर निकल आएँ। वस्तुतः लेखक ने पाठकों में यही विश्वास जगाने का यत्न किया है कि मानव समाज उतना गिरा हुआ नहीं। प्रतिपाद्य विषय, भावनाओं के सजीव चित्रण, जीवन-दृष्टि, प्रतिपादन-शैली सभी दृष्टियों से इसे विद्वानों ने आधुनिक काल के श्रेष्ठ सामाजिक आंचलिक उपन्यासों में परिगणित किया है।

'तसलीम' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1820 ई०; मृत्यु—1911 ई०]

नाम—मुंशी अमीरुल्ला; उपनाम—'तसलीम', पिता का नाम—अब्दुल समद, जन्म-स्थान—मंगलसी गाँव (फ़ैज़ाबाद)। नसीम देहलवी इनके काव्य-गुरु थे, अतः लखनऊ में रहते हुए भी इन्होंने दिल्ली की उर्दू शैली में काव्य-सृजन किया था। नवाब मुहम्मद तकी खाँ ने लखनऊ में इनका शिष्यत्व स्वीकार किया था। इनका लेख बहुत सुंदर था। इनका प्रथम काव्य-संग्रह प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में विनष्ट हो गया था। इन्होंने आठ मसनवियों के अतिरिक्त नवाब रामपुर का पद्यबद्ध सफ़रनामा भी लिखा था जिसमें पचास सहस्र पद हैं। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनकी उत्कृष्ट ग़ज़लें और मसनवियाँ तो हैं ही, साथ ही ये प्रसिद्ध उर्दू कवि हसरत मोहानी (दे०) के काव्य-गुरु भी थे। इन्होंने अपने काव्य में मोमिन (दे०) की शैली का अनुकरण किया है परंतु अतिलेखन के कारण इनके काव्य में मार्मिकता का अभाव है।

'तहसीन' *(उर्दू० ले०)*

नाम—मीर मुहम्मद हुसैन अता खाँ, उपनाम—'तहसीन'; जन्म-स्थान—इटावा (उ० प्र०)। इनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व अभी तक अनुसंधान का विषय बना हुआ है। 'नौ तर्ज-ए-मुरस्सा' (दे०) नामक कृति इनका कीर्ति-स्तंभ है। यह कृति उत्तरी भारत में उर्दू गद्य की सबसे पहली पुस्तक मानी जाती है। मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद (दे०) के अनुसार इस कृति का प्रणयन लेखक द्वारा 1798 ई० में हुआ था। इस कृति में 'किस्सा चहार दरवेश' बड़ी योग्यता और कलात्मकता के साथ गद्य-शैली से प्रस्तुत किया गया है। इनकी अन्य कृतियाँ—'तारीख़-ए-क़ासिमी', 'ज़वावित-ए-अँग्रेज़ी', और 'अंशा-ए-तहसीन' हैं। फ़ारसी भाषा में लिखित ये कृतियाँ आजकल अप्राप्य हैं। 'तहसीन' साहब काव्य-साधना भी करते थे परंतु काव्य के क्षेत्र में उन्हें कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

तांबे, भास्कर रामचंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1874 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

तांबे ग्वालियर के राजकवि थे, इसी कारण संभवतः इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र सामंतीय वातावरण की झाँकी मिलती है।

इनका 'तांबेयांची समग्र कविता' (दे०) नामक एक ही काव्य-संग्रह उपलब्ध है। तांबे मराठी के रोमांटिक कवि हैं। ये मूलतः भावकवि हैं। इन्होंने संगीत की राग-रागिनियों में आबद्ध अनेक मधुर गीतों की रचना की।

इनके काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम है। प्रेम का स्वरूप वासनात्मक न होकर, सर्वथा शुद्ध, निर्मल और उज्ज्वल है। प्रेम के माहात्म्य का प्रतिपादन करते हुए इन्होंने कहा है कि प्रेम सम्राट है और अन्य वृत्तियाँ उसकी दास-दासियाँ हैं। तांबे गार्हस्थिक भावनाओं के भी कवि हैं। इनके साथ इन्होंने कुछ प्रतीकात्मक शृंगारिक भक्ति-मूलक प्रगीतों की रचना भी की है। पुरुष की अपेक्षा नारी जाति के प्रति इनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण रहा है, जो कि विधवा, परित्यक्ता, दुःख आदि कविताओं में देखा जा सकता है। इन्होंने कुछ शिशुगीत भी लिखे हैं।

तांबे कलाकवि हैं। रोमानी कल्पना, संगीतात्मक शैली तथा आलंकारिकता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं। इन्होंने सुंदर, भावरम्य, हृदयस्पर्शी नाट्य प्रगीतियाँ भी लिखी हैं। 'दिव्यांगनेची ओढ', 'भयचकित नभावे तुज रमणी', 'नववधु प्रिया भी बावरते', 'मरणांत खरोखर जग जगतें' आदि नाट्य गीत आज भी काव्य-रसिकों के हृदय में मधुर भाव उत्पन्न करते हैं।

तांबे यांची समग्र कविता *(म० कृ०)*

'तांबे यांची समग्र कविता' श्री भास्कर रामचंद्र तांबे (दे०) (1874—1941 ई०) का काव्य-संग्रह है।

इस संग्रह की कविताओं में पर्याप्त भाव-वैविध्य है। इनकी अधिकांश कविताएँ प्रेमपरक हैं किंतु यह प्रेम पवित्र एवं उदात्त है। 'जनम्हणती सावळी', 'सहजतुझी',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हालचाल' जैसी कविताओं में पति-पत्नी के सुंदर नैसर्गिक संयत प्रेम का चित्रण है। ये मूलतः कौटुंबिक जीवन के गायक हैं।

राष्ट्र-प्रेम तथा समाज-सुधार पर भी इन्होंने कविताएँ लिखी हैं। इनका 'या भविष्याचिया दिव्य कारा-गिरा' गीत राष्ट्रीय स्वयंसेवकों से मुखोद्गत हो संपूर्ण महाराष्ट्र में फैल गया था।

इन्होंने कुछ शिशु-गीत भी लिखे, जैसे 'गडी फू', 'चिवचिव चिमणी' आदि। 'वारा' शिशुगीत सरल है। जिसमें बालबुद्धि का यथावत् चित्रण है।

'फूल गिरने पर ही मीठा फल आता है' तथा 'मरने में ही जग जीता है' जैसे कथनों द्वारा कवि का प्रबल आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है।

नाट्य गीतों के ये जनक हैं। भाव को मूर्तिमंत करने के लिए इन्होंने प्रकृति का आश्रय लिया है। काव्य, चित्र तथा संगीत तीनों का अपूर्व योग इनकी कविताओं में मिलता है। राग-रागिनियों के आधार पर इन्होंने नाद-मधुर गेय गीतों की रचना भी की है। शेक्सपियर के अनुकरण पर इन्होंने मराठी में सुनीत (सॉनेट) लिखे हैं, जैसे 'गेली ज्योति', 'विझोनिया'। इन्होंने 'शुभवदना', 'दिव्यांगना', 'मदनरंग' आदि नवीन छंद साहित्य को दिए हैं।

ताई *(म० पा०)*

यह बाळ कोल्हटकर (दे०) के 'व्हातो ही दूर्वांची दूरी' नाटक की नायिका है। इसके चरित्र के माध्यम से नाटककार ने बहन के आदर्श चरित्र की परिकल्पना की है। यह सद्गुणों की आगार है और यही कारण है कि इसके संपर्क में आने वाला प्रत्येक पात्र इसके सद्व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसका स्नेहशीला रूप बड़े भाई सुभाष के प्रति इसके व्यवहार से उद्भासित हुआ है। भाई के प्रति पिता के कठोर एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहार में भी यह उसे बरबस अपने स्नेह में बाँधे रखती है। बचपन में ही माता की स्नेहछाया से वंचित ताई ने भाई को कभी भी इस अभाव की प्रतीति नहीं होने दी है। आदर्शवादी सिद्धांतों के प्रबल समर्थक वकील पिता की अनुशासन-प्रियता, कठोर नियंत्रण एवं पुत्र के प्रति उपेक्षा-भाव के कारण इसका नारी हृदय चीत्कार कर उठता है। यह पिता की कोपदृष्टि से बचाकर भाई को सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। अपने स्नेहपूर्ण मृदु व्यवहार से इसने अपनी ससुराल के सभी सदस्यों का हृदय बाँध लिया है तभी तो वे इसके भाई सुभाष को सन्मार्ग पर लाने के अथक यत्न करते हैं और अंत में अपने उद्योग में सफल भी होते हैं। रसवादी चरित्र-परंपरा में ढला ताई का चरित्र वर्गविशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

ताई *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'मी' (मैं) की नायिका ताई वैधव्य का आदर्श प्रस्तुत करने वाली, तेजस्वी, उदारमना, समाज-कल्याण की भावना से अनुप्रेरित तथा लेखक के स्त्री-शिक्षण संबंधी विचारों की प्रतीक पात्र है। वृद्ध, दुराचारी पति की पत्नी स्वयं कष्ट झेलते हुए भी पत्नी के कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहती है। परोपकार और समाज-सेवा का व्रत लेकर यह कर्मयोगिनी अपने कार्य में जुट जाती है, केवल व्याख्यान देकर संतोष नहीं पाती। यह पात्र स्थिर न होकर विकासशील है। बचपन की भोलीभाली, डरपोक सीधी-सादी लड़की आगे चलकर कर्मठ, निर्भीक, तेजस्वी और प्रगतिशील बन जाती है जिसे देख पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाता।

ताई *(हिं० पा०)*

यह अमृतलाल नागर (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'बूंद और समुद्र' (दे०) के नारी पात्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय चरित्र-सृष्टि है। ताई का चरित्र इस तथ्य का अत्यंत पुष्ट प्रमाण है कि किसी भी व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में परिस्थितियों का कितना महत्वपूर्ण हाथ होता है। परिस्थितियों का विषम वात्याचक्र लखनऊ के रईस सर द्वारकादास अग्रवाल की परित्यक्ता पत्नी ताई के जीवन में कुछ ऐसी ग्रंथियाँ डाल देता है कि उसका चरित्र घृणा तथा करुणा के दो छोरों को अनायास छू लेता है। गाली-गलौज के बिना बात न करने वाली, नाना प्रकार के अंधविश्वासों में पली तथा लोगों पर तरह-तरह के जादू-टोने करने वाली ताई जहाँ एक ओर पाठक के मन में अपने प्रति घृणा उपजाती है वहीं दूसरी ओर बिल्ली के बच्चों के प्रति उसका अगाध प्रेम यह व्यक्त करता है कि वह कितनी वात्सल्यमयी तथा करुणामयी है। ताई के चरित्र का यह अंतर्विरोध मानव-चरित्र की रहस्यमयता का निदर्शन करता है और इसीलिए पाठक ताई के चरित्र को कभी भूल नहीं पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ताज' *(उर्दू० ले०)*

दे० इम्तियाज़ अली 'ताज'।

तात्पर्यावृत्ति *(हिं० पारि०)*

अभिधावृत्ति द्वारा काव्यगत प्रत्येक पद का वाच्यार्थ ज्ञात हो चुकने के पश्चात् जिस वृत्ति के द्वारा उन पदों के अन्वित अर्थ (तात्पर्य) का ज्ञान होता है उसे तात्पर्या वृत्ति कहते हैं—'तात्पर्याख्यां वृत्तिभाहुः पदार्थान्वयबोधने'। (सा० द० 2.20)। यह कुमारिल भट्ट (दे०) के अनुयायी भाट्ट मीमांसकों का मत है। इनके अनुसार अभिधा (दे०) शक्ति द्वारा केवल प्रत्येक पद का पृथक्-पृथक् अर्थ ज्ञात होता है। इसका अन्वित अर्थ—अर्थात् संपूर्ण वाक्य का अर्थ—ज्ञात नहीं होता, इस वाक्यार्थ (तात्पर्य) के लिए तात्पर्या वृत्ति माननी चाहिए। अतः भाट्ट मीमांसक अभिहितान्वितवादी कहाते हैं—'अभिहितानां स्वस्ववृत्त्या पदैरूपस्थापितानाम् अर्थानामन्वय इति वादिनो अभिहितान्वयवादिनः' (का० प्र० बा० बो० टीका, पृष्ठ 26)। भाट्ट मीमांसकों के विपरीत प्रभाकर (दे०) के अनुयायी प्रभाकर मीमांसक तात्पर्यावृत्ति को न मानकर केवल अभिधा वृत्ति को ही मानते हैं। इनके अनुसार अभिधा शक्ति के द्वारा ही वाक्य के अन्वित पदार्थों का बोध होता है। इसी कारण प्रभाकर मीमांसक अन्विताभिधानवादी कहाते हैं—'अन्वितानामेवाअभिधानं शब्दबोध्यत्वम्, तद्वादिनोअन्विताभिधानवादिनः' (का० प्र०, बा० बो० टीका, पृ० 26)।

'ताबाँ', गुलाम रब्बानी *(उर्दू० ले०)*

जन्म-स्थान—पितोरा, तहसील—कायमगंज, ज़िला—फ़र्रुखाबाद (उ० प्र०)। इनका जन्म 1914 ई० में हुआ। आधुनिक उर्दू-कवियों में इनका अपना स्थान है। इन्होंने जामिया मिलिया, दिल्ली में आरंभिक शिक्षा प्राप्त की; अलीगढ़ से इंटर, आगरा से बी० ए० और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ पास कीं। तदुपरांत इन्होंने फतहगढ़ में वकालत आरंभ की परंतु स्वभाव से स्वाभिमानी, स्वतंत्र तथा क्रांतिकारी होने के कारण ये सफल वकील न बन सके। अंततः ये अपनी स्वाभाविक अभिरुचि के अनुकूल राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे और काव्य-सृजन में मनोयोगपूर्वक प्रवृत्त हुए। ये साम्यवाद को अपना जीवन-दर्शन मानते हैं, अतः अपने काव्य के क्षेत्र में ये प्रगतिवादी दृष्टिकोण को लेकर चले हैं। ग़ज़ल-लेखन में ये विशेष रूप से सिद्धहस्त हैं। मौलाना हामिद हसन क़ादिरी और मैकश अकबराबादी के सामीप्य से ये अत्यधिक लाभान्वित हुए हैं। आजकल मक़तबा जामिया, दिल्ली में मुख्य प्रबंधक के रूप में सेवा-कार्य कर रहे हैं।

तायुमानवर *(त० ले०)* [समय—ईसा की सत्रहवीं शती]

तायुमानवर एक रहस्यवादी संत कवि थे। इनका जन्म एक प्रसिद्ध शिव-भक्त के घर में हुआ था। तायुमानवर (भगवान शिव) की कृपा से इन्हें पुत्र-रूप में पाने के कारण माता-पिता ने इन्हें 'तायुमानवर' नाम दिया था, बड़े होने पर संबंधियों द्वारा ज़बरदस्ती किए जाने पर इन्होंने मट्टुवार कुळलि नामक कन्या से विवाह किया था। परंतु कुछ वर्ष बाद संन्यास ले लिया। ये तमिल और संस्कृत के विद्वान थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'परापरक्कण्णि', 'पैंगिळिक्कण्णि', 'एण्णलकण्णि' और आनंद-कळिप्पु'। इन्होंने अपनी रचनाओं में शैव सिद्धांतों का विवेचन किया है। इन्होंने विभिन्न शैव क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए शिवजी की प्रशंसा में अनेक सुंदर पद रचे थे। शिव के अनन्य भक्त होते हुए भी ये कट्टरपंथी न थे और सभी धर्मों का आदर करते थे। इनका सिद्धांत 'समय समरसम्' (धार्मिक समरसता) कहलाता है। दर्शन के क्षेत्र में ये अद्वैतवादी थे। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा धार्मिक जीवन में उदारता, विश्व-भ्रातृत्व और सर्वधर्म सहिष्णुता का उपदेश दिया है। ये सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। संस्कृत शब्दों के प्रयोग से इनकी भाषा क्लिष्ट नहीं हुई अपितु उसमें विशेष सौंदर्य आ गया है।

तारसप्तक *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—*1943 ई०*]

गजानन माधव मुक्तिबोध (दे०), नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर (दे०) और अज्ञेय (दे०) की रचनाओं के इस संग्रह का प्रकाशन सहयोग के आधार पर हुआ था। संकलनकर्ता अज्ञेय के अनुसार इन कवियों के एकत्रीकरण का कारणभूत मूल सिद्धांत था कि ये 'कविता को प्रयोग का विषय मानते थे।' नेमिचंद्र जैन इसका कारण मात्र संयोग बताते हैं। जो भी हो, इस एकत्रीकरण का 'प्रभाव परवर्ती काव्य-विकास में दूर तक व्याप्त है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारा (*हिं० पा०*)

यशपाल (दे०) के 'झूठा सच' (दे०) उपन्यास की तारा एक ऐसी मध्यवर्गीय भारतीय नारी के प्रतीक रूप में चित्रित की गई है जो अनेक विषम एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के वात्याचक्र से जूझती तथा अमानुषिक अत्याचारों को सहती हुई अपने मनोबल को कमज़ोर नहीं पड़ने देती। बलात्कार जैसे अमानुषिक अत्याचार के समय भी यह अत्यंत साहस से काम लेती है तथा अपनी बौद्धिक चेतना नष्ट नहीं होने देती। यह जागरूक, आर्थिक रूप से स्वावलंबी ऐसी दृढ़प्रतिज्ञ नारी है जो पिछड़ी तथा जर्जर मान्यताओं में अनास्था रखती है तथा अपने प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के फलस्वरूप पाठक के स्मृतिपटल पर अपनी स्थायी छाप छोड़ जाती है। समग्रतः तारा यशपाल की अत्यंत प्रभावपूर्ण चरित्र-सृष्टि है।

तारा ओ तिमिर (*उ० कृ०*)

'तारा ओ तिमिर' दुर्गामाधब मिश्र (दे०) का गल्प-संकलन है, जिसमें प्रशासकीय जीवन की अनेकानेक अनुभूतियाँ चित्रित हैं। प्रत्यक्षानुभूति पर आधारित होने के कारण ये कहानियाँ प्रभावोत्पादक हैं। अधिकांश कहानियाँ नारी और पुरुष के संबंध पर आधारित हैं; जिसमें प्रमुख रूप से विश्वासघात, प्रतारणा आदि का चित्रण हुआ है। पुरुष-मन की चिर अतृप्त वासना—बहुनारी रमणेच्छा, तज्जन्य परिणाम, मानव मन की सुप्त अपराध-वृत्ति, आदि बातें विविध रूपों में अंकित हैं। धनवानों की कुत्सित वासना के सामने गरीबी के कशाघात से पीड़ित गरीबों का विवश आत्म-समर्पण हृदय-विदारक है। आदिवासी जीवन का अंकन भी इनमें हुआ है। इन कहानियों का परिवेश प्रायः पारिवारिक और वैयक्तिक है। वैयक्तिक जीवन की स्वस्थता पर सामाजिक स्वस्थ जीवन अवलंबित रहता है। जीवन के इन छोटे निजी सुखों का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ता है। इन सभी बातों का संकेत इनमें मिलता है।

तारिणी (*त० पा०*)

तारिणी कृष्णमूर्ति कल्कि (दे०)-कृत सामाजिक उपन्यास 'अले ओशै' की नायिका है। इसमें लेखक ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश में हुए संघर्षों का निरूपण करते हुए विभिन्न वर्गों से संबद्ध भारतवासियों के जीवन का चित्रण किया है। तारिणी उच्च वर्ग की नारी है। वह बुद्धिमती एवं मर्यादाशील है। सबके प्रति प्रेम-भाव रखती है। यह एक आदर्श समाज-सेविका भी है। तारिणी के माध्यम से लेखक ने समाजवाद, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, देश में हुई विभिन्न राजनीतिक क्रांतियों के विषय में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है।

तारीख़-ए-अवध (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1919 ई०]

लेखक : मुहम्मद बज़्म-उल-ग़नी ख़ान रामपुरी। मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित इस कृति में अवध का इतिहास लिखा गया है। इतिहास की अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का वर्णन विस्तारपूर्वक कर लेखक ने इस कृति की उपादेयता में भरसक अभिवृद्धि की है। विस्तृत इतिहास पर आधारित इस कृति के बड़े आकार के पाँच भाग हैं। प्रथम भाग में नवाब सआदत अली (संस्थापक अवध प्रशासन) से लेकर नवाब अब्दुल मनसूर ख़ाँ सफ़दरजंग तक की घटनाओं का विस्तृत वर्णन है। द्वितीय भाग में नवाब शुजाउद्दौला के राज्याभिषेक से लेकर अंत काल तक का वर्णन है। तृतीय भाग में नवाब आसिफ़ुद्दौला से वज़ीरअली ख़ान तक, चतुर्थ भाग में उससे आगे ग़ाज़ीउद्दीन हैदर और नसीरुद्दीन हैदर तक और पंचप भाग में उससे आगे अवध के अंतिम बादशाह वाजिदअली शाह (दे०) तक के सभी नवाबों के राज्य तथा जीवन की घटनाओं का रोचक शैली में उद्‌घाटन किया गया है। इस ग्रंथ में लेखक ने इतिहास की प्रामाणिक पत्रिकाओं और कृतियों की सहायता से विभिन्न घटनाओं का ग्रंथन एवं अंकन साहित्यिक शली में किया है जिसके कारण यह साहित्य भी है और इतिहास भी। इस कृति का पंचम भाग इस दृष्टि से अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण है कि उसमें वाजिद अली शाह की नज़ाकत, सौंदर्यप्रियता, विलासिता, कामुकता, किंकर्तव्यविमूढ़ता और भीरुता का विशद विवेचन किया गया है और इस संदर्भ की कोई छोटी-से-छोटी घटना भी अछूती नहीं रहने पाई है। लेखक की वर्णन-शैली यथेष्ट प्रौढ़, प्रसाद-गुण-संपन्न और सरस है। कई दृष्टियों से यह शिक्षाप्रद है।

तारीख़-ए-हिंदुस्तान (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1916 ई०]

हिंदुस्तान के इस इतिहास के लेखक मुहम्मद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़काउल्ला ख़ां (दे०) हैं। सारे भारत का इतिहास दस जिल्दों में बाँटा गया है। प्रत्येक जिल्द के विषय तथा शीर्षक निम्नलिखित हैं।

पहली जिल्द : (1) आरंभ, (2) भूमिका : इतिहास के संबंध में, (3) अरब जाहलियत, (4) एक सौ अठारह इसलामी सलातीन का ब्योरा, (5) तारीख़-ए-सिंध, (6) ख़ानदान ग़ज़नी, (7) ख़ानदान ग़ोरी।

दूसरी जिल्द : इसमें तीन स्कंध हैं—(1) ख़िलजिया, (2) तुग़लक़, (3) सैयद और लोधी।

तीसरी जिल्द : (1) बाबरनामा, (2) सिगरफ़नामा हुमायुं, (3) रज़्मनामा शेरशाही।

चौथी जिल्द : (1) तारीख़-ए-सिंध, (2) तारीख़-ए-कश्मीर, (3) तारीख़-ए-गुजरात, (4) तारीख़-ए-मालवा, (5) तारीख़-ए-खानदेश, (6) तारीख़-ए-सलातीन-ए-बंगाल, (7) तारीख़-ए-सलातीन-ए-जौनपुर-बहमनिया, दक्कन, अहमदनगर, गोलकुंडा, बरार आदि।

पांचवीं जिल्द : (1) अक़बरनामा (जिसमें सम्राट् अक़बर का पूरा हाल लिखा है)।

छठी जिल्द : (1) कारनामा जहाँगीरी (इसमें जहाँगीर का पूरा ब्योरा है)।

सातवीं जिल्द : (1) ज़फ़रनामा शाहजहाँ (इसमें जाहजहाँ का हाल है)।

आठवीं जिल्द : (1) बादशाहनामा-ए-आलमगीर, इसमें शहनशाह आलमगीर का पूरा वर्णन है।

नौवीं जिल्द : (1) ज़िवाल-ए-सल्तनत तैमूरिया अंतिम बादशाह बहादुरशाह तक और अंत, (2) मुसलमानों की सल्तनतें एशिया में कहाँ-कहाँ हैं और उन का क्या हाल है। (3) हिंदुस्तान और हिंदुओं को मुसलमानों से लाभ हुआ या हानि। (4) दिल्ली में पाया तख़्त का बदलना।

इस पुस्तक के अंत में पुर्तगालियों का वर्णन है।

लेखक ने अपने कार्य को संपन्न करने में कठिन परिश्रम किया है। पुस्तक में ऐसे तथ्यों का उद्घाटन हुआ है जो इतिहास की साधारण पुस्तकों में प्रायः नहीं मिलते।

इस कृति का उर्दू के इतिहास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। निःसंदेह यह एक अमूल्य ग्रंथ है।

ताळम *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

के० सुरेंद्रन् (दे०) का प्रथम उपन्यास। इसके पात्रों प्रभाकरन् और सौदिमिनी (दे०) के स्वाभाविक प्रेम का विकास प्रभाकरन् की प्रदर्शन-विमुखता के कारण रुक जाता है और सौदामिनी चक्रपाणी के चंगुल में फँस जाती है। ठगी हुई सौदामिनी पुनः प्रभाकरन् के प्रश्रय में जाती है और यथासमय उनका विवाह हो जाता है। प्रभाकरन् पर अनुरक्त तुलसी चक्रपाणी से विवाह कर लेती है।

घटनाओं के क्रम के अनुसार दोलायमान मानव-मन का विश्लेषण करने में सुरेंद्रन् को इस उपन्यास में सफलता मिली है।

साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ होने के बाद अपनी प्रतिभा को उपन्यास-रचना की ओर मोड़ने वाले इस लेखक के प्रथम उपन्यास के रूप में यह रचना महत्वपूर्ण है—विशेषकर इस दृष्टि से कि इनकी लेखनी से बाद में मलयाळम-साहित्य को कई उत्कृष्ट औपन्यासिक कृतियाँ प्राप्त हुईं।

तालुकदार, दैबचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1900 ई०; जन्म-स्थान—गौहाटी]

बी० एस-सी० की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर ये डिप्टी कमिश्नर के आफ़िस में क्लर्की करने लगे थे। इन्होंने 1956 ई० में अशोक प्रेस की स्थापना की थी। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'प्रेमपट' (1922), 'कुँहिमला' (1927), 'सौंदर्य' (1930), **नाटक** : 'असम प्रतिभा' (1923), 'बामुनी काँवर' (1924), 'हरदत्त' (1923), 'लहङा' (1925), 'भास्कर वर्मा' (1935), **उपन्यास** : 'धुँवलि कुँवली' (1922), 'अपूर्ण और आग्नेयगिरि' (1924) 'विद्रोही' (1929), 'आदर्श पीठ' (दे०)।

इनकी कविताएँ प्रायः लंबी कहानी-कविताएँ हैं। इनके नाटकों की कथावस्तु आहोमकालीन ऐतिहासिक है। नाटकों में ऐतिहासिकता कम एवं अंतर्द्वंद्व अधिक चित्रित है। 'लहङा' पर गांधीवादी प्रभाव है, इसमें अस्पृश्यता का विरोध किया गया है। ये श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। इनकी कथाकृतियों पर पहले गांधी जी का प्रभाव था, बाद में ये साम्यवाद की ओर झुक गए थे। उपन्यासों की कथा और चरित्रों में शैथिल्य है, किंतु घटनाओं के वर्णन में यथार्थता है।

तिक्कना सोमयाजी *(ते० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

तेलुगु में 'कवित्रय' के नाम से प्रसिद्ध तीन कवियों में से एक तिक्कना सोमयाजी हैं। ये कोम्भना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्य और अन्नमांबा के पुत्र थे। ये तेरहवीं शती में नेल्लूर के राजा मनुभसिद्धि के यहाँ अमात्य के पद पर काम करते थे और अपनी कविता के प्रभाव से राज्यभ्रष्ट नरेश को पुनः राजा के पद पर प्रतिष्ठित कर चुके थे। इस कवि की सबसे पहली रचना थी—'निर्वचनोत्तर रामायणमु' (दे०)। इसकी विषयवस्तु रामायण के उत्तरकांड की कथा है। तेलुगु के प्राचीन काव्य प्रायः गद्य-पद्यात्मक चंपू शैली में लिखे जाते थे। पर प्रस्तुत रचना केवल पद्य-बद्ध होने के कारण तत्कालीन काव्य-रचना के क्षेत्र में एक नूतन प्रयोग के रूप में प्रसिद्ध थी। इस रचना के बाद कवि की वास्तविक काव्य-साधना साहित्यिक महामेघ का रूप धारण कर चुकी थी जिसका पर्यवसान 'आंध्र-महाभारतमु' (दे०) के पंद्रह पर्वों (वन पर्व के अंत तक) की रचना में हुआ। 'महाभारत' के पहले तीन पर्वों की रचना नन्नय भट्टु (दे०) और एर्राप्रगड (दे०) की सम्मिलित साधना से संपन्न हुई और इस महान् ग्रंथ की अधिकांश रचना का श्रेय सोमयाजी तिक्कना को प्राप्त है। विराट पर्व सबसे अधिक परिमार्जित और प्रौढ़ बन पड़ा है। तिक्कनार्य की रचना में तीन विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—रचना की नाटकीयता, मानव-मन का सूक्ष्म-गहन अध्ययन तथा कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक कहने की क्षमता। इन विशेषताओं के कारण कवि को 'कविब्रह्म' की उपाधि प्राप्त थी। संस्कृत और तेलुगु में समान दक्षता प्राप्त होने के कारण इनको 'उभयकविमित्र' भी कहा जाता है। संस्कृत शब्दों के आडंबर से अनावश्यक रूप से बोझिल भाषा को देशी शब्दों की सहज माधुरी से परिपुष्ट बनाकर तेलुगु के भावी कवियों का मार्ग प्रशस्त करने का श्रेय सोमयाजी को प्राप्त हुआ। उन दिनों में शैव धर्म और वैदिक धर्म के बीच में प्रचलित वैमनस्य को भी इस कवि की हरिहरात्मक साधना ने कांतासम्मत विधान से अपावृत करके साहित्यिक क्षेत्र में समन्वयात्मक धार्मिक भावना को प्रतिष्ठित किया था। 'रामायणमु' और 'महाभारतमु' के अलावा 'विजयसेनमु', 'कविवाग्बंधनमु', 'कृष्णशतकमु' नामक तीन और रचनाएँ भी इसकी लिखी हुई बताई जाती हैं।

तिक्कोटीयन् *(मल० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

तिक्कोटीयन् मलयाळम नाटककार पी० कुञ्जनंतन् नायर का उपनाम है। तिक्कोटीयन् ने स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लिया है और आकाशवाणी में सेवा की है। 'जीवितम्', 'पुतिय तेट्टु', 'कनकम् विळयुन्नमण्णु' आदि इनके नाटक हैं। 'अश्वहृदयम्' उपन्यास है। हास्य-कृतियों के भी दो संकलन प्रकाशित हुए हैं।

इनके नाटकों में अधिकतर सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। हास्य-लेखन में व्यंग्यकार 'संजयन्' (दे०) के शिष्य और सहयोगी रहे हैं। ये अत्यधिक लोकप्रिय साहित्यकार हैं।

तितली *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1934 ई०]

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) का दूसरा किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें लेखक ने प्रेम के आदर्श रूप का निरूपण करते हुए समाज के विभिन्न स्तरों के वास्तविक रूप को उजागर किया है। इसकी मूल कथा ग्रामीण जीवन से संबंधित है। बाबा रामनाथ के कथानक के माध्यम से लेखक ने ग्रामीण जीवन की दयनीय स्थिति, ज़मींदार तथा उनके कारिंदों की कूटनीति एवं धाँधली आदि को उद्घाटित करते हुए ग्राम-सुधार तथा ग्राम-संगठन की ओर संकेत किया गया है। गाँव के सुशिक्षित युवा ज़मींदार इंद्रदेव की कथा के माध्यम से सामंतीय वातावरण, धनी परिवार की समस्याओं तथा टूटती हुई संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था को रूपायित किया गया है। इस उपन्यास का लक्ष्य यह बताना भी रहा है कि पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने के स्थान पर प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक आदर्श ही इस देश के निवासियों के लिए सर्वाधिक जीवनोपयोगी हैं। 'तितली' की अवतारणा नारीत्व तथा सतीत्व के प्राचीन भारतीय आदर्शों की सजीव प्रतिमूर्ति के रूप में की गई है तो बाबा रामनाथ को भारतीय संस्कृति तथा दर्शन के प्रतीक-रूप में प्रस्तुत किया गया है। काव्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग जयशंकर प्रसाद के लेखन की निजी विशेषता है जिसकी झलक इस उपन्यास में भी अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होती है।

तिनोटि रातिर सकाल *(उ० कृ०)*

'तिनोटि रातिर सकाल' श्री शांतनु कुमार आचार्य (दे०) के उपन्यास 'शताब्दीर नचिकेता' का उत्तरार्द्ध है; अतः दोनों उपन्यासों के चरित्र समान हैं। इसे आंशिक रूप से जीवनीमूलक उपन्यास कहा जा सकता है। उपन्यासकार की अभिज्ञता का क्रमिक विकास ही इसमें चित्रित है। लेखक के गाँव, परिचित शहर, शिक्षानुष्ठान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति एवं परिवेश को लेकर ही इस उपन्यास की रचना हुई है।

यह उपन्यास हर दृष्टि से आधुनिक है। यह युगीन चिंतना व धारणा का प्रतिनिधित्व करता है। आधुनिक विघटित मानव-व्यक्तित्व, ह्रासोन्मुख जीवन-दृष्टि, क्षयी मनोवृत्ति, पुरातन एवं नूतन का द्वंद्व आदि तत्त्व इसमें उभर कर आए हैं। इस विशृंखलता और ह्रास के पीछे के कारणों को उपन्यासकार मनोविज्ञान और युगीन परिवेश में समझने का प्रयास करता है।

इसकी भाषा सशक्त है; पदावली सुस्पष्ट एवं भावप्रकाशमयी है। शिष्ट एवं बोलचाल के शब्दों का इसमें सुंदर समाहार हुआ है। पदावली में संहिति, संक्षिप्तता एवं वैज्ञानिक नापजोख है। समग्र पुस्तक की अंतःशक्ति एवं गुरुता की रक्षा समर्थ भाषा और शैली के कारण ही हो सकी है।

यद्यपि इसमें एक अनिश्चित वर्तमान का चित्रण हुआ है, किंतु फिर भी इसमें एक गरीयमान भविष्यत् की संभावना सुरक्षित है।

तिप्पेरुद्रस्वामी, एच० *(क० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

डा० एच० तिप्पेरुद्रस्वामी कन्नड के अध्यवसायी अनुसंधित्सु तथा श्रेष्ठ गद्यकारों में से हैं। इनका जन्म 1928 ई० में शिवमोग्गा ज़िले के होन्नाली में हुआ था। इनके पिता एक कर्मनिष्ठ वीरशैव थे जिन्होंने अपना सारा समय वचन-साहित्य के अध्ययन में बिताया था। संप्रति ये मैसूर विश्वविद्यालय के कन्नड विभाग में रीडर हैं। इन्होंने वीरशैव संतों के रहस्यवाद पर अनुसंधान किया है। इन्होंने उपन्यास, नाटक, इतिहास एवं आलोचना-साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि अपनी लेखनी से की है। 'शिवप्प नायक', 'सत्याश्रम साम्राज्य', 'परिपूर्णदेडेगे' तथा 'कदलिय कप्पुर' आपके सफल ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'शरणर अनुभाव साहित्य' आपका शोधप्रबंध है। 'कर्णाटक-संस्कृति-समीक्षे' (दे०) आपकी एक प्रौढ़ कृति है जिसमें कर्णाटक के इतिहास, संस्कृति, साहित्य-संगीत आदि परंपराओं की विवेचना है। कर्णाटक संस्कृति के मर्म को प्रतिपादित करने वाले इस ग्रंथ को 1969 ई० का साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिल चुका है।

आपकी भाषा संयत है, उसमें कहीं भी भावोद्वेग नहीं है।

तिम्मकवि, कूचिमंचि *(ते० ले०)* [समय—1684-1757 ई०]

'कविसार्वभौम' के विरुद से समलंकृत तिम्मकवि गोदावरी प्रांत के कंदराड़ा के निवासी थे। ये गंगनामात्य लच्चमांबा के पुत्र और शैव-दीक्षापरायण थे। ये कंदराड़ा के पटवारी थे।

स्वयं तिम्मकवि ने अपनी रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है: (1) 'राजशेखरविलासमु' (दे०), (2) 'रुक्मिणीपरिणयमु', (3) 'सिंहशैलमहात्म्यमु', (4) 'नीलासुंदरीपरिणयमु' (दे०), (5) 'अच्च (ठेठ) तेलुगु रामायणमु' (दे०), (6) 'सारंगधरचरित्रमु', (7) 'सागरसंग महात्म्यमु', (8) 'सर्वलक्षणसारसंग्रहमु', (9) 'रसिकजनमनोभिराममु' (दे०), (10) 'सर्पपुर महात्म्यमु', (11) 'शिवलीला विलासमु', (12) 'सुजनमनकुमुदचंद्रिका', (13) 'कुक्कुटेश्वर शतकमु'। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ शतक तथा दंडकों की भी रचना की थी।

उपर्युक्त रचनाओं में कुछ क्षेत्र-माहात्म्य का वर्णन करने वाले काव्य हैं तो कुछ पौराणिक गाथाएँ हैं। अंतिम शतक को छोड़कर शेष सरस शृंगार-काव्य हैं।

तिम्मकवि के सभी काव्य प्रसन्न मधुर-शैली से युक्त होकर, पाठकों को रसपुलकित करने में समर्थ हैं। 'सर्वलक्षणसारसंग्रहमु' लक्ष्य-लक्षणों से युक्त रीतिग्रंथ है। ठेठ तेलुगु में भी इन्होंने दो काव्यों की रचना की है। इस प्रकार के काव्यों में ये प्रथमगण्य हैं।

उस युग के प्रसिद्ध कवि कूचिमंचि जग्गकवि इनके अनुज हैं।

रचना-शैली और सरस वर्णनों के कारण तिम्म कवि अपने युग के कवियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं।

तिम्मक्का, ताल्लपाक *(ते० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

तिम्मक्का प्रसिद्ध संकीर्तनाचार्य एवं पदकवितापितामह ताल्लपाक अन्नमाचार्य (दे०) की पत्नी थीं। इनकी काव्यकृति 'सुभद्राकल्याणमु' है जिसमें सुभद्रा व अर्जुन की विवाह-कथा वर्णित है। इस कृति के आधार पर तिम्मक्का तेलुगु की सर्वप्रथम कवयित्री मानी जाती हैं। इस कृति के अनुसंधाता वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के अनुसार परवर्ती कवि चेमकूर वेंकट कवि (दे०) ने अपने प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य 'विजयविलासमु' (दे०) में तिम्मक्का की कविता-शैली का बहुत-कुछ अनुकरण किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिम्मक्का का यह काव्य 1163 चरणों के द्विपदा छंद में संपन्न हुआ है। एक तो नारी की कोमल रचना और दूसरा द्विपदा जैसे देशी छंद का प्रयोग दोनों ने इस रचना को अत्यंत सरस एवं सार्वजनीन बना दिया है। स्त्रियाँ विवाह के समय आज भी समवेत स्वर में इसके छंद गाया करती हैं।

तिम्मना, नंदि *(तें० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

ये विजयनगर राज्य के राजा श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के दरबारी कवि थे। 'भुवनविजय' (दे०) नामक साहित्य-कथा के 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से प्रसिद्ध आठ कवियों में से तिम्मना भी एक थे। अपनी विजय-यात्राओं में कृष्णदेवरायलु ने कटक के गजपति को परास्त किया। गजपति ने अपनी पुत्री को देकर कृष्णदेवरायलु से समझौता कर लिया। गजपति की कन्या के साथ ही तिम्मना भी कृष्णदेवरायलु के यहाँ आए और उनके दरबारी कवि बन गए। तिम्मना की रचनाओं में 'पारिजातापहरणमु' (दे०) ही आज हमें उपलब्ध होता है। यह पाँच आश्वासों का एक श्रृंगार-काव्य है। कृष्ण ने नारद के द्वारा समर्पित पारिजात को पास बैठी हुई रुक्मिणी को दे दिया। उससे क्रुद्ध सत्यभामा को शांत करने के लिए श्रीकृष्ण ने नंदन वन से पारिजात वृक्ष लाकर उसके अंतःपुर के आँगन में लगवा दिया। यही इस काव्य का मुख्य कथानक है। सरस तथा सुकुमार भावों को सुंदर तथा कोमल शब्दों में व्यक्त करने की इनकी प्रतिभा अनुपम है। इन्हें नारी-स्वभाव के नाना रूपों की विशद तथा पूर्ण जानकारी थी। इसीलिए इनके काव्य में चरित्र-चित्रण के अंतर्गत एक विशेष प्रकार की प्राणवत्ता प्रकट होती है। मानिनी सत्यभामा तथा श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण मार्मिक है। सहज तथा सुंदर वर्णनों के द्वारा रस को पुष्ट करने में ये अत्यंत समर्थ थे। उक्त काव्य के अंतर्गत इन्होंने नासिका का वर्णन करते हुए एक अद्भुत कल्पना की थी। गंधफली नामक पुष्प की गंध भौंरों के लिए हितकर नहीं है। अतः भौंरे उसके पास नहीं जाते। अपनी इस स्थिति के लिए दुःखी होकर गंधफली ने घोर तप करके उसके फलस्वरूप नायिका की नासिका का रूप धारण कर लिया। अब उसके दोनों ओर एक-दो नहीं बल्कि ईक्षण-रूपी भौंरों की पंक्ति ही लगी हुई है। तेलुगु में 'मुक्कु' शब्द का अर्थ नासिका है। उक्त कल्पना के कारण यह कवि 'मुक्कु तिम्मना' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरस तथा कोमल शैलीयुक्त काव्य लिखने वाले तेलुगु कवियों में पेद्दन्ना (दे०) के बाद तिम्मन्ना का ही नाम लिया जाता है।

तिम्मना, पुष्पगिरि *(तें० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

ये आंध्र के नेल्लुरु ज़िले के रहने वाले प्रसिद्ध विद्वत्कवि थे। तिम्मना हनुमान के भक्त थे। इन्होंने अपने को 'श्रीहनुमत्पाद सेवागताध्यात्म-तत्त्व-कवित्वविद्' (दे०) कहा है। इनकी रचनाएँ ये हैं—'समीरकुमारविजयमु', 'भागवतसारमु' और 'सुभाषितत्रिशति' के अंतर्गत नीति-शतक का तेलुगु-अनुवाद। इनमें 'समीरकुमारविजयमु' पुराण और इतिहास आदि में उपलब्ध हनुमान से संबद्ध प्रसंगों को लेकर सात आश्वासों में लिखा गया काव्य है। 'भागवत-सारमु' गद्यकाव्य है। बताया जाता है कि इसके आधार पर किसी लेखक ने तमिल में एक भागवत-ग्रंथ लिखा था। 'सुभाषितत्रिशति' के कई तेलुगु-अनुवाद उपलब्ध होते हैं। चंपकमाला तथा उत्पलमाला नामक छंदों में तिम्मना के द्वारा किया गया अनुवाद अत्यंत प्रौढ़ तथा सरस है। अठारहवीं शती ई० तेलुगु साहित्य का क्षीणयुग माना जाता है पर उसमें जो इने-गिने प्रसिद्ध कवि हुए उनमें तिम्मना एक हैं।

तिम्मा *(क० पा०)*

कन्नड के व्यंग्य-हास्य लेखक बीचि (दे०) के 'तिम्मन तले' (तिम्मा का सिर) और 'अंदना तिम्म' (तिम्मा ने कहा) नामक मुक्तक-काव्यों में प्रत्येक पद्य के अंत में 'तिम्मा' की छाप मिलती है। उनका यही 'तिम्मा' साहित्य-लोक का विचित्र, प्रभावशील व्यक्ति है। हास्य के छींटे बिखेर कर सत्य का, चाहे वह कितना ही कटु क्यों न हो, उद्घाटन करने में यह सर्वथा समर्थ है। यह गंभीर चिंतक, आलोचक और दार्शनिक है। 'तुम जैसे हो वैसे बनो', 'पहले तुम अपने आपको समझो', 'अच्छा है'—ऐसा सोचकर बड़ों का अनुकरण मत करो, 'यह क्या हुआ, देखो छोटा गधा अपने पिता का अनुकरण कर बरबाद हुआ' जैसी इसकी उक्तियों में जीवन की अनुभूति सुंदर हास्य के साथ प्रकट हुई है।

तिरञ्ञेटुत्त कथकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई० से 1950 ई० तक]

पोन्कुन्नम् वर्कि (दे०) मलयाळम कहानी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्युत्थान-काल के प्रमुख कहानीकारों में से हैं। इनके विभिन्न कहानी-संग्रहों से बत्तीस कहानियों का चयन करके सन् 1964 ई० में इन्हें पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है।

पोन्कुन्नम् वर्कि की कहानियों का विषय तथा कथाधार केरल का सामाजिक और राजनीतिक जीवन है। उनकी कहानियाँ सामाजिक अन्यायों के कारण कष्ट सहने वाले दलित दरिद्रों में आत्मसम्मान की भावना प्रज्वलित करती हैं और उन्हें अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए क्रांति का मार्ग दिखाती हैं। धर्म के नाम पर मनुष्य की दुर्बलताओं से लाभ उठाने वाली पौरोहित्य-व्यवस्था उनकी भर्त्सना और कटु व्यंग्य का विषय बनी है। यद्यपि वर्कि की रचना-शैली पात्र-प्रधान नहीं है तो भी उन्होंने कुछ अविस्मरणीय पात्रों की सृष्टि की है जो पाठक के मन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। उनकी कहानियों की इन सभी विशेषताओं का प्रतिनिधित्व इस ग्रंथ में संगृहीत कहानियाँ करती हैं। प्रसिद्ध कहानीकारों की चुनी हुई कहानियों के प्रकाशन की श्रृंखला में प्रथम कड़ी के रूप में भी इस ग्रंथ का महत्व है।

तिरनाय्वु *(त० पारि०)*

यह एक आधुनिक पारिभाषिक शब्द है जो 'समालोचना' और 'समालोचनाशास्त्र' के लिए प्रयुक्त होता है। 'तिरन्' का अर्थ है दक्षता या कवि-कर्म-नैपुण्य और 'आय्वु' का अर्थ है विवेचन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन। इस प्रकार किसी कृति की विशेषताओं का, उसके गुणों और दोषों का विवेचन कर साहित्यिक महत्व का मूल्यांकन करना 'तिरनाय्वु' है। साथ ही इस विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए मानदंड निर्धारित करने वाला या सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाला लक्षण ग्रंथ भी 'तिरनाय्वु' है।

यह पारंपरिक शास्त्रीय समीक्षा-पद्धति से भिन्न व्यावहारिक समीक्षा का वाचक है; इसमें किसी कृति की काव्यात्मक संरचना और कृतिकार की सर्जन-प्रक्रिया के विश्लेषण द्वारा उसके सौंदर्य और महत्व का आकलन किया जाता है। तमिल में यह पद्धति पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति के प्रभाव से विकसित हुई है।

तिरिकुडरासप्पन् *(त० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

'प्रकृति की आराम-भूमि' कहलाने योग्य 'कुर्रालम्' प्रपात के वातावरण में इनका जीवन बीता था और इस पार्वत्य प्रदेश के सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करना इनकी वाणी की विशेषता है। इनकी काव्य-रचना 'कुर्रालक्कुरवंचि' (दे०) है। इसकी कथा-वस्तु एक पहाड़ी नारी की उक्तियों पर आधारित है जो प्रणय-विह्वल नायिका के सामने प्रकट होकर अपना परिचय, नायिका के प्रणय-रोग का स्वरूप एवं निदान के उपाय इत्यादि बातों का विवरण देती है। इनकी एक और काव्यकृति 'कुर्रालत् तलपुराणम्' है जो कुर्रालम् तीर्थस्थान संबंधी माहात्म्य-कथा प्रस्तुत करती है।

तिरुअरुट्पा *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की उन्नीसवीं शती]

इसके रचयिता रामलिंगस्वामी हैं। रामलिंग-स्वामी तमिलनाडु के प्रसिद्ध शैव संतों में से हैं। मूलतः शिव और सुब्रह्मण्यस्वामी के भक्त होते हुए भी इन्होंने सभी धर्मों का आदर किया है। रामलिंगस्वामी ने 'समरस शुद्ध-सन्मार्गम्' नामक नवीन पंथ का प्रवर्त्तन किया था जिसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर बल दिया गया है। इनकी कृतियों में तिरुअरुट्पा का विशिष्ट स्थान है। इसमें इनके भक्तिमय पद संगृहीत हैं। विद्वानों के मतानुसार इन्होंने सोलह सहस्र से अधिक भक्तिमय पदों की रचना की थी जिनमें से कुछ सहस्र पद 'तिरुअरुट्पा' नाम से संगृहीत हैं। 1851 ई० में इनके भक्तिपूर्ण पदों का एक संग्रह 'शेन्नै कंदर दैव मणिमालै-शरण पत्तु' नाम से प्रकाशित हुआ था। कालांतर में तोलुवूर वेलायुद मुदलियार ने इनके पदों का संग्रह 'तिरुमुरै' नाम से किया। यही संग्रह आज 'तिरुअरुट्पा' के नाम से विख्यात है। इसके छह भाग हैं। प्रथम चार भाग 1867 ई० में, पाँचवाँ भाग 1880 ई० में और छठा भाग 1885 ई० में प्रकाशित हुआ था। इन पदों में 'समरसशुद्धसन्मार्गम्' के सिद्धांतों का विवेचन है। प्रथम पाँच भागों के पदों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इनकी विचारधारा क्रमशः विकसित होती गई है। इनके मत में सभी प्रकार के भेद-भावों से रहित व्यक्ति के हृदय में ही ईश्वर का निवास होता है। 'तिरुअरुट्पा' के भक्तिरसपूर्ण पद तमिलनाडु में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

तिरुकोलविनाचि *(क० पा०)*

'तिरुकोलविनाचि' षड्क्षरि (दे०) की श्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृति 'राजशेखरविलास' (दे०) का एक नारी पात्र है। इसमें शिवभक्त सत्येंद्र चोल की कथा है। षडक्षरि पंडित कवि हैं। इस चंपूकाव्य में पांडित्य-प्रदर्शन एवं चमत्कार की ही प्रधानता है। किंतु तिरुकोलविनाचि का प्रसंग इसका अपवाद है। वह एक ग़रीब स्त्री है। उसका इकलौता बेटा था। एक दिन वह सत्येंद्र चोल के कुमार के घोड़े से कुचल कर मर जाता है। उस संदर्भ में उसका मातृहृदय करुणा की गंगा बनकर फूट पड़ता है। पुत्र को मृत पाकर राजा के पास जाकर वह शिकायत करती है। उसका पुत्र-शोक भयंकर रूप धारण करता है। माता के कोमल पक्ष को उसके पुत्र की मृत्यु के समय देखते हैं तो उसके उपरांत जब वह प्रतिशोध के लिए राजा के पास जाती है तब बहुत ही कठोर बन जाती है। किंतु राजा भी कम नहीं था। उसने उसके पुत्र के बदले अपने पुत्र की बलि दे दी। उसे देखकर उसकी माता ने अपनी बलि दे दी। उससे दुखी बने तिरुकोलविनाचि तथा राजा भी अपनी जान दे देते हैं। अंत में उनकी शिव-भक्ति एवं निष्ठा देखकर शिव प्रकट हो उन सबको जिला देते हैं। तिरुकोलविनाचि मातृत्व-प्रेम की मृदुता का एवं रोष के भीषण रूप का सुंदर प्रतिनिधित्व करती है।

तिरुक्करुवैंप्पतिट्रुप्पत्तंताति (त०कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके रचयिता अतिवीररामपांडियन नामक पांड्य राज-वंश के दानी कलाप्रिय शैव-भक्त हैं। ये संस्कृत भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे और इन्होंने 'नैषध', 'काशीपुराण', 'लिंगपुराण' आदि ग्रंथों के तमिल पद्यबद्ध रूप भी प्रस्तुत किए हैं।

आलोच्य काव्य-कृति में शिव भगवान के प्रति चलाई गई अपूर्व भक्ति-तन्मयता दर्शनीय है। तमिल प्रदेश के 'तिरुनेल्वेलि' ज़िले में स्थित 'करुवै' (अथवा करिवलम् वंतनल्लूर) नामक गाँव के मंदिर में विराजमान शिव इनके इष्ट थे और इसी मूर्ति की स्मृति के रूप में यह कृति विरचित है। इसमें मंगलाचरण का एक अतिरिक्त पद्य छोड़ कर सौ पद्य हैं जो दस-दस पद्यों के रूप में विभाजित हैं और कई छंदों में निबद्ध हैं।

तमिल शैव सिद्धांत-तत्त्वों के अनुसार शिव भगवान का विराट् स्वरूप, भक्त की नीचता और प्रभु की असीम एवं अहैतुकी कृपा, ईश्वरीय अनुग्रह का अलौकिक आनंद इत्यादि भक्त-हृदय को आंदोलित करने वाली बातें इस लघु काव्य में भावार्द्रता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। तमिल शैव धर्म की शीर्षस्थानीय भक्तिरस-स्रावित कृति माणिक्कवाशगर् (दे०) द्वारा रचित 'तिरुवाचकम्' का स्मरण दिलाने से इस लघु रचना को 'कुट्टित्तिरुवाशगम्' (लघु तिरुवाशगम्) कहा जाता है।

तिरुक्कुरळ (त० कृ०) [रचनाकाल—ईसा की दूसरी-तीसरी शती के आसपास]

तिरुक्कुरळ शब्द 'तिरु' और 'कुरळ' इन दो शब्दों के मेल से बना है। तिरु आदरसूचक उपसर्ग है (श्री) और कुरळ डेढ़ पंक्ति के एक तमिल छंद का नाम है। इस ग्रन्थ में नीति-विषयक 1330 कुरळ हैं। इस ग्रंथ के तीन भाग हैं—अरत्तुप्पाल (धर्म-विभाग), पोरुटपाल (अर्थ-विभाग) और कामत्तुप्पाल (काम-विभाग)। धर्म-विभाग के आरंभ में लेखक ने सर्वव्यापी प्रभु की वंदना की है। तदुपरांत गृहस्थ एवं संन्यास धर्म का निरूपण करते हुए गृहस्थ जीवन को संन्यास से बढ़कर बताया है। एक अध्याय में कर्म-सिद्धांत का विवेचन है। अर्थ-विभाग में राजा, राज्य-शासन, सैन्य-संचालन, राजनीति के विभिन्न अंगों, राजा और प्रजा के कर्तव्यों आदि का विवेचन है। लेखक ने राजा एवं प्रजा के समान अधिकार की घोषणा की है। काल-विभाग में पूर्वराग, गुप्त प्रेम, संयोग और वियोग श्रृंगार का विस्तृत विवेचन है। लेखक ने स्थूल शारीरिक प्रेम के स्थान पर सूक्ष्म मानसिक प्रेम की चर्चा की है। इस कृति में तिरुवळ्ळुवर (दे०) मानव के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन के आदर्शों को व्यक्त करने में सफल हुए हैं। इसे 'तमिल वेद' कहा जाता है। 'तिरुक्कुरळ' तमिल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में तथा विश्व की नीति-विषयक श्रेष्ठ कृतियों में से है।

तिरुक्कुरळभाषा (मल० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

तमिल के प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रंथ 'तिरुक्कुरळ' (दे०) का प्राचीन मलयाळम गद्यानुवाद। अनुवादक के संबंध में कोई प्रामाणिक सूचना नहीं है। 'तिरुक्कुरळ' के 1330 छंदों का अनुवाद इसमें है। इसकी भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। मूल पुस्तक की भाषा शेन्तमिल का प्रभाव भी यत्र-तत्र दर्शनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिरुक्कोवैयार *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की नवीं शती]

प्रसिद्ध शैव संत माणिक्कवाशगर् (दे०) द्वारा रचित। इनके समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। बहुमत यही है कि इनका समय ईसा की नवीं शती है। इस कृति के 400 पदों में प्रेम और पारिवारिक जीवन का वर्णन है। विद्वानों के अनुसार विभिन्न पद अन्योक्तिपरक हैं। यहाँ नायक और नायिका वस्तुतः परमात्मा और आत्मा के प्रतीक हैं। इसमें प्रेम का चित्रण संयत रूप में किया गया है। प्रेम के संयत चित्रण का एक उदाहरण इस प्रकार है—युवती नायिका किसी युवक के साथ भाग जाती है। उसकी खोज में जंगल में भटकती वृद्धा माँ की एक प्रेमी-युगल से भेंट होती है। वह उनसे अपनी पुत्री और उसके प्रेमी के विषय में पूछती है। युवक कहता है कि मैंने एक युवक को इधर से जाते देखा था और अपनी प्रेमिका से पूछता है कि क्या उसने किसी युवती को उधर से जाते देखा था।

तेरहवीं शती में तिरुक्कोवैयार की विस्तृत टीका लिखी गई जो आज भी अत्यंत प्रसिद्ध है। विद्वानों के अनुसार 'तिरुक्कोवैयार' कोवै (दे०) नामक काव्यविधा में रचित प्रथम कृति है।

तिरुच्चेंदूर पिळ्ळैतमिल *(त० कृ०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

इस काव्य-कृति की गिनती 'पिळ्ळैतमिल' विधा (दे०) के अंतर्गत की जाती है। यह ग्रंथ सागर तट पर संस्थित 'तिरुच्चेंदूर' नामक स्थान-विशेष के मंदिर के 'मुरुग' (कार्त्तिकेय) भगवान की स्तुति है। इसमें उल्लिखित दस शैशव-दशाएँ ये हैं—(1) काप्पु (शिशु रक्षा-प्रार्थना), (2) चेङ्कीरै (शिशु-नृत्य), (3) ताल (हिंडोला-शयन), (4) चप्पाणि (ताली बजाना), (5) मुत्तम् (चुम्बन-याचना), (6) वरुकै (बच्चे का आह्वान), (7) अम्पुलि (चंद्रमा-आह्वान), (8) चिरुपरै (लघु ढोल वजाना), (9) चिरिल् (क्रीडा-घर वनाना), (10) चिरुतेर् (क्रीडा-रथ चलाना)। कवि 'पकलिक्कूत्तर' ने परंपरा प्राप्त काव्य-ढाँचे में अपने उपास्य देव की मनोहारी लीलाओं तथा महत्ताओं का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। यद्यपि वर्णन की शैली रूढ़िबद्ध है, तो भी परिपाटी-पालन की सीमाओं के अंतर्गत कवि का कल्पना-वैशिष्ट्य एवं उक्ति-चमत्कार निखर आया है। 'मुरुग' देव का वाहन मयूर है जो अपने पैरों तले एक सर्प को कुचलता हुआ दिखाया जाता है। चंद्रमा को शिशु 'मुरुग' के साथ खेलने बुलाते हुए कवि कहते हैं—"राहु रूपी सर्प तुम्हें खाने बैठा है। 'मुरुग' के साथ खेलो और मयूर है तुम्हें बचाने के लिए"।

तिरुपति वेंकट कवुलु *(ते० ले०)* [समय—उन्नीसवीं-बीसवीं शती]

उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक में चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्री और दिवाकर्ला तिरुपति शास्त्री नाम के दो कवि तेलुगु साहित्य में एक नयी चेतना, नयी सुषमा भर चुके थे। इन दोनों कवियों को सम्मिलित रूप से तिरुपति वेंकटकवुलु या तिरुपति कवुलु कहा जाता है। इन दोनों ने उस समय के सुप्रसिद्ध विद्वान् चर्ल ब्रह्मय्य शास्त्री के पास संस्कृत और तेलुगु का अध्ययन किया था। काव्यशास्त्र और व्याकरण में पारंगत होकर दोनों विद्वानों ने साथ-साथ सम्मिलित रूप में काव्य-साधना शुरू की। उस समय नयी पीढ़ी के लोग अँग्रेज़ी की ओर झुके हुए थे तो पुराने विद्वान संस्कृत के गुणगान में लगे हुए थे। ऐसी स्थिति में तिरुपति कवियुग्म ने अपनी ऊर्जस्वित काव्य-माधुरी से जन-मानस को ही नहीं राजदरबार के सभामंडपों को भी मंत्र-मुग्ध कर दिया। अष्टावधान और शतावधान नाम की दो काव्यप्रक्रियाओं का उन दिनों काफ़ी प्रचार था। आशुकविता और समस्यापूर्ति के ही ये विकसित रूप हैं। इस विधा का सम्यक् विकास तिरुपति कविद्वय ने किया। इनकी रचना 'नानाराजसंदर्शनमु' (दे०) में इन्हीं अवधानों का विवरण मिलता है। इन अवधानों के अलावा 'महाभारत' (दे०) के प्रमुख प्रसंगों के आधार पर इन्होंने अत्यंत लोकप्रिय नाटकों की भी रचना की थी। 'मृच्छकटिक' (दे०), 'मुद्राराक्षस' (दे०) 'बालरामायण' आदि संस्कृत-नाटकों का सरस अनुवाद भी इस कवियुग्म ने प्रस्तुत किया था। 'सुकन्या', 'अनर्घनारदमु', 'दंभवामनमु', 'पंडितराजु', 'उद्योगविजयमुलु' (दे०) आदि मौलिक नाटक भी इन लोगों ने लिखे थे। अनेक गद्य-काव्य और पद्य-काव्य भी इनके लिखे मिलते हैं। प्राचीन परंपरा के विद्वान् होते हुए भी नूतन प्रयोगों के प्रति इनकी विशेष रुचि है। वीर और हास्य-रसों की अभिव्यंजना करने वाले इनके कई काव्य तेलुगु-समाज में अत्यंत समादृत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिरुप्पुहल *(त० कृ०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई० का पूर्वार्ध]

रचयिता—अरुणगिरिनादर (दे०)। तिरुप्पुहल अरुणगिरिनादर की सर्वप्रसिद्ध कृति है। तिरुप्पुहल में दो शब्द हैं 'तिरु' और 'पुहल' [तिरु=पावन, सुंदर (यहाँ प्रभु का सूचक), पुहलष्=प्रशंसा]; अतः तिरुप्पुहल का अर्थ है—प्रभु की (भगवान मुरुगन की) स्तुति। प्रसिद्ध है कि अरुणगिरिनादर ने भगवान मुरुगन की स्तुति में सोलह सहस्र पदों की रचना की थी किंतु आज उनके लगभग दो सहस्र पद ही उपलब्ध हैं। अन्य संत कवियों की भाँति इन्होंने भी विभिन्न पुण्य क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए भगवान् सुब्रह्मण्य की स्तुति में पदों की रचना की। इन्होंने विभिन्न पदों में स्वयं को महापापी के रूप में चित्रित किया है और आत्मदोषों का वर्णन करते हुए प्रभु से क्षमा-याचना की है। ये पद विशिष्ट लय में रचित हैं और बहुत लोकप्रिय हैं। तिरुप्पुहल का धार्मिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्व है।

तिरुमंगै आळ्वार *(त० ले०)* [समय—ईसा की आठवीं शती का मध्य भाग]

तिरुमंगै आळवार का जन्म कुरयैलूर नामक स्थान पर हुआ। इन्हें विष्णु के धनुष 'शार्ङ्ग' का अवतार कहा जाता है। अल्पायु में ही तिरुमंगै तमिल तथा संस्कृत भाषाओं में पारंगत हो गए। इन्होंने 'पेरिय तिरुमोलि', 'शिरिय तिरुमडल', 'पेरिय तिरुमडल', तिरुवेलुकूट्रिरुक्कै', 'तिरुक्कुरुन्दाण्डकम' तथा 'तिरुनेडुन्दाण्डकम' नामक छह कृतियों की रचना की है। 'पेरिय तिरुमोलि' के विभिन्न पदों में वैष्णव तीर्थों और उनके अधिष्ठाता देवताओं, पौराणिक घटनाओं, तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं का वर्णन है। 'तिरुवेलुकूट्रिरुक्कै' का विषय भी लगभग यही है। 'तिरुक्कुरुन्दाण्डकम' के अधिकांश पद ईश-स्तुति से संबंधित हैं। 'तिरुनेडुन्दाण्डकम' में प्रमुखतः भगवत्-साक्षात्कार से उत्पन्न आनंद का वर्णन है। 'शिरिय तिरुमडल' एवं 'पेरिय तिरुमडल' नामक रचनाओं में तमिल-समाज में प्रचलित एक प्रथा-विशेष—मडल अरुदल—का वर्णन है। तिरुमंगै आळवार की ये रचनाएँ दक्षिण के वैष्णव समाज में वेदांग के रूप में समादृत हैं। तिरुमंगै श्रीरंगनाथ के अनन्य उपासक थे।

तिरुमल रामचंद्र *(ते०ले०)* [जन्म—1913 ई०]

तिरुमल रामचंद्र अद्यतन आंध्र लेखकों में लब्ध-प्रतिष्ठ हैं और संस्कृत, प्राकृत, पाली, हिंदी, कन्नड आदि भाषाओं की अच्छी जानकारी रखते हैं। ये न केवल लेखक अपितु सफल पत्रकार भी हैं। कई वर्ष 'भारती', 'आंध्रसचित्र' साप्ताहिक आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन-कार्य करते रहे हैं।

इनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं: 1. 'मनलिपि पुट्टु पुर्वोत्तरालु', 2. 'दक्षिणांध्रवीरुलु', 3. हिंदुवुलु पंडुगलु', 4. 'नुडि-नानुडि', तथा 5. साहिती सुगतुनि स्वगतालु'। 'साहिती सुगतुनि स्वगतालु' पर आंध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी ने इनको पुरस्कृत किया। भाषा-विज्ञान, समालोचना तथा बौद्ध वाङ्मय में इनकी रुचि है।

'ललितविस्तर' नामक बौद्ध कृति का तेलुगु अनुवाद इन्होंने अपने मित्र पं० बुलुसु वेंकट रमणय्या (दे०) के साथ किया है।

तिरुमलिशै आळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवीं शती का प्रथम चरण। सांप्रदायिक ग्रंथों के अनुसार—द्वापर युग 4202 ई० पूर्व।]

तिरुमलिशै आळवार का जन्म तिरुमलिशै नामक स्थान में हुआ। इनका संस्कृत नाम भक्तिसारर् है। आरंभ में तिरुमलिशै शिव-भक्त थे परंतु कालांतर में विष्णु-भक्त बन गए। इनकी तपोमहिमा-संबंधी अनेक किंवदंतियाँ तमिलनाडु में प्रचलित हैं। इनकी दो रचनाएँ हैं—'नान्मुखन तिरुवंदादि' और 'तिरुच्चंदविरुत्तम'। 'नान्मुखन तिरुवंदादि' में नारायण की महिमा के प्रतिपादन के साथ-साथ जैन, बौद्ध, शैव आदि धर्मों की अपेक्षा वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। 'तिरुच्चंदविरुत्तम के विभिन्न पदों में वैष्णव धर्म-संबंधी सिद्धांतों, ब्रह्म, जीव, जगत् आदि दार्शनिक विषयों, तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं एवं कृष्ण की कुछ लीलाओं का वर्णन है। तिरुमलिशै आळवार की प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण यह है कि इन्होंने वैष्णवों द्वारा तिलक लगाने के लिए प्रयुक्त लाल चूर्ण की खोज की।

तिरुमलै ताताचार्य शर्मा *(क० ले०)*

कन्नड के श्रेष्ठ पत्रकार श्री तिरुमलै ताताचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्मा का जन्म कोलार ज़िले के एक गाँव में 1897 ई० में हुआ। उनका घराना अपनी संस्कृत विद्या के लिए प्रसिद्ध था। घर पर ही आपने संस्कृत, प्राकृत, कन्नड, तेलुगु आदि भाषाएँ सीखीं। अपनी शिक्षा के बल पर विख्यात विद्वान् एच० कृष्णशास्त्री के साथ काम करने लगे किंतु स्वातंत्र्य-संग्राम की पुकार सुनकर उसमें कूद पड़े। उसके बाद संघर्ष में ही जीवन बीता है। आपने विश्वकर्णाटक' पत्रिका निकालकर उसका सफल संचालन किया। 'पत्रवृत्ति के परशुराम' के रूप में आप विख्यात रहे। इनकी वाणी सरकार के लिए सिंहवाणी थी। कई बार इनकी पत्रिका सरकार की कोपभाजन बनी। आपने कन्नड साहित्य के काल-विभाजन, तथा शिलालेखों आदि पर सैकड़ों विद्वत्ता-पूर्ण लेख लिखे हैं। 'भारतरत्न विश्वेश्वरय्या जी की जीवनी' 'मास्तियवर मनोधर्म', 'विक्रांत भारत' आदि आपकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। 'विक्रांत भारत' में भारत-भर के स्वातंत्र्य-आंदोलन का अत्यंत ओजोमय चित्रण है। निर्भीक विचार-धारा, अग्नितुल्य वाक्प्रवाह, स्फटिक स्पष्ट भाषा आपकी विशेषता है।

तिरुमूलर *(त० ले०)* [समय—ईसा की छठी शती]

तिरुमूलर की गणना तमिल प्रांत के 63 शैव संतों में होती है। इनके जन्मादि के विषय में कोई बात ज्ञात नहीं है। ये एक रहस्यवादी संत कवि थे। इनके द्वारा रचित लगभग तीन सहस्र पदों का संग्रह 'तिरुमंदिरम्' कहलाता है। शैव संतों की रचनाएँ तिरुमुरै' नाम से संगृहीत हैं। इनकी संख्या बारह है। इनके पद दसवें तिरुमुरै में संगृहीत हैं। संत तिरुमूलर ने कहीं लौकिक जीवन से संबंधित विविध विषयों का वर्णन किया है तो कहीं आध्यात्मिक अनुभूतियों और गंभीर दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। 'ओन्रेकुलमुम् ओन्रेदैवमुम्' कहकर इन्होंने एक देवता की उपासना और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर बल दिया है। ये विश्व-प्रेम के प्रचारक थे। इन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि 'प्रेम ही शिव' है। गंभीर विषयों का विवेचन भी इन्होंने सरल शैली में किया है। कहीं-कहीं रूपकों द्वारा आध्यात्मिक तत्त्वों का प्रतिपादन है। इनके पद अत्यंत सुंदर और सरस हैं। इनमें कहीं-कहीं सूत्रों का-सा भाषा-संयम और गहन तत्त्वार्थ पाया जाता है। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति में कुछ स्थलों पर भाषा कुछ दुरूह हो गई है परंतु अधिकांश स्थलों पर सरस है। सरल शैली में गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति में ये सफल हुए हैं। ये तमिल के प्रसिद्ध संत कवियों में गिने जाते हैं।

तिरुवरुट्प्रकाश वळ्ळलार *(त० ले०)* [रचना-काल—1968 ई०]

यह नारण दुरैक्कण्णन (दे०) 'जीवा' द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटकों में से है। इस ऐतिहासिक-धार्मिक नाटक में 'जीवा' ने उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध तमिल संत कवि रामलिंगस्वामी की जीवनी प्रस्तुत की है। अहिंसा के पुजारी रामलिंगस्वामी दया को मनुष्य का सर्वोपरि धर्म मानते थे। इनकी दयालुता को देख तमिल जनता ने इन्हें वळ्ळलार (दयालु) पुकारना प्रारंभ कर दिया। इन्होंने 'समरस सन्मार्गम' नामक एक पंथ चलाया जिसमें प्राणि-मात्र की समानता पर बल दिया गया है। जीवा ने वळ्ळलार के जीवन से संबंधित सामग्री विविध स्रोतों से एकत्रित की और अपनी कल्पना-शक्ति एवं प्रतिभा के बल पर उसे सरस नाटक के रूप में प्रस्तुत किया।

इस नाटक में इतिहास और कल्पना का अपूर्व सम्मिश्रण है। कहीं-कहीं पौराणिक प्रसंगों का मौलिक रूप से उपस्थापन है। नाटक की शैली सरस और सरल है। यह नाटक अभिनेय भी है और पाठ्य भी।

तिरुवळ्ळुवर *(त० ले०)* [समय—ईसा की दूसरी-तीसरी शती]

तिरुवळ्ळुवर तमिल के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। तिरुवळ्ळुवर शब्द में 'तिरु' संस्कृत श्री के समान आदरसूचक उपसर्ग है और वळ्ळुवर एक निम्न जाति का नाम है। तमिल समाज में तिरुवळ्ळुवर नायनार, देवर, देवप्पुलवर, नानमुगनार आदि नामों से भी प्रसिद्ध हैं। तिरुवळ्ळुवर की एकमात्र रचना है 'तिरुक्कुरळ्' (दे०)। तिरुक्कुरळ एक श्रेष्ठ नीति-ग्रंथ है। एक सहस्र तीन सौ तीस कुरळ छंदों में रचित यह ग्रंथ तीन भागों में विभाजित है—अरत्तुप्पाल (धर्म-विभाग), पोरुट्पाल (अर्थ-विभाग) और कामत्तुप्पाल (काम-विभाग)। धर्म-विभाग में धर्म के विविध पक्षों का, अर्थ-विभाग में शासन-प्रबंध, राजनीति, राजा और प्रजा के कर्तव्यों आदि का तथा काम-विभाग में प्रेम के विविध रूपों और पक्षों का विवेचन है। तिरुक्कुरळ के विभिन्न कुरळों में शब्द-सौंदर्य और भाव-गांभीर्य का अद्भुत समन्वय है। प्रत्येक कुरळ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने भीतर एक भावलोक को समाविष्ट किए हुए है। तिरुवळ्ळुवर के समकालीन एवं परवर्ती विभिन्न कवियों ने मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा की है। वे पहले कवि हैं जिन्होंने राजा और प्रजा के समान अधिकार की घोषणा की है।

तिरुवातिरप्पाट्टु (कैकोट्टिक्कळिप्पाट्टु) (मल० पारि०)

त्योहारों के अवसर पर, विशेषकर तिरुवातिरा अथवा मार्गशीर्ष पूर्णिमा के अवसर पर घरों में होने वाले वृंदनृत्य—'तिरुवातिरकळि' में भाग लेने वाली कुलीन महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीत। इसका संगीत शास्त्रीय रूप से व्यवस्थित है और साहित्यिक गुणों से संपन्न है। इन गीतों में अधिकांश मच्चाट् इळयत् (1750 से 1853 ई०) द्वारा रचित हैं। मलयाळम के संगीतात्मक साहित्य में कथकलि गीतों के बाद इन गीतों का स्थान है।

तिरुवाशगम् (त० कृ०) [रचना-काल—ईसा की नवीं शती]

'तिरुवाशगम्' माणिक्कवाशगर (दे०) की प्रसिद्ध कृति है। 'तिरुवाशगम्' का शाब्दिक अर्थ है 'पवित्र वचन' (तिरु=पवित्र, वाशगम्=वचन)। इसमें माणिक्कवाशगर ने मूलतः आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम, उस प्रेम की पूर्णत्व-प्राप्ति तक की विभिन्न स्थितियाँ, ब्रह्म-साक्षात्कार आदि की चर्चा की है। 'तिरुवाशगम्' 51 अध्यायों में विभक्त है। प्रथम चार अध्यायों में माणिक्कवाशगर ने अपने इष्टदेव तिरुपेरुंतुरै-स्थित शिवजी के दिव्य रूप, उनकी कृपालुता, व्यापकता, माहात्म्य आदि का वर्णन किया है। शेष 47 अध्यायों में प्रभु के दिव्य रूप, भगवान के प्रति भक्त के प्रेम, उनके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण, प्रभु-वियोग में तड़पती हुई भक्त की आत्मा, भक्ति की महिमा, शिवजी के विभिन्न रूप, प्रभु-प्रेम में लीन आत्मा की स्थिति, जीवन्मुक्त की स्थिति, प्रभु-साक्षात्कार से प्राप्त आनंद आदि विषयों की चर्चा है। 'तिरुवाशगम्' में दार्शनिकता और भावुकता का समन्वय है। इसमें कहीं-कहीं गीता का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसके पदों में संगीतात्मकता और काव्यत्व का अद्भुत समन्वय है। पदों का अनूठा माधुर्य पाठकों को सहसा द्रवीभूत कर देता है। इसीलिए तमिल में यह कहावत प्रचलित हो गई—'तिरुवाशगत्तिकु उरुगांतार ओरु वाशगत्तिकुम् उरुगार' अर्थात् जो 'तिरुवाशगम् से प्रभावित नहीं हुआ वह किसी भी उक्ति से प्रभावित नहीं हो सकता'। इसके पद अत्यंत लोकप्रिय हैं और दक्षिण के शिव-मंदिरों में विभिन्न अवसरों पर इन पदों का पाठ होता है। 'तिरुवाशगम्' का धार्मिक, साहित्यिक, सैद्धांतिक, ऐतिहासिक सभी दृष्टियों से अपार महत्व है।

तिरु०, वि० क० (त० ले०) [जन्म—1883 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

ये बीसवीं शती के अग्रगण्य तमिल-साहित्यकारों में हैं। इनका पूरा नाम तो 'कल्याणसुंदरम्' है, किंतु 'तिरुविक' नाम से ही ये अधिक जाने जाते हैं। इनकी शिक्षा मद्रास के वेस्ली कालेज में हुई थी। इस कालेज में तमिल प्राध्यापक श्री ना० कदिरैवेर् पिळ्ळै से प्रभावित होकर ये तमिल भाषा की उन्नति के लिए कार्य करने लगे थे। मद्रास के प्रसिद्ध तमिल विद्वान् श्री मयिलै तणिकाचलम् पिळ्ळै और मरैमलै अडिहल् (दे०) से इन्होंने तमिल के लक्ष्य-लक्षण ग्रंथों तथा शैव सिद्धांतों का अध्ययन किया था।

इन्होंने कुछ समय तक स्पेंसर कंपनी में नौकरी की थी। किंतु तिलक की गिरफ़्तारी पर उससे त्याग-पत्र दे दिया था। बाद में ये मद्रास की एक हरिजन संस्था में, और फिर वेस्ली कालेज में अध्यापक के रूप में कार्य करते रहे। शैव सिद्धांत महासमाज के तत्त्वावधान में ये शैव धर्म पर व्याख्यान भी देते थे। सन् 1917 में इन्होंने 'देशभक्त' नाम से एक पत्रिका आरंभ की थी। सन् 1920 में ब्रिटिश सरकार के कोप के कारण इसके बंद हो जाने पर इन्होंने नवशक्ति नामक पत्रिका आरंभ की। प्रथम मज़दूर-संगठन के बनाने में श्री वाडिया के साथ इनका महत्वपूर्ण योग रहा था तथा कांग्रेस और मज़दूर-संगठन के अनेक अधिवेशनों में ये अध्यक्ष रहे थे। स्त्री-उद्धार आंदोलन और समाज-सुधार-आंदोलन के अतिरिक्त 'जीवकारुण्य संघ' के द्वारा मनुष्येतर प्राणिवर्ग की सुरक्षा के लिए भी इन्होंने आंदोलन चलाए थे। समाज के शिक्षित तथा उच्चवर्ग में ही नहीं, सामान्य जनता में भी ये अत्यंत आत्मीय माने जाते थे। इनकी प्रसिद्ध कृतियों के नाम ये हैं— 'मनुष्य जीवन तथा महात्मा गांधी', 'नारी की महानता अथवा जीवन-संगिनी', 'परमतत्व अथवा जीवन-मार्ग', 'आंतरिक प्रकाश', 'भारत तथा स्वतंत्रता-संघर्ष', 'रामलिंगस्वामी का हृदय', 'शैव-धर्म की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समन्वय भावना', 'हिमाचल अथवा ध्यान', 'तमिल-साहित्य में बौद्धप्रभाव', 'तमिलदेश तथा नम्माळवार' (वैष्णव संत) 'ईसा मसीह की करुणा', 'ईसा की 'श्रीसूक्ति', 'संपदा तथा करुणा अथवा मार्क्सवाद तथा गांधीवाद' इत्यादि हैं। महात्मा गांधी, ईसा, बुद्ध, आदि पर इनकी लिखी कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

तिरुविळैयाडलपुराणम् *(त० कृ०)*

इस शीर्षक से दो कृतियाँ मिलती हैं—एक पेरुम्पर्रप्पुलियर नंबि द्वारा तथा दूसरी परञ्जोति मुनिवर द्वारा रचित। ये दोनों क्रमशः ई० तेरहवीं और सोलहवीं शतियों की मानी जा सकती हैं। दोनों 'मतुरै' (मधुरा) नगर के मंदिर में विराजमान 'सोमसुंदर' नाम से अभिहित शिव-मूर्ति की 64 लीलाओं की कथाएँ प्रस्तुत करती हैं। दक्षिण में प्रत्येक प्रसिद्ध मंदिर के लिए स्थल माहात्म्य-पुराण उपलब्ध है जिसमें उस पवित्र स्थल के मंदिर, मूर्ति एवं तीर्थ से संबंधित पौराणिक कथाएँ एवं जनश्रुतियाँ संस्कृत और तमिल भाषाओं में प्रस्तुत हैं। मतुरै की मंदिर-मूर्ति द्वारा रचित अनेक अद्‌भुत लीलाओं की कथाएँ मूलतः संस्कृत भाषा में निबद्ध 'उत्तरमहा-पुराण' के 'सार-समुच्चय' भाग और 'हालास्य माहात्म्य' में संगृहीत हैं। पेरुम्पर्रप्पुलियर नंबि की कृति प्रथमोक्त पुराण पर आधारित स्वतंत्र अनुवाद है। मूल पुराण आजकल अप्राप्य है। परञ्जोति मुनिवर की कृति द्वितीयतः उक्त 'हालास्य माहात्म्य' पर आधारित पद्यानुकृति है। द्वितीयोक्त रचना आकार में बड़ी है।

इन दोनों कृतियों में वर्णित शिव-लीला-कथाओं में मूलभूत अंतर न होने पर भी आंशिक भेद यत्र-तत्र मिलते हैं। इनमें शिव-भगवान मनुष्य के समान मतुरै नगर की अनेक घटनाओं में भाग लेकर भक्तों का अनुग्रह, दुष्टों का दमन, इत्यादि करते हैं। पांड्य राजा मलयत्तुवचन् (मलय-ध्वज) की यज्ञोत्पन्न देवता-रूपी कन्या चारों दिशाओं को जीतकर कैलास में शिवजी को भी ललकारती है। फलस्वरूप इसका विवाह शिवजी के साथ, विष्णु-ब्रह्मादि अन्य देवताओं के सान्निध्य में मतुरै नगर में ही अद्‌भुत सार्वजनिक उत्सव के रूप में राजा एवं प्रजा द्वारा मनाया जाता है। शिव भगवान 'पांड्य' जामाता के रूप में मतुरै मंदिर में शाश्वत निवास करते हुए अनेक रोमांचकारी लीला-प्रसंगों के कारण बनते हैं। यद्यपि इन पौराणिक कथाओं की पृष्ठभूमि में लोकातीत कल्पना काम कर रही है तो भी पांड्य राजाओं, तमिल शैव भक्त-संतों आदि कुछ समकालीन व्यक्ति-विशेष का उल्लेख तमिल प्रदेश के इतिहास के निर्माण में किंचित् सहायक सामग्री प्रस्तुत करने वाला है।

दोनों कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। द्वितीयोक्त—परञ्जोति मुनिवर (दे०) की—कृति अधिक प्रसिद्ध हो चुकी है।

तिलक, बाल गंगाधर *(ते० ले०)*

ये वर्तमान युग के तेलुगु कवि एवं कथाकार हैं। 'अमृतं कुरिसिन रात्रि' इनकी कविताओं का संकलन है जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई कथा-संकलन भी प्रकाशित किए हैं। कोमल भावना एवं नवीन विचारों की अभि-व्यक्ति इनकी रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं।

तिलकमंजरी *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

'तिलकमंजरी' संस्कृत का प्रसिद्ध कथाकाव्य है। इसके कर्ता धनपाल धारा-नरेश भोजराज (दे० भोज) के सभा पंडित और संस्कृत तथा प्राकृत के अधिकारी विद्वान् थे। वे कट्टर वैदिक थे किंतु बाद में अपने अनुज से प्रभावित होकर जैन हो गए थे।

'तिलकमंजरी' में विद्याधरी तिलकमंजरी और समरकेतु की प्रणय-गाथा का चित्रण है। इस ग्रंथ की रचना धनपाल ने भोजराज को जैनागमों की कथाओं का परिचय कराने के लिए की। 'तिलकमंजरी' की समस्त कथा गद्य में है किंतु प्रारंभ में 53 पद्यों में मंगलाचरण, सज्जनस्तुति, दुर्जननिंदा, कवि वंश-परिचय तथा 17 पद्यों में अनेक काव्यों की प्रशस्ति आदि का प्रसार है।

'तिलकमंजरी' चमत्कार से परिपूर्ण रसों वाली कथा है। यह कथा भोजराज के पूर्वजों का इतिहास जानने में बड़ी सहायक है। इसमें धनपाल ने कवि-प्रशस्ति संबंधी जो सुंदर पद्य लिखे हैं वे आज भी संस्कृत-समीक्षकों द्वारा उद्धृत किए जाते हैं। इसमें तत्कालीन समाज एवं कलाकौशल का बड़े ही आकर्षक ढंग से वर्णन किया गया है। 'कादंबरी' (दे०) की रचना के बाद किसी भी कवि को गद्य लिखने का साहस नहीं होता था। धनपाल ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने बाण (दे०) की गद्यशैली का अनुकरण करते हुए गद्यकाव्य को सरल बनाकर जनता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक निकट पहुँचाया।

'तिलकमंजरी' की रचना का सुखद परिणाम यह हुआ कि संस्कृत-साहित्यकारों का व्यामोह भंग हुआ और बाद में 'गद्यचिंतामणि', 'उदयसुंदरीकथा', 'भूपाल-चरित' आदि गद्य-काव्यों की रचना हुई।

तिल्लै विल्लाळन् *(त० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

तिल्लै विल्लाळन् पत्रकार हैं और तमिल प्रदेश के राजनीतिक दल 'डी० एम० के०' के सदस्य हैं। इनके कई लेख, लघु-कथाएँ आदि प्रकाशित हैं जिनके नाम हैं—'किळिक्कण्टु' (तोते का पिंजड़ा), 'इरुळुम् ओळियुम्' (अंधकार और प्रकाश), 'तङ्कत्तामरै' (स्वर्ण-कमल), 'पेचुम् ओवियम्' (बोलने वाला चित्र) इत्यादि। इनकी गद्य-शैली में गति है।

तिवारी, उदयनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

डा० तिवारी पहले प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में अध्यापक थे, बाद में जबलपुर विश्व-विद्यालय में हिंदी भाषाविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष रहे। अब आप कार्य-निवृत्त हैं। आपका कार्य-क्षेत्र भाषा-विज्ञान रहा है। आपकी मुख्य कृतियाँ हैं: 'भोजपुरी भाषा और साहित्य', 'हिंदी भाषा का उद्भव और विकास', 'भाषा-शास्त्र की रूपरेखा', 'पाणिनि के उत्तराधिकारी', 'भारत का भाषा-सर्वेक्षण' (ग्रियर्सन के सर्वेक्षण के प्रथम खंड का अनुवाद)।

तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार-महापुराण *(अप० कृ०)* [रचना-काल—965 ई०]

इस महापुराण के रचयिता पुष्पदंत (दे०) हैं। यह महापुराण दो भागों में विभक्त है—आदिपुराण और उत्तर पुराण। ये दोनों भाग तीन खंडों में विभक्त हैं। प्रथम खंड को ही आदिपुराण कहा गया है। उत्तर पुराण का प्रथमार्ध द्वितीय खंड और द्वितीयार्ध तृतीय खंड कह-लाता है। प्रथम खंड में कवि ने प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भरत के जीवन का 37 संधियों में वर्णन किया है। उत्तर पुराण के प्रथमार्ध या द्वितीय खंड में 38 से लेकर 80 तक संधियाँ हैं। इनमें 20 तीर्थंकरों, 8 बलदेवों, 8 वासुदेवों, 8 प्रतिवासुदेवों और 10 चक्रवर्त्तियों का वर्णन है। इसी खंड की 38 से 68 संधि तक अजितादि तीर्थंकरों की कथा है। इस कृति की 69 से 79 संख्या तक की संधियों में रामायण की कथा वर्णित है, जिसे जैन कवि 'पउम-चरिउ' (पद्म चरित) या पद्मपुराण कहते हैं। 81 से 92 संख्या की संधियों में मुख्य रूप से 'महाभारत' (दे०) की कथा है जिसे कवि ने 'हरिवंश पुराण' कहा है।

इस 'महापुराण' में 63 महापुरुषों का वर्णन होने से कथान्विति नहीं मिलती किंतु उद्देश्य की महत्ता, शैली की उदात्तता और गरिमा तथा भाव-सौंदर्य और वस्तु-व्यापार वर्णन आदि के द्वारा रस उत्पन्न करने की क्षमता होने के कारण यह ग्रंथ एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। कवि ने प्रत्येक संधि के अंत में पुष्पिका में इसे 'महाकाव्य' कहा भी है।

इस कृति के विशाल कथानक में अनेक कथाएँ अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों से परिपूर्ण हैं। इनके मूल में जिन-भक्ति का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। स्थान-स्थान पर अनेक काव्यमय, सरस एवं सुंदर वर्णन उपलब्ध होते हैं। जनपदों, नगरों और ग्रामों के वर्णन बड़े ही भव्य हैं। इन सब वर्णनों में कवि का मानव-जीवन के साथ संपर्क बना रहता है। बाह्य और आंतरिक दोनों जगतों के सुंदर वर्णन पाठक का हृदय आकृष्ट करते हैं।

इस काव्य में प्रसंगानुकूल श्रृंगार, वीर और शांत तीनों के व्यंजक चित्र अंकित किए गए हैं। श्रृंगार-वर्णन परंपरामुक्त नहीं हैं। यत्र-तत्र अनेक नवीन एवं हृदयहारी उद्भावनाओं की सृष्टि भी दृष्टिगत होती है।

प्रकृति-वर्णन में कवि ने प्रकृति का आलंबन-रूप से संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है। स्थान-स्थान पर मानव-जगत् और प्राकृतिक जगत् का बिंब-प्रतिबिंब भाव से चित्रण भी दृष्टिगत होता है। कवि भाषानुकूल शब्द-योजना द्वारा वर्ण्य-विषय का चित्र-सा उपस्थित कर देता है।

कवि की शैली नाना अलंकारों से अलंकृत है। कवि ने अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग से भाषा को बल-वती बनाने का प्रयत्न किया है। मुहावरों, लोकोक्तियों और सुभाषितों के प्रयोग से भाषा और भी प्राणवती बन गई है।

पुष्पदंत की शैली स्वयंभू की अपेक्षा अधिक अलंकृत, क्लिष्ट, रूढ़ और कृत्रिम प्रतीत होती है।

तीर, विधातासिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

श्री तीर का जन्म रावलपिंडी में हुआ था। यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ये प्राइमरी तक ही पढ़े थे, पर इन्होंने स्वतः हिंदी और उर्दू भाषाओं का अच्छा अध्ययन किया था।

इनकी कृतियाँ हैं : 'अणिआले तीर', 'नवें निशाने', 'गुंगे गीत', 'काल कूकां', 'बचन बिलास', 'मिट्ठे मेवे', 'ध्रुव भगत', 'बंदासिंह बहादुर', 'रूपरानी शकुंतला', 'दशमेष दर्शन' आदि। इन कविताओं के विषय अधिकतर भारतीय संस्कृति, सिख धर्म और दर्शन से संबद्ध हैं। नये उज्ज्वल भविष्य में कवि की अडिग आस्था है।

तीर्थंकर *(प्रा० पा०)*

जैन धर्म में एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता। जीव विकास-क्रम से कैवल्य-पद धारण कर एक महाशक्ति बन जाता है और इस प्रकार ईश्वर-रूपता को धारण कर लेता है। इस अवस्था में उसे तीर्थंकर की संज्ञा प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार जैन धर्म प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर रूप में परिणत होने का अवसर प्रदान करता है। अब तक जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हो चुके हैं। प्रत्येक तीर्थंकर का एक चिह्न और एक वर्ण नियत है। चिह्न और वर्ण सहित 24 तीर्थंकर ये हैं—(1) ऋषभ (चि० बैल, व० स्वर्णिम), (2) अजितनाथ (चि० हाथी, व० स्वर्णिम), (3) संभवनाथ (चि० अश्व, व० स्वर्णिम), (4) अभिनंदन (चि० वानर, व० स्वर्णिम), (5) सुमति (चि० क्रौंच, व० स्वर्णिम), (6) पद्मप्रभ (चि० कमल, व० रक्त), (7) सुपार्श्व (चि० स्वास्तिक, व० स्वर्णिम), (8) चंद्रप्रभ (चि० चंद्र, व० श्वेत), (9) सुविधि या पुष्पदंत (चि० मीन, व० श्वेत), (10) शीतल (चि० श्रीवत्स, व० स्वर्णिम), (11) श्रेयांस या श्रेयान (चि० गैंडा, व० स्वर्णिम), (12) वसुपूज्य (चि० महिष, व० रक्त), (13) विमलनाथ (चि० वराह, व० स्वर्णिम), (14) अनंत या अनंतजित् (चि० बाज, व० स्वर्णिम), (15) धर्मनाथ (चि० वज्र, व० स्वर्णिम), (16) शांतिनाथ (चि० कृष्णासार, व० स्वर्णिम), (17) कुंतु (चि० बकरा, व० स्वर्णिम), (18) अरहनाथ (चि० नद्यावर्त, व० स्वर्णिम), (19) मल्लीनाथ (चि० घट, व० नील), (20) सुव्रत या मुनि सुव्रत (चि० कच्छप, व० कृष्ण), (21) नमिनाथ (चि० नील कमल, व० स्वर्णिम), (22) नेमिनाथ या अरिष्ट नेमि (चि० शंख, व० कृष्ण), (23) पार्श्वनाथ (चि० सर्प, व० नील), (24) वर्धमान महावीर (चि० सिंह, व० स्वर्णिम)। ये सभी तीर्थंकर क्षत्रिय वंश के हैं। इनमें सुव्रत और नेमि हरिवंश से संबंध रखते हैं, शेष सभी इक्ष्वाकु वंशीय हैं। श्वेतांबर-संप्रदाय में मल्ली को स्त्री माना जाता है और मिथिला की राजकुमारी बतलाया गया है जो एक अनिंद्य सुंदरी थी। किंतु दिगंबर-संप्रदाय के लोग स्त्री को उच्च साधना का अधिकारी नहीं मानते। अतः उनके मत में ये सभी पुरुष थे। यह परंपरा वर्धमान महावीर पर आकर रुक गई। इनका जो पौराणिक शैली में वर्णन किया गया है उसके अनुसार किसी-किसी में कई सहस्र वर्षों का व्यवधान पड़ गया है। कतिपय तीर्थंकर कुछ जल्दी हुए।

तुंपै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) नामक काव्य-भेद का उप-भेद है और 'उलिञै' के पश्चात् इसका स्थान है। इसका समानांतर 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) उपभेद 'नेय्तल्' है। 'तोल्काप्पियम्' (दे०) के अनुसार इसके मुख्य विषय यश-संपादन की प्रेरणा से राजाओं द्वारा चलाए जाने वाले युद्ध तथा उनमें घटित शौर्यपूर्ण घटनाएँ हैं। इनमें से 'अट्टैयाटुतल्' (कटे हुए शरीर का नृत्य) नामक एक प्रकरण अत्यंत मार्मिक है। यह ऐसा चित्र उपस्थित करता है जिसमें एक वीर का शरीर शत्रु के भाले एवं तीरों से खंडित होकर दो टुकड़े बन जाने पर भी तनकर रिपु-मर्दन करता रहता है। यह प्रकरण 'वेट्चि', 'उलिञै' इत्यादि अन्य उपभेदों में भी युद्ध के प्रसंगों पर घटित हो सकता है। इसके अंतर्गत बारह और 'तुरै' (प्रकरण) बताए गए हैं। सेनाध्यक्षों का पतन, हाथी पर आरूढ़ राजा का गिर पड़ना तथा दोनों सेनाओं के घोर खड्ग-युद्ध के पश्चात् पूर्ण ध्वंस इत्यादि रणक्षेत्र के विभिन्न दृश्यों का उल्लेख करते हैं।

तुक *(हिं० पारि०)*

पद्य के एकाधिक चरणों के अंत में एक समान स्वर और व्यंजन की लययुक्त आवृत्ति को छंदःशास्त्र में 'तुक' नाम दिया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में इसे 'राइम' कहा गया है। अरस्तू छंद के दो चरणों के अंतिम शब्दों का परस्पर समान रूप से विधान करने की विधि को, ब्लेयर समान ध्वनियों की आवृत्ति को तथा जर्मन दार्शनिक जे० एस० शूत्ज़े 'दो चरणों' के अंत में वर्णों की एक जैसी ध्वनि को तुक मानते हैं। तुक द्वारा पद्य-सौंदर्य के समावेश का कारण तो निश्चय ही उसका अपना नाद-सौंदर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा स्वाभाविक लय है जो पद्य को एक प्रकार से ताल में बाँधते हैं। कुछ आचार्यों ने इसे पाठक अथवा श्रोता द्वारा काव्यार्थ के समुचित ग्रहण और स्मृति में पद्य को सुरक्षित रखे जाने में सहायक माना है। शूत्ज़े ने तुक को अर्थ के साथ अनिवार्यतः संबद्ध मानते हुए काव्य के सौंदर्यकारक अनिवार्य उपकरणों में से एक माना है, जबकि हीगेल अर्थ से निरपेक्ष नाद-सौंदर्य उत्पन्न करने में ही तुक की सार्थकता मानते हैं। तुक अनेक प्रकार की हो सकती है। जगन्नाथप्रसाद 'भानु' (दे०) (छंद-प्रभाकर) ने तुकों के छह वर्ग माने हैं : सर्वान्त्य, समान्त्य-विषमान्त्य, समान्त्य, विषमान्त्य, समविषमान्त्य, भिन्नतुकान्त। पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में भी अनेक तुकों की चर्चा की गई है, उनमें से कुछ प्रमुख हैं : राइम रॉयल, ऑटवा राइमा (डॉन ज्युआं स्टैंज़ा), टर्ज़ा राइमा, स्पेंसेरियन राइमा, आई राइम, राइडिंग राइम, सिंथेटिक राइम

तुकाराम *(म० ले०)* [जन्म—1608 ई०; मृत्यु—1651 ई०]

ये महाराष्ट्र के 'देहू' नामक स्थान के निवासी थे। इनके पिता का नाम था बाल्होबा और व्यवसाय से ये व्यापारी थे। कहा जाता है कि बाबा चैतन्य ने तुकाराम को स्वप्न में ही गुरूपदेश दिया था जिससे ये एक उत्कृष्ट संत कवि बन गए। इनकी कोई स्वतंत्र रचना नहीं है—केवल 'अभंग' मिलते हैं। इनकी संख्या पाँच हज़ार के लगभग ठहरती है। इनके उपास्य देव थे—पंढरपुर के पुंडलीक और इन्हीं की भक्ति में कवि की 'अभंगवाणी' प्रवाहित हुई है। इसमें इनकी कविता में भावना की उत्कटता-मार्मिकता का प्राचुर्य है। कवि का सगुण भक्ति में विश्वास है, अतः उसे मुक्ति से श्रेष्ठ भक्ति में असीम आनंद मिलता है। इनकी ख्याति और लोकप्रियता से चिढ़कर रामेश्वर भट्ट ने इनकी रचनाओं को इंद्रायणी नदी में डुबो दिया था, किंतु वे तैरकर पानी के ऊपर आ गईं। अब विद्वान 'मंत्रगीता' को भी इनकी कृति मानने लगे हैं—जो एक प्रकार से 'गीता' (दे०) का अभंग छंद-अनुवाद है। तुकाराम की कविता में जीवनानुभव और भक्ति का मणिकांचन योग है। इनके सैंकड़ों 'अभंग' लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हैं।

तुझ आंहे तुज पाशी *(म० क्र०)*

नयी पीढ़ी के नाटककारों में पु० ल० देशपांडे (दे०) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। समसामयिक जीवन-पद्धति पर आधारित 'तुझ आंहे तुज पाशी' नाटक इनकी श्रेष्ठ नाट्य रचना है। 'तुझ आंहे तुज पाशी' का अर्थ है—तुम्हारा है तुम्हारे पास। नाटककार ने इसे प्रतीक रूप में ग्रहण किया है। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी शंकाओं के समाधान की सामर्थ्य होती है, परंतु वह भ्रम के कारण अन्यत्र उसके संधान में रत रहता है। इस प्रतीकात्मक कथा को नाटककार ने काकाजी देवासकर तथा आचार्य पोफ़के गुरुजी (दे०) की कथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इस नाटक में सर्वोदयवादी विचार-परंपरा का मार्मिक निरूपण हुआ है। जीवन के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक काकाजी देवासकर तथा सर्वोदयी विचारों को बलात् ओढ़े आचार्य पोफके गुरुजी के माध्यम से इस नाटक की कथा का ताना-बाना बुना गया है। पारस्परिक भिन्न सिद्धांतादर्शों के प्रतिपादक पात्रों के मनोवैज्ञानिक निरूपण के कारण नाटकीय संवाद दर्शन की गहनता को आत्मसात् करते हुए भी बोझिल नहीं हो पाए हैं। तीक्ष्ण मार्मिक संवाद-योजना कथा-विकास में पूर्णरूपेण सक्षम है। प्रधान कथा की एकरसता को दूर करने के लिए हास्य की जिस अवांतर कथा की संयोजना हुई है वह प्रभावान्विति की दृष्टि से पूर्णरूपेण सक्षम है। सहज-सरल पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण है। नाटक में करुण रस अंगी रूप में तथा हास्य रस वातावरण की बोझिलता को कम करने की दृष्टि से प्रयुक्त हुआ है।

तुमि *(अ० क्र०)* [रचना-काल—1915 ई०]

लेखक—अंबिकागिरि रायचौधुरी (दे०)।

यौवन के नवोन्मेष में किसी अनामा सुंदरी को संबोधित कर 'तुमि' (तुम) काव्य लिखा गया था। इसमें रहस्यवाद एवं अतींद्रियवाद का कोमल स्वर है। प्लेटो ने मानवीय प्रेम को ही स्वर्गीय प्रेम का आधार माना है। 'तुमि' में भी यही दृष्टि दिखाई पड़ती है। संग्रह की 'तुमि' शीर्षक दीर्घ कविता में बताया गया है कि विश्व-स्रष्टा सुंदर जगत् के मध्य कैसे अपने को प्रकाशित करता है। यह कविता सात भागों में विभक्त है। इसका शब्द-चयन और छंद-प्रयोग मनोरम है। असमीया कविता में इस ग्रंथ का विशेष महत्व है।

तुमोमा *(उ० क्र०)*

'तुमोमा' दिव्यसिंह पाणिग्राही (दे०) का लोक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय विचार-प्रधान उपन्यास है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें मातृ-जाति के प्रति सम्मान व्यक्त हुआ है। नारी केवल जन्मदात्री ही नहीं, वह पुरुष की पथ-प्रदर्शिका व आश्रयदात्री भी है। ऐश्वर्य-भोग की ओर भागता हुआ आज का भौतिकवादी संसार, अपने सच्चे सुख, सच्ची शांति को खो बैठा है। उत्थानशील वृत्तियों के बिना सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती—यही इस उपन्यास का मूल स्वर है। चिदानंद यद्यपि अपने लिए निवृत्ति का पथ चुनते हैं किंतु विश्वनाथ को परिवार, समाज, राष्ट्र के प्रति सजग कर्तव्यनिष्ठ रहने का उपदेश देते हैं। वे अपने सिद्धपीठ में दादा द्वारा प्रदत्त पुराने खिलौनों की स्थापना करते हैं और उनकी पूजा करते हैं। जीवन का आनंद भावात्मक एवं रागात्मक होता है। अपनी प्राचीन परंपरा के साथ हमारा रागात्मक अनुबंधन होता है। अतः उसका परित्याग कर हम अपने उन्नयन के लिए स्वस्थ आधार-शिला का निर्माण नहीं कर सकते। एक ही सांस्कृतिक जीवन-चेतना अतीत से लेकर वर्तमान तक व्याप्त है। समयानुकूल परिवर्तन होते हैं; युगानुरूप उन परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए भी हम इस अंतश्चेतना को बिसरा न दें, इस सत्य की अनुभूति के साथ हमारी मृण्मयता चिन्मयता में बदल जाती है और तब मूलीनाथ या धनपति ऋषि श्रेष्ठ चिदानंद बन जात है।

तुरयाई *(पं० पारि०)*

फ़ारसी की रुबाई (चार चरणों का समवृत्त, जिनमें पहले, दूसरे और चौथे चरण की तुक मिलती है और तीसरा भिन्नतुकांत होता है) के पंजाबी रूपांतर को भाई वीरसिंह (दे०) ने 'तुरयाई' नाम दिया है। इसमें भी प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरण समतुकांत तथा तीसरा भिन्न-तुकांत होता है। उन्होंने अपनी 'त्रेल तुपके' नामक कृति में मुक्तक के इस भेद का सजीव एवं प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया है। उन्हीं के अनुसार, "इसके प्रथम दो चरणों में विचार का उदय और विस्तार, तृतीय में मोड़ और चतुर्थ में भावपूर्णता होती है। यद्यपि इसकी चाल फ़ारसी रुबाई जैसी होती है परंतु तोल में कुछ भिन्नता होती है।' एक उदाहरण प्रस्तुत है—

गुलाब का फूल तोड़ने वाले के प्रति

"डाली नालों तोड़ ना सानूं, असां हट्ट महिक दी लाई,
लक्ख गाहक जे सुंघे आके, खाली इक्क न जाई।
तूं जे इक तोड़ के लैंगिओं, इक जोगा रहि जासां,
उह भी पलक झलक दा मेला, रूप महिक नस्स जाई।।"

तुळसी *(म० पा०)*

यह रामगणश गडकरी (दे०) के अपूर्ण 'राज-संन्यास' नाटक की साहसशीला नारी है जो अपनी बलवती आकांक्षाओं की परिपूर्ति के लिए संभाजी के पुरुषोचित व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट है। महाराज शिवाजी के अनन्य सेवक हिरोजी की आत्मजा तुळसी शिर्के कुल की वधू है, परंतु पति के दुर्बल व्यक्तित्व से आहत इसकी नारी-भावना कुछ कर गुज़रना चाहती है। संभाजी की दुर्बलता का लाभ उठाकर यह अपने अपूर्ण स्वप्नों को पूरा करने का प्रयत्न करती है, परंतु संभाजी द्वारा अपने पति की हत्या किए जाने से इसका नारी हृदय चीत्कार कर उठता है। यह प्रतिशोध की अग्नि में झुलसने लगती है। इसी से अपने पति की हत्या के प्रतिशोधार्थ ही गणोजी शिर्के तथा कलुषा कावजी के साथ षड्यंत्र रचकर यह संभाजी को औरंगज़ेब के क्रूर हाथों में सौंपने में सफलता प्राप्त करती है। महत्वा-कांक्षी और साहसशीला यह नारी संभाजी की पत्नी येसू-बाई का उपहास करती है। इसके देशद्रोही कार्यों से दुःखी होकर ही इसका पिता हिरोजी इसकी हत्या कर देता है। तुळसी के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने महत्वाकांक्षिणी साहसशीला नारी-हृदय का मनोहारी चित्रण किया है। अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नारी अपने देशद्रोही कृत्यों से देशवासियों का कितना अपकार कर सकती है, इसका निरूपण इसके चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

तुळसीदास *(उ० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

श्रीमती तुळसीदास की कविताओं में वैयक्तिक समस्याएँ अधिक चित्रित हुई हैं। सर्वत्र भावोच्छ्वास की अपेक्षा बौद्धिकता और चिंतनशीलता अधिक मिलती है। भाषा सरल एवं शैली सुखपाठ्य है। 'झड़र-झंकार' (दे०) में जीवन के तूफ़ानी अनुभवों की स्मृतियाँ अत्यंत मार्मिक बन पड़ी हैं।

तुलसीदास *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

'निराला' (दे०) का यह प्रबंधकाव्य छायावाद (दे०) की उत्तम रचना है। इसकी रचना तुलसीदास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैराग्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने के लिए हुई है। जनश्रुति के अनुसार पत्नी की फटकार सुनकर वे विरक्त हुए थे। प्रस्तुत काव्य में इस महत् घटना की आभ्यंतर प्रेरणाओं का चित्रण उदात्त शैली में हुआ है।

शास्त्र और काव्यालोचन में समधीत तुलसीदास मुग़लों से पददलित भारत का सांस्कृतिक उत्थान करने के लिए माया के सर्वग्राही व्यूह को तोड़ना चाहते हैं। उनका मन चित्रकूट पर भ्रमण करते हुए ऊर्ध्वोन्मुख हो जाता है। परन्तु पत्नी का स्नेह-स्मरण व्याघात उत्पन्न कर देता है। पितृ-गृह गई हुई पत्नी के विरह को न सह सकने से वे लोक-व्यवहार की उपेक्षा कर श्वसुरालय पहुँच जाते हैं। ससुराल के लोगों का व्यंग्य रत्नावली के लिए असह्य हो जाता है और वह शयन-कक्ष में पति के सम्मुख अनल-प्रतिमा बन जाती है। तुलसीदास के संस्कृत हृदय को उसके इस रूप में भारती का दर्शन होता है और वे असुर संस्कृति से अनवरत संघर्ष का निश्चय कर लेते हैं।

तुलसीदास के जीवन की घटना पर आधृत यह प्रबंध-काव्य कवि की अपनी अंतःप्रकृति का संकेत भी देता है। उनके अनुसार काम के मोह में आबद्ध सांस्कृतिक चेतना उससे मुक्त होकर ही सृजन की ऊर्ध्वतर भूमियों का स्पर्श कर सकती है। सर्जनानुभूति के क्षणों में मुक्त चेतना समाधि के उस धरातल पर संरचना करती है जहाँ ऊर्ध्व, अधर और क्षर रेखा का विलय हो जाता है। वर्ण्य के साथ अंतः-प्रकृति के इस सामंजस्य से ही कथा में आवेग और अन्विति की, चित्रण में ओज और दीप्ति की, तथा भाषा में प्रवाह और स्फूर्ति की अदम्य शक्तियों का उन्मेष हुआ है।

काव्य की शैली पर 'निराला' के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। छायावाद की महती उपलब्धियों को आत्मसात् करते हुए भी कवि उसकी एकांत सीमा में आबद्ध नहीं है। आभ्यंतर यथार्थ का पारदर्शी चित्रण और ससुराल के रूढ़ समाज पर व्यंग्य कवि की पारंगत प्रतिभा के परिचायक हैं। रत्नावली के भाई की बातों में लोक-हृदय की मर्मस्पर्शी पहचान द्रष्टव्य है। निष्कर्षतः यह काव्य छायावाद की उपलब्धि होते हुए भी 'निराला' के क्रांतद्रष्टा और प्रयोगशील व्यक्तित्व का स्पर्श पाकर अपने समय से थोड़ा आगे है। सूक्ष्म व्यक्तिगत, स्थूल सामाजिक और ऊर्ध्वतर सांस्कृतिक तत्त्वों का सामंजस्य इस कृति में हुआ है।

तुलसीदास, गोस्वामी *(हिं० ले०)*

रामभक्त महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित विवादास्पद रहा है। 'तुलसीचरित', 'मूल गोसाईं चरित', 'घटरामायण' के परिशिष्ट, और 'तुलसी-प्रकाश' के विवरण परस्पर विरोधी तथा इतिहास-व्यतिक्रमों से आकुल हैं। इनका जन्मस्थान कुछ लोग राजापुर बताते हैं और कुछ लोग सोरों। अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के आधार पर, इनके संबंध में अन्य तथ्य इस प्रकार हैं—पिता : आत्माराम सुकुल; माता : अंतर्वेदस्थ तारी की हुलसी; गुरु : सूकर क्षेत्र (सोरों) के नरहरि; पत्नी : दीनबंधु पाठक की तनया रत्नावली। 36 वर्ष की अवस्था में तुलसी अपनी पत्नी की उपदेशात्मक उक्ति के कारण विरक्त हो गए। बुंदेलखंड गज़ेटियर (1874 ई०) में इस जनश्रुति का उल्लेख है कि उन्होंने बाँदा ज़िले में राजापुर की नींव डाली, और 1623 ई० में स्वर्ग लाभ किया।

लगभग चालीस ग्रंथ इनके लिखे बताए जाते हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं : 'रामचरितमानस' (दे०), 'विनय-पत्रिका' (दे०), 'गीतावली' (दे०), 'कवितावली', 'कृष्ण-गीतावली', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल', 'बरवै रामायण', 'हनुमान बाहुक', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'वैराग्य संदीपनी', 'रामलला नहछू', 'तुलसी सतसई'। 'रामचरितमानस' की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में की जाती है, और 'विनय-पत्रिका' रामभक्तिपरक गीतों का अनुपम संग्रह है।

गोस्वामी जी ने अपने महाकाव्य तथा अन्य बहुविध काव्य-रूपों के अंतर्गत विशिष्ट प्रतिभा एवं निपुणता का परिचय षड्विध (अर्थात् छप्पय, गीत, कवित्त-सवैया, दोहा-सूक्ति, प्रबंध और कूट की) पद्धतियों तथा व्यास-समास शैलियों में दिया है, जिसने इन्हें विश्ववंद्य कवि बना दिया है। अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में इनके ग्रंथों के अनुवाद और भाष्य हुए हैं।

किसी प्राचीन प्रशंसक ने 'सूर सूर, तुलसी शशी' की काव्योक्ति द्वारा इन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। मिश्र-बंधुओं (दे०) के अनुसार तो 'तुलसी से बढ़कर कोई कवि हमारी जानकारी में कभी किसी भाषा में, संसार भर में कहीं नहीं हुआ।' प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने इन्हें भारत में अपने युग का महत्तम मानव माना, अकबर से भी महत्तर। सर जार्ज आर्थर ग्रियर्सन (दे०) के मतानुसार उत्तरी भारत का धर्म गौतम बुद्ध के, तदनंतर दो सहस्र वर्ष पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास के, उपदेश से विशेषतः प्रभावित हुआ।

तुळीराम *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०)-कृत 'संगीत एकच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्याला' (दे०) नाटक का खल पात्र है। सुधाकर को मद्यपान की ओर प्रेरित कर उसके सुखद गार्हस्थ्य जीवन को दुःखमय बना देता है। बुद्धि-चातुर्य में अद्वितीय होते हुए भी इसकी प्रवृत्तियाँ नीच ही रही हैं; परंतु इसकी यह दुष्ट प्रवृत्ति साभिप्राय ही कही जाएगी। सुधाकर को व्यसनाधीन कर यह पात्र सिंधू के पारिवारिक जीवनाकाश पर धूमकेतु सदृश उदित हुआ है। तुळीराम आर्य-मदिरा-मंडल के अपने अन्यान्य सदस्य मित्रों के साथ अवांतर कथा के रूप में उपस्थित किया गया है। यह अवांतर कथा मूल कथा से असंबद्ध होते हुए भी कथा-विकास में सहायक है।

तुळीराम शराब के व्यसनाधीन होने के कारण अपना सब कुछ गँवाकर भी शराब के प्रति विमुख नहीं हो सका है। उसका विश्वास है कि शराब ही वह विष है जो व्यक्ति को बहुत धीरे-धीरे मृत्यु की ओर ले जाता है। तुळीराम के चरित्र के माध्यम से ही नाटकीय संघर्ष सतत बना रहा है। मद्यपान के दुष्परिणामों का सहज आकलन इस नाटक का महत् उद्देश्य है। इसी कारण तुळीराम का चरित्र नाटककार के पूर्व निश्चित प्रारूप के आधार पर विकसित हुआ है। कथा-विकास में सहायक होते हुए भी यह नाटककार के हाथ की कठपुतली जान पड़ता है जिसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं। यह तो मात्र नाटककार के विचारादर्शों का वहन मात्र करता है। इसका चरित्र वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। इसके चरित्र में महानता, चमत्कृति, अमानवीयता, परामानवीयता (इनह्यूमन तथा सुपरह्यूमन) आदि के स्थान पर सहज, स्वाभाविक, मानवीय गुण-अवगुणों का सन्निवेश हुआ है। मद्य-निषेध के प्रचार-प्रसार के महत् आदर्श का प्रतिपादक होने के कारण इसका चरित्र वर्ग-विशेष के आचार-व्यवहार एवं मानसिक स्तर का द्योतन करता है।

√ **तुळ्ळल्कथकळ्** *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह मलयाळम के जन-कवि कुंचन नंपियार (दे०) द्वारा एक नृत्यात्मक कथाख्यान के लिए रचित चालीस से अधिक गीत-प्रबंधों का व्यापक नाम है। इन कथाओं में 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) आदि के विविध प्रसंगों का आख्यान हुआ है। तुळ्ळल् कथाओं के तीन भेद हैं—ओट्टन तुळ्ळल्, शीतंकन तुळ्ळल् और परयन तुळ्ळल्। ये भेद कथा में प्रयुक्त छंदों और नर्तक की भिन्न-भिन्न वेश-भूषाओं पर आधारित हैं। नंपियार के अलावा और कवियों ने भी तुळ्ळल् कथाएँ लिखी हैं, पर उनकी सफलता संदिग्ध है।

नंपियार ने साधारण जनता के आस्वादन के लिए तुळ्ळल् कथाएँ लिखी हैं। जनता में कर्तव्य-बोध जागृत करना कवि का काव्यगत उद्देश्य था। इसके लिए उन्होंने हास्य रस की सहायता ली। कर्तव्य-लोप करनेवालों पर कटु व्यंग्य-बाणों की वर्षा करने के लिए प्रत्येक पौराणिक कथा में वे अवसर ढूँढ़ निकालते थे। उनका पात्र चाहे देवता हो, गंधर्व हो या राक्षस, सभी केरल की जनता के प्रतिनिधि के रूप में ही तुळ्ळल् कथा में अवतरित होते थे। वास्तव में ये तुळ्ळल् कथाएँ ही मलयाळम का सर्वप्रथम सोद्देश्य सामाजिक साहित्य हैं। इन प्रबंध काव्यों का यह भी महत्व है कि इन्होंने साधारण जनता के आस्वादन के लिए एक दृश्यकला-रूप भी प्रस्तुत किया है। भारतीय साहित्य के गौरव-ग्रंथों में इन कथाओं का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

तूड़ी दी पंड *(पं० कृ०)*

कुलवंतसिंह विर्क (दे० विर्क) ने अपने इस प्रथम कहानी-संग्रह में पंजाबी के प्रचलित कहानी-शिल्प को त्याग कर नये प्रकार के कथाशिल्प का परिचय दिया है। इन कथाओं का रुचि-केंद्र या तो कोई मनोवैज्ञानिक विषय बनता है या फिर इनमें समाजशास्त्रीय दृष्टि के फलस्वरूप उत्पन्न जीवन के नवीन आयामों पर अर्थपूर्ण टिप्पणी है। पंजाब का ग्रामीण समाज इन कहानियों का मुख्य विषय है परंतु कुछ कहानियों में नागरिक जीवन की बदलती परिस्थितियाँ भी परिलक्षित होती हैं। इस संग्रह को नाम प्रदान करने वाली कहानी 'तूड़ी दी पंड' (भूसे का बोझा) में पुराने जातीय अभिमान के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की त्रासदी को नवीन जीवन-संदर्भों में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

√ **तूरन, पे०** *(त० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

'तूरन' इनका साहित्यिक उपनाम है। असली नाम 'पेरियसामि' है। आज के वरिष्ठ तमिल लेखकों में इनकी गिनती है। इन्होंने निबंध, कविता, नाटक, बाल-साहित्य आदि विधाओं के लेखन में ख्याति प्राप्त की है। आरंभ में ये अध्यापक थे और बाद में पर्याप्त समय तक 'तमिल विश्वकोश' के संपादक के रूप में रहे। ये 'विश्वकोश' के बालोपयोगी संस्करण का संपादकत्व कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी कुछ कृतियाँ हैं—'इल्न्तमिला' (स्फुट कविताएँ), 'तूरन क तैंकळ्' (कई सालों में प्रकाशित कविताओं का संग्रह), 'तङ्कच्चङ्किलि' (लघुकथाएँ), 'कातलुम् कट-मैयुम्' (नाटक), 'नल्ल नल्ल पाट्टु' (बाल-साहित्य), 'पारति तमिल' (कविवर सुब्रह्मण्य भारती के गद्य-लेखों का संग्रह) इत्यादि। प्राचीन काल से चले आ रहे विशिष्ट तमिल-संगीत के रागों के अनुकूल गेय पदों की रचना के लिए इनका नाम है। इनके पदों के कुछ संग्रह 'तमिलिचैप्पाडल्कल्' के नाम से प्रकाशित हुए हैं।

तृणकंकणमु *(ते० कृ०)*

'तृणकंकणमु' (1913) 'भाव कविता' (दे०) का प्रथम खंड काव्य है, जिसमें रायप्रोलु सुब्बारावु (दे०) ने प्रथम बार अकलुष श्रृंगार (शरीर-संबंध से रहित प्रेम) को काव्य-रूप दिया है। अपनी बाल्य सखी (प्रिया) का किसी अन्य पुरुष से विवाह हो जाने पर, प्रेम में विकल होने वाले नायक को नायिका अकलुष प्रेम का पाठ पढ़ाती है। तब वह अपने पुनीत प्रम के प्रतीक के रूप में अपनी प्रेयसी को 'तृणकंकण' समर्पित करता है। अभिनव सरस कल्पना एवं मधुर गंभीर भावनाओं से युक्त इस काव्य में उदात्त प्रेम का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। प्रकृति-वर्णन भी इसमें रमणीय है। तेलुगु के छायावादी काव्यों में इसका प्रमुख स्थान है।

तेंडुलकर, विजय *(म० ले०)*

ये मध्यवर्गीय परिवारों की व्यथा-कथा के अमर गायक कलाकार हैं। अपनी नाट्य-रचनाओं में इन्होंने अर्था-भाव में टूटते-बिगड़ते मध्य-वित्तीय परिवारों का सजीव चित्रण किया है। धन-संपदा की आड़ में अपने अक्षम्य अप-राधों को छिपा लेने में धनी वर्ग द्वारा धनाभाव से पीड़ित लोगों के सामान्य अपराधों का व्यापक प्रचार करने वालों पर कटु व्यंग्य इनके 'श्रीमंत' नाटक में हुआ है। 'माणूस नावाचे बट' में वैयक्तिक उत्कर्ष-अपकर्ष स्वकर्मों पर आधा-रित होता है, इस बात का जयघोष हुआ है। 'मधल्या भिंती' में आत्मकेंद्रित स्वाभिमानिनी पार्वती नाम्नी महिला की व्यथा-कथा के द्वारा अर्थाभाव में टूटते दिवास्वप्नों का उल्लेख हुआ है। 'चिमणीचं घर होतं मेणाचं' में सुखद मानवीय आकांक्षाओं को गत्यात्मकता एवं अनिश्चितता की प्रतीका-त्मक कथा को नाटकीय शैली में चित्रित किया गया है। समस्याप्रधान नाटकों की सुगुंफित कथा इब्सन-पद्धति पर आधारित है। इसके अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर पात्रों का चारित्रिक विकास तथा सहज, सरल, प्रसंगा-नुसार भाषा से युक्त मार्मिक संवाद-योजना इनके नाटकों को वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

तेक्कन् पाट्टुकळ् *(मल० पारि०)*

केरल के दक्षिण भाग में जो लोक-गीत प्रचलित हैं वे 'तेक्कन् पाट्टुकळ्' के नाम से जाने जाते हैं।

तेक्कन्=दक्षिणी; पाट्टुकळ्=गीत अर्थात् दक्षिण के लोक-गीत।

उत्तर केरल के समान दक्षिण भाग में भी कई लोक-गीत गाए जाते हैं। धनुष, घड़ा-दंड आदि उपकरणों के द्वारा ये गीत गाए जाते हैं—इसीलिए इनका दूसरा नाम है 'विल्लटिच्चान्पाट्टुकळ्'। धनुष के दोनों तरफ़ या दोनों सिरों में घंटिकाएँ बाँधी जाती हैं। घड़ा लोह-निर्मित होता है। उसके मुँह पर चमड़ा मढ़ा जाता है। धनुष के सिर-हाने गुरु जी और शिष्य घड़े पर दंड का प्रहार करते हैं। धनुष का उपयोग प्रधान है। अतः उसके नाम पर इन गीतों का नाम आ गया है।

तमिल भाषा का प्रभाव इन पर खूब पड़ा है। इनकी भाषा स्वतंत्र प्राकृत भाषा है। देवी तथा देवों के स्तोत्रों के अतिरिक्त देश में प्रचलित कथाओं के आधार पर इस ढंग से कई गीत लिखे गए हैं। अनेक ऐतिहासिक पुरुष इनके पात्र हैं।

तेजासिंह, प्रिंसिपल *(पं० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

पंजाबी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को उन्नति के मार्ग पर प्रेरित करने में यत्नशील प्रिंसि-पल तेजासिंह ने यद्यपि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रयोग किए तथापि आपको विशेष प्रसिद्धि गद्य के क्षेत्र में प्राप्त हुई। पंजाबी के मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य-संबंधी विभिन्न विषयों पर आलोचनात्मक निबंध लिखने के अतिरिक्त आपने दैनंदिन जीवन से संबंधित समस्याओं पर भावुक, कल्पनापूर्ण, सरल एवं मनोरंजक निबंध भी लिखे हैं। प्रिंसिपल तेजासिंह के निबंधों में किसी विशेष विचार-पद्धति की अपेक्षा पंजाबी वातावरण अधिक मूर्त होकर उपस्थित होता है। आपकी रचनाएँ कठोर एवं कट्टरपंथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयम से मुक्ति का संदेश देती हैं, इसीलिए उनका प्रचार-प्रसार बुद्धिजीवियों तक ही सीमित न रहकर जनसामान्य तक हो गया है। आपकी रचनाओं में मनुष्य अपनी साधारण भावुकतापूर्ण एवं व्यावहारिक समग्रता में चित्रित हुआ है। इन कृतियों का वैशिष्ट्य शैलीगत अधिक है जिसका सौंदर्य प्रवाहमयी सीधी, सरल और स्पष्ट भाषा में निहित है। 'घर दा पियार', 'आरसी', 'साहित-दर्शन', 'नवियां सोचां' (दे०) आदि इनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पंजाबी में इनका सबसे महत्वपूर्ण कृतित्व चार जिल्दों में 'गुरु ग्रंथ साहब' की टीका है। इन्होंने 'अँग्रेज़ी-पंजाबी' तथा 'पंजाबी-अँग्रेज़ी' कोशों का भी संपादन किया।

तेन शिट्टु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

तेन शिट्टु में (पेरियसामी) तूरन (दे०)-कृत ग्यारह निबंध संगृहीत हैं। इन निबंधों में भिन्न-भिन्न विषय लिये गए हैं परंतु इनमें प्राप्त मूल भाव एक ही है। लेखक के मत में मानव मात्र से प्रेम करना ही जीवन का मूलभूत उद्देश्य है। विभिन्न निबंधों में लेखक ने अपनी व्यापक मानवतावादी विचारधारा की अभिव्यक्ति की है। तमिल में सामान्य विषय से संबंधित निबंध कम लिखे गए हैं। इस दृष्टि से इस कृति का तमिल के निबंध-साहित्य में विशेष स्थान है।

तेम्पावणि *(त० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध]

यह ईसाई धर्मपरक प्रसिद्ध तमिल-काव्य है जिसके रचयिता हैं 'वीरमामुनिवर' (दे०) जो इताली देश से आगत धर्म-प्रचारक थे। 'तेम्पावणि' शब्द का अर्थ है—'न कुम्हलाने वाली पुष्पमाला'। इसमें 3615 वृत्त हैं जो 36 सर्गों में विभाजित हैं। कवि ने तमिल के 90 छंद-भेदों का इसमें प्रयोग किया है। तमिल काव्य-परंपरा के अनुरूप इसमें महाकाव्य के लक्षण विद्यमान हैं। इसका कथावृत्त ईसा की जीवनी से संबद्ध है। कहते हैं कि 1665 ई० में स्पेनिश भाषा में एक ईसाई संन्यासिनी के द्वारा विरचित काव्य का आधार लेकर इस तमिल-प्रबंध की रचना हुई है। धर्म, अर्थ आदि चतुर्विध पुरुषार्थों को लक्ष्य में रखकर विरचित यह प्रबंध यद्यपि एक धर्म-विशेष का काव्य है; तथापि एक उत्तम साहित्यिक कृति के रूप में सभी धर्मावलंबियों के द्वारा ग्राह्य है। यह अत्यंत विस्मयकारी तथा प्रशंसनीय विषय है कि एक यूरोपीय व्यक्ति तमिल भाषा तथा काव्य-परंपरा पर इतना अच्छा अधिकार प्राप्त करके उत्तम कोटि का प्रबंध-काव्य निर्मित कर पाया। इसमें पाश्चात्य साहित्य की कुछ विशेषताएँ भी दृष्टिगत होती हैं। दांते का प्रभाव इस पर स्पष्ट है। कवि ने नयी उपमाओं का प्रयोग किया है। तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'जीवकचिंतामणि' (दे०), 'कंबरामायण' (दे०) आदि का प्रभाव भी इसमें स्पष्ट है। 'तेम्पावणि' तमिल साहित्य की अति सुंदर कृतियों में परिगणित अमर महाकाव्य है।

तेरञ्ञेटुत्त कथकळ् *(मल० कृ०)* प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

रचनाकार—श्रीमती ललितांबिका अंतर्जनम् (दे०)। इस शीर्षक का मतलब है 'चुनी हुई कहानियाँ'। 'तेरञ्ञेटुत्त कथकळ्' में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। समालोचक और कथाकार सुरेंद्रन् (दे०) ने इस ग्रंथ की प्रस्तावना में समालोचनात्मक कथा-परिचय दिया है। इन कहानियों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—(1) नंपूतिरि बहनों की अंतरंग कथाएँ, (2) ग्रामवासी अशिक्षित भाई-बहनों की कथाएँ, (3) आदमी की इंसानियत को डुबोने वाले राजनीतिक और अन्य आंदोलनों की कहानियाँ। प्रथम श्रेणी की कहानियों में इनका उत्कर्ष बेजोड़ रहा है।

तेरोट्टिट महन् *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

यह श्री बी० एस० रामैया (दे०) द्वारा रचित नाटक है।

इस रचना में महाभारत के 'कर्ण' के व्यक्तित्व के एक उपेक्षित पहलू का विवरण प्रस्तुत है। कर्ण का चरित्र अत्यंत उदात्त था किंतु उस पर केवल एक कलंक था जिसका प्रभाव उसे सदैव सताता रहा। उसके अभिजात होने का कोई पता नहीं था, वह रथ-चालक द्वारा पाला-पोसा गया था और उसका ही पुत्र समझा जाता था। दुर्योधन की घनिष्ठ मित्रता से वह अंगदेश का अधिपति हुआ तथा एक क्षत्राणी से उसका विवाह संपन्न करवाया गया। फिर भी वैवाहिक जीवन में वह सुख से वंचित रहा। क्षत्राणी नाममात्र के लिए उसकी पटरानी रही, अंतःपुर में पति का कर-स्पर्श तक उसने नहीं चाहा। अपनी महिषी की इस भेद-बुद्धि को उसने एक रहस्य के रूप में आजीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने की ठानी पर ऐसी नौबत आई कि यह मर्म दुर्योधन की पत्नी तक पहुँचा और वह कर्ण को अपना भाई मानकर उसे सांत्वना देने आई। अंततः सर्वविदित 'महाभारत' कथा के अनुसार कर्ण के ही प्रयत्न से फलीभूत होकर कुंतीदेवी उसकी माँ सिद्ध हुई। महाभारत युद्ध के दौरान इस निजी माता की गोद में कर्ण की जीवन-समाप्ति होते समय उसकी क्षत्राणी महिषी सामने आकर अपने जाति-गौरव के अभिमान को धिक्कारती हुई नतमस्तक हो गई। इस प्रकार क्षत्रियत्व-सिद्धि तथा महिषी के गर्व-भंग के पूर्ण मनोरथों के साथ कर्ण की मृत्यु इस नाटक में घटित हुई है।

यह नाटक रेडियो द्वारा प्रसारित तथा रंगमंच पर 'सहस्रनामम्' की मंडली द्वारा अभिनीत हो चुका है। नाटक का मौलिक कथांश कर्ण तथा उसकी पटरानी तथा इस पटरानी और दुर्योधन की महिषी के बीच संवादों की योजना है।

तेलगन्ना पोन्नेकंटि *(तं० ले०)*

पोन्नेकंटि तेलगन्ना सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में (1520—1580 ई०) जीवित थे। इन्होंने 'ययाति-चरित्रमु' की रचना 1575 ई० में की थी। ये गोलकुंडा के बादशाह इब्राहीम कुली कुतुबशाह के सामंत अमीनख़ान के आश्रित थे।

'ययाति-चरित्रमु' ठेठ तेलुगु का प्रथम काव्य है। इसके भीतर 'महाभारत' (दे०) में वर्णित ययाति, शर्मिष्ठा, देवयानी की कथा को प्रबंध-काव्य की शैली में—5 आश्वासों में—737 गद्य-पद्यों में लिखा गया है। रस, भाव-स्फुरक कथा-प्रसंगों के वर्णन में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। ययाति के जीवन के श्रृंगार-प्रधान प्रसंगों का वर्णन सरस है। समयोचित प्रकृति-वर्णन भी औचित्यपूर्ण हैं। भाषा प्रवाहयुक्त तथा सरस है।

ययाति को मुनि जाबालि विस्तार से (101 गद्य-पद्यों में) रामकथा सुनाते हैं। यह मूल कथा के लिए अनावश्यक होते हुए भी कवि की रामभक्ति को अभिव्यक्त करता है।

तोंडैमंडलशतकम् *(त० कृ०)* [उन्नीसवीं शती ई०]

पडिक्काचुप्पुलवर् नामक कवि-विरचित यह 101 पद्यों वाला 'शतक' है। इसमें प्रत्येक पद्य का अंतिम चरण अथवा अंतिम शब्द एक ही होगा; इसे 'मकुटम्' (यानी 'टेक') कहते हैं। शतक ग्रंथों के पद्यों में न तो कोई कहानी चित्रित होती है और न पद्यों में क्रम का कोई बंधन रहता है। भगवान के प्रति कवि का आत्म-निवेदन, सदाचार का उपदेश, अथवा समाज की स्थिति की झलक इसमें होती है।

तोंडैमंडलम् तमिलनाडु के उस प्रदेश का नाम है जिसका केंद्र कांचीपुरम् है। इसमें कांचीपुरम् के आस-पास का लगभग पचास मील का क्षेत्र आता है। कवि ने इस प्रदेश की यात्रा कर वहाँ के जन-जीवन, लोक-रीति, आचार-विचार, मंदिर और शिल्प इत्यादि के वर्णनों में अपने मन की प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उस समय के कवि, साहित्यकार, दानी महानुभावों का उल्लेख इसमें मिलता है। ऐसा लगता है जैसे कवि ने अपनी डायरी पद्यों में लिखी हो। यह कृति अत्यंत लोकप्रिय हुई है।

तोट्टम् *(मल० पारि०)*

मलयाळम के धार्मिक लोकगीतों की एक प्राचीन विधा। इन गीतों के द्वारा इष्टदेवताओं का आह्वान करके उनकी पूजा की जाती है। अधिकतर तोट्टम् गीत काली माता की प्रशस्ति में हैं। किसी में दारुकासुर के वध की कथा है तो किसी में शिलप्पतिकारम् की प्रसिद्ध कथा है। प्राचीन लोकगीतों में इनका स्थान प्रमुख है।

तोट्टि *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

लेखक—नागवळ्ळि आर० एस० कुरुप्प्; श्री कुरुप्प् का जन्म—1917 ई० में हुआ था।

मद्रास विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि पाए हुए कुरुप्प् जी कुछ वर्ष अध्यापक एवं प्राध्यापक रहने के बाद 1952 ई० से आकाशवाणी (त्रिवेंद्रम) के प्रोड्यूसर का कार्य बड़ी सफलता से करते रहे। इन्होंने मुख्यतः कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में मलयाळम वाङ्मय की अच्छी सेवा की है; कुछ बालोपयोगी उत्तम ग्रंथ भी लिखे हैं। श्री कुरुप्प् ने कुछ मलयाळम चलचित्रों के संवाद भी लिखे थे। इनकी प्रथम रचना 'इरुनूरु रूपा' नामक कहानी है और प्रथम रचना-संग्रह है 'दलमर्मरम्'। 'ओष्क्कत्तु वन्न वीट्टु', 'तोट्टि' आदि इनके उपन्यास हैं। कई कहानी-संग्रह और अन्य कुछ रचनाएँ भी हैं।

'तोट्टि' लघु आकार का सोद्देश्य उपन्यास है। तोट्टि का अर्थ है भंगी। भंगी केलु का नारकीय जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वात्सल्यमयी माता के अभाव और शराबी क्रूर पिता के अत्याचार से यंत्रणामय तथा लापरवाह निकलता है। उसकी दबंग प्रकृति का कारण भी यही रहा है। उसके नीरस जीवन में वाणी नामक झाड़ूदारिन युवती यद्यपि बहार ले आती है तथापि उस युवती की जीवन-कली प्रथम बालक-जन्म के साथ कुम्हला जाती है। अति दुखी केलु अपनी अनाथ बच्ची को भंगी समाज के घृणित वातावरण से छुड़ाने के लिए दूर एक नगर के ईसाई अनाथालय को सौंप देता है। बच्ची वहाँ पलकर बड़ी बनती है और एक आदर्श जनसेवक की पत्नी होकर उसी शहर में आकर रहती है। केलु को उस घर का भी जमादार होना पड़ता है। अज्ञात ममता का आकर्षण केलु को उस परिवार की तरफ़ खींचता है और मृत्यु के एक दिन पहले उसे विदित भी होता है कि यह उसी की बच्ची है। पड़ोसी वेलु ही इस लापरवाह और दबंग दोस्त को आखिरी घड़ियों में अपनी धोती से ओढ़ाकर और उसको प्यारी शराब पिलाकर यथा-संभव आराम पहुँचाता है। इस उपन्यास में ममता के अनेक रूप चित्रित हैं—मित्रता, दांपत्य तथा वात्सल्य। लेखक नागरिक समाज पर कशाघात भी करता है और उठती हुई नयी पीढ़ी की चुनौती भी सुनाता है।

तोन्मै *(त० पारि०)*

'तोलकाप्पियम्' (दे०) नामक व्याकरण-ग्रंथ का 'चेय्युळियल्' (छंद-परिच्छेद) छंदबद्ध रचनाओं के गठन और लक्षणों का उल्लेख करता है। शृंखलाबद्ध कविताओं के लिए आठ प्रकार के लक्षण बताए गए हैं जो आठ प्रकार के काव्य-रूप भी माने जा सकते हैं। इन आठों लक्षणों के लिए सामूहिक नाम 'वनप्पु' है।

इन आठों प्रकारों में से एक 'तोन्मै' है। यह नाम ऐसी पद्य-रचना के लिए प्रयुक्त होता था जो प्राचीन विषय-वस्तु पर आधारित होते हुए गद्यांशों से युक्त होती थी। इस पद्य-रचना के उदाहरणों का नामोल्लेख मूल 'तोलकाप्पियम्' में नहीं है। पर टीकाकारों ने पेरुन्तेवनार्-कृत 'पारतम्' (भारतम्) तथा 'तकटूर् यात्तिरै' इन दोनों रचनाओं को उदाहरणस्वरूप लिया है। ये उदाहरण-ग्रंथ आजकल अंशतः ही प्राप्य हैं। इस गद्य-युक्त पद्य-रचना के प्रकार को संस्कृत के चंपू काव्य के समकक्ष मानना उचित होगा।

तोप्पिल् भासि *(मल० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

ये मलयाळम के सफल रंगमंचीय नाटककार हैं। कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में राजनीति में इन्होंने सक्रिय भाग लिया और अज्ञातवास में भी इन्हें रहना पड़ा।

'निङ्ङलेन्ने कम्युनिस्टाक्की', 'मुटियनाय पुत्रन्', 'सर्वेक्कल्लु', 'अश्वमेधम्' आदि इनके नाटक रंगमंच में अत्यधिक सफल सिद्ध हुए हैं। इन्होंने अनेक फ़िल्मों की पटकथाएँ भी लिखी हैं।

भासि का नाटक 'निङ्ङलेन्ने कम्युनिस्टाक्की' ने प्रदर्शनों की संख्या के विषय में अखिल भारतीय रिकार्ड स्थापित किया है। साम्यवादी आंदोलन के प्रचार में इस नाटक का बड़ा हाथ है। राजनीति के अलावा शुद्ध सामाजिक समस्याओं को लेकर भी इन्होंने नाटक-रचना की है।

सफल व्यावसायिक नाटकों की रचना में मलयाळम में भासि का नाम ही सर्वप्रथम लिया जाता है।

तोमस, सी० जे० *(मल० ले०)* [जन्म—1917 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

प्रसिद्ध नाटककार और समालोचक सी० जे० तोमस को उनके माता-पिता पुरोहित बनाना चाहते थे और तदनुसार धार्मिक पाठशाला (सेमिनारी) में भर्ती कराने गए। परंतु यह मार्ग उनकी प्रकृति के विरुद्ध था और वे सेमिनारी छोड़कर जीवन-पर्यंत अपने प्रगतिशील विचारों के प्रचार में लगे रहे।

सी० जे० तोमस के नाटकों में 'अवन् वीण्टुम् वरुन्न', '1128 ल् क्राइम 27', 'आ मनुष्यन् नी तन्ने' आदि प्रमुख हैं। 'धिक्कारियुटे कातल्' और 'उयरुन्न यवनिका' समालोचनात्मक ग्रंथ हैं। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं।

सी० जे० तोमस ने नाटकों में मलयाळम साहित्य को नयी दिशा प्रदान की थी। इन्होंने ही सर्वप्रथम प्रयोगात्मक नाटक लिखा था। समस्या-नाटकों की रचना में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। ये प्रगतिवादी आंदोलन के मुख्य संगठकों में से थे।

मलयाळम नाटक के इतिहास में सी० जे० तोमस का नाम एक दिशा-परिवर्तन सूचित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोयन्मारन् (त० पा०)

तोयन्मारन् संघकालीन कवियों द्वारा प्रशंसित एक वीर योद्धा और आदर्श दानी था। पुरनानूरु (दे०) में संगृहीत अपने एक गीत में मदुरैक्कुमरनार् कहते हैं कि स्वयं निर्धन होते हुए भी तोयन्मारन् याचकों को खाली हाथ नहीं लौटाता था। अपनी वीरता के बल पर अन्य देशों को लूटकर वह दीन-दुखियों की सहायता करता था। आधुनिक काल में शालैइळन्तिरैयन् (दे०) ने 'तोयन्-मारन्' नामक अपने कथाकाव्य में उसे एक वीर, दानी, कलाप्रेमी शासक के रूप में चित्रित किया है।

तोरडमल, मधुकर (म० ले०)

आधुनिक मराठी रचना-तंत्र अपनी यथार्थवादी शैली के कारण इब्सन के रचना-शिल्प से अत्यधिक प्रभावित है और यही कारण है कि आज के अधिकांश नाटककारों पर इसका प्रभूत प्रभाव है। मधुकर तोरडमल यथार्थ-वादी नाट्यशैली से प्रभावित होते हुए भी समस्याओं के समाधान के लिए मध्ययुगीन नाटकों की तरह अद्भुत एवं संयोग का आश्रय ग्रहण करते हैं। इसी से प्रयोगधर्मी नाटककारों में इनका नाम विशेष रूप में लिया जाता है। इनकी 'काळनेट लालबत्ती' बहुचर्चित नाट्य-रचना है। जीवन-यथार्थ की अपेक्षा चमत्कृति एवं अद्भुत घटनाओं एवं प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से सामाजिक जीवन की विसंगतियों को इन्होंने अपनी रचनाओं में उरेहा है। 'भोवरा' नाटक में प्रेममग्न युवक के अधःपतन तथा कालाबाज़ार आदि समाजद्रोही क्रियाकलापों से अर्जित धन से धनी बने वर्ग के प्रतिशोध की कथा का चित्रण किया गया है। अद्भुत संयोग-प्रधान नाट्य तंत्र के विषय में इनका अभि-मत है कि इस जगत में गुणों को सफलता नहीं मिलती—सभी कार्य किसी-न-किसी प्रभुसत्ता-संपन्न व्यक्ति की कृपा से ही होता है। गुणों को प्रधानता मिले तो वह विश्व का दसवाँ आश्चर्य होगा। यही कारण है कि दर्शकों की औत्सुक्य भावना को सतत बनाए रखने के लिए ये अद्भुत एवं संयोग का अवलंब ग्रहण करते हैं। इसी से इनके नाटक समस्या-प्रधान होते हुए भी अद्भुत ही अधिक हुए हैं। पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद-योजना चरित्र-निरूपण में अद्भुत एवं संयोग के प्राधान्य के कारण चमत्कृति आदि के कारण मधुकर तोरडमल आधुनिक नाटककारों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

तोरवे रामायण (क० कृ०) [रचना-काल—अनुमानतः पंद्रहवीं शती]

'तोरवे रामायण' के लेखक का नाम नरहरि (दे० कुमार वाल्मीकि) था। वह बीजापुर के निकट तोरवे ग्राम का निवासी था। अतः उसके द्वारा रचित रामायण 'तोरवे रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी उसके वंशज तोरवे में हैं। नरहरि ने कुमारव्यास (दे०) का अनुकरण करके रामायण की रचना करते समय अपने को कुमार वाल्मीकि कहा है। आलोचकों ने 'तोरवे रामायण' का रचना काल लगभग पंद्रहवीं शती बताया है।

'तोरवे रामायण' से कन्नड में ब्राह्मण-परंपरा पर रामायण लिखने का श्रीगणेश हुआ। इससे पहले यह कथा जैन-परंपरा के अनुसार ही कन्नड में लिखी जाती थी। यों तो 'तोरवे रामायण' 'वाल्मीकि रामायण' का ही संक्षिप्त रूप है पर राम को भक्तिपूर्वक विष्णु के अवतार के रूप में देखने वाली भागवत-दृष्टि का प्रभाव इसमें स्पष्ट है जैसा कि पीठिका भाग में राम-नाम का महत्व कहकर शिव के मुख से पार्वती को राम की कहानी सुनाने की बात से स्पष्ट होता है। कुमार वाल्मीकि ने कन्नड में पहली बार समस्त रामायण की रचना भामिनी षट्पदि में पाँच हज़ार से अधिक पद्यों में की है।

इसमें 'अद्भुत रामायण' का भी कुछ प्रभाव है। कवि प्रायः सीधे और संक्षेप में ही कथा कहता है किंतु कहीं-कहीं जहाँ उसे कोई संदर्भ महत्वपूर्ण लगा उसने विस्तार भी किया है—जैसे आधे से अधिक पुस्तक का कलेवर युद्धकांड से भरा है। मूलकथा में कहीं-कहीं परिवर्तन भी हो गया है। मंथरा जाति की दासी है पर माया का अवतार है। राज्याभिषेक के दिन राम मुनि वसिष्ठ से कहते हैं, "मैंने आज एक स्वप्न देखा कि मैं बन में अरविंद-मुखी के साथ भ्रमण कर रहा था" आदि।

'तोरवे रामायण' में कविता-शक्ति की अपेक्षा भक्ति विशेष रूप से दिखाई देती है, वैसे सजीव संदर्भों का बहुत सुंदर चित्रण भी हुआ है। पात्रों का चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक हुआ है। कथन-शैली में प्रवाह और सौंदर्य है। आलोचकों का अभिप्राय है कि 'कुमारव्यास भारत' की तुलना में काव्य की दृष्टि से यह एक मध्यम कोटि की रचना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोलकाप्पियम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा-पूर्व दूसरी-तीसरी शती]

'तोलकाप्पियम्' तमिल का प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण-ग्रंथ है। इसके रचयिता तोलकाप्पियर् (दे०) कहे जाते हैं। विद्वानों के मतानुसार वे प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य अगत्स्य के शिष्य थे। 'तोलकाप्पियम्' मूलतः एक व्याकरण-ग्रंथ है परंतु इसके कुछ अध्यायों में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विवेचन भी है। संपूर्ण कृति सूत्र-शैली में रचित है। इसमें 1276 सूत्र हैं। 'तोलकाप्पियम्' तीन भागों में विभाजित हैं—'एलुत्तदिकारम्' (अर्थ-विचार), 'शोल्लदिकारम्' (शब्द-विचार) और 'पोरुळदिकारम् (अर्थ-विचार)। 'एलुत्तदिकारम्' में विभिन्न वर्णों एवं उनकी प्रयोग-विधि, ध्वनि-नियम, शब्दों के विभिन्न ध्वनि-संयोगों आदि का विशद विवेचन है। 'शोल्लदिकारम्' में विभिन्न काव्य-रूढ़ियों और अलंकार, छंद आदि काव्यांगों के स्वरूप और उनके प्रयोग पर विचार किया गया है। इस भाग में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी विशद विवेचन हुआ है। पहले दो भागों का जहाँ व्याकरण की दृष्टि से महत्व है, वहीं इस भाग का काव्य-शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टियों से विशेष महत्व है। 'पोरुळदिकारम्' में साहित्य के दो प्रमुख वर्ग अहम् (दे० अहप्पोरुळ्) और पुरम् (दे० पुरुप्पोरुळ्) तथा जलवायु एवं भौगोलिक अवस्थानुसार विभाजित पाँच भूखंडों (तिणै) का विस्तृत विवेचन है। तोलकाप्पियर् ने साहित्य को तीन वर्गों में विभाजित किया है—इयल (काव्य), इशै (संगीत) और नाडहम् (नाटक और नृत्य)। तोलकाप्पियम् में 'इयल'-विषयक विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। तोलकाप्पियम् पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। अधिकांश विद्वानों का मत है कि अपने वर्तमान रूप में 'तोलकाप्पियम्' एक पूर्ण प्रामाणिक कृति नहीं है। इसमें अनेक प्रक्षिप्तांश हैं फिर भी सरल भाषा में वैज्ञानिक रीति से रचित तमिल के प्राचीनतम उपलब्ध श्रेष्ठ व्याकरण-ग्रंथ के रूप में इसका महत्व असंदिग्ध है। इस कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसकी रचना के पूर्व ही तमिल में एक सुदृढ़ साहित्य-परंपरा विद्यमान थी।

तोलकाप्पियर् *(त० ले०)* [समय—ईसा-पूर्व दूसरी-तीसरी शती]

तोलकाप्पियर् तमिल के प्रसिद्ध व्याकरणाचार्यों में गिने जाते हैं। इनके जन्म-संवत्, जन्म-स्थान, माता-पिता-जाति आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। दंत-कथाओं के अनुसार वे जमदग्नि ऋषि के पुत्र और परशुराम के भाई थे। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार ये तमिल के प्रथम व्याकरणाचार्य अगत्स्य ऋषि के शिष्य थे। इनकी प्रसिद्धि का मूलाधार है 'तोलकाप्पियम्' (दे०)। 'तोलकाप्पियम्' मूलतः व्याकरण-ग्रंथ है और तमिल का सबसे प्राचीन उपलब्ध व्याकरण-ग्रंथ है। इसके कुछ अध्यायों में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विवेचन भी है। इस महान् ग्रंथ के रचयिता के रूप में तोलकाप्पियर् को तमिल साहित्य में अपार ख्याति मिली है।

तोलन् *(मल० ले०)*

देशी राज्य कोचीन के नरेश कुलशेखर वर्मा के सभा-कवि के रूप में तोलन् सुख्यात हुए। संस्कृत तथा मलयाळम के प्रकांड पंडित थे। हास्य रस-प्रधान और यमकालंकार से युक्त कविताएँ रचने में तोलन् कवि का स्थान अद्वितीय माना जाता है। 'महोदय-सुरेश-चरितम्' नामक महाकाव्य उनका लिखा हुआ है, ऐसा माना जाता है। प्रसिद्ध कवि कुंचन् नंपियार् (दे०) पर श्री तोलन् की काव्य-शैली का प्रभाव रहा है।

तौबातुन्नसूह *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1873 ई०]

'तौबातुन्नसूह' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसमें संतान की शिक्षा-दीक्षा के लिए माता-पिता के कर्तव्यों का निरूपण है। इसका उद्देश्य नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देना है। लेखक कहना चाहता है कि संतान को पाल-पोस कर कमाने-योग्य बना देने पर ही माता-पिता के कर्तव्य की समाप्ति नहीं हो जाती बल्कि उसको सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाना भी उनका कर्तव्य है।

'तौबातुन्नसूह' में मज़हब का उल्लेख कुछ इस प्रकार हुआ है कि सभी नेक आदमी उसे पसंद करें। इसके कथानक का आरंभ दिल्ली में फैले हैज़े के वर्णन से होता है। नसूह भी हैज़े की लपेट में आ जाता है। ओषधि-सेवन से नींद आ जाने पर वह ईश्वर के न्यायालय का दृश्य देखकर चौंक उठता है। नींद खुलने पर उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। क्रूर एवं नास्तिक नसूह दयालु एवं आस्थावान बन जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपन्यास में संवाद कुछ अधिक ही हैं। इसमें चरित्र-विकास सुंदर एवं स्वाभाविक है तथा मनोवैज्ञानिक आधार लिये हुए है। कलीम और नईमा के रूढ़ चरित्र भी कुशलता से चित्रित किए गए हैं। इसकी भाषा-शैली स्पष्ट तथा सशक्त है—शुद्ध देहलवी भाषा तथा मुहावरों का प्रयोग किया गया है और हास्य का सफल पुट दिया गया है।

त्यागपत्र (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) का बहुचर्चित एवं उल्लेखनीय उपन्यास है जो भारत की विभिन्न भाषाओं में ही नहीं अपितु विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुका है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास में लेखक ने मृणाल (दे०) के माध्यम से नारी की सामाजिक स्थिति और उसकी समस्याओं का अत्यंत सशक्त अंकन किया है। अपने भाई के संरक्षण में पली मृणाल बाल्यावस्था में अँग्रेज़ी स्कूल में अध्ययन करते समय अपनी सहेली के भाई से प्रेम कर बैठती है। जब भावज को इस रहस्य का पता लगता है तब वह उसे न केवल निर्दयतापूर्वक पीटती है अपितु एक वयस्क व्यक्ति के साथ विवाह भी कर देती है। अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते हुए भी वह सरलतावश एक दिन अपने पूर्व प्रेम-प्रसंग को व्यक्त कर देती है जिसे सुनकर उसका पति उस पर न केवल अत्याचार करता है अपितु एक दिन उसे घर से बाहर भी निकाल देता है। परिस्थितियों के वात्याचक्र में पड़कर मृणाल को कोयले के एक सामान्य व्यापारी का आश्रय लेना पड़ता है जो उसके गर्भवती होने पर छोड़कर चला जाता है। वह अस्पताल में एक बच्ची को जन्म देती है जो दस मास के भीतर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देती है। तदनंतर मृणाल लगभग बीस वर्षों तक नानाविध कष्ट झेलने के बाद सांसारिक यातना से मुक्ति पा लेती है। मृणाल का भतीजा प्रमोद अपनी बुआ की पीड़ा को भली भाँति समझता है और अपना सर्वस्व न्यौछावर करके भी उसके दुर्भाग्य को जीत लेना चाहता है। लेकिन मृणाल अपने भतीजे की इस कृपा को अस्वीकार कर देती है। जब प्रमोद को बुआ की मृत्यु का समाचार मिलता है तब वह जजी से त्यागपत्र देकर सर्वथा विरक्त हो जाता है। जैनेंद्र के अन्य उपन्यासों के समान इस रचना में भी कथा का महत्व नगण्य-सा है। इसकी महत्ता तो मृणाल की दमित इच्छाओं तथा सूक्ष्म चारित्रिक प्रतिक्रियाओं के प्रत्यंकन में है जिसमें लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। यह कृति पाठक के मन को आंदोलित करने में अत्यंत समर्थ है।

त्यागराजु (ते० ले०) [समय—1767-1847 ई०]

संत, संगीतकार और साहित्यिक—त्रिविध प्रतिभा का मंगलमय संगम त्यागराजु में पाया जाता है। त्यागराजु का जन्म दक्षिण भारत में तंजावूर के पास तिरूवारूट नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम रामब्रह्म और माता का सीतम्मा। पिता राम के भक्त थे और माता भक्त रामदास के गीत बड़ी तन्मयता के साथ गाया करती थीं। फलतः त्यागराजु में भक्ति और संगीत का मणिकांचन संयोग घटित हुआ। भक्ति के बिना संगीत का ज्ञान निरर्थक घोषित करके रामकथा को इस वाग्धनी ने राग-सुधा से आप्लावित कर प्रस्तुत किया है। दक्षिण के घर-घर में आज भी त्यागराजु के गीत गाए जाते हैं। तमिल-समाज के बीच में रहते हुए भी त्यागराजु ने अपनी मातृभाषा तेलुगु में ही गीतों की रचना की और सारे दक्षिणवासी इन गीतों का भावार्थ समझें या न समझें पर गाते बड़ी तन्मयता के साथ हैं। अर्थ की पार्थिव सीमा को पार कर नाद-सौंदर्य के माध्यम से आंतरिक आनंद प्राप्त करने के लिए त्यागराजु के गीत आध्यात्मिक सेतु बन गए हैं। कहते हैं कि त्यागराजु ने चौबीस हज़ार गीतों में राम का गुणगान किया था। पर आज केवल एक हज़ार के क़रीब ही मिलते हैं। केवल गीतों के अतिरिक्त 'नौकाचरित्र', 'प्रह्लाद भक्त-विजयमु' नामक कुछ संगीत-रूपकों की भी इन्होंने रचना की। इनके गीतों में भक्ति की सभी संभाव्य भाव-भूमिकाओं का विकास परिलक्षित होता है। राम के गुणगान में ही संत त्यागराजु का समस्त जीवन व्यतीत हुआ। अंतिम दिनों में इन्होंने संन्यास की दीक्षा ग्रहण की और अपनी ज्योति को परंज्योति में विलीन कर लिया। त्यागराजु का नाम साहित्य की अपेक्षा संगीत के क्षेत्र में अधिक विख्यात है। नादयोग की साधना में इनको विलक्षण सफलता प्राप्त हुई। सात स्वरों का माधुर्य इनके लिए श्रुति का ही विषय नहीं रहा, प्रत्युत इन्होंने इन स्वरों को अपने सामने नाचनेवाली सुंदरियों के रूप में देखा और दिखाया।

त्राटिका (म० कृ०)

वा० बा० केळकर का यह नाटक अँग्रेज़ी नाटककार शेक्सपियर के 'टेमिंग ऑफ़ द श्रू' की रूपांतरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना है। अँग्रेज़ी कृति पर मराठी परिवेश का आरोप कर केळकर ने इसमें नूतन प्राणप्रतिष्ठा की है। प्रतावराव द्वारा दिग्भ्रमित नायिका त्राटिका (दे०) को सन्मार्ग पर लाए जाने की कथा पर यह नाटक आधारित है। त्राटिका नारी-सुलभ कोमल भावनाओं का सर्वथा त्याग कर पुरुषोचित भावनाओं को अपने जीवन में उतार लेना चाहती है। फलतः विवाह हेतु आए प्रत्येक प्रत्याशी को वह विमुख लौटा देती है। प्रतापराव बलपूर्वक उससे विवाह कर लेता है और अपनी उपेक्षा-वृत्ति के द्वारा उसे सन्मार्ग पर ले आता है। नाटककार ने अपनी नाट्य प्रतिभा के बल पर इस रूपांतरित कृति को मराठी की मौलिक कृति का रूप प्रदान कर दिया है। अँग्रेज़ी नामों के स्थान पर मराठी या प्रदेशों के नामों आदि का प्रयोग तथा घटना-प्रसंगों के प्रादेशिक प्रभावानुसार चित्रण आदि से यह सहज रूप में संभव हो सका है।

त्राटिका *(म० पा०)*

वा० बा० केळकर के रूपांतरित नाटक 'त्राटिका' (दे०) (शेक्सपियर-कृत 'टेमिंग ऑफ़ द श्रू') की नायिका है। यह कठोरहृदया एवं उद्दंड प्रवृत्ति की ऐसी महिला है जिसे कोमल भावनाओं एवं प्रवृत्तियों से घोर घृणा है। अपनी इन पुरुषोचित वृत्तियों के कारण ही इसने आनंदी से बदलकर अपना नाम त्राटिका रख लिया है। नारी-सुलभ सुकुमार भावनाओं एवं प्रवृत्तियों की अपेक्षा यह क्रूरता एवं कठोरता को अपने जीवन में उतारने को लालायित रहती है। अपने इस दुराग्रह के कारण ही वह विवाह के इच्छुक प्रत्येक प्रत्याशी को अपमानित कर विमुख लौटा देती है। फलतः कोई भी व्यक्ति इससे वैवाहिक संबंध स्थापित करने से हिचकता है, किंतु प्रतापराव इस दिग्भ्रमित नारी को सन्मार्ग पर लाने के लिए ही इससे बलपूर्वक विवाह कर लेता है। विवाह के उपरांत प्रतापराव इसके साथ पूर्णतः उपेक्षापूर्ण व्यवहार करता है। पति की उपेक्षा एवं कठोर व्यवहार के कारण त्राटिका को अपनी भूल का अहसास होता है। फलतः पति के हृदय को जीतने एवं सद्व्यवहार को प्राप्त करने के लिए इसके व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। यह सद्गृहिणी के महद् आदर्शों का ग्रहण कर आदर्श नारी-चरित्र की श्रेणी की अधिकारिणी हो जाती है। वस्तुतः मराठी चरित्र-सृष्टि में त्राटिका कठोरहृदया कर्कशा एवं उद्दंड नारी चरित्रों के प्रतीक के रूप में प्रसिद्ध है।

त्रासदी *(हिं० पारि०)*

'त्रासदी' प्रमुख पाश्चात्य नाट्य-रूप 'ट्रैजेडी' का हिंदी पर्याय है। हिंदी में इसके लिए एक अन्य प्रचलित अभिधान है 'दुःखांत नाटक', किंतु त्रासदी के अंत का दुःखात्मक होना अनिवार्य नहीं है। इसी प्रकार 'त्रासदी' शब्द का भारतीय काव्यशास्त्र में निरूपित तेतीस संचारी भावों में परिगणित 'त्रास' से कोई संबंध नहीं है। आधुनिक आलोचकों ने यूनानी काव्यशास्त्र की मूल अवधारणा 'ट्रैजेडी' के वज़न पर त्रास को उसका मूलवर्ती भाव मानते हुए 'त्रासदी' शब्द गढ़ लिया है जो अब व्यापक रूप से प्रचलित और प्रतिष्ठित हो चुका है। यूनानी भाषा में 'ट्रैजेडी' (मूल यूनानी शब्द-बंध : trag oidia) का शाब्दिक अर्थ है—अज-गीत। tragos का अर्थ है बकरा; और oide का गीत। प्राचीन यूनानी परंपरा के अनुसार बकरे के बलिदान के अवसर पर कुछ गायकों द्वारा बकरे की खाल पहनकर त्रास और करुणा के गीत गाए जाते थे। धीरे-धीरे इस त्रासक 'गीत-नाट्य' जैसी वस्तु ने गंभीर साहित्यिक नाट्य-विधा का रूप धारण कर लिया।

त्रासदी का सर्वप्रथम सुव्यवस्थित विवेचन यूनानी आचार्य अरस्तू के 'पेरि पोइतिकेस' नामक ग्रंथ में उपलब्ध होता है। अरस्तू के शब्दों में त्रासदी की परिभाषा इस प्रकार है : 'त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान-रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा और त्रास के उद्रेक द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन (दे०) किया जाता है।' त्रासदी की प्रकल्पना मूलतः नायक की दारुण एवं असह्य यातनाओं पर आधारित है। त्रासदी का नायक अपने चरित्र के दोष के कारण की गई किसी छोटी-सी भूल के भीषण दुष्परिणाम भोगता है। यूनानी काव्यशास्त्र में निरूपित त्रासदी के मूल तत्त्व भव्यता, कथानक (कथा-क्रम के मध्य के 'स्थिति-विपर्यय' और 'अभिज्ञान'), विरेचन, नैतिक विवेक और न्याय-बुद्धि आदि आज भी त्रासदी के लिए किसी-न-किसी रूप में जुड़े हुए हैं। अरस्तू ने त्रासदी के मूल कार्य की एकता पर विशेष बल दिया था, पश्चिम के पुनर्जागरण काल के कास्तेलवेत्रो आदि विद्वानों ने इसमें काल और स्थान की एकता को भी जोड़ दिया। इस प्रकार नाटकीय संदर्भ में संकलन-त्रय (दे०) की प्रकल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। कथानक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही संबद्ध एक अन्य प्राचीन अनुवंध यह था कि उसमें सुनिश्चित आदि, मध्य और अंत होना चाहिए। आधुनिक त्रासदी में यह आवश्यक नहीं माना जाता।

त्रासदी के आस्वाद का प्रश्न काव्यशास्त्रीय चिंतन का एक मूलभूत प्रश्न है। भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में इसके लिए अनेक प्रकार के जीवन-व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक-नैतिक और कलावादी समाधान प्रस्तुत किए गए हैं। विरेचन-सिद्धांत उनमें से एक है। इस संदर्भ में भारतीय काव्यशास्त्र का प्रमुख सिद्धांत है साधारणीकरण (दे०)।

अरस्तू ने त्रासदी को साहित्य का उत्कृष्टतम रूप माना था। 'हीनतर जीवन का चित्रण करने वाली कामदी' (दे०) की अपेक्षा 'भव्यतर जीवन का चित्रण करने वाली त्रासदी' उनके अनुसार कला (दे०) का सर्वश्रेष्ठ रूप है। अरस्तू के वाद पाश्चात्य साहित्य-चिंतन में त्रासदी की मूल प्रकल्पना, विशेषतः विरेचन-सिद्धांत, को लेकर अनेक प्रश्न उठाए गए और उसमें परिवर्तन भी किए गए जिनमें से कई निश्चय ही सार्थक हैं। किंतु त्रासदी की मूल अवधारणा अभी तक अक्षुण्ण है।

त्रिंजण *(पं० पारि०)*

पंजाबी लोक-संस्कृति के संदर्भ में 'त्रिंजण' महत्वपूर्ण है। ग्रामों में नवविवाहिताएँ और कुँवारी कन्याएँ इकट्ठी बैठकर चरखा कातती हैं। चरखे की धुंकार के साथ-साथ ये भी गाती जाती हैं। इन गीतों को 'त्रिंजण के गीत' कहते हैं। इनमें मायके के अस्थायी जीवन तथा ससुराल जाने की भयविह्वलता का वर्णन होता है। इसी भाव को व्यापक अर्थ प्रदान कर संसार की नश्वरता की ओर संकेत किया जाता है। पंजाबी जीवन और पंजाबी साहित्य की रचना-परंपरा पर त्रिंजण का विशेष प्रभाव है। पंजाबी सूफ़ी काव्य में इस विषय को बार-बार दुहराया गया है। आधुनिक काल में (धनीराम) चातरिक (दे०) ने 'त्रिंजण' को उपमान के रूप में बड़ी सफलता से प्रयुक्त किया है।

त्रिकाय *(पा० पारि०)*

महायान शाखा (दे०) में भगवान् बुद्ध के विभिन्न शरीरों की परिकल्पना त्रिकाय-सिद्धांत के रूप में प्रसिद्ध है। यह केवल धार्मिक ही नहीं प्राप्ति-संबंधी तथा सांसारिक तत्त्व को भी आत्मसात् किए है। इसमें वस्तुतः इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि भगवान् बुद्ध का आध्यात्मिक स्वरूप उनके भौतिक जीवन से किस प्रकार मेल खाता है। हीनयान शाखा (दे०) में भगवान् के केवल दो रूप माने जाते थे : धर्मकाय और रूपकाय। आगे चलकर तीन शरीरों की कल्पना कर ली गई—(1) धर्मकाय-हीनयान में यह बुद्ध की आत्मा के रूप में स्वीकार किया जाता था। महायान में इसे वास्तविक तत्त्व के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यह बुद्ध का अनादि निधन, परिवृत्तिहीन तथा प्रकटीभाव और अंतर्धान रहित मुख्य शरीर है जिसमें सभी धार्मिक तत्त्व, तथागत, शून्यता, मध्यम मार्ग, पूर्णता आदि सभी कुछ आ जाता है। यह आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों धर्मों का समूह है। (2) संभोगकाय—यह प्रज्ञामय है और जगत् के उद्धार के लिए बोधिसत्त्व के रूप में भगवान् सुंदर शरीर धारण कर अवतीर्ण होते हैं। यह हीनयान में नहीं माना गया है। (3) नियोणकाय—यह बुद्ध का भौतिक शरीर है जिसमें शाक्य मुनि इत्यादि के रूप में जरा-मरण का अभिनय करते हैं। आगे चलकर तांत्रिकों ने एक चौथे वज्रकाय की भी कल्पना की।

त्रिपदी *(क० पारि०)*

त्रिपदी कन्नड का देशी छंद है। 'त्रिपदी' शब्द से ही स्पष्ट है कि इसमें तीन पाद या चरण होते हैं। इसके प्रथम चरण में पाँच मात्रा वाले चार गण होते हैं, तीसरे गण में 'अंतप्रास' होता है। द्वितीय चरण में क्रमशः पाँच, चार, चार+एक और पाँच मात्रा वाले गण होते हैं। तृतीय चरण में क्रमशः पाँच, चार तथा चार+एक मात्रा वाले गण होते हैं। कन्नड में सर्वज्ञ (दे०) कवि 'त्रिपदी' के लिए अत्यंत विख्यात हैं। उनके त्रिपदी छंद साधारण जनता में भी बहुधा प्रचलित हैं। वादामि के शिलालेख में इस छंद का सर्वप्रथम प्रयोग दिखाई पड़ता है। इसका समय 700 ई० है। कन्नड के प्राचीन तथा आधुनिक कवियों के काव्यों में इस छंद को स्थान प्राप्त हुआ है। आदि महाकवि पंप (दे०) (940 ई०) के 'आदिपुराण' (दे०) तथा कविचक्रवर्ती पोन्न (दे०) (950 ई०) के 'शांतिपुराण' (दे०) में त्रिपदी का प्रयोग द्रष्टव्य है। उक्त दोनों ग्रंथों में अन्य कन्नड तथा संस्कृत-छंदों के साथ इसका प्रयोग हुआ है। कन्नड के अन्य चंपू-काव्यों में भी इसका प्रयोग हुआ है। अगळ (1200 ई०) के 'चंद्रप्रभपुराण' (दे०) में इसका सुंदर प्रयोग देखा जाता है।

केवल त्रिपदी छंद का प्रयोग करके काव्य-रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले कवियों में सर्वप्रथम सिद्धराम (1150 ई०) का नाम लिया जाता है। वे एक श्रेष्ठ वीरशैव वचनकार थे। वचनों के अतिरिक्त उन्होंने 'मिश्र-स्तोत्र-त्रिविधि', 'बसव-स्तोत्र त्रिविधि', 'अष्टावरणस्तोत्र-त्रिविधि','कालज्ञान' और 'मंत्रगोप्य' की रचना की है। इसमें 'वसवस्तोत्र-त्रिविधि' तथा 'अष्टावरणस्तोत्र-त्रिविधि' त्रिपदी छंद में रची गई है। महादेवयक्क (1150 ई०) (दे०) कन्नड की सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं। उनके वचनों में जहाँ उनकी भक्ति का दिव्य रूप मिलता है वहीं उनकी 'योगांग-त्रिविधि' में 63 त्रिपदी छंदों में तात्त्विक विषयों का प्रतिपादन द्रष्टव्य है। उसमें उनके व्यक्तिगत जीवन के अंश भी मिले हुए हैं। इसके बाद 'निजगुणशिवयोगी' (दे०) (1500 ई०) का नाम उल्लेखनीय है जिनके 'अनुभवसार' तथा 'अरवत्तुमूवर त्रिपदि' में त्रिपदी छंद का अच्छा प्रयोग हुआ है और दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन हुआ है। सर्वज्ञ (1700 ई०) (दे०) जनवादी परंपरा के प्रसिद्ध कवि हैं। उनके वचन त्रिपदी में रचित हैं। ये त्रिपदी 'छंद-सर्वज्ञ वचनगळु' (सर्वज्ञ के वचन) नाम से विख्यात हैं। उनकी कबीर जैसी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति उनकी सत्यप्रियता की ही द्योतक है।

त्रिपाठी, कुंजबिहारी *(उ० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

डा० कुंजबिहारी त्रिपाठी (एम०ए०, बी०एल०, पी-एच०डी०) का जन्म पथुरी पड़ा बाँकी (कटक) में हुआ था। ये उड़िया और संस्कृत साहित्य के प्रोफ़ेसर थे। 'उड़ीसा के संस्कृत-साहित्य का इतिहास' इनकी एक उत्कृष्ट रचना है। 'ओड़िया भाषा तत्त्व' इनकी समीक्षात्मक पुस्तक है। पाली 'धम्मपद' (दे०) (प्रथमार्ध) का सटीक अलोचना-मूलक उड़िया-संस्करण इनका बहुमूल्य अवदान है। इसमें लेखक की गवेषणामूलक अंतर्दृष्टि प्रशंसनीय है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उड़िया एवं अँग्रेजी दोनों में इनके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं शैली पांडित्यपूर्ण है। 'प्राचीन ओड़िया अभिलेख' (दे०) इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है।

त्रिपाठी, बकुल *(गु० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

गुजराती साहित्य में नयी पीढ़ी के हास्यरस के लेखक। वे अहमदाबाद के एच० एल० कॉमर्स कॉलेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक हैं। अनेक गुजराती दैनिक समाचार-पत्रों में वे हास्य-व्यंग्य के लेख लिखते हैं। उनकी हास्य की तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कभी वे लघु निबंध-शैली का प्रयोग करते हैं, कभी डायरी, कभी पत्र, तो कभी आत्म-निवेदन। उनकी 'सोमवारनी सवारे' पुस्तक गुजरात सरकार से पुरस्कृत हो चुकी है। वे नयी पीढ़ी के एकमात्र हास्य-लेखक हैं। मानव-स्वभाव की सहज निर्बलता ही उनके हास्य का उपादान है; इसलिए उनका हास्य सब पाठकों को रसानुभूति कराने में समर्थ है।

त्रिपाठी, बिभूति भूषण *(उ० ले०)*

श्री बिभूति भूषण त्रिपाठी (आइ० ए० एस०) यशस्वी कहानीकार हैं। आधुनिक जीवन-समस्याओं के चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक होती हैं। आज जबकि साहित्य के हर क्षेत्र में यौन-चित्रण का आधिक्य है, स्थूल, असंयत चित्रण भी अस्वीकार्य नहीं, तब इनकी कहानियाँ पूर्णरूप से अ-यौन होती हैं। जहाँ आवश्यक है, वहाँ केवल उसका संकेत मात्र ही मिलता है। फिर भी आधुनिक जीवन की मानसिक उलझनें बड़ी कुशलता से इनकी कहानियों में उभर कर आई हैं। इनकी शैली विषयानुरूप, सशक्त, विश्लेषणात्मक, गंभीर एवं अभिव्यंजनामयी है। 'सेतु' (दे०) इनकी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है।

त्रिपाठी, ब्योमकेश *(उ० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

हास्य-व्यंग्यपरक नाटकों के क्षेत्र में श्री ब्योमकेश त्रिपाठी का अवदान महत्वपूर्ण है। इनके नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल हैं तथा कई बार इनके नाटकों का सफल अभिनय भी हो चुका है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों की अभिव्यक्ति की प्रधान शैली व्यंग्यात्मक ही है। इस शैली में संस्कार की भावना नहीं, आत्म-तिरस्कार की वृत्ति है। शैली चुटीली एवं विषयानुरूप तीखी है। 'विषर मिसा', 'कंसाकबाट' (दे०), 'सिंहद्वार', 'बाड़ुअ झिअ' आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

त्रिपाठी, रामनरेश *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

इनका जन्म कोइरीपुर (जिला जौनपुर) में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा जौनपुर में हुई। राजस्थान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयाग और सुलतानपुर इनकी कर्मभूमि रहे। स्वतंत्रता-संग्राम में इन्होंने सक्रिय योग दिया था। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' इनके प्रसिद्ध खंडकाव्य हैं। 'मानसी' में इनकी फुटकर कविताएँ संकलित हैं। उपन्यास, नाटक और आलोचना-ग्रंथ भी इन्होंने लिखे हैं। 'कविता-कौमुदी' के आठ भागों में इन्होंने हिंदी, उर्दू, संस्कृत और बँगला की लोकप्रिय कविताओं एवं ग्रामगीतों का संकलन किया है।

हिंदी में श्रीधर पाठक (दे०) द्वारा प्रवर्तित स्वच्छंदता के प्रकृत पथ पर रामनरेश त्रिपाठी ही चले हैं। उनके खंड-काव्यों में देशभक्ति को रसात्मक रूप प्राप्त हुआ है। प्राकृतिक दृश्यों के 'संश्लिष्ट चित्रण की प्रतिभा इनमें अच्छी है।' इनकी भाषा व्यवस्थित और परिमार्जित है। इनकी कविता प्रसाद-गुण-युक्त है। खड़ी बोली के छायावाद (दे०)-पूर्वकालीन कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

त्रिपिटक *(पा० क्रु०)*

यह तीन भागों में बौद्ध धर्म के उपदेशों का संग्रह है। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद राजगृह में एक सभा आयोजित की गई जिसमें धार्मिक सिद्धांतों के लिए 'सुत्त-पिटक' (दे०) और संघ में पालनीय नियमों के लिए 'विनय-पिटक' (दे०) का संकलन किया गया। महापरिनिर्वाण के 10 वर्ष बाद वैशाली में दूसरी संगीति का आयोजन किया गया जिसमें पूर्वसंकलनों को संशोधित किया गया। अंत में अशोक के राज्यकाल में तिस्सायोगलिपुत्र की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र में तीसरी संगीति का आयोजन किया गया और उसमें त्रिपिटक के संकलन को परिपूर्णता प्रदान की गई। इसी समय 'अभिधम्मपिटक' (दे०) नामक तीसरे पिटक का भी संकलन हुआ जिसमें दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक शैली पर धर्म-निरूपण को प्रश्रय दिया गया। यह कहना कठिन है कि इन संकलनों में कितना अंश बुद्ध-कृत है और कितना परवर्ती। जो अंश इन संकलनों में सर्वत्र एक रूप में अविरोधी होकर आए हैं और छुटपुट मिले संस्कृत पिटकों से भी मेल खा जाते हैं वे असंदिग्ध रूप में बुद्ध-कृत माने जा सकते हैं। कुछ अंश बुद्ध के निकटवर्ती शिष्यों द्वारा भी रचे हुए हो सकते हैं। इन पालि ग्रंथों को श्रीलंका में सुरक्षित रखा गया। कुछ समय तक त्रिपिटक का वही मौखिक रूप चलता रहा; बाद में 'गामिनी' के राज्यकाल में लेखबद्ध किया गया।

'त्रिपिटक' के 9 अंग बतलाए गए हैं—सुत्त, गेय्य (गद्य-पद्य मिश्र), वेय्याकरण (व्याकरण), गाथा (पद्य), उदान (सारगर्भित कथन), इतिवुत्तक (बुद्ध ने ऐसा कहा—कहकर छोटी कथाएँ), जातक (बुद्ध की पूर्वजन्म की कथाएँ), अब्युत धम्म (चमत्कारपूर्ण कथन), और वेदल्ल (प्रश्नोत्तर)। इस विभाजन से ज्ञात होता है कि सभी प्रकार का साहित्य पहले से विद्यमान था। तीनों पिटकों का वर्णन करने वाले क्रमशः सुत्तान्त्रिक, विनयधर और धम्मकथिक कहलाते थे। इसमें कई भाषाओं का प्रभाव है किंतु उनमें मागधी का प्राधान्य है जो प्राप्य मागधी से भिन्न है।

त्रिपुरदहन सांगत्य *(क० क्रु०)* [रचना-काल—1184 ई०]

'सांगत्य' (दे०) छंद में रचित ग्रंथों में शिशुमायण की रचना 'त्रिपुरदहन सांगत्य' का विशेष स्थान है। इसका रचना-काल शक वर्ष 1106 (1184 ई०) है जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने किया है। 'त्रिपुरदहन सांगत्य' में कुल 281 पद्य हैं। ''जनन-मरण के नाम से घनतर हुए तीन पुरों को ज्योतिरूप धारण कर शंकर ने भस्म किया, वह कौतुक कहूँगा''—कवि इस उक्ति से स्पष्ट है कि इसमें रूपक-तत्त्व भी मिला हुआ है। रचना के प्रारंभ में कवि ने चंद्रनाथ की स्तुति करने के अनंतर शांतिजिन, नेमिनाथ, वर्धमान आदि चौबीस तीर्थंकरों, श्रवणबेळगोळ के भुजबलि, सिद्धों, आचार्यों, सरस्वती एवं अपने गुरु भानुमुनि की स्तुति की है। यह लालित्यपूर्ण रचना है। इसकी भाषा सुघर और सुष्ठु है।

त्रिपुरदाह *(सं० क्रु०)* [समय—तेरहवीं शती]

संस्कृत नाट्यजगत में वत्सराज (दे०) एक सुपरिचित नाम है। 'त्रिपुरदाह' इन्हीं द्वारा रचित डिम है। वत्सराज कालिंजर नरेश परमर्दिदेव के अमात्य थे तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव के समय तक उसी पद पर प्रतिष्ठित रहे।

चार अंकों के इस डिम की कथा पुराण से ली गई है। भगवान् शंकर ने त्रिपुर का नाश किस प्रकार किया था, इसी का सांगोपांग वर्णन इस रूपक का प्रतिपाद्य है। भरत (दे०) मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में 'त्रिपुरदाह' शीर्षक डिम के प्रथम प्रयोग का उल्लेख किया है। इसी संकेत को ग्रहण कर वत्सराज ने इस रूपक की रचना की। इसमें रौद्र रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिपुरांतकुडु, राविपाटि *(ते० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

ये विख्यात काकतीय नरेश प्रतापरुद्र (द्वितीय) (शासन-काल—1295-1326 ई०) के समसामयिक माने जाते हैं। उस समय इनकी युवावस्था थी। इनके ग्रंथ हैं—'प्रेमाभिरामम्' (संस्कृत में लिखित 'वीथी' नामक रूपक विशेष), 'अंबिकाशतकमु' (पार्वती तथा परमेश्वर के श्रृंगार का मुक्तकों में वर्णन) और 'त्रिपुरांतकोदाहरणमु' आदि। कूचिराजु एर्रना (दे० एर्राप्रगड) नामक तेलुगु कवि ने इन्हें श्रृंगार कवि कहा है। इनके उपलब्ध ग्रंथों में 'त्रिपुरांतकोदाहरणमु' प्रमुख है। संबोधन तथा अन्य सभी कारकों में अलग-अलग लिखे गए छंदों से युक्त एक लघुकाव्य ही 'उदाहरण' कहा जाता है। 'त्रिपुरांतकोदाहरण' की शैली सरल तथा सरस है। तेलुगु-उदाहरण (दे० उदाहरण वाङ्मय) काव्यों में इसका स्थान सर्वोपरि है।

त्रिरत्न *(अप० पारि०)*

जैन धर्म में कैवल्य पद-प्राप्ति के लिए कर्मों का अत्यंताभाव करने के निमित्त जिन तीन तत्त्वों की प्राथमिक अपरिहार्यता है उन्हें 'त्रिरत्न' की संज्ञा दी जाती है। वे तीन रत्न ये हैं: (1) सम्यक् ज्ञान—आत्मा के ठीक ज्ञान न होने से ही काम-क्रोधादि के कारण कर्मों का संचय होता है। अतः उनके अभाव के लिए पहली आवश्यकता सम्यक् ज्ञान है। (2) सच्चे तीर्थंकरों (दे०) के उपदेश का आस्थापूर्वक अध्ययन सम्यग्दर्शन कहलाता है; और (3) उसको क्रिया-रूप में परिणत करना सम्यक् चरित है।

त्रिवेणी *(क० ले०)* [जन्म—1928 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

श्रीमती अनुसूया शंकर का काव्यनाम है 'त्रिवेणी'। आपका जन्म मंड्या में 1928 ई० में हुआ। आपके पिता श्री बी० एम० कृष्णस्वामी आधुनिक कन्नड साहित्य के नवोदय के मंत्रदाता एवं पुरोहित स्व० बी० एम० श्री कंठय्याजी (दे०) के भाई हैं। इन्होंने उच्च शिक्षा महाराजा कालेज में पाई। कन्नड साहित्य में मनोवैज्ञानिक विषयों को लेकर इन्होंने क्रांतिकारी उपन्यासों की रचना की। इन्होंने, 'बेक्किन कण्णु', 'दूरद बेट्ट', 'शरपंजर', 'बेल्लिमोड' आदि बीस उपन्यास लिखे हैं। इनके अतिरिक्त आपके तीन कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। मानसिक गुत्थियों को अत्यंत सरल व प्रभावी शैली में सुलझाने में ये सिद्धहस्त हैं। इनके उपन्यासों ने कन्नड-साहित्य में एक नया आयाम खोला। चरित्र-चित्रण में आपको कमाल हासिल है। त्रिवेणीजी हमारी सर्वश्रेष्ठ अंतश्चेतनावादी उपन्यास-लेखिका हैं।

त्रिवेदी, कालिदास *(हिं० ले०)* [अस्तित्व-काल—1688 ई०]

ये बनपुरा (अंतर्वेद) के निवासी थे। प्रसिद्ध कवि उदयनाथ कवींद्र इनके पुत्र तथा दूलह (दे०) इनके पौत्र थे। ऐसा कहा जाता है कि 1688 ई० में गोलकुंडा की चढ़ाई में किसी राजा के साथ ये औरंगज़ेब की तरफ़ से गए थे। (काशी) नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) की खोज रिपोर्ट में (1) 'राधामाधव मिलन बुध विनोद', 'वधू विनोद' अथवा 'वारवधू विनोद', (2) 'जंजीराबंद' तथा (3) 'कालिदास हजारा' इनके उपलब्ध ग्रंथ हैं। 'वारवधू विनोद' छोटा-सा ग्रंथ है तथा 'कालिदास हज़ारा' दो सौ बारह कवियों से संबंधित एक हज़ार पदों का 'भक्तमाल' (दे०) की शैली पर लिखा गया ग्रंथ है। इसमें कवियों का काल-निर्णय आदि बहुत सुंदर ढंग से दिया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक स्फुट पदों में राधा-कृष्ण के विहार को मुख्य प्रतिपाद्य बनाया है।

भाषा पर इनका असाधारण अधिकार है। नायिका-भेद-वर्णन में भानुदत्त की 'रसमंजरी' का अनुकरण करते हुए भी रूप-वर्णन में उक्ति-वैचित्र्य उल्लेखनीय है। ये हर रूप में अभ्यस्त और निपुण कवि माने जाते हैं।

त्रिवेदी, रामेंद्रसुंदर *(बँ० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

बँगला साहित्य में विज्ञान-चर्चा के इतिहास में रामेंद्रसुंदर स्वकीय महिमा से नित्य अभिनंदित हैं। रामेंद्रसुंदर के पूर्ववर्ती प्रबंधकारों ने विज्ञान से संबंधित विषयों को लेकर आलोचना की है परंतु वह या तो केवल साहित्य में या नीरस विज्ञान में पर्यवसित हुई है। विज्ञान की आलोचना में रामेंद्रसुंदर की सरस अभिव्यक्ति-शैली को एक स्वतंत्र मर्यादा प्राप्त हुई है। 'जिज्ञासा' इनकी अनुपम पुस्तक है। साहित्य एवं सामाजिक जीवनचर्या की अभिव्यक्ति में इनकी 'कर्मकथा', 'शब्दकथा', 'चरितकथा' आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों में विषयवस्तु के साथ भाषा ने एक अपरूप मिलन-वंधन की सृष्टि की है। इनके ग्रंथों में ज्ञान के साथ सरसता का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है और यहीं ये यथार्थ रूप से स्वमहिमा में सुप्रतिष्ठित हैं।

त्रिवेदी, विष्णुप्रसाद *(गु० ले०)* [समय—1899 ई०]

गुजराती के शीर्षस्थ समालोचकों में विष्णुप्रसाद (रणछोड़लाल) त्रिवेदी विशेषतः उल्लेखनीय हैं। 'विवेचना', 'परिशीलन', 'अर्वाचीन चिंतनात्मक गद्य', 'उपायन' (दे०) इत्यादि इनके सुप्रसिद्ध समीक्षा-ग्रंथ हैं। अँग्रेज़ी और संस्कृत वाङ्मय का गंभीर अनुशीलन-परिशीलन करने के कारण इनकी विवेचना विशेष संतुलित, सर्वांगीण और निस्संग बनी है। अपने मूल्यांकन में ये सदैव साहित्य-शास्त्र के सिद्धांतों का ही विशेष आधार ग्रहण करते हैं। इसीलिए इनकी कृतिलक्षी आलोचनाएँ सर्वत्र समादृत होती हैं। 'सरस्वतीचंद्र' (दे०) पर इनकी पांडित्यपूर्ण विशद विवेचना इस कथन का प्रमाण है। प्रो० विष्णुप्रसाद त्रिवेदी ने 'साधारणीकरण' व्यापार पर जो विद्वत्तापूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं, वे उनकी सूक्ष्म, सारग्राही दृष्टि और मौलिक-गंभीर चिंतन का ठोस परिचय देते हैं।

त्रिवेदी जी सूरत में एम० टी० बी० कालेज में कई वर्षों तक गुजराती विभाग के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे। तदुपरांत गुजराती-शोध संस्था के निदेशक रहे और निवृत्त होने पर भी साहित्य-समीक्षा, शोध और संपादन-कार्य में प्रवृत्त रहे।

त्रिषष्टिपुरातन चरित्र *(क० कृ०)*

शैव भक्त-कवियों में तिरेसठ भक्त-कवियों के नाम प्रसिद्ध हैं। इनको 'त्रिषष्टिपुरातन' कहते हैं। तमिल साहित्य में इन पर लिखे गए ग्रंथों की कमी नहीं है। कन्नड में सर्वप्रथम हरिहर (दे०) ने इनका चरितगान रगळे (दे०) छंद में किया था। इनका प्रभाव इनके परवर्ती कवियों पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। सोलहवीं शती के कवि सुरंग भी उनके प्रभाव से दूर नहीं हैं। उनका समय 1500 ई० 'त्रिषष्टिपुरातन चरित्र' चंपू शैली में लिखा गया है। आकार में यह काफ़ी बड़ा ग्रंथ है और गुणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कर्नाटक विश्वविद्यालय,धारवाड़ से इसका सुसंपादित संस्करण [संपादक हैं डा० आर० सी० हिरेमठ (दे०)] निकला है। यह ग्रंथ सुरंग कवि की अद्भुत प्रतिभा का निदर्शन है। इसके एक-एक अध्याय में एक-एक भक्त का चरित्र वर्णित है। इसके वर्णनों में चारुता और भाषा-शैली में प्रभावशीलता है। शृंगार, हास्य आदि रसों को इसमें उचित स्थान प्राप्त हुआ है, पर भक्ति ही इसका प्रतिपाद्य और अंगी रस है।

त्वमेवाहम् *(ते० कृ०)*

'त्वमेवाहम्' आरुद्रा (दे०) की 'अभ्युदयमु' (प्रगतिवादी) काव्यधारा की रचनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली कविताओं का संकलन है। समाज में आर्थिक विषमता एवं शोषण का अंत करके मानव को उसके अनुकूल गरिमा एवं प्रतिष्ठा प्रदान करने की इनकी तीव्र आकांक्षा को इन कविताओं में प्रबल अभिव्यक्ति मिली है। प्रौढ़ एवं सशक्त भाषा में लिखी गई ये कविताएँ पाठक के हृदय को भेदती हुई अंदर प्रवेश करती हैं और उसमें एक आंदोलन उत्पन्न करती हैं। मानव-समुदाय की अभिन्नता को निरूपित करके उसमें सद्भाव एवं समरसता की स्थापना करने के उद्देश्य से ही कवि ने इन कविताओं की रचना की है।

थूलि भद्द कहा (स्थूलिभद्र कथा) *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1184 ई०]

'स्थूलिभद्र कथा' सोमप्रभाचार्य (दे०)-कृत 'कुमारपाल-प्रतिबोध' नामक कृति के अंतर्गत एक छोटी-सी कथा है। इसके द्वारा लेखक ने ब्रह्मचर्य-व्रत का महत्व प्रदर्शित किया है।

संक्षेप में कथा इस प्रकार है—पाटलिपुत्र में नवम नंद राजा राज्य करता था। उसके शकटार नामक मंत्री के ज्येष्ठ पुत्र का नाम स्थूलिभद्र था। यह अतीव रूपवान् युवक था। एक दिन वसंत काल में वह कोशा नामक वार-वनिता के प्रासाद में गया। वहाँ उसके अंग-प्रत्यंग की शोभा देखकर उस पर मुग्ध हो गया और बारह वर्ष तक वह कोशा के साथ भोग-विलास में लीन रहा।

शकटार की मृत्यु पर राजा ने दुराचारी स्थूलिभद्र के स्थान पर उसके छोटे भाई श्रीपक को मंत्री बनाना चाहा। उसने बड़े भाई के रहते उसकी अनुमति के बिना मंत्री बनने में आपत्ति की। राजा ने स्थूलिभद्र के पास संदेश भेजा। उसने विचार के लिए समय माँगा। वह सहसा कोशा के रंगभवन से बाहर निकल पड़ा। सांसारिक भोग-विलास को छोड़ कर विरक्त हो आचार्य संभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय से जैन धर्म की दीक्षा लेकर तपस्या में लीन हो गया ।

कालांतर में चातुर्मास्य के लिए कोशा के घर आया । किंतु उसके हाव-भाव स्थूलिभद्र को विचलित न कर सके । इस प्रकार स्थूलिभद्र के ब्रह्मचर्य के माहात्म्य-वर्णन के साथ कथा समाप्त होती है ।

कृति में सुंदर वर्णन उपलब्ध होते हैं । प्रकृति और मानव दोनों का सुंदरता से वर्णन किया गया है ।

थेरगाथा *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत यह एक संकलित खंड है । इसमें जो कविताएँ सन्निविष्ट की गई हैं वे हैं तो धार्मिक ही किंतु शक्ति और सौंदर्य में उनकी तुलना उच्चकोटि की मुक्तक कविता से की जा सकती है । विंटरनित्ज़ ने इन कविताओं को 'ऋग्वेद' से लेकर कालिदास और अमरुक (दे०) तक की मुक्तक-परंपरा के समकक्ष रखना स्वीकार किया है और श्रीमती रायस डेविस के अनुसार 'थेरगाथा' की पंक्तियों को निस्संकोच शेली और कीट्स की किसी भी उच्चकोटि की रचना की तुलना में रखा जा सकता है । इसमें संदेह नहीं कि इन धार्मिक कविताओं में प्रकृति के मनमोहक चित्र भारतीय मुक्तक-परंपरा के बहुमूल्य रत्न हैं । जंगल और पर्वतों के दृश्यों के बीच में बैठकर भिक्षुगण साधना करते थे और जब गंभीर वृष्टि होती थी तथा बिजली कड़कती थी तब भी इन्हें आनंद आता था । ये महात्मा सांसारिकता से उदासीन होकर भी वसंतश्री से अपने को निर्लिप्त नहीं रख सके । निस्संदेह प्रकृति की महत्ता, उच्चता और आकर्षकता बौद्ध धर्म के दुःखवाद में भी इन्हें हर्षविभोर कर देती थी ।

ये गाथाएँ 36 भागों में विभक्त हैं और इनमें 1279 पद्य हैं । इनमें प्रस्तावना की तीन गाथाएँ सम्मिलित नहीं हैं । ये गाथाएँ 264 थेरों की कही हुई हैं जिनका पद्यों की संख्या के आधार पर वर्गीकरण किया गया है । इनमें थेर लोग अपने अनुभवों का वर्णन करते हैं । श्रीमती रायस डेविस के अनुसार 114 गाथाएँ बाह्य अनुभव-विषयक हैं; 141 आंतरिक अनुभवपरक और 9 गाथाएँ उभय-विषयक । इन गाथाओं पर धम्मपाल (दे०) की 'परमत्थदीपनी' टीका भी उपलब्ध हुई है जिसमें गाथाओं की पृष्ठभूमि दी गई है । इनमें पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, शिल्पकार, कारीगर, मज़दूर, अभिनेता, राजा के अवैध पुत्र, सामान्य व्यक्ति इत्यादि सभी को इनमें स्थान प्राप्त हुआ है ।

थेरवाद *(पा० पारि०)*

यह बौद्धधर्म का सर्वप्राचीन रूप है । विभिन्न संगतियों में संकलित 'त्रिपिटक' (दे०) के निर्देशों के अनुसार चलकर ही निर्वाण-लाभ का सिद्धांत इसकी मूल मान्यता है । 'त्रिपिटक' में भगवान् बुद्ध तथा उनके निकटवर्ती दूसरे थेरों (स्थविरों) ने जो कुछ बतलाया है वही इनका सर्वोपरि धर्म है ।

इस वाद के मानने वालों का मुख्य लक्ष्य है 'अरहंत' (दे० अरहत्) पद प्राप्त करना जो कि इस जीवन में ही निर्वाण-प्राप्ति की अवस्था है । इसके लिए चार आर्य-सत्यों को स्वीकार किया गया है—(1) संसार और उसके सभी तत्त्व दुःख-रूप हैं; (2) दुःख का समुदय सहेतुक है; इसके लिए 'प्रटिच्चसमुप्पाद' (दे०) नाम से कारण-परंपराओं की कल्पना की गई है । (3) कारण-परंपरा को समाप्त कर देने से दुःख तथा आश्रवों की समाप्ति हो जाना संभव है और इस प्रकार निर्वाण तथा अरहंत-पद प्राप्त किया जा सकता है; और (4) निर्वाण-प्राप्ति का एक मार्ग है जिसके 8 अंग बतलाए गए हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मांत, सम्यग् जीव (जीविका), सम्यग् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि । थेरवाद चरित्र-प्रधान धर्म है । इसमें आत्मनिग्रह तथा सच्चरित्रता द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेना सर्वसाधारण के लिए सामान्य विधान बतलाया गया है ।

इसमें समस्त तत्त्वों की क्षणिकता तथा अनित्यता का प्रतिपादन किया गया है । जितनी भी वस्तुओं को स्थायी कहा जाता है, इस मत में उनकी सत्ता ही स्वीकार नहीं की जाती । सभी वस्तुएँ संस्कार-जन्य हैं, परमाणु भी संस्कार-जन्य ही है । सभी संस्कार (धर्म) अनित्य तथा क्षणिक होते हैं । आत्मा नाम का कोई पदार्थ विद्यमान नहीं है । दृश्यमान प्रत्यक्ष ज्ञानवाद मात्र है जिससे भिन्न न कोई अनुभव करने वाला है, न विचार करने वाला । केवल विचार और संवेदनाएँ ही विद्यमान हैं जिनके आधार पर अनस्तित्व ठहरा हुआ है । इस वाद का प्रचार दक्षिण में हुआ ।

कोई व्यक्ति दूसरे को निर्वाण-लाभ करने के लिए सहायता नहीं दे सकता । प्रत्येक व्यक्ति बुद्ध के मार्ग पर चल कर स्वयं निर्वाण-लाभ कर सकता है । यह संकु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित स्वार्थमयी दृष्टि है इसीलिए इसे आगे चलकर 'हीन-यान' (तुच्छ या छोटी गाड़ी) कहा गया क्योंकि थोड़े व्यक्ति इस पर निर्वाण तक जा सकते हैं।

थेरीगाथा *(पा० कृ०)*

यह 'ऋग्वेद' के बाद हाल के पहले की सर्वाधिक समृद्ध मुक्तक कृतियों का संकलन है। इसका नाम भी अधिकांशतः 'थेरगाथा' (दे०) के साथ लिया जाता है, किंतु उसकी अपेक्षा इसकी कविताएँ उच्चकोटि की हैं। ये रचनाएँ अधिकतर कवयित्रियों की हैं। इसमें 73 खंडों में 518 पद्य हैं। प्रत्येक खंड में एक थेरी का नाम दिया गया है और उसी की रचनाएँ उस खंड में सन्निविष्ट की गई हैं। इन पर धम्मपाल (दे०) की पाँचवीं शती की टीका में थेरियों की जीवनगाथा का पद्यों के आधार पर उन्नयन कर लिया गया है। धम्मपाल (दे०) के अनुसार अरहत् (दे०)-पद प्राप्त कर लेने के बाद भिक्षुणियों ने भावनावश ये गाथाएँ लिखी थीं। ये गाथाएँ स्त्रियों के विषय में लिखी गई हैं और नारी-हृदय का ठीक रूप में प्रतिनिधित्व करती हैं। श्रीमती रायस डेविस ने 'थेरगाथा' और 'थेरीगाथा' की तुलना करते हुए लिखा है कि 'थेरगाथा' में प्रकृति-चित्रण की प्रधानता है और 'थेरीगाथा' में हृदय-तत्त्व तथा भावना का प्राधान्य है। भिक्षुणियों की गाथाओं में वास्तविक जीवन के चित्र अधिक उभरे हैं, साथ ही इनमें कवित्व का भी मनोरम स्फुरण हुआ है।

इन गाथाओं में सामाजिक चित्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनमें हमें वर्णव्यवस्था का भेदभाव, राजकुमारी, रानी, सेठानी, सुशिक्षित तथा सुसभ्य ब्राह्मणी, दासी, वेश्या, नाचने-गाने तथा सुंदरता और कटाक्षों द्वारा जीविकोपार्जन करने वाली, भिखारिन, पहाड़िन, व्याध की स्त्री तथा और कई प्रकार की स्त्रियों के दर्शन होते हैं। उनको बुद्ध धर्म की ओर आकृष्ट करने वाले तत्त्व भी अनेक हैं। कहीं बुद्ध का जीवन तथा व्यक्तित्व, कहीं उच्चकोटि का उपदेश, कहीं संवेग, कहीं प्राचीन संस्कार, इसी प्रकार पुत्र-मरण, वैधव्य-निराशा, पति या पुत्र का व्यवहार, खेद, अपमान, दुराचार इत्यादि उन्हें बौद्ध धर्म की ओर झुकाते हैं और नवीन वातावरण में उन्हें आनंद शांति और स्वतंत्रता की प्राप्ति होती है।

थोरातांची कमला *(म० पा०)*

नारायण मुरलीधर गुप्ते अर्थात् बी (दे०) कवि रचित 'कमला' नामक ऐतिहासिक खंडकाव्य की यह नायिका है। महाराज संभाजी और थोरात की रूपवती कन्या कमला के प्रेम की अद्‌भुत कथा का निवेदन 'कमला' नामक काव्य में हुआ है। कमला आदर्श हिंदू स्त्री तथा कुलीन कन्या है। संभाजी के व्यक्तित्व पर वह आसक्त है। संभाजी कमला को विवाह का वचन दे भगा ले जाता है, बाद में अपना वचन पूरा न कर उसे अपने महल में बंदी बना लेता है। बंदी होने पर कमला के मन में भीषण अंतर्द्वंद्व होता है, उसे अपने किए का पश्चात्ताप होता है। वह सोचती है कि मैंने थोरात के उच्च कुल में जन्म लिया था परंतु आज मेरा चारित्रिक पतन हुआ है कि मैं रखैल बन गई हूँ और लोग मुझे कलंकिनी कहकर मेरी अवहेलना करते हैं। मेरी जिस पवित्र देह ने परिणय-बंधन में आबद्ध होने से पूर्व आलिंगन, चुंबन आदि किया उसे धिक्कार है। प्रायश्चित्त की आग में जलते हुए अपनी देह के प्रति वितृष्णा का भाव होने के कारण जहाँ कमला क़ैद है वहीं से कूद कर अंत में आत्महत्या करती है। अभी भी वह स्थान 'कमला बुर्ज' के नाम से ख्यात है।

इस प्रकार कवि ने कमला जैसे ऐतिहासिक पात्र की योजना कर एक अपूर्व प्रेमकथा लिखी है जिसमें शील की रक्षा का मूल्य प्राणों से भी अधिक बताया गया है।

दंडपाणि स्वामिहळ् *(त० ले०)* [जन्म—1840 ई०; मृत्यु—1899 ई०]

संस्कृत तत्सम शैली में यह नाम 'दंडपाणि स्वामी' है। इनकी प्रसिद्ध कृति 'पुलवर् पुराणम्' (कवियों का पुराण) है जिसमें तमिल कवि-गण के संबंध में प्रचलित किंवदंतियों एवं कथाओं को रोचक पद्य-शैली में प्रस्तुत किया गया है। स्वभावतः इस कृति में ऐतिहासिक सत्यता पर ध्यान कम दिया गया है। इनकी अन्य पद्य-रचनाएँ प्रसिद्ध मंदिरों पर उत्तरकालीन 'कौवै', 'कलम् पकम्', 'तलपुराण', 'अंतातिʼ इत्यादि विधाओं की हैं जैसा कि उनके 'तिरुच्चेन्त रक्कोवै', 'तिरुभयिलैक्कलम्पकम्', 'आमात्तु्रत तलपुराणम्' तथा 'तिरुवै यार्‌रन्तातिʼ नामों से स्पष्ट होता है। इनके दो शास्त्रीय ग्रंथ भी हैं—'वण्णत्तिलक्कणम्' (छंद-लय के लक्षण), 'अरुवकै इलक्कणम्' (पट्लक्षण)।

दंडी *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 660 ई० से 680 ई० के बीच]

दक्षिण देशवासी दंडी कांचीपुरम् के पल्लव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरेश की सभा के रत्न थे। ये महाकवि भारवि (दे०) के प्रपौत्र कहे जाते हैं इनके समय के विषय में अनेक विसंवाद हैं। डा० काणे ने इनका समय 660 ई० से 680 ई० के बीच माना है।

दंडी कवि और आचार्य दोनों हैं। इनके नाम से तीन कृतियों के होने की ख्याति पहले से ही है। 'काव्यादर्श' (दे०) एवं 'दशकुमारचरित'– इन दो के विषय में तो कोई विवाद नहीं है पर इनकी तीसरी कृति क्या है, इस पर अनेक विसंवाद हैं। कुछ लोग तो 'मृच्छकटिक' को ही इनकी तीसरी कृति मानते हैं। पर अधिकतर विद्वानों ने 'अवंतिसुंदरीकथा' को तीसरा स्थान दिया है। इन तीनों में से 'काव्यादर्श' साहित्य-शास्त्र-विषयक ग्रंथ है तो शेष दोनों गद्य-काव्य की रचनाएँ हैं।

दंडी कवित्व एवं आचार्यत्व दोनों में ही सफल रहे हैं। 'काव्यादर्श' काव्य-तत्त्वों की सर्वथा मौलिक रूप में मीमांसा करता है। 'अग्निपुराण' इसका बहुत ऋणी है। इनकी गद्यरचनाएँ बाद के कवियों के लिए अनुकरणीय रही हैं।

दंदुवा द्रोह *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

रजनीकांत बरदलै (दे०) के इस उपन्यास में कामरूप के लोगों का आहोम-शासन के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह दिखाया गया है। दो भाइयों—हरदत्त और वीरदत्त—के नेतृत्व में यह विद्रोह हुआ है। वीरदत्त मारा जाता है और हरदत्त गिरफ़्तार होता है। उसका कोर्ट मार्शल होता है। उसकी लड़की गिरफ़्तारी से बचने के लिए ब्रह्मपुत्र में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। श्री लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) ने भी दंदुवा द्रोह को आधार मानकर 'पदुम कुँवरी' उपन्यास लिखा था। तुलनात्मक दृष्टि से बरदलै की कृति अधिक सुंदर बन पड़ी है।

दक्षिण आफ्रीका ना सत्याग्रह नो इतिहास *(गु० कृ०)*

भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन का सूत्र अपने हाथ में ग्रहण करने के पूर्व महात्मा गांधी ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्ष दक्षिण अफ़्रीका में बिताए थे। ये वर्ष एक प्रकार से सत्याग्रह का प्रशिक्षण-काल थे। दक्षिण अफ़्रीका में बसे भारतीय —स्वतंत्र या 'गिरमिटिया' मज़दूर—किस प्रकार अँग्रेज़ों के अत्याचारों से संत्रस्त थे, उन पर कैसे-कैसे सितम होते थे, उनके लिए कैसे-कैसे विचित्र क़ानून थे—आदि का सही-सही परिचय बापू ने इस ग्रंथ में दिया है।

ग्रंथ में दो खंड (362 पृष्ठ) हैं। इसका प्रकाशन भी नवजीवन प्रकाशन ने किया है। ग्रंथ का महत्व उतना ही है, जितना गांधी जी की आत्म-कथा का। अफ़्रीका में निवास करने वाले भारतीयों की मुक्ति एवं सुधरी स्थिति के लिए बापू ने घोर पुरुषार्थ किया था उसका प्राथमिक विवरण इस कृति में है। प्रथम खंड में अफ़्रीकावासी भारतीयों, गिरमिटियों, मज़दूरों की दुर्दशा, बोअर युद्ध, काला क़ानून, स्त्रियों व आठ वर्ष की उम्र से ऊपर के बच्चों के लिए भी अफ़्रीका में रहने के लिए कार्ड बनवाने व हस्ताक्षर या अँगूठे की अनिवार्यता आदि कड़े नियमों का वर्णन है। दूसरे खंड में इनके विरुद्ध आंदोलन, सत्याग्रह, उसकी प्रगति व अंत में विजय तथा नियमादि रद्द किए जाने की घटना वर्णित है। बापू की दृढ़ता, सत्याग्रह की पद्धति, तितिक्षा, सत्य, अहिंसा व उसके सुपरिणाम इस कृति में अंकित हैं।

दत्त, अक्षयकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1820 ई०; मृत्यु—1886 ई०]

आधुनिक बँगला साहित्य के उत्थान काल में अक्षयकुमार दत्त ने निबंधकार के रूप में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। साहित्य-जगत् में कवि के रूप में इनका प्रथम आत्मप्रकाश हुआ था। इनका काव्य-ग्रंथ 'अनंगमोहन' 1834 ई० में प्रकाशित हुआ था। गद्यकार के रूप में ये उस समय की विख्यात पत्रिका 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' के माध्यम से उभर कर सामने आए थे। 1843 ई० से लेकर 12 वर्ष तक इन्होंने इसका संपादन किया था। इस पत्रिका में साहित्य, विज्ञान, समाज-नीति, दर्शन आदि विभिन्न विषयों में लिखकर इन्होंने बँगला गद्य को सुप्रतिष्ठित करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया था।

इनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'बाह्य बस्तुर सहित मानव प्रकृतिर संबंध-विचार' (दो खंडों में) 1853 ई० में प्रकाशित हुआ था। तीन खंडों में 'चारुपाठ' (1853-59 ई०) प्रबंधों का संग्रह है। इन प्रबंधों में लेखक की चिंतनधारा की स्पष्टता तथा वैज्ञानिक चेतना एवं व्यक्तित्व की स्पष्ट स्वीकृति मिलती है। 'भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय' (1870, 1883 ई०) तथा 'धर्मनीति' (1885 ई०) इनकी दो और प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षयकुमार की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इन्होंने बँगला गद्य को व्यक्तित्व-विशिष्ट बनाया है। अँग्रेज़ी लेखक एडिसन की शैली से प्रभावित होने पर भी इन्होंने शब्द-प्रयोग तथा वाक्य-गठन-रीति में युक्ति-निष्ठ वैज्ञानिक मन का प्रशंसनीय परिचय दिया है। इनके निबंध-साहित्य का वास्तविक उद्देश्य ज्ञान-प्रचार है और इसमें इन्हें विशेष सफलता मिली है।

दत्त, नीलिमा *(अ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

जन्म-स्थान : सिलघाट। इनकी शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय में हुई थी। ये व्यवसाय से प्राध्यापिका हैं।

प्रकाशित रचनाएँ— 'शिशु विकास' (1955), (मनोविज्ञान), 'शिशु आरु परिबेश' (1957), 'नारीर मुक्ति' (समाजशास्त्र) (1957)। 'महत लोकर लरालिकाल' (जीवनियाँ) (1956)।

'बछरर कविता—1965' में इनकी एक कविता 'कापुरुष' संगृहीत है। इससे प्रेरणा मिलती है कि विद्रोही का अन्याय सहना भी अन्याय है। इसकी ख्याति शिशु-मनोविज्ञान-विषयक साहित्य के कारण है।

दत्त, प्रेमनारायण *(अ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

ये संप्रति उजान बाजार निवासी हैं। ये गद्य-लेखक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक** : 'कंठरोल' (1950) 'सत्कार' (1956); **जासूसी उपन्यास** : 'दिन डकाइत' (1947), 'राम टाङोन' (1950); **सामाजिक उपन्यास** : 'नियतिर निर्माली' (1955), 'प्रणयर सुँति, प्राणर परश' (1957), 'मुक्तिर पथे दि' (1956); **कहानी** : 'आशीर्वाद' (1950), 'रसर उत्पत्ति' (1951); **निबंध-संग्रह** : 'रस माधुरी' (1959)।

इनकी ख्याति जासूसी उपन्यासकार के रूप में अधिक है। इन्होंने लगभग तीस जासूसी उपन्यास लिखे हैं। 'सत्कार' नाटक व्यंग्य-प्रधान है। चरित्रांकन और परि-स्थिति चित्रण में अतिरंजना है किंतु हास्य के लिए ये तत्त्व आवश्यक हैं। कहानियों में भी व्यंग्य है; सेक्स भी है, किंतु अश्लीलता नहीं है। 'रस-माधुरी' में हास्य-निबंधों का संग्रह है।

दत्त, भवानंद *(अ० ले०)*

नयी पीढ़ी के इस सशक्त लेखक की असमय मृत्यु हो गई थी। ये जयंती युग की नवीन काव्यधारा के मुख्य कवि थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'रवींद्र प्रतिभा' (1961)।

इन्होंने 'राजपथ', 'पाउदार' आदि कविताओं द्वारा काव्य-जगत में प्रवेश किया था। इन्होंने टूटते हुए समाज की दस्युता, यौन-विकार और नैराश्य का चित्रण किया है। इनकी गद्य शैली पुष्ट एवं सारगर्भित है।

दत्त, रमेशचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1848 ई०; मृत्यु—1909 ई०]

प्रख्यात इतिहासवेत्ता तथा साहित्यकार रमेश-चंद्र दत्त ने अपने युग में ऐतिहासिक उपन्यास तथा अँग्रेज़ी शोध-ग्रंथों की रचना कर भारतीय विद्वन्मंडली में अपना विशेष स्थान बना लिया था। आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर इन्होंने सम्मान के साथ प्रशासनिक कार्य किया और अवकाश ग्रहण करने के उपरांत लंदन विश्वविद्यालय में कई वर्षों तक भारतीय इतिहास के अध्यापन का कार्य भी किया।

उनके उपन्यास 'बंगविजेता' (1874) और 'माधवीकंकन' (दे०) (1877) में इतिहास और गार्हस्थ्य-जीवन का मणिकांचन योग है। 'जीवन-प्रभात' (1878) तथा 'जीवन-संध्या' विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं जो क्रमशः महाराष्ट्र तथा राजस्थान के इतिहास से संबद्ध हैं। 'संसार' (1886) तथा 'समाज' (1893) उनके सामाजिक उपन्यास हैं।

बंकिमचंद्र की प्रेरणा से ही रमेशचंद्र दत्त ने उपन्यास लिखना शुरू किया था। बंकिम की तरह उनकी कल्पना दीप्त नहीं थी परंतु ऐतिहासिक सत्यनिष्ठा उनमें बंकिम से अधिक थी। सामाजिक उपन्यासों में रमेशचंद्र दत्त ने अपार सहानुभूति के साथ ग्राम-जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। 'समाज' उपन्यास में लेखक ने विधवा-विवाह का समर्थन किया है परंतु यहाँ वे उपन्यासकार से अधिक समाज-संस्कारक ही लगते हैं। चरित्रों के प्रति पाठकों की सहानुभूति जगाने में वे सफल नहीं हैं, परि-णामतः इस प्रकार के विवाह के प्रति दर्शकों के मन में समर्थन पैदा नहीं कर पाए हैं यद्यपि इससे उनकी जनप्रियता कम नहीं हुई। बँगला साहित्य में रमेशचंद्र सार्थक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में स्मरणीय रहेंगे।

दत्त, सत्येंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

रवींद्रनाथ ठाकुर जब बँगला साहित्याकाश में मध्याह्न-सूर्य की तरह दीप्तिमान थे तभी सत्येंद्रनाथ का आविर्भाव हुआ। फिर भी स्वातंत्र्य एवं वैशिष्ट्य की दृष्टि से निस्संदेह ये अपने को सुप्रतिष्ठित कर सके थे।

सत्येंद्रनाथ दत्त का काव्य-जीवन सन् 1900 से लेकर 1922 ई० तक प्रसारित है। इस स्वल्पायु में भी वे महत् प्रतिष्ठा के अधिकारी बने। छंद के जादूगर सत्येंद्रनाथ का प्रथम काव्य-ग्रंथ 'सविता' (1900) है। छंद के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोगकर्म के भीतर से इनकी कविसत्ता का प्रस्फुटन होने पर भी उसकी प्रतिष्ठा और विस्तृति का क्षेत्र दूसरा है।

सत्येंद्रनाथ की जीवितावस्था में प्रकाशित ग्रंथों के नाम हैं—'सविता' (1900), 'संधिक्षण' (1905), 'वेणु ओ वीणा' (1906), 'होमशिखा' (1907), 'तीर्थ-सलिल' (1908), 'तीर्थरेणु' (1910), 'फुल्लेर फसल' (1911), 'कुछ ओ के का' (1912), आदि। कवि की मृत्यु के बाद प्रकाशित ग्रंथों के नाम हैं 'वेला शेषेर गान' (1923), 'विदाय आरति' (1924) एवं 'धूमेर धोयांय' (1929)।

सत्येंद्रनाथ के कवि-चित्त में समग्र भारतवर्ष का एक अपरूप परिचय स्वतः उद्भासित है। भारतवर्ष के अतीत इतिहास की मर्मकथा के जयगान से इनकी कविता मुखरित है। दूसरी ओर दैनंदिन जीवन के तुच्छातितुच्छ विषयों को लेकर भी इन्होंने सफल काव्य का निर्माण किया है। अँग्रेज़ी, फ़्रांसीसी, जापानी, जर्मन, फ़ारसी आदि विभिन्न भाषाओं की कविताओं का अनुवाद कर इन्होंने बँगला काव्य के क्षेत्र का विस्तार किया है।

व्यंग्य कविता के क्षेत्र में भी सत्येंद्रनाथ की सफलता असंदिग्ध है। 'सबुजपत्र' (दे०) में श्री नवकुमार कविरत्न के छद्मनाम से इन्होंने बहुत-सी व्यंग्य-कविताओं की रचना की है। व्यंग्य-कविताओं में इनके अश्रुसिक्त मन का परिचय बहुत ही स्पष्ट है।

दत्त, सुधींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

आधुनिक युग के बँगला कवि सुधींद्रनाथ दत्त ने मैलार्मे से प्रभावित होकर बँगला काव्य के क्षेत्र में कई नये प्रयोग किए हैं। मैलार्मे एवं उनके अनुगामी प्रूस्त (Proust) के प्रभावस्वरूप इन्होंने अभिजातवादी शिल्पनिष्ठता, संहत स्वल्पभाष, व्यंजनामय प्रकाश-शैली, अतींद्रियता के स्थान पर ऐंद्रिय घनता, व्यक्तिनिष्ठता के साथ निर्वैयक्तिकता एवं प्रेरणा के स्थान पर अभिज्ञता एवं अध्यवसाय एवं सर्वोपरि प्रूस्त के विषण्ण नेतिवादी जीवन-दर्शन एवं कदाचित् उनकी दुरूहता को स्वीकार किया है। परिणामतः इनकी कविता में एक ओर जहाँ आत्मा के वास्तव अस्तित्व को नकारा गया है वहाँ बुद्धि पर कवि की अनास्था, प्रेम की अवास्तविकता एवं इंद्रियग्राह्य अनुभूति को प्रकट किया गया है। इसीलिए इनका काव्य भ्रष्ट आदम का आर्त्तनाद-सा लगता है। ये स्वर्गच्युत हैं परंतु मर्त्य में विश्वास नहीं, इनमें विवेक है परंतु शांति नहीं, युक्ति है किंतु इनका मन आत्मग्लानि से भरा हुआ है।

इसी मनोभाव की अभिव्यक्ति हुई है इनके काव्य-ग्रंथों में जिनमें उल्लेखनीय हैं: 'अर्केष्ट्रा' (1935), 'क्रंदसी' (1937), 'उत्तरफाल्गुनी' (1940), 'संवर्त्त' (1953), 'दशमी' (1956)। अंतिम दो काव्य-संग्रहों में इनके जीवन-दर्शन का विवर्तन स्पष्ट है। नेतिवाद के साथ-साथ इनकी कविता में अस्तित्ववाद का आभास भी मिलने लगता है। इसीलिए ध्वंस को अनिवार्य जानते हुए भी कवि का मन पलाश के फूल से मुग्ध है; तटी जलमग्न हो जायेगी, मगर फिर भी मन निरुद्देश्य यात्रा के लिए चंचल है, पृथ्वी को अनाथ जानते हुए भी नये जीवन का स्वप्न जाग उठा है और यद्यपि प्रलय के बादल छा गए हैं फिर भी पंगु पंख उड़ने के लिए व्यग्र हो उठे हैं। कवि की यह स्वकीयता ही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

दत्तांची कविता *(म० कृ०)*

'दत्तांची कविता' दत्तात्रय कोंडो घाटे (1875-1899 ई०) का काव्य-संग्रह है। घाटे आधुनिक काल के प्रथमोत्थान (1885-1905 ई०) के कवि हैं।

इन्होंने प्रेम, प्रकृति, राष्ट्रभक्ति आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। कुछ अँग्रेज़ी कविताओं का अनुवाद भी किया है। इनका महत्व वात्सल्यपूर्ण तथा करुण गीतों की रचना के कारण है। अँग्रेज़ी के पर्याप्त विकसित बाल-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर इन्होंने अनेक शिशु-गीत लिखे हैं। 'शहाणी बाहुली', 'बोलत कां नाही ?', 'बाललेखन', 'अआई' आदि कविताओं में बाल मनोविज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सूक्ष्म अध्ययन का परिचय मिलता है।

'प्रिये कविता सुंदरी', 'एक आसन्नमरण दुष्काळ पीडितास', 'मेनकेचे उद्गार' आदि कविताएँ कारुण्य से ओतप्रोत हैं। इनमें कवि का स्वर आर्त्त एवं शब्द-योजना आर्द्र है।

इन्होंने लगभग 50 कविताओं के बल पर ही कवि-रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की है।

दधिवाड़िया, माधवदास (*हिं० ले०*) [जन्म—1553 ई० से 1558 ई० के मध्य; मृत्यु—1633 ई० के लगभग]

इनके पिता का नाम चूंडा जी था। इनका जन्मस्थान जोधपुर-राज्य का बलूंदा ग्राम कहा जाता है। पृथ्वीराज राठौड़ ने निम्नांकित दोहे में इनकी प्रशंसा की हैं—

चूंडे चत्रभुज सेवियौ, ततफल लागौ तास।
चारण जीवौ चार जुग, मरौ न माधौदास॥

'रामरासौ' तथा 'भाषा दशम स्कंध' नामक इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'रामरासौ' डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) में लिखित सरस राम-कथा-काव्य है, जिसमें विषय-वर्णन, भाव-व्यंजना एवं अलंकार-योजना-संबंधी कई मौलिक उद्भावनाएँ मिलती हैं।

✓**'दबीर'** (उर्दू० ले०) [जन्म—1803 ई०; मृत्यु—1875 ई०]

जन्म-स्थान—दिल्ली; नाम—मिर्ज़ा सलामत अली, उपनाम—'दबीर'। दबीर मर्सिया (दे०) (शोक-गीत)-लेखन में सिद्धहस्त थे। इनको और मीर 'अनीस' (दे०) को मर्सियागोई के क्षेत्र में आज भी शीर्षस्थान प्राप्त है। इनकी उपमाएँ नवीन, पद-शैया सुव्यवस्थित, भाषा भावानुकूल और कल्पनाएँ उत्कृष्ट हैं परंतु शब्दालंकार के प्रति इनका अत्यधिक मोह दृष्टिगोचर होता है। मर्सियों में सर्वत्र इनकी प्रतिभा और बौद्धिक उत्कर्ष का परिचय मिलता है।

दमयंती (सं० पा०)

संस्कृत के काव्यात्मक साहित्य में उपलब्ध नल (दे०) एवं दमयंती की कहानी भी प्रणय की कहानियों में अपना अपूर्व स्थान रखती है। दोनों एक-दूसरे को बिना देखे ही हंसों के माध्यम से एक-दूसरे के रूप एवं गुणों पर मुग्ध हो गए। विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री दमयंती अपने समय की सर्वाधिक सुंदरी मानी जाती थी। उसने नल को ही अपना पति चुन लिया जबकि उसके चाहने वालों में से इंद्र, यम, वरुण एवं कुबेर भी थे।

नल में अनेक गुणों के साथ एक दोष था—द्यूत-क्रीड़ा का, जिसमें वह सारा राज्य हार गया। दमयंती उसके संग जंगल गई जहाँ नल उसे सोती हुई छोड़कर चला गया। विलपती हुई वह पहले तो एक अजगर के चंगुल में फँस गई जिसे मारकर एक व्याध उसके ऊपर हावी हुआ। यह दमयंती के चरित्र के ऊपर प्रहार था लेकिन दमयंती ने विकराल रूप धारण किया तो वह उसके तेज को सहन न कर सका और तुरंत कटे वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा। बाद में वह जैसे-तैसे अपने पिता भीम के घर पहुँची।

दमयंती का प्रेम इतना उद्दाम था कि नल के बिना उसका वहाँ रहना ही दुष्कर हो गया। अंत में गुप्तचरों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ नल है तो पुनः स्वयंवर की बदनामी को लेकर भी कम-से-कम समय देकर ऋतुपर्ण को बुलाया गया। दमयंती नल के रथ हाँकने की ध्वनि पहचानती थी। वह उसके बनाए भोजन का स्वाद भी नहीं भूला था और अंत में वह नल को पुनः पाकर ही रही।

दमोदर (पं० ले०) [समय—सोलहवीं शती]

पंजाबी साहित्य में किस्सा-काव्यधारा को आरंभ करने का श्रेय दमोदर को दिया जाता है। इनकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'हीर दमोदर' (दे०) में चूचक सियाल की पुत्री हीर और हज़ारा निवासी मौजू के पुत्र राँझा के प्रेम का रसपूर्ण वर्णन है। इस रचना में कवि ने कुछ आत्म-विषयक संकेत दिए हैं, जिनसे पता चलता है कि वे गुलाटी खत्री थे और कहीं बाहर से आकर हीर के पिता के नगर में दूकान करने लगे थे। रचना के अंत में 'पातसाही जो अकबर संदी दिन दिन चढ़े सवाए' से अकबर के शासन की समृद्धि की कामना की गई है। इस आधार पर कवि को अकबरकालीन मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है और घटना के प्रत्यक्ष दर्शन की बात कवि-प्रौढोक्ति मात्र स्वीकार करनी पड़ती है। दमोदर ने भक्ति-भावना से आच्छादित तत्कालीन पंजाबी साहित्य में श्रृंगारपरक आख्यान-काव्य की एक नयी प्रवृत्ति का प्रवर्त्तन किया जो परवर्ती काल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशक्त और जीवंत काव्यधारा के रूप में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक लोकप्रिय रही।

दयाराम *(गु० ले०)* [समय—1776-1888 ई०]

गुजराती के मध्ययुगीन कवियों में अंतिम कवि दयाराम नर्मदा तटवर्ती चाँदोद ग्राम के निवासी थे। दस वर्ष की अवस्था में पिता प्रभुराम भट्ट को और बारह वर्ष की अवस्था में माता को खोकर ये अपनी एक चचेरी बहन के पास रहे थे। उसके स्वर्ग सिधारने पर ये अपने मामा के यहाँ डमोई में आकर रहने लगे थे।

शुद्धाद्वैत का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इन्होंने समग्र भारत की तीन बार यात्रा की थी। सात बार ये श्रीनाथ जी गए थे। ये बहुत सुदर्शन थे, रसिक भी। संगीत तथा सुंदर वस्त्र-परिधान का इन्हें बहुत शौक था। ये ब्रज, मारवाड़ी, मराठी, पंजाबी, बिहारी, सिंधी व उर्दू भी जानते थे। ये आजन्म अविवाहित रहे। अपनी मधुर गरबियों के कारण गुजरात के लोक-हृदय में—विशेषतः नारी-हृदय में—इन्होंने अनूठा स्थान प्राप्त किया था।

इनकी रचनाएँ हैं—'रसिक-रंजन', 'भक्ति-विधान', 'सिद्धांत-सार', 'संप्रदाय-सार', 'पुष्टिपथ-सार', 'रसिक-वल्लभ', 'भक्तिपोषण', 'पुष्टिपथ-रहस्य', 'श्रीकृष्ण-नाम-माहात्म्य-मंजरी', 'श्रीकृष्ण-स्तवन-चंद्रिका', 'नाम-प्रभाव बत्रीशी', 'भक्तवेल', चौरासी वैष्णव ना धोळ', 'पुष्टि-भक्त-रूपमालिका', 'श्रीहरि-भक्ति-चंद्रिका', 'ब्राह्मण-भक्त-विवाद', 'मीराँ-चरित्र', 'कुँवर बाई नुं मामेरूं', 'रुक्मिणी-विवाह', 'रुक्मिणी-सीमंत', 'सत्यभामा-विवाह', 'नग्न जीती विवाह', 'अजामिलाख्यान', 'भागवतानुक्रमणिका'। 'दयाराम-रससुधा' (दे०) इनके रास, पद, गरबे व गरबियों का संग्रह है। दयाराम की प्रतिभा का सर्वाधिक विकसित रूप इनकी गरबियों में दिखाई पड़ता है। ये गरबियाँ इनकी प्रगीति-रचनाओं का उच्चत्तम रूप हैं। हिंदी में इन्होंने सतसई भी लिखी थी। इनकी माधुर्य-भावना व प्रणय-मस्ती अनूठी है। 'षड्ऋतु वर्णन', 'मनमति संवाद', 'मन प्रबोध', 'चिता चूर्णिका', 'प्रबोध बावनी' इनकी अन्य-रचनाएँ हैं। ब्रजभाषा में रचित इनकी 'वस्तु वृंद दीपिका' भी उल्लेख्य है। गद्य में इन्होंने 'भागवत-सार', 'हरिहर-तारतम्य', 'प्रश्नोत्तर-माला', 'क्लेश-कुठार' रचनाएँ की हैं। मध्ययुगीन प्रतिभाशाली गीतिकार तथा प्रणय-कवि के रूप में इन्हें सदैव याद किया जाएगा।

दयाराम-रस-सुधा *(गु० कृ०)*

स्व० लीलावती बहन सेठ की स्मृति में प्रकाशित तथा श्री शंकरप्रसाद छगनलाल रावल द्वारा संपादित 'दयाराम-रस-सुधा' भक्त कवि दयाराम (दे०)-रचित रास, पद, गरबे व गरबियों का संग्रह है। दयाराम की समस्त रचनाओं में से भाव की पुनरावृत्ति वाले दस-बारह गरबों को छोड़कर शेष सारी रचनाएँ इसमें संकलित हैं। प्रारंभ में चौंसठ पृष्ठ की भूमिका है जिसमें संपादक ने दयाराम का व्यक्तित्व व कृतित्व, पुष्टिमार्गीय भक्ति-तत्त्व, 'गीति' का स्वरूप, गीति की परंपरा, गरबा, गरबी, रास व पद का स्वरूप व विकास, दयाराम की प्रणय-मस्ती, दयाराम का गोपी-भाव, दयाराम की भाषा आदि विषयों पर विस्तृत व विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

संग्रह में संकलित रचनाओं में कुछ वियोग-श्रृंगार-विषयक, कुछ संयोग-श्रृंगार-संबंधी, कुछ मुरली-संबंधी, कुछ भक्ति-विषयक, कुछ उपदेश-प्रधान, कुछ ज्ञान-मूलक हैं। कुछ में कृष्ण-गोपी-संवाद तथा उत्तर-प्रत्युत्तर हैं। इन रचनाओं में गोपियों का कुब्जा के प्रति कुछ में तो आदर भाव है, कुछ में सौतिया डाह भी। मुरली के प्रति भी गोपियों के अनुकूल-प्रतिकूल मिश्र भाव हैं।

दयाराम का विरह-वर्णन बड़ा मार्मिक है। इनका संभोग श्रृंगार किंचित् खुला हुआ प्रतीत होता है। संयोग-वियोग दोनों की इनकी रचनाएँ मार्मिक, उद्धत व अत्यंत प्रभावशाली हैं। अपनी इन रचनाओं के कारण, विशेषतः अपनी गरबियों के कारण, दयाराम गुजरात के महिला-हृदय का कंठहार बन गए हैं। इनकी भाषा का कुछ जानपदीय तत्त्व भी इष्ट प्रभाव डालने में समर्थ हुआ है। गुजराती के भक्त-कवियों की यशस्वी परंपरा के अंतिम किंतु समर्थ प्रतिनिधि कवि दयाराम की रचनाओं के इस संकलन में दयाराम की प्रणय-मस्ती व गोपी-भाव दृष्टिगत होते हैं। गुजरात की विशिष्ट संस्कृति व रास-साहित्य में इस रस-सुधा का महत्वपूर्ण स्थान है। संग्रह में अंत में 12 पद ब्रजभाषा में रचित हैं।

'दरद', ज्ञानी हीरासिंह *(पं० ले०)*

इनका जन्म रावलपिंडी के घघरोट गाँव में 30 सितंबर, 1889 ई० को हुआ था। बचपन से ही इन्हें कविता लिखने का शौक था। पहले 'दुखिया' उपनाम था लेकिन सन् 1918 में 'दरद' उपनाम से कविता लिखने लगे। इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू, फ़ारसी, हिंदी, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। 1920 ई० में 'अकाली' दैनिक का संपादन किया और तदनंतर 1924-56 तक 'फुलवाड़ी' मासिक का संपादन करते रहे। इनकी 16 मौलिक रचनाएँ—कविता-संग्रह, कहानी-संग्रह, लेख आदि—प्रकाशित हुई हैं। 'दरद सुनेहें', 'चौणवें दरद सुनेहे, 'किसानदीआं आहीं', 'पंजाबी सधरां', 'ब्रजभूमि ते मलाया दी यात्रा' आदि इनकी मुख्य रचनाएँ हैं जिनका मूल स्वर यथार्थवादी एवं प्रगतिशील रहा है। सन् 1957 में इन्होंने 'केंद्रीय पंजाबी-लेखक-सभा' का संगठन किया और कुछ समय तक 'पंजाब साहित एकादमी' से भी संबद्ध रहे। पंजाबी साहित्य में पत्रकार, कवि एवं गद्यकार के रूप में ज्ञानी हीरासिंह 'दरद' का विशिष्ट स्थान है।

दरबार-ए-अकबरी (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1882-83 ई०]

'दरबार-ए-अकबरी' मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (दे०) की रचना है। इस कृति में अकबर बादशाह के निजी दरबार और शासन के तथा विशेष अधिकारियों, मंत्रियों, धर्म-प्रचारकों एवं सामंतों के वृत्तांत शब्द-बद्ध हैं। इस पर मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी की 'मुंतखिब तवारीख़' का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

'दरबार-ए-अकबरी' आज़ाद के गद्य का अत्यंत रोचक नमूना है। लेखक ने इस इतिहास-ग्रंथ में साहित्यिकता का पुट देकर इसे आकर्षक बना दिया है। इतिहास में उपन्यास की रोचकता उत्पन्न करना आज़ाद का ही कमाल है। इस कृति से साहित्यकार आज़ाद एक सफल इतिहासकार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

दरिया-ए-लताफ़त (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1808 ई०]

लेखक : मीर इंशा अल्लाह ख़ाँ 'इंशा' (दे०)। उर्दू भाषा-शास्त्र, व्याकरण, निबंध मुहावरे और लोकोक्तियों पर लिखी गई यह पहली महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसके लेखक 'इंशा' साहब उर्दू के सुप्रसिद्ध और समर्थ कवि होने के अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी और हिंदी से भी भली प्रकार परिचित थे। इस कृति के दो भाग हैं। प्रथम भाग में उर्दू भाषाशास्त्र और व्याकरण आदि का निरूपण है और द्वितीय भाग में तर्कशास्त्र, छंद और अलंकार आदि का वर्णन है। प्रथम भाग के लेखक 'इंशा' और द्वितीय भाग के लेखक मिर्ज़ा मुहम्मद अहसन 'क़तील' हैं। कृति का पूर्वार्ध अर्थात् प्रथम भाग अत्यंत महत्वपूर्ण और स्थायी मूल्य का है। सैयद इंशा ने उर्दू के अन्य वैयाकरणों की तरह अरबी और फ़ारसी का अंधानुसरण नहीं किया। भाषा को उसके वास्तविक सांस्कृतिक, सामाजिक और स्वाभाविक परिवेश में देखते हुए उसके लिए नियमों और उपनियमों का विधान किया है। लेखक का स्वतंत्र दृष्टिकोण उसकी कृति की स्थायी गरिमा को बनाए हुए है। आधुनिक युग तक आते-आते एतत्संबंधी जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं, उनमें से कोई भी 'इंशा' की इस कृति के स्तर की नहीं है। लेखक का मौलिक चिंतन और अनुसंधानात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण कृति में सर्वत्र द्रष्टव्य है।

'दर्द' (उर्दू० ले०) [जन्म—1719 ई०; मृत्यु—1785 ई०]

नाम—सैयद ख्वाजा मीर, उपनाम—'दर्द', जन्म-स्थान—दिल्ली। इनके पिता 'अंदलीब' उपनाम से काव्य-साधना करते थे। अपने पिता के अनुकरण पर इन्होंने अध्यात्मपरक सूफ़ी-काव्य का प्रणयन किया था। इनकी कविताओं का संकलन फ़ारसी में और दूसरा उर्दू में 'दीवान-ए-दर्द' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त 'नाला-ए-दर्द', 'दर्द-ए-दिल' और 'वारदात-ए-दर्द' भी इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। गद्य-रचना भी इन्होंने की है। इनका काव्य सूफ़ी मान्यताओं से ओत-प्रोत है। ग़ज़लों में प्रेम की पीर का सजीव चित्रण हुआ है।

'दर्शक', मनुभाई पंचोली (गु० ले०)

मनुभाई पंचोली का जन्म सौराष्ट्र में 1904 ई० में हुआ था। इन्होंने गुजरात विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण की और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री नानाभाई भट्ट के सहयोगी बन कर ये ग्राम दक्षिणामूर्ति में अध्यापन और संस्था-संचालन का कार्य करने लगे। इसी के साथ 'दर्शक' उपनाम से साहित्य-सृष्टि करने लगे। इन पर महात्मा गांधी (दे०) के व्यक्तित्व और विचारों का विशेष प्रभाव पड़ा है। बाद मनुभाई ग्राम विद्यापीठ सणोसरा के नियामक एवं आचार्य के रूप में कार्य करते रहे और राजनीति-क्षेत्र में भी सक्रिय रहे।

दर्शक इतिहास, संस्कृति, राजनीति और साहित्य के गंभीर अध्येता हैं। 'बे विचारधाराओ', 'इतिहास कथाओ' 'त्रिवेणी तीर्थ', 'आपणो वैभव अने वारसो', 'वागीश्वरीनां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णफूलो' (दे०) इत्यादि ग्रंथों में इनके स्वतंत्र-मौलिक चिंतन, पैनी दृष्टि तथा गहरे अध्ययन का सहज ही परिचय प्राप्त होता है।

'दर्शक' एक यशस्वी उपन्यासकार हैं। यद्यपि इन्होंने पाँच उपन्यासों की रचना की है, पर उनमें विशेष उल्लेखनीय दो हैं : 'झेर तो पीधा छे जाणी जाणी' (दे०) और 'दीप-निर्वाण'। इन उपन्यासों पर भगवान बुद्ध के लोकमंगलकारी आदर्श और करुणा-भावना का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। दर्शक सिद्धहस्त कलाकार हैं और इनकी अनेक कृतियों में इसके प्रमाण मिलते हैं।

दर्शन अने चिंतन (गु० कृ०)

'दर्शन अने चिंतन' पंडित सुखलाल जी (दे०) के गुजराती लेखों का संग्रह है। दो भागों में प्रकाशित यह ग्रंथ 1957 ई० में पंडित सुखलाल-सम्मान-समिति, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद से प्रकाशित किया गया। संपादक हैं : सर्वश्री दलसुखभाई मालवणिया, पं० बेचरदास जीवराज दोशी, रसिकलाल छोटालाल पारीख (दे०), चुनीलाल वर्धमान शाह (दे०) तथा बालाभाई वीरचंद देसाई। प्रस्तुत ग्रंथ में पंडित जी के 'समाज और धर्म', 'जैन धर्म और दर्शन' तथा 'परिशीलन' नामक शीर्षकों के अंतर्गत अनेक निबंध संकलित हैं। ये सभी लेख समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं अथवा भाषण के रूप में जनता के समक्ष आ चुके हैं। इनके सभी धार्मिक लेखों का एक ही रहस्य है : बुद्धि तथा शुद्ध श्रद्धा से समन्वित सुसंवादी धार्मिक समाज की रचना; निवृत्ति तथा प्रवृत्ति का समन्वय ही वास्तविक धर्म है; बाह्य आचारों की उपयोगिता हृदय की शुद्धि के लिए ही है अन्यथा ये सभी कुछ प्रपंच हैं। दर्शन के क्षेत्र में भी पंडित जी की दृष्टि समन्वयवादी रही है, आग्रह कहीं भी नहीं है। सांप्रदायिक दृष्टि से मुक्त होकर पंडित जी ने जैन धर्म की विशेषताओं का उद्घाटन किया है और साथ ही अन्य दर्शनों की अवधारणाओं से उसकी तुलना की है। यही कारण है कि उनमें नवीन दृष्टि प्राप्त होती है। जैन धर्म को केंद्र में रख कर लिखे गए लेखों के अतिरिक्त कुछ फुटकर लेख 'परिशीलन' के अंतर्गत सामाजिक हैं। इन लेखों में भी 'हिंदी संस्कृति अने अहिंसा', 'तथागतनी विशिष्टतानो मर्म', 'मध्यम मार्ग : श्रद्धा ने मेधानो समन्वय' तथा 'हिंसानी एक आडकतरी प्रतिष्ठा' नामक लेखों में उक्त तथ्य ही उजागर होता है। पंडित जी की लेखन-शैली पूर्णतः स्वच्छ है; वे प्रमेयगत समस्याओं को बड़ी स्पष्टता से उठाते हैं, उनका सही विश्लेषण करते हैं और सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक समाधान की चर्चा करते हैं। भाषा स्पष्ट, सरल और वस्तुपरक है। गुजराती भाषा में जैन धर्म को लेकर जो कुछ लिखा गया है, उसके मूल में एक सांप्रदायिक दृष्टि रही है पर पंडित जी की अनाविल बुद्धि ने उसे तटस्थ भाव से देखने की दृष्टि दी है। यही प्रस्तुत लेखों की उपलब्धि कही जा सकती है। इस रूप में 'दर्शन अने चिंतन' केवल गुजराती भाषा के लिए ही नहीं अपितु जैन और जैनेतर धर्मों के लिए भी एक संग्रहणीय ग्रंथ है।

दर्शनिका (गु० कृ०)

पारसी जाति के जिन थोड़े से कवियों ने शुद्ध और शिष्ट गुजराती भाषा में साहित्य-रचना की है उनमें अरदेशर फ़रामजी ख़बरदार(दे०) 'अदल' (1881-1953) का स्थान सर्वोच्च है। ख़बरदार ने कई विषयों की कविताएँ रची हैं। 'दर्शनिका' उन्हीं का (छह हज़ार पंक्तियों का) सुदीर्घ काव्य-संग्रह है जिनमें धर्म, कविता और दर्शन का सम्मिश्रण है। जीवन, जगत, मृत्यु, आत्मा, परमात्मा आदि के मूलभूत प्रश्नों को इसमें कवि-दृष्टि से उठाया गया है और उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। ख़बरदार स्वयं ज़रथुस्त धर्म के अनुयायी थे, पर इस कृति में उन्होंने कर्म, पुनर्जन्म, प्रभुकृपा, ईश्वरीय मंगलमय योजना आदि हिंदू धर्म की मान्यताओं को एक भक्त के रूप में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया है। इसी के साथ विश्व की भव्यता, विशालता, गहनता तथा सर्वत्र प्रसारित प्रेम की प्रसन्नता को भी शब्दबद्ध किया गया है। 'दर्शनिका' की कविताओं का विभाजन 'जीवन-अस्थिरता', 'मृत्युनुं नृत्य', 'जीवनानुं गान' प्रभृति विभागों में किया गया है। पर इसकी सारी कविताएँ स्वतःपूर्ण प्रगीत-काव्य ही हैं। कवि ने आध्यात्मिकता और परमात्मा की रहस्यमयता को रूपकों तथा प्रतीकों द्वारा रूपायित किया है। मानव-जीवन की दारुण वेदनाएँ, उनके घात-प्रतिघात, मृत्यु की मर्मांतक पीड़ा इत्यादि को व्यावहारिक दर्शन के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। विषय की गंभीरता और गहनता के बावजूद 'दर्शनिका' का काव्य नीरस, क्लिष्ट या भारी-भरकम नही है। उसमें प्रासादिकता है और सरलता एवं स्वाभाविकता है। कहीं-कहीं कवि उपदेशक का रूप ग्रहण कर लेता है और कुछ कविताओं में पुनरुक्ति-दोष पाया जाता है। कहीं-कहीं अभिव्यक्ति गद्यात्मक और तुकबंदी-सी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन थोड़े-से दोषों के होते हुए भी 'दर्शनिका' दर्शन की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का सराहनीय प्रयत्न है।

दलपत-काव्य *(गु० कृ०)*

आधुनिक गुजराती कविता के आदि प्रणेता कविवर दलपतराम (दे०) डाह्याभाई की प्रायः अधिकांश रचनाएँ 'दलपत-काव्य' भाग 1 और 2 में संकलित हैं। गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी ने दलपत-काव्य का प्रथम संस्करण 1879 ई० में प्रकाशित किया था। दूसरा संस्करण दो भागों में प्रकाशित किया गया था।

दलपत-काव्य के प्रथम भाग (776 पृष्ठ) में प्रथम प्रकरण में मंगलाचरण, ग्रंथ-प्रयोजन, गुजराती भाषा की महिमा, नवरस आदि-विषयक कविताएँ हैं। इस अंश में कमलबंध, कदली-प्रबंध, छत्रक-प्रबंध, दर्पण-प्रबंध, गोमूत्रिका, अश्वगति-प्रबंध, कपाट-प्रबंध, चौक-प्रबंध, गतागत स्वस्तिक-प्रबंध आदि चित्रकाव्य-प्रयोग हैं। दूसरे प्रकरण की अधिकांश रचनाएँ प्रकृति-वर्णन-विषयक हैं। तीसरे प्रकरण की बहुत-सी रचनाएँ ईश्वर-विषयक हैं। चौथे प्रकरण में विविध विषयों की रचनाएँ हैं। कहीं-कहीं अलंकारों का सोदाहरण काव्यमय लक्षण-विवेचन भी पाया जाता है। पाँचवें प्रकरण में हंस-शतक तथा अन्य कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं के विषय हैं—अभिमान, लोभ, कंजूसी, उद्योग, नसीब आदि। छठे प्रकरण में लोभ, व्यभिचार, दुर्जन, सज्जन, नम्रता, सद्गुण, दुर्गुण तथा सहोक्ति, व्याघात, विरोधाभास आदि अलंकारों पर कविताएँ हैं। सातवें प्रकरण में विविध विषयों पर रचित गरबियाँ व कच्छ गरबावली संकलित हैं।

दूसरे भाग के प्रथम प्रकरण में अँग्रेज़ी राज्य की प्रशंसा, रानी विक्टोरिया, प्रिंस ऑफ़ वेलस, लार्ड मेयो की मृत्यु आदि पर कविताएँ हैं। दूसरे प्रकरण में पंडित मित्र, मूर्ख मित्र, पतिव्रता स्त्री, मरणोत्तर रोना-पीटना, आदि कुछ सुधारवादी रचनाएँ संकलित हैं।

तीसरे प्रकरण में कवि-मित्र फ़ार्बस के निधन पर शोकगीत हैं। चौथे प्रकरण में लक्ष्मी, राजनीति, हिम्मत रिश्वत आदि से संबंधित कविताएँ; पाँचवें प्रकरण में समस्या-पूर्तियाँ, वक्रोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकार-संबंधी रचनाएँ तथा छठे में वेन-चरित्र, सातवें में विशिष्ट व्यक्तियों की प्रशस्तियाँ और आठवें प्रकरण में होप-वाचन-माला संग्रथित है।

दोनों भागों की संकलित रचनाएँ दलपतराम की काव्य-प्रतिभा की परिचायक हैं। इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व है। काव्य-रूपों व प्रयोगों की दृष्टि से भी ये रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। विषय-वैविध्य तथा समसामयिक जीवन के विचार से ये रचनाएँ उत्तम अभिलेख भी हैं। कविवर के असाधारण छंद-प्रभुत्व तथा अलंकार-ज्ञान का भी परिचय इन रचनाओं में हमें मिल जाता है।

दलपतराम *(गु० ले०)* [जन्म—1820 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

दलपतराम का जन्म वढवाण (सौराष्ट्र) के 'डाह्या वेदिया' के नाम से प्रसिद्ध डाह्याभाई त्रवाड़ी के घर हुआ था। अपने पिता की यज्ञशाला से विद्या आरंभ कर दलपतराम ने मावजी पंड्या की पाठशाला में शिक्षा पूर्ण की। इनके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग हैं: स्वामिनारायण संप्रदाय में दीक्षा, अलेक्ज़ेंडर किन्लाक फ़ार्बस से संपर्क नथा गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी के तत्कालीन मंत्री मि० कर्टिस से भेंट। परिणामस्वरूप इन्होंने धर्मदीक्षा के साथ काव्य-शिक्षा भी ग्रहण की, 'कवीश्वर' की उपाधि प्राप्त की तथा सरकारी नौकरी छोड़कर गुजराती भाषा और साहित्य की सेवा का व्रत लिया। दलपतराम स्वभाव से सरल, विनोदी व सौम्य-प्रकृति के व्यक्ति थे।

दलपतराम ने गद्य में 'भूत निबंध', 'ज्ञाति-निबंध', 'बाल-विवाह निबंध' तथा 'लक्ष्मी' व 'मिथ्याभिमान' (दे०) नामक नाटकों की रचना की। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनका पद्य-साहित्य ही है, गद्य-साहित्य नहीं। 'दलपत-काव्य' (भाग 1, 2), 'काव्यदोहन' (ग्रंथ 1, 2), 'शामण सतसई', 'कथन सप्तशती', 'दलपत पिंगल' और 'हरिलीलामृत' नामक काव्य-ग्रंथ हैं। दलपत की कविता की मूल प्रवृत्ति शिवोन्मुखी रही है। इनकी दृष्टि में नैतिक मानदंड ही काव्य के मानदंड हैं। परिणामतः दलपत की कविता आत्माभिव्यक्ति की कविता नहीं है, उसका मूलाधार व्यवहारनिष्ठता है। 'फ़ार्बस विरह' नामक शोकगीत को केवल इसका अपवाद ही माना जाना चाहिए। गुजराती साहित्य के मध्यकाल और आधुनिक काल के संधि-स्थल पर अवतीर्ण होने के कारण यद्यपि इनके काव्य में आत्मनिष्ठता का सर्वथा अभाव है पर शैली की ऋजुता, भाषा की सरलता, छंदःशास्त्र पर अद्भुत अधिकार तथा अलंकारशास्त्र की गहरी पकड़ आदि गुण इनके कवि-सामर्थ्य को प्रमाणित करते हैं। यह बात दूसरी है कि समय के प्रवाह में इनकी कविता पुरानी और कवित्वहीन प्रतीत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जनप्रिय कथन-शैली की भंगिमा के कारण वह सदा अनुकरणीय रहेगी।

दलपत-विजय *(हिं० ले०)*

इनका कृतित्व-काल सामान्यतः 1673 ई० से 1703 ई० तक माना गया है। ये शांतिविजय नामक जैन साधु के शिष्य थे। इनके लिखे 'खुम्माणरासो' (दे०) नामक प्रसिद्ध काव्य को पं० रामचंद्र शुक्ल (दे०) आदि विद्वानों ने वीरगाथा-काल की रचना माना था, किंतु नवीन शोध के फलस्वरूप यह ग्रंथ सत्रहवीं शताब्दी की रचना सिद्ध हुआ है। इस ग्रंथ में बाप्पा रावल से महाराणा राजसिंह तक के जीवन का वृत्तांत मिलता है। दलपत डिंगल भाषा के सहज प्रवाहपूर्ण रूप के पोषक भावुक कवि थे। उनमें विविध प्रकार के वर्णन करने की अद्भुत क्षमता थी।

दलपतिराइ *(सिं० ले०)*

भाई दलपतिराइ सिंध के प्रसिद्ध वेदांतमार्गी कवि हैं। इनके जन्म और देहावसान का समय अज्ञात है, परंतु इतना निश्चित है कि ये अठारहवीं शती ई० के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शती ई० के पूर्वार्ध में जीवित थे। इनका जन्म सिंध के सेव्हण नामक शहर में हुआ था। ये सरकारी नौकरी के कारण बाद में हैदराबाद सिंध में गए थे जहाँ प्रसिद्ध संत कवि भाई आसुरदास के ज्ञान और व्यक्तित्व से प्रभावित होने के कारण उनके शिष्य बन गए थे। गुरु की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने हैदराबाद में एक मंदिर की स्थापना की थी, जो 'भाई दलपतिराइ जो ठिकाणों' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनकी वाणी के दो संस्करण अधिक प्रसिद्ध हैं, एक के संपादक हैं प्राध्यापक ठक्कुर और दूसरे के संपादक हैं गिदूमल हरजाणी। भाई दलपतिराइ की वाणी सिंधी, सिराइकी (सिंधी की उपभाषा) और हिंदी में है। इनकी वाणी में वेदांत और सूफ़ी मत के सिद्धांतों का सुंदर संगम मिलता है।

दलूराइ *(सिं० पा०)*

सिंध में एक लोककथा प्रसिद्ध है जिसका नायक है राजा दलूराइ। इसके दुष्ट स्वभाव और कुकर्मों के कारण इसका राज्य प्राकृतिक प्रकोपों से नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि राजा दलूराइ दसवीं या ग्यारहवीं शती ई० में सिंध के एक भाग पर राज्य करता था। यह इतना व्यभिचारी था कि इसने क़ानून बना लिया था कि इसके राज्य में जिस कुमारी का विवाह होगा वह पहली रात इसके पास लाई जाएगी। इस कुकर्म के कारण एक रात को आँधी आई, मूसलाधार वर्षा हुई, भूकंप आया और इस पापी का राज्य ध्वस्त हो गया जिससे यह स्वयं भी मिट्टी में मिल गया। सिंधु नदी जो पहले इसके राज्य से बहती थी, वह भी दूर हट गई। इस दंतकथा के आधार पर 1944 ई० में सिंध के प्रसिद्ध लेखक और कवि निर्मलदास फ़तहचंद ने एक ऐतिहासिक उपन्यास 'दलूराइ जी नगरी' लिखा था। दलूराइ अभी तक सिंधी जनता के स्मृतिपटल पर छाया हुआ है।

दवे, जुगतराम *(गु० ले०)*

जुगतराम (चिमनलाल) दवे का जन्म सौराष्ट्र के वढवाण नामक स्थान पर हुआ था और शिक्षा वढवाण, ध्रांगध्रा और बंबई में हुई थी। इनके विचारों पर गांधी जी (दे०) और रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) का गहरा प्रभाव पड़ा था। इन्होंने अपना जीवन देश-सेवा और शिक्षा के कार्यों के लिए समर्पित कर दिया था। 1922-23 ई० के आंदोलन के समय जब देश के सभी प्रतिष्ठित नेता जेल जा चुके थे उस समय 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' का संपादन-भार इन्होंने ही सँभाला था। इनकी मुख्य रचनाएँ हैं : 'चालण गाडी', 'विद्यापीठ वाचनमाला' (पाठ्य पुस्तकें), 'कौशिकाख्यान' (काव्य), 'आंधलानुं गाडुं' (नाटक), 'गांधीजी' और 'भारत-सेवक गोखले' (शब्द-चित्र और जीवन-चरित्र), 'चणीबोर', 'रायण', 'ग्राम-भजन-मंडली' (संपादित गीत-संग्रह)। इन रचनाओं को देखने से स्पष्टतः यह बोध हो जाता है कि जुगतराम दवे की बाल-साहित्य और बाल-शिक्षा में अधिक रुचि थी। गांधी आश्रम में रह कर इन्होंने यही काम सफलतापूर्वक किया।

दवे, ज्योतींद्र *(गु० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

हास्य रस के गुजराती लेखकों में ज्योतींद्र दवे शीर्षस्थ हैं। गत पचास वर्षों से ये व्यंग्य-विनोद-युक्त और दंशमुक्त निबंध लिख रहे हैं जिनमें नाना विषयों का समावेश हुआ है। इनके हास्यपूर्ण निबंधों में कहीं भी अश्लीलता, अभद्रता या अस्वाभाविकता नहीं दिखाई पड़ती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र जीवन के प्रति स्वस्थ-स्वच्छ दृष्टिकोण पाया जाता है। 'रंगतरंग', भाग 1-6, 'मारी नोंधपोथी', 'अल्पात्मानुं आत्मपुराण', 'हास्य-तरंग', 'ज्यां त्यां पडे नजर मारी' (दे०) इत्यादि हास्यमूलक निबंध-संग्रहों के लेखक ज्योतींद्र दवे अपने निबंधों में असाधारण बुद्धि-चातुर्य और अंतर्दृष्टि द्वारा नितांत साधारण, महत्वहीन वस्तुओं को महिमा-मंडित कर गंभीर हास्य की सृष्टि करते हैं। किसी क्षुद्र प्रसंग या नगण्य परिस्थिति को उल्टी-सीधी दलीलों और तर्क-वितर्क द्वारा भव्य रूप देने में ये सिद्धहस्त हैं। व्यंजना, लक्षणा, श्लेष आदि का प्रयोग कर हास्य की सृष्टि करते हैं और पाठकों के चित्त पर अभीष्ट प्रभाव पैदा करते हैं। इनकी भाषा-शैली विषयानुकूल होती है।

ज्योतींद्र दवे गुजराती के प्राध्यापक एवं आलोचक भी हैं। नाट्यशास्त्र के वे माने हुए विद्वान हैं। इनकी वक्तृत्व-कला भी बड़ी लाक्षणिक है जिसमें सदैव हास-उपहास एवं व्यंग्य-विनोद का पुट रहता है।

दवे, मकरंद *(गु० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

आधुनिक युग के अध्यात्मवादी कवि। इनके दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'गोरज' और 'संज्ञा'। इन्होंने अपनी कविता में आज की राजनीति पर कटाक्ष किया है और आज जो विषाद, अवसाद, बिखराव वगैरह जन-जीवन में व्याप्त हैं, उनका चित्र भी खींचा है। इनकी काव्य-शक्ति का माधुर्य तो इनके भजनों में निहित है। इन्होंने लोकगीतों की काव्य-शैली अपनाई है और उस शैली में इन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई है। काव्य के अतिरिक्त इन्होंने अपने आध्यात्मिक अनुभवों पर भी दो पुस्तकें लिखी हैं। इनकी कविता विशेष रूप से भक्ति-प्रधान है।

दशकुमारचरित *(सं० कृ०)*

इस गद्यकाव्य के रचयिता दंडी (दे०) हैं। इसमें दस कुमारों की साहसपूर्ण विजय-यात्रा की गाथा अत्यंत सजीव, ललित और रोचक शैली में प्रस्तुत की गई है। इसी ग्रंथ के कारण दंडी को संस्कृत के परिष्कृत गद्य का जन्मदाता माना जाता है। इसमें शृंगार और हास्य, करुण और भयानक जैसे मित्र तथा अमित्र रसों का अद्भुत मिश्रण है। दंडी वैदर्भी रीति के कवि हैं, अतएव इस ग्रंथ में माधुर्य और प्रसाद गुणों की अद्भुत छटा है। अलंकारों का निपुण प्रयोग दंडी की एक अन्य विशेषता है। राजनीति तथा अन्य कठिन विषयों को इस ग्रंथ में सरल तथा प्रांजल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। इसमें वाक्य छोटे-छोटे हैं जो कि ललित पदों में रचित हैं। दंडी इसे लिखते समय इस तथ्य के प्रति सदा जागरूक रहे हैं कि वे एक कथा लिख रहे हैं, जिसमें भाषा सहज, स्वाभाविक, प्रांजल, अक्लिष्ट और मनोरम होनी चाहिए। यही कारण है कि उनकी भाषा दो अन्य गद्यकाव्यकारों—सुबंधु (दे०) और बाण (दे०)—की तुलना में कहीं अधिक उपादेय एवं अनुकरणीय है। इसके अतिरिक्त दंडी कल्पना के भी धनी हैं। ग्रंथ की कल्पित कथा का सरस और अजस्र प्रवाह इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है। इस ग्रंथ की अन्य विशेषता है कि इसमें असंयम और उच्छृंखलता के मार्ग के स्थान पर स्वस्थ और स्वच्छ पथ का अनुगमन करते हुए कथा को आगे पढ़ने की उत्सुकता बनी रहती है। दंडी ने इसमें प्रकृति का वर्णन किया है, पर उसे इतना अधिक लंबा नहीं होने दिया गया कि कथा-प्रवाह में व्याघात पड़े।

दशम ग्रंथ *(पं० कृ०)* [संपादन-काल—1718 ई०]

गुरु गोविंदसिंह (दे०) की हिंदी (ब्रज), पंजाबी और फ़ारसी की विविध रचनाओं का संग्रह 'दशम ग्रंथ' अथवा 'दसवें पातशाह का ग्रंथ' कहलाता है। इस ग्रंथ का संपादन-संकलन गुरु गोविंदसिंह के देहावसान के लगभग दस वर्ष पश्चात् उनके निकटस्थ शिष्य और लिपिक भाई मनीसिंह ने किया था।

दशम ग्रंथ में जो रचनाएँ संगृहीत हैं, उनका क्रम इस प्रकार है—जापु, अकाल उसतति (अकाल-स्तुति), बचित्र नाटक (विचित्र नाटक), चंडी चरित्र (उक्ति बिलास), चंडी चरित्र (दूजा), वार भगउती जी की (पंजाबी), ज्ञान प्रबोध, चौबीस अवतार, महँदी मीर, ब्रह्मा अवतार, रुद्र अवतार, स्फुट पद, शस्त्र-नाम-माला, उपाख्यान-चरित्र, जफ़रनामा (फ़ारसी), हिदायतें (फ़ारसी)।

दशम ग्रंथ की प्रकाशित प्रतियाँ अभी तक केवल गुरुमुखी लिपि में ही उपलब्ध हैं। मुद्रित पृष्ठों की संख्या 1428 है जिसमें पंजाबी और फ़ारसी की रचनाएँ मात्र 50 पृष्ठों में ही सीमित हैं।

'दशम ग्रंथ' बहुमुखी वैविध्य से मंडित एक विशालकाय रचना है जिसे प्रतिपाद्य और प्रतिपादन-शैली की दृष्टि से प्रायः पुराण कहा जा सकता है। इसमें वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक संप्रदायों से संबंधित देवी-देवताओं की यशोगाथा का वर्णन है। सत्रहवीं शती तक प्रचलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी काव्य-शैलियों (पद्धटिका शैली, पदशैली, दोहा-चौपाई शैली, कवित्त-सवैया शैली) के अतिरिक्त कई अन्य शैलियों के दर्शन भी इस महाग्रंथ में होते हैं जिनमें जाप-शैली, वार-शैली और रेखता-शैली विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रस की दृष्टि से 'दशम ग्रंथ' मुख्यतः वीररस-प्रधान काव्य है। अधिकांश अवतार-कथाओं का वर्णन भी युद्ध-भावना की व्याप्ति के लिए हुआ है; इसलिए उनमें प्रायः कथा-सूत्र की एकता नहीं है।

'दशम ग्रंथ' के कर्तृत्व के संबंध में पिछले तीन-चार दशकों में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। अनेक विद्वान (कनिंघम डा० गोकुलचंद्र नारंग, डा० इंदुभूषण बनर्जी, डा० रतनसिंह जग्गी, प्रभृति) दशम ग्रंथ का एक अंश गुरु गोविंदसिंह द्वारा तथा शेष उनके दरबारी कवियों द्वारा रचित मानते हैं। परंतु पिछले दो दशकों में दशम ग्रंथ का जो अध्ययन किया गया है, उसके आधार पर विद्वानों ने संपूर्ण दशम ग्रंथ को गुरु गोविंदसिंह-विरचित घोषित किया है।

दशरथ *(सं० पा०)*

ये अयोध्या के राजा थे तथा प्रख्यात महापुरुष रामचंद्र (दे० राम) के पिता थे। ये सूर्यवंशी अथवा इक्ष्वाकुवंशी थे। इनके पिता का नाम अज था। ये अतिरथी, यज्ञ करने वाले धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी (दे०)—ये उनकी तीन रानियाँ थीं। पुत्रकामेष्टि यज्ञ द्वारा इन रानियों से चार पुत्रों की उत्पत्ति हुई—राम, लक्ष्मण (दे०), भरत और शत्रुघ्न। दशरथ की एक पुत्री भी थी—शांता। पूर्ण वृद्ध हो जाने पर जब दशरथ कौशल्या-पुत्र राम को युवराज बनाने लगे तो कैकेयी ने इसका विरोध किया कि दशरथ ने विवाह के समय कैकेयी के पिता से यह प्रण किया था कि कैकेयी का पुत्र ही युवराज बनेगा। इसके अतिरिक्त एक बार दशरथ ने कैकेयी को दो वर माँगने को कहा था (दे० 'कैकेयी') तो इस अवसर पर कैकेयी ने राम के लिए वनवास और भरत के लिए राज्य—ये दो वर माँगे। परिणामतः भरत अनिच्छापूर्वक राजगद्दी पर बैठे और राम के साथ लक्ष्मण और सीता भी वन को चले गए, और उनके विरह-शोक में दशरथ की मृत्यु हो गई।

दशरूपक (सं० कृ०) [समम—दसवीं शती का अंत]

नाट्यशास्त्र के इतिहास में धनंजय (दे०) का 'दशरूपक' एक विशिष्ट ग्रंथ है। भरत (दे०) के नाट्यशास्त्र' (दे०) के रूपक-विषयक सिद्धांतों का संक्षिप्त किंतु सर्वांगीण विवेचन इनकी विशेषता है। यह ग्रंथ बाद के नाट्यशास्त्र तथा रसशास्त्र के अनेक ग्रंथों का उपजीव्य रहा है। 'दशरूपक' की रचना मुंज के राज्यकाल में (974 से 994 ई० के बीच) हुई थी।

इस ग्रंथ में चार प्रकाश तथा 300 कारिकाएँ हैं। इन कारिकाओं पर धनिक ने 'अवलोक' नामक टीका लिखी तथा 'काव्यनिर्णय' नामक एक अलंकार-ग्रंथ की भी रचना की।

दशरूपककार का प्रमुख उद्देश्य वस्तु, नेता और रस का विश्लेषण है। रसनिष्पत्ति के विषय में वे भट्टनायक (दे०) के अनुयायी हैं, किंतु कुछ अंशों में श्री शंकुक (दे०) के मत से भी प्रभावित हैं। वे ध्वनिवाद का खंडन करते हैं और व्यंजना को तात्पर्यवृत्ति से भिन्न नहीं मानते। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में शांतरस का भी विरोध किया है। दृश्यकाव्य-विवेचन की दृष्टि से दशरूपक का महत्वपूर्ण स्थान है।

दसतक *(पं० कृ०)*

कवि एस० एस० मीशा (दे०) का यह दूसरा कविता-संग्रह है। इससे पूर्व उनकी कृति 'चुरस्ता' (दे०) प्रकाशित हो चुकी थी। इन कविताओं की रचना-रूपविधि पूर्वनिश्चित-सी प्रतीत होती है। इस विधि की विशेषता उसकी व्यंग्य-प्रवणता में है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ एक निबंध के समान तर्कपूर्ण हैं; इसीलिए वे काव्य की अपेक्षा 'कथन' के अधिक समीप हैं। परंतु कवि कथन को वक्रोक्ति के संस्पर्श से काव्य के समीप लाने का यत्न करता है। 'नत्थू छड़े दी चीक बुलबुले' जैसी साधारणता से लेकर 'मशवरे' की गंभीरता तक के दर्शन इन कविताओं में होते हैं।

दांडीबृत *(उ० पारि०)*

'दांडीबृत्त' साधारणतया 14 वर्णों का होता है। इसका लय-विधान आधुनिक मुक्त छंद जैसा ही है। प्रसंग, भाव तथा घटना के अनुरूप चरण लघु या दीर्घ होते हैं। जहाँ पर भाव थमता है, वहीं लय टूटती है। यह पुराण पाठ की एक विशिष्ट सुखपाठ्य शैली है। 'सारला-महाभारत' (दे०) एवं बलरामदास-कृत 'दांडी रामायण' (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इसका प्रयोग हुआ है।

यह संस्कृत में 'दंडकवृत्त' से भिन्न है क्योंकि दंडक वृत्त में प्रत्येक पाद में 27 वर्ण होते हैं, लघुगुरु-नियम भी सुनिर्दिष्ट होता है और विराम-चिह्न का प्रयोग भी नियमित होता है। दांडीवृत्त में यह सब नहीं होता।

दांडी-रामायण *(उ० कृ०)*

मूल संस्कृत-रामायण की कथावस्तु पर आधारित होते हुए भी बलरामदास (दे०) की 'दांडी-रामायण' तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' (दे०), तमिल की 'कंब-रामायण' (दे०), बँगला की 'कृत्तिवास-रामायण' (दे०), तेलुगु की 'द्विपद-रामायण' (दे०), मलयाळम की 'रामचरितम्' (दे०), कन्नड की 'तोरवे-रामायण' (दे०), असमिया की 'माधव कंदली-रामायण' (दे०) के समान एक स्वतंत्र मौलिक रचना है। वाल्मीकि-रामायण (दे०) की सारकथा के अस्थि-कंकाल के साथ 'दांडी रामायण' की मुख्य विषय-वस्तु के किंचित् सादृश्य के अतिरिक्त मूल ग्रंथ के साथ इसकी किसी भी दृष्टि से कोई समानता नहीं है। बलरामदास ने मूल रामायण के अनेक विषयों का त्याग कर दिया है। साथ ही विभिन्न पुराणों से अनेक प्रसंगों का संग्रह कर कई नूतन विषयों का संयोजन भी किया है; जैसे: दशरथ की कन्या के साथ शृंगी ऋषि के विवाह (अग्निपुराण), हरिश्चंद्र उपाख्यान, अयोध्या कांड में मंथरा के पूर्व-जन्म का प्रसंग, आदि।

'दांडी-रामायण' में बलरामदास ने रामचंद्र-कालीन समाज के चित्रांकन के प्रयास में समसामयिक समाज का बहुलता से चित्रण किया है। इससे उनकी लेखनी सार्थक हो गई है। उड़िया जाति के प्राणों का चित्र उसमें उद्भासित हो उठा है। उन्होंने जगन्नाथ एवं उड़ीसा के विभिन्न प्रसिद्ध क्षेत्रों का वर्णन किया है। छोटे-बड़े अनेक विषयों में स्वतंत्रता दिखाकर कवि ने अनेक रमणीय चित्रों की सृष्टि की है। प्रचलित किंवदंतियों का आश्रय ग्रहण कर कवि ने कई चित्र अंकित किए हैं और वे असंगत या अप्रासंगिक नहीं हैं।

वाल्मीकि-रामायण के विभिन्न कांडों की विषय-वस्तु एवं उनके क्रम का बलरामदास ने निर्वाह नहीं किया है। किंतु इस क्रमपरिवर्तन के कारण 'दांडी-रामायण' विकलांग या शिथिल नहीं होने पाई है। यही उनके घटना-विन्यास का वैशिष्ट्य और कौशल है।

जातीय जीवन-विकास के उत्स के रूप में 'दांडी-रामायण' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसकी वस्तु-कथा के आधार पर उपेंद्र भंज (दे०) ने 'वैदेहीश विलास' (दे०) और बिश्वनाथ खुँटिया (दे०) ने 'विचित्र रामायण' की रचना की है। इसमें प्रयुक्त छंद का अनुकरण प्रायः 'रामलीला' में होता है। परवर्ती युग में अधिकांश उड़िया रामचरित-काव्यों की कथावस्तु के लिए रामायण की कथा-वस्तु अक्षय भांडार सिद्ध हुई है।

दांडीवृत्त (दे०) के प्रयोग के कारण इसे 'दांडी-रामायण' कहते हैं, इससे इस वृत्त की लोकप्रियता एवं विषयानुकूल उपयुक्तता स्पष्ट हो जाती है। जगन्नाथ भगवान का एक नाम जगमोहन भी है। जगन्नाथ जी की प्रेरणा-आज्ञा से इसकी रचना होने के कारण इसका नाम 'जगमोहन-रामायण' भी है।

इस प्रकार 'दांडी रामायण' आंचलिक स्वतः-पूर्ण स्वतंत्र मौलिक रचना है। वस्तुतः यह उड़ीसा का अपना काव्य है।

दांडेकर, गो० नी० *(म० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

समसामयिक परिस्थितियों से स्फूर्ति ग्रहण कर उन पर उपन्यास लिखने वाले मराठी लेखकों में अत्यंत लोकप्रिय उपन्यासकार श्री दांडेकर विद्यार्थियों के लिए उपदेशपूर्ण कहानी लिखते थे। 1948 ई० से ये उपन्यास-सृष्टि की ओर मुड़े। नोआखाली की पृष्ठभूमि पर बंगाली जीवन का चित्रण करने वाला उनका उपन्यास 'तुडवलेले घरकुल' यथार्थ चित्रण एवं मार्मिक चरित्रांकन के लिए प्रसिद्ध है, 'सिंधु कन्या' पश्चिमी पाकिस्तान से आए शरणार्थियों की करुण दशा का चित्र प्रस्तुत करता है, 'आम्ही भगीरथाचे पुत्र' में भगीरथ की पौराणिक कथा को आज-कल की कथावस्तु से जोड़कर भाखड़ा-नंगल बाँध के लिए किए गए भगीरथ प्रयत्नों का रम्य विन्यास है। आंचलिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यास 'शितू' (दे०) 'पूर्ण-मायेचीं लेकरें' की विशेषताएँ हैं—आंचलिक भाषा, अंचल-विशेष के निसर्ग का यथार्थ रम्य चित्रण और पात्रों की मनोव्यथा का सूक्ष्म एवं प्रत्ययकारी वर्णन। संस्कृत कवियों के जीवन से संबद्ध 'पद्मा' और 'जगन्नाथ' लिखकर इन्होंने मराठी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान की है। इस प्रकार वर्तमान के संदर्भ में पौराणिक कथाओं को नवीन अर्थ प्रदान कर तथा अंचल-विशेष का सजीव चित्रांकन कर इन्होंने मराठी उपन्यास-साहित्य को नये-नये रत्नों से समृद्ध किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दांडेकर, रामचंद्र नारायण *(सं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

जन्म-स्थान : सतारा (महाराष्ट्र)। ये मराठी, संस्कृत, अँग्रेज़ी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषा के विशिष्ट विद्वान हैं। इनके प्रधान प्रकाशित ग्रंथ ये हैं—'देर वैदिश्च मैंश्च', 'हिस्ट्री ऑफ़ गुप्ताज़', 'आस्पैक्ट्स ऑफ़ गुप्ता सिविलाइज़ेशन', 'वैदिक बिब्लियोग्राफ़ी', 'क्रिटिकल एडिशन ऑफ़ महाभारत', 'श्रौतकोश', 'ओरियंटल स्टडीज़ इन इंडिया' तथा 'रसरत्नप्रदीपिका'। इन्होंने 'महाभारत' (दे०) का महत्वपूर्ण संपादन किया है। इन्होंने 1950 ई० से 1969 ई० तक पूना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष-पद पर कार्य करते हुए शोध के क्षेत्र में अनेक योजनाएँ कार्यान्वित कीं। इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। 1962 ई० में पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया था। संस्कृत आयोग आदि अनेक महत्वपूर्ण समितियों में भी डा० दांडेकर कार्य कर चुके हैं तथा कर रहे हैं। बाद में ये पूना के भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में सचिव पद पर कार्य करते रहे हैं। इस प्रकार भारतीय विद्या-क्षेत्र में डा० दांडेकर का महत्वपूर्ण योगदान है।

दाऊदपोटो, उमर मुहम्मद *(सिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

इनका जन्म सिंध के टल्टी नामक गाँव में हुआ था। इन्हें बचपन से ही ज्ञान-प्राप्ति के प्रति असीम प्रेम था। विद्यार्थी-जीवन में ये अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण अपने गुरुजनों में प्रिय हो चुके थे। 1927 ई० में इन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। इनके जीवन का अधिक भाग अध्यापन-कार्य और सिंध के शिक्षा विभाग में कार्य करते बीता। ये सिंधी, अरबी, फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित थे। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं—'मनहाज-अल्-आशिकीन', 'शाह अब्दुलकरीम बुलड़ीअ वारे जो कलाम', 'अबियोत सिंधी', 'कलाम गेरहोड़ी', 'आत्मकहाणी'। सिंधी भाषा-साहित्य और सिंध के इतिहास पर इनके कई निबंध विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। सिंधी गद्य-लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'दाग़' देहलवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1831 ई०; मृत्यु—1905 ई०]

नाम—नवाब मिर्ज़ा खान, उपनाम—दाग़; पिता का नाम—नवाब शमसुद्दीन, जन्म-स्थान—दिल्ली। बहादुरशाह 'ज़फ़र' (दे०) के गुरु शेख इब्राहीम 'ज़ौक़' (दे०) इनके भी काव्य-गुरु थे। 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम के फलस्वरूप ये रामपुर में रहने को बाध्य हुए। चालीस वर्ष तक रामपुर में रहने के बाद ये हैदराबाद चले गए और निज़ाम दकन-मीर महबूबअली खाँ के गुरु नियुक्त हुए थे। डा० इक़बाल (दे०) को भी इनके शिष्यत्व का गौरव प्राप्त हुआ था। यों तो अन्य काव्य-विधाओं में भी ये सिद्धहस्त थे परंतु ग़ज़ल (दे०) के क्षेत्र में सर्वथा बेजोड़ थे। इनके जीवन-काल में ही 'मसनवी फ़रियाद-ए-दाग़' के अतिरिक्त इनके तीन काव्य-संग्रह—'आफ़ताब-ए-दाग़', 'महताब-ए-दाग़' और 'गुलज़ार-ए-दाग़' प्रकाशित हो चुके थे। शृंगार रस में लिखित इनकी ग़ज़लें अत्यंत मार्मिक हैं किंतु कहीं-कहीं इनमें अश्लीलत्व-दोष और नग्न विलासिता के चित्रण भी दृष्टिगोचर होते हैं। अभिव्यंजना की नवीनता, विषय की सजीवता और सरसता, अवसरानुकूल भाषा तथा भावों की स्पष्टता और शुद्धता इनकी ग़ज़लों की विशेषताएँ हैं।

दात्यूहसंदेशम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1897 ई०]

यह शीवोळ्ळि नारायणन् नंपूतिरि (दे०) का हास्य-विडंबनात्मक संदेश-काव्य है। इसमें एक वृद्ध जुलाहे द्वारा दात्यूह (उल्लू) को दूत बनाकर कुरूपा नायिका को संदेश भेजने का विवरण केवल बीस श्लोकों में वर्णित है।

यह काव्य मलयाळम में अनेक दुष्कवियों द्वारा लिखे जाने वाले संख्यातीत संदेश-काव्यों के उपहास के हेतु लिखा गया था। स्थायी रस वीभत्स है और यह प्रदर्शित करने में कवि को सफलता प्राप्त हुई है कि यह सुंदर काव्य-रूप जुगुप्सा की किस सीमा तक पहुँच सकता है। इस काव्य की रचना का परिणाम कविता के लिए स्वास्थ्यकर सिद्ध हुआ।

दादूदयाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1544 ई०]

दादू-पंथ के संचालक दादूदयाल की जन्मभूमि अहमदाबाद मानी जाती है। इन्होंने दादूपंथ (परब्रह्म संप्रदाय) की स्थापना 1573 ई० में की थी। इनके भक्तों द्वारा इनकी रचनाओं की संख्या बीस हज़ार कही जाती है, संभवतः यह संख्या उनके द्वारा रचित पदों एवं साखियों की होगी। कबीर (दे०) के समान ये भी निरक्षर साधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा निराकार ब्रह्म के उपासक थे। ईश्वर की व्यापकता, हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य, सद्‌गुरु की महिमा, जात-पाँत का खंडन, आत्मज्ञान, नश्वर विश्व की निस्सारता—ये सभी इनकी रचना के भी विषय हैं। इनकी रचनाओं की शैली सहज-सुबोध है तथा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि करने में सक्षम है। भाषा राजस्थानी-मिश्रित पश्चिमी हिंदी है, जिसमें अरबी और फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

दादोबा पांडुरंग *(म० ले०)* [जन्म—1814 ई०; मृत्यु—1882 ई०]

इनका जन्म बंबई के एक वैश्य-परिवार में हुआ था। ये पेशवा-काल के बाद की पीढ़ी के विद्वान थे। ये सरकारी अधिकारी थे और कर्मठ समाज-सुधारक थे। ये 'परमहंस सभा' के संस्थापक थे।

प्रायः दादोबा पांडुरंग मराठी के आद्यव्याकरण-कार माने जाते हैं। अँग्रेज़ शासन-काल से पूर्व मराठी भाषा वैयाकरणिक दृष्टि से शिथिल एवं अस्तव्यस्त हो गई थी। उसे व्याकरणनिष्ठ तथा व्यवस्थित बनाने में इनका पर्याप्त योग रहा है। इन्होंने विद्यार्थी-काल में ही 'मराठी-व्याकरण' पुस्तक लिखी थी जिसकी लघु आवृत्ति 'सरकार की आज्ञाएँ' बालकों के उपयोग के लिए 1965 ई० में निकाली गई थी।

दादोबा पांडुरंग जी के व्याकरण पर अँग्रेज़ी भाषा के व्याकरण-लेखन की छाप है। इतना अवश्य है कि महाराष्ट्र में दीर्घकाल तक मराठी भाषा के अध्ययन के लिए इस ग्रंथ का अवलंबन लिया गया है। इन्होंने संस्कृत तथा फ़ारसी भाषा का भी व्याकरण लिखा था।

'शिशुबोध', 'यशोदापांडुरंगी' तथा आत्मचरित्र इनके अन्य ग्रंथ हैं। सरकार ने इन्हें रायबहादुर की पदवी से विभूषित किया था।

दानापाणि *(उ० कृ०)* [लेखक—श्री गोपीनाथ महंत (दे०)]

गोपीनाथ महांति के 'दानापाणि' उपन्यास का प्रकाशन-वर्ष है 1955 ई०। इस यथार्थवादी उपन्यास की कथावस्तु, आधुनिक जीवन-संग्राम में दिखाई देने वाले दानापानी के तीखे द्वंद्व, नौकरी के क्षेत्र में पदोन्नति की समस्या, व्यक्ति का पतन एवं तज्जनित विभीषिकामय जीवन को लेकर विरचित है। उपन्यास का प्रमुख पात्र 'साफल्य-कामी' एवं 'योजनावादी' बलिदत्त (दे०) कंपनी की नौकरी में पदोन्नति व सफलता के लिए निःसंकोच रूप से अपने विवेक व मानवता का विसर्जन कर नैतिकता के सोपान से क्रमशः किस प्रकार स्खलित होता जाता है एवं अंत में अपनी स्थिति व प्रतिष्ठा के लिए जीवन-यज्ञ में पत्नी सरोजिनी के सतीत्व की बिना किसी दुविधा के आहुति चढ़ा देता है, उसी की असहाय करुण कहानी है 'दानापाणि' उपन्यास। रोज़ी-रोटी के संघर्ष में व्यक्ति ने अपनी शिक्षा, संस्कार, रुचि, नीति आदि सभी बातों की बलि चढ़ा दी है। वह अपने अहं को चरितार्थ करने के लिए व्यग्र और अग्रसर है तथा दूसरे के प्रति परश्रीकातर। छोटे तबके से लेकर बड़े स्तर तक हर व्यक्ति का आंतरिक स्वरूप किस प्रकार अनीति एवं शोषण की प्रवृत्ति से आक्रांत है, यह इस उपन्यास में लेखक की संधानी दृष्टि से उद्‌भासित हो उठा है।

दामोदर, कुशालदास बोटादकर *(गु० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

बोटादकर सरल और मुग्ध प्रकृति के कवि थे। अपने जागतिक अनुभव में जो कुछ सुंदर, मधुर और शिव था उसे ही इन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया। जीवन भर निर्धनता से पीड़ित रहकर भी बोटादकर ने 'कल्लोलिनी', 'स्रोतस्विनी', 'रासतरंगिणी', 'निर्झरिणी' तथा 'शैवालिनी' नामक पाँच काव्य-संग्रहों की भेंट साहित्य-जगत् को दी। इन्होंने अपनी काव्य-साधना जनप्रिय कथन-शैली से आरंभ की जो गुरु-गंभीर, संस्कृतमय, समासयुक्त तथा अपरिचित शब्द-प्रयोगों का बोझा ढोती हुई अंत में लोक-बोली व लोक-चेतना तक पहुँच गई। साहित्य-जगत् में बोटादकर की प्रसिद्धि का कारण उनकी भावसमृद्ध रास-रचनाएँ हैं।

दामोदरन्, के० *(मल० ले०)*

श्री दामोदरन् सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी चिंतक और मलयाळम-नाटककार हैं। वे साम्यवादी दल के प्रमुख नेता हैं और राज्य-सभा के भूतपूर्व सदस्य भी हैं। कई वर्ष जेल में भी बिताए हैं। 'पाट्टबाक्की' और 'रक्तपानम्' इनके नाटक हैं। 'उरुप्पिका', 'धनशास्त्र प्रवेशिका' और 'इंत्युटे आत्मावु' मार्क्सवादी अर्थशास्त्र और दर्शनशास्त्र पर इनकी पुस्तकें हैं। इनकी कुछ पुस्तकों का विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक समीक्षा है।

मार्क्सवादी दर्शनशास्त्र के आधार पर साहित्य, कला और संस्कृति के मूल्यांकन के मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन इन्होंने किया है। इनके लोकप्रिय नाटक 'पाट्टबाक्की' ने कृषक-आंदोलन को प्रोत्साहित किया। केरल के मार्क्सवादी साहित्यकारों में इनका स्थान अन्यतम है।

दारु देबता *(उ० कृ०)*

डा० बेणीमाधव पाढ़ी (दे०) की इस सुंदर कृति के प्रमुख आधार हैं दारु देबता—जगन्नाथ। श्री जगन्नाथ के संबंध में ऐतिहासिक, पौराणिक तथ्यपूर्ण इस गवेषणामूलक पुस्तक में जगन्नाथ के आदिम भक्त शबर जाति के इतिवृत्त, संस्कृति, पूजा-पद्धति एवं विभिन्न मूर्ति-तत्त्वों का विशद रूप से वर्णन हुआ है। जगन्नाथ-संस्कृति पर यह एक उपादेय पुस्तक है।

दार्व्हेकर, पुरुषोत्तम *(म० ले०)*

संगीत-प्रधान नाट्य-पद्धति पर नाट्य रचना करने वाले आधुनिक नाटककारों में पुरुषोत्तम दार्व्हेकर का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। इन्होंने किर्लोस्कर एवं कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) प्रभृति नाटककारों की लुप्त होती नाट्य-पद्धति को पुनः जीवित करने में अपूर्व योग दिया है। दैनंदिन जीवन की सामान्य घटनाओं को अपनी अनूठी प्रस्तुतीकरण-शक्ति के बल पर इन्होंने अपूर्व प्रसिद्धि प्राप्त की है। 'वर्हाडी मानसंड' नाटक में इन्होंने वऱ्हाळ प्रांत के निवासियों का निरूपण प्रांतीय भाषा संवादों का आश्रय लेकर किया है। इनकी इस यथार्थवादी नाट्य-रचना के अतिरिक्त शेष कृतियाँ अद्भुत संयोग एवं चमत्कृतिपूर्ण हैं। 'नयन तुझे जादुगर' नाटक में टोने-टोटके में विश्वास रखने वाली जादूगर महिला का मनोहारी चित्रण करते हुए सच्चे प्रेम का गौरव-गान किया गया है। 'घनश्याम नयनी आला' नाटक में राजा तथा राजपुत्रों के माध्यम से संगीत-महिमा का प्रतिपादन हुआ है। इनकी रचनाओं पर इब्सन के यथार्थवादी नाटकों का प्रभूत प्रभाव है परंतु कथा-विधान पर शेक्सपियर की रोमानी प्रवृत्ति का गहरा रंग है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में रहस्यात्मकता एवं वेषांतर का अधिक प्रभाव है। किर्लोस्कर एवं खाडिलकर की नाट्य पद्धति को नव्य जीवन प्रदान करने की दृष्टि से लिखे इनके नाटकों में संवाद एवं चरित्र-निरूपण में कृत्रिमता का आभास स्पष्ट झलकता है।

दाशरथी *(ते० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

ये आधुनिक क्रांतिकारी युवक कवियों में प्रमुख हैं—विशेषकर अपने तेलंगाणा के सभी युवक कवियों के नेता एवं मार्गदर्शक हैं। तेलंगाणा के स्वातंत्र्य-समर में अपनी रचनाओं द्वारा समस्त जनता की व्यग्रता एवं आक्रोश को व्यक्त करने के कारण इन्हें कारागार की यातनाएँ भी सहनी पड़ीं। 'मेरा तेलंगाणा कोटि रत्नों की वीणा है' इस प्रचंड उद्घोष से तेलंगाणा की धरती एवं जनता के प्रति अपना अनन्य अनुराग तथा इसके पुनरुत्थान के प्रति अपनी कठोर दीक्षा को इन्होंने व्यक्त किया है। इनकी रचनाओं पर प्रगतिवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव है। ये समाज में शोषण का अंत करके, समता, सद्भाव एवं शांति को स्थापित करना चाहते हैं। इन्होंने अपने को पीड़ित मानव-समुदाय के मुखर वक्ता के रूप में रूपायित कर लिया है। आंध्रत्व एवं राष्ट्रीयता की भावनाएँ भी इनकी कविता में प्रचुर मात्रा में प्रकट हुई हैं।

'रुद्रवीणा', 'अग्निधारा', 'अमृताभिषेकमु', 'महांध्रोदयमु', आदि इनकी रचनाएँ हैं। चलचित्रों के क्षेत्र में भी गीतकार के रूप में ये लोकप्रिय हुए हैं।

दाशरथीशतकमु *(ते० कृ०)* [लेखक—भक्त रामदासु (दे०)—सत्रहवीं शती उत्तरार्द्ध]

ये राम के परम भक्त थे। तेलुगु के शतककारों तथा संगीतकार कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

यह 'दाशरथी करुणापयोनिधी' के मुकुट पर रचा गया एक सुंदर शतक है। इसमें भक्त कवि ने अपने आराध्य राम के बल, साहस, उदारता, करुणा, सौंदर्य आदि नाना सद्गुणों की स्तुति अत्यंत तन्मयता के साथ की है। तेलुगु के शतक-साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना सरल तथा मनोहर शैली में की गई है।

दाश, रमा *(अ० ले०)* [जन्म—1909 ई०; जन्मस्थान—बरपेटा नगर]

ये आवाहन युग के रोमांसवादी कहानीकार हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**कहानी :** 'रमा दाशर श्रेष्ठ गल्प'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1952), 'वर्षा जेतिया नामे' (1964), 'जाह्नवी'।

इनकी कहानियों में भावुकता और रोमांस अधिक है। इन्होंने मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण किया है। सेक्स के वर्णन में ये साहसी हैं। चित्रात्मक वर्णन, आकर्षक संवाद और पुष्ट विचार के लिए इनकी ख्याति है। इनकी कहानियों में शिल्प की भी पूर्णता है। ये नये कहानीकारों में विशिष्ट हैं।

दास (भिखारीदास) *(हिं० ले०)*

ये ट्योंगा (प्रतापगढ़) के निवासी थे। इनके द्वारा प्रणीत काव्यशास्त्र-विषयक चार ग्रंथ हैं—'काव्यनिर्णय' (दे०), 'रससारांश', 'शृंगारनिर्णय', और 'छंदोर्णव पिंगल'। पहले ग्रंथ में काव्य के विविध अंगों का निरूपण है। अगले दो ग्रंथ रस और नायक-नायिका-विषयक हैं। चौथा ग्रंथ छंद-शास्त्र का है। इन्होंने 'विष्णुपुराण भाषा' की भी रचना की थी। 'काव्यनिर्णय' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें विविध काव्यांगों का निरूपण मम्मट (दे०), विश्वनाथ (दे०), अप्पय्यदीक्षित (दे०) और जयदेव (दे०चंद्रालोक) के ग्रंथों के आधार पर किया गया है। इसमें कुछ-एक मौलिक धारणाओं को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ, वामन (दे०)-सम्मत दस गुण चार वर्गों में विभक्त किए गए हैं, नायिका के स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद दो वर्गों में, तथा इक्यानबे अर्थालंकार बारह वर्गों में। इसके अतिरिक्त इन्होंने शृंगार-रस के सम तथा मिश्रित ये दो नूतन भेद प्रस्तुत किए हैं। इस ग्रंथ में हिंदी भाषा और साहित्य को भी ध्यान में रखकर कतिपय धारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं। यह ग्रंथ संभवतः अपने समय में अत्यंत प्रसिद्ध था। कवित्व की अपेक्षा आचार्यत्व की दृष्टि से दास का महत्व अधिक है।

दास, अनिरुद्ध *(उ० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

अनिरुद्ध दास सुप्रसिद्ध निबंधकार एवं जीवनी-रचयिता हैं। 'बीर सुरेंद्रसाए' (दे०) इनका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें बीर सुरेंद्रसाए के राष्ट्रीय चरित्र का सुंदर चित्रण हुआ है। जगन्नाथ-संस्कृति पर इनकी दो रचनाएँ हैं—'शबरी' और 'श्री जगन्नाथ ओ नेपाळ'। अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'मेरिआ', 'शब्दर देवता'। आई० ए० एस० से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् आजकल ये उड़िया दैनिक 'स्वराज्य' का संपादन कर रहे हैं।

दास, उपेंद्र किशोर *(उ० ले०)* [जन्म—1901; मृत्यु—1972 ई०]

आधुनिक उड़िया उपन्यास-साहित्य में उपेंद्र किशोर दास का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके उपन्यास सामाजिक एवं वैचारिक हैं। फलतः इनके उपन्यासों में कुसंस्कार-ग्रस्त उड़िया-समाज का करुण चित्र मिलता है। 'मलाजन्ह' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

दास, कमळाकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

श्री कमळाकांत दास मुख्यतः कथाकार हैं। अब तक इनके कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ ही मुख्य रूप से इनके उपन्यासों में चित्रित हैं। इस प्रकार जातीय जीवन की बहुविध समस्याएँ इनके उपन्यासों की विषयवस्तु हैं। इनके उपन्यास व्यक्ति-केंद्रित नहीं हैं। दृष्टिकोण की इस व्यापकता के अनुकूल भाषा-शैली में भी पर्याप्त अभिव्यंजना-शक्ति, प्रांजलता एवं लोच है। शिशु-साहित्य की रचना भी इन्होंने प्रचुर मात्रा में की है। 'इच्छाबरण' (दे०), 'चिड़िआखाना', 'चित्रतारका', 'आश्रित', 'चाँदिनी चउक्' आदि इनके उपन्यास हैं। इनके कई कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनका जन्म रघुनाथपुर (कटक) में हुआ था।

दास, कुंजबिहारी *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

इनका जन्म पुरी में हुआ था। इनके पिता का नाम मागुणिदास है। डा० दास ने शांतिनिकेतन से पी-एच० डी० की है और आजकल ये उत्कल विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं। इनकी काव्य-कृतियाँ हैं—'प्रभाती', 'पाषाण चरणेरक्त', 'चारणिका', 'डुडुमा', 'बरश्री' आदि। 'ओड़िआलोकगीत ओ कहाणी' (दे०) समालोचना-ग्रंथ है।

आधुनिक उडिया-साहित्य को डा० कुंजबिहारी दास का महत्वपूर्ण प्रदेय है—'ओड़िआ लोकगीत संचयन'। इन्होंने उड़िया लोकगीत और लोक-कथा के संग्रह के साथ-साथ इस क्षेत्र में गहन अनुसंधान भी किया है।

डा० दास स्वयं कवि हैं। पल्ली-जीवन संबंधी इनकी रम्य रचनाएँ ग्राम्य जीवन को साकार कर देती हैं। इनमें उत्कलीय चेतना एवं सामाजिक सजगता की भावनाएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासगुप्त, सुधीरकुमार *(बँ० ले०)*

पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान के आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र के पुनर्निर्माण की दिशा में डा० सुधीरकुमार दासगुप्त ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। डा० सुधीरकुमार दासगुप्त के 'काव्यालोक' ने संस्कृत अलंकार-शास्त्र के पुनर्निर्माण में अपूर्व सहायता की है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र और संस्कृत काव्यशास्त्र के तुलनात्मक विवेचन के साथ-साथ इस ग्रंथ में इन दोनों का साम्य एवं वैषम्यमूलक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान को भी संस्कृत अलंकार-शास्त्र पर घटा कर उसकी नूतन व्याख्या की गई है।

लेखक की अन्य पुस्तकों में 'काव्यश्री' उल्लेखनीय है।

दासगुप्त, सुरेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

बँगला काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आचार्य डा० सुरेंद्रनाथ दासगुप्त दार्शनिक-आलोचक के रूप में प्रसिद्ध है। बँगला काव्यशास्त्रीय आलोचना में उनका योगदान विशेष महत्वपूर्ण है। 'काव्य-विचार' (1936 ई०) की रचना कर डा० दासगुप्त ने एक ओर जहाँ प्राचीन संस्कृत अलंकारशास्त्र के पुनराख्यान की दिशा में साहित्य-जिज्ञासु का ध्यान आकर्षित किया है, वहीं दूसरी ओर 'सौंदर्य-तत्त्व' (1940 ई०) की रचना कर नवीन सौंदर्यशास्त्रनिष्ठ नये प्रतिमान भी प्रतिष्ठित किए हैं। इनकी तीसरी पुस्तक 'साहित्य-परिचय' काव्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक निबंधों का संकलन है।

डा० सुरेंद्रनाथ दर्शनशास्त्र के प्रख्यात विद्वान् थे और भारतीय दर्शनशास्त्र पर महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना तथा अध्ययन-अध्यापन के द्वारा इन्होंने विश्व-प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बँगला भाषा में काव्यशास्त्रीय आलोचना की परि-क्षीणता को देखते हुए इन्होंने उसे भी अपने अध्ययन का विषय बनाया था और सौंदर्यशास्त्र के अध्ययन का सूत्र-पात किया था। सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में डा० दासगुप्त का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने यूरोपीय विद्वानों के इस अभिमत को भ्रामक बताते हुए कि भारत में सौंदर्य के संबंध में कोई विवेचन ही नहीं किया गया, संस्कृत काव्य-शास्त्र तथा उपनिषद्-विद्या के आधार पर सौंदर्य का अभिनव तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया है। डा० दासगुप्त ने पाश्चात्य काव्यशास्त्र की तुलना में संस्कृत अलंकारशास्त्र का पुनराख्यान कर अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है। काव्यशास्त्रीय विश्लेषक के रूप में इन्होंने जहाँ सौंदर्य को आधार-पीठिका के रूप में ग्रहण किया है वहीं सूक्ष्म दार्शनिक मेधा की सहायता से काव्यशास्त्र के अंतर-तत्त्वों का भी विशद विवेचन किया है।

दास, गोबिंद *(उ० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

यद्यपि बैरिस्टर गोबिंददास को अपनी व्याव-सायिक व्यस्तता के कारण साहित्य-सर्जना क लिए अत्यल्प समय मिल पाता है, किंतु जिन कतिपय पुस्तकों की इन्होंने रचना की है, उनका साहित्यिक मूल्य असंदिग्ध है। 'अमा-बस्यार चंद्र' (दे०) इनकी सफल कृति है। मनुष्य के तिमिराच्छन्न अंतर के अबूझ चंद्र को देखने का इनका प्रयास निश्चित रूप से प्रभावोत्पादक है। आजकल ये सुप्रीम कोर्ट में प्रैक्टिस कर रहे हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'देशेदेशे' (यात्रा), 'मिश्रराग' आदि।

दास, गोबिंदचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1918 ई०]

पूर्व-बंग के माओआलेर के अंतर्गत जयदेवपुर ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने जीवन में बहुत कष्ट पाए थे—शोक, ताप, दुःख, दारिद्र्य ही नहीं, दारुण उत्पीड़न भी इन्हें सहना पड़ा था। ये आजीवन अविवाहित रहे।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'कुंकुम', 'कस्तूरी', 'वैजयंती', 'प्रेम और फूल', 'चंदन', 'फूलरेणु', 'शोक और सांत्वना', 'शोकोच्छ्वास'।

समसामयिक आधुनिक कवियों की तुलना में शिक्षित न होते हुए भी इनकी रचनाओं में आधुनिकता की छाप स्पष्ट है। इनकी भाषा में पांडित्य पाया जाता है। इनमें कल्पना का प्रसार कम है परंतु भावों में एकाग्रता एवं अनुभूति में तीव्रता कुछ अधिक है।

ये अपने समय के पूर्व-बँग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

दास, चित्तरंजन *(उ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

श्री चित्तरंजन दास सफल निबंधकार हैं। इनके वैचारिक निबंधों ने आधुनिक निबंध-साहित्य को संपन्न बनाया है। इन्होंने अनेक गवेषणामूलक तथा आलोचनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबंध लिखे हैं, जो विश्वविद्यालयी शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। साथ ही इनके ललित निबंध भी कम सफल नहीं हैं। इनके भ्रमण एवं जीवन-चरित-संबंधी निबंधों का निबंध-साहित्य में विशेष स्थान है। इन्होंने व्यापक रूप से देश तथा विदेशों का भ्रमण किया है। इन्हें अँग्रेज़ी के अतिरिक्त स्पेनिश, फ्रेंच आदि विदेशी भाषाएँ आती हैं। इसी भ्रमणप्रियता के कारण इनकी भ्रमण-कहानियाँ जीवंत एवं रोचक हैं। 'शिलाओ शालग्राम', 'शिलातीर्थ' (दे०), 'नेपाल पथे', 'गंजाम माळरे सात दिन' आदि इनकी भ्रमण-संबंधी रचनाएँ हैं। ये कुशल अनुवादक भी हैं।

दास, जीवनानंद *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

जीवनानंद दास अति-आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वर्तमान युग की संशयी मानवात्मा का क्षतविक्षत रक्ताक्त रूप इनकी कविता में उद्भासित है। यद्यपि यह भी निश्चित है कि इस यंत्रणा-विक्षोभ के साथ-साथ इनकी कविता में प्रकृति-केंद्रित अपूर्व तन्मयता का भी परिचय मिलता है।

अपने पूर्वज कवियों का अनुसरण करते हुए इन्होंने अपना पहला काव्य-ग्रंथ 'झरा पालक' (1927), प्रकाशित कराया था। इसके उपरांत इनके 'धूसर पांडुलिपि' (1936), 'बनलता सेन' (द्वि० सं० 1952), 'महापृथिवी' (1944), 'सातटितारार तिमिर' (1948), एवं 'मृत्यूपरांत 'रूपसी बाँगला' (1957) नामक ग्रंथ प्रकाशित हुए थे।

जीवनानंद की प्रारंभिक कविताओं में इस पृथ्वी का निःस्व, रिक्त, अनुर्वर रूप प्रकट हुआ है—चारों ओर जरा, क्षय, मृत्यु के चिह्न दिखाई पड़ते हैं, कहीं सूर्य नहीं केवल बर्फ़ की तरह चाँद आलोकित है। इसी अवस्था में रचित प्रेम की कविताओं में प्रेम का अचरितार्थ रूप प्रकट है यद्यपि कविमानस का व्यर्थता-बोध कहीं वेदना-कातरता (मॉरबिडिटी) में परिणत नहीं हुआ है। जीवन के प्रति कवि का आकर्षण कहीं कम नहीं हुआ है। बनलता सेन, अश्रुकणा सन्याल, सुरंगमा, सुरंजना आदि नायिकाओं को व्यक्ति नाम से पुकार कर कवि ने अपने निःसंग अंतर के निभृत कोने में आह्वान किया है। कवि का 'बनलता सेन' काव्य-ग्रंथ उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इनकी नायिकाएँ यदि सौंदर्यहीन इस युग में इन्हें प्रेम और सौंदर्य का संधान नहीं दे पाईं तो इन्होंने इतिहास और भूगोल की विस्तृति में उसे ढूंढना चाहा है। इनकी इतिहास-चेतना ने ही इन्हें महाकाव्य की व्याप्ति प्रदान की है और कवि यह उपलब्धि कर सका है कि मनुष्य की अग्रगति सरल रेखा में नहीं होती है, उसका भाग्य चक्राकार में आवर्तित है। उसके इतिहास में एक-एक स्मरणीय युग के उपरांत ध्वंस का अंधकार फैल जाता है। वर्तमान युग भी इसी प्रकार एक अंधकार-क्षण है। मनुष्य की चेतना का क्रमशः फिर विस्तार होगा और इसीलिए विमूढ़-युग के विभ्रांत कवि ने जीवन के अंतिम क्षणों में अचानक यह अनुभव किया है कि उसकी प्रतिभा सर्जक नहीं हुई है।

दास, नित्यानंद *(बँ० ले०)*

नित्यानंद दास का प्रकृत नाम बलराम दास था। पिता का नाम आत्माराम दास, माता का सौदामिनी तथा निवासस्थान श्रीकण्ड था। ये नित्यानंद की कनिष्ठ पत्नी जाह्नबी देवी के शिष्य थे। जाह्नबी देवी ने मंत्र-दीक्षा देकर इनका नाम नित्यानंद दास कर दिया था।

इनकी प्रमुख कृति 'प्रेम विलास' है जो संभवतः 1600 ई० में पूर्ण हुई थी। 'प्रेम बिलास' बंगाल में वैष्णव धर्म के प्रचार का इतिहास-ग्रंथ है। यही कारण है कि इस ग्रंथ का मूल्य एवं महत्व बढ़ जाता है।

'प्रेम बिलास' में तीन प्रभुओं, छह गोस्वामियों एवं अन्यान्य वैष्णव महापुरुषों के चरित्र के संबंध में प्रामाणिक तथ्य मिलते हैं। सत्रहवीं शती के इतिहास की दृष्टि से इस ग्रंथ का मूल्य स्वीकार करना होगा।

दास, नीलकंठ *(उ० ले०)* [जन्म—1884 ई०]

डा० नीलकंठ दास का जन्म पुरी में हुआ था। पिता का नाम आनंद दास था। 1911 ई० में इन्होंने एम० ए० किया। बी० ए० के बाद सत्यवादी (दे० सत्यवादी साहित्य) स्कूल की स्थापना कर 1918 ई० तक उसके प्रधान आचार्य रहे। बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हुए और 1921 ई० में असहयोग आंदोलन में जेल गये। 1955 ई० में उत्कल विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर आफ़ लिटरेचर की उपाधि प्रदान की और इसी वर्ष ये उत्कल विश्वविद्यालय के प्रो-चांसलर भी रहे।

उड़ीसा में डा० नीलकंठ दास कवि की अपेक्षा विद्वान के रूप में अधिक समादृत हैं; किंतु साथ ही इनकी सर्जना-शक्ति और कलात्मक मौलिकता भी असंदिग्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयवस्तु और वर्णन-शैली दोनों ही दृष्टियों से 'कोणार्क' काव्य इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें उग्र जातीय बोध व यथार्थ का सुंदर समन्वय हुआ है। सत्यवादी जातीय व राष्ट्रीय चेतना इनके जीवन की प्रेरिका व नियामिका शक्ति रही है। यही कारण है कि वे राधानाथ राय (दे०) के कट्टर आलोचक रहे हैं। इनके 'कोणार्क' तथा 'मायादेवी' (दे०) काव्य राधानाथ-साहित्य का तीखा प्रतिवाद हैं। मध्ययुगीन सामंतीय परिप्रेक्ष्य में राजकीय प्रणय-कहानी 'कोणार्क' की विषयवस्तु है। संगीत-मधुर कथा, प्रखर अभिव्यंजनामयी भाषा, सशक्त गंभीर अभिव्यक्ति, अप्रतिहत प्रवाह, भावानुकूल कोमल, कठोर, सरल-अलंकृत, क्लिष्ट, मनोज्ञ शैली। सुंदर गीति-योजना के कारण यह काव्य एक अपूर्व कला-सृष्टि बन गई है। इसके साथ ही ये उच्चकोटि के समीक्षक एवं गद्यकार भी हैं। इनकी समालोचनाओं में युक्ति की सशक्तता, भाषा की संक्षिप्तता, शैली की नूतनता और विवेचन की मौलिकता मिलती है। 'आर्य जीवन' इनकी प्रबल गद्य-रचना है।

दास, बलराम *(बँ० ले०)*

अनुमान से सोलहवीं शती के मध्य में इनका जन्म हुआ था। इनका आदि निवास श्रीहट्ट था। ये नित्यानंद के विशिष्ट भक्त थे। उनसे दीक्षा ग्रहण कर ये आधुनिक वर्द्धमान ज़िले के पूर्व में गोदाछिया ग्राम में रहने लगे थे। उन्हीं के आदेश से इन्होंने विवाह किया था। इनके पाँच पुत्र थे। ये ब्राह्मण थे। ये प्रसिद्ध खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। चैतन्य-वंदना के प्रसंग में 'ए सुखे वंचित' में बलरामदास के लिखने से अनुमान होता है कि चैतन्य महाप्रभु की नवद्वीप-लीला को इन्होंने प्रत्यक्ष नहीं देखा था।

ये बालकृष्ण की मूर्ति के उपासक थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मंदिर एवं विग्रह अब भी दोगाछिया ग्राम में विद्यमान हैं।

बलराम दास ने कृष्ण की बाललीला, राधाकृष्ण का पूर्वराग, अनुराग और मिलन, अभिसार और संयोग, नौका-विलास, दानलीला, वासकसज्जा, विरह आदि विषयों पर पद लिखे हैं। इन्होंने बँगला एवं ब्रजबुलि दोनों भाषाओं में पद लिखे हैं।

ये वात्सल्य भाव के पदकर्त्ताओं में अग्रणी हैं। चैतन्य एवं नित्यानंद के संबंध में इन्होंने जो पद लिखे हैं उनमें हृदय का स्पर्श करने की क्षमता है। रूपानुराग एवं रसोद्‌गार-वर्णन में ये अद्वितीय हैं। अंतरंगता एवं आंतरिकता में इनके पदों के समक्ष अन्य कवि नहीं टिकते। इनके पदों का मूल स्वर है सहज जीवन-रस-प्रीति। वर्तमान में ये रसिक समाज में अत्यंत प्रिय हैं एवं भविष्य में भी इनके भक्तों की कमी होगी—ऐसा कहना कठिन है।

ब्रजभाषा के कवि सूर (दे०) के बाललीला-वर्णन-संबंधी पदों से इनके पदों की तुलना की जा सकती है।

दास, बिजयकुमार *(उ० ले०)*

श्री बिजयकुमार दास का जन्म 1947 ई० में कटक ज़िले में हुआ था। इन्होंने रेवेन्सा कालेज, कटक, से अँग्रेज़ी में एम० ए० किया है। उड़िया एवं अँग्रेज़ी दोनों में कविता करते हैं। 'सामुख्य', 'डगर', 'मानस' आदि पत्रिकाओं में इनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखक की चिंतनशीलता एवं बौद्धिक दृष्टिभंगी कविता, कहानी सभी में देखी जा सकती है। आधुनिक जीवन की जटिलता को रूपायित करने का प्रयास करते हुए भी लेखक का कथ्य कहीं भी दुर्बोध नहीं हुआ है। यह इस उदीयमान लेखक की सबसे बड़ी सिद्धि है। 'अवलोकन' (दे०) इनका काव्य-संकलन है। आजकल ये नेशनल बुक ट्रस्ट में उड़िया-विभाग के सहकारी संपादक हैं।

दासबोध *(म० कृ०)*

यह समर्थ रामदास (दे०) की रचना है। इसका लेखन 1648 ई० से 1678 ई० तक लगभग तीस वर्षों तक हुआ था। इसमें बीस दशक हैं और प्रत्येक दशक में दस समास हैं। इस प्रकार दो सौ समासों में 7751 ओवियाँ हैं। कवि ने अपने कथ्य को आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया है—'दासबोध' गुरु-शिष्य का संवाद है। इसमें नवधा भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य का विस्तृत विवेचन है। अध्यात्म से संबद्ध अनेक शंकाओं का समाधान किया गया है। शास्त्रों से प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं और स्वानुभव की बातें बतलाई गई हैं। कवि रामदास मूलतः भक्तिमार्गी थे। परंतु देश-काल की विषम परिस्थितियों के प्रति भी वे विशेष सजग थे। अतः 'दासबोध' केवल अध्यात्म-चर्चा का ग्रंथ मात्र नहीं है वरन् इसमें सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, व्यावहारिक और जीवनोपयोगी अनेक तथ्यों का मार्मिक विवेचन है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा : 'लोगों को आलसी नहीं बनने देना चाहिए। राजनीति का पालन करते हुए जनता को संगठित करना चाहिए। जिसने दूसरे पर विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया उसका सब काम चौपट हो गया। अपने काम के लिए स्वयं परिश्रम करना ही अच्छा है। राजा को इतना परमार्थी और धर्मात्मा होना चाहिए कि जिसके साथ रहने वाले शूरवीरों की भुजाएँ शत्रु-सेना देखते ही फड़कने लगें। राजनीतिज्ञ को चाहिए कि हृष्ट-पुष्ट के सामने हृष्ट-पुष्ट को, उद्धत के सामने उद्धत को रखे। जब जैसे को तैसा मिलता है तभी कार्य सफल होता है'। 'दासबोध' लौकिक और पारमार्थिक जीवन को सफल बनाने के लिए एक सशक्त पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है।

दास, भोलानाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

जन्म-स्थान—नौगाँव।

इन्होंने एंट्रेंस तक शिक्षा पाई थी। इन्होंने क्रमशः इन पदों पर कार्य किया था—नौगाँव में डिस्ट्रिक्ट सर्वेयर, वहीं के हाई स्कूल में शिक्षक, शिवसागर के सर्वे स्कूल में शिक्षक, सब-डिप्टी-कलेक्टर, मजिस्ट्रेट और सहायक सेटलमेंट ऑफ़िसर।

प्रकाशित रचनाएँ—'कविता माला' प्रथम भाग (1882 ई०), द्वितीय भाग (1883 ई०), 'चिंतातरंगिणी' (1884 ई०), 'सीताहरण-काव्य' (दे०) (1902 ई०)।

अप्रकाशित—'सुभद्राहरण' (अपूर्ण), 'प्रसंग-माला' (गद्य-पद्य-मिश्रित रचना)।

इन्होंने रमाकांत चौधरी (दे०) के समान अमित्राक्षर छंद में 'सीताहरण काव्य' की रचना छात्रावस्था में की थी। अतुकांत छंद में लिखा हुआ यह ग्रंथ असमीया भाषा का प्रथम महाकाव्य है। इसका शब्द-प्रयोग और भाषा दोषपूर्ण है, फिर भी यत्रतत्र काव्य-प्रतिभा के दर्शन हो जाते हैं। संगृहीत कविताओं में कवि-कल्पना का परिचय भलीभाँति मिलता है। असमीया साहित्य में गीति-कविताओं का इन्होंने ही प्रवर्तन किया था, किंतु इनकी कविताओं की इतनी कटु आलोचना की गई थी कि इनका विकास रुक गया।

ये असमीया के प्रथम गीतिकार हैं।

दास, मनोज *(उ० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

श्री मनोजदास उड़िया के एक प्रमुख कहानीकार हैं। आधुनिक जीवन की विशृंखलता, कुहासा, संकट, ह्रासोन्मुख जीवन-चेतना, मूल्यहीनता, आदि बातों ने इनकी रचनाओं में स्थान पाया है। इनके उपन्यास 'आरण्यक' (दे०) पर इन्हें 1965 ई० में राज्य-साहित्य-अकादेमी पुरस्कार मिला था। अपनी समुन्नत गद्य-शैली के द्वारा इन्होंने उड़िया साहित्य को एक नूतन गद्य-शैली दी है। 'दिगंत' पत्रिका के ये कई वर्षों तक संपादक रहे हैं। आजकल ये पांडिचेरी के इंटरनेशनल सेंटर ऑफ़ एजुकेशन में अँग्रेज़ी के अध्यापक हैं। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—इंडोनेशिया अनुभूति' (भ्रमण-वृत्तांत), 'शेष बसंतर चिठि' (कविता) आदि।

दास, मनोरंजन *(उ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

श्री मनोरंजन दास (बी० ए०, एल० एल० बी०) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के एक प्रमुख नाटककार हैं। इन्होंने उड़िया नाट्य-साहित्य में उद्भट नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) का प्रवेश कराया, साथ ही नाट्य-साहित्य का संस्कार भी किया एवं पूर्वयुग की कमियों को दूर किया। रेडियो-रूपक एवं रेडियो-नाटक लिखने वालों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इनके नाटक 'अरण्य फसल' (दे०) पर इन्हें 1971 ई० का साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था। 'बक्सि जगबंधु', 'कवि-सम्राट् उपेंद्र भंज', 'अगष्ट नअ', 'बनहंसी' (दे० अशोक), 'आगामी', 'नारी' आदि इनकी रचनाएँ हैं।

दास, मन्मथकुमार *(उ० ले०)*

मन्मथकुमार दास के उपन्यासों में सूक्ष्म मनोवृत्तियों का चित्रण एवं अंतर्द्वंद्व का उद्घाटन सफलता से हुआ है। उनके पात्र जीवन की कटु वास्तविकता, परिस्थिति की विषमता के समक्ष टूटते नहीं हैं वरन् उस दलदल से जीवन-रस खींचकर और भी सतेज हो उठते हैं। उनके सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आधुनिक उड़िया उपन्यास-साहित्य में विशेष महत्व है। 'महाश्वेता' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

दास, मन्मथनाथ *(उ० ले०)*

डा० मन्मथनाथ दास इतिहास के अध्यापक हैं। अतः इनके निबंधों का विषय भी प्रधानतया इतिहास ही होता है। इतिहास से निकलकर कभी-कभी ये सृजनशील साहित्य में मनोनिवेश भी करते हैं। इनका उपन्यास 'अस्पष्ट आख्यान' (दे०) जीवन को एक नये दृष्टिकोण से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने का प्रयास करता है। मेधावी मानव सारी सृष्टि का रहस्य उद्घाटित कर लेने के बाद भी स्वयं अपने निकट सदा अबूझ पहेली बना रहेगा। जीवन की इस अभेद्यता को साकार करने में इनकी गूढ़ व्यंजनामयी भाषा व शैली समर्थ है।

दास, योगेश *(अ० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

इनकी शिक्षा एम० ए० तक हुई थी। ये शिक्षक और पत्रकार हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'सँहारी पाइ' (1955), 'डाबर आरु नाइ' (दे०) (1955), 'जोना-कीर जुइ' (1956), 'निरुपाइ निरुपाइ' (1963) **कहानी** : 'पापीयातरा' (1957), 'आँधारर आँरे आँरे' (1959)।

इनकी कहानियों की भाषा निराडंबर है, न बौद्धिकता का व्यर्थ प्रदर्शन है न कविता का उच्छ्वास है। उपन्यासों में इनके पात्र स्वयं कहानी विकसित करते हैं। 'डाबर आरु नाइ' में युद्ध-युग की भ्रष्ट नैतिकता के साथ मानवता का संघर्ष और उसकी जय चित्रित है। 'जोनाकीर जुइ' आख्यान-प्रधान कृति है। इसमें तथा 'सँहारी पाइ' में प्रेम-कथा है। 'जोनाकी जुइ' में लेखक का कथा-शिल्पी रूप अधिक सुस्पष्ट है। ये नवयुग के सशक्त कथाकार हैं।

दास, लक्षहीरा *(अ० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

जन्म-स्थान—ज़िला कामरूप।

इन्होंने गौहाटी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'प्रथमा' (1950), 'गीतार्थ' (1956), 'सुरसेतु', 'शिशुमनर पथे दि' (मनो-विज्ञान) (1955); 'आदर्श नारी' (जीवनी) (1955); आस्कर वाइल्ड की कहानियों का अनुवाद (1956)।

शिलांग और गौहाटी में आकाशवाणी केंद्र की स्थापना के पश्चात् जिन गीतकारों का उदय हुआ है उनमें श्री दास भी हैं। इन्होंने शिशु-मनोविज्ञान पर भी पुस्तकें लिखी हैं।

दास, लोकनाथ *(बँ० ले०)* [समय—अनुमानतः सोलहवीं शती का अंतिम दशक]

इनके जीवन के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ये अद्वैत प्रभु के शिष्य लोकनाथ चक्रवर्ती ही थे अथवा कोई अन्य—यह कहना कठिन है।

इनकी कृति 'श्रीसीता-चरित्र' है। अद्वैत प्रभु की पत्नी सीतादेवी के अलौकिक चरित्र तथा उनके पुत्रों की कथा इस ग्रंथ में है, गौरांग के जन्म से संन्यास की कथा तथा नीलाचल-गमन की कथा अत्यंत संक्षेप में वर्णित है। इस काव्य में 'चैतन्य भागवत' (दे०) और 'चैतन्य-चरिता-मृत' (दे०) का उल्लेख मिलता है, अतः अनुमान से यह सोलहवीं शती के आठवें दशक से परवर्ती काल की रचना है।

'सीता-चरित्र' आकार में सामान्य है। काव्य की भाषा सरस है।

दास, सजनीकांत *(बँ० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1962 ई०]

'शनिबारेर चिठि' पत्रिका के संपादक के रूप में सजनीकांत दास ने बंगला साहित्य-क्षेत्र में कई दशकों तक महत्वपूर्ण कार्य किया था। व्यंग्य-कविता-रचना में सजनी बाबू सिद्धहस्त थे। इनकी व्यंग्य-कविताओं की पुस्तकें हैं : 'पथ चलते घासेर फुल' (1929), 'अंगुष्ठ' (1931), 'बंगरणभूमे' (1931) आदि। गंभीर कविताओं की रचना में भी इनकी पारदर्शिता कम नहीं थी। 'राजहंस' (1935), 'आलो आँधारि', 'पंचिशे बैशाख' इस श्रेणी की काव्य-पुस्तकें हैं। सजनीकांत का उपन्यास 'अजय' अपने समय का प्रसिद्ध उपन्यास था। जीवन-कहानी की प्रणाली में लिखे गए इस उपन्यास में नायक अजय के शैशव से यौवन तक के प्रणय-अनुभवों का इतिहास लिपिबद्ध है। उपन्यास की भाषा सांकेतिक कवित्वमय है और इसी के साथ मनस्तत्व का सुंदर सामंजस्य हुआ है। सामूहिक दृष्टि से विवेचन करने पर सजनीकांत दास के ऐतिहासिक मूल्य की अव-हेलना नहीं जा सकती।

दास, सीताराम *(बँ० ले०)*

सीताराम दास का जन्म बाँकुड़ा ज़िले के इंदास ग्राम में अपने मामा के यहाँ हुआ था। इनके जन्म-समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। इनके पिता का नाम देवीदास था जो वर्द्धमान ज़िला के सुखसागर ग्राम में निवास करते थे। ये जाति के कायस्थ थे।

इनकी कृति 'धर्ममंगल' है जिसका रचना-काल संभवतः 1698 ई० है। धर्म ठाकुर ने संन्यासी के वेश में इनको गीत-रचना का निर्देश दिया था। गतानुगतिक मंगल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य के कवियों के समान ग्रंथ में इन्होंने आत्म-परिचय दिया है।

सीताराम दास की रचना इतिवृत्तात्मक है। कहानी अथवा चरित्र में कोई नूतनता नहीं मिलती। ग्रंथ में कोई काव्य-कौशल नहीं। कृति सामान्य श्रेणी की है। ये मूलतः धर्म-गायक थे।

दास, सूर्यनारायण (उ० ले०) [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म-स्थान पारलाखे मुंडी है और पिता का नाम है श्री बालुकेश्वरदास। पं० सूर्यनारायणदास की उड़िया साहित्य को अमूल्य देन है। इनका विशालकाय ग्रंथ 'ओड़िआ-साहित्यर इतिहास' (दे०) है, जिसके चार भाग प्रकाशित हो चुके हैं, लेखक की जीवन व्यापी साधना और गंभीर अध्ययन का परिणाम है। आज भी ये कटक में गवेषणा का कार्य कर रहे हैं। इनकी समस्त कृतियों में गंभीर ऐतिहासिक गवेषणा परिलक्षित होती है।

एम० ए० होते हुए भी इन्होंने अपने लिए स्वतंत्र साहित्यिक जीवन स्वीकार किया। भारतीय साहित्य अकादेमी से 1967 ई० में तथा उड़ीसा साहित्य अकादेमी से 1969 ई० में इन्हें पुरस्कार मिला है। उत्कल विश्व-विद्यालय से इन्होंने एम० ए० किया है। इनके उल्लेखनीय ग्रंथ हैं—'ओडिशार स्वाधीनता संग्रामर इतिहास', 'उन्नीसवीं शताब्दीर ओडिशा', 'ओडिशार सिपाही', 'बिद्रोहर झलक', 'श्री जगन्नाथ मंदिर ओ जगन्नाथ तत्व', 'निम्बार्क', 'रामानुज', 'बुद्धदेव', 'देशप्राण मधुसूदन', 'भाषा बोध ओड़िआ व्याकरण' आदि।

दासोपंत (म० ले०) [जन्म—1551 ई०; मृत्यु—1615 ई०]

इनका मूल निवासस्थान बीदर के निकट 'नारायणपेठ' था। लेकिन अधिकांश समय 'आंबेजोगाई' में व्यतीत हुआ। इन्होंने 'गीता' (दे०) पर टीका लिखी है। 'गीतार्णव' (दे०), 'ग्रंथराज', 'पंचीकरण' आदि इनके लगभग 50 ग्रंथ हैं। इनके 'ओवी' छंदों की संख्या कई लाख ठहरती है। इतनी विपुल काव्य-रचना किसी अन्य कवि ने नहीं की। 'पंचीकरण' काव्य तो एक बड़ी चादर पर लिखा गया अब भी संग्रहालय में उपलब्ध होता है। इन्हें विविध रागों का ज्ञान था। अनेक पद इन पर आधारित हैं। मराठी भाषा के प्रति इनमें प्रबल स्वाभिमान था। संस्कृत से मराठी भाषा में रूपांतरण करने की अपेक्षा इन्हें स्वतंत्र मौलिक रचना के प्रति विशेष आग्रह था। आराध्य ईश्वर की भक्ति में इन्होंने अपने आपको कांता, विरहिणी, दास, शिशु आदि रूपों में प्रस्तुत किया है। भाषा-शैली अत्यंत सरस, सरल और उपमा-दृष्टांतों से परिपूर्ण है।

दास्तान-ए-तिलिस्म-ए-होशरुबा (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1801-25 ई० के बीच]

'दास्तान-ए-तिलिस्म-ए-होशरुबा' अहमद हुसैन कमर की रचना है। यह 'दास्तान-ए-अमीर-हमज़ा' की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह इतनी लंबी कथा है कि सात जिल्दों में समाप्त हुई है। इसमें एक सर्वथा नवीन जगत् की सृष्टि की गई है जिसके शासक, शासन-विधान, परिवेश सब कुछ नया और अपरिचित-सा भी लगता है और जाना-पहचाना भी। इसमें 'तिलिस्म होशरुबा' नामक एक जादू की नगरी की विजय-गाथा है। इसमें वातावरण, पात्र, घटनाएँ तथा संवाद सबमें जादू का आधार है। पर मनोवैज्ञानिक तथ्य भी प्रस्तुत किए गए हैं।

'तिलिस्म-ए-होशरुबा' में अमीर हमज़ा और उसके सहयोगी सत् के प्रतीक हैं। असत् के प्रतीक अफ़रासियाब और उसके साथियों पर इनकी विजय दिखाई गई है। इसमें समर-भूमि का साहस, उत्साह एवं संघर्ष भी है और रंगमहलों के विलास तथा शृंगारिक प्रेम का चित्रण भी। एक ओर शौर्य की परीक्षा है तो दूसरी ओर प्रेम तथा यौवन की उमंग की जाँच भी है।

'तिलिस्म-ए-होशरुबा' अरबी तथा भारतीय संस्कृतियों का समन्वित रूप प्रस्तुत करती है। अमीर-हमज़ा जैसे नायक में अरबों का परंपरागत शौर्य भी है और लखनऊ की मध्यकालीन विलासिता भी। कथा का असंतुलित विस्तार इसकी लोकप्रियता में बाधक बना है। भाषा में स्वाभाविकता तथा अस्वाभाविकता का समन्वय है और लखनवी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। घटना एवं पात्र-बहुलता के कारण चरित्रांकन में स्वभावतः गहराई नहीं आ सकी। प्रेमचंद (दे०) ने कथा-लेखन के प्रेरणा-स्रोतों में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है।

दिगंबर कविता (ते० प्र०)

पूर्व-निश्चित जीवन-मूल्यों को अस्वीकार कर, समस्त प्राचीनता को नष्टभ्रष्ट कर, नये जीवन-बोध का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यांकन दिगंबरता से—बिना किसी मुखौटे के, बिना किसी आच्छादन के—करने का निश्चय कर छह युवाकवियों ने 'दिगंबर शक' का श्रीगणेश किया। इनके नाम इस प्रकार हैं : (1) नग्नमुनि, (2) निखिलेश्वर, (3) ज्वालामुखी, (4) चेरबंडराजु, (5) भैरवप्पा, (6) महास्वप्न। इन्होंने अपने नाम से संवत्सर चलाए हैं। छह ऋतुओं और छह वारों के नाम क्रमशः इस प्रकार दिए हैं : आशा, तपना, अश्रु, मदिरा, विरह, और विषाद; स्नेह, विशृंखल, क्रांति, सृजन, विकास और अनंत। इन्होंने अपनी कविताओं को 'दिक्' कहा है।

तीन कविता-संग्रह (प्रथम 1 मई 1965 ई० का, द्वितीय दिसंबर 1966 ई० का, तृतीय जून 1968 ई० का) प्रकाशित करने के बाद, 1970 ई० में यह पीढ़ी लगभग विघटित हो गई। अब ('70 के बाद) तेलुगु में विरसम्= विप्लव रचयिता (रचयिताओं का)-संघ अस्तित्व में आया है।)

अपने अनुभवों के आधार पर, दिगंबर स्वर से, वर्तमान की कटु आलोचना करने वाले दिगंबर कवियों ने उद्बोधन किया कि सभी मुखौटों को हटाकर, दिगंबर होकर, अपने आपको देख लो तो वर्तमान व्यवस्था को बदल देने के लिए कटिबद्ध हो जाओगे। किंतु वर्तमान की कटु-तिक्त आलोचना के अतिरिक्त इनके पास कोई जीवन-दर्शन नहीं रहा, इसलिए ये कवि समाज पर कोई स्थायी प्रभाव डाले बिना ही, मात्र एक चकाचौंध उत्पन्न कर, विलीन हो गए।

दिगू *(म० पा०)*

यह बाळ कोल्हटकर (दे०) के 'दुरिताचें तिमिर जावो' नाटक का अमर पात्र है। अपने बहनोई द्वारा दिए गए कष्टों को भी यह हँसते-हँसते सह लेता है परंतु बहनोई द्वारा अपनी ममतामयी माँ को धीरे-धीरे ज़हर दिए जाने की बात से अवगत हो इसका भावुक मन हाहाकार कर उठता है। यद्यपि बहनोई ने छल-कपट से इसकी समस्त संपत्ति का अपहरण कर इसकी स्थिति घर के सामान्य नौकर से भी बदतर बना दी है तथापि इसके आचार-व्यवहार में कोई अंतर नहीं आया बल्कि अपने सद्व्यवहार एवं सहज-सरल प्रकृति के कारण यह जन-सामान्य में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है। अपनी माँ के देहावसान के उपरांत ही यह अपने बहनोई के षड्यंत्रों से पूर्णरूपेण परिचित होता है और अपनी खोई संपत्ति को प्राप्त करने में सफल होता है। गाँव में पड़े भीषण दुर्भिक्ष को दूर करने के लिए यह आत्मबलिदान कर जनता की श्रद्धा और कृपा का भाजन बन जाता है। दिगू का आदर्शवादी चरित्र नाटककार के सिद्धांतादर्शों का संवाहक मात्र होने के कारण उसके द्वारा ही परिचालित होता है।

दिघे, र० वा० *(म० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

शिवाजी की भूमि में, शिवाजी की सहायता करने वाले पूर्वजों के परिवार में उत्पन्न दिघे ने पूना के सुप्रसिद्ध विद्यालय 'डेकन कॉलेज' से बी० ए०, एल-एल० बी० किया। कुछ दिन वकालत करने के बाद ये साहित्य-सेवा में संलग्न हुए और आज वृद्धावस्था में अपने गाँव में खेती की देखभाल तथा साहित्य-सेवा करते हुए जीवन-यापन कर रहे हैं। उनके उपन्यास-साहित्य की विशेषताएँ हैं—ग्रामीण जीवन का वर्णन, शृंगार और अद्भुत का पुट तथा देशभक्ति। वस्तुतः ग्रामीण जीवन पर उपन्यास लिखने वालों में दिघे अग्रणी हैं। इनके उपन्यासों की भाषा, प्रसंग और भावना सभी ग्राम्य-गंध से सुवासित हैं। इनके उपन्यासों में कातोडी आदि जंगली जातियों के रहन-सहन, युवकों की कुश्ती, बैलों की दौड़, बाघ के शिकार, गरीबी, खेत, प्रणय-व्यापार आदि का सजीव वर्णन है। शब्द-चित्रों ने उनके उपन्यासों को अत्यंत मोहक बना दिया है। महाराष्ट्र के वृक्षों, पुष्पों, पक्षियों, सुवासित वातावरण, सुंदर अल्हड़ युवतियों, चंद्रोदय आदि के शब्द-चित्र न केवल वातावरण को पाठक के सम्मुख साकार कर देते हैं अपितु लेखक की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, कल्पना-वैभव और चित्रण-कौशल के भी परिचायक हैं। यदि इनके उपन्यासों में कोई बात खटकती है तो वह है पात्रों का अस्वाभाविक आचरण और अस्वाभाविक भाषा। उनकी जंगली जाति की नायिकाएँ जब कॉलिज-कन्या की तरह व्यवहार करती हैं और नागर-समाज की पुस्तकीय भाषा बोलती हैं तो रस-भंग हो जाता है। फिर भी साहित्य-समिति ने पुरस्कार देकर तथा रजत-पट ने उनकी कृतियों को पट-कथा के लिए चुनकर इनका भारी सम्मान किया है।

प्रधान कृतियाँ—पाणकळा, सराई, गानलुब्धा मृगनयना, आई आहे शेतांत।

दिङ्नाग (धीरनाग, वीरनाग) *(सं० ले०)*

इस नाम के दो लेखक कहे जाते हैं— बौद्ध दार्श-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक दिङ्नाग जोकि पाँचवीं शती में विद्यमान थे, तथा 'कुंदमाला' (दे०) नाटक के रचयिता दिङ्नाग, जो कि अनुमानतः 1000 ई० में विद्यमान थे। नाटककार दिङ्-नाग का नाम धीरनाग या वीरनाग भी कहा जाता है। 'कुंदमाला' में राम द्वारा सीता के परित्याग से लेकर राम-सीता-मिलन तक की घटना का वर्णन है। गोमती के तट पर घूमते हुए राम-लक्ष्मण ने जल में बहती हुई कुंद के फूलों की माला को देखकर सीता को खोज निकाला, अतः नाटक का नाम 'कुंदमाला' है। 'कुंदमाला' और भवभूति (दे०)-रचित 'उत्तररामचरित' (दे०) में अनेक प्रसंगों में साम्य है, अतः दिङ्नाग भवभूति के ऋणी प्रतीत होते हैं, किंतु फिर भी दिङ्नाग ने स्थान-स्थान पर अपनी मौलिकता भी प्रकट की है। इन दोनों नाटकों में स्पष्ट अंतर भी परिलक्षित होते हैं। 'उत्तररामचरित' में करुण और वीररस का परिपाक हुआ है, और 'कुंदमाला' में करुण रस का। 'उत्तररामचरित' में राम और सीता अधिक आदर्शवादी हैं, किंतु 'कुंदमाला' में दोनों मानवीय न्यूनताएँ भी हैं। 'उत्तररामचरित' की शैली दुर्बोध एवं श्रमसाध्य है, किंतु 'कुंदमाला' की सरल, सुबोध है। इसके अतिरिक्त 'उत्तररामचरित' अभिनेयता की दृष्टि से इतना सफल नहीं है, जितना कि 'कुंदमाला' नाटक है। हाँ, कवित्व की दृष्टि से 'उत्तररामचरित' का महत्व 'कुंदमाला' की अपेक्षा कहीं अधिक है।

'दिनकर', रामधारीसिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1908 ई०; मृत्यु—1974 ई०]

इनका जन्मस्थान ग्राम सिमरिया, जिला मुंगेर (बिहार) है। एक साधारण कृषक-परिवार में जन्म लेकर भी ये प्रतिभा और अध्यवसाय के बल पर भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति और भारत सरकार के हिंदी सलाहकार के उत्तरदायित्वपूर्ण पदों तक पहुँचे। 1952-64 ई० में ये राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे। अपनी साहित्य-सेवाओं के लिए इन्हें भागलपुर विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की सम्मानोपाधि और भारत सरकार से 'पद्मभूषण' का अलंकरण प्राप्त हुआ।

इनकी काव्य-कृतियों में 'हुंकार', 'रसवंती' (दे०), 'सामधेनी' आदि मुक्तक और 'कुरुक्षेत्र' (दे०), 'उर्वशी' (दे०) आदि प्रबंध-रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। 'चक्रवाल' इनकी चुनी हुई रचनाओं का संकलन है। अपने और अपने युग के काव्य का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण करने के लिए इन्होंने कुछ आलोचनात्मक निबंध भी लिखे हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' पर इन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

इनके काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक है। कवि की राष्ट्रीय भावना पर तत्कालीन उग्र राजनीति का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन की आकांक्षा से इन्होंने क्रांति का आह्वान ओजस्वी भाषा में किया है। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में ग्राम जीवन का सारल्य और युवकोचित आवेग सर्वत्र दिखाई देता है। परवर्ती रचनाओं में सारल्य के साथ शिल्प-समृद्धि और आवेग के साथ चिंतन-प्रौढ़ि का दुर्लभ संयोग हो गया है जिसके ज्वलंत उदाहरण हैं—'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी'।

'दिनकर' के काव्य में उदात्त और कोमल का सुंदर समन्वय है। इसलिए इनके काव्य में वीर और श्रृंगार की धाराएँ आद्यंत युगपत् प्रवाहित रही हैं। 'महाभारत' (दे०) जैसे आर्ष ग्रंथों की प्रवृत्तिमूलक विचारधारा से इनकी संस्कृतिनिष्ठ प्रतिभा निरंतर प्रभावित रही है। इसी विचारधारा में प्रतिष्ठित होकर इन्होंने प्रगतिवादी (दे०) या फ्रायडवादी पाश्चात्य प्रवृतियों का स्वस्थ रीति से उन्नयन किया है। 'कुरुक्षेत्र' का प्रगतिवाद अद्वैतवादी कर्मयोग के और उर्वशी का फ़ायडवाद त्यागपूर्वक भोग के सिद्धांत में रम गया है।

कलात्मक दृष्टि से प्रसादमयी निश्छल अभिव्यक्ति और ओजस्वी भाषा इनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनकी आस्था देश की मिट्टी में अंकुरित होकर पूर्वग्रहमुक्त सार्वभौम विज्ञान के निरभ्र आकाश में पल्लवित हुई है।

दिया अभयनां दान *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

शिवकुमार जोशी (दे०) का यह उपन्यास 1962 ई० के भारत-चीन संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। लेखक ने स्वयं युद्धभूमि में जाकर युद्ध-विषयक जानकारी प्राप्त करने के बाद ही यह उपन्यास लिखा है। रणांगण कथास्थान होने के कारण उसमें विशाल और विविध पात्रसृष्टि है। पत्रकार, गुप्तचर, पुलिस और सैन्य अधिकारी, व्यापारी, देशद्रोही, हिंदी, तिव्वती, अँग्रेज, अमरीकी और चीनी—इस प्रकार लेखक ने सारा विश्व खड़ा कर दिया है। लेखक ने बहुत-सी ऐतिहासिक और भौगोलिक सूचनाएँ भी दी हैं। लेखक ने कथा के अंतिम भाग में नायिका के परस्पर विरोधी जैसे दो व्यक्तित्व दिखाकर परिवेश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त कथाशिल्प को भी आधुनिक रंग दिया है। गुजराती उपन्यास-साहित्य में युद्ध की पटभूमि पर लिखा गया यह एकमात्र उपन्यास है और इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

दियाच *(सिं० पा०)*

सिंधी साहित्य में राजा दियाच की लोक-कथा प्रसिद्ध है। राजा दियाच सिंध के दस दानवीर राजाओं में से एक था और गिरनार (जूनागढ़) में उसकी राजधानी थी। गुजरात का राजा अनिराइ राजा दियाच का कट्टर शत्रु था और उसे मारने की ताक में लगा रहता था। राजा अनिराइ ने अपने राज्य के बीजल नामक एक चारण को राजा दियाच का सिर काट कर लाने की आज्ञा दी। राजा दियाच का संगीत-प्रेम प्रसिद्ध था और बीजल चंग बजाने में सिद्धहस्त था। बीजल को विवश होकर यह कुकर्म करना पड़ा। उसने राजा दियाच को संगीत से मुग्ध कर उससे दान में सिर ले लिया। बीजल जब राजा दियाच का सिर लेकर राजा अनिराइ के दरबार में पहुँचा तब राजा अनिराइ ने बीजल को अपने लिए भी खतरे का कारण समझ कर उसे देश से निकाल दिया। बीजल अपने किए पर पछताता हुआ वापस गिरनार पहुँचा जहाँ रानी सोरठ अपने पति राजा दियाच के धड़ के साथ सती हो रही थी। बीजल भी इस दानवीर राजा के सिर को लेकर चिता की आग में कूद पड़ा और इस प्रकार इसने अपने पाप का प्रायश्चित्त किया। सिंधी साहित्य में राजा दियाच संगीत-प्रेमी और महान् दानवीर के रूप में अभी तक याद किया जाता है।

दिलआराम *(उर्दू० पा०)*

'अनारकली' (दे०) नाटक को एक त्रासदी बनाने में दिलआराम की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। 'ताज' (दे० इम्तियाज़ अली 'ताज') ने अनारकली के माध्यम से औरत का गहरा दार्शनिक निरूपण किया है। यों तो दिलआराम एक दासी थी जिसका काम शाहे-वक्त और शाहज़ादे की खिदमत करना था लेकिन उसने शाहज़ादे की मुहब्बत में मुग़ल हुकूमत पर निगाह रखी। इस पात्र में इंद्रियलोलुपता, खुशामदीपन और ईर्ष्यालुता की आत्मा पाई जाती है। वह बला की ज़हीन है। महल की हर बात पर उसकी निगाह रहती है। सलीम से लेकर अकबर तक उसके इशारों पर नाचते हैं। वह सलीम से नहीं, अकबर के ताजो-तख़्त से मुहब्बत करती है और उसकी अभिव्यक्ति का अवसर तलाश रही थी कि उसी वक्त अनारकली सामने आई। उसे रास्ते से हटाने के लिए दिलआराम ने पूरे महल में छलकपट का जाल बिछा दिया। यह सही है कि इस जाल में वह खुद ही फँस गई और उसे सफलता नहीं मिली परंतु अपनी प्रखर बुद्धि से उसने अपनी प्रतिद्वंद्विनी को भी मटियामेट कर दिया। वह न होती तो अनारकली की मुहब्बत सादा-सपाट हो जाती; दिलआराम के छल-कपट ने उसे चमका दिया। दिल आराम खुद जलती है तो सारी दुनिया में आग लगा देती है—यहाँ तक कि जिससे मुहब्बत करती है उसकी भी तबाही का कारण बन जाती है।

'दिलगीर', हरी दर्याणी *(सिं० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म सिंध के लाड़काणो नामक नगर में हुआ था। व्यवसाय से इंजीनियर होते हुए भी ये सिंधी के प्रमुख कवियों में स्थान रखते हैं। आजकल ये आदिपुर (कच्छ) में एक महाविद्यालय के मुख्याध्यापक हैं। इन्होंने सिंध के प्रसिद्ध कवि किशनचंद 'बेबस' (दे०) से अधिक प्रेरणा प्राप्त की है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं—'कोद', 'हरिश्चंद्र जीवन कविता', 'माकफुड़ा' (नारायण श्याम और आपकी कविताओं का संग्रह), 'मौज कई महिराणा'। इन्होंने जहाँ एक ओर बच्चों के लिए सरल और मधुर गीत लिखे हैं वहीं दूसरी ओर गहन और दार्शनिक विचारों से पूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं। सिंधी कविता के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

दिलीप *(सं० पा०)*

दिलीप प्रथम और दिलीप खट्वांग इन दोनों को कई विद्वान् एक मानते हैं और कई अलग-अलग। दिलीप प्रथम को राजा भगीरथ का पिता माना जाता है जो अपने 'भगीरथ' प्रयास से गंगा नदी को पृथ्वी पर ले आए थे। दिलीप खट्वांग को अयोध्या के प्रसिद्ध राजा रघु का पितामह माना जाता है। दिलीप खट्वांग ने अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ पुत्रोत्पत्ति के हेतु कामधेनु-कन्या नंदिनी गाय की सेवा करनी आरंभ की थी और 'मायावी' सिंह से उसकी रक्षा करने के लिए स्वदेह तक का अर्पण कर दिया था। परिणामतः, धेनु के प्रसादस्वरूप इसे रघु नामक पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्राप्ति हुई। कालिदास (दे०) ने इसी गाथा को 'रघुवंश' (दे०) में प्रस्तुत किया है। दिलीप चक्रवर्ती सम्राट् था और इसने सैंकड़ों यज्ञ किए थे और अपार संपत्ति दान में दी थी।

दिवाकर कृष्ण (*म० ले०*) [जन्म—1902 ई०]

स्वल्प लिखकर भी जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अमरत्व प्राप्त किया है उनमें कहानीकार दिवाकर कृष्ण का नाम उल्लेखनीय है। एम० ए०, एल-एल० बी० कर हैदराबाद में वकालत करने वाले इस लेखक के केवल 7-7 कहानियों के दो कथा-संग्रह प्रकाशित हुए। एक की कहानियाँ यदि पाठक को करुण रस से आप्लावित करती हैं तो दूसरे को पढ़ते समय पाठक प्रणय की कोमल और सूक्ष्म भावधारा में अवगाहन करने लगता है। रवींद्र (दे० ठाकुर रवींद्रनाथ) की काव्यमयता और भावुकता, बाल-मानस तथा स्त्री-हृदय का संवेदनापूर्ण चित्रण, स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति, रम्य प्राकृतिक दृश्यों की मोहकता तथा प्रसादगुणसंपन्न काव्यमय भाषा इनकी कहानियों के विशिष्ट गुण हैं।

प्रमुख कथा-संग्रह—'समाधि', 'रूपगर्विता' आदि।

दिवाकर, रं० रा० (*क० ले०*) [जन्म—1894 ई०]

रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर कर्णाटक के महान् नेता, जननायक, गांधीवादी तथा साहित्यकार हैं। इन्होंने संत-साहित्य, विचार-साहित्य आदि पर बहुत-कुछ लिखा है। इनका जन्म धारवाड़ के एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। इन्होंने धारवाड़ तथा बंबई में शिक्षा पाई। अँग्रेज़ी में एम० ए० करके इन्होंने वकालत की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। विद्यार्थी-जीवन में ही गांधी जी की पुकार सुनकर ये स्वराज्य-संग्राम में कूद पड़े थे और कई बार जेल भी गए थे। स्वराज्य-प्राप्ति पर ये केंद्रीय मंत्रिमंडल में संचार-मंत्री रहे। बाद में बिहार के राज्यपाल रहे।

दिवाकर अध्यात्मवादी हैं। जेल में रहते समय इन्होंने कर्णाटक के वीरशैव संतों की बानियों का विशेष अध्ययन किया था। इसके फलस्वरूप इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'वचनशास्त्र-रहस्य' निकला। रहस्यवाद की विस्तृत भूमिका तथा कर्णाटक के संतों के साथ हिंदी, मराठी तथा पाश्चात्य संतों की विचारधारा की तुलना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी शैली अत्यंत प्रांजल है। इसी प्रकार इन्होंने कर्णाटक के हरिदासों का भी गहरा अध्ययन किया है जिसके फलस्वरूप इनका 'हरिभक्ति सुधे' नामक संग्रह प्रकाश में आया। इसकी भूमिका में भक्ति के उद्गम और विकास की सुंदर चर्चा है। वचनकारों की शैली में इन्होंने गद्य-काव्य भी लिखे हैं जो 'अंतरस्मृतिगे' (अंतरात्मा से) में संगृहीत हैं। इनमें यद्यपि आत्मनिरीक्षण, अतिभक्ति और आनंदानुभूति है तथापि इनकी शैली अत्यंत मार्मिक है। मतातीत आधुनिक भक्त जीव की अत्यंत सहज अभिव्यक्ति इनमें है। इन्होंने गीता पर भाष्य तथा उपनिषदों का सरल अनुवाद भी किया है। महर्षि अरविंद की जीवनी भी इन्होंने कन्नड तथा अँग्रेज़ी में लिखी है। ये कन्नड के आध्यात्मिक साहित्य के स्रष्टा एवं अधिकारी विद्वान हैं।

दिवेटिया, नरसिंहराव (*गु० ले०*) [जन्म—1859 ई०; मृत्यु 1937 ई०]

अहमदाबाद के एक संभ्रांत नागर परिवार में उत्पन्न नरसिंह राव को पिता भोलानाथ दिवेटिया का कला-प्रेम, साहित्यानुराग, सुधार-दृष्टि और पांडित्य विरासत में मिला था। भाउदाजी पुरस्कार के साथ संस्कृत में बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ये सरकारी नौकरी में लगे और कलेक्टर के पद तक पहुँचकर 1912 ई० में निवृत्त हुए। ऊपर से सब प्रकार से सुखी नरसिंह राव का अंतर्मन पुत्र, पुत्री व पत्नी की मृत्यु के मर्मांतक घावों से पीड़ाग्रस्त रहा।

1921 ई० में बंबई विश्वविद्यालय ने इनकी मानद सेवाओं के साथ गुजराती विषय का उच्चस्तरीय अध्यापन व शोधकार्य प्रारंभ किया।

'मनोमुकुर' भा० 1-4 (समीक्षा) (दे०), 'स्मरणमुकुर' (रेखाचित्र), 'विवर्तलीला' (निबंध), 'अभिनय-कला' (रंगमंच-विषयक व्याख्यान), 'नरसिंह राव जी रोजनीशी' (डायरी), 'कुसुममाला', 'हृदयवीणा', 'नूपुर-झंकार', 'स्मरण-संहिता' (दे०) (काव्य-रचनाएँ), 'बुद्ध-चरित (पद्यानुवाद)', 'गुजरात एंड इट्स लिटरेचर' इनकी रचनाएँ हैं।

'कुसुममाला' अर्वाचीन गुजराती कविता में नवप्रस्थानकारी रचना है। पाश्चात्य शैली के प्रेम व प्रकृति-विषयक इनकी असंख्य प्रगीति-कविताएँ इसमें संकलित हैं। 'हृदय-वीणा' भी स्वानुभूति-निरूपक प्रगीतों का संग्रह है। 'नूपुर-झंकार' में कवित्व थोड़ा उतार पर है। 'स्मरण-संहिता' गुजराती की एक उत्तम करुण-प्रशस्ति (एलिजी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पुत्रशोक इसका मुख्य विषय है। 'बुद्ध-चरित' एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ़ एशिया' का पद्यानुवाद है। प्रतिभाशाली पंडित, प्रकृति और प्रेम के समर्थ गीतिकार, समीक्षक तथा भाषाशास्त्री के रूप में नरसिंहराव का स्थान व कार्य गुजराती में अविस्मरणीय रहेगा।

दिवेटिया, भोगींद्र राव *(गु० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1917 ई०]

भोगींद्रराव दिवेटिया का जन्म अहमदाबाद में हुआ था। 1890 ई० में ही, 15-16 वर्ष की अवस्था में, इन्होंने काव्य-प्रणयन करना शुरू किया था। 1900 ई० में इंद्रबा से इनका विवाह हुआ। वे एक सुरुचिशील लेखिका थीं और 'प्रमिला' के नाम से कहानियाँ लिखती थीं।

भोगींद्रराव दिवेटिया कवि, संपादक व उपन्यासकार थे। 25-26 वर्ष के सर्जक जीवन में इन्होंने 25 ग्रंथ रचे। ये 'सुंदरी सुबोध' के संपादक थे। व्यवसाय से ये अध्यापक थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं—

'मृदुला', 'उषाकांत', 'चमेली', 'राजमार्ग नो मुसाफिर', 'सितारा नो शोख', 'जीवन-कला', 'नवरंगी बाळको', 'रसिकचंद्र', 'तरला', 'एसिस्टेंट कलेक्टर', 'त्रिभुवनदास भाणजी का चरित्र', 'मोहिनी', 'दिवाली के होळी', 'स्नेह के मोह', 'लग्न धर्म के करार', 'बालकुमार', 'अजामिल', 'कॉलेजियन', 'ललितकुमार', 'ज्योत्स्ना', 'स्त्रीओ अने समाज सेवा', 'सालीसीटर', 'बालवाड़ी', 'टॉलस्टॉय-जीवन-चरित्र', 'इंगलैंड नो इतिहास'।

इन ग्रंथों से पता चलता है कि ये बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। जीवनी, उपन्यास, काव्य, इतिहास, स्त्री-शिक्षा, बाल साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में इनका योगदान काफ़ी महत्वपूर्ण है। इन्होंने रमणलाल देसाई (दे०) जैसे सिद्ध उपन्यासकारों के लिए भूमिका तैयार की। मध्यमवर्गीय जीवन का स्वाभाविक किंतु रोचक चित्र तथा निर्धनता की मर्मभेदिनी कथा प्रस्तुत करने में ये सिद्धहस्त हैं। वैविध्यपूर्ण चरित्र-सृष्टि इनके उपन्यासकार की शक्ति है।

दिव्यचक्षु *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

रमणलाल वसंतलाल देसाई (दे०) द्वारा रचित 'दिव्यचक्षु' नामक उपन्यास 1932 ई० में प्रकाशित हुआ था। गांधीवादी विचारधारा और राजनीतिक कार्य-पद्धति की भूमिका पर लेखक ने प्रेम के उदात्ततम रूप को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। नायक अरुण से पुष्पा और रंजना दोनों प्रेम करती हैं। उन्मुक्त स्वभाववाली रंजना अरुण को पुष्पा के लिए छोड़ देती है और पुष्पा को जब यह ज्ञात होता है कि अरुण अपनी संपूर्ण हार्दिकता से रंजना को ही प्रेम करता है तो पुष्पा उसे पुनः रंजना को ही सौंप देती है और यह माँग लेती है कि उनकी पहली संतान पुष्पा को ही मिलनी चाहिए। इस कथा का दूसरा पक्ष है अरुण। क्रांतिकारी अरुण जनार्दन के संपर्क में आने से गांधीवादी अहिंसा को एक वर्ष के लिए स्वीकार कर लेता है। ध्वजारोहण के प्रयत्न में घायल होकर बंदी बना लिया जाता है। जेल में आग लगने पर वह अँग्रेज़ परिवार को भी बचाने का उपक्रम करता है और स्वयं अपनी आँख खो देता है। यही समय है जब रंजना उसे सहारा देकर आत्म-हत्या करने से रोक लेती है। राष्ट्रीय और उदात्त प्रेम की यह एक सुंदर कथा है। 'दिव्यचक्षु' पढ़कर सहज ही मुंशी प्रेमचंद (दे०) का स्मरण हो आता है। इस उपन्यास में वर्णनात्मकता और कहीं-कहीं सूक्त्यात्मकता के वैसे ही दर्शन होते हैं जैसे प्रेमचंद में।

दिव्या *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1945 ई०]

बौद्धकालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधृत यशपाल (दे०) की इस प्रसिद्ध औपन्यासिक कृति में तत्युगीन भारत के आभिजात्य वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग के शोषण, दास-दासियों की दयनीय स्थिति तथा उनके साथ किए जाने वाले पशुवत् व्यवहार, कुलों के पारस्परिक कलह और नानाविध संघर्षों के मध्य गुज़रती हुई नारी की कारुणिक दशा का कलापूर्ण अंकन है। मार्मिक एवं कौतूहलवर्धक कथा-प्रसंगों के समुचित संयोजन, युग-युगांतर से शोषित नारी के विद्रोह को स्वर प्रदान करने वाली दिव्या (दे०) सदृश सशक्त चारित्रिक सृष्टि, संक्षिप्त, स्वाभाविक और पात्रों की चरित्रगत विशिष्टताओं को उद्घाटित करने वाली रोचक संवाद-योजना, देशकाल-व्यंजक, भावात्मक एवं चित्रोपम भाषा-शैली आदि कतिपय अन्य ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरूप यह कृति न केवल हिंदी के औपन्यासिक साहित्य की महत्वपूर्ण निधि बन गई है अपितु देश-विदेश की अनेक भाषाओं में अनूदित होने का गौरव प्राप्त कर चुकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्या *(हिं० पा०)*

यह यशपाल (दे०) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' (दे०) की एक ऐसी चारित्रिक सृष्टि है जिसमें लेखक ने सामंतयुगीन, उच्चकुलोद्भव तथा सुकुमार नारी को युग-युग से शोषित नारी के विद्रोह के प्रतीक-रूप में प्रतिष्ठित किया है। नानाविध सामाजिक कुरीतियों, अत्याचारों, विषमताओं आदि को सहती हुई सागल के धर्मस्थ महापंडित की प्रपौत्री तथा जनपद-कल्याणी मल्लिका की शिष्या दिव्या इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि नारी को कुलवधू का सम्मान, कुलमाता का आदर तथा कुलमहादेवी का अधिकार स्वत्व का त्याग करके ही प्राप्त होता है। लेकिन यह स्वाभिमानिनी नारी स्वत्व को नष्ट करना नहीं चाहती तथा आभिजात्य के वैभव-विलास को तुच्छ मानते हुए ठुकरा देती है। उसकी दृष्टि में आत्मनिर्भरता के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहना तथा वेश्या-सा निरर्थक जीवन व्यतीत करना कहीं अधिक सार्थक है। आत्मविश्वास से परिपूर्ण यह प्रगतिशील साहसी नारी अवैध संतान को कलंक नहीं समझती और उसके पालन-पोषण के निमित्त दासी-कर्म करने तथा स्वयं को बेचने के लिए भी तैयार रहती है।

दिव्यावदान *(सं०.क्०)* [समय—संभवतः पहली शती ई०]

संस्कृत में पालिजातकों की भाँति बौद्ध कथाओं को सन्निविष्ट करने वाले साहित्य को 'अवदान साहित्य' कहते हैं। इनमें 'दिव्यावदान' अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

इस ग्रंथ में मुख्यतः हीनयान को आधार बनाया गया है। इसकी कथाएँ गद्य में हैं, पर स्थान-स्थान पर गाथाएँ दी गई हैं, जो पद्यबद्ध तथा अलंकारयुक्त हैं। इसकी भाषा विशुद्ध संस्कृत है पर कहीं-कहीं पाली के संपर्क से मिश्रित तथा भ्रष्ट भाषा का प्रयोग भी किया गया है। अशोक से संबंध रखने वाली कथाएँ ऐतिहासिक तथा मनोरंजक हैं, परंतु उनके कहने का ढंग बिलकुल भोंडा, अव्यवस्थित तथा विशृंखल है।

दीक्षित, (श्रीमती) मुक्ताबाई *(म० ले०)*

श्रीमती मुक्तावाई दीक्षित बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। अपने कथा-साहित्य के अनुरूप ही अपनी नाट्य-रचनाओं की कथा का चयन इन्होंने मुख्यतः मध्यवर्गीय सामाजिक जन-जीवन से किया है। 'जुगार', 'अवलिया' तथा 'संसार' इनकी प्रमुख नाट्य-रचनाएँ हैं। 'जुगार' में विवाह को जुआ समझने वाली महिला का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। 'अवलिया' में सुख-दुःख को समान रूप से ग्रहण करने का संदेश है तथा 'संसार' में पतनोन्मुख बौद्ध धर्म का सजीव अंकन। इन नाटकों में कथा का विकास जहाँ पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है, वहाँ चरित्र-निरूपण मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर हुआ है। अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण तथा पात्र-प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त मार्मिक संवाद इनकी नाट्य-रचनाओं की अनूठी विशेषता है।

दीनकृष्णदास *(उ० ले०)* [जन्म—1651 ई०; मृत्यु—1713 ई०]

भक्त-शिरोमणि, रससिद्ध कवि दीनकृष्णदास का प्रभाव उपेंद्र भंज (दे०) से लेकर राधानाथ, मधुसूदन (दे०) व गंगाधर मेहेर (दे०) तक देखा जा सकता हैं। दीनकृष्णदास बालेश्वर ज़िले के जलेश्वर ग्राम के निवासी तथा मधुसूदनदास के पुत्र थे। ये द्वितीय मुकुंद देव तथा दिव्यसिंह देव के शासनकाल में जीवित थे। दीनकृष्ण पंचसखा (दे०)-मतावलंबी तथा जगन्नाथ के अनन्य उपासक थे। कृष्ण की पूजा इन्होंने मानव-विष्णु के रूप में की है। यद्यपि इनके काव्य में शुद्ध भक्ति का निर्देश मिलता है, फिर भी योग व ज्ञान-संकलित भक्ति पर इनका अधिक विश्वास था। रुग्ण व निर्धन होते हुए भी दीनकृष्णदास ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य-चेतना के मूल्य पर राजकृपा नहीं लेनी चाही थी; फलतः इन्हें दंडित होना पड़ा।

जीवन की कड़वी अनुभूति, सामाजिक कटुता, आर्थिक विपन्नता, शारीरिक अस्वस्थता तथा राजदंड के कारण इनका अंतर क्षुब्ध हो गया था। सभी ओर से निराश होकर इन्होंने अपने को जगन्नाथ के पाद-पद्मों में समर्पित कर दिया। 'आर्तत्राण चउतिशा' इनके आकुल अंतर की आवेगमयी अभिव्यक्ति है। यह लघु काव्य भाव-संपदा व काव्य-वैभव की दृष्टि से महान रचना है। 'रस-कल्लोल' (दे०) में कृति की संज्ञा के अनुरूप ही रस कल्लोल कर रहा है। कृष्ण के नयनाभिराम रूप पर मोहित कवि के भाव-विह्वल अंतर ने 'रस-कल्लोल' का रूप ले लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रस-विनोद', 'नाव-केलि', 'जगमोहन छांद', 'नवरत्न-गीता' आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं। इनकी रचनाओं की जन-प्रियता के मूल में इनकी संगीतात्मकता, मंजुल अलंकार-योजना, नैषधीय (दे० नैषध) शब्द-चमत्कार, गीत-गोविंद (दे०)-जैसा पद-लालित्य आदि विशेषताएँ हैं।

दीनदयाल गिरि (*हिं० ले०*) [जन्म—1802 ई०; मृत्यु—1865 ई०]

ये दशनामी संन्यासी और कृष्णभक्त थे। काशी में पश्चिमी द्वार पर देहली-विनायक पर रहा करते थे। इनके कृष्णलीला-विषयक 'अनुराग बाग', वैराग्य-विषयक 'वैराग्य-दिनेश' तथा नीति-विषयक 'दृष्टांततरंगिणी', 'अन्योक्तिमाला' तथा 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' नामक पाँच ग्रंथ पाए जाते हैं, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) से 'दीनदयाल गिरि ग्रंथावली' नाम से डा० श्यामसुंदरदास (दे०) द्वारा संपादित हो चुके हैं। दीनदयाल हिंदी नीति-काव्य के प्रमुख स्तंभों में से हैं। इनके प्रिय छंद कुंडलिया और दोहा हैं। अन्योक्ति ही इनकी शैली का अनिवार्य अंग है।

दीनबंधु (*बँ० ले०*) [जन्म—1830 ई०; मृत्यु—1874 ई०]

दीनबंधु का जन्म नदिया ज़िले में और शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में हुई थी। ये डाक-विभाग में काम करते थे और अपने समकालीन साहित्यकारों से इनका पर्याप्त साहचर्य-संपर्क था।

छात्रावस्था में ही ईश्वरचंद्र गुप्त (दे०) से अनुप्रेरित होकर इन्होंने काव्य-जगत् में प्रवेश किया। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ कविताएँ थीं जो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं परंतु वान्तव में इनकी प्रसिद्धि नाटककार के रूप में ही हुई। इनके नाटक हैं—'नीलदर्पण' (दे०) (1860), 'नवीन तपस्विनी' (1863), 'पागला बुड़ो' (1866), 'सधवार एकादशी' (1866), 'लीलावती' (1867), 'जामाइ बारिक' (1872), 'कमलेकामिनी नाटक' (1873)।

'नीलदर्पण' में दीनबंधु ने एक समसामयिक ज्वलंत समस्या को उठाया है। 'कमलेकामिनी' इतिहासाश्रित रोमानी नाटक है जिसकी कथा 'नवीन तपस्विनी' से मिलती-जुलती है। अतिरंजना के कारण कहीं-कहीं इसमें अस्वाभाविकता आ गई है। 'दीनबंधु' की शेष रचनाएँ हास्य-व्यंग्यपूर्ण नाटक हैं। इनमें इन्होंने सामाजिक विकृतियों एवं विसंगतियों पर कटाक्ष किए हैं। परंतु उसका मानवीय स्वरूप हास्य-व्यंग्य के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

दीनबंधु के उपर्युक्त नाटकों में यथेष्ट गंभीरता का अभाव है। कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य का स्तर बहुत हल्का है। इनके प्रहसनों पर माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव पड़ा है। रंगमंच की दृष्टि से दीनबंधु के नाटक अपने युग में बहुत लोकप्रिय रहे पर इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि उनकी प्रसिद्धि का क्षेत्र साधारण समाज ही था, साहित्यिक स्तर पर ये नाटक इतने सफल नहीं रहे।

बँगला नाटक के प्रथम चरण के महत्वपूर्ण नाटककारों में दीनबंधु का विशेष स्थान है। वास्तव में माइकेल के बाद वे ही प्रमुख नाटककार हैं। शायद उस शती के वे पहले भारतीय नाटककार हैं जिन्होंने शासकों के शोषण का इतना यथार्थ रेखांकन किया है।

दीनानाथ अलमस्त (*कश्० ले०*) [जन्म—1910 ई०]

शैशव से भावुक। विरह-वेदना के गीत लिखने में सिद्धहस्त। व्यवसाय से चित्रकार। कई बार एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। 'बाल यपारि' (पर्वत के इस ओर) तथा 'बाल अपारि' (पर्वत के उस ओर) तथा 'विधवायि हंद्य व्यदाख' (विधवा के विरह-उद्गार) आदि कविताओं को पढ़कर पाठक अलमस्त साहब का लोहा माने बिना नहीं रह सकता। मनोभावों की सरल शब्दों में अभिव्यक्ति, ओजपूर्ण शैली तथा काव्य की गेयता वस्तुतः सराहनीय है। अलमस्त साहब शुद्धिवादी हैं और इन्होंने अपने काव्य में ठेठ कश्मीरी शब्दावली का प्रयोग किया है।

दीपनिर्वाण (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1876 ई०]

'दीपनिर्वाण' स्वर्णकुमारी देवी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें मुहम्मद ग़ोरी के दिल्ली आक्रमण के साथ पृथ्वीराज चौहान के पारिवारिक इतिहास को कथा-वस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी के साथ दो प्रेम-कथाएँ जोड़ दी गई हैं। सत्यनिष्ठा के साथ ऐतिहासिक तथ्यानुवर्तन के प्रति लेखिका ने विशेष उत्साह दिखाया है परंतु हिंदुओं के प्रति उनका पक्षपात उनकी सत्यनिष्ठा को संकुचित कर देता है। अल्पावस्था की रचना होने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण उपन्यास का घटना-विन्यास एवं चरित्र-चित्रण निर्जीव एवं रसहीन प्रतीत होता है—यद्यपि थानेश्वर के युद्ध-वर्णन में वर्णन-कौशल विशेष सुंदर बन पड़ा है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस उपन्यास का स्थायी महत्व है।

दीपवंस *(पा० कृ०)* [समय—चौथी शती का अंतिम भाग]

यह किसी अज्ञातनामा कवि की कृति है, और प्रथम बार उपलब्ध सामग्री को पौराणिक तथा काव्यात्मक रूप देने की इसमें चेष्टा की गई है। इसकी विषय-वस्तु का उपादान बुद्धवंश, चरियापिटक, जातक आदि 'त्रिपिटक' (दे०) के खंडों और 'अट्ठकथा' (दे०) से विशेष रूप से हुआ है। इसमें भाषा और छंद सभी कुछ सदोष हैं क्योंकि उस समय तक लंका में पाली का अध्ययन-अध्यापन व्यवस्थित नहीं था और कवि ने यथाशक्ति अनुकरण करने का प्रयास किया है।

दीपशिखा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा (दे०) की पाँचवीं प्रगीतात्मक कृति है। इसमें 51 गीत हैं। गीतों के भावों को मूर्त्त पीठिका देने के लिए इकरंगे चित्र भी दिए गए हैं। 'चिंतन के कुछ क्षण' शीर्षक से भूमिका लिखी गई है, जिसमें यथार्थवाद-प्रगतिवाद (दे०) के सापेक्ष में की गई रहस्यवाद-छायावाद (दे०) की भव्य व्याख्या हिंदी आलोचना के इतिहास का अमर अध्याय है।

'दीपशिखा' का वर्ण्य-विषय महादेवी वर्मा की अन्य रचनाओं के समान मुख्यतः रहस्यानुभूति है। अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय-भावना की अभिव्यक्ति अधिकतर दीपक के प्रतीक से की गई है। कवयित्री दीपक की लौ के समान निष्कम्प जलना चाहती है। विरह-वेदना में घुलकर उसने 'कण-कण का क्रंदन' पहचान लिया है और अब अधीर घटा के समान रज में बिखर कर निखरना चाहती है। स्पष्टतः अनुभूति-पक्ष में दो तत्त्व दिखाई देते हैं—लोकोत्तर प्रणय और विश्वोन्मुख करुणा। आधुनिक परिवेश में लोकोत्तर प्रणय की वास्तविकता पर संदेह करने वालों के लिए महादेवी का कहना है कि 'इसका जो उत्तर अनेक युगों से रहस्यात्मक कृतियाँ देती आ रही हैं, वही पर्याप्त होना चाहिए।' कुछ लोगों को 'दीपशिखा' में अनुभूति की तीव्रता का अभाव भी खला है। इस प्रसंग में यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या काव्य-कृति में प्रकृति के मुकाबले परिष्कृति का कोई महत्व नहीं है?

'दीपशिखा' के गीत कलात्मक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। उत्कृष्ट काव्य की चित्रात्मक पदावली में ग्राम-गीतों की वन्य गति का अपूर्व संयोग यहाँ हुआ है।

दीवान-ए-ग़ालिब *(उर्दू० कृ०)*

उर्दू के सुविख्यात कवि मिर्ज़ा असद उल्ला ख़ाँ 'ग़ालिब' (दे०) (जो पहले 'असद' तखल्लुस करते थे और बाद में 'ग़ालिब' तखल्लुस करने लगे) की उर्दू ग़ज़लों तथा क़त्आत के संग्रह का नाम है 'दीवान-ए-ग़ालिब'। इस दीवान में मिर्ज़ा की 231 ग़ज़लें, चार कसीदे, एक मसनवी, एक सेहरा, 16 रुबाइयाँ और 16 क़तए सम्मिलित हैं। उर्दू काव्य के इस संग्रह ने ग़ालिब को साहित्य-जगत् में उनकी फ़ारसी शायरी से भी अधिक लोकप्रियता प्रदान की है। ग़ालिब स्वयं अपनी फ़ारसी शायरी की तुलना में उर्दू के इस काव्य को तुच्छ समझते थे।

मिर्ज़ा ग़ालिब के इस दीवान में उनकी प्रारंभिक कठिन रचनाएँ भी हैं और बाद में कही गई सहज-सरल ग़ज़लें भी। ग़ालिब की भाषा-शैली कठिन से सरल की ओर तथा नीरस से सरस की ओर निरंतर अग्रसर रही है। ग़ालिब की कल्पना की उड़ान, विषयों की नूतनता, शैली का चमत्कार, साफ़-सुथरी तथा नवीन उपमाएँ, अर्थ-गांभीर्य तथा जीवन से नैकट्य कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इस बात को मनवा लेती हैं कि 'ग़ालिब का है अंदाज़-ए-बयाँ और'। मिर्ज़ा के यहाँ व्यंग्य तथा हास्य का पुट भी विद्यमान है और बला की शोख़ी भी है। ग़ालिब के अधिकतर शेर बहुपक्षीय अर्थों से समृद्ध हैं। सजग मन की अनुभूतियाँ लेखनी का संबल पाकर मानो मुखरित हो उठी हैं।

दीवान, रणछोड़जी अमरजी *(गु० ले०)*

इतिहास प्रसिद्ध दीवान अमरजी कुँवरजी के पुत्र रणछोड़जी का जन्म सौराष्ट्र के माँगरोल में 1824 ई० में हुआ था और इनका जीवन जूनागढ़ में व्यतीत हुआ। ये जूनागढ़ राज्य के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और सेनाधिकारी थे। रणछोड़जी स्वयं गुजराती, व्रज और फ़ारसी के विद्वान् थे। इन्होंने फ़ारसी में ही तवारीखे-सोरठ (सोरठ का इतिहास) लिखा है। इनके प्रसिद्ध प्रकाशित ग्रंथ हैं : 'चंडीपाठना गरबा' (गुज०) 'सूतक निर्णय', शंखचूड आख्यान',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दक्ष यज्ञ-भंग', 'कालखंज आख्यान', 'ईश्वर-विवाह' (गुज० ब्र०), 'जालंधर आख्यान' (ब्र०), अंधकासुर आख्यान', 'भस्मांगद आख्यान', 'सोमवार माहात्म्य' (गुज०), 'बुढेश्वर बावनी' (ब्र०), 'त्रिपुरासुर आख्यान' (ब्र०), 'मोहिनी छल' (ब्र०), 'कामदहन' आख्यान' (ब्र०)। इन सब ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि दीवानजी ने मुख्यतः ब्राह्मण होने के कारण धार्मिक ग्रंथ ही अधिक लिखे हैं। ये ग्रंथ भी ब्रज में अधिक लिखे हैं, गुजराती में कम। इस दृष्टि से रणछोड़जी का प्रदेय गुजराती साहित्य को कम ही है।

दीवानसिंह, कालेपाणि *(पं० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1944 ई०]

दीवानसिंह कालेपाणी का व्यक्तित्व अद्भुत था। सरकारी नौकरी करते हुए भी ये स्वतंत्रता-आंदोलन में कूद पड़े थे और स्वतंत्रता की खातिर बलिदान हो गए थे। ये राष्ट्र-प्रेमी भी थे और मानवतावादी भी।

दीवानसिंह कालेपाणी का एक ही कविता-संग्रह 'वगदे पाणी' (दे०) उपलब्ध है। यह संग्रह 1938 ई० में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह की कविताओं में विषयगत विविधता ही नहीं, वस्तुगत विविधता भी है। इन कविताओं के विषय हैं: मानव-प्रेम, त्याग और सेवा। कवि जीवन को किसी वाद या सिद्धांत के घेरे में सीमित करके नहीं देखता, उसके लिए जीवन बहते हुए पानी के समान है। इसीलिए यह जीवन की स्वीकृति का काव्य है। कवि ने भ्रष्ट सामाजिक मूल्यों का खुलकर तीव्र विरोध किया है। इनके काव्य में मनुष्य के उदात्त स्वरूप का ही नहीं, मानव-सुलभ दुर्बलताओं का भी चित्रण हुआ है।

दीवानसिंह कालेपाणी की कविताओं का मूल स्वर मानवतावादी है। समाज या राष्ट्र के प्रति उनका प्रेम-भाव मानव-प्रेम का ही एक अभिन्न रूप है। अतुकांत शैली में रचित ये कविताएँ भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी सर्वथा सफल हैं।

'दुखायल', हूंदराज *(सिं० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म-स्थान लाड़काणो, सिंध है। ये न केवल प्रसिद्ध कवि हैं, अपितु अच्छे गायक और संगीतज्ञ भी हैं। ये सिंध के प्रसिद्ध कवि किशनचंद 'बेवस' (दे०) के शिष्य हैं। अपने गीतों द्वारा सिंध में राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति और गांधी-सिद्धांतों का प्रसार करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आजकल ये आदिपुर (कच्छ) में रहते हैं और संत विनोबा भावे के सिद्धांतों के प्रबल समर्थक और प्रचारक हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'भूँगार', 'कौमी ललकार', 'संगीत वर्खा','लाहूंती लहर', 'संगीतांजलि' (ये सिंध के राष्ट्रकवि हैं और इनके द्वारा रचित कई गीत काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं।

दुग्गय्या, दग्गुपल्लि *(तै० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती का पूर्वार्ध]

तिप्पनार्य और एर्रम्मा के पुत्र दुग्गय्या का जन्म 1410 ई० के आसपास माना जाता है। ये महाकवि श्रीनाथ (दे० श्रीनाथुडु) के साले थे। दुग्गय्या ने 'नासिकेतोपाख्यानमु' और 'कांचीपुरमहात्म्यमु' नामक दो काव्य-ग्रंथों की रचना की थी। इनमें केवल प्रथम काव्य ही उपलब्ध है। यह काव्य उदयगिरि के प्रभु बसवभूपाल के प्रधानमंत्री चंदलूरि अनंतामात्य के पुत्र गंगय्या को समर्पित है।

'नासिकेतोपाख्यानमु' की कथावस्तु उपनिषदों से ली गई है। मूल कथा में विशेष परिवर्तन नहीं किया गया। उद्दालक और चंद्रावती का चरित्र-चित्रण प्रभावशाली तथा मनोहर है। कर्माचरण को श्रेष्ठ मानने वाले उद्दालक और योग और आत्मविद्या को ही उपास्य मानने वाले नासिकेत (या नचिकेत) का वाद-विवाद भी प्रभावशाली है। यमराज के पाप-पुण्य का विचक्षण कराते हुए नासिकेत को स्वर्ग और नरक के दर्शन कराने वाले प्रसंग में रमणीय नीतियों का वर्णन किया गया है। इस काव्य का इतना ही भाग प्राप्त है।

शांतरस-प्रधान इस काव्य में कथा रम्य है। कविता मृदुमधुर, मुहावरे और कहावतों से युक्त मन को आकृष्ट करने वाली है।

दुग्गल, करतारसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

करतारसिंह दुग्गल पंजाबी के सर्वाधिक यशस्वी कहानीकार हैं। पंजाबी कहानीकारों में इन्होंने सबसे अधिक कहानियाँ लिखी हैं और शिल्प तथा कथ्य दोनों ही दृष्टियों से सर्वाधिक प्रयोग किए हैं।

दुग्गल का प्रारंभिक लेखन फ़्रायड के मनोविश्लेषणवाद से बहुत प्रभावित हुआ। मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता इनकी अधिकांश कहानियों की आधारभूमि है। इन क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों में एक बहुत बड़ी संख्या यौन-कुंठा और अतृप्ति की कहानियों की है जिन्हें लेखक गहरे मानवीय स्तर पर ग्रहण करता है और सूक्ष्म कलात्मकता के साथ चित्रित करता है। दुग्गल की इन यौन-विषयक कहानियों में उर्दू कथाकार सआदत हसन मंटो जैसी सजग सामाजिकता और तीखापन नहीं है। उनमें धीरे-धीरे छूने वाली सहजता है। ये कहानियाँ हमें झकझोरती नहीं हैं, वरन् हल्की-सी चुटकी काटकर निकल जाती हैं और हम उस स्थान पर हल्का-हल्का-सा दर्द महसूस करते हुए उस पर हाथ फेरते रहते हैं।

दुग्गल का पहला कहानी-संग्रह 'सवेर सार' (दे०) 1941 ई० में प्रकाशित हुआ था, जिसने अपने समय की पंजाबी कहानी में एक मानदंड स्थापित किया। उसके पश्चात् उनके लगभग दस और कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'इक छिट चानण दी' (दे०) नामक संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। हिंदी में 'मोतियों वाले' तथा 'एक किरण चाँदनी की' शीर्षक से दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

अन्य प्रमुख कृतियाँ—'हाल मुरीदां दा' (दे०), 'आंदरां', 'नहूं ते मास' (उपन्यास), 'मिट्ठा पाणी', 'पुराणीआं बनेल बोतलां' (नाटक)।

दुपरीया *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

असमीया के नये कथाकार सौरभ चलिहा (दे०) का प्रथम कहानी-संग्रह 'अशांत इलेक्ट्रन' (दे०) दुरूह है; वैसी दुरूहता इस संग्रह में नहीं है। चरित्रों के अंतर्द्वंद्वों की सजगता इस संग्रह की कहानियों की अपनी विशेषता है।

दुबेला शांतिर गीत *(अ० कृ०)*

यह रोमांटिक गाथागीत है, जिसमें एक ऐसे व्यापारी पुत्र की प्रेमकथा है जो एक विवाहिता स्त्री से प्रेम करता है। एक मालिन को युवक पर दया आ जाती है और वह दुबेला तक संदेश पहुँचा देती है। कविता के शेष भाग में स्त्री की प्रतिक्रिया का वर्णन है और इसकी आकस्मिक समाप्ति हो जाती है। या तो यह अधूरी लिखी गई है अथवा इसकी पांडुलिपि खोजने का कार्य अभी शेष है।

दुरवस्था *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1923 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का क्रांति-काव्य है। ब्राह्मण-कन्या सावित्री द्वारा निरक्षर हरिजन युवा की जीवन-संगिनी बनकर खेतिहर मज़दूर का जीवन अपनाने की कथा इस काव्य में वर्णित है। सांप्रदायिक दंगों में घर-बार से अलग होने वाली सावित्री अपने रक्षक चात्तन् (दे०) की मानवता पर मुग्ध हो जाती है और जातिवाद से कलुषित अपने समाज में वापस जाने से इनकार करती है।

'दुरवस्था' में मलयाळम-भाषियों ने सर्वप्रथम बदलते हुए मानवीय मूल्यों की आवाज़ सुनी थी। इस काव्य में आशान् ने संदेश दिया है कि जातिवाद की क्रूर नीति ने कितने ही महापुरुषों को पालने-पोसने के अधिकार से केरल माता को वंचित रखा है। कवि ने समाज को चुनौती दी है कि नियमों को बदल डालो, अन्यथा वे नियम ही समाज को बदल देंगे।

'दुरवस्था' साहित्य के नवोत्थान में एक नये मोड़ का प्रतिनिधित्व करती है। आज के साहित्यकार भी अपने रचना-कार्य में इससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

दुर्गय्या, पल्ला *(ते० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

ये निज़ाम प्रांत के 'मडिकोंड' के रहने वाले हैं। आजकल उस्मानिया विश्वविद्यालय के तेलुगु विभाग में रीडर हैं। ये सफल और विद्वान अध्यापक ही नहीं, अच्छे कवि भी हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'पालवेल्लि' (दे०) (कविता-संग्रह) और 'गंगिरेद्दु' (दे०) (खंडकाव्य)। 'सोलहवीं शती के अंतर्गत प्रबंधों (तेलुगु काव्य) का विकास' इनका शोध-प्रबंध है। 'मनुचरित्र' नामक प्रसिद्ध तेलुगु काव्य पर इन्होंने आलोचनात्मक निबंध प्रकाशित कराए हैं तथा कोशनिर्माण-कार्य भी किया है। प्रकृति तथा ग्राम्य जीवन के प्रति सहज प्रेम इनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है।

दुर्गसिंह *(क० ले०)* [जीवन-काल—1030 ई० के लगभग]

यह चालुक्य-नरेश जगदेकमल जयसिंह का दंडनायक एवं संधिविग्रहिक था तथा असि एवं मसि दोनों का धनी था। दुर्गसिंह का ग्रंथ 'पंचतंत्र' (दे०) है जो चंपू शैली में है। इसका कहना है कि गुणाढ्य (दे०) ने जब पैशाची में 'बृहत् कथा' लिखी तब उसमें से पाँच कथारत्नों को चुनकर वसुभाग भट्ट ने 'पंचतंत्र' नाम देकर अपने ढंग से लिखा था। उसी को इसने कन्नड में लिखा। संस्कृत में विष्णु शर्मा का 'पंचतंत्र' (दे०) प्रसिद्ध है। किंतु वसुभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्ट का भी एक 'पंचतंत्र' था, इसका पता केवल दुर्गसिंह से लगता है। इस दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्व है। सुना जाता है कि जावा में वसुभाग भट्ट संप्रदाय के तीन 'पंचतंत्र' मिले हैं।

दुर्गसिंह का यह ग्रंथ गद्य-पद्य-मिश्रित शैली में है। इसमें कई ऐसी बातें हैं जो विष्णु शर्मा के ग्रंथ में नहीं हैं। इसमें जैन धर्म की ओर झुकाव है। कुछ स्थलों पर जैन एवं वैदिक अंशों का समन्वय है। इसकी शैली बहुत ही प्रौढ़ है। गद्य में सरल कन्नड का प्रयोग है। कवि ने व्यंग्य एवं विडंबना के लिए कहीं-कहीं जान-बूझकर क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है—जैसे बंदर के लिए गोलांगूल। इस ग्रंथ में इसके प्राणी मनुष्य की विकृतियों की नकल उतारते हैं, मुँह बनाते हैं। इस तरह यह काव्य मध्यम श्रेणी का होने पर भी व्यंग्य के कारण बहुत ही प्रभावी बन गया है।

दुर्गाबर *(अ० ले०)* [जीवन-काल—सोलहवीं शती; जन्म-स्थान—कामरूप ज़िले का कोई गाँव]

इनके पिता का नाम चंद्रधर कायस्थ था। इन्होंने कोच राजा विश्वसिंह के शासन-काल के बहुबल शिकदार की अनुप्रेरणा से काव्य-सृजन किया था।

रचनाएँ—'गीति रामायण' ओर 'मनसार गीत'।

'गीति रामायण' का सबसे मनोरम अंश 'अरण्य कांड' है। इसमें कुछ नूतन प्रसंग भी हैं—जैसे सीता द्वारा दशरथ के प्रति पिंडदान, दुःखी राम के लिए सीता द्वारा माया सीता की सृष्टि किया जाना, रति-रूपिणी शूर्पणखा का प्रसंग, राम-सीता का पासा खेलना, आदि। इसमें अनुभूति की कोमलता है। इसमें अवतारवाद, राम-नाम-जप की महिमा, भक्त के दुःख देख भगवान् का कातर होना आदि वातों का वर्णन है, किंतु राम को साधारण मानव के समान सुख-दुःख की अनुभूति करते हुए दिखाया गया है। 'गीति रामायण' के कई स्थलों पर माधव कंदला (दे०), शंकरदेव (दे०) और कृत्तिवास ओझा (दे०) (बंगाली कवि) का प्रभाव है। यह पुस्तक 'ओजापालि' (दे०) में गायन के लिए लिखी गई थी। 'मनसार-गीत' के गीत भी मर्मस्पर्शी हैं। इसमें सती वेहुला की कथा है। आज की कामाख्या के ओजापालि में इसका गायन होता है।

असमीया साहित्य में श्री दुर्गावर का स्थान रामायण-कवि, मनसा-कवि और संगीतज्ञ के रूप में है।

दुर्गामंगल *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः सत्रहवीं शती का आरंभ]

मैमनसिंह ज़िले के काँठालिया गाँव के निवासी जन्मांध कवि भवानीप्रसाद राय की 'दुर्गामंगल' मूलतः पौराणिक कहानी के आधार पर रचित है। मार्कंडेय चंडी के आधार पर कवि ने यद्यपि इस काव्य की रचना की है तथापि श्रीरामचंद्र की दुर्गा-पूजा कहानी का सविस्तर वर्णन किया है। इस काव्य में कविकृतित्व का अच्छा परिचय मिलता है। 1965 ई० में यह काव्य अनुलिपिबद्ध हुआ था। परिणामतः कवि की प्राचीनता निस्संदेह है। दूसरे 'दुर्गामंगल'-काव्यकारों में रंगपुर के कवि द्विज कमलालोचन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कवि रूपनारायण, रामचंद्र मुखोपाध्याय आदि के काव्य भी स्मरण-योग्य हैं।

दुर्गाशंकर शास्त्री *(गु० ले०)* [जन्म—1881 ई०]

दुर्गाशंकर शास्त्री का जन्म अमरेली (सौराष्ट्र) में हुआ था। इनके पिता का नाम केवलराम तथा माता का जयकुमारी था। शास्त्री जी की प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा गोंडल (सौराष्ट्र) में हुई। शिक्षा पूर्ण कर शास्त्री जी बहुत समय तक झंडु फार्मेसी में काम करते रहे।

शास्त्री जी की रचनाएँ हैं—'वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास', 'बाळको नो वैद्य', 'माधव निदान', 'झंडु भट्ट जी नुं जीवन-चरित्र', 'शैवधर्म नो अनुवाद', 'गुजरात नां तीर्थस्थानो', 'पुराण विवेचन', 'प्रबंध चिंतामणि'।

प्राचीन भारतीय इतिहास तथा साहित्य के अध्ययन में गहरी रुचि रखने वाले शास्त्री जी ने चावडा और सोलंकी वंश के गुजरात के इतिहास, आयुर्वेद तथा पुराणों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया है। एक रुचिशील अनुसंधाता, विद्याप्रेमी व प्रकांड पंडित के रूप में दुर्गाशंकर जी शास्त्री प्रतिष्ठित हैं।

दुर्गेशनंदिनी *(बँ० कृ०)*

दुर्गेशनंदिनी (समय—1865 ई०) बंकिम बाबू (दे० चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र) का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। बंकिम बाबू के ऐतिहासिक उपन्यासों में कार्यकारण-श्रृंखलाबद्ध चरित्र-निर्माण की अपेक्षा रोमानी चमत्कारी घटनाओं का आकलन ही प्रधान आकर्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विषय रहा है। सोलहवीं शती के अंत में उड़ीसा पर अधिकार करने के लिए मुग़लों-पठानों के बीच जो युद्ध हुआ था, उसी की पटभूमिका में इस उपन्यास की रचना हुई है। इसका नायक मानसिंह का पुत्र युवराज जगत्सिंह इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं है, इसीलिए बंकिम बाबू ने अपने आदर्शानुसार जगत्सिंह को क्षत्रिय वीर एवं प्रेमी परंतु संदेहपरायण तरुण व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। जगत्सिंह का प्रेम युद्ध-विग्रह के बीच आकस्मिक रूप से उद्घाटित होता है और फिर नाना बाधाभित्तियों को पार करता हुआ उसकी सफल परिणति का प्रदर्शन हुआ है। तिलोत्तमा और आयेषा दोनों ही उसे चाहती हैं। अंत में आयेषा आत्मदमन के द्वारा तिलोत्तमा के मार्ग से हट जाती है। कतलू ख़ाँ की हत्या, तिलोत्तमा के हृदय में प्रेम का उन्मेष, आयेषा का आत्मविसर्जन और अंतर्द्वंद्व—इन समस्त घटनाओं में मानवीय भावावेग का अत्यंत निपुण वर्णन हुआ है। दुर्गेशनंदिनी रोमांस है, इसमें मानव-प्रकृति का परिचय इतना यथार्थ नहीं, जितना आदर्श स्वप्नमय है।

दुर्दैवी रंगू *(म० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

चिं० वि० वैद्य के इस उपन्यास में विस्तृत अध्ययन और सहृदयता का मणिकांचन संयोग पाया जाता है। यहाँ बाल विधवा रंगू बाई की करुण कथा के चारों ओर पेशवा काल का इतिहास गुंफित किया गया है। पेशवा दरबार का ऐश्वर्य, विविध समस्याएँ, पेशवा के पारिवारिक संबंध, उसके दैनिक कर्म, सेना-छावनी, पानीपत के युद्ध पर फलित ज्योतिष का प्रभाव आदि का चित्रण अत्यंत सरस, गंभीर और प्रत्ययकारी है जिससे उस समय का समाज सजीव हो उठा है। शैली में ऐतिहासिक उपन्यास के अनुरूप नाट्यात्मक उत्कटता और मंथर गति का समन्वय है। पाद-टिप्पणी तथा ऐतिहासिक निर्देशों के कारण प्रामाणिकता तो आ गई पर कहीं-कहीं उपन्यास बोझिल भी हो गया है। पात्रों के सूक्ष्म वृत्ति-भेद तथा उनके मानसिक संघर्ष का चित्रण भी अत्यंत सुंदर है। विवेच्य काल से समरस होने के कारण मराठी ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है।

दुर्योधन *(सं० पा०)*

यह धृतराष्ट्र (दे०) और गांधारी (दे०) के सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र था। इसने स्वयंवर में कलिंगराज चित्रांगद की कन्या का हरण किया। काशिराज की कन्या भी दुर्योधन की स्त्री थी। इसकी एक अन्य पत्नी का नाम भानुमती था। इसे बलराम का भी दामाद माना जाता है। इसके पुत्र का नाम लक्ष्मण था और कन्या का नाम लक्ष्मणा।

'महाभारत' (दे०) का यह पात्र लोभी, कलहप्रिय, महत्वाकांक्षी और ईर्ष्यालु रूप में चित्रित किया गया है। बचपन से ही अस्त्र-शस्त्र में पांडवों की कुशलता देखकर इसके मन में उनके प्रति ईर्ष्याभाव जग उठा था और आमरण यह उनका शत्रु बना रहा। उनके विनाश के लिए इसने विभिन्न षड्यंत्र रचे किंतु सदा असफल रहा। एक बार भीम (दे०) को गंगा में धकेल दिया; सारे पांडवों को लाक्षागृह में जला डालने का प्रयास किया। अपने मामा शकुनि की अनुमति से इसने युधिष्ठिर (दे०) को द्यूत-क्रीड़ा के लिए आमंत्रित किया और उसके परास्त हो जाने पर इसने द्रौपदी (दे०) को भरी सभा में नग्न कराने का विफल प्रयास किया, तथा पांडवों को बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास स्वीकार करना पड़ा। महाभारत के युद्ध में भी इसने पांडवों को परास्त करने के अनेक उपाय किए, किंतु अंत में भीम ने गदायुद्ध में गदा-प्रहार से इसकी बायीं जाँघ तोड़ डाली। भीम का यह प्रहार गदा-युद्ध के नियम का उल्लंघन था।

दुलड़ी (दुलरी) *(अ० पारि०)*

6-6-8 की यति से बीस वर्णों वाला यह असमीया वर्णिक छंद है। इसमें तीन-तीन पर्वों के दो चरण होते हैं। असमीया रामायण में भी इस छंद का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण—

नमो नमो राम, दूर्ब्बादलश्याम,
सर्ब्बगुणे अनुपाम।
जार गुण नाम, धर्म्म अनुपाम
मुकुति सुखर धाम॥

दुवरा, यतींद्रनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर।

ये कलकत्ता विश्वविद्यालय से असमीया में एम० ए० उत्तीर्ण कर प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। 1947 ई० के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंगों के समय कलकत्ता छोड़कर ये डिब्रूगढ़ के एक कालेज में असमीया का अध्यापन करने लगे थे। इन्हें असम सरकार से साहित्यिक पेंशन मिली थी। 1955 ई० में इन्होंने साहित्य अकादेमी का पुरस्कार पाया था।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'आपोन सुर' (1938), 'बनफुल' (दे०) (1952), 'कथाकविता' (गद्य काव्य) (1933)।

अनूदित : ओमर-तीर्थ (1925), 'मिलनर सुर' (1960)।

ये रोमांटिक काव्यधारा के बाँही-मंडल के कवि थे। इनकी रचनाओं में तीव्र वेदना, वैराग्य और आत्मचिंतन की अभिव्यक्ति हुई है। इन पर शेली, टेनिसन, उमरखैयाम और रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) का प्रभाव है। 'आयोन सुर' और 'बनफुल' में निराश प्रेम की करुणा है। कविताओं में शोक की प्रधानता और लौकिक सुख के प्रति अनिच्छा है। 'बनफुल' पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था। 'कथाकविता' पर तुर्गनेव का प्रभाव है। इसमें भी करुण रचनाएँ हैं। 'ओमर-तीर्थ' में उमर खैयाम की रुबाइयों का सुंदर रूपांतर है। 'मिलनर सुर' में हाफ़िज के स्वर की अनुकृति है। सौंदर्य और प्रेम के कवि श्री दुवरा असमीया रोमांटिक काव्यधारा के उत्तरार्द्ध के श्रेष्ठ कवि हैं।

दुःशासन *(सं० पा०)*

यह कुरुवंशी धृतराष्ट्र (दे०) का दूसरा पुत्र था। इसका बड़ा भाई दुर्योधन (दे०) था। यह सदा दुर्योधन का अनुगत बना रहा। इसने द्रोण से अस्त्र-शस्त्र-विद्या ग्रहण की थी। पांडवों द्वारा द्यूत-सभा में हार जाने पर इसी ने ही दुर्योधन, कर्ण (दे०) आदि के संकेत पर द्रौपदी (दे०) का चीरहरण किया था, और तभी भीम (दे०) ने इसके रक्त का प्राशन करने की प्रतिज्ञा की थी। मत्स्य देश के राजा विराट की गौओं का हरण करने वालों में दुःशासन भी था, और इसी अवसर पर अर्जुन के साथ इसका युद्ध हुआ था। महाभारत के युद्ध में इसका नकुल के साथ द्वंद्व-युद्ध हुआ था। भीष्मार्जुन-युद्ध में इसने अर्जुन पर आक्रमण किया था। अभिमन्यु (दे०) के साथ भी इसका घोर युद्ध हुआ था और यह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था। अंततः भीम के साथ युद्ध में भीम की गदा के प्रहार से यह भूमि पर गिर पड़ा और भीम ने दुर्योधन, कर्ण आदि के देखते-देखते इसका वक्ष विदीर्ण कर सबके सामने इसका प्राशन किया।

दुष्यंत *(सं० पा०)*

इसके अन्य नाम हैं दुष्मंत, दुःषंत आदि। इसका पुत्र भरत था जो कि एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् था। यद्यपि यह पौरववंशी था किंतु वैशाली देश के तुर्वसु राजा मरुत्त ने इसे गोद लेकर अपना राज्य दे दिया था। कुछ ग्रंथों के अनुसार वस्तुतः यह उक्त राजा मरुत्त की सम्मता नामक कन्या का पुत्र था और मरुत्त ने अपने दौहित्र को गोद लिया था। राजा बनने के बाद दुष्यंत ने अपने पुरुवंश की पुनःस्थापना की। एक बार कण्व (दे०) ऋषि के आश्रम में इसने शकुंतला (दे०) नामक कन्या को देखा तो उस पर मोहित होकर इसने उसके साथ गांधर्व विवाह किया, जिससे इसका भरत (दौष्यंति) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी कथा को कालिदास (दे०) ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) में अत्यंत मनोरम रूप में चित्रित किया है।

दुःस्पर्श नाटकम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1900 ई०]

शीवोळ्ळि नारायणन् नंपूतिरि (दे०) का हास्य-विडंबनात्मक अपूर्ण नाटक। नाटक की प्रगति तीन अंकों से आगे नहीं हुई है। नायिका का नाम दुःस्पर्शा है और नायक का भळ्ळातक। इस नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि का उद्देश्य दुष्कवियों की भर्त्सना-मात्र है। उन्होंने सफलतापूर्वक दिखाया है कि शृंगार रस के विकास के प्रयत्न में नाटक किस प्रकार बीभत्स रस के गर्त में फिसल जाता है। इस कृति ने अनेक नाटकाभासों की रचना को रोककर भाषा को बचाया है।

दूतवाक्यम् *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शती ई०]

'दूतवाक्यम्' भास (दे०) के प्रयोग का एक अन्य उदाहरण है। यह एक अंक का व्यायोग है।

इसमें 'महाभारत' (दे०) के विनाशकारी परिणाम से सबकी रक्षा के उद्देश्य से श्रीकृष्ण का संधि-प्रस्ताव लेकर जाना और दुर्योधन की सभा से तिरस्कृत होकर लौटना वर्णित है।

इस छोटी-सी घटना का सहारा लेकर भास ने इस एकांकी की कथा का गुंफन किया है। इसमें सहज एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्प-विधान की दृष्टि से मौलिक परिवर्तन भास की अनूठी प्रतिभा के परिचायक हैं। इसमें अर्द्धनग्न द्रौपदी के केशाकर्षण के चित्र की उद्भावना करके भास पाठक को पूर्ववृत्त से परिचित करा देते हैं। साथ ही नाटक के विकास में इससे काफ़ी सहायता मिलती है।

इसके लगभग सभी पात्र पुरुष हैं। इसका नायक दिव्य और प्रख्यात तथा अंगी रस वीर है।

दूतवाक्यम् गद्यम् *(मल० कृ०)*

उपलब्ध मलयाळम-गद्य-प्रबंधों में यह सबसे प्राचीन कृति मानी जाती है, और इस दृष्टि से इसका विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व है। इसकी रचना के समय को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। अधिकांश पंडितों की राय है कि चौदहवीं शती में इसका निर्माण हुआ है। यह संस्कृत के रूपकों में से एक का रूपांतर है। इसकी शैली दीर्घ समास-युक्त है। 'उत्तर रामायणम् गद्यम्', 'भाषा भागवतम्' आदि ग्रंथ इसी सरणि में आ जाते हैं।

दूतांगद *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

मंच-शिल्प का सबसे प्राचीन तथा आदिम रूप छाया-नाटक है। सुभट कवि द्वारा रचित 'दूतांगद' इस विधा की प्रतिनिधि कृति है।

यह नाटक अणहिलपट्टण के चालुक्य राजा त्रिभुवनपाल की सभा में कुमारपाल की यात्रा के अवसर पर 1242 ई० में खेला गया था। इसमें रावण की सभा में अंगद के दौत्य का वर्णन है। कवि ने भवभूति (दे०) तथा राजशेखर (दे०) के प्रसिद्ध श्लोकों को भी इसमें स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है।

दूलहकवि *(हिं० ले०)* [सृजन-काल—1743 ई० से 1768 ई० तक]

दूलह इनकी उपाधि है, नाम नहीं। इनके बारे में प्रसिद्ध है—'और बराती सकल कवि दूल्हा दूलहराय।' ये कालिदास त्रिवेदी (दे०) के पौत्र तथा उदयनाथ 'कवींद्र' के पुत्र थे। ग्रियर्सन (दे०) ने इन्हें दोआब के बनपुरा का रहने वाला बताया है। 'कविकुलकंठाभरण' इनका अलंकारों के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है। ये कवित्व और आचार्यत्व के आधार पर देव (दे०), मतिराम (दे०) और दास (दे०) के समान माने जाते हैं। भाषा पर इनका सहज अधिकार है। केशवदास (दे०) के समान इन्होंने काव्य में अलंकारों के प्राधान्य पर बल दिया है।

दृष्टांत पाठ *(म० कृ०)*

इसमें महानुभाव संप्रदाय के प्रवर्तक श्री चक्रधर की दार्शनिक मान्यताओं का संकलन है। संकलनकर्त्ता हैं श्री केसोबास। इसमें कुल 114 दृष्टांत हैं। प्रत्येक दृष्टांत के तीन भाग हैं—(1) मूल सूत्र, (2) उदाहरण अथवा दृष्टांत, (3) दार्ष्टांतिक। इनमें प्रथम दो श्री चक्रधरोक्त हैं, तीसरा भाग केशोबास का है। श्री चक्रधर गाँव-गाँव घूमकर अपने मत का सर्वसाधारण जनता में प्रचार करते थे। इन्होंने अपनी मान्यताओं को सुगम बनाने के लिए व्यावहारिक दृष्टांतों का आश्रय लिया है। चक्रधर की भाषा-शैली में सजीवता और अकृत्रिमता है, परंतु केसोबास की भाषा-शैली में पांडित्य और तर्क-पटुता है। मराठी भाषा के आरंभिक गद्य के स्वरूप को जानने में इस ग्रंथ का विशेष महत्व है।

दृष्टिकोण *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

'दृष्टिकोण' अतरसिंह (दे०) के आलोचनात्मक निबंधों का दूसरा संग्रह है। इस पुस्तक के प्रथम भाग में आधुनिकता, परंपरा, प्रयोग और प्रगतिवाद पर; दूसरे में पंजाबी साहित्य के प्रारंभिक काल और मध्यकाल पर; और तीसरे भाग में आधुनिक पंजाबी साहित्य के कुछ लेखकों पर निबंध हैं। संतसिंह सेखों (दे०) की प्रसिद्ध आलोचना-पुस्तक 'साहित्यार्थ' (दे०) के पश्चात् अतरसिंह का 'दृष्टिकोण' पंजाबी आलोचना-क्षेत्र की एक बहुचर्चित कृति है। इसमें अतरसिंह ने सेखों की समाजवादी और यथार्थवादी दृष्टि को आधार बनाने का यत्न किया है।

देउस्कर, सखाराम गणेश *(बँ० ले०)* [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

मराठी भाषा-भाषी सखाराम गणेश देउस्कर ने 'हितबादी', 'साधना' एवं 'साहित्य' के विशिष्ट लेखक के रूप में बँगला साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया था। तिलक (दे० टिळक, बा०गं०) के नेतृत्व में हिंदू धर्म के आश्रय से नवीन स्वाधीन राष्ट्रचिंतन के प्रसार के फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल के जनमानस में हिंदू धर्म, हिंदू सभ्यता एवं भारतीय इतिहास के प्रति एक कौतूहल-चेतना जागृत हुई थी। सखाराम ने मराठी दस्तावेज़ों की छानबीन कर प्राचीन मराठा इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को बंगाली पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर प्रशंसनीय कार्य किया है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं: 'बाजीराव' (1901), 'झाँसीर राजकुमार' (1901), 'आनंदीबाई' (1903) आदि।

दे, बिष्णु *(बँ० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

आधुनिक युग की क्लांति, जिज्ञासा, वितृष्णा तथा नैराश्य की पटभूमिका में बिष्णु दे ने अपनी कविता में आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति की है। परंतु इनका आस्थावाद एकदम आधुनिक है। इनके अनुसार साधारण जीवन के मानस-सरोवर से ही सृष्टि का आवेग उत्सरित है एवं कवि-मानस की व्याप्ति या रूपांतर में ही कविता का कलाकौशल निर्भरशील है तथा विभिन्न देशों एवं विभिन्न कालों की संस्कृति के सायुज्य से ही कवि-मानस की व्याप्ति घटित होती है। कवि-मन की यह संस्कृति-संचेतना इलियट की देन है। इलियट को कवि ने ग्रहण किया है परंतु उनके साथ इनका व्यवधान भी दुस्तर है।

इनके उल्लेखनीय काव्य-ग्रंथ हैं: 'उर्वशी ओ आर्टेमिस' (1932), 'चोराबालि' (1938), 'पूर्वलेख' (1942), 'संदीपेर चर' (1947), 'अन्विष्ट' (1950), 'कोमल गांधार' (1950) आदि।

इन्होंने अपनी कविता में रामायण (दे०), महाभारत (दे०), पुराण, रवींद्रनाथ (दे०), माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०), सत्येंद्रनाथ दत्त (दे०), चंडीदास (दे०) आदि से असंख्य उदाहरण एवं यूरोपीय संगीत, चित्र, रूसी विप्लवी नेता, आर्टेमिस, कासांड्रा, मांतोवानि, मातिस आदि असंख्य उल्लेख प्रस्तुत किए हैं। कविता लिखने की यह प्रणाली इन्होंने इलियट से प्राप्त की थी परंतु बाद में इन्होंने इलियट के प्रभाव से मुक्त होकर बीसवीं शती की युग-यंत्रणा तथा मनुष्य की मार्क्सवादी चिंतनधारा का विन्यास किया। विष्णु दे ने द्वंद्विकता के आधार पर अतीत का मूल्यांकन किया है परंतु इनके लिए वर्तमान का ही मूल्य अधिक है क्योंकि उसमें ही भविष्यत्-निर्माण की प्रतिश्रुति है। इस प्रकार अपनी राजनीतिक चेतना को कवि ने प्रचार में पर्यवसित नहीं किया है वरन् जीवन को एक अखंड विश्वव्यापी प्रवाह के रूप में देखा है जो प्रत्येक मुहूर्त अपने को नये ढंग से रच रहा है।

देव (देवदत्त) *(हिं० ले०)* [जन्म—1673 ई०]

इनका जन्म इटावा में हुआ था। मनोनुकूल आश्रयदाता न मिलने के कारण ये विभिन्न राजदरबारों में भटकते फिरे। औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह तृतीय और फिर पिहानी-निवासी अकबर अली खाँ के यहाँ भी ये रहे थे। इनके बनाए ग्रंथों की संख्या 72 अथवा 52 बताई जाती है। इनमें 27 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, शेष अनुपलब्ध हैं। इनमें से अधिकतर ग्रंथ ऐसे भी हैं जिनमें अन्य ग्रंथों से पद्य संगृहीत कर नया नाम दे दिया गया है। इनकी समस्त रचनाओं में प्रेमचंद्रिका', 'शब्दरसायन' (दे०), 'देव-शतक', 'भावविलास' और 'रसविलास' अधिक प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट हैं। प्रेमचंद्रिका का वर्ण्य-विषय प्रेम है, जिसमें प्रेम-रस, प्रेमस्वरूप, प्रेममाहात्म्य आदि विषयों पर ललित शैली में प्रकाश डाला गया है। 'शब्दरसायन' इनका प्रसिद्ध काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में विविध काव्यांगों का निरूपण 'काव्य-प्रकाश' (दे०) की शैली में किया गया है, किंतु विवेचन बहुत अधिक स्वच्छ, प्रामाणिक एवं व्यवस्थित नहीं है। इनके शेष काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में अलंकार और श्रृंगार रस तथा उसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का सम्यक् प्रतिपादन है। इन ग्रंथों में कतिपय नूतन धारणाओं को भी स्थान मिला है, पर वे सामान्य कोटि की हैं। इनका 'देवशतक' नामक ग्रंथ अत्यंत प्रौढ़ रचना है। इसमें कवि ने दार्शनिक भावनाओं को पूर्ण अनुभूति के साथ अभिव्यक्त किया है। अतएव यह ग्रंथ कोरा दर्शन न रहकर काव्य बन गया है। इसके अतिरिक्त इनकी शांत रस की भी दो रचनाएँ मिलती हैं। 'देवमाया-प्रपंच' (दे०) नाटक और 'वैराग्य-शतक' : 'देवमाया-प्रपंच' नाटक 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) की शैली पर लिखित एक सफल पद्यबद्ध नाट्यरूपक है।

देव के ग्रंथों की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। भाषा के सौष्ठव, समृद्धि एवं अलंकरण पर देव का विशेष ध्यान रहा है। काव्य में पद-मैत्री, यमक और अनुप्रास का पर्याप्त प्रयोग है। संयोग एवं वियोग की प्रणय-लीलाओं की मनोरम झाँकियाँ इनके काव्य में यत्र-तत्र मिलती हैं, जिनसे कवि की कवित्व-प्रतिभा एवं कल्पना-समृद्धि का पता चलता है। भाषा कहीं-कहीं व्याकरण-संगत नहीं है। शब्दों को छंद के आग्रह से तोड़ा-मरोड़ा भी गया है, किंतु ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थल बहुत कम हैं। समग्रतः देव हिंदी के रससिद्ध कवि हैं और उनका स्थान रीतिकालीन कवियों में बहुत ऊँचा है।

देवडु, नरसिंह शास्त्री *(क० ले०)* [समय—1897 ई० से 1962 ई० तक]

कन्नड के महान् साहित्यकार देवडु नरसिंह शास्त्री का जन्म 1897 ई० में मैसूर में हुआ था। उनके पिताश्री श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। वे काव्यमर्मज्ञ भी थे और कवि भी। उन्हीं से पुत्र को साहित्य में प्रवेश करने की प्रेरणा मिली। 1912 ई० में आपने 'साहसवर्मा' नामक उपन्यास लिखा था। अभिनय का भी इन्हें शौक था। वृत्ति से अध्यापक रहे। संस्कृत के वे दिग्गज विद्वानों में से थे। आपने शांकर दर्शन पर एक सुंदर पुस्तक लिखी है। 'कुमार कालिदास' के नाम से कालिदास की कुछ कृतियों का गद्यानुवाद भी किया है। 'कर्णाटक संस्कृति' आपकी श्रेष्ठ कृति है। 1932 ई० में आपके विख्यात उपन्यास 'मयूर' तथा 'अंतरंग' प्रकाशित हुए। 'मयूर' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें कदंब राज्य के संस्थापक 'मयूर शर्मा' का रम्योज्ज्वल चित्र प्रस्तुत हुआ है। 'अंतरंग' में चेतनाप्रवाह की तकनीक अपनाई गई है। कन्नड साहित्य में यह एक विलक्षण एवं सफल प्रयोग है। 'महाब्रह्मांड' तथा 'महाक्षत्रिय' विश्वामित्र के समय एवं जीवन को लेकर लिखे वैदिक उपन्यास हैं। इनमें से एक को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार भी मिल चुका है। वैदिकयुगीन वातावरण के निर्माण में आपको अद्भुत सफलता मिली है। 'कल्लरकूट', 'देशांतरकतेगळु' आदि आपके कहानी-संकलन हैं। 'अवळकते' (उसकी हार) विजयनगरकालीन इतिहास से संबंधित उपन्यास है। देवडु हमारे धीमंत साहित्यकारों में से हैं। उनकी भाषा बहुत ही परिष्कृत एवं सशक्त है।

देवदत्त *(पा० पा०)*

ये बुद्ध-पत्नी यशोधरा के भाई थे और इन्होंने बुद्ध के निर्देश पर प्रव्रज्या ली थी किंतु बुद्ध के प्रतिद्वंद्वी के रूप में संघ में सर्वप्रथम इन्होंने भेद डालने की चेष्टा की थी। इन्होंने बुद्ध को निरुत्तर करना चाहा; 500 शिष्यों को वरगलाकर गया शशि में नया संघ स्थापित किया। किंतु बुद्ध द्वारा प्रेषित सारिपुत्त और मोग्गलायन के उपदेश से वे शिष्य पुनः भगवान् की शरण गए। इन्होंने अजातशत्रु की सहायता से बुद्ध की हत्या का असफल प्रयास किया। अंत में जब भगवान की शरण में जाने लगे तब एक पुस्करिणी के किनारे दलदल में समा गए।

देवदास *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1917 ई०]

इसमें कोई संदेह नहीं कि देवदास शरत् (दे०) की आरंभिक रचना है और उनके अपने मतानुसार किशोर-भावना से अनुप्राणित है परंतु सार्वदेशिक स्तर पर संभवतः यही रचना सबसे अधिक लोकप्रिय रही है। इसमें शरत् ने सामाजिक स्तर पर जाति-भेद तथा प्रेम पर प्रतिबंध की समस्या को उठाया है तथा वैयक्तिक स्तर पर देवदास की भीरु-वृत्ति का उद्‌घाटन किया है। पार्वती भुवन चौधरी की पत्नी बन कर परिवार और पति के प्रति कर्त्तव्य-पालन में जुट जाती है। देवदास (दे० पात्र) निराशा और अवसाद में डूबा चंद्रमुखी के वेश्यालय में अपने विनाश के दिन पूरे करने लगता है। दोनों अपने हृदय की संपदा बाल-प्रेम को नहीं भुला पाते। देवदास को सदा अपना समझती हुई भी पार्वती सती-धर्म का पालन करती है और देवदास पार्वती को चाहता हुआ भी चंद्रमुखी को नहीं छोड़ पाता। चंद्रमुखी वेश्या अवश्य है परंतु त्याग एवं निष्ठा की दृष्टि से वह पूरा सती-धर्म निभाती है। वह देवदास को अपना नहीं बना पाती। कारण, शरत् अंततः सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं पालन करना चाहते हैं। इस तरह चंद्रमुखी में सावित्री और राजलक्ष्मी के पूर्व-संकेत मिलते हैं। आकार में संक्षिप्त तथा सुगठित होने के कारण शिल्प की दृष्टि से यह अपेक्षाकृत सफल उपन्यास है।

देवदास *(बँ० पा०)*

समाज एवं हृदय के द्वंद्व के माध्यम से देवदास (दे० कृति) चरित्र की समस्त कथावस्तु को शरत्चंद्र (दे०) ने प्रकट किया है। सामाजिक प्रतिबंध के कारण देवदास का भीरु प्रेम सफलता प्राप्त नहीं कर सका वरन् दुःसह दुःख के अंगार में जलकर खाक हो गया है। देवदास के प्रति पार्वती का प्रेम अंतर में छिपी हुई नदी की धार की तरह है जिसका बहिःप्रकाश नहीं है परंतु वह नित्य अंतःसलिला है। वेदना वहाँ अपनी यौनता में चिर-अम्लान है। देवदास अप्राप्ति की वेदना के फलस्वरूप आत्महनन के पथ को चुन लेता है। उच्छृंखलता के राज्य से गुजरता हुआ वह जब पथ के अंत में पहुँचता है तब उसे प्रेम की अतंद्र दीपशिखा की बुझती हुई लौ कुछ क्षण के लिए दिखाई पड़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। शरत्चंद्र ने समाज के अनुशासन के विरुद्ध आक्रमणात्मक रीति ग्रहण नहीं की है परंतु मनोधर्म के अंतरविरुद्ध प्रेम की फल्गुधारा को अवारित कर प्रचलित सामाजिक अनुशासन के अतिक्रमण की चेतना को दुर्वार बनाया है। मनोधर्म का यह अप्रतिरोध्य नीरव विप्लव शरत्चंद्र की इस अपरिणत रचना में सुस्पष्ट है। इसीलिए देवदास की सारी व्यर्थता समवेदना की अश्रुमालिका से अभिनंदित है।

देवनागरी लिपि *(पारि०)*

भारत की प्रमुख लिपि जिसका प्रयोग संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी तथा एक सीमा तक सिंधी और कश्मीरी-लेखन में होता है। भारत के बाहर की भाषाओं में नेपाली भी इसी लिपि में लिखी जाती है। सिंधु घाटी की लिपि की बात छोड़ दें तो भारत में प्राप्त प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी है। उसकी उत्तरी शैली से गुप्त लिपि विकसित हुई है, और फिर गुप्त लिपि से कुटिल लिपि। कुटिल लिपि से ही आठवीं शती के लगभग प्राचीन देवनागरी लिपि का विकास हुआ। इस प्राचीन देवनागरी से ही पंद्रहवीं-सोलहवीं शती में आधुनिक देवनागरी विकसित हुई है। इस लिपि का नाम देवनागरी कैसे पड़ा, यह प्रश्न विवाद का है। एक मत यह है कि अन्य नगर तो नगर हैं और काशी देवनगर है। पहले काशी में ही इसके प्रचार के कारण इसे देवनागरी लिपि कहा गया। दूसरे मतानुसार तांत्रिक चिह्न 'देवनागर' के साम्य के कारण इसे देवनागरी कहा गया। बहुत-से लोग इसका मूल नाम नागरी मानते हैं और इस नाम को गुजरात के नागर ब्राह्मणों से जोड़ते हैं या फिर पहले नगरों में प्रयोग होने के कारण इसे इस नाम का अधिकारी मानते हैं। वस्तुतः ये सारे अनुमान मात्र हैं, और निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पंद्रहवीं-सोलहवीं शती की नागरी लिपि अन्य लिपियों के प्रभाव के कारण तथा आवश्यकताओं के अनुसार समय-समय पर बदलती रही है। इस समय इसमें क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ड़, ढ़, ऑ आदि कई लिपि-चिह्न हैं जो मूलतः इसमें नहीं थे। आदर्श लिपि की दृष्टि से नागरी लिपि में समय-समय पर कई कमियाँ स्वीकार की गई हैं तथा उन कमियों को दूर करने के लिए व्यक्तियों, संस्थाओं तथा समितियों द्वारा कई सुझाव भी दिए गए हैं किंतु अभी तक इसे संतोषजनक-सर्वसम्मत रूप में सुधारा नहीं जा सका है।

देवनाथ *(म० ले०)* [जन्म—1754 ई०; मृत्यु—1821 ई०]

ये विदर्भ के 'सुर्जी अंजन' नामक गाँव के निवासी थे और व्यायाम-प्रेमी तथा मल्लविद्या-विशारद थे। हनुमान जी इनके आराध्य थे। इन्होंने काशी, रामेश्वर, द्वारका, हरिद्वार आदि तीर्थों की यात्राएँ की थीं। देवनाथ गाँव-गाँव घूमते और जनता में भक्ति का प्रचार करते थे। 'कविता-संग्रह' में इनकी अनेक रचनाएँ संकलित हैं। ये हिंदी में भी कविता करते थे और इनके अनेक कृष्ण-भक्तिपरक पद मिलते हैं।

देवन् *(त० ले०)*

'देवन्' लेखकीय उपनाम है। असली नाम 'महातेवन्' ('महादेवन्') है। अत्यंत लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका 'आनंदविकटन्' में ये उपसंपादक और संपादक के रूप में काम करते थे और उसी पत्रिका में समय-समय पर निकले इनके व्यंग्यपूर्ण नाटक, कथाएँ, लेख आदि चित्ताकर्षक सिद्ध हुए। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में से कुछ ये हैं—'तुप्परियुम् साम्बु' (जासूसी साहस की कथाओं की शृंखला), 'मिस्टर वेदांतम्' (एक पारिवारिक उपन्यास), 'मिस जानकी' (पढ़ी-लिखी युवती के जीवन-प्रसंग), 'जस्टिस जगन्नाथन्' (एक अदालती सुनवाई का नाटक-रूप) इत्यादि। इनका एक और पारिवारिक उपन्यास 'कोमतियिन् कातलन्' नाटक के रूप में रंगमंच पर खेला गया है। इन्होंने पारिवारिक और सामाजिक जीवन के सामान्य प्रसंगों में उभरने वाले अनेक ठेठ पात्रों की सृष्टि की है जो अपने वार्तालाप एवं व्यवहार में किसी-न-किसी विशेषता की मुहर से अंकित होकर पाठकों के लिए चिरपरिचित व्यक्तियों के समान बन जाते हैं। लेखक की प्रसंग-योजना, अभिव्यक्ति-शैली दोनों पाठकों में मंद मुस्कान उत्पन्न करती हुई आस्वाद्यता का पोषण करने वाली हैं।

देवमाया प्रपंच *(हिं० कृ०)*

इसके प्रणेता रीतिकालीन प्रसिद्ध आचार्य देव (दे०) कवि हैं। यह ग्रंथ संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) (केशवमिश्र-रचित) की प्रतीकात्मक शैली में लिखित पद्यबद्ध नाट्य-रूपक है। इस ग्रंथ का प्रमुख उद्देश्य अधर्म पर धर्म की विजय दिखाना है। कथानक के पात्र प्रतीकात्मक हैं—पर-पुरुष, माया (मन), प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बुद्धि), जनश्रुति, तर्क आदि। देव से पूर्व 'प्रबोधचंद्रोदय' का पद्यबद्ध हिंदी अनुवाद महाराजा जसवंतसिंह (दे०) भी प्रस्तुत कर चुके थे। ग्रंथ का महत्व इस तथ्य में भी निहित है कि यह हिंदी नाटक-साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं में से है।

देवरदासिमय्या *(क० ले०)* [समय—1040 ई० के लगभग]

देवरदासिमय्या बसव-पूर्व वचनकारों में मूर्धन्य माने जाते हैं। इनके करीब डेढ़ सौ वचन प्राप्त हुए हैं। 'रामनाथ' इनका अंकित या इनके उपास्य देव का नाम है। देवरदासिमय्या के वचनों में उत्कृष्ट वीरशैव-निष्ठा, निष्ठुर सत्यवीरता, मार्मिक समास-शैली एवं दृष्टांत-संपत्ति के दर्शन होते हैं। इनके वचनों ने बसव (दे०) आदि वचनकारों को भी प्रेरणा दी। यही नहीं, इनके वचनों से ज्ञात होता है कि देवरदासिमय्या से पूर्व वचन-साहित्य था। मारि, मसणि आदि क्षुद्र देवताओं की उपासना करने वालों की निंदा कर अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है। संतवाणी की महिमा का बहुत ही सुंदर वर्णन इसमें है। सामाजिक कुप्रथाओं पर व्यंग्य करने में इनकी वाणी वज्र कठोर बनी है। इनकी वाणियों में दर्शन साहित्य-गुण-संपन्न होकर आया है। देवरदासिमय्या के वचन साहित्यिक दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं।

देवराज *(हिं० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश की रामपुर रियासत में हुआ तथा शिक्षा-दीक्षा बनारस और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में। दर्शनशास्त्र में पी-एच० डी० एवं डी० लिट्० की उपाधियाँ अर्जित करते हुए इन्होंने जहाँ एक ओर 'शंकर का ज्ञानशास्त्रीय सिद्धांत' एवं 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' सदृश मानक ग्रंथों का प्रणयन किया है, वहीं दूसरी ओर कविता, उपन्यास तथा आलोचना-विषयक अनेक उत्कृष्ट कृतियों के सृजन द्वारा हिंदी साहित्य के संवर्धन में महत्वपूर्ण योग दिया है। इनका मुख्य प्रदेय उपन्यास तथा आलोचना के क्षेत्र में रहा है। 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर', 'रोड़े और पत्थर' तथा 'अजय की डायरी' इनके उपन्यास हैं जिनमें मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के जीवन का यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया है। आलोचना के क्षेत्र में इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'छायावाद का पतन', 'साहित्य-चिंता', 'आधुनिक समीक्षा' एवं 'प्रतिक्रियाएँ'। यद्यपि इन्होंने व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों ही प्रकार की आलोचनाएँ लिखी हैं किंतु इनका झुकाव सैद्धांतिक आलोचना की ओर ही अधिक रहा है। कृति विशेष का विवेचन-विश्लेषण करते समय इनके मस्तिष्क में अतीत की कालजयी कृतियाँ विद्यमान रहती हैं और इसीलिए उसका मूल्यांकन करते समय नवीनता के स्थान पर ये प्रौढ़ता के स्तर को अधिक महत्व देते हैं। इसी प्रकार से ये काव्य में रसानुभूति के कायल न होकर संस्कृति-बोध के कायल हैं।

देवर्धिक्षमाश्रमण *(प्रा० ले०)*

ये जैन-आगम (दे०)-साहित्य के अंतिम प्रस्तोता हैं। महावीर-निर्वाण के बाद आगम-साहित्य को संकलित करने की जो गतिविधि चल पड़ी थी वह पाँचवीं शती में वलभी की सभा में इनके तत्त्वावधान में पूरी हुई। आज का समुपलब्ध आगम-साहित्य इन्हीं का संपादित किया हुआ है। इसमें लिखित सामग्री के अतिरिक्त मौखिक परंपरा का भी आश्रय लिया गया है। जिन-चरित, थेरावली और सामाचारी को आगम-साहित्य में इन्होंने स्थान दिया और जैन धर्म-विश्वकोश 'नंदी' की रचना की।

देवल, गोविंद बल्लाल *(म० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

किर्लोस्कर के संगीत नाटकों की परंपरा में गो० ब० देवल का महत्वपूर्ण स्थान है। अँग्रेज़ी एवं संस्कृत की छह प्रमुख नाट्यकृतियों के अनुवाद-भावानुवाद के अतिरिक्त केवल 'संगीत-शारदा' ही इनकी मौलिक कृति है। 'दुर्गा' (1886), 'संगीत-विक्रमोर्वशीय' (1886), 'संगीत-शारदा' (दे० भुजंगनाथ, भद्रेश्वरदीक्षित, कांचन भट्ट) (1899), 'संगीत संशय कल्लोळ' (दे० फाल्गुनराव, भादव्या) (1916), 'संगीत शाप संभ्रम' आदि नाट्यकृतियों में 'दुर्गा' अँग्रेज़ी के 'इझावेला', 'झुंझारराव', 'ऑथेलो', 'संशय कल्लोळ', 'ऑल इन दि रांग' के भावानुवाद हैं। 'संगीत-शारदा' की कथावस्तु अनमेल विवाह पर आधारित है। मृत्यु के कगार पर खड़े भुजंगनाथ द्वारा अपने धन-बल के आधार पर अवयस्क बालिका शारदा से विवाह के असफल प्रयास का चित्रण हुआ है। सहज स्वाभाविक अनुवाद-कला के कारण इनकी रचना मौलिक कृतियाँ-सी जान पड़ती हैं। भाषा पर सहज अधिकार होने के कारण ही इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतों में मार्मिकता एवं संवादों में अभिनयोचित चांचल्य है। अनमेल विवाह की सामाजिक समस्या का भव्यांकन कर अन्यान्य नाटककारों को ज्वलंत सामाजिक समस्याओं की ओर इन्होंने ही सहज रूप से आकृष्ट किया है।

देव, ल० ग० *(म० ले०)*

ये प्रयोगधर्मी नाटककार हैं जो अँग्रेज़ी नाट्य-साहित्य एवं तंत्र से अत्यधिक प्रभावित हैं। समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों और समस्याओं को इन्होंने अपनी नाट्य-कृतियों के माध्यम से उरेहा है। तत्कालीन जटिलताओं की प्रतिच्छाया इनकी पौराणिक कृतियों में भी उपस्थित हुई है। 'भागवत' (दे०) में उल्लिखित प्रह्लाद की प्रसिद्ध कथा को इन्होंने सामयिक परिवेश में निरूपित किया है। इनके 'घोडा जाकी आणि पुस्तक' नाटक में 'मर्चेंट ऑफ़ वेनिस' की कल्पना को भारतीय प्रारूप में चित्रित किया गया है। इस नाटक को स्वयं लेखक ने 'प्रहसनात्मक सुखांतिका' की संज्ञा दी है। 'पुरुष नावाचा प्राणी' में पुरुष वर्ग की लोलुप स्वार्थी दृष्टि के कारण अभिशप्त नारी जीवन की दारुण व्यथा-कथा को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है। इनका 'हेमंत' दुखांत नाटक तथा 'जोशीकाय म्हणतात' प्रहसन है। इन रचनाओं में सामाजिक समस्याओं का मनोहारी चित्रण हुआ है। पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद-योजना, सहज-सरल रूप में मानव-मनोविज्ञान की तलस्पर्शी चरित्र-योजना एवं नाटकीय प्रभावान्विति की दृष्टि से प्राध्यापक ल० ग० देव की रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही नाट्य-क्षेत्र में बहुविध शिल्प-प्रयोग की दृष्टि से भी ये विशेष स्थान के अधिकारी हैं।

देवशिखामणि अलसिंग्रापटा *(क० ले०)* [1877-1940 ई०]

इनका जन्म मैसूर राज्य के प्रसिद्ध श्रीवैष्णव क्षेत्र मलुकोटे में एक श्रीवैष्णव परिवार में हुआ था। आपका वंश पंडितों का वंश था। मद्रास में ये क्रिश्चियन कालेज, प्रेसिडेंसी कालेज तथा क्वीन मेरी कालेज में कन्नड के प्राध्यापक रहे। आपने कन्नड में बहुत-से ग्रंथ रचे हैं जिनमें मुख्य हैं—'आर्यमहोपाख्यान', 'कन्नड वचनरामायण' (आठ भागों में), 'घोर यूरोपु युद्ध चरित्रे', 'चेलवनारायण शतक', 'चंडकौशिक' (नाटक), 'चाणक्यतंत्र चमत्कार', 'पंचभाषा प्रहसन', 'भागवत' (चार भागों में), 'महाभारत', 'श्रीरामकृष्ण परमहंसर चरित्रे', 'स्वप्नवासवदत्ते', 'पांचराज'। संस्कृत में भी आपने ग्रंथ-रचना की है। आपका नाम कन्नड-साहित्य में रामायण तथा भागवत के कारण सदैव अमर रहेगा। इतनी सरल व इतनी सुंदर शैली में वे लिखे गए हैं कि आज भी उन्हें लोग चाव से पढ़ते हैं। इनकी भाषा बहुत ही सरस एवं प्रभावी है।

देवसेन *(अप० ले०)* [समय—932 ई० के आसपास]

देवसेन अपभ्रंश के अतिरिक्त संस्कृत और प्राकृत के भी पंडित थे। इनकी अपभ्रंश भाषा की कृति 'सावय धम्म दोहा' (दे०) है। इन्होंने संस्कृत में 'आलाप-पद्धति' और प्राकृत में 'दर्शन-सार', 'आराधना-सार', 'तत्त्व-सार' और 'भावसंग्रह' नामक ग्रंथ लिखे थे। अपने संबंध में देवसेन ने कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। इनके ग्रंथों से ज्ञात होता है कि ये दिगंबर जैन थे।

देवसेना *(हिं० पा०)*

जयशंकर प्रसाद (दे०)-विरचित ऐतिहासिक नाटक 'स्कंदगुप्त' (दे०) की यह पात्र काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक प्रतीत होती है। भावुकता की प्रतिमूर्ति होते हुए भी इसमें गंभीरता तथा सहनशीलता के गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। इसके चरित्र में अनासक्त कर्मयोग की झलक भी देखने को मिलती है। संभवतः अपने इसी गुण के कारण यह सभी सांसारिक संघर्षों में अडिग रहते हुए अपने सामाजिक दायित्वों को पूर्ण रीति से निभाती है। यह संगीत की अनन्य प्रेमिका है तथा विदेशियों द्वारा किए गए आक्रमण जैसी संकटपूर्ण घड़ी में भी अपनी संगीत-प्रियता व्यक्त किए बिना नहीं रह पाती। इसे संसार के प्रत्येक कण में लय तथा तान की समरसता परिलक्षित होती है। लेकिन इसका संगीत-प्रेम कारुण्य-भावना से अनुप्रेरित है और इस कारुण्य-भावना के पीछे जीवन की असफल प्रणय-कथा छिपी है। दुर्भाग्यवश अपने जीवन के वसंतकाल में वरण किए गए स्कंदगुप्त के विजया की ओर उन्मुख हो जाने पर यह अपने पवित्र प्रेम का उदात्तीकरण तो कर देती है किंतु उसकी वेदना को सर्वथा भूल नहीं पाती। यह स्त्री-सुलभ अन्य सभी गुणों तथा सहिष्णुता, भावुकता, उदारता आदि से भी परिपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवसेनी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1867 ई०]

'देवसेनी' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना श्री बजाबा रामचंद्र प्रधान ने की थी। प्रस्तुत रचना अँग्रेज़ी साहित्य-कार सर वाल्टर स्कॉट की 'लेडी ऑफ़ द लेक' नामक कृति पर आधारित है। अतः यह मौलिक कृति न होकर रूपांतरित रचना है। यह युग की माँग की देन है। अँग्रेज़ों के राज्य में पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित भारतीय युवक अँग्रेज़ी साहित्य की ओर आकृष्ट हो रहा था। उसकी तृप्ति के लिए ही इन्होंने इस अँग्रेज़ी रचना को मराठी में रूपांतरित किया था। इस रूपांतर से आधुनिक मराठी साहित्य भी समृद्ध हुआ है। आधुनिक मराठी काव्य के इतिहास में इस काव्य का अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान है।

इसकी कथा काल्पनिक प्रेमकथा है। मूल रचना में स्कॉट ने कथा का विकास पर्वतीय प्रदेश की पृष्ठभूमि में किया है, इसका ध्यान रखकर प्रधान ने प्रेम के नैसर्गिक विकास के लिए राजस्थान को भूमिका के रूप में अपनाया है। स्कॉट मनोवृत्तियों के विश्लेषण एवं चित्रण तथा सृष्टि-सौंदर्य-वर्णन के कुशल चितेरे हैं, प्रधान भी इन अंशों के अनुवाद में पर्याप्त सफल रहे हैं।

'देवसेनी' की भाषा अत्यंत मधुर एवं श्रुतिसुखद है। पंडित-कवियों की शैली में प्रधान ने यह रचना की है। इसमें करुण अंगी एवं शृंगार तथा वीर अंगभूत रस हैं। आलोचक चिपळूणकर के अनुसार कालांतर में चाहे कोई भूल जाए कि यह स्कॉट की कृति का रूपांतर है, तब भी 'देवसेनी' का स्वतंत्र कृति-रूप है और मराठी कविता को नवीन मोड़ देने की दृष्टि से इसका महत्व है।

देवानंदा *(प्रा० पा०)*

ये एक प्रकार से महावीर स्वामी की माता थीं। वैसे महावीर का जन्म त्रिशला में हुआ था किंतु जैन आगमों के अनुसार देवानंदा के ही गर्भ में तीर्थंकर-प्रवेश हुआ था। देवानंदा उषमदेव की पत्नी थीं। एक बार तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में जब इनको महावीर के दर्शन हुए तब ये टकटकी लगाकर महावीर की ओर देखने लगीं। जब गोयम इंदभूति ने महावीर से इसका कारण पूछा तब महावीर ने यह रहस्योद्घाटन किया। बाद में देवानंदा महावीर के धर्म में दीक्षित हो गईं।

देवारम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की सातवीं शती]

शैव संत अप्पर् (दे०) 'तिरुज्ञान संबंदर्' (दे०) और 'सुंदरर्' (दे०) के पदों का संग्रह 'देवारम्' कहलाता है। यह सात भागों में विभाजित है। इन तीनों संतों के पदों को 'देवारम्' शीर्षक से संगृहीत करने का श्रेय नंबि आंडार नंबि (दे०) को है। 'देवारम्' के प्रथम तीन भागों में अप्पर् के 311 पद, अगले तीन भागों में 'तिरुज्ञान संबंदर्' के 384 पद और अंतिम भाग में 'सुंदरर्' के 100 पद संगृहीत हैं। विभिन्न पदों में संतों ने प्रभु के प्रति अपनी अनन्य भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। इनकी भक्ति क्रमशः दास्य, वात्सल्य और सख्यभाव की थी। 'अप्पर्' के पदों में उनका अनुभव-ज्ञान व्यक्त हुआ है। उन्होंने जाति-भेद और अहं-कार-भावना की निंदा की है और मानव-जीवन तथा संसार की नश्वरता का प्रतिपादन किया है। 'संबंदर्' के पदों में प्रचार-भावना का प्राधान्य है। इन्होंने अन्य धर्मों की निंदा कर शैव धर्म की महिमा का गान किया है। 'सुंदरर्' के पदों से स्पष्ट है कि वे संसार को सत्य समझते थे; अतः उन्होंने इस संसार में ही प्रभु के दर्शन किए थे। 'देवारम्' के पदों में प्रकृति के अनेक सुंदर चित्र हैं। ये पद संगीत-प्रधान विशिष्ट शैली में रचित हैं। 'देवारम्' का धार्मिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से अपार महत्व है।

देवी चौधरानी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1884 ई०]

'आनंदमठ' (दे०) की आदर्श-भावना से अनु-प्राणित बंकिमचंद्र (दे०) की इस रचना का वस्तु-विधान उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक सरल एवं सहज है। इसका आरंभ यथार्थपुष्ट है। प्रफुल्ल का प्रारं-भिक स्वरूप सामान्य है परंतु धीरे-धीरे उसका रूपांतरण किया गया है। वह इतनी सशक्त नहीं है कि गृहस्थ-कन्या होते हुए देवी चौधरानी के समान देशोद्धार में जुटी रहे। ब्रजेश्वर में देशव्रत और गृहस्थ-धर्म का संघर्ष है परंतु उप-न्यास की उपलब्धि है प्रफुल्ल की दुर्बलता। भवानी का व्यक्तित्व अति मानवीय हो गया है।

अब बंकिम को मनुष्य की भक्ति और शक्ति पर विश्वास बढ़ गया है। इसीलिए वैयक्तिक स्तर पर वे देशोद्धार की चेष्टा में तत्पर हुए। औपन्यासिक दृष्टि से यह उनकी कोई असाधारण रचना नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशज *(हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में बाँटा जाता है : तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। देशज शब्दों के संबंध में मतभेद रहा है। कुछ लोग उन शब्दों को देशज मानने के पक्ष में रहे हैं जो मूलतः मुंडा जैसी आर्य-पूर्व भाषाओं के हैं। कुछ लोग ऐसे तद्भव शब्दों को देशज कहते रहे हैं, जिनके मूल तत्सम का पता नहीं है। कुछ लोग देश में उद्भूत शब्दों को ही देशज कहते हैं। वास्तव में देखा जाए तो हमारी भाषाओं के कुछ शब्द तो तत्सम हैं, कुछ तद्भव हैं, तथा कुछ विदेशी हैं। जो शब्द इन तीनों में किसी भी वर्ग में नहीं आते, वे ही देशज हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि देशज शब्द उन शब्दों को कहा जा सकता है जिनकी व्युत्पत्ति का पता न हो। इसीलिए ऐसे शब्दों को देशज की तुलना में 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम से अभिहित करना अधिक समीचीन प्रतीत हाता है। हिंदी में तेंदुवा, थोथा आदि शब्द इसी वर्ग के हैं।

देशपांडे, कुसुमावती *(म० ले०)*

आधुनिक मराठी साहित्य में ये एक निबंध-लेखिका, कहानीकार, कवयित्री एवं समालोचक के रूप में विख्यात हैं। ये मराठी के सुप्रसिद्ध कवि श्री आ० रा० देशपांडे 'अनिल' (दे०) की पत्नी थीं।

'दीपकली' और 'दीपदान' इनके निबंध-संग्रह हैं। इन निबंधों में ग्रामीणों के दुःख-दर्द का मार्मिक अंकन हुआ है।

इन्होंने कवित्व-गुण-मंडित अनेक यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें शासित एवं दलित नारी की मनोदशा का हृदयस्पर्शी चित्रण है। इन कहानियों में जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों से संबद्ध चरित्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में ये सिद्धहस्त हैं। 'मोली', 'दीपमाल' इनके कथा-संग्रह हैं।

अपनी 'मराठी कादंबरी' (भाग 1, 2) नामक समालोचनात्मक कृति में इन्होंने मराठी उपन्यास के स्वरूप-विकास का निरूपण किया है।

देशपांडे, नागोराव घनश्याम *(म०ले०)* [जन्म—1909ई०]

इनका जन्म मेहेकर नामक स्थान पर हुआ था। व्यवसाय से ये वकील हैं।

काव्य-संग्रह : 'शीळ'।

ना० घ० देशपांडे 'प्रेमयोगी' कवि हैं। इनके लिए प्रेम ही सर्वस्व है, पर यह प्रेम समाज के बंधनों को स्वीकार नहीं करता, यह उन्मुक्त प्रेम है। ग्राम्य जीवन की पृष्ठभूमि को लेकर लिखे इनके प्रेमगीत विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। कवि ने किसानों और ग्वालों पर कुछ गीत लिखे हैं जिनमें ग्राम्य जीवन के नैसर्गिक, अकृत्रिम आनंद का वर्णन है।

इन प्रेमगीतों की रचना में 'अलंकरण' पर बल दिया गया है। सभी गीत नाद-मधुर एवं संगीतात्मक हैं। देशपांडे नवयुग के प्रेमगीतकार हैं।

देशपांडे, पु० ले० *(म० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

नाटककार और हास्य-लेखक श्री पु० ले० देशपांडे विविध कलाओं के ज्ञाता हैं। इन्होंने नाटक, कहानी, लेख, सिनेमा और भाषणाभिनयादि द्वारा हास्यरस की प्रचुर निर्मिति की है। इनके एकांकी नाटक रेडियो के लिए तो लिखे ही गए हैं, वे मंच पर भी अभिनीत किए जा सकते हैं। इनके नाटक आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विचारधाराओं का मार्मिक दर्शन कराने के साथ-साथ दार्शनिक संदेश भी देते हैं। इन्होंने कतिपय विदेशी नाटकों का मराठी में रूपांतर भी किया है और विशेषता यह है कि रूपांतर मूल से अधिक सफल है। विनोद-सृष्टि के लिए ये विडंबना, उपहास और संस्मरणों का कुशल प्रयोग करते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति ने सामाजिक और साहित्यिक जीवन में व्याप्त दंभ का विस्फोट करने में इनकी बड़ी सहायता की है। विभिन्न बोलियों के प्रयोग ने इनकी रचनाओं को और भी अधिक यथार्थ, मार्मिक और लचीला बना दिया है। मध्यम वर्ग के व्यक्तिओं के चरित्र-चित्रण और उनके बीच होने वाले वाद-विवादों के विडंबनापूर्ण अंकन में कुशल देशपांडे स्थान-स्थान पर आदर्श का भी दिग्दर्शन करते चलते हैं। व्यक्तियों की अपेक्षा प्रवृत्तियों की विडंबना पर अधिक बल होने के कारण उनकी रचनाएँ कटु न होकर स्वस्थ एवं सुरुचिपूर्ण हैं। कल्पनानिष्ठ, बुद्धिनिष्ठ, भावनानिष्ठ, स्वभावनिष्ठ, प्रसंगनिष्ठ, शब्दनिष्ठ—सभी प्रकार का विनोद प्रस्तुत करने में सफल देशपांडे आधुनिक मराठी के श्रेष्ठ हास्य-लेखक हैं।

प्रसिद्ध कृतियाँ : **नाटक**—'तुझें आहे तुजपाशी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०)। विनोद लेख-संग्रह—'नसती उठाठेव', 'बटाट्याची चाळ' आदि।

देशि *(क० पारि०)*

कन्नड काव्यशास्त्रज्ञों ने काव्य के दो प्रकार बताए हैं—मार्ग (दे०) और देशि। इनमें संस्कृतनिष्ठ काव्य-रचना विधान को 'मार्ग' तथा उससे भिन्न अर्थात् स्वीय भाषा की प्राचीन परंपरा के अनुसार रचित काव्य को 'देशि' कहा जाता है। कन्नड का प्राचीन साहित्य 'मार्ग' कहा जा सकता है, जिसमें 'देशि' की प्रवृत्ति भी स्पष्टतया दीखती है। कन्नड के प्रसिद्ध विद्वान स्व० मुळियतिम्मप्पय्या (दे०) के अनुसार मार्ग-साहित्य का उदय देशि से ही हुआ है। देशि में भी श्रव्य और दृश्य भेद माने गए हैं। कन्नड के प्रथम काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'कविराजमार्ग' (दे०) के लेखक ने 'बेदंडे' और 'चत्ताण' नाम के दो काव्य-भेदों का उल्लेख किया है। इस संबंध में विद्वानों की धारणा है कि 'बेदंडे' श्रव्य काव्य है और 'चत्ताण' दृश्य-काव्य है। देशी श्रव्य-काव्य को 'देसिगब्ब' अथवा 'पाडुगब्ब' ('कब्ब' शब्द 'काव्य' शब्द का तद्भव है, 'पांडुगब्ब' का अर्थ है गाने योग्य काव्य) कहा गया है। इसके 'पद', 'मेल्वाडु', 'पाडु', 'पाडुगब्ब' आदि भेद बताये जाते हैं। देशि दृश्य काव्य को 'बाजने-गब्ब' कहा गया है। कन्नड का प्रसिद्ध 'यक्षगान' (दे०) (संगीत-नाटक) इसके अंतर्गत ही है। देशि काव्य उपेक्षा की वस्तु नहीं है। मार्ग-साहित्य के समान ही मान्य है।

देशिग विनायकम् पिळ्ळै *(त० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

ये आधुनिक तमिल-साहित्य के अग्रगण्य महा-कवि माने जाते हैं। जिला कन्याकुमारी में इनका जन्म हुआ था। अपने गाँव 'तेरूर्' में ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होंने 'कोट्टारु' में अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् तिरुवनंतपुरम् में इन्होंने अध्यापक-प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपने गाँव में स्थित 'तिरुवावडु-तुरै शैवमठ' की शाखा में 'शांतलिंग तंपिरान' नामक संन्यासी तमिल-विद्वान् से तमिल के लक्ष्य-लक्षण ग्रंथों का अध्ययन भी इन्होंने किया था। तीस वर्ष पर्यंत इन्होंने अनेक स्थानों पर और अंत में फिर तिरुवनंतपुरम् में तमिल अध्या-पक तथा प्राध्यापक का कार्य किया था। 1931 ई० के बाद ये मृत्यु-पर्यंत 'पुत्तेरी' नामक गाँव में ही रहे थे।

इनकी कविता की मुख्य विशेषता है भाषा-शैली का सरल सौंदर्य। अभिव्यक्ति में 'द्राक्षापाक' कहलाने योग्य प्रसाद गुण तथा माधुर्य गुण उमड़ते रहते हैं। करुणा भाव के चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। तमिल काव्य की प्राचीन परंपरा के अनुरूप इन्होंने छंद-रचना, व्याकरणिक भाषा, तथा भाव-गंभीरता के साथ-साथ अपने युग की क्रांतिकारी भावनाओं को भी स्वीकार किया है। स्त्री-उद्धार, हरिजन-उद्धार इत्यादि बातें इन्हें प्रिय थीं। बच्चों को दृष्टि में रखकर लिखे गए इनके गीत एक विलक्षण साहित्यिक उदात्तता से संवलित होकर शाश्वत-वाङ्मय के अंग बन गए हैं। 'आसिय ज्योति' (दे०) भगवान बुद्ध की जीवनी पर आधारित इनका खंडकाव्य है—'एड्विन आर्नल्ड'-कृत अँग्रेज़ी काव्य 'लाइट ऑफ़ एशिया' से प्रेरित। 'मलरुम् मालैयुम्' (पुष्प और माला) इनकी प्रकृति-वर्णन-प्रधान कविताओं का संकलन है। इनका 'उमरकय्याम् पाडल्कळ्' उमरखैयाम की रुबाइयों का भावानुवाद है। 'देवियिन् कीर्तनैकळ्' भक्तिरसप्रधान गेय पदों का संग्रह है। 'कुडन्दै-च्-चेल्वम्' ('बालकों की संपदा') बच्चों के लिए लिखे गए पद्य हैं। इनके अतिरिक्त—'नांजिल नाट्टु मरुक्कळवषि मान्मियम' (दे०) नामक इनका खंड-काव्य भी अत्यंत विख्यात हुआ है। इस खंड-काव्य का समाज पर बड़ा असर हुआ।

ये अच्छे गद्यकार भी थे। इनके भाषणों तथा निबंधों का संकलन प्रकाशित हुआ है। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी ऐतिहासिक अनुसंधानपूर्ण निबंध लिखे हैं।

देसाई, दिनकर *(क० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

समाज-सुधारक और लेखक के रूप में श्री दिन-कर देसाई की प्रसिद्धि है। ये मैसूर और बंबई विश्वविद्या-लयों के छात्र रहे हैं। इनकी कविताओं के संग्रह हैं: 'कवन संग्रह', 'मक्कळ गीतागळु' (बच्चों के गीत) तथा 'मक्कळ पद्यगळु' (बच्चों के पद्य)। ये कन्नड तथा अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान हैं। 'प्राइमरी एजुकेशन इन इंडिया' और 'मारि-टाइम लेबर इन इंडिया' इनकी अँग्रेज़ी पुस्तकें हैं।

देसाई, महादेव *(गु० ले०)*

दे० महादेव देसाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देसाई, रणजीत रामचंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

कोल्हापुर में जन्मे श्री देसाई बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। इन्होंने नाटक, कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त फ़िल्मों के लिए भी पट-कथाएँ लिखी हैं। अब तक इनके चार उपन्यास, छह कहानी-संग्रह, छह नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यासों में प्रमुख हैं—'स्वामी' (दे०) और 'श्रीमान योगी'। 'स्वामी' और 'श्रीमान योगी' दोनों ऐतिहासिक उपन्यास हैं। प्रथम माधवराव पेशवा से संबद्ध है और दूसरा शिवाजी से। सफल ऐतिहासिक उपन्यास के लिए जिन गुणों—प्रामाणिकता, वातावरण-सृष्टि आदि—की अपेक्षा होती है वे सब इनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं।

देसाई, रमणलाल वसंतलाल *(गु० ले०)* [समय—1892 ई० से 1954 ई०]

रमणलाल देसाई का जन्म गुजरात के नागर परिवार में 1892 ई० में हुआ। इनके पिता वसंतलाल देसाई एक पत्रकार थे। एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर रमणलाल बड़ौदा रियासत की सेवा में लगे और दीर्घकालीन सेवाओं के पश्चात् निवृत्त हुए। 1954 ई० में 62 वर्ष की आयु में इन्होंने इहलीला समाप्त की।

रचनाएँ—'जयंत', 'शिरीष', 'कोकिला', 'हृदय-नाथ', 'स्नेहयज्ञ', दिव्यचक्षु' (दे०), 'पूर्णिमा', 'ग्रामलक्ष्मी' (भाग 1 से 4), 'बंसरी', 'पत्र लालसा', 'भारेलो अग्नि', 'ठग', 'क्षितिज' (भाग 1-2), 'शोभना', 'हृदय विभूति', 'छायानट', 'पहाडनां पुष्पो (भाग 1-2), 'झंझावात' (भाग 1-2), 'प्रलय', 'कालभोज', 'सौंदर्य-ज्योति', 'शौर्य-तर्पण', 'बालाजोगण', 'स्नेहसृष्टि', 'त्रिशंकु'; **कहानी-संग्रह**—'झाकळ', 'पंकज', 'रसबिंदु', 'कांचन अने गेरू', 'दीवड़ी', 'भाग्यचक्र', 'सती अने स्वर्ग'; **नाटक**—'संयुक्ता', 'शंकित हृदय', 'परी अने राजकुमार अंजनी', 'तप अने रूप', 'पुष्पोनी सृष्टि मां', 'उश्केरायेलो आत्मा'। **काव्य-संग्रह**—'नीहारिका'; **समीक्षा**—'जीवन अने साहित्य' (भाग 1-2), 'साहित्य अने चिंतन'; **आत्मकथा और जीवनी**—'गई काल, मध्याह्न नां मृगजळ'; **प्रकीर्ण रचनाएँ**—'अप्सरा' (भाग 1 से 5), 'गुजरात नुं घडतर', 'ग्रामोन्नति', 'तेज चित्र', 'ऊर्मि अने विचार', 'गुलाब अने कंटक', 'रशिया अने मानव-शांति', 'वड़ोदरा नुं राज्यबंधारण', 'भारतीय संस्कृति', 'सुवर्ण रज'; **भाषांतर**—'मारू जीवन अने कार्य'।

इस प्रकार देखें तो श्री देसाई सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे किंतु उन्हें विशिष्ट ख्याति और यश मिला उपन्यासकार के रूप में। गांधीवाद की इनके मानस और चिंतन पर गहरी छाप थी और वह स्वर इनके कृतित्व में भी ध्वनित हुआ है।

देह बिचारर गीत *(अ० पारि०)*

ये प्राचीन काल से चले आ रहे गीत हैं। बाह्य रूप से ये भक्ति-गीत लगते हैं तथा इनके साथ माधवदेव (दे०) का नाम जुड़ा होता है, किंतु वास्तव में ये केवल वैष्णव गीत नहीं हैं। ये गीत गुप्त संप्रदायों में बहुत प्रचलित रहे हैं। इन पर शैव-शाक्त और बौद्ध तांत्रिकों का प्रभाव रहा है। इन गीतों में शरीर की तुलना नाव या घर से की जाती है। इसे 24 तत्त्वों का घर कहा जाता है। इस घर में नव-द्वार हैं, इसमें पूर्ण कृष्ण अथवा पूर्णानंद का वास है। बंगाल के बाउलों के गीत अथवा निर्गुणियों की उलटबाँसियों (दे० उलटबाँसी) से इनकी समता की जा सकती है। कभी-कभी ये पहेली जैसे हो उठते हैं, तब इनका अर्थ करना कठिन होता है, जैसे कि—

'ए माखि मुरे काढ़ि छयनो ढोल साजिले।'

इन गीतों की गणना असमीया के आदि मौखिक साहित्य में की जाती है।

दैवम् पिरंददु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

इसमें कु० अळगिरिसामी (दे०) की आठ कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें 'दैवम् पिरंददु', 'शुयरूपम', 'तंबिरामैया' और 'कुमारपुरम् स्टेशन' प्रसिद्ध हैं। 'दैवम् पिरंददु' में लेखक ने बताया है कि यदि हम किसी व्यक्ति को आदर्श बनाने का भरसक यत्न करते हैं तो वह हमारी कल्पना से कहीं अधिक आदर्शवान् बन जाता है। 'शुयरूपम' में दो पात्रों के माध्यम से मानव-मन की कुरूपता को व्यक्त किया गया है। 'तंबिरामैया' में बताया गया है कि निर्धन परिवार का युवक पढ़-लिखकर अपने परिवार का तो क्या अपना भी भरण-पोषण नहीं कर पाता है। इसमें लेखक को बालक की भावनाओं के चित्रण में विशेष सफलता मिली है। 'कुमारपुरम् स्टेशन' में लेखक ने बताया है कि उत्तम गुण वाले व्यक्ति ही हमारे गुरु हैं। ये कहानियाँ अत्यंत सरल शैली में रचित हैं। इन कहानियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि अळगिरिसामी कथानक, विषय के प्रस्तुती-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण, उद्देश्य, शैली आदि के संबंध में परंपरावादी नहीं हैं।

दोदो-चनेसर *(सिं० पा०)*

सिंध में 'दोदो-चनेसर' नामक वीरगाथा बहुत प्रसिद्ध है जिसका संबंध सूमरा वंश (1050-1350 ई०) के राजाओं से है। पहले-पहल भाग भान तथा उन दिनों के अन्य चारणों ने इस वीरगाथा की रचना की थी। इस वीरगाथा के केवल कुछ पद्यात्मक अंश मौखिक रूप से आज-कल के चारणों को अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं और पिछली शती में पहली बार लिपिबद्ध किए गए हैं। बाकी अंश गद्य में ही जोड़कर गाथा का क्रम रखा गया है। दोदो और चनेसर सूमरा वंश के राजा भूंगर के पुत्र थे और पिता की मृत्यु के पश्चात् राज्यसिंहासन की प्राप्ति के लिए उनमें कलह हुआ। राज्य के प्रमुख पदाधिकारियों ने दोदो को अपना राजा चुना, जिससे क्रुद्ध होकर चनेसर ने भाई से राज्य-सिंहासन छीनने के लिए अलाउद्दीन की सेना की सहायता से सिंध पर आक्रमण किया। इस युद्ध में दोदो और उसके कई साथी वीरगति को प्राप्त हुए। दूसरी तरफ़ युद्ध के पश्चात् चनेसर, अलाउद्दीन और उसकी सेना में से भी कोई न बचा। सिंधी साहित्य में दोदो वीरता का और चनेसर साहसहीनता, देशद्रोह और अनिर्णयात्मक बुद्धि का प्रतीक माना गया है। सिंधी साहित्य की कई रचनाओं में इन पात्रों के संदर्भ मिलते हैं।

दोष *(सं०, हिं० पारि०)*

गुण (दे०), अलंकार (दे०)-विवेचन की भाँति दोष-विवेचन भी काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण विषय है। सामान्य रूप से काव्य का अपकर्ष करने वाले तत्त्व दोष कहलाते हैं। भरत (दे०) तथा वामन (दे०) दोष को गुण का विपर्याय मानते हैं: ('एत एव विपर्यस्ताः गुणाः काव्येषु कीर्तिताः—भरत : नाट्यशास्त्र : 17।88, 94; 'गुणविपर्ययात्मनो दोषाः'—वामनः काव्यालंकारसूत्रवृत्ति : 2।12)। ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों की परिभाषा अधिक स्पष्ट एवं संगत है: आनंदवर्द्धन (दे०), अभिनवगुप्त (दे०) और मम्मट (दे०) ने दोष को मुख्यार्थ का अपकर्षक तत्त्व माना है तथा विश्वनाथ (दे०) के विचार में दोष वह है जो शब्दार्थ द्वारा रस का अपकर्ष करे ('रसापकर्षका दोषाः'—साहित्यदर्पण : 7।1)। मम्मट ने रसौचित्य को दृष्टि में रखते हुए नित्य एवं अनित्य दोषों की प्रकल्पना की है। नित्य-दोष प्रत्येक स्थिति में रस का अपकर्ष करते हैं, अतः रस-दोष कहलाते हैं; अनित्य दोषों का संबंध काव्य के वाह्य पक्ष—शब्दार्थ—से है जो सदा रस का अपकर्ष नहीं करते। संक्षेप में, काव्य-दोष काव्य का अपकर्ष अर्थात् काव्य-सौंदर्य का विघात तीन प्रकार से करते हैं : रस-प्रतीति में विलंब द्वारा, रसास्वादन में अवरोध द्वारा तथा रस-प्रतीति के पूर्ण विघात द्वारा। इसीलिए उत्कृष्ट काव्य-रचना के लिए संस्कृत-आचार्यों ने कवियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए काव्य-दोषों को त्याज्य बताया है।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता *(हिं० कृ०)*

यह मध्ययुगीन ब्रजभाषा गद्य की सुंदरतम कृति है। इसमें पुष्टि-संप्रदाय (दे० पुष्टिमार्ग) के गोस्वामी विट्ठलनाथ के दो सौ शिष्यों की वार्ताएँ समाहित हैं। कुछ विद्वान् 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (दे०) एवं 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' को गोकलनाथ-कृत मानते हैं, पर कुछ विद्वान 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' को उनके गुजराती शिष्य द्वारा प्रणीत मानते हैं। एक वर्ग ऐसा भी है जो इन दोनों ग्रंथों को गोकुलनाथ के मुख से निःसृत और बाद में हरिराय द्वारा संपादित मानता है। इसमें कृष्णभक्तों अथवा कवियों के चरित्र पर संक्षेप में विचार किया गया है। अतः प्राचीन आलोचना के मानदंडों में लिखा गया यह ग्रंथ जहाँ एक ओर सत्रहवीं शती के ब्रजभाषा गद्य की झाँकी प्रस्तुत करता है, वहाँ दूसरी ओर कृष्णभक्ति-साहित्य की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि समझने के लिए इस ग्रंथ का अध्ययन परम अनिवार्य है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के संप्रदाय में भक्तों की चरितावलियों का गान होता है, इसीलिए समग्र कृष्णकाव्य में वार्ता-साहित्य का महत्व अनूठा है।

दोहड़ा *(पं० पारि०)*

दोहिरा (दे०) छंद में रचित श्लोक 'दोहड़ा' कहलाते हैं। यह गुरवाणी का विशेष पारिभाषिक प्रयोग है। इसके माध्यम से छोटे-छोटे विचार प्रकट किए गए हैं। आध्यात्मिक दृष्टांत, नैतिक शिक्षा तथा दैनिक जीवन से संबद्ध सूक्तियों को अभिव्यक्त करने के लिए इसका आश्रय लिया जाता है। इस शब्द का मूल 'दोहा' है। उदाहरण :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोटी मेरी काठ की, लावण मेरी भुख।
जिन्हा खादी चोपड़ी घणे सहिनगे दुख ।।

दोहा *(हिं० पारि०)*

दोहा छंद के पहले और तीसरे चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों के अंत में गुरु-लघु होना चाहिए तथा विषम चरणों के प्रारंभ में जगण नहीं आना चाहिए। उदाहरण :

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजंग ।।

दोहा कोश : चर्यापद *(अप० कृ०)*

बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं—दोहों के रूप में और गीतों या पदों के रूप में। सिद्धों के लिखे दोहों का संग्रह 'दोहा कोश' कहलाता है। इनके द्वारा रचित पद चर्यागीत या चर्यापद कहे जाते हैं। इन रचनाओं में दो प्रकार की भावधारा मिलती है—एक रूप है संप्रदाय के सिद्धांतों से संबद्ध विवेचन का और दूसरा रूप है जिसमें उपदेश, खंडन-मंडन आदि का स्वर प्रधान है। संस्कृत में लिखे गए सिद्धों के ग्रंथ प्रायः साधना-मार्ग की व्याख्या करते हैं किंतु अपभ्रंश में रचित पदों और दोहों में धार्मिक विश्वास, दार्शनिक मत और नैतिक स्वर का परिचय अधिक स्पष्ट है।

सिद्धों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति में कहीं-कहीं रूपकों का भी आश्रय लिया है, किंतु इन रूपकों में ऐसे ही पदार्थ चुने गए हैं जिनका मानव-जीवन से संबंध है। जैसे—नौका, हरिण, चूहा, हाथी, सूर्य, वीणा आदि। अप्रस्तुत-विधान के लिए भी कच्छप, कमल, भ्रमर, नक्र आदि मानव-जीवन से संबद्ध पदार्थों का अधिकतर प्रयोग किया गया है।

सिद्धों की रचनाओं में भाषा के दो रूप मिलते हैं—एक वह है जिसमें पूर्वी अपभ्रंश का रूप मिलता है; दूसरा रूप पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी) का है। चर्यागीतों में पूर्वी रूप की प्रधानता है और 'दोहा कोश' के दोहों में पश्चिमी रूप की।

सिद्धों की रचनाओं का चाहे कवित्व की दृष्टि से इतना महत्व न हो किंतु भावधारा के विकास को समझने के लिए ये निस्संदेह महत्वपूर्ण हैं।

दोहा-बंध *(अप० पारि०)*

अपभ्रंश साहित्य में दोहा-बंध एक प्रमुख बंध है। दोहा या दूहा अपभ्रंश का अपना छंद है, वैसे ही जैसे गाथा प्राकृत का अपना छंद है। यही कारण है कि 'गाथा बंध' प्राकृत रचना का और 'दोहा बंध' अपभ्रंश रचना का पर्यायवाची-सा बन गया था। अपभ्रंश से पूर्व के साहित्य में दोहा छंद उपलब्ध नहीं होता। (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०)—'हिंदी-साहित्य', पृ० 11)।

दोहा छंद का प्रयोग अपभ्रंश साहित्य में निम्नलिखित रूप में मिलता है—

(1) जैन धर्म-संबंधी मुक्तक दोहे—ये दोहे जैन मुनियों की आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक एवं उपदेशात्मक कृतियों में प्रयुक्त हुए हैं। धार्मिक उपदेश के कुछ दोहे हेमचंद्र (दे०) में भी मिलते हैं।

(2) बौद्ध धर्म-संबंधी दोहे—ये दोहे बौद्ध सिद्धों की कृतियों में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से कुछ दोहों में धर्म के सिद्धांत, मत, तत्त्वादि का प्रतिपादन है और कुछ में तंत्र-मंत्रादि कर्मकांड का खंडन है। यह परंपरा संत कवियों के दोहों तक गई है।

(3) श्रृंगार रस के दोहे—ये दोहे हेमचंद्र (दे०) के प्राकृत व्याकरण, मेरुत्तुंगाचार्य-कृत 'प्रबंधचिंतामणि' आदि रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। इनमें रूप-वर्णन, संयोग-वियोग, श्रृंगार-मिलन का उल्लास आदि के सुंदर चित्र अंकित हैं। इस परंपरा ने रीतिकालीन कवियों को भी प्रभावित किया।

(4) नीति-विषयक दोहे—ये दोहे भी हेमचंद्र में मिलते हैं। इनमें मानव को अवसरोचित शिक्षा दी जाती है। यह परंपरा हिंदी-साहित्य में रहीम (दे०), तुलसी (दे०), वृंद (दे०), बिहारी (दे०) आदि के दोहों में मिलती है।

(5) वीर रस के दोहे—ये दोहे प्रायः वीर नारियों के अपने पति के गौरवमय उद्गारों के रूप में व्यक्त हुए हैं। ये अपभ्रंश साहित्य की विशेषता हैं। अपभ्रंश साहित्य से पूर्व के साहित्य में इस प्रकार के दोहे प्रायः नहीं मिलते। इस परंपरा का निर्वाह राजस्थानी साहित्य में विशेष रूप से हुआ है।

दोहावली *(हिं० कृ०)*

'दोहावली' गोस्वामी तुलसीदास (दे०) के स्फुट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहों का संग्रह है। इसके प्रकाशित संस्करणों में 573 दोहे उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ दोहे 'रामचरितमानस' (दे०), 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'तुलसी-सतसई' में भी मिलते हैं। इनके मुख्य विषय हैं : भगवान् शंकर, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, काशी आदि की महिमा; ज्ञानमार्ग की कठिनता; माया-मोह की सेनाएँ; वैर-प्रेम; एकांगी प्रेम के उदाहरण; सज्जन-दुर्जन-लक्षण; कलि; कपटी की पहचान; विपरीत-बुद्धि; क्षमा, विश्वास, विवेक, समय आदि का महत्व; होनहार; मन के चार कंटक; मूर्खशिरोमणि; राजनीति; राजा के लक्षण; भेड़ियाधसान; आज्ञाकारी सेवक; साधन; मेल-जोल; सफल जीवन; रामकृपा। कुछ दोहों में चातक के अनन्य प्रेम की जो अभिव्यक्ति हुई है वह बहुत सुंदर है। कुछ दोहों से तुलसीदास जी के जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है।

दोहिरा *(पं० पारि०)*

दोहिरा हिंदी 'दोहा' (दे०) का पंजाबी रूपांतर है। इसके दो चरण माने जाते हैं। प्रत्येक चरण में 24-24 मात्राएँ और ग्यारह-तेरह पर यति होती है। अंत में गुरु के बाद लघु आवश्यक है। आरंभ में दोहिरा किसी छोटे-से विचार को प्रकट करने का माध्यम था, बाद में यह आख्यानात्मक कविता में भी प्रयुक्त हुआ। उदाहरण :

दर ढठियां दे गुणां दी, कदर पैंदी यार।
गले पये फुलहार दी, भासे ना महिकार॥

दौलत क़ाज़ी (बँ० ले०) [समय—अनुमानतः सोलहवीं शती का अंत और सत्रहवीं शती का आरंभ]

मध्ययुगीन बँगला साहित्य के ख्याति-प्राप्त मुसलमान कवि दौलत क़ाज़ी का जन्म संभवतः ईसा की सोलहवीं शती के अंत में हुआ था। दौलत क़ाज़ी पूर्वी-बंगाल के चट्टग्राम के निकट स्थित अराकान राज्य की राजधानी रोसांग के राजा थिरि-थु-धम्मा (श्री सुधर्मा) के राज-कवि थे। मध्ययुगीन हिंदी प्रेमगाथाओं से प्रभावित होकर बँगला साहित्य में इन्होंने धर्म-संस्कार-मुक्त मानवीय प्रणय-कहानी की रचना की। सन् 1629 के आसपास उनकी मृत्यु हुई।

श्री सुधर्मा (थिरि-थु-धम्मा) के सेनापति अशरफ़खान के अनुरोध पर दौलत क़ाज़ी ने हिंदी के कवि साधन की 'मैना सतवंती' या मुल्ला दाऊद की पुस्तक 'चंदायन' से प्रभावित होकर बँगला में इसी काव्य-गाथा को 'सती मयनामती' या 'लोकचंद्रानी' के नाम से रूपांतरित करना प्रारंभ किया। यही उनकी एकमात्र काव्य-पुस्तक है जिसे समाप्त किए बिना ही वे परलोक सिधार गए। इनकी मृत्यु के तीस वर्ष उपरांत अराकान राज्य के एक और प्रसिद्ध कवि आलाओल (दे०) ने इस काव्य-ग्रंथ को पूरा किया।

दौलत की काव्य-कथा मौलिक तो नहीं परंतु फिर भी उन्होंने कथा-विन्यास में तथा अपनी भाव-कल्पना की परियोजना में विशेष कृतित्व का परिचय दिया है। आलाओल जैसे विख्यात कवि भी असंपूर्ण काव्य-ग्रंथ को समाप्त करते हुए उनके काव्यत्व की रक्षा नहीं कर पाए हैं। उत्तर भारत की इस लोक-कथा को मर्त्य-जीवन-रस से सिक्त कर इसके माध्यम से उन्होंने सूफ़ी-प्रेम तथा सत्य का स्वरूप-उद्घाटन किया है। मुसलमान होने पर भी उन्होंने इस हिंदू कहानी को हिंदू कवि की तरह ही व्यक्त किया है। धर्म-निरपेक्ष होकर उन्होंने इस दुनिया के मानव का जय-गान किया है जिसके मृत्तिकारूपी जीवदेह का अवसान होने पर ही आत्मा का मुक्ति-लाभ संभव है। सूफ़ी साधक दौलत क़ाज़ी मध्ययुग के पहले बँगला मुसलमान कवि हैं जिनका 'लोकचंद्रानी' काव्य-ग्रंथ बँगला का प्रथम धर्मसंस्कार-मुक्त मानवीय प्रणय-काव्य है।

दौलतराम *(पं० ले०)* [जन्म—1880; मृत्यु—1935 ई०]

पंजाबी क़िस्सा-काव्य को मनोरंजन-प्रधान लोक-साहित्य के स्तर से उठाकर सत्साहित्य की गरिमा प्रदान करने वाले कवियों में रामगढ़ सरदारां (ज़िला लुधियाना)-निवासी पं० साहिब दित्ता के सुपुत्र पं० दौलतराम का स्थान प्रमुख है। इन्होंने 'रूप-वसंत' (दे०) (1903), 'पूरन भगत' (1908), 'राजा सिरपाल' (1911), 'राजा 'सुलोचना रसालू' (दे०), 'राजा हरीचंद धर्मी', 'माता सुलखनी', रानी', 'हक़ीक़त राय', 'गोपीचंद' शीर्षक आख्यान-काव्यों के अतिरिक्त 'ज्ञान गुलज़ार', 'बिबेक बहार', 'नसीहत शराब' प्रभृति आध्यात्मिक और उपदेशात्मक रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं। ये कृतियाँ संगठन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से साधारण कोटि की हैं परंतु इनमें धर्मनिष्ठ, दृढ़प्रतिज्ञ एवं उदात्त-चरित्र जातीय वीरों की यशोगाथा का प्रभावात्मक शैली में वर्णन हुआ है। इनकी केंद्रीय पंजाबी में ब्रज और खड़ी बोली का पुट है। कवि की रचनाओं में अनेक भारतीय-अभारतीय छंदों और विविध लोकप्रचलित काव्य-रूपों—बारहमासा, सतवारा, सीहरफ़ी आदि—का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है, जिनसे क़िस्सा-काव्य का स्वरूप ही बदल गया।

द्यावापृथिवी (*क० कृ०*)

यह डा० वि० के० गोकाक (दे०) का प्रतिनिधि कविता-ग्रंथ है जिसे साहित्य अकादेमी-पुरस्कार मिल चुका है। इसमें कवि ने आसमान और धरती को विराट् दृष्टि से देखा है। इसमें 'नीरद' और 'इलागीत' दो लंबी कविताएँ हैं। बीच में 'इम्वामण' नामक एक कविता जुड़ी है। 'नीरद' में कवि धरती पर खड़े होकर मेघों का अवलोकन करता है। 'इलागीत' में हवाई जहाज़ में बैठकर भूमि का समग्र दर्शन किया गया है। नीरद भव्य कल्पना से दीप्त है और दार्शनिकता से बोझिल भी है। कविमन का स्थिति-बिंदु पृथ्वी बनती है तो उसकी व्याप्ति आकाश बनता है। इस आकाश में प्रकाश गंगा बनकर बहा है, तारे झुंड के झुंड आकर विविध आकृतियों का निर्माण करते हैं। तब कवि की कल्पना-शक्ति भव्यता की विहारिणी बनती है। कवि की प्रतिभा-सृष्टि तथा प्रतिभा-दृष्टि परस्पर पूरक बनकर एक पूर्णता की कांति लाई हैं, नीरद-दर्शन के लिए कविमन ऊर्ध्वमुखी बनता है। इसके भव्य रूपक, काव्यबिंब अपने विलास एवं वैचित्र्य के कारण भावोद्दीपनकारी बने हैं। 'नीरद' यदि हमारे उद्धार की अभीप्सा को प्रकट करता है तो 'इलागीत' हमारे अवतारों की ओर संकेत करता है। दशावतारों की कल्पना बहुत ही व्यंजकता के साथ यहाँ आई है। 'नीरद' एवं 'इलागीत' इन दोनों की पृष्ठभूमि में अरविंद-दर्शन है। इस प्रकार यहाँ दर्शन एवं काव्य का सुंदर समन्वय हुआ है। समकालीन एवं कालातीत की व्यंजना में यह सर्वथा सफल है।

द्राक्षांचे घोंस (*म० कृ०*) [रचना काल—1890 ई०]

वि० सी० गुर्जर (दे०)-कृत इस कहानी-संग्रह में ग्यारह कहानियाँ हैं जिनमें से कुछ का विषय प्रणय है तो कुछ में हास्य-व्यंग्य का सहारा लेकर शास्त्रीय संगीत, नये बैरिस्टर आदि पर कटाक्ष किया गया है। एक कहानी का विषय ऐतिहासिक है जिसमें शिवाजीकालीन मराठों का त्याग और उत्सर्ग दिखाया गया है। हास्य उत्पन्न करने के लिए श्लेष, मुद्रण-दोष, प्राचीन उक्तियों के हास्यपूर्ण प्रयोग आदि का सहारा लिया गया है। लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा को सजीव बनाने में सहायता की है। असमंजस, कुतूहल एवं जासूसी तत्त्वों के प्रयोग ने कहानियों को मनोरंजक बना दिया है। शिल्प की दृष्टि से कुछ नये प्रयोग किए गए हैं, जैसे कथा को बीच में से आरंभ करना, पत्रात्मक शैली का प्रयोग आदि।

द्रौपदी (*सं० पा०*)

द्रुपद राजा की कन्या द्रौपदी कहलाई। पांडवों की पत्नी होने के नाते 'महाभारत' (दे०) में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसके स्वयंवर में मत्स्य-वेध की शर्त को अर्जुन (दे०) ने पूरा किया, किंतु पांडवों की माता कुंती द्वारा भूलवश कहे गए एक वचन के कारण यह युधिष्ठिर (दे०) आदि पाँचों भाइयों की पत्नी बनी रही। युधिष्ठिर जब दुर्योधन (दे०) के साथ द्यूत-क्रीड़ा में दाँव पर द्रौपदी को भी हार गए तो दुःशासन (दे०) ने भरी सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करना चाहा परंतु कृष्ण (दे०) की चमत्कारपूर्ण लीला से उसका प्रयास विफल हुआ। बनवास के दिनों में एक बार जयद्रथ ने पांडवों की अनुपस्थिति में द्रौपदी का हरण कर लिया कि इतने में पांडव आ गए और उन्होंने इसे परास्त कर दिया। अज्ञातवास के दिनों में द्रौपदी सैरंध्री बनकर सुदेष्णा के पास रही, और वहीं कीचक नाम के सेनापति ने इसके प्रति कुदृष्टि रखी तो भीम (दे०) ने उसका वध कर दिया। अज्ञातवास के बाद कौरवों के साथ जब-जब संधि की बात चलती तो द्रौपदी उन्हें उनके साथ युद्ध के लिए भड़का देती। अंततः भयानक युद्ध हुआ और युद्ध में इसके पाँचों पुत्र अश्वत्थामा द्वारा मारे गए और भीम ने अश्वत्थामा का वध कर उक्त वध का बदला चुकाया। युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के समय मार्ग में द्रौपदी का पतन हुआ—कारण यह कि पाँचों पतियों में से इसकी अर्जुन के प्रति विशेष प्रीति थी। पतन होते ही इसने कृष्ण का स्मरण किया और यह स्वर्ग में चली गई।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (*हिं० पारि०*)

कार्ल मार्क्स का सिद्धांत जिसके अनुसार सृष्टि का विकास भौतिक परिस्थितियों के नियंत्रण में अवस्था, प्रत्यवस्था और समन्वय के सोपानों के धरातल पर होता है 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के नाम से जाना जाता है। मार्क्स ने 'द्वंद्वात्मक' शब्द हीगेल और 'भौतिकवाद' शब्द फ़ायरबाख से लिया, पर उनकी नयी व्याख्या की। हीगेल का विचार था कि मनुष्य के मस्तिष्क में विरोधी प्रत्ययों में संघर्ष होता है, इतिहास केवल उस संघर्ष की प्रतिच्छाया है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्क्स ने प्रत्यय के स्थान पर पदार्थ रख यह बताया कि संघर्ष का आधार प्रत्यय न होकर पदार्थ है। पर दोनों के अनुसार परिवर्तन की प्रणाली द्वंद्वात्मक है। फ़ायरबाख से प्रभावित मार्क्स मानता है कि मानव-इतिहास में संपूर्ण विकास अर्थव्यवस्था के संदर्भ में हुआ है और आर्थिक संघर्ष या वर्गों के मध्य, जो अर्थव्यवस्था पर टिके हैं, संघर्ष की परिणति समतावादी वर्गहीन समाज में होगी। मार्क्सवादी साहित्य में निरूपित द्वंद्वात्मक पद्धति के तीन पक्ष हैं—(1) किसी भी युग के साहित्य का स्वरूप समाज के तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक ढाँचे पर निर्भर होता है, (2) कला का अध्ययन तदयुगीन आर्थिक परिस्थितियों के प्रकाश में होना चाहिए, तथा (3) कला (दे०) की उच्चता की कसौटी यह है कि वह किस सीमा तक अपने युग की आर्थिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करती है और कहाँ तक वर्ग-हीन समाज की स्थापना में सहायक बनती है।

द्विज, जनार्दन *(बँ० ले०)*

जनार्दन के जन्मस्थान, माता, पिता आदि के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना कठिन है। अनुमान है कि ये उत्तर बंग के कवि थे।

इनकी प्रमुख कृति 'मंगल-चंडी' अथवा 'चंडी-मंगल' है। इसका रचना-काल अज्ञात है। अनुमानतः यह सत्रहवीं-अठारहवीं शती में किसी समय लिखी गई है। यह व्रतकथा के ढंग की ग्राम्य-कविता है।

भाषा अथवा वर्णन-शैली की दृष्टि से भी कृति महत्वपूर्ण नहीं है।

द्विज, पीतांबर *(अ० ले०)* [समय—सोलहवीं शती]

ये संभवतः कमतापुर-निवासी थे। इनके आश्रय-दाता कोच-बिहार के शुक्ल ध्वजसमर (संग्राम) सिंह थे।

रचनाएँ—'उषा परिणय' (1533 ई०), 'भागवतपुराण' (दशम) (1550), 'मार्कंडेय चंडी आख्यान' (1602), 'भागवतपुराण' (प्रथम), 'नल-दमयंती'।

अब इनके 'उषापरिणय' और 'मार्कंडेय चंडी आख्यान' को छोड़कर अन्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। 'उषा-परिणय' इनकी श्रेष्ठ कृति है, यह वैष्णव शैली में न होकर विहुगीत (दे०) शैली में है। 'हरिवंशपुराण' के उषा-विषयक आख्यान से प्रेरणा लेकर मौलिकतापूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें दैहिक प्रेम के लास-विलास और इंद्रिय-लोलुपता का विशेष चित्रण है, अतः श्रृंगार-वर्णन अमर्यादित हो गया है। श्री शंकरदेव (दे०) इनके सम-कालीन थे। इन्होंने इन्हें अहंकारी और शाक्त तामसिक कहा था। 'मार्कंडेय चंडी आख्यान' में देवी चंडी और राक्षसों के युद्ध का वर्णन है। कवि को कथा-वर्णन में निपुणता प्राप्त है।

शंकरदेव युग के प्रारंभिक कवियों में ये अग्रगण्य हैं। इनकी गणना अवैष्णव कवियों में की जाती है।

द्विज, रमानाथ *(बँ० ले०)*

द्विज रमानाथ के जन्म, माता-पिता आदि के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। ये सत्रहवीं अथवा अठारहवीं शती में किसी समय विद्यमान थे।

इनकी कृति 'श्रीकृष्ण विजय' श्रीमद्भागवत के आधार पर रचित कृष्ण-लीला-संबंधी काव्य है। अन्यान्य कृष्ण-मंगल-काव्यों के समान इसमें दानलीला, नौकाविलास आदि लीलाओं का आख्यान है। ग्रंथ विष्णुपुर अंचल में प्राप्त हुआ था—अतः अनुमान है, कवि उसी प्रदेश का है। काव्य की भाषा को देखकर यह अनुमान पुष्ट भी होता है।

कवि में पांडित्य नहीं, सारल्य है—परिणाम-स्वरूप स्थान-स्थान पर उसकी सहज-सरल उक्तियाँ मर्म का स्पर्श करती हैं।

द्विज, वंशीदास *(बँ० ले०)*

द्विज वंशीदास मैमनसिंह ज़िलांतर्गत पातोयाड़ी अथवा पाटवाड़ी ग्राम में पैदा हुए थे। अनुमान से सत्रहवीं शती के अंत में किसी समय ये विद्यमान थे। इनके पिता का नाम यादवानंद तथा माता का नाम अंजना था और ये जाति के ब्राह्मण थे।

इनकी प्रमुख कृति 'पद्मा पुराण' है जो मनसा के महत्व को स्थापित करती है। देवी-देवताओं की वंदना, दक्षयज्ञ, सती-शरीर-त्याग, महादेव-तपस्या, मदनभस्म, शिव-पार्वती-विवाह आदि प्रसंगों से ग्रंथ का प्रारंभ होता है तथा अंत में मनसा का महत्व प्रतिपादित करता है। ग्रंथ पर 'कुमारसंभव' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

ये शाक्त थे। शाक्त धर्म के प्रति अनुरक्त होते हुए भी ये सत्रहवीं शती के सर्वव्यापी वैष्णव प्रभाव से अछूते नहीं रह सके थे। इसका प्रमाण ग्रंथ में मिलता है। कवि का आगम एवं तंत्र-विषयों पर अधिकार है ऐसा इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ के अध्ययन से ज्ञात होता है। भाषा की सरलता एवं आडंबरशून्य वर्णन कृति की प्रधान विशेषताएँ हैं।

द्विज, बैद्यनाथ *(बं० ले०)*

इनका समय अनुमानतः उन्नीसवीं शती का दूसरा और तीसरा चरण है। 1839-47 ई० में इन्होंने 'शिवपुराण' का अनुवाद किया। तत्पश्चात् 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' का भी अनुवाद किया।

इन्होंने शिवेंद्र नारायण (कूच बिहार के महाराजा) के राज्य-काल में कार्य किया और उस समय इनका विद्यमान होना प्रमाणित है।

द्विरेफनी वातो (भाग 1, 2, 3) *(गु० कृ०)*

प्रो० रामनारायण (विश्वनाथ) पाठक (दे०) बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। समालोचक, कवि, निबंधकार और शोधकर्ता के अलावा वे उच्चकोटि के कहानीकार भी थे। 'द्विरेफ' के उपनाम से उन्होंने उत्तम सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं जो 'द्विरेफनी वातो' के तीन भागों में संगृहीत हैं। इन तीन कहानी-संग्रहों में कई समस्याओं, चित्रों, प्रसंगों और पात्रों का रूपायन हुआ है। प्रथम दो संग्रहों की कहानियों में प्रमुख पात्रों के हर्षानुभव अंकित हैं, जबकि तीसरे संग्रह की कहानियों में विषादमय वातावरण पाया जाता है। इसके पात्र अनिष्ट तत्त्वों और विधि की वक्रता के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। वे या तो पराजित होते हैं या विजयी होने पर भी विजय का सुख नहीं भोग पाते। इसीलिए ये कहानियाँ करुणांतक बन गई हैं। प्रथम दो भागों में लेखक ने दुष्ट पात्रों के प्रति घृणा और उपेक्षा प्रकट की है। तीसरे संग्रह में सभी पात्रों के प्रति लेखक का समभाव और तटस्थ-वृत्ति पाई जाती है। इसमें पूर्ववर्ती संग्रहों की तुलना में केवल दृष्टिकोण ही नहीं, निरूपण-पद्धति भी परिवर्तित हो गई है। इनकी कुछ कहानियाँ चित्त को क्लेश और कटुता से भर देती हैं। अधिकांश कहानियाँ मानवीय संवेदना और समभाव से ओतप्रोत हैं जो पाठक के मन पर शांत, स्वस्थ एवं आनंददायक प्रभाव छोड़ जाती हैं। 'रेंकड़ी', 'इंदु', 'पोतानो दाखलो' इत्यादि ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'सौभाग्यवादी' जैसी कुछ कहानियाँ नारी-जीवन की विवशता और वेदना को अभिव्यक्त करती हैं। 'खेमी', 'जक्षणी', 'मुकुंदराय', 'कपिलराय' और 'नवोजन्म' प्रो० पाठक की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं जिनमें कहानी-कला का उत्कृष्ट रूप पाया जाता है।

'द्विरेफनी वातो' का लेखक मूलतः चिंतक और मनोविश्लेषक है। इसीलिए इन तीनों संग्रहों में भावनाशीलता के बदले बौद्धिकता पाई जाती है। लेखक ने समाज के सभी वर्गों और वर्णों के पात्रों का चरित्रांकन किया है। कुछ कहानियाँ गंभीर हैं और कुछ हास्य-व्यंग्यमय हैं। कहीं-कहीं तीखे कटाक्ष भी किए गए हैं। सभी कहानियों की भाषा सरल और स्वाभाविक है और अंत प्रभावोत्पादक।

द्विवेदी, मणिलाल नभुभाई *(गु० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

गोवर्द्धनराम (दे०) के समकालीन मणिलाल नभुभाई द्विवेदी का जन्म नड़ियाद में हुआ था। इन्होंने बंबई में गुजराती स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर के रूप में काम किया था। ये संस्कृत के विद्वान और आर्य संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। इसी का परिणाम है कि इन्होंने 'गुजराती सोशियल यूनियन' द्वारा आयोजित विधवा-विवाह-विषयक परिसंवाद में अकेले ही विधवा-विवाह का विरोध किया था। प्रस्तुत परिसंवाद में दिए गए तर्कों के आधार पर ही इनका 'नारी प्रतिष्ठा' नामक लेख साप्ताहिक पत्र 'गुजराती' में क्रमशः प्रकाशित हुआ। द्विवेदी जी ने भावनगर के शामलदास कालेज में संस्कृत के अध्यापक के रूप में काम किया था। विचारों में अद्वैतवादी होने के कारण अभेदानुभव को ब्रह्मसाक्षात्कार मानने वाले द्विवेदी सामान्यतः यह प्रतिपादन करते हुए दिखाई देते हैं: अभेद घर के लिए सुख-शांति का वाहक है; राज्य के लिए उत्तम अंग है और साहित्य-सर्जन के लिए इसकी अनिवार्य आवश्यकता है।

वेदांत परिपाटी के अनुरूप हिंदू धर्म की व्याख्या करने के लिए इन्होंने 'सिद्धांतसार' नामक ग्रंथ की रचना की। जड़वाद पर चेतनवाद की स्थापना करने के प्रयत्न-स्वरूप 'प्राणविनिमय' नामक ग्रंथ अस्तित्व में आया। 'मोनिज़्म ऑर अद्वैतिज़्म ?', 'राजयोग' तथा 'इमीटेशन ऑफ़ शंकर' नामक अँग्रेज़ी लेखों से आपको यूरोप और अमरीका में अच्छी ख्याति मिली। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: **नाटक**—'कांता' और 'नरसिंहावतार'; **निबंध**—'बाल-विलास' और 'सुदर्शन गद्यावली'; **उपन्यास**—'गुलाबसिंह'; **अनुवाद**—'भवभूति के नाटक', 'गीता', 'चारित्र्य', 'रामगीता', 'हनुमन्नाटक', 'चतुःसूत्री' और 'वृत्तिप्रभाकर'। **कविता**—'शिक्षा शतक' तथा 'आत्मनिमज्जन'; **संपादन**—पाटण जैन भंडार में स्थित प्रकाशित करने योग्य हस्तलिखित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की सूची तथा 2619 पुस्तकों की वर्गीकृत सूची जो बड़ौदा राज्य की ओर से 'प्रसिद्ध जैनपुस्तकमंदिरस्थहस्तलिखितग्रंथानांक्रमप्रदर्शकपत्रम्' नाम से प्रकाशित हुई। इन सब ग्रंथों के अतिरिक्त गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी के लिए इन्होंने 'न्यायशास्त्र', बड़ौदा की ज्ञानमंजूषा के लिए 'चेतनशास्त्र', कच्छ राज्य के लिए 'शिक्षण अने स्व-शिक्षण' नामक ग्रंथ तैयार किए।

मणिलाल नभुभाई द्विवेदी गुजराती साहित्य में चिंतनशील निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। गुजराती भाषा को विचारक्षम, शिष्ट, सुसंस्कृत और ओजस्वी बनाने का बहुत कुछ श्रेय द्विवेदी जी को दिया जा सकता है।

द्विवेदी, महावीरप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली ज़िले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। हिंदी साहित्य के इतिहास में इनका ऐतिहासिक महत्व है। इन्होंने न केवल खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार तथा गद्य एवं पद्य दोनों में उसके समानरूपेण प्रयोग के लिए सफल आंदोलन किया था अपितु उसे परिष्कृत-परमार्जित कर कलात्मक रूप देने एवं सभी प्रकार के भावों को वहन करने योग्य बनाने मेंअ भूतपूर्व योग दिया था। इन्होंने यह दुष्कर कार्य सत्रह वर्षों तक—1903 ई० से 1920 ई० तक—'सरस्वती' (दे०) पत्रिका के संपादक की हैसियत से किया था। अपने अथक परिश्रम से इन्होंने इस पत्रिका को अपने समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। सच तो यह है कि द्विवेदी युग का प्रत्येक साहित्यकार 'सरस्वती' में अपनी रचना का प्रकाशित होना गौरव की बात समझता था। द्विवेदी जी ने अपने जीवनकाल में अस्सी से अधिक मौलिक तथा अनूदित ग्रंथों की रचना की थी। 'रसज्ञ-रंजन', 'सुकवि संकीर्तन', 'साहित्य संदर्भ', 'हिंदी महाभारत', 'हिंदी कालिदास की आलोचना' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनका मुख्य प्रदेय निबंध, आलोचना तथा संपादन के क्षेत्र में है। निबंधकार के रूप में इनका मुख्य दृष्टिकोण पाठकों का ज्ञानवर्धन था। फलतः विषय-वैविध्य, उपदेशात्मकता और सरलता इनके निबंधों की मुख्य विशेषताएँ हैं। आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने उपादेयता, लोकहित, शैलीगत नवीनता और निर्दोषिता को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी माना है। संपादक के रूप में इन्हें नये लेखकों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ पाठकों के हित की सर्वाधिक चिंता रही है। समग्रतः महावीरप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के युगांतकारी साहित्यकार थे।

द्विवेदी, शांतिप्रिय *(हिं० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

इनका मुख्य प्रदेय निबंध तथा आलोचना-साहित्य के संवर्धन में है, यद्यपि इन्होंने अपना साहित्यिक जीवन काव्य-सृजन से प्रारंभ किया था। छायावाद (दे०) की समीक्षा के क्षेत्र में इनका ऐतिहासिक महत्व है। 'हमारे साहित्य के निर्माता', 'साहित्यिकी', 'कवि और काव्य', 'सामयिकी', 'ज्योति-विहग' इनके प्रतिनिधि आलोचना-ग्रंथ हैं तथा 'वृंत और विकास', 'परिव्राजक की प्रजा' और 'धरातल' उल्लेखनीय निबंध-संग्रह। प्रांजल-पारिभाषिक तथा प्रभावपूर्ण भाषा-शैली के माध्यम से वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं का प्रत्यंकन इनके आलोचक रूप की मूलभूत विशेषता है।

द्विवेदी, सोहनलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

इनका जन्म बिंदकी, ज़िला फ़तेहपुर (उ० प्र०) में हुआ था। इन्होंने काशी और प्रयाग विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की। गांधी जी के प्रभाव के कारण इनकी काव्य-चेतना लोकोन्मुख बन गई है। 'भैरवी', 'वासवदत्ता' और 'कुणाल' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन्होंने बालोपयोगी साहित्य की रचना भी प्रभूत मात्रा में की है। अनवरत साहित्य-सेवा के लिए इन्हें भारत सरकार ने पद्मश्री अलंकार से सम्मानित किया है।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के बलिया ज़िले के 'दुबे का छपरा' नामक गाँव में हुआ था। निबंध, आलोचना, उपन्यास, शोध आदि सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। सांस्कृतिक-साहित्यिक संदर्भों से संपृक्त इनके निबंधों में कथ्य की अनौपचारिकता तथा शैली की सादगी के साथ-साथ सरसता, विद्वत्ता तथा गंभीरता का जो मणि-कांचन-योग मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। आलोचना के क्षेत्र में ये इस बात का ध्यान रखते हैं कि आलोच्य कवि अथवा काल-विशेष ने किस सीमा तक मानवीय मूल्यों की सृष्टि की है। वस्तुतः वैयक्तिकता की छाप तथा मानववाद द्विवेदी जी के साहित्य की मूलभूत विशेषताएँ हैं। इनकी रचनाओं में 'अशोक के फूल' (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्पलता', और 'कुटज' प्रतिनिधि निबंध-संग्रह, 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (दे०), 'कबीर', 'नाथ साहित्य', 'सूर साहित्य, मार्मिक आलोचना-ग्रंथ; 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' शोधपूर्ण कृति; तथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (दे०) अपनी शैली का असमानांतर उपन्यास है। समग्रतः द्विवेदी जी हिंदी गद्य साहित्य के मूर्धन्य लेखक हैं।

द्वयाश्रय काव्य *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

जैन कवि ऐतिहासिक विषयों पर महाकाव्य लिखने में बड़े दक्ष हैं। जैन आचार्य हेमचंद्र (दे०) ने 'कुमारपालचरित' (द्वयाश्रय काव्य) में गुजरात के राजाओं का चरित अपने आश्रयदाता कुमारपाल तक निबद्ध किया है।

इस महाकाव्य में अट्ठाईस सर्ग हैं। आरंभिक सर्ग संस्कृत में और अंतिम प्राकृत में हैं। हेमचंद्र के संस्कृत तथा प्राकृत के व्याकरणों के उदाहरणों को भी प्रदर्शित करते हैं। इसीलिए इस काव्य को द्वयाश्रय काव्य कहते हैं।

इस महाकाव्य का साहित्यिक मूल्य बहुत नहीं परंतु गुजरात के इतिहास का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने के कारण इसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत है।

धनंजय *(सं० ले०)* [समय—975 ई०-1000 ई०]

मालवा के परमार वंश के राजा मुंज (वाक्पतिराज द्वितीय) के राजकवि धनंजय संस्कृत-साहित्यशास्त्र के एक आचार्य हैं। इनके पिता का नाम विष्णु था। इनका समय दशम शती ईसवी का अंतिम भाग था।

आचार्य धनंजय की एकमात्र उपलब्ध कृति 'दशरूपक' (दे०) है जो रूपक अर्थात् नाट्य एवं उसके दस भेदों का सांगोपांग विवेचन करती है। धनंजय के स्वयं के कथनानुसार 'दशरूपक', 'नाट्यशास्त्र' (दे०) का ही अत्यंत संक्षिप्तीकृत रूप है। ग्रंथ चार प्रकाशों में विभक्त तीन सौ कारिकाओं तथा उन पर वृत्ति एवं उदाहरण से समन्वित है। केवल कारिकाएँ ही धनंजय की हैं। कृति एवं उदाहरण का भाग टीका है जिसका नाम 'अवलोक' है। इसके कर्त्ता धनंजय के ही छोटे भाई धनिक हैं। चारों प्रकाशों में क्रमशः वस्तु, नेता, रूपक के भेद-प्रभेद तथा रस का विवेचन हुआ है।

धनंजय आनंदवादी आचार्य हैं। इनका कहना है कि नाट्य व्युत्पत्ति के लिए नहीं बल्कि आनंद की प्राप्ति के लिए होते हैं। नाटकों का आश्रय रस ही होता है। रस केवल आठ ही हो सकते हैं। शांत रस संभव नहीं है। ये ध्वनि-विरोधी थे। व्यंजना-वृत्ति धनंजय एवं धनिक दोनों को मान्य नहीं। विभावादि से स्थायी भाव की भावना ही रस है। धनंजय ने अपने परवर्ती आचार्यों को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है।

धनपाल *(अप० ले०)*

धनपाल द्वारा रचित एक ही ग्रंथ 'भविसयत्तकहा' (दे०) उपलब्ध हुआ है। कवि ने धक्कड़ नामक वैश्य वंश में जन्म लिया था। इनके पिता का नाम माएसर (मायेश्वर) और माता का नाम धनश्री था। कहते हैं कि इन्हें सरस्वती का वर प्राप्त था। इनके रचना-काल के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई इन्हें दसवीं, कोई ग्यारहवीं और कोई चौदहवीं शती का कवि मानते हैं। दसवीं शती से लेकर सोलहवीं शती तक के जिन कवियों की अपभ्रंश रचनाएँ प्रकाश में आई हैं, और जिन्होंने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है, उनमें धनपाल का नाम नहीं मिलता। ये जैन धर्म के दिगंबर संप्रदाय के अनुयायी थे।

धनिया *(हिं० पा०)*

यह प्रेमचंद (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' (दे०) के नायक होरी (दे०) की पत्नी है। उपन्यासकार ने इसे भारतीय कृषक नारी के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। होरी के मुख से इसके चरित्र को रूपायित करते हुए लेखक ने लिखा है कि यह सेवा और त्याग की देवी; ज़बान की तेज़, पर मोम जैसे हृदय वाली, पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम देने को तैयार रहने वाली नारी है। व्यवहार-कुशल, निर्भीक और निडर धनिया वही करती है जो ठीक समझती है तथा जात-बिरादरी, समाज, क़ानून आदि तक की चिंता नहीं करती। नारी जाति की सभी चारित्रिक विशिष्टताएँ—यथा मातृभावना, स्नेह आदि—उसमें लक्षित होती हैं। प्रतिशोध की भावना होते हुए भी उसमें दूसरों के दुःख से द्रवित होने की क्षमता है। धनिया प्रेमचंद की अत्यंत प्रखर चरित्र-सृष्टि है।

धम्मचक्कपवत्तन सुत्त *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के 'संजुत्तनिकाय' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचपनवें सुत्त का दूसरा भाग है। यह अत्यंत प्रसिद्ध सुत्त भगवान् बुद्ध का बनारस में दिया हुआ पहला उपदेश है। यह पंचवर्गीय भिक्षुओं के सामने दिया गया था और इसी से भगवान् बुद्ध ने धर्म के रथचक्र को प्रवर्तित किया था। इसी में भगवान् ने चार आर्य सत्यों 'दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुखःनिरोधगामिनी प्रतिपद्' और अष्टाङ्गिक आर्यमार्ग का उपदेश दिया जो बौद्ध धर्म का मूल आधार है।

धम्मपद (पा० कृ०)

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के 'खुद्दक निकाय' का एक खंड है। 'धम्मपद' शब्द का अर्थ है धार्मिक शब्द। इस खंड में ऐसे पद्यों का संकलन किया गया है जो धार्मिक सूक्ति-काव्य की संज्ञा से अभिहित किए जा सकते हैं। ये जीवन के लिए सदाचार का प्रतिपादन करने वाले पद्य हैं और बुद्ध के मुख से निकले हुए माने जाते हैं। कुल पद्यों की संख्या 423 है। दस-दस या बीस-बीस पद्यों के सर्ग बनाए गए हैं। प्रत्येक वर्ग या तो किसी एक विचारधारा को लेकर चलता है या किसी एक उपमा के आधार पर एक वर्ग बना दिया गया है। कभी कोई वर्ग एक पूरी कविता जैसा प्रतीत होने लगता है। 'धम्मपद' में कुछ पद्य ऐसे भी हैं जो 'त्रिपिटक' (दे०) की अन्य कृति में भी पाए जाते हैं। ऐसे पद्यों की संख्या आधे से भी अधिक है। ज्ञात होता है कि संकलनकर्ता ने किसी एक दृष्टिकोण को लेकर विभिन्न रचनाओं में से निकाल कर इनका संकलन कर दिया होगा। बहुत से पद्य ऐसे भी हैं जिनका बौद्ध धर्म से कोई संबंध नहीं है; इनमें जीवन को उत्तम बनाने के लिए सामान्य उपदेश दिए गए हैं जैसे उपदेश 'मनुस्मृति' (दे०), 'महाभारत' (दे०), 'पंचतंत्र' (दे०) इत्यादि ग्रंथों में भी पाए जाते हैं। इन पद्यों में कलात्मक सौंदर्य भी उच्चकोटि का है और अनेकशः अलंकारों का मनोरम प्रयोग किया गया है।

बौद्ध साहित्य में 'धम्मपद' की जो प्रतिष्ठा है वह किसी अन्य कृति की नहीं। अनेक यूरोपीय भाषाओं में भी इसका अत्यंत गौरव के साथ अनुवाद किया गया है और बौद्ध धर्म पर लेख लिखने वाले इनके पद्यों का बहुत अधिक उद्धरण देते हैं। श्रीलंका में नवशिक्षितों को इसका अध्ययन कराया जाता है और 'उपसंपदा' (दे०) ग्रहण करने के पहले इसका पूरा परिशीलन करना पड़ता है। अनेक व्याख्याता इसके किसी पद्य को अपने प्रवचन का आधार बनाते हैं।

धम्म परिक्खा (अप० कृ०) [रचना-काल—983 ई०]

'धम्म परिक्खा' (धर्म-परीक्षा) हरिषेण द्वारा ग्यारह संधियों में रचित कृति है। प्राकृत और संस्कृत में भी 'धर्म-परीक्षा' नामक अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। हरिषेण ने प्राकृत में लिखित जयराम की 'धर्म-परीक्षा' का निर्देश किया है। संभवतः उसी के आधार पर हरिषेण ने प्रस्तुत कृति की रचना की होगी।

हरिभद्र (दे०) सूरि (आठवीं शती) ने 'धूर्ताख्यान' नामक प्राकृत पद्यबद्ध कृति में ब्राह्मण धर्म पर कटु व्यंग्य किया है। हरिषेण की प्रस्तुत कृति का विषय भी वही है। ब्राह्मण धर्म के अनेक पौराणिक आख्यानों और घटनाओं को असंगत तथा असंभव बताते हुए पाठक-हृदय में ब्राह्मण—हिंदू—धर्म के प्रति अनास्था तथा जैन धर्म के प्रति आस्था एवं श्रद्धा जगाने का प्रयत्न किया है। इसी कारण डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये 'धूर्ताख्यान' को 'धर्म-परीक्षा'-संज्ञक कृतियों का आदिरूप मानते हैं।

इस कृति में धार्मिक तत्त्व की प्रधानता होने के कारण कवित्व अधिक नहीं निखर सका है। फिर भी इसका सर्वथा अभाव नहीं है। कवित्व की दृष्टि से पहली और ग्यारहवीं संधि उल्लेखनीय हैं।

कृतिकार ने सरल और सरस भाषा में भावों को अभिव्यक्त किया है। भावों को स्पष्ट करने के लिए यथास्थान अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है।

कृतिकार के स्पष्ट उल्लेख—'साहम्मि धम्म परिक्ख सा पद्धडिय बंधि'—से सूचित होता है कि इस कृति में पद्धडिया छंद की बहुलता है। इसके अतिरिक्त मदनावतार, विलासिनी, स्रग्विणी, पादाकुलक, भुजंगप्रयात, प्रमाणिका, घत्ता, विद्युन्माला, दोधक आदि अनेक मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

धम्मपाल (पा० ले०)

इनका जन्म बुद्धघोष (दे०) के कुछ ही समय बाद दक्षिण समुद्रतट पर पदरतित्थ में हुआ था; किंतु रचनाओं से प्रमाणित होता है कि इनका संबंध अनुराधापुर से अवश्य रहा। इन्होंने बुद्धघोष के अवशिष्ट कार्य को पूरा किया और 'खुद्दकनिकाय' (दे० सुत्तपिटक) के इतिवृत्तक, 'उदान', 'चरिया पिटक' (दे० सुत्तपिटक), 'थेरगाथा' (दे०), 'विमानवत्थु' (दे० सुत्तपिटक), 'पेतवत्थु' (दे०) इत्यादि उन ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं जिन पर बुद्धघोष ने नहीं लिखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। ये नालंदा विश्वविद्यालय में ह्वेनसांग के गुरु धम्मपाल से भिन्न थे।

धर्मकीर्ति *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—700 ई०]

धर्मकीर्ति का जन्म चोल (उत्तर तमिल) प्रांत के तिरुमलै नामक ग्राम में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। इनके पिता का नाम कोरुनंद था। कुछ विद्वानों के अनुसार ये कुमारिलभट्ट (दे०) के भानजे थे। डा० श्चेर्वात्स्की ने इन्हें भारतीय कांट कहा है। धर्मकीर्ति की कृतियों की संख्या नौ है। इनमें सात मूल ग्रंथ और दो टीकाग्रंथ हैं। मूल ग्रंथ—'प्रमाणवार्तिक' (दे०), 'प्रमाणविनिश्चय', 'न्यायबिंदु','हेतुबिंदु', 'संबंधपरीक्षा', 'वादन्याय' तथा 'सत्रांतर सिद्धि' हैं। टीकाग्रंथों में 'प्रमाणवार्तिक' के एक परिच्छेद की वृत्ति तथा 'संबंधपरीक्षा' की वृत्ति है।

धर्मकीर्ति योगाचार विज्ञानवाद के प्रतिपादक बौद्ध आचार्य हैं। धर्मकीर्ति बाह्य विषयों को विज्ञान स्वीकार करते हैं। इनका विचार है कि इंद्रियों से जिन बाह्य विषयों का साक्षात्कार होता है उनकी वास्तविक स्थिति नहीं है। बाह्य विषयों का प्रत्यक्ष भ्रम मात्र है। इसीलिए धर्मकीर्ति का कथन है कि न इंद्रियाँ और न चित्त ही बाह्य विषयों का प्रत्यक्ष करते हैं। इसीलिए अंततः समस्त बाह्य विषयों की असत्यता सिद्ध हो जाती है। समस्त बाह्य विषय चित्त में केवल विज्ञान-रूप में वर्तमान रहते हैं।

सुख तथा दुःख को भी धर्मकीर्ति चित्त की कल्पना ही मानते हैं। ग्राह्य (विषय) एवं ग्राहक (विषयी) के संबंध में इस आचार्य का कथन है कि दोनों ही विज्ञान-रूप हैं। इन दोनों में वस्तुतः अभेद है। इस प्रकार धर्मकीर्ति के अनुसार विषय की सत्ता विषयी से अतिरिक्त वर्तमान नहीं है। धर्मकीर्ति ने बाह्य विषयों के बोध का हेतु चित्त की वासना को बताया है।

योगाचार-बौद्ध-दर्शन के क्षेत्र में धर्मकीर्ति का योगदान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उन्होंने बाह्य विषयों को इंद्रियानुभूति मात्र माना है। वैसे, वह भी असंग आदि के समान विज्ञानवाद के ही समर्थक हैं।

धर्मदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1418 ई०; मृत्यु—1543 ई०]

ये बांधोगढ़ के धनाढ्य कसौधन बनिया थे और संत कबीर (दे०) के प्रधान शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। 'अमर सुखनिधान' ग्रंथ में लिखा है कि ये परमभक्त एवं दया-धर्मयुक्त व्यक्ति थे। इन्होंने कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के रूप में सुरक्षित रखा। ब्रजभाषा में 'धर्मदास की बानी' नामक इनका एक संग्रह प्राप्त होता है। प्रियतम के देश में संत कबीर का आना-जाना होता है, कबीर-रूपी प्रियतम की प्राप्ति के बाद वे आवागमन के बंधन से मुक्त हो गए हैं—यही उनका सिद्धांत है। भावुक संतों की परंपरा में धर्मदास का नाम अग्रगण्य है।

धर्मपद *(उ० कृ०)*

'धर्मपद' गोपबंधु (दे०) के कवि-मानस की अमर संतान है। इसकी मर्मस्पर्शी कथा प्रतिभा के स्पर्श से एक नये आलोक से उद्भासित हो उठी है। इसके जीवनोत्सर्ग में गोपबंधु का जीवनादर्श जीवंत रूप से रूपायित है। इसमें आदर्श के साथ वास्तविक जीवन का सुंदर समन्वय मिलता है। इसकी कथा किंवदंती पर आश्रित है। कोणार्क मंदिर के निर्माण में एक बालक के शिल्पी-कुल के सम्मान की रक्षा के लिए उत्सर्जित हो जाने की कथा किंवदंती के रूप में प्रचलित है। उसी बालक को काल्पनिक नाम धर्मपद देकर, कवि ने उसे काव्य-रूप दिया है। सरल-तरल भाषा में यह मार्मिक कहानी प्राणस्पर्शी हो गई है।

इसकी कथा इस प्रकार है: ज्योतिर्मंदिर, कोणार्क का निर्माण हो रहा है। बारह सौ बढ़ई बारह वर्षों से मंदिर-निर्माण में कार्यरत हैं। शिल्पी-सम्राट् बिशु की मनोज्ञ कल्पना कोणार्क में मूर्तिमंत है। किंतु आज ज्योतिर्मंदिर पर विषाद का साया व्याप्त है, क्योंकि महाराज नरसिंह देव का वज्र आदेश है—

'कल सूर्योदय तक यदि मंदिर पर कलश नहीं चढ़ जाता, तो बारह सौ कारीगरों को फाँसी की सज़ा मिलेगी।'

इसी समय धर्मपद वहाँ पहुँचता है। धरमा (धर्मपद) बिशु महारणा की एकमात्र संतान है, जो कोणार्क-निर्माण के लिए उसके चले जाने के बाद होता है। समय बीतता जाता है। बारह वर्षों के बाद धरमा पितृदर्शन की उत्कट लालसा लिये पहुँचता है। पिता-पुत्र-भेंट के पूर्व ही उसे महाराज का वज्र आदेश ज्ञात होता है। वह साधारण मेधावी बालक शिल्पी-कुल की रक्षा के लिए विकल हो उठता है। पिता-पुत्र परिचय का समय नहीं। बिशु से अनुमति लेकर वह निरीक्षण के लिए मंदिर पर चढ़ जाता है। कुछ समय के बाद सफलतापूर्वक कलश चढ़ाकर उतर आता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। शिल्पी-समाज आश्चर्यचकित रह जाता है। किंतु तभी भय एवं संशय की लहर दौड़ जाती है। बारह वर्ष के बालक के द्वारा कलश की स्थापना शिल्पी-कुल के लिए लज्जा की बात है। इससे महाराज अप्रसन्न ही होंगे। अतः शिल्पी-समाज इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि महाराज से बात गुप्त रखने के लिए धरमा का बलिदान अपरिहार्य है। धरमा की हत्या का भार बिशु लेता है; क्योंकि धरमा की सफलता ही बिशु की सबसे बड़ी असफलता है। उसका अहं फुफकार उठता है। निद्रित धरमा को मारने को उद्यत बिशु के निर्मम हाथ थम जाते हैं। क्योंकि उसके गले में पड़े तावीज से वह पुत्र को पहचान लेता है। तभी यह माँग गूँज उठती है—

'बारह सौ बढ़ई दाय या पुत्र दाय ?' पिता निरुत्तर है। धरमा की उदात्त वाणी तरंगायित हो जाती है—'निश्चित रूप से बारह सौ बढ़ई दाय। अनेक धरमा जन्म लेंगे। कोई भी धरमा पितृहीन नहीं रहेगा।' शिल्पी-कुल के प्रकृतिस्थ होने के पूर्व ही 'छपाक' की ध्वनि सबों को चौंका देती है। दसों दिशाएँ इस आत्मविसर्जन से रोमांचित हैं। बिशु पागल हो जाता है।

महाराज को दूर से आते हुए जब सूर्यमंदिर का स्वर्ण-कलश दिखाई पड़ता है तो उनके हर्षोल्लास की सीमा नहीं रहती। आते ही गले से मोतियों का हार निकालकर बिशु को पहना देते हैं। किंतु विक्षिप्त बिशु के प्रलाप से उन्हें सत्य का ज्ञान होता है। महाराज की खुशी वेदना की गहराई में खो जाती है। धरमा का शव निकाला जाता है। उसे राज-सम्मान प्राप्त होता है।

समाज एवं राष्ट्र के कल्याण के लिए संकुचित स्वार्थ का त्याग, इसका संदेश है। गोपबंधु वस्तुतः थे मानव-सेवक। उच्चभावानुकूल उनकी वाणी साधारण वचन के ऊपर उठकर स्वयमेव हो गई है कविता। शिल्प की दृष्टि से नहीं, उदार मानवीयता ने इनकी रचनाओं को जनता का कंठहार बना दिया है।

धर्म परीक्षे (क० कृ०) [समय—चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

इसके रचयिता वृत्तविलास नामक जैन कवि हैं जिनका समय 1350 ई० माना गया है। इस चंपूकाव्य में दस आश्वास हैं। मनोवेग एवं पवनवेग नामक दो राज्यपुत्र पाटलिपुत्र जाकर वहाँ ब्रह्मदेवालय में स्थित जयभेरी बजाते हैं और वहाँ के सिंहासन पर बैठकर उस नगर के विद्वानों के साथ वाद-विवाद करने लगते हैं। वास्तव में वहाँ की रीति के अनुसार वाद-विवाद में विजयी होने वाला ही सिंहासन पर बैठ सकता था। किंतु ये राजकुमार पहले ही उस पर बैठ जाते हैं। उपस्थित विद्वानों में कोई मूर्ख हो, शठ हो, तो हम वाद नहीं करेंगे—ऐसा कह कर शठ, मूर्ख, मूढ़ आदि के उदाहरण देते जाते हैं। अंत में वे वहाँ के ब्राह्मणों को जीतकर जयपत्र प्राप्त कर लेते हैं। इसके दसों आश्वासों में कहानियों का ही बोलबाला है। वृत्तविलास एक श्रेष्ठ कहानीकार हैं। पैनी शैली भी उसके व्यापृत है। यहाँ पंचतंत्र की कुछ कहानियों को जैन दृष्टि से देखा गया है। यत्र-तत्र आने वाले वर्णनों में सहजता है।

धर्ममंगल (बँ० कृ०)

रचयिता—रूपराम चक्रवर्ती। 'धर्ममंगल-काव्य' के धर्मठाकुर के साथ धर्मराज यम देवता का कोई संबंध नहीं है। धर्मठाकुर अनार्य देवता हैं। समाज की अस्पृश्य निम्न जाति पर इनकी सस्नेह कृपादृष्टि के फलस्वरूप इन्हें नवीन मर्यादा प्राप्त हुई है। अष्ट्रीक भाषा के शब्द 'कुमेर' के प्रतिशब्द 'दड़म' का प्रतिरूप 'धर्म' है।

धर्म के पहले पुजारी रमाइ पंडित की कहानी 'धर्ममंगल काव्य' के सदाडोम एवं हरिश्चंद्र की कथा में वर्णित है। 'धर्ममंगल काव्य' की कहानी में विस्तार एवं वैचित्र्य समरूप से विद्यमान है। 'धर्ममंगल-काव्य' की कहानी में ऐतिहासिक उपादान सत्याश्रित है—ऐसा पंडितों का अनुमान है। काव्य में वर्णित गौड़ प्रदेश के राजा को धर्मपाल का पुत्र कहा गया है। बहुत से विद्वान् इस राजा को देवपाल समझते हैं। इछाइ घोष अर्थात् ईश्वर घोष भी ऐतिहासिक पात्र हैं। परंतु ये देवपाल देव के दो सौ वर्ष बाद विग्रहपालदेव के समसामयिक थे। मयनागढ़ को केंद्रबिंदु बनाकर इस कहानी का विस्तार हुआ है। 'धर्ममंगल' काव्य-समूह का स्वर मध्ययुगीन मंगलकाव्य से भिन्न है। वीर-रसाश्रित इस काव्य में महाकाव्य के लक्षण सहज ही उपलब्ध हैं।

'धर्ममंगल काव्य' के श्रेष्ठतम कवि निस्संदेह घनराम चक्रवर्ती (दे०) हैं। कवि ने अपने को श्रीरामचंद्र का उपासक कहा है। 1711 ई० में इस ग्रंथ की समाप्ति का उल्लेख मिलता है। 'धर्ममंगल' के आदिकवि कदाचित् मयूर-भट्ट हैं। सन्-तारीख-युक्त पहला 'धर्ममंगल-काव्य' रूपराम चक्रवर्ती का प्रस्तुत काव्य है। उनके काव्य में कवि की विदग्धता ने यद्यपि कवित्व के पथ में बाधा उपस्थित की है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी बीच-बीच में सरसता का स्निग्ध स्पर्श अनुभव किया जा सकता है। घनराम चक्रवर्ती की विदग्धता ने काव्य में सहायक बनकर काव्य को श्रेष्ठता की मर्यादा प्रदान की है। 'धर्ममंगल'-काव्यकारों में सहदेव चक्रवर्ती (1734 ई०) एवं माणिक गांगुली (दे०) (1781 ई०) ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इनके अतिरिक्त बहुत-से कवियों ने 'धर्ममंगल-काव्य' की रचना की थी जिसमें श्याम पंडित, सीताराम दास, रामदास आदक, आदि उल्लेखनीय हैं।

धर्मयुग *(हिं० कृ०—पत्र)*

हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय सचित्र साप्ताहिक 'धर्मयुग' टाइम्स आफ़ इंडिया प्रेस, बंबई से 1950 ई० से निकलना आरंभ हुआ। इसके प्रथम संपादकद्वय हेमचंद्र जोशी और इलाचंद्र जोशी (दे०) थे। बाद में सत्यकाम विद्यालंकार ने संपादन किया। अँग्रेज़ी के साप्ताहिक पत्र 'इलस्ट्रेटिड वीकली' के नमूने पर आरंभ में इसका मुख्य आकर्षण चित्रमय समाचार थे, परंतु धीरे-धीरे उसमें मनोरंजक और ज्ञानवर्धक सामग्री के साथ-साथ साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों पर भी लेख निकलने लगे। नयी कविता (दे०), नयी कहानी, इंटरव्यू-साहित्य, रिपोर्ताज आदि के प्रकाशन के अतिरिक्त साहित्य के विवादास्पद प्रश्नों पर विविध दृष्टिकोणों से प्रकाश डालना इसकी अपनी विशेषता है। पाक-बांगला देश युद्ध के समय इसके संपादक डा० धर्मवीर भारती (दे०) ने युद्ध-क्षेत्र में जाकर स्वानुभव के आधार पर जो रिपोर्ताज लिखे वे न केवल अपनी सद्यता के कारण अपितु लेखक की सूक्ष्म दृष्टि, मार्मिक सहृदयता एवं साहित्यिक शैली के लिए स्मरणीय रहेंगे। इस प्रकार यह पत्र पाठकों के मनोरंजन के साथ-साथ उनकी रुचि का परिष्करण करने की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, साहित्य के क्षेत्र में नये विचारों और नयी दृष्टि को प्रश्रय देकर साहित्यिक चिंतन को नयी दिशा दे रहा है। एक प्रकार से यह हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों का दर्पण बन गया है।

'धर्मराजा' *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1923 ई०]

उपन्यासकार सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) की प्रस्तुत कृति के कथा-नायक त्रावनकोर के राजा मार्तंड-वर्मा के उत्तराधिकारी हैं। पर उनके दीवान केशव पिळ्ळा के वीर-चरित के आधार पर इसका निर्माण हुआ है। राजा के प्रति उपन्यासकार की भक्ति साफ़ प्रकट होती है। 'धर्म-राजा' में चित्रित हरिपंचानन योगीश्वरन् अपने कुछ मित्रों की सहायता से राजवंश की जड़ उखाड़ने का प्रयत्न करता है। दीवान केशव पिळ्ळा की अटूट राजभक्ति, कौशल तथा कुशाग्रबुद्धि के सामने योगीश्वरन् विफल-मनोरथ हो जाता है। राजा के प्रबल शत्रु हैदरअली और टीपू सुलतान भी अंत में पराजित होते हैं। यही इस उपन्यास की कथावस्तु है।

धर्मसाररामायणमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती का द्वितीय चरण]

इसके लेखक का नाम जनमंचि शेषाद्रि शर्मा है। ये बड़े विद्वान् तथा अच्छे कवि हैं। इनके अनेक ग्रंथों के अंतर्गत 'रामायणमु', 'महाभारतमु' तथा 'भागवतमु' भी हैं। तेलुगु में अनेक रामायण-ग्रंथ लिखे गए हैं किंतु उनमें कई अधिक प्रचलित नहीं हैं। 'धर्मसाररामायणमु' भी उनमें से एक है।

धर्मामृत *(क० कृ०)* [समय—लगभग 1100 ई०]

इसके रचयिता नयसेन (दे०) नामक जैन कवि हैं जिनका समय 1100 ई० के करीब ठहराया गया है। यह एक चंपू-काव्य है जिसमें जैन-मताचारों में 14 महारत्नों के नाम से प्रसिद्ध गुणव्रतों में एक-एक का आचरण कर सद्-गति पाने वाले चौदह महापुरुषों की कहानियाँ हैं। विषय एवं विन्यास दोनों में यह चंपू-काव्य लोकमुखी बना है। अब तक जैनपुराण केवल तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों पर लिखे जाते थे, परंतु इन्हें सरल वैदिक पुराणों का अनुकरण आवश्यक प्रतीत हुआ। अतः हम कह सकते हैं कि यह जनता के लिए लिखा प्रथम जैन पुराण है। सन्निवेश-निर्माण, चरित्रचित्रण-शैली आदि में लोकजीवन के गाढ़ स्पर्श का अनुभव मिलता है। लोककथाकार का कथन-कौशल, विडंबक हास्य, लोकजीवन-प्रज्ञा आदि इस ग्रंथ की बड़ी विशेषताएँ हैं। नयसेन की भाषा टकसाली है। उसमें कहावतों और मुहावरों का सहज प्रयोग है।

धर्मारावु *(ते० पा०)*

यह विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'वेयिपडगलु' (दे०) (सहस्रफन) का नायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सनातन धर्म एवं भारतीय संस्कृति का प्रतीक है तथा आधुनिकता के प्रबल झंझावात में भी अचंचल रहता है। अपने अचल आत्मविश्वास के कारण यह सनातन धर्म की व्याख्या कर, सनातन धर्म के नौ सौ निन्यानबे फनों के गिर जाने पर भी दांपत्य-संबंध नामक एक फन पर धर्म को सुस्थिर रूप देने का सफल प्रयास करता है।

धर्मारावु, तापी (*ते० ले०*) [जन्म—1887 ई०]

इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। अपने निर्विराम साहित्य-सर्जन से ये कवि, पंडित, समालोचक, नाटककार, प्रगतिवादी लेखक संघ के संस्थापक, पत्रकार, अनुसंधानकर्ता एवं हेतुवादी के रूप में विख्यात हुए हैं। ये 'आंध्र-विशारद' एवं 'आंध्र साहित्य जगत् के भीष्म पितामह' आदि उपाधियों से सम्मानित हैं। इन्होंने जनवाणी 'कागडा' आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया था। इन्होंने अनेक जासूसी उपन्यासों की रचना भी की है। साहित्य में परिवर्तन, विद्रोह एवं यथार्थवादी दृष्टि इनके प्रमुख गुण हैं। 'रागि डब्बु', 'भिक्षापात्र', 'आंध्र तेजमु' आदि इनके काव्य-ग्रंथ हैं और 'उषःकालमु', 'क्रोव्वुराल्लु' आदि इनके उपन्यास हैं। 'देवालयमुलपै बुतु बोम्मलेंदुकु ?' और 'पेल्लिदानि पुट्टु पूर्वोत्तरालु' इनके महत्वपूर्ण अनुसंधान-ग्रंथ हैं जिनमें क्रमशः मंदिरों के ऊपर पाए जाने वाले अश्लील चित्रों के कारणों एवं आदिकाल से विवाह की प्रथा के विकास-सूत्रों का अनुशीलन किया गया है।

धळ, गोळख बिहारी (*उ० ले०*) [जन्म—1921 ई०]

गंजेइडीह (ढेंकानाल) इनका जन्म-स्थान है। प्रारंभ से ही ये मेधावी छात्र रहे हैं। इनकी शिक्षा ढेंकानाल, कटक, पटना और लंदन में हुई है। प्रौढ़ साहित्य-प्रतियोगिता में 1956, '57, '58 ई० में तीन बार इन्हें भारत सरकार ने पुरस्कृत किया है। संप्रति ये रेवेन्सा कालेज, कटक के भाषा-विभागाध्यक्ष हैं। 'माटिर ताज' और 'अमर जीवन' इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

गोळख बिहारी धळ सुविख्यात भाषाविद्, गद्यकार तथा सुदक्ष अनुवादक हैं। संस्कृत, हिंदी, बँगला, तेलुगु, तमिल, फ्रेंच, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं का इन्हें विशद ज्ञान है। हिंदी में ध्वनिविज्ञान के ये सर्वप्रथम लेखक हैं। प्रेमचंद (दे०) के उपन्यास 'गोदान' (दे०) का इन्होंने उड़िया में अनुवाद किया है। इनकी अन्य रचनाएँ भी—जैसे 'भ्रमण कहानी', 'अमेरिकी अनुभूति' (दे०)—अत्यंत लोकप्रिय हैं।

धळ, रमेशचंद्र (*उ० ले०*) [जन्म—1938 ई०]

एडवोकेट रमेशचंद धळ का जन्म गंजेइडीह—ढेंकानाल में हुआ था। ये कथाशिल्पी एवं कवि हैं। इनकी कहानियों में समसामयिक जीवन के प्रति एक नूतन दृष्टिकोण मिलता है और आधुनिक वैज्ञानिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण से जीवन, जगत् एवं परिवेश का चित्रण हुआ है। कविताएँ स्निग्ध-मधुर हैं। प्रेम के चित्र रेशमी तारों से निर्मित हैं, किंतु उसमें अस्वस्थता नहीं है। दलित जनता के प्रति कवि की तरल सहानुभूति काव्य में तरंगायित हो उठी है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'छिन्नपत्र' (उपन्यास), 'चंपक बनर ऐलिजि' (दे०), 'मुठाए' (कहानी), 'नालिचूड़ि', 'प्रतीख्यारे', 'आग्नेय शपथ' (क०), 'युगमानव' (जीवनी) आदि।

धवले (*म० कृ०*) [रचना-काल—1284 ई०]

इस काव्य की कवयित्री महदंबा महानुभाव पंथ में दीक्षित मराठी की आद्य कवयित्री हैं। 'धवले' का अर्थ है—वर से संबद्ध गीत। श्री गोविंद प्रभु ने रुक्मिणी-विवाह का समारोह ऋद्धपुर में संपन्न किया था। महदंबा ने इस अवसर पर 140 लघु गीत गाकर सुनाए। इसके उपरांत भी इन्होंने कतिपय गीतों की रचना की। इनके 'धवले' गीतों की कुल संख्या 238 है। इनमें विवाह-प्रसंग का रोचक शैली में वर्णन है। रुक्मिणी का चरित्र-चित्रण मुग्धकारी है। प्रस्तुत काव्य स्त्रीसुलभ गुणों से परिपूर्ण है। महदंबा आशु कवयित्री थीं अतः प्रेरणा से गीत स्वयं प्रस्फुटित हुए हैं, अतः उनमें बनावट या कृत्रिमता नहीं है और श्रमसाध्य रचना-शिल्प का सर्वथा अभाव है। इस काव्य ने महदंबा को मराठी की आद्य कवयित्री होने का श्रेय प्रदान किया है।

धाँधा (*बँ० प्र०*)

बँगला लोक-साहित्य के अंतर्गत 'धाँधा' या पहेली या मुकरी जैसी कविताओं का एक अच्छा संग्रह उपलब्ध है। 'धाँधा' जैसी कविताओं के माध्यम से लोकमानस के परिणत शिल्पमान तथा रसबोध का परिचय मिलता है। 'धाँधा' केवल बुद्धि के अनुशीलन या ज्ञान-चर्चा के लिए ही नहीं रचा जाता—इसके द्वारा हास्य रस की सृष्टि भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाती है।

प्राचीन या मध्ययुग का बँगला साहित्य 'धाँधा' से परिपूर्ण है। बँगला धाँधा का प्राचीनतम निदर्शन 'चर्या-पद' (दे० चर्यापद) के गीतों में दिखाई पड़ता है जो अधिकतर तत्त्वविषयक हैं। तत्त्वविषयक 'धाँधा' का उल्लेख सत्रहवीं-अठारहवीं शती में रचित बँगला नाथ-साहित्य में भी दिखाई पड़ता है। मध्ययुगीन मंगलकाव्य में साहित्यिक 'धाँधा' के बहुत ही सुंदर उदाहरण मिलते हैं। विवाहाचार के अंतर्गत वर से 'धाँधा' पूछने की प्रथा बंगाल में बहुत दिनों से थी। प्राचीन एवं मध्ययुगीन साहित्य में व्यवहृत धाँधाओं के लोक-समाज में प्रचार के फलस्वरूप क्रमशः धाँधाओं ने जनश्रुतिमूलक साहित्य का रूप धारण कर लिया।

धातु *(सं० हिं० पारि०)*

व्याकरण में 'धातु' उस मूल भाषिक इकाई को कहते हैं जो उससे बने सभी रूपों में मिलती है। उदाहरण के लिए लिखना, लिखा, लिखो, लिखेगा, लिखे, लिखिए, लिखें आदि सभी में √ लिख् अंश समान रूप से आया है, अतः यह 'धातु' है। धातुएँ कभी-कभी दो धातुओं के योग से (ले+आ=ला) भी बन जाती हैं, और कभी-कभी संज्ञा (शर्म-शर्मा), सर्वनाम (अपना-अपना) आदि अन्य शब्दों के योग से भी। धातुओं में विभिन्न प्रकार के उपसर्ग (अचल) या प्रत्यय (चला) जोड़कर विभिन्न प्रकार के शब्दों और पदों की रचना होती है। अरबी, संस्कृत आदि कई भाषाओं के अधिकांश शब्द कुछ मूल धातुओं से बने माने गए हैं।

धारवाडकर, रा० ए० *(क० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

राजेंद्र एलगुद्दराव धारवाडकर का जन्म उत्तर कर्णाटक के धारवाड में 1919 ई० में हुआ था। आप एक सफल आलोचक, भाषाविज्ञानी तथा प्राध्यापक हैं। भाषाशास्त्र के क्षेत्र में 'कन्नड भाषाशास्त्र' आपकी एक उत्कृष्ट देन है किंतु इसमें भाषाविज्ञान नवीन मार्ग पर नहीं है। 'साहित्य-समीक्षे' में आपके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबंध संगृहीत हैं। वैचारिकता एवं प्रभविष्णुता इनकी विशेषता है।

धाहिल *(अप० ले०)*

धाहिल कवि का लिखा हुआ एकमात्र चरित-काव्य 'पउम सिरि चरिउ' (दे०) (पद्मश्रीचरित) उपलब्ध हुआ है। कवि ने अनेक स्थलों पर अपने आपको 'दिव्यदृष्टि' कहा है, जो या तो कवि का विशेषण हो सकता है या उपनाम। कवि शिशुपालवधकर्त्ता माघ (दे०) के वंश में उत्पन्न हुआ था। धाहिल अपने जन्म-काल और जन्म-स्थान के विषय में मौन हैं। 'परम सिरी चरिउ' की 1134 ई० में लिखी हस्तलिखित प्रति के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि कवि इस काल से पूर्व उत्पन्न हुआ था। शिशुपालवधकर्त्ता माघ श्रीमाल वंश के वैश्य थे अतः धाहिल भी वैश्य था।

धीरूबेन पटेल *(गु० ले०)* [समय—1926 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल के गुजराती साहित्य में अनेक महिलाओं ने योग दिया है जिनमें धीरूबेन मुख्य हैं। धीरूबेन ने उपन्यास, कहानियाँ और नाटक लिखे हैं। बंबई से महिलाओं का 'सुधा' नाम का एक साप्ताहिक प्रकाशित होता है जिसकी वे संपादिका हैं। उन्होंने 'बड़वानल' (दे०) और 'वासनोअंकुर' (दे०) नाम के उपन्यास लिखे हैं। 'बड़वानल' में डायरी-शैली का प्रयोग किया गया है। 'वासनोअंकुर' मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। उनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'एक लहर', 'अधूरो काल' और 'विश्रंभ-कथा'। 'पहेलु इनाम', 'मननरे मप्नेलो', 'विनाशने पथे' उनके नाटक हैं और 'नमंणी नागखेल' उनका एकांकी-संग्रह है। 'अंडेरी गंडेरी टिपरीटेन' (दे०) उनका नृत्य-गीतमय बाल-नाटक है।

धीरो *(गु० ले०)* [जन्म—1753 ई०; मृत्यु—1825 ई०]

बड़ौदा के निकट गोठडा नामक गाँव के निवासी कवि 'धीरा' बारोट (ब्रह्म भट्ट) जाति के थे। अपने गाँव के ही शास्त्रीजी भाई से इन्होंने काव्यशास्त्र का ज्ञान पाया था। ज्ञान व वैराग्य के इस कवि का सांख्य, वेदांत और योगशास्त्र का ज्ञान केवल श्रवणलब्ध था, अध्ययन-प्रसूत नहीं। जीवन की यथार्थ कठोरता व पत्नी के कलह ने इन्हें वैराग्यमूलक काव्य-रचना की प्रेरणा दी।

'रणयज्ञ', 'अश्वमेध', 'द्रौपदीवस्त्रहरण' इनकी पौराणिक काव्य-कृतियाँ हैं, जबकि 'स्वरूप', 'ज्ञान कवकों', 'प्रश्नोत्तर मालिका', 'आत्मज्ञान', 'ज्ञान बत्रीशी' आदि रचनाएँ आध्यात्मिक हैं। इनकी कुछ फुटकर रचनाओं में हिंदी का प्रयोग मिलता है। 'काफी' (एक गेयवृत्त) का सर्वाधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुंदर प्रयोग इन्होंने किया है। धीरा अपनी 'काफियों' के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध रहे।

मध्ययुगीन गुजराती के ज्ञानी कवियों में धीरा अखा (दे०) और प्रीतम (दे०) के समान ही महत्वपूर्ण कवि हैं।

धुक्यांतून लाल ताऱ्याकडे *(म० कृ०)*

मराठी-साहित्य के निबंध-लेखक, कहानीकार एवं नाटककार श्री अनंत काणेकर लिखित यात्रा-वर्णन 'धुक्यांतून लाल ताऱ्याकडे' ग्रंथ ने मराठी यात्रा-साहित्य को आधुनिक अभिरुचि की दिशा में अग्रसर किया है। यह ग्रंथ 1943 ई० में लिखा गया था।

इसमें यूरोप तथा एशिया के प्रवास का रोचक वर्णन है। प्रवास-वर्णन तिथि-सहित विस्तारपूर्वक किया गया है। यात्रा-वर्णन करते हुए विशिष्ट स्थलों पर मिले व्यक्तियों के स्वभावचित्र का रेखांकन भी किया गया है। विभिन्न वस्तुओं तथा व्यक्तियों का सरस वर्णन कर उनके प्रति अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति कुशलता से की गई है। इसकी शैली पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप है।

लेखक का झुकाव साम्यवाद की ओर है। यत्र-तत्र इन्होंने पूंजीवादी समाज-व्यवस्था की तुलना रूसी समाज-व्यवस्था से व्यंग्यपूर्ण शैली में की है।

धूमकेतु (गु० ले०) [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

'धूमकेतु' के उपनाम से प्रसिद्ध कथाकार गौरीशंकर जोशी का जन्म सौराष्ट्र में हुआ था। बहाउद्दीन कालेज, जूनागढ़ में अध्ययन कर इन्होंने बंबई विश्वविद्यालय की बी० ए० की उपाधि प्राप्त की और अहमदाबाद में शिक्षण-कार्य करने लगे। जीवन के उत्तरार्द्ध में लेखन को ही आजीविका का माध्यम बनाया और सुख-शांति से समय बिताया।

धूमकेतु के पूर्व रमणभाई नीलकंठ (दे०), मलयानिल, कन्हैयालाल मुंशी (दे०) आदि कथाकार कथा-रचना में प्रवृत्त थे। धूमकेतु 1926 ई० में 'तणखा मंडल' (दे०) का प्रकाशन कर धूमकेतु की भाँति साहित्याकाश में चमके। वस्तुविधान और रचना-विधान की मौलिकता एवं कलात्मकता और तीव्रतम भावावेग के कारण पाठक इनकी कहानियों से अभिभूत हो जाते हैं। सर्वप्रथम इन्होंने अपनी कहानियों में दीन-हीन लोगों के जीवन-प्रसंगों को रूपायित किया। 'भैया दादा' (दे०), 'पोस्ट ओफिस', 'जुम्मा भिश्ती' प्रभृति सुप्रसिद्ध कहानियों में समाज के पद-दलित-प्रपीड़ित निम्नवर्ग के पात्रों को नायकत्व प्रदान किया गया है। 'गोविंदनुं खेतर' जैसी कहानियाँ ग्राम-जीवन को प्रस्तुत करती हैं। धूमकेतु ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं जिनमें विषय की विविधता और पात्रों की विभिन्नता पाई जाती है। इनकी कहानियों में जीवन का यथार्थबोध तो है ही, इसके अतिरिक्त इनमें भावुकता और तीव्र संवेदना का अनुभव होता है। कहानी का करुण अंत पाठक को एक झटके के साथ झकझोर देता है और घनीभूत पीड़ा मस्तक पर बड़ी देर तक छाई रहती है। धूमकेतु की भाषा-शैली प्रभावोत्पादक और सरस है।

धूमकेतु उपन्यासकार भी हैं। 'चौलादेवी' (दे०), 'राजसंन्यासी', 'कर्णावती', 'जयसिंह सिद्धराज' आदि इनके कई उपन्यास हैं। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रतिभा-संपन्न पात्र-सृष्टि, अभिजात वर्ग से संबद्ध विषय-वस्तु और भावना-युक्त जीवन-दृष्टि का उद्घाटन होता है। इनमें 'चौलादेवी' सर्वाधिक सफल और लोकप्रिय कृति है। धूमकेतु को कहानियों की अपेक्षा उपन्यासों में कम सफलता मिली है किंतु कहानीकार के रूप में संपूर्ण भारतीय साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।

धूर्जटि *(तें० ले०)*

ये अपनी युवावस्था में विजयनगर राज्य के शासक श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) (शासन-काल 1590-1630 ई०) के दरबार के सम्मानित कवि थे। आरंभ में शृंगार रस के प्रति आकृष्ट होने पर भी क्रमशः इनका जीवन राजाश्रय-विमुख तथा शिवभक्ति से परिपूर्ण होता गया। इनकी रचनाएँ हैं—'श्रीकालहस्तीश्वरशतकमु' तथा 'श्री कालहस्तीश्वरमहात्म्यमु' (दे०)। एक मकड़ी, एक साँप तथा एक हाथी को, जो अपनी-अपनी अनन्य शिवभक्ति के कारण आपस में कट्टर दुश्मन बन गए थे, भगवान शिव मुक्ति प्रदान करते हैं। इसी से उनका नाम 'श्रीकालहस्तीश्वर' तथा इस स्थान का नाम 'श्रीकालहस्ति' के रूप में विख्यात हुआ। पहली रचना में कवि ने श्रीकालहस्तीश्वर को संबोधित करते हुए अपने विशिष्ट जीवनानुभव की मुक्तक छंदों में मार्मिक अभिव्यक्ति की है। दूसरी रचना में वसिष्ठ, ब्रह्मन, मकड़ी, साँप, हाथी, तिन्नडु नामक आटविक, ब्राह्मण पुजारी, नत्कीर नामक कवि, दो वेश्या-पुत्रियाँ तथा यादव-राजा—इन दस भक्तों की कहानियों को शिवभक्ति रूपी सूत्र में गूँथकर एक सरस काव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। संस्कार-रहित तिन्नडु की उत्कट तथा स्वच्छ शिवभक्ति का इसमें बड़ा ही सहज और सरस वर्णन है। श्रीकृष्ण-देवरायलु ने एक बार धूर्जटि की कविता की प्रशंसा करते हुए कवि-पंडितों की सभा में पूछा था—'स्तुतमति आंध्र-कवि धूर्जटि की उक्तियों में यह अनन्य मधुरिमा की महत्ता कैसे आई ?' श्रीकृष्णदेवरायलु के दरबार में 'अ्रष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आ्राठ कवियों में धूर्जटि भी हैं।

धृतराष्ट्र *(सं० पा०)*

ये कुरुवंश के राजा विचित्रवीर्य के पुत्र थे। इनकी माता का नाम अंबिका था। भीष्म (दे०) से इन्होंने विद्याभ्यास किया था। इनकी पत्नी गांधारी (दे०) गांधार देश के राजा सुबल की कन्या थी। इनकी अन्य भी कई पत्नियाँ थीं। गांधारी ने दुर्योधन (दे०), दुःशासन (दे०), जरासंध आदि सौ पुत्रों तथा दुःशला नामक कन्या को जन्म दिया। सौ पुत्रों की उत्पत्ति का कारण गांधारी को दिया गया रुद्र का वरदान था। धृतराष्ट्र को सदा यह चिंता रहती थी कि उनके मरने के बाद हस्तिनापुर का राज्य बड़े भाई पांडु के पुत्र युधिष्ठिर (दे०) को न मिलकर दुर्योधन को ही मिले। अतः इन्होंने षड्यंत्र रचकर पांडवों को लाक्षागृह में रखवाकर आग लगवा दी। पांडवों को आ्राधा राज्य मिल जाने पर दुर्योधन ने द्यूत-क्रीड़ा का षड्-यंत्र किया तो धृतराष्ट्र ने किसी प्रकार की असहमति नहीं दी। पांडवों के तेरह वर्ष के वनवास के बाद भी इन्होंने युधिष्ठिर को यही उपदेश दिया कि दुर्योधन द्वारा राज्य न मिलने पर भिक्षा माँग कर निर्वाह करते रहो। 'महा-भारत' के युद्ध का वृत्तांत ये संजय से सुनते रहते थे। तथा पांडवों के शौर्य की गाथाओं से जान गये थे कि कुरुकुल का विनाश होने वाला है। इन्होंने दुर्योधन को उप-देश भी दिया कि पांडवों को उचित अंश दे दो, पर दुर्यो-धन पर इस बात का कोई प्रभाव न पड़ा। कौरवों की मृत्यु के बाद पांडवों के प्रति ये अति क्रुद्ध थे। युधिष्ठिर ने फिर भी इसके साथ सदा सद्व्यवहार किया, किंतु भीम (दे०) के वाक्-प्रहारों के कारण इन्होंने गांधारी आदि के साथ वन-गमन किया। वन में घोर तप करते-करते दावाग्नि में घिर कर इनकी मृत्यु हो गई।

ध्रुव *(सं० पा०)*

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। सुरुचि उसकी प्रिय रानी थी, किंतु सुनीति को पति का प्रेम नहीं मिला था। ध्रुव सुनीति का पुत्र था, अतः उसे भी घर में अपमान सहन करना पड़ता था। एक बार विमाता के अपमान से इसने ईश्वर की आराधना का निश्चय किया और विष्णु की भक्ति द्वारा इसे अनेक वर मिले और यह वापस घर आ गया। राजा ने इसका राज्याभिषेक किया। इसके सौतेले भाई उत्तम का वध एक यक्ष ने कर दिया तो इसने यक्षनगरी अलका पर आक्रमण करके ऋषियों के वर से यक्षों को परास्त कर दिया। इसी अ्रवसर पर कुबेर से इसने यह वर माँगा कि मैं श्रीहरि का अखंड स्मरण करता रहूं। अ्रंततः अपने पुत्र वत्सर को राज्यगद्दी देकर यह विमान में बैठ स्वर्ग चला गया।

ध्रुव, केशवलाल हर्षदराय *(गु० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

केशवलाल हर्षदराय ध्रुव हरिलाल ध्रुव के छोटे भाई थे और 'बनमाली' उपनाम से कविताएँ लिखा करते थे। सरकारी हाई स्कूल के आचार्य-पद से निवृत्त होने के बाद इन्होंने गुजरात कॉलेज में गुजराती के प्राध्यापक का पद सुशोभित किया। केशवलाल भाई गुजराती काव्य के समर्थ शोधकर्ता-संपादक, प्रथम कोटि के भाषाविद्, संस्कृत साहित्य के प्रखर अनुवादक तथा उत्तम कोटि के पिंगलशास्त्री के रूप में लगभग अर्द्धशती तक गुजराती भाषा की सेवा करते रहे। इनके शोध और संपादन की क्षमता का पता 'भालण (दे०) की कादंबरी', 'पंदरमा शतकनां प्राचीन काव्य', 'रत्नदासकृत हरिश्चंद्राख्यान' और 'अ्रखा (दे०) के अ्रनुभवबिंदु' से चलता है। इनके द्वारा संपादित प्रत्येक कृति पाठशोध, समीक्षण और मूल्यांकन तथा टीकाओं आदि से समृद्ध हुई मिलती है। 'मुग्धावबोध औक्तिक', 'पद्यरचनानी ऐतिहासिक आलोचना' क्रमशः भाषाशास्त्र-संबंधी निबंधों का संग्रह तथा वेद-काल से आधुनिक काल तक छंदों के विकास की शास्त्रीय आलो-चना से संपन्न ग्रंथ हैं। जयदेव के 'गीतगोविंद' के अनुवाद के अतिरिक्त विशाखदत्त, कालिदास, भास अ्रौर श्रीहर्ष के ग्रंथों के क्रमशः 'मेलनी मुद्रिका', 'पराक्रमनी प्रसादी', 'साचु-स्वप्न', 'मध्यम', प्रतिभा' और 'विंध्यकन्या' नामक अनुवाद किए। इनके अनुवादों में मौलिक कृति का-सा आनंद मिलता है। इस प्रकार केशवलाल विद्वान्, शोधकर्ता, संपादक व अनुवादक के रूप में गुजराती साहित्य में चिरस्मरणीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवदास *(हिं० ले०)* [समय —सोलहवीं शती]

सहारनपुर ज़िले के देवबंद कस्बे के कायस्थ परिवार में इनका जन्म हुआ था। वंश-परंपरा से ये राधा-वल्लभीय (दे० राधावल्लभ संप्रदाय) थे और जीवनपर्यंत वृंदावन में ही रहे। ध्रुवदास विनीत और साधुसेवी पुरुष थे। इनके काव्य में जहाँ एक ओर संप्रदायगत सिद्धांतों की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है, वहाँ दूसरी ओर भक्ति में सराबोर उक्तियाँ सरसता का पर्याय बन गई हैं। ध्रुवदास-कृत बयालीस ग्रंथ 'ब्यालीस लीला' नाम से तीन बार प्रकाशित हो चुके हैं। किंतु इनमें ग्रंथ जैसी व्यापकता का सर्वथा अभाव है, कोई-कोई ग्रंथ तो आठ-दस पदों तक ही सीमित है।

ध्रुवदास ने सर्वप्रथम राधावल्लभ संप्रदाय का सैद्धांतिक निरूपण करने में 'सिद्धांतविचार' ग्रंथ में गद्य का प्रयोग किया है और प्रेम के सापेक्षिक महत्त्व पर बहुत गंभीरता से विचार किया है। ये 'हितहरिवंश' (दे०) के भाष्यकार और व्याख्याकार होने के साथ-साथ माधुर्य भक्ति के समर्थ साधक थे। माधुर्य भक्ति की जो तल्लीनता और रसव्यंजक पदावली की जो रोचकता इनके पदों में पाई जाती है, वह मध्ययुगीन भक्तों में बहुत कम पाई जाती है। 'हितशृंगार लीला', 'रसमुक्तावली', 'सभामंडल', 'शृंगार-रस' आदि अलंकार-प्रधान रचनाओं का काव्य-सौष्ठव देव, (दे०), मतिराम, पद्माकर (दे०) आदि की टक्कर का है। काव्यरूढ़ियों का शास्त्रीय ज्ञान होने के कारण नायिका-भेद, नख-शिख, बारहमासा, ऋतुवर्णन आदि का सर्वांगीण विवेचन इनके काव्य में एक भक्त कवि के लिए उसकी उत्कृष्ट कला का पूर्ण निदर्शन ही माना जाएगा।

ध्रुवस्वामिनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1933 ई०]

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) की अंतिम तथा अत्यंत महत्वपूर्ण नाट्यकृति है। तीन अंकों में विभक्त इस नाटक का कथानक गुप्त काल से लिया गया है। समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद रामगुप्त छलकपटपूर्वक गुप्त-साम्राज्य पर अधिकार एवं चंद्रगुप्त द्वितीय की वाग्दत्ता ध्रुवस्वामिनी (दे०) से विवाह तो कर लेता है किंतु वह न तो चंद्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी के मध्य चलने वाले गुप्त प्रणय-व्यापार को रोक पाता है और न अपने शत्रुओं के हृदय में किसी प्रकार का आतंक पैदा कर पाता है। उसकी शक्तिहीनता व्यक्त होने के कारण शकराज गुप्त-राज्य पर आक्रमण करता है और संधि की शर्त में महादेवी ध्रुवस्वामिनी की मांग करता है। ध्रुवस्वामिनी द्वारा विक्रय की वस्तु होने से इनकार किए जाने पर भी रामगुप्त उसे शकराज के शिविर में भेज देता है। चंद्रगुप्त वंश-मर्यादा की रक्षा के लिए इसका विरोध करता है और अपने बुद्धि-चातुर्य के फलस्वरूप शकराज का अंत करके ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लेता है। इस प्रकार इस नाटक में ऐतिहासिक कथानक का प्रश्रय लेते हुए भी नारी की सामाजिक स्थिति तथा अनमेल विवाह की समस्या को उठाकर पाठक को समाज में नारी के स्थान-निर्धारण के प्रश्न पर सोचने के लिए विवश किया गया है। सरल भाषा, संक्षिप्त वाक्य-रचना, स्वगत-भाषणों के अभाव तथा प्रत्येक अंक में केवल एक ही दृश्य के नियोजन के फलस्वरूप यह नाट्य-रचना अभिनेयता की दृष्टि से एक सफल कृति वन पड़ी है।

ध्रुवस्वामिनी *(हिं० पा०)*

जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' (दे०) की प्रधान पात्र ध्रुवस्वामिनी नये युग की जागृत नारी के प्रतीक-रूप में चित्रित की गई है। इसके चरित्र में जहाँ एक ओर स्त्री-सुलभ कोमलता तथा सहिष्णुता के गुण विद्यमान हैं वहाँ दूसरी ओर आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अपूर्व साहस तथा निर्भीकता भी है। अपने कायर, स्वार्थी तथा शंकालु पति रामगुप्त का यह निर्णय सुनकर कि उसने उसे शक-शिविर में उपहारस्वरूप भेजने का निर्णय कर लिया है यह पहले तो करुणा की प्राथिनी बनकर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अनुनय-विनय करती है किंतु अपनी प्रार्थना के ठुकरा दिए जाने पर उसका स्त्रीत्व जाग उठता है और यह विद्रोहिणी बनकर अपने आत्मसम्मान की रक्षा स्वयं करने का संकल्प कर लेती है। प्रारंभ में वह आत्महत्या जैसा गौरवहीन उपाय ही सोचती है किंतु सहसा चंद्रगुप्त के आ जाने पर इसके हृदय में जो मधुर भाव जाग उठते हैं, वे जीवन के प्रति मोह पैदा कर देते हैं और यह एक वीर क्षत्राणी के समान विषम से विषम परिस्थितियों का सामना करने के लिए सन्नद्ध हो उठती है। तदनंतर यह अपने कौशल द्वारा न केवल शकराज की हत्या करने में चंद्रगुप्त को सहायता पहुँचाती है अपितु सामंत-कुमारों की सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करके रामगुप्त और शिखर-स्वामी के कपटाचरण की पोल खोल देती है। रामगुप्त की महादेवी होना अस्वीकार करके यह हमारा ध्यान इस ओर आर्कषित करती है कि हमें प्राचीन परंपराओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अंधानुकरण के स्थान पर यथार्थ के विश्लेषण पर बल देना चाहिए। समग्रतः ध्रुवस्वामिनी के स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चरित्र-विकास में जयशंकर प्रसाद को पूर्ण सफलता मिली है।

ध्वनि *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1951 ई०]

'ध्वनि' नामक ग्रंथ आधुनिक गीतकार श्री राजेंद्र शाह की पाँचवें दशक में लिखी गई कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह में 63 कविताएँ और 45 गीत संग्रथित हैं। इस काव्य-संग्रह को कवि ने स्वयं प्रकाशित किया है। प्रकृति, प्रणय और रहस्यमय आतमसंवेदन कवि के अपने व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य से संस्पृष्ट होकर प्रकट हुए हैं। 'प्रभातमां नासिक', 'शरद रात्रि' तथा 'श्रावणी संधिकाए' आदि इनकी प्रकृतिप्रधान रचनाएँ हैं। कवि प्रकृति के दृश्यों पर चिंतन का आवरण नहीं डालता—उसका प्रकृति-निरूपण वास्तविक प्रकृति-चित्रों को उभार कर यथाशक्ति प्रभाव डालने की चेष्टा करता है। 'श्रावणी मध्याह्न' में सौंदर्य-दर्शन में लीन कवि स्वप्न, जाग्रत और तुरीय—सभी का निषेध करता हुआ भी इन सबका एकसाथ अनुभव करता है। राजेंद्र की शैली में निहित इंद्रियग्राह्यता यहाँ दर्शनीय है। 'अश्रु हे' तथा 'आनंद शो अमित' प्रेम के सूक्ष्म और गंभीर संवेदनों को वाणी देने का सफल प्रयास है। इन प्रगीतों में प्रकृति के विविध रूप प्रणयोल्लास, प्रणय-वेदना और प्रणयेच्छा के प्रकाशन में सहायता देते हैं। यों तो कवि आरंभ में ही संसार और कविता दोनों में ही अपनी यात्रा को निरुद्देश्य मानता है, फिर 'मैं' को वाणी देकर अपने को ही प्राप्त करने की यात्रा का शुभारंभ भी इसी से होता है। 'आयुष्यना अवशेषे' वृद्ध की मनःस्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने वाली रचना है जो अंततः शांति में परिणत होती है। 'कायाने कोटडे बंधाणो', 'हरि तारा घटना मंदरियामा बेसणां हो जी', 'मारी सुषुमणानो तार' आदि गीत पढ़कर किसी भी मध्ययुगीन संत कवि की याद आ जाना बड़ा ही सहज है। 'शेष अभिसार' राजेंद्र शाह की प्रतिभा का एक आविष्कार मान लिया गया है। इस कविता में मृत्यु के आगमन की शुभ घड़ी का अनुभव करने वाली नारी के संवेदनों को बड़े नाट्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। मृत्यु-विषयक काव्यों में यह कृति अनुपम कही जा सकती है। इस कविता-संग्रह में छंदों का भी बहुत वैविध्य है। लगभग बीस कविताएँ सॉनेट में लिखी हुई हैं। यह ठीक है कि सॉनेट के प्रचलित रूपों से इन सॉनेटों को नहीं परखा जा सकता पर इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि ये विभिन्न भारतीय छंदों में रचित हैं, यथा 'आयुष्यना अवशेषे' के पाँचों सॉनेट हरिणी छंद में लिखे गए हैं। 'शेष अभिसार', 'एक फूल' एवं 'प्रासानुप्रास' आदि कुछ कविताएँ संवाद-शैली में भी लिखी गई हैं। 'फरी फरी फागुन आयोजी', 'हो साँवरथोरी अँखियन मैं', 'आयोजी वैशाख लाल आयो जी' आदि रचनाएँ लोकगीत धुनों पर आधृत हैं। 'आज अषाढ़नी माझम रात' जैसे कुछ लंबे व ध्वन्यात्मक गीत भी इस संग्रह में संकलित हैं। 'आपण खेतरिए मंगल' और 'आभमहीं उडे कपासना पोल' कृषक जीवन से संबद्ध गीत है। कुछ कविताएँ मुक्त छंदों में पर तुकों से युक्त लिखी गई हैं। राजेंद्र शाह का यह रचना-संग्रह नये किंतु रोमांटिक कविताओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

ध्वनि *(सं०, हिं० पारि०)*

ध्वनि-सिद्धांत के अनुसार काव्य का सौंदर्य मूलतः व्यंग्यार्थ के आश्रित है जो वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक स्मरणीय होता है। ध्वनि-सिद्धांतों का प्रवर्तन वैयाकरणों के स्फोटवाद के आधार पर हुआ है। जिस प्रकार शब्द के विभिन्न वर्ण अपनी पृथक् सत्ता में स्वतंत्र रूप से अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ नहीं होते, उसी प्रकार काव्य में वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ पूर्ण सौंदर्य के उद्घाटन में समर्थ नहीं होता; यह कार्य व्यंग्यार्थ (दे० व्यंग्य) द्वारा ही संपादित होता है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में शास्त्रीय अर्थ में 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ध्वनिकार आनंदवर्द्धन (दे०) (नवीं शती का मध्यकाल) ने किया है। उनके अनुसार "अर्थ द्वारा अपनी आतमा तथा शब्द द्वारा अपने अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर किसी (अन्य) व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति करना ही ध्वनि है'। (यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ। व्यङ्क्तः काव्य-विशेषः स ध्वनिरित सूरिभिः कथितः ॥) आनंदवर्द्धन ने ध्वनि-तत्त्व के स्वरूप का उद्घाटन एक अत्यंत सार्थक उदाहरण के द्वारा किया है: 'प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो रमणियों के प्रसिद्ध शरीरांगों से भिन्न उनके लावण्य के समान महाकवियों की वाणी में प्रतिभासित होता है।" संप्रदाय-विशेष के रूप में ध्वनि का पक्ष-पोषण मम्मट (दे०) (ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध), हेमचंद्र (दे०) (बारहवीं शती का उत्तरार्द्ध), विद्याधर (दे०) (तेरहवीं शती का अंत) तथा जगन्नाथ (दे०) (सत्रहवीं शती का मध्यकाल) द्वारा किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनि-रूपक *(हिं० पारि०)*

रेडियो के विकास के साथ एक विशेष प्रकार के रूपक का विकास हुआ है जो दृश्यकाव्य की परिधि के बाहर होने और ध्वनि को माध्यम बनाने के कारण 'ध्वनि-रूपक' कहा जाता है। कतिपय सीमाएँ कथानक की सरलता, समय की कमी, चरित्र की गहराई में जा सकने की अक्षमता, ध्वनि के माध्यम से ही सब कुछ प्रस्तुत करने की बाध्यता आदि—होते हुए भी इसमें कुछ सुविधाएँ हैं। यहाँ संकलन-त्रय (दे०) का नियम-पालन अनिवार्य नहीं; वातावरण को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है; स्वप्न, विक्षेपावस्था, जो दृश्य-काव्य में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते, यहाँ प्रस्तुत किए जा सकते हैं, संवादों की ध्वनि मात्र से चारित्रिक वैशिष्ट्य अंकित किया जा सकता है। ध्वनि-रूपक में ध्वनि का बड़ा महत्व है। इसमें तीन प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग होता है। शब्द-ध्वनि का प्रयोग संवादों में होता है; वाक्य-ध्वनि से दृश्य-परिवर्तन, पात्र के आगमन-निष्क्रमण का संकेत दिया जाता है और प्रभाव-ध्वनि का मुख्य प्रयोजन वातावरण-निर्माण होता है। लेखक को ध्वनि-प्रयोग में बड़ी कुशलता एवं सावधानी बरतनी चाहिए। ध्वनि-रूपक के प्रसिद्ध भेद हैं—नाटक (दे०), रूपक, फैंटेसी, रेडियो रूपांतर, एकपात्री नाटक (मॉनोलोग), संगीत-रूपक, झलकी।

ध्वनिविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषाविज्ञान की वह शाखा जिसमें ध्वनियों का अध्ययन-विश्लेषण होता है। सामान्यतः जिसे ध्वनिविज्ञान कहते हैं, उसकी 'ध्वनिविज्ञान' (honetics) तथा 'ध्वनिप्रक्रियाविज्ञान' (phonology) दो शाखाएँ हैं। ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत ध्वनियों के उच्चारण, वर्गीकरण आदि का विचार किया जाता है। ध्वनिप्रक्रियाविज्ञान में किसी भाषा में प्रयुक्त ध्वनि-इकाइयों की व्यवस्था का अध्ययन होता है। व्यवस्था का अर्थ यहाँ यह है कि उस भाषा में कितने 'ध्वनिग्राम' (phonemes) हैं, तथा उनमें मूल और संयुक्त स्वरों, अनुनासिक स्वरों, स्वरानुक्रम, मूल और संयुक्त व्यंजन, व्यंजनानुक्रम बलाघात (stress), सुरलहर (intonation), मात्रा (length), अनुनासिकता (nasalisation), संगम (juncture), आक्षरिक संरचना (ayllabic structure), आक्षरिक विभाजन (syllabic division), आदि की क्या स्थिति है। इस व्यवस्था के अध्ययन को 'ध्वनिग्रामविज्ञान' (phonemics) भी कहते हैं। ध्वनियों का अध्ययन-वर्णन, इतिहास और तुलना की दृष्टि से, तीन प्रकार का हो सकता है: वर्णनात्मक (descriptive), ऐतिहासिक (historical), तथा तुलनात्मक (comparative)। ध्वनिविज्ञान के कई अन्य रूपों के लिए भी स्वतंत्र नामों का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ, औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान (articpulatory honetics) में उच्चारण से संबद्ध बातों का अध्ययन किया जाता है तथा सांवहनिक ध्वनिविज्ञान (acoustic phonetics) में ध्वनि-तरंगों से संबद्ध अध्ययन समाहित है, तो श्रावणिक ध्वनिविज्ञान (auditory phonetics) में श्रवण-संबंधी तथ्यों का अध्ययन होता है। इसी तरह ध्वनिविज्ञान की एक शाखा यांत्रिक ध्वनिविज्ञान (instrumental phonetics) है जिसमें यंत्रों की सहायता से भाषा-ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है।

ध्वन्यालोक *(सं० कृ०)* [समय—850 ई०-875 ई० के बीच]

'ध्वन्यालोक' को काव्यालोक और सहृदयालोक भी कहा गया है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार इसके लेखक आनंदवर्धन (दे०) हैं परंतु अन्य विद्वानों का कथन है कि इस ग्रंथ की कारिकाएँ ध्वनिकार द्वारा लिखी गईं, आनंदवर्धन तो उसके वृत्तिकार मात्र हैं। इसका रचनाकाल नवीं शती का तृतीय चरण है।

यह ग्रंथ चार उद्योतों में विभाजित है तथा कारिका, वृत्ति और उदाहरण इसके तीन भाग हैं। प्रथम उद्योग में ध्वनि (दे०) को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए ध्वनि-संबंधी तीन पूर्वपक्ष प्रस्तुत किए गए हैं—ध्वन्यभाववादी, लक्षणावादी तथा अनिवर्चनीयतावादी। तदनंतर काव्य के दो अर्थ बताए गए हैं—वाच्य और प्रतीयमान। वाच्यार्थ सर्वजनसंवेद्य होता है परंतु प्रतीयमान अर्थ केवल काव्यमर्मज्ञ या सहृदय ही समझ सकता है। प्रतीयमान अर्थ तीन प्रकार का होता है—वस्तु, अलंकार और रस। इन तीनों के पुनः कई भेद हैं। प्रतीयमान अर्थ ही काव्य में प्रधान होता है। इसे ही 'व्यंग्यार्थ' कहा जाता है। जहाँ व्यंग्यार्थ प्रधान होता है उसे 'ध्वनि काव्य' कहा जाता है। ध्वनि के दो प्रकार हैं—अविवक्षित वाच्य और विवक्षितान्यपर वाच्य। आगे यह बताया गया है कि ध्वनि का न तो भक्ति (लक्षण) में अंतर्भाव किया जा सकता है और न वह अनिवर्चनीय किंवा लक्षणातीत ही हैं। द्वितीय उद्योत में अविवक्षित वाच्य के सोदाहरण दो भेद किए गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य और अत्यंततिरस्कृत वाच्य। इसी प्रकार विवक्षितान्यपर वाच्य के दो भेद किए गए हैं—असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य और संलक्ष्यक्रम व्यंग्य। रस, भाव, रसाभास, भावाभास और भावप्रकाश की प्रधानता के कारण असंलक्ष्य के अनेक प्रकार हैं। जहाँ रस, भाव आदि अप्रधान तथा वाच्यार्थ मुख्य हो वहाँ रसवदादि अलंकार होते हैं। इसके बाद गुणों और अलंकारों के परस्पर भेद, तथा माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुणों का विवेचन किया गया है। इसके बाद संलक्ष्यक्रम के भेदोपभेदों का निरूपण हुआ है। प्रथम उद्योत में ध्वनि के भेद व्यंग्य की दृष्टि से किए गए हैं किंतु तृतीय उद्योत में ये भेद व्यंजक की दृष्टि से बताए गए हैं। तृतीय उद्योत में यह निरूपित किया गया है कि विविध ध्वनिभेदों में व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति वर्ण, पद, वाक्य, वाच्य, संघटना, प्रबंध आदि के द्वारा कैसे होती हैं। तीन प्रकार की संघटना तथा गुणों से उनके संबंध का प्रतिपादन भी यहीं किया गया है। गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य का भी निरूपण इसी उद्योत में हुआ है। काव्य में एक रस प्रधान और दूसरे रस उसके सहायक होने चाहिए। चौथे उद्योत में प्रतिभा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। ध्वनि और गुणीभूतव्यंग्य काव्य में कवि की प्रतिभा नूतन चमत्कार प्रकट करती है। कवि की अपनी दृष्टि रचना में प्रधानतया एक ही रस पर केंद्रित होनी चाहिए। अलंकार-साहित्य में 'ध्वन्यालोक' का वही स्थान है जो व्याकरण में 'अष्टाध्यायी' (दे०) का और वेदांत में 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) का। 'ध्वन्यालोक' भारतीय साहित्यशास्त्र की बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसके निर्माण से पूर्व तक काव्य का विवेचन शब्द, वाच्यार्थ, अलंकार आदि जैसे स्थूल बाह्य तत्त्वों को लेकर ही किया जाता रहा। काव्य के सौंदर्यविधायक किसी आंतरिक और सूक्ष्म तत्त्व की खोज तब तक नहीं हो पाई थी। आनंदवर्धन ने काव्य के इस सूक्ष्म और व्यापक तत्त्व को, जिसे उन्होंने ध्वनि की संज्ञा दी, पकड़ा और उसे ही काव्य का आत्म-तत्त्व घोषित किया। 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि की उद्भावना और प्रतिष्ठा के पश्चात् इस संप्रदाय के अनेक धुरंधर आचार्यों द्वारा इसे जो सुदृढ़ रूप प्रदान किया वह आज तक यथावत् स्थिर है। इसके विरोध में जो वाद हठात् खड़े भी हुए वे स्वयं काल-कवलित हो गए।

नंजुंड (क० ले०) [समय—1525 ई० के लगभग]

कन्नड के वीर-कवियों में अग्रगण्य नंजुंड का जन्म एक राजघराने में हुआ था। वह कन्नड के प्रसिद्ध कवि मंगरस (दे०) तृतीय के भतीजे थे। लगता है, इन्होंने जैन धर्म छोड़ कर वीरशैव मत अपना लिया था। 'रामनाथचरित' या 'कुमारराम सांगत्य' इनका प्रसिद्ध विशालकाय ग्रंथ है। कुमारराम (दे०) कर्णाटक का एक महान् जातिवीर था जिसने उत्तर से आने वाले मुसलमानों का ज़बर्दस्त विरोध किया और अखंड हिंदू साम्राज्य का सपना देखा था। उसी के आत्मयज्ञ के अग्निकुंड पर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हुई। कुमारराम का यह काव्य कर्नाटक का राष्ट्रीय वीर-काव्य है। इसी कुमारराम पर तेलुगु और तमिल में भी काव्य मिलते हैं। कन्नड में इस पर यक्षगान मिलते हैं, लोकगीत मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कुमार दक्षिण भारत भर में एक प्रख्यात पुरुष था। उसकी कथा कुणाल कीक था से मिलती-जुलती है जहाँ विमाता कामांध होकर प्रणय-याचना करती है और विफल होने पर राजा से उसे यह कह कर दंड दिलाती है कि उसने माता के सतीत्व पर आक्रमण किया। अंततः मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध जूझते हुए कुमारराम वीरगति को प्राप्त होता है।

इस कथानक को 44 आश्वासों में सांगत्य (दे०) छंद में निरूपित किया गया है। वीर इसका प्रथम रस है, श्रृंगार पोषक के रूप में आया है। राम को 'शुचिवीर' के रूप में चित्रित कर कवि ने वीरों की कल्पना में एक नया तत्त्व जोड़ दिया है। कुमारराम का चरित्र अत्यंत भव्य बन पड़ा है। उसका यह चरित्र मध्यकालीन भारतीय साहित्य के लिए एक नूतन देन है। कवि अपने काव्य-नायक को पौराणिक परिवेश में बिठाता है। उसका कहना है कि कुमारराम पूर्व-जन्म का अर्जुन है। उसे शाप देने वाली उर्वशी मातंगी है, जो उसके अंत का कारण बनती है। इस तरह इसमें कल्पना और तथ्य का समन्वय हुआ है।

नंजुंड के सांगत्य में लालित्य एवं पौरुष का हृदयहारी संगम हुआ है। उनकी शैली संदर्भानुसार रंग बदल कर पाठकों पर अद्भुत प्रभाव डालती है। कथा-संयोजन, पात्र-सृष्टि, रचना-शैली, सौष्ठव-किसी भी दृष्टि से देखा जाए, यह काव्य उत्कृष्ट ठहरता है। कन्नड के श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में नंजुंड का स्थान है। प्रो० डी० एल० नरसिंहाचार्य (दे०) के अनुसार 'कुमारराम सांगत्य' कन्नड भाषियों का 'राष्ट्रीय महाकाव्य' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंददास *(हिं० ले०)* [जन्म—1533 ई०; मृत्यु—1586 ई०]

ब्रज के पूर्व में रामपुर नामक गाँव नंददास की जन्मभूमि कही जाती है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में इन्हें गोस्वामी तुलसीदास (दे०) का भाई कहा गया है। पुष्टिमार्ग (दे०) में दीक्षित होने से पूर्व इनकी आसक्ति एक खत्री साहूकार की रूपवती पत्नी में थी, बाद में यही आसक्ति श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी में केंद्रीभूत हो गई। साहित्यिक महत्व की दृष्टि से अष्टछाप (दे०) के कवियों में सूरदास (दे०) के बाद इन्हीं का स्थान है। इन्होंने 'अनेकार्थ मंजरी', 'नाममंजरी', 'जोगलीला', 'रसमंजरी', 'रासपंचाध्यायी' (दे०), 'भँवर गीत' आदि अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया था। 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' के कारण नंददास काफ़ी प्रसिद्ध हुए हैं। इनकी संपूर्ण कृतियों के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

नंददास की भाषा में शब्दों का जड़ाव बहुत कुशलतापूर्वक किया गया है। यत्र-तत्र मुहावरों का प्रयोग करके भाषा को अत्यधिक सरस और व्यावहारिक बना दिया है। इनके काव्य में माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रचुरता है। 'भँवरगीत' में इनकी गोपियाँ तर्कपंडिता और व्यावहारिक जगत से संबंध रखने वाली हैं। काव्यशास्त्र के ज्ञाता होने के कारण ये भक्ति के साथ-साथ कवित्व में भी पारंगत थे। कविता के क्षेत्र में ये जयदेव (दे०) और विद्यापति (दे०) से प्रभावित थे। इन्होंने काव्य की अनेक शैलियों में रचना कर अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

नंददास के काव्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण अष्टछाप के कवियों में इनका स्थान अद्वितीय है। ये एक ऐसे सचेष्ट और सचेतन कलाकार थे जिन्हें अपने कवि-कर्म के गहन दायित्व का सदैव ध्यान रहता था। कहना न होगा हिंदी साहित्य में इस कवि का स्थान कुछेक चुने हुए महाकवियों के एकदम बाद आता है।

नंददुलाल (अ० कृ०) [रचना-काल—1928 ई०; प्रकाशन-वर्ष—1935 ई० में]

लेखक : अतुल हाजरिका (दे०)

यह लेखक का तृतीय प्रकाशित नाटक है। इसमें कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की शिशुलीलाओं का वर्णन है। पाँच अंकों में क्रमशः जन्माष्टमी, नंददुलाल, रासलीला, गोकुल-विद और कंस-वध की घटनाओं का चित्रण है। यह यात्रा-शैली का नाटक है, संवाद कवित्वपूर्ण हैं, गीतों का प्रचुर प्रयोग है। इसमें भक्तिरस है, किंतु नाट्य-रस का अभाव है। यह काव्यात्मक धर्म-प्रधान नाटक है।

नंदनंदन *(गु० पा०)*

जयंति दलाल (दे०)-रचित 'सोयनुं नाकुं' एकांकी का नायक। नंदनंदन राजनीतिक और सामाजिक भ्रष्टाचार का प्रतीक है। वह जिसके यहाँ मुनीम था उसका काला धन हड़प करके बड़ा उद्योगपति बन जाता है। वह अनाथ स्त्रियों की संस्थाओं को दान देता है और अनाथालय की स्त्रियों को भ्रष्ट करता है। स्वदेशी आंदोलन में भाग लेकर स्वदेशी चीज़ें महँगी बेचकर पैसे बनाता है। चोरबाज़ारियों और भ्रष्टाचार फैलाने वालों का वह प्रतीक है।

नंदनार *(त० पा०)*

शैव मतानुयायियों के अनुसार ये 63 नायन्मारों (शैव संतों) में से हैं। ग्यारहवीं शती में रचित शेक्किषार के 'पेरिय-पुराणम' (दे०) में अन्य शैव संतों के साथ नंदनार का जीवन-चरित्र भी दिया गया है। यही पात्र उन्नीसवीं शती की रचना 'नंदनार-चरित्तिरक्कीर्तन' (दे०) का नायक है। 'नंदनार-चरिरित्तक्कीर्तनै' गोपालकृष्ण भारती (दे०) का प्रसिद्ध संगीत-नाटक है। 'पेरिय-पुराणम्' एवं 'नंदनार-चरिरित्तक्कीर्तनै' में प्राप्त नंदनार के चरित्र में बहुत अंतर है। इस अंतर का मूल कारण है—इन रचनाओं के उद्देश्य की भिन्नता। 'पेरिय-पुराणम' में लेखक ने भक्ति को जाति-भेद एवं वर्ग-भेद से ऊपर की चीज़ सिद्ध करने के लिए हरिजन-कुल में उत्पन्न भक्त नंदनार के विरुद्ध उच्च कुल में उत्पन्न एक हिंदू चरित्र की अवतारणा की जिस पर नंदनार कालांतर में अपनी भक्ति के बल पर विजय पा लेता है। हरिजन-कुल में उत्पन्न होने के कारण वह मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकता था किंतु अंत में अपनी अनन्य भक्ति के बल पर वह मंदिर में प्रवेश पा लेता है। उन्नीसवीं शती की रचना 'नंदनार-चरित्तिरक्कीर्तनै' के रचयिता ने युगीन परिस्थितियों के अनुरूप इस चरित्र का पुनर्निर्माण किया है। यहाँ नंदनार मज़दूर-वर्ग का प्रतिनिधि है और उसका प्रबल विरोधी है ज़मींदार। नंदनार खेतों में काम करने वाला सामान्य स्तर का मज़दूर है। उसका स्वामी ज़मींदार स्पष्ट शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कह देता है कि एक दास को, मजदूर को, ईश्वर के भजन-पूजन का कोई अधिकार नहीं है।

'पेरिय-पुराणम्' एवं 'नंदनार-चरित्तिरक्कीर्तनै' के रचना-काल में लगभग 800 वर्षों का अंतर है। इन रचनाओं में नंदनार के चरित्र के माध्यम से क्रमशः उच्च वर्ग-निम्न वर्ग एवं स्वामी-दास के पारस्परिक संघर्ष को स्पष्ट किया गया है।

नंदनारचरित्तिरक्कीर्त्तनै *(त० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती]

इस कृति में तमिल प्रदेश के 63 शैव 'नायनार' संतों में से नंदनार नामक हरिजन संत की कथा प्रस्तुत है। पुरानी ग्रामीण व्यवस्था के अनुसार एक गाँव के भूस्वामी के अधीन असामी के रूप में खेती करते हुए, नंदनार अपनी जाति के ग्रामीण देवताओं को छोड़कर शिवजी की उपासना एवं भजन-कीर्तन में तल्लीन रहते थे। 'चिदंबरम्' के प्रसिद्ध मंदिर में विराजमान 'नटराज' की मूर्ति-विशेष पर इनका असीम अनुराग था। एक बार जब इन्होंने अपने भूस्वामी से 'तिरुवातिरै' नामक पर्व पर इस मूर्ति-दर्शन के लिए चिदंबरम् जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने न केवल इनकार कर दिया बल्कि यह भी कह दिया कि "यदि जाना है, तो चालीस 'वेलि' की जमीन की बुआई समाप्त करके जाओ।" विवश होकर नंदनार अपने प्रिय 'नटराज' की स्तुति करते हुए सो गए, पर प्रातःकाल होते ही उन्होंने देखा कि चालीस 'वेलि' की भूमि पके हुए पौधों के साथ लहरा रही है। इस ईश्वरीय चमत्कार से भूस्वामी नत-मस्तक हो गया और निम्नतम जाति का यह भक्त सफल-मनोरथ हो 'चिदंबरम्' के वृहत् मंदिर की यात्रा पर चला गया। 'नटराज' ने अपने मंदिर के पुजारियों को स्वप्न में प्रकट होकर आदेश दिया कि 'नंदनार' को अग्नि में पवित्र स्नान कराके द्विगुणित पवित्रता के साथ हमारे सान्निध्य में लाया जाए। नंदनार शिवजी के मूर्ति-दर्शन के साथ-साथ शिवतत्त्व में मिलकर अंतर्धान हो गए।

इस कथा का वर्णन गेय पदों के माध्यम से किया गया है जो कीर्त्तनै नाम से प्रसिद्ध हैं और कर्णाटक-संगीत के रागों में बँधे हुए हैं। कुछ पदों में हिंदुस्तानी रागों तथा मराठी शैली में प्रचलित द्विपद, त्रिपद, दंडक आदि का अनुसरण भी हुआ है। अद्वैत-दर्शन तथा योगशास्त्र के सिद्धांतों का भी उल्लेख इस पदावली में मिलता है। ये गीत लोक-हृदय का स्पर्श करने वाली अत्यंत सरल शैली में रचित हैं और अपने रचना-काल में उनकी स्वाभाविकता एवं सरसता अभूतपूर्व विशेषताएँ थीं। कथावाचन में इस कृति के गेय पदों का निरंतर उपयोग होता आ रहा है और तमिल-भाषी जनता में 'चिदंबरम् पोकवेण्टुम् ऐये' (हे स्वामी, मुझे 'चिदबरम्' जाना है) गीत अत्यंत लोकप्रिय है।

नंदशंकर *(गु० ले०)* [समय—1835-1905 ई०]

नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता का जन्म सूरत के नागर परिवार में हुआ था। एक साधारण अध्यापक के रूप में जीवन का प्रारंभ कर, ये अपने श्रम व अध्यवसाय से शिक्षा-विभाग में ऊँचे पद तक पहुँचे थे। इनकी एकमात्र रचना 'करण घेलो' (दे०) गुजराती का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। 'करण घेलो' में गुजरात के बाघेला वंश के अंतिम राजा 'करण बाघेला' के जीवन के प्रसिद्ध प्रसंग वर्णित हैं।

समीक्षा के वर्तमान मानकों पर कसने पर इस कृति में वस्तुविन्यास, पात्र, चरित्र-चित्रण, देश-काल-विषयक शिथिलताएँ दृष्टिगत हो सकती हैं, किंतु लगभग एक शतक पूर्व की रचना के रूप में विचार करने पर ये सब बातें गौण बन जाती हैं। रचना की भाषा-शैली पर अँग्रेज़ी लेखकों का—विशेषतः वाल्टर स्काट का—प्रभाव दिखाई देता है। तत्कालीन समाज की उत्सवप्रियता, विलासप्रियता एवं कलानुराग का अंकन कृति में अच्छा हुआ है।

गुजराती के प्रथम उपन्यासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में नंदशंकर मेहता का तथा ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में उनकी इस कृति का महत्त्व अक्षुण्ण है।

नंद शर्मा, गोपीनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

फकीर मोहन (दे०) के बाद साहित्य-साधना के क्षेत्र में द्वितीय स्थान है ज्ञान-तपस्वी गोपीनाथ नंद शर्मा का। अँग्रेज़ी या अन्य पश्चिमी भाषाओं का ज्ञान न होते हुए भी इनकी समीक्षाओं में सूक्ष्म विश्लेषण-शक्ति एवं गहन गवेषणात्मक दृष्टि प्राप्त थी। 'सारलादास महाभारत' (दे०) की विषयवस्तु एवं भाषा की समालोचना इनके पांडित्य की साक्षी है। महाभारत की उस अनगढ़ भाषा में इन्होंने विशुद्ध उड़िया भाषा के उज्ज्वलतम रूप और निजी सौंदर्य का संधान किया है। जगन्नाथदास के 'भागवत्' (दे० जगन्नाथ भागवत) एवं दांडी रामायण (दे०) पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इनकी समीक्षाएँ प्रसिद्ध हैं। अपनी आलोचना में इन्होंने जिस सूक्ष्म अंतर्दृष्टि, गंभीर पांडित्य, तथा बहुशास्त्रज्ञान का परिचय दिया वह असाधारण है।

पाली, प्राकृत व संस्कृत भाषा का तुलनात्मक अध्ययन कर इन्होंने 'ओड़िया भाषा तत्त्व' (दे०) नामक ग्रंथ की रचना की है जो उड़िया में ही नहीं वरन् अन्य भारतीय भाषाओं में भी अपने विषय का अत्यंत उत्कृष्ट ग्रंथ है। उड़िया शब्दावली की संरचना का विवेचन एक हज़ार पृष्ठों में हुआ है। 'शब्द-तत्त्व-बोध' के संकलन का श्रेय भी इन्हें ही प्राप्त है। इसमें उड़िया देशज शब्दों का विवेचन हुआ है। इनका अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ है—'ओड़िया अभिधान'। इनके अतिरिक्त लेखक ने संस्कृतकाव्य व नाट्य-साहित्य का अनुवाद भी किया है जिस पर उसके पांडित्य की स्पष्ट छाप है।

नंदा, ईश्वरचंद्र *(पं० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ईश्वरचंद्र नंदा को आधुनिक पंजाबी नाटक का जन्मदाता माना जाता है। इन्होंने 1913 ई० में अपना नाटक 'दुलहन' लिखा, जिसे एक प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। एक वर्ष के पश्चात् इनका दूसरा नाटक 'बे राम भजनी' प्रकाशित हुआ। 1920 ई० में इनका सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक 'सुभद्रा' (दे० सुभदरा) प्रकाशित हुआ। 1928 ई० में इन्होंने इंगलैंड की यात्रा की। वहाँ के रंगमंचीय वातावरण और नाट्य-कला से ये विशेष रूप से प्रभावित हुए। वहाँ से वापस आने पर इन्होंने 'शामूशाह' और 'वर-घर' नाटकों की रचना की। 1950 ई० में इनके एकांकियों का संग्रह 'झलकारे' प्रकाशित हुआ।

नाटक लिखने और उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करने की प्रेरणा नंदा को लाहौर में अपने अँग्रेज़ी के प्राध्यापक श्री नोहरा रिचर्ड्स और उनकी पत्नी श्रीमती नोहरा रिचर्ड्स से प्राप्त हुई। इनके नाटक विशेष रूप से समाज-सुधार की भावना से प्रेरित हैं। 'सुभद्रा' में विधवा-विवाह की समस्या उठाई गई है और 'वर-घर' में पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव और उससे उत्पन्न संघर्ष का चित्रण किया गया है।

नंदिकलंबकम् *(त० कृ०)* [समय—नवीं शती ई०]

इस काव्य-कृति के नायक 'नंदिवरम्' राजा हैं जिनका समय अनुमानतः ई० 825 ये 850 तक है। ये 'काञ्चीपुरम्' नगरी से शासन करने वाले 'पल्लव' राजवंश के थे और इतिहास में प्रसिद्ध है कि इन्होंने 'तेळ्ळारु' नामक क्षेत्र में दक्षिणापथ के अन्य शत्रु-राजाओं की सम्मिलित शक्ति पर महान विजय पाई थी। यह कृति एक ऐसी 'अरम्' कहलाने वाली मंत्रशक्ति-युक्त एवं श्लेषार्थविशिष्ट रचना है जिसे सुनने पर विश्वास किया जाता है कि नायक की मृत्यु अवश्यंभावी है। कहते हैं कि राजा के एक देश-भ्रष्ट सौतेले भाई ने उससे बदला चुकाने के लिए इसकी रचना की थी। किसी प्रकार से इस रचना की कुछ पंक्तियों का परिचय 'नंदिवरम्' को मिल जाने पर उन्होंने इस संपूर्ण काव्य-रचना का आस्वादन कर आत्म-विभोर होना चाहा—यद्यपि इन्हें सचेत कर दिया गया था कि हर एक पद्य सुन लेने के साथ-साथ उसके प्राण निकलते रहेंगे और अंत में उसे चिता में जलना भी पड़ेगा। सौतेले भाई को, जो घर छोड़कर संन्यासी हो गया था, बरबस अपना सौ पद्यवाला काव्य सुनाना पड़ा। सौ मंडपों के निर्माण हुए और एक-एक पद्य सुनने के बाद एक-एक मंडप जल उठा और सौवाँ पद्य आते-आते राजा चिता पर लेटकर उसे सुनकर आनंदातिरेक के साथ स्वर्ग सिधारे। काव्यगत अंतःसाक्ष्य से इस कथा का पुष्टीकरण नहीं होता यद्यपि कुल पंक्तियों का ध्वन्यर्थ इसको बल देने के लिए खींचा जा सकता है।

यह रचना 'कलंबकम्' नामक काव्य-विधा की सर्वप्रथम उपलब्धि है। इस विधा की रचनाओं में विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण तमिल साहित्य की प्राचीन रूढ़ 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) एवं 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) पद्धतियों का अवलंबन करता है। इन पद्धतियों में पात्र और प्रसंग सुनिश्चित हैं और पद्य-रचना उन नियमित पात्रों एवं प्रसंगों के अनुसार निर्मित होती है—यथा नायक-नायिका का एक दूसरे पर मोह-प्रकटन, सखी द्वारा नायक से अनुरोध इत्यादि। 'आचिरियम्', 'वेण्पा', 'कलि' तथा 'वञ्चि' नामक छंदों के यत्र-तत्र उपयोग से छंद-विधान की रोचकता इस विधा में द्रष्टव्य है। 'कलंबकम्' का शाब्दिक अर्थ 'मिश्रित फूलमाला' स्वयं वैविध्य का सूचक है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसमें पूर्ववर्ती पद्यों के अंत वाले शब्द या शब्दांश परवर्ती पद्य का आरंभ होते हैं।

इस कृति में 'अहम्' पद्धति की सरस शृंगार-परक उक्तियों के द्वारा ही नायक की कलाशक्ति, दान-शीलता, धर्मानुराग, युद्धकौशल, शासन-क्षमता आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट गुणों की ओर संदर्भानुकूल किए गए उल्लेख विलक्षणता लिये हुए हैं। ऐसे उल्लेखों से इतिहास-निर्माण में भी इसका योगदान अनुपेक्षणीय है।

नंदी अनुयोगदार *(प्रा० कृ०)* :

ये दोनों ग्रंथ जैन-आगम (दे०) के भाग माने जाते हैं। जैसाकि नाम से प्रकट है ये ग्रंथ जैन-साहित्य में प्रवेश के लिए उपक्रम-रूप हैं और जैन-साहित्य विश्वकोश कहे जाने के सर्वथा अधिकारी हैं। इनमें जैन धर्म संबंधी सभी ज्ञातव्य तत्त्व तो आ ही गए हैं, साथ ही मिथ्याश्रुत, 'महाभारत', अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, वैशेषिक, बौद्धशासन, कपिलदर्शन, लोकायत, पुराण, व्याकरण, भागवत, गणित इत्यादि का भी समावेश किया गया है। 'अनुयोगदार' प्रश्नोत्तर-रूप है।

नंदीमठ *(क० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

वीरशैवमत के अधिकारी विद्वान डा० शिवलिंगैया चेन्नबसवप्पा नंदीमठ का जन्म उत्तर कर्णाटक में एक सुसंस्कृत वीरशैव कुटुंब में 1903 ई० में हुआ। धारवाड तथा बंबई में शिक्षा पाकर उन्होंने लंदन में डा० बार्नेट के अधीन शोध-कार्य किया और वहीं से डाक्टरेट की उपाधि पाई है। आपने 'चंद्रज्ञानागम' आदि आजकों पर भी काम किया है। कर्णाटक का कर्मिक इतिहास आपने लिखा है जो कन्नड साहित्य परिषत् की ओर से प्रकाशित 'कन्नडनाडिन चरित्रे के तृतीय भाग के रूप में निकला है। इसके अतिरिक्त आपने दर्जनों लेख वीरशैव-साहित्य व संस्कृति पर लिखे हैं।

नंपियार, शंकरन् पि० *(मल० ले०)*

श्री नंपियार अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित थे। छोटी-सी उम्र में ही 'पालाप्मिथनम् चंपु' का निर्माण करके उन्होंने कविता के प्रति अपनी रुचि दिखाई। काव्य-ग्रंथ 'प्रस्थानत्रयम्' में अँग्रेज़ी की पद्य-शैलियों के कई उदाहरण पाए जाते हैं। वर्ड्सवर्थ, शेली, शेक्सपियर जैसे महान् कवियों की कविताओं का अनूदित संकलित ग्रंथ है 'सवुर्णमंडलम्'। द्रविड़ वृत्तों की अपेक्षा संस्कृत वृत्तों के प्रति उनका अधिक आग्रह है। स्थानीय नरेश ने उन्हें 'कवि तिलक' की उपाधि से सम्मानित किया।

नंपियार, के० सी० नारायणन् *(मल० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

मलयाळम के प्रतिभाशाली कवि, समालोचक और पत्रकार। 'कल्याणी-कल्याणम्', 'इन्दुलेखा नाटकम्', 'चक्कीचंकरम्' आदि नाटक और 'भारतव्यवहारम्', 'मुंसिफ़ भारतम्', आदि काव्य उनकी रचनाएँ हैं। 'उदयालंकारम्' उनका अलंकार-ग्रंथ है।

नारायणन नंपियार उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में अत्यधिक लोकप्रिय वेण्मणि-शैली के प्रमुख कवि हैं। भाषा का प्रसाद-गुण और ऋजुता और हास्यरस की प्रमुखता उनकी कविता के मुख्य तत्त्व हैं। वे आशु कविता की रचना में पटु थे। संगठित साहित्यिक प्रयासों में भी उनका बहुत योगदान रहा है।

नंपूतिरि, चेलप्परंपु *(मल० ले०)*

ये सत्रहवीं और अठारहवीं शती के बीच में जीवित थे। शृंगार रस से ओतप्रोत कई मुक्तक-पद्य रचकर ये 'रसिकाग्रणि' के नाम से प्रख्यात हुए। आरंभ से ही इनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी थी और ये स्वल्प काल में रचना करके चमत्कृत कर देते थे। इनकी सरलकोमल-कांत पदावलियों से सहृदय खूब आकृष्ट हुए थे।

नंपूतिरि, नटुवत्तु अच्छन् *(मल० ले०)* [समय—1842 ई० से 1913 ई० तक]

नटुवम् नंपूतिरि ब्राह्मण का घर है जो केरल के मध्य भाग में स्थित है। उस घर में जन्मे दो कवि नटुवत्तु अच्छन् नंपूतिरि और नटुवत्तु महन् नंपूतिरि नाम से सुख्यात हुए हैं। पिता (अच्छन्) और पुत्र (महन्) दोनों कवि और नाटककार थे। अपनी भक्ति-भावना, हृदयशुद्धि तथा पांडित्य आदि गुणों के कारण वे लोगों के आराध्य पुरुष बन गए 'अंबोपदेशम', 'भगवद्स्तुति', 'भगवद्दूत नाटकम्' 'श्रृंगेरी यात्रा' आदि तो ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें वे पूरा कर गए। किंतु कई ग्रंथ उनके अधूरे लिखे भी हैं। उनकी सरल-कोमल-कांत पदावली सहज आकर्षक है। कविता के गुण-त्रय उनकी रचनाओं में पाए जाते हैं। उनका लिखा 'भगवद्दूत नाटकम्' भक्तिरस-प्रधान है। इसी नाटक के बल पर केरली के मुख्य कवियों की पंक्ति में उन्होंने अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान बना लिया। कवि ने उस समय के महाकवि कुञ्ञिक्कुट्टन् (दे०) तंपुरान् को जो पत्र लिखे थे उनमें से कई में उनका कवित्व-चमत्कार परिलक्षित होता है।

नंपूतिरि, नट्टुवत्तु महन् *(मल० ले०)* [समय—1864 ई० से 1944 ई० तक]

संस्कृत तथा मलयाळम में अच्छी गति प्राप्त करने के बाद इन्होंने भाषा के अध्यापन का कार्य किया। इन्होंने 'उत्तररामचरितम्', 'मुद्राराक्षसम्', 'घोषयात्रा नाटकम्', 'सन्तानगोपलम् काव्यम्', 'महिषमर्द्दनम्','भक्तलहरि' आदि तेरह ग्रंथों की रचना की। इन्होंने अपनी काव्य-रचना में शास्त्र के नियमों का अनुसरण और पालन किया है। कृष्ण तथा देवी पर लिखे उनके श्लोक भक्ति रस प्रधान हैं। पाँच सर्गों में लिखा 'सन्तानगोपालम्' एक सरस काव्य है। 'आश्रमप्रवेशम्' में बापू जी ने अपनी धर्मपत्नी को जो उपदेश दिए हैं उनका संग्रह मिलता है। उसकी कविता सरस एवं कोमल है।

नंपूतिरि, पून्नोट्टत्तु अच्छन् *(मल० ले०)* [समय—1822 ई० से 1862 ई० तक]

कवि का वास्तविक नाम दामोदरन् नंपूतिरि है। अच्छन् नंपूतिरि इनका प्रसिद्ध साहित्य नाम है। इन्होंने संस्कृत का गहरा अध्ययन किया था और तुळ्ळल् शैली में 'अंबरीषचरितम्' नामक काव्य-ग्रंथ लिखा। 'कालकेयवधम्', 'स्यमन्तकम्' नामक कथकलि आदि ग्रंथों के अलावा कई मुक्तक पद्य भी लिखे।

नंपूतिरि, पूंतोट्टत्तु महन् *(मल०ले०)* [समय—1827 ई० से 1946 ई० तक]

इनका नाम भी पिताजी के नाम के समान दामोदरन् है। पिताजी के समान पुत्र (महन् नंपूतिरि) भी बचपन से ही कविता की ओर सहज रूप में प्रवृत्त हुए थे।

काव्य-ग्रंथ 'नारकासुरवधम्'—कथकलि ग्रंथ है; 'लक्षणास्वयंवरम्'—कथकलि है। तुळ्ळल्-पद्धति में दो पुस्तकें हैं—'राजसूयम्', 'कुचेलवृत्तम्'। शुकगान के रूप में 'गुरुवायूरपुरमहात्म्यम्', 'सावित्रिचरित्रम्'—इन दो ग्रंथों का निर्माण किया। 'पाना' (दे०) पद्धति में 'अजामिल-मोक्षम्' लिखकर कवि ने केरली की स्तुत्य सेवा की है।

नंपूतिरि, शीवोळि्ळ *(मल० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1906 ई०]

पूरा नाम शीवोळि्ळ नारायणन् नंपूतिरि है। शीवोळि्ळ शिवंपळि्ळ का संकुचित रूप है। यह कवि के घर का नाम है। मध्य केरल की परवूर नामक तहसील के वयला गाँव में कवि का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही शीवोळि्ळ काव्य-रचना के प्रति आकर्षित थे और यह प्रवृत्ति उनमें जन्मजात तथा सहज थी। संस्कृत के अध्ययन के पश्चात् उन्होंने वैद्यक शास्त्र में वैशिष्ट्य प्राप्त किया। कन्नड, अँग्रेज़ी आदि भाषाएँ भी कवि ने सीखीं।

कवि के रचना-काल में संदेश-काव्यों की भरमार हुई तो उसे रोकने के लिए उन्होंने संदेशकारों का उपहास करते हुए 'दात्यूहसंदेशम्' (दे०) लिखा। उसी प्रकार 'दुस्पर्श नाटकम्' (दे०) की रचना करके नये नाटककारों पर भी व्यंग्य किया। 'मदनकेतनचरितम्', 'सारोपदेशशतकम्', 'घोषयात्रा' आदि उनकी रचनाएँ हैं। पार्वती पर लिखे उनके पद भक्ति-रस से ओतप्रोत हैं।

नंपूतिरिप्पाड्, सूरि *(मल० पा०)*

श्री ओय्यारत्तु चन्तु मेनन (दे०) ने 'इंदुलेखा' (दे०) नामक उपन्यास लिखा है। उसका एक पात्र है 'सूरि नंपूतिरिप्पाड्'। उस समय के ज़मींदार के रूप में इस पात्र का चित्रण किया गया है। नंपूतिरि समाज की सहज दुर्बलताओं का जीवंत चित्र इस पात्र के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है।

नंपूतिरिप्पाड्, मूत्तिरिञ्ञोट्टु, भवत्रातन *(मल० ले०)* [जन्म—1902, मृत्यु—1944 ई०]

जन्म स्थान—मलाबार। संस्कृत-विद्वानों के परिवार में जन्मे श्री नंपूतिरिप्पाड् ने प्रारंभ में वेदाध्ययन किया; तदनंतर न्यायशास्त्र एवं वेदांत सीखा तथा कुछ-कुछ अँग्रेज़ी भी पढ़ी। रूढ़िवादी नंपूतिरि समाज को संकुचित घेरे से बाहर लाकर सभ्यता एवं उदारता के विशाल प्रांगण में खड़ा कर देने वाले प्रगतिप्रेमी युवकों में इनका विशेष स्थान रहा। 'मंगलोदयम्' पत्रिका के संपादक की हैसियत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से और लेखक के तौर पर अपनी मौलिक रचनाओं से इन्होंने मलयाळम वाङ्मय की श्रीवृद्धि की। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'अप्फंटे मकळ्' (दे०) (भतीजी) नामक उपन्यास, 'पूंकुला' एवं 'आत्मार्पणम्' नामक कहानी-संग्रह एवं 'मरुपुरम्' नामक निबंध-संग्रह। इनकी गद्य-शैली में दुर्लभ भावुकता के दर्शन होते हैं।

नंबि-आंडार् नंबि *(त० ले०)* [समय—870 ई०-907 ई०]

तमिल के शैव-संतों ('नायन्मार') के विरचित पदों का विविध रागों के अनुसार संकलन करने वाले तमिल विद्वान् थे नंबि-आंडार् नंबि। 'तिरु-नारैयूर' नामक गाँव आदिशैवकुल में (जिन्हें 'ब्राह्मण' माना जाता है) इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही ये श्रीगणेश जी की उपासना करने लगे थे। इनके विषय में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे प्रकट होता है कि इन्हें गणेश भगवान का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था और गणेश की कृपा से ये बड़े ज्ञानी बन गए थे। एक चोल राजा की प्रार्थना पर इन्होंने चिदंबरम् जाकर वहाँ एक कमरे में गुप्त रूप में सुरक्षित ताल-पत्र ग्रंथों का उद्धार किया था जिनमें शैव धर्म के मुख्य तीन आचार्यों की कृतियाँ थीं। उन्हें क्रमीकृत करके इन्होंने सात भागों में विभक्त किया; फिर अन्य कुछ संतों के गीतों को तीन भागों में संकलित किया। ग्यारहवें भाग में कुछ फुटकल पदों का संकलन है। इन्होंने स्वयं अनेक कृतियों की रचना की है; जिनमें शैव संतों की जीवनी पर लिखित पद्यकाव्य विख्यात है। श्रीगणेश की प्रार्थना के अनेक ग्रंथ भी इन्होंने विभिन्न तमिल साहित्य-विधाओं में लिखे हैं। अभी तक ऐसे दस ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। तमिल के शैव वाङ्मय में इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

नंबियण्णा *(क० पा०)*

महाकवि हरिहर (दे०) (बारहवीं शती) के 'नंबियण्णन रगळे' (नंबियण्णा का रगळे) का प्रधान पात्र है 'नंबियण्णा'। कैलास में शिवजी के सान्निध्य में पुष्पदत्त नाम का एक गण था। पुष्पचयन कर शिवजी के पास लाना उसका काम था। पार्वती के लिए पुष्प लाने वाली सेविकाओं से उसका प्रेम हो गया। परिणामतः शिवजी की आज्ञा हुई कि मर्त्यलोक में इनका जन्म हो और समस्त सुख अनुभव करने के बाद पुनः कैलास में आवें। पुष्पदत्त शिव-सान्निध्य से नहीं बिछुड़ना चाहता था। शिवजी ने जब उसको समझाया और आश्वासन दिया कि उसका उद्धार होगा तो उसने उनकी बात मान ली। (उस पर विश्वास किया) अतएव उसका नाम 'नंबि' (विश्वास करने वाला) पड़ गया। भूलोक के तिरुनावलूर नगर में जडेय नायनार और यस्यज्ञानदेवी के यहाँ उसका जन्म हुआ। बचपन में ही वह दैवी अंश-संभूत प्रतीत हुआ। राजा का मदगज, जिसको शांत करना किसी के वश की बात नहीं थी, उसके सामने नमस्कार कर पूर्व-स्थिति में पहुँचा। राजा नरसिंह मोनेयर इस घटना से प्रभावित हुए। उन्होंने बालक को अपना पुत्र बनाया, उसका पालन-पोषण बड़े प्रेम से किया। उसे सौंदर पेरुमाळ नाम दिया गया। आगे चलकर वह बालक सौंदर नंबि कहलाया। नंबि जब यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब राजा ने उसके विवाह का प्रबंध किया। पर शिवजी की आज्ञा कुछ और थी। पार्वती जी की सेविकाएँ परवे और संकिलि के नाम से अवतरित हुई थीं उनके साथ नंबि का जीवन व्यतीत होना चाहिए था। अतः शिवजी ने वृद्ध माहेश्वर के वेश में आकर विवाह भंग कर दिया और उसे अपना गुलाम बनाया। पादुका-सहित शिवालय में प्रवेश कर जब तक वह अदृश्य नहीं हुआ, तब तक नंबि की पूर्व-वासना नहीं जगी। उसके बाद नंबि यौवराज्य त्यागकर 'शिवपुत्र' बन गया। शिवजी का प्रसाद उसे प्राप्त था। मंदिर में उसने परवे को देखा। दोनों में प्रेम की बेल बढ़ी और वे दाम्पत्य-सूत्र में बद्ध हुए। शिव-विधान के अनुसार काँची के तिरुवत्तियूर में जब वह पहुँचा तब संकिलि से उसका प्रेम-संबंध हुआ। शिवजी की आज्ञा का उल्लंघन कर वह सांसारिक सुख में लीन नहीं रह सकता था। संकिलि को पाने के लिए उसने परवे को त्यागने की शपथ थी। शपथ ली भंग हुई तो उसे अपनी आँखें खोनी पड़ीं। तब वह दीन होकर भगवान से प्रार्थना करने लगा—पार्वती देवी को उस पर करुणा आई, उन्होंने अपनी एक आँख उसे प्रदान की। इस प्रकार इसके चरित्र से यह स्पष्ट है कि जो विश्वास करते हैं, उस पर भगवान का पूर्ण अनुग्रह होता है।

नई कविता *(हिं० प्र०)*

ऐतिहासिक दृष्टि से 'तारसप्तक' (दे०) के प्रयोग जब वाद बनकर विवाद खड़ा करने लगे तो 'नये पत्ते' (1953 ई०) और 'नई कविता' (1954 ई०) ने नई कविता के आंदोलन का सूत्रपात किया। आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचक छायावादोत्तर अद्यतन काव्य-प्रवृत्तियों को ही नई कविता में अंतर्भुक्त करने के पक्षपाती हैं। इस कविता की मुख्य प्रवृत्ति युग-यथार्थ का चित्रण है जो कहीं एकोन्मुख है और कहीं समाजोन्मुख। नये कवियों में अज्ञेय (दे०), मुक्तिबोध (दे०), गिरिजाकुमार माथुर (दे०), धर्मवीर भारती (दे०), शमशेर बहादुर सिंह, भवानीप्रसाद मिश्र (दे०) आदि प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

युग-यथार्थ के आग्रह से नये कवियों ने मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र की स्थापनाओं को किसी-न-किसी रूप में अंगीकार किया है। प्रभात, संध्या आदि के सार्वभौम प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण तद्वत्ता को आदर्श मान कर हुआ है। कविता की सामग्री में आयातित महानगरीय उपकरणों और लघु मानव के क्षणिक अनुभवों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। भाषा में अप्रचलित देशी-विदेशी शब्द और शैली में अगम्य प्रतीक संप्रेषण की समस्या उत्पन्न करते हैं। फिर भी यथार्थ का सूक्ष्म-संश्लिष्ट चित्रण और युगानुकूल मुहावरे का सर्जनात्मक प्रयोग नई कविता की उल्लेखनीय शैलीगत उपलब्धियाँ हैं।

नई समीक्षा *(हिं० पारि०)*

बीसवीं शती के प्रथम चरण में पश्चिम में कविता को भावावेगों की सहज अभिव्यक्ति मात्र न मानकर उसे कलात्मक रचना माना गया। कविता को भाव या विचार न मानकर 'पदार्थ' कहा जाने लगा, "ए पोयम शुड नॉट मीन बट बी"। ऐलेन टेट ने कहा कि कविता का उद्देश्य पाठक में रागात्मक मनःस्थिति उत्पन्न करना या उसके भाव-संस्कार जगाना नहीं, अर्थ-सौंदर्य का संप्रेषण करना है। अतः काव्यत्व का अधिवास शब्दार्थ के प्रयोग-कौशल में है। काव्य-संबंधी धारणा में परिवर्तन होने पर काव्यालोचन के प्रति दृष्टि बदलना स्वाभाविक था। अतः प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नई समीक्षा का जन्म हुआ। यद्यपि उसके पूर्व-चिह्न ह्यूल्मे, एज़रा पाउंड के चिंतन में मिलते हैं, परंतु आज वह प्रधानतः अमरीकी आंदोलन है और प्रसिद्ध आलोचक हैं—रॉबर्ट पैन वारेन, क्लींथ ब्रुक्स, ऐलेन टेट, ब्लैकमर, जॉन क्रो रैन्सम, एम्पसन और रैने वैलक। "द न्यू क्रिटिसिज़्म" का प्रयोग सर्वप्रथम जोएल स्पिगार्न ने 1911 ई० में किया पर उसकी परिभाषा देने का श्रेय जॉन क्रो रैन्सम को है जिन्होंने अपनी पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज़्म' में उसकी व्याख्या की।

ये आलोचक मानते हैं कि कविता में शब्द-अर्थ का सामान्य या साधारणीकृत प्रयोग न होकर उसका विशेष और मूर्त प्रयोग होता है; कवि सामान्य अर्थ को सुरक्षित रखते हुए भी कविता में अतिशय अर्थ भर देता है और इसके लिए उसके पास साधन हैं—वर्ण-विन्यास, शब्द-विधान, बिंब-सृष्टि, प्रतीक, रूपक, विशिष्ट संदर्भ से आलोकित शब्दार्थ, अनेकार्थता (एम्बिग्विटी), नाद-सौंदर्य और छंद-योजना। कविता की सफलता का आधार माना गया विषय और भाषा का तालमेल; क्योंकि कथ्य और कथन-पद्धति को ये लोग एकरूप (को-टर्मिनस) मानते हैं, लक्षणा, उपचारवक्रता को अलंकार-मात्र न मानकर उसका प्राण-तत्त्व कहते हैं।

काव्य और काव्य-भाषा-विषयक इस धारणा-परिवर्तन के फलस्वरूप आलोचना का कार्य भी शब्द-प्रयोग का गहन अध्ययन और अर्थ-मीमांसा, कविता की संरचनात्मक अन्विति की खोज, उसकी जटिल संरचना का परीक्षण करना हो गया। लियो स्पिट्ज़र का मत है, "कविता की रचना का आधार शब्द ही हैं—ये शब्द अपने सामान्य अर्थ को सुरक्षित रखते हुए कवि-प्रतिभा के जादू से छंद के साँचे में ढलकर अतिशय अर्थ की सिद्धि करते हैं; इस अर्थ-परिवर्तन की विधि का विवेचन करना आलोचक का कर्तव्य-कर्म है।" अब आलोचक पाठ-विश्लेषण द्वारा काव्य-भाषा के विभिन्न सौंदर्य-तत्त्वों का संधान और विश्लेपण, छंद और लय का अध्ययन कर अर्थ-गौरव में उनके योगदान पर प्रकाश डालने लगे। कविता के तंतु-विन्यास (टैक्सचर) की बारीकियों और संरचना (स्ट्रक्चर) को अलग-अलग देखा जाता है, उसके समग्र रूप और अंगों के अंतःसंबंधों का विश्लेषण कर मूल भावना को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। नई समीक्षा की प्रविधि-प्रक्रिया के तीन सोपान हैं—रचना का वाक्यार्थ प्रस्तुत करना, शब्द-विधान की बारीकियों को दिखलाकर कवि-कौशल पर प्रकाश डालना और तंतु-विन्यास का संरचना के साथ समन्वय करते हुए रचना के मूल अर्थ को प्राप्त करना। यह आलोचना कविता के गठन और स्वरूप का अध्ययन करती है, मूल्यों के स्थान पर शिल्प-पद्धति के प्रति उसका अधिक आग्रह रहता है।

बीच के काल में रचना के रूप-शिल्प और भाषा-सौष्ठव के उद्घाटन की उपेक्षा हुई थी; आलोचक का सारा ध्यान विचार-तत्त्व और भाव-सौंदर्य के मूल्यांकन पर केंद्रित रहता था। नई समीक्षा ने रूप-शिल्प संबंधी सौंदर्य के प्रति आलोचकों की इस उदासीनता पर प्रहार किया। इस योगदान को स्वीकार करते हुए भी नई समीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कतिपय सीमाओं की ओर ध्यान जाए बिना नहीं रहता। कला-कृति को स्वतः संपूर्ण मानकर उसे कवि, परिवेश और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अलग कर उसका मूल्यांकन करना, शब्द-विधान आदि रूप-शिल्प संबंधी उपकरणों को ही सब कुछ मानना उचित नहीं है। इस दृष्टि का कुपरिणाम यह होगा कि काव्य-रचना में जटिलताओं को अधिक महत्व मिलेगा, बौद्धिक व्यायाम की क़द्र होगी, भावोत्कर्ष, सुरुचि-संस्कार और विचार-गांभीर्य को कम महत्व दिया जाएगा। नई समीक्षा काव्य के अनुभव को प्रत्यक्ष, गोचर और तात्कालिक मानती है, इससे शाश्वत, सार्वभौम, चिरंतन भावों-विचारों के काव्य-सिंहासन से अपदस्थ होने का भय है। नई समीक्षा कृति में भाव-मुक्तता खोजने के स्थान पर रूप-शिल्प के विवेचन-विश्लेषण पर ही अधिक बल देने के कारण वह रसास्वादन में बाधक और इलियट के अनुसार नींबू-निचोड़ बन गई है। कोलरिज की दो कविताओं का 600 पृष्ठों में विविग्स्टन लो द्वारा किया गया विवेचन-विश्लेषण इसका ज्वलंत प्रमाण है। नई समीक्षा-पद्धति का प्रयोग यद्यपि उपन्यास, कहानी आदि के क्षेत्र में भी हुआ है, पर वह प्रगीत और मुक्तक के ही लिए अधिक उपयोगी है।

यह आलोचना-पद्धति भारत के लिए एकदम नई नहीं है। संस्कृत काव्यों के टीकाकारों ने उसका प्रयोग किया ही था, आज भी (निश्चय ही पश्चिम के प्रभाव के कारण) कुछ विद्वान इस पद्धति का प्रयोग कर रहे हैं। यह अभी प्रयोग के रूप में ही है। उल्लेखनीय नाम हैं—डा० नगेंद्र (दे०), विद्यानिवास मिश्र, रमेश कुंतल मेघ और कुमार विमल।

नकल *(पं० पारि०)*

पंजाबी जन-जीवन में 'नकल' का प्रचार लोक-नाट्य के एक भेद के रूप में रहा है। विवाह-शादी अथवा मेले-ठेले में भांड़ और नकलची उपस्थित जनता का मनोरंजन करते हैं। इसमें किसी धनाढ्य अथवा उच्च पदासीन व्यक्ति के स्वभाव या कार्यों का उपहासपूर्ण अनुकरण प्रस्तुत किया जाता है। इसके माध्यम से अपने से ऊँचे लोगों के साथ बने मानसिक अंतर को कुछ समय के लिए समाप्त कर उनके साथ बराबरी का संबंध जोड़ा जाता है। इस प्रकार इसके माध्यम से वर्ग-विशेष के प्रति जन-सामान्य की कुत्सा का विरेचन होता है।

नक्कीरर *(त० ले०)* [समय—पहली या दूसरी शती ई०]

इस कवि के कई नाम हैं—कीरनार्, मदुराइ-नक्कीरर् और अध्यापक-पुत्र नक्कीरर्। 'कीरन्' वास्तविक नाम है; 'नल्'—विशेषण है जिसका अर्थ है 'अच्छा' या 'सत्'। ये मदुरै नगर के निवासी, विद्वानों के वंशज और अन्य कवियों द्वारा बहुधा-प्रशंसित थे। कुछ समय तक ये तमिल-साहित्य के संवर्द्धन के लिए पांड्य राजाओं द्वारा स्थापित तृतीय तमिल-विद्वत्-संघ के अध्यक्ष भी थे। तमिल-साहित्य के एक विशिष्ट लक्षण-ग्रंथ 'अकप्पोरुळ' की इन्होंने गद्यात्मक व्याख्या की है। इसी व्याख्या में तीन तमिल-संघों की स्थापना के विवरण उपलब्ध होते हैं। ये वास्तव में महाकवि थे। इनके दो लघुप्रबंधात्मक काव्य प्राप्त हैं—(1) 'तिरुमुरुक-आट्रुप्पडै' (श्री सुब्रह्मण्य भगवान की प्रशस्ति) (317 पंक्तियाँ); (2) 'नैडु-नल्-वाडै' ('पवन-स्पर्श'—विरह-वर्णन) (188 पंक्तियाँ)। इनके विरचित 35 पद्य 'अष्ट संकलन' में उपलब्ध होते हैं।

उक्त काव्य-कृतियों में तमिल-काव्यशास्त्रीय परंपराओं के अनुसार 'अहम्' (आंतरिक प्रेमानुभूति) और 'पुरम्' (वीरता, दानशीलता आदि सामाजिक व्यापार) के वर्णन अत्यंत मनोहर हैं। 'मुरुग' भगवान की प्रशस्ति सुब्रह्मण्य-भक्तों का कंठहार है।

नक्सी काँथार माठ *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

'नक्सी काँथार माठ' कवि जसीमुद्दीन द्वारा रचित बंगाल के ग्राम-जीवन का बहुत ही सुललित आलेख है। संपूर्ण काव्य 14 सर्गों में बँटा हुआ है। काव्य का नायक है रूपा एवं नायिका सोना। क्षुद्र एवं साधारण ग्राम-जीवन की करुण कहानी के आश्रय से ग्राम्य शब्दावली में गाँव की कहानी की सृष्टि में सिद्धहस्त कवि ने इस वियोगांत काव्य की रचना की है। रूपा गाँव के किसान का लड़का है एवं किसान की ही लड़की है सोना। उनके जीवन का इतिहास नक्सी काँथा (फटे हुए कपड़ों के द्वारा सिली हुई फूलदार चादर) में लिपिबद्ध हैं। अश्रु-हँसी-विजड़ित दाम्पत्य जीवन का चित्र ही इस 'काँथा' (चादर) का प्रकृत उपकरण है। उनके जीवन के सुख के चित्र से यह 'काँथा' बनना शुरू होता है एवं विरह-कातरता में उसका पर्यवसान हो जाता है।

चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से इस काव्य में लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने असाधारण मनस्तत्व का परिचय दिया है और ग्राम्य परिवेश एवं ग्राम्य बिंबों का सफलता के साथ प्रयोग किया है। गौण कथा-धाराएँ जुड़ी हुई न होने के कारण कहानी की गति सरल रेखा के अनुरूप पाठकों के औत्सुक्य को बढ़ाती हुई आगे बढ़ती है। कहानी में नाटकीयता है एवं साथ ही गीति-काव्य का पूरा आस्वाद इसमें मिलता है। भाषा जीवंत एवं द्रुतगामी है। जसीमुद्दीन की कविता सायास नहीं, स्वतः स्फूर्त है। उनकी कवि-सत्ता गाँव के रूप, रस, शब्द, गंध, स्पर्श के साथ मिलकर एकदम एकाकार हो गई है। ग्राम की स्वल्प परिधि में ही कवि ने जीवन के शतदल की सुरभि फैलाकर अपनी काव्य-प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है।

नक़्श-ओ-निगार *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1943 ई०]

'जोश' मलीहाबादी (दे०) की इस काव्य-कृति में बिंब-विधान इतना सशक्त और सजीव है कि पाठक मंत्रमुग्ध हो जाता है। भाषा-शैली और प्रतीकात्मकता की दृष्टि से 'जोश' पर सुप्रसिद्ध फ़ारसी कवि 'हाफ़िज' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ की कविताएँ इस संग्रह की शोभा हैं। श्रृंगार और यौवन का विषय भी 'जोश' साहब का विशिष्ट विषय है। अतः इस विषय से संबद्ध सजीव कविताओं की भी इसमें कमी नहीं है। 'यह कौन उठा है शरमाता', 'उठती जवानी', 'यह नज़र किसके लिए है', 'जमना के किनारे', 'गंगा के घाट पर', 'जंगल की शहज़ादी', 'कोहिस्तान-ए-दकन की औरतें' और 'जवानी का तक़ाज़ा' आदि कविताएँ अत्यंत सरस सुमधुर और सजीव हैं। 1927 ई० से 1935 ई० तक रचित ग़ज़लें और कविताएँ इस काव्य-संग्रह में संगृहीत हैं।

नगीनदास पारेख *(गु० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत समीक्षा-ग्रंथ 'अभिनवनो रस-विचार अने बीजा लेखो' के लेखक नगीनदास पारेख पिछली अर्द्ध-शती से शब्दोपासना में संलग्न हैं। इसी के फलस्वरूप इनके लगभग 75 ग्रंथ गुजराती भाषा को प्राप्त हुए हैं। इनमें लघुकाय, बृहद्काय, मौलिक, संपादित, अनूदित एवं रूपांतरित सभी प्रकार की कृतियाँ हैं। नगीनदास पारेख ने गुजरात विद्यापीठ और शांतिनिकेतन में शिक्षा ग्रहण की है। इन पर विशेषतः महात्मा गांधी (दे०) तथा गुरुदेव रवींद्रनाथ (दे०) का प्रभाव पड़ा है। ये गुजराती भाषा-साहित्य के प्राध्यापक हैं।

नगीनदास भाई मुख्य रूप से आलोचक हैं। 'परिचय और परीक्षा', 'स्वाध्याय और समीक्षा', 'अभिनव नो रस विचार' वग़ैरा इनके समीक्षा-ग्रंथ हैं। इनमें विचारों और निर्णयों की स्पष्टता, नीरक्षीर-विवेक की कौशिकी दृष्टि, सहृदय की उदारता और पंडित की प्रज्ञा पाई जाती है। 'ग्रंथकीट' के उपनाम से इन्होंने गुजराती कृतियों के जो विवेचन-विश्लेषण किए हैं उनमें ये जाग्रत साहित्य-प्रहरी दृष्टिगत होते हैं। नगीनदास भाई का अन्य महत्वपूर्ण कार्य बँगला और अँग्रेज़ी भाषा के साहित्यशास्त्र-विषयक तथा विशिष्ट चिंतन एवं विचार-प्रधान ग्रंथों का गुजराती में प्रामाणिक अनुवाद है। उक्त भाषाओं की कहानियों और उपन्यासों का भी इन्होंने रूपांतर किया है। इनकी अनूदित रचनाओं में मूल कृतियों का सा रस प्राप्त होता है। नगीनदास पारेख विद्वत्ता, सन्निष्ठा और सूक्ष्म चिंतन के कारण सर्वत्र समादृत हैं।

नगेंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म अलीगढ़ जिले के अतरौली गाँव में हुआ। इन्होंने अँग्रेज़ी तथा हिंदी में एम० ए० करने के अनंतर हिंदी में डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। यद्यपि इनके साहित्यिक जीवन का आरंभ काव्य-रचना से हुआ तथा इनकी प्रथम प्रकाशित कृति 'वनमाला' (1937) काव्य-संकलन ही है, किंतु ये बहुत शीघ्र ही आलोचना की ओर प्रवृत्त हो गए और इस काव्य-संकलन के एक वर्ष बाद ही छायावादी (दे० छायावाद) कवि सुमित्रानंदन पंत (दे०) के काव्य-सौंदर्य का सोदाहरण तथा सप्रमाण विवेचन करने वाली इनकी एक महत्वपूर्ण कृति 'सुमित्रानंदन पंत' (1938) शीर्षक से प्रकाशित हुई जिसका नोटिस लेते हुए छायावाद के कट्टर आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) को भी यह लिखना पड़ा कि छायावाद की रचना-प्रक्रिया को भली भाँति स्पष्ट करने वाली यह पहली ठिकाने की पुस्तक है। तदनंतर इन्होंने 'साकेत : एक अध्ययन' (1939) में सृजन-प्रेरणा, कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि, शैली और प्रसाधन आदि विभिन्न दृष्टियों से 'साकेत' (दे०) का मूल्यांकन करते हुए अपनी सूक्ष्म पकड़ तथा स्वच्छंद प्रतिपादन शैली का परिचय दिया। इसके बाद इनकी आलोचना-पद्धति पर फ़ायडीय मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित होता है जिसकी स्पष्ट छाप 'आधुनिक हिंदी नाटक' (1940) में देखी जा सकती है। डी० लिट्० की उपाधि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए लिखे गए शोध-प्रबंध 'रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता' से इनका झुकाव सैद्धांतिक आलोचना की ओर हो गया तथा इन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन-मनन करते हुए उसके सिद्धांतों का तर्कपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया। इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों—यथा संस्कृत के 'ध्वन्यालोक' (दे०), 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' (दे०), 'वक्रोक्तिजीवित' (दे०) तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अंतर्गत अरस्तू के काव्यशास्त्र और लोंजाइनस के 'काव्य में उदात्त तत्त्व' आदि ग्रंथों के अनुवाद तैयार कराए और उन पर विस्तृत विश्लेषणात्मक भूमिकाएँ लिखकर व्याख्यान, विश्लेषण एवं तुलना द्वारा दोनों के समान तत्त्वों की खोज का सफल एवं स्तुत्य प्रयत्न किया। इन्होंने अनेक महत्व-पूर्ण काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन भी किया जिसका प्रारंभ 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका' से माना जा सकता है। इसकी चरम परिणति 'रस-सिद्धांत' (दे०) (1964) में हुई है जिसमें इन्होंने इसके बाहर न तो काव्य की कोई गति मानी है और न उसकी कोई सार्थकता। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का परिचय देने के लिए इन्होंने 'काव्य-बिंब' (1967) तथा 'नयी समीक्षा : नये संदर्भ' (1970) पुस्तकों का प्रणयन किया। पुस्तकाकार कृतियों के साथ-साथ इन्होंने समय-समय पर साहित्यिक समस्याओं, महत्वपूर्ण काव्यकृतियों तथा शोध-संबंधी विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण निबंधों की रचना भी की है। प्रारंभ में ये निबंध 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्लेषण', 'अनुसंधान और आलोचना', 'आलोचक की आस्था' आदि में प्रकाशित हुए तथा बाद में इनका बृहदाकार समवेत संकलन 'आस्था के चरण' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। निबंध तथा समालोचना के अतिरिक्त इन्होंने यात्रावृत्त तथा संस्मरणात्मक रेखाचित्र भी लिखे हैं जो क्रमशः 'आप्रवासी की यात्राएँ' तथा 'चेतना के बिंब' में संकलित हैं। समग्रतः ये हिंदी के मूर्द्धन्य आलोचक हैं।

नङ्ङेमक्कुट्टि (मल० कृ०) [रचना-काल—1959 ई०]

ओळप्पमण्णा (दे०) का खंडकाव्य। इसमें एक यथास्थितिवादी नंपूतिरि परिवार की कन्या के गर्भवती होने और घर से निकाले जाने की कथा है। नवजात शिशु के साथ घर वापस आने पर उसके माता-पिता मूक वेदना का अनुभव ही कर पाते हैं, वे निष्क्रिय रह जाते हैं और 'नङ्ङेमक्कुट्टि' वापस चली जाती है।

अंध समाज-नीति की जकड़न में घुटने वाले मानव-हृदय की पीड़ा का वर्णन इस काव्य का विषय है। नंपूतिरि समाज में महिलाओं द्वारा सही जाने वाली यातनाएँ कई कवियों का प्रिय विषय रही हैं, परंतु एक खंड-काव्य के रूप में इस विषय का प्रस्तुतीकरण केवल ओळप्पमण्णा द्वारा ही हुआ है। इस काव्य की दूसरी विशेषता इसमें प्रयुक्त 'गायत्र' छंद है जो अनुष्टुप छंद के तीन पादों से बना 'असममित' छंद है। बाद में इस छंद को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। आधुनिक काल के खंडकाव्यों में 'नङ्ङेमक्कुट्टि' का ऊँचा स्थान है।

नच्चिनार-किनियर् *(त० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

'तोलकाप्पियम्' (दे०) नामक तमिल लक्षण-ग्रंथ के व्याख्याताओं में ये भी एक हैं। इनका यह साहित्यिक उपनाम प्रतीत होता है जिसका अर्थ है—'सुहृत्-प्रिय'। 'तोलकाप्पियम्' की अनेक व्याख्याओं में से इनकी तथा 'इलमपूरणर्' (दे०) की ही व्याख्याएँ पूरी उपलब्धि हुई हैं। इन्होंने स्थान-स्थान पर 'इलमपूरणर्' के कथन का खंडन किया है। अतः इनका समय बाद का विदित होता है। इनकी भाषा-शैली प्रौढ़ और सुगठित है। 'तोलकाप्पियम्' के तृतीय भाग—काव्यशास्त्र—की व्याख्या अत्यंत उपयोगी और ऐतिहासिक महत्व की है। इनकी व्याख्याओं में अनेक अनुपलब्ध संघकालीन कृतियों के अंश उद्धरण-रूप में उपलब्ध होते हैं।

नज़रुल इसलाम *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1976 ई०]

विद्रोही कवि नज़रुल इसलाम बँगला काव्य-जगत् के ऐसे विलक्षण कवि हैं जिनके प्रथम काव्य-संग्रह 'अग्निबीणा' (1922) की भाव-झंझा से ही समस्त बंगाल चकित हो उठा था और पहले ग्रंथ के प्रकाशन से ही जिन्होंने बंगालियों के हृदय में स्थान बना लिया था। इन्होंने सांप्रदायिक भेदभाव से अलग होकर भारतवासियों को स्वाधीनता का मंत्र पढ़ाया था। पाक्षिक पत्रिका 'धूम-केतु' (1922) के प्रकाशन पर इन्हें जेल जाना पड़ा था। इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं : अग्निबीणा (1922), 'दौलन चापा' (1923), 'विषेर बाँशी' (1924), 'भांगार गान' (1924), 'फणिमनसा' (1924), 'पूबेर' हाओआ' (1925), 'संध्या' (1929), 'सुरासाकी' (1932),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जुलफिकार' (1932), 'सिंधु हिल्लोल' आदि ।

स्वाधीनता-संग्राम के उस युग में इनके काव्य में समग्र युग का प्राण स्पंदित हो उठा था । इनकी कविता में निर्जीव, निश्चेष्ट, निष्प्रेषित मानव-मन के विरुद्ध चित्त की असहिष्णुता एवं विद्रोह प्रकट हुआ है । मुसलमान होने पर भी इन्होंने रक्तांबर-धारिणी माँ को लेकर कविता की है और दुर्गापूजा के अवसर पर 'आगमनी' कविता लिखी है । इनकी कविता में धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति गहरा व्यंग्य है और जाति की गुलामी के प्रति निदारुण कशाघात । इस प्रकार की विद्रोहात्मक, ध्वंसात्मक, आवेग-उच्छ्वसित कविता की रचना करते हुए पता नहीं कब कवि ने प्रेम का मार्ग पकड़ा । इनकी प्रेम-कविताएँ बँगला-काव्य की श्रेष्ठ संपदा हैं और इस प्रकार की कविताएँ लिखकर इन्होंने अति-आधुनिक कवियों का पथ-प्रदर्शन किया है । इनकी प्रेम-कविताओं में देह की स्तुति है परंतु कहीं भी ये संयमहीन नहीं हुए हैं । इनकी कविता की विशिष्टता इनके छंदों की गति और वाक्भंगिमा की ओजस्विता में निहित है । असहयोग आंदोलन के समय बँगला साहित्य-क्षेत्र में जो विद्रोह-अग्नि धधक उठी थी बहुतांश में उसका श्रेय नज़रुल को ही प्राप्त है ।

नजाबत *(पं० ले०)* [समय—अठारहवीं शती का मध्यकाल]

पंजाबी 'वार-काव्य' (दे०) के उत्कृष्ट रचयिताओं में नजाबत कवि का नाम महत्वपूर्ण है । इनके जन्म-समय और स्थान के संबंध में कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है । पंजाबी-साहित्य के विभिन्न इतिहास-ग्रंथों में इन्हें ज़िला शाहपुर के 'मटीला हरलां' नामक स्थान का निवासी बताया गया है जो 'हरल' राजपूतों की बस्ती थी । इसी आधार पर कवि नजाबत के भी हरल राजपूत होने का अनुमान लगाया जाता है । कहते हैं, कुछ समय पश्चात् ये 'पिंडी चिराग़शाह' (वर्तमान रावलपिंडी) के संस्थापक सैयद शाह चिराग़ के शिष्य बन गए । इनके द्वारा लिखित 'वार नादरशाह' (दे०) के नाम से एक रचना मिलती है जो पंजाबी साहित्य में गुरु गोविंदसिंह (दे०)-कृत 'चंडी दी वार' (दे०) के पश्चात् दूसरी महत्वपूर्ण वार-कृति मानी जाती है । कुछ विद्वान इस युद्ध-काव्य का रचयिता सैयद शाह चिराग़ को मानते हैं । उनका अनुमान है कि नजाबत ने अपने गुरु की रचना को ही यत्किंचित् संशोधन के साथ अपने नाम से प्रचारित कर दिया । किंतु यह अनुमान निराधार प्रतीत होता है क्योंकि समूचे काव्य के अनेक पद्यों में कवि नजावत का नामोल्लेख मिलता है जो छंद-रचना में पूरी तरह संगत बैठता है ।

'वार बादशाह' (दे०) के अध्ययन से पता चलता है कि नजाबत एक बहुज्ञ, अनुभवशील एवं उदार आस्थावादी कवि थे ।

'नज़ीर' अकबराबादी *(उर्दू० ले०)*

इनका पूरा नाम वली मुहम्मद और पिता का नाम मुहम्मद फ़ारूक़ था । इनका जन्म दिल्ली में हुआ । अपने पिता के बारह बच्चों में से केवल यही बच रहे थे, इसलिए इनके पिता इन्हें बहुत प्यार करते थे । अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय ये दिल्ली से आगरा चले गए और वहीं रहने लगे । इन्होंने थोड़े दिनों तक मथुरा में अध्यापन-कार्य भी किया । ये स्वभाव से बहुत मिलनसार व्यक्ति थे । अपने जीवन में इन्हें संगीत, व्यायाम और खेल-तमाशे आदि के प्रति विशेष रुचि थी किंतु वृद्धावस्था में ये बहुत सादा तथा सूफ़ी स्वभाव के बन गए थे ।

नज़ीर का काव्य उपदेशों से ओतप्रोत है । इसके अध्ययन से ऐसा लगता है जैसे कोई महामानव अथवा संत प्रवचन कर रहा हो । दस-ग्यारह कविताएँ तो ऐसी हैं जिन्हें फ़कीर लोग मधुर स्वर में पढ़कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हैं ।

इनकी भाषा सरल तथा सहज प्रसाद गुण-संपन्न है । इनके काव्य में सूफ़ियाना रंग और नैतिकता का प्राबल्य है । नज़ीर अपनी उदार दृष्टि, स्वतंत्र विचारों तथा निष्पक्ष वृत्ति के कारण अन्य कवियों से पृथक् स्थान के अधिकारी बन गए हैं । ये एक शुद्ध भारतीय कवि हैं । इनके भाव, भाषा, विषय सभी भारतीय रंग में रँगे हैं । इन्होंने जन-जीवन का अत्यंत मार्मिक वर्णन किया है ।

नज़ीर अहमद *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1826 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

पिता का नाम—मौलवी नसरुल्ला खाँ । ये उर्दू के उच्चकोटि के गद्य-लेखक थे । ये उर्दू के सबसे पहले उपन्यासकार भी थे । 'मरात उल-उरूस', 'बनात-उल-नअश', 'तौबा तुलनसूह', 'इब्न-उल-वक्त' आदि इनके उपन्यास हैं । इन्होंने धर्म, नीति और व्याकरण पर अनेक पुस्तकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रणयन भी किया। 'तर्जुमा क़ुरान शरीफ़' इनकी प्रसिद्ध कृति है। वे कुशल अनुवादक भी थे। अपने इसी गुण के कारण एक साधारण अध्यापक के पद से उन्नति करते-करते डिप्टी कलक्टर हो गए थे और बाद में अँग्रेज़ी सरकार की नौकरी छोड़ कर आठ सौ रुपये मासिक वेतन पर हैदराबाद चले गए थे। ये अँग्रेज़ी से उर्दू अनुवाद करने में भी सिद्धहस्त थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अँग्रेज़ी शासन ने इन्हें 'शम्स-उल-उलेमा' (विद्या-मार्तंड) की उपाधि प्रदान की थी। ये उच्चकोटि के वक्ता भी थे। वृद्धावस्था में इन्हें काव्य-रचना के प्रति भी मोह हो गया था परंतु इनकी ख्याति का मूल कारण इनका अनुवाद-कार्य और उपन्यास-लेखन ही है। भारतीय दंडसंहिता का अनुवाद अँग्रेज़ी से उर्दू में तत्कालीन शासन द्वारा इन्हीं से कराया गया था। इनके उपन्यासों में समाज-सुधार की प्रवृत्ति अत्यंत मुखर है। इस्लामी सभ्यता और संस्कृति के सजीव चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। 'मरात-उल-उरूस' में इन्होंने नारी-भावना का सुंदर चित्रण किया है। इनका गद्य सप्रवाह और मुहावरेदार है। इनके लेखों में कहीं-कहीं शिष्ट हास्य भी दृष्टिगोचर होता है।

नज़्म *(उर्दू० पारि०)*

वह शेर जो छंदोबद्ध हो तथा जिसमें तुक (क़ाफ़िया) मौजूद हो, नज़्म कहलाता है। शेर के लिए छंदोबद्ध होना आवश्यक नहीं समझा जाता किंतु नज़्म के लिए छंद अनिवार्य है। इसी प्रकार क़ाफ़िया (तुक) शेर के लिए ज़रूरी नहीं किंतु नज़्म के लिए ज़रूरी है। नज़्म अँग्रेज़ी शब्द 'वर्स' का पर्याय है जबकि शेर को पर्यायवाची शब्द 'पोयट्री' समझना चाहिए। नज़्म को पद्य भी कह सकते हैं और यह 'नस्र' (गद्य) का विलोम शब्द है।

नज्म-उन्निसा *(उर्दू० पा०)*

'नज़्म-उन्निसा' मीर हसन की मसनवी 'सिह्‌र-उल-बयान' की एक प्रभावशाली पात्र है जिसमें जीवंतता, चतुरता तथा सक्रियता का समन्वय है। वफ़ादारी और बलिदान इसके स्वभाव के विशेष गुण हैं। इसके लिए श्रृंगारिक भावनाओं का कुछ महत्व नहीं है। यह एक अविवाहिता कन्या है और 'बद्र-ए-मुनीर' का साज-श्रृंगार करने का कर्तव्य पालन करती है। बेनज़ीर और बद्र-ए-मुनीर की प्रथम भेंट के समय यह बद्र-ए-मुनीर को मज़े लूटने के लिए उकसाती है। यह प्रेरणा कुछ विचित्र-सी लगती है। लगता है, वृद्धावस्था में भी कवि का यौवन नज़्मुन्निसा के मुख से बोल उठा है।

नज़्मुन्निसा जीवन को हँसी-ख़ुशी काटने में विश्वास करती है। यह विरह-पीड़िता बद्र-ए-मुनीर को बड़े स्नेह तथा युक्तिपूर्ण ढंग से धीरज बँधाने का प्रयत्न करती है और अकेली शाहज़ादा बेनज़ीर को ढूँढ़ने निकल पड़ती है।

इसके चरित्रांकन में जहाँ एक ओर विकास, दृढ़ता, और साहस का परिचय मिलता है वहीं आचरण के कुछ स्तरों पर अनौचित्य का पुट बड़ा स्पष्ट और सुनिश्चित है।

नटराजन्, क० से० *(त० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनका जन्म जाफना (लंका) में हुआ था। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ कविता-रचना द्वारा किया था। इन्होंने कुछ प्राचीन तमिल-काव्यों के संपादन और प्रकाशन का कार्य किया है। नटराजन् ने उत्तरी लंका के इतिहास पर कुछ प्रबंध लिखे हैं। इनकी कविताओं का एकमात्र प्रकाशित संग्रह है—'शिलंबोलि'। लंका में रचित तमिल काव्य के इतिहास में इसका विशिष्ट स्थान है। नटराजन् का लंका के तमिल कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नटसार्वभौम *(क० कृ०)*

यह कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासकार स्व० अ० न० कृष्णराय (दे०) के श्रेष्ठ उपन्यासों में से है। अ० न० कृ० ने हर प्रकार की कला के धनियों के जीवन पर उपन्यास लिखे हैं। 'संध्याराग' (दे०) में एक गायक का जीवन है तो 'उदयराग' में एक चित्रकार का। उसी प्रकार यहाँ एक नट के जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण है। उन दिनों अभिनेताओं का उतना मान नहीं था जितना आज है। उसमें भी नाटक में अभिनय को वृत्ति बनाने वालों का जीवन और भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। जीवन संघर्षों का जीवन था। राजा इसका नायक है। वह अपनी अभिनय-कला के कारण कर्णाटक का नट-सम्राट बनता है। किंतु ऐसा बनने में उसका जीवन किन-किन उतार-चढ़ावों में गुज़रा—इसका भी चित्रण है। राजा कला का उपासक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कला के साथ ही उसमें कई दुर्व्यसन भी हैं। उसका प्रेम कितनी ही नटियों व गृहिणियों के साथ होता है। ऐसी जगहों में वह एक 'नट' नहीं, 'विट' के रूप में आ जाता है। एक दृष्टि से इसे हम यथार्थवादी उपन्यास कह सकते हैं। स्वातंत्र्य-पूर्व कर्णाटक के रंगमंच का इतिहास इसमें निहित है। एक जन्मजात नट होने के कारण उसकी हर कहीं माँग होती है। वह एक नहीं, दर्जनों कंपनियों में जाता है। कंपनी-मालिकों की लंपटता, स्वार्थपरता आदि का अत्यंत सजीव वर्णन हुआ है। अंत में वह स्वयं एक नाटक-कंपनी खोलकर उसे आदर्श ढंग से चलाने का प्रयत्न करता है। इसमें उसके साथी कलाकार तथा अभिनेत्री व प्रेमिका नीला उसका साथ देते हैं। इस प्रकार उसका सारा जीवन रंगभूमि की सेवा में बीत जाता है। अंत में संघर्षों व अपने संयमरहित आचरण के कारण वह जल्दी ही कालकवलित हो जाता है। एक अभिनेता के जीवन को यहाँ लेखक ने अत्यंत आत्मीयता से चित्रित किया है। उनकी भाषा में एक विलक्षण जादू है। इस उपन्यास का स्थान कन्नड के उपन्यास-साहित्य में बहुत ऊँचा है।

नटेश शास्तिरियार् (त०ले०) [जन्म—1859 ई०, मृत्यु—1906 ई०]

ये 'पंडित नटेश शास्त्रिर' नाम से विख्यात हैं। इनका जन्म ज़िला तिरुच्ची में हुआ था। कुंभकोणम और मद्रास के गवर्नमेंट कालेजों में अध्ययन कर ये स्नातक बने थे, तथा 1881 ई० में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग में कार्य करने वाले 'राबर्ट शिवल' के अधीन नौकरी पर लगे थे। इनके तमिल और संस्कृत के पांडित्य से प्रभावित होकर सरकार ने इन्हें 'पंडित' उपाधि दी थी। मैसूर रियासत के पुरातत्त्व-विभाग में इन्होंने कार्य किया था। इसके बाद ये कुछ समय तक कारागार-अधीक्षक और रजिस्ट्रार भी रहे। तमिल, संस्कृत, अँग्रेज़ी के अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी, हिंदी, फ़्रेंच, जर्मन आदि अठारह भाषाओं का बहुत अच्छा परिचय इन्होंने प्राप्त किया था। इनके विरचित अनेक ग्रंथ हैं जिनका विषय-वैविध्य तथा गंभीर प्रतिपादन इनके पांडित्य तथा परिश्रम का साक्षी है। अँग्रेज़ी में—'हिंदू-त्यौहार', 'दक्षिण भारत की कथाएँ', 'तेनालि राम की कहानियाँ' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। संस्कृत में 'शाकुंतल नाटक विमर्शनम्', 'ईर्षाचरित्र-विमर्शनम्', 'रघुवंश विमर्शनम्' आदि विख्यात हुए। तमिल में वाल्मीकि रामायण', 'दो अनाथ बालक', 'दक्षिण की प्राचीन कथाएँ', 'ईसप की कथाएँ' आदि अनेक कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

नट्रिणै (त० कृ०) [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

'नट्रिणै' संघकालीन अष्ट-पद्य-संग्रहों (एट्टुत्तोगै) में सबसे प्राचीन एवं प्रमुख है। इसमें 9 से लेकर 12 पंक्तियों तक के 401 पद हैं। इन पदों के रचयिता 187 कवि हैं। इसमें जीवन के आंतरिक पक्ष का वर्णन होने के कारण इसे 'अहम्' (दे० अहप्पोरुल) काव्य में परिगणित किया जाता है। इस कृति का मूल भाव है— प्रेम। इसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं तथा पाँचों भूभागों में प्रेमियों के जीवन का विस्तृत वर्णन है 'नट्रिणै' में संयोग और वियोग-श्रृंगार के अनेक सुंदर चित्र प्राप्त होते हैं। इस कृति में तत्कालीन तमिल समाज में प्रचलित 'मडल् अरुदल्' नामक प्रथा का वर्णन हुआ है। अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने में असफल हो जाने पर प्रेमी ने ताड़ के पत्तों से बने एक घोड़े पर सवार होकर गली-गली घूमता था और प्रेमिका की प्राप्ति न होने पर आत्महत्या की धमकी देता था। ऐसा करने से उसे प्रायः अपनी प्रेमिका की प्राप्ति हो जाया करती थी। इस क्रिया को 'मडल् अरुदल्' कहते हैं। परवर्ती काल में इस प्रकार के वर्णनों के अनुकरण पर तमिल के भक्त कवियों ने 'मडल्' नामक काव्य की रचना की जिनमें भक्त प्रभु द्वारा न अपनाए जाने पर आत्महत्या की धमकी देता है।

नण्बर्क्कु (त० कृ०)

यह डा० मु० वरदराजन (दे०) के निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों में उल्लिखित तीन पात्र हैं—वळवन, एषिल, और नंबि। वळवन और एषिल युवा-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। नंबि उनका पारिवारिक मित्र है। इस संग्रह के सभी निबंध वळवन एवं एषिल के नाम नंबि के पत्रों के रूप में लिखित हैं। सभी निबंधों में युगीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। शैली की नवीनता के कारण इस कृति का तमिल निबंध-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

नदी के द्वीप (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष 1951 ई०]

अज्ञेय (दे०) ने अपने इस उपन्यास में प्रेम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौन-तृप्ति तथा विवाह-संबंधी समस्याओं को मनोविश्लेषणात्मक एवं फ्लैश बैंक की शैली का प्रश्रय लेते हुए चंद्र माधव, भुवन (दे०), गौरा (दे०) तथा रेखा के माध्यम से उद्घाटित किया है। पूरा उपन्यास अनेक खंडों में विभक्त है और जिस खंड में जिस पात्र-विशेष को प्रमुखता मिली है उसके आधार पर ही उसका नामकरण किया गया है। इसमें कतिपय स्थलों पर वासनात्मक तथा कामोत्तेजनापूर्ण चेष्टाओं का ब्योरेवार वर्णन है जिसके फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने इस पर अश्लीलता का आरोप लगाया है। वस्तुतः यह उपन्यास सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों के उपस्थापन के स्थान पर कतिपय व्यक्तियों के निजी जीवन की समस्याओं तथा मानसिक अंतर्द्वंद्व को रूपायित करता है और इस दृष्टि से इसे एक सर्वथा सफल कृति माना जा सकता है।

नदी सुंदरी *(तें० कृ०)*

'नदी सुंदरी' अब्बूरि रामकृष्णराव (दे०) की सुप्रसिद्ध नाटिका है। इसमें इन्होंने पौराणिक इतिवृत्त को आधार-रूप में ग्रहण कर, उसमें अपनी कल्पना-प्रतिभा का संयोजन करके इसके कथानक का निर्माण किया है। कोमल एवं मधुर भावनाओं की प्रधानता तथा रोचक प्रसंगों के निर्माण की चतुरता के कारण यह नाटिका पाठक के हृदय को भावावेग से आंदोलित करती है। इसके पात्र पौराणिक होकर भी नवीन भावनाओं एवं विचारों से पूर्ण हैं।

नन्नयभट्टु *(तें० ले०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

नन्नयभट्टु से पूर्व तेलुगु में साहित्यिक रचना का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए नन्नयभट्टु को ही तेलुगु का प्रथम कवि माना जाता है। 'आंध्र महाभारतमु' (दे०) को तेलुगु में आरंभ करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। इस से पहले तेलुगु भाषा का कोई व्याकरण नहीं था, कोई साहित्यिक परंपरा प्रचलित नहीं थी, प्रतिष्ठित छंदोविधान भी नहीं था और यहाँ तक कि संस्कृत की तुलना में तेलुगु को साहित्यिक क्षेत्र में कोई सम्मान भी प्राप्त नहीं था। इस वातावरण में नन्नयभट्टु को अपनी भाषा को परिमार्जित, परिनिष्ठित एवं सुव्याकृत रूप देकर उसे उत्कृष्ट साहित्य का सक्षम साधन बनाना और आगे का मार्ग प्रशस्त करना आवश्यक प्रतीत हुआ। 'आंध्र महाभारतमु' की रचना का श्रीगणेश कर उन्होंने यही काम किया। संस्कृत के श्लोक से ही 'आंध्र महाभारतमु' का आरंभ होता है। नन्नयभट्टु की भाषा में संस्कृत की प्रांजलता भी है और साथ-साथ तेलुगु की निजी मनोहारिता भी। दोनों भाषाओं के शब्दों को तेलुगु के आदि कवि ने इस प्रकार मिला दिया है कि आज भी साधारण पाठक को पता नहीं चलता कि कौन-सा शब्द संस्कृत का है और कौन-सा तेलुगु का। प्रसंगोचित भाषा का प्रयोग नन्नयभट्टु की एक और विशेषता है। वस्तुव्यंजना की कोमल कमनीयता के साथ शब्द-योजना की रमणीयता की ओर भी नन्नयभट्टु ने काफ़ी ध्यान दिया है। छंदों के प्रयोग में संस्कृत के छंदों के अलावा उन दिनों के लोक-गीतों में प्रचलित छंदों को परिमार्जित रूप देकर उनका यथेष्ट प्रयोग किया गया है। भाषा को व्याकृत रूप देने के लिए नन्नयभट्टु ने 'आंध्र शब्द चिंतामणि' (दे०) नामक व्याकरण-ग्रंथ की भी रचना की थी। इसको 'प्रक्रिया कौमुदी' भी कहा जाता है। संस्कृत की सूत्र-शैली में संस्कृत में ही यह लिखा गया था। इसी के आधार पर नन्नयभट्टु को 'वागनुशासन' कहा जाता है। 'आंध्र महाभारतमु' में नन्नयभट्टु के द्वारा प्रस्तुत प्रसंगों में शकुंतला और दुष्यंत का प्रसंग तथा द्रौपदी के चीर-हरण का प्रसंग उल्लेखनीय हैं। संवादों में पात्रोचित भाषा का प्रयोग करते हुए प्रसंगोचित मर्यादा का ठीक-ठीक पालन किया गया है। नन्नयभट्टु की रचना में उनके व्यक्तित्व की विशुद्धता स्पष्ट झलकती है। ये वैदिक धर्म के अनुयायी थे और राज महेंद्री के शासक राजराज नरेंद्रुडु के दरबार में राज कवि थे। उन्हीं की इच्छा से इन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'महाभारत' की रचना की थी।

'नन्ना', नंदलाल कौल *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1877 ई०; मृत्यु—1940 ई०]

इनके जीवन के संबंध में कोई विशेष प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं। 1931 ई० से पहले ही कवि और नाटककार के रूप में ये प्रसिद्ध हो चुके थे। 'सतच्य कहवट' 'रामुन राज', 'प्रह्लाद भगत' नाम के कश्मीरी नाटकों की इन्होंने रचना की। इनमें से राजा हरिश्चंद्र के जीवन से संबद्ध नाटक 'सतच्य कहवट' (सत्य की कसौटी) रघुनाथ मंदिर, श्रीनगर के मंच पर खेला भी गया था। इन्होंने 'देय लोल' आदि कश्मीरी कविताओं की भी रचना की। इनकी शैली में जहाँ भाषा की सरलता पाई जाती है, वहीं प्रसंग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भत्व के भी खूब उदाहरण मिलते हैं। कश्मीरी भाषा के नाटककार के रूप में इनका उत्कृष्ट स्थान है।

नन्नेचोडुडु *(ते० ले०)* [समय—1080-1125 ई०]

ये तेलुगु वीरशैव-संप्रदाय के सर्वप्रथम कवि थे। ये ओरयूरु के सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा थे जिन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा के कारण 'कविराज शिखामणि' तथा वीरता एवं पराक्रम के कारण 'टेंकणादित्युड' की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। नन्नेचोडुडु संस्कृत भाषा के भी विद्वान् थे। इन्होंने शैवमत के प्रचार के लिए शिव-संबंधी काव्य 'कुमारसंभवमु' (दे०) की रचना की जो तेलुगु साहित्य में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। परंतु यह काव्य कालिदास (दे०) के 'कुमारसंभवम्' (दे०) का अनुवाद नहीं है। इसके अंतर्गत दक्षिण भारत में प्रचलित अनेक शिव संबंधी कथाओं का समावेश किया गया है। यह बारह सर्गों का प्रबंध काव्य है जिसमें कवि ने संस्कृतनिष्ठ तेलुगु के स्थान पर सरल एवं स्वाभाविक तेलुगु का प्रयोग किया है। इस से तेलुगु के प्रति कवि का प्रेम तथा अपने संदेश को साधारण जनता तक पहुँचाने का आग्रह व्यक्त होता है। इनकी कविता में रजोगुण के साथ ही भक्ति का भी तीव्र आवेग तथा अकृत्रिम काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि ये नन्नयभट्टु (दे०) से भी पहले के कवि हैं, अतः इन्हीं को तेलुगु के आदिकवि होने का श्रेय मिलना चाहिए। तेलुगु के आदिकवि ये न भी हों, किंतु अनेक विषयों के प्रवर्त्तक अवश्य हैं। तेलुगु के परवर्ती प्रबंध-काव्यों का स्वरूप इनके 'कुमार संभवमु' के आधार पर ही स्थिर हुआ है तथा तेलुगु-कविता को संस्कृत शब्दों की अतिशयता से बचाकर उसे सरल-स्वाभाविक बनाने की दिशा में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

नबबाबूबिलास *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-आरंभ—5 मार्च, 1822 ई०]

'समाचार-चंद्रिका' पत्रिका के प्रख्यात संपादक भवानीचरण बंद्योपाध्याय ने अपनी 'कलिकाता कमलालय' (1813 ई०) पुस्तक में तीक्ष्ण व्यंग्य-विनोद का सुंदर परिचय दिया है। मुफ़स्सिल तथा कलकत्ता निवासियों के संलापों के माध्यम से उन्होंने अजब शहर कलकत्ते का वर्णन किया है। 'नबबाबूबिलास' ग्रंथ में भी कलकत्ता के धनी समाज के असंगत आचरण के अद्‌भुत चित्र अंकित हैं (1853 ई०)। इसके लेखक हैं प्रमथनाथ शर्मा। इस नाम को बहुत-से विद्वान् भवानीचरण का छद्मनाम मानते हैं। समसामयिक काल में रचित भोलानाथ बंद्योपाध्याय के 'नबबिबिबिलास' (1852 ई०) ग्रंथ की बात इस प्रसंग में स्मरण योग्य है।

नमिसाधु *(सं० ले०)* [समय—1025-1075 ई०]

रुद्रट के 'काव्यालंकार' (दे०) के टीकाकार नमिसाधु को श्वेतभिक्षु कहा गया है जिससे उनका श्वेतांबर जैन होना सिद्ध होता है। ये थारापद्रनगर के श्रीशालिभद्र सूरि के शिष्य थे। इनका स्थितिकाल ग्यारहवीं शती ई० का द्वितीय और तृतीय चरण है।

रुद्रट के 'काव्यालंकार' पर नमिसाधु-कृत टीका का नाम 'टिप्पण' है जो 1068-69 में लिखी गई। नमिसाधु प्राचीन ग्रंथकार हैं। उन्होंने पूर्ववर्ती टीकाकारों का अनुसरण किया है—पूर्वमहामति विरचित वृत्त्यनुसारेण किमपि (ययामि) और उनकी व्याख्याओं से पाठ भी उद्धृत किए हैं। उनकी टीका संक्षिप्त तथा विषयानुकूल है, फिर भी उसमें अनेक उद्धरण मिलते हैं। उन्होंने भरत, मेधाविरुद्र, भामह, दंडी (दे०) वामन आदि ग्रंथकारों तथा 'अर्जुन-चरित' (आनंदवर्धन (दे०), 'तिलकमंजरी' (दे०) (धनपाल), मृच्छकटिक, (दे०) 'मेघदूत' (दे०), 'शिशुपालवध' (दे०) आदि ग्रंथों का नामग्रहण किया है या उनसे उद्धरण लिये हैं। उन्होंने काव्यशास्त्र पर प्राकृत के एक लेखक 'हरि' का एक उद्धरण दिया है जिसमें रुद्रट की पाँच वृत्तियों के बजाय आठ वृत्तियों का उल्लेख किया गया है।

नम्माळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की नवीं शती का प्रथम चरण]

आळवार संतों में नम्माळवार का स्थान सर्वोपरि है। इनका जन्म तिरुक्कुरूर के एक अब्राह्मण परिवार में हुआ था। विभिन्न कारणों से इन्हें शठकोपर, परांकुशर, मारन आदि नामों से पुकारा गया। नम्माळवार को साक्षात् विष्णु का अवतार माना जाता है। विभिन्न विद्वान् नम्माळवार को अवयवी तथा अन्य आळवारों को अवयव स्वीकार करते हैं। नम्माळवार ने 'तिरुवाय्मोऴि',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तिरुविरुत्तम', 'तिरुवाशिरियम', तथा 'पेरिय तिरुवंदादि' नामक चार कृतियों की रचना की। 'तिरुविरुत्तम' में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक अथवा भगवद्प्रेम की व्यंजना है। 'तिरुवाशिरियम' का प्रमुख प्रतिपाद्य है ईश्वर-साक्षात्कार से उत्पन्न परमानंद का वर्णन। 'पेरिय तिरुवंदादि' में नम्माळवार ने ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का चित्रण किया है इस कृति का साहित्यिक सौंदर्य भी अक्षुण्ण है। तिरुवाय्मोषि नम्माळवार की ही नहीं अपितु तमिल के वैष्णव-भक्ति साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण रचना है। दक्षिण का वैष्णव समाज नम्माळवार की इन रचनाओं को क्रमशः साम, ऋक्, यजुः और अथर्ववेद को सार मानता है।

नयनंदी *(अप० ले०)* [रचना-काल— ग्यारहवीं शती ई०]

नयनंदी निर्दोष एवं जगविख्यात मुनि थे। इन की 'सुदंसण-चरिउ' और 'सकल-विधि विधान-काव्य' (दे०) नामक दो कृतियाँ उपलब्ध हैं। इन्होंने 'सुदंसण-चरिउ' (दे०) की रचना 1043 ई० में राजा भोजदेव के शासन-काल में अवन्ती देश-स्थित धारा नगरी में की थी। ये कुंदकुंदान्वय की आचार्य परंपरा में उत्पन्न माणिक्य नंदी त्रैविद्य के शिष्य थे। इन्होंने 'सुदंसण-चरिउ' की प्रत्येक संधि की पुष्पिका में अपने गुरु का नामोल्लेख किया है।

इन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में कोई जानकारी नहीं दी। ये काव्यशास्त्र और छंदःशास्त्र में निष्णात थे तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। इनके पांडित्य का प्रमाण इनकी कृति में स्थान-स्थान पर मिलता है। बाण और सुबंधु ने जिस क्लिष्ट और अलंकृत पदावली का गद्य में प्रयोग किया था, इन्होंने उसी शैली का पद्य में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।

नयनंदी विनीत स्वभाव और धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। ये जिन-वर्णन को ही कविता का प्रयोग समझते थे।

नयसेन (क० ले०) [समय— बारहवीं शती ई०]

नयसेन मध्यकालीस कन्नड साहित्य के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं। ये जैनधर्मी थे और मुनि के नाम से विख्यात थे। इनकी प्रतिनिधि कृति है 'धर्मामृत' (दे०) जो एक चंपूकाव्य है। इसमें जैनियों में विख्यात 14 गुणव्रतों का आचरण कर सद्गति को प्राप्त करने वाले 14 महापुरुषों की कहानियाँ 14 आश्वासों में कही गई हैं। कन्नड साहित्य के आदिकाल अथवा जैनयुग में पुराण केवल तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों पर लिखे जाते थे जो बहुत ही प्रौढ़ होते थे। इस कारण वे मामूली जनता की पहुँच से भी परे थे। किंतु जनसामान्य को ही दृष्टि में रखकर जैन-पुराण लिखने का श्रेय नयसेन को है। 'धर्मामृत' जनता के लिए लिखा कन्नड का सर्वप्रथम पुराण है। ग्रंथकार का दावा है कि उसने इसमें जैन धर्म का निचोड़ दे दिया है। इसमें उसकी कलादृष्टि के साथ लोकदृष्टि भी प्रकट हुई है। नयसेन बहुत बड़े क्रांतिकारी भी थे। इनके समय तक आते-आते कन्नड भाषा संस्कृत की स्वर्ण-शृंखला से जकड़ गई थी। नयसेन ने उसके विरुद्ध क्रांति का शंखनाद करते हुए कहा है—यदि संस्कृत शब्दों को कन्नड में प्रयुक्त करना हो तो वे शुद्ध संस्कृत में ही लिखा करें, शुद्ध कन्नड के साथ संस्कृत शब्दों को मिलाना घी और तेल के मिश्रण के समान है।

नयसेन जन्मजात कहानीकार थे। इनकी कहानियाँ मौलिक नहीं हैं। फिर भी मूल कथानक की नयी सृष्टि के द्वारा इन्होंने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। एक लोककथाकार के कथन-कौशल, विडंबना, व्यंग्य, जनभाषा का निकट संपर्क तथा लोकजीवन का गाढ़स्पर्श—ये सभी बातें इनकी कहानियों में मुखर हो उठी हैं। नयसेन में धार्मिक अभिनिवेश अधिक है। इस कारण इनकी सहजता और सुंदरता में कहीं-कहीं व्याघात पहुँचा है। इनकी शैली की यह विशेषता है कि अपने कथानकों के बीच उपमाओं की झड़ी लगा देते हैं। इन परंपरित उपमाओं में औचित्य, सुरुचि और जीवन की गहराई है। कहीं-कहीं कथा की गति में ये बाधक बन गई हैं। इनकी भाषा कहावतों और मुहावरों से भरी हुई चलती भाषा है। जनता-कवि कहलाने के योग्य गुण उनमें विद्यमान हैं।

नरपति नाल्ह *(हिं० ले०)*

नरपति नाल्ह की प्रसिद्ध रचना 'बीसलदेव-रासो' (दे०) है। इसके रचना-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कोई इसे 1016 ई० (संवत् 1073) की रचना मानते हैं और कोई 1155 अथवा 1156 ई० (संवत् 1212-1213) की। ग्रंथ के नायक विग्रहराज तृतीय का समय इतिहास के आधार पर 973-999 ई० (संवत् 1030-1056) माना जाता है और नरपति नाल्ह को यदि इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रित कवि मानें तो 'बीसलदेवरासो' का रचना-काल 1016 ई० उचित प्रतीत होता है, और इस आधार पर नरपति नाल्ह हिंदी के प्रथम कवि ठहरते हैं; किंतु इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ कह सकना सरल नहीं है, क्योंकि कुछ विद्वान् नरपति नाल्ह को विग्रहराज चतुर्थ (शासन-काल 1143-53 ई०) संवत् 1210-20) का समकालीन मानते हैं। ग्रंथ की भाषा में अपभ्रंश रूप और हिंदी रूप दोनों का मिश्रण है। अतः इस ग्रंथ की भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कह सकते हैं। भाषा शुद्ध साहित्यिक नहीं है, राजस्थानी है। ग्रंथ का काव्य-सौंदर्य मन-मोहक एवं अनूठा है। इसका कथानक एक नवोढा प्रोषित-पतिका की विरह-व्यंजना पर आधारित है।

नरसिंह मेहता *(गु० ले०)* [जन्म—1414 ई०; मृत्यु—1480 ई०]

'वैष्णव जन तो तेने रे कहिये'—इस प्रसिद्ध भजन के रचयिता गुजराती के आदि भक्त-कवि नरसिंह मेहता का जन्म जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के निकटवर्ती ग्राम तलाजा में हुआ था। बचपन में ही इन्होंने अपने पिता विष्णुदास तथा माता दयाकुँवर को खो दिया था। मातृ-पितृ-विहीन बालक नरसिंह भाई-भाभी के सहारे जी रहा था। भाभी के व्यंग्य वचनों से आहत हो नरसिंह ने घर छोड़ दिया। एक जीर्ण शिव-मंदिर में सात दिन तक ये शिवलिंग से लिपटे पड़े रहे। प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हें कृष्ण की रासलीला दिखाई। भगवान पर इन्हें अटल विश्वास था।

नरसिंह मेहता के नाम से प्राप्त कृतियाँ हैं 'कुंवर बाई नुं मामेरूं', 'शृंगारमाळा', 'रास सहस्रपदी' (दे०), 'सुदामा चरित्र', 'गोविंद गमन', 'सुरत संग्राम', 'हारमाळा', 'शामळशा नो विवाह', 'हुंडी', 'दाण लीला', 'रास लीला', 'चातुरी षोडशी' आदि। इनमें से 'हुंडी', 'सुदामा चरित्र,' कुंवर बाई नुं मामेरूं', 'हारमाळा' तथा 'शामळशा नो विवाह' अत्यंत प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

संत, भक्त व सुधारक नरसिंह मेहता ने जाति-पाँति का भेद-भाव दूर करने तथा अस्पृश्यता निवारण करने का महत् कार्य किया। 'झुलणा' छंद में रचित इनके भजन प्रभात में गाए जाने के कारण 'प्रभातियों' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचरण की पवित्रता पर इन्होंने बहुत बल दिया। गोपीभाव की (प्रेमलक्षणा) भक्ति का अनुसरण करते हुए भी नरसिंह नाथ-संप्रदाय से एवं ज्ञानदेव आदि से प्रभावित थे। इनके काव्य में निर्गुण और सगुण दोनों मतों के तत्त्व उपलब्ध होते हैं। कबीर (दे०) जैसा निर्भीक व फक्कड़ व्यक्तित्व लिये हुए नरसिंह ने लोक-संस्कार का अद्भुत कार्य किया। नरसिंह के व्यक्तित्व में एक ही साथ कवि, भक्त, संत व सुधारक का समुचित योग था।

नरसिंहराव, मुनिमाणिक्यम् *(ते० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

इनका जन्म आंध्र के गुंटूर ज़िले के अंतर्गत 'संगंजागर्लमूठि' नामक स्थान में हुआ। ये वृत्ति से अध्यापक हैं। आकाशवाणी भी कुछ समय तक इनका कार्यक्षेत्र रहा है। ये रसिक स्वभाव के हैं। इन्होंने स्वयं अनुभव करके अपनी रचनाओं के द्वारा यह बात प्रमाणित की है कि पारिवारिक जीवन नीरस अथवा यातनापूर्ण नहीं है बल्कि सरस और सुखद है। इनकी रचनाएँ ये हैं—'तिरुमालिग', 'उपाध्यायुडु', 'वक्ररेखा', 'अन्नयमंत्रि' आदि उपन्यास; 'तिरुगुबाटु', 'गृहप्रवेशमु', 'मुनिमाणिक्यं नाटिकलु', आदि नाटक; 'कांतं वृद्धाप्यम्', 'कांतम्', 'कापुरम्', 'नेनू मा कांतम्', 'मुनिमाणिक्यं कथलु' आदि कथा-रचनाएँ; 'तेलुगु हास्यमु', 'मन हास्यमु' जैसे आलोचनात्मक ग्रंथ तथा कुछ मनोरंजक निबंध। चाहे कथा-कविता हो अथवा नाटक या निबंध—इनकी सभी रचनाओं में सहज, मार्मिक तथा औचित्यपूर्ण हास्य का समावेश पाया जाता है; विशेषकर पारिवारिक जीवन तथा उसमें गृहिणी के नाना रूपों को जिस स्वाभाविकता और सरसता के साथ उन्होंने चित्रित किया है वह बात अन्य रचनाओं में बहुत कम पाई जाती है। शैली, कथानक, कथोपकथन आदि सभी बातों में इनकी रचनाएँ एक प्रकार की मौलिकता प्रकट करती हैं। ये प्रधानतः सरस कथा-लेखक के रूप में विख्यात हैं। 'कांतम्' (दे०) पात्र की सृष्टि में ये इतने सफल हुए हैं कि पाठकों का कहना है कि मुनिमाणिक्यम् कुछ लिखें तो कांतम् की कहानी ही लिखें तथा कांतम् की कहानी लिखनी है तो मुनिमाणिक्यम् ही लिखें।

नरसिंह शास्त्री, नोरि *(ते० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये गुंटूर ज़िले के अंतर्गत रेपल्ले के रहने वाले हैं और वृत्ति से वकील हैं। ये 'साहिती समिति' के सचिव तथा आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के सदस्य हैं। नरसिंह शास्त्री ने संस्कृत तथा अँग्रेज़ी साहित्यों का गहरा अध्ययन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ये कन्नड भाषा के भी अच्छे जानकार हैं। इनकी रचनाएँ ये हैं—'नारायण भट्ट', 'रुद्रमदेवी', (दे०), 'मल्लारेड्डी', (दे०) 'बाधिरा', 'कर्पुरद्वीपयात्रा' आदि उपन्यास; 'सोमनाथविजयमु' (दे०), 'खेमाभिक्खुनि', 'वरागमनमु', 'पतंगयात्रा', 'षण्णवति' आदि नाटक; 'गुलाबिपुव्वु' 'गानभंगमु', 'भविष्यत्तु', 'वधूसर' आदि कथाएँ; 'गीतमालिका' जैसी कविताएँ और कुछ आलोचनात्मक लेख। आंध्र से संबंधित ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में इनकी रुचि है और उसमें इनको पर्याप्त सफलता तथा प्रतिष्ठा मिली है। नाटक-रचना में इन्होंने कुछ नये प्रयोग भी किए हैं। इनकी 'भागवतावतरण' पद्यबद्ध नाटिका है। इनके नाटक तथा नाटिकाओं के अंतर्गत कुछ ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक तथा व्याख्यात्मक भी हैं। 'तेनेतेट्टे' जैसी कुछ नाटिकाएँ मॉरिस मेटरलिंक से प्रभावित हैं। इन्होंने कुछ पौराणिक तथा सामाजिक रचनाएँ भी की हैं। इनके द्वारा किया गया 'देवीभागवत' का तेलुगु अनुवाद प्रशस्त है। इनको 'कवि-सम्राट्' की उपाधि मिली तथा इनके 'नारायण भट्ट' नामक ऐतिहासिक उपन्यास को तेलुगु भाषा-समिति का पुरस्कार मिला। परंपरा तथा नव्यता का समन्वय करते हुए विविध आधुनिक साहित्यिक विधाओं में सफल रचना करने वालों में नरसिंह शास्त्री भी एक हैं।

नरसिंह शास्त्री, मोक्कपाटि *(ते० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये विख्यात हास्य-लेखक हैं। इनका अमर चरित्र 'बारिष्टर पार्वतीशमु' (दे०) है। समस्त आंध्र में यह पात्र परंपरावादी एवं अंधविश्वासों में जकड़े हुए शिक्षित व्यक्ति के उदाहरण के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'एकोदरुलु', 'कन्नवि-विन्नवि', 'मोक्कुबडि' आदि रचनाएँ की हैं। थोड़े से शब्दों में पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करके, कथाक्रम निर्वाह करने में ये अत्यंत समर्थ हैं।

समाज में बद्धमूल अनेक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को जनता की दृष्टि में लाकर, उनका निवारण करने के लिए इन्होंने हास्य रस का सहारा लिया है। प्राचीन रूढ़ियों एवं अत्याचारों के साथ नवीन शिक्षा की चेतना के आ मिलने से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के चित्र-विचित्र प्रसंगों की सृष्टि करके भी इन्होंने हास्य रस की सृष्टि की है—समाज के नवनिर्माण के उद्देश्य से रची गई इनकी रचनाओं का तेलुगु साहित्य में विशेष आदर हुआ है।

नरसिंहस्वामी, के० एस० *(क० ले०)*

मानवीय हृदय की सुकुमार वृत्तियों के अनन्य गायक श्री के० एस० नरसिंहस्वामी जी का जन्म मैसूर राज्य के मंड्या ज़िले के किक्केरी नामक स्थान में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। 'मैसूरु मल्लिगे' (मैसूर की मल्लिका) ने उन्हें सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। प्रणय विश्वमोहक प्रणय का व्यापक रूप लेकर लोक-गीतों की शैली में मार्मिक रूप से इनकी कविताओं में व्यंजित हुआ है। नरसिंहस्वामी कन्नड के बर्न्स हैं। सरलता तथा सहजता इनकी कविताओं की विशेषता है। ये कविताएँ मानव की रागात्मिका वृत्तियों का अक्षय भंडार हमारे सामने खोलती हैं। स्त्री का मातृगृह-प्रेम, पति का प्रणयकोप, प्रणय-कलह, मिलन-कौतूहल, विरहकातरता, प्रेमियों का प्रणय-संलाप एवं उनकी अठखेलियों आदि की चिरनूतन सुकुमार अभिव्यक्ति इनमें हैं। हाथीदाँत पर उत्कीर्ण बेल-बूटों की भाँति भावों के सूक्ष्म एवं चारु चित्रण में कवि अनुपम है, भाषा मल्लिका से भी कोमल-मधुर एवं मंदिर है। 'ऐरावत', 'उंगुर' (अँगूठी), 'मनोमिंदमनेगे' इनके अन्य श्रेष्ठ संकलन हैं। नरसिंहजी एक विकासशील कवि हैं। 'कलियागु बालकृष्ण' आपकी सुंदर प्रगतिवादी कविता है। 'शिलालते' में आपकी उत्कृष्ट प्रयोगवादी कविताएँ हैं। नरसिंहस्वामी जी की कविता को आलोचकों ने रोमांटिक तथा प्रयोगवादी शैली के सुवर्ण माध्यम की कविता कहा है।

नरसिंहाचार, आर० *(क० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

आधुनिक कन्नड-साहित्य के महारथियों में स्व० आर० नरसिंहाचार्य जी का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। इनका जन्म मैसूर राज्य के मण्ड्या ज़िले में हुआ था। इन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि प्राप्त की तथा 'देवराज बहादुर सहायक-निधि' का पारितोषिक प्राप्त किया। 1906 ई० में इन्हें 'राव बहादुर' की, 1913 ई० में 'प्राक्तनविमर्श-विचक्षण' की और 1925 ई० में 'कर्नाटक-प्राच्यविद्यावैभव' की सम्मान-उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। 1918 ई० में धारवाड़ में संपन्न कन्नड-साहित्य-परिषद् के ये अध्यक्ष रहे, अखिल भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राच्यविद्या-परिषद् के आठवें अधिवेशन के कन्नड विभाग के भी अध्यक्ष रहे। ये कन्नड-संस्कृत, तमिल और अँग्रेज़ी भाषाओं के गंभीर विद्वान् थे। 'एपिग्राफ़िया कर्नाटिका' में इन्होंने कन्नड के मूल शिलालेखों का विवरण दिया है; इनके अतिरिक्त कर्नाटक से संबंधित तमिल-शिलालेखों का कन्नड अनुवाद प्रस्तुत किया है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कन्नड-साहित्य के इतिहास-लेखकों में नरसिंहाचार जी का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। 'कर्नाटक कवि चरिते' (दे०) (कन्नड-साहित्य का इतिहास) के तीन भाग इनके 35 वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम है। इसमें 1150 कवियों की कृतियों का परिचय और विश्लेषण किया गया है। यह ग्रंथ इनकी मेरुकृति और साहित्य के इतिहास-विषयक ग्रंथों में अत्यंत प्रामाणिक है। इनकी अन्य रचनाओं में 'नगेगडलु' (ई० जी० ई० बेश्चि की पुस्तक का अनुवाद), 'नीतिमंजरी', भाग 1 तथा भाग 2 (तमिल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'तिरुकुक्रळ' के चुने हुए पद्यों का अनुवाद) तथा 'नीतिवाक्य-मंजरी' के नाम उल्लेखनीय हैं। मैसूर विश्वविद्यालय से इनके व्याख्यान 'हिंस्ट्री ऑफ़ कन्नड लिट्रेचर' नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनकी 'हिस्ट्री ऑफ़ कन्नड लैंग्वेज' (मैसूर वि० वि० से प्रकाशित) भी अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है।

नरसिंहाचार, डी० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

वर्तमान युग के कन्नड के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० नरसिंहाचार जी का जन्म चिक्कनायकन हळ्ळि में हुआ था। कर्नाटक में ये इतने प्रसिद्ध हुए कि पांडित्य का दूसरा नाम डी० एल० एन० हो गया। प्रतिभाशाली विद्यार्थी और 'विद्या की निधि' प्रोफ़ेसर के रूप में इनको पीकर मैसूर विश्वविद्यालय का कन्नड-विभाग गौरवान्वित हुआ। 1960 ई० में बिदरेनगर में संपन्न कन्नड-साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष बनने का गौरव भी इनको प्राप्त हुआ था। 1969 ई० में मैसूर विश्वविद्यालय ने इनको डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया था।

डी० एल० एन० व्यक्ति नहीं थे, चलते-फिरते विश्वकोश थे। इनमें एक अनुसंधित्सु के सत्यान्वेषण और चिंतक की विचारशीलता का सुंदर संगम हुआ था। इनकी स्मरण-शक्ति अत्यंत प्रखर थी। पाठानुसंधान के क्षेत्र में डी० एल० एन० ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनका 'कन्नड-ग्रंथ संपादने' (दे०) (कन्नड-पाठानुसंधान) इनकी दीर्घकालीन शोध-वृत्ति का फल है। इसमें पाठानुसंधान-संबंधी समस्याओं और विधियों पर समग्र रूप से विचार किया गया है। इसके साथ ही इन्होंने प्राचीन कन्नड-साहित्य के ग्रंथ-रत्न 'वड्डाराधने', (दे०) 'पंपरामायण-संग्रह', 'सिद्धराम चरित्र', (दे०) 'सुकुमार-चरित' और 'शब्दमणि-दर्पण' (दे०) (व्याकरण-ग्रंथ) का संपादन कर इन ग्रंथों के अत्यंत प्रामाणिक संस्करण निकाले थे। इन ग्रंथों के प्रारंभ में उन्होंने जो विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी हैं, वे इनकी अध्ययनशीलता और परिश्रम की साक्षी हैं।

डी० एल० एन० की मृत्यु के बाद इनके दो बृहदाकार ग्रंथ प्रकाश में आए हैं—'पंपभारत-दीपिका' और 'पीठिकेगळु लेखनगळु (भूमिकाएँ तथा लेख)। 'पीठिकेगळु लेखनगळु' में इधर-उधर बिखरे पड़ इनके समस्त लेखों का संग्रह है जिनका परिष्कार और परिवर्धन स्वयं इन्होंने ही किया था। साहित्य के अध्येताओं और विद्वानों के लिए यह एक उपयोगी और महत्वपूर्ण संदर्भ-ग्रंथ है।

नरसिंहाचार, पु० ति० *(क० ले०)*

पु० ति० न० के नाम से प्रसिद्ध नरसिंहाचार जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। पाश्चात्य प्रेरणा से कन्नड को गीतिकाव्य की नवनिधि प्रदान करने वाले कवियों में पु० ति० न० भी उल्लेखनीय हैं। ये सात्त्विक प्रकृति, तीक्ष्ण-बुद्धि और सूक्ष्म कल्पना के कवि हैं। 'हणते' (प्रणीता या दिया), 'मांदळिरु' (आम्र-पल्लव), 'शारदयामिनी', 'गणेशदर्शन', रससरस्वती', 'मलेदेगुल' (पहाड़ी मंदिर) और 'सत्यायन हरिश्चंद्र' इनकी कविताओं के संग्रह हैं। गेयता और सांस्कृतिकता इनकी कविताओं की सामान्य विशेषताएँ हैं। उनमें हम प्रकृति की विविध चित्रात्मकता और सूक्ष्म-सुंदर वर्णन देख सकते हैं। यद्यपि इन्होंने अपनी कविता के लिए सामान्य सामाजिक वस्तु कम चुनी है, तथापि 'पतितपावन' जैसी कविताएँ अत्यंत मर्मस्पर्शी कही जा सकती हैं। इनकी कविताओं में स्वाभाविक प्रवाह होता है और कवि का नया चिंतन पग-पग पर दिखाई पड़ता है। 'सत्यायन हरिश्चंद्र' नयी कल्पना के आकाश को छूता है। पु० ति० न० गंभीर चिंतक, दार्शनिक और आलोचक भी हैं। 'कवि' नामक कविता में इन्होंने कवि और काव्य की जो विस्तृत आलोचना की है, वह इसका उदाहरण है। इन्होंने छोटी और लंबी सब प्रकार की कविताएँ लिखी हैं।

'अहल्ये' (अहल्या), 'गोकुलनिर्गमन', 'शबरी',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हंस दमयंतीमत्तु इतर रूपकगळु' (हंस-दमयंती तथा अन्य रूपक) जैसे गीतनाट्य, 'ईचलमरद केळगे' (देशी खजूर के पेड़ के नीचे), 'रामाचारिय नेनपु' (रामाचारी की स्मृतियाँ) जैसे निबंध-संग्रह एवं स्केच तथा विकटकवि-विजय' जैसे राजनीतिक प्रहसन इनकी साहित्यिक तपस्या के सुंदर फल हैं। 'विकटकवि-विजय' हास्य-प्रधान रूपक हैं, लेकिन उसमें भी गेयता की प्रधानता है।

पु० ति० न० की भाषा-शैली की भी अपनी विशेषता है। इन्होंने कन्नड शब्दों के साथ-साथ संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग किया है, लेकिन कहीं-कहीं ऐसे शब्द क्लिष्ट हो गए हैं। अनुप्रास इनको प्रिय है, तुक मिलाने के लिए ये कभी-कभी शब्द को बलात् खींच लाते हैं। इस कारण इनकी शैली कभी-कभी दुरूह भी हो जाती है। फिर भी यह सच है कि पु० ति० न० की कला में कोमलता और शालीनता है, उसमें हाथीदाँत की कारीगरी का-सा वैभव है।

नरहरि *(क० ले०)*

(दे०) कुमार बाल्मीकि।

नरहरि *(गु० ले०)* [समय—1611-1663 ई०]

ये 'अखा' के पूर्ववर्ती ज्येष्ठ समकालीन निर्गुण ज्ञानाश्रयी कवि थे।

'वासिष्ठसार-गीता', 'भगवद्गीता', 'भक्ति-मंजरी' और 'हस्तामलक' आदि इनकी अनूदित कृतियाँ हैं और 'प्रबोध-मंजरी', 'हरिलीलामृत', 'ज्ञानगीता', 'संतना-लक्षणो', 'गोपी-उद्धव संवाद', 'कक्को', 'मास' आदि इनकी मौलिक रचनाएँ हैं।

'भगवद्गीता' में गीता के 700 श्लोकों का 1125 पदों में अनुवाद किया गया है। इनकी 'ज्ञानगीता' मध्ययुगीन गुजराती ज्ञानाश्रयी काव्य की एक प्रतिनिधि रचना है। परमपद की प्राप्ति के लिए ये भक्ति को उत्तम साधन मानते हैं। परवर्ती कवि की 'अखे गीता' (दे०) एवं 'छप्पा' पर इनकी 'ज्ञानगीता' और संतना-लक्षणों का प्रभाव बहुत अधिक है।

नरहरि तीर्थ *(क० ले०)* [समय—अनुमानतः तेरहवीं शती का अंतिम चरण]

उपनाम—'रघुकुल तिलक'। कन्नड के हरिदास-साहित्य के प्रवर्तकों में इनकी गणना की जाती है। माध्वा-चार्य के उपरांत पीठारोहण करने वालों में आप तीसरे हैं। कहते हैं कि संन्यासी बनने के पहले यह उड़ीसा के राजा के यहाँ मंत्री थे। अब तक आपके केवल दो कीर्तन या गेयपद प्राप्त हुए हैं। प्राप्त गीतों में आत्म-निवेदन की अनन्यता एवं दैन्य की व्यंजना है। भाषा बहुत परिमार्जित नहीं है। वह लोक-भाषा के अधिक निकट है। गेयकारों के हाथों में पड़ कर उसका स्वरूप ही बदल-सा गया है। प्राप्त गीतों में कवि की चित्तवृत्ति परिलक्षित होती है।

नरिंदरपाल सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

नरिंदरपाल सिंह पंजाबी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। भारतीय सेना के एक उच्च अधिकारी होने के कारण सैनिक जीवन का इनका गहरा अनुभव है जिसे इन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। लेखक ने अपने अधिकांश उपन्यासों के कथानक सिख-इतिहास से चुने हैं और उन्हें ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ उपन्यास का रूप प्रदान किया है।

मुख्य रचनाएँ—'मलाइ', 'सेनापति', 'उनवाली माल', 'इक राह इक पड़ाऊ', 'शकती', 'त्रिआजाल', 'अमन दे राह', 'एति भाग्ग जाणा', 'इक सरकार बाझों'।

नरिकण्णन् *(त० पा०)*

नरिकण्णन् भारतीदासन् (दे०) के कथाकाव्य 'पांडियन् परिशु' (दे०) में खलनायक के रूप में चित्रित है। राज्य करने की एकमात्र इच्छा की पूर्ति के लिए यह अपने संस्कारों का, बहन के प्रति अपने प्रेम का, वीरों की नीति का तथा अपने ज्ञान का त्याग कर राक्षस बन जाता है। यह पड़ोसी राजा की सहायता से बहनोई के राज्य पर चढ़ाई करता है। धोखे से बहनोई और बहन का वध कर उसकी पुत्री अन्नम को पुत्रवधू बनाने का यत्न करता है; अंधविश्वासों का आश्रय लेकर जनता को धोखा देता है; राज्य के उत्तराधिकार-संबंधी प्रमाण-पत्रों को नष्ट करना चाहता है; अन्नम के प्रेमी वेलन् को मारने का यत्न करता है; और अंत में एक खलनायक की तरह वह परा-जित होता है और अन्नम के हाथों मारा जाता है। इसके चित्रण द्वारा भारतीदासन् ने यह दिखाना चाहा है कि मनुष्य कितना नीच हो सकता है। उसका वध कराके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक ने यह बताया है कि संस्कार, प्रेम, ज्ञानशून्य राक्षस का सदा विनाश होता है ।

नरूला, सुरिंदर सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

पंजाबी में नानकसिंह (दे०) की पीढ़ी के बाद के उपन्यासकारों में सुरिंदर सिंह नरूला अग्रगण्य हैं । इनके उपन्यासों से पंजाबी उपन्यास-साहित्य यथार्थवादी युग में प्रवेश करता है । नरूला ने उपन्यास-क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं और युग-चेतना को उसकी समग्रता में ग्रहण करने का प्रयास किया है । वे प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक हैं और दृश्य-चित्रण की सूक्ष्मता उनकी रचना-शैली का वैशिष्ट्य है ।

नरूला का पहला उपन्यास 'पिओ पुत्तर', (दे०) विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ । इसमें लेखक ने बीसवीं शती के प्रारंभिक काल के अमृतसर के जीवन का बड़ा यथार्थवादी चित्रण किया है । इसके पश्चात् नरूला के 'रंग महल', 'नीली बार', 'जगराता', 'दीन-दुनिआ' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए हैं ।

नरोत्तमदास *(हिं० ले०)*

शिवसिंह सेंगर (दे०) के 'सरोज' अनुसार ये 1545 ई० तक रहे । ये सीतापुर ज़िले के बाड़ी नामक क़सबे के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनके ग्रंथों में 'सुदामाचरित' प्रसिद्ध है, 'विचारमाला' और 'ध्रुवचरित' नामक ग्रंथ अनुपलब्ध हैं । 'सुदामाचरित' में कवि ने संवादात्मक शैली में गार्हस्थिक रेखाओं के मध्य में तत्कालीन समाज, विविध प्रथाओं और पारिवारिक मान्यताओं का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है । अपनी प्रसादगुण-संपन्न एवं सरस शैली के लिए यह कवि मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में अत्यंत लोकप्रिय है ।

नर्म-गद्य (गु० कृ०)

गुजराती गद्य के जनक तथा आधुनिक गुजराती साहित्य के युगप्रवर्तक कवि नर्मदा शंकर (दे०) के गद्य-लेखों व भाषणों का संग्रह 'नर्म-गद्य' के नाम से प्रकाशित है । मूल नर्म-गद्य दो खंडों में निकला था, जिसमें 1850 से 1865 ई० तक की गद्य रचनाएँ संकलित हैं ।

निबंधों व भाषणों के विषयों पर दृष्टि डालते ही कृतिकार के लेखक, कवि, सुधारक, नवजागरण-काल के अग्रदूत, नाटककार, समीक्षक आदि अनेक रूपों व उसके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का स्पष्ट बोध हो जाता है । उस युग की मान्यताएँ, परंपराएँ व उनसे नर्मद का संघर्ष व विरोध कृति में स्थान-स्थान पर साकार हुआ है । 100-125 वर्ष पहले की गुजराती भाषा के स्वरूप व गद्य-शैली के विचार से यह कृति अध्ययन करने योग्य है ।

साहित्य, संस्कृति, धर्म, राजनीति, शिक्षा एवं पाश्चात्य प्रभाव का समर्थन तथा अज्ञान व वहम को दूर करने का नर्मद का प्रयास आदि इसमें दृष्टिगत होते हैं । शताधिक विषयों व ग्रंथों पर लगभग 500 पृष्ठों का, बड़े आकार का यह गद्य-संकलन नर्मद के उत्साही कृतित्व का प्रमाण है ।

इसमें संग्रथित व चर्चित विषय हैं—लावणी, कविता-जाति, भाषण-कला, कवि-चरित्र, पुस्तकों की प्राप्ति व उनकी संक्षिप्त समीक्षाएँ, हिंदू धर्म, वंध्या, विवाह, पारसी कविता, रसिकजन के प्रीति-विषयक प्रश्न, व्यभिचार-निषेध, सहकारी मंडली, स्वदेशाभिमान, गुरु और स्त्री, मृतकों के पीछे रोने का कुरिवाज, पुनर्विवाह, पत्र-लेखन कला, सर विलियम जोंस, तुलसी वैधव्य-चरित्र, भिखारीदास-ग़रीबी (संवाद), भक्ति, एकता आदि ।

नर्मद के बहुमुखी व्यक्तित्व तथा उसकी सत्ता, सुधारवादिता, क्रांतिवादिता, आदि के दर्शन इस नर्म-गद्य में सहज ही होते हैं । 'नर्मद ग्रंथावली', भाग 3 में यह पुनः प्रकाशित हुई है । विषय, शैली, भाषा-स्वरूप आदि के विचार से गुजराती गद्य की प्रारंभिक कृतियों में यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण कृति से है जिसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, साथ ही आज भी वह अनेक रूपों में प्रेरणा प्रदान करती है ।

नर्मद *(गु० ले०)* [जन्म—1833; मृत्यु—1886 ई०]

कविवर नर्मद (नर्मदाशंकर) आधुनिक गुजराती साहित्य के प्रवर्त्तक तथा गुजराती गद्य के जनक माने जाते हैं । आधुनिक गुजराती साहित्य का सूत्रपात प्रायः उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक से माना जाता है । बंबई में एलफ़िस्टन इंस्टिट्यूट की संस्थापना 1827 ई० में हुई थी । नर्मद इसके छात्र रहे और बाद में अपने अध्यापकों की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्होंने सामाजिक तथा शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त संस्थाएँ और पत्र-पत्रिकाएँ चलाईं । दलपतराम (दे०) तथा नर्मद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती साहित्य के नवोन्मेष के पुरोधा थे और इन दोनों में नर्मद निश्चय ही अधिक उत्साही, दूरदर्शी और कल्पना-प्रवण थे। काव्य-सृजन के क्षेत्र में भी उनकी विकल आत्म-भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

नर्मद का व्यक्तित्व अनेकमुखी था—कवि, नाटककार, आत्मकथाकार, समीक्षक, सुधारक, नवजागरण के अग्रदूत आदि। अपने युग की परंपराबद्ध मान्यताओं के साथ नर्मद के स्वच्छंद व्यक्तित्व का टकराव जगह-जगह प्रतिध्वनित होता है। उनकी शैली प्रवाहमयी है, ओजपूर्ण है और नयी अभिव्यंजनाओं को अपने में समोए हुए है—यद्यपि उसकी गति सर्वत्र सम नहीं है। उनका 'नर्मकोश' विद्वत्ता और प्रयत्न की विराट्ता की दृष्टि से एक मूल्यवान् उपलब्धि है। 'नर्म-गद्य' (दे०) में उनके गद्यलेखों तथा भाषणों का संग्रह है। 'मारी हकीकत' (दे०) उनकी आत्मकथा-कृति है।

आधुनिक गुजराती के साहित्यकारों में नर्मद का स्थान शीर्षस्थ है।

नर्मदाशंकर मेहता (गु० ले०)

पंडित युग के विद्यापुरुष नर्मदाशंकर मेहता का जन्म 23 अगस्त, 1871 को नडियाद में हुआ था। विद्यार्जन के पश्चात् अपने गुरु श्रीमन् नृसिंहाचार्य के संकेतानुसार अध्यापकी छोड़कर वे सरकारी नौकरी में लगे और डिप्टी कलक्टर के पद तक पहुँचे। कुछ काल के लिए ये खंभात के दीवान भी रहे।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'हिंद तत्त्व-ज्ञान नो इतिहास' (भा० 1 और 2), 'शाक्त संप्रदाय', 'उपनिषद्-विचारणा'। 1919 ई० में गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी के अनुरोध पर इन्होंने 'हिंद तत्त्वज्ञान नो इतिहास' लिखा। भारतीय दर्शनशास्त्र का यह शृंखलाबद्ध इतिहास लिखकर उन्होंने दर्शन-शास्त्र व गुजराती भाषा की अमूल्य सेवा की है। इस क्षेत्र में ये प्रो० दासगुप्ता व डा० राधाकृष्णन् के पूर्ववर्ती हैं। दूसरों के अभिमतों पर अंध-विश्वास न कर स्वयं गहन अध्ययन करके स्पष्टता व निर्भीकता से इन्होंने प्रवर्तमान भ्रमों का निरसन किया है।

'शाक्त संप्रदाय' अद्यावधि उपेक्षित विषय पर एक गंभीर व तलस्पर्शी ग्रंथ है, तो 'उपनिषद्-विचारणा' में उपनिषदों का महत्व, प्रभाव व कांट, स्पिनोजा, हीगेल आदि पश्चिमी दार्शनिकों से उपनिषदों में व्यक्त विचारों की तुलना की गई है। श्री मेहता ने भारतीय दर्शन-शास्त्र का व साहित्य का महदुपकार किया है। आधुनिक गुजराती के पंडित युग के साक्षरों में इनका विशिष्ट स्थान है। गुजराती साहित्य व दर्शन के क्षेत्र में वे एक आदरणीय और चिंतक विद्वान् हैं।

नर्ममाला (सं० कृ०) [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

'नर्ममाला' महाकवि क्षेमेंद्र (दे०) का प्रसिद्ध हास्योपदेशक काव्य है। इसमें तीन परिच्छेद हैं। इनमें कायस्थ तथा नियोगी आदि अधिकारियों के कुत्सित कृत्यों का वर्णन बड़ी ही पैनी दृष्टि से किया गया है।

इस काव्य में कवि ने तत्कालीन समाज तथा धर्म का सम्यक् निरीक्षण करके उनकी अवांछनीय गति-विधियों पर करारी चोट की है। इससे कवि का वर्णन कहीं-कहीं ग्राम्य तथा भौंड़ा अवश्य हो गया है, पर उससे हमें वस्तु-स्थिति को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। क्षेमेंद्र ने इस काव्य में अनेक अधिकारियों के कुकृत्यों तथा वैद्यों की वंचक वृत्ति का बड़े ही मनोरंजक ढंग से पर्दाफ़ाश किया है। संस्कृत-साहित्य को यह विशिष्ट काव्य-प्रकार क्षेमेंद्र की ही देन है।

नल (सं० पा०)

उदयन (दे०) की तरह राजा नल का जीवन भी साहसपूर्ण घटनाओं से ओतप्रोत रहा है। अतएव नल-चरित्र को ले कर 'नलचंपू' (दे०), 'नलाभ्युदय', 'नलोदय' तथा 'नैषधीयचरित' (दे०) प्रभृति अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका मूल 'महाभारत' (दे०) है। निषध देश के राजकुमार नल के गुणों की चर्चा सुनकर विदर्भ देश की अनिंद्य सुंदरी राजकुमारी दमयंती (दे०) मन में उसी का वरण करने का निश्चय कर लेती है जबकि इंद्र प्रभृति देव भी उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे। स्वयंवर में वह नल का ही वरण करती है।

दुर्दैववश राजा नल द्यूत में सारा राज्य हार जाता है। दमयंती को साथ लेकर जंगलों में मारे-मारे फिरना उसे उचित नहीं लगता पर दमयंती उसे छोड़कर कहीं भी जाने को प्रस्तुत नहीं होती। नल उसे दिन में ही थककर सोई हुई छोड़कर चल देता है कि अंत में रो-पीटकर वह जिस किसी प्रकार अपने पिता के यहाँ पहुँच ही जाएगी। अनंतर उसकी भेंट कर्कोटक नाग से होती है जो दावाग्नि से बचाने के कारण नल को काटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका रूप विकृत कर देता है ताकि वह पहचाना न जा सके। नल अश्वविद्या में पारंगत है; अतः वह कोशल के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी हो जाता है।

दमयंती जैसे-तैसे पिता के यहाँ पहुँचकर पति के अन्वेषण के लिए चर भिजवाती है। अयोध्या में नल के होने की संभावना पर वहाँ के राजा ऋतुपर्ण को दमयंती के पुनः स्वयंवर का समाचार देकर बुलाया जाता है जिसे सुनकर वह बहुत दुःखी होता है। एक दिन की अल्प अवधि में ही सारथी नल ऋतुपर्ण को विदर्भ की राजधानी पहुँचाता है। वहाँ नल को पहचान लिया जाता है। वह अपनी अश्वविद्या ऋतुपर्ण को बताता है और उससे अक्ष-विद्या सीखकर पुनः अपना राज्य जीत लेता है।

नलचंपू *(सं० कृ०)* [समय—सातवीं तथा ग्यारहवीं शती के बीच]

'नलचंपू' त्रिविक्रम भट्ट की कृति है। शांडिल्य गोत्री त्रिविक्रम भट्ट के पितामह का नाम श्रीधर तथा पिता का नाम नेमादित्य था।

'नलचंपू' का दूसरा नाम 'दमयंती-कथा' भी है। इसमें सात उच्छ्वास हैं। ग्रंथ के आरंभ में शिव की स्तुति है और बाद में कवि-प्रशंसा तथा खलनिंदा की गई है। नल (दे०) का चरित्र-वर्णन करने के लिए कवि ने अपनी नवीन कल्पना का अधिक उपयोग किया है। त्रिविक्रम संस्कृत के सर्वप्रधान श्लेष कवि हैं। परंतु त्रिविक्रम ने श्लेष के प्रयोग के लिए अप्रचलित शब्दों का यथासंभव प्रयोग नहीं किया। 'नलचंपू' की सबसे बड़ी विशेषता है सभंग श्लेष का प्रयोग। कवि ने छोटे-छोटे अनुष्टुपों में इतनी सुंदरता के साथ सभंग श्लेष का प्रयोग किया है कि उसके समझने के लिए पद्य को विशेष तोड़-मरोड़ की आवश्यकता नहीं पड़ती और अर्थ भी अनायास निकल आता है। श्लेष के बाद इनका प्रिय अलंकार परिसंख्या है।

नलचंपू का संस्कृत-साहित्य में बड़ा महत्व है। भोज (दे०) तथा विश्वनाथ (दे०) ने अपने अलंकार-ग्रंथों में इसके अनेक पद्य उद्धृत किए हैं।

नलचरितम् आट्टक्कथा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह उण्णयि वारियर (दे०)-रचित आट्टक्कथा है। 'महाभारत' (दे०) के नलोपाख्यान की कथा इस दृश्यकाव्य में संगृहीत है। चार दिन के अभिनय के लिए इसकी कथा चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग के कथानक में 'नैषधीयचरित' (दे०) का प्रभाव दर्शनीय है। कवि-कल्पना से नवीन कथांश भी जोड़े गए हैं।

'नलचरितम्' कथकलि के कलाकारों एवं आस्वादकों में सर्वाधिक लोकप्रिय आट्टक्कथा है। नाटकीय गुणों की दृष्टि से यह काव्य अति सुंदर है। रसपरिपाक में विशेषतः सभ्य श्रृंगार रस के निष्पादन में 'नलचरितम्' की सफलता अनन्य है। कवि की संगीत-मर्मज्ञता भी काव्य की लोकप्रियता का कारण बनी है। भाषा-प्रयोग की उच्छृंखलता के कारण 'नलचरितम्' के रचयिता को निरंकुश कवि कहा गया है। इस काव्य के कुछ प्रयोगों के अर्थों को लेकर आज भी वाद-विवाद जारी है।

'नलचरितम्' मलयाळम के प्राचीन दृश्यकाव्यों में सर्वाधिक सुंदर है।

नलचरित्रमु *(त० कृ०)*

इस नाम से पाँच प्रकाशित तथा चार अप्रकाशित रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से रघुनाथ नायकुडु (दे०) की रचना तथा लोकप्रियता की दृष्टि से चक्रपुरि राघवाचार्य (1690) की रचना उल्लेखनीय हैं।

दोनों कवियों ने 'महाभारत' (दे०) की कथा को ही अपनाया है। रघुनाथ नायकुडु ने कलिप्रवेश के स्थान पर शनि-प्रवेश का वर्णन किया है तथा स्वयंवर के समय सखियों द्वारा दमयंती को राजाओं का परिचय कराया है। राघवाचार्य ने कलि-प्रवेश का ही वर्णन किया है परंतु वसुदेव नामक ब्राह्मण द्वारा दमयंती को राजाओं का परिचय दिलाया है। इसके अतिरिक्त दोनों कवियों की रचना मूलानुसारिणी ही है।

रघुनाथ नायकुडु के काव्य में 8 आश्वास हैं। उनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा 'नलचरित्रमु' में काव्य-सौंदर्य की न्यूनता है। फिर भी काव्य-मर्मज्ञ और सुधी लेखक के कौशल के कारण यह काव्य पाठकों को चमत्कृत करने में सफल है। करुणरस-प्रधान होने से श्रृंगार रस के वर्णनों के लिए अवसर नहीं मिला।

चक्रपुरि राघवाचार्य के 'नलचरित्र' के पूर्व तथा उत्तर भाग दोनों में मिलाकर 5 आश्वास हैं। 2828 द्विपद छंदों में लिखा गया यह काव्य अतिलोकप्रिय हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। आज भी गाँवों में संकट के दिनों में (शनि महाराज की दशा में) इसी द्विपद काव्य का पाठ किया जाता है।

उपर्युक्त दोनों काव्य 'दक्षिणांध्रयुग' (हिंदी के रीतिकाल के समकक्ष) में रचे जाने के कारण युगप्रभाव से मुक्त नहीं हैं। प्रबंध-काव्यों की शैली में वर्णनों का प्राचुर्य, और अलंकारों की भरमार के बावजूद अपनी सरस तथा सरल शैली के कारण इन्हें काव्य-प्रतिष्ठा प्राप्त है।

नळचरित्रे (क० कृ०) [रचना-काल—1300 ई० के आस-पास]

तेरहवीं शती के कवियों में चौण्डरस (समय 1300 ई० के आसपास) का अन्यतम स्थान है। उनका 'नळचरित्रे' (नल-चरित) एक चंपू-काव्य है। उसकी कथा महाभारत के 'नलोपाख्यान' से ली गई है। उसमें सर्ग या आश्वासों का कोई विभाग नहीं है, कुल मिलाकर 810 पद्य हैं। पीठिका-भाग में अभंगविट्ठल की स्तुति है। तदनंतर शंकर, गणपति और पार्वती की स्तुति है। कवि ने अपने बारे में कहा है, 'कर्णाटवंश शैंगाररसम्' जो उनकी कवि-प्रतिभा का निदर्शन है। उनका काव्य ललित और मधुर है। उसमें अलंकारों का सहज-स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। उसकी प्रांजल भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली पाठकों के मन को आकृष्ट करने में समर्थ है। हम उसको एक सुंदर खंडकाव्य कह सकते हैं। नल और दमयंती के चरित्र-चित्रण में कवि ने निपुणता दिखाई है। उनका प्रकृति-वर्णन भी मनोहारी है।

कन्नड में 'नळचरित्रे' शीर्षक एक और ग्रंथ मिलता है जिसके कवि भक्तप्रवर कनकदास (दे०) (समय 1550 ई०) हैं। वह भामिनी-षटपदी में रचित भक्ति-रसलेप से युक्त काव्य है। उसमें कवि ने नल-दमयंती के उदात्त चरित्र का चित्रण किया है। उसकी प्रसादपूर्ण शैली और उसमें चित्रित करुण रस के चित्र पाठकों को आकर्षित कर लेते हैं।

नल-दमयंती स्वयंवर (म० कृ०)

संस्कृत के कवि श्रीहर्ष (दे०) की रचना इसका मूल आधार है। श्रीहर्ष के विशाल 'नैषध' (दे०) महाकाव्य का रघुनाथ पंडित ने 254 श्लोकों में संक्षिप्तीकरण किया है। इसमें मूल काव्य-सौंदर्य की रक्षा हुई है, साथ ही स्वतंत्र कल्पना-सौरभ का भी समावेश है। कवि के मत से यह रचना 'नैषध काव्य' की ही टीका है। वास्तव में यह रचना संस्कृत काव्य का मराठी अनुवाद नहीं, अपितु मराठी रूपांतरण है। कथानक को संक्षिप्त किया गया है किंतु औत्सुक्य गुण की रक्षा हुई है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी केवल परंपरा-पालन नहीं है। नायिका दमयंती का नल के प्रति आकर्षण और प्रेम-भाव बड़ी सुकुमारता और शालीनता से वर्णित है। हंस के चरित्र-चित्रण में विशेष आकर्षण और मार्मिकता है। दमयंती के पिता विदर्भ के थे, विवाह के वातावरण, वेश-भूषा आदि के वर्णन में कवि ने समकालीन महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन को इस प्राचीन कथा में साकार करने का प्रयत्न किया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण भारतीय आदर्शवाद से मंडित है। भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता है। शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रचुर प्रयोग है। मूल 'नैषध' के पदलालित्य की रक्षा मराठी में भी पूरी तरह हुई है। श्रृंगार और करुण रसों की परिपुष्टि में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

नळवेण्बा (त० कृ०) [रचना-काल—ईसा की तेरहवीं शती]

रचयिता—पुकलेंदि पुलवर। 'नळवेण्बा' में नल-दमयंती की कथा वर्णित है। इस कथा का आधार 'महा-भारत' में प्राप्त नलोपाख्यान है। यह कृति 'स्वयंवर-कांडम्', 'कलित्तोडर् कांडम्', 'कलिनींगु कांडम्' नामक तीन कांडों में विभाजित है। 'नलवेण्बा' में वेण्बा छंद में रचित 424 पद हैं। नल-दमयंती की कथा का वर्णन वेण्बा छंद में होने के कारण ही इस कृति को 'नलवेण्बा' नाम दिया गया है। इस कृति में कवि ने प्रकृति के अनेक सुंदर, सजीव एवं मनोहारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। पुकलेंदि वेण्बा छंद के प्रयोग में पटु थे। 'नलवेण्बा' को वेण्बा छंद में रचित तमिल कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

नळाख्यान (गु० कृ०)

गुजराती के श्रेष्ठ आख्यानकार, लोक-रंजक कवि भाषा-स्वामी, रससिद्ध सर्जक, यथार्थ संसार के द्रष्टा व निरूपक, मानव-प्रकृति के चांचल्य के प्रखर आलोचक, भक्त व कवि प्रेमानंद (दे०) के सब आख्यानों व सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाओं में 'नळाख्यान' उत्तम रचना है।

महाभारत में प्रसिद्ध नल की कथा को ग्रहण कर कवि ने इसे विस्तार दिया है। 64 कडवकों में यह कथा पद्य में प्रबंधात्मक शैली में निरूपित है। अंगी रस शृंगार है तथा हास्य, करुण, अद्‌भुत रसों की अंग-रूप में योजना हुई है। संक्षिप्त-सी भूमिका बाँधकर कवि सीधे ही कथयितव्य पर आ जाता है। कथा-निर्वाह के बाद उपसंहार व फलश्रुति भी प्रस्तुत करना कवि की आदत है।

अपनी निम्नलिखित विशेषताओं के कारण 'नळाख्यान' का गुजराती आख्यान-काव्यों में सर्वोपरि स्थान है और रहेगा। सुंदर वस्तु-संगठन, उससे भी सुंदर पात्र-अंकन; समसामयिक जीवन का सफल प्रतिफलन; उत्तम रस-योजना; एक रस से सहज ही दूसरे रस में संक्रमित हो जाने का लाघव; लोक-संस्कृति का सन्निवेश, आदि।

'नळाख्यान' में नल-दमयंती के प्रेम-प्रसंग-वर्णन में शृंगार, स्वयंवर के समय राजाओं व देवों की चेष्टाओं में हास्य, दमयंती के वन-जीवन की विपत्तियों के तथा विरह-वर्णन में करुण भाव को तथा अश्वविद्या के प्रसंग में अद्‌भुत रस का सुंदर निरूपण हुआ है। दमयंती के रूप-वर्णन में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्ति अलंकारों का मनोहारी प्रयोग हुआ है।

'नळाख्यान' की कुछ सीमाएँ भी हैं—रूढ़ परं-परायुक्त परिगणन पद्धति का प्रकृति-वर्णन तथा अन्य वर्णन; कहीं-कहीं दुर्बोध शब्द-प्रयोग, स्थूल व ग्रामीण हास्य, प्रादेशिक सीमाएँ, ऋतुपर्णबाहुक व दमयंती के संभाषण में सुरुचि-घात व औचित्य-भंग। परंतु इस रचना के असंख्य गुणों के संसार में ये छोटे-से दोष गौण हो जाते हैं। 'नळाख्यान' प्रेमानंद की श्रेष्ठ रचना है तथा गुजराती आख्यान-काव्यों में बेजोड़ है।

नलिनलाल रावल *(गु० ले०)*

इन्होंने प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा अहमदाबाद में प्राप्त की थी। संप्रति ये अहमदाबाद के बी० डी० कालेज में अँग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं। 'उद्‌गार' नाम से इनका एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है। 1953 से 1962 ई० तक लिखी गई कविताओं के इस संग्रह में नयी कविता की विशेषताएँ उभर कर आई हैं। आलोच्य संग्रह की 'काल अने आज' नामक रचना सुप्रसिद्ध है। वर्षा, सुबह, पतझड़ प्रभृति प्राकृतिक उपकरण इनके काव्य का प्रमुख आकर्षण हैं। सुमधुर कल्पना से परिपूर्ण 'कविनुं मृत्यु' इनकी एक प्रख्यात कविता है।

समग्रतया काव्य में अद्यतनता लाने का इन्होंने भरसक प्रयत्न किया है।

नळिनी *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1911 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का खंड-काव्य है। दिवाकरन् हैमवत भूमि में तपस्या करने वाला युवा योगी है? नळिनी उसके बाल्यकाल की संगिनी है। उसने दिवाकरन् पर अपने हृदय को समर्पित किया था। जीवन से निराश होकर वह भी तपस्विनी बन गई और अंत में दिवाकरन् से मुलाकात हुई। आध्यात्मिक प्रेम की चरम सीमा में उसने दिवाकरन् के चरणों में प्राण त्याग दिए।

'नलिनी' आशान् की दार्शनिक विचारधारा और कवि-प्रतिभा का निदर्शन है। प्रेम की अलौकिकता और अनश्वरता आशान् ने प्रदर्शित की है। प्रतिपादन-विधा में भी उन्होंने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा नवीन मार्ग अपनाया। मलयाळम कविता के आधुनिक रूप के विकास में 'नळिनी' का स्थान समुन्नत है।

नलिनीबाला देवी *(अ० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

जन्मस्थान : बरपेटा।

ये कर्मवीर नवीनचंद्र बरदलै (दे०) की पुत्री हैं। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। 1909 ई० में इनका विवाह हुआ था और 1917 ई० में ये विधवा हो गई थीं। 10 वर्ष की आयु में इन्होंने प्रथम कविता लिखी थी। संतान की मृत्यु पर इन्होंने 1922 ई० में 'पुतली' कविता लिखी थी। 1954 ई० में ये असम-साहित्यसभा (जोर-हाट) की सभानेत्री चुनी गई थीं। इन्हें असम सरकार की साहित्य पेंशन भी प्राप्त हुई थी। 1957 ई० में ये पद्‌मश्री से विभूषित हुई थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** 'संधियार सूर' (1928), 'सपोनर सुर' (दे०) (1943), 'स्मृतितीर्थ' (1948), 'परशमणि' (दे०) (1954), 'युगदेवता' (1958); **जीवनी :** 'विश्वदीपा' (1961)।

इनकी प्रसिद्धि शोक-परिपूर्ण कविता 'पुतली' के कारण हुई थी। इनकी कविताएँ हृदय-द्रावक हैं और उनका मूल स्वर भक्ति और आत्म-समर्पण का है। ये प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सौंदर्य, पक्षियों की आकुल तान आदि में अविनश्वर आत्मा का असीम सौंदर्य देखती हैं। नलिनी जी की कविताओं में किसी असीम अनंत के साथ मिलन की आकुलता है। दो-एक कविताओं में देशभक्ति की भी भावना है। 'परशमणि' में राष्ट्रीय कविताएँ हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'संधियार सुर' है।

इनकी कविताओं का प्रधान स्वर रहस्यवाद है। ये असमीया की महादेवी वर्मा (दे०) कही जा सकती हैं।

नल्लियकोडन् *(त० पा०)*

नल्लियकोडन् संघकालीन दानशील राजाओं में से हैं। इनके चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—अन्य राजाओं द्वारा कलाकारों की सहायता न किए जाने पर स्वयं उनकी सहायता करना तथा कलाकारों का स्वागत-सत्कार करते समय अपने बड़प्पन को, अपने राजत्व को, पूर्णतः भूल जाना। नल्लियकोडन् की प्रशंसा करने वाले कवियों में प्रसिद्ध हैं नल्लूर नत्तनार् और पुरत्तिणै नन्नाहनार्। ओयमनाडु के राजा वल्लियकोडन् के नाना गुणों—विशेषकर दानशीलता – का वर्णन शिरुपाणाट्रुप्पडै के विभिन्न पदों में है।

नवतेज सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इनका जन्म स्यालकोट (पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ था। अपने पिता गुरुबख्श सिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) से प्रेरित होकर इनमें साहित्यिक अभिरुचि का प्रस्फुटन हुआ। सर्वप्रथम इनकी रचनाएँ एशिया एवं यूरोप की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं और फिर उनका प्रकाशन पंजाबी में हुआ। अगस्त, 1953 में उनकी पंजाबी कहानी—'मनुख दे पिओ' (Wreaks without oars) रूमानिया में होने वाले चौथे विश्व युवक-मेले में प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत हुई। अद्यावधि इनकी आठ रचनाएँ—कहानी-संग्रह, यात्रा-लेखन, विदेशी उपन्यासों के अनुवाद—प्रकाशित हो चुकी हैं। 'चानण दे बीज', 'बासमती दी महक', 'नवीं रुत' इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। नवतेज की कहानियों में सामाजिक चेतना, आर्थिक विषमता और राजनीतिक जागरूकता का स्वर प्रधान है। इन्हें पंजाबी कहानी को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ख्याति दिलाने का श्रेय प्राप्त है। ये आजकल 'प्रीतलड़ी' पत्रिका के सहसंपादक हैं।

नवरत्न रामराय *(क० ले०)*

ये कर्नाटक के लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध साहित्यकारों में से हैं। 'श्रीनिवास' उपनामधारी मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) ने सुब्बण्णा नामक एक सुंदर लघु उपन्यास लिखा है। उसकी भूमिका में उन्होंने स्पष्ट किया है कि ये उनको एक वृद्ध गायक की कहानी सुनाते थे, वही 'सुब्बण्णा' के रूप में प्रकाश में आई है। स्वयं साहित्यकार होते हुए इन्होंने मास्ति जी को प्रेरणा भी दी थी, यह कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। इनकी पुस्तकों में 'नन्न नेनपुगळु' (मेरे संस्मरण) अतिविश्रुत और लोकप्रिय पुस्तक है। यह इनकी गद्यशैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। इन्होंने मेकियावेल्लि-कृत 'नरेश' का कन्नड में अनुवाद किया है।

नवल ग्रंथावलि *(गु० कृ०)*

गुजराती के प्रथम व समर्थ समीक्षक स्व० नवलराम लक्ष्मीशंकर पंड्या (दे०) के लेखों का संग्रह चार भागों में प्रकाशित हुआ। इनमें से महत्वपूर्ण सारग्राही लेखों को संपादित कर श्री नरहरि द्वारकादास परीख ने एक ग्रंथ तैयार किया—'नवल ग्रंथावलि'। गुजरात विद्यापीठ ने इसे 1937 ई० में प्रकाशित किया था।

'ग्रंथावली' के प्रथम खंड में चालीस लेख संकलित हैं। सभी साहित्यिक समीक्षा से संबद्ध हैं। गुजराती के प्रथम उपन्यास 'करण घेलो' (दे०) से लेकर 'आँथरियो हडकवा' तक के इन लेखों में लेखक की पैनी समीक्षा-दृष्टि व गहरी साहित्यिक सूझ-बूझ के दर्शन होते हैं। दूसरे खंड में संकलित दस निबंध प्रायः भाषा व वर्तनी से संबंधित हैं। एक भाषा हिंदी और एक लिपि देवनागरी के समर्थन में लेखक ने बहुत सुचिंतित दृष्टि से लेख लिखे हैं। गुजराती कोश तथा वर्तनी-संबंधी लेख भी बड़े प्रामाणिक व गहरे विचार-विमर्श से संपन्न हैं। तीसरे खंड में 11 प्रकीर्ण लेख हैं। इनमें मुख्यतः शिक्षा, समाज-सुधार, धर्म, उद्योग, रीति-रिवाज, देशाभिमान, आदि विषयों पर लेख हैं। चतुर्थ खंड में चार निबंध हैं। 'अकबर-बीरबल' निबंध रस-विषयक विवेचना का निबंध हैं। 'मेघदूत' भी गद्य में रचित तथा उदाहरण पद्य में रचित-निबंध है। 'मेघ' छंद में रचित सपद्यानुवाद के कुछ स्वरचित उदाहरण हैं। 'बाळलग्न बत्रीशी' बाल-विवाह पर पद्यात्मक व्यंग्य है। 'बाळ गरबावली' अन्य गरबे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक ने अत्यंत श्रमपूर्वक इन लेखों का चयन व संपादन किया है। इस ग्रंथ में स्व० नवलराम के व्यक्तित्व के चारों प्रमुख रूप—समीक्षक, सुधारक, शिक्षा-शास्त्री तथा चिंतक— उभरकर आए हैं। संपादक ने प्रारंभ में 47 पृष्ठों में नवलराम के जीवन व कार्य का परिचय दिया है।

नवलराम (गु० ले०) [जन्म—1836 ई०; मृत्यु—1888 ई०]

गुजराती के प्रथम समीक्षक नवलराम लक्ष्मीशंकर पंड्या सूरत के निवासी थे। इन्होंने शिक्षा-प्राप्ति के बाद सूरत, राजकोट, अहमदाबाद आदि स्थानों में अध्यापक तथा आचार्य का कार्य किया।

इनकी रचनाएँ हैं—'बाळ लग्न बत्रीसी', 'बाळ गरबावली' (काव्य), 'भटनुंभोपाळु', 'वीरमती' (नाटक); 'मेघदूत' (अनु०); 'प्रेमानंद-कृत कुँवर बाईनुं मांमेरूं (संपा०); 'व्युत्पत्ति-पाठ' (भा० वि०); 'निबंधरीति' (निबंध); 'इंग्रेज़ लोकोनो संक्षिप्त इतिहास', 'कविजीवन' (प्रकीर्ण)। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'गुजरातशाला-पत्र' नामक पत्रिका का वर्षों तक संपादन किया।

कवि, नाटककार, निबंधकार, अनुवादक और समीक्षक—सभी रूपों में नवलराम की साहित्य-सेवा उल्लेखनीय है। विवेचक के रूप में इनका स्थान बहुत ऊँचा है 'नवल ग्रंथावलि' (दे०) इनके आलोचना-कृतित्व का संग्रह है। संस्कृत एवं अँग्रेज़ी के समीक्षा-सिद्धांतों का इन्होंने तलस्पर्शी अध्ययन किया था। गुजराती के सर्वप्रथम समालोचक के रूप में इनका स्थान सदैव बना रहेगा।

योग्यता, तटस्थता, विद्वत्ता, निष्पक्षता, समत्व आदि समीक्षा-गुणों का इनमें पर्याप्त विकास हुआ था। इनकी शैली विश्लेषणपरक थी।

नवसाहसांकचरित (सं० कृ०) [समय—अनुमानतः 1005 ई०]

यह संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें धारा के प्रसिद्ध नरेश भोज (दे०) के पिता सिंधुराज के शशिप्रभा नामक राजकुमारी के साथ परिणय का वर्णन है। इसके रचयिता हैं—पद्मगुप्त परिमल। यह सिंधुराज के पहले मुंज (वाक्पतिराज) के सभाकवि थे। मुंज बड़े गुणग्राही एवं साहित्यानुरागी थे। उनकी मृत्यु हो जाने पर पद्मगुप्त ने अपने को निराश्रय पाया। पर सिंधुराज ने इनका इतना सम्मान किया कि इनकी प्रसन्नता कविता के रूप में प्रकट हुई।

यह महाकाव्य 1005 ई० के आसपास लिखा गया। इसमें 18 सर्ग हैं। उसके बारह सर्गों में सिंधुराज के पूर्ववर्ती सभी परमारवंशी नरेशों के वर्णन हैं। यह महाकाव्य वैदर्भी रीति का उत्कृष्ट निदर्शन है। इसका प्रमुख रस शृंगार तथा गुण प्रसाद है। प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में कवि बड़ा सफल हुआ है। कालिदास (दे०) की कविता का जितना सफल अनुकरण इस महाकाव्य में हुआ है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उपमादि अलंकारों के सफल प्रयोग ने काव्य को और भी मनोरम बना दिया है। इस प्रकार यह काव्य परमारों के इतिहास के लिए जितना उपादेय है, काव्य-सौष्ठव एवं साहित्यिक गरिमा की दृष्टि से भी उतना ही सफल है।

'नवां शिवाला' (पं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

'नवां शिवाला' गुरुबख्शसिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) का निबंध-संग्रह है जिसमें कला, जीवन, सौंदर्य, कलाकार का कर्त्तव्य आदि विविध विषयों पर इक्कीस निबंध संकलित हैं। इन निबंधों में 'प्रीत'-सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए जीवन को कला का अंश माना गया है। जीवन-दोषों के निराकरण का एकमात्र साधन है प्रीति—अर्थात् परस्पर प्रम की भावना। कला भावाभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसकी एक ही किरण जीवन में सौंदर्य का संचार कर देती है। सौंदर्य उत्तम स्वभाव की अभिव्यक्ति है जो मानवता को जन्म देती है। मनुष्य की प्रत्येक बुराई का उपचार स्वयं मनुष्य ही है। प्रीति-सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करने वाली इस कृति में कहीं-कहीं निबंधकार का उपदेशक-रूप मुखर हो गया है।

नवीन कविता विषे व्याख्यानो (गु० कृ०)

'नवीन कविता विषे व्याख्यानो' प्रो० बलवंतराय क० ठाकोर के व्याख्यानों का मुद्रित रूप है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन अप्रैल 1943 ई० में हुआ और पुनर्मुद्रण जनवरी 1964 में गुजराती-विभाग, म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा, की ओर से किया गया। इसमें लेखक के चार भाषण संकलित हैं जो पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे दर्शन के नाम से ज्ञापित किए गए हैं। इन चार दर्शनों के बाद 22 टिप्पणियाँ दी गई हैं और तत्पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धि-पत्रक। प्रथम दर्शन में लेखक अपनी काव्य-भावना को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि 'मेरी काव्य-तत्त्व संबंधी भावना यूरोपीय रसिकों और दार्शनिकों की सौंदर्य-मीमांसा के आधार पर बँध पाई है।' इसी के साथ प्रथम दर्शन में लेखक ने गुजराती-साहित्य में उस समय प्रवर्तमान संक्रांति-युग की चर्चा की है और अपने नवीनता-संबंधी दृष्टिकोणों को स्पष्ट किया है। दूसरे दर्शन में 'नवीन कविता में लिरिक' को लेकर एक भूमिका बाँधी गई है; तीसरे दर्शन में विरह-काव्य और विषाद-काव्यों की चर्चा है जबकि चौथा दर्शन लिरिकेतर कविता (महाकाव्य, आख्यान-काव्य, वर्णन-काव्य तथा खंड-काव्य), और कविता से संबंधित कुछ प्रश्नों को समर्पित है। कुछ प्रश्नों में 'इमेजिस्ट' आंदोलन, दुर्बोधता, सर्जकता और कविता और संगीत को लिया गया है। इस ग्रंथ में वास्तव में तो तीसरा और चौथा दर्शन ही महत्वपूर्ण हैं। लेखक गुजराती-साहित्य में 'नवीन' (नवीन साहित्य और नये हस्ताक्षरों) का पक्षधर है। सभी स्थानों पर विचार स्पष्ट और भाषा आवेग-प्रधान है।

'नवीन', बालकृष्ण शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

इनका जन्मस्थान ग्वालियर का भवाना नामक ग्राम है। इनकी शिक्षा उज्जैन और कानपुर में हुई। सत्याग्रह-आंदोलन के प्रभाव में आकर इन्होंने कालिज छोड़ दिया। इनका स्वभाव मनमौजी और फक्कड़ था। पारिवारिक परिवेश से इन्हें वैष्णव संस्कार प्राप्त हुए। गणशशंकर विद्यार्थी जैसे प्रखर राष्ट्रनेता और निर्भीक पत्रकार ने इन्हें सक्रिय राजनीति और पत्रकारिता में दीक्षित किया। फलतः इनके काव्य में रीति, रहस्य और राष्ट्रीयता की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। 'कुंकम', 'रश्मिरेखा' 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबा-स्तवन' और 'उर्मिला' इनकी गीतात्मक या प्रबंधात्मक रचनाएँ हैं। 'हम विषपायी जनम के' इनकी रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन है। इनकी प्रतिभा का पूर्ण उत्कर्ष गीतों में हुआ है। राजनीतिक व्यस्तता अथवा फक्कड़पन के कारण ये अपनी शैली का परिष्कार नहीं कर सके। इसीलिए कहीं तो खड़ी बोली में ब्रजभाषा के अनुचित प्रयोग खटकते हैं और कहीं संस्कृत के दुरूह शब्द प्रवाह में व्याघात उत्पन्न करते हैं। फिर भी निश्छल प्रणयोद्गार और निर्भय राष्ट्रभक्ति को निर्व्याज रूप से लयबद्ध करने के कारण उत्तर छायावादी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

नव्यशास्त्रवाद *(हिं० पारि०)*

'नव्यशास्त्रवाद' पश्चिम में सत्रहवीं और अठारहवीं शती में प्राचीन आभिजात्यवादी (दे०) साहित्यिक मूल्यों के पुनरुत्थान में प्रयत्नशील विशिष्ट प्रकृति एवं आंदोलन 'निओक्लासिसिज़्म' के लिए प्रचलित हिंदी अभिधान है। इसके लिए एक अन्य पर्याय 'नव्य-आभिजात्यवाद' भी है। नव्यशास्त्रवाद की स्थापना वस्तुतः उस युग के प्रमुख साहित्यिक केंद्रों इटली और फ्रांस में फैली हुई अराजकता, शास्त्रीय मूल्यों एवं नियमों की घोर उपेक्षा, कवि-कर्म को व्युत्पत्ति और प्रशिक्षण से सर्वथा मुक्त मात्र विक्षेप-जन्य मानने की भ्रांति और कवि-कल्पना के असंयम आदि को अनुशासित करने के लिए साहित्य-सृजन और साहित्यालोचन के क्षेत्र में प्राचीन यूनानी-रोमी साहित्य-सिद्धांतों की पुनः प्रतिष्ठा के उद्देश्य से की गई थी। कुछ लोग इसका आरंभ पुनर्जागरणकाल के लेखक वीदा की अमर कृति 'दे आर्ते पोएतिका' (1527 ई०) से मानते हैं। इस ग्रंथ में वीदा ने प्राचीन आचार्यों के प्रति आदर व्यक्त करते हुए साहित्य-रचना के लिए प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के व्यापक महत्व का प्रतिपादन किया था। वीदा की मान्यताओं में यद्यपि नव्यशास्त्रवाद के बीज तो अवश्य थे, किंतु उनका अनुसरण करने वाले परवर्ती लेखकों में नव्यशास्त्रवाद का वास्तविक पल्लवन नहीं हो पाया था। यह कार्य वस्तुतः फ़्रांसीसी लेखक मालेबा द्वारा संपन्न हुआ। बाद में बोइलो, रापें और बोस्यू ने नव्यशास्त्रवाद के सिद्धांतों का विधिपूर्वक प्रतिपादन किया। फ़्रांस से बाहर ड्राइडन, एडिसन और डॉ० जॉन्सन जैसे अँग्रेज़ आलोचकों ने अपने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप आभिजात्यवादी शास्त्रीय दृष्टि का रूपांतरण किया तथा जर्मनी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक लेसिंग ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'लाओकन' (1766 ई०) में नव्यशास्त्रवाद की बहुत सुंदर व्याख्या की।

नव्यशास्त्रवाद प्राचीन साहित्य-सिद्धांतों का न तो अंधानुकरण था और न विवेकहीन अनुसरण ही। वस्तुतः नव्यशास्त्रवादियों—विशेषतः अँग्रेज़ी आलोचकों—ने अपने विवेक के आधार पर युगीन परिप्रेक्ष्य के अनुरूप अरस्तू, लॉन्जाइनस और होरेस आदि प्राचीन आचार्यों के सिद्धांतों के उत्तमांश का नवरूपांतरण करते हुए उसे साहित्य-सर्जना के आदर्श के रूप में अपनाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नसीम' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म —1811 ई०; मृत्यु—1843 ई०]

नाम—दयाशंकर कौल, उपनाम—'नसीम', जन्मस्थान—लखनऊ। ये कश्मीरी ब्राह्मण थे। 'आतिश' लखनवी (दे०) इनके पथ-प्रदर्शक थे। मसनवी 'गुलज़ार-ए-नसीम' (दे०) इनका कीर्तिस्तंभ है। इस मसनवी में गुलबकावली की पद्यबद्ध कहानी है। अनेक काव्यात्मक विशेषताओं के कारण यह कृति उर्दू साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। इसी मसनवी को लक्ष्य कर 'चकबस्त' (दे०) और मौलाना 'शरर' (दे०) में परस्पर साहित्यिक शास्त्रार्थ हुआ था और 'अवधपंच' अख़बार ने उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

नसूह *(उर्दू० पा०)*

'नसूह' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) के उपन्यास 'तौबातुन्नसूह' (दे०) का प्रमुख पात्र है। यह अपने घर का कर्ता-धर्ता है। फ़हमीदा इसकी पत्नी है; कलीम, असीम और सलीम इसके तीन पुत्र हैं तथा नईमा और हमीदा दो पुत्रियाँ। नसूह पहले क्रूर स्वभाव का व्यक्ति है। घरवाले उसे हव्वा समझते हैं। घर के सभी सदस्य इसकी झिड़कियों और घुड़कियों से काँपते हैं। यह पारिवारिक कर्त्तव्यों की ओर से सर्वथा उदासीन है। विलासिता और ख़ास-ख़ास पान में ही इसका जीवन कटता है। इस के जीवन में धर्म और आस्तिकता के लिए कहीं स्थान नहीं है। यह डिप्टी मजिस्ट्रेट, फ़ौजदारी के पद पर कार्य कर चुका है।

दिल्ली में हैज़ा फैलता है जो नसूह को भी अपनी लपेट में ले लेता है। ओषधि-सेवन करने पर आँख लग जाती है और यह स्वप्न में ईश्वर का दरबार देखता है। अनेकों लोग—यहाँ तक कि नसूह के पिता भी—इस ईश्वरीय न्यायालय में उपस्थित होकर न्याय की प्रतीक्षा में खड़े हैं। यहाँ का दृश्य देख नसूह का मन काँप उठता है। स्वप्न टूटता है तो इसका कायापलट हो जाता है। इस की आस्थाओं तथा आचरणों में आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है—यह नम्र, धर्मपरायण, स्नेहशील, कर्तव्यनिष्ठ एवं आस्थावान बन जाता है। लोग बीमारी से उठकर चिड़चिड़े हो जाते हैं किंतु यह नम्र एवं शिष्ट हो जाता है। घर में जो लोग इससे डरते थे वे ही अब इसका आदर करने लगते हैं।

नहैमोळि *(त० पारि०)*

तमिल भाषा के उपलब्ध प्राचीन वैयाकरणों में प्रथम 'तोलकाप्पियम्' (दे०) के 'चेय्युळियल्' (छंद-परिच्छेद) में कुछ रचनाओं का उल्लेख है जिनके लिए चरणों की निश्चित सीमा का बंधन नहीं है। इनमें से एक 'उरै' है जो संभवतः पद्य-गद्य-मिश्रित टीकात्मक रचना थी। सूत्र 173 में 'उरै' ग्रंथों के चार प्रकारों का उल्लेख है। ये हैं—

(1) मूलांश बीच-बीच में लिये हुए, उसके विचारों से संबंधित।

(2) मूल से उठने वाली बातों से संबंधित।

(3) मूल से हटकर कल्पना-संपृक्त बातों से संबंधित।

(4) मूल से संबद्ध सार्थक व्यंग्यपूर्ण बातों से संबंधित।

प्रस्तुत 'नहैमोळि' चौथा प्रकार है। कदाचित् मूल पद्य की बात को व्यंग्यपूर्ण ढंग से काटकर कुछ और स्थापना करना इस ग्रंथ का उद्देश्य था। 'तोलकाप्पियम्' में इस प्रकार के ग्रंथों के उदाहरणों के नाम नहीं मिलते और उसके टीकाकारों ने ऐसे उदाहरण बताए हैं जो आजकल अप्राप्य हैं।

नांजिल नाट्टु मरुमक्कळ वाषिमान्मियम *(त०कृ०)* [रचना-काल—1917-18 ई०]

यह बीसवीं शती के प्रसिद्ध तमिल कवि देशिग विनायकप्पिळ्ळै (दे०) की प्रभावशाली काव्य-कृतियों में परिगणित है। इन्होंने प्रायः बच्चों के लिए कविताएँ लिखीं परंतु इस कृति में एक गंभीर विषय का प्रतिपादन है। यह काव्य तिरुवनंतपुरम से प्रकाशित 'तमिलन' नामक मासिक पत्रिका में 1917-18 ई० के मध्य धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था।

इसमें नांजिल नाडु (त्रावनकोर) में रहने वाले वेळाळर जाति के लोगों में प्रचलित मातृसत्तात्मक दाय-प्रथा से पीड़ित एक परिवार की करुण कहानी वर्णित है। इसमें उन्होंने इस प्रथा के पालन से उत्पन्न नाना समस्याओं का अत्यंत सजीव चित्रण किया है। उक्त जाति में प्रचलित बहु-विवाह प्रथा के दोषों का वर्णन भी इस कृति में है। कवि ने संपूर्ण कथा काव्य के नायक पंचकल्याणी पिळ्ळै (दे०) की पाँचवीं पत्नी के माध्यम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कही है। इस कृति में उसके अंतर्द्वंद्व, भाव-संघर्ष का सजीव चित्रण है। विभिन्न प्रसंगों में करुण, हास्य, वीभत्स आदि रसों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संपूर्ण कृति में सरल एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग है। प्रादेशिक शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा में सजीवता एवं प्रभावशालिता आ गई है।

इस कृति के प्रकाशित होते ही वेळाळर जाति के कुछ जागरूक व्यक्तियों ने क्रांति की। राज्य की ओर से प्रथा-संबंधी नियमों में कुछ परिवर्तन किए गए। इस प्रकार इसे एक क्रांतिकारी रचना कहा जा सकता है।

नांदी *(सं० पारि०)*

देवता, ब्राह्मण तथा राजा आदि की आशीर्वाद-युक्त स्तुति जिस कथन के द्वारा की जाती है उसे 'नांदी' कहते हैं। इसे नांदी इसलिए कहते हैं क्योंकि प्रेक्षक इससे आनंदित होते हैं। इसमें मांगल्य-वस्तु—शंख, चंद्र, चक्रवाक और कुमुद आदि का वर्णन होना चाहिए। इसमें बारह या आठ पद होने चाहिए।

नाएग्रा ओ देबयानी *(उ० कृ०)*

'नाएग्रा ओ देबयानी' श्री कृष्णप्रसाद मिश्र (दे०) की ग्यारह कहानियों का संकलन है। डा० मिश्र की कहानियों में नूतन दृष्टि-भंगी दिखाई पड़ती है। प्रकृति-वर्णन एवं प्राकृतिक बिंबों का प्रयोग इनकी कहानियों में हुआ है। लेखक के मतानुसार पाठक के मनोरंजन के साथ ही किसी-न-किसी सत्य-घटना की अवतारणा भी कहानीकार का उद्देश्य होता है। दैनिक जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक तत्त्वों की स्थापना करना लेखक की एक अन्य विशेषता है।

लेखक की कहानियाँ सुखपाठ्य हैं तथा नारी-पुरुष तथा पुरुष-प्रकृति-संबंध पर आधारित हैं।

नाकर (गु० ले०) [जन्म—1516 ई०; मृत्यु—1569 ई०]

प्राचीन गुजराती के महत्वपूर्ण कवि नाकर बड़ौदा के निवासी वणिक् थे।

'हरिश्चंद्राख्यान', 'चंद्रहासाख्यान', 'ध्रुवाख्यान', 'नळाख्यान', 'ओखाहरण', 'लवकुशाख्यान', 'शिव-विवाह', 'व्याध-मृगी-संवाद', 'भीलनी के बारमास' आदि इनकी कृतियाँ हैं। अपने एक ब्राह्मण मित्र की आजीविका चलाने के लिए इन्होंने आख्यान लिखकर उसे दे दिए थे।

संस्कृतज्ञ न होने के कारण इन आख्यानों की कथा पुराणादि से ग्रहण न कर, मौखिक व श्रवण-परंपरा से ग्रहण की गई है।

पद-पद्धति व कड़वक-पद्धति का आश्रय इन्होंने भालण (दे०) के अनुकरण पर लिया है। परवर्ती आख्यान-कवि प्रेमानंद (दे०) पर इनका प्रभाव रहा है।

गुजराती के प्रारंभिक आख्यानकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

नाक्कटा चित्रकार *(उ० कृ०)*

यह रामप्रसाद मिश्र उर्फ़ फतुरानंद (दे०) का अन्यतम उपन्यास है। बाल्यावस्था में चेचक के रोग से जिस चित्रकार ने नाक गँवा दी है, उसके अनुराग की कहानी इस उपन्यास की विषयवस्तु है। उसकी कला-सृष्टि की जो प्रेरणा है, वह चित्रकार की तूलिका से अमर तो हो गई, किंतु वह उसकी जीवन-संगिनी नहीं बन सकी।

सावलील गद्य में लिखित उनका यह उपन्यास स्थान-स्थान पर हास्योद्रेक करता हुआ भी मुख्यतः एक कलाकार की समस्या के प्रतिफलन की निष्ठापूर्ण चेष्टा करता है।

नागमती *(हिं० पा०)*

जायसी (दे०)-कृत 'पद्मावत' (दे०) नामक प्रेमाख्यानक काव्य में यह सहनायिका के रूप में आती है। यह पूर्णतः काल्पनिक पात्र है, परंतु फिर भी कवि ने इसका इस चातुर्य से वर्णन किया है कि इससे संबद्ध समग्र घटनाएँ कम सजीव प्रतीत नहीं होती हैं। प्रारंभ में यह रूप-गर्विता है, एक स्थान पर स्पष्ट उद्घोषणा करती है—'मैं सारे संसार का रूप जीत चुकी हूँ' (36-10) और पद्मिनी (दे० पद्मावती) चाहे रूप में कितनी ही सुंदर सही हम से बढ़कर कोई भी रूपवती नहीं है' (8-6)। राजा रतनसेन (दे०) के सिंहल की ओर चल देने पर कवि ने उसके विरह का अकृत्रिम ढंग से बहुत ही हृदयद्रावक वर्णन किया है। संदेशवाहक द्वारा 'बारहमासा' के रूप में अपने पूरे वर्ष की वियोग-स्थिति का नागमती ने जिस करुण ढंग से वर्णन किया है वह कवि के कौशल का परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चायक है। नागमती एक हिंदू रमणी है, अपनी विरहजन्य वेदना का संदेश जब वह एक दूत के माध्यम से राजा के पास भिजवाती है, तब राजा भी उसकी स्थिति से द्रवीभूत होकर उसके पास चला जाता है।

अंत में नागमती राजा की मृत्यु पर अपनी सपत्नी के साथ चिता में जल जाती है। निश्चय ही नागमती के रूप में कवि ने सच्चे विरहोद्‌गारों की जाली में जिस प्रभावक चरित्र की निर्मिति की है उसकी करुण गाथा की लपेट में 'दरार' के रूप में पृथ्वी का हृदय फट गया है और कल्पना में उसके मरने पर चिता की अग्नि से आज तक भौंरे और कौवे काले पड़ते आए हैं।

नागम्मा *(ते० पा०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०)-रचित 'पलनाटि वीरचरित्र' (दे०) नामक ऐतिहासिक प्रबंधकाव्य की नायिका है। यह नागम्मा रामि रेड्डी नामक एक कृषक द्वारा पाली जाती है और अल्पायु में ही विधवा हो जाती है; इस प्रकार पिता एवं पति दोनों की संपत्ति की स्वामिनी बनती है। तदुपरांत इसके अंदर छिपी हुई महान शक्ति एवं सामर्थ्य इसको स्त्री-सुलभ कार्यव्यापारों तक सीमित नही रहने देती। प्रबल महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर परम चातुरी से यह उस देश के शासक नलगामराजु को प्रभावित करके उसके स्वामिभक्त मंत्री ब्रह्मनायुडु को अपदस्थ करवाती है और स्वयं मंत्री बन जाती है। इतने से संतुष्ट न होकर नलगामराजु के सौतेले भाइयों के राज्य को भी हस्तगत करने के लिए उन्हें 'कुक्कुटयुद्ध' के लिए प्रेरित कर, वंचना से उनको हराती है, और शर्त के अनुसार उनसे सात वर्ष का वनवास कराती है। जब वे वनवास से लौटते हैं, तब उनके राज्य को लौटाने से नलगामराजु से इनकार करवाती है। परिणाम में जो युद्ध होता है उसमें स्वयं सेनानी के पद से युद्ध करती हुई अंत में शत्रुओं के द्वारा बंदी बनाई जाती है। आंध्र में नागम्मा, एक चतुर, पराक्रमी और कठोर स्त्री के रूप में स्मरण की जाती है।

नागर, अमृतलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म आगरा के गोकुलपुरा मोहल्ले में हुआ। इनके पूर्वज गुजरात के रहने वाले थे। किंतु इनके जन्म से कई पीढ़ी पूर्व आगरा आकर रहने लगे थे पिता की असामयिक मृत्यु तथा पंद्रह-सोलह वर्ष की आयु में ही विवाह-सूत्र में बँध जाने के कारण ये मात्र इंटर तक ही पढ़ सके। जीवन-यापन के निमित्त बीमा-कंपनी के डिस्पैच-क्लर्क से लेकर सिने-संसार, पत्रकारिता तथा आकाशवाणी के ड्रामा-प्रोड्यूसर आदि पदों पर कार्य करते हुए ये निरंतर साहित्य-सृजन में लीन रहे। 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', (दे०), 'बूंद और समुद्र' (दे०) 'अमृत और विष', 'मानस का हंस' तथा 'नाच्यौ बहुत गुपाल' इनके उल्लेखनीय सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यास हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन करते समय ये संबद्ध युग की संपूर्ण सामग्री का सम्यक् अध्ययन करने के बाद इतिहास तथा कल्पना का ऐसा समन्वय करते हैं जिससे न तो साहित्यिकता को ही आँच पहुँचती है और न ऐतिहासिकता को। सामाजिक उपन्यासों में ये व्यक्ति तथा समाज में समन्वय की भावना पर बल देते हैं और इन दोनों की सापेक्षता में सामाजिक समस्याओं का हल ढूंढ़ते हैं। सुसंगठित कथानक, समाज के विभिन्न वर्गों से बौद्धिक समस्याओं का निरूपण करने वाले, प्रतिक्रियावादी, सुधारवादी, रूढ़िवादी आदि पात्रों का चयन, व्यंजक ब्योरों के द्वारा देशकाल का हृदयस्पर्शी चित्रण तथा हास्य-व्यंग्य के पुट से युक्त भाषा-शैली का प्रयोग इनकी उपन्यास-कला की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। समग्रतः प्रेमचंदोत्तर (दे० प्रेमचंद) हिंदी-उपन्यासकारों में इनका उल्लेखनीय स्थान है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका *(हिं० कृ०)*

हिंदी और नागरी के प्रचार का बीड़ा उठाकर इस कार्य को निरंतर निष्ठापूर्वक करते रहने वाली पत्रिकाओं में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का स्थान सर्वोच्च है। जून 1896 ई० में वाराणसी से प्रकाशित इस पत्रिका के प्रथम संपादक थे वेणी प्रसाद। आरंभ में डिमाई आकार के 48 पृष्ठों की इस मासिक पत्रिका का मूल्य था चार आना। और पहले-पहल इसकी केवल 250 प्रतियाँ छपी थीं। शुरू में इसमें नागरी प्रचारिणी सभा की सूचनाएँ अथवा हिंदी भाषा और साहित्य पर टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। कभी-कभी एकाध कविता भी छप जाती थी जैसे महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) की कविता 'नागरी तेरी यह दशा'। आरंभ में इसके संपादक-मंडल में बाबू श्यामसुंदरदास (दे०), महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, श्री कालिदास और श्री राधाकृष्ण दास थे। 1920 ई० में यह त्रैमासिक हो गई। सुप्रसिद्ध विद्वानों—आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र), पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा (दे०), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (दे०) मुंशी देवीप्रसाद, केशवप्रसाद मिश्र, मंगलदेव शास्त्री, (दे०) विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) आदि का संपादक-रूप में सहयोग पाने का इसका सौभाग्य रहा है।

इसका प्रकाशन तो हिंदी आंदोलन की पीठिका के रूप में हुआ था पर बाद में इसने आलोचना और शोध-पत्रिका का रूप धारण कर लिया। रॉयल एशियाटिक सोसायटी और पाश्चात्य पंडितों के अध्ययनों द्वारा आरंभ होने वाली ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक परीक्षण वाली आलोचना-पद्धति को सबसे पहले इसी पत्रिका ने अपनाया। अन्वेषण और अनुसंधानपरक आलोचना का विकास भी इसके द्वारा हुआ। इसी पत्रिका के माध्यम से चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने स्पष्ट घोषणा की कि उत्तर अपभ्रंश ही पुरानी हिंदी है। ब्रजभाषा-गद्य के पुराने नमूनों, जैसे सती-समाधि लेख, का प्रकाशन भी इसके द्वारा हुआ। इसी में जायसी (दे०)-कृत 'पदमावत' (दे०) जैसे अमर ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। प्राचीन हिंदी-साहित्य की खोज और प्रकाशन के साथ-साथ इस पत्रिका ने इतिहास, पुरातत्त्व, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला, संस्कृति-संबंधी उच्चस्तरीय साहित्य के प्रणयन और प्रकाशन में अन्यतम योग दिया। 1917 ई० में प्रकाशित 'शिक्षा का माध्यम', 'आँखों देखा नक्षत्र-जगत', 'कोलंबस की यात्रा' आदि लेख इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार 1949 ई० में खोजपूर्ण लेख—'गुप्त सम्राट और विष्णुसहस्रनाम', 'रामवनवास का भूगोल', 'मिश्रबंधुविनोद की भूलें'—छपे। शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित करने का श्रेय भी इसी पत्रिका के अंकों (1912 ई० से 1919 ई०) को है। हिंदी-पत्र-साहित्य के विकास में भी इसका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

नागरी प्रचारिणी सभा *(हिं० संस्था)*

हिंदी भाषा और साहित्य तथा देवनागरी लिपि की उन्नति तथा प्रचार और प्रसार करने वाली यह देश-भर में अग्रणी संस्था है। इसकी स्थापना 16 जुलाई, 1893 ई० में हुई थी। इसके प्रमुख संस्थापक थे—स्व० श्यामसुंदरदास (दे०), पं० रामनारायण मिश्र और स्व० ठाकुर शिवकुमार सिंह। सभा का 'आर्य भाषा पुस्तकालय' नामक एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें अन्यत्र अलभ्य ग्रंथों का भी काफ़ी बड़ा संकलन है। इसमें पंद्रह हज़ार हस्तलिखित ग्रंथ हैं जिनका संक्षिप्त विवरण 'त्रैवार्षिक रिपोर्ट' में दिया जाता है। सभा द्वारा लगभग 1000 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०) (त्रैमासिक) सभा का प्रमुख पत्र है। 'नागरी पत्रिका' (मासिक) भी प्रकाशित हो रही है। 'सरस्वती' (दे०) पत्रिका का श्रीगणेश भी सभा द्वारा किया गया था। सभा ने निम्नोक्त मासिक पत्रिकाएँ भी चलाई थीं—'हिंदी', 'विधि पत्रिका', 'हिंदी रिव्यू' (अँग्रेज़ी), किंतु किन्हीं कारणों से इन्हें बंद करना पड़ा। सभा लेखकों को प्रतिवर्ष अनेक पुरस्कार एवं स्वर्ण तथा रजत पदक दिया करती है। सभा की अनेक शाखाएँ हैं।

नागवर्मा प्रथम *(क० ले०)* [समय—लगभग 990 ई०]

नागवर्मा प्रथम के समय तथा कृतियों के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कहा जाता है कि ये चंद्र राजा के दरबार में थे। भोज-परमार के पास जाकर इन्होंने अपनी 'कादंबरी' सुनाई थी, जिस पर उन्होंने पुरस्कृत करके कवि को संतुष्ट किया था। 'छंदोंबुधि' (दे०) तथा 'कर्णाटक कादंबरी' (दे०) इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। 'छंदोंबुधि' कन्नड में पिंगल पर लिखा सर्वप्रथम ग्रंथ है। इसमें संस्कृत-छंदों के अतिरिक्त कन्नड के अपने छंदों का सोदाहरण निरूपण है। कवि का कहना है कि उसने पिंगल मुनि का ही अनुसरण किया है।

'कर्णाटक कादंबरी' बाण (दे०) कवि की विख्यात गद्यकृति का कन्नड रूपांतर है। बाण की 'कादंबरी' विंध्याटवी की भाँति गहन है। उसे काट-छाँटकर एक सुंदर चंपू-काव्य के रूप में परिवर्तित किया गया है। इसमें गद्य एवं पद्य समान परिमाण में हैं। मूल कथानक, चरित्रों की यथार्थता, वर्णनों की सरसता, कल्पना, की उड़ान—इनमें व्याघात नहीं आने दिया गया है। अनुवाद में मौलिक कृति का सौंदर्य आ गया है। इस प्रकार 'कादंबरी' नागवर्मा के हाथ में पड़कर कन्नड की अपनी कृति बन गई है। इस ग्रंथ की भाषा अत्यंत प्रांजल है। नागवर्मा की शैली वैदर्भी है। उन्होंने मूल के अनेक संस्कृत शब्दों के बदले सरस कन्नड शब्दों का प्रयोग किया है; शैली कहीं भी दुरूह नहीं होने पाई।

नागवर्मा द्वितीय *(क० ले०)* [समय—लगभग 1150 ई०]

कन्नड-साहित्य के आदिकाल की सर्वांगीण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति में विशेष रूप से योग देने वालों में नागवर्मा द्वितीय का नाम अविस्मरणीय है। इनके जन्म-मृत्यु आदि के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। अनुमानतः इनका समय 1150 ई० के करीब ठहरता है। ये चालुक्य-नरेश जगदेकमल्ल के यहाँ कटकोपाध्याय थे। जाति के जैन थे। कहा जाता है कि ये कन्नड के विख्यात कवि जन्न के गुरु थे। इनकी रचनाएँ हैं—'शब्दस्मृति', 'भाषाभूषण', 'काव्यावलोकन' तथा 'छंदोविचिति' व्युत्पत्ति-साधक'। सभी ग्रंथों का—क्या रीतिग्रंथ, 'क्या पिंगल, क्या व्याकरण सबका—प्रणयन एक-साथ करने का श्रेय इन्हें मिलता है। अतः सहज ही ये कर्णाटक-लक्षण-शिक्षणाचार्य के गौरव से भूषित हैं। कन्नड के वैयाकरणों में तो ये सर्वप्रथम हैं ही; इन ग्रंथों में शास्त्र-पांडित्य, संग्रह-कौशल, प्रयोग-नैपुण्य के साथ ही रसग्राहिता तथा समन्वय-दृष्टि भी विद्यमान है। लक्षणों का निरूपण करते समय इन्होंने खुद लक्ष्य-पद्य न लिखकर दूसरों की कविताएँ चुनी हैं, और उनमें इनकी रस-दृष्टि के दर्शन होते हैं।

नागवर्मा प्राचीन आलंकारिकों से—विशेषतः राजशेखर (दे०) से—अधिक प्रभावित हैं। रसों की संख्या नागवर्मा ने केवल आठ दी है किंतु निरूपण करते समय अद्भुत के साथ शांत रस का भी निरूपण किया है। वामन (दे०) ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहा तो नागवर्मा ने उसे अस्वीकार कर 'रीति काव्य का शरीर' कहकर उसे उचित स्थान दिया है। यह भारतीय काव्यशास्त्र के लिए उनकी महती देन है। नागवर्मा से भी पूर्व के कन्नड आलंकारिक कविराजमार्गकार ने ध्वनि (दे०) का उल्लेख किया था किंतु यह आश्चर्य की बात है कि नागवर्मा ने कहीं भी ध्वनि का उल्लेख नहीं किया है।

नागानंद (सं० कृ०) -[समय—सातवीं शती ई०]

यह महाराज हर्ष (दे० श्रीहर्ष) की प्रसिद्ध नाट्यकृति है। इसमें बौद्ध-अवदान-कथा के आधार पर विद्याधर कुमार जीमूतवाहन (दे०) की कथा पाँच अंकों में संयोजित है। इस नाटक के दो भाग हैं। पूर्वार्ध में विद्याधर कुमार जीमूतवाहन तथा सिद्धकन्या मलयवती की प्रणय-कथा वर्णित है। उत्तरार्ध में जीमूतवाहन द्वारा गरुड़ के सर्प-भक्षण-त्याग की कथा है। नाटक का अंत भरतवाक्य से किया गया है।

इस नाटक के मंगलाचरण और भरतवाक्य में बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है, पर कथानक में ऐसा नहीं है। इसमें हर्ष ने आत्म-बलिदान, वदान्यता, उदार-हृदयता तथा दृढ़ संकल्प आदि बातों का सफल चित्रण किया है। जीवमूतवाहन विलक्षण रूप में निबद्ध होने पर भी, बौद्धों का एक आदर्श है। शंखचूड़ और उसकी माँ का चरित्र भी महान् है। यद्यपि नाटक के दोनों अंशों में सामंजस्य की कमी है, किंतु प्रभावान्विति में किसी प्रकार की असफलता नहीं है। अभिव्यंजना तथा विचारों की सरलता हर्ष का विशेष गुण है और उसका परिचय नागानंद में पद-पद पर मिलता है। नागानंद की भाषा परिनिष्ठित तथा अर्थगर्भित है। अलंकारों का प्रयोग सुरुचिपूर्ण तथा संयत है।

नागार्जुन *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—200 ई०]

डा० विंटरनित्ज के अनुसार नागार्जुन आंध्र राजा यज्ञश्री के समकालीन थे। नागार्जुन का जन्म विदर्भ में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। आगे चलकर ये श्रीपर्वत पर रहने लगे थे। नागार्जुन वैद्यक और रसायनशास्त्र के भी आचार्य थे। नागार्जुन की प्रमुख रचनाओं में 'माध्यमिक कारिका', 'सुहृल्लेख' तथा 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' हैं। 'माध्यमिक कारिका' और 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' मूल संस्कृत में ही उपलब्ध हैं। 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' की 72 कारिकाओं में से माहात्म्य और नमस्कार के दो श्लोकों को छोड़कर शेष 70 कारिकाओं में शून्यता का विवेचन होने के कारण ही 'विग्रह व्यावर्त्तनी' का दूसरा नाम 'शून्यता-सप्तति' भी प्रचलित हो गया है।

नागार्जुन का शून्यवाद एक विचित्र दर्शन है। उसका एक छोर अनात्मवाद है और दूसरा अभौतिकवाद। शून्यवादी आत्मा का खंडन करता है। नागार्जुन के मतानुसार संसार का निदान सत्काम दृष्टि है। इस सत्काम दृष्टि का आलंबन आत्मा है। शून्यवादी यह मानता है कि आत्मा की अनुपलब्धि से सत्काम दृष्टि का विनाश होगा और उसके विनाश से क्लेशों की व्यावृत्ति होगी। आत्मा, नागार्जुन के मतानुसार, अहंकार का विषय है। अतः क्लेशमूल अहंकार के परिक्षय के लिए आत्मा निषिध्य ही है।

शून्यवादी नागार्जुन का प्रमुख सिद्धांत प्रतीत्य-समुत्पाद है। इस सिद्धांत के अनुसार सभी वस्तुएँ प्रतीत्य-समुत्पन्न हैं। प्रतीत्यसमुत्पन्न का आशय यह है कि सभी वस्तुएँ अपनी उत्पत्ति में, अपनी सत्ता के अर्थ दूसरे प्रत्यय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा हेतु पर आश्रित हैं। माध्यमिक शून्यवादी का यही सिद्धांत प्रतीत्यसमुत्पादवाद का सिद्धांत है।

नागिला *(मल० पा०)*

'साहित्य मंजरी' (दे०) वळ्ळत्तोळ् (दे०) ने 'नागिला' शीर्षक एक खंडकाव्य लिखा है। उसका एक कथा-पात्र है—'नागिला'।

नागेश *(म० ले०)* [जन्म—1618 ई०; मृत्यु—1693 ई०]

ये अहमद नगर के समीपस्थ 'भिंगार' ग्राम के निवासी थे। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः जानकी तथा मोर जोशी था और ये यशवंतराव नामक किसी श्रीमंत के आश्रय में रहते थे। संस्कृत-साहित्य का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाएँ हैं—'सीता-स्वयंवर,' 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'रसमंजरी' और 'शारदाविनोद'। एक समीक्षक के मत में इनका काव्य सर्गबद्ध नहीं है, अतः इन्हें महाकवि भले ही न कहा जाए, परंतु प्रकृति-वर्णन, नायक-नायिका के चरित्र-चित्रण और नौ रसों के परिपोष की दृष्टि से इन्हें महाकवि की संज्ञा देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

नागेश *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1800 ई० के लगभग]

नागेश भट्ट का दूसरा नाम नागोजी भट्ट था। इनके पिता का नाम शिवभट्ट तथा माता का नाम सती-देवी था। नागेश ने हरि दीक्षित से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। नागेश का प्रधान शिष्य पापगुंड था। प्रयाग के समीप शृंगवेरपुर का राजा रामसिंह नागेश का वृत्तिदाता था। अंत में, नागेश संन्यासी हो गए थे। सर्वाधिक प्रख्यात नागेश-रचित ग्रंथ 'महाभाष्य प्रदीपोद्योत' है। यह कैयट के 'प्रदीप' पर टीका-ग्रंथ है। इस टीका का दूसरा नाम 'विवरण' भी है। इसके अतिरिक्त नागेश-रचित प्रमुख ग्रंथ—'लघुशब्देंदुशेखर,', (दे०), 'वृहच्छब्देंदुशेखर', 'परिभाषेंदुशेखर', 'लघुमंजूषा' तथा 'परमलघुमंजूषा' तथा 'स्फोटवाद' हैं। नागेश-रचित 'उद्योत' 'महाभाष्य (दे०) के विषय-बोध के लिए अत्यंत उपादेय टीका है। इसी प्रकार 'सिद्धांत-कौमुदी' (दे०) के अनुशीलन के लिए 'लघुशब्देंदुशेखर' तथा 'वृहच्छब्देंदुशेखर का महत्व भी मुक्त कंठ से स्वीकार्य है। नागेश का विवेचन महान् पांडित्यपूर्ण एवं गंभीर है।

नाज़की, मीरग़ुलाम रसूल *(कश्० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म कश्मीर स्थित माडर गाँव (खुइहामा) में हुआ था। ये पुरानी विचारधारा और मध्यमार्गी दृष्टिकोण के प्रसिद्ध कवि थे। इनका लोक-प्रिय कविता-संग्रह 'नमरूदनामा' प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने बहुधा प्रेमाख्यानक स्फुट छंदों और रुबाइयों की ही रचना की है। नाज़की साहब उर्दू के भी अच्छे कवि हैं और उस भाषा में भी इनका एक संग्रह 'दीदा-ए-तर' प्रकाशित हो चुका है। नाज़की साहब की लेखनी में ओज है और इन्होंने शब्द की अभिधा और व्यंजना-शक्तियों से काम लेकर अपने ध्येय को खूब निभाया है। प्राचीन एवं अर्वाचीन विचारधारा के संक्रमण-काल के कश्मीरी साहित्य में इनका ऊँचा स्थान है।

नाटक *(हिं० पारि०)*

पूर्व और पश्चिम दोनों में 'नाटक' के बीज धर्मोत्सव एवं लोक-समारोह में माने जाते हैं। यदि पश्चिम में इसका संबंध डाइनाइसस और बैकस देवताओं की पूजा से संबद्ध उत्सव-समारोहों से है, तो पूर्व में बसंत, शरद् ऋतु मनाए जाने वाले समारोहों और धार्मिक उत्सवों से माना जाता है। आरंभ में इनमें नृत्य और संगीत की प्रधानता थी; कुछ समय बाद व्यंग्यानुकरण और संवादों की योजना की गई। नाटक का आरंभिक रूप पद्य-प्रधान था। यूनानी तथा संस्कृत नाटकों में ही नहीं, शेक्सपियर के अँग्रेज़ी नाटकों तथा हिंदी के प्रारंभिक नाटकों में भी पद्य का प्राधान्य लक्षित होता है। यूरोप में गद्य का समावेश सर्वप्रथम सोलहवीं शती की कामदी (दे०) में हुआ था। अठारहवीं शती में तो उसका व्यापक प्रयोग होने लगा था। भरत (दे०) और अरस्तू दोनों नाटक में अनुकृति (दे०) को महत्व देते हैं, पर भारतीय नाट्यशास्त्र में मूलाधार रस (दे०) को ही माना गया है। आरंभिक नाटकों में आदर्शवादिता पर बल था, बाद में नाटकों के विषय समसामयिक जीवन के प्रश्न होने के फलस्वरूप उनमें यथार्थ का आग्रह है। पूर्व और पश्चिम दोनों के नाटकों में पाँच कार्यावस्थाएँ (दे०) मानी गई हैं, परंतु पश्चिम में संघर्ष को तथा पूर्व में रस को प्रधान तत्त्व मानने के कारण ये अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हैं। पश्चिम के नाटक आरंभ से ही अभिनय की दृष्टि से लिखे गए, जबकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नाटकों में रसास्वादन पर बल था। अतः प्रथम में अभिनेयता का गुण प्रधान है, तो दूसरे में साहित्यिक गुणों का। आज भारतीय नाटकों में भी अभिनेयता पर अधिक बल दिया जा रहा है। नाटकों का वर्गीकरण उनके विषय, अंत, माध्यम, आकार, शिल्प आदि के आधार पर कई प्रकार से किया गया है। इसके प्रमुख भेद हैं—त्रासदी (दे०), कामदी (दे०), समस्या-नाटक (दे०), एकांकी (दे०), एकपात्री नाटक, ध्वनि-रूपक (दे०), गीति-नाटक (दे०), नृत्य-नाटक एवं प्रतीक नाटक।

नाटिका *(सं०, हिं० पारि०)*

संस्कृत-नाट्यशास्त्र के अनुसार दृश्य-काव्य के दो भेदों रूपक (दे०) और उपरूपक में से द्वितीय का सर्वप्रमुख उपभेद। धनंजय (दे०) ने नाटिका के इतिवृत्त को प्रकरण कहा है। उनके अनुसार इसके अंकों की संख्या एक से चार तक होनी चाहिए। इसकी नायिका देवी (प्रधान रानी) के क्रोध से निरंतर सशंकित राजा की पार्श्ववर्तिनी होनी चाहिए। शारदातनय (दे०) के अनुसार शृंगार रस से युक्त इस उपरूपक का नायक (दे० नेता) धीर-ललित एवं प्रख्यात होना चाहिए। विश्वनाथ (दे०) का मत सारग्राही है। उनके अनुसार नायिका की कथा कल्पित, चार अंकों में विभाजित और अधिकांशतः स्त्री पात्रों से पूर्ण होनी चाहिए। नायक प्रख्यात एवं धीर-ललित राजा होना चाहिए और नायिका गायक-कला-प्रवीण राजकन्या होनी चाहिए। प्रधान रस शृंगार तथा चारों अंकों में कैशिकी वृत्ति की योजना आवश्यक है। 'रत्नावली' (दे०), 'प्रियदर्शिका' (दे०), 'चंद्रप्रभा', 'विद्धशालभंजिका' सुप्रसिद्ध संस्कृत-नाटिकाएँ हैं।

नाट्य *(सं०, हिं० पारि०)*

(1) रंगमंच पर पात्रों द्वारा बोले गए वचनों तथा की गई चेष्टाओं के सम्मिलन को नाट्य (अभिनय) कहते हैं। चेष्टा दो प्रकार की होती है—आंगिक और मानसिक। इसी प्रकार नाट्य (अभिनय) तीन प्रकार का हुआ—वाचिक, आंगिक तथा मानसिक अथवा सात्त्विक। इनके अतिरिक्त आहार्य (वेशभूषा) को भी नाट्य माना गया है। (2) 'नाट्य' शब्द से अभिप्रेत अभिनेय वस्तु (दे० (दृश्य वाक्य) भी है। भरत (दे०) ने इसके 13 अंग माने हैं—रस (दे०), भाव (दे०), अभिनय, धर्मी, वृत्ति (दे०), प्रवृत्ति (दे०), सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रंग। (ना० शा० 6,10) एक प्रक्षिप्त कारिका के अनुसार दो अंग और भी हैं—उपचार और मंडप। (3) अभिनेय वस्तु अथवा अभिनय के विधायक तत्त्वों को नाट्यालंकार कहते हैं—जो कि तेंतीस माने गये हैं— आशीः, आक्रंद, कपट, अक्षमा, गर्व, यद्यम आदि। (सा० द० 6. 195-198)। (4) दृश्य-काव्य के प्रमुख दो भेदों—रूपक और उपरूपक में से उपरूपक के 18 उपभेदों में से एक भेद नाट्य-रासक है। इसमें एक अंक होता है। लय और ताल बहुत होते हैं। नायक (दे०) उदात्त होता है। पीठमर्द उपमर्द उपनायक होता है। शृंगार-सहित हास्य रस अंगी होता है। नायिका (दे०) वासकसज्जा होती है। इसमें मुख और निर्वहणसंधि (दे० नाट्य संधियाँ) तथा दस लास्यांग होते हैं। प्रतिमुख को छोड़कर इसमें शेष चार संधियाँ होती हैं। दो संधियाँ हों तो वह उदाहरण नर्मवती कहलाता है और चार हों तो विलासवती कहलाता है।

नाट्यछटा *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ के लेखक शंकर काशीनाथ गर्गे हैं जो साहित्य-जगत् में 'दिवाकर' के नाम से प्रख्यात हैं। मराठी साहित्य में 'नाट्यछटा' नामक नवीन नाट्य-विधा प्रारंभ करने का श्रेय 'दिवाकर' को है। अँग्रेजी 'मोनोलॉग' का मराठी अनुवाद 'नाट्यछटा' है। लेखक ने स्वीकार किया है कि 'नाट्यछटा'-लेखन में उन्होंने अँग्रेज़ लेखक ब्राउनिंग से प्रेरणा ली है।

'नाट्यछटा' एक पात्र की रचना है, जिसमें कुशल संवाद-योजना द्वारा अनेक व्यक्तियों की उपस्थिति का आभास कराया जाता है। इन्होंने लगभग 51 नाट्य-छटाएँ लिखी हैं, जो रूपकात्मक, दार्शनिक, व्यंग्यात्मक, चरित्र-विश्लेषणात्मक आदि अनेक प्रकार की हैं। सबसे बड़ी नाट्यछटा 58 पंक्तियों की हैं और कुछ 25-30 पंक्तियों की भी हैं।

इन संक्षिप्त रचनाओं में भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है और प्रारंभ, मध्य तथा अंत का कलात्मक संयोजन किया गया है। विषण्णता, निराशा एवं मृत्यु की छाया इनकी प्रायः सभी नाट्यछटाओं में है।

नाट्यदर्पण (सं० कृ०) [समय—बारहवीं शती]

'नाट्यदर्पण' रामचंद्र तथा गुणचंद्र की सम्मि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लित कृति है। 'नाट्यदर्पण' के ये दोनों रचयिता हेमचंद्र (दे०) के शिष्य थे। अतः इनका समय बारहवीं शती माना जा सकता है।

इस ग्रंथ में चार विवेक हैं जिनमें क्रमशः नाटक, प्रकरणादि, रूपक वृत्तिरसभावाभिनय तथा रूपक के साधारण लक्षणों का वर्णन किया गया है। 'नाट्यदर्पण' में कई प्राचीन एवं अनुपलब्ध काव्यों तथा नाटकों के उद्धरण हैं। इस ग्रंथ में अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है जिसमें रस के सुखात्मक एवं दुःखात्मक दोनों रूप होना मुख्य है।

नाट्यशास्त्र (भरतनाट्यशास्त्र) *(सं० कृ०)* [रचनाकाल—300 ई० पूर्व से 300 ई० के बीच]

ग्रंथ की साक्षी के अनुसार भरत (दे०) मुनि इसके रचयिता हैं। यह एक संकलनात्मक ग्रंथ माना गया है जिसमें 36 या किसी संस्करण में 37 अध्याय हैं। इसमें लगभग 6000 श्लोक हैं तथा इसके दशमांश गद्य हैं। संभवतः इसीलिए इसे षट्सहस्री-संहिता भी कहा गया है। यह नाट्य एवं उसके अंगभूत नृत्य, संगीत, वाद्य, चित्र एवं वाद्य-कलाओं तथा काव्य, नाट्य एवं छंद-विषयक विवरणों का एक विश्वकोश है। नाट्य की उत्पत्ति से लेकर प्रेक्षागृह के निर्माण तथा नाट्य के प्रकरण आदि दस भेदों एवं उनके प्रभेदों तथा अभिनय चतुष्टय के साथ वस्तु, नेता एवं रस आदि नाट्य अंग-प्रत्यंगों का अतिविस्तृत विवेचन इसमें हुआ है। काव्य के भी दोष, गुण, अलंकार, रीतिवृत्ति नामक तत्त्वों की मीमांसा इसमें उपलब्ध होती है। रस तथा भाव एवं उनके सभी प्रकारों का मौलिक प्रतिपादन इसी ग्रंथ में हुआ है।

ग्रंथ की भाषा सरल एवं सुबोध है। रचनाशैली पौराणिक है पर आकर्षक है। दैनंदिन व्यवहार में आने वाले दृष्टांतों से विषय का प्रतिपादन एवं स्पष्टीकरण किया गया है। पर्याप्त मात्रा में पूर्वाचार्यों एवं कृतियों के श्लोकों का संग्रह भी इसमें हुआ है। यत्रतत्र नंदिकेश्वर, दंतिल प्रभृति आचार्यों के नाम का उल्लेख भी मिलता है।

इस ग्रंथ पर एकमात्र उपलब्ध टीका 'अभिनव भारती' है जिसके कर्त्ता अभिनवगुप्त (दे०) हैं। इस टीका में ही अनेक टीकाकारों का उल्लेख तथा उनके आंशिक उद्धरण भी प्राप्त होते हैं जिसमें लोल्लट (दे०), श्री शंकुक (दे०) एवं भट्टनायक (दे०) मुख्य हैं।

संस्कृत-साहित्यशास्त्र का यह प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है, अतः उत्तरवर्ती सब कृतियों का उपजीव्य है। रस सिद्धांत की उद्भावना का श्रेय तो इसे है ही, नाट्य एवं काव्य के किसी भी तत्त्व के विवेचन की प्रामाणिकता के लिए भी यह आप्त ग्रंथ है।

नाट्यसंधियाँ *(सं०, हिं० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र के अंतर्गत नाटक की कथावस्तु में फलसिद्धि के हेतुओं की दृष्टि से पाँच अर्थ-प्रकृतियों (दे०) तथा फलप्राप्ति की दिशा में किए गए कार्य की पाँच अवस्थाओं (दे०) के संयोजन का निर्देश है। इन अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के मध्य वस्तु-विकास की विभिन्न स्थितियों के अनुरूप संश्लेषण का कार्य नाट्यसंधियाँ संपादित करती हैं। नाट्यसंधियों का कर्तव्य-कर्म द्विविध है: प्रधान इतिवृत्त और परस्पर संबद्ध अन्य प्रासंगिक इतिवृत्त-खंडों के बीच संबंध स्थापित करना तथा परस्पर जुड़े हुए इन छोटे उपवृत्तों के साथ नाटक के प्रधान उद्देश्य को संयुक्त करना।

नाट्यसंधियाँ पाँच हैं: मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण (उपसंहिति)। 'मुखसंधि' एक प्रकार से नाटक का मुख है जिसकी योजना 'बीज' (दे० अर्थप्रकृतियाँ) नामक अर्थप्रकृति और 'आरंभ' (दे० कार्यावस्थाएँ) कार्यावस्था के संयोग से होती है। 'प्रतिमुख' संधि में 'मुख' संधि के अंतर्गत उपक्षिप्त 'बीज' के सम्यक् विकास में उत्पन्न होने वाली बाधाओं के कारण फल-प्राप्ति का मार्ग कभी उद्घाटित और कभी लुप्त दिखाई पड़ता है। यह संधि 'प्रयत्न' (दे० कार्यावस्थाएँ) कार्यावस्था और 'बिंदु' (दे० अर्थप्रकृतियाँ) अर्थप्रकृति के संयोग से उद्भूत होती है। 'गर्भ संधि' का उद्भव 'पताका' (दे० अर्थप्रकृतियाँ, अर्थप्रकृति और 'प्राप्त्याशा' (दे०कार्यावस्थाएँ) कार्यावस्था के समागम से होता है। इससे 'बीज' के ह्रास और विकास की आशंकामयी द्विविधा का भाव बना रहता है। 'बीज' के विकास के प्रच्छन्न रहने से फल की आशा भी धूमिल पड़ जाती है। 'प्रकरी' (दे० अर्थप्रकृतियाँ) अर्थप्रकृति और 'नियताप्ति' (दे० कार्यावस्थाएँ) कार्यावस्था के संयोग से उत्पन्न 'विमर्श' चतुर्थ नाट्यसंधि है जिसे नाटकीय द्वंद्व की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट कहा जा सकता है। एक ओर फल-प्राप्ति की सुनिश्चित और प्रखर आशा से तथा दूसरी ओर मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं के साथ किए गए संघर्षपूर्ण प्रयत्न से अपूर्व नाटकीय सौंदर्य की सृष्टि की जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अंतिम संधि 'निर्वहण' वस्तुतः 'बीज' से 'फलप्राप्ति' तक की यात्रा का परिणति-बिंदु है जिसमें 'कार्य' (दे० अर्थप्रकृतियाँ), अर्थप्रकृति और 'फलागम' (दे० कार्यावस्थाएँ) कार्यावस्था के संयोग से नाटक के सुखद उपसंहार का विधान होता है।

आचार्यों ने नाट्संधियों के चौंसठ संध्यंगों का उल्लेख भी किया है। शास्त्र में मुख संधि के बारह, प्रतिमुख, गर्भ और विमर्श के तेरह-तेरह तथा निर्वहण के चौदह संध्यंग निरूपित हैं। व्यावहारिक नाट्य-रचना में इनकी उपयोगिता संदिग्ध है।

नाथमाधव (*म० ले०*) [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

इनका वास्तविक नाम द्वा० मा० पितळे था। इन्होंने 1907 ई० के लगभग लिखना आरंभ किया था। डा० भंडारकर से भेंट होने के पूर्व तक इनकी रचनाएँ साहित्यिक स्तर की नहीं थीं क्योंकि उनका उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन था, बाद में डा० भंडारकर की प्रेरणा से इन्होंने उच्च स्तर के उपन्यास लिखना आरंभ किया। यद्यपि इनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'तरुण रजपूत सरदार' था, फिर भी जिस उपन्यास ने इन्हें कीर्ति के शिखर पर पहुँचा दिया वह है 'सांवळया तांडेल'। इसमें उन्होंने शिवाजी के समुद्री बेड़े और उसकी शक्ति का पहली बार वर्णन किया है। यद्यपि 'स्वराज्यमाला' के अंतर्गत लिखे उनके उपन्यासों की रचना पर्याप्त ऐतिहासिक अध्ययन एवं परिश्रम के साथ हुई है, फिर भी उनमें प्रतिभा का स्फुरण नहीं है। लेखक निरूपित काल से तदाकार नहीं हो पाया है, अतः भाषा एवं विचार-सरणि दोनों की दृष्टि से इन उपन्यासों में काल-विसंगति दोष आ गया है। प्रणय और अद्भुत तत्त्वों का अनुचित समावेश भी पाठक को कचोटता है। मुख्य ग्रंथ—**सामाजिक उपन्यास** : 'स्वयंसेवक', 'रायक्लब' भाग 1-2, 'डॉक्टर' भाग 1-3 आदि; **ऐतिहासिक उपन्यास** : 'तरुण राजपूत सरदार', 'सांवळया तांडेंल', स्वराज्यमाला के अंतर्गत पाँच उपन्यास।

नाथ-संप्रदाय (हिं० प्र०)

नाथ संप्रदाय के संबंध में 'हठयोग-प्रदीपिका' के टीकाकार ब्रह्मानंद का कहना है कि सब नाथों में प्रथम आदिनाथ हैं (जो स्वयं शिव ही हैं)—'आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततो नाथसंप्रदायः प्रवृत्त इति नाथसंप्रदायिनी वदंति।' इस संप्रदाय के अन्य नाम हैं—सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योग-संप्रदाय, अवधूत-मत, अवधूत-संप्रदाय, आदि। नाथ-संप्रदाय की शिष्य-परंपरा इस प्रकार स्वीकार की गई है : आदिनाथ के दो शिष्य है—मत्स्येंद्रनाथ और जलंधरनाथ। इनमें से प्रथम के चार शिष्य हैं—गोरक्षनाथ, चरपटनाथ, रेवानाथ और मीननाथ। इनमें से गोरक्षनाथ के पाँच शिष्य हैं—गाहनीनाथ, नागनाथ भर्तृनाथ, माणिकनाथ और विलेशयनाथ। द्वितीय के दो शिष्य हैं—करणिपा और गोपीचंद।

नाथों की संख्या नौ भी बताई जाती है। 'गोरक्ष-सिद्धांत-संग्रह' के अनुसार इनके नाम हैं—नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चरपटा, जलंधर, और मलयार्जुन। इन सबमें गोरक्षनाथ सर्वप्रसिद्ध हैं। इनका समय दसवीं अथवा बारहवीं शती है। इन्होंने अपने पंथ का प्रचार पंजाब और राजपूताने की ओर किया। गोरक्षनाथ की हठयोग-साधना ईश्वरवाद को लेकर चली थी। अतः उसमें मुसलमानों के लिए भी आकर्षण था। नाथ-संप्रदाय के सिद्धांत-ग्रंथों में ईश्वरोपासना के बाह्य विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है, घर के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर ज़ोर दिया गया है, वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है, तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गए हैं। परमात्मा को अनिवर्चनीय कहा गया है। नाथ-पंथ के जोगी कान की लौ में बड़े छेद करके स्फटिक के भारी-भारी कुंडल पहनते हैं, इससे कनफटे कहलाते हैं। इस पंथ के ग्रंथों की भाषा सधुक्कड़ी-सी है, जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिये हुए राजस्थानी है। नाथपंथ के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमानों पर भी प्रारंभ-काल में ही पड़ा था, जिससे निम्न वर्ग के मुसलमान नाथ-पंथ में आ गए थे।

गोरक्षनाथ द्वारा अथवा उनके शिष्यों द्वारा लिखित ग्रंथ निम्नलिखित है—'गोरखगणेश-गोष्ठी' 'महादेव-गोरख-संवाद', 'गोरखनाथ', 'गोरखनाथ जी की सत्रह कला' 'दत्त-गोरख-संवाद', 'योगेश्वरी साखी', 'नरवइबोध', 'विराट-पुराण', 'गोरखसार', 'गोरखनाथ की बानी'। इन ग्रंथों में सांप्रदायिक शिक्षा है।

हिंदी-साहित्यकारों की भाँति पंजाबी साहित्य के लेखक नाथ-संप्रदाय को भी निजी परंपरा में स्वीकार करते हैं। इस संप्रदाय का साहित्य पंद्रहवीं शती तक लिखा जाता रहा। कविता का विषय माया-मोह-त्याग एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक चिंतन है। इसमें योगसाधना की प्रधानता है। इस संप्रदाय में मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, चरपटनाथ और रतननाथ आदि का काव्य स्वीकृत है। संसार को गोरख धंधा मानकर उससे मुक्त होने का उपदेश नाथों की वाणी में दिया गया है। कुंडली-चक्र, सहस्रदलकमल, आदि जैसे देहसाधना के योगों द्वारा मानव की आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने का सफल उपक्रम किया गया है। नाथ संप्रदाय के साहित्य की भाषा पंजाबी और हिंदी मिश्रित है।

'नादिम', दीनानाथ कौल *(कश्०ले०)* [जन्म—1916 ई०]

ये शैशव से भावुक और विचारशील थे। इन्होंने अध्यापन से अपना जीवन आरंभ किया और किसी-न-किसी रूप में पठन-पाठन के संबद्ध रहे। स्नातक-परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद चिंतन एवं वामपंथी विचारधारा की ओर प्रवृत हो गये। प्रारंभ में उर्दू में और 1944 ई० से कश्मीरी भाषा में काव्य-रचना करने लगे। राजनीति के विषयों से आरंभ करके विशुद्ध सांस्कृतिक विषय-वस्तु को कविता का आधार बनाया। 'हीमाल नागिराय' नाम की कविता बहुत ही लोकप्रिय हुई। 'रय,' 'जवाबी कार्ड' और 'शीन प्यतो प्यतो' नाम से इनकी तीन कहानियों ने कहानी लिखने की कला को एक नयी दिशा दी। इनकी गद्य-कला के सुंदर नमूने 'क्वंग पौश', 'तामीर' आदि में छपते रहे हैं। 'नादिम' साहब ने कश्मीरी गद्य और पद्य को नयी-नयी दिशाएँ दीं और उसमें नये-नये प्रयोग किए, या यों कहना चाहिए कि नयी-नयी शैलियों को जन्म दिया। इन्होंने कश्मीरी पद्य का आधुनिकीकरण किया और अपने सम-कालीन कवियों को भी प्रेरणा देते रहे। कश्मीरी-साहित्य में 1947 ई० से इधर के सांस्कृतिक नवजागरण-काल में आधुनिकता के प्रवर्तक 'नादिम' का सर्वोच्च स्थान है। इन्होंने 'हीमाल नागिराय', 'बोम्बुर त यम्बर्ज़ल' आदि पाँच युग्म प्रेमाख्यानक सांगीतिकों या गीतिनाट्यों की रचना की है जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से 'नादिम' साहब विशुद्धिवादी हैं और कश्मीरी संस्कृति एवं परंपराओं के अनन्य भक्त हैं। इनकी शैली मौलिक है, और अपनी बहुमुखी प्रतिभा से इन्होंने नये-नये छंदों और अलंकारों का खूब प्रयोग किया है।

नानक देव, गुरु *(पं० ले०)* [समय—1469 से 1539 ई०]

सिख धर्म के आदि गुरु नानक देव जी का जन्म कालूराम वेदी क्षत्रिय के घर तलवंडी (पश्चिमी पाकिस्तान) ग्राम में 1469 ई० के कार्तिक मास की पूर्णिमा में हुआ था। कतिपय विद्वान् इसी वर्ष की अक्षयतृतीया को इनकी जन्म-तिथि मानते हैं। बालक नानक देव ने कुछ काल तक पं० ब्रजनाथ तथा मौलाना कुतुबुद्दीन से शिक्षा प्राप्त की। 18 वर्ष की आयु में इनका विवाह सुलक्षणा देवी से हुआ जिससे श्रीचंद तथा लक्ष्मीचंद दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए। नानकदेव का चित्त वैराग्य-भक्ति में लीन था। इन्होंने देश-विदेश की पाँच यात्राएँ कीं। जीवन के अंतिम दस वर्ष तक कर्तारपुर में ही रहे। यहीं 1539 ई० में इनकी नरलोक-लीला समाप्त हुई। गुरु नानक देव की रचनाओं में (1) 'जपुजी' (दे०), (2) 'सिद्धगोष्टि' (दे०), (3) 'राग आसावरी', (4) 'तीन वारें—आशा दी वार, माझ दी वार तथा मलार दी वार', (5) 'बारा माह', (6) 'सोहले', (7) 'पहरे', (8) 'बनजारे', (9) 'अलौहनियां', (10) 'बावर नानी', (11) 'शब्द', (12) 'अष्टपदियाँ', (13) 'छंद', (14) 'रेखता' एवं (15) 'श्लोक'। इनके अतिरिक्त 'प्राण-संगली' तथा 'वसीयत' नामक कतिपय रचनाएँ भी इनके नाम से कहीं जाती हैं। अब 'गुरु नानक वाणी' नाम से इनका संपूर्ण काव्य-संग्रह प्रकाशित है।

गुरु नानक देव के काव्य में नाम जपने, हाथ से कमा खाने और परस्पर बाँट कर खाने का बड़ा महत्व दिखाया गया है। गुरु नानक-वाणी में वेद, षट्शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदि का ज्ञान समाहित है। एक ओंकार की अद्भुत व्याख्या दी गई है। इनकी वाणी का मूल मंत्र है—(1) 'ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभै निरवैरु अकालमूरति', 'अजनी सैभं गुर प्रसादि'। गुरु नानकदेव ने अपने काव्य में सामाजिक चेतना को प्रधानता दी है। पाखंड, शोषण एवं अत्याचार का प्रबल शब्दों में खंडन किया है। मानव-जीवन को निरहंकार एवं भगवदादेश के अनुसार व्यतीत करने का संदेश दिया गया है। इनके काव्य की भाषा प्रधानतया ब्रज है। इसमें फ़ारसी एवं पंजाबी भाषा के शब्द पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हैं। गुरु नानक देव का वाणी-साहित्य संपूर्ण मानव-जाति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान प्रकाश का स्तंभ है।

नानक-विजय *(पं० कृ०)*

कवि संतरेण (दे०) की पाँच रचनाएँ [(1) 'मन प्रबोध', (2) 'गुरु नानक-विजय', (3) 'गुरु नानक-बोध', (4) 'वचन-संग्रह' (अनभै अमृत-सागर), (5) 'उदासी-बोध']

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञात हैं। 'नानक-विजय' दूसरी रचना है। यह ग्रंथ कवि संतरेण के हस्तलिखित 1260 पत्रों में प्राप्त है। इसका आकार $12'' \times 7\frac{1}{2}''$ है। प्रति पृष्ठ प्राय: 28 पंक्तियाँ हैं। ग्रंथ 20 खंडों में विभक्त है। कुल 324 अध्याय हैं। कुल छंद 24,382 हैं। सौ वर्ष की आयु पार कर चुकने के उपरांत कवि संतरेण ने इस कृति का लेखन आरंभ किया था। इस ग्रंथ में गुरु नानक देव (दे०) का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसे आदिग्रंथ के पश्चात् दूसरा विशालकाय महान् ग्रंथ माना जाता है। काव्यशास्त्रीय नियमों का निर्वाह इसमें आवश्यक नहीं समझा गया है। भाषा प्रधानतया ब्रज ही है। पर उसमें पंजाबी खड़ी एवं बोली का प्रभाव यत्र-तत्र परिलक्षित होता है।

नानकसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1897 ई०, मृत्यु—1971]

पंजाबी के मूर्धन्य कथाकार नानकसिंह का पंजाबी उपन्यास-साहित्य में वही स्थान है जो प्रेमचंद का हिंदी में है। पंजाबी में आधुनिक कथा-साहित्य का आरंभ नानकसिंह से ही माना जाता है। लोकप्रियता की दृष्टि से पंजाबी में जो स्थान नानकसिंह को प्राप्त है, वह किसी दूसरे लेखक को नहीं।

नानकसिंह का जन्म गाँव चक्क हमीद, जिला जेहलम (पश्चिमी पंजाब) में 4 जुलाई, 1897 ई० को हुआ। नानकसिंह को उपन्यास-लेखन की मूल प्रेरणा प्रेमचंद से प्राप्त हुई। इनका लेखन-काल 1927 ई० से प्रारंभ होता है। इनकी पहली कहानी का नाम था 'रखड़ी' (राखी) और पहला उपन्यास था 'मतरेई माँ' (सौतेली माँ)।

नानकसिंह के संपूर्ण लेखन-काल को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है: (1) 1927 से 1938 ई० तक। इस काल की इनकी विशेष महत्त्वपूर्ण रचना है' 'चिट्टा लहू' (दे०)। (2) 1938 से 1947 ई० तक। इस काल की इनकी विशेष महत्वपूर्ण रचना है 'अधखिड़िआ फुल्ले'। और (3) 1947 ई० से आज तक। इस अवधि में नानकसिंह की उपन्यास-कला अपने शिखर पर पहुँची और इनकी लेखनी से अनेक विशिष्ट रचनाओं का सृजन हुआ जैसे 'मझधार', 'खून दे सोहिले', 'नासूर', 'इक म्यान दो तलवारां' (दे०), 'पवित्तर पापी' (दे०), 'कही होई पतंग' (दे०) आदि। 'इक म्यान दो तलवारां' पर इन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

नानकसिंह 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के कट्टर समर्थक हैं और अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांप्रदायिक तथा राजनीतिक विसंगतियों पर तीखे प्रहार किए हैं। विषय-वस्तु और कला की दृष्टि से नानकसिंह के उपन्यास निरंतर विकसित होते रहे हैं और अपनी परिवेशगत समस्याओं के प्रति लेखक सतत जागरूक रहा है।

नानकसिंह के उपन्यास कहानी-संग्रह, आत्मचरित्र आदि विविध विषयों की पुस्तकों की कुल संख्या 50 से ऊपर है। अनेक भाषाओं में उनके अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं।

28 दिसंबर, 1971 को दिल का दौरा पड़ने से इनका देहांत हो गया।

नाना नाना रास *(गु० कृ०)*

'नाना नाना रास' (दे) नानालाल दलपतराम (दे०) कवि के रासों का संग्रह है। प्रथम भाग में 50, दूसरे भाग में 51 और तीसरे भाग में 71 रास संगृहीत हैं। वस्तुतः ये रास 'गरबा' के ही प्रकार हैं। इन्हें रचयिता ने 'लिरिक्स' कहा है। इन रासों में गीत, वाद्य और नृत्य—संगीत के तीनों तत्त्वों का समायोग है।

गुजरात 'रासभूमि' है। श्रीकृष्ण चंद्र ने अपनी रास-लीला की भूमि ब्रज और गुजरात को बनाया। इन रासों में गुजरात के नारी-जीवन की सुकोमल अनुभूतियाँ स्पंदित हैं। गुर्जर रमणी के भाव-वैभव का संपूर्ण चित्र इन रास-रचनाओं में है। विषय-वैविध्य, गीति-तत्त्व, लय, झूमर, आवर्तन—यह इन रासों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। कृष्ण की बंसी, मयूर और मयूरी, दांपत्य जीवन का रसोल्लास, वसंत की बहार, सुनहरे स्वप्न, दधि-मंथन, विक्रम, पूनम की चाँदनी, अज्ञात सत्ता का दर्शन, उत्सव-मुग्ध गोपी, लोक-जीवन की अभिव्यक्ति, शरद-ऋतु की चाँदनी जैसे अनेक विषय इनमें निरूपित हैं। प्राय: सभी रचनाएँ गेय, मृदु, ललित पदों में रचित हैं जिनमें लोकधर्मी लय (ढाळ) का भी सुसंयोग हुआ है। गुजरात के नारी-हृदय की संस्कारिता का वास्तविक चित्र देने वाले इन छोटे-छोटे रासों का महत्व अनागत के लिए भी अक्षुण्ण है। यही इनका महत्व है।

नानालाल दलपतराम *(गु० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

कवि नानालाल दलपतराम आधुनिक गुजराती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऐसे कवि हैं जिन्हें निस्संकोच 'महाकवि' की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। इनके पिताश्री कविवर दलपतराम डाह्याभाई आधुनिक कविता के अग्रणियों में परिगणित हैं।

गुजराती काव्य-गगन पर नानालाल का उदय होते ही एक परम प्रतिभाशाली स्रष्टा के रूप में उनका स्वागत हुआ। उनका कृतित्व गुण और परिमाण एवं विविधता दोनों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनमें विषय-वैविध्य है, दृष्टि की व्यापकता है, आदर्श प्रेम है; उनकी कल्पना बड़ी ऊँची उड़ान करने में समर्थ है और लय, छंद, अलंकार, शब्द-रचना तथा रचना-शिल्प में नये-नये प्रयोग करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता है। उनका सचेष्ट काव्यशिल्प किसी यशस्वी सिद्धांत मूर्तिकार का स्मरण कराता है। उनके गीत, भजन प्रगीत, आख्यान-काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध तथा जीवनी सभी एक सौष्ठव एवं चारुत्व से ओतप्रोत हैं। उनकी (अपद्य-गद्य में रचित) प्रथम कविता 'वसंतोत्सव' से ही एक महान् कवि के अभ्युदय का संकेत मिल गया था। उनकी कविता में निष्कलुष-निश्छल प्रेम, संतुलित रतिभाव, देशभक्ति-शौर्य, तथा बलिदान-तत्परता के दर्शन होते हैं। उनके नाटक एक ऐसे कवि द्वारा जीवन अथवा इतिहास के अवस्थानों की कलात्मक व्याख्याएँ हैं जिसके अंतरतम में समन्वय तथा देश की संस्कृति के प्रति अगाध निष्ठा है। 'इंदुकुमार' में उन्होंने प्रेम और विवाह की समस्या का विवेचन किया है। 'जयाजयंत' (दे०) उनका अमर गीति-नाट्य है जिसमें आत्मिक प्रेम का निरूपण हुआ है। 'विश्वगीत' में उन्होंने जीवन की अनेक नैतिक-धार्मिक समस्याओं पर दृष्टिपात किया है।

नानालाल गुजराती साहित्य में ब्रिटिश युग के महानतम कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। (दे० नानारास)।

नानाराजसंदर्शनमु *(ते० कृ०)* [कृतिकार—तिरुपति वेंकट कवुलु (दे०)]

तिरुपति शास्त्री (1871-1919) तथा वेंकट शास्त्री (1870-1950) ने मिलकर इस नाम से साहित्य-रचना की है। ये आधुनिक युग के आरंभ में समस्त आंध्र में एक प्रबल साहित्यिक आंदोलन को जन्म देने वाले, असाधारण प्रतिभा-संपन्न कवि थे। 'प्रभावती प्रद्युम्नमु', चरित्रमु', 'लक्षणा परिचयमु', 'देवी भागवतमु', 'उद्योग-'बुद्ध विजयमुलु' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

ये अपनी उद्दंड प्रतिभा से अनेक कविता प्रतियोगिताओं में जाकर अपने विरोधियों को पराजित करते थे तथा अन्य सभी कवियों को जीतने की चुनौती दिया करते थे। इस प्रकार अनेक विजय-यात्राएँ करते हुए ये सारे आंध्र देश में भ्रमण करते रहे। इस प्रक्रिया में इन्होंने नाना देशों के राजाओं का दर्शन किया और उनके सम्मुख आशुरूप से अनेक कविताएँ पढ़ीं। जिसने उनको उचित सम्मान दिया, उसकी प्रशंसा की; जिसके यहाँ उनकी उपेक्षा हुई, उसकी भर्त्सना की। इस प्रकार अनेक स्थानों एवं परिस्थितियों में इनकी काव्यात्मक प्रतिक्रिया का परिचय इस कृति में मिलता है। इस कृति द्वारा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर, इन कवियों की प्रचंडता एवं उद्दाम काव्य-प्रतिभा पर भी प्रकाश पड़ता है।

नाबरिया गीत *(अ० पारि०)*

बरपेटा अंचल (असम) में नाव खेते समय जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें 'नाबरिया गीत' कहते हैं। ये बँगला भाषा के भाटियाली गीत के समान हैं। इनके विषय होते हैं—नाव लेकर दूर जाने वाला सौदागर और घर में प्रतीक्षा करती हुई उसकी स्त्री, तथा गोधूलि-वेला में कृष्ण से नदी पार कराने का अनुरोध करती हुई राधा—

'कानाइ पार करा दे बेलिर दिकि चावा।'

नाभादास *(हिं० ले०)*

इनका अस्तित्व ईसा की सत्रहवीं शती में माना जाता है। इन्हें ग्वालियर का नागर ब्राह्मण कहा गया है। प्रियादास जी ने इन्हें दक्षिण के तैलंग प्रांत-गोदावरी के रामभद्राचल का निवासी और हनुमानवंशीय ब्राह्मण माना है। कृष्णदास पयहारी के शिष्य कीलहदास एवं अग्रदास ने इनका पालन-पोषण किया था और इन्हें दीक्षा दी थी। इन्होंने अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध 'भक्तमाल' (दे०) ग्रंथ में सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में भक्तों, संतों और महात्माओं का बड़ी श्रद्धा और भक्ति से चरित्रांकन किया है। इससे संबद्ध अनेक संस्करण और टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, पर प्रियादासजी की टीका सर्वाधिक प्रामाणिक है। यह ग्रंथ निश्चय ही भक्ति-साहित्य का अविस्मरणीय अभिलेख है। कवि ने 'भक्तमाल' के रूप में भारत को भागवत-संप्रदाय का रोचक इतिवृत्त प्रदान किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामघोषा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती]

माधवदेव (दे०) के इस सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ में उनके आध्यात्मिक जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। असम के वैष्णव-संप्रदाय के चार महाग्रंथों में इसका स्थान दूसरा है। माधवदेव के शास्त्रज्ञान, पांडित्य, कवित्व, आध्यात्मिक आदर्श आदि का पूर्ण परिचय इस ग्रंथ में मिलता है। यह घोषा छंद में लिखा गया है। 1000 छंदों में से 600 छंद विभिन्न पुराणों के भक्ति-प्रधान श्लोकों के अनुवाद हैं, शेष छंद लेखक के अपने हैं। अनूदित छंदों में भी कवि ने मूल को आत्मसात् कर उसे अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है। विषय-वस्तु के अनुसार 'नामघोषा' को तीन खंडों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम खंड में नामधर्म के विशिष्ट मतवाद की प्रतिष्ठा है, द्वितीय में लेखक की ऐकांतिक एवं आत्मसमर्पणमयी भक्ति का कवित्वमय प्रकाश है। और तृतीय में 'कृष्ण' नाम की महत्ता, नाम और नामी का अभेद, लेखक का आत्मनिवेदन आदि विषय हैं। समसामयिक भक्ति-विरोधी लोगों का भी इसमें वर्णन है।

भाषा-शैली और अलंकार-प्रयोग की चारुता इसे धार्मिक ग्रंथ की अपेक्षा रसमय भक्ति-साहित्य की कोटि में ले आती है। असमीयाजन-साहित्य में इसका स्थान गीता जैसा है।

नामदेव *(म०, हिं० ले०)* [जन्म—1270 ई०; मृत्यु—1350 ई०]

इनका जन्मस्थान था—नरसी वाह्मणी, पिता का नाम दामाशेट, माता का गोणाई, और ये दर्ज़ी का व्यवसाय करते थे। इनके पिता पंढरपुर के विट्ठल के भक्त थे। बचपन में ही नामदेव में भक्ति-वैराग्य की भावना घर कर गई थी। माता-पिता ने गृहस्थी में मन रमाने के लिए 'राजाई' नामक सुंदर कन्या से इसका विवाह किया जिससे चार पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई किंतु नामदेव का प्रमुख व्यवसाय भजन-कीर्तन ही बनता गया। संत ज्ञानेश्वर (दे०) की प्रेरणा से इन्होंने विसोबा खेचर से गुरु-दीक्षा ली। ज्ञानेश्वर का भी इन पर गहरा प्रभाव था। उससे इनकी भावुक भक्ति में अद्वैत ज्ञान का समन्वय हुआ। भजन-मंडली लेकर नामदेव ने उत्तरी भारत की यात्रा की और भक्ति का प्रचार करते हुए ये अठारह वर्ष तक पंजाब में रहे। गुरुदासपुर ज़िले के 'घोमान' नामक स्थान पर नाम-देव-मंदिर अब तक विद्यमान है। इनके पंजाबी शिष्यों में विष्णु स्वामी, वहारेदास, लब्धा खत्री आदि अनेक प्रसिद्ध हुए हैं। हिंदी भाषा में भी इन्होंने पद-रचना की है। 'गुरु ग्रंथसाहिब' (दे०) में इनके 65 पद संगृहीत हैं, जिनका नाम है 'नामदेव बानी'। पंजाव से ये महाराष्ट्र लौट आए थे और 80 वर्ष की आयु में इनका पंढरपुर में स्वर्गवास हो गया। 'नामदेव की गाथा' में इनके लगभग तीन हज़ार अभंग संगृहीत हैं। जनता में भक्ति-भावना का प्रचार करना, धर्माडंबर, जाति-भेद की संकीर्णता और सामाजिक धार्मिक कुरीतियों का खंडन करना ही नामदेव का ध्येय था।

नामा पाठक *(म० ले०)*

ये रस-सिद्ध कवि थे। इनकी 'नामरत्नमाला', 'भरतभेंट', 'अश्वमेध' आदि अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनका 'अश्वमेध' काव्य सर्वश्रेष्ठ और प्रदीर्घ है। इसमें रामचंद्र और पांडवों के अश्वमेध का सरस वर्णन है। संस्कृत के 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) इनकी रचनाओं के आधार-ग्रंथ रहे हैं। इनकी रचनाओं में पांडित्य-प्रौढ़ता नहीं अपितु सरलता-सरसता है।

नायक *(सं०, हिं० पारि०)*

कथानक के प्रधान पात्र को नायक कहते हैं। यह व्यक्ति त्यागी, कर्म करने में निपुण, कुलीन, लक्ष्मीवान्, रूपवान, यौवन-संपन्न, उत्साही, दक्ष, लोकप्रिय, तेजस्वी, विदग्ध और शीलवान् होता है। इसके चार भेद हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर प्रशांत। धीरोदात्त नायक अपनी प्रशंसा न करने वाला, क्षमावान्, अति गंभीर स्वभाव वाला, महोत्सव अर्थात् हर्ष, शोक आदि से अपने स्वभाव को न बदलने वाला, स्थिर-प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व रखने वाला, दृढ़व्रती अर्थात् अपनी बात का पक्का व्यक्ति होता है; जैसे रामचंद्र, युधिष्ठिर आदि। धीरोद्धत नायक माथावी, प्रचंड, चपल, घमंडी, शूर, अपनी प्रशंसा अधिक करने वाला होता है; जैसे भीमसेन आदि। धीरललित नायक निश्चित, अतिकोमल-स्वभाव, सदा नृत्यगीत आदि कलाओं में प्रसक्त होता है—जैसे रत्नावली (दे०) नाटिका में वत्सराज (दे० उदयन)। धीरप्रशांत त्यागी, कृती आदि ऊपर कहे हुए नायक के सामान्य गुणों से अधिकांशतः युक्त ब्राह्मणादि होता है; जैसे 'मालती माधव' (दे०) नाटक में माधव। इन चारों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चार-चार भेद कहे गए हैं—दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ। इस प्रकार कुल नायक 16 प्रकार के माने गए हैं। फिर इन सब के तीन-तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इस प्रकार नायक के कुल 48 भेद हुए। (सा०द० 3. 30-38)

नायक, बिनोदचंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

श्री बिनोदचंद्र नायक का जन्म तेलिपालि-सुंदरगढ़ में हुआ था। इनकी कविताओं में जातीय साहित्यिक परंपरा, विषयवस्तु, शैली—सभी का परित्याग मिलता है। इस पुरातन के त्याग में एक नूतन जाति, एक नूतन प्रकृति के अनुसंधान की लालसा है। कल्पना-विलास, चित्र-कल्प तथा भाषा-प्रयोग में कवि को यथेष्ट सफलता मिली है। इनकी काव्य-पुस्तक 'सरिसृप' (दे०) पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। 'नीलचंद्र उपत्यका' (काव्य), 'चंद्र ओ तारा' (पद्य-नाटिका) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

नायक, लक्ष्मीधर *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

जन्म-स्थान : गुड़पाइलो, डेलाँग, पुरी।

श्री लक्ष्मीधर नायक बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने, उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक, आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी रचनाओं की विषय-वस्तु सामाजिक मनःतात्त्विक, राष्ट्रीय तथा आर्थिक समस्याओं-संबंधी होती है; फलतः विचारोत्तेजक भी होती है। इस प्रकार इन्होंने अपने सम-सामयिक जीवन को अनेक रूपों में देखने और समझने का प्रयास किया है।

'उद्भ्रांत', 'सर्बहरा' (दे०), 'चरित्रहीनार-चिठि', 'हाय रे दुर्भागा देश' आदि इनके करीब पंद्रह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

'गोटिए रातिर साथी', 'कंकाल' कहानी-संग्रह हैं।

'से', 'बिरहिणी' काव्य-कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने नाटक भी लिखे—'लाल चाबुक', 'धर्म-पत्नी' आदि इनकी नाट्य-रचनाएँ हैं।

नायक, हा० मा० (क० ले०)

मैसूर विश्वविद्यालय की कन्नड-अध्ययन-संस्था के निदेशक डा० हा० मा० नायक (पूरा नाम हारोगदे मानप्प नायक) ने चालीस वर्ष की आयु में ही पर्याप्त सुयश प्राप्त कर लिया था। ये कन्नड के सर्वतोमुखी विकास के सबल और क्रियाशील समर्थक हैं। कन्नड मैसूर राज्य की राजभाषा होनी चाहिए एवं उसका उपयोग सभी स्तरों पर होना चाहिए—इनका यह विचार अनेक रचनात्मक और विधायक कार्यों को प्रोत्साहित कर रहा है। ये साहित्यकार होने के साथ-साथ भाषाशास्त्री भी हैं। इनका शोधग्रंथ 'कन्नड; लिटरेरी एंड कॉलोकुइल' बहु-प्रशंसित ग्रंथ हैं। अँग्रेज़ी पर भी इनका अच्छा अधिकार है। इसका प्रमाण इनका ग्रंथ 'कन्नड लिटरेचर : एंडेकिड' है। ये 'कन्नड स्टडीज़' के भी संपादक हैं। इनके कुछ अन्य ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—'बाळ्‌नोटगळु' (जीवन-दर्शन), 'नम्मनेय दीप' (हमारे घर के दीप), 'गुरुदेव रवींद्ररु', 'मुहम्मद पैगंबर', 'हाबु मत्तु हेण्णु' (साँप और लड़की), साहित्यसल्लप (दो भाग)। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—'रूपाराधक', 'निसर्गदडियल्लि' (निसर्ग के तले), 'दे० ज० गौ० व्यक्ति और साहित्य', 'श्रीनिवास-साहित्य'। ये श्रेष्ठ आलोचक और गद्यलेखक हैं।

नायनार, वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1861 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

ये मलयाळम के निबंधकार और प्रथम कहानीकार हैं। ये 'केसरी' उपनाम से निबंध लिखते थे। 'विद्याविनोदिनी', 'केरलपत्रिका', 'केरल-संचारी', 'मितवादी' आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ये लेख लिखते रहे और उनके संपादन-कार्य में भी योग देते रहे।

केसरी की कहानी 'वासना-विकृति' मलयाळम की आधुनिक शैली की पहली कहानी मानी जाती है। इनके हास्य लेखों ने ई० वी० कृष्ण पिळ्ळा (दे०) संजयन (दे०) आदि व्यंग्यकारों को रास्ता दिखाया है।

आधुनिक गद्य-साहित्य के विकास में केसरी का महत्वपूर्ण स्थान है।

नायर, कुट्टिप्पुरत्तु केशवन् *(मल० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

जन्मस्थान—मंगलम गाँव। मलयाळम-काव्य के आधुनिक युग को वळ्ळत्तोळ् (दे०) युग के नाम से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि इस युग पर वळ्ळतोळ्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की काव्य-कला का भरपूर प्रभाव था। महाकवि वळ्ळत्तोळ् के घनिष्ठ सहचारियों और अनुयायियों में केशवन् नायर अन्यतम थे। केशवन् नायर अपनी जीवन-चर्या के प्रारंभ में एक हाई स्कूल के मलयाळम-अध्यापक रहे। पदोन्नति करते-करते वे एरणाकुलम् स्थित महाराजा कालेज में प्राध्यापक हो गए और वहीं से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

छात्र-गोष्ठियों की छंद-रचना-प्रतियोगिता के माध्यम से श्री केशवन् नायर की कवित्व-कला का विकास हुआ। इनकी शब्दावली प्रारंभ से ही मधुर एवं ललित रही है। पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से अछूते रहकर भी इनमें स्वच्छंदतावादी काव्यदृष्टि का विकास हुआ था। इनके कविता-संग्रहों में 'काव्योपहारम्', 'नव्योपहारम्', 'प्रपंचम्' आदि प्रमुख हैं। इनकी मुक्तक रचनाओं में 'ग्रामीण कन्यका' सबसे प्रसिद्ध है। कालिदास (दे०) के 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) के सफल मलयाळम रूपांतरकारों में ये भी थे। संयुक्त कविता-रचना भी इनका विशेष क्षेत्र रही। वळ्ळत्तोळ् के समान ये भी शब्दार्थ के मधुर समन्वय पर ज़ोर देते थे।

नायर, पाला नारायणन् *(मल० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

श्री पाला नारायणन् नायर अध्यापक, सेनानी और प्रशासक रहे हैं। 'निर्धन', 'अटिमा', 'बाष्परंगम्' आदि उनके कई खंडकाव्य और कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। परंतु उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय रचना 'केरलम् वलरुन्न' के नाम से आठ भागों में प्रकाशित काव्य-श्रृंखला है।

पाला की कविता कल्पना की अधित्यकाओं की अपेक्षा जीवन की यथार्थताओं की समतल भूमि पर विचरण करने वाली है। 'केरलम् वलरुन्नु' में केरल के प्रकृति-वैभव और ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गौरव की गाथा गाई गई है। पाला रोमांटिक धारा के प्रमुख कवियों में से हैं।

नायर, पी० के०, परमेश्वरन् *(मल० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

मलयाळम के विद्वान साहित्य-मीमांसक, जीवनी-लेखक और शोधकर्त्ता। ये केरल सरकार के कुछ प्रशासनिक विभागों में कार्य करने के बाद सेवा-निवृत्त हो चुके हैं। महात्मा गांधी, वाल्तायर, नेपोलियन आदि की प्रामाणिक जीवनियाँ इन्होंने लिखी हैं। केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित इनका 'मलयाळ साहित्य-चरित्रम्' एक प्रामाणिक कृति है और अन्य भाषाओं में भी अनूदित हो चुकी है। अन्य साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों पर भी इनके ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

परमेश्वरन् नायर का प्रत्येक साहित्यिक निबंध विषय के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहलुओं के विस्तृत अध्ययन की परिणति होता है। इनके द्वारा रचित जीवनियों में यह तथ्य और अधिक चरितार्थ हुआ है। मलयाळम के जीवनीकारों में इनका स्थान अन्यतम है।

नायर, के० भास्करन्, *(मल० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

सुप्रसिद्ध जीववैज्ञानिक डा० के० भास्करन् नायर मलयाळम के प्रतिष्ठित समालोचक भी हैं। वे त्रिवेंद्रम् के महाविद्यालय के प्रधानाचार्य थे और केरल के शिक्षा-विभाग में निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए थे।

उनके समालोचना-ग्रंथों में 'धन्यवादम्', 'कलयुम् कालवुम्' आदि प्रसिद्ध हैं। 'आधुनिक शास्त्रम्', 'शास्त्रत्तिंटे गति' आदि वैज्ञानिक साहित्य के अंतर्गत आते हैं।

भास्करन् नायर की समालोचना भारतीय दर्शन-शास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित है। उनकी वैज्ञानिक तर्क-बुद्धि उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को परिपुष्ट करने में ही सहायक सिद्ध हुई है। वैज्ञानिक साहित्यकारों में भी उनका स्थान अद्वितीय है। उनके समान साहित्य-मर्मज्ञता, वैज्ञानिकता और आध्यात्मिक चिंतन का समुचित सम्मिलन मलयाळम में अन्यत्र दर्शनीय नहीं है।

नायर, वेट्टूर, रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

जन्मस्थान : पालाई। स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद 1938 ई० से ही इनके सार्वजनिक जीवन का आरंभ हो गया। 1938 ई० में ही इन्होंने काव्य-सृजन का भी प्रारंभ कर दिया था। उन दिनों ये कविताएँ ही अधिक लिखते थे। कहानी की तरफ़ भी इनका मन जाता था। जब ये राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में आए तब कविता को छोड़ कहानी का सशक्त माध्यम इन्हें अधिक अनुकूल लगा और तब से कहानी-क्षेत्र में इनकी लेखनी निरंतर सक्रिय रही है।

अब तक इनके ग्यारह काव्य-कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ये यथार्थवादी धारा के प्रारंभिक कहानीकारों में रहे हैं। आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानवीय संबंधों एवं मानवीय प्रकृति की विशेषताओं का विश्लेषण इनकी कहानियों का ध्येय है। यथार्थ की शिला से टकराकर छिन्न-भिन्न होने वाले आदर्श का चित्रण भी इनमें मिलता है। इनका उपन्यास-'जीविक्कान् मरन्नुपोय स्त्री' (जो जीना भूल गई) एक छोटी किंतु सफल औपन्यासिक रचना है। इसमें एक ऐसी क्वारी कन्या की कहानी है जिसकी जवानी परिवार की ही सेवा में बीत जाती है। नारी-मनोविज्ञान का विवेचन इसमें खूब हुआ है। यात्रा-विवरण का भी एक ग्रंथ इन्होंने लिखा है किंतु मूल रूप में ये कहानीकार ही हैं।

नायर, सी० एन० श्रीकंठन् *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध नाटककार हैं। छात्र-नेता, पत्रकार और साहित्य के संगठनात्मक कार्यकर्त्ता के रूप में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। सरकारी सेवा भी की है।

इन्होंने 'नष्टकच्चवटम्', 'कांचनसीता', 'एट्टिले पशु', 'मधुविधु' आदि दर्जनों नाटकों की रचना की है। चार कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

इनके नाटक मलयाळम के रंगमंच पर काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं। पौराणिक कथा-पात्रों को नये परिवेश में प्रस्तुत करने में इनको सफलता मिली है। इनके सामाजिक समस्या-नाटक भी रंगमंच पर खरे उतरे हैं। आज के नाटककारों में इनका स्थान प्रमुख है।

नायर, सी० एस० *(मल० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

श्री नायर मलयाळम के प्रसिद्ध समालोचक हैं। अश्वघोष (दे०)-कृत 'बुद्धचरितम्', वळ्ळतोळ्-कृत 'शिष्यनुम् मकनुम्' आदि ऐसे प्रमुख ग्रंथ हैं जिनका उन्होंने मूल्यांकन किया है। 'ऊर्मिला' और 'कथामालिका' कथा-साहित्य को उनकी मूल्यवान देन हैं। वळ्ळत्तोळ्, जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) आदि कवियों की कई पुस्तकों पर सुदीर्घ 'आमुख' लिखकर उन्होंने उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है।

मलयाळम के प्रमुख समसामयिक कवियों की रचनाओं का मूल्यांकन सी० एस० नायर ने आधुनिक मानदंडों के अनुसार किया है। 'वळ्ळत्तोळ् उनके सबसे प्रिय-कवि हैं और वळ्ळत्तोळ्-काव्य की व्याख्या में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। समालोचना को नयी दिशा प्रदान करने वालों में सी० एस० नायर का नाम अग्रगण्य है।

नायिका *(सं०, हिं० पारि०)*

नायिका की भी यथासंभव उन्हीं गुणों से युक्त माना गया है जो नायक के लक्षण में कहे गए हैं— नायक सामान्य-गुणोर्भवति यथासंभवयुक्ता। (सा० द० 3. 56), (दे० नायक)। इसके पहले तीन भेद हैं: स्वीया (स्वकीया), अन्या (परकीया), साधारणी (वेश्या)। स्वीया (स्वकीया) नायिका विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त घर के कार्यों में तत्पर पतिव्रता नारी होती है। (सा० द० 3.56)। वह अपने पति में ही अनुरक्त होती है—तत्र स्वामिन्येवानुरक्ता स्वीया। (र० मं० पृ० 5) इसके तीन भेद हैं: मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। इन तीनों के फिर तीन-तीन भेद हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा। इस प्रकार कुल नौ भेद हुए। इनके अनेक भेदोपभेद हैं। परकीया नायिका अप्रकट रूप से पर-पुरुष के प्रति अनुरक्त होती है—अप्रकट-परपुरुषानुरागा परकीया (रसमंजरी, पृ० 27)। इसके पहले दो भेद हैं: परोढा और कन्या। परोढा विवाहिता होती है और कन्या अविवाहिता। मुदिता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना, आदि अनेक नायिका-प्रकार 'परकीया' के स्वरूप में अंतर्भूत किए जाते हैं। पुनः इनके अनेक भेदोपभेद हैं। सामान्या (वेश्या) धनमात्र के उद्देश्य से सब प्रकार के लोगों में अनुराग प्रकट करने वाली नायिका होती है। (रसमंजरी, पृ० 36)

नायिका-भेद *(सं०, हिं० पारि०)*

नायिका-भेद का विवेचन भारतीय काव्यशास्त्र में शृंगार रस के आलंबन—स्त्री-पुरुषों की काम-विषयक स्थितियों और मानसिक प्रतिक्रियाओं को दृष्टि में रखकर किया गया है। शुद्ध काम-विषयक, नायिका-भेद का निरूपण मूलतः कामशास्त्रीय ग्रंथों 'कामसूत्र' (वात्स्यायन) और 'रतिरहस्य' (कोक्कोक) में हुआ है। साहित्यशास्त्रीय नायिका-भेद-विवेचन की परंपरा का सूत्रपात भरत (दे०)-कृत 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में ही हुआ। भरत ने प्रकृति के अनुसार उत्तमा, मध्यमा और अधमा—तीन भेद, अवस्था के अनुसार वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंडिता, विप्रलब्धा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोषितभर्तृका, स्वाधीनपतिका, कलहांतरिता, अभिसारिका—आठ भेद तथा प्रकार अथवा कर्म के अनुसार वेश्या, कुलजा और प्रेष्या—तीन भेद किए हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र का समस्त परवर्ती नायिका-भेद-विवेचन मूलतः भरत की तद्विषयक मान्यताओं के आधार पर ही पल्लवित हुआ है। परवर्ती आचार्यों ने भरत-निरूपित वेश्या, कुलजा और प्रेष्या भेदों को क्रमशः सामान्या, स्वकीया और परकीया के नये अभिधान दे दिए। इस विषय का सुव्यवस्थित विवेचन करने वाले परवर्ती आचार्यों में धनंजय (दे०) उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने प्रकृति, कर्म और अवस्था-विषयक भेदों के तर्कसम्मत विवेचन के साथ ही वय की दृष्टि से नायिकाओं के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेदों के उपभेदों का भी निरूपण किया। इसी के आधार पर विश्वनाथ (दे०) ने मुग्धा के पाँच, मध्या के पाँच तथा प्रगल्भा के छह अवांतर भेदों का निरूपण किया। विश्वनाथ ने नायिका-भेदों का विस्तार करते हुए उनकी संख्या 384 तक पहुँचा दी। शृंगार को सर्वप्रमुख रस मान उसी की दृष्टि से नायिका-भेद-विवेचन करने वाले ग्रंथों में 'शृंगारतिलक' (दे०) (रुद्रभट्ट), 'शृंगारप्रकाश' (दे०) (भोज), 'भावप्रकाश' (दे०) (शारदातनय), 'रसार्णव' (दे०) (शिंगभूपाल) तथा 'रसतरंगिणी' (दे०) एवं 'रसमंजरी' (दे०) (भानुदत्त) को महत्वपूर्ण माना जाता है। इनमें 'रसमंजरी' सर्वाधिक लोकप्रिय रही है।

समग्रतः संपूर्ण भारतीय काव्यशास्त्र में नायिका-भेद के आठ आधार मान्य हैं : जाति (पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी); कर्म अथवा धर्म (स्वकीया, परकीया, सामान्या); पति-प्रेम (ज्येष्ठा, कनिष्ठा); वय (मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा (प्रगल्भा); मान (धीरा, अधीरा, धीराधीरा); दशा (अन्यसुरतिदुःखिता, मानवती, गर्विता); अवस्था (प्रोषितपतिका, कलहांतरिता, खंडिता, अभिसारिका आदि) और गुण (प्रकृति—उत्तमा, मध्यमा, अधमा)।

नायिका-भेद की यह शास्त्रीय पद्धति अत्यंत यांत्रिक और स्थूल है। आचार्यों ने प्रायः स्त्री को वर्ग मानकर उसके समूह की कुछ स्थूल और चिर-परिचित पारंपरिक सामाजिक स्थितियों की कल्पना कर ली है तथा प्रत्येक विषय के भेदोपभेद प्रस्तुत कर देने की अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन उत्साहपूर्वक किया है।

नारण दुरैक्कणणन (त० ले०) [जन्म—1906 ई०]

उपनाम 'जीवा'। मद्रास के मयिलापुर नामक स्थान में इनका जन्म हुआ। जीवा तमिल एवं अँग्रेज़ी के विद्वान हैं। इन्हें कुप्पुस्वामी मुदलियार, मरैमलै अडिहळ् (दे०), शेषाचलम, तिरु वि० क० (दे०) जैसे योग्य विद्वानों का शिष्य बनने का सौभाग्य मिला। इन्होंने अपनी जीविका का आरंभ प्रेस में प्रूफ़रीडर के रूप में किया। कुछ समय तक 'आनंदबोधनी', 'प्रचंड विकटन' नामक पत्रिकाओं का संपादन किया। वे अनेक पत्रिकाओं के संपादक-मंडल के सदस्य भी रहे हैं। 'जीवा' सच्चे अर्थों में बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, निबंध सभी विधाओं को इन्होंने अपनी रचनाओं से समृद्ध किया है। प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'हंसानंदी', 'बेनिल वंददु', 'अषांबिकै', 'देवकी चपलम' (कहानी-संग्रह), 'इव्वुलगै तिरुंबिपारेन', 'यान एन पेण्णाय पिरंदेन ?', 'उयिरोवियम' (दे०), 'दासी रमणी', 'वेलैक्कारी', 'पुदुमैप्पेण', 'नड्त्तेरु नारायणन्', 'श्रीमान शुयनलम', 'त्याग तषुंबु', 'तरंगिणी' (उपन्यास); 'तींडादार यार ?', 'शदुंरगम', 'बंधपाशम', 'वळ्ळलार', 'कुमरि मुदल काश्मीर वेरै', 'तिरुवळ्ळुवर' (नाटक); 'अरिवुक्कु विरुंदु', 'अरशियल शिन्दनैहल', 'लक्षिय कुखु', 'तमिलहत्तिन तनि तलैवरहल', 'मरैमलै अडिहळ्' (दे०) (निबंध); 'पुदुडिल्लि पयणम', 'बंबाय पारीर' (यात्रा साहित्य); 'इदय गीदम', 'अरुट्कवि अमुदम', 'तिरुमयिलै कविरायर कविदैहळ' (कविता-संग्रह) आदि।

जीवा की कहानियों में नारी-स्वातंत्र्य, विधवा-विवाह, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए व्यक्तियों के पुनरुद्धार, धार्मिक एवं सामाजिक समन्वय आदि सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। इनके आरंभिक उपन्यासों में समाज-सुधार की भावना प्रबल है। स्वतंत्रता-परवर्ती उपन्यासों में युगीन सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का सजीव चित्रण है। अपने 'उयिरोवियम' (जीवन-चित्र) नामक उपन्यास को नाटक-रूप में प्रस्तुत कर इन्होंने तमिल-नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया। इनके नाटक प्रसिद्ध साहित्यकारों के जीवन-चरित्र पर एवं सामाजिक समस्याओं पर आधृत हैं। इन्होंने विभिन्न धर्मगुरुओं, भक्तों, कवियों, वैज्ञानिकों, राष्ट्र-नेताओं और महापुरुषों की जीवनियाँ लिखी हैं।

'जीवा' सामाजिक विषयों को आधार बनाकर साहित्य-सर्जना करने वाले प्रथम साहित्यकार हैं। तमिल साहित्य-जगत में इन्हें उपन्यासकार के रूप में सर्वाधिक ख्याति मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारणप्पा *(क० ले०)*

(दे०) कुमारव्यास।

नारायण *(सं० ले०)* [समय—चौदहवीं शती के बाद]

'महाभारत' (दे०) के टीकाकारों में नारायण का विशिष्ट स्थान है। कुछ लोग इनको तथा नारायण सर्वज्ञ को एक ही व्यक्ति मानते हैं। पर, यह धारणा कुछ भ्रांत प्रतीत होती है क्योंकि इन्होंने अपनी टीका में नारायण सर्वज्ञ के मत की आलोचना की है।

इनकी टीका का नाम 'निगूढार्थ पदबोधिनी' है। इसमें बड़ी ही विशद एवं सुबोध शैली में 'महाभारत' की व्याख्या की गई है।

नारायणकवि, दूबगुंट *(ते० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

ये नेल्लूरु जिले के 'दूबगुंट' नामक गाँव के मुखिया थे। इन्होंने विष्णुशर्मा-कृत संस्कृत 'पंचतंत्र' (दे०) का तेलुगु में अनुवाद किया। तेलुगु में उपलब्ध 'पंचतंत्र' के अनुवादों में नारायणकवि की यह रचना ही सर्वप्रथम है। इनके अनुवाद में मूल ग्रंथ का निकटतम अनुसरण किया गया है पर इनकी प्रतिभा साधारण कोटि की है।

नारायणदासु, आदिभट्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

इनका जन्म एक कलाभिज्ञ परिवार में हुआ था। अपनी साधना से इन्होंने संगीत और साहित्य में प्रवीणता पाई। ये यक्षगानमु तथा हरिकथाओं के लेखक एवं प्रस्तुतकर्ता के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में इनसे अधिक सफलता किसी को प्राप्त नहीं हुई। 'आंध्र देश हरिकथा कालक्षेप कर्तृ पितामह' इनकी उपाधि थी। इन्होंने पौराणिक कथाओं पर आधारित—'जानकी शपथकमु', 'रुक्मिणी कल्याणमु', 'अंबरीष-चरित्रमु', 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' आदि हरिकथाओं तथा कई शतकों की रचना की है। ये हरिकथा लिखने में ही नहीं, उसके प्रस्तुतीकरण में भी प्रवीण थे। जीवन भर असंख्य स्थानों में ये हरिकथा प्रस्तुत करते रहे। शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों को ये अपनी प्रतिभा से मंत्रमुग्ध कर देते थे। अपने बहुमुखी पांडित्य को कथांशों के रूप में प्रस्तुत करते हुए जनता का सम्यक् उद्बोधन भी ये किया करते थे।

नारायणन् सार *(मल० पा०)*

के० सुरेंद्रन् (दे०) के उपन्यास 'शक्ति' का मुख्य पात्र। यह दरिद्र अध्यापक अपनी व्यवहार-कुशलता और धर्मभीरु-निरपेक्षता के सहारे अपने परिवार को संपन्नता और प्रतिष्ठा प्रदान करता है। अंत में रोग-पीड़ित और पत्नी का उपेक्षा-पात्र होकर भी अपराजित भावना के साथ ही आँखें बंद करता है।

नारायणन् सार के चरित्र की विशेषता है उसकी महत्वाकांक्षा और लक्ष्य प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अपनाने की सन्नद्धता। परंपरागत नैतिक मान्यताएँ उसे मार्गभ्रष्ट नहीं करतीं, परंतु किसी भले व्यक्ति को हानि पहुँचाना भी उसका ध्येय नहीं है। उसके भक्ति-प्रभाव और इच्छाशक्ति का समुचित विकास उपन्यास में दर्शनीय है।

नारायणम् सार जैसे पात्र सामान्य जीवन में सुलभ होते हुए भी मलयाळम उपन्यास में ऐसी पात्र-सृष्टि अद्वितीय है।

नारायणरावु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

यह श्री अडवि बापिराजु (दे०) का सुप्रसिद्ध उपन्यास है। यह आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत एक बृहद् उपन्यास है। यह कथात्मक उपन्यास मात्र न होकर आंध्र-जनता से संबंधित अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विषयों के व्यापक वर्णनों से भरा हुआ है। इसका उद्देश्य केवल रसानुभूति न होकर समाज की अनेक विषमताओं एवं कुरीतियों को हटाकर एक नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था का निर्माण करना है। उपन्यासकार ने इसके नायक नारायणरावु को एक उदारचरित, जागरूक एवं निष्ठावान् सामाजिक नेता के रूप में चित्रित करके उसे अपना संदेशवाहक बनाया है। 'नारायणरावु' का स्थान तेलुगु के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में है।

नारायणरावु, काळ्ळकूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1871 ई०]

पूर्णम्मा और बंगारुराज के पुत्र नारायणराव तेलुगु के प्रसिद्ध नाटककार हैं। इन्होंने नाटकों के अतिरिक्त कतिपय चित्रकाव्य, ऐतिहासिक ग्रंथ तथा आलोचना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मक ग्रंथ लिखे हैं। ये बी० ए०, एल-एल० बी० थे और वकालत करते थे। नाटकों में इन्होंने यद्यपि पौराणिक नाटक और प्रहसन भी लिखे हैं तथापि इनके सामाजिक नाटक ही सर्वाधिक हैं। सारंगधर की प्रचलित कथा में अनेक नाटकीय परिवर्तन कर लिखे गए 'चित्राभ्युदयमु' (1909 ई०), अभिमन्युवध को ग्रहण कर लिखे गए 'पद्मव्यूहमु' (1919 ई०) नामक नाटकों की भूमिकाएँ इनकी तर्कबुद्धि पर प्रकाश डालने वाली हैं। 'चिंतामणि' (दे०) (1921 ई०), 'वर-विक्रयमु' (दे०) (1922-23 ई०), 'मधुसेवा' (1906 ई०) क्रमशः वेश्यागमन, दहेज, मद्यपान की कुप्रथाओं का खंडन करते हुए लिखे गए नाटक हैं।

नारायणराव, चिलुकूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

नारायणराव एम० ए०, पी-एच० डी० और एल० टी० परीक्षाओं में उत्तीर्ण थे। कुछ समय तक इंस-पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स रहने के बाद, अनंतपुर के सरकारी महाविद्यालय में प्राध्यापक रहे। ग्यारहवीं शती की तेलुगु भाषा पर शोध-कार्य करके इन्होंने आंध्र विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। तेलुगु भाषा को संस्कृत-जन्य सिद्ध करते हुए (रेवरेंड काल्डवेल की पुस्तक 'ए कंपेय-रेटिव ग्रामर ऑफ़ ड्रैविडियन लैंग्वेजिज़' का खंडन करते हुए) इन्होंने 'आंध्र भाषा चरित्रमु' (दो भागों में) नामक बृहत् ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ आंध्र विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित है। यह इनकी गंभीर गवेषणात्मक बुद्धि की कीर्ति-पताका है।

अनुसंधाता होने के साथ-साथ ये सरस कवि, नाटककार, और व्याख्याकार और व्याख्याता भी थे। ये नव्यसाहित्य परिषद् के संस्थापकों में से थे तथा आंध्र-इतिहास-परिशोधक-मंडली (राजमहेंद्री) के कई वर्ष तक अध्यक्ष भी रहे। इन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई 'महामहोपाध्याय' की उपाधि का तिरस्कार किया था। 1947 ई० में काशी संस्कृत विद्यापीठ ने इन्हें 'महोपाध्याय' की उपाधि से सम्मानित किया था। कहा जाता है, इन्होंने 1,25,000 पृष्ठों की 240 पुस्तकें लिखी हैं। इनमें प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथ भी सम्मिलित हैं। अँग्रेज़ी में भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ ये हैं: 'अथर्ववेद' (प्रतिपदार्थ तात्पर्य सहित), 'आपस्तंबधर्मसूत्र' (व्याख्या), 'सिद्धांत कौमुदी' और 'तर्कसंग्रह' (तेलुगु-विवरण-सहित), दस भागों में 'आंध्र-वाङ्मय चरित्र', 'अंब', 'अश्वत्थामा' (नाटक), 'संस्कृतांध्रनिघंटु', देश-देश के इतिहास (20 पुस्तकें) तथा तेलुगु काव्यों में अँग्रेज़ी अनुवाद आदि। 'आंध्र-भाषा-चरित्रमु' के कारण इन्हें अपार यश प्राप्त हुआ है।

नारायण रेड्डी, सी० *(ते० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

ये आधुनिक युवक तेलुगु-कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। अल्प आयु में भी 'बालकवि' के रूप में इन्होंने पर्याप्त ख्याति पाई थी। ये प्रमुख रूप से अनुराग एवं प्रणय के कवि हैं। ये आंध्र के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति से विशेष आकृष्ट हैं। इसी कारण इनके प्रमुख काव्य इन्हीं विषयों से संबद्ध हैं।

'कर्पूरवसंतरायलु' (दे०), 'नागार्जुनसागरमु', 'विश्वनाथनायकुडु', 'जलपातमु' आदि इनके काव्य हैं। 'रामप्पा' इनकी एक गीतिनाटिका है। समालोचना के क्षेत्र में भी इन्होंने अपना योगदान किया है। इनका 'नागार्जुनसागरमु' प्राचीन बौद्धकालीन वातावरण में प्रेम एवं त्याग का संघर्ष चित्रित करने वाला मधुर काव्य है। 'कर्पूरवसंत-रायलु' आंध्र के एक शासक की प्रणय-कहानी है। इन्होंने कविता का गेय रूप ही प्रायः सर्वत्र अपनाया है। अतः इनकी कविता में शास्त्रीय छंदों का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल मात्रा, लय एवं तालबद्ध रीति से इन्होंने रचनाएँ की हैं। इनकी मधुर एवं प्रवाहमय शैली पाठक को आह्ला-दित करती है। चलचित्रों के गीतकार के रूप में भी सर्वा-धिक सफलता मिली है।

नारायणाचार्युलु, पुट्टपर्ति *(ते० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

ये बहुभाषाविद्, बहु-ग्रंथ-प्रणेता तथा रसज्ञ साहित्यकार हैं। इनकी वाणी अत्यंत तीक्ष्ण एवं सशक्त है। इनके व्यापक पांडित्य और बहुभाषाज्ञान के कारण आंध्र-जनता ने इनको 'सरस्वतीपुत्र' की उपाधि से सम्मा-नित किया है। कविता, समालोचना, अनुवाद आदि अनेक क्षेत्रों में इनकी प्रतिभा प्रखर रूप से व्यक्त हुई है। 'शिव-तांडवमु', 'मेघदूतमु', 'पेनुगोंडलक्ष्मी', 'प्रबंधनायिकलु', आदि इनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'शिवतांडवमु' इनकी गेयकृति है जिसमें संगीत, साहित्य एवं नाट्य के समस्त संकेतों का सरस समावेश करके शिव के तांडवनृत्य का मोहक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इनके 'मेघदूतम' में कालिदास (दे०) के अनुकरण पर आंध्र-देश का वर्णन किया गया है। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यंत स्वच्छंद प्रकृति के साहित्यकार हैं। इनकी रचनाओं में सर्वत्र तीव्रता, मधुरता एवं आवेग की प्रधानता रहती है। सशक्त वाणी का वरदान इन्हें प्राप्त है।

नालडियार *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की छठी-सातवीं शती]

'नालडियार' को संघमोत्तर काल में रचित 'पदिनेण् कीळ कणक्कु' (अठारह गौण रचनाओं) में परिगणित किया जाता है। इस वर्ग की सर्वप्रसिद्ध रचना 'तिरुक्कुरल' (दे०) है। प्रसिद्धि की दृष्टि से दूसरा स्थान 'नालडियार' का है। चार चरणों वाले वेण्वा छंद में रचित होने के कारण इसे नालडि (चार चरणों वाला) या 'नालडियार' कहा गया है। 'नालडियार' की गणना पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ) काव्यों में होती है। यह एक नीति-ग्रंथ है। इसमें विभिन्न जैन मुनियों द्वारा रचित नीति-विषयक 400 पद संगृहीत हैं। 'नालडियार' शीर्षक से इन पदों को संगृहीत करने का श्रेय पदुमनार को है। कृति का आरंभ ईश-वंदना से हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस वंदना का संबंध 'जिन' से है। इस कृति में कहा गया है कि धन, यौवन और जीवन नश्वर हैं। आत्म-शुद्धि तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए परोपकार करना चाहिए, धन और जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। इसमें भाव-सौंदर्य एवं कला-सौंदर्य का अद्भुत समन्वय दीख पड़ता है। इसकी गणना तमिल के ही नहीं, विश्व के श्रेष्ठ नीति-ग्रंथों में होती है।

नालायिर दिव्यप्रबंधम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की छठी से नवीं शती]

'नालायिर दिव्यप्रबंधम्' में बारह आळवार संतों की चौबीस रचनाएँ संगृहीत हैं—आळवारों और उनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'पोयगै आळवार' (मुदल तिरुवंदादि), 'भूतत्ताळवार' (इरंडाम् तिरुवंदादि), 'पेय आळवार' (मून्राम तिरुवंदादि), 'तिरुमलिशै' आळवार (नान्मुखन तिरुवंदादि, तिरुच्चंदविरुत्तम), 'पेरियाळवार' (तिरुप्पल्लांडु पेरियाळवार तिरुमोषि), 'आंडाळ' (तिरुप्पावै, नाच्चियार तिरुमोपि), 'तोंडरडिपोडि आळवार' (तिरुमालै, तिरुप्पळ्ळिएळुच्चि), 'तिरुप्पाण आळवार' (अमलनादिपिरान) 'तिरुमंगै आळवार' (पेरिय तिरुमोषि, 'तिरुक्कु-रुंदांडकम', 'तिरुनेडुंदांडकम', 'तिरुवेळुकूट्रिरुक्कै', 'शिरिय तिरु-मडल, पेरिय तिरुमडल), 'कुलशेखर आलवार' (पेरुमाळ तिरुमोषि), नंमाळवार (तिरुवाय्मोषि, तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम, पेरिय तिरुवंदादि) तथा 'मधुरकवि आळवार' (कण्णिनुण चिरुत्तांबु)। इन रचनाओं का संग्रह आचार्य नाथमुनि के द्वारा ईसा की दसवीं शती के आस-पास किया गया। 'नालायिर-दिव्य-प्रबंधम्' शीर्षक का शब्दार्थ है 'चार सहस्र मधुर या दिव्य पदों से युक्त रचना'। वर्तमान काल में नालायिर-प्रबंधम् या दिव्य-प्रबंधम् शब्द आळवारों द्वारा रचित चार सहस्र पदों के संग्रह के लिए रूढ़ हो गया है। 'प्रबंधम्' तमिल कृष्ण-भक्ति परंपरा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। यह ग्रंथ वैष्णवों के तेंकलै और वडकलै दोनों दलों के बीच समादृत है। अन्य धर्मानुयायी तथा नास्तिक-जन भी साहित्यिक कृति के रूप में 'नालायिर प्रबंधम्' का विशेषकर पेरियाळवार, आंडाल, तिरुमंगै और कुलशेखर आळवार की रचनाओं का अध्ययन-अध्यापन कर आनंद प्राप्त करते हैं। संघम युग के उपरांत तमिल-साहित्य की समृद्धि में आलवारों का विशेष योग रहा है।

नालुकथकळ् *(मल० कृ०)*

प्रस्तुत कृति चार कथाओं का संग्रह है। रचना-काल 1822 ई० और 1916 ई० के बीच में माना जाता है। कहानीकार ओटुविळ् कुञ्जिकृष्ण मेनन हैं। कल्याणिक्कुट्टि, जानु, नारायणिक्कुट्टि, केळुण्णि मूप्पिल् नायर—ये हैं इन चार कथाओं के शीर्षक। सहृदयों के मनोरंजन में इन कहानियों का विशिष्ट स्थान रहा है।

नालकेट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह एम० टी० वासुदेवन् (दे०) नायर का सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु एक यथा-स्थितिवादी धनिक नायर परिवार के क्रमशः अधःपतन और विघटन पर आधारित है। इसके प्रमुख पात्र 'अप्पु' के चरित्र का विकास नयी पीढ़ी में रूढ़ियों के विरुद्ध हुए विद्रोह के प्रतीक के रूप में हुआ है।

निकट भूतकाल तक केरल की कुटुंब-व्यवस्था मातृदायक्रम पर आधारित थी और सबसे बड़ा मामा अविभक्त परिवार का नायक होकर अपना एकाधिकार चलाता था। इस शासन के दबाव की जो प्रतिक्रिया युवकों में हुई थी, वह एम० टी० वासुदेवन् नायर की साहित्य-रचना का एक मुख्य प्रेरणा-स्रोत रही है। इसमें इस सामाजिक परिवर्तन-प्रक्रम का पूर्ण विकास दिखाया गया है। यह लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सर्वप्रमुख उपन्यास होने के साथ-साथ मलयाळम के मुख्य सामाजिक उपन्यासों में प्रमुख है।

नालुभाषाकाव्यङ्ङळ् *(मल० कृ०)*

यह गुप्त मलयाळम भाषा में लिखित चार उत्कृष्ट कृतियों का संग्रह है। इसमें चेरिय कोमप्पन्, कण्णन्, पावक्कनार्, कोच्चि की जीवनियाँ हैं। वीर रस प्रधान ये कविताएँ अलंकृत तथा रस-समृद्ध हैं। इनका रचना-काल बीसवीं शती है। रचयिता कुंटूर नारायण मेनन (दे०) हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त सोलह अन्य कृतियाँ भी प्रस्तुत कवि द्वारा रची गई हैं।

नासिकेतोपाख्यान *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1803 ई०]

सदल मिश्र (दे०)-विरचित इस कृति में महाराजा रघु की पुत्री चंद्रावती तथा उसके पुत्र नासिकेत के पौराणिक उपाख्यान को खड़ी बोली गद्य में अत्यंत मनोरंजक शैली में निबद्ध किया गया है। परंपरागत तुकांत पदावली तथा व्रजभाषा के रूपों का परित्याग करते हुए व्यवहारोपयोगी गद्य का प्रयोग करने के कारण यह कृति खड़ी बोली के स्वरूप-विकास के अध्ययन की दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी है।

'नासिख़' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1757 ई०; मृत्यु—1838 ई०]

नाम—शेख इमामबख़्श। उपनाम—'नासिख़', लक़ब—पहलवान-ए-सुख़ुन। जन्म-स्थान—लखनऊ। स्थूल वर्णनों और इतिवृत्तात्मकता से युक्त होने पर भी इनके काव्य में यथेष्ट सरसता एवं सजीवता परिलक्षित होती है। मुसहफ़ी (दे०) को ये अपना काव्य-गुरु मानते थे। उर्दू-भाषा के निर्माताओं में इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने उर्दू को परिमार्जित और परिष्कृत करने का भरसक प्रयास किया था। फ़ारसी और अरबी शब्दावली के प्रचुर प्रयोग के प्रति इनका विशेष आग्रह है। वाक्य-विन्यास शुद्ध फ़ारसी-पद्धति का है। दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। इनका दीवान (काव्य-संग्रह) भाषा की उत्कृष्टता एवं सशक्त अभिव्यंजना-शैली का सजीव उदाहरण है।

नाहनंदी *(त० पा०)*

नाहनंदी कृष्णमूर्ति 'कल्कि' (दे०) के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवकामियिन शपदम्' के प्रमुख पात्रों में से है। नाहनंदी 'कल्कि' की कल्पना-सृष्टि है। लेखक ने इसे खलनायक के रूप में चित्रित किया है। इसमें अपार साहस है परंतु फिर भी यह अंत में पराजित हो जाता है। इसका कला-प्रेम ही इसकी शक्ति और शक्तिहीनता का कारण है। अपने कला-प्रेम के कारण ही यह आयनशिर्पी को अपने साथ मिला लेता है और अपने षड्यंत्रों में सफल होता है, शिवकामी के आदर का पात्र बनता है और कांची के किले से मुक्त हो जाता है। इसका कला-प्रेम इसे कलाकार की पुत्री शिवकामी की ओर आकृष्ट करता है और अंत में इसका पतन होता है। इसी कारण यह अपने भाई पुलिकेशी से शत्रुता मोल लेता है और अपने देश की हानि करता है। बौद्ध धर्म की अवनति के समय नाहनंदी जैसे कृत्रिम बौद्ध भिक्षु का चित्रण उचित प्रतीत होता है।

निंबार्क *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1200 ई० का पूर्वार्द्ध]

ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अरुणमुनि और माता का नाम जयंती देवी था। यह किंवदंती प्रचलित है कि एकदा इन्होंने अपनी शक्ति से एक संन्यासी को, नीम के पेड़ के ऊपर अस्त हो जाने पर भी, सूर्य का दर्शन कराया था। इसीलिए इनका नाम निंबार्क पड़ गया था।

'वेदांत पारिजात सौरभ', 'सिद्धांत रत्न', 'दशश्लोकी', 'श्रीकृष्णस्तव', 'वेदांत कौस्तुभ', 'पांचजन्य' तथा 'तत्त्व प्रकाशिका' के अंतर्गत इनके दार्शनिक सिद्धांत की प्रमुख रूप से प्रतिपादना मिलती है। इनका दार्शनिक सिद्धांत भेदाभेद या द्वैताद्वैतवाद के नाम से प्रचलित है। इस मत के अनुसार जीवात्मा, परमात्मा एवं प्रकृति ये तीनों भिन्न तत्त्व हैं। जीव तथा प्रकृति परमात्मा के अधीन हैं। किंतु परमात्मा इन सभी में व्याप्त है, इसीलिए इनके मतानुसार भेद या अद्वैत भी स्वीकार किया गया है। इन्होंने अपने भेदाभेदवाद को स्पष्ट करने के लिए समुद्रतरंग को प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार कि समुद्र एवं उसकी तरंगों में भेद एवं अभेद दोनों हैं, उसी प्रकार परमात्मा एवं जीव तथा प्रकृति में भी भेद तथा अभेद दोनों हैं।

वैष्णव-दर्शन के क्षेत्र में निंबार्क ने ईश्वर, जीव एवं प्रकृति में भेद तथा अभेद की स्थापना करके समन्वय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सुंदर दृष्टि प्रस्तुत की है। इससे व्यावहारिक जगत् के स्वरूप की रक्षा भी संपन्न हुई है। अतः भारतीय दर्शन के अंतर्गत इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

निकात-ए-मजनूं (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1956 ई०]

यह ग्रंथ साहित्यिक समालोचनाओं का संकलन है। इसके रचयिता प्रोफ़ेसर अहमद सिद्दीक़ मजनूं हैं। इस पुस्तक में संकलित समालोचनात्मक साहित्यिक निबंधों में से कुछ इस प्रकार हैं :

(1) मीर और उनकी शायरी।
(2) हज़रत आसी का तग़ज़्ज़ुल।
(3) मसनवी इसरार-ए-मुहब्बत।
(4) नियाज़ फ़तेहपुरी।

इसमें प्रकाशित निबंध प्रायः वे ही हैं जो 'तनकीदे हाशिये' के नाम से पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। इन निबंधों के माध्यम से समालोचना एवं उसके सिद्धांतों पर विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक उर्दू साहित्य की एक बहुमूल्य कृति है और उर्दू के समालोचनात्मक साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है।

निगारिस्तान (उर्दू० कृ०)

'निगारिस्तान' मौलाना ज़फ़र अली खाँ (दे०) की कविताओं का संकलन है। 256 पृष्ठों के इस संकलन में कोई 181 रचनाएँ संगृहीत हैं।

'निगारिस्तान' से पूर्व मौलाना ज़फ़र अली खाँ का एक काव्य-संकलन 'बहारिस्तान' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस संकलन में मौलाना की विभिन्न विषयों पर लिखी कविताएँ उपलब्ध हैं। विषयों की विविधता का आकलन संभव नहीं, फिर भी कुछ काव्य-शीर्षक इस प्रकार हैं—

(1) रामायण का एक सीन, (2) वह और हम, (3) सितारा-ए-सुबह, (4) जन्माष्टमी, (5) ज़लज़ला-ए-विहार, (6) जवाहरलाल नेहरू और हिंदू महासभा, (7) लाला नानकचंद नाज़ की शायरी, (8) मस्जिद शहीद गंज की शहादत आदि कविताएँ बहुत रोचक तथा मनोरंजक हैं।

मौलाना उर्दू साहित्य के एक उच्चकोटि के कवि तथा पत्रकार माने जाते हैं। उनकी कविताओं का यह संकलन उनकी प्रतिभा तथा काव्य-कला एवं कल्पनाशीलता का प्रतिनिधित्व करता है।

निचुकनि गीत (अ० पारि०)

ये असमीया साहित्य के लोरी गीत हैं। इनमें बच्चों के प्रति माता की कोमल कल्पनाएँ और भावनाएँ रहती हैं। असम में निम्नोक्त निचुकनि गीत बहुत प्रचलित है, बच्चों के शिशु-पाठ (प्रथम खंड) में भी लगा हुआ है—

जो न बाइ ए, बे जी एटि दिया···

'हे चंद्रमा सुई दे दो, इससे थैली सिऊँगी, थैली में धन भरूँगी, धन से हाथी मोल लूँगी, हाथी पर बच्चा चढ़ेगा।'

श्रीधर कंदली (दे०) नामक एक असमीया कवि ने निचुकनि शैली में 'कानखोवा' (कान खाने वाला) कविता लिखी थी, जिसमें यशोदा माता कृष्ण को डराकर सुला देने के लिए कानखोवा के आने की बात कहती हैं—

घुमटि जाओरे अरे कानाइ हुरे कानखोवा आसे।
सकलो शिशुर काण खाइ खाइ आसइ तोमार पाशे ॥

निजगुण शिवयोगी (क० ले०) [समय—1500 ई० के लगभग]

निजगुण शिवयोगी के विषय में कहा जाता है कि यह पहले कहीं के राजा थे। बाद में विरक्त होकर शंभुलिंग पहाड़ियों में जाकर तपस्या में लीन रहे। ये वीरशैव थे। 'शंभुलिंग' इनका उपनाम था।

ये बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न थे। इन्होंने गद्य-पद्य दोनों में अपनी संचित ज्ञानराशि की व्यंजना की है। इनकी सात रचनाएँ हैं—'कैवल्य पद्धति', 'परमानुभव-बोधे', 'परमार्थगीते', 'अनुभव-सार', 'अरुवत्तुमूवर', 'त्रिपदि', 'परमार्थ प्रकाशिके', 'विवेक-चिंतामणि' (दे०)। इनमें पहली पाँच क्रमशः गीत, सांगत्य (दे०), रगळे (दे०), त्रिपदी (दे०) छंदों में हैं तो शेष दो गद्य में हैं। 'कैवल्य पद्धति' में तात्त्विक तथा शिवस्तुति वाले गीत हैं। उनमें कई तो श्रेष्ठ कोटि के गीतिकाव्य हैं। 'परमानुभव-बोधे' में अद्वैत का निरूपण याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी के संवाद-रूप में है। 'अनुभवसार' में आत्म-स्वरूप तथा अद्वैतसिद्धि का निरूपण है। 'परमार्थगीते' में गुरु-शिष्य संवाद के रूप में मोक्षशास्त्र का निरूपण है। 'अरुवत्तुमूवर' त्रिपदी में त्रिपदी छंद में 63 शैव संतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्तवन है। 'विवेक चिंतामणि' निजगुण शिवयोगी का बृहत् रूप है। यह एक प्रकार से कन्नड का सर्वप्रथम विश्व-कोश है। इसमें रस-प्रकरण तथा 765 विषय हैं। केवल दर्शन और धर्म ही नहीं, संगीत जैसे लौकिक विषय भी इसमें हैं। निजगुण शिवयोगी कर्णाटक ज्ञानियों में उच्च तथा कवियों में गण्यमान्य हैं। इनमें ज्ञान-प्रधान भावशांति है। विभिन्न मतों के निरूपण में इन्होंने जो निष्पक्ष दृष्टि दिखाई है, वह अद्भुत है। ज्ञान और काव्य का मनोहर संगम ही इनकी विशेषता है।

निज्जुत्ति (निर्युक्ति) *(प्रा० कृ०)*

जैन-आगमों (दे०) पर लिखी हुई व्याख्यात्मक टिप्पणियों का एक प्रकार इस नाम से अभिहित किया जाता है। ये निर्युक्तियाँ प्राकृत भाषा के आर्या छंदों में सूत्रबद्ध अर्थ को प्रकट करने के लिए लिखी गई हैं। सूत्रार्थ पर दृष्टिपात के साथ स्पष्टीकरण के लिए दृष्टांतों, उदाहरणों तथा प्रसिद्ध कथाओं का उपयोग किया गया है। अनेक आगम निर्युक्तियों के साथ ही प्रकाश में आए हैं और ये मूलग्रंथों से ऐसी घुलमिल गई हैं कि पृथक्करण संभव प्रतीत नहीं होता। पिंडनिज्जुत्ति इत्यादि दो-एक तो आगमों में सन्निविष्ट हो गई हैं। अधिकांश के कर्ता भद्रबाहु (दे०) हैं।

निडदवोलु वेंकटराव् *(ते० ले०)*

ये प्राचीन एवं मध्ययुगीन तेलुगु भाषा के अधिकारी विद्वान हैं। तेलुगु भाषा के विकास-क्रम के विषय पर इन्होंने व्यापक शोध-कार्य किया है। अनेक प्राचीन ग्रंथों के संशोधन एवं संपादन का श्रेय भी इनको प्राप्त है। मद्रास विश्वविद्यालय में तेलुगु विभाग के अध्यक्ष के रूप में अनेक वर्षों तक इन्होंने कार्य किया है। 'मिंचुपल्ले' इनकी काव्य-कृति है।

निणमणिञ्ञ काल्पाटुकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

पारप्पुरत्तु (दे०) का सैनिक जीवन से संबद्ध प्रसिद्ध उपन्यास। अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में असमर्थ निराश युवक मैत्यु (दे०) अपनी प्रेमिका तंकम्मा के प्रोत्साहन-जन्य मनोबल के आधार पर सेना में भर्ती हो जाता है। इधर तंकम्मा के पिता की मृत्यु के बाद वह दुष्प्रवादों का पात्र बनकर मैत्यु का प्रेम खो बैठती है। सेना से सेवा-निवृत्ति के बाद मैत्यु युद्ध में शहीद होने वाले एक सहयोगी की बहन से विवाह करता है। जब तक उसको तंकम्मा की दुःखद कथा का पूरा परिचय प्राप्त होता है तब तक सब-कुछ बिगड़ चुका होता है।

इस कथानक में उपन्यासकार ने ग्राम-जीवन और सैनिक जीवन की विचित्रताओं और विशेषताओं के समांतर चित्र उरेहे हैं। युद्ध की विभीषिकाओं और उसमें भाग लेने वाले सैनिकों की मानसिक स्थिति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने में पारप्पुरत्तु को जो सफलता मिली है वह अनन्य है। लेखक स्वयं सैनिक रहा है और प्रस्तुत उपन्यास काफ़ी हद तक उसकी अपनी कहानी है। गाँव के अच्छे-बुरे और अधिकतर दरिद्र लोगों के संघर्षमय जीवन की भी उपन्यास में झलक मिलती है। इस पृष्ठभूमि में उपन्यासकार ने भावपूर्ण और दुःखांत प्रणय-कथा गूँथी है। 'निणमणिञ्ञ काल्पाटुकळ्' मलयाळम के सैनिक उपन्यासों में अद्वितीय होने के अलावा सामाजिक उपन्यासों में भी प्रमुख स्थान का अधिकारी है। उपन्यास-साहित्य के विकास में इसका स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

निबंध *(हिं० पारि०)*

'निबंध' हिंदी की एक गद्य-विधा है और सामान्यतः अँग्रेज़ी के 'ऐस्से' के पर्याय रूप में प्रयुक्त होता है। 'अँग्रेज़ी का 'ऐस्से' शब्द फ्रेंच भाषा के 'एसाई' (essais) से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रयास, परीक्षण अथवा प्रयोग करना। पश्चिम में इस विधा का जनक फ्रेंच लेखक माइकेल द मॉन्तेन (1533-92 ई०) को माना जाता है। 1580 ई० में इन्होंने जब सर्वथा नयी शैली में रचित दो पुस्तकें प्रकाशित कीं तो शायद उनकी प्रयोगधर्मिता पर बल देने के उद्देश्य से उनके लिए 'एसाई' शब्द का प्रयोग करते हुए उन्होंने अध्ययन, विचारणा और कलात्मक अलंकरण से मुक्त (केवल) अपना—स्वयं का—चित्रण कहा था। इस प्रकार स्वयं इस विधा के प्रवर्तक के अनुसार निबंध रचनाकार की सहज एवं अनौपचारिक आत्माभिव्यक्ति है। मॉन्तेन के रचना-काल के ठीक सत्रह वर्ष पश्चात् प्रकाशित अँग्रेज़ी के प्रथम महत्वपूर्ण निबंधकार फ़्रांसिस बेकन के प्रथम निबंध-संग्रह में सिद्धांत-निरूपण एवं परिभाषाएँ देने का सचेत प्रयास तथा विचारों के व्यवस्थित उपस्थापन के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं। निबंध के उद्भव-काल में ही उसकी प्रकृति के विषय में मतैक्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो पाया और बाद में भी प्रायः सभी श्रेष्ठ निबंधकारों ने (चाहे वे काउली, हैज़लिट, गोल्ड स्मिथ और ली हंट जैसे विषयी-प्रधान निबंधकार हों और चाहे बेन जॉन्सन, एडिसन, डॉ० जान्सन, मैकाले और वाल्टर पेटर जैसे विषय-प्रधान निबंध-लेखक हों) इसके स्वरूप के विषय में एकमत होकर अपनी अवधारणाओं को प्रस्तुत नहीं किया। इन लोगों के अनुसार यह आत्मा और स्वानुभूति की अनौपचारिक अभिव्यक्ति भी हो सकता है और किसी विषय का शास्त्रीय, वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित प्रतिपादन भी। वैसे निबंध-लेखन की शैली आत्मपरक होनी चाहिए—निर्वैयक्तिक या वस्तुमुखी नहीं, इस विषय में प्रायः सभी एकमत रहे हैं।

पाश्चात्य आलोचकों के अनुसार 'ऐस्से' (essay) वस्तुतः एक 'निबंध' रचना है, जबकि आधुनिक भारतीय भाषाओं में उसे निबंध' (नि + बंध + √घञ्) कहा गया है, जिसका अर्थ होता है—बाँधना, सुसंबद्ध अथवा क्रमबद्ध करना। हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इस गुत्थी को यह कहकर सुलझाने का प्रयत्न किया है कि 'व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रृंखला रखी ही न जाए या जान-बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाए…।' इसका अर्थ यह हुआ कि 'निर्बंधता' में भी एक 'संबद्धता' रहती है जो अपने आप में व्यक्तिनिष्ठता के विरुद्ध नहीं है। यदि निबंध चिंतनात्मक है तो विचारों में संबद्धता स्वयं श्रृंखला का निर्माण कर लेगी और यदि निबंध भाव-प्रधान है तो वहाँ भाव (दे०) की एकसूत्रता होगी। वस्तुतः निबंध में बाहर से दिखाई पड़ने वाली विश्रृंखलता के भीतर एक आंतरिक श्रृंखला रहती है। इस प्रकार निबंध के प्रमुख तत्व हैं: (1) एकसूत्रता या सामंजस्य, (2) वैयक्तिक दृष्टिकोण, और (3) विषय-प्रतिपादन की शैली में आत्मीयता।

निबंध विषय और शली के प्रकारों की दृष्टि से मर्यादित नहीं है। वह जीवन और जगत् के किसी भी मूर्त्त-अमूर्त्त विषय से लेकर विशुद्ध-कल्पना पर आधारित लोकोत्तर विषयों पर भी लिखा जा सकता है। व्यक्ति-तत्त्व की प्रमुखता के आधार पर निबंध के दो रूप हो सकते हैं: व्यक्ति-प्रधान और विषय-प्रधान। शैली की दृष्टि से वह चिंतनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, भावनात्मक और चित्रात्मक आदि अनेक प्रकार का हो सकता है। साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से आलोचनात्मक निबंधों की विशेष उपयोगिता है। आजकल पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीयों, उनके प्रकाशित होने वाली पुस्तक-समीक्षाओं, रेखाचित्रों (दे०), भेंट-वार्ताओं (इंटरव्यू), रिपोर्ताजों (दे०) आदि को भी निबंध के अंतर्गत ही माना जाने लगा है।

निबंधमाला *(म० क्र०)*

1874 ई० में श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (दे०) ने 'निबंधमाला' नामक पत्रिका का संपादन-कार्य आरंभ किया था। मराठी साहित्य में निबंधमाला प्रौढ़ निबंध-साहित्य का आद्य रूप रही है। अपने युग में 'निबंधमाला' मराठी भाषा-भाषियों की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रेरणा-स्रोत रही है। विनम्र स्वाभिमान को ही पुनः उद्बुद्ध करने के लिए चिपळूणकर जी ने परिस्थितियों के आग्रह से अनेक विषयों को अपनाया था और ओजस्वी तथा गरिमापूर्ण शैली में निबंध लिखे थे। प्रारंभिक चार वर्षों तक 'निबंधमाला' में केवल चिपळूणकर जी के ही निबंध छपते थे।

'निबंधमाला' की रचनाएँ मराठी निबंध-लेखन का आदर्श रही हैं। 'निबंधमाला' में 'मराठी भाषचा सांप्रतची स्थिति' जैसे भाषा-विषयक, 'मोरोपंत की कविता' जैसे आलोचनात्मक, 'डॉ० जॉन्सन का चरित्र' (जो मराठी का पहला चरित्र-ग्रंथ माना जाता है), 'आमच्य देशाची स्थिति' जैसे राजनीतिक तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक निबंध संकलित हैं। लेखक निबंधों में अपने मन का तर्कनिष्ठ प्रतिपादन करता हुआ, प्रतिपक्षी को परास्त करने के लिए व्यंग्य, उपहास, व्याजोक्ति आदि का प्रचुर प्रयोग करता है।

इन्होंने अपने निबंधों में अँग्रेज़ी शासन का कड़ा विरोध किया था, जिसके परिणामस्वरूप 'आमच्या देशाची स्थिति' निबंध ज़ब्त कर लिया गया था। ये अपने को मराठी भाषा का शिवाजी कहते थे। मराठी साहित्य में 'निबंधमाला' के द्वारा ऐतिहासिक अनुसंधान, जीवनी, आलोचना तथा प्रौढ़ साहित्यिक निबंधों की परंपरा का सूत्रपात हुआ है।

निमचाँद *(बँ० पा०)*

निमचाँद चरित्र (सधबार एकादशी) दीनबंधु मित्र की एक अविस्मरणीय सृष्टि है। अँग्रेज़ी शिक्षा में पारंगत एवं संभ्रांत परिवार की संतान निमचाँद की अधोगति का कारण है मद्यतृष्णा। शराब के कारण ही उसे अपमानित-लांछित होना पड़ता है किंतु शिक्षा-गौरव से वह उन्नतमस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। धनी मूर्खों के प्रति उसकी अवज्ञा का अंत नहीं। वह मद्यप है, यहाँ तक कि चरित्रहीन है परंतु उचित-अनुचित-ज्ञान-वर्जित नहीं है। डेपुटी अटल ने जब गोकुल की स्त्री को बाहर निकालने का प्रस्ताव किया, निमचाँद ने अवज्ञापूर्वक उस प्रस्ताव का प्रत्याख्यान किया। निमचाँद की बातचीत, आचार-आचरण में सुशिक्षित पौरुष के आत्मदहन का पावक भस्माच्छादित है, इसीलिए उसके जीवन की प्रच्छन्न वेदना की धारा से पाठक-चित्त करुणा-प्रवण हो उठता है। बहुत-से यह सोचते हैं कि माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के 'कैरीकेचर' के लिए ही लेखक ने इस पात्र का निर्माण किया है। यों मधुसूदन के व्यक्तित्व के साथ निमचाँद का कोई साम्य-समांतरता नहीं है, तो भी निमचाँद के संताप में मधुसूदन दत्त के मत्त आवेग का क्षीण स्पंदन सुनाई पड़ जाता है। निमचाँद की हँसी व्यर्थ जीवन का हाहाकार है एवं उसका मत्त संताप विलाप की ही प्रतिध्वनि मात्र है।

निरंजन *(क० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

कन्नड के विख्यात प्रगतिवादी उपन्यासकारों में श्री कुलकुंद शिवराव जी का नाम अग्रणी है। आपका काव्य-नाम 'निरंजन' है। आपका जन्म उत्तर कर्णाटक के कुलकुंद में 1923 ई० में हुआ। हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त कर इन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं में काम किया। संप्रति आप बालकों के विश्वकोश 'ज्ञानगंगोत्री' के संपादक हैं। आपने गोर्की के उपन्यास 'माँ' का सफल अनुवाद किया। आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'स्वामी अपरंपार', 'कल्याणस्वामी', 'विमोचने', 'चिरस्मरणे', 'रंगम्मन वठार', 'नास्तिक कोट्ट देवरु', 'ओंदि', 'नक्षत्र नक्कितु' आदि। 'स्वामी अपरंपार' में धर्म की आड़ में होने वाले शोषण एवं अत्याचार पर व्यंग्य है। 'रंगम्मन वठार' में मध्यवर्गीय जनता की समस्याओं का सरस निरूपण है। 'कल्याणस्वामी' में कोडगु प्रांत में हुए राजविद्रोह का चित्रण है। निरंजन की कहानियों में देश के राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन के यथार्थ चित्रण हैं; शोषण एवं वैषम्य के प्रति आक्रोश है। इनकी भाषा में विलक्षण संयम है जो कभी-कभी नीरसता की सीमा का स्पर्श कर उठता है। तथापि वे कन्नड के श्रेष्ठ वैचारिक लेखकों में से हैं।

निरंजन *(पं० प्र०)*

माया के पृथक् ईश्वर-रूप। अंजन-रहित अर्थात् निर्लिप्त। यह परमात्मा का प्रतीक शब्द है और पंजाबी साहित्य में नाथ संप्रदाय से प्राप्त हुआ है। गोरखनाथ ने अपनी वाणी में अलख और निरंजन नाम परब्रह्म के लिए प्रधानतया प्रयुक्त किए हैं। गुरु-वाणी-साहित्य में गुरु रामदास ने परमात्मा को 'निरंजन'-पद से माना है। उसे अमर, निर्भय, निरंकार एवं निर्वैर कहा है। उनकी उक्ति है—'हरि सति निरंजन अमरु है निरभऊ निरवैरु निरंकारु'।

निरंजन भगत *(गु० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

'स्वातंत्र्योत्तर' गुजराती कवियों में निरंजन भगत अग्रगण्य हैं। अर्वाचीन कविता में काव्यशिल्प, छंद, लय, प्रतीक और बिंब में नूतन मौलिक प्रयोग करने का श्रेय उन्हीं को है। मूलतः तो ये आत्मलक्षी भावुक कवि हैं परंतु इनकी कुछ कविताएँ युग-सत्य और समष्टि-सत्य को भी रूपायित करती हैं। प्रारंभ में इन पर बँगला कविता की लय और वृत्ति का प्रभाव परिलक्षित होता था, पर आगे चलकर इनकी कृतियाँ इतनी प्रौढ़, परिपक्व और मौलिक रूप में प्रकट हुईं कि समालोचकों ने 'उच्चस्तरीय उत्तम काव्य' के रूप में उनका स्वागत किया। निरंजनभाई अहमदाबाद के स्थानीय कालेज में अँग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं। उनका पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन अत्यंत व्यापक, गहन एवं गंभीर है। ये प्रगतिशील कवि हैं। छंदोबद्ध और छंदमुक्त कविताओं के अनंतर इन्होंने मधुर गीतों की भी रचना की है। 'छंदोलय' (दे०) 'अल्पविराम', 'किन्नरी' आदि इनके कविता-संग्रह हैं। कभी-कभी ये विवेचनात्मक लेख भी लिखते हैं जिनमें इनकी विद्वत्ता, अध्ययनशीलता और चिंतन-दर्शन परिलक्षित होता है। इनकी रचनाओं में अनुभूत-अर्जित सत्य का प्रकाशन होता है, आरोपित सत्य का नहीं—यही इनकी विशेषता है।

निरंजन माधव *(म० ले०)* [जन्म—1703 ई०; मृत्यु—1790 ई०]

ये प्रतिभा-संपन्न कवि थे। इन्होंने संस्कृत-काव्यों का गहरा अध्ययन किया था। संस्कृत की शैली में इन्होंने मराठी में 'सुभद्राचंपू' की रचना की है। यह गद्य-पद्य मिश्रित सात सर्गों का काव्य है। कवि की रचनाओं में विविधता है। 'वृत्तावतंस', 'वृत्तमुक्तावली', 'वृत्तरत्नमाला' इनके छंद-ग्रंथ हैं। 'ज्ञानेश्वरविजय', 'निरोष्ठ्यराघव-चरितकाव्य' हैं और 'चिद्बोध रामायण', 'अध्यात्मरामायण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) की टीका है। 'निरोष्ठ्यराघव' में पवर्ग के अक्षरों का प्रयोग सप्रयत्न त्याग दिया गया है। 'रामकर्णामृत' में 111 स्तोत्र हैं, जिसमें पंक्तियों के आदि अक्षरों से 'श्रीराम जयराम जय जय राम' मंत्र सर्वत्र बनता जाता है। ये बहु-भाषाविद् थे—संस्कृत, मराठी, कानड़ी और हिंदी का इन्हें सम्यक् ज्ञान था—राजनीति तथा लोक-व्यवहार का भी इन्हें पर्याप्त ज्ञान था। पंडित कवियों में निरंजन माधव का विशिष्ट स्थान है।

निरंजनी, रामप्रसाद *(हिं० ले०)*

ये पटियाला दरबार के आश्रित थे तथा महारानी के लिए कथा बाँचते थे। इन्होंने 1741 ई० में परिमार्जित खड़ी बोली में 'भाषा योग वासिष्ठ' की रचना की थी जिससे जार्ज ग्रियर्सन (दे०) तथा उनके समर्थकों की यह धारणा सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती है कि खड़ी बोली गद्य का श्रीगणेश 'फोर्ट विलियम कालेज' के तत्त्वावधान में लल्लूलाल (दे०) द्वारा रचे गए 'प्रेमसागर' से हुआ था। वस्तुतः रामप्रसाद निरंजनी खड़ीबोली-हिंदी-गद्य के प्रथम प्रौढ़ लेखक हैं तथा हिंदी गद्य के विकास में इनका ऐतिहासिक महत्व है।

निरणम् माधव पणिक्कर *(मल० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के प्राचीन पाट्टु (गीत)-साहित्य को परिष्कृत करने वाले कवि हैं। ये 'कंण्णश्श' कवि के नाम से प्रख्यात हैं। दो मातुलों और एक भागिनेय कवियों में अग्रज मातुल हैं। इनकी भाषा 'भगवद्गीता' (दे०) किसी भी भारतीय भाषा में रचित प्रथम भगवद्गीता मानी जाती है। माधव पणिक्कर के काल में मणिप्रवाल (दे० मणिप्रवाळम्) शैली की संस्कृतनिष्ठ रचनाओं का अधिक स्थान था। माधव एवं अन्य दो कवियों की रचनाओं ने काव्य की दूसरी शैली का साहित्यिक महत्व बढ़ाया और आगे चलकर तुंचत्त् एषुत्तच्छन् (दे०) जैसे कवियों के लिए शैली-चयन का आदर्श प्रस्तुत किया।

निरणम् राम पणिक्कर *(मल० ले०)* [जन्म—पंद्रहवीं शती]

केरल प्रांत में आलप्पुषा नाम का एक ज़िला है और निरणम् उस ज़िले का एक गाँव है जो प्रसिद्ध पंपा नदी के किनारे स्थित है। उस गाँव के तीन प्रसिद्ध कवियों में एक हैं रामप्पणिक्कर। 'रामायणम्', 'भागवतम्', 'शिवरात्रि-माहात्म्यम्', 'भारतम्' आदि ग्रंथ इनके रचे हुए हैं। सुख्यात 'कण्णश रामायणम्' में कवि की भक्ति-भावना प्रस्फुटित हुई है। वर्जना में भी कवि ने अपनी प्रतिभा दिखाई है। इनकी भाषा सरस, कोमल और प्रांजल है।

निरणम् शंकर पणिक्कर *(मल० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती]

इनकी 'भारत माला' में 'भागवत' (दे०) के दशम स्कंध की कथा के साथ भारत की संक्षिप्त कथा भी निहित है। पांचाली का विलाप मर्मस्पर्शी भाषा में वर्णित है।

निरांत *(गु० ले०)* [समय—1779-1843 ई०]

ये करजण के निकट देथाण ग्राम के निवासी पाटीदार (कृषक) थे। प्रारंभ में ये सगुणोपासक थे, बाद में निर्गुणमार्गी हो गए। कहते हैं कि इनकी कुछ कविताएँ हिंदी में भी हैं।

इन्होंने 'वार', 'तिथि', 'महीना' लिखे। इन रचनाओं के विषय हैं—गुरु-महिमा, सुरति-अनुभव, कैवल्य-पद, आत्मज्ञान, पुरुष-प्रकृति-वर्णन, संत-लक्षण, सत्संग-महिमा, वैराग्य-बोध आदि। इनकी शिष्य-मंडली बड़ी व्यापक थी। मध्ययुगीन गुजराती के ज्ञानमार्गी कवियों में ये महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

'निराला', सूर्यकांत त्रिपाठी *(हिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

इनका जन्म महिषादल स्टेट, मेदनीपुर (बंगाल) में हुआ था। पारिवारिक कठिनाइयों के कारण इनका शिक्षा-क्रम दसवीं के पश्चात् टूट गया। इनका स्वभाव आरंभ से ही चिंतनशील था। दार्शनिक प्रवृत्ति ने इन्हें अनेक प्रियजनों की मृत्यु का आघात सहने की शक्ति प्रदान की। वस्तुतः इनकी दार्शनिकता कोरा बुद्धि-विलास न होकर जीवन की माँग थी। इसीलिए इनका श्रेष्ठ साहित्य दार्शनिक गरिमा से मंडित है।

मूलतः कवि होकर भी इन्होंने आर्थिक कारणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कथा और निबंध-साहित्य की रचना की। फिर भी इनके कथा-साहित्य का कलात्मक स्तर पर्याप्त उन्नत है और निबंधों में भाषा एवं भाव की प्रखरता द्रष्टव्य है। इनकी कविताओं का मूल स्वर क्रांतिकारी है। काव्य-क्षेत्र में इन्होंने अनेक नयी शैलियों का आविष्कार या प्रसार किया है। मुक्त-छंद के विकास में इनका सबसे अधिक योगदान है। सांगीतिक शैली के गीतों की रचना भी हिंदी में सर्व-प्रथम इन्होंने की है। 'परिमल' (दे०) 'गीतिका' (दे०) और 'अनामिका' इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। 'अनामिका' में 'मंडित कविताएँ भी हैं। ये कविताएँ इनके कुसुमादपि कोमल और वज्रादपि कठोर व्यक्तित्व की श्रेष्ठ अभि-व्यक्तियाँ हैं।

'तुलसीदास'(दे०) 'निराला' जी का महत्वपूर्ण प्रबंधकाव्य है। इसमें महाकवि के मनोविकास का मनो-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्य का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक पुनर्जागरण का संदेश देना है। इसे एक तरह से आत्मोद्बोधन भी माना जा सकता है।

'कुकुरमुत्ता' आदि परवर्ती रचनाओं में इनकी व्यंग्य शैली का विकास दर्शनीय है। इन्हीं रचनाओं के आधार पर अनेक नये कवि और आलोचक इन्हें नयी कविता का प्रेरणा-स्रोत ही नहीं, प्रवर्तक भी स्वीकार करते हैं।

'निराला' बहुमुखी प्रतिभा के धनी क्रांत द्रष्टा कवि हैं। आधुनिक हिंदी-साहित्य को इनके अनेक नये प्रयोगों से नयी दिशाएँ मिली हैं। हिंदी-काव्य के इतिहास में इनका स्थान अक्षुण्ण रहेगा।

निरुक्त *(सं० कृ०)* [रचना-काल—700 ई० पू०]

इसके रचयिता यास्क हैं। इस ग्रंथ में परिशिष्ट के दो अध्याय मिलाकर कुल 14 अध्याय हैं। 'निरुक्त' निघंटु का भाष्य रूप ग्रंथ है। 'निघंटु' में वेद के कठिन शब्दों की तालिका क्रमबद्ध रूप से संकलित की गई थी। यद्यपि ये दोनों ग्रंथ पृथक् हैं, तथापि विषय-साम्य के कारण सायण (दे०) ने 'ऋग्वेद' (दे० वेद)-भाष्य के उपोद्घात के अंतर्गत लाक्ष-णिक रूप से 'निघंटु' को भी 'निरुक्त' के नाम से अभिहित किया है। यास्क ने 'नावैयाकरणाय' कहकर स्वत: इस ग्रंथ की कठिनता की ओर संकेत किया है। 'निरुक्त' में प्रधान रूप से वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश एवं धातु का उसके अर्थातिशय के साथ योग—इन विषयों का विवेचन-प्रतिपादन किया गया है। 'निरुक्त' के प्राचीन टीकाकार दुर्गाचार्य हैं।

'निघंटु' का भाष्य होने के कारण वेदज्ञों की दृष्टि में निरुक्त का स्थान अत्यंत ऊँचा है। व्याकरण एवं भाषा-विज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में 'निरुक्त' का स्थान महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति के बोध के लिए 'निरुक्त' अत्यंत उपादेय ग्रंथ है। जो शब्द व्याकरण के क्षेत्र से बाहर थे उनका परिज्ञान कराने के लिए ही 'निरुक्त' की रचना की गई थी। इस प्रकार वैदिक शब्दबोध की दृष्टि से 'निरुक्त' का योगदान अत्यंत विशिष्ट है।

निरुपमा देवी *(बँ० ले०)*

अन्य महिला उपन्यासकारों की तरह निरुपमा-देवी के उपन्यासों की कथाभूमि का आधार है गृहस्थ-जीवन की चिरपरिचित समस्या—दांपत्य-जीवन तथा प्रेम। गृहस्थ-जीवन वैचित्र्यहीन है और प्रेम-निषिद्ध है। अंतर्जगत् के इस संघर्ष को लेखिका ने कई धरातलों पर उठाया है। मनो-विश्लेषण तथा चित्रांकन में सहजता और स्वाभाविकता का पूरा निर्वाह किया गया है। कहीं भी न असंयम है और न अतिरंजना। आकार में छोटे तथा गठन-कौशल में समृद्ध निरुपमादेवी के उपन्यास शिल्प और शैली की दृष्टि से सफल हैं। 'अन्नपूर्णा मंदिर' उनकी प्रथम उपलब्धि है परंतु 'दिदि' उनकी सर्वाधिक सजीव एवं सशक्त रचना है।

निर्गुण भक्ति-काव्य *(हिं० प्र०)*

'निर्गुण' का अर्थ है गुण-रहित, गुणातीत, माया-तीत; सत्त्व, रज तथा तम से परे परमतत्त्व। निर्गुण-संप्रदाय को संत-संप्रदाय, निर्गुण-पंथ, निर्गुण-मार्ग, अथवा 'निर्गुनिया' कह देते हैं। निगुण अरूप, अवर्ण, अजर, अमर, अनादि, अनंत, अलक्ष्य एवं अनिर्वचनीय है; वह घट-घटवासी भी है। निर्गुण-काव्यधारा ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी इन दो शाखाओं में विभाजित है। कबीर (दे०) का निर्गुणमार्ग का प्रधान प्रवर्तक माना गया है, यद्यपि इसका स्रोत जय-देव, नामदेव (दे०), स्वामी राघवानंद, स्वामी रामानंद तथा जैन-बौद्ध मुनियों की रचनाओं में और उनसे भी पूर्व उपनिषदों (दे०) में देखा जा सकता है। कबीर के अनंतर गुरु नानक (दे०), दादू तथा उनके अनुयायियों ने अपने-अपने पंथ चलाए। निर्गुण संप्रदाय एकस्थ न रहा। कबीर ने विचार-स्वातंत्र्य पर अधिक बल दिया। रहस्यवादी भावनाओं से ओतप्रोत अथवा भक्ति से परिपूर्ण गीतों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निर्गुन' कहा जाता है, जो लय-विशेष में गाए जाते हैं और जिनका उपदेश है निराकार ब्रह्म की उपासना।

'निर्दोष', बंसी *(कश्० ले०)*

ये बाल्यकाल से ही चिंतनशील और भावुक रहे और साथ ही आर्थिक परिस्थितियों से भी जूझते रहे हैं। 1958 ई० के बाद से इनके उपचेतन मन का भावुक लेखक जागा और ये सांस्कृतिक नवजागरण की लपेट में आ गए। सामाजिक कुरीतियों और राजनीतिक परिस्थितियों से इनके अंतर्मन की सुप्त भावनाएँ जाग उठीं। जीवन के सुख-दुःख, प्रेम-घृणा, मानव-प्रकृति-सुलभ भाव एवं विचार, मनुष्य-जीवन की क्षणभंगुरता, आदि के ताने-बाने से इन्होंने अपनी कृतियों को सँवारा और सजीव कर दिया। 'निर्दोष' जी का उपन्यास 'म्वकॅजार' और एक छोटा उपन्यास 'सूरित्य तॅ जून' साहित्यिक दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की रचनाएँ हैं जिनसे इस कहानीकार का शिल्पकौशल सिद्ध होता है। इन्होंने कोई 40 कहानियाँ लिखी हैं जो मानव-मन के अंतस्तल की विविध ऊर्मियों का दिग्दर्शन कराती हैं और यह सिद्ध करती हैं कि निर्दोष जी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन और अभिनिवेश कितना गहरा है। इनकी कहानियों की पृष्ठभूमि जहाँ प्रायः मनोवैज्ञानिक है, वहीं इनकी सूझ-बूझ की गहरी पैंठ के दर्शन होते हैं। निर्दोष जी ठेठ कश्मीरी का प्रयोग करते हैं और उनकी लेखनी में प्रवाह है। इनकी कहानियों के संग्रह 'बाल मरःयो' (मैं प्रेम-दीवानी तड़प रही हूँ) पर इन्हें कश्मीर की कल्चर अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनका एक और संग्रह 'आदम छु यिथै बद-नाम' पुरुष मुफ़्त में बदनाम हुआ है) प्रकाशित हुआ है। इन्होंने कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की जीवनी का 'क्रोमुक शायिर' नाम से कश्मीरी में अनुवाद किया है। अपने स्वभाव, कृतित्व, परिश्रम और प्रतिभा के कारण 'निर्दोष' को कश्मीरी साहित्य-जगत में बहुत ऊँचा स्थान है।

निर्मल भक्त *(अ० कृ०)* [रचना-काल —1925 ई०; ले० : रजनीकांत बरदलै (दे०)]

इस उपन्यास में टेनिसन के 'इनकर्डन' काव्य की छाया है। इस काव्य की कथा को असमीया परिवेश में बर्मियों के तृतीय आक्रमण की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है। निर्मल नामक युवक आक्रमणकारी बर्मियों से देश-रक्षार्थ संघर्ष करता है और बंदी होता है। बंदी-अवस्था में वह बर्मा में 13 वर्ष रहता है और पत्नी रूपही की चिंता में डूबा रहता है। कारामुक्त होकर जब वह लौटता है तो देखता है कि उसकी पत्नी ने मजबूरी में किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह कर लिया है। निर्मल रूपही के जीवन में विष नहीं घोलना चाहता; अतः वह अपना परिचय न देकर वैराग्य-जीवनयापन करता है। उपन्यास का अंतिम भाग दुर्बल है। यद्यपि लेखक ने मूल कथा में परिवर्तन कर उसे असम के परिवेश में ढालने की चेष्टा की है किंतु अंतिम भाग अस्वाभाविक हो गया है। निर्मल के चरित्र में स्वदेश-भक्ति का समावेश सुंदर है। रूपही भी अपने स्वामी को प्यार करती है, वह 13 वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करने के बाद ही अन्य से विवाह करती है। केवल बर्मियों के आक्रमण की पृष्ठभूमि में लिखे जाने से यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता।

निर्वचनोत्तर रामायणमु *(ते० कृ०)*

यह 'आंध्र-महाभारत' (दे०) के प्रणेता कवित्रय में से एक तिक्कना सोमयाजी (दे०) द्वारा रचित (1260) प्रबंध-काव्य है। इन्होंने 'आंध्र-महाभारत' के पंद्रह पर्वों की रचना की है, जो तेलुगु साहित्य की अन्यतम उपलब्धियों में से एक मानी जाती है। 'महाभारत' के समान लोकप्रिय रचना तेलुगु में और कोई नहीं है। तिक्कना के समय तक 'रामायण' और महाभारत' दोनों ही अपूर्ण थे। नन्नयभट्टु (दे०) द्वारा 'आंध्र-महाभारतमु'(दे०) आदि और सभा पर्व का तथा अरण्य पर्व के कुछ अंश का अनुवाद हो चुका था। 'रामायण' के छह कांडों की रचना हुई थी; अतः इन्होंने अपनी काव्य-रचना का आरंभ इस 'उत्तररामायण' से किया था। तेलुगु पद्य-काव्यों में यत्र-तत्र अत्यल्प मात्रा में गद्य का प्रयोग सामान्यतया मिलता है। फिर भी इनको चंपू काव्य नहीं कहा जाता। तिक्कना ने अपनी इस रचना में पूर्ण रूप से गद्य का बहिष्कार किया है जो तेलुगु काव्य-परंपरा की दृष्टि से अपूर्व है।

इसमें वाल्मीकि 'रामायण' (दे०) के उत्तरकांड की कहानी वर्णित है। कथा के नियोजन में कवि ने पर्याप्त स्वतंत्रता बरती है। काव्य के आरंभ में पहले के छह कांडों की कथा संक्षेप में वर्णन करके तथा काव्य के अंत में राम-निर्वाण के प्रसंग का परित्याग करके इन्होंने एक स्वयंपूर्ण एवं मंगलांत स्वतंत्र काव्य के रूप में इसकी रचना की है। शब्दार्थों का औचित्य, संवादों का कौशल सजीव पात्रों का निर्माण, प्रकृति-परिशीलन की सूक्ष्म दृष्टि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तवृत्तियों का विवेचन आदि का अच्छा परिचय इस रचना में मिलता है। इसके उपाख्यान भी स्वयंपूर्ण और सुंदर हैं। सीता और राम के प्रेम की शिष्ट मर्यादा, एक-निष्ठता, दांपत्य-जीवन का माधुर्य एवं शालीन प्रणय का सौंदर्य इसमें परिलक्षित होते हैं।

निर्वाण *(पा० पारि०)*

'निर्वाण' शब्द का अर्थ है बुझना। दीपक के बुझने के समान ही जब सभी इच्छाएँ बुझ जाती हैं तब उसे निर्वाण या मोक्ष प्राप्त करना कहा जाता है। यद्यपि भगवान् बुद्ध ने 10 अनिर्वाच्यों में इस विषय में भी विचार करने का निषेध किया था किंतु आगे चलकर इस विषय में विचार को महत्व दिया जाने लगा। हीनयान शाखा (दे०) के अनुसार निर्वाण में व्यक्ति की सत्ता समाप्त नहीं होती किंतु असत्य सिद्धांतों और बुरे विचारों के साथ पुनर्जन्म का अभाव हो जाता है। इसमें आनंद दुःख का स्थान ले लेता है। इसके अनुसार निर्वाण का अर्थ है मानव-परंपरा, जीवन और मृत्यु का अतिक्रमण, नित्यता, आनंदमयता और पवित्रता। महायान शाखा (दे०) में ये सब विशेषताएँ तो मानी ही जाती हैं साथ में यह सत्ता और असत्ता दोनों से ऊपर धर्मकाय और परमज्ञान से भी संबद्ध है। इस शाखा में नित्यता, आनंद, आत्मा और पवित्रता—इन तत्त्वों पर विशेष बल दिया जाता है जो बुद्ध के विशेष गुण हैं तथा जो तथागत (दे०) के रूप में जीवन-मृत्यु, विषय-विषयी सभी से ऊपर स्थित होते हैं। यह एक सच्ची शून्यता की स्थिति है जो परमज्ञान से प्राप्त होती है। निर्वाण के लगभग 18 रूप बतलाए गए हैं।

निशा निमंत्रण *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

पत्नी की मृत्यु से संतप्त 'बच्चन' जी का शोक ही 'निशा निमंत्रण' के सौ गीतों में मुखरित हुआ है। ढलती साँझ और निस्तब्ध निशा ने इस शोक का उद्दीपन किया है। तीव्र वैयक्तिक दुःखानुभूति ने समस्त गीतों को प्रबल रागात्मक अन्विति प्रदान कर 'मानव जीवन की करुणा का महागीत' बना दिया है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति के सरल-गहन आवेग का ऐसा निश्छल रूपायन हिंदी के किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। तेरह पंक्तियों के गीतों में न अनुभूतियों का जटिल बंधान है, न दार्शनिक ऊहापोह; न कल्पना का असाधारण ऐश्वर्य है, न अप्रस्तुत-विधान में दूरारूढ़ योजना; न भाषा में लाक्षणिक साहस है, न छंदों में नवीन प्रयोग। लयात्मक शब्द-चित्रों में अन्वित हार्दिक उद्गार पाठकों के अंतःकरण में सीधे उतर कर एक स्थायी मानसिक प्रभाव छोड़ते हैं।

निशानी *(पं० पारि०)*

इस छंद में मध्ययुगीन वार-काव्य (वीर-काव्य) की रचना की गई है। गुरु गोविंद सिंह (दे०)-रचित 'चंडी दी वार' (दे०) इसी छंद में है। पंजाबी के विद्वानों ने वार-काव्य में प्रयुक्त छंद को 'पौड़ी' नाम दिया है और 'निशानी' उसके तीस भेदों में से एक है। इसका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। इसके प्रत्येक चरण में 23-23 मात्राएँ होती हैं जिनमें तेरह और दस पर यति का विधान है। उदाहरण :

देखन चंड-प्रचंडनूं, रण घूरे नगारे।
धारा राकस रोहले, चौगिरदां भारे॥

निशीथ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

1967 ई० के भारत के सर्वोच्च ज्ञानपीठ साहित्य-पुरस्कार के लिए गुजराती की जो कृति चुनी गई थी वह है कविवर उमाशंकर जोशी (दे०) का कविता-संग्रह 'निशीथ'। इसका प्रकाशन 1939 ई० में गांधी जयंती के दिन हुआ, जबकि कवि की आयु केवल 25 वर्ष की थी पर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह कृति निस्संदेह उत्कृष्ट है। इसमें कवि की परिणत प्रज्ञा और प्रतिभा का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। 'विश्वशांति' और 'गंगोत्री' की अपेक्षा 'निशीथ' की कविताएँ छोटी हैं, परंतु उनमें अभिव्यक्त अनुभूति का आयाम विस्तृत और नवीन है। उसकी कई कविताओं में कवि की व्यक्ति-चेतना समष्टि-चेतना के साथ समरूप होकर उस विराट् सौंदर्य की सृष्टि करती हैं जो शुभ और मंगलमय है। 'ज्ञानसिद्धि', 'विराट प्रणय', "निशीथ', 'वणजार' प्रभृति कविताएँ तो विश्व-चेतना से उद्भूत उत्कृष्ट, चिंतनमूलक रचनाएँ हैं।

'निशीथ' में संगृहीत 17 सॉनेटों की सॉनेटमाला —'आत्माना खंडेर'— में जीवन के यथार्थ को निर्भ्रांततः काव्यात्मक रूप दिया गया है। इसीलिए स्व० चुनीलाल मडिया (दे०) ने उस माला को 'निर्भ्रांति का निवेदन' कहा है। इसमें कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति, कथ्य और शिल्प की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इस संकलन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति और प्रणय की कविताएँ भी हैं जो मोहक एवं रमणीय हैं। 'गीत गोत्युं गोत्युं', 'रखडुनुं गीत', 'अंबोडले' इत्यादि मधुर गीत और 'फरी फरी फागणना रे', 'म्होर्या मांडवा' प्रभृति हर्षोल्लासमय रास भी इस संग्रह की विशेष उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'निशीथ' गुजरात, गुजराती भाषा और गुजराती साहित्य की एक अत्यंत उत्कृष्ट रचना है।

निष्कुलानंद *(गु० ले०)* [समय—1766-1848 ई०]

श्री निष्कुलानंद भी स्वामी नारायण-संप्रदाय के एक प्रतिनिधि कवि हैं। ये जाति के सुथार (बढ़ई) थे। इनका पूर्वाश्रम का नाम लाल जी सुथार था। इन्होंने सहजानंद स्वामी से दीक्षा ग्रहण की थी। सहजानंद स्वामी के साथ ये कच्छ की यात्रा पर भी गए थे। इन्होंने करीब 20 ग्रंथ और तीन हज़ार पद रचे हैं, ऐसा कहा जाता है। 'पुरुषोत्तम प्रकाश', 'यमदंड', 'भक्त-चिंतामणि', 'धीरजाख्यान', आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनकी भाषा सरल व प्रवाहमयी है।

नींट कवितकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1949 ई०]

यह एन० वी० कृष्ण वारियर (दे०) की छह सुदीर्घ कविताओं का संग्रह है। चार कविताएँ कवि द्वारा सुने गए लोकगीतों के रूप में हैं। शेष दो में से एक में संत अलेक्सिस की और दूसरे में हाथी की मौत से विक्षिप्त एक महावत की कथा है।

लोकगीतों को लोकप्रिय बनाने वाले सभी तत्त्वों, यथा मौलिक भावों की अभिव्यक्ति, प्रसिद्ध कथानक, ऋजु प्रतिपादन, सरल भाषा, सहज उपमाएँ, गेयता, कथा के लिए पर्याप्त दैर्घ्य आदि का 'नींट कवितकळ्' की कविताओं में समुचित समन्वय है। इनके अलावा इनमें प्रगतिवादी लक्ष्य भी है। लोकगीतों की शैली को पुनर्जीवित करने वाले इस संग्रह की कविताओं का मलयाळम में काफ़ी स्वागत हुआ।

नींडपयणम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1965 ई०]

'नींडपयणम्' से० गणेशलिंगन् (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यासों में से है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें मुख्य रूप से जाति-भेद की समस्या का चित्रण है। इसके शीर्षक का अर्थ है लंबी यात्रा। इसमें लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि आज निम्न वर्ग में भी जागृति आ गई है। जब निम्न वर्ग के लोग ऊपर उठने का यत्न करते हैं तो उच्च वर्ग के लोग उन्हें दबाने का यत्न करते हैं परंतु निम्न वर्ग के लोग हिम्मत नहीं हारते। अपनी कष्टदायक लंबी यात्रा पूर्ण कर वे अपने गंतव्य—उन्नति के चरम शिखर—पर पहुँच जाते हैं। इस उपन्यास का नायक चेल्लदुरै यथार्थ पात्र है। वह निम्न वर्ग में चेतना उत्पन्न करता है। उन्हें बताता है कि उच्चवर्ग के विरुद्ध एक होने पर ही वे लक्ष्य-सिद्धि कर सकते हैं। निम्न वर्ग ने कहाँ तक उन्नति की है और भविष्य में उन्हें क्या करना चाहिए इसका वर्णन भी उपन्यास में है। से० गणेशलिंगन् लंकानिवासी तमिल उपन्यासकारों में अग्रगण्य हैं। उनके इस उपन्यास का तमिल उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

नीति आणि कलोपासना *(म० कृ०)*

श्री ग० वा० कवीश्वर ने 'नीति आणि कलोपासना' नामक समालोचनात्मक पुस्तक 1934 ई० में लिखी थी। इसमें लेखक ने नीति-निरपेक्ष कला-दृष्टि का विरोध किया है। कवीश्वर तत्त्वज्ञान के प्राध्यापक थे और मैजिस्ट्रेट भी रहे। अतः वे जीवन में नीति की उपयोगिता समझते थे।

'कला कला के लिए' सिद्धांत का विरोध करते हुए लेखक ने कहा है कि कला का मुख्य हेतु इंद्रियों को सुख देना नहीं वरन् आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को दृष्टिपथ में रख मन में सुंदर भावना, विचार तथा कल्पनाओं का उदय करना है। कला-निर्माण की प्रक्रिया में सामाजिकता स्वतः अंतर्भुक्त है और समाज-जीवन का नियमन करने वाली नैतिकता को छोड़ना अनुचित है। अतः किसी भी दृष्टि से कला और नीति का संबंध-विच्छेद संभव नहीं है। स्पष्टतः यह पुस्तक 'कला जीवन के लिए है'—सिद्धांत का समर्थन करती है और इसमें कलाओं में भी विशेष रूप से साहित्य-कला में नीति-सापेक्षता पर बल दिया गया है।

नीरदछाया *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

'नीरदछाया' शिवकुमार जोशी द्वारा रचित एकांकियों का संग्रह है। इसका प्रकाशन 1966 ई० में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाति प्रकाशन, बंबई-3, से हुआ था। इस संग्रह में सात एकांकी संगृहीत हैं : 'नीरदछाया', 'छबी', 'सत्यस्यापिहितं-मुखम्', 'चंपारण्य', 'उभा रहेजो आवुं छुं···', 'कुंजद्वारे' तथा 'मधुकर पुष्प विलासम्'। इन एकांकियों में केवल 'चंपारण्य' ही ऐसा एकांकी है जो विषय की दृष्टि से सभी एकांकियों से पृथक् उन युवकों की कथा कहता है जो अपने-आप को कामिनी-कांचन से बेचते रहते हैं और तदनुसार ही नयी-नयी' 'चंपारण्य एस्टेट' खड़ी होती जाती हैं। शेष सभी एकांकी वासना या प्रेम को केंद्र में रख कर लिखे गए हैं। 'नीरदछाया' त्रिकोणात्मक प्रेम की कथा है; 'छबी' में पति-पत्नी दोनों ही किन्हीं अन्य स्त्री-पुरुष से प्रेम करते हैं। 'सत्यस्यापिहितंमुखम्' में पति-पत्नी के संबंधों को लेकर चर्चा की गई है, 'उभा रहेजो आवुं छुं···' पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम और त्याग की विमल गाथा प्रस्तुत करता है। 'कुंजद्वारे' वासना की तपस्या में परिणति की कथा है और 'मधुकर पुष्प विलासम्' एक ऐसे युवक की कथा है जो अनेक स्त्रियों से संसर्ग रख कर भी मुक्त रहना चाहता है। आरंभ के एक-दो एकांकियों में तो लेखक ने रंग-निर्देश दिए हैं, शेष में कथा-संवादों के रूप में ही आगे बढ़ती है। अनेक स्थलों पर फ़्लैशबैक पद्धति से दृश्य उपस्थित किए गए हैं। 'मधुकर पुष्प विलासम्' में एक-साथ तीन कथाएँ चलती हैं : एक अग्नि और स्वाहा की (प्रतीकात्मक), दूसरी रुचिर और दक्षा तथा छंदा की, तथा तीसरी रुचिर और संभूता की। जीवन के एक भाव को प्रायः उभारा गया है। प्रस्तुत संग्रह के एकांकी (एक-आध को छोड़ कर) साधारण ही कहे जाएँगे।

आ गया है

नीलकंठ (सं० ले०) [समय—1650 ई०-1700 ई०]

इनका पूरा नाम नीलकंठ चतुर्धर था। इनके पूर्वज महाराष्ट्र के कर्पूर ग्राम (कोपर) के मूल निवासी थे। पर बाद में वे काशी में जाकर बस गए थे। अतः नीलकंठ की साहित्य-साधना काशी में ही हुई।

ये 'महाभारत' (दे०) के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। इनकी टीका 'भारत-भवदीप' चित्रशाला प्रेस, पूना ने प्रकाशित की है। यह 'महाभारत' के 18 सर्गों पर आधारित है। नीलकंठ के दो ग्रंथ और मिलते हैं—'मंत्र-रामायण' और 'मंत्र-भागवत'। इनमें 'रामायण' (दे०) तथा 'महाभारत' की कथा से संबद्ध मंत्र अत्यंत क्रमबद्ध रूप में संगृहीत हैं। इन पर नीलकंठ ने अपने सिद्धांतों के आधार पर टीका भी की है।

नीलकंठ, रमणभाई महीपतराम *(गु० ले०)*

रमणभाई का बाल्य-काल अहमदाबाद में व्यतीत हुआ। 1884 ई० में मैट्रिक पास कर रमणभाई ने गुजरात कॉलेज में प्रवेश लिया। बी० ए० (पूर्वार्द्ध) की परीक्षा उत्तीर्ण कर ये एल्फिस्टन कॉलेज, बंबई, में प्रविष्ट हुए। विलियम वर्ड्सवर्थ के प्रपौत्र प्रि० वर्ड्सवर्थ से पढ़ने का इन्हें सौभाग्य मिला और इस प्रकार कवि वर्ड्सवर्थ के काव्य-सिद्धांतों से परिचित और प्रभावित होने का इन्हें अवसर मिला जिसका प्रमाण है गुजराती एल्फिस्टन सभा के सामने 'कवितानी उत्पत्ति अने स्वरूप' नामक विषय पर दिया गया उनका व्याख्यान। 1887 ई० में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके तुरंत बाद अहमदाबाद की प्रार्थनासभा ने इन्हें अपने पत्र 'ज्ञानसुधा' के संचालन का काम सौंपा जिसे इन्होंने 31 वर्षों तक बड़ी निष्ठा के साथ निभाया। इनके अधिकांश लेख 'ज्ञानसुधा' में ही प्रकाशित हुए हैं। समाज के प्रति इनकी सेवाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की रही हैं। इन्होंने न्यायालय में सब-जज के रूप में, अहमदाबाद म्युनिसिपैलेटी का अध्यक्ष रह कर, प्रार्थनासमाज के अध्यक्ष और गुजराती साहित्य के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में समाज को सेवाएँ अर्पित की हैं। अँग्रेज़ सरकार ने इन्हें नाइटहुड की पदवी से विभूषित किया था। साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने 'राइनो पर्वत', 'भद्रंभद्रा', 'हास्यमंदिर', 'कविता अने साहित्य' भाग 1-4, 'धर्म अने समाज' भाग 1-2 ग्रंथ प्रदान कर अपना महत्वपूर्ण योग दिया है।' 'राइनो पर्वत' तत्कालीन प्रार्थना-समाज के विचारों का सफल वाहन बना है। यह नाटक सुंदर, अर्थमय, भावोष्म तथा मार्मिक संवादों से परिपूर्ण है। यह अपने युग के विचारों का व नाट्य-परंपराओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। 'भद्रंभद्रा' की योजना के पीछे एक उद्देश्य था : प्राचीनता के पक्षपातियों की रूढ़िग्रस्त और संस्कृतमय शैली के प्रति उपहास व्यक्त करना। इसके लक्ष्य थे मणिलाल और मन सुखराम सूर्यराम। 'हास्यमंदिर' में हास्यप्रेरक संवाद, प्रसंगचित्र और कुछ निबंध हैं। इस की सामग्री पर अँग्रेज़ी प्रभाव है। 'शोधमां' उत्तर वय में लिखी गई एक अधूरी कहानी है जिसमें लेखक ने अवसरवादी कवियों, संपादकों तथा देशी राज्यों में प्रवर्तित अँधेरगर्दी पर कटाक्ष किया है। विवेचन के क्षेत्र में 'कविता अने साहित्य' में कुल मिला कर लगभग 30 विवेचनापूर्ण लेख हैं। वर्ड्सवर्थ के काव्य-सिद्धांत की विशद व्याख्या दे कर रमणभाई ने अपने युग की काव्य-रुचि का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। इनके विवेचनों के सामान्य लक्षण हैं -- सरलता, विशदता, स्पष्टता, तर्कबद्धता और रसात्मकता। भारतीय रस और पाश्चात्य काव्य-मीमांसा की तुलना कर नये काव्य-बोध को विकसित करने का श्रेय भी रमणभाई को दिया जा सकता है। यह ठीक है कि रमणभाई संस्कृत के व्युत्पन्न पंडितों जैसी मर्मग्राही दृष्टि तो नहीं रखते थे पर छंद, कविता, वृत्तिमय भावाभास, कविता की उत्पत्ति, रागध्वनिकाव्य का स्वरूप, स्वानुभवरसिक और सर्वानुभवरसिक आदि विषयों पर इन्होंने जो चर्चाएँ की हैं वे सब इनकी विवेचन-सामर्थ्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। परिणामतः गुजराती साहित्य में रमणभाई समर्थ विवेचक के रूप में सदा याद रहेंगे।

नील कमल (उ० कृ०)

'नील कमल' प्राणकृष्ण सामल (दे०) का परिवेश एवं चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक रामनारायण उत्कल के एक संभ्रांत परिवार का है; नायिका कमल उच्चशिक्षिता बंगमहिला है। दोनों परस्पर प्रेम करते हैं तथा अनेक कठिनाइयाँ पार करने के बाद मिलते हैं। सामाजिक संघर्ष एवं मानसिक द्वंद्व के चित्रण में उपन्यास की सफलता अंतर्निहित है। चरित्र-चित्रण एवं परिवेश-निरूपण में लेखक सुदक्ष है।

नीलदर्पण (बँ० कृ०) [रचना-काल—1860 ई०]

यह उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध बँगला-नाटककार दीनबंधु (दे०) की प्रथम सशक्त रचना है।

'नीलदर्पण' में नाटककार ने समसामयिक समस्या का रेखांकन किया है। उस समय बंगाल में नील की खेती साधारण गरीब किसान करते थे। उनके स्वामी थे अँग्रेज जिनके पास असीमित अधिकार थे। परिणाम-स्वरूप अनियंत्रित शोषण-चक्र से असहाय बंगाली परिवार पिस रहे थे। 'नीलदर्पण' में दो परिवार हैं; गोलोक बसु निम्न श्रेणी का किसान है, साधुचरण संपन्न व्यक्ति है। प्रथम अंक में गोलोक बसु अँग्रेज साहबों के कठोर अत्याचार से पीड़ित एवं अशांत है। साधुचरण भी उमड़ते कष्ट के बादलों से चिंतामग्न है। दूसरे अंक में नीलसाहबों के षड्यंत्र में फँस कर गोलोक बसु कारावास भोगता है। यहाँ संघर्ष उभरता है। तीसरे अंक में प्रजा का पक्ष लेकर नवीन माधव इस अत्याचार का विरोध करता है। विरोध बढ़ता देख अँग्रेज़ साहबों की शोषण की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई। चौथे अंक में संघर्ष की करुण परिस्थिति गोलोक बसु की आत्महत्या के रूप में दिखाई गई है। पाँचवें अंक में गोलोक परिवार और साधुचरण परिवार के विनाश का चित्रण है।

दीनबंधु का लक्ष्य एक ओर अँग्रेज़ों के शोषण-तंत्र के कठोर अत्याचार और दूसरी ओर असहाय-निरीह-दरिद्र किसानों की विवशता का चित्रण करना है। इसी लिए इस नाटक का वस्तु-विन्यास सुगठित है, अवांतर प्रसंगों से उसका प्रभाव क्षीण नहीं होता। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से दीनबंधु पर पश्चिम का गहरा प्रभाव पड़ा है। इन्होंने त्रासदी के तत्त्वों का प्रयोग इतना अधिक किया है कि नाटक के अंत में एक-साथ कई मृत्यु-दृश्य उपस्थित हो जाते हैं।

इस नाटक के विद्रोही स्वर का व्यापक प्रभाव पड़ा और माइकेल (दे० मधुसूदन दत्त) जैसे क्रांतिकारी कलाकार ने इसका अँग्रेज़ी-अनुवाद किया। पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं था। प्रकाशक के रूप में लांग साहब का नाम था। उन पर मुकदमा चला, जुर्माना हुआ। इधर नाटक का अभिनय और प्रचार-प्रसार बढ़ता गया और अंत में अँग्रेज़ मालिकों को झुकना पड़ा। उन्नीसवीं शती में शासकों के सामाजिक और आर्थिक शोषण की इतनी सशक्त एवं सजीव अभिव्यक्ति किसी रचना में नहीं मिलती। 'नीलदर्पण' बँगला नाटक की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

नीलशैल (उ० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1968 ई०।]

इसके लेखक सुरेंद्रमोहन महांति (दे०) हैं। उड़ीसा के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में 'जगन्नाथ' का स्थान सर्वोपरि है। शबर देवता 'नीलमाधव' ही इंद्रद्युम्न द्वारा 'जगन्नाथ' के रूप में प्रतिष्ठित किए जाते हैं। अतः जगन्नाथ मंदिर का दूसरा नाम 'नीलशैल' है। यद्यपि इस उपन्यास की विषय-वस्तु ऐतिहासिक है, किंतु कथा का केंद्र जगन्नाथ मंदिर होने के कारण उपन्यास का नाम 'नीलशैल' है। जगन्नाथ किसी निर्दिष्ट धर्म, मतवाद एवं संप्रदाय की संकीर्ण परिसीमा में आबद्ध नहीं हैं। शबर विश्वावसु से लेकर आर्य इंद्रद्युम्न, बौद्ध इंद्रभूति, शैव शंकराचार्य (दे०), पांचरात्रिक रामानुज (दे०), शुद्धा-भक्तिवादी श्री चैतन्य (दे०), शून्यवादी बलरामदास (दे०) एवं जगन्नाथ दास (दे०), सिक्ख धर्म-गुरु नानक (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक विभिन्न मतवाद एवं संप्रदाय श्री जगन्नाथ की मैत्री-साधना में समन्वित हो गए हैं। इस्लाम धर्मी सालबेग एवं हरिदास आदि महान भक्तों ने मर्मस्पर्शी भजनों से श्री जगन्नाथ की आराधना की है। वस्तुतः सार्वजनीन मानव की मैत्री-साधना के इष्टदेव के रूप में श्री जगन्नाथ की परिकल्पना जैसी अद्वितीय है, वैसी ही विराट् एवं उदार भी है। उत्कल राज्य के राजनीतिक जीवन में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति को उड़ीसा का अपना योगदान है जन-साहित्य, जन-देवता।

अठारहवीं शती के खोर्धा भोई राजवंश के राजा द्वितीय रामचंद्र (दे०) देव इस्लाम धर्म में दीक्षित होकर हाफ़िज़ कादरबेग के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। रामचंद्र देव ने मुसलमान होकर भी कटक के नायब नाज़िमा हिंदू-विद्वेषी तकी खाँ के आक्रमण से जगन्नाथ व उसके द्वारा उड़ीसा की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए विश्वासघात, बंधुद्रोह, लोकोपवाद एवं लांछना के बीच जिस निरविच्छिन्न संग्राम का संचालन किया था, वह रोमांचकारी भी है और प्रेरणा-दायक भी। सांप्रदायिक संस्कार-मुक्त हाफ़िज़ कादरबेग के वेदना-जर्जरित जीवनव्यापी निस्संग संग्राम का यह एक अध्याय मात्र है।

तकी खाँ, रामचंद्र देव, बक्सीबेणु, भ्रमरबर, देबान कृष्ण नरींद्र, रजिया बीबी, ललिता महादेवी आदि इस उपन्यास के ऐतिहासिक चरित्र हैं। किंतु ये घटना-बहुल इतिहास के प्राणहीन चरित्र नहीं, इतिहास के बीच प्रच्छन्न चिरंतन जीवन-धारा के जीवंत प्रतिरूप हैं। आजीवन उपेक्षित एवं सामाजिक सहानुभूति से वंचित सरदेइ (दे०) उपन्यासकार की कल्पना-सृष्टि है।

यह केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा 1969 का सर्वश्रेष्ठ उड़िया-उपन्यास माना गया है। उत्कट संघर्ष के बीच अविजित चिरमुक्त मानवीय जीवन-चेतना की यह गौरव-गाथा राष्ट्रपति-पुरस्कार से भी महिमामंडित है। लेखक की सशक्त भाषा एवं असाधारण वर्णन-शैली संपूर्ण उपन्यास को काव्यात्मक बना देती है।

नीलांबिका (क० ले०)

मध्यकाल की कन्नड कवयित्रियों में नीलंबा अथवा नीलांबिका का नाम विख्यात है। ये वीरशैव धर्म को मानने वाली थीं। ये महात्मा बसवेश्वर के मामा सिद्धण्णा मंत्री की पुत्री थीं। बसवेश्वर ने इनसे विवाह किया था। 'कर्णाटक कविचरिते' (दे०) के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) जी ने लिखा है कि इनके दो ग्रंथ हैं— 'प्रसाद-संपादने' तथा 'कालज्ञान'। इनके वचनों में 'बसव-प्रियकूडलसंगमदेव' की छाप मिलती है। 'नीलम्मन स्तोत्र' (नीलम्मा के स्तोत्र), 'नीलाम्बिका पंचशिति' और 'नीलम्मन त्रिविधि' जैसे इनके ग्रंथ स्तोत्र-रूप में हैं।

नीलासुंदरी परिणयमु (ते० कृ०)

इस काव्य का ठेठ तेलुगु नाम 'नील पेंड्लि कथा' अथवा 'लच्चिमगनि कथा' है। यह कूचिमंचि तिम्मकवि (दे०) का ठेठ तेलुगु भाषा में, तत्सम शब्दों का प्रयोग किए बिना, लिखा गया काव्य है।

मिथिला में धर्म नामक राजा के शासन-काल में, कुंभक नामक यादवों का मुखिया था उसकी पशुसंपदा स्पृहणीय थी। उसकी पुत्री का नाम नीला था। नंद के पुत्र श्रीकृष्ण के गुणश्रवण से नीला के मन में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। एक बार कुंभक के मत्तवृषभ लोगों को सताने लगते हैं। वह प्रतिज्ञा करता है कि जो इन वृषभों का दमन करेगा, उसके साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह करूँगा। यह जानकर नीला के मन में आशंका-जन्य विरह-वेदना उत्पन्न होती है। अंत में श्रीकृष्ण वृषभों का दमन कर, नीला से विवाह कर लेते हैं।

अपने वर्णन-चातुर्य और पद-लालित्य के लिए यह लघु काव्य अत्यंत प्रसिद्ध है।

नीलिमा (हिं० पा०)

यह मोहन राकेश (दे०) के उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' (दे०) की प्रमुख पात्र है। शिक्षित तथा रुचि-संपन्न होने पर भी यह परिस्थितियों की विषमता के फल-स्वरूप स्वयं को संतुलित नहीं बना पाती तथा अत्यंत असहज प्रतीत होती है। यद्यपि यह बाहर से अत्यंत स्वच्छंद और पति-विरुद्ध आचरण वाली परिलक्षित होती है किंतु भीतर से यह पति-परायणा स्त्री ही है तथा अपने सनातन भारतीय संस्कारों को नहीं छोड़ पाती। यही कारण है कि पति द्वारा अविश्वास किए जाने तथा छोड़ दिए जाने पर भी उसका निमंत्रण मिलते ही विदेश चली जाती है। विदेश में पर-पुरुष के साथ रहते हुए भी यह शरीर-दान नहीं करती तथा अपनी आत्मा के पराग को अपने पति के लिए सँजोए रखती है। वस्तुतः नीलिमा के माध्यम से उपन्यासकार ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नारी के संस्कारों तथा जीवन के परिवर्तित नैतिक मूल्यों को अत्यंत सशक्त रीति से प्रस्तुत किया है।

नीसाणी *(हिं० पारि०)*

यह डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) का बहुप्रयुक्त छंद है। इसके 12 भेद होते हैं, जिनमें 'शुद्ध नीसाणी' एवं 'गरबत-नीसाणी' विशेष प्रसिद्ध है। 'शुद्ध नीसाणी' में 13 व 10 के क्रम से 23 मात्राएँ होती हैं और अंत में दो गुरु होते हैं। 'गरबत नीसाणी' में भी 23 मात्राएँ होती हैं; परंतु उसके अंत में दो लघु होते हैं। 'खुम्माण रासो' व 'रामरासो' में नीसाणी का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है।

नुरजाहान *(बँ० पा०)*

'नुरजाहान' द्विजेंद्रलाल राय (दे०) का प्रथम सार्थक ऐतिहासिक नाटक है। परंतु नुरजाहान (नूरजहाँ) का चरित्र कितना इतिहास-सम्मत है—इस संबंध में काफ़ी संदेह है। नुरजाहान के चरित्र के दो पक्ष इस नाटक में उद्भासित हुए हैं—शेर अफ़ग़ान की पत्नी नुरजाहान एवं भारत-सम्राज्ञी नुरजाहान। जहाँगीर के सिंहासन पर अधिरोहण की सूचना पाने पर नुरजाहान अपने को भाग्यबिबिता समझने लगती है। परिणामस्वरूप, शेर अफ़ग़ान के प्रति उसके एकनिष्ठ प्रेम के बारे में संदेह स्वाभाविक है। और फिर जहाँगीर के प्रति प्रकृत प्रणयासक्त रूप में भी उसका चरित्र चित्रित नहीं हुआ है। नुरजाहान क्षमता एवं प्रतिपत्ति के मोह में पड़कर भारत-सम्राज्ञी नुरजाहान में परिणत हो जाती है। भारतीय नारी-चरित्र का कोई वैशिष्ट्य तथा आदर्श इस चरित्र में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यकार ने सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ की हृदयहीनता एवं क्षमता तथा भोगविलास के अप्रत्यक्ष प्रभाव से परिचालित होकर इस चरित्र का निर्माण किया है। नुरजाहान के हृदयगत वैपरीत्य का बीज कदाचित् बंकिमचंद्र (दे०) के 'कपालकुंडला' (दे०) में निहित है। बंकिम बाबू ने जिस प्रकार मतिबिबि के सम्मुख नुरजाहान के चरित्र को प्रकट किया था, उसकी परिणति द्विजेंद्रलाल की 'नुरजाहान' में दिखाई पड़ती है।

'नुसरती' *(उर्दू० ले०)*

नाम—मुहम्मद नुसरत, उपनाम—'नुसरती'। इनकी शिक्षा-दीक्षा राजभवन में राजकुमार अली आदिल शाह के साथ हुई थी। अली आदिल शाह के सत्तारूढ़ हो जाने पर इन्हें 'मलिक-उल-शुअरा' (कवि-सम्राट्) की उपाधि से विभूषित किया गया था। इनकी तीन कृतियाँ—'गुलशन-ए-इश्क', 'अलीनामा' और 'तारीख-ए-असकंदरी' उल्लेखनीय हैं। 'गुलशन-ए-इश्क' में कुँवर मनोह और मदमालती की कथा का वर्णन है। 'अलीनामा' में अली आदिलशाह के जीवन-चरित के अतिरिक्त कतिपय कसीदे भी हैं। इनकी मसनवियाँ और कसीदे कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। मानव-स्वभाव और मानव-अनुभूतियों का सजीव चित्रण जितना 'गुलशन-ए-इश्क' में हुआ है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। सरलता, तरलता और सरसता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

नूर-उल-लुग़ात *(उर्दू० को०)* [रचना-काल—1924 ई०]

संपादक : मौलवी नूर-उल-हसन 'नय्यर'। उर्दू भाषा का यह विशद शब्दकोश अपनी अनेक विशेषताओं के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है। इसमें उर्दू की बदलती हुई परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए शब्दों की विस्तृत एवं अपेक्षित विवेचना वैज्ञानिक रूप से की गई है। इसमें ऐसे शब्दों और मुहावरों का उल्लेख भी कर दिया गया है जो अब प्रयोग में नहीं लाए जाते। उनके प्रयोग के प्रति आवश्यक रूप से यथावसर सावधान भी कर दिया गया है। यह कोश बड़े आकार के चार भागों में विभक्त है।

नूरमुहम्मद *(हिं० ले०)*

ये मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह (1754 ई०) के समकालीन थे। इनका जन्म जौनपुर ज़िले के सबरहद स्थान में हुआ, बाद में ये अपनी ससुराल भादों (ज़िला आज़मगढ़) चले गए। इन्होंने कालिंजर के राजकुमार और आगमपुर की राजकुमारी की प्रेम-कहानी का 'इंद्रावती' नामक रचना में वर्णन किया है। तत्त्वज्ञान-विषयक इनकी दूसरी रचना 'अनुराग बाँसुरी' है। फ़ारसी में एक दीवान और 'रौजतुलहकायक' ग्रंथ लिखा है। दूसरे सूफ़ी कवियों से भिन्न इन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्द प्रयुक्त किए हैं। सूफ़ी आख्यानकों की अखंडित परंपरा में 'इंद्रावती' अपनी कोटि की अंतिम और महत्वपूर्ण रचना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूरी (सिं० पा०)

सिंधी साहित्य में 'नूरी-जामतमाची' की प्रेम-गाथा प्रसिद्ध है। नूरी इसी प्रेमगाथा की नायिका है। नूरी कींझर नामक तालाब पर रहने वाले एक मछुए की बेटी थी और जामतमाची समावंश (1360-1520 ई०) का प्रसिद्ध राजा था। जामतमाची ने नूरी के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उससे विवाह किया और उसे अपने महल में ले आया। जामतमाची की समावंश की और रानियाँ नूरी को देखकर जलती रहती थीं, परंतु नूरी ने अपनी सहनशीलता, सादगी और मृदुभाषण से सबका मन मोह लिया। राजा ने भी इन्हीं गुणों के कारण नूरी को अपनी पटरानी बनाया। सिंधी साहित्य में नूरी नम्रता और सादगी का प्रतीक मानी गई है।

नूरुद्दीन वली, शेख़ (कश्० ले०) [जन्म—1377 ई०; मृत्यु-1438 ई०]

पिता का नाम शेख सालार और माता का नाम सद्र मोज। शैशव का नाम 'नुंदा'। इनके पिता पर प्रसिद्ध सूफ़ी सैयद हुसैन समनानी का प्रभाव पड़ा, और एक और प्रसिद्ध सूफ़ी मीर मुहम्मद हमदानी ने इनका नाम नूरुद्दीन रखा। हिंदू इन्हें 'सहजानंद' के नाम से याद करते हैं। 'नुंद बाबा', 'नुंद ऋषि' भी इन्हीं के नाम हैं। इन पर सूफ़ी धर्म का काफ़ी प्रभाव पड़ा। कश्मीर में जिस मुस्लिम सूफ़ी संत-परंपरा या वली-संत-धारा का प्रचार रहा, उस धारा के यह प्रथम प्रसिद्ध संत कश्मीरी कवि हैं। इनकी कोई औपचारिक शिक्षा-दीक्षा नहीं हुई। प्रौढ़ावस्था में इनका विवाह हुआ और पिता भी बने, किंतु शीघ्र ही संसार से विरक्त हुए। 30 वर्ष की आयु में रमते-गाते फ़क़ीर बन गये। रहस्यवादी दार्शनिक संत के नाते ये एक विश्व-प्राणी रहे, और जाति, धर्म, रंग तथा नस्ल की भेद-भावना को सदा धिक्कारते रहे। कश्मीर की घाटी में इनका वही स्थान है जो शेष भारत में संत कबीर (दे०) का। इनकी सूक्तियों, उक्तियों, छंदों और 'श्रुखों' (श्लोकों) का बृहत् संकलन 'ऋषिनामा' कहलाता है। ललद्यद (दे०) के वाक्यों के समान ही इनके कई 'श्रुख' या उनके कई अंश लोकोक्तियों के रूप में उद्धृत किए जाते हैं। इनकी भाषा जनसाधारण की भाषा है। उसी में उपनामों और रूपकों के द्वारा शाश्वत सत्य एवं दार्शनिक तथ्यों को मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। मौज़ा चिराग़ में 61 वर्ष की आयु में—1438 ई० में—इनकी मृत्यु हुई। चार-ए-शरीफ़ में इनका मक़बरा है जो हिंदुओं-मुसलमानों दोनों ही के लिए पवित्र तीर्थस्थान बन गया है। कहा जाता है कि इनके दफ़नाए जाने के समय की अंतिम प्रार्थना (फ़ातिहा) का नेतृत्व स्वयं सुल्तान ज़ैनुल-आबदीन ने किया था।

नूल् (त० प्र०)

'नूल्' शब्द का सामान्य अर्थ है—'ग्रंथ' (गद्य, पद्य अथवा गद्य-पद्यात्मक) और शास्त्र (या विज्ञान)। लेकिन प्राचीन छंदःशास्त्र के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है—"किसी एक वर्ण्य-वस्तु को लेकर अनुस्यूत रूप में संक्षेप और विस्तार के साथ वर्णन करने वाला ग्रंथ।" इसके छंद के चरणों की संख्या निर्धारित नहीं है। इसके चार भेद होते हैं—एक है 'सूत्र' जो दर्पण में प्रतिबिंब के समान अपने में अर्थ को स्पष्ट दिखाता है। दूसरा है—'ओत्तु' जिसमें हार में मोतियों के समान एक जैसे अनेक विषय क्रमबद्ध किए जाते हैं। तीसरा है 'पटल' जिसमें विविध किंतु संबद्ध विषयों का वर्णन होता है। चौथा है 'पिंड' जिसमें उपर्युक्त तीनों या इनमें से किसी एक के अनेक उदाहरण सम्मिलित रहते हैं। 'पटल' या 'अदिकार' संस्कृत-काव्यों के 'सर्ग' या 'उच्छ्‌वास' हैं। सूत्रात्मक और 'ओत्तु'-युक्त 'पिंड'—लक्षण-ग्रंथ होते हैं। पटल या अदिकार महाकाव्यों में भी होते हैं, जैसे कंबरामायण (दे०) 'पटल'-युक्त काव्य या 'मूल' है और 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) 'अदिकारम्' से युक्त काव्य है।

नृत्य-नाटक (हिं० पारि०)

मनोरंजन के लिए नृत्य-नाटक (दे०) और संगीत का संयोजन प्राचीन भारत तथा यूरोप में बहुत पहले से होता रहा है, परंतु नृत्य-नाट्य (बैले) मूलतः पश्चिम की विधा है जिसमें संगीत के साथ नृत्य तथा मूक अभिनय के माध्यम से नाट्य-व्यापार प्रस्तुत किया जाता है। यूरोप में इसका आरंभ फ़्रांस के सम्राट लुई चौदहवें के दरबार में हुआ था और उसमें भाग लेने वाले होते थे बहुमूल्य वस्त्र तथा मुखौटा पहन कर अभिनय करने वाले बड़े-बड़े सामंत-सरदार और उनकी पत्नियाँ। बाद में रंग-मंच पर कार्य करने वाले नर्तकों और अभिनेताओं ने उसमें भाग लेना आरंभ कर दिया, उनकी वेशभूषा बदली जिससे त्वरित गति और मुद्राओं द्वारा भाव-प्रदर्शन को अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर मिला। अठारहवीं शती में जब कला (दे०) के रूप में इसका विकास हुआ तो भावाभिव्यक्ति तथा अभिनय द्वारा कथा को प्रेषित करने का प्रयास होने लगा; नृत्य गौण हो गया। अब प्राचीन और नवीन प्रवृत्तियों के बीच संतुलन स्थापित करने के फलस्वरूप नृत्य-नाट्य में भावाभिव्यक्ति, नाटकीयता, अंग-संचालन, नृत्य, संगीत आदि का समन्वय हो गया है। रंगमंच के विकास के साथ रंग-सज्जा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है।

नृत्य-नाट्य का सर्वाधिक विकास रूस में हुआ है और वहाँ चेकोफ़्स्की ने उसे सँवारने तथा उसके कलात्मक रूप को स्थिर करने में अभूतपूर्व योग दिया है। भारत में नृत्य-नाट्य लाने का श्रेय उदयशंकर और उनकी मंडली को है। उन्होंने भारतीय नृत्य-परंपरा और पश्चिम की 'बैले' शैली के मध्य समन्वय स्थापित कर अनेक प्रयोग किए हैं और उसे एक नया रूप प्रदान किया है। अन्य नाट्य-मंडलियों द्वारा भी रवींद्र (दे०) के नाटकों और कहानियों को नृत्य-नाट्य का स्वरूप दिया गया है। टेलिविज़न द्वारा प्रसारण से इसकी संभावनाएँ बढ़ गई हैं।

नेओग, डिंबेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1900 ई०, मृत्यु—1966 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर का एक गाँव।

इन्होंने अँग्रेज़ी में एम० ए० और बी० टी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। 1951 ई० तक सरकारी हाईस्कूल में अध्यापन-कार्य करते रहे थे। इन्होंने असम-साहित्य-सभा, जन्मभूमि, मिलन और असम-साहित्य-सभा-पत्रिका का संपादन किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** 'मालिका' (1922), 'सँफ़ुरा' (1923), 'थुप्तिरा' (1925), 'मालती' (1927), 'इंद्रधनु' (1930), 'मुकुता' (1932), 'श्वहिदे कारवाला' (1940), 'मेघदूत' (1942), 'असमा' (1947), 'विचित्रा' और 'थापना' (1948); **आलोचना :** 'आधुनिक असमीया साहित्यर बुरंजी' (1938), 'असमीया साहित्यर जिलिङनी' (1939), 'असमीया साहित्यर बुरंजीत भुमुकि' (1941), 'साहित्य कि' (1952), 'असमीया साहित्यर बुरंजी' (1957)।

इन्होंने छात्रावस्था से ही कविता लिखना आरंभ कर दिया था। इनकी कविता का मुख्य स्वर प्रेम और देशप्रेम है। 'थापना' में शिशुओं के लिए लिखी गई कविताओं का संग्रह है। 'मालिका' से 'इंद्रधनु' तक इनकी कविताओं का विकास देखा जाता है। 'मुकुता' में सॉनेट कविताओं का संकलन है।

नेओग स्पष्टवादी आलोचक भी थे। वे साहित्य को पवित्र दृष्टि से देखते थे। वे रुचिहीन साहित्य की कठोर आलोचना करते थे, अतः साहित्यकारों का एक वर्ग उनसे भीत एवं असंतुष्ट था।

'नेओग', महेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर। इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० (असमीया) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। 1955 ई० में गौहाटी विश्वविद्यालय से डी० फ़िल० की उपाधि पाई थी। ये गौहाटी विश्वविद्यालय में असमीया के रीडर हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक :** 'ऋतुसुर' (1946); **कहानी :** 'डाबरर सिपारे', 'धुनीया देश' (1948); **संपादन :** 'गीति-रामायण' (1954), 'कीर्तन घोषा', 'नाम-घोषा' (1955), 'पुरणि असमीया समाज आरु संस्कृति' (1957), 'संचय' (1959), 'चंद्रकांत अभिधान संशोधन' (1954-57); **जीवनी :** 'श्री शंकरदेव' (1948), **आलोचना :** 'असमीया साहित्यर रूपरेखा' (1962)।

'संचयन' में इनकी भी एक कविता संगृहीत है, इसमें भारत के अतीत के प्रति कवि की आस्था प्रकट होती है। इनकी प्रसिद्धि आलोचक के नाते ही है। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते रहते हैं। इन्होंने असमीया के कुछ प्राचीन ग्रंथों का दक्षता के साथ संपादन किया है।

ये असमीया साहित्य के वर्तमान कतिपय आलोचकों में एक हैं।

नेकी, जसवंतसिंह *(प० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

डा० नेकी की कविता का मुख्य गुण उसकी चिंतन-प्रधानता है। काव्यशिल्प पर ज़ोर देने के स्थान पर इन्होंने उस चिंतन को अपने काव्य का केंद्र बनाया है जिसमें कि आधुनिक मनुष्य ग्रस्त हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग से परंपरागत जीवन-मूल्यों तथा आधुनिक विचार-प्रणालियों में एक द्वंद्वात्मक संबंध उभर रहा है। यही द्वंद्व नेकी की कविताओं की विषय-वस्तु है। इसके अतिरिक्त काव्यजगत एवं वस्तुजगत में एक संतुलन खोजने की चेष्टा भी नेकी की कविता की मुख्य वृत्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी कविताओं में दर्शन प्रायः काव्य-संरचना में ढल कर उतरा है पर अनेक बार दर्शन एवं काव्य का ऐसा तनाव भी परिलक्षित होता है जो अंत तक सुलझ नहीं पाता। नेकी की प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं —'असले ते ओहले' (दे०) 'इह मेरे, संसे, इह मेरे गीत'। आजकल आप ऑल इंडिया इंस्टीच्यूट ऑफ़ मेडीकल साइंसिज़, नयी दिल्ली के मनोचिकित्सा-विभाग के अध्यक्ष हैं।

✓ नेट्टुड्ङाडि, अप्पु *(मल० ले)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1934 ई०]

मलयाळम के प्रथम उपन्यासकार और प्रमुख पत्रकार। 1887 ई० में प्रकाशित 'कुंदलता' इनका और मलयाळम का सर्वप्रथम उपन्यास है। यद्यपि नेट्टुङ्ङाडि चंतु मेनन (दे०) सी० वी० रामन् पिळ्ळा आदि प्रारंभिक उपन्यासकारों के समकक्ष नहीं माने जाते तथापि पाश्चात्य साहित्य की इस विधा के प्रवर्तक के रूप में मलयाळम-साहित्य में इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

✓ नेट्टुङ्ङाडि, कोवुण्णि *(मल० ले०)*

उत्तर केरल की कनाट नामक तहसील के तोटुकाट गाँव में इनका जन्म हुआ। अपने जीवन में इन्होंने अध्यापन से कार्य आरंभ किया, फिर वकालत का पेशा अपनाया और बाद में एक जमींदार के पुत्र के शिक्षक बन गए तथा जीविकार्जन के लिए अंत तक इसी कार्य में व्यस्त रहे। इनके प्रधान ग्रंथों में 'केरल कौमुदी' (दे०) नामक व्याकरण महत्वपूर्ण माना जाता है। अनेक विद्वानों के अनुसार भाषा में पारंगत होने के लिए प्रस्तुत ग्रंथ का गहरा अध्ययन अनिवार्य है। इस ग्रंथ के अतिरिक्त लेखक ने कई मुक्तक-पद्य लिखे और एक सरस कवि के रूप में भी ख्याति पाई।

नेता *(सं०, हिं० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र में विवेचित रूपक के प्रमुख तत्त्वों में से एक। अन्य तत्त्व हैं वस्तु (दे०) और रस (दे०)। नेता वस्तु और रस की मध्यवर्ती कड़ी है: वह वस्तु का संचालक, नाट्यफल का उपभोक्ता तथा इस प्रकार नाट्य रस की सिद्धि का मुख्य उपादान है। 'नी' धातु से निष्पन्न 'नेता' शब्द का व्युत्पत्यर्थ ही उसके कर्त्तव्यकर्म को सर्वथा स्पष्ट रूप से निर्धारित कर देता है। सर्वप्रमुख पात्र होने के नाते नाटक के संपूर्ण कार्य-व्यापार के मूल में स्थित रहकर वह वस्तु को फल की ओर अग्रसर करता है। इसके अतिरिक्त वह नाटक के फल का मूल उपभोक्ता, अंगीरस का प्रमुख माध्यम तथा नाटककार के अभीष्ट अर्थ का प्रतीक एवं उसकी दृष्टि का मूल आकर्षण-बिंदु होता है।

संस्कृत-काव्यशास्त्र की परंपरा में नायक का केवल आदर्श रूप ही मान्य रहा है। धनंजय (दे०) ने 'दशरूपक' (दे०) में नायक के प्रमुख गुणों का आख्यान करते हुए कहा कि उसे विनीत, मधुर स्वभाव वाला, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, लोकप्रिय, शुचि, वाग्मी, कुलीन, स्थिरचित्त, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृतिवान्, कलाविद्, शूरवीर, दृढ़चरित्र वाला, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ तथा धार्मिक होना चाहिए (दशरूपक: प्रकाश 2)। भरत (दे०) के आधार पर नाट्यदर्पणकार (दे०) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि नाटक के नायकत्व के अधिकारी केवल उत्तम और मध्यम प्रकृति के व्यक्ति ही हो सकते हैं—अधम प्रकृति के नहीं। नायक के चरित्र की प्रधान वृत्ति, उनके अनुसार, धीरता है जिसके आधार पर उन्होंने भरत का ही अनुसरण करते हुए धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर-प्रशांत —चार प्रकार के नायक-चरित्रों का निरूपण किया है। सामान्यतः ये चारों प्रकार परस्पर-भिन्न चरित्र-रूप हैं, किंतु अपवाद-रूप में एक व्यक्ति में ये चारों विशेषताएँ हो सकती हैं (नाट्यदर्पण: प्रथम विवेक)। विश्वनाथ (दे०) के अनुसार धीरोदात्त नायक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति से मुक्त, क्षमावान, गंभीर, सुख-दुःख में प्रकृतिस्थ, स्थिर प्रकृति से युक्त, स्वाभिमानी किंतु विनम्र होता है। धीरोद्धत मायालिप्त, उग्र स्वभाव वाला, स्थिर प्रकृति-संपन्न, अहंकारी, दर्पयुक्त तथा आत्मश्लाधा में निरत होता है। धीरललित नायक निश्चित प्रकृति का, मृदुल स्वभाव वाला तथा कला-प्रेमी होता है। धीरप्रशांत नायक में त्याग आदि सामान्य गुणों का प्राचुर्य होता है और उसका संबंध ब्राह्मणादि-वर्ग से होता। भारतीय परंपरा में राम, युधिष्ठिर आदि धीरोदात्त नायक के; भीमसेन, परशुराम आदि धीरोद्धत के; 'रत्नावली' (दे०) का वत्सराज और 'मालविकाग्निमित्र' (दे०) का अग्निमित्र धीरललित के तथा 'मालती माधव' (दे०) का माधव धीरप्रशांत नायक का उदाहरण है। आचार्यों ने शृंगार-रसपूर्ण काव्य एवं नाटक में इन चारों प्रकार के नायकों के पुनः दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ—चार-चार प्रभेद माने हैं। इस प्रकार सब मिलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16 प्रकार के नायक हुए। इनमें से प्रत्येक के उत्तम, मध्यम और अधम रूप होते हैं। अतएव संस्कृत-नाट्यशास्त्र में समग्र रूप से 48 नायक-भेदों का निरूपण किया गया है (साहित्यदर्पण : तृतीय परिच्छेद)।

संस्कृत-नाट्यशास्त्र में रूपक के विभिन्न भेदों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के नायक वर्णित हैं। नाटक के अतिरिक्त रूपक के डिम, व्यायोग, समवकार, अंक और ईहामृग नामक भेदों का नायक प्रख्यात तथा प्रकरण भाण, प्रहसन और वीथी का नायक कल्पित होता है। उपरूपक 'नाटिका' में नायक राजवंश का व्यक्ति या देवता प्रख्यात एवं धीरललित होता है। रूपक के कुछ भेदों में नायकों की संख्या एकाधिक मानी गई है; उदाहरण के लिए 'डिम' में 26 नायक होते हैं।

आधुनिक युग में नेता-संबंधी उक्त समस्त अवधारणाओं का महत्व केवल शास्त्रीय और ऐतिहासिक है। युग-परिवेश और निजी भाव-बोध के परिवर्तन के साथ आज का नाटककार शास्त्र की अपेक्षा कृति की आंतरिक प्रकृति और आवश्यकता के अनुरूप नायक का चरित्र स्वयं निर्धारित करना अधिक उचित समझता है। आज के जटिल और अति संकुल जीवन के कारण वह स्वभावतः व्यक्ति वैचित्र्यपूर्ण यथार्थ-चरित्रांकन की ओर अधिक प्रवृत्त है।

नेपथ्य *(स०, हिं० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र के अंतर्गत विवेचित रंग-मंच और नाट्यशाला के अत्यंत महत्वपूर्ण तत्त्वों में से एक अनिवार्य तत्त्व। भरत मुनि (दे०) ने 'नाट्यशास्त्र के पाँचवें अध्याय में पूर्वरंग के अभिधान से मंच पर वास्तविक नाटक की प्रस्तुति से पूर्व की विविध प्रक्रियाओं का सुविस्तृत विवेचन किया है। इन बीस पूर्वरंग-विधियों में से प्रथम नौ यवनिका उठने से पूर्व की हैं जो सभी नेपथ्य में ही रंगमंच पर देवपूजन के निमित्त सूत्रधार (दे०) के प्रवेश से पूर्व संपन्न की जाती हैं। ये विधियाँ हैं: प्रत्याहार अवतरण, आरंभ, आश्रवणा, वक्त्रपाणि, परिघट्टना, संघोटना, मार्गासारित और आसारित। नेपथ्य में समस्त वाद्ययंत्र, वेश-सामग्री तथा अन्य प्रकार के नाट्य-उपकरण रखे जाते हैं। नाटक के बीच प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्य-गीत इत्यादि के साथ वाद्य-संगीत, देवघोष, एवं आकाशघोष आदि के स्वर, वर्षा, भूकंप, कोलाहल, युद्धस्वर, युद्ध-उत्सव आदि से संबद्ध स्वर-प्रभाव आदि विभिन्न नाट्य-ध्वनियाँ *नेपथ्य* से ही संचालित होती हैं। परंपरागत नाट्य-शालाओं में नेपथ्य मंच के ठीक पीछे होता है, किंतु आधुनिक नाटकों में कहीं-कहीं वाद्य यंत्रों को मंच के आगे भी रखने की परंपरा चल पड़ी है।

नेमिचंद्र *(क० ले०)* [समय—1200 ई० के लगभग]

ये जैन-मतावलंबी, महापंडित तथा शृंगार-प्रिय कवि थे। ये कई राजाओं के आश्रय में रहे। इन्होंने राजा लक्ष्मणदेव के आश्रय में 'लीलावती प्रबंध' लिखा था और होयसळ राजा वीरबल्लाल के महाप्रधानी पद्मनाभ की प्रेरणा से 'नेमिनाथ-पुराण' (दे०) की रचना की थी।

नेमिचंद्र कन्नड के प्रतिनिधि शृंगारी कवि हैं। इन्होंने हिंदी के रीतिकालीन कवियों की भाँति घोषणा की है—'स्त्रीरूप ही रूप है, शृंगार ही एकमात्र रस है।' इन्होंने शृंगार को काव्य-बंधन में बंदी बनाने के कारण अपने को 'शृंगार कारागृह' कहा है।

'लीलावती' कौतूहल की लीलावई की अपेक्षा सुबंधु की 'वासवदत्ता' पर अधिक आधृत है। यदि वह गद्य-ग्रंथ है तो यह चंपूकाव्य है। नामों के थोड़े-बहुत परिवर्तन को छोड़कर कथा का पूर्वभाग वासवदत्ता जैसा ही है, पर उत्तरार्द्ध में काफ़ी अंतर है। स्वप्न में अलग-अलग रूप से एक दूसरे को देखकर रीझना, मिलना, बीच में विरह तथा अंत में मिलन में परिसमाप्ति ही लीलावती की कहानी है। भारतीय प्रेमाख्यानों की सारी कथानक-रूढ़ियाँ इसमें भी हैं। कथा के व्याज से वर्णनों का जाल ही बिछा है। जैन होने के कारण कवि न बीच-बीच में कथा को मोड़ देने का प्रयत्न किया है। कथा की नायिका लीलावती पद्मावती यक्ष की उपासिका है। शृंगार ही इसका प्रधान रस है। इसमें कल्पना का औन्नत्य और सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति है। किंतु फिर भी यह एक समग्र कृति नहीं है। वर्णनों के अति विस्तार के साथ-साथ कवि ने कहीं-कहीं औचित्य का उल्लंघन किया है। इसमें ध्वनि की अपेक्षा वाच्य अधिक आ गया है। इन सबके कारण इस काव्य के समग्र सौंदर्य में बाधा पड़ी है। इतना होते हुए भी 'लीलावती' किसी का अनुवाद अथवा अनुकरण नहीं—गरिमापूर्ण स्वतंत्र काव्य है।

'नेमिनाथपुराण' (दे०) अपूर्ण कृति है। अतः उसका नाम 'अर्धनेमि' पड़ा है। इसमें हरिवंश एवं कुरुवंश की कथा है। वैसे इसमें भी कृष्ण की कथा प्रधान है। इस चंपूकाव्य में कृष्ण-लीला, कंसवध आदि प्रसंग बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सशक्त बन पड़े हैं। जैन काव्यों में पाई जाने वाली भावावलियों की जटिलता तथा मत-प्रचार की नीरसता इसमें नहीं है। चरित्रों में कवि ने नूतन चेतना का संचार किया है। इसके कृष्ण देवताओं के उपजीवी नहीं, यशस्वी तथा परमवीर हैं। इसका कंसवध प्रसंग अत्यंत सरस है। अन्य पात्र भी अतिमानवीय गुणों से आवृत नहीं किए गए। स्वभावोक्ति तथा अतिशयोक्ति—दोनों नेमिचंद्र के प्रिय अलंकार है। चमत्कार के पीछे पड़ने के कारण ये अपने काव्यों को सफल महाकाव्य नहीं बना पाए। गंभीर जीवन-दर्शन तथा औचित्य के अभाव ने इन्हें ऊपर नहीं उठने दिया।

नेमिनाथ चतुष्पादिका (अप० कृ०)

'नेमिनाथ चतुष्पादिका' रत्नसिंह सूरि के शिष्य विनयचंद्र (दे०) सूरि द्वारा रचित 40 पद्यों की एक छोटी सी कृति है। इसमें बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्राचीन कथा का वर्णन है। इसी प्रसंग में राजमती या राजुल और उसकी सखियों के वार्तालाप के रूप में कृतिकार ने श्रृंगार और वैराग्य के भावों की व्यंजना की है। राजमती का विवाह नेमिनाथ से होना निश्चित हुआ था किंतु वे पशुओं की हिंसा के कारण दयार्द्र हो वधू-गृह के तोरण द्वार से ही लौट गये थे और गिरिनार पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे थे। राजुल के वियोग का वर्णन बारहमासा रूप में प्रस्तुत किया गया है, कृतिकार ने श्रावण मास से आरंभ कर आषाढ़ मास तक बारह मासों में राजुल के विरह की व्यंजना की है। राजुल प्रत्येक मास में अपनी अवस्था का वर्णन करती है और उसकी सखी उसे सांत्वना देती है। बारहमासा की परंपरा के अध्ययन के लिए यह कृति महत्वपूर्ण है।

नेमिनाथ चतुष्पादिका (गु० कृ०) [रचना-काल—तेरहवीं शती]

विजयसेन सूरि के नाम से प्राप्त इस रचना में नेमिनाथ का चरित्र वर्णित है। गुजराती का यह प्रथम बारहमासा काव्य माना जाता है।

काव्य का प्रारंभ श्रृंगार से होता है किंतु परिणति भक्ति में होती है। राजुल नेमिनाथ से दीक्षा ग्रहण कर लेती है।

काव्य में विप्रलंभ श्रृंगार का भी अच्छा निरूपण किया है। विरहिणी राजुल और उसकी सखियों का संवाद बड़ा महत्वपूर्ण है।

रचना में प्रकृति-वर्णन व अलंकार-योजना द्रष्टव्य है। रस के विचार से भी रचना प्रभावशाली व आकर्षक है तथा विरह-काव्य के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है।

कुछ विद्वानों ने विनयचंद्र (दे०) को इसका रचयिता माना है।

नेमिनाथपुराण (क० कृ०)

नेमिचंद्र (दे०) होय्सळ वंश के बल्लाल राजा के प्रधानमंत्री पद्मनाभ के आश्रित पंडित कवि थे। उनका समय बारहवीं शती के अंत तथा तेरहवीं शती के आरंभ में बताया जाता है। 'नेमिचंद्र ने 'लीलावती' और 'नेमिनाथ पुराण' नामक दो ग्रंथों की रचना की।

'नेमिनाथपुराण' में हरिवंश अर्थात् श्रीकृष्ण के वंश और कुरुवंश अर्थात् पांडवों के वंश की कथा का वर्णन है। इसमें मुख्य रूप से श्री कृष्ण की कथा ही कही गई है। अब 'नेमिनाथपुराण' आठवें आश्वास का कंसवध भाग ही प्राप्त है। इसका आधार 'चावुंडराय पुराण' (दे०) तथा कर्णपार्य (दे०)-कृत 'नेमिनाथपुराण' है। परंतु लेखक ने कथानायक कृष्ण को एक धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए ही जैन पुराणों से कृष्ण की कथा में परिवर्तन भी किया है। आलोचकों का कथन है कि अद्भुत और वीर रस की दृष्टि से नेमिचंद्र के कंसवध-चित्रण की किसी भी महाकवि के चित्रण के साथ तुलना की जा सकती है। इसमें आने वाले पात्र अन्य पौराणिक कथाओं के पात्रों की तरह कठपुतली नहीं हैं अपितु जीवंत हैं। वसुदेव केवल विलासी नहीं, वीर और उदार हैं। कंस केवल दुष्ट नहीं बल्कि वह ईश्वर-भक्त, गुरुभक्त और दूसरों से स्नेह करने वाला भी है। कृष्ण अतिमानव नहीं, मानव हैं। 'लीलावती' में जहाँ कवि की वाक्-चातुरी तथा अलंकार-प्रियता प्रधान है, वहाँ 'नेमिनाथपुराण' में संयम व्यक्त हुआ है। यह एक महाकाव्य तो नहीं है पर महाकाव्य का सत्त्व इसमें है।

नेमिविजय (गु० ले०) [समय—सत्रहवीं शती]

सत्रहवीं शती के जैन वार्त्ताकारों में नेमिविजय प्रमुख हैं। इनकी दो रचनाएँ—'शीलवती रास' (दे०) और 'वछराजचरित्र रास' प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शीलवती रास' में करुण तथा अद्भुत रस की सुंदर योजना बन पाई है। 'बच्छराज-चरित्ररास' बच्छराज के संबंध में लिखित एक चरित-काव्य है। परवर्ती जैनेतर कवि शामळ (दे०) पर 'शीलवतीरास' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उत्तर-मध्यकालीन जैन पद्य-वार्ताकारों में नेमि-विजय का महत्वपूर्ण स्थान है।

नेयदल् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित पाँच भूभागों में एक है नेयदल्। इन भूभागों का वर्णन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) और पुरम् (दे० पुरुप्पोरुळ) दोनों वर्गों की रचनाओं में होता है। नेयदल् से तात्पर्य है 'समुद्र किनारे की भूमि'। यहाँ के निवासी पडवर कहलाते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय है मछली पकड़ना और नौका चलाना। नेयदलवासियों के आराध्य देव वरुणन् (वरुण) हैं। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ छहों ऋतुएँ हैं और अनुकूल वेलाएँ हैं प्रातःकाल और संध्या। इस प्रदेश में पाए जाने वाले प्राणी हैं समुद्री कौआ, मगरमच्छ, मछली आदि। यहाँ नेयदल्, कडल्मुळ्ळि, केवड़े आदि के पुष्प प्राप्त होते हैं। इस प्रदेश में प्रभूत मात्रा में पाए जाने वाले नेयदल् पुष्प के आधार पर ही इस प्रदेश का तथा यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति का नामकरण हुआ है।

नें झनां *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

पंजाबी लोक-साहित्य को प्रकाशित कराने वाले अनुसंधाताओं में 'नें झनां' के रचयिता हरजीतसिंह का स्थान अग्रणी है। 'नेंझनां' में 'बार' के इलाके के अपेक्षाकृत असभ्य (जंगली) लोगों के साहित्य, रहन-सहन तथा भाषा-विलक्षणता का सुंदर वर्णन किया गया है। यह कृति पंजाबी लोक-साहित्य के अनुसंधान की प्रारंभिक रचनाओं में से है।

नैडदम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

कृतिकार—पांड्य राजा अदिवीररामन। नैडदम् में नल-दमयंती की कथा वर्णित है। यह श्रीहर्ष-कृत संस्कृत-रचना 'नैषधचरित' का तमिल अनुवाद है। कथा 28 पडलम (खंडों) में विभाजित है। गणेशवंदना के उपरांत कवि ने प्रसंगानुसार विभिन्न प्राकृतिक तत्त्वों एवं मानव-जीवन से संबंधित विभिन्न उत्सवों, संस्कारों और कर्मों का वर्णन किया है। नैडदम् शृंगारिक वर्णन-प्रधान कृति है। इस महाकाव्य में उपमा, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। संपूर्ण कृति अकवल छंद में रचित है। तमिलनाडु में कहावत प्रचलित है, 'नैडदम् पुलवरुक्कु औडदम्' अर्थात् नैडदम् विद्वानों के लिए ओषधि (कवित्वशक्तिप्रद ओषधि) के समान है। इससे नैडदम् के साहित्यिक महत्व का सम्यक् बोध होता है।

नैरंग-ए-ख़याल *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1875-80 ई०]

'नैरंग-ए-ख़याल' मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (दे०) के अँग्रेज़ी-निबंधों के अनुवादों का संकलन हैं। इनमें से छह निबंध जानसन के, तीन ऐडीसन के और शेष अन्य अँग्रेज़ी लेखकों के हैं। ये सारे निबंध प्रतीकात्मक हैं। इन अनूदित निबंधों में 'आज़ाद' ने अपनी प्रतिभा से मौलिकता का गहरा पुट दे दिया है।

इस कृति में संगृहीत निबंधों में सर्वप्रथम उर्दू-कहानी के तत्त्व मिलते हैं। इस पुस्तक के दो भाग हैं जिनमें 'गुलशन-ए-उम्मीद की बहार', 'सैर-ए-ज़िंदगी', 'इंसान किसी हाल में खुश नहीं रहता' आदि निबंध पहले भाग में और 'नुक्ता-चीनी', 'मुरक्का-ए-ख़ुशबयानी' और 'सैर-ए-अदम' जैसे पाँच निबंध दूसरे भाग में हैं।

आज़ाद की इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें मानवीय स्वभाव के गुण-दोषों को प्रतीक-शैली में अंकित किया गया है। आज़ाद के इन निबंधों में धर्म, नीति, कला-कौशल एवं काव्य आदि विषयों पर महत्वपूर्ण आलोचना मिलती है किंतु सभी निबंधों में मानवीकरण की एक-जैसी शैली, ईमान, दिल, अक्ल, इंसाफ़, और जुल्म आदि का हर जगह घूमते-फिरते नज़र आना पाठक के मन में कुछ ऊब-सी पैदा करता है।

नैवेद्य *(गु० कृ०)*

मांकड साहब (डोलरराय, दे० मांकड) गुजराती के प्रतिष्ठित विद्वान थे। उन्होंने गुजराती तथा अँग्रेज़ी में विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों का प्रणयन किया है। उनका 'टाइम्स ऑफ़ संस्कृत ड्रामा' नामक ग्रंथ समग्र भारत में सम्मानित हुआ था गुजराती में उन्होंने 'काव्य-विवेचन' नामक ग्रंथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में काव्य-तत्त्व की गहन विवेचना की है। उनकी षष्टि-पूर्ति के अवसर पर उनके लेखों को 'नैवेद्य' नाम से संगृहीत किया गया।

आलोच्य संग्रह में उनके संस्कृत तथा गुजराती साहित्य के 26 आलोचनात्मक लेख हैं जिनमें साधारणी-करण-विषयक लेख विशेष ध्यान आकर्षित करता है। इसमें उन्होंने साधारणीकरण की प्रक्रिया के संबंध में प्राचीन भ्रांतियों का निराकरण करते हुए निजी मत की स्थापना की है। रसिकलाल पारीख (दे०) के नाटक 'शर्विलक' (दे०) तथा शामळ (दे०) की बहुप्रशंसित कृति 'मदन-मोहना' की विशद आलोचना इस संग्रह की उल्लेखनीय विशेषता है। अकादमी पुरस्कार प्राप्त यह संग्रह डोलरराय की आलोचना के अध्येताओं के लिए महत्वपूर्ण है।

नैषधीयचरित *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

'नैषधीयचरित' संस्कृत का बहुचर्चित महा-काव्य है। इसके कर्ता श्रीहर्ष (दे०) कान्यकुब्ज-नरेश जयचंद्र गहड़वार की सभा में विद्यमान थे।

'नैषधीयचरित' 'महाभारत' (दे०) के नलो-पाख्यान के आधार पर रचित 22 सर्गों का विशाल महाकाव्य है। इसके लिखने की प्रेरणा श्रीहर्ष को त्रिविक्रमभट्ट-विरचित 'नलचंपू' (दे०) से मिली थी। इसमें नल (दे०) दमयंती (दे०) की कथा तथा नल-दमयंती के रूप एवं सौंदर्य का बड़ा चमत्कारपूर्ण वर्णन है। श्रीहर्ष ने 'महाभारत' की मूल कथा में काव्योचित परिवर्तन करके अपनी मौलिक कल्पनाओं के सन्निवेश से इसके कलेवर को सजाया है तथा नल-दमयंती के रूप-वर्णन, प्रेम-वर्णन एवं विवाह-वर्णन के छोटे कथानक को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है।

'नैषध' अलंकृत महाकाव्यों की परंपरा में लिखा हुआ सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिसके सामने भारवि (दे०) तथा माघ (दे०) भी फीके पड़ जाते हैं। इस महाकाव्य में पांडित्य के साथ वैदग्ध्य का अच्छा सामंजस्य हुआ है। उनके काव्य में व्याकरण तथा दर्शन के सिद्धांत गुँथे हुए हैं। श्रृंगार इस महाकाव्य का प्रधान रस रहा है। संयोग तथा विप्रलंभ दोनों की इसमें बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है।

नोंडिनाटकम् *(त० परि०)*

तमिलनाडु में सत्रहवीं-अठारहवीं शतियों में ज़िला तिरुनेलवेली में 'पालैयकार' नामक शासकों का दबदबा था। ये एक प्रकार के 'अमीर' कहलाने वाले शासकों के समान पदाधिकारी थे जो ब्रिटिश शासन के अधीन रह कर अपने क्षेत्र में शासन करते थे और लगान वसूल कर सरकार को कर दिया करते थे। ऐसे 'पालैयकार' के दरबार में दरबारी कवियों के द्वारा उनकी प्रशंसा में विरचित होने वाली एक नाटक-विधा है—'नोंडिनाटकम्'। तमिल साहित्य के प्राचीन या मध्ययुगों में यह विधा प्राप्त नहीं होती है। किंतु 'वरिक्कत्तु' नामक एक अभिनय-शैली प्राचीन युग में प्रचलित थी जिसमें एक ही पात्र रंगमंच पर गान भी गाता है और विविध पात्रों का अभि-नय भी करता है। कदाचित् उसी से विकसित आधुनिक रूप 'नोंडिनाटकम्' है।

इसमें एक पात्र रंगमंच पर आता है; वही नाटक का नायक होता है। वह अपने बारे में स्वयं गाकर अभिनय करता है। फिर अपने अनुभव के रूप में कोई कहानी या घटना सुनाता है। वास्तव में—अब तक प्राप्त इस प्रकार के अनेक नाटकों की मूलकथा एक ही मिलती है; किंतु देश, नाम आदि भिन्न हैं। इसमें एक चोर प्रमुखपात्र बनकर आता है। वह चोरी कर बड़ी संपत्ति इकट्ठी करता है। एक गाँव में किसी वारनारी पर मुग्ध होकर उसे सारी संपत्ति दे डालता है। पुनः चोरी करने निकलता है। एक 'पालैयकार' की अश्वशाला में घुस जाता है। उसे घोड़ा चुराते हुए पाकर सिपाही पकड़ लेते हैं और 'पालैयकार' के सामने पेश करते हैं। शासक की आज्ञा से उसकी एक टाँग और एक हाथ काट दिया जाता है। रक्त-धारा में विपन्न हो पड़े उसके पास एक योगी आते हैं और उसके घाव ठीक करते हैं। वह चोर भक्त बन जाता है। फिर भगवान की कृपा से उसका शरीर पूर्ण हो जाता है।

इस कथा के वर्णन में बीच-बीच में 'पालैयकार' की प्रशंसा और अन्य प्रमुख व्यक्तियों का उल्लेख होता है।

'नोंडि' का अर्थ है 'लँगड़ा'। 'लँगड़े का गीत' होने से इसका यह नाम पड़ा। इसमें प्रयुक्त छंद 'सिंदु' कहलाता है; 'नोण्डि-च्-चिन्दु' उसी छंद की एक शैली है। इसमें अन्य छंदों का प्रयोग भी अल्पमात्रा में होता है।

नोच्चि *(त० पारि०)*

यह प्राचीन 'संघम्' साहित्य के 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) नामक काव्य-भेद के 'उळिजै' नामक उपभेद का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक 'तुरै' (प्रकरण) है और इसका विषय दुर्ग-युद्ध में दुर्ग के स्वामी द्वारा की जाने वाली प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही होता है। तमिल भाषा के उपलब्ध व्याकरणों में सबसे प्राचीन मानी गई 'तोलकाप्पियम्' (दे०) ने उपर्युक्त कथनानुसार 'नोच्चि' को 'उळिजै' के अंतर्गत रख दिया है।

एक और लक्षण ग्रंथ-'पुरप्पोरुळ वैण्पामालै' 'तोलकाप्पियम्' के परवर्ती काल का है। परंतु यह कहा जाता है कि उसमें 'तोलकाप्पियम् से भी पुरानी 'अकत्-तियम्' की परंपरा की रक्षा की गई है। इस ग्रंथ के अनुसार 'नोच्चि' एक पृथक् उपभेद है और इसके नौ प्रकरण होते हैं। किसी राजा द्वारा अपने दुर्ग पर हुए हमले के विरुद्ध की जाने वाली प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही इस उपविभाग का मुख्य विषय है। इस उपविभाग के अनेक 'तुरै' (प्रकरण) हैं जिनमें से मुख्य हैं—मुठभेड़ों के बाद वीर सेनानी राजाओं का स्वर्गवास हो जाना; दुर्ग से लगे हुए कानन और खंदक को बचाकर प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा विजय पाना अथवा इस प्रतिरक्षा के घोर प्रयत्न में प्राण त्यागना; लक्ष्य पर तीर के समान टूट पड़ने वाले घोड़ों तथा शूर-वीर योद्धाओं की प्रशंसा करना; दुर्ग की दीवारों का नाश एवं प्रतिरक्षाकारी योद्धाओं द्वारा शत्रु-सेना की प्रगति का अवरुद्ध हो जाना तथा आक्रमणकारी राजा द्वारा यह माँग किया जाना कि दुर्ग-स्वामी की कन्या उसे विवाह में दी जाए और उसका ठुकराया जाना।

नोमल (*अ० कृ०*) [रचना-काल—1913 ई०]

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) के इस के प्रहसन में नाहरफुटुका नामक पात्र के भुलक्कड़ स्वभाव को लेकर हास्य की सृष्टि की गई है।

नोवल् साहित्यम् (*मल० कृ०*) [रचना-काल—1930 ई०]

प्रसिद्ध समालोचक एम० पी० पॉल (दे०) का उपन्यास-संबंधी लक्षण-ग्रंथ। इसमें उपन्यास के विविध तत्त्वों, उपन्यासों के वर्ग-भेदों और विश्व के प्रख्यात उपन्यासों के संबंध में विस्तृत चर्चा के बाद मलयाळम के कुछ यशस्वी उपन्यासकारों की कृतियों का मूल्यांकन किया गया है। मलयाळम के प्रथम उपन्यास 'कुंदलता' के अलावा चन्तु मेनन (दे०), सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) और अप्पन् तंपुरान् (दे०) के उपन्यासों की विस्तृत समालोचना की गई है। साहित्य की इस सर्वाधिक लोकप्रिय विधा से संबंधित प्रथम प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में 'नोवल् साहित्यम्' का स्थान महत्वपूर्ण है।

नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1798 ई०]

'नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा' इटावा-निवासी मुहम्मद बाकिर ख़ाँ के सुपुत्र मीर अताहुसैन 'तहसीन' (दे०) की रचना है। वे जनरल स्मिथ के मीर मुंशी थे। इसमें 'किस्सा-चहार-दरवेश' रंगीन और प्रौढ़ उर्दू में लिखा गया है। 'तहसीन' अपने सुंदर लेख के कारण 'मुरस्सा-रकम' के नाम से विख्यात थे। पुस्तक के नाम में 'मुरस्सा' शब्द गद्य-शैली के साथ-साथ इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है।

मीर तहसीन ने इसकी रचना जनरल स्मिथ के सेवा-काल में ही प्रारंभ कर दी थी किंतु इसकी समाप्ति शुजाउद्दौला के दरबार में आने पर की। इस रचना में उन्होंने प्रचलित रीति से हट कर नये ढंग का गद्य-प्रयोग किया है।

'नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा' की रचना अरबी-फ़ारसी-मिश्रित उर्दू में हुई है। इसमें अरबी-फ़ारसी पदों, उपमाओं एवं प्रतीकों की इतनी बहुलता है कि भाषा जगह-जगह दुर्बोध और दुरूह हो गई है यद्यपि कहीं-कहीं सरल गद्य का भी प्रयोग हुआ है।

न्टुप्पूप्पाक्कोरानेण्टान्नु (*मल० कृ०*) [रचना-काल—1951 ई०]

रचनाकार—मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम। शीर्षक का अर्थ है—'मेरे दादा के एक हाथी था'। श्री बशीर निजी शैली के धनी अनन्य साहित्यकार हैं जिन्होंने बिना किसी तरह की औपचारिक शिक्षा प्राप्त किए साहित्य पर और पाठकों पर अपनी सृजनशीलता की छाप छोड़ी है।

इस छोटे उपन्यास की धुरी है एक देहाती मुसलमान परिवार। हठी और इस्लामी रूढ़ियों के कठोर पालक वट्टनटिमा, उनकी शरीफ़ और किसी ज़माने में अमीर घराने की बीवी तथा उन दोनों की ख़ूबसूरत, सरल व समझदार बेटी कुञ्ञुपातुम्मा ही मुख्य पात्र हैं। अपने परिवार की पुरानी दौलत, खासकर उसका बड़ा मस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथी—जिसने छह-छह काफ़िरों को मारा था—उनकी अथक बातचीत के विषय थे। घरेलू झगड़ों और अदालती झंझटों ने जब गृहस्थी को एकदम निर्धन बना दिया तब परिवार ने देहात में रहना शुरू कर दिया। जीवन का क्रम ही मानो बदल गया। यहीं नागरिक सभ्यता के धनी, सुशिक्षित निसार अहमद ने कुञ्ञुपात्तुम्मा के रूप, सरलता व विवेक से प्रभावित होकर उससे शादी कर ली।

इस उपन्यास की कथावस्तु से बढ़कर इसकी कथन-शैली अधिक महत्वपूर्ण है। माँ का दंभ भरा दावा कि तेरे दादा के एक बड़ा हाथी था—करुणा ही अधिक उपजाता है। कुरान की बातों का कुञ्ञुपात्तुम्मा के शब्दों में बड़ा प्रभावशाली चित्रण हुआ है। कुञ्ञुपात्तुम्मा के सरल शब्द उपन्यास के सबसे रोचक अंश हैं। इन सबका चित्रण बशीर की अपनी शैली में हुआ है जिसका आनंद केवल अनुभूति का विषय है। इस अनुपम शैली की रचना का रसास्वाद यों अन्य भाषा में असंभव-सा है तथापि हिंदी में 'दादा का हाथी' नाम से श्री रवि वर्मा ने इसका अनुवाद प्रस्तुत किया है।

न्यायकुसुमांजलि *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1000 ई०]

उदयनाचार्य (दे०)-विरचित 'न्यायकुसुमांजलि' न्यायदर्शन का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रंथ है। इस क्लिष्ट ग्रंथ को स्पष्ट करने के लिए दो विशेष टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें एक टीका वर्द्धमान की 'प्रकाश-टीका' है जो 'न्यायकुमुमांजलि' की ही टीका है। दूसरी टीका रुचिदत्त की 'मकरंद-टीका' है जो 'प्रकाश-टीका' की टीका है।

विशेषतः, 'न्यायकुसुमांजलि' के अंतर्गत बौद्ध-दर्शन का खंडन किया गया है तथा ईश्वर की सत्ता की सिद्धि का प्रयतन किया गया है। ईश्वर-सिद्धि के संबंध में तार्किक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए न्यायकुसुमांजलिकार का तर्क है कि यद्यपि ईश्वर का साक्षात् दर्शन नहीं होता, परंतु जिस प्रकार संसार में अनेक पदार्थों का कारण देखने में आता है, उसी प्रकार जगत का भी कोई-न-कोई कारण अवश्य होना चाहिए। जगत् का कारण 'न्यायकुसुमांजलि' के अनुसार ईश्वर ही है। इस प्रकार कार्य-कारणवाद के आधार पर 'न्यायकुसुमांजलि' में ईश्वर की सत्ता सिद्ध की गई है। 'न्यायकुसुमांजलि' की भाषा-शैली क्लिष्ट ही कही जाएगी।

न्यायमूर्ति रानडे चरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

प्रस्तुत चरित्र-ग्रंथ की रचना श्री न० र० फाटक ने की थी। इस चरित्र में लेखक ने चरित्र-नायक के युग के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आंदोलनों का उल्लेख किया है। युगीन परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन कर उसके परिप्रेक्ष्य में इस चरित्र को लिखा गया है। कहीं-कहीं परिवेश का उल्लेख विस्तृत एवं अनुपयोगी हो गया है; कारण ऐसे स्थलों से रानडे के चरित्र का कोई पहलू स्पष्ट नहीं होता—केवल परिस्थितियों का वस्तुपरक विवेचन ही शेष रह जाता है।

लेखक रानडे जी का प्रशंसक रहा है। इसी कारण उसके लेखन में विभूति-पूजा का भाव है। उसने अपने चरित-नायक को देवत्व पद पर आसीन करने का प्रयत्न किया है, परिणामतः उसे सर्वगुण-संपन्न चित्रित करने की चेष्टा से यथार्थ चरित्रांकन नहीं हो पाया।

इस चरित्र की भाषा प्रौढ़ एवं सरल है। इसके द्वारा हमें भारत—विशेष रूप से महाराष्ट्र—के लगभग चालीस वर्षों का क्रमबद्ध इतिहास पढ़ने को मिलता है। रानडे जी पर इससे पूर्व भी चरित्र लिखे गए हैं पर उनके व्यक्तित्व तथा परिवेश का अध्ययन कर लिखा गया यह एकमात्र विस्तृत चरित्र-ग्रंथ है।

पंकीपरिणयम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती]

हास्यरस-प्रधान इस कृति के रचयिता सरदार के० एम० पणिक्कर (दे०) हैं। नायिका पंकी के स्वयंवर में मलयाळम भाषा के कई कवि भाग लेते हैं, प्रत्येक का परिचय देते समय महाकवि वळ्ळत्तोळ् की खूब प्रशंसा की जाती है और उळ्ळूर (दे०) परमेश्वरय्यर के प्रति व्यंग्य-प्रहार किए जाते हैं। यद्यपि कविता सरस है तो भी कवि की पक्षपात की भावना खटकती है।

पंचतंत्र *(क० कृ०)* [रचना-काल—ग्यारहवीं शती पूर्वार्ध]

कन्नड के 'पंचतंत्र' का रचयिता दुर्गसिंह (दे०) है। दुर्गसिंह ग्यारहवीं शती पूर्वार्ध में चालुक्य राजा जगदेकमल्ल जयसिंह का सेनापति और मंत्री था। उसका जन्म स्मार्त भागवत-संप्रदाय के पंडित-कुल में हुआ था। उसने अपने गाँव में हरिहर के मंदिर बनवाए। वह सर्वतोमुखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा का व्यक्ति था।

कन्नड का 'पंचतंत्र' प्रसिद्ध विष्णु शर्मा के 'पंचतंत्र' (दे०) से भिन्न है। वह वसुभाग भट्ट के द्वारा रचित पंचतंत्र पर आधारित है। वसुभाग भट्ट ने गुणाढ्य (दे०) की पैशाची भाषा में लिखित 'बृहत्कथा' से पाँच कथा-रत्न चुन कर 'पंचतंत्र' नाम रखा। वह मूल 'पंचतंत्र' अब उपलब्ध नहीं। उसके अस्तित्व की जानकारी दुर्गसिंह के कन्नड-अनुवाद से ही हुई। डा० मुगळि (दे०) का कथन है कि इसी को आधार मानकर खोज करने पर पता लगा कि जावा में उसी के आधार पर तीन 'पंचतंत्र' हैं—दो पद्य में और एक गद्य में।

दुर्गसिंह की कृति की विशेषता यह है कि जैनमत की बहुत-सी बातें और पारिभाषिक शब्द इसमें पाए जाते हैं जो विष्णु शर्मा के 'पंचतंत्र' में नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि दुर्गसिंह बड़े उदार स्वभाव का था और इसके अतिरिक्त उस समय जैन धर्म का प्रभाव अधिक था।

कथाओं की नीतियों के वर्णन में दुर्गसिंह ने मूल का निष्ठा से अनुकरण किया है किंतु कहीं-कहीं वर्णनों और संभाषणों में विस्तार करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। यह 'पंचतंत्र' चंपु अर्थात् गद्य और पद्य में लिखा गया। इसमें कन्नड गद्य को एक सुघर रूप मिला।

पंचतंत्र (सं० कृ०) [समय—200 ई० पू०]

'पंचतंत्र' भारत की अत्यंत प्राचीन नीति-कथाओं का संग्रह है। इसकी रचना पं० विष्णु शर्मा द्वारा हुई। कुछ विद्वान् विष्णु शर्मा का चाणक्य से अभेद स्थापित करके इसका रचना-काल 200 ई० पू० मानते हैं। किंतु डा० कीथ तथा डा० हर्टेल के अनुसार इसकी रचना 200 ई० पू० के बाद हुई होगी।

पंचतंत्र के चार संस्करण उपलब्ध हैं —

1. पहलवी अनुवाद जो आज अप्राप्य है पर जिसकी कथाओं का परिचय सीरियन तथा अरबी अनुवादों की सहायता से प्राप्त है।
2. दूसरा संस्करण गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' (दे०) में सन्निहित है।
3. तृतीय संस्करण तंत्राख्यायिका तथा उसी से संबद्ध जैन-कथा-संग्रह है। आजकल का प्रचलित 'पंचतंत्र' इसी का आधुनिक प्रतिनिधि है।
4. चौथा संस्करण दक्षिणी 'पंचतंत्र' का मूलरूप है। नेपाली 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' इस संस्करण के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार 'पंचतंत्र' एक सामान्य कथा-संग्रह नहीं अपितु एक विपुल साहित्य का प्रतिनिधि है।

पंचतंत्र के पाँच तंत्र (भाग) हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, संधि-विग्रह, लब्ध-प्रणास तथा अपरीक्षित कारक। प्रत्येक तंत्र की एक मुख्य कथा है जिसको पुष्ट करने के लिए ऐसी अनेक गौण कथाएँ कही गई हैं जिनका उद्देश्य सदाचार तथा नीति के उपदेश एवं शिक्षा देना है। मानवेतर पात्रों की योजना करके इनमें कौतूहल एवं मनोरंजन के साथ नीति-उपदेश का अद्‌भुत मिश्रण किया गया है।

पं० विष्णु शर्मा लोक तथा शास्त्र दोनों में पारंगत थे। उन्होंने थोड़े समय में निपट मूर्ख राजकुमारों को व्यवहार-कुशल, सदाचार-संपन्न तथा नीतिपटु बना दिया। नीतिमत्ता के साथ ग्रंथकार की विनोदप्रियता भी इस ग्रंथ में क़दम-क़दम पर झलकती है।

'पंचतंत्र' की भाषा तथा शैली बड़ी सरल तथा सुबोध है। कथानक का वर्णन गद्य में है तथा अपनी बात को पुष्ट करने के लिए लेखक 'रामायण', (दे०), 'महाभारत' (दे०), आदि प्राचीन ग्रंथों से सूक्तियाँ उद्धृत करता है।

कहा जाता है कि 'पंचतंत्र' बाइबिल के बाद सर्वाधिक प्रचलित ग्रंथ है। इसका अनुवाद संसार की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है। यूनानी कथाकार ईसप की कहानियाँ 'पंचतंत्र' से प्रभावित हैं।

पंचतंत्र किळिप्पाट्टु (मल० कृ०) [रचना-काल—अठारहवीं शती]

विष्णु शर्मा के विश्व-प्रसिद्ध ग्रंथ 'पंचतंत्र' का मलयाळम काव्यानुवाद कुंचन् नंपियार् (दे०) ने किया है। नंपियार मलयाळम साहित्य के प्रथम जनवादी कवि थे जिन्होंने जनता की सरल व सरस भाषा में हास्यप्रधान कृतियाँ रचीं। वे 'तुळ्ळल्' कहलाईं। श्री नंपियार् ने 'पंचतंत्र' की रचना 'किळिप्पाट्टु' नामक काव्यरूप में की है। 'किळिप्पाट्टु' का अर्थ है 'शुकगीत'। यह काकलि आदि द्राविड़ी छंदों में रचित और कुछ-कुछ गेय है। नंपियार् ने मूल का भाव समझकर उसे स्वच्छंद अनुवाद में ढालने की नीति अपनाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचदशी *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1350 ई०]

'पंचदशी' के लेखक विद्यारण्य हैं। विद्यारण्य का पूर्वाश्रम का नाम माधवाचार्य था। डा० वीरमणिप्रसाद उपाध्याय ने भारती तीर्थ को 'पंचदशी' का लेखक माना है। विद्यारण्य वेदांत के प्रतिबिंबवाद-सिद्धांत के अनुयायी हैं। 'पंचदशी' में ईश्वर एवं जीव आदि की सरल एवं स्पष्ट व्याख्या की गई है। 'कूटस्थदीप', 'नाटकदीप' एवं 'चित्रदीप' प्रकरण में साक्षी का अनेकधा विवेचन किया गया है। 'पंचदशी' में ब्रह्म, कूटस्थ आदि की भी सूक्ष्म विवेचना की गई है।

'पंचदशी' की मौलिकता में संदेह है। इस के अनेक श्लोक अन्य ग्रंथों में भी उपलब्ध हैं। इस की भाषा सरल एवं साहित्यिक है। आलंकारिकता 'पंचदशी' के शिल्प की प्रमुख विशेषता है। उदाहरण के लिए 'पंचदशी' में माया को कामधेनु तथा जीव एवं ईश्वर को वत्स कहा गया है।

सरल एवं सुबोध होने के कारण 'पंचदशी' वेदांत के जिज्ञासुओं का कंठहार है। इस की पद्यात्मकता ने इसे और भी रुचिकर बना दिया है।

पंचवटी *(ते० कृ०)*

'पंचवटी' माधवपेद्दी बुच्चि सुंदरराम शास्त्री (दे०) का नवीन विधान में लिखा गया खंडकाव्य है। इस काव्य की रचना में कवि का ध्येय लक्ष्मण का चरित्र-चित्रण करना है। इस दिशा में कवि को सराहनीय सफलता मिली है। इस काव्य में सीता, राम और लक्ष्मण के प्रवेश का विधान रमणीय है। वस्तुनिर्देश और नमस्क्रिया दोनों को एक-साथ जोड़कर कवि ने सीता और राम को मंच पर ला खड़ा किया है। लक्ष्मण और शूर्पणखा के संवाद में कवि ने लक्ष्मण के चरित्र को उजागर किया है। अपने भावगांभीर्य के कारण तेलुगु के खंडकाव्यों में 'पंचवटी' का विशिष्ट स्थान है।

पंचसखा *(उ० पारि०)*

अच्युतानंददास-कृत ग्रंथों में 'पंचसखा' का प्रयोग कई बार हुआ है।

'दश-पटल' में लिखा है कि त्रेता युग में रामचंद्र के पाँच सखा—नल, नील, सुषेण, जामवंत एवं हनुमान तथा द्वापर में कृष्ण के पंचसखा दाम, सुदाम, सुबल, बाहु, सुबाहु के रूप में अवतीर्ण हुए थे। उसी प्रकार कृष्ण के अवतार श्री चैतन्यदेव (दे०) के उड़िया 'पंचसखा' के रूप में बळरामदास (दे०), जगन्नाथदास (दे०), यशोवंतदास (दे०), अच्युतानंददास (दे०), तथा अनंतदास ने उनके साथ ही पृथ्वी पर जन्म लिया था। कालांतर में ये 'पंचसखा' के नाम से विदित हुए।

'पंचसखा-युग' महाराज प्रतापरुद्रदेव (1495-1540 ई०) का युग है। महाराज स्वयं उनका बड़ा सम्मान करते थे। इन महापुरुषों ने सारलादास (दे०) के पथ का अनुसरण किया था और स्वेच्छा से संस्कृत को छोड़ कर अज्ञान से पीड़ित जनता के लिए उड़िया को अपनाया था। इससे इंगलैंड के एलिज़ाबेथ-कालीन कवियों और नाटककारों का स्मरण हो आता है, जो अपनी मातृभाषा को ग्रीक और लेटिन के समकक्ष लाने का सोद्देश्य प्रयत्न कर रहे थे। उड़ीसा में यह युग 'पंचसखा-युग' के नाम से सुपरिचित है। 'पंचसखा-युग' केवल उत्कल में ही नहीं, उत्तर भारत में भी नूतन धर्मोदय का युग है। इस विषय में कबीर (दे०), नानक (दे०), सूरदास (दे०) और तुलसीदास (दे०) का धार्मिक साहित्य स्मरण-योग्य है।

ये पंच महापुरुष सिद्ध, योगी तथा कवि थे। ये सभी योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति के अनुयायी थे। चैतन्यदेव को गुरु-रूप में स्वीकार करने के बाद इन लोगों ने शुद्धाभक्ति को भी अपना लिया था। इन्हीं पंचसखाओं के समय से उड़ीसा में आज तक शुद्धाभक्ति के साथ ही योगमिश्रा भक्ति अखंड रूप से प्रवाहित होती आ रही है।

इन लोगों ने गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को सर्वजन सुलभ बना दिया है और पुराण-साहित्य का लोगों में प्रचार किया है। वैष्णव धर्म के प्रचार के क्षेत्र में 'पंचसखा' अग्रगामी है।

पंच नंढिड़ा नाटक *(सिं० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

'पंज नंढ़िड़ा नाटक' मंघाराम उधाराम मल्काणी (दे०) के पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह है। इन नाटकों में लेखक ने सामाजिक बुराइयों का यथार्थ चित्रण किया है। माँ का अपनी चिरकाल से बीमार बेटी के साथ दुर्व्यवहार, सौतेली माँ का स्वभाव, फ़ैशन और बाह्याडंबरों के परिणाम, ज़मींदार और किसानों की समस्याएँ आदि विषयों का लेखक ने इन एकांकी नाटकों में चित्रण किया है। मंघाराम मल्काणी पहले सिंधी एकांकी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार हैं जिन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रवृत्ति को त्याग कर सामाजिक बुराइयों का यथार्थ चित्रण किया है। इन नाटकों में मल्काणी जी की भाषा सरल और स्वाभाविक है तथा शैली व्यंग्यपूर्ण है।

पंजवाणी, राम परतावराइ *(सिं० ले०)* [जन्म—1911ई०]

इनका जन्म-स्थान लाड़काणा, सिंध है। बी० ए० उत्तीर्ण करने के पश्चात् सिंधी प्राध्यापक के रूप में इन्होंने कार्य शुरू किया था। देशविभाजन के बाद ये जयहिंद कालेज, बंबई में सिंधी-विभाग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए थे और अभी तक उसी पद पर रहकर सिंधी-अध्यापन के साथ-साथ सिंधी-साहित्य और कला के विकास में सक्रिय रूप से संलग्न हैं। इन्होंने सिंधी उपन्यास, नाटक और कहानी के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। इनकी प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ इस प्रकार हैं—**उपन्यास** : 'पद्मा', 'क़ैदी', 'शर्मीला', 'चांदीअ जो चम्को', 'ज़िंदगी या मौतु', 'आहेन आहे', 'धीअरु न जमनि'; **कहानियां** : 'अनोखा आज़्मूदा'; **एकांकी-संग्रह** : 'सिंधु जूं सत कहाण्युं'; **नाटक** : 'गौतम बुद्ध'। 'अनोखा आज़्मूदा' नामक कृति पर इनको 1964 ई० में साहित्य अकादमी नयी दिल्ली से पाँच हज़ार रुपयों का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इस रचना में इन्होंने अपने, जीवन की वास्तविक अनुभूतियों और घटनाओं को कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया है। ये लेखक के साथ-साथ उत्तम श्रेणी के कलाकार और गायक भी हैं। इन्होंने अपनी कला के द्वारा सिंधी लोक-संगीत और सिंधी-संस्कृति की विशेषताओं का न केवल भारत में परंतु विदेशों में भी प्रचार किया है। हाल ही में इन्होंने बंबई में 'सिंधु भवन' की स्थापना की है जो सिंधी-साहित्य और संस्कृति के संरक्षण और प्रसार का मुख्य केंद्र सिद्ध होगा। पंजवाणी जी साहित्यकार तथा संगीतकार के रूप में काफ़ी लोकप्रिय हैं।

पंजाब दे लोकगीत *(पं० कृ०)*

पंजाबी लोक-साहित्य के व्यवस्थित वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से डा० महिंदर सिंह रंधावा (दे०) की इस कृति का विशेष महत्व है। इसमें पहली बार पंजाब के, विशेषकर माझे और मालवे के, लोकगीतों की एक विशाल संख्या को पुस्तकाकार प्रदान किया गया है। इन गीतों को पृथक्-पृथक् शीर्षकों के अंतर्गत संगृहीत करने का वैज्ञानिक ढंग अपनाया गया है। अपने विशाल अध्ययन, लोक-साहित्य की गहरी समझ और सरल शैली के प्रयोग से रंधावा जी ने इन गीतों की मनोहारी व्याख्या प्रस्तुत की है।

पंजाब में उर्दू *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1960 ई०]

'पंजाब में उर्दू' उर्दू भाषा के विकास पर स्वर्गीय हाफ़िज़ महमूद शीरानी (दे० महमूद शीरानी) की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें उर्दू भाषा की प्राचीनता पर प्रकाश डाला गया है—विशेषकर उन तथ्यों पर विचार किया गया है जिनके आधार पर पंजाब को इस भाषा के आरंभ तथा विकास का पालना माना जा सकता है।

इस कृति में लेखक ने विभिन्न प्रमाणों से सिद्ध किया है कि उर्दू शाहजहाँ के शासन-काल से ही प्रारंभ नहीं हुई बल्कि उससे बहुत पूर्व उस युग से है जब से कि मुसलमान मुहम्मद-बिन-क़ासिम के आक्रमण के साथ पंजाब में प्रविष्ट हुए थे। अतः उर्दू बुनियादी तौर पर पंजाबी ही है जो बाद में दिल्ली दरबार में पहुँची और वर्तमान विकसित रूप को प्राप्त हुई। इस पुस्तक में शीरानी साहब ने पंजाब तथा उर्दू की विभिन्न क्रियाओं में साम्य दर्शाया है तथा पंजाब के अनेक प्राचीन कवियों तथा गद्यकारों का उल्लेख किया है।

पंजाबराव सरंजामे *(म० पा०)*

ना० सी० फडके (दे०) के उपन्यास 'प्रवासी' (दे०) का यह पात्र नायक का पिता है और लेखक का उद्देश्य संतान पर पैतृक प्रभाव दिखाना है, अतः उसका विशिष्ट महत्व है। नायक राजाभाऊ में अपने पिता के स्वभाव की अनेक विशेषताएँ—संगीत-प्रेम और सनक आदि हैं तथा अपने पिता का स्मरण करके ही वह अनेक पापों से बच जाता है। इस पात्र की कल्पना लेखक ने पूना-निवासी श्री दाते नामक वकील के आधार पर की है जो बड़े मनस्वी, उदार और राष्ट्र-प्रेमी थे तथा जिन्होंने अनेक बार लोकमान्य टिळक (दे०) की सहायता की थी। श्री दाते सफल वकील होने के नाते खूब धन कमाते थे पर अपनी उदारता एवं दानशीलता के कारण सदा धनाभाव से पीड़ित रहे। उन्होंने सदा समाज की रूढ़ियों और कुरीतियों का निर्भय होकर विरोध किया। इसी प्रकार का चरित्र 'प्रवासी' उपन्यास के पंजाबराव सरंजामे का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी-लोक-साहित्य *(पं० कृ०)*

डा० एस० एस० वेदी की यह कृति पंजाबी लोकधारा की खोज और संरक्षण की दृष्टि से अद्वितीय महत्व की है। पंजाबी-जीवन से जुड़े लोक-साहित्य को डाक्टर बेदी ने पहली बार किसी योजनाबद्ध ढंग से संगृहीत किया है। पंजाबी लोकधारा की खोज के संदर्भ में इस रचना का महत्व ज्ञानवर्धन की दृष्टि से बहुत अधिक है।

पंजाबी-साहित्य दा इतिहास (तीन भाग) *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

'पंजाबी-साहित्य दा इतिहास' (तीन भाग) भाषा-विभाग, पटियाला का प्रकाशन है। इस पुस्तक में पहली बार पंजाबी-साहित्य के इतिहास से संबद्ध सारी सामग्री को एकत्रित करने का यत्न किया गया है परंतु किसी भी प्रकार इसे पूर्वरचित इतिहासों की तुलना में श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। इसमें भिन्न-भिन्न कालों पर पृथक्-पृथक् विद्वानों से लेख लिखवाकर उनका संकलन किया गया है फलस्वरूप साहित्य के इतिहास-दर्शन के किसी भी अनुशासन का इसमें अभाव है। रचना में प्रवाह का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है और जगह-जगह अंतराल भी खलते हैं। इसमें कई अशुद्धियाँ और भ्रांतियाँ भी हैं। पंजाबी-साहित्य के एक प्रामाणिक-सर्वांगीण इतिहास की आवश्यकता इसके बाद भी यथावत् बनी हुई है।

पंजुम पशियुम *(त० कृ०)* [रचना-काल—1953 ई०]

(चिदंबर) रघुनाथन (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यासों में परिगणित। इसे सरकार की वस्त्र-निर्माण-संबंधी नीति से पीड़ित जुलाहों की करुण गाथा कहा जा सकता है। इस उपन्यास में हथकरघों पर काम करने वाले मज़दूरों के जीवन से संबंधित नाना समस्याओं का सजीव चित्रण है। लेखक के अनुसार क्रांति द्वारा ही मज़दूर अपनी समस्याओं से मुक्ति पा सकते हैं। मज़दूर वर्ग को क्रांति के मार्ग पर ले चलने वाले इस उपन्यास के दो अमर पात्र हैं शंकर और राजू। मज़दूरों के जीवन का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने ऊँच-नीच के भेद-भाव से रहित एक आदर्श समाज की कल्पना की है। 'पंजुम पशियुम' मज़दूरों के जीवन से संबद्ध एक सुंदर उपन्यास है। कथा-विन्यास, पात्र-चरित्र-चित्रण, घटना-वर्णन, समस्या-प्रतिपादन सभी दृष्टियों से इसका विशिष्ट महत्व है। तमिल समाज को सामाजिक यथार्थवाद से परिचित कराने के कारण इस उपन्यास का तमिल-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पंडित, अ० प्रबोध *(गु० ले०)* [जन्म—1920 ई०; मृत्यु—1975 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के भाषावैज्ञानिक। इन्होंने लंदन विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान की शिक्षा ली और गुजरात विश्वविद्यालय तथा पूना के भांडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट में कुछ समय काम किया। जब उनका देहावसान हुआ। ये दिल्ली विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष थे। अमरीका और यूरोप में भाषाविज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय परिषद् के अध्यक्ष भी ये रहे। 'गुजराती माध्यनि' पुस्तक पर 1967 ई० में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और उसी वर्ष गुजरात सरकार का प्रथम पुरस्कार भी मिला था। इन्होंने भाषाविज्ञान पर अँग्रेज़ी में भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

पंडित, भवानीशंकर श्रीधर *(म० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये मराठी के उच्च कोटि के शिशुगीतकार कवि हैं। 'चवथीचा चाँद', 'अष्टमीचा चंद्र', 'बीजेची कोर', 'पौर्णिमेचें चांदणें' आदि इनके काव्य-संग्रह हैं जो वात्सल्य रस से परिपूर्ण हैं। इनमें शिशु के लिए तथा शिशु-विषयक अनेक रस-भीने गीत हैं।

अपनी काव्य-चेतना की प्रारंभावस्था में इन्होंने कुछ प्रणय-गीतियाँ लिखी थीं, जो पिचलेला पांवा' संग्रह में संगृहीत हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद प्रकाशित 'उन्मेष आणि उद्रेक' तथा 'सुवास आणि रस' काव्य-संग्रहों में मानव-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम तथा समाजवादी विचारधारा की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है।

भवानीशंकर पंडित का 'सवडीचे क्षण' नाम से एक निबंध-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है जो लेखक की बहुश्रुतता का प्रमाण है। इसमें दर्पण, छाता, जूते जैसे साधारण विषयों पर हल्के-फुल्के, पर मनोरंजक, निबंध हैं।

पंडिताराध्य चरित्रमु *(ते० कृ०)* [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती]

इस कृति के रचयिता पाल्कुरिकि सोमनाथुडु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) हैं। इन्होंने संस्कृत, तेलुगु तथा कन्नड—तीनों भाषाओं में रचना की है। वीरशैव, संप्रदाय के अनुयायी इनके 'बसवपुराणमु' (दे०) को अपना वेद तथा इनको 'श्रृंगी' का अवतार मानते हैं।

वीरशैवों द्वारा परम ज्ञानी तथा दैवांश से उत्पन्न माने जाने वाले 'मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य' के जीवन-वृत्त-संबंधी कथाएँ इस काव्य में वर्णित हैं। मल्लिकार्जुन शिव के परम भक्त थे। इनको एक महान् नायक के रूप में चित्रित कर, तथा इनमें दैवत्व का आरोप कर, एक अवतार-पुरुष के रूप में इनका चित्रण किया गया है।

इस काव्य में 'बसवपुराणमु' से भी अधिक भक्ति का आवेग पाया जाता है। साधारण जनता तक अपना संदेश पहुँचाने के उद्देश्य से कवि ने इसकी रचना तेलुगु के 'द्विपद' छंद में तथा सरल-स्वाभाविक भाषा में की है। विस्तार से वस्तु-वर्णन करके पाठक की कल्पना के लिए इसमें कवि ने कुछ अधिक सामग्री नहीं छोड़ी। 'द्विपद' छंद को महाकाव्य के योग्य सिद्ध करने में इस काव्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसके एक-एक द्विपद में पृथक्-पृथक् भाव समाप्त नहीं होते और समस्त काव्य एक ही प्रवाह के समान दिखाई देता है। काव्य-शास्त्रियों द्वारा अनुचित माने जाने वाले शब्द, समास, संधियाँ आदि इस काव्य में यत्रतत्र हैं। छंद तथा भाषा में तेलुगु का सहज सौंदर्य इस काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है परंतु काव्य का विषय साधारण मानव-जीवन से दूर होने से इसका विशेष प्रसार नहीं हो सका।

पंत, सुमित्रानंदन *(हिं० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1977 ई०]

पंत जी का जन्म प्रकृति की रम्य स्थली कूर्माचल के कौसानी ग्राम में हुआ था। ये बचपन में ही मातृहीन होकर पिता और दादी की स्निग्ध छाया में पले। इनका बचपन का नाम गुसाईंदत्त था। 1921 ई० के असहयोग आंदोलन में पंत जी ने कालिज छोड़ दिया। प्रारंभिक काल में काव्य-सृजन की प्रेरणा इन्हें 'सरस्वती' (दे०) आदि पत्रिकाओं और 'हरिऔध' (दे०) मैथिलीशरण गुप्त (दे०) आदि की रचनाओं से प्राप्त हुई थी।

इनके समस्त काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(क) छायावादी (दे० छायावाद) काव्य में 'ग्रंथि', 'पल्लव' (दे०) और 'गुंजन', (ख) प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) काव्य में 'युगवाणी' (दे०) और ग्राम्या (दे०) तथा (ग) नव-रहस्यवादी (भूतात्मवादी) काव्य में 'स्वर्ण-किरण' (दे०), 'स्वर्णधूलि' (दे०) 'उत्तरा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'लोकायतन' (दे०) आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। काव्यकृतियों के अतिरिक्त 'ज्योत्स्ना' 'शिल्पी', 'सौवर्ण' आदि काव्यरूपक, 'गद्यपद्य', 'कला और संस्कृति' आदि में संगृहीत आलोचनात्मक निबंध, 'साठ वर्ष : एक रेखांकन' शीर्षक आत्मकथा आदि रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। 'युगवाणी' से 'अतिमा' तक की चुनी हुई रचनाओं के संग्रह 'चिदंबरा' (दे०) पर इन्हें 1968 ई० का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

इनके वर्ण्य-विषयों में प्रकृति का स्थान सर्वोपरि है। नारी के विदेह सौंदर्य का वर्णन भी इन्होंने प्रचुर मात्रा में किया है। वर्तमान जीवन-समस्या का चिंतन तो इनके काव्य में आद्यंत सूत्रवत् अनुस्यूत है। अनुभव और अध्ययन के विकास से इनकी विश्वदृष्टि बदलती रही है। क्रमशः सर्वात्मवाद और वैज्ञानिक भौतिकवाद से प्रेरणा ग्रहण करने के उपरांत मृत्युपर्यंत ये भूतात्मवाद का संदेश प्रसारित करते रहे।

पंत जी प्रधानतः कलाकार थे। शब्दशिल्पी के रूप में इनका कौशल अद्वितीय है। इनके काव्य में कल्पना की समृद्धि और अप्रस्तुत-विधान का वैविध्य दर्शनीय है। अप्रस्तुत-प्रयोग और व्यंजना-शक्ति में अनुभव-विकास के साथ-साथ परिष्कार आता गया है। प्रकृति के चितेरे, सूक्ष्म नारी-सौंदर्य के गायक और शब्दों के शिल्पी इस मनीषी का विपुल सृजन आधुनिक हिंदी-साहित्य में मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है।

पंथ प्रकाश *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1867 ई०]

1841 ई० में रचित ज्ञानी रतनसिंह (दे० रतन सिंह 'मंगू') के मूल 'पंथ प्रकाश' को छंदःशास्त्र के नियमों की दृष्टि से सदोष मानकर विक्रमी संवत् 1924 अर्थात् 1867 ई० में ज्ञानी ज्ञानसिंह (दे०) ने नवीन 'पंथ प्रकाश' की रचना की। लेखक ने अधिकांश सामग्री मूल '(प्राचीन) पंथ प्रकाश' (दे०) से ही ग्रहण की है, किंतु उन्होंने छंद-विकास की दृष्टि से संशोधित करने के अतिरिक्त इसमें अनेक नये प्रसंग भी जोड़ दिए हैं। साथ ही लाहौर के समकालीन प्रसिद्ध कवि निहालसिंह की सिख-पंथ-संबंधी अनेक कविताएँ भी इसमें रचयिता का नाम परिवर्तित कर समाविष्ट कर ली गई हैं। इस ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन 1880 ई० में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंप (क० ले०) [समय—दसवीं शती ई०]

कन्नड के आदिकवि, महाकवि पंप का जन्म दुंदुभि संवत्सर ई० 902 में हुआ था। इनके पूर्वज वैदिक ब्राह्मण थे। इनके पितामह माधव सोमयाजी यज्ञ-याग संपन्न कर सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। किंतु इनके पिता अभिराम देवराय ने यह विश्वास कर जैन धर्म स्वीकार किया था कि सब धर्मों में जैन ही श्रेष्ठ धर्म है। पंप ने अपनी रचना 'विक्रमार्जुन-विजय' (दे०) (जिसका दूसरा नाम 'पंपभारत' है) में बड़े गर्व के साथ इस विषय का वर्णन किया है। 941 ई० में इन्होंने 39 वर्ष की आयु में 'आदिपुराण' की रचना की। यह ग्रंथ केवल तीन महीने में पूर्ण हुआ। 'विक्रमार्जुन-विजय' छह महीनों में पूर्ण हुआ था। ये दो ग्रंथ इनकी 'यशो-दुंदुभि' के आधार हैं। चालुक्य राजा अरिकेसरी द्वितीय इनके आश्रयदाता थे। अरिकेसरी के अनुरोध से ही इन्होंने 'विक्रमार्जुन-विजय' की रचना 941 ई० में की। पंप की दृष्टि में 'भारत' लौकिक काव्य है और 'आदिपुराण' धार्मिक काव्य है। इनको 'कविताागुणार्णव', 'प्रसन्नगंभीर वचनरचनाचतुर', 'पुराणकवि', 'सुकविजनमनोमानसोत्तंस-हंस' और 'सरस्वती-मणिहार' जैसी उपाधियाँ प्राप्त थीं। इन्होंने अपने गुरु देवेंद्र मुनि के प्रति अत्यंत आदर और श्रद्धा-भाव प्रकट किया है।

पंप का 'आदिपुराण' (दे०) सोलह आश्वासों का चंपूकाव्य है। इसमें प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ की कथा का सुंदर वर्णन है। इसमें 'धर्म' और 'काव्यधर्म' दोनों का सुंदर समन्वय हुआ है। कन्नड के जैन-पुराणों में इसका अग्रस्थान है, परंतु विशुद्ध काव्य की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ 'विक्रमार्जुन-विजय' है। इसका आधार 'व्यास-महाभारत' (दे०) और जिनसेन-कृत 'महाभारत' है, परंतु इसमें इन्होंने प्रतिभाशाली ढंग से परिवर्तन किए हैं। पांडवों में अर्जुन का प्राधान्य है। अर्जुन और अरिकेसरी में अभेद स्थापित कर उन्होंने अर्जुन को कथानायक बनाया है। उनकी द्रौपदी पाँच पांडवों की पत्नी नहीं, वह अर्जुन की धर्मपत्नी है। अंत में अर्जुन और सुभद्रा का राज्याभिषेक होता है। ऐसे परिवर्तनों के बावजूद कवि की विलक्षण प्रतिभा के कारण कथा के प्रवाह में विशेष बाधा नहीं पड़ी है। कवि हित-मित-रचनाचतुर अथवा ध्वनिनिपुण है। उसके काव्य में अरिकेसरी का इतिहास भी ध्वनिरम्यता के साथ संगुंफित है। अतः वह काव्य की दृष्टि से ही नहीं, इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

'विक्रमार्जुन-विजय' (दे०) में चौदह आश्वास हैं। एक-एक आश्वास एक-एक कलाकुंज के समान है। उसमें चित्रित कतिपय पात्र साहित्यलोक में अविस्मरणीय हैं। कला-कल्पना, भाषा-भाव—सभी दृष्टियों से यह कन्नड का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है तथा गोम्मटेश्वर के विग्रह के समान आश्चर्यजनक कलाकृति है।

पंप भारत (क० कृ०)

दे० विक्रमार्जुनविजय।

पंप रामायण (क० कृ०)

'पंप रामायण' का रचयिता नागचंद्र है। उसने अपने आपको अभिनव पंप के नाम से पुकारा है। इसलिए उसका लिखा 'रामचंद्र चरित्र-पुराण' 'पंप रामायण' नाम से प्रसिद्ध है। नागचंद्र ग्यारहवीं शती के अंतिम भाग का प्रसिद्ध कवि है। उसकी जीवनी के बारे में बहुत थोड़ी बातें ज्ञात हैं। उसको चालुक्य और होयसळ दोनों वंशों के राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ होगा। उसने अपने धार्मिक ग्रंथ 'मल्लिनाथपुराण' में लिखा है कि मैंने विजय पुर (बीजापुर) को अलंकृत करने वाले एक मल्लि जिनेंद्र का मंदिर बनवाकर उसकी जीवनी कही है जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह एक धार्मिक और धनी व्यक्ति था।

'रामचन्द्रचरित-पुराण' अथवा 'पंप रामायण' 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) के आधार पर नहीं लिखी गई। यह जैन-साहित्य में प्रचलित रामायण-संप्रदायों में से विमल सूरी के प्राकृत-ग्रंथ 'पउमचरिउ' से प्रेरित है। उसने लिखा है, "मैं रामकथा का वर्णन अपूर्व ढंग से करूँगा। यह अपूर्व वर्णन उसकी रामायण की कथा और उसके मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण से स्पष्ट होता है। 'पंप रामायण' में राम रावण का वध नहीं करता क्योंकि यह अहिंसा के विरुद्ध है। लक्ष्मण ही रावण का वध करता है। रावण सीता का हरण किसी अशुभ वेला में कामदेव से प्रभावित होकर करता है पर सीता के पतिव्रत धर्म को देखकर अंत में पश्चात्ताप करता है। वह पंप के दुर्योधन के समान उदात्त और सद्गुणी है। राम और लक्ष्मण की अनेक पत्नियाँ हैं। पति-भक्ति के कारण मंदोदरी सीता को रावण की ओर मोहित होने के लिए प्रेरित करती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे उसके चरित्र में दोष आ गया है।

काव्य की दृष्टि से 'पंप रामायण' कन्नड की श्रेष्ठतम कृतियों में से एक है। यह उसके रूपक और उपमाओं से स्पष्ट है। रावण सीता को पुष्पक विमान में बिठाकर दिव्यसरोवरों आदि दिखाकर कहता है, "इंद्र के हाथी के दाँत उखाड़कर मैंने उससे अपना पलंग बनाया। हंस को मारकर उसके पंख भरकर दिग्गज जब पीठ दिखाकर भाग गए तो उनको छोड़े हुए गद्दों से मैंने शय्या बनाई···।" सीता पर आकाश पर स्याही मलने के समान उसका रंग नहीं चढ़ा। वह बोली, "गुणहीन के ऐश्वर्य से गुणियों की गरीबी क्या अच्छी नहीं", सीता का उज्ज्वल चरित्र दिखाते हुए कवि लिखता है कि मन में जैन पद और जिह्वा पर से पंच नमस्कार को दूर होने नहीं दिया क्या रत्न का दीपक हवा लगने से बुझ सकता है?"

पइन्ना (प्रकीर्णक) *(प्रा० कृ०)*

जैन-धर्म के स्फुट विषयों को लेकर लिखे गए ये ग्रंथ जैन आगमों (दे०) में कुछ बाद में सम्मिलित हुए। इनकी संख्या लगभग 30 है। किंतु 45 आगमों में अधिकतर 10 निम्नलिखित प्रकीर्णक माने जाते हैं— (1) चउसरण (चतुःशरण), वीरभद्रलिखित इस प्रकीर्णक में अर्हत् (दे०) सिद्ध, साधु और धर्म की शरणागति का वर्णन है। (2) आउरपच्चक्खाण (आतुर-प्रत्याख्यान) में मूर्खों और सिद्धों की मृत्यु का अंतर बतलाया गया है। प्रत्याख्या या परित्याग के द्वारा मृत्यु उत्तम बतलाई गई है। (3) भत्तपरिण्णा में भोजन का परित्याग, (4) संथार (संस्तार) में दर्भ शय्या का महत्व और (5) महा-पच्चक्खाण में त्याग-वृत्ति का उपदेश दिया गया है। (6) तंदुलवेयालिय (तंदुलवैचारिक) में भौतिक तथा शरीर-विज्ञान, गर्भावस्थिति, स्थान और काल के परिमाण, अस्थि तथा स्नायु-संख्या का महावीर और गोयम के संवाद-रूप में वर्णन हैं। (7) चंड-विज्झदय में गुरु-शिष्य का आचार-विचार और सामान्य अनुशासन वर्णित है। (8) देविंदत्थय (देवेंद्रस्तव) में विभिन्न देवराजों की यशो-गाथा गाई गई है। (9) गणिविज्जा—इसमें ज्योतिष-शास्त्र के विषय आए हैं। तिथि, नक्षत्र, करण, इत्यादि का वर्णन है। (10) वीरत्थय (वीरस्तव) में महावीर स्वामी की स्तुति की गई है।

पउम (पद्म) *(प्रा० पा०)*

ये पौराणिक शैली के प्राकृत महाकाव्य 'पउम चरिउ' के कथानायक हैं। जैन-साहित्य में 'राम' को इस नाम से अभिहित किया जाता है। कथा का आधार 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) ही है किंतु उसकी असंभव घटनाओं को निकाल कर जैन-धर्म के तत्वों का उनमें समावेश कर दिया गया है। प्रायः सभी पात्र जैन-धर्म की दीक्षा लेते हैं। दशरथ के ज्येष्ठ भ्राता अनंतरथ जैन महात्मा हैं। स्वयं पद्म अपने पिता के साथ उत्सवों में जैन-मंदिरों में पूजा करते हैं।

पउम चरिउ *(अप० कृ०)* [रचना-काल—आठवीं शती ई०]

'पउम चरिउ' स्वयंभू (दे०) द्वारा रचित 90 संधियों का काव्य है। यह पाँच कांडों में विभक्त है—विद्याधर कांड, अयोध्या कांड, सुंदर कांड, युद्ध कांड और उत्तर कांड। इसको कवि पूर्ण न कर पाया था। अंतिम आठ संधियाँ उसके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू ने लिखी हैं। इसकी रचना धनंजय के आश्रय में हुई थी।

'पउम चरिउ' या 'पद्म पुराण' शीर्षक-ग्रंथों में राम-कथा वर्णित है। रामकथा का जो रूप वाल्मीकि रामायण (दे०) में मिलता है उसका ठीक वही रूप जैन-पुराणों अथवा चरित-काव्यों में नहीं मिलता। रावण उनके यहाँ जिन का परमभक्त है, जिन की पूजा करता है, अतीव पवित्रात्मा है। सीता रावण की पुत्री है जिसे असंगल-कारिणी समझ कर रावण ने जन्म के बाद वन में छोड़ दिया था। रावण की हत्या लक्ष्मण ने की थी जिसके कारण उसे नरक जाना पड़ा था। राम और सीता दोनों अंत में जैन धर्म में दीक्षित हो जाते हैं।

'पउम चरिउ' में रामकथा का आरंभ लोक-प्रचलित कुछ शंकाओं के समाधान के साथ होता है। राम के सर्वशक्तिमान् होने पर रावण कैसे उनकी पत्नी को हर सका? वानरों का पर्वतों को उठाना, समुद्र का लाँघना कैसे संभव हो सका? इस प्रकार की नाना शंकाओं के समाधान के लिए गौतम गणधर कथा आरंभ करते हैं। सृष्टि-वर्णन, जंबु द्वीप की स्थिति, कुलकरों की उत्पत्ति, काल का उल्लेख करके अयोध्या में ऋषभदेव की उत्पत्ति का वर्णन है। इसके पश्चात् इक्ष्वाकु वंश, देवताओं, विद्या-धरों के वंशादि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् जैन-मान्यताओं के अनुसार राम-कथा आरंभ की गई है। कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सब प्रधान पात्र जिन-भक्त बताए गए हैं।

स्वयंभू ने 'पउम चरिउ' में संस्कृत-कवियों की परंपरा का अनुसरण करते हुए अनेक ऋतुओं का वर्णन किया है। वसंत-वर्णन, संध्या, समुद्र, नदी, वन आदि नाना प्राकृतिक दृश्यों के काव्योपयुक्त सुंदर चित्र अंकित किए गए हैं। रसात्मकता और सौंदर्य उत्पन्न करने के लिए कवि ने विभिन्न मर्मस्पर्शी भावों के चित्रण, प्राकृतिक दृश्यों और घटनाओं के वर्णन तथा वस्तु-व्यापार के संश्लिष्ट और प्रासंगिक निरूपण में पर्याप्त मौलिकता और धार्मिक रूढ़ियों से ऊपर उठ कर स्वतंत्रता का परिचय दिया है। स्वयंभू जल-क्रीड़ा-वर्णन में प्रसिद्ध हैं। विभिन्न वर्णनों, परंपराभुक्त उपमानों, अलंकारों और रूढ़िगत शैली का प्रयोग होते हुए कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और दृश्यों के नाना सूक्ष्म अंशों की पकड़ दृष्टिगत होती है।

ऐसे स्थल जहाँ कवि कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाता है, उसकी शैली में सरलता और सादगी पाई जाती है किंतु जहाँ वह प्रकृति के नाना दृश्यों का चित्रण करता है उसकी शैली अलंकृत हो जाती है।

इस कृति में वीर, शृंगार, करुण और शांत रसों की व्यंजना की गई है।

कृति में अनेक भाव-तरल स्थल हैं जिनकी सरस, सरल और अलंकृत भाषा में अभिव्यक्ति की गई है। भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों का समृद्ध रूप इस कृति में दृष्टिगत होता है।

पउमचरिउ *(प्रा० कृ०)*

यह जैन-साहित्य का रामचरित-काव्य है। इसके रचयिता विमलसूरि महावीर निर्वाण के 530 वर्ष बाद (60 ई० में) आचार्य राहु के शिष्य थे और इन्होंने पौराणिक शैली में 118 पर्वों में पद्म (राम) के चरित पर इस काव्य की रचना की। यद्यपि इसका आधार वाल्मीकि 'रामायण' (दे०) ही है किंतु लेखक ने 'रामायण' को अनेक असंभव और अविश्वसनीय घटनाओं से ओतप्रोत बताकर उसके प्रति अनास्था प्रकट की है और महावीर के प्रधान शिष्य गोयम द्वारा राजा सेनिय (बिम्बसार) को बतलाई हुई सत्य कथा के आधार पर इसकी रचना की है। प्रसिद्ध राम-कथा की अपेक्षा इसमें कुछ नवीनताएँ हैं। सभी प्रमुख पात्रों को जैन-धर्मावलंबी बतलाया गया है। रावण के एक आभूषण में मुख के नौ प्रतिबिंबों के आधार पर उसे दशमुख कहा गया है। वानर विद्याधर जाति के थे। सीता का जन्म भूमि से नहीं हुआ था। रावण जैन तीर्थाटन करता है और अनंतवीर्य से उपदेश ग्रहण करता है। दशरथ के बड़े भाई अनंतरथ जैन संन्यासी हो गए थे। स्वयं दशरथ अपने पुत्रों के साथ जिन देव की पूजा करते हैं। समस्त काव्य पौराणिक शैली में है जिसमें अंतःकथाएँ और धार्मिक प्रवचन गुँथे हुए हैं। ग्रंथ की रचना जैन महाराष्ट्री में आर्या छंदों में हुई है।

पउमसिरी चरिउ (पद्मश्रीचरित) *(अप० कृ०)*

'पउम सिरी चरिउ' चार संधियों का चरित काव्य है। इसके रचयिता दिव्यदृष्टि धाहिल (दे०) हैं।

कवि ने इस काव्य में पद्मश्री के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन किया है। यह काव्य धार्मिक आवरण से आवृत एक सरस प्रेम-कथा है। कवि ने इस काव्य का विषय ऐसे पात्र को बनाया है जो न तो पौराणिक है और न ऐतिहासिक। लेखक ने पद्मश्री की कथा से यह सूचित किया है कि मानव को पूर्वजन्म में किए गए कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, तथा सदाचारमय पुण्य-कर्मों द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

कवि ने अनेक भौगोलिक प्रदेशों का अलंकृत भाषा में वर्णन किया है। नाना प्रकृति-वर्णन नायक-नायिका के कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किए गए हैं— सूर्यास्त, चंद्रोदय, सूर्योदय, वसंत आदि के सरस वर्णन उपलब्ध होते हैं। इसमें रति, शोक और निर्वेद भावों के ही अधिक प्रसंग हैं। शृंगार रस के संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्ष चित्रित किए गए हैं। रूप-वर्णन प्रायः परंपराभुक्त है।

काव्य की भाषा सरल और चलती हुई है। इसमें संस्कृत-प्राकृत की प्राचीन धारा की ओर जाने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। बीच-बीच में मुहावरों, लोकोक्तियों और सुभाषितों के प्रयोग भी मिलते हैं।

काव्य में मुख्य रूप से पद्धड़िया छंद का प्रयोग हुआ है। एक ही कड़वक में दो छंदों का प्रयोग भी कुछ स्थलों पर दृष्टिगत होता है।

पगरव *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर गुजराती-कविता में आदिल मंसूरी के इस काव्य-संग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें मुक्तक, ग़जल तथा अन्य काव्य-रचनाएँ संगृहीत हैं। प्रयोगशीलता इन कविताओं की विशिष्टता है। जापानी काव्य-प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाइकू' का सफल प्रयोग इसमें देखा जा सकता है। काव्योचित विषय का काव्योचित प्रस्तुतीकरण तथा प्रतीक-योजना एवं बिंब-विधान की नव्यता से परिपूर्ण इस संग्रह में व्यक्ति की एकाकिता की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

पच्चमलयाळम् *(मल० पारि०)*

पच्चमलयाळम् शब्द का अर्थ है शुद्ध मलयाळम। 'मणिप्रवाल' (दे०) शैली में केरेली के कई कवियों ने अपनी कृतियाँ रचीं। कुछ समय के बाद कुछ कवियों ने सोचा कि शुद्ध मलयाळम भाषा के शब्दों में कविताओं की रचना करना और भी प्रभावोत्पादक है। यों सोचकर कुञ्जिक्कुट्टन् (दे०) तंपुरान् जैसे महाकवि इस पद्धति में कविताएँ रचने लगे। इसी पद्धति का नाम 'पच्चमलयाळम् प्रस्थानम्' हुआ। कुंटूर नारायण मेनन (दे०), ओटुबिल् कुञ्ञिक्कृष्ण मेनन (दे०) आदि ने इस शाखा को पुष्ट करने में बहुत योग दिया है। 'नालु भाषा काव्यङ्ङळ्' इस पद्धति का उत्तम काव्य-ग्रंथ है।

पटनायक, अनंत *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

श्री अनंत पटनायक का जन्म चणाहाट, पुरी में हुआ था। इनका लेखन समाजवादी चेतना-प्रधान है। प्रारंभ में ये स्वच्छंदतावादी साहित्य-चेतना से प्रभावित थे, किंतु बाद में बदलते युग-धर्म के साथ इन्होंने अपना मार्ग बदल लिया। इनकी भाषा और शैली में हमें उड़िया भाषा की आत्यंतिक निजी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। स्वतंत्र लेखन का जीवन अपनाकर इन्होंने निर्बाध रूप से साहित्य की जो सेवा की है, वह वस्तुतः स्तुत्य है। 'तर्पण करे आजि', 'शांति शिखा', 'रक्तशिखा', 'किंचित' (दे०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

पटनायक, काळिचरण *(उ० ले०)* [ज़न्म—1898 ई०]

काळिचरण पट्टनायक आधुनिक युग के प्रमुख नाटककार ही नहीं, अपितु कुशल गीतकार, संगीत-मर्मज्ञ, प्रतिभावान अभिनेता, नृत्य-विशारद और अत्यंत सफल निर्देशक भी हैं। इन्होंने नाटकों के आभिजात्य-गुण को दूर कर उन्हें जीवन की निकटता देकर उड़िया-नाट्य-साहित्य में एक नयी परंपरा स्थापित की है। बीस वर्ष तक उड़िया-रंगमंच पर इनका अधिकार रहा। आज के अधिकांश उच्चकोटि के कलाकारों के निर्माण का श्रेय इन्हीं को है।

काळिचरण का जन्म कटक ज़िले के बड़ंबागढ़ में हुआ था। बचपन से नृत्य, संगीत और अभिनय के प्रति अभिरुचि होने के कारण मैट्रिक के बाद से इन्होंने अपना ध्यान उधर लगा दिया। 1932 ई० में 'किशोर चंद्रानन चंपू' के अभिनय पर इन्हें पुरस्कार मिला। 1940 ई० में ओड़िशाये थियेटर्स की स्थापना की और अनेक सामाजिक नाटक प्रस्तुत किए।

रंगमंच की दृष्टि से उपयोगी नाटकों की रचना करने में काळिचरण अग्रणी हैं। इन्होंने अभिनय को सहज व सरल बनाया, रंगमंचीय संगीत को सुदृढ़ भूमिका दी, लोक-गीतों की धुन पर अनेक गीतों को बड़ी कलात्मकता से नाटक में संयोजित किया। इनके नाटकों के कथोपकथन अत्यंत स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन के अनुरूप हैं।

इन्होंने प्रायः तीस नाटक लिखे हैं। 'भात' (दे०) तथा 'परिवर्तन' (दे०) इनके अत्यंत प्रसिद्ध नाटक हैं और 'रक्तमाटी', 'फटा भुंई', 'गर्ल स्कूल', 'अभियान', 'चक्री', 'रक्तमंदार' आदि अन्य उल्लेखनीय नाटक हैं। नाट्यकला के विकास में काळिचरण का प्रदेय प्रशंसनीय है।

पटनायक, गोपाळकृष्ण *(उ० ले०)* [समय—1785-1856 ई०]

वैष्णव कवि एवं प्रसिद्ध गीतकार गोपाळकृष्ण पटनायक गंजाम ज़िले के पारलाखेमुंडी स्थान के निवासी थे। पिता का नाम बनवासी पटनायक था। गोपाळकृष्ण शुद्धाभक्ति मार्ग के अनुयायी थे। इनके गीत अपनी सजीवता, भावसंभार, भाषा-माधुरी और संगीतात्मकता के कारण जनप्रिय हैं।

इनका राधा-कृष्ण-प्रेम-चित्रण जितना स्वाभाविक है उतना ही मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक भी। अन्य कवियों की रचनाओं में राधा, कृष्ण, गोप, गोपियों की सत्ता मथुरा और वृंदावन (उत्तर प्रदेश) तक सीमित है, किंतु गोपाळकृष्ण के गीतों में वे उड़िया ग्रामीण समाज और प्राकृतिक परिवेश के साथ घुल-मिल गये हैं। नटखट कन्हैया की चंचल बालक्रीड़ाओं पर गोपाळकृष्ण के भाव-प्रवण अंतर का समस्त वात्सल्य उमड़ पड़ा है। सूर (दे०) के बाल-वर्णन के समान इनके ये चित्र भी अद्वितीय हैं। इन्होंने सैकड़ों गीतों की रचना की है, किंतु गीतों का अत्यल्प अंश ही 'गोपाळकृष्ण पदावली' (दे०) के रूप में आज उपलब्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटनायक, देवीप्रसन्न *(उ० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

डा० देवीप्रसन्न पटनायक (एम० ए०, पी-एच० डी०) का जन्म तिगिरिआ कटक में हुआ था। ये सुविख्यात भाषा-तत्त्वज्ञ हैं तथा आजकल सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन लैंग्वेजिज़, मैसूर के डायरेक्टर हैं। ये समीक्षक और निबंधकार हैं। 'कविलिपि' और 'साहित्य बीख्या' (दे०) इनकी आलोचनात्मक पुस्तकें हैं। विद्वान लेखक का विशाल अध्ययन सर्वत्र परिलक्षित होता है। भाषा एवं शैली विषय-वस्तु की गुरुता के अनुरूप हैं।

पटनायक, पठाणि *(उ० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

पठाणि पटनायक का जन्म गोलबोइ-पुरी में हुआ था। ये उच्चकोटि के समीक्षक हैं। इनकी तुलनात्मक आलोचना-दृष्टि अत्यंत संतुलित, पूर्वाग्रह से मुक्त, स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं तटस्थ है। उच्चकोटि की शिक्षा के लिए ये निबंध अत्यंत उपयोगी हैं। 'ओड़िआ साहित्यर भूमिका' इनके आलोचनात्मक निबंधों का संकलन है। तुलनात्मक भारतीय साहित्य पर भी इनका निबंध-संकलन प्रकाशित हो चुका है।

पटनायक, पद्मचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1887; मृत्यु—1955 ई०]

इनका जन्म पंचगा-पुरी में हुआ था और इन्होंने बी० ए०, बी० एल० तक शिक्षा प्राप्त की थी। प्रत्यक्ष रूप से 'सत्यवादी-युग' से संबंधित न होते हुए भी पद्मचरण पटनायक सत्यवादी-साहित्य (दे०)-चेतना से अनुप्राणित थे। व्यक्तिगत जीवन में ये स्वतंत्र चेतना के व्यक्ति थे और इनके साहित्य में भी यह चेतना प्रतिफलित हुई है। पद्मचरण मुख्यतः गीतिकार हैं। भाव की स्वच्छता, भाषा की कमनीयता इनके गीतों का निजी सौंदर्य है जो इनकी रचना 'कवितावली' की लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। इनका कोमल कवि-हृदय प्रकृति के सौंदर्य, अपने देश के इतिहास तथा जीवन की मार्मिक घटनाओं के प्रति अत्यंत संवेदनशील रहा है। जीवन की सामान्य से सामान्य वस्तुओं की काव्यिक महिमा से ये परिचित थे। 'पद्म पाखुड़ा' (दे०), 'सूर्यमुखी', 'सुनारदेश', 'आशा-मंजरी', 'स्वर्णरेणु', आदि इनके काव्य-संग्रह हैं। काव्य के अतिरिक्त इनकी गद्यरचनाएँ भी उच्च कोटि की हैं—'पारिवारिक प्रबंध' सशक्त निबंध-कृति है।

पटनायक, बसंत कुमारी *(उ० ले०)*

श्रीमती बसंतकुमारी पटनायक आधुनिक उड़िया साहित्य की एक प्रमुख उपन्यासकार हैं। इन्होंने यद्यपि कहानियाँ एवं एकांकी भी लिखे हैं, किंतु उपन्यास के क्षेत्र में इन्हें अधिक सफलता मिली है। इनका लोकप्रिय उपन्यास 'अमड़ा बाट' (दे०) चित्रपट पर भी अत्यंत सफल रहा है। नारी-जीवन की अनेक समस्याएँ नवीन रूप से इनकी रचनाओं में उभर कर आई हैं। लेखिका ने नारी-चरित्र की जटिलता को युगीन संदर्भ में समझने की चेष्टा की है। चरित्रोद्घाटन और सामान्य जीवन में अनन्य वैशिष्ट्य की अवतारणा करने में इन्होंने कला-कुशलता का परिचय दिया है। 'पालटा ढेउ', 'सभ्यतार साज' (कहानी), 'जुआर भट्ट' (एकांकी), 'चितानल' (काव्य) आदि इनकी रचनाएँ हैं। इनके कहने का ढंग अत्यंत स्वाभाविक है।

पटनायक, बिच्छंदचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

श्री बिच्छंदचरण पटनायक मेधावी छात्र, विद्वान लेखक, अंतर्दृष्टि-संपन्न संकलनकर्ता, कुशल संपादक तथा कवि हैं। सर्वोपरि वे भंज (दे०)-साहित्य के अग्रगण्य व्याख्याता हैं।

इनका जन्म-स्थान खुरधा (पुरी) है। इनकी बाल्यावस्था में ही इनके पिता गोलोककृष्ण पटनायक अपनी संपत्ति से हाथ धो बैठे थे। दैहिक अक्षमता (लँगड़ापन) और अर्थाभाव का दृढ़ता के साथ सामना करते हुए इन्होंने रेवेंसा कालेज (कटक) से अँग्रेजी में बी० ए० आनर्स किया तथा पूरे उड़ीसा राज्य में प्रथम आए। फिर बी० एल० किया और पुरी में शिक्षक रहे। इन्होंने 'प्राची' के संपादक आर्तवल्लभ महांति के साथ उड़िया ग्रंथों का प्रमाणिक संस्करण प्रस्तुत किया और भाषा-कोश के संपादन में गोपाल प्रहराज की सहायता की है। अँग्रेज़ी में इन्होंने 'वैतरिणी' तथा उड़िया में 'जागरण' पत्रिका का संपादन किया। कटक में कुछ दिनों तक वकालत की और फिर लोक-संपर्क विभाग में प्रोडक्शन आफ़िसर भी रहे।

इन्होंने तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' (दे०) एवं 'विनयपत्रिका' (दे०) का उड़िया में अनुवाद किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'सेक्सपियर कहानी', 'कलिंग कवि-सम्राट ओ कलिंग भारती' (दे०), 'कवि सम्राट उपेंद्र भंज सोविनेर' और 'ग्लिम्प्सेज़ इन टु कवि सूर्य' आदि की रचना के द्वारा इन्होंने उड़िया-साहित्य को समृद्ध किया है।

पांडित्यपूर्ण शैली और क्लिष्ट भाषा के कारण ये जनसाधारण के लिए अल्प-परिचित ही रहे। भंज-साहित्य को लोकप्रिय बनाने के लिए इन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। भंज-साहित्य के प्रचार के लिए इन्होंने 'कलिंग-भारती' की स्थापना की है जिसके तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष भंज-जयंती मनाई जाती है।

पटनायक, बिभूतिभूषण *(उ० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

श्री बिभूतिभूषण पटनायक का जन्म डिंगेश्वर (कटक) में हुआ था। ये तरुण पीढ़ी के सर्वाधिक प्रिय उपन्यासकार हैं। इन्होंने विपुल मात्रा में उपन्यासों की रचना की है। विभिन्न सामाजिक समस्याएँ इनके उपन्यासों की विषय-वस्तु हैं। इनके उपन्यास सुखपाठ्य एवं मनोरंजक हैं। जीवन के गंभीर प्रश्न इनमें उभरकर नहीं आए हैं। भाषा व शैली सहज और सुबोध हैं। 'शेष बसंत', 'प्रेम ओ पृथ्वी', 'बधू-निरूपमा' (दे०) आदि उपन्यास हैं। 'उन्नीस सौ पचपन' कहानी-संग्रह हैं। 'सांप्रतिक साहित्य' आलोचना-ग्रंथ है।

पटनायक, बैकुंठनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

श्री बैकुंठनाथ पटनायक सबुजगोष्ठी (दे० सबुज-साहित्य) के रहस्यवादी कवि हैं। आरंभिक रचनाओं में इनकी नैसर्गिक दिगंत-प्रसारी कल्पना, भावों के निर्बंध प्रवाह तथा उच्चकोटि की काव्य-प्रतिभा को देखकर उड़िया-साहित्य ने जिस महान् कवि की परिकल्पना की थी उसे इनकी परवर्ती रचनाओं के एकांत बुद्धि-विलास ने नष्ट कर दिया।

इनका जन्म बड़बागढ़ में हुआ था। 'मृत्तिका-दर्शन' (दे०) इनकी सर्वोत्तम रचना है। जिसमें संतान-वियोग से व्यथित पितृहृदय की निबिड़ वैयक्तिक वेदना ने सार्वभौमिक धरातल का स्पर्श कर दर्शन का गंभीर स्वरूप ले लिया है। 'काव्य-संचयन' इनकी दूसरी कृति है। 'मुक्तिपथे' (नाटक) में नारी-स्वतंत्रता का प्रतिपादन हुआ है। इनकी कतिपय रचनाएँ यथार्थवादी हैं। उनमें इन्होंने अपने युग की ज्वलंत समस्याओं को रूपायित किया है।

पटनायक, डा० भिखारीचरण *(उ० ले०)*

कवि व नाटककार डा० भिखारीचरण अपनी स्वतंत्र चिंतना, मौलिकता, निर्भयता और सरस व्यंग्य के कारण उड़िया-साहित्य में सुपरिचित हैं। इनका जन्म चअँपुर, केंद्रापड़ा में श्री साधुचरण महांति के यहाँ हुआ था, पर बाद में ब्रह्मपुर निवासी जगन्नाथ पटनायक ने इन्हें गोद ले लिया था।

कलकत्ता से वकालत पास कर ये कटक हाई कोर्ट में वकालत करने लगे। 'कटक-विजय' (दे०) इनका प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। इन्होंने अनेक सामाजिक, किंवदंतीमूलक काल्पनिक और ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं जिनमें नाट्य-परंपरा का सम्यक् रूप से पालन हुआ है। 'संसार चित्र', 'नंदिकेश्वरी', 'रत्नमाली', 'सुशीला', 'निरुपमा', 'राजा पुरुषोत्तमदेव' इनकी नाट्य-कृतियाँ हैं। 'उत्कल-साहित्य' पत्रिका में इनकी कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। 'गीत-लहर' में स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित कविताएँ संकलित हैं।

वकालत छोड़ कर इन्होंने अपना जीवन कुटीर-शिल्प की उन्नति में लगा दिया। चार भागों में प्रकाशित कुटीर-शिल्प पर इनकी पुस्तक 'गृह-शिल्प' इस क्षेत्र में अपने ढंग का मौलिक ग्रंथ है।

पटनायक, मदन *(उ० पा०)*

नित्यानंद महापात्र (दे०) ने अपने सामाजिक उपन्यास 'हिड़माटी' (दे०) में बीसवीं शती के प्रारंभ में प्रकट होने वाली एक सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला है। उपन्यास का मुख्य पात्र मदन पटनायक ज़मींदार है—समाज के अत्याचार का प्रतीक। लेखक का मंतव्य है कि—"उच्चवर्ग के आदर्श हैं मदन पटनायक। ज़मींदार हुजूर हैं। कायस्थ की संतान हैं, लहर गिन कर भी पैसा कमा सकते हैं। उनका जन्म हुआ है दुनिया को ठगने के लिए।"

ज़मींदारी व्यवस्था का प्रतीक मदन पटनायक निरंकुश ऐश्वर्य का उपयोग नहीं कर सका है। इसकी मृत्यु के विषय में लेखक ने एक प्रहेलिका की सृष्टि की है।

पटनायक, राजकिशोर *(उ० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

इनका जन्म कलकत्ता में हुआ था। संप्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराजकिशोर बहिन वसंत कुमारी पटनायक के साथ प्रकाशन-कार्य में संलग्न हैं। एडवोकेट राजकिशोर पटनायक उड़िया के परिचित उपन्यासकार हैं। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'पंजुरी परवी', 'सिंदुरगार', 'असरंति', 'भसामेघ', 'संजबती', 'चलाबाट' (दे०), जिनमें सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण की प्रवृत्ति मिलती है। 1947 ई० के पूर्व के उपन्यासकारों एवं कहानीकारों में इनका विशेष स्थान है। स्वाधीनता-आंदोलन, नवजागरण, विभिन्न राजनीतिक मतवाद आदि के प्रचार के फलस्वरूप प्रबुद्ध वर्ग के मन में जिस विद्रोह, संशय और अनिश्चितता की सृष्टि हुई थी, उसकी अभिव्यक्ति इनकी कहानियों में मिलती है। 'निशाणरखुंट', 'शालिग्राम' आदि इनके महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह हैं।

पटल *(उ० पारि०)*

तांत्रिक ग्रंथों के विभिन्न अंशों को सर्ग, अध्याय को परिच्छेद न कहकर 'पटल' कहा जाता है। ग्रंथ का नाम पटल की संख्या के अनुसार 'दशपटल', 'चबीस पटल' आदि रखा जाता है। पटल ग्रंथ की विषय-वस्तु गीता, संहिता के समान होती है। अच्युतानंद दास (दे०) की पटल रचनाएँ (छयालीश, चबीस, दशपटल) आदि सुप्रसिद्ध हैं।

पटवा, चिनुभाई भोगीलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

चिनुभाई पटवा की प्राथमिक शिक्षा अहमदाबाद में हुई। बी० ए० इन्होंने बंबई के एलफ़िस्टन कालेज से पास किया। संप्रति लाइफ़ इंश्योरेंस कारपोरेशन, अहमदाबाद, में एसिस्टेंट मैनेजर हैं। इनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं: 'शकुंतलानुं भूत' (एकांकी नाटक-संग्रह); 'नवोढ़ा' (कहानी-संग्रह); 'पानसोपारी', 'फिलसफियाणी', 'चालो सजोड़े सुखी थइए', 'अमे अने तमे', 'साये बेसीने वांचीए', 'हलवुं गांभीर्य', 'गोरख अने मच्छिंद्र', 'फिलसूफने पूछो', 'सन्नारियो ने सज्जनो', 'अवले खूणे थी' (ललित निबंध-संग्रह)। ललित निबंधों के साथ इनकी जो सबसे सफल कृति मानी गई है वह 'शकुंतलानुं भूत' है जिसे गुजराती पुस्तक-प्रतियोगिता में पारिताषिक भी मिल चुका है। सहज जीवन से निस्सृत, तीक्ष्ण बुद्धि से समन्वित और अनायास रूप में लिपिबद्ध इनके ललित निबंध भी गुजराती वाचकों में अत्यंत प्रीतिपात्र बने हैं। इस प्रकार के निबंधों को लिख कर पटवा जी ने हास्य-साहित्य को निस्संदेह समृद्ध किया है।

पटिच्चसमुप्पाद (सं०—**प्रतीत्यसमुत्पाद**) *(पा० पारि०)*

बौद्ध दर्शन का यह अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसके अनुसार प्रत्येक वस्तु क्षणिक, परिवर्तनशील तथा सोपाधिक है। जल की लहरों के समान और दीपज्वाला के समान एक वस्तु से दूसरी वस्तु उत्पन्न होती रहती है। सभी वस्तुएँ कालजन्य हैं और दूसरी वस्तु का कारण बनती हैं। वस्तु में दूसरी वस्तु के उत्पादन के जो तत्त्व होते हैं उन्हें बौद्ध लोग वस्तु-धर्म के रूप में मान्यता देते हैं। वस्तु प्रथम क्षण में उत्पन्न होती है और दूसरी वस्तु को उत्पन्न कर स्वयं समाप्त हो जाती है। अनेक वस्तुओं की परंपरा निरंतरता का भ्रम उत्पन्न करती है। भगवान् बुद्ध ने दुःख की कालता का विश्लेषण करने में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। अविद्या से संस्कार, उससे विज्ञान (चेतना), उससे नामरूप तथा उसी क्रम से षडायतन (छह इंद्रियाँ), स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भाव, जाति (पुनर्जन्म) और जरामरण उत्पन्न होते हैं। अविद्या आदि कारणों के निरोध से संस्कार इत्यादि कार्य समाप्त हो जाते हैं जिससे अंत में जरामरण-रूप दुःख-जाल से छुटकारा मिल जाता है। यह मध्यमार्ग है क्योंकि इसमें किसी वस्तु को न तो चिरंतन माना जाता है और न सर्वथा नश्वर। किसी भी वस्तु की परंपरा समाप्त नहीं होती।

पटेल, पन्नालाल *(गु० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

आधुनिक गुजराती-साहित्य में एक सफल उपन्यासकार एवं कहानी-लेखक के रूप में श्री पन्नालाल पटेल का गौरवपूर्ण स्थान है।

उपन्यास: 'मळेला जीव', 'वळामणां', 'मानवी नी भवाई'; **कहानी-संग्रह**: 'जीवोदांड', 'सुख-दुख नां साथी', 'जिंदगी ना खेल', 'लख चौरासी', 'साचां समणां', 'पानेतर नारंग', 'धात्रक ने कांठे', 'अजबमानवी' आदि; **नाटक**: 'जमाईराज'।

पन्नालाल के उपन्यासों में 'मळेला जीव' (दे०) और कहानियों में 'पीठीनुं-पडीकुं' सर्वोत्तम रचनाएँ हैं। ग्राम-जीवन की यथार्थता का सुंदरतम निरूपण, ग्रामीण जनों की भीरुता, अज्ञान, दरिद्रता, मानवता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभिमान, उदारता, आदि का सफल अंकन व आंचलिक परिवेश का कलात्मक प्रस्तुतीकरण इनकी उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। 'मळेला जीव' में कानजी और जीवी के प्रगाढ़ प्रणय की असफलता का सशक्त निरूपण है। 'मानवी नी भवाई' में पारिवारिक समस्या का निरूपण है। 'वळामणां' में एक ग्रामकन्या का धरती-प्रेम चित्रित है। 'यौवन सुरुभि' और 'भीरु साथी' में नगर-जीवन का आलेखन है।

इनकी कहानियों में मर्मस्पर्शी कारुण्य व अभावग्रस्त जीवन की विभीषिका का चित्र अंकित है। समस्याएँ इनमें स्वतः उठती हैं। नगर-जीवन की अपेक्षा ग्राम्य जीवन के अंकन में ये विशेष सफल हुए हैं। इनके उपन्यासों का वस्तु-निरूपण सुश्लिष्ट, पात्र-सृष्टि सजीव, वर्णन बड़े रोचक तथा वातावरण यथासंभव यथार्थ हैं।

गुजराती के कथा-साहित्य में—विशेषतः आंचलिक उपन्यासकार व कहानीकार के रूप में—पन्नालाल का अप्रतिम स्थान है।

पटेल, पीतांबर *(गु० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

इनका जन्म उत्तर गुजरात के महेसाणा ज़िले के शैलावी गाँव में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा शैलावी, कड़ी और अहमदाबाद में हुई थी। इन्होंने 1942 ई० में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

1956 ई० से तीन वर्ष तक इन्होंने आल इंडिया रेडियो में काम किया। संप्रति ये दैनिक 'संदेश' के संपादकीय विभाग में हैं और 'संदेश' परिवार की एक पत्रिका के प्रमुख संपादक भी हैं।

'रसियो जीव' (उपन्यास) से 'आठमो कोठो' (लेखन चल रहा है) तक की साहित्य-यात्रा में इन्होंने 11 उपन्यास तथा 16 कहानी-संग्रहों की रचना की है। 1955 ई० में 'जन्मभूमि' तथा 'हैराल्ड ट्रिब्युनल' द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में इनकी कहानी सर्वश्रेष्ठ घोषित की गई थी। बंबई तथा गुजरात सरकार की ओर से इनकी सात पुस्तकों को तथा भारत सरकार की ओर से इनकी दो कृतियों को पारितोषिक मिल चुका है।

'खेतर ने खोळे' (खेत की गोद में) इनकी सर्वाधिक सफल कृति है। इसमें तथा इनके समग्र लेखन में प्रमुखतः उत्तर गुजरात का चित्रण हुआ है। इनका साहित्य-जीवन मांगल्य की शुभ दृष्टि से अनुप्राणित है। इन पर महात्मा जी की लोक-सेवा का प्रभाव है तथा जीवन का आलेखन करना इनका प्रिय विषय है। समाज-सेवा तथा पत्रकारिता का प्रभाव भी इनके लेखन पर पड़ा है। प्रवर्तमान रंगमंचीय नाटक के ये समर्थ आलोचक हैं।

पट्टिनत्तार *(त० ले०)* [समय—नवीं शती ई०]

ये प्रसिद्ध कवि तथा विरागी संत थे। संन्यासी होने के पूर्व ये काविरि-प्-पूंपट्टणम्' नामक विख्यात कावेरी नदी के मुहाने में स्थित धनी नगर में—जो अब समुद्र में डूब गया है—बड़े व्यापारी थे। जब इनका एकमात्र पुत्र युवावस्था में अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया तो इन्होंने किसी ग़रीब बालक को दत्तक पुत्र बना लिया। वह पुत्र जहाज़ों में देशांतर जाकर व्यापार करके प्रभूत धन का स्वामी बना। एक दिन उस पुत्र ने अपनी माँ को एक छोटा संदूक देकर सुरक्षित रखने को कहा और चला गया। इसके बाद वह फिर कभी नहीं लौटा। ये दुखी हुए; उसके दिए संदूक को खोलकर जब देखा तो उसमें एक टूटी सुई थी और ताड़-पत्र का एक छोटा टुकड़ा पड़ा था। उस ताड़-पत्र पर लिखा था—'मरते समय यह सुई भी साथ न जाएगी'। इससे इनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपनी समस्त धनराशि ग़रीबों में बाँटकर स्वयं भिक्षुक बन कर घर से निकल गए। भिक्षाटन करते हुए, भगवान की उपासना करते हुए और लोगों को उपदेश देते हुए ये भ्रमण करते रहे; अंत में मद्रास के निकट एक स्थान में आकर रहने लगे। यहीं पर इन्होंने अंतिम समाधि प्राप्त की।

पट्टिनत्तार के लिखित अनेक ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। इनकी कविता के विषय हैं: शिवभक्ति तथा संसार के प्रति विरक्ति। ऐसे विरक्तिभावपूर्ण पद कदाचित् और किसी तमिल कवि ने इतनी प्रभावोत्पादक शैली में नहीं लिखे हैं—यहाँ तक कि इनकी कृतियों को घर में रखना कभी वर्जित माना जाता था। लोगों को यह डर था कि इनके पढ़ने से परिवार के सदस्य विरागी बन जाएँगे। इनकी भाषा आलंकारिक किंतु सरल होती है। नाव, समुद्र, सिकता आदि के शब्द बार-बार आते हैं। अनेक कहावतें तथा मुहावरे तथा लाक्षणिक प्रयोग इनकी कृतियों में प्राप्त होते हैं।

पट्टी *(पं० पारि०)*

यह मध्यकालीन पंजाबी-काव्य का एक शैली-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत रूप-विशेष है जिसमें क्रमानुसार वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से आरंभ होने वाले पद्यों का समुच्चय होता है। उदाहरणत: 'सस्सै सोइ सृष्टि जिन साजी' (गु० ग्रं० सा० आसा म० 1) ('स' से आरंभ)

'पट्टी' को फ़ारसी के 'सीहरफ़ी' (दे०) अथवा हिंदी के 'अखरावट' काव्यरूप का पर्याय माना जा सकता है। पंजाबी में इसी प्रकार का एक अन्य काव्य-रूप 'बावन अक्खरी' (दे०) भी मध्यकाल में प्रचलित रहा है। किंतु दोनों में सूक्ष्म अंतर यह है कि 'पट्टी' में अधिकांशत: 'शुभ उपदेश' ही वर्णित होते हैं जबकि 'बावन-अक्खरी' में विविध विषयों का निरूपण संभव है।

पट्टुक्कोट्टै कल्याणसुंदरम् *(त० ले०)* [जन्म—1930 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

इनका जन्म तंजौर ज़िले के पट्टुक्कोट्टै नामक स्थान में हुआ। वहीं इन्होंने आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। भारतीदासन (दे०) के संपर्क में आने के उपरांत ये प्रसिद्ध कवि के रूप में प्रस्फुटित हुए। इन्होंने मज़दूरों और कृषिकार-संघ के आंदोलनों और साम्यवादी दल के क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लिया। उसी समय इन्हें सामान्य जनता के जीवन से संबंधित नाटक लिखने का अवसर मिला। नाटकों के लिए रचित इनके कुछ गीत और प्रगीत बहुत प्रसिद्ध हुए। अपने गीतों के द्वारा इन्होंने छंदों के एक नवीन रूप की सृष्टि की। श्री कल्याणसुंदरम् के कृतित्व पर साम्यवादी विचारधारा की छाप स्पष्ट है। इनकी गणना इस शती के उत्तर भाग के प्रमुख कवियों में होती है।

पडिक्कासुप्पुलवर् *(त० ले०)* [जन्म—1686 ई०; मृत्यु—1723 ई०]

ये 'तोण्टै मण्टलम्' नामक तमिल प्रांत के उत्तरी भाग के रहने वाले थे। इसी भूभाग में इन्होंने कवि और आश्रयदाता दोनों पर प्रचलित लोकवार्ताओं को 'तोणटैमणटल शतकम्' नामक 'शतक' पद्य-रचना में प्रस्तुत किया है। सौ पद्यों वाला यह ग्रंथ तत्कालीन स्थितियों की जानकारी के लिए बहुत उपयोगी है। इनके अपने आश्रयदाताओं में 'माण्टूर् कत्तूरि मुतलियार्' रामनातिपुरम् के 'सेतुपति' राजा तथा इसलामी प्रभु 'चीतक्काति' थे। इनके बारे में इन्होंने अनेक स्फुट पद्य रचे हैं। विशेष रूप से 'चीतक्काति' के देहावसान पर इनकी शोकाकुल उक्ति कि "मरकर स्वर्ग शासन करने वाले 'चीतक्काति' के लौटे बिना कविगण जीवन चलाने में असमर्थ होंगे" प्रसिद्ध है। इनकी पद्यरचना की विशेषता 'चंतम्' की योजना है—यानी प्राश और गेयता-युक्त लय के विशिष्ट विधान की उपलब्धि। इनका एक प्रचलित नीति-ग्रंथ 'तण्टलैयार् शतकम्' है जिसके सौ पद्य नीतिपरक तथ्यों को अनुभव के संदर्भ में काव्योचित ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

पण लक्षांत कोण घेतो *(म० कृ०)*

इस शीर्षक का अर्थ है—'ध्यान कौन देता है'। मराठी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हरिनारायण आपटे (दे०) का यह सर्वोत्कृष्ट सामाजिक उपन्यास है। इसमें तत्कालीन महाराष्ट्र-समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति तथा अन्य सामाजिक समस्याओं—पुरानी और नयी पीढ़ी का संघर्ष, बाल-विवाह, सम्मिलित परिवार में विधवा को मिलने वाले कष्ट, अकालमातृत्व, पति के अत्याचार, स्त्रियों की अशिक्षा, दहेज, धर्माडंबर, अंधविश्वास आदि का यथार्थ चित्रण है। लेखक ने बंबई के कुछ प्रगतिशील दंपतियों के माध्यम से युवक-युवती-वर्ग की सामाजिक रूढ़ियाँ तोड़ने और प्रगति-पथ पर बढ़ने का उद्बोधन भी किया है। बाल-मनोविज्ञान का जैसा सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण इसमें है, वैसा तत्कालीन मराठी उपन्यासों में नहीं मिलता। आत्मचरितात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास लेखक के कथानक, पात्र और परिस्थितियों से तद्रूप हो जाने के कारण अत्यंत कलात्मक बन पड़ा है। इसकी नायिका यमुना यदि तत्कालीन मराठी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है तो शंकर मामंजी उन कठोर-हृदय, स्वार्थी, ढोंगी और दुष्ट पुरुषों का, जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए घोर-से-घोर पाप करने में भी संकोच नहीं करते। पर ये तथा अन्य पात्र वर्ग मात्र नहीं हैं, उनमें अपना निजी वैशिष्ट्य भी है और वे स्थिर न होकर गतिशील हैं। घरेलू भाषा का प्रयोग उपन्यास को और अधिक स्वाभाविकता प्रदान करता है।

पणिक्कर, के० एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

कावालम् माधवप्पणिक्कर का जन्म आलप्पी के पास कावालम् गाँव में हुआ। सरदार के० एम०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पणिक्कर की प्रतिभा बहुमुखी थी। इतिहासकार एवं प्रशासक का रुचि-वैविध्य साहित्यकार पणिक्कर पर अपना घातक प्रभाव नहीं डाल सका।

इनकी कविता का प्रारंभ स्वच्छंद द्राविड़ी छंद और अँग्रेज़ी प्रगीतों की नकल से हुआ था। तो भी न जाने क्यों, इनकी मानसिक प्रवृत्ति संस्कृत-छंद और रूढ़ि-बद्ध विषयों की तरफ़ उन्मुख हुई, प्राचीन शृंगारिक रुचि के ग्रंथ 'प्रेमगीति', 'बालिकामतम्' और 'चाटूक्तिमुक्तावली' इसके उदाहरण हैं। संस्कृत के 'कुमारसंभवम्' (दे०) और अँग्रेज़ी की 'रूबाइयात' का अनुवाद इनकी मध्य-मार्ग-वृत्ति का प्रमाण है। विद्वानों का मत है कि युगानुकूलता के अभाववश ही इनकी काव्य-रचनाएँ कम लोकप्रिय हुईं।

ऐतिहासिक उपन्यास का क्षेत्र दूसरी दिशा है जिसमें पणिक्कर की प्रतिभा फली-फूली। ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह करते हुए इन्होंने जो उपन्यास रचे उनमें प्रमुख हैं—'परंकिप्पटयालि', 'केरलसिंहम्' (दे०) और 'कल्याणमल्'। 'केरलसिंहम्' स्वाधीनता-प्रेमी पषश्शिराजा की वीरगाथा पर आधारित है। 'कल्याणमल्' मुगल शासन की पृष्ठभूमि पर लिखी हुई रचना है। उपन्यासों के इतिहासकार सरदार पणिक्कर के नाम का सादर उल्लेख करते हैं।

पणिक्कर, वि० सि० बालकृष्ण *(मल० ले०)* [समय—1812 ई०-1915 ई०]

संस्कृत, मलयाळम, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं के पंडित। अल्पायु में ही सुंदर भाषा में गद्य लिखना आरंभ किया। चौदहवें वर्ष में 'मानविक्रमीयम्' नामक एक अलंकार-ग्रंथ लिखकर गुरु-दक्षिणा के तौर पर अपने गुरुदेव तथा देश-शासक 'एहन तंपुरान' को समर्पित किया। संपादन-कला में कुशलता पाने के बाद 'केरलचिंतामणि', 'चक्रवर्त्ति' जैसे समाचार-पत्रों के संपादक के रूप में काम करते रहे। इनकी रचनाओं में 'मानविक्रमीयम्', 'कुमारस्तोत्रमाला', 'कुमारचरित्रम्' नाटक; 'नागानंदम्', 'साम्राज्य-गीता', 'मंकि गीता', 'ओरु विलापम्' (दे०) 'विश्वरूपम्', आदि सोलह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

'ओरु विलापम्' खंडकाव्य विश्व-साहित्य में परिगणनीय है। शब्द-चयन, सरसता एवं गांभीर्य आदि गुणों से यह कृति इनके यश का सबल आधार है। 'साम्राज्य गीता' के अध्ययन से लगता है कि ये लोकमान्य तिलक के आदर्शों से प्रभावित हुए थे। 'विश्वरूपम्' (दे०) श्री पणिक्कर का लिखा एक खंडकाव्य है जो खंडकाव्यों में उत्कृष्ट माना जाता है।

पतंजलि *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—205 ई०]

कतिपय विद्वान् योगदर्शन के लेखक पतंजलि एवं वैयाकरण पतंजलि को पृथक्-पृथक् मानते हैं। पतंजलि के नाम से दो रचनाएँ मिलती हैं—एक 'योगसूत्र' (दे०) और दूसरी 'महाभाष्य' (दे०)। इस स्थान पर योगसूत्र-कार पतंजलि विवेच्य हैं। 'योगसूत्र' पर व्यास (दे० व्यास, बादरायण)-भाष्य, वाचस्पति मिश्र (दे०) का 'तत्त्व-वैशारदी', विज्ञानभिक्षु (दे०) का 'योगवार्तिक', भोज (दे०) देव की 'राज मार्त्तंड' नामक वृत्ति, नारायणतीर्थ का 'योगसिद्धांत चंद्रिका' तथा 'सूत्रार्थबोधिनी' एवं रामानंद सरस्वती का 'योगमणिप्रभा' आदि टीका-ग्रंथ मिलते हैं।

योगदर्शन के अंतर्गत पतंजलि के विवेचन की दो दृष्टियाँ प्रमुख हैं—एक दार्शनिक दृष्टि और दूसरी साधना-दृष्टि। यह कहना भी संगत होगा कि योगदर्शन की दार्शनिक दृष्टि गौण ही है, प्रधानतया योगदर्शन की दृष्टि साधनात्मक ही है। इसीलिए योगदर्शन में पतंजलि ने विशेषकर चित्तवृत्ति के निरोध पर बल दिया है। पतंजलि का कथन है कि जब तक चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं होता, तब तक पुरुष (जीव) अपने शुद्ध रूप (कैवल्य) में स्थित नहीं होता। चित्त का विश्लेषण करते हुए पतंजलि ने चित्त की प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति—ये 5 वृत्तियाँ मानी हैं। पतंजलि के अनुसार ईश्वर को एक विशेष प्रकार का पुरुष बतलाया गया है। पुरुषविशेष ईश्वर राग, द्वेष आदि मतों, धर्म, अधर्म आदि कर्मों; कर्मविपाकों तथा संस्कारों से निर्लेप है। जगत् की सत्ता पतंजलि ने भोग तथा मोक्ष के लिए मानी है। इसके अतिरिक्त पतंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि—ये आठ योग के अंग स्वीकार किए हैं।

प्रयोगात्मक दर्शन के विचार से पतंजलि की दार्शनिक देन परम अद्भुत है। साथ ही, शून्यवाद एवं विज्ञानवाद का खंडन करके पतंजलि ने आस्तिकवाद की विचारधारा को पुष्ट किया है, यह भी निःसंकोच स्वीकार्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतरस (उर्दू० ले०)

'पतरस' उर्दू के हास्य-व्यंग्य शैली के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। इनका जन्म पेशावर में 1898 ई० में हुआ था। ये अँग्रेज़ी-साहित्य के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। ये हँसाने का प्रयत्न नहीं करते; अपनी कहानियों एवं निबंधों में मनोरंजन नहीं बल्कि सुधार करना चाहते हैं। ये मानव की दुर्बलताओं से भली भाँति परिचित हैं और उन दुर्बलताओं के प्रति हास्य के माध्यम से पाठकों की सहानुभूति जगाने में अत्यंत सफल हैं।

पतरस के चरित्र-चित्रण से मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रमाण मिलता है। ये मानव-स्वभाव की सब छोटी-छोटी बातों पर दृष्टि रखते हैं और मानव के सब प्रकार के हाव-भावों से परिचित हैं। पतरस कभी-कभी शब्द-चयन तथा वाक्यों की बनावट से भी हास्य का सृजन करते हैं। सहजता तथा सत्यता इनके कथानकों की विशेषता है।

भाषा प्रवाहशील एवं सरल है। कहीं-कहीं पंजाबी मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। मुहावरों तथा भाषा के कलापूर्ण प्रयोगों से भी इन्होंने रसोत्पत्ति की है। 'मज़ामीन-ए-पतरस' (दे०) इनका निबंध-संग्रह है। 'होस्टल', 'कुत्ते', 'लाहौर का जुग्राफ़िया', 'कुत्तों का मुशायरा' आदि इनके प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यपूर्ण लेख हैं।

पत्तुप्पाट्टु (त० कृ०) [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

संघकालीन दस दीर्घ कविताओं का संग्रह 'पत्तुप्पाट्टु' कहलाता है। इन रचनाओं और उनके रचयिताओं के नाम तथा उनमें प्राप्त विवरण इस प्रकार हैं—'तिरुमुरुकाट्रुप्पडै' (नक्कीरर्—दे०)—भगवान कार्तिकेय की स्तुति में रचित इस कृति में उनसे संबद्ध विभिन्न तीर्थस्थानों का रोचक वर्णन प्राप्त होता है। कवि ने एक भगवान की स्तुति नाना रूपों में करते हुए उन रूपों की समानता का प्रतिपादन किया है।

नक्कीरर् का कहना है कि भगवान स्वयं भक्त के पास चले आते हैं—भक्त भगवान के पास नहीं जाता। 'पोरुनराट्रुप्पडै' (मुडत्ताम-कण्णियार्) इसमें चोल राजा करिकालन् की साहित्य-मर्मज्ञता और उसके द्वारा कवियों के स्वागत-सत्कार का वर्णन है। 'शिरुपाणाट्रुप्पडै' (नत्तत्तनार्)—इसमें नल्लियकोड़न् नामक सामंत के गुणों का वर्णन है। 'पेरुप्पाणाट्रुप्पडै' (रुत्तिरंकण्णनार्)—इसमें कांचीपुरम् और उसके शासक इलंतिरैयन की साहित्य-मर्मज्ञता और दानशीलता का वर्णन है। 'मलैपडुकडाम्' या 'कुत्तादाट्रुप्पडै' (पेरुंकौशिकनार्)—मलैपडुकडाम् का शाब्दिक अर्थ है पर्वत की प्रतिध्वनि'। इसमें पर्वतीय दृश्यों का मनोहारी वर्णन है। कवि ने वीर राजा नन्नन् का यश-वर्णन किया है। 'नेडुनलवाडै' (नक्कीरर्)—इसमें शीतऋतु, पशु-पक्षियों और अन्य प्राणियों पर शीतकालीन पवन के प्रभाव आदि का तथा नायक से वियुक्त एक नायिका की विरहावस्था का प्रभावशाली वर्णन है। 'मदुरैक्कांजि' (मांगुडि मरुदनार)—इसमें पांड्य राजा नेडुंचेलियन् के शासन-प्रबंध और उसकी राजधानी मदुरै का विशद वर्णन है। कवि ने विभिन्न पंक्तियों के द्वारा मूलतः सांसारिक सुखों की क्षणिकता का प्रतिपादन किया है। 'पट्टिनप्पालै' (रुत्तिरंकण्णनार्)—इसमें राजा करिकाल का यश-वर्णन है। कुछ पंक्तियों में तत्कालीन शासन-व्यवस्था तथा विदेशों से तमिलनाडु के व्यापारिक संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। कवि सांसारिक सुखों के उपभोग में विश्वास करता है, अतः कहता है कि बड़ी-से-बड़ी संपत्ति पाने का लोभ होने पर भी युवावस्था में व्यक्ति को पत्नी से वियुक्त नहीं होना चाहिए। 'मुल्लैप्पाट्टु' (नप्पूतनार्)—कृति के शीर्षक का अर्थ है 'वन-गीत'। इसमें मुख्य रूप से युद्धक्षेत्र को गए पति के वियोग में पत्नी की मनोदशा का मर्मस्पर्शी वर्णन है। 'कुरिंजिप्पाट्टु' (कपिलर्—दे०)—इसमें कुरिंजि प्रदेश के एक युवक और युवती के सहज प्रेम का चित्रण है। प्रसिद्ध है कि कपिलर् ने इस कृति की रचना आर्य राजा बृहत्तम् को तमिल सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित कराने के लिए की थी। इन कृतियों में प्रथम सात पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ) वर्ग की और शेष तीन अहम् (दे० अहप्पोरुळ) वर्ग की हैं। पुरम् वर्ग की रचनाओं में पाँच आट्रुप्पडै (मार्गनिर्देशक कविताएँ) हैं (दे० आट्रुप्पडै)। इनमें किसी राजा या सामंत से पुरस्कार प्राप्त कर लौटता हुआ कलाकार अपने मित्र के समक्ष उस राजा की विजय का तथा वीरता, उदारता, दानशीलता, तेजस्विता आदि का वर्णन करता है। इन कविताओं में यह बताया गया है कि उस युग में कलाकार निर्धन थे। उनकी जीविका का एकमात्र आधार कला थी। अमीर राजागण कलाप्रेमी होने के कारण उन कलाकारों को धनादि दिया करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी प्रसाद *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1521-33 ई० के मध्य कभी]

शंकरदेव (दे०) के इस नाटक में कृष्ण-भक्ति-परायण ब्राह्मण-पत्नी और गोपों का संघर्ष यज्ञों में आस्था रखने वाले भक्ति-विरोधी ब्राह्मणों से दिखाया गया है। कर्म-मार्ग पर भक्ति-मार्ग की जय ही इस नाटक का लक्ष्य है। इस कृति का एक विशेष महत्व है। शाक्त ब्राह्मणों ने आहोम से शंकरदेव के विरुद्ध शिकायत की थी, तभी उन पर कटाक्ष करने के लिए यह नाटक लिखा गया था। नाटक में कार्य का अभाव है, चरित्रांकन सफल नहीं है। लेखक की यह आरंभिक कृति लगती है।

पथिक *(म० कृ०)*

1964 ई० में श्री न० वि० गाडगीळ (दे०) ने दो भागों में प्रकाशित 'पथिक' नामक आत्मचरित्र लिखा था। इसमें लेखक के जीवन-वृत्तांत के साथ महाराष्ट्र की राजनीति के मंच पर अभिनीत घटनाओं तथा महाराष्ट्र काँग्रेस का 50-60 वर्षों का इतिहास भी उपलब्ध होता है। लेखक का निवेदन है कि यह आत्मचरित्रात्मक ग्रंथ इतिहास-ग्रंथ नहीं है—जीवन-पथ पर आरूढ़ होकर मंज़िल तय कर उस तक जाने वाले यात्री का वृत्तांत है।

'पथिक' के पहले भाग में लेखक के जन्म से 1940 ई० तक का इतिहास है। यह यद्यपि आत्मचरित्र है तथापि इसमें वैयक्तिक जीवन का उल्लेख कम है। विविध राजनीतिक घटनाओं का वर्णन करते हुए, जहाँ कहीं स्वयं लेखक का अस्तित्व रहा है, वहाँ प्रासंगिक रूप से उसने अपनी कथा कही है। दूसरे भाग में 1957 ई० तक का जीवन-इतिहास है। इसमें आत्मकहानी पहले भाग से भी कम है—महाराष्ट्र तथा भारत में घटित घटनाओं का आलेखन ही प्रमुख है; कारण, लेखक अपने जीवन को सामूहिक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का अंग ही मानता है।

'पथिक' का उद्देश्य सामान्य व्यक्ति को देश की जिस असामान्य परिस्थिति का अनुभव हुआ है, उसका प्रामाणिक निवेदन करना है।

यह ग्रंथ अत्यंत विस्तृत है और अतिव्याप्ति-दोष से ग्रस्त है। दोनों भागों की व्याप्ति 1107 पृष्ठों में हुई है।

पथेर पांचाली *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय (दे०) के दो खंडों में लिखित बहुचर्चित उपन्यास का पहला भाग 'पथेर पांचाली' तथा दूसरा भाग 'अपराजित' (1929 ई०) है। इस उपन्यास का वातावरण निम्न-मध्यवर्गीय है जहाँ किसी महत्वाकांक्षा-पूर्ति के लिए कोई आवेश तथा व्यग्रता नहीं है। घटना-तंत्र का आधार अपू है जो इस जीवन और संसार के रहस्यों को जानने के लिए तत्पर है। उसकी उत्कंठा और उत्सुकता का सहज रेखांकन छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से किया गया है। वह स्वभाव से आसक्तिहीन बालक है। वास्तव में विभूतिभूषण ने बाल-हृदय के कौतुक तथा क्रिया-प्रतिक्रिया का सूक्ष्म रेखांकन करने में अद्वितीय कौशल का परिचय दिया है।

इस रचना का आरंभिक तत्त्व है सहजता-स्वाभाविकता। कृत्रिमता का स्थान न प्रसंग-योजना में है और न पात्र-मनोविश्लेषण में; न प्रकृति-चित्रण में है और न मत-स्थापना में। रचना-तंत्र ऋजु एवं सरल है। दूसरे शब्दों में, गतानुगति से भिन्न इस उपन्यास का मानवीय पक्ष इतना प्रबल है कि इसे थोड़े समय में कई स्तरों पर प्रसिद्धि मिली। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि बँगला जीवन का जितना सच्चा और सही चित्रांकन इस रचना में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। इसलिए यह रचना बँगला उपन्यास की सदा उल्लेखनीय उपलब्धि मानी जाएगी।

पदिट्रप्पत्तु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

'पदिट्रप्पत्तु' संघकालीन अष्ट पद्य-संग्रहों में से है। यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) काव्य है। इसमें 10 कविताएँ हैं। प्रत्येक कविता में 10 पद हैं। इन दस कविताओं में से प्रथम तथा अंतिम आज अप्राप्य हैं। इन कविताओं में विभिन्न चेर राजाओं और उनकी वंशावलियों का वर्णन है। आर्यों की प्रथाओं के साथ-साथ तत्कालीन तमिल समाज की कुछ प्रथाओं-परंपराओं का वर्णन इस कृति में है जैसे—मृत व्यक्तियों को घड़े में डालकर गाड़ना, रण-क्षेत्र में राजाओं का तुणंगै नृत्य, कन्याओं का कुरवै नृत्य, योद्धाओं द्वारा विजय के उपलक्ष्य में किया जाने वाला नृत्य आदि। कवियों ने समाज में प्राप्त द्रविड़-देवताओं और आर्य-देवताओं की पूजा की परंपरा का उल्लेख भी किया है। 'पदिट्रप्पत्तु' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में समाज में ब्राह्मणों का विशेष महत्व था। उस युग के राजा महादानी थे। वे मंदिरों को रत्नादि का दान दिया करते थे। जंगलों को नष्ट कर उनके स्थान पर मंदिरों का निर्माण करवाते थे। विद्वानों के मतानुसार यह कृति अनेक अप्रचलित शब्दों, वाक्यांशों और व्याकरण-प्रयोगों से युक्त है। 'पदिट्रप्पत्तु' की भाषा शुद्ध तमिल है। इसमें संस्कृत-शब्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। इस कृति में प्राप्त विभिन्न वर्णनों से हम चेर राजाओं की वीरता, दानशीलता, शौर्य, शासन-प्रबंध, सैन्य-संचालन आदि के विषय में तथा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परि-स्थितियों के विषय में जान सकते हैं। प्राचीन तमिल का इतिहास तैयार करने के लिए इस कृति से पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है।

पद्धड़िया-बंध *(अप० पारि०)*

'पद्धड़िया-बंध' अपभ्रंश काव्यों में एक प्रमुख बंध है। इस बंध का उल्लेख अनेक अपभ्रंश कवियों ने अपने काव्यों में गौरव के साथ किया है। स्वयंभू (दे०) ने अपने महाकाव्य 'रिट्ठ णेमि चरिउ' (दे०) में उल्लेख किया है कि उसे 'पद्धड़िया बंध' चतुर्मुख से प्राप्त हुआ (चउमुहेण समप्पिय पद्धड़िय)। 'पउम सिरि चरिउ' (दे०) में मुख्य रूप से पद्धड़िया छंद का प्रयोग हुआ है। 'सुदंसण चरिउ' (दे०) में कवि ने घोषणा की है कि अपनी शक्ति के अनुसार 'पद्धड़िया-बंध' में अपूर्व काव्य की रचना करता हूँ (णिय सत्तिए तं विरयेमि कव्वु पद्धड़िया बंधें जं अडव्वु। सुदं० च० 1-2-3)—यद्यपि इस कृति में अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले कडवक के मुख्य भाग में पद्धड़िया (पद्धतिका या पज्झटिका, पद्धरी) का अधिकांश में प्रयोग होता होगा। इस छंद के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। प्रायः चार पद्धड़िया छंदों या आठ पंक्तियों से एक कडवक बनता है। पुनः अलिल्लह, पादाकुलक, आदि 16 मात्राओं के छंदों से बने कडवक को भी 'पद्धड़िया-बंध' कहा जाने लगा। जिनदत्त सूरि के 'उपदेश रसायन रास' (दे०) में 16 मात्राओं का अलिल्लह छंद है किंतु टीकाकार ने इसे भी 'पद्धड़िया-बंध' कहा है। फिर कडवक में 16 मात्राओं से अतिरिक्त अन्य मात्रिक या वर्णिक छंद होने पर भी उसे 'पद्धड़िया-बंध' कहा जाने लगा। हरिषेण ने अपनी 'धम्म परिक्खा' (दे०) नामक रचना में यह निर्देश किया है कि मैं 'पद्धड़िया-बंध' में रचना कर रहा हूँ, किंतु कृति में पद्धड़िया के अतिरिक्त अन्य अनेक वर्णिक और मात्रिक छंदों का भी प्रयोग मिलता है।

पद्‌मनाभ *(गु० ले०)* [समय—1456 ई० आसपास]

पंद्रहवीं शती के एक महत्वपूर्ण कवि पद्‌मनाभ विसनगर के निवासी थे। जालौर-नरेश अखेराज के ये आश्रित कवि थे। प्राचीन गुजराती के वीररस-प्रधान प्रबंध-काव्य 'कान्हड़दे प्रबंध' (दे०) के रचयिता पद्‌मनाभ ने अपने समसामयिक जीवन को अपनी रचना में प्रतिच्छा-यित किया है।

इसमें वीर रस के साथ शृंगार रस, करुण रस व अद्‌भुत रस की सुंदर योजना हुई है। विरमदेव की मृत्यु पर अलाउद्दीन की शाहज़ादी पिरोज़ा का करुण व हृदयद्रावी कल्पांत उसके प्रेम का प्रबल प्रमाण है।

चमत्कारिक घटनाओं, स्वप्नदर्शन, भविष्य-कथन, आदि के समावेश के कारण काव्य प्रभावशाली बन पड़ा है। जैनेतर प्राचीन प्रबंध-काव्य व चरित्र-काव्य के रचयिताओं में पद्‌मनाभ का स्थान महत्वपूर्ण है। भाषा की दृष्टि से भी ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

पद्‌मपाखुड़ा *(उ० कृ०)*

'पद्‌मपाखुड़ा' पद्‌मचरण पटनायक (दे०) की प्रेम-प्रधान गीति-कविताओं का संग्रह है। इसकी अधिकांश कविताएँ प्रेम-प्रधान हैं। कवि की कला-निपुणता ही इस प्रेमाभिव्यंजना की यथार्थ शिल्प-संपदा है। भावों की स्वच्छता, उनकी अनाविल प्रवहमानता में लेखक का तत्संबंधी आंतरिक तादात्म्य प्रकट होता है। इसमें रहस्यवादी अस्पष्टता या अर्थबोध की जटिलता नहीं है। सहज छंदों की स्वच्छंद गति एकांत उपभोग्य है। अभि-व्यक्ति का निराडंबर परिवेश मन को जितना आनंदित करता है, भावनाओं का स्वच्छ अमंद प्रवाह चित्त को उतना ही आकर्षित करता है। इसमें अलंकारों की चमक अथवा कारीगरी नहीं है—कतिपय रंग एवं कुछ स्पष्ट रेखाएँ हैं; न कौशल है, और न अतिरंजना अथवा वैचित्र्य ही। कृषक-कन्या का मन भी उसी प्रकार है। इसमें यौवन का उन्माद नहीं है, कैशोर्य की स्निग्धता है।

पद्‌ममाळी *(उ० कृ०)*

'पद्‌ममाळी' उमेशचंद्र सरकार (दे०) द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक शैली में विरचित प्रथम उड़िया-उपन्यास है। यद्यपि प्रथम प्रयास की सीमाएँ स्पष्ट हैं, किंतु प्रथम उपन्यास की दृष्टि से इसकी उपलब्धियाँ नगण्य नहीं हैं।

यह ऐतिहासिक यथार्थवादी उपन्यास है। सामाजिक संस्कार की वृत्ति इसमें दिखाई पड़ती है। विषयवस्तु की संरचना सत्य घटना के आधार पर हुई है। कल्पना का प्रयोग अत्यल्प हुआ है। पांचगढ़ को नीलगिरि से अलग कर ब्रिटिश राज्य में मिला लेना, बालेश्वर ज़िला मजिस्ट्रट हेनरी रिकेट्स द्वारा पांचगढ़ के लुटेरे तथा नीलगिरि के आक्रमणकारियों का विचार आदि बातें ऐतिहासिक हैं।

'पद्ममाळी' की प्राप्ति के लिए नीलगिरि एवं पांचगढ़ के बीच हुआ संघर्ष ही इसमें वर्णित है। इसकी कथावस्तु वैचित्र्यपूर्ण है, भाषा संस्कृतनिष्ठ, शैली वर्णनात्मक तथा संवाद आलंकारिक हैं।

पद्मराजपुराण *(क० कृ०)* [समय— पंद्रहवीं शती का आरंभ]

यह पद्मणांक (समय—1400 ई०) का वार्धक में रचित चरितकाव्य है। इसमें 'दीक्षाबोधे' ग्रंथ के प्रणेता केरेय पद्मरस (तालाब बनवाने के कारण पद्मरस 'केरेय पद्मरस' कहलाए थे) के चरित का वर्णन है। पद्मणांक पद्मरस के वंशज हैं। अतएव उनका यह काव्य उनके पूर्वजों का इतिहास बताने वाला काव्य है। इसे उत्तम और प्रौढ़ शैली में लिखना ही कवि का उद्देश्य है। 'बसवपुराण' (दे०) के कर्त्ता भीम कवि जिस प्रकार प्रसिद्ध हुए हैं उसी प्रकार पद्मणांक भी यशस्वी हुए हैं परंतु दोनों के रचना-विधान में अंतर भी स्पष्ट है। अधिक संस्कृतनिष्ठता के कारण पद्मणांक का काव्य क्लिष्ट है। यद्यपि उनको 'देसि' का ज्ञान है तथापि 'मार्ग' (अर्थात् संस्कृत) के अधिक प्रभाव के कारण शैली में मणिकांचन-संयोग नहीं दिखाई पड़ता। वस्तु की नवीनता के कारण इस काव्य का महत्व अवश्य है।

पद्मराजु, पालगुम्मि *(ते० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

ये तेलुगु के श्रेष्ठ कहानीकारों में से हैं। कहानी के आधार पर मानव की मानसिक वृत्तियों का उन्मीलन करने का यत्न इन्होंने सर्वत्र किया है। 1951 ई० में इनकी 'गालिवाना' (आँधी) नामक कहानी को अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था। ये व्यवसाय से रसायनशास्त्र के प्राध्यापक हैं किंतु इनकी प्रतिभा का उन्मेष मुख्य रूप से कहानी के क्षेत्र में तथा आनुषंगिक रूप से कविता, नाटक एवं समालोचना के क्षेत्र में हुआ है। इनका कथा-साहित्य परिमाण में अल्प होकर भी इनकी ख्याति का कारण बना है। रमणीय कथा-निर्माण, रोचक प्रसंगों की कल्पना, शिल्प की विशिष्टता एवं संवादों की सहजता इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

पद्माकर *(हिं० ले०)* [जन्म—1753 ई०; मृत्यु—1833 ई०]

रीतिकालीन आलंकारिक कवियों में इनका नाम काफ़ी प्रसिद्ध है। ये जाति के तैलंग ब्राह्मण और बाँदा-निवासी मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। इनके पिता तथा कुल के अन्य लोग भी कवि थे। ये अनेक राज-दरबारों में रहे और इनके ठाट-बाट किसी राजा से कम न थे।

पद्माकर ने 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली', 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद' (दे०), 'प्रबोध-पचासा', 'गंगालहरी', 'रामरसायन', 'भाषा-हितोपदेश', 'ईश्वर-पचीसी', 'आलीजाह-प्रकाश' तथा 'प्रतापसिंह-विरुदावली' आदि ग्रंथ लिखे हैं। प्रथम ग्रंथ वीर रस की रचना है और हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में लिखा गया है। द्वितीय ग्रंथ अलंकार-विवेचन के लिए लिखा गया है। 'जगद्विनोद' रस-विवेचन का ग्रंथ है और जयपुर-नरेश जयसिंह के नाम पर रचा गया। शेष अन्य ग्रंथ भी किसी-न-किसी आश्रयदाता की आज्ञानुसार लिखे गए हैं। निश्चय ही रचना की दृष्टि से ये रीतिशास्त्र के ज्ञाता, श्रृंगार एवं भक्ति के साथ वीर रस के अद्भुत प्रणेता, मुक्तक तथा प्रबंध—दोनों शैलियों के सफल रचनाकार, सफल अनुवादक तथा पचासा-शैली के प्रवर्तक माने जायेंगे। इनकी भाषा सरस, प्रवाहमयी एवं व्याकरण-सम्मत है। काव्यगत रमणीयता की दृष्टि से बिहारी (दे०) ही इनके समकक्ष बैठ पाते हैं और भाषा की अनेकरूपता की दृष्टि से इनकी तुलना तुलसीदास (दे०) से की जा सकती है। इनकी भाषा सरस, सुव्यवस्थित और व्याकरण-सम्मत है। गुणों का पूरा नियोजन इनके छंदों में पाया जाता है। सवैया और कवित्त पर जो अधिकार पद्माकर को प्राप्त है वह किसी और दूसरे कवि को प्राप्त नहीं है। लंबे-लंबे अनुप्रासों और यमकों के प्रयोग का भी इन्हें शौक था और इसमें ये सफल भी हुए हैं। व्यर्थ शब्दों का प्रयोग न करके इन्होंने जहाँ एक ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य को अरुचिकर होने से बचाया है, वहाँ दूसरी ओर उसे पूर्ण रसमय कर दिया है। इस अलंकारवादी कवि ने 'गंगालहरी' में गंगा का अलंकारों से जो अलंकरण किया है, वह देखते ही बनता है। रीतिकाल के श्रेष्ठ अलंकारवादियों में पद्माकर का स्थान अन्यतम है और इस रूप में इनका प्रभाव अपने परवर्तियों पर भी पड़ा है।

पद्मानदीर माझि (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1936 ई०]

'पद्मानदीर माझि' मानिक बंद्योपाध्याय (दे०) का सबसे अधिक जनप्रिय उपन्यास है। पूर्वबंग (बाँगला देश) की पद्मा नदी के तट पर बसे हुए दरिद्र मछेरों एवं माझियों को लेकर यह उपन्यास रचा गया है। साधारण मनुष्य के पूर्णांग जीवन-चरित्र के अंकन के लिए लेखक ने कुबेर नामक एक दरिद्र माझी को इसका नायक चुना है। केवल कुबेर ही दरिद्र नहीं, उसके पड़ौसी सभी ग़रीब हैं किंतु इनके दुःसाहसिक कार्य तथा असाधारण जीवन-यात्रा में एक तीव्र आकर्षण है। कुबेर में यों देखने से कोई असाधारण विशेषता नहीं है परंतु लेखक ने उसके साधारण चरित्र में नाना प्रकार के व्यक्ति-वैचित्र्य का आविष्कार किया है। वह ग़रीब होने पर भी बलिष्ठ है, दुःख की ज्वाला में जल कर उसमें अनमनीय दृढ़ता आ गई है। इस निम्नश्रेणी-संकुल ग्राम-जीवन के चित्रांकन में लेखन ने सूक्ष्म तथा पूर्ण परिमिति-बोध का परिचय दिया है। अंतहीन दरिद्रता में भी इनमें मध्यवित्त जीवन की हताशा या निर्जीवता नहीं है। कठिन-हृदया प्रकृति का अत्याचार और धनलुब्ध मनुष्यों के निपीड़न के परिणामस्वरूप इनके जीवन में स्वस्थ स्वाभाविकता का विकास नहीं हो पाया है, फिर भी इनका जीवन श्रीमंडित है। पारिवारिक जीवन की संकीर्ण परिधि में सनातन मानव की आशा-आकांक्षा, क्षुद्र ईर्ष्या-द्वंद्व, क्षुद्र उच्छ्वास-आवेग, निषिद्ध प्रेम की तीव्र मादकता एवं कठिन जीवन-संग्राम में उच्चतर श्रेणी की ग्लानि या कृत्रिमता नहीं है—इसीलिए वह इतना अधिक आकर्षक है।

लेखक ने पूर्व बंग की सरस तथा कृत्रिमता-वर्जित कथ्य-भाषा में पद्मा नदी-तीरवर्ती इस क्षुद्र गाँव में एक यथार्थ, सरल तथा बलिष्ठ जीवन-धारा का आविष्कार किया है और उसकी अभिव्यक्ति में एक सफल उपन्यासकार का परिचय दिया है।

पद्मापुराण (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—संभवतः पंद्रहवीं शती का अंतिम दशक]

मनसामंगल (दे० मनसा) काव्य-समूह में विजयगुप्त का 'पद्मापुराण' समधिक जनप्रियता का अधिकारी है। बारिशाल ज़िले के गैला-फुल्लश्री ग्रामवासी विजय गुप्त ने कदाचित् 1484 ई० से 1494 ई० के बीच इस ग्रंथ की रचना की थी। मगर कालज्ञापक श्लोक प्रत्येक पांडुलिपि में नहीं है। इसीलिए इसकी प्राचीनता के बारे में सहज ही संदेह होता है। कालज्ञापक श्लोक के प्रक्षिप्त होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता।

'पद्मापुराण' का कहानी-विन्यास अत्यंत श्लथ है। चरित्र-चित्रण में भी दृढ़ता का अभाव है, विशेषतः चाँद सौदागर के चरित्र में। मनसा के चरित्र को भी भावसाम्यहीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'पद्मापुराण' के वैचित्र्य में ही इसकी विशिष्टता छिपी हुई है। समसामयिक युगजीवन की प्रतिच्छवि कवि की रसात्मक वर्णन में दिखाई पड़ती है। छंद एवं अलंकार प्रयोग में कवि का कृतित्व उल्लेखनीय है। जनप्रियता की दृष्टि से इस काव्य को श्रेष्ठत्व का गौरव प्राप्त हुआ था परंतु काव्य-विचार के मानदंड से यह साधारण रचना ही ठहरती है।

पद्मावत (*हिं० कृ०*) [रचना-काल—1520 ई० से 1541 ई० के बीच]

इसके रचयिता सूफ़ी कवि मलिक मुहम्मद जायसी (दे०) हैं। ग्रंथ में शाहेवक्त की प्रशंसा करते हुए शेरशाह सूरी का उल्लेख किया गया है—
'सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू'।

'पद्मावत' फ़ारसी की मसनवी-शैली के आधार पर दोहे-चौपाइयों में लिखा गया प्रेमाख्यानक काव्य है। इसकी सारी कथा खंडों में विभाजित है, भाषा ठेठ अवधी है। इसकी भाषा में न तो तत्समों के प्रति कोई आग्रह है और न अलंकरण के लिए कोई प्रयास दृष्टिगोचर होता है। मुहावरों, लोकोक्तियों और कहावतों का प्रयोग बहुत सार्थक ढंग से हुआ है।

सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती (दे०) परम सुंदरी है। चित्तौड़ का राजा रतनसेन (दे०) उसके रूप की चर्चा हीरामन तोते से सुनता है और सुनकर मूर्च्छित हो जाता है। चेत होने पर अपनी रानी नागमती (दे०) को रोता छोड़कर साधुओं के कटक के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग की अनेकानेक बाधाओं को पार करता हुआ सिंहल पहुँचता है। सिंहल दुर्ग पर आक्रमण करके पद्मावती को प्राप्त करता है। राघव चेतन राजा से रुष्ट होकर अलाउद्दीन के यहाँ पहुँचकर उससे पद्मावती के सौंदर्य की चर्चा करता है। अलाउद्दीन पद्मावती को प्राप्त करने के लिए कई वर्ष तक दुर्ग का घेरा डाले रहता है, बाद में वह राजा को बंदी बना लेता है, किंतु पद्मावती के चातुर्य से राजा मुक्त हो जाता है। अंत में कुंभल-नरेश देवपाल से युद्ध करते हुए राजा की मृत्यु हो जाती है और दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं। संक्षेप में विविध प्रयोगों से भरी 'पद्मावत' की यही कहानी है।

इस रचना का वास्तविक उद्देश्य प्रेम-तत्त्व का सम्यक् निरूपण करना है। साधना-मार्ग के अंतर्गत कवि ने बहुत से भारतीय और अभारतीय तत्त्वों को समन्वित कर परमात्मा-रूपी पद्मावती की प्राप्ति के हेतु आत्मा रूपी रतनसेन की अनेकानेक कठिनाइयों, बाधाओं एवं सफलता-असफलता का विवरण अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि न अंत में सारी रचना को अन्योक्ति कहा है। इस ग्रंथ में कथा का सांगोपांग विवेचन, गंभीर भावों की सुंदर अभिव्यक्ति, उदात्त चरित्रों की विशदता एवं आदर्श रचना की सोद्देश्यता पूर्णतः झलकती है।

पद्मावती *(हिं० पा०)*

जायसी (दे०)-कृत 'पद्मावत' (दे०) की मुख्य नायिका 'पद्मावती' या 'पद्मिनी' नाम से अभिहित की गई है। कवि ने इसके चरित्र की निर्मिति में ऐतिहासिक तत्त्वों की व्यापकता, अध्यात्म की विस्तृति एवं लोक-गाथा की कोमलता से काम लिया है। सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री के विवाह-योग्य होने पर हीरामन तोता चित्तौड़ के राजा रतनसेन (दे०) से उसकी अपरूप छवि का वर्णन करता है, राजा उसे प्राप्त करने के लिए योगी बनकर सिंहल जाता है, अन्यान्य जटिलताओं को पार करते हुए वह उसे प्राप्त करता है, अंत में राघव चेतन के सिखाने पर अलाउद्दीन किले का घेरा डालता है और रतनसेन की मृत्यु होने पर पद्मावती राजा के शव के साथ सती हो जाती है। विद्वानों ने इस सारी कथा को अन्योक्ति कहा है और इस परिच्छाया में पद्मावती परमात्मा की प्रतीक बन गई है तथा रतनसेन जीवात्मा की स्थिति का अवबोध कराता है, राघव चेतन एवं अलाउद्दीन शैतान तथा नागमती माया की प्रतीक है। कवि ने जागतिक सत्य की झिलमिली में मनोयोगपूर्वक नागमती का चित्रण जितनी पूर्णता के साथ किया है उतना वह पद्मावती का नहीं कर सका। आत्मा-परमात्मा के मिलन के रूप में कवि पद्मावती और रतनसेन के संयोग की स्थिति का बड़ा प्रभावी चित्रण करता है। पद्मावती के कन्यात्व और पत्नीत्व की कवि ने हिंदू-घराने की परिखा में इस तरह अभिव्यक्ति की है कि वह आज्ञाकारिणी पुत्री और पतिपरायणा स्त्री के रूप में आदर्श बन गई है। पद्मावती पूर्णतः काल्पनिक पात्र है और इसका निर्माण सूफ़ी-सिद्धांतों (दे० सूफ़ी काव्य) के अनुकूल हुआ है।

पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती *(त० कृ०)* [रचना-काल—1936 ई०]

'पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती' शिवशंकर स्वामी का सर्वश्रेष्ठ प्रगीत-नाटक है। इसमें 'गीतगोविंदम्' (दे०) के अमर कवि जयदेव तथा उनकी पत्नी पद्मावती के अनन्य अनुराग एवं प्रेम की परवशता का मार्मिक चित्रण किया गया है। भाषा अत्यंत सरल, मधुर एवं प्रवाहमयी है। इसकी संगीतात्मकता पाठक को पग-पग पर विह्वल कर देती है। प्रेम की गंभीरता, सूक्ष्मता, मृदुता, परवशता एवं तीव्रता का मनोमुग्धकारी चित्रण जयदेव और पद्मावती की कथा के आधार पर इसमें प्रस्तुत किया गया है। इसके पात्र ऐतिहासिक होकर भी भावना एवं विचारों में सर्वथा आधुनिक प्रतीत होते हैं।

पद्मावती-चरित्तिरम *(त० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती का प्रथम दशक]

तमिल के आरंभिक उपन्यासों में परिगणित। रचनाकार—अ० माधवैया (1874-1926 ई०)। उपन्यास के उदय का प्रमुख कारण उन्नीसवीं शती के अंतिम दशकों में उभरती हुई सामाजिक क्रांति है। इसमें नागमैयर, उनकी पत्नी शाला, भाई गोपालन, पद्मावती, सावित्री, सीदै, अम्माळ, कल्याणी आदि पुरुष एवं नारी-पात्रों की सहायता से एक पीढ़ी के रीति-रिवाज़, सुख-दुःख, आशा-निराशा, गुण-दोष, विचारधारा का—संक्षेप में, समग्र जीवन का—सफल चित्रण किया गया है।

कथा अत्यंत सीधी और स्पष्ट है। उसमें सहज वेग है। घटनाओं का विकास स्वाभाविक है। पात्रों के चरित्र-चित्रण—विशेषकर नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उपन्यासकार को पर्याप्त सफलता मिली है। पद्मावती आदर्श कन्या है। सावित्री में प्राचीन आदर्श विचारधारा एवं नवीन पाश्चात्य विचारधारा का समन्वय दीख पड़ता है। सीदै अम्माळ प्राचीन परंपराओं में जकड़ी हुई नारी है तो कल्याणी प्राचीन-नवीन विचारधारा के मध्य भूलती-सी दिखलाई पड़ती है।

माधवैया सुशिक्षित साहित्यकार थे। उन्होंने कहीं पात्रों के माध्यम से, तो कहीं स्वयं पाठकों को सुंदर उपदेश दिए हैं। इस उपन्यास में उन्होंने शिक्षा के महत्व पर बल देते हुए नारी-शिक्षा का प्रचार किया है। सामाजिक कुरीतियों का प्रबल शब्दों में खंडन किया गया है। उपन्यास में सर्वत्र सरल-सरस शैली का प्रयोग किया गया है। इसे तमिल के आरंभिक सामाजिक उपन्यासों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

पद्मिनी उपाख्यान *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1858 ई०]

रंगलाल बंद्योपाध्याय (दे०) का 'पद्मिनी उपाख्यान' आधुनिक बँगला-साहित्य का पहला महाकाव्य है। अँग्रेज़ी लेखक टॉड की पुस्तक 'राजस्थान' के आधार पर इसमें चित्तौड़-पतन की कहानी वर्णित है। प्राचीन भारतवर्ष के स्वाधीनता-संग्राम के प्रति अपनी श्रद्धा एवं स्वजाति में उस गरिमा-बोध के प्रवर्तन की कामना से रंगलाल बंद्योपाध्याय ने इस प्रकार की काव्य-रचना का निश्चय किया था। अँग्रेज़ी आख्यायिका-काव्य के आदर्श का अनुसरण करते हुए उन्होंने देशात्मबोधक इस रोमानी महाकाव्य की रचना की थी एवं इतिहास-लब्ध विषयवस्तु, प्रकृति-वर्णन एवं रोमानी देश-प्रेम की साधारण कविता में नवप्राण का संचार किया था।

स्कॉट के 'मिंस्ट्रेल' के अनुकरण पर रंगलाल ने चारण के द्वारा इस काव्य-कथा का वर्णन किया है। यह काव्य घटनावहुल एवं वर्णनात्मक है। इसमें शौर्य की अपेक्षा स्वतंत्र व्यक्तित्व, ममतामय जीवनबोध एवं स्वदेश एवं स्वाभिमान-पुष्ट जाति-चेतना की व्यंजना अधिक हुई है। इसीलिए इसमें निष्ठुर संग्राम की अपेक्षा ममतामय प्रणय-चित्र की दीप्ति अधिक है; अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौड़-ध्वंस की वर्णना की अपेक्षा भीमसिंह-उद्धार की कहानी मन का अधिक स्पर्श करने वाली है। इसीलिए भीमसिंह के पुत्रों के द्वारा युद्धक्षेत्र में मृत्युवरण के स्थान पर पद्मिनी का चिताप्रवेश-वर्णन अधिक हृदयविदाही एवं महिमामय है। भीमसिंह की वीरता नहीं, पद्मिनी की शूरमहिमा ही इस कहानी का प्रतिपाद्य है और इसी ने इस काव्य को उदात्तता प्रदान की है।

'पद्मिनी उपाख्यान' सर्गबद्ध नहीं है। प्रकृति के आलंबन-वर्णन का सूत्रपात इसी काव्य से हुआ है। इसकी अभिव्यंजना-शैली में कोई नूतनत्व नहीं है परंतु जो कुछ भी थोड़े-बहुत नये प्रयोग इसमें किए गए हैं उससे परवर्ती कवि मधुसूदनदत्त (दे० माइकेल) को अपने मौलिक पथ-आविष्कार में विशेष सहायता मिली थी।

पद्य *(हिं० पारि०)*

छंदों में लिखे काव्यों को पद्य कहते हैं—छंदोबद्धपदं पद्यम्। इसके निम्नोक्त भेद हैं—(1) जो पद्य मुक्त हो, अर्थात् दूसरे पद्य से निरपेक्ष हो, उसे 'मुक्तक' कहते हैं। (2) जहाँ दो श्लोकों में वाक्य-पूर्ति होती है उसे 'युग्मक' कहते हैं। (3) जहाँ तीन श्लोकों में वाक्यपूर्ति होती है, उसे 'संदानितक' अथवा 'विशेषण' कहते हैं। (4) जहाँ चार श्लोकों में वाक्य-पूर्ति होती है उसे 'कलापक' है। (5) जहाँ पाँच अथवा इनसे अधिक श्लोकों में वाक्य-पूर्ति होती है उसे 'कुलक' कहते हैं।

पद्यरचनानी ऐतिहासिक समालोचना *(गु०कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

केशव हर्षद ध्रुव (1858-1938 ई०) के इस ग्रंथ में बंबई विश्वविद्यालय में दिए हुए पाँच व्याख्यान प्रकाशित किए गए हैं। ऋग्वेद से लेकर व्याख्यान देने के समय-पर्यंत विविध छंदों की उत्पत्ति और विकासक्रम की शास्त्रीय आलोचना इसमें की गई है। गुजराती में यह छंद-विषयक प्रथम ग्रंथ है।

पद्यरत्नावलि *(म० कृ०)* [रचना-काल—1865 ई०]

इस ग्रंथ की रचना आधुनिक काल के प्रथम उत्थान के कवि श्री कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (दे०) ने की थी। यह अन्योक्ति-युक्त मुक्तक कविताओं का संग्रह है। इसमें संगृहीत कविताएँ अत्यंत रमणीय एवं सरस हैं। चिपळूणकर जी की कविता संस्कृत-कवियों के आदर्श पर थी। अतः उसे प्रायः स्वतंत्र न मानकर संस्कृत-कविता का छायानुवाद माना जाता है। वैसे इस ग्रंथ की प्रस्तावना में कवि ने यह इच्छा प्रकट की है कि उसकी कविताओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्र एवं मौलिक माना जाए।

चिपळूणकर जी से पूर्व गद्य तथा पद्य की भाषा अलग-अलग मानी जाती थी। इन्होंने 'पद्यरत्नावलि' के अंत में पद्य की भाषा पर एक निबंध दिया है जिसमें गद्य तथा पद्य को रचना एक ही भाषा-संभव है तथा होनी चाहिए, इस बात का प्रबलता से प्रतिपादन किया गया है।

पनी *(गु० पा०)*

झीणाभाई रतनजी देसाई 'स्नेहरश्मि' (दे०)-रचित उपन्यास 'अंतरपट' (दे०) की नायिका पनी शिक्षा एवं संस्कार के वातावरण में पली आश्रमवासिनी हरिजन कन्या है। पिता करसन का व्यवसाय कपड़े बुनना है। सोनवेल ग्राम में इस शिक्षित व समझदार बुनकर का सामाजिक जीवन पर ठीक-ठीक प्रभाव है।

रूपवती, बुद्धिमती, स्वाभिमानिनी स्वाश्रयी, पन्ना अर्थात् पनी का शिक्षा-काल एक आश्रम में बीतता है। उसके संस्कारों के गठन व चरित्र-निर्माण में इस आश्रम का पर्याप्त प्रभाव रहा है। पति केशव और अपने ही ग्राम के ब्राह्मण युवक नरहरि के बीच पनी का मन झूलता रहा है। नरहरि की सेवा-वृत्ति व चरित्रशीलता ने उसे बुरी तरह प्रभावित कर लिया है। नरहरि ने उसे नदी में डूबने से बचाया था। केशव भी पढ़ा-लिखा, सच्चरित्र खिलाड़ी है। बंबई में रहता है। उसके साथ पनी भी बंबई में रहती है और समाज-सेवा का कार्य करती रहती है। एक दिन केशव-क्लेरा के अभद्र व्यवहार से चिढ़कर वह बंबई छोड़कर अपने गाँव सोनवेल आ जाती है। बहुत दिनों तक पति पत्नी के बीच मनमुटाव रहता है। तभी अचानक पता चलता है कि केशव एक कार-दुर्घटना में घायल होकर अस्पताल में पड़ा है। पनी तुरंत बंबई पहुँचती है। अपने पति की सुश्रूषा करती है किंतु कुछ दिनों में ही केशव की मृत्यु हो जाती है। जिस केशव ने अपनी सहज उदारता से पनी को पर्याप्त स्वतंत्रता दे रखी थी, उसकी मृत्यु पनी को बहुत ज़ोर से जकड़ देती है।

गांधीवादी जीवन-दृष्टि, हरिजन-समस्या, तथा दोहरे व्यक्तित्व का निरूपण करने वाले इस उपन्यास की शैलीगत विशेषता यह है कि उसके प्रमुख पात्र अपना-अपना कथा-वृत्तांत कहते जाते हैं और कथा-प्रवाह आगे बढ़ता जाता है। पनी की भाव-विह्वलता का चित्रण बड़ा मार्मिक बन पड़ा है।

पप्पु *(मल० पा०)*

पी० केशवदेव (दे०) के उपन्यास 'ओटयिल् निन्नु' (दे०) का प्रमुख पात्र। पप्पु उद्धत स्वभाव का रिक्शावाला है। जीवन के एक मोड़ पर एक दुर्घटनाग्रस्त बालिका का पालन-पोषण उसका व्रत बन जाता है और उसके लिए कठोर परिश्रम करके वह राजयक्ष्मा मोल लेता है। उस बालिका को पढ़ा-लिखाकर योग्य वर के हाथ में सौंप देने के बाद वह खाँसता-खाँसता सुदूर राजमार्ग में गायब हो जाता है।

पप्पु का चरित्र-चित्रण इस तथ्य का दृष्टांत है कि जीवन की कितनी ही शोक-संकुल गहराइयों में भी त्याग और स्नेह की कलियाँ विकसित हो सकती हैं। पप्पु केशवदेव के पात्र-रचना-कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

परछावियां दी पकड़ *(पं० कृ०)*

'परछावियां दी पकड़' डा० अमरीक सिंह का एक ऐसा नाटक है जिसकी तकनीक तथा नाटकीय संरचना की पंजाबी-क्षेत्र में विशेष चर्चा है। एक दफ़्तर से एक पात्र को निकाल कर उसके स्थान के लिए इंटरव्यू लिया जाता है और अंततः उसी पात्र को फिर रख लिया जाता है। इस संपूर्ण घटना-विकास में समाज के उच्चवर्गीय प्रबंधक-वर्ग को बड़ी बेरहमी से नंगा किया गया है। लेखक का व्यंग्य-प्रहार विलक्षण है। पंजाबी-साहित्य में इसके समकक्ष दूसरी कॉमेडी नहीं है।

परणर *(त० ले०)* [समय—पहली या दूसरी शती ई०]

ये तृतीय संघ के सदस्य कवि और प्रसिद्ध कवि 'कपिलर्' (दे०) के घनिष्ठ मित्र थे। इनके रचे हुए 82 पद्य संघकालिक संकलनों में उपलब्ध हुए हैं। ये विविध मानवीय अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण करने में अतुलनीय थे। इनके समय के विभिन्न राजाओं, ग्रामों या नगरों तथा घटनाओं का उल्लेख इनकी कविता की एक प्रमुख विशेषता है। लगभग प्रत्येक पद्य में इस प्रकार का उल्लेख अवश्य हुआ है। अतः इनकी रचनाओं का अध्ययन प्राचीन तमिल-प्रदेश का इतिहास समझने में अत्यंत सहायक है। ये कवियों तथा राजाओं के आदर के पात्र थे। लगता है कि ये भ्रमणशील थे। 'नेडु-ञ-चेरल्-आदन्' नामक चेरराजा और 'पेरु-विरल्-विळ्ळि' दोनों में भीषण युद्ध हुआ था जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा विनाश हुआ था। इस घटना का इन्होंने मार्मिक वर्णन किया है। 'बेकन' नामक राजा ने किसी कारण से अपनी पत्नी को त्याग दिया था। इस कवि ने अपनी मार्मिक कविता से उस राजा को मुग्ध करके, उसके द्वारा पुनः पत्नी को स्वीकृत करवा दिया था। 'शेरमान्' राजा की समुद्री यात्राओं का वर्णन करके इन्होंने उससे पुरस्कार पाए थे। वर्तमान केरल में उस समय स्थित दो नरेशों—'नन्नन्' तथा 'शेरमान्' के युद्ध का इन्होंने वर्णन किया है। इनकी कविता में नगरों, नदियों, पर्वतों तथा विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक सभ्यता का अद्भुत चित्रण हुआ है।

परणिप्पाट्टु *(त० पारि०)*

तमिल काव्यशास्त्र में परिगणित 96 प्रकार की 'प्रबंध-पद्धतियों में 'परणि' एक पद्धति अथवा विधा है। यह एक प्रकार का वीर-रसात्मक खंडकाव्य होता है जिसमें किसी ऐसे योद्धा की प्रशंसा होती है जिसने युद्धरंग में एक हज़ार हाथियों को मारा हो। इसकी वर्णन-पद्धति इस प्रकार होती है—राजा या योद्धा की प्रियतमा विरह में पीड़ित रहती है; विजयी योद्धा लौट आता है; मान करती हुई नायिका को शांत करने के लिए पहले कवि स्वयं सौध के बंद कपाट के सम्मुख योद्धा के वीर कृत्यों का वर्णन करके गाता है जिससे उसकी प्रियतमा का हृदय युद्धरंग की बातें सुनकर विचलित होता है। इस वर्णन में युद्धरंग में भूत-समुदाय का नृत्य, उनका महाभोज, कालीदेवी तथा भूतों का संवाद इत्यादि होते हैं। 'परणि' 'भरणि' नक्षत्र का संकेत देता है; 'भरणि' नक्षत्र के अधिष्ठाता यमराज तथा कालिका हैं; कहा जाता है कि इस नक्षत्र के दिन युद्धरंग में भूतों का उत्सव होता है। इसी आधार पर 'काव्य-विधा' का नाम 'परणि-काव्य' पड़ा है। तमिल में अब उपलब्ध पुरातन 'परणि-काव्य' महाकवि 'जयकोंडार' द्वारा रचित 'कलिंगत्तुप्पुरणि' है।

परती परिकथा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

यह फणीश्वरनाथ रेणु (दे०) का प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है जिसमें लेखक ने नानाविध कथाओं के माध्यम से परानपुर गाँव की समूची विशेषताओं और असंगतियों का जीवंत चित्रण किया है। लेखक ने अनेक अवांतर कथाओं, किंवदंतियों तथा लोककथाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर वहाँ के लोगों की अनभिज्ञता, क्षुद्रता, बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन की भावना, समाज के बदलते हुए संदर्भों आदि को रूपायित किया है। कोसी-योजना के अंतर्गत ग्राम-सुधार-संबंधी जो विकास-योजनाएँ क्रियान्वित की गई थीं तथा उस संदर्भ में ज़मींदारी-उन्मूलन आदि के जिन कार्यक्रमों पर अमल किया जा रहा है उनके प्रति गाँव वालों की प्रतिक्रियाएँ तथा गाँव के राजनीतिक दलों के दाँव-पेच आदि का सजीव प्रत्यंकन करते हुए लेखक ने यथार्थ वर्णन-कला की दृष्टि से एक सर्वथा अभिनव प्रयोग किया है। इस उपन्यास में अनेक छोटी-बड़ी कथाओं की भरमार के साथ-साथ पात्रों की भरमार भी दिखाई देती है, और जिस प्रकार किसी एक कथा को प्रमुख कथा नहीं माना जा सकता उसी प्रकार किसी भी पात्र को नायकत्व का श्रेय भी नहीं दिया जा सकता। लेखक ने छोटे-बड़े दर्जनों पात्रों का रेखाचित्रात्मक शैली में ऐसा चरित्र-चित्रण किया है कि वे सभी समानरूपेण पाठक के स्मृति-पटल पर अंकित रहते हैं। फिर भी जितेंद्र तथा ताजमणि की गणना प्रमुख पात्रों के रूप में की जा सकती है। स्थानीय शब्दों के भरपूर प्रयोग से आंचलिकता का रंग पूरी गहराई के साथ उभर कर आया है और पाठक के मानस-नेत्रों के समक्ष परानपुर गाँव ही नहीं अपितु पूरा पूर्णिया ज़िला ही अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विशेषताओं के साथ इस प्रकार गुज़र जाता है मानो वह कोई उपन्यास न पढ़कर डॉकुमेंट्री फ़िल्म देख रहा हो।

परमजोति मुनिवर *(त० ले०)* [समय—सोलहवीं शती]

ये 'मलरै' नगर के शैव संन्यासी थे। उस नगर के विशाल एवं गगनचुंबी मंदिर में विराजने वाले 'सोमसुंदर' भगवान की परंपरा-प्राप्त लीला-कथाओं का काव्यगत वर्णन इन्होंने प्रस्तुत किया है। इन कथाओं के मूल पौराणिक रूप संस्कृत भाषा में रचित 'स्कंदपुराण' के 'हालास्य माहात्म्य' नामक भाग में मिलते हैं। इसका तमिल-पद्यबद्ध अनुवाद इनका 'तिरुविलैपाडल् पुराणम्' नामक ग्रंथ है। इस पद्य-रचना में महाकाव्य की गरिमा दर्शनीय है। कथावस्तु धार्मिक महत्व संपन्न होने के साथ भगवान शिव के लीला-प्रसंगों पर केंद्रित होने से अत्यंत रोचक हो उठी है। काव्य-शैली परिमार्जित और आकर्षक है। ग्रंथ का विपुल आकार चकित करने वाला है। इसके 68 अध्यायों में कुल 3363 पद्य प्रस्तुत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमप्पयासु (परमात्मप्रकाश) *(अप० कृ०)*

'परमप्पयासु' के लेखक योगींद्राचार्य अथवा योगींद्र (दे०) हैं। ग्रंथ में रचना-काल का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

'परमात्मप्रकाश' जैन-धर्म की आध्यात्मिक रचना है। इसमें प्रभाकर, जो संभवतः योगींद्र का शिष्य था, उनसे आत्मा-परमात्मा के विषय में कुछ प्रश्न करता है। उन प्रश्नों के उत्तर-रूप में इस ग्रंथ की रचना हुई है। यह ग्रंथ दो अधिकारों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का स्वरूप, जीव के स्वशरीर-प्रमाण की तथा द्रव्य, गुण, पर्याय, कर्म-निश्चय, सम्यक् दृष्टि, मिथ्यात्व आदि की चर्चा की गई है। द्वितीय अधिकार में मोक्ष-स्वरूप, मोक्ष-फल, मोक्ष-मार्ग, अभेद रत्नत्रय, समभाव, पाप-पुण्य की समानता और परम समाधि का वर्णन है।

अध्यात्म-चिंतन के बीच ग्रंथ में कहीं-कहीं नीति और सदाचार के उपदेश भी मिलते हैं।

इसमें अधिकतर दोहा छंद का प्रयोग हुआ है और बीच-बीच में कुछ गाथाएँ भी मिलती हैं। लेखक ने अपने मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए यथास्थान उपमा, दृष्टांत, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग किया है और उपमानों का चयन सामान्य जीवन की घटनाओं व दृश्यों से किया है। लेखक ने धर्म के वाह्य रूप और कर्मकांड को गौण बताते हुए सदाचार एवं आंतरिक शुद्धि पर बल दिया है।

तत्कालीन भाषा के स्वरूप एवं संत-साहित्य के पूर्वरूप के ज्ञान की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण है।

परम सिवानंदम्, अ० मु० *(त०ले०)* [जन्म—1914 ई०]

ये तमिल भाषा के अध्यापक के रूप में प्रसिद्धि पा चुके हैं। संप्रति मद्रास शहर-स्थित 'पच्चैयप्पन् कॉलेज' के स्नातकोत्तर तमिल-विभाग के अध्यापक हैं। तमिल-साहित्यानुशीलन और स्वतंत्र निबंधों के क्षेत्रों में इन्होंने अपनी लेखनी के बल पर प्रतिष्ठा पाई है। इनकी कुछ प्रकाशित रचनाएँ हैं—'तमिलक वरलाढ़' (तमिल साहित्य का इतिहास), 'कङ्कैक्करैयिल् काविरित् तमिल्' (गंगातट पर कावेरी का तमिल-निबंध), 'वटक्कुम् नेरळुम्' (उत्तर और दक्षिण), 'कवितैयुम् वाल्क्कैयुम्' (आलोचना) इत्यादि हैं।

परमानंद (नंदराम) *(कश्० ले०)* [जन्म—1791 ई०; मृत्यु—1879 ई०]

कश्मीर-स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थान मटन में (जहाँ मार्तंड मंदिर के ऐतिहासिक अवशेष पाए जाते हैं) जन्म। प्रकृति की गोद में पले-बढ़े। प्रारंभिक शिक्षा मकतब में हुई। मौलाना साहिब ने उन दिनों की अदालती भाषा फ़ारसी में शिक्षा दी। सिख साधु-यात्रियों से गुरुवाणी सीखी; गीता, भागवत्, पुराण और शैव दर्शन का अध्ययन किया। 25 वर्ष की आयु में पटवारी (लेखपाल) बने। तब अंतर्मन का कवि जाग उठा। ठेठ कश्मीरी, संस्कृत-मिश्रित कश्मीरी, हिंदुस्तानी एवं पंजाबी-मिश्रित कश्मीरी, फ़ारसी-मिश्रित कश्मीरी छंदों में रचना की। इनके काव्य में वेदांत और भक्ति का अद्भुत सम्मिश्रण है। मेधावी एवं प्रतिभा-संपन्न मौलिक रचनाओं के कारण इन्हें कश्मीरी काव्य का वरिष्ठ कवि कहा जाता है। इन्होंने आध्यात्मिक गुत्थियों को सरल भाव से सामान्य रूपकों द्वारा समझाया-सुलझाया है। कश्मीरी काव्य में अलंकार, लय और शैली के क्षेत्र में इनका जितना मौलिक योगदान है, उतना और किसी कवि का नहीं। यदि हम आत्मा और परमात्मा के मिलन की अंतर्मन की चिरंतन पुकार सुनना चाहें तो हमें परमानंद द्वारा रचित ग्रंथ 'राधास्वयंवर', 'सुदामाचरित', 'शिवलग्न' तथा 'ज्ञान-पर्व' में अनेक भक्ति-भजन एवं स्तुतियों (कश्मीरी की 'लाला') का अध्ययन करना होगा।

परमानंददास *(हिं० ले०)* [जन्म—1493 ई०; मृत्यु—1584 ई०]

संत कवि परमानंद दास 'अष्टछाप' (दे०) के प्रमुख कवि हैं, इन्हें विरह-गान में विशेष ख्याति प्राप्त है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य परमानंद दास श्यामसुंदर को अपना प्राणाधार समझते थे और उनके शोभा-सागर में आकंठ मग्न रहते थे। लीला-रसिक संत के रूप में इनके काव्य में हृदय की कोमलता तथा मधुर भावों की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। इनके समग्र पदों का संग्रह 'परमानंद सागर' नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भक्ति बाल, कांता और दास भाव की है। इनके मंगल-दर्शन के पद प्रसिद्ध हैं। मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों में परमानंददास कृष्ण-प्रेम की ध्वजा माने जाते हैं।

'परमानंद सागर' में वात्सल्य भाव का विस्तार से चित्रण हुआ है। सूरदास (दे०) की भाँति इन्हें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-लीला का बोध हुआ था। कवि ने बाल-लीला-संबंधी पदों में कृष्ण-जन्म, पालना, छठी, स्वामिनी जी का जन्म, गोपी उपालंभ, सखाओं की केलि, यमुना-विहार, गोदोहन, गोचारण, वन-क्रीड़ा, दानलीला आदि पर काफ़ी विस्तार से विचार किया है। किशोर-लीला के अंतर्गत गोपियों की आसक्ति, राधा की आसक्ति, कृष्ण-रूप-वर्णन, युगल-रस-वर्णन, रासलीला, अंतर्धान, जलक्रीड़ा, मान-लीला, मनुहार, फलोत्सव, खंडिता समय, हिंडोल, यमुना-विहार आदि शीर्षकों में गोपी या राधा भाव की कांतारति का प्रस्फुटन अधिक है। कृष्णलीला के वर्णन में इनकी समानता केवल सूरदास से की जा सकती है। मंदिर, शोभा, पवित्रा, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, दशहरा आदि से संबंधित पद इनकी शुद्ध धार्मिक और सांप्रदायिक रुचि के परिचायक हैं और इस रूप में इन्हें 'अष्टछाप' के एक अन्य कवि कृष्णदास के साथ बार-बार तोला जा सकता है। निश्चय ही मध्यकालीन वैष्णव कवियों में परमानंद दास प्रेम और भक्ति के पर्याय बन गए हैं।

परमानंद मेवाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1865 ई; मृत्यु—1938 ई०]

परमानंद मेवाराम का जन्म हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। वे यौवन-काल में ईसाई मज़हब के सिद्धांतों से प्रभावित होकर ईसाई बन गए थे और सिंध में मसही मत का प्रचार करने लगे थे। परमानंद मेवाराम ने 1900 ई० के आस-पास 'जोत' नामक सिंधी साहित्यिक पत्रिका का संपादन-कार्य सँभाला था। इस पत्रिका के द्वारा इन्होंने मृत्युपर्यंत सिंधी-साहित्य की जो सेवा की वह अविस्मरणीय है। इन्होंने 'जोत' पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित अपने साहित्यिक निबंधों के दो संग्रह 'गुलफुल' (1925 और 1936 ई०) नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित कराए थे जो इनकी सौष्ठवपूर्ण और गरिमामयी भाषा-शैली का प्रमाण है।

इसी प्रकार इन्होंने 'जोत' में समय-समय पर प्रकाशित अपनी हास्य और व्यंग्यपूर्ण कहानियों को प्रकाशित कराया था। इनके दो शब्दकोश (सिंधी-अँग्रेज़ी शब्दकोश—1910 ई०, अँग्रेज़ी-सिंधी शब्दकोश—1932 ई०) आज तक सिंधी-साहित्य के क्षेत्र में प्रमाण-ग्रंथ माने जाते हैं। बीसवीं शती ईसवी के सिंधी-गद्यकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

परमेश्वर, कवींद्र *(बँ० ले०)*

कवींद्र परमेश्वर का कोई परिचय नहीं मिलता। अनुमान है कि इनका नाम परमेश्वर था और उपाधि 'कवींद्र'। किसी-किसी का मत है कि इनका नाम श्रीकर नंदी था। गोपनाथ शास्त्री के मतानुसार इनका नाम वाणीनाथ था और 'कवींद्र' उपाधि थी। ये कूचविहार राज्य में मंत्री थे और मूलतः चटगाँव के निवासी थे।

'पांडव विजय' अथवा 'विजयपांडव' इनकी कृति है। हुसेनशाह के सेनापति लस्कर परागलखान ने चटगाँव-विजय करने के पश्चात् इन्हें 'महाभारत' की कथा लिखने का आदेश दिया था।

'पांडव विजय' 'महाभारत' की संपूर्ण कथा का अनुवाद है। यह 'महाभारत' का प्राचीनम अनुवाद है और उत्तर बंग में अत्यंत लोकप्रिय है। अनुमानतः इसका रचना-काल सोलहवीं शती का दूसरा-तीसरा दशक है।

परमेश्वर भट्ट, एस० वी० *(क० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

कन्नड के श्रेष्ठ कवि श्री एस० वी० परमेश्वर भट्ट जी का जन्म शिवमोग्गा ज़िले के तीर्थहल्ली के पास एव गाँव में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। स्वर्गीय बी० एम० श्रीकंठय्या (कुवेंपु) (दे०) आदि कविजनों से प्रेरणा लेकर ये विद्यार्थी-जीवन में ही काव्य-रचना में प्रवृत्त हो गये थे। विद्यार्थी-जोवन में ही इन्होंने वर्ड्सवर्थ के काव्य का कन्नड-काव्यानुवाद प्रस्तुत किया जिस पर इन्होंने रजत-पदक मिला था। इन्होंने कालिदास (दे०) की समस्त कृतियों का कन्नड अनुवाद किया है। ये अनुवाद काफ़ी सरल हैं। 'गाथा सप्तशती' का भी सरल अनुवाद इन्होंने किया है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'जहाँनारा', 'रागिनी', 'इंद्रचाप', 'उप्पकडलु', 'चंद्रवीथि' आदि। शृंगार इनका सर्वाधिक प्रिय रस है; फलतः उसके निरूपण में इन्हें विशेष सफलता मिली है। 'इंद्रचाप' मुक्तक कविताओं का संकलन है तो 'उप्पुकडलु' में इनकी सूक्तियाँ संगृहीत हैं। 'रागिनी', 'जहाँनारा' आदि में संगृहीत कविताओं में रोमांटिक भावना प्रधान है। प्रकृति-प्रेम एवं सौंदर्य-प्रेम के चित्रण में इन्हें विशेष सफलता मिली है। भाषा में लालित्य है। ये एक सफल आलोचक भी हैं। 'सीकुमोर' इनके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबंधों का संकलन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परयन् तुळ्ळल् *(मल पारि०)*

यह कुंचन नंपियार (दे०)-रचित तुळ्ळल् कथाओं के तीन प्रकार-भेदों में से एक है। अन्य दो प्रकारों की अपेक्षा इसमें शिथिल लय के गान के लिए उपयुक्त छंदों का प्रयोग हुआ है। वस्त्र और मल्लिका इसमें मुख्य हैं। 'परयन्' केरल की एक निम्न जाति है और उसका वेश धारण करके प्राकृत नृत्य करने की प्रथा मंदिरों के कुछ उत्सवों में हुआ करती थी। इस तुळ्ळल् का प्रादुर्भाव यहीं से हुआ होगा।

परशमणि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

कवयित्री नलिनीबाला देबी (दे०) के 'सपोनर सुर' कविता-संग्रह की जो विशेषताएँ अन्यत्र बताई गई हैं, वे इस संग्रह में भी हैं, अर्थात् व्यथित हृदय की अनुभूति, प्रकृति में विश्व-स्रष्टा के सौंदर्य की खोज आदि। इस संग्रह की एक अन्यतम विशेषता यह है कि इसमें राष्ट्रीय गीतों का समावेश है।

परशुराम *(बँ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

जिस प्रकार केवल कहानी लिखकर ओ' हेनरी तथा मोपासां विश्व-साहित्य में प्रसिद्ध हुए हैं, ठीक उसी प्रकार राजशेखर बसु ने केवल कहानी की रचना करके समस्त भारत में ख्याति प्राप्त की है। शायद ही कोई ऐसी भारतीय भाषा हो जिसका पाठक राजशेखर बसु (छद्मनाम : परशुराम) की व्यंग्य-कहानियों से परिचित न हो।

प्रथम श्रेणी में एम० एस-सी० (रसायनशास्त्र) परीक्षा उत्तीर्ण, बँगला केमिकल्स के मैनेजर, राजशेखर ने 'भारतवर्ष' पत्रिका में परशुराम के छद्मनाम से अपनी पहली कहानी 'बिरिंचिबाबा' (दे०) प्रकाशित कराई थी। इस सरस व्यंग्य-कथा के प्रकाशित होते ही इन्होंने पाठकों के मन में स्थायी स्थान बना लिया था, इसके बाद इन्होंने इस प्रकार की कहानियों का पहला संकलन 'गड्डालिका' (1924 ई०) प्रकाशित कराया था। रवींद्रनाथ (दे०) ने इन कहानियों की प्रशंसा करते हुए बंगाल केमिकल्स के मालिक तथा विख्यात नेता प्रफुल्लचंद्र राय को लिखा था कि रस जाँचने की कसौटी में कसकर मैंने देखा कि आपके बंगाल केमिकल्स का यह आदमी (परशुराम) किसी तरफ़ से भी 'केमिकल गोल्ड' नहीं है; वह बिल्कुल सच्चा खरा सोना है। परशुराम के अन्य कहानी-संग्रहों के नाम हैं—'कज्जली' (1927 ई०), 'हनुमनेर स्वप्न' (1937 ई०), 'कृष्णकली', 'नीलतारा', 'आनंदीबाई' इत्यादि गल्प। अंतिम काव्य-संग्रह पर इन्हें 1955 ई० में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था। परशुराम की प्रत्येक कहानी में व्यंग्य और विनोद स्पष्ट है, किंतु ये किसी को आघात नहीं पहुँचाते वरन् एक शुभाकांक्षी के रूप में विद्रूप की रेखाओं द्वारा चरित्रों को अंकित करते हैं, जहाँ एक चिंतनशील विश्लेषक मन की प्रच्छन्न हँसी कहानियों को मनोरम बना देती है।

प्रबंध-रचना की दिशा में भी राजशेखर की अनन्यता स्पष्ट है। 1936 ई० में इन्होंने 'चलंतिका' के नाम से एक अभिनव बँगला-शब्दकोश प्रकाशित कराया था। इनका निबंध-संग्रह 'लघु-गुरु' (1939 ई०) तथा 'बिचिंता' (1955 ई०), 'वाल्मीकि रामायण', 'व्यास महाभारत' का संक्षिप्त अनुवाद एवं 'मेघदूत' का सटीक अनुवाद बँगला साहित्य-क्षेत्र की अमूल्य निधियाँ हैं।

परशुराम *(म० ले०)* (जन्म—1754 ई०; मृत्यु—1844 ई०]

परशुराम नासिक के पूर्व में स्थित वावी गाँव के निवासी थे। ये जाति से दर्ज़ी थे। ये बाल्यकाल से बिट्ठल के अनन्य उपासक रहे। कहा जाता है कि इन्हें भगवान विट्ठल ने दर्शन भी दिए थे।

इन्होंने लावणी और पोवाडों की रचना की थी। विषय-चयन की दृष्टि से इनकी लावणियाँ वैविध्य-पूर्ण हैं। परशुराम ने अनेक विनोदपूर्ण प्रसंगों को अपनी लावणियों में गुंफित कर उनकी सरसता को द्विगुणित किया है। इनकी लावणियों में तत्कालीन परिस्थितियों, समाज में प्रचलित विभिन्न रीति-नीतियों, प्रथाओं, रहन-सहन आदि का विस्तार से उल्लेख किया है।

इनके काव्य का यह वैशिष्ट्य है कि इन्होंने अध्यात्मपरक लावणियाँ भी लिखी हैं। इनके पोवाडों में अँग्रेज़ शासन-काल में भारत की अवस्था का चित्रण मिलता है।

इनके काव्य की भाषा संस्कृत-प्रचुर, सालंकृत नहीं है, वरन् स्वच्छंद और गतिमान शुद्ध मराठी है। इनके काव्य का सौंदर्य उसकी सहजता में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परशुरामन् *(मल० पा०)*

परशुरामन् को प्रधान कथा-पात्र के रूप में ग्रहण कर मलयाळम में 'वलिय कोयित्तंपुरान' (दे०), 'कृष्ण ज्ञान' आदि कवियों ने कथकळि में काव्य-ग्रंथ लिखे हैं। केरल में एक कथा प्रचलित है कि परशुराम ने अपना परशु सागर में फेंका था और जहाँ वह गिरा वहाँ तक से सागर हट गया। उसी स्थान का नाम केरल हुआ। केरली लोककथा-नायक परशुराम के बारे में कई कथाएँ प्रचलित हैं।

परांजपे, शकुंतला *(म० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

इनका जन्मस्थान पूना है। इन्होंने बंबई से बी० एस-सी० किया था और कैंब्रिज से बी० ए० और उसके बाद एम० ए० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी।

इनके 'घराचा मालक' नामक उपन्यास में प्रतिपाद्य विषय मौलिक है। इनका 'पांघरलेलीं कातडीं' नाटक विलोभनीय है। इसकी कथा मूलतः सिनेमा के लिए लिखी गई थी। 'चढाओढ' तथा 'सोयरीक' स्लेप्ट सॉफ नामक फ़्रेंच नाटककार के नाटकों के रूपांतर हैं। 'थ्री' इअर्स इन आस्ट्रेलिया' अँग्रेज़ी में लिखित स्थल-वर्णन संबंधी ग्रंथ है।

'भिल्लणीचीबोरं' इनके ललित निबंधों का संग्रह है जिनमें कुछ व्यक्ति-रेखाचित्र भी हैं।

परिपाडल *(त० प्र०)*

यह एक काव्य-विधा है जिसका दूसरा नाम 'परिपाट्टु' भी है। यह गेय काव्य है और इसमें 25 से लेकर 400 तक चरण होते हैं। तमिल के चारों प्रधान छंद-भेद —वेण्-पा, आशिरिय-प्-पा, कलि-प्-पा, वञ्जि-प्-पा—इसमें प्रयुक्त हो सकते हैं और बीच-बीच में 'पृथक् शब्द' (जो चरण का अंग न होकर अलग रहता है), 'छुरितकम्', 'अरागम्' आदि भी रहते हैं।

'परिपाडल' का मुख्य विषय प्रेम है जो भगवान के प्रति आत्म-निवेदन के रूप में भी हो सकता है। इसमें पर्वत-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा आदि के वर्णन होते हैं और प्रबंधात्मक कथानक न होने पर भी घटनाओं का उल्लेख रहता है।

संघकालिक साहित्य में ऐसे 70 गेय काव्यों का एक संकलन किया गया था जिनमें से अब केवल 22 ही उपलब्ध हैं। इस संकलन का नाम भी 'परिपाडल' ही है। इन पदों को गाने के लिए रागों के नाम भी दिए गए हैं।

परिपाडल *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

'परिपाडल' की गणना 'ऐट्टुत्तोगै' में होती है। कहा जाता है कि 'परिपाडल' नामक एक रचना प्रथम संघकाल में भी रची गई थी जो कि आज अप्राप्य है। इस कृति में विभिन्न कवियों द्वारा रचित 70 पद थे जिनमें से 24 पद ही आज उपलब्ध हैं। ये पद 25 से लेकर 400 पंक्तियों तक के हैं। उपलब्ध पदों में विष्णु और कार्तिकेय की स्तुति है। कुछ पदों में वैगै नदी का वर्णन है। विष्णु-स्तुति के पदों में कवियों ने कृष्ण और बलराम के मंदिरों का उल्लेख भी किया है। वैगै नदी से संबंधित पदों में कवियों ने यह बताया है कि उस युग में वैगै नदी अत्यंत पवित्र मानी जाती थी। लोग उस नदी के किनारे नृत्य और गायन का अभ्यास किया करते थे। कुछ पदों में तिरुप्पारन कुंदरम् पर स्थित मुरुगन के मंदिर की दीवारों पर चित्रित कलाकृतियों का विशद वर्णन है। ये चित्र ग्रहों, नक्षत्रों, रति-कामदेव, गौतम-अहल्या, इंद्र, प्रह्लाद आदि देवी-देवताओं एवं प्रसिद्ध पुरुषों तथा समुद्र-मंथन, कार्तिकेय-जन्म, त्रिलोक-दहन आदि पौराणिक घटनाओं से संबद्ध हैं। परिपाडल के पदों में संगीतात्मकता है। संपूर्ण कृति 'परिपाडल' (दे०) छंद में रचित है इसी से कृति को 'परिपाडल' नाम दिया गया। 'परिपाडल' के पदों में प्राप्त मुरुगन-मंदिर के चित्रों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की आरंभिक शतियों में ही तमिलनाडु में चित्रकला का पर्याप्त विकास हो चुका था।

परिमेलळ्गर *(त० कृ)* [समय—ईसा की तेरहवीं शती का उत्तरार्ध]

परिमेलळ्गर तमिल के टीकाकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन्होंने मदुरै में रहते हुए तमिल साहित्य की सेवा की। तमिल के प्रसिद्ध नीति-ग्रंथ तिरुक्कुरल (दे०) पर धरुमर, मणक्कुडवर, तामत्तर, नच्चर, परिदि, तिरुमलैयर, मल्लर, परिप्पेरुमाळ और काळिंगर द्वारा लिखी गई टीकाओं का भली प्रकार अध्ययन कर, उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों को ग्रहण करते हुए परिमेलळ्गर ने एक टीका लिखी। इसे विद्वान तिरुक्कुरल की सर्वश्रेष्ठ टीका स्वीकार करते हैं। इस टीका द्वारा परिमेलळ्गर ने तिरुवळ्ळुर (दे०) के समान अपार ख्याति अर्जित की। तमिल एवं संस्कृत साहित्य के ज्ञाता होने के कारण परिमेलळ्गर ने कुरल के दोहों को समझाने के लिए तमिल एवं संस्कृत कृतियों से उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। मूल कृति के महत्व और भाव-गांभीर्य को व्यक्त करने में इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इनकी गद्यशैली क्लिष्ट एवं दुरूह है। इन्होंने प्रायः सामाजिक शैली का प्रयोग किया है। विभिन्न स्थलों पर उपमाओं का सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है। तिरुक्कुरल पर लिखी इनकी टीका तब से आज तक पंडितों का ध्यान आकृष्ट करती आ रही है। सत्रहवीं शती में तिरुमेनी रत्न कविरायर ने 'नुणपोरुळ मालै' शीर्षक से इनकी टीका पर एक टीका लिखी।

परिबर्तन *(उ० कृ०)*

'परिबर्तन' काळिचरण पटनायक (दे०) का सामाजिक नाटक है। इसमें सूक्ष्म मनोवृत्तियों का घात-प्रतिघात दर्शाया गया है। गोपाळ (दे०) का आहत अहं, उसकी छिपी आत्महीनता की भावना, कालांतर में विद्रोह का रूप ले लेती है। वह अपने आश्रयदाता तथा उनकी पुत्री के प्रति कठोर हो उठता है। पारिवारिक जीवन विषमताओं से भर उठता है। सब कुछ नष्ट हो जाने के पहले गोपाळ में परिवर्तन आता है। टूटता हुआ परिवार सँभल जाता है। रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक सफल है, अतः सामाजिकों पर इसकी प्रभावात्मकता असंदिग्ध है।

परिव्राजक *(बँ० कृ०)*

स्वामी विवेकानंद (दे०) की दूसरी अमरीका तथा यूरोप-यात्रा की घटनावली को लेकर 'उद्बोधन' पत्रिका में 'विलातयात्रीर पत्र' के नाम से सर्वप्रथम एक लेखमाला धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई थी। बाद में इसे ही 'परिव्राजक' नाम देकर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। समकालीन जगत् एवं जीवन का मर्मस्पंदन इस ग्रंथ में बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत हुआ है। उच्छ्वास या भावुकता की कहीं लेशमात्र भी गंध इसमें नहीं। विदेशी समाज एवं सभ्यता को सुगंभीर एवं प्रशांत मनन की सहायता से ग्रहण कर भारतीय आदर्श के मानदंड पर लेखक ने उसे कसा है। संहत भाषा में लेखक ने सहज ढंग से इतिहास, दर्शन, साहित्य एवं विज्ञान की आलोचना की है—यद्यपि भ्रमण-कहानी का मूल स्वर कहीं भी दबा नहीं है। विवेकानंद की सौंदर्य-दृष्टि की सार्थक प्रतिच्छवि है 'परिव्राजक'। विदेशी पटभूमिका में स्वदेश-प्रतिभा की अपरूप शिल्पश्री इस ग्रंथ का अभिनव आविष्कार है।

परिमल *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1930 ई०]

निराला (दे०) के इस छायावाद (दे० छायावाद)-कालीन काव्य-संग्रह में उन्मेष-काल की चुनी हुई 78 कविताएँ सम्मिलित हैं। रूपात्मक दृष्टि से ये कविताएँ तीन खंडों में विभाजित हैं। प्रथम खंड में सममात्रिक सांत्यानुप्रास कविताएँ हैं और दूसरे खंड में विषममात्रिक सांत्यानुप्रास कविताएँ। तीसरा वर्ग कवित्त छंद के प्रवाह में लिखी गई प्रयोगात्मक रचनाओं का है। 'पंचवटी-प्रसंग' शीर्षक नाट्य-प्रयोग भी इसी खंड में संगृहीत है। विषय की दृष्टि से इस संग्रह में पर्याप्त वैविध्य है। प्रकृति, शृंगार, रहस्य और दर्शन की अनुभूतियों तक ही कवि सीमित नहीं रहा है; अनेक कविताओं में अतीत के प्रति अनुराग, राष्ट्र-भक्ति और दलितों के प्रति करुणा के मार्मिक उद्गार भी प्रकट हुए हैं। 'यमुना के प्रति', 'तुम और मैं', 'विधवा', 'भिक्षुक', 'संध्या-सुंदरी', 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार' और 'महाराज शिवाजी' का पत्र आदि प्रसिद्ध रचनाएँ विषय-वैविध्य के उदाहरण हैं। कलात्मक दृष्टि से प्रतीकात्मक अभिव्यंजना, चित्रात्मक शैली और लाक्षणिक शक्ति-विधान आदि सभी छायावादी तत्त्व इस संग्रह की कविताओं में प्रचुरता से मिलते हैं।

परीक्षा गुरु *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1882 ई०]

अधिकांश आलोचकों के मतानुसार यह हिंदी का पहला उपन्यास है। जिन दिनों यह उपन्यास लिखा गया था उन दिनों हिंदी में तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों का बाहुल्य था जिनमें जीवन की समस्याओं से मुँह मोड़ कर कल्पना-प्रधान ऐंद्रजालिक वातावरण की सृष्टि की जाती थी। किंतु लाला श्रीनिवासदास (दे०) द्वारा लिखित प्रस्तुत उपन्यास में इसके विपरीत एक बिगड़े रईस के विनिपात तथा उद्धार की कथा को आधार बनाया गया है। चूँकि इस उपन्यास का मूल उद्देश्य सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधार है, परिणामतः इसमें उपदेशों की प्रचुरता मिलती है।

परीख, नरहरि *(गु० ले०)* [समय—1891-1960 ई०]

श्री परीख भी गांधी जी (दे०) के सत्याग्रह आश्रम में थे और गांधी जी के चुने हुए कार्यकर्ताओं में से थे। इन्होंने 'मानव अर्थशास्त्र' ग्रंथ में अर्थशास्त्र को गांधीवादी दृष्टि से नये ढंग से प्रस्तुत किया है। गुजरात विद्यापीठ में यह अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक थी और आज भी है। इन्होंने महादेव देसाई (दे०), सरदार पटेल, और किशोरलाल मशरुवाला (दे०) की जीवनियाँ लिखी हैं। गुजराती के जीवनी-साहित्य में इन ग्रंथों का बहुत ऊँचा स्थान है। अनुवाद-साहित्य में इनका योगदान उल्लेखनीय है। टॉलस्टाय के कई ग्रंथों के गुजराती अनुवाद इन्होंने किए हैं और रवींद्रनाथ (दे०) के नाटकों के भी अनुवाद किए हैं।

परीख, रसिकलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

रसिकलाल परीख का जन्म सांदर में हुआ। पिता छोटालाल परीख की 1912 ई० में मृत्यु हुई। माता चंचलबेन तथा काका वाडिलाल जी ने इन्हें पढ़ाया-लिखाया। विद्यार्थी-काल में डा० गुणे, प्रोफ़ेसर रानाडे, महामहोपाध्याय अभ्यंकर शास्त्री, प्रो० पटवर्द्धन से तथा परवर्ती काल में मुनि जिनविजय जी, पं० सुखलाल जी से परिचित-प्रभावित हुए। 1920 ई० में अहमदाबाद आकर अध्यापकीय जीवन प्रारंभ किया।

कृतियाँ—'स्मृति' (कविता-संग्रह); 'जीवन नां वहेणो' (कहानी-संग्रह); 'मेना गुर्जरी' (नाटिका), 'शर्विलक' (नाटक); 'पुरोवचन अने विवेचन' (समीक्षा); 'प्रेम नुं मूल्य' (रेडियो नाटिका); 'पहेलो कलाल' (अनुवाद); 'रुपिया नुं झाड', काव्यानुशासन', भाग 1-2 (संपादन); 'काव्यप्रकाश-खंडन', 'काव्यादर्श', 'काव्यप्रकाश संकेत', 'नृत्यरत्न कोश', 'काव्यप्रकाश'—उल्लास 1 से 6, 'वैदिक पाठावली', 'गुजरात नी राजधानीओ', 'आनंद मीमांसा, इतिहास : पद्धति अने स्वरूप' आदि। पाश्चात्य व भारतीय दर्शन, भारतीय काव्यशास्त्र, कोशविज्ञान, वेद, नाट्य, भारतीय संस्कृति आदि इनके प्रिय विषय हैं।

अध्यापक, अनुसंधाता, शोध-निदेशक, कवि, नाटककार, संपादक, पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासविद्, समीक्षक आदि अनेक रूपों से युक्त व्यक्तित्व-संपन्न परीख जी ने वर्षों तक गुजरात विद्या सभा के डायरेक्टर के रूप में सेवाएँ की हैं। 'मेना गुर्जरी' को राष्ट्रीय अभिशंसा तथा 'शर्विलक' को राष्ट्रीय स्तर पर अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। विद्या-पुरुष रसिक भाई व्यक्ति नहीं संस्था हैं।

पर्दा-ए-ग़फ़लत *(उर्दू० कृ०)*

यह नाटक है जिसके लेखक डा० सैयद आबिद हुसैन (दे०) हैं। डा० आबिद हुसैन एक संतुलित विचारक और संवेदनशील साहित्यकार हैं और उनकी इस कृति में उनकी संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति हुई है।

पर्याय *(सं०, हिं० पारि०)*

'पर्याय' या 'पर्यायवाची' शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं जिनमें अर्थ की समानता होती है—जैसे 'जल' और 'पानी'। यदि गहराई से देखा जाए तो किसी भी भाषा के बहुत कम ही शब्द आपस में सच्चे पर्याय होते हैं। तथाकथित पर्यायों में भी प्रायः आपस में प्रयोगों की दृष्टि से कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य होता है। उदाहरण के लिए 'दया' और 'कृपा' को प्रायः पर्याय कहा जाता है किंतु किसी भी करुण कहानी को सुनकर किसी को 'दया' आ सकती है, 'कृपा' नहीं आ सकती। इसी प्रकार आप शर्म से 'पानी-पानी' हो सकते हैं, 'जल-जल' नहीं; किंतु इसके विपरीत आप अतिथि से 'जलपान' करने की प्रार्थना करते हैं 'पानीपान' की नहीं।

पलनां प्रतिबिंब *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

गुजराती उपन्यास-साहित्य में हरींद्र दवे का यह एक नया प्रयोग है। अस्तित्ववाद के प्रभाव से हमारे यहाँ जिस नये साहित्य का सर्जन हुआ उसका परिचय इस उपन्यास से मिलता है। अस्तित्ववाद में क्षण का महत्व होता है, चिरंतन का नहीं। इस उपन्यास में अलग-अलग क्षणिक प्रसंगों का निरूपण किया गया है, और उन क्षणों को जोड़ने से उपन्यास का कथानक बनता है। एक प्रसंग का दूसरे प्रसंग के साथ वैसे कोई संबंध नहीं है इसलिए कथानक को चलता प्रतिबिंब—क्षण का प्रतिबिंब—नाम दिया गया है। इसमें जिस समय का निरूपण है, वह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवैज्ञानिक समय है। अस्तित्ववादी उपन्यासों में यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग है।

पलनाटि वीरचरित्र *(तें० कृ०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) द्वारा रचित एक सुंदर वीरगीत है। यह मध्ययुगीन आंध्र में घटित 'महाभारत' (दे०) की कहानी से समता रखने वाली ऐतिहासिक कहानी पर आधारित है। श्रीनाथुडु के समय में वीरगीतों का आदर नहीं होता था। फिर भी तेलुगु जाति के इतिहास एवं उसकी परंपराओं के प्रति तीव्र अनुराग रखने के कारण विद्वान कवि ने अपने पांडित्य-प्रकर्ष के उन्नत आसन से उतरकर साधारण जनता की अपनी शैली में इसकी रचना की थी। यह तेलुगु के 'द्विपद' छंद में, गेय-रूप में लिखा गया है। उदात्तता एवं निरा-डंबरता के गुण इसमें सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं।

इस काव्य में आंध्र के 'पलनाडु' नामक प्रांत में बारहवीं शती के उत्तरार्ध में हैहयवंश के दो चचेरे भाई राजाओं के बीच हुए गृहयुद्ध का वर्णन है जो कौरव-पांडवों के युद्ध का स्मरण करा देता है। यह काव्य मलिदेवराजु के स्वामिभक्त मंत्री ब्रह्मनायुडु द्वारा चलाए गए महान् सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन पर भी प्रकाश डालता है। नागम्मा (दे०), ब्रह्मनायुडु और बालचंद्रुडु (दे०) इस महान् युद्ध के परम योद्धा थे। इसमें 'मुद्राराक्षस' (दे०) नाटक के चंद्रगुप्त के समान दोनों पक्षों के राजा निष्क्रिय हैं और सारा कार्यव्यापार सचिवायत्त है। वीर, करुण एवं शांत रसों का परिपाक इस काव्य में हुआ है। आंध्र-जनता में यह विशेष रूप से लोकप्रिय हुआ है।

पलाशीर युद्ध *(बँ० कृ०)* [रचना-काल--- 1876 ई०]

ऐतिहासिक गाथा-काव्य 'पलाशीर युद्ध' लेखक नवीनचंद्र सेन (दे० सेन, नवीनचंद्र) के यश का प्रथम एवं प्रधान कारण है। पाँच सर्गों में विभाजित इस काव्य में पलासी के युद्ध में सिराज की हार एवं हत्या तथा अँग्रेज़ों की विजय-कथा वर्णित है। अंत में मोहनलाल के दृप्त आह्वान के माध्यम से काव्य के मूल वक्तव्य—देश-प्रीति एवं स्वाधीनता-प्रेम—का उल्लेख किया गया है। कवि नवीनचंद्र सेन की काव्य-रचना में उनका हृदय मूल शक्ति है। भावुकता उनका धर्म है। कवि स्वदेश-प्रेम में विगलित हैं, और सौंदर्य में आत्मविस्मृत हैं। उनके काव्य में आत्मगत आशा एवं आनंद की अभिव्यक्ति हुई है।

'पलाशीर युद्ध' अतिदीर्घ काव्य-निबंध है। एक ओर अबाध कल्पना और दूसरी ओर जीवन के एक उच्च आदर्श-प्रचार के फलस्वरूप यह काव्य उस समय के शिक्षित हिंदू-समाज में बहुत ही जनप्रिय हुआ था।

पल्लव *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1928 ई०]

'वीणा' और 'ग्रंथि' के उपरांत सुमित्रानंदन पंत (दे०) जी की पहली प्रौढ़ रचना 'पल्लव' है। विषय की दृष्टि से प्रेमपरक, प्रकृतिपरक और रहस्यात्मक रचनाएँ इसमें महत्वपूर्ण हैं। प्रेमपरक रचनाओं में यौवन का भावोन्माद, प्रकृतिपरक रचनाओं में दृश्य की रमणीयता और रहस्यात्मक रचनाओं में असांप्रदायिक स्वाभाविकता आकृष्ट करती है। इस संग्रह की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता का भाव और शिल्प की अन्विति के कारण विशेष महत्व है। वह पंत जी के काव्याकाश में उस दूरवर्ती तारे के सदृश है जो सबसे पृथक् रहकर अपनी ज्योति विकीर्ण करता है। कला की दृष्टि से लाक्षणिक वैचित्र्य, कल्पना-विलास, चित्रमयी भाषा, साभिप्राय विशेषण और व्यंजक प्रतीक-विधान आदि छायावादी (दे० छायावाद) प्रवृत्तियों का पूर्ण आभास इस रचना में मिलता है। सब मिलाकर यह माना जा सकता है कि 'पल्लव' युवा कवि के पूर्ण क्षणों की वाणी है—उसमें विहगवन के इस राजकुमार की उन्मुक्त वन्य गीतियाँ हैं।

पल्ली-चित्र *(उ० कृ०)*

'पल्ली-चित्र' श्री नंदकिशोर बळ (दे०) का छोटे आकार का काव्य है। ग्राम्य जीवन-अंकन की दिशा में यह एक सफल एवं सशक्त प्रयास है। ग्रामीण भाषा, सरल संवेना, मृदु-मंथर छंद के प्रयोग से कवि ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर सशक्त रेखाओं से गाँव की विभिन्न जीवन-धाराओं को उभार दिया है।

छड़ी लिये गुरु जी, अपने केंदेरा द्वारा ग्रामीण वधुओं के नेत्रों को सजल बनाता नाथ-योगी, धूर्त नाई; पल्ली वधू के सतृष्ण नेत्रों का लक्ष्य फेरी वाला, ग्राम्य पुरोहित आदि जो कल तक ग्राम्य जीवन के अभिन्न अंग थे, हमारे मानस-पटल पर क्रमशः उभरते-मिटते जाते हैं। जनपदवासियों की हास्य-अश्रुरंजित कथा, धान के खेत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम्य देवालय, ग्राम्य श्मशान आदि चलचित्र की भाँति तरंगायित हो उठते हैं। निसर्ग-सुंदरी के सजीव रूपांकन में एक ताज़गी है, एक नूतनता है। कवि की उर्वर कल्पनाशीलता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति, गंभीर रसबोध, व्यापक जीवनानुभूति, गहन चिंतनशीलता भाषा की मूर्ति-विधायिनी शक्ति एवं छंदों की सावलील गति के कारण उनके ग्रामीण चित्र अत्यंत सरस, मधुर एवं जीवंत हो उठे हैं।

पल्लीगीति (*बँ० प्र०*)

'पल्लीगीति' से तात्पर्य है लोक-समाज में प्रचलित गीत। इसे 'लोक गीति' भी कहते हैं जिसका गायन विवाह आदि सामाजिक उत्सवों या फिर व्रत-पूजा-पर्वादि में किया जाता है। बंगाल में लोक-गीति की परंपरा इतनी विस्तृत है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था का इसने स्पर्श किया है। इन गीतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है: ताल-युक्त एवं ताल-हीन गीत। बंगाल के विभिन्न लोक-गीत बंगाल के विभिन्न प्रांतों में सीमाबद्ध हैं; उदाहरणतया, पश्चिम बंगाल में पटुआ, भादु, झुमुर तो उत्तर बंगाल में गंभीरा, जाग, भाओयाइया तथा पूर्वबंग में जारि, घाटु इत्यादि। आंचलिक होने पर भी ये गीत समग्र बंगाल के अखंड लोक-साहित्य के अविभाज्य अंग हैं।

आंचलिक गीतों के अतिरिक्त लोकगीतों में प्रेम-संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला ही इन प्रेम-गीतों का उत्सव है। बंगाल का प्रेम-संगीत प्रधानतः 'भाटियालि संगीत' कहा जाता है। बंगाल के लोक-गीतों का एक प्रधान अंश पारिवारिक है। पारिवारिक जीवन के व्यावहारिक प्रयोजन के निमित्त ही इनका गायन होता है। इसे महिला-संगीत भी कहते हैं क्योंकि प्रधानतः यह नारी-समाज में ही सीमाबद्ध है। ये गीत अधिकतर अलंकरणहीन और साधारण होते हैं। पारिवारिक गीतों के अंतर्गत पार्वण-संगीत का भी उल्लेख किया जाता है जो प्रतिवर्ष किसी निर्दिष्ट दिन किसी पार्वण के उपलक्ष्य में गाया जाता है। गाजनेर गान, भांजो, उमा-संगीत, कार्तिक ब्रतेर गान, पौष-पार्वणेर गान आदि इनके नाम हैं। इनके अतिरिक्त लोकगीति के अंतर्गत किसानों के गीतों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बंगालियों के देवता शिव स्वयं किसान हैं और धान की बाली लक्ष्मी। इन्हीं को लेकर चाषेरगान, पाटकाटार गान, धानमानार गीत, सारि आदि गीत गाने का प्रचलन है।

पळ्ळु (*त० पारि०*)

'पळ्ळु' तमिल नाटक के प्राचीन रूपों में से है। विद्वानों के मतानुसार 'पन्निरु पाट्टियल' नामक व्याकरण-ग्रंथ में उल्लिखित उळत्तिप्पाट्टु (कृषक-स्त्री-गीत) ही कालांतर में 'पळ्ळु' कहा गया। इसमें मुख्यतः कृषकों के सामाजिक जीवन का सरस, सजीव, मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है। इसमें वर्णित कथा की रूपरेखा इस प्रकार है—कृषक की दो पत्नियों में परस्पर विवाद, ज़मींदार के पास जाना, एक का पति के विरुद्ध शिकायत करना एवं दूसरी का पति का पक्ष लेना, अंत में आपसी वैरभाव भुलाकर खुशी-खुशी घर लौटना। 'पळ्ळु' नाटकों की रचना ग्रामीण जनता के मनोविनोद के लिए की गई थी। इनमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता होती है। इनमें विविध छंदों और मुख्यतः श्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग दृष्टिगत होता है। 'पळ्ळु' संगीत-नाटक का एक रूप है। इसमें संगीतात्मकता की प्रधानता होती है। इसमें प्रायः बोलचाल के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। चौदहवीं और पंद्रहवीं शती में तमिल में अनेक 'पळ्ळु' लिखे गए, जैसे—'मुक्कूडर पळ्ळु', 'तिरुमलै मुरुहन पळ्ळु', 'कुरुहूरप्पळ्ळु', कदिरैमलैप्पळ्ळु आदि। इनमें सर्वप्रसिद्ध है 'मुक्कूडर पळ्ळु', जिसका रचयिता अज्ञात है।

पवित्तर पापी (*पं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

नानकसिंह (दे०)-कृत 'पवित्तर पापी' मध्य-वर्गीय चेतना से अनुप्राणित सामाजिक उपन्यास है। इसके माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग की आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं को चित्रित करते हुए उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। केदार जब इस तथ्य से अवगत होता है कि उसके कारण ही पन्नालाल की नौकरी समाप्त हुई है तो वह पन्नालाल के असहाय परिवार को यथासंभव सहायता प्रदान करने लगता है। वीणा को अपनी बहन मानता हुआ केदार उससे प्रेम करने लगता है, किंतु जीवन की यह अतृप्ति और कुंठा अंत में उसके प्राण-त्याग का कारण बन जाती है। केदार के चरित्र में प्रेम के अभाव और नैतिक-सामाजिक बंधनों से प्रभावित अतृप्त मन का सुंदर विश्लेषण मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिला तारीख *(अ० कृ०)* [रचना-काल--1956 ई०]

महीने की पहली तारीख को सरकारी कर्मचारियों की तीनों श्रेणियों की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका चार अंकों में वर्णन है। ये तीन श्रेणियाँ हैं--(1) चपरासी-गण, (2) मध्यवर्गीय बाबू लोग, और (3) अफ़सर लोग। इनमें मध्यवर्गीय बाबुओं की स्थिति शोचनीय है। इनमें पद-मर्यादा भी नहीं है। अफ़सर लोगों में पद-मर्यादा और क्षमता दोनों हैं। चपरासी-वर्ग को अभाव कम है, उनके घर पर खेती-बाड़ी भी हो सकती है। सारदा बरदलै (दे०) के इस नाटक का कथा-भाग दुर्बल है, किंतु परिस्थितियाँ यथार्थ और सजीव हैं।

पांगारकर, लक्ष्मण रामचंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

इनका जन्म चिपळूण नामक स्थान पर हुआ था। पहले ये पंढरपुर तथा पूना में अध्यापक रहे और तदनंतर अमरावती में मुख्याध्यापक बने। इन्होंने 'मुमुक्षु' नामक पत्र का प्रकाशन किया था जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

प्रथम कोटि के मराठी लेखकों में इनकी गणना की जाती है। पांगारकर साहित्य-इतिहास-लेखक, संत-चरित्र-लेखक, भागवत-धर्म-प्रचारक एवं कुशल वक्ता थे।

ये प्राचीन संत-वाङ्मय के एकनिष्ठ साधक और चरित्र-लेखक थे। संत-वाङ्मय पर भाषण देते हुए ये भक्तिरंग में पूर्णतः डूब जाते थे। 'मोरोपंतचरित्र', 'श्री संत तुकारामचरित्र', 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र' तथा 'एकनाथ महाराजांचे संक्षिप्त चरित्र' आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिनमें यत्र-तत्र वैज्ञानिक शोध-दृष्टि भी प्रतिफलित हुई है। इनमें कवि के युग, जीवन-काल, विचार-परंपरा आदि पर निष्पक्षभाव से लिखा गया है।

इनका मोरोपंत विषयक अनुसंधान अत्यंत महत्वपूर्ण है। दर्शन, राजनीति तथा अन्य ज्वलंत सामाजिक प्रश्नों पर इनके निबंध 'मुमुक्षूंतील निवडक निबंध' में संगृहीत हैं। मराठी-वाङ्मय का इतिहास तीन खंडों में लिखकर इन्होंने प्राचीन मराठी-साहित्य की ऐतिहासिक समालोचना प्रस्तुत करने का विराट् अनुष्ठान पूर्ण किया है। 'चरित्र-चंद' इनका आत्मचरित है।

इस प्रकार, पांगारकर को अपने वक्तृत्व तथा इतिहास एवं चरित्र-लेखन के बल पर मराठी-साहित्यकारों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

पांचकड़ी दे *(बँ० ले०)*

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में जासूसी उपन्यासकारों में पाँचकड़ी दे ने सर्वाधिक जनप्रियता प्राप्त की थी। बँगला-उपन्यास के क्षेत्र में जासूसी उपन्यास की तरह के नये ढंग के साहित्यिक उपन्यास की संयोजना कर उपन्यास के क्षेत्र को प्रसारित करने का श्रेय पाँचकड़ी दे को है। इनके प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासों में 'नीलबसना सुंदरी', 'मायाबी', 'मनोरमा' आदि उल्लेखनीय हैं। उस युग में अँग्रेज़ी जासूसी उपन्यासों के अनुसरण पर 'बटतला सीरीज़' के नाम से असंख्य पुस्तकें निकल रही थीं जिनके लिखने वालों में शरच्चंद्र सरकार, क्षेत्रमोहन घोष, अंबिकाचरण गुप्त आदि थे। पाँचकड़ी दे ने बिल्कुल इनसे भिन्न भारतीय उपादानों की सहायता से साहित्यिक कोटि के रहस्य-रोमांचकारी उपन्यासों की सृष्टि की।

पांचाली *(त० पा०)*

तमिल-साहित्य में पांचाली से संबंधित विवरण विल्लिपुत्तूरर् (दे०) आळ्वार-कृत 'भारदम्' और भारतियार-कृत 'पांचाली शपदम्' (दे०) नामक रूपक-काव्य में प्राप्त होते हैं। इन दोनों कृतियों में पांचाली का रूप व्यास-कृत महाभारत' (दे०) की पांचाली से भिन्न है। व्यास ने पांचाली को साधारण नारी तथा विल्लिपुत्तूरर् ने उच्च गुण-संपन्न नारी के रूप में चित्रित किया है। भारतियार ने पांचाली को भारतमाता का प्रतिरूप माना है। विल्लिपुत्तूरर् का 'भारदम' बहुत-कुछ व्यास-कृत 'महाभारत' का तमिल-अनुवाद प्रतीत होता है। 'पांचाली शपदम्' पर्याप्त अंशों में मौलिक है। इस रूपक-काव्य में पांचाली भारतमाता की प्रतीक है। दुःशासन द्वारा द्रौपदी-केश-कर्षण, द्रौपदी-वस्त्रापहरण आदि प्रसंगों की चर्चा कर भारती (दे०) ने अँग्रेज़ों के शासन में भारतमाता की दयनीय दशा की ओर ध्यान आकृष्ट कर भारतीयों में देश-प्रेम की भावना जगाने का यत्न किया है।

पांचाली *(बँ० प्र०)*

कबिगान (दे०) के साथ ही साथ बंगाल में एक और प्रकार के गीतों का प्रचलन हुआ था जिसे 'पाँचाली' कहा जाता है। 'पंचालिका' या 'पांचालिका' शब्द से 'पाँचाली' शब्द का उद्भव हुआ है। बहुत पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचालिका या कठपुतली के नाच के साथ एक प्रकार की आख्यायिका गाकर सुनाई जाती थी। 'पांचाली' भी आख्यायिका-प्रधान गीत है। यद्यपि गायक बीच-बीच में वर्णनामय अंश की द्रुत लय में आवृत्ति करता चलता है। कीर्तन-गान से ही 'पांचाली' का उद्भव हुआ है। व्रजलीला-विषयक स्वयंपूर्ण आख्यान ही इसकी विषयवस्तु है यद्यपि बाद में लौकिक कहानियों को भी 'पांचाली गान' में स्थान मिलने लगा। 'पांचाली के' साथ 'कीर्तन' का पार्थक्य यह है कि 'पांचाली' में गायक अभिनय भी करता है और कभी-कभी कथा में वर्णित पात्रों की पोशाक भी पहनता है। बीच-बीच में हास्यरस की अवतारणा भी की जाती है। मूल गायक आवृत्ति, तुकबंदी व्याख्या-विश्लेषण करता हुआ कहानी को निश्चित परिणति तक पहुँचा देता है। 'पांचाली' में तानपूरा, सारंगी, ढोल, मंदिरा आदि की सहायता से गीत गाया जाता है।

'कविओयालाओ' (दे० कबिगान) के प्रभाव-स्वरूप बाद में 'पांचाली' में भी दो दलों में कवि-लड़ाई का प्रवर्तन हुआ था—यद्यपि इसमें 'खेउड़' (अश्लील तुकबंदी या गीतों में उत्तर-प्रत्युत्तर) की प्रथा नहीं थी। प्राचीन 'पांचाली' गान से ही यात्रा (दे० यात्रा) का उद्भव हुआ है, यद्यपि 'पांचाली' यात्रा से भिन्न है क्योंकि 'पांचाली' का मूल गायक या पात्र एक ही होता है जबकि यात्रा में एकाधिक पात्र एवं गायक-गायिकाएँ रहती हैं। 'कबिगान' में प्रत्युत्पन्नमतित्व के द्वारा चमत्कार-सृष्टि की जाती है परंतु 'पांचाली' में प्रत्युत्पन्नमतित्व की उतनी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यहाँ भाव-चिंतन के लिए कवि को अवकाश रहता है; इसीलिए इसमें गहराई अधिक होती है। 'पाँचाली' कथा-प्रधान संगीत है एवं इसके वर्णन-कौशल में नाटकीयता का प्राधान्य है। उस युग (अठारहवीं-उन्नीसवीं शती) के जनसमाज की स्थूल काव्य-रुचि के अनुरूप पांचाली में भी अश्लीलता का समावेश हुआ। दाशरथिराय बंगाल के श्रेष्ठ पांचालीकार माने जाते हैं।

पांचालीपरिणयमु (त० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक काकमानि मूर्तिकवि हैं। इन्होंने 'राजवाहनविजय' नामक काव्य भी लिखा था। 'पांचाली-परिणयमु' पाँच आश्वासों का काव्य है। द्रौपदी के जन्म से लेकर पांडवों के साथ उसके विवाह तक की कथा इसमें र्वित है। मूर्तिकवि की कविता हर छंद में चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।

पांचाली शपदम् (त० कृ०) [रचना-काल—1912 ई०]

'पांचाली शपदम्' भारतियार (दे० भारती, सुब्रह्मण्यम्) की प्रसिद्ध काव्य-कृतियों में से है। शीर्षक का अर्थ है 'पांचाली की प्रतिज्ञा'। इस कृति का आधार महाकवि व्यास-कृत 'महाभारत' (दे०) का द्रौपदी-प्रतिज्ञा-खंड है। इस कृति में 308 पद हैं। ईश-स्तुति तथा सरस्वती-स्तुति से काव्य का आरंभ होता है। इसके उपरांत हस्तिनापुर के सौंदर्य और समृद्धि का, दुर्योधन की सभा, उसके षड्यंत्र, पांडवों और कौरवों के जुआ खेलने, पांडवों की हार, द्रौपदी-वस्त्रापहरण, द्रौपदी द्वारा कृष्ण-स्मरण, कृष्ण द्वारा वस्त्रदान, द्रौपदी-प्रतिज्ञा आदि का प्रभावशाली वर्णन है। काव्यांत में हरि-नाम-स्मरण-महिमा गान है। 'महाभारत' का आधार ग्रहण करते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर इसे मौलिक रूप प्रदान किया है। भारती ने 'महाभारत' के उक्त खंड में प्राप्त उन प्रसंगों को छोड़ दिया है जो रसाभास उत्पन्न करते हैं। पात्रों के वचन तथा कर्मों द्वारा उनके चरित्र को स्पष्ट किया गया है। यह एक रूपक-काव्य है। इसमें पांचाली भारतमाता का, कौरव विदेशी शासकों के तथा पांडव उन भारतीय नीच राजाओं के प्रतीक हैं जो कि अपने राज्य की रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण पराधीन हैं। कवि ने भीम के माध्यम से अपनी भावनाओं और विचारधाराओं की अभिव्यक्ति की है। भारती काँग्रेस के गरम दल के सदस्य थे; तदनुसार जब युधिष्ठिर जुए में हार कर द्रौपदी को सभा में लाने का आदेश देते हैं तो भीम क्रुद्ध हो कह उठते हैं कि युधिष्ठिर के हाथों को जला देना चाहिए। यह 'नोंडि चिंदु' नामक साधारण शैली में रचित है। इसमें अनेक नाटकीय स्थल और सुंदर शब्द-चित्र हैं। शब्दों द्वारा अर्थ एवं ध्वनि की व्यंजना में कवि पूर्ण सफल हुआ है। यथा-स्थान सरल छंदों और विविध अलंकारों का प्रयोग हुआ है। पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से अँग्रेज़ों के शासन-काल में भारत और भारतवासियों की अवस्था तथा देश के प्रति अपने अटूट प्रेम को अभिव्यक्त कर इसका रचयिता भारतीय जनता को जाग्रत करने में पूर्ण सफल हुआ है।

पांडव-प्रताप (म० कृ०)

कवि श्रीधर (दे०) की इस रचना का आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ है—'महाभारत' (दे०)। परंतु 'महाभारत' की सभी कथाएँ इसमें अंतर्भूत नहीं हैं। जिनसे पांडवों का प्रताप प्रबल रूप में ध्वनित हो, उन्हीं प्रसंगों का विशेष समावेश इसमें किया गया है। इसके अतिरिक्त 'जैमिनिभारत', 'भागवत' (दे०), 'हरिवंशपुराण', आदि संस्कृत-ग्रंथों से तथा मुक्तेश्वर-रचित भारत-पर्वों से भी अनेक प्रसंग और कल्पनाएँ आधार रूप में ग्रहण की गई हैं। इस ग्रंथ के कुल 64 अध्याय हैं, और ओवी-छंदों की संख्या है—13397। कवि ने अपनी रचना को स्वयं ही 'सकल साहित्य का भांडार' कहा है। इन्होंने इस रचना के दो उद्देश्य भी स्पष्ट किए हैं—(1) वाणी को सार्थक करना, और (2) अज्ञानी तथा भोली जनता को ज्ञान-दीप की सहायता से सन्मार्ग दिखाना। इसकी भाषा-शैली इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करने में असंदिग्ध रूप से सहायक सिद्ध हुई है। 'पांडव-प्रताप' में पूर्ववर्ती रचनाओं का आधार ग्रहण किया गया है। फिर भी कवि की अपनी मौलिक प्रतिभा प्रच्छन्न नहीं है। परिचित दृष्टांतों तथा घरेलू भाषा-शैली का आधार लेकर इस रचना को अत्यधिक सुगम और लोकप्रिय बनाने में श्रीधर को अद्वितीय सफलता मिली है। जनता में मनोरंजन के साथ-साथ भक्ति, सदाचार और धर्म-भावना का प्रचार-प्रसार करने में 'पांडव-प्रताप' ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

पांडियन परिशु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

भारतीदासन (दे०) की प्रसिद्ध काव्यकृतियों में परिगणित प्रमुख घटनाएँ—वेळ्नाडु के सेनापति नरिकण्णन द्वारा वहाँ के सज्जन, वीर किंतु अबोध राजा को फुसलाकर कदिरनाडु पर आक्रमण, छल से अपने बहनोई कदिरनाडु के शासक कदिरैं वेलन और बहिन कण्णुक्किनियाळ का वध, रानी की सखी आत्ताक्किलवि द्वारा राजकुमारी अन्नम के प्राणों की रक्षा, नरिकण्णन द्वारा 'पांडियन परिशु' (कदिरैं नाडु कदिरैं वेलन के किसी पूर्वज को पांड्य राजा द्वारा पुरस्कार-स्वरूप परशु दिया गया था—इसका उल्लेख करने वाला ताम्रपत्र) की खोज, ताम्रपत्र की प्राप्ति एवं लोप, चोर सरदार वीरप्पन को ताम्रपत्र की प्राप्ति, आत्ता के पुत्र वेलन द्वारा अन्नम की विपत्ति से रक्षा, वेलन-अन्नम-प्रेम, अन्नम द्वारा 'पांडियन परिशु' खोज लाने वाले व्यक्ति से विवाह की घोषणा, अन्नम के हाथों नरिकण्णन की मृत्यु। पिता वीरप्पन की सहायता से वेलन को ताम्रपत्र की प्राप्ति, वेलन-अन्नम-विवाह, वेलन का राज्याभिषेक आदि।

भारतीदासन ने काल्पनिक घटनाओं एवं पात्रों का आश्रय लेते हुए इसके कथानक का निर्माण किया है परंतु यह ऐतिहासिक काव्य होने का आभास देता है। इसके माध्यम से कवि ने अपने मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों को व्यक्त किया है कि 'यह विश्व अपने उस लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है जहाँ प्रत्येक वस्तु पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होगा।' इस कृति में शृंगार, वीर और हास्य रसों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संपूर्ण कृति 'एणशीर विरुत्तम' छंद में रचित है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से इस का भारतीदासन की ही नहीं अपितु तमिल की काव्य-कृतियों में विशिष्ट स्थान है। विधा की दृष्टि से यह कुरुंकावियम (लघु काव्य) है जिसने इस शती के अन्य कवियों को कुरुंकावियम लिखने की प्रेरणा दी।

पांडु *(गु० पा०)*

स्व० मणिशंकर रत्नजी भट्ट 'कांत'-रचित खंडकाव्यों में 'वसंत विजय' का स्थान सर्वोपरि है। 'वसंत-विजय' खंडकाव्य में ग्रीक त्रासदी का करुण रस आदि से अंत तक व्याप्त है। 'वसंत विजय' का नायक पांडु गुजराती-साहित्य का एक अमर पात्र है। ग्रीक त्रासदी नाटकों की भाँति 'वसंत-विजय' में भी मनुष्य व प्रकृति का संघर्ष व मनुष्य की पराजय का निरूपण है। नियति या प्रकृति के अगम्य रहस्य के समक्ष अपने को असहाय व तुच्छ पाने वाले मानव की यह कथा है। संघर्ष करते-करते अंत में पराभूत होने वाले मानव पांडु की करुणा हमारी संवेदना को झकझोर डालती है।

'महाभारत' के आदि पर्व से उसकी कथा ग्रहण की गई है। किंदव ऋषि व उनकी पत्नी मृग-मृगी का रूप धारण कर क्रीड़ा कर रहे थे कि शिकार पर गये हुए पांडु राजा के बाणों ने इन्हें घायल कर दिया। मरते समय ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारा अंत भी ऐसी अवस्था में ही होगा। मुनि के शाप से बचने के लिए पांडु असमय में ही वैराग्य धारण कर वानप्रस्थी हो जंगल में कुटीर बना कर रहते हैं। कुंती और माद्री को लेकर वह वनवास करते हैं। किंतु एक दिन वसंत का प्रभाव बढ़ ही जाता है। पांडु माद्री के प्रति आसक्त होकर तपोवन-विपरीत व्यवहार माँगते हैं। 'माद्री ना, नाथ···नहीं' कहती ही रहती है और पांडु पर वसंत की विजय बढ़ती रहती है। एक तरफ़ शाप और दूसरी तरफ़ जीवन-साफल्य है। पांडु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में भयंकर अंतर्द्वंद्व चलता है। अंत में माद्री पांडु की भुजाओं में लिपट जाती है। त्रासदी-नायक की भाँति पांडु अपनी दुर्बलता से संघर्ष करते-करते आखिर पराभूत हो जाते हैं। खंडकाव्य का प्रारंभ, मध्य व अंत नाटक की पाश्चात्य अवस्थाओं से युक्त है। अनुष्टुप, शिखरिणी, वसंततिलका, द्रुतविलंबित, शार्दूलविक्रीडित आदि छंदों का वैविध्य द्रष्टव्य है।

पांडु का अंतर्द्वंद्व व उसका निरूपण अपूर्व है।

पांडुरंग महात्म्यमु *(ते०कृ०)* [रचना-काल—1950 ई०]

यह तेनालि रामकृष्णकवि (दे०)-रचित प्रबंध-काव्य 'कृष्णदेवरायलु' (दे०) के उपरांत रचित तेलुगु के प्रौढ़तम प्रबंध-काव्यों में एक है और अपने रचयिता की कीर्ति का आधार-स्तंभ भी। यह एक वैष्णव-प्रबंध-काव्य है जिसमें शिव-भक्ति की भी आवेगमय एवं सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। क्षेत्र-महिमा का वर्णन करने वाले इस काव्य में कई कथाओं को 'स्कंदपुराण' से ग्रहण करके एक सूत्र में गूँथा गया है। इसकी प्रत्येक कथा जीवंत पात्रों तथा सहज-स्वाभाविक कथांगों से परिपूर्ण है। स्वतंत्र तथा सुंदर भाव और उनको अभिव्यक्त करने वाली प्रौढ़ शैली इस काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस काव्य के निगम शर्मा (दे०), अक्का (दे०) आदि पात्र आंध्र के घरेलू नाम हो गये हैं। इसमें मुख्य रूप से पंढरपुर के पांडुरंग विट्ठल तथा नरसिंह की महिमा एवं पुंडरीक नामक एक भक्त-श्रेष्ठ की कथा का वर्णन किया गया है।

इस काव्य में अपार भक्ति का प्रवाह प्रचंड वेग से बहता हुआ-सा प्रतीत होता है। संस्कृत और तेलुगु दोनों भाषाओं पर असाधारण अधिकार रखने वाले विद्वान् कवि की विद्वत्ता का आभास पाठक को संपूर्ण काव्य में होता है। यत्र-तत्र कतिपय अप्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण क्लिष्टता आ गई है किंतु मुख्य रूप से इस काव्य में गंभीर भाव-प्रदर्शन, रस-परिपाक तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि को विशेष रूप से सफलता मिली है। तेलुगु के महाकाव्यों में इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है, किंतु इसका प्रचार एवं प्रसार केवल विद्वत्-समाज तक ही सीमित है।

पांडेय, कांतिचंद्र *(सं० ले०)* [समय—1898 से 1974 ई०]

भारतीय सौंदर्यशास्त्र तथा कश्मीर शैव-दर्शन के मूर्धन्य विद्वान् डा० कांतिचंद्र पांडेय का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव ज़िले में 1898 ई० में एक कान्यकुब्ज परिवार में हुआ था। इनकी शिक्षा उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा बंगाल में हुई। इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में प्राध्यापक के रूप में जीवन शुरू किया और वहीं अध्यक्ष तथा आचार्य पद पर काम करने के बाद 1958 ई० में अवकाश प्राप्त किया। तत्पश्चात् विश्व-विद्यालय आयोग के प्रोफ़ेसर हुए और कई वर्षों तक विश्व-विद्यालय आयोग की अनेक प्रायोजनाओं को लेकर शोध करते रहे। 1964 ई० में इन्हें अंतर्राष्ट्रीय सौंदर्यशास्त्र-सम्मेलन (इंटरनेशनल कांग्रेस) में व्याख्यान देने के लिए एम्स्टरडम आमंत्रित किया गया। इसी वर्ष ब्रिटिश काउंसिल की ओर से भी इनको लंदन में सौंदर्यशास्त्र पर बोलने के लिए बुलाया गया। इसी दौरान इन्होंने फ़्रांस, जर्मनी, यूनान तथा रोम की यात्राएँ कीं और अनेक विश्वविद्यालयों तथा शोध-केंद्रों में सौंदर्यशास्त्र तथा शैवदर्शन पर व्याख्यान दिए। 1966 ई० में यूनेस्को द्वारा आयोजित विश्व के सौंदर्य-शास्त्रियों के सम्मेलन में इनको प्रो० जॉन अलर ने आमंत्रित किया। इसमें विश्व की अनेक सौंदर्यशास्त्रीय धाराओं को लेकर 20 खंडों में एक ग्रंथ निकालने का निश्चय किया गया। डा० पांडेय को भारतीय सौंदर्यशास्त्र-खंड निकालने का कार्य सौंपा गया 1968 ई० में ये पुनः अंतर्राष्ट्रीय सौंदर्य-शास्त्र-सम्मेलन में भाग लेने के लिए स्वीडन गए। बुल्गारिया, रूमानिया तथा हंगरी सरकारों ने भी इनको अपने-अपने देश में आने पर सौंदर्यशास्त्र तथा शैवदर्शन पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया।

1968 ई० में इन्होंने विश्वविद्यालय आयोग तथा उत्तर प्रदेश सरकार की मदद से तथा स्वयं 25,000 रुपये का दान देकर लखनऊ विश्वविद्यालय में अभिनवगुप्त सौंदर्यशास्त्र एवं शैव-दर्शन-संस्थान की स्थापना की और आजीवन उसके अवैतनिक निदेशक रहे। 24 जुलाई 1974 को इनका देहावसान हो गया।

डा० पांडेय ने संस्कृत तथा भारतीय चिंतन-जगत् को अनेक कृतियाँ प्रदान कीं। उनमें से अभिनव गुप्तः ए फ़िलासाफ़िकल एंड हिस्टारिकल स्टडी', 'कम्पोरिटिव ऐस्थेटिक्स' (दो खंड), 'स्वतंत्र कलाशास्त्र', 'भास्करी' (तीन खंड), 'शैवदर्शन बिंदु' (संस्कृत) प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त देश तथा विदेश के अनेक प्रमुख शोध-पत्रों एवं संस्करणों में इनके शोध-पत्र प्रकाशित हुए। दिवंगत होने से पूर्व ये एक ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी व्याख्या के साथ 'भास्करी' का दूसरा संस्करण तथा यूनेस्को के लिए 'भारतीय सौंदर्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र' खंड तैयार करने में लगे रहे।

पांडेय, मुकुटधर *(हिं० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

इनका जन्म बालपुर (बिलासपुर) है। अग्रज लोचनप्रसाद पांडेय (दे०) की प्रेरणा से 1909 ई० में इन्होंने लिखना आरंभ कर दिया था। इनकी अधिकांश कविताएँ छायावादी (दे० छायावाद) प्रगीत-मुक्तकों की श्रेणी में आती हैं, जो 'कानन-कुसुम' आदि में संगृहीत हैं। 'छायावाद' की व्याख्या के लिए 'श्री शारदा' में इनके महत्वपूर्ण लेख भी निकले थे। 'अंतर्भावना की प्रगल्भ चित्रमयी व्यंजना के उपयुक्त स्वच्छंद नूतन पद्धति' का आविष्कार करने वाले कवियों में इनका प्राथमिक स्थान है, इसलिए छायावाद के प्रवर्त्तकों में इनकी गणना की जाती है।

पांडेय, रूपनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

इनका जन्म रानी कटरा, लखनऊ में हुआ था, और वहीं शिक्षा-दीक्षा भी हुई। ये 'इंदु', 'माधुरी' आदि अनेक हिंदी-पत्रों के संपादक रहे हैं। इन्होंने पहले ब्रजभाषा में और फिर खड़ी बोली में रचनाएँ की हैं। 'पराग', 'वन वैभव' आदि में इनकी कविताएँ संकलित हैं। इन्होंने नाटक और उपन्यास भी लिखे तथा बँगला की अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया। इनकी कविताओं में विषय-वस्तु की सरसता और भाषा की सुघराई दर्शनीय है।

पांडेय, लोचनप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1886 ई०]

इनका जन्म मध्य प्रदेश के बालापुर (ज़िला बिलासपुर) नामक स्थान पर हुआ। इनका स्वभाव निश्छल था। हिंदी के अतिरिक्त इन्हें उड़िया, अँग्रेज़ी और संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाएँ 1905 ई० के आसपास 'सरस्वती' (दे०) में छपने लगी थीं। इन्होंने काव्य, नाटक और उपन्यास लिखे। द्विवेदी जी के प्रभाव से इनका साहित्य इतिवृत्तात्मक और उद्देश्यपूर्ण है। 'मृगी दुःखमोचन' आदि में दिखाई देने वाली 'भावुकता इनकी अपनी है।'

पांडेय, श्यामनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के डुमरांव (ज़िला आज़मगढ़) नामक ग्राम में हुआ था। काशी में इन्होंने साहित्याचार्य की परीक्षा पास की। 'हल्दी घाटी' और 'जौहर' इनके प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य हैं। इन काव्यों की रचना भारतीय वीर पुरुष और सती नारी का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए की गई है। इनमें उत्साह की अंतर्दशाओं और युद्ध की परिस्थितियों का चित्रण कुशलता से किया गया है। इनकी भाषा का प्रवाह और छंदों का तड़ित्-वेग दर्शनीय है। खड़ी बोली के वीर-काव्य में इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

पांड्या *(म० पा०)*

यह मा० ना० जोशी (दे०) के 'स्थानीय स्वराज्य' अथवा 'म्युनिस्पालिटी' नाटक का महत्वपूर्ण पात्र है। इस की सृष्टि नाटककार द्वारा हास्य की दृष्टि से की गई है। परंतु अपने वाक्-चातुर्य के कारण यह दर्शकों के हृदय पर गहरी छाप छोड़ देता है। सर्वथा निरक्षर होते हुए भी यह अपने सहज-सरल तर्कों के द्वारा म्युनिसपैलिटी के सदस्यों की स्वार्थी मनोवृत्ति की प्रखर आलोचना करता है। इसी से नाटक का प्रत्येक पात्र इसके व्यक्तित्व से न्यूनाधिक प्रभावित होता है। इसके मर्मभेदी तर्कों से अभिभूत होने के कारण ही अन्यान्य पात्रों का यह अभिमत कि 'इसे तो बैरिस्टर होना चाहिए था', सही जान पड़ता है; किंतु यह भाग्य की विडंबना ही कही जाएगी कि यह पात्र साधारण-सा घरेलू कर्मचारी मात्र है। कथा की एकरसता को दूर कर हास्य की स्थिति बनाए रखने का पूर्ण श्रेय इसी पात्र को है। मराठी-नाटक-साहित्य में हास्य-पात्रों के क्षेत्र में पांड्या का महत्वपूर्ण स्थान है।

पाटणनी प्रभुता *(गु० कृ०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (दे०) के इस ऐतिहासिक उपन्यास में विक्रम की बारहवीं शती के मध्य में गुजरात की राजगद्दी के लिए होने वाले षड्यंत्र, संघर्ष और प्रणय-शौर्य के प्रसंगों का निरूपण किया गया है। उत्कट कल्पना-शक्ति और असाधारण सर्जनात्मक प्रतिभा द्वारा मुंशी ने अतीत के इतिहास को सजीव और रोचक बना दिया है। इस कृति में केवल सत्तालोलुप राजा-महाराजा ही कुचक्र नहीं करते, अपितु सामंतगण, धनाढ्य जैन, महारानी मीनल, पाटण को विश्वविख्यात बनाने की महत्वाकांक्षा वाला महामात्य मुंजाल, धर्मांध जैनाचार्य आनंदसूरि और अन्य कई पात्र षड्यंत्र रचने में अपनी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पटुता का उपयोग करते हैं। वे कभी जीतते हैं, कभी हारते हैं। सैंतालीस प्रकरणों के इस उपन्यास में कई छोट-मोटे प्रसंगों-पात्रों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इसकी नायिका मीनल है और नायक पद का अधिकारी है महामात्य मुंजाल। इनके आसपास होने वाले राजनीतिक प्रपंच, दाँवपेच और उथल-पुथल को बहुत ही कुशलता एवं कलात्मकता के साथ मूल कथावस्तु से सुश्रृंखलित कर प्रस्तुत किया गया है।

मीनल-मुंजाल, प्रसन्न-त्रिभुवन, हंसा-देवप्रसाद इन तीन युगलों की प्रणय-कथाएँ कर्त्तव्य और भावना के नाना रूपों को प्रकट करती हुई कृति में प्रगाढ़ श्रृंगार-धारा प्रवाहित करती हैं। उपन्यास का सजीव वातावरण, तीव्र कार्य-वेग, नाट्य-तत्त्वयुक्त शैली और सुंदर भाषा के कारण कथा-विकास में कहीं शिथिलता नहीं आने पाई है और पाठक की जिज्ञासा आद्यंत उत्कट रूप में बनी रहती है। वास्तव में 'पाटणनी प्रभुता' मुंशी के ही नहीं, गुजराती के श्रेष्ठ उपन्यासों में परिगणनीय है।

पाट्टु *(मल० पारि०)*

इसका शब्दार्थ है गान अथवा गीत। मलयाळम भाषा के आरंभिक काल में कई गीत प्रचलित थे। इन गीतों के रचना-काल को गान-साहित्य का काल माना जाता है। कई लोकगीत गाए जाते थे। इनमें प्रधान, भद्र-काळिप्पाट्टु, सर्प्पप्पाट्टु, कृष्णप्पाट्टु, खिळिप्पाट्टु आदि हैं। मलयाळम-साहित्य में इन गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है।

पाठक, जयंत *(गु० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

श्री जयंतलाल हिम्मतलाल पाठक का जन्म पंचमहाल ज़िले के राजगढ़ गाँव में हुआ था। 1943 ई० में इन्होंने बी०ए० तथा 1945 ई० में गुजराती मुख्य विषय लेकर एम० ए० किया। प्रारंभ में अपनी जन्मभूमि में ही शिक्षक के रूप में कार्य करने के बाद लगभग पाँच वर्ष तक ये बंबई में पत्रकारिता के व्यवसाय में रहे। 1953 ई० में ये केंद्र सरकार के प्रेस कमीशन में थे। 1953 ई० से ये सूरत के एम० टी० बी० कालेज में गुजराती के प्राध्यापक-पद पर कार्य कर रहे हैं। अध्यापन-कर्म के साथ-साथ इनका कवि-कर्म भी अबाधित रूप से चल रहा है। 'विस्मय', 'संकेत', 'मर्मर' तथा 'सर्ग' नामक काव्य-संग्रह इस बात के साक्षी हैं कि इनकी कविता में भावों का आवेग, संवेदनशीलता, मानव-प्रेम, गेयता तथा छंदोबद्धता इत्यादि तत्त्वों का प्राचुर्य है। प्रतीकों की नवीनता इनके काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है।

कविता के अतिरिक्त 'वनांचल' नाम से इन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। इसमें राजपीपला के आसपास के वन्य प्रदेश का आह्लादक एवं सुरम्य चित्रण मिलता है। आंचलिक जीवन के विशद चित्रण के कारण इस कृति की बहुत प्रशंसा हुई है। इन्होंने 'गुजराती की आधुनिक कविता' पर शोध-प्रबंध तथा 'आलोक' नामक आलोचना-ग्रंथ की रचना भी की है। ये दोनों ग्रंथ इनकी पर्यवेक्षक एवं सूक्ष्म आलोचनात्मक प्रतिभा के प्रमाण हैं।

पाठक, यादव मुकुंद *(म० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

आधुनिक मराठी-काव्यों में इनकी कीर्ति का आधार यथार्थ घटना पर आधृत 'शशिमोहन' (1929 ई०) नामक खंडकाव्य है। यह संस्कृत-काव्य के आदर्श पर लिखा गया है। इसमें 1929 ई० की घटना का वर्णन है। बंगाल में शशिमोहन दे नामक हिंदू युवक ने एक निस्सहाय हिंदू स्त्री की रक्षा की थी जबकि एक दुराचारी व्यक्ति ने उसके साथ अनैतिक आचरण करने का प्रयत्न किया था। वही शशिमोहन इस खंडकाव्य का नायक है। सरल, उद्बोधक शैली में लिखा गया यह एक अनुपम खंडकाव्य है। उद्देश्य-प्रधान होने पर भी यह काव्य कवित्व-गुण की दृष्टि से कम प्रभावशाली नहीं है।

इसके अतिरिक्त पाठकजी का एक अन्य काव्य-संग्रह भी है—'फुलें नी मुलें' (1939 ई०)।

पाठक, रामनारायण *(गु० ले०)* [समय—1887-1954 ई०]

'द्विरेफ', 'शेष' और 'स्वैरविहारी' उपनाम धारण कर साहित्य-सर्जन करने वाले रामनारायण विश्वनाथ पाठक का जन्म सौराष्ट्र में गुजराती पाठशाला के एक शिक्षक के यहाँ हुआ था। शिक्षण और साहित्य के संस्कार उन्हें अपने पिता से जन्मतः प्राप्त हुए थे जो यथासमय पूरी तरह विकसित हुए। बंबई के विल्सन कालेज से दर्शन-शास्त्र में बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ये गांधी जी के असहयोग-आंदोलन के समय गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में गुजराती के अध्यापक बने और आज के लब्धप्रतिष्ठ कवियों—सुंदरम् (दे०), स्नेहरश्मि (दे०) इत्यादि को इन्हों कविता की शिक्षा दी। तत्पश्चात् कुछ वर्ष 'प्रस्थान' का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादन-संचालन-कार्य करके अहमदाबाद एवं बंबई में अध्यापन-कार्य किया। जीवन के अंतिम वर्षों में ये आल इंडिया रेडियो, बंबई कद्र के परामर्शदाता रहे।

प्रो० रामनारायण पाठक मूर्द्धन्य समीक्षक के रूप में विशेष विख्यात हैं। 'साहित्य-विमर्श', 'काव्यनी शक्ति', 'अर्वाचीन काव्य-साहित्यना वहेणो', 'अर्वाचीन गुजराती कविता साहित्य', 'आलोचना' आदि इनके प्रसिद्ध समीक्षा-ग्रंथ हैं जिनमें साहित्य-रूपों और शास्त्र की विवेचना है। समीक्षक पाठक साहब की दृष्टि पैनी, अध्ययन व्यापक, चिंतन सूक्ष्म और प्रतिपादन तटस्थ होता है। अपने 'प्राचीन गुजराती छंदों' ग्रंथ पर इन्हें 'कांटावाला पारितोषिक' और 'बृहत् पिंगल' (दे०) पर साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

पाठक जी सफल कहानीकार भी हैं। इन्होंने 'द्विरेफ' के नाम से 'द्विरेफनी वातो' (दे०) (भा० 1, 2, 3) कहानी-संग्रह प्रकाशित किया है। इनमें गुजराती कहानी-कला का उत्कृष्ट रूप अभिव्यक्त हुआ है। रा० वि० पाठक ने 'शेष' कवि के नाम से 'शेषना काव्यो' और 'स्वैरविहारी' के नाम से दो भागों में 'स्वैर विहार' नामक हास्यरसाश्रित निबंध-संग्रह प्रकाशित किया है। इस प्रकार इन्होंने गुजराती-साहित्य के नाना क्षेत्रों की भरपूर सेवा की है पर समीक्षक एवं कहानीकार के रूप में पाठक जी सदैव स्मरणीय रहेंगे।

पाठक, श्रीधर *(हिं० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

इनका जन्म जोंधरी (ज़िला आगरा) में हुआ। इनके पिता लीलाधर बड़े धर्मनिष्ठ थे। एफ० ए० तक पढ़ कर ये कलकत्ता में सरकारी नौकरी करने लगे। सेवा-निवृत्ति के उपरांत ये प्रयाग में रहे।

इनकी कृतियाँ मौलिक भी हैं और अनूदित भी। मौलिक कृतियों में 'जगत् सचाई सार', 'काश्मीर-सुषमा' और 'भारत-गीत' आदि तथा अनूदित रचनाओं में 'एकांत-वासी योगी', 'ऊजड़ ग्राम', 'श्रांत पथिक और ऋतु-संहार' आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में समान अधिकार से कविता लिखी है।

इनकी कविताओं का विषय प्रकृति, राष्ट्र-प्रेम और समाज-सुधार है। इन्होंने प्रकृति के प्रति नये दृष्टि-कोण का उन्मेष किया और छंद के क्षेत्र में नयी लयों और बंदिशों के सफल प्रयोग किए। पाठक जी का ब्रजभाषा-काव्य सरस है और खड़ी बोली की कविताएँ युगानुरूप नये भावों के प्रकाशन में समर्थ हैं। इन्हें खड़ी बोली का प्रथम सफल कवि और स्वच्छंदतावाद का प्रवर्त्तक होने का गौरव प्राप्त है।

पाठक, सरोज *(गु० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

सरोज पाठक बारडोली कालेज में गुजराती की प्राध्यापिका हैं। नयी पीढ़ी की लेखिकाओं में उनका उच्च स्थान है। वे कहानियाँ और उपन्यास लिखती हैं। उनके तीन कहानी-संग्रह तथा दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में विविध प्रयोग किए हैं। चेतना-प्रवाह-शैली, आत्मकथा-शैली, डायरी तथा पत्र-शैली के उन्होंने सफल प्रयोग किए हैं। उनकी कहानियों और उपन्यास 'नाईटमेर' पर अस्तित्ववादी प्रभाव है और फ्रॉयड के मनोविज्ञान का भी प्रभाव है। उन्होंने घटना-प्रधान एवं घटनालोप दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। यथार्थवादी चित्रण उनकी इन कृतियों की शक्ति है।

पाठक, हीरा बेन *(गु० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म बंबई में हुआ था तथा इनकी प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चशिक्षा भी वहीं हुई थी। स्वर्गीय रामनारायण पाठक (दे०) के निर्देशन में रचित 'आपणु विवेचन-साहित्य' नामक इनका शोध-प्रबंध एक उत्कृष्ट रचना है।

'काव्य भावन' नाम से इनका एक आलोचना-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है जो तलस्पर्शिनी विवेचना-दृष्टि तथा भावात्मकता के कारण विशेष ध्यान आकर्षित करता है।

'परलोके पत्र' नामक कृति में इन्होंने स्वर्गीय पति को संबोधित कर काव्य-रूप में पत्र लिखे हैं। इस प्रकार एक नयी ही काव्यविधा को जन्म देकर इन्होंने भावों की मधुर, चित्रात्मक तथा काव्योचित अभिव्यक्ति की है।

पाठालोचन *(हिं० पारि०)*

'पाठालोचन' कृति के पाठ का आलोचनात्मक संपादन है, जिसमें सुनिश्चित नियमों के अनुसार पांडु-लिपियों के सूक्ष्म परिशीलन द्वारा मूल पाठ का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न किया जाता है। कृतियों के मूल पाठ का यह पुनर्निर्माण संपादक की 'सुरुचि', 'कल्पनाशीलता' अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके अपने 'विवेक' का प्रतिफल नहीं होता; उसे पाठ में किए गए प्रत्येक संशोधन और परिवर्द्धन के लिए ठोस तर्क एवं प्रमाण प्रस्तुत करने होते हैं। पाठालोचन प्रायः हस्त-लिखित कृतियों का ही किया जाता है क्योंकि आधुनिक मुद्रण-कला के प्रचलन से पूर्व 'प्रकाशन' का कार्य हस्त-लिखित प्रतिलिपियों द्वारा ही किया जाता था और मूल पांडुलिपि की प्रतिलिपि करते समय अथवा एक प्रतिलिपि से अन्यान्य प्रतिलिपियाँ उतारते समय भूलों और अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक ही था। अनेक स्थितियों में उन मुद्रित पुस्तकों के पाठालोचन की आवश्यकता भी होती है जिनका मुद्रण या तो लेखक के निरीक्षण में न हुआ हो या जिनके परवर्ती संस्करणों में भूलें बढ़ती चली गई हों। हिंदी में पाठालोचन के अर्थ में 'पाठानुसंधान' शब्द भी प्रचलित है, किंतु अँग्रेज़ी शब्द 'टैक्स्चुअल क्रिटिसिज़्म' के पर्याय के रूप में 'पाठालोचन' शब्द का प्रयोग अधिक आग्रहपूर्वक किया जाता है।

'पाठालोचन' की आधुनिक पद्धति का सूत्रपात पश्चिम में उन्नीसवीं शती में प्रसिद्ध जर्मन भाषाशास्त्री कार्ल लैश्मन (1793-1851 ई०) द्वारा संपादित अनेक कृतियों से हुआ। लैश्मन की पद्धति में पाठालोचन की प्रक्रिया के दो सोपान हैं: आलोचनात्मक पुनरीक्षण द्वारा पाठ-निर्धारण तथा परिशोधन। पहले सोपान के अंतर्गत संपादक अनुसंधान के द्वारा ग्रंथ की एकाधिक प्रतिलिपियाँ एकत्र कर उनमें तिथि-क्रम निश्चित करता है। तदनंतर विभिन्न प्रतिलिपियों के विषम अंशों में विद्यमान पाठांतरों के स्वरूप के अनुसार प्रतिलिपियों की विभिन्न शाखाओं एवं परंपराओं का वर्गीकरण करता है। तदुपरांत व्याकरण, भाषाविज्ञान, शब्दशास्त्र, इतिहास और पुरातत्त्व आदि की सहायता से अधिक-से-अधिक तर्कसंगत एवं युक्तियुक्त पाठ का निर्धारण करता है। यह एक प्रकार से वर्तमान प्रति-लिपि से मूल पाठ की ओर एक उल्टी यात्रा है। इसके पश्चात् छूटे हुए वाक्यांशों, शब्दों एवं अक्षरों को पूरा किया जाता है तथा पाठ-मिश्रणों एवं प्रक्षिप्तांशों को हटाया जाता है। दूसरा सोपान परिशोधन का है। इसके अंतर्गत संपादक कृतिकार की लेखन-शैली, शब्द-भांडार और छंद-योजना आदि के अनुरूप खंडित एवं विकृत पाठ में विवेक-सम्मत आवश्यक परिन्यास, परिवर्द्धन और परिशोधन करता है। इस प्रकार पाठालोचन द्वारा मूल पांडुलिपि के अधिका-धिक समीप 'सही' पाठ का पुनर्निर्माण संभव हो जाता है। इस दूसरे सोपान में यद्यपि संपादक की कल्पना का भी निश्चित योग रहता है, तथापि पाठालोचन मूलतः एवं समग्रतः एक वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया है; यह प्रकृत्या विज्ञान ही है, कला नहीं।

पाडगांवकर, मंगेश *(म० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

ये कोमलकांत पदावली-युक्त लालित्यपूर्ण रचना करने वाले नये कवि हैं। इनके काव्य-संग्रह हैं: 'धारानृत्य', 'जिप्सी', 'छोरी'। इन्होंने मीराँबाई (दे०) के गीतों का मराठी में अनुवाद भी किया है।

नये कवियों की तरह सामाजिक वैषम्य का इन्होंने यद्यपि विरोध किया है, परंतु प्रकृति तथा प्रेम ही इनके काव्य का मूल प्रतिपाद्य है। इन्होंने कोमल एवं उग्र प्रकृति के चित्र अंकित किए हैं। एक ओर जहाँ इनके वर्णन कोमल, कमनीय और मोहक हैं वहीं प्रकृति के भयंकर रूप को अंकित करते समय इनकी शब्द-योजना अत्यंत उग्र तथा उत्तेजक हो गई है।

ये मूलतः सौंदर्यवादी कवि हैं। नये कवि होते हुए भी इनका काव्य आशावादी है। प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण तथा प्रेमाभिव्यक्ति के क्षणों में इनका काव्य शब्द-माधुर्य से ओतप्रोत है। इनकी कल्पनाएँ भी अत्यंत कोमल एवं रमणीय हैं तथा उनकी अभिव्यक्ति संगीतमय और चित्रात्मक है।

इन्होंने रूढ़ उपमानों की उपेक्षा कर आधुनिक संदर्भ के योग्य नवीन प्रतिमानों एवं प्रतीकों का सार्थक प्रयोग किया है। ये विकासोन्मुख कवि हैं। इन्होंने मुक्त छंद का प्रयोग किया है।

पाडाण *(त० पारि०)*

यह 'संगम्' साहित्य के 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) नामक भेद का उपभेद है और 'कांचि' के पश्चात् आता है। इसका समानांतर 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) का उपविभाग 'कैक्किळै' है। इसकी मुख्य विषय-वस्तु दानार्थी व्यक्ति द्वारा दानी प्रभु की स्तुति या प्रशंसा है।

तमिल भाषा की व्याकरण-परंपरा के प्रथम ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) के अनुसार 'पाडाण' नामक उपभेद के गीत देवता एवं मनुष्य दोनों पर आधारित हो सकते हैं। आधारभूत तत्त्व पर मोह, प्रेम, गर्व इत्यादि के साथ प्रशंसात्मक उक्तियाँ इन गीतों में मिल सकती हैं। मनुष्य-संबंधी 'पाडाण' गीतों के दस 'तुरै' (प्रकरण) बताए गए हैं। इनमें से ये दो 'तुरै' अधिक प्रसिद्ध हो चुके हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आरुंप्पटै' (उच्चारण 'आट्रुप्पडै') तथा 'वायुरै वाळत्तु'। पूर्वोक्त प्रकरण के गीतों का विषय दानी प्रभुओं का प्रशंसात्मक परिचय है। यह परिचय ऐसे नर्तक-गायक-कवि-जनों द्वारा दिया जाता था जो दानी प्रभुओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत हो चुके थे और चाहते थे कि अन्य दानार्थी भी उस अपार दान-वर्षा से लाभान्वित हों। ऐसे गीतों की एक लोकप्रिय विधा 'संगम्' साहित्य में चलती थी। 'पत्तुप्पाट्टु' नामक गीत-पद्यसंग्रह में पाँच बृहत् गीत, 'मुरुकार्रुप्पटै' नामक गीत-पद्यसंग्रह में पाँच बृहत् गीत 'मुरुकार्रुपुपटै', 'पेरुम्पाणार्रुप्पटै', 'चिरुपाणार्रुप्पटै', 'पोरुनरार्रुप्पटै' तथा 'मलैपट्टुकटाम्' हैं ('र्रु' का उच्चारण 'ट्रु' होता है)।

'संगम्' साहित्य के विभागों पर अनेक परवर्ती कविता-रूपों का विकास आधारित है और यह रोचक विषय है कि पिछली शतियों में प्रचलित दो पद्य-विधाएँ—'पिळ्ळैत्तमिल्' (शैशव अवस्थाओं पर मोह-प्रकटन के पद्य) तथा 'उला' (नायक की काल्पनिक शोभा-यात्रा पर वनिताओं की मोहाभिव्यक्ति के पद्य) वस्तुतः पुराने 'पाडाण्' उपविभाग से उत्पन्न हैं।

पाढ़ी, बेणीमाधब *(उ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

डा० बेणीमाधब पाढ़ी (पी-एच० डी०) अध्यापक हैं। इनका जन्म पारळाखेमुंडी-गंजाम में हुआ था। इनकी कृति 'दारु-देवता' (दे०) एक उत्कृष्ट गद्य-रचना है। यह गवेषणामूलक रचना है तथा जगन्नाथ-संस्कृति से संबंधित है। इसमें लेखक ने व्यापकता, गहराई और सूक्ष्मता से विषयवस्तु को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। इसमें जगन्नाथ-संस्कृति के अनेक अंधकारमय पक्ष आलोकित हो उठे हैं। प्रतिपादन की शैली भी विषयानुरूप सरस, गंभीर एवं उदात्त है। रचना किंवदंती-संवलित होने के कारण और भी मोहक हो उठी है। इसमें विराट् जीवन-दृष्टि की गंभीरता तो है ही, साथ ही अनगढ़ जन-जीवन की ऊष्मा भी है; यही इस रचना की अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त 'अविश्वासी' (नाटक) 'चोर कबि' (कविता) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

पाणिग्रही, कालिंदीचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

इनका जन्म पुरी ज़िले के विश्वनाथपुर गाँव में हुआ था। रेवेंसा कॉलिज, कटक से इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की।

बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कालिंदीचरण पाणिग्रही सबुज-गोष्ठी (दे० सबुज-साहित्य) के ऐसे ख्याति-प्राप्त लेखक हैं जो आज तक साहित्य-साधना में निरत हैं। सबुज-साहित्यकारों में उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में सर्वाधिक सफलता इन्हें मिली है; परंतु इनका काव्य एवं निबंध-साहित्य भी उपेक्षणीय नहीं है। इन्होंने सबुज-आदर्श पर अपना साहित्यिक जीवन प्रारंभ किया था, किंतु आगे चलकर इन्होंने अपनी दिशा बदल दी। इनका उपन्यास 'माटिर-मणिष' (दे०) इस परिवर्तन का सूचक है। यह इनकी सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। फकीर मोहन सेनापति (दे०) की रचनाओं के बाद 'माटिर मणिष' में ही गाँव का जीवंत चित्र मिलता है। ग्रामीण जनभाषा के प्रयोग ने इसे स्वाभाविकता प्रदान की है। यथार्थ और आदर्श के सुंदर समन्वय के कारण यह उपन्यास सार्थक शिल्प-गौरव प्राप्त कर सका है। त्याग, संयम, सहिष्णुता, उदारता एवं अहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में ग्रामीण कृषक बरजू (दे०) के जीवन का जो चित्र लेखक ने दिया है, वह उच्च कोटि का है। कुटिल व्यक्तियों के कुप्रभाव से टूटते हुए परिवार को त्याग के द्वारा किस प्रकार बचाया जा सकता है, यही इसमें चित्रित है। अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए साहित्य अकादेमी ने जिन दस पुस्तकों को स्वीकार किया, उनमें एक 'माटिर मणिष' भी थी। बरजू के जीवन-क्रम-विकास में 18 वर्षों बाद 'लुहार-मणिष' की रचना हुई। इसमें श्रमिक-वर्ग के कल्याण-हेतु बरजू बंदी बनता है, किंतु यह उपन्यास उतना लोकप्रिय नहीं हो सका।

'मुक्तागढ़र ख्युधा' तथा उसका परवर्ती भाग 'अमर चिता' जीवनचरितमूलक उपन्यासों में उल्लेखनीय है। अब तक इनकी 15 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'सागरिका', 'शेषरश्मि', 'मोकथाटि सरिनाहिं' प्रमुख कहानी-संग्रह हैं।

पाणिग्रही, कृष्णचंद्र *(उ० ले०)*

कृष्णचंद्र पाणिग्रही का जन्म 1912 ई० में मयूरभंज ज़िले के खिचिंग नामक स्थान में हुआ था। आधुनिक उड़िया गद्य-साहित्य के विकास में कृष्णचंद्र पाणिग्रही का योगदान उल्लेखनीय है। ये पुरातात्त्विक एवं इतिहासकार भी हैं; फलतः इनकी गद्य-शैली पर इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव देखा जा सकता है। ऐतिहासिक अध्ययन एवं गवेषणा को इन्होंने सर्वथा एक नयी दिशा दी है।

रचनाएँ—'इतिहास एवं किंवदंती', 'भारतीय प्रत्न-तत्त्व', 'प्रबंध-मानस' (दे०), आदि।

पाणिग्रही, दिव्यसिंह *(उ० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

इनका जन्म बिश्वनाथपुर, पुरी में हुआ था। पुरी में ये वकील थे। 1920 ई० में ये पुरी की डिस्ट्रिक्ट काँग्रेस कमेटी के प्रधान रहे। ये उड़िया के प्रतिष्ठित उपन्यासकार एवं कहानीकार हैं। 'तुमोमा' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। अन्य रचनाएँ हैं—'बंधु', 'महाराज रामचंद्र', 'अमृत कंकण'।

पाणिनि *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—600 ई० पू०]

पाणिनि के स्थिति-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डा० वेलवेकर ने 700-600 ई० पू०, मैक्स-मूलर ने 350 ई० पू०, कीथ ने 300 ई० पू० तथा डा० भंडारकर ने 700 ई० पू० पाणिनि का स्थिति-काल स्वीकार किया है। पुरुषोत्तम देव ने 'त्रिकांडकोष' में पाणिनि, पाणिन, दाक्षीपुत्र, शालंकि, शालातुरीय, और आहिक, ये छह पर्याय पाणिनि के लिए दिए हैं। पाणिनि के पिता का नाम पाणिनि बतलाया जाता है। कहा जाता है कि इनकी माता दक्ष कुल की थीं। आचार्य व्याडि इनके मामा थे। पाणिन का जन्म-स्थान शालातुर ग्राम बतलाया जाता है। कुछ विद्वान् पाणिनि का जन्म वाह्लीक देश में मानते हैं। पाणिनि ने 'पाणिनितंत्र', 'प्रत्याहारसूत्र', 'अष्टाध्यायी', (दे०) 'अष्टाध्यायीवृत्ति', 'जांबवतीविजय' (पाताल विजय) 'विरूपकोष' तथा 'पाणिनिशिक्षा' की रचना की थी। पाणिनि की रचनाओं में 'अष्टाध्यायी' तथा 'पाणिनीय शिक्षा' अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'अष्टाध्यायी' के सूत्रों में व्याकरण के मूल नियम वर्तमान हैं, जिनके आधार पर व्याकरणशास्त्र का महान् प्रासाद निर्मित हुआ है। इसीलिए 'अष्टाध्यायी' को 'जग-माता' कहा गया है। 'अष्टाध्यायी' के आधार पर अइउण् आदि 14 माहेश्वर सूत्र हैं। 'पाणिनीय शिक्षा' की लघुरूप में रचना करके पाणिनि ने संस्कृत के विद्यार्थी के लिए अत्यंत उपयोगी नियम सुलभ कर दिए हैं।

पाणिनि की व्याकरण-संबंधी देन को न केवल भारतीय अपितु विदेशी विद्वानों ने भी मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। पाणिनि वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त इतिहास, मुद्राशास्त्र तथा लोकशास्त्र के भी विशेष ज्ञाता थे।

पातिमोक्ख *(पा० कृ०)*

यह 'विनयपिटक' (दे०) का मूलाधार है। इस शब्द का कुछ लोग 'बंधन' अर्थ करते हैं, दूसरे लोग 'बंधन में डालने वाले नियम' अर्थ लगाते हैं, तथा कुछ लोग इन्हें 'अवश्य पालनीय नियम' के रूप में स्वीकार करते हैं। वस्तुतः 'पातिमोक्ख' ऐसे नियमों और प्रतिज्ञाओं का संग्रह है जो प्रत्येक बौद्ध भिक्षु के लिए अवश्य पालनीय माने जाते हैं। 'विनयपिटक' में इन्हीं नियमों की व्याख्या है और इन्हीं को बुद्ध का उत्तराधिकारी बतलाया गया है। उपोसथ में इन्हीं का पाठ किया जाता था। इसमें उन नियमातिक्रमों का वर्णन है जो पाप की सीमा में आते हैं। इसमें 227 नियमों का वर्णन है। 'पातिमोक्ख' सुत्त-रूप में हैं जिनमें प्रत्येक सुत्त एक अभिलेख माना जाता है। ये 'पातिमोक्ख' आठ अध्यायों में विभक्त हैं क्योंकि नियमों का अतिक्रमण करने वाले पाप आठ ही माने गए हैं। इनकी व्याख्या 'महाविभंग (दे० विनयपिटक) में की गई है। ये नियम पुरुषों के लिए हैं। इनके अनुकरण पर स्त्रियों के लिए नये नियम बनाए गए जिनका संकलन 'भिक्खुनीविभंग' (दे० विनयपिटक) में किया गया।

पात्र *(सं०, हिं० पारि०)*

उपन्यास (दे०), कहानी (दे०), नाटक (दे०) आदि में घटनाओं में भाग लेने वाले, कार्यों को करने वाले और उनके परिणाम को झेलने वाले व्यक्तियों को पात्र' कहते हैं। कथावस्तु में महत्व के अनुसार पात्र दो प्रकार के होते हैं—प्रमुख पात्र और गौण पात्र। पात्रों को उनके स्वभाव, गुण, व्यक्तित्व के आधार पर विभिन्न कोटियों में वर्गीकृत किया गया है। ये कोटियाँ हैं—गतिहीन पात्र, गतिशील पात्र; व्यक्ति-पात्र, प्रतिनिधि पात्र। जो पात्र परिस्थितियों से निरपेक्ष रह कृति में आदि से अंत तक एक-से रहते हैं, जिनके व्यक्तित्व के एक पक्ष का ही उद्घाटन किया जाता है और जिनका विकास नहीं दिखाया जाता, वे गतिहीन या स्थिर पात्र कहलाते हैं। गतिशील पात्र के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में, संघर्ष के कारण होने वाले रूपांतर और विकास का चित्रण किया जाता है। ऐसे पात्रों के चरित्र के एक से अधिक पक्षों का उद्घाटन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विरोधी गुणों के कारण मन में होने वाले घात-प्रतिघात का चित्रण किया जाता है। वह पात्र जो वर्ग-विशेष के गुण-दोषों का प्रतिनिधित्व न कर अपनी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताएँ रखता है, व्यक्ति-पात्र कहलाता है। इसके विपरीत जो पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, वह प्रतिनिधि पात्र कहलाता है। आज की कथा-कृतियों में चरित्र ही मेरुदंड होता है, अतः पात्रों के चरित्र-चित्रण का बड़ा महत्व है। वे ही कला-कृतियाँ सफल मानी जाती हैं जिनके पात्र जीवंत हों।

पानशाला *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

यह दुव्वूरि रामि रेड्डी (दे०) द्वारा किया गया उमर खय्याम की रूबाइयों का स्वतंत्र अनुवाद है। श्री रामि रेड्डी को फ़ारसी-साहित्य, इतिहास एवं काव्य-रूपों का विशेष ज्ञान था। इस कारण वे उमर खय्याम की भावनाओं एवं उनके जीवनदर्शन का अवगाहन समग्र रूप से कर सके। तेलुगु में उमर खय्याम के अनेक अनुवाद हुए हैं। किंतु 'पानशाला' का स्थान इनमें सर्वोपरि है। रामि रेड्डी की यह रचना पाठक को अनुवाद प्रतीत नहीं होती। मूल कवि की भावनाओं को आत्मसात् करके रामि रेड्डी ने उन भावों को अपना वना लिया है और उसके उपरांत उनको अपनी मृदु-मधुर शैली में सुंदर अभिव्यक्ति दी है।

पाना *(मल० पारि०)*

मलयाळम की एक काव्य-विधा और एक छंद। इस विधा के प्रमुख प्रयोक्ता सोलहवीं शती के भक्त कवि पूंतानम् (दे०) नंपूतिरि हैं जिनके दो काव्य 'ज्ञानप्पाना' (दे०) और 'संतानगोपालम् पाना' बहुत प्रसिद्ध हैं। इसमें प्रयुक्त छंद को 'सर्पिणी' भी कहते हैं। इसका लक्षण ग्यारह अक्षरों की दो पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में चार गण हैं। प्रथम गण दो अक्षरों का है और शेष तीन गण तीन-तीन अक्षरों के हैं।

पानेइ-जंकि *(अ० पा०)*

ये रजनीकांत वरदलै (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'मिरि जीयरी' (दे०) के नायिका-नायक हैं। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि मिरि जनजाति है। पानेइ और जंकि का मिलन नहीं हो पाता, उन्हें दर्द भरी मृत्यु का सामना करना पड़ता है। लेखक ने नायिका पानेइ के चरित्र पर विशेष ध्यान दिया है।

पापय्य शास्त्री, जंध्याल *(ते० ले०)* [समय—1912 ई०]

श्री शास्त्री आर्द्रहृदय कवि हैं। भवभूति (दे०) के समान ये भी करुणरसवादी हैं। अतः इनका दूसरा नाम 'करुणश्री' भी है और सरलता, सुकुमारता एवं प्रांजलता इनकी कविता के प्रमुख गुण हैं।

'उदयश्री', 'करुणाश्री', 'विजयश्री', 'अरुण-किरणालु' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनकी रचना आद्यंत मधुर होती है और उसमें शब्द एवं अर्थ अनायास ही हृदयंगम हो जाते हैं। विशेषकर करुण रस के पोषण में इन की प्रतिभा अत्यंत प्रखर हो उठती है। बुद्ध इनके परम आराध्य हैं और इनका 'करुणाश्री' काव्य बुद्ध के ही चरित का वर्णन करता है। अनेक पौराणिक प्रसंगों को लेकर भी इन्होंने मृदु मधुर रचनाएँ की हैं। समाज की दीन जनता पर महती संवेदना, राष्ट्र के प्रति तीव्र अनुराग तथा स्त्रियों के प्रति आदर की भावना इनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रकट होती है। इनकी रचनाओं का आदर पंडित-वर्ग में ही नहीं, साधारण जनता में भी खूब हुआ है।

पापराजु, कंकंटि *(ते० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई० का मध्यकाल]

पापराजु का जन्म नियोगि ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। माता नरसमांबा थीं तथा पिता अप्पयामात्य थे। कंकंटि उनका गृहनाम था।

पापराजु का निवासस्थान नेल्लुर जनपद माना जाता है। पापराजु के अनन्य मित्रों में पुष्पगिरि तिम्मन्न का नाम उल्लेखनीय है। तिम्मन्न भी 'अनेक-आंध्रकृति-प्रकल्पन-समर्थ' थे। एक बार पापराजु को स्वप्न में मदन-गोपाल देव का साक्षात्कार हुआ था। इष्टदेव मदनगोपाल ने आदेश दिया कि तुम 'उत्तररामायण' (दे० उत्तर-रामायणमु) की कथा की 'मृदुवचोधाराप्लावित' रसनिष्ठ शैली में प्रबंधकाव्य का प्रणयन करके मुझे समर्पण करो'। यह भव्य एवं दिव्य स्वप्न-कथा उन्होंने अपने मित्र तिम्मन्न को कह सुनाई तथा उनसे पापराजु ने प्रार्थना की कि प्रबंध-निर्माण में तुम मेरी सहायता ठीक उसी प्रकार करो जिस प्रकार भारत-युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन की सहायता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। कुछ आलोचकों के अनुसार 'उत्तररामायणमु' के कवि तिम्मन्ना (दे०) ही थे परंतु यह निष्कर्ष तर्कसम्मत नहीं है; कारण, दोनों की काव्य-शैलियाँ एक दूसरे से नितांत भिन्न हैं।

पापराजु मदनगोपाल के उपासक थे। अतः उन्होंने 'विष्णुमायाविलासमु' नामक यक्षज्ञानमु (दे०) को भी मदनगोपाल के श्रीचरणों में ही समर्पित किया था। उनका कविकर्म विविधतापूर्ण था। वे चतुर्विध-कविता-विशारद थे। तेलुगु में कविता प्रक्रियाएँ चार प्रकार की मानी गई हैं—1. आशुकविता, 2. मधुर कविता, 3. चित्र-कविता, 4. विस्तार कविता। पापराजु इन सभी प्रक्रियाओं में निष्णात थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखश्री-समृद्ध था अतः वे यशस्वी दानी थे। लोकज्ञता उनमें भरपूर थी। वे मंत्रि-पुंगव भी थे। यही नहीं, गणितविद्या में उनकी अपार गति थी।

पापराजु की रचना में अपने आभिजात्य का वर्णन पुष्कल मात्रा में मिलता है। हिंदी-साहित्य में केशव-दास (दे०) ने सनाढ्य ब्राह्मणों की वैभव-गरिमा का वर्णन किया तो तेलुगु में कंकंटि कवि ने नियोगी ब्राह्मणों का गुणगान जी तोड़ कर किया है। कवि का व्यक्तिगत तथा काव्य-जीवन दोनों वैभवपूर्ण तथा ऊर्जस्वित थे।

प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से आँका जाए तो पापराजु की 'उत्तररामायणमु' कृति तिक्कना सोमयाजी (दे०) की 'निर्वचनोत्तररामायणमु' (दे०) से भी महत्त्व-पूर्ण है। तेलुगु प्रदेश में 'उत्तररामायणमु' काव्य का कथा-वाचक पौराणिक पंडित गायन किया करते हैं। वैदुष्य और प्रभावोत्पादकता का मणिकांचन संयोग पापराजु की वैयक्तिक तथा साहित्यिक जीवनियों का वैशिष्ट्य है।

पापरि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

गणेश गर्ग (दे०) की इस आत्मकथात्मक प्रेम-कविता में प्रतिदानहीन एकपक्षीय प्रेम का चित्रण है। जिस लड़की ने लेखक को प्रभावित किया और जिसके सौंदर्य में स्नान कर उसने विश्व में नूतन सौंदर्य की उपलब्धि की, वह उसे निर्ममतापूर्वक छोड़ गई थी। कविता में भावों की गहराई, प्रभावशाली शब्द-चयन और अनुभूति की प्रामाणिकता है। प्रेम में बौद्धिकता एवं दार्शनिकता का अभाव है। संभवतः प्रेम की चोट न सह पाकर ही लेखक अल्पायु में यह संसार छोड़ गया था। उसकी यह प्रारंभिक कृति अपना विशेष महत्त्व रखती है।

पायिरम् *(त० पारि०)*

'उपोद्घात', 'प्रस्तावना', 'भूमिका' आदि अर्थ देने वाला यह शब्द तमिल साहित्यिक परंपरा में पद्य-रचनाओं की भूमिकाओं के लिए प्रयुक्त है। इन भूमिकाओं के बारे में 'नन्नूल्' नामक व्याकरण-ग्रंथ (तेरहवीं शती ई०) में कुछ सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं। किसी भी शास्त्रीय चर्चा करने वाली रचना ('नूल्') के लिए एक 'पायिरम्' की आवश्यकता मानी गई है। संबद्ध रचना की शोभा भी भूमिका से बढ़ जाती है, यथा चित्रों से प्रासाद, गोपुर-द्वार से नगर, आभूषणों से नारी, इत्यादि। दो प्रकार के 'पायिरम्' माने गए हैं—सामान्य एवं विशिष्ट। ऐसी भूमिकाएँ 'सामान्य' की कोटि में आती हैं जिनमें व्याकरण-ग्रंथों के संबंध में जानने लायक सामान्य बातें—विषय-प्रतिपादन, संदर्भ, अध्येता एवं अध्ययन-प्रणाली—प्रस्तुत हों। 'विशिष्ट' भूमिकाओं में रचनाकार, परंपरा, प्रचलन-क्षेत्र, शीर्षक, विषयवस्तु, योजना, श्रोता, फलश्रुति—इन आठों मुद्दों का उल्लेख अपेक्षित है। स्पष्ट है कि गुरु-शिष्य की मौखिक परंपरा में चली आने वाली व्याकरण-रचनाओं को ध्यान में रखकर भूमिकाओं के लक्षण यहाँ प्रस्तुत हैं। उक्त दो प्रकारों के अतिरिक्त तमिल-साहित्य में एक 'स्वरचित' भूमिका का प्रकार भी चल पड़ा है जिसमें लेखक स्वयं अपनी रचना का परिचय देता है। प्राचीन तमिल साहित्यिक रचनाओं के काल-निर्णय में रचनाओं का 'पायिरम्' सहायक होता है।

पारप्पुरत्तु ईशो मत्तायि *(मल० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

जन्मस्थान—मावेलिक्करा। हाई स्कूल शिक्षा के बाद करीब 21 वर्ष पलटन में नौकरी के पश्चात् इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। अब पारिवारिक खेती और संपत्ति की देखरेख तथा साहित्य-सृजन और पटकथा-लेखन में समय व्यतीत होता है।

श्री मत्तायि की सहज साहित्यिक चेतना बशीर, तकषि (दे०) आदि की कृतियों से उद्दीप्त हुई थी। सैनिक सेवाकाल में अध्ययन के साथ-साथ इनकी कलम मित्रों के प्रोत्साहन से कहानी, एकांकी आदि रचने लगी। इनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'पुत्रियुटे व्यापारम्' 'लोकवाणी' में निकली थी। सुविधार्थ इन्होंने 'पारप्पुरत्तु' उपनाम रख लिया जो अंततः स्थायी हो गया। कहानियों में सफलता पाने के बाद ये उपन्यास-रचना में प्रवृत्त हुए। इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'निणमणिञ्ञ कालपाटुकळ्' (दे०) (खून-सने पद-चिह्न), 'अन्वेषिच्चु कंडेत्तियिल्ल' (खोजा, पर पता नहीं लगा), 'पणितीरात्त वीडु' (अधूरा घर) तथा 'अरनाषिक नेरम्' (दे०) (आधी घड़ी)। इनके कई कहानी-संग्रह भी हैं।

श्री पारप्पुरत्तु की सफलता का प्रमुख कारण यह है कि इनके पात्र इनके वैविध्यपूर्ण अनुभव-जगत् के जीव हैं और उन्हें अपनी रचनाओं में इन्होंने पूरी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया है। ईसाई लोगों का पारिवारिक जीवन, उनका नाता-रिश्ता, गिरजाघर से संबंधित उनके उत्सव, उनके कलह-संघर्ष आदि का चित्रण उपन्यासकार ने उन्हीं की बोली के उद्धरणों सहित किया है। इनकी शैली सरल, सहज और सीधी है। मानसिक ग्रंथियाँ प्रस्तुत करना और कथाविकास के दौरान उन्हें खोलना अन्य उपन्यासकारों की तरह इनकी भी कला का अंग है। ये लोकप्रिय केरलीय उपन्यासकारों में प्रमुख हैं।

पारप्पुरत्तु संजयन् *(मल० पा०)*

'पारप्पुरत्तु संजयन्' सुप्रसिद्ध हास्य-साहित्यकार एम० आर० नायर (दे० संजयन्) का उपनाम है और वह उनकी रचनाओं का पात्र भी है। उनके द्वारा संपादित पत्रिका का नाम भी 'संजयन्' था। 'महाभारत' (दे०)-कथा के संजय की तरह यह संजय भी अज्ञान के अंधकार में दिशा-भ्रष्ट होने वाले समाज-रूपी धृतराष्ट्र को सत्य और असत्य के विवेचन द्वारा वस्तुस्थिति का परिचय देता है।

हास्यरस के इस मर्मज्ञ के जीवन का एक क्षण भी राजयक्ष्मा के कारण सुखमय नहीं रहा। पत्नी और पुत्र की अकाल मृत्यु भी हुई। परंतु इन कष्टों ने लेखक की हास्यप्रियता को बढ़ाया ही है। संजयन् के हास्य की दार्शनिकता एक कविता के निम्नलिखित प्रस्ताव से व्यक्त होती है—'चाहे दिल दहलाए, चाहे सिर चकराए, फिर भी हँसना चाहिए। विदूषक का यही धर्म है।'

संजयन् ने समाज और साहित्य की बड़ी सेवा की है। यह पात्र महात्मा गांधी का भक्त है और अँग्रेज़ राज का निरंकुश आलोचक। समाज में जहाँ भी अन्याय होता है वहाँ यह पहुँचता है और हँसी-हँसी में उन बुराइयों का इलाज करता है। महाकवि उळ्ळूर् (दे०) के इस कथन में अत्युक्ति नहीं है कि कुंचन् नंपियार (दे०) के बाद इस प्रकार की हास्य-प्रतिभा मलयाळम में पहली बार दिखाई दी थी।

पारमिता *(पा० पारि०)*

इस शब्द का अर्थ है 'पार की सीमा'। रायस डेविस के अनुसार इस शब्द का प्रयोग 'परिपूर्णता' तथा 'सर्वोच्च विधा' के लिए आया है। कभी-कभी इसके लिए 'पारमी' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। इस शब्द का प्रयोग 'सुत्तनिपात' (दे०), 'जातक' (दे०), 'नेहिपकरण' (दे०) तथा दूसरी पुस्तकों में प्रायः किया गया है। वस्तुतः इनकी सत्ता तो पहले भी थी किंतु इन्हें महायान शाखा (दे०) में व्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ। पारमिताएँ 6 हैं—दान, शील, क्षांति, वीरय (वीर्य), ध्यान और प्रज्ञा। इन 6 में उस सीमा तक पहुँचना होता है जिसमें प्रज्ञा-पारमिता सर्वोच्च है। ये 'बोधिसत्त्व' (दे०) के विशेष गुण हैं और इन्हें अरहत् (दे०) तथा प्रत्येक बुद्ध से अधिक ऊँचा उठाते हैं क्योंकि इन दोनों में (अरहत् तथा प्रत्येक बुद्ध में) निषेधात्मक गुण ही हैं जबकि बोधिसत्त्व में दान इत्यादि तात्त्विक गुण भी हैं। उक्त 6 पारमिताओं के अतिरिक्त 4 पारमिताएँ और मानी जाती हैं—उपाय, महाकांक्षा, बल और ज्ञान। महायानियों ने पारमिताओं में गृहस्थ तथा धर्म को एक में मिलाकर धर्म के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

पारसभाग *(पं० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती का पूर्वार्ध]

अड्डनशाह (दे०) का 'पारसभाग' प्रसिद्ध दार्शनिक इमाम गज्जाली (मृ० 1111 ई०) के फ़ारसी-ग्रंथ 'कीमिमाए सआदत' का अनुवाद कहा जाता है परंतु भाषा-प्रवाह और विचार-प्रतिपादन इतना सजीव है कि यह एक मौलिक रचना प्रतीत होती है। सेवा-पंथी संप्रदाय में इसका बहुत सम्मान है। नागरी और गुरुमुखी लिपि में इसकी अनेक हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियाँ मिलती हैं जिनके आधार पर प्रो० प्रीतमसिंह (दे०) ने विस्तृत भूमिका-सहित इसके प्रथम चार अध्यायों का संपादन किया है। ग्रंथ के आठ अध्यायों में वेदांत, सूफ़ीमत, आचार-व्यवहार तथा राजनीतिक और प्रशासनिक मान्यताओं की गंभीर मीमांसा करते हुए स्थूल उदाहरणों द्वारा विविध समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया गया है। इसमें संस्कृत, फ़ारसी और पंजाबी के अनेक शब्दों का मनोरम प्रयोग है परंतु क्रियारूपों को न हिंदी का कहा जा सकता है, न पंजाबी का ही। पंजाबी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् इसे 'हिंदी के पिंडे (आकार) वाली पंजाबी' कहते हैं। पंजाबी-क्षेत्र में लिखी गई यह रचना अपनी शास्त्र-निष्ठता तथा जनजीवन से निकट संपर्क के कारण दोनों ही भाषाओं की युगांतरकारी कृति है।

पारसी थियेटर *(हिं० प्र०)*

व्यवसायी रंगमंच के रूप में पारसी थियेटर का उद्भव और विकास भारतेंदु (दे०)-युग में हुआ। पहली पारसी नाट्य-कंपनी थी ओरिजिनल थियेटर कंपनी। वह 1870 ई० तक काम करती रही। उसके द्वारा अभिनीत नाटक मोहम्मद मियाँ रौनक और हुसैन मियाँ जरीफ़ द्वारा लिखे जाते थे और उनकी भाषा उर्दू होती थी। 1877 ई० में ख़ुरशेद बल्लीवाला ने विक्टोरिया थियेटर कंपनी की स्थापना की। इसके लिए नाटक लिखते थे काशी के मुंशी विनायक प्रसाद। इन नाटकों का महत्त्व इस दृष्टि से है कि उनकी भाषा हिंदी की प्रकृति के अधिक निकट थी। इसी समय दो अन्य नाटक-कंपनियाँ आईं—विक्टोरिया पारसी ऑपेरा कंपनी और पारसी एलफ़िस्टन ड्रामेटिक क्लब। परंतु जो लोकप्रियता कानसजी खटाऊ द्वारा स्थापित एलफ़्रेड थियेट्रीकल कंपनी को मिली वह किसी अन्य को प्राप्त नहीं हो सकी। उसके लिए सैयद मेंहदी हसन और पं० नारायण प्रसाद 'बेताब' नाटक लिखते थे। यह कंपनी बर्मा तक गई और वहाँ इसके नाटक 'बिल्वमंगल', 'यहूदी की लड़की' आदि बहुत लोकप्रिय हुए। 'बेताब' के लिखे नाटक 'महाभारत' में शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है।

हिंदी-नाटक-रचना की दृष्टि से इन कंपनियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय है न्यू एलफ़्रेड कंपनी। इसके लिए नाटक लिखने वालों में आग़ा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम (दे०) कथावाचक आज तक याद किए जाते हैं। राधेश्याम कथावाचक के नाटकों के विषय प्राय: पौराणिक होते थे और दृष्टि आदर्शवादी। दर्शकों में सुरुचि का संचार करने और हिंदी भाषा के प्रचार का श्रेय इन्हीं के नाटकों को है। इनका 'वीर अभिमन्यु', हरिकृष्ण जौहर के 'पति भक्ति' एवं 'वीर भारत' तथा तुलसीदास शैदा का 'नल-दमयंती' इसी श्रृंखला के नाटक हैं।

पारसी थियेटर के नाटकों में पहले उर्दू का प्रयोग होता था—पर बाद में हिंदी भी प्रयुक्त होने लगी। इनका लक्ष्य था रुपया कमाना। अत: जनता को अधिकाधिक आकृष्ट करने के लिए इन्होंने जो नाटक प्रस्तुत किए उनसे कुरुचिपूर्ण असांस्कृतिक प्रवृत्तियों का ही प्रचार हुआ। सीता की भूमिका में मिस पुटी कमर लचकाती आती थीं और राम की भूमिका में अभिनेता कटाक्ष करता था। नाट्य रचनाएँ कंपनी की सुविधा के लिए लिखी जाती थीं। नाटकों में पद्य की भरमार होती थी, गद्य में भी तुकबंदी का प्रयोग होता था, थोड़ी-थोड़ी देर बाद गाने गवाए जाते थे, पात्र रोते भी गाने में थे और हँसते भी गीतों के माध्यम से थे। विदूषक का परिवार अलग होता था। अनावश्यक आवेश, मस्ती, अश्लील हावभाव, नृत्य और गीत इन नाटकों के अनिवार्य अंग थे। इनकी दो उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं—इन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायता दी तथा लाखों रुपये ख़र्च कर जो सुशोभन सीन-सीनरियाँ बनाई गईं उनसे हिंदी-रंगमंच की दृश्य-विधान-कला में सहायता मिली। ये अनेक असंभव घटनाओं—वायुयान उड़ना, नदी बहना, प्रह्लाद का आग में जलना—आदि को मंच पर दिखला कर दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देते थे। इनके नाटकों के विषय प्राय: पौराणिक होते थे; कभी-कभी सामाजिक समस्याओं पर भी सुधारात्मक दृष्टि से नाटकों की रचना की जाती थी। इनका प्रभाव आगे चलकर उन नाट्य मंडलियों पर भी पड़ा जो भारतेंदु की प्रेरणा से बनीं। उनकी अभिनय-पद्धति पर निश्चय की पारसी थियेटर का प्रभाव था। अत: पारसी थियेटर अपनी फूहड़ता, असांस्कृतिक प्रवृत्तियों आदि के लिए कुख्यात होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि और हिंदी के प्रचार के लिए स्मरणीय रहेगा।

पारि *(त० पा०)*

संघकालीन सात प्रसिद्ध दानी शासकों में परिगणित 'पारि' परंबुनाडु नामक समृद्ध राज्य का शासक था। प्रसिद्ध है कि यह अत्यंत दयालु था। एक बार जंगल में भ्रमण करते हुए इसने पृथ्वी पर निराश्रित पड़ी मुल्लै लता को देखा। उस लता को आश्रय देने के लिए इसने अपने स्वर्ण-रथ को वहीं छोड़ दिया। संघ-साहित्य के अनुसार तत्कालीन चेर, चोल, पांड्य राजाओं ने इस पर आक्रमण किए थे। संभवत: उन्हीं राजाओं ने शत्रुतावश इसे मरवा दिया था। इसकी मृत्यु पर अव्वैयार् (दे०) द्वारा रचित कविता का तमिल के करुण रस-प्रधान गीतों में विशिष्ट स्थान है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि इसकी मृत्यु के उपरांत कवि कपिलर (दे०) ने अंगवै-शंगवै नामक इसकी युवा कन्याओं का विवाह संपन्न किया था। पारि से संबंधित विवरण 'अकनानूरु' (दे०), 'पुरना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूरु' (दे०), 'कुरुंतोगै' (दे०), 'शिरुपाणाट्रुप्पडै' आदि संघकालीन कृतियों और 'देवारम्' (दे०), 'तिरुप्पहुष्' (दे०), 'तंजैवाणन्' कोवै (दे०), 'करवै वेलन् कोवै' आदि परवर्ती कृतियों में मिलते हैं। आधुनिक काल में रचित रा० राघव अय्यंगार की 'पारि कादै', पे० गोविंदन् (दे०) की 'कोडै मन्नर् पनुवल्' आदि साहित्यिक कृतियों में इसके जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं का वर्णन है।

पारिजात (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

पूजालाल रणछोड़दास दलवाडी की विभिन्न कविताएँ 'पारिजात' नामक काव्य-संग्रह के रूप में सर्वप्रथम 1938 ई० में पाठकों के समक्ष आईं। 1954 ई० में इसकी दूसरी आवृत्ति गुर्जर ग्रंथरत्न-कार्यालय द्वारा प्रकाशित हुई। प्रस्तुत संग्रह में कवि की 121 रचनाएँ संकलित हैं। ये रचनाएँ तीन भागों में विभक्त हैं: सॉनेटो, बीजी कृतिओ (पूर्वार्ध) तथा बीजी कृतिओ (उत्तरार्ध)। प्रथम आवृत्ति में जिन रचनाओं का समावेश किया गया था, दूसरी आवृत्ति में भी रचनाएँ तो वे ही हैं पर उनका स्वरूप, 'पारिजात' पर हुई आलोचनाओं और मित्रों द्वारा दिए गए सुझावों को ध्यान में रखकर, बदल दिया गया है। 'पारिजात' में विविध विषय, छंद, रस और रचना-विधियाँ प्राप्त होती हैं। अकेले सॉनेटों में ही कवि ने अनेक भारतीय छंदों का सफलतापूर्वक उपयोग किया है, यथा—एक सॉनेट दीर्घ पयार में, दो-दो उपजाति, वसंततिलका और स्रग्धरा में, तीन अनुष्टुप में, छह शार्दूलविक्रीडित में, सात शिखरिणी में और शेष इकत्तीस पृथ्वी छंद में निर्मित हैं। अन्य रचनाओं में भी प्रायः सभी स्थानों पर छंदों के नामों का निर्देश कर दिया गया है। भावों की इतनी सहजता और छंदों का इतना वैविध्य कम संग्रहों में देखने को मिलता है।

पारिजातापहरणमु (तें० कृ०) [रचना-काल—1510 ई० 1520 ई० के लगभग]

इसके लेखक नंदि तिम्मना (दे०) हैं जो 'मुक्कुतिम्मना' के नाम से भी विख्यात हैं। यह पाँच आश्वासों का एक श्रृंगार-काव्य है। इसका कथानक इस प्रकार है: एक दिन नारद ने कृष्ण को पारिजात का एक पुष्प समर्पित किया। कृष्ण ने पास बैठी हुई रुक्मिणी को उसे प्रेम से दे दिया। नारद ने रुक्मिणी के प्रति कृष्ण के प्रेम की प्रशंसा की। इस सारी घटना के बारे में सखी द्वारा सुनते ही मानिनी सत्यभामा अत्यंत क्रुद्ध हुई। कृष्ण उसे मनाते हुए जब उसके पैरों पर पड़कर अनुनय करने लगे तब सत्यभामा ने क्रोध में अपने बायें चरण से उनको मार दिया। कृष्ण दक्षिण नायक हैं। अतः उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को शांत करने के लिए नंदनवन से पारिजात वृक्ष का अपहरण कर, उसे सत्यभामा के अंतःपुर के आँगन में लगवा दिया। बाद में नारद की सलाह से सत्यभामा ने पुण्यक नामक व्रत किया। कहा जाता है कि एक बार कृष्णदेवरायलु और उनकी एक पत्नी के बीच कलह हो गया। राजा को शांत करके उन दोनों के बीच का वैमनस्य समाप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर तिम्मना ने इस व्यंग्यपूर्ण काव्य की रचना की। व्यंग्य यह है कि जब पति से भूल हो जाती है तो अत्यंत क्रुद्ध नारी की प्रतिक्रिया में औचित्य का प्रश्न कहाँ रह जाता है? जब भगवान कृष्ण ने ही ऐसी स्थिति में अपनी पत्नी का चरण-प्रहार भी प्यार से स्वीकार कर लिया तो साधारण मनुष्य के बारे में कहने के लिए कुछ और क्या रह जाता है? इस काव्य में श्रृंगार और वीर रसों का सुंदर चित्रण है; वर्णन सहज तथा मार्मिक है और चरित्र-चित्रण में प्राणवत्ता है। प्रधानतः सत्यभामा तथा श्रीकृष्ण का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक और मनोहारी है। इसके द्वारा स्पष्ट होता है कि तिम्मना सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक दशाओं के मर्मज्ञ थे। कोमल शब्दों के संयोजन तथा सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा यह काव्य संपूर्ण तेलुगु-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

तेलुगु के औचित्यपूर्ण सरस श्रृंगार-काव्यों में 'पारिजातापहरणमु' का स्थान सर्वोपरि है।

पारिवारिक प्रबंध (बँ० कृ०) [रचना-काल—1881 ई०]

भूदेव मुखोपाध्याय के जीवन एवं चरित्र में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति का सुखद समन्वय घटित हुआ था। उनके 'पारिवारिक प्रबंध' (1881 ई०) ने उस युग में विशेष ख्याति प्राप्त की। भगवान मनु ने चतुराश्रम में गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ स्वीकार किया है। कल्याणमय आदर्श के द्वारा गार्हस्थ्य धर्म के आचार-आचरण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से इस शिक्षात्मक ग्रंथ की रचना हुई थी। इस प्रकार के ग्रंथों में उनका 'सामाजिक प्रबंध' (1882), 'आचार-प्रबंध' (1887) आदि सविशेष उल्लेखनीय हैं। इस ग्रंथ में लेखक के भूयोदर्शन, सूक्ष्मदर्शिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक ज्ञान तथा मननशीलता का यथेष्ट परिचय विद्यमान है।

पार्त्तचारति, ना० *(त० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

तत्सम शैली में इनका नाम 'पार्थसारथि' है। उपन्यास, निबंध, आलोचना आदि के लेखन में इन्हें ख्याति प्राप्त है। ये 'मतुरै' नगर में तमिल भाषा एवं साहित्य की विशेष शिक्षा प्राप्त कर वहीं तमिल-अध्यापक हो गए थे। संप्रति ये मद्रास शहर में 'तीपम्' (दीप) नामक तमिल साहित्यिक पत्रिका के संपादक हैं। इनकी कुछ कृतियाँ हैं—'कुरिंचिमलर्', 'कोपुरतीपम्' (दोनों सामाजिक उपन्यास), 'पाटिमातेवि' (ऐतिहासिक उपन्यास), 'बेनिल् मलर्कल्' (लघुकथा), 'कवितैक्कलै' (निबंध) इत्यादि। 1972 ई० में इन्हें इनके 'समुताय कीति' नामक उपन्यास के लिए साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था।

पार्वती *(सं० पा०)*

यह हिमालय तथा मेना की कन्या थीं। इनके अन्य नाम हैं—दुर्गा, देवी, सती आदि। यह पहले कृष्ण-वर्णा थीं, परंतु बाद में एक चमत्कार के कारण गौरवर्णा हो गई थीं। अतः इन्हें गौरी भी कहते हैं। नारद की प्रेरणा से हिमालय ने इनका विवाह शंकर से किया। विवाह से पूर्व इन्होंने शंकर को पति-रूप में पाने के लिए घोर तपस्या की थी। शंकर से इन्हें कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इनके शरीर के मल से गजानन (गणेश) की उत्पत्ति हुई थी। बाण और वीरभद्र को भी ये अपने पुत्र मानती थीं। कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर इन्होंने एक सुंदरी स्त्री की इच्छा की तो 'अशोकसुंदरी' की उत्पत्ति हुई, जिसे इन्होंने अपनी कन्या मान लिया। दुष्टों के संहार के लिए इन्होंने अनेक बार अवतार लिये थे। कालिदास (दे०) ने 'कुमारसंभव' (दे०) में शंकर-पार्वती की प्रणय-गाथा का अत्यंत कवित्वपूर्ण वर्णन किया है।

पार्वतीश्वर कवि, मंडपाक *(ते० ले०)* [जन्म—1833 ई०; मृत्यु—1897 ई०]

उन्नीसवीं शती के पंडित-कवियों में मंडपाक पार्वतीश्वर कवि का स्थान मूर्द्धन्य है। इनके पिता और पितामह उच्चकोटि के विद्वान् थे। बोब्बिलि नामक रियासत के राजाओं के दरबार में ये राजकवि थे। इन्होंने कई शतकों की रचना की है। इस प्रकार के 'परम शिवशतकमु', 'सूर्यनारायणशतकमु', 'गोपालकृष्णशतकमु', 'गणपतिशतकमु', 'हरिशतकमु', 'हरिहरेश्वरशतकमु', आदि कई शतकों के अतिरिक्त कवि ने 'श्रीराधाकृष्ण-संबादमु', 'उमासंहिता', 'कांचीमहत्वमु', 'अमरुक', 'अक्षर-मालिका निघंटु' जैसे कई काव्यों की भी रचना की। इनके अलावा इन्होंने गद्य-साहित्य को भी अपनी सशक्त लेखनी से समृद्ध किया।

पार्श्वनाथ पुराण *(क० कृ०)* [समय—अनुमानतः 1225 ई०]

इसके रचयिता पार्श्व पंडित नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय 1225 ई० ठहराया गया है। ये राजा कार्तवीर्य चतुर्थ के सभा-कवि थे जिन्होंने इन्हें 'कविकुल तिलक' का विरद दिया था। इस चंपूकाव्य में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कथा निरूपित है। इसमें सोलह आश्वास हैं। ये एक समर्थ कवि थे। वर्णन-प्रधान होने पर भी कथा सरस बन पड़ी है। पार्श्व तीर्थंकर की भावावलियों का विस्तृत वर्णन भी इसमें मिलता है। पार्श्व तीर्थंकर पर कन्नड में काव्य-रचना करने वालों में ये ही सर्व-प्रथम हैं। इनकी कन्नड शैली में नागचंद्र का प्रसार गुण है, परिशुद्धता है किंतु वर्णनों में संस्कृत-प्रचुरता, अलंकारों की विख्यात शैली की प्रौढ़ता आदि इनकी प्रतिभा को नीचे खींचती हैं।

पॉल, एम० पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1904 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध आलोचक हैं। प्रगतिशील विचारों के कारण ये धार्मिक नेताओं से संघर्षरत रहे। ट्यूटोरियल कॉलेज का संचालन इनका मुख्य व्यवसाय था। 'नोवल् साहित्यम्' (दे०), 'चेरुकथा प्रस्थानम्', 'सौंदर्यनिरीक्षणम्' आदि इनको साहित्या-लोचनात्मक कृतियाँ हैं।

एम० पी० पॉल पाश्चात्य और भारतीय साहित्यिक सिद्धांतों के मर्मज्ञ थे। इन दोनों पद्धतियों का संश्लेषण करके वे स्वयं अपने साहित्यिक मानदंडों की सृष्टि करते थे। वे प्रगतिवादी चिंतक थे और उन्होंने उस मार्ग में कई लेखकों को दीक्षित और प्रोत्साहित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। मलयाळम के आलोचकों में पॉल का स्थान समुन्नत है।

पाल्कुरिके सोमनाथ *(क० ले०)* [समय—तेरहवीं शती का अंत]

पाल्कुरिके सोमनाथ वीरशैव कवि थे; गोदावरी जिले के पाल्कुरिके में उनका जन्म हुआ था। 'कर्णाटक-कविचरिते' (दे०) के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्य जी (दे०) ने उनका समय 1195 ई० बताया है, परंतु कुछ नये प्रमाणों के आधार पर उनका समय 1299-1300 ई० के आसपास माना जाने लगा है। उनके पिता का नाम बसवेश था और गुरु का नाम गुर्लिकगार्य। उन्होंने शास्त्रार्थ में कई लोगों को पराजित किया था और गणपुर के राजा जगदेकमल्ल से सम्मानित हुए थे।

सोमनाथ तेलुगु और संस्कृत के भी प्रकांड पंडित थे। तेलुगु के प्राचीन कवियों में उनका अत्यंत आदरपूर्ण स्थान है। तेलुगु में रचित उनका 'बसवपुराणमु' एक अनुपम काव्य है। 'तत्त्वविद्याकलाप', 'कवितासार', 'अन्यदैवकोलाहल' और 'प्रत्यक्षमृंगीश-अवतार' जैसी उपाधियाँ उन्हें प्राप्त थीं। कन्नड के कवियों में सोमराज और गुब्बि मल्लणार्य ने उनकी स्तुति की है। 'कर्णाटक-कविचरिते' में उनके निम्नांकित कन्नड ग्रंथ बताए गए हैं—

(1) 'शीलसंपादने'—यह गद्य में है, यत्र-तत्र संस्कृत के श्लोक भी हैं। इसमें वीरशैवों के 64 शीलों का वर्णन है। (2) 'सोमेश्वरशतक'—इसका दूसरा नाम है 'सोमाराध्यशतक'। इसके कवि के विषय में पर्याप्त चर्चा हुई है। व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग विद्यमान होने के कारण बहुत-से विद्वान इसे पाल्कुरिके सोमनाथ की रचना स्वीकार नहीं करते। यह पुलिगेरे सोमनाथ की रचना होगी। (3) 'सहस्रगणनाम'—इसमें प्रमथगण, रुद्रगण, भक्तगण, योगाचार्य, त्रिषष्ठिगण, अमरगण और दशगण—इनके नाम हैं। इसके आदि और अंत में कतिपय पद्य हैं। (4) 'पंचरत्न'—बसवेश्वर की स्तुति के पाँच वृत्त इसमें हैं। (5) 'सद्गुरु रगळे' (6) 'चेन्नबसवस्तोत्रद रगळे' और (7) 'शरणुबसव रगळे'।

इनमें अंतिम तीनों 'रगळे' छंद में रचित हैं। प्रत्येक में अलग-अलग 'छाप' है जैसे सद्गुरु, चेन्नबसव और शरणुबसव।

पालवेल्लि *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई० के लगभग]

इसके लेखक डा० पल्ला दुर्गय्या (दे०) हैं। यह स्फुट कविताओं का संग्रह है। इसमें दो भाग हैं जिनमें से एक में वर्णिक तथा दूसरे में मात्रिक छंदों का प्रयोग किया गया है। ये कविताएँ छोटी-छोटी हैं और विविध विषयों से संबद्ध हैं। 'वर्षामेघ', 'सेलयेरु' (झरना) आदि प्रकृति-प्रेम के द्योतक हैं। 'नन्नय भट्टु' (दे०) जैसी कविताएँ पुराने कवियों के प्रति श्रद्धांजलि हैं। 'नी पेरु' (तुम्हारा नाम), 'अस्पृश्यता' आदि सामाजिक कविताएँ गांधी तथा गांधीवाद के प्रति इनकी आस्था की द्योतक हैं।

पालामौ *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०]

संजीवचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) के 'पालामौ' ग्रंथ के प्रकाशित होते ही उन्हें बहुत यश प्राप्त हुआ था। आज भी इस पुस्तक की जनप्रियता कम नहीं हुई है। 'बंगदर्शन' पत्रिका में प्रकाशित यह भ्रमण-कहानी बँगला साहित्य की एक अमूल्य निधि है। बंकिमाग्रज संजीवचंद्र ने 'जालप्रताप चाँद' (1883), 'रामेश्वरेर अदृष्ट' (1877), 'कंठमाला' (1807), 'माधवीलता' (1884) आदि उपन्यासों की रचना की थी मगर 'पालामौ' उनकी श्रेष्ठ रचना है। जीवन एवं प्रकृति के प्रति प्रेम उनकी रचना के चिरकालीन सौंदर्य का आधार है।

लेखक ने अपनी अंतरात्मा के सौरभ, समवेदना तथा माधुर्य के द्वारा छोटा नागपुर के पर्वत-नदी-अरण्य के साथ आरण्यक जीवन की एकात्मता का बहुत ही सुंदर चित्र उपस्थित किया है।

पालि *(भाषा० पारि०)*

एक मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा जिसका काल मोटे तौर पर पाँचवीं शती ई० पू० से पहली शती ई० तक है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग इसका संबंध 'पंक्ति' से मानते हैं, तो कुछ लोग 'पाटलिपुत्र' से तथा कुछ लोग 'पल्लि' से या 'परियाय' से। अनेक लोगों का मत यह भी है कि इसका संबंध रक्षार्थ धातु 'पा' से है—जिस भाषा में भगवान बुद्ध के वचनों की रक्षा की गई, वह 'पालि' है: 'या रक्खतीति बुद्धवचनं इति पालि' वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। व्युत्पत्ति की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही यह बात भी विवादास्पद है कि पालि भाषा का जो रूप प्राप्त है, वह मूलतः किस क्षेत्र का है। कुछ लोग इसे मगध की भाषा मानते हैं तो कुछ पूरे देश की परिनिष्ठित भाषा तथा कुछ कोशल की। यों अधिक संभावना यह है कि मूलतः यह मध्य देश की भाषा थी, जिस पर बौद्ध धर्म का विशेष क्षेत्र होने के कारण मगध की मागधी का प्रभाव था। पालि भाषा का जो रूप प्राप्त है, उसके अतिरिक्त भी इसके क्षेत्रीय रूप रहे होंगे जो अन्य भाषा-क्षेत्रों में बोले जाते रहे होंगे। इन सभी रूपों के प्रतिनिधि के रूप में ही पालि संस्कृत से विकसित मानी जाती है, जिससे आगे चलकर विभिन्न प्राकृतों का विकास हुआ। इस तरह यह संस्कृत और प्राकृत के बीच की एक कड़ी है।

पालुम पावैयुम *(त० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती का पंचम दशक]

विंदन (दे०) का सर्वप्रथम किंतु अत्यंत प्रभावशाली उपन्यास। इसमें गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के भगवान राम के हाथों उद्धार की पौराणिक कथा को नूतन रूप में प्रस्तुत किया गया है। युवा कनकलिंगम का कलैज्ञानपुरम के किसी उत्सव में जाना, रात्रि के समय किसी नारी का रुदन, इंद्र नामक युवक के छल-कपट का शिकार बनी उस युवती का कनकलिंगम से सहायता की प्रार्थना, काफ़ी सोच-विचार कर कनकलिंगम का उसे अपना लेना, मद्रास लौटने पर मालिक का उसे नौकरी से निकाल देना, कुछ समय बाद मरवा देना, अनाथ अहल्या का इधर-उधर भटकना, दशरथकुमार राम का उसकी सहायता के लिए उद्यत होना, सेवक के इस प्रश्न को सुन राम का चौंकना कि 'क्या आप ख़राब दूध को अच्छा बना सकते हैं ?', दुःखी अहल्या का समुद्र में कूदकर आत्महत्या करना आदि इस उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ हैं।

उपन्यास में रामचंद्र जी द्वारा अहल्या-उद्धार के आदर्श कर्म पर जनता की प्रतिक्रिया का सुंदर चित्रण है। उपन्यासकार के मत में पुरुष एवं नारी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक नियमों का गठन अनुचित है। यदि पुरुष एक के बाद एक करके अनेक स्त्रियों से संबंध-स्थापना के बाद निष्कलंक कहला सकता है तो नारी भी ऐसी स्थिति में निष्कलंक कहला सकती है। कनकलिंगम आदर्श पुरुषों का प्रतिनिधि है जिनकी संख्या समाज में बहुत कम है। अबला अहल्या बीसवीं शती की जागरूक नारी के रूप में चित्रित है। उपन्यास में कुछ पौराणिक पात्रों का व्यंग्य-चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें जनता की विश्वास-हीनता, आर्थिक वैषम्य, ईश्वर के नाम पर किए जाने वाले पाखंड-कर्म आदि का वर्णन है। इस उपन्यास की रचना रूढ़ियों में जकड़े नारी-समाज को जागृत करने के लिए की गई है। भाषा-शैली सरल किंतु प्रभावशाली है। जहाँ-तहाँ सुंदर सूक्तियों का प्रयोग दृष्टिगत होता है—जैसे 'दूध और नारी में विकार आ जाए तो वे किसी काम के नहीं।' तमिल के सामाजिक उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है।

पालै *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल-साहित्य में वर्णित पाँच भूभागों में एक है पालै। इन भूभागों का वर्णन अहम् (दे० अहप्पोरुळ्) और पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ्) दोनों वर्गों की रचनाओं में होता है। 'पालै' से तात्पर्य है 'मरुभूमि'। इस प्रदेश के लोग मरवर, एयिनर, कळ्ळर आदि कहलाते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय है पड़ौसी प्रदेशों में जाकर छापा मारना, चोरी, डकैती, राहज़नी करना। पालै-प्रदेश के निवासी युद्ध की देवी दुर्गा (कोट्रवै) की उपासना करते हैं। इस देवी के अन्य नाम हैं—कन्नि और काडुकिलाळ्। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ ग्रीष्म (जेठ-आषाढ़) और शिशिर (माघ-फाल्गुन) हैं और अनुकूल वेला दोपहर है। इस प्रदेश में पाए जाने वाले पशु-पक्षी हैं—खूंखार कुत्ता, सियार, कबूतर, चील, गीध आदि। पालैवासियों का वाद्य-यंत्र पालैयाल नामक तंत्रीवाद्य है। पालै-प्रदेश में प्रभूत मात्रा में पाए जाने वाले 'पालै' पुष्प के आधार पर ही इस प्रदेश का और यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति का नामकरण हुआ है। पालै-प्रदेश से संबंधित अहम् काव्यों में वियोग श्रृंगार की प्रधानता होती है। कविगण नायक-नायिका के अल्पकालिक विरह का वर्णन करते हैं। पालै-प्रदेश में पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ वियोग श्रृंगार की इस भावना को अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध होती हैं। कवियों व नायक-नायिका की मनोदशा को स्पष्ट करने के लिए प्रदेश विशेष की प्राकृतिक अवस्था का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है।

पावङ्ङळ् *(मल० कृ०)*

फ्रेंच के यशस्वी उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो की प्रसिद्ध कृति 'ला मिजराबल' का अनुवाद नालपाट्टु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायण मेनन (दे०) ने 'पावङ्ङळ' नाम से प्रकाशित किया। कहा जाता है इतना सुंदर अनुवाद अब तक और कोई नहीं कर सका है। अनुवादक ने मूल लेखक के प्रति सब प्रकार से न्याय किया है और मूल कृति की आत्मा को यथावत् नये कलेवर में प्रस्तुत कर देने में सफलता पाई है।

पावैंप्पाट्टु (त० पारि०)

दक्षिण भारत में जिन अनेकानेक व्रतों का अनुष्ठान होता है उनमें एक है मार्गलि नोन्बु। तमिल के प्राचीनतम व्याकरण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) में इस व्रत का वर्णन करने वाले गीतों और काव्यों को 'पावैंप्पाट्टु' कहा गया है। अतः कालांतर में इस व्रत को 'पावैं नोन्बु' कहा गया। पावैं शब्द गीली मिट्टी से निर्मित देवी की प्रतिमा की ओर संकेत करता है जिसकी उपासना व्रत धारण करने वाली कन्याएँ किया करती थीं। संघकालीन कृति 'परिपाडल' (दे०) में इस व्रत के लिए 'अंबावाडल्' शब्द का प्रयोग है। अन्य कुछ कृतियों में इसके लिए 'तैंनीराडलैं' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'पावैंप्पाट्टु' कही जाने वाली रचनाओं में सर्वप्रमुख हैं आण्डाळ (दे०)-कृत 'तिरुप्पावैं' और माणिक्कवाशगर (दे०)-कृत 'तिरुवेंप्पावैं'।

पावैं विळक्कु (त० कृ०) [रचना-काल—1958 ई०]

पावैं विळक्कु श्री अखिलन् (दे०)-कृत एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इसमें लेखक ने अपने मित्र तणिकाचलम् के जीवन से संबद्ध विविध घटनाओं का वर्णन करते हुए उसके चरित्र पर प्रकाश डाला है। कुछ विद्वानों का मत है कि तणिकाचलम् के जीवन पर लेखक के व्यक्तिगत जीवन की प्रतिच्छाया है। तणिकाचलम् एक सामान्य व्यक्ति है जिसमें गुण भी हैं और दोष भी। उपन्यास के चार नारी पात्र—देवकी, शेंकमलम्, गौरी और उमा उसके जीवन का निर्माण करते हैं। विधवा देवकी की सहायता से वह अपने भीतर स्थिर कला की ज्योति को पहचानता है। वेश्या शेंकमलम् उस कला-ज्योति को प्रदीप्त करती है। उसकी पत्नी गौरी उस ज्योति का आधार (दीया) बनती है और उमा (दे०) ज्योति और उसके आधार दीये को जोड़ती है। इस प्रकार उमा ही इस उपन्यास की नायिका है। उपन्यास का शीर्षक 'पावैं विळक्कु' (दीपधारिणी) उमा की ओर ही संकेत करता है। लेखक के मत में जीवन में ज्ञान और भावना का समन्वय होना चाहिए। तणिकाचलम् के समान बौद्धिक, उमा के समान भावुक व्यक्ति प्रायः जीवन में सफल नहीं हो पाते हैं। लेखक विभिन्न पात्रों की मनःस्थितियों के चित्रण में पूर्ण सफल हुआ है। 'पावैं विळक्कु' अखिलन् के प्रसिद्ध उपन्यासों में से है। इसका तमिल-उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पाश्चात्य गंभीर नाटकगळु (क० कृ०)

कर्णाटक के विख्यात विद्वान प्रो० एस० बी० रंगण्णाजी की उत्कृष्ट कृति है करीब बारह सौ पृष्ठों का यह महाग्रंथ। इसमें मैसूर विश्वविद्यालय के अँग्रेज़ी-विभाग के अध्यक्ष रंगण्णाजी ने पाश्चात्य साहित्य में ट्रैजडी के जन्म एवं विकास का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके चालीस वर्षों की अनवरत सारस्वत तपस्या का अमृत फल इसमें है। इसके छह भाग हैं। प्रथम भाग में ट्रैजडी की व्याख्या, उसका जन्म, नृत्य-गीत, डायोनीसस, एस्काइलस तथा ट्रैजडी को उसकी देन आदि पर विस्तृत चर्चा है। उसके नाटकों का आलोचनात्मक परिचय है। उसके उपरांत सॉफ़ोक्लीज़, उसके नाटक तथा उसकी देन आदि की गंभीर चर्चा है। युरिपिडीज़ की दृष्टि में दुःखांत तत्त्व, उनकी देन आदि का विचार है। युरिपिडीज़ के बाद हेलेनिस्टिक युग की चर्चा है। उसके बाद रोमन युग का व्यापक विवेचन है। इसमें कुल सात अध्याय हैं। द्वितीय भाग में नाटक का पतन, अंधकार युग, मध्ययुग तथा मध्ययुगीन रूपक—इस प्रकार चार अध्याय हैं। तीसरे भाग में नवोदय की पृष्ठभूमि पर स्पेन के नाटकों की मीमांसा है। क्रिस्टोफ़र, मार्लो आदि की चर्चा के बाद शेक्सपियर की चर्चा के लिए क़रीब दो सौ पृष्ठ समर्पित हैं। शेक्सपियर के समसामयिकों तथा परवर्तियों की भी चर्चा है। चौथे भाग में नव-क्लासिकीय पथ का गंभीर विवेचन है। उसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि दी गई है। उसके उपरांत रासीन के नाटक-चक्र उसकी कलात्मक दृष्टि आदि का परिचय है। इसके बाद 'रेस्टोरेशन ट्रैजडी', उसकी अवधि, उसके प्रमुख कवि मिल्टन, ड्राइडन, एडिसन, वालतेर आदि का सर्वेक्षण है। इसके उपरांत रोमांटिक युग के आगमन का विवेचन है। पाँचवें अध्याय में यथार्थवाद, उसकी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, यथार्थता तथा अन्य वादों आदि की चर्चा कर इबसन, उनके जीवन-स्वभाव, कृति, दृष्टि, स्थान आदि का परिचय है। टॉल्सटाय के व्यक्तित्व तथा कृतित्व,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके साहित्य के गुण, उनके रूपक एवं उनके जीवन-दर्शन की अतीव सरल व्याख्या है। चेखव के नाटक-चक्र, उनमें यथार्थता, उनकी ट्रैजिक दृष्टि आदि का वर्णन है। मेटरलिंक गाल्सवर्दी, गोर्की, शॉ, इलियट, आदि की व्यापक विवेचना-हेतु छठे भाग में आधुनिक युग का विवेचन है। इटली, फ्रांस के अर्वाचीन लेखक और अभिव्यंजदावाद आदि आंदोलनों की विस्तृत चर्चा है। अंत में एकपात्र रूपक का भी विवेचन है। प्रत्येक आंदोलन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के चित्रण में लेखक ने अद्भुत कलात्मकता दिखाई है। इस तरह ट्रैजडी की मीमांसा में यह अत्यंत व्यापक, अद्यतन एवं उपादेय ग्रंथ है। नाटककारों के दोष व गुणों के चित्रण में लेखक पटु है। इस तरह अपनी रस-दृष्टि से उन्होंने एक अभिन्न लोक ही खोल दिया है। शैली विषयानुकूल एवं समर्थ हैं।

पाश्चात्य नाट्यसाहित्यनां स्वरूपो (*गु० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1968 ई०]

इसके लेखक नंदकुमार पाठक ने इस ग्रंथ में पश्चिम की नाट्य-विधाओं की विवेचना की है। अरस्तू से लेकर अर्वाचीन युग तक जो विविध नाट्यविधाएँ प्रचलित रहीं उनकी व्याख्या, उनके स्वरूप, इतिहास और विकास-क्रम का परिचय दिया गया है। गुजराती में इस प्रकार की यह प्रथम पुस्तक है जिसमें यूरोप के नाटकों का सर्वांगीण परिचय और विवेचन मिलता है। 'एब्सर्ड' नाट्यविधा का भी पूरा परिचय दृष्टांत देकर किया गया है। लेखक के गहरे अध्ययन तथा नाट्य साहित्य के ज्ञान इत्यादि का परिचय इस ग्रंथ में मिलता है।

पाषाणी कन्या (*उ० कृ०*)

'पाषाणी कन्या' औपन्यासिक शैली पर विरचित प्राण बंधुकर (दे०) की भ्रमण-संबंधी रचना है। इसमें प्राण बंधुकर के असम-प्रवास की कहानी लिपिबद्ध है। आसाम की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति तथा उसका वहाँ के जीवन और संस्कृति पर प्रभाव, नागा जाति और उसकी उत्पत्ति और विकास के इतिहास का एक सुस्पष्ट चित्र इसमें मिल जाता है। इसके साथ ही लेखक के जीवन के अनाकांक्षित और अफलीभूत एक प्रणय-प्रसंग का भी सुंदर निर्वाह हुआ है। वस्तुतः इस प्रेम-प्रसंग की पृष्ठभूमि पर ही कथा का रचनातंत्र गढ़ा गया है। उक्त वर्ण्य-विषय यद्यपि खंड-चित्र है तथापि गहराई से देखने पर इसमें एक सूक्ष्म संगति दिखाई पड़ती है और यह असम और नागा जाति का एक लघु इतिहास लगता है। आदि और अंत में लेखक के प्रणय-प्रसंग के चित्रण से एक संहिति आ गई है। कथा-संघटना में एक गोलाई का आ जाना ही इसकी विशेषता है।

पाहुड़ दोहा (*अप० कृ०*) [रचना-काल—1000 ई० के लगभग]

'पाहुड़ दोहा' के रचयिता मुनि रामसिंह (दे०) हैं। जैनाचार्यों ने 'पाहुड़' शब्द का अर्थ विशेष विषय के प्रतिपादक ग्रंथ के अर्थ में किया है। यह शब्द संस्कृत शब्द 'प्राभृत' का रूपांतर भी हो सकता है, जिसका अर्थ है उपहार। अतः पाहुड़ दोहा का अर्थ दोहों का उपहार समझा जा सकता है।

कृति का प्रतिपाद्य-विषय अध्यात्म-चिंतन है। साथ ही गुरु की अनिवार्यता, आत्म-सुख की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। आत्मानुभूति और सदाचरण के बिना कर्मकांड व्यर्थ है। सच्चा सुख इंद्रिय-निग्रह और आत्म-ध्यान में है। वर्णादि भेद देह के हैं। आत्मा अजर-अमर है। समरसी भाव अर्थात् मन के परमेश्वर से मिल जाने से निर्वाण प्राप्त होता है। मोक्ष-मार्ग की प्रगति के लिए विषय-परित्याग आवश्यक है। तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, मंदिर-निर्माणादि की अपेक्षा देह-स्थित देव का दर्शन करना श्रेयस्कर है। कुछ पद्यों में रहस्य-भावना, जैन-संप्रदाय से संबंधित प्रसंग, योगमार्ग की शब्दावली तथा सिद्धांतों के उल्लेख भी मिलते हैं।

इस कृति में इंद्रियों के लिए बैल, आत्मा के लिए नंदन कानन, मन के लिए करहा-करभ (उष्ट्र), देह के लिए देवालय या कुटी इत्यादि प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

इस कृति में 222 पद्य हैं जिनमें से 12 पद्य प्राकृत में हैं, 3 पद्य संस्कृत में हैं तथा शेष अपभ्रंश में हैं जिनमें से 16 पद्यों को छोड़ कर शेष दोहा छंद में हैं।

इस कृति में 24 दोहे अंश-रूप से या पूर्णरूप से योगींद्र (दे०) के ग्रंथों में मिलते हैं। कुछ दोहे किंचित् परिवर्तन के साथ हेमचंद्र (दे०) के व्याकरण में उद्धृत हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंगल (*सं०, हिं० पारि०*)

छंदःशास्त्र के आदि ग्रंथ 'छंदःसूत्र' के रचयिता आचार्य पिंगल (लगभग ई० पू० 200) के नाम पर संपूर्ण छंदःशास्त्र के अर्थ में रूढ़ शब्द। प्राकृत-छंदों का निरूपण करने वाले 'प्राकृत पैंगलम्' (दे०) नामक छंदःशास्त्रीय ग्रंथ के आरंभ में मंगलाचरण के रूप में की गई आचार्य पिंगल की वंदना कालांतर में समस्त भारतीय भाषाओं के छंदःशास्त्रीय ग्रंथों का आदर्श बन गई। जगन्नाथप्रसाद 'भानु' (दे०) के 'छंद-प्रभाकर' (दे०) में भी इसी परंपरा का विधिवत् पालन किया गया है। इस प्रकार 'पिंगल' शब्द मूलतः छंदःशास्त्र के आदि आचार्य पिंगल से संबद्ध होते हुए भी बहुत समय से छंदःशास्त्र मात्र का पर्याय बन गया है। दूसरी ओर इसका प्रयोग ब्रजभाषा के लिए भी होता है क्योंकि मध्यकाल में ब्रजभाषा ही काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी।

पिंगला (*मल० कृ०*) [रचना-काल—1929 ई०]

इसके रचनाकार परमेश्वर अय्यर उळ्ळूर (दे०) आधुनिक मलयाळम-कवियों की बृहत्त्रयी में अन्यतम तथा कवि-प्रतिभा और विद्वत्ता के समन्वय के उदाहरण थे। इनकी कई रचनाओं का विषय पुराणादि संस्कृत-ग्रंथों से लिया गया है। 'पिंगला' इसी कोटि का खंडकाव्य है।

श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के ग्यारहवें स्कंध तथा 'महाभारत' (दे०) के शांतिपर्व में पिंगला की कथा संक्षेप में चर्चित है। यह कथा शायद पहली ही बार मलयाळम-काव्य की वस्तु बनी है। मिथिला की अनुपम रूपसी वेश्या पिंगला (दे०) के चरणों पर नगर के सारे प्रतिष्ठित धनी युवक अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार थे। धन-विलास में डूबी हुई पिंगला ने कमरे में सजाए श्रीराम-चित्र की तरफ़ एक भी बार नहीं देखा था। रोज़ प्रेमार्थियों की भीड़ रहती थी। एक दिन नियम के विरुद्ध कोई भी युवक उसके यहाँ नहीं आया तो वह सुंदरी चौंक उठी। एकाएक दीवार का श्रीराम-चित्र उसके पैरों के पास गिर पड़ा तो उसकी आँखें खुलीं। वेश्या-जीवन पर वह दिल से पछताई। वह रामभक्त बन गई। उसके मन की अशांति अब दूर हुई। दूसरे दिन प्रभात में वह जटा-वल्कल-धारिणी ब्रह्मवादिनी बन गई थी।

कवि ने कल्पना-वैभव से अत्यंत संक्षिप्त कथा का भी विस्तार कर उसे खंडकाव्य का रूप दिया है। मिथिलावीथियाँ, रम्य भवन, उसमें रहती पिंगला आदि का विस्तृत वर्णन इसमें है। पश्चात्ताप से गलती पिंगला और चित्रस्थ रामचंद्र का संवाद बड़ा गंभीर है। पिंगला के प्रथम चित्र में शृंगार रस-पूरित अंगवर्णन भी मिलता है। अर्थविस्तार एवं अलंकार-योजना में उळ्ळूरजी इतने दत्तचित्त हैं कि नाद-माधुरी, लय या मेल पर इनका ध्यान कम गया है।

पिंगला (*मल० पा०*)

महाकवि उळ्ळूर (दे०) ने 'पिंगला' (दे०) नाम का एक खंडकाव्य रचा है जिसकी प्रमुख-पात्र है पिंगला। यामार्ध में भगवद्भक्त एवं ब्रह्मवादिनी बनी हुई यह मिथिलावासिनी वारांगना भक्ति की गरिमा प्रमाणित करती है। कवि ने इसके दो चित्र प्रस्तुत किए हैं। पहला चित्र मिथिला की अनुपम सुंदरी वेश्या का है। दूसरा चित्र है पश्चात्ताप के आँसुओं से सिंचित एवं ज्ञानोदय से पवित्र ब्रह्मवादिनी का।

पिंगला के रम्य हर्म्य में प्रतिदिन कामार्थी युवकों का उत्सव रहता था। पर उस चैत्र पूर्णिमा की मनमोहिनी निशा में कोई प्रेमी उस घर की तरफ़ आँख उठाकर नहीं देखता। यह विमुखता और अपमान देख पिंगला को इन युवकों पर क्रोध आता है। इसी वक्त अचानक नीचे गिरा श्रीराम-चित्र मानो उसकी हँसी उड़ाता है। उस झाँकी से उस युवती के मन में ज्ञान एवं भक्ति का उदय होता है। वह चित्रगत राघव का संबोधन कर पश्चात्ताप के आँसू बहाती है और यह नयी भक्ति-भावना पिंगला के हृदय के ज्वार को शांत कर उसका कायापलट कर देती है। वेश्या पिंगला की जगह अब जटा-वल्कलधारिणी ब्रह्मज्ञानमयी पिंगला दीख पड़ती है। चरित्र-चित्रण में कवि ने प्राचीन प्रतिमानों और अलंकृत विशेषणों का प्रचुर प्रयोग किया है।

पिंगळि-काटूरि (*ते० ले०*)

पिंगळि लक्ष्मीकांतम् (1894 ई०) तथा काटूरि वेंकटेश्वरराव‌ु (1895 ई०) ने पिंगळि-काटूरि नाम से सम्मिलित रचनाएँ की हैं। ये स्वच्छंदतावादी कवि हैं और इन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यों से सारतत्त्व ग्रहण करके अपनी साहित्यिक प्रतिभा को परिपुष्ट किया है।

'सौंदरनंदमु' (दे०), 'तोलकरि', 'पौलस्त्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयमु' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। इनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी है तथा इन्होंने प्रकृति का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया है। 'सौंदरनंदमु' इनकी सुप्रसिद्ध रचना है जिसमें इन्होंने बौद्ध-साहित्य से संबंधित सुंदरी एवं नंद के जीवन को कथावस्तु के रूप में ग्रहण किया है। दलित देश के उद्धार के प्रति भी ये सजग रहे हैं और इनकी रचनाओं में सामाजिक उन्नति, समता एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आकांक्षाएँ प्रतिध्वनित होती रहती हैं।

इनकी कविता मधुर एवं भावमय तथा भाषा सहज, सरल एवं प्रवाहमय है।

पिउ पुत्तर *(पं० कृ०)*

यह सुरेंद्र सिंह नरूला का प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें अमृतसर नगर के जीवन का एक विराट चित्र ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। पिछले कुछ वर्षों से अमृतसर के जीवन के अनेक विलक्षण गुण लोप होते जा रहे हैं जिनका नगर के ऐतिहासिक चरित्र के साथ गहरा संबंध है। नरूला ने 'पिउ पुत्तर' की कथा द्वारा उन विशेष गुणों का संरक्षण किया है जो काल के व्यतीत होने से आज अमृतसर में दृष्टिगत नहीं होते।

अपन एक अन्य उपन्यास 'सिल-अलूणी' में भी नरूला ने अमृतसर नगर की पृष्ठभूमि पर पंजाब के सामाजिक व्यक्ति के चरित्र के अनेक पक्षों को सार्थक रूप में चित्रित किया है। बड़ी तीव्र गति से घटित हो रही घटनाओं को अमृतसर के नागरिकों के संदर्भ में परिवर्तित हो रही मानवीय कल्पना तथा विचारों को अंकित किया गया है।

पिच्चमूर्त्ति, न० *(त० लं०)* [जन्म—1900 ई०]

वयोवृद्ध आधुनिक तमिल-साहित्य-रचयिताओं में इनका विशिष्ट स्थान है। कुछ समय तक वकालत करने के बाद ये क्रमशः तमिल-प्रदेश के मंदिरों के निर्वाहक 'कमिश्नर' तथा 'पत्र-संपादक' के रूप में रहे थे। 1937 ई० के आस-पास 'मणिक्कोटि' नामक साहित्यिक पत्रिका तत्कालीन सृजनात्मक लेखन का माध्यम बनी थी और उसमें लिखने वाली लेखक-गोष्ठी में 'पिच्चमूर्त्ति (और उनके साथी स्वर्गीय कु० प० राजगोपालन्) अधिक यशस्वी बन गए थे। लघुकथा के क्षेत्र में इनका नाम पुराना है। बाद में इन्होंने नाटक, उपन्यास आदि भी लिखे हैं। रोचक बात यह है कि पिछले दशक में इन्होंने गद्य-कविता का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है जो तमिल में इस दिशा का प्रथम प्रयत्न माना जा सकता है। इनकी कुछ रचनाएँ ये हैं—'मोकिनि', 'पिच्चमूर्त्तियिन् कतैकल्' (दोनों लघु-कथाएँ); 'काळि' (नाटक); 'कुटुम्परकचियम्' (लघु उपन्यास); 'काट्टुवात्तु' (नयी गद्य-कविता) इत्यादि। 1970 ई० में इनकी कुछ पुरानी कविताओं का संग्रह 'कुयिलिन् चुरुति' के नाम से निकला था।

पिनवीरभद्रुडु, पिल्ललमर्रि *(ते० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

ये विजयनगर राज्य के शासक सालुव नरसिंहराय (शासन-काल 1485-1493 ई०) के दरबारी कवि थे। हैदराबाद के नज़दीक पिल्ललमर्रि नामक गाँव इनका पहला वासस्थान था। इनकी लिखी गई ये दो रचनाएँ ही आज उपलब्ध हैं—'श्रृंगारशाकुंतलमु' (दे०) और 'जैमिनिभारतमु' (दे०)। इनमें पहला चार आश्वासों का श्रृंगार-प्रबंध है। लेखक ने 'महाभारत' (दे०) तथा कालिदास (दे०)-कृत 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) की कथा लेकर कुछ नये परिवर्तनों के साथ इस काव्य की रचना की थी। श्रृंगार रस-संबंधी चित्रण की विशेषता को लक्ष्य कर लेखक ने अपनी कृति को 'श्रृंगार-शाकुंतल' कहा हैं। उन्नीसवीं शती ई० तक तेलुगु में संस्कृत-नाटकों का अनुवाद नहीं किया गया था। एक-दो का अनुवाद किया भी गया था तो वह पद्य-काव्य के रूप में ही हो पाया था। प्रस्तुत कृति भी उनमें से एक है। इनकी दूसरी रचना 'जैमिनिभारतमु' है। जैमिनी-कृत संस्कृत-'भारत' के अश्वमेध पर्व का ही प्रचलन है। उसी को पिनवीरभद्रुडु ने पद्य-काव्य के रूप में लिखा था। धर्मराज ने जो अश्वमेध याग किया था उसके संदर्भ में भीम तथा अर्जुन द्वारा की गई विजय-यात्राओं का वर्णन ही इस काव्य का कथानक है। इस काव्य के अंतर्गत मार्मिक युद्ध-वर्णन तथा चंद्रहास और उद्दालक आदि की मनोरंजक कहानियाँ हैं। इनकी रचना में संस्कृत-शब्दों तथा दीर्घ समासों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। तेलुगु-साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि श्रीनाथुडु (दे०) का अनुकरण भी इनकी शैली में देखने को मिलता है। जिस प्रकार श्रीनाथुडु ने संस्कृत 'नैषध' (दे० नैषधीयचरित्र) काव्य का 'श्रृंगार नैषध' (दे०) नामक अपना तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किया था, ठीक उसी प्रकार इन्होंने भी 'शाकुंतल' नाटक का 'श्रृंगारशांकुतलमु' नामक अनुवाद प्रस्तुत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस कहानी, सुंदर वर्णन, मार्मिक रसचित्रण तथा प्रभावोत्पादक शैली प्रस्तुत करने में पिनवीरभद्रुडु कवि की प्रतिभा अद्भुत है। इसीलिए एक जगह लेखक ने कहा है कि 'वाणी मेरी रानी है।'

पियलि फुकन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

यह नाटक नौगाँव समाज द्वारा रचित और अभिनीत हुआ था। प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध (1857 ई०) से भी पहले 1830 ई० में पियलि फुकन ने अँग्रेज़ों के खदेड़ने का प्रयास किया था, पर उसे फाँसी हुई थी। इसी वीर पुरुष को लेकर यह नाटक लिखा गया है। इसमें परंपरानुसार अंक-विभाग नहीं हैं—घटनाओं के सात स्तर सात दृश्यों में अंकित हैं। इस नाटक के संवाद और भाषा सर्वाधिक आकर्षक हैं।

पियार, महम्मद *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्मस्थान जोरहाट है। इनकी शिक्षा गौहाटी विश्वविद्यालय में हुई थी। ये शिक्षक हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'प्रीति उपहार' (1947), 'संग्राम' (1948), 'जीवन और जांजी' (1949), 'हेरोवा स्वर्ग' (दे०) (1952), 'युवती निशार आजान', (1956), 'हाइफेन' ('अन्ना केरेनिना' का अनुवाद) (1959)।

इनके उपन्यासों में निम्न-मध्यवित्त समाज के सुख-दुःख का चित्रण है। इनमें चरित्रांकन और औपन्यासिक अंतर्दृष्टि का अभाव है। इन्होंने असम के मुस्लिम समाज की गंदगी का चित्रण किया है।

युद्धोत्तरकाल के असमीया-उपन्यास-क्षेत्र में इनका विशेष योगदान है।

पिरताप मुदलियार् *(त० पा०)*

उन्नीसवीं शती ईसवी में वेदनायकम् पिळ्ळै (दे०) द्वारा विरचित तमिल के प्रथम उपन्यास 'पिरताप मुदलियार् चरित्तिरम्' (दे०) का यह कथानायक है। यह एक कल्पित पात्र है किंतु इसके चित्रण में तत्कालीन तमिल-समाज के व्यक्ति का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है। यह उपन्यास इसी पात्र की आत्मकथा के रूप में रचा गया है। यह चतुर नहीं है। साथियों के साथ खेलते समय यह प्रायः हार जाता है; कई बार धोखा खा जाता है; इसमें थोथा अहंकार और मूर्खतापूर्ण हठ भी है। अपन मामा की बेटी 'ज्ञानांबाल' के, जो रूपवती तथा विवेकवती है, संग रह कर यह धीरे-धीरे सुधर जाता है। अंत में ज्ञानांबाल के साथ इसका विवाह निश्चित होता है। लेकिन लगन के समय दोनों समधी अपने-अपने कुल-गौरव की डींग हाँकते-हाँकते एक-दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं; बात की बात में झगड़ा बढ़ जाता है और विवाह रुक जाता है। प्रताप और ज्ञानांबाल का दूसरी कन्या और दूसरे वर के साथ विवाह होने की बात होती है; किंतु दैवयोग से वैसा नहीं हो पाता। एक बार किसी यात्रा में जाते समय ज्ञानांबाल को कुछ दुष्ट लोग उसकी पालकी समेत उठाकर ले जाते हैं; वह खिसककर एक जंगल में स्थित भिक्षुणी की सहायता से यद्यपि घर लौटने का यत्न करती है तथापि दुबारा दुष्टों से घिर जाती है; इतने में यह वहाँ पहुँचकर दुष्टों को गोली मार देता है और उसे बचा लेता है। परिणामस्वरूप दोनों का विवाह संपन्न होता है। प्रताप का सहपाठी 'कनकसमै' दरिद्र अध्यापक के स्थान पर एक बड़े ज़मींदार का शैशव में खोया हुआ लड़का निकलता है। उसके विवाह में प्रताप आदि जाते हैं। वहाँ शिकार खेलने जाकर प्रताप एक मस्त हाथी द्वारा दूर जंगल में एक पहाड़ पर फेंक दिया जाता है; उस पहाड़ के पार उतरकर वहाँ स्थित किसी नगर में जा पहुँचता है, जहाँ अराजकता की स्थिति है। वहाँ के लोगों द्वारा प्रताप ठगा जाता है और कारागार में डाल दिया जाता है। तब ज्ञानांबाल पुरुष-वेश में आ पहुँचती है; उस नगर के लोगों द्वारा वह शासिका निर्वाचित हो जाती है तो वह अपने पति को कारागर से छुड़ा लेती है और शासन-व्यवस्था में सुधार लाती है। अंत में वहाँ के भूतपूर्व राजा की पुत्री को राज्य सौंप कर प्रताप तथा ज्ञानांबाल अपने नगर को लौट आते हैं।

'प्रताप' एक आदर्शप्रिय, न्यायी, धीर और समाज-सेवी व्यक्ति हो जाता है।

पिरताप मुदलियार् चरित्तिरम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1876 ई०]

तमिल का यह प्रथम उपन्यास है तथा तमिल-गद्य-साहित्य में इसका स्थान अमर है। इसके लेखक वेदनायकम् पिळ्ळै हैं। यह उपन्यास एक कल्पित कथानक पर आधारित आत्म-कथारूप 'बृहत्कथा' है। इसमें प्रताप के माता-पिता, उसकी दादी तथा स्वयं वह और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी —तीन पीढ़ियों का चित्रण हुआ है; साथ ही प्रताप का सहपाठी मित्र, उसके बंधुजन आदि अनेक अन्य पात्र भी अंकित हैं। संपन्न माता-पिता का इकलौता बेटा प्रताप दादी के कथन से विद्याभ्यास को अनावश्यक समझता है; किंतु अपनी माँ के यत्न से शिक्षा प्राप्त करता है। घर में ही एक अध्यापक रख लिया जाता है। अध्यापक का पुत्र कनकसमै, जो बाद में एक धनी ज़मींदार का शैशव में खोया पुत्र निकलता है, प्रताप के संग पढ़ता है। प्रताप की दादी के आदेश से अध्यापक प्रताप के ठीक न पढ़ने पर अपने पुत्र को पीटता है अथवा अपनी ही पीठ पर छड़ी मार लेता है जिससे प्रताप अपनी ग़लती को समझ ले। लेकिन बाद में प्रताप की विवेकवती माँ के यत्न से यह स्थिति बदलती है। तमिल-देश की प्रथा के अनुसार प्रताप का उसकी ममेरी बहन ञानांबाल के साथ विवाह होता है। इधर कनकसमै का 'गुणभूषणी' नामक कन्या के साथ विवाह होता है। किंतु 'गुणभूषणी' के साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाला कलेक्टर यह कहकर कि कनकसमै वहाँ के ज़मींदार का वास्तविक पुत्र नहीं है, मुकद्दमा करके उसे देशनिकाले का दंड देता है। तब ञानांबाल तथा अन्य युवतियाँ गवर्नर साहब से मिलकर अर्ज़ी देती हैं; गवर्नर की न्यायप्रियता के कारण सब लोग दंड से मुक्त हो जाते हैं।

एक दिन शिकार खेलने जाकर प्रताप एक मस्त हाथी द्वारा दूर जंगल में पहाड़ पर फँसा दिया जाता है। वहाँ से धीरे-धीरे किसी अन्य देश में पहुँचता है; वहाँ जनता के राज के नाम पर अराजकता चलती है। प्रताप लोगों द्वारा ठगा जाता है और अकारण ही जेल में बंदी बना दिया जाता है। इतने में ञानांबाल पुरुष-वेश में उसकी खोज करती हुई वहाँ आ पहुँचती है और संयोगवश वहाँ की शासिका निर्वाचित हो जाती है। उसकी चतुराई से प्रताप जेल से मुक्त हो जाता है और उस राज्य में अच्छी शासन-व्यवस्था स्थापित होती है। फिर प्रताप और ञानांबाल अपने स्थान में लौट कर सुखी रहते हैं।

इस कथानक के बहाने से लेखक ने तत्कालीन तमिल-प्रदेश के सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। बीच-बीच में आई अनेक छोटी-मोटी आख्यायिकाओं तथा प्रसंगों से उस समय के लोगों के चरित्र, मनोभाव, बलहीनताएँ, अंधविश्वास इत्यादि प्रकट होते हैं। सरकारी अधिकारियों के अत्याचार, मुकद्दमेबाज़ों तथा वकीलों की हरकतें, अपढ़ ग्रामीणों की दुरवस्था, इत्यादि बातों का विशद वर्णन बड़ा प्रभावकारी है। पात्र आदर्शवादी हैं; संवादों में उपदेशात्मकता है, मनोरंजक तत्त्व तथा कल्याण का प्राधान्य है; हास्य कहीं-कहीं ग्रामीण स्तर पर पहुँच गया है।

इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषता है इसकी गद्य-शैली। श्री पिळ्ळै ने व्याकरणसम्मत ग्रांथिक शैली को अपनाकर भी उसे सामान्य जन के लिए ग्राह्य, सरल किंतु शिष्ट एवं परिष्कृत रूप देकर अन्य लेखकों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। स्थान-स्थान पर कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग बड़ा रोचक है। तमिल-गद्य के इतिहास में इस ग्रंथ का अमर स्थान है।

पिळ्ळा इडप्पळ्ळि, राघवन् *(मल० ले०)* [जन्म—1909 ई०; मृत्यु—1936 ई०

जन्म-स्थान इडप्पळ्ळि गाँव। इन्हीं प्रतिभाशील, परंतु अल्पायु, कवि के कारण इडप्पळ्ळि गाँव साहित्य-जगत में प्रसिद्ध हो सका। ये और इनके मित्र चङ्ङपुषा (दे०) कृष्णपिळ्ळा आधुनिक मलयाळम-गीतिकाव्य के प्रमुख उन्नायक थे। ये जुड़वाँ भाई की तरह एक-साथ स्मरण किए जाते हैं। राघवन् पिळ्ळा की आर्थिक एवं पारिवारिक परिस्थितियाँ बहुत ही प्रतिकूल थीं और ये व्यावहारिक जीवन में सफल नहीं हो सके। कवि की जन्मजात भावुकता ने उसे प्राणसंकट में डाल दिया। प्रेम-निराशा से अभिभूत हो इन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

राघवन् पिळ्ळा का कविता-संकलन 'तुषारहारम्' इनकी प्रकृति-विषयक रचनाओं का संग्रह है। 'नवसौरभ' इनका अन्य कविता-संग्रह है। स्वच्छंदता, भावुकता और ललित-मधुर शब्दावली इन रचनाओं की विशेषताएँ हैं। हृदय से ये निराश और अंतर्मुख होते जा रहे थे। निराशा और संसार के प्रति खीझ इनकी अनेक रचनाओं में स्पष्ट है। इनकी अंतिम रचना 'मणिनादम्' (दे०) आत्महत्या से कुछ घड़ी पहले समाप्त हुई—ऐसा माना जाता है। यह बड़ी भावपूर्ण-सशक्त कविता है। इनकी संपूर्ण रचनाओं का संग्रह एक जिल्द में 'इडप्पळ्ळि-कृतिकळ्' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

पिळ्ळा, इळंकुळम् कुञ्ञन् *(मल० ले०)* [जन्म—1904 ई०; मृत्यु—1974 ई०]

मलयाळम के ये प्रशस्त इतिहासकर, भाषा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद् और साहित्य-समालोचक थे। त्रिवेंद्रम के यूनिवर्सिटी कॉलेज के मलयाळम के आचार्य के पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी ये साहित्य-सेवा में निरत रहे। इनके इतिहास-ग्रंथों में 'केरल-चरित्रत्तिले इरुळटञ्ञ एटुकळ्', 'अन्नत्ते केरळम्' आदि प्रसिद्ध हैं। 'लीलातिलकम्' (दे०), 'उण्णु-नीलीसंदेशम्' (दे०), 'चंद्रोत्सवम्' (दे०) आदि प्राचीन ग्रंथों के प्रामाणिक और सटीक संस्करण प्रस्तुत करके इन्होंने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया है। 'केरल भाषयुटे विकासपरिणामङ्ङळ्' (दे०) इनका भाषा-शास्त्रीय ग्रंथ है।

कुञ्ञन् पिळ्ळा के शोधपूर्ण ग्रंथों ने केरल के इतिहास के अनेक अंधकारमय संदर्भों को आलोकित किया है—विशेषतः भाषा के विकास के आधार पर इतिहास की गवेषणा करने में इनकी प्रतिभा अनन्यसामान्य है।

मलयाळम के ही नहीं, अपितु समस्त द्रविड़ भाषाओं के इतिहासकार और भाषावैज्ञानिक के रूप में इळंकुळम् कुञ्ञन् पिळ्ळा का स्थान अग्रणी है।

पिळ्ळा, ए० बालकृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

पाश्चात्य साहित्यिक प्रवृत्तियों को मलयाळम-साहित्य में प्रचार और लोकप्रियता प्रदान करने में सर्वाधिक योगदान देने वाले ए० बालकृष्ण पिळ्ळा सफल समालोचक, पत्रकार और शोधकर्त्ता थे। उनका पत्र 'केसरी' उनके नाम का अंश हो गया था। उन्होंने मोपासां, बालज़ाक आदि पाश्चात्य साहित्यकारों की अनेक कृतियों का मलयाळम में अनुवाद किया है। 'रूपमंजरी', 'नोबल् प्रस्थानङ्ङळ्', 'साहित्य-गवेषणमाला' आदि उनके समालोचनात्मक शोध-ग्रंथ हैं।

बालकृष्ण पिळ्ळा ने पाश्चात्य साहित्य-नायकों के साहित्य के अनुवाद प्रकाशित करके मलयाळम के साहित्यकारों को उनसे प्रेरणा ग्रहण करने का आह्वान किया। तकषि (दे०), केशवदेव (दे०), बशीर (दे० मुहम्मद) आदि लेखकों ने उनके आह्वान की प्रतिक्रिया में अनेक नूतन कहानियाँ और उपन्यास लिखकर साहित्य को समृद्ध किया। वे प्रगतिवादी विचारधारा के समर्थक थे और उन्हीं के प्रभाव से जी० शंकर कुरुप्प् (दे०), चङ्ङंपुषा (दे०) जैसे कवियों ने क्रांतिकारी कविताएँ लिखीं। उन्होंने शोधकार्य के फलस्वरूप अनेक नये मतों की स्थापना की है। अनेक प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रंथों के विचारात्मक आमुख भी उन्होंने लिखे हैं।

बालकृष्ण पिळ्ळा आधुनिक समालोचकों के भीष्म पितामह हैं।

पिळ्ळा, एन० कृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

श्रीकृष्ण पिळ्ळा मलयाळम के प्रसिद्ध नाटककार और समालोचक हैं। ये त्रिवेंद्रम के यूनिवर्सिटी कॉलेज में मलयाळम भाषा और साहित्य के आचार्य थे। इनके नाटकों में 'भग्नभवनम्', 'कन्यका', 'बलाबलम्', 'अनुरंजनम्' आदि अग्रगण्य हैं। 'कैरलियुटे कथा' मलयाळम-साहित्य का इतिहास है। बालकोपयोगी ग्रंथों की भी इन्होंने रचना की है।

कृष्ण पिळ्ळा ने नाटक-रचना में इब्सन से प्रेरणा ली और मलयाळम-नाटक को नयी दिशा प्रदान की। मानसिक संघर्षों और सामाजिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करने में ये सफल हुए हैं। इनके द्वारा रचित साहित्य का इतिहास संक्षिप्त होते हुए भी सर्वांगीण और प्रामाणिक है।

नाटक-साहित्य में नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में एन० कृष्ण पिळ्ळा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पिळ्ळा, कारूर नीलकंठ *(मल० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

जन्म-स्थान कोट्टयम के पास एट्टुमानूर गाँव। अतिशय साधारण आर्थिक स्थिति के परिवार में जन्मे श्री कारूर की स्कूली शिक्षा नौवें दर्जे तक ही चली। शेष ज्ञान इनके स्वाध्याय का प्रसाद है। इनकी ज़िंदगी के 44 वर्ष अध्यापक के पेशे में बीते। पर इस लंबी अवधि में कई वर्षों तक ये सहकारिता के क्षेत्र में भी काम करते रहे। केरल इन्हें लेखकों की प्रकाशन-संस्था 'साहित्य प्रवर्त्तक सहकरणसंघम्' के मंत्री के रूप में विशेष सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखता आया है।

कारूर मलयाळम के अत्यंत सरल और लोकप्रिय कहानीकार हैं जिनकी कहानियों की संख्या कई सौ है। इनकी प्रथम प्रकाशित कहानी 'भृत्यवात्सल्यम्' 1930 ई० में निकली। आज भी इनकी कहानियों में पहले जैसी ही मौलिकता, सरसता और ताज़गी है। इनकी कल्पना उम्र के प्रभाव से दब नहीं सकी है। इन कहानियों का वर्गीकरण कई कोटियों में किया जा सकता है। पहली श्रेणी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापक-कथाएँ आती हैं जिनके आधार-रूप में अध्यापक के दयनीय और संकट-ग्रस्त जीवन की घटनाएँ हैं। कारूर की अध्यापक-कहानियों में हास्य-व्यंग्य के नीचे पीड़ा की तीव्रता है। इन्होंने मानव-प्रकृति की गहराइयों पर प्रकाश डालने वाली कई मार्मिक कथाएँ भी रची हैं। ऐसी कहानियों में किसी की पृष्ठभूमि राजनीतिक है तो किसी की सांप्रदायिक। नंपूतिरि-परिवारों की कई हृदयहारी कहानियाँ कारूर ने लिखी हैं। कारूर की बाल-मनोविज्ञान-संबंधी कथाएँ एक नयी कथा-दिशा का बोध कराती हैं। मुहब्बत या शृंगार कारूर-कथाओं का मुख्य विषय कभी नहीं रहा। तथापि किसी-किसी कथा में प्रेम के मर्म की अत्यंत संयत चर्चा है। सरस संवाद-कला और मन-ही-मन खूब हँसाने वाला हास्य-व्यंग्य कारूर-कथाओं की अनन्य विशेषताएँ हैं। इनकी प्रसिद्ध कथाओं में उल्लेखनीय हैं—'मरप्पावकळ्', 'पूवंपषम्', 'सार् वंदनम्', 'मिलिटरी' आदि।

पिळ्ळा, के० सी० केशव *(मल० ले०)* [जन्म—1867 ई०; मृत्यु—1913 ई०]

ये संस्कृत, मलयाळम और अंग्रेजी भाषाओं के विद्वान थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'केरलवर्मविलासम्' जो संस्कृत की उत्तम काव्य-रचना है; (2) 'मुन्नाट्ट कथकळ्' जिसमें कथकलि साहित्य की तीन सुंदर रचनाएँ संकलित हैं। 'हिरण्यासुरवधम्', 'शूरपत्मासुरवधम्' तथा 'श्रीकृष्ण विजयम्; (3) 'स्तव रत्नावलि' (भजन-संग्रह); (4) 'केरल-भाषा-नारायणीयम्' ('नारायणीयम्' का रूपांतर); 'राघव माधवम्', 'लक्ष्मीकल्याणम्' तथा 'सदारामा' (नाटक); 'सुदाराम' की शैली रोचक और सब प्रकार से लोकप्रिय है; 'विक्रमोर्वशीयम्' (संगीत-नाटक); (4) 'सुभाषित रत्नाकरम्'—कवित्वमय नीतिवचनों की पद्य-रचना। 'आंग्ल-साम्राज्यम्—ए० आर० राजराज वर्मा (दे०) के लिखे काव्य का सुंदर रूपांतर—'षष्टिपूर्ति-षष्टि' साठ पद्यों की एक कविता। 'साहित्य विलासम्'—उत्तम पद्यों का संग्रह; 'संगीत मालिका'—संगीत के राग और उसके लक्षणों पर लिखा गद्य-ग्रंथ; 'केशवीयम्' (दे०)—श्रीकृष्ण की स्यमंतक कथा पर लिखा महाकाव्य —'आसन्न-मरण-चिंताशतकम्'। इन्होंने सभी क्षेत्रों में उत्तम काव्य-रचना की है।

ये सरस कवि और गायक होने के अतिरिक्त उतने ही प्रतिभा-संपन्न उत्तम गद्य-लेखक भी थे। केरल के विद्वद्वर्ग ने इन्हें 'सरसगायककविमणि' नाम से भूषित किया।

पिळ्ळा, कैनिक्करा कुमार *(मल० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये मलयाळम के नाटककार कैनिक्करा-सहोदरों में से हैं। कई शैक्षिक संस्थाओं और महाविद्यालयों में ये अध्यापक और प्रधानाचार्य रहे हैं। सरकार के भी अनेक समुन्नत पदों को इन्होंने अलंकृत किया है।

इनके नाटकों में 'हरिश्चंद्रन', 'मोहवुम् मुक्तियुम्' 'वेषङ्ङल्' आदि मुख्य हैं। टैगोर (दे० रवींद्रनाथ) और शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद भी इन्होंने किया है। 'विचारमाधुरी' और 'विचारवीचिकळ्' निबंध-संग्रह हैं।

कैनिक्करा कुमार पिळ्ळा ने 'हरिश्चंद्र', 'रुक्मांगद' जैसे पौराणिक पात्रों की कथाओं को नवीन नाटकीय रूप के ढाँचे में प्रस्तुत करके सफलता प्राप्त की थी। सामाजिक नाटक के क्षेत्र में भी इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। समालोचना के क्षेत्र में भी इनका प्रमुख स्थान है। ये शिक्षाशास्त्री भी हैं।

पिळ्ळा, कैनिक्करा पद्मनाभ *(मल० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

ये मलयाळम के नाटककार हैं और कैनिक्करा-सहोदरों में सबसे बड़े हैं। विभिन्न विद्यालयों में अध्यापन-कार्य करने के बाद इन्होंने सरकार के समुन्नत पदों पर कार्य किया और पुनः नौकरी छोड़कर राजनीति में प्रविष्ट हुए।

इनके नाटकों में 'वेलुत्तंपिदळवा', 'काल्वरियिलेकल्पपादपम्', 'अग्निपंजरम्' आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने उपन्यासों और कहानियों की भी रचना की है।

पद्मनाभ पिळ्ळा का ऐतिहासिक नाटक 'वेलुत्तंपिदळवा' ने स्वतंत्रता-सेनानियों को उत्साह प्रदान किया था। 'काल्वरियिले कल्पपादपम्' ईसा मसीह के जीवन पर आधारित है। इन नाटकों का साहित्य में विशेष स्थान है। शिक्षाशास्त्री के रूप में भी पद्मनाभ पिळ्ळा का स्थान समुन्नत है।

पिळ्ळा, पी० के० नारायण *(मल० ले०)* [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

मलयाळम के मूर्धन्य आलोचकों में नारायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिळ्ळा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुंचन् (दे०) नंपियार पर उनके ग्रंथ से आलोचना के क्षेत्र में प्राचीनों के मूल्यांकन का प्रवर्तन हुआ। 'कृष्ण-गाथा' पर उनकी आलोचनात्मक कृति विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है। तुंचत्त् एष़ुत्तच्छन् (दे०) पर लिखा ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण है। अँग्रेज़ी के समालोचना-सिद्धांतों का श्री पिळ्ळा को अच्छा ज्ञान था।

पिळ्ळा, पी० गोविंद *(मल० ले०)* [जन्म—1829 ई०; मृत्यु—1907 ई०]

त्रिवेंद्रम् में जन्मे गोविंद पिळ्ळा स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद कुछ दिन एक स्कूल के प्रधान अध्यापक रहे। तदनंतर राजा के अंतःपुर में प्रधान कार्यकर्त्ता बने—कालांतर में उन्होंने वकालत का काम स्वीकार किया। 'मलयाळम-भाषा-चरित्रम्' (मलयाळम भाषा का इतिहास) लिखकर उन्होंने केरल की अद्वितीय सेवा की। 'रोमन-चरित्रम्' उनकी दूसरी कृति है। गद्य-साहित्य में इस पुस्तक की रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पिळ्ळा, पुलिमाना परमेश्वरन् *(मल० ले०)* [जन्म—1893 ई०; मृत्यु—1949 ई०]

मलयाळम के इस सिद्धहस्त नाटककार की प्रमुख कृति अभिव्यंजनावादी नाटक 'समत्ववादी' है। इनकी अन्य समस्त कृतियों का संकलित संस्करण इनके देहांत के बाद प्रकाशित हुआ है।

'समत्ववादी' मलयाळम के नाटक-साहित्य में एक नया प्रयोग था। इस प्रयोग में इनको विजय प्राप्त हुई थी; परंतु इस आंदोलन को आगे ले जाने में कोई समर्थ नहीं हुआ है। अपने इस नाटक के कर्तृत्व से ही पुलिमाना का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

पिळ्ळा, श्रीकंठेश्वरम् जि० पद्मनाभ *(मल० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

त्रिवेंद्रम् में श्री कंठेश्वरम् नामक एक मंदिर है। उसके पास लेखक ने जन्म लिया। बचपन से ही अँग्रेज़ी, संस्कृत आदि भाषाओं में उन्होंने दक्षता प्राप्त कर ली। वैद्यक का भी अध्ययन किया। कुंचन नंपियार की कविताएँ तथा कथकळि में उत्तम ग्रंथों के अध्ययन में उन्होंने बड़ी रुचि दिखाई। उनका लिखा 'शब्द-तारावली' नामक 'मलयाळम कोष' बहुत प्रसिद्ध है। 'धर्म विजयम्', 'पांडव विजयम्' आदि लिखकर उन्होंने कैरली कथकळि को पुष्ट किया। उन्होंने कई नाटक तथा गद्य-ग्रंथ लिखे हैं। करीब बीस साल के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप उन्होंने मलयाळम भाषा में कोश का निर्माण किया।

पिळ्ळा, सी० वी० रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1858; मृत्यु—1922 ई०]

ये मलयाळम के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके यद्यपि ये सरकारी नौकर बने, किंतु देशभक्ति पर आधारित अपने राजनीतिक विचारों के कारण किसी उच्च पद पर नहीं पहुँच पाए। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं का संपादन-कार्य किया।

इनके ऐतिहासिक उपन्यास 'मार्त्तांड वर्मा' (दे०), 'धर्मराजा' (दे०) और 'रामराजा बहादुर' (दे०) हैं। इनमें त्रावनकोर राज्य के दो यशस्वी शासकों का इतिहास वर्णित है। 'प्रेमामृतम्' सामाजिक उपन्यास है। 'पंटत्ते पाच्चन्', 'कुरुप्पिल्ला कळरी' आदि आठ प्रहसनों की रचना भी इन्होंने की है। 'विदेशीय मेधावित्वम्' इनका निबंध-संग्रह है।

इनकी तुलना प्रायः सर वाल्टर स्कॉट से की जाती है। लक्षणायुक्त उपन्यासों के रचयिताओं के संदर्भ में सर्वप्रथम लिये जाने वाले नामों में ये तथा ओ० चंतुमेनन आते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में आज भी कोई लेखक सी० वी० के समशीर्ष नहीं है। इनके उपन्यासों के पात्र मलयाळम के सभी पाठकों के लिए चिरपरिचित हैं। आधुनिक गद्य नाटकों का युग भी इन्हीं के प्रहसनों की रचना के साथ उद्घाटित हुआ था।

मलयाळम-गद्य के विकास में इनका योगदान अमूल्य है।

पिळ्ळै, कंदसामी *(त० ले०)*

दे० कंदसामी पिळ्ळै।

पिळ्ळै, व० उ० चिदंबरम् *(त० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

तमिलनाडु के तिरुनेलवेली ज़िले के ओट्ट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिडारम नामक ग्राम में जन्म। शिक्षा समाप्त कर वकील के रूप में जीविका का आरंभ। स्वतंत्रता-संग्राम के प्रसिद्ध सेनानी, निर्भीक देशसेवी। इस शती के आरंभ में इन्हें दो बार आजन्म क़ैद की सज़ा मिली। तमिलनाडु में ये कप्पलोट्टिय तमिलर (जहाज़ चलाने वाले तमिलभाषी) के नाम से विख्यात हैं। इन्होंनें 1906 ई० में 'स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कंपनी' की स्थापना कर तमिलनाडु के तूत्तुक्कुडि से लंका तक अपना व्यापारी जहाज़ चलाया। राजनीति के क्षेत्र में इनका संबंध टिळक (दे०) के गरम दल से था। साहित्यिक क्षेत्र में ये भारती (दे०) के समकालीन एवं उनके परम मित्र थे। चिदंबरम् पिळ्ळै तमिल और अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान थे। इन्होंने तिरुक्कुरल का अँग्रेज़ी में और जेम्स ऐलन के प्रबोधक नीतिग्रंथों का तमिल में अनुवाद किया। तमिल के प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम' (दे०) की इळम्पूरणर-कृत टीका का, जिसे विद्वानों ने सर्वप्रथम और प्रायः सर्वश्रेष्ठ माना है, संपादन एवं प्रकाशन इन्होंने किया था। 'मेय्यरिवु', 'वलिमैक्कु मार्गम' आदि इनके प्रसिद्ध निबंध-ग्रंथ हैं। 'व० उ० चि० शुय चरिदै' शीर्षक इनका आत्मचरित तमिल में रचित आत्मचरितात्मक कृतियों में सर्वप्रथम माना जाता है। इसे लेखक ने पद्य-शैली में मित्र को पत्र के रूप में लिखा है। इन्होंने कुछ सुंदर स्फुट कविताएँ भी लिखी हैं। कुछ समय तक इन्होंने 'विवेक-भानु' नामक पत्रिका का संपादन भी किया था। विभिन्न कृतियों में इन्होंने सरल, सरस भाषा का प्रयोग किया है। जहाँ-तहाँ अँग्रेज़ी शब्दों का पुट दीख पड़ता है। इनका तमिल-राजनीति एवं साहित्य दोनों क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान है।

पिळ्ळै तमिल *(त० पारि०)*

'पिळ्ळै तमिल' तमिल में प्राप्त एक काव्य-विधा है। इसमें कवि शिशु के जन्म के तीसरे माह से लेकर इक्कीसवें माह तक की दस चेष्टाओं का वर्णन करता है। काप्पु-शिशु की रक्षा के लिए प्रार्थना, चेंकीरै-शिशु का पेट के बल लेटकर सिर उठाकर देखना, तालाट्टु—माता का लोरी गाना, चप्पाणी कोट्टुदल—शिशु का ताली पीटना, मुत्तप्परुवम्—शिशु को चूमना, वरुकैप्परुवम्—शिशु को अपन पास बुलाना, और अंबुलिपरुवम्—शिशु से खेलने के लिए चंद्र को बुलाना। इन सातों चेष्टाओं का वर्णन बालक और बालिका दोनों के संदर्भ में किया जाता है। इनके अतिरिक्त बालकों से संबंधित कृतियों में शिट्रिल अलित्तल—बालिकाओं द्वारा बनाये गये घरौंदों को तोड़ना, शिरुपरै कोट्टुदल्—परै नामक वाद्य बजाना और शिरुत्तेर इलुत्तल्—लकड़ी के बने सुंदर लघु रथ को खींचना तथा बालिकाओं से संबंधित कृतियों में नीराडल (स्नान), ऊत्ज्जल (झूला झूलना) और कलंगु या अम्मानै (बाजों को ऊपर उछाल कर पकड़ना) आदि क्रियाओं का वर्णन भी होता है। यद्यपि इस विधा का उल्लेख 'तोलकाप्पियम्' (दे०) में मिलता है तथापि 'पेरियाळवार' (दे०) ही इसके जन्मदाता कहे जाते हैं। उन्होंने अपने पदों में अपने इष्टदेव बालकृष्ण की अनेकानेक चेष्टाओं का सरस वर्णन प्रस्तुत किया है। पिळ्ळै तमिल की शैली में एक साहित्यिक कृति की रचना का श्रेय ओट्टकुत्तर (दे०) को है। उन्होंने अपने 'कुलोतुंगन् पिळ्ळै तमिल' (दे०) में अपने आश्रयदाता कुलोत्तुंग चोल द्वितीय के वीर-कर्मों का वर्णन किया है।

पिळ्ळै, देशिग विनायकम् *(त० ले०)*

दे० देशिग विनायकम् पिळ्ळै।

पिळ्ळै, पंचकल्याणी *(त० प०)*

यह देशिग विनायकम् पिळ्ळै (दे०)-कृत 'मरुमक्कळ वळि मान्मियम' नामक काव्यकृति का नायक है। इस काव्यकृति में नांजिल नाडु की वेळाळर जाति के लोगों के जीवन का, उनकी सामाजिक प्रथाओं एवं उनके कुप्रभावों का, सजीव चित्रण है। नांजिल नाडु के अमीर व्यक्ति चार-पाँच विवाह कर लेते थे। इससे उनकी पत्नियों की बड़ी दुर्दशा होती थी। काव्य के नायक का पंचकल्याणी पिळ्ळै नाम सर्वथा सार्थक है क्योंकि उसकी पाँच पत्नियाँ थीं। इस काव्य की संपूर्ण कथा उसकी पाँचवीं पत्नी के माध्यम से प्रस्तुत की गई है जिसे सर्वाधिक दुःख सहने पड़े थे।

पंचकल्याणी पिळ्ळै परिवार का मुखिया था। वह वेळाळर जाति का था जिसमें मातृसत्तात्मक दाय-प्रथा का प्रचलन था। इस प्रथा के नियमानुसार उसकी संपत्ति पर उसके बच्चों का नहीं अपितु भांजे-भांजियों का अधिकार था। अतः वह सदा अपने स्वार्थ की बात सोचता है। मनमाने ढंग से अपनी संपत्ति का अपव्यय करता है। भोग-विलास करते समय वह मर्यादा का परित्याग कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है। काव्य में उसका चित्रण पाखंडी व्यक्ति के रूप में किया गया है। पारिवारिक झगड़ों को मिटाने के लिए न्यायालयों का चक्कर काटते हुए वह अपनी अपार धन-संपत्ति खो बैठता है। काव्य के अंत में उसे निर्धन, निरीह व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस चरित्र को लेकर कवि ने कुछ हास्यपूर्ण प्रसंगों की सृष्टि की है। जैसे—आषाढ़ की अमावस्या के दिन पंचकल्याणी पिळ्ळै अपनी पत्नियों के साथ कन्याकुमारी जाता है। स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से पति-पत्नियों के जोड़े हाथ पकड़कर समुद्र में डुबकियाँ लगाते हैं परंतु वह मूढ़वत् तट पर खड़ा रहता है। लोगों द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर वह कहता है कि 'मेरी एक नहीं, पाँच पत्नियाँ हैं। मैं बारह हाथों वाला ब्रह्मा या बीस हाथों वाला राक्षस नहीं कि एक-साथ सबका हाथ पकड़कर समुद्र में डुबकियाँ लगा सकूँ।'

इस पात्र के माध्यम से मातृसत्तात्मक दाय एवं बहुविवाह-प्रथाओं के दोषों को उभारने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है।

पिळ्ळै, वेदनायकम् *(त० ले०)* [जन्म—1826 ई०; मृत्यु—1889 ई०]

ये तमिल भाषा के प्रथम आधुनिक उपन्यास-लेखक माने जाते हैं। ये सरस कवि भी थे। अँग्रेज़ी व्यापारी कंपनी के शासन-काल में ये ज़िला मुंसिफ़ (न्यायाधीश) के रूप में तमिल-प्रदेश के मध्यवर्ती ज़िलों में काम करते थे। इनके परिवार ने दो पीढ़ियों पूर्व ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था पर ये स्वभावतः उदारमना और भारतीय संस्कृति, तमिल भाषा एवं साहित्य के प्रति अत्यंत निष्ठावान थे। प्रायः सभी समकालीन साहित्य-महारथियों से इन्होंने संबंध स्थापित कर लिया था।

इनका यशस्तंभ 'पिरताप मुदलियार चरित्तिरम्' (दे०) नामक उपन्यास 1876 ई० में प्रकाशित हुआ था और इसमें चरित-नायक 'पिरताप मुदलियार' ('प्रताप' नामक अभिजात) के जन्म से मरण तक की घटनाओं का इतिवृत्त प्रस्तुत है। इसमें रोमानी प्रसंग तथा मानवतापूर्ण कथा-भाग एक ही सूत्र में पिरोए गए हैं; साथ-साथ 'पंचतंत्र' की भाँति सदुपदेशपरक उपकथाओं का सुंदर सम्मिश्रण देखा जा सकता है। कुल मिलाकर इस उपन्यास का आकर्षण प्रसिद्ध अँग्रेज़ी उपन्यास 'द विकार ऑफ़ वेकफ़ील्ड' की तरह सरल एवं अखंड मानवतावाद कहा जा सकता है। इनका दूसरा उपन्यास 'चुकुण चुन्तरि' है। यह नारी जीवन का चित्रण है पर अधिक सफल नहीं है। इनकी मुख्य कविता-रचनाएँ हैं—'नीतिनूल्' (नीति-सूक्तियाँ जो 'तिरुक्कुरळ्' के आदर्श पर चलती हैं), 'पेण्मतिमालै' (नारी सदाचार-संबंधी उपदेश) तथा 'चर्व चमय चमरचक्कीर्त्तनै' (सर्व समयों-धर्मों द्वारा मान्य भक्ति-भाव से प्रेरित गेय पद)। इस पद्य-रचना में इन्होंने पवित्र भक्ति-भावना-युक्त गीतों को कर्नाटक संगीत के रागों में गायन के अनुकूल संरचना से भी संपन्न करा दिया है।

पिशिरांदैयार *(त० कृ०)* [रचना-काल—1967 ई०]

भारतीदासन् (दे०)-कृत यह नाटक 34 दृश्यों में विभाजित है। दृश्यों के शीर्षक विषयानुरूप हैं। इसमें पांड्य राजा अरिवुडै नंबि के दरबारी कवि और तमिल प्रांत में आविर्भूत एक महापुरुष पिशिरांदैयार और चोल राजा कोप्पेंरुचोलन् की घनिष्ठ मित्रता का वर्णन है। उनकी मित्रता की विशिष्टता यह थी कि वे दोनों बिना एक-दूसरे को देखे ही प्राण-सखा बन गए थे। इस नाटक में इतिहास और कल्पना का अपूर्व समन्वय हुआ है। पग-पग पर तमिलनाडु और तमिल भाषा के प्रति भारतीदासन् का अनन्य प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। नाटक में कुछ गेय गीत और अहवल छंद में रचित कुछ पद भी हैं। यह नाटक अत्यंत प्रौढ़ शैली में रचित है। इस नाटक के माध्यम से भारतीदासन् ने नवयुवकों को जागृत करने की चेष्टा की है। 1969 ई० में इस कृति पर भारतीदासन् को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था।

पिशेल, रिचर्ड *(सं० ले०)*

इनका जन्म 18 जनवरी, 1849 ई० को बेज़्ला (जर्मनी) में हुआ। 1870 ई० में इन्हें 'दे कालिदास काकुनाली रिसेनरीमीवस' विषय पर बेज़्ला यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट की उपाधि मिली। इन्होंने उक्त यूनिवर्सिटी के अतिरिक्त कील, हेली, बर्लिन यूनिवर्सिटियों में संस्कृत तथा इंडॉलोजी विभागों में कार्य किया। इन्हें 'कंपैरेटिव ग्रामर ऑफ़ प्राकृत लैंग्वेजिज़' पर इंस्टीच्यूट द फ्रांस से पुरस्कार मिला था। 26 दिसंबर 1909 ई० को जब ये कलकत्ता यूनिवर्सिटी के आमंत्रण पर प्राकृत भाषाओं पर भाषण देने आ रहे थे तो मद्रास में स्वास्थ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिगड़ जाने के कारण इनका देहावसान हो गया। इनके ग्रंथ हैं—(1) 'कालिदास'स् शकुंतला', 'द बंगाली रिसें-शन् विद क्रिटिकल नोट्स', (2) 'हेमचंद्रा'स् ग्रामर ऑफ़ द प्राकृत लैंग्वेजिज़', (3) 'ग्रामर ऑफ़ द प्राकृत लैंग्वेजिज़', (4) 'वैदिक स्टडीज़' (गैल्डनर के साथ), (5) 'लाइफ़ एंड टीचिंग ऑफ़ द बुद्ध,' (6) 'एलिमेंटरी ग्रामर ऑफ़ द संस्कृत लैंग्वेज', (7) 'होम ऑफ़ द पपटप्ले', (8) 'कांट्रिब्यूशन टु वर्ड्स : द स्टडी ऑफ़ जर्मन जिप्सीज़', (9) 'द ओरिजिन ऑफ़ द क्रिश्चियन फ़िश सिंबल', आदि। ये अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध रहे।

पिषारटि, आट्टूर कृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1878 ई०]

इनका जन्म त्रिचुर ज़िले के आट्टूर गाँव में हुआ था। इन्होंने पहले संस्कृत भाषा एवं शास्त्रादि का अध्ययन किया था। न्यायशास्त्र में इनकी विशेष रुचि थी और उसमें इन्होंने गहरी विद्वत्ता पाई। ये त्रिवेंद्रम् में राजकुमार के शिक्षक और बाद में वहीं कॉलेज के प्राध्यापक रहे। संस्कृत के शास्त्रादि का ज्ञान इन्हें था। केरलीय जनता इन्हें मलयाळम-साहित्य के अनुसंधाता और व्याख्याकार के रूप में ही अधिक सम्मान देती है। 'मणिप्रवाळ-काव्य' का व्याकरण ग्रंथ 'लीलातिलकम्' (दे०) इन्हीं के प्रयत्न से प्रथम बार प्रकाशित हो सका था। 'उण्णुनीलि-संदेशम्' नामक मणिप्रवाळ-काव्य की प्रशस्त व्याख्या भी आट्टूर ने ही पहले-पहल की थी। 'केरलचरित्रम्' इनकी रचना है। इसमें इतिहास से बढ़कर जनश्रुति का ही अधिक आधार ग्रहण किया गया है। कालिदास (दे०) के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०) का मलयाळम अनुवाद और 'संगीत-चंद्रिका' नामक व्याख्यात्मक संगीत-ग्रंथ इन्हीं की महत्त्व-पूर्ण कृतियाँ हैं। श्री पिषारटी का सफल व्याख्याता के रूप में बड़ा सम्मान रहा है।

पीलू *(पं० ले०)* [समय—सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

लोककवि पीलू के जीवन के संबंध में कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। जनश्रुति के आधार पर इन्हें तरनतारन, ज़िला अमृतसर के एक मुसलमान जाट परिवार का सदस्य माना जाता है। इनकी रचना में प्रयुक्त माझी पंजाबी (अमृतसर-जालंधर की बोली) से इसका समर्थन होता है। बावा बुधसिंह (दे०) डा० मोहनसिंह (दे०), मौलाबख्श कुश्ता (दे०) प्रभृति अधिकांश पंजाबी विद्वान् पीलू कवि और भक्त को दो भिन्न व्यक्ति मानते हैं, परंतु डा० विश्वनाथ तिवारी ने अपने शोध-प्रबंध में दोनों को एक ही व्यक्ति सिद्ध किया है। 'मिरज़ा साहिबा' (दे०) के अतिरिक्त कुछ फुटकर पद्य भी इनके नाम से प्रचलित हैं। 'मिरज़ा साहिबा' में मिरज़ा और साहिबा नामक स्थानीय प्रेमियों के आकर्षण और सामाजिक बाधाओं से संघर्ष की दुःखांत कथा है, जिसके माध्यम से पीलू ने स्पष्ट किया है कि दुःख अथवा दुर्भाग्य किसी अलौकिक शक्ति की अपेक्षा मानव की चारित्रिक कमज़ोरियों की ही देन है।

पी० श्री० आचार्य *(त० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

इनका जन्म तिरुनेलवेली ज़िले के विट्टलपुरम् नामक स्थान में हुआ। इनका उपनाम है पी० श्री०। पी० श्री० तमिल, अँग्रेज़ी और संस्कृत भाषाओं के पंडित हैं। इन्होंने लगभग 60 कृतियों की रचना की है जिनमें प्रमुख हैं—'दिव्यप्रबंधसारम्', 'वीर तमिलकम', 'तळि्ळ तिरिकिन्र कालत्तिले', 'ज्ञानशिखरम', 'तुयिल एलुप्पिय तोंडर', 'कोदै', 'अल्लदु कादल वेळ्ळम्','भारदी निनैवुकळ्' आदि। 'Sheaves from the Tamil Muse' में इन्होंने प्राचीन तमिल-कविताओं का संग्रह किया है। वैष्णव भक्ति-साहित्य में इनकी विशेष रुचि है। इन्होंने अत्यंत सरस-सरल शैली में तमिल-वैष्णव-भक्तों और कुछ शैव-संतों का जीवन-चरित प्रस्तुत किया है। 'श्री रामानुजर' नामक कृति में इन्होंने रामानुजाचार्य का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। इस कृति पर इन्हें 1965 ई० में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला। पी० श्री० तमिलनाडु-विषयक ऐतिहासिक सामग्री का चयन करने वाली एक संस्था में प्रधान संपादक के रूप में भी कार्य करते रहे हैं।

पुंडरीक *(सं० पा०)*

इसका अपर नाम पुंडरीकाक्ष है। इसका उल्लेख विभिन्न रूपों में मिलता है। उदाहरणार्थ—इक्ष्वाकु-वंश का एक राजा, पाताल लोक में रहने वाला कश्यप-वंशीय एक नाग, नागपुर का एक नाग राजा, यम का एक सभासद्, एक दिग्गज, एक भगवद्भक्त, कुरुक्षेत्र के कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रों में से एक आदि। बाण (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की 'कादंबरी' (दे०) का यह एक महत्त्वपूर्ण पात्र है।

पुंडरीकाक्षुडु, दामराजु *(तें० ले०)*

इनका जन्म 1898 ई० में हुआ था। बी० ए०, बी० एल० करके इन्होंने कई वर्षों तक वकालत की। स्वतंत्रता-आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया।

ये 'स्वराज्य-सोपान-प्रचुरणलु' से अपनी तथा दूसरों की रचनाओं को—मुख्य रूप से नाटकों को—प्रकाशित कर, उन्हें अभिनीत करते थे। ये नाटक देशभक्ति के भाव से पूर्ण होते थे। ब्रिटिश सरकार ने इन नाटकों पर अनेक प्रकार से प्रतिबंध लगाए थे।

इनके नाटकों में 'गांधीमहोदयमु' (या नवयुगारंभमु), 'गांधीविजयमु', 'पाचांल पराभवमु' (1921-22), 'मिस विहार' या 'कलियुगभारतमु' (1936), 'भगवान नारद' (1935), 'भक्त पोतना' (1940), 'ताराशशांकमु', 'कुंभराणा' (1938), 'वोट्ला प्रहसनमु', उल्लेखनीय हैं। 'गांधी महोदयमु' में टिळक (दे०) के निधन से लेकर गांधी-युग के आरंभ तक की कथा है तो 'गांधीविजयमु' में गांधी-युग के प्रारंभ से लेकर नागपुर-महासभा तक की कथावस्तु वर्णित है। इन दोनों नाटकों के प्रारंभ में पौराणिक वातावरण की परिकल्पना की गई है। 'पांचाल पराभवमु' में डयरासुर (जनरल ओ डायर) के अत्याचार, पांचाल-माता (पंजाब) का वस्त्रापहरण, श्रीकृष्ण जन्मस्थान (जेलखाना) का वर्णन, अमृतसर में संपन्न काँग्रेस की महासभाओं का विवरण आदि हैं। 'मिस विहारमु' में विधवा-विवाह, वर्णांतरविवाह, आदि सामाजिक समस्याओं को ग्रहण किया गया है। 'संघ समस्या' अथवा 'संस्कारिणी' (1922) में सृष्टि के आदि से लेकर आज कलियुग तक विविध वर्ण वालों के कष्टों का वर्णन किया गया है। इनके 'गांधीनामं, मरुवाम् मरुवाम्' (गांधी के नाम को भूलेंगे नहीं, भूलेंगे नहीं) शीर्षक गीत और 'कत्तुलु लेवु, शूलमुन् गांडीवमुन् मोदले हुळक्कि' (तलवारें नहीं हैं, शूल और गांडीव का तो पहले से ही अभाव है) गांधी जी के अहिंसा-आंदोलन के संबंध में रचित पद्य अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं।

पुजारी जी (पं० पा०)

'पुजारी जी' नानकसिंह (दे०) के 'पुजारी' उपन्यास का सजीव तथा महत्त्वपूर्ण पात्र है। इसके माध्यम से सांप्रदायिक एकता—हिंदू-सिक्ख-मुसलिम-एकता का प्रतिपादन किया गया है। देश एवं समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता का विष केवल भाषणों और नारों के द्वारा नहीं निकाला जा सकता, वे सांप्रदायिक सौमनस्य तथा सौहार्द उत्पन्न करने के लिए संगीत एवं काव्य का आश्रय ग्रहण करके एकता स्थापित करने का कार्य करते हैं क्योंकि इससे व्यक्तियों का विष प्रभावहीन हो जाएगा। नानकसिंह के सांप्रदायिक-एकता-विषयक विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला यह पात्र युगीन परिवेश को उभारने में सफल रहा है।

पुट्टण्णा, एम० एस० *(क० ले०)* [समय—1854-1930 ई०]

श्री एम० एस० पुट्टण्णा कन्नड के प्रारंभिक उपन्यासकारों में से हैं। इनका जन्म 1854 ई० में मैसूर के एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। मद्रास विश्वविद्यालय से बी० ए० पास करने के बाद ये कुछ दिन शिक्षा-विभाग में रहे। कर्णाटक की महान साहित्यिक संस्था 'कर्णाटक साहित्य परिषत्' के संस्थापकों में ये भी एक हैं। ये कुछ समय तक उसके मंत्री भी रहे। 1930 ई० में इनका देहांत हुआ। 'हिंदू चरित्र-दर्पण', 'हिंदू चरित्र संग्रह', 'नीति चिंतामणि' आदि के अलावा इन्होंने शेक्सपियर के 'सिंबलैन' नाटक का कन्नड-अनुवाद 'जयसिंहराजचरित्रे' के नाम से किया। 1883 ई० में इन्होंने एम० बी० श्रीनिवास अय्यंगार जी के साथ 'हितशोधिनी' नामक मासिक पत्रिका निकाली। 'किंग लियर' नाटक का अनुवाद इन्होंने 'हेमचंद्रराजविलास' नाम से किया। 'सुमतिमदन कुमार चरित्रे', 'कांफ़ूषन चरित्रे' आदि भी लिखे। किंतु पुट्टण्णाजी के नाम को सदैव के लिए अमर करने वाली कृति है उनका 'माडिद्दुण्णो महाराय' (जैसी करनी वैसी भरनी)। यह कन्नड के प्रारंभिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। उन दिनों के मैसूर राजघराने का चित्र, उनकी धार्मिक रसिकता आदि के साथ-साथ धर्म के नाम पर होने वाले अनाचार का चित्रण अत्यंत प्रभावी ढंग से हुआ है। भाषा चलती, मुहावरेदार और टकसाली है। वातावरण की दृष्टि से तो यह बेजोड़ है। 'मुसुतेगेये मायांगने', 'पेटेमातेनज्जी' इनके अन्य उपन्यास हैं। 'कुणि-एवंगल रामशास्त्रिगळ चरित्रे' कन्नड की प्रथम जीवनी कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने चित्रदुर्ग, हामलवाडि आदि के पालेमगारों (छोटे राजाओं) का प्रामाणिक इतिहास भी प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुट्टप्पा, के० वी० (कुवेंपु) (क० ले०) [जन्म—1904 ई०]

श्री के० वी० पुट्टप्पा का जन्म मलेनाडु के एक संभ्रांत कुनबी कुटुंब में हुआ था। इनकी आरंभिक शिक्षा तीर्थहल्ली तथा मैसूर में हुई थी। ये आधुनिक कन्नड-साहित्य के नवोदय के मंत्रदाता एवं पुरोहित श्री कृष्ण-शास्त्री (दे०) के प्रिय शिष्यों में भी एक हैं। कॉलेज में पढ़ते समय ये रामकृष्ण आश्रम में रहे थे। कन्नड में एम० ए० करने के बाद ये कॉलेज में अध्यापक बने। इसके बाद कन्नड के विभागाध्यक्ष तथा मैसूर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति बनकर इन्होंने विभिन्न स्तरों पर कर्णाटक की सेवा की है। हाईस्कूल में पढ़ते समय ही ये कविता लिखने लगे थे। पहले इन्होंने अँग्रेजी में कविता लिखना शुरू किया था जो 'बिगिनर्स म्यूज़' के नाम से प्रसिद्ध है। कन्नड में इनका पहला कविता-संकलन 'कोळलु' ('बाँसुरी') 1930 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसने कन्नड में एक नई तान छेड़ दी थी। तब से ये लगातार कविता लिखते रहे हैं। अब तक इनके बीस से अधिक कविता-संकलन प्रकाशित हुए हैं जिन में प्रमुख—'कोळलु', 'नविलु', 'कलासुंदरी', 'पक्षिकाशि', 'अग्निहंस', 'पांचजन्य', 'प्रेम-काश्मीर', 'षोडशी', 'कृत्तिके', अनिकेतन', 'इक्षुगंगोत्री' आदि प्रसिद्ध हैं। 'चित्रांगदा' इनका श्रेष्ठ प्रबंध-काव्य है। 'रामायण-दर्शनम्' इनका महाकाव्य है जिस पर इन्हें साहित्य अकादेमी तथा भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कार मिल चुके हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। ये सफल नाटककार, जीवनी-लेखक, उपन्यासकार, कहानीकार, रेखाचित्रकार तथा आलोचक हैं। 'श्मशान कुरुक्षेत्र', 'रक्ताक्षि' आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'स्वामी विवेकानंद', 'रामकृष्ण परमहंस', आदि इनकी श्रेष्ठ जीवनियाँ हैं। 'कानूरु हेग्गडिति' (दे०) तथा 'मलेगळल्लि पदमगळु' (दे०) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'नन्नदेवलमत्तुमुवतइतरकतेगळु', 'संन्यासीमत्तु इतरकते-गळु' में इनकी श्रेष्ठ कहानियाँ संगृहीत हैं। 'मलेनाडिन चित्रगळु' में इनके सुंदर रेखाचित्र हैं तो 'तपोनंदन', 'साहित्य-विहार', 'विभूतिपूजे' 'रसोवैसः' आदि में इनके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबंध हैं।

'कुवेंपु' इनका उपनाम है। ये कन्नड-साहित्य की सभी धाराओं के सफल तैराक रहे हैं। इनकी प्रारंभिक कृतियों में रोमांटिक धारा की समस्त विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। 'पांचजन्य' आदि में प्रगतिवादी कलाकार के रूप में जीवन की नग्नता एवं भग्नता का चित्रण हुआ है। 'कल्कि' इनकी सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कविता है। 'देवरुराजुमाडिरवु', 'आह्वानवाणी', 'अनिकेतन', 'मधुर चिन्मय' आदि इनके श्रेष्ठ रहस्यवादी गीत हैं तो 'इंतहसुंदर प्रातःकालदि', 'हसिरु', 'केंदळिरु', 'नविलु' आदि इनके श्रेष्ठ रोमांटिक गीत हैं। इनको सर्वथा निरपेक्ष वस्तुवाद से परितोष नहीं मिला और इसीलिए ये वस्तुवाद का बाना फेंककर अरविंद की ओर झुके। 'रामायण-दर्शन', 'अनिकेतन' आदि में इसकी छाप है। 'रामायण-दर्शन' कन्नड-काव्य-मंदिर की स्वर्णपताका है। इसमें इन्होंने राम की कथा को नवीन दृष्टि से देखा है। वह जीव के अंत से लेकर आनंदमय कोश तक परिणामिक यात्रा का रम्योज्ज्वल इतिहास है। इनके रावण, मंथरा, उर्मिला आदि चरित्र भारतीय साहित्य के लिए अनुपम देन हैं। इस काव्य के लिए इन्होंने अपने ही एक छंद का आविष्कार किया जो 'महाछंदस्' के नाम से प्रसिद्ध है तथा 'ब्लैंक वर्स' का विकसित रूप है। इनका यह काव्य आकार एवं स्वरूप दोनों दृष्टियों से महाकाव्य है। बीसवीं शती के भारतीय साहित्य की मुख्य कृतियों में 'रामायण-दर्शन' भी एक है; कन्नड-साहित्य में तो वह अद्वितीय महाकाव्य है। ये सबसे पहले 'सुंदरम्' के कवि हैं। पीछे वही 'शिवम्' बना। किंतु ये 'शिवम्' और 'सुंदरम्' में अंतर नहीं मानते। प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, कोमलकांतमधुर पदावली इनकी कविता की विशेषता है। भावगांभीर्य, विचारगांभीर्य एवं भाषागांभीर्य इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। संस्कृत एवं कन्नड-शब्दों का मणिकांचन योग इनकी भाषा की विशेषता है। इनके महाकाव्य में अद्भुत प्रवाह है। संपूर्ण काव्य यद्यपि एक ही छंद में चलता है तथापि ऊब उत्पन्न नहीं होती। इनकी भाषा व्यंजनाप्रधान है। आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने सर्वोदय, समन्वय, पूर्वदृष्टि आदि नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की है।

पुट्टस्वामय्या, बी० (क० ले०)

1897 ई० में जन्म पुट्टस्वामय्या कन्नड के कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार तथा पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'नाट्यमोहिनी' में इनकी कहानी-कला का सुंदर रूप मिलता है। 'सुधामयी', 'उदय रवि' और 'कल्याणद क्रांति' (कल्याण की क्रांति) जैसे इनके उप-न्यास अधिक लोकप्रिय हुए हैं। 'कल्याणद क्रांति' पर इन्हें केंद्रीय साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। 'कुरुक्षेत्र', 'चिरकुमार सभा' (रवींद्र की कृति का अनुवाद) एवं 'रूपरेखा' इनकी नाट्य-प्रतिभा के निदर्शन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्यास्रव-चंपू *(क० कृ०)* [रचना-काल—1331 ई० के लगभग]

'पुण्यास्रव-चंपू' के कवि नागराज (समय—1331 ई० के लगभग) जैन-धर्मानुयायी कवि थे। उनके गुरु का नाम अनंतवीर्य था। वे जिनशासनदीपक विवेक-विट्ठलदेव ग्रौर भागीरथी के पुत्र थे। सगर के पुरवासियों की इच्छा के अनुसार उन्होंने 'पुण्यास्रव-चंपू' की रचना की। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने संस्कृत से इस ग्रंथ का रूपांतर किया है। इसमें बारह 'अधिकारों' में बावन कथाएँ कही गई हैं। इसके ग्रादिभाग में पूजा, गुरुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तपस्या नाम के साभारधर्म-अर्थात् गृहस्थ-धर्म का विवरण है। ग्रंथावतार में कवि ने जिनेंद्र की स्तुति, तत्पश्चात् सिद्धों, पंचपरमेष्ठियों एवं सरस्वती की स्तुति की है। गुरु-क्रम का भी इसमें वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ की कथाएँ भिन्न होने पर भी उनमें विच्छेद नहीं है; दृढ़ आंतरिक संबंध-सूत्र विद्यमान है। इसमें कवि की 'उभयकविताविलास' उपाधि सार्थक हुई है। इसके वर्णनों में नवीनता और शैली में सरसता है। इसमें कवि ने अपने पूर्व के कवियों में पोन्न (दे०), पंप (दे०), जन्न (दे०), गजांकुश बंधुवर्मा और नागचंद्र (दे०) (दे०) की स्तुति की हैं और बताया है कि उन समस्त कवियों की काव्यात्मक विशेषताएँ इनके ग्रंथ में हैं। गुणादि तथा कविता-चातुर्य के संबंध में भी उन्होंने अच्छी ग्रभिव्यक्ति की है।

पुतुलनाचेर इतिकथा *(बँ० कृ०)*

शरत्चंद्र (दे०) के उपरांत बँगला-उपन्यास के क्षेत्र में क्रांतिकारी दृष्टिभंगी की सहायता से नये परिवर्तन लाने वाले कथा-साहित्यकारों में मानिक बंद्योपाध्याय (दे०) अन्यतम हैं। 'पुतुलनाचेर इतिकथा' मानिक बाबू का अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें उनकी साहित्यिक विशेषताओं एवं मान्यताग्रों को सहज ही ढूंढ़ा जा सकता है। शरत्चंद्र के उपरांत बँगला-उपन्यास में यथार्थ का प्रसार विशेष दृष्टि-गोचर होता है। मानिक बाबू यथार्थवादी हैं किंतु उनका यथार्थवाद गतानुगतिक नहीं है। लेखक के अनुसार मनुष्य के मनोजगत् में नाना कारणों से जिस अंतर्द्वंद्व की सृष्टि होती है उसी के प्रतिक्रियास्वरूप उसके मन में धिक्कार, अस्वस्थता, अस्वाभाविकता, जटिलता उत्पन्न होती है और मनुष्य का जीवन पंकिल ग्रौर विषाक्त बन जाता है। 'पुतुलनाचेर इतिकथा' में मनुष्य-जीवन के इस यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। इसीलिए उपन्यास का नायक डाक्टर शशि कलकत्ते में शिक्षा-प्राप्त अभिजातमन को लेकर गाँव के मनुष्य के साथ मिल नहीं पाता। कुसुम, सेनदिदि, मति, गोपाल सभी को वह चाहता है परंतु अंतःसंघर्ष के कारण वह क्रमशः एक अस्वस्थ मानसिकता का शिकार बन जाता है।

फ़ायड-प्रभावित मानिक बाबू के उपन्यास में यौन का आधिक्य है और यह यौन अस्वस्थ है—यद्यपि यह अस्वस्थ यौन ही उपन्यास की अंतिम बात नहीं है। मनस्तात्त्विक दृष्टिभंगी की सहायता से लेखक ने मनुष्य की राजनीतिक, सामाजिक, आत्मिक एवं नैतिक चेष्टाओं का विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में कहीं कृत्रिमता नहीं है। उपन्यास की यही सबसे बड़ी बात है। यह बात और है कि लेखक अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यौन-कामना ही प्रत्येक चेष्टा की नियामक शक्ति है। रचना में गाँव के मध्यवित्त समाज का एक अंतरंग चित्र उपस्थित किया गया है। संपूर्ण चित्र शशि के दृष्टिकोण से खींचा गया है। वह प्रत्येक व्यक्ति की असली बीमारी का पता लगाना चाहता है परंतु अनजाने स्वयं ही बीमार हो जाता है। बँगला-उपन्यास के क्षेत्र में यह उपन्यास फ़ायडीय अवचेतन मन का पहला सार्थक चित्ररूप है।

पुत्तम वीडु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1964 ई०]

लेखिका हेप्सिबा जेसुदासन। इस उपन्यास में लेखिका ने नागरकोइल के पनैविळै ग्राम के लोगों के जीवन का सजीव एवं सांगोपांग चित्रण किया है। अमीर युवती लिसी और निर्धन तंगराज के प्रेम ग्रौर मिलन की कथा के माध्यम से एक ओर प्रेम में आने वाली बाधाओं, संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि की व्यंजना की गई है तो दूसरी ओर नूतन सामाजिक विचारधारा के प्रभाव-स्वरूप परिवर्तित समाज की झाँकी दिखाई गई है जहाँ अमीरों और ग़रीबों के बीच की दूरी मिटती जा रही है। प्रादेशिक शब्दों के प्रयोग से उपन्यास अधिक प्रभावशाली हो गया है। यह लेखिका का प्रथम उपन्यास है तथापि इसे तमिल के ग्रांचलिक उपन्यासों में विशेष स्थान प्राप्त है।

पुदुमैप्पित्तन् *(त० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

पुदुमैप्पित्तन् उपनाम से विख्यात चो० वृद्धा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलम् का जन्म दक्षिणी आर्काट ज़िले के तिरुप्पादिरिप्पुलियूर में हुआ था। बचपन से ही कहानियाँ पढ़ने में इनकी रुचि थी। ये नवीन शैली में सरस कहानियों की रचना कर साहित्य-सेवा करना चाहते थे। 'मणिक्कोंडि' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी कहानियाँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं। पुदुमैप्पित्तन् ने कुछ समय तक 'अलियन', 'दिनमणि', 'दिनशरि' आदि पत्रिकाओं में सहसंपादक के रूप में कार्य किया था। इन्होंने यद्यपि निबंध, नाटक और कविताएँ भी लिखीं तथापि ये अपनी कहानियों के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं—'पुदिय ओळि', 'दैवम् कोडुत्त वरम्', 'मुदलुम् मुडिवुम', 'आण्मै', 'वेडिक्कै मनिदरहळ्', शिट्रन्नै', 'बलिपीठम्', 'कपाटपुरम्', 'पुदुमैप्पित्तन् कदैहळ्' (दे०), 'नाशकार कुंबल' आदि। 'वाक्कुम् व्रक्कुम्', 'भक्त कुचेला', 'नारद रामायणम्', 'निच्चयमा नाळैक्कु' आदि इनके एकांकी नाटक हैं। 'उलकत्तु शिरुकदै', 'प्रेत मनिदन' इनकी अनूदित कृतियाँ हैं। इन्होंने चलचित्र के लिए भी एक-दो कहानियाँ लिखी थीं। ये तमिल के श्रेष्ठ कहानीकारों में से हैं। इन्होंने प्रथम बार कहानियों में यथार्थवाद की स्थापना की है। जीवन के अंधकारमय पक्ष का चित्रण करने में इनकी विशेष रुचि थी। इनकी कहानियों में इनकी निराशावादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। हास्य और व्यंग्य के पुट के कारण वे सजीव बन पड़ी हैं। इनकी कहानियाँ अत्यंत रोचक और सरस हैं। इन्होंने अपनी कृतियों के लिए पात्रों का चयन समाज के निम्न वर्ग से किया है। इन्होंने तमिल में नयी कविता का भी आरंभ किया था परंतु इस क्षेत्र में इन्हें सफलता नहीं मिली। कहानी, काव्य आदि साहित्यिक विधाओं पर रचित इनके निबंध तमिल-आलोचना के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखते हैं। तमिल-साहित्य में ये 'शिरुकदैमन्नन्' (कहानी-सम्राट्) कहे जाते हैं।

पुदुमैप्पित्तन् कदैहळ् (त० कृ०) [रचना-काल— 1940 ई०]

'पुदुमैप्पित्तन् कदैहळ्' शीर्षक इस कृति में तमिल में 'शिरुकदैमन्नन्' अर्थात् कहानी-सम्राट् कहे जाने वाले पुदुमैप्पित्तन् (दे०) की 26 कहानियाँ संगृहीत हैं। यह उनकी कहानियों का प्रथम संग्रह है। इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं—'पोन्नगरम्', 'कल्याणी', 'कालनुम् किलवियुम्', 'तेरुविळक्कु', 'शंगुदेवनिन् धर्मम्', 'तिरंद जन्नल' और 'अहल्यै'। 'पोन् नगरम्' में लेखक ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि प्रेमभावना अपने आप में बुरी नहीं। समाज की दरिद्रता को दूर करने पर ही प्रेम का वास्तविक महत्त्व व्यक्त हो सकता है। दरिद्रताग्रस्त समाज में व्यक्ति प्रेम की ओट में बुरे कार्य कर सकता है। 'कल्याणी' कहानी में अनमेल विवाह के कुपरिणामों पर प्रकाश डाला गया है। 'कालनुम् किलवियुम्' शीर्षक कहानी में लेखक ने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। लेखक का मत है कि यमराज किसी के प्राण हर सकते हैं परंतु विचारों को नहीं हर सकते। 'तेरुविळक्कु' में इस बात का प्रतिपादन है कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के आधार की आवश्यकता होती है। बिना किसी आधार के व्यक्ति का जीवित रहना संभव नहीं है। 'शंगुदेवनिन् धर्मम्' और 'तिरंद जन्नल' में बताया गया है कि मनुष्य में बाह्य रूपाकार, स्वभाव-विरोधी गुण हो सकते हैं। पहली कहानी में एक डाकू का चित्रण है जो राह चलते व्यक्तियों को लूटता है परंतु समय आने पर एक अनजान बुढ़िया की बेटी के विवाह के लिए उसे धन देता है। 'तिरंद जन्नल' में एक ऐसे अमीर का चित्रण है जो सदा दूसरों को ठगने की ताक में रहता है। 'अहल्यै' कहानी में अहल्या-संबंधी पौराणिक प्रसंग को अपनाया गया है। लेखक ने गौतम को आदर्श मानव बनाया है। अतः वे पौराणिक गौतम की तरह अहल्या को शाप नहीं देते। पुदुमैप्पित्तन् की कहानियों में तमिल-संस्कृति और सभ्यता, तमिल-जनता के जीवन और विचारधारा का सजीव चित्रण है। इनमें विभिन्न स्थानों के प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण है। सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। इन कहानियों का तमिल-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पुदुमैप्पित्तन् वरलारु (त० कृ०) [रचना-काल— 1951 ई०]

(चिदंबर) रघुनाथन् (दे०) की इस कृति में कहानी-सम्राट् के रूप में विख्यात पुदुमैप्पित्तन् (दे०) का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। रघुनाथ इनके घनिष्ठ मित्र थे; अतः वे इस कृति में कुछ ऐसे प्रसंगों को भी जोड़ सके हैं जिन्हें इनके रिश्तेदार तथा अन्य मित्र भी न जानते थे। लेखक ने अपनी दृष्टि से सरस प्रसंगों को जोड़ लिया है तथा नीरस प्रसंगों को छोड़ दिया है। 'पुदुमैप्पित्तन् वरलारु' में 23 अध्याय हैं। आरंभिक कुछ अध्यायों मे पुदुमैप्पित्तन् की कुल-परंपरा, आरभिक शिक्षा, विवाह, वैवाहिक जीवन, साहित्य-प्रेम, कहानी-रचना आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चर्चा है। एक अध्याय में 'दिनमणि', 'दिनशरि' आदि पत्रिकाओं के सहसंपादक के रूप में इनके जीवन का विवरण है। 'सिनिमा तुरैयिल' शीर्षक अध्याय में चलचित्र के क्षेत्र में इनके योगदान की चर्चा है। 'चोवी' शीर्षक अध्याय में पुदुमैप्पित्तन् उपनाम से विख्यात चो० वृद्धाचलम् के स्वभावादि का वर्णन है। दो अध्यायों में लेखक ने क्रमशः इनके संगीत-ज्ञान और इनकी भाषण-कला पर प्रकाश डाला है। लेखक ने विनोदपूर्ण शैली में बताया है कि संगीत में पुदुमैप्पित्तन् की तनिक भी रुचि नहीं थी। लेखक के मत में इनके भाषण बातचीत के समान सरस हुआ करते थे। एक अध्याय में लेखक ने कुछ सरस संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। अंतिम अध्याय में पुदुमैप्पित्तन् के कृतित्व का विस्तृत विवेचन है। इस अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि पुदुमैप्पित्तन् बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे।

तमिल में जीवनी-साहित्य बहुत कम है। 'पुदुमैप्पित्तन् वरलारु' साहित्यकारों की जीवनी के क्षेत्र में अकेली कृति है। तमिल के जीवनी-साहित्य में इस कृति का विशेष महत्त्व है।

पुद्गल *(प्रा० पारि०)*

पूरित और गलित होने के कारण जैन धर्म में प्राकृतिक तत्त्वों को पुद्गल कहा जाता है। इनका अविभाज्य रूप परमाणु है। अनेक परमाणु मिलकर भौतिक जगत् की सृष्टि करते हैं। मन, वाणी, श्वास इत्यादि का निर्माण भी इन्हीं अणुओं से हुआ है। स्पर्श, रस, गंध और रूप—ये चार पुद्गल में होते हैं। इनके संयोग-वियोग से पाँचवें गुण 'शब्द' का जन्म होता है। कर्मों के प्रभाव से विशिष्ट प्रकार की कामना उत्पन्न होती है जिससे खिंचकर पुद्गल के परमाणु संयुक्त होकर कर्मानुसार कायरूप-बंधन का निर्माण करते हैं। शरीर के रूप, रंग, शक्ति, अशक्ति सभी कुछ कर्मजन्य कामना से आविर्भूत होकर जीव को बंधन में डालते हैं।

पुनम् नंपूतिरि *(मल० ले०)* [जीवन-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के चंपूकाव्यों के द्वितीय उत्थान के स्थापक और प्रसिद्ध कवि हैं। ये कोपिक्कोड् के सामूतिरि राजाओं के राजकवि थे और तत्कालीन कवियों द्वारा रचित इनकी प्रशंसा के पद्य प्राप्त हैं। इनकी मुख्य कृति 'भाषारामायण चंपू' है। 'भारतम्', 'कामदहनम्', 'पारिजातहरणम्' आदि अन्य चंपुओं के रचयिता भी ये माने गए हैं।

इन्होंने साहित्य की मणिप्रवाळ (दे० मणिप्रवाळम्) शाखा को नया रूप दिया था। इन्होंने काव्य-भाषा को परिमार्जित किया था और प्रतिपाद्य विषय के रूप में पौराणिक कथाओं को प्रतिष्ठित किया था। हास्य-रस को इन्होंने अधिक स्थान दिया।

मलयाळम-साहित्य में इनका स्थान इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि इनकी हास्यप्रियता बाद में प्रसिद्ध जनकवि कुंचन् (दे०) नंपियार के लिए आदर्श बन गई थी।

पुनरुत्थान-काल *(हिं० पारि०)*

यूरोप में मध्ययुग से आधुनिक युग में संक्रमण-काल (मध्य चौदहवीं से मध्य सोलहवीं शती) को पुनरुत्थान-काल (रेनेसाँ) कहा जाता है। इसके नामकरण का श्रेय फ़्रांसीसी इतिहासकार मिशले को है। कुस्तुंतुनिया के पतन (1453 ई०) से जब ग्रीक विद्वान यूरोप भर में फैल गए और ग्रीक-साहित्य का अध्ययन होने लगा तो सर्वतोमुखी सांस्कृतिक क्रांति हुई। मुद्रण-कला और अमरीका की खोज (1492 ई०) ने भी इसे उत्तेजन प्रदान किया। विचारों और जीवन-मूल्यों की क्रांति ने सामंती व्यवस्था, अंधविश्वास, धर्माधिकरणों और मठाधीशों की कट्टरता को चुनौती दी। विज्ञान और विवेक की विजय से बौद्धिक पर्यावरण की सृष्टि हुई, आत्मिक मुक्ति का संघर्ष शुरू हुआ, विराग के स्थान पर इहलोक के आनंद और साहस को महिमा प्राप्त हुई, सामाजिक-राजनीतिक क्रांतियों का पथ प्रशस्त हुआ; साहित्य में सुंदर की चेतना को अनुप्राणित करने के साथ-साथ तुलना, आलोचना और अनुसंधान को बढ़ावा मिला। इंगलैंड में इसका प्रभाव सोलहवीं शती के प्रथम चरण में प्रकट हुआ।

हिंदी में भारतेंदु (दे०)-युग (1868-1900 ई०) नवीन जागरण के संदेशवाहक के रूप में अवतरित हुआ। मुद्रण-यंत्रों के विस्तार, समाचारपत्रों के प्रकाशन, ब्राह्म-समाज आदि संस्थाओं के सिद्धांतों, विवेकानंद के विचारों और अँग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन ने जन-जागरण में योग दिया; सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अतिरिक्त सक्रियता आई। साहित्य के क्षेत्र में रीतिकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्तियों का ह्रास हुआ। विषय-चयन में व्यापकता और विविधता आई। जनता को उद्बोधन देने के लिए देश-प्रेम, समाज-सुधार, शिक्षा-प्रसार आदि विषयों पर राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित साहित्य लिखा गया। वैयक्तिक स्वतंत्रता की प्रेरणा देना और साहित्यिक चेतना को मध्यकालीन रचना-प्रवृत्तियों से हटाकर नवीन दिशाओं की ओर उन्मुख करना इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

पुरंदरदास (क० ले०)

कर्नाटक के वैष्णव भक्त-कवियों में पुरंदरदास का श्रेष्ठ स्थान है। ये बड़े भक्त तथा संगीतज्ञ थे। इन्हें 'कर्नाटक-संगीत का पितामह' भी कहा जाता है। कहा जाता है कि ये पहले बड़े धनी, लोभी और कंजूस थे। जीवन में घटित किसी घटना-विशेष के कारण ये घर-बार छोड़ कर अपने परिवार के साथ विजयनगर पहुँचे थे जहाँ व्यासराय के शिष्य और विष्णुभक्त बन गये।

पुरंदरदास की सभी रचनाएँ मुक्तक पदों के रूप में प्राप्त होती हैं जिन्हें कन्नड में 'कीर्तन' कहा जाता है। इन कीर्तनों की संख्या चार लाख पचहत्तर हज़ार बताई जाती है परंतु अद्यावधि प्राप्त और प्रकाशित पद एक हज़ार से कुछ अधिक हैं। इनके पदों में 'पुरंदर विट्ठल' की छाप मिलती है। पंढरपुर के भगवान् पुरंदर विट्ठल इनके इष्टदेव थे। इष्टदेव के नाम से ही इन्होंने पद रचे। इनके पदों में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का अथाह सागर है। इनके पदों की महत्ता का प्रमाण यही है कि इनके समय में ही उनके पदों को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई और वे 'पुरंदरोपनिषद्' कहलाये। विद्वानों ने इनके पदों को छह विभागों में रखा है—(1) नाम-महिमा, (2) हरि-गुरु-महिमा तथा स्मरण-भजन, (3) आत्म-निवेदन, (4) श्रीकृष्णलीला-गान, (5) सामाजिक आलोचना, तथा (6) समाज-प्रबोध।

ये व्यासराय के प्रमुख शिष्य और माध्व मत के सिद्धांतों पर पूर्ण विश्वास रखने वाले थे। इनमें सांप्रदायिकता नहीं थी। इन्होंने बाह्याडंबर और अनय का खंडन कर भक्ति की महिमा का वर्णन किया है। इनका संदेश यही है कि मानव-जन्म अमूल्य है, उसका सदुपयोग होना चाहिए; मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य, धर्म और नीति का मार्ग अपनाये, इस संसार में रहकर भी सांसारिकता से दूर रहे।

पुरंदरदास के कतिपय 'सुळादि' और 'उगाभोग' छंद भी प्राप्त होते हैं। इनमें इनकी स्वच्छंद भक्ति और मनोहर कल्पना के दर्शन होते हैं।

पुरंदरदासर कीर्तनेगळु (क० कृ०)

पुरंदरदास (दे०) कर्नाटक संगीत के प्रपितामह, दासवरेण्य एवं भक्त-श्रेष्ठ गेय पदकर्त्ता के रूप में विख्यात हैं। उनके गेयपदों की संख्या पौने पाँच लाख मानी जाती है किंतु अब तक प्रकाशित गीत एक हज़ार से कुछ ही अधिक हैं। पुरंदरदास के कीर्तनों पर अब भी अनुसंधान नहीं हो पाया है। ये गीत या 'कीर्तन' सूरदास (दे०) के पदों जैसे राग-रागिनियों में ढले हैं, तालबद्ध हैं। इन गेय पदों को संपादित एवं प्रकाशित करने का श्रेय सर्वश्री पावंजे गुरुराव, सुबोध रामराव, गोरबाल हनुमंतराव आदि को है। पुरंदरदास के पदों के वर्ण्य विषय हैं—नामभक्ति, हरिस्मरण, गुरुमहिमा, आत्मनिवेदन, पाखंड-विडंबन, सत्संग-महिमा, नैतिक उपदेश तथा कृष्णलीला। इनमें एक भक्त-मानस के विकास-क्रम के दर्शन होते हैं। समाज का सूक्ष्मावलोकन तथा अंतरावलोकन और कहीं-कहीं माध्वमत के सिद्धांतों का प्रतिपादन इनमें देखा जा सकता है। व्यक्तित्व की एकसूत्रता ने इन सबको गूँथ रखा है। पुरंदरदास के पदों में दास्य, सख्य वात्सल्य एवं माधुर्य-भक्ति की प्रधानता है। वे कभी तुलसी (दे० तुलसीदास) के समान दैन्य में आत्मनिंदा करते हैं तो कहीं सूर (दे० सूरदास) के समान अपने ऊपर कृपा न करने वाले भगवान को उलाहना देते हैं। आत्म-निवेदन के पदों में भक्त जीव की आर्तताकांक्षा एवं कमियाँ प्रकट हैं। ऐसे गीत बहुत ही मार्मिक एवं साहित्यगुण-संपन्न हैं। पुरंदरदास में उपमा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का सरस प्रयोग हुआ है। श्रीकृष्ण की बाल एवं पौगंडलीलाओं के वर्णन में पुरंदरदास अद्वितीय हैं। मुरलीवादन-लीला, कालियमर्दन, चीरहरण, द्रौपदीमान-रक्षा, गोवर्धन-धारण तथा गोपियों का विरह-निवेदन आदि प्रसंग अत्यंत रमणीय बन पड़े हैं।

पुरंदरदास के कीर्तनों में संसार की निस्सारता, वैराग्य-बोध के साथ ही साथ संसार की सत्यता, उसकी स्वीकृति एवं उसके प्रति निष्ठा प्रतिबिंबित है। इनसे पुरंदरदास के समय की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का स्पष्ट परिचय मिलता है। इन कीर्तनों में पुरंदरदास ने 'पुरंदर-विट्ठल' उपनाम का प्रयोग किया है। उनके गीत श्रेष्ठ गीतिकाव्य हैं। वे भक्तिभाव से ओतप्रोत हैं, साहित्य-गुण से उन्नत हैं; साहित्य और संगीत का अप्रतिम संगम इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियों की विशेषता है। लालित्य एवं प्रसाद गुण इन गीतों का वैशिष्ट्य है।

पुरनानूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

एट्टुत्तोगै में परिगणित पुरनानुरु या पुरप्पाट्टु में पुरम् (दे० पुरुप्पोरुळ)-संबंधी 400 पद हैं। मंत्रियों एवं चारणों द्वारा रचित इन पदों का संग्रह पेरुंदेवनार ने किया। ये पद चेर, चोल, पांड्य—दक्षिण के इन बड़े राज्यों के सम्राटों और सामंतों की प्रशंसा में रचित हैं। 'पुरनानूरु' में विभिन्न राजाओं, उनके शासन-प्रबंध, सैन्य-संचालन आदि का तथा तत्कालीन तमिल-जनता के रहन-सहन, रीति-रिवाज, प्रथाओं, धार्मिक मान्यताओं, कला-प्रेम, अंधविश्वास आदि का वर्णन है। चारणों की प्रशंसा करते हुए यह कहा गया है कि वे निर्धन होते हुए भी सम्माननीय जीवन व्यतीत करते थे। वे अत्यंत उदार, ईमानदार, निष्ठावान् और निष्पक्ष थे। वे सदा राजाओं को उचित सलाह देते थे और राज्य को युद्धादि से बचाने की चेष्टा करते रहते थे। 'पुरनानूरु' की रचना के समय तक तमिल-जनता पर आर्य-सभ्यता का प्रभाव पड़ चुका था। इसी से इस कृति के कुछ पदों में ब्राह्मणों द्वारा नदी-तट पर जाकर प्रभु की उपासना किए जाने का तथा ब्रह्मचारी के रूप में चतुर्वेदों और वेदांगों के अध्ययन का उल्लेख है। कुछ पदों में वैदिक धर्म और दर्शन की चर्चा है। 'पुरनानूरू' का महत्त्व इस बात में है कि इसमें प्राचीन तमिल लोगों की प्रथाओं, रीति-रिवाजों और विचारधाराओं का वर्णन है। इन्हें परवर्ती साहित्यकारों ने अपनी रचना का आधार बनाया। यह कृति वर्तमान तमिल-लेखकों का मार्ग-दर्शन करती है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी इस कृति का महत्त्व असंदिग्ध है। प्राचीन होते हुए भी यह कृति आज तक यथापूर्व पाठकों का मनोरंजन कर रही है।

पुरप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल-साहित्य दो भागों में विभाजित है—अहम् (दे० अहप्पोरुळ्) और पुरम्। 'अहम्' साहित्य में व्यक्तिगत जीवन और 'पुरम्' साहित्य में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन होता है। पुरम् साहित्य में मुख्यतः नायक की वीरता, दानशीलता आदि गुणों का और युद्धादि का विस्तृत वर्णन होता है। 'पुरप्पोरुळ्' के सात भेद हैं—वेट्चि, वंजि, उलिलै, तुंब, वाहै, कांजि और पाडाण्। राजा के सैनिकों द्वारा शत्रु-देश की गाय-भैंसों का अपहरण 'वेट्चित्तिणै' कहलाता है। अपहृत गाय-भैंसों को लौटा-कर ले जाने के लिए शत्रु-देश के राजा का आगमन एवं युद्ध 'करंदै' कहलाता है। किसी वीर नरेश का शत्रु-देश पर आक्रमण 'वंजित्तिणै' कहलाता है। चढ़ाई करने वाली सेनाशत्रु के दुर्ग को चारों ओर से घेर लेती है; उधर शत्रु-सेना भी प्रत्याक्रमण के लिए तैयार हो जाती है। दोनों सेनाओं की इस मुठभेड़ को 'उलित्जैत्तिणै' कहते हैं। दो पक्षों के राजाओं के घमासान युद्ध और युद्धक्षेत्र का वर्णन 'तुंबैत्तिणै' कहलाता है। दो योद्धाओं में परस्पर युद्ध और शक्तिशाली की विजय का वर्णन 'वाहैत्तिणै' कहलाता है। कवियों द्वारा पराजित राजा के सम्मुख जीवन की अनित्यता आदि का वर्णन कर उसे सांत्वना दिया जाना 'कांजित्तिणै' कहलाता है। कवियों द्वारा राजा की दक्षता, संपन्नता, वीरता, दानशीलता आदि की प्रशंसा में काव्य-कृतियों की रचना करना 'पाडाण्तिणै' कहलाता है। 'पुरप्पोरुल्' के अन्य भेदों से संबद्ध रचनाओं में जहाँ राजा, युद्ध या वीरता का वर्णन हुआ है वहाँ 'पाडाण्तिणै' की रचनाओं में वीर राजाओं के साथ-साथ वीर सैनिक, दानशील व्यक्ति, धीर माता, सुशील नारी, आदर्श देश-भक्त, कर्मठ कृषक, सुखी दंपति, श्रेष्ठ कवि आदि को भी नायक-नायिका के रूप में अपनाया गया है।

पुरसलात *(पं० पारि०)*

यह 'पुर+सिरात' का परिवर्तित रूप है जिसका अभिप्राय है—नरक का 'सिरात' नामक पुल। इस्लाम धर्म के अंतर्गत इस पुल को नरक के अग्निकुंड पर स्थित माना गया है जो बाल से भी सूक्ष्म और तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। इस अति संकीर्ण पुल के दोनों ओर सघन कंटक-जाल हैं जो तनिक भी इधर-उधर नहीं होने देते। सच्चे साधक इस पुल को सहज पार कर लेते हैं जबकि पापी जन नरक के अग्निकुंड में गिर जाते हैं। उदाहरण—'पुरसलात का पंथु दुहेला' (सूही रविदास), 'बालहु निकी पुरसलात' (फ़रीद)।

पुराण *(अप० पारि०)*

अपभ्रंश-साहित्य में 'पुराण' का अभिप्राय हिंदुओं के ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, पुराण आदि पुराणों (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नहीं जिनका वर्ण्य-विषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित होता है। वहाँ 'पुराण' पौराणिक शैली में लिखे प्रबंध-काव्य का द्योतक है। जैनों ने 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) और हिंदू 'पुराणों' (दे०) के अनुकरण पर अपने अलग 'पुराण' बनाए थे और इन जैन-पुराणों से प्रभावित होकर जैन-कवियों ने पौराणिक प्रबंध-काव्यों की रचना की थी। पुराणों की शैली से तात्पर्य है कि उसमें पौराणिक-धार्मिक आख्यान होते हैं, कथानक में अन्विति कम होती है, अवांतर कथाओं की अधिकता और घटनाओं की विविधता होती है, अलौकिक और अप्राकृत तत्त्वों का अधिक उपयोग होता है, कथा के भीतर कथा कहने और संवाद-रूप में कथा कहने की प्रवृत्ति होती है, भवांतरों का वर्णन होता है, साथ ही उपदेश देना या किसी मत-विशेष का प्रचार करना उनका उद्देश्य होता है (डा० शंभूनाथ सिंह—'हिंदी महाकाव्य का स्वरूप-विकास', पृ० 150)।

पुराण-शैली में लिखे हुए काव्य दो रूपों में प्राप्त होते हैं। एक तो ऐसे काव्य हैं जिनमें 63 शलाका पुरुषों या अनेक धार्मिक महापुरुषों का एक-साथ जीवन-चरित काव्यमय वर्णनों के साथ वर्णित होता है। जैसे पुष्पदंत का 'महापुराण' (दे०), स्वयंभू का 'पदम-चरिउ' (दे०), 'रिट्ठणेमि चरिउ' (दे०) या 'हरिवंश पुराण'। दूसरे ऐसे हैं जिनमें एक ही धार्मिक पुरुष का चरित वर्णित होता है। जैसे 'जंबूस्वामी-चरिउ' (दे०), 'पासुपुराण', 'णेमिणाह-चरिउ' इत्यादि। ऐसे काव्यों की विशेषता यह होती है कि उनमें किसी पौराणिक या धार्मिक व्यक्ति का जीवन-चरित जैन-परंपरानुकूल वर्णित होता। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से उसके कथानक में अधिक परिवर्तन नहीं कर सकता। इस पुराण-शैली के काव्य पौराणिक विषयों पर लिखे गये धार्मिक काव्य हैं, पुराण नहीं। इनमें शृंगार और युद्ध के वर्णन भी मिलते हैं। इनमें अवसरानुकूल प्रकृति-वर्णन, प्राकृतिक वस्तुओं—संध्या, प्रभात, चंद्रोदय, नदी आदि—का सुंदर चित्रण किया गया है। स्त्रियों के शारीरिक सौंदर्य, जल-क्रीड़ा, रण-प्रयाण, युद्ध आदि के विशद वर्णन किए गए हैं।

पुराण *(सं० पारि०)*

ईसा की दूसरी शती से लेकर आठवीं शती के बीच रचित हिंदुओं की धार्मिक, आध्यात्मिक-दार्शनिक अवस्थाओं-मान्यताओं से परिपूर्ण संस्कृत-साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग। रचयिता के रूप में वेदव्यास के नाम से संबद्ध पुराणों की संख्या अठारह है: ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्मांड। इसके अतिरिक्त 'देवी भागवत' नामक पुराण का भी उन्नीसवें पुराण के रूप में उल्लेख किया जाता है। पुराणों के अतिरिक्त व्यास के ही नाम से संबद्ध अठारह उपपुराण भी हैं: सनत्कुमार, नरसिंह, नंद, शिव, धर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, उशनस्, मानव, वरुण, काली, महेश्वर, सांब, सौर, पाराशर, मारीच और भार्गव। पुराणों का प्रसिद्ध लक्षण है: 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वंतराणि च वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।' 'अमरकोष' (दे०) के अनुसार पुराणों के आन्वीक्षिकी, दंडनीति, तर्क-विद्या, अर्थशास्त्र और आख्यायिका—पाँच प्रमुख अंग हैं (अमरकोष 1/9)। इस प्रकार 'पुराण' लोक और विचार के बृहद् कोष हैं जिनमें प्राचीन भारतीय इतिहास से संबद्ध प्रायः प्रत्येक उल्लेखनीय घटना, ज्योतिष्, व्याकरण, अलंकारशास्त्र, चिकित्सा, आदि भारतीय ज्ञान के सभी महत्त्वपूर्ण अंगों का समावेश है। भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, कला, पुरातत्त्व आदि से संबद्ध कोई भी अध्ययन पुराणों के बिना पूरा नहीं हो सकता।

पुराण *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600 ई० पू०]

'पुराण' किसी एक काल की रचना नहीं हैं। पुराणों के रचयिता व्यास हैं। 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है। पुराणों की संख्या 18 है। ये पुराण हैं—मत्स्य, मार्कंडेय, भविष्यत, भागवत, (दे०) ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, वामन, वराह, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद पद्म, लिंग, गरुड़, कूर्म तथा स्कंद।

पुराण भारतीय धर्म एवं समाज के इतिहास-ग्रंथ हैं। पुराणों के अंतर्गत सृष्टि के आरंभ से लेकर मानव के विकास तक का इतिक्रम भी उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य किस प्रकार के कर्मों से किस प्रकार का जन्म ग्रहण करता है, यह व्यवस्था भी पुराणों में वर्तमान है। अंतःकरण-शुद्धि के लिए व्रत एवं उपवासों का वर्णन भी पुराणों में प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, पुराणों का वंशावलि-वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। पुराणों की अतिशयोक्तियों एवं उनकी प्रवृत्तिपरक शैली के कारण कतिपय विद्वान् पुराणों को गल्प मात्र मानते हैं, परंतु यह कल्पना असमीचीन है। 'पुराण' प्रवृत्तिमार्गी हैं। धर्म-कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवृत्त करने के लिए पुराणों का अतिशय महत्त्व है। पुराणों की साहित्यिकता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। साहित्यिकता के कारण ही उनमें रोचकता भी आ गई है। इस प्रकार पुराणों की वर्णन शैलीवैज्ञानिकों जैसी तथ्य-कथन की न होकर साहित्यिक एवं प्रांजल है।

समग्र रूप से भारतीय इतिहास, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का महत्त्व बेजोड़ है। सामाजिक एवं भौगोलिक दृष्टि से भी पुराणों की महत्ता श्लाघ्य है।

पुराण-कालक्षेपमु *(ते० पारि०)*

किसी पंडित द्वारा कई श्रोताओं के सामने प्रति दिन नियमित रूप से किसी पुराण (दे०) या महाकाव्य (दे०) का संपूर्ण व्याख्यात्मक पाठ करना ही 'पुराण-कालक्षेपमु' है। रात के समय पुराण में रुचि रखने वाले श्रोतागण, जो प्रायः अल्प-शिक्षित होते हैं, एकत्र हो जाते हैं और उनके सामने एक विद्वान व्यक्ति किसी पुराण को समझाता हुआ पाठ करता है। इस प्रकार प्रत्येक दिन एक-एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग का पाठ करते हुए कई सप्ताहों में एक पुराण को समाप्त करते हैं।

'पुराण-कालक्षेपमु' का प्रमुख लाभ यही है कि साधारण जनता के बीच हमारे साहित्य, धर्म एवं दर्शन का यत्किंचित प्रसारहोता है। इस प्रकार वे लोग अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करके अपने ज्ञान को बढ़ा सकते हैं।

पुराणी, अंबालाल *(गु० ले०)* [समय 1898—1967 ई०]

गुजराती-साहित्य में अरविंद-दर्शन का प्रभाव श्री पुराणी के लेखों के द्वारा आया। ये 1920 ई० से अरविंद आश्रम, पांडिचेरी में साधक बनकर गये और अरविंद आश्रम में ही इनका निधन हुआ। इन्होंने अरविंद की कई पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद भी किया है जिनमें 'सावित्री' काव्य और 'दिव्य-जीवन' प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने विचारात्मक निबंध भी लिखे हैं और इनके 'पथिकनां पुष्पो' तथा 'दर्पणना टूकड़ा' दो विचारात्मक निबंध-संकलन प्रकाशित हुए हैं। इनके चिंतन पर उपनिषद् और अरविंद दर्शन का गहरा प्रभाव है।

पुरुरवा (सं० पा०)

यह प्रयाग देश का राजा और सोमवंश का प्रतिष्ठापक था। ऋग्वेद (दे० संहिता) में इसे 'ऐल' कहा गया है, क्योंकि यह 'इड़ा' नामक यज्ञीय देवी का वंशज था। इसने सौ बार अश्वमेध यज्ञ किए थे। इसका राज्य पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशाओं में गंगा के दोआब, मालवा तथा पूर्व राजपूताना प्रदेशों तक फैला हुआ था। ऋग्वेद में सर्वप्रथम उर्वशी (दे०) तथा पुरुरवा का प्रणय-संवाद मिलता है। फिर यही संवाद 'शतपथ ब्राह्मण', 'महाभारत' (दे०) में अनेक काव्य-नाटकों में विभिन्न कथाओं के रूप में प्रस्तुत होता रहा। इंद्रलोक से भूतल पर उतरी उर्वशी पुरुरवा की पत्नी के रूप में रही, किंतु एक शर्त के कारण वह इसे छोड़कर गंधर्व लोक वापस चली गई। इसके वियोग में पागल बना पुरुरवा इधर-उधर भटकता रहा। इसकी इस स्थिति का चित्रण अनेक कवियों ने मार्मिक रूप में किया है। इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ भी पुरुरवा के साथ जुड़ी हुई हैं।

पुरुषोत्तम कवि, नादेल्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1863 ई. मृत्यु—1938 ई०]

1864 ई० में बंगाल की खाड़ी में आए आँधी-तूफ़ान के कारण पुरुषोत्तम कवि के पिता इस हैदराबाद आए और यहाँ 12 वर्ष तक रहे। उस समय इस प्रतिभाशाली बालक ने अरबी-फ़ारसी, उर्दू-दक्खिनी भाषाएँ सीख लीं। तेलगु और संस्कृत भाषाओं में अच्छी विद्वत्ता प्राप्त की। मेधा दक्षिणामूर्ति की उपासना से कविता करने की सामर्थ्य प्राप्त की। पिता की मृत्यु के बाद आंध्र प्रदेश जाकर, मिडिल की परीक्षा पास कर, अध्यापक बने। अपने सोलहवें वर्ष में ही 'अहल्या संक्रंदनमु' नामक यक्षगानमु (दे०) की रचना की जो 1880 ई० में प्रकाशित भी हो गया।

सन् 1880 ई० में आंध्र-देश में आए 'महाराष्ट्र नाटक समाज' (जो धारवाड़ से होते हुए आने के कारण 'धारवाड़ नाटक मंडली' कहलाए) के प्रभाव और दासानि-वेंकटस्वामी नायुडु की प्रेरणा से इन्होंने हिंदी-हिंदुस्तानी में 1884 ई० से लेकर 1886 ई० के मध्य तक 32 नाटकों की रचना की। इसमें 'रामदासचरित्रमु' को स्वयं कवि ने 1916 ई० में तेलुगु लिपि में प्रकाशित किया था। शेष उपलब्ध 5 नाटकों और रामायण-नाटक के पद्यों को कवि के पुत्र मेधा दक्षिणामूर्ति शास्त्री जी ने 1940 ई० में तेलुगु लिपि में प्रकाशित किया।

कवि ने तेलुगु भाषा में 5 नाटकों की रचना की थी। इनके अतिरिक्त काव्य (तेलुगु और संस्कृत,)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तोत्र, वर्णन, निघंटु, शास्त्रग्रंथ आदि कुल मिलाकर 112 पुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने 'बुधविधेयी' नामक पत्रिका तीन वर्ष तक चलाई।

कवि चित्र-कविता लिखने के प्रेमी थे। मछलीपट्टणम की जनता ने इनके रचना-कौशल से विस्मित होकर, इन्हें 'सरस चतुर्विध (आशु, चित्र, बंध-गर्भ) कविता साम्राज्य धुरंधर' के विरुद से सम्मानित किया। इनकी शिष्य-मंडली बड़ी है। समाज-सेवक के रूप में भी इन्होंने अच्छा नाम कमाया था।

तेलुगु-नाटक-रचना में पात्रोचित भाषा के प्रयोग तथा नाटकों में गीतों और पद्यों को स्थान देने वाले सर्वप्रथम भारतीय नाटककार ये ही हैं।

तेलुगु के काव्य तथा नाटक के क्षेत्र में पुरुषोत्तम कवि का विशिष्ट स्थान है। राष्ट्रभाषा में 32 नाटक लिखने वाले इस अहिंदी-भाषी लेखक का हिंदी-नाटक-साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुरुषोत्तम देव *(उ० कृ०)*

यह गोदाबरीश मिश्र (दे०) का ऐतिहासिक नाटक है। गोदाबरीश मिश्र सत्यवादी गोष्ठी (दे० सत्यवादी साहित्य) के सदस्य थे; अतः जातीयता एवं राष्ट्रीयता की भावना उनकी रचनाओं का मुख्य स्वर है। पुरुषोत्तम देव जातीय वीर के रूप में चित्रित हैं। 'वैयक्तिक प्रेम से राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्व दिया गया है। स्वतंत्रता के पूर्व लिखे गये इस नाटक का महत्त्व असंदिग्ध है। नाटक की नाटकीयता तब और भी निखर उठती है जब उदात्त जातीय चेतना की भव्य स्थापना के साथ सुकुमार मानवीय संवेदना की भी पूर्ण रक्षा होती है। नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल एवं मार्मिक है।

पुरुषोत्तम देव *(उ० पा०)*

पुरुषोत्तम देव गोदाबरीश मिश्र (दे०) की इसी नाम की कृति का प्रधान पात्र है। इसके माध्यम से लेखक ने जातीय चेतना एवं जातीय महत्त्व की भावना का उद्रेक कर जातीय गौरव की रक्षा के लिए सर्वस्व उत्सर्ग कर देने का मौन संकेत दिया है।

पुरुषोत्तम देव कपिलेंद्र देव के कनिष्ठ पुत्र हैं। अन्य अट्ठारह पुत्रों के होते हुए भी पिता उन्हें राजसिंहासन दे जाते हैं। उदार पुरुषोत्तम देव विद्रोही भाइयों को पराजित करने के बाद भी क्षमा कर देते हैं तथा उन्हें एक-एक राज्य का सामंत बना देते हैं।

दक्षिण में युद्ध करते समय एक आहत सैनिक के रूप में पुरुषोत्तम देव को कांची-राजकुमारी की सेवा प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है, जो बाद में प्रणय का रूप ले लेता है। पुरुषोत्तम देव का विवाह-प्रस्ताव कांची-नरेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है—कारण महाराज एक चांडाल के हाथों कन्यादान नहीं कर सकते। उड़ीसा का यह राष्ट्रीय नियम है कि महाराज रथयात्रा के समय रथ पर 'छेरापहँरा' करते हैं। इसी पर कांची-नरेश का कटाक्ष था।

पुरुषोत्तमदेव इस राष्ट्रीय अपमान से जल उठते हैं। इनके आक्रमण से कांची ध्वस्त होता है। पद्मावती बंदिनी के रूप में लाई जाती है और महाराज का महामंत्री को आदेश होता है कि 'चांडाल के साथ पद्मावती का विवाह कर दिया जाए।' महामंत्री इस आज्ञा को नतमस्तक हो स्वीकार करता है।

एक वर्ष बाद जब उड़ीसा का राष्ट्रीय पर्व रथयात्रा होता है तो महाराज चांडाल बनते हैं। महामंत्री महाराज की आज्ञा का पालन करता है। पद्मावती चांडाल पुरुषोत्तम देव को समर्पित कर दी जाती है। इस पर जनता हर्षोत्फुल्ल है, और महाराज विस्मयविमूढ़। 'महामंत्री' के अधरों पर विनम्र स्मित रेखा है।

पुरुरवश्चरित्रमु *(ते० कृ०)*

यह राय न मंत्री और नरसमांबा के पुत्र कनुर्पति अब्बयामात्य (अठारहवीं शती के मध्यभाग में जीवित) का काव्य है। कनुर्पति अब्बयामात्य ने 'अनिरुद्ध चरित्रमु', तथा 'कविराज मनोरंजनमु' नामक दो प्रबंध-काव्यों की रचना की है। 'इनमें 'अनिरुद्धचरित्रमु' प्रथम रचना होने के कारण प्रौढ़ नहीं है। 'कविराजमनोरंजमु' का दूसरा नाम 'पुरुरवश्चरित्रमु' है। इसमें चक्रवर्ती पुरुरवा की कथा वर्णित है। यह प्रौढ़ काव्य है। सुप्रसिद्ध श्लेप-काव्य 'वसुचरित्रमु' (दे०) [श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) के युग के कवि रामराजभूषणडु (दे०) कवि की कृति] से अत्यधिक प्रभावित होने से इस काव्य को 'पिल्ल (छोटा) वसुचरित्र' कहते हैं। इसमें कथावस्तु की अपेक्षा कवि ने रचना-चमत्कार को प्रधानता दी है। इसलिए वर्णन तथा शिल्प प्रशंसनीय है।

अखंड सच्चिदानंदावधूतुडु नामक परिव्राजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी 'पुरुरवश्चरित्रम्' नामक वेदांत-ग्रंथ की रचना की है। इस काव्य में पुरुरवसु को नारद के तत्त्वोपदेश का वर्णन है। इस कवि के पूर्वाश्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

पुरोगामी साहित्य *(म० क्र०)* [रचना-काल—1941 ई०]

'पुरोगामी साहित्य' नामक साहित्य-समालोचनात्मक ग्रंथ के लेखक श्री शं० द० जावडेकर हैं। इसका प्रकाशन 1941 ई० में हुआ था।

मराठी में प्रगतिशील साहित्य को 'पुरोगामी साहित्य' कहते हैं। 'प्रगति' शब्द को प्रत्येक साहित्यकार ने अपनी दृष्टि से स्पष्ट किया है। जिन पर मार्क्स एवं फ़ायड की चिंताधारा का प्रभाव है उनके अनुसार सामाजिक क्रांति द्वारा मानव की अर्थेषणा तथा कामेषणा का समाधान ही प्रगति है। इस चिंतन-पद्धति का विरोध जावडेकर ने अपने 'पुरोगामी साहित्य' में किया है और प्रगतिशील साहित्य की भारतीय संस्कृति के अनुकूल नयी परिभाषा प्रस्तुत की है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं, जिन्हें प्राप्त कर मानव-जीवन सफल होता है। अर्थ और काम-प्रधान संस्कृति पशु-संस्कृति है। धर्म और मोक्ष-प्रधान संस्कृति मानव-संस्कृति है। मानव को चाहिए कि वह धर्म के अनुसार आचरण कर अर्थ तथा काम संपादित कर मोक्ष की ओर उन्मुख हो।

इन्होंने आधुनिक युग के बुद्धिजीवी वर्ग के लिए धर्म तथा मोक्ष की बुद्धिसम्मत परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। इनके विचार में आत्मोन्नति एवं समाज-निर्माण के लिए आवश्यक बंधन धर्म है—स्वार्थ, अहं से मुक्ति पाकर आत्मोन्नति तथा संसार-कल्याण का प्रयत्न मोक्ष है। इन्होंने साहित्य में स्वार्थ-त्याग और नैतिक आचरण के चित्रण पर बल दिया है। इस साहित्य-दृष्टि का समर्थन कालेलकर (दे०), साने गुरु जी (दे०) प्रभृति विद्वानों ने भी किया है।

इस प्रकार जावडेकर जी अध्यात्म तथा नीतिवादी सिद्धांतों के समर्थक रहे हैं। इनका यह ग्रंथ साहित्य-शास्त्रीय ग्रंथ-रचना में अमूल्य है।

पुष्कर प्रभाशंकर चंदरवाकर (गु० ले०) [जन्म—1920 ई०]

पुष्करभाई का जन्म चंदरवा में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा लींबड़ी और अहमदाबाद में संपन्न हुई। 1946 ई० में एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ये अध्यापन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और आज तक इसी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। बीच में अनेक प्रलोभनों को भी छोड़ कर पुष्करभाई ने अपनी अध्यापकीय निष्ठा को प्रमाणित किया है। इनमें लेखन-प्रवृत्ति का उदय बाल्य-काल में हो गया था। इनकी रचनाएँ हैं: 'रांकना रतन', 'नंदवाएलां हेयां', 'बावडाना वले', 'भवनी कमाणी', 'लीलुडां लेजो', 'नवा चीले', 'मानवीनो मालो', 'धरती भारशी झीलशे', 'झांझवानां नीर', (मौलिक उपन्यास); 'पियरनो पडोशी', 'यज्ञ', 'महीना ओवारे', 'रंगीलीला', (नाट्य-साहित्य); 'प्राणीधर', 'बांधणी', 'शकुनवंती', 'खेतनो खेडु', 'अंतरदीप', (कहानी-संग्रह), आदि। इनके प्रमुख प्रकाशनों में उपन्यास और कहानी-साहित्य महत्त्वपूर्ण है। यों गुजरात में इनकी प्रसिद्धि का कारण इनकी लोक-साहित्य में गहरी रुचि है। चंदरवाकर जी लोक-संस्कृति और साहित्य के अध्ययन में अधिक सक्रिय हैं।

पुष्टिमार्ग *(हिं० प्र०)*

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने शुद्धाद्वैतवाद के आधार पर भक्ति का जो संप्रदाय स्थापित किया था उसी का नाम 'पुष्टिमार्ग' है। 'भागवत' (दे०) के 'पोषणं तदनुग्रहः' के आधार पर भगवदनुग्रह के अर्थ में ही 'पुष्टि' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'मुंडकोपनिषद्', 'कठोपनिषद्' एवं 'भागवत' में स्थान-स्थान पर भगवान के अनुग्रह से आत्मा की उपलब्धि की बात कही गई है। पुष्टिमार्गीय भक्त आत्मसमर्पण द्वारा रसात्मक प्रेम के माध्यम से भगवान् की आनंद-लीला में लीन होने को सदैव इच्छुक रहता है। वल्लभाचार्य जी ने भगवान, जीव, जीव को भगवान के अनुग्रह की आवश्यकता, सभी जीव पोषण के अधिकारी हैं अथवा नहीं आदि प्रश्नों का इसी प्रवृत्ति के अंतर्गत सविस्तर उल्लेख किया है। प्रारंभ में इन्होंने श्रीनाथ के मंदिर में बाल-भाव की सेवा-पद्धति प्रारंभ की थी, परिणामतः पुष्टिमार्ग में वात्सल्य भाव की भक्ति का विशेष माहात्म्य प्रतिपादित हो गया था। आगे चलकर वल्लभ ने सख्य और कांतारति को भी स्वीकार कर लिया था। एक स्थल पर इन्होंने स्वयं आकांक्षा प्रकट की है कि मेरे हृदय में गोपियों के विरह का दुःख पैदा हो जाए। विट्ठलनाथ के समय में सख्य और कांतारति का माहात्म्य और अधिक प्रस्थापित हो गया था। परंतु फिर भी गौड़ीय भक्तों ने रागानुगा भक्ति का अनुकरण पुष्टिमार्गीय भक्तों की अपेक्षा अधिक गहराई के साथ किया है। पुष्टिमार्ग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची भगवत्-सेवा को भक्ति माना गया है। इस मार्ग में धार्मिक आचार्य भी पूर्ण गृहस्थ पाए गये हैं, कारण यही है कि इन साधकों ने त्याग की अपेक्षा समर्पण को प्रमुखता दी है। सुतरां पुष्टिमार्ग एक प्रवृत्तिमार्ग है जिसमें मानसिक निवृत्ति पर विशेष बल दिया गया है।

पुष्पदंत *(अप० ले०)* [रचना-काल—दसवीं शती ई०]

पुष्पदंत काश्यप गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशवभट्ट तथा माता का नाम मुग्धा देवी था। ये पहले शैव थे बाद में दिगंबर जैन हो गए थे। इनके पारिवारिक जीवन के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती। संभवतः ये एकाकी थे। स्वभाव के स्वाभिमानी, उग्र एवं एकांतप्रिय व्यक्ति थे। इन्होंने अपने विषय में कहा है—दुबला-पतला साँवला शरीर एकदम कुरूप पर स्वभाव हँसमुख। ये धनहीन थे। इन्हें अपने कवित्व पर अभिमान था। इन्होंने स्वयं को कव्व-मिसल्ल, अभिमान्-मेरु, कविकुल-तिलक, काव्य-रत्नाकर, सरस्वती-निलय इत्यादि उपाधियों से संबोधित किया है।

इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि दुष्टों से सताये जाने पर ये मान्यखेट पहुँचे थे, किंतु कहाँ रहते थे और कहाँ से मान्यखेट पहुँचे थे इसका कोई संकेत नहीं मिलता। मान्यखेट आधुनिक मलखेड़ है जो हैदराबाद (दक्षिण) में है।

इन्होंने राजमंत्री भरत के आश्रय में रह कर 'तिसट्ठि पुरिस गुणालंकार' या 'महापुराण' (दे०), की रचना की थी। उसके बाद भरत के पुत्र नन्न के आश्रय में 'णायकुमार-चरिउ' जसहर-चरिउ (दे०) की रचना की थी।

पुष्पदंत के साहित्य का उद्देश्य शुद्ध धार्मिक है। इनकी कृतियों में कहीं वर्णनात्मक सरल शैली और कहीं अलंकारों से युक्त चमत्कृत शैली मिलती है। इनकी वाणी रसवती है और जिन-भक्ति से पूर्ण है। अपभ्रंश के प्रमुख कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुष्पदंतपुराण *(क० कृ०)* [रचना-काल—तेरहवीं शती का पूर्वार्ध]

गुणवर्मा द्वितीय (समय 1215 ई० के आसपास) की रचना 'पुष्पदंतपुराण' नवम जैन तीर्थंकर पुष्पदंत के चरित का वर्णन करती है। इसमें चौदह आश्वास हैं। नायक का उत्कर्ष दिखाने के लिए कवि ने कथा का विस्तार किया है। 'मृदुपदबंध' और 'सुरुचिरार्थ' से उन्होंने अपनी रचना को 'जिनकथाविस्तार-सार' बनाया है। उन्होंने इसे 'नूतन काव्य' कहा है। यह नूतनता पदलालित्य और प्रसादपूर्ण शैली में है। काव्य के प्रारंभ में उन्होंने पुष्पदंत की स्तुति की है, तत्पश्चात् सिद्धि, सरस्वती, यक्ष-यक्षी, अनुबद्ध केवलि, श्रुतकेवलि, दशपूर्वी, एकादशांगधारी और आचारांगधर का स्तवन किया है। उनके गुरु का नाम मुनिचंद्र और आश्रयदाता का नाम शांतिवर्मा है। शांतिवर्मा को ही उनका काव्य समर्पित है। प्रबंध की दृष्टि से उनका काव्य एक उत्तम काव्य है। कुछ लोग उसे पंडितकाव्य कहते हैं, परंतु उसके वर्णनों में मनोहारिता है और शैली में कसाव। उसमें चित्रित अष्टादश वर्णन उसके महाकाव्यत्व का ही निदर्शन है।

'पुष्प', लाल *(सिं० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

इनका जन्मस्थान सिंध का प्रसिद्ध नगर लाड़काणो है। आजकल ये स्थायी रूप से बंबई में रहते हैं। इन्होंने कहानी, उपन्यास और आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—**कहानी-संग्रह :** 'विश्वास में अविश्वास', 'दाइरो', 'बंधन ऐं निर्माण', 'पुनर्मिलन'; **उपन्यास :** 'हिक सर्द दीवार'। इन्हें अधिक ख्याति कहानीकार के रूप में ही प्राप्त हुई है। ये स्वातंत्र्योत्तर सिंधी-कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये आरंभ में प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर साहित्य-सृष्टि किया करते थे किंतु बाद में ये रोमानवाद से प्रभावित हो गए थे। कुछ वर्षों से इन्होंने नयी कहानी लिखने के भी सफल प्रयोग किए हैं।

पुहळेंदि *(त० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

इनकी एक ही प्रामाणिक पद्य-रचना 'नळ-वेण्पा' मिलती है जिसने इनकी कीर्ति अमर कर दी है। 'महाभारत' (दे०) के 'नलोपाख्यान' की सर्वविदित कथा को स्वयंवर, कलि-ग्रहण, कलि-त्याग-संबंधी तीन कांडों तथा 424 'वेण्पा' (दे०) पद्यों में प्रस्तुत करने वाली यह कृति तमिल-साहित्य के अध्येताओं में पर्याप्त यश पा चुकी है। इस काव्य में मानवहृदयान्वेषी गहरी पैठ तो नहीं मिलती पर लोकानुभव-परिपाक से पूर्ण तथ्यों का प्रभावोत्पादक प्रतिपादन मिलता है। 'वेण्पा' छंद का अभूतपूर्व सशक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोग इस काव्य का वैशिष्ट्य है। यद्यपि यह चतुष्पद वाला स्निग्ध छंद तमिल-साहित्य के प्राचीन 'संगम' काल से ही विकसित हुआ है, तथापि इस कवि के द्वारा ही उसका काव्योपयोगी संगुंफित और प्रवाहपूर्ण रूप सर्वप्रथम हुआ और परवर्ती शतियों के कविगणों के लिए आदर्श बना। 'वेण्पा' के लिए 'पुहळेंदि' (शाब्दिक अर्थ—'यश धारण करने वाला') का नाम छोड़कर किसका लें ?' काव्यगत स्तोत्रों के स्वरूप से यह स्पष्ट है कि ये वैष्णव थे।

इनकी जीवनी के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं और इनकी और 'ओट्टक्कत्तर्' नामक प्रौढ़ कवि की पारस्परिक स्पर्धा की कथाएँ प्रचलित हैं पर इनमें ऐतिहासिक सत्यता निश्चित रूप से नहीं है। 'चेंचिक्कलम्पकम्' नामक एक पद्य-रचना भी इनके द्वारा रची हुई कही जाती है पर यह उपलब्ध नहीं है।

पूंतानम् *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सत्रहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के अनन्य कृष्ण-भक्त कवि हैं। इनके बारे में यह कथा है कि इनके एकमात्र शिशु का दुर्घटनावश देहांत हो गया था और इन्होंने यह घोषणा करते हुए संन्यास ग्रहण किया था कि जब कन्हैया हृदय में क्रीड़ा करता है तो अन्य संतानों की क्या आवश्यकता है ?

पूंतानम् ने द्रविड़ छंदों में अनेक कीर्तन रचे हैं जो भक्तजनों के संध्या-पाठ में नित्य प्रयोग किए जाते हैं। 'ज्ञानप्पाना' (दे०) और 'कुमारहरणम् पाना' भाषा की अमूल्य निधियाँ हैं। 'भाषा कर्णामृतम्' संस्कृत-छंदों में रचित इनकी स्तोत्र-कृति है।

केरल के कृष्ण-भक्त कवि अधिकतर संस्कृत में काव्य-रचना करते थे। यही कारण होगा कि 'अष्टछाप' (दे०) और 'मीरांबाई' (दे०) जैसे कवियों की परंपरा का मलयाळम में अभाव है। परंतु पूंतानम् इस अभाव की सर्वथा पूर्ति करते हैं। संस्कृत पर इनका अधिकार नहीं था इसीलिए जनता की भाषा एवं गेय शैली में ही ये रचना करते रहे। इनके द्वारा बताए गए दार्शनिक तत्त्वों ने भक्त जनों के मन में सीधा प्रवेश पाया और यही इनके महत्त्व का मापदंड है। भारत के महान संत-कवियों के मध्य पूंतानम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पूत्तदु मानुडम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1968 ई०]

'पुत्तदु मानुडम्' शालै इळंतिरैयन् (दे०) की 66 कविताओं का संकलन है। यह कृति चार भागों में विभाजित है। 'नेत्ज्जोड़ु नेत्ज्जम्' शीर्षक प्रथम भाग में कवि ने काव्य के स्वरूप और सच्चे कवि के आदर्शों की चर्चा की है। यहीं काव्य के मूल्यांकन और रसास्वादन की विधि भी बताई गई है। 'विट्टकुरै तोट्टकुरै' शीर्षक द्वितीय भाग में कवि ने लोगों की कष्ट-सहन-क्षमता की प्रशंसा करने के साथ-साथ उन्हें उन पाखंडियों से बचने की चेतावनी दी है जो कि प्राचीन परंपराओं को वर्तमान समाज पर लादना चाहते हैं। 'शेयल् मणवकुम तोळ्कळ्' नामक तृतीय भाग में उसने यह घोषणा की है कि वह मनुष्य के वीरोचित कर्मों और उच्चादर्शों की प्रशंसा में ही कविताओं की रचना करेगा। उसने मनुष्य की ज्ञान और परिश्रम-साध्य उपलब्धियों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ उन्हें यह आश्वासन भी दिया कि इस संसार की कोई भी वस्तु उनकी पहुँच के बाहर नहीं है। 'पुदियदोर् नागरिकम्' शीर्षक भाग में उसने एक नूतन समाज की कल्पना की है। उसका विश्वास है कि यदि मनुष्य अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहचान ले तो ऐसे समाज का उदय अवश्य ही होगा।

'पूत्तदु मानुडम्' एक विलक्षण कविता-संग्रह है। यह संग्रह एक महाकाव्य का आभास देता है क्योंकि इसमें संगृहीत कविताओं में विचारों का एक अविच्छिन्न प्रवाह है और ये विचार क्रमशः विकसित होते गए हैं। कविताओं का मूल स्वर यह है कि यदि मनुष्य संसार को और उसमें व्याप्त शक्ति और ज्ञान को पहचान लें तो वे एक ऐसे संसार का निर्माण कर सकते हैं जहाँ कष्ट, विपत्तियाँ आदि नहीं होंगी। द्वितीय एवं तृतीय भाग की कुछ कविताओं में कवि ने सामाजिक उत्थान के लिए प्रचार किया है। चतुर्थ भाग की कविताओं में विश्व-बंधुत्व की भावना, समाजवाद, आदर्श मानवता आदि उच्च विचारों और आदर्शों की चर्चा है। यह कृति अत्यंत सरल शैली में रचित है। कवि ने अपने नवीन विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छंदों का प्रयोग किया है।

तमिल-साहित्य के इतिहास में इस कृति का विशिष्ट स्थान है क्योंकि यह सामयिक तमिल-काव्य में प्राप्त तमिल राष्ट्रीयता और प्रादेशिकता की भावना से मुक्त है।

पूरन भगत *(पं० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः उन्नीसवीं शती का पाँचवाँ दशक]

इसके रचयिता कादरयार (दे०) ने पूरन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगत की कथा के आधार पर दो रचनाएँ 'किस्सा पूरन भगत', और 'कलियाँ पूरन भगत'—लिखी हैं। मुख्य कथा समान होते हुए भी दूसरी कृति में अलौकिकता, पौराणिकता, और काल्पनिकता का प्राधान्य है। काव्य-सौष्ठव और लोकप्रियता की दृष्टि से 'किस्सा पूरन भगत' ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें तीस-तीस 'बैतों' (दे०) की पाँच सीहरफियाँ (दे०) हैं जिनमें सियालकोट के राजा शालिवाहन के पुत्र 'पूर्ण' की कथा है। विमाता लूणा (दे०) के प्रेम-प्रस्ताव को ठुकराने के कारण पूर्ण को अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। अंत में गुरु गोरखनाथ का शिष्यत्व स्वीकार कर वह संसार के भोग-विलास को तिलांजलि दे देता है। रचना में गोरखनाथ की अलौकिक शक्तियों का सविस्तर वर्णन है। ग्रंथारंभ अथवा ग्रंथांत में ईश्वर-वंदना या कवि-परिचयात्मक छंद नहीं हैं। घटनाओं और दृश्यों का स्वाभाविक अंकन, वातावरण का सजीव चित्रण और सरल शब्द-चयन रचना की मुख्य विशेषताएँ हैं। नारी की वासना, पुत्र की आचरण-निष्ठा, माता का वात्सल्य तथा सामंती समाज के अविवेक का वर्णन कवि ने पूर्ण मनोयोग से किया है। प्रेम के वासना-प्रधान रूप की निंदा और संसार की असारता की अनुभूति जगाने वाले नैतिक स्वर के कारण इस रचना को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसका प्रामाणिक पाठ भाषा-विभाग पटियाला, द्वारा प्रकाशित 'कादरयार' में संकलित है।

पूरनमाशी *(पं० कृ०)*

'पूरनमाशी' उपन्यास पंजाब के गाँव की पृष्ठभूमि में प्रेम-कथा को प्रस्तुत करता है। यह प्रथम उपन्यास है जिसके द्वारा जसवंत सिंह कँवल (दे०) ने ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण करने के अतिरिक्त समाजवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। उपन्यास के अंत में 'ज्ञानी' के चरित्र द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने के समय क्रांति की बढ़ती चेतना को व्यक्त किया है। पंजाब के विभाजन के अवसर पर उपन्यास के दो प्रमुख पात्र रक्तपात के वातावरण में अपने दूसरे मित्रों की सहायता से मुसलमानों को कत्ल होने से बचाते हैं।

पूरनसिंह, प्रो० *(पं० ले०)* [जन्म—1881; मृत्यु—1931 ई०]

प्रो० पूरनसिंह का जन्म ऐबटाबाद के एक गाँव में हुआ था। इन्होंने आरंभिक शिक्षा लाहौर में प्राप्त की। जापान के प्रवास-काल में इन पर बौद्ध-मत का गहरा प्रभाव पड़ा और ये बौद्ध भिक्षु बन गए। बाद में स्वामी रामतीर्थ के संपर्क में आने पर ये वेदांती बन गए। इनका व्यक्तित्व अद्भुत एवं अत्यंत समृद्ध था।

प्रो० पूरनसिंह ने अपनी कृतियों द्वारा पंजाबी की परंपरा से अलग हट कर नये और मौलिक रूप में काव्य-रचना की। कुछ विद्वान इनके काव्य पर भाई वीरसिंह (दे०) का प्रभाव मानते हैं। प्रो० पूरनसिंह की रहस्य-भावना या अध्यात्मवाद भाई वीरसिंह की अपेक्षा कहीं व्यापक और गहन है जिसकी परिधि में संपूर्ण विश्व, साधारण से साधारण वस्तु, लघु से लघुतम व्यक्ति, आ जाता है। पूरनसिंह की कविता पर पाश्चात्य साहित्य का—विशेष रूप से अँग्रेज़ी के रोमानी कवियों—वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और अमरीका के कवि वाल्ट विटमेन का गहरा प्रभाव है। प्रो० पूरनसिंह के दो कविता-संग्रह 'खुल्ले-घुंड' और 'खुल्ले मैदान' (दे०), उपलब्ध हैं। पहले संग्रह की कविताएँ दार्शनिक और विचार-प्रधान हैं। दूसरा संग्रह अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण है। इस संग्रह की कविताएँ मुक्त छंद में रचित हैं। इन कविताओं में कवि की प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादी है। इसमें कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोवेगों की तीव्रता और जीवन के प्रति गहरी आसक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

पूरप्रबंधम् *(मल० कृ०)*

वेण्मणि महन् नंपूतिरिप्पाड् (दे० नंपूतिरिप्पाड्, अच्छन् वेण्मणि) ने इस ग्रंथ का प्रारंभ 1873 ई० में किया गया था। पूरे हज़ार श्लोक लिखने की इच्छा के कारण कई वर्षों में इसकी रचना पूरी हुई। वेण्मणि महन् नंपूतिरि और उनके पिता दोनों उद्दाम श्रृंगार रस की रचना में सिद्धहस्त थे—यहाँ तक कि 'वेण्मणि' शब्द घोर श्रृंगार का नामांतर बन गया। 'पूरप्रबंधम्' में कवि त्रिचूर नगर के वार्षिक पूरम् महोत्सव का आँखों देखा वर्णन करता है। एरनाकुलम (कोचीन) से निकलकर त्रिचूर पहुँचने तक जितने भी सुंदर दृश्य कवि की नज़र में पड़ते हैं उन सबका विशद हृदयग्राही चित्रण 'पूरप्रबंधम्' का विषय है। इस काव्य में श्रृंगारिकता के साथ ही साथ हास्यप्रियता भी है। कवि ने अपनी काव्य-भाषा को संस्कृत के अतिशय प्रभाव से मुक्त कर सहज देशी शब्दों के प्रयोग का प्रयत्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरबी *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की कविताओं का संग्रह है जो 1925 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसके मूल स्वर हैं—

(अ) अतीत में प्रकृति एवं मानव के रूप-रस-पूर्ण जीवन के प्रति आकर्षण, उसी जीवन में लौटने की आकांक्षा एवं आसन्न मृत्यु की पटभूमिका में जीवन-भोग की करुण व्यर्थता।

(आ) आसन्न मृत्यु की पद-ध्वनि एवं महा-यात्रा का आह्वान।

कवि भगवान् की लीला को प्रत्यक्ष देख रहा है और पृथ्वी की धूल-मिट्टी, वृक्ष-लता, जल-वायु प्रकृति के विचित्र रूप-रस तथा मनुष्य के स्नेह-प्रेम में स्वयं को विलीन कर देना चाहता है।

यह तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग का नाम 'पूरबी' है। इसमें 16 कविताएँ हैं। दूसरे भाग का नाम 'पथिक' है जिसमें 61 कविताएँ हैं। तीसरे भाग का नाम 'संचिता' है और इसमें 11 कविताएँ हैं।

'पूरबी' की 'सत्येंद्रनाथ दत्त' एक प्रसिद्ध एवं लंबी कविता है जिसमें कवि ने 'दत्त' के प्रति असीम स्नेह को, उनके काव्य एवं व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को, अनुपम काव्य एवं छंद में प्रस्तुत किया है।

पूर्णम्मा *(ते० कृ०)*

यह तेलुगु-साहित्य के आधुनिक काल के युग-पुरुष गुरुज़ाडा अप्पाराव (दे०) का खंडकाव्य है। इसमें अनमेल विवाह अथवा वृद्ध-विवाह की पोल खोली गई है। यह करुणरस-प्रधान गीत-काव्य है। पुत्तडि बोम्म पूर्णम्मा (सोने की मूर्ति पूर्णम्मा) को धन के लोभ में पड़कर उसके पिता एक बूढ़े के गले मढ़ देना चाहते हैं। बूढ़े पति को देखकर उस कुसुमकली की आशाओं पर तुषार-पात हो जाता है। बूढ़ा उसे अपने घर ले जाता है। वह पूजा के बहाने मंदिर जाकर, वहाँ आत्महत्या कर लेती है आत्महत्या से पूर्व पूर्णम्मा अपने भाई-बंधुओं का संबोधन करते हुए जो गीत गाती है, वह अत्यंत मर्मस्पर्शी एवं करुणाजनक है। शुल्क लेकर बूढ़ों के हाथ कन्याओं के बेचने की कुप्रथा पर व्यंग्य करते हुए लिखी गई यह रचना आंध्र में अत्यंत लोकप्रिय है।

'पूर्ण', राय देवी प्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

इनके पिता राय बंशीधर जबलपुर में वकील थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् ये चाचा के संरक्षण में पढ़े। उत्तम श्रेणी में बी० ए० और वकालत पास करके ये कानपुर में वकील हो गए। ये सभाप्रिय और दर्शनविद् थे। 'रसिक-समाज' की स्थापना कर इन्होंने पुरानी ब्रजभाषा-काव्य-परंपरा को जीवित रखा।

इनका 'धाराधर धावन' [मेघदूत (दे०) का अनुवाद] सरस और ललित पदावली के लिए प्रसिद्ध है। खड़ी बोली का प्रचलन हो जाने पर इन्होंने बहुत-सी रचनाएँ खड़ी बोली में कीं जो 'पूर्ण-संग्रह' में संगृहीत हैं। इन्होंने 'चंद्रकला-भानुकुमार नाटक' एक कल्पित कथा के आधार पर लिखा है जो बहुत बड़े आकार का साहित्यिक नाटक है। राष्ट्र-प्रेम की दृष्टि से लंबी कविता 'वसंत वियोग' और प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से 'अमलतास' खड़ी बोली की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके कृतित्व में परंपरा और नवीनता का अद्भुत सम्मिश्रण है। देशभक्ति और राजभक्ति का सामंजस्य भी इनके काव्य में दिखाई देता है।

पूर्णसिंह अध्यापक *(हिं० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

इनका जन्म सिख परिवार में हुआ था। ये हिंदी के उन अमर लेखकों में से हैं जिनकी ख्याति का मूल आधार रचना-वैशिष्ट्य है, न कि परिमाण। फलतः ये केवल आठ निबंधों की रचना करने पर भी हिंदी-निबंध के इति-हास में चिर स्थायित्व प्राप्त कर चुके हैं। इनके निबंधों में भावात्मकता, दार्शनिकता तथा सामाजिकता का अपूर्व सम्मिलन है। बिंबात्मकता एवं कला का ओज इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। 'सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबंध' पुस्तक में इनके छह निबंध संकलित हैं।

पूर्वबंग-गीतिका *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

उत्तर-पूर्व एवं पूर्व बंगाल की नाना लोक-गाथाओं के संग्रह का संपादन कर दिनेशचंद्र सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से इन्हें 'पूर्वबंग गीतिका' एवं 'मयमनसिंह गीतिका' (दे०) के नाम से चार खंडों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1924 ई० में प्रकाशित किया। इन काव्य-गाथाओं में कई असंपूर्ण हैं और कइयों में प्रक्षिप्त अंश जुड़ा हुआ है। द्विज कानाई, नयनचांद घोष, द्विज ईशान, चंद्रावती, फकिर फैजु आदि ग्राम्य कवियों ने इन गाथाओं में ग्राम-हृदय के गहरे स्तर से स्वतः उच्छ्वसित प्रेम-तत्त्व की गहरी अभिव्यक्ति की है। मूल रूप से इनमें प्रेम की अकृत्रिम वेदना की स्वच्छ धारा की ही अभिव्यक्ति अधिक हुई है। 'मयमनसिंह गीतिका' में 'महुआ' नामक गाथा सर्वाधिक रोमानी एवं मनोरम है। इसमें इतिहास, पुराण, धर्मतत्त्व, दर्शन समाजतत्त्व एवं समाज के विभिन्न अंशों के चित्र मिलते हैं परंतु इसका वास्तविक मूल्य इनके कवित्व-रस में एवं मानव-मन के सुख-दुःख एवं प्रेम-विरह के वर्णन में निहित है।

इन गीतिकाओं में पुरोहित-शासित या समाज-शासित प्रेम के स्थान पर हृदय के उन्मुक्त प्रेम का वर्णन अधिक है। कथानक, भाषा वर्णन-कौशल, कल्पना के साथ यथार्थ के सुष्ठु मिश्रण एवं रसाश्रित-संयत परिसमाप्ति इन गीतिकाओं की विशेषताएँ हैं। गीत-कविता की तरह इनका भी उपजीव्य प्रेम है, परंतु वह प्रेम राधा-कृष्ण का नहीं गाँव के दरिद्र किसानों का है जिसमें आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति अधिक है। इन गीतिकाओं की एक और विशेषता यह है इनमें हिंदू-मुसलमान उभय संप्रदाय के लोगों की कहानियों का सहानुभूति के साथ अंकन हुआ है। इन काव्य-संग्रहों में जन-साधारण की चिराचरित धर्मसाधनाओं का उल्लेख है परंतु साधना-प्रणाली की व्याख्या की अपेक्षा इनमें सर्वमानवीय हृदय की आकुलता ही असाधारण रूप-चेतना एवं प्रकृति-शक्ति की भावप्रकाशिका शक्ति की सहायता से व्यंजनामय होकर प्रकट हुई है।

पूर्वालाप (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1923 ई०]

कवि काना (मणिशंकर रत्नजी भट्ट) का काव्य-संग्रह 'पूर्वालाप' 1923 ई० में उनके आकस्मिक निधन के समय प्रकाशित हुआ। इसमें उनके खंडकाव्य और प्रगीत-काव्य सम्मिलित हैं। 'अतिज्ञान', 'वसंतविजय', 'चक्रवाक मिथुन' और 'देवयानी' खंडकाव्य कवि काना की पूर्णरूपेण विकसित कारयित्री प्रतिभा का परिचय देते हैं। उन्होंने गुजराती-खंडकाव्य के बाह्य और आभ्यंतर स्वरूप का सर्वांग सुंदर निर्माण किया। 'अतिज्ञान' और 'वसंतविजय' खंड काव्यों की विषय-वस्तु 'महाभारत' (दे०) से ली गई है। 'चक्रवाक मिथुन' कल्पनाश्रित है और 'देवयानी' खंडकाव्य में पुराण-प्रसिद्ध ययाति उपाख्यान में वर्णित कच-देवयानी की कथा को रूपायित किया गया है। प्रसंग, परिस्थिति और पात्र के मनोभावों के चित्रण में काना कवि दक्ष हैं। खंडकाव्यों के प्रारंभ, मध्य और अंत का संयोजन बड़ी सतर्कता और सिद्धहस्तता से किया गया है। इससे कहीं असंगति, शिथिलता या विश्रृंखलता का दोष दृष्टिगत नहीं होता। इन खंडकाव्यों में 'शाश्वत अनंत तत्त्व' में उस तेजोमय प्रदेश की खोज की व्याकुलता अभिव्यक्त होती है जहाँ 'सविता' सदैव अपना दिव्य प्रकाश फैलाता रहता है। 'पूर्वालाप' के प्रगीतों में कवि की धर्म-भावना, ऊर्ध्वमुखी अभीप्सा, मित्र-स्नेह, प्रणय की कोमल भावना इत्यादि का निरूपण है। 'उपहार', 'उद्गार', 'वासलना नयन', 'आपणी रात', और 'सागर अने शशी' इसकी विशेष उल्लेखनीय कविताएँ हैं। अंतिम कृति तो उत्तम काव्य के सभी तत्त्वों से विभूषित है।

पूर्वी हिंदी (*भाषा० पारि०*)

ऐतिहासिक और भौगोलिक आधार पर ग्रियर्सन (दे०) ने हिंदी भाषा के पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी दो भेद किए थे। पूर्वी हिंदी में उन्होंने अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी—इन तीन बोलियों को रखा। इस तरह इन तीन बोलियों के वर्ग का ही नाम 'पूर्वी हिंदी' है। यह ध्यान देने की बात है कि पूर्वी हिंदी हिंदी भाषा का कोई एक निश्चित रूप नहीं है, बल्कि वह इन तीन बोलियों का सामूहिक नाम मात्र है। कुछ लोग बघेली को एक क्षेत्रीय भेद मानकर पूर्वी हिंदी में केवल दो ही बोलियाँ—अवधी और छत्तीसगढ़ी—मानते हैं। पूर्वी हिंदी का उद्भव किस अपभ्रंश से हुआ है, यह विवाद का विषय है। ग्रियर्सन ने इसका संबंध अर्ध-मागधी से माना था। जो भाषा जैन धर्म के साहित्य में प्राप्त है, उसे इससे पूरी तरह नहीं जोड़ा जा सकता। डॉ० बाबूराम सक्सेना (दे०) के अनुसार पूर्वी हिंदी तथा पालि में काफ़ी बातें समान हैं। वस्तुतः पूर्वी हिंदी या अवधी का संबंध किस अपभ्रंश और प्राकृत से है, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। सामान्य प्रयोग में पूर्वी हिंदी या पूर्वी प्रयोग कभी-कभी भोजपुरी या मगही-मैथिली के लिए भी होता है। वस्तुतः अपने क्षेत्र से पूरब की भाषा के लिए 'पूरबी' नाम का प्रयोग प्रायः होता रहा है। इस रूप में व्रजभाषियों के लिए अवधी पूरबी है तो अवध वालों के लिए भोजपुरी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजपुरी वालों के लिए मगही-मैथिली।

पूवण्णन *(त० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

मूल नाम वे० ता० गोपालकृष्णन। इनका जन्म मद्रास में हुआ। एक-दो वर्ष 'करुम्बु' बाल-पत्रिका का संपादन किया। इस समय ये तमिल प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं और तमिल बाल-साहित्यकारों की अनेक सभाओं से संबद्ध हैं। बच्चों के लिए रचित इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'बोम्मैवंडी', 'पुळ्ळिमान' (कहानी), 'अमुदाविन आशै', 'महन पुहळ' (उपन्यास), 'कावेरीयिन अंबु', 'पुलवर महन' (ऐतिहासिक उपन्यास) 'उप्पिल्लाद पंडम', 'कवि-त्ज्जन' (नाटक); 'पोर्काल वाळ्क्कै' (संस्कृति का इतिहास) आदि। इन्होंने तमिल बाल-साहित्य का इतिहास भी लिखा है। इनकी अधिकांश कृतियाँ पुरस्कृत हैं। पूवण्णन तमिल में बाल-साहित्य की रचना करने वालों में अग्रगण्य हैं।

पूविनशिरिप्पु *(त० कृ०)*

यह पेरियस्वामी तूरन (दे०) के निबंधों का संग्रह है। इसमें लेखक के सत्रह निबंध संगृहीत हैं। विभिन्न साहित्यिक कृतियों के अध्ययन एवं एकांत भ्रमण के समय मन में उत्पन्न भावनाओं को ही लेखक ने इन निबंधों में व्यक्त किया है। इन निबंधों में जीवन के विविध पक्षों, प्राकृतिक दृश्यों, खेलों, विविध प्रकार की कविताओं आदि का वर्णन किया गया है। अत्यंत सरल-सरस शैली में रचित इन निबंधों द्वारा तूरन ने विश्वबंधुत्व की भावना का प्रचार किया है। तमिल में निबंध-साहित्य की कृतियाँ बहुत कम हैं। तूरन तमिल के प्रमुख निबंधकारों में से हैं। उनके इस निबंध-संग्रह का तमिल निबंध साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पृथ्वीचंद्र चरित्र *(गु० कृ०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

'पृथ्वीचंद्र-चरित्र' जैन कवि माणिक्य सुंदर सूरि [जिन्हें माणिक्य सूरि (दे०) भी कहा गया है] की प्रसिद्ध गद्य-रचना है।

इस रचना में गुजराती के प्राचीनतम गद्य के नमूने प्राप्त होते हैं। यह लय-प्रधान गद्य-कथा पाँच खंडों में विभक्त है। गद्य-शैली में बाणभट्ट (दे० बाण) का अनुकरण किया गया प्रतीत होता है। इसमें सभा, नगर, सेना, जंगल, युद्ध, स्वयंवर, रूप-गुण-कथन, वर्षा, वसंत, प्रभात, रात्रि आदि के वर्णन बहुत भव्य, प्रभावशाली एवं सजीव हैं।

पंद्रहवीं शती के प्रारंभ में गुजराती-गद्य का क्या रूप था? इसे जानने में यह रचना बहुत सहायता करती है। गद्य-शैली की दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है।

पृथ्वीराज *(हिं० पा०)*

इतिहास का आधार बनाकर लिखे गये साहित्य में कल्पना मुक्त होती है; साहित्यकार तथ्यों के स्थान पर उनके पीछे छिपे सत्य के उद्घाटन के लिए गवेषणा से अधिक अनुमान का आश्रय लेता है, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि के चित्रण पर अधिक बल देता है और स्रष्टा होने के कारण पात्रों के बाह्य की अपेक्षा अंतर का चित्रण करता है। 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) के नायक पृथ्वीराज ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। उनके जीवन-वृत्त और चरित्र का अंकन करते समय चंदबरदायी (दे०) ने ऐतिहासिक तथ्यों की नितांत उपेक्षा न करते हुए भी स्वच्छंद कल्पना से काम लिया है। अजमेर नरेश सोमेश्वर और दिल्लीश्वर अनंगपाल की कन्या कमला के पुत्र पृथ्वीराज का जन्म सं० 1115 अनंद विक्रम शाक में हुआ। वे चौदह विद्याओं और षट्-भाषाओं में निष्णात थे। उन्होंने 11 वर्ष से 36 वर्ष तक की आयु में 14 विवाह किए जिनमें से कुछ का साक्षी इतिहास है तो कुछ प्रबल जनश्रुति पर अनुमानित किए गये हैं। जयचंद की पुत्री संयोगिता का अपहरण तथा विवाह यद्यपि दानपत्र, ताम्रपत्र, शिलालेख आदि से प्रमाणित नहीं तथा जनश्रुति के कारण इतिहासकारों तक ने उसकी चर्चा की है। इन सभी विवाहों में युद्ध हुआ—चाहे उसका कारण वचन-पालन, शरणागत, की सहायता नायिका का संदेश पाकर उसकी रक्षा के लिए युद्ध-अभियान कुछ भी रहा हो। इन युद्धों में कभी शौर्य-पराक्रम से काम लिया गया तो कभी छल-कपट से। शशिव्रता को पाने के लिए पृथ्वीराज कापालिकों के वेश में सात सहस्र योद्धाओं को लेकर देवगिरि जा पहुँचे थे।

पृथ्वीराज अद्भुत शूरवीर और पराक्रमी थे, शरणागत को क्षमा करना उनकी आन थी, अतः उन्होंने मुहम्मद ग़ोरी को कई बार प्राण-दान दिया; बाद में चल कर उन्हें इसका भारी मूल्य भी चुकाना पड़ा। भोग-विलास के प्रति उनका झुकाव आरंभ से ही दृष्टिगत होता है। जब वे सं० 1411 में दक्षिण-दिग्विजय के लिए निकले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वहाँ से कर्नाटिका नामक वेश्या को ले आए और उसकी नृत्य-कला पर मुग्ध हो उसे अपने अंतःपुर में रख लिया। विलास की परिणति हुई संयोगिता-स्वयंवर के बाद के दिनों में जिसके कारण शहाबुद्दीन ग़ोरी से पराजय हुई, और पृथ्वीराज वंदी बने।

विलासिता सनक को जन्म देती है। पृथ्वीराज की सनक दो घटनाओं से प्रमाणित होती है—नागौर की बत्तीस हाथ ऊँची चित्रशाला से योद्धाओं को नीचे कूदने की आज्ञा देना और ऐसा करने पर लोहाना के लहू-लुहान होने पर उससे क्षमा माँगना, उसे पाँच हज़ार गाँव तथा आजानुबाहु की उपाधि देना। प्रिय हाथी श्रृंगारहार के मदोन्मत्त होने पर जब चामंडराय ने उसे मार डाला तो उसे पुरस्कार देने के स्थान पर उनके पैरों में बेड़ियाँ डलवाना भी पृथ्वीराज के सनकी होने का प्रमाण है। उनके स्वभाव से ईर्ष्या, द्वेष आदि प्रतिहिंसा के भाव भी विद्यमान थे। मंत्री कैमास और नर्तकी कर्नाटिका को परस्पर आकर्षण-पाश में बिद्ध देखकर शब्द-भेदी बाण द्वारा रति-निरत कैमास का बध करना उनकी इसी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है।

पृथ्वीराज अद्भुत पराक्रमी थे, शब्द-भेदी बाण चलाने में निष्णात थे, क्षत्रिय-धर्म का पालन बड़ी निष्ठा से करते थे पर युग की सामंती व्यवस्था के दोषों से मुक्त न हो सके और फलतः देश को पतन के गर्त में ढकेलने में उनका उत्तरदायित्व कम नहीं।

पृथ्वीराज रासो *(हिं० कृ०)*

उक्त महाकाव्य के लेखक चंदबरदाई (दे०) हैं जो कि संभवतः दिल्ली-सम्राट् पृथ्वीराज (दे०) (बारहवीं शती ई०) के दरबारी कवि थे। इस ग्रंथ के पाँच रूपांतर उपलब्ध हैं—बृहत्, मध्यम, लघु, लघुतम और नवीन। किंतु ये सभी अप्रामाणिक हैं। कारण, समय-समय पर अन्य भाट-कवियों द्वारा इसकी कलेवर-वृद्धि होती चली गई। बृहद् रूपांतर में 39 समय (सर्ग) हैं और 16306 पद्य। इसकी कथा पृथ्वीराज के अनेक युद्धों से संबंधित है, साथ ही, उनके अनेक विवाहों के साथ भी। ग्रंथ वीररस-प्रधान है, दूसरा स्थान श्रृंगार रस का है। सहायक रूप में अन्य रसों का भी समावेश है। भाषा डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) अथवा पिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) मानी जाती है, जिसमें ब्रजभाषा, राजस्थानी, खड़ी बोली के अतिरिक्त अरबी और फ़ारसी शब्दों का प्रयोग है। ग्रंथ में लगभग सत्तर छंदों और विषयानुकूल अनेक अलंकारों का प्रयोग है। वीर और रौद्र रसों के प्रसंगों में कठोर पदावली, और श्रृंगार रस के प्रसंगों में कोमल पदावली की छटा दर्शनीय है। सेना की साज-सज्जा, अस्त्रों-शस्त्रों का झंकार, युद्धभूमि में घमासान-युद्ध, शत्रु का पलायन तथा विजयोल्लास के अतिरिक्त नायक-नायिका का मिलन और वियोग—ये सभी प्रकरण कवि-कल्पना की सुंदर सृष्टि हैं। यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य का प्रथम विशालकाय महाकाव्य है और इस नाते इसका रचयिता हिंदी का आदि-कवि माना जाता है।

पेंडसे, शं० दा० *(म० ले०)*

पेंडसे भागवत-धर्म की आधारस्तंभ पुस्तक 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) के विख्यात अध्येता, आलोचक और चिंतक हैं इन्होंने 'श्री ज्ञानेश्वरांचे तत्त्वज्ञान' (1941 ई०) नामक ग्रंथ में अन्वयव्यतिरेकात्मक शैली में 'ज्ञानेश्वरी' के तत्त्वज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनका विवेचन सर्वत्र संतुलित एवं निष्पक्ष है। विरोधियों का खंडन करते हुए भी ये सौम्य ही रहे हैं। 'श्री ज्ञानेश्वरांचे तत्त्वज्ञान' इनका पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध है। भागवत-धर्म के इतिहास के तीसरे खंड के लेखक भी ये ही हैं।

बच्चों को मराठी-साहित्य के मर्म से परिचित कराने के लिए पेंडसे ने सरल शैली में 'महाराष्ट्राचा सांस्कृतिक इतिहास' नामक पुस्तक भी लिखी है।

पेंडसे, श्री० ना० *(मल० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

आंचलिक उपन्यासकार के रूप में परिचित श्री पेंडसे ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण वातावरण, ग्रामीण व्यक्तियों और उनके जीवन के अत्यंत हृदयग्राही चित्र उपस्थित किए हैं। इनके उपन्यासों की लीलाभूमि कोंकण है। अपने प्रथम उपन्यास 'एलगार' में स्वतंत्रता से पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर हिंदू-मुसलमानों के परस्पर संबंध चित्रित करते हुए लेखक ने यह बताया है कि हिंदू-मुस्लिम एकता की बुनियाद सच्ची मानवता है। दूसरे उपन्यास 'हद्दपार' में राजे मास्टर नामक एक देहाती अध्यापक के मानवता-पूर्ण सद्गुणों का दिग्दर्शन कराया है। इसी 'गारंबीचा बापू' (दे०) में गारंबी नामक देहात के एक नटखट, हट्टे-कट्टे पर सत्त्वशील व्यक्ति का चित्र है लेखक पात्रों के अंतर्जीवन तथा आंतरिक भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करने में जितना कुशल है उतना ही प्राकृतिक दृश्यों—सावित्री नदी, सूर्योदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के अंकन में। उनके पात्रों की चरित्र-रेखा यथार्थ पर आधारित होने के कारण जितनी प्रतीतिकर है उतनी ही अंतर्भेदिनी दृष्टि एवं अनुभूति के कारण मार्मिक। कथा-वस्तु के विन्यास, मार्मिक चरित-चित्रण, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा प्रकृति के रम्य चित्रों के कारण इनके उपन्यास पाठकों को सहज ही मुग्ध कर लेते हैं सरल, प्रांजल, अकृत्रिम, अर्थव्यंजक और रसभीनी भाषाशैली इनकी कृतियों को और भी संवेद्य बना देती है।

प्रमुख कृतियाँ—'एलगार', 'हद्दपार' (दे० विसूराजे), 'गारंबीचा बापू', 'यशोदा', 'कलंदर', 'रथचक्र' (दे०) आदि।

पेकमेडलु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

यह श्रीमती मुप्पाळ्ळ रंगनायकम्मा (दे०) का प्रसिद्ध उपन्यास है। 'ताश के महल' के नाम से यह हिंदी में भी प्रकाशित हो चुका है। अब नेशनल बुक ट्रस्ट के द्वारा सभी भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद किया जा रहा है। इसमें नारी-मानस के नवोन्मेष का सशक्त, सहज और सजग चित्रण पाया जाता है। इसमें एक ऐसी नारी का चित्रण है जो पारिवारिक अशांति, पति की निष्ठुरता और असहाय परिस्थितियों से समझौता करने में असफल होकर अंततः अपने प्रिय पुत्र को भाग्य के हाथों छोड़ संसार से सदा के लिए बिदा हो जाती है। दांपत्य-जीवन की असफलता का जितनी अनुभूति और तादात्म्य के साथ इसमें चित्रण किया गया है उतना किसी दूसरे उपन्यास में मिलना कठिन है।

पेटकोपदेस *(पा० कृ०)*

यह एक अत्यंत प्राचीन रचना है। इसके रचयिता कच्चायन (दे०) या महाकच्चायन हैं जो भगवान बुद्ध के अत्यंत प्रतिष्ठित शिष्यों में एक हैं तथा जिन्हें 'मज्झिम-निकाय' में बुद्ध के शब्दों का सर्वोच्च व्याख्याता कहा गया है। इस पुस्तक की रचना 'नेहि' (दे० कच्चायन) के बाद हुई और यह उसी की विषय-वस्तु को आगे बढ़ाती है। इसमें भी शिष्यों के उपदेश के लिए 'त्रिपिटक' (दे०) का सार सरलता के साथ समझाया गया है। पुस्तक को देखने से ही ज्ञात होता है कि इसकी रचना 'नेहि' के बहुत बाद नहीं की गई होगी। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों तथा 'त्रिपिटक' विषयवस्तु को व्यवस्थित रूप देने एवं सामान्य पाठक के लिए हृदयंगम बनाने का यह सबसे पहला प्रयास है। इस पुस्तक को ब्रह्मा के बौद्ध 'त्रिपिटक' में सन्निविष्ट करते हैं। किंतु लंका में इस पुस्तक को इस प्रकार की मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी।

पेतवत्थु *(पा० कृ०)*

वह 'सुत्तपिटक' (दे०) में 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत एक रचना है। जिसमें इधर-उधर घूमने वाली अशांत तथा पीड़ित मृतात्माओं (प्रेतों) से नारद इत्यादि कोई व्यक्ति उसकी प्रेतयोनि प्राप्ति का कारण पूछता है और वह अपने किसी पाप का बखान करता है जिससे उसे उस प्रकार की योनि में भटकना पड़ा। यह परवर्ती रचना है जो बाद में 'त्रिपिटक' (दे०) में जोड़ी गई है। इसी प्रकार की रचना 'विमानवत्थु' (दे० सुत्तपिटक) है जिसमें स्वर्ग प्राप्ति का कारण बतलाया गया है।

पेद्दन्ना, अल्लसानि *(तें० ले०)* [समय—1470 ई० से 1535 ई० तक]

पेद्दन्ना वसिष्ठ गोत्रज तथा ऋक्शाखाध्यायी ब्राह्मण थे। इनके पिता चोक्कनामात्य थे। इन्होंने शठ-गोपयति से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की। तत्कालीन महान् सम्राट् श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के आस्थानकवियों में ये सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं पर इनका असाधारण अधिकार था। श्रीकृष्णदेवरायलु के प्रशासन-काल में ये मंत्री तथा नायंकर पदों पर भी सुशोभित रहे।

कवि पेद्दन्ना का साहित्यिक जीवन अत्यंत सफल एवं सरस था। इनकी कृतियों में केवल 'लक्षणसारसंग्रहमु' (दे०) तथा 'मनुचरित्रमु' (दे०) अब उपलब्ध हैं। 'हरिकथासारमु' एक अन्य काव्यकृति है जिसमें से कतिपय छंदों का उल्लेखन परवर्ती कवियों के रीति-ग्रंथों में पाया जाता है। परंतु यह अनुपलब्ध है। श्रीकृष्णदेवरायलु ने 'भुवन-विजय' (दे०) नामक अपनी आस्थान सभा में तेलुगु एवं संस्कृत शब्दों को समप्रधानता देते हुए आशुकविता के लिए उपस्थित कवियों को निमंत्रित किया पर कोई प्रस्तुत नहीं हुआ। तब रायलु ने कुछ निराशा के साथ अपने प्रश्न को दुहराया कि क्या मेरी सभा में एक भी ऐसा विद्वत्कवि नहीं है जो वांछित आशुकविता का प्रदर्शन कर स्वर्णकटक का अधिकारी बन सके। इस पर अल्लसानि पेद्दन्ना सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उठ खड़े हुए और धारावाही रूप में तीस चरणों का उत्पलमालिका छंद सभासदों को सुनाया जिसमें क्रमशः तेलुगु शब्दों का प्रयोग प्रथम पंद्रह चरणों में तथा संस्कृत-समासों का प्रयोग सोलहवें चरण से लेकर तीसवें चरण तक किया गया था। इस अभूतपूर्व काव्यकौशल पर मुग्ध होकर राजा ने अपने हाथ से तत्काल स्वर्णकटक पेद्दन्ना के वामचरण में पहनाया और कवि को आंध्रकविता पितामह नामक उपाधि से विभूषित किया। यह साहित्यिक घटना 1518-1519 ई० के बीच घटित हुई होगी। 1522 ई० के आसपास रायलु की अनुमति से पेद्दन्ना ने 'मनुचरित्रमु' अथवा 'स्वारोचिष मनुसंभव' की सर्जना की। यह काव्य तेलुगु-साहित्य का सर्वांगसंपूर्ण प्रथम प्रबंध-काव्य माना जाता है। यही तेलुगु के पंचमहाकाव्यों में प्रथमगण्य है।

पेराशिरियर *(त० ले०)* [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०]

'तोलकाप्पियम्' (दे०) के व्याख्याकारों में ये भी एक हैं। इनके द्वारा रचित पूरी व्याख्या उपलब्ध नहीं हुई; केवल तृतीय खंड—काव्यशास्त्र—के कुछ अध्यायों की व्याख्या उपलब्ध हुई है। इनकी शैली अन्य व्याख्याओं की शैली से भिन्न और विलक्षण है। इनकी भाषा सरल, विचारपूर्ण और विवेचनात्मक है। तमिल गद्य-शैली के निर्माताओं में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने समय के अथवा अपने पूर्ववर्ती तमिल-साहित्य से जो उदाहरण दिए हैं, वे तमिल-शोधार्थी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

पेरिन्चक्कोटन् *(मल० पा०)*

'रामराजा बहद्दूर' (दे०) नामक ऐतिहासिक उपन्यास सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) की कृति है और उसके एक पुरुष-पात्र का नाम है पेरिन्चक्कोटन्।

पेरिय आळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवीं शती के मध्य भाग से आठवीं शती के मध्य भाग तक]

सांप्रदायिक ग्रंथों के अनुसार इनका समय कलियुग 3056 ई० पू० है। पेरिय आळवार तमिल प्रांत के प्रमुख वैष्णव संतों में से हैं। इनका जन्म विष्णु के परम भक्त मुकुंद पट्टर के घर हुआ। सदा विष्णु को चित्त में धारण करने के कारण इन्हें 'विष्णुचित्त' नाम दिया गया। इन्हें विष्णु के वाहन गरुड़ का अवतार कहा जाता है। प्रसिद्ध है कि पेरिय आळवार ने तत्कालीन पांड्य राजा वल्लभदेव की सभा में अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर 'पट्टर पिरान' (ब्राह्मण-श्रेष्ठ) की उपाधि पाई थी। इनकी दो रचनाएँ हैं—'तिरुप्पल्लांडु' और 'पेरियाळवार तिरुमोलि'। 'तिरुप्पल्लांडु' में जहाँ भगवद्प्रशंसा है वहाँ 'पेरियाळवार तिरुमोलि' में कृष्ण की बाललीला के पद संगृहीत हैं। पेरियाळवार का मन विष्णु के विभिन्न अवतारों में कृष्णावतार में विशेष रूप से रमा और कृष्ण के सभी रूपों में भी पेरियाळवार उनके बालरूप पर मुग्ध थे। अन्य आळवारों ने जहाँ भगवद्अनुग्रह की याचना की है वहाँ इस आळवार ने ईश को शिशुवत् मानकर उनके प्रति मंगलकामनाएँ व्यक्त की हैं। इसी से इन्हें 'पेरिय (महान) आळवार' कहा गया। पेरिय आळवार 'पिळ्ळै तमिल' शैली के जन्मदाता कहे जाते हैं जिसके अंतर्गत नायक अथवा नायिका की बाल-लीलाओं का वर्णन किया जाता है। अधिकांश विद्वान आंडाळ (दे०) नामक संत कवयित्री को इनकी पोष्य पुत्री मानते हैं और कुछ विद्वान आंडाळ को पेरियाळवार की कल्पना-सृष्टि मानते हैं।

पिळ्ळै, पेरियतंबि *(त० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म उत्तरी लंका के मंडूर नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने लगभग 35 वर्षों तक लंका के राजकीय महाविद्यालय में तमिल प्राध्यापक के रूप में कार्य करने के उपरांत साहित्य-जगत में प्रवेश किया। इन्होंने श्रीलंका की स्तुति में 'इंळगैमणित्तिरुनाडु' शीर्षक राष्ट्रीय गान की रचना की थी। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'मंडूर पदिकम्', 'मीट्चिपत्तु' और 'भगवद्गीदै वेण्बा।' 'मंडूर पदिकम्' में इन्होंने अपनी जन्मभूमि का वर्णन किया है। 'भगवद्गीदै वेण्बा' भगवद्गीता के प्रथम छह अध्यायों का रूपांतर है। यह कृति वेण्बा छंद में है। इसकी भाषा अत्यंत सरस, सरल और प्रभावशाली है। निबंधकार और वक्ता के रूप में भी इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली है। ये लंका के दो प्रसिद्ध विद्वानों में से हैं। इन्हें 'पुलवरमणि' (कविमणि) और दूसरे विद्वान सी० गणपति पिळ्ळै को 'पंडितमणि' की उपाधि दी गई है। ये तमिल साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगी प्रायः सभी संस्थाओं से संबद्ध हैं। इनकी 'भगवद्गीदै वेण्बा' का तमिल-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेरियपुराणम् *(त० कृ०)* [रचना-काल -- बारहवीं शती ई०]

रचयिता—चोल साम्राज्य के मंत्री चेक्किलार (शेक्किलार)। चेक्किलार ने इस कृति को 'तिरुत्तोंडर-पुराणम्' (प्रभु के सेवकों से संबंधित पुराण) नाम दिया था परंतु इसका सर्वप्रचलित नाम 'पेरियपुराणम्' ही है। इसमें तमिल प्रांत में आविर्भूत 63 शैव संतों का जीवन-चरित्र वर्णित है। इनमें प्रमुख हैं अप्पर् (दे०), सुंदरर् (दे०) और संबंदर् (दे०)। इस काव्य में अलौकिक तत्त्वों की प्रधानता है। कवि ने स्थान-स्थान पर संतों के अलौकिक कृत्यों का उल्लेख किया है। शैव संतों की रचनाएँ तिरुमुरै ग्रंथों में संगृहीत हैं। इसकी गणना बारहवें तिरुमुरै के रूप में होती है। इसमें कथा-संघटना के अभाव को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इसे महाकाव्य मानने से इनकार किया है। इसके विपरीत अन्य विद्वानों का कहना है कि इसके रचयिता ने 'तिरुत्तोंडर्' शब्द का प्रयोग सुंदरर् के लिए किया है। सुंदरर् की कथा कहते हुए कवि ने प्रसंगवश अन्य संतों से संबंधित विवरण भी दे दिए हैं। उसने संतों का जीवन-चरित लिखने के लिए उनसे संबंधित नाना स्थानों का भ्रमण किया था तथा शिलालेखों और किंवदंतियों का आश्रय लिया था। 'पेरियपुराणम्' में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति का, देश के प्राकृतिक सौंदर्य का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कवि ने इस कृति की रचना यद्यपि शैव सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए की थी तथापि इसका काव्यत्व अक्षुण्ण है। इसकी भाषा सरल एवं सरस है। ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक सभी दृष्टियों से 'पेरियपुराणम्' का महत्व है।

पेरुंकदै *(त० कृ०)* [रचना-काल—सातवीं शती ई०]

पेरुंकदै के रचयिता कोंगुवेल कहे जाते हैं। इनका वास्तविक नाम अज्ञात है। पेरुंकदै का शाब्दिक अर्थ है बृहत्कथा। इस कथा का प्राचीनतम रूप प्राकृत में मिलता है जिसके रचयिता गुणाढ्य (दे०) थे। आज यह कृति अपने संपूर्ण रूप में अप्राप्य है। प्राकृत की इस कृति का आधार लेते हुए विभिन्न भारतीय भाषाओं में नाटकों और काव्यों की रचना की गई है। पेरुंकदै वस्तुतः उज्जैन के राजा उदयन से संबंधित विविध प्रसंगों का संग्रह मात्र है। इसमें उदयन द्वारा सुखद गृहस्थ जीवन का उपभोग करने के उपरांत संन्यास ग्रहण एवं मुक्ति-प्राप्ति का वर्णन है। विद्वानों ने इसे एक जैन महाकाव्य स्वीकार किया है क्योंकि इसमें आदि से अंत तक जैन विचारों, मान्यताओं और जैन धर्म के सिद्धांतों का विवेचन है। कोंगुवेल ने अपनी रचना के द्वारा जैन धर्म का प्रचार करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने कथा को रोचक और आकर्षक बनाने में पूरी शक्ति लगा दी है। इसका रूप बहुत-कुछ संस्कृत महाकाव्यों के समान है। इसकी कथा सर्वत्र सुगठित नहीं है क्योंकि इसमें दो राजाओं—पिता और पुत्र—से संबंधित कथाएँ ली गई हैं। इस महाकाव्य में प्रकृति और मानवीय क्रियाकलाप का विस्तृत वर्णन है। विभिन्न पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि पूर्ण सफल हुआ है। इसे तमिल के महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

पेरुंतच्चन् *(मल० पा०)*

महाकवि जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) के काव्य का प्रधान नायक है 'पेरुंतच्चन्'। जब पेरुंतच्चन् को मालूम हुआ कि उसका पुत्र अपने पेशे में उससे समर्थ निकला तो उसका हृदय ईर्ष्या-दग्ध हो उठा। उसका पुत्र अपना हथियार लेने के लिए उसके पास आता है तो वह घर में आकर बैठता है। सुयोग देखकर पेरुंतच्चन् अपने पुत्र के गले पर हथियार गिरा देता है और बहाना करता है कि उसके हाथ से अकस्मात् हथियार छूट गया जो पुत्र के लिए घातक सिद्ध हुआ। इस प्रकार अहंकारी मानव की भीषण ईर्ष्यावृत्ति का चित्र लेखक ने इसके माध्यम से सहजतापूर्वक उरेहा है।

पेरुंतिणै *(त० पारि०)*

'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) नामक काव्य-भेद के सात उपभेद हैं। प्रथम 'कैक्किळै' है और अंतिम यानी सातवाँ 'पेरुंतिणै' है। इन दोनों के बीच पाँच उपभेद (ऐन्तिणै) रखे गये हैं। प्रथम और अंतिम उपभेद अनुचित काम-व्यवहार से संबंधित हैं और औचित्ययुक्त काम-व्यवहार से संबंधित शेष पाँचों से भिन्न हैं। 'पेरुंतिणै' का विषय असंगत काम-व्यवहार है जिसके चार प्रकरणों का उल्लेख किया जाता है [तोलकाप्पियम् (दे०), पोरुळ्, सूत्र 51]। ये प्रकरण इस प्रकार हैं—

(1) नायिका के निकट सुनवाई न होने के कारण नायक का 'मटल्' (ताड़ के घोड़े पर चढ़कर) आत्महत्या पर उतर आना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) अनुचित आयु के (वृद्ध आदि) लोगों का काम-व्यवहार।

(3) नायक का कामातिरेकवश उन्मत्त अवस्था में पहुँच जाना।

(4) सीमातीत कामेच्छा-प्रेरित पुरुष द्वारा नारी के प्रति हिंसात्मक कृत्य कर बैठना स्पष्ट है कि असाधारण काम-वृत्तियों के लिए 'पेरुंतिणै' में स्थान दिया गया है। यह भी कहा गया है कि इस उपभेद का प्रकरण, 'कैक्किळै' दास सेवक आदि निम्नवर्गीय लोगों के व्यवहारोचित है (सूत्र 23)। आठ आर्य विवाह-पद्धतियों में से पारस्परिक प्रेमयुक्त गंधर्वपद्धति छोड़कर ब्रह्म, प्राजापत्य, आर्ष तथा दैव प्रथाएँ 'पेरुंतिणै' के समकक्ष मानी जा सकती हैं (सूत्र 105)। उपलब्ध 'संगम' पद्य-संग्रहों में 'पेरुंतिणै' के उदाहरण-रूप गीत केवल दस हैं और ये 'कलित्तोके' नामक संग्रह में मिलते हैं।

पेरेलिसिस *(गु० क्र०)*

'पेरेलिसिस' चंद्रकांत बक्षी (दे०) का 210 पृष्ठीय उपन्यास है। उपन्यास का आरंभ एक व्यक्ति के द्वारा रात में देखे गए तीन स्वप्नों से होता है। स्वप्न देखने वाला और कोई नहीं, अँग्रेज़ी का प्रोफ़ेसर आरामशाह है। स्वप्न देखने के बाद वह हिलस्टेशन के अपने निवास से घूमने के लिए बाहर निकलता है और एक पत्थर की दीवार के पास अचानक बेसुध हो कर गिर पड़ता है। उसे बेहोश देख कर रसभरी बेचने वाला एक लड़का पुलिस स्टेशन को समाचार देता है और पुलिस वाले मिशन अस्पताल को सूचित करते हैं। एंबुलेंस में उसे उठा कर अस्पताल लाया जाता है। वहाँ उसे पता चलता है कि उसे 'पेरेलिसिस' का आघात हुआ है। यहाँ उसका परिचय अस्पताल की मैट्रन आशिका से होता है। मैट्रन आशिका विधवा है। उसके ऊष्मायुक्त उपचार, व्यक्तिगत स्नेह व ममता से भरे अनेक प्रसंगों के साथ-साथ उसके अपने अतीत-जीवन के प्रसंग भी उभरते चलते हैं। फ़्लैशबैक पद्धति से लेखक स्पष्ट करता है कि प्रो० आरामशाह की भी एक पत्नी थी; उसकी एक लड़की भी थी। पत्नी अस्वस्थ रहती थी और एक दिन बहुत खून जाने के बाद उसका अवसान हो गया था। प्रो० शाह ने अपनी लड़की मारिशा के साथ भेदभावमूलक संबंध न रख कर खुले संबंध बनाए थे जो मारिशा के बड़े होने पर भी बने रहे। मारिशा अपनी इच्छा से एक केरली प्रो० जॉर्ज के साथ विवाह कर लेती है। अपने बाप से विदा लेने के बाद वह गर्भावस्था को प्राप्त करती है और संभवतः जॉर्ज के अनुचित व्यवहार के कारण आत्महत्या कर लेती है। इस सदमे को भुलाने के लिए ही प्रो० शाह हिलस्टेशन पर आते हैं कि उन्हें पक्षाघात हो जाता है। दूसरी ओर आशिका के साथ प्रो० शाह के संबंधों में वृद्धि की चर्चा है। आशिका की सहानुभूति और स्नेह के परिणामस्वरूप प्रो० शाह स्वस्थ हो जाते हैं और उन्हें अस्पताल से छुट्टी मिल जाती है। जाते समय वे आशिका को ढूँढ़ते हैं। उन्हें पता चलता है कि आशिका कहीं बाहर गई हुई है और साँझ होने से पहले नहीं आ पायेगी। विवश होकर वे अपने निवास-स्थान पर आ जाते हैं। एक बार पुनः घूमने निकलते हैं और जिस स्थान पर उन्हें पक्षाघात हो गया था वहाँ पहुँचते में और और उपन्यास समाप्त हो जाता है। संपूर्ण उपन्यास में प्रो० शाह के दो जीवनों की चर्चा है : एक उन्होंने अस्पताल में जिया और दूसरा जो वे उससे पहले पूरा कर चुके थे। फ़्लैशबैक में कही गई कथा के अलावा इस उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है प्रो० शाह की पक्षाघात-अवस्था का चित्रण। दर्द भी कई बार मनुष्य के अस्तित्व की घोषणा करता है, उसके जीवित होने का प्रमाण देता है और ऐसे अवसर पर मनुष्य उसे पूरी सच्चाई के साथ जी लेना चाहता है; अपने अस्तित्व को नकार सकने की उसकी सामर्थ्य नहीं होती—जीवन से निराश व्यक्तियों में भी नहीं। प्रो० शाह के साथ भी यही होता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास बड़ा मार्मिक और रोचक है। कुछ स्थलों पर अनावश्यक विस्तार आ गया है जो ऊब पैदा कर सकते हैं।

पैरुङ्-कडुङ-को *(त० ले०)*

ये चेरवंशीय राजा और संघकालिक कवि थे। तमिल काव्य-परंपरा के अनुसार मरुभूमि तथा उससे संबंधित प्राकृतिक परिवेश में विप्रलंभ का करुण चित्रण करने में ये सिद्धहस्त थे, अतएव इनके नाम के साथ सदा 'मरुवर्णनशील' विशेषण का प्रयोग किया जाता है। इनके अठहत्तर पद्य संघकालिक संकलन-ग्रंथों में उपलब्ध हैं। अन्य कवियों ने भी इस कवि की प्रशंसा में पद्य रचे हैं।

उदाहरण : "छायाहीन मरुभूमि में कबूतरी पर कबूतर अपने पंख फैलाकर छाया करता है; हरिण अपनी छाया में हरिणी को सुलाता है। ये दृश्य देखकर मेरे प्रियतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा अवश्य स्मरण करेंगे और प्रवास छोड़ लौट आएँगे।"

पैसा और परछाईं *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

डा० मुहम्मद हसन (दे०) के इस नाट्य-संकलन में रेडियो-रूपकों के तौर पर लिखे अपने तीन दर्जन नाटकों में से लेखक ने नौ चुने हुए नाटकों का संग्रह प्रस्तुत किया है। इनमें से अधिकतर नाटक आकाशवाणी के विभिन्न स्टेशनों से अनेक बार प्रसारित हो चुके हैं। 'पैसा और परछाईं' नाटक आकाशवाणी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय स्तर की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुका है। रेडियो के लिए लिखे जाने के कारण इस संग्रह के नाटकों में कतिपय कलात्मक प्रतिबंध हैं। ये मात्र ध्वनि, कथोपकथन और संगीत से अपना आशय और अपना वातावरण अभिव्यक्त कर सकते हैं। गति और रंग इनकी पहुँच से बाहर हैं। 'पैसा और परछाईं' के अतिरिक्त इस कृति के अन्य आठ रूपक इस प्रकार हैं—'सुर्ख़ पर्दे', 'सोने की ज़ंजीरें', 'नज़ीर अकबराबादी', 'नक़्श-ए-फ़रियादी', 'अकबर-ए-आज़म', 'इंस्पेक्टर-जनरल', 'हुकुम की बेग़म' और 'मेमार-ए-आज़म'। ये नाटक इस केंद्रीय भाव के गिर्द घूमते हैं कि सांसारिक सुख-समृद्धि की इच्छा पाप नहीं है। प्रसन्नता व्यष्टिगत नहीं, बल्कि समष्टिगत वस्तु है। मनुष्य की सबसे बड़ी प्रसन्नता इस बात में है कि वह आने वाली पीढ़ियों के लिए जीवन को सुंदर और मधुर बनाने के संघर्ष में भाग ले और इस संदर्भ में वह विजय अथवा पराजय की भावनाओं से सर्वथा असंपृक्त रहे। नयी पीढ़ी को प्रोत्साहित करना और उसमें भावात्मक एकता का संचार कर विपरीत परिस्थितियों को बदलने का साहस प्राप्त करना इस नाट्य-संग्रह का मुख्य संदेश है।

पोइ *(उ० पारि०)*

संस्कृत 'पदी' का पर्यायवाची 'पोइ' है। वीर मित्रोदय की 'आठपोइ', प्रतापचंद्र सिंह देव की 'चउदपोइ' क्रमशः 'अष्टपदी' एवं 'चतुर्दशपदी' के नाम से परिचित हैं। 'पोइ' रचना की प्रत्येक कविता को 'पोइ' कहते हैं। 'पोइ' की संख्या के अनुसार रचना का नामकरण होता है, यथा—'छःपोइ', 'न-पोइ', 'पंदर-पोइ' आदि। किसी भी रचना में जितनी पोइयों को स्थान दिया जाता है, प्रत्येक पोई में उतने चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में उतने वर्ण होते हैं। जैसे—'पच्चीस पोइ' में 25 कविताएँ, प्रत्येक कविता में 25 चरण एवं प्रत्येक चरण में 25 वर्ण होंगे, किंतु सर्वत्र इस नियम का पूर्ण पालन दिखाई नहीं पड़ता। वर्षों की संख्या कहीं-कहीं पोइ एवं पद-संख्या के साथ समान नहीं दिखाई पड़ती। प्रत्येक पोइ के आरंभ या अंत में किसी दूसरे छंद में लिखित एक पद होता है।

उड़िया-साहित्य में पोइ एक स्वतंत्र रचना-रीति है, जिसके उत्स के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत के षट्श्लोकी, अष्टश्लोकी अनुकरण पर 'पोइ' की रचना हुई है। द्वारकादास की 'सप्तपोइ', 'नअपोइ', 'तेरपोइ'; 'कंठदास की 'नअपोइ', 'छः पोइ'; 'गोवर्धन दास की 'पच्चीस पोइ' आदि महत्वपूर्ण पोइ-रचनाएँ हैं।

पोक्कन् *(मल० पा०)*

यह तिक्कोटीयन् (दे०) के ऐतिहासिक उपन्यास 'चुकन्न कटल्' का मुख्य पात्र है। यह एक मछुआरा युवक है जिसका अपहरण पुर्तगाली सेना करती है। वर्षों की ग़ुलामी के बाद इसे पुर्तगालियों का विश्वास और उनकी सेना में प्रवेश प्राप्त हो जाता है। सामूतिरि के विरुद्ध युद्ध में पुर्तगालियों की सेना की तरफ़ से लड़ते हुए इसे अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाने और अपने अपमान का बदला लेने का अवसर मिलता है और यह अपना जीवन बलिदान करके पुर्तगालियों को परास्त करता है।

पोक्कन् धीरोदात्त नायक है और उसका चरित्र अपने लक्ष्य की पूर्ति के दृढ़ संकल्प की भावना से उज्ज्वल है। मलयाळम की ऐतिहासिक कथाओं में पुर्तगाली आक्रमण से संबंध रखने वाले कथापात्रों में पोक्कन् सर्वप्रमुख है।

पोट्टेक्काट, एस० के० *(मल० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्म-स्थान कालीकट शहर है। इनकी शिक्षा कालीकट नगर में ही हुई थी। प्रारंभ में अध्यापक रहे, बाद में इन्होंने छोटे-मोटे दूसरे काम भी किए। 1949 ई० में ये पर्यटन में प्रथम बार लगे और इस पर्यटन ने पोट्टेक्काट् के साहित्यकार को मुखरित कर दिया। इन्होंने सार्वजनिक एवं राजनीतिक जीवन में भी सक्रिय भाग लिया है। 1962 ई० में ये लोक सभा के सदस्य भी चुने गए थे। आजकल ये साहित्यिक क्षेत्र में ही कार्यरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। 1971 ई० में केरल सरकार ने इन्हें केरल साहित्य अकादेमी का उपाध्यक्ष मनोनीत किया था।

श्री पोट्टेक्काट् ने कविता के क्षेत्र में ही अपना साहित्य-सृजन प्रारंभ किया था किंतु शीघ्र ही ये कहानी, उपन्यास और यात्रा-संस्मरण के क्षेत्रों में आ गए। इन क्षेत्रों में इनकी प्रतिभा निखर उठी है। 1928 ई० में प्रकाशित 'राजनीति' इनकी सर्वप्रथम कहानी है। इनका पहला उपन्यास है 'नाटन् प्रेमम्' (देहाती प्यार)। विविध भावों, प्रसंगों और पात्रों का कवित्वपूर्ण वर्णन समुचित शब्दों में करने की क्षमता इनकी विशेष सफलता का कारण है। यात्रा-वर्णन में ये केरल भर में बेजोड़ हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों का कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णन इनकी रचनाओं में दर्शनीय हैं। ये यात्रा साहित्य के प्रथम प्रदर्शक कहे जाते हैं। अफ़्रीका, बालि-द्वीप आदि इनके यात्राविवरण के विशेष क्षेत्र हैं। 'राज-मल्लिका' (दे०) 'वनकौमुदी', 'विषकन्यका', आदि इनके प्रशस्त कहानी-संग्रह तथा उपन्यास है। इनके नये उपन्यासों में किसी छोटे शहर या गाँव की विस्तृत जीवन-गाथा का विशद चित्रण करने की नयी शिल्पविधि स्वीकार की गई है। इनका उपन्यास 'ओरु तेरुविटे कथा' (एक गली की गाथा) केरल साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हुआ है।

उपन्यास एवं कहानी के क्षेत्र में श्री पोट्टेक्काट् का नाम अत्यंत लोकप्रिय है।

पोतना चरितमु *(तें० क्र०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

वानमामलै वरदाचार्युलु (दे०)-कृत यह प्रसिद्ध महाकाव्य बम्मेर पोतना (दे०) के जीवन-चरित्र से संबद्ध है जिन्होंने संस्कृत-महाभागवत का तेलुगु में प्रशस्त अनुवाद किया है। पोतना का जीवन तथा काव्य दोनों ही भक्ति से ओतप्रोत हैं। इसी गुण से आकृष्ट होकर वरदाचार्युलु ने भक्तकवि पोतना के जीवन-चरित्र पर 12 आश्वासों का एक महाकाव्य लिखा। पोतना के भक्तिमय जीवन तथा काव्य के गुणों को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित करना ही लेखक का ध्येय रहा है। रस, अलंकार, वर्णन, शैली आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—एक महाकवि पोतना के भक्ति-निमज्जित उज्ज्वल जीवन की प्रस्तुति, और दूसरी आधुनिक युग में परंपराप्राप्त काव्य रूप की बहुत-कुछ नये ढंग से आकर्षक अभिव्यक्ति।

पोतना बम्मेर *(तें० ले०)* [समय—पन्द्रहवीं शती ई०]

ये निजाम प्रांत के अंतर्गत 'ओरुगल्लु' नामक स्थान के रहने वाले थे। आरंभ में ये शिव के उपासक थे पर क्रमशः विष्णुभक्त बन गए। इनकी मुख्य वृत्ति खेती थी। पर इनको पारिवारिक जीवन ग़रीबी में ही बिताना पड़ा। ये अनन्य भक्त तथा अनुपम कवि भी थे। कुछ प्रचलित दंत-कथाओं के आधार पर बताया जाता है कि ये श्रीनाथुडु (दे०) नामक महान् तेलुगु कवि के साले थे। इन्होंने राजाश्रय की अवहेलना कर अपने 'भागवत' को श्रीरामचंद्रजी को समर्पित कर दिया। इनकी ये रचनाएँ हैं—'भोगिनीदंडकमु', 'नारायणशतकमु', 'भागवतमु', (दे० 'महाभागवतमु') और 'वीरभद्रविजयमु'। इनमें प्रथम दोनों रचनाओं के कर्तृत्व के बारे में विवाद है। 'भोगिनीदंडकमु' में एक वेश्या नायिका है। यह संस्कृत की दंडक-रचना के अनुसार लिखा गया है। 'नारायणशतकमु' भक्तिपरक मुक्तक रचना है। इनका भागवत संस्कृत के श्रीमद्भागवत का समग्र अनुवाद है। इस अनुवाद के कुछ अंश नष्ट हो गए और बाद में गंगन, सिंगन तथा नारय नामक कवियों ने उसे पूरा किया था। 'वीरभद्र-विजयमु' दक्षाध्वरध्वंस से संबद्ध चार आश्वासों का एक पद्य-काव्य है। भागवतानुवाद के आरंभ में इन्होंने प्रतिज्ञा की कि इनकी रचनाएँ संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं की मधुरिमा को प्रकट करने वाली रहेंगी। इनका भागवत स्वेच्छानुवाद है न कि प्रतिशब्दानुवाद। भक्ति के आवेश में इन्होंने मूलग्रंथ के कुछ उपाख्यानों का अपने अनुवाद में विस्तार किया है। इनकी कविता कलापूर्ण है। बिना किसी प्रयत्न के प्रयुक्त अनुप्रास जैसे सुंदर शब्दालंकारों का प्रयोग इनकी रचनाओं में पग-पग पर पाया जाता है, जिसके द्वारा संगीत तथा साहित्य का समन्वित रूप प्रस्तुत होता है। कथानक, वर्णन, अलंकार और शैली आदि सभी भक्तिरस से रंजित होकर हृदयंगम होते हैं। 'प्रह्लादचरित्र', 'गजेंद्रमोक्ष', 'ध्रुवोपाख्यान', 'वामन-चरित्र' आदि अनेक कथाएँ इनकी कविता को मौलिक तथा सर्वोच्च प्रमाणित करती हैं। इसीलिए साहित्य के मर्मज्ञ कहते हैं कि पोतना के द्वारा अनूदित भागवत मूल-ग्रंथ से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। तुलसी (दे०) तथा सूर (दे०) दोनों की विशेषताएँ पोतना में एक साथ पाई जाती हैं। हिंदी प्रांत में तुलसी के रामचरितमानस (दे०) की तरह तेलुगु प्रांत में इनका 'भागवतमु' अत्यंत लोकप्रिय हुआ। तेलुगु के साहित्य-गगन में तिक्कना (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सूर्य तथा पोतना को चाँद माना जाता है।

पोतुवाळ्, अंपाटि नारायण *(मल० ले०)*

इनका जन्म 1871 ई० में तृशकट में हुआ और देहावसान 1936 ई० में हुआ। हाईस्कूली शिक्षा अपने शहर में पूरी करने के बाद इन्हें सरकारी सेवा स्वीकार करनी पड़ी। कविताओं से ही इनके साहित्यिक जीवन का प्रारंभ हुआ परंतु इनका विशेष योगदान कहानी-विधा को समृद्ध करने में हुआ। इतिहासकार 'उळ्ळूर' के शब्दों में ये मलयाळम कहानी-वाङ्मय के पिता हैं। इनके समसामयिक अप्पन् नंपुरान् और इनकी गद्य-शैली और विषयों में बहुत सादृश्य है। पोतुवाळ् की कहानियाँ श्रृंगारिकता से दूर थीं और इनके विषयों में नवीनता थी। उनमें यथेष्ट कलात्मकता भी है। हास्य-प्रियता इनके संवादों की एक विशेषता थी और अनुप्रासों का लोभ इनकी कमज़ोरी थी। 'सौधम्' के तीन खंडों के अलावा 'केरळ-पुत्रन्' (उपन्यास) और 'मोचनम्' (गद्य-नाटक) इनकी रचनाएँ हैं।

पोद्दार, कन्हैयालाल *(हिं० ले०)*

आधुनिक युग में संस्कृत-काव्यशास्त्र को लक्ष्य में रखकर हिंदी खड़ी बोली गद्य में जिन्होंने ग्रंथ-निर्माण किया है, उनमें सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का अन्यतम स्थान है। इनके दो ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं—(1) 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' (दो भाग), (2) 'काव्यकल्पद्रुम' (दे०) (दो भाग : रसमंजरी और अलंकार-मंजरी)। प्रथम ग्रंथ का नाम 'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास' होना चाहिए था। इसके प्रथम भाग में भरत (दे०) से लेकर जगन्नाथ (दे०) पर्यंत संस्कृत के प्रख्यात काव्याचार्यों के ग्रंथों एवं उनके मंतव्यों पर प्रकाश डाला गया है, और द्वितीय भाग में अलंकार (दे०), रीति (दे०), ध्वनि (दे०), वक्रोक्ति (दे०) और रस (दे०) संप्रदायों का स्वच्छ एवं संक्षिप्त प्रतिपादन है। इन दोनों भागों के निर्माण में ग्रंथकार ने इस विषय से संबंध अँग्रेज़ी ग्रंथों का पर्याप्त आधार ग्रहण किया है। इनका दूसरा ग्रंथ 'काव्यकल्पद्रुम' प्रायः मम्मट (दे०)-रचित 'काव्य प्रकाश' (दे०) और विश्वनाथ (दे०)-रचित 'साहित्य-दर्पण' (दे०) पर आधारित एक व्यवस्थित, प्रामाणिक किंतु संक्षिप्त काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। लक्षण एवं विवेचन-भाग खड़ी बोली गद्य में है, तथा उदाहरण-भाग प्रायः ब्रजभाषा-पद्य में। यह संस्कृत के ही पद्यों का अनुवाद है। इस ग्रंथ में मौलिकता का प्रायः अभाव है, फिर भी काव्य-शास्त्र के जिज्ञासु हिंदी के पाठक के लिग यह शुद्ध सामग्री प्रस्तुत करता है, और इसी में ग्रंथकार का महत्त्व निहित है।

पोन्कुरिशु तोमा *(मल० पा०)*

मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम की लंबी कहानी 'आनवारियम् पोनकुरिशुम्' का पात्र। तोमा बदनाम चोर है, परंतु वह ग़रीबों की सहायता भी करता है। वह पुलिस के एक दरिद्र सिपाही की सहायता करने के लिए गिरजाघर से सोने का सलीब चुराता है। चोरी की तलाशी के समय वह पुरोहित को इस तर्क से चुप कर देता है कि ईसा को लकड़ी की सलीब पर चढ़ाया गया था और गिरजाघर में सोने की सलीब का कोई स्थान नहीं है।

पोन्कुरिशु तोमा का चरित्र जहाँ एक ओर नीच प्रवृत्तियों के बीच में भी मानवीय सद्भावना के अस्तित्व का बोध कराता है वहीं दूसरी ओर धर्म के क्षेत्र में विद्यमान अनावश्यक आडंबर का उपहास भी करता है। बशीर के सहज व्यंग्यप्रिय और विनोदशील पात्रों में पोन्कुरिशु तोमा का स्थान प्रमुख है।

पोन्मलर *(त० कृ)* [रचना-काल—1965 ई०]

तमिल के प्रसिद्ध उपन्यासकार अखिलन (दे०) द्वारा रचित। इसमें स्वतंत्रता के बाद की देश की परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए टूटते हुए सांस्कृतिक मूल्यों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। अखिलन के अनुसार समाज में तिरुमूर्ति जैसे दुर्योधन अधिक हैं। वे समाज के दुर्बल, निराश्रित व्यक्तियों पर मनमाना अत्याचार करते हैं। उनके सामने आरुमुगम जैसे सच्चे जनसेवक और तिरुज्ञानम जैसे सज्जन अपने जीवनोद्देश्य की सिद्धि में सफल नहीं हो पाते। उपन्यास में मद्यपान, जुआ, चोरी, व्यभिचार, हत्या, चोरबाज़ारी, घूसखोरी आदि सामाजिक बुराइयों का उद्घाटन है। उपन्यास की कथा अत्यंत रोचक है। उसमें सहज प्रवाह है। कथा और पात्रों का अभिन्न संबंध है। विभिन्न पात्र घटनाओं का निर्माण करते हैं और घटनाएँ उनके चरित्र में विकास एवं परिवर्तन लाती हैं। उपन्यास में शंकरी आधुनिक नारी-समाज का, तिरुज्ञानम भावी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के श्रेष्ठ नागरिकों का और तिरुमूर्ति वर्तमान समाज के नीच व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास में शंकरी का चरित्र सर्वाधिक प्रभावशाली है। उपन्यास का शीर्षक 'पोन्मलर' (स्वर्ण-पुष्प) उसी की ओर संकेत करता है। डाक्टर के रूप में वह व्यक्तिगत रोगों के साथ-साथ समाजगत रोगों के समूल विनाश के लिए प्रयत्नशील होती है। संपूर्ण उपन्यास नाटकीय शैली में रचित है। नाटक के समान इसमें आरंभ, विकास, चरम सीमा, निगति और उपसंहार सभी स्थितियों की योजना है। तमिल के आधुनिक सामाजिक उपन्यासों में 'पोन्मलर' का विशिष्ट स्थान है।

पोन्न (क० ले)

कन्नड-साहित्य में पंप (दे०), पोन्न और रन्न (दे०) रत्नत्रय नाम से विख्यात हैं। ये तीनों कवि प्राय: समकालीन थे। पोन्न ने अपने विषय में बहुत कम कहा है, परंतु आत्मस्तुति अधिक की है। संभवत: इनका जन्म-स्थान वेंगिमंडल का पुंगनूरु में नागमय्या नाम के एक जैन ब्राह्मण थे। उनके दो पुत्र थे—मल्लपय्या जिन्होंने अपने गुरु जिनचंद्र को प्रसन्न करने के लिए पोन्न से 'शांतिपुराण' (दे०) की रचना कराई।

राष्ट्रकूट-सम्राट कृष्ण तृतीय से पोन्न को 'उभयकवि चक्रवती' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इससे यह व्यक्त होता है कि पोन्न कन्नड और संस्कृत दोनों भाषाओं में कविता करते थे। 'शांतिपुराण' और 'भुवनैकरामाभ्युदय' (राम-कथा) इनकी कन्नड-रचनाएँ हैं। 'कविचरिते' के लेखक स्व० नरसिंहाचार (दे०) ने लिखा है कि 'गतप्रत्यागत' पोन्न की संस्कृत-रचना होगी। 'जिनाक्षरमाला' भी संभवत: इनकी संस्कृत-रचना है। 'शांतिपुराण' को छोड़कर शेष रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। 'भुवनैकरामाभ्युदय' के कुछ पद्य इधर-उधर प्राप्त हुए हैं। 'शांतिपुराण' में सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ का जीवनचरित्र वर्णित है। यह बारह आश्वासों का चंपूकाव्य है और 'पुराणचूडामणि' कहलाता है। यह काव्य के लक्षणों के अनुसार लिखा गया है। इसमें सभी रसों का सुंदर परिपाक है।

पोन्न को संस्कृत शब्दों का मोह अधिक है। कठिन शब्दों के प्रयोग के कारण इनकी शैली सरल-सुबोध नहीं है। फिर भी इनकी कविता में स्वाभाविकता, लालित्य और प्रवाह है। इन्होंने कई छंदों का प्रयोग किया है, परंतु कंद' छंद की प्रयोग-बहुलता से ऐसा लगता है कि यह उनका प्रिय छंद है।

पोन्न की दूसरी कन्नड-कृति 'भुवनैकरामाभ्युदय' में संभवत: राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय के सामंत राजा शंकरगंड के पराक्रम का, जिन्हें 'भुवनैकराम' की उपाधि प्राप्त थी, वर्णन होगा।

पोन्नुदुरै, एस० (तं० ले०) [जन्म—1932 ई०]

इनका जन्म जाफना (श्रीलंका) आरंभिक शिक्षा मट्टकप्पु (श्रीलंका) में हुआ और उच्च शिक्षा मद्रास में प्राप्त की। इन्होंने महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में अपनी जीविका आरंभ की। 1955 ई० के आसपास कुछ कविताओं की रचना कर इन्होंने साहित्य-जगत में प्रवेश किया। दस वर्षों में ही इन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, नाटक आदि सभी विधाओं में अपने योगदान से तमिल के प्रसिद्ध साहित्यकारों में अपना स्थान बना लिया। साहित्य के सभी क्षेत्रों में वे प्रयोगकर्ता के रूप में दीख पड़ते हैं। इनका प्रथम कहानी-संग्रह 'पशि' कहानी के क्षेत्र में एक नया प्रयोग है। इस संग्रह की पाँच कहानियों में पाँच भिन्न तकनीकों का प्रयोग हुआ है। 'निळल' एवं 'ओळि' नामक कहानी-संग्रहों में क्रमश: जाफना के शिक्षित मध्यवर्ग और मट्टकळप्पु के मध्यवर्ग के लोगों—विशेषत: कृषक वर्ग के लोगों के जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण है। कहानी के क्षेत्र में इन्हें पर्याप्त सम्मान मिला। परंतु अश्लीलता के पुट के कारण तिरस्कृत भी होना पड़ा। अपनी स्थिति के एवं लेखन-कला के स्पष्टीकरण के लिए इन्होंने आलोचनात्मक कृतियों की भी रचना की। इन कृतियों के द्वारा इन्होंने साहित्यिक आलोचना के नये मानदंडों की स्थापना की। इनका लघु उपन्यास 'ती' (आग) समाज में विवाद का केंद्र बना। इनके नाटक 'मुदलमुळवक्कम' और 'वलै' पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। क्रमश: जीवन में बौद्ध, शैव और ईसाई मत से संबंधित इनकी तीन कहानियाँ मौलिक, सर्वांगपूर्ण कहानियों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इनका नवीनतम कहानी-संग्रह है—'वी' जिसे आधुनिक तमिल कहानी का प्रतिदर्श समझा जाता है। इनकी रचनाओं में सरलता, आधुनिकता, कलात्मक प्रौढ़ता और गहरे व्यंग्य के दर्शन होते हैं। इनके लेखन में मार्क्सवादी विचारधारा परिलक्षित होती है। ये तमिल के प्रसिद्ध कहानीकारों में गिने जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोयगै आळ्वार *(त० ले०)* [समय—छठी शती ई०]

पोयगै आळ्वार तमिल प्रांत में आविर्भूत वैष्णव संतों (आळवारों) में से हैं। इनका जन्म कांचीपुरम के वेह्का नामक स्थान में हुआ। इनका संस्कृत नाम सरोयोगी है। इनकी एकमात्र रचना 'मुदल तिरुवंदादि' है जिसमें अंदादि (दे०) छंद में रचित सौ पद हैं। विभिन्न पदों में विष्णु एवं उनके अवतारों की लीलाओं, पौराणिक प्रसंगों, इंद्र, ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं और विभिन्न वैष्णव तीर्थों का वर्णन है। पोयगे आळवार ने कुछ पदों में ब्रह्म, जीव आदि दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन भी किया है। तत्कालीन सामाजिक दशा और प्रथाओं का तथा प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण भी इनके पदों में है। दक्षिण के वैष्णव संतों में इन्हें पर्याप्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन्हें आदि आळवारों में से माना जात है और ये अंदादि छंद में पद-रचना करने वाले प्रथम कवि कहे जाते हैं।

पोलीकिट्टी *(क० कृ०)*

यह कैलासम् (दे०) का एक हास्य नाटक है। कैलासम के सत्रह नाटक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सामाजिक और पौराणिक दो प्रकार के नाटक लिखे हैं। पौराणिक नाटकों में महाभारत के पात्र प्रधान हैं। उनके सामाजिक नाटकों में शहर के मध्य वर्ग का चित्रण हुआ है। पति-पत्नी और सास-वहू की समस्या भी है। 'पोलीकिट्टी' में आवारा होने पर भी उदार बुद्धि वाली किट्ट का स्वाभाविक चित्रण है। कैलासम् ने अँग्रेज़ी-मिश्रित कन्नड भाषा का प्रयोग करते हुए इसमें जो हास्य-रस भरा है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पौड़ी *(पं० पारि०)*

'वार' (दे०) नामक काव्यरूप के प्रत्येक पद्य-खंड को पौड़ी कहते हैं। इसे 'निशानी छंद भी कहा जाता है जो सीढ़ी के समानार्थक संस्कृत-शब्द 'निःश्रेणी' का तद्भव रूप और पंजाबी के पौड़ी शब्द का पर्याय है। पौड़ी एक ताल, ढाई ताल, तीन ताल, और पाँच ताल में गाई जाती है। इसके अर्थ-गांभीर्य के प्रति श्रोता को सावधान करने के लिए पखावज की केवल 'साथ' संज्ञक पट बजाई जाती है। दूसरी (गत संज्ञक) नहीं। भाई कान्हसिह ने अपने 'महान् कोश' में इसके सम-विषम तीस विभिन्न भेद गिनाए हैं जिनमें प्रति पौड़ी चरण-संख्या और प्रतिचरण मात्रा-संख्या क्रमशः चार से बारह और तेरह से पचहत्तर तक मिलती है। इसके अतिरिक्त यति-नियम और चरणांत में गण-भेद भी उपर्युक्त तीस भेदों के निर्धारक हैं परंतु व्यावहारिक रूप में ये नियम कवि की इच्छा पर निर्भर हैं और पौड़ी की वास्तविक शक्ति उसके वेग, लय और समतुकांतता में निहित है। वार और पौड़ी की अन्योन्याश्रयता के कारण गुरु गोविंदसिंह और यशोदा नंदन आदि अनेक कवियों ने इन शब्दों का पर्याय रूप में प्रयोग किया है।

पौराणिक कथाकोष *(गु० कृ०)*

प्रणेता—डाह्याभाई देरासरी (1857-1937 ई०) पाँच भागों में से पहला भाग प्रकाशित हुआ 1927 ई० में, और पाँचवाँ 1931 में। इस ग्रंथ में सारी पौराणिक कथाओं के पात्रों की नामावली के प्रथम अक्षर के अनुसार कथाएँ दी गई हैं और कथा के साथ इसका उल्लेख भी किया गया है कि कौन से पुराण में कहाँ यह कथा मिलती है। जहाँ एक व्यक्ति का एक से विशेष पुराणों में उल्लेख आता हो और कथा में भी भेद हो वहाँ सब पुराणों की कथाएँ दी गई हैं।

प्रकाश, डॉ० *(उ० पा०)*

डा० मन्मथनाथ दास (दे०) के नाट्यात्मक उपन्यास (ड्रामा नॉवेल) 'अस्पष्ट आख्यान' (दे) का नायक डा० प्रकाश एक-साथ गवेषक, वैज्ञानिक, डाक्टर एवं अध्यापक है। इसकी गवेषणा का विषय है, मनुष्य चरित्र का विश्लेषण—"क्यों क्षुद्र हंस के रक्त की एक बूंद देखकर एक मर्माहत होता है और दूसरा नरमुंडों का कृत्रिम पिरामिड तैयार करता व आनंदित होता है? मानव के दृष्टिकोण को कौन नियंत्रित करता है? पिता-माता या परिवेश?"

अपनी सहकर्मिणी के रूप में डा० प्रकाश ने सहायता ली है स्मिता देवी की। अपनी गवेषणा के लिए इस नर्स की सहायता इसने पगपग पर चाही है। किंतु विडबना का विषय है कि स्मिता के व्यक्तिगत जीवन के विषय में यह कुछ भी नहीं जान पाता।

हस्पताल के प्रसूति-भवन में माता के अनजाने में अनेक शिशुओं को परिवर्तित कर स्मिता डा० प्रकाश की गवेषणा को आगे बढ़ाती रहती है। इस गवेषणा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयवस्तु के रूप में स्मिता देवी डा० प्रकाश को नहीं छोड़ती। डा० प्रकाश की नवजात कन्या को मृत घोषित कर एक अंधभिक्षु की कन्या के रूप में स्मिता देवी उसका पालन करती है। स्मिता देवी अनेक तथ्यों को डा० प्रकाश से गुप्त रखती है।

परस्पर विरोधी विचारों के दो नवयुवक विवेकानंद एवं रत्नप्रिय इस गवेषणा के शिकार होकर समाज में अनेक विषमताओं की सृष्टि करते हैं। अंत में परिस्थिति को सँभालने में अपने को असमर्थ पाकर प्रकाश पागल होने का अभिनय करता है। किंतु अकस्मात जैसे सभी चीज़ें बिखर जाती हैं। परिस्थितियोंवश अंधभिक्षु की कन्या मीरा दुर्वत्य द्वारा बंदिनी होकर आत्महत्या कर लेती है। उसके बाद डा० प्रकाश को ज्ञात होता है कि मीरा उसकी अपनी लड़की थी। असीम आत्मग्लानि !

"मैं दुःख भी करूँगा तो किस अधिकार से ? दूसरे की लड़की समझकर, मैंने उसके प्रति कभी दया नहीं दिखाई। आज अपनी कन्या जान लेने के बाद यह दया क्यों ?' इस प्रकार मीरा की मृत देह पर डा० प्रकाश देख रहा था अपने संदर्भ का शेष विश्लेषण। मानव का वास्तविक परिचय—'अस्पष्ट आख्यान'।"

प्रकृतवाद *(हिं० पारि०)*

अतिप्राकृतवाद और आदर्शवाद (दे०) के विरोध में 'प्रकृतवाद' आंदोलन के रूप में उन्नीसवीं शती में आरंभ हुआ था। यह आत्मा की धारणा को अस्वीकार कर प्रकृति से परे किसी शक्ति को नहीं मानता। यह मनुष्य को प्रकृति का विकसित जंतु बताते हुए उसमें पशु-सुलभ आकर्षण-विकर्षण की स्थिति मानता है। इसीलिए प्रकृतवादी लेखक मनुष्य को काम-क्रोध आदि मनोरोगों का गट्ठर मान उसके अर्थहीन आचरणों, कामासक्त चेष्टाओं, अहंकार-जन्य वृत्तियों का चित्रण करता है। प्रकृतवाद के प्रवर्तक ज़ोला ने कहा है कि प्रकृतवादी कलाकार का कार्य है कि वह जिस सत्य और यथार्थ का साक्षात्कार करे, कला (दे०) में उसी की अभिव्यक्ति करे। इस प्रकार प्रकृतवाद यथार्थवाद (दे०) का प्ररोह होते हुए भी उससे इसलिए भिन्न है क्योंकि वह यथार्थवाद की तरह भावुकता, रोमांस, कल्पना (दे०), आदर्श का तो विरोध करता ही है, साथ ही ऐसा जीवन-दर्शन प्रस्तुत करता है जो विशुद्ध भौतिक एवं यांत्रिक धारणा पर आधारित है। प्रकृतवादियों ने साधारणतः उपन्यास को अपनाया है।

प्रगति *(उ० कृ०)*

यह मनोविज्ञान के अध्यापक डा० राधानाथ रथ (दे०) के पच्चीस निबंधों का संकलन है। निबंधों की सामाजिक चेतना में पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। उड़िया-निबंध-साहित्य में इसका स्वतंत्र महत्व है। समाजवादी चिंताधारा को प्रतिफलित करने में इन निबंधों का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ने की यथेष्ट संभावना है।

प्रगतिवाद *(हिं० पारि०)*

साहित्य में प्रगति का अर्थ है मार्क्सवादी विचार-धारा द्वारा निर्धारित दिशा में आगे बढ़ना। जो साहित्य मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन करता हुआ उस दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है, उसे प्रगतिवादी साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। 'सामूहिक प्रगति, सामयिक नव-निर्माण, जनता के चीत्कार की कहानी किसी दर्शन पर आधृत है और वह दर्शन है मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद।' मार्क्स के इस जीवन-दर्शन के अनुसार जगत की सभी वस्तुओं में विरोधी तत्त्वों का संघर्ष होता रहता है। इस संघर्ष के फलस्वरूप विभिन्न पदार्थों, उनकी शक्तियों और अस्तित्वों का अनवरत विकास होता रहता है आज के समाजवाद में दो विरोधी वर्ग-शक्तियों—पूँजीपति और सर्वहारा—में द्वंद्व चल रहा है। प्रगतिवादी साहित्य सर्वहारा का पक्ष लेकर समाजवादी शक्तियों का संवर्धन करता है। प्रगतिवाद व्यक्ति को समष्टि से अलग कर नहीं देखता और साहित्य को समष्टिगत चेतना मानता है; अतः प्रगतिवादी साहित्य समाज के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति को महत्त्व देता है, समष्टि की रक्षा में प्रवृत्त होता है। प्रगतिवादी लेखक अपनी अभिव्यक्ति के उपकरण जनजीवन से ग्रहण करता है और रूप-मोह में न पड़कर जीवन को उसकी संपूर्ण कुरूपता और अनगढ़पन के साथ प्रस्तुत करता है।

प्रगतिवाद *(हिं० प्र०)*

'छायावाद' (दे०) की अतिशय सूक्ष्मता और अंतर्मुखता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रगतिवाद का विकास हुआ। छायावाद की विचारधारा आध्यात्मिक और चेतना सांस्कृतिक थी। प्रगतिवाद की विचारधारा भौतिक और चेतना आर्थिक है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आर्थिक चिंतन प्रगतिवादियों का प्रेरणा-स्रोत है। प्रगतिवादी साहित्यकारों में पंत (दे०), निराला (दे०), प्रेमचंद (दे०), यशपाल (दे०), मुक्तिबोध (दे०), नागार्जुन और डा० रामविलास शर्मा (दे०) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब लोग भी कट्टर प्रगतिवादी आस्था के साहित्यकार नहीं हैं। इस प्रवृत्ति के प्रभाव से सामाजिक यथार्थ-भावना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, रूढ़ि और शोषण का विरोध, क्रांति की चेतना, वर्ग-वैषम्य आदि प्रगतिवादी तत्त्व स्फुट रूप से आधुनिक साहित्यकारों की कृतियों में उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं। शिल्प की दृष्टि से प्रगतिवादी साहित्यकार सरलता के समर्थक हैं। उनकी भाषा व्यावहारिक और शैली प्रखर होती है। व्यंग्य उनका प्रधान अस्त्र है। प्रगतिवाद का महत्त्व यह है कि 'उसने हिंदी-काव्य को एक जीवंत सामाजिक चेतना प्रदान की है।'

प्रजाराम रावल *(गु० ते०)* [जन्म—1917 ई०]

प्रजाराम ने चौथे दशक के अंतिम भाग से कविता करना आरंभ कर साहित्य-जगत को दो कविता-संग्रह भेंट किए हैं: 'पद्मा' और 'नांदी'। इनकी कुछ प्रकृति-संबंधी कविताएँ 'पद्मा' में संकलित हैं जिनमें षट् ऋतुओं के मनोहारी चित्र वर्तमान हैं। इसी प्रकार भयंकर शीत के चित्र खींचते हुए रावल सृष्टि की सतत ताज़गी (रेफ़रीजरेटर में रखे फल की भाँति) अनुभव करते हैं और आनंदित होते हैं। इनकी कविताओं पर अरविंद की गहरी छाप है। अध्यात्म-तंतुओं से गुंफित इनकी कविता का विषय है—पूर्णयोग की साधना। इन्होंने सुंदरम् (दे०) और पूजालाल की भाँति अधिमानस संवेदनों को वाणी देने का प्रयत्न किया है। विराट चेतना के स्पर्श से कवि पुलकित है; अपने हृदय में भरे हुए अमृत का पान करते हुए संसार-सर्प के साथ सतत युद्ध करते रहने की इनकी आकांक्षा है। चिन्मयी के प्रति लिखे गए काव्य में कवि-सौंदर्य, माधुर्य और सत्य—सभी को चिन्मयी को समर्पित कर देता है। प्रजाराम की कविता में संस्कृत काव्य जैसी सघनता और प्रौढ़ता है, अलंकार-योजना प्रायः निरायास है और लय को अर्थगत मान कर चलने का उपक्रम है। गंभीर संवेदनों को व्यक्त करने के लिए सॉनेट, मुक्तक और गीत आदि काव्य-स्वरूपों को ही इन्होंने अपनी कविता में संप्रेषण का माध्यम बनाया है। गुजराती कविता को अध्यात्म की ओर ले जाने वाले कुछेक कवियों में प्रजाराम का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रताप *(बँ० पा०)*

बंकिम (दे०) बाबू के 'चंद्रशेखर' उपन्यास में 'प्रताप' अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित-प्रोज्ज्वल है। प्रताप के प्रत्येक पदक्षेप में शौर्य के साथ महत्त्व का समुचित समन्वय हुआ है। गंगावक्ष में आत्मविसर्जन के मुहूर्त से उसका प्रारंभ है। शैबालिनी (दे०) के साथ चंद्रशेखर का विवाह होते ही प्रताप शैबालिनी के प्रणय-चांचल्य से अपने को दूर हटा लेता है। बंकिम बाबू ने प्रताप को नायकत्व प्रदान नहीं किया है यद्यपि केंद्रीय चरित्र के रूप में प्रताप ही सर्वत्र अपने नायकत्व की गरिमा से पूर्णतः मंडित दृष्टिगोचर होता है। फ़ास्टर के शिकंजे से शैबालिनी के उद्धार के द्वारा जिस प्रकार उसके शौर्य की ही अभिव्यक्ति हुई है, उसी प्रकार ग्रंथ के ऐतिहासिक आवर्त में प्रताप ने अपनी भूमिका को ठीक ढंग से अपने अधिकार में रखा है। रूपसी का पति प्रताप न तो रूपसी का है, न शैबालिनी का। वह वस्तुतः रूपजाल में फँसा हुआ है, फिर भी प्रेम के दावे को अंतर से वह अस्वीकार नहीं कर सका। यह स्वीकृति आत्म-संयम की महनीयता से और भी मोहक हो जाती है। प्रताप के आत्म-विसर्जन में इसकी परिसमाप्ति होती है। वहाँ भी इस महत् प्राण की अचंचल आत्माहुति प्रेम एवं वीरत्व के आलोक में उसके समग्र जीवन के आकाश को आलोकित कर देती है।

प्रतापचंद्र विलासम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1877 ई०]

यह रामस्वामी राजु-कृत नाट्यकृति है। इसमें 12 अंक हैं। कहानी अत्यंत सरल है। नाटक का नायक सुदेशमित्तिरर् एक अमीर शिक्षित नवयुवक है। वह एक नीच व्यक्ति के हाथों में पड़ जाता है। अनुभवहीन होने के कारण उसे नाना कष्ट उठाने पड़ते हैं। अंत में उसके मित्रगण उसका उद्धार करते हैं। इस नाटक से तमिल नाटक के क्षेत्र में एक नवीन युग का आरंभ हुआ है। इसमें प्रतिपाद्य विषय, चरित्र-चित्रण, रंग-संकेत और कथा-विकास की दृष्टि से अनेक नवीनताएँ हैं। नायक का चरित्र स्वाभाविक और प्रभावशाली है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि लेखक ने कांग्रेस की स्थापना के आठ वर्ष पूर्व अपने नाटक के माध्यम से सुदेशमित्तिरर् नामक पात्र से हमारा परिचय कराया। सुदेशमित्तिरर् का शाब्दिक अर्थ है 'देश-भक्त' (स्वदेशमित्र)। इसमें यथास्थान विधवा-विवाह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-विवाह, स्त्री-पुरुष के समान अधिकार की समस्याओं पर विचार किया गया है। भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का उदय संभवतः इसी कृति से होता है। यह नाटक प्रतिपाद्य विषय और रचना शैली की तमिल साहित्य की अभिनव सृष्टि है। इसे आधुनिक तमिल नाटकों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

प्रतापरुद्रीयमु *(तें० कृ०)*

श्री वेदवेंकटराय शास्त्री (दे०) का आधुनिक तेलुगु नाटककारों में प्रमुख स्थान है। इनका 'प्रतापरुद्रीयमु' एक विख्यात ऐतिहासिक नाटक है। इसमें आंध्र के सम्राट् प्रतापरुद्र के मंत्री युगंधर की चतुराई एवं बुद्धि-कौशल के असाधारण कार्यों का चित्रण किया गया है। दिल्ली के मुसलमान शासक धोखे से प्रतापरुद्र को बंदी बनाकर ले जाते हैं और युगंधर एक पागल के वेश में दिल्ली जाकर अपूर्व चतुराई एवं साहस से प्रतापरुद्र को छुड़ाने में ही नहीं, दिल्ली के सुल्तान को बंदी बनाने में भी सफल होता है।

इसमें नाटककार ने नाटकीय प्रभाव को अत्यधिक तीव्र करने के लिए युगंधर को नाटक में पर्याप्त समय तक हमारे सामने प्रस्तुत नहीं किया है। दूसरे पात्रों के संवादों में उसकी महानता का वर्णन कराके नाटक के बीच में, जबकि हम युगंधर की प्रज्ञा से प्रभावित हो चुकते हैं, उसको रंगमंच पर लाकर उससे अद्भुत साहसिक कार्य संपन्न कराए हैं। युगंधर आंध्र का घरेलू नाम है। किसी व्यक्ति की चतुराई एवं सूझबूझ का वर्णन करना हो तो, युगंधर से लोग उसकी तुलना करते हैं। ऐतिहासिक वातावरण एवं चरित्रों के चित्रण की दृष्टि से भी यह नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रतापरेड्डी, सुरवरमु *(तें० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

इनका जन्म अलंपुर (जिला महबूबनगर) तालूके के इटिकालपाडु में हुआ था। पिता का नाम नारायण रेड्डी तथा माता का नाम रंगम्मा था। हैदराबाद के निज़ाम कालेज तथा मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज से इन्होंने बी० ए०, एल-एल० बी० किया था। घर पर ही इन्होंने उपनिषद्, व्याकरण, तर्क, मीमांसा का सुष्ठु अध्ययन किया था। संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी आंध्र और अँग्रेज़ी भाषा-साहित्यों पर इन्हें अच्छा अधिकार था। कुछ समय तक इन्होंने हैदराबाद में वकालत की थी। बाद में इन्होंने 1924 ई० से 1934 ई० तक रेड्डी होस्टल का भार सँभाला और होस्टल में अच्छे पुस्तकालय तथा हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालय की स्थापना की।

1925 से 1948 ई० तक इन्होंने 'गोलकोंडा' (अर्द्ध-साप्ताहिक) नामक पत्रिका का संपादन किया। निज़ाम के अत्याचारी शासन का साहस के साथ सामना कर, तेलंगाना प्रांत के राजनीतिक जागरण में इन्होंने अद्वितीय योग दिया। तेलंगाना की प्रत्येक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्था की स्थापना अथवा विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है। तेलंगाना के राजनीतिक इतिहास में भी इनका प्रमुख तथा प्रथम स्थान है।

कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा शोधकर्ता के रूप में रेड्डी जी लब्धप्रतिष्ठ हैं। इनकी उल्लेखनीय रचनाओं में 'हिंदुओं के त्यौहार', 'रामायण के रहस्य', 'गोलकोंडा के कवि', 'पुस्तकालय आंदोलन', 'आंध्र का सामाजिक इतिहास' आदि हैं। 1949 ई० में लिखा गया 'आंध्रुल का सांघिक चरित्र' केंद्र साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत प्रथम तेलुगु रचना है। यह पुस्तक इनके ग्रयक शोध-कार्य का परिणाम है।

प्रतापसाहि *(हिं० ले०)*

प्रतापसाहि बुंदेलखंड के निवासी थे। इनका रचना-काल 1833 से 1843 ई० तक माना जाता है। इनके द्वारा रचित ये ग्रंथ कहे जाते हैं—'जयसिंह प्रकाश', 'श्रृंगारमंजरी', 'व्यंग्यार्थ कौमुदी', 'श्रृंगारशिरोमणि', 'अलंकार-चिंतामणि', 'काव्यविलास', 'काव्यविनोद' और 'जुगल-नखशिख'। 'काव्यविलास' में इन्होंने अपने एक अन्य ग्रंथ 'रसचंद्रिका' का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'भाषाभूषण' (जसवंतसिंह), 'रसराज' (दे०) (मतिराम), 'नखशिख' (बलभद्र) और 'सतसई' (संभवतः 'बिहारी सतसई' दे०) की टीकाएँ भी लिखी थीं। इनके उपर्युक्त ग्रंथों में से 'काव्यविलास' और 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' उपलब्ध हैं। इनमें से पहले ग्रंथ में विविध काव्यांगों का निरूपण है जो कि 'काव्यप्रकाश' (दे०) और विशेषतः 'साहित्यदर्पण' (दे०) पर आधारित है। शास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य कोटि का है। दूसरा ग्रंथ नायक-नायिका-भेद से संबद्ध है। इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि नायिका-भेद को लक्ष्य में रखकर पहले उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, फिर ब्रजभाषा-गद्य में उन भेदों के लक्षण के अतिरिक्त संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की टीका-पद्धति के समान उसमें अनुस्यूत अलंकार; ध्वनि-भेद, शब्दशक्ति-भेद का निर्देश करते हुए इनके भी लक्षण प्रस्तुत किए गये हैं। 'काव्यविकास' ग्रंथ के आधार प्रतापसिंह को प्रमुख आचार्यों में स्थान दिया जाता है।

प्रतिज्ञायौगंधरायण *(सं० कृ०)* [समय—ईसा की तीसरी शती]

भास (दे०) की त्रयोदश नाट्यकृतियों में 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' विशेष महत्त्वपूर्ण एवं सफल रचना है। इसी के कथानक के आधार पर भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) की रचना की।

इसका कथानक गुणाढ्य की 'बृहत्कथा (दे०) से लिया गया है। कौशांबीराज उदयन (दे०) नकली हाथी के छल से महासेन अवंतिराज के द्वारा बंदी बना लिया जाता है। राजकुमारी वासवदत्ता (दे०) को वीणा-वादन सिखाते-सिखाते वह उसके प्रणयबंधन में बँध जाता है। यौगंधरायण की सहायता से वह वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भाग निकलता है।

यह भास की प्रौढ़ कृति है। अतः इसमें कथा-वस्तु का सुंदर संयोजन है तथा चरित्र-चित्रण अत्यंत मार्मिक है। 6 अंकों का यह नाटक वत्सराज उदयन और अवंति-कुमारी वासवदत्ता के विवाह का रहस्यमय प्रसंग प्रस्तुत करता है। भास ने सुप्रसिद्ध लोककथा को अपने इस नाटक में इतनी स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है कि इसमें घट-नाओं का पौर्वापर्य बना रहता है तथा स्वाभाविकता का कहीं क्षय नहीं होता। यह नाटक भास की मानव-जीवन के मार्मिक प्रसंगों को प्रस्तुत करने वाली सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। वस्तु-विन्यास, शिल्पकौशल तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भास की उत्कृष्ट नाट्यकृति है।

प्रतिभा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

यह चंद्रकुमार आगरवाला (दे०) की प्रकृति-विषयक सुंदर कविताओं का संकलन है। इनमें प्रकृति की रहस्यमयी सुंदरता का चित्रांकन है। कविताओं में दर्शन का गुरु-गांभीर्य और अभिव्यक्ति में लोकगीत की लय है। इनमें सौंदर्य का संधान, मानव-प्रीति वैज्ञानिक अद्वैतवाद, मानव-साम्य और सरल आशावाद है। कवि की दृष्टि में सत्य और सुंदर में भेद नहीं है। प्राच्य और पाश्चात्य कविता के भावार्थ एवं काव्यरीति का इसमें सामंजस्य है। लेखक जितना भावुक था उतना शिल्पी नहीं था। फिर भी कविताओं का यह छोटा-सा संकलन असमीया काव्य-जगत की संपत्ति है।

प्रतिभा *(उ० कृ०)*

'प्रतिभा' डा० हरेकृष्ण महताब (दे०)-कृत एक राजनीतिक उपन्यास है। स्वतंत्रता-आंदोलन, गांधी-दर्शन की सार्थकता, जनजागरण, नारी-स्वतंत्रता, नारी-जागरण आदि का इसमें चित्रण हुआ है।

प्रतिभा (दे०) अल्पशिक्षिता ग्रामीण बाला है। प्रारंभ में पति नवीन द्वारा इसी कारण उपेक्षित व अप-मानित होती है किंतु समय आने पर वह क्रांतिकारिणी बन जाती है; जनविद्रोह का नेतृत्व करती है; असीम साहस, चरित्रबल एवं प्रखर बुद्धि का परिचय देती है। नवीन की अवहेलना का ख्याल न कर वह उसके महत् आदर्श की पूर्ति में लग जाती है और नारी-जागृति की अनिवार्यता का संकेत करती है।

समुन्नत, सशक्त राष्ट्रनिर्माण के लिए समाज के उपेक्षित व दुर्बल अंगों का विकास अपरिहार्य है। जन-साधारण में राजनीतिक चेतना, राष्ट्रीय भावना एवं उत्सर्ग की प्रेरणा होनी चाहिए। इसके पात्र—प्रकाश, नवीन, प्रतिभा सभी इस प्रशस्त राजपथ के राही हैं। सर्वांगीण जागरण एवं विकास के बिना राष्ट्रीय उत्थान असंभव है, यही इसका संदेश है।

राजनीतिक उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है। राजनीतिक उपन्यास होते हुए भी यह प्रचारमूलक नहीं है।

प्रतिभा *(उ० पा०)*

प्रतिभा डा० हरेकृष्ण महताब (दे०) के उपन्यास 'प्रतिभा' (दे०) की नायिका है। यह अल्पशिक्षिता होते हुए भी अपनी स्वस्थ चिंतना व उच्चकोटि के व्यक्तित्व द्वारा अपनी प्रतिभा को प्रकट करती है। इसके चरित्र के माध्यम से लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि सामाजिक उपेक्षा के कारण यद्यपि नारी का व्यक्तित्व दब जाता है, तथापि समय आने पर वह आशातीत नेतृत्व व दृढ़ता का परिचय दे सकती है। वह पुरुष की परिपूरक है, उसे यथो-चित समझे बिना उसकी उपेक्षा करना घोर अन्याय है।

प्रतिभा एक ग़रीब मुंशी की पुत्री है। प्राइमरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पढ़ते समय महेंद्र बाबू ने उसका नाम अपुछि के स्थान पर प्रतिभा कर दिया था। किशोरावस्था पार करते-न-करते उसकी पढ़ाई बंद हो जाती है किंतु महेंद्र बाबू द्वारा भेजी जाने वाली पत्रिकाओं को वह नियमित रूप से पढ़ती है। नारी स्वाधीनता-संबंधी महेंद्र बाबू के लेखों से वह अत्यधिक प्रभावित होती है। महेंद्र बाबू भी अपने अंतर में प्रतिभा को प्राप्त करने की इच्छा सँजोए रहते हैं।

किंतु प्रतिभा का विवाह नवीन के साथ होता है। नवीन देशभक्त व विप्लवी है। प्रतिभा को अल्प-शिक्षिता तथा अपने जीवन-ध्येय की प्राप्ति में बाधक समझ कर नवीन उसे छोड़कर चला जाता है। असहयोग आंदोलन में उसे जेल हो जाती है।

नवीन के ज़मींदार पिता रामहरि बाबू के अत्याचार से जनता विद्रोह कर उठती है। नवीन का मित्र प्रकाश जनता में जागृति फैलाता है। प्रकाश के विचार प्रतिभा को बड़ी गहराई से प्रभावित करते हैं। अब वह नवीन को नवीन दृष्टि से देखने लगती है। देशभक्त पति के महान व्यक्तित्व के समक्ष उसका मन श्रद्धावनत हो जाता है। महेंद्र बाबू मजिस्ट्रेट की हैसियत से इस जन-आंदोलन का दमन करते हैं। नवीन की अनुपस्थिति में प्रतिभा आंदोलन का नेतृत्व करती है। नवीन उसके इस नूतन परिचय से अभिभूत हो जाता है। उसे अपनी भूल की प्रतीति होती है। प्रकाश दोनों को मिलाकर आशीर्वाद देता है—'तुम दोनों क्रांति के अग्रदूत बनो।'

प्रतिभा *(सं०, हिं० पारि०)*

'प्रतिभा' का शाब्दिक अर्थ है दीप्ति या चमक। लाक्षणिक अर्थ में यह शब्द विलक्षण बौद्धिक शक्ति का समानार्थी है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसे काव्य का मूलगत हेतु माना गया है। भामह (दे०), आनंदवर्द्धन (दे०), वाग्भट्ट (दे०) (प्रथम), राजशेखर (दे०) और जगन्नाथ (दे०) आदि आचार्यों ने प्रतिभा के अभाव में काव्य-सृजन को असंभव माना है। वामन (दे०), रुद्रट (दे०) और कुंतक (दे०) प्रतिभा को काव्य-सृजन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्वीकार करते हुए भी इसे व्युत्पत्ति और अभ्यास के सहयोग में ही उपयोगी मानते हैं। दंडी (दे०), मंगल आदि कुछ आचार्य प्रतिभा को परिहार्य काव्य-हेतु भी मानते हैं। वामन और मम्मट (दे०) ने प्रतिभा को कवित्व का बीज कहा है ('कवित्वबीजं प्रतिभानम्' —वामन; 'शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः' —मम्मट)। भारतीय काव्यशास्त्र में भट्ट तौत (दे०) ने इसे नव-नव उन्मेष करने में समर्थ प्रज्ञा के रूप में परिभाषित किया है ('प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता') जबकि अभिनवगुप्त (दे०) इसे अपूर्व वस्तु के निर्माण में समर्थ प्रज्ञा कहते हैं। ('प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा') कुंतक ने इसे ऐसी संस्कारजन्य शक्ति कहा है ('प्राक्तनाद्यतनसंस्कार परिपाक प्रौढ़ा प्रतिभा काचिदेव कविशक्तिः'— कुंतक) जो कवि को काव्यानुभूति की अभिव्यंजना में उपयुक्त शब्द अनायास ही सुझा देती है। ('सा काव्यघटनाऽनुकूल शब्दार्थोपस्थितिः' —जगन्नाथ)। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रतिभा संस्कारों के फलस्वरूप प्राप्त कवि की उस मौलिक एवं नैसर्गिक शक्ति का नाम है जिससे उसके कवित्व को बीज मिलता है और वह नये-नये अर्थों का उद्घाटन तथा अपूर्व वस्तु के निर्माण की क्षमता प्राप्त करता हुआ उपयुक्त शब्दों के विन्यास से अपनी अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करता है। राजशेखर (दे०) ने प्रतिभा के दो प्रकार निरूपित किए हैं: 'कारयित्री' और 'भावयित्री' जिनमें कवि को काव्य-सृजन की शक्ति प्रदान करने वाली कारयित्री ही वास्तविक प्रतिभा है। इसी प्रकार रुद्रट द्वारा निरूपित 'सहजा' और 'उत्पाद्या' प्रतिभा के दो भेदों में से 'सहजा' ही वस्तुतः प्रतिभा है, क्योंकि उत्पाद्या व्युत्पत्ति और अभ्यास द्वारा अर्जित शक्ति है जो नैसर्गिक नहीं होती। भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा के अतिरिक्त व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी काव्यहेतु माना गया है, किंतु उनकी सार्थकता प्रतिभा के संस्कारक तत्त्वों के रूप में ही है, उससे स्वतंत्र रूप में नहीं।

प्रतिभा को अँग्रेज़ी के 'जीनियस' शब्द के समकक्ष माना जाता है, किंतु 'जीनियस' एक अव्याप्त अभिधान है। प्रतिभा का स्वरूप इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ी के 'इमेजिनेशन', 'टैलेंट', 'गिफ़्ट', 'फ़ैकल्टी' आदि के समवेत रूप में ही प्रकट हो सकता है। 'जीनियस' शब्द का मूल अर्थ पितृगृह का महत् देवता था। बाद में इस देवता में निहित दिव्य शक्ति अथवा ईश्वर-प्रदत्त गुणों को 'जीनियस' कहा जाने लगा। इस प्रकार 'जीनियस' और उसके निकटतम शब्द 'गिफ़्ट', 'टैलेंट' और 'फ़ैकल्टी' आदि में जन्मजात अथवा दिव्य सर्जना-शक्ति का अर्थ निहित है। यूनान के अरस्तू-पूर्व चिंतकों में काव्य को दैवी प्रेरणा से उद्भूत और कवि को अलौकिक प्रेरणा से युक्त मानने की परंपरा थी। होमर के दोनों महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडीसी' के मंगलाचरणों में दैवी प्रेरणा का उल्लेख है। बाद के कवि और आलोचकों—कॉलरिज, कीट्स, डा० जॉन्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि—ने प्रतिभा को ही काव्य-शक्ति का मूल माना। इनके अतिरिक्त होरेस, पोप और बेन जॉन्सन आदि ने प्रतिभा के साथ ही व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी समान महत्त्व दिया है।

प्रतिभा-साधन *(म० कृ०)*

मराठी साहित्य में 'कला कला के लिए' सिद्धांत के प्रवर्तक एवं प्रचारक ना० सी० फडके (दे०) हैं। इसी साहित्य-सिद्धांत की पुष्ट स्थापना के लिए इन्होंने 1931 ई० में 'प्रतिभा-साधन' नामक साहित्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की थी।

मराठी साहित्य में समाजहित-निरपेक्ष कला का समर्थन श्री कृ० कोल्हटकर तथा न० चि० केळकर जैसे साहित्यकारों ने भी किया था, परंतु फडके जी ने पश्चिम के इस सिद्धांत (आर्ट फॉर आर्ट्स सेक) की व्यवस्थित स्थापना की।

फडके जी के अनुसार कला के संदर्भ में नीति-अनीति का प्रश्न नहीं उठा। नीति का समर्थन एवं अनीति का उच्छेदन जैसे विधान साहित्य को संकीर्ण कारा में जकड़ देते हैं। साहित्य का एकमात्र उद्देश्य चित्ताकर्षक ढंग से कथ्य का निवेदन करना है। इस उद्देश्य को छोड़ यदि वह नीति की चर्चा भी करता है तो वह साहित्य-क्षेत्र से बाहर है।

जिन्होंने 'रत्नाकर' पत्र के अक्तूबर 1926 ई० के अंक में 'अभिजात मराठी वाङ्मय' शीर्षक निबंध में यह लिखा था कि साहित्य और नीति का संबंध नहीं, यह कहना भ्रामक है; वही फडके 1931 ई० में 'प्रतिभा-साधन' ग्रंथ में 'नीति-निरपेक्ष कला का समर्थन करें', यह आश्चर्य की बात थी। इसी कारण आलोचक उन पर आरोप लगाते हैं कि इनकी 'प्रतिभा-साधन' पुस्तक पर पश्चिमी समीक्षक हैमिल्टन के 'आर्ट ऑफ़ फ़िक्शन' नामक ग्रंथ का प्रभाव है।

'प्रतिभा-साधन' अपने प्रकाशन के बाद ही विद्वन्मंडली में चर्चा का विषय बन गया था। इस ग्रंथ पर फडके को भोजराज पुरस्कार भी मिला था।

प्रतिमा *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शती ई०]

रामकथा उपजीव्य नाटकों में 'प्रतिमा' का विशिष्ट स्थान है। महाकवि भास (दे०) अपने प्रयोगों तथा अभिव्यक्ति के वैविध्य के लिए सुविख्यात हैं। 'रामायण' (दे०) को स्रोत मानकर भी उन्होंने इस नाटक की कथावस्तु में कुछ मौलिक परिवर्तन किए हैं।

सात अंकों के इस नाटक में राम-वनवास से रावण-वध तक की कथा वर्णित है। अपने ननिहाल से लौटकर भरत प्रतिमा-मंदिर में अन्य पूर्वजों के साथ अपने पिता महाराज दशरथ की प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान लगा लेते हैं। यह अंश भास की अपनी उद्भावना है। वस्तुतः इसी अंश के आधार पर इस नाटक का शीर्षक रखा गया है।

इस नाटक के शिल्प-विधान तथा चरित्रचित्रण में शैथिल्य है। ऐसा लगता है यह भास की प्रारंभिक कृति है तथा इसकी रचना के समय तक भास में उतना रचना-कौशल नहीं आ पाया था जितना कि इसके बाद की कृतियों में देखने को मिलता है।

प्रतिहारेंदुराज (भट्टेंदुराज) *(सं० ले०)* [समय—950-990 ई०]

संस्कृत-अलंकारशास्त्र के इतिहास में प्रतिहारेंदुराज का स्थान भी कम महत्त्व का नहीं है। इनका संबंध साहित्यशास्त्र के दो विशिष्ट आचार्यों से था। एक ओर जहाँ ये 'अभिधावृत्तिमातृका' (दे०) के कर्त्ता प्रसिद्ध मीमांसक मुकुल भट्ट के शिष्य हैं जिनकी स्तुति इन्होंने अपनी कृति के आरंभ एवं अंत दोनों स्थलों पर की है, तो दूसरी ओर ये प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) के साहित्य-गुरु भी हैं। अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' (दे०) की अपनी टीका 'लोचन' के आरंभ में ही इनका पुण्यस्मरण किया है। इनके स्वयं के उल्लेख के अनुसार ये कोंकण प्रदेश के निवासी थे। इनके लिए महेंद्रराज एवं इंदुराज नाम भी प्रयुक्त हुए हैं।

प्रतिहारेंदुराज का समय उक्त दोनों आचार्यों के मध्य दशम शती का उत्तरार्ध निश्चित है।

इनकी एकमात्र कृति है—उद्भट के 'काव्यालंकारसारसंग्रह' (दे०) पर 'लघुवृत्ति' नाम की टीका। इसमें इन्होंने स्थल-स्थल पर भामह (दे०), दंडी (दे०), वामन (दे०), रुद्रट (दे०) तथा आनंदवर्धन (दे०) की कृतियों के उद्धरण दिए हैं। ये आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत के विरोधी तो नहीं हैं पर काव्य में ध्वनि की मुख्यता भी इन्हें स्वीकार्य नहीं। इनके अनुसार ध्वनि का अलंकारों में ही अंतर्भाव साधित हो जाता है। लघुवृत्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतिम भाग में इन्होंने वस्तु, अलंकार एवं रस तीनों ध्वनियों का अंतर्भाव किसी-न-किसी अलंकार में साधित कर दिया है।

प्रतीक *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष —1952 ई०]

यह श्री प्रियकांत मणियार (दे०) की प्रेम तथा काल के मुख्य विषय से संबंधित कविताओं का संग्रह है। इसके शीर्षक के अनुरूप कवि ने अनेक नये भाव-प्रतीकों की योजना की है। उसके प्रतीकों में स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के नये कवियों की रचना-कला, प्रतीक-विधान तथा यथार्थ धरातल के दर्शन होते हैं। उदाहरणतया 'वेश्या की गली' का परिचय 'रे सूर्यमां मछलियो तरी रही' कहकर कराया गया है जबकि राधा-कृष्ण के प्रतीक में दोनों की अभिन्नता 'सरोवर क ाजल कान्ह है तो उसकी लहरी राधा है' कहकर दिखाई गई है।

प्रतीक *(हिं० पारि०)*

यह अँग्रेज़ी 'सिम्बल' का पर्याय है। इसका प्रयोग किसी मूर्त, अमूर्त और गोचर अथवा इंद्रियातीत विषय का किसी अन्य मूर्त एवं इंद्रियगोचर वस्तु द्वारा प्रतिविधान किए जाने के अर्थ में होता है। अतः प्रतीक-योजना में सामान्यतः चार तत्त्वों की स्थिति होती है—परोक्ष एवं अप्रस्तुत कथन की शैली; अतींद्रिय विषय की इंद्रियगोचर व्याख्या; प्रस्तुत से भिन्न सूक्ष्मतर अर्थ की व्यंजना; प्रस्तुत के कथन के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का कथन।

भारतीय काव्यशास्त्र में विवेचित 'उपलक्षण' से इसका अत्यधिक साम्य है और इसका क्षेत्र शब्द की व्यंजना (दे०)-शक्ति का ही प्रसार है। पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र और दर्शनशास्त्र में यद्यपि 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग अभिव्यंजना मात्र के अत्यंत व्यापक अर्थ में भी हुआ है, तथापि अपने विशिष्ट अर्थ में यह अभिव्यंजना की एक पद्धति-विशेष है।

प्रतीकों का प्रयोग सृष्टि के आरंभ से ही जीवन, धर्म, दर्शन, कला (दे०) और वाङ्मय में होता आ रहा है। मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं के वर्णन के लिए पशुओं के नामों का प्रतीक-रूप में प्रयोग प्रायः प्रत्येक देश में प्रचलित रहा है, जैसे वीरता के लिए सिंह, कायरता के लिए गीदड़, चालाकी के लिए लोमड़ी आदि। देशकाल की सीमाओं में सांस्कृतिक प्रतीक भी बहुत बड़े स्तर पर प्रयुक्त होते रहे हैं—जैसे भारत में चूड़ियाँ और सिंदूर आदि। प्रतीक दो प्रकार के माने गए हैं पारंपरिक और वैयक्तिक। पारंपरिक प्रतीक बहुप्रयुक्त होने के कारण पाठक के लिए बोधगम्य और कवि के लिए वस्तुनिष्ठ होते हैं। वैयक्तिक प्रतीकों का विधान कवि विशिष्ट भाव-बोध की व्यंजना के लिए करता है जिससे काव्य में नूतनता और वैचित्र्य का समावेश तो होता है, किंतु वे कभी-कभी बहुत दुर्बोध भी हो जाते हैं।

प्रतीकवाद *(हिं० पारि०)*

यह पाश्चात्य काव्यवाद 'सिंबालिज़्म' का हिंदी पर्याय है। इसका प्रवर्तन फ़्रांस में 18 सितंबर, 1889 ई० में 'फ़िगारो' नामक पत्रिका में प्रकाशित कुछ लेखकों के घोषणापत्र द्वारा हुआ था। घोषणापत्र के अनुसार 'प्रतीकात्मक काव्य विचार को ऐंद्रिय रूप का बाना पहनाने की एक कोशिश है।' प्रारंभिक प्रतीकवादियों में विश्व के आधिभौतिक रूप की प्रकल्पना तथा संसार के प्रति एक विशेष प्रकार का रहस्यमय अतींद्रिय दृष्टिकोण विद्यमान था जिसके कारण उनके समसामयिक साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित प्रकृतवाद (दे०) और वैज्ञानिक यथार्थवाद को निश्चय ही गहरा आघात लगा था।

प्रतीकवाद के प्रवर्तक आर्थर रिम्बॉड थे जिन्होंने अपने नितांत वैयक्तिक और कहीं-कहीं विचित्र प्रतीकों द्वारा अभिव्यंजना-शिल्प को एक नया आयाम प्रदान किया। अन्य प्रमुख प्रतीकवादियों में वरलाँ और मलार्मे के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रतीकवाद से समस्त योरोप और अमरीका का साहित्य भी काफ़ी दूर तक प्रभावित हुआ है। अँग्रेज़ी साहित्य के 'डिकेडेंट्स' (क्षयोन्मुखी) तथा अमरीका के बिंबवादी और प्रतीकवादी आंदोलनों के मूल में फ़्रेंच प्रतीकवाद की ही प्रेरणा थी। प्रसिद्ध जर्मन लेखक रिल्के और स्टीफ़न जॉर्ज भी प्रतीकवाद से अत्यंत प्रभावित थे। प्रतीकवाद से प्रभावित परवर्ती योरोपीय लेखकों में इब्सन, यीट्स, सीन्ज, ओ'नील, फ़िलिप बेरी आदि प्रमुख हैं। ईलियट के काव्य पर भी प्रतीकवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

प्रतीकात्मक प्रस्थानम् *(मल० पारि०)*

जीवन के भिन्न-भिन्न मंडलों के वाहक विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रतीकों की सहायता से वर्णन करने की रीति को 'प्रतीकात्मक प्रस्थानम्' कहते हैं। यह जीवन के सूक्ष्म भावों को जगत के स्थूल पदार्थों के द्वारा प्रकाशित करने वाली काव्य-शैली है। मलयाळम भाषा के महाकवि आशान (दे०), जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) आदि सहृदय कवियों ने इस शैली में कई कविताएँ लिखी हैं। 'वीणपूवु' (दे०), 'निमिषम्' जैसे काव्य-ग्रंथ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आम जनता की धारणा है कि प्रस्तुत शैली में रचित काव्य-ग्रंथों का अर्थबोध दुष्कर कार्य है।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् *(सं० कृ०)*

यह काश्मीर शैव दर्शन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसका प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के ग्रंथों में वही स्थान है जो 'वेदांतसार' का अद्वैत वेदांत के ग्रंथों में है। इसके कर्त्ता राजानक क्षेत्रराज आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) के चचेरे भाई तथा प्रमुख शिष्य थे। इनका समय ग्यारहवीं शती माना जाता है।

इस ग्रंथ में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धांतों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है। बीस सूत्रों तथा उन पर सुबोध वृत्ति लिखकर क्षेमराज ने इस ग्रंथ के माध्यम से प्रत्यभिज्ञाशास्त्र को अत्यंत सरल बना दिया है।

इसमें चिदात्मा, विश्व, जीवात्मा तथा जीवन्मुक्ति का सम्यक् विवेचन किया गया है। साथ ही विश्व के साथ चिति के मनोवैज्ञानिक संबंध का विश्लेषण भी बड़ी सफलता से किया गया है।

क्षेमराज की प्रौढ़ रचना होने के कारण इसमें प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धांत बड़े सरल, सुबोध और स्पष्ट हो गये हैं। इस ग्रंथ में धर्म और दर्शन का सामंजस्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसमें अनुस्यूत सिद्धांत एक ओर साधक के लिए ईश्वर प्रत्यभिज्ञा (आत्मबोध) का तत्त्वापदेश है तो दूसरी ओर तत्त्वचिंतक के लिए विश्व-प्रक्रिया में परमेश्वर के रहस्य का उन्मीलन। अब तक इसके दो अँग्रेज़ी अनुवाद, एक तमिल रूपांतर, एक तेलुगु व्याख्या, एक कन्नड अनुवाद तथा एक हिंदी अनुवाद हो चुके हैं।

प्रत्यय *(सं०, हिं० पारि०)*

वह भाषिक इकाई जिसका भाषा में स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता और जो किसी भाषिक इकाई के अंत में जोड़ी जाकर ही भाषा में प्रयुक्त होती है, 'प्रत्यय' कहलाती है। जैसे 'सुंदरता' में 'ता' या 'भारतीय' में 'ईय'। प्रत्ययों की सहायता से कारकीय रूप, एकवचन से बहुवचन, पुल्लिंग-स्त्रीलिंग, संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा क्रिया-रूपों की रचना होती है।

'प्रदीप', कृष्णलाल बजाज *(सिं० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

इनका जन्मस्थान गढ़ी यासीन (सिंध) है और इनकी शिक्षा-दीक्षा विभाजन के पश्चात् भारत में हुई है। आजकल ये उल्हासनगर (महाराष्ट्र) में रहते हैं और एक माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक हैं। ये सिंधी के साथ-साथ हिंदी, संस्कृत, गुजराती और मराठी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आजकल ये 'युगधारा' नामक एक साहित्यिक सिंधी पत्रिका का संपादन भी करते हैं। इनकी रुचि धर्म, दर्शनशास्त्र और तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में अधिक रही है। इन विषयों पर इनके कई निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। कविता के क्षेत्र में भी इन्होंने कई सुंदर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। ये सिंधी-जगत् में पत्रकार, निबंध-लेखक और कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्रबंध *(हिं०, सं० पारि०)*

रचना के आधार पर काव्य के प्रमुख दो भेद प्रचलित हैं—मुक्तक (दे०) और प्रबंध। वामन (दे०) ने इन्हें क्रमशः अनिबद्ध और निबद्ध कहा है। निबद्ध को इन्होंने 'संदर्भ' तथा 'प्रबंध' नाम भी दिया है। निबद्ध से उनका आशय महाकाव्य (दे०), नाटक (दे०), कथा, आख्यायिका (दे०) आदि मुक्तकेतर गद्य-पद्यबद्ध काव्य से है। उनके अनुसार जैसे पहले माला बनती है, और फिर अनेक मालाओं से मुकुट-शेखर बनाया जाता है, उसी प्रकार अनिबद्धों (मुक्तकों) से निबद्ध (प्रबंध) बनाया जाता है। अकेला अनिबद्ध काव्य उस प्रकार शोभित नहीं होता जैसे कि अग्नि का एक स्फुलिंग। स्फुलिंग-समूह के ही समान निबद्ध (प्रबंध)-काव्यदीप्तिमान् होता है। (का० सू० वृ० 1.3.27-32)। किंतु मुक्तक में भी प्रबंध के ही समान रसोद्‍बोध क्षमता होती है—इस कथन की पुष्टि करते हुए आनंदवर्धन (दे०), ने 'अमरुक' (दे० 'अमरुकशतक') के मुक्तकों का गुण-गान किया है—मुक्तकेषु हि प्रबंधेष्विव रसबंधाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यते। यथा हि अमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृंगार रसस्यदितः प्रबंधाय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानाः प्रसिद्धा एव। (ध्वन्या०) काव्य के मुक्तक और प्रबंध इस नाम से दो भेद सर्वप्रथम राजशेखर (दे०) की 'काव्यमीमांसा' (दे०) (पृष्ठ 124) में मिलते हैं। इनसे पूर्व आनंदवर्धन और कुंतक (दे०) ने क्रमशः ध्वनि (दे०) और वक्रोक्ति (दे०) के प्रबंधगत भेदोपभेद का भी उल्लेख किया है। अब प्रबंध-काव्य से तात्पर्य केवल पद्यात्मक प्रबंधों से लिया जाता है, जिसके महाकाव्य और खंडकाव्य (दे०) ये दो प्रमुख भेद माने जाते हैं।

प्रबंध पूर्णचंद्र *(उ० कृ०)*

'प्रबंध पूर्णचंद्र' यदुमणि महापात्र (दे०) की काव्य-प्रतिभा का उत्कृष्ट फल है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि, व्यापक अनुभूति, विशाल अध्ययन तथा पैनी प्रतिमा की यह द्योतक है। इसकी रचना-शैली समुन्नत है तथा पद-विन्यास एवं अलंकार-योजना उच्चकोटि की है। अगाध संस्कृत-ज्ञान का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। शब्द-चमत्कार एवं उद्भट कल्पना में कहीं-कहीं वे उपेंद्र भंज (दे०) से भी आगे बढ़ गए हैं।

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण इसकी विषयवस्तु है। प्रबंधकाव्य होते हुए भी इसके प्रारंभ में देवस्तुति नहीं है। कमल विष्णु के चरणों का उपयुक्त उपमान नहीं है, इसके प्रमाण-स्वरूप लेखक ने अनेक पौराणिक घटनाओं का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है कि गुरुदेव के मुख से कृष्ण नाम-श्रवण होते ही कृष्ण-सुधारस उनकी वाणी से स्वयमेव छलक पड़ा है। पूर्णचंद्र द्वि-अर्थक शब्द है—कृष्ण एवं रोग विनाशक औषधि। संपूर्ण काव्य का भी द्विविध अर्थ है—एक अर्थ कृष्ण-संबंधी है, दूसरा पुराणोक्त ऋषि अथवा किसी इतर-विषय का सूचक है।

यदुमणि जी ने व्याकरण के नियमों के आधार पर इस ग्रंथ में कुछ ऐसे स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग किया है, जिनका प्रयोग न तो प्रचलित भाषा में दिखाई पड़ता है और न पुराने ग्रंथों में। पाणिनि व्याकरण का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था। यद्यपि क्लिष्ट शब्दालंकारों का उन्होंने यथासंभव प्रयोग नहीं किया है, किंतु श्लेष के प्रयोग के कारण कठिन संस्कृत-शब्दों का प्रयोग किया है। इस रचना से उनका गंभीर संगीत-ज्ञान भी प्रकट होता है। रुक्मिणी को भावी कर्त्तव्यों का उपदेश देते समय श्लेष के द्वारा कवि ने विभिन्न राग-रागिनियों का उल्लेख किया है। कवि का कठिन से कठिन एवं सरल से सरल, दूरारूढ़ एवं सहज, गुरुगंभीर एवं चटपटी भाषा पर एक-सा अधिकार है। संक्षेप में उसका जीवंत व्यक्तित्व भी इसमें सर्वत्र व्याप्त है।

प्रबंधमानस *(उ० कृ०)*

यह डा० कृष्णचंद्र पाणिग्रही (दे०) के उड़िया जातीय एवं सांस्कृतिक परंपरा संबंधी निबंधों का संकलन है। एक प्रकांड पुरातत्त्ववेत्ता तथा इतिहासकार के रूप में हमारी संस्कृति के व्यापक स्वरूप पर उनका पांडित्यपूर्ण अधिकार है। इसमें सारलादास (दे०), जगन्नाथदास (दे०) एवं राधानाथ राय (दे०) का पुनर्मूल्यांकन मौलिक एवं विद्वत्तापूर्ण है। कुछ निबंधों में लेखक ने उड़िया जन-इतिहास का अतिसूक्ष्म विवेचन किया है और हमारी अनेक सांस्कृतिक मान्यताओं को नितांत आधारहीन सिद्ध किया है। इस पुस्तक ने इतिहास के अध्ययन को एक नया परिप्रेक्ष्य एवं एक निश्चित दिशा प्रदान की है।

प्रबोधचन्द्रिका *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1833 ई०]

विलियम् केरी के परामर्श के फलस्वरूप फ़ोर्ट विलियम कालेज के बँगला-भाषा-विभाग के प्रधान पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार की अन्यतम सार्थक रचना 'प्रबोध-चन्द्रिका' प्रकाशित हुई थी। कालेज अधिकारियों के नाम 5 जनवरी, 1819 ई० को लिखित केरी के एक पत्र से इस बात का पता लगता है। असंस्कृतज्ञों के निकट संस्कृत-भाषाश्रित विद्या का परिचय देना ही इस ग्रंथ का उद्देश्य था। इस ग्रंथ में कई लौकिक कहानियाँ भी संकलित हैं। भाषा अपेक्षाकृत सहज है। संस्कृत भाषा के प्रति लेखक का आनुगत्य समधिक विद्यमान है। फिर भी, कहानी की रचना एवं भाषा-विन्यास में प्रयोजनानुरूप गद्य-रीति का प्रयोग किया गया है। इसी में उनका स्वकीय वैशिष्ट्य प्रकट हुआ है।

प्रबोधचंद्रोदय *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती का उत्तरार्ध]

यह संस्कृत का प्रसिद्ध प्रतीक नाटक है। इसके रचयिता कृष्णकवि या कृष्ण मिश्र का समय ग्यारहवीं शती का उत्तराध माना जाता है।

यह नाटक संस्कृत-नाट्य-साहित्य की एक अनूठी कृति है। इसमें क के माध्यम से दार्शनिक तत्त्वों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विवेचन किया गया है। कवि ने इस नाटक में विवेक, मोह, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, दंभ, श्रद्धा तथा भक्ति आदि अमूर्त भावों को विभिन्न पात्रों के रूप में कल्पित करके अध्यात्म विद्या का सुंदर निदर्शन प्रस्तुत किया है। भक्ति और ज्ञान-समन्वित यह रूपक दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। कवित्व की दृष्टि से भी विद्वानों ने इस नाटक की प्रशंसा की है।

इस नाटक की रचना करके कृष्ण मिश्र ने संस्कृत में प्रतीक नाटकों की परंपरा को जन्म दिया। जैन कवियों ने इस परंपरा को अपनाकर अपने धर्म-सिद्धांतों का प्रचार किया। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अनेक मध्यकालीन हिंदी कवियों ने इसके हिंदी रूपांतर किए अथवा इसकी दार्शनिक संवाद-योजना का सहारा लेकर रूपकों की रचना की।

प्रबोधचंद्रोदय *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का पूर्वार्ध]

कृष्ण मिश्र-रचित 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०), संस्कृत का रूपात्मक नाटक है। इसमें वेदांत के अद्वैतवाद का प्रतिपादन नाटकीय ढंग पर हुआ है। मोह, विवेक, दंभ, ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति, बुद्धि आदि पुरुष-स्त्री पात्रों के माध्यम से अध्यात्म-विद्या का ठाठ बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। जहाँ इसमें ज्ञान और भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया गया है, वहाँ दूसरी ओर अँग्रेज़ी के रूपात्मक नाटकों की परंपरा का भी निर्वाह किया गया है।

हिंदी में भारतेंदु (दे०) ने 'पाखंड विडंबन' नाम से पहली बार इसका हिंदी अनुवाद 1871 ई० में किया। इसके अलावा अनाथदास ने 1883 ई०, गुलाबसिंह ने 1905 ई०, महेशचंद्र प्रसाद ने 1935 ई०, महाराज जसवंतसिंह (दे०) ने सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध तथा ब्रजवासी दास ने सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में 'प्रबोधचंद्रोदय' नाम से इस ग्रंथ का हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत किया। 1889 ई० में नानकदास ने राजा कीरत वर्मा का मन भोग-विलास से पलटने के लिए बलीराम-कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' के आधार पर इसी नाम से दोहे-चौपाइयों में यवन भाषा में रचना की। इसमें कहीं-कहीं खड़ी बोली का भी प्रयोग किया गया है। ब्रजवासी दास ने अपने अनुवाद में विविध छंदों का प्रयोग किया है और अनुवाद की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। निरर्थक और भरती के शब्दों का इसमें अभाव है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवाद में वैष्णव धर्म की विशेषता अभिव्यंजित हुई है। भक्ति की पराकाष्ठा के भी इसमें दर्शन होते हैं। अनुवाद की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। जसवंत सिंह का 'प्रबोधचंद्रोदय' का पद्यात्मक अनुवाद भी काफ़ी निपुणतापूर्ण है। निश्चय ही यह रचना भक्ति और ज्ञान का समन्वय प्रस्तुत करने की दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है और अपनी कोटि की अकेली रचना है।

प्रभजोत कौर *(पं० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

प्रभजोत कौर के कविता-संग्रह हैं—'लट लट जोत जगे', 'अजल तों', 'सुपने सधरां' और 'पब्बी'। पहले काव्य-संग्रह की कविताओं से लगता है जैसे कवयित्री को अपनी प्रेम-भावनाओं को व्यक्त करने में संकोच हो रहा हो और 'अजल तों' संग्रह में इस संकोच की जकड़न से काफ़ी हद तक मुक्त हो गई हों। इन कविताओं में जीवन की निराशा और पीड़ित मनुष्यता के प्रति हार्दिक सहानुभूति का भाव व्यक्त हुआ है। 'सुपने सधरां' कवयित्री का पहला आत्मसाक्षात्कार-काव्य है। इसमें प्रेमजन्य विरह का मार्मिक वर्णन है। इन कविताओं में लोकगीतों का पुट है और कला का निखार भी। 'पब्बी' संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

प्रभजोत कौर की कविता में विशुद्ध अनुभूति की तीव्रता है, लोकगीतों की-सी तड़प, अल्हड़ता और सरलता है।

प्रभाकर *(म० ले०)* [जन्म—1769 ई०; मृत्यु—1843 ई०]

इनका पूरा नाम प्रभाकर जनार्दन दातार था। ये गंगू हैबती के शिष्य थे।

इन्होंने अनेक लावणियाँ और पोवाडे लिखे हैं, परंतु इनकी प्रतिभा पोवाडों की रचना में अधिक निखरी है। प्रभाकर-रचित तेरह ऐतिहासिक पोवाडे मिलते हैं। इनमें से तीन के चरित-नायक सवाई माधवराव हैं और दो बाजीराव पेशवा द्वितीय पर हैं। पेशवा-शासन-काल के मध्याह्न से उसके अस्त होने तक के काल में जीवित रहने के कारण इनके काव्य में तत्कालीन परिस्थिति और सामंतीय संस्कृति की झलक मिलती है।

लौकिक लावणियों में कहीं-कहीं श्रृंगार-वर्णन प्रायः मुखर हो गया है, पर पौराणिक लयाश्रित लावणियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक सरस हैं। कृष्ण के शृंगार का वर्णन करने वाली एक लावणी हिंदी में भी लिखी है।

शाहीर कवियों में प्रभाकर अग्रणी हैं।

प्रभाकर *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—800 ई०]

प्रभाकर का पूरा नाम प्रभाकर मिश्र है। प्रभाकर मीमांसक कुमारिल (दे० कुमारिल भट्ट) के शिष्यों में सर्वाधिक प्रतिभाशील थे। इनका मत दर्शन के क्षेत्र में 'गुरु मत' के नाम से प्रख्यात है। इन्होंने 'शबर-भाष्य' (दे० शबरस्वामी) पर 'वृहती' तथा 'लघ्वी' ये दो टीकाएँ लिखी हैं। 'वृहती' का कुछ भाग ही प्रकाशित मिलता है।

प्रभाकर आत्मा को परिवर्तनशील नहीं मानते। इसके अतिरिक्त ये आत्मा की ज्ञेयता को भी स्वीकार नहीं करते। प्रभाकर का विचार है कि किसी भी क्रिया में कर्त्ता और कर्म एक नहीं हो सकते। इस प्रकार आत्म ज्ञाता ही है, ज्ञेय तो वस्तुएँ ही होती हैं। परंतु प्रभाकर मिश्र के मतानुसार आत्मा स्वयं प्रकाश भी नहीं है। आत्मा जड़ है। आत्मा के जड़ होने के कारण ही उसकी अभिव्यक्ति के लिए किसी ज्ञान का होना आवश्यक है। आत्मा की अभिव्यक्ति कराने वाला ज्ञान स्वप्रकाशरूप है।

जहाँ तक अज्ञानविषयक सिद्धांत का प्रश्न है, प्रभाकर अख्यातिवाद के समर्थक हैं। अख्यातिवाद के अनुसार शुक्ति (सीपी) को देखकर उसमें रजत (चाँदी) के भ्रम का कारण प्रत्यक्ष ज्ञान के कर्ता—द्रष्टा के सामने वर्तमान विषय—शुक्ति एवं रजत का भेदाग्रह है। अख्यातिवादी मीमांसक रजत को स्मृति पर आधारित मानता है। अख्यातिवादी का कहना है कि पुरोवर्ती विषय (शुक्ति) एवं रजत के भेद का ग्रहण होने पर शुक्ति एवं रजत के भ्रम का अवसर उपस्थित नहीं होता।

निस्संदेह, प्रभाकर का ख्याति-संबंधी सिद्धांत मनोवैज्ञानिक पद्धति से परीक्षण करने पर नितांत युक्ति-संगत प्रतीत होता है।

प्रभाकर शास्त्री, वेटूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

इस शती के विद्वान् समालोचकों में श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक अनुसंधान के क्षेत्र में इनका प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। श्रीनाथ (दे० श्रीनाथुडु) के बारे में इनका अध्ययन 'शृंगार श्रीनाथुडु' नामक शोधकृति के रूप में प्रस्तुत है। 'बसवपुराणमु' (दे०), 'हरविलासमु' (दे०), 'क्रीड़ाभरासमु' (दे०), आदि कई प्राचीन ग्रंथों का इन्होंने संपादन किया। इन संपादित ग्रंथों की भूमिकाओं में शास्त्रीजी की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। 'कपोतकथा', 'कड़ुपुतीगु', 'मन्नाळ्ळमुच्चटा' और 'विश्वासमु' इनकी स्वतंत्र रचनाएँ हैं। 'प्रतिमा' (दे०), 'कर्णभारमु' (दे०), 'मध्यम-व्यायोग' (दे०), आदि भास के नाटकों का इन्होंने तेलुगु में रूपांतर भी किया था। 'नीतिनिधि' के नाम से इन्होंने अँग्रेज़ी से अनुवाद किया। तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर ओरियेंटल इंस्टीट्यूट में रहते हुए इन्होंने सुप्रसिद्ध गीतकार अन्नमाचार्युलु (दे०) की जीवनी और साधना का अध्ययन किया। विस्मृति के गर्भ में पड़े इस प्रतिभा-रत्न को प्रकाश में लाने का श्रेय इन्हीं को ही है। तालपत्रों में सुरक्षित प्राचीन ग्रंथों को भी ये प्रकाश में लाए और उन्हें प्रचारित-प्रसारित किया। तेलुगु साहित्य का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें इन्होंने प्रवेश न किया हो। विद्वान, समालोचक, संपादक, शोधकर्ता और कवि के रूप में इनकी बहुमुखी प्रतिभा का तेलुगु-जगत में बड़ा आदर है।

'प्रभात', केदारनाथ मिश्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म आरा में हुआ। इन्होंने पटना विश्व-विद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की। ये बिहार राज्य में पुलिस जन-संपर्क अधिकारी हैं और 1962 ई० में 'विशिष्ट पुलिस सेवा' के निमित्त राष्ट्रपति-पदक प्राप्त कर चुके हैं। साहित्य-सेवा के लिए ये साहित्यिक संस्थाओं और राज्य-सरकारों द्वारा अनेक बार सम्मानित और पुरस्कृत हो चुके हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है परंतु साहित्य-जगत में इनकी ख्याति के आधार-स्तंभ 'कर्ण', 'कैकेय', 'ऋतंबरा' आदि प्रबंध-काव्य हैं। इन काव्यों में इन्होंने कर्ण, कैकेयी और मनु जैसे प्रभावशाली पात्रों की सृष्टि की है। इनके महाकाव्य 'कैकेयी' को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। छायावादोत्तर काल के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित प्रबंध-काव्यों में इनकी रचनाएँ कथ्य और शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावती प्रद्युम्नमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1570 ई०]

पिंगळ सुरना (दे०) के इस काव्य का कथानक संस्कृत के 'हरिवंश' के आधार पर निर्मित हुआ है। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न तथा प्रभावती का प्रणय एवं विवाह इस काव्य की मूल कथा है। इसमें 'शुचिमुखी' नामक राजहंस द्वारा नायक-नायिका के बीच में प्रणय-दौत्य का कार्य संपन्न करवाया गया है। यह राजहंस अपने वचन तथा कार्य-कुशलता से पाठक को आकृष्ट करता है। इसके द्वारा स्त्री-प्रकृति के अनेक स्वरूपों का परिचय भी दिया गया है।

इस काव्य की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह प्रबंध-काव्य के रूप में रचित एक नाटक है। सर्ग-विभाजन के रूप में अंक-विभाजन, पाँचों संधियों तथा पात्रों के प्रवेश, निष्क्रमण आदि सूचनाओं से युक्त होकर यह काव्य पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो सर्वालंकारों से सज्जित रंगमंच पर नाटक प्रदर्शित किया जा रहा हो। इसकी रचना मनोरम तथा घटनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं। मूल इतिवृत्त में आवश्यक संशोधन करके, कवि ने इस काव्य में रोचक एवं निविड कथा का निर्माण किया है। इसकी भाषा मधुर, प्रांजल एवं सशक्त है। तेलुगु के प्रौढ़ प्रबंध-काव्यों में यह बहुमूल्य माना जाता है।

प्रभुदास गांधी *(गु० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

श्री प्रभुदास गांधी की 'जीवनानुं पकोढ' को गुजरात के गांधी-साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रभुदास गांधी महात्मा गांधी के भतीजे के पुत्र हैं और उनका बाल्यकाल गांधी जी के साथ फ़िनिक्स आश्रम में व्यतीत हुआ था। आश्रम के संस्कार उन पर कैसे पड़े, गांधीजी पर उनके जन्मस्थान और पारिवारिक वातावरण का प्रभाव किस प्रकार पड़ा, फ़िनिक्स आश्रम का संचालन गांधी जी ने किस प्रकार किया, इत्यादि प्रसंग जो गांधी जी की आत्मकथा में प्राप्त नहीं होते, उन सबका इस ग्रंथ में विस्तार से और रोचक ढंग से वर्णन हुआ है। इस पुस्तक का अँग्रेज़ी में भी अनुवाद हुआ है जिसकी भूमिका गांधी जी के आश्रमवासी अँग्रेज़ शिष्य पोलोक ने लिखी है।

प्रमथनाथ बिशी *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

कहानी-उपन्यास एवं साहित्यिक तथा समाचार-पत्रीय सरस निबंधों के रचनाकार प्रथमनाथ बिशी का आधुनिक साहित्य-क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। 'प्र० ना० बि०' के छद्मनाम से व्यंग्य कहानियों एवं 'कमलाकांत' के नाम से समाचार-पत्रों में असंख्य सरस निबंधों के रचनाकार प्रमथ बाबू के चिंतनशील व्यक्तित्व का प्रकाशन इनके साहित्यिक निबंधों में हुआ है एवं लेखक का कल्पनाशील सर्जक रूप ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वाधिक प्रस्फुटित हुआ है। प्रमथ बाबू के उपन्यासों में 'देशेर शत्रु' (1925 में ढाका से प्रकाशित), 'पद्मा' (1945), 'जोड़ादीघिर चौधुरी-परिबार' (1937), 'डाकिनी' (1955), 'चलनबिल (1951), 'अश्वत्थेर अभिशाप' (1947), 'केरी साहेबेर मुंशी', 'लाल क़िला' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके 'जोड़ादीघिर चौधुरी-परिबार', 'चलनबिल' तथा अश्वत्थेर अभिशाप' में उत्तरबंग के एक ज़मींदार-परिवार उत्थान-पतन की शतवर्षव्यापी कहानी का क्रमिक इतिहास वर्णित है। 'पद्मा', 'कोपबती' आदि उपन्यासों में उत्तर-पूर्व-पश्चिम बंग के अपेक्षाकृत आधुनिक जीवन की कहानी लिपिबद्ध है। ज़मींदार एवं आभिजात्य वंश के स्मृति-कथन तथा बंगाल के गाँव के रूप-वर्णन के आश्रय से इन्होंने कल्पनाशीलता, काव्यधर्मिता, चरित्र-चित्रण-दक्षता, गंभीर जीवन तत्त्व-व्याख्याता का अच्छा परिचय दिया है।

सांप्रतिक काल में रचित 'केरी साहेबेर मुंशी' एवं 'लाल क़िला' में महाकाव्य की विस्तृति है। इतिहास के नाना घटनावर्त एवं राजनीतिक विक्षोभ तथा सामाजिक जटिलता के आश्रय से मानव जीवन की स्वयं या दैव-निर्धारित जीवन-लीला की इन्होंने बहुत ही सुंदर अभिव्यक्ति की है।

मननशील साहित्यिक आलोचक के रूप में प्रमथ बाबू की विशेष ख्याति है। स्वच्छंद-अभिव्यंजनावादी आलोचना के आश्रय से लेखक ने 'रवींद्र काव्य-प्रवाह', 'रवींद्र नाट्य-प्रवाह', 'रवींद्रनाथ ओ शांतिनिकेतन', 'माइकेल मधुसुदन', 'बंकिम सरणी' आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। नाटकों में लेखक ने व्यंग्य के आधार पर 'ऋणंकृत्वा' (1935), 'परिध्यासविजलिपतम्' आदि की एवं कविताओं में 'वसंतसेना' (1929), 'विद्यासुंदर' (दे०) (1935), 'युक्तवेणी' (1948), 'उत्तरमेघ' (1953), आदि प्रेम एवं प्रकृतिपरक संग्रहों की रचना की है।

ये कविता के क्षेत्र में पुरातनपंथी हैं जबकि उपन्यास के क्षेत्र में इन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास के आधुनिक एवं नये आदर्शों की स्थापना की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणवार्तिक *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600 ई०]

लेखक—धर्मकीर्ति (दे०)।

'प्रमाणवार्तिक' दिङ्नाग के 'प्रमाण-समुच्चय' की स्वतंत्र व्याख्या है। 'प्रमाणवार्तिक' पर भी देवेंद्रबुद्धि, प्रज्ञाकरगुप्त, जयानंत, पमारि, रविगुप्त, मनोरथनंदी, शंकरानंद तथा स्वयं धर्मकीर्ति की टीकाएँ मिलती हैं।

'प्रमाणवार्तिक' में चार परिच्छेद हैं। ये परिच्छेद स्वार्थानुमान, प्रमाण-सिद्धि, प्रत्यक्ष-प्रमाण तथा परार्थानुमान-विषयक हैं। प्रथम परिच्छेद के अंतर्गत ग्रंथप्रयोजन, हेतुविचार, अभावविचार, शब्दविचार, वेदों के अपौरुषेयत्व का विचार आदि विषयों के संबंध में विवेचन किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में प्रमाण लक्षणा एवं बुद्धवचन के संबंध में उल्लेख मिलता है। तृतीय परिच्छेद में प्रत्यक्ष तथा अनुमान की प्रमाणताएँ, परमार्थ-सत्य तथा व्यवहार-सत्य आदि विषयों का विवेचन है। चतुर्थ परिच्छेद के अंतर्गत धर्मकीर्ति ने परार्थानुमान, शब्दप्रमाणनिराकरण एवं भाव आदि के विषय में विवेचन किया है।

'प्रमाणवार्तिक' के अंतर्गत बौद्ध-विज्ञानवाद एवं क्षणिकवाद का विवेचन भी मिलता है। इसके अनुसार एकमात्र विज्ञान की ही सत्यता है। बाह्य तत्त्वों की सत्यता का इसमें निराकरण किया गया है। क्षणिकवाद का प्रतिपादन करते हुए प्रमाणवार्तिककार ने इस तथ्य पर विशेष बल दिया है कि सत्ता मात्र में नाश पाया जाता है। उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा के विपरीत इस ग्रंथ में, अर्थक्रिया में जो समर्थ है उसे परमार्थ सत् कहा गया है। इसके विपरीत वस्तु सामान्य को इसमें 'संवृत्ति' कहा गया है। उदाहरणार्थ, अर्थक्रिया में समर्थ घट परमार्थ सत् एवं घटत्व सामान्य संवृति है।

प्रमाण-समीक्षा एवं दार्शनिक विचारधारा की दृष्टि से प्रमाणवार्तिक बौद्ध दर्शन का अत्यंत उपयोगी ग्रंथ है।

प्रयोगवाद *(हिं० पारि०)*

साहित्य के समान प्रयोग भी चिरंतन हैं क्योंकि गतिरोध उत्पन्न करने वाली रूढ़ियों को हटाकर नये-नये प्रयोग सदा होते रहे हैं—विषय और शिल्प दोनों क्षेत्रों में। परंतु प्रयोग वे ही सफल रहे हैं जो परंपरा से एकदम कटे न रहकर उससे जुड़े होते हैं। जिन इलियट को प्रयोगवादियों में शीर्षस्थान प्राप्त है, वे भी परंपरा का महत्त्व स्वीकार करते हैं—यद्यपि परंपरा से उनका अभिप्राय पुरातन का अंधानुकरण नहीं है। वे भूत को वर्तमान के आलोक में देखने तथा वर्तमान को भूत द्वारा मार्गदर्शन देने के पक्ष में हैं। उनके प्रयोगवाद का आधार सत्रहवीं शती की अँग्रेज़ी-कविता और कैथोलिक विचारधारा थी। हिंदी में सिद्धांत-रूप में 'प्रयोगवाद' का उद्देश्य था अछूते क्षेत्रों का अन्वेषण, पर वस्तुतः वह 'छायावाद की वायवी सौंदर्य-चेतना के विरुद्ध एक वस्तुगत मूर्त और ऐंद्रिय चेतना का विकास तथा सौंदर्य की परिधि में केवल मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, अनगढ़, भदेस का समावेश' सिद्ध हुआ। यहाँ वह काव्य में इलियट की चिंताधारा और शिल्पगत विशेषताओं का तथा उपन्यास (दे०) में जेम्स ज्वाइस की चेतना-प्रकार पद्धति का अनुकरण मात्र बन कर रह गया है। जो बात हिंदी के विषय में सत्य है, प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के प्रयोगवादी साहित्य पर लागू होती है।

प्रयोगवाद *(हिं० प्र०)*

'तारसप्तक' (दे०) (1943 ई०) में भाव-शिल्प की जो नवीनता दिखाई दी, उसे आलोचकों ने मुख्यतया 'अज्ञेय' की भूमिका के आधार पर 'प्रयोगवाद' का नाम दिया है। 'नयी कविता' का प्रचलन हो जाने पर अधिकांश प्रयोगी कवि और आलोचक इस प्रवृत्ति की स्वतंत्र सत्ता अस्वीकार करते हैं। 'अज्ञेय' के अनुसार 'तारसप्तक' में संगृहीत कवियों के सहयोग की कसौटी प्रयोगशीलता थी। इस प्रयोगशाला ने भावक्षेत्र में नवीन क्षितिजों की खोज, मूल्यों की अराजकता की स्वीकृति, वस्तुपरक दृष्टि के आग्रह और अवचेतन की जटिलता के प्रतीकात्मक बिंबन का मार्ग लिया। भावक्षेत्र की इन नवीनताओं ने शिल्पगत प्रयोगों को अनिवार्य बना दिया। फलतः शब्द-भंडार को शास्त्रीय और स्थानीय शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यापक बनाया गया। प्रचलित शब्दों को विचित्र वैयक्तिक अर्थों से गर्भित किया गया। असाधारण अप्रस्तुतों की योजना की गई। विराम-संकेतों, अंकों, रेखाओं, टाइपों आदि के भाषेतर साधनों की शरण भी ली गई। लय और तुक की नयी शैलियों का संधान किया गया। इस प्रकार प्रयोगवादियों ने भाव और शिल्प दोनों के धरातल पर नवीनता या आधुनिकता को अंगीकार कर अपने काव्य को युगानुकूल बनाने का सफल-असफल प्रयास किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवरुड्ड *(तें० पा०)*

प्रवरुड्ड आंध्र कविता पितामह 'उपाधि' से विख्यात अल्लसानि पेद्दन्ना (दे०) के अमर प्रबंध-काव्य 'मनुचरित्रमु' (दे०) का एक प्रमुख पात्र है। प्रवरुड्ड परम निष्ठावान्, एकपत्नीव्रती, सदाचारी एवं कामदेव के समान सुंदर युवक है। वह एक सिद्ध के द्वारा किसी मूलिका को प्राप्त करके उसके प्रभाव से आसमान में उड़कर हिमालय पर्वत पर पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचने के उपरांत हिम के कारण उस मूलिका का प्रभाव नष्ट हो जाता है और वह अपने निवास-स्थान को लौट नहीं सकता। इस विकट स्थिति में उसकी भेंट बरूथिनी नामक परम सुंदरी अप्सरा से हो जाती है। वरूथिनी उसके अद्भुत सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसके सम्मुख अपने प्रणय एवं विरहताप को अभिव्यक्त करके उससे अनेक सुख पाने के लिए कातर हो उठती है। परंतु प्रवर अपनी धार्मिक निष्ठा एवं संयम के कारण उसके प्रस्ताव को बार-बार अस्वीकार करके उसे धर्म, नैतिकता एवं सदाचार के मूल्य समझाने का यत्न करता है। वरूथिनी भी जीवन में कामोपभोग के महत्त्व का वर्णन करती हुई कहती है कि मनुष्य धर्म, निष्ठा एवं सदाचार के द्वारा स्वर्ग पहुँच कर वहाँ की अप्सरा कामिनियों के सांगत्य का सुख ही भोगता है और वह दैवीय सुख से पृथ्वी पर ही मिल रहा है। अतः उसे ठुकराना नहीं चाहिए। जब उसके सारे तर्क व्यर्थ हो जाते हैं, तब वह कामोत्कंठा से कातर होकर प्रवर को गाढ़ालिंगन में बाँधने का यत्न भी करती है। परंतु अंत में प्रवर रोती-बिलखती हुई वरूथिनी को छोड़कर चला जाता है। प्रवर एवं वरूथिनी के इसी प्रसंग ने पेद्दन्ना की लेखनी के प्रभाव से 'मनुचरित्र' काव्य में अमरता प्राप्त कर ली है। समस्त आंध्र में प्रवर एक घरेलू नाम है, जो निष्ठावान् एवं संयमी सुंदर युवक का द्योतक है।

प्रवासी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

ना० सी० फडके (दे०) के उन उपन्यासों में जिनमें समसामयिक राजनीतिक पार्श्वभूमि पर रम्य प्रणय-कथा लिखी गई है, 'प्रवासी' का शीर्षस्थान है। इसमें 1908 ई० से 1930 ई० तक के राजनीतिक आंदोलन का परिचय तो मिलता है, किंतु लेखक उससे तदरूप नहीं हो पाया है। अतः पाठक का मन भी उसमें नहीं रमता। राजनीतिक पार्श्वभूमि का प्रयोग केवल कथा की घटनाओं को अधिक आकर्षक बनाने तथा नायक के गुणों में देशसेवा का गुण जोड़ने के लिए किया गया है। राजनीतिक घटनाओं और संघर्ष का प्रभाव पात्रों के मन पर नहीं पड़ता, वे पूर्ववत् कला-विलासी एवं प्रणयी बने रहते हैं। 'प्रवासी' उनके अन्य राजनीतिक उपन्यासों से थोड़ा भिन्न इसलिए है क्योंकि उसके नायक राजाभाऊ में आनुवंशिक प्रवृत्ति का प्रभाव दिखाया गया है—उसमें अपने पिता के दृढ़ निश्चय और अंतर्मुख स्वभाव की झलक मिलती है। अन्य उपन्यासों के सदृश इसमें भी संयोगों, और अस्वाभाविक प्रसंगों के प्रयोग के कारण विश्वसनीयता को आघात लगता है। चंचला के प्रति राजाभाऊ का आकर्षण प्रतीतिकर नहीं है। राजाभाऊ के प्रवास में उसे ऐसा कोई मित्र नहीं मिलता जिससे वाद-विवाद या वैयक्तिक संघर्ष होता हो, केवल स्त्रियाँ ही मिलती हैं—इस पर भी विश्वास नहीं होता। इसीलिए उसके 'प्रवास' की कथा प्रभावपूर्ण नहीं बन पाती, और न यथार्थ प्रतीत ही होती है; संघर्ष में धार भी नहीं आ पाती—राजभाऊ के दुखद अंत से पाठक द्रवित नहीं हो पाता। अतः राजनीतिक पार्श्वभूमि पर लिखा होने पर भी यह उपन्यास फडके के अन्य प्रणय-उपन्यासों से भिन्न नहीं है।

प्रवृत्ति *(सं० पारि०)*

राजशेखर (दे०) के अनुसार रंगमंच पर अभिनीत नाटक में 'वेशविन्यासक्रम' को 'प्रवृत्ति' कहते हैं। भारत ने चार भूखंडों के आधार पर प्रवृत्ति के चार भेद किए हैं—पश्चिम भाग की वेशभूषा आवंती, दक्षिण भारत की दाक्षिणात्य, पूर्वी भारत की औड्रमागधी, और मध्य तथा उत्तर की पांचाली।

प्रवेश बीजो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष— 1950 ई०]

रंगमंचीय एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से सफल कहे जाने वाले एकांकियों की सृष्टि जयंति दलाल ने की है। 'जवनिका' के पश्चात् दलाल का यह एकांकी-संग्रह 1950 ई० में प्रकाशित हुआ जो विशेषतः व्यंग्य एवं हास्य पर आश्रित है। इस यथार्थवादी एकांकीकार ने इस संग्रह में शहरी जीवन की विचित्रताओं और विकृतियों पर बड़ी निर्ममता से प्रहार किया है। अभिजात वर्ग के दंभ, मिथ्याभिमान, ढकोसले, प्रपंच, विषयलिप्सा और प्रदर्शनप्रियता को जयंतिभाई ने इसमें बहुत ही कुशलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा कलात्मकता से रूपायित किया है। इस संग्रह के दो एकांकी—'सोयनुं नाकुं' और 'द्रौपनीनो सहकारो'—विशेष लोकप्रिय हुए। 'स्त्रीनी दुश्मन स्त्री', 'चाल्लो', 'पाथरणा' ने चंदरवा' आदि एकांकी यथार्थवादी धरातल पर सामाजिक समस्याएँ पेश करते हैं। बर्नार्ड शॉ की तरह दलाल ने इन एकांकियों में समाज के ढकोसलों, मिथ्या व्यवहारों और दर्प पर करारे व्यंग्य एवं तीखे कटाक्ष किए हैं। भाषा-शैली और संवाद भी तदनुसार वक्रोतियों और व्यंजनाओं से परिपूर्ण है।

प्रसन्नकथाकलितार्थ युक्ति *(तें० पारि०)*

नन्नय भट्टु (दे०) (ग्यारहवीं शती) ने अपनी काव्य-रचना के विशेष गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि कविजन मेरी रचना की 'प्रसन्नकथा क(वि)-लितार्थ युक्ति' के बारे में मन में विचार कर उस योजना की सराहना करेंगे। यह उनके रचना-शिल्प की ओर इंगित करता है। कविता के अर्थ में प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) कथा का रहना अथवा प्रसन्न कथा से कलित (शोभित) अर्थों का संयोजन, यही इस पारिभाषिक शब्द का तात्पर्य है। 'आंध्र-महाभारतमु' (दे०) की कथाओं के नियोजन में नन्नय का स्पष्ट रचना-चातुर्य इस आशय की पुष्टि करता है।

कवि सम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) जी ने नन्नय भट्ट के काव्य-सौंदर्य की इस दृष्टि से व्याख्या करते हुए नन्नय की 'प्रसन्नकथाकलितार्थ युक्ति' शीर्षक आलोचनात्मक पुस्तक (1962 ई०) में लिखी है।

प्रसन्नराघव (सं० कृ०) [समय—तेरहवीं शती ई० का आरंभिक काल]

यह रामकथा पर आधृत संस्कृत-नाटक है। इसकी रचना पीयूषवर्ष जयदेव ने की, जो गीतिगोविंदकार जयदेव (दे०) से भिन्न थे। इनका समय 1200 ई० के लग-भग माना जाता है। यह विदर्भ देश के कुंडनपुर नामक ग्राम के निवासी थे।

जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' में वाल्मीकीय 'रामायण' (दे०) की कथा को अनेक रोचक प्रसंग, संवाद एवं परिवर्तनों से संयुक्त करके सात अंकों में प्रस्तुत किया है।

इस नाटक में नाट्य तत्त्वों की अपेक्षा काव्य-तत्त्वों का स्वर अधिक मुखरित है। इसीलिए कुछ आलोचक इसे नाट्य काव्य कहते हैं। इसके संवाद बड़े हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक हैं, परंतु व्यापार-संयोजन काव्यात्मकता के कारण शिथिल हो गया है। जयदेव का भाषा पर असाधारण अधिकार था। अद्भुत शब्दविन्यास तथा पदलालित्य ने उनकी भाषा को रमणीय तथा काव्य को कोमल बना दिया है।

हिंदी का राम-कथा-साहित्य प्रसन्नराघव से स्पष्टरूपेण प्रभावित है। गोस्वामी तुलसीदास (दे०) केशवदास (दे०) की कृतियों पर इस नाटक का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।

प्रसाद, जयशंकर *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

इनका जन्मस्थान वाराणसी है। इनके पिता-मह सुँघनी के व्यापारी थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा प्रायः घर पर ही हुई। अपनी अध्यनशीलता के कारण इन्होंने संस्कृत हिंदी, बँगला, अँग्रेज़ी आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। भारत के अतीत गौरव में इनकी आत्मा रम गई थी। इसलिए इनका श्रेष्ठ साहित्य अधिकांशतः सांस्कृतिक पीठिका पर प्रतिष्ठित है।

'प्रसाद' की प्रतिभा बहुमुखी थी। 'आँसू' (दे०), 'लहर' (दे०) और 'कामायनी' (दे०) जैसे काव्य, 'स्कंदगुप्त' (दे०), 'चंद्रगुप्त' (दे०), 'अजातशत्रु' (दे०), 'ध्रुव-स्वामिनी' (दे०) आदि नाटक, 'कंकाल' (दे०) और 'तितली' (दे०) जैसे उपन्यास, अनेक श्रेष्ठ कहानियाँ और गंभीर आलोचनात्मक निबंध इसके प्रमाण हैं। 'आँसू' विप्रलंभ, शृंगार-प्रधान काव्य है और 'लहर' में अनेक श्रेष्ठ प्रगीतों के साथ प्रलय की छाया जैसी लंबी नाट्य कविता भी संकलित है। महाकाव्य 'कामायनी' इनकी कालजयी रचना है। इनके नाटक ऐतिहासिक हैं। सभी के कथानक भारतीय इतिहास के गौरवकाल से चुने गये हैं। इनके माध्यम से नाटककार ने अपने समय के राष्ट्रीय आंदोलन को प्रदान करने का प्रयत्न किया है। घटनाधिक्य, पात्र-बाहुल्य, अलंकृत भाषा और गंभीर विचार आदि के कारण उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करने में अनेक कठिनाइयाँ आती रही हैं फिर भी इनका गौरव अक्षुण्ण है। अंतिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' इस दृष्टि से अपवाद है। इनके कथा-साहित्य में यथार्थवादी चेतना व्यक्त हुई है।

प्रसाद की कृतियों में छायावाद (दे०) का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है। मानवीय और मानवेतर सौंदर्य के कोमल और उदात्त चित्रों का जैसा भव्य समारोह यहाँ दिखाई देता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। युग-जीवन की समस्याओं का सार्वभौम समाधान प्रस्तुत कर इन्होंने युग-बोध को उदात्त रूप प्रदान किया है। भारतीय संस्कृति की आत्मा का निकटतम साक्षात्कार इनके साहित्य के माध्यम से किया जा सकता है। ये आधुनिक युग के प्रवर्तक एवं सर्वश्रेष्ठ कृतिकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

प्रसादम *(त० कृ०)* [रचना-काल—1964 ई०]

सुंदर रामस्वामी की नौ सामाजिक कहानियों का संग्रह। ये नौ कहानियाँ हैं—'प्रसाद', 'जन्नल', 'लव,' 'स्टाम्प एलबम', 'ओन्रूम पुरियविल्ले', 'वाळवुमवसंदमुम,' 'किडारि', 'सीदै मार्क शीक्कायत्तूळ' और 'मेय+पोय्=मेय्'। ये मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं, अतः कहानियों में आर्थिक दृष्टि से जीवन का चित्रण हुआ है। कहानियों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं—विशेषकर अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं का अंकन प्रभावशाली ढंग से हुआ है। 'स्टाम्प एलबम' जैसे नीरस विषयों को भी सरस कहानी का रूप दिया गया है। कहानियों में भाव-सौंदर्य के साथ कला-सौंदर्य भी है। अंतिम कहानी को छोड़ शेष सभी पारंपरिक शैली में रचित हैं। इनमें आंचलिक शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। सुंदर रामस्वामी आर्थिक दृष्टि से जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाले प्रमुख तमिल साहित्यकारों में से हैं।

प्रहराज, गोपाळ चंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1887; मृत्यु—1945 ई०]

साहित्यकार व संस्कारक की सम्मिलित मनोवृत्ति लेकर श्री गोपाळ चंद्र प्रहराज ने उड़िया-साहित्य में जिन कतिपय दुर्लभ ग्रंथों का प्रणयन किया है, उनका साहित्यिक और सामाजिक मूल्य अतुलनीय है। अपनी व्यंग्यात्मक रचनाओं में इन्होंने एक स्पष्ट सामाजिक दायित्वबोध एवं उदात्त जीवन-मूल्यबोध का संकेत दिया है। प्रहराज का व्यंग्यधर्मी दृष्टिकोण अत्यंत गंभीर व मानवीय संवेदना के कारण प्राणस्पर्शी है। प्रहराज ने जिस अभिनव कौशल द्वारा सामाजिक व वैयक्तिक दुर्बलताओं का दिग्दर्शन कराया है, वह अद्भुत है। जमींदार एवं वकील होते हुए भी प्रहराज आधुनिक उड़िया-साहित्य के एक सशक्त गद्यकार हैं और फकीर मोहन सेनापति (दे०) के स्वाभाविक तथा यथार्थ उत्तराधिकारी। इनकी गद्यशैली से घरेलू भाषा की जो प्राणप्रतिष्ठा हुई है, वह फकीर मोहन की शैली का ही अग्रिम विकास है। इनकी घरेलू भाषा में सहज प्रवाह, कमनीयता तथा अभिव्यक्ति की नूतन भंगिमा आदि विशेषताएँ मिलती हैं।

समसामयिक समस्याओं पर रचित इनके परिहास-रंजित (दे०) आलोचनात्मक निबंधों का संकलन, 'बाइ महांति पांजी', 'भागवत टुंगीर संध्या' और 'ननांक बस्तानी' इन तीन ग्रंथों में हुआ है। इनमें 'बाइ महांति पांजी' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रहराज ने कल्पना-प्रसूत 'बाइ महांति' द्वारा आधुनिक समाज के दोषों पर तीखा प्रहार किया है। उड़िया-लोककथाओं पर लिखित इनकी रचना 'उत्कल-कहानी' का अपना महत्त्व है। उड़िया-साहित्य को इनका अमरदान है सात खंडों में संपूर्ण चतुर्भाषिक विराट् कोश-ग्रंथ, 'पूर्णचंद्र ओड़िआ भाषा कोश' जो आज दुर्लभ है।

प्रहसन *(सं०, हिं० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र में दृश्यकाव्य के अंतर्गत रूपक (दे०) का 'भाण' के समान हास्यप्रधान भेद। प्रहसन का कथानक कवि द्वारा कल्पित एवं उत्पाद्य तथा वस्तु-विस्तार प्रायः एक अंक तक ही सीमित रहता है। भरत (दे०) ने प्रहसन के दो भेदों का निरूपण किया है: शुद्ध प्रहसन और संकीर्ण प्रहसन। शुद्ध प्रहसन में हास्य की व्यंजना के लिए तपस्वी, संन्यासी, भिक्षु, श्रोत्रिय, आदि में से किसी को धूर्त और पाखंडी चरित्रयुक्त नायक के रूप में चित्रित किया जाता है। संकीर्ण प्रहसन में वेश्या, चेट, नंपुसक, विट, धूर्त, बंधकी आदि निम्न पात्रों की अभद्र वेश-भूषा, प्रवृत्ति, चेष्टा, आचरण एवं भाषा-भंगिमा आदि के अनुकरण द्वारा हास्य का चित्रण रहता है। इन दो प्रहसन-भेदों के अतिरिक्त धनंजय (दे०) ने शुद्ध प्रहसन के पुनः 'वैकृत' और 'सकंर' नामक दो भेद और किए हैं। शारदातनय (दे०) ने प्रहसन के लिए एक अंक तथा मुख और निर्वहण संधि (दे० नाट्यसंधियाँ) को निर्धारित किया है। सामान्यतः संस्कृत-काव्यशास्त्र में प्रहसन के भरत-सम्मत शुद्ध और संकीर्ण इन दो भेदों के अतिरिक्त एक तीसरा भेद विकृत प्रहसन भी मान्य है जिसमें नपुंसक, कंचुकी, तपस्वी, कामुक, चारण और योद्धा-वर्ग के व्यक्तियों के आचार-व्यवहार, वेशभूषा, आदि का हास्यपरक अनुकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। 'भाव' (दे०) के समान ही हास्यप्रधान होते हुए भी प्रहसन में उसकी भाँति एक पात्र न होकर अनेक पात्र होते हैं। 'वीथी' के तेरहों अंगों का नियोजन प्रहसन में भी हो सकता है, किंतु प्रहसन में व्यंजित हास्य उच्चस्तरीय हास्य नहीं होता और इसमें 'आरभटी' वृत्ति तथा 'विष्कंभक' और 'प्रवेषक का प्रयोग भी नहीं होता। संस्कृत में 'सागरकौमुदी', 'कलिकेलि' तथा हिंदी में भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र के 'अँधेर नगरी', 'सैरंध्रिका', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (दे०) आदि प्रहसन के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। वर्तमान युग में प्रहसन शब्द अपने शास्त्रीय अर्थ को खोकर सामान्य रूप से किसी भी प्रकार की हास्य-व्यंग्यप्रधान लघु नाट्य-रचना के लिए व्यवहृत होने लगा है।

प्रहेलिका *(सं०, हिं० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र में निरूपित केवल शब्द-चमत्कार पर आधारित 'चित्र' जाति का एक शब्दालंकार। इसका उल्लेख यद्यपि प्रायः समस्त संस्कृत-आचार्यों ने किया है, तथापि उक्ति-चमत्कार से अधिक मान्यता इसे किसी ने नहीं दी है। भामह (दे०) के अनुसार 'प्रहेलिका' की स्वरूप-व्यवस्था सर्वप्रथम रामशर्माच्युत ने की थी। प्रहेलिका के च्युताक्षर, दत्ताक्षर और च्युतदत्ताक्षर आदि भेदों में उक्ति-वैचित्र्य की सृष्टि प्रायः अनेकार्थी धातुओं और यमक के आश्रय से होती है। प्रहेलिका को 'नानाधात्वर्थ-गंभीरा यमक-व्यपदेशनी' कहा गया है। भामह ने उक्त मत का खंडन करते हुए प्रहेलिका को भी शास्त्र की भाँति व्याख्यागम्य माना है (काव्यलंकार : 2।20)। दंडी (दे०) ने शब्दालंकार के अंतर्गत यमक, चित्र आदि शब्दालंकारों के लक्षण-निरूपण के पश्चात् 'प्रहेलिका' के प्राचीन आचार्यों द्वारा किए गए 16 तथा 14 नवीन भेदों का निरूपण किया है (काव्यादर्श : 3।106)। 'सरस्वती-कंठाभरण' (दे०) के रचयिता भोजराज (दे० भोज) ने प्रहेलिका के छः भेदों का सविस्तर वर्णन करते हुए इसकी उपयोगिता केवल गोष्ठी-विनोद, रहस्यभाषण और दूसरों को सम्मोहित करने में ही मानी है जिससे यह सर्वथा व्यक्त है कि उनकी दृष्टि में प्रहेलिका काव्यत्व की अधिकारिणी नहीं है (सरस्वतीकंठाभरण : 2।933-34)। विश्वनाथ (दे०) ने प्रहेलिका को उक्तिवैचित्र्य मात्र कहते हुए उसके अलंकारत्व का खंडन किया है क्योंकि उनके अनुसार इससे रस-प्रतीति में व्याघात उपस्थित होता है (साहित्यदर्पण : 10।13)। समग्रतः अधिकांश आचार्यों के मत में 'प्रहेलिका' केवल बुद्धिव्यायाम एवं मनोरंजन का साधन मात्र है, काव्य में अलंकारों के अंतर्गत इसकी परिगणना समीचीन नहीं है।

प्रांतिक *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की 1937 ई० में लिखित एवं प्रकाशित 18 कविताओं का संग्रह है।

कवि रुग्ण रह कर मृत्यु के मुख से लौट आए थे। मृत्यु के घने अंधकार में उनको जो अनुभूति हुई, जिस सत्य का उन्होंने दर्शन एवं साक्षात्कार किया वही अत्यंत शांत चित्त तथा स्पष्ट भाव से इसमें व्यक्त है। इसमें द्वितीय महायुद्ध के आरंभ की विभीषिका सब प्रकार की बर्बरता, मनुष्य के अपमान-अत्याचार, ध्वंस तथा हत्या से भी कवि विचलित हैं। दो कविताओं में इस विभीषिका को धिक्कारा गया है एवं उसके प्रति विक्षोभ प्रकट किया गया है।

'प्रांतिक' के साथ रविबाबू के काव्य में नवयुग का आरंभ होता है। उपनिषदों का चिंतन इन कविताओं में मिलता है। कवि के चिंतन को समझने की दृष्टि से 'प्रांतिक' एवं परवर्ती काव्य का बहुत महत्व है।

प्राकृत *(भाषा० पारि०)*

एक मध्यकालीन आर्य भाषा जिसका काल मोटे रूप से पहली शती ई० से 500 ई० तक माना गया है। प्राकृत का विकास बोलचाल की संस्कृत से पालि (दे०) के माध्यम से हुआ था। प्राकृत का क्षेत्र पूरा आर्य भाषा-भाषी प्रदेश था। इसके मुख्य क्षेत्रीय रूप या बोलियाँ थीं शौरसेनी प्राकृत—यह उस काल की परिनिष्ठित भाषा थी और इसका क्षेत्र वर्तमान गुजरात, राजस्थान, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश था। गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी तथा पहाड़ी का—शौरसेनी अपभ्रंश से होते हुए—इसी से विकास हुआ है। पैशाची प्राकृत—इसका क्षेत्र पश्चिमोत्तरी भारत था। लहंदा और पंजाबी इसी से संबद्ध हैं। महाराष्ट्री प्राकृत—मूलतः इसका क्षेत्र महाराष्ट्र था। मराठी का संबंध इसी से है। एक मत है कि यह तत्कालीन राष्ट्रभाषा थी। मागधी प्राकृत—इसका क्षेत्र वर्तमान बिहार, बंगाल, असम तथा उड़ीसा था। इस क्षेत्र की आधुनिक भाषाएँ और बोलियाँ अपभ्रंश होते हुए इसी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित हुई हैं। अर्धमागधी --इसका क्षेत्र प्राचीन कोसल था। पूर्वी हिंदी का विकास अपभ्रंश होते हुए इसी से हुआ है। व्राचड़ प्राकृत—इसका क्षेत्र सिंध था। सिंधी का संबंध इसी से है। इनमें से कई प्राकृतों में साहित्य-रचना हुई है। विभिन्न-क्षेत्रीय प्राकृतों से ही अपभ्रंश के विभिन्न-क्षेत्रीय रूपों का विकास हुआ है।

प्राचीन ओड़िआ अभिलेख *(उ० कृ०)*

'प्राचीन ओड़िआ अभिलेख' डा० कुंजबिहारी त्रिपाठी (दे०) की गवेषणात्मक निबंध-पुस्तक है। उड़ीसा की विशिष्ट संस्कृति और उसकी विविध विशेषताओं को जानने के लिए उड़िया भाषा और उसके इतिहास को जानना आवश्यक है। इसके लिए सबसे उपयोगी हैं 'प्राचीन ओड़िआ अभिलेख'। उड़ीसा ताम्रपत्र एवं शिलालेखों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। इन अभिलेखों से उड़िया भाषा व लिपि का क्रमिक विकास एवं प्राथमिक स्तर पर उसकी प्रकाशभंगी ज्ञात होती है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये मूल्यवान हैं। लेखक ने अत्यंत तात्त्विक गवेषणापूर्ण विषय को साधारण पाठ के लिए सुगम बना दिया है। यह कार्य उसकी सुस्पष्ट, प्रसादगुणमयी भाषा-शैली के कारण ही संभव हो सका है।

प्राचीन चरित्र कोश *(म० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

इसके संपादक श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव हैं। इसके द्वारा, श्रुति, स्मृति, सूत्र, वेदांग, उपनिषद्, बौद्ध तथा जैन साहित्य में उल्लिखित व्यक्तियों का परिचय मिलता है। यह मौर्य-पूर्वकालीन इतिहास का सुगम पट है। कोशकार ने ऋषि, मुनि, राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त प्राचीन साहित्य में निर्दिष्ट जातिसमूह, मानव, देवता, राक्षस, वानर आदि चरित्रों को भी लिया है।

प्रत्येक पात्र का परिचय इस क्रम से दिया गया है: जीवन-परिचय, नाम, नाम-व्युत्पत्ति, स्वरूप-वर्णन पराक्रम, मृत्यु, परिवार, कालनिर्णय और कृतित्व। एक ही नाम के अनेक व्यक्ति होने पर उन्हें कालक्रम अथवा महत्वानुसार 2, 3, 4 संख्या-क्रम से दिया है। अनेक पात्रों के चरित्र का विकास वैदिक काल से पंचमहाकाव्यों तक मिलता है।

ये चरित्र अकारादि-क्रम से लिये गये हैं। प्रस्तुत कोश महाराष्ट्र-राज्य सरकार की ओर से पुरस्कृत है। यह एक उत्तम संदर्भ-ग्रंथ है।

प्राचीन पंथप्रकाश *(पं० ले०)* [रचना-काल—1841 ई०]

यह सिख पंथ का प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ है। इसकी भूमिका में कहा गया है कि किसर डेविड ऑक्टरलोनी की प्रेरणा से कप्तान मरे ने खालसा-पंथ का जो वृत्तांत सरदार रतनसिंह से प्राप्त करके 1809 ई० में लिखा था, उसे ही 1833 ई० में रतनसिंह ने छंदोबद्ध कर पुस्तक-रूप दे दिया है।

इथ ग्रंथ का मूल नाम 'पंथप्रकाश' ही है किंतु कुछ समय पश्चात् ज्ञानी ज्ञानसिंह (दे०) के आधार पर कुछ संशोधित और परिवर्द्धित रूप में एक अन्य पंथप्रकाश की रचना कर दी तो इसे विद्वान् 'प्राचीन' पंथप्रकाश कहने लगे।

प्राचीनमलयाळगद्यमातृक्कळ् *(म० कृ०)*

इसके लेखक और रचना-काल का कोई प्रामाणिक ज्ञान नहीं है। केरल विश्वविद्यालय के पांडुलिपि-संग्रहालय एवं ग्रंथालय ने संग्रह में उपलब्ध अपूर्ण ताड़पत्र-ग्रंथ के आधार पर 1951 ई० में यह प्रकाशित किया है। उसके संपादक के शब्दों में यह पांडुलिपि सोलहवीं शती में लिखी गई है। अतः इसका रचना-काल उससे भी पुराना हो सकता है।

इस ग्रंथ में 'नळोपाख्यानम्', 'अंबरीषोपाख्यानम्' और 'देवीमाहात्म्यम्' शीर्षक तीन गद्यमय आख्यान-संग्रह हैं। पहला बालोचित अतिशय सरल शैली का है तो द्वितीय कहीं प्रौढ़ शैली का, और अंतिम मध्यवर्ती है। मौलिकता, नवीन उद्भावना या कोई अन्य कथागत विशेषता इसमें नहीं है। तथापि यह ग्रंथ इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन मलयाळम में अनुप्रास-युक्त चंपू-शैली में अतिदीर्घ वाक्यों का गद्य ही नहीं; लघु एवं प्रभावशाली वाक्यों से युक्त ललित, प्रसादात्मक शैली का गद्य भी लिखा जा सकता था। लेखक ने दंडी (दे०) आदि संस्कृत-कवियों की गद्य-शैली के श्लेष, उपमा जैसे अलंकारों का प्रयोग खूब किया है।

'अंबरीषोपाख्यानम्' में नौका एवं जीवन की तुलना का जो विशेष चमत्कारयुक्त प्रसंग प्राप्त होता है। वह लेखक की कल्पना-निपुणता और अलंकार-प्रौढ़ता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण है। इस ग्रंथ की भाषा उस विशेष युग की है जिसमें मलयाळम पर तमिल का प्रभाव तो था; साथ ही संस्कृत का शब्दगत एवं भावगत प्रवेश हो रहा था। तमिल-प्रकृति के क्रियावाचक शब्द, संस्कृत-प्रकृति के क्रियावस्तु-बोधक शब्द तथा मलयाळम की प्रकृति के क्रियात्मक शब्द तीनों इसमें बराबर आये हैं।

प्राचीन साहित्य *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1907 ई०]

'प्राचीन साहित्य' (1907) में रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने प्राचीन संस्कृत-साहित्य की कतिपय प्रसिद्ध पुस्तकों की—जैसे 'रामायण', 'शकुंतला', 'कादंबरी' आदि की—नवीन विचार-पद्धति से आलोचना की है। इस पुस्तक की सहायता से रवींद्रनाथ ने प्राचीन भारतीय साहित्य में नवप्राण का संचार किया है। वस्तुतः इसमें आलोचना से अधिक सृजन का ही स्वाद मिलता है। 'कुमारसंभव', 'शकुंतला', 'कादंबरी' के रसास्वादन से संबंधित इनके काव्य-सौंदर्य के उल्लेख के साथ-साथ इन ग्रंथों में जिस जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है, कवि ने उसकी पूर्ण उपलब्धि करते हुए प्रभाव का उल्लेख किया है। कालिदास का कृतित्व केवल इसी में नहीं कि वे यौवनसुलभ, भोगासक्त प्रेम के चितेरे हैं वरन् तपश्चर्यापूत, आत्मसंयम से महिमान्वित, कल्याणमय प्रेम की शांत परिणति दिखाने वाले कवि भी हैं।

इस ग्रंथ में, इसके अतिरिक्त प्राचीन काव्यों की अमीमांसित समस्याओं का भी समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'काव्ये उपेक्षिता' निबंध में रवींद्र ने उर्मिला के प्रति वाल्मीकि की उपेक्षा का उल्लेख करके अथवा बाण-भट्ट के द्वारा पत्रलेखा के आतप्त यौवन की अवमानना की अनुभूति करके पाठकों की कल्पना एवं सहानुभूति को एक संपूर्ण नया मोड़ दिया है।

प्रियकांत मणियार *(गु० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

इनका जन्म वीरम गाँव में हुआ था। माध्यमिक शिक्षा अपूर्ण ही छोड़ कर ये हाथीदाँत की चूड़ियाँ बेचने के अपने पैतृक व्यवसाय में लग गए किंतु नैसर्गिक प्रतिभा तथा अभ्यास से कवि-रूप में सुविख्यात हुए।

जिस नयी युद्धोत्तर पीढ़ी ने गुजराती कविता को नया मोड़ दिया, उसमें इनका स्थान अग्रणी है। प्रारंभ में इन्होंने सुंदर प्रगीतों की रचना की किंतु आज इनकी ख्याति नवीन ताजगीपूर्ण विषयवस्तु, प्रयोगशील और नयी बिंब तथा प्रतीक-योजनामयी कविताओं के कारण अधिक है। सुमधुर पदावली, प्रतीकात्मक एवं रचना-कौशल का वैशिष्ट्य इनकी प्रयोगवादी कविताओं का प्रमुख आकर्षण है।

प्रियप्रवास *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

'प्रियप्रवास' अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०)-कृत खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इस सर्ग-बद्ध रचना में संस्कृत के वर्णित छंदों का प्रयोग किया गया है। सभी छंद अतुकांत हैं। धनुर्यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए कंस के आकर्षण पर कृष्ण गोकुल से मथुरा जाते हैं, वहाँ राजनीति की उलझनों में बुरी तरह उलझ जाते हैं एवं नंद, यशोदा, राधा, गोपियाँ, गोप-कुमार आदि उनके वियोग में अत्यधिक व्याकुल होते हैं। इस तरह प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह रचना विरह-प्रधान है। कवि ने पौराणिक इतिवृत्त को कथा का आधार बनाकर उसे आधुनिक समस्याओं से संवलित किया है।

शुक्ल जी ने समुचित कथानक के अभाव में संबंध निर्वाह की दृष्टि से इस रचना को प्रबंध-काव्य के अवयवों से अपूर्ण माना है, किंतु कुछ रूढ़िगत लक्षणों को छोड़कर उदात्त भावों की अभिव्यंजना कथानक की मौलिकता, चरित्रों की विराट प्रभावान्विति एवं उद्देश्य की गरिमा की दृष्टि से यह निश्चय ही एक सफल महाकाव्य है। इसके निर्माण से पूर्व काव्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा का एकाधिकार था। 'हरिऔध' जी ने पहली बार महाकाव्य लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली में भी काव्य लिखा जा सकता है और वह भी महाकाव्य। इस रूप में इस कृति का ऐतिहासिक महत्व है। प्रकृति का मानवी-करण एवं शैलीगत कुछ नवीन तत्त्वों की समाहृति के होते हुए भी इस रचना पर स्वच्छंदतावादी काव्य-चेतना का अत्यल्प प्रभाव दृष्टिगत होता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) को काव्य-गुरु मानने के कारण कवि ने नैतिकता एवं संयम के दायरे में संयोग और वियोग के चित्रों को, रीतिकालीन कवियों की भाँति स्थूल सौंदर्य से समन्वित न कर, प्रेम के उदात्त रूप से सँजोया है। तभी तो राधा अपने पुराने रूप को छोड़कर इस कृति में समाज सेविका के रूप में प्रस्तुत हुई है।

प्रीतमदास *(गु० ले०)* [समय—1720 ई०-1796 ई०]

अठारहवीं शती के महत्वपूर्ण वेदांती, योगमार्गी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-कवि प्रीतमदास का जन्म अहमदाबाद के निकटवर्ती बावला ग्राम में हुआ था। ये बारोट (ब्रह्म भट्ट) जाति के थे। कहा जाता है कि ये जन्मांध थे।

मध्ययुगीन गुजराती के प्रसिद्ध काव्य-रूपों—'महीना', 'तिथि', 'वार', 'कवको'—का इन्होंने विशेष प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त हिंदी में 'साखियाँ' भी रचीं। 'ज्ञानप्रकाश' आपकी प्रसिद्ध रचना है जिसमें जीव-ब्रह्म-विषयक चिंतन का प्रकाशन हुआ है। 'सरसगीता', 'एकादश स्कंध', 'ब्रह्मलीला', 'भगवद्गीता', 'गुरु महिमा', 'भक्तनामावली', 'विनयदीनता' तथा 'श्रीकृष्णाष्टक' प्रीतम की अन्य रचनाएँ हैं।

पदलालित्य, सरलता आदि के कारण प्रीतमदास की कविता सहज ही हृदयंगम हो जाती है। इनके 'रूपक' बड़े सुंदर हैं।

कबीर की भाँति इन्होंने भी सती और शूर के प्रेम को आदर्श माना है। माधुर्यभाव की भक्ति और ज्ञान-वैराग्य की बातें इनमें युगपत् निवास करती हैं। खेड़ा ज़िले में कहीं-कहीं प्रीतम के मंदिर व गद्दी भी पाई जाती है।

'अखा' के बाद प्रीतम ही दूसरे सशक्त, समर्थ तथा प्रथम पंक्ति के वेदांती कवि हैं।

प्रीतमसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

पंजाबी अध्यापन के क्षेत्र में प्रो० प्रीतमसिंह का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। पंजाबी साहित्य की उच्च शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में ही इन्होंने विशेष लगन एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर इसे अधिक रोचक, संपन्न एवं आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया। अपने पांडित्य, व्यापक अध्ययन और अपूर्व भाषा-संयम से उन्होंने अध्यापन-कार्य में सजीवता एवं गतिशीलता का समावेश किया। पंजाबी गद्य एवं काव्य-क्षेत्र में पाठ्य-पुस्तकों की कमी को पूरा करने के लिए सुरुचिपूर्ण संकलन तैयार करना इनकी प्रमुख देन है। 'पंजाबी काव्यधारा', 'भावचित्र', 'सोच-विचार' उनके कुछ सुंदर संकलन हैं। इसके अतिरिक्त प्रो० प्रीतमसिंह ने प्राचीन पांडुलिपियों को सँभालने और उनका संपादन-विवेचन करने में भी पर्याप्त रुचि दर्शाई है। 'श्रद्धाराम फलौरी गद्य रचना', 'सिक्खां दे राज दी विधिआ' का संपादन तथा आरंभ की विस्तृत भूमिकाएँ उनकी उपर्युक्त रुचि के प्रमाण हैं। बाबा फ़रीद (दे०), हाशम (दे०) आदि कवियों के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे गए उनके निबंध भी पंजाबी आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों की खोज एवं सँभाल, गुरवाणी विचार, इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति-संबंधी विषयों में प्रो० प्रीतमसिंह की विशेष रुचि है।

आप गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर में गुरु नानक-अध्ययन-विभाग के अध्यक्ष हैं।

प्रीतलड़ी, गुरुबख़्श सिंह *(पं० ले०)*

इनका जन्म स्यालकोट (पश्चिमी पाकिस्तान) में 1895 ई० में हुआ था। रुड़की से इंजीनियरिंग की परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने मिशीगन विश्वविद्यालय, अमरीका, में उच्च शिक्षा प्राप्त की। 1933 ई० में प्रीतलड़ी' मासिक पत्र प्रारंभ किया। इनकी लगभग 60 रचनाएँ—निबंध-संग्रह, कहानी-संग्रह, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, संस्मरण, लेख आदि प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'राजकुमारी तालिका' (दे०), 'प्रीताँ दे पहरेदार', 'प्रीतमणि', 'वीणा विनोद' 'अणविआही माँ' (दे०), 'मेरी जीवन कहाणी' प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। श्री गुरुबख़्श सिंह ने पंजाबी साहित्यकारों के सहयोग से 1938 ई० में 'प्रीतनगर' की स्थापना की। इनके साहित्य का मूल स्वर समाजवादी विचारधारा के अनुकूल प्रगतिशील समाज की स्थापना करना है। 1970 में इन्हें पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने सम्मानित किया। ये पंजाबी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ निबंधकार, गद्यकार एवं पत्रकार के रूप में प्रख्यात हैं।

प्रेमचंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

इनका प्रारंभिक नाम धनपत राय था। इनका जन्म बनारस से पाँच मील दूर लमही नामक स्थान में हुआ। घर का पालन-पोषण खेती पर निर्भर करता था, पर ग़रीबी ने दूसरों के यहाँ-जैसा नंगा नाच भी किया। प्रेमचंद ने जो कुछ लिखा है उसे पहले व्यक्तिगत जीवन के चौखटे में जड़कर देखा है, तब कहीं जाकर उसे देशव्यापी मानव सहानुभूति का दर्जा दिया है। मन की चुभन और अनुभूत्यात्मक सत्य को व्यंग्य की तीखी धार पर पैना करते हुए अग्नि-स्फुलिंग छोड़ते जाना प्रेमचंद की कला है, जिसमें मार्मिक रचना के शाश्वत होने की गारंटी बनी है। पिता द्वारा कृषक का जीवन त्यागे जाने और मध्य वर्ग का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन बिताने पर इनकी रचनाओं में मध्यवर्ग का स्वर काफ़ी प्रमुख है। एक तरह से इसी वर्ग का जीवन इनके उपन्यासों की रीढ़ बना है। इनकी इच्छाएँ अभावों के वृत्त में कभी पूरी न हुईं, ग़रीबी ने सारा जीवन का रस चूस लिया, फिर भी बालक प्रेमचंद तेरह वर्ष की आयु में प्रसिद्ध उर्दू-लेखकों की रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ गया। तभी तो उर्दू की शैली की-सी ताज़गी और चुस्ती उनकी भावी रचनाओं में रूपाकार ग्रहण कर सकी। 'सोज़ेवतन' जैसा प्रसिद्ध कहानी-संग्रह इस बात का प्रमाण है कि पहले इन्होंने उर्दू में लिखा और बाद में अपने मित्रों के आग्रह पर 'वरदान', 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' (दे०) जैसे उपन्यास हिंदी में लिखने शुरू किए, यश और मान ने घेरा डालना शुरू किया और प्रेमचंद को उपन्यास-सम्राट बनते देर न लगी।

अपने उत्कर्ष-काल में प्रेमचंद' ने 'कायाकल्प' (दे०), 'गबन', 'निर्मला', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' (दे०) और 'गोदान' (दे०) जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के उपन्यासों की निर्मिति की। तीन शतक से अधिक कहानियाँ लिखीं जिनका संग्रह 'मानसरोवर' नाम से आठ भागों में प्रकाशित हो चुका है। 'कर्बला' नामक नाटक इन्हें नाटककार, 'जागरण' एवं 'हंस' की फाइलों में पाए जाने वाले लेख इन्हें निबंधकार तथा जार्ज इलियट, टालसटाय, अनातोले, गाल्सवर्दी एवं रतननाथ सरशार की कृतियों का हिंदी में रूपांतर और अनुवाद इन्हें एक अच्छा अनुवादक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

प्रेमचंद ने जिस समय कथा-साहित्य में प्रवेश किया उस समय हिंदी कहानी की अपनी कोई विशिष्ट शैली न थी, पर हाँ उपन्यास के नाम पर भारतेंदु (दे०) युग ने थोड़े से सामाजिक और द्विवेदी (दे० द्विवेदी, महावीरप्रसाद) युग ने 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति' (दे०) और 'भूतनाथ' जैसे आश्चर्य में डालने वाले अतिमानवीय घटनाओं से संपृक्त उपन्यासों के द्वारा प्रेमचंद का स्वागत किया। निश्चय ही ग्राम और शहर के जीवन का मिश्रण करके व्यापक सामाजिक धरातल को अपने औपन्यासिक चित्रपट पर कल्पना के योग से जिस ढंग से प्रेमचंद ने उरेहा है वैसा किसी ने नहीं किया। प्रेमचंद तभी अभूतपूर्व हैं और तभी उनके परवर्ती कथाकार भी उनसे बड़ी मानवीय संवेदना उत्पन्न नहीं कर सके हैं। प्रेमचंद को पीछे छोड़ आने का दावा उसी दिन पूर्ण रूप से सिद्ध होगा जिस दिन होरी (दे०) से बड़ा मानवीय संवेदनाओं का पुंज हिंदी-कथा-साहित्य में जन्म लेगा। प्रेमचंद परिवार को, जो अलग-अलग मनुष्यों से बनता तो है पर जिसकी इकट्ठी अभिव्यक्ति उसका मूल सौंदर्य है, जीवन का केंद्रबिंदु मानकर चले हैं। प्रेमचंद समष्टि में भी व्यष्टि को नहीं भूले हैं और इन दोनों ही रास्तों से वे राष्ट्र तक गये हैं, एक बार नहीं अनेक बार। सच बात तो यह है कि दारुण दुःख भोगते हुए प्रेमचंद स्वयं गरलपायी हो गये थे, तभी तो क्या किसान, क्या मज़दूर, क्या मिल-मालिक, क्या महानगर की बड़ी चिमनियों के धूम्र में सिसकता कारीगर, क्या वकील, क्या प्रोफ़ेसर, क्या डाक्टर, क्या चोर-डाकू, क्या देशभक्त—सभी उनके स्वर में बोल सके हैं, सभी को प्रेमचंद ने वाणी दी है और सजीवता दी है। सचमुच ही प्रेमचंद की सहानुभूति बहुत संप्रेषणशील थी। सर्वहारा-वर्ग की वकालत करने के कारण आज उन्हें गोर्की, टालसटाय, अनातोले जैसे विदेशी साहित्यकारों के साथ तोला जाता है और बार-बार तोले जाने पर भी मन उनकी महत्ता का अनुमान नहीं कर पाता है। ये निश्चय ही अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के उपन्यासकार हैं।

'प्रेमघन', बदरीनारायण चौधरी *(हिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ा ज़िले में हुआ था। इनका प्रदेय कविता, नाटक, निबंध, आलोचना, पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों में है। काव्य-रचना के क्षेत्र में ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली का भी प्रयोग करके इन्होंने खड़ी बोली का मार्ग प्रशस्त किया था। गद्य-लेखन के क्षेत्र में इन्होंने भाषा के शुद्ध, परिमार्जित तथा अलंकृत रूप का प्रयोग किया है। इन्होंने 'आनंद कादंबिनी' तथा 'नागरी नीरद' पत्रिकाओं का संपादन किया तथा सामयिक विषयों पर उच्च कोटि की टिप्पणियाँ लिखी थीं। 'जीर्ण जनपद' इनका प्रबंधकाव्य है तथा 'वारांगना रहस्य', 'भारत सौभाग्य' और 'प्रयाग रामागमन' इनके नाटक हैं।

प्रेमाख्यानक काव्य *(हिं० प्र०)*

प्रेम-कथानकों का आधार लेकर काव्य की सर्जना इस देश में बहुत पहले से विद्यमान रही है। इस तरह की कहानियाँ या तो किसी ऐतिहासिक पुरुष से संबंधित होती थीं या फिर इनकी मूल लोकप्रचलित कथाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अनुस्यूत नाना प्रकार के विश्वासों से संबंधित होती थीं। ऐतिहासिक पुरुषों में राजा विक्रमादित्य, भोज, उदयन, शूद्रक आदि से संबंधित अनेकानेक प्रेम-कहानियाँ प्रचलित हैं। ऐतिहासिक पुरुषों के अतिरिक्त कल्पित नायकों से संबंधित 'माधवानल-कामकंदला' (दे०), 'हीर-राँझा', 'सारंग-सदावृज', 'ढोला-मारवाणी' आदि प्रेमाख्यानक-काव्य उल्लेख्य हैं।

ईसा की सोलहवीं शती से इन प्रेमाख्यानों में प्रतीकों का समावेश सूफ़ी कवियों की देन है। सूफ़ी कवियों ने इन कहानियों के द्वारा अपने मत का प्रचार किया है। इस देश की जनता से घनिष्ठ संपर्क होने के कारण सूफ़ी कवियों ने हिंदुओं की प्रेम-कहानियों को उन्हीं की भाषा में कहकर परोक्ष सत्ता तक पहुँचने की जो प्रचेष्टा की है वह किसी रूप में काफ़ी स्तुत्य है। इन कहानियों में प्रेमी और प्रेमिका के उत्कट प्रेम, मिलन में मार्ग की बाधाओं, मिलन के लिए अनेकानेक चेष्टाओं और अंत में मिलन का बड़ा रोचक वर्णन पाया जाता है। 'पदमावत' (दे०), चंदायन', 'मृगावती' (दे०), 'मधुमालती' (दे०), 'चित्रावली' (दे०), 'इंद्रावती' आदि प्रसिद्ध सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य हैं। इन सूफ़ियों की तरह अनेक संतों ने भी अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए प्रेम-कथानकों का आश्रय लिया है।

प्रेमानंद *(गु० ले०)* [समय—1636 ई०-1714 ई०]

मध्यकालीन गुजराती के श्रेष्ठ आख्यानकार, प्रतिभाशाली कवि एवं गुर्जरी गिरा के गौरव-उन्नायक प्रेमानंद का जन्म पंडित कृष्णराम भट्ट के घर बड़ौदा में हुआ था। अल्पवय में ही मातृ-पितृ-विहीन शिशु प्रेमानंद का मौसी ने लालन-पालन किया। गुरु रामचरण के संपर्क से इनके प्रातिभ संस्कार जाग उठे। इन्होंने काव्य-रचना करना आरंभ किया। 1673 ई० में बड़ौदा में अकाल पड़ा; प्रेमानंद बड़ौदा छोड़कर नंदरवार गये। वहाँ लगभग दस वर्ष रह कर पुनः बड़ौदा लौट आए। शेष सारा जीवन बड़ौदा में ही बिताया। ताँबे की गागर पर कथा कहने के कारण ये 'माणभट्ट' अथवा 'गागरिया भट्ट' कहलाते थे। 'गुजराती भाषा का गौरव जब तक नहीं बढ़ेगा तब तक मैं सिर पर पगड़ी नहीं बाँधूंगा।' ऐसी उनकी प्रतिज्ञा थी। गुजरात के लोक-जीवन पर इनका गहरा प्रभाव है। लगभग सौ वर्ष के जीवन-काल में इन्होंने 35 आख्यान लिखे।

प्रेमानंद-रचित आख्यानों का विवरण इस प्रकार है—'द्रौपदी स्वयंवर', 'शृंगी ऋषि आख्यान', 'हुंडी', 'सुभद्राहरण', 'नळाख्यान' (दे०), 'नागदमण', 'रणयज्ञ', 'सुदामा चरित्र', 'अभिमन्यु आख्यान', 'ओखा हरण', 'हारमाळा', 'मामेरूं', 'श्राद्ध', 'दशम स्कंध', 'दाणलीला', 'भ्रमर पचीसी', 'द्वादश मास', 'विवेक वणझारो', 'चंद्रहास आख्यान', 'शामलशा नो विवाह', 'सत्यभामा रोषदर्शिका आख्यान', 'पांचाली प्रसन्नाख्यान', 'तपत्याख्यान'।

इनमें 'नळाख्यान' (दे०), 'ओखाहरण', 'मामेरूं' आदि तो गुजरात के लोक-जीवन में घुलमिल गये हैं।

पूर्ववर्ती कवियों से आख्यान-परंपरा ग्रहण करके भी अपनी प्रतिभा के चमत्कार से, चरित्र-चित्रण-कला तथा कथा कहने की शैली की विशिष्टता से प्रेमानंद ने इन आख्यानों को ऐसा रसमय व प्रभावशाली बना दिया है कि ये आख्यान प्रेमानंद के पर्याय हो गये हैं।

उस युग में ब्रजभाषा में रचना करना कवियों के गौरव व पांडित्य का प्रमाण समझा जाता था। प्रेमानंद ने भी ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं। गुजरात की संस्कृति, लोक-जीवन, उत्सव, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आदि अनेक दृष्टियों से प्रेमानंद का साहित्य महत्वपूर्ण है। गुजरात की समस्त लोक-चेतना इनके आख्यानों में प्रतिबिंबित है।

प्रेमानंद 'प्रेमसखी' *(गु० ले०)* [समय—1779 ई०-1845 ई०]

स्वामीनारायण संप्रदाय के भक्तकवि श्री प्रेमानंद उपनाम 'प्रेमसखी' ने गोपीभाव की भक्ति के पद रचे हैं। शुद्ध भक्तकवियों में ये उच्च कोटि के कवि-नरसिंह मेहता (दे०) से तुलनीय थे। स्वामी सहजानंद इन्हें 'प्रेमसखी' कहकर पुकारते थे। ये उत्तम संगीतज्ञ थे। अतः इनकी रचनाओं में संगीत-तत्त्व की प्रधानता पाई जाती है। भक्ति-बोध, ज्ञान-वैराग्य, भावुकता, विरह-व्याकुलता इनके पदों की विशेषताएँ हैं।

इनकी रचना 'बारमासी' गुजराती साहित्य का सर्वोत्तम बारहमासा-काव्य है। इन्होंने कुछ पद हिंदी में भी लिखे। माधुर्य गुण के इस कवि की कुछ हिंदी रचनाएँ (भजन) महात्मा गांधी द्वारा संपादित आश्रम भजनावली में स्थान पा चुकी हैं।

प्रेमी, हरिकृष्ण *(हिं० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

इनका जन्म ग्वालियर के गुना नामक स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक राष्ट्रभक्त परिवार में हुआ था। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ पत्रकारिता से किया था, फिर काव्य-रचना की दिशा में प्रवृत्त हुए थे और तदनंतर नाट्य-रचना की ओर। इनकी सर्वाधिक देन नाट्य-रचना के क्षेत्र में है तथा 'स्वर्ण-विहान', 'रक्षाबंधन', 'शिवा-साधना', 'आहुति', 'उद्धार' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके नाटकों में मुख्यतः मुस्लिम-युग के कथा-प्रसंगों को ग्रहण किया गया है तथा राष्ट्रीय जागरण, धर्म-निरपेक्षता और विश्वबंधुत्व के संदेश दिए गए हैं। रंगमंच की दृष्टि से भी इनके नाटक पूर्णतः सफल हैं।

प्रो० डंडी *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के घटनाप्रधान उपन्यास 'भयंकर दिव्य' (भयंकर परीक्षा) का खलनायक प्रो० डंडी तत्कालीन महाराष्ट्र के उन दुष्ट व्यक्तियों का प्रतिनिधि है जो अँग्रेज़ी रहन-सहन की आड़ में विद्वत्ता, शालीनता और सभ्यता का नाटक रचकर समाज के साथ कपट करते थे— धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे। वह वेश और नाम बदल कर कभी युवकों को धोखा देता है, पैसा खाता है, तो कभी रूपवती युवतियों को फुसलाकर पथभ्रष्ट करता है। इस प्रकार प्रो० डंडी के रूप में लेखक ने यथार्थ की भूमि पर एक खल पात्र की सफल सृष्टि की है।

फकीर मोहन सेनापति *(उ० ले०)* [जन्म—1843 ई०; मृत्यु – 1918 ई०]

उड़ीसा के प्रेमचंद (दे०), उपन्यास-सम्राट श्री फकीर मोहन सेनापति सच्चे अर्थों में उड़िया-प्राण-चेतना के प्रतिनिधि लेखक हैं। इनकी रचनाओं में सर्व-प्रथम उड़िया-जाति ने देश के मनुष्य को देखा और उसकी वाणी सुनी। 'गोदान' (दे०) का हिंदी में जो स्थान है, वही स्थान उड़िया-साहित्य में 'छमाण आठगुंठ' उपन्यास का है। प्रेमचंद के समान इनके उपन्यासों में यथार्थवाद, युगबोध, जन-जीवन, जन-भाषा और व्यावहारिक आदर्श-वाद आदि तत्त्व मिलते हैं। उन्नीसवीं शती की उपेक्षित, उत्पीड़ित उड़िया-जाति का शोषित हृदय इनके उपन्यासों में प्रतिबिंबित हुआ है।

शोषण, अत्याचार, दमन आदि बातें इनके उपन्यासों के विषय हैं, अतः उनमें पीड़ित प्राणों की करुण झंकार सर्वत्र मिलती है। ये मानवतावादी कलाकार हैं। इन्होंने उपन्यास को एक स्पष्ट स्वरूप दिया है। इनके पात्र उड़िया-माटी की संतान होने के कारण लोक-हृदय के अत्यंत निकट हैं, इसीलिए ये अमर हो गये। इन्होंने जन-भाषा एवं जन-जीवन के अनुकूल स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया है तथा आंचलिकता को प्रश्रय दिया है।

सेनापति बंकिमचंद्र (दे०) के समकालीन थे। केवल प्रायमरी तक इन्होंने शिक्षा पाई थी, किंतु संस्कृत और अँग्रेज़ी के साथ पाँच अन्य प्रांतीय भाषाओं का इन्हें अच्छा ज्ञान था। बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न सेनापति कहानी-कार, कवि, निबंधकार, अनुवादक एवं इतिहासकार भी थे। किंतु उपन्यासकार के रूप में ही ये अधिक विख्यात हुए हैं। इनके उपन्यास हैं—'लछमा', 'छमाण आठगुंठ' (दे०), 'मामूँ' (दे०) और 'प्रायश्चित'।

फ़ज़लशाह *(पं० ले०)* [जन्म—1828 ई०; मृत्यु—1896 ई०]

इनके पिता सैयद क़ुतबशाह नवांकोट, ज़िला लाहौर के निवासी थे। पारिवारिक परंपरा के अनुसार इन्होंने अरबी-फ़ारसी की शिक्षा ग्रहण की और फ़ाइनेंशल कमिश्नर, लाहौर के कार्यालय में नौकरी मिल जाने पर वहीं रम गए। ये सरल स्वभाव, धर्मपरायण तथा चिंता-मुक्त जीव थे। उन्नीसवीं शती के अंत में पंजाबी के कवि-दरबारों में भी इन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई। नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा के धनी फ़ज़लशाह ने पंद्रह वर्ष की आयु में ही आचार-प्रधान कृति 'तुहफ़ाए-फ़ज़्ल' की रचना की। तत्पश्चात् 'सोहणी-महीवाल' (दे०) (1849), 'सस्सि-पुन्नूं' (दे०) (1863), 'हीर-राँझा' (दे०) (1867), 'लैला-मजनूँ' (दे०) (1871), 'यूसुफ़ जुलेखा' (दे०) (1885), आदि अनेक प्रबंध-काव्य लिखे परंतु 'सोहणी-महीवाल' (दे०) जैसी लोकप्रियता किसी अन्य कृति को नहीं मिली। किशोरावस्था का यह प्रेमाख्यान अपने मूल स्वर और काव्य-सौष्ठव में कवि की उन परवर्ती प्रौढ़ रचनाओं से भिन्न है जिनमें, क़िस्सा-काव्य की परंपरा-गत हिंदू-मुस्लिम ऐक्य-भावना को तिलांजलि देकर शुद्ध रूप से इस्लामी शहर का प्रचार किया गया है। 'हीर-राँझा' में धार्मिक प्रतीकात्मकता के द्वारा आचारोपदेश मुख्य वर्ण्य बन गया है। फ़ारसी मसनवियों के अनुकरण पर लिखी गई इन रचनाओं में वैसे ही प्रारंभिक स्तुति-खंड हैं। अलंकरण और बिंब-योजना में भी उन्हीं की छाया है। भाषा में तत्सम फ़ारसी शब्दावली का अनुपात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधे से भी अधिक है; फलतः पंजाबी के विद्यार्थी के लिए यह दुरूह हो गई है। इनके काव्य की उल्लेखनीय विशेषता—यमक, वक्रोक्ति, श्लेष जैसे अलंकारों का उन्मुक्त प्रयोग—भी फ़ारसी-विद्वत्ता का ही परिचायक है। बेत (दे०) नामक छंद के प्रयोग में वारिस के पश्चात् इन्हीं को सिद्धहस्त माना जाता है। उसके चरणांत में रदीफ़ और काफ़िए के प्रयोग द्वारा संगीत और भाव में अभिवृद्धि करने में इनका कौशल स्तुत्य है।

'फ़ज़ली' *(उर्दू० ले०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

नाम—शाह फ़ज़लुल्लाह; उपनाम—'फ़ज़ली'। ये और इनके पिता सैयद अताउल्ला ग़ाज़ी-उद्दीन ख़ाँ फ़ेरोज़जंग के संपर्क में बहुत समय तक रहे थे। इनका काव्य प्राचीन शैली में लिखा हुआ है। इनकी ग़ज़लों में उर्दू और फ़ारसी साहित्य की काव्यरूढ़ियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। कहीं-कहीं घोर शृंगारिकता और ऊहात्मक वर्णन-शैली भी परिलक्षित होती है। औरंगाबाद (दक्षिण भारत) का यह कवि प्रेम-तत्त्व-निरूपण के प्रति अत्यधिक आसक्त दिखाई देता है। उर्दू मसनवियों में लिखित कतिपय प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त 'ज़ाद-ए-राह' नामक एक छोटी-सी पुस्तक भी इन्होंने लिखी थी; जिसमें व्यवहार-कुशलता और नीति संबंधी पद्य-रचना है। 1184 ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

फडके, ना० सी० *(म० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

तहसीलदार के पुत्र, आराम में पले, 'कला को कला के लिए' मानने वाले फडके बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कलाकार हैं। इनका साहित्यिक कृतित्व जितना विपुल है (अब तक 110 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं), उतना ही वैविध्यपूर्ण। यह इस बात का प्रमाण है कि साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके कृतित्व में झांकता है। विद्याभ्यास और क्रीड़ाविलास में समान रूप से प्रवीण एक ओर फडके ने 1920 ई० के असहयोग आंदोलन में भाग ले यह सिद्ध कर दिया कि ये जागरूक नागरिक हैं तो दूसरी ओर जीवन को पूरी तरह भोगकर अपने आनंदवादी रूप का परिचय दिया। दर्शनशास्त्र जैसे शुष्क विषय में एम० ए० करने तथा उसी विषय के तीस वर्ष तक अध्यापक रहने के बाद भी इनकी जीवन-दृष्टि क्रीड़ावादी है। इनके उपन्यास अपनी कोमल, रम्य, प्रणय-कथा तथा ललित-रम्य भाषा-शैली से पाठक को मुग्ध कर देते हैं। निर्दोष कथानक-शिल्प, मार्मिक चरित्र-चित्रण, मोहक प्रकृति-चित्रण, रमणीक कल्पना इनके उपन्यासों के अन्य गुण हैं। कतिपय उपन्यासों में सामयिक राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं को उठाया अवश्य गया है, पर आग्रह कला-विलास और मादक प्रणय-कथा पर ही है। इसीलिए ये युवक-युवतियों के प्रिय लेखक रहे हैं। इनमें विचार के औदात्य और गांभीर्य का अभाव ही है। उपन्यासों के अतिरिक्त फडके अपने लघुनिबंधों, प्रौढ़ निबंधों, प्रबंध-ग्रंथों एवं कहानियों के लिए भी विख्यात हैं पर सर्वत्र इनकी कलावादी दृष्टि का ही प्राधान्य है।

प्रमुख कृतियाँ—**उपन्यास** : 'कलाब्याची दांडी', 'प्रवासी' (दे०), 'झंझावात', 'उद्धार', 'आशा', 'निर्माल्य'; **कहानी** : 'लीला आणि इतर गोष्ठी', 'उल्हास कथा', 'प्रीति पुष्प', 'किशोर कथा', 'मिटी' आदि; **निबंध-संग्रह** : 'गुज-गोष्ठी', 'स्मृति व संचार', 'कस्तुरीची लूट'। **आलोचना ग्रंथ** : 'प्रतिभा-साधन' (दे०); **आत्मकथा** : 'माझ्या साहित्य सेवेंतील स्मृती'। **जीवनी** : 'दादाभाई नौरोजी', 'लोकमान्य टिळक', 'महात्मा गांधी' आदि।

फतुरानंद, रामचंद्र मिश्र *(उ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म झाँझीर मंगला (कटक) में हुआ था। व्यवसाय से ये डाक्टर हैं; किंतु कुष्ठरोग-ग्रस्त होने के कारण नीरव-साहित्य-साधना को इन्होंने अपना जीवन बना लिया है। आजकल 'डगर' पत्रिका के संचालक-संपादक हैं। 'नाककटा चित्रकार' (दे०) (उपन्यास) 'हेरेसा', 'साहित्य चाष' (कहानी), 'निलठाक बि' (कविता), 'आम बहि' (शिशु-साहित्य) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

फतुरानंद कुशल व्यंग्यकार हैं। व्यंग्यात्मक शैली में इन्होंने बुद्धिजीवी-वर्ग के दोष व दुर्बलताओं पर प्रकाश डाला है। दैनंदिन बोलचाल की भाषा ने इनकी शैली को मार्मिक बना दिया है। हास्यरसात्मक कहानीकार के रूप में भी ये काफ़ी जनप्रिय हैं। उपन्यासों में हास्य के अंतराल से समस्या को उभार कर रखने में ये सिद्धहस्त हैं।

फ़रहंग-ए-आसिफ़िया *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1908 ई०]

लेखक : सैयद अहमद देहलवी। उर्दू भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के इस शब्दकोश में प्रत्येक शब्द का लिंग-विचार दिल्ली और लखनऊ दोनों प्रकार की उर्दू के संदर्भ में उल्लिखित है। इसमें जनसाधारण की भाषा और उच्च वर्ग की भाषा का अंतर भी यथास्थान स्पष्ट किया गया है। मुहावरों की प्रामाणिकता अधिकतर उर्दू के समर्थ कवियों, लोकोक्तियों, गीतों की पंक्तियों, दोहों और पहेलियों आदि से सिद्ध की गई है। साधारणतया महिलाओं में प्रयुक्त भाषा और उनकी रीति-रिवाजों तथा परंपराओं की विशद जानकारी देना भी इस विशालकाय शब्दकोश की एक विशेषता है। प्रत्येक शब्द की धातु एवं स्रोत के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दों के नामकरण पर भी इसमें यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। हिंदी शब्दों के विकास का उल्लेख प्रायः संस्कृत, पालि और प्राकृत आदि भाषाओं के माध्यम से किया गया है। फ़ारसी तक आते-आते उन शब्दों में किस प्रकार विकास हुआ है—इसका भी वर्णन है। शुद्ध हिंदुस्तानी शब्दों का भी विशद विवेचन-विश्लेषण इसमें किया गया है।

फ़रहतुल्ला बेग *(उर्दू० ले०)*

फ़रहतुल्ला बेग उर्दू में हास्य रस के सफल निबंधकार हैं। इसकी शैली में एक खास शोख़ी पाई जाती है जो कहकहा मारकर हँसने की बजाय मंद-मंद मुसकाने को प्रेरित करती है। इनकी साहित्यिक वार्ताओं में भी इनकी स्वाभाविक शोख़ी झलक उठती है। इनके हास्य में घटियापन अथवा निम्नता कहीं नहीं आने पाती। इनके लेखों को पढ़ते वक्त एक प्रकार की बौद्धिक कसरत हो जाती है जिसके बाद एक हल्कापन महसूस होता है।

इनकी कृतियों में कभी-कभी हलका-सा व्यंग्य भी नज़र आता है जो समझने वाले के लिए पर्याप्त प्रभावपूर्ण होता है। इनके यहाँ दिल्ली की टकसाली भाषा का चटखारा भी रुचिकर होता है। रवानी, लफ़्ज़ों का ख़ूबसूरत बिठाव, विषय के साथ विचार और कल्पना का पूरी तौर पर घुला-मिला होना फ़रहतुल्ला बेग की खास ख़ूबियाँ हैं।

फ़रीद *(पं० ले०)*

दे० शेख़ फ़रीद।

'फ़लौरी', शरधा राम *(पं० ले०)*

दे० फुल्लौरी, श्रद्धाराम।

फ़साना-ए-अजायब *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1824 ई०]

'फ़साना-ए-अजायब' मिर्ज़ा रजब अली बेग 'सरूर' (दे०) का सामाजिक उपन्यास है और 'सरूर' की सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसने उन्हें अमर कर दिया है। इसमें फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) की तरह लखनऊ के सामाजिक जीवन के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। 'सरूर' के ये चित्र प्रदर्शनी में चित्रपट पर सजे सुंदर किंतु मूक एवं गतिहीन चित्रों जैसे प्रतीत होते हैं। 'सरशार' छोटी बातों का विस्तृत वर्णन करते हैं जबकि 'सरूर' कथा में कुतूहल पैदा करने में रुचि लेते हैं। सरूर के यहाँ हास्य कहीं भी नहीं जबकि सरशार के यहाँ हास्य हर समय और हर जगह है।

यह 'करबल-कथा' (दे०) और 'नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा' (दे०) की गद्य-शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा भी अरबी-फ़ारसी पदावली से युक्त है किंतु इसकी भाषा उक्त दोनों कवियों की अपेक्षा अधिक सहज-सरल है। इसमें वैसी जटिलता और दुरूहता नहीं है। 'सरूर' अवसरानुकूल भाषा के प्रयोग में निपुण हैं। दुकानदारों और शिल्पकारों की सहज स्वाभाविक बातचीत के दृष्टिकोण से यह एक श्रेष्ठ गद्य कृति है।

'फ़साना-ए-अजायब' का कथानक भी परंपरावादी चमत्कारों से भरा है। फिर भी प्राचीन शैली के उर्दू-उपन्यासों में इस कृति का बड़ा महत्व है। इसकी रचना के पश्चात् उर्दू उपन्यास का नवीन-युगारंभ होता है। गद्य-शैली की दृष्टि से तो इस कृति का एक वैशिष्ट्य है परंतु कला की कसौटी पर यह बहुत खरी नहीं उतरती।

फ़साना-ए-आज़ाद *(उर्दू०कृ०)* [रचना-काल—1878 ई०]

'फ़साना-ए-आज़ाद' पं० रतननाथ सरशार (दे०) की रचना है। इसका प्रकाशन 1880 ई० में हुआ था। इसमें लेखक ने अपने वतन लखनऊ के सामाजिक जीवन और लखनऊ की पतनोन्मुखी नवाबी सभ्यता का जीवंत-मुखर चित्र प्रस्तुत किया है। इसे पढ़कर पाठक ऐसा अनुभव करता है कि वह स्वयं लखनऊ के गली-कूचों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हाट-बाज़ारों में विचरण कर रहा है। लेखक ने इसमें कवि की कल्पना और चित्रकार की आँख से काम लिया है।

'सरशार' की यह रचना उर्दू के प्रारंभिक उपन्यासों में से है किंतु शैली की दृष्टि से सब से निराला है। लोग 'सरशार' को तो भूल सकते हैं किंतु फ़साना-ए-आज़ाद' को नहीं। जिस समय यह 'अवध-अख़बार' में धारावाहिक उपन्यास के रूप में छपता था तो लोग अगले अंक की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे। इसका घटना-चक्र और पात्र सब कुछ वास्तविक और सजीव हैं। आज़ाद, खोजी, हुस्न-आरा और नवाब साहब आदि इसके जीते-जागते पात्र हैं। आज़ाद तथा हुस्न-आरा अपने प्रगतिवादी विचारों तथा खोजी अपनी विचित्र चेष्टाओं के लिए सदा याद किए जायेंगे।

फ़साना-ए-मुब्तला (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल --1888 ई०]

'फ़साना-ए-मुब्तला' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे० का सामाजिक उपन्यास है। इसमें मुसलमानों के तत्कालीन सामाजिक जीवन के सजीव चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। यद्यपि दिल्ली का नामोल्लेख नहीं हुआ तथापि इस उपन्यास का वातावरण दिल्ली के अतिरिक्त अन्य किसी नगर का प्रतीत नहीं होता। इसमें मुसलमानों के घरेलू जीवन, शिक्षा-संस्थाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, बहु-विवाह, दहेज आदि की कुप्रथाओं, भाँड़ों की नकलों, नैतिक पतन, कोतवाल तथा अन्य अधिकारियों की धाँधली ग्रामीण संपत्ति-विभाजन के कारण होने वाली मुकद्दमेबाज़ियों, स्त्रियों के पारस्परिक झगड़ों, सौतिया डाह आदि के सजीव एवं मुखर चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। डा० अब्दुल हक़ (दे०) के शब्दों में हर मुसलमान को रह-रहकर शुबह होता है कि कहीं उसी के खानदान के चिट्ठे तो नहीं खुल रहे हैं।

उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। महिलाओं की शब्दावली, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के बड़े सटीक प्रयोग इसमें हुए हैं जो एक प्रभावशाली व्यंग्य लेखक की शैली की विशेषता होती है। इस कृति के पुरुष पात्र प्रायः शिक्षात्मक वक्तृत्व देने वाले ही हैं। संवाद नारी पात्रों के हैं जो बहुत सशक्त एवं सजीव हैं। ऐतिहासिकता को ध्यान में रखकर इस उपन्यास में बहुत सी अनमिल बातें भी कहीं गई हैं। मनोवैज्ञानिक आधार ग्रहण कर लेखक दर्शाया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में घरेलू तथा विद्यालयी वातावरण का कितना प्रभाव पड़ता है।

फागु (*हिं० पारि०*)

'फागु' शब्द संस्कृत-शब्द 'फाल्गुन' का अपभ्रष्ट रूप है। 'फागु' का संबंध वसंतोत्सव और अनंग पूजा से है। वसंत के आगमन पर प्रकृति में नवजीवन का संचार होने लगता है। मानव-हृदय में प्रेम और श्रृंगार की भावनाएँ प्रस्फुटित होने लगती हैं। आरंभ में यही 'मदनोत्सव, 'फागुन' काव्यों का विषय बना।

फागु-काव्यों की परंपरा लिखित रूप में संस्कृत तथा प्राकृत में नहीं मिलती। इनकी रचना का प्रचलन उत्तरकालीन अपभ्रंश-काल में और हिंदी के प्रारंभिक काल में शुरू हुआ। आरंभ में ये फागु-काव्य वसंत, होली आदि उत्सवों पर गाये जाने के लिए लोक-गीतों के रूप में रचे गये। इन गीतों में प्रेम एवं श्रृंगार-भावना प्रधान होती थी। अपभ्रंश में रचित इन काव्यों में जैनाचार्यों ने धार्मिकता का पुट दिया। श्रृंगार की पृष्ठभूमि पर शांत रस का चित्र प्रस्तुत किया। 'सिरी थूलि भद्द फागु' (दे०), 'श्री नेमिनाथ फागु' (दे०) आदि रचनाएँ अपभ्रंश में मिलती हैं।

फ़ाज़िल, गुलाम अहमद (*कश० ले०*) [जन्म—1914 ई०]

औपचारिक रूप से उर्दू, फ़ारसी, अँग्रेज़ी भाषाओं तथा अन्य सामाजिक विषयों में शिक्षित। भाषा में सौष्ठव और पद-लालित्य है। 'सरूद' और 'क़लाम-ए-फ़ाज़िल' नाम से इनके कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त, 'साग़र मस्ती', 'शमा-ए-वतन' तथा 'अनवारि मुहम्मदी' भी इनकी कृतियाँ हैं। फ़ाज़िल साहब अच्छे गायक कलाकार एवं संगीतकार भी हैं। अतः इन गुणों का प्रभाव इनकी कविता की गेयता में भी स्पष्ट रूप से झलकता है। प्रेमाख्यानक एवं धार्मिक कविता करने में इन्होंने अच्छा कौशल दिखाया है। इनकी कविता अच्छे स्तर की है और इन्होंने अपनी रचनाओं में शब्द की व्यंजना-शक्ति से खूब काम लिया है। भाषा कुछ-कुछ फ़ारसी से प्रभावित है। इनकी कृतियों में महमूद गामी (दे०) की-सी परिपक्वता और महजूर (दे०) की-सी गेयता का सुंदर मिश्रण झलकता है।

फ़ानी बदायूनी (*उर्दू० ले०*) [जन्म—1789 ई०]

इनका नाम शौकत अली खाँ है और तख़ल्लुस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'फ़ानी'। इनके पूर्वज काबुल के रहने वाले थे। ये बदायूँ (उ० प्र०) के निवासी होने के कारण बदायूनी कहलाए। इन्होंने बरेली कॉलेज से बी० ए० की परीक्षा पास की और अलीगढ़ से एल-एल० बी० किया। वकालत में इन्हें कोई रुचि नहीं थी, केवल पिता के आग्रह पर वकालत की परीक्षा पास कर ली थी। साहित्यिक रुचि प्रारंभ से थी। इन्होंने पहली ग़ज़ल 1890 ई० में कही। इनके पिता इन्हें शेर कहने से रोका करते थे, अतः उनके डर के मारे किसी से इस्लाह भी नहीं ले सके। फ़ानी ने अपनी प्रतिभा के बल पर ही कीर्ति अर्जित की। इन्होंने तीन दीवानों, दो उर्दू मसनवियों, दो ड्रामों तथा एक फ़ारसी मसनवी की रचना की किंतु उदासीन वृत्ति के कारण ये सब रचनाएँ नष्ट हो गईं। जो कुछ बाकी रहा वह 'बाकियात-ए-फ़ानी' के नाम से पुस्तक रूप में छपा है। दूसरा संग्रह 'रफ़ानियात-ए-फ़ानी के नाम से छपा है।

फ़ानी के काव्य में पीड़ा एवं शोकानुभूति अत्यंत प्रबल और गहरी है। इनकी कविता भावुकता तथा अर्थ-गांभीर्य से ओत-प्रोत है।

फ़ारूकी, प्रो० ख्वाजा अहमद (उर्दू० ले०)

जन्मस्थान — बछराऊँ, ज़िला मुरादाबाद (उ० प्र०) ये पत्र-लेखन पर अनुसंधान कर पी-एच० डी० की डिग्री से विभूषित हुए। इन दिनों इन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में प्रोफ़ेसर होने का गौरव प्राप्त है। इसके पूर्व ये उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग में विभिन्न पदों पर तथा दिल्ली कालेज दिल्ली के प्राध्यापक के रूप में भी कार्य कर चुके हैं। इनकी कृतियों में 'मीर तक़ी मीर' 'क्लासिकी अदब' और 'तज़करा-ए-सरूर' महत्वपूर्ण कृतियों हैं। साहित्य-सृजन तथा उसके प्रकाशन में इनकी सुरुचि सराहनीय है। इनकी अभिव्यंजना-शैली में प्रभविष्णुता, सजीवता, भव्यता, गंभीरता, सरलता और सरसता का संचार देखते ही बनता है। विचारों के स्पष्टीकरण में कहीं भी शब्दाडंबर अथवा भावाडंबर का आश्रय इन्होंने नहीं लिया है। आधुनिक युग के उर्दू साहित्यकारों में इन्हें उच्च स्थान प्राप्त है।

फाल्गुन राव (म० पा०)

यह गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के प्रसिद्ध रूपांतरित नाटक संगीत संशय 'कल्लोळ' (फ्रेंच नाटककार मोलियर-कृत 'मानारेल' के मर्फ़ी द्वारा) अँग्रेज़ी अनुवाद' 'आल इन दी रांग' का रूपांतर) का सहपात्र कृपण अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इसका नामकरण स्वदेशी मास 'फागुन' के आधार पर हुआ है। अपनी संशय-प्रवृत्ति के कारण ही यह अपनी पत्नी कार्तिका के प्रति भी संदेह रखता है। वस्तुतः कार्तिका इसकी दूसरी पत्नी है जो वय आदि की दृष्टि से इससे बहुत छोटी है। इसी से वयोवृद्ध फाल्गुन राव अपनी इस नवयौवना पत्नी के चरित्र पर संदेह करता है। इसीलिए इसका पारिवारिक जीवन कटु है। यह अपने नौकर भादव्या (दे०) को बहुत कम वेतन देता है, परंतु समय-समय पर उसे कुछ इनाम आदि देने के झूठे आश्वासन भी देता रहता है। व्यवसाय से वैद्य होने के कारण सभी प्रकार के व्यक्तियों से इसका परिचय होता है। नायिका रेवती के अचेतनाअवस्था में उपचार आदि की सहायता करता है। सेठ कृतिका के पास अश्विनी सेठ की तस्वीर के कारण फाल्गुन राव और कृतिका के मन में संदेह की खाई और गहरी हो जाती है। मानव की सहज शंकालु-वृत्ति के कारण घटित होने वाले अप्रिय घटना-प्रसंगों का चित्रण नाटककार ने फाल्गुन राव के चरित्र के माध्यम से किया है। मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर विकसित होने के कारण यह चरित्र सहज, स्वाभाविक एवं विशिष्ट प्रभावोत्पादक हो गया है।

फ़िरदौस-ए-बरी (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1895 ई०]

इस उपन्यास के लेखक हैं मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर' लखनवी (दे०)। मौलाना 'शरर' ने प्रायः अपने सभी उपन्यासों में मुसलमानों के सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्थान की गाथाएँ सुनाकर उन्हें जागृति एवं कर्मठता का संदेश दिया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में दूसरे संप्रदायों की तुलना में मुसलमानों के प्रति पक्षपात और अतिशयोक्ति से काम लिया है। उनके सभी उपन्यासों में केवल 'फ़िरदौस-ए-बरी' ही एक ऐसा उपन्यास है जो कलात्मक दृष्टि से स्तुत्य कहा जा सकता है। उर्दू के ऐतिहासिक उपन्यासों में इसे विशेष स्थान प्राप्त है और प्रायः सभी आलोचकों ने इसकी कथावस्तु की रोचकता और चरित्र-चित्रण की संवेदनशीलता की प्रशंसा की है। वातावरण का वास्तविक चित्रण उनकी कला की उत्कृष्टता का परिचायक है। इस उपन्यास के सभी पात्र सजीव हैं। उनका अपना विशेष व्यक्तित्व है। इसकी कथा-वस्तु का निर्माण स्वाभाविक तथा संतुलित ढंग से हुआ है। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है कि मौलाना 'शरर' की सृजनात्मक क्षमताओं और ऐतिहासिक विवेक ने अपना पूर्ण परिचय देने के लिए इस उपन्यास को माध्यम के रूप में चुना है। 'फ़िरदौस-ए-बरी' उनका एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें न तो इतिहास का हनन हुआ है और न किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व को विकृत स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है।

'फ़िरदौस-ए-बरी' की कथा का विषय वह तूफ़ान है जो पाँचवीं शती में इसलाम की दुनिया में आया और अपनी पराकाष्ठा को पहुँचकर उसी प्रकार समाप्त हो गया जिस प्रकार हर तूफ़ान समाप्त हो जाता है। 'फ़िरदौस-ए-बरी' को रोचक बनाने के लिए लेखक ने दो काल्पनिक पात्रों का सृजन करके उनके पारस्परिक प्रेम का निरूपण किया है। ये दोनों पात्र चूंकि लेखक के मनोजात हैं, अतः वे पूर्ण कर्तव्यनिष्ठ हैं।

इस उपन्यास में पाठक का 'कौतूहल' निरंतर जागृत रहता है। आशा, निराशा, आश्चर्य व शांति की भावनाओं को यथावसर उभारने तथा दबाने का कार्य लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। शैली रोचक है। दृश्य चित्रों तथा वातावरण का स्वाभाविक निरूपण भी इस उपन्यास की विशेषता है।

फ़िरदौसी *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1932 ई०]

'फ़िरदौसी' श्री गुर्रमु जाषुवा (दे०) का एक प्रसिद्ध खंडकाव्य है। फ़ारसी के महाकवि तथा 'शाहनामा' ग्रंथ के प्रणेता फ़िरदौसी (दे०) की करुण कहानी इसकी कथा-वस्तु है। भारत पर सत्रह बार आक्रमण करके अशेष धनराशि लूटकर स्वदेश लौटने के उपरांत महमूद गज़नवी ने फ़िरदौसी से आग्रह किया कि वह गज़नवी-वंश की विजय-यात्राओं का वर्णन करते हुए महाकाव्य की रचना करे। उसको यह वचन भी दिया गया कि पारिश्रमिक के रूप में उसको असंख्य स्वर्ण-मुद्राएँ दी जाएँगी। जब दीर्घ-काल के अथक परिश्रम के उपरांत फ़िरदौसी उस महा-काव्य को पूरा करता है तब तक महमूद गज़नवी की कृपा-दृष्टि कोप-दृष्टि में परिवर्तित हो चुकी होती है और फ़िर-दौसी अपने प्राणों की रक्षा करने गुप्त रूप से देश छोड़कर चला जाता है। जाने से पहले वह एक मस्जिद की दीवार पर यह छंद लिख जाता है—'रत्नों के आगार समुद्र में मैंने अनेक बार डुबकियाँ लगाईं। परंतु हाय! मैं कैसा भाग्यहीन हूँ! रत्न की प्राप्ति तो नहीं हुई, अंत में सागर ही मुझे निगलने के लिए दौड़ पड़ा।' इसमें एक कवि-हृदय की वेदना एवं क्षोभ को जाषुवा ने स्वयं अनुभव किया है और उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति इस काव्य में की है।

फ़िरदौसी *(ते० पा०)*

ये 'शाहनामा' के अमर फ़ारसी कवि हैं। कवि गुर्रमु जाषुवा (दे०) ने अपने प्रसिद्ध खंडकाव्य 'फ़िरदौसी' (दे०) द्वारा इनकी कहानी को आंध्र-जनता के सामने जीवंत रूप में उपस्थित किया है। सत्रह बार भारत पर चढ़ाई करके अशेष धनराशि को हस्तगत कर लेने के उप-रांत महमूद गज़नवी महाकवि फ़िरदौसी को आज्ञा देता है कि तुम गज़नी एवं मेरे पूर्वजों की गौरवगाथा का वर्णन करते हुए एक महाकाव्य का निर्माण करो। गज़नवी फ़िर-दौसी को पारिश्रमिक के रूप में विपुल संपत्ति प्रदान करने का वचन भी देता है। किंतु यह जब अनेक वर्षों के घोर परिश्रम के उपरांत उक्त ग्रंथ की रचना करके गज़नवी को सर्मपित करता है, तब तक अकारण ही इसके प्रति उसकी कृपादृष्टि कोपदृष्टि में परिवर्तित हो चुकी होती है। अतः इसको पुरस्कार-प्राप्ति की आशा से दंड का भय अधिक होने लगता है। असहाय और निराश फ़िरदौसी एक मस्जिद की दीवार पर यह छंद लिखकर प्राणों की रक्षा के लिए प्रस्थान कर देता है कि 'रत्नों के भांडार महासमुद्र में मैंने बहुत डुबकियाँ लगाईं, किंतु मैं अभागा ठहरा, मोती पा न सका और समुद्र ही मुझे निगलने के लिए मुँह बाये दौड़ पड़ा है।'

फ़िराक़ गोरखपुरी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

प्रो० रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुर में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता प्रसिद्ध वकील तथा अच्छे शायर थे और 'इबरत' तखल्लुस करते थे। 'फ़िराक़' ने म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद से बी० ए० की परीक्षा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इन्हें तुरंत डिप्टी कलेक्टर के पद के लिए चुन लिया गया किंतु इन्होंने दूसरों को जेल भेजने की बजाय स्वयं जेल जाना अच्छा समझा और डिप्टी कलेक्टर न बनकर कांग्रेस में शामिल हो गए।

शायरी में 'फ़िराक़' ने प्रो० नासिरी तथा उनके बाद 'वसीम' खैराबादी से इस्लाह ली। ये इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अँग्रेज़ी-प्राध्यापक पद से रिटायर हुए हैं। इनकी ग़ज़लों पर मीर (दे०), अमीर मीनाई (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सफ़ी लखनवी (दे०) के रंग की छाप स्पष्ट दिखाई देती है किंतु इस समय इनका अपना एक निजी रंग बन गया है जो श्रोताओं को बहुत प्रभावित करता है। 'फ़िराक़' भावों के चतुर चितेरे हैं। मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में भी ये सिद्धहस्त हैं। इन पर पाश्चात्य काव्य, नाटक और उपन्यास का गंभीर प्रभाव पड़ा है। 'फ़िराक़' की कीर्ति इनकी ग़ज़लों से है, यद्यपि इन्होंने नज़्में भी कही हैं और रूबाइयाँ भी। इनको अपने संग्रह 'गुलो-नग्मा' पर साहित्य अकादेमी की ओर से 5 हज़ार रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त एक लाख रु० का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी इनको प्राप्त हुआ है जो उर्दू के किसी भी शायर को प्राप्त होने वाला सब से बड़ा सम्मान है। 'रूप' इनकी रूबाइयों का संग्रह है। भारतीयता इनके काव्य की विशेषता है।

फुकन, तरुण राम *(अ० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

ये एक कुशल शिकारी थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'यौनतत्त्व' (1934 ई०)।

इन्होंने सैक्स पर लोकप्रिय पुस्तक लिखी है। शिकार-जीवन पर इनकी रचनाएँ अप्रतिम हैं। शिकार की कहानियों में मनोहर रचना-शैली, संयत हास्य रस और कौतुकपूर्ण विवरण की उपलब्धि होती है।

इन्होंने कामरूपीय स्थानीय शैली में कुछ गीतों की रचना की थी। वैसे ये यौनतत्त्व और शिकार-विषयक लेखन के लिए ही असमीया-साहित्य में स्मरणीय हैं।

फुकन, नीलमणि *(अ० ले०)* [जन्म—1880 ई०]

जन्म-स्थान—डिब्रूगढ़। इनकी शिक्षा बी० ए०, बी० एल० तक हुई थी। ये गांधीवादी थे। इन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया था। 1648 से 57 ई० तक ये असम असेंबली के सदस्य रहे थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'ज्योतिकणा' (दे०) (1938), 'मानसी' (दे०) (1942), 'गुटिमाली' (1950), 'जिंजिरि' (1951), 'संधानी' (दे०) (1953); **निबंध** : 'साहित्यकला' (1940), 'चिंतामणि' (1940)।

इनकी कविताएँ रहस्यवादी हैं, ये विश्व के कण-कण में दैविक शक्ति का आभास पाते हैं। इनकी कविताओं में प्रवाह और रमणीयता कम है। इनका पद्य अधिक काव्यमय है। इनके निबंधों में रोचकता है। 'साहित्य कला' में इन्होंने साहित्य की परंपरानुसार विचार न कर सौंदर्य-पिपासु की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। 'चिंतामणि' के निबंध बेकन के निबंधों के समान हैं।

फुकन, प्रवीण *(अ० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

ये असमीया के द्वितीय युद्धोत्तर प्रसिद्ध नाट्यकार हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक** : 'काल-परिणय' (1935), 'मणिराम देवान' (दे०) (1948), 'लाचित बरफुकन' (1948), 'डा० प्रमोद', 'शतिकार बान' (1954), 'विश्वरूपा' (1961); **एकांकी** : 'त्रितरंग'।

'काल-परिणय' में सामाजिक व्यंग्य है। इनके नाटक 'मणिराम देवान' ने रंगमंच पर धूम मचा दी थी। इसमें तीन अंक हैं। इनके नाटकों का ऐतिहासिक परिवेश दुर्बल है, किंतु काल्पनिक दृश्यों और पात्रों के संयोग से ये (नाटक) सुंदर बन पड़े हैं। 'शतिकार बान' में असत् उपाय से धन-संग्रह करने वाली आसुरी शक्ति और चरित्र-बल से उपलब्ध उत्साहपूर्ण शक्ति में संघर्ष दिखाया है।

इनके 'त्रितरंग' में संकलित तीन एकांकियों में मध्यवर्ग की आशा-निराशा का तीव्र द्वंद्व चित्रित है।

ये मात्र एक सफल नाट्यकार हैं।

फुकन, राधानाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1964 ई०,]

जन्मस्थान—जोरहाट। इनकी शिक्षा कलकत्ता में हुई थी, और इन्होंने एम० ए०, बी० एल०, वेदांत-वाचस्पति की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। ये जज थे, इन्होंने चाय बगीचे का व्यवसाय भी किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—'शंकर दर्शन' (1949), 'वेदांत दर्शन' (1951), 'सांख्य-दर्शन' (1949), 'कथारे उपनिषद्' (1954), 'श्रीमद्भगवद्गीता' (1955), 'विज्ञानर सिपारे' (1957), जन्मोत्तर रहस्य (1957)।

इन्होंने दार्शनिक ग्रंथ लिखकर असमीया-साहित्य में एक अभाव की पूर्ति की है। किसी समय इनका उद्बोधक गीत बहुत प्रतिसिद्धि लाभ कर गया था। कविता के क्षेत्र में ये अग्रसर न हो सके। फुकन जी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिविद्या (मेटाफ़िज़िक्स) को गणितीय संक्षिप्त तर्कना से मिश्रित किया है। ये इस क्षेत्र में आदर्शवादी हैं। असमीया के दार्शनिक चिंतन के रूप में ही इनकी ख्याति है।

फुकनैनी, पद्मावती देवी *(अ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

ये प्रसिद्ध समाज-सुधारक एवं साहित्य-सेवी स्वर्गीय आनंदराम ढेकियाल फुकन (दे०) की सुपुत्री थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—'सुधर्मार उपाख्यान' (1884), 'हितसाधिका'।

'सुधर्मार उपाख्यान' को कतिपय आलोचक असमीया का प्रथम उपन्यास मानते हैं। मिशनरियों के उपन्यास प्रचारात्मक थे किंतु यह उपन्यास नहीं है। अतः इस दृष्टि से इनका यह उपन्यास प्रथम सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है, किंतु इसमें उपन्यास-तत्त्वों का अभाव है। यह उपन्यास की अपेक्षा उपाख्यान अधिक है। यह छः परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें तीन-तीन दंपतियों के विरह-मिलन का सहज स्वाभाविक वर्णन है। कहानी की परिणति के लिए लेखिका को आकस्मिक घटना एवं संयोग पर भी निर्भर रहना पड़ता है। चरित्र-चित्रण नहीं है किंतु कथानक का स्वाभाविक विकास है। आगे के उपन्यासकारों ने इनका अनुसरण नहीं किया। इनकी 'हितसाधिका' छात्रोपयोगी पुस्तक है।

इनका यही महत्व है कि ये प्रथम स्त्री उपन्यास-लेखिका हैं।

फुनहे *(पं० पारि०)*

आदि ग्रंथ में श्री गुरु अर्जुनदेव के नाम से रचित 'फुनहे महला पांच' शीर्षक से कुछ वाणी संगृहीत है। यह 'पुनह' छंद में रची गई है। इसी का दूसरा नाम फुनहा है। इस छंद के अन्य अनेक नामों में से एक नाम 'चांद्रायण' भी बताया गया है। इसमें चार चरण होते हैं, प्रति चरण 21 मात्राएँ तथा ग्यारह और दस पर यति का विधान है। उदाहरण :

धावड दसा अनेक, प्रेम प्रभु कारणे।
पंच सतावहि दूत, कथन विधि मारणे।

फुल कोंवर गीत *(अ० कृ०)*

दे० 'मणिकोंवर'।

फुल्लरा *(बँ० पा०)*

मध्ययुगीन मंगलकाव्य के सार्थक कवि कदाचित् दो ही हैं—मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) तथा भारतचंद्र (दे०)। कथा तथा जीवन-विन्यास, चरित्र-चित्रण, यथार्थ-बोध एवं शिल्प-कौशल की दृष्टि से इस युग के अन्य कवियों की तुलना में मुकुंदराम श्रेष्ठ हैं। फुल्लरा का चरित्र-चित्रण भी उनकी श्रेष्ठता का एक प्रमाण है।

फुल्लरा व्याधपत्नी है। संस्कृत-शास्त्र के अनुसार कवि ने उसका सौंदर्य-वर्णन किया है। कृष्ण प्रस्तर से गठित यह मानो एक जीवंत नारी-मूर्ति है। अरण्य का सौंदर्य उसकी देह और मन दोनों पर ही फैला हुआ है। सरलता के साथ-साथ नारी सुलभ यथार्थबोध उसके चरित्र का आभूषण है। दुःख उसका जीवन-साथी है। देवी चंडी जब आश्रय-प्रार्थिनी होकर फुल्लरा के पास आती है तब सहज ही रूपवती सौत की संभाव्य भूमिका में उसकी कल्पना कर फुल्लरा पहले-पहल देवी से स्वगृह वापस चले जाने का अनुरोध करती है। जब देवी ने वह स्वीकार नहीं किया तब फुल्लरा ने अपनी बारह महीनों की दुःख-गाथा का वर्णन किया। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) का यह बारहमासा मध्ययुगीन मंगलकाव्य की एक संपत्ति-विशेष है। इस अश्रुसिक्त जीवनचर्या के वर्णन पर भी देवी अटल रहती हैं। तब फुल्लरा स्वामी कालकेतु की शरण लेती है। अभागिनी फुल्लरा ने सारा जीवन दुःसह दारिद्र्य में हँसते हुए बिताया है—केवल एकनिष्ठ प्रेम का ऐश्वर्य उसके पास था। दरिद्र का वह ऐश्वर्य भी मानो आज लुटने वाला है। इसीलिए वह पति के निकट आँसू और अभिमान से भरी हुई आती है।

मंगलकाव्यों में साधारणतः नारियों के द्वारा पतिनिंदा की परंपरा दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से फुल्लरा अपवाद है। स्वामी के साथ झगड़ा करने में वह पीछे नहीं है परंतु पति-प्रेम भी उसमें बहुत है। सौभाग्य-गर्विनी फुल्लरा की मनोभावनाओं का अंकन कवि ने नहीं किया है। वह स्वामी की हित-कामना करती हुई खलनायक भांडुदत्त (दे०) की तुलना से पराजित होती है। इस पराजय में भी फुल्लरा के यथार्थ अनुभवों का ही अंकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है । फुल्लरा चंडीमंगल-काव्य की एक जीवंत तथा सार्थक नारी-पात्र है ।

फुल्लौरी, श्रद्धाराम *(पं०, हिं० ले०)* [जन्म—1837 ई०; मृत्यु—1881 ई०]

हिंदी-गद्य के इतिहास में इनका ऐतिहासिक महत्व है । अनेक आलोचक इनके 'भाग्यवती' उपन्यास को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं । अपने समय में ये विद्वत्तापूर्ण एवं प्रभावशाली व्याख्यानों तथा रामायण (दे०) महाभारत (दे०) की हृदयस्पर्शी कथाएँ सुनाने के लिए प्रख्यात थे 'सत्यात्भूत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा', 'तत्त्वदीपक', 'धर्मरज्ञा', 'उपदेश-संग्रह', आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं ।

श्री फुल्लौरी का पंजाबी गद्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है—प्रायः वही जो हिंदी में 'भारतेंदु' (दे० भारतेंदु हरिश्चंद्र) का है । पंजाबी गद्य का नमूना प्रस्तुत करने के लिए इन्होंने दो पुस्तकें लिखी थीं—'सिखां दे राज दी विधिआ' और 'पंजाबी बातचीत' ।

फूल-बन *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1665 ई०]

'फूल-बन' दकन के प्रसिद्ध शायर इब्न-ए-निशाती (दे०) की प्रसिद्ध मसनवी है । भाषा और शैली की दृष्टि से यह मसनवी बहुत महत्वपूर्ण है । इसमें तत्कालीन रीति-रिवाजों और रहन-सहन के तरीकों को बड़ी सुंदरता से चित्रित किया गया है ।

'फ़ैज़', फ़ैज़ अहमद *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

बहुत कम लिखकर बहुत अधिक यश प्राप्त करने वाले शायरों में फ़ैज अहमद 'फ़ैज़' का नाम विशेष उल्लेखनीय है । भाव और कला दोनों पक्षों का जैसा सुंदर समन्वय इनके काव्य में पाया जाता है वैसा कम शायरों की कविता में मिलता है । फ़ैज़ की नज़्मों में अत्यंत ओजपूर्ण अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं । इनकी शायरी में समाज का दुःख-दर्द मुखरित हो उठा है । इनमें आपबीती भी है और जगबीती भी । गागर में सागर भरना फ़ैज़ का विशेष गुण है । फ़ैज जब गहराई से किसी बात को अनुभव करते हैं तभी उसे क़लमबंद करते हैं ।

'दस्ते-सबा', 'नक़शे', 'फ़रियादी', 'जिंदा' इनके काव्य-संग्रह हैं । इन्होंने उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का सहारा नहीं लिया । इस युग में इन जैसी लोकप्रियता कम शायरों को मिली है । अपनी उग्रता के कारण ही ये अपने देश (पाकिस्तान) की सरकार के कई बार कोपभाजन बन चुके हैं ।

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज *(हिं०, उर्दू० संस्था)*

उर्दू के आधुनिक गद्य का प्रारंभ उन्नीसवीं शती में हुआ । इसमें फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का बहुत योगदान है । इस कॉलेज की नींव कलकत्ता में रखी गई जिस के उच्चाधिकारी डा० जॉन गिलक्राइस्ट थे । उन्होंने उत्तरी भारत के योग्य विद्वानों को इस कॉलेज में इसलिए एकत्र किया था कि वे भारत आने वाले अँग्रेज़ों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार कर सकें जिससे उन्हें भारतीयों के साथ स्वतंत्र मेल-जोल में आसानी हो । इस कॉलेज की स्थापना से पूर्व भी उर्दू भाषा में कुछ धार्मिक रंग की पुस्तकें एवं क़िस्से-कहानियाँ थीं जिन्हें कच्ची एवं प्रारंभिक उर्दू भाषा में फ़ारसी से अनूदित किया गया था किंतु इन पुस्तकों में व्याकरण की दृष्टि से अनेक भूलें थीं ।

जो लोग इस कॉलेज में पुस्तकें तैयार करने के लिए नियुक्त किए गए थे, उनमें उर्दू में सैयद मुहम्मद हैदर बख्श 'हैदरी', बहादुर अली हुसैनी, इकराम अली तथा मिरज़ा अली लुत्फ़ तथा हिंदी में लल्लूलाल, सदल मिश्र आदि प्रसिद्ध हैं । इन लेखकों की पुस्तकें सादा और सरल आकर्षक भाषा में हैं । डा० गिलक्राइस्ट के इस कॉलेज के प्रयत्नों का ही फल था कि उर्दू सरकारी भाषा के रूप में सत्तारूढ़ हो गई तथा इस योग्य बन गई कि इसे अदालती भाषा घोषित किया जा सके । उर्दू-व्याकरण एवं शब्दकोश भी इसी अवधि में तैयार किए गए । जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है, कालेज के पंडितों से हिंदी गद्य को अपेक्षित शक्ति प्राप्त नहीं हो सकी यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि हिंदी गद्य के आरंभिक प्रयत्नों में कॉलेज का विशेष महत्व है ।

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय *(बँ० ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

आधुनिक बँगला उपन्यास के जनक बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने उपन्यास, निबंध आदि की रचना कर बँगला साहित्य में नवीन युग का सूत्रपात किया । 1958 ई० में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास कर ये प्रथम बंगाली स्नातक बने और बी० एल० की उपाधि प्राप्त कर डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप में बहुत वर्षों तक कार्य करते रहे।

1865 ई० में 'दुर्गेशनंदिनी' (दे०) की रचना कर बंकिमचंद्र ने उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया और तभी से बँगला उपन्यास का विकास शुरू हुआ। बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'राजसिंह' (1877), 'कपालकुंडला' (दे०) (1866), 'चंद्रशेखर' (1875), 'विषवृक्ष' (दे०) (1873), 'कृष्णकांतेर उइल' (दे०) (1876), 'आनंद मठ' (दे०) (1882), तथा 'देवी चौधुरानी' (दे०) (1887)। इनमें 'दुर्गेशनंदिनी', 'राजसिंह', 'कपालकुंडला' तथा 'चंद्रशेखर' ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'विषवृक्ष' तथा 'कृष्णकांतेर उइल' पारिवारिक उपन्यास हैं तथा 'आनंदमठ' एवं 'देवी चौधुरानी' में इतिहास की पटभूमिका में धर्मतत्त्व की व्याख्या की गई है। बंकिम बाबू ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस और इतिहास का समन्वय कर जीवन के असाधारण उच्छ्वास और गौरव की अभिव्यक्ति की है। सामाजिक उपन्यासों में क्षुद्र विरोधों का निषेध कर जीवन का सहज स्नेहपूर्ण चित्र अंकित किया है। धर्मतत्त्व-प्रधान उपन्यासों में जीवन को एक भव्य आलोक से मंडित किया गया है।

बँगला निबंध-साहित्य के क्षेत्र में भी बंकिम बाबू की देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'बंगदर्शन' पत्रिका की स्थापना कर उन्होंने विद्वानों को साहित्य-विचार-प्रधान तथा वैज्ञानिक एवं दार्शनिक निबंध-रचना में प्रवृत्त किया। उनके 'विविध प्रबंध' (प्रथम तथा द्वितीय भाग) 1887 ई० तथा 1892 ई० में प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त 'विज्ञान-रहस्य' (1875), 'साम्य' (1879), 'कृष्ण चरित्र' (1886), 'धर्मतत्त्व' (1888) तथा व्यक्तित्व-धर्मी साहित्यिक निबंधों का संग्रह 'लोकरहस्य'—जिसमें 'कमलकांतेर दप्तर' भी शामिल है—1875 ई० में प्रकाशित हुए। इन निबंधों में समसामयिक जीवन के प्रत्येक पक्ष की—दर्शन, विज्ञान, धर्म, साहित्य, इतिहास, अर्थनीति, राजनीति, व्यंग्य, समाजचित्त सभी की—सुललित गद्य में अभिव्यक्ति हुई। उन्होंने विद्यासागर (दे० ईश्वरचंद्र) की गुरु-गंभीर तथा प्यारीचाँद (दे० मित्र) की गतिमयी एवं हलकी-फुलकी भाषा के सम्मिश्रण से आदर्श गद्य-शैली की प्रतिष्ठा की। बँगला साहित्य में उनका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, जीवन की शाश्वत भूमिका पर भी उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

बंगारम्मा, चावलि *(ते० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1960]

पूर्वी गोदावरी ज़िले की रहने वाली बंगारम्मा विदुषी तथा कवयित्री थीं। 'कांचनविपंची' इनकी कविताओं का संग्रह है। विदुषी होते हुए भी सरल तथा सरस गीतों की रचना करना इनका वैशिष्ट्य है। इनकी कविता अन्य भाषा-साहित्यों के प्रभाव से आक्रांत नहीं हुई। अकृत्रिमता तथा सहजता इनके गीतों के प्रमुख गुण हैं। तेलुगु के साधारण जगजीवन की सहजता तथा भाषा के माधुर्य को इनके गीतों में अच्छी अभिव्यक्ति मिली है।

बंगारय्या, नंडूरि *(ते० ले०)* [समय—बीसवीं शती ई०]

ये अच्छे देशभक्त तथा समर्थ लेखक हैं। इनकी रचनाएँ ये हैं—'आंध्रतेजमु', 'राज्यलक्ष्मी' आदि नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतल विमर्शनमु', 'विराटोद्योगपर्व विमर्शनमु' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ; 'पानुगंटिवारि रचनापाटवमु' जैसे कुछ लेख। आंध्र के आंदोलन के दिनों में अनेक तेलुगु लेखकों ने अपनी जाति के मतवैभव का गुणगान करते हुए कई रचनाएँ कीं। 'आंध्र तेजमु' इसी प्रकार का नाटक है। इसकी प्रस्तावना में लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उक्त रचना में समसामयिक जीवन का प्रतिबिंबित होते हुए भी आंध्रों की महत्ता के लिए एक शाश्वत साहित्यिक मंदिर का निर्माण करना ही अपना प्रमुख लक्ष्य था। इनकी 'राज्यलक्ष्मी' प्रदर्शन-संबंधी एक समस्या को लेकर लिखा गया नाटक है। इस रचना के द्वारा इन्होंने यह कहा है कि किसी भी नाटक के प्रदर्शन में स्त्रियों को ही स्त्री-पात्र की भूमिका ग्रहण करनी चाहिए। 'अभिज्ञानशाकुंतल विमर्शनम्' जैसे ग्रंथ इनकी स्वस्थ आलोचना-शक्ति के द्योतक हैं। बंगारय्या एक सफल नाटककार, श्रेष्ठ आलोचक तथा उदार देशभक्त हैं।

बंद्योपाध्याय, करुणानिधान *(बँ० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1955 ई०]

सौंदर्य के पुजारी करुणानिधान रवींद्रानुसारी कविसमाज में अन्यतम हैं परंतु अपने मन के निभृत निकुंज में काव्य-सरस्वती के स्तवगान की रचना में इनका स्वातंत्र्य सुचिह्नित है। स्वदेशी आंदोलन से प्रभावित इनके प्रथम लघु काव्य-ग्रंथ का नाम है—'बंगमंगल' (1901)। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरांत इनके 'प्रसादी' (1904), 'झरा फुल' (1911), 'शांतिजल' (1913), 'धानदूबा' (1921), 'शतनरी' (संकलन ग्रंथ 1930), 'रवींद्र आरति' (1937), 'गीतायन' (1949), 'गीतारंजन' (1951), एवं 'त्रयी' (1954) काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे।

पुण्यतीर्थ रूपमय भारतवर्ष की आत्मा के अनुसंधान में कवि कल्पनाशील बन जाता है। प्रकृति को इन्होंने जीवन की धूलि-मलिनता के राज्य से अलग ही रखा है। वहीं इनका कवि-स्वातंत्र्य प्रकट है। इनके काव्य पर रवींद्रनाथ के अतिरिक्त देवेंद्रनाथ (दे० ठाकुर), सत्येंद्रनाथ (दे० दत्त), कुमुदरंजन (दे० मल्लिक) का प्रभाव परिलक्षित होता है।

बंद्योपाध्याय, चारुचंद्र *(बँ० ले०)*

जिन उपन्यासकारों ने बँगला उपन्यास को नयी कल्पना तथा भावना से संपन्न और उद्देश्यमूलक बनाने का प्रयास किया, उनमें चारुचंद्र बंद्योपाध्याय उल्लेखनीय हैं। 'चोर काँटा', 'यमुना पुलिनेर भिखारिणी', 'दौराना', 'हेर-आदि' उपन्यास नितांत मौलिक नहीं कहे जा सकते। लेखक ने किसी विदेशी रचना-कथा की छाया तो अवश्य ली है परंतु उसे बड़े कौशल से बंगाली परिवेश में प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं अस्वाभाविक कल्पनाएँ की गई हैं। इनके उपन्यास सरस वर्णन-शैली तथा भावप्रवणता की दृष्टि से समृद्ध हैं। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं। उनमें चारुचंद्र अधिक सफल रहे हैं।

बंद्योपाध्याय, ताराशंकर *(बँ० ले०)* [जन्म—1898 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

अपने अंचल के संस्कारों से पुष्ट ताराशंकर का जीवन एवं व्यक्तित्व पतनोन्मुखी ज़मींदारी तथा सामंतशाही के विरोध में यांत्रिक सभ्यता के उदय, नयी शिक्षा-दीक्षा, स्वदेशी आंदोलन, स्वातंत्र्योत्तर उथल-पुथल और इनके परिप्रेक्ष्य में बदलते ग्रामीण जीवन को समेटे हुए है। इन्होंने कुल 130 से अधिक पुस्तकें लिखीं जिनमें 50 उपन्यास, 30 कहानियाँ, 10 नाटक तथा शेष यात्रा-साहित्य, राजनीतिक-साहित्यिक निबंध आदि हैं। इनकी मुख्य विधा उपन्यास ही रही हालाँकि साहित्यिक जीवन का सूत्रपात कवि के रूप में हुआ था। पहला उपन्यास 'छेलेटी घुरनी' 1931 ई० में प्रकाशित हुआ था। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'पाषाणपुरी', 'कवि', 'धात्री', 'देवता', 'कालिंदी' (दे०), 'गरमदेवता' (दे०), (ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित), 'पंच ग्राम', 'हाँसुलि', 'बाँकेर उपकथा' (दे०), 'आरोग्य-निकेतन' (दे०), 'सप्तपदी', 'राधा'। इनकी विशेषताएँ हैं—कथ्य और कथन-शैली में अकृत्रिमता, प्रत्येक पात्र का संवेदना-सहानुभूतिपूर्ण चित्रांकन तथा अंततः प्राचीन आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा। इनके साहित्य का धरातल है संक्रांतिकालीन समाज जो यांत्रिक सभ्यता के आघात से नयी करवट ले रहा है। इनका साहित्य अपनी विशिष्टता के कारण एकरूपता में बँध गया लगता है।

कई तरह के पुरस्कारों-सम्मानों से विभूषित ताराशंकर को बंकिम-रवींद्र-शरत् की परंपरा में बँगला का सर्वश्रेष्ठ कलाकार होने का गौरव प्राप्त है।

बंद्योपाध्याय, बिभूतिभूषण *(बँ० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में बिभूतिभूषण बंद्योपाध्याय का आविर्भाव एक अविस्मरणीय घटना है। इस ग़रीब स्कूल मास्टर ने जब अपनी कतिपय कहानियों को लेकर साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया था तो लोग उसकी ओर बरबस आकृष्ट हुए। फिर उसके उपन्यास 'पथेर पांचाली' (दे०) (1923) तथा 'अपराजित' (दे० अपु) (दो खंड) (1932) के प्रकाशित होते ही बंगाली पाठक को बंग-प्रकृति की शांत, स्निग्ध शुचिस्नात पटभूमिका में जीवन की अध्यात्म-दृष्टि-संपन्न यथार्थोन्मुख रोमानी अभिव्यक्ति का एक नया स्वाद मिला और एक क्षण में यंत्रमुखर मनस्तात्त्विक द्वंद्व से व्यथित, समस्या-पीड़ित, व्यक्ति-स्वातंत्र्य-भावना से परिपूर्ण जटिल मनुष्य के स्थान पर साधारण, सामान्य मनुष्यों की प्रीति-वेदना ने पाठकों के हृदय में हमेशा के लिए स्थान बना लिया।

'पथेर पांचाली' (दे०) और 'अपराजित' के अतिरिक्त लेखक ने 'दृष्टि प्रदीप' (1935), 'आरण्यक' (दे०) (1938), 'रेवयान' (1944), 'इछामती' (दे०) (1939), 'आदर्श हिंदू होटेल' (1940) आदि उपन्यासों की रचना की थी एवं 'मेघमल्लार' (1931), 'मोरी फूल' (1932), 'यात्रा बदल' (1934), 'जन्म ओ मृत्यु' (1937), 'किन्नर दल' (1938), 'वेनीगिर', 'फुलवाड़ी' (1941) आदि कहानी-संकलन प्रकाशित कराये थे। लेखक के उपन्यास जीवन की क्रमाभिव्यक्ति के महाकाव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जहाँ कल्पना है, अध्यात्म तथा यथार्थ है, संयम है, स्तब्धता है। उपन्यासों में प्रकृति तथा मानव ने एक होकर अद्भुत रस-परिवेश की सृष्टि की है। इनकी कहानियों में आडंबरहीन जीवन की गाथा बिना किसी चांचल्य के वर्णित है। प्रतिदिन के नाम-धामहीन विवर्ण जीवन में भी इतना जीवन-रस संचित है, इसका पता किसे था? दैनंदिन, साधारण जीवन के यथार्थ को इन्होंने अध्यात्म एवं अरण्य-प्रकृति के विचित्र रस से संचित कर अपूर्व चरित्रों की सृष्टि की है। कदाचित् इनके उपन्यासों में घटनाओं का घात-प्रतिघात, चारित्रिक द्वंद्व एवं जीवन-निष्ठा का अभाव है परंतु प्रकृति के संदर्भ में इन्होंने जिस मनुष्य-जीवन की एवं उसके सुख-दुःख की तथा चेतन-अचेतन की कहानी अभिव्यक्त की है उससे बँगला उपन्यास को नये दिगंत का परिचय मिला है।

बंद्योपाध्याय, मानिक *(बँ० ले०)* [जन्म—1910 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सहायता से जीवन का विश्लेषण करने के फलस्वरूप मानिक बंद्योपाध्याय की रचनाओं में बंगाली भावुकता के प्रति स्पष्ट विद्रोह है। इन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में कठिन या कुत्सित सत्य प्रकट किया है। जिस मानव-मन को हम शांत, भद्र तथा निष्पाप समझते हैं उसके अंतर्देश में कितना जटिल विरोध है, कितनी खून से सनी हुई इंद्रिय क्षुधा और अपवित्र कामना की प्रेरणा है—फ़ायडीय मनोविज्ञान की सहायता से इन्होंने व्यक्ति एवं व्यष्टि के दृष्टिकोण की अभिनव एवं स्वकीय व्याख्या की है।

इनके प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम हैं: 'दिवारात्रिर काव्य' (1935), 'पुतुलनाचेर इतिकथा' (1936) (दे०), 'पद्मानदीर माझि' (दे०) (1936), 'शहरतली' (1940), 'अहिंसा' (1948)। कहानी-संकलनों में 'अतसी मामी' (1935), 'प्रागैतिहासिक' (1937), 'मिहि ओ मोटा-काहिनी' (1938), 'सरीसृप' (1939) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इनकी कहानियों एवं उपन्यासों में आंचलिकता का विशेष स्थान है। निर्मोह यथार्थ-दृष्टि की सहायता से व्यक्ति के मन और आचरण का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए इन्होंने अद्भुत चरित्रों की सृष्टि की है और कभी-कभी अर्धबर्बर जीवन-चेतना की अभिव्यक्ति की है। देहजीवी मनुष्य के लज्जाहीन निरावृत आत्म-प्रकाश के स्वरूप को साहित्यिक के निरासक्त, किंतु प्राण-स्पंदित, दृष्टिकोण की सहायता से इन्होंने उद्घाटित किया है। मनुष्य को इन्होंने देहपिंड पर प्रतिष्ठित किया है। जो मनुष्य अपनी देह से प्यार करता है, जीवन से प्यार करता है वह कभी निष्क्रिय नहीं होता। कर्म मनुष्य को नया अनुभव देता है तथा मनुष्य एवं समाज के लिए प्रेम का प्रसार करता है। इनके अंतिम जीवन के उपन्यासों में यह धारणा ही स्पष्टतर हुई है। कहानियों में लेखक की प्रतिभा का श्रेष्ठ परिचय मिलता है।

बंद्योपाध्याय, रंगलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1887 ई०]

इनका जन्म वर्द्धमान ज़िले में बाकुलिया ग्राम में मातामह के यहाँ हुआ था। इनके पिता का नाम रामनारायण बंद्योपाध्याय था जो रामेश्वरपुर ग्राम के निवासी थे। इनकी शिक्षा हुगली कॉलेज में हुई। ये सरकारी नौकरी में रहे।

इनके रचे ग्रंथ हैं—'ऋतु संहार', 'बँगला कविता-विषयक प्रबंध', 'भेक-मूषिकेर युद्ध', 'पद्मिनी उपाख्यान' (दे०), 'कर्मदेवी', 'शुर सुंदरी', 'कवि कंकण चंडी', 'कांची कावेरी'। इसके अतिरिक्त 'संवाद-सागर' तथा 'संवाद-प्रभाकर' नामक पत्रिकाओं में भी इनकी असंख्य रचनाएँ हैं।

ये अनेक भाषाओं के पंडित थे। अतः बँगला भाषा एवं साहित्य में जो नवोन्मेष परवर्ती काल में देखा जाता है, निस्संदेह उसका श्रेय इन्हीं को है। यथार्थ तो यह है कि जो राष्ट्रीयता-युक्त ओजस्वी कविता परवर्ती काल में हेमचंद्र (दे० बंद्योपाध्याय) एवं नवीनचंद्र (दे० सेन) द्वारा प्रवर्तित हुई, उसके प्रवर्तक वस्तुतः ये ही थे।

ऐतिहासिक कहानियों को लेकर महाकाव्य की रचना करने वाले कवियों में ये अग्रगण्य हैं। इन्होंने विभिन्न भाषाओं के साहित्य से सद्भाव कुसुम लेकर अपने प्रदेश की मिट्टी में उनको उगाया है—बंग प्रदेश का रूप दिया है।

बंद्योपाध्याय, शरदिंदु *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1970 ई०]

रोमानी ऐतिहासिक उपन्यास एवं कहानियों की रचना कर शरदिंदु बंद्योपाध्याय ने अभूतपूर्व सफलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की है। रोमांस, रहस्य, भावावेग के आश्रय से इन्होंने अतीत युग की जीवनयात्रा के पुनर्गठन में ऐतिहासिक कल्पना का सार्थक प्रयोग किया है। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'झिंदेर बंदी', 'बिषेर धोंआ', 'कालेर मंदिर', 'तुमि संध्यार मेघ' (1958), 'गौड़मल्लार' आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों का कथा-भाग सुसंबद्ध, चित्ताकर्षक एवं रचना-रीति में वाक्य-प्रयोग तथा भावग्रंथन सुंदर हैं। ये ऐतिहासिक युग की रीति-नीति, पोशाक-परिच्छद, विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाओं तथा युद्ध-विग्रह का संपूर्ण वर्णन कथा-भाग के साथ इस प्रकार से अंगांगी-रूप में संग्रथित कर प्रस्तुत करते हैं कि कहानी में इनके स्वतंत्र अस्तित्व का पता ही नहीं चलता। इनका एक और वैशिष्ट्य यह है कि ये आप्त वाक्यों का प्रयोग कर युग-प्रधान लेखक बनना नहीं चाहते। प्रकृत शिल्पी की तरह शिल्पी-सुलभ परिमित बोध इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

कहानी में यह परिमित बोध बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। लेखक ने कहानीकार के रूप में ही साहित्य-जगत में प्रवेश किया था। 'जातिस्मर' (1933), 'चुयाचंदन' (1942), 'काँचामिठे' (1942), 'कालकूट' (1944), 'गोपनकथा' (1945), 'दंतरुचि' (1946), 'बुमेरांग' (1946), 'कानु कहे राइ'(1954), 'मायाकुरंगी' (1958) आदि कहानी-संग्रह बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इन कहानी-संग्रहों में सुदूर जीवन की रोमानी स्वप्न-यात्रा की यथार्थ ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। आज का पाठक इन कहानियों को पढ़ते हुए वर्तमान से अतीत भूमि पर अपने को प्रतिष्ठित कर लेता है। इन्होंने साधारण जीवन के नाना विषयों को लेकर भी कहानियों की रचना की है एवं रोमांटिक शिल्पी की रहस्य-दृष्टि के आश्रय से जासूसी कहानियों का रहस्य-उन्मोचन किया है। जासूसी कहानी एवं उपन्यासों को साहित्यिक स्तर प्रदान करने का श्रेय शरदिंदु बाबू को है। इनका 'व्योम-केश' (दे०) चरित्र बँगला साहित्य का अविस्मरणीय चरित्र है। रोमानी एवं रहस्य-रोमांच के आश्रय से सहज-सरल सुखपाठ्य कतिपय नाटकों की रचना भी इन्होंने की है जिनमें 'बंधु'(1937), 'डिटेक्टिव' (1937), 'लालपांजा' (1938), 'कालिदास' विशेष उल्लेखनीय हैं।

बंद्योपाध्याय, हेमचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1903 ई०]

हेमचंद्र का जन्म हुगली जिलांतर्गत गुलिता ग्राम में अपने मातामह के यहाँ हुआ था। इनके पिता का नाम कैलाशचंद्र बंद्योपाध्याय एवं माता का आनंदमयी था। इनकी शिक्षा हिंदू कालिज व प्रेसीडेंसी कालिज में हुई थी। बी० ए० और बी० एल० करने के उपरांत कुछ वर्षों तक ये मुंसिफ़ रहे, बाद में स्वतंत्र रूप से वकालत करने लगे। इनके नेत्रों की ज्योति चली गई थी; काशी में 1897 ई० में आपरेशन कराया गया परंतु व्यर्थ रहा।

इन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया, सामयिक पत्रों में रचनाएँ प्रकाशित कीं और अनेक ग्रंथों के अनुवाद भी किए। कवि की प्रमुख कृतियाँ हैं : 'चिंता तरंगिणी', 'वीरबाहुकाव्य', 'कवितावली'—2 भाग (काव्य), 'आशा-कानन', 'छायामयी', 'वृत्रसंहार' (दे०)—2 भाग (महा-काव्य), 'दशमहाविद्या', 'चित्त विकास' (काशी में अंधे होने पर कविता-संग्रह)।

हेमचंद्र बंद्योपाध्याय ने जिस आवेगमयी भाषा में देश-प्रेम की भावना व्यक्त की है वैसा आवेग इनसे पूर्ववर्ती कवियों में नहीं देखा जाता। 'जीवन-मरीचिका', 'भारत विलाप', 'कालचक्र', 'स्वर्गारोहण' आदि कविताओं में इनकी प्रगीत-शक्ति का ऐश्वर्य देखा जा सकता है। 'वृत्रसंहार' की अत्यंत बोधगम्य भाषा एवं सरल गठन-कौशल के कारण कुछ आलोचक उसे 'मेघनाद-बध' (दे०) से श्रेष्ठ मानते हैं।

हेमचंद्र बंद्योपाध्याय आधुनिक युग के बँगला कवियों में अन्यतम हैं। बंकिमचंद्र (दे०) ने इनके संबंध में लिखा है, 'हेमचंद्र की भेरी और सिंगा की आवाज़ से बंगाली पागल थे।' हेमचंद्र उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध के शुद्ध बंगाली कवि हैं। बंगालियों के समस्त गुण-दोष उनके काव्य में विद्यमान हैं।

बंधनस्थानाय अनिरुद्धन् *(मल० कृ०)*

'बंधनस्थानाय अनिरुद्धन्' वळ्ळत्तोळ् (दे०) नारायण मेनन का पुराण-कथाश्रित खंडकाव्य है। रहस्य-प्रेम के अपराध में कपट से कैद किए गए अनि-रुद्ध की प्रेमिका बाणपुत्री उषा के प्रेम की पवित्रता से प्रभावित होकर मंत्री ने कारागार में प्रेमियों के वार्तालाप की सुविधा करा दी। उषा ने अपना गहरा दुःख अभिव्यक्त करते हुए अनिरुद्ध को जेल से छुड़ाने का वचन दिया। परंतु साहसी अनिरुद्ध ने उसे समझाया कि शीघ्र ही बंधुजन आकर उसे छुड़ाएँगे। इतनी ही बातों के साथ उनका संवाद समाप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस खंडकाव्य की कथा दो प्रसंगों या दृश्यों में विभक्त है—मंत्री-उषा-संवाद और उषा-अनिरुद्ध-संवाद। उषा का अपरूप सौंदर्य तथा अनिरुद्ध का वीररूप कल्पनामय शब्दों में चित्रित हुआ है। उषा की वाणी में पुत्री के विनय के साथ राजकुमारी की गंभीरता भी पाई जाती है। अनिरुद्ध का चरित्र भी उसकी साहसी और उदात्त प्रकृति से स्पष्ट है।

संस्कृत-शब्दों की प्रचुरता और संस्कृत छंद के बावजूद प्रवाहमयी भाषा एवं स्निग्ध भावधारा के कारण यह रचना हृदयहारी बन सकी है। द्वितीयाक्षर-प्रास का उचित निर्वाह इसकी सफलता का दूसरा कारण है। वळ्ळत्तोळ् के खंडकाव्यों में सबसे लोकप्रिय यही है। अनेक साहित्य-छात्र इसे कंठस्थ करते हैं। इसकी लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि 1962 ई० तक इसके 27 संस्करण निकले और 76,000 प्रतियाँ छपीं।

बंधुकर, प्राण *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

श्री प्राण बंधुकर स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख कहानीकार, नाटककार एवं एकांकीकार हैं। 'निशी-पद्म' इनका एकांकी-संग्रह है। जिस पर इन्हें सर्व-भारतीय प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। विषय-वस्तु का निर्वाचन ये जीवन के व्यापक क्षेत्र से करते हैं। इनके एकांकियों एवं कहानियों पर मनोविश्लेषण एवं फ़्रायड का प्रभाव है। 'पाषाणी कन्या' (दे०) इनकी औपन्यासिक शैली पर विरचित भ्रमण-संबंधी प्रसिद्ध रचना है। 'श्वेत-पद्मा' (दे०) मूल रूप में लिखी गई कहानी से रूपांतरित इनका एकांकी नाटक है जो अभिनय की दृष्टि से अत्यंत सफल है।

बंबीहाबोल *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1925 ई०]

इसके रचयिता और मध्यकालीन पंजाबी कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व के उद्धारक बाबा बुधसिंह (दे०) ने इस रचना में 17 कवियों का साहित्यिक परिचय दिया है। इससे पूर्व इनकी दो कृतियाँ 'हंसचोग' और 'काइलकू' प्रकाशित हो चुकी थीं। पहली में संत और सूफ़ी-कवियों के काव्य का विश्लेषण था और दूसरी में साहित्य-संबंधी विस्तृत भूमिका के अतिरिक्त प्रेमाख्यानक कवियों का विवेचन। 'बंबीहाबोल' इन दोनों से अधिक पुष्ट कृति है। इसका वर्ण्य 'इश्क और विरह' है। मुग़लकाल के दमोदर (दे०), पीलू (दे०) और नजाबत (दे०) की कृतियों के विस्तृत परिचय के अतिरिक्त इसमें सिक्खकाल के प्रेमाख्यानक और सूफ़ी कवियों के काव्य का विवेचन है। अंत में भाई वीरसिंह (दे०) का एक वीर रसपूर्ण बारहमासा और किन्हीं भाई लच्छीराम के गुरुभक्ति-पद भी संकलित हैं। लेखक ने व्यवस्थित काव्यशास्त्रीय समालोचना की अपेक्षा प्रभावात्मक आलोचना-पद्धति का आश्रय लिया है। उसकी भाषा सरल और शैली विश्लेषणात्मक है। पंजाबी को केवल धर्म अथवा बोलचाल की भाषा मानने वाले पंजाब के पठित-समाज को पंजाबी साहित्य के सौंदर्य से अवगत कराने के लिए लिखी गई यह रचना अपने उद्देश्य में सफल रही है।

बकावली *(उर्दू० पा०)*

'बकावली' दयाशंकर 'नसीम' (दे०) की मसनवी 'गुलज़ार-ए-नसीम' (दे०) की नायिका है। यह परियों की राजकुमारी है। इसमें एक अद्भुत आत्मविश्वास तथा सामर्थ्य निहित है। यह ताज-उल-मलूक के आगे मध्यकालीन पत्नियों की तरह भीगी बिल्ली-सी बनकर नहीं रहती बल्कि संतुलित व्यवहार एवं आचरण करती है; साथ ही यह प्रेम, त्याग, बलिदान, कष्ट-सहन की क्षमता, अधिकारों के प्रति सजगता आदि गुणों से युक्त है। रुख़सत के समय ताज-उल-मलूक की वकालत करना बकावली का कुछ अमर्यादित-सा कार्य लगता है। यह ताज-उल-मलूक पर मुग्ध है, उसे जी-जान से चाहती है और अपने प्रेम को प्राणपण से निबाहती है परंतु वह नयी शादी रचा लेता है और इससे बेवफ़ाई करता है। इस आघात से बकावली का हृदय विदीर्ण हो जाता है।

बक्षी, चंद्रकांत *(गु० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

चंद्रकांत बक्षी का जन्म 20 अगस्त 1932 ई० में पालनपुर नामक स्थान पर हुआ था। सेंट ज़ेवियर्स तथा यूनिवर्सिटी लॉ कॉलेज, कलकत्ता से इन्होंने क्रमशः एम० ए०, एल-एल० बी० की डिग्रियाँ प्राप्त कीं। कलकत्ता में कपड़े का स्टोर—'अलका स्टोर्स' चलाते हैं। संप्रति बंबई में हैं। बक्षी जी ने नियमित रूप से लिखना 1954-55 ई० से आरंभ किया था। इनकी कुछ कहानियाँ हिंदी तथा अँग्रेज़ी में ही लिखी-छपी हैं। गुजराती में प्रकाशित इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: **उपन्यास**: 'पडघा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डूबी गया', 'रोमा', 'अेकलताना किनारा', 'आकार', 'अेक अने अेक' तथा 'पेरेलिसिस' (दे०); **कहानियाँ :** 'प्यार', 'एक सांजनी मुलाकात', 'मीरा'। इनके अलावा इन्होंने बहुत-सी अमरीकी कहानियों के अनुवाद किए हैं और कुछ लेख भी लिखे हैं। अस्तित्ववादी विचारधारा को घटना और पात्रों की क्रियाशीलता में साकार करने की अद्भुत क्षमता चंद्रकांत बक्षी में है। सामान्यतः अस्तित्ववादी कृतियों में घटनाएँ कम, पात्रों के स्थिर व वैचारिक चित्र अधिक उभर कर आते हैं परंतु इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इनकी रचनाओं में घटना अलोप नहीं हो जाती। अतल निराशा और वेदना के चित्र और संवेदन पात्रों की क्रियाओं में उतर आए हैं। इनके पात्रों की महत्त्वाकांक्षा रेसकोर्स के घोड़े की भाँति थोड़े से ही वर्षों की ज़िंदगी जी लेने की है। इस दृष्टि से 'पेरेलिसिस' की मारिशा और 'आकार' के यशन शाह को लिया जा सकता है। दर्द हमें अपने अस्तित्व से जोड़ देता है और हम ज़िंदगी के साथ चिपके रहने का उपक्रम करते हैं—इस बात की प्रतीति भी 'पेरेलिसिस' में ही होती है। 'एक अने एक' में जीवन के निर्भ्रांत बोध से उत्पन्न मुमूर्षा को सुख की अंतिम सीमा मान लेने का आग्रह दिखाई देता है। अनेक स्थानों पर परिस्थितियों में फँसे हुए मनुष्य की करुण असहायता के चित्र भी उभर आए हैं जो पाठक में गहरा भाव-बोध उत्पन्न करते हैं।

बक्षी जी की रचनाओं को पढ़ने से पता चलता है कि उनमें धर्म और नीति की मर्यादा अस्वीकृत है; यौन संबंधों अथवा विकारों के चित्र कहीं-कहीं कथित अश्लीलता को छू गए हैं। लेखक में स्थूल और सूक्ष्म दोनों को ही रूप प्रदान कर सकने की सहज क्षमता है।

बक्षी, रामप्रसाद *(गु० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

गुजराती के मर्मज्ञ समीक्षक रामप्रसाद बक्षी का जन्म जूनागढ़ में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रेमशंकर बक्षी तथा माता का नाम मेनाबेन है। मामा हिम्मतलाल अंजारिया, गुरु आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव (दे०), शुभैषी श्री नरसिंह राव दिवेटिया (दे० दिवेटिया) आदि विद्वानों की प्रेरणा, प्रोत्साहन व संपर्क ने इनके विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

अध्यापक बक्षी जी ने अब तक—'काव्य-सरिता' (संकलन व अनुवाद); 'गुजराती भाषा अने साहित्य', भा० 1 और 2 (अनुवाद); 'सुखमनी' (अनुवाद); 'नाट्यरस' (मौलिक); 'वाङ्मय विमर्श' (मौलिक); 'करुण रस' (मौलिक); '1953 के गुजराती साहित्य की वार्षिक समीक्षा' (मौलिक) ग्रंथ रचे हैं। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ भी 6-7 हैं। 'गुजराती भाषा अने साहित्य' (भाग 1-2) नरसिंह राव दिवेटिया-रचित अँग्रेज़ी ग्रंथों का गुजराती अनुवाद है। ('नाट्यरस', 'करुण रस', 'वाङ्मय विमर्श' उनकी प्रमुख समीक्षात्मक कृतियाँ हैं जिन्होंने लेखक को गुजराती-समीक्षा जगत् में सुप्रतिष्ठित किया। भारतीय काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र-संबंधी इनका अध्ययन बहुत गहन व प्रामाणिक है। इन विषयों में इनकी गहरी पैठ व पकड़ है। ऐसे गहन व जटिल विषयों को ये सरल शैली में समझा सके हैं।

गुजराती के समीक्षकों में भारतीय काव्यशास्त्र के एक अधिकारी विद्वान्, गंभीर अध्येता एवं स्वच्छ-दृष्टि-संपन्न आलोचक के रूप में बक्षी जी की प्रतिष्ठा संदेहातीत है।

बख्तावरसिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1813 ई०; मृत्यु—1891 ई०]

राजस्थान के 'वसी' ग्राम में सुखराम के घर इनका जन्म हुआ था। इन्होंने उदयपुर के महाराणाओं के आश्रय में रहकर सम्मान प्राप्त किया था। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 11 है, जिनमें 'सज्जन-यश-प्रकाश', 'अन्योक्ति-प्रकाश' एवं 'केहर-प्रकाश' विशेष महत्वपूर्ण हैं। सूर्यमल्ल (दे०) के पश्चात् आधुनिक राजस्थानी लेखकों में बख्तावरसिंह का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इन्होंने जितना उत्कृष्ट काव्य लिखा है, उतना ही प्रभावोत्पादक गद्य भी। भाषा में विषयानुकूल प्रवाह तथा प्रभाव उत्पन्न करना इनकी प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है।

बख्शी, पदुमलाल पुन्नालाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

हिंदी-साहित्य के इतिहास में बख्शी जी की प्रतिष्ठा निबंधकार तथा आलोचक के रूप में ही है—यद्यपि अन्य लेखकों के समान इन्होंने भी अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ काव्य-सृजन से किया था। 'पंचपात्र', 'पद्मवन', 'कुछ', 'और कुछ', 'मेरे प्रिय निबंध' इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि निबंध-संग्रह हैं तथा 'हिंदी-साहित्य-विमर्श', विश्व-साहित्य' और 'हिंदी-कहानी-साहित्य' आलोचना-ग्रंथ। बख्शी जी के निबंधों की सर्वप्रमुख विशेषता है मौलिक विचारों को गंभीर व्यंग्य, विनोद का पुट देते हुए कहानी की-सी मनोरंजक शैली में रूपायित कर देना। इसीलिए इनकी गणना हिंदी के प्रमुख शैलीकारों के अंतर्गत होती है।

बगड़ावत *(हिं० पारि०)*

यह शब्द वीरकथात्मक राजस्थानी लोक-गाथा के एक भेद के लिए प्रयुक्त होता है। बगड़ावत 'देवड़ा-चौहान' थे। ये संख्या में 24 थे, जो परस्पर युद्ध कर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। इनका समय ईसा की दशवीं शती माना जाता है। इन वीरों की वीरता लोक-गाथा का विषय बनी और समस्त राजस्थान में उसका प्रचार हुआ। भोपा लोग बगड़ावत लोक-गाथा तीन-चार घंटे प्रतिदिन गाकर लगभग एक मास में पूर्ण करते हैं। यह लोक-गाथा राजस्थान की वीर-संस्कृति की प्रतिनिधि रचना है।

'बच्चन', हरिवंश राय *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म इलाहाबाद में हुआ। जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव झेलते हुए इन्होंने वहीं से अँग्रेज़ी में एम०ए० किया। कैंब्रिज विश्वविद्यालय ने यीट्स पर शोध-कार्य के लिए इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। कई वर्षों तक अध्यापन करने के उपरांत ये राजकीय सेवा में प्रविष्ट हुए और 1952 ई० में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए।

'मधुशाला' के प्रकाशन ने इन्हें हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बना दिया। 'निशा निमंत्रण' (दे०) और 'एकांत संगीत' ने इनके साहित्यिक महत्व की प्रतिष्ठा की। 'दो चट्टानें' जैसी परवर्ती रचनाओं में ये युग-यथार्थ के अधिक निकट आ गये हैं।

'बच्चन' जी की लोकप्रियता का रहस्य ऋजु-प्रत्यक्ष अनुभूतियों की सावेग निश्छल अभिव्यक्ति में है। इनके काव्य को देखकर लगता है कि ये आरंभ से लेकर आज तक निर्व्याज अभिव्यक्ति के लिए कृतसंकल्प हैं। यही कारण है कि परवर्ती काव्य में इन्होंने अनुभूत यथार्थ की जटिलता का दबाव झेलकर भी शैली-शिल्प की सरलता बनाए रखी है। आवश्यकतानुसार व्यंग्यात्मक भाषा, प्रतीक-विधान या गीत-शैली के अनेक नये प्रयोग इन्होंने भी किए हैं किंतु संप्रेषणीयता को बाधित नहीं होने दिया है। इस प्रकार मध्यमवर्गीय सुख-दुःख की तीव्र अनुभूतियों को सशक्त वाणी देते रहने के कारण छायावादोत्तर कवियों में इनका ऊँचा स्थान है।

बच्छादास *(उ० ले०)* [समय—चौदहवीं-पंद्रहवीं शती ई०]

इनकी एकमात्र कृति 'कलसा चउतिशा' (दे०) है जो अब तक प्राप्त अनुलिखित उड़िया साहित्य में सर्वप्रथम रचना है। यह उड़ीसा का अत्यंत समादृत शैवकाव्य है, जो वस्तुतः मानवधर्मी अधिक है। यह रचना इतनी लोकप्रिय हुई कि परवर्ती युग में इसे एक राग (कलसा-राग) के रूप में स्वीकार कर लिया गया। सारलादास ने अपने 'महाभारत' में इसका उल्लेख किया है। भाषा की प्राचीनता की दृष्टि से भी यह 'सारला-महाभारत' (दे०) के पूर्व की रचना है। इस चउतिशा (दे०) की विषयवस्तु शिव-पार्वती-परिणय है, जिसमें बच्छादास ने उड़ीसा की संस्कृति, सामाजिक रीति-नीति एवं परंपरा को मूर्त किया है।

बछराज *(गु० ले०)* [समय—1557 ई० के आसपास]

ये जंबुसर के निवासी थे। इसके पिता का नाम विनायक था। इनकी एकमात्र रचना 'रसमंजरीनी वार्ता' बहुत प्रसिद्ध है। 605 पंक्तियों का यह प्रबंध-काव्य है। इस रचना की कथा परंपरा-प्राप्त 'प्रेमावती' की कथा के आधार पर निर्मित है। अपनी ओर से कवि ने कुछ परिवर्तन भी किया है।

इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है। दोहा (दे०) चौपाई (दे०) एवं छप्पय (दे०) छंदों का प्रयोग किया गया है।

बट महापुरुष *(उ० कृ०)*

'बट महापुरुष' श्री बामाचरण मित्र (दे०) का गल्प-संग्रह है। इन कहानियों की विषय-वस्तु जितनी विविध है, शैलियाँ भी तदरूप अनेक हैं। 'वैज्ञानिकर बिबाह' में यदि वैज्ञानिक की आंतरिक पीड़ा एवं करुण मृत्यु चित्रित है तो 'स्तुति रत्नाकर' में एक बड़े आदमी की कथा है जो अपनी प्रभुता एवं वैभव में बाल्यबंधु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवहेलना करता है। 'चलचित्र' की कथावस्तु अत्यंत सामान्य है—बाह्य रूप-सौंदर्य में भटके हुए भूपेंद्र बाबू का कुरूप पत्नी के हृदय-सौंदर्य को पहचानकर वापस आ जाना फ़ेड-इन, फ़्लैशबैक, वाइप, क्लोज़अप, आदि तकनीकों का इसमें प्रयोग हुआ है। इसमें प्राचीन आस्थावादी जीवन मूल्य तथा आधुनिक मानव के वस्तुवादी जीवन-मूल्यों का तुलनात्मक विवेचन हुआ है।

बड़जेना ब्रजनाथ *(उ० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

ब्रजनाथ बड़जेना का उड़िया-साहित्य में वही स्थान है जो हिंदी साहित्य में भूषण (दे०) का है। रीतिकाल में भूषण के समान, उड़िया-साहित्य में इन्होंने ही वीर रस-पूर्ण काव्य 'समर तरंग' (दे०) की रचना की है और 'भूषण' के समान ही इस कार्य में वे अत्यंत सफल भी हुए हैं। 'समर-तरंग' में ढेंकानाल के राजा त्रिलोचन महेंद्र बहादुर व मरहठों के बीच की लड़ाई का सजीव चित्रण हुआ है। इसमें उड़िया के साथ अनेक खरोष्ठी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। मरहठों की युद्धमंत्रणा का वर्णन हिंदी में है।

बड़जेना छह प्रादेशिक भाषाओं के पंडित थे। 'गुंडिचा-विजय' इनकी हिंदी-रचना है। 'चतुर-विनोद' गद्य-पुस्तक है, जिसमें अत्यंत परिमार्जित गद्य का प्रयोग हुआ है। अनके अन्य दोनों काव्य 'श्यामा रासोतत्व' 'श' आद्य नियमों से तथा 'अंबिका विलास' 'अ्र' आद्य नियम से लिखे गये हैं।

बड़जेना का समय अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध है। उस समय हिंदी में रचना करना (जबकि राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की परिकल्पना भी अनहोनी-सी बात थी) जहाँ कवि की बहुत बड़ी सिद्धि है, वहीं कवि की सुदूर प्रसारी भविष्य-दृष्टि की भी परिचायिका है।

इन्होंने साहित्य में सर्वप्रथम युगबोध का परिचय देते हुए सामयिक घटना पर साहित्य-निर्माण किया है। उड़िया-साहित्य में बड़जेना का स्थान सदा ही गौरव-मंडित रहेगा।

बड़ाल, अक्षयकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

इनका जन्म कलकत्ता के चोरबागान मुहल्ले में हुआ था। इनके पिता का नाम कालीचरण बड़ाल था। ये विहारीलाल के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'प्रदीप', 'कनकांजलि', 'भूल', 'शंख' तथा 'एषा'।

रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर, रवींद्रनाथ) के समसामयिक होते हुए भी इनका बँगला काव्य में विशिष्ट स्थान है। इनके काव्य-ग्रंथों—विशेषतया 'प्रदीप' तथा 'कनकांजलि' में अतिमधुर भावावेश-विह्वल गीत मूर्च्छना मिलती है। यह स्वर इन्होंने विहारीलाल की निकटता से प्राप्त किया है और उसकी अपनी प्रेम-कल्पना से झंकृत किया है।

इनके काव्य के दो प्रधान लक्ष्य हैं; (अ) भाषा अत्यधिक शब्द-संक्षेप अथवा मितभाषिता और तज्जन्य भाव-गांभीर्य; तथा (आ) आधुनिक गीत-काव्य का प्रधान लक्षण आत्मभाव प्रधान कल्पना (subjectivity) इनकी 'एषा' नामक कृति ने अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है।

बद्देना *(ते० ले०)* [समय—अनुमानित बारहवीं शती ई०]

ये जन्मतः क्षत्रिय राजा थे, इनकी गणना तेलुगु के विख्यात राजकवियों में की जाती है।

इनकी कृतियाँ हैं: 'सुमतिशतकमु', 'नीतिसार मुक्तावती'। बद्देन्ना के साहित्यिक व्यक्तित्व की महत्ता तेलुगु नीतिकाव्य के प्रथम प्रवर्तक होने में है। सुमतिशतकमु' का पठन-पाठन आज भी तेलुगु के बालक-बालिकाओं में प्रचलित है और उसके पद्य आंध्रजनता की जिह्वा पर नाचते रहते हैं। इनके छंद रीतिग्रंथों में लक्ष्य-रूप में प्रस्तुत किये गए हैं जो इनकी काव्य-गरिमा का द्योतक है।

बद्देन्ना सेनानी *(ते० कृ०)*

'बद्देन्ना सेनानी' श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है। बद्देन्ना अछूतों के परिवार में जन्म लेकर भी अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण चोल राजाओं की सेना में नायक-पद पा लेता है। स्वदेश की स्वतंत्रता की रक्षा में अनुपम शौर्य एवं कुशलता-प्रदर्शन करके जनता का सम्मान अर्जित करता है। फिर भी वह अपनी इन बहुमूल्य सेवाओं के बदले कुछ पाना नहीं चाहता। कुछ समय पश्चात् वह अपने से अधिक आयु वाली बादुम्मा नामक स्त्री से प्रेम करने लगता है। जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात से क्षुब्ध हो जाती है और उसका विरोध करती है। आत्मिक प्रेम और लोक-धर्म के बीच जो संघर्ष छिड़ता है, उसमें दोनों प्रेमी—बद्देन्ना और बादुम्मा परितप्त हो जाते हैं। इस उपन्यास में राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी मुखरित हुआ है।

बद्र-ए-मुनीर *(उर्दू० पा०)*

शाहज़ादी 'बद्र-ए-मुनीर' मीर हसन (दे०) की मसनवी 'सिह्र-उल-बखान' की अल्हड़ नायिका है। यह रूप और लावण्यमयी है और संगीत-कला इसकी सहज रुचि है। इसका अंग-अंग सुगठित है। नाज़ और बाँकपन की यह प्रतिमा है। इसके तन पर आभूषणों की फबन निराली होती है। शाहज़ादा 'बेनज़ीर' (दे०) से मिलते ही यह उसकी हो जाती है। प्रथम भेंट में ही अचेत हो जाना और फिर विरह में बार-बार मूर्च्छित-सी रहना, दूसरी भेंट के पश्चात् हर रात प्रिय-संयोग का सुखभोग करना आदि बातें इसे ऐसी नारी का रूप दे देती हैं जिसकी विलास-लालसा बड़ी प्रखर है। 'बेनज़ीर' के साथ प्रथम भेंट में ही यह ऐसी अमर्यादित बातें करती है कि अपने युग के नारी-समाज से कहीं आगे निकल जाती है। इसकी चेष्टाएँ अविवाहित कन्याओं की-सी गंभीरता से रहित हैं। 'बेनज़ीर' की तरह इसके वचन और आचरण में राजकुमारी जैसी गंभीर चेष्टाओं की कमी अनुभव होती है।

बधिरविलापम् *(मल० कृ०)*

'बधिरविलापम्' महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) का सा खंडकाव्य है। इसमें कवि जगदंबा से दीन निवेदन छोटा करता है—'देवी, बधिरता के कारण मैं क्या-क्या कष्ट झेल रहा हूँ। बधिर से मित्र-बंधु कुशल समाचार पूछ नहीं सकते। पक्षियों का कलरव, भक्तों का भजन और अन्य कितने ही प्रकार का मधुर नाद सुनने के भाग्य से वह वंचित रहता है। आप दयामयी हैं; मेरी इस बधिरता को दूर कर दें!'

इस निवेदन में केवल कल्पना या औपचारिकता नहीं है। यह कवि का आत्मानुभव-प्रेरित निवेदन है। इस दुःखानुभूति के कारण काव्य की व्यथाभिव्यक्ति अत्यंत प्रभविष्णु बन पड़ी है। इसीलिए इस खंडकाव्य की विशेष प्रसिद्धि हुई।

बधू निरुपमा *(उ० कृ०)*

यह श्री बिभूतिभूषण पटनायक (दे०) का उपन्यास है। साधारणतः युवा-वर्ग की भावना और मनः-स्थितियों को ध्यान में रखकर बिभूति पटनायक उपन्यासों की रचना करते हैं, किंतु इसमें उन्होंने एक सामाजिक समस्या का चित्रण किया है। इसमें नायिका निरुपमा विजातीय विवाह कर लेती है, फलतः उसे रूढ़िग्रस्त, परंपरावादी हिंदू परिवार में किस प्रकार लांछना, प्रताड़ना एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उसका अंकन ही इसका प्रतिपाद्य है।

बनफुल *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

यतींद्रनाथ दुबरा (दे०) के इस संग्रह की कविताओं का प्रधान स्वर करुणा है। इसमें निराश प्रेम की व्यथा अवश्य है किंतु कवि भविष्य के प्रति आस्थावान् है। कवि के आत्मकेंद्रित हो जाने के कारण कविताओं में सामाजिक समस्या का संकेत नहीं मिलता है। सुकुमार भाव, मधुर अभिव्यक्ति एवं सफल छंद-प्रयोग के कारण इन कविताओं का महत्व है। श्री हेम बरुवा (दे०) के शब्दों में श्री दुबरा विषाद के चित्रण, शैली एवं संगीत में कीट्स हैं। इस काव्य को साहित्य अकादेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

बनफुल *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1979 ई०]

बलाइचंद्र मुखोपाध्याय का साहित्यिक छद्मनाम 'बनफुल' है और वे इसी छद्मनाम से बँगला साहित्य-क्षेत्र में विख्यात हैं। व्यवसाय से डाक्टर होते हुए भी इस लेखक ने उपन्यास-रचना में परिकल्पना की मौलिकता एवं आख्यान वस्तु के समावेश में विचित्र उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है। तीक्ष्ण मननशीलता की सहायता से एवं नाना प्रकार के परीक्षण-निरीक्षण के बीच से उन्होंने मानव-चरित्र का विस्मयकर चित्रण प्रस्तुत किया है।

बनफुल ने बहुत-से उपन्यास लिखे हैं परंतु उनमें एकरसता का दोष दिखाई नहीं पड़ता। उपन्यास की टेकनीक में इन्होंने नाना प्रकार की नूतनता का प्रवर्तन कर प्रशंसनीय कार्य किया है। इनके पहले स्तर के उपन्यासों 'तृणखंड' (1935), 'किछुक्षण' (1937), 'से ओ आमि' (1943), मूलरूप से डाक्टरी जीवन के अनुभवों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्ति हुई है। दूसरे स्तर में प्रकाशित 'द्वैरथ' (1937), 'मृगया' (1940), 'निर्मोक' (1942) में अभिव्यंजना कला की दृष्टि से लेखक ने काव्य और नाटक के सम्मिश्रण से कठोर यथार्थ पर गीतिकविता की सांकेतिकता का प्रयोग किया है। 'मानदंड' (1948), 'नवदिगंत' (1949), 'पंचपर्व' (1953), आदि तृतीय स्तर के उपन्यास घटना एवं मनोविज्ञान-प्रधान हैं। चतुर्थ स्तर के उपन्यासों में 'स्थावर' (दे०) (1951), 'जंगम' (दे०) (1843) विख्यात हैं। जंगम (तीन खंड) बनफुल की औपन्यासिक सृष्टि का सार्थकतम निदर्शन है। इसमें महाकाव्य के विराट आयतन के अनुरूप एक समग्र समाज का चित्र निर्लिप्त भाव से खींचा गया है।

बनफुल ने अतिसंक्षिप्त कहानियों की रचना कर बँगला साहित्य में कहानी को एक नया रूप प्रदान किया है। इनकी कहानियों में विषय के प्रति अविचल निष्ठा है एवं चरित्र-चित्रण में कोई भावावेश का चांचल्य नहीं है। संसार की अभिज्ञता एवं जीवन के अनुधावन से ही इन्होंने विषयवस्तु का चयन किया है। जीवन के विश्लेषण में ये कभी तीखे व्यंग्य का आश्रय लेते हैं तो कभी कवि के दृष्टिकोण का आधुनिक बँगला साहित्य में ये सर्वाधिक विस्मय का उद्रेक करने वाले साहित्यकार माने गए हैं।

9 फरवरी, 1979 को उनका निधन हो गया।

बनहट्टी, श्रीनिवास नारायण *(म० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

ये मननशील प्रकृति के प्रौढ़ निबंध-लेखक हैं। ये 18 वर्षों तक नागपुर में मराठी के प्राध्यापक रहे थे। इन पर विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (दे०) की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। ये 'विहंगम' मासिक पत्रिका और 'समाधान' साप्ताहिक के संपादक रहे थे और 'नवभारत ग्रंथमाला' संस्था के संस्थापक थे।

'ज्ञानोपासना', 'मयूर काव्यविवेचन', 'विष्णु कृष्ण चिपळूणकर' आदि इनके निबंध-संग्रह हैं। 'मराठी रंगभूमीचा इतिहास' तथा 'मराठी नाट्यकला आणि नाट्य वाङ्मय' ग्रंथ नाटक एवं रंगमंच से संबंधित हैं। 'नाटककार देवेल' रचना पर इन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था।

'रानाकर' तथा 'विहंगम' मासिक पत्रों में प्रकाशित इनके निबंध 'एकावली', 'नाट्य व रंगभूमि' और 'वाङ्मय विमर्श' जैसे समालोचनात्मक ग्रंथों में संकलित हैं। इनके अधिकांश निबंध साहित्य-विषयक हैं। 'एकावली' में बनहट्टी जी की मौलिक समालोचनाएँ हैं, जिसमें टिळक (दे०) ल० रा० पांगारकर (दे०) कालेलकर, तथा अँग्रेज़ साहित्यिकों के जीवन तथा कृतित्व का विवेचन है।

इन्होंने अनेक पुस्तकों की प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। पंडित मोरोपंत की 'केकावली' रचना के ये भाष्यकार रहे हैं। 'मयूर काव्यविवेचन' में प्रौढ़ मस्तिष्क एवं संतुलित दृष्टि से मोरोपंत के काव्य के गुणावगुणों की चर्चा की है।

इनकी विवेचन-शैली क्रमबद्ध एवं संतुलित है। ये विषय की तह तक जाकर तथ्य-संकलन करते हैं। इनके लेखन में आवेश नहीं, विचारों की प्रौढ़ता एवं तार्किकता है।

आजकल ये 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) का पाठ-संशोधन कर, शुद्ध पाठ वाली 'ज्ञानेश्वरी' के निर्माण में संलग्न हैं।

बनात-उन्नाश *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1871-1872 ई०]

'बनात-उन्नाश' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) की रचना है। इसमें गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शारीरिक व्यायाम, स्वास्थ्य आदि विषयों की रोचक एवं ज्ञातव्य बातें कहानी के पात्रों के संवादों द्वारा समझाई गई हैं।

'बनात-उन्नाश' की भूमिका में लेखक स्वयं बताता है—'यह किताब उसी 'मुर्आत-उल-अरूस' (इस से पूर्व प्रकाशित एक महिला-उपन्यास जिसमें नैतिकता की बातें कथा-रूप में प्रस्तुत की गई है) का गोया दूसरा हिस्सा है। वही बोली है, वही तर्ज़ (शैली) है। 'मुर्आत-उल-अरूस' से तालीम-इख़लाक (नैतिक शिक्षा) व ख़ानदारी (गृह-विज्ञान) मक्सूद थी, इससे वह भी है मगर ज़िम्नन (गौण रूप से) और मालूमात-ए-इल्मी (ज्ञानवर्धक बातें) ख़ास्तन (मुख्य रूप से)।'

उर्दू उपन्यास में सर्वप्रथम सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करने का श्रेय डिप्टी नज़ीर अहमद को है। उनकी भाषा भी महिलाओं के लिए उपयोगी है, कथा का परिवेश जनाना है—वही पदावली और वैसे ही मुहावरे। कहीं-कहीं भाषा में गंभीरता की कमी खटकती है, श्लीलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हानि पहुँचती प्रतीत होती है। संवादों की शैली अँग्रेज़ी ड्रामे जैसी है। नज़ीर अहमद की शैली की एक विशेषता लंबे-लंबे नैतिक उपदेश देना है।

बनारसीदास *(हिं० ले०)*

इनका अस्तित्व-काल सोलहवीं शती का अंत है। ये जैन कवि थे और अपने ग्रंथ 'अर्धकथानक' के लिए काफ़ी प्रसिद्ध हैं। यह आत्मकथात्मक ग्रंथ है। ये शाहजहाँ के समकालीन थे। जैन कवियों में इनकी काफ़ी ख्याति रही है। इनकी बहुत सी कृतियाँ धार्मिक कृतियों के अनुवाद रूप में हैं। इन्होंने पद्य के साथ-साथ गद्य भी लिखा है।

'समयसार' नाटक, 'बनारसी पद्धति' और 'कल्याण-मंदिर-भाषा' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी भाषा सरल और भावानुकूल है। इनकी मृत्यु के बाद जगजीवन ने इनकी छोटी-बड़ी 75 रचनाओं का संग्रह 'बनारसी विलास' नाम से किया। इनकी प्रसिद्धि का मुख्याधार 'अर्धकथानक' है, जो आत्मपरक शैली में लिखा गया सबसे पहला साहित्यिक कोटि का जीवनीपरक ग्रंथ है। इसमें उन्होंने अपने जीवन को आधार बनाया है। मध्ययुगीन तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए इनका साहित्य मूल्यवान है।

बयाबाई *(म० पा०)*

मराठी के सुप्रसिद्ध लावणीकार रामजोशी का लावणियों में उल्लिखित यह स्त्री-पात्र है। रामजोशी स्वतः ब्राह्मण कुटुंब के थे। इनकी रचनाओं को प्रोत्साहन दे इन्हें लोकप्रिय बनाने का श्रेय बयाबाई को है। बयाबाई नर्तकी तथा गायिका थी। वह रामजोशी की लावणियों (दे० 'राजोशांच्या लावण्या') पर आधृत तमाशों में इनकी लावणियों को सुरीले स्वर में गाकर नाच करती थी।

बयाबाई से पूर्व रामजोशी की रखैल तथा नटी चिमा थी परंतु उसके सहवास में इन्हें पर्याप्त यश नहीं मिला था। इसके विपरीत बयाबाई के प्रवेश के बाद ये लोकप्रियता के शिखरों पर आरूढ़ होने लगे थे।

कवि ने बयाबाई पर एक स्वतंत्र लावणी लिखी है और अन्य लावणियों में भी कहीं-कहीं बयाबाई का नामनिर्देश किया है। बयाबाई पर लिखी लावणी में इन्होंने उसकी ख़ूब प्रशंसा की है। इन्होंने लिखा है कि बयाबाई रूपवान थी, काव्य-रचना के लिए रसिक थी, प्रेरक शक्ति थी। उसकी मधुर स्वरलहरी से मेरी काव्य-रचना पुष्पित-पल्लवित हुई है। इन्होंने कहा है कि मेरी कवित्व-शक्ति एवं बयाबाई की रसिकता का अपूर्व योग धन्य है।

रामजोशी ही एकमात्र ऐसे लावणीकार हैं जिन्होंने अपने तमाशों में काम करने वाली गायिका एवं नर्तकी का अपनी रचनाओं में गौरवपूर्वक स्मरण किया है। साथ ही उनकी रचना को लोकनाट्य रूप में प्रस्तुत कर लोकप्रिय बनाने का श्रेय बयाबाई को है।

बरकटकी, पद्म *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के उदीयमान लेखक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'मनर दापोन' (1959), 'खबर बिचारी' (1960), 'कोनो खेद नाइ' (दे०) (1963); **कहानी** : 'अश्लील' (दे०) (1959)।

ये उपन्यासों में फ़ैशनेबुल नये वर्ग और पश्चिमी संकर सभ्यता से बँधे हुए यौनाचारियों पर कठोर व्यंग्य करते हैं। 'कोनो खेद नाइ' ऐतिहासिक उपन्यास है। 'अश्लील' में रिपोर्ताज अथवा स्केच टाइप की 12 कहानियाँ हैं। इनमें अश्लीलता नहीं है।

ये नयी पीढ़ी के कथाकार हैं।

बरकाकती, रत्नकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

जन्मस्थान—**नौगाँव** का आठगाँव स्थान।

मैट्रिक पास करने के पश्चात् कॉलेज में अध्ययन के लिए इन्होंने प्रवेश लिया था किंतु पारिवारिक दुर्घटना के कारण इन्हें पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। 1918 ई० में ये नलवारी हाई स्कूल के शिक्षक नियुक्त हुए थे। महात्मा गांधी का भाषण सुनकर इन्होंने शिक्षा-जगत् का त्याग कर दिया था।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : शेवालि' (दे०) (1932), 'तर्पण' (1953); **नाटक** 'आलाप' (1919)। 'महात्मा गांधी स्वराज्य भाङनि' (1923)। 'शेवालि' में कवि की पूर्ण प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इनकी कविता का मूल स्वर प्रेम और सौंदर्य है। इन्होंने पूर्वराग, मिलन और विरह का चित्रण तो किया ही था, भारतीय अध्यात्मवाद का भी वर्णन किया है। लौकिक प्रेम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणति अलौकिक प्रेम में दिखाई गई है। इनकी कविताओं की विशेषता ओजपूर्ण एवं ध्वनिप्रधान भाषा तथा श्वासाघात-प्रधान छंद है। इन पर श्री रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर का प्रभाव पड़ा था। इन्होंने भी 'ताजमहल' पर कविता लिखी थी। असमीया के उत्तम कवियों में इनकी गणना की जाती है।

बरगीत *(अ० पारि०)*

शंकरदेव (दे०) की स्फुट कविताओं का संग्रह 'बरगीत' कहलाता है। शंकर देव ने विभिन्न स्थानों और कालों में इसकी रचना की थी। कुल गीत 240 थे। कहा जाता है कि इनके एक भक्त पढ़ने के लिए इन्हें ले गये थे, परंतु जंगल की आग से अन्य वस्तुओं के साथ ये भी जल गये थे और अब केवल 40 गीत ही मिलते हैं। ये मौखिक रूप से प्रचारित हैं। इनका मुख्य विषय है जीवन की नश्वरता, इंद्रित-जय, माया से मुक्ति की साधना, हरिभजन आदि। शंकरदेव का अनुसरण करते हुए माधवदेव (दे०) ने भी बरगीत लिखे थे, जिनका मुख्य विषय बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना था। आगे कई अन्य कवियों ने भी बरगीत लिखे और इनके नाम से प्रचारित किए। 'बरगीत' नाम महापुरुष शंकरदेव ने नहीं दिया था। इन दोनों कवियों के भक्तों ने इनके गीतों को 'बरगीत' कहना आरंभ किया। 'बर' का अर्थ या तो बड़ा है अथवा श्रेष्ठ। गीतों के उच्च आध्यात्मिक गुणों के कारण ही यह नाम पड़ा होगा। इनकी भाषा ब्रजबुलि है।

बरगोहाञि, होमेन *(अ० ले०)* [जन्म—1932 ई०],

जन्मस्थान—ज़िला लखीमपुर।

इन्होंने काटन कॉलेज से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। 1968 ई० में असम सिविल सर्विस की की नौकरी छोड़कर ये नवप्रकाशित साप्ताहिक 'नीलांचल' के संपादक बने थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'सुबाला' (दे०); **कहानी** : 'विभिन्न क', 'राछ' (दे०) (कोरस) (1957), 'प्रेम आरु मृत्युर कारण' (1958), 'गल्प आरु नक्सा' (1960)। इन पर फ़ायड का गहरा प्रभाव है। इनकी कहानी 'महाश्वेतार बिया' ही फ़ायडीय प्रभाव से युक्त प्रथम असमीया कहानी है। इनके नायक-नायिका नैतिकता और सामाजिकता के बंधन से मुक्त होते हैं। ये अधिकतर प्रेम, मृत्यु और व्यभिचार का चित्रण करते हैं। इन्होंने कविताएँ भी लिखी हैं। असमीया-साहित्य के नवलेखन में इनका महत्वपूर्ण योग है।

बरजू *(उ० पा०)*

बरजू श्री कालिंदीचरण पाणिग्राही (दे०) के उपन्यास 'माटिर मणिष' (दे०) का नायक है। यह गांधी-दर्शन का साकार रूप कहा जा सकता है। यह किसान है, और अल्पशिक्षित है; किंतु अपने निश्चय पर अटल रहता है, क्योंकि इसके विचार में यही उचित है और कल्याणकारी है।

यह सरल, अहंकारशून्य है, धार्मिक एवं न्यायपरायण है। पिता का इसको अंतिम आदेश यही है कि इस घर में अलगाव की दीवार नहीं उठेगी, इस ज़मीन पर भिन्नता की मेड़ नहीं खड़ी होगी।

पिता की मृत्यु के बाद यह घर सँभालता है। ज़मीन की नौकरी छोड़ कर खेती करने लगता है। इसकी तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र हैं। बड़े प्रयत्न के बाद किसी प्रकार यह बड़ी बेटी हार का विवाह करता है।

इसके छोटे भाई छकड़ी का पहला काम अपनी पत्नी नेत्रमणि को प्रसन्न रखना है और उसके पश्चात् घूमना-फिरना तथा जात्रा देखना है। छकड़ी हरि मिश्र की बातों में आकर इसे संदेह की दृष्टि से देखने लगता है। दोनों बहुओं में कलह प्रारंभ हो जाता है। बरजू अपनी पत्नी को चुप रखने का सदा प्रयास करता है किंतु नेत्रमणि के ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हरि मिश्र मध्यस्थ बन अलग हो जाने की सलाह देता है। बरजू उन्हें विदा कर, सारा घर व ज़मीन छकड़ी को सौंप कर, बिना कुछ लिये अपने परिवार के साथ घर छोड़ देता है। सारे गाँव में एकता की स्थापना व अन्याय के प्रतिकार के लिए प्रयत्नशील रहकर भी यह अपने घर में एकता व प्रेम बनाए नहीं रख पाता। पिता जी की अंतिम इच्छा भी पूरी नहीं होती। इसके परिताप पर सारा गाँव हाहाकार कर उठता है।

नेत्रमणि की प्रसन्नता की सीमा नहीं, किंतु छकड़ी की सुख-शांति नष्ट हो जाती है। उसमें महान परिवर्तन होता है। भाई के स्नेह व बच्चों की ममता के बिना वह पागल के समान हो जाता है। भाई को लौटा लाने को वह निकल पड़ता है। नेत्रमणि भी उसे रोक नहीं पाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरठाकुर, इंद्रेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

जन्मस्थान—शिवसागर।

इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा पाई थी और एक सरकारी स्कूल में अध्यापक और बाद में प्रधानाचार्य के रूप में 1942 ई० तक काम करते रहे थे। ये रंगमंच से भी संबद्ध रहे थे। 1924 ई० में ये असम-साहित्य-सभा की संगीत-शाखा के सभापति बने थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'इंद्रमल्लिका' 1951); **नाटक** : 'श्रीवत्स-चिंता' (दे०) (1927), 'संतर्पण' (1953), 'रण जेउति' (1955)।

'इंद्रमल्लिका' में कविताओं का संग्रह है। श्री बरठाकुर संस्कृत-साहित्य और भारतीय संस्कृति के अनुरागी थे, यह इनकी कविताओं के इन शीर्षकों से स्पष्ट है—'भारती', 'शरदेमस्', 'दुर्वासा', 'बाल्मीकि', 'बेदव्यास', 'उर्वशी' आदि। 'श्रीबत्स-चिंता' नाटक में अमित्राक्षर छंद का प्रयोग हुआ है। लेखक ने पौराणिक कथा पर विश्वास करते हुए भी आकर्षक एवं सशक्त पात्रों की अवतारणा की है। लंबे काव्यपूर्ण संवाद अभिनेयता के लिए बाधक हैं। इनके नाटकों का साहित्यिक मूल्य अधिक है। इनके अनेक मंचोपयोगी नाटक अभी तक अप्रकाशित हैं।

प्राचीन भारतीय नाटक और अभिनय पर इन्होंने अनेक विचारपूर्ण लेख लिखे थे।

वर्तमान शती के प्रथमार्द्ध के निपुण मंच-शिल्पी के रूप में ये सदैव स्मरणीय रहेंगे।

बरदलै, नवीनचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

ये गांधी जी की प्रेरणा से राजनीति में आए थे। इन्होंने जेल-यात्रा भी की थी। उस समय इन्होंने शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद किया था। प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक** : 'गृहलक्ष्मी' (1911 ई०), 'कृष्ण लीला' (1933 ई०); **शेक्सपियर के अनूदित नाटक** : 'दुंदुरी दमन', 'विषाद काहिनी', 'तरुण कांचन' आदि।

इनके 'गृहलक्ष्मी' नाटक में अत्याचारी पति और सुशीला पत्नी का चित्रण है। यह नाटक वर्तमान युग के पारिवारिक समस्यामूलक सामाजिक नाटकों का पथ-प्रदर्शक है। इन्होंने देशभक्ति की कविताएँ भी लिखी थीं। ये पारिवारिक समस्या के प्रथम सामाजिक नाट्यकार हैं।

बरदलै, निर्मल प्रभा *(अ० ले०)* [जन्म—1937 ई०]

कवयित्री और गीत-लेखिका।

प्रकाशित रचना—'बन फरिङर रं' (काव्य-संग्रह)।

बरदलै, रजनीकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1867 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी। इन्होंने कलकत्ता के सिटी कालेज से एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। अँग्रेज़ सरकार के उच्च पदाधिकारी होते हुए भी ये कट्टर देशभक्त थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'मिरि जीयरी' (दे०) (1895), 'मनोमती' (दे०) (1900), 'दंदुवा द्रोह' (दे०) (1909), 'राधा रुक्मिणीर रथ' (1925), 'रङ्गिनी' (दे०) (1925), 'निर्मल भकत' (दे०) (1926), 'रहदै लिगिरी' (दे०) (1930), 'ताम्रेश्वरी मंदिर' (1936), 'खांबा आरु थोइबी' ('आवाहन' में प्रकाशित) (1930)।

इन पर स्कॉट और बंकिम (दे० बंकिमचंद्र) का प्रभाव है। इन्होंने उपन्यासों में असम के उन्नत अतीत का वर्णन किया है। लगभग सभी उपन्यासों में बर्मियों के अत्याचारों का वर्णन है। 'मिरि जीयरी' असमीया का प्रथम सामाजिक उपन्यास है। 'मनोमती' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इन्होंने असमीया उपन्यास-धारा को एक नया मोड़ दिया है। इनकी कई कृतियाँ स्त्री-चरित्र प्रधान हैं। इनके कुछ उपन्यास ऐतिहासिक, कुछ सामाजिक और कुछ आंचलिक हैं। ये असमीया साहित्य के श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं।

बरदलै, सारदा *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर लेखक थे। ये कुशल अभिनेता भी थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक** : 'मगरीबर आजान' (1950), 'पहिला तारीख' (दे०) (1956), 'एह बाटेदि' (1957)।

सारदा जी के 'मगरीबर आजान' में सामाजिक यथार्थ है, इसमें ग्राम्य-जीवन के प्रीति-सौहार्द एवं हिंदू-मुस्लिम एकता का वर्णन है। अनेक वर्षों तक इसकी असमीया-रंगमंच पर धूम रही थी। मध्यवर्ग के आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष को लेकर लिखा गया इनका नाटक है 'पहिला तारीख'। यह ऐसे वर्ग की करुण-कथा है जो वेतन वाले दिन ही पिछले मास का हिसाब चुकाने में पूरा वेतन व्यय कर देता है। 'एइ बाटे दि' भी सामाजिक नाटक है। ये दोनों नाटक भी मंच पर सफलता प्राप्त कर चुके हैं। श्री सारदा बरदलै स्वतंत्रता के बाद के सफल नाट्यकार हैं।

बरफुकनर गीत *(अ० कृ०)*

यह सशक्त ऐतिहासिक बैलेड है जो कि असम पर बर्मियों के आक्रमण की पृष्ठभूमि में लिखा गया था। देशभक्तिपूर्ण सजीव चित्रण इसकी विशेषता है।

बरबरुवा, हितेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट का एक ग्राम।

इनकी आरंभिक शिक्षा घर पर हुई थी। इन्होंने जोरहाट हाई स्कूल में प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। अनेक स्कूलों में अध्यापन-कार्य कर 1938 ई० में ये सेवा-निवृत्त हुए थे। इन्होंने जीवन में आर्थिक कष्ट झेले थे। 1935 ई० में ये असम-साहित्य-सभा के सभापति निर्वाचित हुए थे।

प्रकाशित ग्रंथ—**काव्य :** 'ढोपाकलि' (1902), 'कमलापुरध्वंस' (1912), 'सारी' (1912), 'बिरहिणी बिलाप' (1912), 'जयमती कुँवरी', 'विरुतार आत्मदान' (1913), 'आभास' (1914), 'मूलागाभरू' (1915), 'माल च' (1918), 'चकुलो' (1922); **अनूदित :** डेस्डिमोना काव्य' और 'अंगिला' (1917)।

इन कविताओं का मूल स्वर करुणरस है। इनका दृष्टिकोण राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है 'कमलापुरध्वंस' जो अमित्राक्षर छंद में लिखित एक महाकाव्य है 'विरहिणीविलाप' में प्रोषितपतिका नायिका के विरह-दुःख का वर्णन है। इसमें माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के 'ब्रजांगना काव्य' की तरह चपल छंदों का प्रयोग हुआ है। 'चकुलो' (आँसू) और 'मालच' इनके सॉनेट काव्य है। 'मूला गाभरू' इनकी प्रौढ़ और संयत रचना है।

ये असमीया के उत्कृष्ट कवियों में से हैं।

बरयात्री *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

'बरयात्री' बिभूतिभूषण मुखोपाध्याय (दे०) की अनाविल हास्यरस की कहानियाँ हैं जिनकी जनप्रियता तनिक भी मलिन नहीं हुई है। प्रत्येक कहानी में पात्र की समानता के कारण उपन्यास की एकसूत्रता विद्यमान है। इन कहानियों में विवाहार्थी युवक एवं उनके दोस्तों की विविध संभव-असंभव दुरवस्थाओं की वर्णना में लेखक ने उच्च कोटि के प्रहसनों की सृष्टि की है। इन कहानियों के पात्रों—गणेश, के० गुप्त आदि—की कथाओं में लेखक की तटस्थ अभिव्यक्ति के कारण ही विशुद्ध हास्य का इतना तीव्र संचार हो पाया है। इन पात्रों के नये यौवन की नाना प्रकार की बुद्धिहीन अद्भुत अभिव्यक्ति से ही हास्य रस घना होता चला गया है। परंतु इस हँसी में कहीं भी परिहास-विद्रूप का अनधिकार प्रवेश नहीं हुआ है। व्यंग्य का प्रयोग एक-आध स्थान पर हुआ है परंतु लेखक का मूल उद्देश्य हास्य-निर्झर से पाठकों को संपूर्ण रूप से सिक्त कर देना है जिसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है।

बरवै *(हिं० पारि०)*

इसके विषम चरणों में 12, 12, और समचरणों में 7, 7 मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण हुआ करता है। इस तरह दोहे की तरह यह छोटा-सा छंद अधिक विस्तृत विषय-वस्तु अपने में समाहित नहीं कर पाता है। हिंदी में रहीम (दे०) और तुलसीदास (दे०) ने प्रथमतः इसका प्रयोग किया है। अतः संभावना यह है कि इनसे में ही किसी एक ने इसका आविष्कार किया हो। तुलसी ने 'बरवै रामायण' और रहीम ने 'बरवैविनायिका' भेद इसी छंद में लिखे हैं। रीतिकाल में जगतसिंह आदि दो-चार कवियों को छोड़ कर किसी ने भी इसे ग्रहण नहीं किया है। राजप्रशस्ति जैसे परंपरागत विषयों के अतिरिक्त कवियों ने अन्यान्य विषयों को भी इस छंद में समेटा है। नीचे की पंक्तियों में कवि ने इस छोटे से छंद के माध्यम से शृंगार की रेखाओं को बड़ी सजीवता से उरेहा है—

जब कब पाइ अँगनवाँ, धरति सुभाइ।
कसकनि वही करिजवाँ, कसकति आइ॥

बरा, ज्ञाननाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी। इनकी शिक्षा कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय में हुई थी ये एकाधिक कॉलेजों के प्रिंसिपल पद पर रहे हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार सत्यनाथ बरा (दे०) इनके पिता थे। इन्होंने अधिकतर निबंध लिखे हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—'युगतत्त्व' (1924 ई०), 'असमत विदेशी' (1925 ई०), 'नतुन जगत' (1946 ई०), 'पुरणि असमीया साहित्य' (1957 ई०), 'आधुनिक असमीया साहित्य' (1961)।

'युगतत्त्व' और 'नतुन जगत' के निबंधों का विषय दार्शनिक चिंतन है। 'असमत विदेशी' में देशभक्ति के निबंध हैं। शेष दो पुस्तकों में साहित्यिक विवेचन है। इनके ग्रंथों में सामयिक राजनीति, राष्ट्रीय समस्याओं और साहित्यिक विषयों का विवेचन हुआ है। इनके गद्य की विशेषताएँ हैं—परिष्कृत विचार और सरल रचना-शैली।

बरा, महिम *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्म दारांग ज़िले के घापसा घारा चायबागान में हुआ था। गौहाटी विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। संप्रति ये नौगाँव कॉलेज में अध्यापक हैं।

प्रकाशित रचना—'काथनि बारिर घाट' (कहानी-संग्रह) द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् के ये सर्वाधिक सशक्त कहानीकार हैं। ये हास्य मिश्रित करुणा के चित्रण में दक्ष हैं। इनके पात्र परिस्थिति और परिवेश की पीड़ा वहन करते हैं।

बरा, लंबोदर *(अ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1892 ई०]

जन्मस्थान—तेजपुर का गमिरि अंचल।

इनकी शिक्षा बी० ए० तक हुई थी। इन्होंने कुछ दिन तक अध्यापन किया, तत्पश्चात् बी० एल० कर तेजपुर में वकालत की थी। 32 वर्ष की अल्पायु में इनकी मृत्यु हो गई थी। इन्होंने 'असम बंधु', 'असमतारा', 'आसाम विलासिनी' और 'जोनाकी' पत्रिकाओं में अनेक निबंध लिखे थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'लराबोध', 'ज्ञानोदय'। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित रह गई हैं, जैसे कि ईश्वरचंद्र विद्यासागर और आनंदराम बरुवा की जीवनी। इन्होंने एक नाटक 'समाज दर्पण' लिखा था, जिसे ये पूरा न कर सके थे। इन्होंने 'गान', 'अलंकार आरु दकरि', 'कालिदास आरु शकुंतला' आदि उच्च कोटि के निबंध लिखे थे। इन्होंने ललित गद्य लिखा है। इनका व्यंग्य संयत है। इनके शब्द-चयन और वाक्य-गठन में भी सौंदर्य है। गद्य-शिल्पी के रूप में बौद्धिकता और तेजस्विता है।

बरा, सत्यनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी। इन्होंने कलकत्ता से बी० ए० और कानून की परिक्षाएँ उत्तीर्ण कर गौहाटी में वकालत आरंभ की थी। ये 'जोनकी' के साहित्य दल में सम्मिलित हुए थे प्रकाशित रचनाएँ— **काव्य :** 'गीतावली' (1888); **निबंध-संग्रह :** आकाश-रहस्य' (1908) साहित्यिक विचार' (1908), 'सारथि' (1915), 'केंद्रसभा' (दे०) (1929), 'चिंता-कलि' (मरणोपरांत प्रकाशन) (1935)।

'आकाश रहस्य' विज्ञान-विषयक पुस्तक है। 'साहित्य विचार' में साहित्य के लक्षण आदि की चर्चा है। इस प्रकार का यह प्रथम असमीया ग्रंथ है। गीतावली' में इनके 28 गीतों का संग्रह है। इनकी ख्याति उच्चकोटि के निबंधों के कारण है। कम शब्दों का प्रयोग करते हुए इन्होंने प्रसाद शैली में निबंध लिखे हैं। लोकोक्ति और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने ज्ञानवर्द्धक, व्यंग्यपूर्ण और विचारप्रधान निबंधों के अलग-अलग संग्रह प्रकाशित कराए थे।

यद्यपि आज इनकी पुस्तकों का महत्व कम है तथापि कम शब्दों में सारगर्भित बात कह देने की गद्यशक्ति इनमें थी।

बरुवा, भबेन *(अ० ले०)* [जन्म—1942 ई०]

श्री बरुवा कवि और आलोचक हैं। इनकी कविता में सौंदर्यबोध का वैशिष्ट्य है। समाज के पूर्वग्रह एवं अत्याचार तथा स्वच्छ समाज का स्वप्न इनकी कविता के विषय हैं।

बरुवा, अमूल्य *(अ० ले०)* [जन्म—1922 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट।

ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16 अगस्त, 1946 ई० को मुस्लिम लीग के प्रत्यक्ष आंदोलन के समय इनकी हत्या कर दी गई थी। अकाल मृत्यु के कारण इनकी प्रतिभा से असमीया-जगत् वंचित रह गया।

इनकी कविता विद्रोहमयी है। दुर्भिक्ष के समय किसी धनिक द्वारा ऐंठे गये उच्छिष्ट के लिए कुत्ता और मनुष्य में छीनाझपटी देख ये उत्तेजित हुए थे। इनकी कविताओं में विषमता के विरुद्ध संघर्ष है। बरुवा की प्रसिद्ध कविताएँ हैं—'वेश्या', 'अंधकार', 'हाहाकार', 'कुकुर और 'बिप्लबी'।

ये असमीया नयी कविता के उन्मेषक माने जाते हैं।

बरुवा, आनंद *(अ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट।

ये काशी विश्वविद्यालय में तीन वर्ष तक रह कर लौट आए थे। 1930 ई० में इन्होंने वाणी सम्मेलन की स्थापना की थी। ये 'असमीया' और दैनिक 'वातरि' पत्रों से संबंधित रहे थे। इस समय श्री बरुवा एक सरकारी शिल्प-प्रतिष्ठान में हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** 'हाफिजर सुर' (दे०) (1933), 'पराग पुष्पक' (1930) **नाटक :** 'कपौ कुँवरी' (1932), 'नल-दमयंति' (1944), 'कमता कुँवरी' (1940), 'रंजनरश्मि' (1933) 'विसर्जन' (1933)।

इनकी कविताओं पर फ़ारस के हाफ़िज का प्रभाव है। कविताओं में प्रेम का सुर, कल्पना का चंचल विलास, अनुभूति की सुकुमारता और आवेग की तीव्र अनुभूति है। इन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे हैं। 'कपौ कुँवरी' मंचोपयोगी नाटक है। इनके नाटकों में काव्यगुण अधिक एवं चरित्र-चित्रण दुर्बल हैं।

हाफ़िज कवि का असमीया साहित्य से परिचय कराने से इन्हें विशेष प्रतिष्ठा मिली है।

बरुवा, गुणाभिराम *(अ० ले०)* [जन्म—1837 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी।

इनका साहित्यिक जीवन 'अरुणोदय' पत्रिका से आरंभ हुआ था। इन्होंने कलकत्ता प्रेसिडेंसी कॉलेज में दो वर्ष शिक्षा पाई थी। ये 1890 ई० तक सरकारी कर्मचारी रहे थे और अवकाश ग्रहण कर कलकत्ता में ही बस गये। यहीं पर इनकी मृत्यु हुई थी। इनके प्रयास से 1856 ई० में विधवा-विवाह कानून-सम्मत घोषित हुआ था। इन्होंने अपने मित्रों एवं परिवार के सभी लोगों—पत्नी, कन्या और दो पुत्रों में साहित्यिक रुचि जाग्रत की थी।

प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक :** 'रामनवमी' (दे०) (1857); **जीवनी :** 'आनंदराम ढेकियाल फुकन' (1880); **भ्रमण-साहित्य :** 'सौभार बुरंजी', 'भ्रमण'; **व्यंग्य साहित्य :** 'कठिन शब्दर रहस्य'; **इतिहास :** 'असम (1884)।

कलकत्ता में अध्ययन के समय इन पर ब्रह्म समाज एवं ईश्वरचंद्र विद्यासागर का प्रभाव पड़ा था। 'रामनवमी' नाटक पर यह प्रभाव स्पष्ट है। पाश्चात्य शैली में लिखा गया असमीया भाषा का यह प्रथम नाटक है। रामचंद्र और नवमी नामक बालविधवा के प्रेम पर आधारित यह नाटक बाल-विवाह के दोष और विवाह का प्रचार करता है। इसमें पाश्चात्य और पौर्वात्य शैलियों का मिश्रण है।

'आनंदराम ढेकियाल फुकन' असमीया भाषा में आधुनिक रीति से लिखा प्रथम जीवनी-ग्रंथ है।

फुकन जी असमीया के प्रथम आधुनिक सामाजिक नाटककार एवं प्रथम सफल ऐतिहासिक निबंध-लेखक थे।

बरुवा ज्ञानदाभिराम *(अ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1855 ई०]

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** 'विलतातर चिठि' (1848), 'मोर कथा'; **शिशु-साहित्य :** 'ददाइर पंजा', 'मेनिचर साउद' (1925)।

ये अपने पिता श्री गुणाभिराम बरुवा (दे०) के आदर्श पर चले थे। दोनों निबंध-संग्रहों में स्मृति विजड़ित माधुर्य है। शैली के मध्य इनका प्रसन्न व्यक्तित्व प्रकट होता है। यात्रा-संस्मरण-साहित्य के क्षेत्र में इनकी पुस्तक 'विलातर चिठि' का विशेष महत्व है।

बरुवा, देवकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1994 ई०]

जन्मस्थान—डिब्रूगढ़।

ये काशी विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। शिक्षा समाप्त कर ये स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े थे, कई बार जेल गये थे। 1952 ई० में ये लोकसभा के सदस्य निर्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित हुए थे। 1954 ई० में ये संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य बन गये थे। 1957 में ये असम विधान-सभा के अध्यक्ष चुने गये थे। जनवरी 1971 ई० में इनकी नियुक्ति बिहार के राज्यपाल के रूप में हुई थी। रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर और इलियट इनके प्रिय कवि हैं।

प्रकाशित रचना—**काव्य** : 'सागर देखिचा' (दे०) (1945 ई०)।

'सागर देखिछा' की कविताओं में तिरस्कृत प्रेम की वेदना का वर्णन है। कवि केवल निराशा का वर्णन ही नहीं करता, वह विद्रोही हो उठता है और उसका विद्रोह देशप्रेम के रूप में व्यक्त होता है। ये रोमांटिक काव्यधारा के अंतिम कवि हैं। चीनी आक्रमण के समय लिखी गई इनकी कविता 'एइखन मोर देश' प्रभावोत्पादक है। ये क्रांति और नूतन पथ-संधान के कवि हैं।

बरुवा, नवकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव।

इन्होंने कलकत्ता और अलीगढ़ विश्वविद्यालय से शिक्षा पाई थी। ये कुछ दिन शिकोहाबाद (उ० प्र०) में अध्यापक रहे थे। 1954 ई० में ये काटन कॉलेज के प्राध्यापक नियुक्त।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'हे अरण्य हे महानगर' (1951), 'एटि दुटि एघारटि तरा' (1957), 'यति आरु केइटाभान स्केच्च' (1761); **उपन्यास** : कपिली परिया साधु' (दे०) (1954)। इन पर इलियट का प्रभाव अधिक है, कविताओं में रोमांसवाद और पलायनवाद है। 'हे अरण्य हे महानगर' युद्धोत्तरकाल का सर्वप्रथम व्यक्तिगत काव्य-संग्रह है। आधुनिक विशृंखलित जीवन का चित्रण करते हुए इन्होंने दो खंडकाव्य 'रोवण' और 'धृतराष्ट्र' लिखे थे। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'कपिली परिया साधु' में नदी और मनुष्य के चिरंतन संग्राम का चित्रण है।

श्री बरुवा नये कवि और प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं।

बरुवा, पार्वती प्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

जन्मस्थान—शिवसागर।

ये कलकत्ता स्काटिस चर्च कॉलेज के स्नातक और चाय बगीचे के व्यवसायी हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'गुणगुणनि' (1958), 'टोकारीर सुर' (1959); **नाटक** : 'लखिमी' (1929), 'सोणर' सोलेड' (दे०) (1955), ['आवाहन' पत्रिका में 1929 में]। इनके गीतों में आनंद भाव मिलता है किंतु बाद में इनके गीतों में करुणरस का स्वर स्थायी रूप धारण कर गया। इन्होंने प्रतीकात्मक गीति-नाट्यों द्वारा नये प्रयोग किए हैं। 'लखिमी' में शरत्, हेमंत आदि पात्रों का वर्णन है।

इनकी ख्याति प्रतीकात्मक नाट्य-लेखन एवं गीतिकार के नाते हैं।

बरुवा, बिनंद *(अ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट का टियक स्थान। इनकी शिक्षा एम० ए० और लॉ तक हुई थी। ये जाँजी हाईस्कूल में शिक्षक और बाद में प्रधानाचार्य नियुक्त हुए थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'शंखध्वनि' (1925), 'प्रतिध्वनि' (1938), 'फुलकलि' (1940); **नाटक** : 'पार्थसारथि' (1933), 'टि टि हेड़' (1936), 'शराइघाट' (1936); **जीवनी** : 'महाराज नरनारायण' (1926)।

ये राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। असम के अतीत पर ये गौरव की अनुभूति करते हैं, उसके ह्रास पर दुःखी होते हैं। 'शंखध्वनि' संग्रह की 'गडगाँव' कविता प्रसिद्धि पा चुकी है। 'प्रतिध्वनि' की कविताएँ भी इसी प्रकार की हैं। कवि ने अतीत का स्मरण प्रेरणा लेने के लिए किया है; वर्तमान की उपेक्षा नहीं की है।

इनके 'पार्थसारथि' और 'शराइघाट' गंभीर नाटक हैं। ये असम के प्राचीन गौरव और शौर्य के कवि हैं।

बरुवा, बिरिंचि कुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1910 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव।

इन्होंने कलकत्ता और लंदन विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने डाक्टर की उपाधि तक की शिक्षा ग्रहण की थी। इन्होंने बीणा बरुवा के छद्म नाम से भी लिखा है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के ग्रंथ 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' का इन्होंने 1941 ई० में भावानुवाद किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'जीवनर बाटत' (दे०) (1945), 'सेउजी पातर काहिनी' (दे०) (1948); **कहानी** : 'पटपरिवर्तन (1948), 'आघोनी बाइ' (दे०), (1950), **अन्य** : 'असमीया लोक-संस्कृति' (निबंध) (1961), 'असमीया भाषा आरु संस्कृति' (निबंध) (1957), 'असमीया कथा-साहित्य' (1950), 'स्विट्ज़रलैंड-भ्रमण' (1948); **नाटक** : 'ए बेलार नाट' (दे०)।

'जीवनर बाटत' उपन्यास में असम के ग्रामीण समाज का सुस्पष्ट चित्रण है। 'सेउजी पातर काहिनी' चाय-बगीचा और मज़दूरों के जीवन को लेकर लिखा गया है। इन्होंने यौन-चित्रण भी प्रस्तुत किए हैं। 'पटपरिवर्तन' कहानी-संग्रह में नगर-जीवन और 'आघोनीबाई' में ग्राम-जीवन का चित्रण है। नगा युवती पर लिखी 'लापेली' कहानी सुंदर है।

इनका पांडित्य परिश्रम पर आधारित है। इन्होंने स्वच्छ मुहावरे और प्रांजल शैली का प्रयोग किया है। इन्होंने अनेक अँग्रेज़ी पुस्तकें भी लिखी हैं।

ये असमीया के ख्यातिलब्ध उपन्यासकार तथा आलोचक हैं।

बरुवा, बीरेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

ये नयी पीढ़ी के लेखक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—'निर्जन नाविक' (काव्य-संग्रह) (1961), 'मन जेतुकार पात' (उपन्यास)।

इनकी कविता में सामाजिक चेतना है। इन्होंने नूतन विषयों, प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग किया है। इनकी 'प्रथम रागिनी' कहानी विशेष चर्चित हुई है। इन्होंने स्टीफ़न ज्विग की प्रेम-कहानी का अनुवाद किया था। श्री बरुवा उदीयमान कवि और कथाकार हैं।

बरुवा, यादूराम *(अ० ले०)* [जन्म—1801 ई०; मृत्यु—1869 ई०]

इन्होंने 1839 ई० में असमीया भाषा का प्रथम कोश तैयार किया था। उच्चारण के अनुसार वर्ण-विन्यास के सरलीकरण पर इन्होंने जोर दिया था। ये असमीया के डॉ० जॉनसन कहे जाते हैं। इन्होंने यह कोश कर्नल जॉनसन नामक व्यक्ति को भेंट किया था, जिसने इसे बैप्टिस्ट मिशन को दे दिया था। इसी को आधार मान कर श्री माइल्स ब्रॉनसन नामक मिशनरी ने 1867 ई० में आसामीज़ इंग्लिश डिक्शनरी का संपादन किया था। श्री यादूराम बरुवा असमीया कोश के प्रथम निर्माता माने जाते हैं।

बरुवा, सत्यप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनकी शिक्षा बी० ए०, बी० एल० तक हुई थी। ये आकाशवाणी से संबद्ध हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक** : 'चार्क चकोवा' (1939), 'शिखा' (1957), 'ज्योतिरेखा' (दे०) (1958); **आलोचना** : 'नाटक आरु अभिनय प्रसंग' (1962)।

नाटकों की कथावस्तु रोमांटिक होती है। इनमें चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। लेखक चरित्रों और संवादों के द्वारा यह व्यक्त करता है कि मानव के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई तर्कसंगत या मनोवैज्ञानिक विचार होता है। इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटिकाएँ और एकांकी नाटक भी लिखे हैं।

ये नयी पीढ़ी के गंभीर नाट्यकार हैं।

बरुवा, हेम *(अ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

जन्मस्थान—तेजपुर।

इन्होंने 1938 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से अँग्रेज़ी में एम० ए० किया था। ये कुछ दिन जोरहाट कॉलेज में अध्यापक रहे थे। 1942 ई० के आंदोलन में इन्हें कारावास हुआ था। 1957 से 1970 ई० तक ये लोक सभा के सदस्य रहे थे। इन्होंने 'जनता' और 'पछोवा' पत्रों का संपादन भी किया था। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी पुस्तकें लिखी हैं। प्रकाशित रचनाएँ—'गण-विप्लवत असम' (1946); **आलोचना** : 'आधुनिक साहित्य' (1950); **भ्रमण-साहित्य** : 'सागर देखिछा' (1956); 'रङा कर बीर फुल' (1958); **निबंध-संग्रह** : 'सान मिहलि' (1957); **लोकगीत-संग्रह** : 'एइ गाओ एइ गीत' (1962); 'काव्य-बालिछंदा' (1959)।

असमीया नयी कविता के प्रवर्तकों में हेम बरुवा भी एक हैं। 'बालिछंदा' कविता में श्री बरुवा इस निष्ठुर असभ्य पृथ्वी पर नये समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

'सागर देखिछा' और 'रङा कर बीर फुल' में अमरीका और रूस का भ्रमण वृत्तांत है; बीच-बीच में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-सौंदर्य भी उपलब्ध होता है। इन्होंने इज़राइल पर पुस्तक लिखकर वहाँ के लोगों की प्रगति की प्रशंसा की है।

'आधुनिक साहित्य' में पाश्चात्य साहित्य की आधुनिक भावधारा, आदर्श और रचना-शैली का प्रांजल वर्णन है।

'सान मिहलि' मिश्र के इतिहास, ओपन एअर थियेटर, नारी-सौंदर्य आदि विषयों पर लिखे निबंधों का संग्रह है।

श्री हेम बरुवा आलोचना और कविता के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

बरुवा, हेमचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1835 ई; मृत्यु—1896 ई०]

घरवालों के विरोध की उपेक्षा कर इन्होंने अँग्रेज़ी-साहित्य का अध्ययन किया था। इनका साहित्यिक जीवन 'अरुणोदय' में लेखन से आरंभ हुआ था। ये 'सोनार चाँद' छद्म नाम से लिखते थे। इनके द्वारा असमीया में संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रचार हुआ था। इन्होंने अनेक छात्रोपयोगी पुस्तकें तैयार की थीं, इन पुस्तकों के लिए सरकार ने इन्हें 1100 रु० का पुरस्कार दिया था।

प्रकाशित रचनाएँ—'आदि पाठ' (1973), 'पाठमाला' (1973), 'असमीया लरार व्याकरण' (1886), 'असमीया व्याकरण' (1859), 'पढ़ाशालीया अभिधान' (1892), 'संक्षिप्त हेमकोश' (1894); **उपन्यास :** 'बाहिरे रं चं आरु भितरे को वा भातुरी' (1876); **नाटक :** 'कानीया कीर्त्तन' (दे०) (1861), 'हेमकोश' (1900)। 'बाहिरे रं चं आरु भितरे को वा भातुरी' नामक पुस्तक को कुछ लोग असमीया साहित्य का प्रथम उपन्यास मानते हैं। इसमें समाज में प्रचलित पाखंड, व्यभिचार, कुसंस्कारों आदि का चित्रण है। इसे व्यंग्यात्मक प्रबंध ही अधिक कहना चाहिए।

'कानीया कीर्त्तन' नाटक में दिखाया गया है कि अँग्रेज़ों के इस देश में आगमन से अफ़ीम का प्रचार बढ़ गया था। इसमें अफ़ीम के बुरे प्रभाव का वर्णन किया गया है। नाटक की विशेषता इसका तीक्ष्ण व्यंग्य है।

बरुवा जी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य 'हेमकोश' नामक बृहत् कोश का निर्माण है, जिसका प्रकाशन इनकी मृत्यु के पश्चात् श्री हेमचंद्र गोस्वामी (दे०) एवं गार्डन साहब के प्रयत्नों से हुआ था। वैज्ञानिक पद्धति से प्रथम शब्दकोश-निर्माता एवं असमीया-वर्तनी को सुस्थिर रूप देने तथा प्रथम व्यंग्य लेखक के रूप में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

बरुवानी, धर्मेश्वरीदेवी *(अ० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी, पंचवटी।

इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। इनका जीवन कष्टमय रहा था। इनका विवाह 14 वर्ष की आयु में एक प्रसिद्ध व्यवसायी के साथ हुआ था। 21 वर्ष की आयु में वातरोग के कारण ये पंगु हो गई थीं। बाद में ये अंधी भी हो गई थीं। इनके कष्ट ही इन्हें कवयित्री बना गये थे। असम-साहित्य-सभा से इन्हें 1956 ई० में 'काव्य-भारती' उपाधि प्राप्त हुई थी।

प्रकाशित रचनाएँ—'फुलर शराइ' (1928), 'प्राणरपरश' (1952), 'फुलर शराइ' में जीवन की वेदनाएँ व्यक्त हुई हैं। 'आवाहन' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ 'प्राणरपरश' में संगृहीत हैं। स्वास्थ्य-लाभ के समय सागर की विशालता देखकर इन्होंने प्रकृति-विषयक कविताएँ लिखी थीं। स्त्री सुलभ अनुभूति और धर्म-भाव का संयत और अलंकृत शैली में प्रकाशन इनकी कविता में मिलता है। ईश्वर पर विश्वास और प्रियजनों के प्रति स्नेह इनके दो विशेष लक्ष्य रहे हैं। कविता में छंद का विलास नहीं है, किंतु कमनीयता है। सांसारिक कष्टों से इनके मन में तिक्तता नहीं आई है; इन्होंने सुख-दुःख को भगवान की देन मानकर स्वीकार किया है।

असमीया की कवयित्रियों में इनका विशेष स्थान है।

बर्मा, ज्ञानींद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

श्री ज्ञानींद्र बर्मा बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। इनका जन्म बुसुसपुर, कटक में हुआ था। ये पूर्णरूप से स्वतंत्रचेता, परंपरा विरोधी, तथा नूतन-पंथी हैं। धर्म, सामाजिक परंपरा तथा राजनीतिक स्थिति के प्रति इनमें आस्था नहीं है, किंतु कवि-धर्म के प्रति ये अत्यंत सजग हैं। कृत्रिम आदर्श के प्रति इनकी रचनाओं में व्यंग्यात्मक कठोरता मिलती है। परंपरा-विरोधी उत्साह में कलाकार की अपेक्षा इनका विचारक रूप अधिक प्रखर होता गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—**गीति नाट्य :** 'बोले हुंटि', 'कलरेइ फूल'; **नाटक :** 'स्वर्णयुगर संध्या'; **एकांकी :** 'स्वर्गर लोतक'; **कविता :** 'एक रात्रि'; **उपन्यास :** 'शताब्दीर स्वप्न भंग', 'लालघोड़ा', 'तनु-अतनु', 'अपरान्हर आकाश' (दे०) आदि।

बळ, नंदकिशोर, *(उ० ले०)* [जन्म—1875; मृत्यु—1928 ई०]

पल्ली कवि नंदकिशोर ने उड़ीसा के पल्ली-जीवन को काव्य-महिमा दी है। इनकी रचनाओं में जातीय परंपरा जातीय भाषा व छंद में उद्‌भासित हो उठी है। पल्ली-जीवन की विशिष्ट दृष्टिभंगी, अभिव्यंजना की स्वाभाविकता, लोकोक्ति और मुहावरे, पल्लीगीत आदि के द्वारा इस प्रतिभावान कवि ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, उसमें पल्ली-उत्कल की काव्यात्मा मुखरित हो उठी है। स्वरचित ओड, बेलाड, और गीति-कविताओं में, लोक-गीतों की राग-रागिनियों में इस कवि ने मनोज्ञ कंठ से चिरपरिचित जनपदों की शांतिमय सुषमा जनपदवासियों की सरल-सुंदर जीवन-लीला का मान किया है। शहरी जीवन के दूषित वातावरण में इनकी रचनाओं ने माटी की सोंधी सुगंध भर दी है।

कटक ज़िले के कुशुपुर गाँव की मनोरम प्रकृति की गोद में इस कवि ने जन्म लिया था। शिशु-मन पर अंकित प्रकृति की वह मनोरम छवि, कवि-चित्त पर ग्रामीण परिवेश का वह सूक्ष्म प्रभाव, उच्चतर पश्चिमी शिक्षा तथा शहरी जीवन से भी नहीं मिट सकी।

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'पल्ली-चित्र' (दे०) पल्ली-जीवन के रूपायन का सार्थक प्रयास है। 'निर्झरिणी', 'शर्मिष्ठा', आदि इनकी अन्य काव्यकृतियाँ हैं। इनका उपन्यास 'कनकलता' (दे०) भी पल्ली-जीवन तथा ग्रामीण प्रकृति की स्निग्ध सुषमा वितरित करता है। 'नाना-बाइया-गीत' (शिशु-संगीत) भी पल्ली-परिवेश से स्पंदित है। इन्होंने जो कुछ लिखा है, उसमें ग्रामीण जीवन व ग्राम्य परिवेश का कोई-न-कोई रूप अवश्य उभर कर आया है।

बलबीर सिंह, डाक्टर *(पं० ले०)*

डाक्टर बलबीर सिंह भाई वीरसिंह (दे०) के छोटे भाई हैं जो वृत्ति से वनस्पति-विज्ञानी होते हुए भी परिवार के साहित्यिक वातावरण के फलस्वरूप साहित्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। आपने अपनी कृतियों के द्वारा चिंतन-प्रधान पंजाबी गद्य की कमी को पूरा किया। धर्म, साहित्य-शास्त्र, इतिहास, संस्कृति तथा दर्शन आदि विषयों पर इन्होंने गंभीर चिंतन-मनन का प्रमाण दिया है। अनुभव की गहनता, विचारों की परिपक्वता और प्रकांड पांडित्य इनके अनेक निबंधों में प्रतिभासित होता है। पंजाबी के सूफ़ी-काव्य और भाई वीरसिंह की रचनाओं पर आपका अनुसंधान-कार्य पंजाबी आलोचना में बहुत समादृत है। इसमें संदेह नहीं कि डाक्टर साहब अपनी रचनाओं में साहित्य, धर्म, इतिहास और संस्कृति के मौलिक चरित्र की रक्षा नहीं कर सके परंतु इस ओर क़दम उठाने का साहसपूर्ण कार्य उन्होंने अवश्य किया।

'कलम दी करामात' (दे०), 'लंबी नदर' आपके लेखों के प्रतिनिधि संग्रह हैं।

बलरामदास *(उ० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

उड़ीसा के 'तुलसी' बलरामदास वैष्णव कवियों व पंचसखाओं (दे०) में आयु में सबसे बड़े थे। इनके पिता सोमनाथ महापात्र, प्रताप रुद्रदेव सोलहवीं शती के मंत्री थे। बलरामदास, जगन्नाथदास (दे०) व प्रताप रुद्र देव के गुरु थे। विद्वानों के अनुसार चैतन्य (दे०) देव से इनकी भेंट पुरी में हुई थी। इनका विवाह हुआ था तथा कई संतानें भी थीं। बाद में इन्होंने संन्यास लेकर मठ की स्थापना की।

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'जगमोहन रामायण' दांडी-वृत्त में होने के कारण 'दांडी रामायण' (दे०) भी कहलाती है। यद्यपि इसकी विषयवस्तु 'वाल्मीकि-रामायण' (दे०) से गृहीत है, किंतु हिंदी में 'तुलसी-रामायण' (दे० रामचरितमानस), तमिल में 'कंब रामायण' (दे०) के समान ही यह एक स्वतंत्र रचना भी है, जिसमें कल्पना का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इन्होंने अपनी रामायण में उत्कलीय जीवन को साकार कर दिया है। यूरोपीय जीवन में 'ओडेसी' और 'इलियट' के समान ही 'सारला-महाभारत' (दे०) तथा 'दांडी रामायण' प्रबंध उड़िया साहित्य में सर्वमान्य रहेंगे। 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता', 'भाव-समुद्र', 'वट-अवकाश', 'पणस चोरी' आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

इनकी जनभाषा में आध्यात्मिक गूढ़ ज्ञान के भारवहन करने की क्षमता है। बलरामदास एक महान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त कवि के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।

बलिदत्त *(उ० पा०)*

यह गोपीनाथ महांति (दे०) के यथार्थवादी उपन्यास 'दानापाणी' का मुख्य पात्र है। इसके चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने संप्रति भारतीय समाज के दानापाणी-संबंधी संघर्ष, नौकरशाही के तंत्र में पिसता इंसान, महत्वाकांक्षा-जनित नैतिक स्खलन आदि का चित्रण किया है।

बलिदत्त कंपनी की नौकरी करता है। लेखक की भाषा में—'वह अनजान किसी गली-कूचे का नगण्य-सा व्यक्ति है।' पर वह भी जीना चाहता है, अपने व्यक्तित्व की सामाजिक मान्यता चाहता है। जीवन-निर्वाह और अस्मिता की स्थापना के लिए धन व पदोन्नति परम आवश्यक है; क्योंकि आज व्यक्तित्व का परिचय उसके मानवीय गुणों में नहीं वरन् भौतिक संपदा में अंतर्निहित है। अतः जुगाड़ी बलिदत्त इसके लिए सब कुछ कर सकता है—आत्मसम्मान, नैतिकता, पत्नी का सतीत्व सभी कुछ दाँव पर लगा सकता है।

अंत में उपन्यासकार कहता है—'आज इस भयंकर बीमारी से सभी आक्रांत हैं—चपरासी से लेकर बड़े अफसर तक—राहत कहीं नहीं।...तब भी बलिदत्त मौन प्रश्न बनकर हमारे सामने खड़ा है—अपनी महत्वाकांक्षा में दीन, अपने संघर्ष में असहाय, अपने पतन में करुण, अपनी प्रतिष्ठा-स्थापना में दुर्बल एवं अवहेलित।'

बलोच, नबी बख़्श ख़ान *(सिं० ले०)*

इनका जन्मस्थान सिंध का एक छोटा-सा गाँव जाफ़र खान लग़ारी है। इनकी शिक्षा-दीक्षा बंबई तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों और अमेरिका में हुई थी। इस समय ये सिंध युनिवर्सिटी, हैदराबाद में शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक हैं। सिंधी अदबी बोर्ड हैदराबाद की योजना के अंतर्गत इन्होंने सिंधी-लोक-साहित्य पर लगभग तीस पुस्तकें संपादित कर प्रकाशित कराई हैं। इसके अतिरिक्त 'जामा लुग़ात सिंधी' के प्रथम भाग का भी इन्होंने संपादन किया है। इनकी अन्य रचनाओं में उल्लेखनीय हैं—'सिंधी बोली अ जी मुख़्तसर तारीख़' और 'वेलायुनि जा बोल' (लोक-साहित्य)। सिंधी भाषा, साहित्य और सिंध के इतिहास पर इन्होंने महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है, जिसके लिए सिंधी जगत् इनका हमेशा ऋणी रहेगा।

बल्लभ *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) के 'कीचक-बध' नाटक का पात्र है। बल्लभ का चरित्र तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का कारण है। बल्लभ (भीम) का पौराणिक चरित्र समसामयिक परिस्थितियों में विघटित काँग्रेस के गरम दल की भावाभिव्यक्ति है। विराट (ब्रिटिश साम्राज्य) के सहायक कीचक (व्हाइसराय लॉर्ड कर्जन) द्वारा सैरंध्री (दे०) (भारत-माता) के प्रति किए गए दुर्व्यवहार का समय रहते यथाशक्ति प्रतिकार करना चाहता है। कीचक की अनीतियों के सतत प्रहारों से इसका संयम डगमगाता अवश्य है, परंतु विवेक का सीमोल्लंघन कहीं भी नहीं होने पाता। कंक भट्ट के सद्परामर्शों से यह कहीं भी विमुख नहीं होता और अंत में कीचक की 'अति' का यथोचित उत्तर देकर अपने संयम और धैर्य का सबल परिचय देता हुआ समाज और राजनीतिक परिस्थितियों के सजीव चित्रांकन में गहरा पैठ जाता है।

संक्षेप में, बल्लभ का चरित्र क्रांतिकारी क्रियाशील प्रतिकारार्थ उद्यत होते हुए भी उद्दंड नहीं हो पाया है। दूसरे शब्दों में, हम इसे भावों पर बुद्धि के नियंत्रण की सफल अभिव्यक्ति कह सकते हैं।

बसंतर मोह *(उ० कृ०)*

यह रबि नारायण महापात्र (दे०) का कहानी-संग्रह है। इसकी सभी कहानियों में नारी और पुरुष के चिरंतन संबंध को समझ लेने का प्रयास है। मनुष्य की आदिम कृतियाँ और उसकी नैसर्गिक इच्छाएँ सभ्यता और संस्कृति की ख़राद पर चढ़ कर भी आज अपने अनगढ़ रूप में विद्यमान हैं और ये उसके समस्त क्रिया-कलापों की संचालक हैं। जीवन-प्रश्न अत्यंत पेचीदा है, उसे सुलझाना सरल नहीं है। लेखक ने किसी भी प्रश्न को उठाकर उसका पूर्ण उत्तर नहीं दिया है—किसी ओर कुछ इंगित कर दिया है। इन प्रश्नों के प्रति कहानीकार का चिंतनशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण मिलता है। शैली विश्लेषणात्मक एवं सशक्त है। भाषा में जहाँ प्रचंड अभिव्यंजना-शक्ति है वहीं उसमें अपना निजी सौंदर्य भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसवनाल, एस० एस० *(क० ले०)* [समय—1893-1951 ई०]

श्री बसवनाल का जन्म उत्तर कर्णाटक में धारवाड़ में एक सुसंस्कृत वीरशैव परिवार में हुआ। वीरशैव तरुण-संघ के आप संस्थापक थे। 'प्रबोध' नामक एक मासिक पत्रिका का संपादन आपने किया। आप चौंतीसवें कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। कुछ समय तक आप 'श्रम-कर्णाटक' के संपादक भी रहे। आपने संत बसवेश्वर के वचनों का अत्यंत प्रामाणिक संस्करण तैयार किया है। आप वीरशैव धर्म व साहित्य के अधिकारी विद्वान थे। आपकी रचनाएँ ये हैं—'कर्णाटक काव्यावलोकन', 'कर्णाटक-शब्दानुशासन प्रकाशिके', 'कैवल्य कल्पवल्लरी', 'कैवल्यदर्पण', 'चेन्नबसव-पुराण', 'प्रभुलिंगलीले', 'बसवण्णनवर वचनगळु', 'शवरशंकरविलास' तथा 'शिवतत्त्व प्रकाशन'।

आपने श्री के० आर० श्रीनिवास अय्यंगार के साथ बसवेश्वर के वचनों का अनुवाद किया है। इनकी शैली अत्यंत प्रभावशाली है। इस नाते आप कर्णाटक तथा महाराष्ट्र में विख्यात हैं।

बसवपुराण *(क० क्रु०)* [समय—पंद्रहवीं शती का आरंभ]

इसके रचयिता भीम कवि नामक एक वीरशैव कवि हैं जिनका समय 1400 ई० माना जाता है। यह तेलुगु में 'पाळकुरिके सोमनाथ' (दे०) द्वारा लिखे 'बसवपुराण' का कन्नड अनुवाद है। 61 संधियों का यह बृहत् ग्रंथ षट्पदी छंद में रचा गया है। इसमें संत बसवेश्वर के चरित की अपेक्षा उससे संबद्ध कथाओं, पोपलीलाओं का पोवाडों का वर्णन है। इसके साथ अन्य वीरशैव संतों की कहानियाँ भी हैं। हरिहर (दे०) की 'बसवराजदेवरगळे' (दे०) का मुकाबला यह नहीं कर सकता क्योंकि वह चरितकाव्य है और यह पुराणकाव्य, उसमें बसवेश्वर के व्यक्तित्व की प्रधानता है तो इसमें उनके चमत्कारों की प्रधानता है।

षट्पदी में समग्र काव्य की रचना करने में भीम कवि सर्वप्रथम हैं किंतु षट्पदी बहुत परिमार्जित नहीं है।

वीरशैव साहित्य में यही एक ग्रंथ है जिसकी रचना-तिथि असंदिग्ध है। अतः इसका ऐतिहासिक महत्व भी है।

बसवपुराणमु *(तें० क्रु०)*

रचनाकार—पाल्कुरिकि सोमनाथुड़ (दे०) समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती)।

यह काव्य वीरशैवों का वेद माना जाता है। वीरशैव-संप्रदाय के प्रवर्तक बसव का पूर्वजन्म-संस्कारों के कारण बचपन से ही भक्त होना, यज्ञोपवीत आदि वैदिक कर्मकांड तथा वर्णव्यवस्था आदि का परित्याग करना, एकमात्र भक्ति-प्रधान, वर्णव्यवस्थाहीन तथा सर्वजनसुलभ वीरशैव-मत की स्थापना, तपस्या, शिव का साक्षात्कार, उनका महत्तर संदेश आदि का वर्णन इसमें विस्तार से किया गया है। बसव ने जनता की भाषा में अनेक गीतों की रचना करके अपने सिद्धांतों का प्रचार किया था। इस काव्य में बसव के जीवन-चरित्र के साथ-साथ उनके शिष्यों के जीवन-चरित्र भी सम्मिलित किए गए हैं। वेद, स्मृति, आगम आदि अनेक आर्ष-ग्रंथों से शिव के महत् स्वरूप के प्रमाण भी इसमें एकत्र किए गए हैं। तेलुगु के वीरशैव-वाङ्मय में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है।

कवि की भक्ति का आवेग काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। संस्कृत-छंदों तथा दीर्घसमासों से पूर्ण रचना साधारण जनता तक पहुँच नहीं सकती। अतः इन्होंने तेलुगु के 'द्विपद' छंद में तथा सरल-स्वाभाविक तेलुगु में इस काव्य की रचना की है। जीवंत भाषा तथा लोकोक्तियों के सुंदर प्रयोग की छटा इस काव्य की मुख्य विशेपताएँ हैं। इस काव्य से 'द्विपद' छंद को तेलुगु साहित्य में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तथा परवर्ती द्विपद काव्यों के लिए यह काव्य आदर्श बना रहा। परंतु इसका इतिवृत्त सामान्य मानव-जीवन के साथ विशेष रूप से संबद्ध नहीं है। अतः इस काव्य को यथेष्ट प्रसार नहीं मिल सका।

बसवप्प शास्त्री *(क० ले०)* [समय—1846-1891 ई०]

बसवप्प शास्त्री कन्नड साहित्य के उन्नीसवीं शती के श्रेष्ठ कवियों में हैं। इनका जन्म 1864 ई० में बेंगलूर जिले में एक वीर शैव परिवार में हुआ था। इनके पिता महादेवशास्त्री प्रकांड पंडित थे। ये चामराज ओडेयर के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'शाकुंतलम्', 'विक्रमोर्वशीयम्', 'चंडकौशिक' तथा 'उत्तर रामचरित'—इन चार संस्कृत नाटकों का सफल अनुवाद किया। 'अभिज्ञान शाकुंतलम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका सर्वाधिक लोकप्रिय और उत्कृष्ट अनुवाद है। इसके फलस्वरूप इन्हें 'अभिनवकालिदास' विरुद दिया गया। अँग्रेज़ी से इन्होंने अनुवाद किए हैं। 'ऑथेलो' के आधार पर इन्होंने 'शूरसेनचरित्र' की रचना की भर्तृहरि (दे०) के 'नीतिशास्त्र' का कन्नड अनुवाद भी इन्होंने किया है। 'दमयंती स्वयंवर', 'रेणु का विजय काव्य' आदि चंपूग्रंथों के अतिरिक्त कई शैवस्तोत्र भी इन्होंने लिखे हैं। इनकी शैली अत्यंत सरस है। पद्यों के अनुवाद में मूलभाव को कहीं भी व्याघात नहीं पहुँचा है। इनके वृत्त अपनी मृदु-मधुर पद-शैली के कारण नागचंद्र (दे०) आदि प्राचीन कवियों की नाद माधुरी का स्मरण दिलाते हैं। ये उन्नीसवीं शती के प्रतिनिधि कवियों में परिगणित हैं।

बसवराज कट्टीमनि *(क० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

कन्नड के सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी उपन्यासकार बसवराज कट्टीमनि का जन्म 5-10-1919 को बेलगाँव ज़िले के अंतर्गत गोकाक में एक किसान के घर में हुआ था। इनकी शिक्षा ठीक तरह से नहीं चली। वे मैट्रिक भी पूर्ण नहीं कर पाए। ग़रीबी के कारण उनको लाचार होकर गृहस्थी के जुए में जुटना पड़ा। 'संयुक्त कर्नाटक', 'तरुण कर्नाटक', 'कर्नाटक बंधु', आदि समाचार-पत्रों में इन्होंने काम किया। 1942 ई० में ये स्वातंत्र्य-संग्राम में कूद पड़े और जेल गये। 16 साल की उम्र से ही इनकी साहित्य-साधना शुरू हो गई थी। पत्रकारिता से थक कर जब गाँव लौटे तो मलामरडी में काश्तकारी में लग गये। ये लेखनी और हल एक-साथ चलाने वाले सव्यसाची हैं। इन्होंने किसानों का संघटन किया और ग्राम-सुधार में रुचि ली। 1968 ई० में इनको साहित्यकारों की ओर से मैसूर राज्य विधान-परिषद् में मनोनीत किया गया उसी वर्ष इनके श्रेष्ठ उपन्यास 'ज्वालामुखी' को सोवियत लैंड पुरस्कार मिला। श्री कट्टीमनि ने अब तक क़रीब पैंतीस उपन्यास, नौ कहानी-संग्रह, एक नाटक तथा एक जीवनी लिखी है। आपके सर्वप्रथम कहानी-संग्रह 'कारवाँ' (1945 ई०) ने कन्नड साहित्य में बड़ी क्रांति ला दी थी। प्रचलित परंपराओं के प्रति विद्रोह, धार्मिक अंध-श्रद्धाओं, मूढ़ रूढ़ियों एवं सांप्रदायिकता के विरुद्ध विद्रोह इनकी हर कृति में दिखाई देता है। 'स्वातंत्र देडेगे', 'मणि मडिदवरु आदि उपन्यासों में इन्होंने स्वातंत्र्य-संग्राम का चित्रण किया है। गाँव के अज्ञात वीरों की वीरगाथा है 'माडि मडिदवरु' (करके मरने वाले—करो या मरो के अनुसार) 'लरतारी जगद्गुरु', 'मोहर बलेयल्लि' आदि उपन्यासों में उन्होंने मठाधिपतियों आदि द्वारा धर्म की आड़ में किए जाने वाले अत्याचारों का भंडाफोड़ किया है। 'गोवा देवी' में कांग्रेसी नेताओं की चरित्रहीनता का अत्यंत सरस चित्रण हुआ है। 'प्रिय बांधवी' में भी शराबी की समस्या चित्रित है। 'बीदियल्लि बिद्दवळु' (रास्ते में पड़ी हुई औरत), 'मण्णु मत्तु हेण्णु' (मिट्टी और औरत) तथा 'खानबलियनीला' में वेश्या-समस्या का बीभत्स चित्रण है। 'चक्रव्यूह' तथा 'बेंगलूरिजोंडु टिकेट्टु' में स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजकीय नेताओं के भ्रष्टाचार एवं अतीत का यथार्थ चित्रण है। 'प्रपात', 'द्रोही' आदि में मनोविज्ञानिक चित्रण है। 'नानूयोलीस नागिद्दे' में पुलिस-जीवन का भांडा फोड़ा गया है तो 'तत्तरी प्रयोग' में बीमा विभाग की कमज़ोरियों पर कटाक्ष है। 'नीनन्नमुट्टबेड' में अस्पृश्यता की समस्या है। 'गिरिमनविलु', 'पौरुषपरीते' आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं इनकी प्रतिनिधि कृति 'ज्वालामुखी' एक राजनीतिक उपन्यास है। सत्य, धर्म, अहिंसा आदि की आधारभूमि पर निर्मित कांग्रेस स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद कैसे भ्रष्टाचार की बीवी बनी, कम्युनिस्ट सोशलिस्ट आदि पार्टियाँ कैसे आपसी संघर्षों से निर्वीर्य हुईं तथा इनके समानांतर रूप से दुराचार एवं ग़रीबों के शोषण पर यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है, पूँजीवाद पर तीक्ष्ण कटाक्ष यहाँ है।

चरित्र-चित्रण में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। उनकी शैली अत्यंत ओजोगुणमयी है, आवेश उनका स्थायी है। किंतु कहीं-कहीं प्रचार की गंध आती है। भावना कच्ची-सी लगती है। कला-पक्ष ऐसे प्रसंगों में क्षीण हो गया है।

बसवराजदेवर रगळे *(क० कृ०)*

कन्नड-साहित्य में महाकवि हरिहर (दे०) (समय—1200 ई० के आसपास) 'रगळेय हरिहर' ('रगळे' एक छंद का नाम है, हरिहर ने उस छंद में अनेक रचनाएँ की हैं) नाम से प्रसिद्ध हैं। 'रगळे' छंद चरित-काव्यों के लिए बहुत उपयुक्त है, प्रबंध का निर्वाह उसमें अच्छे ढंग से हो सकता है। हरिहर का 'बसवराजदेवर रगळे' उनके कला-सौष्ठव का प्रमाण है। आकार में वह छोटा है, पर उसका महत्व बहुत है; वह महाकाव्य की कोटि में आता है। उसमें बसवण्णा अथवा बसवेश्वर (दे०) के चरित्र का अत्यंत मार्मिक उद्घाटन हुआ है। बसवेश्वर पर कई वीरशैव कवियों ने 'पुराण' लिखे हैं। हरिहर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रगळे' और उन पुराणों की कथा में कुछ अंतर भी हैं।

हरिहर ने बसवेश्वर के बाह्य तथा आंतरिक जीवन का सुंदर विश्लेषण किया है। आलोचकों का कहना है कि इस अंतरंग विश्लेषण में कवि का व्यक्ति भी प्रकाश में आया है। बसवेश्वर के व्यक्ति और कवि के व्यक्तित्व में समानता रही होगी। कारण यह है कि भक्ति के प्रसंग का वर्णन करते समय वह अत्यंत भाव-विह्वल हो जाते हैं। भक्तिरसपूर्ण वातावरण-निर्माण, सुंदर वर्णन और संवाद भाव-पूर्णता, भव्य कल्पना और सहज अलंकारों के प्रयोग के कारण 'बसवराजदेवर रगळे' एक मनोहर कृति बन गई हैं। उसकी भाषा में जादू है और शैली में आकर्षण। उसका कथानक तेरह स्थलों (सर्गों) में विभाजित है जिनमें पद्य और गद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। सम स्थलों में प्रायः गद्य का और विषम स्थलों में पद्य (रगळे) का प्रयोग हुआ है। हरिहर का गद्य पद्य के समान ही सुंदर, प्रवाहशील और सहज अलंकारों से युक्त है।

बसवराजु, डा० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

कन्नड के सुप्रसिद्ध अनुसंधित्सु विद्वान डा० एल० बसवराजु का जन्म 1919 ई० में कोलार ज़िले के इडुगूरू में हुआ। इन्होंने अपनी शिक्षा गुरुकुल तथा महाराजा कालेज मैसूर में पाई। अब तक इनकी 18 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पाठानुसंधान में इनकी विशेष रुचि है। बसव ने 'अक्कमहादेवी', 'अल्लमप्रभु' (दे०) आदि वीरशैव संतों की वाणियों का प्रामाणिक संस्करण अत्यंत परिश्रम के साथ प्रस्तुत किया है। 'अल्लमनवचन चंद्रिके' में आपने अल्लमप्रभु के वचनों का अत्यंत प्रमाणिक पाठ प्रस्तुत किया है जिस पर इन्हें मैसूर विश्वविद्यालय से डी० लिट० की उपाधि प्राप्त हुई है। अब तक यही मान्यता रही कि पुरंदरदास (1950 ई०) (दे०) ही कर्णाटक-संगीत के पितामह हैं, उनसे पहले संगीत-कृतियाँ थीं ही नहीं किंतु डा० बसवराजु ने अपने अनवरत परिश्रम से बचनकार वीरशैव संतों के गेयपद ढूंढ निकाले और यह दिखाया कि कन्नड संगीत-परंपरा बारहवीं शती से ही मिलती है। 'शिवदास गीतांजली' में अपने ऐसे वीरशैव संतों के गीतों का संकलन किया है 'शून्य संपादन' (दे०) का प्रामाणिक संस्करण उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह आपकी मेरुकृति है। इसके अतिरिक्त आपने संस्कृत के नाटकों का एक संग्रहानुवाद भी प्रस्तुत किया है।

बसवेश्वर *(क० ले०)* [समय—अनुमानतः 1130-1200 ई०]

बसवेश्वर को कर्नाटक के महापुरुषों में गिना जाता है। इनके जीवनचरित से संबंधित उपलब्ध सामग्री के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अनेक दंतकथाएँ और किंवदंतियाँ इनके विषय में प्रचलित हैं। आंतरिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि इनका जन्म 1130 ई० के लगभग हुआ था और मृत्यु 1200 ई० के लगभग हुई थी। इनका जन्मस्थान कर्नाटक का इंगलेश्वर बागेवाडि ग्राम है। इनको 'बसव', 'बसवण्णा', 'बसवराज' और 'बसवदेव' भी कहा गया है। बाल्यकाल में ही इन्होंने अर्थशून्य उपनयन संस्कार का विरोध किया था उसी समय इनके हृदय में सामाजिक कुप्रथाओं और रूढ़ियों के प्रति अविश्वास का भाव जाग्रत हो गया था और ईश्वर के प्रति विश्वास और भक्ति दृढ़ हो गई। ये कूडल संगमेश्वर देवालय चले गये थे। किंतु बाद में माता-पिता के प्रयत्न से इनका उपनयन हुआ था। कुछ वर्षों के पश्चात् इनका विवाह कल्याण के राजा बिज्जळ के मंत्री बलदेव की पुत्री से हुआ। विवाह के अनंतर भी ये कूडल में ही रहे। बलदेव की मृत्यु के बाद ये राजा बिज्जळ का आह्वान पाकर उनके मंत्री हुए। बिज्जळ इनके सत्कार्यों से बहुत प्रभावित थे, उन्होंने बसवेश्वर के वीरशैव-धर्म-प्रचार में सहयोग प्रदान किया। बसवेश्वर की प्रसिद्धि सुनकर दूर-दूर से लोग उनके दर्शन के लिए आते थे और इस प्रकार ये 'भक्ति-भंडारी' कहलाये। इन्होंने धार्मिक शिक्षा-दीक्षा के निमित्त 'शिवानुभव-मंडप' की स्थापना की जहाँ पंचाचार, अष्टावरण, षट्स्थल आदि वीरशैव-सिद्धांत सिखाये जाते थे। ये अध्यात्म के क्षेत्र में उच्च-नीच भावना के विरोधी थे, स्त्री और पुरुष को भी समान मानते थे। पेशों के कारण उच्चता और नीचता का भाव नहीं होता। समर्पण-बुद्धि से कोई भी पेशा अपनाया जाये, वह ठीक है, उसी में स्वर्ग है—इस विचार का इन्होंने प्रचार किया। 'कायक ही कैलास है' अर्थात् 'परिश्रम की कमाई ही स्वर्ग है'—ऐसे सुंदर विचार के उद्बोधन द्वारा उन्होंने समाज में नये उन्मेष का संचार किया। उन्होंने अपने विचार प्रकट करने के लिए जो साधन अपनाया वह कन्नड-साहित्य में 'वचन' (एक प्रकार गद्यगीत) कहलाता है। इनके वचनों का विषय भक्ति, ज्ञान और वैराग्य है, परंतु वह काव्य-रस से परिपूर्ण है। उनमें दैनिक जीवन से संबंधित दृष्टांतों के द्वारा तात्त्विक विषयों का सरल, सुबोध और सुंदर वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसवेश्वर वचनगळु (क० ले०)

संत बसवेश्वर (दे०) कर्णाटक के विभूतिपुरुषों में से हैं। बारहवीं शती में उन्होंने वीरशैव मत का उपबृंहण कर कर्णाटक में एक बहुत बड़ी क्रांति की थी। जाति-पाँति, छुआछूत आदि का विरोध कर उन्होंने धार्मिक साम्राज्य में लोकतंत्र की स्थापना की, आध्यात्मिक साम्यवाद की प्रतिष्ठा की। अपनी अनुभूतियों को सरल व प्रभावी वचनों के द्वारा उन्होंने अभिव्यक्त किया। यह वचन-साहित्य (दे०) कन्नड का अपना विशिष्ट साहित्य है जिसकी तुलना केवल उपनिषदों से की जा सकती है। यह विधा बसव से प्राचीन है। बसव ने उसका परिपूर्ण विकास किया। उनके समकालीन संत प्रभुदेव, अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का), चेन्नबसव (दे०), सिद्धराज आदि ने भी वचनों की रचना की है। वचन गद्य एवं पद्य के बीच की शैली है। उसमें गद्य की प्रवाहमयता न रहने पर भी उसकी सरलता होती है, पद्य की छंदोगति न रहने पर भी उसकी लय रहती है। लय-मात्रा की प्रचुरता के कारण कुछ वचन गेय बने हैं। इन्हें हम 'गद्य-काव्य' कह सकते हैं। इनकी विशेषताएँ भी हैं अनुभूति की गाढ़ता एवं सूक्ष्मता के साथ ही कहावतों व मुहावरों का प्रयोग, अलंकाररम्यता, सांकेतिकता एवं तात्त्विक श्लेष, प्रत्येक वचन-लेखक के इष्टदेव के नाम या 'अंकित' के साथ समाप्त होता है। बसवेश्वर के वचन भक्ति के भार से अवनत हैं, विचारों की विराटता से उन्नत हैं। उनमें एक ओर रहस्यवाद के श्रेष्ठतम रूपों के दर्शन होते हैं, प्रपत्ति के परिपूर्ण चित्र मिलते हैं, निर्मल आत्मालोचना है तो दूसरी ओर समाज की कटु आलोचना है। विडंबना है। इस तरह विचार एवं अनुभूति का अप्रतिम संगम इन वचनों में हुआ है।

बसवेश्वर का इष्टदेव नाम या अंकित है। 'कूडल संगमदेव'। वचनों की संख्या ठीक निश्चित नहीं है। अब तक प्रकाशित वचनों की संख्या 1250 है। इनको सबसे पहले संपादित कर प्रकाशित करने का श्रेय स्व० 'हळकट्टी', प्रो० शि० शि० बसवनाल आदि को मिलता है। इन वचनों को वीरशैव मतानुसार षट्स्थलों में वर्गीकृत किया गया है। बसवेश्वर के वचनों में हिंदी संतसाहित्य की तरह गुरु की महिमा, ईश्वर की सर्वव्यापकता, एकेश्वरवाद, मार्मिक बंधन-पाखंड-विडंबन, वर्णाश्रम धर्म का विरोध, छुआछूत का खंडन, बहुदेवोपासना का विरोध, सदाचार तथा अद्वैतानुभूति, विरहानुभूति, आदि के साथ-साथ 'कर्म' या 'कायक' पर विशेष ज़ोर दिया गया है। यह बसवेश्वर की सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने उदासी पंथ नहीं चलाया।

बसवेश्वर के वचन अपनी भावतीव्रता एवं वैचारिकता के अतिरिक्त साहित्यिक गुणों से भी मंडित हैं।

बसु, अमृतलाल (बँ० ले०) [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

अमृतलाल बसु की रचनाओं को इन वर्गों में रखा जा सकता है—**प्रहसन** : 'हीरकचूर्ण' (1875), 'चोरेर उपर बाटपाड़ि' (1876), 'तिलदर्पण' (1881), 'विवाह विभ्राट' (1884), 'ताज्जब व्यापार' (1890), 'राजा बहादुर' (1891), 'कालापानि' (1893), 'ब्राब्रू' (1894), 'एकाकार' (1895), 'बौमा' (1997), 'ग्राम्य विभ्राट' (1898), 'कृपेन धन' (1900), 'साबास आटाश' (1909); **नाटक** : 'तरुबाला' (1891), 'विभ्राता' (1893), 'आदर्श बंधु' (1900), 'खासदखल' (1912), 'नवयौवन' (1914), 'याज्ञसेनी' (1928)।

अमृतलाल बसु के प्रहसन दो प्रकार के हैं—शुद्ध प्रहसन तथा विद्रूपात्मक प्रहसन। पहले वर्ग में ये हास-परिहास की सामग्री प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरे वर्ग में तीक्ष्ण व्यंग्य एवं कटु प्रहार करते हैं। बसु का प्रिय क्षेत्र है पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण तथा भारतीय मूल्यों की उपेक्षा और अवहेलना करने वाले व्यक्ति पर कटाक्ष। बसु ने सबसे कड़ी चोट स्त्री-स्वाधीनता पर की है। स्वदेशी आंदोलन की उपेक्षा और ऐश्वर्य-विलास में खो जाने वाले युवकों पर भी बसु ने व्यंग्य किया है। अंततः वे धार्मिक एवं नैतिक निष्ठा उत्पन्न करना चाहते हैं। इन प्रहसनों की रंगमंचीय सफलता और प्रसिद्धि असाधारण रही।

दीनबंधु (दे०) में मात्र उपहास है, गिरीश (घोष—दे०) भावनिष्ठ हैं, बसु में विसंगतियों पर गहरी चोट की क्षमता है। निश्चय ही इन्होंने बँगला प्रहसन तथा हास्य-व्यंग्य को नयी भंगिमा एवं गरिमा प्रदान की है।

बसु, कृष्णप्रसाद (उ० ले०)

इनका जन्म जाजपुर के कुँओसरपुर ग्राम में हुआ था। ये अच्छे नाटककार और संगीतज्ञ हैं, साथ ही ये सशक्त गद्यकार, कवि, गायक एवं कुशल शिक्षक भी हैं। इन्होंने कई गीति-नाट्य लिखे हैं और जात्रा अभिनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नूतन शैली के साथ गद्य का प्रयोग किया है। 'झंकार' मासिक पत्रिका में इन्होंने आधुनिक जात्रा-साहित्य का इतिहास 'आखड़ा घरर बैठक' (दे०) के नाम से प्रकाशित किया था। गद्य के क्षेत्र में यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इनकी शैली में अपनी विशिष्ट भंगिमा के कारण एक विशेष आकर्षण है। उसमें ग्राम्य एवं शिष्ट भाषा का सुंदर सम्मिश्रण है, जो सूक्ष्म हास्य से अनुविद्ध है। संगीत नाट्य-समारोहों के द्वारा जनता के रुचि-परिष्कार में इन्होंने विशेष योगदान दिया है।

बसु, बुद्धदेव *(बँ० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

आधुनिक बँगला साहित्य के क्षेत्र में बुद्धदेव बसु जीवन एवं यौवन के कवि रूप में विख्यात हैं। कविता, उपन्यास, कहानी एवं समालोचनात्मक निबंध लिखकर इन्होंने साहित्य-जगत् में अपना स्थान बना लिया है। बुद्धदेव का पहला काव्य-ग्रंथ है 'मर्मवाणी' (1925)। इसके उपरांत 'बंदीर बंदना' (1930), पृथिवीर प्रति' (1933) 'कंकावली' (1935), 'शीतेर प्रार्थना : बसंतेर उत्तर' (1955), आदि काव्य-ग्रंथ विशेष समादृत हुए हैं। युद्धोत्तर युग में प्रेम, धर्म एवं नीति के मूल्य-बोध में किस प्रकार परिवर्तन आया उसी का परिचय मिलता है। इनकी कविता में प्रेम की देहवादी व्याख्या में कवि मुखर दिखाई पड़ता है। अपना, मैत्रेयी, अमिता, रमा, कंकावती आदि देही प्रियाओं के प्रति कवि ने अपना प्रेम-निवेदन किया है।

बुद्धदेव के उपन्यास और कहानी की पुस्तकें लगभग 50 हैं। इन्होंने उपन्यास की उपस्थापना-शैली में नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। पारिवारिक जीवन की साधारण घटनाओं की पटभूमिका में लेखक ने अपना ही आत्म-विस्तार किया है और कदाचित् इसीलिए उनके उपन्यासों में एकसरता का दोष दिखाई पड़ता है। इनके उपन्यासों में मनुष्यों की भीड़ नहीं है; लेखक अपने मिलने वाले नर-नारियों को ही घुमा-फिरा कर एक के बाद-एक उपन्यास में ले आया है। इनके कतिपय प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं: 'रडोड्रेन् गुच्छ' (1912), 'ये दिन फुटल कमल' (1933) 'घूसर गोधूलि' (1333), 'लालमेघ' (1934), 'तिथिडोर' (1949), 'मालिनाथ' (1952)। कहानियों के संग्रह में 'एरा ओरा' एवं 'आरो अनेक' (1932), 'प्रेमेर विचित्रगति' (1934), 'खातार शेष पाता' (1943) आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रबंध रचना एवं साहित्य-समालोचना में बुद्धदेव बाबू की निपुणता एवं प्रौढ़ता स्पष्ट है। आत्मकथामूलक भ्रमणकथा 'हठात् आलोर झलकानि' (1935), एवं 'साहित्य-चर्चा' (1954), 'रवींद्रनाथ : कथा-साहित्य' (1954) आदि समालोचनात्मक ग्रंथ लेखक की प्रतिभा का सुंदर निदर्शन हैं।

बसु, मनोज *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

मनोज बसु ने अपने साहित्यिक जीवन के प्रारंभ में परिष्कृत स्वाभाविक जीवन-रस एवं रोमांस से युक्त सुमधुर कहानियों की रचना की थी। बाद में इन्होंने कतिपय उत्कृष्ट उपन्यासों की रचना करके बंगाल के राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन-स्तर तथा सुंदरबन के इलाक़े के जलजंगलवासी मनुष्यों की यथार्थनिष्ठ रोमानी कहानियों को अपरूप माधुर्य प्रदान किया था। इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रहों में 'वन-मर्मर' एवं 'नरबाँध' (1933) सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। अतिप्राकृत की रोमानी अनुभूति एवं सामंततंत्रीय अतीत के रहस्य को मनस्तत्त्वानुमोदित उपाय से उपस्थित कर इन्होंने अपूर्व व्यंजनामयता की सृष्टि की है। मनोज बाबू के उल्लेखनीय उपन्यासों में 'भुलिनाइ' (1942), 'सैनिक' (1946), 'जनजंगल' (1951), 'वृष्टि वृष्टि' (1957), 'आमार फाँसिहल' (1956), 'रक्तेर बदले रक्त' (1956), 'मानुप गडार कारिगर' (1959), 'रूपवती' (1960), 'वन केटे बसत' (1961), 'निशिकुटुंब' (1953) आदि प्रसिद्ध हैं।

उपन्यासों में इन्होंने अतीत-विलासी रोमानी दृष्टिकोण के स्थान पर यथार्थ जगत् के अंकन के प्रति अधिक ध्यान दिया है परंतु इनका स्नेहशील कोमल प्राण साधारणतः जीवन के अप्रीतिकार रूप के उद्घाटन की ओर प्रवृत्त नहीं रहा। इन्होंने राजनीतिक चिंतन-द्वंद्व, सांप्रदायिक नृशंसता, शिक्षक-समाज का अधःपतन, समुद्र तट एवं सुंदरवन के इलाके के मेहनती लोगों की प्रकृति एवं स्वार्थान्वेषियों में उनके निरंतर संग्राम के नाना अनतिरंजित चित्रों को वस्तुनिष्ठता के साथ प्रस्तुत किया है परंतु नैराश्यमूलक यथार्थ के स्थान पर परिसमाप्ति में आदर्शात्मक रोमानी मनोवृत्ति का ही परिचय दिया है। विषय-वैचित्र्य की दृष्टि से लेखक का 'निशिकुटुंब' सर्वाधिक जनप्रिय उपन्यास है जिसमें चौर्यवृत्ति की प्राचीन यथार्थ-सम्मत एवं भावादर्शमूलक कहानी को निर्बाध कौतुकजनक एवं रोमांचकारी ढंग से व्यक्त किया गया है। वस्तुतः चौर्यवृत्ति के इतिहास के व्याज से उन्होंने हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंख्य एवं विचित्र नर-नारियों के जीवन-मेले का कौतूहलाभिभूत दर्शक बनने का मौक़ा दिया है। उपन्यास-क्षेत्र में स्वच्छंद गति एवं जीवन पर्यवेक्षण शक्ति मनोज बसु की सबसे बड़ी विशेषताएँ रही हैं। ये प्रधानतः कथाकार हैं परंतु इनके नाटक 'नूतन प्रभात' (1944), 'राखिबंधन' (1950) आदि एवं 'चीन देखे एलाम' भ्रमण-वृत्त इनकी प्रतिभा के विशिष्ट निदर्शन हैं।

बसु, मनोमोहन *(बँ० ले०)* [जन्म—1831 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

आधुनिक युग के प्रारंभिक नाट्यकारों में मनोमोहन बसु का नाम विशेष प्रसिद्ध है। मनोमोहन बसु ने प्राच्य आदर्श के अनुसरण पर अपने नाटकों की रचना की है। सामाजिक नाटकों के रचयिता होने पर भी लेखक ने पौराणिक नाटकों के रचनाकार के रूप में ही अपने आप को प्रतिष्ठित किया है। 'प्रणय-परीक्षा' (1869), 'आनन्दमय नाटक' (1890) आदि उनके सामाजिक नाटक है एवं 'रामेर अधिबास ओ बनबास' (1867), 'सती' (1873) तथा 'हरिश्चन्द्र' उल्लेखनीय पौराणिक नाटक हैं। लेखक ने पुरानी पौराणिक यात्राओं (लोकनाटक) की वैचित्र्यहीनता एवं एकरसता के स्थान पर आधुनिक पौराणिक नाटकों की सफल रचना की, यद्यपि उनके पौराणिक नाटकों को विशुद्ध नाटक न कहकर गीताभिनय कहना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। मंचाश्रयी नाट्यकला के ढाँचे में लोकनाटक की वस्तु-वर्णना, आवेग एवं संगीतरस का समन्वय कर इन्होंने बंगाली नाट्य-प्रेमियों को एक नये नाट्यास्वाद से परिचित कराया।

पौराणिक भक्ति-भावना के साथ लेखक ने अपने नाटकों में देशात्मबोध की भी सार्थक अभिव्यक्ति की है। नाटकों के अतिरिक्त 'पद्ममाल', 3 खंड (1870-94) 'मनोमोहन गीतावली' आदि गीत एवं कविता-संग्रह लेखक के कवि-मन के परिचायक हैं।

बसु, मालाधर *(बँ० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती का उत्तरार्ध]

इनका जन्म अनुमानतः पंद्रहवीं शती के मध्य में हुआ था। अपने ग्रंथ 'श्रीकृष्णविजय' (दे०) में कवि ने आत्म-परिचय दिया है। उससे ज्ञात होता है इनके पिता का नाम भगीरथ, माता का नाम इंदुमती, जाति कायस्थ, निवास वर्द्धमान ज़िला में कुलीन ग्राम था। तत्कालीन गौड़ प्रदेश के मुसलमान शासक से इन्हें 'गुण-राजखान' की उपाधि मिली थी।

कवि ने 'श्रीकृष्ण विजय' अथवा 'गोविंद विजय' अथवा 'गोविंद मंगल' ग्रंथ 1473 ई०-1481 ई० के मध्य लिखा था। यह ग्रंथ श्रीमद्भागवत के दसवें-ग्यारहवें स्कंध का भावानुवाद है, अक्षरशः अनुवाद नहीं। ग्रंथ अध्याय, परिच्छेद आदि में विभक्त नहीं है, केवल राग-रागिनियों के विभाग हैं। ग्यारहवें स्कंध में दर्शन का भी अंशतः समावेश है।

चैतन्य के आविर्भाव से पूर्व बंगाल में वैष्णव धर्म की दो धाराएँ समान रूप से प्रवाहित थीं। एक का श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य एवं भगवत्-तत्त्व में और दूसरी का माधुर्य भाव में अनुराग था जिसमें श्रीकृष्ण की वृंदावन-लीला, गोपियों के साथ कृष्ण की केलि आदि प्रमुख हैं। जयदेव (दे०), बडुचंडीदास (दे०) आदि द्वितीय धारा अर्थात् माधुर्य भाव के कवि हैं जबकि मालाधर बसु ने कृष्ण के ऐश्वर्य भाव को प्रधानता दी है।

इनका काव्य सरल एवं स्वच्छंद भाषा में आडंबरहीन 'पयार' छंद में कवि के भक्त हृदय एवं कवित्व का परिचय देता हुआ पाठक अथवा श्रोता के मन को हठात् आकर्षित करता है। 'श्रीकृष्ण-विजय' बँगला साहित्य की ही नहीं अपितु गौड़ीय वैष्णव धर्म की भी एक विशेष कृति है। इसका महत्व इससे जाना जा सकता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका उल्लेख किया है।

बसु, राजनारायण *(बँ० ले०)* [जन्म—1826 ई०; मृत्यु—1899 ई०]

आधुनिक युग के उत्थान-काल के बँगला गद्य-कारों में राजनारायण बसु ने उच्छल प्राणरस से युक्त निबंधों की रचना कर बँगला निबंध-साहित्य को अनन्यता प्रदान की है। बंगला साहित्य के ये सर्वप्रथम निबंधकार थे जिन्होंने निर्वैयक्तिक ज्ञान-प्रधान निबंधों के स्थान पर व्यक्ति जीवन-रस से उद्वेलित निबंधों की रचना की।

इनकी रचनाएँ हैं : 'धर्मतत्त्वदीपिका' (प्रथम तथा द्वितीय भाग), (1866) 'आत्मीयसभार वृत्तांत' (1867), 'सेकाल आर एकाल', (1874 ई०), 'हिंदू अथवा प्रेसिडेंसी क्लेजेर वृत्तांत' (1876), 'बँगला भाषा ओ साहित्य विषयक वक्तृता' (1878), 'आत्मचरित' (1901)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस युग में शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा एवं विदेशी भाषा के प्रयोग को लेकर विवाद उपस्थित हुआ था। राजनारायण ने मातृभाषा के समर्थन में चलाए गए आंदोलन का हमेशा सशक्त शब्दों में समर्थन किया था। इनका कहना था कि मातृभाषा मातृदुग्ध की तरह है। मातृदुग्ध जिस प्रकार बालक के लिए तृप्तिकारक एवं बलवर्द्धक है, पशुदुग्ध उस प्रकार नहीं। 'सेकाल ग्रार एकाल' ग्रंथ में इन्होंने अँग्रेज़ी एवं अँग्रेज़ियत पर करारी चोट की है।

इनकी रचनाएँ अधिकतर भावप्रधान हैं परंतु गुरुगंभीर मननशील रचनाओं की भी कमी नहीं। इनकी निबंध-शैली एक ओर जहाँ भाव-प्रधान व्यक्तित्वनिष्ठ है, वहीं दूसरी ओर मनन-प्रधान, ज्ञान-गरिष्ठ भी।

बसु, रामराम *(बँ० ले०)*

रामराम बसु बँगला में मुद्रित प्रथम मौलिक गद्यग्रंथ के लेखक हैं। इनकी जन्म-तिथि का पता नहीं चलता परंतु मृत्यु-वर्ष है 1813 ई०। फ़ोर्ट विलियम कालेज में बँगला अध्यापक के रूप में काम करते हुए इन्होंने केरी साहब के साथ मिलकर प्रारंभिक बँगला गद्य का स्वरूप स्थिर करने में विशेष योग दिया।

इनकी पहली पुस्तक 'राजा प्रतापादित्य-चरित्र' 1801 ई० में प्रकाशित हुई। फ़ोर्ट विलियम कालेज के छात्रों के लिए यह पहली पाठ्यपुस्तक थी। उनकी दूसरी पुस्तक 'लिपिमाला' 1802 ई० में प्रकाशित हुई।

फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के बहुत पहले से रामराम बसु टॉमस तथा केरी साहब के मुंशी के रूप में काम करते हुए मसीही मत के प्रचारार्थ 'ख्रीष्ट-स्तव' (1788 ई०) आदि की रचना कर चुके थे परंतु इन्होंने स्वयं कभी मसीही धर्म स्वीकार नहीं किया; साथ ही हिंदू पुराणपंथिता के विरुद्ध इन्होंने तीक्ष्ण विद्रूप-वाण चलाने में भी कसर नहीं छोड़ी।

बँगला गद्य के उद्भव की दिशा में रामराम बसु का स्थान महत्वपूर्ण है।

बसु, समरेश *(बँ० ले०)*

सांप्रतिक काल के कथा-साहित्यकारों में समरेश बसु की जनप्रियता सर्वाधिक है। इनकी ख्याति चतुर्थ दशक से ही फैलने लगी थी। इनके प्रारंभिक उपन्यासों में 'उत्तरंग' एवं 'गंगा' सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। 'उत्तरंग' में सिपाही-विद्रोह के एक पलातक सिपाही की कहानी है एवं 'गंगा' में मत्स्यजीवी समाज के जीवन का अपूर्व परिचय है। इन यथार्थधर्मी कथावस्तुओं में ये रोमानी कल्पना के स्पर्श से एक ऐसे चित्र का प्रसार करते हैं कि सहज ही पाठक आकर्षित हो उठता है। प्रारंभिक उपन्यासों में 'विटि रोडेर धारे', 'नयनपुरेर माटि' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

समरेश बाबू ने 'विवर', 'प्रजापति', 'पातक' आदि उपन्यासों की रचना द्वारा मानव-मन की गहराई में उतर कर, मानव-मन की विस्मयकर स्वविरोधिता, व्यक्तित्व के आत्मसंघर्ष, बुराई और अच्छाई के प्रति युगपत् प्रबल आकर्षण, अनुताप, अपराध एवं प्रायश्चित्त का वर्णन किया है। इन उपन्यासों के नायकों की अवदमित यौन-कामना या कोई अवदमित क्षोभ ही इनकी समस्त कर्म-प्रेरणा का उत्स है। स्वीकारोक्ति इस प्रकार के उपन्यासों का मूल वक्तव्य है एवं यौन-प्रवृत्ति को मानव-जीवन का नियामक माना गया है—यद्यपि अवरुद्ध यौन कामना का न कोई अंत है, न समाधान। किंतु समरेश बसु केवल यहीं नहीं रुके हैं। अभी हाल ही में प्रकाशित अपने दो उपन्यासों, 'सुचाँदेर स्वदेश-यात्रा' एवं 'मानुष्य' में इन्होंने जीवनवादी शक्तिशाली औपन्यासिक का परिचय दिया है।

पिछले 25 वर्षों में समरेश बसु ने दो सौ के करीब कहानियाँ लिखी हैं जिनमें जीवन की विचित्र अभिज्ञता एवं जीवन के कभी न समाप्त होने वाले संग्राम को प्राधान्य मिला है। मानव-जीवन के सुख-दुःख को प्रकट करते हुए ये अपनी कहानियों में कभी पात्रों के आत्मकथन द्वारा, कभी प्रबल आवेग-कंपित वर्णन के द्वारा तो कभी निरासक्त विश्लेषण के द्वारा एक ऐसे प्रभाव का विस्तार करते हैं कि पाठक अभिभूत होकर रह जाता है।

बसु, सुनिर्मल *(बँ० ले०)* [जन्म—1902 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

कवि सुनिर्मल बसु ने शिशु-साहित्य की रचना में ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा लगा दी थी। इनकी हँसी की कविताएँ पिछले चार दशकों से बंगाली शिशुओं का मनोरंजन करती आ रही हैं। 'टुनटुनिर गान' (1930), 'हाओयार टोला', आदि कविता-पुस्तकों की रचना कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने अपने को सुकुमार राय (दे० राम, सुकुमार) का उत्तरसाधक प्रमाणित किया है।

इनकी कविताओं से इनका सदानंद शिल्प-प्राण हमारी आँखों के सम्मुख उद्भासित हो उठता है। इन्होंने शिशु-साहित्य के निर्माण में ही हृदय का समस्त अनुराग समर्पित कर दिया था।

बह्र *(उर्दू० पारि०)*

बह्र उन विशिष्ट शब्दों को कहते हैं जिन पर काव्यबद्ध पदों को तोला और जाँचा जाता है। इसका उद्देश्य यह निर्णय करना होता है कि कविता की पंक्तियों का वज़न ठीक है या नहीं। अतः 'बह्र का दूसरा नाम 'वज़न' भी है। इसे हम छंद का पर्यायवाची भी कह सकते हैं। बह्र के अंगों को 'अरकान' कहते हैं और किसी एक अंग को रुकुन। जिन अंशों से रुकुन बनता है उन्हें 'अजज़ा' या 'असूल' कहते हैं।

बह्रु ल-फ़साहत *(उर्दू० कृ०)*

'बह्रु ल-फ़साहत' उर्दू काव्यशास्त्र का एक विशद ग्रंथ है जिसकी रचना स्वर्गीय मौलवी नज़्मुलग़नी साहब ने की है। यह ग्रंथ उनके भगीरथ प्रयत्न तथा कठोर साधना का फल है जिसकी साहित्य-जगत में बहुत सराहना हुई है। यह ग्रंथ बारह सौ से अधिक पृष्ठों का बृहत् ग्रंथ है। इसमें काव्य, अलंकारों तथा छंदों (बह्रों) के बारे में बहुमूल्य ज्ञातव्य सामग्री जुटाई गई है। इसकी शैली परंपरागत है। वर्णनों तथा उदाहरणों का बाहुल्य है। अतिविस्तृत वर्णन तथा अत्यधिक उदाहरण इस ग्रंथ के विशाल कलेवर का कारण हैं और पाठक को कुछ खटकने लगते हैं और छंद-विधान जैसा गंभीर विषय उलझाव के कारण सुबोध नहीं रहता।

बहुरूपी *(म० कृ०)*

महाराष्ट्र के लोकप्रिय एवं यशस्वी अभिनेता श्री चिंतामण राव कोल्हटकर ने अपने जीवनानुभवों को 'बहुरूपी' नामक आत्मकथा में लिपिबद्ध किया है। इस आत्मकथा का प्रकाशन 1956 ई० में हुआ था।

इसमें लेखक ने निजी व्यक्तित्व का तथा अभिनेता-रूप में प्राप्त विविध अनुभवों का रोचक इतिहास प्रस्तुत किया है। अपने जीवन-काल में वह जिन नाटककारों के संपर्क में आया, उनका सजीव चरित्र-चित्रण किया गया है।

व्यवसाय के साहित्यकार न होते हुए भी कोल्हटकर ने 'बहुरूपी' द्वारा सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। साहित्य अकादेमी ने 'बहुरूपी' रचना पर 5000 रु० के पुरस्कार से उन्हें गौरवान्वित किया है।

बहुलार्थकाव्यमु *(ते० पारि०)*

एक से अधिक अर्थों को व्यंजित करने वाले काव्य बहुलार्थ काव्य या द्व्यर्थी कहे जाते हैं। तेलुगु में इस प्रकार की अनेक रचनाएँ हैं। इस दिशा में पहला उल्लेखनीय प्रयास पिंगळिसूरना (दे०) की 'राघवपांडवीयमु' (दे०) नामक कृति है। इस काव्य में एक ही रचना के अंतर्गत 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) की कहानी है। भाषा पर अपार अधिकार और संतुलित रस-दृष्टि के द्वारा ही इस प्रकार की रचना संभव है। इसके बाद भट्टुमूर्ति (दे० रामराजभूषणुडु) के 'हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' (दे०) का उल्लेख होना चाहिए। इस शैली में पाँच काव्य और प्रकाशित हुए पेदरामात्य का 'शिवरामभ्युदयमु', लक्ष्मण कवि का 'लंकाविजयमु', मंत्रिप्रेगडु सूर्यप्रकाशमु का 'कृष्णार्जुनचरित्रमु', मृत्युंजय कवि का 'धरात्मापरिणयमु' और वेंकटाचार्य का 'अचलात्मजीपरिणयमु'। तीन अर्थ देने वाले काव्यों में नेल्लूरि वीर राघव कवि का 'राघवयादवपांडवीयमु' और एककूचि बालसरस्वती (दे०) का 'यादवराघवपांडवीयमु' उल्लेखनीय हैं। ओरुगंटि सोमशेखर का 'रामकृष्णार्जुनरूपनारायणीयमु' चार-चार अर्थ देने वाली रचना है। इस प्रकार की रचनाओं में कवि का बौद्धिक विलास जितना प्रदर्शित होता है उतना उसके रस-भाव-निरूपण का प्रमाण नहीं मिलता।

बाँकीदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1971 ई०; मृत्यु—1833 ई०]

ये जोधपुर राज्यांतर्गत भाड़ियावास नामक ग्राम में आशिया-चारण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम फतहसिंह था। ये काव्य (दे० पिंगल-पिंगल) व्याकरण, इतिहास आदि कई विधाओं तथा संस्कृत, डिंगल, ब्रजभाषा एवं फ़ारसी के ज्ञाता थे। जोधपुर-नरेश मानसिंह इनको बहुत मानते थे। इन्होंने लगभग 27 ग्रंथों की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है, जिनमें 'वीरविनोद', 'सर-छत्तीसी' एवं 'नीति-मंजरी' विशेष प्रसिद्ध हैं। ये डिंगल के प्रथम श्रेणी के कवि थे। भाव-व्यंजना, रस-योजना और अलंकार-विधान की दृष्टि से इनकी प्रतिभा अद्भुत थी। इनकी शैली अत्यंत संयत, स्वाभाविक तथा प्रभावशालिनी है। इनके नीति-वचनों में गंभीर तथा मौलिक विचार मिलते हैं।

Done

बाँग-ए-दरा *(उर्दू० कृ०)* [रचना—1924 ई०]

'बाँग-ए-दरा' उर्दू के सुविख्यात दार्शनिक कवि डा० मुहम्मद इक़बाल (दे०) की सर्वप्रथम कृति है। इसमें उनका प्रारंभिक काव्य संगृहीत है। इसमें राष्ट्रीयता तथा प्राकृतिक दृश्यों की रचनाएँ हैं। इस संग्रह की भाषा भी स्पष्ट, सरल तथा सरस है। अन्य कृतियों की अपेक्षा इक़बाल ने इस कृति में अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति से काम लिया है। इसमें वह गंभीरता तथा जटिलता नहीं है जो इक़बाल की बाद की रचनाओं में है। आगे चलकर इक़बाल के राष्ट्रीय दृष्टिकोण में अंतर आ गया था। फलतः वह हिंदोस्तानियत से हटकर इस्लामियत में केंद्रित हो गया था। वे हिंदोस्तान की बजाय अपना असली वतन हिजाज़ को समझने लगे थे। 'हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्ताँ हमारा' कहने वाला इक़बाल 'मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा' कहने लगा।

'तान-ए-हिंदी', 'नया शिवाला', 'शिकवा', 'जवाब-ए-शिकवा', 'जुगनु', 'एक आरज़ू' इत्यादि कविताएँ इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

'बाँग-ए-दरा' के अंतिम भाग में कुछ कलाम हास्य-व्यंग्यात्मक भी हैं जो इक़बाल ने अकबर इलाहाबादी के रंग में कहने की कोशिश की है किंतु उनका यह प्रयास विशेष सफल नहीं कहा जा सकता।

बाँगला अभिधान *(बँ० कृ०)*

1743 ई० में लिसबन से प्रकाशित मानोयेल द्वय आसुम्पसाँओ रचित 'Vocabulario em Hioma Bengalla e Portuguez' ग्रंथ में बँगला शब्दकोश का प्रारंभिक रूप परिलक्षित होता है। इसके उपरांत हेनरी पिट्स फ़ॉर्स्टर (1799 ई०) का नाम उल्लेखनीय है (द बाँगला व्याकरण)। फ़ॉर्ट विलियम कॉलेज (दे०) एवं मिशनरियों के प्रयत्नों से ही बँगला व्याकरण एवं अभिधान (कोश)-रचना का कार्य अग्रसर होता रहा। 1825 ई० में प्रकाशित केरी का 'बँगला अभिधान' एवं उसके उपरांत 1829 ई० में प्रकाशित मार्शमेन का कोश विशेष उल्लेखनीय हैं। 1834 ई० में रामकमल सेन का दो खंडों में प्रकाशित बँगला अभिधान बँगला भाषा की प्रकृति के साथ दृढ़ रूप से संबद्ध है। इसके उपरांत इस काम में थोड़ी शिथिलता आ गई। बीसवीं शती में योगेशचंद्र राय विद्यानिधि की चेष्टा के उपरांत ज्ञानेंद्र मोहन दास का दो खंडों में 75 हज़ार से भी अधिक शब्दों का वैज्ञानिक प्रथानुयायी 'बँगला भाषा का अभिधान' 1916 ई० में प्रकाशित हुआ। इसके बाद अब तक प्रकाशित सर्ववृहत् एवं महत् अभिधान है 'बंगीय शब्दकोश' (दो खंड) जो 1946 ई० में प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय हरिचरण वंद्योपाध्याय के जीवन की यह सर्वोत्तम एवं महत् कीर्ति है इसके अतिरिक्त राजशेखर वसु (दे०) की 'चलंतिका' सभ्य बंगाली समाज का अत्यंत उपयोगी अभिधान है। संप्रति सुकुमार सेन (दे०) अँग्रेज़ी में 'Benga lexicon' नाम बँगला शब्दकोश की रचना कर अबंगाली एवं बंगाली विद्वत्-समाज के कृतज्ञता-भाजन हुए हैं। क़ाज़ी असुदुल वदूद का 'व्यावहारिक शब्दकोश', शुबलचंद्र मित्र का 'नूतन बंगला अभिधान', कामिनीकुमार राय का 'लौकिक शब्दकोश' आदि इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं।

बाँगला व्याकरण *(बँ० कृ०)*

पुर्तगाली विद्वान मानोयेल द्वय आसुम्पसाँओ ने बँगला भाषा के प्रथम व्याकरण की रचना की। इस व्याकरण का नाम था 'Vocabulario em Hioma Bengalla e Portugueg' जो 1743 ई० में लिसबन से प्रकाशित हुआ। यह ग्रंथ यों तो बँगला-पुर्तगाली शब्दकोश था पर इसकी भूमिका में बँगला व्याकरण के मूल तत्त्वों का उल्लेख हुआ था इस प्रकाशन के 35 वर्ष बाद व्याकरण रचना के उद्देश्य से ही नाथुयेल ब्रासि ह्यालहेड ने 'ए ग्रामर ऑफ़ द बेंगाल लेंगवेज' (1779 ई०) की रचना की। इसी ग्रंथ में सर चार्ल्स विलकिंस के आदेशानुसार पंचानन कर्मकार के द्वारा तैयार सर्वप्रथम बँगला अक्षरों का मुद्रण हुआ इस ग्रंथ की अपूर्णता को देखकर हेनरी पिट्स फ़ॉर्स्टर ने 1799 ई० में 'ए वोकेबुलरी इन टू पार्टस्—इंगलिश एंड बेंगाली एंड वाइसवर्सा' ग्रंथ की रचना की है। इसके उपरांत लिडेन के अनुरोध पर फ़ोर्ट विलियम कालेज (दे०) के पंडित मृत्युंजय (दे०) विद्यालंकार ने 1807 ई० एवं 1811 ई० के बीच बँगला भाषा के एक संक्षिप्त व्याकरण की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना की। संप्रति लंदन-स्थित इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी से इस ग्रंथ का उद्धार कर 1770 ई० में तारापद मुखोपाध्याय ने इसे प्रकाशित किया। अब यह नहीं कहा जा सकता कि राममोहन राय (दे०) का 'गौड़ीय व्याकरण' (1834) किसी बंगाली के द्वारा रचित सर्वप्रथम व्याकरण है। फ़ॉर्सटर के उपरांत (1801) में विलियम केरी का 'ए ग्रामर ऑफ़ द बेंगाली लैंगवेज' प्रकाशित हुआ। केरी साहब के ग्रंथ के उपरांत ही राममोहन राय का ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है। इसके उपरांत बँगला भाषा एवं साहित्य की क्रमोन्नति के साथ-साथ व्याकरण-रचना का भी विस्तार हुआ है। आधुनिक काल के व्याकरणों में ग्राचार्य सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय (दे० चाटुर्ज्या), आचार्य सुकुमार सेन (दे०) आदि के व्याकरण विशेषत: उल्लेख्य हैं।

बाँगला साहित्येर इतिहास *(बँ० कृ०)*

यह विभिन्न इतिहासों की विवेचना है।

बँगला साहित्य के इतिहास के अंधकार युग का संकेत प्राचीन पद-संकलन-ग्रंथों में उपलब्ध होता है। कविवर ईश्वरचंद्र गुप्त के प्राचीन कवियों की जीवनी एवं रचना संग्रह-प्रयास के माध्यम से (1853-55) इतिहास-रचना की दिशा में प्रथम नवचिंतन का अरुणोदय हुआ। इसके उपरांत 'विविधार्थ संग्रह' में प्रकाशित (1858-59) राजेंद्रलाल मित्र के 'बंगभाषार उत्पत्ति' निबंध में साहित्य के इतिहास का एक ढाँचा खड़ा किया गया। इसकी पथरेखा का अनुसरण करते हुए हरिमोहन मुखोपाध्याय का 'कविचरित' (1869), महेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय का 'बंगभाषार इतिहास' एवं महेंद्रनाथ भट्टाचार्य का 'बाँगला साहित्य-संग्रह' प्रकाशित हुआ। रामगति न्यायरत्न के 'भाषा ओ साहित्य विषयक प्रस्ताव' (1872) ग्रंथ को बँगला साहित्य के ग्रानुपूर्विक इतिहास की मर्यादा प्रदान की जा सकती है। यों इस ग्रंथ प्रमाण की अपेक्षा श्रुति का आधिक्य है, युक्ति की अपेक्षा आवेग प्रवलतर है। बँगला साहित्य के प्रथम सार्थक इतिहास के रचयिता दीनेशचंद्र सेन (दे०) है जिन्होंने 'बंग भापा ओ साहित्य' के नाम से 1896 में ग्रपना ग्रंथ प्रकाशित किया। दीनेशचंद्र ने बंगाल के गाँव से पांडुलिपियों का उद्धार कर नाना नूतन उपादानों की सहायता से विश्लेपणात्मक रीति का ग्रनुसरण करते हुए अपने की ग्रंथ की रचना की। दीनेशचंद्र का कविमन इस ग्रंथ में सर्वत्र स्पष्ट है। परिणामस्वरूप इसमें ऐतिहासिक निष्ठा की अपेक्षा आवेग का प्राधान्य हो गया है परंतु इसमें संदेह नहीं कि नये उपादानों के संग्रह के माध्यम से बँगला साहित्य के पूर्णांग-सार्थक इतिहास-रचना के मार्ग को उन्होंने ही प्रशस्त किया है। उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करते हुए सुकुमार सेन (दे०) ने 'बाँगला साहित्येर इतिहास' (प्रथम खंड 1940) की चार खंडों एवं पाँच स्तरों में रचना की। यथार्थ ऐतिहासिक मानदंड पर वैज्ञानिक दृष्टि के माध्यम से अप्रकाशित तथ्यों की भित्ति पर यह विस्मयकर रचना-कीर्ति बाँगाली मनीषा का चिरकाल का गौरव है। सुकुमार सेन के ग्रंथ के आश्रय से संप्रति असितकुमार बंद्योपाध्याय ने 'बंगला साहित्येर इतिवृत्त' (प्रथम खंड, 1959) की रचना की। तीन खंडों में प्रकाशित इस ग्रंथ में बँगला साहित्य के अठारहवीं शती तक के इतिहास का विश्लेषणात्मक विवेचन है। इसके अतिरिक्त साहित्य की विभिन्न धाराओं के आश्रय से सुधी समाज ने प्रामाणिक इतिहास की रचना की है। वैभव साहित्य की आलोचना में बिमान बिहारी मजूमदार, मंगलकाव्य आशुतोष भट्टाचार्य आदि उल्लेखनीय हैं। साहित्य-इतिहास-रचना की धारा की वैचित्र्यमय है।

बाँध गठरिया *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1954]

यह कृति गुजराती के कृति साहित्यकार श्री चंद्रवदन मेहता (दे०) की आत्मकथा का एक भाग है। गुजराती आत्मकथा-साहित्य में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। कथा की मोहिनी के बीच गुण-दोषों का हास्य-व्यंग्यमय चित्रण कर लेखक ने समग्र विश्व का विविध और रंगदर्शी रूप एक तटस्थ नाटककार की आँखों से देखा है। इसमें पाठक लेखक के साथ सहज ग्रंतरंग संबंध में बँधकर उसके साथ विश्व-यात्रा को निकल पड़ता है।

बाँसी नामनी एक छोकरी *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1962 ई०]

यह युवा लेखक मधुरोय (दे०) का कहानी-संग्रह है। इसकी कहानियों में 'पृथ्वी अने स्वर्ग' नहीं है। लेखक यथार्थ-जीवन की भीपणता तथा ईश्वरीय न्याय-योजना की विबडंना को चित्रित करता है जो प्रकारांतर से समग्र आधुनिक नवलेखन में प्रश्रय पाए हुए हैं। किंतु आधुनिक जीवन के विडंबनामय सत्य को चित्रित करते हुए भी इनमें कहीं विषाद नहीं, मधुर-मधुर हँसते-हँसते वह परिस्थितियों का चित्रण करता है। इन कहानियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना-तत्त्व प्रायः नगण्य है किंतु लेखक की निरीक्षण शक्ति की मोहिनी अभूतपूर्व है। अभिव्यक्ति की नवीनता मधुरोय की विशेषता है।

समग्रतया यह संग्रह पिछले दशक के गुजराती कहानी-लेखकों की प्रवृत्ति का अच्छा दिग्दर्शन कराता है।

बाइमहांति पांजी *(उ० क्र०)*

'बाइमहांति पांजी' श्री गोपाल चंद्र प्रहराज (दे०) की महत्वपूर्ण व्यंग्य-रचना है। इसमें ग्रंथकार ने जिस अभिनव कौशल द्वारा सामाजिक दुर्बलता का पर्दाफ़ास किया है, वह जादूगर के गारुड़ी-मंत्र के समान है। इसमें मानवीय स्वभाव के दोषों को चाबुक लगाकर एक प्रकार से उजागर कर दिया गया है। उदाहरण-स्वरूप—

'देवताओं के स्थान पर अश्लील मूर्तियों को देखकर, जिस समय मन में स्वर्गीय एवं आध्यात्मिक भावना जागृत होना कानूनन अनिवार्य है, उस समय देव-दर्शन स्वाधीनता का अन्यथा एवं विपरीत परिणाम-युक्त होना कदापि संभव नहीं।'

व्यंग्य एवं हास्य से युक्त सरल, घरेलू, ललित-भाषा प्रवहमान शैली, जीवंत हास-परिहास के अंतराल से उद्भासित सरस एवं चतुर तर्क आदि विशेषताओं ने इसे लोकप्रिय बना दिया है। फकीर मोहन के बाद उड़िया-साहित्य में विशुद्ध घरेलू भाषा की पुनः स्थापना का श्रेय प्रहराज को है। भाषा की कमनीयता, विशिष्ट प्रकाशन-भंगी, और अंतःसौंदर्य फकीर मोहन सेनापति (दे०) के बाद, प्रहराज के हाथों से अभिनव रूप और वैभव से दीप्त हो उठा है। कटक ज़िले में विशेष रूप से व्यवहृत शब्दावली का इसमें अधिक प्रयोग किया गया है।

प्रहराज का व्यंग्य-धर्मी दृष्टिकोण इसके भीतर अत्यंत गहन तथा मानवीय संवेदना से प्राणस्पर्शी होकर आया है।

बाउल गान *(बँ० प्र०)*

प्राचीनकाल से ही बंगाल में रूपक के आश्रय से आध्यात्मिक तत्त्व एवं रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रकार की आध्यात्मिक संगीत-धारा का प्रचलन था जो 'बाउल गान' के नाम से प्रसिद्ध है। 'बाउल गान' बँगला लोकसाहित्य का एक प्रधान अंग है। 'बाउल' शब्द कदाचित् 'बातुल' शब्द से निकला है। समाज-विधि-सम्मत समस्त निर्देशों की उपेक्षा कर बाउल-साधक हिंदू-मुसलमान धर्म के कठोर नियमों के बंधन से मुक्त होकर अपने 'मन के आदमी' की खोज में विशिष्ट साधना-पथ पर अग्रसर हुआ। सहज एवं संस्कारमुक्त जीवन-यापन एवं धर्मसाधना ही बाउल का उद्देश्य है। मानवदेह के नित्य निवासी परमदेवता का प्रेमलाभ ही बाउल की मुख्य साधना है।

गीत (गान) बाउल संप्रदाय का शास्त्र है। और किसी भी शास्त्र को ये स्वीकार नहीं करते। बाउल-साधकों ने अपने मन की अनुभूति, अपनी साधना की बात एवं ईश्वरानुभूति को सहस्रों गीतों के माध्यम से प्रकट किया है। इनकी भाषा रहस्यात्मक संध्या-भाषा है। बाउल गान का प्रचलन बंगाल में बहुत दिनों से है किंतु काफ़ी दिनों तक भद्र-शिक्षित-समाज में इसका कोई मूल्य नहीं था। बाउल गीतों के माधुर्य एवं ऐश्वर्य के प्रति रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने शिक्षित समाज का ध्यान आकर्षित किया। वैष्णव-साधना का परकीया-तत्त्व एवं सहज-साधना के साथ सूफ़ी धर्ममत के अपूर्व सम्मिश्रण से बाउल गीतों का धर्मपक्ष बहुत ही समृद्ध है। आउलचाँद को बाउल संप्रदाय का आदि कवि माना जाता है। उन्नीसवीं शती के बाउल कवियों में लालन-फकीर का नाम बहुत विख्यात है। गंगाराम बाउल, जगा कैवर्त, पद्मलोचन, बिशा भुइं-माली, कांगाली बाउल आदि उल्लेखनीय बाउल-कवि है।

बाग़-ओ-बहार *(उर्दू० क्र०)* [रचना-काल—1801-1802 ई०]

'बाग़-ओ-बहार' मीर अम्मन (दे०) देहलवी की रचना है। इसमें 'क़िस्सा चहार दरवेश' का कथानक प्रस्तुत किया गया है। डा० मौलवी अब्दुल हक़ साहब ने लिखा है कि मीर अम्मन ने 'बाग़-ओ-बहार' की रचना 'तहसीन' की 'नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा' (दे०) को देखकर की है किंतु भाषा उसकी अपेक्षा सरल कर दी है। इसमें अनावश्यक बातों को छोड़ दिया गया है और आवश्यक बातों को अधिक विस्तार से लिखा है। इस प्रकार इसमें एक प्रकार की मौलिकता आ गई है।

मीर अम्मन ने दैनिक प्रयोग की भाषा का प्रयोग किया है जिससे 'बाग़-ओ-बहार' इतनी लोकप्रिय हुई कि अँग्रेज़ी-फ्रेंच, पुर्तगाली तथा लेटिन में इसके अनुवाद किए गए हैं। उर्दू के कई कवियों ने भी इसे पद्य में प्रस्तुत किया है। 'गार्सा द तासी' (दे०) ने इसकी भूरि-भूरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा की है और कहा है कि यह तत्कालीन भारत तथा इस्लाम को समझने में सहायक है।

'बाग़-ओ-बहार' अपने समय की संस्कृति का दर्पण है। इससे इस्लामी मान्यताओं, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान तथा सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

बागची, यतींद्रमोहन *(बँ० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

कवि यतींद्रमोहन रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) के भक्त-शिष्य थे। इनका पहला काव्य ग्रंथ 'लेखा' रवींद्रनाथ को सर्मपित है एवं प्रकाशन से पहले रवींद्रनाथ ने इस काव्य-ग्रंथ की सारी कविताएँ एक बा· देख ली थीं। 'लेखा' के अतिरिक्त इनके अन्य आठ काव्य-ग्रंथ हैं—'रेखा' (1910), 'अपराजिता' (1913), 'नागकेशर' (1917), 'बंधुर दान' (1918), 'जागरणी' (1922), 'नीहारिका' (1927), 'महाभारती' (1936) एवं 'पांचजन्य' (1941)। इनके एकमात्र उपन्यास का नाम है 'पथेर साथी'।

ग्रामीण जीवन के स्निग्ध-माधुर्य, सांसारिक दुःख-वेदना, आनंद-उल्लास को कवि ने निपुणता के साथ चित्रित किया है। असाधारण सहृदयता एवं रूपकर्म की त्रुटिहीन दक्षता का पूर्ण परिचय इनके काव्य में उपलब्ध है। हमारे जीवन, समाज, ग्राम, पुराण, इतिहास की कथा-वस्तु को कवि ने अपनी संवेदनशील अनुभूति के द्वारा प्रकट करके अपने असाधारणा कवित्व का परिचय दिया है।

बागेश्वरी-शिल्प-प्रबंधावली *(बँ० कृ०)*

1921 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने विश्वविद्यालय में पाँच नये आचार्य-पदों की सृष्टि की जिसमें से एक था शिल्पकला-अध्ययन विषयक 'रानी बागेश्वरी आचार्य-पद'। सर आशुतोष का निमंत्रण पाकर शिल्पगुरु अवनींद्रनाथ ठाकुर ने यह पद स्वीकार किया था। 1921 ई० से लेकर 1929 ई० तक वे इस पद को सँभाले रहे एवं इस बीच शिल्पकला से संबंधित जितने भी भाषण उन्होंने दिए उन्हें एकत्रित कर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1941 ई० में 'बागेश्वरी-शिल्प-प्रबंधावली' के नाम से प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित किया।

शिल्पकला की आलोचना की दृष्टि से यह ग्रंथ युगातंरकारी है एवं रसबोध के उन्मेष-साधन की दृष्टि से इसकी अमूल्य देन हमारी सांस्कृतिक जीवनचर्या के इतिहास में सुप्रतिष्ठित है। चित्रकला एवं साहित्य-संवेदना की अपरूप प्रतिभा की भास्वरता से यह ग्रंथ प्रोज्ज्वल है।

बाजार-ए-हुस्न *(उर्दू० कृ०)*

दे० 'सेवासदन' (ले० प्रेमचंद)।

बाजीकर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

शरत्चंद्र गोस्वामी (दे०)। यह कहानी-संग्रह है। श्री लक्ष्मीनाथ वेज बरुवा (दे०) ने कहानियों में लोक-कथा-शैली का प्रयोग किया था; गोस्वामी जी ने पाश्चात्य शैली अपना कर कहानी को एक नया मोड़ दिया। इन कहानियों में अवैध प्रेम का चित्रण है, किंतु प्रेम की प्रचंडता के साथ ही अंत में ग्लानि का भी चित्रण है। लेखक सामाजिक अन्याय एवं अनाचार के प्रति भी सावधान है। उसने किसी पर प्रहार न कर साधारण वातावरण के मध्य समाज की उदासीनता एवं नृशंसता का चित्रण किया है। कहानियों में सारा दोष नियति पर छोड़ दिया जाता है।

बाजी राउत *(उ० कृ०)*

'बाजी राउत' सच्चिदानंद राउतराय (दे०) का विप्लवी चेतना का काव्य है। सामाजिक कुसंस्कारों, अन्यायों एवं अत्याचारों को केंद्रित कर इससे अत्याचारी शासन के विरोध में विद्रोह की प्रेरणा दी गई है। इसका नायक बाजी राउत ढेंकानाल के मामूली खेवैया का बेटा है। यह निष्पेषित, शोषित समाज का प्रतिनिधि है।

1938 ई० में उड़ीसा के गड़जातों में प्रजा-आंदोलन हुआ था। ढेंकानाल के राजा ने प्रजा के विद्रोह को दबाने के लिए अँग्रेज़ सरकार की सुरक्षा-सेना बुलाई थी। दिनभर दमन-चक्र चलता रहा। रात को अपनी छावनी के लिए लौटती सेना ने नदी पार जाने के लिए घाट पर नाव माँगी। तेरह वर्ष का बालक बाजी राउत पहरा दे रहा था। उसका उत्तर था, 'प्रजा-मंडल का आदेश नहीं है।' बालक को अपने निश्चय पर अडिग देखकर सेना ने उसे गोलियों से भून दिया था। बाजी राउत का निष्प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर नाव पर गिर गया और सेना पार हो गई। उसका शव कटक लाया गया और पूरे सम्मान के साथ उसकी अंत्येष्टि-क्रिया हुई।

स्वयं कवि की आत्म-स्वीकृति है—'जिस को लेकर यह कविता विरचित है, वह आज केवल व्यक्ति-विशेष नहीं है वह इस देश का वृहत्तम अनुष्ठान है। यह उसकी चिता नहीं है, यह गहन अंधकार में कभी न बुझने वाली दीपशिखा है। यह केवल जल जाने के लिए नहीं है। उसका जन्म जलाकर भस्म कर देने के लिए है।'

सच्चिदानंद राउतराय यथार्थवादी, समाज सचेतन जीवनवादी गीतिकाओं में अग्रणी हैं। 'बाजी राउत' काव्य में जहाँ उनका क्रांतिकारी दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है वहाँ उसका उदात्त स्वर स्वतः ही कलात्मक गरिमा से महिमा-मंडित हो उठा है।

वाण (*सं० ले०*) [समय— सातवीं शती]

वाण का संस्कृत-गद्य-लेखकों में प्रमुख स्थान है। यह महाराज शिलादित्य (हर्षवर्धन) के सभापंडित थे। अपने 'हर्षचरित' (दे०) के आरंभिक दो परिच्छेदों में इन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी है। ये सोणनद के किनारे प्रीतिकूट नामक नगर में निवास करते थे। इनके पितामह का नाम अर्थपति और पिता का नाम चित्रभानु था। बाल्यकाल में ही इनके माता-पिता का देहांत हो गया था अतः ये बुरी संगति में पड़ गये। कुसंगति ने इन्हें यायावर तथा इत्वर (आवारा) बना दिया। पहले महाराज हर्षवर्धन इनकी आदतों से नाराज़ थे, पर बाद में वे इनकी प्रतिभा से बड़े प्रभावित हुए और इन्हें अपने दरबार में समुचित सम्मान दिया।

वाण की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं—'हर्षचरित', 'कादंबरी' (दे०), तथा 'चंडीशतक'। किंतु बाण को वस्तुतः ख्याति 'हर्षचरित' और 'कादंबरी' से मिली है। 'कादंबरी' वाण की उत्कृष्ट कलाकृति है। इसकी रचना की प्रेरणा इनको गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' (दे०) तथा सुबंधु की 'वासवदत्ता' से मिली है। किंतु ये इन दोनों से आगे बढ़ गये हैं। 'हर्षचरित' आठ उच्छ्वासों में अभिव्यक्त आख्यायिका है जिसमें कवि ने महाराज हर्षवर्धन का जीवन-चरित उपनिबद्ध किया है। 'कादंबरी' के दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध की रचना बाण ने की है। उत्तरार्द्ध बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र पुलिंद भट्ट ने लिखा।

वाण संस्कृत-गद्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। इनकी दोनों कृतियाँ संस्कृत-गद्य-साहित्य की अनुपम निधि हैं। वर्णनाशक्ति बड़ी विलक्षण है। परिसंख्यादि अलंकारों के माध्यम से बाण ने अपनी अनुभूतियों को अत्यंत कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। बाण भट्ट की शैली परवर्ती संस्कृत-गद्यकारों के लिए आदर्श बन गई। ये प्रभावशाली गद्य लिखने में निष्णात हैं। इनके गद्य में सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, चमत्कृत वर्णन-प्रणाली, अक्षय शब्दराशि तथा कल्पनाप्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना विशेष रूप से विद्यमान है। बाण, वस्तुतः संस्कृत भाषा के अत्यंत सक्षम एवं सबल लेखक हैं।

बाणभट्ट की आत्मकथा (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

यह हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) का अत्यंत लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें लेखक ने 'कादंबरी' (दे०) तथा 'हर्षचरित' (दे०) को उपजीव्य रूप में ग्रहण करते हुए संस्कृत के प्रसिद्ध लेखक बाण (दे०) भट्ट के जीवन-वृत्त को अनेक ऐतिहासिक तथा कल्पित कथाप्रसंगों के माध्यम से बाणभट्ट की ही शैली में इस प्रकार निरूपित किया है कि पाठक को इसे बाणभट्ट की आत्मकथा समझने का भ्रम पैदा हो जाता है। इस कृति में तद्युगीन धर्म-साधना, राजनीति, आभिजात्य, वातावरण आदि का भी सशक्त प्रत्यंकन हुआ है।

घुमक्कड़ी प्रकृति वाला बाण इस उपन्यास का केंद्रबिंदु है और उपन्यास का सारा कथाचक्र उसी के इर्द-गिर्द घूमता है। एक दिन वह घूमता हुआ स्थाण्वीश्वर पहुँचता है जहाँ पर उसकी भेंट नाट्यमंडली की अभिनेत्री निपुणिका (निउनिया) से होती है। निपुणिका से उसे यह पता लगता है कि किसी साध्वी राजकुमारी को उसकी इच्छा के विरुद्ध मौखरी वंश के राजघराने में बंदी बना लिया गया है। यह सुनकर वह निपुणिका की सहायता से उसका उद्धार करता है। तदनंतर उसे उस राजकन्या अर्थात् भट्टिनी से ज्ञात होता है कि वह विषम समर-विजयी वाल्हीक-विमर्दन अत्यंत वाड़वदेवपुत्र तुविर मिलिंद की कन्या है। उसके मन में स्थाण्वीश्वर के राजकुल के प्रति इतनी घृणा पैदा हो जाती है कि वह उस घराने से संबंधित किसी भी व्यक्ति के संरक्षण में रहने के लिए तैयार नहीं होती। निपुणिका तथा बाण भी राजदंड के भय से वहाँ रहना नहीं चाहते और भट्टिनी को साथ लेकर मगध की ओर प्रस्थान कर देते हैं। मार्ग में अनेक प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाइयों का सामना करते हुए ये येन-केन-प्रकारेण मगधेश्वर दुर्ग के आभीर सामंत लोरिक देव के आश्रय में पहुँच जाते हैं। उस समय देश के ऊपर दस्युओं का आक्रमण होने वाला था। इस आक्रमण से देश की रक्षा करने का सामर्थ्य केवल तुविर मिलिंद में ही था। स्थाण्वीश्वर-नरेश देवपुत्र तुविर मिलिंद के प्रीत्यर्थ भट्टिनी को अत्यंत अनुरोधपूर्वक स्थाण्वीश्वर बुला लेते हैं। वे उसके सम्मानार्थ उसके स्कंधावार में जाने का भी निश्चय करते हैं। इस अवसर पर बाण हर्षचरित-रत्नावली के अभिनय का आयोजन करता है जिसमें वासवदत्ता की भूमिका निभाते हुए निउनिया राजा (बाण) के हाथ में रत्नावली का हाथ देते हुए इतनी विचलित हो उठती है कि उसके प्राण-पखेरू, उड़ जाते हैं। निपुणिका का श्राद्ध-कर्म करने के बाद जब बाण को पुरुषपुर जाने का आदेश मिलता है तब भट्टिनी अत्यंत आर्द्र कंठ से शीघ्र लौट आने का अनुरोध करती है। लेकिन बाण की आत्मा चीत्कार करती हुई कह उठती है, 'अब क्या मिलना होगा ?' संक्षेप में यही इस उपन्यास की कथा है।

यह उपन्यास अपने रोचक तथा कौतूहलपूर्ण विन्यास के लिए ही नहीं अपितु मानवीय चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। लोगों की दृष्टि में निउनिया भले ही पतिता हो तथा बाण भट्ट बंड, किंतु जहाँ तक मानवीय गुणों का प्रश्न है वहाँ ये दोनों अत्यंत खरे उतरते हैं। इनमें न साहस की कमी है और न बुद्धि-चातुर्य की। इस उपन्यास के संवाद अत्यंत रसात्मक तथा वाग्वैदग्ध्यपूर्ण हैं। तत्सम शब्दावली से परिपूर्ण अलंकृत भाषा इसके बाणकृत होने का भ्रम पैदा करती है। यह उच्चकोटि का एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है जो हिंदी-साहित्य में अपनी अत्यंत कलात्मक रचना-शैली की दृष्टि से सर्वथा बेजोड़ ठहरता है।

बाणरजा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1932 ई०]

पद्मनाथ गोहाञि बरुवा (दे०) का यह अंतिम नाटक पाँच अंकों का है। इस पौराणिक नाटक में उषा-अनिरुद्ध के प्रणय और बाल-कृष्ण के युद्ध की मुख्य कथा है। कथा में अनावश्यक विस्तार हो गया है। भाषा और संवाद आकर्षक नहीं हैं। यह नाटक मंचोपयोगी नहीं है।

बाणी *(त० पा०)*

'बाणी' सुंदरम् पिळ्ळै (दे०)-रचित उन्नीसवीं शती के पद्यबद्ध तमिल नाटक 'मनोन्मणीयम्' (दे०) के प्रमुख नारी पात्रों में से है। नाटक में बाणी को आदर्श प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रेम के मार्ग पर बढ़ते हुए वह पिता एवं राजा का भी विरोध करती है और अंततः अपने प्रेमी नटराजन को पति-रूप में पा लेती है। बाणी पांड्य राजा की पुत्री मनोन्मणी की अंतरंग सखी है। राजकुमारी मनोन्मणी बाणी के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर रहती है। वही अपने पिता से कहती है कि बाणी को नटराजन से विवाह की अनुमति दी जाए। इसके बदले में बाणी यह प्रतिज्ञा करती है कि जब तक राजकुमारी मनोन्मणी योग्य वर नहीं पा लेगी तब तक वह विवाह नहीं करेगी। नाटककार बाणी को उन्नीसवीं शती की जागरूक नारी के रूप में चित्रित करने में पूर्ण सफल हुआ है।

बापट, वसंत *(म० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

ये बंबई में प्राध्यापक हैं।

1950 ई० के पश्चात् मराठी की नयी काव्य-धारा के प्रमुख काव्यों में इनकी गणना की जाती है।

इनके दो काव्य-संग्रह हैं—'बिजली' और 'सेतु'।

इन्होंने सामयिक राजनीति एवं सामयिक घटनाओं पर अपने मन की तीव्र प्रतिक्रिया को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। 1942 ई० के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में प्रत्यक्ष कार्य करने के कारण इनकी प्रारंभिक कविताएँ प्रचारात्मक भी हैं। नाम के अनुसार ही 'बिजली' काव्य-संग्रह की कविताएँ प्रखर, आवेशयुक्त, तीक्ष्ण एवं मर्मभेदी हैं। 'महायान', 'गांधी मंदिर', 'अमरविहंगम', 'पूर्णाहुतीचा तो दिवस' जैसी कविताओं में इन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का गौरव-गान कर उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। गांधी जी के प्रति निष्ठापूर्वक लिखी गई इन रचनाओं का अपना महत्व है।

'सेतु' नामक काव्य-संग्रह के अंतर्गत इनकी काव्य-दृष्टि में स्वप्न-परिवर्तन लक्षित होता है। उसमें ये प्रेम-सौंदर्य का स्वानुभूतिपूर्वक चित्रण करने वाले कवि बन गये हैं।

'बिजली' संग्रह के कारण ही ये नये कवि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। इन्होंने नये प्रतिमानों एवं प्रतीकों का सुंदर प्रयोग किया है।

बापिराजु, अडवि *(ते० ले०)* [जन्म—1895 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

1920 ई० के उपरांत तेलुगु-साहित्य के इतिहास में अडवि बापिराजु के समान प्रतिभाशाली व्यक्तित्व दूसरा कोई नहीं आया। कवि, कथाकार, शिल्पी, चित्रकार, पत्रकार, चलचित्रों के कलास्रष्टा, आदि अनेक रूपों में इन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा को प्रसारित किया है। ये अल्प आयु से ही कविता, शिल्प, चित्रकला आदि में विशेष रुचि रखने लगे थे। समस्त भारत का भ्रमण करके, मंदिरों की शिल्पकला, गुफाओं की चित्रकला आदि का अध्ययन इन्होंने किया था। ये इन शास्त्रीय कलाओं के साथ-साथ ग्रामीण लोकगीत, कथावाचन, कठपुतली के नाच आदि में भी गहरी रुचि रखकर इनके विकास के लिए भी यत्न करते रहे थे। सत्याग्रह-आंदोलन में भाग लेकर एक वर्ष तक ये कारागार में भी रहे थे। वहीं पर इन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'हिमर्विदु' (दे०) की रचना की थी। ये व्यवसाय से वकील थे और कुछ समय तक 'मीज़ान्' नामक दैनिक पत्रिका का संपादन भी करते रहे थे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'हिमबिंदु', 'नारायणरावु' (दे०), 'गोनगन्ना रेड्डी' (दे०), 'तुपानु', 'कोणंगि', 'नरुडु' आदि। अपरिमित भावना-शक्ति, सुनिश्चित अनुशीलन, परम पांडित्य एवं तीव्र भारतीय सांस्कृतिक चेतना इनमें एकत्र मिलती हैं। काव्य में चित्रकला गुण तथा चित्र में काव्यगुण को सम्मिलित कर, दोनों को एक नवीन तेज प्रदान करने वाले ये प्रतिभावान् कलाकार थे।

इन्होंने भारतीय दृष्टि से रस-प्रधान उपन्यासों की रचना की है। इनका 'हिमबिंदु' आंध्र-शातवाहनों के समय को चित्रित करने वाला ऐतिहासिक-सांस्कृतिक उपन्यास है। 'नारायणरावु' एक उदात्त चरित्र की सृष्टि करने वाला एवं आंध्रत्व के विशुद्ध स्वरूप को चित्रित करने वाला सामाजिक उपन्यास है। इनकी रचनाएँ अद्भुत कथा-प्रसंगों से युक्त होकर स्वप्निल एवं वास्तविक, दोनों संसारों के मनोरम सम्मिश्रण को प्रस्तुत करती हैं। इनके पात्र प्रायः शिल्पी, चित्रकार या कवि ही हुआ करते हैं जो अपने स्रष्टा की कलात्मक चेतना के प्रतिरूप के समान दिखाई देते हैं। चित्रकार के रूप में इनकी ख्याति समुद्रगुप्तडु, तिक्कना आदि चित्रों के कारण है।

बापिराजु, बोड्डु *(ते० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

ये पश्चिम गोदावरी ज़िले के निवासी हैं और संस्कृत के भी अच्छे विद्वान हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'विपंची' (कविता-संग्रह), 'कात्यायनी' (बालोचित गेय रचना) और 'कलिका' (कथा-संग्रह)। इस प्रकार इनकी रचनाओं में विविधता पाई जाती है। समाज के विविध वर्गों की चित्तवृत्तियों तथा रुचियों का इन्हें अच्छा ज्ञान है और उनकी काव्य-रचना में वह भली भाँति परिलक्षित होता है। वेलूर क्षेत्र में स्थित चेनकेशव-मंदिर के शिल्प-सौंदर्य का इन्होंने बड़ा मार्मिक वर्णन किया है।

बापू *(म० पा०)*

श्री० ना० पेंडसे (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गारंबीचा बापू' (दे०) का नायक बापू एक ओर उद्दंड, मनस्वी और सशक्त नवयुवक है तो दूसरी ओर सहृदय, उदारमना एवं परोपकारी भी है। गाँव का ज़मींदार अण्णा खोत अपनी प्रियतमा यशोदा का विवाह गाँव के ही एक ग़रीब और नपुंसक ब्राह्मण विठोबा से करा देता है जिससे वह जीवन-भर उसके साथ संबंध रख सके। बापू वस्तुतः अण्णा का ही बेटा है, पर विठोबा अपना सारा वात्सल्य उस पर उँडेलता है और बापू भी उसे पिता के समान प्यार करता है। बाद में पता चलने पर कि उसका वास्तविक पिता अण्णा है, उसके मन में विद्रोह का भाव जागता है और वह रूढ़ि-भंजक बन जाता है। गाँव की विधवा राधा से गांधर्व विवाह करता है और गाँव के लोगों को शूकर-पालन, मुर्गी-पालन जैसे वर्जित व्यवसाय करने को प्रोत्साहित करता है। अण्णा के विरुद्ध आक्रोश होने के कारण वह उसे चुनाव में हराकर स्वयं सरपंच बनता है। क्रांतिपूर्ण और उद्दंड होते हुए भी वह सहृदय है—जब-तब सबकी सहायता करता है, पिता की स्मृति में कुआँ बनवाता है। कुल मिलाकर वह क्रांतिकारी, रूढ़ि-भंजक, प्रगतिशील और साथ ही उदारमना, सहृदय और सबल पात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापू छत्रे (सदाशिव काशीनाथ छत्रे) *(म० ले०)* [जन्म—1788 ई०; मृत्यु—1830 ई०]

ये मराठी के अर्वाचीन ग्रंथकार हैं। साहित्य-क्षेत्र में 'बापू धर्म' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म बंबई में बाळेकेश्वर नामक स्थान के निकट हुआ था। मिशनरियों से इन्होंने अँग्रेज़ी भाषा सीखी थी। बंबई में पाठशाला की स्थापना करने में इन्होंने अँग्रेज़ी सरकार के प्रतिनिधि कर्नल कौर तथा जर्विस की सहायता की थी।

छत्रेजी ने अनेक अँग्रेज़ी ग्रंथों का अनुवाद कर मराठी साहित्य की भाव-सामग्री को विपुल बनाया है। 'बाळमित्र' (दे०), 'ईसपनीति' तथा 'वेताळपंचविशी' इनके प्रमुख अनूदित ग्रंथ हैं। इनकी भाषा सरल एवं सुबोध है। मराठी के आद्य व्याख्याकार दादोवा पांडुरंग (दे०) के अनुसार ये मराठी गद्य-रचनाओं के जनक हैं।

बापूजी आत्मकथा *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1944-1951 ई०]

तुम्मल सीता राममूर्ति चौधरी (दे०)-कृत 'बापूजी आत्मकथा' गांधी जी की आत्मकथा का पद्यानुवाद है। इस रचना की सफलता एवं लोक-प्रियता के कारण ही लेखक को 'गांधी जी का दरबारी कवि' कहा जाता है। गांधी जी के गद्यात्मक आत्मचरित को रसात्मक पद्यानुवाद के रूप में अवतरित करना किसी भी कवि के लिए सरल कार्य नहीं और इसे श्री चौधरी ने बड़ी खूबी से पूरा किया है। इसके अतिरिक्त गांधीजी की रचना की सरलता एवं स्वच्छता को अपने पद्यानुवाद में प्रतिफलित करने के लिए कवि को कुछ और बंधन भी स्वीकारने पड़ते हैं। श्री चौधरी स्वभाव से सरलता-प्रेमी एवं विचारों से गांधीवादी हैं। अतः इस कार्य में उनको आशातीत सफलता मिली है। गांधी जी की मनोरचना की सरलता, निराडंबरता एवं आह्लादकारी स्वच्छता इनकी रचना में पूर्ण रूप से प्रकट हुई है।

बापू ना पत्रो *(गु० कृ०)*

गांधी-साहित्य में बापू के पत्रों का अनूठा स्थान है। विश्व-पत्र-साहित्य के क्षेत्र में बापू के पत्र अपनी सहज सरलता, स्पष्टता व अनलंकृतता के कारण विशिष्ट महत्व के हैं।

अनेक व्यक्तियों के नाम बापू ने पत्र लिखे थे। नवजीवन प्रकाशन ने बापू के गुजराती में लिखे पत्रों को दस भागों में प्रकाशित किया था जिनका विवरण इस प्रकार है :

प्रथम भाग—(आश्रम की बहिनों के नाम)
द्वितीय भाग—(सरदार वल्लभ भाई के नाम)
तृतीय भाग—(कुसुम बेन देसाई के नाम)
चतुर्थ भाग—(मणि बेन पटेल के नाम)
पंचम भाग—(प्रेमा बेन कंटक के नाम)
षष्ठ भाग—(गंगा बेन के नाम)
सप्तम भाग—(छगनलाल जोशी के नाम)
अष्टम भाग—(अप्रकट)
नवम भाग—(नारायण देसाई के नाम) ग्रंथ—1-2
दशम भाग—(प्रभावती बेन के नाम)

अत्यधिक व्यस्त जीवन में भी बापू अपने अंतेवासियों, स्नेहियों, मिलने वालों का कितना ध्यान रखते थे, यह इन पत्रों से पता चलता है। बापू के प्रत्यक्ष व परोक्ष संपर्क में आने वाले असंख्य व्यक्तियों का उल्लेख इन पत्रों में हुआ है। बापू की लेखन-शैली, बापू के अक्षर, बापू का विनोद, बापू की बारीक-बारीक सूचनाओं आदि के इन पत्रों में दर्शन होते हैं। बापू के कृतित्व को तो उनके दूसरे ग्रंथों से भी पहचाना जा सकता है, किंतु बापू के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं की सही-सही पहचान तथा आने वाली पीढ़ियों को उसका ज्ञान तो इन्हीं पत्रों से होगा। इन पत्रों की साहित्यिकता भी असंदिग्ध है।

गांधी-साहित्य की एक अमूल्य निधि के रूप में बापू के ये पत्र सदैव महत्वपूर्ण बने रहेंगे।

बापूसाहब गायकवाड *(गु० ले०)*

बापूसाहब गायकवाड यशवंत राव गायकवाड के पुत्र थे। मूलतः ये बड़ौदा के रहनेवाले थे। इन्होंने धीरा भक्त की शिष्यता स्वीकार कर ली थी। निरांत भक्त से भी इन्होंने उपदेश ग्रहण किए थे। पं० के० का० शास्त्री की सूची के अनुसार इनकी दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं : पद-संग्रह जिसमें 30 ज्ञानोपदेश के, 10 धर्म-वेश अंग के, 15 ब्रह्मज्ञान के, 3 परजिया के, 6 षड्रिपु-राजिया, गरबी तथा काधी के पद समाविष्ट हैं। महिना—इसमें ज्ञान के द्वादश मास की संभावना की गई है। इनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य संतों की रचनाओं के प्रतिपाद्य से मेल खाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा जी *(उ० कृ०)*

'बाबा जी' जगमोहन लाला (दे०)-रचित नाटक है। यह आधुनिक उड़िया-साहित्य का प्रथम पुष्प है। प्रथम प्रयास की समस्त सीमाओं के होते हुए भी यह निर्विवाद रूप से एक महान कृति है। पूर्वी एवं पश्चिमी किसी भी नाट्य शैली का पूर्ण अनुकरण न होते हुए भी अपने आंतरिक गुणों के कारण यह गंभीर साहित्यिक कृति है। समसामयिक समस्याओं को इसमें स्थान मिला है। चरित्र की सुनियोजित योजना इसमें मिलती है। आधुनिक रुचि के अनुकूल लेखक का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। जनभाषा के प्रयोग ने इसकी उपयोगिता बढ़ा दी है। इसकी भाषा एवं शैली में विषयानुरूप पर्याप्त गंभीरता है।

यह आवश्यक है कि इसमें नाटकीय द्वंद्व, संघर्ष, उत्कंठा आदि बातें नहीं मिलती हैं। इसमें किसी भी चरित्र का परिपूर्ण विकास भी नहीं हो पाया है। कथावस्तु की उपस्थापना में क्षिप्र गतिशीलता भी नहीं दिखाई पड़ती है। बाबा जी के जीवन की केवल एक घटना चित्रित होने के कारण इसे हम दीर्घ एकांकी मान सकते हैं। किंतु इसे गीति-नाट्य, फार्म या स्केच कहकर इसके नाटकीय मूल्यों को अस्वीकार करना अनुचित होगा। इसकी कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। एक आदर्श बाबा जी का चरित्र इसमें वर्णित है। अपने भिक्षाटन-क्रम में बाबा जी पहले एक मद्यप गृहस्थ, तत्पश्चात एक व्यभिचार-ग्रस्त मठ में लांछित एवं प्रवंचित होते हैं। अंत में वे एक उपवन में निवास करते हैं तथा उनके उपदेशों से कुछ प्रवंचकों का हृदय-परिवर्तन होता है।

यह एक सामाजिक शिक्षाप्रद नाटक है। इसमें साधुओं की अलौकिक शक्ति, गारुड़ी मंत्र, मद्यपान आदि के कुपरिणामों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

बाबा पदमनजी *(म० ले०)* [जन्म—1831ई०; मृत्यु—1906 ई०]

बेळगाँव में कासीर जाति में जन्म। 'बेळगाँव मिशन स्कूल' में प्रारंभिक शिक्षा, 1847-1949 में बंबई के 'एल्फिस्टन स्कूल में 'फ्री चर्च' विद्यालय में प्रवेश के बाद ईसाई धर्म की ओर झुकाव, 1854 ई० में दीक्षित हुए, तब से ईसाई धर्म के प्रचार के लिए साहित्य लिखा।

मुख्य ग्रंथ—यमुनापर्यटन (दे०) (उपन्यास); 'निबंधमाला', 'मराठी-अँग्रेज़ी कोश', 'महाराष्ट्र देशाचा संक्षिप्त इतिहास', 'कृष्ण आणिखिस्तयांची तुलना', 'ख्रिस्ती लोकांचे कर्त्तव्यसार'। 'मराठी में ये ईसाई साहित्य के जनक कहे जाते हैं। अपनी सुधारवादी दृष्टि से उन्होंने मराठी पाठकों को एक नयी दिशा प्रदान की। कला की दृष्टि से महत्व न होते हुए भी साहित्य-वैपुल्य एवं नये विचारों के कारण उनका मराठी-साहित्य में स्थान हैं।

बा मारली *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

राधिकामोहन गोस्वामी-रचित 'बा मारली' (वातचक्र) उपन्यास में आधुनिक सभ्यता के झंझावात का विरोध किया है, जिसने हमारे गाँवों के शांत जीवन का उच्छेद किया है। आधुनिक कृत्रिम जीवन एवं आधुनिकता के प्रभाव में पड़ी नारी की तीव्र आलोचना की गई है।

बारा माह *(पं० पारि०)*

यह एक काव्य-रूप है जिसमें बारहों महीनों के नाम पर 12 छंद होते हैं। इसका विषय वियोग-श्रृंगार होता है। हर छंद के आरंभ में महीने का नाम होता है। कवि बताता है कि उस मास-विशेष में प्रेमी की क्या दशा हुई, उसने कितने कष्ट से वह मास बिताया। इसका आरंभ प्रायः चैत्र से होता है। ऋतु-परिवर्तन के साथ प्रेमी की भावनाओं में भी विकास आता जाता है। पंजाबी में इस काव्यरूप की दीर्घकालीन परंपरा है और आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भी इसे बड़ी सफलता से प्रयुक्त किया गया है। गुरु ग्रंथ साहिब में दो 'बारामाहे' हैं। एक तुखारी राग में है जिसके रचयिता गुरु नानक हैं और दूसरा मांझ राग में है जिसे गुरु अर्जुन देव ने लिखा है। इन दोनों बारामाहों में आध्यात्मिक विकास की ओर संकेत है। काव्य और आध्यात्मिक भावनाओं के तनाव से इनकी संरचना बहुत ही प्रभावशाली हो गई है। इसके अनंतर सूफ़ी कवियों ने इसका खुलकर प्रयोग किया है। पंजाबी क़िस्सा-काव्य (दे०) में तो इसका प्रवेश उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में ही हुआ है।

बारिष्टरू पार्वतीशमु *(ते० पा०, ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1925 ई०]

यह मोकपाटि नरसिंह शास्त्री (दे०) का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य-प्रधान उपन्यास है। इसका नायक ही 'वारिष्टर पार्वतीशमु' है। इस उपन्यास एवं इसके नायक द्वारा समाज में बद्धमूल अनेक व्यर्थ पूर्वाचारों पर प्रहार किया गया है। निरर्थक प्राचीन आचारों के मोह में पड़कर, उनका अंधानुकरण करते हुए अपने को सदाचारी मानकर संतुष्ट होने वाले व्यक्तियों पर इसमें मुक्त भाव से व्यंग्य किया गया है। इस उपन्यास का नायक अपनी समस्त रूढ़िवादिता एवं पूर्वाचारों के साथ इंग्लैंड की यात्रा कर आने वाला युवक बारिस्टर है। इसके अनेक अनुभवों का कृत्रिम एवं अतिरंजित वर्णन प्रस्तुत करके लेखक ने सर्वत्र हास्यरस की सृष्टि की है।

बारी बहार *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1940 ई०]

'बारी बहार' प्रह्लाद पारेख की कविताओं का संग्रह है। अब तक इसकी तीन आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। पहली आवृत्ति में साठ, दूसरी आवृत्ति में तिरासी और तीसरी आवृति में अट्ठानबे कविताएँ हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक आवृत्ति में कुछ नयी कविताएँ जोड़ी जाती रही हैं। सामान्यतः 1930 ई० के राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में जिस प्रकार के आह्वान और बलिदान के चित्र तत्कालीन रचनाओं में प्राप्त होते हैं तथा पश्चाद्वर्ती' रचनाओं में जिस तरह के प्रगतिवादी स्वर मिलते हैं वैसी रचनाएँ प्रह्लाद पारेख की नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि इन भावनाओं का कहीं-कहीं संस्पर्श मिल जाता है। अपने को नवीन कहलाने के लिए नवीन प्रयोगों का आग्रह इनमें नहीं है। सर्वत्र भाव-सघनता और रस के प्रति आग्रह ही दिखाई देता है। इस संग्रह की भूमिका में उमाशंकर जोशी (दे०) ने ठीक ही कहा है कि 'मानव-हृदय ही इनके काव्य का विषय है' और 'मानव-हृदय की विविध भावपरिस्थितियों से इनके गीत भरे हुए हैं।' इनकी रचनाओं में चाक्षुष एवं श्रौत बिंबों के साथ-साथ गंधपरक इंद्रिय-संवेदना को उकेरने की अद्भुत क्षमता है। कहीं-कहीं भावस्पृष्ट चित्र बिजली की भाँति आँखों के सामने कौंध जाते हैं। भावतीव्रता, प्रेम और प्रेमजनित वेदना मानव 'कंठ', 'तारो इतबार', 'अवधूतनुं गान', 'आज', 'अंध', 'एकलु', 'विदाय' गीतों में मिल जाते हैं। 'विदाय' में तो स्वप्न-निर्माण, स्वप्न-नाश, अश्रुपात और तदुपरांत कल्याण-कामना से विदा के भाव अत्यंत सफलता से व्यंजित हुए हैं। 'जूह' 'कामिनी' और 'शिवली' गीत पुष्प-विषयक हैं। 'दान', 'मुक्त निर्झर', सिंधु' आदि रचनाओं पर रवींद्र (दे० ठाकुर) आदि कवियों का प्रभाव बताया जाता है। यदि ये रचनाएँ किसी से प्रभावित भी हैं तो भी हैं अपने में पूर्ण और कवि की काव्य-प्रतिभा को प्रकाशित करने वाली। प्रायः सभी स्थानों पर कवि की भाव-स्वच्छता, पद्य-रचना में स्पष्टता और भाषा की सरलता दर्शनीय है। 'बारी बहार' में पृष्ठ 147 से 156 तक मूलशंकर भट्ट द्वारा तैयार की गई गीतों की स्वर-लिपि भी दे दी गई है। प्रह्लाद पारेख की ये रचनाएँ अपनी सरलता, स्वच्छता और गेयता के कारण पाठकों को अपने में रमाने की अनोखी सामर्थ्य से पूर्ण हैं, कवि की सूक्ष्म संवेदना को बिंबात्मक रूप में प्रस्तुत करने की सहज शक्ति की परिचायिका हैं।

बाल-ए-जिब्रील *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

'बाँग-ए-दरा' (दे०) के बाद डा० इक़बाल (दे०) की ऊर्दू नज़्मों का दूसरा संकलन है : 'बाल-ए-जिब्रील। इसमें अधिकतर ग़ज़लें, रुबाइयाँ और क़तए हैं। इक़बाल की दार्शनिक शैली, जो अधिकतर उनके फ़ारसी काव्य में विद्यमान है, उर्दू की केवल इसी कृति में पाई जाती है। इसमें इस्लाम के अतीत के संबंध में बड़ी करुण शब्दावली में उल्लेख मिलता है। इक़बाल की इस कृति से उनकी पश्चिम यात्रा का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

'बाल-ए-जिब्रील' भाव तथा भाषा दोनों की दृष्टि से 'बांग-ए-दरा' की अपेक्षा जटिल है। यह संग्रह इक़बाल की उर्दू शायरी के चरमोत्कर्ष का द्योतक है।

बाळकराम, ठकी *(म० पा०)*

रामगणेश गडकरी (दे०) के हास्य-निबंधों के संग्रह के ये पात्र भाई-बहिन हैं। अपनी बहिन ठकी के लिए वर खोजने के प्रयत्न में बाळकराम को कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं, यही इन निबंधों का विषय है। लेखक ने इस प्रसंग द्वारा बताना चाहा है कि किस प्रकार तत्कालीन महाराष्ट्र में मध्यवर्ग की सामान्य युवती के लिए वर पाना कष्टकर था। ठकी सामान्य मध्यवर्ग की लड़की है जिसके पास न रूप है और न शिक्षा। उसका भाई बाळकराम उसके विवाह में वर-पक्ष की दहेज के रूप में अधिक धन भी नहीं दे सकता। अतः उसे नाना प्रकार की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। इनके द्वारा लेखक ने तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों विशेषतः विवाह संबंधी विकृतियों पर व्यंग्य किया है और उन कुरीतियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधारने की प्रेरणा दी है जिनके कारण मध्यवर्ग का जीवन नाटकीय बन गया था। एक ओर वर-पक्ष का उपहास किया गया है तो दूसरी ओर वधू-पक्ष की लाचारी एवं दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति और करुणा उत्पन्न की गई है। इन दो पात्रों का महत्त्व इसी दृष्टि से है कि इनके माध्यम से लेखक ने इस समस्या का हास्य-विनोदपूर्ण शैली में विवेचन किया है। मराठी पाठकों की स्मृति में अभी भी ये पात्र बने हुए हैं।

बालकवि, त्र्यंबक बापूजी ठोमरे *(म० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1918 ई०]

बालकवि की गणना मराठी के रोमांटिक कवियों में की जाती है। मराठी-साहित्य में ये प्रकृति-प्रेमी कवि के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। 1907 ई० में आयोजित कवि-सम्मेलन में किशोर वयस बालकवि ने अपनी कविताओं का सस्वर पाठ कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया था। इसी समारोह में सभापति ने इन्हें बालकवि की उपाधि से अलंकृत किया था।

28 वर्ष की अल्पायु में बालकवि का देहांत हो गया था परंतु साहित्य-जगत में इनकी गणना श्रेष्ठ कवियों में होती है। इनकी 142 स्फुट कविताएँ 'बालकवींची समग्र कविता' (दे०) में संकलित हैं।

इन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य के अनेक रमणीय चित्र अंकित किए हैं। रस, गंध, स्पर्श, रंग और नाद संबंधी अनेक सजीव, गत्यात्मक बिंबों में कवि की लेखनी की सामर्थ्य प्रकट होती हैं। इनकी कविता की शब्द-माधुरी अपूर्व है। प्रकृति-संबंधी कविताओं में कवि का उल्लास-पूर्ण आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। बालकवि ने कुछ शिशुगीत भी लिखे हैं; इन गीतों की भाषा बाल-बुद्धि के अनुरूप है और उसमें बाल-मनोविज्ञान का सुंदर चित्रण हुआ है।

बालकवींची समग्र कविता *(म० कृ०)*

'बालकवींची' कविता के रचयिता श्री त्र्यंबक बापूजी ठोमरे हैं, जो साहित्य-जगत में बालकवि (दे०) के नाम से ख्यात हैं। कवि के रूप में इनकी ख्याति का आधार इनका एकमात्र यही काव्य-संग्रह है।

मराठी-साहित्य में बालकवि प्रकृति-कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'बालकवींची समग्र कविता' की अधिकांश कविताएँ प्रकृति-वर्णनात्मक हैं। कवि के लिए प्रकृति आनंद का अक्षय कोष है और प्रेरणादायिनी शक्ति है। प्रकृति में सर्वत्र कवि आनंद के ही दर्शन करता है। बालकवि ने प्रकृति के कोमल, मार्दव रूप को ही अपनाया है। प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि तन्मय हो गया है। 'फुलराणी' जैसी प्रकृति-वर्णन-संबंधी कविताओं में कवि ने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं एवं क्रिया-कलापों का आरोप किया है। 'अरुण', 'संध्या रजनी', 'निर्झरास' आदि इनकी कुछ विदग्ध प्रकृति-वर्णनापरक रचनाएँ हैं।

इन्होंने कुछ प्रेम-प्रगीतों की भी रचना की है। इन प्रगीतों में प्रेम का तात्त्विक विवेचन ही हुआ है। इनकी प्रेम की परिभाषा अत्यंत व्यापक एवं उदात्त है। 'माझा भाऊ', 'चांदोवा मजला देई' जैसे कतिपय शिशुगीत भी इन्होंने लिखे हैं। आधुनिक मराठी के आद्यकवि केशवसुत (दे०) की प्रेरणा से इन्होंने 'शून्य', 'मी', 'दिव्य', 'वनमाला' जैसी रहस्यवादी कविताएँ लिखी हैं।

इनकी कविताओं का महत्व शैली-सौष्ठव के कारण भी है। कठोर योजना एवं उग्र विचार इनके काव्य में कहीं नहीं मिलते। इनका काव्य सुकुमार, मधुर, संगीतात्मक एवं प्रसादगुण-युक्त है। चित्रात्मकता इनके काव्य का एक अन्यतम गुण है। इन्होंने रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि इंद्रियों-विषयी अनेक सूक्ष्म, तरल एवं मूर्त भावचित्र तथा प्रकृति-चित्र अंकित किए हैं।

बालचंद्रुडु *(ते० पा०)*

'महाभारत' (दे०) की कहानी से समता रखने वाली मध्ययुगीन आंध्र की एक ऐतिहासिक कहानी है जो 'पलनाडु' नामक प्रांत में घटित होने के कारण 'पलनाटि-चरित्र' नाम से विख्यात है। इस कहानी के आधार पर महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) ने 'पलनाटि वीरचरित्र' (दे०) नाम से एक कथ्य की रचना की है। इसमें बालचंद्रुडु 'महाभारत' के अभिमन्यु के समान है। यह स्वाधिकार को पाने के लिए अपने चचेरे भाइयों से लड़ने वाले मलिदेवराजु के सेनापति ब्रह्मनायुडु का पुत्र है। ब्रह्मनायुडु इसे एक सुकुमार बालक समझकर युद्ध में लेकर नहीं जाते। परंतु यह एक वीर योद्धा की भाँति शत्रु सेनाओं के साथ जूझकर शत्रुओं का विनाश करके अंत में शत्रु की वंचना से वीरगति पाता है। यह समस्त आंध्र में अटल साहस, पराक्रम एवं कर्तव्य-निष्ठा के निदर्शन के रूप में समादृत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाळमित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1833 ई०]

सदाशिव काशीनाथ उर्फ़ बापूछत्रे (दे०) की, जो मराठी के आद्य गद्यग्रंथकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, यह नीति-शिक्षापरक बालोपयोगी पुस्तक वस्तुतः मूल फ़्रांसीसी लेखक बर्किस की पुस्तक के अँग्रेज़ी रूपांतर 'चिल्ड्रेंस फ्रेंड' का मराठी अनुवाद है। इसके दो भाग प्रकाशित हुए—प्रथम पर केवल छत्रे का नाम है पर दूसरे पर उनके साथ एक अँग्रेज़ अधिकारी का भी नाम है। यद्यपि बाद में भी इसका अन्य लोगों ने अनुवाद किया पर यह भाषांतर इतना मार्मिक, सरस एवं सुंदर था कि अन्य अनुवाद लोकप्रिय न हो सके। कहने को यह नीति-बोध-युक्त कथा-संग्रह है पर इसमें चुटकी लेने वाली कहानियाँ और छोटे-छोटे नाट्यांश भी हैं। अनुवाद में अँग्रेज़ी भाषा की वाक्य-रचना है जो कहीं-कहीं मराठी पाठक को खटकती है। कुल मिलाकर यह शुद्ध, सीधी-सादी सरल मराठी का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

बालवार्ताओ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1929 ई० 1939 ई०]

लेखक—गिजुभाई बधेका (समय—1885-1939 ई०)। गुजराती में बालसाहित्य का प्रारंभ गिजुभाई से हुआ। इस पुस्तक के आठ भाग हैं और प्रत्येक भाग में बालकों की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ लोककथाओं पर आधारित हैं परंतु लोककथा में बालक ठीक तरह से समझ सकें इसलिए यथोचित परिवर्तन भी किए गये हैं। गिजुभाई बालमनोविज्ञान से भली भाँति परिचित थे, इसलिए बालकों के वय के अनुसार कहानियों का वँटवारा हुआ है। इन कहानियों के द्वारा उन्होंने बाल-लोककथाओं को लोकप्रियता प्रदान की और कहानियों द्वारा शिक्षा दी। इन कहानियों के द्वारा बालसाहित्य की भाषा का निर्माण किया।

बालसरस्वती, एलकूचि *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

इनके पिता का नाम एलकूचि कृष्णय्या था। बालसरस्वती का वास्तविक नाम वेंकटकृष्णय्या था। बाल्यकाल में ही विद्यापारंगत होने के कारण इन्हें 'बालसरस्वती' की उपाधि मिली थी जो कालांतर में नाम का अंग बन गई। इनकी कृतियों में 1. 'बालसरस्वतीयमु' 2. 'राघवयादवपांडवीयमु', 3. 'शतकत्रय' (दे० 'भर्तृहरिशतक' का काव्यानुवाद) तथा 4. 'चंद्रिकापरिणयमु' उल्लेखनीय हैं। ये महामहोपाध्याय उपाधि से अलंकृत थे। 'बालसरस्वतीयमु' में 'आंध्रशब्दचिंतामणि' (दे०) की व्याख्या है। 'राघवयादवपांडवीयमु' त्र्यर्थिकाव्य है। तीसरा भर्तृहरि (दे०)-सुभाषितों का अनुवाद तथा 'चंद्रिकापरिणयमु' मौलिक काव्य है।

इनकी विभिन्न कृतियों से यह स्पष्ट होता है कि ये तेलुगु के प्रौढ़ विद्वत्कवियों में से थे।

बालाशंकर *(गु० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

नडियाद के निवासी तथा 'बाल' उपनाम से प्रसिद्ध बालाशंकर उल्लासराम कंथारिया मणिलाल के सहपाठी रहे हैं। स्वभाव से मस्त और रँगीले होने के कारण वे अधिक नहीं पढ़ सके। भारतेंदु हरिश्चन्द्र (दे०) की 'चन्द्रावली' नाटिका (दे०) और 'देवदास राजनीति', शूद्रक के 'मृच्छकटिक' (दे०) और आद्यशंकराचार्य की 'सौंदर्यलहरी' के सफल अनुवाद इन्होंने किए हैं। 'क्लांत कवि' नामक एक काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इस संग्रह में प्रस्तुत रचनाओं की भाषा शिथिल और अस्पष्ट है तथापि उनमें प्रेम, भक्ति आदि के दर्द-भरे गीत समाविष्ट हैं। संस्कृत की भावछटा, अलंकार-समृद्धि और फ़ारसी की कवित्व-शैली, ग़ज़लों का सफल प्रयोग—यह है इनका गुजराती साहित्य के प्रति योगदान।

बाल्यकालसखी *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

रचनाकार—मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम। श्री बशीर को मलयाळम उपन्यास-क्षेत्र के युगांतरकारी कृतिकार होने का श्रेय प्राप्त है। वर्षों तक यायावरीय जीवन और कुछ साल तक पुस्तक-विक्रय-व्यवसाय चलाने के बाद बशीरजी अब कालिकट के पास बेपूर में शांतिपूर्ण जीवन बिताते हैं। 'बाल्यकालसखी' उनकी युगांतरकारी रचना है। इसके तथा 'न्टुप्पुप्पाक्कोरानेंटार्न्नु' (दे०) के रचयिता के नाते बशीर केरल साहित्य में अमर रहेंगे।

बशीर इस उपन्यास में अपने ही समाज की—यानी मुसलमान परिवारों की—ही कहानी सुनाते हैं। धनी बाप का बेटा मजीद (दे०) दिल का अच्छा, परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूली गणित में कच्चा है। उसके मुहल्ले की ख़ूबसूरत, पर भोली लड़की सुहरा (दे०) गणित में तेज़ थी। वही स्कूल में मजीद की मित्र थी और घर में भी। मजीद गाँव की पाठशाला की पढ़ाई छोड़ शहर में पढ़ने जाता है तो सुहरा को भी सहपाठिनी के रूप में साथ ले चलना चाहता है। पर ग़रीब सुहरा मजबूर है। मजीद का बाप घरेलू कलह व अदालती खचखच के कारण निर्धन हो जाता है तो मजीद को दूर रोटी कमानी पड़ती है। वह बड़ी मेहनत करता है और घर रुपया भेजने लगता है। उसके प्रवास में सुहरा को ग़रीबी के कारण एक दुष्ट कसाई के गले मढ़ दिया जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियों और विपन्नता-ग्रस्त मजीद को जब मालूम पड़ता है कि सुहरा क्षयग्रस्त होकर मर गई तो उसका दिल टूट जाता है।

कथा की प्रभावशालिता से कहीं बढ़कर कथा-शैली और अनुपम भाषा इस ग्रंथ की सफलता का कारण है। दो-चार सशक्त वाक्यों के द्वारा पूरे शब्दचित्र खींचने में बशीर को कमाल हासिल है। लेखक मुसलमान समाज के ख़ास लहजे का व्यवहार करता है जिसकी नकल करना बड़ा मुश्किल है। श्री एम० पी० पॉल (दे०) के शब्दों में इस उपन्यास में जीवन का यथार्थ परिचय मिलता है। ख़ून की आर्द्रता भी कुछ-कुछ महसूस होती है।

बावन अक्खरी *(पं० पारि०)*

यह पंजाबी के मध्ययुगीन काव्य में प्रचलित एक विशेष काव्य-रूप है जिसमें संस्कृत वर्णमाला के 52 अक्षरों की व्याख्या के रूप में विविध उपदेशों का वर्णन होता है। संस्कृत वर्णमाला के 12 स्वर + 4 ऋ ॠ, लृ लॄ + 25 स्पृष्ट व्यंजन + 4 अंतस्थ वर्ण + 4 ऊष्म वर्ण, एवं + 3 संयुक्ताक्षर (क्ष, त्र, ज्ञ) मिलाकर 52 होते हैं किंतु 'बावन अक्खरी' नामक किसी भी रचना में इन सभी वर्णों का क्रम पूरा नहीं मिलता। प्रायः स्पष्ट व्यंजनों ('क' से लेकर 'म' तक) से आरंभ होने वाले पद्य ही इस काव्य-रूप के अंतर्गत रचे गए हैं। 'गुरु ग्रंथ साहब' में 'बावन अक्खरी' पद्धति की रचना के दो उदाहरण देखे जा सकते हैं—एक गौड़ीराम के अंतर्गत गुरु अर्जुन देव की रचना, एवं दूसरा—कबीर की वाणी के अंतर्गत।

बावनदास *(हिं० पा०)*

यह फणीश्वरनाथ रेणु (दे०) के प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' (दे०) की ऐसी अनुपम चरित्र-सृष्टि है जिसे पाठक कभी भूल नहीं पाता। यह चर्खा-सेंटर का व्यवस्थापक तथा गांधी जी का परम भक्त है। इसमें देश-प्रेम की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। गाँव की सामाजिक विषमताओं तथा जन-समाज की घृणित स्थिति को देख कर यह अत्यंत क्षुब्ध हो उठता है तथा दुःखभरे शब्दों में कह उठता है, 'भारतमाता और भी जार-बेजार हो रही है।' यह एक निस्पृह जनसेवक है और इसके बावन अंगुल के शरीर में अपरिमित सच्चाई भरी हुई है। इसी सच्चाई के फलस्वरूप नये काँग्रेसी नेता पुलिस के साथ मिल कर इसके शरीर पर चोरबाज़ारी के माल से भरी गाड़ियाँ चला देते हैं। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास होने के कारण 'मैला आँचल' में चरित्र-विकास की ओर ध्यान केंद्रित करने के स्थान पर अंचल विशेष के व्यक्तित्व को मूर्त्त करने की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है अन्यथा बावनदास के चरित्र में ऐसी अनंत संभावनाएँ हैं जिनके समुचित विकास से वह एक कालजयी पात्र के रूप में प्रतिष्ठित हो सकता था।

बावा बुर्धसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

बावा बुर्धसिंह पंजाबी आलोचना के पितामह हैं। इनकी दृष्टि में साहित्य आनंदप्रद कला है और इसी आधार पर ये अपनी आलोचनाओं में साहित्य को अन्य कलाओं से जोड़ते हुए अपना अभिमत व्यक्त करते हैं। पंजाबी आलोचना-क्षेत्र में इस प्रकार की आलोचना-पद्धति के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में इनका महत्व निर्विवाद है। इसके अतिरिक्त पंजाबी रहन-सहन, रीति-रिवाज को भी प्रशंसा-व्यंजक रूप में अपनी कृतियों में जोड़ कर ये अपनी आलोचनाओं को प्रभाववादी रूप में प्रस्तुत करते हैं। फलतः इनकी आलोचनाएँ किसी शास्त्रीय या तर्कयुक्त प्रणाली पर आधारित नहीं, वे भावुकता के स्तर से आगे नहीं जातीं। परंतु इनके द्वारा पंजाबी साहित्य जनता के अधिक निकट आया और उसके लोक-साहित्य के स्तर से आगे बढ़ कर सत्साहित्य के रूप में विकसित होने की संभावना प्रतिभासित हुई।

यद्यपि ये व्यवसाय से इंजीनियर थे परंतु आजीवन इंजीनियरी के साथ-साथ साहित्यिक गतिविधि में भी लगे रहे। आलोचना-क्षेत्र में इनकी प्रसिद्धि पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोइलकू' (1916), 'बंबीहा बोल' (दे०) (1925), 'हंस चोग' (1913) हैं।

आलोचनात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त आपने पंजाबी में कई नाटक भी लिखे हैं जिनका उद्देश्य पंजाबी संस्कृति की प्रशस्ति और समाज-सुधार था, 'मुंदरी छल', 'दामनी', 'राजा रसालू' (दे०) और 'नार नवेली' आपके प्रसिद्ध नाटक हैं।

बाष्पांजली *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

'बाष्पांजली' चङ्ङंपुषा (दे०) का प्रथम काव्य-संग्रह है। इसकी कविताओं ने कवित्रय द्वारा विकसित स्वच्छंदतावादी आंदोलन को एक नया रूप दिया था। आदर्शीकरण और दार्शनिकता के भार से इस आंदोलन को चङ्ङंपुषा ने बचाया और शोकरस के आवेश से अधिक संवेदनशील प्रेमगीतों की रचना करके उसे और अधिक लोकप्रिय बनाया था। इस संग्रह की माधुर्यपूर्ण भाषा और गेयता ने, इसकी लोकप्रियता बढ़ाई थी। 'बाष्पांज़ली' एक नये युग के आरंभ की द्योतक है।

बासंती *(सं० पा०)*

भवभूति (दे०) के 'उत्तररामचरित' (दे०) के अंतर्गत मात्र कवि की कल्पना से प्रसूत पात्र बासंती एक वनदेवी है जो राम के वनवास-काल में सीता की सखी बन जाती है। छात्रा आत्रेयी को जो सत्कार वह देती है वह परमहृदय है। पर उससे सीता-निर्वासन एवं यज्ञ में सीता की सुवर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा —दो परस्पर बातें सुनकर वह अवाक् रह जाती है।

शांवूक-वध के लिए राम जब पंचवटी जाते हैं तो उसके प्रति अपनी परस्पर विरुद्ध दो प्रकार की मनोवृत्तियों से वह घबरा जाती है। राम को देखकर वह सब कुछ भूल जाना चाहती है पर मन का आक्रोश प्रकट हो ही जाता है और कह उठती है कि 'आपको यश प्रिय था, सीता नहीं।' राम तिलमिला जाते हैं।

जब राम मूर्च्छित होने लगते हैं तो वह सहसा सीता को पुकार बैठती है और सीता के स्पर्श का जब वह उल्लेख करते हैं तो उसे उनका प्रलाप समझती है।

बासंती वस्तुतः कवि की अपनी जिज्ञासा का प्रतीक है। राम और सीता दोनों के प्रति श्रद्धा एवं सद्भाव से युक्त व्यक्ति के मन में राम के द्वारा सीता के परित्याग की घटना पर क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए यह कहना दुष्कर है। वह उसका समर्थन तो कर ही नहीं सकता। पर इससे राम को दुष्ट या कुटिल भी नहीं कह सकता। वह रोष किसके प्रति व्यक्त करे जब देखता है कि परित्याग करने वाले ने स्वयं को दंडित करने के लिए ही ऐसा किया है। बासंती कवि की इसी भावना की प्रतीक है।

बाहुबलि *(क० पा०)*

महाकवि पंप (दे०) के 'आदिपुराण' (दे०) में वर्णित पात्रों में आदिनाथ का पुत्र बाहुबलि विशेष रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। पंप ने आदिनाथ के जीवन में जिस भाँति 'भोग का अंत त्याग है' तत्त्व का उद्घाटन किया है, उसी भाँति उनके पुत्र भरत और बाहुबलि के चरित्र में दिखाया है कि 'वैभव का अंत वैराग्य है।' पंप का बाहुबलि नय-विनय-संपन्न योद्धा है। यह अपने बड़े भाई भरत को पिता के समान मानता है, परंतु उसके अधिकार के अहं को स्वीकार नहीं करता है। पिता के दिए हुए राज्य में यह बड़े भाई का कोई अहसान नहीं मानता। इसका तर्क है—'पिता ने भरत को जैसे राज्य दिया है, वैसे ही मुझे भी दिया है। इसमें भाई का क्या अहसान!' बड़े भाई को नमस्कार करना अपमान का विषय नहीं है। पर, 'गर्जन करते हुए कर में करवाल लेकर कोई बलपूर्वक प्रणाम कराना चाहे तो प्रणत होना क्या भीरुता नहीं है!' इसी तर्क के कारण यह दूत को उत्तर देता है—'समर-निकष में हमारी आभा मालूम हो जाएगी।' परिणामतः भाई-भाई में युद्ध छिड़ जाता है। दोनों धर्मयुद्ध करते हैं। उभय पक्ष की सेनाएँ प्रेरक बनी रहती हैं। दृष्टियुद्ध और जलयुद्ध में भरत की हार हो जाती है। फिर मल्लयुद्ध होता है। थोड़े ही समय में इसकी विजय निश्चित हो जाती है। यह भरत को एकदम ऊपर उठाकर भूमि पर पटक देना चाहता है। किंतु इतने में इसका ज्ञान जागृत होता है—'भरत मेरे गुरु हैं, बड़े भाई हैं, सम्राट हैं, महिमामय हैं। ऐसे व्यक्ति का इतने लोगों के सामने पटककर अपमान करना बुरा है।' यह धीरे से उसे नीचे उतार देता है। भरत के स्वाभिमान को बड़ा आघात लगता है। वह व्यर्थ ही चक्ररत्न का प्रयोग करता है। वज्रगिरि का वज्र क्या कर सकता है? धर्मयुद्ध में हारने के बाद भरत ऐसा अनुचित कार्य करता है कि 'चक्रेश ने जो नहीं करना चाहिए, उसे किया' लोगों की यह वाणी उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानों में भी पड़ती है। यह लज्जावनत होता है। इस क्षणिक घटना पर यह विचार करता है, 'भरत ने ऐसा क्यों किया है, यह पापीयसी राज्यलक्ष्मी!' इसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और भाई को राज्य दे कर स्वयं तपोवन की ओर चला जाता है किंतु तपोनिरत होने पर भी इसे कैवल्य-ज्ञान नहीं होता। कारण, इसके मन में यह भाव रहता है कि मैं भरत की भूमि में खड़े होकर तपस्या कर रहा हूँ। जब भरत जाकर इसे समझाता है कि यह राज्य तुम्हारा ही है, यह तुम्हारा दिया हुआ है तब इसका मन स्थिर होता है और इसे कैवल्य-ज्ञान प्राप्त होता है।

बिंध्या *(उ० पा०)*

बिंध्या राजकिशोर राय (दे०) की एक मनोज्ञ कल्पना है। यह एकांकी 'कलिंग शिल्पी' (दे०) का प्राण है। कलिंग की शिल्प-चातुरी, पुरी, कोणार्क एवं भुवनेश्वर के मंदिरों में बिखरे हुए कला-वैभव का अन्वेषक है महान शिल्पी श्रीधर महारणा। नायिका बिंध्या एक स्वप्न है, शिल्पी का शिल्प। बिंध्या युद्ध-वेश में कलिंग सम्राट् बसुभूमा के निकट आकर शरण माँगती है।

'अनेक युद्ध-क्षेत्रों में मैंने सैनिक के वेश में रण-तांडव देखा है। रुधिर-स्नात शव पर मैंने पैर रखा है—रण-उन्मादिनी चंद्रिका का प्रलय नृत्य मैंने देखा है। किंतु और नहीं, मैं क्लांत हूँ; मैं विश्राम की इच्छुक हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए; मैं आपके अंतःपुर में कुछ समय तक अंतःपुर-वासिनी होकर युद्ध-क्लेश को भुला देना चाहती हूँ।'

बिंध्या एक रहस्य है। सम्राट् के निकट इसकी समस्त प्रार्थनाएँ विफल जाती हैं। उपवन में सम्राट अपने प्रिय पक्षी बिंबोष्ठ के लिए आतुर हैं; बिंध्या पुनः प्रणय-निवेदन करती है। सम्राट किंतु दृढ़ हैं···। नेपथ्य से—'आह, सम्राट्, रक्षा करिए। बिंबोष्ठ लता-कुंज से उड़कर मेरे कर्णाभूषण पद्म-कलिका को छिन्न-भिन्न कर मेरे गंड-प्रदेश को क्षत-विक्षत कर रहा है।'

यही मूर्ति रूपाकार पाती है 'कलिंग-शिल्पी' के शिल्प में। गैरिक वसना योगिनी बिंध्या ने शिल्पी को सब समझा दिया था। आज बिंध्या नहीं है। किंतु यह तो उसकी अनंत यात्रा का प्रारंभ मात्र है। इस यात्रा की आद्य प्रेरणा उसने पाई है महान प्रेमानुभूति से। आत्मोत्सर्ग पर प्रतिष्ठित पवित्र प्रेम ने उसे नीरव कर दिया है, केवल सुनाई पड़ती है उसकी पदध्वनि—कलिंग के वन, पर्वत एवं जनपद पर।

बिंब *(हिं० पारि०)*

यह अँग्रेज़ी शब्द 'इमेज' का हिंदी रूपांतर है। 'इमेज' का सामान्य अर्थ है प्रतिमा, जिसकी रचना कवि अपने मानस में स्मृति, विगत अनुभव, विशुद्ध कल्पना अथवा संयुक्त रूप से स्मृति और कल्पना के आधार पर करता है। काव्य में जब यह मानस-प्रतिमा कवि की अनुभूति के संप्रेषण का शब्दार्थमय माध्यम बनती है तो उसे काव्य-बिंब कहा जाता है।

इस प्रकार कवि अपनी अनुभूति को बिंब के रूप में मूर्त करके शब्दार्थ के माध्यम से काव्यबद्ध करता है। प्रमाता उस काव्य-बिंब को अपनी कल्पना में साकार करता हुआ उसके भीतर निहित कवि की अनुभूति को आत्मसात् कर लेता है।

बिंब के प्रकारों का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जाता है। मुख्य आधार निश्चय ही बिंब का ऐंद्रिय माध्यम है। इस दृष्टि से बिंब के प्रकार हैं: चाक्षुष्, श्राव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य, आस्वाद्य। चाक्षुष् बिंबों का काव्य में प्राधान्य रहता है। इन ऐंद्रिय बिंबों को यदि स्थूल 'संवेदनात्मक बिंब' माना जाए तो 'छठी इंद्रिय' मन सूक्ष्मेंद्रिय द्वारा संवेद्य बिंबों को 'सूक्ष्म संवेदनात्म बिंब' कहा जा सकता है। बिंब के वर्गीकरण के अन्य आधारों का आकलन डा० नगेंद्र (दे०) ने इस प्रकार किया है: 'सर्जक कल्पना' (स्मृत, कल्पित। लक्षित, उपलक्षित); 'प्रेरक अनुभूति' (सरल, संश्लिष्ट, खंडित, समाकलित); 'काव्य-दृष्टि' (वस्तुपरक, स्वच्छंद)।

भारतीय काव्यशास्त्र में भी प्रकारांतर से बिंब-विवेचन के संकेत उपलब्ध होते हैं। कल्पना-प्रसूत होने के कारण बिंब भारतीय काव्यशास्त्र में विवेचित अलंकार (दे०) ध्वनि (दे०), और वक्रोक्ति (दे०) से स्वभावतः संबद्ध हैं। सादृश्यमूलकअलंकार बिंबात्मक ही होते हैं।

बिंबवाद *(हिं० पारि०)*

यह काव्य में बिंब (दे०) को प्रमुखता देने वाले कुछ अँग्रेज़ और अमरीकी कवियों द्वारा प्रवर्तित एक पाश्चात्य काव्यवाद है। बिंबवादी संप्रदाय की स्थापना 1912 ई० में प्रसिद्ध अमरीकी कवि एज़रा पाउंड द्वारा हुई थी किंतु 1914 ई० में उन्होंने बिंबवाद से मिलते-जुलते एक नये काव्यवाद 'वॉर्टीसिज़्म' का प्रवर्तन करते हुए बिंब-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद के आंदोलनात्मक रूप से अपने-आपको अलग कर लिया था। इसके बाद बिंबवादी संप्रदाय का नेतृत्व एमी लॉवेल ने किया था। बिंबवाद के दो मुखपत्र थे: अमरीका में 'पोइट्री' (1962) और इंगलैंड में 'इगोइस्ट' (1914)। इस शती के दूसरे दशक में ही बिंबवादी काव्य के चार संकलन प्रकाशित हुए थे: 'दा एमेजिस्ट' (1914), तथा 1915-16-17 ई० में एमी लॉवेल द्वारा संपादित 'सम् एमेजिस्ट' के तीन अंक। आंदोलन के रूप में बिंबवाद का अवसान इसके जन्म के सात-आठ वर्ष के भीतर ही हो गया था।

बिंबवादी आंदोलन के दो रूप थे: 'भावात्मक'—काव्य-भाषा में अभिव्यक्ति के उच्छ्वासपूर्ण एवं रोमानी आतिशय्य के स्थान पर सही शब्दों के प्रयोग पर बल तथा अपने काव्य में सटीक एवं सार्थक बिंब-विधान। 'अभावात्मक'—स्वच्छंदतावादी काव्यशिल्प, प्रतीकवादियों के आधिभौतिक रहस्यात्मक बिंब-विधान तथा तत्कालीन काव्यवाद 'भविष्यवाद' (फ्यूचरिज़्म) एवं कलावाद 'घनबाद' (क्यूबिज़्म) का विरोध। 1915 ई० में बिंबवादी काव्य-संकलन (सम् इमेजिस्ट) में प्रकाशित बिंबवाद के घोषणा-पत्र में निर्दिष्ट बिंबवाद के कुछ लक्षण इस प्रकार हैं: (1) अलंकृत भाषा के स्थान पर बोलचाल की सामान्य भाषा और 'सही' शब्दों का प्रयोग, (2) नयी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति के लिए नया लय-विधान, (3) काव्य-विषय के निर्वाचन में पूरी स्वतंत्रता, (4) ठोस और स्पष्ट काव्य का सृजन, अस्पष्ट और अमूर्त-अनिश्चित काव्य का नहीं।

बिंबवादी कवियों में एज़रा पाउंड और एमी लॉवेल के अतिरिक्त रिचर्ड एल्डिंगटन, हिल्डा डूलिटिल, जॉन गॉल्ड, फ़्लेचर, जेम्स जॉयस, डी० एच० लॉरेंस तथा एफ़० एस० फ़्लिन्ट के नाम उल्लेखनीय हैं।

बिंबसार *(हिं० पा०)*

मगध-सम्राट बिंबसार जयशंकर प्रसाद (दे०)-कृत 'अजातशत्रु' (दे०) नाटक का एक ऐसा प्रमुख पात्र है जिसमें राग-विराग का अत्यंत स्वाभाविक अंतर्द्वंद्व देखने को मिलता है। रानी छलना (दे०) की धमकी, गौतम के उपदेश तथा पुत्र-विद्रोह की आशंका के फलस्वरूप यह अत्यंत अनिच्छापूर्वक अपने पुत्र अजात (दे० अजातशत्रु) को राज्यभार तो अवश्य सौंप देता है किंतु वानप्रस्थ लेने के बाद भी इसे मानसिक सुख नहीं मिलता। अजात का दुर्व्यवहार, पारिवारिक कलह तथा छलना की मर्मभेदी व्यंग्योक्तियाँ इसे निरंतर दुःखी किए रहती हैं और एकाध स्थल पर यह छलना की भर्त्सना करता हुआ अपना आंतरिक रोष व्यक्त भी कर देता है। फिर भी वह पुनः सत्ता हस्तगत करने के स्थान पर निरंतर विरक्ति की ओर ही अग्रसर होता है—यहाँ तक कि इसे अपने लिए सम्राट तक का संबोधन अरुचिकर लगता है। घटनाओं के घात-प्रतिघात के फलस्वरूप हुए हृदय-परिवर्तन के अनंतर जब छलना तथा अजातशत्रु विनम्रतापूर्वक अपने कुकृत्यों के लिए क्षमा माँगने आते हैं और अजातशत्रु के विवाह तथा पद्मा के पुत्र-जन्म का सुखद समाचार देते हैं तब हर्षातिरेक के कारण बिंबसार का क्षीण हृदय सहसा बैठ जाता है और वह कह उठता है—'इतना सुख एक-साथ मैं सहन न कर सकूँगा। तुम सब विलंब करके आए।' समग्रतः बिंबसार प्रसाद जी की अत्यंत सजीव चरित्र-सृष्टि है।

बिक्रमादित्य *(उ० क्र०)*

'बिक्रमादित्य' चिंतामणि महांति (दे०) का ऐतिहासिक काव्य है। यह उनकी सर्वोत्तम रचना है। इस बृहदाकार ग्रंथ में मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है। भारतीय इतिहास में सर्वाधिक किंवदंतीमूलक एवं महीयसी व्यक्तित्व श्री विक्रमादित्य का रहा है। प्रतिपाद्य की गौरव-गरिमा ने काव्य को स्वतः ही उच्च स्तर प्रदान कर दिया है। इस काव्य में विक्रमादित्य के जीवन की अनेक साहसिक एवं संकटपूर्ण यात्राओं तथा भयंकर युद्धों का चित्रण हुआ है। रोम के लोगों के साथ युद्ध करते हुए यह महान सम्राट् भूमध्यसागर एवं लालसागर तक चला जाता है। पढ़ते समय पाठक को इन रोमांचकारी घटनाओं की प्रत्यक्षानुभूति होने लगती है।

बिचित्र-रामायण *(उ० क्र०)*

'बिचित्र-रामायण' बिशि-रामायण के रूप में उड़ीसा में प्रसिद्ध है। कवि बिश्वनाथ खुँटिया (दे०) ने अपने इसी नाम का प्रयोग रामायण में किया है।

रामचरित के मुख्य जनप्रिय प्रसंगों का इसमें वर्णन हुआ है। इसमें राग के साथ अधिकांश छंदों की ताल भी निर्दिष्ट है। आज भी श्री रामनवमी-उत्सव पर खुले मंच पर इसका नृत्याभिनय होता है। यह लंबे समय से बहुजनादृत नृत्य-रामायण के रूप में गृहीत है।

इसमें विभिन्न रसों की सुंदर नियोजना हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। युद्ध-वर्णन सजीव हैं। भाषा रसानुरूप तथा जीवंत है। सुष्ठु एवं ग्रामीण दोनों प्रकार की भाषाओं का कवि ने प्रयोग किया है।

कवि ने न तो संस्कृत रामायण (दे०) का और न बलरामदास (दे०) की 'जगमोहन रामायण' (दे० 'दांडीरामायण') का ही अनुकरण किया है। केवल प्रत्येक कांड की मार्मिक एवं प्रमुख घटनाएँ ही इसमें गृहीत हैं। इसके राम, लक्ष्मण, सीता, देवोपम होते हुए भी मानवीय चारित्रिक दोष-दुर्बलताओं से युक्त हैं।

इसकी लोकप्रियता ने परवर्ती कवियों को राम-लीला-काव्य लिखने की प्रेरणा दी है।

बिजली *(म० पा०)*

यह मामा वरेरकर (दे०) के समस्यानाटक 'सोन्याच्या कळस' (दे०) की नायिका है। यह स्वभाव से कर्कशा है परंतु इसके लिए इसकी परिस्थितियाँ ही मुख्यतः उत्तरदायी हैं। मिल में कार्य करते समय ही इसके पिता की दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है। पिता के देहावसान के पश्चात् देखरेख करने वाली धात्री बचपन में ही इसका विवाह एक वृद्ध से संपन्न कराके अपने कार्यभार से छुट्टी पा लेती है, परंतु दैवयोग से इसके वृद्ध पति की मृत्यु हो जाती है। वैधव्य के दुर्वह भार एवं सामाजिक परिस्थितियाँ इसके स्वभाव को अतिशय प्रखर एवं उद्दंड बना देती हैं। मिल मज़दूरों की समस्याओं से पूर्णतः परिचिता बिजली स्वयं मिल में कार्य करने के पक्ष में नहीं है; परंतु श्रमिकों के दुःख-दर्द को दूर करने के लिए यह सचेष्ट अवश्य रहती है। इसी से साम्यवादी विचारों के प्रबल समर्थक बाबा शिगवण के सिद्धांतादर्शों की यह प्रबल समर्थक है। मिल मालिक का पुत्र विट्ठल जो स्वयं साम्यवादी विचारों का समर्थक है और मिल में श्रमिक का कार्य करता है, बिजली के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होता है। विट्ठल की प्रणय-याचना से बिजली का आहत नारीत्व फुफकार उठता है। यह विट्ठल की कड़े शब्दों में भर्त्सना करती है। अपने प्रखर व्यक्तित्व एवं कठोर स्वभाव के कारण ही यह अपने सहयोगियों में भी भय का कारण बनी रहती है। यहाँ तक कि मिल का मैनेजर भी इसके वाक्चातुर्य एवं कठोर व्यक्तित्व का लोहा मानता है। बिजली का चरित्र नारी-नवोत्थान के महद् आदर्शों का संवहन करता है जो नाटककार के पूर्व-निश्चित प्रारूप में ही निश्चित हुआ है।

विडंबना *(हिं० पा०)*

यह पाश्चात्य साहित्य में प्रचलित अँग्रेज़ी शब्द 'आयरनी' का हिंदी-पर्याय है। यूनानी शब्द 'ईरोनिया' से व्युत्पन्न 'आयरनी' का अर्थ है अपेक्षित भाव अथवा स्थिति से विपरीत विधि अथवा भाग्य का आकस्मिक विधान। 'ईरोनिया' का प्रयोग प्राचीन यूनानी कामदी (दे०) में दीन-हीन दिखाई देने वाले ईरोन नामक एक पात्र के बोलने के विशिष्ट ढंग के लिए किया जाता था। जिसके द्वारा वह 'एलेज़ान' शेख़ीखोर पात्र के खोखलेपन का अपनी नैसर्गिक चतुराई से पर्दा-फ़ाश कर देता है। अतः यह एक प्रकार से दिखावे और झूठेपन के भीतर छिपी वास्तविकता का नाटकीय उद्घाटन था और प्राचीन यूनानी नाट्यकारों को इसकी प्रेरणा अपने नीतिवादी जीवन-दर्शन से ही प्राप्त थी।

यद्यपि विडंबना का तत्त्व मूलतः कामदी से संबद्ध था, किंतु बाद में इसकी सार्थकता और उपयोगिता त्रासदी में अधिक व्यापकता और गहनता के साथ प्रकट हुई। विडंबना में इन तत्त्वों का होना अनिवार्य है: विधि की विडंबनापूर्ण इच्छा (भारतीय संदर्भ में 'हरि-इच्छा'); विधि के हाथों समस्त, किंतु अपनी ही दुर्बलताओं का शिकार एक पात्र ('विडंबना' का मूल चरित्र); प्रेक्षक जो स्वयं नाटक में मुख्य पात्र से भिन्न कोई अन्य पात्र भी हो सकता है। विडंबना की उपहासपूर्ण स्थिति का 'आनंद' यही पात्र लेता है।

पाश्चात्य साहित्यालोचन में विडंबना के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया गया है: 'शाब्दिक विडंबना' जिसमें प्रायः शब्दों के द्वयर्थक प्रयोग द्वारा असली-नकली के भेद को प्रकाशित किया जाता है; 'नाटकीय विडंबना' (त्रासदीय विडंबना) जिसके कथानक के सर्वांग में ही विडंबना का भाव अनुस्यूत रहता है; 'पूर्ण विडंबना' ('रैडिकल आयरनी') जिसमें स्वयं मुख्य पात्र ही जाने-अनजाने अपनी विडंबनापूर्ण स्थिति का उद्घाटन करता है; और 'रोमानी विडंबना' जिसका प्रयोग फ़्रीडरिक श्लेगेल ने लेखकों की ऊपरी वस्तुपरकता और तटस्थता के भीतर छिपी घोर वैयक्तिकता की विडंबनापूर्ण स्थिति के लिए किया था। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्य के इतिहास में 'सुकरातीय विडंबना' ('सात्रेटिक आयरनी') का उल्लेख भी मिलता है जिसमें सुकरात की उस विशेषता की ओर संकेत है जिसके द्वारा वे स्वयं अत्यंत विनम्र बने रहते हुए अपने विरोधियों के तर्क को पूर्णतया खंडित कर देते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिदग्ध चिंतामणि *(उ० कृ०)*

'बिदग्ध चिंतामणि' श्री अभिमन्यु सामंतसिंहार (दे०) द्वारा रचित वैष्णव धर्म एवं दर्शन का एक प्रधान ग्रंथ है। गोविंद-चरित्र-वर्णन के कारण कवि ने इसे अपनी रचनाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। वह गोपी-प्रेम-लीला का उपासक है। इसमें उसकी भक्ति-भावना का पूर्ण परिपाक हुआ है। विदग्ध कवि अभिमन्यु वास्तव में विदग्ध पंडित एवं भक्त है। कवि सम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) के काव्य में उपमा और अर्थ-गौरव का तथा दीनकृष्णदास की सरस रचना 'रसकल्लोल' (दे०) में पद-लालित्य का सन्निवेश है। यह ग्रंथ इन तीनों गुणों का संगम है।

'बिदग्ध चिंतामणि' में रीतियुग की परंपरा सुरक्षित है। इसका पद-लालित्य, अर्थ-गौरव, उपमा, शैली, धर्ममत, उज्ज्वल भक्तिरस, प्रेम-वर्णन, रूप-सौंदर्य-चित्रण आदि विषयों की परीक्षा करने पर कवि की बहुमुखी प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। नाटकीय संवाद इसकी एक और विशेषता है। इस पर उपेंद्र की रचना 'लावण्यवती' का प्रभाव स्पष्ट है। फिर भी कवि की प्रकाशन-भंगी अभिनव है। कृष्ण के रूप-वर्णन में भक्त कवि ने जिन भावों की अभिव्यक्ति की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

राधा-कृष्ण की वृंदावन-लीला इसका प्रतिपाद्य है। किशोर कृष्ण एवं किशोरी राधा पूर्वराग, मिलन, विरह आदि का सुंदर, निरूपण हुआ है। इस ग्रंथ का रस शृंगार है—उज्ज्वल एवं मधुर। कृष्ण माधुर्यमय हैं, राधा माधुरीमयी। काव्य की मुख्य वस्तु है परकीया प्रेम-लीला। चंद्रावली एवं राधा दोनों विवाहिता नायिकाएँ हैं।

इसमें प्रकृति-वर्णन सजीव है। वह मानव के सुख एवं दुःख के साथ संबद्ध है। विभिन्न ऋतुओं के वर्णन में कवि ने उनके स्वाभाविक प्रभाव को स्वीकार किया है। अलंकारों का समुचित प्रयोग हुआ है। भाषा संस्कृतनिष्ठ अवश्य है, पर दुरूह नहीं। वैसे क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से पद-लालित्य को यदाकदा आघात अवश्य पहुँचा है। भाषा सामान्यतः परिमार्जित है। तत्त्व-विवेचन में संस्कृत-बहुल पदावली का प्रयोग हुआ है जबकि मंगलाचरण की भाषा मिश्रित है। उनकी कोमलकांत पदावली भावानुगत एवं भावव्यंजक होने के कारण रसाल है।

इसके अध्ययन से कवि की बहुज्ञता स्पष्ट हो जाती है—उसे वेदांत, पुराण, दर्शन, काव्य, नाट्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत का अच्छा ज्ञान है तथा शब्द-भंडार भी समृद्ध है। सामाजिक रीति-नीतियों की चर्चा भी इसमें हुई है।

बिद्या *(बँ० आ०)*

'बिद्यासुंदर' (दे० सुंदर) काव्य की नायिका बिद्या है। अनूढ़ा यौवनवती वर्धमान राजकन्या बिद्या के साथ कांचीराज गुणसिंधु के पुत्र सुंदर के सुरंग के रास्ते गुप्तप्रणय-विधान में उस युग के कवियों ने सर्वाधिक उत्साह दिखाया था यद्यपि कवि एवं जनता की रुचि के धागे में बिद्या एवं सुंदर कठपुतली की अपेक्षा और कोई महत्त्व-पूर्ण भूमिका ग्रहण नहीं कर पाए। सुंदर की कामनामय पुष्पमालिका के प्रत्युत्तर में बिद्या का तप्त आमंत्रण एवं बिद्या तथा सुंदर के गुप्त मिलन की काम-क्रीड़ा-चंचल मूर्तियों में निस्संदेह शालीनता का अभाव है। आदिर साश्रित काव्य मात्र ही अशालीन एवं ग्राम्यतादुष्ट नहीं होता है। कवि की रुचि एवं शिल्प-प्रतिभा इसके लिए उत्तरदायी होती हैं। बिद्या काम-कला-निपुण व्यभिचारी के रूप में अंकित हुई है और यह मूर्ति स्पष्टतः कृत्रिम प्रतीत होती है यद्यपि सजीवता के अभाव में भी बिद्या को उस युग में अपार जनप्रियता प्राप्त हुई थी। काव्य-कला दृष्टि से अशालीन आदिरसंभूता नायिका विद्या युग, एवं साथ ही कवियों, की व्यर्थता की प्रतीक है।

बिद्यासुंदर *(बँ० कृ०)*

अन्नदामंगल (दे०) का दूसरा खंड कालिका-मंगल ही 'बिद्यासुंदर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। कवि बिह्लण के 'चोटी सुरत पंचाशिका' अथवा वररुचि के 'बिद्यासुंदरम्' ग्रंथों की पथरेखा का अनुसरण करते हुए भारतचंद्र (दे०) ने 'बिद्यासुंदर' की कहानी रची है। एवं सुंदर की गोपन प्रणयकहानी का विश्लेषण ही यहाँ प्रधान विषय है, देवी कालिका की भूमिका नितांत गौण है तत्कालीन कामतप्त जनसमाज की रुचि को पोषकता में इस आदिरसात्मक काव्य ने बहुत ही स्वाभाविक ढंग से अपनी भूमिका निभाई है। मंगलकाव्य तो आवरण मात्र है, यों यह काव्य मानवीय भावानुभूति के यथार्थ राज्य में सुप्रतिष्ठित है। इसमें संदेह नहीं कि कवि भारतचंद्र प्रथम श्रेणी के कवि थे। युगरुचि की पोषकता में सहायक बनने के अतिरिक्त इस काव्य में चिरंतन शक्ति का कहीं कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय नहीं मिलता है। चरित्र-सृष्टि में भी कहीं कोई स्पष्ट सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती। फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि उस युग में 'बिद्यासुंदर' की जनप्रियता ही इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता रही है।

बिद्युत प्रभादेबी *(उ० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

इनका जन्म लाटरा, कटक में हुआ था। आधुनिक लेखिकाओं में श्रीमती बिद्युत्प्रभा देवी का स्थान उल्लेखनीय है। इन्होंने विपुल मात्रा में काव्यों की रचना की है। छंद की निर्झर-सी स्वच्छंद गति, पदावली की कोमलता, स्वाभाविकता व मधुरता, इनकी रचनाओं के विशिष्ट गुण हैं।

'बिद्युत्प्रभा संचयन', 'गछपत्र', 'स्वप्नदीप' (दे०), 'झराशिउळि' आदि इनकी रचनाएँ हैं।

बिनोदिनी *(बँ० पा०)*

मधुरभाषिणी बिनोदिनी (दे० 'चोखेरबालि'—रवींद्रनाथ) अपरूपा है। यौवनैश्वर्य से वह विजयिनी लगती है और उसके साथ उसकी अपराजित बुद्धि की भी दीप्ति है। फिर भी वह भाग्यहीना है। विधवा बिनोदिनी की यौवन-तृष्णा तथा जीवन-तृष्णा का पहले महेंद्र एवं बाद में बिहारी शिकार हुआ है। बिहारी के लिए बिनोदिनी अग्निशिखा के रूप में थी। यह अग्नि जीवन को राख कर दे सकती है ऐसी संभावना भी उसके मन में आई थी। इसलिए उसने बिनोदिनी को सयत्न दूर ही रखना चाहा था। बिनोदिनी के अनुसार महेंद्र को वशीभूत करने में विजय का गौरव नहीं है। बिनोदिनी का व्यक्तित्व-बोध प्रबल है। निःशेष आत्मनिवेदन के द्वारा उसने बिहारी को जीता है और बिहारी ने उसके बदले में सयत्न निर्मित अपनी समुन्नत चारित्रिक महिमा को विसर्जित कर जब बिनोदिनी को जीवन-सिंहासन पर सम्राज्ञी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा तब ठीक उस मुहूर्त में विजयिनी बिनोदिनी कलंक-स्पर्शहीन प्रेम के जगत में अपने को निर्वासित करती है। कवि रवींद्रनाथ ने एक क्षण में बिनोदिनी को सीमा से असीम के राज्य में ला उपस्थित किया है। यथार्थ जीवन-बोध के क्षेत्र में बिनोदिनी की परिणति में साम्य का अभाव है परंतु यह साम्यहीनता ही उसे काव्य-महिमा की स्निग्ध दीप्ति की उज्ज्वलता प्रदान करती है, इसमें संदेह नहीं।

बिभिन्न क राछ (कोरस) *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1957 ई०]

इस संग्रह की कहानियों का संबंध प्रायः प्रेम, मृत्यु और यौनव्यभिचार से है। चरित्र अस्वाभाविक मनोवृत्ति के हैं और सामाजिक मर्यादाओं के बाहर के हैं। ये दानवीय उग्रता के प्रतीक हैं। कहानियों पर फ़्रायड के मनोविज्ञान का गंभीर प्रभाव है।

बियानाम *(अ० पारि०)*

ये स्त्रियों के विवाह-गीत हैं। इन गीतों का गायन वैवाहिक कार्यों के विविध अवसरों पर होता है, जैसे कि वर-कन्या के स्नान के समय। इनमें स्त्रियों की सरल कल्पना-शक्ति और मधुर उपमाओं का परिचय मिलता है। अधिकांशतः इनमें करुण रस होता है—विशेषतः कन्या-विदा के समय के गीतों में। बियानाम गीतों में हर-गौरी, राम-सीता, अर्जुन-सुभद्रा और उषा-अनिरुद्ध की कथाओं का वर्णन होता है। इनमें राम आदर्श पुरुष और सीता आदर्श नारी मानी गई है; रुक्मिणी असम देश की स्वीकार की गई है, उसका भी उल्लेख इन गीतों में मिलता है। विवाह-गीतों के अंतर्गत ऐसे गीतों का समावेश भी है जो हिंदी-प्रदेश के गाली-गीतों से सादृश्य रखते हैं।

बिरहले *(पं० पारि०)*

मध्ययुगीन पंजाबी काव्य-परंपरा में लोक-काव्य के स्तर पर बहुमान्य एक काव्य-रूप जिसमें वियोग-भावना को अभिव्यक्त किया जाता है। इसके माध्यम से आध्यात्मिक विचारों की ओर संकेत किया जाता है।

बिरिंचिबाबा *(बँ० पा०)*

परशुराम (दे०) (छद्मनाम—राजशेखर बसु) के सदाप्रसन्न, सानंद हास्यरस की अविरल धारा में बंगाली पाठक-चित्त ने सर्वदा निमज्जित होकर अपार आनंद प्राप्त किया है। राजशेखर के हास्य में व्यंग्य अनुपस्थित नहीं—यह बात सच है; परंतु व्यंग्य के लिए ही हास्य की अवतारण हुई हो ऐसी बात भी नहीं। मूलतः उनकी हँसी एवं अश्रु के बीच किंचित प्रसन्नता, सकौतुक तिरस्कार एवं उदार समवेदना का गहरा आश्वास एवं प्रशांति मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिरिंचिबाबा धार्मिक व्यभिचार के प्रतीक हैं। वैवस्वत, ईसा मसीह, बुद्ध हरेक को ही उन्होंने उपदेशामृत प्रदान किया है। उनकी उमर की जिस प्रकार कोई सीमा नहीं, उसी प्रकार उनके शिष्य की उम्र की भी। साधारण मनुष्य के सरल धार्मिक विश्वास को लेकर ही इनका व्यवसाय चलता है। पकड़े जाने पर जिस निर्लज्जता के साथ दैवी व्याख्या का आरोप किया गया है वह क्रोध को अनाविल हास्य में परिणत कर देता है। चंद्र-सूर्य के अधिकारी बिरिंचिबाबा इसीलिए सकौतुक आनंद के अपरिमेय उत्स हैं।

बिल्वमंगळ्डु *(ते० पा०)*

यह काळ्ळकूरि नारायणराव (दे०)-कृत 'चिंतामणि' (दे०) नाटक का प्रधान प्रात्र है। सुपुत्र, आदर्श पति, गृहपति (यजमान), उत्तम आचरण वाला यह लब्धप्रतिष्ठ आदर्श व्यक्ति चिंतामणि नामक वेश्या के मोहजाल में फँसकर, अनेक व्यसनों का दास बनता है और अंत में भगवान श्रीकृष्ण से माहात्म्य के कारण वैराग्य धारण कर लेता है।

माना जाता है कि 'कृष्णकर्णामृत' के कर्ता लीलाशुक ही पूर्वाश्रम में बिल्वमंगल थे।

बिशु *(उ० पा०)*

बिशु श्री अश्विनीकुमार घोष (दे०) के 'कोणार्क' (दे०) नाटक का प्रमुख पात्र है। उड़िया भाषा की एक किंवदंती के आधार पर बनी लोकोक्ति 'बारह सौ बढ़ई दाय या पुत्र दाय' के आधार पर इस चरित्र की सृष्टि की गई है।

तेरहवीं शती का समय है। ज्तोतिर्मंदिर कोणार्ण का निर्माण हो रहा है। ठक-ठक शब्द से वायुमंडल निनादित है। बारह सौ शिल्पी कार्य-मग्न हैं। शिल्प-सम्राट् बिशु महारणा के भाल पर चिंता की रेखाएँ हैं। महाराज नरसिंह देव का निष्ठुर आदेश है कि 'यदि कल सूर्योदय तक मंदिर के 'दधिनेउत' की स्थापना नहीं हुई, तो बारह सौ शिल्पियों को प्राण-दंड मिलेगा।'

बिशु का एकमात्र बारह वर्षीय पुत्र धरमा, जिनके जन्म के पूर्व ही कोणार्क निर्माण के लिए बिशु को बुला लिया गया था; पितृ-दर्शन की इच्छा से कोणार्क पहुँचता है। पिता व पुत्र में परिचय होने के पूर्व ही धरमा को महाराज की निर्मम आज्ञा ज्ञात हो जाती है। धरमा बिशु के समक्ष दंडायमान है। पुत्र का हृदय पिता के प्रति श्रद्धावनत है, पिता का हृदय अनजाने रूप से स्नेह-उर्मिल है। दोनों अपरिचित हैं। धरमा खड़ा है बिशु का प्रतिद्वंद्वी बनकर, जो अहंकारी शिल्पी को एक चुनौती है। धरमा को बिशु से मंदिर-निरीक्षण की अनुमति मिल जाती है। धरमा 'दधिनेउत' की स्थापना कर देता है। शिल्पी-समाज गौरव हानि की आशंका से उसकी मृत्यु की कामना करता है। गर्वित बिशु के उज्ज्वल शिल्पी-जीवन पर यह अमिट कलंक-बिंदु है, जिसे वह अविलंब धो देना चाहता है। अपने प्रतिबिंदु के विनाश का भार वह अपने ऊपर लेता है। धरमा की हत्या को उद्यत बिशु अँगूठी से पुत्र को पहचानता है। रक्त-पिपासु हाथ थम जाते हैं—मन में द्वंद्व आरंभ हो जाता है—पिता व शिल्पी में, वैयक्तिक व सामूहिक हित में। बिशु किंकर्तव्यविमूढ़ है। चारों ओर से एक ही प्रश्न, एक ही माँग है—'बारह सौ बढ़ई दाय कि पुत्र दाय?' पिता की ओर से पुत्र का उत्तर है 'निश्चित रूप से बारह सौ बढ़ई दाय।' पुत्र का बलिदान कर बिशु पागल हो जाता है।

शिल्पियों को पुरस्कार देते समय महाराज को बिशु के प्रलाप से सत्य का ज्ञान होता है। क्षुब्ध नरसिंह देव शिल्पी-समाज को पुनः प्राणदंड देते हैं, किंतु महान पुत्र की महान जननी महाराज से शिल्पी-समाज के प्राणों की भिक्षा माँग लेती है। मंदिर में धरमा की प्रतिमूर्ति की स्थापना का आदेश होता है। जाति के लिए प्राणोत्सर्ग का वह आदर्श आज भी जीवित है।

बिश्वाल, मंगलुचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

मंगलुचरण बिश्वाल कवि, कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। 'पाउँश तलरनिर्झ', 'दरिआ पारिर कविता', 'सीमा' आदि इनकी काव्य-पुस्तकें हैं। 'स्मृति मग्ना', 'दूर बसंत' उपन्यास, तथा 'अस्तरागर कवि', 'अग्नि-संभवा' कहानी-संग्रह हैं। आजकल ये व्यापक हैं। इनका जन्म पिताबाली, संबलपुर में हुआ था।

बिहारी *(भाषा० पारि०)*

मैथिली, मगही तथा भोजपुरी बोलियों का एक वर्ग मानते हुए ग्रियर्सन (दे०) ने इस वर्ग को 'बिहारी' नाम से अभिहित किया था। इस तरह बिहारी हिंदी भाषा की एक उपभाषा है जिसमें ये तीनों बोलियाँ आती हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का क्षेत्र मुख्यतः बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश है। बिहारी का विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। इसी कारण इस वर्ग की भोजपुरी, मैथिली आदि बोलियों की कई विशेषताएँ हिंदी की तुलना में मागधीजात बँगला आदि भाषाओं के अधिक निकट हैं।

बिहारी *(हिं० ले०)* [जन्म—1603 ई०; मृत्यु—1663 ई०]

बिहारी (बिहारीलाल) का जन्म बसुआ गोविंदपुर (ग्वालियर) में और निधन मथुरा में हुआ। युवावस्था में ये कुछ वर्षों तक जयपुर के राजा जयसिंह के यहाँ रहे और वहीं अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'बिहारी-सतसई' (दे०) की रचना की। बिहारी रीतिकालीन कवि हैं, किंतु उन्होंने चिंतामणि (दे०), कुलपति (दे०) आदि के समान लक्षण-लक्ष्यबद्ध ग्रंथ न लिखकर लक्ष्यबद्ध ग्रंथ लिखा है। यह इस तथ्य का सूचक है कि इनके समक्ष भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न तत्त्व—विशेषतः नायक-नायिका-प्रसंग, अलंकार और संभवतः ध्वनि—के विभिन्न भेदोपभेद थे, जिनके स्वरूप के आधार पर इन्होंने प्रमुख वर्ण्य-विषय शृंगार रस के चित्र प्रस्तुत किए हैं। अतः इस दृष्टि से इन्हें रीतिबद्ध आचार्य माना जाता है। शृंगार के अतिरिक्त इन्होंने भक्ति और नीतिपरक दोहे भी लिखे हैं, पर काव्यत्व की दृष्टि से वे उच्च कोटि के नहीं हैं। इनके शृंगारपरक दोहों में संयोग और वियोग के विभिन्न प्रसंग अत्यंत मादक एवं मोहक रूप में प्रस्तुत हुए हैं—छोटे-से छंद दोहा (दे०) अथवा सोरठा (दे०) में पूर्ण और सजीव चित्र उपस्थित कर देना बिहारी की कल्पना-प्रवणता के अतिरिक्त समाहार-क्षमता का भी परिचायक है। इनकी रचना में हास्य एवं व्यंग्य का भी सफल समावेश है। यद्यपि बिहारी के सम्मुख संस्कृत-प्राकृत के शृंगारपरक मुक्तक-काव्यों—'आर्यासप्तशती' (दे०), 'गाथासप्तशती', (दे० गाहासतसई), 'अमरुकशतक' (दे०)—का आदर्श रहा होगा, फिर भी, इन्होंने अपनी रचना को हिंदी के रीतिकालीन वातावरण में ढालकर उसे मौलिक रूप प्रदान किया है। इनकी रचना की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसकी वाक्य-रचना सुव्यवस्थित है और अन्य ब्रजभाषा-कवियों के समान इन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी नहीं है। बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं। यही कारण है कि एक ओर तो इनकी रचना पर पचास से भी अधिक टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, तथा दूसरी ओर अनेक कवियों ने 'बिहारी-सतसई' के अनुकरण पर सत-सइयों का निर्माण कर सतसई-परंपरा का विस्तार किया है।

बिहारी के अनेक दोहों से ज्ञात होता है कि वे ज्योतिष, राजनीति, वैद्यक, सांख्यशास्त्र आदि के भी ज्ञाता थे। पर इनकी ख्याति तो उनके काव्य-कौशल के कारण ही है, जिसके आधार पर इन्हें हिंदी का एक मूर्धन्य कवि माना जाता है।

बिहारी-सतसई *(हिं० कृ०)*

रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि बिहारी (दे०) ने सात सौ दोहे लिखकर हिंदी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और यही मुक्तक-रचना 'बिहारी-सतसई' के रूप में ग्रंथित की गई है। कहा जाता है कि जयपुर के राजा जयसिंह ने इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशर्फ़ी पुरस्कार-स्वरूप प्रदान की थी। एक प्रसिद्धि यह भी है कि 'बिहारी-सतसई' को सर्वप्रथम औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह ने क्रमबद्ध कराया था और यह क्रम 'आज़म-शाही'-क्रम से विख्यात है। बिहारी के अधिकतर दोहे शृंगार रस से संबद्ध हैं, कुछ-एक भक्ति और नीति से भी संबंधित हैं। शृंगार-विषयक दोहों में शृंगार के दोनों पक्षों— संयोग और वियोग के सजीव चित्र दृष्टिगत होते हैं। इन दोहों में विचित्र मादकता, तीव्रता और मार्मिक अभिव्यंजना मिलती है। दोहा (दे०) अथवा सोरठा (दे०) जैसे छोटे-से छंद में भावों की गंभीरता और विशदता भर देना बिहारी जैसे सिद्धहस्त कवि का काम है। इनसे कवि की सूक्ष्म अन्वीक्षण-शक्ति का भी परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि प्रतिभाशाली कवि बिहारी विभिन्न विषयों के भी ज्ञाता थे। अनेक दोहों में ज्योतिष, राजनीति, वैद्यक, सांख्य-शास्त्र, वेदांतशास्त्र आदि विभिन्न ज्ञानों का कलापूर्ण रीति से प्रयोग हुआ है, पर इस प्रयोग से वे इन विषयों के प्रकांड पांडित्य मालूम नहीं होते।

'बिहारी-सतसई' लक्षण रहित रीति ग्रंथ हैं। अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि सभी काव्यांगों के उदाहरण 'गागर में सागरवत्' इसमें उपलब्ध हैं। नायिका-भेदों के उदाहरणों का तो यह अपूर्व भांडार है। इस रचना में मानव जीवन के साधारण एवं स्वाभाविक प्रणय-व्यापारों का सूक्ष्मतम निरीक्षण, कला-कुशलता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाग्वैदग्ध्य—ये तीनों गुण विशेष रूप से विद्यमान हैं। साथ ही, इसमें विरह भावना के साथ खिलवाड़ करने तथा अनेक अत्युक्तिपूर्ण मजमून बाँधने का दोष भी आ गया है।

'बिहारी-सतसई' पर संस्कृत के मुक्तक काव्यों 'अमरुकशतक-(दे०), 'गाथासप्तशती' (दे० गाहा-सतसई), 'आर्यासप्तशती' (दे०) का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। इसकी अभिव्यंजना-शैली पर फ़ारसी साहित्य का भी प्रभाव है। किंतु फिर भी, बिहारी ने उक्त प्रभाव को हिंदी-रीतिकालीन वातावरण में ढाल कर अपनी मौलिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। इस रचना की भाषा ब्रजभाषा है, जो कि चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना सुव्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है।

बिहारी के पश्चात् इस रचना के अनुकरण पर सतसइयों (दे०) की एक परंपरा-सी चल पड़ी—'मतिरामसतसई', 'वृंदसतसई', 'विक्रमसतसई', 'वीरसतसई', 'करुण सतसई' आदि। 'बिहारी-सतसई' की लोकप्रियता का एक और प्रबल प्रमाण यह भी है कि इस पर आज तक पचास से भी अधिक टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ आदि हो चुकी हैं। इस प्रकार यह रचना हिंदी-साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न है।

बिहुगीत *(अ० पारि०)*

बिहु असम का जातीय उत्सव है। यह वसंतोत्साह की अभिव्यक्ति है। नयी फसल के कारण कृषि-जीवी जनों में नया उल्लास होता है। ये लोग नाच-गाकर इसे मनाते हैं। यौवन की उद्दाम वासना, मिलन की तीव्र आकांक्षा, विरह का उत्ताप, प्रेम की विनय और धुनी हुई रुई जैसे उड़नशील मन की सम्यक् अभिव्यक्ति बिहुगीतों में प्राप्य है। इनका गायन पर्वत, वनप्रदेश नदी आदि स्थानों पर काम करने वाले लोगों द्वारा अपने-अपने कार्य में संलग्न रह कर भी होता है। बिहुगीतों के कुछ संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं—डा० डिंबेश्वर नेओग के 'आकुल पथिक' और 'भोगजरा'; नकुलचंद्र भुञा (दे०) का 'बहागी' तथा लीला गर्ग (दे०) का 'बिहुगीत', 'आरु वनघोषा'।

बी (नारायण मुरलीधर गुप्ते) *(म० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

बी का जन्म विदर्भ प्रदेश के मलकापुर नगर में हुआ था। पिता की अकाल मृत्यु के कारण पढ़ाई इन्होंने छोड़ दी थी और सरकारी क्लर्क बन गए थे। क्लर्की के साथ 'बी' उपनाम से काव्य-रचना करते थे।

इनका 'फुलांची ओजळ' नामक एकमात्र काव्य-संग्रह उपलब्ध है। 'कमला' (दे० थोरातांची कमला) इनका ऐतिहासिक खंडकाव्य है।

ये सौंदर्यवादी तत्त्वान्वेषी कवि हैं। काव्य और अध्यात्म के प्रति रुचि होने के कारण इनके काव्य में सर्वत्र गांभीर्य व्याप्त है। शब्द-लाघव के द्वारा रूप, रंग और रेखाओं को मूर्तिमान करने में ये सिद्धहस्त हैं।

मराठी नाट्याचार्य श्री कृ० कोल्हटकर (दे०) ने इन्हें 'आधुनिक कवियों का भीष्माचार्य' कहा है।

बीचि *(क० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

कन्नड के ख्यातनामा हास्य लेखक भीमसेन राव का काव्य नाम है 'बीचि'। उनका जन्म 1912 ई० में बल्लारी जिले के हरपनहल्ली में एक श्रोत्रिय ब्राह्मण के यहाँ हुआ। शिक्षा समाप्त कर वे पुलिस विभाग में काम करने लगे। छुटपन में ही उनके लेख, कहानियाँ आदि 'प्रेम', 'जयंती' आदि पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। 1942 ई० में उन्होंने पत्रकारिता का क्षेत्र चुना और हुबली के 'विशाल कर्णाटक' में काम शुरू किया। अब तक उनकी दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'तिम्मन-तले', 'तिम्मरसायन', 'दासकूट', 'हुच्चुहुरुकु', 'हन्नोंदने अवतार', 'बंगारदकत्ते', आदि प्रमुख हैं। समकालीन समाज की विकृतियों एवं बीभत्सता के प्रति व्यंग्य करने में वे सिद्धहस्त हैं। 'दासकूट' में उन्होंने यह दिखाया है कि हमारे समाज के सब लोग किसी न किसी के दास हैं। हमारा मानसिक दास्य मिटा नहीं है। ललित हास्य और सरल भाषा इनके लेखन की विशेषता है।

बीम्स, जॉन *(भाषा० ले०)*

इंगलैंड-निवासी जॉन बीम्स 1857 ई० में इंडियन सिविल सर्विस में आए तथा बंगाल में नियुक्त हुए। बाद में पंजाब, बिहार, उड़ीसा, आदि में भी कलेक्टर तथा मजिस्ट्रेट रहे। भाषाओं के अध्ययन में ये बचपन से ही रुचि लेते थे। भारत आने के लगभग 10 वर्ष बाद इनका पहला ग्रंथ 'एन आउटलाइन ऑफ़ इंडियन फ़िलोलॉजी' प्रकाशित हुआ। बैल्डवेल का द्रविड़ भाषाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्याकरण देखकर इन्हें भारतीय आर्य-भाषाओं पर वैसा ही काम करने की प्रेरणा मिली और लगभग 24 वर्षों तक इस विषय पर कार्य करते हुए इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ़ द मॉडर्न आर्यन लैंग्विजिज़ ऑफ़ इंडिया' तीन भागों (भाग 1 : 1872, भाग 2 : 1875, भाग 3 : 1879) में प्रकाशित किया। भारतीय आर्य-भाषाओं के तुलनात्मक विकास पर यह पहला कार्य है। इस विषय पर अब तक कोई दूसरा कार्य नहीं हुआ है। एक हज़ार से अधिक पृष्ठों के इस विस्तृत ग्रंथ में प्रारंभ में भारतीय आर्य-भाषाओं के उद्भव और विकास पर 121 पृष्ठों की एक लंबी-सी भूमिका है तथा आगे हिंदी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया तथा बँगला की ध्वनियों तथा उनके संज्ञा, सर्वनाम, संख्यावाचक विशेषण तथा क्रिया-रूपों का संस्कृत से तुलनात्मक विकास दिखलाया गया है।

बीम्स ने हार्नले के साथ मिलकर 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) के आदि पर्व का संपादन भी किया था।

बीरबल *(बँ० ले०)*

दे० चौधुरी प्रथमनाथ।

बीरबलेर हालर वाता *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1902 ई०]

यह प्रथमनाथ चौधुरी (बीरबल) (दे० चौधुरी) के निबंधों का संकलन है। इसमें उस युग के राजनीतिक, सामाजिक तथा समसामयिक विषयों पर व्यंग्यात्मक ढंग से स्पष्ट एवं निर्भीक मत प्रकट किया गया है। इस गद्य-रचना के लिए उन्होंने बीरबल का छद्मनाम ग्रहण किया था। इन निबंधों में लेखक ने अकबर के सभासद बीरबल की सूक्तियों की तरह मर्मभेदी सत्य को संक्षिप्त किंतु मनोहारी ढंग से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। लेखक का कहना है कि मज़ाक के व्याज से कुछ सत्य बातें मैं लोगों से कहना चाहता था, तब मैंने बिना सोचे-समझे 'बीरबल' का नाम ग्रहण किया। ऐसा करके मैंने अपनी स्वजाति को बादशाह का पद दे दिया; इसलिए उन्हें खुश ही होना चाहिए। इन निबंधों में शब्द के साथ-साथ डंक भी है। इन निबंधों की शैली बहुत ही शिथिल है। निबंध के शीर्षक के एकदम विपरीत वे अवांतर प्रसंगों का उत्थापन करते हैं और यदृच्छ विचरण करते हुए इस प्रकार की दीर्घ भूमिका की अवतारणा कर अंत में निबंध के विषय पर आते हैं। वे बीरबल की तरह हास्ययुक्त मन की आलोकच्छटा से, श्लेष और व्यंग्य के कषाघात से जीवन की अस्वस्थता को दूर करना चाहते हैं। इससे वे बुद्धिहीन भावुकता, अंध-संस्कार, ऐहिक-जीवनचर्याहीन अध्यात्म-स्वप्न, विदेशी आचार-व्यवहार का अनुकरण, यथार्थबोध शून्य-राजनीतिक चपलता के विरोधी के रूप में प्रकट होते हैं।

इस निबंध-संकलन की सबसे बड़ी विशेषता इसकी कथ्य भाषा का प्रयोग कर उन्होंने उस युग में लेखकों को एक नयी दिशा दी थी।

बीर सुरेंद्रसाए *(उ० कृ०)*

यह अनिरुद्ध दास-(दे०) कृत जीवनी है। 1857 ई० के सिपाही विद्रोह ने अल्पाधिक रूप से संपूर्ण भारत में एक चमक फैला दी थी। कलकत्ता, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली में इसने व्यापक आकार पाया था। उस समय इस स्रोत से विच्छिन्न उड़ीसा जैसे राज्य से भी स्वाधीनता प्रेमी देश-सेवक खिंचे चले आये थे। पश्चिम उड़ीसा में अवस्थित संबलपुर के वीर सुरेंद्रसाए ने भी भारत-माता की एक योग्य संतान के रूप में अपना जीवन अर्पित कर दिया था। इस पुस्तक में उनके घटना-बहुल नाटकीय जीवन को सुंदर रूप दिया गया है।

बीरागंना *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1862 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का 'बीरागंना काव्य' इतली के कवि ओविद के 'हिरोइक एपिस्लस्' के आदर्श पर रचित एक पत्रकाव्य है। इसमें कुल मिलाकर ग्यारह पत्र हैं। पुराणों के स्त्री-पात्र शकुंतला, तारा, रुक्मिणी, केकयी, शूर्पणखा, द्रौपदी, भानुमति, दुःशला, जाह्नवी, उर्वशी तथा जना (दे०) के पत्रों में कहीं अपूर्व कोमलता है तो कहीं गांभीर्य एवं तेज की अद्वितीय छटा विद्यमान है। नारी-प्रेम इस काव्य की विषय-वस्तु है। प्रेम, आवश्यकता पड़ने पर, नारी को दुर्जन शक्ति की अधिकारिणी बनाता है।

'बीरांगना' काव्य में कवि ने नारी-हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म कामना एवं वेदना को सुतीक्ष्ण अंतर्दृष्टि एवं गहरी सहानुभूति की सहायता से प्रकट किया जाता है। पुराण के इतिवृत्त को निमित्त बनाकर कवि ने रोमानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण की सहायता से एक-एक पत्र में एक-एक रस का विकास दिखाया है। भाव एवं भाषा पर कवि का पूर्ण संयम उल्लेखनीय है। 'बीरांगना' काव्य आत्मगत भावोच्छ्वास है और कवि की एक सफल कृति है।

बुंदेली *(भाषा० पारि०)*

पश्चिमी हिंदी की एक बोली जो शुद्ध रूप में झाँसी, जालोन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नृसिहपुर तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके सीमांत रूप सीमावर्ती भाषाओं और बोलियों से प्रभावित हैं जो आगरा, दतिया, चरखारी, दमोह आदि में बोले जाते हैं। बुंदेली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। बुंदेली में साहित्य-रचना नहीं हुई है। यहाँ के मध्यकालीन कवि ब्रजभाषा में लिखते रहे हैं। लाल कवि का ग्रंथ 'छत्रप्रकाश' अपवाद है जिसकी भाषा मुख्यतः बुंदेली है। बुंदेली की मुख्य उपबोली बनाफरी है। प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' मूलतः बनाफरी में ही लिखी गई थी।

बुच्चिबाबू *(तें० ले०)*

ये तेलुगु के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार एवं नाटककार हैं। इनको रचनाओं में अव्यक्त मानसिक स्थिति के चित्रण की प्रधानता देखी जा सकती है। मानव-व्यवहार के बाह्य आवरण को भेदकर उसके अवचेतन की प्रेरणा तक पहुँचकर उसका विश्लेषण करने में इनको विशेष सफलता मिली है। चरित्रों के मन में क्षण-काल में उत्पन्न होकर तुरंत विलीन होने वाले भावों के चित्रण में ये अत्यंत कुशल हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ—'चिवरकु मिगिलेदि' (दे०),'तिष्यरक्षिता', 'नालुगोपरिमाणमु' आदि हैं। विज्ञान के विकास के कारण मानव की तात्त्विक दृष्टि में प्रकट होने वाले परिवर्तन को चित्रित करने वाली नाटिका 'नालुगोपरिमाणमु' है। 'तिष्यरक्षिता' इनकी एक ऐतिहासिक नाटिका है जिसमें प्रेम और विवाह, धर्म और समाज बंधनों के संबंध में एक नवीन दृष्टि का परिचय दिया गया है। 'चिवरकु मिगिलेदी' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। इसमें अपनी माँ के संबंध में सुनी गई निंदा से सदा पीड़ित होकर अंत तक अपनी समस्त शक्तियों को नष्ट करने वाले एक युवक का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। गतिमय शैली एवं अभिव्यक्ति के नूतन इनकी रचनाओं के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक हुए हैं।

बुच्चि सुंदर रामशास्त्री, माधवपेद्दि *(तें० ले०)* [जन्म—1890; मृत्यु—1950 ई०]

ये गुंटूर ज़िले के निवासी थे। काव्य-रचना की प्रेरणा इन्हें तिरुपति कवियुग्म की अद्भुत काव्य-साधना से मिली। उन्हीं के यहाँ शास्त्री जी ने संस्कृत का अध्ययन किया। शास्त्री जी स्वतंत्र-चेता व्यक्ति थे और संगीत के उत्कट प्रेमी थे। शास्त्री जी का जीवन कई विकट परिस्थितियों से गुज़रा था। अपने जीवन की वेदना को ही इन्होंने काव्य का कमनीय रूप दिया था। 'बृंदावनमु', 'सती स्मृति' आदि रचनाओं में इनकी यही व्यक्तिगत वेदना कला का अवगुंठन लेकर प्रकट हुई। तेलुगु के शतक (दे०) साहित्य में इनके 'मृत्युंजय शतकमु' का विशिष्ट स्थान है। 'पंचवटी (दे०) और 'शबरी' इनके प्रसिद्ध खंड-काव्य हैं।

राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत कविता लिखने में भी इन्होंने काफ़ी सफलता प्राप्त की है। इनके जीवन का अंतिम भाग घोर दरिद्रता में बीता।

बुद्ध *(सं० पा०)* [स्थिति-काल—छठीं शती ई० पू०]

इनका वास्तविक नाम गौतम था। इनका जन्म 563 ई० पू०, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को कपिलवस्तु के समीप लुंबिनी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता माया देवी का, जब ये सात दिन के ही हुए थे, स्वर्गवास हो गया था। इनके पिता का नाम शुद्धोदन था, जो शाक्यों के अधिपति थे। गौतम का विवाह क्षत्रिय कन्या से संपन्न हुआ था। इनका एक पुत्र था, जिसका नाम राहुल था। जब गौतम ज्ञान-प्राप्ति के लिए बोधगया गए तो वहाँ इन्होंने पीपल के वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। वहीं इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई थी और उसी समय से ये बुद्ध कहलाए। वह पीपल का वृक्ष भी ज्ञानवृक्ष के नाम से प्रख्यात हो गया।

बुद्ध ने जिस धर्म एवं दर्शन का प्रचार किया था, वह मूल तथा लोककल्याण, सत्य एवं अहिंसा की दृढ़ नींव पर आधारित था। भारत ही नहीं, समस्त विश्व को बौद्ध धर्म एवं दर्शन की देन अत्यंत महनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचरित (*सं० कृ०*)

इस महाकाव्य के प्रणेता अश्वघोष (दे०) हैं, जिनका समय प्रथम शती ई० माना जाता है। इसमें बुद्ध के जन्म से लेकर महानिर्माण तक की कथा वर्णित है मूलतः इसमें 28 सर्ग थे। चीनी और तिब्बती भाषा में इसके 28 सर्गों का अनुवाद उपलब्ध है, किंतु संस्कृत में प्रायः इसके पहले 14 सर्ग मिलते हैं, और चौदहवें सर्ग में भी 31वें श्लोक तक पाठ मिलता है। इस ग्रंथ की शैली की प्रमुख विशेषता है सरसता एवं सुबोधता, तथा इस काव्य में वैदर्भी रीति की प्रधानता मानी गई है। स्वभावतः इसमें प्रसाद और माधुर्य गुण का आधिक्य है। इसके वर्णनों में यथार्थता, सजीवता एवं स्वाभाविकता है। इसमें आश्रम, नदी, वन, वृक्षादि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अति मनोरम है। इसके अतिरिक्त ग्रंथकार का व्याकरण, दर्शन, पुराण, राजनीति, नीतिशास्त्र, आर्वेयुद, कामशास्त्र पर असाधारण अधिकार है। कवि ने इन शास्त्रों से संबंद्ध विषयों को भी निसंदेह कुछ-एक स्थलों को छोड़कर, सरल-सुबोध रूप में प्रस्तुत किया है।

बुद्धघोष (*पा० ले०*) [समय—पांचवीं शती ई०]

इनका जीवन-वृत्त कुछ तो महावंश के 33 पद्यों से और कुछ ब्रह्मा के भिक्षु महामंगल लिखित 'बुद्धघोष उसपत्ति' से ज्ञात होता है। इसके माता-पिता केशी गया के निकट घोष ग्राम के निवासी थे। ब्राह्मण धर्म में अनास्था के कारण जब ये उसका खंडन करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे तो इनका परिचय रेवतक नामक भिक्षु से हुआ जिससे प्रभावित होकर ये बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए। बाद में उनके ही परामर्श से ये लंका चले गए जहाँ इन्होंने बौद्ध-साहित्य का गहराई से अध्ययन और अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। बाद में बोधिवृक्ष के नीचे साधना करने भारत लौट आये। कुछ दिन बाद में ब्रह्म चले गए।

बुद्धघोष का साहित्य अत्यंत विशाल है। भारत में ही इन्होंने दो पुस्तकों की रचना की थी 'ज्ञानोदय' और 'आत्मशालिनी' (दे० अट्टशालिनी)। दूसरी पुस्तक 'अभिधम्पपिटक' (दे०) के एक भाग 'धम्पसंगनी' की व्याख्या है। इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुस्तक 'विसुद्धिमग्ग' (दे०) है जिसमें तीनों पिटकों का सार दिया हुआ है।

बुद्धघोष प्रतिभा और अभिव्यंजशा-शक्ति दोनों के ही धनी थे। बौद्ध धर्म का इनका अत्यंत गहन था। बुद्ध के उपदेशों को समझना ही इनका लक्ष्य था जिससे मौलिक चिंतन के लिए विशेष अवसर नहीं मिला। सामान्य भूमिका, इतिहास, सुत्त या संवाद का समय, पाठ भेदों पर विचार और निर्णय तथा व्याख्या, यह इनकी टीकाओं की सामान्य रूपरेखा है। ये विवेचन में नीरसता के परिहार के लिए विशेष सचेष्ट हैं और पाठकों की रुचि बनाये रखने के लिए कोई-न-कोई कथा छेड़ देते हैं जो पौराणिक, ऐतिहासिक, तत्कालीन लोकप्रसिद्ध इत्यादि किसी प्रकार हो सकती है। इन कथाओं से उस समय के सामाजिक रीति-रिवाज, व्यापारिक परिस्थिति, लोक-साहित्य आदि का अच्छा परिचय मिल जाता है। केवल भारत में ही नहीं समस्त बौद्ध-जगत् में बुद्धघोष का साहित्यिक योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

बुद्धदत्त (*पा० ले०*) [समय—पांचवीं शती ई०]

इनके जीवन-वृत्त का कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। प्रसिद्धि के अनुसार इनका जन्म भारत में हुआ था और इन्होंने कई बार भारत से लंका और लंका से भारत की यात्राएँ की थीं। ये दक्षिण भारत के अनेक नगरों में रहे थे। यह भी प्रसिद्ध है कि इनका साक्षात्कार बुद्धघोष (दे०) से हुआ था; किंतु कतिपय विचारकों के मत में इन्हें अधिक प्राचीन सिद्ध करने और इन्हें महत्व प्रदान करने के मंतव्य से इन लेखकों के मिलने की कहानी गढ़ ली है।

बौद्ध-साहित्य में इनकी लिखी कई पुस्तकें प्रसिद्ध हैं जो अधिकांश टीकाएँ ही हैं। इन्होंने 'बुद्धवंश' (दे० सुत्तपिटक) पर एक टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'अभिधम्पपिटक' (दे०) का पूर्ण परिचय 'अभिधम्मावतार' नामक पुस्तक में और 'विनयपिटक (दे० का विवेचनात्मक परिचय 'विनयनिच्चय' में दिया है। इनकी लिखी हुई एक पुस्तक 'रूपारूपविभंग' भी है। इन पुस्तकों का संकलन और संपादन इस शती के दूसरे दशक में बुद्धदत्त नामक एक भिक्षु ने किया था। इसके नाम पर एक अन्य पुस्तक भी प्रसिद्ध है 'जिनालंकार जिस पर बुद्ध-रक्षित की टीका है। टीकाकार ने अपना समय बुद्धनिर्वाण के 1700 वर्ष बाद दिया है। जिससे टीका का रचना काल बारहवीं शती ज्ञात होता है। पुस्तक की विषय-वस्तु की दृष्टि से यह रचना बारहवीं शती के पहले की ज्ञात भी नहीं होती। अतः कुछ लोगों के विचार से पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचना भी बुद्धरक्षित ने ही की थी।

बुद्धदत्त की पुस्तकें बौद्ध धर्म तथा बौद्ध धर्म का अध्ययन करने की दिशा में अत्यंत उपयोगी हैं। इनकी शैली साफ-सुथरी तथा प्रसाद गुण-पूर्ण है। किसी विस्तृत विषय का समाहार करने की इनमें उच्चकोटि की क्षमता है। बुद्धघोष की शैली का अनुकरण करने की इन्होंने सफल चेष्टा की है।

बुद्धरक्खित *(पा० ले०)*

ये पाली बौद्ध-साहित्य के लेखक हैं। इनका समय बारहवीं शती है। इन्होंने 'जिनालंकार' नामक पुस्तक की रचना 1156 ई० में की थी। इस पुस्तक में आडंबरपूर्ण शैली में भगवान् बुद्ध के जीवन पर 250 पद्य हैं और बौद्ध-साहित्य के अलंकृत काव्यों का एक उदाहरण है। शब्दालंकारों के साथ चित्रकाव्य (दे०) को भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कहीं पद्य व्यंजन-वर्ण रहित हैं और कहीं एकाक्षर पद्य। इसमें पौराणिक अत्युक्तियाँ भी हैं।

बुद्धारेड्डी, गोन *(ते० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

काकतीय राजाओं के सामंत नरेश गोन बुद्धारेड्डी तेलुगु-साहित्य में राम-काव्य के प्रणेताओं में अग्रगण्य माने जाते हैं। ये और इनके पिता विट्ठलराज भगवान विष्णु के अनन्य भक्त थे। पिता की इच्छा पर ही बुद्धारेड्डी ने रामायण की रचना की और उसे उन्हीं को समर्पित किया। पिता के नाम पर ही इन्होंने अपनी कृति का नाम 'रंगनाथ रामायणमु' (दे०) रखा। विट्ठल, पांडुरंग और रंगनाथ कवि के आराध्य प्रभु के पर्यायवाची नाम होने के कारण उनकी कृति का नाम उनके आराध्यदेव और पितृ-पाद दोनों का बोधक बन सकता है। कुछ लोग 'रंगनाथ रामायणमु' का कर्ता रंगनाथ नाम के किसी अन्य कवि को मानते हैं। पर इसके समर्थन में कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। अतः विद्वान लोग गोन बुद्धारेड्डी को ही इस ग्रंथ का लेखक मानते हैं। इनके जीवन-काल के संबंध में भी मतभेद है। कुछ लोग इनको चौदहवीं शती के आरंभ के बताते हैं और कुछ लोग तेरहवीं शती के अंत के। बुद्धारेड्डी के पूर्व तेलुगु में शैव-वाङ्मय का प्रचार जनभाषा में साधारण जनता में अधिक प्रचलित द्विपद शैली में किया जा रहा था। लोकरुचि को पहचान कर बुद्धारेड्डी ने भी उसी भाषा और उसी शैली में अपनी काव्य-साधना चलाई और जन-मानस को रामकथापीयूष से आप्लावित कर दिया था। बुद्धारेड्डी की भाषा में जन-मन को रंजित करने वाली मंजुल मनोहारिता भी है और परिष्कृत रुचि के पंडितों को प्रभावित करने वाली प्रौढ़ एवं परिमार्जित प्रवहमानता भी।

बुरंजी *(अ० पारि०)*

असमीया भाषा में बहुत से शब्द आहोम भाषा के आ गए हैं। बुरंजी भी एक ऐसा ही शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है बु=प्राचीन वार्त्ता + रंज= विवरण। अब असमीया भाषा में इतिहास शब्द के लिए 'बुरंजी' शब्द का ही प्रयोग होता है। इसका दो दृष्टियों से महत्व है—(1) जिस समय किसी भी भारतीय भाषा में साहित्य नहीं लिखा जा रहा था, उस समय असमीया में लिखा गया, (2) भारतीय साहित्य में जब गद्य का प्रचार नहीं हुआ था, उस समय गद्य में इतिहास जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे जा रहे थे। आहोम लोग तेरहवीं शती में असम देश में बस गए थे। पहले वे अपनी आहोम भाषा और लिपि में इतिहास लिखाते थे; कालांतर में उन्होंने कभी आहोम भाषा और असमीया लिपि का प्रयोग किया तो कभी इसका उल्टा किया। सोलहवीं शती के लगभग उन्होंने पूरी तरह असमीया लिपि और भाषा में बुरंजी (इतिहास) लिखाना आरंभ किया। बुरंजियों में देश की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों आदि का वर्णन किया जाता था, घटनाओं के साथ वर्ष, मास, दिन और दंड-पल तक दिए जाते थे। इनमें रोचकता का समावेश होने के कारण इनका साहित्यिक मूल्य भी है। अब तक 150 बुरंजी ग्रंथ लिखे गए हैं; इनमें सबसे प्राचीन ग्रंथ है 'पुरणि असम बुरंजी' (1516 शक) आहोम राजाओं के इन ग्रंथों की प्रेरणा से कोच राजाओं ने वंशावली-ग्रंथ लिखाए थे। सत्रों (मठों) में भी वंशावली लिखने का प्रचार चल पड़ा था।

बुर्रकथा *(ते० पारि०)*

यह कथा कथनात्मक प्रदर्शन की एक प्रक्रिया है। कथक द्वारा बजाए जाने वाले वाद्यविशेष के कारण इसको यह नाम दिया गया है। इसमें पहले साधारणतया सितार के समान दिखने वाले एक वाद्य को लेकर कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने वाला एक पुरुष होता है। और उसके दोनों ओर दो व्यक्ति ढोलक जैसे वाद्य को लेकर कथा की पुष्टि करते हुए बीच-बीच में कथा का विवरण पूछते हैं तथा हास्यपूर्ण प्रसंगों की सृष्टि किया करते हैं। ये दो व्यक्ति पहले प्रायः स्त्रियाँ होती थीं। अतः बुर्रकथा सुनाने वाला व्यक्ति दो स्त्रियोंसे विवाह किया करता था। अब बुर्रकथा में तीनों पुरुष भी होते हैं। बुर्रकथा आंध्र में बहुत पुराने समय से प्रचलन में है। इसका संबंध शिष्ट साहित्य से कम और लोक-साहित्य से अधिक होता है। इसमें मुख्य रूप से वीर एवं करुण रसों का परिपाक होता है और इसमें सहज एवं सरल व्यावहारिक भाषा का अधिक प्रयोग होता है। इसमें कथक वीर रसात्मक प्रसंगों में परवश होकर नृत्य करते हैं और दर्शक के हृदय में भी रसावेग उत्पन्न हो जाता है। बुर्रकथा ने मुख्य रूप से आंध्र की कई लोक-कथाओं को अपनाया है जिनमें 'पलनाटि वीर चरित्र (दे०), 'बोब्बिलि कथा', 'बालनांगम्म कथा' आदि प्रसिद्ध हैं। इसमें संगीत, साहित्य एवं नृत्य का सम्यक् समावेश हो जाने से शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों प्रकार की जनता को यह प्रभावित करती है।

बुल्बुल, शम्सुद्दीन *(सिं० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

शम्सुद्दीन बुल्बुल मेहड़ सिंध के ज़मींदार थे। ये बाद में कुछ वर्षों के लिए कराची में जाकर रहे थे जहाँ मद्रसे की तरफ़ से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'मुआंविन' का संपादन करने लगे थे। इन्होंने सिंधी, उर्दू और फ़ारसी में कविताएँ लिखी हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा सिंध के मुसलमानों को नवचेतना प्रदान की थी और उन्हें अँग्रेज़ी सीख कर नया ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया था। इनकी दो काव्यकृतियाँ 'दीवान-बुल्बुले' और 'करीमा नैचरल' बहुत प्रसिद्ध हैं। उर्दू के शायर अकबर इलाहाबादी की तरह इन्होंने भी फ़ैशनपरस्त और अँग्रेज़ों की नकल करने वाले हिंदुस्तानी लोगों की कटु आलोचना की है। बुल्बुल के काव्य की भाषा हास्य और व्यंग्य से पूर्ण है। इस दृष्टि से अभी तक और कोई सिंधी कवि इनका स्थान नहीं ले सका है।

बुल्लेशाह *(पं० ले०)* [जन्म—1680 ई०; मृत्यु—1754 ई०]

इनका जन्म लाहौर नगर में 1680 ई० में हुआ और मृत्यु कसूर में 1754 ई० में हुई। जीवन का अधिकांश समय कसूर में बीता। इन्होंने अठवारे, काफ़ियाँ, बार मांह, सीहरफियाँ और दोहे लिखे हैं। सबसे अधिक काफ़ियाँ प्रसिद्ध हैं। काव्य का विषय सूफ़ी मत के अनुसार प्रेम-वर्णन है। प्रेम की अभेदता का चित्रण मार्मिक है। इनके काव्य में भाव-प्रवणता एवं रागात्मकता का प्राधान्य है। अनुभूति की तीव्रता भी काव्य में विद्यमान है। फ़ारसी काव्य के उपमानों एवं प्रतीकों की अपेक्षा पंजाब के सामान्य जीवन से ही उपमानों तथा प्रतीकों की योजना काव्य में दृष्टिगत होती है। फूल, बुलबुल, शराब इत्यादि की अपेक्षा कुआँ, चरखा, मायका, विवाह आदि के द्वारा उपमान-योजना की गई है। कवि बुल्ले शाह का वैंत (दे०) छंद में लिखा काव्य संगीत की मादकता का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण इनका काव्य भारतीय सूफ़ीवाद का रूप ले गया है जिसमें विदेशी आध्यात्मिकता-बोधक शब्दों की अपेक्षा भारतीय रहस्यवादी शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है। उदाहरणतः—

इक अँधेरी कोठड़ी दूजा दीवा ना वत्ती।
बाहों फड़के लैं चले, शाम वे, कोई संग न साथी॥

इनके काव्य की भाषा में लंहदी, हिंदी, फ़ारसी एवं अपभ्रंश का मेल है।

बूंद और समुद्र *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1956 ई०]

यह अमृतलाल नागर (दे०) का बहुचर्चित एवं लोकप्रिय उपन्यास है जिसमें मध्यवर्गीय नागरिक-जीवन को आधार बनाकर व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक संबंधों में संतुलन तथा समन्वय की समस्या पर विचार किया गया है। उपन्यास का कथानक लखनऊ के एक ऐसे मोहल्ले से संबंधित है जो भारतीय समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। रायसाहब, कवि विरहेश, महिपाल, सज्जन, कर्नल आदि ऐसे पुरुष पात्र हैं जो दंभी, स्वार्थी, शराबी, वेश्यागामी, बुद्धिजीवी, सुधारक आदि विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं तो 'ताई' (दे०) बड़ी, नंदो, तारा, श्रीमती राजदान, शीला स्विंग, वनकन्या आदि ऐसी स्त्री पात्राएँ हैं जो नाना प्रकार की प्राचीन रूढ़ियों, टोने-टोटकों, भूत-प्रेत, जंतर-मंतर आदि में विश्वास करने वाली; अतृप्त प्रेम तथा वासना में घुलने वाली; घर में ही कुट्टिनी का काम करने वाली, नये फ़ैशन तथा नयी शिक्षा में दीक्षित होकर स्वतंत्रता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपभोग करने वाली, कर्तव्य के प्रति जागरूक तथा स्वावलंबी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ताई इस उपन्यास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अजर-अमर सृष्टि है। यह बाहर से विश्व भर की कृपा तथा हिंसा का पुंजीभूत रूप प्रतीत होने पर भी भीतर से अत्यंत करुणापूर्ण एवं ममतामयी है। लेखक ने इसके माध्यम से मानव-समाज में अपनी गहरी पैठ का अत्यंत सफल परिचय दिया है। हास्य-व्यंग्य-गर्भित कथोपकथन तथा छोटे-छोटे व्यंजक विवरणों द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि करके लेखक ने इस उपन्यास को अत्यधिक प्रभावपूर्ण बना दिया है। अत्यंत विस्तृत आधारफलक ग्रहण किए जाने के कारण इसमें घटनाओं तथा पात्रों की बहुलता अवश्य है; लेकिन इन सबको ऐसी कुशलता के साथ सँजोया गया है कि न तो औपन्यासिक गठन को आँच पहुँची है और न किसी प्रकार की अस्वाभाविकता ही आने पाई है।

बूढ़ो शालिकेर घाड़े रौं *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1860 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के पहले प्रहसन में पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के दुष्परिणाम दिखाए गए थे। इस प्रहसन में उन्होंने ग्रामीण-समाज में अधिकार संपन्न लोगों के अत्याचार एवं दुराचार का वास्तविक चित्र खींचा है। भक्त प्रसाद (दे०) एक ऐसा ही विधुर व्यक्ति है जो असामियों की विवशता का लाभ उठाकर अपनी लंपट-वृत्ति का परितोष करता है। भक्त ने हनीफ़ का लगान इसलिए माफ़ कर दिया ताकि उसकी सुंदर पत्नी फ़ातिमा को पा सके। इसके लिए षड्यंत्र-जाल तो रचता ही है परंतु दुर्भाग्य से उसी में स्वयं फँस जाता है। एक दूसरे असामी वाचस्पति की सहायता से भक्त को रँगे हाथों पकड़ लिया जाता है। अपने कुकर्म के एहसास से उसे पश्चात्ताप एवं ग्लानि तो होती है परंतु इसका मूल्य भी उसे चुकाना पड़ता है। इस प्रकार इस प्रहसन में व्यंग्य का आधार है भक्त के आचरण में विसंगति तथा विकृति।

इस प्रहसन के कथानक का विकास-क्रम चरम उत्कर्ष की ओर है। इस बिंदु पर पहुँचकर नाटककार सभी पक्ष उद्घाटित कर देता है। प्रहसन के दो अंक और प्रत्येक अंक के दो गर्भांक हैं। संवाद सहज एवं स्वाभाविक हैं। भाषा पात्रानुसार है। अभिनय की दृष्टि से यह प्रहसन पर्याप्त सफल एवं लोकप्रिय रहा है। पात्र तो कई हैं परंतु सर्वाधिक सशक्त पात्र भक्त प्रसाद है।

अंत में सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाने के कारण प्रहसन का व्यंग्य कुंठित हो गया है। माइकेल के दोनों प्रहसन एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों प्रहसनों (दे० भक्त प्रसाद) का परवर्ती नाटककारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

बृत्रसंहार *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—प्रथम खंड : 1875 ई०; द्वितीय खंड : 1877 ई०]

'बृत्रसंहार' काव्य की रचना हेमचंद्र बंद्योपाध्याय (दे०) ने 'मेघनाद बध' (दे०) के अनुकरण पर की थी। बृत्रासुर के द्वारा स्वर्ग-विजय एवं इंद्र के द्वारा पुनः स्वर्ग पर अधिकार एवं बृत्र-वध के लिए दधीचि के महान् आत्म-त्याग की कथा के प्रति हेमचंद्र का कविमानस बहुत अधिक आकृष्ट हुआ था। इसी पुराणाश्रित कहानी के आश्रय से कवि ने 'बृत्रसंहार' काव्य में स्वदेश-प्रेम की अभिव्यक्ति की है। वस्तुतः देशानुराग एवं आत्मत्याग ही इस काव्य का मूल स्वर है। हेमचंद्र ने पौराणिक वृत्र-वध की कहानी को युगोपयोगी बनाने का सफल प्रयत्न किया है।

कहानी भिन्न होने पर भी 'बृत्रसंहार' की भाव-परिकल्पना, रूप-विधान, चरित्र-चित्रण एवं छंद-विधान में 'मेघनाद-वध' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है यद्यपि देव-दैत्य-संग्राम की उद्दीपना में लेखक की मौलिकता स्पष्ट है। वीर एवं रौद्र रस की वर्णना में हेमचंद्र का कौशल बहुत ही सुंदर ढंग से प्रकट हुआ है। वीरत्व, गांभीर्य एवं अलौकिक महिमा के वर्णन में कवि सिद्धहस्त है। इसमें गार्हस्थ्य जीवन का रूप, रस, साधारण द्वंद्व-जटिलता एवं करुण अनुभूति महाकाव्य की कठोर, आदर्श-नियंत्रित सीमा का अतिक्रमण कर परिव्याप्त है। माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के समकक्ष न होने पर भी विषय-गौरव, समसामयिक रुचि के अनुवर्तन एवं काव्य-शक्ति के प्रकाश के द्वारा हेमचंद्र ने अपनी कवित्व-शक्ति का सुंदर परिचय दिया है।

बृहत् पिंगल *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

रामनारायण विश्वनाथ पाठक (दे०) द्वारा लिखित तथा गुजराती साहित्य परिषद्, बंबई द्वारा प्रकाशित 'बृहत् पिंगल' नामक ग्रंथ गुजराती-साहित्य में पिंगल-शास्त्र पर सर्वाधिक आधिकारिक ग्रंथ है। छंदों से संबंधित इस आकर-ग्रंथ में विद्वान् लेखक ने छंदों के विकास की यथाशक्ति ऐतिहासिक भूमिका को उठाते हुए छंदों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवलंबन तत्त्व वाणी के अक्षर की चर्चा की है, उनकी गणना का आधार प्रस्तुत किया है और गुजराती में संस्कृत से भिन्न उच्चारण की स्थितियों को स्पष्ट कर उनका परीक्षण किया है। परिणामस्वरूप इस ग्रंथ में गुरु-लघु के निर्णय से संबद्ध नियमों को एक निश्चित ऐतिहासिक आयाम में देखने का उपक्रम किया गया है। लौकिक और वैदिक—इस प्रकार छंदों के दो भेद मानकर उनके पृथक् होने के परंपरागत आधारों को खोजने की चेष्टा की गई है। वर्णवृत्तों के परंपरागत स्वरूप का विवेचन, मात्रा-गर्भवृत्त और अनुष्टुप (मात्रात्मक और लयात्मक होने के कारण) की समस्या का प्रस्तुतीकरण, यति और यतिभंग, संधि और वृत्तों के संयोग से उत्पन्न नये वृत्तों की समस्या का उद्घाटन, विभिन्न मात्रा वाले गणों की चर्चा, देशी पद की स्वरूप-चर्चा तथा समसंख्यसंधिबद्ध और असमसंख्य-संधिबद्ध देशियों की चर्चा आदि इस ग्रंथ के मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहे हैं। इन सभी विषयों की चर्चा में समाविष्ट न हो सकने वाले अन्य संबद्ध विषयों को भी लेखक ने परिशिष्टों में समाविष्ट कर लिया है। परिशिष्ट दो प्रकार के दिखाई देते हैं: प्रकरणांत में 1, 2, 3 आदि के क्रम से ज्ञापित तथा (क), (ख), (ग) से विज्ञप्त। क्रमांक में दिए गए परिशिष्टों में अक्षर, ऐतिहासिक दृष्टि से लघु-गुरु का विवेक, उसमें अपवाद शैथिल्य और छूट, वैदिक छंद और छंदों के प्रकार, संस्कृत पिंगलशास्त्र में यति-चर्चा भरत (दे०) और प्राकृतपैंगलम् के आधार पर निरूपण-पद्धतियों की चर्चा, आवृत्तिसंधि अक्षरमेल वृत्त और वृत्तों का परंपरागत पठन, अनुष्टुप, यतिपूर्ण अक्षरों का गुरुत्वऔर यति-संबंधी अर्वाचीन लेखकों की चर्चा, काव्यनिरूपण की रीतियाँ, अनावृत्ति-संधि संबंधी के० ह० ध्रुव के मत की विवेचना, प्लवंगम-पठन से संबद्ध अन्य मतों की चर्चा, मराठी घनाक्षरी का स्वरूप और ओवी और अभंग आदि समाविष्ट हैं। दूसरी ओर (क), (ख), (ग) के रूप में दिए गए परिशिष्ट जाति छंद (डिंगल के छंद और ग़ज़ल,) पद तथा प्रवाही छंद अथवा अबाध पद्य-रचना के प्रयत्न आदि विषयों से संयुक्त हैं। इस ग्रंथ-लेखक ने पिंगल-निरूपण के मुख्य-मुख्य सिद्धांत निश्चित करने का प्रयत्न किया है। छंदों को संगीत के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न भी किया गया है। छंदों के रचना-विधान में समय-समय पर हुए परिवर्तनों के कारणों पर भी उपसंहार में विचारकिया गया। संपूर्ण ग्रंथ गुजराती में लिखा होने पर भी मुद्रित देवनागरी में हुआ है। लेखक ने इसका कारण देते हुए स्पष्ट लिखा है कि इसे देवनागरी में मुद्रित कराने का हेतु यह है कि हिंदी-मराठी के लोग छंदःशास्त्र पर विचार करते समय इस ग्रंथ पर भी ध्यान दें। गुजराती साहित्य में तो क्या भारतीय आधुनिक भाषाओं के पूरे साहित्य में छंदःशास्त्र पर इतने सूक्ष्म इतिहासपरक तथ्यान्वेषण से युक्त शायद ही कोई दूसरा ग्रंथ हो। इस ग्रंथ की शैली तर्कयुक्त, प्रमाण-पुष्ट ऐतिहासिक निरूपण को लेकर चली है।

बृहद् व्याकरण *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1919 ई०]

कमलाशंकर त्रिवेदी (1857-1925 ई०)-विरचित गुजराती भाषा का यह प्रथम विस्तृत व्याकरण है। संस्कृत के पंडित होने के कारण लेखक ने यह व्याकरण संस्कृत व्याकरण के आधार पर लिखा है। व्याकरण के समूचे अंग लेकर लेखक ने प्रचुर दृष्टांत देकर और मराठी तथा हिंदी भाषा से गुजराती भाषा की विशेषता की तुलना करते हुए और साथ-साथ संस्कृत भाषा तथा अन्य भाषाओं के रूपांतर से गुजराती शब्द-समृद्धि किस प्रकार हुई—इसका क्रमिक निरूपण किया है। इस पुस्तक के प्रकाशन के फलस्वरूप गुजराती-लेखन में शुद्धता आई क्योंकि समसामयिक साहित्यिक रचनाओं को लेकर लेखक ने उन रचनाओं के व्याकरण-दोष भी दर्शाए हैं।

बेंद्रे, द० रा० *(क० ले०)*

बेंद्रे जी आधुनिक युग के विख्यात कवि हैं। इनका उपनाम 'अंबिकातनयदत्त' है। इन्होंने धारवाड़ में 'गेळयर गुंपु' (मित्र-मंडली) की स्थापना कर उसके द्वारा अनेक कवियों और लेखकों को प्रेरणा दी है। विनायक कृष्ण गोकाक (दे०), मुगळि (दे०), मधुरचेन्न (दे०), आनंदकंद (दे० कृष्णशर्मा, नेटगेरी) आदि साहित्यकार इनसे प्रेरित हुए हैं।

बेंद्रे जी की प्रतिभा बहुमुखी है। ये एक-साथ कवि, नाटककार, गद्यकार और आलोचक हैं। कवि और नाटककार की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। 'मुगलि-मल्लिग' (मेघ मल्लिका), 'उत्तरायण', 'नमन', 'संचयन', 'हृदय-समुद्र', 'मुक्तकंठ', 'सखीगीत', 'गंगावतरण', 'यक्ष-यक्षि', 'मेघदूत' आदि इनके काव्य-संग्रह हैं। इनमें उनके भावगीत (गीति-मुक्तक) और लंबी कविताएँ संगृहीत है। इन संग्रहों में वस्तु की विविधता और प्रयोगातिशय देखने योग्य है। बेंद्रे जी आशु कवि हैं। इन्होंने अपनी कविता के लिए निसर्गसिद्ध सुषमा, राष्ट्रप्रेम, प्रेयसी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियतम का प्रेम, पारिवारिक सुख-दुःख, कला, आत्मानुभूति ऐसे सभी विषय चुने हैं। इनकी दृष्टि में सभी वस्तुएँ—मूर्त हों या अमूर्त—काव्य की वस्तुएँ बन सकती है। 'कृष्णकुमारी' में इतिहास-प्रसिद्ध करुण कथा वर्णन हैं। 'सखीगीत' में कवि के दांपत्य जीवन की आत्मकथा है। 'मूर्ति' नामक कविता में एक प्रतीक-योजना है।

जीवनद्रष्टा होने के कारण बेंद्रे जी रचनाओं में जीवन की मार्मिक अनुभूतियों को मूर्त रूप प्राप्त हुआ है। कुछ विद्वानों ने इनके काव्य को 'शब्द-स्मृति' कहा है। प्रकृति-चित्रण हो अथवा अन्य कोई चित्र, उसको 'शब्द-शरीर' प्रदान करने में इनको विशेष सफलता मिली है। इनकी चेतनशील कल्पना के कितने रूप होते हैं, यह कहना कठिन है। एक-एक कविता में एक-एक प्रकार का कल्पना-विलास है। इनकी कविताओं में 'कुणियोणु बार' (नाचेंगे आओ), 'सखीगीत', 'गंगावतरण', 'हक्कि हारुतिदे' (चिड़िया उड़ रही है), 'युगादि', 'नादलीला आदि अत्यंत लोकप्रिय हुई है।

'नगेय होगे' (हँसी का धुआँ) और 'उद्धार' जैसे नाटकों के अतिरिक्त बेंद्रे जी ने कतिपय उत्कृष्ट साहित्यिक निबंध भी लिखे हैं जो उनकी अपार विद्वत्ता और प्रतिभा के सुंदर निदर्शन हैं।

बेक्स, मुहम्मद मुहसिन *(सिं० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1880 ई०]

मुहम्मद मुहसिन 'बेकस' सिंध के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि कादिर बख्श (दे०) बेदिल के सुपुत्र थे। इन्होंने अरबी और फ़ारसी की प्रारंभिक शिक्षा तो अपने पिता से प्राप्त की थी किंतु बाद में ये आखूंद अब्दुल्ला के पास पढ़ने लगे। इन पर बचपन से ही पिता की आध्यात्मिक वृत्ति का प्रभाव पड़ चुका था। ये सितार बजाने और गाने में सिद्धहस्त थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था और अपने मित्रों के साथ अलबेलों की तरह बाज़ारों में घूमते रहते थे। ये दरवेशों और फ़क़ीरों की दरगाहों में जाकर अपने रचे हुए सिंधी गीत और काफ़ियाँ गाकर सुनाया करते थे। ऐसे अवसरों पर गाते-गाते ये प्रायः भावविभोर हो आत्मविस्मृति की अवस्था को पहुँच जाते थे। इनकी कविता प्रेम की मादकता, पीड़ा की भावना और संगीतात्मकता के गुणों से पूर्ण है।

'बेख़ुद' देहलवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1955 ई०]

पूरा नाम—सैयद वहीदुद्दीन, उपनाम—'बेख़ुद'; पिता का नाम—सैयद शम्सुद्दीन अहमद, जन्म-स्थान—भरतपुर। इनका लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा दिल्ली में हुई। मौलाना 'हाली' (दे०) इनके काव्य-गुरु थे। मौलाना हाली के बाद 'दाग़' (दे०) देहलवी का भी शिष्य बनने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ। शिकार, घुड़सवारी और तलवार चलाने में इन्हें बहुत रुचि थी किंतु काव्य-प्रेम अन्य सभी रुचियों पर छाया हुआ। इनके दो काव्य-संग्रह—'गुफ़्तार-ए-बेख़ुदी' और 'दुर्र-ए-शहवार' प्रकाशित हो चुके हैं। ग़ज़ल-लेखन में इन्हें विशेष दक्षता प्राप्त थी। भाषा इनकी सरस, सजीव और प्रसाद गुण-संपन्न है। मुहावरों का सफल प्रयोग तथा संगीतात्मकता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं 'बेखुद' साहब दिल्ली में अँग्रेज़ अफ़सरों को उर्दू-फ़ारसी पढ़ाया करते थे।

बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

इन्होंने कलकत्ता से एम० ए०, बी० एल० तक शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने उड़ीसा के मंगलपुर में व्यवसाय किया था। ये कई पत्रिकाओं के संपादक थे। 1924 ई० इन्होंने असम-साहित्य-सभा का सभापतित्व किया था। 1931 ई० में साहित्य-सभा ने इनका अभिनंदन कर रसराजि की उपाधि प्रदान की थी।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'कदमकलि' (दे०) (1913); **प्रहसन :** 'लितिकाइ' (दे०) (1889-90), 'पाँचनि' (1913), 'नोमल' (दे०) (1913), 'चिकरपति निकरपति' (1913); **ऐतिहासिक नाटक :** 'चक्रध्वज सिंह' (दे०) (1915), 'जयमती कुँवरी' (दे०) (1915), 'बेलिमार' (दे०); **उपन्यास :** 'पदुम कुँवरी' (1905); **कहानी :** 'सुरभि' (1909) 'साधुकथार कुकि' 'जोनबिरि' (1913); **निबंध और जीवनी :** 'भागवतकथा' (1915), 'शंकरदेव' (1912)।

ये असमीया रोमांटिक कविता के स्तंभ के स्वरूप हैं। 'कदमकलि' की कविताओं में भावुकता और कवित्व-शक्ति है। इनके शृंगार में लौकिकता के साथ अध्यात्मवाद भी है। इनकी कुछ कविताएँ देशभक्तिपरक हैं। इनका बैलेड 'घनवर रतनी' विशेष महत्त्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके नाटकों के मध्य भी सुंदर गीत हैं। प्रहसनों की अपेक्षा इन्हें ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों के लेखन में विशेष सफलता मिली। इन्होंने छात्रावस्था में 'पद्म कुँवरी' उपन्यास लिखा था। यह यद्यपि सफल कृति नहीं है, किंतु इसे असमीया का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। इनकी कहानियों में तीव्र व्यंग्य है। इनमें लोक-कथा-शैली और पाश्चात्य कथा-शिल्प का समन्वय है। 'कृपावर बरुवा' के छद्मनाम से इन्होंने अनेक निबंध लिखे थे। हास्य और व्यंग्य से युक्त निबंधों के अतिरिक्त इन्होंने गंभीर निबंध भी लिखे थे।

ये श्रेष्ठ कवि, नाटककार, कथाकार, निबंध-लेखक और पत्रकार थे।

'बेताब' देहलवी *(उर्दू० ले०)*

नाम—पं० नारायण प्रसाद, उपनाम—'बेताब'; पिता का नाम—पं० ढलाराय देहलवी। ये उर्दू नाटककार भी थे और अच्छे कवि भी। इनके नाटकों में 'रामायण', 'महाभारत', 'कृष्ण-सुदामा', 'गोरखधंधा', 'फ़रेब-ए-मुहब्बत' और 'जहरी साँप' बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने बंबई से 'शेक्सपीयर' नामक पत्रिका भी निकाली थी। इस पत्रिका में शेक्सपीयर के नाटकों के उर्दू अनुवाद छपा करते थे। अल्फ्रेड थिएट्रिकल कंपनी ने 'अहसन' लखनवी के पश्चात नाटक-लेखन का कार्य-भार इन पर ही डाला था।

बेताल पंचविंशति *(बँ० कृ०)*

'बेताल पंचविंशति' का अनुवाद 1847 ई० में मूल हिंदी से फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के तत्कालीन अध्यक्ष श्री मार्शल की प्रेरणा से श्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने किया था। यद्यपि यह ग्रंथ मूलतः कालेज की पाठ्य-पुस्तक के रूप में रचा गया था, फिर भी बँगला-साहित्य के पाठकों के बीच इसका अच्छा प्रचार हुआ। विषयानुरूप भाषा और शिल्प का प्रयोग इस ग्रंथ का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है।

बेदिल, कादिर बख्श *(सिं० ले०)* [जन्म—1814 ई०; मृत्यु—1872 ई०]

कादिर बख्श 'बेदिल' का जन्म सिंध के रोहिड़ी नामक गाँव में हुआ था। इनका नाम तो अब्दुल कादिर रखा गया था, परंतु जब ये बड़े हुए तो इन्होंने अपना नाम बदलकर कादिर बख्श रख लिया था। इनकी रचनाएँ सिंधी, उर्दू, अरबी और फ़ारसी में मिलती हैं। सिंधी में इनकी मुख्य काव्यकृतियाँ हैं—'वहदतनामो' और 'सुरूद-नामो'। इनके सिंधी कलाम का प्रामाणिक संस्करण 'दीवान 'बेदिल' नाम से 1954 ई० में सिंधी अदबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हुआ है जिसके संपादक हैं अब्दुल हुसैन शाह मूसवी। गिद्रूमल हरजाणी ने भी इस सूफ़ी कवि के कलाम का संपादन कर उसे प्रकाशित करवाया है। 'बेदिल' ने सूफ़ी मत के गहन सिद्धांतों को अपनी प्रसाद पूर्ण और ओजस्विनी भाषा के द्वारा सरल ढंग से समझाया है। इनके काव्य में संगीतात्मकता और माधुर्य के गुण अधिक मिलते हैं। उन्नीसवीं शती ई० सदी के सूफ़ी कवियों में इनका प्रमुख स्थान है।

बेदी राजेन्द्रसिंह *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

राजेंद्रसिंह बेदी उर्दू के प्रसिद्ध कहानीकारों में हैं। बेदी बहुत कम लिखते हैं किंतु जो कुछ लिखते हैं वह उत्कृष्ट होता है। जनजीवन की समस्याएँ इनकी कहानियों का विषय हैं। इनकी कहानियाँ सजीव, सुंदर, सुगठित तथा प्रभावपूर्ण होती हैं। 'दाना-ओ-दाम', 'ग्रहन', 'कोखजली', 'लंबी लड़की', 'अपने दुख मुझे दे दो' आदि इनकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

बेदी ने नाटक भी लिखे हैं जिनका संग्रह 'सात खेल' है और एक उपन्यास 'एक चादर मैली-सी' प्रकाशित होकर सम्मानित हो चुका है।

'बेनज़ीर' *(उर्दू० पा०)*

शहज़ादा 'बेनज़ीर' मीर हसन (दे०) की मसनवी 'सिह्र-उल-बयान' (दे०) का नायक है। इसका रूप-लावण्य अद्वितीय है। इसके जन्म पर महोत्सव मनाया जाता है, पुरस्कारों तथा दान आदि में विपुल धनराशि का व्यय किया जाता है। इसे शिक्षा देने के लिए अनेक शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं जो इसे अनेक विद्याओं में पारंगत बना देते हैं।

एक रात महल की छत पर चाँदनी में सोते हुए शहज़ादे को माहरूख नाम की परी उड़ा कर परिस्तान ले जाती है। सारे राजप्रासाद में दुहाई मच जाती है। माता-पिता, सगे-संबंधी, दास-दासियाँ सभी इसके खो जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर गहरे दुःख-दर्द में डूब जाते हैं। इसके सौंदर्य पर मुग्ध माहरूख परी इसके बिना क्षण भर भी नहीं रह सकती। वह इसे संध्या समय भूलोक का भ्रमण कर आने के लिए एक जादुई घोड़ा देती है।

सैर को निकला हुआ 'बेनज़ीर' बद्र-ए-मुनीर (दे०) के बाग़ में पहुँचता है। दोनों के एक-दूसरे से मिलते ही दिल मिल जाते हैं। 'बेनज़ीर' परिस्तान से यहाँ आता-जाता रहता है। एक देव के द्वारा माहरूख को इस प्रणय-क्रीड़ा का रहस्य ज्ञात हो जाता है। वह 'बेनज़ीर' को एक कुएँ में बंदी बनवा देती है।

'बेनज़ीर' का चरित्र जैसा प्रभावशाली तथा आकर्षक प्रारंभ में दिखाया गया है, आगे चल कर वैसा नहीं रहा। बद्र-ए-मुनीर से भेंट के बाद इसमें एक मोड़ आ जाता है और इसका चारित्रिक अपकर्ष हो जाता है।

बेनीपुरी, रामवृक्ष *(हिं० कृ०)* [जन्म—1902 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के बेनीपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने पत्रकारिता से साहित्य-सेवा प्रारंभ की थी तथा एक दर्जन से अधिक साप्ताहिक, मासिक, दैनिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया था। ये भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के सेनानी रहे हैं तथा इन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, बाल-साहित्य आदि विविध विधाओं को अपने कृतित्व से समृद्ध किया है। इनका विशेष प्रदेय रेखाचित्र के क्षेत्र में है तथा 'माटी की मूरतें', 'गेहूँ और गुलाब' आदि कृतियाँ इस विधा की स्थायी निधि बन चुकी हैं। बेनीपुरी जी शब्दों के जादूगर हैं तथा भावपूर्ण अलंकृत शैली का प्रयोग इनके लेखन की अनिवार्य विशेषता है।

बेनीप्रवीन *(हिं० कृ०)*

बेनीप्रवीन (बेनीदीन 'प्रवीन') लखनऊ के वाजपेयी परिवार से संबद्ध थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'नवरसतरंग' है, जिसका रचना-काल 1817 है, इसके अतिरिक्त इनकी अन्य दो रचनाएँ हैं—'श्रृंगार-भूषण' और 'नानाराव-प्रकाश'। इनमें से केवल 'नवरसतरंग' उपलब्ध है। इसमें श्रृंगार रस, विशेषतः नायक-नायिका भेद का वर्णन है। यद्यपि ग्रंथ का उदाहरण-भाग अत्यंत ललित है। इनकी कविता में सरसता तथा भावुकता है। इस रचना में प्रकृति-वर्णन के छंद भी अति प्रभावशाली, चित्रात्मक और मर्मस्पर्शी हैं। इस ग्रंथ के कारण बेनी-प्रवीन रीतिकाल में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

√ **बेरल्गे कोरल्** *(क० कृ०)*

यह महाकवि कुवेंपु (के० वी० पुट्टप्पा—दे०) का नाटक है। इसके तीन दृश्यों के नाम नाटक के उद्दश्य को बड़ी मार्मिकता के साथ प्रकट करते हैं। ये हैं—'गुरु', 'कर्म', 'यश'। इनके द्वारा यह सूचित किया गया है कि नाटक का प्रधान पात्र एकलव्य गुरु के प्रति निष्ठावान था, कि कर्मपाश कितना बलवत्तर होता है। और एकलव्य द्वारा किया गया त्याग 'यज्ञ' ही है। एकलव्य की गुरुभक्ति और उसके प्रति उसकी माता के ममत्व का दर्शन प्रथम दृश्य में होता है। द्वितीय दृश्य में द्वापर के सीमापुरुष द्रोण का दर्शन होता है। उनके औदार्य से एकलव्य धनुर्विद्या में निपुण होता है। अर्जुन के एहसास के कारण द्रोण एकलव्य से अँगूठे का दान माँगने को बाध्य होते हैं। तीसरे दृश्य में एकलव्य के त्याग का दर्शन होता है। रक्त की धार में पड़े हुए एकलव्य के अँगूठे को देखने के लिए द्रोण सिर झुकाते हैं कि उसमें उन्हें एक सिर-रहित धड़ दिखाई पड़ता है। उनको भविष्य का ज्ञान होता है कि एकलव्य के अँगूठे के बदले उनको एक दिन अपने सिर की आहुति देनी होगी। एकलव्य की माता का शाप भी इस अनिवार्य कर्म का फल बन जाता है। नाटककार ने एकलव्य, उसकी माता और द्रोण का बड़ा रम्य चित्रण उपस्थित किया है। नाटक की कवित्वपूर्ण भाषा-शैली, रसयुक्त संभाषण और बिंब-योजना व दर्शन मानो उसकी सफलता की घोषणा करते हैं।

बेलिफुलर सपोन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

अणिमा भराली के इस कहानी-संग्रह की भाषा में बहती हुई धारा का सरल सौंदर्य है। इसकी कहानियाँ मेलोड्रामिक हैं।

बेलिमार *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

यह लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है, यह दुःखांत है। इसमें बर्मियों के आक्रमण के फलस्वरूप आहोम राज्य के पतन का चित्रण है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों से हटकर वर्णन कम किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए हैं। संवादों की अनाटकीयता और चरित्रों के संख्या-बाहुल्य के कारण नाटक रंगमंचोपयोगी नहीं है। इस पर शेक्सपियर के 'किंग लेयर' और 'हेमलेट' के नाटकों का प्रभाव है। नाटक में करुण दृश्यों के मध्य हास्य-रस के दृश्य भी प्रस्तुत किए गए हैं।

बेल्लावि नर हरि शास्त्री *(क० ले०)*

श्री शास्त्री का जन्म तुकूर ज़िले के बेल्लाळि में 1882 ई० में हुआ था। आप एक सफल कवि, नाटक-कार तथा चित्रकार और अध्यापक थे। अपने कई चित्र-कथाएँ भी लिखी हैं। आप 'कर्नाटक-कविकेसरी' विरुदा-लंकृत थे। आपकी रचनाएँ सौ से अधिक हैं। कन्नड में गुब्बी कंपनी आदि नाटक-कंपनियों के लिए आपने बीसों नाटक लिखे तथा उनका मंचन भी करवाया। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'कल्याणगीत-मंजरी', 'आकाश-गमन-साहस', 'जलंधर' (नाटक), 'दशावतार', 'दामाजि-पंतु', 'नाटक मंजरी', 'प्रभावती', 'प्रह्लाद', 'पापियारु' (विक्टर ह्यूगो के 'लामिज़राबेल' का अनुवाद) 'पांडव-विजय', 'बलिचक्रवर्ती', 'भोज कालिदास', 'मदनमोहन राज-चरित्रे', 'महात्मा बसवेश्वर', 'मार्कंडेय', 'श्रीकृष्णगारुडि', 'श्रीकृष्ण पारिजात', 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'सती सुलोचना', 'संपूर्ण रामायण', 'स्यमंतकरत्न नाटक', 'साध्वी अनुसूया', 'साधु तुकाराम', 'हास्य कल्लोल', आदि। आपके अधिकांश नाटक रंगमंच के उपयुक्त हैं। कृतियों में रूढ़िपालन का विशेष ध्यान रखा गया है। आपकी पद्यरचना सरस है।

'बेबस', किशिनचंद तीर्थदास खत्री *(सिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

'बेबस' का जन्मस्थान लाड़काणा (सिंध) है। ये सरकारी स्कूलों में अध्यापन कार्य करते थे और आर्थिक स्थिति अच्छी न होते हुए भी हमेशा प्रसन्नचित्त रहते थे। ये नम्रता की साक्षात् मूर्ति थे। जब सिंधी में फ़ारसी-तर्ज़ की शृंगार रस से पूर्ण कविता लिखने का युग चल रहा था। तब इन्होंने सिंधी काव्यधारा को नया मोड़ दिया था। इनकी कविता में किसानों और ग़रीबों के लिए सहानुभूति, मज़दूरों के लिए स्नेह, पूंजीपतियों की निंदा, हिंदू-मुस्लिम-एकता, नारी की महानता, राष्ट्रीय प्रेम और देशभक्ति आदि भावों की अभिव्यक्ति यत्रतत्र मिलती है। इनकी मुख्य काव्यकृतियाँ हैं—'शीरीं शइर', 'मौजी गीत', 'गुरु नानक जीवन कविता', 'बेबस-गीतांजली' और 'शहर बेबस'। इन्होंने कुछ नाटक और निबंध भी लिखे हैं, परंतु इन्हें अधिक प्रसिद्धि कविता के कारण ही मिली है। इनका मुख्य उद्देश्य था जीवन की यथार्थता की सरल और स्वाभाविक भाषा में अभिव्यक्त करना। ये अपने युग के निराली प्रतिभा वाले कवि थे। विषय की विविधता के साथ-साथ इनकी कविता में भाषा-शैली और छंद के नये-नये प्रयोग भी मिलते हैं। इनके बताये हुए मार्ग पर आज इनके शिष्य कवि चल रहे हैं, जिनमें हूंदराज 'दुखायल' (दे०), हरि 'दिलगीर', (दे०), राम पंजवाणी (दे०) और खीअलदास फ़ानी के नाम उल्लेखनीय हैं।

बेहुला *(बँ० पा०)*

मध्ययुगीन बँगला मंगलकाव्यों के नारी-चरित्रों में बेहुला जनप्रियता एवं उत्कर्ष की दृष्टि से सर्वोत्तम है। रामायण की सीता की सहनशीलता तथा स्वामी के पुनर्जीवन के लिए काल के साथ संग्राम करने की सावित्री-जैसी अपरिमेय शक्ति बेहुला के चरित्र में युगपत् प्रकट हुई है। बेहुला के माध्यम से ही मंगलकाव्य (दे०) की परिधि में दिव्य और मर्त्य का इकट्ठा चित्रण हो पाया है। यह चरित्र केवल आदर्शवाद की भावभूमि पर विकसित नहीं हुआ है। सीमाहीन मानवीय बोध की उदात्त महिमा ने इस चरित्र को माधुर्य-मंडित और औज्ज्वल्य से अभिनंदित किया है। नाव खेती हुई जब वह स्वर्ग के लिए चल देती है तो यात्रा-पथ के विचित्र अनुभवों के माध्यम से बेहुला ने उस युग के पथ-वृत्तांत, शिक्षा-संस्कार, पाप-पुण्य, दया-धर्म के विचित्र चित्र अंकित किए हैं।

नारायण देव, विजय गुप्त (दे०), केतकादास क्षेमानंद (दे०), तंत्र-विभूति आदि कवियों के 'मनसा-मंगल' में बेहुला का चरित्र-चित्रण लगभग एक जैसा ही है। थोड़ा व्यतिक्रम है केवल विप्रदास पिपलाई (दे०) के काव्य में। स्वर्ग में बेहुला के नर्तकी-रूप को उन्होंने प्रश्रय नहीं दिया है, वहाँ उनके 'विद्याधरी' रूप को ही प्रकट किया है।

बेहेरा, चिंतामणि *(उ० ले०)*

श्री चिंतामणि बेहेरा आजकल रेवेंसा कालेज, कटक में उड़िया के प्राध्यापक हैं। ये समीक्षक, कहानीकार एवं कवि हैं। इनके आलोचनात्मक निबंधों का उच्च-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तरीय शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहानियाँ यथार्थ-मूलक एवं सूक्ष्म कलानुभूति से समृद्ध हैं। कविताएँ प्रायः प्रेममूलक हैं। 'कथा ओ कथाकार', 'फकीर मोहन परिक्रमा', 'ओड़िया साहित्य परिक्रमा', 'आधुनिकतार क ख ग्रो अन्यान्य आलोचना' (दे०)आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

बैंत *(पं० पारि०)*

यह पंजाबी क़िस्सा-काव्य में प्रयुक्त सुप्रसिद्ध छंद है जिसे अरबी शब्द 'बैत' का पंजाबी रूपांतर माना जाता है। बैत (दरवाज़ा) के दो किवाड़ों के समान 'बैंत' में भी समतुकांत दो चरणों का एकक बनता है; परंतु पंजाबी में दो चरणों का बैंत प्रचलित नहीं हुआ। इसका सर्वप्रथम प्रयोग 'हीर ग्रहमद' (1692 ई०) में हुआ जिसमें इसके प्रति छंद में चार या चार से अधिक चरण मिलते हैं। इसके पश्चात हामद और मुकबल ने चार-चार चरणों वाले बैंत को लोकप्रिय बनाया परंतु बैंत लिखने में सिद्धहस्त वारिसशाह (दे०) और फ़ज़लशाह (दे०) ने इसे चरण-संख्या के बंधन से मुक्त कर दिया। इन कवियों के बैंतों में चार से चालीस तक चरण मिलते हैं। भाई कान्हसिंह ने 'गुरुशब्दरत्नाकर महान् कोश' में मात्रा-गणना के आधार पर इसके सुप्रसिद्ध आठ भेदों का परिचय दिया है जिनमें चालीस मात्राओं (बीस-बीस पर यती) वाला रूप एक प्रकार से टकसाली माना जाता है। इसके विपरीत फ़ारसी लिपि में पंजाबी कविता करने वाले लेखक इसकी परि-भाषा फ़ारसी पिंगल के नियमों के अनुसार करते हैं। परंतु पंजाबी कवियों के बैंत इन दोनों से स्वतंत्र हैं। उन्होंने इस छंद में विभिन्न तोलों का प्रयोग किया है और अंत्यानुप्रास (काफ़िया) तथा अंत्यानुप्रास के ग्रनंतर प्रयुक्त समान शब्दावृत्ति (रदीफ़) के प्रयोग से इसमें तरलता का संचार किया है। इस छंद का प्रयोग विशेषतः क़िस्सा-काव्य में हुआ है, किंतु बीसवीं शती में कवि-दरबारों का प्रचलन हो जाने पर मुक्तक काव्य के रूप में भी बैंत की लोकप्रियता में वृद्धि हुई।

बैंदेहीशबिलास *(उ० कृ०)*

कवि-सम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) काव्यों में 'कोटिब्रह्मांड सुंदरी'(दे०), 'लावण्यवती', 'बैंदेहीशबिलास', असाधारण काव्यत्रयी हैं। उड़ीसा के रामकाव्यों में बैंदेहीश-बिलास' सर्वाधिक अलंकार विभूषित, चारुचित्रावली-शोभित रचना है। रामायण की कथा यद्यपि इसकी विषय-वस्तु है तथापि स्वतंत्र काव्य की दृष्टि से यह एक उच्च-कोटि की रचना है, इसमें संदेह नहीं। उपेंद्र ने अपने ग्रंथों में रामतारक मंत्र जपकर सिद्धि-लाभ की बात कही है जिसके कारण उनमें कवित्व-स्फूर्ति जाग्रत हुई। इस महान् शक्ति को प्राप्त करने के उपलक्ष्य में कवि का यह सानुनय प्रतिदान है। 'बैंदेहीशबिलास' की रचना की प्रेरणा उपेंद्र ने पितामह धनंजय भंज की कृति 'रघुनाथबिलास' से पाई थी। 'रघुनाथबिलास' देख लेने के बाद उपेंद्र ने पितामह से उससे भी श्रेष्ठ रामचरितमूलक काव्य लिखने की बात कही थी। धनंजय ने अपनी प्रसन्नता एवं संतोष व्यक्त किया था तथा उपेंद्र को इस कार्य में सफल होने का आशीर्वाद भी दिया था। उपेंद्र यथासमय पितामह को यह सुख प्रदान कर धन्य हुए। उपेंद्र स्वयं रामभक्त थे तथा यह उनका कुल-धर्म भी था।

उपेंद्र की दृष्टि में उत्कल की महत्ता किसी से कम नहीं है। देवाधिदेव अवतारी, बैकुंठ-बिहारी विष्णु जगन्नाथ के रूप में उड़ीसा में अवतीर्ण हुए हैं। इसलिए ग्रंथारंभ में जगन्नाथ-स्तुति है।

यह काव्य 52 छंदों के साँचों में ढाला गया है। प्रत्येक चरण का आद्य वर्ण 'ब' है। इस प्रकार यह महा-काव्य शब्द एवं अर्थालंकार गुंफित 'ब' अक्षर के आद्य नियम से विरचित है। मंगलाचरण में पहले विष्णु (राम विष्णु के अवतार हैं) तथा बाद में सूर्य की (सूर्यवंशी होने के कारण) स्तुति की गई है। अनेकार्थी शब्द-प्रयोग एवं नूतन शब्द-गठन सहित गंभीर चिंतनशील शताधिक पद इस काव्य में दिखाई पड़ते हैं। भाषा सरस, भावानुरूपिणी एवं रसाल है। उपेंद्र के स्व-अंचल, गंजाम के भी कई प्रच-लित शब्द-व्यवहृत हुए हैं। सूक्ति एवं गूढ़-गुंफित सामासिक शैली के कारण भाषा की शक्तिमत्ता बढ़ गई है। 'बैंदेहीश-बिलास' में रामायण के समस्त प्रसंगों की अवतारणा नहीं हुई है। अनेक कथाओं एवं उपकथाओं की मात्र सूचना दे दी गई है। प्रकृति की सजीव रमणीयता, कल्पना-छवियों की भास्वरता एवं सुरुचि-संपन्नता इस काव्य को सार्थकता प्रदान करती हैं। दैवी कथा के प्रति कवि का मानवीय दृष्टिकोण काव्य को अधिक रमणीय बना देता है।

बैष्णब पाणि *(उ० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

बैष्णबपाणि का जन्म कटक ज़िले के कोठापद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव में एक निर्धन ब्राह्मण सुदर्शन पाणि के यहाँ हुआ था। कोठापद-महंत की कृपा और अपने अध्यवसाय से इन्होंने विभिन्न वाद्ययंत्र, संगीत, उड़िया और संस्कृत-साहित्य आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इनकी रचनाओं की संख्या प्रायः 200 है।

आधुनिक युग में गण-कवि बैष्णव पाणि का उड़ीसा की गण-संस्कृति के विकास में विशेष योगदान है। बैंष्णब पाणि ने शताधिक गीति-नाट्यों की रचना कर तथा उन्हें हृदयस्पर्शी रूप से गाँव-गाँव में प्रस्तुत कर उड़ीसा के जन-जीवन को जितने व्यापक रूप से प्रभावित किया है, उतना भागवतकार जगन्नाथदास (दे०) के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया।

बैष्णब पाणि की अम्लान प्रतिभा ने उड़िया जात्रा (दे०)-साहित्य को आधुनिक रूप दिया है। इनकी रचनाओं की भाषा-शैली नितांत ग्रामीण है। चरित्र-चित्रण एवं शब्द-विन्यास में असाधारण दक्षता का परिचय मिलता है। इनकी गण-नाट्य-कृतियाँ शिल्प-कौशल से मंडित एवं आधुनिक चेतना से अनुप्राणित हैं। अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक गीति-नाट्यों में कवि ने समसामयिक सामाजिक समस्याओं एवं राष्ट्रीय चेतना का चित्रण किया है। बैष्णब पाणि इस शती के पूर्वार्द्ध के प्रमुख कवि हैं।

बोधा *(हिं० ले०)* [जन्म—1747 ई०]

ये राजापुर (ज़िला बाँदा) के सरयूपारीय ब्राह्मण थे। पुराना नाम बुद्धिसेन था, पर पन्ना-नरेश प्यार में बोधा कहते थे। ये 1773 से 1803 ई० तक कविता करते रहे। सुबहान (सुभान) नामक वेश्या से प्यार करने के कारण 6 मास के लिए इन्हें देश-निष्कासन मिला। इस बीच में 'विरह वागीश' नामक पुस्तक लिखी। 'इश्क़नामा' दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक है। रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) कवियों में प्रेम की प्रेम की 'पीर' की व्यंजना करने वाले ये बहुत ही मर्म-स्पर्शी कवि हैं। बहुत से स्फुट कवितों में 'नेजे', 'कटारी' और 'कुरबान' वाली बाज़ारू ढंग की रचनाएँ पाई जाती हैं। निश्चय ही ये भावुक, फक्कड़ और रसिक जीव थे।

बोधि *(पा० पारि)*

इस शब्द की निष्पत्ति 'बुधअवगमने' धातु से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञान या पूर्ण ज्ञान। इसे ही सम्यक-संबोधि की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार का ज्ञान बोधि-सत्त्व का अंतिम लक्ष्य होता है और इसे प्राप्त करके ही उसे बुद्धत्व का अधिगम हो जाता है। इस ज्ञान का स्वरूप—बुद्धज्ञान, सर्वज्ञता, सर्वाकारज्ञता अर्थात् ऐसा ज्ञान जिसमें सभी कुछ अपने वास्तविक रूप में दिखलाई देता है, अनुत्तर-ज्ञाता अर्थात् ऐसा ज्ञान जिसके आगे कुछ नहीं और अचिंत्यज्ञता अर्थात् ऐसा ज्ञान जिसको सोचा भी न जा सके। बोधि को अज्ञेय बतलाया गया है क्योंकि इसको प्राप्त करने वाले तथागत (दे०) बुद्ध अचिंत्य हैं और उनके गुण भी अचिंत्य तथा असीमित हैं। इस परिपूर्ण तथा शुद्ध ज्ञान में अनिश्चय तथा अस्पष्टता को स्थान नहीं तथा यह आकाशवत् व्यापक उच्चतम अवस्था है। महायान (दे०) में इसे लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है। माध्यमिक (दे०) इसे शुद्ध ज्ञान-रूप मानते हैं जबकि योगाचार योग और आचार द्वारा प्राप्य कहता है। यह क्लेशावरण और ज्ञेयावरण दोनों को नष्ट कर देता है।

बोधिसत्त (सं० बोधिसत्त्व) *(पा० पारि०)*

बौद्ध धर्म की महायान शाखा (दे०) में बोधि का अर्थ है सर्वोच्च ज्ञान। वही जिसका सारतत्त्व है उसे बोधिसत्त्व की संज्ञा प्राप्त होती है। यह अरहत् (दे०) से भी बड़ा होता है और प्रत्येक बुद्ध से भी, क्योंकि ये दोनों आश्रव-समाप्ति-रूप निर्वाण से ही तृप्त हो जाते हैं जबकि बोधिसत्त्व अनुत्तर सम्यक् संबोधि की ओर अग्रसर होता है। बोधिसत्त्व आत्मकल्याण से ही तृप्त नहीं होता अपितु सभी प्राणियों को बुद्ध-पदवी तक पहुँचाकर ही स्वयं बुद्धत्व प्राप्ति की प्रतिज्ञा लेता है। उसकी 10 प्रतिज्ञाएँ निषेधात्मक दोनों से विरक्तिपरक ही नहीं दानादि तात्त्विक गुणपरक भी होती हैं। वह प्राणियों के उद्धार के लिए अथक परिश्रम करता है और यही उसकी पहचान होती है। बोधिसत्त्वचर्या कई प्रकार की होती है: 'प्रकृति-चर्या'—इसमें बौद्ध धर्म की साधारण भूमिका होती है; 'स्पृहचर्या' अर्थात् सभी प्राणियों के उद्धार के लिए आकांक्षा; 'अनुलोमचर्या' अर्थात् बोधिसत्त्व-पद प्राप्ति का प्रथम अभ्यास; 'अनिवर्तनचर्या' अर्थात् पुनरावृत्ति के अभाव का निश्चय। इसी प्रकार बोधि-पक्षमचर्या, अभिज्ञाचर्या, पारमिताचर्या, सत्त्वपरिपाचर्या इत्यादि भी होती हैं। चीन और जापान में अन्य धर्मों के देवताओं को भी यह नाम दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोयि भीमन्ना *(ते० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

ये गोदावरी ज़िले के निवासी हैं तथा आंध्र-प्रदेश सरकार में तेलुगु-अनुवादक हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'दीपसभा', 'भीमन्नकाव्यकुसुमालु' (कविता-संग्रह), 'रागवासिष्ठमु' (नाटिका), 'पैरुपाटो' (नृत्य-संगीत-नाटक) और 'मधुबाला', 'रागोदयमु' आदि। इनकी रचनाओं पर समाजवादी सिद्धांतों का प्रभाव है। 'पालेरु', 'कूलिवाडु' इसके अच्छे उदाहरण हैं। 'कोब्बरितुंट' जैसी रचनाओं में दलित वर्ग के सुधार के लिए इनकी विह्वलता व्यक्त हुई है। इनकी कविता प्रधानतः गीतिबद्ध है तथा प्राकृतिक और ग्रामीण जीवन से संबद्ध है। इनकी रचनाओं में भावों की तरह भाषा भी बहुत सरल है। कविता तथा जनजीवन के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करने वाले कवियों में भीमन्ना का स्थान विशिष्ट है। हाल में आंध्र विश्व-विद्यालय ने इन्हें 'कलापूर्णोदय' की उपाधि से सम्मानित किया है।

बोरकर, बालकृष्ण भगवंत *(म० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

बोरकर का जन्म गोवा में हुआ था। कुछ समय तक अध्ययन-कार्य करने के उपरांत इन्होंने आकाशवाणी की नौकरी की।

इनके काव्य-संग्रह हैं—'प्रतिभा', 'जीवन-संगीत', 'दूधसागर', 'आनंद भैरवी', 'चित्रवीणा' तथा 'गितार'।

उपन्यास—'भावीण', 'मावळताचंद्र', 'अंधारांतील वाट'।

'आनंद यात्री' [रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर का चरित्र-वर्णन]

ये अत्याधुनिक काल के सौंदर्यवादी कवि हैं। इनका काव्य मांगलिक भावनाओं से पूर्ण है। भावमधुर मोहक प्रेम-गीतों के रचयिता के रूप में बोरकर को अतिशय ख्याति मिली है। इनकी वैयक्तिक प्रेम-भावना 'स्वातंत्र्यलक्ष्मीस लोकसागरास', 'महात्मायन' आदि कविताओं में विशाल मानवतावादी स्तर पर व्यक्त हुई है।

गोवा के समृद्ध प्रकृति-परिवेश के अनेक नयनाभिराम दृश्य इनकी कविताओं में रेखांकित हैं।

बोरकर शब्द-शिल्पी हैं। इनके काव्य में सर्वत्र प्रादेशिकता की सुंदर छाप है। ये मराठी के आंचलिक उपन्यासकार भी हैं और इन्होंने गोमांतक के अंचल पर उपन्यास लिखे हैं।

बोराडे, रा० रं० *(म० ले०)* [जन्म—1940 ई०]

ये मराठवाडा के बैणापुर नामक नगर में स्थानीय कॉलिज के प्रधानाध्यापक कुशल प्रबंधक और विद्वान अध्यापक ही नहीं सफल साहित्यकार भी हैं। छोटी वय में में ही इनके 6 कथा-संग्रह और 1 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनका उपन्यास महाराष्ट्र शासन द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है।

बोली *(उ० पारि०)*

प्राचीन काल में 'बोली' नाम से अनेक रचनाएँ मिलती हैं। 'बोली' का अर्थ है बोली जा सकने वाली रचना। इसमें कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य नहीं होता। 'कृष्णदास बोली', 'अळंकार बोली', 'दीनकृष्ण दास' (दे०) बाळबोली', 'बलराम दास (दे०) बोली' आदि सुपरिचित बोली रचनाएँ हैं।

बोली *(पं० पारि०)*

यह एक लोकगीत-रूप है। ग्रामीण लोग अपने सीधे सरल भावों को अभिव्यक्त करने के लिए इसका सहारा लेते हैं। बोलियों का प्रधान विषय प्रेम ही होता है परंतु इनके द्वारा छेड़छाड़, व्यंग्य-उपहास भी किया जाता है। आधुनिक भारतीय फ़िल्म-संगीत में बोलियों और इनके संगीत-लय को बड़े चाव से अपनाया जा रहा है।

यथा—पल्ले नाल बुझा गई दीवा
अख नाल गल्ल कर गई।
× ×
लोक आखड़े कयामत आई
नीं घुम्म घुम्म आ बंतो।

बौद्धन्याय का संप्रदाय *(पा० पारि०)*

बौद्धन्याय को हेतु-प्रमाण विद्या, तर्कशास्त्र आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। छठी शती में दिङ्नाग ने और सातवीं शती में धर्मकीर्ति ने न्याय-वैशेषिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंपरा को बौद्ध-दर्शन की दृष्टि से व्यवस्थित रूप दिया जिसमें प्रमाणवाद, पदार्थ-निरूपण आदि न्यायशास्त्रीय सिद्धांतों के अतिरिक्त बौद्ध-ज्ञान-मीमांसा को भी स्थान दिया गया है और चार्वाक, जैन, सांख्य, योग मीमांसा, वेदांत, न्याय वैशेषिक दर्शनों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का या तो प्रतिषेध किया गया है या आंशिक मान्यता प्रदान की गई है। बौद्धन्याय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं—धर्मकीर्ति-कृति 'प्रमाणवार्तिक'। 'बौद्धन्याय' शब्द से दिङ्नाग और धर्मकीर्ति का तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा ही अभिप्रेत मानी जाती है जिसके विकास में प्रारंभिक बौद्धधर्म कारण हुआ है और परवर्ती बौद्धन्याय इन्हीं की कृतियों को आधार मानकर चला है।

बौद्धन्याय में दो प्रमाण माने जाते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्षोपलब्ध जगत् ऐंद्रिय, बुद्धिग्राह्य तथा स्वलक्षण माना जाता है। यह इंद्रियग्राह्य जगत्-संस्कारों का क्षणिक प्रकटन मात्र है, ईश्वरादि शाश्वत वस्तुओं की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। बौद्धों का यथार्थ क्षणिक संस्कारों की केवल एक परंपरा है। ऐसा कोई यथार्थ नहीं जो प्रतीत्य समुत्पात (दे०) के द्वारा कारण न हो सके। इस प्रकार इनका यथार्थ सर्वथा गतिशील है, निष्क्रिय नहीं। पूर्णयथार्थ का ज्ञान असंभव है। नीले रंग के विषय में केवल इतना ज्ञात हो सकता है कि यह श्वेत इत्यादि नहीं है। इस प्रकार इतर व्यावृत्ति-रूप अपोह को शब्दार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। अनुमानगम्य जगत् अनैंद्रिय, सामान्य लक्ष्य वाला होता है। अनुमान दो प्रकार का होता है—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। प्रथम स्वज्ञान के लिए उपयोगी है और द्वितीय दूसरे को समझाने के लिए। परार्थानुमान में ही हेत्वाभासों की भी कल्पना की गई है जो न्याय और वैशेषिक से कुछ भिन्न हैं। बौद्ध-न्याय का मुख्य विषय परार्थानुमान नहीं है; क्षणिकता-वाद, अध्यवसाय (निश्चय और विकल्प), अपोहवाद, स्वार्थानुमान आदि इसी के उपबंध हैं।

ब्योमकेश (*बँ० पा०*)

शरदिंदु बंद्योपाध्याय (दे०) का 'ब्योमकेश' श्रुत-कीर्ति सत्यानुसंधानी है। उनके सहकारी हैं लेखक अजित। पाँचकड़ि दे, दीनेंद्रकुमार राय आदि लेखकों ने जासूसी ग्रंथों की रचना की है। इसमें संदेह नहीं कि इन ग्रंथों से लेखकों की प्रत्याशा पूरी हो पायी थी। परंतु ब्योमकेश की प्रतिष्ठा जासूसी रचना के बीच से होने पर भी उनका चरित्र नवीन वैशिष्ट्य से समुज्ज्वल है। पाठकों का मन तृप्त होने के अतिरिक्त एक प्रकार का सानंद रस सुंदर माधुर्य पाठक चित्त को अपरूप प्रसन्नता से स्निग्ध एवं विस्मित करता है। कॉनन डायल, एडगर एलेन पो, एडगर वालेस, अगाथा क्रिस्टी का चातुर्य यहाँ विद्यमान है परंतु मनोविज्ञान-सम्मत पंथा का अनुसरण करते हुए लेखक ने अपने चरित्र को सकौतुक सरसता एवं सारल्य के द्वारा उपस्थित किया है। ब्योमकेश शौकिया जासूस होने पर भी सत्यानुसंधान ही उसका व्रत है। बुद्धि की प्रखर दीप्ति के साथ हृदय की सुगभीर उष्णता ने इस चरित्र को बँगला साहित्य के पाठकों का केवल प्रिय ही नहीं बनाया है वरन् उनके हृदय को हमेशा के लिए सानंद प्रतिष्ठा प्रदान की है।

ब्रजबुलि (*भाषा० पारि०*)

ब्रजबुलि बँगला का एक कृत्रिम मिश्रित रूप है। मुख्यतः इसमें बँगला तथा मैथिली के रूप हैं किंतु कुछ रूप ब्रजभाषा आदि पश्चिमी हिंदी की बोलियों के भी हैं (यद्यपि बहुत कम हैं)। ब्रजबुलि में कृष्णभक्ति-पद बंगाल तथा उड़ीसा में लिखे गये। इनका लेखन-काल पंद्रहवीं शती से आधुनिक काल तक है। इसके प्राचीन कवियों में गोविंददास (दे०) तथा ज्ञानदास (दे०) आदि उल्लेख्य हैं। आधुनिक काल में रवि बाबू (दे०) ने ब्रजबुलि में भानुसिंह नाम से रचनाएँ की हैं। कृष्ण का संबंध ब्रज से होने के कारण ही इस भाषा-रूप को ब्रजबुलि कहा गया। इस नाम का प्रथम प्रयोग उन्नीसवीं शती में बँगला कवि ईश्वरचंद्र गुप्त (दे० गुप्त, ईश्वरचंद्र) ने किया है।

ब्रजभाषा (*भाषा० पारि०*)

ब्रजभाषा, ब्रजी या ब्रज हिंदी की एक अत्यंत प्रमुख तथा महत्वपूर्ण बोली है। यह हिंदी के पश्चिमी हिंदी वर्ग में आती है। ऋग्वेद में 'ब्रज' शब्द का प्रयोग 'पशु-समूह' अथवा 'चरागाह' के अर्थ में हुआ है। ब्रजभाषा-क्षेत्र को इन्हीं अर्थों में 'ब्रज' कहा गया होगा। ब्रजभाषा का उद्भव दसवीं शती के आस-पास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ। यों भाषा के अर्थ में ब्रजभाषा का प्रयोग सोलहवीं शती के पहले का नहीं मिलता। प्राप्त साहित्य में ब्रजभाषा का प्रयोग आदि काल से ही—जैसे 'प्रद्युम्नचरित', 'महाभारतकथा', 'स्वर्गारोहण', 'छिताईबार्ता'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि में—मिलने लगता है किंतु इसके प्रथम प्रसिद्ध कवि सूरदास (दे०) ही हैं। उनके बाद नंददास (दे०), तुलसीदास (दे०), बिहारी (दे०), मतिराम (दे०), भूषण (दे०), देव (दे०), भारतेंदु (दे०) तथा रत्नाकर (दे०) में इसकी काव्य-परंपरा आगे बढ़ी है।

ब्रजभाषा में मुख्यतः काव्य-रचना ही हुई है। अब साहित्य में इसका प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर हो रहा है। यों हिंदी के मध्यकालीन साहित्य का बहुत बड़ा भाग ब्रजभाषा में ही है। ब्रजभाषा बड़ी मधुर है। ब्रजभाषा अपने शुद्ध रूप में मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोली जाती है। इसके अन्य सीमांत क्षेत्र के रूप पार्श्ववर्ती बोलियों से प्रभावित हैं। इसकी मुख्य उप-बोलियाँ गाँववारी, ढोलपुरी, भरतपुरी जादोबाटी, सिकरवाड़ी, कठेरिया, तथा डाँगी आदि हैं। कुछ लोग ब्रजबुलि तथा ब्रजभाषा को एक समझते हैं, किंतु वस्तुतः दोनों एक नहीं हैं।

व्रतकथा ओ ओषाकथा *(उ० पारि०)*

उड़िया-साहित्य में व्रतकथा एवं ओषाकथाओं का स्वतंत्र स्थान है। प्राचीन उड़िया साहित्य के विवेचन में इन कथाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समय के वृत्त पर प्रवाहित लोक-साहित्य की यह निर्झरिणी धीरे-धीरे विराट् तथा कमनीय साहित्य-धारा की सृष्टि करने में सहायक हुई है। उड़िया गद्यभाषा के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

'व्रत' संस्कृत शब्द है तथा 'ओषा' ग्रामीण एवं उपासना का रूपांतर। इनमें कतिपय कथाएँ यद्यपि संस्कृत व्रतकथाओं के अनुवाद हैं, किंतु 'तअपोइ व्रतकथा' तथा 'नागल चउठी व्रतकथा' आदि उड़िया भाषा व साहित्य की निजत्व-संपन्न रचनाएँ हैं। इन कथाओं की भाषा इतनी परिवर्तित हो गई है कि आज उसके मूल स्वरूप को जानना कठिन हो गया है। फिर भी कहीं-कहीं भाषा की प्राचीनता का संकेत मिल जाता है। भाषा एवं वर्णित धर्म के आभ्यंतरिक साक्ष्य के आधार पर विद्वानों ने इन्हें पंद्रहवीं शती के पूर्व की रचना माना है।

प्राचीन व्रतकथाओं में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। भाषा में आलंकारिक छटा अधिक है। विशेषणों की बहुलता है।

समाज में नैतिकता का प्रचार, धार्मिक भावना का उद्रेक एवं देवी-देवताओं के प्रति भक्ति का उद्रेक करना ही इन व्रतकथाओं का उद्देश्य है। तत्कालीन सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष इनमें चित्रित हुए हैं। इन सबमें विशिष्ट है 'तअपोइ ब्रतकथा'। इसमें तत्कालीन समाज के अनेक आचार-व्यवहार अंकित हैं। समुद्री यात्रा, प्रवास, यात्रारंभ एवं वापसी पर नाव-पूजा आदि का सुंदर वर्णन है।

ब्रह्मसूत्र *(सं० कृ०)* [रचना-काल—300 ई०]

बादरायण, व्यास (दे०)-कृत 'ब्रह्मसूत्र' को ही 'वेदांतसूत्र' भी कहते हैं। 'ब्रह्म-सूत्र' में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में 138 सूत्र हैं, द्वितीय अध्याय में 149 सूत्र हैं, तृतीय अध्याय में 182 और चतुर्थ अध्याय में 76 सूत्र हैं।

'ब्रह्मसूत्र' के प्रथम अध्याय में ब्रह्म को जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कारण बताया है। दूसरे अध्याय के अंतर्गत सांख्य एवं बौद्ध-दर्शन आदि का खंडन किया गया है। तृतीय अध्याय में पुनर्जन्म एवं स्वप्न तथा सुषुप्ति आदि अवस्थाओं के संबंध में विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय में ब्रह्मज्ञान के फल-मुक्ति आदि विषयों पर विचार किया गया है।

ब्रह्मसूत्र' के अनुसार यद्यपि मुक्ति का साधक ज्ञान को बतलाया गया है, परंतु परंपरया कर्म भी मुक्ति का साधक है। 'ब्रह्मसूत्र' के अंतर्गत चित्तशुद्धि के लिए कर्म की उपादेयता का भी समर्थन किया गया है। पुनर्जन्म के संबंध में, 'ब्रह्मसूत्र' में बताया गया है कि जब जीव शरीर छोड़ता है तो उसके साथ उसका सूक्ष्म शरीर भी जाता है। जहाँ तक मुक्ति-संबंधी विचार का प्रश्न है, जीव का स्वरूप-बोध ही मुक्ति है। अविद्या जीव के स्वरूप-बोध में बाधक है। अविद्या की निवृत्ति होने पर ही मुक्ति संभव है, अन्यथा नहीं। जहाँ तक ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता के कर्मनाश की बात है, मुक्त पुरुष के समस्त कर्मों का उच्छेद नहीं होता, अपितु उसे प्रारब्ध-कर्मों का भोग भोगना ही पड़ता है। यही स्थिति जीवन्मुक्ति की स्थिति है। परंतु जब ज्ञानी प्रारब्ध-कर्मों का भोग समाप्त कर लेता है तो फिर उसे शरीर ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी अवस्था को विदेहमुक्ति कहा जाता है। यह विचारणीय है कि मुक्ति के मौलिक स्वरूप में कोई अंतर नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मांडपुराणम् गद्यम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवीं शती का अंतिम चरण]

मलयाळम के इस प्राचीन गद्य-गंथ को 'कण्णश्श रामायण' के रचयिता निरणम् (दे०) रामपणिक्कर की कृति मानते हैं परंतु यह मत अब भी विवादास्पद है। इसमें ब्रह्मांडपुराण के कुछ अध्यायों का सरस संग्रह किया गया है। सगरोपाख्यान, कार्तवीर्य पर परशुराम की विजय आदि अंश इसमें सम्मिलित हैं।

इस गद्यग्रंथ की भाषा 'नंपियांतमिष' नामक प्राचीन भाषारूप है जो 'पाठकम्' नामक कथोपकथन-विधा के कथावाचकों—नंपियारों—द्वारा प्रयुक्त भाषा है। भाषा का यही रूप आगे चलकर नवीन गद्य की भाषा के रूप में विकसित हुआ था।

ब्रह्मा, गौरीकुमार *(उ० कृ०)* [जन्म—1920]

श्री गौरीकुमार ब्रह्मा प्रधान रूप से आलोचक हैं। इनका जन्म षड़ंगीपल्ली—गंजाम में हुआ था। विश्वविद्यालीय अध्ययन की दृष्टि से इनकी रचनाएँ उपयोगी हैं। इनके विवेचनात्मक निबंध सरल और सूचना-विपुल होते हैं। भाषा और शैली सुस्पष्ट एवं प्रसाद गुण-मयी है। 'तपस्विनी ओ मेहेर साहित्य', 'चिलिका ओ राधा-नाथ', 'ओड़िआ साहित्य रे प्रकृति', 'लेखा ओ लेखक', (दे०), 'संस्कृति ओ साहित्य', आदि इनकी रचनाएँ हैं।

ब्रह्मा, सदानंद *(उ० कृ०)* [समय—अनुमानतः अठारहवीं शती ई०]

अठारहवीं शती के यशस्वी कवियों में सदानंद जी का स्थान बहुत ऊँचा है। ये संस्कृत के महान पंडित थे। हिंदी और बँगला का भी इन्हें ज्ञान था। ये मधुरा-भक्ति के उपासक थे और इनकी रचनाओं में युगल-प्रेम की अपूर्व मंदाकिनी प्रवाहित हो रही है। श्री किशोरदास से इन्होंने दीक्षा ली थी और इनका दीक्षा-नाम 'साधु-चरण' था।

इनके महाकाव्य 'विश्वंभर विलास' की रचना 'व' आद्य नियम से हुई है। इन्होंने 'युगरसामृत लहरी' 'नार्मचितामणि', 'स्तुतिचिंतामणि', 'निष्ठानीलमणि', आदि अनेक जणाण (दे०) और चउतिशा (दे०) रचे हैं। भाव, भाषा, वर्णन, शैली सभी दृष्टियों से इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। विरह-मिलन के प्रसंगों में सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण मिलता है। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति एवं शैली-सौष्ठव दर्शनीय है।

ब्राउन, चार्ल्स फ़िलिप *(ते० ले०)* [जन्म—1798 ई०; मृत्यु—1884 ई०]

चार्ल्स फ़िलिप ब्राउन का जन्म कलकत्ता नगर में हुआ। इनके पिता डेविड ब्राउन कलकत्ते में किसी गिरजाघर में नौकर थे। बाल्यकाल में पिता के प्रोत्साहन से इन्होंने अरबी, ग्रीक, लैटिन, हिंदुस्तानी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। चौदह साल की उमर में ये इंगलैंड गये। 1817 ई० में ये मद्रास वापस आये। तब तक ब्राउन साहब को यह मालूम नहीं था कि तेलुगु नाम की एक भाषा है। 1817 से 1855 ई० तक का इनका कार्यकाल अधिकतर आंध्रप्रदेश में ही व्यतीत हुआ है। इस अवधि में इन्होंने न केवल तेलुगु भाषा का सम्यक् अध्ययन करके उसमें विद्वत्ता का अर्जन किया अपितु कई साहित्यिक ग्रंथों का संपादन और प्रतिलिपीकरण किया; यही नहीं, तेलुगु भाषा के लिए एक सुबोध व्याकरण तथा तीन निघंटुओं का निर्माण भी किया। इस प्रकार तेलुगु जनता ब्राउन साहब की साहित्यिक सेवाओं के लिए चिर ऋणी रहेगी।

ब्राउन साहब के साहित्यिक योगदान को हम पाँच भागों में बाँट सकते हैं।

(1) तेलुगु के अनुपम सूक्तिकार कवि वेमना (दे०) के गिने-चुने छंदों का आंग्लीकरण तथा संपादन। (2) तेलुगु काव्यों का जीर्णोद्धार तथा व्याख्या-संपादन: इस महान् साहित्यिक अनुष्ठान में इनके सहयोगी विद्वान् थे—(i) जुलूरि अप्पय्या, (ii) राविपाटि गुरुमूर्ति शास्त्री, (iii) वठर्य अबंत ब्रह्म शास्त्री आदि। इनकी सहायता से इन्होंने तेलुगु के प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य 'मनुचरित्रमु (दे०), 'वसुचरित्रमु' (दे०) आदि का संपादन करके इनको व्याख्या-समेत प्रकाशित किया था। (3) तेलुगु के जिज्ञासु अँग्रेजों के लाभार्थ उसी प्रकार अँग्रेजी में ज्ञानार्जन करने के इच्छुक तेलुगु भाषा-भाषियों के हितार्थ कोशनिर्माण करना। ब्राउन साहब ने (i) तेलुगु-इंग्लिश डिक्शनरी, (ii) इंग्लिश-तेलुगु डिक्शनरी का प्रकाशन 1852 ई० में किया था। 'मिश्रभाषा निघंटु' का प्रकाशन इन्होंने 1854 ई० में किया। हाल ही में प्रथम एवं तृतीय का पुनर्मुद्रण आंध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी ने किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) पाठमाला तथा व्याकरण की रचना : ब्राउन साहब ने बड़े परिश्रम के साथ तेलुगु से अनभिज्ञ विलायती अफ़सरों के लाभार्थ अँग्रेज़ी माध्यम से कई पाठ-मालाएँ लिखीं। इनमें उल्लेखनीय हैं—(1) तेलुगु रीडर (2) अनालिसिस ऑफ़ दि वर्ड्स इन फर्स्ट चैप्टर ऑफ़ दि तेलुगु रीडर, (3) डायलाग्स इन तेलुगु ऐंड इंग्लिश आदि।

परंपरागत व्याकरण के विरोध में इन्होंने अपने विचार व्यक्त किये थे। इसके अनुसार आरंभ में तेलुगु व्याकरण के शब्दपरिच्छेद तथा क्रियापरिच्छेद पढ़ाना पर्याप्त है। आरंभ में ही कला, द्रुत आदि प्रसंगों को उठाने से पाठक भयभीत हो जाता है। इसी प्रकार आरंभ में ही तेलुगु पद्यों को पढ़ाना भी लाभप्रद नहीं है। अतः पहले पत्र, कहानी, आदि पढ़ाना ही उचित है। फलतः इन्होंने 1940 ई० में एक तेलुगु व्याकरण लिखा था।

(5) प्रकीर्णक रचनाएँ : इसके अंतर्गत समय-समय पर इनके लिखे हुए साहित्यिक निबंध, ईसाई धर्म से संबंधित रचनाएँ, आदि आते हैं।

ये 1855 ई० में लंदन लौट गये और वहाँ कुछ समय तक लंदन विश्वविद्यालय में तेलुगु के आचार्य रहे। ब्राउन साहब का योगदान तेलुगु साहित्य के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

ब्रॉनसन, माइल्स (अ० ले०) [जन्म—1812 ई०; मृत्यु—1883 ई०]

ये 1836 ई० में सपरिवार सदिया, जयपुर और नामचाङ में काम करते रहे थे। सबसे पहले इन्होंने ही नगा-भाषा की शब्दावली सीखी थी। ये 1876 ई० में असम से चले गये थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'असमीया-अँग्रेज़ी अभिधान' (1867 ई०)।

इन्होंने यादूराम बरुवा (दे०) के वर्ण-विन्यास की रीति को आधार मानकर 14,000 शब्दों का कोश तैयार किया था। इस ग्रंथ का वर्ण-विन्यास असमीया कथ्य-भाषा पर आधारित था जो कि लिखित शैली की पुष्टि नहीं करता था, अतः आज इस कोश की उपयोगिता समाप्त है।

वास्तव में असमीया-साहित्य को इनकी देन नगण्य है। ये उन मिशनरियों में थे जो भारत में ईसाइयत का प्रचार करने के लिए आए थे। इनका परिश्रम आज नागालैंड के रूप में फलित है।

असमीया के व्यवस्थित शब्दकोश के प्रथम प्रकाशक के रूप में ये चिरस्मरणीय रहेंगे।

ब्राह्मण (सं० कृ०) [रचना-काल—3000-2000 ई० पू० तक]

ब्राह्मणों के कर्त्ता अनेक ऋषि हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों के अंतर्गत विशेष रूप से यज्ञ-संबंधी विधि-विधान का विवेचन किया है। ब्राह्मण ग्रंथों से संबंधित 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ यज्ञ एवं मंत्र दोनों है। ब्राह्मणों की संख्या विपुल है। 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'कौषीतकि ब्राह्मण', 'तांड्य-ब्राह्मण', 'षड्विंश ब्राह्मण', 'जैमिनीय ब्राह्मण' एवं 'शतपथ ब्राह्मण' प्रमुख हैं। इनमें भी 'शतपथ ब्राह्मण' सर्वोपरि है।

शांबर भाष्य के अंतर्गत—"हेतुनिर्वचनर्निदा-प्रशंसासंशयोविधिः। परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणं कल्पना। उपमानं दशैते हि विधयो ब्राह्मणस्य तु॥" कहकर ब्राह्मणों के दश पक्षों का उल्लेख किया गया है। परंतु प्रधान रूप से ब्राह्मणों के विषयवस्तु के विधि तथा अर्थवाद के भेद से दो रूप माने जा सकते हैं। विधि रूप के अंतर्गत यज्ञ-संपादन की रीतियाँ एवं नियम आते हैं। उदाहरण के लिए 'शतपथ ब्राह्मण' की प्रथम कंडिका में ही सहेतुक विधि का सुंदर प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त विधि की व्याख्या में मत-मतांतरों का उल्लेख तथा उसकी सम्यक् मीमांसा अर्थवाद के अंतर्गत आती है। अर्थवाद के ही अंतर्गत निंदा, प्रशंसा, विनियोग और निरुक्ति आदि भी हैं।

ब्राह्मणों के महत्व की अनेक दिशाएँ हैं। कर्मकांडिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ब्राह्मणों का महत्त्व विशेष रूप से अध्येतव्य है। ब्राह्मणों का आख्यान एवं उपाख्यान-संबंधी महत्त्व भी कम नहीं है। आख्यानों में पुरूरवा और उर्वशी का आख्यान, जलौघ-संबंधी आख्यानों और उपाख्यानों में मन और वाक् का उपाख्यान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ब्राह्मण-रोमन-कैथलिक-संबाद (बँ० कृ०) [रचना-काल—सत्रहवीं शती का अंतिम चरण]

किंवदंतियों के अनुसार भूषणा के राजपुत्र को 1966 ई० में डच दस्युओं ने अपहृत किया था और बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आरकान राज्य में सेंट अगस्तिन-मंडली के एक धर्म-याजक मनोयेत दा-रोज़ारियो के घर में उसका पालन हुआ था। पालने वाले के द्वारा इन्हें मसीही धर्म में दीक्षित किया गया। परवर्ती युग में इन्होंने ही ढाका एवं चटग्राम इलाके में व्यापक रूप से मसीही धर्म का प्रचार किया था। प्राय: तीस-चालीस हज़ार लोगों ने रोमन कैथलिक धर्म ग्रहण किया था। इस ग्रंथ में एक ब्राह्मण एवं एक रोमन कैथलिक के प्रश्नोत्तर के माध्यम से ईसा की महिमा वर्णित हुई है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानोयेल दा आसुंपसाँउ द्वारा रचित 'कृपार शास्त्रेर अर्थभेद' (1743 ई०) ग्रंथ से पहले इसकी रचना हुई थी।

ब्राह्मी लिपि *(भाषा० पारि०)*

ब्राह्मी भारत की एक प्राचीन लिपि है जो सभी आधुनिक भारतीय लिपियों तथा भारत के बाहर की भी कई लिपियों की आदि जननी है। इसके प्राचीनतम नमूने पिपरावा (ज़िला बस्ती) तथा बडली (ज़िला अजमेर) में मिले हैं जिनका काल पंद्रहवीं शती ई० पू० है। इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' कैसे पड़ा—यह प्रश्न अभी अनिर्णीत है। एक मतानुसार यह 'ब्रह्मा' की बनाई है तो दूसरे मतानुसार 'ब्रह्म' नामक किसी व्यक्ति ने इसे बनाया था। कुछ लोग यह मानते हैं कि 'ब्राह्मणों' में प्रचार के कारण ही यह नाम पड़ा है। नाम की तरह ही इस लिपि की उत्पत्ति भी विवादास्पद है। किसी ने इसे चीनी लिपि से निकली माना है तो किसी ने यूनानी से, किसी ने फ़ीनीशियन से तो किसी ने एकाधिक लिपियों से। कुछ लोग इसे सिंधु घाटी की लिपि से जोड़ने के लिए भी यत्नशील रहे हैं किंतु अभी तक यह प्रश्न अनिर्णीत है। ब्राह्मी का प्रयोग पाँचवीं शती ई० पू० से 350 ई० तक होता रहा। इसके बाद उसकी उत्तरी और दक्षिणी दो शैलियाँ हो गईं। उत्तरी शैली से ही गुप्त लिपि, कुटिल लिपि से होते हुए प्राचीन नागरी (जिससे आधुनिक देवनागरी, गुजराती, महाजनी, कैथी, मैथिली, बँगला, उड़िया, मेइतेइ आदि विकसित हुईं), शारदा (इससे टाक्री, डोगरी, चमेआली, जौनसारी आदि निकलीं) तथा खोतानी आदि विकसित हुईं तथा इसकी पश्चिमी शैली से तेलुगु, कन्नड, ग्रंथ, कलिंग, तमिल, सिंहली, बर्मी, कोरियाई, कंबोडियाई, स्यामी, सुमात्री, जावानी आदि निकलीं। तिब्बती लिपि का संबंध भी इसी से विकसित सिद्धमात्रिका लिपि से है।

भंज उपेंद्र *(उ० ले०)* [समय—1685-1725 ई०]

अपनी लोकोत्तर काव्य-प्रतिभा, असाधारण शास्त्रज्ञान, संस्कृत-साहित्य के अगाध पांडित्य, सूक्ष्म सौंदर्य-बोध, अनुपम शब्द योजना एवं अद्भुत रचना-कौशल के कारण 'कवि-सम्राट्' की उपाधि पाने वाले उपेंद्र भंज की कविता में वस्तुत: उड़ीसा की साहित्य-साधना की चरम परिणति मिलती है। मातृ-साहित्य को संस्कृत-साहित्य की समकक्षता दिलाने के लिए इन्होंने राज-कार्य त्याग कर जीवन-व्यापी साहित्य-साधना की थी। स्वच्छंद शृंगारिक जीवन, निरंकुश नग्न-भोगमय प्रेम के अंतर से संयत आत्मा की एक हल्की विमल झाँकी दिखाना और आदर्श प्रेम की सूक्ष्म व्यंजना करना उपेंद्र भंज को अभीष्ट था।

उपेंद्र घुमसर राजपरिवार के वंशावतंस तथा नीलकंठ भंज के पुत्र थे। पितामह धनंजय भंज से इन्हें काव्य-प्रेरणा मिली थी। उपेंद्र राम तारक मंत्र के विशिष्ट साधक थे। इनकी रचनाओं की सुदीर्घ सूची देना यहाँ संभव नहीं है। प्रमुख रचनाओं में 'वैदेहीशविळास' (दे०) व 'सुभद्रा-परिणय' क्रमश: 'ब' और 'स' आद्यनियम से रचित हैं। 'कळा कौतुक' में आदि और अंत वर्ण 'क' है। 'अबना-रस-तरंग' में केवल स्वर-वर्ण व अकारांत व्यंजन-वर्णों जा प्रयोग हुआ है। शृंगार-काव्य में 'लावण्यवती' व 'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी' (दे०) मुख्य हैं। चित्रकाव्य 'बंधोदय' में वर्णों के साथ चित्रकला का भी प्रयोग हुआ है।

इनकी काव्य-रीति की विशेषता छंद-वैविध्य, अलंकार-विलास विशेषकर माला यमक तथा अन्य यमकों एवं श्लेष के प्रयोग में देखी जा सकती है। बहिर्लिपि एवं अंतर्लिपि के प्रयोग ने इनके काव्य को चिर नूतनता प्रदान की है। संगीत व ध्वनि की प्रसन्नता के कारण शब्द, अर्थ व व्यंजना की दुर्बोधता होते हुए भी इनके काव्य सर्वजन-आदृत रहे हैं। भंज की काव्य-प्रतिभा अद्वितीय है। इनके रचना-कौशल का वैशिष्ट्य उड़िया भाषा के अनिवार्य तत्त्वों से ओतप्रोत होने के कारण अन्य भारतीय व विदेशी भाषाओं में इनकी रचनाओं का अनुवाद संभव नहीं हो सका। अत: विश्व-साहित्य में विशेष गौरव के अधिकारी होने पर भी इनकी कलात्मक उपलब्धि उड़िया-भाषियों तक ही सीमित रह गई।

भंज, धनंजय *(उ० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

सत्रहवीं-अठारहवीं शती में उड़िया काव्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास में घुमसर के राजपरिवार का प्रदेय महत्त्वपूर्ण है। धनंजय भंज का काव्य उर्वर कल्पना, संगीत-गुण तथा समृद्ध भाषा के कारण उच्चकोटि का है। संस्कृत के विद्वान होने के कारण इनके काव्य में संस्कृत-निष्ठ उड़िया का प्रयोग मिलता है। अपने पौत्र कविसम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) के ये प्रेरणास्रोत थे। और इनके 'रघुनाथबिलास' से प्रेरित होकर उपेंद्र ने 'बैंदहीशबिळास' की रचना की थी। धनंजय की शृंगारिक भावनाएँ उपेंद्र के 'लाण्वयवती', 'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी' (दे०) काव्य की प्रेरक हैं। 'रघुनाथ-बिलास', 'त्रिपुर सुंदरी', 'मदनमंजरी', 'अनंगरेखा', 'इच्छाबती' (दे०) आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त धनंजय ने कई चउतिशा (दे०) भी लिखी हैं।

भक्तप्रसाद *(बँ० पा०)*

'एकेइ कि बले सभ्यता' (दे०) एवं 'बुड़ो शालिकेर घाड़े रों' (दे०)—ये दो प्रहसन आज भी माइ-केल (दे०) मधुसूदन दत्त की नाट्य प्रतिभा की उज्ज्वल सृष्टि के रूप में स्वीकृत हैं। 'बूड़ो शालिकेर घाड़े रों' का बुड़ा शालिक (शालिक—एक प्रकार का पक्षी) 'भक्त-प्रसाद' है। समसामयिक समाज-जीवन की प्रतिच्छवि इस चरित्र में प्रस्फुटित हुई है। धर्मकंचुकावृत वृंदों के गोपन लांपट्य का अपूर्व चित्र भक्तप्रसाद के चरित्र में उजागर हुआ है। प्रजापीड़क ज़मींदार भक्तप्रसाद को जैसे ही अपने अनुचर गदाधर से हनीफ़ की सुंदरी स्त्री फ़ातिमा का पता लगा, उसने हनीफ़ को बकाया लगान के दाय से मुक्त कर दिया। लांपट्य के काम में जाति-धर्म का कोई अर्थ नहीं है। मुसलमान फ़ातिमा के साथ मिलने का स्थान है टूटा हुआ शिवमंदिर। भक्तप्रसाद के माध्यम से मधुसूदन ने इंद्रिय-परवश मनुष्य के जीवन-धर्म को सार्थक रूप में चित्रित किया है। भक्तप्रसाद किसी एक विशेष युग का नहीं है। भक्तप्रसाद की प्रवृत्ति एक चिरंतन मानवीय दुर्बलता की प्रतीक है एवं उसके चित्रण के द्वारा मधुसूदन ने मानव प्रकृति की कामवृत्ति की गोपन गुफा में आलोक-पात किया है।

भक्तमाल *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1658 ई०]

इसके प्रणेता रामानंदी भक्त नाभादास (दे०) जी हैं। मध्ययुगीन भक्ति साहित्य से संबद्ध विचारधारा एवं उसके प्रवर्तकों तथा अनुयायियों की विशिष्टताओं को समझने के लिए 'भक्तमाल' का अध्ययन आवश्यक है। 'भक्तमाल' मध्ययुग की एक प्रामाणिक रचना है और समग्र वैष्णव संप्रदायों में इसको मान्यता प्राप्त है। इसमें मध्ययुग के भक्त कवियों के साथ-साथ रामानंद संप्रदाय के अनेकानेक भक्तों की प्रमुख-प्रमुख विशेषताओं का परिगणन बड़ी स्पष्टता के साथ किया गया है। 'भक्तमाल' भक्तों के बीच इतना लोकप्रिय रहा है कि आज उससे संबद्ध अनेक टीकाएँ प्रचलित हैं, इनमें प्रियादास की टीका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रख्यात है। 'भक्तमाल' की भाषा ब्रज है। इसमें छप्पय, दोहा आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। शैली की दृष्टि से संपूर्ण मध्ययुगीन साहित्य में 'भक्तमाल' अपने स्तर की एक ही आलोचनात्मक कृति कही जा सकती है।

भक्तिदीपिका *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

कलासिक-रोमांटिक संक्रांति काल के कविवर उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वरय्यर की रचना 'भक्तिदीपिका' पुराणकथाश्रित खंडकाव्य है, जिसकी कथावस्तु माधवाचार्य-कृत 'श्रीशंकरविजयम्' से संगृहीत है। इसका कथासार श्लोकार्ध में यों दिया गया है—

'भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते।'

श्री शंकर भगवत्पाद के शिष्य सनंदन 'महा-भागवत' (दे० भागवत) के प्रह्लादोपाख्यान से प्रभावित होकर ज्ञान-दंभ से समझ रहे थे कि साधना एवं तपस्या से मैं नृसिंह का प्रत्यक्ष दर्शन कर लूंगा। नृसिंह के दर्शन कर वे उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे। नृसिंह-साधना के लिए कठोर तप करते सनंदन को उस वन का प्रमुख निश्छल स्नेहपूर्ण वनचर चात्तन (दे०) श्रद्धा से देखता—उन्हें फल-मूल का उपहार चढ़ाता था। उसने तप का कारण जब जानना चाहा तब उस जिज्ञासु का उपहास करते हुए सनंदन ने तप का ध्येय बताया। उस भील की समझ में आया कि शेर का सिर और आदमी का तन रखने वाले जानवर की तलाश में ये तप रहे हैं। वनचर चात्तन् ने पहले शिकारी बनकर खोजा। बाद में वह भी अन्न-जल छोड़कर सच्चे भक्तिमय प्रेम से उस नृसिंह को पुकारने लगा। भक्ति की तीव्रता देख भगवान से नहीं रहा गया। उन्होंने स्वयं दर्शन दिए और उस वनचर की दी हुई घास-फूस खाई। उसके अनुरोध से बंधनस्थ होकर साथ चले और सनंदन को दर्शन दिये। यों सनंदन का ज्ञान-गर्व भील की भक्ति से पराजित हो गया।

इस काव्य के मुख्य प्रसंग तीन है—(1) सनंदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तपस्या, (2) चात्तन् से उनकी भेंट, (3) नृसिंह-दर्शन तथा उपदेश। प्रथम दो प्रसंगों में कविता की माधुरी एवं अलंकारमय वर्णन की झाँकी है। अंतिम प्रसंग में धार्मिक तथा दार्शनिक भाव की झाँकी है।

भक्तिप्रस्थानम् (मल० पारि०)

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मलयाळम के मध्यकालीन साहित्य की भी प्रतिष्ठा मूलतः भक्ति-साहित्य-धारा के कारण है। वैसे तो लोक-साहित्य में भक्तिपूर्ण लोकगीत, स्तोत्र आदि बड़ी संख्या में मिलते हैं किंतु साहित्य की कोटि में नहीं आते। वास्तव में भक्ति-साहित्य का युग पंद्रहवीं शती की रचना 'कृष्णगाथा' के दिनों से प्रारंभ होता है। 'कृष्णगाथा' है तो भक्तिकाव्य, पर इसमें सरसता एवं श्रृंगार की मात्रा पर्याप्त है। भक्तों की अपेक्षा साहित्य-प्रेमी ही इसका अधिक सम्मान करते हैं।

'भक्तिप्रस्थानम्' का विशद विकास सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में एष्ुत्तच्छन् के काव्यों में उपलब्ध होता है। नुंचत्तु रामानुजन् एष्ुत्तच्छन् को मलयाळम का तुलसीदास (दे०) कहा जाये तो अनुचित न होगा। उनके भक्ति-मधुर काव्यों में प्रमुख 'रामायणम्', 'भारतम्' और 'भागवतम्' हैं। ये तीनों संस्कृत के सुंदर भावानुवाद हैं। इन कृतियों से कवि ने संस्कृत से अनभिज्ञ केरलीय जनता-जनार्दन के मन में भक्ति-मंदाकिनी भर दी। इन काव्यों ने साहित्य को 'किलिप्पाट्टु' (दे०) नामक काव्य-रूप भी दिया।

भक्तिधारा मलयाळम में किसी सांप्रदायिक धारा के रूप में नहीं फली-फूली। उसका स्वरूप वैयक्तिक ही रहा। एष्ुत्तच्छन् के बाद भक्तिधारा के अनन्य कवि पूंतानम् हुए। 'पूंतानम्'(दे०) नंपूतिरि का आकार में लघु पर विचारों में गंभीर ग्रंथ है। मलयाळम में इनका प्रस्तुत 'कृष्णकर्णामृतम' श्रीकृष्ण-भक्ति का काव्यमय रसायन है।

कालांतर में कई कवियों ने भक्ति-धान स्तोत्र रचे। मलयाळम के भक्ति-स्तोत्रों के प्रमुख आधार गुरुवायूर के मंगलमूर्ति भगवान कृष्ण भी हैं। परंतु भक्ति-प्रस्थान एष्ुत्तच्छन् और पूंतानम के युग में ही फला-फूला और समाप्त भी हो गया।

भक्तिरसामृतसिंधु (सं० कृ०)

इस ग्रंथ के लेखक रूपगोस्वामी (दे०) हैं। इनका जन्म 1603 ई० के लगभग हुआ था। इनके पूर्वज कर्नाटक प्रांत के निवासी थे जो कि चौदहवीं शती में बंगाल में आ बसे थे। रूपगोस्वामी की शिक्षा-दीक्षा बंगाल में हुई, और ये मुग़ल राज्य में राजकर्मचारी नियुक्त हो गये किंतु बाद में चैतन्य (दे०) महाप्रभु के प्रभाव-स्वरूप ये विरक्त हो गये और कृष्ण के उपासक बन गये। इनके रचे 13 ग्रंथों में से 'उज्ज्वलनीलमणि' (दे०) और 'भक्तिरसामृतसिंधु' का अधिक महत्त्व है। 'भक्तिरसामृतसिंधु' में भक्ति का रसशास्त्र की दृष्टि से निरूपण किया गया है। यह ग्रंथ चार विभागों में विभक्त है—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर। पूर्व-विभाग में चार लहरियाँ हैं, जिनमें क्रमशः सामान्य भक्ति, साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति का सांगोपांग निरूपण है। दक्षिण-विभाग की पाँच लहरियों में विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारि भाव और स्थायि भाव का निरूपण है। पश्चिम-विभाग की पाँच लहरियों में शांत रस, प्रीतिभक्ति, प्रेयोभक्ति, वत्सल भक्ति और मधुर भक्ति नामक रसों का निरूपण है। उत्तर-विभाग की नौ लहरियों में क्रमशः हास्यभक्ति, अद्‌भुतभक्ति, वीरभक्ति, करुणभक्ति, रौद्र-भक्ति, भयानक भक्ति, बीभत्स भक्ति रसों तथा मैत्रीवैर-स्थिति भक्तिरस एवं रसाभास का निरूपण है। स्पष्ट है कि इस प्रकार इस ग्रंथ में भक्ति को ही एकमात्र रस मान कर रूपगोस्वामी ने श्रृंगार आदि सभी रसों को भक्ति में पर्यवसित किया है। इनकी यह धारणा काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से मान्य नहीं है, किंतु भक्ति-सिद्धांतों को लक्ष्य में रखकर इस ग्रंथ में प्रतिपादित इनकी सभी मान्यताएँ भक्तजनों को अतीव इष्ट हैं।

भक्तिविजय (म० कृ०)

इसकी रचना महीपति बुवा ताहराबादकर ने 1762 ई० में की थी। इसमें अनेक संत-भक्तों के जीवन-चरित का श्रद्धा-भक्ति-समन्वित वर्णन है। लिखने की प्रेरणा के दो स्रोत थे—'नाभादास' (दे०) जी का 'भक्त-माल' (दे०) और उद्धवचिद्घन का 'संतचरित्र'। इन दोनों की रचनाओं के अतिरिक्त नामदेव (दे०) की 'तीर्थावली' तथा जन-प्रचलित धारणाओं, कथाओं से भी मूल सामग्री संकलित की गई है। अपने समकालीन तथा अनेक पूर्ववर्ती भक्तों के चरित्रों की सामग्री उनके वंशजों से भी प्राप्त की गई है। इसमें आरंभिक चरित्र-वर्णन नाभादास जी के 'भक्तभाल' के अनुरूप हैं। किंतु नामदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०), ज्ञानेश्वर (दे०) आदि महाराष्ट्र के भक्तों के चरित्र-वर्णन में कुछ अधिक सामग्री उपलब्ध है। इनके चरित्र-वर्णन में भक्ति-भावना की उत्कटता है। कथा-वर्णन की शैली रोचक और आकर्षक है। भाषा में विशेष माधुर्य एवं सरलता है। 'भक्ति-विजय' का पारायण महाराष्ट्र के देहातों में प्रायः होता रहता है। इस ग्रंथ ने सर्वसाधारण जनता में बहुत प्रसिद्धि और आदर प्राप्त किया है। चरित्र-साहित्य में 'भक्ति-विजय' का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भगवत गोमंडल कोश *(गु० क०)*

भगवंतसिंह जी (1850-1944 ई०) की यह पुस्तक नौ भागों में प्रकाशित हुई है। प्रथम भाग का प्रकाशन-वर्ष 1944 ई० था और अंतिम भाग का प्रकाशन-वर्ष 1952 ई०। गोंडल राज्य के महाराजा भगवंत सिंह जी साहित्य में रुचि रखते थे और उन्होंने राज्य की ओर से सहायता देकर एक बृहद् विश्वकोश की योजना बनाई, और एक विश्वकोश तैयार कराया भी। गुजराती में यह एकमात्र विश्वकोश है और संसार के सब विषयों की जानकारी इसमें दी गई है। उस पर एक लाख रुपया व्यय किया गया था।

भगवानदीन *(हिं० ले०)* [जन्म—1867 ई०]

लाला भगवानदीन का जन्म ज़िला फ़तहपुर के बरवट ग्राम में हुआ। 1907 ई० में ये काशी के सेंट्रल हिंदू कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हुए। इन्होंने 'श्रृंगार-तिलक', 'श्रृंगारशतक' तथा 'रामायण' के आधार पर अनेक कुंडलियाँ लिखीं। 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका का संपादन किया तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख प्रकाशित होते रहे। इन्होंने रामचरित्र-विषयक एक काव्य 'राम-चरणांकमाला' लिखा तथा 'अलंकारमंजूषा' नामक एक अलंकार-ग्रंथ की रचना की। इन सबसे बढ़कर लाला जी की हिंदी-साहित्य को एक देन और है कि इन्होंने 'राम-चंद्रिका' (दे०), 'दोहावली' (दे०), 'कवितावली', 'विहारी-सतसई' (दे०) आदि पुराने ग्रंथों की टीकाएँ लिखकर विद्वानों एवं छात्रों का महान् उपकार किया।

भगवानसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1842 ई०; मृत्यु—1902 ई०]

'खुशी की कवीशरी दा रोज़ मैंनूं काज है' कहने वाले भगवानसिंह फ़िरोज़पुर और भटिंडा के सीमांत पर स्थित मर्राज नामक गाँव के एक खत्री-परिवार में जन्मे थे। इनके पिता का नाम रत्नसिंह था। गाँव के मौलवी से इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। नौकरी भी शीघ्र मिल गई परंतु कवि के स्वाभिमान ने उसे अधिक देर तक वहाँ टिकने न दिया। शीघ्र ही उसे छोड़ कर काव्योप-जीवी बन गए। नाभा और पटियाला के राजदरबारों के अतिरिक्त अनेक सामंत-सरदार भी कवि का सम्मान करते थे, अतः जीवन-निर्वाह सरलता से होता रहा। कवि संवेदनशील थे और उनकी अधिकांश रचनाएँ आसपास के वातावरण और सामयिक विषयों पर ही आधारित हैं। 'पच्चीए दा काल' (1868 ई०), 'चौत्तीए दी अग्ग' (1899 ई०), 'जज' और 'जीऊणा मोड़' (1894) जैसी सामयिक कृतियों के अतिरिक्त 'सोहणी-महीवाल', 'हीर-राँझा' (1878) और 'मिरज़ा-साहिबां' (1899) भी उपलब्ध होती हैं। इन्होंने अनेक फुटकर छंद भी लिखे जिनमें से अब एक बारामाँह और कुछ काफ़ियाँ ही मिलती हैं। कवि की भाषा में ब्रज, खड़ी बोली तथा कुछ आंचलिक प्रयोगों का मिश्रण है परंतु उसका मूल स्वरूप पूर्वी पंजाबी का है। इनकी 'हीर-राँझा' (दे०) पूर्वी पंजाब में लोकप्रिय रही है।

भटिमा *(अ० पारि०)*

भाटों की शैली में श्री शंकरदेव (दे०) ने भटिमा काव्य की रचना की थी, इनमें वंदनाएँ हैं। ये तीन प्रकार की हैं—(1) रामभक्ति—महाराज नरनारायण के प्रति लिखी गई, (2) देवभटिमा—श्री कृष्ण के प्रति लिखी गई, और (3) नाट भटिमा—यह देव भटिमा से पृथक नहीं है, किंतु इसे नाटकों के लिए लिखा गया था। माधवदेव (दे०) ने भी 'भटिमा' नामक ग्रंथ की रचना की थी, यह शंकरदेव की वंदना में लिखी गई कृति है। इसमें दीनता का मार्मिक चित्रण है।

भटी, अब्दुल रऊफ़ *(सिं० ले०)* [जन्म—1682 ई०; मृत्यु—1752 ई०]

मख्दूम अब्दुल रऊफ़ भटी सिंध के हाला नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव के निवासी थे। ये अपने समय के बड़े दरवेश थे। इन्होंने सिंधी में 'मौलूद' (दे०) और 'मदाहे (दे०) रच कर हज़रत मुहम्मद की महिमा गाई है। इनके द्वारा रचित 'मौलूद' और 'मदाहे' आज तक सिंधी मुसलमानों में प्रसिद्ध हैं। ये पहले सिंधी कवि हैं जिन्होंने फ़ारसी छंदों के आधार पर 'मौलूद' और 'मदाहें' लिखी हैं।

भट्ट, उदयशंकर *(हिं० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

इनका जन्म इटावा में हुआ। पूर्वज इंदौर नरेश के न्यायाधीश नियुक्त होकर बुलंदशहर के कर्णवास ग्राम में बस गये थे। बचपन में घर पर शुद्ध संस्कृत का वातावरण था। इनके पिता फतेहशंकर भट्ट ब्रजभाषा में कवित्त रचा करते थे और उन्हें गोष्ठियों में सुनाया करते थे। भट्ट जी को इन्हीं गोष्ठियों से लिखने की प्रेरणा मिली। इन्होंने काशी विश्वविद्यालय से बी० ए०, पंजाब से शास्त्री और कलकत्ता से काव्यतीर्थ की उपाधियाँ प्राप्त कीं। लाहौर में लाला लाजपतराय के नेशनल कालेज, खालसा कालेज, सनातन धर्म कालेज आदि में अध्यापन किया और तत्पश्चात् आकाशवाणी के परामर्शदाता और निदेशक रहे।

नाटक भट्ट जी की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है, फिर भी इन्होंने कर्णवास के साधुओं के जीवन को लेकर ब्रजभाषा में एक आंचलिक उपन्यास लिखा है। भट्ट जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, समस्याप्रधान, हास्यपूर्ण सभी प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'अमृत और विष', 'विसर्जन', 'मानसी', 'यथार्थ और कल्पना', 'विश्वामित्र और दो भावनाट्य', 'अंतर्दर्शन' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'अंबा' और 'सगरविजय' पौराणिक, 'कमला' और 'अंतहीन अंत' सामाजिक तथा 'क्रांतिकारी' क्रांति-विस्फोटक नाटकों के रूप में प्रसिद्ध हैं। भट्ट जी की प्रतिभा के विकास का मुख्याधार उनके गीति-नाटक हैं। 'स्त्री का हृदय', 'आदिम युग', 'पर्दे के पीछे', 'आज का आदमी' इनके प्रमुख एकांकी हैं। भट्ट जी की रचनाओं में वैदिक युग से लेकर आज तक की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को चित्रित किया गया है। 'सागर लहरें और मनुष्य' सुदूर दक्षिण के मछुआरों में रहकर उनके जीवन पर लिखा गया सजीव चित्र है। भट्ट जी में प्राचीन के प्रति अनुराग और नवीन के प्रति आकर्षण है। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में राष्ट्र-प्रेम का चढ़ता-उतरता स्वर पाया जाता है, जबकि बाद की रचनाएँ वर्तमान के टूट-फूट को अभिव्यंजित करके नये को स्वीकार करती हैं। नाटक के क्षेत्र में, और वह भी भावनाट्य में, भट्ट जी की स्थिति बहुत सुदृढ़ है। एक तरह से इस विधा के वे आद्य पुरस्कर्ता कहे जा सकते हैं।

भट्टगोपाल *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः पंद्रहवीं शती ई० के आसपास]

'काव्यप्रकाश' (दे०) के टीकाकार भट्टगोपाल का पूरा नाम लौहित्य भट्टगोपाल सूरि है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' पर 'साहित्यचूडामणि' नामक टीका लिखी है। कुमारस्वामी ने 'रत्नायण' (पृ० 93) में एक गोपालभट्ट का उल्लेख किया है। यदि 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार भट्टगोपाल, कुमारस्वामी द्वारा निर्दिष्ट गोपालभट्ट से अभिन्न हैं तो उनका समय पंद्रहवीं शती ई० से पूर्व होना चाहिए। श्री के० पी० त्रिवेदी का विचार है कि कुमारस्वामी द्वारा निर्दिष्ट गोपालभट्ट ही हैं जिन्होंने 'रसमंजरी' (दे०) पर टीका लिखी है। इस प्रकार 'काव्यप्रकाश' के पूर्वोक्त टीकाकार भट्टगोपाल, 'रसमंजरी' के टीकाकार से अभिन्न ठहरते हैं। इनके पिता का नाम हरिवंश भट्ट द्रविड़ था। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' पर उपर्युक्त टीका के अतिरिक्त भानुदत्त की 'रसमंजरी' पर 'रसिकरंजनी' नामक तथा रुद्रट (दे०) के 'श्रृंगारतिलक' पर 'रसतरंगिणी' नामक टीकाएँ भी लिखी हैं।

भट्ट, जीवराम *(गु० पा०)*

कविवर दलपतराय डाह्याभाई (दे०)-रचित व पुरस्कृत गुजराती नाटक 'मिथ्याभिमान' (दे०) का प्रमुख पुरुष पात्र है—जीवराम भट्ट। 'मिथ्याभिमान' हास्यरस-प्रधान नाटक है। जीवराम भट्ट इसका मिथ्याभिमानी नायक है—झूठे आत्मगौरव से पीड़ित। इस पात्र के आचरण से जहाँ उसके प्रति एक वितृष्णा जगती है वहीं उस पर दया भी आती है क्योंकि वह अपने ही बनाये हुए जाल में बुरी तरह फँसता चला जाता है। लेखक ने हास्य-व्यंग्य के माध्यम से मिथ्या दंभ और अहंकार पर करारी चोट की है।

भट्टतिरिप्पाड्, एम० पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

मलयाळम के नाटककार और कवि एम० पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्टतिरिप्पाड् सुप्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेता हैं और 'प्रेमजी' के नाम से कविता लिखते हैं। इनके सामाजिक नाटक 'ऋतुमती' का नाटक-साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान है। 'सपत्नी' और 'रक्त संदेशम्' इनके कविता-संग्रह हैं। 1945 ई० में प्रकाशित 'ऋतुमती' में भट्टतिरिप्पाड् ने समसामयिक नंपूतिरि-समाज में व्याप्त कुरीतियों का और उनके फलस्वरूप उस समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का करुणाजनक और नाटकीय निरूपण किया है। उनकी कविताएँ क्रांतिकारी हैं और साहित्य के प्रगतिवादी आंदोलन में वे अग्रणी हैं।

भट्टतिरिप्पाड्, वी० टी० रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

ये सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक और नाटककार हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के कारण ये जेल गये। अपनी जाति (नंपूतिरि) में उपस्थित कुप्रथाओं के विरुद्ध ये कार्यरत रहे और उसमें इनको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।

'अटुक्कळयिल् निन्नु अरङ्ङत्तेय्कु' इनका महत्त्वपूर्ण नाटक है। इन्होंने कुछ कहानी-संग्रह और अपनी आत्मकथा भी प्रकाशित कराई है।

इनका उपर्युक्त नाटक नंपूतिरि-समाज में प्रचलित विवाह-संबंधी कुछ प्रथाओं के विरुद्ध अभिलक्षित था। मलयाळम के प्रारंभिक सामाजिक नाटकों में इसका विशेष स्थान है। आत्मकथा-लेखन में भी शायद के० पी० केशव मेनन (दे०) के बाद इन्हीं का नाम आता है।

भट्ट तौत (भट्ट तोत) *(सं० ले०)* [समय—950-980 ई०]

आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) के साहित्य-गुरु भट्ट तौत भी काश्मीरी विद्वान् थे। इनका समय अभिनवगुप्त से कुछ पूर्व दसवीं शती ई० का उत्तरार्ध रहा होगा। इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

भट्ट तौत की कृति 'काव्यकौतुक' थी जो निश्चय ही साहित्य-शास्त्र विषयक थी जिस पर अभिनवगुप्त ने 'विवरण' नाम की टीका भी लिखी थी। परंतु दुर्भाग्यवश आज दोनों ही (मूल एवं टीका) अनुपलब्ध हैं। अभिनवगुप्त की कृतियों में इनका उल्लेख अनेक बार हुआ है तथा कुछ उद्धरण भी दिए गये हैं।

अभिनवगुप्त इनका उल्लेख अपने उपाध्याय के नाम से करते हैं। इन उल्लेखों एवं उद्धरणों से ज्ञात होता है कि भट्ट तौत एक सफल अध्यापक ही नहीं अपितु मौलिक चिंतक भी थे। शांत को रस की संज्ञा देने का श्रेय भट्ट तौत को ही है जिसका विस्तृत विवेचन उन्होंने अपनी अनुपलब्ध कृति 'काव्यकौतुक' में किया था। 'रसानुभूति सुखात्मक ही होती है' तथा रस ही नाट्य है यह मत भी भट्ट तौत के नाम से 'अभिनवभारती' में उद्धृत है। इनका कथन है कि काव्य (संभवतः नाट्य) का आस्वाद बिना प्रयोग के संभव नहीं है। क्षेमेंद्र (दे०) ने अपने 'औचित्यविचारचर्चा' (दे०) में यह बताया है कि 'प्रतिभा' (दे०) की परिभाषा 'प्रज्ञानवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' भट्ट तौत-कृत ही है। भट्ट तौत रसवादी आचार्य थे तथा अनुकरण को काव्य नहीं मानते थे। उन्होंने श्री शंकुक (दे०) के अनुमितिवाद का भी खंडन अपनी कृति में किया था।

भट्टदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1558 ई०; मृत्यु—1638 ई०]

ये कामरूप जिले के बरनगर नामक स्थान के निवासी थे। इनके पिता भी विद्वान् थे। इनका वास्तविक नाम बैकुंठनाथ था, पंडितों द्वारा प्रदत्त उपाधियों को जोड़कर इनका पूरा नाम बनता था—कविरत्न बैकुंठनाथ भागवत भट्टाचार्य। ये शाक्त ब्राह्मण थे। श्री शंकरदेव (दे०) की ख्याति से प्रभावित एवं उनके शिष्य दामोदर से तर्क में परास्त होकर ये वैष्णव बन गये थे। दामोदर की प्रेरणा से इन्होंने स्त्रियों और शूद्रों के लिए 'भागवत' (दे०) का गद्यानुवाद किया था, किंतु बृहत् ग्रंथ होने के कारण दामोदर ने इसे संक्षिप्त करने के लिए कहा था। अब बृहत् ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। ये श्री भट्ट पटबाउसी सत्र के महंत भी बनाए गये थे। इन्हें व्यास (दे० बादरायण, व्यास) का अवतार कहा जाता है।

रचनाएँ—'कथा भागवत' और 'कथा गीता' (दे०)। इनके अतिरिक्त कई असमीया और संस्कृत-ग्रंथ भी इन्होंने रचे थे।

'कथा भागवत' भागवत का अनुवाद मात्र नहीं है, इन्होंने अपनी ओर से भी इसमें जोड़ा है। शंकरदेव ने ब्रजबुलि-गद्य का प्रचार किया था और इन्होंने शुद्ध असमीया गद्य का। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी (दे०) के अनुसार विश्व में इनका गद्य द्वितीय स्थान पाने योग्य है। 'कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता' (1598-99 ई०) में गीता का अनुवाद है। इसकी भाषा भागवत से भी अधिक सुंदर, सरस और ओजस्वी है। इसमें दार्शनिक तत्त्वों को सहज रूप में समझाया गया है।

असमीया-गद्य के जन्मदाता के रूप में ये चिर-स्मरणीय हैं। इस काल तक संभवतः भारत की किसी भाषा में इतना पुष्ट गद्य नहीं मिलता।

भट्टनायक *(सं० ले०)*

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में भट्टनायक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व दोनों के विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। अभिनवगुप्त (दे०), महिम भट्ट (दे०), मम्मट (दे०) एवं हेमचंद्र (दे०) प्रभृति ग्रंथकारों ने अपनी कृतियों में इनके नाम से इनके मत उद्धृत किए हैं।

इनकी कोई भी रचना उपलब्ध नहीं हो सकी है। 'ध्वन्यालोक' (दे०) की 'लोचन' नामक टीका में अभिनवगुप्त ने तथा 'व्यक्तिविवेक' (दे०) नामक अपने ग्रंथ में महिम भट्ट ने 'हृदयदर्पण' नामक कृति का उल्लेख सोद्धरण किया है जिसमें आनंदवर्धन (दे०) के ध्वनि-सिद्धांत का खंडन प्राप्त होता है। महिम भट्ट ने भी इनको ध्वनि-ध्वंसक आचार्य के रूप में ही प्रस्तुत किया है। पर यह कहना कठिन है कि 'हृदयदर्पण' एक स्वतंत्र ग्रंथ था, या ध्वन्यालोक की टीका। इस ग्रंथ के नाम कई प्रकार से मिलते हैं —दर्पण, हृदयदर्पण, सहृदयदर्पण। ये 'नाट्य-शास्त्र' (दे०) के रससूत्र के अन्यतम व्याख्याता भी हैं। तो क्या ये भरत-नाट्यशास्त्र (दे० नाट्यशास्त्र) के टीका-कार भी थे। यह प्रश्न भी अनुत्तरित ही रह जाता है।

भट्टनायक रसवादी आचार्य थे। इनके मत से काव्य की आत्मा रस ही है। इनके मत से रस की मुक्ति अर्थात् उसका आस्वाद होता है। मुक्ति के पूर्व विभावादि का साधारणीकरण परमावश्यक है। साधारणीकरण (दे०) का सिद्धांत इनकी ही देन है। इनकी इस व्याख्या के आधार पर ही इन्हें सांख्य-दर्शन का अनुयायी कहा जाता है।

भट्ट नारायण *(सं० ले०)* [समय—सातवीं शती का उत्तरार्द्ध]

भट्ट नारायण कान्यकुब्ज प्रदेश के निवासी तथा गौडदेश के आदिसूर नामक राजा के सभासद थे। कुछ विद्वान् इनको भवभूति (दे०) का समसामयिक मानते हैं।

इनकी एकमात्र नाट्यकृति 'वेणीसंहार' (दे०) है। इसमें छह अंक हैं। यह नाटक 'महाभारत' (दे०) की एक प्रसिद्ध घटना पर आधृत है। दुःशासन के अपवित्र हाथों से द्रौपदी की वेणी जिस समय खुल गई उसी समय द्रौपदी ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन और दुःशासन की मृत्यु के बाद ही वह वेणी बाँधेगी। इसी घटना के आधार पर इस नाटक का नाम पड़ा। यह वीररस-प्रधान नाटक है। इसमें शास्त्रीय गुणों का अच्छा परिपाक हुआ है। इसके उद्धरण नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में शास्त्रीय नियमों के दृष्टांत के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। 'वेणीसंहार' के संवाद पात्रानुकूल तथा बड़े सबल हैं। इसकी भाषा बड़ी सप्राण एवं ओजगुण से युक्त है। अपनी एक ही कृति के आधार पर ये चोटी के नाटककारों की पंक्ति में आ गये हैं।

भट्ट, प्रकाश *(कश्० ले०)* [समय—अनुमानतः पंद्रहवीं शती के प्रथम तीन चरण]

यद्यपि इनका जन्म-काल और मृत्यु-काल अज्ञात है किंतु अंतर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह पंद्रहवीं शती में जैनुल्-आबिदीन 'बड़शाह' (1420-1472 ई०) के समकालीन रहे होंगे। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि इनका जन्म 1408 ई० के आसपास रहा होगा और मृत्यु 70-75 वर्ष की आयु में हुई होगी। यह संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और फ़ारसी का भी इन्हें ज्ञान था। इनको 'भट्ट-अवतार' भी कहा जाता था क्योंकि यह शिव तथा राम की भक्ति में इतने तल्लीन हो गये थे कि इनकी रचनाएँ भजन और लीला के रूप में जगह-जगह गूँजने लगी थीं; और भक्तजन इन्हें अवतार कहते थे। इनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक है और इन्होंने संस्कृतनिष्ठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया है। इनकी शैली प्राचीन होते हुए भी व्यंजनापूर्ण है। ये कश्मीरी साहित्य के प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ 'रामावतारचरित', 'लवकुशचरित' और 'शिवलग्न' के रचयिता हैं। इनके उत्तराधिकारी कवियों ने इनकी शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न भी किया किंतु सफल नहीं हो पाये।

भट्ट, बालकृष्ण *(हिं० ले०)* [जन्म—1844 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

इलाहाबाद के एक व्यापारी घराने में जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेने पर भी साहित्य के प्रति इनका अत्यधिक अनुराग था। इसी के फलस्वरूप इन्हें अपना संपन्न पैतृक घर छोड़ कर आजीवन आर्थिक दुश्चिंताओं का सामना करना पड़ा था। यद्यपि इन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि विभिन्न विधाओं में लेखन-कार्य किया है, किंतु इनका मुख्य प्रदेय निबंध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में है। इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि सभी विषयों पर एक हज़ार से अधिक निबंध लिखे हैं तथा आवश्यकतानुरूप भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक आदि विविध शैलियों का प्रयोग किया है। इनकी भाषा भावाभिव्यंजना में पूर्णतः समर्थ, सरल और मुहावरेदार है। 'भट्ट निबंधावली' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में इनकी देन 'हिंदी प्रदीप' के रूप में है जिसके माध्यम से इन्होंने तेंतीस वर्षों तक निर्भीक भाव से न केवल हिंदी के प्रचार-प्रसार में योग दिया था अपितु राष्ट्रीय चेतना को भी गति एवं शक्ति प्रदान की थी।

भट्ट, विश्वनाथ *(गु० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

विश्वनाथ मगनलाल भट्ट का गुजराती साहित्य के विचक्षण आलोचकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'साहित्यसमीक्षा', 'विवेचनमुकुर', 'निकषरेखा' तथा 'पूजा और परीक्षा' इनके विवेचनात्मक लेखों के संग्रह हैं। हडसन के 'इंट्रोडक्शन टु स्टडी ऑफ़ लिट्रेचर' के आधार पर इन्होंने 'साहित्यनो स्वाध्याय' नामक ग्रंथ तैयार किया। इनके द्वारा लिखित 'वीर नर्मद' सुंदर शैली में लिखा गया प्रामाणिक चरित्र है। 'विवेचन-शास्त्र की कला', 'साहित्यमां अपहरण' और 'कूपमंडूकता' आदि लेखों के अतिरिक्त कवि दलपतराम (दे०), मेघाणी (दे०), कहानीकार रमणलाल (दे०) आदि कृतिकारों की पर्यालोचना, 'पंडितयुगना महाकाव्य'-विषयक चर्चा, आलोचक विश्वनाथ की क्षमता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। 'पारिभाषिक कोश', 'नर्मदनुं मंदिर' (दो भाग), 'निबंधमाला', 'गद्यनवनीत' इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं। इन्होंने 'प्रेमनो दंभ', 'लग्नसुख', 'स्त्री अने पुरुष', 'नवो अवतार' (तीन भाग), 'पतन अने प्रायश्चित' तथा 'कथावलि' भाग (1-2) नामक अनुवाद भी किए हैं। अतिशय विस्तार और पुनरुक्ति दोष को यदि उपेक्ष्य मान लें तो यह निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि सरलता, विशदता, सर्वग्राहिता और तटस्थता के लिए विश्वनाथ भट्ट गुजराती आलोचना के क्षेत्र में सदा स्मरणीय रहेंगे।

भट्ट, शंकर *(क० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये कन्नड के कवि नाटककार और कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। गुजरात विद्यापीठ से मैट्रिक और मद्रास विश्वविद्यालय से विद्वान की उपाधि प्राप्त होने के बाद मंगलूर के महिला कालेज में ये कन्नड प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए थे। 1953 ई० तक मंगलूर से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'राष्ट्रबंधु' के संपादक रहे। 'राष्ट्रमत' के संपादक के रूप में भी इन्होंने सेवा की है। इन्हें कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त हुआ है। इनकी कविताओं के संग्रह हैं—'काणिके' (उपहार), 'गांधी उपदेश', 'गुरु-दक्षिणे', 'घोषयात्रे', 'नल्मे' (प्रीति), 'वस्त्रापहरण' और 'हण्णु कायि' (फल)। इनके कथा-संग्रह हैं—'गाज़िन बले मतु हतर कथेगलु' (कांचका वलय और अन्य कहानियाँ), 'देवतामनुष्य', 'धूमकेतु' तथा 'हिंदिन कथेगुलु' (पिछली कहानियाँ)। इनके नाटकों के नाम ये हैं—'उषा', 'यज्ञकुंड' और 'हिडिम्बे'। ये अच्छे गद्यलेखक भी हैं। इनकी कविताओं में सौंदर्य और प्रेम की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

भट्टाचार्य, कमलाकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

जन्मस्थान—तेजपुर।

इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला में हुई थी। गौहाटी कालेजिएट हाई स्कूल से इन्होंने ऐंट्रेंस तक शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने कुछ दिनों तक हाथी का व्यवसाय किया था। 1924 ई० में कलकत्ता से इन्होंने 'आसाम-हितैषी' का संपादन किया था। 1922 ई० में ये असम साहित्य-सभा (जोरहाट) के संपादक हुए थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'चितानल' (दे०) प्रथम भाग (1890), द्वितीय भाग (1922), 'चितातरंग' (1933); **निबंध** : 'कः पंथाः' (दे०) (1934)।

असमीया-साहित्य की सभी धाराओं से इनका परिचय रहा है। इनकी कविताओं में स्वदेश-प्रेम और अतीत के गौरव का वर्णन है। ओजस्वी कविताओं के रचयिता के नाते इन्हें 'अग्नि ऋषि कमलाकांत' के नाम से पुकारा जाता है।

इनके निबंध भी जोशीले हैं। 'कः पंथाः' ऐसे ही निबंधों का संकलन है। इस संग्रह में देश-प्रेम, सभ्यता और संस्कृति पर गंभीर निबंध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्टाचार्य जी के कई ग्रंथ अप्रकाशित हैं। 'अष्टावक्रर आत्मजीवनी' के कुछ अंश 'बाँही' पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। इनमें नास्तिकवाद का खंडन है। 'गुटि दियेक चिंतार ढौ' के निबंधों में ब्रह्मसमाजी विचारधारा का परिचय मिलता है।

इन्होंने ही असमीया-साहित्य में अपनी कविताओं के माध्यम से देशभक्ति का तूर्यनाद किया था।

भट्टाचार्य, बिजन *(बँ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

बँगला में नवनाट्य-आंदोलन के सूत्रधारों में बिजन भट्टाचार्य का उल्लेखनीय स्थान है। इनके प्रथम नाटक 'जबानबंदी' में नव्यधारा का प्रथम सुस्पष्ट परिचय मिलता है। इनकी प्रतिभा का सार्थक निदर्शन इनके नाटक 'नबान्न' (1944 ई०) में मिलता है। अगस्त आंदोलन, बाढ़ तथा महामारी की पटभूमिका में रचित नाटक का दृष्टिकोण मार्क्सवादी है। इसमें बंगाल के दुःखी कृषकों का जीवन प्रतिफलित हुआ है। 'नबान्न' नाटक को इतनी ख्याति मिली कि उस दशक के बंगाल नाट्य-युग का नाम नबान्न-युग ही पड़ गया। 'नबान्न' ने जनमानस में एक नवीन नाट्य-बोध की सचेतनता जगाई थी। भारतवर्ष में 'नबान्न' से ही गणनाट्य संघ की दृढ़ भित्ति की स्थापना हुई थी।

'नबान्न' के उपरांत बिजन बाबू के 'कलंक', 'मराचाँद' (1946) नामक नाटक भी प्रकाशित हुए। 'मराचाँद' इनका प्रथम राजनीतिहीन नाटक था। लेखक के जीवन की सुख-दुःख-वेदना के करुण-मधुर रूप को इस नाटक में प्रकट किया गया है। 1960 ई० में इनका नाटक 'गोत्रांतर' प्रकाशित हुआ था। पूर्वबंगवासी विस्थापितों के भाग्यविपर्यय की कहानी को लेकर इस नाटक की रचना हुई है। इसके उपरांत इन्होंने दो और नाटक लिखे थे—'अवबोध' तथा 'जीयन-कन्या'। 'जीयन-कन्या' गीतिनाट्य है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित होने के कारण लेखक ने समग्र जनता को ही अपने नाटक में नायक का स्थान देकर उनके दुःख-सुख की कहानी को सफल रसात्मक रूप प्रदान किया है।

बिधायक, भट्टाचार्य *(बँ० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

अति-आधुनिक बँगला नाट्यकारों में सामाजिक नाटकों की रचना कर ख्याति प्राप्त करने वालों में बिधायक भट्टाचार्य का उल्लेखनीय स्थान है। इनके 'मेघमुक्ति' (1938), 'माटिर घर' (1939), 'बिश बछर आगे', 'माला राय', 'रक्तेर डाक' (1941), 'तुमि आर आमि' (1942), 'तेरशो पंचाश' (1946), 'का तव कांता' (1953), 'क्षुधा' (1957), 'कान्ना हासिर पाला' (1960) सामाजिक नाटक हैं। इन नाटकों में सर्वाधिक जनप्रियता 'क्षुधा' नाटक ने प्राप्त की थी। 'क्षुधा' की निर्मम आग से झुलसते हुए बंगाल के निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के कतिपय लोगों की मर्मांतक कहानी इसमें लिपिबद्ध है। यह चित्र-प्रधान रचना है। इसमें जीवन की समस्याएँ हैं परंतु कोई समाधान नहीं दिया गया है।

इन्होंने अपने नाटकों में एक ओर व्यंग्य तो दूसरी ओर रहस्य-रोमांच का आश्रय लिया है और इस प्रकार से नाटक में नये आस्वाद का परिचय दिया है। 'बिश बछर आगे' नाटक में 'फ्लैश बैक' नाट्य-पद्धति का प्रयोग कर इन्होंने बँगला रंगमंच में एक नये आंगिक का प्रवर्तन किया है।

नाट्यकार होने के साथ-साथ ये उत्तम अभिनेता भी हैं और आजकल व्यावसायिक रंगमंच से जुड़े हुए हैं। आधुनिकतम नाट्यरचनाओं के प्रत्येक प्रयोग के साथ ये भली भाँति परिचित हैं। इनके संलाप सहज, सरल एवं सरस हैं, इसीलिए नाट्य-प्रेमियों में ये 'मधु-संलापी' के नाम से परिचित हैं।

भट्टाचार्य, वीरेंद्रकुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

1953 ई० में इसमें गौहाटी विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इन्होंने अनेक पत्रों का संपादन किया था। 'रामधेनु' का संपादन करते समय नये कवियों का मंडल तैयार किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास :** 'राजपथेरिङि याइ' (1956), 'इयारुइंगम' (दे०) (1960), 'आइ', 'शतघ्नी'; **कहानी-संग्रह :** 'कलं आजि ओ बय' (दे०) (1962), 'सात सरी'। 'राजपथेरिङि याइ' प्रथम उपन्यास है; यह 1942 ई० के आंदोलन पर आधारित है। 'इयारुइंगम' नगा-समस्या पर लिखा गया है, इस पर इन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था। 'आइ' उपन्यास विधवा ब्राह्मणी पर लिखा गया है। 'शतघ्नी' उपन्यास चीनी आक्रमण के संदर्भ में रचित हुआ है। इनके तीन उपन्यासों का हिंदी-अनुवाद हो चुका है। इन्होंने कथा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक जीवन की समस्याएँ ली हैं। इनकी विशेषताएँ हैं: उदार दृष्टिकोण, मानवतावाद, भावों की अतिशयता का वर्णन और संयत अभिव्यक्ति।

ये असमीया भाषा के आधुनिक सशक्त कथाकार हैं।

भट्टाचार्य, सुकांत *(बँ० ले०)* [जन्म—1926 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

अति आधुनिक कविता के क्षेत्र में सुकांत भट्टाचार्य एक विस्मय हैं। धूमकेतु की तरह इनका आविर्भाव एवं तिरोभाव मन को चौंका देने वाला है। अकाल मृत्यु के कारण इस नितांत तरुण कवि की प्रतिभा अंकुर में ही विनष्ट हो गई थी। कवि के जीवन में कोई काव्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ था। मृत्युपरांत 'छाड़ पत्र', 'पूर्वामास', 'घुम नेई', 'मिठे कड़ा' आदि काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। 'अभिमान' में दो स्वल्प परिधि के काव्य-नाटक संकलित हैं।

इन्होंने अपनी कविता में बौद्धिकता का संपूर्ण रूप से परिहार किया है। अपने व्यक्तिगत जीवन में दारिद्र्य की ज्वाला का इन्होंने अनुभव किया था इसीलिए इनकी कविता में शोषित जनसाधारण की क्षुधा की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। इनकी 'चिल', 'सिंड़ि', 'देशलाइ काठि', आदि कविताएँ प्रतीकात्मक हैं। इनकी कविता में प्रथम श्रेणी के लिपिकुशल कवि-मानस का परिचय मिलता है। इन कविताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक प्रचार के घटनावर्त में फँस जाने पर यह किशोर कवि अपनी जन्मलब्ध कविप्रकृति के पूर्ण ऐश्वर्य को प्रकट नहीं कर पाया है।

भट्टिकाव्य *(सं० कृ०)* [समय—पाँचवीं शती ई०]

'भट्टिकाव्य' के प्रणेता भट्टि स्वामी वलभी के राजा धरसेन के सभापंडित थे। इनका समय 470 ई० से लेकर 500 ई० तक माना जाता है।

भट्टि स्वामी का 20 सर्गों का यह महाकाव्य इन्हीं के नाम पर 'भट्टिकाव्य' कहलाया। इसका दूसरा नाम 'रावणवध' भी है। इसके 3624 पद्यों में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र के जीवन-चरित्र का अत्यंत सरल ढंग से वर्णन किया गया है।

इस महाकाव्य की विशेषता यह है कि इसमें मनोरंजन के साथ-साथ पाठकों को संस्कृत-व्याकरण का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

यह महाकाव्य व्याकरण जानने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए बड़ा उपादेय है। व्याकरण जानने वालों के लिए यह ग्रंथ दीपक की तरह अन्य शब्दों को भी प्रकाशित कर देता है। व्याकरण-शिक्षण के साथ ही इस काव्य में महाकाव्यत्व के सभी गुण विद्यमान हैं। इसके प्रकृति-वर्णन इतने हृदयग्राही हैं कि माघ (दे०) के प्रभात-वर्णन पर इनका प्रभाव स्पष्टरूपेण झलकता है।

इस शैली का परवर्ती कवियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसको आदर्श मानकर इसी प्रकार के कुछ अन्य काव्यों की रचना हुई। इनमें भट्ट भीम का 'रावणार्जुनीय' प्रसिद्ध है।

भट्टोजिदीक्षित *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600-1650 ई०]

ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था। रंगोजिभट्ट इनके छोटे भाई थे। इनके द्वारा रचित पाणिनि (दे०) के लिंगानुशासन पर दो वृत्तियाँ मिलती हैं। एक—'शब्दकौस्तुभांतर्गत', और दूसरी—'सिद्धांतकौमुदी' (दे०) के अंत में। इनमें 'शब्दकौस्तुभांतर्गत' वृत्ति अपेक्षाकृत विस्तृत है। इसके अतिरिक्त, 'शब्दकौस्तुभ', 'सिद्धांतकौमुदी' एवं 'प्रौढमनोरमा' इनके प्रधान एवं प्रख्यात ग्रंथ हैं।

पाणिनि के उत्तरवर्ती वैयाकरणों में भट्टोजिदीक्षित का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'सिद्धांतकौमुदी' के अंतर्गत इन्होंने व्याकरणशास्त्र के सिद्धांतों की प्रक्रिया एवं प्रयोग की विस्तृत विवेचना की है। 'प्रौढमनोरमा' के अंतर्गत 'सिद्धांतकौमुदी' की फिट्सूत्रवृत्ति की व्याख्या भी शास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत उपादेय है। 'शब्दकौस्तुभ' व्याकरणशास्त्र के विद्वानों का निकष-ग्रंथ है। इस प्रकार प्रक्रिया एवं सूक्ष्म शास्त्रीयता की दृष्टि से व्याकरणशास्त्र को इनकी महती देन है।

भणकार *(गु० कृ०)*

'भणकार' आधुनिक गुजराती साहित्य के भीष्मपितामह स्वर्गीय बलवंतराय ठाकोर (दे० ठाकोर) (1869-1950 ई०) का काव्य-संग्रह है। इसमें उनकी 1888 ई० से 1950 ई० तक की रचनाएँ संगृहीत हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पंडित युग' में जन्मे श्री ठाकोर के इस संग्रह का जब 1917 ई० में प्रथम संस्करण निकला था तो सहृदय पाठक को भावी गुजराती कविता की अनेकानेक सुखद संभावनाओं की प्रतीति हुई थी। 1951 ई० में इसका संशोधित एवं संवर्धित संस्करण निकला।

आलोच्य संस्करण सात 'गुच्छों' (खंडों) में विभक्त है जिसमें प्रत्येक गुच्छ का निजी आकर्षण है। प्रथम गुच्छ में कवि और काव्य-विषयक कविताएँ हैं जिनमें 'भणकार' उत्कृष्ट है। दूसरे गुच्छ में राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत कविताओं के साथ 'आज़ादी दिवस', 'गांधी की समाधि' जैसे सामयिक काव्यों के साथ अहमदाबाद, पूना और बंबई पर भी कविताएँ हैं। संग्रह का 'तृतीय गुच्छ' आंतरिक संबंधों की मंजूषा है। 'चतुर्थ गुच्छ' की 'जूनुं पियेर-घर', 'रेण' तथा 'एक तोडेली डाल' आदि कविताएँ कवि की भिन्न-भिन्न भाव-परंपराओं की द्योतक हैं। पंचम गुच्छ की कविताएँ कथा-काव्य हैं। इसी प्रकार छठे तथा सातवें गुच्छ का भी निजी वैशिष्ट्य है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'भणकार' के आलोच्य संस्करण की विषय-वस्तु सुनिश्चित है। इसकी रचनाओं में विषय-वस्तु तथा अलंकार-योजना, छंद और प्रतीक-विधान इत्यादि में सर्वत्र ताज़गी और आधुनिकता है। ओज तथा बलिष्ठता के गुणों से भरपूर इन कविताओं का अध्ययन इस बात को पुष्ट करता है कि बलवंतराय ठाकोर एक महान् कवि हैं। असाधारण अभ्यासशीलता, धर्म, संस्कृति, चिंतन, जगत् का विशाल तथा गहरा आलोचन तथा अभिव्यक्ति के अनेकानेक मौलिक प्रयोगों से समृद्ध उनकी कविता का प्रभाव आगामी पीढ़ियों पर गहरे और व्यापक रूप से पड़ा है।

भद्रंभद्र *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1900 ई०]

कृतिकार : रमणभाई नीलकंठ (1868-1928 ई०)। यह गुजराती साहित्य में पहला व्यंग्य-प्रधान उपन्यास है। इसमें समसामयिक साहित्य पर व्यंग्य है। उस युग में संस्कृत के प्रभाव के कारण साहित्य की भाषा अत्यंत कठिन और दुर्बोध हो गई थी। इस उपन्यास के नायक भद्रंभद्र एक संस्कृतमय गुजराती भाषा-लेखक हैं और उसके फलस्वरूप कैसी हास्यास्पद परिस्थिति निष्पन्न होती है—इसका निरूपण किया गया है। यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हो गया था कि उस युग में जो कोई संस्कृत-प्रचुर गुजराती बोलता था उसे 'भद्रंभद्र' नाम दिया जाता था। इस उपन्यास के सारे हास्य-प्रसंगों का उपादान एक ही पात्र 'भद्रंभद्र' है। सुधारवादी होने के कारण जाति-भोजन, प्रेतभोजन, रीति-रिवाज, इत्यादि पर व्यंग्य करके लेखक ने सुधारवाद का प्रचार किया है।

भद्रंभद्र *(गु० पा०)*

रमणभाई नीलकंठ के हास्य-प्रधान उपन्यास का भद्रंभद्र(दे०) नायक है। वह कट्टर सनातनी है—संस्कृत-प्रचुर गुजराती बोलता है और एक जड़ व्यक्ति की भाँति मूर्खतापूर्ण व्यवहार करता है। वह किसी को छूता नहीं; धार्मिक कार्यों में लगा रहता है, कहीं किसी की बात नहीं सुनता है—बस, अपनी प्रशस्ति करता रहता है। आज भी जो व्यक्ति अपने चारों ओर की हुई दीवारों में बंद रहता है और संस्कृतमय गुजराती बोलता है, उसे मज़ाक में भद्रंभद्र कहा जाता है।

भद्रबाहु *(प्रा० ले०)*

जैनागम (दे० जैन-आगम) साहित्य के सर्वोत्कृष्ट लेखक भद्रबाहु श्रुतकेवली के रूप में स्मरण किए जाते हैं। कहीं-कहीं इन्हें मुनि कहा गया है और इनकी प्रशंसा तथा स्तुति में कविताएँ बनाई गई हैं। इनका समय चंद्रगुप्त मौर्य का राज्य-काल माना जाता है। महावीर के बाद ये छठ थेर हैं और इनकी मृत्यु महावीर-निर्वाण के 170 वर्ष बाद हुई थी। ये ही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्हें महावीर-वाणी तथा 14 पूर्वों का ज्ञान था। एक बार अकाल पड़ने पर जब ये पाटलिपुत्र छोड़कर कर्नाटक चले गये तब आगम-साहित्य और पूर्वों के लुप्त हो जाने की आशंका से स्थूलभद्र ने संगीति का आयोजन किया और आगम-साहित्य को लिपिबद्ध कराया। ये लोग श्वेत वस्त्र भी धारणा करने लगे थे। अतः यहीं से श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदायों का आविर्भाव हुआ था। एक बार जब ये नेपाल में विद्यमान थे तो जैन संन्यासियों का एक दल इनसे पूर्वों का अध्ययन करने वहाँ पहुँचा। किंतु केवल स्थूलभद्र ही टिक सके, अन्य लोग बहाने बनाकर लौट आये। स्थूलभद्र ने 14 पूर्वों का इनसे अध्ययन किया जिसमें अंतिम चार पूर्व गुप्त रखे गये। जैन-आगमों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग इन्हीं का लिखा हुआ है। 'आयार-दसाओ' नामक छेदसूत्र (दे०) इन्हीं का लिखा हुआ बतलाया जाता है जिसमें आठवाँ अध्याय कल्पसूत्र तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित रूप से इन्हीं का लिखा हुआ है। पाँचवाँ छेदसूत्र बृहत्कल्प भी इन्हीं का लिखा बतलाया जाता है जिसमें सदाचारों के अतिक्रमण का वर्णन है। दंडविधानपरक 'वावहार' भी इन्हीं का लिखा हुआ कहा जाता है। 'पंच-कल्प चूर्णी' में लिखा है कि 'निशीथ का रहस्यात्मक साहित्य भी इन्हीं की रचना है। इस प्रकार आगम-साहित्य का अधिकांश महत्वपूर्ण भाग इन्हीं की रचना है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कतिपय निर्युक्तियाँ भी लिखी हैं जिनमें 'पिंडनिज्जुत्ति', 'ओहानिज्जुत्ति' इतनी महत्त्वपूर्ण बन पड़ीं कि उन्हें आगमों में सम्मिलित कर लिया गया। परंपरा से ये 10 ग्रंथों पर निर्युक्तियों के लेखक माने जाते हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प, दशाश्रुतस्कंध, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित। हो सकता है कि निर्युक्तिकार भद्रबाहु (दे०) दूसरे (ई० पू० प्रथम शती के) भद्रबाहु हों। इनके नाम पर संसत्तनिज्जुत्ति तथा कतिपय स्फुट गाथाएँ भी प्रसिद्ध हैं।

भद्रायु भाटकर *(म० पा०)*

यह प्र० के० अत्रे (दे०) के प्रसिद्ध प्रहसन 'साष्टांग नमस्कार' का पात्र है। काव्य-प्रतिभा के अभाव में भी यह हठात् कवि होने का दुराग्रह करता है। इसका विश्वास है कि कवि स्वभावतः कोमल होते हैं, इसी से यह अत्यल्प आहार करता है। शरीर को सुकुमार बनाने के नानाविध उपाय करता है। समय-कुसमय काव्य की उद्धरणी अलापता रहता है। नायिका के सहोदर चंदू के पेड़ से गिर जाने पर उपचार की अपेक्षा यह कविता करने बैठ जाता है परंतु इसकी कविता बौद्धिक प्राणायाम मात्र है, लक्ष्यहीन जीवन के थपेड़े खाता हुआ यह 'कवि नियम' के अनुसार 35 वर्षों तक मृत्यु की अनवरत प्रतीक्षा करने के उपरांत 'माडकर' के तालाब में डूबकर आत्मघात की अपनी योजना को पूरी करना चाहता है। अपने अतिरिक्त क्रियाकलापों के माध्यम से यह हास्य-स्थिति का निर्माण करता है। एक समय था जब महाराष्ट्र में साष्टांग नमस्कार, ज्योतिष एवं काव्य-प्रेम सनक की सीमा तक पहुँच गया था। इसके चरित्र-निरूपण द्वारा इसी को रोकने का कलात्मक प्रयास कहा जा सकता है।

भद्रार्ज्जुन *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1852 ई०]

बँगला नाटक-साहित्य में मौलिक नाटकों की परंपरा का सूत्रपात करने का श्रेय ताराचरण शिकदार के 'भद्रार्ज्जुन' को है। प्रस्तुत नाटक की मूल घटना है अर्जुन द्वारा सुभद्रा का अपहरण। यहाँ नाटककार ने पौराणिक प्रसंग का यथावत् समापन न करके उसमें परिवर्तन किया है। कौरवों के अपमान तथा बलदेव के क्षोभ से सजीवता आ गई है। परंतु नाटक की वास्तविक उपलब्धि है पौराणिक प्रसंग के परिप्रेक्ष्य में युग का चित्रण। विवाह की परंपराएँ, विवाह योग्य कन्या की चिंता तथा स्त्री-चरित्र का विवेचन तत्कालीन बँगला-समाज के संदर्भ में हुआ है।

पश्चिमी नाट्य-पद्धति का अधिकाधिक अनुसरण करते हुए ताराचरण शिकदार ने कई नवीन प्रयोग किए हैं। कथा अंकों-दृश्यों में बँटी है। तथ्य के लिए संयोग-स्थल लिया गया है। पश्चिमी शैली पर प्रस्तावना का प्रयोग हुआ है। संवाद गद्य-पद्य में हैं। गद्य की भाषा सहज-सरल है। गीतों का प्रयोग अधिक हुआ है। इसी संदर्भ में इस नाटक का योगदान उल्लेखनीय है।

भद्रेश्वर दीक्षित *(म० पा०)*

भद्रेश्वर गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के 'संगीत शारदा' नाटक का पात्र है जो विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। वयोवृद्ध भुजंगनाथ की विवाहेच्छा की पूर्ति कर यह अपनी धनेच्छा पूरी करने का असफल प्रयास करता है। वृद्ध भुजंगनाथ को विवाह का आश्वासन देकर यह उससे पर्याप्त मात्रा में धन ऐंठता है। इसी से यह विवाहेच्छुक भुजंगनाथ को कायाकल्प के कृत्रिम साधनों की ओर प्रेरित करता है। उसके श्वेत केशों को खिजाब लगाकर काला करने, नकली दाँत लगवाने तथा शारीरिक शक्ति बढ़ाने हेतु अच्छे शक्तिवर्द्धक औषध आदि लेने का परामर्श देकर उसे छद्म नाम से प्रसिद्ध करता है, किंतु लोभी ब्राह्मण कांचनभट्ट को भुजंगनाथ के ऐश्वर्य से प्रभावित कर शारदा का विवाह करने का अनुमोदन करता है। शारदा-भुजंगनाथ के इस अनमेल-विवाह का विरोध कोदंड नामक नवयुवक करता है। कोदंड को अपने मार्ग में बाधक समझ कर भद्रेश्वर दीक्षित उस पर चोरी का अभियोग लगाकर उसे कैद करवा देता है। अपने को निष्कंटक जानकर यह शारदा-भुजंगनाथ का विवाह यथाशीघ्र संपन्न कराने का यत्न करता है, परंतु विवाह-वेदी पर बैठे भुजंगनाथ-शारदा के समक्ष सहसा पुलिस सहित कोदंड उपस्थित होकर भद्रेश्वर दीक्षित के झूठ का भंडाफोड़ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित व्यक्तियों से सगोत्री विवाह का विरोध करने का अनुरोध करता है। भद्रेश्वर दीक्षित द्वारा कोदंड पर आभूषण-चोरी के रहस्य का उद्घाटन स्वयं उसके नौकर द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। पुलिस द्वारा भद्रेश्वर एवं भुजंगनाथ को अपने साथ पकड़ ले जाने से भद्रेश्वर प्रकरण की समाप्ति होती है।

भुजंगनाथ का चरित्र-विकास मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। लोभी प्रवृत्ति के कारण यह उचित-अनुचित के विवेक को भूल अपनी स्वार्थ-सिद्धि का यत्न करता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही यह नाना प्रकार के छल-कपट करता हुग्रा कथा-विकास में सहायक सिद्ध हुआ है। नाटकीय संघर्ष एवं औत्सुक्य के सतत विकास में सहायक इस पात्र के माध्यम से नाटककार ने वर्ग-विशेष के चरित्र को मुखरित किया है। निजी स्वार्थ में उचित-अनुचित का विवेक खो बैठने वाले व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिनिधित्व भद्रेश्वर दीक्षित के चरित्र में हुआ है।

भरत (*सं० ले०*) [समय—300 ई० पू० से 300 ई० के बीच]

इनको भरतमुनि भी कहते हैं। इनका समय अनिश्चित है। इनको ऐतिहासिक व्यक्ति मानने में भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। कुछ लोग भरत जातीय नाम मानते हैं। प्राचीन भारत में जो जाति नाटक खेलने का व्यवसाय करती थी उसे भरत कहते थे।

भरतमुनि के नाम से 'नाट्यशास्त्र' (दे०) नामक ग्रंथ मिलता है जो नाट्य एवं काव्य तथा नृत्य, संगीत, चित्र एवं वास्तुकलाओं का एक महनीय विश्वकोश है।

'नाट्यशास्त्र' की साक्षी के अनुसार भरतमुनि अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ रहते थे। वे समय-समय पर दिव्यलोक में भी आते रहते थे। ब्रह्मा के कहनें पर ही इन्होंने उनके द्वारा प्रणीत नाट्यवेद का ग्रभिनवात्मक प्रयोग किया था।

इनके अतिरिक्त आदिभरत ग्रौर वृद्धभरत के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' का मूल सूत्रात्मक था जिसके कर्त्ता आदिभरत रहे होंगे। ग्रनंतर उस पर कारिका वृद्धभरत ने लिखी जो 1200 श्लोकों में होने से 'द्वादशसाहस्रीसंहिता' कहलाती। वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' उसी का संक्षेप है जो लगभग 6000 श्लोकों में होने से 'षट्साहस्रीसंहिता' कहलाता है। इसके कर्त्ता ही मुनि भरत हैं। कपिल (दे०), कणाद (दे०) की तरह एक शास्त्र के प्रवर्तक होने से ही इनको मुनि कहते हैं।

भरत मुनीचें नाट्यशास्त्र (*म० कृ०*)

इसका रचना-काल 1928 ई० है और 'लेखिका' हैं कु० गोदावरी केतलर। ग्रंथ की दूसरी आवृत्ति 1963 ई० में प्रकाशित हुई। भरत (दे०) मुनि के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) पर लिखा गया यह एक शोध-प्रबंध है। इसमें कुल 11 प्रकरण हैं: (1) नाट्यकला व नाट्यशास्त्र, (2) भारतीय नाट्य-गृह, (3) नृत्त, (4) नाट्यं भावानुकीर्तनम्, (5) रस, (6) ग्रभिनय, (7) नाट्यकाव्य, (8) वस्तु, नाट्य-पात्र, (10) दशरूप, (11) पूर्वरंग। इस ग्रंथ के अनेक प्रकरणों में भरत-परवर्ती ग्राचार्यों की मान्यताओं का भी उल्लेख किया गया है और मराठी-साहित्य से भी उदाहरण प्रस्तुत किए गये हैं। विद्वानों ने इस ग्रंथ की गुणवत्ता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

भरतवाक्य नटवाक्य (*सं० पारि०*)

नाटक के अंत में नाटककार द्वारा प्रस्तुत श्लोक जिसे नाटक के सभी पात्र मिलकर बोलते-गाते हैं। इसमें प्रायः प्राणिमात्र के, विशेषत: दर्शकों के, कल्याण की कामना की जाती है।

भरतेश (*कृ० पा०*)

महाकवि रत्नाकर (दे० रत्नाकरवर्णि) के 'भरतेशवैभव' (दे०) में भरतेश के उदात्त चरित्र का चित्रण है। वह काव्य का नायक है, कवि के आदर्श मानव का दिव्य रूप है। भारतीय साहित्य में श्रीराम, जनक जैसे आदर्श पात्रों के चित्रण की कमी नहीं है। भागवत में जड-भरत जसे पात्र का चित्रण भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। परंतु रत्नाकर ने जैन तत्त्वों के समन्वय के साथ भर-तेश के आदर्श मानव-रूप का जो वर्णन किया है, वह उन की समन्वय-साधना का ही प्रमाण है।

रत्नाकर के भरतेश राजयोगी, जिनयोगी, भोगी-त्यागी और रसिक-विरक्त हैं। उनके वर्णन में कवि की रसज्ञता, कल्पना-विलास और तप:साधना की अनुभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट होती है। काव्य के 'भोगविषय', 'दिग्विजय', 'योग-विजय', 'अर्ककीर्तिविजय' तथा 'मोक्षविजय' नाम के पाँच भागों में, जिसको कवि ने 'पंचकल्याण' कहा है, भरतेश के चरित का वर्णन है। इन्हें पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरतेश में लौकिक एवं अलौकिक गुणों का समावेश किया गया है। कमलपत्र पर पानी के सदृश रहने वाले भरतेश भोगी होते हुए भी योगी हैं। उनके प्रत्येक कार्य का वर्णन कर कवि ने उनकी उदात्तता का निरूपण किया है। वह राजा हैं, पति हैं, पुत्र हैं, भाई हैं, मित्र हैं, भक्त हैं। उनके व्यक्तित्व के इन रूपों का काव्य में अच्छा चित्रण हुआ है। उनके सौंदर्य और क्षात्रतेज का वर्णन काव्य के प्रारंभिक भाग में है। 'भोग में रहकर योग करते हुए तुम्हारे समान भवमुक्त होने वाले कौन हैं?' राजदरबार के कवि की यह स्तुति स्तुति नहीं है, उसके विषय में सर्वथा सत्य है। अपने भाई बाहुबलि (दे०) को वह अपनी मृदु वाणी से ही परास्त करते हैं। उनके चित्रण में कर्म-योगी के आदर्श रूप की ही प्रतिष्ठा नहीं की गई है, बल्कि स्थितप्रज्ञ के रूप की सहज सुंदर स्थिति भी है।

भरतेशवैभव *(क० कृ०)*

कन्नड के जैन कवि रत्नाकर (दे० रत्नाकर-वर्णि) की प्रतिनिध कृति है 'भरतेशवैभव'। यह एक महाकाव्य है जो जिनसेन के संस्कृत 'पूर्वपुराण', पंप के 'आदिपुराण' (दे०) तथा चावुंडराय के 'चावुंडराय पुराण' (दे०) आदि में वर्णित प्रथम तीर्थंकर के पुत्र भरत के जीवन पर लिखा गया है। मूल के अनुसार अपने अधिकार एवं विजयोल्लास से स्फीत भरत अंत में अपने ही भाई बाहुबलि से पराजित होते हैं। किंतु यहाँ लेखक ने इन्हीं भरत को अपना काव्य-नायक बनाया है और उन्हें युद्ध में विजयी दिखाया है। उन्हें श्रीकृष्ण की भाँति योग-भोग-समन्वय-साधक रूप में चित्रित किया गया है। यह काव्य सांगत्य छंद में है। करीब दस हज़ार छंदों वाले इस काव्य में अस्सी संधियाँ हैं। कवि का दावा है कि उसने इसे नौ मास में समाप्त किया।

नाम से ही प्रकट होता है कि इस काव्य का उद्देश्य भरतेश का वैभव दर्शाना है। भरत असीम राज्य के प्रभु थे, असीम सुख में वह डूबे थे। अंत में वही जिन-योगी बने। इस तरह जिनयोगी चक्रवर्ती के सम्यक् जीवन का, त्याग एवं भोग के समन्वय का उज्ज्वल चित्रण इसमें है। वास्तव में देखा जाये तो इसमें एक महाकाव्य के योग्य कथा-विस्तार नहीं है। भरतेश के गार्हस्थ्य जीवन का चित्र हमें कहीं भी नहीं मिलता। उसका ब्योरेवार वर्णन यहाँ है। भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, अर्ककीर्तिविजय, मोक्षविजय—इस प्रकार इस काव्य के पाँच भाग हैं। इनको कवि ने 'पंचकल्याण' की संज्ञा दी है।

'भरतेशवैभव' की महत्ता उसके दर्शन में है, नायक के चरित्र-चित्रण में है। भरतेश सौंदर्य-प्रेमी हैं, आदर्श-प्रेमी हैं, वीर हैं, धीरोदात्त हैं, धीरललित हैं, धीर प्रशांत हैं, रार्जाष हैं, 'जल में पदमपत्र' वाले आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं। इसी बात को संगीत, श्रृंगार आदि अनेक प्रसंगों द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है। इसका प्रधान रस श्रृंगार है। बीच-बीच में नखशिख, समुद्र-संगीत, रणप्रयाण नृत्य आदि वर्णन आते हैं। कवि ने वीतरागिता का ऐसा अद्‌भुत वर्णन प्रस्तुत किया है कि उसे कुछ लोगों ने 'अध्यात्मरस' की संज्ञा दी है। कवि की भाषा देशी है, छंद लोक-छंद हैं, उसमें कोमल एवं मसृण शैली की ही प्रधानता है।

'भरतेशवैभव' भरतेश का आत्म-वैभव ही नहीं, कवि का काव्य-वैभव भी है। रत्नाकर का भरतेश भारतीय साहित्य के लिए कन्नड की अपूर्व देन है।

भरतेश्वर-बाहुबली-रास *(अप०, गु० कृ०)* [रचना-काल—1184-85 ई०]

इस रास के रचयिता आचार्य शालिभद्र सूरि हैं। यह रास 203 छंदों में रचित है और 14 ठवणियों में विभक्त है। इस रास की कथावस्तु जैन-साहित्य की एक अति प्रचलित घटना है। यह कथा प्रायः सभी जैन-महा-पुराणों में मिलती है। गुजराती के प्राचीन 'रास' या 'रासा' काव्यों में यह एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

इस रास की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के भरत और बाहुबली आदि सौ पुत्र थे। ऋषभदेव ने जीवन के अंतिम भाग में सारा राज्य पुत्रों में बाँट दिया और तपस्या करने लगे। भरत के मन में चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने की इच्छा हुई। बाहुबली के अतिरिक्त सब भाइयों ने भरत की अधीनता स्वीकार कर ली। बाहुबली और भरत में राज्या-धिकार के लिए घोर युद्ध हुआ। अपने ज्येष्ठ भाई भरत पर प्रहार करते हुइ बाहुबली को सहसा आत्मग्लानि हुई कि राज्य के लोभ से मैं सत्पथ से विचलित हो रहा हूँ। उन्होंने संकल्प किया कि मैं उसी पर प्रहार करूँगा जिसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे बड़े भाई पर प्रहार करने के लिए प्रेरित किया। वह आत्म-शत्रुओं को पराजित करने के लिए तपस्या करने चले गये और अंत में उन्होंने कैवल्यपद प्राप्त किया।

यह वीररस-प्रधान रास है किंतु वीर रस का शांत रस में पर्यवसान हो जाता है। इसकी भाषा प्राचीन राजस्थानी एवं प्राचीन गुजराती से प्रभावित अपभ्रंश है। इस कृति में वस्तु, चउपई, रास, दोहा, त्रूटक आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। स्थान-स्थान पर सुंदर काव्यमय वर्णन भी दृष्टिगत होते हैं। इस कृति में अनेक उत्साहपूर्ण दर्पोक्तियों और सूक्तियों के प्रयोग से भाव और भाषा में सौंदर्य उत्पन्न किया गया है। इस रास में लोक-साहित्य की शकुन-अपशकुन परंपरा का निर्वाह भी कृतिकार ने सुंदर रूप से किया है।

तत्कालीन रासग्रंथों के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भरद्वाज, रावूरि *(ते० ले०)*

आजकल ये हैदराबाद के आकाशवाणी केंद्र में काम करते हैं। कारखाना, प्रेस आदि कई जगहों में नौकरी करते हुए जीवन में इन्होंने नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त किए। ग्रामीण जीवन, साधारण जनता की समस्याओं आदि से इनका घनिष्ठ परिचय है। रावूरि भरद्वाज मूलतः यथार्थवादी कहानीकार हैं। अपने समाज की स्त्रियों तथा पुरुषों की यथार्थ प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों का इन्होंने प्रभावशाली चित्रण किया है। 'मावूरु', 'चित्रगृह', 'पाकुडुराल्लु' आदि इनके उपन्यास हैं। पत्रिकाओं की ओर से आयोजित प्रतियोगिताओं में इनको तीन बार स्वर्ण पदक प्राप्त हुए हैं। इन्होंने बच्चों के लिए वैज्ञानिक विषयों पर भी कहानी के साँचे में ढालकर पुस्तकें लिखी हैं।

भरसा *(उ० कृ०)*

गोपाल छोटाराय(दे०)-कृत 'भरसा' आधुनिक उड़िया-नाट्य-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके कहानी-संभार, चरित्र-चित्रण, भाषा-सौष्ठव, हास्यरस का उच्छ्वास, संगीत एवं नृत्य की मूर्च्छना आदि तत्त्वों ने इसे एक उत्कृष्ट नाटक का सम्मान दिलाया है।

उत्कल के शिल्पी-जीवन की एक समस्या इसमें रूपायित है। इसकी कहानी सुगठित और चरित्र-चित्रण प्रांजल है। इसकी भाषा परिमार्जित एवं समुन्नत है। हास्यरस-नियोजन के लिए ऐसी शैली अपनाई गई है जिस में स्वतंत्र पात्र की अवतारणा के स्थान पर कथावस्तु में ही उसकी सृष्टि का प्रयत्न है। आधुनिक रुचि के अनुसार इस नाटक का आकार छोटा है।

सस्पेंस इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। यही दर्शक के मन में कौतूहल की सृष्टि करता है। नाटक के अंत तक नाटक की परिणति के विषय में दर्शक संदिग्ध बने रहते हैं। संशय, कौतूहल, आवेग का कलापूर्ण समुचित निर्वाह ही इसका सौंदर्य है।

भराली, देवानंद *(अ० ले०)* [जन्म—1883 ई०]

जन्मस्थान : शिवसागर। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। प्रकाशित रचनाएँ—'असमीया भाषार मौलिक बिचार' (भाषाविज्ञान) (1930), 'आदिपुराण' (दर्शन) (1935), 'श्री शंकर' (नाटक) (1945), 'भीमदर्प' (मेकबेथ का अनुवाद) (1916)।

इनकी ख्याति भाषाविज्ञान-विषयक प्रथम खोजपूर्ण ग्रंथ लिखने के कारण है।

भर्तृहरि *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—सातवीं शती के अंतर्गत]

पुष्पराज ने भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात बतलाया है। चीनी यात्री इत्सिंग ने भर्तृहरि को बौद्ध कहा है, परंतु यह असंगत है। भर्तृहरि वस्तुतः वैदिक मत का समर्थक था। उसने स्पष्ट लिखा है—'न चागयादृते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते' वाक्यपदीय ब्रह्मकांड: ।।46।। अतः इत्सिंग का यह कथन भी असमीचीन है कि भर्तृहरि ने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी। भर्तृहरि द्वारा रचित ग्रंथों में 'महाभाष्यदीपिका', 'वाक्यपदीय' (दे०) 'वाक्यपदीय' की स्वपेक्ष टीका, 'शतकत्रय' (नीति, श्रृंगार तथा वैराग्यशतक) 'मीमांसाभाष्य', 'वेदांत सूत्रवृत्ति' तथा 'शब्दधातु समीक्षा' प्रमुख हैं।

'वाक्यपदीय' के अंतर्गत भर्तृहरि ने शब्द-तत्त्व के संबंध में गंभीरता से विचार किया है। भर्तृहरि का दार्शनिक सिद्धांत शब्द ब्रह्मवाद है। (विशेष देखिए, 'वाक्यपदीय' की टिप्पणी) इनका दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'महाभाष्य दीपिका' है। 'दीपिका' में महाभाष्य (दे०) के गूढ़ातिगूढ़ सिद्धांतों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भर्तृहरि केवल व्याकरणशास्त्र के ही विपश्चित्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थे, अपितु वे वेदांत-दर्शन के भी उद्भट विद्वान थे। इसके अतिरिक्त 'शतकत्रय' की रचना भी भर्तृहरि की बहुज्ञता की ही सूचक है। भर्तृहरि की जिन 'वाक्यपदीय' आदि रचनाओं का विषय गंभीर है उनकी शैली परिष्कृत ही है। 'शतकत्रय' (दे० भर्तृहरिशतक) तो अत्यंत हृदय-ग्राही शैली में लिखा गया है।

भर्तृहरिशतक *(सं० कृ०)* [समय—छठी शती ई०]

भर्तृहरि (दे०) संस्कृत-गीतिकाव्य एवं नीति-काव्य में अपने तीन शतकों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके तीन शतक इस प्रकार हैं—'श्रृंगारशतक', 'नीतिशतक' तथा 'वैराग्यशतक'।

'श्रृंगारशतक' स्त्रियों के सौंदर्य-चित्रों से और वर्ष की परिवर्तनशील ऋतुओं के साथ बदलने वाले प्रेम के भावों तथा उसकी सफलता के सुखों से प्रारंभ होता है। तत्पश्चात् वे पद्य आते हैं जिनमें मनुष्य को तप तथा ज्ञान से प्राप्त होने वाली शाश्वत शांति से संभोग-सुखों का सादृश्य प्रदर्शित किया गया है। अंत में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सौंदर्य एक प्रवंचना मात्र है, मानव-जीवन में आपाततः मधुर लगने वाली स्त्री सर्प की भाँति विषैली है, प्रेम सांसारिक आसक्ति की ओर ले जाता है और मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य, वैराग्य, तथा शिव अथवा ब्रह्म में निहित है। 'नीतिशतक' में कवि ने नीति-संबंधी उत्तम वचन बड़ी सरस पदावली में प्रस्तुत किए हैं। 'नीतिशतक' के पद्य बड़े लोकप्रिय हुए हैं। 'वैराग्यशतक' में सांसारिक सुखों की अस्थिरता का सजीव एवं प्रभावोत्पादक वर्णन है। इसमें मानव-जीवन की दुःखमयता बड़े मार्मिक रूप में चित्रित है।

भर्तृहरि की शैली प्रसादयुक्त, मुहावरेदार और परिमार्जित है। उसमें प्रवाह, पदलालित्य, भाव-प्रवणता और अर्थव्यक्ति है। भाषा इतनी सरल एवं सुबोध है कि कवि का तात्पर्य पद्यों को एक बार पढ़ने से ही समझ में आ जाता है। दैनिक जीवन के गूढ़ एवं प्रत्यक्ष सत्यों को भर्तृहरि ने बड़े हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किया है।

भल्लुकर पुरापेंट ओ अन्यान्य मजागप *(उ० कृ०)*

'भल्लुकर पुरापेंट ओ अन्यान्य मजागप' डा० चौधुरी हेमकांत मिश्र (दे०) का कहानी-संग्रह है। इसमें सूक्ष्म व्यंग्यात्मक भाषा तथा एक नूतन प्रकार की कथामुक्त कहानियों को प्रस्तुत किया गया है। इन कहानियों में गांभीर्य व सूक्ष्म व्यंग्य का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक के नामकरण में ही रचनाधारा की विशेषता प्रकट होती है।

भवभूति *(सं० ले०)* [समय—700-750 ई०]

भवभूति पद्मपुर के निवासी उदुंबर वंश के ब्राह्मण थे। इनके पितामह भट्टगोपाल, पिता नीलकंठ तथा माता जतुकर्णी थीं। इनका वास्तविक नाम श्रीकंठ था। 'भवभूति' नाम तो पार्वतीवंदना में बनाये गये पद्य में भवभूति शब्द के प्रयोग के कारण सहृदय पंडितों ने दिया था। इनको कुछ तो प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट (दे०) के शिष्य उंबेक मानने के पक्ष में भी हैं। ये शिव के भक्त तथा अत्यंत प्रतिभाशाली विद्वान् थे।

इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—'मालती-माधव' (दे०), 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित'। ये तीनों सफल नाट्यकृतियाँ हैं।

'मालतीमाधव' कल्पित प्रणयकथा पर आधृत 10 अंकों का प्रकरण है। इसमें प्रयुक्त रूढ़ियाँ तथा मुख्य-मुख्य घटनाएँ 'बृहत्कथा' के कई प्रणयवृत्तों से मिलती-जुलती हैं। 'महावीरचरित' राम की जीवन कथा को लेकर रचित सात अंकों का नाटक है। भवभूति की तीसरी तथा प्रौढ़ कृति है—'उत्तररामचरित'। यह इनकी नाट्यकला का उत्कृष्ट नमूना है।

भवभूति मूलतः कवि हैं। भावपक्ष की दृष्टि से कालिदास (दे०) के बाद इनका नाम बिना किसी हिचक के लिया जा सकता है। भवभूति कोमल तथा गंभीर दोनों तरह के भावों के कुशल कलाकार हैं। दांपत्य-प्रणय के संयोग तथा वियोग दोनों प्रकार के चित्रण 'उत्तररामचरित' में बेजोड़ हैं। इसी प्रकार ये अपने पात्रों के चरित्र को एक निखार देते हैं। इनकी कला में पांडित्य और प्रतिभा का अपूर्व सामंजस्य है। इनको समासांत पदावली तथा सानुप्रासिक चमत्कार से बड़ा मोह है। इनकी शैली गंभीर भावों के उपयुक्त है।

भविसयत्त कहा *(अप० कृ०)*

'भविसयत्त कहा' के रचयिता धनपाल (दे०) हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें एक लौकिक आख्यान के द्वारा श्रुत-पंचमी व्रत का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है।

इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—गजपुर (हस्तिनापुर) में धनपति और उसकी स्त्री कमलश्री से भविष्यदत्त नामक पुत्र उत्पन्न होता है। कमलश्री से मनमुटाव होने पर धनपति सरूपा नामक एक सुंदरी से दूसरा विवाह कर लेता है जिससे बंधुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न होता है। दोनों भाई प्रभूत धनसंपत्ति के लिए कंचन द्वीप की यात्रा करते हैं। बंधुदत्त अपने सौतेले भाई को धोखा देता है। यात्रा से लौटने पर राजा बंधुदत्त को दंडित और भविष्यदत्त को उसकी सच्चरित्रता के कारण सम्मानित करता है।

पोदनपुर के राजा के साथ युद्ध में गजपुर का राजा भविष्यदत्त की सहायता और वीरता से विजयी होता है। फलस्वरूप गजपुर का राजा अपनी पुत्री सुमित्रा का विवाह भविष्यदत्त से कर देता है और उसे युवराज बना देता है।

कालांतर में मुनि विमल बुद्धि भविष्यदत्त को उपदेश देते हैं और उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं। भविष्यदत्त विरक्त होकर तपस्या द्वारा निर्वाण पद प्राप्त करता है। श्रुतपंचमी-व्रत के माहात्म्य के साथ कथा समाप्त होती है।

कवि ने इस कृति में सद्सद्-वृत्ति वाले दो वर्गों के पात्रों का चरित्र-चित्रण सफलता से किया है। एक का प्रतिनिधित्व भविष्यदत्त और कपल श्री करते हैं और दूसरे का बंधुदत्त और सरूपा।

इस काव्य का कथानक गतिशील और कसा हुआ है। घटनाएँ कार्य-कारण-शृंखला से बँधी हुई हैं। मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाएँ भी हैं। पर वे किसी-न-किसी रूप में मुख्य कथा के साथ संबद्ध हैं। प्रासंगिक कथाओं की नियोजना कर्म-विपाक की दृष्टि से हुई है। इन भवांतर कथाओं के कारण कथा-प्रवाह में कुछ शिथिलता आ गई है। पौराणिकता से हट कर लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना इस प्रबंध-काव्य की विशेषता है। कृतिकार ने सामान्य व्यक्ति को नायक स्वीकार कर भारतीय साहित्य में शास्त्रीय विधान से अलग कथा-काव्य का प्रचलन किया है।

इस काव्य में वस्तु-वर्णन परंपराभुक्त है और साथ ही स्वाभाविक भी है। रूप-वर्णन के स्थलों में बाह्य सौंदर्य और अंतरंग सौंदर्य दोनों के वर्णन मिलते हैं। इसमें अनेक स्थलों पर सुंदर प्राकृतिक वर्णन हुआ है। प्रकृति-वर्णन आलंबनरूप, अलंकृतरूप तथा लोक शैली में किया गया है। कवि शास्त्रीयता से न बँध कर लोक-जीवन के स्वतंत्र वातावरण में प्रकृति को चित्रित करता है।

इस काव्य की रचना कड़वकबद्ध शैली में हुई है। इनमें मुख्य रूप से शृंगार, वीर और शांत रसों का ही परिपाक हुआ है।

इसकी भाषा साहित्यिक अपभ्रंश है; पर यत्र-तत्र लोक-भाषा का पुट भी मिलता है। बीच-बीच में लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं।

भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए अलंकार-योजना की गई है। अलंकारों में प्रमुखता साधर्म्यमूलक अलंकारों की है।

इसमें मात्रिक और वर्णवृत्त—दोनों प्रयुक्त हुए हैं; किंतु प्रमुखता मात्रिक वृत्तों की ही है।

कथानक रूढ़ियों अथवा अभिप्रायों के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण है।

भांडुदत्त *(बँ० पा०)*

'चंडीमंगल' काव्य का प्रधान पार्श्वचरित है भांडुदत्त। 'चंडीमंगल' काव्य के प्रथम कवि थे मानिक दत्त एवं सर्वश्रेष्ठ कवि थे मुकुंदराम चक्रवर्ती (दे०) जो मध्य-युगीन बँगला काव्य में कविकंकण मुकुंदराम के नाम से प्रसिद्ध थे। पार्श्वचरित्र होने पर भी यह चरित्र समग्र काव्य के कथाविन्यास में, एवं शिल्प-चातुर्य की दृष्टि से, सर्वाधिक आकर्षक है। मुकुंदराम के काव्य में ही इस चरित्र की यथार्थ सार्थकता प्रकट हुई है तो भी संगति-रक्षा की दृष्टि से इस चरित्र के चित्रण में मानिकदत्त की सफलता असंदिग्ध है।

भांडुदत्त खल, धूर्त, नीच, ईर्ष्यापरायण एवं स्वजात्यभिमानी है। कालकेतु के द्वारा गुजरात नगर की स्थापना के साथ-साथ भांडुदत्त वहाँ उपस्थित होता है। कालकेतु ने उसे आश्रय दिया परंतु प्रतिष्ठा नहीं दी। फिर भी वह इसी बल पर प्रजा पर अत्याचार शुरू कर देता है तब कालकेतु उसकी भर्त्सना करता है। भांडुदत्त इसे सह नहीं पाता और कालकेतु के सर्वनाश के लिए तत्पर हो उठता है। भांडुदत्त के उकसाने से कलिंगराज के साथ कालकेतु का युद्ध छिड़ जाता है। कालकेतु बंदी बना लिया जाता है परंतु देवी की कृपा से वह मुक्त हो जाता है। कालकेतु के दुर्योग के अवसान के समय प्रतारणा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखौटा पहने और आँखों में धूर्तता के आँसू लिये भांडुदत्त फिर वहाँ उपस्थित होता है लेकिन कालकेतु धोखा नहीं खाता, उसे राज्य से निकाल देता है परंतु खल की खलता फिर भी नहीं जाती। कदाचित् मध्ययुगीन बँगला काव्य में खलनायक के रूप में इस प्रकार की और दूसरी चरित्र-सृष्टि नहीं हुई है।

भाओना *(अ० पारि०)*

आहोम शासकों की राजसभाओं में 'भाओना' नाम का विशिष्ट नाट्य-अनुष्ठान हुआ करता था। इन राजाओं की प्रेरणा से शंकरदेव (दे०) द्वारा प्रवर्तित अंकीयानाट (दे०) की शैली में विशेष प्रकार के संस्कृत नाट्य-साहित्य की रचना हुई थी। इन नाटकों में संवादों और सूत्रधार की भाषा संस्कृत थी, किंतु बीच-बीच में असमीया गीतों का प्रयोग होता था। कभी-कभी असमीया गीतों और लोकगीतों का संस्कृत-अनुवाद भी किया गया। उल्लेख-योग्य कृतियाँ हैं—'धर्मोदय' (धर्मदेव भट्ट), 'काम कुमार हरण' (कविचंद्र द्विज) और 'विघ्नेश जन्मोदय' (कवि सूर्य)।

भाऊ साहेबांची बखर *(म० कृ०)*

इसका रचना-काल 1763 ई० के लगभग है। इसमें मराठा और मुग़लों के बीच हुए पानीपत के संग्राम का प्रमुख रूप से वर्णन है। फिर भी 1753 से 1760 ई० तक के मराठा-मुगलों के पारस्परिक संबंधों की इसमें विश्वस्त झांकी मिल जाती है। इसके रचयिता हैं कृष्णाजी शामराव। पानीपत की लड़ाई के उपरांत दो वर्ष के अंदर ही इसकी रचना हुई है, अतः उस समय की घटनाओं और प्रसंगों का इसमें बहुत सूक्ष्म वर्णन मिल जाता है। इसमें तत्कालीन व्यक्तियों के चरित्रों का पर्याप्त यथार्थ चित्रण है। भाऊ साहेब, दत्ताजी शिंदे, मल्हार राव होलकर, गोविंद पंत बुंदेले, बलवंतराव महेंदले आदि व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण में नजीबखान, सूरजमल जाट, कुतुबशाह, अबदाली आदि विरोधी व्यक्तियों के चरित्रों को पार्श्व भूमि के रूप में उल्लिखित किया गया है। ऐतिहासिक स्थानों, दुर्गों आदि का प्रामाणिक निरूपण है। इसकी रचना-शैली की अनेक स्वतंत्र विशेषताएँ हैं। भाषागत सौंदर्य दर्शनीय है। वर्णन है व्यंग्य-वैदग्ध्य की प्रचुरता है। भावनात्मक स्थलों में रसार्द्रता है। इस रचना का ऐतिहासिक मूल्य भी है और साहित्यिक भी। रचनाकार समकालीन है, घटना-प्रसंगों से सुपरिचित है। अनेक प्रसंग-वर्णनों में प्रत्यक्ष अनुभव का पुट है।

भागवत (श्रीमद्भागवत) *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600 ई०]

'श्रीमद्भागवत' की रचना व्यास (दे० व्यास, बादरायण) द्वारा की गई है। 'श्रीमद्भागवत' 18 पुराणों (दे० पुराण) में से एक है। यह वैष्णव धर्म एवं दर्शन का प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'श्रीमद्भागवत' पर अनेक टीकाओं की रचना हुई है। इन टीकाओं में श्रीधरी अत्यंत प्रसिद्ध एवं उपयोगी है।

'श्रीमद्भागवत' के अंतर्गत परमेश्वर को ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् कहा गया है। परमात्मा स्वतः शुद्ध चिद्रूप है। परमेश्वर की दो शक्तियाँ हैं—एक विद्या शक्ति और दूसरी अविद्या शक्ति। परमात्मा की तीन शक्तियाँ और हैं—अंतरंग स्वरूप शक्ति, बहिरंग शक्ति और तटस्थ शक्ति। प्रथम अंतरंग शक्ति के ही अंतर्गत ह्लादिनी, संधिनी, तथा संवित् शक्तियाँ हैं। अंतरंग स्वरूप शक्ति को चित् शक्ति तथा आत्ममाया भी कहते हैं। बहिरंग शक्ति के द्वारा परमात्मा जगत् का स्रष्टा है। जीव परमेश्वर की तटस्थ शक्ति के ही परिणामरूप हैं।

परमात्मा का जिस साक्षात् शक्ति से संबंध है वह महालक्ष्मी है। 'भागवत' में सर्वोच्च सत्य को अनुत्पन्न एवं अनष्ट कहा गया है।

भारतीय धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से 'भागवत' की महत्ता विख्यात है। 'भागवत' में वैष्णव धर्म ही नहीं, वेदांत एवं सांख्य आदि दर्शन पद्धतियों के विचारों का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

भाण *(सं०, हिं० पारि०)*

संस्कृत-नाट्यशास्त्र में विवेचित रूपक के दस भेदों में से एक। एक अंक पर आधारित भाण का प्रधान चरित्र धूर्त अथवा विट होता है, इसमें भारती वृत्ति और लास्या के दसों अंगों की योजना होती है। कथानक कल्पित और मुख अथवा निर्वहण संधियों (दे० नाट्य-संधियां) में से एक का होना अनिवार्य है। हास्य रस-प्रधान इस नाट्यरचना का उद्देश्य मात्र लोकरंजन है। इस एकपात्रीय रूपक में संवाद आकाशभाषित के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियोजित होते हैं। नायक आकाश की ओर मुँह उठाकर किसी कल्पित पात्र से बड़े ज़ोरशोर से श्रृंगार अथवा शौर्य-विषयक बातचीत करता है। भरतमुनि (दे०) ने भाण के दो भेदों आत्मानुभूतशंसी और परसंश्रयवर्णन तथा शारदातनय (दे०) ने दस भेदों—गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुष्पंडिका, प्रच्छेदक, विमूढ़, सैंधव, विमूढ़क, उत्तमोत्तक और भाव्य का उल्लेख किया है। संस्कृत में 'लीलामधुकर' और हिंदी में 'विषस्य विषमौषधम्' [भारतेंदु (दे०)-कृत] भाण के प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

भाणकोबाई (म० पा०)

यह न० चिं० केळकर (दे०)-कृत 'नवरदेवांची जोडगोळी' (वरों की जोड़ी) शेरिडन के 'टूराय-व्हलस' रूपांतरित नाटक की स्त्री पात्र है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के जड़ीभूत प्रेम के कारण ही यह उसका अनुकरण करती है। पाश्चात्य जीवनादर्शों को भारतीय परिवेश में यथावत उतारने की अपनी बलवती आकांक्षा के कारण ही यह अत्यधिक हास्यास्पद हो गई है। इसके अँग्रेज़ी भाषा के उच्चारण एवं शब्दों के सर्वथा गलत प्रयोग के कारण तो स्थिति और भी अधिक विकट हो जाती है। अँग्रेज़ी भाषा के अल्प ज्ञान के कारण ही शब्दों को ग़लत अर्थ एवं संदर्भ में प्रयुक्त करती है। परिणामतः यह कहना कुछ चाहती है परंतु श्रोता इसकी बात का कोई और भी अर्थ ग्रहण करता है। इस प्रकार अपने असामान्य क्रिया-कलापों के द्वारा भाणकोबाई आलोच्य प्रहसन में हास्य की सूत्र-संचालिका रही है। भाणकोबाई के चरित्र की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बाद में ग़लत अँग्रेज़ी बोलने वाले पात्रों को मराठी में भाणकोबाई संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा था।

भाणदास (गु० ले०) [समय—सत्रहवीं शती]

संत भाणदास निर्गुणमार्गी कबीरपंथी ज्ञानी कवि थे। इन्हें अखा (दे०) का समकालीन माना जाता है।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'हस्तामलक', 'प्रह्लादाख्यान', 'अजगर अवधूत संवाद', 'नृसिंह जी नी हमची', 'बारमासा', 'हनुमान जी नी हमची' तथा 'प्रकीर्ण पद्य'। 'हस्तामलक' केवलाद्वैतवादी रचना है। इस रचना में काव्य का चमत्कार तथा दर्शन की गंभीरता के युगपत दर्शन होते हैं। ज्ञानी होते हुए भी इनमें सगुण-भक्तों की-सी मधुरता व रसिकता दिखाई पड़ती है।

भात (उ० कृ०)

'भात' कविचंद्र काळिचरण पटनायक (दे०) का नाटक है। जो रंगमंच की दृष्टि से अत्यंत लोकप्रिय रहा है इसमें सामंती प्रथा, आर्थिक समस्या और वर्गसंघर्ष का चित्रण हुआ है। इस ठोस यथार्थवादी नाटक में उत्सर्गमय प्रेम और सुकुमार मानवीय संवेदना ने जीवन की ऊष्मा और सुंदरता की सृष्टि की है। कहीं कृत्रिमता नहीं है; फलतः नाटक की छोटी-सी कथावस्तु भव्य-मधुर हो उठी है।

नाटक की कथावस्तु सरल है, यद्यपि संघर्ष के कारण उसमें आद्यंत सक्रियता है। इस संघर्ष के कई रूप हैं—दो वर्गों का (संपन्न और विपन्न) संघर्ष, शहरी सभ्यता के आदर्शों का संघर्ष, सर्वोपरि प्रेम और कर्त्तव्य का मानसिक संघर्ष आदि। अनुपात-बोध ने इस नाटक की वस्तु-संघटना को सुष्ठु बना दिया है।

वीर विक्रमराय ज़मींदार हैं। वे विधुर हैं। पुत्र जयी और पुत्री विजया के प्रति उनकी अगाध ममता है। अनंत जयी का मित्र, उसका आदर्श तथा प्रगतिशील समाजवादी विचारों का युवक है। जयी हरिपुर गाँव की ग़रीब कृषक बालिका रमा से प्रेम करता है। किंतु पिता को यह स्वीकार नहीं। वे पुत्र का विवाह प्रतापपुर के ज़मींदार की कन्या से करना चाहते हैं। ज़मींदार के रूप में विक्रमराय अत्यंत उग्र-कठोर और असहिष्णु शासक हैं। प्रजा का शोषण और उत्पीड़न वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। आभिजात्य का अहंकार भी कुछ कम नहीं। जयी उनसे सर्वथा भिन्न है। वह दयालु, पर दुःख-कातर, कला-प्राण और निरभिमान समाज-सेवक है। जयी के विवाह के प्रजा से बलपूर्वक धन वसूल किया जाता है। प्रजा बगावत कर देती है। ज़मींदार स्वयं दमन के लिए जाते हैं। प्रजा के लिए जयी प्राण देने को आगे आ जाता है, किंतु तभी सबसे आगे रमा ज़मींदार साहब की गोली झेलने को लौह-कवच बनकर खड़ी हो जाती है। इन घटनाओं से जमींदार साहब में परिवर्तन आता है। अंत में रमा और जयी तथा विजया और अनंत का विवाह हो जाता है।

भाषा स्वाभाविक, सरल और पात्रानुकूल है। सुंदर और प्रसंगानुकूल गीतों की योजना से नाटक की प्रभविष्णुता बढ़ गई है। समस्या-निरूपण, चरित्र-चित्रण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनय, नाटकीय क्रियाशीलता आदि सभी दृष्टियों से यह एक सफल नाटक है।

भादव्या *(म० पा०)*

यह गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के प्रसिद्ध रूपांतरित नाटक 'संगीतसंशय कल्लोल' (फ्रेंच नाटककार मोलियर-कृत 'मानारेल' के मर्फी द्वारा अँग्रेज़ी अनुवाद 'ऑल इन दि रांग' का रूपांतर) का साधारण पात्र है जो अभिजात वर्ग की कृपणता पर कटु व्यंग्य करता है। भादव्या का नामकरण स्वदेशी मास 'भाद्रपद' के आधार पर रखा गया है। यह कृपण अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले फाल्गुन (दे०) राव का नौकर है। फाल्गुन राव इसकी सहजता एवं संतोषी मनोवृत्तियों का अनुचित लाभ उठाता है। वह इसके वेतन बढ़ाने तथा समय-समय पर इनाम आदि देने की बात तो अवश्य करता है, परंतु देता कभी नहीं है। इस पर अपनी परिसीमा को देखते हुए भादव्या स्पष्टतः तो मालिक की बातों का प्रतिकार नहीं करता परंतु अपने कटु-तिक्त व्यंग्यपूर्ण संवादों में कटु प्रहार अवश्य करता है। अत्यल्प वेतन-भोगी होते हुए भी यह मालिक फाल्गुन राव के प्रत्येक कार्य में सहायता करता है। भादव्या के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने अभिजात-वर्ग की कृपणता के शिकार नौकर-वर्ग की स्थिति का मार्मिक विश्लेषण किया है। भादव्या का चरित्र-विकास मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर होने के कारण अत्यधिक प्रभावोत्पादक हो गया है।

भादुड़ी, सतीनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

चतुर्थ दशक के उल्लेखनीय उपन्यासकार सतीनाथ भादुड़ी ने राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर चेतना-प्रवाह तकनीक के आश्रय से उपन्यासों की सफल रचना की थी। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'जागरी' (दे०) (1948), 'ढोंडाचरितमानस', अचिन रागिनी', 'दिग्भ्रांत' आदि उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक संग्राम एवं राष्ट्र-चर्चा के स्तर पर लिखे गए उपन्यासों में 'जागरी' साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। सन् 1942 के अगस्त आंदोलन में फ़रार बड़े भाई को कम्युनिस्ट छोटा भाई पकड़वा देता है। फाँसी की रात दोनों भाइयों एवं उनकी माँ के मन में जो कुछ घटित होता है उसी की चेतना-प्रवाह रीति से बहुत ही सशक्त वर्णन हुआ है। 'ढोंडाचरितमानस' आंचलिक उपन्यास की सिद्धि एवं शिल्प संभावना का उज्ज्वल परिचायक है। बिहार के किसी ग्राम के अंत्यज-समाज के एक किशोर को लेकर तीन खंडों में यह उपन्यास रचित हुआ है। मृत्यु से पूर्व लिखा हुआ 'दिग्भ्रांत' लेखक का सर्वथा नवीन उपन्यास है। अंतर्मन के निपुण विश्लेपण की दृष्टि से यह उपन्यास काफ़ी महत्त्वपूर्ण है।

विषय-वस्तु एवं रूप-विधान की दृष्टि से सतीनाथ के उपन्यासों का स्वतंत्र स्थान है। अभावनीय विषय-वस्तु एवं रीति का अभिनवत्व पाठकों को चौंकाने वाला है। 'अचिन रागिनी' एवं 'संकट' में लेखक के अस्तित्ववादी विचार का आभास मिलता है। परंतु सर्वोपरि अपने उपन्यासों में सतीनाथ बाबू ने मानव-मन के अकथित रहस्य की पर्यालोचना की है। फ़्रायड की दृष्टि से मानव-मन रहस्यजनक होने पर भी जड़ है परंतु सतीनाथ के लिए मानव-मन रहस्यात्मक अवश्य है पर वह जड़ के विपरीत जीवनी शक्ति का प्रकाश है। ये सर्वदा विषय-वस्तु को नवीन ढंग से प्रस्तुत करना चाहते थे और कदाचित इस असाधारण मौलिकत्व के कारण ही ये बहुत अधिक जनप्रिय नहीं हो पाए।

भान, पुष्कर *(कश्० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

बहुत ही अच्छे अभिनेता, हास्यकार और व्यंग्यकार हैं। रेडियो कश्मीर के माध्यम से इन्होंने अपने सभी श्रोताओं का मनोरंजन किया है और समय की गुहार सुना दी है। जागरूक कलाकार के नाते इन्होंने अपनी वाणी से व्यंग्य एवं हास्य के सुप्त अंत को सजीव और उजागर किया है। रेडियो कश्मीर, श्रीनगर, से 'निज़: साब' और 'मचामः' रेडियो फ़ीचर (स्तंभ) सुनकर जब इन चरित्रों का चित्रण हमारे सामने आता है तो अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स की याद ताज़ा हो जाती है। हास्य और व्यंग्य के प्रकरण में पुष्कर भान की सेवा बेजोड़ रही है। इन्होंने अख़्तर मुहीउद्दीन के सहयोग से 1962 ई० में 'दलीलाः' नाम से कश्मीरी लोक-कथाओं का संग्रह एवं संपादन भी किया है।

भानुमति *(अ० कृ०)* [रचना-काल —1892 ई०]

लेखक—पद्मनाथ गोहाञि बरुवा (दे०)।

यह पारिवारिक शोकपूर्ण उपन्यास है। इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो प्रेमिकाएँ एक युवक से और दो प्रतिद्वंद्वी युवक एक नारी से प्रेम करते हैं। भानुमती और चारु गोहाजि में प्रेम है, किंतु राजा भानुमती से विवाह करना चाहता है। चारु भीरु सिद्ध होता है, भानुमती आत्मगोपन करती है। चारु बंदी बना लिया जाता है, भानुमती पुरुष-वेश धारण कर उसे छुड़ाना चाहती है। राजघराने की भी एक लड़की चारु से प्रेम करती है, वह भी छुड़ाने की चेष्टा करती है। वध्यभूमि में चारु की मृत्यु वज्रपात से होती है। छल-प्रपंच, आत्महत्या, मृत्यु तथा वैराग्य से युक्त अनेक घटनाएँ चलती रहती हैं। चरित्रों और कथा में स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता का अभाव है। इस उपन्यास में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक समस्याओं के चित्रण का भी प्रयास है। इसे असमीया-साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है।

भानुमतीपरिणयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम रेटूरि रंगराजु है। 'भानुमतीपरिणयमु' चार आश्वासों का काव्य है। भानुमती कृष्ण की चचेरी बहन है। सहदेव के साथ उसके विवाह का वर्णन ही इस काव्य का प्रधान विषय है। रचना सरस तथा शैली हृदयहारी है।

भामह *(सं० ले०)* [समय—600 ई० के लगभग]

कश्मीर देश के वासी विद्वान भामह संस्कृत साहित्यशास्त्र के प्रमुख लेखकों में से हैं। 'काव्यालंकार' (दे०) इनकी मुख्य कृति है जो 6 परिच्छेदों में विभक्त है और जिसमें कुल 400 श्लोक हैं। काव्यशरीर, काव्यालंकार, काव्यदोष, काव्य-न्याय एवं शब्दशुद्धि, इन पाँच विषयों का निरूपण 'काव्यालंकार' में हुआ है। इसी प्रसंग में काव्य के लक्षण एवं प्रयोजन का निरूपण उपलब्ध होता है।

भामह अलंकारवादी आचार्य हैं। इनके मत से काव्य में जिस तत्त्व से चमत्कार का आधान होता है वही अलंकार है तथा वह शब्द और अर्थगत भेद से मुख्यतया दो प्रकार का है। कवि की जन्मजात प्रतिभा से ही काव्य हो सकता है। सुबोधता ही काव्य का प्राण है।

भामह ने ही सबसे पहले 'नाट्यशास्त्र' (दे०) से अलग कर काव्यशास्त्र का निरूपण स्वतंत्र रूप से किया। 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' इनका ही काव्य-लक्षण है। ये माधुर्य, ओज एवं प्रसाद काव्य के तीन ही गुण मानते हैं तथा 'नाट्यशास्त्र' के विपरीत गुणों को भावात्मक मानते हैं। उत्तरकालीन प्रायः सभी आचार्य किसी-न-किसी रूप में इनके ऋणी हैं।

भामिनीविलास *(सं० कृ०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

'भामिनीविलास' पंडितराज जगन्नाथ (दे०) की रचना है। उन्होंने इसे चार भागों में विभक्त किया है। प्रथम विलास में नैतिक उपदेश एवं सुभाषित का, द्वितीय में संयोग शृंगार का, तृतीय में विप्रलंभ शृंगार का और चतुर्थ में निर्वेद एवं भक्ति रस का सजीव वर्णन है।

'भामिनीविलास' के पद्यों में स्वाभाविक प्रवाह और कल्पना का अभिराम चमत्कार है। भगवान कृष्ण के चरणों में पंडितराज की अपार निष्ठा थी। इसी कारण उनके पद्य भक्तिरस से स्निग्ध हैं। अन्य वर्णन भी बड़े हृदयग्राही तथा प्रभावोत्पादक हैं।

भायाणी, हरिवल्लभ चुनीलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

सौराष्ट्र के महुवा नामक स्थान में जन्मे श्री भायाणी की शिक्षा महुवा, भावनगर तथा बंबई में संपन्न हुई। इन्होंने 1943 ई० में संस्कृत (मुख्य) तथा अर्द्ध-मागधी (गौण) विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा 1952 ई० में स्वयंभू-रचित महाकाव्य 'पउमचरिउ' के संपादन पर पी-एच० डी० की उपाधि अर्जित की। अध्ययन-अध्यापन इनका मुख्य व्यवसाय है। संप्रति ये गुजरात विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के प्रोफ़ेसर के रूप में कार्य कर रहे हैं। इनकी रचनाएँ हैं—अपभ्रंश भाषा साहित्य-विषयक 'संदेशरासक' (भूमिका और कोश सहित संपादन), धाहिल-कृत 'पउमसिरिचरिउ' (भूमिका, अनुवाद व शब्दकोश सहित सहसंपादन), स्वयंभू-कृत 'पउमचरिउ'; प्राचीन गुजराती भाषा-विषयक—'त्रण प्राचीन गुर्जर काव्यो', 'शामळकृत', 'मदनमोहना', 'रुस्तमनो सलोको', 'सिंहासन बत्रीशी', 'वैताल पचीसी' (संपादन), भाषाशास्त्रीय अध्ययन—'वाग्व्यापार', 'अपभ्रंश व्याकरण' (सिद्ध-हेम का अपभ्रंश भाग), 'सुबोध व्याकरण', 'जातक वार्ताओ', 'शब्दकथा', 'अनुशीलनो', 'शोध अने स्वाध्याय' तथा 'थोड़ोक व्याकरण-विचार'। उक्त सभी रचनाओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने से यह बात बड़ी स्पष्ट हो जाती है कि श्री भायाणी जी की मूल रुचि भाषाविज्ञान में है। गुजराती साहित्य और गुजराती के अध्येताओं में भायाणी जी एक भाषाशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। पर इससे यह सिद्ध नहीं होगा कि उनकी रुचि का कोई अन्य क्षेत्र नहीं है। प्राचीन भारतीय साहित्य, लोक-साहित्य तथा रस-मीमांसा भी इनकी रुचि के विषय हैं।

भारतचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1713 ई०; मृत्यु—1760 ई०]

इनका जन्म हावड़ा तथा हुगली के अंतर्गत भुरसुट परगना में पेंड़ो (पाण्डुया) ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम नरेंद्र नारायण राय था। इनके पिता ज़मींदार थे। उनको राजा की उपाधि मिली हुई थी। ये ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने नाना के यहाँ शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हें संस्कृत, बँगला, हिंदी एवं फ़ारसी भाषाओं का ज्ञान था। वर्द्धमान-नरेश महाराज कृष्णचंद्र ने इनको 'रायगुणाकर' की उपाधि प्रदान की थी। अनुमान है कि इनकी पत्नी का नाम 'राधा' था और इनके तीन पुत्र थे।

इनकी कृतियाँ हैं: 'सत्य पीरेर पांचाली', 'रसमंजरी', 'अन्नदामंगल (दे०), 'विद्यासुंदर' (दे०), 'नागाष्टक', 'गंगाष्टक'। 'अन्नदामंगल' सर्वापेक्षा प्रसिद्ध कृति है। कवि शाक्त-मतावलंबी हैं। अन्य मंगल काव्यों के समान पार्वतीय एवं शिव की कथा को आधार बनाकर प्रतिदिन के जीवन को सरस रूप में प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य है। इनके काव्य में भाव-गांभीर्य नहीं है। भाषा की दृष्टि से प्राचीन काल के कवियों में ये श्रेष्ठ हैं। ये उत्कृष्ट शब्द-कवि हैं। परिमार्जित एवं प्रसाद गुण-युक्त भाषा-नैपुण्य एवं शिल्पज्ञान में ये अनुपम हैं। इनका गुण है सरस-सुंदर वर्णना। नारी-चरित्र को चित्रित करने में ये प्राचीन बँगला कवियों में अद्वितीय हैं। छंद-प्रयोग में ये अत्यंत कुशल हैं। विभिन्न संस्कृत छंदों को अत्यंत कुशलता से इन्होंने बँगला में प्रयुक्त किया है। सरस परिहास, प्रसन्न जीवन-भोग का चित्र इनके काव्य में पग-पग पर मिलता है। गंभीर वेदना और करुण रस के चित्रों का इनकी रचनाओं में अभाव है। धार्मिक दृष्टि से इनके काव्य में उदारता मिलती है।

बँगला काव्य में इनके वर्णन-कौशल एवं वचन-चातुर्य ने गाँव के अशिक्षित वर्ग से राज-सभा तक में इन्हें आदरणीय स्थान दिलाया है।

भारत चंपू *(सं० कृ०)* [समय—लगभग ग्यारहवीं शती ई०]

'भारत चंपू' के कर्ता अनंतभट्ट माने जाते हैं।

'भारत चंपू' में 'महाभारत' (दे०) की कथा को संक्षेप में निबद्ध किया गया है। इसमें बारह स्तवकों में 1000 श्लोक तथा गद्य में वीरगाथा काव्य के रूप में 'महाभारत' (दे०) की कथा को प्रस्तुत किया गया है। यह वीररस-प्रधान काव्य है। इसमें कवि को युद्धों का वर्णन करने में पर्याप्त सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त इस चंपू में करुणरस की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। इसका गद्य भी पद्य की ही भाँति अलंकृत शैली में है।

भारत दुर्दशा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०]

देशभक्ति की अनुगूंज से आद्यंत अनुपूरित इस छह अंकीय नाटक में भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र ने भारत के अतीतकालीन गौरव तथा समकालीन दुरवस्था का मार्मिक चित्रण किया है। नाटककार ने स्वार्थपरता, हठ, फूट, अपव्यय, आदि उन कारणों का भी स्पष्ट उल्लेख किया है जिनके फलस्वरूप भारत बल-वैभव की दृष्टि से ही नहीं अपितु आर्थिक तथा बौद्धिक दृष्टि से भी विपन्नावस्था को प्राप्त हुआ। नाटक में आशा का स्वर भी विद्यमान है। इस रचना के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अत्यंत दुःखी होकर इस कृति का प्रणयन किया था। नाटककार ने इस कृति को नाट्यरासक अथवा नाट्य-रूपक माना है किंतु इस नाट्य-विधा के सभी लक्षण इस कृति में परिलक्षित नहीं होते।

भारतपर्यटनम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई०]

रचनाकार—कुट्टिकृष्ण मारार (दे०)।

श्री मारार मौलिक विचारक, समीक्षक एवं प्रसिद्ध निबंधकार हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्रादि पर पूरा अधिकार करने के बाद ये समालोचना के क्षेत्र में आये। इनकी गद्य-शैली बड़ी संहित एवं प्रवाहमयी मानी गई है। मारार जी की रचनाओं में 'भारतपर्यटनम्' उनकी मौलिक प्रतिभा का सबसे पुष्ट प्रमाण है।

'भारतपर्यटनम्' का आधार वेदव्यास-कृत 'महाभारत' (दे०) है। यह अनुवाद नहीं प्रत्युत उसके चुने हुए प्रसंगों पर आधारित है। इस गद्य-ग्रंथ में 18 अध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इनमें लेखक ने व्यास का अंधानुकरण करने के बजाय पांडवों-कौरवों के व्यवहार का औचित्य-अनौचित्य-विवेचन किया है। अनेक प्रसंगों में वे दुर्योधन के तथाकथित स्वार्थ-पूर्ण व्यवहार को राजतंत्र के सिलसिले में उचित ही समझते हैं। श्रीकृष्ण को अपमानित करने का दुर्योधन का तथाकथित प्रयास मारार जी की सम्मति में केवल कपोल-कल्पना है। यों 'द्रौपदीवस्त्रापहरण' में 'शक्ति' के सामयिक धर्म होने का सिद्धांत दिखाया गया है।

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में 'महाभारत' की कथाओं का पुनरीक्षण करने की प्रवृत्ति मारार में दर्शनीय है। कथावस्तु के संक्षेपण और गद्य-लेखन का दुर्लभ कौशल उनमें है। उनमें कृत्रिमता नहीं, प्रौढ़ चिंतन और निर्भय अभिव्यक्ति है। श्री नारायण मेनन (दे०) के शब्दों में आख्यान, व्याख्या और सार्थक मनोवैज्ञानिक प्रकाशन का समन्वय 'भारतपर्यटनम्' की अन्यतम विशेषता है।

भारतरत्न (गु० कृ०)

डा० भोगीलाल साँडेसरा (दे०) के अनुज श्री उपेंद्रराय साँडेसरा-रचित 'भारतरत्न' महाभारत की सूक्तियों के विवेचन का एक अपूर्व ग्रंथ है। महाभारत व तत्संबंधी साहित्य तथा समीक्षात्मक ग्रंथों का गहन अध्ययन लेखक की विशेषता है।

व्यापार-वाणिज्य में डूबे तथा सामान्य शिक्षा-प्राप्त श्री साँडेसरा की भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था, निष्ठा व रुचि का दर्शन इस ग्रंथ से अनायास ही हो जाता है। लगभग 500 पृष्ठों के इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण लेखक के अग्रज डा० भोगीलाल साँडेसरा ने 1963 ई० में निकाला था। काका कालेलकर (दे०) एवं पं० सुखलाल जी के पुरोवाक् तथा आशीर्वाद इस ग्रंथ को प्राप्त हैं। ग्रंथ में महाभारत के आधार पर धर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मविद्या, भक्ति, गार्हस्थ्य, अर्थदोष, विद्या, कर्म, काल, व्यसन, सुख-दुःख, युद्ध की निरर्थकता, तत्त्व-ज्ञान, सज्जन-दुर्जन, विवेक-योग, संयम आदि अनेक विषयों का सुंदर विवेचन हुआ है। सत्यवान आख्यान का तथा सावित्री के चरित्र का तर्कबद्ध विवेचन भी इसमें हुआ है।

गुजराती भाषा में रचित भारतीय संस्कृति-विषयक ग्रंथों में इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतवर्षीय उपासक-संप्रदाय (बँ० कृ०)

'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' के प्रख्यात संपादक अक्षयकुमार दत्त (1820-86) उन्नीसवीं शती की भारतीय साधना के अन्यतम सार्थक प्रतिनिधि थे। 'भारतवर्षीय उपासक-संप्रदाय' (दो खंड में संपूर्ण 1870-1883) ग्रंथ अक्षयकुमार की जीवन-साधना का श्रेष्ठतम परिचय है। यह ठीक है कि इन्होंने विल्सन के एसेज़ ऐंड लेक्चर्स ऑन द रिलीजन ऑफ़ द हिंदूज़' ग्रंथ के आश्रय से अपने ग्रंथ की रचना की है किंतु विल्सन के ग्रंथ में जहाँ पेंतालीस उपासक-संप्रदायों का वर्णन है वहाँ अक्षयकुमार ने एक सौ बयासी संप्रदायों का विवरण संकलित किया है। स्वदेश-प्रेम एवं स्वजाति-कल्याण की ऐकांतिक कामना ही अक्षयकुमार की अक्लांत साहित्य-साधना की मूल प्रेरणा थी। 'भारत-वर्षीय उपासक-संप्रदाय' अक्षयकुमार की ज्ञानतपस्या का सार्थक एवं चिरकालीन श्रद्धा और विस्मय का प्रति-रूप है।

भारतिप्रिय (क० ले) [जन्म--1919 ई०]

इनका वास्तविक नाम एस० वेंकट राव है। कन्नड के कहानीकारों—विशेषतः पुरानी पीढ़ी के लेखकों—में इनका विशिष्ट स्थान है। इनकी कहानियों का संग्रह 'रुद्रवीणा' पर्याप्त ख्याति पा चुका है। 'रागिणी' और 'रूपसर्पिणी' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अन्य ग्रंथों में 'ध्रुवतारेगळु' (ध्रुवतारागण) का नाम उल्लेखनीय है।

भारती, गोवर्धन महबूबाणी (सिं० ले०) [जन्म—1929 ई०]

इनका जन्मस्थान सिंध का एक छोटा गाँव आराज़ी है। आजकल ये अजमेर में रहते हैं और रेल-विभाग में कर्मचारी हैं। इन्हें बचपन से ही कला और साहित्य से प्रेम रहा है। आज ये सिंधी-जगत में कवि, कहानीकार और नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने विभिन्न विषयों पर गीत लिखे हैं जिनमें से कई बहुत लोक-प्रिय बन चुके हैं। सिंधी-काव्य में हास्यरस की रचनाएँ कम हैं। इन्होंने अपनी कविताओं द्वारा इस कमी की काफ़ी हद तक पूर्ति की है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'गुल ऐं मुखिड्यूँ' (कविताएँ), 'लात्यूँ' (बालगीत), 'उठा मींह मलीर' (गीत), 'तूफ़ानी राति' (नाटक), 'नई वस्ती'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बाल-कहानियाँ), 'पीलो चंडु लाल' दाग़' (कहानी-संग्रह)। ये न केवल कवि हैं, अपितु अच्छे गायक भी हैं। विभाजन के पश्चात् सिंधी-साहित्य के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

भारतीदासन् *(त० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

इनका जन्म पुदुच्चेरी (पांडिचेरी) में हुआ था जो तब फ्रेंच शासन में था। इनका असली नाम कनकसुप्पुरत्तनम् है। इन्होंने तमिल तथा फ्रेंच भाषाओं का अध्ययन किया था। बचपन से ही इनके मन में तमिल के प्राचीन साहित्य के प्रति अटूट अनुराग उत्पन्न हो गया था। सामाजिक जीवन के प्रति भी इनकी दृष्टि क्रांतिकारी थी। जाति-पाँति की भावना को दूर करने के लिए ये कटिबद्ध रहते थे। अपने अठारहवें वर्ष में ही इन्होंने 'तमिल-विद्वान्' उपाधि प्राप्त कर ली थी और पुदुच्चेरी के कालेज में तमिल-प्राध्यापक हो गये थे। उस समय पुदुच्चेरी में श्री अरविंद आ बसे थे। ब्रिटिश सरकार की कोप-दृष्टि से बचकर कई क्रांतिकारी युवक फ्रेंच-शासन में स्थित पुदुच्चेरी में जाकर रहते थे। ऐसे ही व्यक्तियों में थे व० वे० सु० अय्यर, सुब्रह्मण्यम् भारती (दे०) आदि। कनकसुप्पुरत्तनम् पर इन लोगों की संगत का प्रभाव पड़ा। उनकी छत्रच्छाया में ये भी अच्छे कवि बन गये और अपना उपनाम भी अपने कविता-गुरु भारती की स्मृति में 'भारतीदासन्' (तमिल उच्चारण के अनुसार पारदिदासन) रख लिया। देशभक्ति, स्वभाषा-भक्ति, समाज के नव-निर्माण की अभिलाषा, समाज-सुधार इत्यादि इनकी कविताओं की भावभूमि है। इनका प्रकृति-वर्णन अत्यंत सजीव होता है। 1938 ई० में 'पारदिदासन्-कषितैकल्' नाम से इनका प्रथम कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ था। बाद में ये तमिलनाडु में हुए द्रविड-आंदोलन में सम्मिलित हुए। 'द्रविड कलकम्' नाम से स्थापित संस्था के द्वारा उन दिनों यह प्रचार किया जाता था कि द्रविड संस्कृति तथा सभ्यता आर्य संस्कृति तथा सभ्यता से बिलकुल भिन्न तथा स्वतंत्र हैं; आर्य-प्रभाव के कारण ही जाति-पाँति, अंधविश्वास आदि बुराइयाँ उत्पन्न हुई हैं; वेद-उपनिषद्, रामायण आदि संस्कृत ग्रंथों पर आधारित धर्म भी द्रविड़ों के प्रतिकूल है, इत्यादि। 'भारतीदासन्' की कविता के ये सब विषय बन गये। 'क्रांतिकवि', 'कवि-सम्राट' आदि इनकी उपाधियाँ थीं। इनके अनेक खंडकाव्य तथा फुटकल कविताओं के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'पांडियन्-परशु' (दे०) (पांड्य का पुरस्कार) 'एदिर पाराद मुत्तम्' (अप्रतीक्षित चुंबन), 'तमिलच्चियन् कात्ति' (तमिल स्त्री का करवाल), 'कुटुंबविलक्कु' (दे०) (परिवार-दीप), तथा 'कडल्मेल् कुमिलिकल्' (समुद्र पर के बुलबुले) आदि खंडकाव्य हैं। 'तमलिक्कम्' (तमिल आंदोलन) नामक कृति में द्रविड़-समाज की कमियों का उल्लेख करते हुए उन्हें सुधारने के लिए प्रेरणा दी गई है।

'अलकिन्शिरिप्पु' (दे०) (सौंदर्य का हास) इनकी प्रकृति-वर्णन प्रधान कृति है। इनके गद्य-ग्रंथों में 'हिरण्य अथवा अनुपम वीर' और 'शिक्षित महिलाएँ' प्रसिद्ध हैं। ये 'कुयिल्' (कोयल) नामक कविता-पत्रिका का संपादन करते थे। 'इरुंडवीडु' (अँधेरा घर) इनकी हास्य-रसपूर्ण कृति है। इनका अपने युग पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। आज की तमिल कविता के क्षेत्र में इनकी परंपरा स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

भारती, धर्मवीर *(हिं० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्मस्थान इलाहाबाद है। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से हिंदी में एम० ए० करने के पश्चात् 'सिद्ध-साहित्य' पर पी-एच० डी० की उपाधि के लिए शोध-प्रबंध लिखा। कुछ समय तक प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन करने के उपरांत 1956 ई० में 'धर्मयुग' (दे०) के संपादन का दायित्व लेकर ये बंबई चले गये। इनका कृतित्व बहुमुखी है। कथा-साहित्य में 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा काव्यक्षेत्र में 'अंधा युग' (दे०) और 'कनुप्रिया' को विशेष ख्याति मिली है। 'अंधा युग' नयी कविता की महती उपलब्धि माना जा चुका है। इस काव्य-नाटक में कवि ने द्वापर की कथा लेकर अपने युग की अनास्था को ध्वनित करते हुए आस्था की खोज का प्रयत्न किया है। 'कनुप्रिया' में काव्यात्मक उद्भावनाओं के द्वारा राधा-कृष्ण के पौराणिक रोमांस पर जो नूतन दृष्टिपात किया गया है उसके पीछे अस्तित्ववादी दृष्टि रही है। 'सात गीत वर्ष' नामक कविता-संग्रह में भी रूमानियत और बौद्धिकता का सम्मिश्रण दिखाई देता है।

भावात्मक सघनता और बिंबात्मक प्रतीक-प्रयोग की विशेषताएँ इनके कृतित्व को नयी कविता में एक पृथक् व्यक्तित्व प्रदान करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारती, नारायण *(सिं० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

इनका जन्मस्थान लाड़काणा (सिंध) है। देश-विभाजन के पश्चात् ये उल्हासनगर (महाराष्ट्र) में स्थायी रूप से बस गये हैं और वहीं एक स्कूल में अध्यापन कार्य करते हैं। गत कई वर्षों से ये 'सिंधी टाइम्स' नामक पत्रिका का संपादन-कार्य भी कर रहे हैं। इन्होंने सिंधी-साहित्य को अच्छी मौलिक कहानियाँ भी दी हैं, परंतु कहानीकार की अपेक्षा इनको सिंधी लोक-साहित्य के अध्येता और अनुसंधानकर्त्ता के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त हुई है। सिंधी-लोक-साहित्य और लोक-कला पर इनकी प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं—'लोक-गीत', 'होजमालो', 'सिंधी लोक कहाण्यूँ', 'सिंधी लोक कला', 'सिंधुड़ी थीगास', 'संगीत जी तान', 'मेंदीअ रता हथिड़ा', 'थरी लोक गीत'। भारत में सिंधी-लोक-साहित्य के क्षेत्र में इनका अनुसंधान-कार्य अविस्मरणीय है।

भारती पर्व *(म० कृ०)* [रचना-काल—1640 ई०]

मुक्तेश्वर (दे०) ने संस्कृत के 'महाभारत' (दे०) का मराठी रूप प्रस्तुत किया है। इनके 'महाभारत' के आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व और सौप्तिक पर्व ही उपलब्ध होते हैं। कुल ओवी संख्या है—14,687। कवि की मौलिकता कथावस्तु के नवीन आविष्कार की नहीं है वरन् कथा के अतिरिक्त शेष सभी अंशों में मौलिकता है। पात्रों के संवाद, उनके चरित्र-चित्रण, वातावरण की सजीव निर्मिति, प्रसंगानुरूप सरस अलंकार-योजना, भावानुरूप भाषा-प्रयोग की दृष्टि से मुक्तेश्वर की कवित्व-प्रतिभा की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही प्रतीत होगी। मुक्तेश्वर में पांडित्य का और कलात्मक सौंदर्य-निर्मिति का गुण चरमोत्कर्ष पर पहुँचा था। कथा का कहाँ संक्षिप्तीकरण हो और कहाँ विकास-विस्तार हो इसका निर्धारण करने में उनकी काव्य-प्रतिभा ने पूरा-पूरा कौशल दिखाया है। सौंदर्य-चित्रण में कवि का मन खूब रमा है। सौंदर्य चाहे मानवीय हो अथवा प्रकृति का हो, उसे मूर्तित करने में कवि ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। मुक्तेश्वर द्वारा लिखित 'द्रौपदी-वस्त्र-हरण', 'शकुंतला-दुष्यंत-आख्यान', 'नारद नीति', 'जरासंधाख्यान', 'नल-दमयंती-आख्यान' आदि प्रसंग बहुत ही सरस-प्रभावोत्पादक हैं। इनके 'महाभारत' में समसामयिक महाराष्ट्र की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का भी अंतर्भाव हो गया है। यह काल-क्रम का दोष है, ऐतिहासिक विपर्यय है। परंतु इसमें कवि की देश-समाज के उद्धार की भावना भी अनुस्यूत है।

भारतीय काव्य-मीमांसे *(क० कृ०)*

यह कन्नड के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० बी० नं० श्रीकंठय्या (दे०) की शास्त्रीय कृति है। इसमें भारतीय काव्यशास्त्र-परंपरा के आरंभ, विकास, आदि का सर्वेक्षण है। इसके तीन भाग हैं। प्रथम भाग में सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में काव्यशास्त्र के उदय का विवेचन है। दूसरे में भारत के नाट्यशास्त्र का विवेचनात्मक परिचय है। तीसरे में अलंकार एवं रीति-संप्रदायों का आलोचनात्मक परिचय है तथा चौथे एवं पाँचवें अध्यायों में ध्वनि-संप्रदाय एवं उसके विरोधियों आदि की व्यापक चर्चा है। 'परिष्कार-युग' नामक छठे अध्याय में ध्वनिसिद्धांत की दृष्टि से सभी काव्यांगों की सर्वांगीण व्यवस्था करने वाले मम्मट, जगन्नाथ आदि आचार्यों की चर्चा है। सातवें अध्याय में महिमभट्ट, कुंतक, भट्टनायक आदि के विचारों के आलोक में ध्वनि का विवेचन है। प्रो० श्रीकंठय्या जी ने रस-सिद्धांत को एक सिद्धांत नहीं माना है। उनके अनुसार रस-सिद्धांत सभी संप्रदायों का गंतव्य है। उनका कहना है कि भारतीय काव्यशास्त्र की कथा रस-प्रतिष्ठापना की ही कथा है। उनके अनुसार काव्य-मंदिर की वाह्य प्राचीर की परिक्रमा में ही अलंकारवादियों ने समय बिताया। रीति-संप्रदाय मंदिर के भीतर गया। ध्वनिकारों ने आकर रस के महत्व को जाना। तब ज्ञात हुआ कि रस ही काव्य-मंदिर का अधिदेवता है।

दूसरे भाग में 17 अध्याय हैं। इनमें काव्य-लक्षण की विस्तृत विवेचना है, कविता के आकरों के रूप मे प्रतिभा, व्युत्पत्ति आदि की विस्तृत चर्चा है। प्रतिभा का विवेचन अत्यंत सरस एवं मौलिक बन पड़ा है। 'सहृदय' के लिए एक पूरा प्रकरण लिखा गया है। तीसरा भाग रस-ध्वनि की व्यापक चर्चा के लिए निवेदित है। भाव-विभाव एवं अन्य भावों का परिचय दे कर दो अध्यायों में रसानुभूति की चर्चा करते हुए इस सिद्धांत की विभिन्न व्याख्याओं का विवेचन है। इन प्रभेदों की चर्चा के बाद शांतरस के लिए एक स्वतंत्र अध्याय रखा गया है। शांत-रस का स्थायी भाव तथा उसकी अनुभूति एवं रसत्व पर श्रीकंठय्या जी की बहुत ही मौलिक स्थापनाएँ हैं। शांत-रस का इतिहास, विशेषतः बौद्ध एवं जैनियों की देन, आदि की भी गंभीर चर्चा है। लेखक ने सुंदर तर्कों के द्वारा यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादित किया है कि शांत एक पृथक् रस है। अंत में औचित्य पर एक अध्याय है। इस ग्रंथ के एक परिशिष्ट में कन्नड के लक्षण ग्रंथों का आलोचनात्मक परिचय है।

प्रो० श्रीकंठय्या कन्नड के श्रेष्ठ आलोचक एवं सुधी चिंतकों में थे। उन्होंने इस ग्रंथ में यथापि भारतीय काव्यशास्त्र का ही परिचय दिया है तथापि अपनी ओर से कई मौलिक बातें भी कही हैं। रसानुभूति तथा शांतरस पर व्यक्त उनके विचार उनकी अपनी देन हैं। प्रो० श्रीकंठय्या कन्नड के श्रेष्ठ ग्रंथकारों में भी परिगणित हैं। उनमें विचारों की गंभीरता है किंतु कहीं भी वे बोझिल नहीं बनते। संस्कृत एवं प्राकृत के पद्यों का अत्यंत सरस काव्यानुवाद इनकी एक विशेषता है। उदाहरणों के चुनाव में लेखक ने अपनी सदभिरुचि का परिचय दिया है।

भारतीय संस्कृति कोश *(म० कृ०)*

इस कोश के संपादक पं० महादेवशास्त्री जोशी (दे०) हैं। संस्कृति व्यक्ति की नहीं, समाज की होती है। सामाजिक परंपराएँ युगों तक चिरायु रहती हैं, इन्हीं चिरंतन परंपराओं से भारतीय मानस को परिचित कराने के उद्देश्य से इस कोश का निर्माण हुआ है।

संस्कृति के ये तीन अंग माने जाते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। इन्हीं के आधार पर इसके भीतर बाह्य संस्कारों पर विश्वास, खेती, पशुपालन, अर्थ-वितरण आदि को आधिभौतिक वर्ग में भाग्यवाद, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना आदि आधिदैविक में तथा धर्म, तत्त्वज्ञान, नीति-नियम, साहित्य, संस्कार आध्यात्मिक वर्गों में रखा गया है। इस प्रकार सांस्कृतिक मूल्यों का यह कोश है। यह संदर्भ-ग्रंथ के रूप में निर्मित हुआ है।

भारती, सुब्रह्मण्य *(तं० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1921 ई०]

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म तिरुनेलवेली ज़िले के एट्टयपुरम् नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने अध्यापक के रूप में अपनी जीविका आरंभ की थी। राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिपूर्ण युग में जन्म लेने पर भी इन्होंने अनेक सुंदर भावपूर्ण कृतियों की सर्जना की है। इन्होंने अपनी स्फुट कविताओं में भारत देश, भारतवासी, तमिलनाडु, तमिल भाषा के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इन्होंने देश के लिए अपना तन, मन, धन अर्पित कर दिया था। इनकी कविताओं के विषय हैं—व्यक्तिगत, मुक्ति, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, समाज-सुधार, विश्व-बंधुत्व की भावना आदि। 'भारतियार कविदैहळ्' में इनकी स्फुट कविताएँ संगृहीत हैं। इन्होंने बच्चों के लिए कुछ उपदेशात्मक और राष्ट्रीय भावना-प्रधान कविताएँ लिखी हैं, जैसे—'ओडि विळैयाडु पापा', 'पुदिय आत्तिशूडि' आदि। 'कृष्णन् पाट्टु' (दे०) में कवि की कल्पना-शक्ति और भक्ति-भावना का परिचय मिलता है। कवि ने कण्णन् (कन्हैया) को आदर्श माता, पिता, स्वामी, सेवक, मित्र, बालक, प्रेमिका आदि रूपों में देखा है। 'पांचाली शपदम्' (दे०) एक प्रभावशाली रूपक काव्य है जो कि महाभारत के एक प्रसंग पर आधारित है। 'कुयिल पाट्टु' मधुर शैली में रचित एक प्रेम-प्रधान कृति है। इसमें कवि की कल्पना-शक्ति एवं कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। 'ज्ञानरथम्' गंभीर चिंतन-प्रधान, 'चंद्रिकैयिन कदै' भावना-प्रधान और 'नवतंदिर कदैहळ्' इनकी नीति-प्रधान कृतियाँ हैं। इन्होंने कुछ निबंधों की रचना भी की है। इन्हें अँग्रेज़ी, संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बँगला, फ्रेंच, तेलुगु, कन्नड आदि भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। इन्होंने टैगोर की कहानियों और 'भगवद्गीता' का तमिल में तथा अपनी कुछ कविताओं और 'दिव्य-प्रबंधम्' के कुछ पदों का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है। आधुनिक काल के तमिल कवियों में राष्ट्रीय कवि के रूप में इनका नाम अग्रगण्य है।

भारती, हृदय कौल *(कश्० ले०)* [जन्म—1937 ई०]

इन्होंने केवल कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 'तेह', 'शिकस्त' और 'आबनूसुक रूलर, जिगरॅच्य मिश त मिलि हुंद दःह' बहुत ही उच्च कोटि की कहानियाँ हैं। इनकी और अनेक कहानियाँ कश्मीरी पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं। ये अपनी कहानियों में प्रतीकों का भरपूर सहारा लेते हैं जिससे पाठक के मन में विचारों को उत्तेजना मिलती है। यंत्रीकृत कृत्रिम जीवन के प्रति इनके मन में कुंठा और आक्रोश है और यही किसी-न-किसी रूप में इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। इनकी भाषा में प्रवाह है और इनकी शैली में मार्मिकता एवं मौलिकता।

भारतेंदु हरिश्चंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1850 ई०; मृत्यु—1885 ई०]

इनका जन्मस्थान वाराणसी है। इनके पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चंद्र, उपनाम 'गिरधरदास' वल्लभ संप्रदाय के कृष्ण-भक्त वैष्णव थे। अपने पिता से इन्हें साहित्यिक रुचि दाय में प्राप्त हुई। देश-दर्शन ने इन्हें राजनीतिक और सामाजिक चेतना प्रदान की। जगन्नाथ जी की यात्रा के पश्चात् इन्होंने देशोत्थान के अनेक कार्यक्रम आरंभ किए जिनमें से अँग्रेज़ी विद्यालय की स्थापना और अनवरत साहित्य-सेवा का संकल्प उल्लेखनीय हैं। इन्होंने हानि उठाकर भी अनेक पत्रों का संचालन निजभाषा उन्नति के उद्देश्य से किया। हिंदी के अनेक साहित्यकार इनकी प्रत्यक्ष प्रेरणा और सहायता के लिए ऋणी हैं।

इन्होंने दो सौ से अधिक रचनाएँ लिखीं जिनमें नाटक और काव्य के अतिरिक्त सामाजिक उपयोग के इतिहास एवं पुरातत्त्व-संबंधी लेख आदि भी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) ने इनकी रचनाओं का संकलन 'भारतेंदु-ग्रंथावली' नाम से तीन खंडों में प्रकाशित किया है। मौलिक नाटकों में 'सत्य हरिश्चंद्र' (दे०), 'भारत-दुर्दशा' (दे०), 'विषस्य विषमौषधम्' आदि प्रसिद्ध हैं, और अनूदित नाटक कोरे अनुवाद न होकर रूपांतर हैं। नाटकों में विषय का वैविध्य दर्शनीय है। ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओं के साथ-साथ इन्होंने सामाजिक-राजनीतिक समस्याएँ प्रस्तुत करने वाली घटनाओं को भी अपने नाटकों का आधार बनाया है। भारतेंदु के काव्य में भक्ति एवं श्रृंगार की परंपरागत तथा देशभक्ति एवं समाजसुधार की युगानुकूल नवीन भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। गद्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने के बाद भी ये कविता में ब्रजभाषा के प्रयोग का समर्थन करते रहे। प्रयोग के लिए ही कुछ कविताएँ इन्होंने खड़ी बोली में लिखी हैं।

इस प्रकार इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। समय की गति को पहचानने की अद्भुत क्षमता इन्हें प्राप्त थी। ये युग-द्रष्टा साहित्यकार ही नहीं युग-नायक भी थे। अपनी प्रबुद्ध युग-चेतना के द्वारा इन्होंने हिंदी-साहित्य को ही नहीं पूरे देश की चेतना को एक नयी दिशा देने का स्तुत्य प्रयास किया। पुरातन के प्रति आकर्षित होकर भी ये नवयुग की शंखध्वनि को पूरी तन्मयता से सुनते रहे। भारतेंदु आधुनिक युग के सूत्रधार हैं।

भारतेर साधक *(बँ० कृ०)*

प्राचीन भारत का श्रेष्ठत्व उसके धर्मचिंतन में निहित है। सहस्रों वर्षों से भारतवर्ष के धर्म, समाज एवं संस्कृति की जीवन-जाह्नवी को जिन्होंने प्रवहमान रखा है, उन अध्यातमजीवन के दिशानिर्देशक योगियों, वेदांतिकों, तांत्रिकों तथा महान् साधक-समाज की विचित्र साधना एवं मतवाद को व्यक्तिगत जीवन की पटभूमिका में भक्त लेखक श्रीयुत प्रमथनाथ भट्टाचार्य ने शंकरनाथ राय के छद्म-नाम से इसमें प्रस्तुत किया है। 'भारतेर साधक' शीर्षक से अब तक दस खंडों में प्रकाशित इन ग्रंथों में भारतवर्ष के विभिन्न संप्रदायों के नाना साधकों की प्रामाणिक जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। 'भारतेर साधक' ग्रंथ के पूरक रूप में लेखक ने 'भारतेर साधिका' ग्रंथमाला की रचना शुरू की है। इसका पहला खंड (1971) में प्रकाशित हो चुका है। भारतवर्ष के धर्मचिंतन एवं धर्मनायकों के दिव्य-जीवन के इस नवप्रचार से लेखक ने समग्र देश के हृदय को जीत लिया है। 'भारतेर साधक' ग्रंथमाला को 1963 ई० में पश्चिम बंग सरकार से 'रवींद्र पुरस्कार' प्राप्त हुआ था।

भारवि *(सं० ले०)* [समय—600 ई० के आसपास]

भारवि संस्कृत के सुविख्यात कवि हैं। ऐहोल (अइहोड़) के शिलालेख में कालिदास (दे०) के साथ भारवि का नाम भी लिखा गया है। 'अवंति सुंदरी कथा' के अनुसार ये दक्षिण निवासी तथा चालुक्य-नरेश पुलकेशी द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन के सभापंडित थे।

इनकी केवल एक ही कृति प्राप्त होती है—'किरातार्जुनीयम्'। यह 18 सर्गों का महाकाव्य है। इसका कथानक 'महाभारत' (दे०) से लिया गया है। इसके नेता अर्जुन हैं और उन्हीं के चरित्र का उत्कर्ष दिखलाने के लिए किरातरूपधारी शंकर का वर्णन किया गया है। इसका प्रधान रस वीर है तथा श्रृंगारादि गौण।

भारवि अपने काव्य में अर्थगौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। ये थोड़े शब्दों में विपुल अर्थवैभव देने में निष्णात हैं। इनका प्रकृति-चित्रण भी मनोहारी है। 'किरात' के चतुर्थ सर्ग का शरद्वर्णन तो संस्कृत में बेजोड़ है। ये चित्रकाव्य लिखने में भी बड़े सिद्धहस्त हैं। चित्रकाव्य तथा श्लेष के कारण 'किरातार्जुनीयम्' एक क्लिष्ट काव्य बन गया है इसीलिए इसके टीकाकार मल्लिनाथ ने इनकी कविता की तुलना नारिकेल से की है। भारवि राजनीति के पंडित हैं। इनकी सूक्तियाँ संस्कृत विद्वानों की जिह्वा पर नाचती रहती हैं। भारवि की संसार-विषयक अनुभूति बड़ी प्रबल है। उनका राजनीति-ज्ञान भी शास्त्रीय नहीं व्यावहारिक है। अपनी कवित्व-शक्ति एवं नीतिज्ञता के कारण भारवि का संस्कृत-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भालण *(गु० ले०)* [समय—1434-1514 ई०]

मध्ययुगीन गुजराती आख्यान-काव्य-परंपरा के प्रवर्तक तथा भक्तियुग के महत्वपूर्ण रामोपासक कवि भालण पाटण के निवासी मोढ़ ब्राह्मण थे। इनका अपर नाम पुरुषोत्तम था।

भालण के नाम से प्राप्य कृतियाँ हैं—

'भीलडी-संवाद', 'सप्तशती', 'जालंधराख्यान', 'नळाख्यान' (प्रथम व द्वितीय), 'दुर्वासा आख्यान', 'मामकी आख्यान', 'राम विवाह', 'ध्रुवाख्यान', 'मृगी आख्यान', 'कृष्ण-विष्टि', 'कादंबरी', 'दशम-स्कंध', 'राम बालचरित', 'हर संवाद'। इनमें 'नळाख्यान' (दे०), 'दशमस्कंध' तथा 'कादंबरी' (दे०) विशेष प्रसिद्ध व लोकप्रिय रचनाएँ हैं। भालण ने ब्रजभाषा में कुछ फुटकर पद भी रचे थे। शिव पुराण, भागवत पुराण, महाभारत आदि इनकी रचनाओं के उपजीव्य ग्रंथ हैं।

गुजराती भाषा के लिए 'गुर्जर भाषा' संज्ञा का सर्वप्रथम प्रयोग भालण ने ही किया है। गुजराती में आख्यान-काव्यों की रचना का सूत्रपात भी भालण ने ही किया है। इन दो महत्वपूर्ण कारणों से भालण का गुजराती भाषा व साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान है।

भाव *(क० कृ०)*

तीन संपुटों में लिखा यह बृहत् ग्रंथ कर्णाटक के मूर्धन्य साहित्यकार कहानी-सम्राट मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे० मास्ति) की आत्मकथा है हालाँकि स्वयं उन्होंने इसे आत्मकथा स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में यह एक मनीषी की लोकयात्रा का सरस इतिहास है। मैसूर राज्य के कोलार ज़िले के मास्ति ग्राम में एक सात्विक श्रीवैष्णव परिवार में उनका जन्म हुआ है। उनके वंश में किसी सास ने अपनी बहू को बहुत सताया। उसके छुटपन में ही पति चल बसा तो बहू ने भी अपने दो नन्हे बच्चों को भूलकर पति का सहगमन किया और वह सती हो गई। उसी के कारण उस गाँव का नाम भी महासती—मास्ति—पड़ गया। स्वयं यह घटना एक कहानी जैसी मर्मस्पर्शिनी है। मास्ति जी हमारे सिद्धहस्त जन्मजात कहानीकार हैं। अतः इसमें कई ऐसी घटनाओं का समावेश है जिनमें कहानी की रोचकता है। मास्ति जी का जन्म जब हुआ तब तक उनका परिवार विगत वैभव खो चुका था। मास्ति जी परम मेधावी विद्यार्थी रहे और बाद में एक अत्यंत सफल, समर्थ राज्याधिकारी। यदि जातीय संकीर्णता आड़े न आती तो वे मैसूर राज्य के दीवान भी बनते। 1944 ई० में त्यागपत्र देकर उन्होंने शेष सारा जीवन साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया। इस ग्रंथ में मास्ति जी की अपनी जीवन-यात्रा के संदर्भ में कर्णाटक का क़रीब आठ साल का राजकीय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक इतिहास निरूपित है। मास्ति जी का कहना है कि इस लोकयात्रा में जो भाव उत्पन्न हुआ उसी को उन्होंने यहाँ लिपिबद्ध किया है। इन सारी घटनाओं के पीछे हमें एक सच्चे वैष्णव का, प्रपत्तिरत जीव का मार्मिक परिचय मिलता है। मास्ति जी साहित्यकार हैं। अतः हम जिसे मामूली धरती समझ कर पैरों तले रौंद देते हैं, वहाँ भी वे सपना देखते-दिखाते हैं। यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। सरल से सरल शैली में प्रबलतम अभिव्यक्ति मास्ति जी की सबसे बड़ी विशेषता है और इस दृष्टि से वे बेजोड़ हैं।

भाव *(सं०, हिं० पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य एवं काव्य-रस का मूलगत एवं केंद्रगत तत्त्व। मूल धातु 'भावय' से व्युत्पन्न भाव का सामान्य अर्थ है व्याप्त होना। काव्य-शास्त्र में भाव का अर्थ है चित्त-विकार या मनोविकार। किसी व्यक्ति, स्थिति, वस्तु अथवा घटना के कारण हृदय की विशिष्ट परिणति अथवा प्रतिक्रिया को 'भाव' कहा जा सकता है। रस (दे०)-सिद्धांत के अंतर्गत भाव मूल वस्तु है, इसी के आधार पर विभाव (दे०), अनुभाव (दे०), संचारी भाव (दे० व्यभिचारिभाव) आदि की प्रकल्पना की गई है।

'भाव' का विवेचन सर्वप्रथम भारती (दे०) ने किया है। उनके अनुसार 'भाव' रस के स्रोत हैं (ना०शा० 6138)। मम्मट (दे०) (बारहवीं शती ई०) ने 'भाव' के आधार पर 'रस-ध्वनि' (दे०) के अतिरिक्त 'भावध्वनि' की प्रकल्पना की है। उनके अनुसार देवादि से संबद्ध रति आदि स्थायी भावों के वर्णन और संचारियों की स्वतंत्र अभिव्यंजना में भावध्वनि होती है। परवर्ती आचार्यों में विश्वनाथ (दे०) ने भी इसका स्पष्ट आख्यान किया है। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के आधुनिक आचार्यों ने काव्यमीमांसा के संदर्भ में भाव को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावकविता (*ते० प्र०*)

अँग्रेज़ी साहित्य के संपर्क से अन्य देशी-भाषा-साहित्यों की तरह तेलुगु में भी अनेक नयी प्रवृत्तियों का जन्म हुआ है। यह पश्चिमी साहित्य-प्रभाव देशी भाषाओं के बहिरंग तथा अंतरंग—दोनों पक्षों पर पड़ा है। अँग्रेज़ी साहित्य में उन्नीसवीं शती के अंतर्गत 'रोमांटिक कविता' अत्यंत प्रचलित थी। इसी के प्रभावांतर्गत तेलुगु-कविता-क्षेत्र में उत्पन्न एक विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति ही 'भावकविता' के नाम से प्रसिद्ध हुई। बीसवीं शती के आरंभ से ही तेलुगु में भावकविता का प्रचलन तथा विस्तार होने लगा। रायप्रोलु सुब्बारावु (दे०) तथा देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री (दे०) जैसे प्रतिभासंपन्न कवियों की प्रेरणा से इसकी उल्लेखनीय प्रगति हो पाई है।

'रोमांटिक कविता' की तरह 'भावकविता' का लक्षण भी बहुत व्यापक है। कविता में प्रधानतः वस्तु अथवा कथानक, भाव तथा शैली प्रमुख होती है। उक्त तीनों के अंतर्गत जिसमें भाव की ही प्रधानता होती है वही स्थूल रूप से 'भावकविता' कही जाती है। अर्थात् कथानक या शैली संबंधी विशेषता की अपेक्षा भाव गौण नहीं होता। उसकी अभिव्यक्ति सीधी तथा प्रभावोत्पादक होती है। बहिरंग पक्ष के विवरण की अपेक्षा अंतरंग-पक्ष का विश्लेषण ही 'भावकविता' का ध्येय है। इसीलिए यह अन्य काव्यों की तरह परिमाण में विस्तृत नहीं होती। इसमें किसी भी कथानक का आदि से अंत तक ग्रहण नहीं किया जाता। भाव का विशेष महत्व रखने वाला अंश मात्र ही लिया जाता है। परंपरागत काव्यशास्त्र के नियमों का पालन करना 'भावकविता' के लिए न केवल अनावश्यक है बल्कि बाधक भी समझा जाता है। प्रकृति अथवा किसी भी घटना या वस्तु के बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति इस कविता का ध्येय है। इसका लेखक तटस्थ की तरह न होकर वर्ण्य-विषय में तल्लीन होकर रचना करता है। यह अधिकतर आत्माश्रयी होती है। इसीलिए कभी-कभी लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग होता है तथा अर्थ और भाव अपूर्ण और अस्पष्ट भी रह जाते हैं। इसकी विशेषता यह है कि आलंकारिक शैली से बोझिल या संकीर्ण न होकर भाव-प्रभावोत्पादक ढंग से सीधे अभिव्यक्त किए जाते हैं। इसमें कवि की आत्मानुभूति प्रकट होती है। 'भावकविता' के अंतर्गत विशेष रूप से प्रेम से संबद्ध रचनाएँ अधिक पाई जाती हैं। पर भक्ति, प्रकृति, प्रेम आदि से संबद्ध कई अन्य प्रकार की रचनाएँ भी इसके ही अंतर्गत आती हैं। रायप्रोलु सुब्बारावु, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री के अतिरिक्त अब्बूरि रामकृष्णरावु (दे०), नायनि सुब्बारावु (दे०), नंडूरि सुब्बारावु (दे०), विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०), वेदुल सत्यनारायण (दे०) आदि अत्यंत प्रतिभासंपन्न कवियों की रचनाओं के द्वारा तेलुगु-साहित्य में भावकविता ने अत्युच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

भावचिंतारत्न (*क० कृ०*) [रचना-काल—1513-1530 ई०]

सोलहवीं शती के प्रसिद्ध कवि गुब्बि मल्लणार्य की रचना 'भावचिंतारत्न' वार्धक षट्पदी में रचित चरितकाव्य है। चरितकाव्यों के निर्माण के उस युग में संस्कृत 'मार्ग' शैली से भिन्न 'देसी' शैली में रचित लक्षण-युत काव्यों में 'भावचिंतारत्न' का विशिष्ट स्थान है। उसमें कवि ने शिवलेंकमंचण्ण, श्रीपति पंडित और मल्लिकार्जुन पंडित—इन वीरशैव पंडित-त्रय' का स्तवन किया है।

कथानक की दृष्टि से विचार करने पर 'भावचिंतारत्न' कोई अनूठा काव्य प्रतीत नहीं होता, परंतु उसकी वर्णन-शैली में रम्यता है, आकर्षण है। उसमें उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग पदे-पदे द्रष्टव्य है। ऐसा लगता है कि कवि उत्प्रेक्षा का कायल है। उस आलंकारिक योजना में उनकी कल्पना की उड़ान भी देखते ही बनती है। रसपूर्ण चित्रों के द्वारा काव्य को संवेद्य बनाने की शक्ति कवि में है, यद्यपि एकाध स्थानों में उत्प्रेक्षालंकार के अनौचित्यपूर्ण प्रयोग के कारण रसभंग भी हुआ है। 'तिरुकोळविनाचि' के प्रसंग में करुण रस का अच्छा पोषण हुआ है। 'भावचिंतारत्न' गुब्बि मल्लणार्य के शुद्ध कन्नड-प्रेम (अर्थात् देसीप्रियता) तथा प्रौढ़-शैली का प्रमाण है।

भावनाडी, झमटमल खूबचंद (*सिं० ले०*) [जन्म—1905 ई०]

इनका जन्मस्थान हैदराबाद (सिंध) है और आजकल ये बंबई में रहते हैं। ये वकील हैं। कुछ वर्षों तक ये सिंधी के प्राध्यापक भी रह चुके हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं: 'सिंधी शइरु' (दो भाग), 'ढोला मारू', 'कामिल जो कलाम', 'पंज गंज'। इन्होंने काव्यशास्त्र के सिद्धांतों पर पुस्तकें लिखकर सिंधी-साहित्य में इस कमी की कुछ सीमा तक पूर्ति की है। सिंधी-साहित्य-जगत् में ये आलोचक और काव्यशास्त्र के ज्ञाता के रूप में विख्यात हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना संधि प्रकरण *(अप० कृ०)* [रचना-काल—तेरहवीं शती ई० के लगभग]

'भावना संधि प्रकरण' जयदेव (दे०) मुनि द्वारा रचित छह कड़वकों की छोटी-सी कृति है। प्रत्येक कड़वक में दस पद्य हैं। आदि और अंतिम कड़वक में मंगलाचरण और स्तुति संबंधी एक-एक पद्य अधिक है।

इस कृति का विषय नैतिक और धार्मिक जीवन का उपदेश है। संसार की दुःख बहुलता, वैराग्य-भावना, विषय-त्याग, मानव-जीवन की दुर्बलता, पाप-त्याग, पुण्य-संचय इत्यादि विषयों का ही लेखक ने उपदेश दिया है। संसार को इंद्रजाल बनाकर प्रिय मित्र, गृह, गृहिणी आदि सब संबंधों को मिथ्या बताया है। संसार के दुःख जिनवर-प्रतिपादित धर्मपालन से ही छूट सकते हैं। सुकृतोपार्जन-दुष्कृत-त्याग और सब जीवों के प्रति मैत्री-भावना के उपदेश के साथ यह कृति समाप्त होती है।

इस कृति की भाषा सरल है। सुभाषितों और मुहावरों का बीच-बीच में प्रयोग किया गया है।

भावप्रकाशन *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती]

शारदातनय के ग्रंथ 'भावप्रकाशन' का समय तेरहवीं शती सिद्ध होता है। नाट्यविषयक ग्रंथों में यह ग्रंथ अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अनेक अज्ञात रसाचार्यों के जैसे वासुकि, नारद, व्यास (दे० व्यास, बादरायण) आदि के मतों का निर्देश इस ग्रंथ में किया गया है। प्राचीन नाट्याचार्यों के इतिहास तथा मतों को जानने के लिए भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

इस ग्रंथ में दश अधिकार हैं जिनमें भाव, रस का स्वरूप, रस के भेद, नायक, नायिका, नायिका-भेद, शब्दार्थ-संबंध, नाट्येतिहास तथा शरीर, दशरूपक, नृत्यभेद तथा नाट्यप्रयोग का विवरण क्रमशः प्रस्तुत किया गया है। जैसाकि नाम से ही विदित होता है कि 'भावप्रकाशन' भाव तथा रस की विविध समस्याओं का सुझाव प्रस्तुत करने वाला विपुल एवं महत्वशाली ग्रंथ है। नाट्य संबंधी उपकरणों तथा उपादेय प्रभेदों का विवरण भी इसमें विस्तृत रूप से किया गया है। साथ ही नाट्य के व्यावहारिक रूप का भी सुंदर विवेचन किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि नाट्य तथा रस के विशिष्ट ज्ञान के लिए एक प्रामाणिक कोश की भाँति यह ग्रंथ अति उपादेय है।

भावानंद *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के प्रसिद्ध सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास 'मी' (मैं) का नायक भावानंद आपटे के समाज-सुधारक, आदर्श, देशभक्त पात्रों में मूर्धन्य है। शिवरामपंत जैसे आदर्श, कर्त्तव्यपरायण गुरु का यह शिष्य बचपन में अन्य साधारण बालकों के समान ही है, पर शनैः-शनैः यह तेजस्वी युवक समस्त सांसारिक सुख-वैभव को त्याग देश की मुक्ति को मोक्ष और देश के चिरकालिक हित को परमार्थ समझ संघर्ष में कूद पड़ता है। आदर्श देशभक्त युवक, पति और पिता होते हुए भी यह पात्र अविश्वसनीय नहीं हो पाया है क्योंकि शैशव के चित्र बालमनोविज्ञान पर आधारित हैं तो यौवन में सुंदरी के प्रति आसक्ति में उसकी मानवोचित दुर्बलता दिखाई गई है। इस प्रकार भावानंद मराठी के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों में शीर्ष-स्थान का अधिकारी है।

भावार्थरामायण *(म० कृ०)*

संत एकनाथ (दे०) और हिंदी-कवि संत तुलसीदास (दे०) का वाराणसी में परिचय हुआ था। दोनों समकालीन कवि थे। अतः तुलसी के राम और एकनाथ के राम प्रायः एक जैसे लोक-रक्षक अवतारी पुरुष बनकर दोनों के काव्यों में चित्रित हुए हैं। 'भावार्थरामायण' में 297 अध्याय हैं और 'रामायण' (दे०) के समान सात कांड हैं। एकनाथ ने पाँच कांड पूरे और छठे कांड के 44 अध्याय स्वयं रचे हैं, शेष उनके शिष्य गावबा ने, क्योंकि ग्रंथ-समाप्ति से पूर्व ही एकनाथ का स्वर्गवास हो गया था। इसके आधार-ग्रंथ हैं—'वाल्मीकि रामायण' (दे०), 'अध्यात्मरामायण' (दे०), 'भागवत' (दे०) और 'योगवाशिष्ठ'। मूल सामग्री प्राचीन काव्यों से ग्रहण करने पर भी इस काव्य की मौलिकता में संदेह नहीं हो सकता। इसका कथानक, पात्रों के संवाद, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, आदि में कवि की निजी काव्य-प्रतिभा की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। वातावरण के चित्रण में कवि की समकालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों की विषमता-गंभीरता का स्पष्ट आभास मिल जाता है। आध्यात्मिक भावों और काव्य-गुणों का मणिकांचन योग इस रचना की महत्वपूर्ण विशेषता है। कवि की यह अंतिम रचना है, अतः इसमें विचारों की गंभीरता, भावों की परिपुष्टता और शैली की परिपक्वता इसमें मिलती है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ महाकाव्य के मूलभूत गुणों तथा गरिमा से मंडित है।

भावे, पु० भा० *(म० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

प्रणय-भावना की विविध और सूक्ष्मतम झाँकियों का प्रभावशाली चित्रण करने वाले श्री भावे की कहानियों में कल्पना-विलास की अपेक्षा उत्कट भावना ही अधिक है। मानव-जीवन में काम-वृत्ति और प्रणय का विशिष्ट महत्व बताते हुए इन्होंने असत्याचरण, दंभ, ढोंग आदि की कलई खोली है। व्यक्ति के मन में होने वाले संघर्ष एवं प्रतिक्रियाओं का रसभीना और प्रभावोत्पादक चित्रण करने में ये अप्रतिम हैं। कहीं-कहीं शृंगार के उत्तान चित्र होते हुए भी इनकी कहानियों में भव्य और उदात्त तत्त्व मिलते हैं। इनकी कहानियों की भाषा ओजपूर्ण, रसभीनी और प्रभावोत्पादक है।

प्रमुख कथा-संग्रह—'पहला पावस', 'सात मजले', 'तपस्वी'।

भावे, विनोबा *(म० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

ये सर्वोदय नेता एवं भूदान-यज्ञ के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं। वेद (दे० संहिता), 'उपनिषद' (दे०), 'गीता' (दे०) और भारतीय संत-साहित्य का इन्होंने गहरा मंथन किया है।

'साहित्य के क्षेत्र में अध्यात्मप्रवण, सद्वृत्तिप्रेरक नैतिकतावादी निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके निबंधों में उदात्त जीवन-दृष्टि प्रतिफलित है। जीवन में और साहित्य-लेखन दोनों में इन्होंने कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के समन्वय पर बल दिया है।

जैसे मकान में एक कमरा हवादार होने से लाभ नहीं—सारे कमरे हवादार होने चाहिए, वैसे ही विनोबा जी के अनुसार धर्म स्वतंत्र नहीं है; व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार धर्म से पुष्ट होना चाहिए।

इन्होंने 'गीता प्रवचन', 'स्वराज्यशास्त्र', 'स्थितप्रज्ञदर्शन', 'विचारपोगी', 'ईशावास्यवृत्ति' जैसे गंभीर विचारोत्तेजक ग्रंथ लिखे हैं। ये संत-साहित्य के मार्मिक विवेचक हैं। इन्होंने 'गीताई' नाम से 'भगवद्गीता' का काव्यबद्ध अनुवाद भी किया है। 'गीताई' को विनोबा जी अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं। 1923-1928 ई० तक वर्धा से प्रकाशित 'महाराष्ट्र धर्म' साप्ताहिक पत्र के संपादक रहे हैं। 'हरिजन' तथा 'ग्राम-सेवावृत्त' पत्रों में भी इनके निबंध प्रकाशित हुए हैं। 'मधुकर', 'जीवन-दृष्टि', 'क्रांतदर्शन' तथा 'सिंहावलोकन' इनके चार निबंध-संग्रह हैं।

निबंधों में मौलिक विचार सुबोधता से ग्रथित हैं। ये सत्यान्वेषी साहित्यकार हैं।

भाषाकौटलीयम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई०]

चाणक्य के अर्थशास्त्र के इस प्राचीन मलयाळम गद्यानुवाद के रचयिता के संबंध में कोई सूचना नहीं है। मलयाळम के अभी तक प्राप्त गद्य-ग्रंथों में यह प्राचीनतम है। इसकी भाषा तमिल से मलयाळम की ओर साहित्यिक भाषा के संक्रमण का द्योतन करती है और इसे हम तत्कालीन जनभाषा के निकट मान सकते हैं। इसमें तमिल और मलयाळम के किसी व्यवस्थित सम्मिश्रण का अभाव है जिससे यह सिद्ध होता है कि भाषा का कोई मानक रूप तब तक विकसित नहीं हुआ था। किसी प्रादेशिक भाषा में 'कौटलीय अर्थशास्त्र' के प्रथम अनुवाद के रूप में भी इसका महत्व है।

भाषाचंपु-प्रस्थानम् *(मल० पारि०)*

शुद्ध मलयाळम भाषा में गद्य-पद्य मिश्रित कई काव्य लिखे गये हैं और वे भाषाचंपू नाम से प्रसिद्ध हैं। मणि-प्रवाळ (दे०) पद्धति में लिखे काव्य 'मणिप्रवाळ-प्रस्थानम्' के अंतर्गत आते हैं। उसी प्रकार 'भाषाचंपू-प्रस्थानम्' में कई चंपू-ग्रंथ केरली के भूषण हैं। वस्तुतः 'मणिप्रवाळ-प्रस्थानम्' रूपी मधारवृक्ष के मधुर नाम तथा सुंदर फल—भाषाचंपू-ग्रंथ ही हैं।

चंपू-ग्रंथों के युग को साहित्येतिहास-ऋतुओं में वसंत कहने में जरा भी अत्युक्ति न होगी। अधिकांश कृतियाँ वीर तथा शृंगार रस की हैं। हास्य रस भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। 'उण्णियच्चिचरितम्', 'उण्णियाटिचरितम्', 'रामायण चंपु' आदि ग्रंथ प्रस्तुत पद्धति के वरेण्य फल हैं।

भाषानैषधचंपू *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह मषमंगलम् (दे०) (महिषमंगलम्) नारायणन् नंपूतिरि का मणिप्रवाळ (दे०) काव्य है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिवृत्त नलोपाख्यान की कथा है। कवि ने इस कथा को अपनी ही कल्पना के अनुसार स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किया है।

साहित्यिक गुणों की दृष्टि से 'भाषानैषधचंपू' को मणिप्रवाळ चंपू काव्यों में सर्वोत्तम माना गया है। इसकी भाषा सुविकसित मणिप्रवाळ है। 'भाषा रामायण चंपू' की तरह इसमें भी सामाजिक विडंबनात्मक हास्य का सफल प्रयोग हुआ है। मषमंगलम् संस्कृत के भी विख्यात कवि और आचार्य थे और इसका प्रभाव भी 'भाषानैषध चंपू' की काव्य-गुण-संपन्नता का कारण हुआ है। चंपू-काव्यों में नैषध का स्थान अद्वितीय है।

भाषा-भगवद्गीता *(मल० कृ०)*

प्रस्तुत कृति भारतीय भाषाओं में भगवद्गीता का पहला रूपांतर है। रचयिता कवि हैं निरणम् (दे०) माधव पणिक्कर और रचना-काल पंद्रहवीं शती है। इसमें मूल भगवद्गीता के सात सौ पद्य 324 पद्यों में अनूदित किये गये हैं। भाषा सुंदर और मूल ग्रंथ के अनुरूप है। अनुवादक ने सर्वत्र मूलग्रंथ का अनुसरण कर उसके साथ पूर्ण न्याय करने का प्रयत्न किया है।

भाषाभगवद्दूत *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1892 ई०]

'भाषाभगवद्दूत' नटुवत्तु अच्छन् नंपूतिरि (दे०) द्वारा संस्कृत-नाटकों की शैली में रचित मौलिक नाटक है। इसकी कथावस्तु भगवान श्रीकृष्ण के पांडवों के दूत बनकर अर्धराज्य की माँग करने के लिए कौरव-सभा में जाने और वहाँ विश्वरूप के प्रदर्शन करने का संदर्भ है। इसकी वेण्मणि-शैली का नवीन मणिप्रवाळ (दे०)-रूप है। संस्कृत-शैली के मौलिक नाटकों में इसका स्थान प्रमुख है।

भाषाभारतम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1904 ई० से 1907 ई० तक]

लेखक—कुञ्ञिक्कुट्टन् तंपुरान्। श्री कुञ्ञिकुट्टन् तंपुरान् कोटुङ्ङल्लूर् नामक प्राचीन केरलीय नगर के राजमहल के सदस्य थे। 'तंपुरान्' का अर्थ ही 'राजपरिवार का सदस्य' है। इस राजमहल में अनेक केरलीय कवि एवं विद्वान रहे हैं। उळ्ळूर् (दे०) के शब्दों में ऐसी सरणियाँ दुर्लभ हैं जिनमें तंपुरान् ने अपनी कुशलता न दिखाई हो। इनकी कृतियों में मौलिक भी हैं, अनुवाद भी। काव्य, रूपक, गाथा, शास्त्रीय ग्रंथ आदि अनेक विधाओं को इन्होंने समृद्ध किया है। ये इतने कुशल आशुकवि थे कि सामान्य पत्र तक कविता में ही भेजते थे। यद्यपि इनकी कई रचनाएँ प्रसिद्ध हैं तथापि उन सबमें मूर्धन्य स्थान 'भाषाभारतम्' का ही है।

जिस 'भारतम्' के विशाल कलेवर के कारण उसके एक व्यक्तित्व की रचना होने में भी संदेह किया जाता है उसी का पूरा-पूरा पद्यमय अनुवाद तंपुरान् ने चार वर्ष के भीतर प्रस्तुत कर दिया। मौखिक अनुवाद-कला पर उनका स्तुत्य अधिकार था। तंपुरान् ने पहले सोचा था कि 'भारत' का अनुवाद सम्मिलित रूप से हो। लेकिन वह योजना सफल न होने पर उन्हें अकेले ही वह दायित्व वहन करना पड़ा।

'भारत' का अनुवाद प्रायः निर्दोष और सफल है। अनुवादक ने संस्कृत-छंद में ही अनुवाद किया है। एक-एक पद्य का अनुवाद एक-एक पद्य में है। प्रारंभ में इस विशाल ग्रंथ का प्रकाशन मासिक अंकों के रूप में हुआ। कालांतर में बृहत् ग्रंथ के रूप में यह प्रकाशित किया गया। अपनी इस विलक्षण प्रतिभा के कारण ही वे केरल-व्यास कहलाये।

भाषाभूषण *(हिं० कृ०)*

महाराजा जसवंतसिंह (दे०) द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ संभवतः रीतिकाल का पहला अलंकार-निरूपक ग्रंथ है, जो कि जयदेव-प्रणीत 'चंद्रलोक' (दे०) की शैली पर लिखा गया है और फिर इसी शैली का अनुकरण अनेक आचार्यों ने किया है। यद्यपि लक्षण और उदाहरण को एक ही दोहे में प्रस्तुत किया गया है, फिर भी, शैली सरल एवं सुबोध है। इसमें कुल 21 दोहे हैं। ग्रंथ के बहुभाग में अलंकारों का निरूपण है। ध्वनि, रस, नायिका-भेद आदि की सामान्य चर्चा है। लक्षण-भाग अनूदित है, किंतु उदाहरण प्रायः मौलिक एवं सरस हैं। अपने समय में यह एक प्रसिद्ध पाठ्य-ग्रंथ रहा होगा।

भाषामिश्रम् *(मल० पारि०)*

मलयाळम की प्राचीन कृतियों की मिश्र साहित्यिक भाषा जिसकी एक शाखा तमिल और मलयाळम के मिश्रण के रूप में और दूसरी शाखा तमिल और संस्कृत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्रण के रूप में प्रचलित थी।

'रामचरितम्' (दे०) और पाट्टु (दे०) शैली की अन्य रचनाएँ तमिल मिश्र शाखा में आती हैं। 'रामचरितम्' में तमिल और मलयाळम के व्याकरण-नियमों का समान अनुपात में सम्मिश्रण हुआ है, जो आगे चलकर निरणम् (दे०) कवियों की सुसंस्कृत मलयाळम में परिणत हुआ।

संस्कृत और मलयाळम का भाषा-मिश्रण प्राचीन चंपूकाव्यों की भाषा है जो आगे चलकर मणिप्रवाळम् (दे०) के रूप में विकसित हुआ। संस्कृत-मिश्र शाखा के कवि न केवल संस्कृत-विभक्त्यंत-रूपों का प्रयोग करते थे, वरन् मलयाळम के पदों को भी संस्कृत-व्याकरण के अनुसार ढालते थे। साहित्य के पोषण में इस शाखा का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

भाषारामायणचंपू *(मल० कृ०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

यह पुनम् (दे० नंपूतिरि) का मणिप्रवाळ चंपू है। इसमें 'रामायण' की कथा बीस भागों में कही गई है, जिसमें उत्तर कांड भी सम्मिलित है। 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) ही कवि का आधार-ग्रंथ है, पर यथोचित संक्षेपण और विस्तार यथास्थान किया गया है। 'उत्तर-रामचरित' (दे०) आदि ग्रंथों से भी प्रेरणा ग्रहण की गई है।

यह काव्य मलयाळम के चंपू-काव्यों की परंपरा में नये मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है। इससे पहले चंपू-काव्यों के इतिवृत्त नायिका-प्रशस्ति पर आधारित होते थे। 'भाषारामायणचंपू, के प्रसाथ ही पुराण-सिद्ध कथावस्तुओं को चंपू-काव्यों में स्थान मिला था। इस काव्य में उत्तम मणिप्रवाळ का प्रयोग हुआ है। 'भाषारामायणचंपू' की रीति, वृत्ति, शय्या, पाक आदि काव्य-तत्त्व और ओज, कांति आदि गुण प्रशंसनीय हैं। इस काव्य में हास्य रस का सफल प्रयोग हुआ है और यह बाद में चंपूकारों, और कुंचन (दे०) नंपियार आदि कवियों के लिए इस दिशा में मार्गदर्शक रहा है।

'भाषारामायणचंपू' मलयाळम की मणिप्रवाळ (दे०) शाखा की उत्तम कृतियों में एक है।

भाषाविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषा उच्चारण-अवयवों से उच्चरित ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान होता है। इस भाषा का सैद्धांतिक तथा प्रायोगिक अध्ययन भाषाविज्ञान में किया जाता है। भाषाविज्ञान की मुख्य शाखाएँ हैं: 'ध्वनिविज्ञान', 'शब्दविज्ञान', 'रूपविज्ञान', 'वाक्यविज्ञान' तथा 'अर्थविज्ञान'। इनके अतिरिक्त भाषा की उत्पत्ति; भाषा, उपभाषा, बोली, उपबोली, आदि भाषा के विविध रूप; भाषा में परिवर्तन के कारण; विश्व की भाषाओं का पारिवारिक संबंध तथा रचना आदि की दृष्टि से वर्गीकरण। सर्वेक्षण-पद्धति, लिपिविज्ञान तथा कोशविज्ञान आदि के बारे में भी भाषाविज्ञान में विचार किया जाता है। भाषाविज्ञान की कुछ नयी शाखाएँ शैलीविज्ञान, समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान आदि हैं। भाषाविशान चार प्रकार का होता है। एककालिक भाषाविज्ञान में किसी भाषा के किसी एक काल की संरचना का अध्ययन होता है। इसे 'संकालिक भाषाविज्ञान' भी कहते हैं। 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान', जैसाकि नाम से स्पष्ट है, भाषा के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से संबद्ध होता है। 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' में दो या अधिक भाषाओं की तुलना की जाती है तथा समानताओं-असमानताओं का अध्ययन-विवेचन किया जाता है। इसे अब प्राय: 'व्यतिरेकी (Contrastive) भाषाविज्ञान' कहते हैं। प्रायोगिक भाषाविज्ञान में अनुवाद, भाषाशिक्षण (मातृभाषा, अन्य भाषा, विदेशी भाषा), कोश-निर्माण, पाठ्य-पुस्तक-निर्माण, आशुलिपि-निर्माण, व्याकरण-निर्माण, वाणी-दोष-सुधार, टाइपराइटर-कुंजीपटल आदि के लिए भाषा का विश्लेषण किया जाता है।

भास *(सं० ले०)* [समय—चौथी-पाँचवीं शती ई० पू० अथवा ईसा की तीसरी शती]

भास संस्कृत के प्रथम नाटककार हैं। कालिदास (दे०) के समय में इनके नाटक अत्यंत लोकप्रिय हो चुके थे। अपने प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) में कालिदास ने कई नाटककारों के नाम गिनाए हैं, उनमें भास का नाम प्रथम है। इनके वंश-परिचय तथा जीवन-वृत्त के संबंध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं। कुछ लोग इनको उदयन (दे०) की कथा को अपने नाटकों का वृत्त बनाने के कारण उज्जयिनी निवासी बतलाते हैं। इनके भरत-वाक्यों में 'रार्जासह' पद आने के कारण कतिपय विद्वान् इनको इसी नाम के किसी समय राजा का आश्रित मानते हैं। पर इन बातों का कोई निश्चित प्रमाण नहीं उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता।

काफ़ी समय तक हमें भास के नाटकों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था। 1909-10 ई० में म० म० गणपति शास्त्री को भास के तेरह रूपक मिले जिनको उन्होंने 'अनंतशयन' संस्कृत-ग्रंथावली में प्रकाशित करवाया।

इनके तेरह रूपकों में से 'अविमारक' (दे०), 'उरुभंग' (दे०), 'स्वप्रवासवदत्तम्' (दे०), 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' (दे०), 'प्रतिमा' (दे०), 'चारुदत्त', 'दूतवाक्य' (दे०), 'कर्णभार' (दे०) तथा 'मध्यमव्यायोग' (दे०) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ नाटकों की कथावस्तु का मूल स्रोत 'महाभारत' (दे०) है, कुछ का 'रामायण' (दे०) और कुछ का अर्द्ध-ऐतिहासिक घटनाएँ तथा दंतकथाएँ।

इनके अधिकांश नाटक रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं। इनमें से कुछ तो नाटक की कोटि में आते हैं, कुछ एकांकी हैं। इन सभी रूपकों से 'नाट्यशास्त्र' (दे०) द्वारा निर्दिष्ट सभी तत्त्वों का समुचित समावेश हुआ है। उनके कथानक घटनाप्रधान तथा अंतर्द्वंद्व से युक्त हैं। प्रत्येक रूपक की कथावस्तु कतिपय सार्थक घटनाओं द्वारा इस प्रकार उद्घाटित एवं विकसित की गई है कि क्रियाशीलता के साथ उसमें रस की पुष्टि भी समुचित रूप से होती गई है। ये वर्णनचातुर्य एवं नाट्यनैपुण्य में बेजोड़ हैं। इनके पात्र बड़े जीवंत हैं। अपने पौराणिक पात्रों को इन्होंने वास्तविकता एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ चित्रित कर बड़ा प्रभावोत्पादक बना दिया है। इनके रूपकों के संवाद बड़े चुस्त, संक्षिप्त, सहज तथा नाटकीय दृष्टि से प्रभावजनक हैं।

भास्कर *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—900 ई०]

उदयन ने 'न्यायकुसुमांजलि' (दे०) के अंतर्गत भास्कर का उल्लेख किया है। भट्टोजिदीक्षित (दे०) ने 'तत्त्वविवेक टीका-विवरण' के अंतर्गत भट्ट भास्कर का संकेत किया है। पद्मपादाचार्य की 'विज्ञानदीपिका' की विवृति में भी इनका उल्लेख है। वाचस्पति मिश्र (दे०) ने 'भामती' में भी इनका उल्लेख किया है। इस प्रकार ये शंकराचार्य (दे०) के समसामयिक या किंचित् परवर्ती सिद्ध होते हैं। इनकी प्रमुख रचना 'भाष्करभाष्य' है। इसके अतिरिक्त 'छांदोग्योपनिषद्' की एक व्याख्या भी भास्कर-रचित बतलाई जाती है।

भास्कराचार्य का प्रमुख सिद्धांत 'भेदाभेदवाद' है। भास्कर का सिद्धांत था कि जीव संसार-दशा में परमात्मा से भिन्न है, किंतु मोक्ष-दशा में जीव परमात्मा ही में लीन हो जाता है। इस प्रकार जीव और परमात्मा में भेद तथा अभेद दोनों हैं। भास्कर ने ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद को भी स्वीकार किया है। इस सिद्धांत के अनुसार मुक्ति के लिए ज्ञान एवं कर्म दोनों की ही आवश्यकता है। मुक्ति के लिए जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त्यर्थ शम, दम आदि की आवश्यकता है उसी प्रकार आश्रम कर्मों का संपादन भी आवश्यक है। कर्म का त्याग किसी भी दशा में असंभव है। इसीलिए भास्कर ज्ञान एवं कर्म के समुच्चय से मोक्ष की प्राप्ति स्वीकार करते हैं। भास्कराचार्य ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद को ही 'ब्रह्मपुत्र' (दे०) का प्रतिपाद्य विषय मानते हैं।

भास्करन्, पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

मलयाळम के यशस्वी कवि, फ़िल्म-निर्देशक और अभिनेता। आरंभ में ये साम्यवादी दल के कार्यकर्ता रहे, बाद में आकाशवाणी में नौकरी कर ली और आजकल फ़िल्म-उद्योग से संबद्ध हैं। इनके फ़िल्मी गीत लोकप्रिय हैं। इनके निर्देशन में तैयार की गई फ़िल्मों को अखिल भारतीय पुरस्कार मिले हैं। 'ओर्कुक वळ्कप्पो षुम्', 'वयलार गार्जिकुन्नु', 'मुळ्किरीटम्' आदि इनकी प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ हैं।

भास्करन् ने चङ्ङंपुषा (दे०) की तरह संगीतात्मक शैली में भावपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। मानवीय शोक-भावना को उत्तरोत्तर विकास के द्वारा चरम परिणति पर पहुँचा देने का कौशल इनमें है। इन्होंने क्रांतिकारी रचनाएँ भी लिखी हैं।

चङ्ङंपुषा की काव्य-शैली को उसकी सभी विशेषताओं के साथ और अधिक व्यंजना-गर्भित कर देने वाले भास्करन् का स्थान काव्य-साहित्य में अक्षुण्ण है।

भास्कर भट्ट *(मल० ले०)*

महानुभाव पंथ के प्रमुख कवियों में इनकी गणना होती है। इनकी रचनाएँ हैं—'शिशुपाल-वध' (दे०), 'विरहाष्टक'। ये दोनों क्रमशः श्रृंगाररस और शांत रस से परिपूर्ण काव्य हैं। मराठी में 'निर्यमक' पद्य के ये प्रवर्तक हैं। 'कृष्णचरित्र' लिखकर इन्होंने मराठी गद्य को भी परिपुष्ट किया है। भास्कर के काव्य में विद्वत्ता, कवित्व और भक्ति का त्रिवेणी-संगम था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास्कररामायणमु *(ते० कृ०)*

'भास्कररामायणमु' तेलुगु-साहित्य का एक मूर्धन्य महाकाव्य है जिसका पारायण तेलुगु प्रदेश में बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है। इसकी कथावस्तु वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) से ली गई है और इसे अधिकांश में उसी का अनुवाद माना जा सकता है। परंतु, इसमें अवाल्मीकीय प्रसंगों को भी प्रश्रय दिया गया है और इसके निर्माण में कवियों ने अपनी मौलिक प्रतिभा से काम लिया है। यह बात तेलुगु-साहित्य के 'महाभारत' (दे० आंध्रमहाभारत) आदि बृहद् काव्यों के विषय में सत्य है कि वे केवल अनुवाद ही नहीं प्रतिभावान् कवियों ने उनमें अपनी मौलिक प्रतिभा का भी प्रयोग किया है। इससे वे अनुसृष्टि में परिणत हो गये हैं। 'भास्कररामायणमु' के विषय में भी यह बात सत्य है कि यह वाल्मीकि-'रामायण' की एक महान् अनुसृष्टि है।

'भास्कररामायणमु' का प्रणयन चार कवियों के द्वारा संपन्न हुआ है। ये कवि थे—(1) हुलक्कि भास्करुडु (दे०), (2) मल्लिकार्जुन भट्टु, (3) कुमार रुद्रदेवुडु तथा (4) अय्यलार्युडु।

रचनाक्रम इस प्रकार है—(1) बालकांड : मल्लिकार्जुन भट्टु, (2) अयोध्या कांड : कुमार रुद्रदेवुडु, (3) अरण्य कांड : भास्कर कवि, (4) किष्किधा कांड : मल्लिकार्जुन भट्टु, (5) सुंदरकांड : मल्लिकार्जुन भट्टु, (6) युद्धकांड : 1139 छंदों तक हुलक्कि भास्करुडु तथा 1140 से लेकर अंत तक अय्यलार्युडु।

इनमें मल्लिकार्जुन भास्कर कवि के पुत्र थे। कुमार रुद्रदेव भास्कर के शिष्य थे तथा अय्यलार्य उनके मित्र थे। बाकी तीनों कवि भास्कर से अत्यंत प्रभावित थे। कुल मिलाकर 'भास्कररामायणमु' में पिता और पुत्र की रचना सर्वाधिक है। अतएव इसका नाम 'भास्कर-रामायण' पड़ा होगा। 'भास्कररामायणमु' में कुल छंदों की संख्या 6081 है जिनमें से पिता और पुत्र का रचना-परिमाण 4064 छंदों का है।

वैसे चारों कवियों की काव्यशैली संस्कृत-शब्द-निविड, सालंकृत तथा मनमोहक है फिर भी भास्कर के अनंतर, उनके पुत्र मल्लिकार्जुन को ही वरेण्य स्थान प्राप्त है।

रसनिर्वाह तथा नाटकीय संवादों की रचना में भास्कर ने बड़ी कुशलता दिखाई है। रावणापहृता सीता का क्रंदन 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' वाली शैली में भास्कर ने किया। राम की सीता वियोग-वेदना भी बहुत ही करुणाजनक है। सौंदर्यवर्णन भी भास्कर ने बड़ी सुरुचि के साथ किया। श्रीराम का सौंदर्यवर्णन शूर्पणखा के शब्दों में बड़ा ही हृदयहारी रहा है। अन्य कवियों की शैली भी कमनीय है। कुल मिलाकर 'भास्कर-रामायणमु' कदलीपाक-समन्वित है। शब्दालंकारों में अनुप्रास की छटा पदे-पदे अनुभूयमान है।

भास्करुडु, हुलक्कि *(ते० ले०)*

तेलुगु-साहित्य में अत्यंत प्रसिद्ध 'भास्कररामायणमु' (दे०) हुलक्कि भास्करुडु के नाम पर ही प्रसिद्ध हुआ है। हुलक्कि भास्कर अथवा हलक्कि भास्कर के जीवनवृत्त के विषय में निर्विवाद तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। अनुश्रुति के अनुसार भास्कर का वंशनाम मंगलपल्लि है। राजा के आदेशानुसार कविता सुनाने पर राजा ने इन्हें तांबूल प्रदान किया था। कन्नड में तांबूल को हुलक्कि कहते हैं। तभी से इनका नाम हुलक्कि भास्कर हो गया।

हुलक्कि भास्कर का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ समालोचकों के अनुसार 'भास्कररामायणमु' के मूल प्रणेता मंत्रि भास्कर थे जो महाकवि तिक्कना (दे०) के पितामह थे। परंतु इस मत के पीछे अनावश्यक अभिमान और दुराग्रह अधिक है, ऐतिहासिक सत्य कम। अतः अब प्रायः यह मत स्वीकृत है कि हुलक्कि भास्कर ही 'रामायण' के प्रधान प्रणेता थे और मंत्रि भास्कर से 'रामायण' का कोई संबंध नहीं है।

हुलक्कि भास्कर ने अपनी कृति को अपने आश्रयदाता राजा साहिणी मारन्ना को समर्पित किया। साहिणी मारन्ना तेरहवीं तथा चौदहवीं शतियों के संधिकाल में विद्यमान एक सामंत था। 'भास्कररामायणमु' एककर्तृका कृति नहीं हैं, बहुकर्तृका है। भास्कर कवि ने इसके प्रणयन में अपने पुत्र, छात्र तथा मित्र का भी योगदान स्वीकार किया। इस प्रकार 'भास्कररामायणमु' चार कवियों द्वारा रची गई है।

हुलक्कि भास्कर ने अरण्य कांड तथा युद्ध कांड का लगभग आधा भाग लिखा था। इनका रचना-परिमाण कुल 1874 छंदों का है। अरण्य कांड को इन्होंने दो आश्वासों में लिखा है। इसकी छंद-संख्या 784 है। भास्कर कवि अपने कथनानुसार 'सकलसुकविजन-विनुत यशस्कर भास्कर थे। इससे पता चलता है कि कवि के रूप में इनकी मान्यता बहुत थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की कविता-शैली मनोज्ञ है। वह वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) का अनुवाद होते हुए भी कोरा अनुवाद नहीं है। कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर वर्णनों में मौलिकता का भी परिचय दिया है। यही नहीं, अपने काव्य में नये कथांशों को भी प्रश्रय दिया जो वाल्मीकि-'रामामण' में नहीं है। भास्करुडु पर जयदेव (दे०)-कृत 'प्रसन्नराघव' (दे०) का और अन्य रामायणीय कृतियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भिंगारे, लक्षमण महादेव *(म० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

इनका जन्म उत्तर सातारा के भिलवड़ी नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने विलिंग्डन कॉलेज, सांगली तथा पूना के फर्ग्युसन कॉलेज में महाविद्यालयीन शिक्षा प्राप्त की थी। 'हरिभाऊ-चरित्र व वाङ्मय समीक्षण' पर इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। आजकल कोल्हापुर में गोपाल कृष्ण गोखले कॉलेज में प्राध्यापक हैं।

'लवणाची मासोळी' नामक इनका उपन्यास प्रकाशित हो रहा है। साहित्य-संबंधी आलोचनात्मक परीक्षण 'टीकालेख-संग्रह' में संकलित है।

ये स्वातंत्र्योत्तर काल के साहित्यकार हैं।

भीम *(गु० ले०)* [समय—1485 ई० के आसपास]

ये प्राचीन जैनेतर वार्ताकार थे। इन्होंने 'सदयवत्स चरित' लिखा, जिसमें प्रसिद्ध लोक-वार्ता को काव्योपयोगी बनाकर प्रस्तुत किया गया है। ठाकर असाई (दे०) के बाद लोक-वार्ता के क्षेत्र में भीम बड़े उल्लेखनीय कवि हैं।

600 पंक्तियों में रचित इस काव्य में सदेवंत सावळिंगा की कथा का सुंदर निरूपण है। इस प्रणय-कथा में वीर, श्रृंगार व अद्भुत रसों की योजना उत्तम और आकर्षक है। इसमें मात्रिक, वर्णिक एवं कहीं-कहीं गेय छंदों का प्रयोग भी है।

प्राचीन पद्य-वार्ताकारों में भीम महत्वपूर्ण कवि हैं।

भीम *(सं० पा०)*

यह राजा पांडु के पाँच पुत्रों में से एक था तथा इसकी माता का नाम कुंती (दे०) था। 'महाभारत' (दे०) के प्रमुख पात्रों में इसका विशेष स्थान है। यह अत्यंत बलवान् तथा बाल्यकाल से उद्दंड था। अन्य भाइयों के साथ इसने भी द्रोणाचार्य से अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी। गदा-युद्ध में अति निपुण था। इसके बल-शौर्य की बहुत-सी चमत्कार-पूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध हैं। दुर्योधन (दे०) और इसके बीच आजीवन कलह बना रहा। एक बार दुर्योधन ने इसे सोते समय गंगा नदी में फेंक दिया था। लाक्षागृह से बचकर शीघ्रातिशीघ्र भाग निकलने में इसने अपने परिवार के लोगों की सर्वाधिक सहायता की थी। हिडिंब राक्षस का वध कर इसने कुंती के परामर्श से हिडिंबा राक्षसी के साथ विवाह किया तथा इससे उसे 'घटोत्कच' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी होने के नाते इसकी भी पत्नी थी। इसने बकासुर का वध कर एकचक्रा नगरी की सुरक्षा की। जरासंध का भी इसने वध किया था। युधिष्ठिर (दे०) की आज्ञा से इसने पूर्व दिशा की ओर जाकर अनेक राजाओं को परास्त किया। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर इसने पाठशाला के अधिपति के रूप में कार्य किया। द्रौपदी (दे०) के चीर-हरण के समय दुःशासन (दे०) की उच्छृंखलता का बदला चुकाने के लिए इसकी बायीं जाँघ तोड़ने और उसकी छाती फाड़कर उसका रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी, जिसे इसने महाभारत-युद्ध में पूरा किया। कुबेर ने भूलवश इससे विरोध किया था, किंतु बाद में इसका अति आदर-सत्कार किया। इसने द्रौपदी का हरण करने वाले जयद्रथ और उस पर बलात्कार करने वाले कीचक का वध किया। महाभारत-युद्ध में इसने अनेक शत्रु-राजाओं का वध कर अपने शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया। युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के समय इसका पतन हुआ। उस समय इसकी आयु एक सौ सात साल की थी।

भीम कवि, वेमुलवाडा *(ते० ले०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

असाधारण पांडित्य और सिद्धवाणी के वरदान से संपन्न 'उद्दंड कवि' के नाम से प्रसिद्ध भीमकवि ने आंध्र के कोने-कोने में भ्रमण करके अपनी वाणी का प्रचार किया था। 'कविजनाश्रयमु', 'राघवपांडवीयमु', 'नृसिंह पुराणमु', 'शतकंठ रामायणमु' आदि कई रचनाएँ इनकी बताई जाती हैं। पर इनमें से कोई भी रचना आज पुस्तकाकार प्राप्य नहीं है। लक्षण-ग्रंथों में दिए गए उदाहरण ही इन रचनाओं के अस्तित्व के प्रमाण हैं। 'कविजनाश्रय' पिंगल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधित ग्रंथ है जबकि 'राघवपांडवीयमु', 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) दोनों इतिवृत्तों को व्यंजित करनेवाला श्लेष-काव्य है। 'बसवपुराणमु' नाम की एक कन्नड-काव्य-कृति भी इनकी रची हुई बताई जाती है। भीमकवि के कई फुटकर छंद आंध्र-जनता में प्रसिद्ध हैं।

भीमसेनराव, प्रो० डी० के० *(क० ले०)* [जन्म—1904 ई०; मृत्यु—1969 ई०]

प्रो० भीमसेनराव उन कन्नड प्राध्यापकों में हैं जिन्होंने अध्यापकत्व के द्वारा विद्यार्थी-लोक में लोकप्रियता तथा ठोस कार्य के द्वारा साहित्यलोक में कीर्ति अर्जित की है। आप कन्नड, अँग्रेज़ी, मराठी, उर्दू आदि भाषाओं के अच्छे पंडित थे। बचपन से ही आपमें कन्नड सीखने की प्रबल इच्छा थी। परंतु, उन दिनों इनके जन्मस्थान का रायचूर जिला हैदराबाद निज़ाम के अधीन था और वहाँ उर्दू का बोलबाला था। आपने बड़े प्रयास से अपनी अभिलाषा पूर्ण की और 1929 ई० में एम० ए० (कन्नड) किया और तदुपरांत उस्मानिया विश्वविद्यालय में कन्नड विभाग के अध्यक्ष पद पर रहकर कन्नड विभाग को विकसित किया। आपके ग्रंथों में 'तेरहवीं' शती का कर्नाटकांध्र महाराष्ट्र साहित्यावलोकन', जो उस्मानिया विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है, अधिक प्रसिद्ध है। 'शब्दमणिदर्पण', 'चायण भारत', 'कुमार कालेग' (कुमार-युद्ध), 'शिवरात्रि-माहात्म्ये' और 'गर्भगीता' आपके अप्रकाशित ग्रंथ हैं। आपके लेख कन्नड, अँग्रेज़ी, उर्दू और तेलुगु में प्रकाशित हुए हैं जिनकी संख्या चालीस से अधिक है। आपने शिला-लेखों पर भी काम किया था। आप गंभीर साहित्य-चिंतक थे। आपकी आलोचना में संतुलन और निबंधों में व्यक्तित्व की छाप है।

भीमा भोई *(उ० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1895 ई०]

भीमा भोई संत व तत्त्वद्रष्टा थे। इन्होंने उड़िया में अलेख धर्म और अपने गुरु महिमा गोसाईं के उपदेशों का प्रचार मिशनरी के-से उत्साह से किया था। उन दिनों जब बंगाल में राजा राममोहन राय सामाजिक एवं धार्मिक सुधार में संलग्न थे, तब यह मनस्वी संत उड़िया के वन-प्रदेश में महान् कार्य कर रहा था, जो प्रकाश में नहीं आ सका है।

भीमा भोई का जन्म संबलपुर के पास रेढ़ाखोल में हुआ था। वे जाति के कंध थे। इस नेत्रहीन, निरक्षर संत भिक्षु पर अपने उपदेशों के प्रचार का गुरुतर भार गुरु ने डाल दिया था। यह निम्नकुलोत्पन्न, निर्धन संत भिक्षु, उसी हिंदू-समाज के धार्मिक पाखंडों व नैतिक स्खलन और जातीयता पर कुठाराघात करता था, जिसकी भिक्षा पर उसका जीवन अवलंबित था। फलतः उनका जीवन यंत्रणा-मय रहा। किंतु इससे संत का उत्साह मंद नहीं पड़ा और समाज के प्रति उसकी मांगलिक भावनाओं में कोई अंतर नहीं आया। उज्ज्वल, उन्नत, चैतन्यमय समाज की उसकी परिकल्पना मलिन नहीं हुई। भीमा भोई ने एकेश्वरवाद, साधुता, सत्यवादिता एवं सदाचारपूर्ण गार्हस्थिक जीवन का प्रचार किया है।

वे निरक्षर थे, अतः उच्चकोटि की कलात्मकता उनके काव्य में नहीं दिखाई पड़ती। शैली सरल व निरा-डंबर है। तत्त्व-विवेचन की अस्पष्टता भी कहीं-कहीं मिलती है। अनेक स्थलों पर महिमागुसाईं व अलेख ब्रह्म एकाकार होकर जटिलता और दुर्बोधता की सृष्टि करते हैं। किंतु कवि की अंतःस्फूर्ति, ओज, पुनीत भावनाओं की सच्चाई, संकीर्णता-मुक्त मानवीयता आदि विशेषताएँ इनकी रचनाओं को आलोक-मंडित करती हैं। 'स्तुति चिंतामणि' (दे०) 'ब्रह्मनिरूपण गीता', 'भजनमाळा', 'चउतिशा' (दे०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

भीष्म *(सं० पा०)*

इसका मूल नाम देवव्रत था। यह शांतनु के द्वारा गंगा नदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, अतः इसके अन्य नाम हैं, गांगेय, भागीरथी पुत्र आदि। शांतनु हस्तिना-पुर का राजा था। उसके सुख के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहने की भीषण (भयंकर) प्रतिज्ञा करने के कारण यह 'भीष्म' कहलाया। वसिष्ठ से इसने समस्त वेदों का अध्ययन किया, तथा बृहस्पति और शुक्राचार्य से अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी। अपनी विमाता सत्यवती के दो पुत्रों चित्रांगद और विचित्रवीर्य में से चित्रांगद को राज्य-गद्दी पर बैठाकर भीष्म राज्य-कार्य चलाता रहा। अपनी विमाता पर कुदृष्टि रखने वाले राजा उग्रायुध का इसने वध किया। काशिराज की तीन कन्याओं—अंबा, अंबिका और अंबालिका का हरण कर इसने अंतिम दो कन्याओं से अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया। महाभारत के युद्ध में भीष्म ने दुर्योधन (दे०) को अनेक बार सम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञाया कि वह पांडवों से युद्ध न करे, परंतु वह न माना। अंततः इसे कौरव-पक्ष सेना का सेनापति बनना पड़ा। इसने अपनी सेना को विभिन्न श्रेणियों में सुव्यवस्थित कर दिया था। इन्हीं दिनों भीष्म और कर्ण (दे०) का—यद्यपि ये दोनों कौरव पक्ष में थे—पारस्परिक वाक्कलह सदा चलता रहता था और दुर्योधन ने इस कलह को दूर करने का सदा प्रयास किया, किंतु सफल न हुआ। कौरव-सेना में इसके सैन्य-संचालन की सुव्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि आरंभ के दस दिन तक पांडवों को विजय की आशा न रही, और यहाँ तक कि अर्जुन (दे०) और इसके बीच युद्ध में अर्जुन मूर्छित हो गया और इसी कारण श्रीकृष्ण (दे०) को भी अस्त्र ग्रहण करना पड़ा। दसवें दिन श्रीकृष्ण के परामर्श से तथा स्वयं भीष्म के बताये हुए उपाय से अर्जुन ने शिखंडी को सामने रखकर भीष्म को पराजित किया। रथ से गिरकर बाणों पर टिके हुए भीष्म के सिर के लिए तकिया बनाने के लिए अर्जुन ने तीन बाण भूमि में पिरो दिए तथा शर-प्रहार द्वारा गंगा नदी की जलधारा का जल इसे पिलाया। अर्जुन की इस सेवा से भीष्म अति प्रसन्न हुआ। इस अंतिम समय में कर्ण को भी इसने दृढ़ आलिंगन कर उसे सदुपदेश दिये। जब तक सूर्य दक्षिणायन में रहा, तब तक अपने प्राण इसने इच्छा-बल से रोके रखे। सूर्य के उत्तरायण में आ जाने पर इसने अपने प्राण त्याग दिये। दृढ़ प्रतिज्ञा और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के उदाहरणस्वरूप भीष्म सदा के लिए अमर है।

भुजंगनाथ *(म० पा०)*

भुजंगनाथ गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के 'संगीत शारदा' नामक नाटक का प्रतिनायक है। जीवन के अंतिम प्रहरों में अपनी अतुलित संपत्ति के उत्तराधिकार की चिंता से ग्रस्त होने के कारण वह विवाह के लिए लालायित है। अपनी इस इच्छा के कारण ही इसे समाज का उपहास भी सहना पड़ता है। भद्रेश्वर दीक्षित के सद्-परामर्श के कारण ही अपने श्वेत केशों को काला कर लेता है। नकली दाँत लगवा कर तथा शक्तिवर्धक खाद्य पदार्थों का सेवन कर अपनी आयु से कम दिखने का प्रयत्न करता है। लोगों द्वारा 'बुढ़ऊ' कहा जाने पर इसका मन बार-बार विद्रोह कर उठता है—'नहीं, मैं कहीं बुढ्ढा दिखाई देता हूँ?' भद्रेश्वर दीक्षित के सांत्वना-भरे शब्दों से इसका कृपण हृदय उदार हो उठता है। विवाह के भव्य स्वप्नों की रंगीनियों में यह मुक्त हस्त से धन लुटाने लगता है। कांचन भट्ट को प्रचुर धन का लोभ देकर यह शारदा से विवाह की सहमति प्राप्त कर लेता है। साक्षात्कार को आई शारदा को देखकर इसके संयम का बाँध टूट जाता है, किंतु शारदा के प्रतिशोध तथा पिता को बुलाने की बात से इसका उत्साह न केवल ठंडा पड़ता है, बल्कि यह अपने को दंड देने के लिए स्वयं अपने मुंह पर थप्पड़ मारने लगता है। स्वयं के थप्पड़ों के आवेश में उसके नकली दाँत निकल कर गिर पड़ते हैं, परंतु इतने पर भी वह साहस नहीं छोड़ता। भद्रेश्वर के सहयोग से यह कांचन भट्ट को शारदा से विवाह के लिए तैयार कर लेता है, परंतु विवाह-वेदी से उसे उठ जाना पड़ता है। अभियोग में भद्रेश्वर द्वारा फँसाए गए कोदंड के उपस्थित होने पर भुजंगनाथ के कश्यप गोत्रीय होने के रहस्योद्घाटन तथा उपस्थित समुदाय द्वारा सगोत्री विवाह-विरोध के कारण इसकी बलवती इच्छा अतृप्त ही रह जाती है।

भुजंगनाथ के चरित्र का विकास सहज मानवीय आधार पर हुआ है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति-हेतु ही यह अपनी कृपणता को छोड़ मुक्त हस्त से धन लुटाता है। समाज के उपहास का पात्र बनता है, नानाविध उपाय करता है। इसके इन प्रयासों से नाटकीय औत्सुक्य सतत बना रहा है। सहज मानवीय आधार पर विकसित इस चरित्र के विकास के कारण यह नाटकीय प्रभावान्विति में पूर्णरूपेण सक्षम रहा है।

भुञा, कृष्ण *(अ० ले०)*

इनकी कहानियाँ मुख्य रूप से असमीया की प्रसिद्ध पत्रिका 'आवाहन' में प्रकाशित हुई हैं।

कहानियों में कथावस्तु और टेकनीक पर विशेष ध्यान रहा है। अनावश्यक शब्दों और संवादों का प्रयोग नहीं है। कम समय में ही इन्होंने कहानीकार के रूप में प्रसिद्धि पा ली है।

भुञा, नकुलचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

जन्मस्थान—ज़िला शिवसागर।

ये प्रसिद्ध नाट्यकार हैं। इनके नाटक 'नुमली कुँवरी' पर असम-साहित्य-सभा ने 1965 ई० का सर्वश्रेष्ठ नाटक-पुरस्कार दिया है।

प्रकाशित रचनाएँ —'बहागी' (लोकगीत-संग्रह) (1923); नाटक : 'बदन बर फुकन' (1927), 'चंद्रकांत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह' (1931), 'विद्रोही मराण' (1938), 'नुमली कुँवरी' (1965); **कहानी** : 'चोराँ चोवार चरा' (1918), 'जोनो-बाली' (1933), 'गल्नर शराइ' (1962); **निबंध** : 'बार-मुत्रार चमुबुरंजी' (1960)।

इनके दो नाटक 'बदन बर फुकन' और 'चंद्र-कांतसिंह' असम के गौरव का वर्णन करते हैं। इन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों में कुछ ऐसे पात्रों और स्थितियों का चित्रण भी किया जो काल्पनिक होते हुए भी ऐतिहासिक वातावरण को सजीव कर देते हैं। इनकी कहानियों में रोमांस एवं नगर-जीवन का चित्रण है। इन पर फ़्रायड का प्रभाव भी देखा जाता है। इनके वर्णन संयत हैं। रचनाओं में जटिलता नहीं है, बीच-बीच में कथ्य भाषा का माधुर्य है।

नकुल जी असमीया के प्रसिद्ध वियोगांत नाट्यकार माने जाते हैं।

भुञा, सूर्यकुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव।

इन्होंने कलकत्ता से बी०ए०, एम०ए० और बी० एल० परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। 1938 ई० और 1951 ई० में इन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से क्रमशः पी-एच० डी० और डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। इन्होंने अनेक पदों पर कार्य किया था तथा रायबहादुर आदि अनेक खिताब पाए थे। ये 1952-54 ई० तक भारतीय राज्य सभा के सदस्य रहे थे। 1957 ई० में ये गौहाटी विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर नियुक्त हुए थे। 1956 ई० में इन्हें पद्मश्री से विभूषित किया गया था।

प्रकाशित ग्रंथ—**काव्य** : 'निम्मीलि' (1918); **कहानी** : 'पंचली' (1927); **जीवनी** : 'गोपालकृष्ण गोखले' (1916); **ऐतिहासिक निबंध-संग्रह** : 'कोंवर विद्रोह' (1948), 'रमणी गाभरू' (1951), 'मीर जुमलार असम आक्रमण' (1950), 'बुरंजीर बाणी' (1951); **संपादन** : 'बरफुकनर गीतर संग्रह' (1924)।

'निम्मीलि' काव्य-संग्रह में इनकी दो-एक कविताओं में सूक्ष्म काव्यानुभूति है। इन कविताओं में 'आपोनसुर' विशेष महत्वपूर्ण है। श्री रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर जिस प्रकार भानुसिंह के नाम से पुरानी शैली की वैष्णव कविताएँ लिखा करते थे, उसी प्रकार इन्होंने भी भुञा भानुनंदन के नाम से लिखा था। ये वस्तुतः इतिहास और ऐतिहासिक निबंध-लेखक थे। इन्होंने ऐतिहासिक विषयों पर सरस निबंध लिखे हैं, जिनमें प्राचीन और नवीन का समन्वय हुआ है।

भुवन *(हिं० पा०)*

यह मध्य वर्ग का बुद्धिजीवी एवं अध्यवसायी व्यक्ति तथा अज्ञेय (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'नदी के द्वीप' (दे०) का नायक है। यद्यपि यह भौतिकी में डाक्टर है किंतु उपन्यासकार ने इसके वैज्ञानिक रूप का नहीं अपितु अंतर्मन की घुमड़न को रूपायित किया है। मध्यवर्गीय संस्कारों के फलस्वरूप इसमें संकोच एवं झिझक तथा विज्ञान के अध्ययन के फलस्वरूप आत्मलीनता के गुण सहज ही आ गए हैं। कर्त्तव्य-भावना तथा अनौचित्य के प्रति भय भी संस्कारों के कारण ही है। इसके अंतर्मन में यौन-प्रवृत्ति तथा विवेक-बुद्धि का परस्पर संघर्ष चलता रहता है। रेखा इसकी यौन-प्रवृत्ति को उत्तेजित करती है तो गौरा (दे०) विवेक-बुद्धि को। अंततः यह गौरा को स्वीकार कर लेता जिसके पीछे काम-भावना की उत्तेजना न होकर गौरा के प्रेम की गहराई ही है। यह विवाह को जीवन का सहज धर्म मानता है तथा व्यक्ति की प्रगति तथा उत्तम अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक सीढ़ी।

भुवनविजयमु *(ते० पारि०)*

'आंध्र-भोज' की उपाधि से विभूषित श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०), (शासन-काल—1509-1530 ई०) के दरबार में आयोजित साहित्यिक सभा का नाम ही 'भुवन-विजय' है। श्रीकृष्णदेवरायलु ने मुसलमानी शासकों तथा अन्य राजाओं को जीतकर कटक से लेकर कन्याकुमारी तक अपने राज्य का विस्तार किया था। 'भुवनविजयमु' साहित्यिक क्षेत्र तथा साम्राज्य-क्षेत्र में इनकी अखंड विजय का उपलक्षक है। उक्त सभा के अंतर्गत आठों दिशाओं में आठ विशिष्ट स्थान निर्धारित रहते थे। अत्यंत प्रतिभाशाली आठ कवि उन पर विराजमान रहते थे। पृथ्वी की आठों दिशाओं में जैसे आठ दिग्गज हैं वैसे ही ये आठ महाकवि साहित्य-जगत् के आधार माने जाते थे। इसीलिए ये 'अष्टदिग्गज' के नाम से विख्यात हुए हैं। इनमें पेद्दन्ना (दे०), तिम्मना (दे०), धूर्जटि (दे०), मल्लना (दे०) तथा रामभद्रुडु (दे०) नामक कवियों के बारे में विवाद नहीं है किंतु तेनालि रामकृष्ण कवि (दे०), भट्टु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ति (दे० रामराजभूषणुडु) तथा पिंगळि सूरना (दे०) के बारे में मतभेद है। उक्त साहित्यिक-सभा के कार्यक्रम के अंतर्गत कविता-पाठ, आलोचना, कृति-समर्पण, नूतन कृति-निर्माण की प्रेरणा, कवि-सम्मान, छलोक्ति, समस्या-पूरण, आशुकविता, साहित्य-संबंधी अन्य उत्सव सम्मिलित थे। हर साल 'भुवनविजयमु' का विशेष आयोजन वसंत के आगमन की तरह शोभा देता था।

आंध्र-जाति तथा आंध्र-साहित्य के इतिहास में सोलहवीं शती के उपर्युक्त 'भुवनविजयमु' का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

भूत ने भ्रम *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

लेखक—पद्मनाथ गोहाञि बरुवा (दे०) इस सुधारवादी प्रहसन में समाज के अंधविश्वासों और रूढ़िवादिता की खिल्ली उड़ाई गई है। इसमें हास्य की सृष्टि सुंदर ढंग से हुई है। कथा-विकास और चरित्र-चित्रण पर कम ध्यान दिया गया है।

भूतरायर् *(मल० कृ०)*

श्री अप्पन् तंपुरान् (दे०) के इस ऐतिहासिक उपन्यास का प्रकाशन 1923 ई० में हुआ। केरल में वीर-मार्त्तांडप्पेरुमाळ् नामक एक धूर्त नरेश राज्य करता था। उसके शासन-काल की एक घटना के आधार पर इस उपन्यास की रचना हुई है। भूतरायर् बड़ा अत्याचारी था। उसके अत्याचारों से क्षुब्ध होकर केरलीय जनता ने उसे सिंहासनच्युत कर दिया और उसके स्थान पर गुणवान्, बुद्धिमान्, चेरमान्, पेरुमाळ् को आसीन किया। यही है कथा-वस्तु। तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक-स्थिति का सुंदर-सर्वांगीण चित्रण इस कृति में हुआ है। अप्पन् तंपुरान् की उत्कृष्ट रचना के रूप में इस उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी गद्य-शैली अनूठी है और वर्णनों में सहजता है।

भूपति चउतिशा *(उ० कृ०)*

भूपति पंडित (दे०)-कृत 'भूपति चउतिशा' यद्यपि एक लघु काव्य है, तथापि भाव और अभिव्यंजना की दृष्टि से उत्कृष्ट है। कवि ने राधाकृष्ण-प्रेम-तत्त्व को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। पूर्ण कामना के बिना राधाकृष्ण-प्राप्ति संभव नहीं है। इसका हर पद उच्चकोटि की भावना से संपन्न है। इसकी शैली मधुर और भाषा सर्वजन-सुलभ है।

भूपति पंडित *(उ० ले०)* [समय—अनुमाननः सत्रहवीं-अठारहवीं शती ई०]

ये अपने समय के प्रसिद्ध वैष्णव कवि थे। इनका 'प्रेमपंचामृत' काव्य उड़िया वैष्णव-साहित्य में एक समादृत रचना है। इसकी भाषा सरल है। भूपति जी ने गूढ़ वैष्णव-तत्त्वों को सर्वजन-सुलभ बनाने के लिए प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है तथा इस लक्ष्य-सिद्धि में वे सफल रहे हैं। भूपति जी के लिए यह और भी श्रेय की बात है कि मातृभाषा उड़िया न होते हुए भी गूढ़ वैष्णव-तत्त्वों को ये इतनी सरलता से अभिव्यक्त कर सके हैं। ये मधुराभक्ति के उपासक थे।

भूपति पश्चिम के निवासी तथा सारस्वत ब्राह्मण थे, और राजा दिव्यसिंह देव के शासन-काल में उड़ीसा आए थे। इनकी कवि-प्रतिभा का परिचय पाकर दिव्यसिंह ने इन्हें सम्मानित किया था और ये कटक ज़िले के रथिपुर स्थान में बस गये थे इन्हें हिंदी और बँगला का भी ज्ञान था। इनकी अनेक रचनाओं में 'उद्धव चउतिशा', 'भूपति चउतिशा' (दे०) अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

भूमिकन्या सीता *(म० कृ०)*

राम द्वारा सीता के परित्याग की पौराणिक कथा पर आलोच्य नाटक की संरचना हुई है। वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) एवं भवभूति-कृत 'उत्तररामचरितम्' (दे०) से कथाधार लेकर भी मामा वरेरकर (दे०) ने प्रख्यात कथा में यत्किंचित् परिवर्तन किए हैं। राम-कथा के पौराणिक पात्रों के माध्यम से अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन मात्र इनका उद्देश्य रहा है जिसके परिणामस्वरूप मूल कथा का स्वरूप विकृत हो गया है। आलोच्य नाटक के राम समाज में प्रचलित सीता के चारित्रिक प्रवाद के उपरांत उनके परित्याग का निर्णय एकाकी न कर लक्ष्मण और सुमंत्र के परामर्श से करते हैं। उर्मिला द्वारा विरोध, सुमंत्र का पद-त्याग, सीता-शंबूक भेंट, वाल्मीकि-आश्रम से सीता को प्रश्रय न मिलना, शंबूक से संबद्ध घटना-प्रसंगों में आर्य-अनार्यों के संघर्ष आदि मौलिक उद्भावनाएँ नाटककार द्वारा की गई हैं। शंबूक से संबद्ध कथा-प्रसंग समसामयिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थितियों के चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

प्रधान कथा के साथ तीन उपकथानकों के संयोजन से नाट्य-कथा विश्रृंखलित जान पड़ती है, परंतु अंतः एवं बाह्य संघर्षों पर आधारित चरित्र-निरूपण के कारण कथा-संगठन सबल बन पड़ा है। सहज मार्मिक भाषा से युक्त संवाद-योजना में नाटकीय चांचल्य है। प्रवाहपूर्ण सुबोध सरल भाषा पात्र, प्रसंग एवं रसानुकूल होने के कारण नाटकीय प्रभावान्विति को बनाए रखने में पूर्णरूपेण सक्षम है।

भूले बिसरे चित्र *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1959 ई०]

भगवतीचरण वर्मा (दे०) के इस बृहद् उपन्यास में भारतीय सामंतीय जीवन के एक प्रतिनिधि परिवार की चार पीढ़ियों के माध्यम से 1850 ई० से 1930 ई० तक के भारतीय जीवन की बदलती हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों एवं जीवन-मूल्यों का अत्यंत सशक्त चित्रण किया गया है। यह कालखंड भारत के सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यही वह काल-खंड है जब स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए आंदोलन प्रारंभ हुए, पनपे और समूचे देश में फैले। इन आंदोलनों का हमारे देश के प्रत्येक वर्ग पर प्रभाव पड़ा और हमारे जीवन-मूल्यों में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। पाँच खंडों में विभक्त इस उपन्यास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व ज्वालाप्रसाद का है। यही उपन्यास की कथा को आरंभ से अंत तक जोड़ते हैं। उपन्यास के पहले खंड में गाँव के सूदखोर महाजन प्रभुदयाल और बिगड़े हुए रईस ठाकुर गजराजसिंह की अहंमन्यता के उस संघर्ष को चित्रित किया गया है जिसमें ये दोनों अंततः अपने प्राण गँवा बैठते हैं। इसी खंड में ज्वालाप्रसाद तथा प्रभुदयाल की विधवा पत्नी जैदेई के पारस्परिक आकर्षण तथा रति-संबंधों का चित्रण भी किया गया है। दूसरे खंड में ज्वालाप्रसाद को संयुक्त परिवार के बोझ में पिसते और अंततः इस शोषण-चक्र से मुक्त होते हुए चित्रित किया गया है। ज्वालाप्रसाद के पुत्र गंगाप्रसाद के विलासी जीवन तथा जैदेई की मृत्यु आदि घटनाओं से उपन्यास के तीसरे खंड का ताना-बाना बुना गया है। गंगाप्रसाद की मानसिक पीड़ा और ऊहापोह का निरूपण चौथे खंड में हुआ है और पाँचवें खंड में उसकी मृत्यु दिखलाई गई है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने विवेच्य युग के भारतीय समाज का अत्यंत कलात्मक प्रत्यंकन किया है। सामंत वर्ग के लोग सैक्स तथा अर्थ-लाभ के पीछे अपना दीन-ईमान, सतीत्व, मर्यादा आदि किस प्रकार नीलाम कर देते हैं यह तो इस उपन्यास से ज्ञात होता ही है, इसके साथ-साथ ब्राह्मणों की अहंमन्यतापूर्ण स्वार्थपरता, बनियों की शोषण-वृत्ति, ठाकुरों की सीनाज़ोरी, कायस्थों की धूर्तता तथा साहूकारों और ज़मींदारों के पारस्परिक द्वंद्व का वास्तविक परिचय भी प्राप्त होता है। लेखक ने सामंतीय परिवेश में पलने वाली वितृष्णा, घृणा, ईर्ष्या आदि का भी अत्यंत सशक्त चित्रण किया है।

भूषण *(हिं० ले०)* [अस्तित्व-काल—1613 ई० से 1715 ई०]

रीतिकालीन कवियों में वीररस की कविता का अनुसरण करने वालों में भूषण का नाम अग्रगण्य है। ये रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे और यमुना के किनारे तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) में रहते थे। चिंतामणि, भूषण, मतिराम, नीलकंठ अथवा जटाशंकर को इनका सहोदर कहा जाता है। यद्यपि इनके भ्रातृत्व के संबंध में विद्वानों में विवाद है। भूषण शिवाजी के समकालीन थे और ये छत्रपति शिवाजी तथा छत्रसाल दोनों के ही दरबार में रहे।

'शिवराज भूषण' (दे०), 'शिवा बावनी' (दे०) और 'छत्रसाल दशक' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'भूषण हज़ारा', 'भूषण उल्लास' और 'दूषण उल्लास' अभी तक अप्राप्त हैं। 'शिवराज भूषण' का रचना-काल 1673 ई० दिया गया है और इसमें शिवाजी से संबद्ध जो घटनाएँ दी गई हैं वे भी लगभग इसी काल की हैं। इसमें 384 छंद हैं, दोहों में अलंकारों की परिभाषा तथा कवित्त एवं सवैया छंदों में उनके उदाहरण दिए गये हैं। इसी तरह 'शिवा बावनी' से 52 छंदों में शिवाजी के शौर्य एवं 'छत्रसाल दशक' में दस छंदों में छत्रसाल की तलवार, उनके बाहुबल एवं दानवीरता को सराहा गया है। भूषण की सारी रचनाएँ मुक्तक-पद्धति में लिखी गई हैं। रीतिकार के रूप में इन्हें सफलता नहीं मिली है, पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से इनका प्रमुख स्थान है। इनकी साहित्यिक भाषा ब्रज है, जिसमें मुसलमानों के संदर्भ में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। बुंदेलखंडी, बैसवाड़ी एवं अंतर्वेदी के शब्द भी इनकी भाषा में पाये जाते हैं। ओज गुण की केंद्रबिंदु बनी भूषण की कविता यों तो रीति का निर्वाह करने के लिए लिखी गई हैं, पर उनमें मन को उल्लसित करने की अपरिमित शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उनकी कविता का यही सही विश्लेषण है। भूषण को याद भी इसीलिए किया जाता है।

भूसुनूरुमठ *(क० ल०)*

पाठानुसंधान तथा ग्रंथ-संपादन के क्षेत्र में जिन विद्वानों ने परिश्रम किया है उनमें भूसुनूरुमठ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—'अदृश': प्रौढ़राय का काव्य, 'गौरवांक': मोलिगे नारय्या का पुराण, 'लिंगलीला-विलासचरित्र': प्रभुदेव का वचन साहित्य-संग्रह, 'शून्यसंपादने' (दे०); 'जग-ज्योति वसवण्णनलर लोकप्रिय वचनगळु' तथा 'मारय्यामतु महादेवि वचनगळु': चेनप्पा उतंगि जी के साथ संपादित। इनके अतिरिक्त इनका 'भक्तसुधासार' भी उल्लेखनीय है।

भैया दादा *(गु० पा०)*

धूमकेतु (दे०) के कहानी-संग्रह 'तणखा-मंडल' (दे०) भाग 1 की कहानी 'भैया दादा' का प्रमुख पात्र भैया दादा है जिसका सही नाम बद्रीनाथ है। पच्चीस वर्ष से रेलवे क्रॉसिंग का फाटक बंद करने और खोलने की नौकरी करता है। क्रॉसिंग के पास ही उसकी छोटी-सी झोंपड़ी है जिसमें अकेला भैया दादा रहता है। परिवार के सभी सदस्य एक-एक कर चल बसे। 59 वर्ष का भैया दादा खँडहर-सी ज़िंदगी जीता है। रेलवे का सरिश्ते विनायकराव, अफ़सर होते हुए भी, भैया दादा का मित्र और शुभाकांक्षी है। भैया दादा का जीवन शांत, निर्द्वंद्व और क्रियाशील है।

एक बार कॉसिंग की दुर्घटना का दायित्व भैया दादा पर आ पड़ता है। ट्रैफ़िक सुपरिटेंडेंट उसे कार्यमुक्त कर देता है। विनायकराव के अथक प्रयत्नों और भैया दादा के अनुनय-विनय के बावजूद साहब उसे बहाल नहीं करता। मोहवश झोंपड़ी छोड़ना उसके लिए संभव नहीं है। पर रेलवे विभाग फाटक खोलने, बंद करने के लिए दूसरे आदमी को नौकर रख लेता है और उसे भैया दादा की झोंपड़ी में रहने का आदेश देता है। विनायकराव और पानी जब झोंपड़ी में प्रवेश करते हैं तब भैया दादा का शव पाते हैं। इस प्रकार धूमकेतु ने 'भैया दादा' कहानी में भैया दादा के पात्र को दुःखांत कृति के नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। भैया दादा का व्यक्तित्व जितना करुण है उतना ही काव्यमय है।

भैरप्पा, डा० एस० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

कन्नड उपन्यास-क्षेत्र के एक वर्चस्वी हस्ताक्षर डा० भैरप्पा हासन ज़िले के संत शिविर में 1934 ई० में श्रोत्रिय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इन्होंने अपनी डाक्टरेट की उपाधि बड़ौदा विश्वविद्यालय से पाई। कन्नड उपन्यास के क्षितिज पर आप अचानक एक धूमकेतु के समान उदित हुए। आपके औपन्यासिक कृतित्व के गुणों—विषयगत नवीनतम निरूपण, निपुणता, अद्भुत घटना-परिवर्तन आदि—ने कन्नड साहित्य में एक युगांतर उपस्थित किया। ये कन्नड में छठे दशक की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि माने गये। अब तक इनके एक दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रमुख हैं—'भीमकाय', 'जलपात', 'धर्मश्री', 'वंशवृक्ष', 'तब्बलिनीनादेमंगने' तथा 'नामिय नेरलु'। 'वंशवृक्ष' (दे०) कन्नड उपन्यास-क्षेत्र की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में परिगणित है। प्राचीन एवं नवीन संस्कृतियों एवं मूल्यों के द्वंद्व के निरूपण में लेखक को कमाल हासिल है। उन्होंने कन्नड उपन्यास को नया आयाम दिया है। उसे वैचारिकता के ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित करके एक नया मोड़ देने का श्रेय उन्हें प्राप्त है।

भोज *(सं० ले०)* [समय—1005-1054 ई०]

परमारवंशीय भोज धारा के शासक थे। वे कवि और साहित्य के महान् आश्रयदाता तथा स्वयं साहित्य-स्रष्टा थे। इसीलिए इन्हें कविबांधव कहा गया है। इनका स्थिति-काल ग्यारहवीं शती का पूर्वार्ध है।

राजा भोज बहुमुखी विद्वान् थे। उन्होंने विविध विषयों पर अनेक विशाल और लघु ग्रंथ लिखे। कहा जाता है कि भोज ने मध्यकालीन भारत के सभी वैज्ञानिक विषयों पर 84 ग्रंथ लिखे। अलंकारशास्त्र, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र, वैद्यक, व्याकरण, ज्योतिष, स्थापत्य आदि विषयों से संबंधित इनके ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ ये हैं—'सरस्वती कंठाभरण' (दे०), 'श्रृंगारप्रकाश' (दे०) (दोनों अलंकारशास्त्र-विषयक), 'समरांगण सूत्रधार' (स्थापत्य-विषयक), 'युक्तिकल्पतरु' (नीति-विषयक), 'तत्त्वप्रकाश' (धर्म-दर्शन-विषयक), राजमृगांक' 'राज-मार्त्तंड' (योग-सूत्र की टीका), (खगोल-विषयक) आदि। 'सरस्वतीकंठाभरण' नाम से इनका व्याकरण का ग्रंथ है।

अनेक विषयों के लेखक, विद्या के आश्रयदाता एवं विद्वान नृपति होने के कारण भोज की कीर्ति भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस में आज तक प्रतिष्ठित है। साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में उनकी कीर्ति का मूलाधार उनकी दो कृतियाँ हैं—'सरस्वती-कंठाभरण' और 'श्रृंगारप्रकाश'। ये दोनों ग्रंथ मौलिक कम, संग्रहात्मक अधिक हैं। 'सरस्वतीकंठाभरण' पाँच परिच्छेदों में विभक्त है तथा उसमें काव्यशास्त्र के समग्र तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। 'श्रृंगारप्रकाश' 36 प्रकाशों में विभक्त है। (इसके केवल तीन ही प्रकाश अभी प्रकाशित हुए हैं। यह संस्कृत-काव्यशास्त्र का विशालतम ग्रंथ है। इसमें काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र दोनों विषयों का सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है। श्रृंगार रस के संबंध में भोज की अपनी मौलिक मान्यता है जिसका प्रतिपादन सरस्वती कंठाभरण' में संक्षिप्त रूप में और 'श्रृंगारप्रकाश' में व्यापक रूप में किया गया है। यद्यपि इन्होंने परंपरानुसार आठों रसों का परिगणन किया है परंतु उनकी मान्यता है कि श्रृंगार ही एकमात्र रस है जो अभिमान और अहंकार से अभिन्न है तथा सभी रसों का मूल है।

भोज की इन दोनों कृतियों में प्राचीन मतों का चयन बड़ी निपुणता से किया है। प्राचीन और नवीन मतों के समन्वय तथा यथास्थान अपनी मौलिकता के उपादान में भोज ने अपना वैदग्ध्य दिखाया है। अलंकारशास्त्र के क्षेत्र में श्रृंगार रस को एकमात्र और मूल रस मानकर उन्होंने एक सर्वथा, नवीन, मौलिक और विलक्षण मान्यता स्थापित की है।

भोजप्रबंध (सं० कृ०) [समय—सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

'भोजप्रबंध' बल्लाल द्वारा रचित संस्कृत-साहित्य का प्रसिद्ध गद्यकाव्य है। बल्लाल के संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। एक परंपरा के अनुसार इनका नाम बल्लाल देव दैवज्ञ या बल्लाल मिश्र था और इनका जन्म काशी में हुआ था।

भोजप्रबंध में 89 प्रबंध हैं जिनमें 328 श्लोकों का विनियोग किया गया है। इसमें मालवाधिपति भोज की कथा है। इनके चाचा मुंज की भी इसमें चर्चा की गई है। परमारवंशी राजा भोज (दे०) और वाक्पतिराज मुंज दोनों महान् साहित्यानुरागी तथा विद्वान् थे।

इसमें बल्लाल ने गद्यमय कथा में प्राचीन कवियों के पद्यों का चयन किया है। कुछ पद्य उनके अपने भी प्रतीत होते हैं। इस ग्रंथ में ऐतिहासिक तथ्यों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसमें राजा भोज-संबंधी अनेक कथाएँ संगृहीत हैं। यह ग्रंथ नीति तथा काव्य का मनोहारी मिश्रण है। इसकी गणना सुभाषित ग्रंथों में होती है। इसके प्रकृति-चित्रण-संबंधी पद्य विशेष चमत्कारपूर्ण हैं। इसका गद्य अत्यंत प्रवाहपूर्ण तथा सरस है।

भोजराजीयमु (त० कृ०) [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम अनंतामात्युडु है। 'भोजराजीयमु' सात आश्वासों का काव्य है। विक्रमार्क की कथाओं की तरह प्रसिद्ध भोजराज की कथाएँ इस काव्य में वर्णित हैं। प्रसंगवश कई अन्य कथाओं का भी इसमें प्रवेश हुआ है। गो-व्याघ्र-संवाद जैसी कथाएँ इसी प्रकार की हैं। नीत्युपदेश के साथ इसमें करुण रस का मार्मिक चित्रण किया गया है। श्रृंगार-संबंधी वर्णनों में भी औचित्य का पालन किया गया है। भाषा सरल, सरस तथा मुहावरेदार है।

भोजो (गु० ले०) [समय—1785-1850 ई०]

ये सौराष्ट्र के अमरेली ज़िले के फ़तहपुर ग्राम के निवासी थे। ये पटेल (कृषक) जाति के थे। इन्होंने 12 वर्ष तक कठोर तप किया था और केवल दुग्धाहार पर ही रहकर हरि-नाम-स्मरण किया था। ये निरक्षर थे, किंतु आत्मानुभव का तेज इन्हें प्राप्त था। समाज की विकृतियों को दूर करने के लिए इन्होंने अपनी काव्य-वाणी के चाबुक चलाये जो 'भोजा भगत ना चाबखा' के नाम से प्रसिद्ध थे।

'चेलैया आख्यान', 'नानी भक्तमाळ', 'ब्रह्म-बोध', 'बावन अक्षर' तथा 'कक्को' आदि इनकी रचनाएँ हैं। 'काचबा-काचबी भजन नुं' बहुत प्रसिद्ध है।

इन्होंने प्रभातियाँ, होरी, काफ़ी आदि गेय पदों का आश्रय लिया है तथा युद्ध के रूपक बाँधे हैं। कबीर की भाँति इन्होंने भी भाषा की परवाह नहीं की। इनकी भाषा अक्खड़, कठोर व व्यंग्यपूर्ण है। इनके रचे कुछ पद हिंदी में भी प्राप्त होते हैं।

भोनजीरूधर (गु० पा०)

स्वामी आनंद (दे०) ने छोटे मानवों की महानता की सत्यकथाएँ लिखी हैं। उन कथाओं में भोनजी-रूधर की कहानी के नायक भोनजी के चरित्र को लेखक ने निरूपित किया है। उसने हरिजनों के प्रति अन्याय के विरुद्ध क़दम उठाया था, इसलिए सारे गाँव का विरोध उसे सहना पड़ता है। गाँव वाले उसका संपूर्ण बहिष्कार करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, यहाँ तक कि उसकी पत्नी बीमार पड़ती है तो कोई दवा तक नहीं देता। पत्नी की मृत्यु के बाद अंत्येष्टि संस्कार भी उसे अकेले ही करना पड़ता है। सारा जीवन अपने सिद्धांतों के लिए उसे दुख झेलना पड़ता है पर उसे इसका तनिक भी दुख नहीं। यह पात्र गुजरात में वीरता का प्रतीक बन गया है।

मंकुतिम्मनकग्ग *(क० कृ०)*

कन्नड के धीमंत कवि डा० डी० वी० गुंडप्पा (दे०) की श्रेष्ठतम कृति है 'मंकुतिम्मनकग्ग'। इसमें करीब एक हज़ार मुक्तक हैं। इसे हम 'नये युग की गीता' कह सकते हैं। पाश्चात्य एवं प्राच्य संस्कृति के सार-रूप ने यहाँ काव्य-देह धारण कर ली है। इसे हम एक बौद्धिक विक्रम एवं साहित्यिक साहस कह सकते हैं। गुंडप्पा बहुत बड़े विचारक हैं। उनके विचारों में एक ओर उपनिषद्, वेदांत आदि का आसव है तो दूसरी ओर अरस्तू, मिल, शेक्सपियर, कीट्स, शेली आदि पाश्चात्य मनीषियों का सार है। अपने को मंकुतिम्म (मूर्ख तिम्म=लक्कडचंद) कहने वाले एक गँवई पाठशाला के गुरु द्वारा लिखित अनगढ़ बातों की अनगढ़ पुस्तक ही यह 'कग्ग' है। इसमें कहानी नहीं, कला नहीं, चरित्र भी नहीं है। किंतु जीवन में नित्य निरंतर उठने वाले प्रश्नों तथा उनके जो उत्तर हो सकते हैं—उनकी अत्यंत सरस व्यंजना है। दर्शन काव्य का घुंघरू पहनकर यहाँ नाचता है। चार पंक्तियों वाले इन छंदों में विलक्षण गीत है। आज के जीवन की व्याख्या यों है: देह को छोड़ कर अभी कहीं नहीं गये प्रेत के समान लोक चंचल है, पुराने धर्म मर गये हैं, नया धर्म अभी पैदा नहीं हुआ है। क्या इस भटकाव का कहीं अंत भी है? पुस्तकीय ज्ञान की यहाँ यों खिल्ली उड़ायी गई है: 'पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान मस्तक में धरी मणि है, चित्त में उत्पन्न स्वानुभूति ज्ञान तरु में खिले फूल हैं।' इस तरह यहाँ केवल खंडन-मंडन नहीं, तटस्थ दर्शन भी है। जीवन से जूझने की प्रेरणा है। यह एक मनीषी की ज्ञान-साधना का सार-संग्रह है। इसमें काम है, दर्शन है, इतिहास है और यह कन्नड साहित्य की एक निधि एवं प्रतिनिधि ग्रंथ है।

मंकुतिम्मा (क० पा०)

यह डा० डी० वी० गुंडप्पा (दे०) की 945 पद्यों की मुक्तक रचना 'मंकुतिम्मनकग्ग' (दे०) का पात्र है। 'काव्य-कथा' में इसका परिचय इस प्रकार दिया गया है—'गाँव के बच्चों का गुरु, ग्रामीणों का मित्र, अच्छा ब्राह्मण, गाय के समान साधु कहलाने वाला वह अपने को मूढ तिम्मा कहता था। वह भोला-भाला था। उससे किसी को भय नहीं था। बच्चे बड़ी आत्मीयता से उसे 'मास्टरजी' कहकर पुकारते थे। वह जो भी सिखाता, प्यार से सिखाता और सरस कथाएँ कहकर बालकों के नटखटपन को दूर करता। उसने विवाह नहीं किया था। क्यों नहीं किया था?—यह कहना मुश्किल है। वह ग़रीब है, सुंदर नहीं है—यह सोचकर किसी ने उसे लड़की न दी हो अथवा शायद उसने ही विवाह करने से इनकार कर दिया हो। उसकी बहन पति के यहाँ सुखी थी। वह अपनी बूढ़ी माँ के साथ वहीं रहता था। वह नौकरी से निवृत्त होकर काशी जाने के पूर्व प्यारे भानजे के लिए एक पोथी छोड़ गया था।' इसका चरित्र पढ़ने से पता चलता है कि इसके जीवन के अनुभव कितने गहरे हैं, इसका चिंतन कितना गंभीर है। यह विचारशील है, जीवनद्रष्टा है और ज्ञान-पिपासु है।

मंखक *(सं० ले०)* [समय—बारहवीं शताब्दी]।

मंखक कश्मीर-नरेश जयसिंह (1128-1149) के सभा-पंडित थे। प्रसिद्ध आलंकारिक रुय्यक (दे०) इनके गुरु थे। इनका केवल एक ग्रंथ मिलता है—'श्रीकंठ-चरित'। इसकी रचना इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से की थी। इसमें 25 सर्ग हैं। इसमें इन्होंने भगवान शंकर और त्रिपुर के युद्ध का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। इस एक ही काव्य से इनकी विलक्षण कवित्व-शक्ति का परिचय मिल जाता है। वस्तु के स्वल्प होने के साथ ही इसमें वर्णनों का बाहुल्य तथा प्राकृतिक चित्रण की सौंदर्यमयी गरिमा है। पदों का सुंदर विन्यास, अर्थों की मनोहर कल्पना, भक्ति का उद्रेक आदि इसकी विशेषताएँ हैं। द्वितीय सर्ग में इन्होंने कवि और काव्य की मार्मिक समीक्षा की है।

मंगरस (मंगराज) *(क० ले०)*

कन्नड साहित्य में मंगरस अथवा मंगराज नाम के लेखक तीन हुए हैं। इनमें 'खगेंद्रमणिदर्पण' (दे०) के लेखक मंगरस प्रथम (समय—1960 ई० के आसपास) का नाम यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'अभिनव मंगराज' नाम से मंगराज द्वितीय ने 'मंगराज निघंटु' अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभिनव-निघंटु' की रचना की है। मंगरस तृतीय सम्यक्त्व कौमुदी' (दे०), 'जयनृपकाव्य', 'नेमिजिनेश-संगतिं', 'पाकशास्त्र', 'प्रभंजनचरिते', 'श्रीपालचरिते' आदि ग्रंथों के कर्ता हैं।

मंगरस प्रथम होय्सळ राज्य के देवळिगे जनपद के प्रधान नगर मुगुळियपुर के अधिपति और पूज्यपाद के शिष्य थे। वे जैन-धर्मावलंबी थे। उन्होंने अपने पूर्व कवि केशववर्णि की स्तुति की है। सुललितकविपिकवसंत, विभुवंशललाम, कविजनैकमित्र, अगणितगुणनिलय, अखिल-विद्याजलनिधि और पंचगुरुपदांबुजभृंग—ये उपाधियाँ उनको प्राप्त थीं। उनका ग्रंथ 'खगेंद्रमणिदर्पण' एक शास्त्र-ग्रंथ है जिसमें आयुर्वेदशास्त्र-विषयक विषवैद्य का सोलह अधिकारों (अध्यायों) में 'कंद' वृत्त में वर्णन है। शास्त्र-ग्रंथ होने पर भी उसकी भाषा-शैली में लालित्य है और कविता मनोहारी है।

मंगराज, रामचंद्र (उ० पा०)

रामचंद्र मंगराज फ़क़ीर मोहन सेनापति (दे०) के उपन्यास 'छमाण आठ गुंठ' का महत्वपूर्ण पात्र है। यह सामंतवादी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाला ज़मींदार है। इसके शोषण-उत्पीड़न से परिपूर्ण जीवन में न कहीं विराम है और न कहीं अनुताप। अनाथ होने के कारण बाल्यावस्था में ग़रीबी के दिन देखता हुआ ज़मींदारी के ऐश्वर्यपूर्ण शिखर पर पहुँचा है। इसलिए साधन का औचित्यानौचित्य तथा आहत अहं की अज्ञात प्रतिक्रिया इसके चरित्र की प्रधान विशेषताएँ हैं, जिनमें दुष्टा चंपा की कुमंत्रणाओं का भी विशेष महत्व है।

मंगराज आड़े समय में थोड़ी आर्थिक सहायता देकर शेख दिलदार मियाँ की ज़मींदारी धूर्तता से हड़प लेता है। प्रजा व रिश्तेदारों की संपत्ति भी चालाकी से हथिया लेता है। चंपा के परामर्श से अपने प्रतिद्वंद्वी बाघ-सिंह का घर जला कर उसका सर्वनाश कर देता है। इसकी लोलुप दृष्टि से भागिआ और सारिआ की छह एकड़ ज़मीन भी नहीं बच पाती। इतना ही नहीं, मुकदमे के खर्च की वसूली में उनके घर का सामान नीलाम कराके उनके घर को भी तुड़वा देता है। भागिआ पागल हो जाता है क्योंकि यह उसकी अत्यंत प्रिय गाय भी नहीं छोड़ता तथा सारिआ निराहार रह रोते-रोते मंगराज की बाड़ी के पीछे मर जाती है।

मंगराज के घर पर चंपा का शासन रहता है। इसकी धर्मपत्नी पति के क्रूर-कुत्सित जीवन के कारण घुल-घुल कर मर जाती है।

बाद में इसे गाय की चोरी के अपराध में कारावास मिलता है। जेल में पागल भागिआ आकर इसकी नाक काट लेता है। जेल से घर आने के थोड़े ही दिनों बाद इसकी हत्या गोविंद नाई के हाथों हो जाती है। वकील रामलाल इसकी ज़मींदारी ले लेता है। इधर चंपा दूसरे के ज़रिये इसके धन का अपहरण कर लेती है। इस प्रकार उपन्यासकार ने बिभिन्न रूपों में इसे दंड दिया है। यहाँ तक कि मृत्युशैया पर भी आक्रमण को उद्यत सारिआ की विकराल मूर्ति इसे दिखाई पड़ती है। किंतु लेखक ने इसके प्रति कहीं घृणा प्रदर्शित न करके पाठक के हृदय में इसके प्रति सहानुभूति ही जगाई है। कारण, उसके विचार में पाप घृणित है, पापी नहीं।

मंगलकाव्य (बँ० प्र०)

मध्ययुगीन बँगला-साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण धारा शाक्तधर्मी काव्यधारा है जिसके लिए एक दूसरा नाम बहुत प्रचलित हुआ—मंगलकाव्य। लोकमंगल की भावना से प्रेरित इस काव्य के रचयिताओं ने किसी एक देवता के माहात्म्य का कीर्तन किया है। देवताओं में स्त्री-देवता की ही प्रधानता रही—मनसा, चंडी, अन्नदा। इसके अति-रिक्त धर्म एवं शिव को लेकर भी काव्य रचा गया है। साधारणतया इन मंगल-काव्यों में पहले ईश्वर-वंदना होती है जिसमें हिंदू-मुसलमान-निर्विशेष असांप्रदायिक भक्ति-भावना रहती है। दूसरे अंश में ग्रंथ-रचना का कारण एवं कवि का आत्म-परिचय रहता है। तीसरे अंश में पौरा-णिक देवता के साथ लौकिक देवता का संबंध स्थापित किया जाता है। चतुर्थ अंश में काव्य-वर्णित देवता की पूजा के प्रचार के लिए किसी-किसी देवता के या किसी स्वर्गवासी के शापभ्रष्ट होकर संसार में जन्म लेने का, और फिर उसके ऐहिक जीवन का, वर्णन किया जाता है। इस काव्य का यही मूल कथांततु होता है।

मंगल-काव्यों का छंद 14 मात्राओं का पयार छंद है। इनमें गीतों की झंकार होती है। यथार्थ मानवीय चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। पुरुष, स्त्री और उनके व्यवहार की सुंदर अभिव्यंजना होती है। इन मंगलकाव्यों में मनसा (सर्पों की देवी)-मंगल की रचना सबसे पहले हुई। मनसा (दे०)-मंगल के सैकड़ों कवियों में सर्वप्रमुख हैं विजयगुप्त। चंडी के कीर्तन-गान के लिए 'चंडीमंगल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) के नाम से भी बहुत से कवियों ने काव्य-रचना की जिनमें सर्वप्रमुख हैं, कविकंकण मुकुंदराम चक्रवर्ती (दे०)। अन्नदा (पार्वती)-मंगल काव्य के सर्वश्रेष्ठ रचयिता हैं भारतचंद्र (दे०)। इन मंगल-काव्यों के अतिरिक्त धर्म-मंगल (दे०) और शिव के स्तुतिगान के लिए शिवायन की भी नाना कवियों ने रचना की जिनमें क्रमशः घनराम चक्रवर्ती (दे०) और रामेश्वर चक्रवर्ती के नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं।

मंगलदेव शास्त्री *(सं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]।

जन्मस्थान—बदायूं (उत्तर प्रदेश)।

ये हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अँग्रेज़ी, फ़्रेंच तथा जर्मन भाषा के वेत्ता हैं। इनके द्वारा रचित 'ऋग्वेद (दे०) प्रातिशाख्य', 'प्रबंधप्रकाश', 'भारतीय संस्कृति का विकास', 'जीवनज्योति' आदि 40 ग्रंथ हैं। ये गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रधानाचार्य पद पर, गुरुकुल काँगड़ी, विश्वविद्यालय के विज़ीटर के पद पर तथा संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के उपकुलपति के पद पर कार्य कर चुके हैं। इन्हें 1966 ई० में राष्ट्रपति का सम्मानपत्र प्राप्त हुआ था। संप्रति ये भारतीय संस्कृत-शोध-संस्थान, दिल्ली के निदेशक के पद पर कार्य कर रहे हैं। वैदिक-पौराणिक अनुसंधान के क्षेत्र में इनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

मंगळमाला *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1876-1942 ई०]

इसके रचयिता रामवर्मा अप्पन तंपुरान् (दे०) कोचीन राजपरिवार के सदस्य तथा आदर्श विद्या-व्यसनी थे। संस्कृत-साहित्य, व्याकरण, न्याय, आयुर्वेद आदि विषयों के अलावा अँग्रेज़ी-साहित्य पर भी इनका अच्छा अधिकार था। इनके व्यक्तिगत प्रयास से ही प्रशस्त 'रसिकरंजिनी' और 'मंगळोदयम्' पत्रिकाएँ चलीं और इन पत्रिकाओं ने 'मलयाळम्' वाङ्मय की सराहनीय सेवाएँ की थीं। श्री तंपुरान् की निजी लेखन-कला काव्य, समालोचना, अनुशीलन, इतिहास आदि विभिन्न क्षेत्रों पर केंद्रित रही थी। इनकी रचना 'मंगळमाला' पाँच खंडों में प्रकाशित है। यह एक निबंधमाला है। इसके प्रथम खंड का संबंध इतिहास से है और दूसरा साहित्य-संबंधी है। तीसरा खंड जीवनी पर आधारित है। चौथे खंड में शास्त्रों की चर्चा है। पाँचवें खंड में विविध विषय हैं। महाकवि उळ्ळूर् (दे०) ने चौथे एवं पाँचवें खंडों की विशेष प्रशंसा की है। शास्त्रादि विषयों की चर्चा के योग्य नयी शब्दावली का गठन तंपुरान् ने किया था जिनकी सूची इस ग्रंथमाला में एक साथ दी गई है।

मंगेशराव, पंजे *(क० ले०)* [जन्म—1874 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

पंजे मंगेशराव मंगळूर ज़िले के अंतर्गत बंटवाळ के निवासी थे। इनका बाल्यकाल ग़रीबी में व्यतीत हुआ। संघर्षमय जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना कर बी० ए० उपाधि पाने के बाद ये मंगळूर राजकीय कॉलेज में अध्यापक हुए। जब एल० टी० पास हुए तब कुछ समय तक डिप्टी एजुकेशन इंस्पेक्टर और कालांतर में मडकेरी राजकीय हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक के पद पर रहे। संगीत की गमक-कला और शिशु-साहित्य में इनकी विशेष आसक्ति थी। मंगळूर के बाल-साहित्य-मंडल के संस्थापकों में इनका नाम भी आदर के साथ लिया जाता है।

नवीन काव्य के मार्गदर्शकों में पंजे मंगेशराव भी एक थे। परंतु इन्होंने शिशु-साहित्य और कहानी-साहित्य के क्षेत्र में विशेष काम किया है। कन्नड-कहानी-साहित्य के प्रारंभकर्त्ता लेखकों में केरूर वासुदेवाचार्य (दे०) और मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे० मास्ति) के अतिरिक्त पंजे भी कहे जाते हैं। इनके नौ ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं—'ऐतिहासिक कथावली', 'ओड्डन ओट' (ओड्ड की दौड़), 'कन्नडदल्लि सुधारणेगळु' (कन्नड में सुधार), 'कोक्कोक्कोळि' (मुर्गी की बाँग), 'कोटिचेन्नय', 'गुडुगुडु गुम्मट-देवरू', 'प्राणिगळ प्रदेशगळू', 'मूल व्याकरण' और 'हेनु सत्तु कागे बडवायितु' जूँ की मौत से कौआ दुबेला हुआ)। इनमें 'मूल व्याकरण' और 'कन्नडदल्लि सुधारणेगळु' को छोड़कर शेष ग्रंथ कहानी-साहित्य और शिशु-साहित्य से संबंधित हैं। इनकी कहानियों में यद्यपि पाश्चात्य अनुकरण स्पष्ट है, तथापि दक्षिण कन्नड ज़िले के जन-जीवन के ज्वलंत चित्र प्रस्तुत करने में भी इनको सफलता मिली है।

पंजे जी 1934 ई० में रायचूर में संपन्न कन्नड-साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। इन्होंने दक्षिण कन्नड ज़िले में जिस निष्ठा से कन्नड-साहित्य का प्रचार किया, वह विस्मरणीय नहीं है। कन्नड-कहानी-साहित्य के जन्मदाता के रूप में ही नहीं, कन्नड-साहित्य के निष्ठावान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक के रूप में भी उनका नाम अमर रहेगा।

मंगैयरकरशियिन कादल *(त० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती का प्रथम चरण]

यह तमिल के प्रसिद्ध कहानीकार व० वे० शु० अय्यर की आठ कहानियों का संग्रह है। 'मंगैयरकरशियिन कादल' इस संग्रह की सर्वाधिक प्रभावशाली कहानी है जिसके आधार पर इस संग्रह का नामकरण किया गया है। इसमें युवती मंगैयरकरशि की युवा करुणाकरन के प्रति सच्चे प्रेम की कथा वर्णित है। मार्तंडन नामक अन्य युवक मंगैयरकरशि को पाने की इच्छा से करुणाकरन का वध कर देता है। अंत में चंडिका-रूप धारण कर मार्तंडन का वध कर मंगैयरकरशि आत्महत्या कर लेती है। 'कुळत्तंगरै अरशमरम' में तालाब के किनारे स्थित पीपल का वृक्ष रुक्मिणी नामक नारी की करुण कथा कहता है जिसने ससुराल के झगड़ों से तंग आकर आत्महत्या कर ली थी। 'गांगेयन' और 'अळेनळक्केन' में कहानीकार ने निजी अनुभवों का वर्णन किया है। पहली में देश-निष्कासन का दंड पाने वाले देशभक्तों के दुःखों का और दूसरी में प्रथम विश्व-युद्ध से संबंधित एक घटना का वर्णन है। 'अनारकली' एवं 'लैला-मजनूं' में क्रमशः सलीम-अनारकली एवं लैला-मजनूं की इतिहास-प्रसिद्ध प्रेम-कथा को मौलिक और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'कमल-विजयम' एक काल्पनिक प्रेम-कथा है। 'एदिरोलियाळ' में ग्रीक पुराण की एक कथा वर्णित है।

ये सभी कहानियाँ कथा-शिल्प की दृष्टि से सुंदर हैं। घटनाओं तथा दृश्यों का वर्णन तथा पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रभावशाली है। कहानियों में कुछ सुखांत हैं और कुछ दुःखांत। इनके माध्यम से कहानीकार तमिल लोगों के रीति-रिवाज, विश्वास आदि के वर्णन में और प्रेम, शोक, वीरता, त्याग, करुणा, देशप्रेम आदि भावों की अभिव्यंजना में सफल हुआ है। विभिन्न कहानियों में शृंगार, करुणादि रसों की सफल व्यंजना हुई है। सभी कहानियाँ गंभीर, कवित्वपूर्ण, भावपूर्ण शैली में रचित हैं। इनकी कवित्वमयता इन्हें गद्यकाव्य के निकट पहुँचा देती है।

यह व० वे० उ० अय्यर का एकमात्र कहानी-संग्रह है। इससे पूर्व भी तमिल में अनेक कहानियाँ लिखी गईं परंतु इन कहानियों में ही कहानी के सभी अपेक्षित तत्त्व प्राप्त होते हैं। इसी से इसे तमिल का प्रथम कहानी-संग्रह माना जाता है।

मंचना *(ते० ले०)* [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती]

मंचना ने शैवमत के प्रचार के लिए अपना जीवन अर्पित किया था। इनका 'केयूरबाहुचरित्रमु' चार सर्गों का प्रबंध-काव्य है। राजशेखर (दे०) द्वारा संस्कृत में रचित 'विद्धसालभंजिका' नाटक की यह अनुकृति है। इस काव्य में तथा इसके मूल-नाटक में इतिवृत्त की समता है। किंतु पात्रों के नाम आदि भिन्न हैं। कवि ने इसमें 'पंचतंत्र' (दे०) की कई कहानियों को भी जोड़ दिया है। इसकी रचना औचित्यपूर्ण वर्णनों तथा नीति-प्रतिपादक कथाओं के कारण पाठक को आकृष्ट करती है। इनकी शैली सरल एवं रसमय है। शैली में क्लिष्टान्वय या दीर्घ समास कहीं भी दिखाई नहीं देता।

मंजरीमधुकरीयमु *(ते० कृ०)*

कोराड़ रामचंद्रशास्त्री (दे०)-कृत 'मंजरी-मधुकरीयमु' (र० का० 1860 ई०) तेलुगु का प्रथम मौलिक नाटक है। यह चार अंकों वाली नाटिका है। इसमें मधुकर नामक राजा तथा मंजरी नामक राजकुमारी के विवाह की कथा प्रधान है। इस विवाह में चंडयोगिनी नामक क्षुद्रमंत्रोपासिका अनेक बाधाएँ उपस्थित करती है। इस नाटक की कथा कवि-कल्पना-प्रसूत है। नायक-नायिका में प्रेम स्वप्न-दर्शन (स्वप्न में रतिसुख प्राप्त करना) से हो जाता है।

यह संस्कृत-नाटिका के लक्षणों के अनुकूल है। चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कथाकथन पर विशेष ध्यान दिया गया है। भाषा पात्रोचित है।

अभिनय के योग्य न होने पर भी, यह सफल श्रव्य-नाटक है और तेलुगु भाषा का प्रथम नाटक होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व है।

मंझन *(हिं० ले०)*

इनका रचना-काल 1493 ई० के निकट बैठता है। ये सूफ़ी कवि कुतबन (दे०) के समकालीन थे। इन्होंने कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस की राजकुमारी की प्रेमकथा को 'मधुमालती' (दे०) नामक रचना में वर्णित किया है। इसमें पाँच चौपाइयों के बाद एक दोहा रखा गया है। इसकी कल्पना बड़ी विशुद्ध है। कहानी काफ़ी विशद है और आध्यात्मिक प्रेम-भाव की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुंदर व्यंजना करती है। इस ग्रंथ के आधार पर दक्षिण के कवि नसरती ने 'गुलशने इश्क़' (1643 ई०) लिखा है। कवित्त (दे०)-सवैया (दे०) बनाने वाले मंझन नामक एक कवि और हुए हैं। सूफ़ी काव्य के प्रथम तीन कवियों में इनका स्थान निश्चित है।

मॅझिनीचें चरित्र *(मल० कृ०)*

मराठी साहित्य का यह एक अनुपम चरित्र-ग्रंथ है। इसके लेखक विनायक दामोदर सावरकर (दे०) हैं और इसका प्रकाशन (1907 ई०) में हुआ था।

पश्चिम के विचारक एवं क्रांतिकारी जोसेफ़ मैज़िनी के जीवन-दर्शन से प्रभावित हो यह चरित्र-ग्रंथ लिखा गया है। मैज़िनी की राज्यक्रांति के तत्त्वज्ञान से प्रभावित होकर तथा स्वातंत्र्य के संदेशवाहक विचारों के प्रसार के उद्देश्य से इस ग्रंथ की रचना हुई है।

चरित्र-लेखन के अतिरिक्त इस ग्रंथ के महत्व का कारण सावरकर द्वारा लिखित इसकी ओजस्वी प्रस्तावना है। मुक्त हृदय की आकुलता एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति की निष्ठा को इस प्रस्तावना में लेखक ने ऐसी प्रभावशाली रीति से व्यक्त किया है कि इसे पढ़कर कई देशप्रेमी युवक आवेश से पागल हो उठे थे। यह प्रस्तावना अत्यंत उत्तेजक है जो नवयुवकों की रगों में क्रांति का जोश भरती रही। इसमें क्रांति का समर्थन एवं नवयुवकों का क्रांति के लिए आह्वान किया गया है। इस प्रकार से यह प्रस्तावना क्रांतिकारियों की 'गीता' (दे०) रही है।

इसकी प्रभावोत्पादकता एवं उग्रता इसी बात से सिद्ध है कि इस चरित्र-ग्रंथ के प्रकाशित होते ही अँग्रेज़ सरकार ने इसे ज़ब्त कर लिया था और 1946 ई० तक यह ग्रंथ ज़ब्त ही रहा।

मंटो के अफ़साने *(उर्दू० कृ०)*

यह उर्दू के सुप्रसिद्ध, कहानीकार (सआदत-हसन) मंटो (दे०) की कहानियों का संग्रह है। इसमें मंटो की आरंभिक कहानियाँ हैं। इनके बाद उनकी अनेक और अच्छी कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

इन कहानियों में समाज पर तीखा व्यंग्य है। बेकारी आदि समस्याओं को लेकर समाज की दुर्दशा और उसके घिनौने रूप का अनोखा प्रभावशाली चित्रण इन कहानियों में मिलता है। भाषा में तीखापन और पैने व्यंग्य का पुट है।

मंटो अपनी कहानियों में जीवन का यथार्थ रूप प्रदर्शित करते हैं। उनकी कहानियाँ जीवन से अतीत नहीं, उसके साथ गहरे में जुड़ी हुई हैं।

मंटो, सआदत हसन *(उर्दू० ले०)*

मंटो मनोवैज्ञानिक तथा यौन समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले अत्यंत सफल उर्दू कथाकार थे। इनकी अति यथार्थवादी कटु शैली के कारण इन पर कई प्रकार के आरोप लगाए गए तथा अभियोग भी चलाए गए। 'सेक्स' मंटो के मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था। उन पर फ़्रायड का भी गहरा प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

मंटो ने नैतिक एवं चारित्रिक रूप से शोषित पात्रों को वाणी प्रदान की है। मंटो का उद्देश्य संभवतः यह समझाना है कि समाज के हाथों विवश होकर कुछ लोग किस प्रकार अपना मान, मर्यादा तथा लज्जा आदि बेचने को मजबूर हो जाते हैं। कामवासनाओं का बड़ा सजीव चित्रण मंटो ने किया है किंतु कहीं-कहीं वह ऐसे परिवेश के प्रति पूर्ण रूप से घृणा पैदा करने में असफल भी रहे हैं। संभवतः मंटो जैसे कथाकारों के संबंध में ही इक़बाल ने कहा था—'आह, बेचारों के आसाब पे औरत है सवार'।

प्रगतिशील साहित्य का जो लक्ष्य है—पददलितों को उभारने का—वह मंटो के यहाँ कम ही मिलता है। मंटो की शैली में प्रवाह है, गहराई नहीं। प्रायः एक ही जैसी बातों की आवृत्ति है। 'ठंडा गोश्त', 'तीन आने', 'खोल दो', 'टोबा टेकसिंह' आदि मंटो की बहुत प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

मंडन मिश्र *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—800 ई०]

मंडन मिश्र की जन्मभूमि माहिष्मती पुरी थी। यह विवादास्पद है कि मंडन मिश्र, सुरेश्वराचार्य और विश्वरूप एक ही थे। मंडन मिश्र और शंकराचार्य (दे०) का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। मंडन मिश्र-रचित दो विशेष ग्रंथ मिलते हैं—एक 'विधिविवेक' और दूसरा 'ब्रह्मसिद्धि'। इनमें भी 'ब्रह्मसिद्धि' अत्यंत महत्वपूर्ण है। ब्रह्मसिद्धि के ब्रह्मकांड, तर्ककांड, वियोगकांड और सिद्धिकांड—ये चार भाग हैं।

मंडन मिश्र मीमांसक तथा वेदांती दोनों ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। इन्होंने ब्रह्मसिद्धि के ब्रह्मकांड में ब्रह्म का प्रतिपास किया है। तर्ककांड के अंतर्गत सांसारिक भेदरूपता का निराकरण किया है, नियोगकांड में मीमांसा का खंडन किया है, और सिद्धिकांड के अंतर्गत दृश्यजगत् की असत्यता का प्रतिपादन किया है।

मंडन मिश्र ने अविद्या तथा माया को एक ही स्वीकार किया है। इन्होंने अविद्या का संबंध विभिन्न जीवों से माना है।

मंत्रगोप्य *(क० प्र०)*

कन्नड के वीरशैव-साहित्य में जो दार्शनिक प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, उनमें 'मंत्रगोप्य' भी एक है। भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के बिना परवस्तु का साक्षात्कार संभव नहीं है। वह परवस्तु अपने से भिन्न नहीं है। संकल्प-विकल्प का मन जब निचली श्रेणी से ऊपर उठकर उन्मन स्थिति में पहुँच जाता है तब 'शब्द-मुग्ध स्थिति' प्राप्त होती है। इस स्थिति में मंत्रमय मूर्ति अंतरंग में प्रकाशित होती है। इसी का नाम 'मंत्रगोप्य' है। कन्नड के वीरशैव भक्त-कवियों ने 'मंत्रगोप्य' पर पुस्तकें लिखी हैं। अल्लम-प्रभु (दे०), बसवेश्वर (दे०), चेन्नबसव (दे०), सिद्ध-राम (दे०), अक्कमहादेवी (दे० महादेवि यक्का) और पुलिगेरे सोमेश प्रभृति कृतिकारों ने ऐसी पुस्तकें लिखी हैं। इनमें साधारणतया 27 पद्य होते हैं जो राग-ताल-लयबद्ध होते हैं। शिवयोग की साधना करने वाले साधक के लिए ये अत्यधिक मूल्यवान हैं। जो साधक 'मंत्रगोप्य' की साधना करता है, उसे लिंगैक्य-लिंगानुभव अथवा दिव्य आध्यात्मिक अनुभव होता है।

मंदाक्रांता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

चंद्रप्रसाद शाइकीया (दे०) के इस उपन्यास में नाग-रिक जीवन का चित्रण सुकुमार भाषा में है। इसमें रोमांसवादी आदर्श का चित्रण है। लेखक की चेष्टा चित्रात्मक वर्णन की भी रही है। यह जनप्रिय उपन्यास है।

मंदाक्रांता *(हि० पारि०)*

मंदाक्रांता का प्रत्येक चरण 17 वर्णों का होता है। इनमें क्रमशः मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

फूलों पत्तों, सकल तरुओं, औ लता-वेलियों से,
आवासों से, ब्रह्म-अवनि से, पंथ की रेणुओं से।
होती सी थी, यह ध्वनि सदा सदा, कुंज से काननों से,
मेरे प्यारे, कुँवर अब भी, क्यों नहीं गेह जाए।
(हरिऔध : प्रियप्रवास)

मंदिरमय भारत *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

अपूर्वरतन भादुड़ी ने दो खंडों में 'मंदिरमय भारत' (1956) की रचना कर भारत के प्राण-केंद्र विभिन्न हिंदू मंदिरों, बौद्ध-चैत्यों तथा विहारों या संघारामों एवं जैन मंदिरों का बहुत सुंदर ही विवरण प्रस्तुत किया है। मंदिरों के विस्तृत विवरण एवं मूर्तियों के विवरणों के अतिरिक्त इसमें पौराणिक युग से लेकर अब तक के भारतवासियों का इतिहास, उनकी सामाजिक रीति-नीति एवं जीवन-यात्रा-प्रणाली तथा स्थापत्य एवं भास्कर्य के क्रम-विकास का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं मंदिरों का विवरण देते हुए लेखक ने हिंदू, बौद्ध एवं जैन धर्ममतवाद, उनका मूर्तितत्त्व, जातक कहानियाँ, भगवान बुद्ध के जीवन की प्रधान घटनावली की कहानियाँ एवं पौराणिक कहानियाँ भी लिपिबद्ध की हैं।

लेखक ने इसी संदर्भ में भारतवर्ष के स्थापत्य, शिल्प एवं मूर्तिकला की निर्माण-पद्धति, उनका क्रमविकास एवं क्रमोन्नति का विद्वत्तापूर्ण परिचय भी दिया है। भादुड़ी ने उचित ही कहा है कि इन मंदिरों के द्वारा भारत की अखंड सभ्यता, शिक्षा एवं संस्कृति की महागौरवमय कीर्ति का निदर्शन होता है।

मक़्तआ *(उर्दू० पारि०)*

ग़ज़ल (दे०) या क़सीदे (दे०) का अंतिम या (क़सीदे में अंतिम से पहला) शेर जिसमें कवि अपना तखुल्लस (उपनाम) लाता है। जैसे—

नादाँ हो जो कहते हो कि क्यों जीते हो 'ग़ालिब'!
किस्मत में है मरने की तमन्ना कोई दिन और।
नहीं खेल ऐ 'दाग़' यारों से कह दो
कि आती है उर्दू ज़बाँ आते-आते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकबूलशाह क्रालवारी *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1820 ई०; मृत्यु—1876 ई०]

बहुमुखी प्रतिभा के आशुकवि जिन्होंने शैशव में छंद-रचना करके अपने परिवार वालों को आश्चर्यचकित किया था। इन्होंने 'ग्रीसनामा', 'पीरनामा', 'मुल्लानामा', 'बहरनामा', 'अय्यूबनामा', 'मनसूरनामा' की रचना की, किंतु इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति है कश्मीर की प्रसिद्ध मसनवी 'गुलरेज़', जिसका कश्मीरी संगीत में एक प्रमुख स्थान है। इनकी भाषा पर फ़ारसी का काफ़ी प्रभाव रहा है। इनकी शैली में व्यंग्य और वाग्विदग्धता है, और उदात्त होने के साथ-साथ उसमें माधुर्य भी है। इन्होंने प्रेम-सुधि एवं विरह-वेदना के ओजस्वी गीत भी लिखे हैं। अनुकरणात्मक पदों और शब्दचित्रों की कला में क्रालवारी को कमाल हासिल है।

मख़दूम *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1914 ई०; मृत्यु—1969 ई०]

मुहीउद्दीन नाम था 'मख़दूम' इनका तख़ल्लुस है। इनका जन्म मैदक (हैदराबाद) में हुआ था। इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा भी वहीं पाई थी। जामिआ उस्मानिया से 1934 ई० में एम० ए० किया। तत्पश्चात् सिटी कालेज में उर्दू के प्राध्यापक नियुक्त हुए। साम्यवादी विचारधारा तथा राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेने के आधार पर नौकरी छोड़ दी। दीर्घकाल तक अज्ञातवास में रहे, फिर हैदराबाद परिषद के सदस्य बने और दकन के विख्यात राजनीतिक नेता तथा कवि होने का गौरव प्राप्त किया।

इनके काव्य-संग्रह का नाम 'सुर्ख़ सवेरा' है।

मखी, आनंदराय *(सं० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध एवं अठारहवीं शती का पूर्वार्ध]

आनंदराय मखी तंजोर के राजा शाहजी (1684-1710 ई०) तथा शरभोजी (1711-1720 ई०) के प्रधानामात्य थे। ये प्रबल शैव तथा सरस्वती के आराधक थे। ये 'वेदकवि' नाम से विख्यात हैं। अपने वैदुष्य की गरिमा के कारण इनका राजदरबार में बड़ा सम्मान था। दक्षिण के कवियों में ये अग्रणी माने जाते थे।

संस्कृत में प्रतीक-नाटकों की एक विशिष्ट परंपरा है। इनके दो प्रतीक-नाटक उपलब्ध होते हैं—'विद्यापरिणयन' (दे०) तथा 'जीवानंदन'। 'विद्यापरिणयन' में सात अंक हैं। इसमें अद्वैत वेदांत के साथ शृंगार रस का समन्वय प्रदर्शित किया गया है। शिव-भक्ति के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, यही दिखलाना नाटककार को अभिप्रेत है। इसमें चार्वाकादि विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं का सन्निनेश 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) की शैली पर किया गया है। नाटक की भाषा सरल एवं सुबोध है। 'जीवानंदन' में भी सात अंक हैं। इसमें विभिन्न रोगों का चित्रण पात्रों के रूप में किया गया है। शारीरिक व्याधियों में राजयक्ष्मा ही सब व्याधियों से बढ़कर है। इसके पाश में पड़े हुए जीव का छुटकारा पारद रस के प्रयोग से ही होता है। आयुर्वेद के तत्त्वों के नाटकीय पात्रों के रूप में प्रदर्शन का यह सफल प्रयास है।

मग्दलनमरियम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1921 ई०]

वळ्ळत्तोळ् (दे०)-विरचित 'मग्दलनमरियम्' की कथावस्तु बाइबिल के 'सेंट लूकास' प्रसंग से ली गई है। किसी धनी के यहाँ ईसा मसीह के आतिथ्य-ग्रहण करते वक्त मग्दलैना की बदनाम मेरी आ खड़ी हो गई। उसने आँसुओं से प्रभु के पाँवों को धोया, केशों से पोंछा और बारंबार चूमा। उनके सिर पर उस वक्त युवती ने सुगंधित तेल लगाया। उसने प्रभु से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। ईसा मसीह के पूजक गृहस्थ को उनका व्यवहार अजीब लगा। तब मसीह ने मेरी की सेवा और पछतावे का महत्व समझाया।

ईसाई धर्म पर आश्रित मलयाळम काव्य संख्या में बहुत कम हैं; जो हैं वे इसके समान हृदयहारी नहीं हैं। इसकी छोटी-सी कथावस्तु को कल्पना के वैभव से मंडित कर कवि ने अत्यंत विस्तृत रूप दे दिया है। प्रकृति का कवित्वमय चित्रण इस ग्रंथ की अन्य विशेषता है। गीतिमय द्राविड छंदों में सरल शब्दावली का प्रयोग करते हुए कवि ने मेरी की अमर गाथा गाई है।

मच्चाट्टिळयतु *(मल० ले०)*

इनके संबंध में किसी भी इतिहासकार ने पूर्ण रूप से परिचय नहीं दिया है। श्री उळ्ळूर (दे०) का मत है कि उन्नीसवीं शती में उनका जन्म हुआ है। 'पार्वतीस्वयंवरम्' नामक काव्यग्रंथ उनका लिखा हुआ है। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों का मत है कि गोपालन् ए.पुत्तच्छन ने इस ग्रंथ का निर्माण किया है। ये ज्योतिष के बड़े पंडित थे। 'जातकादेशरत्नम्', 'रामायणम् यमक काव्यम्', आदि ग्रंथों के अलावा इन्होंने उन्नीस कृतियाँ विविध गीतों में लिखी हैं। इनकी भाषा सरल है।

मजनूँ (उर्दू० ले०) [जन्म —1904 ई०]

पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित उर्दू लेखकों में 'मजनूँ' एक विशेष स्थान रखते हैं। इनका जन्म पलडा, ज़िला बस्ती (उ० प्र०) में हुआ था। ये अँग्रेज़ी कथाकार 'हार्डी' से अत्यधिक प्रभावित हैं। ये जीवन-मरण, नेकी और बदी के संघर्ष तथा मानव की स्वतंत्रता-समीपता आदि अनेक गंभीर समस्याओं को अपनी कृतियों में प्रस्तुत करते हैं। इनके पात्र अत्याचार-पीड़ित होते हैं, अतः पाठकों की सहानुभूति के पात्र होते हैं। ये वर्तमान समाज के प्रति विद्रोह की प्रेरणा देते हैं। इनका प्रत्येक पात्र शांतिमय संसार की खोज में लगा हुआ प्रतीत होता है। मजनूँ की कहानियों में प्रेम की भावनाओं का प्राधान्य रहता है। ये प्रेम की कोमलतम भावनाओं को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। इनकी कहानियाँ प्रायः दुःखांत होती हैं। इन्होंने प्रकृति के दृश्य कम खींचे हैं परंतु जितने हैं वे पर्याप्त आकर्षक हैं। ये अपने गद्य में अवसरानुकूल शेर लिखकर उसे प्रभावशाली बना देते हैं। इनकी भाषा प्रवाहमयी है। ये कथानक की रोचकता बनाए रखने में सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियों के दो संग्रह—'ख्वाब-ओ-खयाल' और 'समनपोश' प्रकाशित हो चुके हैं।

आलोचना के क्षेत्र में भी मजनूँ का विशेष नाम है। संभवतः ये कहानीकार से अधिक आलोचक के रूप में याद किए जाएँगे। पाश्चात्य आलोचना से इन्होंने उर्दू को समृद्ध किया है। 'अदब और ज़िंदगी' और 'तनकीदी हाशिये' इनके आलोचनात्मक निबंधों के संग्रह हैं।

'मजबूर', अर्जुन देव (कश्० ले०) [जन्म—1923 ई०]

जन्म कश्मीर की कुलगाम तहसील स्थित जैनपुरा गाँव में। ये समाज में व्याप्त विषमता के प्रति आक्रोश व्यक्त करते रहे हैं। ये कुछ-कुछ वामपंथी विचारधारा के हैं तथा जनकवि 'नादिम (दे०) से प्रभावित हैं। प्रेमाख्यान, सामाजिक विषमता, प्राकृतिक सौंदर्य आदि विषयवस्तुओं को लेकर काफ़ी गीत और ग़ज़लें लिखी हैं। इनके गीतों में जहाँ संघर्ष की भावना है वहीं प्रायः निराशा भी झलकती रहती है। इनकी कविता का स्तर उदात्त है; शैली मौलिक एवं मार्मिक है, और बुद्धिवादी होने के परिणामस्वरूप भाषा ठेठ कश्मीरी है। कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से ग्रामीण प्रयोग झलकते हैं। लय, सुर एवं गेयता की दृष्टि से इनकी कविताएँ ऊँचे स्तर की एवं लोकप्रिय हैं।

मजमुदार, मंजुलाल (गु० ले०) [जन्म—1897 ई०]

डॉ० मंजुलाल रणछोड़लाल मजमुदार मूलतः नडियाद तहसील के महुधा नामक गाँव के निवासी हैं। बड़ौदा में नियमित रूप से रहने के कारण इन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र बड़ौदा को ही बना लिया है। 1929 ई० में 'समाजशास्त्रनी दृष्टिए ब्रिटिश युग पहेलानो गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास' नामक महानिबंध पर इन्हें एम० ए० तथा 1943 ई० में 'गुजराती कलानी सांस्कृतिक भूमिका अने लघु पोथी चित्रो' नामक शोध-प्रबंध पर पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। लोक-साहित्य में शोध से अपना कार्य आरंभ करने वाले मजमुदार जी ने चित्रकला के क्षेत्र में शोधपरक सिद्धियाँ प्राप्त कीं और 1938 ई० में बड़ौदा कॉलेज में गुजराती के अध्यापक के रूप में नियुक्त हो कर साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। 1952 ई० में वहाँ से निवृत्त हो कर मंजुलाल जी ने 'गुजराती पद्य साहित्यनां स्वरूपो', 'रेवाने तीरे तीरे', 'मीरांबाई : एक मनन', 'क्रानो-लोजी ऑफ़, गुजरात', 'वल्लभ भट्टनी वाणी', 'सदयवत्स वीरप्रबंध', 'ब्रह्मदेवनी अररगीता', 'गनीमनी लडाईनो पवाडो', 'कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात', 'साहित्यकार प्रेमानंद : नवुं संपादन', 'दसे आंगलीए वेढ', 'प्रेमानंद त्रि-शताब्दी ग्रंथ', 'वडोदराना सारस्वतो', 'गुजरात : इट्स आर्ट्स हेरिटेज', 'आपणी लोककथाओ' नामक ग्रंथों के रूप में गुजरात को अपनी अमूल्य सेवाएँ दी हैं। अध्यापन-क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर तथा उसके भी पूर्व मंजुलाल जी ने अनेक ग्रंथों के संपादन किए हैं। श्री मंजुलाल की इतनी व्यापक शोध-प्रवृत्तियों तथा कला-विवेचनों की अभिशंसा-स्वरूप गुजरात साहित्य सभा ने इन्हें 'रणजीतराम स्वर्ण पदक' प्रदान किया है।

मजरूह सुलतानपुरी (उर्दू० कवि०) [जन्म—1919 ई०]

इनका नाम असरार हसन है और 'मजरूह'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तखल्लुस है। इनका जन्म आज़मगढ़ में हुआ था। इनके पिता का नाम मुहम्मद हुसैन खाँ था। मजरूह शिक्षा-प्राप्ति के पश्चात् वैद्यक करने लगे। किंतु शेर-ओ-शायरी के कारण ऐसी ख्याति प्राप्त की कि वैद्यक का कार्य छोड़ दिया। आजकल फ़िल्म उद्योग में हैं और गीत लिखते हैं। इनकी ग़ज़लों का संग्रह प्रकाशित होकर पाठकों में लोकप्रिय हो चुका है। इनकी ग़ज़लों ने ही इन्हें ख्याति दिलाई है। भाषा स्पष्ट सरल एवं सरस है।

'मजाज़', इसरारुलहक *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1913 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

'मजाज़' अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रगतिशील विद्यार्थी थे। यहीं से बी० ए० पास करने के बाद कुछ समय आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में और कुछ दिनों बंबई सरकार के सूचना विभाग में नौकरी करते रहे।

मजाज़ समाज की विषमतापूर्ण, करुण एवं भयानक अवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले क्रांतिकारी कवि थे। जागृति के दूत के समान ये इस जर्जरित व्यवस्था के साथ जूझने का संदेश देते हैं। इनकी शायरी जनता के दुःख-दर्द का बयान है। ये नौजवानों, ग़रीबों तथा बेरोज़गारों की भावनाओं को सच्चाई से बयान करते हैं और ऐसा करते हुए कवित्व पर भी आघात नहीं लगने देते। इनके काव्य में प्रवाह एवं सरसता है। निराशा तथा आत्महनन के भाव उसमें बहुत कम हैं। यौवन की मस्ती इनके काव्य का आकर्षण है। 1938 ई० में इनका काव्य-संग्रह 'आहंग' (दे०) के नाम से छपा था और उससे इन्हें पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। 1945 ई० में कुछ नयी नज़्मों के साथ 'आहंग' शीर्षक संग्रह 'शबताब' के नाम से पुनः प्रकाशित हुआ। इनका तीसरा संग्रह है 'सोज़-ए-नौ'।

मज़ामीन-ए-चकबस्त *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

लेखक—पं० (ब्रजनारायण) चकबस्त (दे०) लखनवी। इंडियन प्रेस लि०, इलाहाबाद से प्रकाशित इस कृति में अल्लामा चकबस्त लखनवी के निबंधों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। विषय की दृष्टि से ये निबंध बहुमुखी हैं। इसमें कतिपय साहित्यकारों, कविसम्मेलनों और काव्यकृतियों के अतिरिक्त इतिहास, समाज-सुधार और राजनीतिक नेताओं पर भी लेखनी उठाई गई है। 'भारत-दर्पण', 'उर्दू शायरी', 'गुलज़ार-ए-नसीम' (दे०) गुलजार-ए-नसीम की भूमिका', 'दाग़' और 'पं० रतननाथ सरशार' आदि निबंध इस कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त 'पं० दयाशंकर कौल 'नसीम', 'पं० त्रिभुवन नाथ सप्रू हिज्र', 'मिर्ज़ा मच्छूबेग सितम ज़रीफ़', 'मुंशी ज्वाला प्रसाद बर्क़'', और अवध-पंच पर लिखे निबंधों का भी अपना ऐतिहासिक महत्व है। इन निबंधों की भाषा-शैली और प्रतिपादन-शैली अत्यंत प्रौढ़ और उदात्त है। कहीं-कहीं अनुसंधान के स्तर के तथ्यों का निरूपण भी हुआ है। इसमें कवियों के काव्य की आलोचना निष्पक्ष भाव से की गई है और प्रत्येक प्रतिपाद्य तथ्य के संदर्भ में उदाहरण और प्रमाण भी प्रभूत मात्रा में जुटाए गए हैं। इस कृति के अनुशीलन से इस निर्विवाद सत्य का उद्घाटन हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का यह अमर गायक महान कवि चकबस्त-लखनवी गद्य-लेखन में भी सिद्धहस्त था और मौलिक आलोचना तथा अनुसंधान की प्रतिभा भी उसमें प्रचुर मात्रा में थी।

मज़ामीन-ए-पतरस *(उर्दू० कृ०)*

यह जैड० ए० बुख़ारी 'पतरस' (दे०) के हास्य-व्यंग्य-निबंधों का संग्रह है जो उर्दू के व्यंग्य-साहित्य की एक अद्‌भुत कृति है। इसके माध्यम से उर्दू में पाश्चात्य शैली का समावेश हुआ। इसमें समाज के जीवन में विद्यमान अंधविश्वासों और वहमों पर करारी और गहरी चोटें की गई हैं तथा मानव-प्रकृति के गुणों एवं विशेषताओं को उभारने और उजागर करने का प्रयास किया गया है। 'सवेरे जो कल मेरी आँख खुली' शीर्षक निबंध में उन लोगों पर चोट है जो सवेरे-सवेरे उठकर तंग करते हैं। 'कुत्ते' भी एक सुंदर व्यंग्य-रचना है। लेखक के अनुसार कुत्ते एक मोहल्ले में जब भौंकते हैं और दूसरी ओर से दूसरे कुत्ते जब जवाब देते हैं तो ऐसा लगता है मानो 'तरह्-मिसरा' देकर मुशायरा शुरू हो रहा हो।

लेखक शब्दों और घटनाओं से ही हास्य की स्थिति उत्पन्न कर लेता है। भाषा चुटीली, आकर्षक, सुंदर और रसीली है। 'मज़ामीन-ए-पतरस' उर्दू की एक अनमोल रचना है।

मजीद *(मल० पा०)*

यह वैकम, मुहमद (दे०) बशीर वैकम के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु उपन्यास 'बाल्यकालसखी' (दे०) का नायक है। मजीद एक होनहार युवक है जिसकी पैतृक संपत्ति बाद में नष्ट हो जाती है और दुर्घटना में स्वयं लँगड़ा हो जाता है। घर से दूर एक होटल में मज़दूरी करने वाले इस विकलांग युवक को मनोबल प्रदान करने वाली बचपन की सखी सुहरा (दे०) का भी तपेदिक से देहांत हो जाता है।

यह उन युवकों का प्रतीक है जिनका जीवन प्रगति के सभी साधन होते हुए भी विफल हो जाता है। अपने वृद्ध माता-पिता, युवा बहनों और व्याकुल प्रेमिका के प्रति अपने कर्तव्यों को यह जानता है और उनको निभाने की कामना करता है परंतु इसके सभी स्वप्न मिट्टी में मिल जाते हैं। इसके चरित्र में मनुष्य-जीवन के सभी दुःखों को समेटने के प्रयत्न में बशीर को सफलता मिली है।

मजुमदार बरुवा, दुर्गाप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

जन्मस्थान—शिवसागर का शुकानपुखुरी स्थान। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'उजु कविता' (1895), 'लोरा कविता' (1899), 'फुल' (1899)। **नाटक** : 'महरि' (दे०) (1896), 'निग्रो', 'गुरुदक्षिणा' (1903), 'कलियुग' (1904), 'वृषकेतु'।

इनके 'महरि', 'निग्रो' और 'कलियुग' व्यंग्य-नाटक हैं। 'महरि' (क्लर्क) में चाय-बगीचे के जीवन का चित्रण है। 'गुरुदक्षिणा' में कृष्ण-संदीपन और 'वृषकेतु' में कर्ण-पुत्र वृषकेतु के त्याग का वर्णन है। ये दोनों नाटक शिशुओं के लिए हैं। 'निग्रो' नाटक की प्रतियाँ अब अनुपलब्ध हैं। इन्होंने ग्राम्य-जीवन का सुंदर चित्रण किया है। इन्होंने गाँव के दोषों पर निर्मम प्रहार न कर हास्य-कोमल दृष्टि से ही उन्हें देखा है। इनकी ख्याति नाट्यकार और शिशु-साहित्य-लेखक के रूप में है।

मजुमदार, मोहितलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

कवि मोहितलाल ने बँगला काव्य में देहवाद तथा भोगवाद के एक नये स्वर की संयोजना की है। रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) की प्रारंभिक कविताओं में देहवाद का प्रकाश दिखाई पड़ता है परंतु देहातीत अतींद्रिय लोक की अभिव्यक्ति उनके परवर्ती काव्य में द्रुत एवं स्वच्छंद ढंग से हुई है। मोहितलाल ने अध्यात्मवाद के राज्य में कभी पदार्पण नहीं किया। उन्होंने देहवाद के आधार पर जीवन के रूपों की अभिव्यक्ति की है। रूप-सौंदर्य के कवि होने के कारण उन्होंने सौंदर्य के नाना रहस्यमय क्षेत्रों में पदार्पण किया है। रवींद्रनाथ के मार्ग का तो उन्होंने अनुसरण किया ही है, ऊपर से देवेंद्रनाथ (दे० ठाकुर), सत्येंद्रनाथ (दे० दत्त) आदि समकालिक कवि-गोष्ठी के प्रति भी वे विमुख नहीं रहे हैं। सौंदर्यविलास के कवि के लिए देहवाद ही जीवनवाद होता है। वीराचारी तांत्रिकों का हृदय लेकर कवि देह के भीतर देहातीत की कुंदन-ध्वनि सुनता है। और वहीं उसकी कविताएँ यथार्थ रूप से रसोत्तीर्ण हैं।

इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं—'स्वपन पसारी' (1921), 'विस्मरणी' (1926), 'स्मरगरल' (दे०) (1936), 'हेमंत गोधूलि' (1942) एवं 'छंद-चतुर्दशी' (1941)।

'भारती' पत्रिका के पन्नों में 'श्री सत्यसुंदर दास' के छद्म नाम से इन्होंने आलोचनात्मक निबंध लिखना शुरू किया। मोहितलाल का प्रथम परिचय इनके कविरूप में प्राप्त होता है किंतु इनका प्रधान परिचय इनके प्रबंधों में उपलब्ध है। इनके प्रबंध-ग्रंथ हैं 'साहित्य-कथा', साहित्य-विज्ञान', 'आधुनिक बाँगला' साहित्य', 'नवयुगेर बाँगला', 'बंकिम चरण', 'कविश्री मधुसूदन', 'श्रीकान्तेर शरत्चन्द'। कवि एवं समालोचक मोहितलाल बँगला-साहित्य के क्षेत्र में स्वकीय वैशिष्ट्य से चिर-उज्ज्वल हैं।

मज्झिमापटिपदा (सं० मध्यमाप्रतिपदा) *(पा० पारि०)*

'प्रतिपदा' शब्द का अर्थ मार्ग तथा ज्ञान भी है। इस प्रकार मध्यमाप्रतिपदा का अर्थ हुआ मध्यम मार्ग या ज्ञान का अवलंबन करना। भगवान् बुद्ध ने अपने प्रथम प्रवचन 'धम्मचक्कपवत्तनसुत्त' में ही इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था कि संसार में दो अतिवाद मनुष्य को दुःख से छुटकारा नहीं दे सकते। ये दो अतिवाद हैं इंद्रिय सुख का उन्मुक्त उपभोग और आत्मदमन के साथ तपस्या। भगवान् बुद्ध दोनों अतिवादों से होकर निकले थे किंतु उनमें दुःख से छुटकारा दिखलाई नहीं पड़ा। इसलिए भगवान् बुद्ध ने दोनों अतिवादों को छोड़कर मध्य मार्ग का अवलंबन करने का उपदेश दिया। ये अतिवाद साधना-क्षेत्र में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगत होते हैं। यही संघर्ष और जय-पराजय का मूल है। पहले नैतिक और व्यावहारिक जगत् में ही मध्यम मार्ग का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादन किया गया। आगे चलकर माध्यमिक संप्रदाय के रूप में दार्शनिक जगत् में भी उदित हुआ। उसमें बतलाया गया है कि मध्यम मार्ग का अवलंबन बाह्य सत्ता की अस्वीकृति और परमतत्त्व की मान्यता में ही संभव है।

मटक *(पं० ले०)*

ये पंजाबी के एक वीर-कवि हुए हैं जिनके द्वारा रचित 'जंगनाम फिरंगियां ते सिधां दा' (दे०) नामक कृति उल्लेखनीय है। इनके जीवन के संबंध में कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है। प्रोफ़ेसर गंडासिंह द्वारा संपादित 'पंजाब दीयां वारा' नामक संग्रह में इनकी कविता का जो नमूना दिया गया है उससे ये महाराजा रणजीतसिंह के समकालीन प्रतीत होते हैं क्योंकि इनके द्वारा उक्त 'जंगनामा' में दिए गए तथ्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के सर्वथा अनुकूल हैं।

इनकी रचना 'ड्योढ' छंद में लिखी गई है जो कवि की कुशल काव्य-प्रतिभा की परिचायक है। उदा०— 'दोवें करी तंबूर खड़कदे, जुद्ध की भई तियारी; लशकर भारी'।

मटक हुलारे *(पं० कृ०)*

यह भाई वीरसिंह (दे०) का दूसरा महत्वपूर्ण कविता-संग्रह है। प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से 'लहरा दे हार' और काव्य-श्रेष्ठता की दृष्टि से 'मेरे साइयांजी' का स्थान प्रथम है। 'मटक हुलारे' में भाई वीरसिंह की अनेक छोटी कविताएँ संगृहीत हैं जिन्हें कवि ने स्वयं विधान या भावानुसार विभिन्न उपखंडों में विभक्त किया है, जैसे 'पत्थर कंबणीआं' तथा 'कशमीर नज़ारे' आदि। इस संग्रह की कविताओं का प्रतिपाद्य अतीत का गौरव-गान, वर्तमान दुरवस्था का चित्रण, आध्यात्मिक प्रेम, प्रकृति-सौंदर्य और व्यक्तिवादी-अंतर्मुखी आत्मानुभूति का प्रकाशन है।

यह रचना एक ओर भाई वीरसिंह के जीवन-दर्शन को पूर्व-रचनाओं की अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट रूप देती है तो दूसरी ओर उनके काव्य-व्यक्तित्व के विकास के नये चरण की भी द्योतक है। अधिकांश कविताएँ तुरपाई (दे०) छंद में लिखी गई हैं और उनमें भाव-प्रवाह एवं संगीत-प्रवाह का सुंदर संयोग है।

मडिया, चुनीलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1922; मृत्यु—1968 ई०]

इन्होंने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा सौराष्ट्र तथा उच्च शिक्षा अहमदाबाद में प्राप्त की थी। लेखन का प्रारंभ इन्होंने कहानी से किया था। 'घूघवतां पुर' नामक इनका प्रथम कहानी-संग्रह आंचलिक गुणों से भरपूर है जिसके द्वारा इन्होंने गुजराती कहानी-साहित्य को नया मोड़ दिया है। 'व्याजनो वारस' नामक आंचलिक उपन्यास में इन्होंने सौराष्ट्र के जनजीवन का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। इनके 12 कहानी-संग्रह, 16 उपन्यास, 5 एकांकी-संग्रह, नाटक तथा दो आलोचना-संग्रह इनकी बहुमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं।

आंचलिकता और व्यंग्यात्मकता इनके रचना-कौशल का वैशिष्ट्य है। 'सधरा जेयसंग नो सालो' (दे० सधरा जेसंग) तथा 'सधरा जेसंग नो सालोनो सालो' नामक उपन्यास तथा 'रामलो रोबिन हुड' नामक नाटक व्यंग्य-प्रधान है। इनका विषय आज की राजनीति है। इनके आलोचना संग्रहों में इनकी बहुज्ञता का परिचय मिलता है। इस प्रकार अनेक विधाओं में विपुल और वैविध्यपूर्ण साहित्य-सर्जक के रूप में गुजराती-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।

मढ़ी दा दीवा *(पं० कृ०)*

यह गुरुदयाल सिंह (दे०) का प्रथम उपन्यास है। इसमें जागीरदारी समाज को पृष्ठभूमि बनाकर 'शीरी श्रमिकों' के जीवन का एक सार्थक दुःखांत चित्र प्रस्तुत किया है। इस चित्र में जागीरदारी तथा मानव-विरोधी श्रेणिक चरित्र पर—जिसका प्रतिनिधित्व मंता सरदार करता है—ज़ोरदार व्यंग्य किया है। व्यंग्य के सैद्धांतिक अर्थ बड़े स्पष्ट हैं।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र जगसीर है जो एक प्रकार से छोटे आदमी के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। गुरुदयाल सिंह ने प्रथम बार ऐसा मुख्य पात्र प्रस्तुत किया है जो पंजाबी उपन्यास के परंपरागत नायक के संकल्प से एकदम अलग है।

√ **मणक्कुडवर** *(त० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

तमिल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'तिरुक्कुरळ्' (दे०) के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्याकारों में 'परिमेलल्कर' के साथ ही 'मणक्कुडवर' का भी नाम है। इनके बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। इनकी व्याख्या से पता चलता है कि ये तमिल-वाङ्मय के अच्छे ज्ञाता थे। 'परिमेलल्कर' की व्याख्या में संस्कृत-ग्रंथों के उद्धरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं; किंतु इनकी व्याख्या शुद्ध तमिल-परंपरा की अनुगामिनी है। भाषा सरल और विवेचन-गर्भित है। इनके और किसी ग्रंथ का पता नहीं लगा है।

मणिकोंवर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः सातवीं शती]

यह असमीया के प्रसिद्ध बैलेडों में एक है। भाटों का एक वर्ग पर्वों के अवसर पर असम में बैलेडों का गायन करता है। जनता के मध्य इनका मौखिक प्रचार रहा है; इनमें प्रक्षेप भी होते रहे हैं। इनमें असमीया-जीवन और संस्कृति का प्रतिबिंब है। हेम बरुवा (दे०) के शब्दों में यह पद्य में लिखित उपन्यास है। अब तक खोजे गए प्राचीनतम असमीया बैलेड हैं—'मणिकोंवर' और 'फुलकोंवर'। कामरूप के राजा शंकलादिब एक कुशल योद्धा थे, इनके पुत्र का नाम मणिकोंवर था, जिसकी मृत्यु 16 वर्ष की आयु में हो गयी थी। मणिकोंवर के शोक में बैलेड की रचना हुई थी। इनके पुत्र फुलकोंवर पर भी गीतों की रचना हुई। बैलेड की कथा-शैली सरल, सहज और अकृत्रिम हैं।

मणिमेखलै *(त० कृ०)* [रचना-काल—दूसरी शती]

चात्तनार की 'मणिमेखलै' कृति को तमिल के पांच प्रसिद्ध महाकाव्यों में परिगणित किया जाता है। इस महाकाव्य की नायिका है मणिमेखलै (दे०)। मणिमेखलै 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) के नायक कोवलन और उसकी प्रेयसी माधवी (दे०) की पुत्री थी। इन महाकाव्यों की कथा के परस्पर एक-दूसरे से संबद्ध होने के कारण ही इन्हें जुड़वाँ महाकाव्य कहा जाता है। यह कृति 30 कथा-खंडों में विभाजित है। मणिमेखलै की नायिका धर्म-पुत्री के रूप में हमारे समक्ष आती है। इस महाकाव्य के रचयिता चात्तनार बौद्ध मतानुयायी थे अतः उन्होंने स्थान-स्थान पर बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का विवेचन किया है। चात्तनार ने उस युग में समाज में प्रचलित प्रसिद्ध धर्मों की चर्चा करते हुए बौद्ध धर्म की महिमा का वर्णन किया है। कहीं-कहीं जहाँ धार्मिक सिद्धांतों का विवेचन प्रधान हो गया है वहाँ काव्यत्व क्षीण हो गया है। मणिमेखलै को तमिल में रचित प्रथम धार्मिक महाकाव्य कहा जा सकता है। विद्वानों का मत है कि इस महाकाव्य की रचना समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियों को दूर करके जनता को सद्मार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए की गई थी। उत्तर भारत में उत्पन्न बौद्ध मत का विवेचन करने के कारण चात्तनार की भाषा में संस्कृत तथा पालि के अनेक शब्दों का सहज समावेश हो गया है। अनेक स्थलों पर मणिमेखलै की शब्दावली, प्रसंग और उपमाएँ 'शिलप्पदिकारम्' से मेल खाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञों, धार्मिक सिद्धांत-विशारदों और इतिहासज्ञों सभी की दृष्टि में 'मणिमेखलै' का महत्व अक्षुण्ण है।

मणिमेखलै *(त० पा०)*

मणिमेखलै का संबंध मूलतः तमिल के दो प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) और 'मणिमेखलै' (दे०) से है। ये महाकाव्य जुड़वाँ महाकाव्य कहलाते हैं क्योंकि एक की कथा ही दूसरे में विकास पाती है। 'शिलप्पदिकारम्' में मणिमेखलै नायक कोवलन् और उसकी प्रेमिका वेश्या माधवी (दे०) की पुत्री के रूप में चित्रित है। मणिमेखला नामक एक देवी ने कोवलन् के किसी पूर्वज की सहायता की थी; इसी से कोवलन् ने अपनी पुत्री को मणिमेखलै नाम दिया। कोवलन् की मृत्यु पर माधवी ने संन्यास ग्रहण कर लिया और वह बौद्ध भिक्षुणी बन गई। उसने मणिमेखलै को भी संन्यास ग्रहण करने की प्रेरणा दी। चात्तनार-कृत 'मणिमेखलै' महाकाव्य में मणिमेखलै नायिका के रूप में चित्रित है। वेश्याकुल में उत्पन्न होते हुए भी वह अपनी माँ माधवी के समान वेश्या-कर्म से विमुख रहती है। कोवलन् की मृत्यु पर माँ माधवी के बौद्ध भिक्षुणी बन जाने पर यह भी बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है और दीन-दुखियों की सेवा में लग जाती है। दीवतिलकै नामक देवी की सहायता से प्राप्त 'अमुद सुरभि' नामक अलौकिक पात्र के सहारे यह निर्धन, क्षुधातुर व्यक्तियों के कष्ट दूर करती है। मणिमेखलै साक्षात् देवी के समान जनता के लिए आत्म-सुखों का त्याग कर देती है।

मणिमेखल की कल्पना मूलतः अँग्रेजों के ईसाई धर्म-प्रचार के विरुद्ध बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए तथा उसे मानव-मात्र के दुःखों का नाश करने वाला उच्च धर्म सिद्ध करने के लिए की गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिमेखलै संबंधी परवर्ती कृतियों में सर्वप्रमुख है 'भारतीदासन्' (दे०)-कृत 'मणिमेखलै वेण्बा' (इस काव्य कृति में कवि ने मणिमेखलै एवं माधवी के चरित्र को उभारा है)।

मणिराम देवान *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

प्रवीण फुकन (दे०) के तीन अंक के इस नाटक के नायक देशभक्त निर्भीक मणिराम देवान हैं। अँग्रेज़ों ने जो अत्याचार किए उससे उनके बंधु मणिराम भी असंतुष्ट होकर विद्रोही हो गए। उन्होंने एक ओर कलकत्ता के गवर्नर को आवेदन किया था तो दूसरी ओर असमीया-जनता को संघर्ष के लिए सन्नद्ध किया था। इस नाटक के संवाद नाट्य-गुण-पूर्व एवं भाषा सजीव है।

मणिनादम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

यह इटप्पळ्ळि राघवन् पिळ्ळा (दे०) का कविता-संग्रह है जो उनकी आत्महत्या के बाद प्रकाशित हुआ था। इसमें उनकी अंतिम कविताएँ संगृहीत हैं।

इस संग्रह की 'मणिनादम्' शीर्षक कविता कवि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें कवि की मानसिकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इसमें उन्होंने अपने को इस संसार के छल-कपट सहन करने में असमर्थ कहा है। कवि आदर्शनिष्ठा को अपनी पराजय का कारण मानता है और मृत्यु को ही सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान मानता है।

राघवन् पिळ्ळा की आत्महत्या मलयाळम-साहित्य की एक गंभीर दुःखदायी घटना के लिए प्रेरक मनःस्थिति को प्रदर्शित करने वाले इस काव्य-संग्रह का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

मणिप्रवालम् *(मल० पारि०)*

शुद्ध मलयाळम-शब्दों तथा सरल संस्कृत-शब्दों को मिलाकर जो राज्य-समुच्चय बनाया जाता है उसे 'मणिप्रवाळम्' कहते हैं : 'भाषा संस्कृतयोगो मणिप्रवाळः। माणिक्य तथा विद्रुम मिलाकर एक ही सूत्र में पिरोने के बाद जिस प्रकार उन्हें अलग-अलग करना असंभव है उसी प्रकार सरल कोमल मलयाळम तथा संस्कृत के शब्दों को मिलाकर जो कविता लिखी जाती है वह 'मणिप्रवाळ'-शैली की कविता मानी जाती है। 'उण्णियच्चिचरितम्' (दे०) 'उण्णुनीलि संदेशम्' (दे०) 'रामायणम् चंपू' जैसे काव्य-ग्रंथ मणिप्रवाल शैली में लिखे गए हैं।

मण्णाशै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1939 ई०]

रचयिता शंकरराम। यह उपन्यास मूलतः अँग्रेज़ी में 'लव ऑफ़ डस्ट' के नाम से 1932 ई० के लगभग प्रकाशित हुआ। 1939 ई० के लगभग लेखक ने इसे तमिल में प्रस्तुत किया। इसमें तिरुच्चिरापळ्ळि ज़िले के एक गाँव वीरमंगलम के निवासी वेंकटाचलम के भूमिप्रेम (मण्णाशै) का वर्णन है। गाँव के वयोवृद्धों के मुख से अधिक उपज देने वाले विदेशी चने के विषय में सुनकर वेंकटाचलम ऋण लेकर चने की खेती करता है। दुर्भाग्यवश उसके खेत में आग लग जाती है। लोगों का यह उपदेश कि 'भूमि का एक हिस्सा बेच कर ऋण चुका दो' उसे तनिक भी नहीं भाता। वह स्पष्ट कह देता है कि 'यह भूमि मेरा जीवन है। इसे मैं अपने पेट के लिए नहीं बेचूँगा। 'भूमि की रक्षा के प्रयत्न में नाना कष्ट झेलते हुए वह मर जाता है। उपन्यास में इस मूल कथा के साथ-साथ वेंकटाचलम के पुत्र वेलन और वळ्ळि की प्रेम-कथा की भी सफल नियोजना है। उपन्यास में ग्रामीण जनता के जीवन-संघर्ष, आशा-आकांक्षा, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम, प्रतिशोध-भावना, भीरुता, धनाधिक्य से उत्पन्न गर्व आदि का सफल चित्रण है। इसमें कथा कहने की प्राचीन परिपाटी अपनाई गई है। कथा में सहज प्रवाह है। पात्र उपन्यासकार के हाथों की कठपुतली नहीं, उनका निजी व्यक्तित्व है। पात्रों का चित्रण प्रायः यथार्थ के धरातल पर हुआ है। उपन्यास में तिरुच्चिरापळ्ळि ज़िले के वीरमंगल गाँव के जीवन का सजीव-प्रभावशाली चित्रण है। वेंकटाचलम के माध्यम से ग्रामीण जनता के माटी-प्रेम का सफल चित्रण किया गया है। सरल, प्रवाहपूर्ण शैली में रचित इस उपन्यास को ग्रामीण जीवन का अमर काव्य कहा जा सकता है। तमिल के यथार्थवादी, सामाजिक-आंचलिक उपन्यासों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

मतल्‌आ *(उर्दू० पारि०)*

ग़ज़ल या क़सीदा (प्रशस्ति-गान) का पहला शेर जिसके दोनों मिसरे (चरण) हमकाफ़िया (तुकसाम्य से युक्त) होते हैं 'मतल्‌आ' कहलाता है। 'मतले' के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा, तीसरा और चौथा मतल्आ भी हो सकते हैं जिन्हें 'हुस्न मतल्आ' कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'मोमिन' (दे०) की ग़ज़ल का मतल्आ और हुस्न-मतल्आ नीचे लिखे जाते हैं—

मतल्आ—डर तो मुझे किसका है कि मैं कुछ नहीं कहता
पर हाल यह अफ़शां है कि मैं कुछ नहीं कहता।

हुस्न-मतल्आ—
नासिह ! यह गिला क्या है कि मैं कुछ नहीं कहता
तू कब मेरी सुनता है कि मैं कुछ नहीं कहता।

मथू *(म० पा०)*

मामा (भा० वि०) वरेरकर (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'विधवा कुमारी' की नायिका मथू के माध्यम से लेखक ने अपने समाज और धर्म-संबंधी प्रगतिशील विचारों को व्यक्त किया है। दरिद्र भिक्षुक की कन्या मथू बचपन में ही विधवा हो जाती है पर लेखक का उद्देश्य विधवा की असहाय स्थिति के प्रति पाठकों की सहानुभूति उत्पन्न करना मात्र नहीं है। वह एक पग आगे बढ़कर मथू को अपने अन्य उपन्यासों की नायिकाओं के समान नटखट, हठीली, चतुर और बातून चित्रित करता है। वह प्रोत्साहन पाकर शिक्षा ग्रहण करती है, विलायत जाती है, विधवा होने पर भी कुंकुम लगाती है, सभाओं में भाषण देती है, पर इतनी क्रांतिकारी होते हुए भी पुनर्विचार नहीं करती। उपन्यास के पूर्वार्ध में लेखक को मथू के चित्रण में जितनी सफलता मिली है, उतनी उत्तरार्ध में नहीं। पूर्वार्ध में वह नायिका की उत्कट भावनाओं से तादात्म्य स्थापित कर उसके स्वभाव में आयी कटुता को सफलतापूर्वक चित्रित करता है परंतु उत्तरार्ध में उसके चरित्रांकन में अतिरंजना और अस्वाभाविकता आ गई है।

मदनतिलक *(क० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई० का पूर्वार्ध]

'मदनतिलक' के कवि चंद्रराज (1025 ई० के आसपास) चालुक्य राजा जयसिंह (1012-42 ई०) के राजत्वकाल में जीवित थे। महासामंत रेच उनके आश्रयदाता थे। कामशास्त्र पर ग्रंथ-रचना करने वालों में चंद्रराज का ही नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। वे वाजिगोत्र के ब्राह्मण कवि थे। उनके ग्रंथ से मल्लिकार्जुन ने अपने 'सूक्ति-सुधार्णव' (दे०) के लिए पद्य चुने हैं। कुछ कवियों ने 'चंद्र', 'चंद्रभट्ट' कहकर उनकी स्तुती की है।

'मदनतिलक' चंपू-ग्रंथ है। उसके प्रारंभिक गद्य में कहा गया है कि चंद्रराज ने अठारह अधिकरणों में नाना छंदों का प्रयोग करते हुए गद्य-पद्यात्मक ग्रंथ विश्रुत किया है। उन्होंने प्रारंभ में मन्मथ की स्तुति की है, तत्पश्चात् चालुक्य जयसिंह तथा अपने आश्रयदाता रेच की प्रशंसा की है। आकार की दृष्टि से उनका ग्रंथ छोटा है, पर उसके प्रत्येक पद्य में शब्दालंकार-वैचित्र्य तथा रचना-कौशल प्रकट होते हैं। उनकी कविता 'चित्रकविता' होने पर भी उसमें लालित्य है, रस-प्रवणता है।

मदाह *(सिं० पारि०)*

'मदाह' का शाब्दिक अर्थ है स्तुति, प्रशंसा, महिमा। इसका मूल अरबी शब्द 'मद्ह' है जिसका भी वही अर्थ है। अरबी में प्रशंसा करने वाले को 'मादिह' या 'मद्ह' कहते हैं, परंतु सिंधी में 'मदाह' से कर्तावाचक संज्ञा का रूप 'मदाही' (मदाह कहने वाला) अधिक प्रचलित है। सिंधी-साहित्य में 'मदाह' उस कविता या गीत को कहा जाता है, जिसमें इस्लाम के किसी पैग़ंबर, दरवेश, नबी आदि की महिमा गाकर उसके लिए प्रेम और श्रद्धा की अभिव्यक्ति की गई हो।

'मदाहू और मुनाजातूं' नाम से डा० नबी बख़्श खान बलोच (दे०) ने चुनी हुई सिंधी-मदाहों और मुनाजातों (देखिए 'मुनाजात') का एक प्रामाणिक संग्रह तैयार किया है जो 1959 ई० में सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद सिंध से प्रकाशित हो चुका है। सिंधी-मुसलमान मसजिदों और मदरसों में तथा ईद, विवाह आदि अवसरों पर मदाहें गाते हैं। जुमन चारण और मियाँ मुहम्मद सरफ़राज़ खान की रचित मदाहें आज भी सिंध में बहुत लोकप्रिय हैं।

मधुमालती *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1545 ई०]

यह मंझन (दे०)-प्रणीत हिंदी की प्रसिद्ध सूफ़ी प्रेमाख्यानक रचना है। इसकी कथा लोक-प्रचलित कहानी पर आधारित है। इसमें कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस की राजकुमारी 'मधुमालती' की प्रेमकथा को आधिकारिक कथा के रूप में वर्णित किया गया है। ताराचंद और प्रेमा की प्रेमकथा गौण कथा के रूप में विकसित हुई है। कहानी कहने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने भारतीय कथानक तथा काव्य-रूढ़ियों का मुक्त रूप से प्रयोग किया है। बीच-बीच में आध्यात्मिक तत्त्वों का समावेश भी है। अन्य सूफ़ी कवियों की भाँति कवि ने गुरु की प्रशंसा की है, प्रेम को सर्वोपरि माना है और दोहे-चौपाइयों में अपने काव्य का निर्माण किया है। कवि ने हिंदू विचारधारा से प्रभावित होकर पूर्वजन्म, कर्मफल, पिंडदान आदि की चर्चा भी की है। उपमान-योजना में भी भारतीय परंपरा का ध्यान रखा गया है। ग्रंथ में शृंगार-वर्णन विस्तार के साथ किया गया है और वह निश्चय ही रसराजत्व की कोटि तक पहुँच गया है सब। मिलाकर ग्रंथ काफ़ी रोचक और महत्वपूर्ण है।

मधुरचेन्न *(क० ले०)* [समय—1903-1952 ई०]

आधुनिक कन्नड के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि मधुरचेन्न का जन्म 31 जुलाई, 1903 ई० को उत्तर कर्नाटक के बिजापुर ज़िले के हलसंगी ग्राम के एक सात्विक वीरशैव परिवार में हुआ था। छुटपन में ही पिता को खो देने के कारण आपकी शिक्षा की ठीक व्यवस्था नहीं हो पाई। स्वाध्याय से हिंदी, बँगला, संस्कृत, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त किया। बचपन से ही धर्म और ईश्वर की ओर उनकी जिज्ञासा थी। फलतः उन्होंने सभी धर्मों के आधार-ग्रंथों का अध्ययन किया। कन्नड के श्रेष्ठ कवि बेंद्रे (दे०) तथा उनके 'गेळेयरगुंपु' के संपर्क में आने से उनके काव्य-प्रेम तथा आध्यात्मिकता को और बल मिला। रामनरेश त्रिपाठी (दे०) के 'मिलन' काव्य का कन्नड अनुवाद भी उन्होंने प्रस्तुत किया। इस बीच उनकी आध्यात्मिक साधना अबाध रूप से चलती रही।

महर्षि अरविंद, रामकृष्ण परमहंस तथा पाश्चात्य रहस्यवादी विचारधारा से वे विशेष प्रभावित हुए। अरविंद दर्शन से उनकी साधना को एक मिश्रित गति मिली। 'नन्न नल्ल' (मेरा प्रीतम) आपकी सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कृति है जिसमें आपकी मधुररस-मंडित गीतिकविता है। आपने परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखा है। इसके भाव मधुर हैं, भाषा मधुर है। 'आत्मसंशोधन' में आपने अपने आध्यात्मिक विचारों को वाणी दी है। ऋग्वेद के कई सूत्रों तथा रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के 'विसर्जन' नाटक का अनुवाद भी आपने किया है। भाषा लोकभाषा एवं संस्कृति से अनुप्राणित है।

मधुरवाणी *(ते० पा०)*

यह गुरजाडा अप्पाराव (दे०) के 'कन्याशुल्कमु' (दे०) नाटक की प्रसिद्ध स्त्री-पात्र है। पेशे से वेश्या होने पर भी सौजन्यशीला है। जहाँ तक हो सके अन्याय का विरोध करने का प्रयत्न करती है। यह गिरीशमु (दे०) के वाक्-कौशल से मुग्ध रहती है। लुब्धावधानी के मुक़दमे के सिलसिले में सौजन्याराव नामक वकील के पास जाती है। वे उसे चूमने को उद्यत होते हैं तो यह कहकर हट जाती है कि जो पतित नहीं हुए हैं, उन्हें बिगाड़ना नहीं चाहिए।

पतिता होने पर भी अपने साधु और निष्कपट स्वभाव के कारण मधुरवाणी लोकप्रिय हुई है।

मधुरामंगळ *(उ० कृ०)*

भक्त चरणदास (दे०)-रचित 'मधुरामंगळ' कृष्ण-काव्य-धारा की एक मूल्यवान उपलब्धि है। कंस-वध द्वारा कृष्ण ने मथुरा का मंगल-विधान किया था, अतः इस काव्य का नाम 'मथुरामंगळ' है। 'मधुरा-मंगळ' की विषय-वस्तु चिरपरिचित कृष्ण-कथा है। कृष्ण-काव्य की दार्शनिकता के घटाटोप में तथा आलंकारिकता के पृथुल भार से यह ग्राम्य घटना इस कृति में अपना निजत्व नहीं खो बैठी, यही कवि की उपलब्धि है।

इसमें कृष्ण-जीवन-संबंधी अनेक घटनाएँ आई हैं। कृष्ण-जन्म, बाललीला, शोकाकुल वृंदावन से कृष्ण का मथुरागमन, कंसवध, मथुरा-निवास, उद्धव से गोपियों की विरहजनित स्थिति का परिचय पाकर कृष्ण का दुःखी होना आदि बातें वर्णित हैं। मुख्य रूप से यह एक विरह-काव्य है। नटखट कन्हैया की क्रीड़ाओं पर अपना सर्वस्व लुटा देने को तत्पर माँ के आकुल अंतर की अनकही व्यथा, प्रेममूर्ति राधा की मौन वेदना, अनुरागमयी गोपियों की सजल कहानी काव्य की करुण मूर्च्छना में साकार हो उठी है। भाषा की सरलता में ग्रामीण जीवन की सहजता अक्षुण्ण रह सकी है, गतानुगतिकता के बीच भी यह ग्रामीण है, कम कृत्रिम है। दर्शन की गंभीरता में जीवन उच्छल संगीत है, इन्हीं बिंदुओं में इस रचना की लोकप्रियता एवं मार्मिकता अंतर्निहित है।

इसमें प्राकृत-भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। वृंदावन के उमड़ते प्रेम-प्रवाह में उद्धव का निर्गुण ज्ञान बह जाता है। माँ अपने कान्ह को ब्रह्म मानने को प्रस्तुत नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म क्या है, वह समझती भी नहीं; वह तो जानती है केवल अपने लाड़ले पुत्र को जिसकी वह माँ है—केवल माँ, शाश्वत माँ, जिसका वह बेटा है—केवल बेटा, सदा से और सदा के लिए। गोपियाँ तत्त्वज्ञानी उद्धव से केवल अपने कृष्ण को चाहती हैं, जिनके साथ उनका तिक्त-मधुर वैयक्तिक संबंध है। उद्धव निरुत्तर हैं, उनकी ज्ञान-गरिमा असहाय है। ज्ञानी उद्धव प्रेमी भक्त बन गोपी-जन-वल्लभ-श्याम के पास पहुँचते हैं। योगेश्वर, युगनायक कृष्ण भी प्रेम-मग्न हैं। यही सार्थकता है, यही सुंदरता है और इसलिए यह वैष्णवों का कंठहार है।

मधुरोय *(गु० ले०)* [जन्म—1942 ई०]

इनका जन्म द्वारका में हुआ था और इन्होंने अपनी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा द्वारका तथा उच्च-शिक्षा कलकत्ता में प्राप्त की थी। कलकत्ता के अपने अध्ययन-काल में ही ये कहानी-रचना करने लगे थे। शिल्प की नवीनता तथा घटना-विहीनता जैसे तत्त्वों के कारण इनकी कहानियाँ आधुनिक कहानियों के रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं। 'चेहरा' इनका प्रख्यात उपन्यास है जिसमें इन्होंने आधुनिक मानव के दंभ एवं विच्छिन्न जीवन का निरूपण आत्मकथात्मक मनोवैज्ञानिक शैली में किया है। इनके द्वारा रचित 'कामिनी' नामक कृति उपन्यास तथा नाटक का मिश्रण होने के कारण एक नया प्रयोग है। इसका सफल रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण पहले 'कोई एक फूलनो नामलो' नाम से नाटक के रूप में हुआ था। उसकी सफलता से उत्साहित होकर इन्होंने उसे वर्तमान प्रयोगात्मक रूप दिया।

ये प्रयोगशील कथाकार हैं। मानव-मन की गतिविधियों पर इनकी पकड़ अत्यंत गहरी है। इनकी कृतियों में चित्रित मनोवैज्ञानिक तत्त्व तथा यौन संबंधों की निवृत्ति इन्हें आधुनिक लेखकों की श्रेणी में ले आई है।

मधुसूदन ओझा *(सं० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

ओझा जी का जन्म बिहार प्रांत के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के गाढा नामक ग्राम में कृष्णजन्माष्टमी की रात्रि में हुआ था। इनके पिता का नाम वैद्यनाथ ओझा था। मधुसूदन ओझा को इनके ताऊ पंडित राजीवलोचन ओझा ने, जो जयपुर में रहते थे, गोद ले लिया था।

मधुसूदन ओझा-रचित ग्रंथों में 'ब्रह्मविज्ञान', 'यज्ञविज्ञान', 'पुराणसमीक्षा' तथा 'वेदांगसमीक्षा' प्रमुख हैं। 'ब्रह्मविज्ञान' सात प्रकरणों में विभक्त है। ये प्रकरण दिव्यविभूति, उक्थवैराजिक, आर्यहृदयसर्वस्व, निगमबोध, विज्ञानमधुसूदन, विज्ञानप्रवेशिका तथा पाश्चात्य-विज्ञान-पंचिका हैं। इनमें दिव्यविभूति ब्रह्मविज्ञान की उपोद्घात रूप है। 'ब्रह्मविज्ञान' के अंतर्गत ब्रह्मविज्ञान एवं उसके विज्ञाताओं के संबंध में गंभीर विवेचन किया गया है। 'यज्ञ-विज्ञान' चार प्रकरणों में विभक्त है। ये प्रकरण हैं—निवितू कलाप, यज्ञमधुसूदन, यज्ञविनयपद्धति तथा प्रयोगपारिजात। वेदांग समीक्षा के भी वाक्पदिका ज्योतिश्चक्रधर, आत्म-संस्कारकल्प तथा परिशिष्टानुग्रह चार प्रकरण विषय के आधार पर हैं।

मधुसूदन ओझा-विरचित साहित्य बीसवीं शती की विशेष देन है। ओझा जी की शैली परिष्कृत एवं वैज्ञानिक है। इनकी भाषा परिमार्जित एवं रोचक है।

मधुसूदन सरस्वती *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600 ई०]

मधुसूदन सरस्वती अक़बर के समकालीन थे। कहते हैं, अक़बर के दरबार में इनका बड़ा सम्मान था। ये अद्वैत-संप्रदाय के प्रधान आचार्यों में से हैं। इन्होंने 'सिद्धांतबिंदु', 'अद्वैतसिद्धि' (दे०) अद्वैतरत्नरक्षण', 'वेदांत-कल्पलविका', 'गूढार्थदीपिका' तथा 'प्रख्यानभेद' आदि ग्रंथों की रचना की थी।

मधुसूदन सरस्वती ने वेदांत के सिद्धांतों का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। सुषुप्तिकाल में होने वाले—'मैं सुखपूर्वक सोया' इस अनुभव के संबंध में शंकराचार्य (दे०) के परवर्ती विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मतों की प्रतिष्ठा की है। उदाहरण के लिए, सुरेश्वराचार्य सुषुप्ति के अवरवर्ती ज्ञान को 'विकल्प' कहते हैं। इस संबंध में मधुसूदन सरस्वती का विचार है कि सुषुप्ति-अवस्था में तामसी-वृत्ति से विशिष्ट अज्ञान का अनुभव होता है और जब सुषुप्ति-अवस्था को प्राप्त-जीव जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है तो उसकी तामसी वृत्ति की विभूति हो जाती है। इस वृत्ति के निवृत्त हो जाने पर तामसीवृत्ति-विशिष्ट अज्ञान की विवृति हो जाती है।

मधुसूदन सरस्वती की वेदांत-दर्शन को यह विशेष देन कही जा सकती है कि उन्होंने वेदांत और भक्ति के सम्मिश्रण का प्रयत्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकालना साहित्यप्रकार *(गु० ले०)* [प्रकाशन-वर्ष— 1955 ई०]

मध्यकालीन गुजराती साहित्य की भिन्न-भिन्न विधाओं पर लिखी गई डॉ० चंद्रकांत मेहता की यह कृति पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध है। इस ग्रंथ में मुक्तक, पद, रासा, आख्यान, कथावार्ता, फागु और गद्य-विधाओं का उद्गम, विकास, उनका सामाजिक परिवेश और विकासक्रम दिया गया है। पद-विषयक तीन प्रकरण हैं क्योंकि मध्यकाल में पद बहुत प्रचलित विधा थी। प्रत्येक विधा का विषय की दृष्टि से और काव्यशिल्प की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है और उनका आलोचनात्मक विवेचन भी। प्रत्येक विधा का सामाजिक संस्थाओं के साथ संबंध और उसके उद्भव और विकास में सामाजिक परिस्थिति के योगदान का निरूपण ग्रंथ की विशेषता है।

मध्यकालीन चरित्रकोश *(म० कृ०)*

इसके संपादक श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव हैं। इसमें ईसा पूर्व 500 से 1818 ई० तक के प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्रों का अकारादि क्रम से उल्लेख किया गया है।

यह एक संदर्भ ग्रंथ है। इसके द्वारा किसी भी ऐतिहासिक पात्र के व्यक्तित्व-संबंधी बातें सुलभ ही खोजी जा सकती हैं।

मध्यपद लोपी *(उ० कृ०)*

'मध्यपद लोपी' सौभाग्यकुमार मिश्र (दे०) का कविता-संग्रह है। इसमें कवि की मौलिक-दृष्टिभंगी अपनी समस्त संभावनाओं के साथ आलोकित हो उठी है। इसमें कवि-चेतना के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। रोमांटिक, प्रयत्क्षवादी एवं परीक्षामूलक। इसमें जीवन के प्रति कहीं प्रगाढ़ अनुरक्ति है तो कहीं विरक्ति—कहीं घृणा व्यक्त हुई है तो कहीं शोक, क्रोध और अनासक्ति। सौभाग्यकुमार भाषा-व्यवहार-कला के सिद्धहस्त कवि हैं। प्रत्येक शब्द का एक व्यावहारिक गुण है। प्रायः प्रत्येक कविता में शब्द का विचित्र एवं सुतीक्ष्ण प्रयोग मिलता है जो कविता की मूल ध्वनि के साथ गतिशील है। वाकभंगी पर भी कवि का असाधारण अधिकार है। ध्वनि-चेतना के कारण इनकी कविताओं में एक भास्वरता मिलती है।

मध्यम व्यायोग *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शती ई०]

यह महाकवि भास (दे०) का सुप्रसिद्ध व्यायोग है। इसमें मध्यम पांडव (भीम) का हिडिंबा से प्रेम, मध्यम ब्राह्मण कुमार की रक्षा में घटोत्कच के कहने पर हिडिंबा के पास जाना और हिडिंबा से मिलने आदि का वर्णन है।

इसमें हिडिंबा की अपने वर्षों पूर्व के पति से मिलने की अभिलाषा और घटोत्कच एवं मध्यम (भीम) दोनों द्वारा प्रदर्शित मातृभक्ति की विषय-वस्तु का परिष्कृत रूप में उपयोग किया गया है। माता की आज्ञा पिता की आज्ञा से गुरुतर होती है। पुत्र (घटोत्कच) का पिता (भीम) को न पहचानते हुए धृष्टतापूर्वक माँ के सम्मुख ला उपस्थित करना बड़ा ही सरस और कौतूहल-पूर्ण है। वास्तव में यह योजना हिडिंबा की ही थी। भास ने 'मध्यम व्यायोग' तथा दूतघटोत्कच' की कथावस्तु में नयी उद्भावनाएँ की हैं। इस व्यायोग में भास ने भीम के उज्ज्वल तथा त्यागमय चरित्र का सुंदर चित्रण किया है। भाव तथा भाषा की दृष्टि से भी यह एक सफल नाट्यकृति है।

मध्याह्न *(गु० कृ०)*

'मध्याह्न' सुप्रसिद्ध कवि करसनदास 'माणेक' (दे०) का प्रख्यात काव्य-संग्रह है। 'माणेक' की कविता गांधीवादी और समाजवादी दोनों प्रभावों को समेटे हुए है। कवि हास्य-व्यंग्य का प्रश्रय लेकर यथार्थ के चित्रण में प्रवृत्त होता है, इसलिए जीवन के वास्तविक चित्रणों के आलेखन में भी विषाद की गहरी छाया नहीं है।

'मध्याह्न' में मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन पर आधृत अनेक कविताएँ हैं। ऐसी ही 'भले सजनी संचारो' नामक एक कविता में प्रेम के उभार और ह्रास का व्यंग्यात्मक चित्रण है। आलोच्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रगीत के सुंदर उदाहरण हैं। छंदोबद्धता और गेयता के गुणों से भरपूर इन कविताओं में लेखक की प्रयोगशीलता तथा अभिव्यक्तिजन्य कलात्मकता सर्वत्र व्याप्त है।

मध्वमुनीश्वर के पद *(म० कृ०)*

मध्वमुनि का पहला नाम था—त्र्यंबक। इनका कुल माध्व-संप्रदाय का कट्टर अनुयायी था। इन्होंने अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थों में भ्रमण किया और औरंगाबाद में निवास करते समय 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) का प्रवचन करना इनका मुख्य कार्य बन गया था। सर्वसाधारण जनता की रुचि को ध्यान में रखकर इन्होंने सरस पदों की रचना की है जो कीर्तनों में गाए जाते हैं। मराठी के साथ कुछ पद हिंदी में भी हैं जिन पर दक्खिनी उर्दू का पर्याप्त प्रभाव है और अरबी-फ़ारसी के प्रचलित शब्द अनायास आ गए हैं। इनकी रचनाएँ मराठी-हिंदी-संस्कृत तीनों भाषाओं में मिलती हैं।

मध्वाचार्य *(सं० ले००)* [समय—1199-1303 ई०]

मध्व वायु के अवतार कहे जाते थे। इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट तथा माता का नाम देवता था। इनकी जन्म-भूमि कन्नड प्रदेश में रजतपीठ नामक ग्राम है। आनंदतीर्थ और पूर्णप्रज्ञ—इनके ये दो नाम और प्रसिद्ध थे। पिता इन्हें वासुदेव कहा करते थे। ये अल्प अवस्था में ही संन्यास ग्रहण करना चाहते थे। परंतु जब इनके पिता को दूसरे पुत्र की प्राप्ति हो गई तभी ये संन्यास ले सके। संन्यास लेने पर ही ये पूर्णप्रज्ञ (दे० ब्रह्मसूत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुए। मध्वाचार्य द्वारा रचित ग्रंथों में 'ब्रह्मसूत्रभाष्य', 'उपनिषद्भाष्य' (दे० उपनिषदों) एवं 'गीताभाष्य' (दे० गीता) प्रमुख हैं।

मध्वाचार्य का दार्शनिक सिद्धांत द्वैतवाद है। इनके द्वैतवाद के अनुसार जगत् ब्रह्म का शरीर अथवा विशेषण न होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। इसी प्रकार जीव का भी ब्रह्म से पृथक् अस्तित्व है। मध्व ने ईश्वर एवं जीवादि में पाँच प्रकार के भेद की स्थापना की है। यह भेद ईश्वर और जीव, ईश्वर और जड़ जगत्, जीव और जगत्, जीव और जीव तथा जड़ और जड़ का भेद है। ब्रह्म को मध्व ने विष्णु का रूप दिया है। ब्रह्म-रूप विष्णु की शक्ति लक्ष्मी है। मध्व ने तीन प्रकार के जीव माने हैं—मुक्ति-योग्य, नित्यसंसारी तथा तमोयोग्य। मध्व-दर्शन के अनुसार जीव जब परमात्मा के साथ परमसाम्य को प्राप्त करता है तो वही मुक्ति की अवस्था कहलाती है।

द्वैतवादी दार्शनिक के रूप में मध्व का महत्व नितांत स्पष्ट है। मध्व ने जीव, जगत् एवं ब्रह्म की पृथक्-पृथक् सत्ता स्वीकार करके अपने दर्शन को अधिक सरल एवं सामान्य जन के लिए उपयोगी बना दिया है।

मनत्तुक्कु इनियवळ *(त० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

इस उपन्यास की लेखिका आ० शूडामणि हैं। 'कलैमहळ' नामक मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित इस उपन्यास पर इन्हें नारायणस्वामी अय्यर पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस चरित्र-प्रधान उपन्यास की नायिका लक्ष्मी अपाहिज होने के कारण सबकी सहानुभूति और सहायता की सदा आकांक्षा करती है पर स्वयं सबके प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करती है। वह अपने घर में ही एक स्कूल चलाती है। वर्षा के दिन एक बच्चा देर से स्कूल पहुँचता है और स्कूल के बंद द्वार के बाहर खड़ा ठिठुरता रहता है। कालांतर में उस बच्चे की मृत्यु से लक्ष्मी का हृदय-परिवर्तन होता है। वह अपनी क्रूरता छोड़कर सबके साथ प्रेम का बर्ताव करने लगती है। इस उपन्यास में लेखिका को पात्रों के चरित्र-चित्रण में—उनके आंतरिक संघर्ष के चित्रण में—विशेष सफलता मिली है। इसका तमिल के चरित्र-प्रधान उपन्यासों में विशिष्ट स्थान है।

मनसा *(बँ० पा०)*

मंगलकाव्य (दे०) की परिधि में अमर्त्य और मर्त्य बहुत ही सहज रूप में आकर मिल गए हैं। देवी मनसा की पूजा के प्रचारार्थ ही 'मनसा-मंगल' की रचना हुई थी और इसमें देवी मनसा की दैवी महिमा के विकास से अधिक उनके मानवीय-चरित्र-गुणों का विकास दिखाया गया है। साधारण मानव मानवी के द्वेष, क्रूरता, हिंसा, मान-अपमान, भावोद्वेलन—सब-कुछ ही इस चरित्र में प्रतिफलित हुआ है। मनसामंगल काव्यकारों के यथार्थबोध से यह चरित्र विशेष रूप से प्रभावित है। चाँद सौदागर के निकट पूजा-लाभ के लिए मनसा सकरुण विनती करती है तो फिर प्रत्याख्यान में निर्मम कठोरता का भी प्रदर्शन करती है। बीच में घृण्य नीचता के स्तर पर उतरने में भी मनसा झिझकती नहीं। देव-सभा में मिथ्याभाषण से भी वह कुंठित नहीं होती। फिर उद्देश्य-सिद्धि की आशा में प्रसन्न-स्निग्ध दिखाई पड़ती है। एकमात्र कवि विप्रदास (दे०) के मनसा-चरित्र में भक्त की दृष्टि में स्वाभाविक ढंग से स्नेह, ममता एवं कारुण्य की अभिव्यक्ति हुई है। प्रत्येक कवि के काव्य में ही, विशेष रूप से शिव-प्रसंग में शृंगार रसाधिक्य का परिचय मिलता है। मनसा के प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव के संभाषण में हास्यरस की अभिव्यंजना हुई है। चंडी-मनसा-गंगा के झगड़े के द्वारा मनसा का स्त्री-रूप प्रकट हुआ है।

मनसामंगल *(बँ० कृ०)*

'मनसामंगल' के आदि कवि के रूप में काना हरिदत्त (दे०) का उल्लेख किया जाता है। 'मनसामंगल' के सबसे प्रसिद्ध कवि विजयगुप्त (दे० गुप्त) ने इसको स्वीकृति दी है। विजयगुप्त की उक्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि हरिदत्त विजयगुप्त से सौ वर्ष पूर्व के कवि थे। दास हरिदत्त की भणिता में 'कालिकामंगल' की एक पांडुलिपि मिली है। बहुत-से विद्वान् 'कालिकासंगल' (दे०) के इस कवि के साथ काना हरिदत्त को अभिन्न मानते हैं।

'मनसामंगल' के जनप्रिय कवि थे विजयगुप्त। परंतु श्रेष्ठ कवि नारायणदेव को ही कहा जाता है। कदाचित् वे चैतन्य-पूर्ववर्ती काल के कवि थे। चरित्र-चित्रण एवं कहानी-विन्यास की दृष्टि से नारायणदेव की श्रेष्ठता स्वतः प्रमाणित है। तिथि और संवत् से युक्त प्रथम मनसामंगल काव्य के रचनाकार विप्रदास पिपिलाई हैं। मध्ययुगीन मंगलकाव्य (दे०) की धारा में साँपों की देवी मनसा (दे०) की पूजा के प्रचार के निमित्त मनसा-मंगल की रचना शुरू हुई थी।

मनाकिबो *(सिं० पारि०)*

'मनाकिबो' (मूल 'अरबी मन्कबत्') का शाब्दिक अर्थ है धार्मिक महापुरुषों का यशोगान। सिंधी-साहित्य में 'मनाकिबो' उस वर्णनात्मक कविता को कहा जाता है जिसमें इस्लाम के किसी पैग़ंबर, दरवेश, धार्मिक महापुरुष के जीवन की किसी-न-किसी साधारण और स्वाभाविक घटना का वर्णन कर उसका यशोगान किया जाता है। 'मदाह' (दे०) और 'मुनाजात' (दे०) में भी धार्मिक महा-पुरुषों का गुणगान होता है, परंतु मनाकिबो उनसे इस बात में भिन्न है कि इसमें किसी महापुरुष का गुणगान अनिवार्यतः उसके जीवन की किसी-न-किसी स्वाभाविक घटना का वर्णन करके किया जाता है। 'मनाकिबा' (मनाकिबो का बहुवचन) नाम से डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने इस प्रकार की चुनी हुई कविताओं का संग्रह किया है जिसका प्रकाशन 1960 ई० में सिंधी अदबी बोर्ड हैदराबाद (सिंध) से हो चुका है।

मनु *(हिं० पा०)*

भारतीय इतिहास का यह आदि पुरुष जयशंकर प्रसाद (दे०) के महाकाव्य 'कामायनी' (दे०) का नायक है। उसका चरित्र तीन रूपों में हमारे सामने आता है—ऐति-हासिक-रूप में, स्वच्छंद व्यक्ति-रूप में और प्रतीक-रूप में। ऐतिहासिक-रूप में वह देवसृष्टि का अवशेष और मानव-सृष्टि का अग्रदूत है। श्रद्धा (दे०) के संपर्क में आकर वह कर्मोन्मुख होता है, कर्मकांडमय यज्ञों का विधान करता है और इड़ा (दे०) के सहयोग से सारस्वत नगर का शासन करता है। व्यक्ति-रूप में उसका चरित्र भोग-प्रधान और असामाजिक है। इसीलिए वह श्रद्धा जैसी पत्नी का त्याग और इड़ा जैसी सहचरी का अनादर करता है। इतना होने पर भी उसमें श्रेष्ठ मानवीय गुणों का नितांत अभाव नहीं है। उसका व्यक्तित्व बलिष्ठ और तेजस्वी है, हृदय राग-मय और द्रवणशील है। तीसरे रूप में वह मननशील मन का प्रतीक है, जिसकी रागात्मक और बोधात्मक वृत्तियों का प्रतिनिधित्व क्रमशः श्रद्धा और इड़ा करती हैं। संभवतः उसके सूक्ष्म रूप पर दृष्टि रखने के कारण ही कवि उसके स्थूल चरित्र को अधिक प्रभावशाली नहीं बना पाया है।

मनुचरित्रमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1519-1552 ई० का मध्य]

कवि—आंध्रकविता-पितामह अल्लसानि पेद्दन्ना (दे०)।

'मनुचरित्रमु' अथवा 'स्वारोचिष मनुसंभवमु' तेलुगु-साहित्य का सर्वांगपूर्ण सर्वप्रथम प्रबंध-काव्य है। यह तेलुगु के पंचकाव्यों में प्रथमगण्य है। इस कृति को अल्ल-सानि पेद्दन्ना ने 'साहिती समरांगण चक्रवर्ती' श्रीकृष्ण-देवरायलु (दे०) को समर्पित किया था। समर्पण-समारोह के संदर्भ में रायलु ने स्वयं स्वर्णवल्यंकिका में कवि पेद्दन्ना को आसीन कर उसे अपने कंधों पर वहन किया था। परि-णामतः पेद्दन्ना को कई अग्रहार आदि पुरस्कार रूप में मिले।

'मनुचरित्रमु' में अभिवर्णित कथावस्तु का उत्स मार्कंडेय पुराण है। इस पुराण का काव्यानुवाद मारन कवि ने चौदहवीं शती ई० के प्रथम चरण में किया था। संस्कृत मूल तथा अनूदित तेलुगु-काव्य से प्रेरणा लेकर पेद्दन्ना ने अपनी काव्य-प्रतिभा के द्वारा इस प्रबंध-काव्य का प्रणयन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मनुचरित्रमु' आश्वासों में निबद्ध है। कथा-वस्तु इस प्रकार है। अरुणास्पद प्रवरुडु (दे०) नामक एक मदन-सुंदर, शास्त्रपारंगत कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहता था। एक सिद्धपुरुष के दिए हुए पादलेप के प्रभाव से वह हिमालय के सुंदर दृश्यों को देखने के लिए गया। दोपहर के समय तक वह पुनः घर लौटकर अग्नि-कार्य करना चाहता था परंतु तब तक पादलेप के पिघल जाने से वह घर नहीं लौट सका। वहाँ वरूधिनी (दे०) नाम अप्सरा से इसका साक्षात्कार हुआ। वरूधिनी प्रवरुडु पर आसक्त हो गई, पर शांत एवं धीर प्रकृति के प्रवरुडु पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। वह अग्नि का आह्वान कर उसकी सहायता से अपने घर पहुँच गया। इधर वरूधिनी पर आशक्त एक गंधर्व था जो मौके की प्रतीक्षा में था। उसने प्रवरुडु का वेश धारण कर लिया और विरहिणी वरूधिनी से संभोग किया। वरूधिनी के गर्भ से स्वरोचि का जन्म हुआ था। पेद्दन्ना की काव्यप्रतिभा, अद्‌भुत है। वरूधिनी प्रवरुडु दो नितांत भिन्न प्रकृति के पात्र हैं—वरूधिनी शृंगारप्रिया, कलाशीलिनी एवं भोगपरायणा है; प्रवरुडु इसके विपरीत शांत, वैदिक-कर्मनिष्ठ एवं एक पत्नीव्रत। पेद्दन्ना की प्रतिभा की पराकाष्ठा इस बात में है कि उन्होंने इन दोनों पात्रों के माध्यम से शृंगार तथा शांत रसों का संघर्ष प्रस्तुत कर अंत में शांत रस की विजय दिखाई है। इस काव्य में शांत अंगी रस है और शृंगार अंग रस है। कुछ समालोचकों के अनुसार वरूधिनी और प्रवरुडु में रसाभास का उज्ज्वल उदाहरण है परंतु काव्यशत्स्त्र के पारखी यह जानते हैं कि सम्यक् निर्वाह होने पर रसाभास भी काव्य में उपादेय होता है।

मनुस्मृति *(सं० कृ०)* [रचना-काल—300 ई० पू० से 200 ई० तक]

'मनुस्मृति' के जन्मदाता मनु ही हैं। 'मनुस्मृति' में बारह अध्याय हैं, जिनमें 2694 श्लोक हैं। 'मनुस्मृति' भारतीय धर्म एवं प्राचीन विधि-पद्धति का ही महनीय ग्रंथ है।

'मनुस्मृति' में राज्य की न्यायव्यवस्था का सूक्ष्म एवं व्यापक वर्णन मिलता है। मनु ने राज्य की न्याय-व्यवस्था के लिए दो विशेष स्रोत माने थे। इन स्रोतों में प्रथम में शिष्ट जनों का परंपरागत व्यवहार था और द्वितीय में आत्मतुष्टि। 'मनुस्मृति' के अनुसार राजा सारी प्रजा का पिता है। राजा को समाज की आर्थिक दशा का सुधार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा को वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण करना चाहिए। राजा का यह भी कर्तव्य है कि वह रोगियों की सहायता न करने वाले वैद्यों को दंड दे।

'मनुस्मृति' के अंतर्गत ग्राम और नगरों की शासन-व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है। 'मनुस्मृति' के अनुसार ग्राम का शासन मुखिया एवं नगर का शासन सर्वार्थ चिंतक के द्वारा संपन्न होता था। मनु का मत है कि जो अधिकारी भ्रष्टाचारी या उत्कोच लेने वाले हैं, उन्हें देश से बाहर निकाल देना चाहिए तथा उनका जीवन-सर्वस्व छीन लेना चाहिए। मंत्री अथवा न्यायाधीश आदि भ्रष्टाचारी यदि हों, तो उनसे 1000 पण दंड रूप में लेना चाहिए।

मनु के न्यायविधान की उपयोगिता विश्व के अनेक क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

मनोन्मणीयम् *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1891 ई०]

इस नाटक का प्रकाशन आधुनिक तमिल नाटक-परंपरा का सूत्रपात करने वाली घटना माना जाता है। लेखक प्रो० सुंदरम् पिळ्ळै (दे०) ने शेक्सपियर के पद्य-नाटकों का आदर्श सामने रखकर इस सफल नाटक की रचना की है। इसकी कथा-वस्तु लार्ड लिटन के 'रहस्य मार्ग' (द सीक्रेट वे) नामक नाटक पर आधारित है पर शैली, पात्र-सृष्टि तथा वातावरण, सबका ऐसा 'तमिलीकरण' हुआ है कि संपूर्ण नाटक तमिल साहित्य-धारा की एक स्वाभाविक, पर नवीन, उपलब्धि लगता है। इसमें नाटकों का-सा विलक्षण व्यक्तित्व-टकराव नहीं है, इसलिए इसे एक नाटककार का काव्य कहना समीचीन होगा। नर-नारी-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति, आदि भावनाओं का प्रकाशन, सुंदर प्रकृति-वर्णन, लोकानुभूतियुक्त उक्तियाँ तथा अन्योक्तिपरता—ये अंश आस्वाद्य हैं।

इसमें पांड्य राजा 'चीक्कन्' के अपने मंत्री 'कुटिलन्' के षड्‌यंत्रों का शिकार बनकर अंततः उनसे मुक्त होने की कथा वर्णित है। नाटक का शीर्षक राजा की रूपवती और एकमात्र कन्या 'मनोन्मणी' के नाम पर है और मंत्री इस कन्या-रत्न को अपने अयोग्य पुत्र की वधु बनाना चाहता है। जिस 'चेर' (केरल) राजा 'पुरुषोत्तमन्' से राजकन्या का विवाह होने वाला है, उसे मंत्री अपने पुत्र द्वारा युद्ध की ललकार का संदेश भेज देता है। युद्ध छिड़ जाने पर 'पांड्य' सेनाएँ जब हारने की स्थिति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं तो दैववश राजगुरु 'सुंदर मुनिवर्' द्वारा रक्षा के लिए बनाई गई सुरंग में 'मनोन्मणी' और 'चेर' राजा का साक्षात्कार हो जाता है जिससे उन दोनों के हृदयों में पहले ही उत्पन्न पूर्वराग सफल प्रेम-बंधन बन जाता है। अर्धरात्रि में 'कुटिलन्' स्वयं 'पुरुषोत्तमन्' के हाथों फँस जाता है और पांड्य राजा के ही सामने उसकी राजद्रोही योजनाएँ खुल जाती हैं। वैवाहिक मंगल-कामनाओं के साथ नाटक का अवसान होता है।

यह नाटक पाँच अंकों में विभक्त है। इस विभाजन के अलावा पात्रों द्वारा एकांत कथन यत्र-तत्र गीतों का समावेश तथा प्रवाहमय 'आचिरिय विरुत्तम्' छंद का निर्वाह शेक्सपियर की नाटक-शैली का स्मरण दिलाने वाले हैं। लेखक ने स्वयं संकेत किया है कि यदि अन्योक्ति-परक व्याख्या की जाए, तो 'चीक्कन्' जीवात्मा, 'कुटिलन्' मायाशक्ति, 'मनोन्मणी' परिपक्वावस्था का शुद्ध तत्त्व, तथा 'पुरुषोत्तमन्' अनुग्रह-शक्ति इत्यादि माने जा सकते हैं।

मनोमती *(अ० क्र०)* [रचना-काल—1900 ई०]

यह रजनीकांत बरदलै (दे०) का द्वितीय किंतु प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। कथा इस प्रकार है—हलकांत बरुवा और चंडी बरुवा में पीढ़ियों से झगड़ा चला आता है। उद्धत हलकांत बरुवा चंडी पर बर्मियों द्वारा आक्रमण करा देता है। आक्रमण के फलस्वरूप दोनों परिवारों के जन-धन की क्षति होती है। पहले परिवार के युवक लक्ष्मीकांत और दूसरे परिवार की युवती मनोमती में प्रेम हो जाता है। इन दोनों का मिलन होता है। इन दोनों के प्रेम में रोमियो-जूलियट और उषा-चित्रलेखा नामक पौराणिक चरित्रों का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। उषा को जिस प्रकार चित्रलेखा ने अनिरुद्ध से मिला दिया था, उसी प्रकार मनोमती की सखी पमीला उसे लक्ष्मीकांत के साथ मिला देती है। वह स्वयं अपने प्रेमी शांतिराम की स्मृति में झुलसती उपेक्षित रह जाती है। उपन्यास की पटभूमि ऐतिहासिक है किंतु आंशिक रूप से जनश्रुति का भी आश्रय लिया गया है। इसमें कल्पना का भी प्रचुर प्रयोग है। अधिकांश चरित्र काल्पनिक हैं। इसे शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। यह लेखक की श्रेष्ठ कृति है।

मनोमुकुर *(गु० क्र०)*

नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया द्वारा समय-समय पर लिखे गए विवेचनात्मक लेखों का संग्रह है 'मनोमुकुर'। 'मनोमुकुर' चार ग्रंथों में बँटा हुआ है। प्रथम ग्रंथों में 'अवलोकन तथा ग्रंथ-परिचय', 'रस तथा कलामां तत्त्वान्वेषण', 'जीवन-दर्शन', 'धर्म और तत्त्व-दर्शन', 'हास्यरस अने कटाक्ष-लेख', व्याकरण, भाषा, इत्यादि शीर्षकों के अंतर्गत क्रमशः 'संन्यासी', 'उत्तररामचरित्' और 'विलासिका' नामक ग्रंथों का विवेचन, 'एक चित्रे जोइ सुझेलो विचार', 'वसंतोत्सव उपर चर्चा', 'गुजराती कविता अने संगीत', 'कवितामां असंभव दोष', 'ठगाएली विधवानो न्याय', 'असत्यभावारोपण', 'दूरथी गीतध्वनि', 'नारायण हेमचंद्र' और 'नवल राम' के जीवन-दर्शन, 'विश्वरचना और स्वेच्छा स्वीकार' नामक दर्शन संबंधी लेख, 'उत्तर भद्रं-भद्र', 'अमूल्य ग्रंथनी शोध', 'प्रयोजित परिहासनां माठां फल' तथा 'उद्देश्य अने विधेय तथा अध्याहारनुं स्वरूप' और 'गुजराती भाषानुं बंधारण' नामक गुजराती भाषा से संबंधित लेख संग्रयित हैं। अन्य ग्रंथों में भी इसी प्रकार के लेख हैं। विषय-वैविध्य, सूक्ष्म और मार्मिक विषय-विश्लेषण, समशीतोष्ण भाव से किया गया गुण-दोष-दर्शन, स्पष्ट मताभिव्यक्ति तथा सौंदर्योद्घाटन इन निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन लेखों में लेखक की दृष्टि दोष-दर्शन में अधिक रमी है। इनकी शैली शिथिल और विषय-निरूपण लेखक की प्रकांड विद्वत्ता, निर्भयता आदि का परिचायक है।

मनोरमा *(उ० पा०)*

श्री मन्मथ कुमारदास (दे०) के उपन्यास 'महाश्वेता' (दे०) की नायिका महाश्वेता है, मनोरमा। इसका जन्म एक संभ्रांत आभिजात्यपूर्ण परिवार में होता है किंतु समय के घात-प्रतिघात से सब-कुछ बदल जाता है।

पिता दूसरों की चाल में फँसकर आज सर्वहरा है। प्रथम प्रेम में मनोरमा को मिलती है प्रताड़ना। जीवन में विडंबना की सृष्टि होती है। एक व्यक्ति से हटाकर दूसरे व्यक्ति को प्यार करने को इसे बाध्य किया जाता है। किंतु केवल इतने से ही अंत नहीं होता··· अनंत प्रतारणा। अपने ही भाई-भाभी के द्वारा यह प्रताड़ित होती है। साथ ही प्रताड़ित है धनिक-पुत्र अबनी द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके लिए यह अभिसारिका, प्रेमिका, प्रणयिनी है··· जननी के गौरव से यह वंचित नहीं है; किंतु इसे मातृत्व का अधिकार नहीं है। अवैध संतान समाज को स्वीकार्य नहीं है। अतः सभी के अज्ञात में नवजात शिशु को जंगल में छोड़ आती है।

किंतु इन कलंक-गाथाओं को यह गुप्त रखने की चेष्टा नहीं करती। इस पर ही सारी बातें घटित होती हैं; किंतु यह निर्विकार भाव से, निर्लिप्त रूप से दृढ़ता के साथ इस आँधी-तूफ़ान का अवलोकन करती दिखाई पड़ती है। सामाजिक दृष्टि से यह महापापिनी है, किंतु यह सतेज 'महाश्वेता' होकर अमृतमय हो उठी है। अंत में मनोरमा पुत्र को वासस पा लेती है; किंतु जीवन में फिर मिलन नहीं। प्रथम प्रेम की स्मृति ही पर्याप्त है। नारी जाति की निस्सहायता के अंतराल में व्याप्त हो जाती है और एक करुण कहानी।

मनोरमा (क० पा०)

प्राचीनता तथा आधुनिकता के संधिकाल में कवि मुद्दण (दे०) का जन्म हुआ था जिन्होंने अपनी अल्पायु में तीन काव्य लिखे। उनके 'श्रीरामाश्वमेध' काव्य के पात्रों में मनोरमा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य के कथानक से उसका प्रत्यक्ष संबंध नहीं है परंतु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि संबंध नहीं है। काव्य की वस्तु श्रीराम के द्वारा सीता-परित्याग और अश्वमेध से संबंधित है। अतः प्रत्यक्षतः मनोरमा का पात्र उससे संबंधित नहीं है। परंतु, इस कथा के प्रवाह में, उसमें नवीनता का संचार करने में और कवि के दृष्टिकोण को समझने में यह पात्र बड़ा सहायक है, अतएव उसके बिना काव्य में कोई सार भी नहीं है। कन्नड-साहित्य-जगत में 'मनोरमा' एक अविस्मरणीय पात्र है। उसकी सृष्टि में उसके कवि ने अपनी पूरी कुशलता, कल्पनाशक्ति और अनुभवशीलता का परिचय दिया है। वह कवि 'मुद्दण' की पत्नी है। मनोरमा-मुद्दण का संवाद काव्य का रसपूर्ण अंग है।

मनोरमा कवि की रसज्ञता की प्रमाण है। कवि (मुद्दण) प्राचीन परंपरा का प्रतीक है तो मनोरमा आलोचना की नयी दृष्टि से संपन्न कवि की आंतरिक भावनाओं का बाह्य रूप है। वह सीता-स्वयंवर की कथा सुन चुकी है। सीतापहरण की कथा उसे पसंद नहीं। उसने रामाश्वमेध की कथा नहीं सुनी। पद्य में कवि उसे सुनाना चाहता है तो वह रोकती है, क्योंकि 'पद्यं वध्यं, गद्यं हृद्यम्। हृद्य गद्य में ही वह सुनना चाहती है। इस प्रकार वह गद्य की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। वह कन्नड की सहज, सरल शैली की माँग करती है। 'प्राणेश्वरी', 'रानी', 'मोहनांगी', 'सुंदरी' आदि शब्दों के संबोधन से कवि उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट करता है तो वह भी अपने कटाक्ष-पात से और कभी-कभी 'रमण', 'मोहनांग' जैसे मित शब्दों से अपना प्रेम व्यक्त करती है। बुद्धिमती होने पर भी मनोरमा अपने प्रियतम के क्लिष्ट शब्दों को नहीं समझ पाती। वह कभी-कभी पति की वक्रोक्तियों को सच समझ लेती है। कवि जब मंत्र-सिद्धि की बात करता है तो वह मंत्र जानने का हठ करती है। बहुत देर संभाषण करने के बाद जब कवि 'भवति भिक्षा देहि' मंत्र बताता है तो वह चमत्कृत हो जाती है और पति की जादू-भरी वाणी का प्रभाव स्वीकार करती है। वह सीता को बहुत पसंद करती है। उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। 'राम ने दूसरा विवाह नहीं किया' कथा का यह भाग सुनकर वह राम के प्रति भी सहानुभूति प्रदर्शित करती है।

मनोविहार (गु० क०) [प्रकाशन-वर्ष—1956 ई०]

'मनोविहार' रामनारायण विश्वनाथ पाठक के 28 लेखों का संग्रह है। इस संग्रह का सर्वप्रथम प्रकाशन गुर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय, अहमदावाद से 1956 ई० में हुआ था और उसकी दूसरी आवृत्ति (पुनर्मुद्रण) 1958 ई० में प्राप्त हुई। पुस्तक के अंत में उक्त ग्रंथ में ग्रथित लेखों के प्रकाशन की तिथियाँ दी गई हैं जिन्हें देखने से पता चलता है कि ये लेख 1926 ई० से लेकर 1953 ई० के बीच में लिखे-प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ लेखक के अनेक रुचिपूर्ण विषयों का मनोविहार है। इनमें से कुछ निबंध तत्त्व-चिंता से पूर्ण हैं, यथा—'प्रेम', 'मानवनी विशेषता', 'मृत्यु विषे कंइक' तथा 'सत्यमेव जयते'। इनके अतिरिक्त पुराण तथा लोक-कथा-संबंधी लेखों में पर्याप्त तात्त्विक चिंतन प्राप्त होता है। 'भाई इनदुलालनो मुकदमो', 'गिजूभाईनां संस्मरणो', 'सद्गत आनंदशंकरभाई', 'कविश्री नानालाल', 'महादेव-भाई', 'मेघाणीभाईनां संस्मरणो', 'पूज्य गांधीजी अने कस्तूरबा' और 'कस्तूरबा' नामक लेख व्यक्ति विशेष से संबद्ध होने के कारण पूर्णतः वैयक्तिक परिवेश में लिखे गए हैं अतः संस्मरणात्मक हैं। 'मोढेरा', 'अडालजनी वाव', 'धुँवाधार अने भेटाघाट', तथा 'वाराणसी' स्थान संबंधी लेख हैं जिनमें संबद्ध स्थानों के स्थापत्य-शिल्प की चर्चा समाविष्ट है। 'शारदुत्सवो', 'शापमोचन', 'मुंबईमां नव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रातना उत्सवो', 'संगीत अने कथकलि' और 'कथकलि विषे कंइक' लेख कला-संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। शेष निबंध प्रकीर्ण में रखे जा सकते हैं। ये प्रकीर्ण निबंध-लेखक की समाज को देखने-परखने और सेवा करने की वृत्ति को उजागर करते हैं। तात्त्विक चर्चा में लेखक की गंभीर मौलिक सर्जनात्मक शक्ति का परिचय मिलता है। व्यक्ति-परक निबंधों में लेखक ने अपने पूर्ण परिवेश को लेकर व्यक्तियों का मूल्यांकन किया है। इस प्रकार के लेखों में लेखक की शैली वस्तुपरक होते हुए भी अनेक स्थानों पर भावप्रधान हो गई है और संबद्ध व्यक्ति के संबंध में ऊष्मा-युक्त वक्ष से उद्गार निकल गए हैं। स्थापत्य-शिल्प संबंधी लेखों में पौरस्त्य कला का निदर्शन एवं उस पर पड़े विजातीय प्रभावों की चर्चा विद्यमान है जो लेखक की ज्ञान-पिपासा को प्रकट करते हैं। 'बार डोलीना पत्रो' लेखक की सामाजिक चेतना और समाज के विविध अंगों-उपांगों की समस्या में उसकी रुचि के परिचायक हैं। सभी स्थानों पर लेखक की तर्कशुद्धता और वस्तुनिष्ठता परिलक्षित होती है। शैली विषयानुकूल है और भाषा प्रायः सरल है—गांधी-चेतना के समान ही सभी कुछ है।

मनोहरन् *(त० पा०)*

मनोहरन् पम्मल संबंद मुदलियार (दे० संबंद मुदलियार)-कृत ऐतिहासिक नाटक 'मनोहरन्' का नायक है। इसमें शारीरिक एवं मानसिक वीरता है। इसमें अपनी माँ के प्रति अपार श्रद्धा का भाव है। इसकी मातृभक्ति के कारण नाटक में अनेक नाटकीय मोड़ आए हैं। नाना गुणों से भूषित आदर्श युवक मनोहरन् के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं—अपने नाना के शत्रु मुत्तुविजय पांडियन् को हराना तथा दासी वसंतसेना को अपने माता-पिता के बीच से हटा कर उन्हें सिंहासन पर बैठाना।

मन्नाटियार्, चात्तुक्कुट्टि *(मल० ले०)* [समय—1857 ई० से 1902 ई० तक]

मध्य केरल में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने संस्कृत के कई नाटकों का मलयाळम में अनुवाद किया जिनमें 'उत्तररामचरितम्' की विशेष ख्याति है। रसानु-कूल शब्दों के प्रयोग में इनका कौशल प्रशंसनीय है। रामभक्त दीक्षितर् के लिखे 'जानकीपरिणयम्' नाटक का भी रूपांतर इन्होंने किया है।

मन्मथराय *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

पौराणिक विषय-वस्तु के आश्रय से अति आधुनिक युग के मनोभाव को सार्थक ढंग से प्रकट किया जा सकता है, इस युग के सुपरिचित नाट्यकार मन्मथराय के नाटक इसके प्रमाण हैं। पौराणिक कहानी को सम-सामयिक राजनीतिक चिंतन का बाना पहनाकर इन्होंने नाटक की रचना की थी। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं: 'कारागार' (1923), 'मुक्तिर डाक' (1924), 'समाज-बीर' (1925), 'चाँद सदागर' (1927), 'देबासुर' (1928), 'सावित्री' (1931), 'श्रीवत्स', 'सती', 'विद्युत्पर्णा' आदि। मन्मथराय का पूर्णांग ऐतिहासिक नाटक है 'अशोक'। सामाजिक नाटक है 'ममतामयी हासपाताल'।

पौराणिक नाटकों में इन्होंने नीति या धर्म का गुण-कीर्तन नहीं किया है वरन् नीति या धर्म से महत् मानव एवं उसकी समस्याओं को लेकर नाटकों की रचना की है। इनकी निरूपण-पद्धति में द्विजेंद्रलाल राय (दे०) एवं रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनकी भाषा कवित्वमयी है यद्यपि कथा की गति में कौतूहल का गुण पूर्ण रूप से विद्यमान है। घटनाएँ अधिक-तर रोमांचकर हैं परंतु रोमांचकर घटना-प्रवाह के साथ नाटकीय चरित्र के अंतर्द्वंद्व का विश्लेषण भी है। यही इनका प्रधान गुण है।

मन्मथराय बँगला साहित्य में आधुनिक एकांकी नाटक के जन्मदाता हैं। वास्तव में एकांकी नाटक के रचयिता के रूप में बँगला साहित्य-क्षेत्र में मन्मथराय का प्रथम आविर्भाव हुआ था। 1923 ई० में इनका प्रथम एकांकी नाटक 'मुक्तिर डाक' प्रकाशित हुआ था। इनके एकांकी नाटकों का पहला संकलन 'एकांकिका' 1931 ई० में प्रकाशित हुआ था। इनके एकांकियों में वे सभी गुण विद्यमान हैं जिनसे कोई भी एकांकी नाटक रसोत्तीर्ण हो पाता है। आज बँगला एकांकी नाटक की जनप्रियता के पीछे इनके अपरिसीम योगदान को नहीं भुलाया जा सकता।

मम्मट *(सं० ले०)* [समय—लगभग 1010-1100 ई०]

काश्मीर की घाटी ने अलंकारशास्त्र के जगत् में जो विभूतियाँ उत्पन्न कीं उनमें मम्मट अन्यतम हैं। इनका स्थितिकाल ग्यारहवीं शती ई० का उत्तरार्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती। काश्मीरी पंडितों के मतानुसार मम्मट 'नैषधीयकाव्य' (दे०) के रचयिता श्रीहर्ष (दे०) के मामा थे।

मम्मट की दो अलंकारशास्त्रीय कृतियाँ हैं—(1) 'काव्यप्रकाश' (दे०) और (2) 'शब्दव्यापार-विचार' या 'शब्दव्यापारपरिचय'। इन्हें संगीत के एक ग्रंथ 'संगीत-रत्नावली' का भी कर्त्ता बताया जाता है। मम्मट ने 'शब्दव्यापारविचार' नामक अपने लघु ग्रंथ में 'काव्यप्रकाश' के द्वितीय उल्लास में संक्षिप्त वर्णित विषय (अर्थात् अभिधा और लक्षणा) का ही सविस्तर विवेचन किया है। मम्मट की ख्याति तथा प्रतिष्ठा का आधार है। उनका महनीय ग्रंथ 'काव्यप्रकाश'। इसमें दस उल्लास हैं जिसके अंतर्गत नाट्यशास्त्र को छोड़ कर काव्यशास्त्र के सभी विषयों का अविकृत विवेचन किया गया है। उनका विवेचन सर्वांगपूर्ण है। इसीलिए वह अलंकारशास्त्र के भावी सिद्धांतों के विकास का प्रस्थानग्रंथ बन गया। मम्मट उद्भावक नहीं प्रत्युत संग्राहक आचार्य हैं। उन्होंने 'काव्यप्रकाश' में शताब्दियों पूर्व से अपने समय तक प्रचलित सभी अलंकारशास्त्रीय सिद्धांतों का सार प्रस्तुत कर दिया है। ये ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्होंने ध्वनि-विरोधी तर्कों को ध्वस्त कर ध्वनिसिद्धांत की प्रतिष्ठा सदा-सदा के लिए कर दी है। इसीलिए ये 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' कहलाते हैं। यद्यपि मम्मट का विवेचन अपने पूर्ववर्ती भामह (दे०), ध्वनिकार, आनंदवर्द्धन (दे०), वामन (दे०), अभिनवगुप्त (दे०) आदि पर आधारित है तथापि उन्होंने अंधानुकरण की प्रवृत्ति नहीं अपनाई है।

मम्मट एक स्वतंत्र और निरपेक्ष आलोचक हैं। प्राचीन आचार्यों के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए भी अवसर आने पर उनकी आलोचना करने में उन्होंने लेशमात्र भी संकोच नहीं किया है।

मम्मट की सबसे बड़ी देन है उनकी समन्वय-वादिनी दृष्टि ध्वनिवादी होते हुए भी उन्होंने अलंकार, गुण, रीति-वृत्ति आदि का व्यवस्थित मूल्यांकन कर उन्हें अपनी व्यवस्था में उचित स्थान प्रदान किया। यही कारण है कि काव्यप्रयोजन, काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य के भेद, शब्दशक्ति, गुण, अलंकार, दोष आदि के संबंध में उनके विचार ही परवर्ती काल में प्रायः मान्य रहे और आज भी वे अंतिम वाक्य के रूप में ग्रहण किए जाते हैं।

मयनामतीर गान (*बँ० कृ०*)

इसके कृतिकार हैं भवानीदास। मयनामती या गोपीचंद्र की कहानी नाथ-सिद्धपंथियों की प्रचलित कहानी है। गोपीचंद्र की माता ने अपने पुत्र को पहले से ही संन्यासी बनाने का प्रयत्न किया है एवं साथ ही अपने घर में उसकी प्रतिक्रिया की ओर भी ध्यान दिया है। गोपीचंद्र के संन्यास-ग्रहण के समय उनकी 120 रानियों—विशेषकर प्रधाना अदुना-पदुना—के अंतर्भेदी विलाप का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। धर्म-देवता की वंदना कर काव्य का शुभारंभ किया गया है। भवानीदास कदाचित् त्रिपुरा के रहने वाले थे। इनकी रचना में दुर्लभ मल्लिक का प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह ग्रंथ नलिनीकांत भट्टशाली और वैकुंठनाथ दत्त के संपादन में 1914 ई० में 'मयनामतीर गान' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसी ग्रंथ का पुनर्मुद्रण कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'गोपीचंद्रेर गान' के नाम से 1922-24 ई० में हुआ।

मयमनसिंह गीतिका (*बँ० कृ०*)

दे० पूर्वबंग गीतिका।

मयूर (*सं० ले०*) [समय—सातवीं शती]

मयूर पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासी और बाण (दे०) के समकालीन थे। महाराज हर्षवर्द्धन के दरबार में इनकी भी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। इनको बाण का संबंधी कहा जाता है।

इनकी एक रचना प्राप्त है—'सूर्यशतक'। कहते हैं कि किसी कारणवश इनको कुष्ठ रोग हो गया था। उसी के निवारणार्थ इन्होंने भगवान सूर्य की स्तुति लिखी। स्तोत्र-साहित्य में 'सूर्यशतक' का अपना विशिष्ट स्थान है। स्रग्धरा वृत्त में रचित यह काव्य अत्यंत प्रौढ़ तथा सुंदर है। इसको पढ़कर पता चलता है कि मयूर कवि ही नहीं, संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित भी थे। सूर्य के अंग-प्रत्यंग और रथ, घोड़े आदि साधनों का वर्णन इन्होंने बड़ी सफलता से किया है। अनुप्रासों के प्रयोग में ये बेजोड़ हैं।

मयूरध्वज (*क० पा०*)

कन्नड-'जैमिनि भारत' (दे०) के पच्चीसवें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और छब्बीसवें अध्याय में मयूरध्वज के पावन चरित्र का वर्णन है। महाकवि लक्ष्मीश (दे०) ने जिन जीवंत पात्रों का निर्माण किया है, उनमें यह भी एक है। यह रत्नपुर का राजा था। कवि ने इसकी हरिभक्ति का बहुत ही अच्छा उद्घाटन किया है। इसकी एकांत भक्ति इसके प्रत्येक वचन में अभिव्यक्त होती है। इसकी भक्ति की परीक्षा लेने के उद्देश्य से जब कृष्ण अर्जुन के साथ विप्र-वेश में जाते हैं, तब यह विनय प्रकट करता है। उन्हें अपने शरीर-दान से संतुष्ट करता है। सूदकर्म के लिए नियुक्त व्यक्तियों को अलग होने की आज्ञा देकर श्रीकृष्ण की इच्छानुसार अपनी पत्नी और पुत्र के द्वारा ही अपने शरीर को आरे से कटवाता है। इसके त्याग से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण अपने दिव्य दर्शन देकर अनुग्रह करते हैं। इसके चित्रण में एक श्रेष्ठ भक्त के पावन हृदय का सुंदर दर्शन मिलता है।

मयूरसंदेशम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1894 ई०]

यह केरलवर्मा वलिय कोयित्तंपुरान् (दे०) का संदेश-काव्य है। अपने श्याल त्रावनकोर महाराजा की अप्रसन्नता का पात्र बनकर कवि को पाँच वर्ष अपनी पत्नी के वियोग में व्यतीत करने पड़ते थे। प्रवास-काल में मोर को संदेशवाहक बनाकर हरिप्पाड् से त्रिवेंद्रम् तक भेजने की कल्पना करके इस काव्य की रचना की गई है। संदेश-काव्य की परिपाटी के अनुसार दूत-दर्शन, दूत-प्रशंसा, मार्ग-निर्देश, संदेशवाक्य आदि सभी तत्त्व इसमें सम्मिलित हैं। स्वानुभूति की तीव्रता काव्य में आद्योपांत दर्शनीय है। संस्कृतनिष्ठ मणिप्रवाल शैली में रचित इस संदेश-काव्य में शब्दपरक और अर्थपरक अलंकारों का सामंजस्य है।

मलयाळम कविता के नवोत्थान-काल में नव-क्लासिक शैली में रचित काव्यों में 'मयूरसंदेशम्' का स्थान अद्वितीय है।

मरद अगंमडा *(पं० कृ०)*

यह अवतारसिंह आज़ाद (दे०) का एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें गुरु गोविंदसिंह जी (दे०) के जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं का प्रभावशाली ढंग से निरूपण किया गया है। कवि का दृष्टिकोण प्रगतिशील है। इसमें गुरु जी के अद्वितीय व्यक्तित्व की भी भव्य झाँकी प्रस्तुत की गई है। इस माध्यम से कवि अपनी क्रांतिकारी भावना को भी व्यक्त कर सका है। इस महाकाव्य में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों और वातावरण का भी सजीव अंकन हुआ है।

इस कृति में महाकाव्य के प्रायः सभी परंपरागत नियमों का पालन किया गया है। यह 34 कांडों में विभक्त है और इसमें मंगलाचरण भी है। इसमें कई रसों का सुंदर परिपाक हुआ है पर प्रधानता वीर रस की ही है।

इस महाकाव्य को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक कहा जा सकता है, भले ही लेखक ने कल्पना द्वारा कुछेक घटनाओं में हेरफेर किया हो।

गुरु गोविंदसिंह के जीवनवृत्त पर आधारित यह एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है।

मरळि मण्णिगे *(क० कृ०)*

यह डॉ० शिवराम कारंत (दे०) का श्रेष्ठ उपन्यास और कन्नड की प्रतिनिधि कृतियों में एक है। अनंत-अपार सागर तथा उससे भी विशाल एवं व्यापक जीवन-सागर उसकी प्रेरणाभूमि है। पश्चिम समुद्र के तटीय जीवन के संघर्ष व सौंदर्य का मनोहर चित्रण इसमें है। इस दृष्टि से यह एक आंचलिक उपन्यास भी है।

इसमें तीन पीढ़ियों की कहानी है। ग़रीबी से पिसते-पिसते जीवन का मर्म समझने वाली पीढ़ी का चित्रण इसमें है। राम ऐताल कोडि के वैदिक ब्राह्मण हैं। पित्रार्जित संपत्ति इनकी बहुत कम थी, पौरोहित्य किया करते थे। उनके घर में उन्हें मिलाकर सिर्फ़ तीन ही लोग थे। एक स्वयं, दूसरी उनकी विधवा बहिन सरसोति, तीसरी पत्नी पारोति। तीनों मेहनत करते हैं। ननद-भौजाई में खूब बनती है। उनकी एकमात्र चिंता थी उनका निस्संतान होना। इसके लिए वे पडुमुन्नीर से सत्यभामा को दूसरी पत्नी के रूप में लाए। शुरू-शुरू में सौतों में झगड़ा हुआ, किंतु अंत में स्नेह हुआ। दूसरी पत्नी से लच्चणा नामक एक लड़का तथा सुब्बी नामक एक लड़की हुई। लच्चणा के पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा पर पिता ने काफ़ी पैसा ख़र्च किया। इसी में उनका जीवन समाप्त हुआ। लच्चणा किसी प्रकार अपनी शिक्षा में आगे बढ़ता है किंतु अपने पिता से असंतुष्ट रहता है कि वह उसे काफ़ी ख़र्चा नहीं देते। वह बुरी संगत में पड़ जाता है। वह अपने पिता से ठीक तरह बात भी नहीं करता, उसे सही रास्ते पर लाने के उद्देश्य से पिता उसका विवाह करा देते हैं। उसके संग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उसकी पत्नी नागवेणी तरह-तरह के रोगों का शिकार होती है। उसकी उच्छृंखलता का क्लेश मन में लिये पारोति मरी, पिता मरे। किंतु वह नहीं चेता। पिता ने अपनी संपत्ति पुत्र के नाम नहीं, पुत्रवधू के नाम लिख दी थी। इससे वह और भी भड़का और जुए तथा औरतों में डूब कर सर्वनाश को प्राप्त हुआ। नागवेणी के दो बच्चे हुए और मरे। अब तीसरा बच्चा हुआ। किंतु पति घर आया ही नहीं। पति के रहते हुए भी वह विधवा की भांति रहने लगी। सत्यभामा और सरसोति भी मर गईं। नागवेणी अपने लड़के की शिक्षा के लिए मायके गई। उसे डर था कि बच्चा भी बाप जैसा बना तो क्या होगा किंतु वह अपने दादा पर गया। लच्चणा भी इसी बीच मर गया। अनाथ नागवेणी अपने गाँव लौटी। लड़का रामराव मद्रास में पढ़ने गया, बी० ए० में पढ़ रहा था कि इसी बीच नमक सत्याग्रह शुरू हो गया। राम भावावेश में आकर अपनी माँ के कष्ट को न समझ उसमें कूद पड़ा और जेल चला गया। जेल से लौटने पर वह बी० ए० पास हुआ। किंतु नौकरी उसे कहीं भी नहीं मिली। अंत में वह होटल में अपने दादा के एक वैरी के यहाँ काम करने जाता है। वहाँ से बंबई जाता है। वहाँ भी उसे निराश होना पड़ता है। उधर गाँव में उसकी माँ प्रतीक्षा कर रही थी कि बेटा आएगा और उसे बंबई ले जाएगा। अंत में वह अपने गाँव लौटता है। वहीं गाँव में स्कूल मास्टर बन जाता है। धरती माँ ही उसे शरण देती है। खूब मेहनत कर वह अपने दादा की ज़मीन छुड़ा लेता है और अपने घर का उद्धार करता है तथा माँ को खुश करता है।

इस उपन्यास में आने वाले पात्रों में मनुष्य-स्वभाव की एक छोटी-सी चित्रशाला है। सरसोति हमारी प्राचीन संस्कृति की प्रतीक है, नागवेणी का चरित्र अत्यंत सजीव है। लच्चणा एक मानसिक समस्या है। पात्र अत्यंत रोचक हैं। उपन्यास की शैली बहुत ही मनोहारी है। आंचलिक भाषा, शब्द तथा खान-पान की वस्तुओं और प्रथाओं के चित्रण में लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। यह कन्नड की सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक कृतियों में परिगणित है।

मराठी चें साहित्यशास्त्र *(म० कृ०)*

इस शोध-प्रबंध का रचना-काल 1941 ई० है। डा० मा० गो० देशमुख ने इसमें ज्ञानेश्वर (दे०) से रामदास (दे०) तक के मराठी-संत-कवियों के काव्य-सिद्धांतों का अन्वेषण किया है। इसके मुख्य विषय हैं—भक्तिकालीन मराठी-काव्य की भाषा, प्रयोजन, हेतु, विषय, वर्गीकरण, रस आदि के यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन।

मराठी वाक्प्रचार आणि म्हणींचा कोश *(म० कृ०)*

महाराष्ट्र शब्दकोश-मंडल ने यह कोश दो भागों में प्रकाशित कराया था। यह एक विशाल संग्रह-ग्रंथ है। इसमें मराठी बोली में प्रचलित विभिन्न एवं विविध कहावतों का संग्रह किया गया है। दूसरे भाग की दीर्घ प्रस्तावना श्री यशवंत रामकृष्ण दाते ने लिखी है।

इस कोश का यह वैशिष्ट्य है कि इसमें वऱ्हाड गोमांतक, कोंकण तथा खानदेश में प्रचलित कहावतों का भी अंतर्भाव हुआ है। यथास्थान तुलना के लिए समानार्थक संस्कृत, अँग्रेज़ी, हिंदी तथा गुजराती कहावतों को भी उद्धृत किया गया है। अतः इस कोश के दोनों भागों में चालीस हज़ार से अधिक वाक्प्रचारों का सोदाहरण उल्लेख मिलता है।

कहावत-कोश रचने का यह नवीन तथा स्तुत्य प्रयास है। इतना बड़ा कहावत-कोश किसी अन्य भारतीय भाषा में तो क्या किसी विदेशी भाषा में भी दुर्लभ है।

मराठे, संजीवनी *(म० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

मराठी नयी कविता के साथ कलात्मक कविता की जो धारा है, उसमें कवयित्रियों का प्रमुख योगदान रहा है। इन्हीं कवयित्रियों में संजीवनी मराठे भी हैं।

काव्य-संग्रह : 'काव्यसंजीवनी', 'राका', 'संसार' तथा 'छाया'।

इनके संवेदन की परिधि यद्यपि पति-प्रेम तथा वात्सल्य तक परिमित है, तथापि आजकल ये राष्ट्रीय भावनाओं की पोषक काव्य-रचना में भी संलग्न हैं।

रूपविधा की दृष्टि से इनका काव्य प्रगीतात्मक है। साहित्य-सम्मेलनों में इन्होंने सस्वर गीत गाकर असंख्य श्रोताओं को श्रवणसुख प्रदान किया। इनके काव्य में सुंदरम् की अभिव्यक्ति हुई है। ये महाराष्ट्र साहित्य-वसंत की काव्य-कोकिला मानी जाती हैं।

मराठ्यांचीं संग्रामगीतें *(म० कृ०)*

यह राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक कविताओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह है जिसके लेखक हैं दुर्गाराम आसाराम तिवारी। इसका प्रकाशन 1920 ई० में हुआ था। ढाई सौ साल पूर्व के युद्धों को कवि ने शब्दों द्वारा साकार कर दिया है।

यों तो तिवारी जी ने विपुल काव्य-रचना की है, पर इनकी 'मराठयांचीं संग्रामगीतें कृति का विशेष महत्व है। इनकी मातृभाषा हिंदी थी। हिंदी भाषा-भाषी के लिए निःसंदेह यह गौरव की बात थी। उसने मराठों के इतिहास पर ओजस्वी गीतों की रचना की और उन गीतों को स्वयं गाकर जनता में स्फूर्ति और जागृति का संचार किया।

राष्ट्रीय काव्य-परंपरा को लोकप्रिय बनाने तथा पुष्ट करने के कारण भी इनका महत्व है। इनकी वाणी में ओज है, ये जब 'उद्धवा शांतवन कर जा' की करुण स्वर-लहरी पर गीत गाते थे, तो श्रोताओं की रगों में खून खौलने लगता था। 'झांशीची संग्राम देवता', 'महाराणाप्रताप सिंह' आदि इनके ओजस्वी आख्यान-काव्य हैं।

मरासि-ए-अनीस *(उर्दू० कृ०)*

मीर बबर अली 'अनीस' (दे०) लखनवी के मर्सियों के संग्रह का नाम है 'मरासि-ए-अनीस'। मर्सिये हज़रत हुसैन की शहादत की याद में कहे गए शोक-गीत होते हैं। अनीस ने मर्सिया कहने की कला में अपने लिए सर्वोच्च स्थान बना लिया है। संस्कृत एवं हिंदी साहित्य में जिस प्रकार महाकाव्यों में युद्धवर्णन तथा योद्धाओं के वीरगति पाने एवं बलिदानों का गौरवपूर्ण वर्णन मिलता है उसी प्रकार उर्दू साहित्य को महाकाव्यात्मक गौरव से युक्त काव्य से समृद्ध बनाने का श्रेय 'अनीस' को ही है। भाव तथा कला दोनों पक्षों से सशक्त इन मर्सियों को पढ़कर ज्ञात होता है कि अनीस को भाषा पर अद्भुत अधिकार था। अनीस की भाषा भावों की अनुगामिनी है। भाषा जैसे कवि के आगे हस्तबद्ध-सी खड़ी है। मुहावरों का अत्यंत मोहक प्रयोग किया गया है।

अनीस के मर्सियों में चित्रात्मकता की विशेषता है। 'बच्चों-बूढ़ों, स्त्री-पुरुषों, स्वामी-सेवकों, मित्र-शत्रुओं, नदी-नालों, वन-पर्वतों तथा पशु-पक्षियों के स्वाभाविक एवं मुँह बोलते चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। प्रातः, संध्या, दोपहर आदि का समाँ शब्दों में ऐसा व्यक्त करते हैं कि चित्रकार के चित्र भी ऐसे मुखर न हो सकें। युद्ध-वर्णन करते हैं तो तलवारों के चलने, बरछों के चमकने, घोड़ों फुर्ती, पैंतरों के बदलने आदि के सब दृश्य चलचित्र की तरह आँखों के सम्मुख घूमने लगते हैं।

मरिंगंटि कवुलु *(ते० ले०)*

विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य के वंशज ही मरिंगंटि गृहनाम वाले कविजन हैं। ये आंध्र प्रदेश के नलगोंडा ज़िले के देवरकोंडा तालुके के 'शनगल्लु' ग्राम के निवासी हैं। इस वंश के 16 कवि प्रकांड पांडित्य तथा प्रौढ़ काव्य-रचना के कारण उल्लेनीय हैं। इनमें भी सिंगराचार्य, वेंकट नरसिंहाचार्युलु, नरसिंहाचार्य अधिक प्रसिद्ध हैं।

सिंगाराचार्य (सोलहवीं शती के तृतीय भाग में जीवित) ने 'दशरथ-राजनंदनचरित्र' नामक काव्य की रचना की थी। यह तेलुगु भाषा की प्रथम निरोष्ठ्य (ओष्ठ्य वर्णों से रहित) रामायण है। पाँच आश्वासों के इस काव्य में अनावश्यक वर्णन नहीं हैं। कथाकथन में प्रवाह है किंतु निरोष्ठ्यता के नियम का सर्वत्र पालन करने से, कहीं-कहीं अर्थबोध में बाधा पहुँची है। इनका दूसरा काव्य 'शुद्धांध्र (ठेठ तेलुगु) निरोष्ठ्य सीता कल्याणमु' है। इस काव्य में तीन आश्वासों में सीता-कल्याण के प्रसंग का वर्णन किया गया है। 'इन्होंने दशरथराजनंदनचरित्र' में केवल निरोष्ठ्यता के साथ शुद्ध आंध्र भाषा (केवल तद्भव और देशी शब्दों से युक्त) तथा निरोष्ठ्यता के नियम का पालन किया है। इन दो काव्यों के अतिरिक्त इन्होंने 15 अन्य काव्यों की भी रचना की है।

वेंकट नरसिंहाचार्युलु (1770 के आसपास जीवित) ने कुल मिलाकर 13 रचनाएँ की थीं। इनमें केवल 'गोदावधूपरिणयमु' प्रकाशित है। तथा 'श्रीकृष्णशतानंदीयमु', 'चिलुवपडिगरेनिपेरमु' अप्रकाशित हैं। 'चिलुवपडिगरेनिपेरमु' ठेंठ तेलुगु में लिखा गया है। कवि की शैली प्रौढ़ तथा क्लिष्ट है।

नरसिंहाचार्युलु ने 'तालांकंदिनीपरिणयमु' नामक काव्य की रचना की थी। यह 1764 ई० में समाप्त हुआ था। इसमें तालांक अर्थात् बलराम (हलधर) की पुत्री शशिरेखा और अभिमन्यु के विवाह की कथा वर्णित है।

मरियप्पभट्ट *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

ये कन्नड के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। मद्रास विश्वविद्यालय में कन्नड प्रोफ़ेसर के पद पर रहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने अनेक उल्लेखनीय कार्य किए। इनकी संपादित पुस्तकें ये हैं,—'संगीतरत्नाकर', 'पार्श्वनाथपुराण', अभिनव मंगराज निघंटु', काव्य-संग्रह और 'राजादित्य का व्यवहारगणित'। हाल ही में मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित किट्टल (दे०) कन्नड-अँग्रेज़ी-कोश के संशोधन व परिवर्धन का कार्य इनके द्वारा संपन्न हुआ है। ये अच्छे निबंधकार तथा आलोक हैं। इनकी पुस्तक 'संक्षिप्त कन्नड साहित्य चरित्रे' अधिक लोकप्रिय हुई है।

मरुतीर्थ हिंगलाज *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

'मरुतीर्थ हिंगलाज' अबधूत (छद्मनाम) की उपन्यास-लक्षणान्वित एक सुंदर भ्रमण-कहानी है जिसके प्रकाशन के साथ-साथ बँगला उपन्यास-क्षेत्र में एक क्रांति मच गई थी। हिंगलाज तीर्थ-दर्शन के अभिलाषी तीर्थ-यात्रियों के जीवन के नाना पक्षों का इसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म उद्घाटन हुआ है। मरुभूमि का असहनीय क्लेश, बालुका-राशि की तीव्र अग्निज्वाला लेखक के वर्णन-कौशल से बहुत ही सजीव हो उठी है और पाठक उसके साथ पूर्ण तादात्म्य कर लेता है। पथ-वर्णन के साथ-साथ लेखक ने तीर्थयात्रियों की मननक्रिया एवं जीवन-समीक्षा के द्वारा ग्रंथ की सरसता बढ़ा दी है। इन यात्रियों के मन के गोपन रहस्य तथा अपराध-बोध एवं व्यक्तिगत समस्याओं की लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिव्यक्ति की है। इस भ्रमण-गाथा में व्यक्ति-मन के नाना रहस्यों का आभास देते हुए अंतर्दाह के तीव्र उत्ताप को लेखक बहुत ही व्यंजक रीति से प्रकट करता है। यात्रा-पथ में नाना आकस्मिक विपत्तियों एवं प्राण-संशयकारी दुर्घटनाओं एवं मानव-मन के विचित्र आवेगमय व्यवहार से कहानी रोमांचकारी एवं आकर्षक बन गई है। लेखक का अभिव्यक्ति-कौशल, मानव-जीवन के संबंध में अंतर्भेदी दृष्टि एवं नाटकीयता का सुष्ठु प्रवर्तन प्रशंसनीय है।

मरुदम् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित पाँच भूभागों में एक है मरुदम्। मरुदम् आदि पाँचों भूभागों का वर्णन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) और 'पुरम्' (दे० पुरुप्पोरुळ) दोनों वर्गों की रचनाओं में प्राप्त होता है। नदी तट के आसपास की भूमि को 'मरुदम्' कहते हैं। यहाँ के निवासी ऊरन्, मकिलनन् कहलाते हैं। मरुदम्वासियों का मुख्य व्यवसाय है कृषि। यहाँ के निवासी वेंदन् (इंद्र) की उपासना करते हैं। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ छहों ऋतुएँ हैं और अनुकूल वेला है प्रातःकाल। यहाँ के प्रमुख प्राणी हैं हंस, बतख, सारस, गाय, बैल, भैंस आदि। मरुदम्-निवासियों का वाद्ययंत्र मरुदयाल् है। इस प्रदेश में मरुदम् नामक वृक्ष प्रभूत मात्रा में हैं। इसी आधार पर इस प्रदेश को तथा यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति को 'मरुदम्' कहा गया है। मरुदम्वासी अन्य प्रदेश के निवासियों की अपेक्षा सभ्य, संपन्न और सुखी माने जाते हैं। 'मरुदम्' से संबंधित 'अहम्-काव्यों में ऊडल् अर्थात् नायिका के मान का वर्णन होता है। नायिका के इस मान का कारण नायक का परस्त्री-प्रेम या दुराचरण होता है। इसके साथ-साथ कविगण गृहस्थ-जीवन के सुख-दुःखात्मक अनुभवों का वर्णन करते हैं। इन अनुभवों को स्पष्ट करने के लिए प्रदेश-विशेष की प्राकृतिक अवस्था का व्यापक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मरुदम् प्रदेश में पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ नायिका के मान तथा पति-पत्नी के सुख-दुःखात्मक अनुभवों को व्यक्त करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

मरुदायी किलवी *(त० पा०)*

'मरुदायी किलवी' पुदुमैप्पित्तन (दे०)-कृत 'मरुदायी किलवी' नामक कहानी की नायिका है। इस चरित्र-प्रधान कहानी में लेखक ने इस पात्र के माध्यम से यह बताना चाहा है कि जब व्यक्ति अनुभव के बल पर जीवन के रहस्यों को जान जाता है तब उसमें भय की भावना बिल्कुल भी नहीं रहती। कभी-कभी 'मरुदायी' किलवी' जैसे सामान्य व्यक्ति भी ऐसे विचित्र प्रश्न पूछ बैठते हैं जिनका उत्तर देना बुद्धिमानों के लिए कठिन हो जाता है।

म. रैमलै-अडिहळ् *(त० ले०)* [समय—1876-1950 ई०]

उन्नीसवीं शती के आरंभ काल में तमिल-प्रदेश में जो अनेक सांस्कृतिक आंदोलन हुए उनमें एक प्रमुख आंदोलन था—'शुद्ध तमिल-आंदोलन'। इसका प्रमुख उद्देश्य था तमिल भाषा को संस्कृत के प्रभाव से मुक्त करना। इस आंदोलन के प्रधान प्रवर्तक थे म. रैमलै-अडिहळ्'। इनका बचपन का नाम था 'वेदाचलम्' जिसे संस्कृत शब्द होने के कारण इन्होंने तमिल में रूपांतरित कर लिया था। इनका जन्म 'नागपट्टिनम्' के पास के एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव में हुआ था। ये बचपन से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। स्कूल में इन्होंने अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। तमिल भाषा तथा साहित्य के प्रति बचपन से ही इनकी रुचि थी। 'नारायण पिळ्ळै' नामक विद्वान से इन्होंने तमिल के अनेक प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया था, व्याकरण, अलंकार छंद तथा काव्य-वाङ्मय का अभ्यास करते-करते इन्होंने प्राचीन तमिल-शैली पर, जिसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग नगण्य-सा है, अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। सोमसुंदर नायकर् नामक विद्वान के भाषणों से प्रभावित होकर ये 'शैवसिद्धांत' (तमिलनाडु में प्रचलित पाशुपत संप्रदाय) की ओर आकृष्ट हुए थे। ये कुछ समय तक 'तिरुवनंतपुरम्' में और बाद में मद्रास के क्रिश्चियन कालेज में तमिल-अध्यापक रहे। कुछ वर्ष पश्चात ये नौकरी छोड़ शैव सिद्धांत पर व्याख्यान देने तथा ग्रंथ रचने में ही संलग्न हो गए थे। श्रीलंका तथा तमिलनाडु और भारत के अन्य स्थानों में जाकर इन्होंने अनेक व्याखयान दिए। संस्कृत तथा अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान होने से उनके साहित्यों के साथ तमिल की तुलना करने में ये समर्थ थे। इन्होंने 'शैवसिद्धांत महासमाज' नाम से एक संगठन बनाया था जो आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज जैसे ही व्यापक ढंग से जनता में जागरण उत्पन्न करने वाला था। इसके परिणामस्वरूप 'शैवधर्म' के प्रति लोगों में रुचि बढ़ी। 'ज्ञानसागरम्' नामक पत्रिका के माध्यम से इन्होंने अनेक गहन विषयों पर शोध तथा चर्चा की है। इन्होंने न केवल भाषा में, अपितु धर्म, नीति, जीवन-क्रम तथा समाज के अन्यान्य पक्षों में भी 'आर्यों' के प्रभाव को हटाने और 'प्राचीनकालिक तमिल-समाज में स्थित शुद्ध संस्कृति को पुनःस्थापित करने का यत्न किया।

म.रैमलै-अडिहळ् वरलारु *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1959 ई०]

यह वृहदाकार ग्रंथ तमिल साहित्य एवं शैव-सिद्धांत के प्रसिद्ध प्राचारक तथा उन्नायक म.रैमलै-अडिहळ् (दे०) की विस्तृत जीवनी है। जीवनीकार हैं चरितनायक के तीसरे पुत्र 'तिरुनावुक्करचु'। ग्रंथ में चरितनायक के व्यस्त एवं तपोरत जीवन की घटनाओं का क्रमागत विवरण है। पिता के प्रति जीवनीकार का आदर-भाव स्वाभाविक है जिसके फलस्वरूप वस्तुपरकता की हानि तथा एकांगिता का समावेश भी उतना ही स्वाभाविक है।

मढेंकर, बाळ सीताराम *(म० ले०)* [जन्म—1909 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

खानदेश में इनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ था। उच्च शिक्षा के लिए पहले ये पूना गए थे तदंदर इंग्लैंड। वहाँ इन्होंने अँग्रेज़ी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया था। विदेश से लौटने पर कुछ दिन प्राध्यापक का कार्य किया था और बाद में भारतीय आकाशवाणी में उच्च पद पर नियुक्त हुए थे।

इनके काव्य-संग्रह हैं—'शिशिरागम', 'कांही कविता', 'आणखी काही कविता' तथा उपन्यास हैं—'तांबडी माती', 'पाणी', 'रात्रीचा दिवस'।

कवि और उपन्यासकार के अतिरिक्त साहित्य सौंदर्यशास्त्रज्ञ के रूप में भी ये प्रसिद्ध हैं। 'वाङ्मयीन महात्मता', 'सौंदर्य आणि साहित्य' इनकी सौंदर्यशास्त्र-संबंधी समीक्षात्मक रचनाएँ हैं।

ये मराठी की नयी कविता के जनक माने जाते हैं। यांत्रिक युग में मानव भी यंत्रवत भावशून्य आचरण कर रहा है। आज का मानव वित्त, वनिता और वारुणी को सुख का केंद्र मानता है, धर्म की आड़ लेकर नृशंस हत्या करता है, चारों ओर भ्रष्टाचार और लूट है तथा मूल्यों में विघटन हो गया है। इन कारणों से आधुनिक मानस अश्रद्धा, अस्थिरता, असमाधान और अशांति से भरा हैं। यांत्रिक युग तथा आर्थिक दुरवस्था के शिकार अद्यतन मानव के निष्ठाहीन कुंठाग्रस्थ मन का विश्लेषण यथार्थ-वादी शैली में इन्होंने किया है। इनकी कविता में निराशा का भाव है।

नयी कविता में समाजवादी चेतना की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। इनके अनुसार कोयले वाले श्रमिक की काली परंतु सतेज मूर्ति ही नवयुग के मानव के लिए गिरिधर की प्रतिमूर्ति है। 'न्हालेल्या जणु गर्भवतीच्या', 'पोरसवदा होतीस', 'दवात आलिस भल्या पहाटे' जैसी कुछ गिनी-चुनी कविताओं को छोड़ा जाए तो इनके काव्य में मंगलमय पक्ष का विधान ही नहीं है।

रूप, रंग, रस, गंध, नाद एवं स्पर्शिक बिंबों के सर्जन से समृद्ध कल्पना-चित्र इन्होंने रूपांकित किए हैं। इतना अवश्य है कि रूढ़ उपमानों की अवहेलना कर नवीन उपमानों और प्रतीकों की इन्होंने योजना की है, जो स्वाभाविक है। भाव-बोध के परिवर्तन के कारण सूर्य, चंद्र, कमल आदि उपमानों की अपेक्षा क्रिस्टल, ऑसेट, स्विच, दुर्बिन, आदि जीवविज्ञान तथा मनोविज्ञान के शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक संवेदन-क्षम हैं।

उपन्यासों में भी इन्होंने शिल्प-संबंधी अनेक प्रयोग कर संज्ञा-प्रवाहात्मक शैली में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की है।

मर्सिया *(उर्दू० पारि०)*

किसी व्यक्ति के निधन पर लिखित शोक-गीत मर्सिया कहलाता है। परंतु कर्बला के मदान में हज़रत इमाम हुसैन और उनके परिवार के आत्म-बलिदान की घटनाओं से संबद्ध उर्दू कविताओं की गणना विशेष रूप से 'मर्सिया' के अंतर्गत होती है। इस प्रकार के शोक-गीत लिखने वाले 'मर्सिया-गो' कहलाते हैं। उर्दू साहित्य में 'अनीस' (दे०), और 'दबीर' (दे०) ऐसे ही प्रसिद्ध मर्सिया-गो कवि हुए हैं। मर्सिया का कोशगत अर्थ है—किसी दिवंगत व्यक्ति की प्रशंसा में काव्यबद्ध मार्मिक श्रद्धांजलि'। इस काव्य-विधा में किसी विशिष्ट छंद के प्रयोग का प्रतिबंध नहीं है। किसी भी छंद में इसकी रचना संभव है। आकार-प्रकार पर भी कोई बंधन नहीं है। 'अनीस' और 'दबीर' के मर्सिये प्रायः मुसद्दस में लिखे हुए मिलते हैं। मुसद्दस ऐसी कविता को कहते हैं जिसमें छह-छह पंक्तियों के अनेक पद हों। शहीदों एवं हुतात्माओं के प्रति संवेदना की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त मर्सिया-लेखकों ने अन्य वर्ण्य विषयों—ऋतु-वर्णन, तलवार, नेज़े और घोड़े के प्रशस्ति-गान तथा प्रकृति-चित्रण आदि की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया है।

मलयविलासम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1900 ई०]

यह ए० आर० राजराज वर्मा (दे०) का काव्य है। कवि को मद्रास-यात्रा के दौरान पश्चिमी घाट के दृश्यों की जो सौंदर्यानुभूति हुई उसका वर्णन काव्य की विषय-वस्तु है।

यह वर्णन महाकाव्यकारों और अन्य क्लासिक कवियों के शैलवर्णन से भिन्न था और इसमें मलयाळम के स्वच्छंदवादी आंदोलन की पहली झलक दर्शनीय है। पश्चिमी घाट को कवि केरल के रक्षा-दुर्ग के रूप में और जनता के आत्म-विश्वास के प्रतीक के रूप में देखते हैं। देश के गौरव के प्रति पाठक को जागरूक करके विदेशी आधिपत्य की ओर संकेत करना उसका उद्देश्य है। इस काव्य के साथ ही मलयाळम में रोमांटिक कविता पल्लवित हुई थी और एकाध विलाप-काव्यों के बाद आशान् (दे०) की रचनाओं में पूर्ण विकसित हुई थी।

मलयाट्टूर् रामकृष्णन् *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

ये मलयाळम के लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। ये केरलवासी तमिल ब्राह्मण हैं और भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई० ए० एस०) के सदस्य हैं। केरल सरकार के विभिन्न उन्नत पदों पर इन्होंने कार्य किया है। ये व्यंग्य-चित्रकार भी हैं।

इन्होंने 'वेरुकळ्', 'वेषांपल्', 'यक्षी', 'पोन्नी', 'अभ्रम्', 'यंत्रम्' आदि अनेक लोकप्रिय उपन्यासों की रचना की है। इनके कई उपन्यासों का फ़िल्मीकरण भी हुआ है।

अपने उपन्यासों में अनुभूति की तीव्रता से सशक्त वातावरण की सृष्टि करने में इन्होंने पर्याप्त कुशलता दिखाई है। 'वेरुकळ्' में तमिल ब्राह्मणों के सामाजिक जीवन का जो चित्र खींचा गया है वह मलयाळम में अभूतपूर्व रचना-कौशल का उदाहरण प्रस्तुत करता है। आधुनिक उपन्यासकारों में इनका स्थान अद्वितीय है।

मलर्विळ् *(त० कृ०)*

यह डा० मु० वरदराजन (दे०) का उपन्यास है। इसमें अच्छे-बुरे पहलुओं के दो व्यतिरेकी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। एक ओर 'मुत्तय्यन' निम्न मध्यवर्गीय परिवार का युवक है जो कलेक्टर 'चेल्वनायकम्' की सिफ़ारिश से रेलवे टिकट इंस्पेक्टर की नौकरी में लगकर एक समतल मैदानी जीवन बिताता है। विधवा माँ के साथ रहने वाला यह युवक अपने से भी निम्न स्थिति वाली आश्रय-रहित पड़ोसिन बालिका की विनम्र सेवा-भावना तथा अव्यक्त, पर अटल, प्रेम का आकर्षण अनुभव करते हुए उसके हाथों अपने को बेच देता है। दोनों के बीच की आर्थिक विषमता पाटने के लिए तथा बालिका को आत्मनिर्भर बनाने के लिए, अपने शुभचिंतक मित्र की सलाह के अनुसार यह युवक उसे स्कूल में भरती कराके प्रशिक्षित अध्यापिका बना देता है। इस कार्य में दो साल लगते हैं जिसके दौरान पहले से अंकुरित प्रेम स्वस्थ रूप से पल्लवित एवं पुष्पित होने के कई भावुक प्रसंग वर्णित होते हैं। दूसरी ओर मुख्य पात्र के हितकारी कलेक्टर साहब का पारिवारिक जीवन परोपकारिता, कलाप्रेम आदि अपने श्लाघ्य गुणों के बावजूद अधःपतन की ओर जाता है। उनकी पत्नी पड़ी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी चित्रकार महिला है पर धनलोलुपता एवं असंयम उसके चारित्रिक दोष हैं। असीम नारी-स्वतंत्रता-समर्थक कलेक्टर साहब उस पर अंकुश नहीं लगा पाते हैं। पत्नी अपने यहाँ धर्मार्थ पाले हुए एक युवक को पूँजी देकर काले धंधे में लगा देती है और उसके साथ घूमते-फिरते हुए पति की अकाल मृत्यु का कारण बनती है। युवक को ब्याही गई बेचारी मलर्विळि उपेक्षित होकर अपने मायके चली जाती है जहाँ से मुख्य पात्र की सहायता से वह प्रशिक्षित अध्यापिका बन जाती है। कलेक्टर की पत्नी व्यापार के नुकसानों के साथ आत्महत्या कर लेती है तथा उसका साथी युवक भागकर सेना में भर्ती होता है जहाँ उसका अंत होता है। उसकी कर्तव्यनिष्ठ पत्नी मलर्विळि तपस्या का जीवन बिताती है।

इस उपन्यास की सार्थकता इसके द्वारा इंगित सादगी, संयम आदि मूल्यों की स्थापना में है। गृह-जीवन के कई अच्छे वर्णन प्रस्तुत हैं।

मलाजन्ह *(उ० कृ०)*

'मलाजन्ह' श्री उपेंद्र किशोर दास (दे०) का उपन्यास है। इसमें सामाजिक क्रांति का स्वर मुखर है। इसका स्वरूप संस्कारमूलक नहीं है। जिस आत्मिक अनुभूति से इसकी रचना हुई है, वह व्यक्ति-केंद्रित नहीं। वह समग्र जाति की अनुभूति है। यह शती के करुण जीवन की आत्मलिपि है।

सत्यभामा [सती (दे०)] और लोकनाथ [नाथनना] शांत गाँव के निवासी हैं। सती एवं नाथनना की पारस्परिक बाल्य ममता, सामाजिक परिवेश के कारण परिणय में सार्थक नहीं हो पाती है। सती का विवाह धूर्त, वृद्ध नरहरि से हो जाता है। कालांतर में नरहरि, सती का परित्याग कर देता है। आकस्मिक रूप से सती को नाथनना का आश्रय मिल जाता है। किंतु समाज को यह निष्कलंक संबंध स्वीकार नहीं होता। फलतः लांछनाओं, अपवादों, उपेक्षा, घृणा, विद्रूपता से उनका जीवन भर जाता है। अपने लिए नाथनना के जीवन को विषैला बनाना सती को सह्य नहीं। उसका स्वाभिमान भी आहत होता है। वह आत्महत्या कर लेती है। निर्भीक, उदार, परम पुरुषार्थी नाथनना की सामाजिक क्रांति उसकी आत्महत्या के साथ समाप्त हो जाती है।

जीवंत चरित्र, सफल परिवेश, हृदयस्पर्शी समस्या के चित्रण के कारण उपन्यास जितना मार्मिक है, उतना ही कलात्मक भी। उड़िया गण-जीवन ही इसमें उभर कर आया है। स्वाभाविक परिपाटी में ग्राम्य जीवन का चित्रण हुआ है। सहज, सरल भाषा इसके सारभूत प्रभाव को और भी गहरा, और भी सुंदर बना देती है।

मलूकदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1574 ई०; मृत्यु—1682 ई०]

मथुरादास की 'मलूक परिचई' के अनुसार, प्रयाग के निकट कड़ा नामक कस्बे में मलूकदास का आविर्भाव वैशाख कृष्ण पंचमी 1631 वि० अर्थात् 1574 ई० में और तिरोभाव 1682 ई० में हुआ। इनके पिता सुंदरदास खत्री थे। कहते हैं कि पाँच वर्ष की अवस्था में जब इनकी पट्टी पर इनके गुरु ने अभ्यास के लिए वर्णमाला लिखी तो इन्होंने प्रत्येक वर्ण पर एक साखी लिख डाली। ये बाल्यकाल से ही भगवद्-भजनी थे। इनके यहाँ कंबलों का व्यापार होता था; जिनमें से कुछ तो ये बेचते और कुछ बाँट देते थे। अनुमानतः इनका विवाह हुआ और एक कन्या भी उत्पन्न हुई; किंतु तभी उसकी और उसकी माँ की मृत्यु हो गई। कहते हैं कि इन्होंने बहुत पर्यटन किया था। इनकी कविता सरस और भावपूर्ण है। इनकी रचनाएँ लगभग एक दर्जन हैं। 'ज्ञानबोध' में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की चर्चा है; और 'रामावतार लीला' में श्रीराम का विस्तृत चरित्र है।

मलेगळल्लि मदुमगळु *(क० कृ०)*

यह आधुनिक कन्नड के महाकवि कुवेंपु (दे०) का एक बृहत् उपन्यास है। उनकी पूर्ववर्ती कृति 'कानूरु हैग्गडिति' (दे०) की तरह इसे भी हम एक आंचलिक उपन्यास कह सकते हैं। इसमें कर्णाटक के अरण्य-प्रदेश 'मलेनाडु' के निसर्ग-रमणीय प्रदेशों में रहने वाले कुनबी किसानों, ज़मींदारों तथा उनके मातहत रहने वाले कुली, बेगार तथा उनके जीवन के राग विराग का चित्रण है। यह कहना कठिन है कि इस उपन्यास का नायक कौन है। सारा पार्वत्य प्रदेश (मलेनाडु) ही इसका नायक है। कहने के लिए तो एक चिन्नम्मा इसकी नायिका है। उसका विवाह एक बूढ़े के साथ निश्चित हुआ था किंतु बचपन से ही उसका प्रेम मुकुंदय्या से था। वह अपने मित्रों की मदद से एक षड्यंत्र रचता है और विवाह के दिन ही उसका अपहरण किया जाता है। अपहरण के पश्चात् वह जंगलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रखी जाती है। इसी जगह उसके मित्र गुत्ति ने एक वर्ष पूर्व अपनी प्रेयसी तिम्मि को चुरा लाकर रखा था। उपन्यास के शीर्षक (मलेगळल्लि मदुमगळु—पहाड़ियों में दुलहिन) से ज्ञात होता है कि यही उसकी प्रधान घटना है। मलेनाडु-जनजीवन का चित्रण करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। वहाँ के लोगों में प्रचलित बेमेल विवाह, पुनर्विवाह छुआछूत, अंधविश्वास, भूतप्रेत आदि की उपासना, ऋणग्रस्तता, व्यभिचार, पुरोहित लोगों द्वारा होने वाला शोषण, हिंदू धर्म की दुर्बलताओं का फ़ायदा उठाने वाले ईसाई मिशनरी, महाजन तथा उनके द्वारा होने वाले अत्याचार आदि का अत्यंत यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। इसके लेखक मूलतः कवि हैं। अतः उपन्यास में आद्यंत उनका प्रकृति-प्रेम अनुस्यूत मिलता है। शिकार, कृषि, बागबानी आदि के बहाने लेखक ने किसानों के जीवन का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया है। हिंदू समाज की कमज़ोरियों—जैसे वर्णाश्रम-व्यवस्था, छुआछूत, वैधव्य में नारी के शिरोमुंडन आदि—पर कटाक्ष भी किया है। इन यथार्थवादी चित्रों के साथ कुछ अलौकिक घटनाएँ भी हैं। लेखक की शैली अत्यंत संयत है जिसमें आंचलिक तत्त्वों का यथायोग्य समावेश है। यह कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासों में परिगणित है।

मळेला जीव *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

श्री पन्नालाल पटेल-रचित व 1949 ई० में प्रकाशित 'मळेला जीव' गुजराती का एक प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है। कावड़िया पहाड़ी, जाँगीपरा गाँव, उधड़ियुं, गाँव तथा नागधरा स्थलों को समाविष्ट करती हुई इस कथा-धारा सतत एक गति से बहती प्रतीत होने पर भी मन की अतल गहराइयों का स्पर्श करती है। कानजी (पटेल जाति का युवक) और जीवी (नाई जाति की युवती) का प्रथम दृष्टि-जनित प्रेम जात-पाँत के बाह्य आवरणों को भेद कर आत्मा के पूर्ण मिलन में परिणत हो जाता है। समाजगत बंधनों से बद्ध और पिता को दिए वचनों को पूर्ण करने की इच्छा से कानजी अपने मित्र हीरा के परामर्श से जीवी का विवाह गाँव के ही धूला नाई से कराने को राज़ी हो जाता है और जीवी न चाहते हुए भी अपने प्रेमी की इच्छा को आदेश रूप में ग्रहण कर न केवल विवाह के लिए ही तैयार हो जाती है अपितु वह माता-पिता को बिना सूचना के दिए ही धूला के साथ—कानजी के कहने पर—भाग भी आती है। कुछ तो गाँव के वातावरण, कुछ धूला की ईर्ष्या और कुछ बदनामी के डर से जीवी के साथ मिलने-जुलने में कानजी के संकोच के कारण जीवी और खुद कानजी का जीवन सर्वथा असहाय बन जाता है। जीवी धूला की पाशविकता का शिकार हो पिटती और कानजी अपनी निरुपायता में तड़पता पर कुछ न कर पाता। विवश हो कानजी गाँव ही छोड़ जाता है। एक बार लौटता है, जीवी से मिलता है। दूसरी बार जब आता है तो जीवी के द्वारा बनाई गई विषाक्त रोटी खा कर उसका पति मर चुका होता है और जीवी विधवा हो जाती है। इस बार लौटते समय कानजी जीवी से बिना मिले ही चला जाता है और जीवी टूट जाती है, पागल हो जाती है। अंत में नाना द्वारा नागधरा लाई गई पागल जीवी को कानजी सभी के देखते-देखते शहर जाने वाली मोटर में बिठा कर ले जाता है और भगत, जो इस समस्त उपन्यास में घटनाओं का द्रष्टा है, कह उठता है: "वाह रे मानव, तेरा हृदय! एक ओर खून के कुल्ले करता है तो दूसरी ओर प्रीति के घूंट लेता है।" इस उपन्यास के प्रस्तावना लेखक झवेरचंद मेघाणी इसे 'शोकांत कृति' कहते हैं। वस्तुतः संपूर्ण उपन्यास को देखने पर मानव-मन में गहरा अवसाद-बोध ही जगता है और कुछ नहीं। इस उपन्यास की भाषा संबद्ध अंचल के सभी गुणों से पूर्ण व अभिव्यक्ति की दृष्टि से समर्थ है। उधड़ियुं गाँव से जीवन की कुछ झलकियां प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध होती हैं, पूरा जन-जीवन उभर कर नहीं आता फिर भी लोक-जीवन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'मळेला जीव' अपने युग की अत्यंत समर्थ रचनाओं में से है।

मल्काणी, नारायणदास रतनमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

इनका जन्मस्थान हैदराबाद (सिंध) है। इन्होंने एम० ए०, एल-एल० बी०, तथा बी० टी० की परीक्षाएं उत्तीर्ण करने के पश्चात् कुछ वर्षों तक प्राध्यापक के रूप में भी कार्य किया है। इन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग समाज-सेवा, देश-सेवा और हरिजनों की उन्नति में व्यतीत किया है। इन्होंने सिंध तथा भारत के कई भागों का भ्रमण भी किया है। कुछ वर्षों ये राज्यसभा के सदस्य भी रह चुके हैं। इन्होंने लगभग 15 पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से कुछ कृतियों के नाम हैं—'बाराण्यूं' 'बोल्यूं', 'गोठाणी चहर', 'कश्मीर जो सैरु', 'सिंध जा हुनर' 'अनारदाना', 'जवाहर आत्मकथा'। ये सिंधी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध गद्यकार हैं और अपनी विशेष गद्यशैली के कारण सिंधी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। इनकी भाषा मँजी हुई, मुहारेदार और हास्य-व्यंग्य से पूर्ण हैं। सिंध के ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय ये संबद्ध क्षेत्रों की उपभाषाओं का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को स्वाभाविक बना देते हैं। सिंधी-गद्य के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

मल्काणी, मंघाराम उघाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

ये सिंध में अँग्रेज़ी के प्राध्यापक थे और विभाजन के पश्चात् जयहिंद कालेज, बंबई में इसी विषय के प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। वहाँ से निवृत्त होने के पश्चात् ये कलकत्ता चले गये थे और वहीं वृद्धावस्था में भी समय निकाल कर साहित्य का सृजन और अध्ययन कर रहे हैं। इनकी प्रमुख मौलिक रचनाएँ ये हैं—**नाटक :** 'खिन जी खता' (1930), 'अनारकली' (1930); **एकांकी-संग्रह :** 'पंज नंढिड़ा नाटक' (दे०) (1937), 'पंगली पर्दा (1938), 'जीवन चहिचिटा (1957), 'पापु कीन पुत्र्' (1962), 'खुडखुबीता प्या टिमिकनि' (1967) **आलोचना :** 'अदबी उसूल' (1950); **यात्रा वर्णन :** 'पच्छिमी यात्रा' (1963)। 1968 ई० में इनकी रचना 'सिंधी नस्र जी तारीख' प्रकाशित हुई थी जिसमें इन्होंने सिंधी-गद्य के विकास का इतिहास विस्तार से प्रस्तुत किया है। इसी पुस्तक पर इन्हें साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से पाँच हज़ार रुपयों का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। ये सिंधी साहित्य में नाटककार तथा आलोचक के रूप में अधिक विख्यात हैं। सिंधी के एकांकी नाटकों के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है। ये 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के पक्के समर्थक हैं, अतः इन्होंने एकांकी नाटकों में जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर समाज को सुधारने के लिए कुछ आदर्श भी सामने रखे हैं। हाल ही में इनकी साहित्यिक सेवाओं को ध्यान में रखकर साहित्य अकादमी ने इन्हें अपना फ़ेलो नियुक्त कर इनका सम्मान किया है।

मल्लना, चेदलुवाडु *(तें० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

इनके पिता का नाम चेदलुवाडु लिंगन्ना था और वासस्थान थे गुड्लूरु के समीप अवस्थित चेदलवाडा, कालहस्ति तथा कार्वेटिगर।

कृतियाँ : (1) 'रुक्मांगदचरित्रमु' (दे०) तथा (2) 'विप्रनारायणचरित्रमु'।

'रुक्मांगदचरित्रमु' का रचना-काल 1950 ई० माना जाता है। यह एक सरस द्विपद-काव्य है जो अनुपलब्ध है। इस काव्य की कतिपय पंक्तियाँ रीतिग्रंथों मे उदाहृत हुई हैं। 'विप्रनारायणचरित्रमु' (दे० विप्रनारायणुडु) सुंदर प्रबंध-काव्य है जिसमें तमिलनाडु के बाहर आळ्वार भक्तों में अन्यतम तोंडर डिप्पोडि आळ्वार का—जीवनवृत्त वर्णित है। इनसे पहले दो अन्य कवियों ने इसी कथावस्तु को लेकर कविता लिखी थी। परंतु मौलिक काव्य के रूप में मल्लना की कृति ही प्रसिद्ध है। यह पाँच आश्वासों का कमनीय काव्य है जिसमें विप्रनारायणुडु भक्तिपथच्युत होकर भी भगवान की कृपा से पुनः सन्मार्ग पर लौट आता है।

मल्लना, नंदि *(तें० ले०)* [जन्म—पंद्रहवीं शती का उत्तरार्ध]

नंदि मल्लना तथा 'घंट सिंगना' दोनों कवियों ने मिल कर सम्मिलित रचनाएँ कीं। इस प्रकार सम्मिलित रचना करने वाले तेलुगु-कवियों में ये सर्वप्रथम हैं। 'प्रबोधचंद्रोदयमु', 'वराहपुराणमु' आदि इनकी रचनाएँ हैं। प्रबोधचंद्रोदयमु' कृष्ण मिश्र (दे०) द्वारा संस्कृत में रचित दार्शनिक नाटक का पद्यानुवाद है। इसमें 'महाभारत' (दे०) की कथा के आधार पर मनुष्य के हृदय में संघर्ष करने वाली सत् एवं असत् प्रवृत्तियों का चित्रण तथा प्रबोध के चंद्र के उदय की कथा वर्णित है। अपने अनुवाद में कवि ने प्रबंध-काव्य के लिए आवश्यक कई वर्णन जोड़े हैं।

'वराहपुराणमु' संस्कृत मूल के सरस प्रसंगों का चयन करके प्रबंध—रीति से रचा गया—काव्य है। दोनों कवियों ने स्वयं शिव-भक्त होकर भी विष्णु के अवतार-संबंधी पुराण की रचना करके अपनी समदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी रचना सरल, सुग्राह्य तथा मधुर है। इसी कारण से क्लिष्ट दार्शनिक तत्त्वों को भी सहज एवं रमणीय रीति से प्रस्तुत करने में ये सफल हुए हैं।

मल्लना, पावुलूरि *(तें० ले०)*

गणितशास्त्र को काव्य का रूप देने वाले 'पावुलूरि गणितमु' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के ये यशस्वी लेखक थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसा की नवीं शती में आचार्य महावीर नामक जैन विद्वान् ने 'गणित-सार संग्रहमु', नामक गणित ग्रंथ की रचना की थी । इस ग्रंथ से मूल सूत्र, सिद्धांत और प्रक्रिया को अभी अपनाकर पावुलूरि ने मल्लना ने अपनी तरफ़ से उदाहरण आदि जोड़कर तेलुगु में इस शास्त्र-ग्रंथ की रचना की । इस ग्रंथ का गाँवों के पटवारी लोगों के बीच विशेष प्रचार हुआ । कन्नड में राजादित्य (1120 ई०) के समय रचित 'राजादित्यगणितमु' का इस रचना पर प्रभाव दिखाई देता है । अत: इसका रचना-काल बारहवीं शती का अंतिम चरण हो सकता है ।

मल्लना, मादयगारि *(तें० ले०)* [समय—पंद्रहवीं-सोलहवीं शती ई०]

ये तेलुगु के 'अष्टदिग्गज' (दे०) कवियों में से एक हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना 'राजशेखर चरित्रमु' है, जिसका कथानक कल्पित है । इसमें शिव के वरदान से जनमा हुआ राजशेखर नामक राजकुमार विशंकट नामक राक्षस का वध करके जटिल कौशिक नामक मुनि की पुत्री को मुक्त करता है तथा अनेक साहसपूर्ण कार्य करने के उपरांत सिंधुराज की पुत्री कांतिमती का पाणिग्रहण करता है। इसमें दोनों प्रेमियों के बीच एक शुक के द्वारा किया गया प्रणय-दौत्य अत्यंत सुंदर बन पड़ा है ।

इस कवि की रचना मृदु-मधुर शब्दावली, रस-परिपाक तथा सजीव वर्णनों की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। इसमें कवि ने सार्वजनिक तथा सार्वकालिक अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण किया है । तेलुगु की लोकोक्तियों का सार्थक प्रयोग कवि की एक और विशेषता है। तेलुगु के सुप्रतिष्ठित कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है ।

मल्ला रेड्डी *(तें० पा० एवं कृ०)*

यह तेलुगु के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास श्री नोरी नरसिंहशास्त्री (दे०) द्वारा रचित 'मल्ला रेड्डी' नामक ऐतिहासिक उपन्यास का प्रधान पात्र है । प्रतापरुद्र चक्रवर्ती ने दिल्ली की आक्रमणकारी मुसलमान सेनाओं को सात बार पराजित करके भगा दिया था। किंतु आठवीं बार 1323 ई० में वह बंदी बना लिया गया था। उसके उपरांत चार-पाँच वर्ष तक आंध्र में मुसलमान सेनाओं द्वारा अवर्णनीय अत्याचार होते रहे। संत्रस्त आंध्र के उद्धार के लिए कटिबद्ध होकर कृष्णानदी के दक्षिण के वेमा रेड्डी, मल्ला रेड्डी आदि ने अपने संबंधियों के सहयोग से मुसलमान सेनाओं को ध्वस्त किया था और फिर से धर्म तथा न्याय से पूर्ण शासन की स्थापना की थी। इस धर्मयुद्ध में मल्ला रेड्डी द्वारा मोटुपल्लि बंदरगाह पर अधिकार पा लेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय थी। मल्ला रेड्डी एक सुयोग्य शासक ही नहीं, साहित्य एवं कला का महान् पोषक भी था ।

मल्ला रेड्डी, कामिनेनि *(तें० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

इनके पिता मेदक ज़िले के बिक्कवोल नामक एक छोटी-सी जागीर के मालिक थे । मल्ला रेड्डी कवि तथा पंडित थे । इनके ग्रंथ हैं—'षट्चक्रवर्तिचरित्र', 'शिवधर्मोत्तमु', और 'पदमपुराणमु' । ये तीनों रचनाएँ काव्यबद्ध हैं। 'षट्चक्रवर्तिचरित्र' में इतिहास-प्रसिद्ध हरिश्चंद्र, नल आदि छह राजाओं के चरित्रों का वर्णन है । इसमें श्लेष तथा शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। 'शिवधर्मोत्तमु शैवधर्म संबंधी रचना है। इसमें धर्म-संबंधी तत्वों का सरल शैली में विवरण दिया गया है। पद्मपुराणमु' संस्कृत 'पद्मपुराण' की कथा को लेकर रचा गया काव्य है। इसमें कथाएँ मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं और इसकी शैली पांडित्यपूर्ण है ।

मल्लिक, कुमुदरंजन *(बँ० ले०)* [जन्म—1883 ई०; मृत्यु—1970 ई०]

रवींद्रानुसारी कविगोष्ठी में कुमुदरंजन यथार्थ-भक्त तथा वैष्णव कविरूप में सुपरिचित हैं। निरलस साधना में निमग्न जीवन के अंतिम दिनों तक ये कविता की रचना करते रहे थे। 1906 ई० में इनका पहला काव्य-ग्रंथ 'शतदल' प्रकाशित हुआ। उसके उपरांत 'बनतुलसी' (1911), 'उजानि' (1911), 'एकतारा' (1914), 'बीथि' (1916), 'बीणा' (1916), 'बनमल्लिका' (1919), 'नूपुर' (1921), 'रजनीगंधा' (1922), अजय (1921), तूणीर (1928), 'चनकालि' (व्यंग्यकाव्य) (1930), 'स्वर्ण-संध्या' (1948) आदि कविरचित काव्य-ग्रंथ बंगसरस्वती के प्रति निवेदित हुए हैं। 'द्वारावती' (1920) शीर्षक से एक नाटक की भी इन्होंने रचना की थी।

स्वयं कवि ने वर्ड्सवर्थ के प्रभाव की बात को, श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है। गाँव से गुँथी हुई बंगाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ग्राम्य-प्रकृति के प्रति कवि की अनाविल सहृदयता प्रकट हुई है। इनके काव्य में बंगाल की चिरंतन भाव-साधना तथा संस्कृति के अपूर्व समन्वय का परिचय मिलता है। बंगाल के गाँव के चिरपरिचित दृश्य तथा ग्रामीण जीवन की प्रत्येक छोटी-मोटी घटना से युक्त इनके काव्य में अपूर्ण प्राणरस का स्फुरण दिखाई पड़ता है। इनका काव्य आडंबर-हीन है किंतु जीवन की अकृत्रिम स्नेहरस-सुधा से भरा हुआ है।

मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य *(ते० ले०)* [समय —1120 ई० से 1990 ई० तक]

ये प्रसिद्ध वीरशैव पंडितत्रय में से एक हैं। अन्य दो पंडित हैं—1. श्रीपति पंडित तथा 2. मंचन पंडित।

इनके पिता का नाम वानस भीमन्ना तथा माता का नाम गौरांबा था। इनके गुरु कोटिपल्लि आराध्य देव थे।

मल्लिकार्जुन पंडित जन्मतः वेलनाडि ब्राह्मण थे परंतु बाद में माहेश्वर दीक्षा ग्रहण कर इन्होंने आंध्रप्रदेश में शैवमत का विपुल प्रचार किया। वीरशैवमत के प्रवर्तन के प्रबल प्रशंसक होते हुए भी पंडिताराध्य ने अपने जन्मजात ब्राह्मणत्व के चिह्नों—यज्ञोपवीत और शिखा को नहीं छोड़ा। इस प्रकार पंडिताराध्य ने शैवमत और ब्राह्मणत्व में विशेष प्रकार के संतुलन की साधना की। इनके अनुयायी ब्राह्मण-वंशधर आंध्र में आराध्य ब्राह्मण कहे जाते हैं। मल्लिकार्जुन पंडित का धार्मिक व्यक्तित्व साहित्यिक व्यक्तित्व की अपेक्षा अधिक प्रभावात्मक था। जैन-बौद्ध धर्मों के उन्मूलन में इनका बड़ा हाथ रहा। इनकी कृतियों में 'शिवतत्त्वसारमु' (दे०) एकमात्र उपलब्ध कृति है। यह कुछ समालोचकों के अनुसार तेलुगु का प्रथम शतक (दे०)-काव्य है।

मल्लिनाथ *(सं० ले०)*

ये एक प्रसिद्ध टीकाकार हैं। इनका नाम पेद्द-भट्ट भी कहा जाता है तथा इन्हें कोलाचल में मल्लिनाथ भी कहते हैं इनका समय चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इनके पिता का नाम बोल्लापिनिनृसिंह सूरि माना जाता है, जो कि श्रीवत्सगोत्र के थे। इन्होंने अनेक ग्रंथों की टीका प्रस्तुत की थी, जैसे—'अमरकोष' (दे०), 'एकावली' (दे०), किरातार्जुनीय' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'नैषधीयचरित' (दे०), 'भट्टिकाव्य' (दे०), 'मेघ-दूत' (दे०), 'रघुवंश' (दे०), 'शिशुपाल-वध' (दे०) आदि।

मल्लिनाथपुराण *(क० कृ०)*

'मल्लिनाथपुराण' के कवि नागचंद्र (दे०) अथवा अभिनव पंप (समय—1100 ई० के आसपास) कन्नड के एक ख्यातनामा कवि हैं। उनका 'रामचंद्र-चरितपुराण' अथव 'पंपरामायण' (दे०) कन्नड का एक ग्रंथरत्न है। उनके 'मल्लिनाथपुराण' में उन्नीसवें जैन तीर्थंकर मल्लि-नाथ का चरित निरूपित है। वह चंपू-काव्य है जिसमें कथा चौदह आश्वासों में विभक्त है। कवि ने प्रारंभ में कहा है, 'यह छोटी कथा है, इसको कवितारस-पूर्ण कर इसके पहले किसी महाकवि ने नहीं कहा है, अतएव मैंने इसकी रचना का विचार किया, अन्यथा क्या मल्लिजिनेंद्र महापुराण कहना आसान है ?' इससे स्पष्ट है कि कथा छोटी है, परंतु कवि ने अपनी प्रतिभा से उसे विकसित किया है। इस दृष्टि से उसके महापुराणत्व पर शंका नहीं की जा सकती। वैश्रवण नामक राजा ने सुख-भोग में निरत रहते समय एक दिन आँधी से गिरे एक बड़े बरगद के वृक्ष को विस्मय से देखा। वही विस्मय उसके वैराग्य रस के लिए सेतु हुआ, उसने संसार की असारता पहचानी। अपने पुत्र का राजतिलक कर नागयति से धर्म-श्रवण कर वह तपोनिरत हुआ और कालांतर में अहमिंद्र हुआ। दूसरे जन्म मल्लिनाथ हुआ, कौमार्य में ही वीतराग हो परि-निष्क्रमण कर तीर्थंकर हुआ। इसी कथा का वर्णन कर नागचंद्र ने अपार यश प्राप्त किया। उन्होंने भोग और त्याग का मनोहारी वर्णन किया है। उनकी कल्पना में कमनीयता और शैली में उज्ज्वलता है। शांत रस उनके काव्य का अंगी रस है, अन्य रसों का वर्णन भी उसमें हुआ है।

मल्लियम् मंगळम् *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

यह वि० एस० रामैया द्वारा लिखित नाटक है। 'सहस्रनामम्' की नाटक मंडली द्वारा कई रंगमंचों पर अभि-नीत होने से इसकी प्रसिद्धि है। इस नाटक की विषय-वस्तु उच्च संयुक्त हिंदू परिवारों के सदस्यों के बीच सामान्यतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाली हलचलों का चित्रण है। घर सर्वथा संपन्न होते हुए भी गृह-स्वामिनी 'मल्लियम् मङ्ळम्' की पक्षपातिज्ञा एवं दुराग्रह के कारण, उसका शालीन पति, लड़के और बहुएँ—सभी उत्पीड़न का अनुभव करते हैं। उसकी लड़की मालि अपने पति के आग्रह के बावजूद ससुराल जाने से इनकार करती है तथा गृह-कलह कराने में रस लेती है। इसकी कुछ दुष्टतापूर्ण उक्तियों के कारण बड़े भाई 'राजू' को अपनी पतिव्रता पत्नी 'पाक्कियम्' (भाग्यम्) पर संदेह हो जाता है कि कहीं वह उसके छोटे भाई गोपु से तो प्रेम नहीं करती। अंततः 'पाक्कियम्' को चिंताजनक बीमारी हो जाने पर मालि के बोये विष-बीज का पता लगता है। नाटक के समस्त पात्र वास्तविक जीवन से लिये प्रतीत होते हैं। गृह-लक्ष्मी 'मल्लियम् मंगळम्' पुरानी पीढ़ी की स्वेच्छाचारी वृद्धा सास है जिसे कनिष्ठ पुत्र 'गोपू' विनोद-हास्य करते हुए आघात पहुँचाता है। लड़की 'मालि' का ससुर 'मेजर वेलु' एक हास्योत्पादक पात्र है जिस पर विगत फ़ौजी जीवन की सनक इतनी सवार है कि वह हिंदुस्तानी के अलावा और भाषा बोल नहीं पाता। बोलचाल की ठेठ शैलियों के उपयोग ने इस नाटक का आकर्षण बढ़ा दिया है।

मवाज़्मा-ए-अनीस-ओ-दबीर *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1907 ई०]

'मवाज़्मा-ए-अनीस-ओ-दबीर' अल्लामा मुहम्मद शिबली निअ्मानी की रचना है। इसमें उर्दू के दो प्रसिद्ध मर्सिया-निगारों (शोक काव्य-रचयिताओं) 'अनीस' और 'दबीर' लखनवी की काव्य-कला का तुलनात्मक विवेचन है। अल्लामा की अन्य सभी रचनाएँ अरब और ईरान तथा अरबी-फ़ारसी साहित्य से संबद्ध हैं। केवल यही मवाज़्मा हिंदुस्तान और उर्दू भाषा से संबंध रखता है। इसकी रचना करने की प्रेरणा उन्हें हैदराबाद में होने वाली 'मर्सिया खाती' की मजलिसों (शोक-सभाओं) से प्राप्त हुई थी।

अल्लामा शिबली की यह रचना उर्दू में अपने ढंग की पहली और सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें बड़ी सूक्ष्मता और गंभीरता के 'अनीस' और 'दबीर' के मर्सियों की तुलना की गई है। अल्लामा के मतानुसार अनीस जिस बात को संक्षेप में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर जाते हैं उसे 'दबीर' विस्तार से व्यक्त करते हैं। दबीर जहाँ दृश्यांकन में अनीस का अनुकरण करते हैं वहाँ श्लीलता का ह्रास हो जाता है। प्रसंगानुकूल शब्द-चयन में भी 'अनीस', 'दबीर' की अपेक्षा अधिक सिद्धहस्त हैं। 'अनीस' और 'दबीर' दोनों मर्सिया लिखने की कला को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया था। दोनों को पर्याप्त यश मिला। दोनों के अपने-अपने 'संप्रदाय' बन गए थे। 'अनीस' के अनुयायी 'अनीसिए' और 'दबीर' के साथी 'दबीरिए' कहलाए।

मशरूवाला, किशोरीलाल घनश्यामलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

गांधीजी के आश्रम और उसके धर्मनिरपेक्ष वातावरण में रखते हुए भी किशोरीलाल मशरूवाला स्वामिनारायण संप्रदाय में आस्था रखते थे। गांधी-दर्शन को अपने लेखों द्वारा प्रचारित-प्रसारित करने वाले मशरूवाला जी अनेक बातों में गांधीजी से सहमत नहीं हो पाए; मूर्तिपूजा और अध्यात्म आदि विषयों में इनका गांधी जी से सदा मतभेद रहा। गांधी सेवा संघ के अध्यक्ष तथा गांधी जी के मंत्री के रूप में इन्होंने अत्यंत निष्ठा और गौरव के साथ अपने दायित्व का निर्वाह किया था। 1942, 1946 तथा गांधी जी के निर्वाण के पश्चात साढ़े चार वर्ष तक 'हरिजन' पत्र का संचालन-कार्य इन्हीं के हाथों होता रहा था। गांधी जी ने इनकी क्षमता को पहचान कर इन्हें राष्ट्रीय शाला का काम सौंपा था। मशरूवाला जी स्वामिनारायण संप्रदाय की आचारशुद्धि की भावना से सदा प्रभावित रहे। इनकी रचनाएँ हैं: (1) चरित-ग्रंथ—'बुद्ध अने महावीर', 'राम अने कृष्ण', 'सहजानंद स्वामी' और 'ईशुख्रिस्त'; (2) शिक्षा-संबंधी पुस्तकें—'केलवणीना पाया', 'केलवणी विवेक', और 'केलवणीविकास'; (3) तत्त्वचिंतन और धर्म संबंधी साहित्य—'जीवनशोधन', 'अहिंसाविवेचन', 'गीता-मंथन', 'सत्यमय जीवन याने सत्यासत्यविचार', 'समूली-क्रांति' और 'संसार अने धर्म' (भाग 1-2)। इनकी दृष्टि में तत्त्वज्ञान केवल बौद्धिक विलास नहीं था, वह तो जीवन-निर्माण के लिए आधार था। जिन मान्यताओं का संबंध-जीवन से नहीं था उनमें इन्हें कोई रुचि नहीं थी। इनकी तत्त्वचिंता में मौलिकता, स्वतंत्रता व विवेकबुद्धि का प्राधान्य तो है ही, साथ ही धर्म, परमात्मा, जीवन के लक्ष्य, मनुष्य के ऐहिक और आध्यात्मिक पुरुषार्थ आदि के विषय में बिल्कुल नूतन और अभिगम हैं। इनकी शैली सघन, सूत्रात्मक व मार्मिक है तथा दृष्टांतों और भौमितिक आकृतियों से समन्वित है। गुजराती के प्रमुख तत्त्वचिंतकों में मशरूवालाजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मष्मंगलम् *(म० ले०)* [जन्म—1535 ई०; मृत्यु—1595 ई०]

केरल के नंपूतिरि ब्राह्मणों के घर (आलय) को 'इल्लम्' कहते हैं। ऐसे घरों (इल्लम्) में एक प्रसिद्ध घर का नाम है मष्मंगलम्। वहाँ शंकरन् नंपूतिरि और 'नारायणन्' नंपूतिरि ने जन्म लिया। उन दोनों ने केरली में अनेक ग्रंथ रचे हैं। शंकरन् नंपूतिरि ने 1540 ई० से 1554 ई० के बीच में 'लघु भास्करीयम्', 'गणितसारम्', 'चंद्रगणितम्' आदि ज्योतिषशास्त्रीय ग्रंथ लिखे। उसी घर में (मष्मंगलम्) नारायणन् नंपूतिरि ने सुख्यात 'नैषधचंपु' का निर्माण किया। 'राजरत्नावलीयम्' और बाणयुद्धम्' कवि के लिखे हुए चंपू-ग्रंथ हैं। उनके अतिरिक्त 'कोटिय विरहम् चंपू' की रचना कर नंपूतिरि ने बड़ा यश पाया।

मसऊद हसन रिज़वी 'अदीब', सैयद *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

लखनऊ विश्वविद्यालय के फ़ारसी विभाग में प्राध्यापक पद से उन्नति करते-करते रीडर और फिर प्रोफ़ेसर की पदवी प्राप्त कर 1954 ई० में इन्होंने सेवा से अवकाश ग्रहण किया था। तब से इन्होंने अपनी साहित्यिक सेवाएँ 'किताबनगर अदबिस्तान' को समर्पित कर दीं। अध्ययन और स्वाध्याय में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण ये अपनी काव्य-प्रतिभा के साथ यथेष्ट न्याय नहीं कर पाए। अतः उर्दू साहित्य-जगत् में गद्य-लेखक के रूप में ही इन्हें जाना जाता है। इनकी गद्य-कृति 'हमारी शायरी' उर्दू-आलोचना-शास्त्र की अमूल्य निधि है। इस कृति का प्रकाशन 'अंजुमन-तरक़्क़ी-ए-उर्दू' द्वारा हुआ है। इसकी लोकप्रियता एवं उपादेयता के फलस्वरूप इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इस कृति के अतिरिक्त अन्य अनेक कृतियों के संपादक एवं संकलनकर्ता के रूप में भी इन्हें देखा जा सकता है। इन कृतियों में 'रूह-ए-अनीस', 'फ़ैज़-ए-मीर', 'इंद्र-सभा', 'शाहकार-ए-अनीस', 'दीवान-ए-फ़ाइज़', 'लखनऊ का शाही अस्टेज', 'रज़मनामा-ए-अनीस', 'आब-ए-ह्यात का तनक़ीदी मुतालिया' और 'लखनऊ का अवामी अस्टेज' उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों की विस्तृत भूमिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण और स्थायी मूल्य की हैं। व्याकरण-सम्मत और प्रसाद-गुण-संपन्न आकर्षक भाषा-शैली में इन्होंने विवेच्य विषयों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है कि पाठक के लिए इनके निष्पक्ष दृष्टिकोण का विरोध करना कठिन हो जाता है। सशक्त अभिव्यंजना-कौशल इनकी कला का मेरुदंड है। आलोचक के रूप में इन का दृष्टिकोण पुरातनवादी है; अतः आधुनिक उर्दू शायरी में इन्हें प्राचीन शैली की भावुकता का अभाव बुरी तरह खलता है। इनके विचार में आधुनिक उर्दू शायरी मानसिक संतोष और आध्यात्मिक परितृप्ति की प्राप्ति में सर्वथा असमर्थ है। डा० सैयद एजाज़ हुसैन के अनुसार—'मसऊद हसन साहब जिस अध्यवसाय के साथ अपने अनुसंधान और आलोचना की गरिमा को बनाए हुए हैं और जिस विस्तृत दृष्टिकोण का प्रमाण अब तक उन्होंने दिया है; उससे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वे आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों से भी अपने को दूर नहीं पाएँगे।'

मसनवी *(उर्दू० पारि०)*

'मसनवी' उर्दू शायरी का एक ऐसा काव्य-रूप है जिसमें प्रेम, स्तुति, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण सभी कुछ मौजूद होता है। इसमें शोक-गीत भी लिखे जाते हैं और ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन किया जाता है। अतः इसमें ग़ज़ल, कसीदा, मरसिया आदि सभी के नियमों का पालन अनिवार्य हो जाता है। यह एक प्रबंधात्मक कविता है जिसके प्रत्येक पद्य का दूसरे से संबंध होता है। यह संबद्धता ही इसका विशेष गुण है। इसका प्रत्येक पद एक-दूसरे से ज़ंजीर की कड़ी के समान जुड़ा रहता है। इसके प्रत्येक पद अथवा शेर की पृथक्-पृथक् तुक होती है।

पुराने समय में इसके लिए छोटी-छोटी बहरें (छंद) ही प्रयुक्त होती थीं। उर्दू में अनगिनत सुंदर मसनवियाँ लिखी गई हैं।

मसनवी एक लंबी कविता होती है। इसका आरंभ प्रशंसा या स्तुति से होता है और फिर आख्यान होता है। अंत में उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति की जाती है जो मूल या आख्यान से संबंधित होती हैं। मसनवी का अंत प्रायः किसी नैतिक शिक्षा में होता है।

मसनवी सह्रुलबयान *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1785 ई०]

उर्दू की सबसे प्रसिद्ध मसनवी 'सह्रुलबयान' मीर हसन (दे०) की अमर कृति है। उर्दू में इस स्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मसनवी न इससे पहले लिखी गई है और न ही संभवत: अब लिखी जा सकेगी। इस मसनवी में बेनज़ीर (दे०) और बद्र-ए-मुनीर (दे०) की प्रणय-गाथा का सुंदर एवं रोचक वर्णन है। यह मसनवी अपने युग के सामाजिक जीवन का दर्पण है। इससे तत्कालीन रीति-रिवाजों तथा सभ्यता पर भरपूर प्रकाश पड़ता है। शैली इतनी रोचक है कि यह आज भी उसी चाव से पढ़ी जाती है जिस चाव से कि अपने रचना-काल में पढ़ी जाती थी। मीर हसन भावनाओं का सजीव चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। भाव तथा भाषा पात्रानुकूल हैं। इस मसनवी की लोकप्रियता का यही सबसे बढ़ा प्रमाण है कि इसके बहुत से शेर सूक्तियों के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

मस्तान चाकिपु *(त० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती]

तत्सम शैली में नाम 'मस्तान साहिब' है और इसके साथ इनके गाँव 'कुणङ्कुटि' का भी उल्लेख किया जाता है। ये इस्लाम धर्मावलंबी कवि थे पर इन्होंने न केवल मुहम्मद नबी पर बल्कि हिंदू देवताओं पर भी 'शतक' काव्य-रचना की है। ये तमिल प्रदेश के घुमक्कड़ 'सिद्ध' योगी के उदार वाम-मार्ग का अनुसरण करने वाले थे और उनकी भाँति दुर्गोपासना भी करते थे। कहा ज़ाता है कि अपनी शादी के दिन ये घर से निकल पड़े थे और विरक्त हो गए थे। इनकी पद्यकृतियों में 'अकत्तीचुरचतकम्' (अगस्तीश्वर-शतकम्), 'नन्तीचन्चतकम्' (नंदीश्वर शतक), 'मनो-मणिक्कण्णि' (नायक-नायिका पद्धति का रहस्यवादी उद्गार) इत्यादि हैं। इन्होंने मसीही मत के खंडन के रूप में 'किरिस्तुमतकणटनवज्रतण्टम्' (ख्रीस्त मत-खंडन के का वज्रदंड) नामक पुस्तक भी लिखी थी।

महंत, केशव *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

जन्मस्थान—चतिया। इन्होंने 1956 ई० में बी० ए० की परीक्षा प्राइवेट छात्र के रूप में उत्तीर्ण की थी। ये कई वर्ष तक अध्यापन-कार्य करते रहे थे। इन्होंने 'मिलन' और 'प्रवाह' नामक पत्रों का संपादन किया था। इस समय ये गोहाटी विश्वविद्यालय के प्रकाशन-विभाग में सहअनुवादक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'आमार पृथिवी' (1946), 'रंद जिकिमिकि' (1959), 'कुँवली आँतरि जाय'।

ये नयी कविता-धारा के नीति-कवि हैं। इनकी कविताएँ मानवतावादी एवं हृदयस्पर्शी हैं, किंतु निराशावादी नहीं। ये आस्थावादी नये कवि हैं।

महंत, मित्रदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट।

ये कई शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षक, अधीक्षक और प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य कर चुके हैं। 1916 ई० से 1950 ई० तक जोरहाट के थियेटर से संबद्ध रहे थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**कविता** : 'गीति शतदल' (1950); **कहानी** : 'चंद्रहार' (1924); **हास्य नाटक** : 'कुकुरी कणवार आठ मंगल' (1916), 'बिया बिपर्यय' (1926); **सामाजिक नाटक** : 'एटा चुरुट' (1935), 'टिपचही' (1939), 'मेलटरी' (1946), 'भाकुट कूट' (1948), 'भोटर रगर' (1952); **गंभीर नाटक** : 'बैदेही बियोग' (1952), 'बलिछलन' (1957), 'प्रच्छन्न पांडव' 1956)।

ये हास्य रस के कवि और नाट्यकार हैं। इन्होंने हलकी कविताओं के अतिरिक्त कुछ गंभीर गीत भी लिखे हैं। हास्य नाटकों में इनका 'बिया बिपर्यय' नाटक विशेष ख्याति पा सका है। इनके व्यंग्य की चोट व्यक्ति पर नहीं वर्ग पर होती है। गंभीर नाटकों में इन्हें सफलता नहीं मिली है।

हास्य-लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'महजूर', गुलाम अहमद *(कश्० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

इनका जन्म कश्मीर के पुलवामा तहसील के एक गाँव मात्रिगाम में, एक मध्यवर्गीय 'पीर' परिवार में हुआ था। मक़तब में फ़ारसी और अरबी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। कश्मीर से बाहर कई स्थानों की यात्रा की। 19 वर्ष की आयु में 1907 ई० में पटवारी (लेखपाल) बने। अपने समय से पूर्व के कई कवियों, विशेषत: रसूल मीर (दे०), से प्रेरणा प्राप्त की। प्रारंभ में उर्दू भाषा में कविता की किंतु फिर भी मन अशांत रहा और अंतर्मन का कवि सुप्त बना रहा। कश्मीर के जनसाधारण को अपने मन की बातें बताने के लिए इन्होंने उर्दू छोड़कर कश्मीरी भाषा में कविताएँ लिखना प्रारंभ किया। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने इनकी कविताओं की काफ़ी सराहना की। इन्होंने बड़े गर्व से प्राचीन कश्मीरी संस्कृति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनश्रम और जनसमस्याओं को विषयवस्तु बनाकर बहुत ही उच्चकोटि की ग़ज़लों, प्रगीतों आदि की रचना की। इन्होंने प्रकृति के आँचल का सहारा लेकर उसी के रूप-लावण्य का चित्रण किया। 'महजूर' कश्मीरी कविता में प्रकृति के रंग भरने वाले ऐसे उपासक चितेरे थे जिन्होंने प्रेम-लालसा और रूपाकृति के गाने गाकर कश्मीरी कविता में नये युग का सूत्रपात किया। यह हिंदू-मुस्लिम एकता के अलमबरदार थे। अपने ही जीवन में लोकप्रिय होकर प्रसिद्धि एवं ख्याति प्राप्त करने वाले इस गुणी कवि की रचनाएँ उदात्त एवं श्रेष्ठ तो हैं ही, उसके साथ-साथ वे राष्ट्रीयता का भी पाठ पढ़ाती हैं। महजूर जहाँ प्रकृति का चितेरा गायक है वहाँ वह कहीं-कहीं क्रांति का संदेश भी सुनाता है। इनकी रचनाएँ 'पयाम-ए-महजूर' (6 खंडों में) तथा 'कलाम-ए-महजूर' (9 खंडों में) के नाम से प्रकाशित हुई हैं। कवि अपने समय का प्रतिनिधित्व करता है ही, अतः महजूर की कुछ एक रचनाएँ भी सामयिक राजनीति के रंग में रँगी हुई हैं। इन्होंने कई भक्तिभाव-प्रधान गीतों की भी रचना की है।

महताब, हरेकृष्ण *(उ० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

डा० हरेकृष्ण महताब कुशल राजनीतिज्ञ तथा उच्चकोटि के लेखक हैं। उड़ीसा में गांधीजी के आदर्शों से अनुप्राणित और समसामयिक राजनीतिक चेतना से अनुप्रेरित उपन्यासों की रचना में डा० महताब को प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इनके उपन्यास 'नूतन धर्म', 'प्रतिभा' (दे०), 'टाउटर', 'अव्यापार' आदि के पात्र गांधी जी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित हैं। अहमदनगर जेल में लिखित 'ओडिशार इतिहास' इनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। डा० महताब के पिता श्री कृष्णदास अगरपड़ा, बालेश्वर के निवासी थे। नानी के गोद ले लेने के कारण इनका लालन-पालन ज़मींदार मामा के यहाँ राजसी ढंग से हुआ था। कटक से बी० ए० करने के बाद से इनका राजनीतिक जीवन प्रारंभ होता है। स्वतंत्रता के बाद ये केंद्रीय मंत्री, बंबई के गवर्नर और उड़ीसा के मुख्य मंत्री रह चुके हैं। उत्कल विश्वविद्यालय ने इन्हें 'डाक्टर ऑफ़ लिटरेचर' की उपाधि देकर सम्मानित किया है। साहित्य-सर्जना के लिए नयी प्रतिभाओं को आकर्षित करने में इनकी पत्रिका 'झंकार' एवं 'प्रजातंत्र' का विशेष योगदान रहा है।

महमूद गामी *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1800-1805 ई०; मृत्यु—1855 ई०]

इनका जन्म कश्मीर स्थित ऑरवादी डूरू (शाहाबाद) में हुआ था।

इनके जीवन के संबंध में कोई विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं, किंतु अंतर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन्हें फ़ारसी और अरबी का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने विषयवस्तु आदि में ईरानी कवियों का ही अनुकरण किया है। कश्मीरी भाषा में 'लैला-मजनूं', 'यूसुफ़ जुलेखा', 'शीरीं-खुसरो', 'हारूनुल्-रशीद', 'शेख सना' आदि की रचना की। इनकी शैली में ओज है, और छंदों में प्रेमाख्यान कहने का ढंग मौलिक। इन्होंने फ़ारसी-युक्त कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया है। 'पंज गंज' की भी रचना की है। महमूद गामी ने केवल कश्मीरी में ही कविता की है, किसी अन्य भाषा में नहीं। इन्होंने गीत, ग़ज़ल, 'रोफ', आशिकाना नग़मे, आदि भी लिखे हैं।

महमूद शीरानी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जन्मस्थान—रियासत टौंक।

इन्होंने 1895 ई० में फ़ारसी परीक्षा 'मुंशी फ़ाज़िल' उत्तीर्ण की थी। तदुपरांत ये इस्लामिया कालेज, लाहौर में उर्दू प्राध्यापक के रूप में कार्य करने लगे थे। और 1940 ई० अर्थात् सेवा-मुक्त होने तक इसी पद पर बने रहे थे। इन्हें शैक्षिक अनुसंधान के प्रति अत्यधिक रुचि थी। इनका अनुसंधान-कार्य अत्यंत विस्तृत है। अनेक खोजपूर्ण लेख और शैक्षिक तथा ऐतिहासिक महत्व के सहस्रों पत्र इन्होंने बड़े परिश्रम से एकत्रित किए। इनका समस्त शोध-कार्य पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर के अधिकार में है। एक कुशल अनुसंधाता के अतिरिक्त ये भाषा-विशेषज्ञ और उच्च कोटि के आलोचक भी थे। छंदःशास्त्र पर इन्हें अद्भुत अधिकार प्राप्त था। 'पंजाब में उर्दू' इनकी प्रसिद्ध कृति है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधानात्मक स्तर की इस कृति का उर्दू साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान है।

महरि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1896 ई०]

दुर्गाप्रसाद मजुमदार बरुवा (दे०) द्वारा रचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन अंक के इस नाटक में चाय बागान का परिवेश और 'महरि' (मुहर्रिर—क्लर्क) के पद का हास्यास्पद वर्णन है। मुख्य पात्र भाविराम का विरोध बड़ा क्लर्क करता है। अँग्रेज़ी न जानने के कारण भाविराम हास्य का कारण बनता है। साहब और उसकी असमीया रखैल के संवादों में स्थूल हास्य है, जो कि अमार्जित एवं अश्लील है। यह प्रहसन लोकप्रिय अवश्य हुआ है किंतु इसमें सुसंस्कृत हास्य का अभाव है।

'महरूम', तिलोकचंद *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

प्रोफ़ेसर तिलोकचंद 'महरूम' का जन्म ईसा-खेल, ज़िला मियाँवाली (पाकिस्तान) में हुआ था। दिल्ली में ये कैंप कालेज में उर्दू-फ़ारसी के प्राध्यापक रहे।

पंजाब की भूमि पर जन्म लेने वाले शायरों में डा० इक़बाल (दे०) के बाद प्रो० महरूम का महत्वपूर्ण स्थान है। महरूम की नज़्में राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं। 'कारवान-ए-वतन' इनकी राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह है। नज़्मों के अतिरिक्त इन्होंने ग़ज़लें और रुबाइयाँ भी कहीं हैं। बालोपयोगी कविताएँ लिखने में भी ये सिद्धहस्त थे। 'गंज-ए-मुआनी', 'कलाम-ए-महरूम', 'शोल-ए-नवा', 'रुबाइयात-ए-महरूम', 'महर्षि-दर्शन', 'बच्चों की दुनिया' और 'बहार-ए-तिफ़्ली' इनके अन्य काव्य-संग्रह हैं। इनके काव्य में गंभीर एवं तीव्र पीड़ा की अनुभूति पाई जाती है। सर अब्दुल क़ादिर के अनुसार 'बहार हो या पतझड़, कुदरत के हर मंज़र को देखकर उनके दिल का कोई-न-कोई ज़ख़्म ताज़ा हो जाता है।'

'नूरजहाँ का मज़ार', 'ख्वाब-ए-जहाँगीर' और पत्नी तथा पुत्री के देहांत पर लिखी गई कविताएँ करुणा तथा प्रभाव से ओतप्रोत हैं। इनकी भाषा सहज स्वाभाविक एवं सरल है तथा शैली स्पष्ट तथा सादा। इनके सुपुत्र जगन्नाथ 'आज़ाद' भी उर्दू के प्रतिष्ठित कवि हैं।

महशर-ए-ख्याल (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1950 ई०]

यह रचना असर सज्जाद अंसारी के निबंधों, नाटकों तथा काव्य का संकलन है जिसे प्रोफ़ेसर ख्वाजा मंसूर हुसैन ने संकलित किया है। इस संकलन में नाटक एक ही है जिसका नाम 'रोज़-ए-जज़ा' है। हसरत मोहानी (दे०), शिबली (दे०) आदि की स्मृति में लिखी कविताएँ तथा कुछ उर्दू ग़ज़लें भी इसमें शामिल की गई हैं। एक अन्य कविता मुस्तफ़ा कमाल पाशा के दरबार में याचना के रूप में है।

निबंध बहुत ऊँचे स्तर के हैं। साहित्यिक, सामाजिक समस्याओं से संबद्ध निबंधों के अतिरिक्त इसमें ऐसे निबंध भी सम्मिलित हैं जिनकी आधारभूमि मनोविज्ञान है। कुछ विषय, जिन पर निबंध अथवा टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, निम्नलिखित हैं—

(1) आँसू, (2) झूठ, (3) शबाब (यौवन), (4) वफ़ा, (5) दुआ, (6) मुहब्बत, (7) तबस्सुम, (8) बीवी, (9) औरत, (10) इंसान (मानव) आदि।

एक अन्य आलोचनात्मक साहित्यिक निबंध 'रूह-ए-अदब' है। इसमें जोश मलीहाबादी (दे०) की रचना 'रूह-ए-अदब' पर समालोचना की गई है। निस्संदेह यह कृति उर्दू साहित्य की एक मूल्यवान निधि है।

महांति, कान्हुचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

ये नागबाली, कटक ज़िले के रहने वाले हैं, किंतु इनका जन्म बलाँगीर ज़िले के सोनपुर गाँव में हुआ था। उस समय इनके पिता श्री सूर्यनारायण महांति वहाँ ओवरसियर थे। बी० ए० और एकाउंट्स की परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन प्रारंभ किया, किंतु साहित्य-साधना सदा अविच्छिन्न चलती रही। आज भी इनकी सर्जनात्मक प्रतिभा कुंठित नहीं हुई है। इनके कतिपय प्रमुख उपन्यास हैं—'हा अन्न', 'शास्ति', 'वज्रबाहु', 'तुंडबाइद', 'अदेखा हाथ', 'झड़र शेष', 'शर्वरी' आदि।

परिमाण और जनप्रियता की दृष्टि से कान्हुचरण महांति आधुनिक उड़िया-उपन्यासकारों में अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। अब तक इनके चालीस उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। यद्यपि 'का' उपन्यास ओड़िशा साहित्य एकादेमी द्वारा पुरस्कृत रचना है, फिर भी इनका 'शास्ति' (दे०) नामक उपन्यास ही सर्वश्रेष्ठ एवं लोकप्रिय है। इनके कई उपन्यास रंगमंच और सिनेमा की दृष्टि से भी सफल हुए हैं।

इनके उपन्यासों की सफलता का कारण पात्रों की सजीवता एवं स्वाभाविकता, चरित्र-चित्रण की नाटकीयता और प्रत्यक्षता, भाषा तथा शैली की सरलता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजता और अनेकरूपता है। परिवेश के चित्रण को व्यापकता मिलती है।

महांति, गुरु प्रसाद *(उ० ले०)* [जन्म—1940 ई०]

श्री गुरुप्रसाद महांति का जन्म मंडासाहि (कटक) में हुआ था और ये अध्यापक हैं। यद्यपि आजकल इनकी कविताओं का बहिरंग नवीन है, किंतु उसके अंतरंग पर रोमेंटिक भावधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। आधुनिक जीवन का तनाव ही इस रोमेंटिक एटिट्यूड द्वारा व्यक्त हुआ है। जीवन के छोटे-छोटे क्षणिक सुखों की कोमल क्रोड़ में इन्होंने क्षणिक विश्राम ढूँढ़ा है। इनकी कविता में कल्पना के माध्यम से कठोर यथार्थ का प्रकाशन हुआ है। इन पर इलियट का विशेष प्रभाव है इसीलिए इनके प्रतीकों के प्रयोग में गंभीर मननशीलता एवं बौद्धिकता दिखाई पड़ती है। टी० एस० इलियट की रचना 'वेस्टलेंड' की छाया में लिखित इनकी दीर्घ कविता 'काळपुरुष' (दे०) उड़िया आधुनिक काव्य-जगत् में एक सफल सृष्टि है। 'समुद्र-स्नान' इनकी कविताओं का संकलन है।

महांति, गोपीनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म नागबाली, कटक ज़िले में हुआ था। अब तक इनकी 25 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'परजा', 'दादी बूढ़ी', 'हरिजन', 'राहुर छाया', 'दानापाणि' (दे०) आदि इनके कतिपय प्रमुख उपन्यास हैं।

गोपीनाथ महांति के उपन्यास परिमाण में अपने अग्रज कान्हुचरण महांति (दे०) से कम होने पर भी सरसता और रचना-विधान की दृष्टि से श्रेष्ठतर हैं। आदिवासी जीवन के चित्रण में, भारतीय उपन्यास-क्षेत्र में गोपीनाथ अग्रणी हैं। इनका उपन्यास 'अमृत संतान' (दे०) साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हो चुका है।

गोपीनाथ महांति अनेक दृष्टियों से नवीन पथ के प्रवर्तक हैं। सबुज उपन्यासों (दे० सबुज साहित्य) के सभ्य व शालीन मध्यवर्गीय परिवेश के बाद गोपीनाथ के उपन्यासों ने अपने कठोर और अनगढ़ परिवेश, प्रखर एवं अपरिमार्जित गद्य-शैली आदि के साथ, साहित्य-संसार में प्रवेश किया। यह निश्चित रूप से एक अभिनव प्रयास था। इनकी गद्य-शैली का बीहड़पन, इनके असाधारण व्यक्तित्व का परिचायक है।

लेखक को आदिवासियों की सूक्ष्म और भोली मनोवृत्तियों के चित्रण में आश्चर्यजनक सफलता मिली है। परिवेश-चित्रण में एक विशेष आकर्षण है। उड़िया-मुहावरों से सज्जित सरल भाषा में कवित्वपूर्ण वर्णन करने में गोपीनाथ सिद्धहस्त हैं। 1974 ई० में 'माटी मटळ' (उपन्यास) पर इन्हें 1973 का ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला है।

महांति, चिंतामणि *(उ० ले०)* [जन्म—1867 ई०; मृत्यु 1943 ई०]

श्री चिंतामणि महांति का जन्म कुलमलाइ ग्राम-भद्रख-बालेश्वर में हुआ था। जीवन-संघर्ष एवं विषमताओं के बीच निरविच्छिन्न रूप से इनकी साहित्यिक प्रतिभा साहित्य-सृष्टि करती रही है और विपुल साहित्य से आधुनिक उड़िया साहित्य को समृद्ध करती रही है। बाल्यकाल से पितृहीन एवं निर्धन होने के कारण तथा अल्पायु से पारिवारिक बोझ सँभालने के कारण ये उच्चशिक्षा से वंचित रहे। वर्नाक्यूलर पास करने के बाद इन्हें शिक्षक का कार्य करना पड़ा था। 20 वर्षों तक ये उस पद पर कार्य करते रहे थे। 1903 ई० में ये 'गंजाम ओड़िआ-हितवादिनी' पत्रिका के संपादक बने थे। उसके बाद कई अन्य पत्रिकाओं का भी इन्होंने संपादन किया था। काव्य, उपन्यास, निबंध—सभी में इनकी एक-सी दक्षता दिखाई पड़ती है। राधानाथ युग के काव्यादर्श से अनुप्रमाणित होते हुए भी इन्होंने प्राचीन साहित्यिक परंपरा को अक्षुण्ण रखा है।

इनकी रचनाएँ हैं—**काव्य** : 'विक्रमादित्य' (दे०), 'श्री मुकुंददेव', 'सुभद्रा परिणय', 'धुमुषर काव्य'; **उपन्यास**—'टंकागच्छ', 'त्रिवेणी', 'शनिशप्ता' आदि।

महांति, डा० जानकीवल्लभ (भारद्वाज) *(उ० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

प्राध्यापक डा० जानकी बल्लभ महांति (भारद्वाज) (एम० ए०, पी-एच० डी०) की समस्त रचनाओं में उनके अध्यवसाय, विस्तृत ज्ञान, गंभीर चिंतनशीलता, प्रसिद्ध है। यद्यपि गद्य एवं पद्य दोनों में इन्होंने रचना की है, किंतु प्रधान रूप से ये निबंध-लेखक एवं समीक्षक हैं। इनकी आलोचनाएँ निरपेक्ष और गवेषणात्मक होती हैं। शैली निर्वैयक्तिक एवं विश्लेषणात्मक है। इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारंभिक कविताएँ गीतिमय होने के कारण अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'तीर्यक' (काव्य); 'से देशर गप' (कहानी); 'कथा ओ कथाकार', 'आधुनिक ओड़िया साहित्य', 'फ़कीर मोहन परिक्रमा' 'ओड़िआ गीतिकाव्य' (आलो०) (दे०)।

महांति, बंशीधर *(उ० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

श्री बंशीधर महांति का जन्म बागसाहि (कटक) में हुआ था। इनके निबंध गवेषणामूलक एवं पांडित्यपूर्ण होते हैं। उड़िया-नाथ-साहित्य पर इन्हें उत्कल विश्वविद्यालय ने डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की थी। सारलादास के महाभारत (दे०) पर इन्होंने अनेक गवेषणामूलक लेख लिखे हैं। सांस्कृतिक विषयों पर भी इनकी अनेक विद्वत्तापूर्ण आलोचनाएँ हैं। इन्होंने ताड़पत्रों पर लिखे, बिखरे हुए शताधिक प्राचीन ग्रंथों का संग्रह किया है तथा अब भी कर रहे हैं। अब तक इनकी कई गवेषणात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, यथा—'साहित्य और धर्म', 'ओड़िशा आदिबासी संस्कृति', 'ओड़िशा में बौद्ध संस्कृति', 'ओड़िआ भाषार उत्पत्ति ओ क्रम बिकाश' (दे०) आदि।

महांति, ब्रजमोहन *(उ० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

श्री ब्रजमोहन महांति का जन्म गोपाळपुर (कटक) में हुआ था। इन्होंने उपन्यास, नाटक, कविता, आलोचना आदि की रचना कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी विषयवस्तु में व्यापकता है; भाषा और शैली विषयानुरूप एवं सरल है। इनकी आलोचनाएँ सूचनात्मक अधिक हैं। 'जगन्नाथ परिक्रमा', 'आधुनिक उड़िया-साहित्य परिक्रमा' (आलो०); रक्तर स्वप्न', 'पारिजात', 'स्वर्ग ओ नरक', 'कहानी तिनिबंधर' (उप०) (दे०); 'अमापल्ली', 'बैज्ञानिकर संसार' (ना०); 'छायापथ' (काव्य) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

महांति, मुकुंद प्रसाद *(उ० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

श्री मुकुंद प्रसाद महांति का जन्म शुशुआ (भद्रख) में हुआ था। ये होमिओपैथी के डॉक्टर हैं। कुछ वर्षों तक प्रशासनिक कार्यभार भी इन्होंने सँभाला, किंतु इनकी साहित्य-साधना निरविच्छिन्न चलती रही। इन्होंने सर्वव्यापक प्रेम को जागतिक जीवन का नियामक माना है। आज की तकनीकी सभ्यता का यह दुर्भाग्य है कि वह प्रेमहीनता की ओर गतिशील है। यही आज की समस्त विसंगतियों का कारण है। इनकी कविता, उपन्यास आदि में इसी दृष्टिकोण का प्रसार मिलता है। 'मरुपल्ली', 'छाइर स्वप्न', 'पिपासार स्वर-लिपि' (काव्य), 'हजिला स्वप्न जळिला आशा' (उप०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

महांति, सुरेन *(उ० ले०)*

श्री सुरेन महांति आधुनिक साहित्य के एक प्रमुख एकांकीकार हैं। रेडियो एकांकी और ध्वनिरूपक लिखने में इन्हें विशेष ख्याति मिली है। भाषा नित्यप्रति बोलचाल की है अतः संप्रेक्षण की उसमें प्रचंड शक्ति है। 'सप्तस्वरी' (दे०) इनके एकांकियों का मनोज्ञ संकलन है।

महांति, सुरेंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

कथाशिल्पी सुरेंद्र महांति आधुनिक उड़िया-कहानी-साहित्य के प्रतिभावान् कहानीकार हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद के उड़िया-कहानी-साहित्य में इन्होंने युगांतर उपस्थित कर दिया है। इनकी कहानियों का विषय-क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। आधुनिक जीवन की बहुमुखी समस्याओं को इन्होंने सशक्त रूप से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। इनकी गद्य-शैली में अभिभूत कर लेने की अपूर्व शक्ति है। ये इस युग के एक सशक्त गद्यकार हैं।

महांति जी का जन्म कटक ज़िले के पुरुषोत्तमपुर गाँव में हुआ था। संप्रति ये 'कलिंग' पत्रिका के संपादक हैं। ये संसद-सदस्य भी रहे हैं। इनके महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह हैं—'कृष्ण-चूड़ा', 'महानगरीर रात्रि', 'रुटि ओचंद्र' आदि।

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत इनका उपन्यास 'नीलशैल' (दे०) केवल एक महान रचना ही नहीं, अपितु उड़ीसा की संस्कृति एवं परंपरा की अमूल्य निधि है। यह ऐतिहासिक उपन्यास सत्रहवीं-अठारहवीं शती के उड़ीसा का चरित्रागार है। विषयवस्तु जगन्नाथ-मंदिर से संबंधित है। अठारहवीं शती में खोर्धा के गजपति श्री रामचंद्र (दे०) देव उर्फ़ कादरबेग परिस्थितियोंवश मुसलिम धर्म ग्रहण करते हुए भी कटक के तत्कालीन मुसलमान शासक तकी खाँ के आक्रमण से जगन्नाथ की रक्षा किस प्रकार करते हैं, यही इसका वर्ण्य-विषय है। दृष्टिकोण की सर्वांगीणता, चरित्रों की विराट् योजना तथा सशक्त भाषा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैली के कारण आधुनिक उड़िया-उपन्यास-साहित्य में इसका अन्यतम स्थान है। इनका दूसरा उपन्यास 'अंधदिगंत' भी उच्चकोटि की रचना है। निबंध एवं आलोचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियों में 'ओड़िआ साहित्यर आदिपर्व' एवं 'ओड़िआ साहित्यर मध्यपर्व' उल्लेखनीय हैं।

महाकवि *(त० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

इनका जन्म जाफना (लंका) में हुआ था। वहीं इन्होंने आरंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। महाकवि की गणना आधुनिक नवजागरण-काल अर्थात् 1950 ई० के बाद लंका के प्रसिद्ध तमिल कवियों में होती है। 'वळि्ळ' इनकी कविताओं का संग्रह है। 'कोलम्', 'कोडै' आदि इनके काव्य-रूपक हैं। 'कण्मणियाळ् कादै' एक कथा-काव्य है। यह विल्लुपाट्टु नामक लोकगीतों की एक शैली में रचित है। इनके अन्य कथाकाव्य हैं—'कल्लळहि', 'शडंगु' और 'ओरु साधारण मनिदनिन चरित्तिरम्' इनमें उत्तरी लंका में रहने वाले तमिल-भाषियों के जीवन का यथार्थ चित्रण है। 'कुरुंबा' (दे०) इनके हास्य-व्यंग्य-प्रधान पदों का संग्रह है। इन पदों में हास्य-व्यंग्य-प्रधान शैली में सामाजिक कुरीतियों की निंदा की गई। 'कुरुंबा' पाश्चात्य तुक्तक (लिमरिक) की शैली में रचित है। यद्यपि महाकवि ने अनेक कथा-काव्यों, रूपक-काव्यों और प्रगीत-काव्यों की रचना की है तथापि ये अपनी काव्य-कृति 'कुरुंबा' के लिए प्रसिद्ध हैं जो कि आधुनिक तमिल-काव्यों में एक मोड़ लाती है।

महाकाव्य *(सं० पारि०)*

अपने विशद आकार तथा उदात्त स्वरूप के कारण महाकाव्य विश्व-साहित्य में सदा से ही समादृत रहा है। अन्य काव्यरूपों की अपेक्षा इस विधा में जीवन की समग्रता का सुसंबद्ध चित्र अंकित करने की शक्ति तथा व्यापक जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करने की क्षमता अधिक होती है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में भामह (दे०), रुद्रट (दे०), विश्वनाथ (दे०), हेमचंद (दे०), कुंतक (दे०), आदि आचार्यों तथा पश्चिम में अरस्तू से लेकर एम० डिक्सन, एबर क्रांबी, टिलियर्ड, सी० एम० बावरा और डब्ल्यू पी० कर आदि प्राचीन-अर्वाचीन आलोचकों ने महाकाव्य का स्वरूप-विवेचन किया है।

महाकाव्य की कथा के संबंध में भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने लगभग एक स्वर से उसके प्रख्यात होने पर बल दिया है। भारतीय आचार्यों ने जहाँ एक ओर इसके महत् कथा-सूत्रों के संकलन का आधार इतिहास और पुराणों को माना है, वहाँ पाश्चात्य आलोचक इसके लिए राष्ट्रीय लोक-कथाओं (लीजेंड्स) को भी आवश्यक मानते रहे हैं। कथानक के संयोजन और उसके वस्तु-शिल्प पर भी भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों में विशेष मतभेद नहीं हैं। आचार्य कुंतक ने प्रबंध-काव्य के सौंदर्य को कथा के सामान्य इतिवृत्त-वर्णन के स्थान पर विधिवत् घटनाओं के कुशल संयोजन में निहित माना है। कुंतक द्वारा प्रतिपादित 'विविध घटनाओं के कुशल संयोजन' के लिए 'कार्य की एकान्विति' को तथा पाश्चात्य साहित्य-समीक्षक ई० एम० डब्ल्यू० टिलियर्ड ने व्यापकता और विविधता के मध्य एकान्वय की सिद्धि को महाकाव्यकार की महानतम उपलब्धि माना है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य की शैली के आंतरिक गुणों की सूक्ष्मताओं को प्रायः उपेक्षित करते हुए महाकाव्य की सर्गबद्धता, उसके नामकरण आशीर्वचन (मंगलाचरण), वस्तु-निर्देश, सर्गांत में भावी कथा की सूचना और छंद-परिवर्तन आदि बहिरंग एवं स्थूल तत्त्वों का निर्देश मात्र कर दिया है। परंतु पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रारंभ से ही महाकाव्य की शैली के अंतरंग विवेचन की प्रवृत्ति रही है। अरस्तू ने महाकाव्य की शैलीगत गरिमा और भव्यता के आधार-तत्त्वों के रूप में 'अप्रचलित एवं असामान्य भाषा प्रयोग', 'अलंकार-समृद्धि' तथा छंद-लय के अप्रतिहत वेग का सूक्ष्म विवेचन किया है।

वस्तुतः महाकाव्य का प्राणतत्त्व है औदात्य—और यह गुण उसके समग्र रूप में—उसकी वस्तु-संयोजना, भाषा-शैली, छंद-प्रवाह आदि में प्रतिफलित रहता है।

महात्मा गांधी *(गु० ले०)*

दे० मोहनदास करमचंद गांधी।

महादेव देसाई *(गु० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

पूज्य बापू के आजीवन अनुगत एवं निजी सचिव स्व० महादेव देसाई का जन्म 1892 ई० में हुआ था। 1942 ई० में 50 वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। गुजराती में उत्तम अनुवाद करने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाएँ : मौलिक—(1) महादेव भाई नी डायरी (भाग 1 से 5), (2) बारडोली सत्याग्रह नो इतिहास, (3) संत फ्रांसिस, (4) वीर वल्लभभाई (जीवनी), बेख़ुदाई खिदमतगारो।

अनूदित—(1) सत्य ना प्रयोगो (दे०), गांधी जी की आत्मकथा), (2) पं० जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा, (3) सत्याग्रह नी मर्यादा, (4) प्राचीन साहित्य, (5) चित्रांगदा, (6) विदाय, (7) अभिशाप, (8) विराज बहू।

गुजराती साहित्य में दैनंदिनी (डायरी)-साहित्य का एक मानक स्थापित करने में महादेव भाई का महत्वपूर्ण योगदान है। निर्दोष, शुद्ध, किंतु सरल अनुवादों का कार्य भी इन्होंने किया है।

गुजराती साहित्य में डायरी व अनुवाद के क्षेत्र में इनका नाम अविस्मरणीय है।

महादेव भाई नी डायरी (गु० कृ०)

स्व० महादेव देसाई (दे०) गांधी जी (दे० मोहनदास करमचंद गांधी) के निकटतम अंतेवासी थे। 1917 ई० से लेकर मृत्यु पर्यंत (1942 ई० तक) 25 वर्ष तक वे गांधी जी के साथ रहे। इन 25 वर्षों में उन्होंने अपनी कई डायरियाँ लिखीं। इन डायरियों का महत्व वही है जो अँग्रेज़ी में बोज़वेल द्वारा लिखित जॉनसन की जीवनी का है। गांधी जी की जीवनी व उनके कार्यों के संबंध में इन डायरियों में प्रभूत सामग्री भरी पड़ी है। वे उत्तम साहित्यिक रचनाएँ हैं। इनमें से एक अति महत्वपूर्ण डायरी का संपादन स्व० नरहरि परीख ने किया है। 10-3-32 ई० से 4-9-32 ई० तक गांधी जी के साथ यरवडा जेल में बिताए गए दिनों की यह डायरी विशेष महत्वपूर्ण है। मानव-जाति के प्रेरक प्रसंग, मनुष्य-चरित्र-गठन की उपयोगी सामग्री, गांधी जी का जीवन-दर्शन, सरदार वल्लभभाई का विनोदपूर्ण किंतु प्रखर व्यक्तित्व, महादेव भाई की प्रकृति, उनकी कर्तव्यनिष्ठा, उनका भक्त हृदय, उनका विस्तृत अध्ययन, विविध विषयों में उनकी रुचि, उनका साहित्यिक व्यक्तित्व इस डायरी में प्रतिबिंबित होता है।

निर्मल-चरित्र वाले सत्योपासक गांधी जी के व्यक्तित्व के अनेक पहलू यहाँ साफ़ उभर कर आए हैं। गांधी जी का पत्र-व्यवहार, उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों का उल्लेख, उनके चिंतन, मनन व अध्ययन का सारभूत तत्त्व, गांधी जी को परेशान करने वाली समस्याएँ, जेल-जीवन की यातनाएँ एवं मधुर स्मृतियाँ सब कुछ साहित्यिक रूप धारण कर यहाँ अभिव्यक्त हुआ है।

सरदार पटेल के ऊपर से वज्रसम कठोर और भीतर के कुसुम-सदृश कोमल व्यक्तित्व, जेल में अनेक दुःखों के बीच भी विनोदशील प्रकृति का परिचय यहाँ मिलता है। 396 पृष्ठों में न जाने कितने व्यक्तियों, कितने प्रसंगों, कितने भावों-विचारों का समावेश हुआ है। साहित्यिक गुणों का इन डायरियों में पूरा-पूरा निर्वाह भी हुआ है।

गुजराती में जो कुछ डायरी-साहित्य है, महादेव भाई की डायरी का उसमें प्रथम व प्रमुख स्थान है। इसका प्रथम भाग 1948 ई० में प्रकाशित हुआ।

महादेवय्या, शिवगणप्रसादि (क० ले०)

कन्नड के संपादित ग्रंथों में 'शून्यसंपादने' (दे०) का विशिष्ट स्थान है जो वीरशैव धर्म का एक प्रमुख ग्रंथ है। शिवगणप्रसादि महादेवय्या 'शून्यसंपादने' के प्रथम संस्करण के संपादक हैं। उनका समय तथा जीवनवृत्त ठोस प्रमाणों से ज्ञात नहीं हो सका है। 'राघवांकचरित्र' (दे०) के कवि चिक्कनंजेश (समय—1650 के आसपास) ने 'शुद्धप्रसादि महादेवय्या' नामक एक व्यक्ति का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है। अनुमान है कि यह शिवगणप्रसादि महादेवय्या ही होंगे। 'शून्यसंपादने' के अन्य संपादकों ने इनका नाम लिया है। संभव है कि इनका पाठ ही 'शून्यसंपादने' का मूलपाठ हो। एक हस्तलिखित ग्रंथ के अंत में ये पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं—"यह परमगुरु परम वीरशैव सिद्धांत का तत्त्वज्ञान है। यह वीरशैवाचार प्रतिष्ठापनाचार्य है। यह दिव्य वेदांत-शिरोमणि है। यह समस्तशास्त्रमुख्य मुखदर्पण है।... शिवगणप्रसादि महादेवय्या ने...समर्पित किया।"

महादेवियक्का (क० ले०) [समय—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

महादेवियक्का अथवा अक्कमहादेवी महात्मा बसवेश्वर (दे०) की समकालीन थीं। इन्हें कन्नड-साहित्य की प्रथम कवयित्री होने का गौरव प्राप्त है। महादेवी के जीवनचरित की प्रामाणिक बातें बहुत कम ज्ञात हैं। इनका उपस्थिति-काल 1160 ई० (दे०) के आसपास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता है। इनका जन्म उडुतडी गाँव के एक दरिद्र परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से इनके हृदय में भगवान् चेन्नमल्लिकार्जुन के प्रति अनुरक्ति थी। इनके सौंदर्य को देखकर कौशिक नाम का राजा इन पर मुग्ध था। वह इनसे विवाह करने को उत्सुक था। एक मत के अनुसार इन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। दूसरे मत के अनुसार इन्होंने तीन शर्तें रखकर कौशिक से विवाह किया था। वासनाग्रस्त कौशिक ने इनको अपनी ओर आकर्षित करने का असफल प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि उसे चेन्नमल्लिकार्जुन को ही पति माननेवाली, विरक्ता भक्तिन महादेवी को खोना पड़ा। महादेवी गृह-त्याग कर कल्याण गईं और अल्लमप्रभु (दे०) और बसवेश्वर (दे०) जैसे ज्ञानी भक्तों से मिलीं। शिवानुभवमंडप में अपने अनुभवों की छवि दिखाकर अंत में इन्होंने श्रीशैल में शिवैक्य प्राप्त किया। इनके वचनों में इनके आत्मचरित और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हुई है। शिव को पति और अपने को पत्नी मानकर इन्होंने जो तन्मयतापूर्ण आध्यात्मिक साधना की वही इनके गीतों में प्रस्फुटित हुई।

प्रेम की पराकाष्ठा, उन्माद, विरह, मिलन—इन सबके उत्कृष्ट रूप महादेवी के वचनों में व्यक्त हुए हैं। इनकी वाणी में भावों की तीव्रता, अद्भुत माधुर्य और काव्य का सहज स्वाभाविक सौकुमार्य देखने को मिलता है।

√ **महादेवी, रानी** *(क० ले०)* [समय—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

बारहवीं शती शिवभक्त कवियों के आविर्भाव का काल है जबकि अनेक कवि तथा कवयित्रियों का जन्म हुआ। प्रसिद्ध कवयित्री अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का) (समय—1160 ई०) के बाद उन्हीं की समकालीन कवयित्री रानी महादेवी (समय—1160 ई०) का नाम वचनकर्त्री वीरशैव भक्तिनों में विशेष आदर के साथ लिया जाता है। ये मोळिगे मारय्या की पत्नी थीं। पति के समान इन्होंने भी वचनों की रचना की है। इनके 'वचन' इनके पति के वचनों के प्रत्युत्तर के रूप में हैं। 'कर्णाटक-कवि-चरिते' (दे०) के लेखक स्व० आरनरसिंहाचार (दे०) ने इनके वचनों की संख्या इकतालीस बताई है। इन वचनों में 'इम्मडि निःकळंक मल्लिकार्जुन' की छाप है। इनके वचनों की भाषा सरल और भावों की अभिव्यंजना सुंदर है। इनके एक प्रसिद्ध वचन का हिंदी रूपांतर नीचे दिया जाता है—

"संसार सागर से उत्पन्न सुख ही दुःख है, यह न जानकर उस सुख को पसंद कर भवदुःखरूपी क्रूर जन्म-चक्र में फँसे रहकर, वहाँ अपने को भूल अपने से असंबद्ध भ्रम को अपना समझकर, वैसे घोर (रूप) में विकल और विमग्न रहने वाले अज्ञानी जीव तुमको कैसे जानते हैं, हे मेरे पिता! प्रिय इम्मडि निःकलंक मल्लिकार्जुन।"

महानाच *(पं० कृ०)*

'महानाच' बावा बलवंत का कविता-संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं को पढ़ने से लगता है कि इन्हें लिखते हुए कवि के सामने महाशक्ति की एक विराट कल्पना रही होगी। यह कल्पना इस संग्रह की अनेक कविताओं में चरितार्थ हुई है। 'बागी' और 'शिवनाच' ऐसी ही कविताएँ हैं जो कर्मक्षेत्र में संघर्षशील होने की प्रेरणा देती हैं।

इस संग्रह में कवि के तीन रूप सामने आते हैं। क्रांतिकारी का, देशभक्त का, और मानवतावादी का। पर केंद्रीय भाव सामाजिक परिवर्तन के आह्वान और क्रांति का है। कवि ने शिव-शंकर के पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से इस क्रांति भावना को बड़े सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस संग्रह की कुछेक कविताओं में श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का भी सुंदर निरूपण किया गया है। नारी के प्रति उनके मन में श्रद्धा भाव था। उन्होंने नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को मान्यता दी है। इस संग्रह की कुछेक कविताएँ छायावादी हैं जैसे 'परछावें', 'सुनहरी शाम', 'शाम दी लाली' आदि कविताएँ। कतिपय कविताएँ रहस्यवादी रंगत की भी हैं।

यह अपने समय का एक विशिष्ट और प्रतिनिधि संग्रह है।

महापरिनिब्बान सुत्त *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के अंतर्गत 'दीघनिकाय' का सोलहवाँ सुत्त है। इसमें भगवान् बुद्ध के अंतिम जीवन, अंतिम उपदेश, कुशीनरा में उनके महापरिनिर्वाण और उनके अंतिम संस्कार का वर्णन है। विद्वानों के मत में पाली भाषा में भगवान् के जीवन-चरित्र लिखने का यह पहला प्रयास है। इस सुत्त में बहुत-कुछ परवर्ती भी है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु इसका मूल रूप प्राचीन है। इसमें भिक्षुओं की शोक-दशा का भी अच्छा भावनात्मक चित्रण किया गया है।

महापात्र, केदारनाथ (उ० ले०)

श्री केदारनाथ महापात्र का जन्म भुवनेश्वर में हुआ था। ऐतिहासिक गवेषणा में इनकी प्रारंभ से रुचि रही है। पुरातात्त्विक खोजों में इनकी उपलब्धि भी कम नहीं, फलतः इनका रचनात्मक साहित्य भी तदनुकूल है। खारवेल, तोपली पर इनके ऐतिहासिक ग्रंथ उड़िया में हैं। इनकी पुस्तक 'खोरधा इतिहास' (दे०) इतिहास और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से अक्षय कीर्ति की अधिकारिणी है। भोइवंश पर इनकी पुस्तक महत्वपूर्ण है। उड़ीसा के प्राचीन स्मृतिकार, नाट्यकार, संगीतज्ञ, अलंकार प्रणेताओं आदि पर अँग्रेज़ी में इनके दो ग्रंथ हैं। 'संस्कृत-साहित्य-केटलाग' इनका अविनश्वर स्मृति-चिह्न है। आजकल ये उड़ीसा के स्टेट म्यूज़ियम में कार्य कर रहे हैं। 'कळिंग ऐतिहासिक गवेषणा समिति' की पत्रिका के ये संपादक भी रहे हैं।

महापात्र, गोदाबरीश (उ० ले०) [जन्म—1901; मृत्यु—1965 ई०]

गोदाबरीश जी का जन्म बाणपुर पुरी में हुआ था। सत्यबादी गोष्ठी स्कूल (दे० सत्यवादी साहित्य) के सदस्य श्री गोदाबरीश महापात्र समसामयिक युग में सर्वाधिक अधीत लेखक थे। इन्होंने अपने को बाहरी कोलाहल से दूर रखा, किंतु आश्चर्य की बात है कि इस नीरव-साहित्य-साधक की सशक्त लेखनी ने उड़ीसा के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में तीस-चालीस वर्ष तक एक हलचल पैदा कर दी थी। 'निआँखुंटा' पत्रिका के संपादक के रूप में इन्होंने अक्षय कीर्ति अर्जित की है। इनके पास कोई डिग्री नहीं थी किंतु हास्य-व्यंग्य की अद्भुत शक्ति थी।

गोदाबरीश कुशल संपादक ही नहीं उच्च कोटि के कहानीकार, उपन्यासकार और कवि भी थे। विदेशी कथावस्तु के आधार पर कथावस्तु का निर्माण कर उत्कलीय परिवेश में रूपायित करने वालों में गोदाबरीश महापात्र प्रमुख हैं। इन्होंने मेरी कॅरेली के 'वेंडेटा' 'उपन्यास' के आधार पर 'रक्तपात' की रचना की है। इनका उपन्यास 'राजद्रोही' मुग़ल-शासन-कालीन उड़ीसा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उपन्यास की अपेक्षा लेखक को कहानी में अधिक सफलता मिलती है। इनकी कुछ कहानियों को उड़िया भाषा की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में स्थान दिया जा सकता है। 'पल्ली छाया', 'एवे मध्य वंचिछि' (दे०) 'मुँ दिने मंत्री थिली' आदि कहानी-संग्रह हैं। इनकी कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ—'कंटा ओ फुल' तथा 'जे फुल फुटिथिला' काव्य-पुस्तकों में संकलित हैं। 'हे मोर कलम' 'हाँडिशाळर विप्ळव' इनकी अन्य उल्लेखनीय काव्यकृतियाँ हैं।

महापात्र, चक्रधर (उ० ले०) [जन्म—1907 ई०]

इनका निवास-स्थान नरसिंहपुर (कटक) है। चक्रधर महापात्र तथा उनकी पत्नी तीस-चालीस वर्षों तक नाशोन्मुख जातीय संपदा के उद्धार की भावना से लोक-कथा और लोकगीतों का संग्रह करते रहे हैं। इस मूल्यवान निधि की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करने का श्रेय इन्हीं को है और महापात्र की पांडित्यपूर्ण भूमिका के साथ यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। लोक-जीवन, लोक-साहित्य, लोक-संस्कृति, लोक-संगीत और लोक-नृत्य के संबंध में महापात्र का ज्ञान अत्यंत सूक्ष्म और सर्वांगीण है। इनके द्वारा संपादित यदुमणि-ग्रंथावली इनकी साहित्यिक विद्वत्ता का प्रमाण है। भाषा परिमार्जित और शास्त्रनिष्ठ है।

'कळिंग कहानी', 'उत्कल गाँउली कहानी', 'उत्कल गाँउली गीत', 'गोबर गोटेइ', 'अपूर्ण प्रेम', 'रणमाधुरी' (उप०); 'वलांगी', 'रोडंग बक्सि' (दे०) (ऐति० उप०); 'मिशन बालक' (कहानी), आदि इनकी रचनाएँ हैं।

महापात्र, नित्यानंद (उ० ले०) [जन्म—1912 ई०]

जन्म-स्थान—भद्रख।

नित्यानंद महापात्र उपन्यासकार, संपादक एवं राजनीतिज्ञ हैं। इन्होंने अपने पिता श्री लक्ष्मीकांत महापात्र (दे०) द्वारा प्रतिष्ठित 'डगर' मासिक पत्रिका का संपादन कई वर्षों तक किया है। सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, गूढ़ दार्शनिकता, आवेगप्रवणता, विस्तृत ज्ञान, सशक्त अभिव्यंजना इनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं। फ़क़ीर मोहन सेनापति (दे०) के बाद उपन्यास के क्षेत्र में ग्रामीण भाषा को साहित्यिक सौष्ठव प्रदान करने में नित्यानंद जी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इस दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इनके समस्त उपन्यासों का उड़िया-आधुनिक-साहित्य में अपना महत्व है।

अब तक इनकी 20 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'भूल', 'हिड़माटी' (दे०) 'मंगाहाड़', 'जिअंता मणिष', 'एगार्टा' (कहानी); 'मरमा', 'काळ्रड़ी' (काव्य) आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

महापात्र, नीळमणि साहू *(उ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

श्री महापात्र नीळमणि साहू का जन्म निआळि (कटक) में हुआ था। इनके अनेक उपन्यास, कहानी-संग्रह, काव्य एवं निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हास्य एवं व्यंग्य के द्वारा जीवन की विसंगतियाँ इनकी रचनाओं में प्रकाशित हुई हैं। पहले 'गंजेइ ओ गवेषणा' (दे०) जैसी हास्यरसात्मक कहानी लिखते हुए भी इन्होंने परवर्ती काल में अनेक गंभीर कहानियों एवं उपन्यासों की रचना की है।

'प्रेम ओ त्रिभुज', 'तामसी राधा', 'बिष्णु माया' (उपन्यास); 'मिछ बाघ', सुमित्रार हस' (कहानी); 'याकुबि कविता कहि' (काव्य) आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं।

महापात्र, यतींद्रकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

श्री यतींद्रकुमार महापात्र का जन्म भद्रख में हुआ। ये उपन्यासकार हैं। 'असंलग्न' (दे०) इनका अन्यतम उपन्यास है तथा आधुनिक उपन्यास-साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है। चेतना-प्रवाह मूलक इस उपन्यास में नायक स्वयं अपना ही आविष्कार करता जाता है। प्रत्येक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है। 'ज्वालामुखी', 'शत्रु-शिबिर', 'अभिशप्त उपत्यका' इनके अन्य उपन्यास हैं।

महापात्र, यदुमणि *(उ० ले०)* [जन्म—1781 ई०; मृत्यु—1866 ई०]

यदुमणि का जन्म गंजाम आठगढ़ में हुआ था; किंतु छोटी आयु में ही ये वहाँ से आकर नयागढ़ में बस गए थे। प्राचीन कवियों में अपने असाधारण पौरुषमय व्यक्तित्व के लिए ब्रजनाथ बड़जेना (दे०) एवं यदुमणि महापात्र वंदनीय हैं।

आशु कवि, प्रथम गद्यकार, राजविदूषक यदुमणि महापात्र अपनी निर्भीकता, सत्यवादिता, प्रत्युत्पन्नमति, शिष्ट चातुर्यपूर्ण सफल हास्य, विनम्र चुभते व्यंग्य, अगाध पांडित्य व उच्च कोटि की काव्य प्रतिभा के लिए सुविख्यात हैं। इनकी व्यंग्य-विनोदपूर्ण रचनाएँ 'यदुमणि रहस्य' में संगृहीत हैं। 'प्रबंधपूर्णचंद्र' (दे०) तथा 'राघव-विलास' दोनों क्लिष्ट शैली की आलंकारिक रचनाएँ हैं। इसे भंजीय प्रभाव माना जा सकता है। उस समय क्लिष्ट व आलंकारिक शैली उच्चकोटि के काव्य की अनिवार्य विशेषता थी। 'राघव-विलास' में धनंजय भंज (दे०) व उपेंद्र भंज की (दे०) की शैली के अनुरूप रामचंद्र जी का वर्णन हुआ है, किंतु फिर भी कवि की मौलिकता असंदिग्ध है। आदिरस की सजीव उज्ज्वलता दर्शनीय है। 'प्रबंध-पूर्णचंद्र' भी भाव-संपदा व रचना-कौशल दोनों ही दृष्टि से उच्च कोटि की रचना है। दोनों में तत्सम-पदावली की बहुलता है। 'चतुर-विनोद' इनकी गद्य-रचना है।

महापात्र, रबिनारायण *(उ० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

श्री रबिनारायण महापात्र का जन्म ढेंकानाल में हुआ था। ये उदीयमान बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न लेखक हैं। इनकी रचनाओं में सर्वत्र एक वैज्ञानिक दृष्टिभंगी मिलती है—प्रतिपाद्य एवं अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से। आज का युग, युगीन जीवन-बोध की जटिलताएँ, बिखराव और विसंगतियों के बीच नवीन दिशा की खोज, आदि का विवेचन होने के कारण इनकी रचनाओं में बौद्धिकता का तत्त्व प्रमुख हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'उन्मुक्ता', 'अज्ञात-बास', 'एकांकी' (उप०) (दे०); 'बिश शताब्दी', 'पहिली अषाढ़', 'बसंतर मोह', (कहा०) (दे०); 'सबुज बनानी', 'असुरभि' (काव्य)।

महापात्र, लक्ष्मीकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

कांत कवि लक्ष्मीकांत का जीवन नियति के साथ मनुष्य की अविजित आत्मशक्ति के संग्राम की करुण गाथा है। कुष्ठ रोग से तिल-तिल कर गलते अंगों की असह्य वेदना मन में छिपाए दूसरों को हँसाने का प्रयत्न केवल लक्ष्मीकांत-जैसे महत्-प्राण ही कर सकते हैं। रोग के सामने न कभी इनका कवि संकुचित हुआ और न ये कभी साहित्य-साधना से विरत हुए। इसके विपरीत इन की सर्वोत्तम रचनाएँ उस समय लिखी गईं, जब इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातना अपनी चरम सीमा पर थी।

बालेश्वर के एक प्रतिष्ठित परिवार में इनका जन्म हुआ था। दुर्भाग्य से युवक लक्ष्मीकांत के भव्य-सौंदर्य को कुष्ठ रोग ने आक्रांत कर लिया। ये जीवन-भर के लिए पंगु ही नहीं बन गए वरन् इनकी सुंदर अंगुलियाँ भी लेखनी का भार वहन करने में असमर्थ हो गईं। ऐसी स्थिति में किसी भी प्रकार की बृहत् साहित्यिक योजना संभव नहीं थी।

लक्ष्मीकांत अपने हास्यनिष्ठ गूढ़ व्यंग्य व गीतों के लिए उड़ीसा में प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओं में सर्वत्र व्यथित प्राणों का स्पर्श मिलता है। लक्ष्मीकांत बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कलाकार हैं। काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, नाटिका, सभी में इनकी दक्षता दिखाई पड़ती है। निबंध के क्षेत्र में भी इनका योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'डगर' मासिक पत्रिका के ये संस्थापक रहे हैं, जो आज तक निरंतर साहित्य-सेवा करती आ रही है। लक्ष्मीकांत में हम शास्त्रीय व आधुनिक विभिन्न साहित्यिक धाराओं का समन्वय पाते हैं। 'कणामामुं' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

महापात्र, श्रीधर *(उ० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म कुमारंगाशासन, बाणापुर पुरी में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गंगाधर विद्याभूषण हैं। इन्होंने दंतकथाओं के आधार पर जिस साहित्य-सौध का निर्माण किया है, वह अत्यंत मनोहारी है। दंतकथाओं की रहस्यमयता तथा सुखपाठ्य शैली ने इनकी बाल-कथाओं को शिशु-जगत् का कंठहार बना दिया है। 'रक्त-गोलापर रक्तस्रोत' (दे०) इनका सफल ऐतिहासिक उपन्यास है। वार्द्धक्य के कारण आजकल इन्होंने लिखना बंद कर दिया है।

महापात्र, सीताकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

श्री सीताकांत महापात्र आधुनिक उड़िया-साहित्य के एक प्रमुख कवि हैं। ये उड़िया एवं अँग्रेज़ी दोनों में लिखते हैं। इनकी कविताओं का अनुवाद फ्रेंच, जर्मन तथा कई भारतीय भाषाओं में हुआ है।

'इंटरनेशनल हू इज़ हू इन पोइट्री एंथॉलॉजी' में इन्हें भी स्थान मिला है। ये उत्कल विश्वविद्यालय में दो वर्षों तक प्राध्यापक रहे थे; तत्पश्चात् इन्होंने आई० ए० एस० की परीक्षा दी थी और उसमें प्रथम स्थान प्राप्त किया था। 'भुवनेश्वर रिव्यू' अँग्रेज़ी पत्रिका में ये संपादक थे। आधुनिक जीवन की आशा, आकांक्षा, पीड़ा-संत्रास आदि का चित्रण इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा में प्रांजलता तथा शैली में सहज अबाध गति मिलती है। 'अष्टपदी' (दे०) 'दीप्ति ओ द्युति' 'शब्दर आकाश' आदि इनकी काव्य-कृतियाँ हैं।

महापुराण *(सं० पारि०)*

दिगंबर जैन धार्मिक साहित्य प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग—इन चार अनुयोगों में विभक्त है। प्रथमानुयोग में तीर्थंकरों या प्रसिद्ध महापुरुषों का जीवन एवं तत्संबंधी कथा-साहित्य, द्वितीय में विश्व का भूगोल-खगोल, काल-विभाग, तृतीय में गृहस्थों और भिक्षुओं के लिए आचार एवं विनय और चतुर्थ में जैन दर्शनादि का विवेचन पाया जाता है। इस प्रकार 'महापुराण' प्रथम अनुयोग की एक शाखा है।

हिंदुओं के पुराणों या महापुराणों का वर्ण्य-विषय जैन पुराणों और महापुराणों से भिन्न है। संस्कृत साहित्य में ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु आदि प्रसिद्ध 18 पुराणों को ही कभी-कभी महापुराण कह दिया जाता है। किंतु जैन-साहित्य में 'पुराण' (दे०) प्राचीन कथा का सूचक है। 'महापुराण' का अभिप्राय प्राचीन काल की महती कथा से है। 'पुराण' में एक ही धर्मात्मा पुरुष या महापुरुष का जीवन अंकित होता है, जबकि 'महापुराण' में अनेक महापुरुषों का 'महापुराण' में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव —इन 63 महापुरुषों —शलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन होता है। इस प्रकार 63 महापुरुषों के वर्णन के कारण ऐसे ग्रंथों को त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित या तिसट्ठि का महापुरिस गुणालंकार भी कहा गया है। प्रत्येक कल्प के 63 महापुरुषों में से 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव माने जाते हैं। ये तीनों सदा समकालीन होते हैं। जैन धर्म के अनुसार बलदेव और वासुदेव किसी राजा की भिन्न-भिन्न रानियों के पुत्र होते हैं। वासुदेव अपने बड़े भाई बलदेव के साथ प्रतिवासुदेव से युद्ध करते हैं और अंत में उसे मार देते हैं। फलस्वरूप जीवन के बाद वासुदेव नरक में जाते हैं। बलदेव अपने भाई के मरणोपरांत दुःखाकुल हो जैन धर्म में दीक्षित हो जाते हैं और अंत में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

'महापुराण' इतिवृत्तात्मक घटनाओं का संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र नहीं होते अपितु नाना काव्यात्मक वर्णनों के कारण और महाकाव्य के लक्षणों से समन्वित होने के कारण महाकाव्य माने जाते हैं।

महाप्रस्थान *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1965 ई०]

'महाप्रस्थान' गुजराती के ख्यातनामा कवि उमाशंकर जोशी (दे०) (जन्म—1911 ई०) की रचना है जिसमें प्राचीन भारतीय साहित्य के प्राणस्रोत को धारण करने वाली उनकी सात कृतियों—(1) 'महाप्रस्थान', (2) 'युधिष्ठिर', (3) 'अर्जुन-उर्वशी', (4) 'कच', (5) 'निमंत्रण', (6) 'मंथरा, तथा (7) 'भरत' का संग्रह हुआ है। इनमें प्रथम दो कृतियों के नायक हैं युधिष्ठिर। अर्जुन-उर्वशी तथा कच की कथा भी सुविदित है। 'निमंत्रण', 'महापरिरस्व निब्बान सुत्तांत' (2-96) के वृत्तांत से स्फुरित आम्रपाली के जीवन-प्रसंग पर आधृत है। 'मंथरा' तथा 'भरत' के कथानायक राम हैं।

लेखक ने इन कथाओं के केवल प्राचीन वृत्त को ग्रहण कर अपनी उद्भाविका शक्ति से उन्हें सर्वथा नवीन रूप दे दिया है।

'महाप्रस्थान' में शाश्वत धर्मगोप्ता के रूप में युधिष्ठिर का अभिनव रूप प्रस्तुत हुआ है। भीम भी यहाँ महत्वपूर्ण है। 'युधिष्ठिर' उमाशंकर का सर्वाधिक प्रिय काव्य है। इसमें युधिष्ठिर के चरित्र का विकास होता है—अंत में दुर्योधन के प्रति भी उनका प्रेम उमड़ता है। 'अर्जुन-उर्वशी' अर्जुन द्वारा आचरित सुप्रसिद्ध आर्यता का सुंदर स्तोत्र है तो 'कच' में प्रणय-पात्र द्वारा संजीवनी लाकर प्रणय-पात्र खो देने वाले कच का मार्मिक चित्र है। 'निमंत्रण' में भगवान बुद्ध की विश्वोन्मुखी करुणा का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करती है नगरवधू आम्रपाली। वह लिच्छवी श्रेष्ठि द्वारा दिए गए गणिका-पद से मुक्त हो शाश्वत नारीत्व की प्राप्ति-जैसे प्रलोभन का परित्याग कर बुद्ध को इसलिए भिक्षार्थ निमंत्रित करना चाहती है ताकि युग-युगों तक इसका साक्ष्य मिलता रहे कि भगवान् बुद्ध पतितों के भी उद्धारक और प्रेरक थे। 'मंथरा' काव्य का प्रारंभ, मंथरा और कालरात्रि का वार्तालाप और अंत सब विशिष्ट हैं। 'भरत' राम तथा भरत की महानुभावता का गौरवगान है। सीता तथा लक्ष्मण का भी यहाँ निजी वैशिष्ट्य है।

छंदों के वैविध्य तथा सौष्ठव की दृष्टि से भी यह कृति सहृदय का आह्लादन करती है। इसमें उपजाति, अनुष्टुप, पृथ्वी, वनवेली, शिखरिणी आदि छंदों का समृद्ध प्रवाह है। अलंकारों की चारुता तथा पदावली के मार्दव से रोमांचित तथा आनंद रूप रस-स्रोत में अवगाहन करते पाठक को सुंदरम् के ये शब्द अत्यंत सार्थक प्रतीत होते हैं कि—'हमारी सारी संस्कृति की आधार रूप विभूतियों के चित्र यहाँ उमाशंकर के हाथ से रचे गए हैं।'

महाप्रस्थानम् *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह श्री श्री (श्रीरंगम् श्रीनिवास रावु) (दे०) की आधुनिक तेलुगु-काव्य में युगांतर लाने वाली कृति है। तेलुगु-प्रगतिवादी काव्य-धारा का नाटकीय श्रीगणेश करने वाली तथा उस धारा की सर्वोत्कृष्ट कृति यही है। आज तक प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना के रूप में यह कृति सर्वत्र विख्यात है। मार्क्सवाद से प्रेरित कवि ने इसमें किसान, मज़दूर, आदि समाज के दलित, पीड़ित और अपमानित मानव-समाज को एक संसार की रचना करने का आवाहन दिया है। आर्थिक एवं सामाजिक बंधनों में जीर्ण एवं जर्जर होने वाले दीन श्रमिकों को उन बंधनों को उच्छिन्न करके, अत्याचारी शक्तियों को ध्वस्त करके अपने नमोन्मेष को पाने का उद्बोधन किया है। इसी नव्य विश्व के सृजन के लिए 'महाप्रस्थान' करने की प्रेरणा देने के लिए इसकी रचना हुई है।

कवि ने इसमें मानव के समस्त इतिहास को परपीड़न की तत्परता की कहानी के रूप में निंदित किया है। उनके उग्र भाव पटु एवं शक्तिशाली शब्दों में यहाँ व्यक्त हुए हैं। कवि को तेलुगु भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त है और उसको अपने क्रांतिकारी संदेश के वहन में समर्थ बनाकर उसने प्रस्तुत किया है। आग उगलने वाले और विरोधी को ध्वस्त करने वाले पौरुषपूर्ण इनके गीत दीन-दरिद्रों में भी स्वाभिमान, आक्रोश एवं नवीन आशा को जन्म देते हुए आंध्र की जनता द्वारा समादृत हुए हैं।

इसका रचना-विधान भी इनके संदेश के समान ही अतिनूतन है। इनकी सभी कविताएँ मुक्त छंद में लिखी गई हैं। आधुनिक तेलुगु-काव्य-धारा में इनका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

महाबलि *(मल० पा०)*

असुर चक्रवर्ती महाबलि पर केरली में कई गीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचे गये हैं। लोक-गीतों में भी उनका बड़ा स्थान है। केरल के देशीयोत्सव 'ओणम्' और महाबलि का अटूट संबंध है। ये अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि देखने 'ओणाम्' के दिन पधारते हैं। लोगों को प्रसन्न तथा सुखी देख कर लौट जाते हैं। इसी कथा के आधार पर इनके गीत गाए जाते हैं। इनके राजत्व काल में अनीति का नामोनिशान भी नहीं है। यही है कुछ गीतों का सारांश।

महाब्राह्मण (क० कृ०)

'महाब्राह्मण' कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यास स्व० देवुडु (दे०) जी की महान कृति है जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। यह एक पौराणिक उपन्यास है जिसमें वैदिक काल का उज्ज्वल चित्रण है। एक दृष्टि से यह विश्वामित्र के साहसपूर्ण आर्ष जीवन की कहानी है। वेदों, उपनिषदों, रामायण तथा महाभारत आदि में बिखरे हुए उनके जीवन-सूत्रों को संकलित कर देवुडुजी ने उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की है। विश्वामित्र तथा वसिष्ठ के वैमनस्य से शुरू हुई कहानी यहां विश्वावित्र के गायत्री मंत्र-स्रष्टा बनकर ब्रह्मर्षि बनने तक फैली हुई है। वामदेव का संदर्शन, रुद्र की उपासना, त्रिशंकु का स्वर्ग-प्रवेश, मेनका का प्रसंग आदि कई कथाएँ इसमें आई हैं। यह बृहत् कथा तीन युगों तक व्याप्त है। इसके पात्र हज़ारों वर्ष तक जीवित रहने वाले देवताओं से संबद्ध हैं। विश्वामित्र का चरित्र अत्यंत मनोवैज्ञानिक है। वसिष्ठ की त्रिकालदर्शिता-सिद्धि आदि विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि बनने की प्रेरणा देती हैं। विश्वामित्र का अहं अंदर से पौरुष बनकर बाहर विघ्न के रूप में प्रकट होता है। उनकी तपस्या उनके अहं की ही वृद्धि करती है। लेखक ने विश्वामित्र के अंतरंग एवं बहिरंग सुंदर विश्लेषण किया है। कन्नड-भाषा की ध्वनि-शक्ति एवं का अर्थवत्ता इससे बढ़ी है। 'महाब्राह्मण' में कन्नड की समग्र शक्ति की व्यंजना हुई है। वह कन्नड की श्रेष्ठ कृतियों में एक है।

महाभागवतमु (ते० कृ०) [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम बम्मेर पोतना (दे०) है। संस्कृत के काव्य, पुराण तथा इतिहास आदि के अन्य तेलुगु-अनुवादों की तरह यह भी संस्कृत 'भागवत' का प्रतिशब्दानुवाद न होकर स्वतंत्र अनुवाद है। बारह स्कंधों के इस संपूर्ण अनुवाद के कर्तृत्व के बारे में कुछ विवाद है। एक मत के अनुसार पोतना ने संपूर्ण ग्रंथ का अनुवाद प्रस्तुत किया, पर कालांतर में उसके कुछ अंश नष्ट हो गए और गंगन, सिंगन तथा नारय नामक तीन लेखकों ने उन्हें पूरा किया। दूसरे मत के अनुसार पोतना ने 1 से 4 तथा 7 से 10 स्कंधों तक का अनुवाद ही प्रस्तुत किया और उपर्युक्त लेखकों ने उसे पूरा किया। पर इनमें पहला मत ही अधिकांश आलोचकों को मान्य है। पोतना ने अपने 'भागवत' को श्रीरामचंद्र जी को अर्पित कर दिया। इसी कृति के लिए स्वयं एक राजा से की गई प्रार्थना को इन्होंने ठुकरा दिया। 'भारत'-रचना के बाद व्यास से नारद ने कहा कि भक्तिशून्य ज्ञान तथा कर्म दोनों व्यर्थ हैं, अतः भक्तिपूर्वक श्री महाविष्णु के गुणगान करने में ही सार्थकता है। इसके अनुवादक पोतना का दृष्टिकोण भी इस तथ्य के अनुकूल ही था। भक्ति के आवेश में इन्होंने अनेक स्थानों पर मूल भावों का विस्तार किया। इसीलिए इनका अनुवाद मूल ग्रंथ से परिमाण में लगभग डेढ़ गुना बड़ा है। 'भागवत' में विष्णु के इक्कीस अवतारों का वर्णन, कुछ भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के दमन से संबद्ध कथाएँ, सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पुराण-संबंधी अन्य अंश भी विद्यमान हैं।

एक अत्यंत प्रतिभा-संपन्न कवि होने के कारण पोतना के 'भागवत' में शब्दों का चयन, भावों की अभिव्यक्ति, रस-परिपाक और चरित्र-चित्रण आदि सबके सब मार्मिक हैं। लेखक की भक्तिमय प्रवृत्ति ने पूरे अनुवाद को एक मधुकोश के समान अत्यंत रुचिकर बना दिया है। उसकी रचना में संस्कृत-शब्दों की सुगंध तथा तेलुगु-शब्दों की मधुरिमा दोनों का संगम पाया जाता है। अंत्यानुप्रास का प्रयोग उसकी शैली की एक प्रमुख विशेषता है। पर यह प्रयत्नपूर्वक न होकर परम स्वाभाविक तथा सौंदर्यकारक होकर आया है। 'भागवत' में कृष्ण की शैशव अवस्था-संबंधी क्रीड़ाएँ, प्रह्लाद-चरित्र, गजेंद्रमोक्ष, वामन-अवतार, रुक्मिणी-कल्याण ध्रुवोपाख्यान तथा अंबरीषोपाख्यान आदि कथाएँ मधुर और प्रचलित हैं। हिंदी-भाषी प्रांत में तुलसी (दे०) के 'रामचरितमानस' (दे०) की तरह तेलुगु भाषी जनता में पोतना का 'भागवत' अत्यंत लोकप्रिय रचना है। साहित्य-मर्मज्ञों का कहना है कि यह अनुवाद मूलग्रंथ से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। चाँदनी रूपी इस रचना के कारण ही पोतना को तेलुगु-साहित्य-गगन का चंद्रमा माना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत *(उ० कृ०)*

सारलादास के 'महाभारत' के बाद कृष्णसिंह (दे०) की यह रचना उड़ीसा में सर्वाधिक समादृत है। संस्कृत 'महाभारत' (दे०) का वह पूर्णांग अनुवाद है। यह 'महाभारत' का आक्षरिक अनुवाद है। भाषा पांडित्यपूर्ण है, फिर भी उड़िया भाषा की निजता की रक्षा हुई है। उड़िया समाज के आचार-व्यवहार को भी इसमें स्थान मिला है। इस प्रकार संस्कृत-'महाभारत' की विशिष्टता के साथ इसके उत्कलीय स्वरूप की भी रक्षा हुई है, यही इसकी सुंदरता है।

महाभारत *(बँ० कृ०)*

अनुवादक : काशीराम दास। बँगला साहित्य में महाभारत का अनुवाद रामायण के अनुवाद के लगभग सौ वर्ष बाद हुआ था। महाभारत वीररस-प्रधान काव्य है। बँगला देश का कवि कूटनीति अथवा युद्धवर्णना की अपेक्षा कृष्ण-माहात्म्य के वर्णन में अधिक मुखर है। समसामयिक सामाजिक रुचि का अनुसरण करते हुए बंगाली कवि ने महाभारत में नाना प्रकार की नयी कहानियों की रचना की हैं एवं चारित्रिक परिवर्तन किए हैं। बँगला भाषा में कम-से-कम सत्रह कवियों ने महाभारत की रचना की है परंतु सर्वप्रथम अनुवादकार कौन है—इस संबंध में अभी तक अंतिम निर्णय नहीं लिया जा सका है। आदियुग के अनुवादकों में कवींद्र परमेश्वर, श्रीकर नंदी, विजय पंडित, संजय, रामचंद्र, अनिरुद्ध राम सरस्वती एवं द्विज रघुनाथ का उल्लेख किया जाता है। महाभारत के अनुवादकों में जनप्रियता एवं श्रेष्ठता की दृष्टि से काशीरामदास की यह कृति निस्संदेह सबसे आगे है।

व्यास-महाभारत के अनुसरण पर काशीराम दास ने अपने काव्य की रचना की थी किंतु उनकी स्वकीय कल्पना के प्रकाश ने उन्हें स्वतंत्र काव्य-रचयिता की प्रतिष्ठा प्रदान की है। काशीराम दास का जन्म कदाचित् सोलहवीं शती के अंतिम भाग में हुआ और इसीलिए उनके काव्य में चैतन्यप्रभाव की धारा प्राण-गंगा के रूप में तरंगित है।

परवर्ती युग में विष्णुपुर के कवि शंकर चक्रवर्ती ने संभवतः गोपाल सिंहदेव के राज्यकाल (1712-1748 ई०) में समग्र भारत का अनुवाद किया था। ढाका के षष्ठीबर सेन ने भी महाभारत के अनुवादक के रूप में आंचलिक ख्याति प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न पर्वों के अनुवादक के रूप में द्विज हरिदास (अश्वमेध पर्व), कृष्णानंद (शांतिपर्व), अनंत मिश्र (अश्वमेध पर्व) गोपीनाथ पाठक (सभापर्व), राजेंद्रदास (आदि पर्व) का उल्लेख किया जाता है। महाभारत-अनुवाद के क्षेत्र में यह अप्रधान-कविसमाज काशीराम का थोड़ा-बहुत ऋणी अवश्य है।

महाभारत *(सं० कृ०)* [रचना-काल—400 ई० पू०]

'महाभारत' के रचयिता कृष्णद्वैपायन व्यास (दे० व्यास, बादरायण) हैं। 'महाभारत' में 18 पर्व हैं। आज 'महाभारत' में एक लाख श्लोक मिलते हैं। 'महाभारत' को पंचम वेद भी कहा जाता है। 'महाभारत' एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें भारतीय धर्म के स्वरूप का रोचक वर्णन मिलता है। धर्मग्रंथ के अतिरिक्त 'महाभारत' इतिहास, पुराण एवं महाकाव्य की दृष्टि से भी लब्धप्रतिष्ठ है।

व्यास-रचित मूल 'महाभारत का नाम जय, वैशंपायन द्वारा रचित का नाम 'भारत' तथा सौति द्वारा परिवर्द्धित का नाम 'महाभारत' पड़ा है। 'महाभारत' का प्रधान विषय कौरव-पांडवों के युद्ध का वर्णन है। परंतु इसमें अनेक अंतर्कथाएँ वर्तमान हैं। 'महाभारत' के अंतर्गत 'रामायण' (दे०) पर आधारित रामोपाख्यान भी मिलता है। कौरवों एवं पांडवों के महान् संघर्ष के द्वारा 'महाभारत' में भीषण राजनीति का चित्रण हुआ है। इस समग्र राजनीति के प्रधान नेता श्रीकृष्ण हैं जो धर्मावतार के रूप में पांडव-वीर अर्जुन को धर्म-पथ में प्रेरित करते हुए साहाय्य प्रदान करते हैं। कौरव अधर्म एवं पांडव धर्म के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किए गए हैं। इस प्रकार पांडवों की विजय के द्वारा 'महाभारत' में धर्म की विजय प्रदर्शित की गई है।

सामान्यतया 'महाभारत' की संस्कृत सरल एवं रोचक है। इस ग्रंथ में अनेक उज्ज्वल चरित्र वर्तमान हैं। 'महाभारत' के चरित्रचित्रण के द्वारा यथार्थ एवं आदर्श का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। 'महाभारत' कर्म-प्रधान युग का निदर्शक है। वीर रस तो 'महाभारत' का प्रधान रस ही है। 'महाभारत' का पाठक पद-पद पर विपत् का अनुभव करते हुए भी भयभीत नहीं होता, अपितु तीव्रोत्साह का ही अनुभव करता है। विंटरनित्ज़ ने तो 'महाभारत' को वीर-काव्य के रूप में ही स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। यह निश्चित है कि 'महाभारत' पुराणकालिक भारतीय धर्म, दर्शन एवं सामाजिक तथा राजनीतिक परंपराओं का प्रमाणभूत ग्रंथ है।

महाभारत (म० कृ०)

तंजौर के निकट तिरुवेळ्ंदूर ग्राम के निवासी माधव स्वामी ने इस 'महाभारत' की रचना की थी। इसका रचना-काल 1703 ई० से 1709 ई० है। इस ग्रंथ में पर्वों की संख्या 18 नहीं वरन् 21 है और ओवी-छंदों की कुल संख्या है—88,274। महाराष्ट्र से सैकड़ों मील दूर तामिलनाडु में इतने विशाल 'महाभारत' की रचना मराठी भाषा में हुई—यह आश्चर्य की बात है। भाषा सरल और सुबोध है और ग्रंथ की विशालता ने रचना-पद्धति में शिथिलता या अव्यवस्था नहीं आने दी। महाठी-साहित्य के इतिहास में इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण स्थान है।

महाभारतम् किळिप्पाट्टु (मल० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

यह तुंचत्तु ए.षुत्तच्छन् (दे०) की अमर कृति है। इसमें 'महाभारत' (दे०) का औचित्यपूर्ण संक्षेप किया गया है। भगवद्गीता, 'सनत्सुजातीयम्' आदि भागों को इस संक्षेप में सम्मिलित नहीं किया गया है। पर्वों की संख्या मूल पुस्तक की अपेक्षा तीन अधिक हैं। ए.षुत्तच्छन् की अन्य मुख्य कृतियों की तरह इसमें भी शुकी के मुख से ही कथा सुनाई गई है।

साहित्य-गुणों की दृष्टि से 'महाभारत' को ए.षुत्तच्छन् की सर्वोत्कृष्ट कृति माना गया है। 'अध्यात्म-रामायणम्' की तरह इसमें भी मुख्य धारा भक्ति ही है। अवसर प्राप्त होने पर, और अवसरों की सृष्टि करके भी कवि श्रीकृष्ण के ऐसे शब्द-चित्र खींचता है कि वे नास्तिक को भी पुलकित करके ही छोड़ते हैं। कर्ण-पर्व की श्रीकृष्ण-स्तुति इसका उदाहरण है। शृंगार आदि समस्त रसों का निष्पादन सुंदर हुआ है। गांधारी-विलाप, दुःशासन-वध आदि प्रसंगों में ए.षुत्तच्छन् की कविता का उदात्त रूप दर्शनीय है। यद्यपि प्रचार और आध्यात्मिकता की दृष्टि से 'रामायणम्' (दे०) का महत्व अधिक है तो भी महान् साहित्यिक रचना के रूप में 'महाभारतम्' का स्थान सर्वोपरि है। ऐसा माना जाता है कि 'रामायणम्' कवि की पहली रचना है और 'महाभारतम्' की रचना तक उसकी काव्यकलात्मक सिद्धियाँ पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुकी थीं। महाकवि उळ्ळूर (दे०) के शब्दों में यह कहना भूतार्थ-कथन मात्र है कि इस एक ही कृति के द्वारा भाषा को जो उद्गति प्राप्त हुई है उसकी इयत्ता और ईदृकता अवाङ्मनगोचर है।

महाभारताचा उपसंहार (म० कृ०)

भारताचार्य चिं० वि० वैद्य ने 1919 ई० में 'महाभारताचा उपसंहार' पुस्तक में 'महाभारत' (दे०) ग्रंथ की विस्तृत समीक्षा की थी।

'महाभारत' ललित संस्कृत में लिखित सरल, ऋजु शैली का ग्रंथ है। 'महाभारत' प्राचीन हिंदुस्तान की परिस्थितियों का विश्वसनीय विस्तृत इतिहास देने वाला ग्रंथ है। भारतीय मानस इसे धार्मिक ग्रंथ मानता है और इसके प्रति भारतीयों के मन में अपार श्रद्धा है। अनेक प्राच्य तथा पाश्चात्य मनीषियों ने इसे अपने चिंतन का आधार बनाया है।

चिं० वि० वैद्य ने 'महाभारताचा उपसंहार' में ऐतिहासिक दृष्टि से 'महाभारत' का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें ग्रंथकार ने 'महाभारत' का रचयिता कौन है, इसका आकार इतना विशाल कैसे हुआ, यह कब रचा गया, महाभारत-युद्ध ऐतिहासिक घटना है या अनैतिहासिक तथा यह युद्ध किन के बीच हुआ था—इन प्रश्नों पर अपनी दृष्टि केंद्रित की है। महाभारत-काल में वर्णव्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, शिक्षण-व्यवस्था, सामाजिक परिस्थिति, राजनीतिक दशा, सैन्यपद्धति, व्यवहार तथा उद्योग, वाङ्मय तथा उस काल में बहुचर्चित धार्मिक तथा दार्शनिक संस्थाएँ आदि विषयों का गंभीर विवेचनात्मक अध्ययन 'महाभारत' के आधार पर इस ग्रंथ में किया गया है। इसके अंतिम अध्याय में उपसंहार में 'भगवद्गीता' (दे०) पर पुनर्विचार किया गया है।

इस प्रकार 'महाभारत' की सर्वांगीण समीक्षा प्रस्तुत करने वाला यह ग्रंथ लेखक की तीक्ष्ण बुद्धि तथा विवेचन-क्षमता का प्रभावकारी उद्घाटन करता है। इसकी भाषा-शैली सरल तथा सरस है।

महाभाष्य (सं० कृ०) [रचना-काल—200 ई० पू०]

लेखक—पंतजलि (दे०)।

कतिपय विद्वान् 'योगसूत्र' (दे०) और 'महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य' के लेखक को एक ही मानते हैं। हमारे से विचार ये दोनों भिन्न विद्वान् हैं। 'महाभाष्य' पाणिनीय (दे० पाणिनि) व्याकरण की महती व्याख्या है। 'महाभाष्य' के अंतर्गत आठ अध्याय, चार पाद तथा पिचासी आह्निक हैं। 'महाभाष्य' पर भर्तृहरि (दे०), मैत्रेय रक्षित तथा पुरुषोत्तम देव आदि उत्कृष्ट कोटि के विद्वानों के द्वारा महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखी गई थीं।

'महाभाष्य' के अंतर्गत पाणिनीय व्याकरण के सिद्धांतों को जिस सरल शैली में प्रस्तुत किया गया है, वह विलक्षण है। 'महाभाष्य' की वर्णन-शैली इतनी रोचक है कि प्रत्येक अध्येता इसके अनुशीलन से गद्गद हो उठता है। 'महाभाष्य' के अंतर्गत 'अष्टाध्यायी (दे०) के प्रतिपाद्य विषय के संबंध में भी विचारा गया है। महाभाष्यकार के अनुसार शब्दानुशासन को ही 'अष्टाध्यायी' का प्रतिपाद्य विषय बतलाया गया है। शब्द का अर्थ 'महाभाष्य' में ध्वनि बतलाया गया है। 'महाभाष्य' में इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि शब्द के उच्चारण से द्रव्य, गुण और आकृति (जाति) का ज्ञान होता है। इस प्रकार शब्द द्रव्य आदि से भिन्न होने पर भी द्रव्य आदि का वाचक है। इसी प्रकार अनेक महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन 'महाभाष्य' के अंतर्गत उपलब्ध है। 'महाभाष्य' के अनुसार व्याकरणशास्त्र को मोक्ष का साधक बतलाया गया है।

महायात्रा *(उ० कृ०)*

'महाभारत' (दे०) की विषयवस्तु का यत्किंचित् आश्रय लेकर, उसी के माध्यम से विदेशी साहित्य-सृष्टि के आदर्श पर एक स्वतंत्र काव्य-सौध का निर्माण करना, राधानाथ राय (दे०) का प्रधान एवं मौलिक लक्ष्य था। 'महायात्रा' काव्य में पांडवों के शेष जीवन की स्वर्गयात्रा का चित्रण है; और साथ ही है कवि के शेष जीवन के सृष्टि-शिखर-आरोहण की एक अभिनव जययात्रा। केवल 'महायात्रा' काव्य ही राधानाथ के समूचे कवि-जीवन और उनकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के स्फुरण का निदर्शन है। 'महाभारत' की कथावस्तु पर विदेशी सृष्टि-परिकल्पना के आरोपण के वैचित्र्य पर ही इसके सृष्टि-यथार्थ की सार्थकता प्रतिष्ठित है। ऐतिहासिक माध्यम से जाति का अधःपतन बतला कर कवि ने इसमें एक गंभीर करुण रस की प्रतिष्ठा की है। यह करुण रस राधानाथ के दूसरे काव्यों में पात्रों में केंद्रित होकर उपस्थित हुआ है। लेकिन इस ग्रंथ में यह संपूर्ण जाति को केंद्रित किए हुए है।

'महायात्रा' के अतिरिक्त राधानाथ ने अपने किसी भी काव्य में देवस्तुति से काव्यारंभ नहीं किया है। इसमें सारला की स्तुति है। इसी वाक्देवी की कृपा से उड़ीसा के व्यास सारलादास (दे०) ने 'महाभारत' की रचना की थी। वाक्-देवी के रूप में वंदिता सारला देवी पर ग्रीक वाक्देवी का आरोप है।

संस्कृत-'महाभारत' के महाप्रस्थान पर्व में पांडवों का महाप्रस्थान एवं स्वर्गारोहण वर्णित है। इस अपूर्ण ग्रंथ में महाप्रस्थान कई परिवर्तनों के साथ अंकित है। यदि यह काव्य पूर्ण होता, तो हमें स्वर्गारोहण की संपूर्ण कथा मिलती। परीक्षित का राज्याभिषेक, पांडवों की तीर्थयात्रा, तत्पश्चात् लौहित्य आगमन, वहाँ अग्निदेव का आविर्भाव, उनके अनुरोध से अर्जुन का गांडीव एवं अक्षय तूणीर का सागरजल में निक्षेप—इतने ही विषय मूल संस्कृत-'महाभारत' से गृहीत हैं। कवि की मौलिक परिकल्पनाएँ हैं—तीर्थाटन के बाद पांडवों का पुरी आगमन एवं पुरी में धनु-निक्षेप और अग्निदेव के साथ मध्यदेश के रास्ते सह्याद्रि के निकट गमन एवं द्वापरयुग का अवसान और कलि का आगमन। संस्कृत-'नैषध' (दे०) काव्य का सप्तदश सर्ग कलि आगमन एवं उसके सहचर-वर्ग के गुण-कीर्तन से मुखरित है। राधानाथ ने कुछ अंशों में इसका अनुसरण किया है। साथ ही वर्जिल के 'एनिड', दांते के 'डिवाइन कामेडी' एवं मिल्टन के 'पैराडाइज़ लास्ट' के नरक-वर्णन यहाँ प्रधान रूप से अनुकरणीय उपादान के रूप में गृहीत हैं। इनके अतिरिक्त भविष्य-दर्शन की क्षमता प्रदान करने के लिए अग्निदेवता पांडवों के नेत्रों में दिव्यांजन लगाते हैं। द्वैपायन ऋषि संजय की आँखों में अंजन लगाकर उन्हें महाभारत-युद्ध-अवलोकन की शक्ति देते हैं। युधिष्ठिर इस दिव्यांजन से भारत का भविष्य-दर्शन करते हैं। मनुष्य का भाग्य-विपर्यय दिखाने के लिए मिल्टन के माइकेल ने आडामस के चक्षुओं में जो अंजन लगाया था युधिष्ठिर के नेत्रांजन में भी उसी का अनुसरण है। दोनों अंजन एक हैं किंतु उनकी शक्ति पृथक् है। एक दिखाता है वर्तमान (संजय) और दूसरा दिखाता है भविष्यत् (युधिष्ठिर एवं आडामस)। इस अंजन की सहायता से युधिष्ठिर देखते हैं भारत का भविष्य जो इतिहास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वर्जिल के 'एनिड' काव्य में एनिड पिता के दर्शन के लिए पहले नरक फिर स्वर्ग की यात्रा करते हैं। साक्षात के समय पिता 'आनचिसेस' पुत्र को रोम साम्राज्य का भावी अधःपतन का चित्र दिखाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस नरक-स्वर्ग-यात्रा-वर्णन में 'डिवाइन कामेडी' एवं भविष्यत् इतिहास-चित्रण में 'पैराडाइज़ लास्ट' में अंकित मनुष्य के दुर्भाग्य का चित्र स्पष्टतः अनुकृत है। पांडवों को हिमालय की ओर न लाकर पुरी एवं सह्याद्रि लाने के दो कारण हो सकते हैं—दीर्घपथ-परिभ्रमण से भारत की नैसर्गिक प्रकृति-सुषमा का चित्रण तथा अतीत के साथ वर्तमान का संयोग।

'महायात्रा' के इस आरोपण की विशेषताएँ स्वयं 'महाभारत' की कथा में अंतर्निहित हैं। युधिष्ठिर के मिथ्या कथन का 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' नरक-स्वर्ग आरोपण की अनुमति देता है।

महाकाव्योचित गरिमामयी शैली, अमित्राक्षर छंद की स्वर-झंकार व्यापक जीवन-दृष्टि, अनुपम शब्द-योजना, अपूर्व चित्रमयता, मनोरम कल्पना आदि गुणों के कारण 'कोणार्क' क समान 'महायात्रा' अपूर्ण होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

महायान *(पा० पारि०)*

बौद्धधर्म का यह एक परवर्ती विकसित संप्रदाय है। बौद्ध धर्म का भावनाहीन अनस्तित्ववाद बहुत समय तक सर्वसाधारण का आकर्षण-केंद्र नहीं हो सकता था क्योंकि इसमें किसी उच्चतर स्पृहणीय सत्ता का सर्वथा अभाव था जिसके प्रति जनमानस आकृष्ट हो सकता। इसीलिए अशोक के समय से क्षुधित कल्पना इस प्रकार की उच्चसत्ता की खोज में लग गई और अंत में आश्रय देने वाले 'महायान' (विशाल गाड़ी) का आविर्भाव हुआ जिस पर आरूढ़ होकर सर्वसाधारण भी मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो सका। इस मत का प्रचार काश्मीर, तिब्बत, मध्य एशिया, नेपाल, चीन, जापान, इत्यादि उत्तर के देशों में हुआ। इसका साहित्य संस्कृत में है तथा यह विभिन्न संस्कृतियों को आत्मसात् किए है।

'महायान' के अनुसार बुद्ध के उपदेशों के अतिरिक्त उनकी पूजा भी निर्वाण की साधक होती है। यह मत 'गीता' के भक्ति-सिद्धांत से पर्याप्त प्रभावित है और ईश्वर, जीव इत्यादि के विषय में निश्चित सिद्धांत रखता है। इसमें बुद्ध ब्रह्म रूप माने गए हैं और उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति के द्वारा मोक्ष-लाभ की निश्चित योजना प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार इस संप्रदाय के अनुसार जीव निराश्रित नहीं है अपितु एक उच्च शक्ति उसे मोक्ष प्रदान कर सकती है। इसमें संसार का निषेध नहीं है अपितु मानव अपने सामाजिक तथा धार्मिक दायित्वों को पूरा करते हुए कल्याण-मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

'अरहंत्' (दे० अरहत्) के समकक्ष इस मत में बोधिसत्व (दे० बोधिसत्त) को रखा गया है जिनका व्रत है कि जब तक विश्व के सभी प्राणी निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक वे स्वयं मोक्ष प्राप्त नहीं करेंगे, वे विश्व का मार्ग-दर्शन करने के लिए बार-बार किसी रूप में संसार में आते रहते हैं और अनुयायियों के उद्धार के लिए प्रयास कर अंतर्हित हो जाते हैं। उनमें निषेधात्मक ही नहीं तात्त्विक गुण भी हैं।

'महायान'-शाखा में बुद्ध-रूप आध्यात्मिक अधिष्ठान को छोड़कर सभी कुछ अयथार्थ है। दृश्यमान जगत् आभास मात्र है जिसकी तुलना मृगतृष्णिका और स्वप्नजगत् से की गई है। इसको जन्म देने वाले तत्त्व अविद्या और अज्ञान हैं। आदर्शवाद, अभाववाद, शून्यता (दे०), आलयविज्ञान, पारिमिताएं (दे० पारमिता) आध्यात्मिक ज्ञान, त्रिकाय (दे०), श्रद्धा-भक्ति, चतुर्विध निर्वाण (दे०), सबका मोक्ष इत्यादि 'महायान' की विशेषताएँ हैं।

महारणर बिनि *(अ० कृ०)*

सुरेशचंद्र गोस्वामी का यह उपन्यास विगत महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित है। शिल्प की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है।

महाराष्ट्र भाषेचा कोश *(म० कृ०)* [रचना-काल—1829 ई०]

किसी भी भाषा के साहित्य को समृद्ध करने में कोशग्रंथों का विशेष योगदान रहता है। इसी बात को दृष्टि में रख मराठी भाषा को समृद्ध भाषा बनाने के लिए 'बांबे नेटिह्व एज्युकेशन सोसाइटी' ने बंबई सरकार की आज्ञा से एक शास्त्री-मंडल की स्थापना की थी। मंडल के सदस्यों ने एक-दूसरे के सहयोग से 1829 ई० में मराठी से मराठी में पहला कोश रचा। श्री बालशास्त्री घगवे, श्री परशुराम पंत गोडबोले, श्री सखाराम जोशी तथा श्री दाजीशास्त्री इस कोशग्रंथ के लेखक रहे थे। यह कोश दो भागों में प्रकाशित हुआ था।

मराठी-कोश ग्रंथ लिखने का यह पहला अर्वाचीन महत् प्रयत्न था। इसका विस्तारपूर्वक परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महाराष्ट्र शब्दकोश' (प्रथम भाग) की प्रस्तावना में उपलब्ध है।

महाराष्ट्र सारस्वत *(म० कृ०)* [रचना-काल— 1919 ई०]

यह ग्रंथ मराठी वाङ्मयेतिहासोपयोगी संशोधन की क्रांति का इतिहास है। इसमें वि० ल० भावे ने तेरहवें शतक के महानुभाव पंथी वाङ्मय से पेशवा-काल के अंत तक के संपूर्ण प्राचीन मराठी-साहित्य का विवेचन अत्यंत गंभीरता के साथ किया है।

महाविद्यालय में भावे ने स्नातक परीक्षा के लिए वनस्पतिशास्त्र का अभ्यास किया था और बाद में नमक का व्यापार। अतः न तो शैक्षणिक काल में और न व्यापार में ही इन्हें मराठी-साहित्य का अध्ययन करने का अवकाश मिला था। परंतु फिर भी इन्होंने स्वयं यत्रतत्र भ्रमण कर सामग्री उपलब्ध की, उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा की और फिर विश्वसनीय सामग्री के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की। इसी कारण इनका यह गुरु-गंभीर प्रयास अभिनंदनीय है।

प्राचीन मराठी-साहित्य भक्तिपरक है, परंतु भावे जी ने भक्त की दृष्टि से नहीं वरन् एक सहृदय काव्य-रसिक की दृष्टि से इसके प्राचीन काव्य का अध्ययन मनःपूर्वक कर इसकी समीक्षा भी प्रभावोत्पादक रीति से की थी।

यह ग्रंथ अत्यंत सुंदर शैली में रचित है। नामदेव (दे०) तथा ज्ञानेश्वर (दे०) के साहित्य-गुणों को लक्ष्य कर उन पर जो कुछ इन्होंने लिखा है वह अद्वितीय है। यत्र-तत्र भावे जी ने दोषों का निर्देश भी किया है परंतु वह भी इतनी खूबी से कि दोषों पर एकदम ध्यान नहीं जाता, गुण ही उभर कर सामने आते हैं। इस ग्रंथ के लेखन में काव्य-रसिक की भूमिका अपनाने के कारण मुक्तेश्वर (दे०) तथा शाहीर-काव्य के रसोद्घाटन में लेखक विशेष तन्मय हुआ हैं। यत्र-तत्र तुलनात्मक पद्धति का अवलंब लिया गया है। इसका अंतिम प्रकरण सर्वोत्कृष्ट तथा अत्यंत सशक्त है।

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश *(म० कृ०)*

संसार के समस्त ज्ञान-संदर्भों के लिए सुलभ यह कोश है। यह अँग्रेज़ी 'एनसाइक्लोपीडिया' के आदर्श पर लिखा गया विश्वकोश है। इसके रचयिता श्रीधर व्यंकटेश केतकर (दे०) हैं। केतकर जी से पूर्व श्री जनार्दन हरि आठल्ये ने 1878 ई० में 'ज्ञानकोश' का प्रकाशन प्रारंभ किया था परंतु 200 से अधिक पृष्ठ नहीं लिखे जा सके थे।

1914 ई० में केतकर विलायत से नवीन दृष्टि, प्रबल आत्मविश्वास तथा पाश्चात्य शिक्षा लेकर आए थे। जब इन्होंने 'ज्ञानकोश'-निर्माण की आवश्यकता अनुभव की तो अगले दो वर्षों तक पूरे हिंदुस्तान का भ्रमण किया तथा 1916 ई० में 'ज्ञानकोश' के लिए लिमिटेड कंपनी की स्थापना की। 'ज्ञानकोश' एक शास्त्रीय ग्रंथ है। इसके निर्माण में अनेक लोगों का सहयोग अपेक्षित था। अतः 1920 से 1929 ई० तक अनेक व्यक्तियों के सहयोग से इसके 23 भाग निकाल कर इस कार्य का समापन हुआ। ये तेईस भाग तीन खंडों में संगृहीत हैं। पहले पाँच खंड प्रस्तावना खंड में हैं। यह प्रस्तावना अद्वितीय है। इस पर केतकर जी के व्यक्तित्व की छाप है। इसमें विश्व के विशाल पार्श्व पर जगज्जेत्री भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य स्पष्ट किया गया है। मौलिक समाजशास्त्रीय भूमिका के कारण भी प्रस्तावना अमूल्य है। वेदविद्या एवं बुद्धपूर्व संसार खंड में ज्ञानकोशकार की शोधपरक दृष्टि का पता चलता है।

यह कोश निर्दोष एवं व्यवस्थित है। इसने उन्नत विश्व तथा पिछड़े हुए महाराष्ट्र के बीच बौद्धिक अंतराल को पाटने में सहायता की है। इसी से मराठी में संदर्भ-ग्रंथों के प्रणयन के युग का शुभारंभ हुआ।

महावंस *(पा० कृ०)*

समय पाँचवीं शती ई०। यह सीलोन के महानाम की रचना है। इसे पुराणरूपता और काव्य-रूपता प्रदान करने की चेष्टा की गई है; इसकी भाषा-शैली छंद, वस्तु सभी-कुछ काव्यात्मक ही है। इसमें बुद्ध का लंका को जाना, वहाँ की तत्कालीन परिस्थिति, धर्म-प्रचार, बोधिवृक्ष का लंका को ले जाना, संगीतियों की कथा, अशोक के धर्म-प्रचार इत्यादि का वर्णन किया गया है और बहुत-कुछ परवर्ती तत्त्व भी मिला दिया गया है। इसे उच्चकोटि की कलाकृति के रूप में न भी स्वीकार किया जाय फिर भी साहित्य के इतिहास में इसका पर्याप्त महत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर *(प्रा० पा०)*

आधुनिक विद्वान् महावीर स्वामी को जैन धर्म का प्रवर्तक मानते हैं। किंतु ये उस अर्थ में धर्म-प्रवर्तक नहीं थे जिस अर्थ में गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे। इन्होंने परंपरा-प्रचलित पैतृक धर्म को स्वीकार किया था और उसी का नेतृत्व किया। बौद्ध ग्रंथों में भी महावीर को प्रचलित प्राचीन धर्म का अनुयायी बतलाया गया है। ये ज्ञाता जाति के क्षत्रिय वंश में वैशाली के निकट कुंडग्राम में उत्पन्न हुए थे। ये सिद्धार्थ और त्रिशला के द्वितीय पुत्र थे। श्वेतांबरों के अनुसार महावीर ने देवानंदा के गर्भ में प्रवेश किया था किंतु बाद में इंद्र की आज्ञा से वह गर्भ त्रिशला के उदर में सन्निविष्ट कर दिया गया। किंतु दिगंबर-संप्रदाय में इस कथा पर विश्वास नहीं किया जाता। इनके माता-पिता पार्श्वनाथ के पूजक थे और और उन्होंने इनका नाम वर्धमान रखा था। बौद्ध धर्म में इन्हें निग्गंथ (बंधनहीन) नात पुत्र के रूप में प्रायः स्मरण किया गया है। महावीर इनका नाम नहीं किंतु केवली बन जाने के बाद इनकी महती वीरता के पुरस्कार के रूप में दी हुई उपाधि है। इनका विवाह वसंतपुर नगर के महाराज समरवीर की कन्या यशोदा से हुआ था और इनके अनोज्जा प्रियदर्शना नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। इनकी 30 वर्ष की आयु में इनके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी और इनके पिता का स्थान इनके बड़े भाई नंदिवर्धन ने लिया था जिनकी सम्मति से इन्होंने चिराकांक्षित संन्यास धारण किया था। 13 महीने बाद ही इन्होंने वस्त्र भी छोड़ दिए थे। फिर 12 वर्ष की साधना के बाद केवली तीर्थंकर बनकर लगभग 42 वर्ष पर्यंत घूम-फिर कर उपदेश देते रहे थे और 72 वर्ष की आयु में निर्वाण पदवी पर आरूढ़ हुए थे। इनकी मृत्यु बुद्ध से पहले हुई थी। श्वेतांबरों के अनुसार इनका समय 527 ई० पू० और दिगंबरों के अनुसार 480 ई० पू० है। श्वेतांबर आगम-साहित्य (दे० जैन आगम) का कर्ता इन्हें ही मानते हैं जबकि दिगंबर-संप्रदाय में 14 पूर्वों के लुप्त हो जाने के बाद अवशिष्ट 'षट्खंडागम' (दे०) के अनेक भागों को इनकी कृति के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके धर्म का सार है—वस्तुतत्व की यथार्थता और अनेकता, जीवों का कर्म से बंधन और सम्यक्ज्ञान, दर्शन और चरित्र से कैवल्य-प्राप्ति तथा ईश्वर-रूप में परिणति तथा सभी धर्मों में आंशिक सत्य की उदारतापूर्वक स्वीकृति।

महाश्वेता *(उ० कृ०)*

यह मन्मथ कुमार दास (दे०) का उपन्यास है। इसकी विषय-वस्तु है एक नारी की समस्या। क्या नारी केवल एक यौन-संकेत है? समाज में अनेक लोग ऐसा सोचते हैं और अनेक नारियाँ भी इसका शिकार हो जाती हैं। किंतु नारी यौन-संकेत से परे भी बहुत-कुछ है, यह तथ्य 'महाश्वेता' की नायिका मनोरमा (दे०) के जीवन के अनेक बिखरावों के द्वारा प्रतिपादित हुआ है। वह प्रेम करते हुए भी विवाह नहीं कर पाती तथा माँ होते हुए भी कुमारी रह जाती है। नारी-जीवन की इस अद्भुत अनुभूति को रूप देने की चेष्टा उपन्यासकार ने की है।

महाश्वेता *(सं० पा०)*

बाण (दे०) भट्ट की 'कादंबरी' (दे०) की दूसरी प्रमुख पात्र महाश्वेता है। यह गंधर्वराज के मंत्री की पुत्री थी। स्वयं महाश्वेता के शब्दों में उसका लालन-पालन बड़े ही राजकीय वातावरण में हुआ था। वह जब एक बार माता के साथ आच्छोद सरोवर से नहाकर लौट रही थी तो बसंत की श्री में बहक गई और तब उसने अपने को एक ऐसे युवक के समक्ष पाया जो स्वयं उसकी रूप-राशि से आहत होकर उद्यान में घूम रहा था। वह था ऋषि श्वेतकेतु का पुत्र पुंडरीक (दे०) जिसने उसी दिन महाश्वेता के वियोग में अपने प्राण छोड़ दिए। महाश्वेता तभी उसके मृत शरीर की रक्षा करते हुए उस आकाशवाणी की सत्यता की प्रतीक्षा कर रही थी जिसके अनुसार पुंडरीक को शीघ्र ही महाश्वेता से मिलकर और उससे विवाह कर उसे कृतकृत्य करना था। वियोगिनी महाश्वेता ने तापसी का जीवन यापित करते हुए अपने उन दिनों को जिस किसी प्रकार बिताया और शापांत होने पर चंद्रापीड़ का मित्र ही पुंडरीक सिद्ध हो गया।

महाश्वेता के चरित्र की विशेषता उसके अनिंद्य सौंदर्य के साथ-साथ उन श्लाघ्य गुणों में है जिनमें निर्भीकता के साथ-साथ अदम्य स्नेह एवं स्नेही के प्रति उसकी अपार आस्था निहित है।

महास्थबिर *(बँ० पा०)*

बीसवीं शती के प्रथमार्ध के कलकत्ता शहर एवं समग्र उत्तर भारत को लेकर चार खंड में 'महास्थबिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातक' (दे०) का निर्माण हुआ है। महास्थबिर (महास्थबिर जातक) नाम के पीछे लेखक प्रेमांकुर (दे० आतर्थी, प्रेमांकुर) का आत्मगोपन किए हुए है। लेखक के जीवन का अतिविचित्र अनुभव अपरूप साहित्य कर्म में अभिव्यक्त हुआ है। युग-जीवन के परिवर्तन के स्वर ने लेखक की चित्त-वीणा में अपरूप रागिनी की सृष्टि की है। महास्थबिर के हृदय-स्पंदन में समग्र भारतवर्ष अपना दुःख-दैन्य, हताशा, आनंद, आशा, आवेग लेकर समुपस्थित है। महास्थबिर द्रष्टा एवं भोक्ता है किंतु सर्वोपरि वह स्रष्टा है। आत्मकथात्मक शैली से शिल्पकर्म में बाधा नहीं पहुँचती वरन् उसकी श्रीवृद्धि ही हुई है। असंख्य अनजाने चरित्र की अपरूप शोभा-यात्रा मनुष्य को मनुष्यत्व के तीर्थपथ की ओर पता नहीं कौन-से अलक्ष्य निर्देश से परिचालित कर रही है—उसी का अतिविचित्र कल्लोल महास्थबिर के चित्त-समुद्र में निरंतर ध्वनित है।

महास्थबिर जातक *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

प्रेमांकुर आतर्थी (दे० आतर्थी, प्रेमांकुर) के उपन्यासों में सर्वाधिक आकर्षक है 'महास्थबिर जातक'। तीन खंडों में समाप्त यह एक जीवन-स्मृतिमूलक उपन्यास है। पहले खंड में आज से 50-60 साल पहले के मनुष्य के बाल्य या शिक्षा-जीवन के एक यथार्थ चित्र को इसमें अनावृत किया गया है। गृह-जीवन में पिता के निरंकुश शासन का अत्याचार एवं स्कूली वातावरण की भयावहता को लेखक ने विभिन्न चित्रों के माध्यम से प्रकट किया है। इस प्रकार की रचनाओं में लेखक का अनायास भावविह्वल हो जाना स्वाभाविक है; परंतु उसके कौतुक एवं श्लेष-मिश्रित रचना-कौशल से पाठकों का कौतूहल एवं आग्रह क्षीण नहीं हो पाता। दूसरे खंडों में शिशु-जीवन के स्थान पर भ्राम्यमान लेखक के कैशोर एवं यौवन की नाना प्रकार की रोमांचकारी घटनाएँ संगृहीत हुई हैं। इनमें विभिन्न अंचलों का यथार्थ 'खंडचित्र' विद्यमान है परंतु परिणति में समग्र रूप में कहानी की कोई क्रमिक अग्रगति दिखाई नहीं पड़ती। उपन्यास के अंतिम दो खंड मानो पथिक-जीवन की चलायमान कहानी मात्र हैं जहाँ दृश्य एवं अनुभूति के द्रुत परिवर्तित परिवेश एवं रोमांचकारी परिस्थितियों में लेखक की विशिष्ट सत्ता का पता नहीं चलता। घटनाओं के आवर्त में लेखक का खो जाना इस आत्मचरितात्मक उपन्यास के अंतिम दो खंडों की सबसे बड़ी दुर्बलता है। फिर भी इसमें युग-परिचय के जिस रूप का उद्घाटन हुआ है उसका साहित्यिक मूल्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

महिपति बाबा *(म० ले०)* [जन्म—1715 ई०; मृत्यु—1790 ई०]

ये नगर ज़िला में स्थित 'ताहराबाद' के निवासी थे और इनके माता-पिता वारकरी संप्रदाय के अनुयायी थे। बाल्यावस्था से ही महिपति में भक्ति-भावना के संस्कार दृढ़ होने लगे थे, ये पंढरपुर की यात्रा प्रतिवर्ष करते थे। संत ज्ञानेश्वर (दे०), नामदेव (दे०), एकनाथ व तुकाराम (दे०) की रचनाओं का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया था और 1762 ई० में 'नाभादास' (दे०) के 'भक्तमाल' (दे०) के आधार पर 'भक्ति विजय' नामक चरित्र-ग्रंथ की रचना की थी। इसके बाद 'संत लीलामृत' (1767), 'भक्तलीलामृत' (1774), 'संतविजय' (1789), ग्रंथों की रचना की। इन सभी रचनाओं में मराठी के आदि कवि मुकुंदराज (दे०) से रामदास (दे०) तक प्रायः सभी संतों के चरित्रों का सरस भक्तिभावपूर्ण वर्णन है। अंतिम रचना 'संतविजय' विशाल ग्रंथ है, जिसमें 40,628 ओवियाँ हैं। संतों के चरित्र से संबद्ध सामग्री का संचय इन्होंने अत्यंत परिश्रम से किया है; संतों के प्रति श्रद्धा और भक्ति-भावना के कारण इनके कथा-वर्णन में अद्भुत आकर्षण मिलता है। भाषा-शैली में माधुर्य और सरसता है। संतचरित्रकार के रूप में महिपति का महत्वपूर्ण स्थान है।

महिमभट्ट *(सं० ले०)* [समय—1000 ई० के लगभग]

इनका पूरा नाम राजानक महिमभट्ट था। ये काश्मीर देश के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्रीधैर्य तथा गुरु का नाम श्यामल था। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'व्यक्तिविवेक' (दे०) है जो तिरुवेंद्रम तथा चौखंभा वाराणसी से प्रकाशित है। इसी पुस्तक में इनकी दूसरी कृति 'तत्त्वोक्तिकोश' का उल्लेख मात्र हुआ है।

'व्यक्तिविवेक' साहित्यशास्त्र का ग्रंथ है। इसमें आनंदवर्धन (दे०) के ध्वनि-सिद्धांत का खंडन कर यह बताया गया है कि 'ध्वनि' (दे०) अनुमान से भिन्न तत्त्व नहीं है। इसके तीन विमर्शों में से प्रथम में 'ध्वनि' के लक्षण एवं 'रस' (दे०) की अनुमेयता का विवेचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है; तथा यह बताया गया है कि शब्द की एकमात्र शक्ति अभिधा ही संभव है। लक्षणा एवं व्यंजना दोनों ही अर्थ की शक्तियाँ हैं। अत: दोनों का अंतर्भाव अनुमान में हो जाता है। द्वितीय विमर्श में अनौचित्य के नाम से काव्य-दोषों का विस्तृत विवेचन कर तृतीय में 'ध्वनि' के उदाहरणों में अनुमान की प्रक्रिया के प्रदर्शन द्वारा उनकी व्याख्या की गई है।

महिमभट्ट मुख्यतः वैयाकरण थे। इनके ग्रंथ में भाषावैज्ञानिक तथ्यों का पर्याप्त विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त ये काव्य को कवि-प्रतिभा द्वारा वस्तु के विशिष्ट स्वरूप के दर्शन की भूल मानते हैं। ये रस को आत्मानंद न मानकर वस्तु का ही धर्म कहते हैं। इनकी विद्वत्ता का लोहा सभी मानते हैं।

महिमा-धर्म *(उ० परि०)*

'महिमा-धर्म' बौद्ध एवं नाथ-धर्म से प्रभावित होते हुए भी वेदांत पर आधारित एक स्वतंत्र दार्शनिक विचारधारा है। ईश्वर की वह 'महिमा' जो चित्र या मूर्तियों में व्यक्त नहीं की जा सकती उसकी आराधना पर बल देने वाला यह धर्म है। 'महिमा' संस्कृत के 'महत्' शब्द से बना है। कपिल ने अपने सांख्य-दर्शन में बुद्धि को महत् कहा है। बुद्धि का धर्म बौद्ध धर्म है पर 'महिमा-धर्म' कई दृष्टियों से बौद्ध धर्म से भिन्न है। और वेदांत के समान है। वेदांत के अनुसार दृश्य-जगत् ब्रह्म की माया है। महिमा-धर्मावलंबी चैतन्यदास ने भी 'विष्णुगर्भ' पुराण में दृश्य जगत् को अलेख की विकृति माना है। वेदांतिक ब्रह्म भी अलेख व निर्गुण स्वभाव-विशिष्ट हैं।

'महिमा-धर्म' हिंदुओं की जातिप्रथा एवं मूर्ति-पूजा का घोर विरोधी है। इस धर्म का आदर्श है कि सृष्टि-रचयिता—अदृश्य शक्ति में विश्वास रखो। उसी की आराधना करो। यह धर्म अपने अनुयायियों को सत्य, साधुता, ब्रह्मचर्य आदि कतिपय नियमों के पालन का उपदेश देता है। हिंदू धर्म के अगणित मतवादों में संन्यास जीवनादर्श रूप में प्रतिष्ठित है। किंतु 'महिमा-धर्म' साधुतापूर्ण गृहस्थ-जीवन को पुण्यार्जन का उदार उत्स मानता है।

इस विद्रोही धर्म के प्रचारक थे महिमा गुसाईं; जिनकी कोई रचना नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे निरक्षर थे। इनके शिष्य भीमा भोई (दे०) को यह कठिन कार्य पूरा करना पड़ा था।

महिराण *(सिं० क्र०)*

सिंधी भाषा में 'महिराण' उच्च स्तर की त्रैमासिक पत्रिका है। 1946 ई० में 'सिंधी अदब लाइ अर्मजी सलाहकार बोर्ड' की तरफ़ से इस पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था, परंतु देशविभाजन के कारण एक वर्ष के पश्चात् यह पत्रिका बंद हो गई थी। विभाजन के पश्चात् सिंध में सिंधी भाषा और साहित्य के विकासार्थ 'सिंधी अदबी बोर्ड' की स्थापना की गई थी। इस संस्था ने महिराण को पुनर्जीवित किया था। 1955 ई० से यह त्रैमासिक पत्रिका नियमपूर्वक प्रकाशित हो रही है। महिराणा का शाब्दिक अर्थ है महासागर (महा+अर्णव)। इस पत्रिका में कविता, कहानी, एकांकी आदि के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर उच्च स्तर के विचारात्मक और अनुसंधानात्मक निबंध भी प्रकाशित होते रहते हैं। सिंधी-साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार की और कोई भी पत्रिका अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। साहित्य-सृजन और शोध-कार्य के क्षेत्र में इस पत्रिका का योगदान अविस्मरणीय है।

महिला-काव्य *(बँ० क्र०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०, 1883 ई०]

आधुनिक बँगला कविता के प्रारंभिक गीतकारों में सुरेंद्रनाथ मजुमदार (1838-1878 ई०) का नाम उल्लेखनीय है। कवि ने माता जाया, भगिनी एवं नंदिनी की ममता का ऋण चुकाने के लिए 'महिला-काव्य' की रचना शुरू की थी परंतु माता एवं जाया-अंश को संपूर्ण कर 'भगिनी-अंश' की रचना के दौरान कवि की मृत्यु हो गई। बाद में यह असंपूर्ण काव्य दो अंशों में विभक्त होकर क्रमशः 1880 एवं 1883 ई० में प्रकाशित हुआ। काव्य का शीर्षक भी कवि का दिया हुआ नहीं है।

काव्य के प्रथम अंश 'उपहार' में सृष्टि की अपूर्णता को दूर करने के लिए विधाता के द्वारा नारी-सृष्टि का उल्लेख किया गया है। द्वितीय अंश 'माता' में बंगाली परिवार में स्त्रियों की दुरवस्था का वर्णन है। तृतीय भाग 'जाया' में पत्नी के प्रति कवि के प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। चौथे भाग 'भगिनी' में केवल चार स्तवक हैं। सुरेंद्र बाबू गीतिकार होने पर भी प्रधानतः अभिजातवादी संस्कृत-निष्ठ गंभीर रीति के अनुवर्ती हैं। इसीलिए 'महिला-काव्य' में दृढ़बद्ध अभिजातवादी रूपधारा के अंतराल में स्पर्श-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कातर रोमानी भावुकता की अंतःसलिला प्रवाहित है।

महीधर *(सं० ले०)*

इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य 'वेददीप' नाम से किया है। इस भाष्य पर ऊवट-कृत भाष्य की छाया है। ये नागर ब्राह्मण थे और काशी-निवासी थे। इनका समय वि० सं० 1645 (1588 ई०) माना जाता है।

महुआ *(बँ० पा०)*

बंगला ग्राम-गीतिका सरल प्राण के निराभरण सानंद आवेदन से स्वयं-संपूर्ण है। 'मैमनसिंह गीतिका' (दे०) की प्राणस्पर्शी गाथा का नाम महुआ है। ब्राह्मण ज़मींदार के पुत्र नदेर चाँद के साथ बनजारा-पालिता कन्या यौवन-धन्या रूपवती महुआ के रोमानी प्रणय का विचित्र-सुंदर आख्यान ही महुआ-गाथा की मूल कथावस्तु है। महुआ के सारल्य, सलज्ज प्रेम की चंदन-सुरभि एवं उसके वेदनादीन जीवन की करुण-रंगीन अनुभूमि के विचित्र वर्णवैभव ने अमर्त्य को मर्त्य बंधन में बाँधकर नूतन महिमा प्रदान की है। इसीलिए महुआ बँगला गाथाकाव्य के जगत् में चिरकाल की रोमांटिक नायिका है। महुआ की मधुगंध मन को व्याकुल करती है किंतु उसकी उग्रता उसे अंधा नहीं बनाती। हृदय के दीये में प्रेम की यह नित्य-आरती मानव-धर्म के जयोच्चारण मंत्र से महीयान हो गई है।

महुदूम *(त० ले०)*

महुदूम तमिल-भाषी मुस्लिम साहित्यकारों में से हैं। ये मूलतः कहानीकार हैं। इन्होंने लगभग 200 कहानियों की रचना की। अधिकांश कहानियों में तमिलनाडु के उन मुसलमानों की समस्याओं का चित्रण है जो अपने परिवार को यहीं छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए सिंगापुर, मलेशिया आदि देशों को चले गए हैं। कुछ कहानियों में इस्लामी विचारधारा एवं दर्शन के प्रकाश में जीवन के रहस्यों का उद्घाटन करने की चेष्टा की गई है। विभिन्न कहानियों में लेखक के यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इनमें कहीं-कहीं भावात्मकता का पुट भी है। महुदूम मुस्लिम तमिल कहानीकारों में सर्वप्रसिद्ध हैं और समग्रतः तमिल कहानीकारों में भी उनका विशिष्ट स्थान है।

महेंद्र विक्रम वर्मा *(सं० ले०)* [समय—600-650 ई०]

प्रहसन (दे०) संस्कृत-नाट्य-साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है। 'मत्तविलास' संस्कृत का प्राचीनतम प्रहसन है। इसके रचयिता महेंद्र विक्रम वर्मा पल्लव नरेश सिंहविष्णु वर्मा के पुत्र थे। इन्हें पुलकेशी द्वितीय तथा हर्षवर्धन का समकालीन माना जाता है।

'मत्तविलास' इनकी एकमात्र कृति है। यह प्रहसन आकार में लघु होते हुए भी बड़ा रोचक है तथा तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इसमें एक युवती के साथ बैठकर एक कापालिक के मद्यपान का वर्णन है। कापालिक का कपाल एक कुत्ता उठा ले जाता है पर चोर एक बौद्ध भिक्षु को समझकर वह उससे झगड़ा कर बैठता है। अंत में कपाल एक पागल के पास मिलता है। बस इसी कथा में हास्य रस पिरोकर इसे अत्यंत मनोरम बना दिया गया है। भाषा में कहीं भी अश्लीलता नहीं है। विभिन्न धर्मावलंबियों के संघर्ष को इसमें बड़ी ही संयत भाषा में निबद्ध किया गया है।

महेता, गगनविहारी *(गु० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद श्री महेता तीन वर्ष अमरीका में भारत के राजदूत रहे हैं। वे हास्यरस के लेखक हैं। उनकी दो पुस्तकें 'आकाशनां पुष्पो' तथा 'अवलीगंगा' प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने बर्ट्रेंड रसेल पर भी एक पुस्तक लिखी है। उनके हास्यरस की विशेषता यह है कि वे परिस्थिति को उल्टी दृष्टि से प्रस्तुत करके हास्य निष्पन्न करते हैं।

महेता, चंद्रवदन *(गु० ले०)*

चंद्रवदन महेता कवि, नाटककार, कहानी-लेखक, आत्मकथा-लेखक तथा अभिनेता हैं। उनको अपनी 'नाट्य-गठरियां' पुस्तक पर 1971 में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और उसी वर्ष संगीत नाटक अकादेमी द्वारा 'होहोलिका' नृत्यनाटिका के लिए भी वे पुरस्कृत हुए। कविता में 'इलाकाव्यो' लिखकर भाई-बहन के प्रेम के काव्य गुजरात को देकर उन्होंने काव्य-क्षेत्र में एक नयी दिशा दी। नाटककार के रूप में वे गुजरात के मूर्धन्य नाटककार हैं जिनकी प्रतिष्ठा विदेश में भी है। फ़्रांस में 1969 की 'अभिनय-प्रतियोगिता' में उन्होंने प्रथम पारितोषिक प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। अब तक उनके चौदह नाटक और एकांकी-संग्रह, दो कहानी-संग्रह तथा आत्मकथा के भाग—जिन्हें उन्होंने 'बांध गठरियां', 'छोड़ गठरियां', 'सफल गठरियां', 'नाट्यगठरियाँ' आदि नाम दिए हैं—प्रकाशित हो चुके हैं।

महेता, धनसुखलाल कृष्णलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

धनसुखलाल ने अपने मामा रणजीतराम और अग्रज जयसुखलाल की प्रेरणा से साहित्य-जगत् में पदार्पण किया। आरंभ में इन्होंने 'शरलोक होम्सना पराक्रमो', 'मेटरलिंकना निबंधों' तथा मोलियर के नाटकों के अनुवाद किए। 'हास्यविहार', 'हास्यकथामंजरी', 'विनोदविहार', 'वार्ताविहार', 'पहलो फाल' आदि में इनकी कुछ रचनाएँ मौलिक हैं और शेष अनूदित-रूपांतरित। 'छेल्लो फाल' इनकी मौलिक तथा रूपांतरित कहानियों और नाटिकाओं का संग्रह है। इसी प्रकार 'जमाइराज' और प्रेमनूं परिणाम' क्रमशः मौलिक और रूपांतरित रेखाचित्रों तथा एकांकियों के संग्रह हैं। 'आराम खुरशीअे थी' और 'सर्जनने आरे' इनके सरल-गंभीर विवेचनों के संग्रह हैं। धनसुखलाल ने श्री अविनाश व्यास, गुलाबदास ब्रोकर, ज्योतींद्र दवे (दे०) तथा धीरुबहन पटेल (दे०) के सहयोग से क्रमशः नृत्य-नाटिका 'अर्वाचीना', नाटक 'धूम्रसेर', उपन्यास 'सरी जतुं सूरत' और नाटक 'पंखीनो मेळो' रचनाएँ साहित्य-जगत् को भेंट की हैं। 'गरीबनी झूपडी' इनका मौलिक त्रिअंकी नाटक है। 'रंग माधुरी' और 'रसरंजन' इनके दूसरे नाटिका-संग्रह हैं। इनके इस विशाल सृजन-फलक को देखते हुए कहा जा सकता है कि धनसुखलाल में हास्य-प्रसंगों, कहानियों, नाटकों, उपन्यासों, रेखाचित्रों आदि साहित्यिक विविध रूपों में अपनी बात कहने की अद्भुत सामर्थ्य है। इनकी शैली रोचक व मृदुल है। नाट्यकार और नाट्यविद् के रूप में गुजराती साहित्य के प्रति इनकी सेवाएँ स्मरणीय हैं।

महेता, यशोधर *(गु० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

गुजराती के प्रसिद्ध लेखक व दार्शनिक नर्मदाशंकर मेहता (दे०) के पुत्र यशोधर मेहता का जन्म अहमदाबाद में हुआ था। इनकी माता का नाम भागीरथी है। यशोधर भाई ने बंबई विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा विदेश से बैरिस्टर-एट-लॉ की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार, जीवनी-लेखक, रेडियो नाटक-लेखक, प्रवास-वर्णनकार, प्रेम व साहस-कथाओं के सर्जक, ज्योतिष व दर्शन के लेखक के रूप में यशोधर भाई विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। पिता की दार्शनिकता का तथा श्रीमन्नृसिंहाचार्य के ग्रंथों का इन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

'रणछोड़ लाल अने बीजां नाटको', 'सरीजती रेती' भाग 1 और 2, 'नदी ओ अने नगरो', 'मंबो जंबो', 'घेलोबबल', 'महारात्रि', 'सरीजती कलम', 'वहीजती जेलम', 'यशोधरा', 'तुंगनाथ', 'शिवसदन नुं स्नेह कारण', 'समर्पण', 'श्रीनंदा', '44 रात्रिओ', 'अग्रमनिगम' (दे०), 'किमिया-गिरो', 'प्रेमगंगा', 'रसनंदा', 'भाविनोभेद', 'भाविनां रहस्यो', 'संध्या राग', 'महमूद गज़नवी', आदि इनकी रचनाएँ हैं।

इनकी 'सरीजती रेती' (भाग 1 और 2) गुजराती साहित्य की बहुचर्चित रचना है। उपन्यास का प्रथम भाग स्थूल-मांसल श्रृंगार-विलास से परिपूर्ण और दूसरा भाग आध्यात्मिकता में परिणत है। 'महारात्रि' इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। 'समर्पण', 'रणछोड़लाल अनेबीजां नाटको' इनके रेडियो नाटक हैं। 'रणछोड़लाल अनेबीजां नाटको' पर इन्हें 1946 में पुरस्कार तथा 'कुमारचंद्रक' प्राप्त हुआ था। 'मंबो जंबो' और 'घेलोबबल' प्रहसन हैं। 'किमिया-गरो' में जीवनियाँ हैं। 'श्रीनंदा' और '44 रात्रिओ' अच्छे प्रवास-वर्णन हैं। 'सरीजती कलम' इनके ललित निबंधों का संग्रह है।

गुजराती के लोकप्रिय नाट्यकार, उपन्यासकार, प्रवासवृत्तकार, ज्योतिष व दर्शन के ज्ञाता के रूप में ये सदैव स्मरणीय रहेंगे।

महेता, रणजीतराम बाबाभाई *(गु० ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1917 ई०]

श्री रणजीतराम महेता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व समाजवादी चिंतक अशोक महेता के पिता और गुजराती साहित्य-परिषद् व गुजरात साहित्य सभा के आदि संस्थापक थे। जुहू के सागर तट ने इन्हें आकस्मिक रूप से लील लिया। इनकी एकमात्र पुस्तक 'रणजीतरामना निबंधो' प्राप्त है। निबंधों के अलावा इन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। इनकी रचनाओं में साहित्य के प्रति गंभीर दृष्टि, गुजरात के प्रति अटूट भक्ति और गंभीर भाषा-शैली के दर्शन होते हैं। प्रत्यक्ष साहित्य-सेवा की अपेक्षा इन्होंने अपनी सुचिंतित योजनाओं के द्वारा साहित्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक सेवा की है। इस प्रकार गुजराती साहित्य के विकास में इनका अमूल्य योग रहा है।

महेता, सितांशु यशश्चंद्र *(गु० ले०)* [जन्म—1941 ई०]

इनका जन्म भुज (कच्छ) में हुआ था। इनका अध्ययन-काल अत्यंत उत्कृष्ट रहा था। कालेज-जीवन में इन्होंने न केवल काव्य-प्रणयन ही आरंभ कर दिया था प्रत्युत अल्प अवधि में ही एक कवि के रूप में स्थान भी बना लिया था।

गुजराती कविता में अति-यथार्थवाद का प्रारंभ इन्हीं की रचनाओं को माना जाता है। विषय, प्रतीक-विधान, बिंब-योजना तथा प्रस्तुतीकरण सभी दृष्टियों से इनकी कविता आधुनिक है।

महेश्वर सूरि *(अप० ले०)*

महेश्वर सूरि के जन्म, काल और स्थान के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनकी लिखी 'संयम मंजरी' नाम की 35 दोहों की एक छोटी-सी कृति उपलब्ध हुई है। इस कृति में श्री पार्श्वनाथ के मंगलाचरण, जिन-वर की स्मृति तथा सूरि पदांत नाम से इनके जैन होने की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

मांकड, डोलरराय *(गु० ले०)*

1902 ई० में जन्मे डोलरराय मांकड संस्कृत के विद्वान अध्यापक थे। अपने जीवन का अधिकांश समय इन्होंने संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन और पुरातत्व-संबंधी खोज में बिताया। मरने के समय मांकड जी सौराष्ट्र यूनि-वर्सिटी के उपकुलपति-पद को सुशोभित कर रहे थे। इन्होंने दशरूपक, संस्कृत नाटक, प्राचीन भारतीय रंगमंच, पुराण, ऋग्वेद का काल-निर्णय तथा कालिदास और गुप्त राजाओं को लेकर अँग्रेज़ी में ग्रंथ लिखे हैं। 'काव्यविवेचन' इनका गुजराती में लिखित आलोचनापरक लेखों का संग्रह है। 'नैवेद्य' ग्रंथ इनके प्रकीर्ण आलोचनात्मक व शोधात्मक लेखों का संग्रह है जो इनकी षष्टिपूर्ति के अवसर पर मित्रों व शिष्यों के द्वारा संपादित होकर इन्हें भेंट किया गया था। बंबई विश्वविद्यालय में ठक्कर व्याख्यानमाला के अंतर्गत दिए गए इनके भाषण 'गुजराती कविताप्रकारो' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। ग्रंथावलोकनों में इन्होंने सामाजिक स्थिति और जीवन-दर्शन को अत्यंत महत्व दिया है। इनकी शैली विश्लेषणपरक, वस्तुग्राहिणी, सरल, स्वस्थ और विशद पर्येषणा से युक्त दिखाई देती है। गुजराती के 'पंडित युग' की परंपरा में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

मांकड, महमद *(गु० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल के अस्तित्ववादी और मनो-वैज्ञानिक कहानीकार और उपन्यासकार। इन पर एक ओर फ़ायड और युंग का प्रभाव है तो दूसरी ओर सार्त्र, कामु, आदि का। ये संस्कृत के पंडित हैं और संस्कृत साहित्य के अध्ययन का प्रभाव भी उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। अपने उपन्यास 'बेलाना वछूट्यां' पर इन्हें गुजराती-साहित्य-परिषद् का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इनके 'कायर' और 'तरस' उपन्यास अस्तित्ववाद से प्रभा-वित हैं। 'बेलानां वछूट्यां', 'मनोरमा', 'अजाण्यां बेजण' 'ग्रहणरात्री' मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। 'माटीनी चादर' राजनीतिक उपन्यास है। उनके कहानी-शिल्प में घटनाओं की विरलता एवं क्षीणता दृष्टिगोचर होती है।

मांचाला *(ते० पा०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु द्वारा रचित 'पलनाटि वीरचरित्र' (दे०) नामक ऐतिहासिक प्रबंध-काव्य की प्रधान नारी-पात्र है। यह वीर बालचंद्रुडु की अल्पायु, नवविवाहिता पत्नी है। जब इसके पति को न्याय एवं धर्म की विजय के लिए युद्ध-भूमि में जाना पड़ता है तब यह अपने भौतिक सुख-संतोष की कामना का त्याग करके, पति को स्वयं सुसज्जित करके रणक्षेत्र में भेजती है। जिस समय यह पति के लिए जयमाला गूँथ रही होती है उस समय इसे पति की मृत्यु का समाचार मिलता है। यह एक वीर नारी के समान निश्चल भाव से सहगमन करती है। यह आंध्र की वीर नारियों का आदर्श मानी जाती है।

माइकेल मधुसूदन *(बँ० ले०)* [जन्म—1824 ई०; मृत्य—1873 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त ने नवयुग के बँगला-साहित्य को प्रतिष्ठित करने की दिशा में सर्वाधिक महत्व-पूर्ण योगदान किया है। पाश्चात्य और प्राच्य काव्यधारा का समन्वय कर मनुष्यत्व को प्रधानता देते हुए इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमित्राक्षर छंद के आधार पर बँगला-काव्य के नये पथ का निर्देश दिया है। केवल काव्य ही नहीं, इन्होंने अपने युग के बँगला नाट्यकारों के उद्देश्यहीन नानामुखीन उद्भ्रांत व्यापारों से नाटक को मुक्त कर उसके गतिपथ को सुस्थिर भी बनाया है।

'तिलोत्तमासंभव' (1860) तथा 'मेघनाद-बध' (दे०) (1861) इनके दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, 'तिलोत्तमा-संभव' में महाकाव्य के बहिरंग के साथ कवि की अंतः-प्रेरणा का कोई सार्थक समन्वय नहीं हुआ है। परंतु 'मेघ-नाद-बध' में महाकाव्य का पूर्णांगरूप अनवद्य रूप में प्रकट हुआ है। उदात्त भाषण, छंद-कौशल एवं मानवीय रस-वैचित्र्य की दृष्टि से यह एक महान् काव्य है। इसका चरित-नायक रावण है परंतु राम को छोटा कर रावण को बड़ा नहीं बनाया गया है। राम एक महान् व्यक्तित्व है परंतु रावण भी एक अपूर्व मनुष्य है। रावण विचित्र है, जटिल है, आधुनिक युग का दुरूह मनुष्य है। वह केवल उदात्त ही नहीं, 'ट्रैजिक' भी है। कवि के विप्लवचित्त का यंत्रणादाह रावण के चरित्र के माध्यम से प्रकट हुआ है। माइकेल का 'ब्रजांगना काव्य' (1861) ब्रजबुलि (दे०) में लिखित वैष्णव पदावली के श्रुतिलालित्य से युक्त श्री राधा की विरहगाथा है। 'चतुर्दशपदी कवितावली' (दे०) (1866) की रचना कर माइकेल ने बँगला साहित्य को एक नया काव्य-रूप प्रदान किया था। गीतिकविता के तारल्य को इन्होंने चौदह पंक्तियों के कठोर नियम में बाँध दिया था परंतु कहीं भी स्वच्छंद-प्रवाहित भावोच्छ्वास की संहति टूट नहीं पाई। इनके काव्य में करुण रस से ओतप्रोत सार्वजनीन जीवनबोध की अभिव्यक्ति हुई है।

केवल काव्य ही नहीं, बँगला-साहित्य को भी इन्होंने अपनी प्रतिभा के स्पर्श से परिपूर्णता प्रदान की है। 'शर्मिष्ठा' (1856), 'पद्मावती' (1960), 'कृष्णकुमारी' (दे०) (1861) इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'कृष्णकुमारी' बँगला का पहला ऐतिहासिक नाटक है। इनके अतिरिक्त इनके द्वारा लिखित प्रहसन 'एकेइ कि बले सभ्यता' (दे०) एवं 'बूडो शालिकेर घाडे रोँ' (दे०) उल्लेखनीय हैं। अपने नाटकों में इन्होंने संस्कृत एवं पाश्चात्य नाट्यसूत्रों से प्रभावित हुए भी नाटकीय द्वंद्व और संघात के आधार पर नाट्य रस के परिवेश में, घटना-विन्यास और चरित्र-सृष्टि तथा जीवन-मूल्यों की अभिव्यंजना में अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। अपने प्रहसनों में इन्होंने सामाजिक अनीति के विरुद्ध तीक्ष्ण व्यंग्य कसा है।

बँगला साहित्य में अमित्राक्षर छंद का प्रवर्तन माइकेल की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है।

मागुणि (उ० पा०)

मागुणि गोदाबरीश महापात्र (दे०) के कहानी-संग्रह 'ऐबे मध्य बंचिछि' का एक पात्र है। यह गाड़ीवान है। इसके जीवन-साथी दो बैल हैं। इनकी सहायता से यह अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर लेना चाहता है। परंतु यांत्रिक सभ्यता की दौड़ में यह हार जाता है और इसका अस्थि-कंकाल तकनीकी युग से पूछता है—'यह तूफ़ानी रफ्तार किसलिए? इस अंध-दौड़ का गंतव्य क्या है? युग मौन है; प्रश्न निरुत्तरित है।'

मागुणि न तो राजा है न नेता; न देश-सेवक और न तपस्वी ही। किंतु इसकी मृत्यु पर खल्लीकोट के दो लाख व्यक्ति हाहाकार कर उठते हैं मानो मानव की इस दुःखद पराजय पर मानव-आत्मा चीत्कार कर उठी है।

मागुणि ने अपने जीवन में केवल एक ही काम किया है—पेट के लिए अविराम रूप से बैलगाड़ी चलाना। दो बैलों के अतिरिक्त न कोई उसका संगी है, न कोई साथी। वही दो मूक प्राणी उसके सहकर्मी बंधु हैं। खल्ली-कोट में मोटर बस के प्रादुर्भाव के पूर्व इसकी गाड़ी ही एकमात्र वाहन है। और यह जीवन-संग्राम का अविजित सैनिक है। किंतु खल्लीकोट में यंत्रदानव का आगमन होते ही यह सोचता है कि लोग मोटर बसों के आने के बाद भी इसकी गाड़ी को पसंद करेंगे। किंतु इसकी यह आशा नैराश्य में परिणत हो जाती है। यद्यपि यह गाड़ी को खूब सजाता है, बैलों को खूब दौड़ाता है, किंतु लोगों का ध्यान वह आकर्षित नहीं कर पाता। इस प्रकार यह जीवन का दाँव हार जाता है। इसका निराहार शरीर अधिक दिनों तक प्राणों की रक्षा नहीं कर पाता। जीर्ण कुटी में फटे-पुराने कपड़ों पर इसकी लाश के पास पड़ी रह जाती है, चिरसंगिनी, बैल हाँकने की छड़ी।

वास्तव में यह मागुणि की मृत्यु नहीं, यंत्र-सत्ता के हाथों मानव की मृत्यु है—गांधी के आदर्श की और भारतीय अर्थ-व्यवस्था की मृत्यु है।

माघ (सं० ले०) [समय—सातवीं शती का उत्तरार्द्ध]

संस्कृत-महाकाव्यकारों में माघ का प्रमुख स्थान है। इनका जन्म गुजरात के प्रसिद्ध नगर भीनमाल या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमाल में हुआ, जिसे बहुत दिनों तक वहाँ की राजधानी तथा विद्याकेंद्र होने का गौरव प्राप्त था। ये एक धनी परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के प्रधान मंत्री थे। इनके पिता दत्तक भी उसी प्रकार धनी-मानी और दानी थे। किसी राजा भोज के साथ माघ की बड़ी प्रगाढ़ मंत्री थी।

भारवि (दे०) की भाँति माघ की भी केवल एक कृति प्राप्त है—'शिशुपालबध' (दे०)। केवल यही कृति उनका उत्कृष्ट कलावादी दृष्टिकोण स्पष्ट करने में समर्थ है। माघ कवि होने के साथ ही महान् पंडित भी थे। वे विभिन्न दर्शनों, नाट्य एवं साहित्य-शास्त्र, व्याकरण एवं संगीत आदि में निष्णात थे। अपने पूरे ज्ञान को इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। माघ की कविता में कालिदास (दे०) की उपमा, भारवि (दे०) के अर्थगौरव तथा दंडी (दे०) के पदलालित्य का उत्कृष्ट समन्वय है। अलंकारों के प्रयोग द्वारा वे अपनी विलक्षण कवित्व-शक्ति का परिचय देते हैं।

'शिशुपालबध' के प्राकृतिक वर्णन बड़े सजीव हैं। उनके वर्णनों में स्वाभाविकता तथा यथार्थता है। माघ का प्रभात-वर्णन संस्कृत-साहित्य में बेजोड़ समझा जाता है। साथ ही ग्राम-जीवन के नाना रूपों के चित्रण में भी उनकी लेखनी बड़ी सिद्ध है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण 'शिशुपालबध' संस्कृत का उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। उसका स्थान संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में है।

माझी जन्मठेप *(म० कृ०)*

'माझी जन्मठेप' सावरकर (दे०)-रचित आत्मकथा है। 1910 ई० में अँग्रेज सरकार ने राजद्रोही सिद्ध कर अंडमान द्वीप भेजा था। वहाँ से 1924 ई० में मुक्त होकर ये रत्नागिरी में रहने लगे थे। रत्नागिरी में निवास करते हुए इन्होंने 'केसरी' नामक समाचारपत्र में 1927 ई० तक 'माझी जन्मठेप' आत्मकथा क्रमशः प्रकाशित कराई थी। इस आत्मकथा का कुछ अंश 'ब्रह्मानंद' पत्र में भी प्रकाशित हुआ था। खंडशः प्रकाशित इन अनुभवों का अखंड रूप ही 'माझी जन्मठेप' नामक ग्रंथ है।

'माझ्या आठवणी' नामक आत्मकथा इनके जीवन का पूर्वार्द्ध (जन्म से लेकर 1902 ई० तक) प्रस्तुत करती है और 'माझी जन्मठेप' आत्मकथा उनके क्रांतिकारक जीवन के उत्तरार्द्ध का वृत्तांत है।

'माझी जन्मठेप' ग्रंथ में अंदमान द्वीप में अमानुषिक अत्याचारों को सहते हुए श्रद्धापूर्वक आशा को पल्लवित कर जीवन के व्यतीत किए गए पंद्रह वर्षों की रोमांचकारी कथा का निवेदन है। यह अद्भुत भीषण और रोमांचकारी आत्मकथा है। पचास वर्ष की प्राणलेवा सज़ा मिलने पर इनके मन की क्या अवस्था हुई थी तथा उद्विग्न मन को 'भगवद्गीता' (दे०) के श्लोक पढ़कर कैसे शांत किया था, इस सबका वर्णन लेखक ने किया है।

उन दिनों अंदमान द्वीप जाने का अर्थ था साक्षात् मृत्यु-मुख में प्रवेश। सावरकर जी ने अंदमान द्वीप में आई अनेक आपत्तियों एवं कष्टों का वर्णन किया है। परंतु मानना पड़ेगा कि वीर सावरकर का उत्साह, आवेग तथा जीवन-निष्ठा इतनी प्रबल थी कि मृत्यु के मुख में वापस करते हुए भी ये हतोत्साहित न हुए। इन्होंने वहाँ रहने वाले बंदियों को शिक्षित बनाया तथा संगठित किया। प्रौढ़ एवं ओजस्वी शैली में कही गई उनके अद्भुत तथा पराक्रमी जीवन की यह रोमांचक कथा है।

सावरकर जी के अतिरिक्त अन्य लेखकों ने भी अंदमान द्वीप-विषयक अपने अनुभव लिखे हैं, पर उन सभी में सावरकर जी का यह ग्रंथ सर्वोच्च है। इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद ही यह ज़ब्त कर ली गई थी।

यह ग्रंथ स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उत्सुक देश-प्रेमियों के मार्ग में आने वाली विपत्तियों का इतिहास प्रस्तुत करता है, और साहित्यिक गुणवत्ता की दृष्टि से भी अद्वितीय है। अतः इसका राष्ट्रीय तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्व है। यह मराठी आत्मचरित्र-ग्रंथों का मेरुमणि है।

माझें रामायण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1927 ई०]

दत्तो अप्पाजी तुळजापूरकर ने केवल यही उपन्यास लिखा है। इसकी रूपरेखा उन्होंने बड़े उत्साह और महत्वाकांक्षा से बनाई थी और पृष्ठभूमि के लिए सामग्री भी बड़े परिश्रम से एकत्र की थी। 1857 ई० के स्वातंत्र्य-युद्ध से लेकर जलियानवाला बाग़ के हत्याकांड तक की मुख्य घटनाओं तथा महाराष्ट्र में प्रचरित विचार-धाराओं को कथा का विषय बनाने के कारण इस उपन्यास का पाट बड़ा लंबा है रानडे आदि महान नेताओं के प्रभाव के अतिरिक्त फलज्योतिष, पुनर्विवाह, देशी रजवाड़े, वकालत आदि अनेक विषयों का ऊहापोह इसमें मिलता है। पर पाठक उनसे समरस नहीं हो पाता। अतः उपन्यास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में यह सफल कृति नहीं कही जा सकती । शिल्प की दृष्टि भी यह सफल नहीं है । क्योंकि इसमें जिस आत्म-चरितात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, उसमें सजीवता नहीं है । अतः उसका महत्व केवल ऐतिहासिक घटनाग्रों और व्यक्तियों का इतिवृत्त प्रस्तुत करने के कारण ही है ।

माटिर मणिष *(उ० कृ०)*

बीसवीं शती के तृतीय दशक में जब गांधी जी की सत्य, अहिंसा, असहयोग की वाणी भारत के पल्ली-अंचलों में निनादित हो रही थी, उस समय कािळंदीचरण पाणिग्राही (दे०) का यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था । इस पर गांधी-दर्शन का गहरा प्रभाव है । इस उपन्यास का नायक बरजू (दे०) गांधी-आदर्श का मूर्तिमान रूप है । तब से आज तक यह उपन्यास विपुल गौरव का अधिकारी रहा है ।

इसमें उपन्यासकार ने यद्यपि एक पारिवारिक प्रश्न—संयुक्त परिवार का विघटन—उठाया है किंतु इसके द्वारा कृषिप्रधान भारतवर्ष की ग्रार्थिक व्यवस्था का चित्रण हुआ है, जिस पर हमारा समाज टिका हुआ है । भारत की अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ है कृषि । उस पर जनसंख्या का भारी बोझ है । अतः उन्नत देशों की कृषि-पद्धति का प्रयोग हम सीमित रूप में ही कर सकते हैं । इतनी बड़ी जनसंख्या को कृषि से हटाकर उद्योग-धंधे में लगाना भी संभव नहीं है । अतः यदि संयुक्त परिवार टूट जाता है तो भूमि के और भी छोटे टुकड़े हो जाएँगे ग्रौर यह स्थिति भारत की सामाजिक एवं ग्रार्थिक स्थिति के लिए घातक सिद्ध होगी । अतः इस विघटन को रोकना होगा । किंतु यह कार्य बाह्य प्रयासों से पूरा नहीं हो सकता, इसके भावात्मक क्रांति लानी होगी । समस्या का समाधान मूल रूप से आंतरिक है, मनोवैज्ञानिक है । 'माटिर मणिष' में सहिष्णुता, उदारता, स्नेह, और अंततोगत्वा सर्वस्व-त्याग में इसका समाधान बताया गया है ।

इसमें एक कृषक परिवार की कथा है । शामप्रधान मरते समय अपने दोनों पुत्रों बरजू एवं छकड़ी से अलग न होने का आग्रह करता है । बरजू सदा इसे पूरा करने का प्रयास करता है । किंतु अकर्मण्य छकड़ी अंत में पत्नी तथा हरिमिश्र के बहकावे में आ जाता है एवं भाई से विलग होने में ही सुख मानता है । बरजू के सारे प्रयत्न विफल होते हैं । अन्य उपाय न देखकर बरजू घर, ज़मीन सभी कुछ छोटे छकड़ी को सौंप कर अकिंचन परिवार को लेकर घर से निकल पड़ता है । सारा गाँव हाहाकार कर उठता है ।

भाई के गृहत्याग के बाद छकड़ी को ग्रपनी मूल की प्रतीति होती है । भाई का वात्सल्य, भाभी का दुलार, बच्चों का प्यार, सभी मिलकर उसे ग्रस्थिर कर देते हैं । पत्नी का प्रेम भी उसे बाँध नहीं पाता । भाई व बच्चों को लौटा लाने को वह निश्चित दृढ़ कदमों से चल पड़ता है ।

माटे, श्रीपाद महादेव *(म० ले०)* [जन्म—1886 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

विदर्भ के शिरपुर गाँव में इनका जन्म हुआ था । ग्रस्पृश्योद्धार के लिए स्वतः को अर्पित करते हुए इन्होंने पाठशाला में अध्यापन-कार्य किया था । 1935 ई० में ये सर परशुराम महाविद्यालय में मराठी-प्राध्यापक-पद पर नियुक्त हुए थे ।

समाज-सुधार कार्य करने की बलवती इच्छा से इन्होंने 'विचार-मंडल' नामक संस्था बनाई थी । 1935 ई० के बाद इन्होंने अध्ययन, अध्यापन और लेखन-कार्य में स्वतः को अर्पित किया था ।

इन्होंने अपना साहित्य-लेखन समाचार-पत्रों के लिए लिखकर प्रारंभ किया था । ये बहुश्रुत-बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहियत्कार थे ।

'उपेक्षितांचें अंतरंग', 'अनामिका', 'माणुसकीचा गहिंवर', 'भावनाचे पाझर', 'भावनांची मांडवी' इनके लघु-कथा-संग्रह हैं । इन कहानियों का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है, इनमें इन्होंने समाजशास्त्रीय दृष्टि से जीवन का अध्ययन कर कुछ पहलुओं पर नवीन रूप में विचार किया गया है ।

इन्होंने विचारप्रधान निबंध लिखे हैं । 'साहित्य-धारा', 'साहित्यमंजिरी', 'विचारशलाका', 'विवेकमंडन', 'विज्ञानबोध' आदि इनके निबंध-संग्रह हैं । इन ललित निबंधों में विषय-वैविध्य है और विषय-वैचित्र्य भी । साहित्य, समाजशास्त्र, तत्त्वज्ञान, भौतिकशास्त्र आदि विषयों पर इनके निबंध हैं । वक्तृत्व तथा नाट्यतत्त्व इनके निबंधों का प्राण है ।

माटे एक सफल जीवनी लेखक भी हैं । 'पाश्चात्य पुरुषश्रेष्ठ', 'बाराशास्त्र' आदि इनकी जीवनियाँ हैं ।

'चित्रपट-बर्मा व मला दिस लेले जग' नामक इनकी आत्मकथा भी उपलब्ध है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी साहित्य-भाषा विषयानुकूल है, जिसमें यत्र-तत्र ग्रामीण पात्रों के मुख से ग्राम्य वाक्प्रचारों का प्रयोग हुआ है। अतः माटे अखंड ज्ञानोपासक, श्रेष्ठ शैलीकार व मौलिक साहित्यकार कहे जा सकते हैं।

मांट्टोलि *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

यह प्रो० जोज़फ़ मुंटश्शेरि (दे०) का प्रसिद्ध समालोचना-ग्रंथ है। इसमें लेखक की एक अन्य कृति 'अंतरीक्षम्' (दे०) की तरह मलयाळम के कवित्रय आशान् (दे०), वळ्ळतोळ् (दे०) और उळ्ळूर (दे०) की तीन प्रख्यात कृतियों की तुलनात्मक समालोचना है। आशान् की 'चिंताविष्टयाय सीता' (दे०), वळ्ळत्तोळ् का 'शिष्यनुम् मकनुम्' और उळ्ळूर का कर्णभूषणम्' (दे०) इसके समीक्षाधीन खंडकाव्य हैं। इन तीनों के इतिवृत्त प्राचीन भारतीय उपाख्यानों एवं संदर्भों पर आधारित हैं। लेखक के मतानुसार इनमें 'चिंताविष्टयाय सीता' अधिक मौलिक काव्य है और इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ है।

'अंतरीक्षम्' की तरह 'माट्टोलि' भी प्रो० मुंटश्शेरि के प्रौढ़ समालोचना-ग्रंथों में से एक है।

माडखोलकर, ग० त्र्यं० *(म० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

संपन्न परिवार में उत्पन्न माडखोलकर की रुचि पाठ्य-क्रम की पुस्तकों में नहीं थी, अतः ये मैट्रिक की परीक्षा में भी उत्तीर्ण न हो सके परंतु पाठ्य-क्रम से बाहर की संस्कृत, मराठी और अँग्रेजी पुस्तकों—विशेषतः काव्य और नाटक का इन्होंने गहरा अध्ययन किया। ग्यारहवें वर्ष से कविता और पंद्रहवें वर्ष से गद्य लिखने वाले माडखोलकर की गणना आज के मराठी उपन्यासकारों, कहानी-लेखकों, कवियों, संपादकों और आलोचकों में होती है पर इन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली है आलोचक के रूप में ही। यद्यपि ये कला का उद्देश्य केवल सौंदर्य-निर्मिति न मानकर उद्‌बोधन मानते हैं और इन्होंने अपने उपन्यासों में समसामयिक राजनीति, साम्यवादी विचारधारा, शोषण और उत्पीड़न का करुण चित्र खींचा है तथापि उत्कट शृंगार के चित्र, नैतिक सीमोल्लंघन आदि के कारण इन्हें पलायनवादी लेखक कहा गया है। अपनी रचनाओं में समसामयिक व्यक्तियों की—गांधी जी तक की कटु एवं असंगत आलोचना कर इन्होंने उन्हें विकृत कर दिया है। कथानक-गुंफन में कुशल होते हुए भी इनके संवाद स्वाभाविक और पात्र सजीव नहीं हैं। भाषा अलंकार-प्रधान होने के कारण कृत्रिम है और शैली भावनापूर्ण। हाँ, शब्द-चित्र अवश्य मोहक हैं। प्रकृति के रम्य और रौद्र दोनों स्वरूपों का, नारी-शरीर और उसकी विभिन्न भंगिमाओं का तथा कारखाने आदि का वर्णन अत्यंत सजीव एवं जीवंत है। इस प्रकार मराठी के प्रथम राजनीतिक उपन्यास-लेखक का मान पाने वाले माडखोलकर का कृतित्व बहुत प्रभावशाली नहीं है।

मुख्य कृतियाँ—'मुक्तात्मा', 'चंदनवाडी', 'नवे संसार', 'दुहेरी जीवन', 'नाग-कन्या', 'रुक्मिणी' (दे०) आदि उपन्यास। 'दोन तपें' तथा 'एक निर्वासिताची डायरी' आत्मकहानीपरक ग्रंथ।

माडगूळकर, गणेश दिगंबर *(म० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

ये चित्रपट-कथा-लेखक के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। 'लपलेला ओघ' 'बोलका शंख', इनके कहानी-संग्रह हैं। इनकी 'हिमांगी' नामक प्रतीकात्मक कहानी आज के सभ्य, सज्जन समझे जाने वाले दोमुंहें लोगों पर व्यंग्य है। इसमें 'हिमांगी' नामक छिपकली के माध्यम से मनुष्य के विश्वासघाती स्वभाव के कटु अनुभव का सरस, चुटीली शैली में निवेदन किया गया है।

'सुगंधी वीणा' नामक इनका एक काव्य-संग्रह है, जो 1949 ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रस्तावना में कवि ने लिखा है कि मेरी कविता केवल सूँघने के लिए है। पर इस कथन को केवल कवि के सहज निवेदन के रूप में ही लेना चाहिए, गंभीरता से नहीं। कुछ कविताओं में राधा-कृष्ण की अनन्य प्रीति का अर्थमधुर शब्दों में कथन किया गया है। इनका काव्य प्रसाद एवं माधुर्यगुण-युक्त है।

चलचित्र तथा रेडियो पर प्रसारण के कारण इनके गीतों से जनसाधारण परिचित हैं। इनके गीतों की धुनें आकर्षक तथा शब्द सुरीले हैं।

माणिक्कवाशगर *(त० ले०)* [समय—नवीं शती ई०]

दक्षिण के शैव संतों में माणिक्कवाशगर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म तिरुवादवूर में हुआ था। सोलह वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने अपार ज्ञान अर्जित कर लिया था और ये पांड्य राजा के मुख्य मंत्री बन गये थे। कुछ समय के उपरांत ये राजा की नौकरी छोड़ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव की उपासना करने लगे। तिरुपेरुन्तुरै के ईश—शिवजी इनके इष्टदेव थे। इन्होंने बौद्ध साधुओं को शास्त्रार्थ में परास्त कर शैव धर्म की उच्चता का प्रतिपादन किया था। 18 वर्ष की अल्पायु में चिदंबरम् नामक स्थान में इनका स्वर्गवास हुआ था। इनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'तिरुवाशगम्' (दे०) और 'तिरुक्कोवैयार' (दे०) 'तिरुवाशगम्' के पदों का अनूठा माधुर्य पाठकों को सहसा द्रवीभूत कर देता है। इसी से तमिल में यह कहावत प्रचलित हो गई—'तिरुवाशगत्तुक्कु उरुकातार ओरु वाशगत्तिर्कुम् उरुकार' अर्थात् 'तिरुवाशगम् के पदों से द्रवित न होने वाला किसी भी काव्य से द्रवित नहीं हो सकता'। 'तिरुक्कोवैयार' में चार सौ रहस्यवादी पद्य संगृहीत हैं। इस ग्रंथ में इन्होंने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। 'तिरुवाशगम्' के एक खंड 'तिरुवेम्पावै' में 20 पद हैं। इनका सामाजिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टियों से अपार महत्व है। इन पदों में भागवत में वर्णित कात्यायनी व्रत के समान दक्षिण में प्रचलित एक देवी-व्रत—'मार्गलि नोन्बु'—का वर्णन है। मार्गशीर्ष माह में शैव भक्त इन पदों का पाठ करते हैं। इनकी रचनाओं में प्राप्त इनके भक्तिरसपूर्ण पद शिव-भक्तों की अमूल्य निधि हैं।

माणिक्यचंद्र *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1125-1225 ई०]

'काव्यप्रकाश' (दे०) के टीकाकार माणिक्यचंद्र गुजरात के जैन लेखक थे। ये कोटिकगण, बज्रशाखा, राजगच्छ के निवासी थे। अपनी टीका के अंत में इन्होंने अपनी गुरु-परंपरा का उल्लेख किया है। इनका कथन है कि ये नेमिचंद्र और उनके उत्तराधिकारी सागरेंदु के शिष्य थे। पीटरसन के अनुसार ये सागरेंदु वस्तुतः वही सागरेंदु हैं जिन्होंने 1196 ई० में पट्टन में 'अभयस्वामीचरित' की प्रथम प्रतिलिपि तैयार की। 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार माणिक्यचंद्र 'पार्श्वनाथचरित' के रचयिता माणिक्यचंद्र से अभिन्न प्रतीत होते हैं जिन्होंने अपने इस ग्रंथ की पूर्ति 1220 ई० में देवकूप (द्विबंदर) में की। इस ग्रंथ में लेखक ने अपनी जो गुरु-परंपरा दी है वह 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार माणिक्यचंद्र द्वारा दी गई गुरुपरंपरा से मिलती है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' की टीका 1159-60 ई० में लिखी। इससे प्रतीत होता है कि इनका साहित्यिक काल बारहवीं शती के उत्तरार्ध से लेकर तेरहवीं शती के प्रथम चरण तक था।

'काव्यप्रकाश' पर माणिक्यचंद्र-कृत टीका का नाम 'संकेत' है। ये 'काव्यप्रकाश' के प्राचीनतम टीकाकारों में हैं। माणिक्यचंद्र एक और ग्रंथ के रचयिता प्रतीत होते हैं जिसका नाम 'नलायण' या 'कुबेरपुराण' है। मेरुत्तुंग की 'प्रबंधचिंतामणि' में भी एक माणिक्यचंद्र का उल्लेख हुआ है जो गुजरात के शासक जयसिंह के शासन-काल में हुए थे। परंतु ये 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार से भिन्न प्रतीत होते हैं।

माणिक्य सूरि *(गु० ले०)* [1422 ई० में विद्यमान]

गुजराती के प्राचीन गद्यकार माणिक्य सूरि जैन यति थे। कुछ ग्रंथों में इनका नाम माणिक्य सुंदर सूरि भी पाया जाता है।

इन्होंने 'पृथ्वीचंद्र चरित्र' (दे०) की रचना की है। यह रचना गद्य में है और कथा पाँच खंडों में विभक्त है। इनका गद्य लय-प्रधान है। गुजराती के अति प्राचीन गद्य का यह एक सुंदर नमूना है। इनकी गद्य-शैली बाणभट्ट (दे० कादंबरी) की शैली की अनुगामिनी है। सभा, नगर, सेना, जंगल, युद्ध, स्वयंवर, रूप-गुण-कथन, वर्षा, वसंत, प्रभात, रात्रि आदि के वर्णन बड़े भव्य, सजीव व प्रभावशाली हुए हैं। लगता है, लेखक ने बाणभट्ट की शैली की समता करने के लिए ही इसे रचा था।

गुजराती गद्य के आदि-लेखक के रूप में माणिक्य सूरि का नाम अविस्मरणीय है। और गुजराती के गद्य के प्राचीनतम रूप व नमूनों की दृष्टि से इनकी 'पृथ्वीचंद्र चरित्र' उल्लेख्य रचना है।

माथुर, गिरिजाकुमार *(हिं० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनका जन्म अशोकनगर (म० प्र०) में हुआ। इन्होंने एम० ए० (अंग्रेज़ी) और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ लखनऊ से पास कीं। 1943 ई० में आकाशवाणी से संबद्ध हो जाने के पश्चात् इन्होंने रूस, चेकोस्लोवाकिया, स्विट्ज़रलैंड आदि की यात्राएँ कीं। 'तार सप्तक' (दे०) के इस प्रयोगी कवि की प्रौढ़ रचनाएँ 'धूप के धान', 'शिला पंख चमकीले' और 'जो बँध नहीं सका' आदि में संगृहीत हैं। इन्होंने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में छायावादी (दे० छायावाद) आभा को रूपात्मक आधार और प्रगतिवादी (दे०) अनगढ़ता को सुरुचि-संस्कार प्रदान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी परवर्ती रचनाओं में वैज्ञानिक चेतना या स्थिति से प्रेरित अनुभूतियों और युगीन विसंगतियों पर किए गए कटाक्षों का समावेश भी हो गया है। छंद-लय के संधान, शब्द-सौंदर्य की पहचान और काव्यात्मक बिंबों के निर्माण की दृष्टि से इन्होंने नये कवियों में एक विशेष स्थान बना लिया है।

माथुर, जगदीशचंद्र *(हिं० लें०)*

इनका जन्म उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर ज़िले की खुर्जा तहसील में हुआ। लेखन और अभिनय के प्रति इन्हें बचपन से ही रुचि थी। यही कारण है कि इंडियन सिविल सर्विस में चुने जाने के बाद भी साहित्य-सृजन का कार्य जारी रखा तथा एक सफल नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त की। इनका प्रारंभिक एकांकी 'मूर्खेश्वर राजा' 'बालसखा' में प्रहसन के रूप में (1929 ई०) में प्रकाशित हुआ। 'चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु में इन्होंने बँगला के प्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय (दे०) की शैली में शिवाजी पर एक एकांकी लिखा। 1936 ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 'म्योर होस्टल' के रंगमंच पर इनका एकांकी 'मेरी बाँसुरी' खेला गया। यह एकांकी आगे चलकर 'सरस्वती' (दे०) पत्रिका में प्रकाशित हुआ। आगे चलकर इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण एकांकी लिखे जिनमें 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाला', 'घोंसले', 'बंदी' आदि उल्लेखनीय हैं। 'भोर का तारा' (1957 ई०) तथा 'ओ मेरे सपने' (1953 ई०) में इनके प्रतिनिधि एकांकी संकलित हैं। इनके एकांकियों में झूठ, फ़रेब, मिथ्याडंबर आदि सामाजिक विकृतियों पर पैना व्यंग्य किया गया है। कभी लेखक ने भारतीय वैवाहिक व्यवस्था पर करारी चोट की है तो कभी किसी सभा आदि में दूसरों द्वारा लिखे गए भाषण पढ़ने और बीच-बीच में ताली बजाने की व्यवस्था करने वाले व्यक्तियों को अपने व्यंग्य का केंद्र बनाया है।

यद्यपि यह सत्य है कि श्री माथुर की प्रतिभा सर्वप्रथम हिंदी-एकांकी के क्षेत्र में ही प्रतिफलित हुई किंतु धीरे-धीरे इन्होंने नाटकों के क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। 'कोणार्क' (1951 ई०), 'शारदीया' (1961 ई०), 'पहला राजा' (1969 ई०) नामक इनके तीनों ऐतिहासिक नाटक हिंदी-नाट्य-साहित्य की अक्षय निधि हैं। 'कोणार्क' में उड़ीसा प्रदेश के पुरी ज़िले में जगन्नाथपुरी से लगभग अट्ठाईस किलोमीटर उत्तर-पूर्व की ओर चंद्रभागा नदी के किनारे बने हुए कोणार्क नामक प्रसिद्ध सूर्य-मंदिर के अतीतकालीन इतिहास को कथ्य के रूप में संकलित कर प्रभुसत्ता तथा शिल्पी के बीच के संघर्ष को रूपायित किया गया है। अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध कलाकार का यह विद्रोह किसी युग-विशेष तक सीमित न रहकर वर्तमान जीवन के साथ भी पूरी तरह संपृक्त है। सहनशील विभु तथा विद्रोही धर्मपद के माध्यम से कला के प्राचीन और नवीन युग मानो साकार हो उठे हैं। 'शारदीया' माथुर जी का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है। नरसिंहराव इस नाटक का नायक है। महाराष्ट्र के कागल ग्राम की रूपवती कन्या वायजाबाई का वैवाहिक संबंध उसकी माता के अनुरोध-स्वरूप नरसिंहराव से निश्चित हो गया था। लेकिन माता की मृत्यु के बाद पिता शर्जेराव घारगे राजनीतिक सत्ता के लोभ के कारण कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह दौलतराव सिंधिया से कर देते हैं। शर्जेराव घारगे के षड्यंत्र के कारण नरसिंहराव को ग्वालियर की जेल में बंदी बनाकर रखा जाता है जहाँ वह वायजाबाई को उपहार में देने के निमित्त अपने अँगूठे की ढरकी बनाकर केवल पाँच तोले भार वाली पाँच गज़ की की साड़ी तैयार करता है। उधर वायजाबाई नरसिंहराव के बंदी-जीवन का समाचार पाकर महाराजा सिंधिया से उसकी मुक्ति का आज्ञा-पत्र प्राप्त करती है, उसे मुक्त कराने के लिए दुर्ग में जाती है और वहाँ नरसिंहराव की अँगुली के सुराख से बनी साड़ी को देखकर स्तंभित हो जाती है। इस नाटक में राजकर्मचारियों की दुरभिसंधि तथा तद्युगीन शासन-व्यवस्था के भ्रष्टाचार की झाँकी प्रस्तुत की गई है। हिंदू-मुसलमानों की धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण नाटक है। तीन अंकों में विभक्त 'पहला राजा' में पौराणिक कथानक को युगीन संदर्भों के साथ जोड़ते हुए महाराज पृथु के माध्यम से स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व तथा नेहरू-युग की समस्याओं को रूपायित किया गया है। युग संदर्भ से जुड़ा, नपा-तुला एवं कसा हुआ कथानक, प्रभावी चरित्र-सृष्टि, पात्रानुरूप तथा बोलचाल की भाषा, संक्षिप्ताकार और प्रवाहपूर्ण संलाप तथा अभिनेयता श्री माथुर के नाट्य-शिल्प की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

मादळापांजी *(उ० कृ०)*

उपलब्ध उड़िया लेखों में 'मादळापांजी' सर्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक प्राचीन किंतु विवादास्पद गद्य-रचना है। उड़ीसा के इतिहास, राजनीति, समाजनीति एवं संस्कृति के अनेक उपादान इसमें मिलते हैं। विशुद्ध मुद्रित संस्करण के अभाव में तथा अन्य कई प्रकार की प्रकाशन-संबंधी त्रुटियों के कारण इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता में मतभेद है, फिर भी यह उड़ीसा के पारंपरिक ऐतिहासिक आधार पर विरचित है।

ताड़पत्र पर लिखित उड़िया राजवंशों की यह विवरणी जगन्नाथ-मंदिर में सुरक्षित है। ताड़पत्र मादळा (मर्दळ) आकार में बाँधकर रखे जाते हैं, अतएव इसे 'मादळापांजी' कहते हैं। यह दो भागों में विभक्त है। प्रथम खंड में जगन्नाथ की उपासना-विधि सविस्तर वर्णित है। अनेक शतियों से इनका पालन होता आ रहा है। अत: पांजी-लेखन भी जगन्नाथ की एक सेवा है। दूसरे खंड में उड़ीसा के विभिन्न राजवंश एवं प्रमुख राजाओं का शासन वर्णित है। हिंदू राजा एवं महाराजा जगन्नाथ के प्रतिनिधि माने जाने के कारण उनका इसमें वर्णन होता है। इसे लिखने के लिए श्री मंदिर में 'पांजियासेवक' नाम से एक सेवक-संप्रदाय अभी भी है। उड़ीसा के विभिन्न स्थानों में, विशेषकर खोर्धा अंचल में प्राप्त विभिन्न मादळापांजियों की विषय-वस्तुओं में कई स्थानों पर अंतर दिखाई पड़ता है। पुरी-राजवंश के अतिरिक्त कतिपय अन्य सामंत राजवंशों में भी 'मादळापांजी' का प्रचलन है।

इसके रचना-काल के संबंध में विद्वानों के दो वर्ग हैं। पहला वर्ग इसका सूत्रपात ग्यारहवीं-बारहवीं शती गंगवंशी राजा चोड़ गंगदेव के शासन-काल से मानता है और दूसरा वर्ग सोलहवीं शती खोर्धा भोई वंश या गजपति वंश से इसका प्रारंभ मानता है। श्री मंदिर पर बारंबार वैदेशिक आक्रमण होते रहने के कारण मूल मादळापांजी का सटीक निर्णय करना कठिन हो गया है। समस्त अर्धसत्य, अतिरंजना, या कल्पना के होते हुए भी पांजी की प्राचीनता स्वीकार करनी ही पड़ती है। पांजी में द्वादश शती अर्थात् गंग लोगों के आगमन के पश्चात् वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक साक्ष्य द्वारा सामान्य रूप से समर्थित होने के कारण यह चोड़ गंग-प्रवर्तित है, इस कथन को असत्य भी नहीं कहा जा सकता।

राज्य की ओर से पेशेवर लोगों की रचना होने के कारण इसका साहित्यिक मूल्य उतना नहीं है जितना ऐतिहासिक प्राचीनता का। फिर भी उड़िया भाषा एवं गद्य-शैली के विकास की दृष्टि से इसका महत्व है। अँग्रेज़ी हॉलिनशेड के इतिहास—'हॉलिनशेड्स क्रॉनिकल्स' के समान इस अमुद्रित ग्रंथ ने अनेक उड़िया काव्यों, कविताओं एवं नाटकों के लिए उपकरण जुटाने का कार्य किया है। राजाओं की जीवनी के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी वीरता एवं रोमांस की कथाएँ साहित्य-सर्जना की उत्स सिद्ध हुईं। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से यह एक महत्वपूण रचना है।

माधव जूलियन (माधव त्र्यंबक पटवर्धन) *(म० ले०)*
जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

माधव जूलियन का जन्म बड़ौदा में हुआ था। ये अँग्रेज़ी भाषा एवं साहित्य तथा फ़ारसी के मर्मज्ञ थे। ये फ़ारसी के लब्ध-प्रतिष्ठि प्राध्यापक थे। इनके काव्य में एक ओर अँग्रेज़ी साहित्य की स्वच्छंद प्रवृत्ति है, तो दूसरी ओर फ़ारसी-काव्य की मस्ती।

इन्होंने कवि-रूप में ही साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था। इनके मुक्तक काव्य-संग्रह —'गज्जलांजाली', 'स्वप्नरंजन', 'तुटलेले दुवे' तथा 'मधुलहरी' है, तथा खंडकाव्य—'सुधारक' (दे० रायबहादुर ठोसर), 'विरहतरंग' तथा 'नकुलालंकार'।

इन्होंने मराटी में उमरखय्याम की रुबाइयों के तीन अनुवाद किए—एक मूल फ़ारसी रुबाइयों का, दूसरा रुबाइयों के अँग्रेज़ी अनुवाद का, और तीसरा 'द्राक्षकन्या' नाम के मूल फ़ारसी रुबाइयों के छंद में।

इनकी स्फुट कविताओं में प्रेम-गीतों का ही आधिक्य है। 'विरहतरंग' में भी आधुनिक युवक-युवती के उदात्त प्रेम की परिकल्पना को रूपायित किया गया है। 'सुधारक' तथा 'नकुलालंकार' उपहार-काव्य हैं। इन्होंने महाराष्ट्र के बुद्धिजीवी वर्ग के शिक्षित युवा-मानस में आलोड़ित प्रेम-भाव का अंकन किया है।

इन्होंने पद्य के साथ-साथ गद्य रचना कर मराठी भाषा के परिष्कार का प्रयत्न किया था। भाषा-संशोधन और ज्ञानोपासना में इन्हें रुचि थी। सावरकर (दे०) द्वारा प्रवर्तित भाषा-शुद्धि आंदोलन का इन्होंने समर्थन किया था। इसी के परिणामस्वरूप इन्होंने बाद में विदेशी-शब्द-विरहित शुद्ध मराठी के प्रयोग पर विशेष बल दिया था।

'काव्यविहार' इनके विचारोत्तेजक निबंधों का संग्रह है। इनमें कुछ कवि, काव्यशास्त्र, लिपिसुधार, भाषा-शुद्धि, आदि पर कुछ केशवसुत (दे०), तांबे (दे०) आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों पर तथा शेष कतिपय पुस्तकों की समीक्षाओं के रूप में निबंध हैं।

'तुटलेले दुवे' इनके सौ सुनीतों (सानेट) का संग्रह है। मराठी में गजल छंद को लोकप्रिय बनाने का श्रेय इन्हीं को है।

इन्होंने 'फ़ार्शी-मराठी कोश' का निर्माण किया था। 'छंदोरचना' पर इन्हें डी० लिट्० की उपाधि मिली थी। ये रवि-किरण मंडळ के प्रतिष्ठित सदस्य भी थे।

माधवदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1489 ई०; मृत्यु—1596 ई०]

जन्मस्थान—लखीमपुर का नारायणपुर अंचल।

ये पहले शक्ति-मतावलंबी एवं गर्वित विद्वान् थे। ये शंकरदेव (दे०) से परास्त होकर उनके शिष्य बन गए थे। गुरु की सेवा के लिए इन्होंने आजन्म कौमार्य-व्रत धारण कर लिया था। गुरु के समान इनकी प्रतिभा भी बहुमुखी थी। ये धर्म-प्रचारक, शास्त्रवेत्ता, भक्त, कवि, नाटककार और सुगायक थे।

रचनाएँ—'रामायण आदि कांड', 'राजसूय काव्य', 'नामघोषा' (दे०), 'भक्ति रत्नावली', 'पिपरागु-चोवा', 'भूमि लेटोवा नाट', 'अर्जुन-भंजन' (दे०), 'गोवर्द्धन यात्रा', 'बरगीत', 'जन्म-रहस्य', 'नाममालिका' का अनुवाद नाटक : 'चोरधरा' (दे०), 'भोजन-बिहार', 'दधि-मंथन', 'नृसिंह यात्रा', 'रामयात्रा'।

इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'नामघोषा' है। इसमें कृष्ण नाम की महत्ता, भक्ति की श्रष्ठता, गुरु-महिमा आदि का वर्णन कवित्वपूर्ण शैली में हुआ है। 'राजसूय' काव्य भी उत्कृष्ट है। 'बरगीतों' में ललित भाषा के माध्यम से कृष्ण की बाल-लीलाओं का सुमधुर वर्णन किया गया है। माधवदेव ने गीतों का ताल-राग और समय भी निश्चित किया है। गुरु शंकरदेव के समान इन्होंने भी नाटक रचे थे, जिनकी संख्या आठ है। इनका अभिनय होता था। इनके भी बरगीतों और नाटकों की भाषा व्रजबुलि है। इन्होंने 'रामायण' (दे०) का आदि कांड लिखकर माधब कंदली (दे०) की 'रामायण' में जोड़ा था। अपने इस कांड में इन्होंने वाल्मीकि-'रामायण' का अनुसरण कम किया है।

असमीया साहित्य में शंकरदेव के पश्चात् महत्वपूर्ण पद के ये ही अधिकारी कहे जा सकते हैं।

माधवराम शर्मा, जंमलमडक *(ते० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

श्री शर्मा तेलुगु एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित एवं समालोचक तथा प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र के अधिकारी विद्वान और तत्संबंधी अनेक ग्रंथों के लेखक हैं। अनेक वर्षों से ये गुंटूर में तेलुगु के प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं तथा आंध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी के सदस्य भी हैं।

'नवरसगंगाधरमु', 'ध्वनिसारमु', 'नाट्यवेदमु' आदि इनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं। तेलुगु के समालोचना-साहित्य की वृद्धि में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

माधवशर्मा, पाटिबंड *(ते० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म कृष्णा ज़िले के तेलुप्रोलु ग्राम में हुआ। तेलुगु में इन्होंने आंध्र विश्वविद्यालय से एम० ए० ऑनर्स की परीक्षा पास की। शर्मा जी सफल संपादक, प्राध्यापक तथा कुशल कवि एवं समालोचक भी हैं। कई वर्ष इन्होंने 'उषा' तथा 'वीणा' तामक साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन सुचारु रूप से किया। ये पत्रिकाएँ तेलुगु की कविता, कहानी तथा समालोचना में पर्याप्त योगदान देती रही हैं और इन विधाओं में ये नया मोड़ लाने का सफल प्रयत्न करते रहे हैं। तेलुगु के प्राध्यापक के रूप में विजयवाड़ा में कई साल रहने के बाद आजकल उस्मानिया विश्वविद्यालय में तेलुगु के रीडर-पद पर सुशोभित हैं। अनंतरकाल में उस्मानिया विश्वविद्यालय से 'महाभारतमु लोनि छंदःशिल्पमु' नामक विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। इनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं—1. 'चारुणी' (कविता), 2. राजशिल्पि' (उपन्यास)। 'राजशिल्पि' पर आंध्र विश्वविद्यालय का पुरस्कार इन्हें प्राप्त हुआ है।

माधवस्वामी रामायण *(म० कृ०)*

इसके दो रूप हैं—एक 'श्लोकबद्ध रामायण' और दूसरा 'ओवीबद्ध रामायण'। तंजौर (मद्रास) के कवि माधव स्वामी ने 1707 ई० में इसकी रचना की थी। मद्रास सरकार ने श्लोकबद्ध रामायण को ओरिएंटल सीरीज़ (1951) में प्रकाशित किया है। ओवीबद्ध रामायण की ओवी-संख्या है 18,975। ग्रंथ की भाषा सरल है, काव्य-रचना-पद्धति पर संत एकनाथ का प्रभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधवाचार्य (बँ० ले०)

माधवाचार्य के वंश नाम आदि के संबंध में निर्विवाद रूप से कुछ कह सकना कठिन है। किन्हीं के मत से ये विष्णुप्रिया (चैतन्य महाप्रभु की पत्नी) के भाई थे परंतु अन्य मत इसके विपरीत है।

यह कहना अधिक समीचीन होगा कि ये नवद्वीपवासी एक भक्त कवि थे और चैतन्य महाप्रभु के किसी मुख्य भक्त के शिष्य अथवा अनुचर थे। इनकी प्रमुख कृति 'श्रीकृष्ण मंगल' है। काव्य-रचना-काल भी संभवत सोलहवीं शती का शेषार्द्ध है। कवि ने भागवत के दसवें स्कंध को आधार बनाकर काव्य-रचना की है। अन्य स्कंधों, महाभारत, हरिवंश, विष्णु पुराण आदि से अनेक उपादान लेकर इस काव्य को उपादेय बनाया गया है।

ग्रंथ न तो अक्षरशः अनुवाद है, न भावानुवाद। मूल ग्रंथ के भाव लेकर निज की भाषा में रचना की गई है। ग्रंथ की भाषा सरल एवं प्रसाद गुण-युक्त है। 'श्रीकृष्ण मंगल' काव्य को उत्कृष्ट काव्य की संज्ञा नहीं दे सकते। इससे कवि का परिपक्व लेखन प्रकट नहीं होता। कहीं-कहीं वर्णना मनोरम बन पड़ी है। अनेक प्रसंगों में 'व्रजबुलि' (दे०) के दर्शन होते हैं। किन्हीं विद्वानों के मतानुसार 'चंडीमंगल' (दे०) के रचयिता माधवाचार्य हैं।

माधवानल कामकंदला (गु० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती]

मध्ययुगीन गुजराती साहित्य में 'माधवानल कामकंदला' की कथा इतनी लोकप्रिय रही कि इस नाम की एक से अधिक कृतियाँ—रास, पद्य-कथा आदि रूपों में—मिलती हैं। किंतु इनमें जैनेतर कवि गणपति-रचित 'माधवानल कामकंदला' जिसे 'माधवानल कामकंदला दोग्धक' भी कहते हैं, बहुत उल्लेख्य है।

दोहा छंद में रचित यह एक सुंदर लोकवार्ता है। इसमें 2500 दोहे हैं।

विप्रलंभ श्रृंगार की इस रचना की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें बारहमासा पद्धति पर पुरुष के (नायक के) विरह का सुंदर व विस्तृत निरूपण किया गया है। रचना अलंकार-प्रधान है। भाषा का स्वरूप अपभ्रंश से प्रभावित है। वर्णन-शैली अपभ्रंश-परंपरा की अनुवर्त्तिनी है।

माधवानल कामकंदला (हिं० कृ०) [रचना-काल—1583 ई०]

इसमें अकबर के समकालीन सूफ़ी कवि आलम (दे०) ने माधवानल और कामकंदला के पारस्परिक प्रेम की कथा प्रेमाख्यानक शैली में सूफ़ी-प्रभाव के साथ वर्णित की है। आलम के अतिरिक्त जैसलमेर के वाचक कुशललाभ ने 'माधवानल कामकंदला चरित्र' तथा गणपति ने 'माधवानल प्रबंधदोग्ध बंध' नामक रचनाओं में इसी कथा का वर्णन किया है। कहते हैं कि 'गुरु-ग्रंथ साहब' (दे० नानक, गुरु) के अंतिम भाग में दी हुई 'रागमाला' इनके ग्रंथ 'माधवानल कामकंदला' का अंश है। कवि ने कामकंदला के नृत्य-गान में अपने संगीत-ज्ञान का विशेष परिचय दिया है। भाषा और विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से यह ग्रंथ आलम की ख्याति का मुख्य स्तंभ है। अन्य रीतिमुक्त कवियों (दे० रीतिमुक्त काव्य) की भाँति आलम में प्रेम की पिपासा विशेष लक्षित होती है, पर जो तन्मयता और उत्सर्ग-भावना इनमें पाई जाती है वह इनके व्यक्तित्व की निजी विशेषता है और वही इनके काव्य का सही परिचय है। भिखारी दास (दे०) ने 'काव्य निर्णय' में इन्हें रहीम (दे०), रसखान (दे०) और रसलीन (दे०) से पूर्व गिनाया है, सचमुच ही 'माधवानल कामकंदला' कवि की अन्यतम कृति है; अपनी कोटि की अभूतपूर्व रचना है।

माधविक्कुट्टि (मल० ले०) [जन्म—1932 ई०]

सुप्रसिद्ध अँग्रेज़ी कवयित्री कमलादास माधविक्कुट्टि के नाम से मलयाळम में कहानियाँ लिखती हैं। वे प्रसिद्ध कवयित्री नालप्पाट्टु बालामणियम्मा की पुत्री और नालप्पाट्टु नारायण मेनन की भागिनेयी हैं। 'चुवन्न पावाटा', 'पक्षियुटे मणम्', 'एंटे स्नेहहिता अरुणा' आदि दस ग्रंथों में उनकी कहानियाँ संगृहीत हैं। इनका अँग्रेज़ी कविता-संग्रह 'समर इन कलकत्ता' बहुचर्चित है।

पाठक को चौंका देने की सामर्थ्य, जो आधुनिक कहानियों के रचना-शिल्प का एक मुख्य लक्षण है, माधविक्कुट्टि की कहानियों की विशेषता है। उच्च-मध्य वर्ग के निस्सार-निरर्थक जीवन का अर्थगर्भित चित्रण उनकी कहानियों में दर्शनीय हैं। उनमें कुछ ऐसे मानसिक भावों और विचारों का प्रकाशन होता है जिनका हम अस्पष्ट रूप से अनुभव तो करते हैं परंतु जिनको अभिव्यक्ति देने में असमर्थ रह जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयाळम के नयी पीढ़ी के कहानीकारों में माधविक्कुट्टि का स्थान अद्वितीय है ।

माधवी (*त० पा०*)

माधवी तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम' (दे०) के प्रसिद्ध नारी पात्रों में से है । कवि इगोवडिहळ् (दे०) ने उसे नायक की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है । चात्तनार्-कृत 'मणिमेखलै' नामक महाकाव्य में यह नायिका मणिमेखलै की माँ के रूप में चित्रित है । 'शिलप्पदिकारम् में माधवी को संगीत, नृत्य और शृंगारकला में पटु नारी कहा गया है । नायक कोवलन् की प्रेयसी होते हुए भी यह उससे पत्नी का-सा व्यवहार करती है । कोवलन् के लौटकर अपनी पत्नी कण्णकि (दे०) के पास चले जाने पर वह अपने मन को यह कहकर शांत करने का प्रयत्न करती है कि 'वह दूसरे का पति है, उस पर मेरा अधिकार नहीं ।' वेश्या-कुल में उत्पन्न होने पर भी वह वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती । कोवलन् के चले जाने पर यह विधवा का-सा सादा जीवन व्यतीत करती है और उसकी मृत्यु पर बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है । 'मणिमेखलै' महाकाव्य में माधवी आदर्श नारी के रूप में चित्रित है । अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध यह अपनी पुत्री को बौद्ध भिक्षुणी बना देती है क्योंकि इसकी दृष्टि में मणिमेखलै इसकी नहीं अपितु सती कण्णकि की पुत्री है ।

कोवलन्-कण्णकि-संबंधी लोककथाओं में, लोकनाटकों में माधवी का रूप धन-लोभी वेश्या का है । आज तमिल में माधवी के चरित्र को लेकर अनेक काव्य-कृतियाँ, निबंध, नाटक आदि रचे जा चुके हैं जिनमें प्रसिद्ध हैं— 'विधियो वीणैयो' (1957 ई०) (इस गेय नाटक में कोवलन् के कण्णकि के पास चले जाने पर माधवी की मनोदशा का विस्तृत वर्णन है) इलंगैयर्कोन् (दे०)-कृत 'माधवी मडंदै' (1958 ई०) (इस नाटक में माधवी के चरित्र को) तथा भारतीदासन् (दे०)-कृत 'मणिमेखलै वेण्बा' (1962 ई०) (इसमें मणिमेखलै एवं माधवी दोनों के चरित्रों को उभारा गया है)। 'शिलप्पदिकारम्' और 'मणिमेखलै' में यह दिखाया गया है कि माधवी वेश्या होते हुए भी आदर्श पत्नी के समान जीवन-यापन करती है । इन कृतियों में माधवी के चरित्र के माध्यम से जैन एवं बौद्ध धर्म की अधोंपतितः के उद्धार की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया गया है । परवर्ती कृतियों में माधवी के माध्यम से आदर्श नारीत्व का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है ।

माधवी कंकण (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1876 ई०]

रमेशचंद्र दत्त (दे० दत्त, रमेशचंद्र) द्वारा रचित 'माधवी कंकण' अपने युग का बहुत प्रसिद्ध नाटक है । शाहजहाँ के जीवन की अंतिम अवस्था में राज्यलोलुप पुत्रों के अंतर्विद्रोह एवं राष्ट्रविप्लव की ऐतिहासिक पटभूमिका में इस पारिवारिक नाटक की रचना हुई है । लेखक ने एक ओर ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थ, तथ्यपूर्ण एवं सजीव चित्र उपस्थित किया है और दूसरी ओर चरित्रांकन में अपनी अपूर्व पारदर्शिता का परिचय दिया है । ऐतिहासिक घटना-चक्र का अंकन इतना सजीव हुआ है कि उस समय के भयानक राजनीतिक विप्लव की तरंगधारा हमारे हृदय को भी छू जाती है । रमेशचंद्र की लेखनी इतनी तीव्र एवं शक्तिशाली है कि हम भी उस वीरत्वपूर्ण गौरवमय युग में जा पहुँचते हैं ।

परिवेश-रचना के साथ-साथ लेखक ने चरित्र-चित्रण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया है । चरित्र-सृष्टि ही रमेशचंद्र का प्रथम एवं श्रेष्ठ कृतित्व है । बाल्य-प्रणय के स्मृति-निदर्शन के रूप में नायक ने अपनी प्रणयिनी को जो 'माधवी कंकण' पहना दिया था उसकी प्रणयिनी उसे वह वापस दे देती है और समस्त संपर्क छिन्न हो जाता है और पाठक का रसज्ञ हृदय विषाद की गहराइयों में डूबकर रह जाता है ।

माध्यमिक (*पा० पारि०*)

यह महायान (दे०)-शाखा का सर्वप्राचीन और सर्वाधिक प्रतिष्ठित सिद्धांत पक्ष है । इसका प्रवर्तन दाक्षिणात्य नागार्जुन ने किया था और अत्यधिक प्रतिष्ठित विचारकों द्वारा इसके प्रचार और प्रसार में योगदान दिया गया । प्रसिद्ध कवि अश्वघोष (दे०) इसी संप्रदाय के अनुयायी थे । भगवान बुद्ध ने व्यवहार-जगत् में मध्यम मार्ग का अवलंबन करने का उपदेश दिया था किंतु इस संप्रदाय में अस्ति और नास्ति के बीच मध्यम मार्ग का अवलंबन करने का उपदेश दिया जाता है। इसीलिए इसे माध्यमिक संप्रदाय की संज्ञा प्राप्त हुई है । बाह्य वस्तुओं की शून्यता का उपदेश करने के कारण इन्हें शून्यवादी भी कहा जाता है ।

इस मत में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान सभी को वस्तु-शून्य माना जाता है । रज्जु में सर्प असत्य है, वह ज्ञान असत्य है और उसका ज्ञाता मस्तिष्क भी इसीलिए असत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वस्तु का प्रारंभ, परिसमाप्ति, विनाश, नित्यता, एकता, अनेकता, आना, जाना ये सब असत्य हैं। इस प्रकार इन लोगों के मत में भौतिक जगत् भी वस्तु-शून्य है और मानसिक जगत् की भी सत्ता नहीं है जिस प्रकार स्वप्न-जगत् में मानसिक और भौतिक दोनों जगत् वस्तु-शून्य होते हैं। किंतु माध्यमिक संप्रदाय में केवल दृश्यमान जगत् की शून्यता स्वीकार की जाती है, इसके पीछे जो वास्तविकता अंतर्हित है वह अनिवार्य है। 'भौतिक या स्वप्न जगत् है' यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसका तिरोभाव होता है, 'नहीं है' ऐसा भी नहीं क्योंकि प्रतीत होता है; 'है और नहीं है' ये परस्पर विरोधी हैं, अतः यह सब मिथ्याभूत अनिर्वाच्य तत्त्व है जो एक-दूसरे के आधार पर टिका होने के सकारण कहा जा सकता है। सकारणता तथा निर्भरता ही वस्तु की शून्यता है। बाह्य जगत् की प्रतीति-संवृति सत्य है, जिसका बोध होता है इसके प्रतिकूल परमार्थ सत्य है जो कार्य-कारण रहित परम सत्य के रूप में स्थित है। उस परम तत्त्व का ज्ञान निर्वाण (दे०) के लिए अनिवार्य है। परम तत्त्व भी अनिर्वाच्य है और निर्वाण में उसकी अभिन्नता प्राप्त होती है। अनिर्वाच्यता के कारण ही कुछ ने इन विषयों पर विवाद करने का निषेध किया है।

माध्यमिक कारिका (सं० कृ०) [रचना-काल—200 ई०]

नागार्जुन (दे०)-विरचित 'माध्यमिक कारिका' का वास्तविक नाम 'मूलमाध्यमिक कारिका' है। इसे 'शून्यकारिका' भी कहते हैं। माध्यमिक कारिका का 'शून्यकारिका' नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि इसमें शून्यवाद का प्रतिपादन किया गया है। नागार्जुन ने अपनी माध्यमिक कारिका पर एक टीका भी लिखी थी, जिसका नाम 'अकुतोभया' है।

'माध्यमिक कारिका' के अंतर्गत 'मध्यमा प्रतिपत्' सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार जगत् की स्थिति सत् एवं असत् के बीच की स्थिति है। दूसरे शब्दों में नागार्जुन ने बाह्य जगत् को शून्य तथा अशून्य के मध्य की स्थिति कहा है। 'माध्यमिक कारिका' का शून्य 'अपर प्रत्यय' तथा 'शांत' है। यह शून्य परिभाषाओं का विषय नहीं है। यद्यपि शून्य ही 'माध्यमिक कारिका' के अनुसार सत्य है, परंतु शून्यता (शून्यधर्मता) की दृष्टि से युक्त जनों को 'माध्यमिक कारिका' में असाध्य रोगी कहा गया है। इस प्रकार नागार्जुन के मतानुसार शून्य के दो अर्थ हैं—एक धर्म-रूप शून्य और दूसरा सत्य-रूप शून्य। इस प्रकार सत्य के उपासक साधक के लिए वस्तुओं की शून्यधर्मता का त्याग आवश्यक है।

जहाँ तक वस्तुओं की सत्ता का प्रश्न है शून्यवादी के मतानुसार समस्त वस्तुएँ अनुत्पन्न ही हैं। इस संबंध में शून्यवादी प्रतीत्यसमुत्पादवाद सिद्धांत का प्रवर्तक है। इस सिद्धांत के अनुसार वस्तुओं की उत्पत्ति प्रतीति मात्र है, वास्तविकता नहीं।

शून्यवाद के प्रतिपादन की दृष्टि से 'माध्यमिक कारिका' बौद्ध दर्शन का अद्वितीय ग्रंथ कही जा सकती है।

मान कवि (हिं० ले०)

इनका पूरा नाम मानसिंह था। इनका रचनाकाल—1677-1683 ई० तक रहा। ये विजयगच्छीय जैन यति थे तथा मेवाड़ के राजवंश से इनका संपर्क था। इनके जन्म-मरण-काल तथा जन्म-स्थान आदि के विषय में कोई निश्चित प्रामाणिक सूचना नहीं मिलती। 'राजविलास' नामक वीररस-प्रधान काव्य इनकी महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें 18 विलास हैं। इसमें मेवाड़ के महाराणा की वीरता एवं जीवन का चित्रण है। मान की कविता में भाव-व्यंजना की मार्मिकता तथा ध्वन्यात्मकता विशेष रूप से मिलती है। इन्होंने 'बिहारी-सतसई' (दे०) की एक पद्यबद्ध टीका भी लिखी है।

मान विजयम् (त० कृ०) [रचना-काल—1952 ई०]

'मान विजयम्' सूर्य नारायण शास्त्री (दे०)-कृत एक पद्यबद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक का नायक है कणैक्कालिरुम्पोरै जो मान को प्राणों से बढ़कर मानता है और मानहानि होने पर प्राणों का त्याग कर देता है। इस नाटक का आधार है 'कळवलि नार्पद' नामक काव्यकृति सौर पुरनानूरु (दे०) में प्राप्त कणैक्कलिरुम्पोरै-कृत एक गीत। ईश-स्तुति से नाटक का आरंभ होता है। इसके उपरांत छह अंकों में चेर-सम्राट् कणैक्कलिरुम्पोरै, उनके मित्र एवं गुरु कवि पोयगैयार, चोल-सम्राट् शेंगणान आदि से संबंधित कथा वर्णित है। यह एक अभिनेय नाटक है। नाटक में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटक मूलतः अहवल छंद में रचित है, कहीं-कहीं वेण्बा और विरुत्तप्पा छंदों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। पद्यबद्ध नाटक लिखने की प्रेरणा लेखक को संभवतः शेक्सपियर से मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीकरण *(हिं० पारि०)*

साहित्य में अभीप्सित, सार्थक एवं प्रभावी अभिव्यक्ति के निमित्त प्रकृति के जड़ पदार्थों, ऐतिहासिक-पौराणिक घटनाओं, विचारों, भावों, आदि पर मानवीय चेतन- और क्रियाव्यापारों के आरोपण की प्रविधि को 'मानवीकरण' कहा जाता है। यह एक प्रकार का सादृश्य-विधान है जिसमें मानवेतर वर्ण्य-विषय के वैशिष्ट्य को उभारने के लिए कवि मनुष्य के तदनुरूप क्रियाकलापों और भावों का समानांतर निरूपण करता है। जिस प्रकार मानवीय सौंदर्य आदि विषयों के वर्णन में प्रकृति के अंगों का आरोप किया जाता है उसी प्रकार जड़ वर्ण्य को सक्रियता प्रदान करने और चैतन्य-रूप में मूर्तित करने के लिए मानवीकरण अत्यंत उपयोगी है। अमूर्त विषयों के मूर्तीकरण का भी यह एक अत्यंत सुलभ साधन है। मूलतः पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध अलंकार की यह प्रणाली कालिदास (दे०) आदि कवियों की जड़ पदार्थों को मानवीय रूपाकार में मूर्तित करने की प्रवृत्ति तथा काव्यशास्त्र में निरूपित 'उपादान लक्षणा' आदि में सहज ही देखी जा सकती है। हिंदी-कविता के कुछ उदाहरणों से इसका स्वरूप स्पष्ट हो सकता है : 'घूंघट खोल उषा ने झाँका' (जयशंकर प्रसाद), 'यह चंचल सपने भोले हैं' (महादेवी वर्मा)।

मानवीनी भवाई *(गु० कृ०)*

पन्नालाल पटेल (दे० पटेल) द्वारा रचित और और सर्वप्रथम 1947 में प्रकाशित 'मानवीनी भवाई' एक आंचलिक कालप्रधान उपन्यास है। 'भवाई' शब्द अभिधात्मक अर्थ (निम्न कोटि का नाटक) के अतिरिक्त 'संपत्ति' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। पन्नालाल पटेल ने उपन्यास के रचना-काल के लगभग चार दशक पूर्व के ऐतिहासिक संदर्भ को उठा कर नये-पुराने युग के संधि-काल में गाँवों के बदलते हुए रूप को 'झाकलिया' गाँव के माध्यम से और कालू-राजू की प्रणय-कथा को निमित्त बना कर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में काल-प्रवाह है। कथा गौण है। बालाभाई के बुढ़ापे में कालू नामक लड़का—आत्मकर्मी लड़का—पैदा हुआ। फूलीकाकी की कृपा से कालू की सगाई गलाभाई की लड़की राजू से हुई। गलाभाई, बालाभाई और फूलीकाकी के मरणोपरांत बालाभाई के भाई परमा के लड़के रणछोड़ और पत्नी माली की ईर्ष्या और द्वेष के कारण आयोजित षड्यंत्र की वजह से कालू का विवाह राजू के साथ न हो कर भली के साथ हो जाता है और राजू भली के काका के साथ उसी मुहूर्त में ब्याह दी जाती है। राजू की ससुराल निर्धन और पति बीमार है। कालू उसकी मदद करता है। राजू के दृढ़ स्वभाव और कालू के चेताने के कारण राजू रणछोड़ के छोटे भाई नानू के षड्यंत्र में फँसने से बच गई। इसी बीच 'छप्पनिया दुष्काल' पड़ा। अनावृष्टि हुई। आदमी बदल गया। गाँवों में चोरियाँ हुईं। भूख से आदमी दम तोड़ने लगा। भीलों को कच्चा मांस खाते देख कर कालू का हृदय द्रवित हो गया और ही भैंस को मारने के लिए अपनी ही तलवार दे कर घर चला आया। गाँव में लूट मची, कालू के पास हथियार होते हुए उसने सब कुछ लुट जाने दिया। गाँव वालों के लिए गाँव में से गुज़रती हुई अन्न से भरी हुई गाड़ियों को लूटते समय कालू अपना एक हाथ खो बैठा। भूख से पीड़ित लोग शहरों की ओर भागे—मिली पेट की अथाह भूख और बंदूक की गोलियाँ। सुंदरजी शेठ की समझदारी से महाजनों ने सदाव्रत खोले। पर कालू के स्वाभिमान ने (अपने द्वारा दिया गया अन्न भीख में कैसे माँगा जाय!) भीख माँगने से इनकार कर दिया। शेठ के समझाने पर कालू ने चावल तो ले लिये पर उन्हें मन पचा न सका। राजू को छोड़ कर सभी कालू की उपेक्षा करने लगे। एक दिन कालू-राजू दोनों मरने की कामना ले कर घर से निकल पड़े। कालू एक पेड़ के नीचे दम तोड़ने की स्थिति में आ गया। गला सूखने लगा। राजू ने अपना आँचल हटा कालू को अपना दूध पिला दिया। इतने में बादल घिर आए और बूँदें पड़ने लगीं। कालू की खोई हिम्मत पुनः लौट आई। राजू को भी लगा कि यम तो क्या अगर यमराज भी आ जाएँ तो भी उनकी शक्ति नहीं कि कालू को मार सकें। इस कथा के बीच-बीच में कालू और राजू के मौन प्रणय के सूत्र बुने हुए हैं संपूर्ण कथा फ़्लैशबैक पद्धति में कही गई है। इस कथा में लेखक ने काल के विस्तृत फलक पर जीवन के मधुर और तीखे चित्रों को अंकित करने का सफल प्रयास किया है।

मानसिंह कालिदास, पं० *(पं० ले०)* [जन्म—1865 ई०; मृत्यु—1944 ई०]

इनका जन्म गुजराँवाला (अब पाकिस्तान) में हुआ। ये ब्राह्मण-वंशीय थे। इनके पूर्वज अयोध्या-वासी थे। पिता का नाम था पं० जयदयाल। इन्हें उर्दू, फ़ारसी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत तथा हिंदी-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। बीसवें वर्ष में काव्य-रचना का आरंभ किया। ये प्रधानतया किस्सा-लेखक थे। प्रसिद्ध किस्सा-रचनाएँ: (1) रूप-बसंत, (2) राजा हरिश्चंद्र, (3) पूर्णभगत, (4) गोपीचंद, (5) राजा रसालू एवं किस्सा प्रह्लाद-भगत। 'रामायण' (दे०) महाकाव्य दोहा छंद में लिखा। यह महाकाव्य वाल्मीकि एवं तुलसी से प्रभावित है। इनकी भाषा पंजाबी परंतु हिंदी-संस्कृत शब्दावली से प्रभावित है।

इनकी विशेष रुचि किस्सा-कथन में थी परंतु मनोरंजन की अपेक्षा आचार-विचार एवं धार्मिक प्रेरणा से साहित्य लिखा है। कवि की निजी उक्ति है—'मैंने इन किताबों के ज़रिये से इलावा इखलायक के इखलाक और नीतिशास्त्र, ब्रह्म विद्या की तालीम का उपदेश दिया है।' काव्य-शैली वर्णनात्मक-परंपरागत है। ये महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र महाराजा शेरसिंह के प्रतिष्ठित दरबारी कवि भी रहे।

मानसी *(अ० कृ०)* [रचना-काल —1942 ई०]

नीलमणि फुकन (दे०) के इस काव्य-संग्रह में कवि की सौंदर्य-पिपासा का परिचय मिलता है। इसमें रहस्यवादी दर्शन भी है। कवि अपनी रचनाओं में बौद्धिक एवं अतींद्रिय सौंदर्य की खोज करता है। 'अरुपर रूप', 'मानस-प्रतिमा', 'तुमि कोत' आदि सुंदर कविताएँ हैं।

माप्पिळा कंटत्तिळ्, वर्गीस *(मल० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1904 ई०]

भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता के क्षेत्र में एक प्रातःस्मरणीय नाम कंटत्तिल् वर्गीस माप्पिला का है। वर्गीस माप्पिळा ने अपना संपूर्ण जीवन पत्रकारिता और संगठित साहित्यिक प्रयासों के प्रति समर्पित कर दिया था। 1881 ई० में उन्होंने एक गुजराती उद्योगपति को प्रेरणा देकर मलयाळम का प्रथम राजनीतिक-साहित्यिक दैनिक पत्र 'केरलमित्रम्', निकलवाया और स्वयं उसके संपादक बने। 1890 ई० में उन्होंने 'मलयाळम मनोरमा' का प्रकाशन आरंभ किया। 1892 ई० में भाषापोषिणी सभा की स्थापना की और बाद में 'भाषापोषिणी' मासिक का भी प्रकाशन शुरू किया। सर्जनात्मक साहित्य में भी उनका योगदान रहा है। बाइबिल की एक कथा पर आधारित उनका नाटक 'एन्नायक्कुट्टी' पाश्चात्य विधाओं के अनुरूप रचित प्रथम मलयाळम नाटक है। शेक्सपियर के नाटक 'टेमिंग ऑफ़् द श्रू' का उन्होंने 'कलहिनीदमनकम्' के नाम से अनुवाद किया है।

वर्गीस माप्पिळा द्वारा स्थापित 'मलयाळम' मनोरमा का केरल की शिक्षा की उन्नति में स्तुत्य योगदान रहा है भारतीय भाषाओं के पत्रों में आज भी इसका स्थान बहुत ऊँचा है। भाषापोषिणी सभा की वे जान थे। केरलवर्मा वलिय कोयित्तंपुरान (दे०), कुञ्ञिक्कुट्टन (दे०) तंपुरान् आदि महारथियों का सहयोग प्राप्त करके उन्होंने इस सभा के माध्यम से काव्य-प्रतियोगिताएँ चलाईं और नयी प्रतिभाओं को ढूँढ़ निकाला। भाषा और साहित्य के इस अनन्य सेवक के प्रयत्नों से उन्नीसवीं शती के अंत में मलयाळम-साहित्य को नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई। साहित्य के इतिहास में इनका स्थान अद्वितीय है।

माप्पिळा के० सी०, मामन *(मल० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

मलयाळम के सुप्रसिद्ध पत्रकार। कंटत्तिल् वर्गीस माप्पिळा (दे०) द्वारा संस्थापित 'मलयाळम मनोरमा' का प्रकाशन उनके देहांत के बाद इस उत्साही पत्रकार ने अपने हाथों में लिया और उसे और अधिक उत्कर्ष एवं प्रभावात्मकता प्रदान की। साहित्यिक और सांस्कृतिक आंदोलनों को इन्होंने सदा प्रोत्साहन-समर्थन दिया। ये स्वतंत्रता-सैनिक और प्रमुख उद्योगपति भी थे। इनके प्रकाशनों में इनकी आत्मकथा के अंश प्रमुख हैं।

मामा वरेरकर (मा० वि० वरेरकर) *(म० ले०)* [जन्म—1883; मृत्यु—1964 ई०]

मामा वरेरकर की ख्याति स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्षधर के रूप में है। अपने नाटकों तथा उपन्यासों—दोनों में इन्होंने समसामयिक सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों—विधवा-विवाह, तलाक, ग्राम-सुधार, मिल-जीवन, शराब-बंदी आदि को अपनाया है। 'विधवा कुमारी' में यदि विधवा की समस्या पर लिखा गया है तो 'धावता धोटा' में मिल-मजदूरों की समस्या पर। इनकी कृतियों की नायिकाएँ—मथू, बिजली, गोदू, वेणू आदि ऐसी अत्यंत तेजस्विनी, प्रगतिशील, आत्मनिर्भर, कर्मठ एवं दृढ़ स्त्रियाँ हैं जो उत्पीड़ित नारी के लिए आदर्श एवं प्रेरणा का कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। इनके उपन्यासों के विषय सामयिक महत्व के थे, अतः उनका स्थायी महत्व संदिग्ध ही है। शरत् (दे० शरच्चंद्र) के बँगला कथा-साहित्य के अनुवाद करने का श्रय भी इन्हें है। उपन्यास-शिल्प की दृष्टि से इन उपन्यासों में कतिपय दोष भी हैं—उनके नायक-नायिकाएँ। नायिकाओं के माता-पिता एक-से हैं। इनके कथानक त्रिकूट के चारों ओर केंद्रित हैं और अंत में विशृंखलित, अविश्वसनीय और प्रभावहीन हो जाते हैं। पर पलायनवाद और स्वप्नरंजन के युग में यथार्थ की पताका फहराने, तेजस्वी स्त्री-पात्रों की सृष्टि करने, विचार-प्रधान उपन्यास का मराठी में श्रीगणेश करने के कारण मामा वरेरकर का महत्व अक्षुण्ण है।

मुख्य ग्रंथ—**उपन्यास** : 'चिमणी', 'विधवा कुमारी' (दे० मथू), 'धावता धोटा', 'गोदू गोखले' भाग 1-2, 'कुलदैवत', 'फाटकी वाकळ', 'शिपायाची बायको'। **नाटक** : 'सोन्याचा कळस' (दे०), 'भूमिकन्या सीता' (दे०) आदि।

मामूँ *(उ० कृ०)*

'मामूँ' फ़कीर मोहन सेनापति (दे०) का सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास है। ओड़िशी-जीवन का सहज स्वाभाविक रूप इसमें उभरकर आया है। गण-जीवन की अकृत्रिम झाँकी अपने कोमल-कठोर रूप में हमें मुग्ध कर लेती है। व्यक्ति-मानस की जटिलताओं का सफल उद्घाटन हुआ है। कथावस्तु, परिवेश, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से उपन्यास का ओड़िशीपन हमें मुग्ध कर लेता है।

मामूलनार *(त० ले०)* [समय—प्रथम शती ई०]

ये तृतीय संघ के सदस्य थे। 'तोलकाप्पियम्' (दे०) (लक्षण-ग्रंथ) के व्याख्याता—'नच्चिनारक्किनियर्' ने लिखा है कि ये महर्षि अगस्त्य के गोत्रज थे और त्रिकालज्ञ योगी थे। इनके 31 पद्य संघकालिक संकलनों में प्राप्त होते हैं। इनकी रचना की एक विशेषता है—अपने समय की प्रसिद्ध कई राजनीतिक या सामाजिक घटनाओं का उल्लेख; दूसरी विशेषता है—अत्यंत मनोहारी विरह-वर्णन। इनकी रचनाओं से पता चलता है कि महाराज चंद्रगुप्त का पुत्र 'तुलु' था, जिसने 'तुलु-प्रदेश' का निर्माण किया था (जो कर्णाटक का एक भाग है)। इनकी रचनाओं से ज्ञात होने वाले कुछ तथ्य हैं—महाभारत का युद्ध जब हुआ था, तब कौरव तथा पांडव दोनों की सेना के लिए 'उदियञ्चेरल्' नामक पांडव राजा ने रसद भेजी थी और प्रभूत मात्रा में चावल भेजा था। प्रसिद्ध चोल्राजा करिकाल से युद्ध में परास्त 'पेरुम्चेरल्आदन्' अपनी पीठ पर घाव लग जाने से लज्जित होकर उत्तराभिमुख होकर युद्ध-रंग में बैठ गया था और अनशन कर उसने प्राण त्याग दिए थे। 'मत्ति' नामक राजा ने अपने द्वारा परास्त एक अन्य राजा के दाँत उखड़वा दिए थे और अपने प्रासाद के एक किवाड़ में उन्हें जुड़वा दिया था। इसी प्रकार उस समय के अनेक दुर्गों तथा राजाओं का वर्णन इनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।

मायन् *(मल० पा०)*

यह उरूब (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'उम्माच्चु' (दे०) का मुख्य पुरुष पात्र है। यह उम्माच्चु से विवाह करना चाहता है, पर असफल रहता है। यह कुशलतापूर्वक उम्माच्चु के पति की हत्या करता है, पर जब कई साल बाद इसको यह पता लग जाता है कि मृतक और उम्चाच्चु का पुत्र बालक अब्दु इसके अपराध का साक्षी था तो यह विह्वल होकर आत्महत्या कर लेता है।

यह एक सत् पात्र है। अपनी प्रेमिका के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए यह नर-हत्या भी करता है, पर इसका अंतःकरण इस पाप को सह नहीं सकता। इसका पाप-बोध एक समय तक प्रसुप्त रहता है और समय पाकर इसकी जान भी ले लेता है। इसके चरित्र को मनोवैज्ञानिक रूप से विकसित करने में उरूब को पूरी सफलता मिली है।

माया *(उ० पा०)*

माया श्रीमती बसंतकुमारी पटनायक (दे०) के उपन्यास 'अमड़ाबाट' (दे०) की प्रधान स्त्री-पात्र है। इसके चरित्र के माध्यम से लेखिका ने बताया कि नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व व स्वच्छंद व्यवहार को परंपरा से सर्वथा भिन्न देखकर, उसके प्रति किसी भी प्रकार की भ्रांति या दुर्भावना नहीं होनी चाहिए। अंततोगत्वा उसकी विचारशीलता व नारी-सुलभ भावनाएँ ही उसके चरित्र का निर्माण करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया इकलौती पुत्री व अकेली बहिन होने के कारण अत्यंत लाड़ली है, फलतः निर्द्वंद्व व ज़िद्दी है। लोग इसके बाह्य व्यवहार को देखकर इसके संबंध में ग़लत धारणा बना लेते हैं। इसकी उच्च शिक्षा से इस भ्रांति को और बल मिलता है। इसे मर्दानी कहा जाने लगता है। इसके उन्मुक्त व्यवहार के कारण लोग वितृष्णा से मुँह मोड़ लेते हैं। इसके अंतः सौंदर्य, भव्य भावों और उच्च मानवीयता के प्रति कोई ध्यान नहीं देता। माता-पिता उसके विवाह को लेकर चिंतित रहते हैं।

माया की सुशिक्षिता, व्यवहारकुशला और सुंदरी भाभी यद्यपि इसे शिक्षा लेने की ताड़ना देती रहती है, तथापि उसकी कृत्रिम शिष्टता, नकली सेवापरायणता, छलनामयी ममता, कुटिल बुद्धि अधिक दिनों तक इस दिखावे की ओट में छिप नहीं पाती। उसका सच्चा रूप विवाह के कुछ दिनों बाद ही प्रकट हो जाता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति असहिष्णु रहकर वह अपने पति के साथ अलग हो जाती है।

शशिभूषण की माँ की पारखी दृष्टि माया के भव्य गुणों को पहचान लेती है और कुलवधू के रूप में सप्रेम ले जाती है। इसके पति शशिभूषण ने वकालत पास की है, किंतु वह निर्धन है। विदाई के समय माँ ने इसे शिक्षा दी थी कि 'वधू का धर्म निबाहना'। ससुराल में यह अपने ममत्वपूर्ण व्यवहार, त्याग एवं सेवा से सुख-शांति की वर्षा कर देती है। रुग्ण मातृ तुल्य सास की सेवा लगन व श्रद्धा से करती है। उनके उपचार के लिए अपने आभूषणों को सहर्ष बेच देती है।

सास की गंभीर स्थिति में मरणासन्न पिता की इसे देखने की अंतिम इच्छा का पत्र मिलता है। इसे दुविधा में छोड़ यहीं पर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

यह औत्सुक्यपूर्ण अंत में इसके चरित्र-विश्लेषण का अवसर पाठक को दे देता है। माया अवश्य ही माँ को दिए अपने वचन को पूरा करेगी और वधू का धर्म निबाहेगी।

माया (मल० कृ०) [रचना-काल—1961 ई०]

यह के० सुरेंद्रन (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। इसका मुख्य पात्र डीसंट शंकर पिळ्ळा अपनी निम्न आर्थिक स्थिति को कठोर यत्न के द्वारा सुधारता है और अपनी संतात की भलाई के लिए उन्हीं को मोहरे बनाकर विचित्र खेल खेलता है। अपनी सुचिंतित योजनाओं को अपनी ही संतानों के हाथों ढहाए जाते देखकर शंकर पिळ्ळा टूट जाता है और आत्महत्या कर लेता है।

इस उपन्यास में डीसंट शंकर पिळ्ळा का चरित्र-चित्रण सुंदर हुआ है। उसकी महत्वाकांक्षा और इच्छा-शक्ति प्रबल है। परंतु मानवीय संबंधों का बलिदान देकर बनाई गई योजनाएँ प्रकृति भी सहन नहीं कर सकती। यहीं शंकर पिळ्ळा पराजित हुआ। इस इतिवृत्त के प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण में सुरेंद्रन सफल हुए हैं।

मायादेबी (उ० कृ०)

डा० नीलकंठ दास (दे०) का यह काव्यग्रंथ 'मायादेबी' काव्य भारतीय नारीत्व की गौरव-गाथा है। नारी के उज्ज्वल व्यक्तित्व एवं भव्य त्याग का स्मारक है —ज्योतिर्मंदिर 'कोणार्क'। नारी भी जीवन-उदधि में उत्सर्गित प्रेम-मंदिर है, जहाँ से रश्मि-रेखाएँ विकीर्ण होती हैं। अर्ध-मानवी और अर्ध-देवी के रूप में चित्रित मायादेबी नारी-जगत् की विभूति है।

राधानाथ राय (दे०) के प्रणयमूलक काव्यों में जो प्रणयचित्र उपलब्ध हैं, वे भारतीय परंपरा एवं जीवनादर्श के सर्वथा विरोधी हैं। 'मायादेबी' काव्य राधानाथ को यथोचित प्रत्युत्तर है।

उत्कल नरेश अनंतभीम देव के पुत्र नरसिंह देव का परिचय शिशुपालगढ़ की राजकुमारी मायादेबी (दे०) से दस्युदमन का कार्य करते हुए होता है। समय के अंतराल में वह प्रणय में बदल जाता है। नरसिंह देव मायादेबी को विवाह की प्रतिश्रुति देकर लौट आते हैं। इस घटना से अनभिज्ञ पिता जंबू राजकुमारी से उनका विवाह निश्चित कर देते हैं। वस्तुस्थिति स्पष्ट होने पर दोनों धर्म-संकट में पड़ जाते हैं। उपाय न देखकर नरसिंह देव सारी बातें मायादेबी को बताते हैं। मायादेबी सहर्ष अपनी स्वीकृति ही नहीं देती है, साथ ही पुत्र के रूप में पितृवचन की रक्षा का कर्तव्य-बोध भी उन्हें कराती है। अंत में जंबूकुमारी की सेवा कर अपने को कृतार्थ कर लेने की इच्छा भी प्रकट करती है।

अनंग भीमदेव की मृत्यु के पश्चात् नरसिंह देव का विवाह जंबू राजकुमारी से हो जाता है। नरसिंह देव उन्हें मायादेबी के बारे में पूरी बातें बता देते हैं और उन्हें बड़ी बहन के रूप में ले आने को कहते हैं। नरसिंह देव जल-दस्यु दमनार्थ ताम्रलिप्त जाते हैं एवं जंबू राजकुमारी मायादेबी को लाने के लिए भी दोनों परस्पर के व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मुग्ध होती हैं। किंतु जंबू राजकुमारी द्वारा आलिंगन करते समय मायादेबी की मृत्यु हो जाती है। एक संदूक में उनके शव को रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है।

नरसिंह देव वापस आने पर मायादेबी की मृत्यु से अत्यंत दुःखी होते हैं। वह संदूक बहता हुआ मित्रवन (कोणार्क) में लगता है। मायादेबी के अतींद्रिय प्रेम का उज्ज्वल स्मारक है आज का कोणार्क।

परिशिष्ट में कवि ने इस आदर्श प्रेम-कथा को दैविक स्वरूप देकर उसे रहस्यमय बना दिया है। नरसिंह देव सूर्य एवं मायादेबी तथा जंबू कुमारी उनकी पत्नी छाया एवं सवज्ञा बताई गई हैं। पूर्व अभिशाप के कारण माया-देबी जंबू राजकुमारी के शरीर में लीन होकर स्वर्ग को लौट जाती है।

काव्य की मौलिकता तथा नवीनता असंदिग्ध है। भावों की दीप्ति, प्रकृति की मनोहर छटा, भाषा का अभिव्यंजना-लालित्य, चरित्रचित्रण की अपूर्व भंगिमा आदि गुण काव्य को मनोहारिता प्रदान करते हैं।

मायादेबी *(उ० पा०)*

मायादेबी डा० नीलकंठ दास (दे०) के 'माया-देबी' (दे०) काव्य की नायिका है। यही अर्द्धदेवी तथा अर्द्धमानवी है। इस काव्य की कथावस्तु द्वादश व त्रयोदश शती की एक किंवदंती पर आधृत है। इस काव्य में माया देबी के दुग्ध-धवल व्यक्तित्व पर कवि ने रहस्यमयता का झीना अवगुंठन डाल कर उसे और भी सुंदर बना दिया है। प्रेम की ऊष्मा और त्याग की शीतलता ने इसके व्यक्तित्व को धरती की मनोज्ञता और स्वर्ग की दिव्यता दोनों ही प्रदान की हैं।

मायादेबी भुवनेश्वर समीपवर्ती शिशुपालगढ़ की एक निर्धन सामंत-कन्या है। दस्यु-दमनार्थ गए नरसिंह देव के साथ इसका आकस्मिक रूप से परिचय होता है जो बाद में प्रणय में बदल जाता है। इस घटना से अनभिज्ञ पिता अनंग भीमदेब, जंबूदेश की राजकुमारी के साथ नर-सिंह देव का विवाह-संबंध निश्चित कर देते हैं। नरसिंह देव को अपने पिता के इस कार्य का ज्ञान नहीं है। पिता पुत्र पर अपनी इच्छा थोपना नहीं चाहते; अतः अंतिम निर्णय पुत्र पर छोड़ देते हैं। इधर पुत्र सत्यभ्रष्ट, उधर पिता सत्यभ्रष्ट। भीषण आत्मग्लानि के साथ नरसिंह देव समस्त वृत्तांत मायादेबी को बताते हैं। मायादेबी निरुद्विग्न रूप से अपने सुख का त्याग करने को प्रस्तुत हो जाती हैं।

विवाह के तुरंत बाद युवराज को ताम्रलिप्त के जलदस्युओं के दमन के लिए जाना पड़ता है। जाते समय उसका युवराज्ञी को स्पष्ट निर्देश होता है कि वह अविलंब मायादेबी से साक्षात्कार कर उसे बड़ी बहन का सम्मान दे। परंतु मिलते ही इसकी मृत्यु हो जाती है और इसके मृत शरीर को सुंदर संदूक में बंद कर दया नदी में बहा दिया जाता है। नरसिंह देब के वापस आने तक संदूक बहता हुआ 'मित्रवन' या कोणार्क में आकर लगता है। कवि के अनुसार कोणार्क इसी स्मृति का तुलनात्मक स्मारक है।

अंत में दैवी शक्ति का आश्रय लेकर कवि ने मायादेबी के चरित्र को रहस्यमय बना दिया है—पूर्व जन्म के सूर्य एवं छाया ही इस जन्म में नरसिंह देब एवं माया-देवी हैं। इसे स्वार्थ अभिमान और विचास-वासना छू तक नहीं गई है—केवल प्रेम के लिए वह त्याग करती है और त्याग के लिए प्रेम।

मायाधर मानसिंह, डा० *(उ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

सबुज-साहित्यिकों के प्रायः समसामयिक डा० मायाधर मानसिंह में सबुज-साहित्य (दे०) चेतना से एक बहुत बड़ा व्यतिक्रम परिलक्षित होता है, जो इनके 'पर धर्म' निबंध से स्पष्ट है। इसी व्यतिक्रम में मानसिंह की रचनात्मक मौलिकता अंतर्निहित है। उड़िया-साहित्य में मानसिंह का आगमन सबुज-साहित्य से एक नये मोड़ की सूचना देना है। विगत अर्द्धशती से उड़िया-साहित्य को मानसिंह ने काव्य, नाटक, समीक्षा, निबंध, इतिहास आदि का विपुलदान दिया है। इनकी चेतना समस्त मानवता की मुक्ति का संधान करती रही है।

स्निग्ध प्राकृतिक परिवेश से मंडित बंदला (पुती) में इनका जन्म हुआ था। उसके चित्रमय सौंदर्य को कवि ने तरुणाई की तरलता देकर चित्रित किया है। प्रणय, सौंदर्य, स्वदेशानुराग और मानवतावाद को इनके काव्य में सरस अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। 'मसल व ऐंद्रिय प्रेम नूतन-अभिव्यंजना-शैली में थिरक उठा है। इनके साहित्य में एक और मध्ययुगीन इतिहास पुनर्जीवित हो उठा है, और दूसरी ओर वियोग की आशा-आकांक्षा को भी वाणी मिली है।

अब तक इनकी 25 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'कमलायन' (दे०) काव्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें इस युग का जीवन-बोध एवं मानव-वेदना का बृहत्तर चित्र मिलता है। काव्य के समान गद्य के क्षेत्र में भी मानसिंह का योगदान महत्वपूर्ण है। उड़िया-गद्य-साहित्य के विकास में मानसिंह का निबंध आलोचनात्मक साहित्य अपने सत्य और सौंदर्य के लिए अविस्मरणीय रहेगा।

मायामरीया रणुवार गीत *(अ० कृ०)*

यह ऐसा असमीया बैलेड है जो बहुत प्राचीन नहीं है। इसमें मायामरीया लोगों को विद्रोह के लिए उत्तेजित किया गया है।

मायावी *(त० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

ये तमिल के उन अर्वाचीन लेखकों में हैं जो उपन्यास, लघुकथा आदि सृजनात्मक लेखन में यशस्वी हो चुके हैं। 'मायावी' इनका उपनाम है और 'एस० के० रामन्' वास्तविक नाम है। बंबई आदि शहरों में तमिल प्रदेश के बाहर रहने वाले तमिलभाषी लोगों के जीवन पर आधारित रोचक कथाओं का लेखन इनकी मुख्य विशेषता है। ये स्वयं बंबई के रहने वाले हैं। 'कलैमहल्', 'आनंतविकटन्' आदि लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाएँ इनके लेखन के लिए स्थान देती आई हैं। इनके कुछ प्रकाशन ये हैं—'मरुमलर्च्चि', 'वाटामलर्' 'चन्तिरकिरकणम्' (तीनों उपन्यास); 'श्रकति', 'चामुण्टियिन्चापम्' (दोनों लघुकथा-संग्रह); 'इळमैयिन् कुरल्' (नाटक) इत्यादि। 'तमिल वळरच्चिक्कलम्' नामक साहित्य-संस्था द्वारा इनका 'वाटामलर्' नामक उपन्यास 1953 ई० में पुरस्कृत हुआ था। 'अन्पिन् ओळि' नामक उपन्यास 'कलैमहल्' पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होकर जनप्रिय सिद्ध हुआ था।

मारना *(ते० ले०)* [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०]

ये 'कवित्रय' के तिक्कना सोमयाजी (दे०) के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचना 'मार्कंडेयपुराणमु' है जो संस्कृत मूल के अनुवाद-रूप में लिखा गया आठ सर्गों का विशालकाय काव्य है। यह धर्म-प्रतिपादक काव्य है। इसमें अनेक धार्मिक तथा आध्यात्मिक कथाएँ सम्मिलित की गई हैं।

इस काव्य की रचना के उपरांत लिखे गये 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' (दे०), 'मनुचरित्रमु (दे०) आदि कई विख्यात तेलुगु प्रबंधकाव्यों की कथा-वस्तु इसी मार्कंडेयपुराणमु' से ली गई है। इस काव्य की रचना प्रौढ़ तथा मनोरम है। कवि ने अपने गुरु तिक्कना सोमयाजी की शैली का अनुकरण करने का यत्न किया है। अतः इनके काव्य में अनुवाद की कृत्रिमता का आभास नहीं होता।

मारार, कुट्टिकृष्ण *(म० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1973 ई०]

ये मलयाळम के शीर्षस्थानीय समालोचक हैं। इन्होंने अपने जीवन का काफ़ी अंश महाकवि वळ्ळत्तोळ (दे०) के सहयोगी के रूप में बिताया था। इस बीच 'केरल कला मंडलम्' में ये कथकली के विद्यार्थियों के साहित्याध्यापक भी रहे थे। अंत में ये 'मातृभूमि' पत्रिका में कार्य करके सेवा-निवृत्त हुए।

मारार की समालोचनाओं का संग्रह 'कला जीवितम् तन्ने' केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत है। 'राजांकणम्' (दे०), 'चर्चायोगम', 'दंतगोपुरम्' आदि अन्य निबंध-संग्रह हैं।' 'साहित्यभूषणम्', 'वृत्तशिल्पम्' (दे०), 'मलयाळशैली' आदि इनके साहित्यशास्त्रीय लक्षण-ग्रंथ हैं। कालिदास (दे०) के तीनों महाकाव्यों और 'शाकुंतलम्' (दे० अभिज्ञान शाकुंतलम्) नाटक के व्याख्या-सहित अनुवाद भी मारार ने प्रस्तुत किए हैं।

मारार कला को जीवन से अभिन्न मानते हैं। ये पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनों पद्धतियों की समालोचना में सिद्धहस्त हैं। इनकी कृतियों में इन दोनों का समुचित सम्मेलन दर्शनीय है। 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) के विभिन्न पात्रों और प्रसंगों का सूक्ष्म विश्लेषण करके इन्होंने अनेक नूतन मतों की स्थापना की है। वळ्ळत्तोळ, आशान् जैसे कवियों की रचनाओं का आस्वादन मारार की समालोचना के प्रकाश में ही पूर्ण होता है। इनके मत में उत्तम समालोचना में समालोचक के व्यक्तित्व का प्रकाशन मुख्य है और निष्पक्षता का दावा ढोंग है।

सशक्त समालोचक, भारतीय कवियों के मूल्यांकन और साहित्यशास्त्री के रूप में मलयाळम में इनका स्थान अद्वितीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारी हकीकत (गु० कृ०) [रचना-काल—1866 ई०]

गुजराती गद्य के जनक व आधुनिक युग के प्रवर्तक कविवर नर्मदाशंकर (दे० नर्मद) की यह आत्मकथा है। इसकी कुछ मुद्रित प्रतियाँ कवि ने अपने मित्रों को इस सूचना के साथ दे रखी थीं कि कवि की मृत्यु के बाद, इसमें वर्णित कुछ पात्रों के न रहने पर इसे प्रकट किया जाए।

'नर्मगद्य' (दे०) भा० 2 के पृ० 60 से 132 तक में प्रकाशित इस आत्मकथा के आधार पर 1887 ई० में स्व० नवलराम पंड्या (दे०) ने 'कवि-जीवन' लिखा। 'गुजराती' पत्र के संपादक इच्छाराम देसाई की इच्छा इस आत्मकथा को प्रकाशित करने की थी, जो उनके पुत्र नटवर लाल देसाई ने 'नर्मद शताब्दी वर्ष' 1933 ई० में पूर्ण की। संपादक ने इस आत्मकथा को अध्याय, शीर्षक, उपशीर्षक देकर मूल को अधिक सुपाठ्य बना दिया। इसमें प्रारंभ में संपादक ने नर्मद-दलपत-मिलन प्रसंग जोड़ दिया है। इस आत्म-वृत्तांत में नर्मद-जन्म (1833) से लेकर सितबंर 1866 तक (अर्थात् 33 वर्षों की) की घटनाएँ निरूपित हैं। नर्मद का जन्म 1833 ई० में और मृत्यु 1886 ई० में हुई।

दस अध्यायों व 94 पृष्ठों में प्रकाशित इस आत्मकथा के प्रथम विराम (अध्याय) में नर्मद ने अपने जन्म, गोत्र व जाति का परिचय दिया है। औक्षणस गोत्र में उत्पन्न, वडनगरा नागर नर्मद के पिता लालशंकर दवे बड़े परिश्रमी, उद्यमी व पुत्र-प्रेमी थे। नर्मद की माँ का नाम नवदुर्गा (ससुराल में रुक्मिणी) था। दूसरे विराम में बचपन, तीसरे में शिक्षारंभ का वर्णन है। नर्मद ने पाँच वर्ष की अवस्था में बंबई में नाना मेहता की पाठशाला में अक्षरारंभ किया था। आठवें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। चौथे विराम में नर्मद के कौमार-काल तथा उच्चशिक्षा का वर्णन है। पाँचवें विराम में अध्यापकीय जीवन के प्रारंभ की कथा है। छठे विराम में नौकरी छोड़ कर इनके पुन: बंबई कालेज में पढ़ने चले जाने का वर्णन है। इसी बीच इनके विवाह और दो प्रसूतियों के बाद पत्नी की मृत्यु का उल्लेख किया गया है। सातवें विराम में भी कवि की पारिवारिक स्थितियों की चर्चा है। आठवें विराम में सुधार-वृत्ति का उदय, नौवें में कवि के यश:काल का तथा दसवें में कवि के मध्याह्न-काल का वर्णन है।

अंतिम पृष्ठ पर कवि के हस्ताक्षर व अँग्रेज़ी तथा भारतीय तिथियों का उल्लेख है। इस प्रकार, नर्मद के जीवन के 33 वर्षों का यह प्रामाणिक आत्मवृत्तांत है।

इसमें नर्मद की स्पष्टवादिता और बेबाकी के दर्शन होते हैं। लेखन-शैली में नर्मद की निजी छाप है। भाषा सरल तथा आज से 125 वर्ष पूर्व के रूप की परिचायक है। पिता, गुरु, प्रोफ़ेसर सब के प्रति आदर भाव होने पर भी सूरती शैली के प्रभाव के कारण एकवचन का प्रयोग हुआ है।

गुजराती की प्रथम आत्मकथा के रूप में विद्वान् लोग इसका अपूर्व ऐतिहासिक महत्व आँकते हैं।

मारुई (*सिं० पा०*)

सिंधी-साहित्य में उमर-मारुई की प्रेमगाथा प्रसिद्ध है। मारुई इसी प्रेम गाथा की नायिका है। यह जाति की गड़ेरिन थी और थरपारकर ज़िले के मलीर नामक गाँव में रहती थी। यह जितनी ही सुंदर थी उतनी ही शीलवती थी। अमरकोट के बादशाह उमर ने जब मारुई के सौंदर्य की प्रशंसा सुनी तब वह इसे भगाकर अपने यहाँ ले आया। उमर ने बहुत ही प्रयत्न किए कि यह उससे विवाह करे, परंतु उसके सभी प्रयत्न विफल सिद्ध हुए। इसकी सगाई अपनी जाति के एक युवक खेलसेन से हो चुकी थी। अत: वह परपुरुष का सपने में भी ध्यान नहीं कर सकती थी। उमर ने जब इसकी पवित्रता, शील और दृढ़ निश्चय को देखा तब उसके मन में परिवर्तन आया और उसने आदरपूर्वक इसे इसके गाँव भेज दिया। सिंधी-साहित्य में यत्र-तत्र इसके संदर्भ मिलते हैं। सूफ़ी संत कवियों ने इसे आत्मा के रूप में चित्रित किया है जो सांसारिक आकर्षणों में न फँसकर परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल हैं। सिंधी-साहित्य में मारुई पवित्रता, शील, त्याग और देशप्रेम का प्रतीक मानी गई है।

मारो इंग्लैंडनो प्रवास (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

लेखक—करसनदास मूलजी (1832-1871) गुजराती साहित्य में यह विदेश-यात्रा का प्रथम वर्णन है। मूलजी इंग्लैंड की यात्रा करने वाले प्रथम गुजराती थे। लेखक की शैली में आकर्षण है, और माधुर्य भी है। केवल विदेश-यात्रा विषयक प्रथम कृति की दृष्टि से ही नहीं अपितु कथन और वर्णन के सौंदर्य के लिए इसका प्रवास-साहित्य में उच्च स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कंडदास *(उ० ले०)* [समय—अनुमानतः पंद्रहवीं शती ई०]

विद्वानों का मत है कि मार्कंडदास का जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनकी रचना 'केशब-कोइलि' (दे०) निर्दिष्ट समय वाली कोइलि रचनाओं में प्रथम है। चउतिशा (दे०) शैली में लिखी गयी यह रचना अत्यंत लोकप्रिय है। इसकी करुणार्द्र मूर्च्छना पाठक को द्रवित कर देती है। कृष्ण के वियोग में माता यशोदा का उमड़ता वात्सल्य, कोयल को संबोधित कर, अपने स्नेह-तरल-व्याकुल भावों को अभिव्यक्त करता है तथा कोयल से सांत्वना-प्राप्ति की आकांक्षा रखता है। इसमें उड़िया गार्हस्थिक-सामाजिक चित्र, आचार-व्यवहार आदि बड़े सुंदर रूप से उभर आये हैं।

साधारणतः बाह्य दृष्टि से यह काव्य पुत्र-विरह-जनित माता यशोदा का विलाप ही प्रतीत होता है, किंतु अतिबड़ी जगन्नाथदास (दे०) ने इसके अंतर्निहित गूढ़ दार्शनिक अर्थ की भी पांडित्यपूर्ण व्याख्या की है। जीव, परमपिंड, पिंड में जीव की लीला, परमात्मा के वियोग में जीवात्मा की विरह-वेदना आदि दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या, जगन्नाथ जी ने अपनी रचना में 'केशव कोइलि-टीका' में की है।

मार्कंडदास पंचसखा (दे०)-युग के पूर्ववर्ती कवि हैं। उस समय लौकिक उदाहरणों के माध्यम से गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों की व्याखया की परिपाटी थी। पंचसखा तथा कवियों ने भी इस परंपरा का पालन किया है।

मार्ग *(क० पारि०)*

कन्नड के प्राचीन काव्यशास्त्रकारों ने काव्य के दो रूप बताये हैं—मार्ग और देसि। मार्ग-काव्य को ही 'वस्तुक काव्य', 'चंपू-काव्य', भी कहा जाता है। देसिकाव्य को 'वर्णक' (दे०) अथवा 'हाडुगब्ब' कहा जाता है। कन्नड के सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'कवि-राजमार्ग (दे०) 'मार्ग के अनंत भेद हैं' कहकर उत्तर मार्ग और दक्षिण मार्ग, का उल्लेख किया गया है। विद्वानों के अनुसार यह भेद काव्य के उक्तिवचित्र्य और गुण-वैशिष्ट्य पर आधारित है। 'मार्ग-काव्य' के स्वरूप के संबंध में विचार करने से ज्ञात होगा कि इसमें संस्कृतपन अधिक रहता है। छंद, अलंकार आदि सभी विषय संस्कृत से गृहीत होते हैं अथवा उससे प्रभावित रहते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र में इनके संबंध में जो नियम बताये गये हैं, वे ही नियम यहाँ भी लागू होते हैं। आधुनिक युग के कतिपय कवियों ने प्राचीन परंपरा का पालन किया है। जिन काव्यों में ऐसी परंपरा का पालन हुआ हो, उन्हें आधुनिक काल में रचित होने पर भी 'मार्ग-काव्य' ही कहा जा सकता है। संक्षेप में 'मार्ग-साहित्य' को 'क्लासिकल लिट-रेचर' कह सकते हैं।

मार्ग कविता *(ते० पारि०)*

'कुमारसंभवमु' (दे०) के कवि नन्नि चोड्डु (दे०) (शासन-काल 1130—1150 ई०) ने नृत्य, संगीत आदि कलाओं में स्थित मार्गी तथा देशी भेद को कविता पर भी लागू कर दिया था।

संस्कृत भाषा-साहित्य के लक्षणों के प्रभाव को भासित करते हुए, पंडितों को ध्यान में रखकर, उनकी प्रशंसाएँ प्राप्त करने के लिए रची गई कविता 'मार्ग' तथा संस्कृत-प्रभाव से मुक्त, इतिवृत्त, भाषा, छंद आदि में देशी लक्षणों से समन्वित, देशी प्रजा-जीवन को प्रतिबिंबित करती हुई, साधारण जनता के लिए लिखी गई कविता 'देशी' कहलाती है।

मार्त्तांडवर्मा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1858 से 1922 ई० के बीच]

सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) का यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। 'वंचि' राज्य (त्रावनकोर) के राजा के देहांत के बाद उनके भानजे मार्त्तांडवर्मा गद्दी पर बैठते हैं। उन्हें गद्दी से उतारने के लिए मृतक राजा का पुत्र अपने कुछ ईमानदार सेवकों की सहायता से बड़ा यत्न करता है। किंतु युवराज की चतुरता से वह यत्न सफल नहीं होता और मार्त्तांडवर्मा निष्कंटक बन कर राज-काज करने लगते हैं। इसी ऐतिहासिक घटना पर सुढंग से लिखा हुआ प्रस्तुत उपन्यास कैरली-कलेवर का एक सुंदर आभूषण बन गया है। कई पात्रों की सृष्टि करके विविध कथासूत्रों को अनुस्यूत करने में उपन्यासकार ने अपनी कल्पना-शक्ति, आविष्कार-प्रतिभा, मर्मज्ञता आदि गुणों का परिचय दिया है। यह एक अनूठी रचना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालतीमाधव *(सं० कृ०)* [समय—आठवीं शती]

'मालतीमाधव' भवभूति (दे०) द्वारा रचित 10 अंकों का प्रकरण है। इसमें इन्होंने कल्पित इतिवृत्त को आधार बनाकर वस्तुसंधान किया है।

'मालतीमाधव' की प्रणयकथा का स्रोत, बहुत संभव है 'बृहत्कथा' रही हो। इसमें विनियुक्त रूढ़ियाँ तथा प्रमुख घटनाएँ 'बृहत्कथा' के कई प्रणय-वृत्तों से मिलती-जुलती हैं। भवभूति ने 'बृहत्कथा' अथवा किन्हीं लोक-कथाओं से बीज लेकर कथा को स्वयं पल्लवित किया है। पद्मावती और विदर्भ के मंत्री भूरिवसु और देवरात घनिष्ठ मित्र थे। इन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह करने की प्रतिज्ञा की। समय पर देवरात के पुत्र उत्पन्न हुआ और भूरिवसु को कन्या। देवरात ने अपने पुत्र माधव को भूरिवसु की पुत्री मालती से विवाह करवाने की आशा से भेजा। अनेक कठिनाइयों के बाद कामंदकी की सहायता से विवाह संपन्न हुआ।

रचयिता के अपने शब्दों में इस कृति के अंतर्गत रस प्रचुर गंभीर अभिनय, नायकादि के मित्रतापूर्ण व्यवहार, शृंगार रस के साथ नायक का वीर, बीभत्सादि वाला उद्धत रूप, सुंदर कथा और बाण (दे०) की चतुरता का निबंधन किया गया है। इसकी कथावस्तु में शिथिलता है फिर भी दर्शक की उत्कंठा जागृत करने में नाटककार सफल है। काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम कृति है।

मालदासरी *(ते० पा०)*

यह विजयनगर के विख्यात सम्राट श्रीकृष्णदेव रायलु (दे०) के प्रौढ़ प्रबंध 'आमुक्तमालयदा' (दे०) (सोलहवीं शती) का एक प्रमुख पात्र है। यह नीच कुल में उत्पन्न होकर भी विष्णु का परम भक्त और संकीर्तन में निपुण है। यह भगवत् संकीर्तन द्वारा मोक्ष-प्राप्ति में विश्वास रखता है। एक दिन मंदिर के मार्ग में जब एक भयंकर राक्षस इसे पकड़कर खाने का उपक्रम करता है तब यह उस राक्षस के मंदिर के संकीर्तन के व्रत को पूरा कर आने तक का समय माँग लेता है। व्रत समाप्ति के उपरांत यह अपने वचन के अनुसार राक्षस का भोजन बनने के लिए मंदिर से शीघ्र लौट आता है। सच्चाई, त्याग और पारमार्थिकता के इस पुजारी को मृत्यु का वरण करने के लिए अपने सामने उपस्थित देखकर वह राक्षस भक्ति एवं श्रद्धा के भाव से अभिभूत हो जाता है। मालदासरी को भगवान् का साक्षात् अवतार मानकर वह उसकी स्तुति करने लगता है। अंततः मालदासरी की भक्ति की महिमा से वह राक्षस अपने पूर्व-जन्म के शाप से मुक्त होकर विष्णु का सारूप्य पा लेता है।

मालपल्लि *(ते० कृ०)*

तेलुगु के उपन्यास साहित्य में 'मालपल्लि' अथवा 'संगविजयमु' का अप्रतिम स्थान है। इसके प्रणेता स्वनामधन्य उन्नव लक्ष्मीनारायण (दे०) थे।

'मालपल्लि' गांधीयुगीन विचारधारा से प्रभावित आदर्शवादी यथार्थोन्मुख रचना है जिसमें तत्कालीन तेलुगुभाषा-भाषियों के सामाजिक जीवन का चित्रण बड़ी सफलता के साथ हुआ है। इस बृहदकाय उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन राजनीतिक हलचल, समाजसुधार-आंदोलनों, परिश्रमी श्रमिक वर्ग और दलित जातियों की दयनीय दशा का जीवंत चित्रण किया है। यहाँ तक कि हरिजनों पर ईसाई पादरियों के अनुचित दबावों तथा कतिपय पादरियों की कामुक प्रवृत्ति के यथातथात्मक वर्णन इस कृति में पाए जाते हैं। अतः यह उपन्यास तत्कालीन तेलुगु भाषा-भाषियों का सामाजिक अभिलेख माना जाता है।

'मंगलापुरम्' में रामदास एक संतस्वभाव का हरिजन था। महालक्ष्मी इसकी पतिव्रता नारी थी। इसके तीन पुत्र थे तथा एक पुत्री। उनके नाम थे—क्रमशः वेंकटदास, संगदास, रंगड़ तथा ज्योति। इनमें संगदास गांधी विचारधारा का आस्थावान अनुयायी था। यह गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को अपनी योग्यता के अनुसार आगे बढ़ाने के कारण जनप्रिय बनता गया। ज्योति अपने चरित्र-बल से सारे उपन्यास को ज्योतित करती है। ज्योति अपनी फूफी के पुत्र अप्पादास पर अनुरक्त थी। परंतु इनका यह प्रणय अंत तक अमलिन तथा अकायिक रहा। उस गाँव में चौधरय्या एक मोतबर असामी था। इसका स्वभाव सरल नहीं था। चौधरय्या का पुत्र रामानायुडु संगदास के निश्छल सेवाभाव से आकृष्ट होकर उसका एक घनिष्ठ मित्र बन गया। यह बात चौधरय्या की आँखों में अखरी क्योंकि एक हरिजन बालक के साथ मैत्री निभाने से उसके आभिजात्य को आघात पहुँचाता था। संगदास ने हरिजनों को अपने उपदेशों तथा भाषणों से जागृत किया। अतः चौधरय्या की उसके सामने एक भी नहीं चली। असामी लोग हरिजन मज़दूरों को अनाज की जगह पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना चाहते थे। पर संगदास की सलाह पर सब अनाज चाहने लगे। रामानायुडु को अपने साथ संगदास सभा-समाजों में ले जाता था। एक बार रामानायुडु संगदास के साथ विजयवाडा गया। इन सब बातों से चौधरय्या बिगड़ गया। हेगी से संगदास के सिर पर चोट मारी जिससे संगदास की मृत्यु हो गई। संगदास अत्यंत जनप्रिय था। अतः लोगों ने उसकी समाधि बनाई तथा उसके समीप ही 'संगपीठम्' की स्थापना की। चौधरय्या अपने पैसे के बल पर इस हत्या से बच गया। निरीह रामदास इसके विरुद्ध अदालत में नहीं गया। परंतु ईश्वरीय न्याय काम किए बिना नहीं रहा। रामानायुडु की पत्नी कमला मोहन-राव के साथ मद्रास भाग गई तथा कमला चेचक से पीड़ित हो गई।

उधर अप्पादास 'संगपीठम्' में अध्यापन कार्य कर रहा था। उसकी गति तेलुगु के प्राचीन काव्यों तक में अच्छी थी। ज्योति भी तब तक सुशिक्षता बन गयी थी और अध्ययन-अध्यापन कार्य में अप्पादास को सहायता पहुंचाती थी। इसी समय पादरियों में और अप्पादास में धार्मिक विवाद चला। जग्गडु की डकैती के बहाने रामदास के परिवार के पादरी लोगों ने गिरफ़्तार करा दिया और ज्योति को पादरी लोगों के साथ रहना पड़ा। ज्योति पर बलात् आक्रमण के प्रयत्न चले। उसने नदी में कूद कर आत्मघात कर लिया। अप्पादास ने भी उसके साथ सहमरण किया।

रामदास जेल से विमुक्त होकर मंगलापुरम् लौटा। जग्गडु उर्फ़ वेंकटदास ने 5 लाख रु० का चेक भेजा जिससे एक विद्यालय का निर्माण हुआ। अंत में अविचलित एवं निरीह रामदास अपना कर्त्तव्यपालन नीरव निरीहता के साथ संपन्न करके एक दिन जंगलों में चला गया। इस प्रकार रामदास के रूप में हमें गांधीजी द्वारा उपदिष्ट अनासक्ति योग के दर्शन होते हैं।

मालवाड, एस० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

श्री संगप्पा संगनवसप्पा मालवाड कर्नाटक कालेज, धारवाड़ में कन्नड प्रोफ़ेसर के पद पर रहे हैं। ये कन्नड के श्रेष्ठ निबंधकारों में हैं। इनके आलोचनात्मक निबंधों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'कर्नाटक विश्व-विद्यालय', 'हरिहरन' मूरु रगळे गलु' (हरिहर के तीन रगले), 'साहित्य समालोचने (साहित्य समालोचन), 'हरिहरन रगळे गलल्लि जीवनदर्शन' जैसे ग्रंथों में इनके निबंधकार और आलोचक के व्यक्तित्व का विकास हुआ है। 'कर्नाटक साहित्य-संस्कृति-दर्शन' इनका शोध-प्रबंध है। इन्होंने 'राघवांक चरित्रे' (दे०) का संपादन भी किया है।

मालविका *(सं० पा०)*

यह कालिदास (दे०) के प्रथम नाटक 'माल-विकाग्निमित्रम्' (दे०) की नायिका है। यह परम सुंदरी कन्या है। कालिदास ने इसके सौंदर्य की तुलना विष से बुझे हुए काम-बाण से की है—परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदग्धः। यह विदर्भ के राजा की कन्या है। इसका विवाह विदिशा के राजा अग्निमित्र (दे०) से होना था, किंतु विदर्भ पर यज्ञसेन द्वारा आक्रमण किये जाने के कारण यह अपने प्राण बचाकर उसकी (अग्निमित्र की) पत्नी धारिणी के यहाँ आकर दासी के रूप में रहने लगती है। धारिणी उसे नृत्यकला की शिक्षा दिलाती है। राजा उसका चित्र देखकर उस पर मोहित हो जाता है। राजा को इसका साक्षात् दर्शन कराने के उद्देश्य से विदूषक नृत्य-प्रतियोगिता का आयोजन करता है और राजा इसके नृत्यकौशल को देख कर इसके प्रति और भी अधिक आकृष्ट हो जाता है। प्रमदवन में मनाये गये 'अशोक-पादाघातमहोत्सव' में राजा का इसके साथ मिलन हो जाता है। इस पर अग्निमित्र की रानी इरावती राजा को बुरा-भला कहती है और महिषी धारिणी मालविका को जेल में डाल देती है। विदूषक सर्प-मुद्रा युक्त अँगूठी के माध्यम से मालविका को जेल से छुड़ा लेता है। इसी बीच ज्ञात होता है कि मालविका तो विदर्भराज की कन्या है। अंततः धारिणी की अनुमति से अग्निमित्र के साथ इसका विवाह संपन्न हो जाता है।

मालविकाग्निमित्रम् *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः प्रथम शती ई० पू०]

यह कालिदास (दे०) की प्रथम नाट्यकृति है। इनकी यौवनकालीन रचना होने के नाते इस नाटक में कालिदास की कला पूर्ण विकसित रूप में हमारे समक्ष नहीं आती।

यह पाँच अंकों का नाटक है। इसमें शुंग सम्राट् अग्निमित्र (दे०) तथा मालविका की प्रणय-कथा को बड़ी रमणीयता के साथ उपनिबद्ध किया गया है। तरुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि कालिदास ने अग्निमित्र के अंतःपुर की चहल-पहल, रानियों की पारस्परिक स्पर्द्धा, उसकी कामुकता तथा महिषी धारिणी की धीरता आदि का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। गौण पात्रों का चित्रण कालिदास ने बहुत थोड़े में किया है। हरदत्त और गणदास दो नाट्याचार्यों का अपनी कला में अभिमान और एक-दूसरे से स्पर्धा, बकुलावलिका का मालविका पर निष्कपट प्रेम आदि बातें कालिदास ने भली भाँति स्पष्ट की हैं।

'मालाविकाग्निमित्रम्' की भाषा प्रसादगुण-पूर्ण और मनोहर है। इसमें कहीं भी क्लिष्टता नहीं है। इसमें कवि यथासंभव अलंकारों के प्रयोग से बचा है फिर भी अनुप्रास, श्लेष, उपमादि अलंकारों का प्रयोग जहाँ कहीं किया है वहाँ अत्यंत स्वाभाविक ढंग से किया है। इस नाटक से कालिदास का नाम निश्चय ही सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया होगा और उसको विक्रमादित्य का आश्रय मिल गया होगा।

मालि *(मल० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

वी० माधवन् नायर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और आकाशवाणी में कार्य करने के बाद नेशनल बुक ट्रस्ट में सहायक संपादक रहे हैं। 'मालि' के उपनाम से उन्होंने अनेक बालकोपयोगी ग्रंथों की रचना की है। 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०), 'कथासरित्सागर' (दे०) आदि के बालकोपयोगी संस्करणों के अलावा अनेक मौलिक रचनाएँ भी उन्होंने लिखी हैं। संगीतशास्त्र पर भी उन्होंने बहुत-कुछ लिखा है। अँग्रेज़ी भी उनके लिए अभिव्यक्ति का एक माध्यम रही है। बाल-साहित्य के लेखकों में उनका स्थान अद्वितीय है।

माळिका *(उ० पारि०)*

मालिका का दूसरा नाम 'आगत-भविष्य-कथा' है। इसमें भविष्य के संबंध में अनेक तथ्य लिपिबद्ध रहते हैं। पंचसखा (दे०) एवं उनके शिष्यों ने अनेक माळिकाओं की रचना की है। ये हठयोगी एवं तांत्रिक साधक थे और मंत्र-शक्ति के द्वारा भविष्य-दर्शन करने में समर्थ थे। इनकी भविष्यवाणी पर लोगों का विश्वास आज भी अक्षुण्ण है। माळिकाएँ लोगों को भविष्य के प्रति सजग रहकर एक संयत एवं संगठित जीवन-यापन की शिक्षा देती हैं। सबसे अधिक माळिकाओं की रचना अच्युतानंददास (दे०) ने की है। यशोबंतदास (दे०) की 'आगत भविष्य', अनंत दास की 'आगत चुंबक' तथा हरिदास की माळिकाएँ प्रसिद्ध हैं।

माल्ही, गोबिंद *(सिं० ले०)* [जन्म—1921 ई०।]

गोबिंद माल्ही का जन्म सिंध के ठारूशाह नामक नगर में हुआ था। इन्होंने बी० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएं उत्तीर्ण की थीं और काफ़ी समय तक अध्यापन कार्य किया था। सिंधी-साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा को प्रवाहित करने वाले साहित्यकारों में ये मुख्य स्थान रखते हैं। इन्होंने कहानी, उपन्यास, एकांकी और निबंध के क्षेत्र में अनेक रचनाएँ की हैं, परंतु इन्हें विशेष ख्याति सफल उपन्यासकार के रूप में ही प्राप्त हुई है। इन्होंने सिंधी-साहित्य को जितने उपन्यास दिए हैं उतने और किसी ने नहीं दिए। इनके उपन्यासों की संख्या बीस से अधिक है, जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—'आँसू', 'ज़िंदगीअ जे राहते', 'जीवन साथी', 'शर्मबूटी', 'मन जो मीनु', 'पखीअड़ा वलर खाँ विछुड्या', 'ललकार', 'इश्कु नाहे रांदि', 'लोकु आहे बोकु', 'देसी सेण कजनि'। ये 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत में विश्वास रखते हैं। इन्होंने अपनी अधिकांश रचनाओं में देश-विभाजन के पश्चात् भारत में सिंधियों की परिस्थितियों के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विषयों को लेकर इन्होंने सिंधी-साहित्य को सफल उपन्यास दिए हैं। इन्हें सिंधी उपन्यासकारों की श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त है।

मास्तर *(म० पा०)*

वसंत कानेटकर (दे०) के उपन्यास 'पंख' का यह अभागा कला-प्रेमी पात्र सहज ही पाठकों की सहानुभूति आकृष्ट कर लेता है। वह शिक्षक न होकर अभिनयशाला का मास्टर है। बचपन से ही नाटक में अभिनय करने की आकांक्षा से अनुप्रेरित पांडु अभिनय में कुशल बन जाता है। एक बार ध्रुव की भूमिका में अभिनय करते हुए भावनाओं के तनाव के कारण उस पर कंपवायु का आघात होता है और वह भविष्य में अभिनय करने के अयोग्य हो जाता है, पर नाट्य-प्रेमी होने के कारण वह अभिनयशाला का काम नहीं छोड़ता और पर्दे खींचने जैसे छोटे-मोटे कार्य करता रहता है। उसके जीवन की एकमात्र आकांक्षा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक में पुनः ध्रुव की भूमिका करने की, वह स्वयं तो अभिनय करने में असमर्थ है, अतः उसकी यह महत्वाकांक्षा उसकी पुत्री द्वारा पूरी होती है। उसे भय है कि कहीं उसकी पुत्री भी उसके समान ही भावनाओं के तनाव के कारण ध्रुव की भूमिका करते-करते पंगु न बन जाय। पर ऐसा नहीं होता और उसकी आकांक्षा पूरी हो जाती है। लेखक ने बड़ी सहृदयता से पात्र का चित्रांकन किया है। उसकी भावोर्मियों का विश्लेषण किया है, अतः सहज ही पाठक का उसके साथ तादात्म्य हो जाता है।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार *(क० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार आधुनिक कन्नड-साहित्य के वयोवृद्ध साहित्यकारों में से हैं। छात्र-जीवन में ही इनकी प्रतिभा का परिचय मिलने लगा था। एम० ए० उपाधि प्राप्त करने के बाद ये मैसूर सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और मैसूर सरकार के विविध विभागों में ऊँचे पदों पर रहकर 1947 ई० में अवकाश प्राप्त कर लिया। 'श्रीनिवास' उपनाम से मास्ति जी अत्यंत लोकप्रिय लेखक हुए हैं। 1943 ई० से प्रकाशित कन्नड-मासिक 'जीवन' के ये संपादक हैं।

मास्ति जी की प्रतिभा बहुमुखी है। ये कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, गद्यलेखक और पत्रकार हैं। इनकी रचनाओं में भारतीय और कर्नाटक संस्कृति के सार के साथ नवीन जीवन-दृष्टि का भी सुंदर समन्वय हुआ है। देशप्रेम, राष्ट्रीयता, स्त्रियों के प्रति आदर, सात्विक श्रद्धा आदि सद्गुण उनकी कृतियों में प्रकट हुए हैं जो इनके व्यक्तित्व के महान अंश हैं। इनकी सरल, सीधी-सादी भाषा-शैली में बड़ा आकर्षण है। इनकी जैसी कथन शैली शायद ही किसी दूसरे कलाकार में देखने को मिले।

'बिन्नह' (विनय), 'मनवि' (प्रार्थना), 'मलार', 'अरुण', 'तावरे' (कमल), 'चेलुबु' (सौंदर्य) और 'सुनीत' में इनकी फुटकर कविताओं और गीतों का संग्रह है। उपर्युक्त प्रथम दो संग्रहों में इनकी भक्ति-भावना भी प्रकट हुई है जो परंपरागत है, परंतु उसमें नवीन कांति और जीवनस्फूर्ति विद्यमान है। इनकी कविताओं में सहज सौंदर्य और गीतों में भावना की स्पष्टता और सचाई है। उनमें कल्पना-विलास की अपेक्षा विषय की नवीनता, छंदों की विविधता और भाव-प्रवणता का विशेष महत्व है। स्निग्ध प्रकृति और मानव-प्रकृति का चित्रण प्रस्तुत करने में इनको अत्यधिक सफलता मिली है। 'रामनवमी', 'गौडर मल्लि', 'मूकन मक्क' (गूँगे के बच्चे) और 'नवरात्रि' इनके कथाकाव्य हैं। इनमें पाठकों को जो अनुपम रसानुभव प्राप्त होता है, वह कवि की काव्य-साधना की सफलता का प्रमाण ही है।

'उषा', 'काकन कोटे' (काक का किला), 'चित्रांगदा', 'यशोधरा', 'शिव छत्रपति' और 'शान्ता', 'सावित्री' आदि मास्ति जी के नाटक हैं। 'चेन्नबसवनायक' (दे०) और 'सुब्बण्ण' (दे०) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'सुब्बण्ण' कन्नड-साहित्य की एक श्रेष्ठ कलाकृति है। कुछ लोग उसे लंबी कहानी मानते हैं तो अन्य लोग छोटा उपन्यास मानते हैं।

कहानीकार के रूप में मास्ति जी की विशेष ख्याति है। इन्हें कन्नड-कहानी-साहित्य का अग्रणी कहना चाहिए। इनके भिन्न-भिन्न संग्रहों में अब तक लगभग साठ कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। जीवन-दर्शन और लोक-कथाओं में विशेष कौतूहल इनकी कहानियों की विशेषताएँ हैं। उनकी 'आचार्यर हेंडति', 'इंदिरेयो अल्लवों' (इंदिरा या नहीं), 'कविय कोनेय दिन' (कवि का अंतिम दिन) आदि कहानियाँ अधिक लोकप्रिय हुई हैं।

'कन्नडद सेवे' (कन्नड की सेवा), 'कर्नाटकद जनतेय संस्कृति' (कर्नाटक की जनता की संस्कृति), 'कर्नाटकद जनपद साहित्य' (कर्नाटक का लोक-साहित्य), 'साहित्य विमर्श' (आलोचना), 'रवींद्रनाथ ठाकुररु' और 'श्रीरामकृष्ण' जैसी रचनाओं में उनकी सुंदर गद्य-शैली द्रष्टव्य है। ये अँग्रेज़ी के भी अच्छे लेखक हैं।

मिअ़राज-उल-आशिकीन *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1422 ई० के आसपास]

'मिअ़राज-उल-आशिकीन' हज़रत ख्वाजा बंदा गेसूदराज़ (दे०) की गद्य-रचना है। इसका उर्दू की प्रारंभिक गद्य-रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें सूफ़ी सिद्धांतों की शिक्षा तथा नैतिकता का प्रतिपादन किया गया है। इसकी शैली वर्णनात्मक है। ऐसा लगता है जैसे कोई गुरु अपने शिष्यों को पाठ पढ़ा रहा हो। इसमें 'मिअ़राज' की घटना को आधार बना कर सूफ़ी सिद्धांतों-सूत्रों की व्याख्या की गई है।

'मिअ़राज-उल-आशिकीन' में दकन की प्रारंभिक उर्दू का नमूना हमारे सामने आता है। यह भाषा आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व की है। उस समय उर्दू के रूप की रेखाएँ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट नहीं हुई थीं। इस कृति में ऐसे अनेक शब्द हैं जो बाद में प्रयोग में आने बंद हो गए। शब्द-प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं। कहीं-कहीं वाक्य असंबद्ध से हैं और कहीं-कहीं भाव ही अगम रह जाता है। फिर भी 'मिअ्राज-उल-आशिकीन' की ज़ुबान 'सबरस' (दे०) और 'गुलशन-ए-इश्क' की भाषा से साफ़ है। इसकी भाषा पर उत्तरी भारत की भाषा का प्रभाव अधिक है क्योंकि लेखक का दो-तिहाई जीवन उत्तरी भारत में ही बीता है। इस कृति से उर्दू के दिल्ली से दकन जाने की सूचना मिलती है।

भाषा-वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का उर्दू की प्राथमिक गद्य-कृतियों में महत्वपूर्ण स्थान है।

मित्र, गजेंद्रकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

गजेंद्रकुमार मित्र आधुनिक बँगला के उन उपन्यासकारों में हैं जिन्होंने 'कलकातार काछेइ' (1957), 'उपकंठे' (1961) एवं 'पौष फागुनेर पाला' (1964) इन तीन उपन्यासों की रचना कर बँगला उपन्यास के क्षेत्र में अपना स्थायी स्थान बना लिया है। इन तीनों में उन्नीसवीं शती के अंतिम दिनों के अति दरिद्र भद्र परिवार की रूढ़ एवं कठोर जीवन-कहानी के प्रारंभ से लेकर आधुनिक युग तक के प्रसार की कहानी लिपिबद्ध है। इन उपन्यासों में बंगाल के समाज-इतिहास के इस पक्ष का उद्घाटन हुआ है कि किस तरह बंगाल का गार्हस्थ्य जीवन प्रबल घात-प्रतिघातों में अपनी दुर्दमनीय प्रतिरोध-शक्ति के सहारे टिका हुआ है—यद्यपि इस संग्राम में चरित्र की सुकुमारता एवं आदर्शनिष्ठा का क्रमिक अवक्षय ही एकमात्र सत्य है। छोटी-से-छोटी घटनाओं की वर्णना में लेखक ने असाधारण शिल्पबोध का परिचय दिया है एवं पाठकों के मन में भाववैचित्र्य के संचार में लेखक की कुशलता प्रशंसनीय है। इन ग्रंथों से जहाँ उसे असीम जनप्रियता मिली है वहीं दूसरी ओर इन्हें 'जूठन फेंकने एवं बरतन मलने का महाकाव्य' कहकर उसकी सृजन-शक्ति पर श्लेष-कटाक्ष भी किया गया है। इसका कारण कदाचित् यह है कि तुच्छ, गतानुगतिक जीवन-निष्ठा की अभिव्यक्ति के द्वारा साधारण भद्र परिवार के अंतर-रहस्य की कथा अनेक आलोचकों के मनोनुकूल नहीं रही। इन उपन्यासों में अंकित निम्न-मध्य-वित्त बंगाली परिवार के प्राण-रहस्य की कथा बँगला-साहित्य में चिरकाल तक स्मरणीय रहेगी।

लेखक के अन्यान्य उपन्यासों में 'मने छिल आशा' 1941), 'बहुविचित्र' (1945) और 'मिलनांत' (1949) प्रसिद्ध हैं। 'रजनीगंधा' (1941) उल्लेखनीय कहानी-संग्रह है।

मित्र, नरेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

आधुनिक कथासाहित्यकार नरेंद्रनाथ मित्र अपने सीमित परिचित जीवन-वृत्त में से साहित्य का उपकरण संग्रह करते हैं। इनकी कहानियों या उपन्यासों की सार्थकता इसी में है कि उनमें व्यक्तिगत हृदय-द्वंद्व ही नहीं बृहत्तर सामाजिक समस्या प्रतिफलित होती है। वस्तुतः दैनंदिन तुच्छतापूर्ण कतिपय पारिवारिक घटनाओं के उन सुनिर्वाचित अंशों को लेखक हमारे सामने प्रस्तुत करता है जिनके माध्यम से समस्या-पीड़ित मानव-जीवन की हीनता, नीचता, मिथ्याचार आदि के चित्र खींचे जा सकें। इनके उपन्यासों में आदर्शवाद का आधिक्य तथा भावोच्छ्वास या मनोवैज्ञानिक आतिशय्य के स्थान पर सहज जीवन-यात्रा के वस्तुनिष्ठ चित्र अधिक मिलते हैं। उपन्यासों में 'चेनामहल', 'द्वीपपुंज' (1952), 'देहमन' (1952), 'दूरभाषिणी' आदि में यौन एवं अर्थनीतिक समस्या के नाना पहलुओं के रहस्य के उन्मोचन में लेखक ने प्रखर अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है। नरेंद्रनाथ मन के निपुण विश्लेषक हैं, जीवन के जटिल कथाकार हैं। जीवन के अप्रीतिकर यथार्थ को प्रकट करने पर भी वे नेतिवाचक नहीं हैं। जीवन के ऊपर वे रोमांटिकों की तरह झूठ का आलेपन नहीं चढ़ाते, फिर भी, शुभ बुद्धि की विजय पर उनकी असीम आस्था है।

कहानी के क्षेत्र में भी नरेंद्रनाथ की प्रतिभा का सार्थक विकास हुआ है। मानव-संपर्क की जटिलता, मन की दुर्ज्ञेयता एवं कठिन यथार्थ के प्रति आनुगत्यता इनकी कहानी की विशिष्टता है परंतु इसी में जीवन-सत्य उद्भासित हो उठता है। इस जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति सर्वदा सामाजिक न्याय-अन्याय के आधार पर नहीं होती। जीवन के यथार्थ को स्वीकार कर उसके भारसाम्य को बनाये रखना ही लेखक के अनुसार जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति है। एक छोटी-सी घटना, कि छोटे से संकट का क्षण—और उसी में बिजली के तीव्र प्रकाश की तरह जीवन का सत्य आभासित हो उठता है। नरेंद्रनाथ यथार्थतः मौलिक लेखक हैं क्योंकि अपने जीवनानुभव एवं उपलब्धि के आश्रय से ही वे जीवन के चित्र खींचते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र, प्यारीचाँद *(बँ० ले०)* [जन्म—1813 ई०; मृत्यु—1883 ई०]

टेकचाँद ठाकुर के नाम से प्रख्यात प्यारीचाँद मित्र ने 'आलालेर घरेर दुलाल' (दे०) (1858 ई०) की रचना कर बँगला साहित्य में हमेशा के लिए व्यंग्य-चित्रकार के रूप में स्थान बना लिया है। 'आलालेर घरेर दुलाल' को बहुत दिनों तक बँगला साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता रहा। इसी एक ग्रंथ के लिए वे बँगला साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय हैं।

टेकचाँद ठाकुर के बँगला-अँग्रेज़ी के निबंधों के बहुत-से संग्रह प्रकाशित हुए हैं—यथा, 'कृषिपाठ' (1862), 'यत्किंचित्' (1865), 'डेविड हेमारेर जीवन-चरित' (1878) आदि। 'आलालेर घरेर दुलाल' के अतिरिक्त इनका दूसरा व्यंग्य-चित्र 'मद खाओया बढ़ दाय जात थाकार कि उपाय' 1859 ई० में प्रकाशित हुआ था।

टेकचाँद ठाकुर ने विद्यासागर द्वारा प्रवर्तित गुरु-गंभीर भाषा-शैली के स्थान पर जीवन के लघु पक्ष अर्थात् व्यंग्य-विद्रूप, हास-परिहास के उपयुक्त सहज, सरल भाषा का प्रचार किया। साहित्यिक गद्य को दैनंदिन जीवन के निकट लाने में इनका बड़ा योगदान रहा है। बँगला गद्य के क्षेत्र में इनकी भाषा 'आलाली भाषा' के नाम से अमर है। इनकी रचनाओं में वास्तव जीवन-चित्रण तथा कथा-रस की अभिव्यक्ति मिलती है। घटनाओं के माध्यम से चरित्र-चित्रण तथा जीवन के विच्छिन्न खंडों के रससिक्त वर्णनों में इन्होंने औपन्यासिक आदर्शों का सायास अनुसरण किया है। यद्यपि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील इनकी रचनाएँ नीतिवाद से प्रकाशित हैं, फिर भी उपन्यास-कला की दिशा में इन्होंने निश्चय ही कुछ प्रगतिशील कदम उठाये।

मित्र, प्रेमेंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

प्रेमेंद्र मित्र आधुनिक बँगला उपन्यास और काव्य के अन्यतम प्रधान स्रष्टा के रूप में स्वीकृत हैं। इनके प्रारंभिक उपन्यासों—'पाँक' (1926) एवं 'मिछिल' (1932) को आधुनिक उपन्यास के सार्थक दृष्टांत रूप में स्वीकार किया गया था। साधारण जीवन एवं निम्न श्रेणी के लोगों का तटस्थ एवं यथार्थ चित्रण करते हुए मनुष्य के प्रति एक उदार मनोभाव की अभिव्यक्ति इनकी उपन्यास-कला की प्रधान विशेषता है। उपन्यास के माध्यम से इन्होंने जीवन की शुष्क, आवेगहीन, बुद्धिप्रधान समालोचना की है। इसमें कहीं भी बंगाली-सुलभ भावार्द्रता एवं आवेगप्रवणता दिखाई नहीं पड़ती। इनके दूसरे उपन्यासों में 'बाँकालेखा', 'उपनयन', 'कुयाशा', 'प्रतिध्वनिफेरे' उल्लेखनीय हैं। इनमें 'प्रतिध्वनिफेरे' जीवन के सत्य-अन्वेषण की कहानी है। यह उल्लेख-योग्य है कि उपन्यास की अपेक्षा कहानी-रचना में इन्होंने अधिक सफलता प्राप्त की थी। इनके कहानी-संग्रह ये हैं: 'पंचशर' (1926), 'बेनामी बंदर' (1930), 'पुतुल ओ प्रतिमा' (1932), 'मृत्तिका' (1932), 'अफुरंत' (1934) आदि। कहानी के रूप एवं रीति के आश्रय से मानव-जीवन की विषण्ण व्यर्थता को इतनी गहराई से अंकित करने की शक्ति कम ही लेखकों में दिखाई पड़ती है। इनकी कहानियों की आवेगलेशहीन उपस्थापना के पीछे कभी-कभी गंभीर अनुभूतिशील कविप्राण प्रकट हो जाता है; कदाचित् इसीलिए इनके कथा-साहित्य को विपरीत स्वच्छंदतावाद की संज्ञा दी जाती है। लेखक ने बच्चों के लिए उत्कृष्ट अयथार्थ वैज्ञानिक कहानियों की रचना की है एवं कतिपय सुंदर जासूसी उपन्यास भी लिखे हैं।

कथा-साहित्य के अनुरूप प्रेमेंद्र मित्र की कविता भी उग्रतामुक्त एवं कमनीय है। इनके 'प्रथमा' (1932), 'सम्राट' (1940), 'फेरारि फ़ौज' (1948), 'सागर थेके फेरा' (1956), 'हरिण चिता चित' (1960) आदि काव्य-संग्रहों में अंतर्निहित वृहत् मानवता की वाणी विशेष रूप से प्रशंसनीय है। जगत् एवं जीवन-चेतना के साथ अपने को मिलाकर वे पथचारी मनुष्यों के सहचर बन गए हैं एवं अहंकेंद्रिक रोमांस की पांडुरता से हटाकर आधुनिक बँगला काव्य को जीवन के बृहत् एवं महत् का परिचय दिया है। निबंध और आलोचना के क्षेत्र में भी प्रेमेंद्र बाबू का विशिष्ट स्थान है।

मित्र, बामाचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

आधुनिक उड़िया-कहानी-साहित्य को श्री बामाचरण मित्र का योगदान महत्वपूर्ण है। इनकी कहानियाँ प्रायः सामाजिक होती हैं। इनकी गद्य-शैली की सावलीलता, गत्यात्मकता एवं संक्षिप्तता आदि विशेषताएँ कहानियों को सशक्त एवं मार्मिक बना देती हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'पराग' (उपन्यास); 'बट महापुरुष' (दे०), 'कीर्तियस', 'नरछंचाण', 'स्वप्नसिद्ध', 'पाषाणर प्राण', 'असीम' (कहा०) आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र, बिमल (बँ० ले०) [जन्म—1912 ई०]

आधुनिक बँगला उपन्यासकारों में बिमल मित्र ने अनतिपुरातन इतिहास के आश्रय से दैनंदिन जीवन के जटिल चित्रों को महाकाव्य की विशालता प्रदान की है। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'साहब बिबि गुलाम' (दे०) 'कड़ि दिवे किनलाम', 'एकक दशक शतक', 'कन्यापक्ष', 'बेगम मेरी विश्वास' आदि उल्लेखनीय हैं। अनतिपुरातन इतिहास अर्थात् उन्नीसवीं शती के बंगाल के ज़मींदार-वर्ग के जीवन-चित्रण का अनुसरण करते हुए लेखक ने अपने उपन्यासों में आधुनिक युग के साधारण मनुष्यों की दुःख-दुर्दशा, क्षणिक सुख एवं शांति का चित्र खींचा है। इस दृश्यपट-परिवर्तन एवं चित्रांकन की व्यापकता तथा व्यंजना-पूर्णता में ही लेखक की मौलिकता प्रकट हुई है। लेखक के उपन्यासों में केवल नायक एवं नायिकाएँ ही प्रधान नहीं हैं वरन् दास-दासियों, नौकर-नौकरानियों की सहयोगिता से ही चित्र पूर्ण बन पाया है।

लेखक के उपन्यासों में जीवन का यथार्थ बहुत ही स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। कदाचित् इनके उपन्यासों की महाकाव्यात्मक विशालता के कारण ही अति-प्रत्यक्ष यथार्थ चित्रों को ये इतने अकुंठित ढंग से प्रकट कर पाये हैं। बिमल मित्र नारी-मनोविज्ञान के चतुर चितेरे माने जाते हैं। इन्होंने नारी के जटिल मन के हर पक्ष के रहस्य का उद्घाटन किया है। परंतु इनकी नारी अपनी इच्छाओं को दबाना जानती है और आवश्यकता पड़ने पर सीता की तरह हमेशा के लिए संसार से लुप्त हो जाती है। लेखक के 'कड़ि दिये किनलाम' (दो खंड) के नायक दीपंकर का चरित्र हमारे जीवन के विश्व-धरातल में विस्तार का प्रतीक है। बंगाल के आधुनिकतम मानस के चित्र-रूप में यह उपन्यास हमेशा स्मरणीय रहेगा। बिमल मित्र की लगभग प्रत्येक रचना घटना-प्रधान है और साधारणतः घटना-प्रधान रचना अप्रीतिकर होती है किंतु इनकी भाषा की गतिशीलता, नाटकीयता एवं उत्कंठा-सृष्टि के कौशल के परिणामस्वरूप इनकी वर्णना भी आकर्षक बन गई है।

मित्र, मजुमदार, दक्षिणारंजन (बँ० ले०) [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

कदाचित् संपूर्ण भारतवर्ष में शिशु-साहित्य की दृष्टि से बँगला भाषा सर्वाधिक समृद्ध है। बच्चों के लिए परियों की कथा लिखकर जिस प्रकार हैंस क्रिस्चिन एंडरसन ने शिशु-साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया था उसी तरह बंगाल में दक्षिणारंजन मित्र मजुमदार ने परियों की कथा (बँगला में 'रूपकथा' कहते हैं) में काव्य-रस का सम्मिश्रण कर साहित्य के क्षेत्र में शिशु-साहित्य को स्थायी रूप से प्रतिष्ठित किया है। बच्चों के लिए इनकी पहली पुस्तक 'ठाकुरमार झुलि' 1908 ई० में प्रकाशित हुई थी। 1957 ई० में इसका सत्तरवाँ संस्करण प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका लिखी थी रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) ने। इस भूमिका में लिखा है कि इस पुस्तक का प्रत्येक पन्ना हरा और ताज़ा है। परियों की कथाओं की विशेष भाषा, विशेष रीति एवं उनकी प्राचीन सरलता को अकृत्रिम ढंग से व्यक्त कर लेखक ने अपना सूक्ष्म रसबोध एवं स्वाभाविक कलानैपुण्य प्रकट किया है।

'ठाकुरमार झुलि' की जनप्रियता को देखकर 'द टाइम' लंडन ने इसकी समीक्षा करते हुए इसे 'द मोस्ट वंडरफुल वाल्यूम' कहा था। बीसवीं शती के दूसरे एवं तीसरे दशक के लगभग सभी बंगाली लेखकों ने इसकी प्रशंसा में पुल बाँधे थे। इस पुस्तक की एक-एक कहानी बच्चों के लिए दुनिया की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। इस पुस्तक के उपरांत लेखक ने 'ठाकुरदादार झुलि' (1910), 'ठानदिदिर थले' (1911), 'दादामहाशयेट थले' आदि और भी कई पुस्तकों की रचना की। इन पुस्तकों में लेखक के द्वारा अंकित चित्र भी हैं।

मित्रविंदागोविंद (क० कृ०)

'मित्रविंदागोविंद' कन्नड का प्रथम उपलब्ध नाटक है। इसके लेखक सिंगरार्य (दे०) हैं जो मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (दे०) (1672-1704) के आश्रय में रहते थे। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि सत्रहवीं शती के पूर्व का कोई कन्नड नाटक उपलब्ध नहीं है। सिंगरार्य का यह नाटक 'प्रथम नाटक' का गौरव प्राप्त करता है यद्यपि यह संस्कृत के 'रत्नावली' नाटक का कन्नड रूपांतर है। फिर भी लेखक ने इसे रूपांतर स्वीकार नहीं किया है। डा० मुगळि (दे०) ने इस संबंध में लिखा है कि मूल में किंचित् परिवर्तन कर मूल का अनुकरण करते हुए रूपांतर करने पर भी स्वतंत्र कृति के रूप में इसे प्रकाशित करने का जो प्रयास किया गया है, वह चौर्य का ही निदर्शन है। कथानक में इतना परिवर्तन किया गया है कि इसके नायक कृष्ण हैं जो शृंगार-नायक न होकर 'पुरुषोत्तम' बनते हैं। नायक की परिकल्पना के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य पात्रों के नाम भी इसमें बदल दिये गये हैं। कृष्ण का चित्रण साधारण मानव और अवतार-पुरुष दोनों रूपों में किया गया है। कतिपय आलोचकों की दृष्टि में ऐसे चित्रण में स्वाभाविकता का अभाव है। इसकी कथा की रचना जैसी भी हो, इसमें संदेह नहीं कि इसकी भाषा-शैली प्रभावशाली है और इसी में इसकी सफलता है।

मिथ्याभिमान *(गु० कृ०)*

ठक्कर गोविंद जी पुरस्कार-प्रतियोगिता में भेजा गया व पुरस्कृत 'मिथ्याभिमान' प्रहसन कविवर दलपतराम डाह्याभाई (दे० दलपतराम)-रचित एक शिष्ट व रंगमंचीय नाटक है। नाटक की रचना 1869 ई० में हुई तथा प्रथम संस्करण 1870 ई० में प्रकाशित हुआ।

इसमें एक मिथ्याभिमानी रतौंधे ब्राह्मण जीवराम भट्ट (दे० भट्ट, जीवराम) की कथा वर्णित है। नायक जीवराम में अपने ब्राह्मणत्व का, अपने कौलीन्य का अपने पांडित्य का मिथ्या गौरव अधिक है। वह रात्रि में कुछ नहीं देख पाता किंतु इस तथ्य को सदैव छिपाता है। वह पंडित नहीं है, मगर सदैव पंडित होने का दंभ करता है। झूठे गौरव की रक्षा में अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर लेता है।

एक दिन ससुराल जाते ही रास्ते में संध्या हो जाती है। मार्ग न देख पाने के कारण वह गाँव के बाहर एक गड्ढे में गिर जाता है। उसके ससुर तथा साले आकर उसे जगाकर घर ले जाते हैं। रात्रि में किसी तरह भोजनादि से निवृत्त होकर अँधेरे में लघुशंका के लिए उठता है और जैसे-तैसे मोरी तक पहुँचता है कि लौटते समय सास की शैया पर गिर पड़ता है। सास घबराकर 'चोर-चोर' की आवाज़ लगाती है। पुलिस के आदमी आकर उसे पकड़ ले जाते हैं। रातभर अच्छी पिटाई होती है और सवेरे मुक्ति होती है।

साधत हास्यरस-प्रधान होने से यह 'प्रहसन' है। पूर्वरंग, नांदी, सूत्रधार, विष्कंभक, विदूषक, भरत-वाक्य आदि की योजना का अनुसरण कर शुद्ध भारतीय नाट्य-परंपरा पर यह रचित है। व्यावसायिक रंगमंच के प्रभाव से बीच में एक फ़ार्स भी जोड़ा गया है। आठ अंकों के इस नाटक में कुछ 15 प्रवेश (दृश्य) हैं। संवादों के बीच पद्य के लिए संस्कृत वृत्तों — इंद्रवज्रा, स्रग्धरा, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, उपेंद्रवज्रा, वंशस्थ, वसंत-तिलका आदि का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त दोहा (दोहरा) भी इसमें प्रयुक्त हुआ है।

भारतीय नाट्य शैली का अनुगमन, सामाजिक सुधारवृत्ति, व्यंग्य-विनोद का आयोजन इसका लक्ष्य प्रतीत होता है।

गुजराती के प्रारंभिक नाटकों में शिष्ट हास्य-प्रधान रंगमंचीय नाटक व सुधारवादी कृति के रूप में इसका उल्लेखनीय महत्व है।

मियाँ फूसकी *(गु० पा०)*

कृतिकार—जीवराम जोशी। यह लेखक की दस भागों में विभाजित कथा का नायक है। 'मियाँ फूसकी' मुसीबत में से अपनी बौद्धिक शक्ति से मार्ग निकाल लेने वाले पर बाहर से मूर्ख दिखने वाले व्यक्ति का प्रतिनिधि है। 'मियाँ फूसकी' बालसाहित्य का अत्यंत प्रिय नायक है।

मियाँ मुहम्मद बख़्श *(पं० ले०)* [जन्म—1830 ई०; मृत्यु—1906 ई०]

ग्राम खड़ी ज़िला मीरपुर (जम्मू)-निवासी मियाँ शमशुद्दीन क़ादरी के पुत्र मियाँ मुहम्मद बख़्श अरबी-फ़ारसी के विद्वान् फ़िक़ा और हदीस के मर्मज्ञ तसव्वुफ़ के प्रेमी थे। इनकी अनेक आख्यानक तथा मुक्तक रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें 'सैफ़ुलमुलुक' (दे०), 'क़िस्सा सख़ी ख़्वास ख़ां', 'मिरज़ा-साहिबां', 'हिदायतुल मुसलमीन', 'सोहणी-महीवाल', 'शीरीं-फ़रहाद', 'क़िस्सा शाह मंसूर', 'तुहफ़ाए मीरां', 'गुलज़ारे फ़क़र', आदि प्रसिद्ध हैं। तसव्वुफ़ इनकी रचनाओं का मुख्य वर्ण्य है। इनका प्रसिद्ध प्रेमाख्यान 'सैफ़ुलमुलुक' पंजाबी साहित्य का बृहत्तम प्रबंध-काव्य है। कल्पना-वैभव, शब्द-प्रयोग-कौशल और अलंकार-सौंदर्य की दृष्टि से इनका काव्य पंजाबी साहित्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

मिरज़ा-साहिबां *(पं० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

लोककवि पीलू (दे०) की यही एक कृति प्राप्त होती है। इसमें मिरज़ा और साहिबां नामक स्थानीय प्रेमी-युगल के परस्पर आकर्षण और विवाह-पूर्व नायक के साथ नायिका के गृह-त्याग की दुखांत कथा है। अपने भाइयों की प्राण-रक्षा के मोह में नायिका प्रेमी की हत्या का परोक्ष कारण बन जाती है और पश्चात्ताप से व्याकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर आत्महत्या कर लेती है। पीलू की मूल रचना के स्वरूप के विषय में आज कुछ कह सकना असंभव है। इस प्रकार के पाठ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। उपलब्ध पाठ पूर्वापर-संबंधरहित घटनाओं का वर्णन करने वाले कुछ फुटकल पद्यों का संग्रह मात्र प्रतीत होता है। छंद की लयात्मकता एवं प्रवाह इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण है और उधर चरित्र-चित्रण की सृष्टि से भी यह रचना पर्याप्त सशक्त है। पंजाबी युवक-युवती अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ 'मिरज़ा-साहिबां' में रूपायित हुए हैं। संवादों की नाटकीयता, भाषा की ग्रामीणता और वर्णनों की अतिशयोक्तिपूर्णता इस कृति की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

मिरात-उल-उरूस *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1869 ई०]

'मिरात-उल-उरूस' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) का उपन्यास है। यह पहला उपन्यास है जो महिलाओं से संबद्ध है। इसमें देहली के शिष्ट परिवारों के रहन-सहन का सजीव चित्रण किया गया है। यह इतना लोकप्रिय हुआ था कि इसके पात्र—असग़री, अकबरी और मामा अज़मत—आज भी लोगों को याद हैं और परस्पर बातचीत में प्रसंगानुसार उनके नाम प्रतीक-स्वरूप उद्धृत किए जाते हैं। इसमें अँग्रेज़ी 'ड्रामे' की तरह संवाद लिखने की शैली अपनाई गई है। इसके लंबे तथा उपदेशात्मक वक्तव्य यद्यपि खटकते हैं तथापि दिल्ली की टकसाली बोली तथा स्त्रियों के मुहावरों का सफल प्रयोग होने के कारण यह उपन्यास नीरस नहीं हो पाया है।

मिरि जीयरी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1895 ई०]

यह रजनीकांत बरदलै (दे०) का प्रथम उपन्यास है। न्यायाधीश बरदलै को 1894 ई० में कार्यवश नेफा जाने का अवसर मिला था। वहाँ उन्होंने मिरि नामक जन-जाति के रहन-सहन, आचार-विचार का अध्ययन किया था। उन्होंने अपने अध्ययन का उपयोग इस ग्रंथ में किया है। जंकि (दे० पानेई-जंकि) और पानेई (दे० पानेई-जंकि) बालसखा हैं, यौवन आने पर वे प्रणयी बन जाते हैं। गाँव और परिवार की प्रथा के अनुसार उनके प्रेम को स्वीकृति नहीं मिलती। उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। जनजाति की अदालत के अनुसार उन्हें मृत्यु-दंड दिया जाता है। जीवित अवस्था में वे नहीं मिल सके किंतु सुवर्ण-श्री नदी में दोनों के शव एकसाथ तैरते दिखाई देते हैं। यह दुःखांत उपन्यास असमीया-साहित्य का (और वह भी जनजाति पर आधारित) प्रथम सामाजिक उपन्यास है।

मिर्ज़ा कलीच बेग *(सिं० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

मिर्ज़ा कलीच बेग का पिता फ़रीदून बेग असल में जार्जिया का ईसाई था और बचपन में मुसलमान बना कर सिंध में लाया गया था। मिर्ज़ा कलीच बेग की शिक्षा-दीक्षा सिंध और बंबई में हुई थी। बी० ए० तक पढ़ाई करने के पश्चात् ये सिंध में सरकारी नौकरी करने लगे थे और डिप्टी कलेक्टर के पद से 1910 ई० निवृत्त हुए थे। बचपन से ही कविताएँ लिखने लगे थे और आगे चलकर ये सिंधी-कवियों और गद्य-लेखकों में अग्रगण्य बन गए थे। इनकी रचनाएँ साहित्य की प्रत्येक विधा में मिलती हैं। इनकी प्रकाशित मौलिक तथा अनूदित पुस्तकें लगभग 150 हैं। इतनी ही इनकी रचनाएँ और भी कही जाती हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं। कविता के क्षेत्र में इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'सौदारा खाम', 'दीवान-कलीच', 'अमुल्हं माणिक', 'चंदनहारु', 'मोत्युनि जी दबुली', 'रुबाइयात उमर ख़य्याम'। इनके अतिरिक्त इन्होंने **उपन्यास** 'दिलाराम' (1888) और 'जीनत' (1890), **नाटक** 'लैला-मजनूं' (1880) और **निबंध** 'मकाला त अल् हिकमत' (1870) की रचना और की है। मिर्ज़ा कलीच बेग की कविताएँ कलापक्ष की दृष्टि से सफल रचनाएँ होते हुए भी भाव-सौष्ठव की दृष्टि से निर्जीव-सी हैं। गद्य के क्षेत्र में इन्होंने भाव तथा कला की दृष्टि से प्रभावपूर्ण रचनाएँ दी हैं। इनकी भाषा स्वाभाविक और बोलचाल की है।

मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग *(उर्दू० पा०)*

मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) की कृति 'तौबातुन्नसुह' (दे०) का पात्र है। यह बच्चा ही था कि इसके पिता का देहांत हो गया। तब यह अपनी विधवा माता के साथ एक जमादार साहब के संरक्षण में रहता था। जमादार साहब के स्वर्ग सिधारने पर इनकी महलसराय का एक छोटा-सा भूमिभाग और सात रुपये मासिक किराये की दुकानें मिर्ज़ा के नाम हो गईं। मिर्ज़ा ज़ाहिरदार, उसकी माँ तथा पत्नी तीनों की कुल आय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही सात रुपये मासिक थी। किंतु मिर्ज़ा था कि जमादार साहब के बेटों की बराबरी करना चाहता था। ज़ाहिरदार में नाम के अनुरूप गुण भी था—ज़ाहिरदारी या बाह्या-डंबर का। इसने सारी आदतें अमीरज़ादों वाली अपना ली थीं किंतु अमीरी निभती कैसे? दुकानें गिरवी होती जा रही थीं। माँ बहुतेरा समझाती किंतु वह सुनता ही न था। कलीम पर इसने अपनी धनाढ्यता की ऐसी धाक बिठा रखी थी कि कलीम समझता था, जमादार की सारी संपत्ति मिर्ज़ा को बपौती में मिली है और जमादार के बेटों-पोतों के नौकर सब मिर्ज़ा के नौकर-चाकर हैं। यह हर जगह अपने को जमादार का बेटा ही बताया करता है। छोटे क़द का यह दुबला-पतला, पीला-पीला दिखने वाला आदमी अपने-आपको ख़ूब बना-सँवार कर रखता है और बड़प्पन जताने की असफल चेष्टा करता रहता है।

मिलिंदपन्ह *(पा० कृ०)*

यह किसी अज्ञातनामा लेखक की कृति है। इस पुस्तक की रचना उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत में हुई होगी; क्योंकि राजा मिलिंद (ग्रीक मिनेंड्रस) ई० पू० दूसरी शती में इसी प्रदेश का शासक था। इसमें राजा मिलिंद की शंकाएँ और नागसेन भिक्षु द्वारा उनके उत्तर लिखे हुए हैं। निस्संदेह इस पुस्तक की रचना उसी समय हुई होगी जब या तो राजा मिलिंद का शासन चल रहा होगा या शासन की समाप्ति को कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा। हो सकता है कि नागसेन और मिलिंद के मिलन की घटना सत्य हो और यह भी हो सकता है कि किसी ने काल्पनिक कथा बना ली हो। इस पुस्तक में 7 खंड हैं जिनमें केवल पहले 3 खंड ही प्रारंभिक हैं; शेष खंड बाद में जोड़े हुए हैं। इस पुस्तक में राजा के प्रश्नों के नागसेन ने बहुत युक्तियुक्त उत्तर दिये हैं और उनसे बौद्ध सिद्धांतों का संतोषजनक स्पष्टीकरण हो जाता है।

मिश्र, कृपासिंधु *(उ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

'सत्यबादी गोष्ठी' के लेखकों में पंडित कृपा-सिंधु मिश्र इतिहासकार के रूप में प्रसिद्ध थे। इनके ग्रंथ इतिहास और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। उड़िया-इतिहास की रचना में इन्होंने एक सशक्त और नया मोड़ दिया है। इनकी रचना 'कोणार्क' (दे०) अपने विषय का एक गौरव-ग्रंथ है। 'बारवाटी दुर्ग', 'उत्कळ इतिहास', 'हिस्टरी ऑफ़ इंगलैंड' आदि इनकी रचनाएँ हैं।

पुरी के बीरहरे कृष्णपुर-शासन में इनका जन्म हुआ था। पिता श्री जनार्दन रथ की ये द्वितीय संतान थे। मौसी के दत्तक पुत्र होने के कारण इनकी उपाधि 'मिश्र' हो गयी थी। रेवेंसा कालेज, कटक से दर्शन लेकर बी० ए० ऑनर्स करने के बाद इन्होंने कलकत्ता से दर्शन में एम० ए० और बी० ए० किया। उड़ीसा का यह दुर्भाग्य है कि जब इनकी प्रतिभा प्रौढ़ता को प्राप्त कर रही थी, तभी इनकी अकाल मृत्यु हो गई।

मिश्र, डा० कृष्णप्रसाद *(उ० ले०)*

इनका जन्मस्थान कटक है। डा० मिश्र दर्शन में एम० ए० हैं तथा टोरोंटो विश्वविद्यालय, केनेडा से इन्होंने दर्शन में पी-एच० डी० किया है। आजकल उत्कल विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हैं।

डा० कृष्णप्रसाद मिश्र कहानीकार, उपन्यास-कार एवं समीक्षक हैं। विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी इनकी अनेक कहानियाँ हैं। इनकी शैली मुख्य रूप से वर्णनात्मक एवं संवादात्मक है। इनकी अब तक 20 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'नाएग्रा ओ देबयानी' (दे०) इनकी ग्यारह कहानियों का प्रसिद्ध संकलन है।

मिश्र, कृष्णबिहारी *(हिं० ले०)*

यद्यपि इन्होंने बी० ए० एल-एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की थी, तथापि साहित्य के प्रति इनका अनु-राग इतना अधिक था कि कुछ समय तक वकालत करने के बाद ये पहले 'माधुरी' और फिर 'साहित्य-समालोचक' नाम की पत्रिकाओं का संपादन करने लगे थे। ये कुछ समय तक काशी के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'आज' के संपादकीय विभाग में भी रहे थे। हिंदी-साहित्य के इतिहास में इनकी ख्याति मुख्यतः 'देव और बिहारी' नामक आलोचना-ग्रंथ पर आधृत है जिसमें देव तथा बिहारी की तुलनात्मक समीक्षा की गई है। इन्होंने अनेक ग्रंथों का संपादन भी किया जिनमें 'गंगाभरण', 'नवरस तरंग', 'मतिराम ग्रंथा-वली', 'नटनागर विनोद' आदि प्रसिद्ध हैं। पं० कृष्ण-बिहारी मिश्र शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र)-पूर्व हिंदी-आलोचना के आधारस्तंभ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र, गोदाबरीश *(उ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु —1956 ई०]

बीसवीं शती का पूर्वार्द्ध उड़िया जातीय चेतना का युग था, जिसका जीवंत प्रतिरूप सत्यबादी बकुल-वन-विद्यालय था। इसी सत्यबादी चेतना की साकार प्रतिमूर्ति हैं गोदाबरीश मिश्र, जिनका साहित्य जातीय महिमा से उज्ज्वल है। उड़ीसा के इतिहास का गौरवगान तथा वैयक्तिक शौर्य-चित्रण इनको अभीष्ट है, इसलिए ये किंवदंती, लोक-विश्वास, पुराण व इतिहास का आश्रय लेते हैं।

इन्हें गाथा-कविताओं में सर्वाधिक सफलता मिली है। इन गाथा-काव्यों का प्रधान प्रतिपाद्य जातीयता है, किंतु इनकी गहन रसात्मकता में ही इनकी काव्यिक महत्ता अंतर्निहित है। संक्षिप्त स्वरूप में विषय-वस्तु की अत्यंत कलात्मक नियोजना इनके गाथा-काव्यों की अपनी विशेषता है। 'आलेखिका' काव्य जातीय चित्तवृत्ति की चित्रशाला है। इनके गीत-काव्यों की सरल-तरल भाव-राशि, करुण-सजल अनुभूति, आडंबरहीन, सहज भाषा, स्वाभाविक शैली आदि विशेषताएँ इन्हें चिरंतनता प्रदान करती हैं।

बाणपुर (पुरी) गोदाबरीश जी का जन्मस्थान है। कलकत्ता मुख्यतः इनकी शिक्षा का केंद्र रहा। 'कळिका', 'किशळय' अन्य काव्य-कृतियाँ हैं। 'पुरुषोत्तमदेब' (दे०) इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। 'अर्द्धशताब्दीर ओड़िशा ओ ताहिंरे मो स्थान' (दे०) उड़िया-साहित्य-जगत् में इनकी सुविख्यात आत्मजीवनी है। अनुभूति की निष्कपट सरस अभिव्यक्ति सरल चित्ताकर्षक भाषा-शैली एवं रोमांचक अनुभवों की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

मिश्र, डा० गोपाळचंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

डा० गोपाळचंद्र मिश्र (एम० ए०, डी० लिट्०) ने कविता, नाटक, कहानी, आलोचना आदि साहित्य के विविध रूपों का स्पर्श किया है, किंतु उन्हें सर्वाधिक सफलता कविता एवं कहानी के क्षेत्र में मिली है। इनकी आलोचनाएँ मुख्य रूप से विवरणात्मक हैं। संप्रति ये संबलपुर विश्वविद्यालय में उड़िया के प्रोफ़ेसर हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'विद्रोही दिवाकर', 'रासनी', 'निवेदिता', 'पूर्वराजा', 'से पारे प्रियार गाँ', 'आधुनिक ओड़िआ साहित्यर गतिपथ' (दे०)।

मिश्र, चौधुरी हेमकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1935]

चौधुरी हेमकांत मिश्र व्यंग्यात्मक और मनोवैज्ञानिक कहानी-रचना में अग्रणी हैं। विद्यार्थी-जीवन में ही सफल कहानीकार के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त हो गई थी। तब से अब तक 'डगर', दिगंत', 'झंकार', 'तरंग', 'आसंता कालि', 'साप्ताहिक प्रजातंत्र' आदि में इनकी कहानियाँ निरंतर प्रकाशित होती आ रही हैं।

इनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं में गहरी सामाजिक अंतर्दृष्टि सूक्ष्म व तीखी व्यंग्यात्मक शैली में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है कि कई स्थानों पर इनकी कृति करुण कामदी-सी प्रतीत होती है। मानवीय संवेदना, भाव-गांभीर्य, वैचारिक प्रौढ़ि, गहन अध्ययन आदि इनकी रचना के विशेष गुण हैं। 'भल्लुकर पुरापँट ओ अन्याय मजागप' (दे०) (1963 ई०) इनकी सर्वप्रथम प्रकाशित पुस्तक है, जिसमें व्यंग्यात्मक रचनाओं का संग्रह है।

मनोवैज्ञानिक कहानियों में इन्होंने चेतना-प्रवाह शैली का पैने व्यंग्य के साथ प्रयोग किया है। इनकी छात्रावस्था की 'कथक', 'प्रेमिका', 'दर्शक' आदि और परवर्ती काल की 'तख्यक', 'निषिध-पुस्तक', 'अख्य' आदि कहानियाँ मर्मज्ञ पाठकों में निरंतर लोकप्रिय रही हैं।

मिश्र, दुर्गामाधब *(उ० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

श्री दुर्गामाधब मिश्र, आई० पी० एस० का जन्म नयागढ़—पुरी में हुआ था। ये कहानीकार हैं। इनकी रचनाएँ अत्यंत सुख-पाठ्य हैं। घरेलू दैनंदिन जीवन की अनुभूतियाँ इनकी छोटी-छोटी कहानियों में नवीन शैलियों में अभिव्यक्त हुई हैं। 'सेइ हस टिकक', 'जउतिषे कहिछंति', 'सीमेंट ओ कंक्रिट', 'पथर कइंछ', 'तारा ओ तिमिर' (दे०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

मिश्र, द्वारिकाप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

इनका जन्म पढ़री ग्राम, जिला उन्नाव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र है। शिक्षा की दृष्टि से ये बी० ए०, एल-एल० बी० हैं। ये साहित्यिक व्यक्ति होते हुए भी कुशल राजनीतिज्ञ हैं। सर्वप्रथम ये मध्य प्रांत में कांग्रेस दल के एम० एल० ए० तथा सचिव रहे थे। ये रविशंकर शुक्ल के मंत्रिमंडल में गृहमंत्री, अनेक वर्षों तक सागर विश्वविद्यालय के उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलपति तथा बाद में अनेक वर्षों तक मध्यप्रदेश के मुख्य-मंत्री रहे। आजकल इन्होंने राजनीति से संन्यास ग्रहण कर लिया है। 'लोकमत', 'श्री शारदा' और 'सारथी' पत्रों के संचालक एवं संपादक रह चुके हैं। इन्होंने कारावास में रहकर 'कृष्णायन' का निर्माण किया था। 'कृष्णायन' लोक-नायक कृष्ण का चरित्राख्यान है। अभी तक गुमानी मिश्र को छोड़कर किसी भी कवि ने कृष्ण के विविधता भरे जीवन को समेटने की चेष्टा नहीं की है, पर मिश्र जी ने कृष्ण के लोकरक्षक एवं रंजक रूपों में सामंजस्य स्थापित करके उद्देश्य की महत्ता, जीवन की समग्रता, राष्ट्रव्यापी महाप्राणता एवं युग-युगांतरपरक दूरदर्शिता सहेज कर कृष्ण के चरित्र को राम के समान आदर्शपरक बनाकर नितांत प्रभावशाली बना दिया है। निश्चय ही मिश्र जी ने रामचरित के समानांतर कृष्णचरित देकर भारतीय चिंताधारा में एक नया मोड़ प्रस्तुत किया है। कवि की दृष्टि बड़ी सुलझी हुई है, भाषा में एक अजीब-सा मार्दव और सुघड़ता है।

मिश्रबंधु *(हिं० ले०)*

जिन दो भाइयों—श्याम बिहारी मिश्र (1872-1947) और शुकदेव बिहारी मिश्र (1878-1952)—का व्यक्तित्व एक बनकर साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुआ वे मिश्रबंधु के नाम से हिंदी जगत् में विख्यात हैं। इन दोनों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की और ब्रिटिश शासन में उच्च पदों पर रहे। सरकार ने दोनों को रायबहादुर की और विश्व-विद्यालयों ने डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया। आरंभ में साहित्य के प्रति उनकी रुचि शौकिया थी, परंतु बाद में उनकी संपूर्ण शक्ति तथा जीवन साहित्य को समर्पित हो गया।

द्विवेदी (दे० द्विवेदी, महावीरप्रसाद) युग में हिंदी-आलोचना के जो पाँच रूप दृष्टिगत होते हैं—शास्त्रीय, निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, तुलनात्मक एवं शोधपरक आलोचना—वे सब तो मिश्रबंधुओं की समीक्षा में मिलते ही हैं, प्रभावात्मक और परिचयात्मक आलोचना पद्धति भी मिश्रबंधुओं के माध्यम से स्थिरता को प्राप्त हुई। मिश्रबंधुओं ने कृतियों में दोष-दर्शन की अपेक्षा गुणों का उद्घाटन अधिक किया, कवियों की कला, भाव-संवेदन विचारधारा और जीवन-संदेश का अधिक विवेचन किया, कृति को युग के परिप्रेक्ष्य में रखकर मल्यांकन करने का प्रयास किया। अब तक समीक्षक काव्य की परीक्षा-रस, ध्वनि, गुण, अलंकार के आधार पर करते थे, मिश्रबंधुओं ने कहा कि समीक्षक को उसके अभिव्यंजना-सौष्ठव, विचार-संपदा और भाव-संवेदन पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए; काव्य-भाषा की परीक्षा केवल व्याकरण के नियमों पर न होकर, उसकी साहित्यिक सामर्थ्य और अभि-व्यंजना-कौशल की दृष्टि से होनी चाहिए। 'हिंदी नवरत्न' में हमें निर्णयात्मक आलोचना का प्रथम व्यवस्थित प्रयोग मिलता है। यद्यपि उन्होंने अधिकतर भारतीय काव्यशास्त्र के मानदंडों को आधार मानकर ही अपने दोनों ग्रंथों 'हिंदी नवरत्न' तथा 'मिश्रबंधु-विनोद' में कवियों की आलोचना की है, तथापि तुलसी (दे० तुलसीदास), विहारी (दे०), देव (दे०) इत्यादि के छंदों की व्याख्या में व्याख्यात्मक आलोचना-पद्धति, और विभिन्न हिंदी-कवियों की परस्पर तुलना, तुलसी तथा शेक्सपीयर की तुलना, कवियों के श्रेणी-विभाजन तथा कोटि-निर्धारण में तुलनात्मक आलोचना-पद्धति दृष्टिगत होती है। देव को बृहत्त्रयी में स्थान देने के पीछे प्रभाववादी आलोचना-पद्धति के दर्शन होते हैं। शोधपरक आलोचना-पद्धति हमें 'मिश्रबंधु-विनोद' में मिलती है जहाँ उन्होंने कवियों का वृत्तसंग्रह करने और उनकी प्राप्य-अप्राप्य कृतियों का पता लगाने के लिए परिश्रमपूर्वक अनुसंधान किया।

उन्होंने 'मिश्रबंधु-विनोद' को इतिहास नहीं कहा पर उनका प्रयत्न इसे आदर्श इतिहास बनाना अवश्य था। उन्होंने लगभग 5000 कवियों और उनके काव्य की खोज कर उन पर सुव्यवस्थित प्रकाश डाला, उनका सापेक्षिक महत्व बताया, साहित्य के अन्य विविध अंगों का विवेचन किया और उसे तीन मुख्य कालों—पूर्व, मध्य और उत्तर—में विभाजित किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने काल-विभाजन में उनका अनुसरण किया, तो हजारी-प्रसाद द्विवेदी (दे०) ने 'आदिकाल' नामकरण के लिए मिश्रबंधुओं द्वारा दिये गये 'प्रारंभिक काल' से प्रेरणा ली। उनके इस ग्रंथ में कुछ त्रुटियाँ अवश्य हैं जैसे उन्होंने अष्ट-छाप (दे०) के चतुर्भुजदास को राधावल्लभ-संप्रदाय (दे०) साथ मिलाकर एक कर दिया है, पर कुल मिलाकर हिंदी-साहित्य के इतिहास-लेखन में उनका योगदान अमर है।

कवि, उपन्यासकार और नाटककार के रूप में भी मिश्रबंधुओं का कृतित्व अविस्मरणीय है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली में लिखे गये काव्य के 1000 पृष्ठ, 'उदयन', 'चंद्रगुप्त मौर्य', 'चंद्रगुप्त विक्रमादित्य', 'वीरमणि', 'स्वतंत्र भारत' आदि ऐतिहासिक उपन्यास और 'नेत्रोन्मीलन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक उनके कृतित्व के साक्षी हैं। वे इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान और विशाल अध्येता थे। 1930 ई० में पटना विश्वविद्यालय में दी गयी उनकी व्याख्यानमाला और 'रूस का इतिहास' तथा 'भारतवर्ष का इतिहास' इसका प्रमाण हैं।

हिंदी-साहित्य के इतिहास-लेखन और समीक्षा के क्षेत्र में मिश्रबंधुओं का योगदान इतना महत्वपूर्ण है कि उन्हें महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद इन दोनों कार्यों को आगे बढ़ाने वाला कहा गया है।

मिश्र, बलभद्र *(हि० ले०)*

ये ओरछा निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका 'नखशिख' ग्रंथ शृंगार-विषयक है, जिसमें नायिका के विभिन्न अंगों का वर्णन कवित्वपूर्ण शैली में किया गया है। गोपाल कवि ने इसी ग्रंथ पर एक टीका लिखी थी। उनके कथानुसार इनके लिखे तीन ग्रंथ और भी हैं—'बलभद्री व्याकरण', 'हनुमन्नाटक' और 'गोवर्धन-सतसई'। इनका एक अन्य ग्रंथ 'दूषण-विचार' भी मिलता है। बलभद्र केशवदास (दे०) के समकालीन कवि थे। अतः इस दृष्टि से इनका एक ऐतिहासिक महत्व भी है कि इन्होंने भी रीतिकाल के प्रारंभ होने से पूर्व ही केशव के समान काव्य-शास्त्र-विषयक ग्रंथ लिखे थे।

मिश्र, विजयकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

श्री विजयकुमार मिश्र उड़िया नवनाट्य आंदोलन के अग्रणी नाटककार हैं। अब तक इनके तीस से अधिक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उद्भटनाटक (एब्सर्ड ड्रामा) लिखने वाले प्रमुख नाट्यकारों में इनका नाम भी लिया जा सकता है। इनका नाटक 'शबबाहक माने' (दे०) लोकप्रिय एवं अभिनय की दृष्टि से भी सफल रहा है। व्यावसायिक एवं शौकिया दृष्टि से इनके नाटक अत्यंत सफल हैं। लेखक अपने नाटकों में आधुनिक जीवन की मूल्यहीनता, विघटन, आपाधापी का चित्रण, क्रिया, परिवेश एवं परिस्थिति-निरूपण के द्वारा करता है। फलतः उसका घनीभूत प्रभाव गहरा होता है। संवादों का अत्यल्प प्रयोग हुआ है।

'चंद्रचोरी' तथा 'सूर्यदग्धफुल मानन्कुरु' इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

मिश्र, बिनायक *(उ० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

इनका जन्मस्थान नया गढ़ है और पिता का नाम है कृष्णचंद्र मिश्र। 'ओड़िआ-साहित्य-परिचय' के संकलन में ये स्व० बिजयचंद्र मजुमदार के सहायक थे। 1921 ई० में ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। 1931 ई० में अध्यापक बने और 1949 ई० में इन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

श्री बिनायक मिश्र अध्यवसायी विद्वान एवं मौन साधक हैं। भारतीय इतिहास के एक गौरवमय अध्याय भौमवंश पर लिखने वाले ये एकमात्र उड़िया लेखक हैं। हाई स्कूल या कालेज की सीमा में प्रवेश न करने पर भी मिश्र अँग्रेज़ी जी के साथ-साथ अन्य कई भाषाओं के प्रकांड विद्वान हैं। इनके 'ओड़िआ भाषार इतिहास' एवं 'ओड़िआ साहित्यर इतिहास' (दे०) अपने-अपने क्षेत्र की मूल्यवान उपलब्धियाँ हैं। इनके अतिरिक्त 'ओड़िया अंडर भौमे किंग्स', 'डायनेस्टीज़ ऑफ़ ओड़ीसा', 'मैडिवल ओड़ीसा', 'भारतीय दर्शन-प्रवेश,' 'ओड़िआ साहित्य प्रकाश', आदि अन्य प्रमुख कृतियाँ हैं। सभी में लेखक का गंभीर अध्ययन, मौलिक प्रतिभा, सूक्ष्म गवेषणात्मक शक्ति एवं सशक्त भाषा-शैली आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

मिश्र, भवानीप्रसाद *(हि० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

इनका जन्मस्थान होशंगाबाद (म० प्र०) है। साधारण शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ये साधारण लोगों के बीच में रहे। कुछ वर्ष आकाशवाणी में रहकर आजकल ये गांधी वाङ्मय का संपादन कर रहे हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में ये जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। 'दूसरा सप्तक' में संगृहीत होने के पश्चात् इनकी रचनाएँ 'गीतफ़रोश', 'चकित है दुःख', 'अँधेरी कविताएँ', 'गाँधी पंचशती', आदि कविता-संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। 'बुनी हुई रस्सी' पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनकी कविताओं में साधारण जीवन के सहज अनुभव पूरी अनौपचारिकता के साथ व्यक्त हुए हैं। जैसा हम बोलते हैं, वैसा ही लिखकर उसे असाधारण बना देने के लिए ये कृत-संकल्प रहे हैं। वर्तमान जीवन की सभी विसंगतियों को भोगते हुए भी गांधीवादी आस्था के कारण इनका स्वर निराशाविगलित नहीं है। इस प्रकार परिवेश से संपृक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज अनुभव, जीवन में से प्राप्त आस्थापूर्ण चिंतन और शैली की अनौपचारिकता ने इन्हें नये कवियों में विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है।

मिश्र, रामदहिन *(हिं० ले०)*

विद्यावाचस्पति पं० रामदहिन मिश्र ने 'काव्य-दर्पण','काव्यलोक', 'काव्यविमर्श', 'काव्य में अप्रस्तुतयोजना' आदि अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है, और इनमें सर्वाधिक ख्यात ग्रंथ है—'काव्यदर्पण'। वस्तुतः यह उनका अंतिम ग्रंथ है। अतः इनके काव्यलक्षण-विषयक सभी ग्रंथों की सामग्री इसमें एकत्रित है। इसमें काव्यलक्षण, शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, काव्य-भेद, नाटक, दोष, गुण, रीति और अलंकार—इन सभी काव्यांगों का विवेचन स्पष्ट एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में भारतीय दृष्टि-कोण के साथ-साथ तद्विषयक पाश्चात्य मंतव्य भी यत्र-तत्र अनुस्यूत हैं। उदाहरण प्राचीन तथा अर्वाचीन हिंदी-ग्रंथों से लिये गए हैं। इस ग्रंथ के माध्यम से ग्रंथकार ने प्राचीन भारतीय काव्यांगों के लिए न केवल प्राचीन, अपितु आधुनिक कवियों की रचनाओं से भी उदाहरण प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम प्रयास किया है।

मिश्र, लक्ष्मीनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

इनका जन्म आज़मगढ़ ज़िले के बस्ती गाँव में हुआ। इन्होंने 1928 ई० में सेंट्रल हिंदू कालेज, काशी से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। यद्यपि इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ अट्ठारह वर्ष की अल्पायु में काव्य-सृजन से किया किंतु आगे चलकर ये नाट्य-लेखन की ओर मुड़ गए और तदनंतर अपनी अभिनय नाट्यकला के फलस्वरूप इस दिशा में स्थायी यश अर्जित किया। 'अशोक', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिंदूर की होली' (दे०), 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध' आदि इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इन्होंने मुख्यतः समस्याप्रधान एवं ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं और अपनी रचनाओं में भावुकता तथा कल्पना के स्थान पर यथार्थ जीवन की जटिलताओं का प्रत्यंकन किया है। शिल्प की दृष्टि से इनकी रचनाओं पर पश्चिमी नाटककारों, मुख्यतः इब्सन और शॉ का विशेष प्रभाव पड़ा है। समग्रतः (दे० प्रसाद) नाट्य-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।

मिश्र, श्रीपति *(हिं० ले०)*

श्रीपति कालपी नगर के निवासी थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'काव्य-सरोज' है, जिसका रचना-काल 1720 ई० है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'कवि-कुलकल्पद्रुम', 'रससागर', 'अलंकारगंगा', 'अनुप्रासविनोद', 'विक्रम-विलास', 'सरोजलतिका' आदि अन्य ग्रंथ भी लिखे जो आज अनुपलब्ध हैं। 'काव्य-सरोज' में विविध काव्यांगों का निरूपण मम्मट (दे०) की पद्धति पर किया गया है। इसकी वर्ण्य-सामग्री सुलझी हुई तथा स्पष्ट है। इसका उदाहरण-पक्ष सरस और प्रायः अनुप्रासमय है। दोष-प्रसंग में इन्होंने स्वनिर्मित उदाहरण प्रस्तुत न कर पूर्ववर्ती हिंदी-कवियों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिनमें से केशव-दास (दे०) के अतिरिक्त सेनापति (दे०) और ब्रह्म के नाम उल्लेख्य हैं। रीतिकालीन आचार्य दास (दे०) के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने अपने 'काव्य-निर्णय' (दे०) में बहुत-सी बातें इनके 'काव्य-सरोज' से अपना ली हैं, किंतु दोनों ग्रंथों की विभिन्न निरूपण-शैली तथा शास्त्रीय धारणाओं को देखते हुए यह मान्यता ठीक प्रतीत नहीं होती।

मिश्र, सुखदेव *(हिं० ले०)*

ये कंपिला के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जीवन-काल 1633-1703 ई० माना जाता है। ये अनेक राजाओं के यहाँ रहे थे। इनके द्वारा रचित ये ग्रंथ कहे जाते हैं—'वृत्तविचार', 'छंदविचार', 'अध्यात्मप्रकाश', 'फाज़िलअलीप्रकाश', 'रसरत्नाकर', 'रसार्णव', 'श्रृंगार-लता' आदि। 'रसरत्नाकर' तथा 'रसार्णव' भानुमिश्र की 'रसमंजरी' (दे०) के आधार पर लिखे गये नायक-नायिका-भेद-विषयक ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों के उदाहरण सरस तथा कवित्वपूर्ण हैं। शैली सहज भावमयी है, जिसमें आलंकारि-कता का पुट अधिक नहीं है।

मिश्र, सूरति *(हिं० ले०)*

सूरति मिश्र आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके लिखे ये 7 ग्रंथ बताए जाते हैं—'अलंकारमाला', 'रसमाला', 'सरसरस', 'रसग्राहकचंद्रिका', 'नखशिख', 'काव्य-सिद्धांत' और 'रसरत्नाकर'। इनके अतिरिक्त इन्होंने तीन टीकाएँ भी लिखी थीं—'अमीरचंद्रिका' नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बिहारी-'सतसई' (दे०) की टीका), 'कविप्रिया' (दे०) और 'रसिकप्रिया' की टीका, तथा इन्होंने 'वैतालपंच-विशति' का ब्रजभाषा में अनुवाद भी किया था। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने अपने ग्रंथ 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (दे०) में इनका एक पद्य उद्धृत किया है जो कि अति सरस है। इससे इनकी कवित्वक्षमता का अनुमान-मात्र लगाया जा सकता है।

मिश्र, सौभाग्यकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1941 ई०]

श्री सौभाग्यकुमार मिश्र नयी कविता के एक अग्रणी कवि हैं। इनका जन्म ब्रह्मपुर (गंजाम) में हुआ था। रेवेंसा कालेज, कटक से इन्होंने अँग्रेज़ी-साहित्य में एम०ए० किया है। नयी कविता के नये प्रयोगों में इनकी सफलता असंदिग्ध है। इनकी कविताओं में आधुनिक मानव की दुबिधा एवं भ्रांति की अभिव्यक्ति हुई है। फिर भी कवि आशान्वित है। इनकी कविताओं में गेयता और बौद्धिक शक्ति-संपन्नता मिलती है। भाव एवं परिवेश के चित्रण में कवि का दृष्टिकोण यथार्थवादी एवं नाटकीय है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। उड़िया भाषा के विभिन्न सूक्ष्म अर्थ-भेदों के प्रति कवि अत्यंत सजग है। ये साहित्य के सौंदर्य और नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक एवं गंभीर हैं। 'आत्मनेपदी', 'मध्यपद लोपी' (दे०) काव्य-संग्रह इनके कवि-व्यक्तित्व की समस्त संभावनाओं से उज्ज्वल हैं।

मिहरबान *(पं० ले०)*

ये पंजाब में बाबा श्रीचंद द्वारा प्रवर्तित 'उदासी' संप्रदाय के अंतर्गत 'दीवाला' मत के संस्थापक माने जाते हैं। ये सिखों के चौथे गुरु रामदास जी के पात्र, वाबा पृथ्वीचंद्र के पुत्र और पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के भानजे थे। सिख-पंथ की गुरु-परंपरा के समानांतर चलने वाली उदासी-मत-परंपरा के अग्रणी अधिकांशतः गुरु-परिवार के वे ही व्यक्ति रहे जिनका किसी-न-किसी कारण गुरु-मत से विरोध था। सोढी मिहरबान भी इनके द्वारा लिखित 'गुरु नानक देव जी की 'जनम-साखी' सिख-पंथ में बहुत विवादास्पद रचना मानी जाती है क्योंकि इसमें बहुत-सी बातें गुरु-मत के विरुद्ध हैं।

पंजाबी-साहित्य के अंतर्गत मिहरबान की गणना प्रारंभिक गद्यकारों में की जाती है क्योंकि इनके द्वारा लिखित 'जनमसाखी' पंजाबी की प्राचीनतम गद्य-रचनाओं में से है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृति 'रामायण' की हस्तलिखित प्रतियाँ भी पंजाब के विभिन्न पुस्तक-संग्रहालयों में विद्यमान हैं।

मीनलदेवी *(गु० पा०)*

पाटण के राजा कर्णदेव की रानी और दक्षिण के राज्य चंद्रपुर की राजकुमारी मीनलदेवी कन्हैयालाल मुंशी (दे०) द्वारा रचित 'पाटणनी प्रभुता' (दे०) का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्त्री पात्र है। मुंजाल (दे०) नामक वणिक् के साथ प्रेम होने के कारण और किसी भी प्रकार गुजरात में रहने की आकांक्षा रखने वाली मीनल चूँकि मुंजाल से विवाह नहीं कर सकती, अतः मुंजाल के प्रयत्नस्वरूप कर्णदेव से विवाहित हो कर पाटण आती है। पाटण में आ कर मुंजाल के प्रति उसके प्रेम में थोड़ी सात्विकता आ जाती है। अत्यंत महत्वाकांक्षिणी मीनल राज्य के सभी अधिकार अपने हाथ में रखना चाहती है और उसके इस अबाध अधिकार-भोग में जो बीच में आता है उसे साफ़ कर देने तक की निर्ममता में कहीं भी नहीं चूकती। जैन धर्मानुसार एकचक्र शासन की स्थापना करने का लोभ उसके मन में आनंदसूरि के संपर्क से आया है। अपने मार्ग का कंटक समझ कर वह मुंजाल को भी पाटण से बाहर भेजने की व्यवस्था करती है। देवप्रसाद और मुंजाल कहीं मिल न जायें इसलिए षड्यंत्र रचती है। आरंभ में तो ऐसा लगता है कि मीनल सफल हो जायेगी पर आखिर में उसकी स्थिति बड़ी ख़राब हो जाती है। वह अपने स्वार्थ को पुरा करने के लिए प्रसन्न को मालवराज से ब्याह देना चाहती है। मीनल जब गुप्त रूप से पाटण छोड़ कर चली जाती है और पाटण पर आक्रमण करने के लिए चंद्रपुर की सेना आती है तब पट्टणी उससे क्रुद्ध हो जाते हैं और उसे पाटण में प्रवेश नहीं करने देते और विवश हो कर वह पुनः मुंजाल की शरण जाती है। मुंजाल उसे क्षमा कर देता है और उसकी सहायता करता है। किसी वस्तु का किस प्रकार और कहाँ उपयोग किया जाय, यह मीनल अच्छी तरह जानती है और इसी संदर्भ में वह हंसा को अपना 'ब्रह्मास्त्र' मानती है। चारों तरफ़ की असफलता ने मीनल के चरित्र को ही बदल दिया है और अंत में मीनल यह कहती सुनी जाती है: 'जीवीश तो पाटणनी मरजीथी, मरीश तो पाटणनूं गौरव वधारवा।' (जिऊँगी तो पाटण की इच्छा से और मरूँगी तो पाटण की गौरव-वृद्धि के लिए।) रानी मीनल के हृदय-परिवर्तन की उदात्त कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशी जी ने अपने दूसरे उपन्यास 'गुजरातनो नाथ' में वर्णित की है। समग्रतः देखने पर यह कहा जा सकता है कि मीनल आरंभ में महत्वाकांक्षिणी है, निर्भय है पर अंत में उदात्त भावों से पूर्ण हो जाती है और पाटण की समृद्धि ही उसका लक्ष्य रह जाता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में मीनल-सा चरित्र कम देखने को मिलता है।

मीनाक्षिसुंदरम्, ते० पो० *(त० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

तमिल भाषा एवं साहित्य के अलावा भाषा-विज्ञान, दर्शन, संस्कृति आदि संबद्ध क्षेत्रों में भी ये आधुनिक युग के शीर्षस्थानीय विद्वान माने जाते हैं। गत दो दशकों में मद्रास एवं 'अण्णामलै' विश्वविद्यालयों के अंतर्गत तमिल के प्रोफ़ेसर होने के बाद 1965-70 ई० की अवधि में ये मदुरै विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। प्रारंभिक जीवन में ये ख्याति-प्राप्त गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता थे और शिक्षा-क्षेत्र में आकर इन्होंने तमिल और द्रविड़ भाषाओं के अनुशीलन-अनुसंधान के संवर्धन के लिए महती सेवाएँ की थीं। तमिल भाषा, साहित्य और संस्कृति-संबंधी अध्ययनों के लिए विश्वस्तरीय व्यापकता एवं सम्मान दिलाने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित 'तमिल अनुसंधान की अंतर्राष्ट्रीय संस्था' के आरंभकर्ताओं में इनका नाम प्रमुख है। अमरीका के शिकागो विश्वविद्यालय के तमिल विभाग का संगठन इनके द्वारा हुआ था और वहाँ इन्होंने तमिल साहित्य के इतिहास पर अँग्रेज़ी में कुछ व्याख्यान दिये थे जो पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इनकी अँग्रेज़ी में लिखित तथा भारतीय भाषाविज्ञान परिषद्, पूना द्वारा प्रकाशित 'तमिल भाषा का इतिहास' नामक पुस्तक ने आधुनिक भाषावैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार तमिल का ऐतिहासिक और संकालिक वर्णन प्रस्तुत करके उच्च अध्ययन का एक मानदंड स्थापित किया है। इनकी तमिल कृतियाँ ये हैं—'वळ्ळुवर् नाट्टुम् मकळिरुम्' (प्रसिद्ध कृति 'तिरुक्कुरळ्' (दे०) की समालोचना), 'तमिला-निर्नैलुप्पार्' (इतिहास एवं संस्कृति पर लेख) 'पिरन्ततु एप्पटियो' (विविध विषयक निबंध इत्यादि)।

इन पुस्तकाकार कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने 'तमिल कलैक्कळञ्चियम्' (तमिल विश्वकोश) में तमिल भाषा तथा साहित्य-संबंधी प्रविष्टियों के रूप में अनेक खोजपूर्ण लेख भी प्रस्तुत किये हैं।

मीनाक्षिसुंदरम् पिळ्ळै, महाविद्वान् *(त० ले०)* [जन्म—1815 ई०; मृत्यु—1876 ई०]

अपनी विशेष उपाधि 'महाविद्वान' के अनुरूप ये अपार विश्रुत महानुभाव और सिद्ध कवीश्वर भी थे। किसी भी विषय पर सोचते-सोचते इनके मुख से आभिजात्यपूर्ण कविता की धारा अबाध गति से निःसृत हो उठती थी और इनका कोई शिष्य इसे लिपिबद्ध करता चला जाता था। ये तमिल प्रदेश के धनी शैव मठाधीशों के आश्रय में रहा करते थे और इनकी अधिकांश कविता-रचनाएँ मंदिर के माहात्म्य, धार्मिक महापुरुषों, उपास्य देवी-देवताओं की महिमा इत्यादि विषयों पर आधारित होकर उत्तरकालीन 'पुराणम्', 'पिळ्ळैत्तमिल्' (दे०), 'अंदादि', (दे०), 'कलंबकम्' (दे०) इत्यादि विधाओं में ढली हुई हैं। ऐसी रचनाओं में इनकी 'चेक्किलार्पिल्लैत्तमिल्', जो 'चेक्किलार' नामक प्रसिद्ध साहित्यिक एवं धार्मिक नेता का गौरव-गान है, विद्वद्जन-प्रिय हो गयी है। इनके मुख्य शिष्यों में महामहोपाध्याय डा० सामीनाद अय्यर (दे०) थे जो तमिल भाषा के मुख्य गौरव-ग्रंथों के ताड़पत्रों की सफल खोज करके उनके आदर्श संस्करण निकालने से एक नये युग के प्रवर्त्तक हो गये।

मीनाक्षीयम्मै पिळ्ळैत्तमिल *(त० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध]

इसके रचयिता कुमरगुरुपरर (दे०) नामक शैव संत थे। इस कृति के 100 पदों में कवि ने भगवान शिव की अर्द्धांगिनी मीनाक्षी देवी के जीवन से संबंधित अनेक पौराणिक घटनाओं का सरस वर्णन किया है। प्रसिद्ध है कि एक बार देवी मीनाक्षी मदुरै नगरी के पांड्य राजा की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम तडातकै रखा गया। अपने विलक्षण गुणों और क्रियाकलापों के कारण वह पार्वती देवी का अवतार मानी गई। इस कृति में कुमरगुरुपरर ने देवी मीनाक्षी (पार्वती) से संबंधित पौराणिक कथाओं को पांड्य राजा की पुत्री से संबंधित लोक-प्रचलित कथाओं से मिला दिया है। इस कृति के विभिन्न पदों में मदुरै की अधिष्ठात्री देवी मीनाक्षी की बाल-चेष्टाओं का सरस-हृदयहारी वर्णन प्राप्त होता है। कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति और प्रभावशाली सुंदर शैली ने 'पिळ्ळैत्तमिल' नामक काव्यविधा को नूतन आभा प्रदान की है। इसे 'पिळ्ळैत्तमिल' विधा में रचित सर्वश्रेष्ठ कृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता है। कुमरगुरुपरर के परवर्ती कवियों और विद्वानों ने मुक्तकंठ से इसके काव्य-सौंदर्य की प्रशंसा की है।

मीर अम्मन 'देहलवी' *(उर्दू० ले०)*

दे० अम्मन 'देहलवी', मीर।

मीर ख़लीक़ *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1774 ई०; मृत्यु—1814 ई०]

इनका वास्तविक नाम मीर मुसतहसिन था। उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मीर अनीस (दे०) इन्हीं के सुपुत्र थे। इनके पिता का नाम मीर हसन सेहरुलबयाँ था। आरंभिक शिक्षा इन्होंने अपने पिता से प्राप्त की थी। तदुपरांत ये प्रसिद्ध कवि मुसहफ़ी (दे०) के शिष्य बने थे और इस पथप्रदर्शन से इनकी काव्य-प्रतिभा का अत्यधिक विकास हुआ था। काव्य-रचना की दृष्टि से इन्होंने यथेष्ट उन्नति की थी। एक बार फ़ैज़ाबाद के प्रसिद्ध मुशायरे में इनकी ग़ज़ल को इतनी अधिक प्रशंसा एवं लोकप्रियता प्राप्त हुई थी कि 'आतिश' (दे०) जैसे दिग्गज काव्य-गुरु ने मीर खलीक़ के बाद अपनी ग़ज़ल प्रस्तुत करना व्यर्थ समझा था जबकि वे लखनऊ से विशेष अतिथि के रूप में उस मुशायरे के लिए आये थे। मर्सिया-लेखन की दृष्टि से इनकी गणना उर्दू के प्रथम श्रेणी के कवियों में होती है। मर्सिया-लेखन के विकास में इनका योगदान ऐतिहासिक महत्व का है। इनके शिष्य-मंडल ने भी उक्त काव्य-विधा के विकास में यथासामर्थ्य योग दिया था।

'मीर', मीर तक़ी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1724 ई०; मृत्यु—1810 ई०]

इनका पूरा नाम मीर मुहम्मद तक़ी और उपनाम 'मीर' था। इनके पिता मीर अब्दुल्ला अकबराबाद (आगरा) के गण्यमान्य व्यक्तियों में से थे। मीर की आयु केवल दस वर्ष की थी जब इनके पिता का देहावसान हो गया। पिता की मृत्यु के बाद ये दिल्ली चले आये और अपने सौतेले भाई के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की। बाल्यावस्था में ही मीर की काव्य-रचना में रुचि थी।

मीर का कद मध्यम, शरीर दुबला-पतला, रंग गंदुमी तथा स्वभाव कठोर था। वैसे तो इन्होंने सभी काव्य-रूपों में रचना की है किंतु ग़ज़ल इनका प्रिय विषय था। ग़ज़ल लिखने में इनकी समता कोई नहीं कर पाया, इसीलिए ये ग़ज़ल-लेखन में उस्ताद माने जाते हैं।

इनके काव्य में सरलता, स्वच्छता इतनी है कि पाठक को इसे समझने में अधिक बौद्धिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। भाव सहज ही हृदय में उतर जाते हैं। युवावस्था में किसी मानसिक आघात के कारण पीड़ा, निराशा और वेदना इनके स्वभाव के अभिन्न अंग बन गये थे जो प्रमुखत. इनके काव्य में परिलक्षित होते हैं। अधिक आयु प्राप्त करने के कारण इनकी रचनाओं की संख्या भी अधिक है। 'नुकातुल-शोअरा' फ़ारसी भाषा में इनकी सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें उर्दू कवियों का विवरण है।

इसके अतिरिक्त इनके छह दीवान उर्दू काव्य के हैं और एक दीवान फ़ारसी भाषा में है। मीर ने बहुत सी मसनवियाँ और क़सीदे भी लिखे हैं। मसनवियों में सुप्रसिद्ध ये हैं:

(1) अखगर नामा, (2) शेअ़ला-ए-इश्क, (3) जोश-ए-इश्क, (4) दरया-ए-इश्क, (5) इअ़जाज़-ए-इश्क, (6) मुआ़मलात-ए-इश्क, (7) ख़ाबो-ख़्याल। इन मसनवियों में प्राकृतिक दृश्यों तथा दार्शनिक समस्याओं का सुंदर वर्णन है।

मीर साहब ने उर्दू काव्य में वासोख़्त रचना की नींव रखी। 'वासोख़्त' का शाब्दिक अर्थ है 'जलना'। यह वह काव्य-रूप है जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका से अपने प्रति बेवफ़ाई तथा अपने प्रतिद्वंद्वी के प्रति सहानुभूति और प्रेम भावना दर्शाने का उपालंभ देता है और अपनी विरह-वेदना की मार्मिक तथा प्रभावशाली अभिव्यक्ति करता है।

मौलाना मुहम्मद हुसेन आज़ाद (दे०) ने इन्हें उर्दू-काव्य का 'सादी' माना है। इनका देहांत लखनऊ में हुआ।

मीर तक़ी 'मीर'—हयात और शायरी *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1954 ई०]

लेखक: डा० ख़्वाजा अहमद फ़ारूक़ी (दे०)। अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद), अलीगढ़ से प्रकाशित यह कृति उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मीर तक़ी 'मीर' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबद्ध है। 632 पृष्ठों की इस कृति में शास्त्रीय साहित्य की दृष्टि से 'मीर' के स्थान एवं स्तर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यांकन भी किया गया है। आलोचना की दृष्टि से 'मीर' पर लिखी गई श्रेष्ठ पुस्तकों में इसकी गणना होती है। 'मीर' ने अपने युग पर जो प्रभाव डाला और भविष्य के लिए जो मार्ग प्रशस्त किया, इस विषय में यथेष्ट सामग्री इस कृति में जुटाई गई है। 'मीर' से संबद्ध बहुत से अनुपलब्ध और दुर्लभ तथ्यों का परिश्रमपूर्वक संकलन कर लेखक ने इस कृति को अधिकाधिक तथ्यपूर्ण आधार देने का भरसक प्रयत्न किया है। उपलब्ध तथ्यों को एक लड़ी में पिरोकर उसे सामाजिक वास्तविकताओं के आलोक में इस क्रम से उद्घाटित किया गया है कि 'मीर' और उन का युग साकार हो उठा है। प्रामाणिक तत्त्वों की सहायता से 'मीर' की प्रतिभा और तत्कालीन परिस्थितियों का अंकन कर साहित्य के इतिहास में उसके काव्य का योगदान तथा स्थान निर्धारित करने में लेखक को यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है।

इस कृति में सिद्ध किया गया है कि उर्दू के प्रचार, प्रसार और विकास में 'मीर' ने अपने युग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उर्दू को नवीन अभिव्यंजना-शैलियों से समृद्ध किया है। उन्होंने हिंदी की कोमलकांत शब्दावली को भी अपनाया है। दिल्ली की दैनिक बोलचाल, मुहावरों और लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग कर और व्याकरण-सम्मत परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग कर 'मीर' ने साहित्य का पथप्रदर्शन किया है। 'मीर' की उन सभी विशेषताओं का विस्तृत परिचय इस कृति में दिया गया है जिनके बल पर उन्हें अविस्मरणीय गौरव, प्रसिद्धि तथा अमरत्व प्राप्त हुआ है।

मीर मशर्रफ़ हुसैन (*बँ० ले०*) [जन्म—1848 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

उन्नीसवीं शती के मुसलमान लेखकों में मीर मशर्रफ़ हुसैन विशेष उल्लेखनीय हैं। तीन खंडों में रचित 'विषाद सिंधु' से उनकी ख्याति का प्रसार हुआ जिसकी रचना कर्बला की करुण कहानी के आधार पर हुई थी। 'रत्नावली' (1869), 'उदासी पथिक मनेर कथा' (1891) तथा 'गाजी मिंचार वस्तानी' (1896) के नाम से उन्होंने तीन घटना-प्रधान रोमांटिक उपन्यासों की रचना की। 'वसंत कुमारी नाटक' (1872), 'ज़मींदार दर्पन नाटक' (1873) इनके दो प्रसिद्ध नाटक हैं। सरल कथ्य-भाषा एवं अमित्राक्षर छंद के ऊपर इनका विशेष अधिकार था।

मीर हसन (*उर्दू० ले०*) [जन्म—1736 ई०; मृत्यु—1786 ई०]

इनका पूरा नाम मीर ग़ुलाम हसन और उपनाम 'हसन' था। इनके पुरखों का वतन हरात था किंतु ये देहली के ही रहने वाले थे। इनका जन्म भी पुरानी दिल्ली में हुआ था। दिल्ली की दशा जब बिगड़ी तो ये अपने पिता मीर ग़ुलाम हसन 'ज़ाहक' के साथ अवध की तत्कालीन राजधानी फ़ैज़ाबाद में आ गए। जब आसफ़ुद्दौला ने लखनऊ आबाद किया तो ये भी लखनऊ चले गए। ये गौर वर्ण और मध्यम कद के थे। स्वभाव से हँसमुख तथा विनोदप्रिय थे।

इनके परिवार में काव्य-सृजन का कार्य इनके पूर्वजों के समय से चला आ रहा था। इनके पिता स्वयं एक उच्च कोटि के कवि थे। आरंभ में मीर हसन अपने पिता से ही काव्य-शुद्धि कराते थे। बाद में मीर दर्द (दे० दर्द) के शिष्य बन गए। इनका एक ही दीवान छपा है।

इनके काव्य में भाषा की स्वच्छंदता विशेष रूप से विद्यमान है। ये मुहावरों का प्रयोग अधिक करते हैं तथा इनकी ग़ज़ल शैली विशेषतः सराहनीय है। इनकी मसनवियों ने तो इन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया है।

इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'सहरुल-बयान' (दे० मसनवी सहरुल-बयान) है। इसमें बद्र-ए-मुनीर (दे०) की कथा है। इस रचना के संबंध में मौलाना आज़ाद (दे०) लिखते हैं कि 'यह रचना अपने समय के सामाजिक जीवन का दर्पन है'। इनके भाव सजीव तथा अभिव्यंजना-शैली इतनी हृदयस्पर्शी है कि पाठक इनकी रचना में सहज ही आत्मविभोर हो जाता है। इनके वर्णन भी इतने सजीव हैं कि घटनाएँ और दृश्य साकार हो उठते हैं। इनकी एक और मसनवी 'गुलज़ारे इरम' (दे०) है। इनकी अन्य प्रसिद्ध पुस्तक 'शोअरा-ए-उर्दू है। इसमें उर्दू के प्रसिद्ध कवियों का ब्योरा दिया गया है। मीर हसन ने कुछ कसीदे भी लिखे हैं जो इतने ज़ोरदार नहीं हैं। मीर अनीस (दे०) इनके पोते थे।

मीराँबाई (*हिं०, गु० ले०*) [जन्म—1503 ई०; मृत्यु—1573 ई०]

राजस्थान के मेड़ता परगने के कुड़की गाँव में प्रसिद्ध राठौर वंश में इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही इनमें कृष्णभक्ति का प्राबल्य था। यथासमय चित्तोड़ाधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से इनका विवाह हुआ था। कृष्णप्रेम में अनुरक्त मीराँ वृंदावन आई थीं और वहीं रहने लगी थीं, बाद में पति के कहने पर पुनः चित्तौड़ चली गयी थीं। पति की मृत्यु के बाद इनके देवर विक्रमसिंह ने इन्हें कृष्ण-भक्ति से विमुख करने के लिए अनेक कष्ट दिये थे।

मीराँ के गीतों में विरह की कसक, पीड़ा की तीव्रतर अनुभूति, आत्मसमर्पण एवं आत्मानुभूति की गहराई सर्वत्र देखने को मिलती है। इस प्रेमयोगिनी का प्रत्येक कार्य-व्यापार, व्यवहार एवं नैत्यिक गतिविधि सभी प्रियतम को रिझाने के लिए प्रकट हुई हैं। यों तो मीराँ के नाम से 'नरसी जी रो माहेरो', 'गीतगोविंद की टीका', 'रागगोविंद' 'सोरठ के पद', 'मीराँबाई का मलार', 'गर्वागीत', 'राग-विहाग', 'फुटकर पद' आदि आठ कृतियों को संबंधित किया जाता है, परंतु इनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना 'पदावली' (दे० मीराँ की पदावली) है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। निस्संदेह गीतिकाव्य की परंपरा में मीराँ-काव्य एक अभूतपूर्व मोड़ है और परवर्ती कवियों के लिए एक बहुत बड़ा आदर्श है। इनके पदों की भाषा में राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिश्रण पाया जाता है। कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ीबोली और पूर्वी प्रयोग भी पाये जाते हैं। अन्यान्य भाषाओं का मिश्रण इनके काव्य में दीर्घ प्रचार एवं मौखिक परंपरा का ही फल है। आत्मगरिमा से मंडित प्रेमयोगिनी मीराँ का स्थान राजस्थानी और हिंदी-साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

मीराँ को गुजराती-साहित्य में भी उतनी ही मान्यता प्राप्त है जितनी हिंदी में। मतवाली मीराँ दर्द का पर्याय बना गई है। भक्ति, प्रेम, विरह की पीर की मार्मिकता की सटीक किंतु सरल अभिव्यक्ति, सर्वस्व-समर्पण की निष्कपट भावना मीराँ के भक्त एवं कवि—व्यक्तित्व की स्पष्ट रेखाएँ हैं।

मीराँ की पदावली *(हिं०कृ०)* [रचना-काल—1533-34 ई०]

प्रस्तुत रचना मीराँ (दे० मीराँबाई) की ख्याति का मुख्याधार है। यह उनकी सर्वमान्य प्रामाणिक रचना है, परंतु फिर भी अन्यान्य भक्तों के पद इनके पदों में सम्मिलित हो जाने के कारण इनके पदों की वास्तविक संख्या का निर्णय करना अत्यधिक कठिन हो गया है। अब तक सब मिलाकर 'पदावली' के लगभग दो दर्जन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'पदावली' का वर्ण्यविषय काफ़ी सीमित है। कुछ पद मीराँ के व्यक्तिगत जीवन की ओर संकेत करते हैं। अधिकांश में परमाराध्य की विनय और स्तुति, सौंदर्य-कल्पना, प्रणयानुभूति, आत्मसमर्पण, विरहोद्गार, अव्यक्त की अनुभूति और रागात्मकता का समावेश है। इस तरह के पदों में प्रेम भौतिकता से अध्यात्म की ओर मुड़ा है। इसकी भाषा के संबंध में तीन मत प्रचलित हैं—कुछ विद्वान् राजस्थानी को इसकी मूल भाषा मानते हैं, कुछ ब्रज को और कुछेक राजस्थानी, गुजराती, ब्रज और पंजाबी आदि के सम्मिश्रित रूप को इसकी भाषा मानते हैं। गेयत्व की दृष्टि से यह कृति हिंदी-साहित्य की अन्यतम कलाकृति है। साधना के अखंड क्रम में प्रेम-कोकिला मीराँ की हृदयस्थ अनुभूतियाँ जिस मार्दव और सहजता से 'पदावली' में व्यक्त हुई हैं वही सच्चा काव्य है और वही भाव विभोरता मीराँ के काव्य की एकमात्र सहज आत्मा है।

मीशा, एस० एस० *(पं० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

पंजाबी की नई कविता के विलक्षण सुरताल मीशा की कविता में सुने जा सकते हैं। उनकी कविता की रूप-विधि व्यंग्य के माध्यम से ढलती है। उनकी कविता प्राय: कथन के स्तर पर ही शब्दबद्ध हुई प्रतीत होती है, काव्य-संरचना का शुद्ध रूप उससे नहीं उभरता। परंतु उनकी रचना का सौंदर्य उस वाग्वैदग्ध्य में है जो उसमें कहीं न कहीं समाविष्ट रहता है और जिसके कारण वह सामान्य कथन से भिन्न कोटि में बदल कर काव्य के समीप की वस्तु बन जाती है। मीशा ने मध्य श्रेणी के नागरिक जीवन की समस्याओं एवं तनावपूर्ण संबंधों को ऐसी भाषा में प्रस्तुत किया है जिसमें पूर्ववर्ती कवियों जैसी भावुकता अथवा रोमानी मोह-भावना का अभाव है। 'चुरस्ता' (चौराहा) एवं 'दस्तक' (दे०) उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आजकल ये आकाशवाणी के जालंधर केंद्र पर प्रोड्यूसर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

मुंज *(गु० पा०)*

मुंज श्री कन्हैयालाल मुंशी (दे०) के उपन्यास 'पृथ्वीवल्लभ' का अविस्मरणीय पात्र है। यों तो इतिहास भी मुंज की महत्ता का साक्षी है किंतु मुंशीजी ने पौरुष तथा रसिकता-विषयक इसकी प्रभविष्णुता तथा चारित्रिक रेखाओं को और भी उभार दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें असाधारण पौरुष, अप्रतिम बल, सौंदर्य, तप, रसिकता तथा राजनीति-कौशल प्रभृति दुर्लभ गुणों का मेल है। इसकी वाणी की स्वाभाविकता तथा आत्मीयता में एक चुंबकीय आकर्षण है।

इसका प्रथम दर्शन उपन्यास में क़ैदी के रूप में होता है किंतु अपने व्यक्तित्व के कारण उसका पृथ्वी-वल्लभत्व और भी सार्थक लगता है। मृणाल जैसी वीत-रागिनी को वह प्रथम साक्षात्कार में ही अनिर्वचनीय भावों से भर देता है। इसे पिंजड़े में बंद किया जाता है। किंतु हाथ जलाने वाली मृणाल सहित समस्त प्रजा इसकी हो जाती है। विषम से विषम परिस्थिति में भी यह आनंद-मग्न रहता है। विजयी राजा तलप की राज्यसभा में भी इसकी यह लोकप्रियता अखंडित रहती है।

इसका प्रणय एक वीर पुरुष का प्रणय है। शत्रु के राज्य में संभावित विपत्ति से अवगत होते हुए भी यह मृणाल को छोड़कर भागता नहीं है। मृत्यु की वेला में भी इसके व्यवहार में पूर्ववत् निश्चितता, आनंद तथा प्रफुल्लता में परिवर्तन नहीं आता। इसीलिए लेखक ने हाथी के पाँवों तले रौंदे जाने की इसकी अमानवीय मृत्यु को 'हाथी की सूँड़ में मंदहास से रमण करते हुए' स्वर्ग में जाने की संज्ञा दी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह महान ऐतिहासिक पात्र लेखकीय विशेषताओं से अनुप्राणित हो ऐतिहासक मुंज से महत्तर लगने लगता है। मृणाल के प्रति इसके प्रेम को यद्यपि विश्वसनीय आधार नहीं मिला है, तथापि यह पाठक के हृदय पर अपनी गहरी और निश्चित छाप छोड़ जाता है। मुंशी-साहित्य का तो यह उत्तम पात्र है, इसमें संदेह नहीं।

मुंजाल *(गु० पा०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (दे०) के सर्वोत्तम उपन्यास 'पाटण नी प्रभुता' (दे०) का मुख्य पात्र मुंजाल है। वह गुजरात की राजधानी पाटण का नगर-श्रेष्ठि है। अपरिमित संपत्ति का स्वामी मुंजाल अत्यंत सुंदर, रसिक और विविध विषयों का ज्ञाता है। दक्षिण की यात्रा में वह चंद्रपुर की राजकुमारी मीनल (दे०) से परिचित होता है और उसके व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित होता है। मीनल भी उसकी प्रेयसी बनती है। मुंजाल के समीप रहने के लिए वह गुजरात के राजा कर्णदेव से देह-लग्न करती है, पर उसका हृदय-लग्न तो मुंजाल से ही होता है। मुंजाल, स्वप्नदर्शी, महत्वाकांक्षी और देशप्रेमी है। गुजरात को सर्वोपरि देश बनाने की उसकी महेच्छा उसे राजनीति में सक्रिय रस लेने के लिए प्रेरित करती है। दूरदर्शिता, कूटनीतिज्ञता, व्यवस्था-शक्ति और आत्मबल से वह महामात्य के पद पर प्रतिष्ठित होता है। मीनल उसकी प्रेरणा-मूर्ति और प्रेरक शक्ति है। महत्वाकांक्षा की कठोरता ने उसे निष्ठुर, उग्र और अहंकारी बनाया है। राजनीतिक कुचक्र और सत्तालोलुपों के षड्यंत्र उसे कदापि भयभीत नहीं करते। मीनल की पदलोलुपता और हीन चेष्टाओं को नियंत्रित करने की शक्ति केवल मुंजाल में है। वही उसे अंकुश में रखता है, अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करता है और गुजरात की कीर्ति की अभिवृद्धि करता है। कर्णदेव के अवसान के समय 'पाटण की प्रभुता' का कहीं ह्रास न हो, इसके लिए मुंजाल संयम, विवेक और कार्य-दक्षता से शासन-प्रबंध करता है और अपने राष्ट्रप्रेम एवं उदार हृदय का परिचय देता है। प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर उसने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जो अशोभनीय हो। उसका प्रभाव सर्वव्यापी है। उसके प्रभाव और प्रताप से सभी आतंकित हैं। वह इतना स्पष्टवादी है कि जब धर्मांधता से आनंदसूरि मीनल को कुमार्ग पर ले जाता है तब वह कटु सत्य कह देता है। मीनल की सेना से लड़ने का मौका देखकर वह पारस्परिक कलह को दूर करने के लिए अपने हथियार फेंक कर स्वेच्छापूर्वक मीनल का क़ैदी बनता है। 'गुजरात नो नाथ' उपन्यास में मुंजाल का व्यक्तित्व और अधिक निखरता है। यहाँ मीनल तथा मुंजाल का स्नेहाकर्षण पार्थिवता से ऊपर उठकर सात्विक धरातल पर पहुँचता है और भव्य एवं दिव्य बनता है। 'गुजरात नो नाथ' में ये दोनों चरित्र ऊर्ध्वगामी हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मुंजाल एक सफल राजनीतज्ञ के सभी गुणों से अलंकृत है।

मुंटश्शेरि, जोज़फ़ *(मल० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

इनका जन्मस्थान त्रिचूर के पास का एक गाँव है। शिक्षा की दृष्टि से एक पिछड़े परिवार की संतान जोज़फ़ ने अपने पुरुषार्थ से भौतिकी में बी० एस-सी० की उपाधि पाई तथा मलयाळम में एम० ए० किया और अपनी योग्यता के बल पर सेंट थॉमस कालेज, त्रिचूर में मलयाळम के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। राजनीति में ये वाम-पक्षीय विचारधारा के पोषक हैं। वैचारिक मतभेद के कारण अंत में इस्तीफ़ा देकर ये सार्वजनिक क्षेत्र में आ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कशक्ति और वक्तृत्व इनकी बहुत बड़ी शक्तियाँ हैं।

अपना साहित्यिक जीवन इन्होंने कविता से आरंभ किया था परंतु प्रौढ़ होने पर ये समालोचना के क्षेत्र में आये और उसी रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। कवित्रयी—आशान् (दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) और उळ्ळूर (दे०)—के ग्रंथों की समालोचना से इन्हें यश मिला। अलंकारमय संस्कृत-प्रधान काव्यशैली की जगह सरल, सरस और मानवीय भावों की गहराई में पैठने वाली काव्यशैली को ये पसंद करते हैं। 'माट्टोलि' (दे०), 'काव्यपीठिका', 'मानदंडम्', 'नाट्कांत कवित्वम्', 'रूपभद्रता' आदि इनके सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा-ग्रंथ हैं। इनके सबसे प्रिय मलयाळम कवि आशान् हैं।

'प्रोफ़ेसर', 'पारप्पुरत्तु वितच्च वित्तु' दोनों इनके औपन्यासिक प्रयोग हैं। 'कोषिञ्ञ इलकळ्' इनकी आत्मकथात्मक रचना है। साहित्य की सोद्देश्यता पर पूरा विश्वास रखने वाले मुंटश्शेरि आधुनिकतम अतिवैयक्तिकता और दुरूहता दोनों का ज़ोरों से खंडन करते हैं।

मुंशी, क० मा० *(गु० ले०)*

दे० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी।

मुअजज़ो *(सिं० पारि०)*

यह सिंधी-कविता का एक प्रकार है जिसमें इस्लाम के किसी पैग़ंबर, नबी, या धार्मिक महापुरुष का यशोगान करने के लिए उसके जीवन की किसी सुनी या पढ़ी हुई अलौकिक घटना अथवा करामात का वर्णन किया जाता है। 'मुनाकिबो' (दे०) और 'मुअजज़ो' में यह अंतर है कि 'मुनाकिबो' में वर्णित घटना स्वाभाविक और साधारण होती है, परंतु 'मुअजज़ो' में वर्णित घटना अलौकिक होती है जो जनसाधारण के जीवन में कभी देखी या सुनी नहीं गई। 'मुअजज़ा' (मुअजज़ो का बहु-वचन) नाम से डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने इस प्रकार की चुनी हुई कविताओं का संग्रह तैयार किया है जो 1960 ई० में सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हो चुका है।

मुआमलाबंदी (उर्दू० पारि०)

उर्दू काव्य में 'मुआमलाबंदी' वह काव्य-विधा है जिसमें अपने माशूक (प्रेमिका) के साथ आशिक (प्रेमी) बराबरी करता है। वह अपने स्वाभिमान का परित्याग कर प्रेमिका के साथ वार्तालाप करता है तथा निचले एवं बाज़ारी प्रेम को अभिव्यक्त करता है। उर्दू काव्य में 'जुरअत' इस रंग के आविष्कारक समझे जाते हैं। 'नासिख़' एवं 'आतिश' के युग में इस विधा ने ख़ूब रिवाज पाया और 'दाग़' ने भी इसी रंग को अपनाया।

मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1893 ई०]

'मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' हाली (दे०) पानीपती के काव्य-संग्रह—'दीवान-ए-हाली'—की भूमिका के रूप में लिखा गया एक विस्तृत आलोचनात्मक निबंध है। बाद में यह एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। उर्दू में आलोचनात्मक साहित्य के रूप में यह सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण प्रयास है। हाली उर्दू-समालोचना के जनक माने जाते हैं। उन्हें 'उर्दू का ड्राइडन' कहा जाता है।

हाली ने इस मुक़द्दमा में उर्दू काव्य के विभिन्न रूपों की समीक्षा की है। काव्य, काव्य-प्रयोजन, उत्तम काव्य के गुण, उर्दू ग़ज़ल की परंपरागत त्रुटियाँ इत्यादि अनेक विषयों पर विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। विभिन्न अँग्रेज़ी काव्यशास्त्रियों के मत भी साथ-साथ व्यक्त किए गए हैं। मिल्टन के कथनानुसार शेर में सहजता, सत्यता एवं सशक्तता का होना हाली भी अनिवार्य मानते हैं। हाली ने 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की है। साहित्य को जीवनोपयोगी होना चाहिए तथा जीवन से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होना चाहिए। हाली के अनुसार साहित्य जीवन की उन्नति का साधन है। हाली ने अपने इस मुक़द्दमे में उपयुक्तता एवं नैतिकता के पक्षों पर अधिक बल दिया है। हाली ने उर्दू वाङ्मय के क्षेत्र में वही प्रेरणा प्रदान की है जो आंग्ल-साहित्य में बेकन ने प्रदान की थी।

मुक़बल *(पं० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

कवि मुक़बल ने स्वरचित 'जंगनामा इमाम हुसैन' में अपने जीवन के बारे में कुछ जानकारी दी है। इस अंतर्साक्ष्य से पता चलता है कि इनका पूरा नाम शाहजहाँ मुक़बल था और वे नेत्रहीन थे। 'जंगनामा' के अतिरिक्त इनकी अन्य दो कृतियाँ 'मछह मुक़बल' और 'हीर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राँझा' भी मिलती हैं। 'मछह मुक़बल' में क़ादरी संप्रदाय के संचालक सूफ़ी संत अब्दुलक़ादर जीलानी की अलौकिक शक्तियों का वर्णन है। 'जंगनामा' का विषय कर्बला-युद्ध की घटना है। करुण रस-पूर्ण यह कृति जंगनामा-परंपरा की प्रथम पंजाबी रचना मानी जाती है। कवि की अन्य रचना 'हीर-राँझा' भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इनकी ख्याति का मुख्य आधार यही कृति है।

मुकुंदराज *(म० ले०)* [जन्म—1250 ई०; मृत्यु—1350 ई०]

इन्हें मराठी भाषा का आदि कवि कहा जाता है। ये आंबे जोगाई नामक स्थान के निवासी थे। श्री शंकराचार्य (दे०) के अद्वैत सिद्धांत तथा ब्रह्मज्ञान का प्रचार इनका उद्देश्य था। इन्होंने 1188 ई० में 'विवेक-सिंधु' (दे०) नामक ग्रंथ की रचना की थी। इनका दूसरा ग्रंथ है, 'परमामृत'। दोनों ही ग्रंथ 'ओवी' छंद में रचित हैं और दोनों का प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक है। मुकुंदराज ने उपनिषद् (दे०), सांख्य, योग, वेदांत, गीता (दे०), भागवत (दे०) आदि का आधार लेकर उपर्युक्त ग्रंथों की रचना की है। मराठी-साहित्य के आदिकाल में ही आध्यात्मिक साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय इन्हें प्राप्त है।

मुकुंदराय *(गु० पा०)*

स्व० रामनारायण विश्वनाथ पाठक 'द्विरेफ' (दे०)-रचित 'मुकुंदराय' शीर्षक कहानी का नायक मुकुंदराय सौराष्ट्र के रावैया गाँव के कर्मकांडी, अल्पसाधन-संपन्न, ब्राह्मण रघनाथ भट का एकमात्र अँग्रेज़ीदां बी० एस-सी० में पढ़ता हुआ पुत्र है। माँ हरकोर उसे 6 वर्ष का और उसकी बहन गंगा को 2 वर्ष का छोड़कर चल बसी थी। गंगा बचपन में ही विधवा बन चुकी है। बच्चों की ख़ातिर ही पिता ने दूसरा विवाह नहीं किया।

पढ़-लिखकर मुकुंद बड़ा आदमी बनेगा और परिवार की सारी चिंता दूर करेगा—इसी सहज विश्वास के साथ रघनाथ भट ने कष्ट सहकर भी उसे कालिज भेजा किंतु कालिज में जाकर मुकुंद बदल गया।

टेनिस, चाय-सिगरेट और महिला-मित्रों का आकर्षण उसकी मुख्य प्रवृत्ति थी। प्रतिष्ठा और संपन्नता का मुखौटा लगाकर वह धीरे-धीरे स्वच्छंद, तुनकमिज़ाज, स्वार्थपरायण बन गया और परिवार की उपेक्षा भी करने लगा। कालिज में सभ्यता व शिष्टता का भक्त घर पर गंगा बहन से रूखा व्यवहार करने लगा।

तार से पूर्व-सूचना देकर वह अपने कुछ मित्रों के साथ छुट्टियाँ बिताने गाँव आया किंतु तार उसके आने के कुछ क्षण पूर्व ही आया। पिता और बहन ने यथाशक्ति यथाशीघ्र जितना सुंदर प्रबंध हो सकता था किया, मगर शहर की हवा लगने के कारण उसे सब बेमज़ा लगने लगा। पद-पद पर अपनी दरिद्रता प्रकट हो जाने व पोल खुल जाने का भय उसे सताने लगा। शाम को बिना सूचना दिए ही वह मित्रों के साथ लौट चला।

पुत्र के व्यवहार से पीड़ित व दिनभर के भूखे पिता इस परिवर्तन से बड़े निराश हुए और टूटते हुए स्नेह-तंतुओं को जोड़ पाना उन्हें कठिन प्रतीत हुआ। वे अपनी बेटी के सामने कहने लगे कि 'वह अब हमारा नहीं रहा है।' और एक अंतर्कथा के द्वारा उन्होंने यह प्रकट किया कि ऐसे पुत्र से तो निपूते ही मरते तो अच्छा था।

बदलते मूल्य, समय व परिवेश के साथ-साथ दो पीढ़ियों की खाई, मिथ्या दंभ का पर्दाफ़ाश करने वाली इस कहानी की नुकीली समस्या है पुत्र की संवेदनहीनता एवं टूटते हुए स्नेह-तंतु।

मुक्कूडरपळ्ळु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की चौदहवीं-पंद्रहवीं शती]

इसके रचयिता अज्ञात हैं। तिरुनेलवेली ज़िले में जहाँ शिट्राऱु और कोदंडराम नदी ताम्रपर्णी नदी में आकर मिलती हैं उस स्थल को 'मुक्कूडल' कहते हैं। इस स्थल के अधिष्ठाता देवता 'मुक्कूडल अलगर' कहलाते हैं। इस कृति में उन्हीं को संबोधित किया गया है।

अन्य पळ्ळु-कृतियों के समान इनमें कृषकों के जीवन का सरस-सजीव चित्रण है। अलगुक्कुडुंबन नामक कृषक इस पद्यबद्ध नाटक का नायक है। उसकी दो पत्नियाँ हैं। बड़ी मुक्कूडर पळ्ळि विष्णु की और छोटी मरुदूर षळ्ळि शिव की उपासिका है। अपने पति को छोटी पत्नी में अनुरक्त देखकर बड़ी उसे उलाहना देती है। दोनों पत्नियों में सरस वाक्युद्ध होता है। दोनों एक-दूसरे के इष्टदेवता की निंदा करती हैं। अंततः सभी वैर-भाव भुलाकर मुक्कूडल अलगर की वंदना करती हैं। इसमें विषय का प्रतिपादन अत्यत सुंदर ढंग से किया गया है। सर्वत्र हास्य और व्यंग्य की छटा दीख पड़ती है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों ने इसे पळ्ळु कृतियों में सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है।

मुक्तक (*हिं० पारि०*)

संस्कृत-काव्यशास्त्र में वर्णित बहुप्रचलित अनिबद्ध का काव्य-रूप। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'मुक्तक' की स्वरूप-व्याख्या दो रूपों में हुई है: दंडी (दे०) और भामह (दे०) ने इसे केवल एक ही श्लोक या छंद का पर्याय मान कर प्रबंध-काव्य के अंग-रूप में इसका लक्षण-निरूपण किया है (दंडी: 'काव्यादर्श', प्रथम परिच्छेद; भामह: 'काव्यालंकार', 1130)। परवर्ती हेमचंद्र (दे०), विश्वनाथ (दे०) आदि आचार्यों ने इसे पूर्वापर-प्रसंग से निरपेक्ष एक स्फुट एवं स्वतंत्र रचना-बंध के रूप में ग्रहण किया है। इनमें से प्रचलित, तर्कसंगत एवं मान्य मत दूसरा ही है। किसी क्षणिक एवं अस्थिर अनुभूति या भावखंड की सघन अभिव्यक्ति होने के कारण यद्यपि 'मुक्तक' प्रायः एक ही छंद का रूप धारण करता है तथापि प्रत्येक स्थिति में यह एक ही छंद का सूचक नहीं है—इसका रूपाकार बहुत कुछ इसकी मूल अनुभूति अथवा भाव की सघन तीव्रता एवं प्रसार पर निर्भर रहता है। इसके अतिरिक्त 'मुक्त' संज्ञा में कन् प्रत्यय के संयोग से व्युत्पन्न ('मुक्तमिति। मुक्तकमन्येनानालिंगित तस्य संज्ञायां कन्।' —'ध्वन्यालोक-लोचन': व्या० डा० रामसागर त्रिपाठी, तृतीय उद्योत, पृ० 756)। अतएव, यह पूर्वापर क्रम से दृढ़तापूर्वक परस्पर आबद्ध छंदों से युक्त प्रबंध-काव्य का अंग कैसे हो सकता है? संस्कृत में काव्यशास्त्रीय विचारधारा के विकास ने 'मुक्तक' के स्वरूप में भी अंतर उपस्थित किया। प्रारंभिक आचार्यों ने जहाँ चमत्कार-संपादन पर विशेष बल दिया था, वहाँ ध्वनिवादी आचार्यों ने इसमें रस-चर्वणा की शक्ति का अनुसंधान किया—('मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्। —'अग्निपुराण' का काव्यशास्त्रीय भाग, सं० तथा अनु० रामलाल वर्मा, पृ० 31; 'पूर्वापरनिपेक्षेणापि हि मेन रसचर्वणा क्रियते तदैव मुक्तकम्'।—ध्वन्यालोक-लोचन, व्या० डा० रामसागर त्रिपाठी, तृतीय उद्योत, पृ० 764)। इसके अतिरिक्त आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने मुक्तक-रचना के लिए कवि में 'कल्पना की समाहार-शक्ति' और 'भाषा की समास-शक्ति' अपेक्षित मानी है।

इस प्रकार प्रायः सभी प्राचीन-अर्वाचीन भारतीय आचार्यों के मत में 'मुक्तक' पूर्वापरक्रम-निरपेक्ष तथा स्वतः-पूर्ण रचना-बंध है जो अपने संक्षिप्त आकार में ही प्रबंध के समान रस-संचार की क्षमता रखता है।

मुक्त छंद (*हिं० पारि०*)

'मुक्त छंद' किसी भी प्रकार के वर्ण, गण, यति, तुक (दे०), मात्रा आदि छंदःशास्त्रीय नियमों से सर्वथा मुक्त भाषा की सहज ध्वन्यात्मक लय (दे०) पर आधारित अनिश्चित आकार की पंक्तियों के छंद को कहा जाता है। हिंदी में प्रयुक्त मुक्त छंद अभिधान अँग्रेज़ी के 'फ़्री वर्स' तथा उसके मूल प्रेरक और पर्याय फ़्रेंच शब्द 'वेर लीब्र' (Vers Libre) के समानार्थी शब्द के रूप में अपनाया गया है। पश्चिम में मुक्त छंद का आविर्भाव उन्नीसवीं शती की घटना है, यहाँ अँग्रेज़ी काव्य के विख्यात उन्नायकों—मिल्टन ('सैमसन') और शैले ('क्वीन मैब') की तुकविहीन भिन्न आकारों की पंक्तियों में इस प्रवृत्ति का प्रारंभिक रूप निश्चय ही विद्यमान था। बाद के पॅटमोर और हैनले जैसे कुछ कम विख्यात कवियों ने भी गद्य की लय के आधार पर काव्य-रचना के कुछ सफल प्रयोग किए। आधुनिक मुक्त छंद का जनक फ़्रेंच कवि और संपादक गुस्टाव काह्न को माना जाता है। अँग्रेज़ी कविता में अमरीकी कवि ह्विटमैन ('लीव्ज़ आफ़ ग्रास') मुक्त छंद के सर्वश्रेष्ठ प्रयोक्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। जर्मन मुक्त छंद के उन्नायकों में अर्नो-होल्ज़ का योगदान विशिष्ट है, जिन्होंने अर्थ-व्यंजना के लिए आड़े-तिरछे आकारों के मुद्रण द्वारा मुक्त छंद के स्वरूप में नयी संभावनाओं का संधान किया।

हिंदी में मुक्त छंद के प्रवर्तन का श्रेय सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (दे०) को है। पश्चिम में उन्नीसवीं शती के प्रतीकवादियों ने जिस प्रकार की विद्रोहात्मक परिस्थितियों में 'वेर लीब्र' को जन्म दिया था, लगभग वैसी ही परिस्थितियों में 'निराला' ने छंद को शास्त्रीय बंधनों से मुक्त किया। आज भी हिंदी और भारतीय भाषाओं की अधिकांश कविताएँ मुक्त छंद में ही लिखी जा रही हैं।

मुक्त छंद मुक्त होते हुए भी स्वरूपतः छंद ही है; उसकी मुक्ति शास्त्रीयता से है, छंद से नहीं। मुक्त छंद का आधार है उसके चरणों का मुक्त प्रवाह और आत्मा है स्वच्छंद लय। लेकिन गद्य की लय और मुक्त छंद की लय में तात्त्विक अंतर है: 'गद्यशैली में जहाँ लयात्मक इकाइयों में केवल विभिन्नता ही होती है, वहाँ मुक्त छंद में उसकी पुनरावृत्ति आवश्यक है (डी० वीसां)। तुक का प्रयोग मुक्त छंद में अधिकतर अंत्यानुप्रास के रूप में नहीं होता, प्रायः पंक्ति के बीच में होता है; इससे विशेष प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बलाघात की योजना हो जाती है, जो इसकी एक विशेषता है। 'निराला' मुक्त छंद का केवल वर्णिक अथवा अक्षर-छंद पर आधारित होना आवश्यक मानते हैं। इसलिए कवित्त-आधार पर उनका विशेष आग्रह था। इसी प्रकार अँग्रेज़ी का मुक्त छंद अब क्रमशः विशेष आकार एवं रूप की ओर झुकता जा रहा है। वह प्रकृत्या प्रायः 'आयंबिक' होता है।

मुक्तधारा (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1922 ई०]

यह रवींद्र (दे० ठाकुर, रवींद्रनाथ) का प्रतीक-प्रधान नाटक है जिसमें लेखक ने यांत्रिकता से उत्पन्न जातीय संकीर्णता, साम्राज्यवादी शोषण तथा हिंसा का प्रश्न उठाया है। उत्तराकूट के लोग मुक्तधारा पर बाँध बनाकर शिवतराई के असहाय वासियों को सदा के लिए पराश्रित एवं पराधीन बनाना चाहते हैं। यंत्र-शक्ति के इस दुरुपयोग का विरोध अभिजित करता है। वह बाँध के कमज़ोर स्थल को जानता है। वह अपने जीवन की आहुति देकर शिवतराई के लोगों को मुक्तधारा के समान सदा के लिए मुक्त कर देता है। यंत्र और जीवन का संघर्ष नाटक की मूल समस्या है जिसे विभूति और अभिजित (प्रतीकात्मक पात्र) के द्वंद्व के आधार पर व्यक्त किया गया है। धनंजय सत्याग्रह एवं अहिंसा का प्रतीक है। इस प्रकार रवींद्र ने अधिकार-लोलुप मानव की यंत्र-पूजा का प्राकृतिक प्रतिकार दिखाया है।

यह रवींद्र की नाटकीय प्रतिभा का ही प्रमाण है कि अंतर्मुखी समस्या होते हुए भी क्रियाशीलता में शिथिलता नहीं आने दी और सारा दृश्य-विधान निभाया। यह रचना युग-सापेक्ष होने के कारण महत्वपूर्ण है तथा इस श्रेणी की ख्याति-प्राप्त कृति है।

मुक्तानंद (*गु०ले०*) [समय—1761 ई०-1830 ई०]

ये स्वामीनारायण संप्रदाय के एक प्रमुख और महत्वपूर्ण कवि हैं। इनका पूर्वाश्रम का नाम मुकुंददास था। सौराष्ट्र के प्रसिद्ध संत स्वामी रामानंद के ये पट्टशिष्य थे। बाद में इन्होंने स्वामी नारायण-संप्रदाय के आद्य संस्थापक स्वामी सहजानंद से दीक्षा ग्रहण की थी।

'मुकुंद बावनी', 'उद्धवगीता' और 'सतीगीता' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'धर्मामृत', 'प्रेमलीला', 'रामलीला' तथा असंख्य पदों की रचना की थी। इनकी भाषा परिमार्जित, शुद्ध, संस्कृत एवं सरल-बोधगम्य है।

आचार-प्रधान स्वामी नारायण-संप्रदाय के प्रतिनिधि कवि के रूप में इनकी विशेष ख्याति है।

मुक्ताबाई (*म० ले०*) [जन्म—1279 ई०; मृत्यु—1290 ई०]

मुक्ताबाई मूलतः कवयित्री थीं। बाल्यावस्था से ही काव्य-रचना में इनकी प्रवृत्ति रही। संतकवि ज्ञानेश्वर (दे०) की ये अनुजा थीं और हठयोगी चांगदेव को इन्होंने ही अद्वैत भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया था। इनकी वाणी में अद्भुत शक्ति थी। इनके रचे अभंगों में भक्ति-भावना की उत्कटता और अपूर्व सरसता है। भक्त लोगों को इनकी रचनाओं के गायन में विशेष आनंद आता है। मराठी के भक्ति-साहित्य में एक कवयित्री के रूप में इनका विशिष्ट स्थान है।

मुक्तामाला (*म० कृ०*) [रचना-काल—1861 ई०]।

ले० लक्ष्मणशास्त्री हळवे (दे०)।

यह प्रारंभिक अँग्रेज़ी-काल की प्रतिनिधि उपन्यास-रचना है जिसमें रम्याद्भुत तत्त्वों की प्रधानता है। मराठी भाषा और साहित्य के प्रति पाठकों का प्रेम जगाने, उन्हें नीति और शिक्षा देने तथा उनका मनोरंजन करने के लिए इसका प्रणयन हुआ था। कथानक की रचना का उद्देश्य यही है कि जो सन्मार्ग पर चलेंगे—धर्म का अनुसरण करेंगे वे अनेकानेक विपत्ति झेलकर भी अंत में सुखी होंगे। उपन्यास का नायक धनशंकर खलनायक शुक्लाक्ष के हाथों अनेक कष्ट पाता है पर अंत में सोमदत्त की सहायता से अपनी प्रेमिका मुक्तामाला को प्राप्त कर लेता है। 175 पृष्ठ की इस कृति के नौ भाग हैं—प्रत्येक भाग के आरंभ में उस भाग का सारांश देने वाले सुभाषित के बाद संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करनेवाला प्रकृति-वर्णन है। पात्र गुण या दोषों के पुंज स्थिर-चरित्र व्यक्ति हैं जिनके नाम से ही उनके स्वभाव का पता चल जाता है।

यथार्थ वातावरण, संस्कृत की शास्त्रीय अलंकृत भाषा-शैली और वर्तमान कालीन सामाजिक समस्याओं के ताने-बाने से बनी इस रचना का कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, गुणों की दृष्टि से भी रम्याद्भुत उपन्यासों में शीर्ष-स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध, गजानन माधव *(हिं० ले०)* [जन्म—1917 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

इनका जन्म श्योपुर (ज़िला ग्वालियर) में हुआ। शिक्षा उज्जैन और इंदौर में हुई। 1938 ई० में बी० ए० करके ये कुछ समय तक अध्यापन और संपादन करते रहे। 1914 ई० में एम० ए० करके राजनांद गाँव में प्राध्यापक हो गये। इन्होंने मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण-शास्त्र का गंभीर अध्ययन किया था। ये प्रमुखतः कवि थे। 'तार सप्तक' (दे०) में इनकी कविताएँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' (दे०) इनकी परवर्ती कविताओं का संग्रह है। कविताओं के अतिरिक्त 'काठ का सपना' (कथाकृति), 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' (आलोचनात्मक निबंध), 'एक साहित्यिक की डायरी' (साहित्यिक चिंतन) और 'कामायनी : एक पुनर्विचार' (मार्क्सवादी आलोचना) गद्य रचनाएँ हैं।

मुक्तिबोध की दृष्टि द्वंद्वात्मक भौतिकवादी है। जनमुक्ति के प्रयासों से तादात्म्य-स्थापन के लिए ये अपने व्यक्तित्व की निर्मम काट-छाँट करते हैं। प्राप्य और प्रस्तुत का संघर्ष इनकी रचनाओं में व्यक्त हुआ है। इस संघर्ष को रूपायित करने के लिए रूपक-कथाओं का सफल उपयोग किया गया है। इनके अधिकांश बिंब और प्रतीक मांसल, पौरुषेय और उदात्त हैं। कवि के रूप में ये नयी कविता के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। इनका गद्य चिंतन की गहराई और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है।

मुक्तिबोध, शरच्चंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

व्यवसाय—नागपुर में सरकारी नौकरी।

प्रमुख नव कवियों में इनका नाम लिया जाता है। इनके काव्य-संग्रह हैं : 'नवी मळवाट' और 'यात्रिक'।

इन्होंने अपनी कविताओं में उत्कट अनुभूतियों की ओजस्वी अभिव्यक्ति की है। 'यात्रिक' संग्रह की भूमिका में इन्होंने स्वयं लिखा है, 'मैं अपने हृदय के रक्त से नयी पंक्तियों की रचना करता हूँ।'

मुक्तिबोध प्रगतिशील विचारक कवि हैं। समाज-व्यवस्था में प्रचलित दारुण शोषण का निराकरण कवि के अनुसार शांति से नहीं, वरन् क्रांति द्वारा संभव है। यही मानवता कवि-जय का राजमार्ग है। सामाजिक तथा आर्थिक वैषम्य के प्रति जहाँ इनका आक्रोश और क्रोध प्रकट हुआ है, उन स्थलों पर कवि का दाहक व्यक्तित्व दर्शनीय हो गया है। इनकी कविताएँ तेजस्वी एवं किंचित् उग्र हैं। किंतु यह उग्रता कालुष्य के प्रति है, इसी कारण इनकी रचनाएँ ध्वंसात्मक न होकर निर्माण की प्रेरक हैं।

मुक्तिबोध की कविताएँ आकार में दीर्घ हैं, पर भाव-गांभीर्य से युक्त हैं। इनका दृष्टिकोण सर्वत्र स्वस्थ एवं संतुलित है। ये आशावादी कवि हैं।

प्राचीन रूढ़ एवं निरर्थक शब्दों को छोड़कर इन्होंने नवीन अर्थगर्भित विचारानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है। भावाभिव्यक्ति के साधन-रूप में इन्होंने नवीन उपमा एवं मूर्त बिंबों की भी योजना की है।

मुक्तेश्वर *(म० ले०)* [जन्म—1609 ई०; मृत्यु—1660 ई०]

इसके जन्म-काल और मृत्यु-काल के विषय में मतभेद है, परंतु उपर्युक्त काल-निर्णय प्रायः सर्वमान्य-सा हो गया है। ये एकनाथ महाराज के दौहित्र थे। इनके पिता का नाम 'चिंतामणि' था। गोदावरी नदी के तट पर स्थित 'पैठण' नगरी में इनका विद्याभ्यास हुआ था। इनका अध्ययन गंभीर था। ये संस्कृत के काव्यशास्त्र और काव्य-नाटकों के ज्ञाता थे। न्याय, मीमांसा, वेदांत आदि संस्कृत के दर्शनों से भी इनका गहरा परिचय था। इन्होंने एक ओर अपने पूर्ववर्ती संस्कृत-मराठी-साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था, दूसरी ओर देशाटन करके मानव-स्वभाव और चरित्र के वास्तविक स्वरूप का व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार अध्ययन की गहराई और लोक-निरीक्षण की व्यापकता इनकी रचनाओं में सहज प्रतिफलित हुई है। मुक्तेश्वर की कृतियों में 'रामायण' (दे०) पर आधारित 'संक्षेप रामायण' और 'महाभारत' (दे०) पर आधारित 'भारत रचना' प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'समपद्य गीता टीका', 'हरिश्चंद्राख्यान', 'शुक-रंभा-संवाद', 'एकनाथचरित्र', 'गजेंद्रमोक्ष', 'हनुमंताख्यान', 'विश्वामित्र-भोजन', 'शतमुखरावणवध', 'मूर्खांची लक्षणें' इत्यादि प्रकरण उपलब्ध होते हैं।

मुक्तेश्वर की कीर्ति का आधार उनका 'भारत-रचना' ग्रंथ है, जो संभवतः 'महाभारत' के संपूर्ण अठारह पर्वों पर मराठी में रचा गया था। अब इसके केवल पाँच पर्व—(1) आदि, (2) सभा, (3) वन, (4) विराट, और (5) बीच का ही ग्यारहवाँ सौप्तिक पर्व प्राप्त है। कहा जाता है कि इन्होंने 'भागवत' (दे०) के आधार पर भी रचना की थी, परंतु वह उपलब्ध नहीं है। आज तक इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध रचनाओं निहित श्लोक-पद-ओवी आदि छंदों की कुल मिलाकर संख्या लगभग अठारह से उन्नीस हज़ार के बीच निर्धारित की जाती है।

मुक्तेश्वर की ख्याति भक्त कवि की अपेक्षा कला कवि या पंडित कवि के रूप में अधिक प्रसारित हुई। ये पंडित कवियों में अग्रणी थे। इन्हें मराठी में कला-काव्य का प्रवर्तक कवि माना जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

मुखोपाध्याय, त्रैलोक्यनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1847 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

प्रसिद्ध हास्य उपन्यासकार त्रैलोक्यनाथ की ये रचनाएँ उल्लेखनीय हैं—'कंकावती' (दे०), 'मुक्तमाला', 'डमरुचरित'। एक ओर लेखक भूत, प्रेत, पिशाच, जिन, परी आदि अलौकिक जीवों के द्वारा कौतुकपूर्ण कथा की कल्पना करता है तो दूसरी ओर इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में बंगाली समाज के कुसंस्कारों पर कटु प्रहार करता है। इस दृष्टि से 'डमरुचरित' चमत्कृत करने वाली रचना है। डमरुधर (दे०) की जैसी स्थूल कृष्ण-कांति देह वैसा कृष्ण-चरित्र। संश्लिष्ट प्रभाव के लिए लेखक ने रूपक-शैली का आश्रय लिया है। अपने विशिष्ट क्षेत्र में मुखोपाध्याय को अद्वितीय सफलता मिली है।

मुखोपाध्याय, प्रभातकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

बंकिम-परवर्ती युग के ख्याति-प्राप्त कथाकार प्रभातकुमार ने उपन्यास भी लिखे हैं परंतु इनकी उपलब्धि और प्रतिभा का क्षेत्र कहानियाँ हैं। इन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं; उनमें चरित्र-विश्लेषण तथा अध्ययन की अपेक्षा घटना-विन्यास पर बल है। दैव और सौभाग्य का आश्रय लिया गया है। इसलिए प्रभातकुमार के उपन्यास पठनीय हैं। 'रत्नदीप' (दे०) और 'सिंदूर काँटा' उनके सर्वोच्च एवं सशक्त उपन्यास हैं। शेष कई उपन्यासों में अद्भुत घटना-कौशल तो है, परंतु उनकी आत्म-शक्ति क्षीण है।

प्रभातकुमार एक सिद्धहस्त कहानीकार हैं। इनमें जीवन की साधारण-सी लगने वाली विसंगतियों एवं विषमताओं के असाधारण रेखांकन का नैपुण्य है। इनकी कहानियों का आधार है हास्य, व्यंग्य तथा विद्रूप। ये घटनापरक भी हैं और चरित्रमूलक भी। 'बलवान', 'जामाता', 'रसमपीर', 'रसिकता', 'बायु-परिवर्तन', 'खोकार कांड', 'यज्ञ-भंग', 'सरदार-कीर्ति' लेखक की अन्यतम उपलब्धियाँ हैं। इनकी कुछ कहानियाँ स्वदेशी आंदोलन पर, कुछ शासन-तंत्र के अत्याचार पर, कुछ विदेशी आचार-विचार के अंधानुकरण पर हैं।

प्रभातकुमार में सूक्ष्म अंतर्दृष्टि तथा भाव-गंभीरता उभर नहीं पाई। इसीलिए समकालीन होते हुए भी ये रवींद्र के समकक्ष नहीं ठहरते। कहानीकार के नाते ये अवश्य स्मरणीय रहेंगे।

मुखोपाध्याय, बलाइचंद्र *(बँ० ले०)*

दे० बनफूल।

मुखोपाध्याय, बिभूतिभूषण *(बँ०ले०)* [जन्म—1899 ई०]

बिभूतिभूषण मुखोपाध्याय ने बँगला कथा-साहित्य में यथार्थ रूप से उच्चतर साहित्यिक कोटि के हास्य रस की स्थापना की है। कौतुक रस के साथ चित्त के सदा-प्रसन्न रूप, वात्सल्य रस के साथ हास्य के सम्मिश्रण एवं हास्य के साथ करुण रस को मिलाकर लेखक ने मधुर आस्वादित एक नये प्रकार के कथा-साहित्य की सृष्टि की है। इनके राणु, गन्सा एवं घोटना के दल को बंगाली पाठक कभी भी नहीं भूल सकता। लेखक के 'राणुर'—प्रथम भाग (1937), 'राणुर'—द्वितीय भाग (1938), 'राणुर'—तृतीय भाग (1940), 'राणुर कथामाला' (1941), आदि कहानी-संग्रह एवं 'बरयात्री' (दे०) (1942), 'कांचनमूल्य' (1956) आदि उपन्यास हास्यरसात्मक रचना-रूप में विशेष ख्यातियुक्त हैं। हास्यरसिक की लघु दृष्टि-भंगी के अंतराल में कविसुलभ सौंदर्यबोध एवं दार्शनिक की सूक्ष्मदर्शिता छिपी हुई थी—इसका संकेत इनकी परवर्ती रचनाओं में स्पष्ट मिल जाता है। 'नीलांगुरीय' (1945), 'रिक्सार गान' (1956), 'मिलनांतक' (1956) 'नयान बो' (1961) आदि उपन्यासों में लेखक के गंभीर जीवन-चिंतन की अभिव्यक्ति हुई है।

बिभूति बाबू ने जीवन की जिन असंगतियों के आश्रय से हास्यरस की सृष्टि की है उनमें कहीं भी किसी पर आघात नहीं किया। इनका कौतुक-हास्य जीवन के आनंद का ही विस्तार करता है। विशुद्ध हास्य की उपस्थापना में बँगला साहित्य में इनका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखोपाध्याय, भूदेव *(बँ० ले०)* [जन्म—1825 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

मधुसूदन (दे० माइकेल) के सहपाठी भूदेव मुखोपाध्याय ने बँगला प्रबंध-साहित्य में रक्षणशीलता के साथ युक्तिवाद एवं उच्छ्वासरहित प्रकाशभंगिमा की प्रतिष्ठा की है। भारतीय आदर्श में जो कुछ भी सत्य या शाश्वत है उसके प्रति उन्होंने जनसाधारण की दृष्टि आकर्षित की है। इनकी शिक्षात्मक एवं कल्याणात्मक रचना के रूप में 'पारिवारिक प्रबंध' (दे० 1881), 'सामाजिक प्रबंध' (1892), 'आचार प्रबंध' (1894) विशेष मूल्यवान हैं। 'ऐतिहासिक उपन्यास' (दे०) एवं 'स्वप्नलब्ध भारतवर्षेर इतिहास' भी विशेष उल्लेखनीय हैं। बंकिमचंद्र (दे०) के 'दुर्गेशनंदिनी' (दे०) पर इनके उपन्यास 'अंगुरीय विनिमय' के प्रभाव को अस्वीकारा नहीं जा सकता।

मुखोपाध्याय, शैलजानंद *(बँ० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में शैलजानंद मुखोपाध्याय का एक विशिष्ट स्थान है। कोयले की खानों में काम करने वाले संथाल कुलियों की जीवन-यात्रा के यथार्थ अनुभवों की रचना कर इन्होंने बँगला कथा-साहित्य में आंचलिकता का सूत्रपात किया था। उपन्यास की अपेक्षा कहानी में इनका शिल्प-कौशल अधिक प्रस्फुटित हुआ है। इनके उपन्यास या कहानी-संग्रहों की संख्या लगभग सौ है जिनमें 'झड़ो हाओया' (1923), 'बाँगलार मेये' (1925), 'खरस्रोत' (1932), 'गंगा-यमुना' (1933), 'शुभदिन' (1935), आदि उपन्यास एवं 'कयला कुटि' एवं 'नारी-मेध' आदि कहानी-संग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं।

बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रकृतवादी रचनाकार के रूप में ख्यातिमान होने पर भी इनकी रचना में बौद्धिकता के स्थान पर हृदय की आंतरिकता अधिक मिलती है। गहरे करुणा-बोध के साथ अनुच्छ्वसित भाषा में इन्होंने मनुष्य के दुःख को चित्रित किया है। इसके साथ ही इन्होंने दुःख की सामाजिक अपरिहार्यता के परिवेश की भी रचना की है अर्थात् अत्याचारी के व्यवहार के पीछे भी कोई सामाजिक कारण विद्यमान है—यह उपलब्धि इनकी सहानुभूति को अधिक व्यापक बना देती है। गहरे दुःख में भी मनुष्य की कतिपय मानवीय वृत्तियाँ अम्लान रहती हैं यह चेतना इनकी नैराश्य-पीड़ित कहानियों में सांत्वना का स्वर भर देती है।

लेखक की 'कयला कुटि' एवं 'नारी-मेध' कहानी-संग्रहों की कहानियाँ बँगला साहित्य में चिरकाल तक स्मरणीय रहेंगी। संथाल कुलियों के आचार-नियम, इनके विशिष्ट नीतिबोध तथा इनके असहनीय दारिद्र्य के यथार्थ चित्रण उसने श्रेणी-संग्राम के उल्लेख के स्थान पर शैल्पिक दृष्टि से इनकी तीव्र जीवनी-शक्ति एवं जीवन-निष्ठा की अभिव्यक्ति की है। संथाल चरित्रों—विशेषतः संथाल स्त्री-चरित्रों—की सृष्टि में लेखक की सफलता सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

मुखोपाध्याय, सुभाष *(बँ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

अति आधुनिक कविता के क्षेत्र में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत सुभाष मुखोपाध्याय प्रारंभ से ही कविता-कर्म में साम्यवाद के वाणीवाहक रहे हैं।

इनके काव्य-ग्रंथ हैं: 'अग्निकोण' (1948), 'चिरकुट' (1950), 'पदातिक' (तृतीय संस्करण, 1952), 'यत दुरे जाइ' (1952) आदि। सुभाष बाबू मध्य वर्ग के परिवार के हैं और मध्य वर्ग के संसार का टूटना इन्होंने गहराई से अनुभव किया है—इससे इन्हें खुशी हुई है क्योंकि नये समाज के निर्माण के लिए प्राचीन का टूटना आवश्यक है। इनकी कविता में कहीं-कहीं प्रचार की गंध है परंतु अपनी विदग्धता एवं निपुणता के आश्रय से इन्होंने कविता को स्थायी मूल्य प्रदान किया है। साम्यवादी कविता में उद्धृति तथा उल्लेख के प्राचुर्य के फलस्वरूप कविता दुर्बोध हो जाती है परंतु इनकी कविता में यह दुर्बलता नहीं है। राजनीति की लालिमा होने पर भी इनकी अभिव्यंजना-पद्धति बहुत आकर्षक है।

मुखोपाध्याय, सौरींद्रमोहन *(बँ० ले०)* [जन्म—1884 ई०]

सौरींद्रमोहन मुखोपाध्याय बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में बीसवीं शती के प्रारंभ से लेकर तीसरे दशक तक छाये रहे थे। इस काल में 'भारती' पत्रिका के सह-संपादक के रूप में इन्होंने पहले स्वर्णकुमारी देवी एवं बाद में मणिलाल गंगोपाध्याय के साथ काम किया था। पहले-पहल इन्होंने कहानियाँ लिखनी शुरू की थीं परंतु भाव-विचार की दृष्टि से उनमें कोई नवीनता नहीं आ पाई थी। इनकी अधिकांश कथा-वस्तु में कोई वैचित्र्य नहीं है। अविवाहित की प्रेम-प्रत्याशा अथवा नवविवाहित की प्रेम-पिपासा ही इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकांश कहानियों की विषय-वस्तु है; परंतु यह सत्य है कि इनकी कहानियों में एक विशेष प्रकार की सरसता है जिसके फलस्वरूप इन्हें विशेष जनप्रियता प्राप्त हुई थी। इनके कहानी-संग्रहों में 'शेफालि' (1913), 'निर्झर' (1911), 'पुष्पक' (1913), 'मृणाल' (1922), 'यौवराज्य' (1922), 'पियासी' (1922) आदि उल्लेखनीय हैं।

विदेशी कहानी, उपन्यास एवं नाटक के अनुवाद की दिशा में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। 'परदेशी' (1910) इनकी विदेशी कहानियों का संग्रह है। 'यत्किंचित्' (1900) एवं 'दरिया' (1912) क्रमशः मोलियर एवं गोल्डस्मिथ के नाटकों के अनुवाद हैं। 'बंदी' (1911), 'मातृऋण', 'अबंधना', 'असाधारण' क्रमशः ह्यूगो, दोदे, गोर्की एवं तुर्गनेव के उपन्यासों के अनुवाद हैं।

सौरींद्रमोहन के मौलिक उपन्यासों की संख्या कम नहीं है। इनमें 'काडारी', 'आँधि', 'बाबला' आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने दैनंदिन जीवन की घटनाओं के आश्रय से उपन्यासों की रचना की थी परंतु विषय-प्रतिपादन की सरसता एवं प्रसाद गुण-संपन्न एवं भावातिशय्य-वर्जित भाषा के कारण ये उस युग में बहुत अधिक लोकप्रिय हुए थे।

मुगळि, रं० श्री० (क० ले०)

ये कन्नड के प्रबुद्ध आलोचक हैं। स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) के 'कविचरिते' (तीन भाग) के बाद इनके 'कन्नड साहित्य चरित्रे' (दे०) और 'कन्नड साहित्य का इतिहास' ही साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में अधिक लोकप्रिय और उपयुक्त संदर्भ-ग्रंथ माने गये हैं। 'रन्नन कृतिरत्न' (रन्न का कृतिरत्न), 'विमर्शेय व्रत' आदि रचनाओं के द्वारा भी इन्होंने अपने आलोचक व्यक्तित्व को स्थिर रखा है। इनको हम निर्भीक और तटस्थ आलोचक कह सकते हैं। इनकी आलोचना निर्णयात्मक होती है। इनकी मान्यताओं से हम लोग सहमत हों या न हों, पर इसमें संदेह नहीं कि इनके विशाल अध्ययन और पांडित्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। आलोचक होने के साथ-साथ ये उच्चकोटि के कवि भी हैं। इनकी कविताओं के तीन संग्रह 'बासिग' (पुष्पमाला), 'अपार करुणा' और 'ओ अशांति' प्रकाशित हुए हैं। 'चातकव्रत और जक्कव्व जाणि' (जक्कव्व चतुर है) जैसी इनकी लंबी कविताएँ सुंदर हैं। ये अच्छे गद्य लेखक भी हैं, साहित्य की विविध विधाओं में इनकी लेखनी विशेष सफलता प्राप्त कर चुकी है। महाकवि बेंद्रे (दे०) और गोकाक (दे०) जी से इनको साहित्यिक प्रेरणा मिली है। साहित्य के इतिहासकार के रूप में ये चिर-यश के अधिकारी हैं। 'विमर्शेय व्रत' इनकी सैद्धांतिक आलोचना-संबंधी कृति है।

मुजीब, मुहम्मद (उर्दू० ले०)

मुजीब साहब एक लंबे समय तक जामिया मिलिया इस्लामिया के प्राध्यापक-कुलपति रहे और उदात्त विचारों के विद्वान थे। रूसी भाषा के अफ़सानों का इन्होंने परिमार्जित उर्दू में उत्कृष्ट अनुवाद किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनके साहित्यिक निबंध प्रकाशित होते रहे जिन्होंने इनको ख्याति प्रदान की। इन्होंने एक नाटक 'खती' बड़ी आकर्षक शैली में लिखा है। इस नाटक में कोई स्त्री पात्र नहीं और देश की दशा के सुधार का चित्र खींचा गया है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ 'खाना जंगी' और 'हब्बा खानक' हैं जिनमें आधुनिक अर्थ-व्यवस्था पर करारी चोट है।

मुडियरसन् (त० ले०) [जन्म—1920 ई०]

'मुडियरसन्' लेखक का उपनाम है; असली नाम है 'का० चु० तुरैराचु'। 1920 ई० में जन्मे इस लेखक ने प्रसिद्ध विद्रोही स्वर वाले कवि भारतीदासन (दे०) के शिष्य के रूप में काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था। आकाशवाणी द्वारा समय-समय पर आयोजित कवि-सम्मेलनों में इनकी कविताएँ प्रस्तुत हुईं जिनका एक संग्रह 1964 ई० में भी निकल चुका है। इनकी कुछ अन्य काव्य-रचनाएँ ये हैं—'मुडियरसन् कवितैकळ्' (स्फुट कविताओं का संग्रह, जो तमिलनाडु सरकार द्वारा पुरस्कृत हुआ), 'पुङ्कोटि', 'वीरकावियम्', 'कावियप्पावै' (काव्य-कृतियाँ) इत्यादि। इन कृतियों में युग-प्रवृत्ति के अनुसार तमिल प्रदेश की विशिष्ट संस्कृति की प्रशंसा का स्वर यत्र-तत्र मुखरित है।

मुत्तोळ्ळायिरम् (त० कृ०) [समय—अनुमानतः छठी शती ई०]

आजकल यह प्राचीन काव्य-कृति लुप्तप्राय है। इसके शीर्षक के दो अर्थों से अनुमान किया जा सकता है कि इस काव्य में या तो तमिल भूखंड के तीन प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चेरचोलपाण्ट्यि' राजाओं पर कुल नौ सौ पद्य थे या प्रत्येक राजा पर नौ सौ पद्य थे। संप्रति केवल 150 से कम पद्य उपलब्ध हैं जो कि 'पुरत्तिरट्टु' नामक चौदहवीं शती ई० के पद्य-संग्रह तथा 'तोलकाप्पियम्' (दे०) व्याकरण की टीकाओं के उद्धरणों से इकट्ठे किए गए हैं।

छंद-विधान तथा अभिव्यंजना-शैली में यह रचना यद्यपि प्रसिद्ध 'संगम'-साहित्य से भिन्न है तथापि विषय-प्रतिपादन में उसके समान है। इसके विषय 'अहम्' (दे० अहप्पोरुल) और 'पुरम्' (दे० पुरुप्पोरुल) पद्धतियों में वर्णित शृंगार एवं शृंगारेतर प्रसंग हैं। तमिल भूखंड के तीन राजाओं के यश, नगर, घोड़े एवं हाथी के गौरव, युद्ध-कौशल, शत्रु-निंदा, विजय, राजाओं पर काम-मोहित नारियों की उक्तियाँ—ऐसे प्रकरणों से इसका संबंध है। 'पांड्य', 'चोल' तथा 'चेर' राजाओं के बारे में क्रमशः 61, 46 एवं 22 पद्य उपलब्ध होते हैं।

चतुष्पदी 'वेण्पा' छंद का समर्थ उपयोग इसमें देखा जा सकता है जो संगम-साहित्य के पद्य-संग्रहों में नहीं मिलता। राजाओं की प्रशंसा में कल्पना की उड़ान द्रष्टव्य है। कभी यह शुद्ध भावात्मक है और कभी ऊहापरक। यथा, पांड्य राजा की राजधानी के प्रासादों पर स्थित वनिताओं द्वारा नायकों के साथ प्रणय-कलह करते हुए वीथियों पर फेंके गए कुंकुम-मिश्रित चंदन के समूह से उत्पन्न कीचड़ पथिकों को कष्ट देने वाला है। दूसरा उदाहरण है—एक कामविह्वल नायिका अपनी सखी द्वारा राजा को संदेश भेजती है कि उनके सामने मेरा विषय मत छेड़ना, मेरा नाम या गाँव मत बताना, केवल यही (परोक्ष रूप से) कहना कि तमिल लोगों के विशाल हाथी-संपत्ति वाले राजा के कारण एक नारी की आँखें रात-भर नहीं मुँदतीं।

मुत्यालसरालु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1910 ई० के लगभग]

इसके लेखक गुरजाडा अप्पाराव (दे०) है जो आधुनिक तेलुगु-साहित्य के प्रवर्तकों में से एक हैं। यह एक कविता-संग्रह है। 'मुत्यालसरालु' एक देशी छंद का नाम है। जिसके जन्मदाता स्वयं अप्पाराव ही थे। प्रस्तुत संग्रह-ग्रंथ में उक्त शीर्षक वाली एक कविता के अतिरिक्त 'पूर्णम्मा' (दे०) 'डामन्-पिथियस्', 'कन्यका' तथा 'लवण-राजुकला' नामक चार अन्य कथात्मक खंड कविताएँ भी हैं। इसमें 'मुत्यालसरालु' पति-पत्नी के संभाषण के रूप में सुधारात्मक दृष्टि से लिखी गई कविताएँ हैं। लेखक पुच्छल तारा को समाज-सुधार की पताका मानता है। परंपरा को मानने वाली पत्नी को उसका पति समाज-सुधार संबंधी आदर्शों का उपदेश देता है। एक वृद्ध के साथ ब्याही गई कन्या की करुण-कहानी ही 'पूर्णम्मा' में वर्णित है। 'डामन्-पिथियस्' में सच्चाई, प्रेम तथा स्नेह आदि समाज-कल्याणकारी गुणों के महत्व को मार्मिक ढंग वे चित्रित किया गया है। ऐश्वर्य तथा अधिकार के मद में एक राजा एक स्वाभिमानिनी कन्या का अपमान करने का प्रयत्न करता है। उस दुष्ट से बचकर अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह कन्या आग में कूदकर अमर हो जाती है। यही कथानक 'कन्यका' नामक कविता में वर्णित है। 'लवण-राजुकल' (लवण राजा का स्वप्न) नामक कविता में एक राजा तथा एक हरिजन-कन्या के स्वच्छ प्रेम का वर्णन है। इन कथात्मक कविताओं के माध्यम से लेखक ने कुछ उच्च कोटि के सुधारात्मक आदर्शों को प्रस्तुत किया है। उस समय की सामाजिक स्थिति का मार्मिक चित्रण, व्यावहारिक रूप के निकट की सरस भाषा और नये तथा मधुर मात्रिक छंदों का प्रयोग इन कविताओं की कुछ विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के द्वारा ही अप्पाराव ने आधुनिक तेलुगु-साहित्य के विकास में एक नयी तथा महत्वपूर्ण दिशा दिखाई है। आधुनिक तेलुगु-कविता के अंतर्गत 'मुत्याल-सरालु' कई दृष्टियों से एक क्रांतिकारी रचना मानी जा सकती है।

मुद्दुकृष्ण *(ते० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इन्होंने बी० ए० बी० एल० की परीक्षाएँ पास कीं तथा हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ अँग्रेज़ी नाटकों के अभिनय में भाग लिया। उसके बाद अपने नाटकों को अभिनीत करते हुए समस्त आंध्र देश में भ्रमण किया और अंत में मद्रास पहुँचे। सिनेमा में व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषा का प्रयोग करने का सर्वप्रथम श्रेय इन्हीं को है।

'अशोकुडे' (1934), 'टीकप्पु लो तुपानु' (चाय की प्याली में तूफ़ान) (नाटक), 'भीमाविलापमु लो भाभा-क़लापमु' [भीमा के विलाप में भामा(सुंदरी) का कलाप] (नाटिका) आदि इनकी प्रख्यात रचनाएँ हैं। 'ज्वाला' नामक पत्रिका का संपादन इन्होंने पर्याप्त समय तक किया। इसके अतिरिक्त 'वैंताळिकुलु' नामक पुस्तक का संपादन भी किया, जिसमें 'भाव-कविता' (दे०) (छायावादी)-युग की श्रेष्ठ कविताएँ संकलित हैं। 'भाव-कविता' के विकास-क्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जानने के लिए यह संकलन अपरिहार्य है। 'भाव-कविता' का निरास करते हुए इन्होंने अभ्युदय (प्रगति) वादी कविताएँ भी लिखी हैं। 'अशोक' नामक नाटक में इन्होंने आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक (साइको एनालिटिकल) दृष्टिकोण से सीता, राम और रावण का चरित्र-चित्रण किया है। राम को केवल कीर्तिकामी तथा रावण को महापुरुष और पुण्यमूर्ति के रूप में चित्रित किया है। अवाल्मीकीय कल्पनाओं से युक्त इस नाटक ने साहित्य-क्षेत्र में तहलका मचा दिया था।

मुद्दण (क० ले०) [समय—1869-1901 ई०]

नंदळिके लक्ष्मीनारणप्पा, उपनाम 'मुद्दण', प्राचीन और नवीन साहित्यों के संधिकाल के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। नंदळिके इनका जन्मस्थान था। ये केवल 32 वर्ष जीवित रहे। इतनी अल्पायु में इन्होंने साहित्य की अपार सेवा की। दरिद्रता के कारण ये उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके थे तथापि इनकी मेधा-शक्ति अद्भुत थी। इन्होंने स्वाध्याय के बल पर कन्नड में तीन काव्य लिखे— (1) 'श्रीरामपट्टाभिषेक', जो वार्धक षट्पदी (कन्नड का एक छंद) में है; (2) 'अद्भुत रामायण' और (3) 'रामाश्वमेध'। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'रत्नावली-कल्याण' और 'कुमार-विजय' नामक यक्षगानों की भी रचना की है। इनके 'गोदावरी' नामक उपन्यास के कुछ परिच्छेदों, भगवद्गीता तथा रामायण के कन्नड-अनुवादों, कामशास्त्र पर एक ग्रंथ और अनुसंधान-संबंधी कुछ लेखों का भी पता चला है। कहते हैं कि इन्होंने व्याकरण और कोश-कार्य की योजना भी बनाई थी।

मुद्दण के काव्य प्राचीन और नवीन संस्कारों के संगम-स्थान हैं। उनमें प्राचीन शिल्प और नवीन तकनीक अपनाने की अद्भुत क्षमता थी। प्राचीन शैली में वे न लिखते तो संभवतः इनको प्रकाशक न मिलते। 'मुद्दण' उपनाम प्राचीन कवि के रूप में ही गृहीत हुआ था।

'श्रीरामपट्टाभिषेक' में वनवास के बाद राम के राजतिलक की कथा का वर्णन है। इसमें भरत का भव्य चित्र खींचा गया है। कवि ने अपने काव्य के संबंध में कहा है कि यह 'रामनामामृत-घटिका' है। मनोहर वर्णनों से सुशोभित यह काव्य पाठकों में उल्लास तरंगायित करता है। 'अद्भुत रामायण' नवीन शैली में लिखित गद्य-काव्य है। इसका आधार शाक्त संप्रदाय की रामायण है। इसमें प्राचीन कन्नड गद्य-शैली का मनोरम रूप प्राप्त होता है। 'रामाश्वमेध' मुद्दण की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ रचना है। वर्षा-वर्णन से इस काव्य का प्रारंभ होता है। इसकी कथा का आधार पद्मपुराणांतर्गत रामायण है। परंतु मुद्दण ने अपनी प्रतिभा के बल पर इसे सुंदर गद्यकाव्य बनाया है। इन्होंने कथा में नूतन उद्भावनाएँ भी की हैं। काव्य के प्रारंभ में देव-स्तुति आदि का न होना इनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व को ही प्रकट करता है। काव्य में मनोरमा (दे०) और मुद्दण का जो संवाद है, वह इनकी नूतन कल्पना का परिचायक है। मनोरमा की सृष्टि साहित्यलोक की एक अद्भुत सृष्टि है। दरिद्र-जीवन व्यतीत करने पर भी मुद्दण प्रसन्न रहे होंगे, स्वयं हंसकर लोगों को हँसाते रहे होंगे, मनोरमा और मुद्दण का संवाद इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। 'रामाश्वमेध' मुद्दण की अमर कृति है।

मुद्दुपळनी (तें० ले०) [समय—अठारहवीं शती ई०]

दक्षिणापथ के राजा प्रतापसिंह के दरबार में मुद्दुपळनी कवयित्री के रूप में रहती थीं। इनके 'राधिका स्वांतनमु' (दे०) नामक काव्य में इला, राधा और कृष्ण के बीच में प्रेम के त्रिकोणात्मक संघर्ष और अंत में राधिका के प्रेम की विजय का हृदयग्राही वर्णन है। इला के साथ कृष्ण का विवाह राधा स्वयं अपनी इच्छा से करा देती है। पर बाद में इला के ऊपर कृष्ण को अनन्य रूप में अनुरक्त पाकर राधा अपनी विवेकशून्यता पर पछताती है। कृष्ण को फिर अपनी ओर उन्मुख कर लेने में राधा को अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। विप्रलंभ और संयोग श्रृंगार का इतना विषद वर्णन इस काव्य में मिलता है कि संयत श्रृंगार के अभ्यस्त पाठक नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। पर यह तत्कालीन जनरुचि के अनुकूल ही लिखा गया था। मुद्दुपळनी की रचना में शब्दों की रमणीयता, भावों की हृदयग्राहिता और मानव-मन की मर्मज्ञता पाई जाती है। तेलुगु के श्रृंगार-काव्यों में मुद्दुपळनी के 'राधिका स्वांतनमु' का उत्कृष्ट स्थान है।

मुद्रामंजूषा (क० कृ०) [रचना-काल—1823 ई०]

केंपुनारायण की गद्यकृति 'मुद्रामंजूषा' प्राचीन और आधुनिक कन्नड के संधिकाल की रचना है। वह संस्कृत के 'मुद्राराक्षस' (दे०) नाटक का गद्य-रूपांतर नहीं है, इसमें 'मुद्राराक्षस' की कथा सूच्य रूप में आयी है अथवा यों कहें कि मुद्राराक्षस के प्रारंभ में जिस कथा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना मात्र है, उसका 'मुद्रामंजूषा' में बारह प्रकरणों में विस्तार है। उसमें कहा गया है कि 'पुराण में कही गई कथा अब केंपुनारायण नामक कवि ने कर्णाट भाषा में वर्णित कर इसे 'मुद्रामंजूषा' नाम दिया।' इससे पता चलता है कि लेखक ने कथावस्तु कहाँ से ली है। कथा में यत्र-यत्र परिवर्तन कर नवीनता लाने का प्रयास किया गया है। उसमें लेखक की स्वतंत्र कल्पना स्पष्टतः दिखाई पड़ती है।

'मुद्रामंजूषा' का महत्व उसकी भाषा-शैली की दृष्टि से है। उसमें आधुनिक कन्नड के अरुणोदय के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ते हैं। उसकी शैली में एकरूपता नहीं है। कहीं बाणभट्ट (दे०) की 'कादंबरी' (दे०)-सी संस्कृतनिष्ठ प्रौढ़ शैली है तो कहीं इसके विपरीत सरल शैली। यह संधिकाल की विषमता का परिणाम है। परंतु, इसमें संदेह नहीं कि केंपुनारायण में प्रतिभा है, उनकी नवीन दृष्टि उनकी शब्द-प्रयोग-सामर्थ्य से प्रकट है।

मुद्राराक्षस *(सं० कृ०)* [समय—पाँचवीं शती]

'मुद्राराक्षस' संस्कृत के यशस्वी नाटककार विशाखदत्त की एकमात्र नाट्यकृति है। विशाखदत्त का समय अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। विविध प्रमाणों के आधार पर इनका समय पाँचवीं शती के बीच में पड़ता है।

'मुद्राराक्षस' अपने ढंग का अनूठा नाटक है। इसमें नाट्यशास्त्रीय परंपराओं का अक्षरक्षः पालन नहीं किया गया है। इसके कथानक का स्रोत 'रामायण' (दे०) या 'महाभारत' (दे०) न होकर भारतीय इतिहास की एक घटना है। कथा इस प्रकार है—सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् चाणक्य नंदवंश का मूलोच्छेदन करके चंद्रगुप्त मौर्य को मगध का सम्राट बनाता है। नंदवंश का अत्यंत योग्य तथा राजनीतिकुशल मंत्री राक्षस चंद्रगुप्त को राजा नहीं मानता और स्वामी के विनाश का प्रतिशोध लेना चाहता है। किंतु चाणक्य अपनी कूटनीति से राक्षस को चंद्रगुप्त के पक्ष में कर लेता है तथा उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बना देता है।

इस नाटक में राजनीतिक दाँव-पेचों का अत्यंत कौशलपूर्ण चित्रण है।

इसमें स्त्रीपात्र, विदूषक तथा नायिका आदि की कल्पना नहीं की गई। वास्तव में इस नाटक की नायिका राजनीति को माना गया है। अन्य नाटकों की भाँति इसमें ललित पद्यों की योजना है। इस नाटक में अंगी वीर रस है जिसकी व्यंजना शस्त्रों की झनझनाहट तथा नगाड़ों की गड़गड़ाहट से होती है। इसमें चाणक्य तथा राक्षस की कूटनीति एवं बुद्धि का चमत्कार दर्शक को आश्चर्यचकित कर देता है।

इसका वस्तु-विन्यास अत्यंत सुव्यवस्थित तथा सबल है। चरित्रों में आदर्श एवं यथार्थ का समुचित समन्वय हुआ है। विशाखदत्त ने चाणक्य तथा राक्षस के चरित्रों का तुलनात्मक चित्रण करके अपूर्व नाट्यकौशल का परिचय दिया है। इसके संवाद सप्राण हैं तथा रंगमंच की दृष्टि से यह अत्यंत सफल नाटक है।

मुनाजात *(सिं० पारि०)*

'मुनाजात' मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ईश-प्रार्थना; कष्ट-निवारण के लिए की हुई परमात्मा की स्तुति। 'मुनाजात' गीत का वह प्रकार है जिसमें कवि अपने दुःखों का वर्णन कर परमात्मा की स्तुति करता हुआ कष्ट-निवारण के लिए उससे प्रार्थना करता है। कभी-कभी इस प्रकार के गीत में इस्लाम के किसी पैग़ंबर, दरवेश आदि की स्तुति कर उसे दुःख में सहायक होने के लिए भी पुकारा जाता है। 'मदाह' (दे०) में इष्ट देव की स्तुति का स्वर प्रधान होता है, परंतु 'मुनाजात' में कवि के कष्टों का वर्णन और सहायता की प्राप्ति के लिए आत्मनिवेदन का स्वर मुख्य होता है। 'मदाहूं और मुनाजातूं' (मदाहें और मुनाजातें) नाम से डा० नवीबख़्श ख़ान बलोच (दे०) ने चुनी हुई सिंधी 'मदाहों' और 'मुनाजातों' का एक प्रामाणिक संकलप तैयार किया है जो 1959 ई० में सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हो चुका है।

मुनाज़िरो *(सिं० पारि०)*

सिंधी-लोक-साहित्य में 'मुनाज़िरो' नामक कविता का महत्वपूर्ण स्थान है। 'मुनाज़िरो' एक प्रकार की दीर्घाकार वर्णनात्मक कविता है जिसका विषय दो सजीव अथवा निर्जीव पक्षों के बीच में या दो भावनाओं अथवा दृष्टिकोणों के बीच उत्पन्न विवाद या बहस पर आधारित होता है। इस प्रकार के विवाद में प्रत्येक पक्ष अपनी महानता और श्रेष्ठता को सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की कविता का मुख्य उद्देश्य हँसी-मज़ाक और व्यंग्य के द्वारा श्रोता अथवा पाठक का मनोरंजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना होता है। इसके साथ-साथ 'मुनाज़िरो' से शिक्षा भी दी जाती है। अक्ल और इश्क, जवानी और बुढ़ापा, विद्या और धन, टोपी और पगड़ी, सोना और लोहा, गर्मी और सर्दी, गीदड़ और शेर, तोता और मैना, सास और बहू— ये 'मुनाज़िरो' में वर्णित दो पक्षों के कुछ उदाहरण हैं। 'मुनाज़िरो' में ग्रामीण जीवन के चित्र मिलते हैं और उन में ठेठ सिंधी भाषा का प्रयोग किया जाता है। डा० नबी-बख्श खान बलोच (दे०) ने 'मुनाज़िरा' ('मुनाज़िरो' का बहुवचन) नाम से इस प्रकार की चुनी हुई कविताओं का बृहत् संकलन तैयार किया है, जिसे सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) 1961 ई० में प्रकाशित कर चुका है।

मुनि कनकामर *(अप० ले०)* [रचना-काल—1065 ई०]

मुनि कनकामर ब्राह्मणों के चंद्र ऋषि गोत्र में उत्पन्न हुए थे। कालांतर में ये देह-भोगों से विरक्त होकर दिगंबर-जैन-संप्रदाय में दीक्षित हो गये थे। इनके गुरु का नाम बुध मंगल देव था। देशाटन करते हुए आसाइयां नगरी में पहुँच कर इन्होंने 'करकंडु चरिउ' (करकंडु-चरित) दे० नामक अपभ्रंश चरित-काव्य की रचना की थी। इस कृति में इन्होंने अपने जन्म आदि का उल्लेख नहीं किया है। ये धार्मिक संकीर्णता से रहित उदारहृदय व्यक्ति थे।

इन्होंने किसी अपने भक्त श्रावक के आग्रह एवं अनुराग के कारण 'करकंडु-चरिउ' की रचना की थी। इन्होंने इस श्रावक का संक्षिप्त परिचय भी दिया है किंतु इसके नाम का उल्लेख नहीं किया। प्रो० हीरालाल जैन ने इनका समय 1043-1068 ई० के बीच अनुमित किया है।

मुबारक *(हिं० ले०)*

ये फ़ारसी, अरबी तथा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और हिंदी के सहृदय कवि थे। 1933 ई० इनका कविता-काल रहा। इन्होंने 'ममारख' छाप से भी रचना की है। मुख्यतः शृंगारी कवि होने के कारण नायिका के अंगों का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। इसके बारे में प्रसिद्ध है कि इन्होंने नायिका के दस अंगों की शोभा-वर्णन में लगभग 1000 दोहे बनाये। 'अलकशतक' और 'तिलकशतक' नामक प्राप्त ग्रंथ उन्हीं के अंतर्गत कहे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्फुट रूप में भी कवित्त-सवैया लिखे हैं। इनकी उत्प्रेक्षाएँ काफ़ी सुंदर होती हैं; कल्पना की उड़ान में ये अपने समसामयिकों से बढ़कर हैं।

मुम्मडि कृष्णराज *(क० ले०)*

दे० कृष्णराज, मुम्मडि।

मुरारि *(सं० ले०)* [समय—आठवीं शती का उत्तरार्द्ध]

नाटककार मुरारि मौद्गल्यगोत्री श्री वर्धमानक तथा तनुमती के पुत्र थे। इनको 'बालवाल्मीकि' की उपाधि दी गई थी। अनेक साक्ष्यों के आधार पर इनका समय आठवीं शती का उत्तरार्ध निश्चित किया जा सकता है।

इनका केवल एक नाटक मिलता है—'अनर्घ-राघव'। यह नाटक सात अंकों में समाप्त हुआ है। इसकी प्रस्तावना में ये भवभूति (दे०) के ऊपर कटाक्ष करते हुए प्रतीत होते हैं। इनका कहना है कि 'अनर्घराघव' वीर तथा अद्भुत रस और गंभीर एवं उदात्त वस्तु से संपन्न है। पर यह उक्ति कुछ सही नहीं बैठती। 'अनर्घराघव' नाटक की दृष्टि से एक सफल प्रयास नहीं कहा जा सकता। इसमें मानवीय हृदय के भावों का उतना विकास नहीं दृष्टिगोचर होता जितना भवभूति के नाटकों में होता है। कविता की दृष्टि से नाटक अवश्य सुंदर है। इसमें ओज है, प्रौढ़ता है और प्रवाह है।

मुरुकैयन *(त० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

इनका जन्म जाफना (लंका) में हुआ और वहीं इन्होंने आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। मुरुकैयन ने लगभग 15 वर्ष की आयु से ही कविता लिखना आरंभ कर दिया था। इनकी कविताओं के संग्रह हैं—'नेडुम पहल्', 'ओरु वरम्' और 'दरिशनम्'। इनकी नवीनतम कृति है 'गोपुल वासल' नामक काव्य-रूपक। इसमें उन्होंने 'पेरिय-पुराणम्' (दे०) में प्राप्त नंदनार (दे०) की कथा का आश्रय लेते हुए एक सामाजिक दोष—अस्पृश्यता—की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। 'कविदैनयम्' इनकी आलोचनात्मक कृति है। इन्होंने आधुनिक विज्ञान के विभिन्न वर्गों से संबंधित विषयों पर निबंध लिखे हैं। मुरुकैयन गीतकार भी हैं। इन्होंने चलचित्रों के लिए भी कुछ गीतों की रचना की है। मुरुकैयन श्रीलंका के शैक्षिक प्रकाशन-विभाग में संपादक के पद पर नियुक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीलंका के तमिल साहित्यकारों में इनका विशिष्ट स्थान है।

मुळिय तिम्मप्पय्या *(क० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

दक्षिण कन्नड के पुत्तूर तालुके के मुलिया में आपका जन्म हुआ। मंगलूर के कालेज में ये कन्नड के अध्यापक थे। इन्होंने 'कन्नडकोगिले' नामक पत्रिका का संपादन किया। ये कन्नड के आदि कवि पंप (दे०) के विशेषज्ञ और अधिकारी विद्वान थे। आपकी कृतियों में प्रमुख ये हैं—'आदिपुराण-संग्रह', 'कविराजमार्ग-विवेक', 'चंद्रावली-विलास', 'त्रिपुरदाह', 'नवनीत-रामायण', 'पार्ति सुब्ब', 'समस्त भारत-सार', 'सोबगिन बल्लि', आदि। शैली पंडिताऊ होने पर भी प्रभावी है।

मुल्लै *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित पाँच भूभागों में से एक है मुल्लै। मुल्लै आदि पाँच भूभागों का वर्णन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुल) और 'पुरम्' (दे० पुरुप्पोरुल) दोनों वर्गों की रचनाओं में होता है। 'मुल्लै' से तात्पर्य है वन-प्रदेश। यहाँ के निवासी इडैयर या आयर कहलाते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय है खेती करना, ढोर पालना, पशु चराना आदि। मुल्लैवासियों के आराध्य देव मायोन् (विष्णु) हैं। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतु वर्षा-ऋतु (सावन-भादों) है और अनुकूल वेला है रात्रि का प्रथम प्रहर। यहाँ के प्रमुख प्राणी हैं जंगली मुर्गी, हिरन, खरगोश आदि। मुल्लैवासी 'एरंकोट्परै' नामक ढोल का प्रयोग करते हैं। यहाँ के निवासी बाँसुरी बजाकर, साँड़ों को भिड़ाकर, कुरवै नृत्य करके और जलक्रीड़ा करके अपना मनोरंजन किया करते हैं। इस प्रदेश में प्रभूत मात्रा में प्राप्त मुल्लै पू (चमेली का फूल) के आधार पर ही इस प्रदेश का तथा यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति का नामकरण हुआ है। मुल्लै प्रदेश से संबंधित अहम् काव्यों में सफल वैवाहिक जीवन का वर्णन प्राप्त होता है। कवियों ने पति-पत्नी की मनोदशा को व्यक्त करने के लिए मुल्लै प्रदेश की प्राकृतिक अवस्था का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। इस प्रदेश में पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएं सफल दांपत्य जीवन प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

मुसद्दस *(उर्दू० पारि०)*

'मुसद्दस' उर्दू कविता का वह भेद है जिसमें हर बंद छह मिसरों का होता है। पहले चार मिसरे हमकाफ़िया (तुकसाम्यमय) होते हैं और पाँचवें और छठे मिसरे में (पहले चारों मिसरों से अलग) अंत्यानुप्रास होता है। यह तीसरा शेर टीप का शेर कहलाता है। बंदों की कोई संख्या निश्चित नहीं है।

उर्दू के कवियों ने मुसद्दस विभिन्न छंदों में कहे हैं। मुसद्दस के लिए विषय का भी कोई बंधन नहीं है। किसी भी वर्णनात्मक विषय के लिए मुसद्दस बहुत उपयोगी होता है। उर्दू में सबसे बड़ा मुसद्दस मौलाना अलताफ़ हुसैन 'हाली' (दे०) पानीपती का 'मद्द-ओ-जज्र-ए-इस्लाम' है जिसमें मुसलमानों के उत्थान-पतन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। हिंदू जाति के संबंध में 'कैफ़ी' (दे०) देहलवी का मुसद्दस 'भारत-दर्पण' भी बहुत सुंदर है। 'अनीस' (दे०) और 'दबीर' (दे०) ने तवील मर्सिए (लंबे-लंबे शोक-गीत) मुसद्दस के रूप में ही लिखे हैं।

मुसद्दस-ए-हाली *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1879 ई०]

ख्वाजा अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (दे०) पानीपती उर्दू के विख्यात कवि एवं प्रथम आलोचक थे। इन्होंने उर्दू काव्य तथा मुस्लिम समाज दोनों के सुधार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। हाली ने जहाँ काव्यालोचना-विषयक निबंध 'मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' (दे०) की रचना की वहाँ मुस्लिम-समाज के उत्थान-पतन की छंदोबद्ध गाथा के रूप में एक कामयाब मुसद्दस 'मद्द-ओ-जज्र-ए-इस्लाम' की भी रचना की। इसमें मुसलमानों के अतीत-गौरव तथा वर्तमान-पतन का चित्रण किया गया है। यही मुसद्दस अब 'मुसद्दस-ए-हाली' के नाम से विख्यात है। यह 'हाली' की अत्यंत प्रभावशाली, लोकप्रिय एवं अमर कृति है।

'हाली' की शायरी का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू राष्ट्रीय सुधारात्मक पक्ष है। 'हाली' पर प्रसिद्ध मुस्लिम सुधारक (सर) सैयद अहमद खाँ (दे०) का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। डॉ० हामिद हसन कादरी के मतानुसार 'मुसद्दस-ए-हाली' की अज़मत (श्रेष्ठता), कबूलियत (लोकप्रियता और तासीर (प्रभावशालिता) को उन्नीसवीं शती की कोई दूसरी नज़्म नहीं पहुंचती।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलम्म मरणमु *(ते० कृ०)*

सर सी० पी० ब्राउन द्वारा संकलित 'अनंतपुर' का इतिहास' नामक पुस्तक की एक कथा का आधार लेकर डा० कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (दे०) के इस खंड काव्य की रचना की है। सामाजिक दुराचारों के कारण, समाज के कल्याण की भावना से आत्माहुति वाली एक ग्रामीण-युवती (जिसका नाम मुसलम्मा है) की विषादपूर्ण जीवन-कथा का वर्णन इस काव्य में किया गया है। यह खंड-काव्य करुण रस-प्रधान है।

प्राचीन काव्य के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी, इस काव्य के वर्णन तथा विचार नवीन शैली के अनुरूप हैं।

तेलुगु के आधुनिक काव्यों में इस रचना का विशिष्ट स्थान है।

'मुसहफ़ी' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1750 ई०; मृत्यु—1824 ई०]

जन्मस्थान—अमरोहा (जिला मुरादाबाद); नाम—ग़ुलाम हमदानी; उपनाम 'मुहसफ़ी'। आरंभ में इनका निवास-स्थान दिल्ली रहा परंतु बाद में इन्हें लखनऊ के शहज़ादा सुलेमान शिकोह का आश्रय प्राप्त हो गया था। 'आतिश' (दे०) और 'नासिख' (दे०) जैसे समर्थ उर्दू कवि इनकी शिष्य-मंडली में थे। इनके 8 उर्दू दीवान काव्य-संकलन) और बीस मसनवियाँ आज भी उपलब्ध हैं। ये उच्चकोटि के गद्य-लेखक भी थे। इनके काव्य में भावात्मकता, रागात्मकता, भाव-समृद्धि, संहिति, संगीत-गुण और प्रवाह आदि विशेषताएँ सर्वत्र देखने में आती हैं। दार्शनिकता, नैतिकता और आध्यात्मिकता का अपूर्व सामंजस्य इनकी ग़ज़लों की विशेषता है।

मुहम्मद अमीन 'कामिल' *(कश्०ले०)* [जन्म—1929 ई०]

जन्म कश्मीर स्थित 'कापरेन' नाम के गाँव में। बाल्यकाल से ही इनमें साहित्यिक रुचि और प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कश्मीर कल्चरल अकादेमी द्वारा प्रकाशित कश्मीरी भाषा के सूफ़ी रहस्यवादी कवियों के कविता-संग्रह 'सूफ़ी शायिर' के तीनों खंडों का संपादन किया है। 'मस मलर' (मदिरा घट) नाम की पुस्तक में इनकी अपनी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त 'लवें त प्रव:' (ओस के कण और किरणें), 'नूर नामा' (नूरुद्दीन ऋषि की जीवनी) तथा 'गटि मंज़ गाश' (अँधेरे में उजाला) नाम की इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। चतुर्दशपदी की सी कविता करके इन्होंने भी कुछ नये प्रयोग किए हैं। कामिल साहब को उर्दू-फ़ारसी का अच्छा ज्ञान है और इनकी शैली में प्रौढ़ता झलकती है। इनकी भाषा जहाँ कुछ-कुछ फ़ारसी मिश्रित है वहाँ इनके पद्य और गद्य दोनों में ही काफ़ी प्रवाह है। इनकी रचनाओं में जहाँ विचारगांभीर्य है वहीं आधुनिक स्वच्छंदवाद की कुछ प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। 'कथि मंज़: कथ' नाम का इनका कहानी-संग्रह भी छपा है।

मुहम्मद, के० टी० *(मल० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध नाटककार और कहानीकार हैं। 1954 ई० में टाइम्स आफ़ इंडिया द्वारा संगठित कहानी-प्रतियोगिता में इन्होंने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था। ये डाक-तार विभाग के कर्मचारी हैं।

'इतु भूमियाणु', 'करवट्ट पशु', आदि इनके नाटक साहित्यिक और रंगमंचीय दोनों दृष्टियों से सफल हुए हैं। इनके बारह नाटक, दो कहानी-संग्रह, तीन उपन्यास और एक एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

मुहम्मद के नाटकों में मानव-मन की जटिल समस्याओं के हल ढूँढे गए हैं। धार्मिक अंधविश्वासों के जंजाल में फँसे हुए केरलीय मुस्लिम समाज की समस्या को भी इन्होंने प्रकाश दिया है। आधुनिक नाटककारों में के० टी० मुहम्मद का स्थान समुन्नत है।

मुहम्मद तुग़लक *(क० पा०)*

यह गिरीश कर्नाड के नाटक 'मुहम्मद तुग़लक' का प्रधान पात्र है। इसके व्यक्तित्व का विश्लेषण सर्वथा नये ढंग से हुआ है। इतिहास में तुग़लक के पागलपन का उल्लेख मिलता है। लेखक ने यह दिखाया है कि यह पागलपन इसके राजनीतिक व्यक्तित्व के कारण था। यह अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के उद्देश्य से अपने पिता, भाई और सौतेली माँ को भी मरवा डालता है। बग़ावत करने वालों को यह कठोर से कठोर दंड देता है। इसकी राजनीतिक प्रज्ञा इतनी खरी है कि उसको परास्त करने या मार डालने का षड्यंत्र करने वाली समस्त शक्तियाँ असफल हो जाती हैं। वह शेख इमामुद्दीन और शिहाबुद्दीन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी कुशलता और निर्दयता से मृत्यु का ग्रास बना देता है। अपने को न्यायी घोषित कर कूटनीति का पल्ला पकड़ता है। प्रजा की भलाई चाहता है, पर आज्ञा-पालन न करने वाले के प्रति अत्यंत क्रूर व्यवहार करता है। राजधानी दिल्ली से दौलताबाद ले जाने में जहाँ इसकी राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है वहीं निर्दयता का भी प्रमाण मिलता है। ताँबे के सिक्के चलाकर वह जनता के कष्ट को बढ़ा देता है। दोआब के अकाल का कारण इसकी अदूरदर्शिता ही है। यह इस त्रुटि को मानता है। यह धैर्य और निष्ठा को उचित मूल्य देता है। यही कारण है कि यह वज़ीर मुहम्मद नजीब को अपना हितैषी मानता है, और उसकी हत्या का दोष स्वीकार करने वाली सौतेली माँ को दंड देने से नहीं चूकता। शिकनार के धोखेबाज़ धोबी अजीज़ को उसके अपराध जानते हुए भी उसके धैर्य को देखते हुए दक्षिण का सरदार बनाता है। अपने राजनीतिक 'पागलपन', हठवादिता और दृढ़ता के कारण वह धर्मगुरुओं की भी परवाह नहीं करता। दो राज्यों के बीच में इसका व्यक्तित्व कैसे उभर कर आया, यही नाटककार ने दिखाया है।

मुहम्मद बशीर, वैकम *(मल० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये मलयाळम के प्रतिभाशाली उपन्यासकार और कहानीकार हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में ये पढ़ाई छोड़कर जेल गए थे। बाद में साम्यवादी आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया और अनेक यातनाएँ सहीं। अंत में सार्वजनिक जीवन से संन्यास ले लिया। केंद्रीय साहित्य अकादेमी के ये फ़ैलो हैं।

'बाल्यकाल सखी', (दे०) 'न्टुप्पुप्पाक्कोरा-नेंटार्न्नु', (दे०) 'अनर्घनिमिषम्', 'शब्दङ्ङळ', आदि अनेक उपन्यास और कई कहानी-संग्रह प्रकाशित किए हैं। इनमें से प्रथम दो उपन्यास हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हैं।

मलयाळम कथा-साहित्य में नवजागरण स्थापित करने वाले साहित्यकारों में बशीर प्रमुख हैं। इन्होंने अत्याचारों से पीड़ित मनुष्य का जीवन चित्रित किया है। अपना सारा विभव समाप्त होने पर भी कुल-महिमा के गर्व पर ज़िंदा रहने वालों पर इन्होंने खूब व्यंग्य किया है। इनकी कृतियों में यथार्थ का चित्रण है। यद्यपि ये किसी वाद में विश्वास नहीं करते। इनकी भाषा सरल और शैली विनोदात्मक है। इन्होंने अपनी कहानियों में जिन हास्यरस के पात्रों की सृष्टि की है वे ऐतिहासिक हो गए हैं और वे पात्र पाठकों को हँसाने के अलावा उसकी चिंता को भी उद्दीप्त करते हैं।

आधुनिक कथा-साहित्य में मुहम्मद बशीर की देन अमूल्य है।

मुहम्मद शहीदुल्लाह *(बँ० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

बँगला भाषा-तत्त्व एवं साहित्य-इतिहास के क्षेत्र में आचार्य मुहम्मद शहीदुल्लाह एक पुण्य नाम है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में बँगला विभाग में उन्होंने अध्यापन प्रारंभ किया था। तदनंतर तीस वर्ष तक ढाका विश्वविद्यालय के बँगला विभाग में अध्यापक एवं बाद में प्रधान अध्यापक के रूप में साहित्य-सेवा की। सर आशुतोष मुखोपाध्याय, दिनेशचंद्र सेन, बसंतरंजन राय आदि विद्वानों ने अंतरंग साहचर्य ने उनकी साहित्य सेवा-भावना को उद्दीप्त किया था राजशाही विश्वविद्यालय के बँगला विभाग के आरंभ से ही वे उसके अध्यक्ष थे। 1960 में उन्होंने बँगला अकादेमी के लिए आंचलिक बँगला-भाषा-कोश का संपादन-कार्य समाप्त किया। उनके द्वारा रचित नाना ग्रंथों एवं प्रबंधों में 'भाषा ओ साहित्य' (1931), 'बाँगला व्याकरण' (दे०) (1935), 'बाँगला साहित्येर कथा'—प्रथम एवं द्वितीय (1953, 1965), 'बाँगला भाषार इतिवृत्त' (1959), 'विद्यापति-शतक' (1954) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उर्दू एवं फ़ारसी में भी उन्होंने ग्रंथों की रचना की है। तमिल, तेलुगु, उड़िया, असमी, आदि भाषाओं में भी उनकी असाधारण गति थी। डाक्टर शहीदुल्लाह बँगला साहित्य एवं संस्कृति की आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका में सुप्रतिष्ठित हैं।

मुहम्मद हसन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

डा० मुहम्मद हसन की प्रसिद्ध पुस्तकें हैं: 'अदबी तनकीद', 'पैसा और परछाईं' (नाटक) (दे०) 'जुल्फ़े ज़ंजीर' (उपन्यास), 'हिंदी अदब की तारीख', 'जलाल लखनवी', 'मुतालअ सौदा' (आलोचना), 'उर्दू शायरी का फ़िक्री पसे-मंजर', तथा 'उर्दू अदब में रूमानी तहरीक' (शोध-प्रबंध)।

डा० मुहम्मद हसन कथाकार, नाटककार और आलोचक के रूप में विख्यात हैं। उपन्यास एवं नाटकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति इनका विशेष आकर्षण है परंतु आलोचना की गहरी दृष्टि भी इन्हें प्राप्त है। 'अदबी तनकीद' इनका प्रथम समीक्षा-ग्रंथ है। जिसमें साहित्य के विविध पक्षों पर विचार किया गया है। इस पुस्तक से इनकी समीक्षा-विषयक मान्यताएँ स्पष्ट होती हैं। 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए'—ये दोनों दृष्टियाँ इनके समीप एक-दूसरे की सहायिका हैं, न कि परस्पर विरोधी। उनके विचार में कविता केवल भाव-सौंदर्य से ही उत्कृष्ट नहीं बन सकतीं। विचारों की ठोस सच्चाई भी आवश्यक है। मुहम्मद हसन कट्टर प्रगतिवादी नहीं पर सामाजिक चेतना की पृष्ठभूमि में आलोचना करने वाले आलोचक हैं।

मुहसिन-ए-कलाम-ए-ग़ालिब *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू औरंगाबाद (दक्कन) द्वारा प्रकाशित यह कृति स्वर्गीय डा० अब्दुलरहमान बिजनौरी (दे०) की रचना है।

योग्य लेखक ने इस पुस्तक में महाकवि ग़ालिब की काव्य-शैली के गुणों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने ग़ालिब की तुलना सुप्रसिद्ध जर्मन कवि गोयटे से की है। लेखक के विचार से ग़ालिब के काव्य में केवल छंदों का ठीक प्रयोग ही नहीं हुआ अपितु उनके काव्य में अपूर्व सरलता, संगीतात्मकता तथा मधुरता भी है। लेखक के विचार में काव्य-सृजन का दूसरा नाम शब्दों में चित्र खींचना है और यह चित्रात्मकता ग़ालिब के काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलती है और उसकी प्रभाव-शक्ति अद्भुत है। इस प्रकार लेखक ने ग़ालिब के उदाहरण प्रस्तुत कर उनके भागवत तथा शैलीगत गुणों का विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है। लेखक अपने उद्देश्य में सफल रहा है क्योंकि इस पुस्तक को पढ़कर ग़ालिब के काव्य-गुणों का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। यद्यपि पुस्तक केवल 106 पृष्ठ की है किंतु इस छोटे कलेवर में भी लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति भली भाँति करने में पूर्णतः सफल हुआ है।

मुहावरा *(हिं० पारि०)*

किसी भाषा में प्रयुक्त विशिष्ट प्रयोग जिनका अभिधार्थ से भिन्न विशिष्ट अर्थ लिया जाता है 'मुहावरा' कहलाता है। उदाहरण के लिए मारे शर्म के मैं पानी-पानी हो गया' वाक्य में 'पानी-पानी होना' मुहावरा है जिसका अभिधार्थ नहीं लिया जा सकता। 'पानी-पानी होना' 'बहुत अधिक शर्मिंदा होना' अर्थ में हिंदी में रूढ़ हो गया है। हर भाषा के अपने मुहावरे होते हैं। समय के साथ-साथ उनकी संख्या तथा प्रयोग में परिवर्तन होता रहता है। हिंदी में ही जो मुहावरे आदिकाल में थे, वही भक्तिकालीन साहित्य में नहीं थे, और रीतिकाल तथा आधुनिक काल में भी उनमें परिवर्तन हुआ है। एक यह बात भी ध्यान देने की है कि हर भाषा में बहुत-सी अभिव्यक्तियाँ मूलतः मुहावरेदार होती हैं किंतु धीरे-धीरे हम उनके प्रयोग के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे सामान्य प्रयोग समझी जाने लगती हैं। उदाहरण के लिए, 'उसकी मधुर बातें सुनकर कौन नहीं झुक जाता'। इसमें 'मधुर बात' तथा 'झुक जाना' दोनों ही मूलतः मुहावरे हैं, किंतु अब ये इतने प्रचलित हो गए हैं कि मुहावरे के रूप में इनका नयापन समाप्त हो गया है, और अब वक्ता, श्रोता या पाठक का ध्यान इस बात की ओर क़तई नहीं जाता कि ये मुहावरे हैं। मुहावरे लोकोक्ति से इस बात में भिन्न होते हैं कि वे प्रयोग के स्तर पर अपने-आप में स्वतंत्र इकाई या उक्ति नहीं होते, बल्कि वाक्य में घुलमिलकर आते हैं, जबकि इसके विपरीत लोकोक्तियाँ स्वतंत्र इकाई के रूप में लोक में प्रचलित उक्ति होती हैं, और वाक्य में भी उनकी स्वतंत्र सत्ता बनी रहती है : 'ज़ोर से मत बोलो उसकी **आँख लग गई हैं**', 'अरे तुम्हारा कल का नौकर मेरे पुराने नौकर का क्या खाकर मुक़ाबिला करेगा, जानते नहीं **नया नौ दिन पुराना सौ दिन**'।

मून्रुरैयरैयनार *(त०ले०)* [समय—ईसा की पाँचवीं शती]

'मूनरुरैयरैयनार' तमिल साहित्य-जगत में 'पल-मोलि' नानूरु' के रचयिता के रूप में विख्यात हैं। इस कृति में तमिल की 400 कहावतें संगृहीत हैं। लेखक ने विभिन्न कहानियों और प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं का आश्रय लेते हुए इन कहावतों के अर्थ समझाये हैं। 'मून्रुरैयरैयनार' को तमिल में कहावतों के संकलन-कार्य का प्रवर्तक होने का श्रेय प्राप्त है।

मूमल *(सिं० पा०)*

सिंधि-साहित्य में मूमल-राणो की प्रेमगाथा प्रसिद्ध है। मूमल इसी प्रेमगाथा की नायिका है। मूमल ने अपनी बहिन सूमल के साथ काक नदी के किनारे पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तिलिस्म बनवाया था जहाँ ये दोनों बहिनें रहती थीं। मूमल की सुंदरता की प्रशंसा सुनकर कई राजकुमार वहाँ आते थे और तिलिस्म में फँसकर अपने धन से हाथ धोकर टका-सा मुँह लेकर लौट जाते थे। सिंध के सूमरा वंश (1050-1350 ई०) के राजा हमीर का मंत्री राणा मेंधरो तिलिस्म की कठिनाइयों को पाकर मूमल तक पहुंचा और शर्त के अनुसार मूमल से विवाह करने में सफल हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् राणो मेंधरो ने मूमल की पवित्रता में शक कर उसे त्याग दिया। मूमल ने कई प्रयत्न किए कि उनके पति का यह भ्रम दूर हो जाए पर वह इसमें सफल न हुई। आखिर उसने निराश होकर आग में कूद कर अपने प्राणों का अंत किया। यह देखकर राणो मेंधरो बहुत पछताने लगा और उसने भी आग में कूदकर जीवन की आहुति देकर अपने सच्चे प्रेम को सिद्ध किया। सिंधी-कवियों ने मूमल के सौंदर्य और विप्रलंभ शृंगार का वर्णन प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। सिंधी-साहित्य में यत्र-तत्र मूमल के प्रसंग मिलते हैं।

मूर्कोत्तु कुमारन्, *(मल० ले०)* [जन्म—1874 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध गद्य-लेखक, पत्रकार और कवि थे। इन्होंने कीट्स की कृति 'इसाबेला' का 'आशाकुला' नाम से मलयाळम में पद्यानुवाद किया है। 'वसुमती' (उपन्यास), 'काकन' (वैज्ञानिक निबंध-संग्रह), 'गद्यमंजरी' (समालोचना) आदि गद्य-ग्रंथों के अलावा इन्होंने नाटक, जीवनियाँ और कहानियाँ भी लिखी हैं।

मलयाळम के ललित-निबंधकारों और जीवनी-लेखकों के लिए मूर्कोत्तु कुमारन् मार्गदर्शक हैं। वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में निबंध लिखने में ये सिद्धहस्त थे। इनके द्वारा रचित श्री नारायण गुरु की जीवनी एक प्रौढ़ और प्रामाणिक कृति है। गद्य-साहित्य के विकास में मूर्कोत्तु कुमारन् का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।

मूर्ति, ए० एस० (क० ले०) [जन्म—1929 ई०]

ये कर्नाटक के प्रसिद्ध कलाकार हैं। इनका जन्म बेंगलूर में हुआ था। ये अच्छे निबंधकार हैं जिनमें हास्य और व्यंग्य के लिए प्रमुख स्थान है। 'अध्यक्षते' इनके ऐसे ही निबंधों का संग्रह है। इन्होंने सामाजिक नाटकों की रचना भी की है। इस दृष्टि से इनके 'कुड़का' (शराबी), 'हुच्चा' (पागल) नाटकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

मूर्तिराव, ए० एन० *(क० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये कन्नड के प्रख्यात निबंध-लेखक हैं। मैसूर विश्वविद्यालय में अँग्रेज़ी प्रोफ़ेसर के पद पर रहकर अब अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। मैसूर सरकार के साहित्य-संस्कृति-विकास विभाग के निदेशक के रूप में भी इन्होंने सेवा की है। 1954 से 1956 ई० तक बेंगलूर कन्नड-साहित्य-परिषद् के अध्यक्ष भी रहे हैं। इनके निबंध-संग्रहों में 'अलेयुव मन' (घूमता मन), 'हगलुगनसुगळु' (दिवा-स्वप्न)' के नाम उल्लेख योग्य हैं। 'योधन पुनरागमन' (योद्धा का पुनरागमन), और 'पाश्चात्य सण्ण कयगळु' अँग्रेज़ी से अनूदित इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

मूलसूत्र *(प्रा० कृ०)*

महाराष्ट्री प्राकृत के चार ग्रंथ 'मूलसूत्र' कहे जाते हैं। इन्हें आगमों में स्थान प्राप्त है। पहला 36 अध्यायों 'उत्तरज्झयन' (उत्तराध्ययन सूत्र) आलंकारिकता और काव्यात्मकता की दृष्टि से जैन आगमों में अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है। इसमें बहुमूल्य कविताएँ, नीति-सूक्तियाँ, रूपक, संवाद, गीति, प्रगीत इत्यादि सभी कुछ हैं। मुख्य विषय जैन धर्म और तीर्थंकरों (दे०) का वर्णन है किंतु एक अध्याय कपिल के विषय में भी है। इसके अनेक वर्णन बौद्ध-साहित्य और 'महाभारत' के बहुत निकट पड़ते हैं। दूसरा मूलसूत्र 'आवस्सय' या 'आवस्सग' है जिसमें 6 अध्यायों में 6 आवश्यक (अनिवार्य) कर्त्तव्यों का उपदेश है और साथ में कथाएँ भी हैं। तीसरा मूलसूत्र 'दसवेपालीय' सज्जंभव (स्वायंभुव) रचित कहा जाता है। यह सूत्र स्वायंभुव ने अपने पुत्रशिष्य मानक की आसन्न मृत्यु मानकर उसे छुटकारा देने के मंतव्य से उपदिष्ट किया था। इसमें संन्यासियों के धर्म-कर्म और सूक्तियों के साथ अनेक कथाएँ जुड़ी हैं। चौथे मूलसूत्र के रूप में भद्र-बाहु लिखित 'पिंडनिज्जुत्त', और कभी भी 'ओहानिज्जुत्ति' माने जाते हैं। इनमें पवित्र जीवन-चर्या और संन्यायाश्रम के अनुशासनों का वर्णन है। कभी-कभी इन्हें 'छेदसूत्र' भी कहा जाता है। तब चौथे मूलसूत्र के रूप में पक्खी को स्वीकार किया जाता है जिसमें पाक्षिक प्रतिक्रमण और 5 महाव्रतों का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूवर-उला *(त० कृ०)* [समय —ई० बारहवीं शती]

इस काव्य के रचयिता 'सर्वज्ञ कवि', 'कवि-राक्षस' आदि उपाधिकारी 'ओट्टक्कूत्तूर' है। तीन पीढ़ियों तक 'चोल'-सम्राटों की राज-सभाओं को सुशोभित करने का विशिष्ट सुयोग इन्हें मिला था और इनका सम्मान करने वाली अन्य कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने 'उला' नामक काव्य-विधा में तीन रचनाएँ की थीं जो सामूहिक रूप से 'मूवरा-उला' कहलाती हैं। ये तीन 'चोल'-सम्राट क्रमशः 'विक्किरमन्' (1118-1136 ई०) 'कुलोत्तुङ्कन् द्वितीय' (1133-1150 ई०) तथा 'राजराजन् द्वितीय' (1146-1163 ई०) थे। प्रसिद्ध है कि 'राजराजन्' राज-सभा में 'उला' काव्य की प्रत्येक द्विपदी सुनाने पर हज़ार-हज़ार स्वर्ण-मुद्राएँ भेंट में दिया करते थे।

'उला' पद्य-विधा की रूढ़ पद्धति के अंतर्गत काव्य नायक की रथ-गज तुरंगादि-संपन्न शोभा-यात्रा तथा देखकर नारियों की मनःस्थिति के वैचित्र्य का वर्णन ही मुख्य विषय होते हैं। आयु के क्रमानुसार अबोध बालिका (पेतै) से लेकर प्रौढ़ युवती (पेरिळम्पेण) तक नारी जाति के सात वर्ग किये जाते हैं और कामातुर अवस्था में इनके विभिन्न हाव-भाव तथा कंदुक-क्रीड़ा, नायक के रंग के अनुकूल पोशाक-परिवर्तन, मधु-पान, पुष्प-चयन इत्यादि कामप्रेरित क्रियाएँ वर्णित होती हैं। प्रस्तुत काव्य के उक्त वर्णनों में संचारी एवं अनुभावों का सुंदर वर्णन है। इन वर्णनों के दौरान 'चोल'-सम्राटों से संबंधित अनेक तथ्य ज्ञात होते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। आलोच्य तीन 'उलाओं' में प्रवाहपूर्ण शैलीयुक्त 'कलिवेण्पा' छंद के द्विपदी पद्य क्रमशः 342, 381 एवं 391 हैं और अंत में एक चतुष्पदी 'वेण्पा' तीनों कृतियों में है।

मृगनयनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1950 ई०]

यह वृंदावनलाल वर्मा (दे०) का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है जिसमें लेखक ने तोमर शासन-काल के स्वर्ण-युग का अत्यंत कलात्मक ढंग से अंकन किया है। उपन्यासकार ने अपनी कृति का ताना-बाना बुनते समय ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ अनेक किंवदंतियों तथा जनश्रुतियों का भी प्रयोग किया है। मृगनयनी (दे०) तथा मानसिंह की प्रेम-कथा इस उपन्यास की मूल-कथा है जिसके माध्यम से लेखक ने राजमहलों के अंतरंग जीवन की रम्य झाँकी प्रस्तुत की है। प्रासंगिक कथाओं के अंतर्गत यों तो अनेक कथाएँ हैं किंतु अटल तथा लाखी की प्रेम-कथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस उपकथा के माध्यम से लेखक ने तद्युगीन भारतीय समाज के रीति-रिवाजों तथा संघर्षपूर्ण जीवन को वाणी प्रदान की है। यथास्थान उस युग का राजनीतिक जीवन भी पूरी तरह उभर आया है। उपन्यासकार ने उस युग की युद्ध-प्रणाली तथा मुसलमान शासकों की रीति-नीति, निरंतर आक्रमण तथा लूट-मार के फलस्वरूप जन-जीवन में आई अस्थिरता का वर्णन करने के साथ-साथ जनता द्वारा मनाए जाने वाले उत्सव-त्यौहारों आदि का भी सशक्त अंकन किया है। प्रतिकूल परिस्थितियों के रहते हुए भी जनता द्वारा मनाए जाने वाले उत्सवों आदि के चित्रण से उपन्यासकार का उद्देश्य यह बतलाना रहा है कि मानव-जीवन का सच्चा सुख शरीर, मस्तिष्क तथा हृदय के उपयुक्त समन्वय में ही निहित है। मारे जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आते हैं जब कर्त्तव्य तथा भावना के बीच संघर्ष छिड़ जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों का समन्वय ही श्रेयस्कर होता है। चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से मृगनयनी इस उपन्यास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है जो अपने अनुपम सौंदर्य तथा अद्भुत साहस के फलस्वरूप सामान्य गूजर-कन्या से रानी-पद को प्राप्त कर लेती है। उसके चरित्र में कर्त्तव्य तथा प्रेम का सहज संगुंफन है। उसके समान विवेक-बुद्धिपूर्ण तथा शक्तिसंपन्न रानी को पाकर मानसिंह के नैसर्गिक गुण भी पूर्णतः प्रोद्भासित हो उठते हैं और वह अपने दुर्जेय पराक्रम युद्ध-निपुणता, धर्म तथा देश के प्रति निष्ठा, सहृदयता तथा कलाप्रियता की अमिट छाप पाठक के मन पर छोड़ देता है। अटल तथा लाखी का कर्त्तव्य-भावना से पूरित एकनिष्ठ प्रेम भी पाठक के स्मृति-पटल से कभी उतरता नहीं है। बुंदेलखंडी पुट लिये जिस सहज कलात्मक भाषा का प्रयोग इस उपन्यास में किया गया है उससे न केवल कथोपकथन रोचक हो उठे हैं अपितु कथ्य की प्रेषणीयता में भी अभिवृद्धि हुई है।

मृगनयनी *(हिं० पा०)*

यह वृंदावनलाल वर्मा (दे०) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'मृगनयनी' (दे०) की अमर पात्रा है। लेखक ने इसे अबला रूप में चित्रित करने के स्थान पर संयत निर्मल प्रेम; देश, जाति तथा धर्म के कल्याण व उत्थान के लिए इच्छुक एवं प्रयत्नशील, कला-मर्मज्ञ एवं कर्त्तव्य-पालन पर बल देने वाली एक ऐसी नारी के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में चित्रित किया है जो राई गाँव की एक साधारण गूजर-कन्या के पद से उठ कर रानी-पद प्राप्त कर लेती है। इसमें सौंदर्य तथा साहस का अपूर्व समन्वय परिलक्षित होता है। आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव के गुणों से परिपूर्ण इसका संपूर्ण जीवन कर्त्तव्य-भावना द्वारा संयत रहता है। उपन्यासकार ने मृगनयनी के इन सभी चारित्रिक गुणों का विकास इतनी सतर्कता के साथ किया है कि वे पाठक को एक क्षण के लिए भी असंगत एवं अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होते।

मृगावती *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1603 ई०]

सूफ़ी 'प्रेमाख्यानक काव्यों' (दे०) में कुतबन (दे०)-प्रणीत 'मृगावती' का स्थान प्रथम है। इसमें चंद्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र मृगावती पर मुग्ध हो जाता है। उसे पाने के लिए अनेक कष्ट भोगता है और अंत में बहुत-सी विघ्न-बाधाओं को पार करता हुआ राजकुमारी को प्राप्त कर लेता है। मृगावती उड़ने की विद्या में निपुण होने के कारण राजकुमार को छोड़कर समुद्र से घिरी पहाड़ी में पहुँच जाती है। राजकुमार उसे खोजते हुए रुक्मिनी नामक अन्य राजकुमारी से विवाह करता है। उधर पिता की मृत्यु के अनंतर मृगावती अपने देश का शासन करती है। राजकुमार के आदेश पर दोनों पत्नियाँ उसके देश चली आती हैं। हाथी से गिरकर राजकुमार की मृत्यु हो जाती है और दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं।

राजकुमार का ऐकांतिक प्रेम और नायिका की प्राप्ति के लिए कठिन साधना एवं राजकुमारी का धोखा देकर उड़ जाना तथा दूर देश में राज्य करना ऐसी कथानक-रूढ़ियाँ हैं जो कम-से-कम इस देश के लिए तो अपरिचित ही हैं। इन्हें छोड़ कर 'मृगावती' की कथावस्तु पूर्णरूप से भारतीय है। 'मृगावती में उत्कट प्रेम और वियोग-चित्रण हुआ है। कवि ने बीच-बीच में राजकुमार और राजकुमारी के माध्यम से परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किया है।

सूफ़ी मार्ग की सातों मंज़िलों का इसमें उल्लेख हुआ है। इसकी भाषा अवधी है, छंदों के प्रयोग में वैविध्य पाया जाता है एवं अलंकार तथा उपमान-योजना भारतीय साहित्य एवं वातावरण से प्रभावित है।

मृच्छकटिक *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः पाँचवीं शती ई०]

'मृच्छकटिक' संस्कृत का एकमात्र सामाजिक नाटक है। इसके कर्त्ता शूद्रक का अस्तित्व तथा समय विवादास्पद है। कुछ लोग इसे काल्पनिक नाम मानते हैं।

दस अंक के इस प्रकरण की रचना महाकवि भास (दे०) के नाटक 'दरिद्र चारुदत्त' के आधार पर हुई थी। इसमें चारुदत्त तथा वसंतसेना (दे०) की प्रणय-कथा कही गई है।

'मृच्छकटिक' तत्कालीन समाज का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। इसमें उस समय के भारतीय समाज का समग्र चित्र उपस्थित हुआ है। राजा, ब्राह्मण, चोर, जुआरी, गणिका, पुलिस एवं न्याय-कर्मचारी सभी प्रकार के चरित्रों के कार्यकलाप के माध्यम से शूद्रक ने हमारे सामने समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। इसका नायक चारुदत्त (दे०) सद्गृहस्थ एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण होते हुए भी वसंतसेना नाम की गणिका के गुणों पर रीझ कर उसके प्रेम-पाश में बँध जाता है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को मिट्टी की गाड़ी से खेलता देखकर वसंतसेना उसे सोने की गाड़ी बनाने के लिए अपना आभूषण दे देती है। यह घटना नाटक के कथाचक्र को अंत तक प्रभावित करती रहती है। इसी के आधार पर इस नाटक का नामकरण हुआ। वास्तव में 'मृच्छकटिक' (मिट्टी की गाड़ी) के नाम के माध्यम से नाटककार ने मानस-जीवन के रहस्य की ओर संकेत किया है।

'मृच्छकटिक' में प्रणय-कथा राजनीतिक घटनाओं में गुंफित होकर सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रदर्शित हुई है। इसमें शूद्रक ने समाज के हर पहलू पर अपनी नज़र डाली है। इसके सभी पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। वास्तव में यह चरित्र-प्रधान रूपक है। साहित्यिक दृष्टि से भी इसका कम महत्व नहीं है। इसकी भाषा तथा शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता है। यह संस्कृत की एक उत्कृष्ट नाट्य-कृति है।

मृणाल *(हिं० पा०)*

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' (दे०) की प्रमुख पात्रा है। दया, स्नेह, त्याग, धैर्य आदि स्त्रियोचित गुणों से संपन्न होने पर भी यह भाग्यहीना युवती समाज की क्रूरताओं की शिकार होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन आत्मपीड़न सहती हुई अपने जीवन की बलि दे देती है। मनोविज्ञान की सहायता से मृणाल की विवश इच्छाओं तथा दमित स्वप्नों को उभार कर लेखक ने स्वस्थ चरित्र-निर्माण में बाधक सामाजिक परिस्थितियों पर अत्यंत तीखा प्रहार किया है। समग्रतः मृणाल हिंदी-साहित्य की स्मरणीय सृष्टि है।

मृत्तिका दर्शन *(उ० कृ०)*

संतान-वियोग पर रचित 'मृत्तिका दर्शन' श्री बैकुंठनाथ पटनायक (दे०) की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें पितृ-हृदय की हृदय-विदारक व्यथा का चित्रण है। इसमें चित्रित गहन वैयक्तिक दुःख ने सार्वजनिक रूप ले लिया है तथा उसमें एक गंभीर दार्शनिक दृष्टि-भंगी मिलती है। कवि का रहस्यवादी दृष्टिकोण मृत्यु-दर्शन के विवेचन में मुखर हो उठा है। सबुज-साहित्य (दे०) में इसका विशेष स्थान है।

मृत्युंजय कवि, कोत्तलंका *(ते० ले०)*

विश्वनाथ के पुत्र मृत्युंजय कवि 1800 ई० के आसपास जीवित थे। ये गोदावरी ज़िले के, कौशिकी नदी के तीरस्थ, कोमरगिरि के निवासी थे। इन्होंने 'धरात्मजा परिणयमु' नामक द्व्यर्थि काव्य की रचना की है। 4 आश्वासों के इस काव्य में सीता और पार्वती के विवाह वर्णित हैं। इनका 'निरोष्ठ्य नलचरित्रमु' 5 आश्वासों का चित्रकाव्य है और अंतर्वेदी नामक पुण्यक्षेत्र में स्थित नरसिंह स्वामी को समर्पित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'बृहन्नारदीयमु' 6 आश्वासों का इनका पुराण काव्य है। चित्रकाव्य में भी सरसता का सन्निवेश करने के कारण ये अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

मृत्युंजय विद्यालंकार *(बँ० ले०)* [जन्म—1762 ई०; मृत्यु—1819 ई०]

मृत्युंजय विद्यालंकार फ़ोर्ट विलियम कालेज की बँगला-लेखक-गोष्ठी में मूर्धन्य थे। विभिन्न विषयों में ग्रंथों की रचना कर जहाँ इन्होंने अपनी अनेकमुखी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है वहीं यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कालेज के अँग्रेज़-अधिकारियों को खुश रखने के लिए फ़रमाइशी लेखक बनना मात्र उनका उद्देश्य नहीं था।

उन्होंने 1802 ई० में 'बत्तिश सिंहासन' की रचना की। उसके बाद उनके तीन ग्रंथ 'हितोपदेश' (1808 ई०), 'राजबलि' (1808 ई०) तथा 'प्रबोध-चंद्रिका' (1813 ई०) में प्रकाशित हुए। राजा राममोहन राय के 'वेदांत-ग्रंथ' के प्रतिवाद-स्वरूप इन्होंने 1817 ई० में 'वेदांत तत्त्वचंद्रिका' ग्रंथ की भी रचना की।

बँगला गद्य के आदियुग में मृत्युंजय विद्यालंकार ने भाषा की विशुद्ध रीति-प्रकृति का स्वरूप निर्धारित किया और बँगला गद्य को विभिन्न विषयों के अनुकूल ढाला। अँग्रेज़ पादरी उनके संस्कृत-ज्ञान, तथा बँगला रचना-रीति से मुग्ध थे। यद्यपि गद्य-रचना के क्षेत्र में संस्कृत के अनुसरण के मोह में कहीं-कहीं बँगला गद्य की स्वाभाविक गति में बाधा पड़ी है। फिर भी बँगला गद्य के इतिहास में भाषा को उद्देश्यानुकूल तथा विषयोचित स्वरूप देने वालों में उनका स्थान प्रथम है।

मेघदूत *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शती ई० पू०]

'मेघदूत' संस्कृत-साहित्य का एक अनमोल रत्न है। इसके द्वारा संस्कृत में गीति काव्य का आविर्भाव होता है। कालिदास (दे०) की यौवनकालीन रचना होने के कारण इसमें इनकी कला अत्यंत उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है।

देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर के शापवश अपनी प्रियतमा से बिछुड़ा हुआ यक्ष (दे०) आषाढ़ मास में बादलों को देखकर विरह से तड़प उठता है और वह मेघ को दूत मानकर अपनी अलका-स्थित प्रेयसी के पास संदेश भेजना चाहता है। रामगिरि पर्वत पर शापवश निवास करने वाले यक्ष का मेघ के प्रति संदेश-निवेदन बड़ा ही मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी है। इसी प्रसंग में यक्ष मेघ को रामगिरि से अलका तक का मार्ग बतलाता है और मार्ग में आने वाले पर्वतों, नदियों तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा हृदय-ग्राही वर्णन करता चलता है।

'रामायण' (दे०) के कथानक को बीज रूप में लेकर कालिदास ने उसका नितांत मौलिक ढंग से विकास किया तथा संस्कृत-साहित्य में इस काव्य-परंपरा को जन्म दिया। 'मेघदूत' में यक्ष के आदर्श प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। यक्ष काम-पीड़ित नहीं है, वह तो निर्व्याज आदर्श प्रेमी है। वह अपनी प्रियतमा की कुशल चाहता है। बहुत संभव है कालिदास ने 'मेघदूत' में विरही यक्ष की कल्पना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके अपने जीवन की किसी घटना की ओर संकेत किया हो। इसकी भाषा-शैली एवं छंद विषयानुरूप हैं। 'मंदाक्रांता' में रचित इस काव्य में विप्रलंभ शृंगार के कोमल भाव स्वतः स्फुटित हो उठते हैं।

संस्कृत-गीतिकाव्यों में 'मेघदूत' का शीर्षस्थ स्थान है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण इस पर लिखी लगभग 50 टीकाओं में तो है ही, साथ ही तिब्बती तथा सिंहली भाषाओं में इसके अनुवाद इसे और भी पुष्ट कर देते हैं। 'मेघदूत' को आदर्श मान कर संस्कृत में उपनिबद्ध एक विपुल काव्यमाला है, जो 'संदेश-काव्य' के नाम से प्रख्यात है।

मेघनाद (इंद्रजित्) *(सं० पा०)*

मेघनाद लंकापति रावण (दे०) का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी माता का नाम मंदोदरी था। इसका दूसरा नाम इंद्रजित था, क्योंकि इसने इंद्र को जीता था। यह महान् भयंकर था। सीता (दे०) की खोज में आये हनुमान (दे०) पर इसने ब्रह्मास्त्र चलाया था, पर उस पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा था। राम के साथ युद्ध करने सर्वप्रथम मेघनाद ही आया था। लक्ष्मण (दे०) के साथ छह बार युद्ध हुआ था तथा अंतिम युद्ध में लक्ष्मण द्वारा ऐंद्रास्त्र के प्रयोग से इसकी मृत्यु हो गयी।

मेघनाद-बध *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1904 ई०]

लेखक—चंद्रधर बरुवा।

मेघनाद-बध नाटक का पौराणिक आख्यान अतुकांत छंद में प्रस्तुत किया गया है। मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव ग्रहण करने से घटना-विकास एवं चरित्र-चित्रण में मौलिकता नहीं है। रावण और मेघनाद के चरित्र को विशेष महत्ता दी गयी है। लक्ष्मण का चरित्र उपेक्षित हुआ है। राम को एक उदारमना नायक दिखाया गया है। मेघनाद की पत्नी प्रमिला के चरित्र को इतना गौरव दिया गया है कि वह मधुसूदन दत्त की सीता से भी अधिक महत्ता प्राप्त कर लेती है।

मेघनाद-बध (बं० कृ०) [रचना-काल—1861 ई०]

नवयुग की बँगला कविता के प्रतिष्ठाता माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने पाश्चात्य और प्रतीच्य काव्य-धारा का समन्वय कर मनुष्यत्व को प्रधानता देते हुए 'मेघनाद-बध' काव्य में रावण एवं उसके पुत्र मेघनाद को लेकर एक अपूर्व काव्य की सृष्टि की। 'मेघनाद-बध' में यूनानी महाकाव्य का प्रभाव यथेष्ट है और वाल्मीकि की कहानी का भी यथारूप अनुसरण नहीं किया गया है फिर भी काव्य की भारतीयता अक्षुण्ण है। 'मेघनाद-बध' की पटभूमिका में आहत, क्लांत, पराजित रावण के महिमामय चरित्र का चित्रण किया गया है एवं इसी के माध्यम से करुण रस से ओतप्रोत सार्वजनीन जीवन-बोध की अभिव्यक्ति हुई है। इस काव्य में रावण नायक है परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि राम को छोटा दिखाकर रावण को बड़ा बनाया गया है। माइकेल के शब्दों में राम तो मनुष्य हैं ही, रावण भी एक अपूर्व मनुष्य है—वह एक उदात्त चरित्र है। वह केवल उदात्त ही नहीं, 'ट्रेजिक' भी है। राम और रावण का युद्ध कवि की दृष्टि से केवल पाप और पुण्य का युद्ध नहीं। रावण भी एक गौरवमय आदर्श का प्रतीक है। कवि के विप्लवी चित्त के यंत्रणादाह का प्रतीक हैं रावण एवं अग्निदाध-विशुद्ध स्वर्ण की उज्ज्वलता हैं सीता और प्रमिला। 'मेघनाद-बध' उन्नीसवीं शती के नवजाग्रत बंगाल की विद्रोहाग्नि से तप्त उस युग की जीवन-वेदना का महाकाव्य है।

'मेघनाद-बध' में दैहिक वीर्य-उत्साह के स्थान पर मानसिक शौर्य-दृढ़ता एवं पौरुष के काठिन्य के स्थान पर नारी के कोमल स्पर्श की आतुरता अधिक लक्षित होती है—कदाचित् इसीलिए बहुत-से विद्वान् इसे महाकाव्य कहने में संकोच करते हैं। परंतु युग-मानस के प्रतिनिधि काव्य के रूप में इसे निश्चय ही महाकाव्य कहना पड़ेगा। उदात्त भाषण एवं मानवीय रस-वैचित्र्य की दृष्टि से भी इसका रूप महाकाव्यमय है। युग-मानस की विशेष अभिलाषा को, युग-चेतना के काम्यतम स्पंदन को स्फुरित कर लेखक ने इसे महाकाव्य का गौरव प्रदान किया है।

मेघाणी, झवेरचंद *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1847 ई०]

सौराष्ट्र के लोक-साहित्य के शोधकर्ता, संग्रहकर्ता एवं संरक्षक कवि झवेरचंद मेघाणी का जन्म सौराष्ट्र के एक जैन परिवार में हुआ था। बचपन से ही इन्हें काठियावाड़ की उन छोटी-छोटी रियासतों में आने-जाने का मौक़ा मिला था जहाँ दैनंदिन चारण-कवियों का जमघट लगा रहता था। वहाँ उनसे ये चारण-साहित्य सुनते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघाणी के बाल-मानस पर इसके संस्कार पड़ते गये। वे भी उसे गाने लगे। कंठ में माधुर्य और प्रस्तुतीकरण में नवीनता होने के कारण मेघाणी ने एक श्रोता-वर्ग एकत्रित कर लिया और उससे प्रशंसा एवं प्रीति प्राप्त करने लगे। इसकी ऐसी धुन लगी कि उन्होंने अपना सारा समय, शक्ति और सामर्थ्य लोक-गीतों, लोक-कथाओं, लोक-संगीत और लोक-जीवन-विषयक अन्य साहित्य के शोध और संग्रह में लगा दिया। अथक परिश्रम के बाद गुजरात को उनके द्वारा संगृहीत विपुल लोक-साहित्य प्राप्त हुआ। 'सौराष्ट्रनी रसधार' भा० 1-5, 'सोरठी बहारवटिया' भाग 1-3, 'रढ़ियाली रात' भा० 1-4, 'चूंदड़ी' भाग 1-2, 'कँकावटी' भा० 1-2, 'ऋतुगीती, 'सोरठी गीत कथाओं', 'सोरठी संतों', 'सोरठी संतवाणी', 'पुरातन ज्योत' वगैरा इनके कई लोक-साहित्य-संग्रह हैं। गुजराती में इस क्षेत्र में मेघाणी का स्थान अनन्य है।

मेघाणी कथाकार भी हैं। 'वेवीशाल', 'तुलसी क्यारो', 'वसुंधराना वहाला दवलां', 'सोरठ तारा वहेतां पाणी' (दे०) आदि इनके उपन्यास और 'प्रतिभाओ', 'चिताना अंगारा', 'जेल ओफिसनी बारी' प्रभृति इनके कहानी-संग्रह हैं। इस कथा-साहित्य में जीवन का यथार्थ अपनी सुंदरताओं और कुरूपताओं के साथ उभरा है। मेघाणी गांधी-भक्त थे, राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत थे। राष्ट्र-भावना से प्रेरित होकर इन्होंने जो कविताएँ रचीं वे 'युगवंदना' और 'वेणीना फूल' में संगृहीत हैं। राष्ट्रीय कवि के रूप में उनका योगदान स्तुत्य रहा है।

मेदिनी वेण्णिलावु *(मल० पा०)*

यह 'चंद्रोत्सवम्' (दे०) नामक मणिप्रवाल (दे०) शैली काव्य की प्रधान नायिका है। यह एक परम सुंदरी, धनवती वेश्या है। चंद्रोत्सव के लिए इधर इसने दीपादान में सुगंधित द्रव्यों को प्रज्वलित किया उधर इसकी सुगंधि पृथ्वी से स्वर्ग तक फैल गयी। मरकत पर्वत के शृंग पर विहार-रत गंधर्व की पत्नी उस सुगंधि से आकृष्ट हुई। पत्नी के आग्रह पर गंधर्व सुगंधि-स्रोत का अन्वेषण करता हुआ कथा की नायिका वेश्या के परिवेश में पहुँचा और उसके प्रति मोहित होकर उत्सव-पूर्ति तक उसी के यहाँ रहने लगा। वेश्या की क्रीड़ा, विलास लीला, शतरंज में उसके कौशल आदि का सुंदर वर्णन इसमें पाया जाता है।

मेनन, ओटुविल् कुञ्ञिकृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

जन्मस्थान—वटक्कंचेरी गाँव। पारिवारिक-आर्थिक संघर्ष का सामना करते हुए इन्होंने बी० ए० की उपाधि पाई और सरकारी सेवा की। कवि-प्रतिभा इनमें शिक्षा के दिनों से ही मौजूद थी। शिक्षा के दिनों में 'रामराज' पत्रिका के संपादकत्व के फलस्वरूप इनकी साहित्यिक प्रवृत्ति पनपी-बढ़ी। मगर संस्कृतज्ञ होते हुए भी श्री मेनन ने शास्त्र-ज्ञान के लिए प्रयत्न नहीं किया। ये संस्कृत एवं द्रविड़—दोनों प्रकार के छंदों में समान अधिकार से कविता रच सकते थे। इन्होंने समसामयिक सामान्य घटनाओं को ही काव्यवस्तु के रूप में चुना है।

श्री कुञ्ञिकृष्ण मेनन ने कथा-साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उळ्ळूर के शब्दों में मेनन ने सामाजिक तथा सांप्रदायिक आधार पर ही कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में मनोरंजन का ध्येय भी गौण नहीं रहा। व्यंग्य-विधान में इसकी कुशलता तरह-तरह से प्रकट हुई है। संक्षेप में, ओटुविल् का साहित्य-सृजन वेण्मणि-युग का भरपूर प्रतिनिधित्व करता है। वेण्मणि-युग (दे०) युग के कविगण प्रकृति से शृंगारी, सरस, विनोदप्रिय थे। इनकी कविता पांडित्य के बोझ से दब नहीं गई है। श्री मेनन के साहित्यिक व्यक्तित्व पर अँग्रेज़ी की शिक्षा का विशेष प्रभाव था।

मेनन, ओय्यारत्तु, चंतु *(मल० ले०)* [समय—1847-1900 ई०]

जन्मस्थान—तलश्शेरी। अपने दिनों में मध्य-वर्गीय बुद्धिजीवियों के समान ये भी सरकारी सेवा में भरती होकर सब-जज बन गये। संगीत, चित्रकला आदि के प्रति इनमें सहज प्रेम था। परंतु इनकी प्रतिष्ठा मलयाळम उपन्यास-साहित्य के प्रवर्तक के रूप में है। अँग्रेज़ी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन कर इन्होंने मलयाळम में सामाजिक उपन्यास लिखने का सफल प्रयत्न किया। 'इंदुलेखा' (दे०) इनका प्रथम उपन्यास है। अपने 'शारदा' (दे०) उपन्यास का प्रथम भाग भी इन्होंने लिख लिया था। प्रारंभिक उपन्यासों की हैसियत से दोनों सफल रचनाएँ हैं। चंतु मेनन ने इन रचनाओं के माध्यम से अपनी समकालीन न रूढ़िवादी समाज-व्यवस्था की कठोर आलोचना की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेनन, कुंटूर, नारायण *(मल० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

केरल के त्रिचूर जिले में जन्मे कुंटूर ने तीसेक कृतियों की रचना करके 'कवि तिलक' की उपाधि अर्जित की। शुद्ध मलयाळम में कविता रचने वालों में इनका स्थान प्रथम माना जाता है। 'नालु भाषा काव्यङ्ङळ्', (दे०) 'अकबर' 'चात्तन्', 'नाराणत्तु', 'भ्रान्तन्', 'वट्टुतल नायर', कालिदास (दे०) की कई रचनाओं के रूपांतर तथा 'गीतांजलि' आदि बीस पुस्तकों के ये रचयिता हैं। केरलीय संस्कृति, वहाँ की मिट्टी की गंध तथा चेतना का गहरा अनुभव इनकी रचनाओं में पाया जाता है।

मेनन, के० पी०, केशव *(मल० ले०)* [जन्म—1886 ई०]

के० पी० केशव मेनन स्वतंत्रता-संग्राम के मुख्य सेनानियों में से हैं। वे श्रीलंका के भारतीय उच्चायुक्त रहे हैं और प्रमुख पत्र 'मातृभूमि' के संस्थापक और मुख्य संपादक हैं। उनकी आत्मकथा 'कषिञ्ञ कालम्' (दे०) साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत है। महात्मा गांधी, ईसा मसीह आदि अनेक महापुरुषों की जीवनियाँ उन्होंने लिखी हैं। दो कहानी-संग्रह, एक रंगमंचीय नाटक 'महात्मा' और अनेक निबंध-संग्रह भी उन्होंने प्रकाशित किए हैं।

केशव मेनन ने अपनी कृतियों में गांधीवादी नैतिकता के आदर्शों का समर्थन किया है। उनकी भाषा सरल और प्रभावशाली है। मलयाळम के आत्मकथा-साहित्य में 'कषिञ्ञ कालम्' का स्थान सर्वोपरि है।

वयोवृद्ध और प्रज्ञाचक्षु होने पर भी वे अपनी अनवरत साहित्य-साधना से नवयुवकों में नवचैतन्य और आत्मविश्वास की धारा प्रवाहित कर रहे हैं।

मेनन, डा० चेलनाट अच्युत *(मल० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध समालोचक, भाषा-वैज्ञानिक और शोधकार हैं। इन्होंने तुंचत्त् एषुत्तच्छन् (दे०) पर शोध करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की और मद्रास विश्वविद्यालय में मलयाळम के आचार्य रहे। 'प्रदक्षिणम्' (साहित्य का इतिहास), 'तच्चोळि चंतु' (नाटक) आदि ग्रंथों की रचना के अलावा इन्होंने अनेक प्राचीन लोकगीतों का संपादन भी किया है।

डा० चेलनाट अच्युत मेनन का सबसे महत्व-पूर्ण योगदान अनेक दुर्लभ लोक-गीतों का अन्वेषण और प्रकाशन है। ये स्वयं उच्च कोटि के शोधकर्ता थे और अनेक विद्वानों के लिए शोधकार्य के मार्गदर्शक भी रहे। आचार्य के रूप में भी ये बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

मेनन, नालप्पाट्टु, नारायण *(मल० ले०)* [समय—1888 ई०-1955 ई०]

आधुनिक कवियों में केरल के उत्तर भाग में जन्मे इस कवि का विशिष्ट स्थान है। इन पर आशान की काव्य-शैली का प्रभाव था और ये महाकवि वळ्ळत्तोळ् के सहचारी थे। इनकी 'कण्णुनीरत्तुळ्ळि' (दे०) आँसू की बूंद) विलाप-काव्य के क्षेत्र में अन्यतम कृति मानी जाती है। 'चक्रवाळम्' में आधुनिक शास्त्र की प्रवृत्तियों की झाँकी मिलती है। बुद्धचरित के आधार पर लिखित इनके 'पुळकांकुर' का भी ऊँचा स्थान है।

मेनन, पंचु *(मल० पा०)*

पी० के० राजराज वर्मा की अनेक हास्य-कृतियों, मुख्यत: 'पंचुमेनवनुम् कुंचियम्मयुम्' के आठ भागों का मुख्य पुरुष-पात्र। पंचु मेनन प्राय: विचित्र परिस्थितियों में अपने को हास्यास्पद संदर्भ में पाता है और पाठक के लिए विनोद की सामग्री प्रस्तुत करता है।

पंचु मेनन मध्यवर्ग के साधारण गृहस्थ का प्रतिनिधि है। नित्य जीवन में अनुभूत सभी समस्याओं का समाधान उसे निकालना है और उन्हें ढूंढ़ निकालने के प्रक्रम में वह हास्य का पात्र बन जाता है। अपनी पत्नी कुंचियम्मा (दे०) से भी उसे बहुत सावधान रहना पड़ता है।

शुद्ध हास्य के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले पात्रों में पंचु मेनन प्रमुख है।

मेनन, पुत्तेष्त्तु, रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1974 ई०]

इनका जन्म मणलूर गाँव में हुआ था। श्री मेनन की शिक्षा-दीक्षा एरणाकुलम् तथा मद्रास में हुई थी। कुछ वर्ष तक वकालत करने के बाद कोचिन राज्य के विधि-विभाग की सेवा में नियुक्त हुए थे। सेवा के अंतिम दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ये कोचिन राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर पहुँच गये थे। बाद में ये राज्य की धारा-सभा के सदस्य भी मनोनीत हुए थे।

वकालती या सरकारी सेवा के क्षेत्र से बढ़कर साहित्य-क्षेत्र ही श्री मेनन के यश का क्षेत्र कहा जा सकता है। मलयाळम-गद्य पर इनका ज़बरदस्त अधिकार है। विद्वत्ता के साथ-साथ हास्य चेतना श्री पुत्तेषत्तु की विशेषता है। साहित्य-साधना को इन्होंने व्यवसाय न मानकर शगल ही माना है। इसी के फलस्वरूप इन्होंने विविध-विषयक चालीस ग्रंथ मलयाळम में लिखे हैं। 'शक्तन तंपुरान' इनकी जीवनी है जो उपन्यास का-सा आनंद देती है। श्री रवींद्रनाथ (दे०) टैगोर की कहानियों का सर्वप्रथम मलयाळम अनुवाद प्रस्तुत करने का गौरव श्री पुत्तेषत्तु को ही प्राप्त है। 'चवट्टुकोट्टा (रद्दी को टोकरी) आदि सात ग्रंथ इन के हास्यमय कृतित्व के उदाहरण हैं। इनके कुछ अन्य ग्रंथ हैं—(1) 'गीताप्रांतङ्ङकिल', (2) 'एंटे शबरिमलयात्रा', (3) 'पुस्तकपरिचयम्' आदि। श्री मेनन की ग्रंथ-समीक्षा गहरे अध्ययन का परिचय देती है। साथ ही नवप्रतिभा को बधाई एवं प्रोत्साहन देने की इनकी उदारता भी इसमें झलकती है। इन्होंने धार्मिक एवं भक्ति संबंधी ग्रंथ भी लिखे हैं। इनके प्रोत्साहन से 'रामचरितमानस' (दे०) का सुंदर मलयाळम अनुवाद भी प्रकाशित हो सका है। यह विशेष उल्लेखनीय है। तत्सम-शब्दों तथा प्रौढ़ वाक्यों की शैली इनकी रचनाओं में दर्शनीय है।

मेनन, वैलोप्पिळ्ळी, श्रीधर *(मल० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

श्रीधर मेनन मलयाळम के उल्लेखनीय कवियों में हैं। जीवविज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त करके इन्होंने अध्यापक के रूप में जीवन का आरंभ किया। 1966 ई० तक सरकारी विद्यालयों में नौकरी करने के बाद ये सेवा-निवृत्त हुए और अब अपनी काव्य-साधना में निरत रहकर शांत जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 'कुटियोषिक्कल' (दे०) इनका खंडकाव्य है। 'कनिनक्कोयत्तु' (दे०) 'श्रीरेखा', 'ओणप्पाट्टुकार', 'विटा' आदि कविता-संग्रह हैं। 'विटा' पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार (1971) प्राप्त हुआ है।

मानसिक भावों को संवेदनात्मक शैली में व्यक्त करने में वैलोप्पिळ्ळी का कौशल अद्वितीय है। इनकी कविता 'माम्मषम्' में एक ऐसी मां के तप्त हृदय का चित्रण मिलता है जो अपने बच्चे को आम के फूल तोड़ने से टोकती है और आम के प्रथम फल के पकने से पहले ही अपने पुत्र को खो बैठती है। वैलोप्पिळ्ळी-कविता की दूसरी विशेषता इनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। समसामयिक विषयों पर पर भी इन्होंने कविताएँ लिखी हैं। बँगला देश की मुक्ति के अवसर पर रचित कविता 'नम्मुटे भीमसेनन्' में जरासंध के शरीर की तरह फाड़े गए पाकिस्तान के दो खंडों का दर्शन कवि ने कराया है। इनकी शैली व्यंजना-गर्भित और वाग्मितापूर्ण है।

वैलोप्पिळ्ळी का स्थान आज के मलयाळम कवियों में जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) के समकक्ष है। साहित्य की श्रीवृद्धि में इनका योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

मेना *(गु० पा०)*

मेना गुर्जरी गुजराती लोकगीतों की नायिका और लोक-साहित्य की गौरवान्वित पात्र है। मेना कुतूहलवश मालिन का वेश धारण कर बादशाह के तंबू देखने जाती है। वहाँ बादशाह उसे अनेक प्रलोभन देता है पर वह बादशाह का तिरस्कार करती है। बादशाह उसको उठा कर दिल्ली ले जाता है लेकिन यहाँ से वह भाग जाती है और घर आकर पति और देवर को बादशाह पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार वह साहस और शौर्य की प्रतीक है।

मेमुण, मुहम्मद सिदीक *(सिं० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

ये हैदराबाद (सिंध) में 'ट्रेनिंग कालेज फॉर मेन' के मुख्याध्यापक थे और इन्होंने सिंध में नारी शिक्षा के प्रचारार्थ तथा मुसलमानों में नवचेतना लाने के लिए कमर कस ली थी। सिंध और सिंधी-साहित्य के इतिहास का अन्वेषण करने के लिए इन्होंने हैदराबाद में सिंध मुस्लिम अदबी सोसाइटी की नींव डाली थी। जिसकी ओर से कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'सिंध जी अदबी तारीख़' (दो भागों में), 'हृयातीअ जो दौरू', 'कामिल रहनुमा, 'शाह जो रिसालो' (संपादन)। सिंधी-साहित्य के इतिहास पर इनकी पुस्तकें बुनियादी रचनाएँ हैं, जो परवर्ती इतिहास-लेखकों के लिए काफ़ी सहायक सिद्ध हुई हैं। सिंधी-गद्य-लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेयुप्पाटु *(त० पारि०)*

अक्षरशः इस शब्द का अर्थ 'अंगचेष्टादि शारीरिक कृत्य' है जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के आंतरिक भाव की अभिव्यक्ति होती है। इस शब्द का साधारण प्रयोग 'अभिनय' के अर्थ में होता है। प्राचीन व्याख्याताओं ने इस शब्द को भरतमुनि के 'सात्त्विक भाव' का समानार्थक माना है।

तमिल भाषा के प्राचीनतम व्याकरण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) में 'मेयुप्पाटु' का विवेचन 27 सूत्रों के एक पृथक् अध्याय में हुआ है। इस कृति के रचना-काल के संबंध में मतभेद है। कई विद्वानों के अनुसार इसका समय ई० पू० चौथी शती है और कुछ की सम्मति में यह पाँचवीं शती ई० तक की कृति हो सकती है। इस व्याकरण-ग्रंथ में तत्कालीन नृत्य-परंपरा में विहित 32 शारीरिक चेष्टाओं का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार इनकी गणना 16 हो सकती है तथा घटाकर 8 कर देने की प्रथा भी है।

आठ 'मेयुप्पाटु' ये हैं—हँसी, रुदन, तिरस्कार, आश्चर्य, भय, गर्व, क्रोध व उल्लास। आगे इन आठों भावों के चार-चार विभाग बताये गये हैं जो कि इनके उद्भव-स्थल माने जा सकते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

मेयुप्पाटु	विभागीकरण	भरतमुनि का समांनातर प्रयोग
1. हँसी (नकै)	उपालंभ, बाल्यावस्था, भोपालन तथा मूढ़ता	हास्य
2. रुदन, (अलुकै)	अपमान, क्षति, परिवर्तन, तथा दरिद्रता	करुणा
3. तिरस्कार (इळिवरल्)	वार्धक्य, रोग, दुःख तथा दौर्बल्य	बीभत्स
4. आश्चर्य (मरुट्कै)	नवीनता, बड़प्पन, छोटापन तथा विकास	अद्भुत
5. भय ('अचच्म्')	भूत, हिंसक पशु, चोर तथा राजा	भयानक
6. गर्व (पेरुमितम्)	शिक्षा, निर्भीकता, यश तथा दान	वीर
7. क्रोध ('वेकुळि')	अंगच्छेद, कुटुंब-नाश, लूट तथा हत्या	रौद्र
8. उल्लास (उवकै)	धन-समृद्धि, विद्वत्ता, कामानुभव तथा क्रीड़ा	शृंगार

मेरा वलैती सफ़रनामा *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

पंजाबी लेखक लालसिंह 'कमलाअकाली' (दे०)-रचित 'मेरा वलैती सफ़रनामा' आधुनिक पंजाबी गद्य की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसकी रचना से पूर्व यात्रा-वर्णन-संबंधी रचनाओं का पंजाबी गद्य में अभाव है। इनका श्रीगणेश इसी कृति से हुआ। इस कृति का शैलीगत सौंदर्य प्रशंसनीय है। भौगोलिक परिचय एवं विदेशों से संबद्ध ज्ञानवर्धक ब्योरे देने के साथ-साथ लेखक ने इसमें रोचकता एवं कौतूहल भी बनाए रखने में सफलता प्राप्त की है। सामग्री की नवीनता एवं शैली के इसी द्वंद्व के कारण यह पुस्तक बड़े चाव से पढ़ी जाती है।

मेरी दुनिआ *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

यह नानकसिंह (दे०) की आत्मकथा है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के ऐसे क्षणों का निरूपण किया है, जिनसे वे समय-समय पर प्रभावित होकर किसी-न-किसी रूप में साहित्य-सृजन की ओर प्रेरित हुए। पुस्तक पाँच शीर्षकों में विभाजित है: बचपन से युवावस्था तक, जीवन-पथ पर मिले कुछ व्यक्ति, 1947 ई० के प्रभाव में, फुटकल, और मेरा घरेलू जीवन। प्रथम शीर्षक के अंतर्गत जन्म, बचपन, असफल जेलयात्रा का वर्णण हुआ है। दूसरे शीर्षक में प्रीतनगर से संबद्ध घटनाओं एवं कतिपय कलाकारों के संपर्क का चित्रण हुआ है। तीसरे शीर्षक के द्वारा देश-विभाजन के समय धर्मशाला तथा अमृतसर में होने वाले संप्रदायिक दंगों और मानवता-हनन का उल्लेख है। चौथे में नानकसिंह की रचना-प्रक्रिया और जीवन की कुछ रोचक तथा उल्लेखनीय घटनाओं का निरूपण है। अंतिम शीर्षक के अंतर्गत गृहस्थ-जीवन के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन है। इसमें नानकसिंह ने घटनाओं तथा कथानक पर अधिक बल दिया है। यहाँ जीवनी का अंश अपेक्षाकृत कम है, जिससे वे अपने अनुभवों को सूत्र-बद्ध नहीं कर सके हैं। शैली सहज और सरल है; भाषा में प्रवाह है, विषय में रोचकता एवं सरसता है।

मेरे साईआं जीउ *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1953 ई०]

भाई वीरसिंह (दे०)-रचित यह 'मेरे साईआंजीउ' काव्य कृति 1955 ई० में साहित्य-अकादेमी की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से स्वातंत्र्योत्तर सर्वश्रेष्ठ पंजाबी रचना के रूप में पुरस्कृत हुई। इसमें भाई वीरसिंह की छोटी-बड़ी 72 कविताएँ संगृहीत हैं जो विषयवस्तु, भाव-व्यंजना और रचना-शिल्प सभी दृष्टियों से कवि के लगभग छह दशकों के पिछले साहित्यिक कृतित्व से सर्वथा पृथक् और नये प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं। ये कविताएँ कवि के अंतर्जगत का दर्पण हैं। इनमें उसके आध्यात्मिक और रहस्यवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति 'नये' शिल्प के माध्यम से हुई है। उसकी अंतश्चेतना इन कविताओं में पूरी आभा के साथ प्रस्फुटित हुई है। यहाँ कवि 'पंथक-चारण', 'गुरु-मत-व्याख्याती' अथवा 'परंपरावादी नैतिक मूल्यों का संदेशवाहक' न रहकर पूर्णतः 'व्यक्तिवादी' बन गया है। रचना-पक्ष की दृष्टि से इस कृति का वैशिष्ट्य यह है कि इससे पूर्व भाई वीरसिंह ने अपनी प्रत्येक कविता में लय-ताल, रागानुकूलता एवं सूक्ष्म छंद-विधान का बड़ी सतर्कता से पालन किया है किंतु इस काव्य-संग्रह की की अधिकांश कविताएँ अतुकांत एवं छंद-मुक्त हैं। कवि के अपने शब्दों में यह रचना 'गद्य, पद्य एवं मिश्रित' है। इन कविताओं की भाषा भाव-प्रवणता की दृष्टि से अधिकाधिक गहनता लिये हुए भी अपने बाह्य स्वरूप में पर्याप्त सरल और सहज-संवेद्य है।

मेल कणक्कु *(त० पारि०)*

संघकालीन कृतियों के तीन वर्ग हैं—'एट्टुत्तोगै' (अष्टपद्य-संग्रह), 'पत्तुप्पाट्टु' (दस दीर्घ कविताएँ) और 'पदिनेण्कील कणक्कु' (अठारह गौण रचनाएँ)। तमिल साहित्य के आधुनिक काल में विद्वानों ने इन रचनाओं को 'कील 'कणक्कु' और 'मेल कणक्कु' इन दो वर्गों में बाँटा है। उन्होंने चार या चार से कम चरणों वाले पदों से युक्त रचना को 'कील कणक्कु' (गौण रचनाएँ) के अंतर्गत और उससे अधिक चरणों वाले पदों से युक्त रचनाओं को 'मेल कणक्कु' (प्रमुख रचनाएँ) के अंतर्गत रखा है। इस दृष्टि से 'एट्टुत्तोगै' और 'पत्तुप्पाट्टु' को 'मेल कणक्कु' के वर्ग में रखा गया है। ये रचनाएँ हैं—'नट्रिणै' (दे०), 'कुरुंतोगै' (दे०), 'अकनानूरु' (दे०), 'ऐंकुरुनूरु' (दे०), 'कलित्तोगै' (दे०), 'पुरनानूरु' (दे०), 'परिपाडल' (दे०), 'पदिट्प्पत्तु' (दे०), 'तिरुमुरुकाट्रुप्पडै', 'पोरुनर आट्रुप्पडै', 'शिरुपाणाट्रुप्पडै', 'मलैपडुकडाम', 'मुल्लैप्पाट्टु', 'मदुरैक्कांजि', 'नेडुनलबाडै', 'कुरिंजिप्पाट्टु', और 'पट्टिनप्पालै',।

मेहता, चंद्रवदन *(गु० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

गुजराती नाट्य-साहित्य व रंगमंच के क्षेत्र में अति प्रसिद्ध चंद्रवदन चिमनलाल मेहता का जन्म सूरत में हुआ। माध्यमिक शिक्षा सूरत में पाने के बाद में 1919 ई० में बंबई के एल्फ़िस्टन कालेज में प्रविष्ट हुए। बी० ए० पास की उपाधि के बाद एम० ए० व एल-एल० बी० की तैयारी कर रहे थे किंतु शिक्षा पूर्ण नहीं कर सके। 1928-30 के बीच असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। 1938 में पत्नी से संबंध-विच्छेद करके उसकी शादी अपने ही एक मित्र से (जिसे वह चाहती थी) करा दी।

सर्जक चंद्रवदन का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुमुखी है। इनकी रचनाएँ—'बाँध गठरियाँ' (दे०) गाभ 1 और 2; 'छोड़ गठरियाँ', 'रंग गठरियाँ', 'रूप गठरियाँ', (ये आत्मकथात्मक व प्रवास-कथाएँ हैं) 'खमाबापू', 'वातचकरावो', 'सिनोरिटा; 'आगगाड़ी' (दे०) 'धारासभा', 'मूंगी स्त्री', 'देउकांनी पांच शेरी', 'त्रियाराज', 'अरबो', 'नर्मद', 'नागा बावा', 'आराधना', 'आणलदे', 'धरा गुर्जरी', 'संध्याकाल', 'सीता', 'शकुंतला', 'रमकंडा', 'नी दुकान', 'संताकुकड़ी', 'अत्रलुप्ता सरस्वती', 'गुजरात दर्शन', 'होहोलिका', 'शिखरिणी', 'पांजरापोक', सोनावाटकडी', 'रंगभंडार', 'अंतरवहिर', आदि (कथा-साहित्य व नाट्य-साहित्य); 'यमल ईला', 'काव्यो', 'रतन', 'आछी', 'अर्द्ध कथा' (काव्य-संग्रह); 'लिरिक अनेलगरिक', (समीक्षा) आदि।

चंद्रवदन का कृतित्व जितना विशाल है, व्यक्तित्व उतना ही विस्तृत व महान है। विश्व-भ्रमण, वह भी एक से अधिक बार, देश-विदेश की नाट्य-प्रवृत्तियों में रुचि, रेडियो की सेवा, और फिर म० स० विश्वविद्यालय में नाट्यशास्त्र के अवैतनिक प्रोफ़ेसर के रूप में क्रियाशील रहे।

नर्मद स्वर्णपदक, रणजीत राम स्वर्णपदक तथा 1967 में 'पद्म श्री' से विभूषित श्री मेहता गुजराती-साहित्य के क्षेत्र में—विशेषतः नाटक व रंगमंच के क्षेत्र में एक अति महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में स्मरणीय रहेंगे।

मेहता, नरसिंह *(गु० ले०)*

दे० नरसिंह मेहता।

मेहता, नर्मदाशंकर *(गु० ले०)*

दे० नर्मदाशंकर मेहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेहदी इफ़ादी *(उर्दू० ले०)*

निबंधकार के रूप में उर्दू जगत् में इन्होंने यथेष्ट यश प्राप्त किया है। इनकी साहित्यिक चेतना अत्यंत प्रौढ़ और सुरुचिपूर्ण थी। गद्य की मौलिकता के प्रति इन्हें बड़ा मोह था। अपने विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति में ये पूर्णतः समर्थ थे। यूरोप में रूमानी आंदोलन से ये अत्यधिक प्रभावित थे। यह प्रभाव इनके गद्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इनके लेखों का संकलन 'इफ़ादात-ए-मेहदी', (दे०) के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस कृति की गणना उर्दू-गद्य की प्रतिनिधि रचनाओं में होती है। मेहदी साहब के पत्र-लेखन की शैली भी साहित्यिक महत्व की वस्तु है। आधुनिक उर्दू-साहित्य के निर्माताओं से संबद्ध अनेक सारगर्भित लेख इनकी प्रतिभा के ज्वलंत उदाहरण हैं। औचित्य और संतुलन इनके लेखों की विशिष्टता है।

गहन चिंतन और सूक्ष्म विश्लेषण के साथ-साथ इनका सप्रवाह एवं प्रसाद-गुण-संपन्न अभिव्यंजना-कौशल देखते ही बनता है। 1921 ई० में इनका निधन हुआ था।

मेहेर, गंगाधर *(उ० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

बरपाली (संबलपुर) के वरदपुत्र गंगाधर मेहेर नैसर्गिक प्रतिभा-संपन्न कवि थे। निर्धनता के कारण इन्हें अधिक शिक्षा नहीं मिल सकी थी। लंबे समय तक इन्हें पैतृक व्यवसाय करना पड़ा था, और कपड़ा 'बुनकर पीठ पर लादकर बेचना पड़ा। अपने ही परिश्रम से इन्होंने हिंदी, संस्कृत, बँगला, आदि भाषाएँ सीख ली थीं और अँग्रेज़ी का भी इन्हें सामान्य ज्ञान था। 'कीचक-वध' के प्रकाशन ने इन्हें संपूर्ण उड़ीसा में प्रसिद्ध कर दिया। इसमें परोक्ष रूप से विदेशी शासन के विरुद्ध क्रांति का संदेश है।

मेहेर जी ने मध्ययुगीन काव्यादर्श पर अपना कवि-जीवन प्रारंभ किया था, किंतु आगे चलकर इन्होंने आधुनिक काव्य-पद्धतियों को ग्रहण कर लिया। प्राचीन और नवीन दोनों ही काव्य-शैलियों में मेहेर की मौलिकता व प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ है। राधानाथ के समान इन्होंने भी काव्य-भाषा को सरल, कोमल व मधुर बनाने का प्रयास किया है। इन्होंने अपने छोटे-से अंचल को कवि की दृष्टि से भरपूर देखा और उसके नख-चित्रों को सुकुमार हाथों से अलंकृत किया। संबलपुर की प्रकृति इनकी तूलिका के स्पर्श से अमर हो गयी। मेहेर की सर्वोत्तम रचना 'तपस्विनी' (दे०) में प्रकृति का मानवीकरण अत्यंत सुंदर रीति से हुआ। इनकी स्वच्छंद, मूर्ति-विधायिनी शैली के प्राणद स्पर्श से प्रकृति का हर क्रिया-कलाप सजीव, और साकार हो गया है। कवि की युगीन चेतना जितनी व्यापक एवं गहन है, उसकी भविष्य दृष्टि उतनी ही तात्त्विक तथा तलस्पर्शी है। कृषक वर्ग की उन्नति एवं प्रबुद्ध लोकचारित्र्य पर गणतांत्रिक पंचायती शासन की स्थापना की परिकल्पना आज स्वतंत्र भारत का जीवन-स्वप्न है। इनकी अन्य काव्य-कृतियाँ हैं—'प्रणयवल्लरी', 'इंदुमति', 'उत्कळ लक्ष्मी', 'भारती-भावना', 'कृषक-संगीत' आदि।

मैकडॉनेल *(सं० ले०)*

मैकडॉनेल का जन्म 11 मई, 1854 ई० को मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) में हुआ। इनके पिता अलेक्ज़ेंडर मैकडॉनेल भारतीय सेना में उच्च अधिकारी थे। इनकी शिक्षा जर्मनी तथा इंग्लैंड में हुई। संस्कृत तथा संस्कृत-विद्वानों के प्रति इनके मन में अटूट श्रद्धा थी; एक बार इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया और कुछ अनुपलब्ध ग्रंथ तथा पांडुलिपियाँ खोज निकालीं।

वैदिक साहित्य में विशेष रुचि होने के कारण इन्होंने वैदिक क्षेत्र में अधिक काम किया। ऋग्वेद (दे० वेद) कात्यायन (दे०)-कृत 'सर्वानुक्रमणी' का पाठ-शोध इनकी सर्वोत्तम कृति है। इससे संस्कृत-जगत् का बड़ा उपकार हुआ है। इसी पर इनको लिपज़िक विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। इनकी दूसरी महत्वपूर्ण कृति है—'हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिट्रेचर'। इसके अतिरिक्त 'वैदिक रीडर', 'वैदिक ग्रामर', 'वैदिक इंडेक्स 'तथा' 'वैदिक माइथॉलोजी' आदि इनकी अमर कृतियाँ हैं।

मैक्समूलर *(सं० ले०)*

इनका जन्म देसाऊ नामक नगर (जर्मन) में 6 दिसंबर, 1823 ई० को हुआ था। लिपज़िग यूनिवर्सिटी में पाँच वर्ष तक लैटिन् भाषा का अध्ययन करने के बोन (बर्लिन) में इन्होंने संस्कृत के एक बृहद् पुस्तकालय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदांत तथा संस्कृत का अध्ययन किया। इन्होंने संस्कृत-साहित्य तथा भाषा से संबद्ध निम्नोक्त ग्रंथों का प्रणयन अथवा संपादन किया—(1) 'ऋग्वेद' (संपादन), (2) 'दि सेक्रेड बुक्स ऑफ़ दि ईस्ट' सीरीज़ के अंतर्गत 48 खंडों का संपादन, (3) 'हिस्ट्री ऑफ़ दि एंश्येंट संस्कृत लिट्रेचर', (4) 'लैक्चर्स ऑन दि साइंस ऑफ़ लैंग्वेज' (दो भाग), (5) ऑन स्ट्रेटीफ़िकेशन ग्रॉफ़ लैंग्वेज', (6) 'लैक्चर्स ऑन ऑरिजंस ऐंड ग्रोथ ऑफ़ रेलिजन', (7) 'इंट्रोडक्शन टु दि साइंस ऑफ़ रेलिजन' (8) 'नेचुरल रेलिजन', (9) 'फ़िज़िकल रेलिजन', (10) 'ऐंथ्रोपोलॉजिकल रेलिजन', (11) 'थियोसॉफ़ी ऑर साइकोलॉजिकल रेलिजन', (12) 'कांट्रिब्यूशन टु दि साइंस ग्रॉफ़ साइकोलॉजी', (13) 'बायोग्राफ़ीज़ ऑफ़ वंडर्स ऐंड टीम ऑफ़ आर्याज़, (14-17) 'उपनिषद्' (दे०) 'हितोपदेश', 'मेघदूत' (दे०) तथा 'धम्मपद' (दे०) का जर्मन अनुवाद, आदि। यहाँ यह उल्लेख्य है कि इनके द्वारा संपादित 'ऋग्वेद' की पृष्ठ-संख्या 6 हज़ार है, तथा इसमें इन्होंने सायण-भाष्य भी प्रस्तुत किया। इनका निधन जुलाई 1900 ई० में हो हुआ।

मैत्यु *(मल० पा०)*

पारप्पुरत्तु (दे०) के सैनिक उपन्यास 'निणमणिञ्ञ काल्पाटुकळ्' (दे०) का मुख्य पात्र। अपनी विधवा माँ और छोटी बहनों के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए अपनी प्रेमिका की प्रेरणा पर सेना में भरती होने वाला मैत्यु वापस ग्राने पर उसी प्रेमिका तंकम्मा के संबंध में प्रचारित दुष्प्रवादों पर विश्वास कर लेता है। सेना से सेवा-निवृत्त होने पर उसका विवाह हो जाता है और बाद में तंकम्मा की वास्तविक दुःखभरी कहानी सुनकर वह आत्मग्लानि का अनुभव करता है।

पारप्पुरत्तु के प्रायः सभी पात्र मानव-साधारण गुणों और अवगुणों से युक्त औसत मनुष्य होते हैं। वे अपने पात्रों के आदर्शीकरण पर विश्वास नहीं करते। मैत्यु का चरित्र-चित्रण इस तथ्य का प्रमाण है। अपने परिवार के प्रति कर्तव्यनिष्ठा उसके चरित्र की विशेषता है, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि अपनी प्रेमिका के प्रति भी उसकी वही निष्ठा है। सैनिक पृष्ठभूमि में चित्रित मैत्यु के चरित्र का विकास बहुत ही सुंदर हुआ है। एक सैनिक नायक के रूप में मलयाळम के उपन्यास-साहित्य में मैत्यु का उत्कृष्ट स्थान है।

मैत्र, रवींद्रनाथ *(बँ० ले०)*

आधुनिक बँगला नाट्यकारों में रवींद्रनाथ मैत्र ने एक सामाजिक प्रहसन 'मानमयी गार्ल्स स्कूल' (1932) की रचना कर अभूतपूर्व जनप्रियता प्राप्त की थी। इस नाटक ने हास्यशुचि प्रहसन का नया आदर्श उपस्थित किया था। लघु कौतुकपूर्ण परिवेश के बीच से भिन्न धर्मावलंबी नर-नारी के जीवन की जटिलतम समस्या का हल प्रस्तुत करते हुए लेखक ने चरित्र के सूक्ष्म क्रम-विकास का बहुत ही प्रशंसनीय उद्घाटन किया है। लेखक का सबसे बड़ा कृतित्व इसी में है कि पिछले 40 वर्षों से इसका लगातार अभिनय होने पर भी इसकी लोकप्रियता थोड़ी भी अक्षुण्ण नहीं हुई है।

मैत्रेय *(सं० पा०)*

मैत्रेय भास (दे०) की प्रतिभा की कल्पना है जिसके चरित्र का चित्रण दरिद्र चारुदत्त' में किया गया है। अनंतर मैत्रेय के व्यक्तित्व को 'मृच्छकटिक (दे०) में पूर्णता प्राप्त होती है।

हास जीवन का एक अविच्छिन्न ही नहीं अनिवार्य तत्त्व है। संकट की घड़ियों में भी हास की सृष्टि अस्वाभाविक न लगे, ऐसी कला मैत्रेय को प्राप्त है। वह जन्मजात ब्राह्मण है पर अपने मित्र चारुदत्त (दे०) की संपत्ति के अकारण चले जाने पर इतना क्षुब्ध है कि देवी-देवताओं की पूजा पर से उसका विश्वास उठ-सा जाता है। वह एक प्रौढ़ अवस्था का व्यक्ति है पर जीवन की वास्तविकताओं से पूर्वपरिचित है। वह चारुदत्त का साथ इसलिए नहीं छोड़ता क्योंकि मानता है कि चारुदत्त भावुक प्रकृति का व्यक्ति है और उसे उन्हीं दिनों में उस जैसे मित्र के संरक्षण की आवश्यकता है। वह चारुदत्त को बहुत मानता है। यद्यपि वसंतसेना (दे०) के साथ उसके प्रणय की बात इसे अच्छी नहीं लगती पर वह स्पष्ट शब्दों में चारुदत्त को मना नहीं करता; और अपने को उससे अलग रखता है। एक विचक्षण बुद्धिमान की भाँति वह भावी विपत्ति का आभास पा लेता है। मैत्रेय एक सच्चा मित्र ही नहीं, वह अभिभावक की तरह चारुदत्त एवं उसके परिवार की देखभाल करता है। उसे उचित-अनुचित का विवेक भी है। उसकी बातें बड़ी ही चुटीली होती हैं। वह प्रत्येक बात को प्रायः हास्य का पुट देकर करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिली *(भाषा० पारि०)*

हिंदी प्रदेश की पूर्वी बोलियों को 'बिहारी' (दे०) नाम से अभिहित करते हैं। इसमें भोजपुरी, मगही और मैथिली, ये तीन बोलियाँ आती हैं। इन तीनों में साहित्यिक दृष्टि से मैथिली ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मैथिली की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुई है। इसका क्षेत्र पूर्वी चंपारन, मुज़फ़्फ़रपुर, मुँगेर, भागलपुर, दरभंगा, पूर्णिया, तथा उत्तरी संथाल परगना आदि हैं। मैथिली का जन्म अन्य हिंदी बोलियों की भाँति ही 1000 ई० के आस-पास हुआ। इसके प्रमुख कृती कवि विद्यापति (दे०) हैं। मैथिली के अन्य साहित्यकारों में उमापति, नंदीपति, रमापति, आदि मुख्य हैं। मैथिली में आज भी साहित्य-रचना (गद्य तथा पद्य दोनों में) हो रही है।

मैदान-ए-अमल *(उर्दू० कृ०)*

यह प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' का उर्दू रूप है। 'कर्मभूमि' प्रेमचंद की प्रौढ़तम औपन्यासिक रचनाओं में परिगणित है—यहाँ तक कि कुछ विद्वान उसे प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कृति और गांधीयुग की सबसे प्रतिनिधि कृति मानते हैं। गांधीयुग की प्रायः सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियाँ इसमें परिलक्षित होती हैं। 'कर्मभूमि' की मूल भावना संघर्ष है—वैयक्तिक और सार्वजनिक दोनों धरातलों पर जीवन संघर्ष-भावना से विभक्त है। आंदोलन की भावना इस संपूर्ण उपन्यास में परिव्याप्त है। जीवन को युद्धक्षेत्र के रूप में चित्रित करते हुए प्रेमचंद ने कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है। व्यक्ति का कर्तव्य है जीवन को सुंदरतर बनाना और उसके लिए वैषम्य का उन्मूलन आवश्यक है। विचार और कर्म के सामंजस्य में ही जीवन की सार्थकता है—यही 'कर्मभूमि (मैदान-ए-अमल) का मंतव्य है। 'मैदान-ए-अमल' गांधीयुग की जनचेतना का व्यापक जन जागरण सफल-सरस अभिलेख है।

मैरावण-चरित्र (ते० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इस काव्य के लेखक मादय्या कवि विजयनगर के राजा वीरनसिंहरायलु (शासन-काल 1505-1599 ई०) के समसामयिक थे। इसका कथानक इस प्रकार है—राम-रावण युद्ध के बीच हनुमान सोते हुए मैरावण को मार डालते हैं और राम तथा लक्ष्मण को निद्रावस्था में वापस ले आते हैं। मैरावण-वध के बाद वे पातालवासियों को रामनाम के प्रभाव का उपदेश देते हैं। रामभक्ति का प्रभाव तथा उससे अनुगृहीत हनुमान के पराक्रम का वर्णन ही तीन आश्वासों के इस काव्य का उद्देश्य है। इसके वर्णन प्रसंगानुकूल हैं तथा शैली सरल और सरस।

मैला आँचल *(हिं० कृ०)*

हिंदी-साहित्य में आंचलिक उपन्यासों के उन्नायक फणीश्वरनाथ रेणु (दे०) की लेखनी से प्रसूत यह कृति हिंदी का अत्यंत लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास है। इसमें बिहार प्रांत के पूर्णिया ज़िले के अंचल-विशेष—मेरीगंज—के जनजीवन के विविध पक्षों यथा लोक-विश्वासों, राजनीतिक जागरण आदि का अत्यंत सूक्ष्म और हृदय-स्पर्शी चित्रण किया गया है। कथ्य को स्वाभाविक और सहज रूप प्रदान करने के लिए पात्रों के मुख से स्थानीय भाषा का प्रयोग कराया गया है। उपन्यास का कथानक बिखरा हुआ है तथा विभिन्न जीवन-स्थितियों एवं छोटे-छोटे कथाप्रसंगों का संग्रह मात्र प्रतीत होता है। इसी प्रकार इसमें दर्जनों पात्रों की भीड़ है तथा मुख्य कथा जैसी चीज़ का भी अभाव है। नायक की परंपरागत परिकल्पना भी इसमें नहीं है क्योंकि स्वयं अंचल ही इसका नायक है। यह उपन्यास अपने यथार्थ, कथा, जीवन-चित्रों के कारण सदैव स्मरण किया जाता है तथा नूतन शिल्प-प्रयोग के फलस्वरूप हिंदी-उपन्यास-साहित्य में एक कीर्ति-स्तंभ माना जाता है।

मोगर्याचीफुले *(म० कृ०)*

इस काव्य-संग्रह के लेखक श्री गंगाधर रामचंद्र मोगरे हैं। इनका 'भोगप्याचीफुले' संग्रह पाँच भागों में है, जिनका प्रकाशन 1902 से 1920 ई० की कालावधि में हुआ था।

इन संग्रहों की अधिकांश कविताएँ किसी के निधन, जन्मदिन, विवाह, सम्मेलन, सभा, अभिनंदन आदि अवसरों के उपलक्ष्य में लिखी गई हैं।

ये मराठी उपहास-काव्य के प्रवर्तक हैं। 'अभिनव धर्म संस्थापना', 'पदवीचा पाडवा', 'मेथाजींची मजलस'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि इनकी उत्कृष्ट व्यंग्यपरक कविताएँ हैं। भिन्नाभिन्न कार्य-क्षेत्रों में काम करने वाले नेताओं की मृत्यु होने पर लेखक ने विलापिकाएँ भी लिखी हैं। मृत व्यक्ति से व्यक्तिगत परिचय के अभाव में दुःख वैयक्तिक नहीं, बुद्धि से आकलित है। इन विलापिकाओं में मृत व्यक्ति के कृतित्व का उल्लेख कर उनकी मृत्यु से हुई समाज-हानि का कवित्वपूर्ण शैली में निवेदन है।

मार्मिक व्यंग्य-विनोद, व्यवस्थित रचना समुचित शब्द-योजना के कारण इनका यह काव्य अपूर्व बन गया है।

मोचनगड *(म० कृ०)* [रचना-काल—1871 ई०]

यह शिव-काल पर लिखा गया प्रथम उच्चकोटि का ऐतिहासिक उपन्यास है। स्वयं लेखक रा० भि० गुंजीकर ने इसे 'कल्पित गोष्ठ' कहा है, पर वस्तुतः यह न केवल ऐतिहासिक उपन्यास है अपितु अ० का० प्रियोळकर के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास का आदर्श प्रस्तुत करता है। इसका महत्व यह है कि जिस समय अन्य मराठी उपन्यासकार रम्याद्भुत कथा-साहित्य की सृष्टि में संलग्न थे, गुंजीकर ने ऐसी कृति का प्रणयन किया जिसमें लेखक ने युग से एकात्म हो यथार्थ वातावरण की सृष्टि की। वस्तुतः उपन्यास में वातावरण की सृष्टि इतनी मनोज्ञ है कि शिवाजी का जीवन-काल साकार हो उठता है। उपन्यास का नायक गणपतराव अपने हाथी भगवंतराव के साथ दो वर्ष तक कारागृह में रहकर दीवार फोड़कर निकल भागता है, अपनी पत्नी के साथ कष्टमय जीवन बिताता हुआ, अंत में शिवाजी द्वारा किले पर आधिपत्य कर लेने के बाद यातना से मुक्ति-लाभ करता है। इस उपन्यास का महत्व अनेक दृष्टियों से है—हरिनारायण आपटे (दे०) के 'उषःकाल' (दे०) पर इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। दौलत्या नामक पात्र की सृष्टि कर लेखक ने मराठी उपन्यासों में विनोदी पात्र-सृष्टि का श्रीगणेश किया है और ऐतिहासिक उपन्यासकारों को, युग से तादात्म्य स्थापित कर, सजीव वातावरण उपस्थित करने की प्रेरणा दी है।

मोतीलाल साक़ी *(कश्० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

शैशव से ही भावुक और संवेदनशील एवं चिंतनशील। सामाजिक असमानताओं और अन्याय के कारण मन में आरंभ से ही एक आक्रोश का जन्म हुआ। ये पैनी दृष्टि के कवि हैं। इनके गीत कश्मीर के पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। भाषा ठेठ कश्मीरी है और शैली मार्मिक और ओजमयी। कवि के रूप में काफ़ी प्रसिद्धि पा चुके हैं। नाजी मुनव्वर के साथ मिलकर इन्होंने 'काशिरि लूक बॉथ' (कश्मीरी लोक-गीत) नाम से एक संग्रह का संपादन (1965) किया है। इनकी स्फुट रचनाओं में वेदना, गुहार और चोट है जिसे पढ़ या सुनकर श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

मोदी, चीनु *(गु० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

इनकी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चशिक्षा अहमदाबाद में हुई थी तथा 'गुजराती के प्रगीत' विषय पर इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। काव्य-रचना का आरंभ इन्होंने कालेज-जीवन में ही कर दिया था। गुजराती के पिछले दशक के अग्रगण्य कवियों में इनका प्रमुख स्थान है।

इनकी कविताओं में भाव-तत्त्व से अधिक बुद्धि पर बल है तथा सहज तत्त्व की अपेक्षा आयास अधिक दृष्टिगत होता है। ग़ज़लों में इन्होंने विशेष सफलता प्राप्त की है। इनकी ग़ज़लों में मस्ती का भाव आह्लादक रूप से व्यक्त हुआ है। यों तो गीतों में भी इन्हें ख्याति मिली है किंतु इनका सर्वोपरि रूप अत्याधुनिक कवि का ही है। अस्तित्ववाद, कुंठा, क्षण का महत्व, अपरिचित प्रतीक प्रभृति तत्त्वों का इनकी कविता में प्राधान्य है।

'डायल नुं पंखी' नामक इनका एब्सर्ड एकांकी भी इनकी प्रयोगशीलता का परिचायक है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'शैला मजुमदार' नामक लगभग घटना-तत्त्व-विहीन मनोवैज्ञानिक लघु उपन्यास भी लिखा है जिसका मुख्य विषय यौन भावना है।

इस प्रकार कविता, नाटक, उपन्यास तथा आलोचना आदि समस्त साहित्य-विधाओं में इन्होंने अपना रचना-कौशल दिखाया है।

मो दृष्टिरे सांप्रतिक साहित्य *(उ० कृ०)*

परीक्षित नंद द्वारा संपादित इस पुस्तक में कतिपय लब्धप्रतिष्ठ और नवागंतुक लेखकों के निबंधों का संग्रह है। इसके प्रथम भाग में समकालीन साहित्यिक धाराओं का और दूसरे भाग में समकालीन कविता का विवेचन हुआ है। क्या समकालीन साहित्य परंपरा से विच्छिन्न होकर फल-फूल सकता है? क्या इसमें हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक परिवेश पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित होता है ? यह साहित्य किसके लिए लिखा गया है ? आदि कुछ प्रश्न हैं, जिन्हें पहले खंड में उठाया गया है। नयी कविता (दे०) से संबंधित निबंधों में उन आरोपों की परीक्षा की गयी है, जो साधारणतः नयी कविता पर लगाये जाते हैं; जैसे—दुर्बोधता, अश्लीलता तथा अनावश्यक नैराश्यबोध आदि। एक समीक्षक ने संपूर्ण आधुनिक काव्य-आंदोलन को अकविता आंदोलन की संज्ञा दी है। गत दशाब्दी के के अंत में कविता में जो आक्रोश और नैराश्य की भावना दिखाई पड़ती है, उसका सहानुभूतिपूर्ण विवेचन हुआ है। कुछ नये लेखकों में कृत्रिम विप्लव का जो उत्साह दिखाई पड़ता है, उसका अधिकांश लेखकों ने स्पष्ट रूप से खंडन किया है। अधिकांश लेखकों ने बड़ी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ अपने विचारों को प्रस्तुत किया है।

मोना *(मल० पारि०)*

यह पाट्टु (दे०) शैली के प्राचीन मलयाळम काव्यों के लक्षणों में निर्दिष्ट एक छंद-संबंधी पारिभाषिक शब्द है। पाट्टु के किसी एक छंद के प्रत्येक पाद के प्रथम एवं द्वितीय पादों के प्रथम अक्षर परस्पर सजातीय होते हैं। प्राचीन लक्षण-ग्रंथ 'लीलातिलकम्' (दे०) में पाट्टु के लिए इस लक्षण को अपेक्षित माना है। तमिल के छंद-नियमों के अनुसार 'मोना' (दे०) तोटै नामक गीत-लक्षण के अंतर्गत आता है।

मोनिड़ो मीरबहर *(सिं० पा०)*

मोनिड़ो मीरबहर प्रसिद्ध सिंधी-वीरगाथा 'मोनिड़ो ऐं मांगरमच्छ' का नायक है। सूमरा वंश (1050-1350 ई०) के राजाओं के समय में सिंधु नदी के किनारे पर मल्लाहों का एक कुंटुब रहता था जिसमें 'मोनिड़ो' का जन्म हुआ था। 'मोनिड़ो' सात भाइयों में सबसे छोटा था और लँगड़ा होने के कारण मछली मारने के लिए नदी पर नहीं जाता था। वह अपाहिज तो था, परंतु अपने सभी भाइयों से बुद्धि में तेज़ था। एक दिन उसके छह भाई मछली मारते-मारते कलाची (कराची) निकट सिंधु नदी के एक भँवर में जा फँसे और उस भँवर में रहने वाला एक बड़ा मगरमच्छ उन्हें निगल गया। आग की तरह यह खबर चारों तरफ़ फैल गई। मोनिड़ो ने मगरमच्छ से बदला लेने के लिए लोहे का एक पिंजरा बनवाया जिसमें बाहर की तरफ़ चारों ओर बड़ी-बड़ी कीलें लगी हुई थीं। वह उस पिंजरे में बैठ गया, रस्सों से बाँध कर पिंजरा भँवर में उतारा गया। जब मगरमच्छ पिंजरे को निगलने लगा तब मोनिड़ो ने एक कल को घुमाया जिससे पिंजरे की कीलें मगरमच्छ के मुख में अटक गईं। ऐसी हालत में मोनिड़ो ने रस्सों को हिलाकर नदी के किनारे पर खड़े हुए अपने साथियों को संकेत भेजा, जिन्होंने पिंजरा खींचना शुरू किया जिससे मगरमच्छ भी बाहर निकल आया। फिर सभी ने उसे मारकर मोनिड़ो को पिंजड़े से बाहर निकाला और मगरमच्छ को चीरकर मोनिड़ो के भाइयों की लाशें बाहर निकालकर उन्हें दफ़न किया। 'मोनिड़ो' सिंधी-साहित्य में वीरता और बुद्धिमानी का प्रतीक माना गया है। कई चारणों और कवियों ने इसकी वीरता के गीत गाए हैं। 'मोनिड़ो ऐं मांगरमच्छ' नामक पुस्तक में डा० नबी बख़्श खान बलोच (दे०) ने मोनिड़ो की विभिन्न वीरगाथाओं को संगृहीत किया है। यह 1967 ई० में 'सिंधी अदबी बोर्ड', हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हुई थी।

मोमिन (उर्दू० ले०) [जन्म—1800 ई०; मृत्यु—1851 ई०]

इनका पूरा नाम हकीम मोमिन ख़ाँ और उपनाम 'मोमिन' था। इनके पिता हकीम ग़ुलाम नबी ख़ाँ काश्मीर के एक गण्यमान्य व्यक्ति थे। मोमिन बहुत प्रतिभावान बालक थे। एक बार जो सुन लेते थे, उन्हें अक्षरशः याद हो जाता था।

काव्य, चिकित्सा तथा ज्योतिष पर इन्हें समान अधिकार था किंतु इन्होंने किसी को भी अपनी आजीविका का साधन न बनाया। ये स्वभाव से बड़े ही संतोषी जीव थे। इन्होंने किसी अमीर की कभी प्रशंसा नहीं की। हाँ, धार्मिक महापुरुषों का गौरव-गान अवश्य किया और उनकी स्तुति में अनेक कसीदे लिखे। मोमिन सिद्धहस्त कवि थे। ग़ज़ल लिखने में उनका अपना रंग था। इनके काव्य में मीर (दे०) की-सी वेदना तो है किंतु उन जैसी निराशा नहीं। हाँ, किसी सीमा तक इनके काव्य में स्वाभिमान तथा मुक्त चिंतन अवश्य झलकता है। ये उपमानों तथा रूपकों के माध्यम से पुराने विचारों को भी नया परिधान पहना कर प्रकट करते हैं। इनके भावों में उत्कृष्टता तथा कोमलता है। कुछ पद तो प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से मीर के पदों से भी आगे हैं। इनके पद दार्शनिकता से भी रीते नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोमिन ने छह मसनवियाँ लिखीं जिनमें ये तीन प्रसिद्ध हैं —(1) शिकायत-ए-सितम, (2) किस्सा-ए-ग़म, (3) कौसे-ग़मी ।

इनका एक दीवान भी प्रकाशित है ।

मोबेद रुस्तम पेशोतन *(गु० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती]

गुजराती के प्रथम पारसी लेखक श्री मोबेद रुस्तम पेशोतन सूरत के निवासी थे । इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ चार हैं 'जरथोस्त-नामेह', 'श्यावक्ष-नामेह', 'विराफ-नामेह' एवं अस्पंदयार-नामेह । नामेह का अर्थ होता है—चरित्र । इस प्रकार चारों कृतियों में पारसी-मिश्रित गुजराती पद्य में चरित्र अंकित किये गये हैं । इनमें पारसी संत-महात्माओं के चरित्र वर्णित हैं। इन कृतियों की भाषा पर पारसी प्रभाव अधिक है । इतिहास और कल्पना के संयोग से कृतियाँ अधिक प्रभावपूर्ण व चमत्कारमय बन गई हैं । पहलवी और फ़ारसी शब्दों के कारण रचनाएँ किंचित् दुर्बोध हो गई हैं ।

गुजराती के प्रथम पारसी कवि के रूप में तथा जीवनीकार के रूप में इनका महत्व भुलाया नहीं जा सकता ।

मोरोपंतचरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1882 ई०]

इसके लेखक हैं श्री बा० म० हंस । इसमें मराठी के कवि मोरोपंत के काव्य की समीक्षा अँग्रेज़ी-समीक्षा-पद्धति का आधार ग्रहण कर प्रायः सर्वप्रथम प्रस्तुत की गई है । इस रचना में प्रौढ़, सालंकार और साभिप्राय भाषा-प्रयोग मिलता है । काव्य-समीक्षा में दोषारोपण की अपेक्षा गुण-कीर्तन पर अधिक बल है ।

मोरोपंत-चरित्र *(म० कृ०)*

लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर (दे०) ने मराठी के पंडित कवि मोरोपंत का चरित्र 1908 ई० में लिखा था । इसकी रचना में लेखक ने 1900 से 1908 ई० तक परिश्रमिपूर्वक शोध किया था । मूल रचनाओं, पांडुलिपियों, पत्रों आदि का सूक्ष्म अध्ययन करके पांगारकर ने मोरोपंत की प्रामाणिक जीवनी लिखी है । उत्तरार्ध में मोरोपंत के समग्र काव्यों के सौंदर्य का मार्मिक उद्घाटन किया गया है । मोरोपंत के चरित्र और काव्य के अध्येताओं के लिए यह ग्रंथ प्रकाश-स्तंभ है ।

मोल्लरामायणमु *(ते० कृ०)* [सोलहवीं शती ई०]

तेलुगु के रामकथा पर आधृत काव्यों में आतुकूरि मोल्ला (दे०) नामक कवयित्री के द्वारा रचित 'रामायण' का विशिष्ट स्थान है । इस काव्य की रचना के समय जितने रामकाव्य लिखे जा चुके थे, उन सब में इसी का प्रचार अधिक था । जिस प्रकार बम्मेर पोतना (दे०) ने भक्तिभावना की सहज अभिव्यक्ति के रूप में 'भागवत' (दे० महाभागवत) की रचना की उसी प्रकार कवयित्री मोल्ला ने अपनी रामायण की रचना की । इसके छह कांडों में कुल मिलाकर लगभग एक हज़ार छंद हैं । पहले तीन कांडों की अपेक्षा अंतिम तीन कांडों में रचना अधिक प्रौढ़ और परिमार्जित दिखाई देती है । सहज वर्णनशैली, अनायास अलंकार-योजना, सरल शब्दों का प्रयोग इनकी रचना की विशेषताएँ हैं । भाषा और शैली की इस निसर्ग मनोहारिता ने कई परवर्ती कवियों को भी प्रेरणा दी । शबरी से राम के वार्तालाप का वर्णन भी विशेष उल्लेखनीय है । तेलुगु की प्रथम कवयित्री की उत्कृष्ट रचना के रूप में 'मोल्लरामायणमु' तेलुगु-साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगी ।

मोल्ला, आतुकूरि *(ते०ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

तेलुगु में राम-काव्य-प्रणेताओं में इस विदुषी का विशिष्ट स्थान है । 'मोल्लरामायणमु' (दे०) इनकी एकमात्र उत्कृष्ट रचना है जिसके बल पर इस कवयित्री का नाम अमर है । कहते हैं कि ये अत्यंत साधारण कुंभकार परिवार की थीं और कृष्णदेवरायलु (दे०) की समकालिक थीं । पर कृष्णदेवरायलु के दरबार में इस कवयित्री को कोई प्रवेश नहीं मिला था । शायद राम की अनन्य साधना में अपने जीवन को समर्पित करने के कारण इन्होंने राजाश्रय को स्वीकार ही नहीं किया हो । तेनालि रामकृष्ण कवि (दे०) के साथ इनके परिचय और परिचर्या को लेकर कई कहानियाँ कही जाती हैं । इनकी रचनाओं में कहीं इनके पति का नाम नहीं दिया गया है । पिता का नाम केसनसेट्टी था । इनकी रचना 'मोल्लरामायणमु' का आंध्र जनता में काफ़ी प्रचार है । भगवान राम से प्रेरणा पाकर इन्होंने इस कृति का प्रणयन किया था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेलुगु-साहित्य की श्रीवृद्धि करनेवाली प्रथम कवयित्री के रूप में मोल्ला का नाम हमेशा याद किया जाएगा।

मोल्सवर्थ-मराठी-इंग्रजी कोश (म० क्र०)

इस कोश के कोशकार जेम्स टी० मोल्सवर्थ हैं। ये ईस्ट इंडिया कंपनी में नौकरी करते थे। 1824 ई० में इस कोश पर कार्य प्रारंभ हुआ था और 1831 ई० में इसका समापन हुआ।

अँग्रेज़ शासकों ने भारतवासियों के शिक्षण के लिए 1821 ई० में पूना में एक पाठशाला खोली थी। विदेशी अधिकारियों तथा इस पाठशाला के विद्यार्थियों को मराठी-अँग्रेज़ी अध्ययन में सुविधा हो—इसलिए 1831 ई० में जे० टी० मोल्सवर्थ ने जार्ज कैंडी, थाम्स कैंडी तथा अन्य पंडितों की सहायता से मराठी-अँग्रेज़ी कोश की योजना बनाई थी। कोश की पहली आवृत्ति में 40,000 शब्द थे। 1857 ई० में इस कोश का दूसरा संस्करण निकला था। दूसरे संस्करण में मराठी कहावतें, वाक्-प्रचार तथा शब्द आदि कुल मिलाकर 20,000 शब्दों की और अभिवृद्धि की गई थी तथा संपूर्ण कोश को व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध किया गया था।

मराठी से अँग्रेज़ी में अनुवाद करने वालों के लिए यह कोश लाभप्रद है। 1932 ई० में प्रकाशित शास्त्र-शुद्ध महाराष्ट्र शब्दकोश से पूर्व मोल्सवर्थ जितना बृहद् आकार का 'मराठी-इंग्रजी कोश' मराठी में नहीं था। कोश से भी अधिक महत्वपूर्ण इसकी विस्तृत प्रस्तावना है—जिसमें मराठी-भाषा के विकास का इतिहास दिया गया है।

मोहनतरंगिणी (क० क्र०)

मोहनतरंगिणी के कवि भक्त-श्रेष्ठ कनकदास (दे०) (समय —1550 ई०) हैं। उनकी अन्य रचनाओं—'नळचरित्रे' (दे०), 'रामधान्यचरित्रे' (दे०) और 'हरिभक्तिसार' की अपेक्षा यह आकार में काफ़ी बड़ी है। कवि ने इस रचना के लिए ऐसी वस्तु चुनी है जिससे उनकी कृष्ण-भक्ति निर्बाध रीति से प्रकट हो सकी है। महाभारत और भागवत में वर्णित कामदहन, अनिरुद्ध-प्रणय और बाणासुर-कृष्ण-युद्ध जैसे प्रसंगों के आधार पर इसका कथानक 'सांगत्य' रूप में प्रकट हुआ है। 'सांगत्य' (दे०) छंद का प्रयोग होने के कारण यह रचना जनता में अधिक लोकप्रिय हुई है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन की झाँकी भी मिलती है। आलोचकों ने लिखा है कि ऐसे वर्णनों में कहीं-कहीं काव्य के साथ इतिहास मेल नहीं खाता, परंतु कवि ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। इसमें लंबे-लंबे वर्णन हैं और अद्भुत रस-पूर्ण चित्र हैं। उनमें करुण और वीर रस के वर्णन अत्यंत हृदयहारी हैं। इसमें स्वभावोक्ति का अधिक प्रयोग हुआ है। कवि की कल्पना की शालीनता और कविता-शक्ति की परिपक्वता इसमें देखी जा सकती है। इसमें लोकोक्तियों और मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। इसमें अष्टादश वर्णन भी हैं। प्रबंध की दृष्टि से यह एक सफल प्रबंध-काव्य है। इसका कवि सामान्य कोटि का कवि नहीं है, इसका संदेश भक्ति का चिरंतन संदेश है, पौराणिक काव्यों में इसका निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है।

गांधी, मोहनदास करमचंद [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

महात्मा गांधी का संपूर्ण जीवन राजनेता के रूप में व्यतीत हुआ। भारत में गांधी जी का कार्य-काल सन् 1918 ई० से आरंभ होता है और उसकी समाप्ति 30 जनवरी, 1948 को उनकी हत्या के साथ हो जाती है। गांधी जी में साहित्यिक महत्वाकांक्षा बहुत अधिक नहीं थी परंतु राजनीति की भाँति ही साहित्य पर भी उनका प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा। 1922 में इन्होंने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की जिसने शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में अद्भुत योगदान किया। गांधी जी के जीवन का प्रेरक बल सत्य और अहिंसा हैं। धर्म की सर्वोच्च भावना को सामुदायिक रूप प्रदान करने का सर्वाधिक श्रेय गांधी जी को दिया जा सकता है। इन्होंने देश को मातृभाषा और राष्ट्रभाषा हिंदी में काम करने की प्रेरणा दी। इनकी साहित्यिक निष्ठा किसी भी प्रकार कम नहीं थी, 'तरजुमिया भाषा' के ये कभी हिमायती नहीं रहे।

गांधी जी द्वारा लिखित कृतियाँ इस प्रकार हैं: **आत्मकथा**—'सत्यना प्रयोगो' (दे०); **गांधीवादी चिंतन**—'अहिंसा', 'असहकार', 'गांधीजीनी जुबानी', 'धर्मयुद्धनुं रहस्य', 'एक सत्यवीरनी आत्मकथा', 'सोक्रेटीज़नो बचाव', 'दक्षिण अफ़्रीकाना सत्याग्रहनो इतिहास'; **धर्म और नीति**—'अनासक्तियोग', 'आश्रमवासी प्रत्ये', 'आश्रमजीवन', 'आश्रमनी बहेनो', 'गीता पदार्थ कोश', 'गीताबोध', 'दयाधर्म', 'दिल्ली डायरी', 'धर्ममंथन', 'नीतिधर्म', 'मंगलप्रभात', 'व्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मभावना', 'व्रतविचार', 'रामनाम'; **सामाजिक विषय**—'गामडानी वहारे', 'त्यागमूर्ति अने बीजा लेखो', 'समाजमां स्त्रीओनुं स्थान', 'रचनात्मक कार्यक्रम', 'संपूर्ण दारुनिषेध', 'नीति नाशने मार्गे', 'आरोग्यनी चावी', 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान'; **अस्पृश्यता संबंधी लेखन**—'अस्पृश्यता-निवारण', 'धर्मसंस्थापक', 'हरिजन भागवत', 'हिंदू आचार', 'हिंदू धर्मनी कसौटी', 'वर्णव्यवस्था'; **राजनीति-चिंतन**—'हिंद स्वराज्य', 'आखरी फेसलो', 'गांधी वाइसराय पत्रवहेवार', 'देशीराज्योनो प्रश्न', 'चाल्या जाव'; **अर्थशास्त्रीय विचार**—'गोसेवा', 'संपत्तिशास्त्र', 'सर्वोदय', 'सो टका स्वदेशी'; **अन्य**—'गांधी विचार दोहन', 'अंगत विचार', 'गांधी गिरामृत', 'गांधीजीनां वचनामृत', 'गांधीजीनी दिव्य वाणी', 'महात्मा गांधीजीनुं मनोमंदिर', 'महात्मा गांधीजीना पत्रो', 'महात्मा गोखलेनो वारसो', 'स्व० महात्मा गोखलेजीनो जीवनसंदेश', 'इजिप्तनो उद्धारक'। इसके अतिरिक्त गांधीजी का संबंध', 'इंडियन ओपीनियन', 'नवजीवन', 'हरिजनबंधु', 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' नामक पत्र-पत्रिकाओं से रहा है।

गांधीजी का उक्त विपुल साहित्य साहित्य-सर्जन के लिए नहीं था, लोकहित की भावना से रचा गया था। इसमें विचारों की नवीनता और भाषा की सरलता दर्शनीय है। वर्तनी के कट्टर आग्रही गांधी जी की प्रेरणा से तैयार 'गुजराती सार्थ कोश' भाषाशुद्धि के आंदोलन को पुष्ट करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ। गांधी जी का गुजराती साहित्य पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि विवेचकों ने इस युग का नाम ही गांधी-युग रख दिया।

मोहन राकेश (*हिं० ले०*) [जन्म—1925 ई०; मृत्यु—1972 ई०]

इनका जन्म पंजाब प्रांत के अमृतसर नगर में हुआ तथा शिक्षा-दीक्षा लाहौर में। यहीं से इन्होंने शास्त्री के अतिरिक्त हिंदी और संस्कृत में एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। यद्यपि इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ काव्य-सृजन से किया था, किंतु इनका प्रमुख प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र में रहा है। 'इंसान के खँडहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'रोएँ-रेशे' आदि में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ संकलित हैं तो 'अँधेरे बंद कमरे', (दे०), 'नीली रोशनी की बाँहें', 'काँपता हुआ दरिया' और 'न आने वाला कल' इनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ हैं। 'परिवेश' में इनके निबंध संकलित हैं तो 'आखिरी चट्टान तक' में यात्रा-विवरण। 'आषाढ़ का एक दिन' (दे०) 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' इनकी प्रसिद्ध एवं प्रतिनिधि नाट्य-रचनाएँ हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' में लेखक ने ऐतिहासिक कथानक को ग्रहण करते हुए भी उसे वर्तमान युगीन संदर्भों के साथ बखूबी जोड़ दिया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास के माध्यम से स्वतंत्र लेखन तथा राजाश्रित लेखन की समस्या को उभारते हुए इस तथ्य पर बल दिया गया है कि राजाश्रय सृजनात्मक प्रतिभा को कुंठित कर देता है तो 'लहरों के राजहंस' में राजकुमार नंद तथा उसकी पत्नी सुंदरी के माध्यम से इस चिरंतन प्रश्न को उठाया गया है कि प्रवृत्ति तथा निवृत्ति में कौन बड़ा है। नाटककार ने इस द्वंद्व से जूझने वाले व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व का जो मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है वह इस नाट्य-कृति की ही नहीं अपितु मोहन राकेश की लेखन-शैली की निजी विशेषता है। 'आधे-अधूरे' में मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का अत्यंत सशक्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। उच्चवर्गीय बनने की आकांक्षाओं में अपने चारों ओर अनावश्यक आवश्यकताओं तथा कामनाओं का जाल फैलाते हुए मध्यवर्गीय परिवार किस प्रकार निम्नवर्गीय होकर रह जाता है और इस बीच पारिवारिक जीवन में विषमता, कुत्सा, बिखराव तथा टूटन की जो स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उनका जैसा जीता-जागता चित्रण इस नाटक में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। भारतीय नाट्य-शैली का सर्वथा परित्याग न करते हुए भी पश्चिमी नाट्य-शैली के समुचित उपयोग से अपने नाट्य-शिल्प को निखार कर सार्थक प्रतीकों के सहारे अतीत को वर्तमान संदर्भों से जोड़कर सफल रंग-नाटकों का प्रणयन मोहन राकेश के नाट्य-लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता रही है।

मोहनसिंह (*पं० ले०*) [जन्म—1905 ई०]

मोहनसिंह का जन्म होती मरदान (पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ था। मोहन सिंह की काव्य-चेतना पर इस इलाक़े की लोक-कथाओं, सामाजिक रुचियों तथा भव्य प्राकृतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

'सावे पत्तर' (दे०) मोहनसिंह की प्रारंभिक कविताओं का संग्रह है। इनमें रोमानी आदर्शवाद का स्वर प्रमुख है और उर्दू व फ़ारसी का पर्याप्त प्रभाव है। 'कसुंमडा' कवि की काव्य-चेतना के विकास को सूचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। इस संग्रह की कविताएँ सामाजिक दायित्व के विचार से जुड़ी हुई हैं। इनमें कवि का काव्य और शैली उसकी अपनी है और वह बाह्य प्रभावों से मुक्त रहा है। दूसरे काव्य-संग्रह 'अघवाटे' में मानसिक उलझनों और सामाजिक द्वंद्वों का चित्रण है और 'कच-सच' (दे०) और 'आवाजां' में समाजवादी विचारधारा को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है। 'वड्डा वेला' की रचनाओं में विद्रोह भी है और आत्मपीड़ा भी, प्रकृति का कलात्मक चित्रण भी है और प्रतीकवादी भावाभिव्यंजना भी। इस कवि के काव्य के विशिष्ट गुण हैं: भाव की ऊष्मा, उदात्त स्वर, रसमयता और अंतःस्पंदनकारी अप्रस्तुत-विधान।

मोहनसिंह पहले पंजाबी कवि हैं जिनके काव्य में आधुनिक भावबोध प्रतिफलित हुआ है। शब्दों की तराश, संगीतात्मक लय, मौलिक अलंकार-विधान और छंद की संरचना आदि की दृष्टि से इनका कोई सानी नहीं। इन्होंने भाई वीरसिंह (दे०) की परंपरा से अलग हट कर एक नयी काव्य-धारा का प्रवर्तन किया।

मोहनसिंह, डाक्टर (पं० ले०) [जन्म—1899 ई०]

डा० मोहनसिंह की गणना पंजाबी के मूर्धन्य आलोचकों में की जाती है। इन्होंने पंजाबी तथा अँग्रेज़ी भाषाओं में पंजाबी-साहित्य का इतिहास लिखा है। वस्तुतः पंजाबी में साहित्य के इतिहास-लेखन का विधिवत् सूत्रपात सच्चे अर्थों में डा० मोहनसिंह के इतिहास से ही होता है।

आलोचक के साथ ही साथ डा० मोहनसिंह पंजाबी में भाई वीरसिंह (दे०)-युग एवं प्रवृत्ति के प्रमुख कवि भी हैं। 'मस्ती' नामक काव्य-संग्रह में इनकी लगभग तीन सौ रुबाइयाँ संगृहीत हैं, जिनमें रहस्यवादी धारणा की पुष्टि होती है। इन्होंने गुरुवाणी, वेदांत, योग और सूफ़ी प्रभाव को उन्मुक्त रूप से स्वीकार किया है।

डा० मोहनसिंह का पहला कविता-संग्रह 1929 ई० में 'घुप्प घां' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् उनका तीसरा संग्रह 'जगत तमाशा' नाम से प्रकाशित हुआ।

काव्य-क्षेत्र में इनकी विशेष प्रतिष्ठा इनकी 'रुबाइयों' के कारण है। इन रुबाइयों में कवि की दार्शनिक गंभीरता और काव्य-प्रतिभा की गहरी चमक है।

अन्य प्रमुख कृतियाँ—'सूफ़ीआं दे कलाम', 'भगती काल', 'हीर बारस' (समालोचना); जितेंदर साहित सरोवर' (निबंध-संग्रह); 'सोमरस' (कविता-संग्रह); 'दविंदर बत्तीसी', 'रंग तमाशे' (कहानी-संग्रह)।

मोहनसिंह वैद, भाई (पं० ले०) [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

ये पंजाबी गद्य-साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हैं जिन्होंने दो सौ से अधिक पुस्तकें हिंदी-अँग्रेज़ी साहित्य से अनूदित की हैं। बेकन, वालेस, पीसो आदि पश्चिमी लेखकों की कृतियों के आधार पर इन्होंने स्वयं भी रचनाएँ की हैं। 'इनमें दंपति विचार', 'इक सिक्ख घराना', 'श्रेष्ठ कुलां दी चाल' (दे०), 'सुभाग कौर' आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं में भारतीय सदाचार एवं सनातन रीति-नीति पर अधिक बल दिया गया है। ये 'दुःख-निवारण' मासिक पत्र के संपादक भी रहे थे जो अब भी तरनतारन से प्रकाशित होता है।

मोहमुळ् (त० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यह आधुनिक उपन्यासकार ति० जानकीरामन् (दे०) का ख्याति-प्राप्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास की विशेषताएँ हैं—आंचलिकता, प्रायः पात्रों के वार्तालाप द्वारा कथा-सूत्र का संचालन तथा पात्र-मनोवृत्तियों पर बल देने वाली वर्णन-शैली का उपयोग। तमिल प्रदेश के तंजौर ज़िले का प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण तथा उस क्षेत्र की बोली का वैशिष्ट्य इस रचना में विलक्षण रूप से प्रस्तुत है। तंजौर ज़िले में एक संपन्न भूस्वामी घराने के युवक 'बाबू' के हृदय में 'यमुना' नामक बालिका के प्रति 'मोह' (प्रेम) उत्पन्न होता है पर सामाजिक बंधनों के काँटे उसके विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। एक और स्थानीय भू-स्वामी की रखैल महाराष्ट्रीय नारी की संतान होने से 'यमुना' से 'बाबू' का विवाह होना असंभव है। कुछ दिनों में यमुना के पिता गाँव में मर जाते हैं और वह ग़रीबी की यातनाएँ झेलते हुए मद्रास शहर के उस बीमा-दफ़्तर तक पहुँच जाती है जहाँ उसका प्रेमी 'बाबू' नौकरी कर रहा है। विवश होकर युवक अपनी प्रेमिका को एक अनाथालय में भरती करा देता है। समय के हेर-फेर के साथ अंततः बाबू के रूढ़िवादी पिता को अपने पुत्र और उसके बचपन की सहेली दोनों की मनःस्थितियों का सही परिचय हो जाता है और वह उदार बनकर उनके युगल जीवन की सहमति दे देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस प्रकार प्रेम-रूपी 'मोह' काँटे (मुल) दूर करके अपना रास्ता निकाल ही लेता है। इस उपन्यास की कथा-वस्तु-योजना में जटिलता नहीं है। इसकी सार्थकता वातावरण-सृष्टि में है।

मोहराजपराजय *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती]

'मोहराजपराजय' एक प्रतीक नाटक है। इसके कर्ता जैन कवि यशःपाल (दे०) गुजरात अभयदेव (समय—1229-1238 ई०) के कृपा-पात्र थे।

प्रस्तुत नाटक में पाँच अंक हैं। इसकी रचना जैन धर्म के प्रचार के लिए की गई है। इसका प्रथम प्रयोग कुमारविहार में महावीर के उत्सव पर हुआ। इसमें गुजरात के चालुक्य वंशी राजा कुमारपाल का जैन धर्म स्वीकार करना, पशुओं की हिंसा का निषेध करना, तथा हेमचंद्र की आज्ञा से निःसंतान मरने वालों की संपत्ति को राज्याधीन न करना आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

इसमें कुमारपाल, हेमचंद्र तथा विदूषक तो मनुष्य पात्र हैं, तथा पुण्यकेतु, विवेक, कृपासुंदरी, व्यवसाय सागर आदि शोभन तथा अशोभन गुणों के प्रतीक हैं। इस प्रकार इस नाटक में मूर्त तथा अमूर्त पात्रों के परस्पर सम्मिलन तथा वार्तालाप का समावेश किया गया है। सरल तथा सुबोध संस्कृत में लिखे इस नाटक को लंबे समास तथा भड़कीले गद्य के प्रयोग से बचाया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह नाटक बड़ा महत्वपूर्ण है।

मौज-ए-तबस्सुम *(उर्दू० कृ०)*

यह एक हास्य निबंध-संग्रह है। इसके लेखक अजीम बेग चुग़ताई (दे०) हैं। इसमें विभिन्न विषयों पर निबंध मिलते हैं। अज़ीम वेग चुग़ताई खिलंदड़े लेखक हैं। उन्हें हर बात में हँसी का पहलू और हर घटना में प्रहसन की बात दिखाई दे जाती है। वे स्वयं हँसते हैं और दूसरों को भी हँसाते हैं। वे विचार की आफ़त से दूर रहते हैं और बौद्धिक व्यायाम की ओर दृष्टिपात नहीं करते। गंभीर स्थिति उनके लिए वही कुछ है जो अनातोले फ़्रांस के लिए मज़हब या एक मौलवी के लिए शैतान।

चुग़ताई साहब हल्की-फुल्की चीज़ें लिखते हैं लेकिन उनमें जवानी का-सा जीवन है और जीवन में वे जवानी भर देते हैं। उनकी भाषा मधुर है तथा उसमें फूलों की गमक और प्रफुल्लता है।

मौलाबख्श कुश्ता *(पं० ले०)* [जन्म —1876 ई०]

श्री कुश्ता का जन्म अमृतसर में हुआ था जहाँ वे भारत-विभाजन तक रहे। बाद में वे लाहौर जाकर बस गए थे। काव्य-रचना का शौक इन्हें बचपन से ही था। इन्होंने लाला धनीराम चातरिक (दे०) और श्री एम० एम० चरणसिंह के साथ मिल कर पंजाबी काव्य-दरबारों को लोकप्रियता दिलाई थी।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं: 'दीवाने कुश्ता', 'हफ़त पाकर' और 'हीर-राँझा'। 'हीर-राँझा' बहुत लोकप्रिय हुई थी। इनकी कविताओं में उर्दू और फ़ारसी के शब्दों का काफ़ी प्रयोग हुआ है। पर ऐसे शब्दों का प्रयोग इन्होंने इस प्रकार किया है कि वे पंजाबी भाषा में सहज रूप से रसे-बसे प्रतीत होते हैं।

इनकी कविताओं में नैतिक मूल्यों का विशेष रूप से आग्रह किया गया है।

मौलूद *(सिं० पारि०)*

यह सिंधी कविता का एक प्रकार है जिसमें इस्लाम मज़हब के किसी पैग़ंबर, दरवेश अथवा धार्मिक महापुरुष के जन्म लेने का उल्लेख कर, प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करते हुए भक्त कवि उसके लिए अपनी श्रद्धा और प्रेम को प्रकट करता है। मौलूद का शाब्दिक अर्थ है 'इंसान उत्पन्न हुआ अथवा उत्पन्न बालक'। सिंधी-भक्ति-काव्य के भीतर इस्लाम में श्रद्धा रखने वाले कई मुसलमान भक्त कवि हुए हैं जिन्होंने 'मौलूद' रचे हैं। ईद, विवाह और खुशी के अवसरों पर सिंध में मुसलमान अभी तक 'मौलूद' गाते हैं। डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने 'मौलूद' नामक कविताओं का बृहत् संग्रह तैयार किया है जो 1961 ई० में 'सिंधी अदबी बोर्ड', हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हो चुका है।

यक्ष *(सं० पा०)*

मेघ को अपनी विरहिणी प्रिया पत्नी के पास भेजने वाला यक्ष कालिदास (दे०) की कल्पना है जिसका सृजन उन्होंने 'मेघदूत' (दे०) में किया है।

यक्ष के पूर्ववृत्तांत के विषय में अनेक प्रकार की अटकलबाज़ियाँ की गई हैं। पर कालिदास ने केवल उसके अपने कर्तव्यपालन से च्युत होने का ही संकेत किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कुबेर के द्वारा वर्ष-पर्यंत के निर्वासन के दंड को भी वह भारी नहीं मानता यदि उसकी दिव्य शक्तियाँ छीन न ली गई होतीं।

वह विंध्य की एक श्रेणी रामगिरि के आश्रमों में अपने दिन काट रहा था कि बरसात आ गई। बादल को देखकर अपनी दशा से ही उसने सोचा कि यदि प्रिया पत्नी को सांत्वना का कोई संदेश न गया तो वह इन बादलों को देख प्राण त्याग देगी। इतनी दूरी पर स्थित अपनी नगरी अलका में स्थित अपने भवन की स्वामिनी को संदेश ले जाने वाला कौन हो सकता है। उसने सोचा, इसी बादल के द्वारा संदेश भेजना ठीक होगा।

यक्ष ने इसी निमित्त मेघ को रामगिरि से लेकर अलकापुरी के मार्ग का विवरण दिया। बीच में पड़ने वाले नगरों, पर्वतों एवं नदियों तथा जंगलों का वर्णन देना भी अनिवार्य था। अलकापुरी, उसके वैभव एवं भवनों का वर्णन तथा उसमें रहने वाले व्यक्तियों के क्रिया-कलाप का विवरण कवि के मस्तिष्क की कल्पना मात्र नहीं, अपितु तत्कालीन उच्चवर्ग के समाज का चित्र है।

यक्ष की मनोदशाएँ मानव-मन की दशाएँ हैं। उसकी वेदना प्रत्येक विरही की वेदना है।

यक्षगान बयलाट (क० कृ०)

कर्नाटक के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा० शिवराम कारंत (दे० कारंत) की कृति 'यक्षगान बयलाट' 1957 ई० में प्रकाशित हुई। इस कृति को 1958 ई० में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। लोकगीत-नाट्य को 'यक्षगान' कहा जाता है। 'बयलाट' (बयलु-आट) का अर्थ है मैदान (खुले स्थान) का खेल साहित्य की यह विधा कन्नड और तेलुगु साहित्य की ही विशेषता है। केरल की 'कथकळि' इससे मिलता-जुलता रूप है, परंतु कुछ बातों में भिन्न भी है।

'यक्षगान' एक समष्टि कला है। कर्नाटक की सांस्कृतिक परंपरा का यह अत्यंत सुंदर अंग है। एक समय था जबकि यह कला जन-जीवन के लिए सर्वाधिक स्फूर्तिदायिनी थी। कर्नाटक के मेलनाडु (पर्वतीय प्रदेश) में यह अब भी जीवंत कला है। अन्य स्थानों में इसका रूप बहुत कम दृष्टिगत होता है। पुस्तक के प्रथम भाग के अंतर्गत पहले अध्याय 'समष्टि कला, स्थूल पृष्ठभूमि' में लेखक ने इस काल के स्वरूप पर विचार करते हुए इसका ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट किया है। दूसरे अध्याय में ऐसे खेल खेलने वाली संस्थाओं का परिचय दिया गया है। दक्षिण और उत्तर कन्नड ज़िलों में ही ऐसी संस्थाएँ विशेषत: विद्यमान हैं। 'बयलाट' खेलने वाले लोगों के दल को 'मेळ' कहते हैं। उनके खेलों के कथानक अधिकतर दशावतारों से संबंधित होने के कारण ऐसे जल को 'दशावतार मेळ' भी कहते हैं। 'मेळ' की अधिष्ठात्री देवी शक्ति अर्थात् दुर्गा का कोई रूप है। कुछ 'मेळ' गणपति के नाम से भी हैं। ये कला-संस्थाएँ जन्म-मरण के सिद्धांत से रहित नहीं हैं। तीसरे अध्याय में 'नाटक की वस्तु, चित्रण माध्यम' पर विचार किया गया है और बताया गया है कि महाभारत, रामायण और भागवत प्रसंगों से संबंधित यक्षगानों का प्रकाशन हुआ है। बयलाट के उद्भव पर चौथे अध्याय में विचार किया गया है। पाँचवें में रंगमंच की पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। 'बयलाट' का रंगमंच क्या है, चार खंभों के बीच का, सुरक्षित, खुला स्थान है जिसके चारों ओर लोग बैठ सकते हैं। एक तरफ़ भागवत (बाजा बजाने वाला गायक) बाजे के साथ खड़ा रहता है। आवश्यकता पड़े तो उसके बैठने के लिए स्थान रहता है। साधारणतया पंद्रह फ़ुट चौकोर स्थान रंगमंच का होता है। 'सभा-लक्षण-परिचय' छठे अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। सातवें अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक यक्षगान की परंपरा और स्वरूप, नृत्य की महत्ता, लिखित पद्य और खेलने में प्रयुक्त गद्य, वेश-भूषाएँ, खेल के विविध रूप और इस कला के पुनरुत्थान के कार्य—इनके संबंध में विचार किया है।

पुस्तक का द्वितीय भाग चार अध्यायों में यक्षगान-कला का इतिहास प्रस्तुत करता है। प्रथम तीन अध्यायों में क्रमश: सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध यक्षगान-कलाविदों का—यथा देविदास, नागप्पय्या, सुब्ब, सिद्धय्या, राम मूलिक राम हळेमक्कि, नगरद सुब्ब, रामकृष्णय्या, नंदलिके लक्ष्मीनारायणप्पा आदि का परिचय मिलता है। अंतिम अध्याय में बीसवीं शती के कलाविदों के नामोल्लेख के साथ उपसंहार किया गया है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट दिया गया है जिसमें ताड़पत्रों का अत्यंत उपयोगी विवरण है। कारंत जी की रचनाओं में इस पुस्तक का विशेष स्थान है, इस विधि को लेकर लिखी नयी पुस्तकों में यह सर्वश्रेष्ठ और अत्यंत प्रामाणिक है।

यक्षगानमु (ते० पारि०)

आंध्र का एक प्रकार का देशी नाटक 'यक्ष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गानमु' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका आरंभ आंध्र प्रांत में होते हुए भी क्रमशः यह दक्षिण के अन्य प्रांतों में भी प्रचलित हुआ। तेलुगु में चेंबशौरि के द्वारा लिखा गया (पंद्रहवीं शती) 'सौभरिचरित्रमु' सर्वप्रथम यक्षगान माना जाता है। पर यह आज अनुपलब्ध है। उपलब्ध यक्षगानों में कंदुकूरि रुद्रकवि-कृत (सोलहवीं शती) 'सुग्रीव-विजयमु' ही सबसे प्राचीन है। यक्षगान का विस्तार तो सत्रहवीं शती ई० के लगभग दक्षिण की तंजौर नामक रियासत में ही संपन्न हुआ था। उक्त काल यक्षगान का स्वर्णयुग कहा जाता है। तंजौर के शासक विजयराघव नायक इसके प्रमुख पोषक थे। उस समय उक्त रचना की लोकप्रियता ऐसी थी कि नायक राजाओं के बाद आए हुए शाहजी जैसे मरहठा शासकों ने भी कई यक्षगानों की रचना की थी। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शतियों में भी यक्षगान बराबर लिखे जाते थे।

आरंभ में यक्षों द्वारा गाए जाने के कारण इसका नाम 'यक्षगान' से रूप में प्रचलित हुआ था। अर्थात् यह आरंभ में गेय-तत्त्व-प्रधान था। पर क्रमशः नाट्य तथा अभिनय को भी इसमें स्थान मिलता गया। सड़कों पर प्रदर्शित होने वाले 'यक्षगान' को राजदरबार में प्रवेश प्राप्त हुआ। इसके परिवर्तन में यह एक प्रबल कारण है। 'रगड़ा', 'द्विपदा' आदि देशी छंद तथा अन्य गीत और पद्य 'यक्षगानमु' के प्रमुख अंग हैं। इन छंदों तथा गीतों के बीच प्रकरण के अनुसार मिलाने वाले छोटे-छोटे गद्यांश भी प्रयुक्त होते थे। क्रमशः इन छोटे गद्यांशों के स्थान पर नाटकों के बीच की तरह गद्यबद्ध भाषणों का प्रयोग होने लगा। गीत और नाट्य के साथ-साथ अभिनय भी प्रमुख होने लगा। वैसे ही नाट्य भरत-विद्या से प्रभावित तथा छंद पांडित्यपूर्ण होने लगे। महाराष्ट्र-शासकों के समय यक्षगान पर संस्कृत-नाटक का भी अधिक प्रभाव पड़ा। नांदी, प्रस्तावना आदि का प्रवेश कर दिया गया और कथानक अंकों में विभाजित किया गया।

प्रधानतः काव्य, पुराण तथा इतिहास आदि से सरस और प्रचलित कथांश लेकर यक्षगान लिखे जाते थे। पर तंजौर के नायक-राजाओं के समय स्थानीय तथा समसामयिक प्रसंगों को लेकर भी अनेक यक्षगान लिखे गए। अधिकतर इनमें शृंगार तथा हास्य का प्राधान्य रहता था। 'यक्षगान' के विकासक्रम का इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है—साधारण जनता के बीच प्रचलित स्वतंत्र देशी-प्रदर्शन का रूप, राजदरबारों में प्रविष्ट शास्त्र-पांडित्य-प्रभावित रूप तथा संस्कृत-नाटक से प्रभावित रूप।

'यक्षगानमु' न तो विशिष्ट साहित्यिक महत्व रखने वाली रचनाओं के अंतर्गत आता है और न आधुनिक नाटक का पूर्वरूप कहा जा सकता है। पर एक स्वतंत्र देशी-नाटक-रचना के रूप में तेलुगु-साहित्य के अंतर्गत 'यक्षगान' कम महत्व का नहीं कहा जा सकता।

यज्ञनशास्त्री, सोमंचि (*ते० ले०*) [जन्म—1913 ई०]

ये कथाकार एवं नाटककार हैं। इनकी रचनाओं में हास्य तथा व्यंग्य की प्रधानता रहती है। अपने नाटकों में इन्होंने पश्चिमी नाटकों के विधान का अनुसरण किया है और इनमें निर्मल हास्य की छटा दर्शनीय है। 'लंचंपट्टिन ग्राफ़ीसरु' (घूसखोर अफ़सर), 'लाभं चेसिन गोल्लदि' (ग्वालिन जिसने लाभ पहुँचाया) आदि इनके कहानी-संग्रह हैं और 'कल्याणी', 'महानुभावुलु' आदि इनकी नाटिकाएँ हैं।

यथार्थदीपिका (*म० कृ०*)

वामन पंडित (दे०) की यह रचना श्रीमद्भगवद्गीता (दे०) की काव्यबद्ध टीका है। संत ज्ञानेश्वर (दे०) ने अपनी गीता-टीका का नाम 'भावार्थदीपिका' (दे० ज्ञानेश्वरी) रखा था परंतु वामन पंडित ने 'यथार्थ' शब्द पर बल देकर अपने भाष्य को मूल ग्रंथ के अधिक निकट सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अतः दोनों टीकाओं की शैली में भी मूलभूत अंतर हो गया है। ज्ञानेश्वर की टीका में सरसता और काव्यत्व अपने उत्कर्ष पर हैं किंतु 'यथार्थदीपिका' में छंद मात्र ही काव्यत्व का बोधक है और अनेक स्थानों पर उसका रूप गद्यात्मक बनाया गया है। इसकी ओवी संख्या बाईस हज़ार दो सौ छब्बीस है। वामन पंडित ने अनेक स्थानों पर संत ज्ञानेश्वर से अपनी मत-भिन्नता व्यक्त की है।

ज्ञानमार्ग की दृष्टि से अद्वैत सिद्धांत को तथा भक्तिमार्ग की दृष्टि से सगुण-भक्ति सिद्धांत को मिला कर ज्ञानयुक्त सगुण-भक्ति की मान्यता पर वामन पंडित ने सर्वत्र बल दिया है। इस रचना में कृष्ण-भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। इनकी भाषा-शैली में तर्क की प्रधानता के कारण पांडित्य का वैभव तो है पर काव्य की मसृणता नहीं है। इस रचना से वामन पंडित की सत्य-निष्ठा, व्यवहारज्ञान और आध्यात्मिक चिंतन की प्रखरता का सहज बोध हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थवाद *(हिं० पारि०)*

यह अँग्रेज़ी शब्द 'रियलिज़्म' का हिंदी-पर्याय है। इसके अनुसार साहित्य में जीवन और जगत् का यथातथ्य अंकन होना चाहिए। साहित्य में न तो कथा की अतिरंजना, आरोपित भव्यता एवं आदर्शमयता, कल्पित एवं असंभाव्य घटना-विधान और रोमानी रंग के लिए स्थान है और न अभिव्यंजना के शैली-शिल्प के चारुत्व एवं अलंकरण-प्रसाधन के लिए ही। इस प्रकार यह वाद लेखक से नितांत निर्वैयक्तिक एवं निस्संग दृष्टि तथा तटस्थ निरूपण की माँग करता है। आभिजात्यवाद (दे०), आदर्शवाद (दे०) और स्वच्छंदवाद (दे०) इसका सीधा संघर्ष है।

साहित्यिक आंदोलन के रूप में यह वाद पश्चिम में 1830 ई० की फ़्रांसीसी क्रांति के बाद अस्तित्व में आया। इस युग के साहित्यकारों ने उच्च वर्ग के ही पात्रों को अपनाए जाने का विरोध किया था तथा 'निम्न वर्ग के पात्रों को नायक के रूप में अपनाए जाने का आग्रह किया था। 1839 ई० में फ़ोटोग्राफ़ी के आविष्कार ने भी इसकी 'यथातथ्य' प्रत्यंकन' की अवधारणा के विकास में किसी सीमा तक योग दिया था। इसके अतिरिक्त उस युग में प्रचलित सत्य पर आधारित विभिन्न दार्शनिक मान्यताएँ तथा विज्ञान के प्रति नवोदित चेतना भी इसके स्वरूप-निर्माण में सहायक हुई थीं।

यथार्थवाद को सर्जनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले पश्चिम के प्रारंभिक रचनाकारों में फ़्रांसीसी लेखक बालज़ाक और अँग्रेज़ लेखक डिकेंस उल्लेखनीय हैं। 1857 ई० में प्रकाशित फ़्लॉबर्ट के विख्यात उपन्यास 'मैडम बोवेरी' ने यथार्थवाद को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान की थी। इसके बाद उन्नीसवीं शती के अनेक लेखकों ने कथा-साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी दृष्टि को साग्रह अपनाया था जिनमें इंग्लैंड के थैकरे और इलियट, रूस के तुर्गनेव तॉल्स्तॉय और दॉस्तोव्यस्की तथा जर्मनी के फ़ॉन्तेन और थॉमसमान मुख्य हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं का कथा-साहित्य भी यथार्थवाद से बहुत दूर तक प्रभावित है।

यथार्थवाद निश्चय ही एक महत्वपूर्ण और स्वस्थ साहित्य-दर्शन है, किंतु इसकी सतर्कता एक सीमा तक ही सीमित है। इसे बहुत दूर तक घसीटे जाने में दो प्रकार की हानियाँ हो सकती हैं : एक तो यथातथ्यता की रक्षा के लिए घटना एवं वस्तु-वर्णन के अनावश्यक विस्तार से उत्पन्न होने वाली ऊब तथा दूसरी, भाषा और वर्ण्य दोनों स्तरों पर अश्लीलता के सीमांतों तक पहुँच जाने की प्रवृत्ति।

यमुना *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यास 'पक्ष लक्षांत कोण घेतो' (दे०) (ध्यान कौन देता है) की नायिका यमुना अथवा यमू तत्कालीन महाराष्ट्र की उन उत्पीड़िता और पददलित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज की अनेक अंधरूढ़ियों और सम्मिलित परिवार में विधवा पर होने वाले विविध अत्याचारों के कारण नाटकीय जीवन बिताते हुए अंत में मृत्यु द्वारा उस पीड़ा से मुक्ति पाती थीं। उसके बचपन का चित्रण यदि बालिका के मन का यथार्थ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है तो विवाह से पूर्व और बाद में उसके मन में उठने वाली भाव-तरंगों का चित्रण युवती-मन का परिचय देता है। पति को देवता मान उसकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर उसके तथा परिवार के लिए सब कुछ सहने वाली यह स्त्री चतुर, मधुर और स्वच्छंद स्वभाव की तो है ही, उसमें शालीनता, निरहंकारिता और प्रगतिशीलता भी है। कुल मिलाकर वह एक आदर्श हिंदू पत्नी और प्रगतिशील होते हुए भी परिस्थितियों में अवश नारी है।

यमुना पर्यटन *(म० कृ०)* [रचना-काल—1857 ई०]

यदि कुछ विद्वान बाबा पदमनजी (दे०)-कृत इस रचना को मराठी उपन्यास मानते हैं तो कुछ अन्य उसके आकार और रचना-शैथिल्य के कारण इसे उपन्यास ही स्वीकार नहीं करते। ईसाई धर्म की पुस्तकों का प्रभाव होने के कारण यह पुस्तक लोकप्रिय नहीं हो सकी, परंतु पारिवारिक जीवन के यथार्थ-चित्रण और विधवाओं की दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति जगाने, समाज-सुधार की उत्कट आकांक्षा, मानवतावादी दृष्टि, सरल और अनलंकृत भाषा के कारण यह उपन्यास हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यासों का पूर्वचिह्न कहा जा सकता है।

ययाति *(म० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

वि० स० खांडेकर (दे०) का यह उपन्यास नाम से पौराणिक होकर भी पौराणिक नहीं है। वस्तुतः लेखक ने 'महाभारत' (दे०) के एक उपाख्यान के कथासूत्र के आधार पर स्वतंत्र उपन्यास लिखा है। कथावस्तु में परिवर्तन ही नहीं पौराणिक पात्रों की नवीन संरचना और अनेक काल्पनिक पात्रों की उद्भावना भी इस तथ्य की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत करती है। पौराणिक उपाख्यानों में मानव-हृदय को रससिक्त और विचारों को झकझोरने वाली अपार सामग्री होते हुए भी मराठी उपन्यासकार उनके प्रति प्रायः उदासीन रहे, इसे लक्ष्य कर लेखक ने पौराणिक उपन्यास लिखने का विचार किया। साथ ही 1942 से 1952 ई० के दशक में देश की भौतिक प्रगति तथा नैतिक अधोगति देख उसका मन कचोट उठा और पौराणिक ययाति तथा भोग-लिप्सा के पीछे अंधा होकर दौड़ने वाले मानव में साम्य देख उसे 'ययाति' लिखने की प्रेरणा मिली। पात्रों का जो चित्र पुराणों में उपलब्ध होता है उसके प्रति आश्वस्त न होकर तथा उनके प्रति न्याय-भावना से प्रेरित होकर ही उसने यह उपन्यास लिखने का निश्चय किया। अतः उपन्यासकार का उद्देश्य केवल पौराणिक कहानी कहना मात्र नहीं है। उसमें इसने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया है—यहाँ शर्मिष्ठा केवल वासना की तृप्ति के लिए ययाति (दे०) को अपने प्रेम-पाश में आबद्ध करने वाली क्षत्राणी, वात्सल्यमयी माता तथा प्रेमल पत्नी है।

'महाभारत' का कच संजीविनी विद्या का हरण करने के बाद देवलोक चला जाता है, फिर दृष्टिगत नहीं होता पर यहाँ उसका उत्तर चरित्र भी प्रस्तुत किया गया है। वह आत्मविकास के लिए प्रयत्नशील मानव का प्रतिनिधि है तो ययाति आठों पहर सुख-भोग में लिप्त आज के अतृप्त मानव का।

लेखक ने उपन्यास में प्रेम के विविध रूप प्रस्तुत किये हैं। एक ओर यदि कच के माध्यम से उसने उदात्त प्रेम का चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर ययाति और देवयानी के दुःखी वैवाहिक जीवन का कारण पति-पत्नी का स्वभाव और रुचि-वैषम्य बताया है। लेखक ययाति के जीवन-चित्र तथा मानसिक संघर्ष द्वारा बताना चाहता है कि मनुष्य भोग एवं इंद्रिय-सुख के सागर में कितना ही डूबे, उसकी वासना कभी तृप्त नहीं हो सकती, अतः मर्यादित उपभोग ही वांछनीय है। कच के माध्यम से लेखक संदेश देता है कि मानव-आत्मा अनेक गुप्त, सात्त्विक शक्तियों का भांडार है, आज के त्रस्त मानव को इन्हीं शक्तियों का विकास करना चाहिए। वासना एवं मनोविकारों का नियंत्रण और उदात्तीकरण कर, नव जीवन-मूल्यों को अपना कर ही सुख-शांति स्थापित की जा सकती है, शुक्राचार्य के समान केवल सदिच्छा और शुभकामना व्यक्त करने से काम नहीं चलेगा।

आत्मा-परमात्मा, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, सुख-आनंद आदि विषयों पर गंभीर तात्त्विक विमर्श, काव्यात्मक भाषा, काव्यमय रमणीय कल्पना, गूढ़ार्थ सूक्तियाँ उपन्यास को कलात्मक सौंदर्य प्रदान करती हैं।

ययाति *(म० पा०)*

यह वि० स० खांडेकर (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'ययाति' (दे०) का नायक है।

ययाति पौराणिक पात्र होते हुए भी आज के नये-नये सुखोपभोग के पीछे पागल बने उस अतृप्त मनुष्य का प्रतिनिधि है जिसके परंपरागत जीवन-मूल्य नष्ट हो गए हैं और अभी नवीन जीवन-मूल्यों का निर्माण नहीं हुआ है। पौराणिक ययाति के समान वह वीर, साहसी और पराक्रमी है, आरंभ से ही सौंदर्य और सामर्थ्य का उपासक है; ममता, मैत्रीभाव, सहानुभूति और संवेदना होते हुए भी यदि वह अमर्यादित होकर उन्मुक्त वासना के मार्ग पर चल पड़ता है तो उसका कारण कुछ तो उसकी धमनियों में प्रवाहित होने वाला कामुक, व्यसनी पितृ-कुल का रक्त है और कुछ उसकी पत्नी देवयानी का अहंकारी, महत्वाकांक्षी और प्रेमभंग के कारण कुंठाग्रस्त स्वभाव है। लेखक ने ययाति के इन गुण-दोषों का चित्रण इतनी कुशलता एवं उसकी भाव-वीचियों का विश्लेषण इतनी सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से किया है कि वह पौराणिक पात्र प्रतीत न होकर किसी मनोवैज्ञानिक उपन्यास का पात्र प्रतीत होता है। देवयानी को अपनाने के पीछे माँ से बदला लेने का भाव तथा देवयानी जैसी सुंदर पत्नी के होते हुए भी शर्मिष्ठा के प्रति आसक्ति का कारण मन की अतृप्ति है। शर्मिष्ठा को त्यागने के बाद उसके हृदय का द्वंद्व एवं पश्चात्ताप दिखाकर लेखक ने उसे वस्तुतः आज के सामान्य मानव का प्रतिनिधि बनाने का प्रयास किया है।

ययातिचरित्रमु *(ते० ले०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक पोन्नेकंटि तेलगन्ना (दे०) हैं। गोलकोंडा के मुसलमानी शासक तथा उनके आश्रित कर्मचारियों ने भी तेलुगु-कविता की श्रीवृद्धि में अधिक योगदान किया था। तेलगन्ना अमीनखान नामक एक ऐसे ही पदाधिकारी को अपना 'ययातिचरित्रमु' समर्पित किया था। यह 'स्वच्छ तेलुगु' में लिखा गया एक काव्य है। इसमें कुल मिलाकर 737 गद्य और पद्य हैं। देवयानी और शर्मिष्ठा नामक कन्याओं तथा ययाति नामक राजा के विवाह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबद्ध कथा इसमें वर्णित है। इसका कथानक 'महाभारत' (दे०) से लिया गया है। इसके अंतर्गत प्रसंगवश संक्षिप्त रामकथा का भी वर्णन किया गया है। पुर-वर्णन, ऋतु-वर्णन, विरह-वर्णन आदि काव्य-रचना-संबंधी विविध वर्णन भी इसमें पाए जाते हैं।

'स्वच्छतेलुगु' (अच्चतेलुगु) एक प्रकार की शैली है। आरंभ से लेकर तेलुगु-भाषा के अंतर्गत संस्कृत और प्राकृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता रहा है। किसी-किसी कवि की रचना में खास तेलुगु-शब्दों की अपेक्षा इन्हीं की संख्या अधिक पाई जाती है। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में 'अच्चतेलुगु' में रचना करने का प्रयास किया गया था। इसमें भी केवल तत्सम शब्दों को छोड़कर देशज तथा तद्भव शब्दों की तेलुगु भाषा-शैली अवतरित हुई थी जिसका नाम 'अच्च-तेलुगु' रखा गया था। इस शैली के प्रवर्तक पोन्नेकंटि तेलगन्ना थे। इनका कहना है कि काव्यों के बीच यत्र-तत्र पाए जाने वाले 'अच्चतेलुगु' शब्द तथा 'अच्च-तेलुगु' छंद भी प्रशंसा के योग्य हैं तो पूरा काव्य 'अच्च-तेलुगु' में लिखा जाता तो कितना महत्वपूर्ण होता।

तेलुगु भाषा-शैली संबंधी आत्मनिर्भरता को प्रमाणित करने संबंधी इनका प्रयास सचमुच सराहनीय है। इन्हीं का अनुकरण कर कूचिमँचि तिम्मकवि (दे०) जैसे कुछ अन्य लेखक भी अच्चतेलुगु-शैली में काव्य लिखने लगे थे। पर इस प्रकार की शैली प्रचलित नहीं हो पाई। कारण, संस्कृत तत्सम शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त 'अच्च-तेलुगु' शब्दों का संयोजन अव्यावहारिक तथा दुरूह ही रह गया था। लेखक तथा पाठक दोनों की दृष्टि से इस प्रकार की शैली क्लेशपूर्ण ही होती है। पर इस दिशा में प्रथम प्रयास करके स्वतंत्र 'अच्चतेलुगु'-काव्य लिखने में तेलगन्ना की सफलता अत्यंत स्तुत्य है।

तेलुगु-भाषा-शैली के विकास के अंतर्गत प्रति-क्रिया के रूप में उत्पन्न 'अच्चतेलुगु' शैली की प्रतिनिधि-कविता के रूप में 'ययातिचरित्रमु' का स्थान विशेष महत्व का है।

यशःपाल (*सं० ले०*) [समय—तेरहवीं शती]

'मोहराजपराजय' (दे०) नामक प्रतीक नाटक के कर्ता यशःपाल मोढ़ जाति के बनिये थे तथा राजा अजयदेव चक्रवर्ती के कृपापात्र थे। इनके पिता का नाम धनदेव तथा माता का नाम रुक्मिणी देवी था।

'मोहराजपराजय' इस परंपरा का प्रसिद्ध नाटक है। इसका प्रथम प्रयोग महावीर-जन्मोत्सव के समय कुमारविहार में हुआ था। इसमें पाँच अंक हैं। इसमें हेम-चंद्र द्वारा चालुक्य नरेश कुमारपाल को जैन धर्म में दीक्षित करना, पशुओं की हिंसा का निषेध करना आदि बातों का वर्णन किया गया है। इसमें कुमारपाल, हेमचंद्र एवं विदूषक तो मनुष्य पात्र हैं, शेष पुष्पकेतु, विवेक आदि प्रतीक।

सरल तथा सुबोध संस्कृत में लिखा गया यह नाटक बड़ा महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह बड़ा उपादेय है।

यश न.शाह (*गु० पा०*)

चंद्रकांत बक्षी (दे०) के उपन्यास 'आकार' का नायक यश न. शाह है। यश न.शाह का जीवन बड़ा ही लापरवाही-पूर्ण है, वह अस्तित्ववादी ढंग से जीवन को जी लेने का उपक्रम करता है। उसकी महत्वाकांक्षा है कि वह सात-आठ वर्षों की सक्रिय ज़िंदगी जी ले। जीवन को लेकर उसकी एक विचित्र धारणा बन गई है : मनुष्य अगर समझदारी से विचार करे तो जीवन का एक ही उचित अंत हो सकता है और वह है आत्महत्या। यही कारण है कि वह शराब पीता है और हर पेग के साथ यह अनुभव करता है कि वह आत्महत्या की एक खुराक पी रहा है। वह जेल जाता है, वेश्यागृहों की यात्रा करता है और कोयला-खान में नौकरी करता है, पर सभी कुछ तटस्थ और आत्मरत भाव से। वेदना को भोग लेने की उसमें ग़ज़ब की शक्ति है। अपने पिता की रखैल के यहाँ जाने में भी उसे संकोच नहीं होता। वह वर्तमान को बड़े ही तटस्थ व निःस्पृह भाव से जीता है, निराशा और एकाकी-पन में भी जिए जाता है। सुनसान रातों में वह अकेला ही, दुनिया में एक भी स्पंदन जगाए बिना, एक 'आकार' के रूप में निरुद्देश्य भटकता रहता है। उसका संपूर्ण जीवन मॉर्ग के खाने में सोने की एकमात्र इच्छा में व्यतीत हो जाता है। यश न.शाह का चरित्र अस्वित्ववादी चिंता के व्यवस्थित समायोग को सूचित करता है।

यशपाल (*हिं० ले०*) [जन्म—1903 ई०]

हिंदी-कथा साहित्य के अत्यंत महत्वपूर्ण हस्ता-क्षर यशपाल का जन्म फ़िरोजपुर छावनी में एक मध्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्गीय परिवार में हुआ। इनकी माँ इन्हें आर्य समाज के तेजस्वी प्रचारक के रूप में देखना चाहती थीं। फलतः इनकी प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में हुई। वहाँ के राष्ट्रीय वातावरण ने बालक यशपाल के हृदय में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भर दी। तदनंतर लाहौर के नेशनल कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने पर इनका परिचय भगतसिंह तथा सुखदेव जैसे क्रांतिकारियों से हुआ। यद्यपि यशपाल प्रारंभ में काँग्रेस के अहिंसावादी सिद्धांतों में आस्था रखते थे किंतु अनुभव की कसौटी पर परखने के बाद इन्हें यह रास्ता ठीक नहीं जँचा और इन्होंने बम तथा तमंचे वाले मार्ग को ठीक समझकर सशस्त्र क्रांति के आंदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। प्रसिद्ध क्रांतिकारी होने के फलस्वरूप ये तद्युगीन भारत की ब्रिटिश सरकार की आँखों में सदैव खटकते रहते थे और परिणामतः या तो फ़रार रहते थे या फिर जेलों में अतिथि बनते थे। 1932 ई० में पुलिस से मुठभेड़ होने और गोलियों के अच्छे-खासे प्रतिदान के बाद ये गिरफ़्तार कर लिये गए। चौदह वर्ष के कठोर कारावास के भागी हुए। जब 1938 ई० में उत्तर प्रदेश में काँग्रेसी मंत्रिमंडल बना तब अन्य राजनीतिक बंदियों के साथ इन्हें भी छोड़ दिया गया। तदुपरांत इन्होंने 'विप्लव' नामक मासिक पत्रिका निकाली। यह पत्रिका अत्यल्प समय में ही लोकप्रिय हो गई, लेकिन 1941 ई० में ये फिर गिरफ़्तार कर लिये गए और इस प्रकार यह पत्रिका बंद हो गई। जेल में रहते हुए इन्होंने देश-विदेश के अनेक लेखकों की रचनाओं का अध्ययन किया।

यशपाल ने हिंदी-गद्य को अनेक विधाओं—कहानी, उपन्यास, निबंध, यात्रावृत्त, आत्मकथा, संस्मरण आदि द्वारा समृद्ध किया है, किंतु इनका मुख्य प्रदेय कथा-साहित्य के अंतर्गत ही है। 'ज्ञानदान' (1943 ई०), 'अभिशप्त' (1943 ई०), 'भस्मावृत चिंगारी' (1947 ई०) 'वो दुनिया' (1948 ई०), 'फूलो का कुरता' (1949 ई०), 'उत्तराधिकारी' (1951 ई०), 'चित्र का शीर्षक' (1951 ई०), 'तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूँ' (1954 ई०), 'तर्क का तूफ़ान' (1954 ई०), 'ओ भैरवी' (1958 ई०), 'सच बोलने की भूल' (1962 ई०), 'खच्चर और आदमी', (1965 ई०), आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं तो 'दादा कामरेड' (1941 ई०), 'देश-द्रोही' (1943 ई०), 'पार्टी कामरेड' (1947 ई०), 'मनुष्य के रूप' (1949 ई०), 'दिव्या' (दे०) (1954 ई०), 'अमिता' (1956 ई०), 'झूठा सच' (दे०) (दो भाग) (1960 ई०) इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'न्याय का संघर्ष' (1940 ई०), 'गांधीवाद की शव-परीक्षा' (1942 ई०), 'देखा सोचा समझा' (1951 ई०), 'मार्क्सवाद' आदि इनके लोकप्रिय निबंध-संग्रह हैं तो 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' (1953 ई०), 'राह बीती' (1956 ई०) आदि यात्रावृत्त-विषयक कृतियाँ हैं। 'सिंहाव-लोकन' (1952 ई०) संस्मरणात्मक शैली में लिखी गई आत्मकथात्मक रचना है।

हिंदी-साहित्य के इतिहास में यशपाल सर्वप्रथम कहानीकार के रूप में ही उभर कर आए। भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक विषमता, निरर्थक आदर्शवादिता, रूढ़िवादिता, यथार्थ-विमुखता, दीनता, भूख, बेकारी, आदि का चित्रण और उनके विरुद्ध निर्मम प्रहार, नये नैतिक मूल्यों की स्थापना आदि इनकी कहानियों का मूल स्वर है। मध्यवर्गीय भारतीय समाज की असंगतियों विरोधाभासों, झूठी प्रतिष्ठा आदि विभिन्न विषमताओं को उजागर करने में इन्हें कमाल हासिल है। घटनाओं का समुचित नियोजन करते हुए रोचकता की सृष्टि और निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति इनकी कहानियों के शिल्प-विधान की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

यशपाल हिंदी-उपन्यास के इतिहास में भी अन्यतम स्थान रखते हैं। कहानियों के समान उपन्यासों में भी इन्होंने सड़ी-गली पुरानी मान्यताओं तथा रूढ़ियों का विरोध करते हुए नये जीवन-मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि में आस्था रखने के कारण इनकी औपन्यासिक कृतियों में भी मार्क्सवादी विचारधारा अनुस्यूत है। यह स्थिति इनकी प्रथम औपन्यासिक कृति 'दादा कामरेड' से लेकर 'झूठा सच' जैसे बहुआयामी एवं विस्तृत आधारफलक वाले उपन्यासों तक में देखी जा सकती है। राजनीति तथा रोमांस का अपूर्व सम्मिलन करते हुए यौवनाकर्षण को मनुष्य की सर्वाधिक स्वाभाविक सहज एवं तीव्रतम अनुभूति के रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी इनके उपन्यासों में प्राप्त होती है। मतवाद के घेरे में घिरे रहने के कारण अनेक बार इनके पात्र यांत्रिक हो गए हैं। फिर भी 'दिव्या' और 'झूठा सच' इनकी औपन्यासिक क्षमता को प्रतिफलित करने वाली महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। 'दिव्या' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें बौद्धयुगीन पृष्ठभूमि में युग-युगांतर से दलित-पीड़ित नारी की करुण कथा तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण के आधार पर नारी-जीवन की सार्थकता को रूपायित किया गया है। दो खंडों में विभक्त 'झूठा सच' 1942 ई० से 1952 ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक के भारत को उसकी समग्रता में रूपायित किया गया है—विभाजन से पूर्व के पंजाब के मध्यवर्गीय समाज के रहन-सहन, सामाजिक-मानसिक गठन, राजनीतिक दाँव-पेंच, भारत-विभाजन और उसके फलस्वरूप हुए सांप्रदायिक दंगे, भीषण रक्तपात, लाखों व्यक्तियों का बेघरबार होना, काँग्रेसी शासन, नेताओं की स्वार्थपरता, स्वतंत्र भारत का सामाजिक जीवन आदि विभिन्न प्रवृत्तियों का मार्मिक प्रत्यंकन किया गया है।

निबंध-रचना के क्षेत्र में यशपाल ने अनेक शैलियों का प्रचार किया है। 'गांधीवाद की शव परीक्षा', 'मार्क्सवाद' आदि को राजनीतिक प्रबंध की संज्ञा दी जा सकती है तो 'देखा सोचा समझा' में संकलित अधिकांश निबंध विचारात्मक निबंधों की श्रेणी में आते हैं। 'चक्कर क्लब', 'बात-बात में बात', 'बीबी जी कहती हैं मेरा चेहरा रोबीला है' आदि में संकलित निबंधों में कथात्मक शैली का प्रश्रय लिया गया है तो 'मेरी पचपनवीं वर्षगाँठ', 'नया वर्ष' आदि कतिपय निबंध ऐसे भी हैं जिन्हें शुद्ध वैयक्तिक निबंधों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

'लोहे की दीवार के दोनों ओर', 'राहबीती' में संकलित यात्रावृत्तों के अंतर्गत लेखक ने अपनी विदेश-यात्रा में पड़ने वाले विभिन्न स्थानों, स्कूलों, संग्रहालयों, अस्पतालों, कार्यालयों, स्टेशनों, प्रेसों, निवासियों की जीवन-पद्धति आदि का मनोहारी चित्रण किया है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि यशपाल ने विषय के निर्भ्रांत प्रतिपादन, आवश्यकतानुरूप जन-भाषा-प्रयोग, हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण सहज एवं बोधगम्य शैली का आश्रय लेते हुए हिंदी-गद्य-साहित्य को विभिन्न साहित्य-रूपों के माध्यम से समृद्ध किया है।

यशवंत उर्फ यशवंत दिनकर पेंढरकर *(म० ले०)*
[जन्म—1899 ई०]

यशवंत का जन्म सातारा ज़िले के गाँव के निकटवर्ती तारल स्थान में हुआ था। इनका बाल्यकाल गाँव में ही बीता था और तत्पश्चात् नौकरी के निमित्त पूना आए थे। येरवदा केंद्रीय कारावास की रिफ़र्मेटरी में अध्यापन करते हुए इन्होंने बाल अपराधियों की मनोवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन किया था। इसी के प्रभावस्वरूप 'बंदीशाला' नामक खंडकाव्य की इन्होंने रचना की थी। 1939 ई० में ये बड़ौदा के राजकवि बने थे और भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जब महाराष्ट्र राज्य बना तो ये महाराष्ट्र कवि बने।

इनकी रचनाएँ ये हैं—

(1) मुक्तक : 'यशवंती', 'यशोधन', 'भावमंथन', 'यशोगंध 'यशोनिधि', 'यशोगिरी', 'ओजस्विनी' 'पाणपोई', 'वाकळ', 'पर्वकाळ ये नवा', आदि।

(2) खंडकाव्य : 'बंदिशाळा', 'जयमंगला', 'काव्य-किरीट'।

(3) महाकाव्य : 'छत्रपति शिवाजी'।

संस्कृत-कवि विल्हण-रचित 'चौरपंचाशिका' (दे०) में वर्णित प्रेमकथा को आधुनिक संस्पर्श प्रदान कर इन्होंने 'जयमंगला' की रचना की थी तथा बड़ौदा के राजा महाराज प्रतापसिंह गायकवाड़ के सिंहासनारूढ़ होने की घटना के आधार पर,इन्होंने 'काव्य-किरीट' की रचना की। आधुनिक काल में स्वराज्य-संस्थापक छत्रपति शिवाजी के भव्य आदर्श के पुनराख्यान की आवश्यकता का अनुभव कर इन्होंने 'छत्रपति शिवाजी' महाकाव्य रचा था। इनका अधिकांश काव्य प्रगीतात्मक है।

मराठी में नूतन काव्य-प्रयोग की दृष्टि से 1923 ई० में 'रविकिरण-मंडळ' नामक संस्था की स्थापना हुई थी। कवि यशवंत उक्त संस्था के प्रतिष्ठित सदस्य थे। इस मंडल के कवियों ने स्वरचित कविता के सस्वर गायन की परिपाटी चलाई थी। यशवंत का काव्य इस बात का प्रमाण है कि जनकवि जनकाव्य भी हो सकता है।

यशवंत महाराष्ट्र की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गायक कवि हैं। इन्होंने अंगी भारत की समृद्धि के लिए अंग रूप महाराष्ट्र का उद्बोधन किया है। कवि की महाराष्ट्र-भक्ति देशभक्ति की ही पर्याय है। इन्होंने ऐसे अनेक प्रेमगीतों की रचना की है जो कलात्मकता की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं।

यशवंत की काव्य-भाषा में अबाध प्रवाह है तथा शैली सुष्ठु एवं मार्दवयुक्त है। ग्रामीण भाषा में इन्होंने 'न्याहरीचा वकुत', 'घर' आदि ग्रामगीतों की रचना कर परंपरा का सूत्रपात किया।

यशवंतराव महाकाव्य *(म० कृ०)*

इस महाकाव्य क लेखक वासुदेव वामन शास्त्री खरे हैं। ये साहित्य-क्षेत्र में कवि, नाटककार और इतिहास संशोधक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस कहाकाव्य का प्रकाशन 1888 ई० में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत के महाकाव्यों के आदर्श पर इसकी रचना हुई है। यशवंतराव होळकर के ऐतिहासिक चरित्र पर प्रस्तुत महाकाव्य रचा गया है। यह काव्य ऐतिहासिक तो नाममात्र के लिए है क्योंकि इसमें कवि का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यों का आलेखन करना न होकर उस समय की परिस्थिति का चित्रण करना रहा है। यही कारण है कि इसमें यद्यपि मल्हारराव होळकर, सदाशिवराव, राघोबा, दिलेरखान जैसे ऐतिहासिक पात्र हैं तथापि इसकी कथा काल्पनिक ही है। इसकी एक भी घटना इतिहास, दंतकथा या पोवाडे पर आश्रित नहीं।

कवि ने आद्यंत रहस्यमय वातावरण का निर्माण किया है, जिससे अंत तक पाठक को यह पता नहीं चलता कि यशवंतराव व मल्हारराव का संबंध पिता-पुत्र का है। अंत में इसका कुशलता से रहस्योद्घाटन हुआ है।

महाकाव्य के अनुकूल यह 24 सर्गों में बद्ध काव्य-रचना है, जिसमें पर्याप्त छंद-वैविध्य और प्रकृति-वर्णनात्मक स्थल हैं। वीर रस इसका अंगीरस है तथा रौद्र, अद्‌भुत, वात्सल्य, श्रृंगार एवं करुण गौण रस हैं। प्रसन्न शैली में इसकी रचना हुई है। इसने निश्चय ही मराठी का गौरव बढ़ाया है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने भी हिंदी-लेखकों के सामने इस महाकाव्य का आदर्श रखा था।

यशस्तिलकचंपू *(सं० कृ०)* [समय—959 ई०]

इसकी रचना दिगंबर जैन सोमप्रभसूरि ने की थी। इस चंपू में आठ उच्छ्‌वास हैं। इनमें अवंति के राजा यशोधर, उसकी पत्नी की कपट-धूर्तता, राजा की मृत्यु, नाना योनियों में जन्म तथा अंत में जैन धर्म में दीक्षित होने का वृत्तांत बड़ी निपुणता से दिया गया है। यह कथा गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' पर आधृत है। इसी के आधार पर पुष्पदंत का 'जसहरचरित' नामक अपभ्रंश-काव्य तथा वादिराज सूरि का 'यशोधरचरित' नामक संस्कृत-काव्य लिखा गया है। इसकी रचना-शैली तथा जन्मांतर-वर्णन का बाण (दे०) की 'कादंबरी' (दे०) से साम्य है। अंतिम तीन उच्छ्‌वास कवि ने जैन धर्म के विवेचन के लिए दिए हैं। इसकी शैली अलंकृत तथा भाषा प्रांजल है।

यशोधरचरिते *(क० कृ०)*

मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि जन्न (दे०) जो वीरबल्लाल नरसिंह (1173-1220 ई०) के आश्रय में थे, की रचना 'यशोधरचरित' कन्नड साहित्य का एक गौरव ग्रंथ है। जैन-परंपरा में विश्रुत कथानक का वर्णन 'यशोधरचरित' में किया गया है। संस्कृत तथा प्राकृत में इस विषय से संबंधित ग्रंथ मिलते हैं। यद्यपि जन्न ने यह बताया है कि उनके पूर्व कन्नड में भी इस विषय पर काव्य लिखे गये थे तथापि वे ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं। अतः जन्न की रचना ही इस विषय की प्रथम रचना मानी जा सकती है।

जन्न ने 'सरस पदों में 'यशोधरचरिते' का निर्माण किया है। जैन लोगों में प्रचलित 'जीवदयाष्टमी' व्रत-कथा में यशोधर की कथा का रूप विद्यमान है। जन्न के काव्य में वर्णित कथा संक्षेप में यों है: 'मारिदत्त नामक राजा राजकुमार अभयरुचि और राजकुमारी अभयपति की चंड-मारी (काली) के सामने बलि देना चाहता है। तब वे दोनों अपने जन्मांतर की कथाएँ कहते हैं जिन्हें सुनकर मारिदत्त अहिंसा के महत्व को समझ जाता है और सन्मार्ग ग्रहण करता है। राजा यशोधर और उसकी माता चंद्रमति इस जन्म में अभयरुचि और अभयमति के रूप में उत्पन्न हुए हैं। यशोधर की रानी अमृतमति राजप्रासाद के एक विकलांग और कुरूप महावत का गीत सुनकर उसके प्रति आसक्त हो जाती है और चरित्रभ्रष्ट हो जाती है। यशोधर और चंद्रमति हिंसा की कल्पना करने मात्र से पशु-पक्षी आदि योनियों में जन्म लेकर नाना कष्ट भोगने के बाद अभयरुचि और अभयमति के रूप में जन्म लेते हैं। अमृतमति नरक का कीड़ा बन जाती है।' अमृतमति की कामांधता ही कथा का केंद्रबिंदु है। वह अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारकर अधःपतित हो जाती है।

जन्न ने अपने काव्य के लिए जो कथानक चुना, वह छोटा है। परंतु उसका प्रभाव गहन है। प्रसंगोद्‌भावना में नवीनता और चारुता लाने में उनको विशेष सफलता मिली है। वर्णन करने में कवि जितना निपुण है, पात्रों का मनोविश्लेषण करने में भी वह उतना ही चतुर है।

'यशोधरचरिते' में संयमशीलता, उदात्तता, धार्मिक भावना और मानव दुर्बलताओं का वर्णन हुआ है। मनसिज की माया और बलीयसी विधि की लीला मनुष्य को पतित कर देती है' जैसी सुंदर उक्तियाँ तो इस काव्य में भरी पड़ी हैं। उसमें रति-रहस्य का उद्घाटन और प्रणय-समस्या का समाधान है। उसमें चित्रित श्रृंगार, रौद्र, शांत आदि रसों, मनोहर चरित्र-चित्रण तथा प्रसादपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा-शैली को देखकर सहज रूप से उसको हम सफल महाकाव्य कह सकते हैं।

यशोधर महेता *(गु० ले०)*

(दे०) महेता, यशोधर।

यशोधरा *(क० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1933 ई०]

यह मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे० मास्ति) का गीत-नाट्य है जिसमें उनका कवि-हृदय अत्यंत उदात्त रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी में स्व० मैथिलीशरण गुप्त (दे०) ने 'यशोधरा' काव्य लिखा है। मास्तिजी की कृति की तुलना उससे हो सकती है। नाटक की दृष्टि से मास्तिजी की यह कृति अत्यंत सफल है। काव्य की दृष्टि से भी एक सुंदर रचना कही जा सकती है।

इसमें छह स्थान अथवा प्रवेश हैं। प्रथम प्रवेश में सूत्रधार के आगमन के बाद सिद्धार्थ के पिता, उनकी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और अंतःपुर की परिचारिका अंबिका का परिचय प्राप्त होता है। दस वर्षों के दीर्घ विरह को सहने वाली यशोधरा को प्राप्त परिचारिका वृद्धा अंबिका सांत्वना देती हुई दिखाई पड़ती है। रात में देखे गये स्वप्न से भीत यशोधरा को अंबिका धैर्य बँधाती है। उसी समय राहुल का आगमन होता है। राहुल निज जनक को बुला लाने की बात करता है तो यशोधरा घबराती है। वह राजा को बुला भेजती है। राजा समयोचित शब्दों से यशोधरा को धैर्य बँधाते हैं, राहुल के हठ को वे स्वीकार करते हैं, उसको अंबिका के साथ सिद्धार्थ के पास भेजते हैं। द्वितीय प्रवेश में चेनवन की ओर वे दोनों जाते हुए दीखते हैं। तृतीय प्रवेश में शिष्यों सहित गुरुदेव बुद्ध को देखकर अंबिका प्रभावित हो जाती है। वह उनको गुरु स्वीकार कर लेती है। बुद्ध राहुल की प्रार्थना मान लेते हैं। आश्रम के समस्त लोग—अंबपाली भी—राहुल के दर्शन से असीम आनंद में निमग्न हो जाते हैं। चतुर्थ प्रवेश में दो ब्राह्मण कौंडिन्य और कौशिक के संभाषण द्वारा तथा एक वृद्धा, तरुणी और बच्चे के मुँह से बुद्धदेव की महत्ता का उद्घाटन किया गया है। पंचम प्रवेश में यशोधरा के अंतःपुर का वर्णन है। बुद्ध कपिलवस्तु आ गये हैं। सब लोग उन्हें देखने जाते हैं परंतु मानिनी यशोधरा नहीं जाती। आनंद वहाँ आता है। उसके साथ यशोधरा का संभाषण बड़ा मार्मिक है। अंतिम प्रवेश में स्वयमेव बुद्धदेव का यशोधरा के पास आने का वर्णन है। यशोधरा गुरु-पति से उपदेश की याचना करती है। भय-संशय, आशा निराशा, धर्मसंकट-अंतर्द्वंद्व का इस प्रवेश में अच्छा चित्रण हुआ है। मास्तिजी की यशोधरा सीता से कम नहीं है, वह शकुंतला के समकक्ष है। उसके चित्रण में उनकी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रकट हुई है। बुद्धदेव आनंद, राजा, अंबिका आदि के चरित्रों का चित्रण भी रम्य है।

यशोधरा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

मैथिलीशरण गुप्त (दे०) का यह प्रगीतात्मक नाट्य-प्रबंध बौद्ध-साहित्य की उपेक्षित यशोधरा (दे०) का उद्धार करने के उद्देश्य से लिखा गया है। कवि को 'भगवान् बुद्ध के अमृत-तत्त्व' की अपेक्षा 'गर्विणी गोपा की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता' ने ही अधिक आकृष्ट किया है। गोपा के माध्यम से उसे अपनी वैष्णव भावना का नैवेद्य भगवान् बुद्ध के चरणों में रखने का अवसर मिल गया है। कथानक बौद्ध होते हुए भी उसका प्रतिपाद्य वैष्णव-भावना से ओतप्रोत है।

सिद्धार्थ जरा, रोग और मृत्यु का साक्षात्कार कर अभिनिष्क्रमण करते हैं। परित्यक्ता यशोधरा को इस बात का दुःख होता है कि पति उससे कह कर नहीं गये। परंतु उसका विश्वास है कि प्रेम की शक्ति से वह अपने पति को खींच लेगी और इस प्रकार अपने मान की रक्षा करेगी। राहुल-जननी जब नटखट पुत्र के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देने में और गृह-भार ढोने में असमर्थ होने लगती है तो वनवासी को पुकार उठती है। बुद्ध भगवान् उसकी प्रार्थना सुन लेते हैं और स्वयं उसके द्वार तक आते हैं। वह अपने भिक्षुक पति को पुत्र का दान कर देती है।

इस कृति में शृंगार और वात्सल्य के चित्र अधिक हैं। शृंगार में भी विप्रलंभ की प्रधानता है। वात्सल्य-वर्णन की दृष्टि से राहुल की बाल चेष्टाएँ और जननी की प्रतिक्रियाएँ आधुनिक मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। आधुनिक हिंदी-काव्य की संभवतः यह एकमात्र उत्कृष्ट कृति है जिसमें वात्सल्य के प्रसंगों की इतनी सुंदर रसात्मक योजना हुई है।

जाया और जननी के उद्गारों ने अनेक श्रेष्ठ गीतों को जन्म दिया है। ये गीत आधुनिक हिंदी-काव्य में बेजोड़ हैं। यशोधरा और राहुल-संबंधी मौलिक उद्भावनाएँ भी रमणीय हैं। बुद्ध-संबंधी परवर्ती हिंदी-साहित्य पर इस कृति का गहरा प्रभाव पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोधरा *(हिं० पा०)*

यशोधरा मैथिलीशरण गुप्त (दे०) द्वारा रचित प्रगीतात्मक नाट्य-प्रबंध 'यशोधरा' (दे०) की नायिका है। सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा के जाया और जननी रूपों का चित्रण विस्तार से किया गया है। उसका प्रेयसी रूप केवल स्मृति-चित्रों द्वारा ही सूचित है। विरक्त-विहारी पति द्वारा परित्यक्ता का रूप-गर्व खंडित हो जाता है और अर्द्धांगिनी की अधिकार-चेतना जागृत हो जाती है। वह पति की खोज कर उनके मार्ग में बाधा बनना नहीं चाहती। यदि उसकी कर्तव्य-साधना प्रबल है तो पति को स्वयं आना पड़ेगा। वह चल कर पति के पास नहीं जायेगी। जो कुछ वे लायेंगे उसमें से आधा भाग उसका होगा। अतः यह संकल्प करती है कि उनके आने तक राहुल को थाथी समझ कर पालेगी। जननी का यह दायित्व भी कठिन है। राहुल नटखट है। ऐसे-वैसे प्रश्न पूछता है। बाल-हठ करता है। एक दिन तो हठपूर्वक माला पहनाकर निरलंकार रहने की प्रतिज्ञा ही भंग करा देता है। बाल-मनोविज्ञान से परिचित होकर भी यशोधरा तंग आ जाती है और संन्यासी को पुकार उठती है। संन्यासी आ गये और मानिनी के मान की रक्षा भी हुई। जब पति भिक्षुक बनकर द्वार पर आ गये तो उसने बेटे राहुल का दान कर दिया।

यशोधरा का चरित्र कवि की नवोन्मेषशालिनी कल्पना के संस्पर्श से अत्यधिक उज्ज्वल बन गया है। उसके जाया और जननी रूपों के चित्रण में कवि ने अनेक उद्भावनाएँ की हैं। पुत्र का दान करने वाली बौद्ध-साहित्य की यह उपेक्षिता अपने पति से भी अधिक गौरवान्वित हो गई है। इस वैष्णवी की विचारधारा इतनी परिपक्व है कि वह अपने पति के सिद्धांतों का तर्क-युक्तिपूर्वक खंडन करती है। यहाँ ऐसा लगता है कि वैष्णव कवि के पक्षपात के कारण पति के पीछे भिक्षुणी बन जाने वाली साध्वी थोड़ी-सी भटक गई है। फिर भी सब मिलाकर यशोधरा कवि की अमर सृष्टि है। उसका प्रभाव इसी से आँका जा सकता है कि हिंदी के अनेक परवर्ती नारी-पात्रों में उसकी प्रतिच्छवि मिलती है।

यशोबंतदास *(उ० ले०)* [समय—पंद्रहवीं-सोलहवीं शती० ई०]

यशोबंतदास चैतन्यदेव (दे०) के समकालीन ज्ञान-मिश्रा भक्ति के उपासक, जगन्नाथ के भक्त एवं पंचसखाओं (दे०) में से एक थे। इनके पिता जग्गू मल्लिक कटक ज़िले के जगतसिंहपुर के निकट अढंग ग्राम के निवासी थे। वहीं इनका जन्मस्थान है। बाल्यावस्था से ही ये सांसारिकता के प्रति उदासीन थे। पुरी में दीक्षा लेने के बाद ये अढंग लौट आये, जहाँ इनका विवाह तत्कालीन ज़मींदार रघुराम दास की बहन अंजना देवी से हुआ। अढंग में आज भी इनका मठ है।

इनके 'शिव स्वरोदय' ग्रंथ की रचना संस्कृत के 'स्वरोदय' ग्रंथ की विषय-वस्तु के आधार पर हुई है। इसमें सरल भाषा में योग, तंत्र, मंत्र आदि का वर्णन हुआ है। 'प्रेम भक्ति ब्रह्म गीता' में ज्ञान-मिश्रा भक्ति की श्रेष्ठता सरल भाषा में प्रतिपादित की गई है। गोविंदचंद्र में बंगदेश के राजा के सर्वस्व-त्याग एवं हड़प्पा से दीक्षा लेने की बात वर्णित है। 'चौरासी आज्ञा' तथा इनकी माळिकाएँ (दे०) जनप्रिय भजनों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

यहूदी की लड़की (उर्दू० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

'यहूदी की लड़की' उर्दू के प्रसिद्ध नाटककार आग़ा हश्र काश्मीरी (दे०) का लिखा हुआ नाटक है। आग़ा हश्र ने अपने नाटकों द्वारा बदलते हुए समय के तकाज़ों को पूरा किया है।

'यहूदी की लड़की' नाटक की लोकप्रियता का रहस्य इसके स्वस्थ संवादों तथा कथानक के गठन में निहित है। आग़ा हश्र ने अपनी लेखनी के बल से सफलतापूर्वक त्रासदी को कामदी अथवा दुःखांत होते जा रहे कथानक को सुखांत बना दिया है। इसका पाठक पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अच्छा प्रभाव पड़ता है। लेखक की भाषा स्वस्थ एवं पात्रोपयोगी है।

याज्ञवल्क्यस्मृति *(सं० कृ०)* [रचना-काल—100 ई० पू० से 300 ई० तक]

याज्ञवल्क्य की इस कृति के रचना-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। डा० जॉली ने इस स्मृति का रचना-काल 400 ई० माना है और डा० जैकोबी ने इसे 200 ई० के बाद की रचना स्वीकार किया है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' पर विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा' टीका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

'याज्ञवल्क्यस्मृति' के अंतर्गत कहा गया है कि मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का राजनीति से संबंध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य ने इस विधान का निर्माण किया था कि एक न्यायालय के द्वारा दिए निर्णय के संबंध में दूसरे न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

प्रायः 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के सिद्धांत 'मनुस्मृति' (दे०) के सिद्धांतों के ही संक्षिप्त एवं संयत रूप हैं। परंतु फिर भी दोनों के सिद्धांतों एवं शिल्प में पर्याप्त भेद है। 'मनुस्मृति' में जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में विशद रूप से वर्णन किया गया है वहाँ 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' में यह विषय अस्पष्ट-सा ही है। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में ग्रहशांति एवं विनायकशांति का जो उल्लेख मिलता है। उसका 'मनुस्मृति' में अभाव है। 'मनुस्मृति' के विपरीत 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के अंतर्गत ब्राह्मण को शूद्र-कन्या के साथ विवाह का अधिकार दिया गया है। इसके अतिरिक्त मनु के विपरीत याज्ञवल्क्य नियोग के निंदक न होकर समर्थक हैं। मनु के समान याज्ञवल्क्य द्यूत निंदक भी नहीं हैं। जहाँ तक 'मनुस्मृति' एवं 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के भाषा-शिल्प का प्रश्न है, 'याज्ञवल्क्यस्मृति' की भाषा-शैली 'मनुस्मृति' की अपेक्षा अधिक परिष्कृत एवं आकर्षक है।

यात्रा (गु० कृ०)

1940 ई० में सुंदरम् (दे०) श्रीअरविंद के पूर्णयोग से प्रभावित होकर आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हुए और अहमदाबाद छोड़कर पांडीचेरी के निवासी बने। उनके जीवन में इससे नये आयाम खुले। उनकी प्रबुद्ध चेतना ने नये आध्यात्मिक संदर्भ पाये। इसी के परिपाक-रूप 'यात्रा' कविता-संग्रह (1951) प्राप्त हुआ। गुजराती कविता की विकास-यात्रा में यह एक अभूतपूर्व घटना मानी जाती है। इसमें गुजराती कविता ने नया मोड़ लिया है, नया आध्यात्मिक विषय अंगीकार किया है, नयी अभि-व्यक्ति, नयी शब्दावली, नये प्रतीक और नये बिंब अपनाये हैं। इस दृष्टि से 'यात्रा' युगांतरकारी रचना है।

कवि सुंदरम् ने 'यात्रा' में श्रीअरविंद के पूर्ण योग का भावात्मक रूप प्रस्तुत किया है। यह कृति काव्य के सौंदर्य-तत्त्व की अपेक्षा सत्य-तत्त्व पर विशेष बल देती है। इसमें कवि की साधना और 'अतिमनस' के प्रति उसकी अविचल श्रद्धा का स्वर मुखरित है। 'यात्रा' में नूतन विकास की चैतन्यमयी आशा की कविताएँ हैं। कवि का विचार है कि यंत्रयुग की निराशा और कुंठा का वातावरण अंततोगत्वा छिन्न-भिन्न होगा और मानव को दिव्य तत्त्व का आनंद एवं प्रकाश प्राप्त होगा। इस कृति में ऐसा अनुभव होता है मानो कवि की भाषा-शैली, छंद-योजना और कल्पना इस 'मंत्र कविता' के लिए ही निर्मित हुई हो। 'कस्मै···,' 'हे चकवा', 'राघवनुं हृदय', 'पूर्ण मयंक', 'विश्व आखुं' प्रभृति कविताएँ आध्यात्मिक स्पर्श और ऊर्ध्वचेतना से प्रेरित-प्रभावित हैं जिनमें कवि हमें दृश्यात्मक इहलोक से ऊपर 'अतिमनस' की अलौकिक सृष्टि का तेजोमय दिव्य दर्शन कराता है। निस्संदेह इन चिंतनपरक कविताओं से गुजराती कविता समृद्ध और नूतन हुई है।

यात्रा (बँ० प्र०)

लोकनाट्य-परंपरा के आश्रय से बंगाल में यात्रा का गठन हुआ था। यात्राभिनय को बहुत-से विद्वान् पांचाली (दे० 'पांचाली') का परिणत रूप मानते हैं। परवर्ती युग में यात्रा-नाट्याभिनय में विभिन्न भूमिकाओं में पृथक्-पृथक् व्यक्तियों ने अभिनय करना शुरू किया। लोक-परंपरा से प्रचलित बंगाल की 'यात्रा' जनसाधारण की नाट्यरस-पिपासा को चरितार्थ करती आयी है। सभा के बीच में यात्रा के रंगमंच की स्थापना की जाती है। उसमें कोई दृश्य-पट नहीं होता। नट-नटी पास ही स्थित सज्जा-कक्ष से चलकर रंगमंच पर आकर नाटक शुरू करते हैं और अपना अभिनय समाप्त कर फिर चले जाते हैं। रंगमंच के साथ ही गाने-बजाने वाले बैठते हैं और वे बीच-बीच में गीतों की सहायता से कथा को गति प्रदान करते हैं।

'यात्रा' शब्द का मूल अर्थ है देवताओं के उत्सव के उपलक्ष्य में शोभायात्रा या उत्सव। उसके बाद एक नया अर्थ हुआ—देवताओं के उत्सव के उपलक्ष्य में नाट्यगीति। और फिर इसी के साथ देवलीलात्मक अथवा अन्य कहानियों को लेकर नाट्यगीति की परंपरा चल पड़ी। यात्रा का प्राण गीत है, अभिनय एवं संलाप उसमें गौण हैं। ग्राम्य समाज की रुचि के अनुसार इसमें स्थूल हास्य रस की भी अवतारणा करनी पडती है। प्राचीनता की दृष्टि से यात्रा का प्रचलन कबिगान (दे०) से भी बहुत पहले से था। उन्नीसवीं शती में शिवराम अधिकारी ने इसे पुनर्जीवित किया। बाद में श्रीदाम, सुबल एवं परमानंद आदि ने यात्रा के विस्तार में प्रधान भूमिका ग्रहण की। पहले यात्रा में एकमात्र वर्णित विषय थी कृष्णलीला; इसी-लिए पहले इसे 'कृष्ण-यात्रा' कहा जाता था। बाद में नाना-विषयक यात्रा की अवतारणा हुई। उन्नीसवीं शती में यात्रा के पुनर्जीवन के बाद 'विद्यासुंदर यात्रा' अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्लीलता एवं स्थूल हँसी-मसखरेपन के लिए बहुत ही अधिक जनप्रिय हुई थी। इस समय के प्रसिद्ध यात्राभिनेता थे गोपाल उड़े। बीसवीं शती में एवं सांप्रदायिक काल में यात्रा की जनप्रियता को देखकर नाना प्रकार की यात्रा-मंडलियाँ स्थापित हुई हैं और आजकल विशेषकर ऐतिहासिक एवं राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों को लेकर भी यात्राएँ की जाती हैं। गीत यात्रा की जनप्रियता का एक प्रधान कारण है, इसीलिए यात्रा को 'यात्रा-गान' कहने की भी प्रथा है।

यान्त्रिक क्रमण (म० कृ०) [रचना-काल—1841 ई०]

यह जेम्स फेरिश के आग्रह पर स्कॉटिश मिशन सोसाइटी के लिए हरिकेशव पाठारे द्वारा प्रस्तुत अँग्रेज़ी लेखक जॉन बनियन की प्रसिद्ध रूपक-कथा 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का मराठी अनुवाद है। प्रतिपाद्य है—'सन्मार्ग पर चलने वाला बाधाओं को पार कर अंततः परमार्थ की प्राप्ति करता है।' नायक ख्रिस्ती 'दुराग्रही' और 'चलमति' आदि की बात न मानकर 'सुवार्तिका' के परामर्श से मोह-माया त्याग कर यात्रा पर चल देता है और मार्ग के अनेक संकटों को झेलता हुआ अंत में अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। उपन्यास में अनेक ईसाई-धर्मग्रंथों के अवतरण बिखरे पड़े हैं जिनका संदर्भ परिशिष्ट में दिया गया है। मूल पुस्तक के स्रोतों का सुंदर पद्यबद्ध अनुवाद है जो भाव-दृष्टि से उदात्त एवं काव्य-दृष्टि से सरस हैं और जिन्हें पढ़ते समय वामन पंडित की श्लोक-रचना का सहज ही स्मरण हो आता है। ईसाई धर्म की सैद्धांतिक चर्चा से युक्त और रूपक होते हुए भी अनुवाद सुंदर है। परंतु मूल पुस्तक का वातावरण और उद्देश्य महाराष्ट्र-समाज के लिए अपरिचित था, इसलिए प्रस्तुत कृति का महत्व केवल इतना ही है कि इससे मराठी भाषा में लिखने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

यादगार-ए-ग़ालिब (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1897 ई०]

'यादगार-ए-ग़ालिब' ख्वाजा अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (दे०) पानीपती द्वारा लिखी गई अपने उस्ताद मिर्ज़ा असद-उल्लाह ख़ाँ 'ग़ालिब' (दे०) की जीवनी है। 'हाली' मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे और उन्हें एक महान विभूति मानते थे। उनकी स्मृति को शाश्वत बनाने के लिए ही उन्होंने इस कृति की रचना की थी।

इसमें मिर्ज़ा 'ग़ालिब' का मानव, मित्र, मार्ग-दर्शक, कवि एवं लेखक के रूप में चित्रण किया गया है। लेखक ने अपने उस्ताद के स्वभाव, रहन-सहन, खानपान, समाज में प्राप्त होने वाले मान-अपमान, पद्य एवं गद्य की लेखन शैलियों पर भरपूर प्रकाश डाला है और इस प्रकार गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा भली भाँति व्यक्त की है।

'यादगार-ए-ग़ालिब' का उर्दू के जीवनी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक पर एक आक्षेप यह है कि इसमें मिर्ज़ा के काव्य के विभिन्न अवस्थानों का, उनके समकालीनों में उनके स्थान का निर्धारण नहीं किया गया तथा विभिन्न काव्य-विधाओं में उनकी सिद्धहस्तता पर प्रकाश नहीं डाला गया।

यादगार मुशायरा (उर्दू० कृ०)

मुग़ल युग में मुशायरे आम हुआ करते थे। इस पुस्तक में उस युग के एक मुशायरे का वृत्तांत है जो मुग़ल युग के अंतिम दिनों में लाल किला में हुआ था। इस मुशायरे में उच्चकोटि के उस्ताद शायर सम्मिलित हुए थे। इस छोटी-सी पुस्तक में उस समय के मुशायरों के आयोजन तथा तौर-तरीक़ों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि मुशायरों की कार्यवाही कैसे चलती थीं, सभा में बैठने तथा कविता-पाठ के क्या नियम थे, मुशायरों में 'शम्मा' कैसे जलाई जाती थी आदि।

उस समय के मुशायरों के रूप तथा वातावरण को चित्रित करने वाली यह एक सुंदर पुस्तक है। इसके लेखक श्री राशिद-उल ख़ैरी (दे०) हैं।

यादें (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1961 ई०]

अख़्तर-उल-ईमान (दे०) की इस काव्य-कृति में उनकी नज़्में संगृहीत हैं। प्रतीकात्मक शैली में लिखित यह संग्रह प्रगतिशील विचारों और क्रांतिकारी भावनाओं से ओतप्रोत है। इसमें उल्लिखित संक्षिप्त नज़्मों (कविताओं) के संबंध में आलोचकों का मत है कि इनमें जापानी काव्य की झलक दिखाई देती है। अनुभूति की तीव्रता इस कृति की मुख्य विशेषता है। लेखक का कथन है कि उसने संक्षिप्त कविताएँ किसी योजना के अनुसार नहीं, बल्कि चलते-फिरते पद्यबद्ध की हैं। परंतु इसके विपरीत विस्तृत कविताएँ सदैव योजनाबद्ध ढंग से कही हैं। इसमें कविताओं का वर्गीकरण इन शीर्षकों के अंतर्गत किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है : तारीक सय्यारे से पहले, तारीक सय्यारा, जंग, और तारीक सय्यारा के बाद। इस संग्रह में रचयिता का तीस वर्ष का काव्य संकलित है। विवेच्य विषय की दृष्टि से यह काव्य अधिकतर प्रगतिवादी विचारधारा का पोषक है और विवेक के आलोक में बड़ी भावुकता के साथ लिखा गया है।

यामा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

रहस्यवाद (दे०) की एक ही दिशा में बिना पश्चात्ताप किए विश्वासपूर्वक बढ़ती रहने वाली काव्य-प्रतिभा छायावादियों (दे० छायावाद) में केवल महादेवी वर्मा (दे०) को प्राप्त हुई है। प्रतिभा की इस निष्कंप यात्रा के अश्रुपुलकमय अनुभव 'दीपशिखा' (दे०) से पूर्व जिन चार संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं, उनके नाम हैं—'नीहार' (1930 ई०), 'रश्मि' (1932 ई०), 'नीरजा' (1934 ई०) और 'सांध्यगीत' (1936 ई०)। इन चारों संग्रहों का एकत्र ग्रंथन ही 'यामा' में हुआ है। इसके नाम की सार्थकता कवयित्री के 'अंतर्जगत् के चार यामों का छाया-चित्र' होने में है। संग्रथित चारों संग्रहों में क्रमशः 47, 35, 58 और 45 रचनाएँ हैं। 'नीहार' की वेदना में बाल-कुतूहल का मिश्रण है और 'रश्मि' में कवि-अनुभूतियों का चिंतन अधिक प्रिय हो गया है। 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' में कवयित्री के हृदय ने सुख-दुःख में ऐसा सामंजस्य स्थापित कर लिया है कि 'एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।'

इन रचनाओं का भावलोक मुख्यतः अज्ञात प्रियतम के प्रति निवेदित आत्म-समर्पण तक सीमित है। इन उद्गारों में अनुभूतिगत सत्यता है या कल्पनागत रमणीयता, इस प्रश्न का निर्णय अत्यंत कठिन है। सांध्यगीत की भूमिका में कवयित्री ने इतना अवश्य कहा है कि आज के नये रहस्यवादी गीतों में पराविद्या की अलौकिकता, अद्वैत वेदांत की छाया और लौकिक प्रेम की तीव्रता को कबीर (दे०) के दांपत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर 'एक निराले स्नेह-संबंध की सृष्टि' की गई है जो मनुष्य के हृदय का आलंबन बनकर 'उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका है।' अस्तु, इन विरहानुभूतियों का मूल उत्स जो भी हो, अपने वर्तमान रूप में ये सीमाबद्ध असीम की पीड़ा को ही नहीं संसार को एकसूत्र में बाँधने वाली करुणा के स्पंदन को भी ध्वनित करती हैं। कुछ गीतों में मानव की सहोदरा प्रकृति के रमणीय चित्र भी अंकित किए गए हैं। परिणामः इन चित्रों में 'प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा' है।

कलात्मक दृष्टि से इस संग्रह के अनेक गीत हिंदी गीतिकाव्य की विभूतियाँ हैं। कवयित्री ने अनेक उद्दीप्त अनुभूतियों को असाधारण संयम के साथ गिने-चुने शब्दों में बाँध लिया है। यह शब्दावली स्वर-साधना के उपयुक्त और अनूठी व्यंजनाओं से संपृक्त है। ऐसी व्यंजक पद-योजनाओं का सूक्ष्म वैचित्र्य अप्रस्तुत-क्षेत्र में वैविध्य के अभाव को खलने नहीं देता। इस कृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को मिली वैसी और किसी को नहीं।'

यायाबर *(बँ० ले०)*

युद्धोत्तर युग में बँगला में एक नये ढंग के गद्यात्मक रचना-रूप का विकास हुआ जिसे 'रम्यरचना' (दे०) के नाम से अभिहित किया गया था। यायाबर ने 'दृष्टिपात' (1947) की रचना कर उपन्यासमूलक रम्यरचना का सूत्रपात किया था। इस प्रकार के उपन्यासों में समाचार-पत्रों के रिपोर्ताज के ढंग पर एक के बाद एक अतिनाटकीय रोमांचकारी घटनाओं के वर्णन के साथ ही किसी एक साहित्यिक कथावस्तु की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी के साथ बीच-बीच में विच्छिन्न घटनाओं एवं साथ ही स्थान और काल के बहुत से किस्से जुड़े रहते हैं। 'दृष्टिपात' में भारत के स्वाधीन होने से पूर्व 4-5 महीने की राजनीतिक हलचल एवं कांग्रेस तथा अँग्रेज़ नेताओं के राजनीतिक दाँव-पेच के विवरण के साथ नायक के दुःखांत प्रेम की कहानी एवं नायिका के अंतर्लोक का परिचय दिया गया है। इस प्रकार एक ओर पाठक की ज्ञान-वृद्धि होती है और दूसरी ओर वह एक कहानी के रस का उपभोग करता है। उपन्यास का केंद्र-स्थल है दिल्ली। लेखक ने विच्छिन्न रूप से दिल्ली के प्राचीन इतिहास एवं घटनाओं का साहित्यिक शैली में बीच-बीच में ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के विवरण से पाठकों का कौतूहल बढ़ता है और वह इन विच्छिन्न दृश्यों का उपभोग करता है।

'यायाबर' (छद्मनाम) का वास्तविक नाम है विनयकुमार मुखोपाध्याय और ये भारत सरकार के सूचना-विभाग के अध्यक्ष के रूप में बहुत सालों तक काम करते रहे हैं। इनके दूसरे उपन्यास 'जनांतिक', 'पद्मपाताय जल' आदि को भी विशेष जनप्रियता मिली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यालप्पाण कदैहळ् (त० कृ०) [रचना-काल—1965 ई०]

इसमें जाफ़ना-निवासी के० वी० नडराशन की 11 कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें प्रसिद्ध हैं—'करै', 'वेली', 'इळवु' और 'विडिवु'। 'करै' में लेखक ने मध्यवित्तवर्गीय ऐसे पिता का चित्र अंकित किया है जो अपनी पुत्री से दुर्व्यवहार करता है। 'वेली' में उच्चवर्गीय समाज के पाखंडपूर्ण व्यवहार का वर्णन है। 'इळवु' में एक युवा व्यक्ति के अमानवीय व्यवहार तथा परिवार पर उसके अप्रत्यक्ष प्रभाव का वर्णन है। इस कहानी के तीनों पात्र अत्यंत प्रभावशाली हैं। 'विडिवु' में उच्च वर्ग की ऐसी नारी के अनुभवों का वर्णन है जिसने अछूत व्यक्ति से विवाह किया है। इस कहानी में लेखक ने चेतना-प्रवाह शैली का प्रयोग करते हुए उस नारी के मनोभावों की अभिव्यक्ति की है। यह लेखक की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इन कहानियों में लेखक ने जाफ़ना-निवासियों के जीवन के विविध पक्षों का अंकन किया है। जाफ़ना का तमिल समाज घोर जातिवादी है, प्राचीन प्रथाओं से ग्रस्त है। उच्चवर्ग के व्यक्तियों का जीवन कृत्रिमता से पूर्ण है। लेखक की इन विचारधाराओं की अभिव्यक्ति सभी कहानियों में हुई है। प्रदेश-विशेष की भाषा के प्रयोग के कारण ये कहानियाँ अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ी हैं।

यास-यगाना चंगेज़ी (उर्दू० ले०) [जन्म—1883 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

मिर्ज़ा वाजिद हुसैन पहले 'यास' तखल्लुस करते थे बाद में 'यगाना' हो गए। इनके पूर्वज ईरान से हिंदोस्तान आए थे और सेना में भरती हो गए थे। ये पटना में पैदा हुए थे। इन्होंने क्रमशः मौलवी सैयद अली ख़ाँ 'बेताब' (दे०) और मौ० 'शाद' अज़ीमाबादी (दे०) से इस्लाह ली और 1904 में ये लखनऊ जा बसे थे। इनका विवाह भी वहीं हुआ था।

'यगाना' की शायरी के विशेष आकर्षण ज़ोर, बंदिश की चुस्ती तथा व्यंग्य हैं। इनके कलाम में ओजपूर्ण कल्पना के दर्शन होते हैं। इन्होंने नीति एवं ज्ञान की बात बड़ी सफ़ाई से पेश की है। 'यगाना' का कलाम पाठक को कर्मवीरता एवं साहसिकता का संदेश देता है। निराशा की बात इनके यहाँ बहुत कम है। विचारों की प्रधानता एवं गंभीरता के कारण इनकी ग़ज़लों में भी तग़ज़्ज़ुल की शान पैदा नहीं हो सकी बल्कि नज़्म का रंग छाया हुआ है। इनकी रचनाओं में फ़ारसी समासों का अधिक प्रयोग हुआ है। 'यगाना' ने रुबाइयाँ भी कही हैं किंतु वे कुछ अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकीं। 'यगाना' के काव्य-संग्रह का नाम 'आयात-ए-वजदानी' है।

युगवंदना (गु० कृ०)

'युगवंदना' राष्ट्रीय शायर श्री झवेरचंद मेघाणी (दे० मेघाणी) (1897 ई०) का काव्य-संग्रह है जिसमें गांधीयुग की समग्र चेतना को ओजस्वी शब्दों में अभिव्यंजित किया गया है।

मेघाणी का प्रेरणास्रोत सौराष्ट्र की समग्र प्रकृति और वहाँ का लोक-साहित्य है। 'युगवंदना' की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना बलिष्ठ लोकलय में व्यक्त हुई है। कवि के ही शब्दों में 'भीषण रात्रि केरा पहाडोनी—जाडीए चोप्यो कसुंबीनो रंग'। यह रंग ही इनके काव्य को तेजस्विता प्रदान करता है। प्रस्तुत संग्रह की 'माता तारो बेटरो आवे', 'छेल्लो कटोरो', 'फूल माल', 'तरुणोनुं मनोराज्य' तथा 'कदम' प्रभृति रचनाएँ विविध भाव-भूमियों पर आधारित हैं। शहीद बोलता है—'अमारे घर हतां व्हालां हतां' में कवि ने शहीदों के मानस की पारदर्शक अभिव्यक्ति की है।

संग्रह के 'पीड़ित-दर्शन' नामक भाग में मेघाणी का पुण्य प्रकोप प्रकट हुआ है—कभी प्रत्यक्ष रूप में तो कभी व्यंग्य में। 'कोदाली 'वालो', 'काल सैन्य आवयां', 'काल जागे', 'विडियोवाल नारीनो गीत' इसके उदाहरण हैं। 'सूना समंदर नी पाळे' और 'कोईनो लाडकवायो' जैसे कथाकाव्यों में घायल सैनिक के अंतिम क्षणों की अत्यंत हृदय-द्रावक एवं जीवंत अभिव्यक्ति है।

'आत्म-संवेदन' शीर्षक से चतुर्थ खंड में 'कदमो भरजे कंटक पर एकलो' जैसी कविताएँ कवि की सिद्धि हैं। इस संग्रह में अनुवादक मेघाणी अनुसर्जक के रूप में भी असाधारण रूप से प्रकट हुए हैं।

समग्रतया कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय चेतना की ओजस्वी अभिव्यक्ति, लोकलय की बलिष्ठता तथा क्वचित् प्रकट होती हुई ऊँची कल्पना और तज्जन्य बिंबयोजना में कवि ने काव्य द्वारा युग की वंदना की है।

युग-संधि (त० कृ०) [रचना-काल—1963 ई०]

'युग-संधि' डी० जयकांतन् (दे०) की कहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियों का संग्रह है। इसमें उनकी 'युग-संधि' आदि 16 कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों में मानव-जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याओं को उठाया गया है। कहानियों के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं अतः उनकी समस्याएँ समाज की चिरंतन समस्याएँ हैं। इस संग्रह की चार प्रसिद्ध कहानियों में प्रथम है युग-संधि'। इसमें गौरी दादी और उसकी पोती गीता के माध्यम से दो विभिन्न युगों में भारतीय विधवा की स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। 'मौनम् ओरु भाषै' और 'किलक्कुम् मेर्कुम्' नामक कहानियों में बताया गया है कि नारी की भावनाएँ, समस्याएँ, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। नारीत्व और मातृत्व सभी बंधनों से परे हैं। गंभीर समस्याओं से युक्त इन कहानियों की रचना जयकांतन् ने पाठकों के मनोरंजन की दृष्टि से नहीं की। उन्होंने इनके द्वारा पाठकों के मस्तिष्क को कुरेदने की सफल चेष्टा की है।

युगांत (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

इस रचना में सौंदर्यवादी कवि सुमित्रानंदन पंत (दे०) सौंदर्य-युग का अंत कर देते हैं। 'संग्रह की अधिकांश कविताएँ लोकमंगल की गांधीवादी धारणा से ओत-प्रोत हैं। 'बापू के प्रति' शीर्षक रचना इस 'माला का सुमेरु' है। कहीं-कहीं आंदोलनों का प्रभाव और दर्शन की शुष्कता काव्य-तत्त्व में बाधक हो गये हैं, परंतु अधिकांश रचनाओं में कल्पना की रमणीयता, भाषा की महाप्राणता और कला की स्वस्थ मांसलता दर्शनीय हैं।

युगे-युगे (*गु० कृ०*) प्रकाशन-वर्ष—1969 ई०]

'युगे-युगे' हरींद्र दवे द्वारा रचित एकांकी नाटक है। गांधी शताब्दी की भूमिका ले कर रचे गए इस नाटक में छह दृश्य हैं और लगभग 16 पात्र हैं। चूंकि प्रस्तुत नाटक राजनीतिज्ञों पर प्रहार करता है, अतः लेखक को घोषणा करनी पड़ी है कि इस नाटक के सभी पात्र कल्पित हैं। नाटक का आरंभ गांधी शताब्दी के आयोजन के लिए एकत्र हुए मंत्रियों की बैठक से होता है। लगता है, सभी अपनी-अपनी रोटियाँ सेंकने में लगे हुए हैं। स्वदेशी भवन का नक्शा ही बदल देने के आदेश दिए जा चुके हैं। गांधी जी के तीन बंदर अब बोध की वस्तु नहीं, अपितु शो-केस में रख देने की वस्तु बन गए हैं और उन्हें यथास्थान पहुँचा देने की आज्ञा भी कर दी गई है। इस बदले हुए माहौल में अगर गांधी जी आ जाएँ तो बकौल एक पात्र के उन्हें स्वदेशी भवन का गुरखा अंदर ही नहीं घुसने देगा और अगर आने भी दिया गया तो उनके साथ दो आदमी सतत रहेंगे—यह देखने के लिए कि कहीं यह बुड्ढा कुछ उठाकर तो चलता नहीं बनता। गांधीवादियों की कुछ रंगतें देखिए: 'अगर गांधीजी को सभी कुछ (आश्रमवासियों के बारे में) पता चल जाता तो उन्हें इतने उपवास करने पड़ते कि गोडसे को गोली मारने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। (महामंगलप्रसाद); 'गांधीवादी किसी निश्चित उम्र में रागद्वेष, मोहमाया छोड़ देते हों, ऐसा कभी हुआ है क्या? उल्टे जैसे उम्र बढ़ती है वैसे मोह बढ़ता जाता है'। (सोहिनी) प्रसिद्ध गांधीवादी दिलावरसिंह एक घोषणा करके सभी को चौंका देते हैं: 'प्रसिद्ध वैज्ञानिक वेंकटराघवन गांधी को सदेह पृथ्वी पर ला रहे हैं।' यह सुनते ही सभी गांधीवादियों की नींद हराम हो जाती है। वेंकटराघवन और दिलावरसिंह की हत्या करने के उपाय होते हैं। असफल होने पर सभी पक्षों की एक गुप्त सभा होती है। चर्चा का विषय है कि किस प्रकार गांधीजी को, अगर वे आ ही जायें तो, प्रभावहीन बनाया जाय! अंत में एक व्यक्ति सुझाव देता है कि उन्हें फिर से गोली मार दी जाये। इसी के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। सनातन नामक एक पात्र प्रश्न पूछता है: 'यह नाटक यहाँ पूरा होता है या यहाँ से आरंभ होता है?' नाटक की भाषा बड़ी व्यंग्यप्रधान और चुटीली है। नाटक समग्रतः सुंदर है।

युधिष्ठिर (*सं० पा०*)

यह राजा पांडु के पाँचों पुत्रों में ज्येष्ठ था। इसकी माता का नाम कुंती (दे०) था। पाँचों पांडवों की पत्नी होने के नाते द्रौपदी (दे०) इसकी भी पत्नी थी। अपने सद्गुणों के कारण इसे धर्मपुत्र कहा जाता था। इसे अजातशत्रु भी कहते थे। ज्येष्ठ भ्राता होने के नाते अपने भाइयों का यह सदा नेता रहा। इसके गुरु कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य थे। भीष्म (दे०) की आज्ञा से धृतराष्ट्र (दे०) ने इसका यौवराज्याभिषेक किया। इसने श्रीकृष्ण (दे०) की आज्ञा से राजसूय यज्ञ किया था जिसमें प्रतिदिन दस सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। किंतु शकुनि के साथ द्यूतक्रीड़ा में यह अपना सर्वस्व हार गया, यहाँ तक कि द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर हार गया। परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णामतः इसे भाइयों समेत बारह वर्ष का वनवास और फिर एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पड़ा। यम के साथ इसका संवाद इस तथ्य का सूचक है कि यह एक तत्त्व-चिंतक व्यक्ति था। अज्ञातवास के बाद इसने काफ़ी प्रयास किया कि 'महाभारत' (दे०) का युद्ध टल जाए, किंतु द्रौपदी के तर्कों के आगे इसकी एक न चली और युद्ध करना अनिवार्य हो गया। इस युद्ध में इसका यह वाक्य कि 'अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो वा' द्रोणाचार्य की मृत्यु का कारण बना। जब भीम (दे०) ने द्वंद्व-युद्ध में दुर्योधन (दे०) की जंघा का भंग किया तो युधिष्ठिर ने भीम की पर्याप्त भर्त्सना की थी। महाभारत-युद्ध के बाद इसका राज्याभिषेक किया गया। फिर इसने तीन अश्व-मेध यज्ञों का आयोजन किया। अंततः इसने अपने भाइयों के साथ महाप्रस्थान किया। अन्य भाइयों तथा द्रौपदी का तो मार्ग में पतन हो गया, किंतु यह स्वर्ग-द्वार में पहुँच गया। साथ में श्वान-रूपधारी यम भी इसके साथ था। इस समय इसकी आयु संभवतः 108 वर्ष थी।

यूसफ़ ज़ुलेखा *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1679 ई०]

हाफ़िज़ बरखुरदार (दे० हाफ़िज़)-कृत 'यूसफ़ ज़ुलेखा' कवि की अन्य दो किस्सा-कृतियों—'मिरज़ा साहिबाँ' और 'सस्ती-पुन्नूं'—से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें-नबी याकूब के पुत्र यूसफ़ के सदाचरण और सुलतान तैमूर की पुत्री ज़ुलेखा के वासनापूर्ण प्रेम का सुखांत वर्णन है। फ़ारसी मसनवियों की रचना-पद्धति और फ़ारसी उपमानों तथा शब्दावली के प्रयोग का आधिक्य होने पर भी रीति-रिवाज और वस्त्रालंकार के वर्णन द्वारा कवि ने इस विदेशी कथा को भी पंजाबी वातावरण में ढाल दिया है। इस रचना में श्रृंगार का वियोग-पक्ष विशेष रूप से उभरा है, परंतु कवि का कौशल प्रायः अनुभाव-चित्रण तक ही सीमित रह जाता है। हृदय के सूक्ष्म भावों की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति करने में वह सफल नहीं हुआ। पंजाबी किस्सा-काव्यधारा को फ़ारसी की मसनवी-पद्धति की ओर उन्मुख करने की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। भाषा-विभाग, पटियाला ने इस रचना को गुरुमुखी लिपि में मुद्रित कर प्रकाशित किया है।

येंडकुडुक रत्न *(क० पा०)*

'येंडकुडुक रत्न' (यानी 'पियक्कड़ रत्न') राजरत्नम् (दे०) जी की एक अमर सृष्टि है। उन्होंने इसमें पियक्कड़ों की दुनिया में बैठकर उनकी दृष्टि से दुनिया को देखा है। पियक्कड़ भी मनुष्य होता है। अन्यों के समान आस्तिक हो सकता है। वह शराब ही भेंट के रूप में चढ़ाता है। शराब उसकी जान है। उसका दावा है कि उसकी हर बात, चाल-चलन सब शराब से परि-चालित हैं। उसका दावा है कि जिसे रवि नहीं देख सकता उसे कवि देख सकता है और जिसे कवि भी नहीं देख सकता उसे पियक्कड़ देख सकता है। पियक्कड़ होने पर भी वह स्वाभिमानी है। रत्न जो कुछ प्राप्त है उससे संतुष्ट है, उसमें दूसरों को बरबाद कर अपनी प्रगति करने की मनो-वृत्ति नहीं है। उसके पास समदृष्टि है। रत्न का दावा है कि सारा जगत् पियक्कड़ है। सूरज भी शाम के वक्त मधुशाला जाकर शराब पीता है और सारी रात इधर-उधर भटकता रहता है। इस पियक्कड़ में पढ़े-लिखे सुसंस्कृत कहे जाने वाले लोगों से अधिक मानवता है। पियक्कड़-रत्न प्रकृति-प्रेमी भी है। कोडगु के निसर्ग सौंदर्य पर वह सौ जान से निसार है। वह भावुक ही नहीं, चिंतक भी है। वह देखता है कि समता के स्वाँग में ग़रीब और ग़रीब, अमीर और अमीर होते जा रहे हैं, भेद-भाव, विषमता और बद्धमूल हो रहे हैं, अमीर के हितों के लिए शास्त्र बदल जाते हैं। इस तरह राजरत्नम जी का 'येंडकुडुक रत्न' ग़रीबों का प्रतिनिधि है। वह अपनी मदिरा के दर्पण में सारे विश्व को देख सकता है, उस पर आलोचना कर सकता है। आधुनिक कन्नड साहित्य के अमर चरित्रों में येंडकुडुक रत्न भी एक है।

योगाचार *(पा० पारि०)*

यह महायान शाखा (दे०) की अन्यतम दार्श-निक शाखा है। इसका प्रवर्तन पाँचवीं शती में असंग ने किया था। वसुबंधु दिङ्नाग इत्वादि इसके दूसरे प्रति-ष्ठित आचार्य हैं और 'योगाचार', 'भूमिशास्त्र', 'महायान', 'सूत्रालंकार', 'लंकावतारसूत्र' इत्यादि प्रतिष्ठित ग्रंथ हैं। इसमें महायान के परम ज्ञान बोधि (दे०) को प्राप्त करने के लिए योगसाधना और आचार दोनों पर बल दिया जाता है इसीलिए इसे योगाचार (दे०) की संज्ञा प्राप्त हुई है। इस सिद्धांत में समस्त भौतिक जगत् का निषेध कर केवल विचार जगत् को स्वीकार किया जाता है और समस्त यथार्थ जगत् को विज्ञान की परिणति के रूप में स्वीकार किया जाता है; अतः इसे 'विज्ञानवाद' की संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रदान की जाती है।

इस संप्रदाय में बाह्य जगत् की सत्ता का निषेध किया जाता है और उसे मिथ्या भ्रमात्मक माना जाता है, किंतु मानसिक जगत् का प्रतिषेध नहीं किया जाता। मानसिक जगत् को सत्य मानने पर ही विचार-जगत् का भी परिष्कार हो सकता है। जिस प्रकार स्वप्न में मानसिक विचार वस्तुओं के रूप में परिणत हो जाते हैं तथा वस्तुएँ स्वरूपतः मिथ्या होती हैं उसी प्रकार दृश्यमान जगत् भी अयथार्थ है और मानसिक जगत् का विपरिणाम मात्र है। जिस प्रकार दृष्टि-दोष से चंद्रमा दो प्रतीत होते हैं उसी प्रकार भौतिक जगत् अज्ञान के कारण मानस-जगत् से भिन्न प्रतीत होता है। वस्तुतः दोनों की पृथक् सत्ता नहीं है। भौतिक पदार्थ मानसिक भावना से भिन्न कभी प्रतीत नहीं होते। घटनाओं की सारी प्रक्रिया व्यक्तिगत चेतना में भावरूप में संकलित रहती है। समस्त प्रतिकृतियों का संग्रह होने के कारण इसे आलयविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। पूर्वकालीन विभिन्न विचारों और घटनाओं की भावना के अवशेष रहने के कारण भौतिक जगत् की प्रतीति भी अनेकरूपात्मक होती है। मन क्षणिक चेतनाओं की एक धारा है जिसमें पुराने अनुभवों के संस्कार दबे पड़े रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति के अनुसार विभिन्न संस्कार उद्भूत होते रहते हैं। परिस्थिति की सापेक्षता के कारण सर्वत्र सभी अनुभव प्रकट नहीं होते, किसी एक क्षण में कोई विशिष्ट संस्कार ही भौतिक तत्त्व का रूप धारण कर प्रकट होता है। मानस संस्कार आत्मा के समान अपरिवर्तनीय नहीं। निर्वाण (दे०)-प्राप्ति के लिए आत्म-निग्रह द्वारा इस चेतना-धारा का अवरोध संभव है।

योगरूढ़ शब्द *(हिं० पारि०)*

ऐसे शब्द जो रचना की दृष्टि से यौगिक होते हैं, किंतु अर्थ की दृष्टि से रूढ़ होते हैं—जैसे 'जलज'। रचना की दृष्टि से यह 'जल+ज' है किंतु इसका रूढ़ अर्थ है 'कमल'। जल में जन्मी अन्य चीज़ें या जीव आदि इसके अर्थ नहीं हैं। हाथी, पंकज, पक्षी आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। हाथी किसी भी हाथयुक्त जीव का नाम नहीं है, न पंक में जनमी हर चीज पंकज है और न हर पक्षयुक्त पक्षी ही है।

योगसार *(अप० कृ०)*

'योगसार' के लेखक का नाम योगिंदु (दे०) अथवा जोगिचंद्र है। ग्रंथ में रचना-काल का उल्लेख नहीं है।

इस ग्रंथ का विषय भी 'परमात्म-प्रकाश' के विषय के समान है। इसमें लेखक ने बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का स्वरूप बताते हुए परमात्मा के ध्यान पर बल दिया है और पाप-पुण्यात्मक दोनों प्रकार के कर्मों के त्याग का आदेश दिया है। लेखक का मत है कि सांसारिक बंधनों और पाप-पुण्यों का त्याग कर आत्म-ध्यान में लीन ज्ञानी ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

ग्रंथ की भाषा हृदयस्पर्शी है। सीधी और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति हुई है और दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।

तत्कालीन भाषा के स्वरूप और संत-साहित्य के पूर्वरूप के ज्ञान के लिए यह ग्रंथ उपादेय है।

योगसूत्र *(सं० कृ०)* [रचना-काल—200 ई० पू०]

'योगसूत्र' के लेखक 'पतंजलि' (दे०) है। योगसूत्र में चार पाद हैं—समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद, और कैवल्यपाद। 'योगसूत्र' पर व्यास-कृत भाष्य भी है। परंतु ये व्यास 'महाभारत' दे० के रचयिता व्यास से भिन्न हैं।

'योगसूत्र' योग-दर्शन का आधार-ग्रंथ है। योग-दर्शन के अंतर्गत विशेष रूप से चित्त के आधार पर ही योग-विषयक विश्लेषण किया गया है। योग-दर्शन के अनुसार 'योग' शब्द का अर्थ समाधि है। योग-भाष्य के लेखक ने योग को चित्तवृत्ति का निरोध कहा है। योग-दर्शन में चित्त की पाँच भूमियाँ स्वीकार की गई हैं। चित्त की ये भूमियाँ या अवस्थाएँ—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध हैं। योग-दर्शन के अनुसार मुक्ति के लिए चित्त-वृत्तियों का मूल कारण अज्ञान है। ये अज्ञानजन्य वृत्तियाँ भी दो प्रकार की हैं। एक क्लिष्ट और दूसरी अक्लिष्ट। क्लिष्ट वृत्तियाँ धर्म, अधर्म तथा वासनाओं की उत्पत्ति का कारण हैं और अक्लिष्ट वृत्तियाँ 'ख्याति' को देने वाली हैं। 'ख्याति' शब्द का अर्थ योग-दर्शन में रजस् और तमस् से रहित बुद्धि सत्व की प्रशांत वाहिनी प्रज्ञा है। ये वृत्तियाँ संस्कारों की निर्मात्री हैं। चित्तवृत्ति के निरोध की स्थिति में ये वृत्तियाँ केवल संस्कार-रूप में शेष रह जाती हैं। योग-दर्शन में समाधि के दो भेद हैं—एक संप्रज्ञात और दूसरी असंप्रज्ञात। असंप्रज्ञात के भी भाव-प्रत्यय और उपाय-प्रत्यय ये दो भेद हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-दर्शन की भाषा-शैली सुबोध एवं वैज्ञानिक है।

योगिंदु (योगींद्र) *(अप० ले०)* [रचना-काल—आठवीं-नौवीं शती ई०]

योगिंदु की दो कृतियाँ—'परमप्पयासु' (दे०) और 'योगसार' (दे०) प्राप्त होती हैं। इनके रचे अनेक ग्रंथ कहे जाते हैं किंतु 'परमप्पयासु' और 'योगसार' के समान भावधारा उनमें नहीं मिलती। योगिंदु ने इन कृतियों में अपने विषय में कोई सूचना नहीं दी।

योगिंदु किस काल में हुए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परंतु भाषा पर विचार करने से इनका समय आठवीं-नौवीं शती के लगभग प्रतीत होता है।

योगिंदु विचारों में उदार थे। इनकी जैन धर्म में आस्था थी किंतु इन्होंने किसी संप्रदाय विशेष के प्रति अनावश्यक आग्रह प्रकट नहीं किया और धर्म के बाह्य रूप एवं कर्मकांड की अपेक्षा धर्म के आंतरिक रूप और सदाचारमय जीवन पर ही बल दिया है।

योगिंदु की कृतियों का प्रधान छंद दोहा है। इनकी कृतियों की अपभ्रंश भाषा शास्त्रीय अपभ्रंश की अपेक्षा लोक भाषा के अधिक निकट है।

योगियार, स० तु० सु० *(त० ले०)*

संस्कृत तत्सम शैली में इनका पूरा नाम 'सुब्रह्मण्य योगी' है। प्रबल वाणी के इस आधुनिक कवि का स्वर्गवास अभी कुछ साल पूर्व हुआ।

ये 'कोयंपुत्तूर' ज़िले के निवासी थे और प्रारंभिक जीवन में गांधीवादी कार्यकर्त्ता रहे थे। मद्रास शहर में इन्होंने अपना बाद का जीवन बिताया था जहाँ आकाशवाणी के विभिन्न कार्यक्रमों में ये भाग लेते थे तथा सिनेमा के कथा एवं संवाद-लेखन का कार्य करते थे।

इनकी कविताओं की छाप अलग है। राष्ट्र-प्रेम तथा अपूर्व ओज इनकी वाणी की विशेषताएँ हैं। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता-संग्रह 'तमिलक्कुमरि पाटल्कळ' (तमिल प्रदेश की 'कन्याकुमरि' आदि कविताएँ) हैं और इसी एकमात्र रचना के वाग्वैदग्ध्य और प्रभावशाली छंद के निर्वाह ने इनका नाम अमर कर दिया है।

यौगंधरायण *(सं० पा०)*

वत्सराज उदयन (दे०) का मंत्री यौगंधरायण भास (दे०) की प्रतिभा की देन है। भास-कृत 'स्वप्रवासवदत्तम्' (दे०) नामक नाटक तथा श्रीहर्ष (दे०) की 'रत्नावली' नाटिका में आर्य यौगंधरायण एक मुख्य पात्र के रूप में चित्रित है। उदयन की तरह ही वह भी साहसिक कार्यों में रुचि लेता है।

उज्जयिनी के प्रबल राजा चंडप्रद्योत के नलगिरि हाथी को पकड़ने के प्रयास में जब छद्मवेशी उदयन पकड़ लिया जाता है तो यौगंधरायण को ही वह संदेश भिजवाता है। यौगंधरायण उदयन को छुड़ाने के लिए अनेक लोगों के साथ छद्मवेश में उज्जयिनी पहुँचता है और पागल बनकर इधर-उधर घूमते हुए उदयन को वासवदत्ता (दे०) के साथ निकाल ले आता है। प्रद्योत के कोप से बचने के लिए वह मगधराज से संधि करना चाहता है। इसके लिए लावाणक से वासवदत्ता के जल भरने की अफ़वाह उड़ाकर वासवदत्ता को मगधराज-पुत्री पद्मावती के यहाँ धरोहर रखता है जिससे एक तो मगधराज अपनी पुत्री की शादी उदयन से करके वत्सराज उदयन की मदद करें, दूसरे बाद में जब वासवदत्ता के जीवित होने की बात हो तब तक पद्मावती की उसके साथ मित्रता हो जाय।

यौगंधरायण के क्रियाकलाप में गोपनीयता एवं साहस का विलक्षण योग है। वह एक चतुर मंत्री, कुशल प्रेक्षक एवं कल्याणकारी चरित्र का व्यक्ति है। उसकी दृष्टि से जीवन की सार्थकता पौरुष में है।

यौगिक शब्द *(हिं० पारि०)*

ऐसे शब्द जिनमें एक से अधिक सार्थक इकाइयां हों, अर्थात् जिनके सार्थक खंड हो सकें। जैसे डाकखाना (डाक+खाना), मानवता, (मानव+ता), प्रबल (प्र+बल)। यौगिक तीन प्रकार के होते हैं: **समस्तपद**—जो एकाधिक शब्दों को समास द्वारा एक में मिलाकर बने हों। जैसे घुड़दौड़, रसोईघर, जेलख़ाना। **प्रत्ययुक्त**—जिसकी रचना प्रत्यय के योग से हुई हो। जैसे जापानी (जापान+ई), सुंदरता (सुंदर+ता), चालू (चाल्+ऊ)। **उपसर्गयुक्त**—जिसकी रचना उपसर्ग के योग से हुई हो। जैसे प्रयत्न (प्र+यत्न), अनुमति (अनु+मति), सपूत (स+पूत)। कुछ यौगिक शब्द ऐसे भी होते हैं जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई भाषिक इकाइयों का योग होता है। जैसे 'अनबोलता' (अन्+बोल+त्+आ)।

रंगण्णा, एस० वी० *(क० ले०)*

प्रोफ़ेसर डा० एस० वी० रंगण्णा जी कन्नड के शैलीकार गद्यलेखक हैं। कुछ समय पूर्व ये मैसूर विश्वविद्यालय में अँग्रेज़ी प्रोफ़ेसर के पद पर विराजमान थे; अब विश्वविद्यालय-सेवा से निवृत्त हो गये हैं। ये महाराजा कालेज, मैसूर के प्रिंसिपल भी थे। अँग्रेज़ी-कन्नड-कोश के संशोधन-विभाग में प्रधान संपादक के रूप में भी इन्होंने उल्लेखनीय सेवा की है। ये कन्नड और अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित हैं—इन दोनों भाषाओं में समान रूप से लिख सकते हैं। इनकी पुस्तकें 'रंगबिन्नप' (दे०) अर्थात् 'रंग की विनय' साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत है। यह कन्नड-वचन-वाङ्मय के लिए एक सुंदर देन है। मध्यकाल में वीरशैव भक्त कवियों के कारण वचन-वाङ्मय संपन्न और समृद्ध हुआ था। आधुनिक काल में इस साहित्य-विधा को इन जैसे प्रबुद्ध साहित्यकारों के कारण नया जीवन मिला है।

'शैली' पर इनकी पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। कन्नड के महाकवि कुमारव्यास (दे०) की शैली का भी इन्होंने अच्छा विवेचन किया है। आलोचना के क्षेत्र में इनका प्रयास नया और आदर्श स्थापित करने वाला सिद्ध हुआ है। 'पाश्चात्य गंभीर नाटकगळु' (पाश्चात्य त्रासद) इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ है।

रंगनाथन्, ति० ज० *(त० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

वरिष्ठ लेखकों में इनका स्थान रहा है। इस शती के तीसरे दशक की सृजनात्मक साहित्य-पत्रिका 'मणिक्कोटि' में लिखने वालों में ये भी एक थे। पत्रकारिता इनकी आजीविका रही है। संप्रति ये 'मंजरि' नामक तमिल 'डाइजेस्ट' पत्रिका के संपादक हैं। लघुकथा तथा बाल-साहित्य इन दोनों विधाओं के लेखक के रूप में इनकी ख्याति है। इनका पहला लघुकथा-संग्रह 'चंतनक् कावटि' (चंदन का काँवर) प्रसिद्ध हो चुका है। अन्य संग्रह 'मंचळ्तुणि' (पीला कपड़ा) तथा 'विच्चैवात्तु' (द्रुतगामी बत्तख) तथा 'नोण्टिक् किळि' (पंगु तोता') हैं। कुछ बालोपयोगी रचनाओं के नाम ये हैं—'रोजाप्पेण' (गुलाब-कन्या) तथा 'वण्णात् तिप्पूच्चि' (तितली)। इनमें से कुछ मद्रास सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं। इनकी लघुकथाएँ एक ही भाव-बिंदु का विवरण प्रस्तुत करते हुए अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो गई हैं।

रंगनाथ रामायणमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवीं शती ई०]

अपने पिता के आदेश पर प्रसिद्ध कवि गोन बुद्धा रेड्डी (दे०) द्वारा रचित 'रंगनाथ रामायणमु' सरल और सुबोध शैली में होने के कारण वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) की भाँति 'पाठ्ये गेये च मधुरम्' कही जा सकती है। यह काव्य छह कांडों में द्विपद (दोहा जैसा छंद) छंद में निबद्ध है। कथा वाल्मीकि-'रामायण' के अनुसार ही चलती है, पर यत्र-तत्र कुछ नयी उद्भावनाएँ भी पाई जाती हैं। अहल्या के प्रसंग में देवराज इंद्र गौतम के आश्रम में कुक्कुट का रूप धारण करके आता है और आधी रात के वक्त मुर्गे की बाँग सुनकर गौतम सवेरा हुआ समझ कर नदी में स्नान करने चले जाते हैं। इस प्रकार इंद्र को अहल्या से मिलने का मौका मिलता है। इसी प्रकार अयोध्याकांड में मंथरा का राम से बाल्यकाल से ही कुछ विरोध बताया जाता है जिसके कारण वह कैकेयी को राम को वन भेजने के लिए उकसाती है। कुछ अन्य प्रसंगों में भी कवि की मौलिक भावनाएँ परिलक्षित होती हैं। रावण की माता कैकेशी और मेघनाद की पत्नी सुलोचना और रावण की राजमहिषी मंदोदरी का चरित्र चित्रित करने में कवि को जो सफलता मिली है, वह अन्य किसी भी रामकथाश्रयी काव्य में दुर्लभ है। तेलुगु में जितने रामकाव्य हैं, उनमें 'रंगनाथ रामायणमु' ही सबसे सरल, सुबोध और सरस रचना मानी जा सकती है। इसके उत्तरकांड का पता नहीं चलता।

रंगनायकम्मा, मुप्पाळ्ळ *(ते० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

इन्हें नयी पीढ़ी की तेलुगु-उपन्यास-लेखिकाओं में आदरणीय स्थान प्राप्त है। 'पेकमेडलु' (दे०) (ताश के महल), 'बलिपीठमु', 'रचयित्री', 'कृष्णवेणी', 'स्त्री', कूलिन गोडलु (गिरी हुई दीवारें), 'स्वीट होम' आदि कई उपन्यास पाठक-समाज में अत्यंत लोकप्रिय हैं। अनुभूति की तीव्रता, वास्तविकता के प्रति सजग निष्ठा और नारी-गौरव को प्रतिष्ठित करने में अकुंठित आत्मीयता इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन सभी रचनाओं में आनंदमय जीवन की कामना कई रूपों में मुखरित हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगबिन्नप (*क० कृ०*)

आधुनिक समय के कन्नड-साहित्यकारों में डा० एस० वी० रंगण्णा (दे०) का सम्मान्य स्थान है। 'शैली', 'रुचि', 'शाकुंतल', 'कुमारव्यास', 'पाश्चात्य गंभीर नाटकगळु' (दे०) (पाश्चात्य त्रासद) जैसी कृतियों के द्वारा जहाँ आपने कन्नड आलोचना की स्वस्थ परंपरा चलाई वहाँ 'रंगबिन्नप' (रंग की विनय) की रचना करके आधुनिक कन्नड में मनोहर गद्य-शैली का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। 'रंगबिन्नप' साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उत्कृष्ट कृति है। कन्नड में 'वचन' नामक साहित्य-विधा का प्रचलन है जिसका इतिहास बारहवीं शती से भी पुराना है। वीरशैव भक्त-कवियों ने बारहवीं शताब्दी से वर्तमान समय तक कन्नड के वचन-वाङ्मय को समृद्ध किया है। प्रो० रंगण्णाजी की कृति प्राचीन और आधुनिक वचन-परंपरा की एक सुंदर कड़ी है।

मैसूर विश्वविद्यालय की साहित्य-पत्रिका 'प्रबुद्ध कर्नाटक' में प्रो० रंगण्णा के वचन 'रंगय्यन वचनगळु' शीर्षक से प्रकाशित होते थे जो बाद में 'रंगबिन्नप' के रूप में पाठकों के सामने आये। ये वचन वचनकार के इष्टदेव 'रंगय्या' की छाप से सुशोभित हैं। 'रंगबिन्नप' की प्रस्तावना काफ़ी लंबी है और उसमें लेखक को किन-किन स्रोतों से प्रेरणा मिली है, इसका उल्लेख है। प्रत्येक वचन अपने-आप में पूर्ण है और उसमें लेखक के अभीष्ट भाव या विचार की सुंदर अभिव्यंजना दृष्टिगत होती है। गति, लय, नाद-माधुर्य, शब्द-सौष्ठव, बंध-विलास, आदि गुणों से परिपूर्ण प्रो० रंगण्णाजी के वचन निश्चित रूप से आधुनिक कन्नड-गद्य-साहित्य में नया मोड़ लाने वाले सिद्ध हुए हैं। इन वचनों में शब्द-लालित्य तथा ताल-लय-लालित्य के साथ-साथ छंद के विशिष्ट गुण प्लुत के भी दर्शन होते हैं। इनमें कल्पनालोक का काव्य-तत्त्व माधुर्य की सृष्टि कर सहृदय के हृदय को आनंदोल्लास से परिपूर्ण कर देता है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विषयों का चित्रण, भक्ति-ज्ञान का वर्णन, ज्ञान-विज्ञान का मंथन, पांडित्य और लोकानुभव का मिलन एवं कल्पना और भावुकता का संयोग इन वचनों में जैसा देखा जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

रंगभूमि (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1924 ई०]

प्रेमचंद (दे०) ने राष्ट्रीय समस्याओं को आधार बना कर जिन उपन्यासों की रचना की थी उनमें 'रंगभूमि' का उल्लेखनीय स्थान है। इस उपन्यास में लेखक ने अंधे भिखारी सूरदास (दे०) के माध्यम से महात्मा गांधी के मूलभूत सिद्धांतों—अहिंसा, सत्याग्रह, हिंदू-मुस्लिम एकता, आदि का अत्यंत सहज प्रतिपादन किया है और यह बताया है कि सत्य तथा अहिंसा का साधक किस प्रकार अंत तक धन, सत्ता तथा शासन से टक्कर लेता हुआ अपने प्राणों की बलि दे देने में भी संकोच नहीं करता। यदि वह हारता भी है तो वह हार ऐसी होती है कि उसके समक्ष विजेता की जीत भी सर्वथा निष्प्रभ हो उठती है। जान सेवक, राजा महेंद्र सिंह, कुँअर भरत सिंह आदि के माध्यम से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दोषों को बखूबी उभारा है और इस तथ्य का निरूपण किया है कि यंत्रपरिचालित उद्योग सामाजिक जीवन में किस प्रकार आवास, बेरोज़गारी, मद्यपान आदि अनेक समस्याओं को जन्म देते हैं।

अपने युग की सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं के आकलन के साथ-साथ प्रेमचंद ने इस उपन्यास में जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को भी रूपायित किया है। उनके अनुसार यह जीवन एक रंगभूमि है और इस रंगभूमि में सभी व्यक्ति खेल खेलने आए हैं। लेकिन खेल खेलते समय हमें किसी प्रकार की धाँधली नहीं करनी चाहिए। इसी से यश तथा कीर्ति मिलती है। अपने व्यापक आधारफलक के कारण इस उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा दी गई है जो सर्वथा उचित ही है।

रंगमंच (*पं० कृ०*)

प्रसिद्ध नाटककार बलवंत गार्गी (दे०) ने नाटक लिखने के साथ ही उन्हें रंगमंच पर पर प्रस्तुत करने में भी विशेष रुचि ली है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने भारत में नाटक की परंपरा का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें पंजाब और भारत के अन्य प्रदेशों में नाटक-लेखन और 'मंचन' की परंपरा का प्रामाणिक वर्णन है। इसमें डा० गार्गी के सुदीर्घ अध्यवसाय के निष्कर्ष अंकित हैं।

विभिन्न प्रदेशों में रंगमंच के विकास के भिन्न-भिन्न स्तरों की बानगियाँ दी गई हैं। ऐतिहासिक दृष्टि इस रचना का उल्लेखनीय गुण है। इसका हिंदी रूपातर भी उपलब्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच (*हिं० पारि०*)

रंगमंच से अभिप्राय उस उन्नत मंच से है जिस पर नाट्याभिनय प्रस्तुत किया जाय। भरत (दे०) के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में नाट्यशाला का समृद्ध विवरण इस बात का संकेत है कि उससे पूर्व सुरुचिपूर्ण रंगशालाएँ होंगी, पर भरत का 'नाट्यशास्त्र' अत्यंत व्यवस्थित ग्रंथ है। इसके अनुसार भारत में तीन प्रकार की रंगशालाएँ होती थीं—आयताकार विकृष्ट, वर्गाकार चतुरस्र तथा त्रिकोण-रूप त्र्यसु। इनमें विकृष्ट मध्यम आदर्श मानी जाती थी। इसके दो खंड—रंगमंच और प्रेक्षक-कक्ष—होते थे। रंगमंच के फिर दो भाग होते थे। —ऊपर का भाग नेपथ्य (दे०) और नीचे का भाग रंगमंच। रंगमंच के दोनों ओर पात्रों के आने-जाने के लिए दो गैलरी बनाई जाती थीं जिन्हें मत्तवारणी कहते थे। रंगमंच के पीछे वाला भाग रंगशीर्ष कहलाता था जहाँ अभिनेता अपनी साज-सज्जा करते थे। हिंदी-रंगमंच अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। वाजिदअली शाह के महल में 'इंदरसभा' (दे०) का अभिनय हुआ था, साथ ही पारसी-कंपनी का अपना अलग रंगमंच था जिसमें पिछले और अगले पर्दों के अतिरिक्त बीच में साधारण पर्दे रहते थे जो दृश्य-परिवर्तन के काम आते थे। अगला पर्दा नाटक के आरंभ में उठकर मध्यांतर में अथवा समाप्ति पर गिरता था। पर्दों की सहायता से विभिन्न दृश्य—राजमहल, मंदिर, कुटी आदि बना लिये जाते थे। भारतेंदु (दे०) ऐसे रंगमंच को जन्म देना चाहते थे जिसमें कलात्मक प्रौढ़ता हो, पर पारसी-रंगमंच का प्रभाव बना रहा जो अभी तक दृष्टिगत होता है। अव्यावसायिक नाट्य-संस्थाओं और सांस्कृतिक क्लबों द्वारा इस दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है। कुछ सरकारी संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं। अभिनव भरत ने कुछ नाट्य-प्रयोग—पेटिका रंगमंच, रूपकार-दृश्यपीठ मंच, त्रि-परिमाणीय खुले मंच, मध्यस्थ केंद्रीय रंगमंच, त्रि-परिमाणादि आकाश-रेखा स्वाभाविक स्थिर रंगपीठ आदि किये हैं। यूरोप में भी यूनानी खुले रंगमंच से आधुनिक रंगमंच तक अद्भुत विकास हुआ है। वहाँ छज्जों वाले तथा हॉर्स-शू रंगमंच से आगे बढ़कर रेखावादी (क्यूबिस्ट), निर्माणवादी (कंस्ट्रक्टिन), चलमंच, उन्नयन मंच, चक्रिल रंगमंच आदि अनेक प्रयोग हुए हैं।

रंगाचार, आद्य (*क० ले०*)

दे० श्रीरंग।

रंगाजम्मा (*ते० ले०*) [समय—सत्रहवीं शती ई०]

आंध्र प्रांत से बाहर आंध्र-भारती का प्रचार और प्रसार करने का श्रेय तंजौर के नायक राजाओं को प्राप्त है। इन्हीं राजाओं में अंतिम विजयराघव नायक के दरबार में रंगाजम्मा रहती थीं। रंगाजम्मा केवल राज-कवयित्री ही नहीं थीं, राजा की हृदयेश्वरी भी थीं। रंगाजम्मा की प्रतिभा और रूपमाधुरी पर मुग्ध होकर राजा ने उनका कनकाभिषेक किया था। रंगाजम्मा भी राजा को अपने आराध्य पति के समान मानती थीं। उनके पुत्र मन्नारुदास पर 'मन्नारुदासविलासमु' नामक प्रबंध और 'यज्ञगानमु' (दे०) की रचना इस कवयित्री ने की थी। इसके अलावा 'उषापरिणयमु' नामक प्रबंधकाव्य भी इनके नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं 'भागवत' (दे०), 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) के इतिवृत्तों पर आधारित काव्य भी इस कवयित्री ने लिखे थे। इस कवयित्री की रचना में कोमल भावों की कांतासम्मित ललित अभिव्यंजना पाई जाती है।

'रंगीन' (*उर्दू० ले०*) [जन्म—1755 ई०; मृत्यु—1835 ई०]

नाम—सआदत यार ख़ाँ, उपनाम—'रंगीन'; जन्म-स्थान—सरहंद। ये 'इंशा (दे०) के घनिष्ठ मित्र थे। ये सर्वप्रथम शाह हातिम (दे०) के शिष्य बने थे परंतु बाद में इन्होंने 'मीर' (दे०) का शिष्यत्व ग्रहण करना चाहा था। मीर साहब ने इन्हें यह कहकर अपना शिष्य बनाने से इनकार कर दिया था कि तुम धनवान व्यक्ति हो, अतः तुम काव्य-कला सीखने में असमर्थ रहोगे। हातिम के बाद ये मुहम्मद अमान 'निसार' (दे०) और 'मुसहफ़ी' (दे०) से अपनी कविताओं का संशोधन कराने लगे थे।

इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं—'मसनवी दिलपज़ीर', 'ईजाद-ए-रंगीन' (मसनवी), चार-दीवान, 'मसनवी मज़्हर-उल-अजाइब' और 'मजालिस-ए-रंगीन'। 'मजालिस-ए-रंगीन में तत्कालीन काव्य-संबंधी मान्यताएँ और आलोचनात्मक लेख हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त उनकी एक और कृति 'फ़रसनामा' भी है। इसमें घोड़ों की बीमारियों के नुस्खे और उनकी पहचान आदि का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंजाबती (बँ० पा०)

लाउसेन की जननी रंजाबती (धर्ममंगल दे०) का चरित्र दुःख और विस्मय का उद्रेक करने वाला चरित्र है। यह दुःख एवं विस्मय उसके चरित्र की विपरीत धर्मिता से उद्भूत है। वृद्ध पति के प्रति अविचलित श्रद्धा एवं पुत्र-प्राप्ति के लिए ऐकांतिक निष्ठा इस चरित्र को महिमान्वित करती है परंतु परवर्ती जीवन-विन्यास में चरित्र का यह सामंजस्य रह नहीं पाया है। वीर नायक की जननी के रूप में यह चरित्र केवल निष्प्रभ ही नहीं, ग्लानिमय भी हो गया है। वीरत्व के आदर्श से रंजाबती गिर जाती है। संतान-स्नेहातुरा जननी के रूप में उसने जिस हीन कौशल से पुत्र को घर में आबद्ध रखने की कोशिश की है उससे उसका चरित्र केवल भ्रष्ट ही नहीं होता, मलिन भी दिखाई पड़ने लगता है। इस चरित्र की यह पारंपर्यहीनता खटकती है। सामंजस्य के अभाव में रंजाबती के चरित्रांकन में लेखक की व्यर्थता प्रकट हुई है।

रंधावा, महिंदर सिंह (पं० ले०) [जन्म—1909 ई०]

डा० रंधावा बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। साहित्य, लोकधारा और कला के क्षेत्र में उनकी खोज और सुरुचिपूर्ण संगठन-संयोजन के कारण उनका व्यक्तित्व एक संस्था का स्वरूप धारण कर चुका है। पंजाब की मौलिक संस्कृति के विभिन्न प्रसारों के प्रति उनके मन में अटूट आकर्षण है और वह जिन-जिन रूपों में अभिव्यक्त हुई है, रंधावा ने उन्हें सँभालने और प्रचारित करने के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है। आप व्यवसाय से एक वनस्पति-विज्ञानी हैं और इस क्षेत्र में आप अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के व्यक्ति हैं परंतु आपकी रुचि साहित्य और कला के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व है। आपने स्वयं तो कार्य किया ही है, साथ-साथ अनेक कलाकारों, साहित्य-स्रष्टाओं और कला-अनुसंधित्सुओं को अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित भी किया और यथासंभव सुविधाएँ भी उपलब्ध कीं-कराईं। डा० रंधावा सूक्ष्म बुद्धि के और सुरुचिपूर्ण व्यक्ति हैं; फलतः पंजाब की कलागत और बौद्धिक गतिविधियों के प्रचार-प्रसार में आप निरंतर योग देते रहे हैं। नये पंजाब के नवनिर्माण में आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगत होती है। पंजाबी चित्रकारी, पंजाबी लोक-साहित्य और पंजाबी लोक-कलाओं पर आपकी निम्नलिखित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

1. हिमालयन आर्ट; 2. काँगड़ा वैली पेंटिंग्ज, 3. कृष्ण लीजेंड्ज़ इन आर्ट, 4. काँगड़ा पेंटिंग्ज़ इन भागवत पुराण, 5. पंजाबी लोक-गीत, 6. काँगड़े दे लोक-गीत, 7. पंजाब।

रक्त करबी (बँ० कृ०) [रचना-काल—1926 ई०]

इस नाटक में रवींद्र (दे० ठाकुर) ने प्रतीकात्मक शैली के द्वारा भौतिक एवं यांत्रिक सभ्यता के साथ जीवन के सहज आनंद और प्रकृति के सरल सौंदर्य का तीव्र संघर्ष दिखाया है। यशपुरी और उसका राजा यांत्रिक जाल तथा व्यावसायिक लिप्सा का प्रतीक है जिसकी लपेट में सारा परिवार है। उसका अनुशासन एवं तनाव इतना उग्र है कि जीवन का सहज-उन्मुक्त प्रवाह अवरुद्ध हो गया है। ऐसे दूषित वायुमंडल में फागुलाल जैसे भोले किसान, विशु जैसे भावुक सरल व्यक्ति तथा किशोर जैसे निश्छल स्वाभिमानी युवक के लिए कोई स्थान नहीं है। रंजन जैसे सजीव और प्रभावशाली पात्र को भी जीवन की आहुति देनी पड़ती है। यंत्र और धनतंत्र के दमघोट वातावरण में उत्साह और उल्लास का प्रतीक है नंदिनी। नंदिनी के अनुसार जीवन का स्वस्थ रूप प्रेम-सौहार्द में है, भौतिक सुखों की मरीचिका में नहीं। इस तरह रवींद्र ने इस नाटक के माध्यम से पश्चिम के भौतिक मूल्यों के स्थान पर आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। इस विचारधारा के अनुरूप 'लाल कनेर' उपयुक्त प्रतीक है। नाटक की दृष्टि से भी यह सशक्त एवं सफल रचना है। यह रवींद्र की उत्कृष्ट रचना तो है ही, इसे युग की उपलब्धि का गौरव भी प्राप्त है।

रक्तगोलापर रक्तस्रोत (उ० कृ०)

यह श्रीधर महापात्र (दे०) का ऐतिहासिक उपन्यास है। उड़ीसा के घुमसरगढ़ का राजपरिवार तत्कालीन राजपरिवारों में एक है। उन्नीसवीं शती में उसका रक्तरंजित इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें इसी इतिहास को उपन्यास का स्वरूप दिया गया है। उड़िया भाषा में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे जाने वाले कतिपय सफल ऐतिहासिक उपन्यासों में से यह एक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्ताक्षि (क० पा०)

'कुवेंपु' (दे०) उपनामधारी राष्ट्रकवि डा० के० वी० पुट्टप्पा की 'रक्ताक्षि' कन्नड की एक प्रसिद्ध नाट्यकृति है। उसके स्त्री-पात्रों में 'रक्ताक्षि' का ही प्राधान्य है। उसी के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। 'रक्ताक्षि' शेक्सपियर के 'हैमलेट' के अनुकरण पर लिखा गया नाटक है, जिसमें कर्नाटक के इतिहास का दर्शन होता है। परंतु 'हैमलेट' और 'रक्ताक्षि' में अंतर भी स्पष्ट है : 'हैमलेट' नायक-प्रधान नाटक है तो 'रक्ताक्षि नायिका-प्रधान। बिदनूर राज्य के मंत्री लिंगण्णा की प्रिय पुत्री रुद्रांबा अनुपम सुंदरी है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के कारण वह रक्त की आकांक्षा करने वाली होकर 'रक्ताक्षि' बन जाती है। वह बसवय्या से इतना प्रेम करती है कि उसके सामने वह किसी की परवाह नहीं करती। रूपवान, धनी युवक शिवय्या उसके प्रेम को पाने का विफल प्रयत्न करता है, उसे लोभ के जाल में फँसाना चाहता है, परंतु बसवय्या से एकनिष्ठ प्रेम करने वाली रुद्रांबा उसका तिरस्कार करती है। बसवय्या की सौतेली माँ चेलुवांबा अपने प्रियतम निंबय्या की सहायता से अपने पति राजा बसप्पनायक की हत्या करा देती है। यह रहस्य बसवय्या को राजा के प्रेत से ज्ञात होता है। वह जब चिंतित रहता है तब मंत्री लिंगण्णा द्वारा प्रेषित रुद्रांबा उसको सांत्वना देती है। राज्य की सुव्यवस्था और शांति के लिए प्रयत्न करने वाले अपने पिता और प्रियतम को हर प्रकार से सहायता पहुँचाने की आकांक्षा से वह पगली के समान व्यवहार करती है। शिवय्या के पैशाचिक प्रेम को जानकर भी उससे प्रेम करने का अभिनय कर वह रानी चेलुवांबा और निंबय्या के षड्यंत्र के कारण कारागार में पड़े अपने पिता और प्रेमी बसवय्या को छुड़ाती है। उनके जाने के बाद शिवय्या बसवय्या के मित्र के समान अभिनय कर उसका अनुगमन करता है। शिवय्या बसवय्या के अंतःकरण को जानने के उद्देश्य से होन्नय्या पर झूठा आरोप लगाता है कि वह रुद्रांबा से प्रेम करता है। निष्कपट हृदयवाला बसवय्या कहता है कि 'मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता। यदि वह सचमुच ऐसा व्यवहार करता है तो उसको दंड दिया जाएगा।' शिवय्या बसवय्या के मन को पहचान लेता है और अवसर देखकर उसे प्रपात (खाई) में गिरा देता है। एक बड़े पत्थर से उसे मारना चाहता है। इतने में घोड़े की टाप सुनकर वह छिप जाता है। होन्नय्या और लिंगण्णा वहाँ आते हैं, पर वे मरने वाले बसवय्या को बचा नहीं सकते। लिंगण्णा हैदरअली की सहायता पाने उसके पास जाता है और होन्नय्या को बसवय्या के दाहसंस्कार के लिए छोड़ जाता है। होन्नय्या राज्य की अव्यवस्था को दूर करने के उद्देश्य से अपने को बसवय्या का हंता घोषित करता है। रुद्रांबा इसे सच समझकर उसे मार देती है। परंतु बाद में जब सत्य ज्ञात होता है, वह अत्यधिक खिन्न हो जाती है। वह उसका प्रायश्चित्त भी करती है। षड्यंत्रकारी निंबय्या और चेलुवांबा को बंद कमरे में जीवसहित अग्नि-समाधि लेने को बाध्य करती है, छुरी भोंक कर शिवय्या की जान ले लेती है और स्वयं भी मृत्यु का आलिंगन कर लेती है। वह सुकोमल नारी भयंकर रक्ताक्षि बन जाती है। उसके चित्रण में लेखक ने प्रेम की दृढ़ता, हृदय की स्थिरता एवं कोमलता और परुषता का संयोग दिखाया है।

रक्षकुमार (अ० क्र०) [रचना-काल—1952 ई०]

यह कृत्तिवासी 'बंगला-रामरायण' (दे०) से प्रेरणा लेकर विभीषण-पुत्र तरणीसेन की वीर-मृत्यु के आधार पर लक्ष्यधर चौधुरी द्वारा लिखा गया नाटक है। कथा सीता-हरण से लेकर तरणीसेन की मृत्यु तक है। 'रामायण' की घटना को अविकृत रखकर पात्रों के कार्यों के अंतराल में नूतन नाटकीय अभिप्राय आरोपित किया गया है। तरणीसेन अल्प वय का होते हुए भी साहसी, कर्तव्य-परायण, देशप्रेमी और रामभक्त दिखाया गया है। रावण के प्रचंड चरित्र के मध्य भी रामभक्ति प्रच्छन्न रूप से दिखायी गयी है। नाटक के संवाद लंबे हैं और नाट्य-कला का निर्वाह ठीक से नहीं हो पाया है।

रघु (सं० पा०)

इक्ष्वाकुवंशीय रघु अयोध्या का राजा था। इसके पिता का नाम राजा दीर्घबाहु था, तथा पितामह का नाम दिलीप खट्वांग था, किंतु कालिदास (दे०) के 'रघुवंश' (दे०) के अनुसार इसके पिता का नाम राजा दिलीप (दे०) था, जिसे यह नंदिनी नामक धेनु की सेवा से प्राप्त हुआ था। इसी के बल-पराक्रम के कारण ही इक्ष्वाकु वंश 'रघुवंश' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने दिग्विजय प्राप्त कर अतुल संपत्ति प्राप्त की, किंतु गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से विश्वजित् यज्ञ करके सारा धन दान में दे दिया और धन-हीन होकर वन में चला गया। इसी स्थिति में ऋषि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वामित्र का शिष्य कौत्स गुरु-दक्षिणा के लिए धन की याचना करने इसके पास आ पहुँचा। उसकी अभिलाषा-पूर्ति के लिए इसने कुबेर पर आक्रमण कर दिया जिससे कौत्स को चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त हुईं। रघु के बाद इसका पुत्र अज अयोध्या का राजा बना, जो कि दशरथ का पिता और राम का पितामह था।

रघु अरक्षित (उ० कृ०)

'रघु अरक्षित' उपन्यास डा० कुंतला कुमारी साबत (दे०) का सर्व बृहत् उपन्यास है। कुंतला उत्कल-मणि गोपबंधु (दे०) से प्रभावित थीं। नारी-सुलभ आवेशमयी तरल जातीय चेतना की दीप्ति से उनकी रचनाएँ आलोकित हैं। इनके चरित्र क्रांतिकारी, प्रगतिशील एवं संस्कारोन्मुखी हैं। मध्यम वर्ग के चित्रण के द्वारा इन्होंने फ़क़ीर मोहन सेनापति (दे०) की परंपरा ही निबाही है। इस उपन्यास में लेखिका ने धनी एवं निर्धन के बीच साम्य स्थापित करने की चेष्टा की है।

उपन्यास का नायक रघुनाथ (दे०) मातृ-पितृ-हीन है। अपने प्रयास से वह धनवान बनता है। सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के बाद उसका एक धनी की कन्या सीता से प्रेम होता है। किंतु प्रेम सफल नहीं हो पाता। परिस्थितिवश वह ब्राह्मधर्मावलंबी कृष्णबाबू की गुणवती शिक्षिता कन्या से विवाह करता है। किंतु दांपत्य जीवन का सुख स्थायी नहीं हो पाता। व्यर्थकाम होकर अंत में अपने को देश-कल्याण में लगा देता है।

उपन्यास की विषयवस्तु यद्यपि व्यापक नहीं है तथापि आधुनिक जीवन के अनेक घात-प्रतिघातों के साथ नायक के चरित्र का उत्साह, उद्यम एवं संयम का परिपूर्ण विकास इस उपन्यास में अंकित है। उड़ीसा की किसी भी दरिद्र हतभाग्य संतान के साथ उसकी तुलना की जा सकती है। लेखिका ने रघुनाथ के चरित्र के माध्यम से जिस गुणधर्म की प्रतिष्ठा की है वह यथार्थतः गोपबंधु के आदर्श के अनुकूल है।

कुंतला मूलतः दार्शनिक हैं। यहाँ भी उनका यह आत्मदर्शन प्रकाशित हुआ है कि 'शरीर कुछ भी नहीं, आत्मा सब कुछ है। दैहिक मिलन पूर्ण मिलन नहीं है। कायिक कर्म आत्मा का स्पर्श नहीं करते। अतः अंतर्निहित सत्ता ही सर्वशक्तिमान है।'

कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, अभिव्यंजना, शैली, उद्देश्य सभी दृष्टियों से यह उच्चकोटि की रचना है।

रघुनाथ दास (उ० पा०)

डा० कुंतला कुमारी सावत (दे०) के सर्वबृहत् उपन्यास 'रघु अरक्षित' (दे०) का मुख्य चरित्र है रघुनाथ। रघु मातृ-पितृहीन है। वह चाचा-चाची के पास रहता है। चाची का उस पर अगाध स्नेह है। किंतु चाचा का मत है कि यह घर के लिए विष-बीज है।

रघुनाथ का जीवन घटना-बहुल है। अपने देश से दूर बर्मा में नौकरी करता है। जीवन में प्रेम, विवाह, गृहस्थी—सभी कुछ करता है। इसकी संतान भी है। किंतु इन सबके बावजूद इसका जीवन आदि से अंत तक दुःखमय है। यह मन ही मन सोचता है—'क्यों उसके जीवन में इतना दुःख है, इतना विच्छेद है?' आँखों के सामने न जाने कितने परिवर्तन घटित हो जाते हैं। अपने परवर्ती जीवन में रघुनाथ देश-सेवक बन जाता है। सुदूर रंगून में यह अपना कर्म-पथ निश्चित कर लेता है। अपने शेष जीवन में, अपनी कन्या का सान्निध्य पाने का इसे सौभाग्य मिलता है।

आधुनिक युग के घात-प्रतिघात ने रघुनाथ के चरित्र में परिपूर्ण विकास पाया है। उड़ीसा की किसी भी हतभाग्य संतान के साथ रघु के चरित्र की तुलना की जा सकती है। इस चरित्र के माध्यम से लेखिका ने जिस गुण-धर्म की प्रतिष्ठा की है, वह आश्चर्यजनक है। रघु का चरित्र संस्कारोन्मुखी है। लेखिका इसके माध्यम से सामाजिक वर्जनाओं को दूर करना चाहती है।

रघुनाथ दास (गु० ले०)

अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि। मध्यकालीन भक्ति कविता में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। इन्होंने भागवत, रामायण, ध्रुवाख्यान, कीर्तन के पद, छप्पय, और कृष्ण-लीला की गरबियाँ लिखी हैं। कृष्ण-लीला की गरबी और पदों में उन्होंने दानलीला, होली के पद, कृष्ण जब गोकुल छोड़कर मथुरा चले गये उस समय की नंद, गोपी और यशोदा की मनःस्थिति के करुण रस के पद लिखे हैं। गोपियों की विरहावस्था का अत्यंत करुण चित्र उन्होंने खींचा है। उनके पदों में विविधता है। प्रस्तुतीकरण की रीति में माधुर्य है और भावों की अभिव्यक्ति में उनकी अभिराम काव्यकला का परिचय मिलता है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुनाथ नायकुडु *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती]

दक्षिण भारत में तंजौर के नायक राजाओं में रघुनाथ नायकुडु का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका राज्य-काल 1600 से 1631 ई० तक माना जाता है। ये बड़े पराक्रमी थे और साथ ही कलापोषक और साहित्य-स्रष्टा भी। पारिजातापहरणमु', 'रघुनाथ रामायणमु', 'वाल्मीकि-चरित्र' आदि प्रबंध-काव्यों के अतिरिक्त इन्होंने 'गजेंद्रमोक्षमु', 'रुक्मिणी-कृष्णविवाहमु', 'जानकी परिणयमु' आदि यज्ञगानमु (दे०) तथा 'नलचरित्रमु' (दे०) जैसे द्विपद (दोहा जैसे देशी छंद में निबद्ध) काव्य भी लिखे थे। इनके द्वारा रचित 'अच्युताभ्युदयमु' अभ्युदय नाम की काव्यपरंपरा का सिरमौर है। इनकी रचनाओं में कोमल शृंगार की भावनाओं के साथ कमनीय दार्शनिक चिंतन का स्तुत्य सामंजस्य दिखाई देता है। कहा जाता है कि इन्होंने 'पारिजातापहरणमु' नामक काव्य का प्रणयन आशु रचना के रूप में छह छंदों में किया था। इस पर प्रसन्न होकर इनके पिता ने इनका कनकाभिषेक किया था। 'वाल्मीकि-चरित्र' इनकी अनुपम काव्यकृति है।

रघुनाथन *(त० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

तत्सम शैली में इनका नाम 'रघुनाथन' है। आधुनिक तमिल साहित्य में प्रयोगवादिता का विद्रोही स्वर ऊँचा उठाने वाले स्व० लेखक 'पुदुमैप्पित्तन' (दे०) के अनुयायी के रूप में ये साहित्यिक क्षेत्र में आये थे। सोवियत रूस की कविताओं का तमिल अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ इन्होंने अपनी कविताओं का एक संग्रह भी निकाला है। इनके 'पचुम् पचियुम्' (रुई और भूख) नामक उपन्यास में कपड़ा मिल-मज़दूरों की दुर्दशा की सामयिक समस्या का प्रस्तुतीकरण है। प्रो० कामिल ज्वेलेबिल् द्वारा चेक भाषा में इसका अनुवाद भी किया गया है। इनकी उल्लेखनीय अन्य कृतियाँ 'पुदुमैप्पित्तन' की जीवनी, 'चेरिल्मलर्न्त चेंतामरै' ('कीचड़ में फूल उठे कमल'—लघुकथाएँ), 'नान् इरुवर्' ('मैं दो व्यक्ति हूँ'—उपन्यास) तथा 'पुयल्' ('तूफ़ान'—उपन्यास) हैं।

रघुपति *(बँ० पा०)*

राजपुरोहित रघुपति (विसर्जन—दे०) त्रिपुरेश्वरी मंदिर का भक्तिनिष्ठ तेजस्वी ब्राह्मण है। प्राचीन संस्कार उसके अंतर में बद्धमूल हैं। रघुपति की प्रतिष्ठा उसकी सुदृढ़ निष्ठा में निहित है। संस्कारों के बंधन में बँधा हुआ धर्मबोध रघुपति के रोम-रोम में भरा हुआ है। इस धर्मबोध की रक्षा में उसका जीवन उत्सर्ग है। प्रतिहिंसापरायणता इसलिए उसके चरित्र का सहज गुण है क्योंकि वह प्रचारक नहीं, अपने निकट वह सच्चा है। जीवरक्त के बिना देवी की तृष्णा ख़तम नहीं होती—इसी विश्वास से उसका समस्त कर्म नियंत्रित है। रघुपति का अंधविश्वास पूर्ण हो गया है उसी की आँखों की पुतली जयसिंह के आत्मविसर्जन के द्वारा। जीवन-रहस्य एवं धर्म-रहस्य का संधान उसे अपर्णा से मिला है। अहंबोध की अमारात्रि के अवसान लग्न में, इसीलिए, रघुपति आत्मोपलब्धि के स्वर्ण-शिखर प्रांगण में प्रणति-भग्न प्रशांत-सुस्थिर है।

रघुवंश *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शती ई० पू०]

'रघुवंश' कालिदास (दे०) की अत्यंत प्रौढ़ तथा उत्कृष्ट कृति है। इसी के आधार पर कालिदास को 'रघुकार' कहा जाता है।

'रघुवंश' 19 सर्गों में उपनिबद्ध एक वृहत् महाकाव्य है। इसका आरंभ रघु के जन्म की पूर्वपीठिका से हुआ है। दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म होता है। अपने अदम्य पराक्रम से वे पूरे भारत पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और अद्भुत दानशीलता का परिचय देते हैं। इसके अनंतर तीन सर्गों में इंदुमती का स्वयंवर, अन्य समवेत राजाओं को परास्त कर अज का इंदुमती से परिचय तथा कोमलमाला के गिरने से इंदुमती का मरण और अज का करुण विलाप क्रमशः वर्णित है। दसवें से लेकर पंद्रहवें सर्ग तक राम के चरित का वर्णन है। अंतिम सर्ग सामान्य से है पर अंतिम सर्ग में कामुक अग्निवर्ण का चित्रण बड़ी ही मार्मिक शैली में किया गया है।

कालिदास ने रघुवंश में 'रघु' के वंश की सुविख्यात कथावस्तु लेकर एक उदात्त एवं सरस महाकाव्य की सृष्टि की है। कथावस्तु की महनीयता, मार्मिक स्थलों के सरस वर्णन, विविध मनोभावों की सरस एवं प्रभावोत्पादक व्यंजना अत्यंत उत्कृष्ट है। पात्रों के स्पष्ट चरित्र-चित्रण और मनोहर संवादों ने महाकाव्य की लोकप्रियता की अभिवृद्धि की है। प्राकृतिक दृश्यों के सहज एवं चित्ताकर्षक वर्णन का तो 'रघुवंश' मानो भांडार है। अलंकारों के उपयुक्त एवं मौलिक प्रयोग छंदों के सौंदर्य एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैली की स्पष्टता तथा भाषा के प्रांजल एवं परिमार्जित प्रयोग ने इस महाकाव्य को चोटी पर पहुँचा दिया है। इसी काव्य की एक उपमा के आधार पर कालिदास को 'दीपशिखा' कालिदास कहा जाने लगा।

इस ग्रंथ पर विभिन्न कालों में जो 40 टीकाएँ लिखी गई हैं वे इस ग्रंथ की लोकप्रियता एवं उत्कृष्टता की स्पष्ट परिचायक हैं।

रघुवीर (*भाषा० ले०*) [जन्म—1902 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

डा० रघुवीर का जन्म रावलपिंडी में तथा शिक्षा लाहौर में हुई। बाद में वे वहीं संस्कृत के अध्यापक रहे तथा विभाजन के बाद दिल्ली में 'सरस्वती-विहार' (इंटरनेशनल एकेडमी आफ़ इंडियन कल्चर) नामक संस्था की स्थापना की और आजीवन उसके निदेशक रहे। डा० रघुवीर का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था भारतीय संस्कृति के विश्वव्यापी प्रभाव का संधान। आपने तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, कंबोडिया, वियतनाम, स्याम, इंडोनेशिया, मलेशिया, बर्मा, लंका आदि देशों की यात्रा कर कई हज़ार (संस्कृत से विभिन्न भाषाओं में हुए अनुवादों की) पांडुलिपियाँ, शिलालेख, ताम्रपत्र, स्वर्णपत्र, भूर्जपत्र, कलाकृतियाँ तथा शिल्पकृतियाँ एकत्र कीं जो अपने मूल या फ़ोटो रूप में 'सरस्वती-विहार' में संगृहीत हैं। डा० रघुवीर का विचार था कि भारतीय भाषाओं को भारतीय शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने 'बृहद् अँग्रेज़ी-हिंदी कोश' संपादित किया जिसमें लगभग चार लाख शब्द हैं। आपने लगभग दो लाख शब्दों का तिब्बती-संस्कृत कोश भी तैयार किया। पारिभाषिक शब्दों के शिल्पी और कोशकार के रूप में वैयक्तिक स्तर पर उनका कार्य भारतीय भाषाओं में अन्यतम है, यद्यपि इस बात में उनसे कम ही लोग सहमत रहे हैं कि प्रचलित अरबी-फ़ारसी-अँग्रेज़ी शब्दों को छोड़कर भारतीय भाषाओं को संस्कृत या संस्कृत-अनुरूप शब्दों को अपना लेना चाहिए।

रङ्गिली (*अ० कृ०*) [रचना-काल—1907 ई०; प्रकाशन-वर्ष—1925 ई०]

रजनीकांत बरदलै (दे०)-कृत इस उपन्यास में बर्मियों के प्रथम आक्रमण को पृष्ठभूमि बनाकर असम के शासकों की अदूरदर्शिता एवं गृह-कलह का दुष्परिणाम प्रस्तुत किया गया है। इसमें चार-चार प्रेमकथाएँ एक-साथ चलती हैं, सत्राम-रङ्गिली, शांतिराम-पदुमी, जयराम-केतेकी और विचित्री-मनाइ की। इसमें प्रथम दो मुख्य हैं। रङ्गिली और पदुमी में कौन नायिका है बता सकना कठिन है; उपन्यास का नाम अवश्य रङ्गिली के नाम पर है। चारों कथाओं में पूर्ण सुसंबद्धता का अभाव है। लेखक ने कहानी के साथ-साथ असमीया समाज-संस्कृति के वर्णन में अत्युत्साह दिखाया है, फलतः कहानी की ओर सजगता कम हो गयी है। आठों मुख्य पात्रों में केवल सत्राम ही ऐतिहासिक पुरुष है। चंद्रकांतसिंह आदि अन्य पात्र ऐतिहासिक हैं किंतु वे प्रधान चरित्र नहीं हैं।

रट्टिटङ्ङषि (*मल० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

उपन्यासकार तकषि (दे०) शिवशंकर पिळ्ळा के इस सामाजिक उपन्यास का हिंदी में 'दो सेर धान' नाम से अनुवाद हुआ है। कुट्टनाट के कृषकों तथा खेत के मालिकों का जीवन, इसमें चित्रित किया गया है। निम्न जाति के लोगों के प्रति ज़मींदारों के व्यवहार, उनके बीच की स्पर्धा आदि पर लेखक ने ज़मींदार औसेप, उसके पुत्र चाक्को, खेत में काम करने वाले निम्न जाति के कोरन्, उसकी पत्नी चिरुता, कोरन् के साथी चात्तन् आदि पात्रों के द्वारा प्रकाश डाला है। कथा के गठन में उपन्यासकार तमषि सर्वथा सफल रहे।

रणछोड़भाई उदयराम (*गु० ले०*) [जन्म—1837 ई०; मृत्यु—1923 ई०]

रणछोड़भाई गुजराती रंगभूमि के जनक माने जाते हैं। सर्वप्रथम भवाई में प्रदर्शित निर्लज्जता और अश्लील चेष्टाओं के विरुद्ध शिष्ट नाटकों को रंगमंच पर लाने के उच्चाशय से रणछोड़भाई ने काबराजी के साथ मिलकर नाटक-प्रेरक-मंडली की स्थापना की। इस नाटक मंडली द्वारा रणछोड़ जी लिखित 'हरिश्चंद्र' और 'नल-दमयंती' नामक नाटक अभिनीत किए गए। तदुपरांत पारसियों की चुनौती को स्वीकार कर बंबई के कुछ गुजराती बंधुओं ने रणछोड़भाई की सहायता से इनके नाटक 'ललिता-दुःखदर्शक (दे०) का सुंदर अभिनय किया। इस नाटक के अभिनय के साथ ही 'गुजराती नाटक मंडली' की विधिवत् स्थापना हुई। रणछोड़भाई की नाट्य-दृष्टि सुशिक्षित थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने ऐतिहासिक नाटकों में कालानुसार वेशभूषा रखने का आग्रह किया तथा लोक-रुचि और लोक-मन को ऊँचा उठाने की सतत चेष्टा की। 'मालविकाग्निमित्र' (दे०), 'रत्नावली', 'विक्रमोर्वशीय' (दे०) तथा 'हरिश्चंद्र' नामक नाटकों के अनुवादों के अतिरिक्त इनके अपने मौलिक नाटक हैं: 'बालासुरमदमर्दन', 'मदालसा अने ऋतुध्वज', 'वंठेला विरहनां कूडां कृत्य', 'वैरनो वांसेवस्योवारसो', 'निद्यश्रृंगार-निषेधक' आदि दस नाटक। 'रणपिंगल' और 'नाट्यप्रकाश' इनके सुंदर ग्रंथ हैं। गुजराती रंगमंच और नाट्यपरंपरा की दृष्टि से रणछोड़भाई का नाम गुजराती साहित्य में अविस्मरणीय है।

रणमल्ल छंद *(गु० कृ०)* [चौदहवीं शती]

'रणमल्ल छंद' जैनेतर कवि श्रीधर (दे०)-रचित वीररस-प्रधान काव्य है।

ईडर के राजा राव रणमल्ल ने पाटण के मुसलमान सूबेदार ज़फ़रखाँ को पराजित किया था। राव रणमल्ल की इस विजय का वर्णन इस छोटे से वीर रस-प्रधान काव्य में हुआ है।

इसमें प्रयुक्त भाषा अवहट्ट का विकासशील देशी रूप है। अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी इसमें प्राधान्य है। कुल 70 छंदों की इस छोटी रचना में मात्रिक छंदों का प्रयोग अधिक हुआ है। ओजपूर्ण भाषा, सजीव वर्णन और नाद-सौंदर्य से मंडित इस रचना का महत्व स्वतः सिद्ध है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इसे प्राचीन हिंदी की तथा डा० उदयसिंह भटनागर ने प्राचीन शुद्ध डिंगल की रचना माना है।

रतनसिंह 'भंगू', ज्ञानी *(पं० ले०)*

ये सिख-पंथ के प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ 'पंथ-प्रकाश' (प्राचीन) (दे०) के रचयिता हैं। ये सरदार मताबसिंह मीरांकोटिए मंगू के पौत्र, सरदार रामसिंह के पुत्र तथा सरदार शामसिंह जी करोड़िया के दौहित्र थे। ज्ञानी रतनसिंह सिख-पंथ के इतिहास के विशेषज्ञ थे। विक्रमी 1809 ई० में इनसे ही कप्तान मरे ने सिख-मत-संबंधी वृत्तांत प्राप्त कर उसे लिपिबद्ध किया था, जिसे इन्होंने स्वयं 1841 ई० में पद्यबद्ध कर 'पंथ-प्रकाश' के नाम से प्रस्तुत किया। इनका देहावसान 1846 ई० में हुआ। इनके वंशज ज़िला लुधियाना की तहसील समराला के भड़ी नामक गाँव में रहते हैं।

रतनसेन *(हिं० पा०)*

राजा रतनसेन जायसी (दे०) कृत 'पदमावत' (दे०) नामक प्रेमगाथा का नायक है। यह पूर्णतः ऐतिहासिक पात्र है, परंतु कवि ने अपनी सुविधा के अनुसार इससे संबद्ध घटनाओं को कल्पना के 'खोल' में तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है, जैसे इसे चित्तौड़गढ़ के राजा चित्रसेन का पुत्र बतलाना, इसके द्वारा सिंहल की यात्रा करवाना, इसके दुर्ग का अलाउद्दीन द्वारा 6 या 7 मास की जगह 8 वर्ष तक घेरा डाले रखना आदि। 'पदमावत' में चित्रसेन एक आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित हुआ है। यह हीरामन तोते से पदमावती (दे०) के रूप-सौंदर्य की चर्चा सुनकर एक साधक की भाँति योगियों के कटक के साथ मार्ग-जनित बाधाओं को पार करता हुआ सिंहल पहुँचता है और अनेक कठिनाइयों के बीच पदमावती को प्राप्त करता हुआ सूफ़ी-मार्ग के सिद्धांतों के अनुसार समुद्र में एक बार खोकर पुनः प्राप्त करता हुआ चित्तौड़ पहुँचता है। राघवचेतन के व्याघात को सहते हुए अलाउद्दीन से जूझता है और अंत में वीरगति को प्राप्त होता है।

इतिहास इसका शासन-काल 1301-2 ई० से 1303 ई० तक तथा अंतिम 6 मास अलाउद्दीन से युद्ध करने में व्यतीत होते मानता है। जायसी ने अपने नायक को धीरोदात्त नायक की परिखा में रखकर परमवीर, सच्चे प्रेमी, सौंदर्य-साधक और दार्शनिक के रूप में चित्रित किया है। यह सचमुच ही सूफ़ी-साधकों का पूर्ण आदर्श है।

रतनू वीरभाण *(हिं० ले०)* [जन्म—1688 ई०; मृत्यु—1735 ई०]

ये रतनू शाखा के चारण थे तथा जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम में निवास करते थे। इनका 'राजरूपक' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रंथ में जोधपुर-नरेश अभयसिंह तथा गुजरात के सूबेदार बिलंदखाँ के युद्ध का ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्ट ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। वीरभाण आलंकारिक शब्द-योजना तथा प्रभावशाली छंद-विधान के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नदीप *(बँ० कृ०)* [रचना-काल —1915 ई०]

प्रभातकुमार मुखोपाध्याय के बृहत् उपन्यासों में 'रत्नदीपा' का स्थान सर्वोच्च है। घटना-वैचित्र्य पर प्रतिष्ठित होते हुए भी इनके चरित्र पाठकों के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। हिंदू नारी के स्वामी-संस्कार के चित्र को प्रदर्शित करने के लिए ही यह उपन्यास रचा गया है। नायक राखल बौराणी का पति है यह सोचकर बौराणी ने अपने हृदय के समस्त भावावेग को राखल के चरणों पर उँडेल दिया है परंतु जिस दिन उसे पता चलता है कि राखल उसका वास्तविक पति नहीं है तो बिना किसी दुबिधा के वह हृदय को अपने में खींच कर रिक्तता का रास्ता अपना लेती है। बौराणी के चरित्र के कोमल विषाद-मंडित माधुर्य के साथ अविचलित पातिव्रत का सुंदर समन्वय हुआ है। राखल का चरित्र-संयम एवं आत्मविसर्जनकारी प्रणय भी हमें अभिभूत करता है। हिंदू नारी के मन पर सामाजिक संस्कार के तीव्र प्रभाव का एवं उसके मूल्य का लेखक ने विस्तार से विश्लेषण किया है। परंतु दयावेग एवं मनस्तत्त्व के ऊपर नैतिक चिंतन को थोपकर लेखक ने उपन्यास की सार्थकता थोड़ी घटा दी है। उपन्यास उच्च श्रेणी का न होने पर भी सुखपाठ्य है एवं सभी श्रेणियों के पाठकों के लिए आकर्षक है।

रत्नाकर *(सं० ले०)* [समय—नवीं शती]

महाकवि रत्नाकर कश्मीर नरेश जयापीड़ के राजकवि थे। इनके पिता का नाम 'अमृतभानु' था। 'राजतरंगिणी' (दे०) में इनका परिचय दिया गया है। अवंतिवर्मा के समय में भी यह विद्यमान थे।

इनका केवल एक ग्रंथ उपलब्ध होता है। वह है—'हरविजय'। यह एक महाकाव्य है जिसमें 50 सर्ग तथा 4329 श्लोक हैं। इसमें शिव द्वारा अंधकासुर-वध की कथा वर्णित है। पार्वती ने शिव के नेत्रों को विनोद में हाथों से ढक लिया; अतः शिव से उत्पन्न अंधक नेत्रहीन हुआ। किंतु तप करके उसने शिव से दृष्टि पाई और त्रैलोक्य का स्वामी बन बैठा। अंत में शिव ने उसे मार डाला। कथानक छोटा होते हुए भी कवि ने अपनी वर्णना-शक्ति से ग्रंथ को विपुलकाय बना दिया है। कहते हैं कि रत्नाकर ने माघ (दे०) की ख्याति को कम करने के लिए अपने महाकाव्य की रचना की थी। प्रतिभा में तो रत्नाकर माघ से वास्तव में आगे प्रतीत होते हैं। इनका अध्यात्म-संबंधी काव्य कभी बहुमुखी था। पर निर्वाह में माघ आगे हैं। राजशेखर (दे०) ने 'हरविजय' की प्रशंसा की है पर इसमें पांडित्य-प्रदर्शन अधिक बताया है।

रत्नाकर, जगन्नाथ *(हिं० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

इनका जन्म काशी के एक संपन्न घराने में हुआ। शिक्षा का समारंभ उर्दू-फ़ारसी से हुआ। आगे चलकर हिंदी और अँग्रेज़ी का ज्ञान प्राप्त किया। क्वींस कालेज से बी० ए० पास करके ये अवागढ़ ख़ज़ाने के निरीक्षक, अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी और उनकी मृत्यु के बाद महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। इन्होंने 'साहित्य-सुधानिधि' और 'सरस्वती' पत्रिकाओं के संपादन, 'रसिक-मंडल' प्रयाग की स्थापना एवं काशी नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा के विकास में अत्यधिक योग दिया। ये कलकत्ते के बीसवें अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन एवं चौथी ओरिएंटल कांफ्रेंस के हिंदी-विभाग के सभापति रहे थे।

'हिंडोला', 'समालोचनादर्श', 'हरिश्चंद्र', 'कलकाशी', 'श्रृंगार लहरी', 'प्रकीर्ण पद्यावली', 'रत्नाष्टक तथा वीराष्टक', 'गंगावतरण', 'उद्धव शतक' (दे०) आदि इनकी मौलिक कृतियाँ हैं; संपादित ग्रंथों में 'सुधासार', 'कविकुल कंठाभरण', 'हिततरंगिणी', 'सुजान सागर', 'बिहारी रत्नाकर', 'सूरसागर' (अपूर्ण) आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इनके अनेक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक लेख भी प्रकाशित हुए हैं।

रत्नाकर अनेक भाषाओं के ज्ञाता और बहुज्ञ व्यक्ति थे। इनकी भक्ति का दार्शनिक आधार मध्व, वल्लभ और चैतन्य की समन्वित विचारधारा है। रत्नाकर ने ब्रजभाषा के अभिजात रूप की रक्षा करते हुए उसे नवीन भाव-बोध से समादृत किया। 'उद्धव शतक' तथा अन्यान्य ग्रंथों में भावों की प्रौढ़ता, शैली की मनोरमता, वक्रता एवं उक्ति-वैचित्र्य, अलंकारों की सजावट, ब्रजभाषा का माधुर्य एवं भक्ति की मधुरिमा में अभिनिवेशित सूक्तियों का सौंदर्य कवि के अनूठे काव्य-कौशल का परिचायक है। इनकी कृतियाँ भक्ति, श्रृंगार, वीर तथा नीति आदि सभी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। भावना से रससिद्ध, अभिरुचि से अलंकारवादी एवं प्रवृत्त्या समन्वयवादी इस कलाकार का काव्य पुरातनता का नवीन संस्करण है, भक्ति के परिवेश में रीति का श्रृंगार है एवं ब्रजभाषा के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी बोली का नूतन अभिनंदन है। राजनीतिक दृष्टि से वे सर्वतोमुखी क्रांति के समर्थक थे और राष्ट्रीय गौरव के उन्नायक थे। उनकी राष्ट्रीयता जातीय भावना से ओत-प्रोत है। सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करके स्वस्थ परंपराओं का पोषण उनका साहित्यिक प्रतिमान था।

रत्नाकरर्वाण (क० ले०)

सोलहवीं शती के श्रेष्ठ कन्नड-कवियों में शुक्र-तारा के समान सुशोभित हैं। इनको उस युग का 'कन्नड-कोकिल' कहा गया है। ये रत्नाकर, रत्नाकरसिद्ध, रत्नाकरर्वाण और अण्णा नामों से अभिहित होते थे। ये योगी थे, अतः इनके काव्य में दर्शन की सुषमा 'देशि' (दे०) शैली की मधुरता के साथ प्रकट हुई है।

रत्नाकर के जीवनचरित के विषय में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। देवचंद्र (1770-1841 ई०) ने अपनी रचना 'राजावळिकथा' (दे०) में इनके संबंध में जो कुछ लिखा है, उसके तथा आंतरिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि इनका जन्म मूडबिदरे के एक जैन-कुल में हुआ था और यहीं इनका बाल्यकाल बीता था। उन दिनों मूडबिदरे और कार्कळ जैन धर्म के केंद्र थे। रत्नाकर जैन धर्मानुयायी थे, पर क्षत्रिय थे। इनके दीक्षा-गुरु चारुकीर्ति तथा मोक्षगुरु हंसनाथ थे। ये योगविद्या तथा 'काव्यालंकार-लक्षणशास्त्र'-निपुण थे। कार्कळ के राजा भैरव के दरबार में इनका सम्मान हुआ था, वहाँ ये 'शृंगार-कवि' के रूप में रहे। राजपुत्री के साथ इनके प्रेम-व्यवहार का उल्लेख देवचंद्र ने किया है।

रत्नाकर के ग्रंथ हैं—'भरतेश-वैभव' (दे०), 'त्रिलोक-शतक', 'अपराजितेश्वर-शतक' और 'अण्णन पदगळु' (अर्थात् गीत)। इनके अतिरिक्त 'रत्नाकराधीश्वर-शतक' भी इनका लिखा हुआ कहा जाता है। परंतु, इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

'भरतेश-वैभव' रत्नाकर की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसमें आदि तीर्थंकर के पुत्र भरतेश के राजयोग का वर्णन है। कन्नड में यह कथा पहली बार नहीं कही गई है। महाकवि पंप (दे०) के 'आदिपुराण' और चावुंडराय के 'चावुंडरायपुराण' (दे०) में भरत और बाहुबलि की कथा अभिवर्णित है। परंतु, रत्नाकर ने भरत के भव्य चरित्र की सृष्टि की है। इन्होंने भरत को जिनयोगी के रूप में चित्रित कर उनके आदर्शमय जीवन का वर्णन किया है। इनके भरत सिद्ध पुरुष हैं, श्रीकृष्ण के समान वे योगी हैं। श्रीकृष्ण का जीवन 16 सहस्र गोपियों के बीच में बीता तो भरत का जीवन 96 सहस्र रानियों के बीच में व्यतीत हुआ। कवि ने उनके भोग और योगमय जीवन का सविस्तर वर्णन किया है। काव्य में पंचकल्याण के ये रूप हैं, जो काव्य के पाँच भाग हैं—भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय एवं अर्ककीर्तिविजय।

कन्नड के प्रसिद्ध लोक-छंद 'सांगत्य' में 'भरतेश-वैभव' लिखा गया है। यह 84 संधियों का एक बृहद् महाकाव्य है। इसमें भरत के अतिरिक्त उनके भाई बाहु-बलि, उनके मंत्री बुद्धिसागर, सेनापति जयराज, मामा नमिराज, राजमाता यशस्वति देवी, भरत की प्रिय रानी कुसुमाजि और राजमहिषी सुभद्रादेवी का मनोरम चित्रण है। 'काव्य ईख के समान होना चाहिए, बाँस के समान नहीं' कहने वाले रत्नाकर का काव्य सचमुच सरस है। उसमें अनेक वर्णन हैं, पर सभी स्वाभाविक हैं। कई अलं-कारों का प्रयोग हुआ है, पर वे कहीं भी कृत्रिम नहीं लगते। इनकी भाषा-शैली की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम ही है।

रत्नो (गु० ले०) [समय—अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध]

ये खेड़ा नामक ग्राम के निवासी और भावसार जाति के थे।

इनकी उपलब्ध रचनाएँ हैं—'बारमासी' और 'दाणलीला'। 'बारमासी' अर्थात् बारहमासा एक विरह-काव्य है, जिसमें बारह महीनों के प्रकृति-वर्णन के माध्यम से राधा की विरहावस्था का सुंदर निरूपण किया गया है।

मध्ययुगीन गुजराती के कृष्ण-भक्तों में 'रत्नो' एक अमूल्य रत्न है तथा उनका बारहमासा एक उत्तम विरह-काव्य है।

रथ, चंद्रशेखर (उ० ले०) [जन्म—1929 ई०]

श्री चंद्रशेखर रथ कहानीकार एवं उपन्यास-कार हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से ये सांप्रतिक जीवन का खुला साक्षात्कार करना चाहते हैं—उसकी संपूर्ण उप-लब्धि और सीमा के साथ। उनकी चिंतनशीलता एवं दार्श-निक दृष्टि उनकी रचनाओं को गंभीर, वैचारिक स्वरूप प्रदान करती है। निश्चित रूप से ये पाठक से एक निश्चित मानसिक स्तर एवं विचारशील व्यक्तित्व की अपेक्षा रखते हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी अनेक कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हुई हैं। 'जंत्रारूढ़' (दे०) एवं 'असूर्ज्य उपनिवेश' इनके दो महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

रथचक्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

श्री० ना० पेंडसे (दे०) ने अपने इस उपन्यास में एक ऐसी स्त्री की कष्ट-कथा प्रस्तुत की है जिसका पति चार बच्चों एवं पत्नी को त्यागकर संन्यासी हो जाता है। टूटती हुई सम्मिलित परिवार-व्यवस्था की शिकार यह स्त्री अपनी संतान की समुचित शिक्षा-दीक्षा और व्यवस्था के लिए परिवार से नाता तोड़ ज़िले के सदर मुकाम में एक ऐसे मुहल्ले में किराये का घर लेकर रहती है जहाँ नीच जाति के लोगों की बस्ती है। घरवालों द्वारा सहायता बंद किये जाने पर वह नौकरी करती हुई बीमार पड़ती है। उधर पढ़ने में कुशाग्र-बुद्धि छोटा लड़का धाबे में काम करता हुआ उस धाबे की स्वामिनी की वासना से बाल-बाल बचता है। संतान के लिए इतना सब कुछ करने पर भी उसे मिलता है लांछन—समाज से, घरवालों से और अपनी संतान तक से। इस पीड़ा को न सह सकने के कारण वह आत्महत्या करने को बाध्य होती है। लेखक ने सम्मिलित परिवार-व्यवस्था अंधविश्वास-ग्रस्त समाज तथा गृहस्थ के प्रति अनुत्तरदायी लोगों पर कटाक्ष करते हुए एक कर्त्तव्य-परायण स्त्री की त्रासदीय कथा प्रस्तुत की है और साथ ही यह संकेत दिया है कि अश्रद्धा भी दुःख का मूल कारण है। उपन्यास की नायिका के दुःख का मूल कारण है उसकी अश्रद्धा—भगवान के प्रति, सामाजिक मान्यताओं के प्रति और स्वयं अपने पति के प्रति भी।

रथ, बळदेव *(उ० ले०)* [जन्म—1789 ई०; मृत्यु—1845 ई०]

बलदेव रथ गंजाम जिलांतर्गत आठगढ़ स्थान के निवासी थे। वे बहुभाषाविद् थे। अनेक गीतिकाओं तथा रत्नाकर चंपू आदि कई अन्य चंपुओं की रचना भी इन्होंने की है।

उड़िया-संगीत की अन्यतम रचना 'किशोर चंद्रानन चंपू' (दे०) बळदेव रथ की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसी एक लघु रचना क कारण महाराज दिव्यसिंह देब ने इन्हें 'कविसूर्य' की उपाधि से विभूषित किया था। यह रचना अपनी रसात्मकता, भाव-समृद्धि, संगीतमयता एव पद-लालित्य में 'गीत-गोविंद' (दे०) को भी कहीं-कहीं पीछे छोड़ जाती है। यद्यपि उड़िया में अनेक चंपू-रचनाएँ मिलती हैं, किंतु चंपू कहने से उड़ीसा की जनता किशोर चंद्रानन 'चंपू' को ही समझती है, जो उसकी लोकप्रियता का द्योतक है। सामाजिक पर्वों पर नगर व ग्रामों में सामूहिक रूप से इसका गायन होता है, यह भी इसकी जनप्रियता का प्रमाण है।

चउतिशा (दे०)-शैली पर रचित प्रत्येक गीत एक स्वयंपूर्ण मिनिएचर चित्र है। इसके गीत अपनी संवेदना और परिवेश के अनुकूल विशिष्ट राग व अलंकारों से पुष्ट हैं। कथावस्तु एक होते हुए भी 'गीत-गोविंद' की अपेक्षा अधिक संयत एवं पारमार्थिक है। भंजीय काव्य-रीति (दे० भंज, उपेंद्र) के स्थान पर यदि कवि ने इसमें सहज, सरल शैली प्रयुक्त की होती तो निस्संदेह रूप से इसका मूल्य और भी बढ़ गया होता।

'सर्प जणाण' इनकी एक अन्य भक्तिरस-पूरित महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें श्रुतिहीन जगन्नाथ जी की तुलना सर्प से की गयी है। इसमें इन्होंने भगवान को गाली देकर व उस पर दोषारोपण कर प्रार्थना की एक नूतन रीति प्रचलित की है। भक्ति के अंतर की आवेगमयी पावन भाव-राशि कविप्रतिभा के स्पर्श से मुखरित हो उठी है।

रथ, मृत्युंजय *(उ० ले०)* [समय—1887-1923 ई०]

मृत्युंजय रथ का उड़िया-साहित्य को विशिष्ट योगदान है—सारलादास तथा अन्य प्राचीन एवं मध्ययुगीन उड़िया कवियों की जीवनीयुक्त समालोचना। संस्कृत के पंडित होते हुए भी इनकी शैली असाधारण रूप से सरल, निराडंबर, संयत और यथार्थ है। साहित्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक गवेषणा के क्षेत्र में भी इन्होंने विशेष कार्य किया और कालिदास (दे०) के 'कुमारसंभव' काव्य तथा कई संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया है।

अपने उपन्यास 'अद्भुत परिणाम' (दे०) में श्री रथ ने उन्नीसवीं शती में उड़ीसा में मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार, प्रलोभनवश दरिद्र जनता के धर्म-परिवर्तन तथा तज्जनित विषम परिणाम का निर्देश किया है। 'पकेट ओड़िआ अभिधान', 'प्रबंध पाठ', 'नारी दर्पण', 'सारळा चरित्र', 'मुद्राराक्षस' (अनु०) 'विक्रमोर्वशीय' (अनु०) आदि इनकी अन्य कृतियाँ हैं।

पुरी इनका जन्म-स्थान है। जब इनकी रचना-क्षमता चरम विकास पर थी तभी इनका देहांत हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथ, रमाकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

श्री रमाकांत रथ नयी उड़िया कविता के प्रमुख कवि हैं। इन्हें नूतन प्रतीक, नये बिंब, नवीन छंद व शैली-विन्यास में श्री सच्चिदानंद राउतराय (दे०) के बाद सर्वाधिक सफलता मिली है। सामाजिक परिवेश के प्रति इनमें एक बौद्धिक प्रतिक्रिया मिलती है। दृष्टि की स्पष्टता, वास्तविक समन्वय-चेतना, इनकी काव्यिक चेतना के उपादान हैं। इनकी कविताओं का अनुवाद एकाधिक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में हो चुका है।

'केते दिनर', 'अनेक कोठरी', 'संदिग्ध मृगया' (दे०) आदि इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।

रथ, डा० राधानाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

ये लंदन से मनोविज्ञानशास्त्र में पी-एच० डी० हैं। 1960 ई० से ये उत्कल विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान-शास्त्र के प्राध्यापक हैं। ये प्रधान रूप से निबंधकार हैं। इन्होंने देश की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पर निबंध लिखे हैं। ये समाजवादी लेखक हैं, अतः प्रतिपाद्य एवं शैली दोनों में समाजवादी जीवन-दृष्टि और समाजवादी साहित्य-चेतना की विशेषताएँ मिलती हैं। कहानी, निबंध, सभी में इन्होंने सामाजिक अस्तित्व के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इनकी रचनाएँ हैं—'छाइ कथा कहे' (कहा०), 'प्रगति' (दे०) (आलोचनामूलक निबंधों का संकलन)। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

रदीफ़ *(उर्दू० पारि०)*

'रदीफ़' का शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जो घुड़सवार के पीछे बैठे किंतु पारिभाषिक अर्थों में उस शब्द या शब्द-समूह को रदीफ़ कहते हैं जो मिसरे या चरण में क़ाफ़िआ के पीछे आते हैं। हर शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ़ की आवृत्ति होती है। ग़ज़ल के मतलआ और नज़्म के पहले शेर के दोनों मिसरों में रदीफ़ का प्रयोग होता है। रदीफ़ एक प्रकार की झालर है जो ग़ज़ल के नाद-सौंदर्य की संरक्षिका है। उदाहरणतया—

नर्गिस ! तू दिखा किधर गया गुल।
सोसन ! तू बता किधर गया गुल॥

इस शेर में 'दिखा' क़ाफ़िआ और 'किधर गया गुल' रदीफ़ है।

रन्न *(क० ले०)*

'रन्न' शब्द संस्कृत 'रत्न' का तद्भव है। कवि रन्न सचमुच कन्नड के कविरत्न हैं। 'रत्नत्रय' में पंप (दे०) और पोन्न (दे०) के बाद रन्न का नाम आता है। इन्होंने अपनी जीवनगाथा पंप की अपेक्षा अधिक विस्तार के साथ कही है। इनके दो पत्नियाँ थीं—जक्कि और शांति। इनके पुत्र का नाम 'राय' और पुत्री का नाम अत्तिमब्बे था। अजितसेनाचार्य इनके गुरु थे। श्रवणबेळगोळ के विद्या-केंद्र में इन्होंने शिक्षा पायी थी। कुछ समय तक चावुंडराय के आश्रय में रहे, फिर सम्राट् तैलप और उनके पुत्र के आश्रय में रहने लगे।

रन्न की तीन रचनाएँ प्राप्त हुई हैं: (1) 'अजितनाथपुराणही' (दे०), (2) 'गदायुद्ध' (दे० साहसभीम-विजय) और (3) 'रन्नकंद' (दे०) (निघंटु)। कहा जाता है कि इन्होंने 'परशुरामचरित' और 'चक्रेश्वरचरित' नाम के भी दो काव्य लिखे थे जो आज उपलब्ध नहीं हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि 'गदायुद्ध' का ही दूसरा नाम 'चक्रेश्वरचरित' है। 'परशुरामचरित' समर परशुराम नाम से विख्यात चावुंडराय को नायक बनाकर लिखा गया काव्य होगा।

पंप की तरह रन्न ने भी एक धार्मिक काव्य और एक लौकिक काव्य लिखा है। 'अजितपुराण' धार्मिक काव्य है। उसके आधार पर रन्न की जन्मतिथि 949 ई० ठहरती है। यह चंपू शैली में लिखित 12 आश्वासों का सरस काव्य है। इसमें अजितनाथ की पूर्वजन्म-कथा का वर्णन है, यह 'भवावलियों' के नीरस वर्णन से मुक्त है। 'गदायुद्ध' रन्न का लौकिक काव्य है। इसके रचना-काल के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग इसका रचना-काल 982 ई० मानते हैं तो अन्य लोग 993 ई० मानते हैं। इसका पूरा नाम है 'साहसभीम-विजय'। जिस प्रकार पंप ने अपने आश्रयदाता को नायक बनाकर 'विक्रमार्जुन-विजय' (दे०) लिखा, उसी प्रकार रन्न ने अपने आश्रयदाता चालुक्य चक्रवर्ती 'इरिव बेडंग' उपाधिधारी सत्याश्रय को काव्य-नायक 'साहसभीम-विजय अथवा गदायुद्ध' लिखा। इन्होंने सत्याश्रय और भीम में अभेद स्थापित किया है। ध्यान देने की बात है कि इनका काव्य औचित्य की सीमा से बहिर्गत नहीं हुआ है। 'महाभारत' का मुख्य कारण द्रौपदी है। द्रौपदी को अर्जुन की धर्मपत्नी बनाने के कारण पंप को 'वेणीसंहार' प्रसंग में कठिनाई हुई। इन्होंने औचित्य की सीमा पार कर भीम के द्वारा वेणीसंहार कराया, यह कहकर कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी तलोदरी है।' परंतु रन्न को ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी। उनका मार्ग साफ़-सीधा था।

रन्न को पंपभारत के तेरहवें आश्वास से प्रेरणा मिली थी, अतः पंप इनके लिए गुरु-तुल्य थे। परंतु गदा-युद्ध में ये गुरु से भी आगे बढ़ गए हैं। इनमें उत्साह अधिक है, आत्मप्रशंसा की भी कमी नहीं है। परंतु यह आत्म-प्रशंसा थोथी नहीं है।

'गदायुद्ध' की विशेषता यह है कि वह श्रव्य-काव्य होते हुए भी दृश्य-काव्य के गुणों से विभूषित है। 'गदायुद्ध' के अंगी रस और नायक के विषय में पर्याप्त चर्चा हुई है। कुछ लोग इसे वीर रस-प्रधान मानते हैं तो अन्य लोग रौद्र रस-प्रधान मानते हैं। 'वीर' को अंगी रस मानने वाले दुर्योधन को नायक मानते हैं, 'रौद्र' को अंगी मानने वाले भीम को नायक मानते हैं। रन्न का दुर्योधन साधारण व्यक्ति नहीं है, वह 'महापुरुष' है। इन्होंने भीम की महानता दिखाई है, पर दुर्योधन का महत्व घटाया नहीं है। कुछ विद्वानों की दृष्टि में अरस्तू द्वारा प्रतिपादित त्रासद-नायक का रूप हम दुर्योधन में देख सकते हैं। अंततोगत्वा यह कहा जाना चाहिए कि वर्णन, संभाषण, रस-निरूपण, औचित्य-निर्वहण आदि सभी दृष्टियों से रन्न का 'गदायुद्ध' अत्यंत सफल महाकाव्य है। यह कन्नड का कृतिरत्न है।

रन्न कंद (क० कृ०)

रन्न (दे०) (समय—993 ई०) कन्नड के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उनके प्राप्त ग्रंथों में 'अजितपुराण' और 'साहसभीम-विजय' (दे०) (गदायुद्ध) के अतिरिक्त 'रन्न कंद' भी है जिसके केवल 12 कंद-पद्य मात्र उपलब्ध हुए हैं। इन पद्यों की समाप्ति साधारणतया 'कविरन्न' शब्द से होती है। रन्न का एक दूसरा नाम है 'कवि रन्न'। अतएव यही छाप 'रन्न कंद के पद्यों में है। 'रन्न कंद' एक निघंटु अथवा कोश-ग्रंथ है। संस्कृत के 'अमरकोश' के ढंग के इस निघंटु में कन्नड शब्दों के अर्थ कन्नड में दिये गए हैं। 'कंद' छंद में रचित होने के कारण पद्य आसानी से याद किये जा सकते हैं। इस ग्रंथ को कन्नड का सर्वप्रथम कोश होने का गौरव प्राप्त है।

रबिसिंह (उ० ले०) [जन्म—1932 ई०]

श्री रबिसिंह आधुनिक उड़िया-कविता में विद्रोही चेतना के अग्रणी कवि हैं। इनकी कविता का स्वर उग्र होते हुए भी प्रांजल और प्रभावकारी है। बड़ी सच्चाई और दृढ़ता के साथ इन्होंने अपने जर्जर हृदय की बेसुरी रागिनी सुनाई है। कवि प्रचलित जीवन-पद्धति से सम-झौता करने को प्रस्तुत नहीं है। संप्रति उड़िया काव्य-जगत् में इस रुग्ण और निर्धन कवि का कोई भी संगी-साथी नहीं; वह अकेला पदयात्री है। असीम साहस व अक्लांत धैर्य है इसकी साधना में। अभी विप्लवी का विद्रोही स्वर प्रखर है, सुस्थिर कवि के संयत स्वर की प्रतीक्षा है। इनके कविता-संकलन हैं—'लाल पागोडार प्रेत', 'विषवाणी' 'चरमपत्र', 'शिथिल बलगा' (दे०), 'भृकुटि' आदि।

रमज़ान बट (भट्ट) 'गनस्तान' (कश्० ले०)

कश्मीर के बड़गाम तहसील के धारमुँह गाँव में जन्म; अंतर्साक्ष्य के आधार पर अनुमानतः 1885-87 ई० में। मृत्यु-काल अज्ञात किंतु बहिर्साक्ष्य के आधार पर 1917-18 के आसपास रहा होगा। इनकी अमर कृति 'अकनंदुन' गाथागीत के रूप में बहुत ही लोकप्रिय है और लोकगीत के रूप में कश्मीरियों की ज़बान पर है। इस गाथागीत की विषयवस्तु है चिकनावेग और रत्ना नाम के हिंदू राजा-रानी की वेदना-भरी कहानी, शब्दों की सरलता, स्वरावली, कर्णप्रियता, माधुर्य और भावगांभीर्य की दृष्टि से रमज़ान बट की शैली का अभी तक कोई भी कवि अनु-सरण नहीं कर सका है यद्यपि इसी विषयवस्तु को लेकर अहद ज़रगर, समद मीर और अली वानी जैसे प्रौढ़ कवियों ने भी 'अकनंदुन' की रचना की थी।

रमणन् (मल० कृ०) [रचना-काल—दूसरी से पाँचवीं शती के मध्य]

इसके रचयिता गान-गंधर्व नाम से सुख्यात चङ्ङंपुषा (दे०) कृष्णपिल्ळा हैं। चौंतीस वर्ष की अल्पायु में सरल कोमलकांत पदावली में पचास सुंदर कृतियों की रचना कर श्रीकृष्ण पिल्ला दिवंगत हुए। प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ का विषय उनके प्रिय मित्र तथा युवाकवि राघवन् पिळ्ळा की प्रणय-कथा है। करुण-रस-प्रधान यह कृति केरलीय खासकर युवावर्ग में विशेष प्रिय है। प्रेमी मदन एक साधारण परिवार का व्यक्ति है। पर उसकी प्रेमिका संभ्रांत परिवार की युवती है। समाज की कुरीति-कुव्यवस्था मिलन में बाधक होती है और निराश नायक आत्महत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लेता है। यही है इसकी कथा-वस्तु। समाज की कुरीतियों के प्रति कवि-मन का विद्रोह और आक्रोश सशक्त भाषा में व्यक्त हुआ है। संक्षेप में कहा जाय तो यह एक ग्रामीण विलाप-काव्य है। भाषा कोमल, सरस और मर्मस्पर्शी है।

रम्यरचना *(बँ० प्र०)*

युद्धोत्तर युग में बँगला में एक नये ढंग के गद्यात्मक रचना-रूप का विकास हुआ जिसे 'रम्यरचना' के नाम से अभिहित किया गया था। रम्यरचना व्यक्तिगत प्रबंध-रचना का एक रूप है जिसे मूल रूप से कहानी या उपन्यास का बाना पहनाकर प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी भ्रमण या हल्के व्यक्तिगत प्रबंध के रूप में भी रम्यरचना लिखी जाती है। रम्यरचना में विषय का प्रतिपादन समाचारपत्रीय ढंग से होता है जहाँ लेखक शिल्प-रूप के बंधन से यथेष्ट मुक्त होकर कल्पना का प्रयोग करता है। वाग्जाल की रचना करना या व्यंग्यात्मक टिप्पणी एवं भाषा-प्रयोग में कृत्रिमता या अतिशय व्यक्तिनिष्ठता का प्रयोग करना एवं तथ्य और ज्ञान के वितरण के साथ-साथ कल्पित कहानी को रूप देना रम्यरचनाकार का कर्तव्य-कर्म है। वास्तव में साहित्य एवं पत्रकारिता का अपूर्व संयोग है रम्यरचना। रम्यरचना की तेज व्यंजनार्धमिता एवं भावावेग-बाहुल्य-वर्जित बलिष्ठता पाठकों को बहुत ही रुचिकर होती है।

रयधू *(अप० ले०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

रयधू ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में रचना की थी। अपभ्रंश भाषा में सबसे अधिक रचनाएँ करने वाले यही कवि हैं। ये ग्वालियर के निवासी थे। वहीं तोमर वंशी राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्यकाल में इन्होंने अपने ग्रंथों का प्रणयन किया था। इनके विभिन्न भाषाओं में लिखे लगभग 25 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। इनके पिता का नाम हरिसिंह था। यश, कीर्ति एवं कुमारसेन इनके गुरु थे। इनकी कृतियों में अपने आश्रयदाता एवं ग्रंथ-रचना की प्रेरणा देने वाले श्रावकों की मंगल-कामना एवं आशीर्वादपरक अनेक संस्कृत-पद्य मिलते हैं। इनकी 'सुकौशलचरित', 'सन्मतिनाथचरित' और 'बलभद्रपुराण' नामक अपभ्रंश कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

रयधू के समय में आधुनिक काल की भारतीय अर्थभाषाएँ अपनी प्रारंभिक अवस्था में साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थीं। यद्यपि इनके बाद भी अपभ्रंश में अनेक रचनाएँ की गयीं किंतु इस परंपरा में रयधू ही अंतिम प्रतिष्ठित आचार्य माने जा सकते हैं।

रवाँ *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1934 ई०]

पूरा नाम—चौधरी जगत मोहन लाल, उपनाम—'रवाँ'। उर्दू भाषा के इस प्रतिभाशाली कवि की अकस्मात् ही मृत्यु हो गयी। यदि ये कुछ समय तक और जीवित रहते तो उर्दू-साहित्य की और अधिक श्रीवृद्धि करते। इनका काव्य-संग्रह 'रूह-ए-रवाँ' उर्दू जगत में लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। इनकी शैली में जहाँ तीव्र अनुभूति, सजीवता, सरसता और प्रवाह के गुण विद्यमान हैं वहीं संगीतात्मकता भी कम नहीं है। करुण रस से ओतप्रोत इनकी अभिव्यक्ति अत्यंत सशक्त है। ये नज़्म-लेखन में विशेष रूप से सिद्धहस्त थे और इनकी रुबाइयाँ भी बड़े मार्के की हैं।

'रविश' सिद्दीक़ी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1911 ई०; मृत्यू—1971 ई०]

पूरा नाम—शाहिद अजीज़, उपनाम—'रविश'; पिता का नाम—तुफ़ैल अहमद 'शाहिद'। इनका जन्म ज्वालापुर (ज़िला सहारनपुर) में हुआ था। इस प्रतिभाशाली कवि ने काव्य के क्षेत्र में अपने से नेतृत्व प्राप्त किया। आरंभ में इनकी अभिरुचि ग़ज़ल-लेखन तक ही परिसीमित रही; परंतु शीघ्र ही ये नज़्म-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए और इसी काव्य-विधा के बल पर इन्होंने उर्दू काव्य-जगत् में यथेष्ट यश एवं कीर्ति प्राप्त की। इनका एक काव्य-संग्रह 'महराब-ए-ग़ज़ल' प्रकाशित हो चुका है। इनकी ग़ज़लों के विवेच्य विषय प्रायः आध्यात्मिक और दार्शनिक हैं। इनकी नज़्मों में कहीं-कहीं आदर्शवादी स्वर अत्यंत मुखर हो गया है।

रवींद्रनाथ ठाकुर *(बँ० ले०)*

दे० ठाकुर, रवींद्रनाथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवींद्र संगीत *(बँ० प्र०)*

रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) ने लगभग 3000 गीतों की रचना की है। 'गीतवितान' के तीन खंडों (1931-32) में ये गीत संकलित हैं। इन गीतों में सुर रवींद्रनाथ ने स्वयं दिया है—इसीलिए इन गेय गीतों को 'रवींद्र संगीत' के नाम से पुकारा जाता है। प्राचीन सुर, प्रचलित राग-रागिनी एवं प्राचीन भारत की अपनी सुर-संस्कृति के साथ इस संगीत का गहन संबंध है। इन गीतों को स्वर देते हुए उन्होंने यह अनुभव किया था कि भारतीय शास्त्रीय या दरबारी संगीत में राग का ही प्राधान्य है, शब्द का वहाँ कोई मूल्य नहीं। इसीलिए उन्होंने राग-रागिनी की निर्वैयक्तिक सुर-धारा में व्यक्ति की विचित्र अनुभूति से युक्त शब्दों का महत्वपूर्ण संबंध-स्थापन किया। इन गीतों में वे अपनी मौलिकता प्रकट नहीं कर पाये; इनमें तो केवल शब्दों की असामान्यता ही प्रकट हो सकी है। मौलिकता की सृष्टि के लिए उन्होंने बंगाल के बाउल, सारिगान आदि लोकगीतों में नाना प्रकार की राग-रागिनियों का सम्मिश्रण किया एवं अपने संगीत में व्यक्ति-सत्ता की प्रतिष्ठा की। उन्होंने पाश्चात्य संगीत के स्वर में अपने शब्द भरकर नये गीतों की सृष्टि की। हिंदुस्तानी संगीत, ठंगरी, ठप्पा आदि में पितु, भैरवी आदि रागों का सम्मिश्रण कर कवि ने अपने संगीत को नया रूप दिया है। इस प्रकार प्रचलित निर्दिष्ट स्वरों को तोड़कर एवं दसारें का सम्मिश्रण कर रवींद्र संगीत की सृष्टि हुई है। राबींद्री-भैरवी इनकी एकदम मौलिक सृष्टि है जिसमें कवि ने लगभग 300 गीतों की रचना की है। अभिव्यक्ति की परिपूर्णता रवींद्र-संगीत में भरपूर मिलती है।

रशीद अहमद सिद्दीक़ी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

उर्दू गद्य के हास्य और व्यंग्य-लेखकों में रशीद अहमद सिद्दीक़ी का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। व्यंग्य-लेखों में इनकी प्रतिभा का उत्कर्ष देखते ही बनता है। इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा में यद्यपि दुर्बोध एवं क्लिष्ट फ़ारसी एवं अरबी-शब्दों की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है, तथापि राजनीति और इतिहास के विद्वानों को चमत्कृत करने में ये पूर्णतः समर्थ हैं। इनका व्यंग्य बड़ा तीखा और प्रखर होता है। पाठक पर उसका गंभीर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इनमें विचारों की गहनता और सूक्ष्मता है। डा० सैयद एजाज़ हुसैन (दे०) के अनुसार : 'रशीद अहमद के यहाँ पग-पग पर इनकी प्रतिभा मुखर है। इनके दृष्टांत इनके लेखों का प्राण है। वह 'अरहर का खेत' ही क्यों न हों, किंतु वह उसको असेंबली और पार्लियामेंट के साथ-साथ दिखा सकते हैं।' इनकी कृतियों में 'मज़ामीन-ए-रशीद', 'खंदाँ' और 'गंजहा-ए-गिरां माया' के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों में गंभीर व्यंग्य के साथ रुक्ष और नीरस विषयों तक में भी सरसता और सजीवता का संचार सर्वत्र परिलक्षित होता है।

रश्मि *(म० पा०)*

यह प्र० के० अत्रे (दे०) की 'लग्नाची बेडी' प्रहसन की नायिका है। वैवाहिक संबंधों को बंधन एवं भारस्वरूप स्वीकार कर यह स्वच्छंद प्रेम के समर्थकों की कुचेष्टाओं के रहस्योद्घाटन द्वारा वैवाहिक बंधनों की अनिवार्यता की घोषणा करती है। यह पुरुष की भ्रमर-वृत्ति से पूर्णतः परिचित है तभी तो यह अपने संसर्ग में आने वाले प्रत्येक पुरुष पात्र को अपनी इच्छानुसार चलाती है। अपने रूप-सौंदर्य के लोलुप इन पुरुष-पात्रों को उचित पाठ पढ़ाने के लिए ही यह उनसे अपने पादत्राण (जूते) तक साफ़ करवाती है। अपने संपर्क में आने वाले उन सभी पुरुष-पात्रों को, जो इससे प्रणय-याचना के उपरांत विवाह-सूत्र में बँधने का अनुरोध करते हैं, विवाह करने का वचन दे देती है परंतु सबकी आँखें बाँधकर उनकी स्त्रियों अथवा प्रियतमाओं के साथ ही विवाह संपन्न कराने में सफल हो जाती है। अपने बुद्धि-चातुर्य के बल पर ही यह कामुक पुरुषों की लोलुप दृष्टि से अपने को सर्वथा बचाए रखती है। वहाँ अपने प्रति आकृष्ट लोगों को कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखते रहने पर भी तटस्थ भाव बनाए रखती है। अपने रूप की मोहिनी से अभिभूत स्वच्छंद प्रेम का उपहास उड़ा वैवाहिक बंधनों की श्रेष्ठता घोषित करती है। यद्यपि रश्मि के चरित्र को विशिष्ट उद्देश्य की संपूर्ति के लिए नाटककार ने संयोजित किया है तथापि अपने विशिष्ट क्रिया-कलापों के द्वारा यह मराठी नाट्य-साहित्य का अविस्मरणीय चरित्र बन गई है।

रस *(पारि०)*

भारतीय साहित्यशास्त्र में सर्वाधिक परिपूर्ण एवं सार्वभौम कला-सिद्धांत 'रस' का मूल प्रयोग प्रारंभ में वनस्पतियों के द्रव के लिए होता था। क्रमशः लाक्षणिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में प्रयुक्त होते-होते आनंदमयी अनुभूति के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थ को ग्रहण कर यह साहित्य एवं कला के क्षेत्र में काव्यास्वाद एवं सौंदर्यानुभूति और दर्शन के क्षेत्र में आत्मास्वाद तथा ब्रह्मास्वाद का पर्याय बन गया। संस्कृत-काव्यशास्त्र के अनुसार रस इतर भावों और ज्ञानों से विनिर्मुक्त, देश-काल की सीमाओं से अनिबद्ध, व्यक्तिगत राग-विराग एवं स्व-पर की भावना से रहित, सत्वोद्रिक्त मनःस्थिति में अनुभूयमान, ऐहिक भोगास्वाद से भिन्न, ब्रह्मास्वाद के समान सूक्ष्म-परिष्कृत, स्वतः-प्रकाशित आनंदमयी चेतना है।

कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम भरतमुनि (दे०)-कृत 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में रस-विवेचन उपलब्ध होता है। उन्होंने रस को पदार्थ रूप-आस्वाद्य (आस्वाद्यत्वात्) माना है जो विभाव (दे०), अनुभाव (दे०) और व्यभिचारीभाव (दे०) के संयोग से निष्पन्न होता है। (विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।) भरत ने नाट्यकला की मीमांसा के अंतर्गत ही रस का विवेचन किया था। उन्होंने रंगमंच पर प्रस्तुत उत्कृष्ट कलात्मक दृश्यों में रस-सृष्टि की प्रकल्पना की थी। रस-सूत्र के प्रथम व्याख्याता भट्टलोल्लट (दे०) ने रस को पदार्थ-रूप न मानकर अनुकार्य की अनुभूति-रूप माना और उनके परवर्ती श्री शंकुक (दे०) ने उसे अनुकृत स्थायी भाव के रूप में स्वीकार किया। भट्टनायक (दे०) ने रस की सहृदय-निष्ठ व्याख्या करते हुए साधारणीकरण (दे०)-सिद्धांत की उद्भावना की, और अंत में अभिनवगुप्त (दे०) ने शैवाद्वैत के आधार पर रसानुभूति को आत्माभिव्यक्ति का पर्याय बना दिया। रस-सिद्धांत को संस्कृत के अनेक अन्य आचार्यों की प्रतिभा का अवदान प्राप्त हुआ जिनमें अग्निपुराणकार (ग्यारहवीं शती), रामचंद्र-गुणचंद्र (दे०) (बारहवीं शती), शारदातनय (दे०) (तेरहवीं शती), विश्वनाथ (दे०) (चौदहवीं शती), रूपगोस्वामी (दे०) (सोलहवीं शती) और जगन्नाथ (दे०) (सत्रहवीं शती) उल्लेखनीय हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं के समीक्षकों ने भी रस-सिद्धांत की पुनः प्रतिष्ठा और नवीन व्याख्या का महत्वपूर्ण कार्य किया है जिनमें हिंदी के आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) और डा० नगेंद्र (दे०), मराठी के वाटवे (दे०) आदि प्रमुख हैं।

रसकलस (हिं० कृ०)

इस ग्रंथ के रचयिता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०) हैं। इस ग्रंथ की महत्ता इसके भूमिका-भाग से कहीं अधिक बढ़ गई है, जिसमें रस-विषयक प्रचुर सामग्री का प्रतिपादन किया गया है। इसमें रस-साधन, रस की उत्पत्ति, रसास्वादन-प्रकार, रस की आनंदस्वरूपता, रस की कल्पना, परस्पर विरोधी रस और रस-विरोध का परिहार, रस-दोष, रसाभास (दे०) आदि विषयों पर सम्यक् प्रकाश डालने के उपरांत ग्रंथकार ने शृंगार रस का विस्तृत निरूपण किया है। इसके अंतर्गत शृंगार रस की परिभाषा, विवेचन, व्यापकता, प्रधानता, उपयोगिता आदि विषयों के अतिरिक्त नायिका-भेद पर प्रकाश डाला गया है तथा अंत में वात्सल्य रस का विवेचन है। इस भूमिका भाग की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि ग्रंथकार ने आधुनिक लोक-प्रवृत्तियों के अनुसार रसशास्त्र की अनेक पुरातन मान्यताओं की नूतन व्याख्या की है तथा अनेक मौलिक धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। ग्रंथ के मूल भाग में स्थायिभाव (दे०) संचारिभाव (दे०), आलंबन विभाव और इसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद (दे०), उद्दीपन-विभाव (दे०) और अनुभाव (दे०) के भेदोपभेदों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, और इसके उपरांत रस (दे०)-निरूपण के अंतर्गत सभी रसों के भेदोपभेदों के उदाहरण हैं। संभवतः ये सभी उदाहरण स्वयं 'हरिऔध' द्वारा प्रणीत हैं। ग्रंथ के मूल-भाग में भी ग्रंथकार ने अनेक नूतन भेदोपभेदों और मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत रचना अपने विषय की एक अमूल्य संदर्भ-कृति है।

रस-कल्लोल (उ० कृ०)

उड़िया भाषा के उच्चकोटि के चार-पाँच काव्यों का यदि उल्लेख किया जाये, तो उनमें दीनकृष्णदास (दे०)-रचित 'रस-कल्लोल' भी एक होगा—इसमें संदेह नहीं। इस महाकाव्य का 'रस-कल्लोल' नाम सार्थक ही है। इसमें सर्वरसाश्रय लीलाप्रिय श्रीकृष्ण की लीला के वर्णन में कवि ने शृंगार, वीर, करुण, वात्सल्य आदि रसों की मंदाकिनी प्रवाहित कर सहृदय मानस को रससिक्त कर दिया है। कृष्ण की गोपलीला एवं कंसपुर-गमन इस काव्य की मुख्य विषयवस्तु हैं। किंतु दीनकृष्णदास जातीय कवि हैं। इसलिए रसेश्वर कृष्ण का चरित-वर्णन करते हुए भी उन्होंने ग्रंथारंभ में नीलगिरिपात कैवल्यदायक जगन्नाथ की वंदना की है। जगन्नाथ परम अवतारी हैं और कृष्ण अवतार मात्र। नीलांचल नाथ जगन्नाथ के पादपद्म में जीवन नैवेद्य अर्पण कर परमाराध्य लीलामय गोपीजन-वल्लभ कृष्ण के चरित-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन में इस आदर्श वैष्णव ने अपने प्राण उँडेल दिए हैं। पुरी की नित्यता सर्वप्रथम उनके काव्य से सूचित होती है। यह भावना उनकी उत्कलीय वैष्णव भक्ति की प्रतीक है। उनके काव्य में शुद्धाभक्ति का निर्देशन मिलते हुए भी योग-मार्ग, ज्ञान-मार्ग का परिहार नहीं हुआ है, जो उत्कलीय वैष्णव भक्ति की विशिष्टता है।

'रसकल्लोल' में कवि ने अपनी असामान्य प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रत्येक पद में कविता-माधुरी-कमल विकसित होकर जनमन-हरण करता है। समग्र ग्रंथ व्यापक रूप से मधुर, ध्वनिमय एवं कोमल मसृण पदावली से सुशोभित है। भाषा परिमार्जित, विविध अलंकारों से युक्त एवं रमणीय है। चित्रों की सूक्ष्म कारीगरी काव्य को रूपाभ प्रदान करती है। रूप-वर्णन में कवि ने सुंदर उपमाओं का प्रयोग कर चित्रों को मनोरमता दी है। कृष्ण के चरित्र-चित्रण में कवि ने अनेक उक्तियों एवं अनेक आख्यानों की अवतारणा की है।

समग्र काव्य आद्यवर्ण 'क' से विरचित है। 'रस-कल्लोल' 34 छंदों में पूर्ण है। विभिन्न राग-रागिनियों के आधार पर ये छंद रचे गए हैं। विरहिणियों की मनः-स्थितियों का सुंदर चित्रण हुआ है। 'रस-कल्लोल' में कवि ने स्थान-स्थान पर 'रघुवंश' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'नैषध' (दे०), 'गीत-गोविंद' (दे०), 'शकुंतला' (दे० अभिज्ञानशाकुंतलम्) नाटक, 'उज्ज्वल नीलमणि' (दे०), चंडीदास कृत 'कवितावली' (दे०) तथा अन्य अलंकारशास्त्र के श्लोकों का सरल-सरस अनुवाद किया है। अनेक स्थलों पर काव्य की नाटकीयता विशेष आकर्षण की सृष्टि करती है। इसकी जनप्रियता के कारण हैं—काव्य की संगीत-मयता, आनंददायिनी शक्ति, अलंकारों का सहज समावेश, अद्भुत कल्पना-विलास, कालिदास-सुलभ शब्द-विन्यास, नैषधीय शब्द-पांडित्य एवं वर्णन-कुशलता, तथा 'गीत-गोविंद' सुलभ पद-लालित्य।

युगप्रभाव के कारण शृंगार-वर्णन में यदाकदा औचित्य की रक्षा नहीं हो सकी है, यत्रतत्र पदावली भी दुरूह एवं क्लिष्ट है, तथापि काव्य की रसात्मकता अक्षुण्ण और उसकी उत्कृष्टता स्वतः-सिद्ध है।

रसखान (*हिं० ले०*) [जन्म—1548 ई०; मृत्यु—1628 ई०]

ये दिल्ली के पठान सरदार थे। मुसलमान होते हुए भी इनकी कविता वैष्णव-भाव में सराबोर है, यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (दे०) में एक बनिये के लड़के के प्रति इनकी आसक्ति एवं मानिनी नायिका के प्रति इनके अटूट प्रेम की चर्चा वर्णित है। कुछ विद्वानों के अनुसार अपनी मानिनी नायिका से रुष्ट होकर ये वृंदावन चले आए थे और वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित होकर श्रीनाथ के स्वरूप की उपासना करने लगे थे।

इनके नाम से 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रस-खान' नामक दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। वार्ता में लिखा है कि इन्होंने अनेक कीर्तनों की भी रचना की है; किंतु आज वे अनुपलब्ध हैं। 'सुजान रसखान' में 129 छंद हैं, जिनमें सवैया और घनाक्षरी की प्रचुरता है। इनकी ब्रजभाषा आडंबर-विहीन और टकसाली है। आराध्य के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता और निश्छल भावानुभूति के कारण इनका काव्य अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। रसखान की रससिक्त रचनाओं में कवि का भावाकुल हृदय झलकता है। प्रेम के मनोहारी और सजीव चित्रण के लिए रसखान कृष्णभक्त कवियों में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह कवि-प्रेम की तन्मयता, आत्म-विभोरता, आसक्ति और उल्लास के लिए उतना ही प्रसिद्ध है जितना अपनी भाषा की मार्मिकता, शब्द-चयन तथा व्यंजक शैली के लिए विख्यात है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि इन्होंने अनेक कीर्तनों की रचना की, पर वे अनुपलब्ध हैं। सच तो यह है कि इस कवि ने अंतर्मन की गहराई में झाँककर भावुकता के परिवेश में अपनी रससिक्त रचनाओं के माध्यम से अपना 'रसखान' नाम सार्थक कर दिया है।

रसगंगाधर (*सं० कृ०*) [रचना-काल—1600-1700 ई०]

इस ग्रंथ के रचयिता पंडितराज जगन्नाथ (दे०) हैं। काव्यशास्त्र का यह महनीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में रस, शब्दशक्तियों एवं अलंकारों का विशद एवं वैज्ञानिक विवेचन किया गया है।

रसगंगाधर के अंतर्गत रस-सिद्धांत पर वेदांतिक अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त रसशास्त्र का निरूपण भी इस ग्रंथ में वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है, यही इस ग्रंथ की महती देन है।

रसतरंगिणी (*सं० कृ०*)

इस संस्कृत-ग्रंथ के रचयिता भानुमिश्र, भानु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्त, अथवा भानुकवि हैं। ये मैथिल ब्राह्मण थे और इनका समय 1480 और 1570 ई० के बीच माना जाता है। 'रसतरंगिणी' ग्रंथ में रस का विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ गद्यबद्ध है। इसमें आठ तरंगें हैं। प्रथम सात तरंगों में क्रमशः स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारिभाव, श्रृंगार रस, श्रृंगारेतर हास्य आदि रसों का प्रतिपादन अथवा विवेचन है। आठवीं तरंग का नाम प्रमार्जक है, जिसमें रस-विषयक अन्य सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रंथ में प्रतिपादित अनेक धारणाएँ एवं मान्यताएँ उल्लेख्य हैं। इसमें विकारों को दो प्रकार का बताया गया है—आंतर और शरीर। आंतर विकारों के दो प्रकार हैं—स्थायी भाव और व्यभिचारी भाव। सात्त्विक भावों को शरीर कहा गया है। सात्त्विक भावों में 'जृंभा' को भी गिनाया गया है। व्यभिचारिभावों में 'छल' को जोड़ा गया है। 'वात्सल्य' और 'भक्ति' को रस नहीं माना गया। 'लौल्य' और 'कार्पण्य' भी रस नहीं हैं। इसमें 'मायारस' का भी उल्लेख किया गया है। इसमें 'हास्य', 'करुण', 'भयानक', 'बीभत्स' और 'अद्भुत' रसों के दो-दो भेद किए गए हैं—स्वनिष्ठ और परनिष्ठ। ग्रंथ की उल्लेख्य विशेषता है रस का विभाजन। रस दो प्रकार का है—लौकिक, अर्थात् मधुर आदि षड्रस, और अलौकिक। अलौकिक रस के तीन रूप हैं—स्वाप्निक, मानोरथिक और औपनयिक (अथवा काव्यरस या नाट्यरस)। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में रस का वर्गीकरण इस प्रकार से भी है—अभिमुख, विमुख और परमुख। परमुख रस दो प्रकार का है—अलंकार—मुख और भाव-मुख। हिंदी-रीतिकालीन आचार्यों ने भानुदत्त के अन्य ग्रंथ 'रसमंजरी' (दे०) के अतिरिक्त इस ग्रंथ से भी सामग्री ली है, पर उसकी अपेक्षा बहुत कम।

'रसनिधि' (*हिं० ले०*)

ये दतिया राज्य के बरौनी इलाके के एक संपन्न जमींदार थे। इनका वास्तविक नाम पृथ्वीसिंह था, किंतु कविता 'रसनिधि' नाम से करते थे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'रतनहज़ारा' है। इस ग्रंथ के वर्ण्य विषय और अभिव्यंजना-शैली पर बिहारी (दे०) की श्रृंगार-भावना और रचना-पद्धति का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। फिर भी, इस ग्रंथ की एक निजी विशेषता यह है कि इसमें फ़ारसी-शायरी की शैली पर इश्क की विविध भावनाओं और चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। प्रेम की सरस उक्तियाँ प्रायः मनोरम हैं। किंतु कहीं-कहीं फ़ारसी शब्दों के अवांछनीय प्रयोग के कारण काव्यशिल्प विक्षत हो गया है। इस ग्रंथ के अतिरिक्त इनके कुछ और ग्रंथ प्राप्त होते हैं: 'विष्णुपद-कीर्तन', 'कवित्त', 'बारहमासी', 'रसनिधिसागर', 'गीति-संग्रह', 'अरिल्ल', 'हिंडोला' आदि।

रस-निष्पत्ति (*पारि०*)

भारतीय काव्यशास्त्र में रसास्वादन की प्रक्रिया के अध्ययन के अंतर्गत सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है रस-निष्पत्ति। इसका सर्वप्रथम उल्लेख भरत (दे०) के रस-सूत्र में हुआ है: 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस-निष्पत्तिः।' (नाट्यशास्त्र—6.32) इस सूत्र का शाब्दिक अर्थ है कि विभाव (दे०), अनुभाव (दे०) और व्यभिचारी भावों (दे०) के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इसमें प्रयुक्त 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्द की व्याख्या भरत ने नहीं की। संस्कृत-रस-शास्त्र के परवर्ती इतिहास में इस विषय की सूक्ष्म-गहन मीमांसा की गयी है।

'निष्पत्ति' शब्द का कोशगत अर्थ है: निस्+पद् (गतौ)+क्तिन्—अर्थात् निःशेष रूप से स्थिति प्राप्त करने का भाव; दूसरे शब्दों में अस्तित्व प्राप्त करना अथवा सिद्धि। भरतसूत्र के चार प्रसिद्ध व्याख्याताओं में से प्रथम लोल्लट (दे०) ने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'उपचिति' और संयोग का अर्थ विभावादि के साथ स्थायिभाव का संयोग माना। लोल्लट ने उसकी अवस्थिति मूलतः अनुकार्य में स्वीकार की है। अनुसंधान के बल पर गौण रूप में वह नट में भी हो सकती है। प्रमाता अभिनय-कौशल आदि से चमत्कृत होकर नट पर मूल पात्र का आरोप कर उसमें अनुकार्यगत रस की प्रतीति कर लेता है। कुछ विद्वानों के मत से लोल्लट के अनुसार निष्पत्ति का आशय है उत्पत्ति। भट्टलोल्लट के मत का खंडन उनके परवर्ती आचार्य श्री शंकुक (दे०) ने 'न्यायदर्शन' के आधार पर किया। शंकुक ने चित्र-तुरंग-न्याय के प्रमाण से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि न तो रस उत्पन्न होता है और न उसकी अनुभूति का आरोप किया जाता है। रस मूलतः नट द्वारा स्थायिभाव की अनुकृति का नाम है और सामाजिक उसकी अनुमिति करता है। जिस प्रकार चित्रित तुरंग मूल की प्रतिकृति होते हुए भी अवास्तविक प्रतीत नहीं होता, उसी प्रकार अभिनेता के कुशल अभिनय के कारण अनुमान पर आधारित प्रमाता की रसप्रतीति भी अवास्तविक नहीं होती। इस प्रकार शंकुक की दृष्टि में रस-निष्पत्ति का अर्थ है: प्रमाता द्वारा रस की अनुमिति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकुक का यह मत संस्कृत-व्याख्याता के इतिहास में 'अनुमितिवाद' के रूप में प्रसिद्ध है। भरतसूत्र के तीसरे व्याख्याता भट्टनायक (दे०) का मत भुक्तिवाद के नाम से विख्यात है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती दोनों व्याख्याकारों के मतों का निराकरण करते हुए शब्द की अभिधा के अतिरिक्त भावकत्व और भोजकत्व दो नयी शक्तियों की प्रकल्पना की। भावकत्व-शक्ति विभावादि को साधारणीकृत कर भाव्यमान बनाती है और भोजकत्व इस भाव्यमान स्थायिभाव को आस्वादनीय बनाती है। इस प्रकार भट्टनायक के अनुसार रस-प्रक्रिया के तीन अवस्थान हैं: प्रथम काव्य के सामान्य अर्थ-बोध की प्रतीति; दूसरा भावन-व्यापार-व्यक्ति-विशेष-संबंधी निजत्व के भाव का निवारण; तीसरा अवस्थान सत्त्व के उद्रेक की स्थिति है जिसमें प्रमाता भोजकत्व-शक्ति द्वारा भावित स्थायिभाव का रस-रूप में भोग करता है। अतः भट्टनायक के अनुसार रस-निष्पत्ति का अर्थ है—रस-भोग। भरतसूत्र के चौथे व्याख्याता और भट्टनायक के परवर्ती आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) ने भट्टनायक की दोनों नवीन शक्तियों को अस्वीकार करते हुए व्यंजना-शक्ति को रस-प्रक्रिया का आधार माना। इनके मतानुसार स्थायिभाव प्रमाता के अंतर्मन में वासना-रूप से स्थित रहते हैं। कवि-प्रतिभा के चमत्कार से यह स्थायिभाव साधारणीकृत रूप में अभिव्यक्त होता है और प्रमाता सभी प्रकार के लौकिक विघ्नों से मुक्त हो उसके माध्यम से रसास्वादन करता है। इस प्रकार अभिनवगुप्त के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ है अभिव्यक्ति। शैवाद्वैत पर आधारित उनका यह मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाता है। भारतीय काव्यशास्त्र में अभिनवगुप्त के मत को ही व्यापक मान्यता प्राप्त हुई है।

रसमंजरी *(सं० कृ०)*

'रसमंजरी' का कर्त्ता भानुमिश्र, भानुदत्त, अथवा भानुकवि हैं, जिसका समय चौदहवीं-पंद्रहवीं शती ई० माना जाता है। इस ग्रंथ का नाम यद्यपि 'रसमंजरी' है, किंतु इसमें केवल शृंगार रस का—और उसमें भी केवल उसके आलंबन-विभाव के अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का—विवेचन-प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ में उक्त विषय का विकसित रूप प्रस्तुत किया गया है। भानुमिश्र से पूर्व भरत (दे०) और भोज (दे०) के नायक-नायिका-भद के निरूपण में विषय का विस्तार था, पर इतनी सुव्यवस्था नहीं थी, पर रुद्रट (दे०) और विश्वनाथ (दे०) के निरूपण में व्यवस्था अवश्य थी; विषय-सामग्री संक्षिप्त थी। पर इस ग्रंथ में विषय को विस्तृत एवं व्यवस्थित रूप में विवेचित किया गया है। इस ग्रंथ में नायक एवं नायिका के भेदोपभेदों के लक्षण इतने संयत हैं कि ग्रंथकार आत्मविश्वास के साथ उनमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषों के अभाव की सूचना भी आवश्यकतानुसार देता चलता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ की दो अन्य विशेषताएँ हैं—स्थान-स्थान पर तर्कसम्मत आख्यान, तथा सटीक और कवित्वपूर्ण उदाहरण। इन्हीं सुपुष्ट विशेषताओं के बल पर ही, संस्कृत के नायिक-नायिका-भेद-निरूपक ग्रंथों में इस ग्रंथ का सर्वोच्च स्थान है, और यही कारण है कि लगभग रीतिकालीन आचार्यों का यह प्रमुख आधार-ग्रंथ रहा है।

रस-भेद *(सं० पारि०)*

भरत (दे०) ने मूल रूप में चार रस माने हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स। फिर इनसे क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। शृंगार और हास्य, वीर और अद्भुत तथा बीभत्स और भयानक रस-युग्म का पारस्परिक कारण-कार्यभाव होने के कारण उत्पाद्योत्पादक-संबंध स्वतः-सिद्ध सिद्ध है। रौद्र और करुण में भी यह संबंध मनःस्थिति के आधार पर परिपुष्ट है—सबल पक्ष का निर्बल पक्ष पर अकारण और निर्दयतापूर्ण क्रोध सामाजिक के हृदय में करुणा की ही उत्पत्ति कर देता है। इस प्रकरण में भरत ने रसों के विभिन्न भेदों का भी उल्लेख किया है। आगे चलकर इनमें से कुछ तो प्रचलित रहे और कुछ अप्रचलित हो गए।

(क) प्रचलित भेद :

शृंगार के संभोग और विप्रलंभ दो भेद। हास्य के (उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के व्यक्तियों के प्रयोगानुसार) स्मित, विहसितादि छः भेद; तथा वीर के दानवीर, धर्मवीर और युद्धवीर—ये तीन भेद।

(ख) अप्रचलित भेद :

शृंगार के वाङ्, नेपथ्यक्रियात्मक—तीन भेद।

हास्य के आत्मस्थ और परस्थ—दो भेद।

हास्य और रौद्र के अंग-नेपथ्य-वाक्यात्मक—तीन-तीन भेद।

करुण के धर्मोपघातज, अपचयोद्भव और शोककृत—तीन भेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयानक के स्वभावज, सत्त्वसमुत्थ और कृतक—तीन भेद, तथा व्याज-अपराध-त्रासगत अन्य तीन भेद।

बीभत्स के क्षोभज, शुद्ध और उद्वेगी तीन भेद।

अद्‌भुत के दिव्य और आनंदज—दो भेद।

रसरत्नाकर *(क० कृ०)*

कन्नड के साहित्यशास्त्र-विषयक ग्रंथों में 'रसरत्नाकर' का विशिष्ट स्थान है। इसके कर्ता साल्व (दे०) (समय—1550 ई०) पंडित कवि हैं। उन्होंने आचार्यत्व और कवित्व दोनों का अच्छा निर्वाह किया है। 'साल्व-भारत' और 'शारदाविलास' उनके अन्य ग्रंथ हैं। 'रसरत्नाकर' की रचना उन्होंने संस्कृत के आलंकारिक अमृतानंदि रुद्रभट्ट, विद्यानाथ और हेमचंद्र के मार्ग का अनुसरण करते हुए नहीं की है, बल्कि कन्नड के आचार्य नागवर्मा और कविकाम के मार्ग के अनुसरण में की है। ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट है कि साल्व रस-संप्रदाय को मानने वाले आचार्य हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है, 'रसमिल्लद काव्यं नीरस-मर्दरिं कृतिगे रसमे सारं' अर्थात् रस-रहित काव्य नीरस है; अतएव रस ही कृति का सार है। उन्होंने कन्नड के प्रसिद्ध कवियों के पद्यों को लक्ष्य के रूप में उद्धृत किया है। उनके ग्रंथ में नवरसों का सविस्तर प्रतिपादन हुआ है। उनकी प्रतिपादन-शैली अच्छी है और तद्‌नुकूल भाषा का भी प्रयोग हुआ है। भारतीय रसवादी आचार्यों में साल्व का नाम उल्लेखनीय है।

रसराज *(हिं० कृ०)*

इस ग्रंथ के लेखक मतिराम हैं। इसमें प्रधान रूप से रसराज अर्थात् शृंगार रस का निरूपण है। इसमें नायक-नायिका-भेद का वर्णन विस्तार से किया गया है जो कि भानुमिश्र-प्रणीत 'रसमंजरी' (दे०) पर आधारित है। ये भेदोपभेद प्राचीन परिपाटी पर ही निरूपित हुए हैं, अतः इनमें विवेचन अथवा सिद्धांत-संबंधी नूतनता नहीं है। किंतु इनके लक्षण अत्यंत स्पष्ट, सरल एवं सरस हैं। यह गुण रीतिकाल के बहुत कम आचार्यों में पाया जाता है। इसके उदाहरणों में सहज कोमल कल्पना और सुकुमार भावना का अद्‌भुत समन्वय है। इनसे वर्ण्यविषय का एकसजीव चित्र-सा प्रस्तुत हो जाता है। इनकी शैली मधुर और स्निग्ध है। साहित्य-सौंदर्य के अतिरिक्त इन उदाहरणों से तत्कालीन पारिवारिक संबंधों की भी एक झलक मिल जाती है।

रसलीन, गुलाम नबी *(हिं० ले०)*

रसलीन का वास्तविक नाम सैयद गुलाम नबी था। ये बिलग्राम (ज़िला हरदोई) के निवासी थे। इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध'। 'अंग-दर्पण' में नारी के अंगों का उपमा-उत्प्रेक्षा से युक्त चमत्कारपूर्ण वर्णन है। 'रसप्रबोध' में नौ रसों, विशेषतः शृंगार रस, का निरूपण है, इसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद को भी यथावत् स्थान मिला है। इसके कुछ स्थलों में केशव (दे० केशवदास)-प्रणीत 'रसिक-प्रिया' से सहायता ली गई है। इनकी वर्णन-शैली सरस, ललित एवं काव्य-चमत्कारपूर्ण है।

रसवंती *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

इस रचना का प्रणयन रामधारीसिंह 'दिनकर' (दे०) ने गर्जन-तर्जन से दूर रहकर कोमल कल्पना के साथ रमण करने के लिए किया है। इसकी अधिकांश रचनाओं में शृंगार की रम्य-कोमल व्यंजना मिलती है। 'दिनकर' की शृंगार-चेतना छायावादी (दे० छायावाद) अतींद्रियता और रीतिवादी मांसलता की मध्यवर्ती है। कुछ कविताओं में वैयक्तिक राग-दीप-चिंतन की प्रभावमयी अभिव्यक्ति है। महत्व की दृष्टि से यह संग्रह 'उर्वशी' (दे०) के उत्कर्ष का पृष्ठाधार माना जा सकता है।

रसविमर्श *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ का रचना-काल 1942 ई० है और दूसरी आवृत्ति 1961 ई० में प्रकाशित हुई। डा० के० ना० वाटवे ने इसे शोध-प्रबंध के रूप में लिखा है। इसमें कुल 11 निकष हैं। सबसे पहले संस्कृत-मराठी में विवेचित रस-सिद्धांत का काल-क्रमिक इतिहास दिया गया है। दूसरे निकष में रस का मानसशास्त्रीय आधार खोजा गया है; और सहज प्रवृत्तियों (इंस्टिक्ट्स), स्थिर वृत्तियों (सेंटिमेंट्स), साधित भावनाओं (डिराइव्ड इमोशंस), तथा प्राथमिक भावनाओं (प्राइमरी इमोशंस) से स्थायी-व्यभिचारी भावों का साम्य-वैषम्य दिखाया गया है। लेखक ने रस-निष्पत्ति, रसास्वाद, काव्यानंद आदि विषयों के विवेचन तथा रस और रसेतर ललित कलाओं एवं काव्य-शास्त्र के अलंकार आदि सिद्धांतों के विवेचन में तुलनात्मक दृष्टि अपनाई है। इस ग्रंथ में भक्तिरस के स्वतंत्र अस्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रतिपादन किया गया है। मराठी में रस-सिद्धांत पर लिखित ग्रंथों में इसका अन्यतम स्थान है।

रस-सिद्धांत *(हिं० कृ०)*

'रस-सिद्धांत' के लेखक हैं डा० नगेंद्र (दे०)। इसमें छह अध्याय हैं, जिनमें रस-विषयक सामग्री का विवेचन मूलतः भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से और प्रसंगवश पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। 'रस' शब्द का अर्थविकास, 'रस' की परिभाषा एवं स्वरूप, करुण रस का आस्वाद, रस की निष्पत्ति, साधारणीकरण, भाव-विवेचन, रससंख्या, रसों का पारस्परिक संबंध आदि विषयों पर शास्त्र-पुष्ट सामग्री गंभीर एवं सरल शैली में प्रस्तुत करने के उपरांत 'रस-सिद्धांत' की शक्ति और सीमा के संबंध में लेखक ने अपना मंतव्य इन शब्दों में व्यक्त किया है—'साहित्य की भूमिका में जब तक मानव-संवेदना से अधिक रमणीय सत्य की उद्भावना नहीं होती तब तक रस-सिद्धांत से अधिक प्रामाणिक सिद्धांत की प्रकल्पना नहीं की जा सकती।' इसी ग्रंथ के माध्यम से ग्रंथकार ने रस-सिद्धांत को नवीन ज्ञानालोक से विभूषित कर इसके शाश्वत मूल्य का उद्‌घाटन किया है। वस्तुतः अभिनवगुप्त (दे०) और पंडितराज जगन्नाथ (दें०) के बाद डा० नगेंद्र ने ही इस शास्त्रीय विधा का पुनराख्यान एवं पुनर्मूल्यांकन किया है। इस ग्रंथ का बँगला तथा गुजराती भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। यह ग्रंथ साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हो चुका है।

रसाभास *(पारि०)*

रसावयवों अथवा संपूर्ण रस-चक्र के अनौचित्य के साथ प्रवृत्त के होने के कारण प्रमाता को रस की वास्तविक अनुभूति न होकर केवल उसका आभास ही होता है, संस्कृत-काव्यशास्त्र में इस स्थिति को 'रसाभास' की संज्ञा दी गई है। आभास का अर्थ है वास्तव की छाया की भाँति अवास्तव रूप—एक प्रकार का भ्रम। अभिनवगुप्त (दे०) ने रसानुभूति के इस आभास को सीपी में रजत के आभास के समान बताया है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि मत के अनुसार रसाभास की स्थिति अनौचित्य के साथ प्रवृत्त स्थायिभाव से उद्भूत होती है। पंडितराज जगन्नाथ (दे०) ने आलंबन विभाव के अनुचित होने को रसाभास कहा है ('अनुचित विभावालम्बनत्वं रसाभासत्वं'—'रसगंगाधर', प्रथम आनन)। आचार्य विश्वनाथ (दे०) ने रसप्रतीति को आभास में परिवर्तित करने वाले अनौचित्य के उदाहरण के रूप शृंगाराभास के अंतर्गत उपनायक-रति, मुनि गुरु पत्नी-रति, बहु-नायक-रति केवल नायक-विषयक अथवा नायिका-विषयक एकपक्षीय रति, अधम प्रकृति-विषयक रति, पशु-पक्षीनिष्ठ रति, आदि का उल्लेख किया है। वस्तुतः अनौचित्य का वास्तविक आधार लोकव्यवहार या लोकादर्श तथा शास्त्र के विपरीत आचरण ही है। इस प्रकार 'रसाभास' की प्रकल्पना युग और समाज-सापेक्ष सिद्ध होती है। विशिष्ट स्थितियों में लोकरुचि की अपेक्षा व्यक्ति-रुचि भी 'रसाभास' के लिए उत्तरदायी हो सकती है।

रसिकगोविंद *(हिं० ले०)*

रसिकगोविंद संभवतः जयपुर-निवासी थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इनका रचना-काल 1793 से 1833 ई० (सं० 1850-1890 वि०) माना है। इनके बनाये 9 ग्रंथ कहे जाते हैं—'रामायण-सूचनिका', 'रसिकगोविंद आनंदघन', 'लछिमन-चंद्रिका', 'अष्टदेव भाषा', 'पिंगल', 'समयप्रबंध', 'कलियुगरासो', 'रसिकगोविंद' और 'युगल रस-माधुरी'। इनमें 'रामायण-सूचनिका' रामकथा है, 'अष्टदेव भाषा' तथा 'युगल रसमाधुरी' राधाकृष्ण-लीला से संबद्ध हैं। 'समयप्रबंध' में ऋतुचर्या का वर्णन है और 'कलियुग-रासो' में कलियुग की बुराइयों का। शेष ग्रंथ काव्यशास्त्र-विषयक हैं। इनमें कुल मिलाकर नायक-नायिका-भेद के अतिरिक्त अलंकार, गुण, दोष, रस आदि का निरूपण है। यह निरूपण सर्वांगपूर्ण है। ग्रंथों के उदाहरण प्रस्तुत करने में उन्होंने स्वनिर्मित पद्य तो प्रस्तुत किए ही हैं, साथ ही पूर्ववर्ती हिंदी-कवियों की रचनाओं का भी समावेश किया है, और कहीं-कहीं संस्कृत-पद्यों का अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिया है। 'रसिकगोविंद' महत्वपूर्ण रीतिकवि हैं।

रसिकजनमनोभिराममु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक कूचिमंचि तिम्मकवि (दे०) हैं। यह शृंगारप्रधान काव्य है। इसका कथानक 'ब्रह्मपुराण' के गोदावरी खंड पर आधारित है। श्यामा नामक गंधर्व-कन्या तथा राजा ऋतुध्वज का विवाह और बाद में उनकी पुत्री तथा गौतम ऋषि का परिणय इस काव्य का मुख्य विषय है। शैली सरल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसिक संप्रदाय *(हिं० प्र०)*

अनेक ग्रंथों में सीता और राम के संयोग शृंगार के वर्णन हैं, यथा : वाल्मीकि-'रामायण' (दे०), 'उत्तर रामचरित' (दे०), 'जानकीहरण', 'हनुमन्नाटक' (दे०) में। 'आनंद रामायण' और 'सत्योपाख्यान' श्रीकृष्णलीला से प्रभावित रामकाव्य हैं। 'भुशुंडिरामायण', 'महारामायण', 'हनुमत्संहिता', 'वृहत् कोशलखंड' और 'संगीत रघुनंदन' में राम की रासलीला भी है। 'अद्भुत रामायण' के एक कांड का नाम ही रामरास है और 'आत्मबोध' में राम को रसराज कहा गया है। कृपानिवास, मधुराचार्य आदि रसिक संप्रदायी आचार्यों के अनुसार न सीता हरण हुआ और न राम ने रावण-बध के लिए धनुष-बाण धारण किया। वास्तविक सीता-राम तो चित्रकूट में ही तब तक विलास, और लक्ष्मण उनका कैंकर्य तथा प्रबंध करते रहे जब तक कि वे वहाँ से अयोध्या नहीं लौटे। उनका अन्य सब कार्य उनके प्रतिनिधि लक्ष्मी, नारायण और शेष ने किया। सीता-त्याग अवास्तविक था।

रामप्रियाशरण, विश्वनाथसिंह, जनकराज किशोरीशरण, रामचरणदास, जनकदास, प्रतापसिंह, रामनाथ प्रधान तथा भगवतदास की रचनाएँ कृष्ण-काव्य से प्रभावित हैं, जिनमें सीता और राम शृंगारिक लीलाओं में प्रवृत्त प्रतीत होते हैं।

रस्म-ए-देहली *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1905 ई०]

मौलवी सैयद अहमद देहलवी की इस गद्य-कृति का प्रथम प्रकाशन मखज़न प्रेस, दिल्ली से हुआ था। तदुपरांत दिल्ली प्रिंटिंग प्रेस, रामपुर द्वारा 1965 ई० में इसे दूसरी बार प्रकाशित किया गया। इस कृति के लेखक उर्दू शब्दकोश—'फ़रहंग-ए-आसफ़िया' के सुप्रसिद्ध संपादक हैं। यह साहित्यिक महत्व की कृति नहीं है, और न इसका लेखक वस्तुत: कोई साहित्यकार ही था। इसका सामाजिक और ऐतिहासिक महत्व है। इसमें इस्लामी सभ्यता से संबद्ध विभिन्न रस्मों, रिवाजों और रीति-नीतियों का आकलन दिल्ली के विभिन्न युगों के आलोक में किया गया है। भारत की इस्लामी सभ्यता की परिचायक यह कृति उन लोगों के लिए विशेष आकर्षण का विषय है जो अपने सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास में यथेष्ट अभिरुचि रखते हैं। इसमें बच्चा पैदा होने की रस्में, जच्चा का तारे देखना, लोरी, दाँत निकलने की रस्म, सालगिरह, दूध बढ़ाना, रस्म ख़तना, घोड़ी चढ़ाना, नाक-कान छिदवाने की रस्म, रस्म-ए-बिस्मिल्लाह, विवाह-शादी की रस्म, मँगनी, मेंहदी, बारात की तैयारी, सेहरा, दहेज, रुख़सत के गीत, यात्रा की रस्म आदि-आदि का खोजपूर्ण तथा प्रामाणिक वर्णन है।

रसूल मीर *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानत: 1807-1820 ई०; मृत्यु—1870 ई०]

कश्मीर-स्थित शाहाबाद (डूरू)-निवासी। इनकी भाषा और शैली के आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह काव्य-रचना के शिल्प में कहीं-कहीं महमूद गामी (दे०) तथा मक़बूल शाह क्रालवारी (दे०) जैसे सिद्धहस्त एवं वरिष्ठ कवियों से बहुत आगे बढ़े हैं। इनकी भाषा में यद्यपि फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है फिर भी शब्दचयन इस ढंग का है जो कर्णप्रिय और सुरीला है। यही कारण है कि लोग इनकी ग़ज़लें गुनगुनाते रहते हैं। यों तो इनकी भाषा ठेठ और शुद्ध कश्मीरी है। इन्हें निठल्ला रहने से घृणा थी, अत: यत्र-तत्र उन्होंने ठाली बैठने वालों की भर्त्सना की है। इन्होंने सूफ़ियाना कलाम भी कहा है और ऐहिक प्रेम को परमार्थ साधने का साधन माना है। उन्होंने कश्मीरी भाषा की ऐसी ग़ज़लों की रचना की है जो भाषा और शैली में सर्वथा मौलिक हैं। इनके बाद इनकी शैली का अनुकरण करने वाले अनेक कवि हो चुके हैं किंतु कोई भी वैसा प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सका है।

रहदैलगिरि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह रजनीकांत बरदलै (दे०) के सभी उपन्यासों में सबसे बड़ा है। यह तीन खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में रहदै दयाराम के प्रणय का उन्मेष, उनका विच्छेद राजगृह में रहदै का दासी रूप में रहना, चंद्रकांत की उसके प्रति आसक्ति देख राजमाता आदि का विरोध, रहदै की दयाराम से पुन: भेंट, राजमाता के षड्यंत्र से दयाराम का निर्वासन और रहदै का एक अन्य व्यक्ति को समर्पण, किंतु रहदै द्वारा सतीत्व-रक्षा के लिए आत्महत्या की चेष्टा करना आदि का वर्णन है। इसमें ऐतिहासिक व्यक्ति के काल्पनिक कार्यों का उल्लेख तथा सामयिक राजनीतिक घटनाओं का समावेश है। द्वितीय खंड में रहदै नूतन जीवन-यापन करती है। वह हठयोगी साधु की शरण में जाकर साधना द्वारा अपने यौवन-सुलभ सौंदर्य को त्याग कर वृद्धा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर प्राप्त करती है। तृतीय खंड में वह तपस्विनी कृष्ण-दासी वैष्णवी बनकर बर्मियों के आक्रमण का पूर्व संकेत देती है, लोगों को संघर्ष के लिए संगठित होने का उपदेश देती है और पीड़ितों की सेवा-सुश्रूषा करती है। अंत में वह दयाराम को 'मानव सेवा ही ईश्वर है' का मंत्र देकर वृंदावन की यात्रा करती है। अब ये दोनों प्रेमी-प्रेमिका नहीं, अपितु भक्त और सत्संगी नर-नारी हैं। कहानी का विकास प्रथम खंड में ही पूरा हो जाता है, शेष दो खंड परिशिष्ट-से हैं। गौण चरित्रों में राजा चंद्रकांतसिंह का चरित्र आकर्षक है, वह कामुक है, किंतु पशु नहीं है।

'रहबर', अवतार कृष्ण *(कश्० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

ये कश्मीरी गद्य के अच्छे लेखक हैं और अनेक कहानियाँ लिखी हैं। कहानीकार के अतिरिक्त 'रहबर' साहब एक अच्छे आलोचक भी हैं, और इन्होंने कश्मीरी साहित्य के विकास और वृद्धि पर 'काशिरि अदबच्य तारीख' (कश्मीरी साहित्य का इतिहास) नाम का एक सुंदर शोध-ग्रंथ भी लिखा है जो पुरस्कृत हुआ है। इस कृति का पहला खंड प्रकाशित हो चुका है। 'रहबर' साहब का यह कार्य उनकी लगन और विद्वत्ता का प्रमाण है। गुलाम नबी खयाल (दे० खयाल) के साथ मिलकर इन्होंने 'काशुर नसर' (कश्मीरी गद्य) का संकलन एवं संपादन किया है, जो वास्तव में बड़ा प्रशंसनीय कार्य है। 'रहबर' साहब की शैली मौलिक और स्पष्ट है। इन्होंने 'त्वबॅरुक' (मेंट/प्रसाद) नाम का अपना एक कहानी-संग्रह प्रकाशित किया है। गोल्डस्मिथ के नाटक 'She Stoops to Conquer' और रवींद्र ठाकुर (दे०) के नाटक 'चित्रा' का भी कश्मीरी में अनुवाद किया है।

रहमान एम० ए० *(त० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

इनका जन्म मद्रास में हुआ। श्रीलंका जाने के उपरांत ये साहित्य-सर्जना की ओर आकृष्ट हुए। 'मरपु' इनकी प्रतीकात्मक कहानियों का प्रसिद्ध संग्रह है। विभिन्न महापुरुषों के आरंभिक जीवन से संबंधित अपनी रचनाओं के द्वारा वे बाल-साहित्य-प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। रह्मान 1960 से अपनी साहित्यिक पत्रिका 'इळमपिरै' के संपादक के रूप में कार्य कर रहे हैं। अपनी प्रतीकात्मक कहानियों द्वारा इन्होंने श्रीलंका एवं भारत के तमिल कहानीकारों में विशिष्ट स्थान बना लिया है।

रहस्यवाद *(हिं० पारि०)*

चिंतनपरक साधना अथवा अंतःस्फुरित रागमय अनुभूति द्वारा परम तत्त्व का अंतःसाक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है, 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहता है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अंतर नहीं रह जाता।' रहस्यवादी परम सत्ता को 'ज्ञेय' न मानकर 'गद्य' मानता है और ज्ञाता तथा ज्ञेय के तादात्म्य के लिए साधना या प्रणय-अनुभूति को साधन मानता है। इसीलिए 'रहस्यवाद' के दो भेद किये गये हैं—साधनात्मक एवं भावनात्मक। 'रहस्यवाद' में साध्य तक पहुँचने के लिए पाँच सोपान माने गये हैं—परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा और विस्मय की भावना, परम सत्ता की व्यापकता का आभास और उस पर मधुर व्यक्तित्व का आरोपण, असीम सत्ता के साथ रागात्मक संबंध की स्थापना, विरहानुभूति, साधना-मार्ग की कठिनाइयाँ (अंधकारपूर्ण स्थिति) तथा तादात्म्य। पश्चिम में रहस्यवादी चिंतन के सूत्र यूनान के पाइथागोरस एवं प्लेटो के शिष्य प्लोटाइनस में मिलते हैं। वहाँ के साहित्य और साहित्यालोचन पर भी रहस्यवाद का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। दांते और पुनर्जागरण-युग के प्रणय-सिद्धांत, स्पेनिश साहित्य का आभिजात्य युग, इंग्लैंड के अधिमानसिक कवियों का काव्य, फ़्रांस का शास्त्रवाद—सभी रहस्यवाद से प्रभावित हैं। भारतीय रहस्यवाद की प्राचीनता के संबंध में दो मत हैं—शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) जी उसे विदेशागत प्रवृत्ति मानते हैं जबकि पाश्चात्य आलोचक तथा अनेक भारतीय विद्वान—डा० बड़थ्वाल, प्रसाद (दे०), महादेवी (दे० वर्मा) आदि उसके बीज उपनिषदों या शैवागमों में मानते हैं। हिंदी-काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्ति प्राचीन और आधुनिक काव्य दोनों में पायी जाती है; अंतर केवल यह है कि प्राचीन कविता में अनुभूति की प्रधानता थी तो आधुनिक कविता में कल्पना (दे०) की प्रधानता रही है।

रहीम *(हिं० ले०)* [जन्म—1553 ई०; मृत्यु—1626 ई०]

ये अकबर बादशाह के अभिभावक बैरमखाँ खानखाना के पुत्र थे। इन्हें संस्कृत, अरबी और फ़ारसी का अच्छा ज्ञान था। ये दानवीर और कविता-प्रेमी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँगीर के समय में एक युद्ध में धोखा देने के कारण क़ैद किये गये और क़ैद से छूटने के बाद इन्होंने विपन्नता का जीवन बिताया। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास (दे०) से इनकी अच्छी मित्रता थी।

इन्हें संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। अपने उदार, संवेदनशील और सहिष्णु हृदय को वास्तविक अनुभवों के बीच में रखकर इन्होंने जिस मार्मिकता का परिचय दिया है वही अबाध गति से इनके दोहों में प्रवाहित है। 'रहीम दोहावली' या 'सतसई', 'बरवै नायिकाभेद', 'श्रृंगार सोरठा', 'मदननाष्टक', 'रासपंचाध्यायी' आदि इनकी अनेक रचनाएँ हैं। मायाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम रत्नावली' नाम से इनका एक संग्रह प्रकाशित किया है। इन्होंने फ़ारसी का एक दीवान भी रचा है तथा 'बाक़आत-बाबरी' का तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया है। इनकी भाषा में हिंदी-संस्कृत अथवा संस्कृत-फ़ारसी के मिश्रित रूप पाये जाते हैं। इनके दोहों में वृंद (दे०) और गिरिधर (दे०) दास की भाँति कोरी नीति का पुट नहीं वरन् हृदय की सच्ची मार्मिकता के दर्शन होते हैं। हिंदी-भाषी क्षेत्र में तुलसीदास के समान ही बरवै (दे०) छंद के प्रवर्तक रहीम के शब्द लोगों की जिह्वा पर आज तक विद्यमान हैं।

रहीम के काव्य का मुख्य विषय श्रृंगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गंगा-संबंधी भक्ति भावमयी रचनाएँ वैष्णव-भक्ति आंदोलन से प्रभावित हैं; नीति और श्रृंगारपरक रचनाएँ दरबारी वातावरण के अनुकूल हैं। व्यास, वृंद और रसनिधि (दे०) की नीतिपरक रचनाएँ रहीम से प्रभावित हैं। इन्होंने बरवै के अतिरिक्त दोहा, सोरठा, कवित्त (दे०), सवैया (दे०), मालिनी आदि छंदों का प्रयोग किया है। इनके 'बरवै-नायिका-भेद' में जहाँ एक ओर काव्यरीति का पालन हुआ है, वहाँ दूसरी ओर गार्हस्थिक जीवन के लुभावने चित्र अंकित किये गये हैं। मार्मिक होने के कारण ये अपनी उक्तियों को लेकर समाज में समादृत हुए। ये उदार, विनम्र और दानशील व्यक्ति थे। इनके व्यक्तित्व से जहाँ एक ओर अकबर का दरबार गौरवान्वित हुआ, वहाँ दूसरी ओर हिंदी-साहित्य इनकी माधुर्य-चर्चित कृतियों से अभिवृद्ध हुआ।

राइकमल (वँ० पा०)

वैष्णवों की रस-सुंदर आश्रय-भूमि पर 'राइकमल' प्रतिष्ठित है। प्रेम का राज्य, नयनजल का राज्य ही राइकमल का हृदय-देश है। ताराशंकर ने राइकमल चरित्र में जिस रोमानी रसचेतना के निगूढ़ प्रकाश को चित्रित किया है वह निस्संदेह शरत्चंद्र (दे०) की कमललता के अनुसरण पर ही हुआ है। परंतु कमल-लता के असंयत आदर्शवाद में ही उसकी अंतिम परिणति नहीं हुई है। यथार्थ जीवन के बीच से ही राइकमल चरित्र का विकास हुआ है। समग्र जीवन-चेतना की एक गहरी अपार्थिव पीड़ा ने इस चरित्र को पदावली के छंद-रस से अभिस्नात किया है। 'राइकमल' रोमांटिक कवि के मानस का स्वर्ण शतदल है।

राई (*गु० पा०*)

स्व० रमणभाई महीपतराम नीलकंठ (दे०)-रचित नाटक 'राई नो पर्वत' (दे०) का नायक राई मूलतः गुजरात के राजा रत्नदीप देव का राजकुमार जगदीपदेव है जो अपनी राज्यहीन विपन्नावस्था में माली बनकर 'राई' नाम धारण कर कनकपुर की किसलवाडी में रहता है। उसकी माता अमृतदेवी ने भी मालिन का वेश धारण कर 'जालका' नाम रख लिया है (दे० राई नो पर्वत)।

लेखक ने संस्कृत 'नाटक' के लक्षणों की परिपाटी पर इस नाटक की रचना की है। अतः नायक के के रूप में भी राई में वे सब गुण दिखाये गये हैं जो धीरोदात्त नायक में होते हैं। लेखक अपनी सुधार-वृत्ति को भी इसमें समाविष्ट कर देता है। फलतः नारी के अधिकार, नारी की प्रतिष्ठा, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह-समर्थन, अंधविश्वासों का खंडन, आदि भी नाटक में पात्रों के माध्यम से सन्निविष्ट हुए हैं।

एक सत्यनिष्ठ, अनन्य प्रेमी व वीर व्यक्ति के रूप में राई का चरित्र गुजराती-साहित्य में चिरकाल तक जीवित रहेगा।

राई नो पर्वत (*गु० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1913 ई०]

स्व० रमणभाई महीपतराम नीलकंठ (दे०)-रचित इस गुजराती नाटक का प्रथम संस्करण 1913 ई० में निकला था। गुजराती नाट्य साहित्य के उषःकाल में शिष्ट किंतु रंगमंचीय नाटकों का अभाव-सा था। इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न स्व० रणछोड़भाई उदयराम (दे०) ने किया। उन्हीं की परंपरा में स्व० रमणभाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलकंठ ने इस नाटक की रचना की। नाटक की वस्तु गुजरात के लोक-नाट्य भवाई के एक 'वेश' (लालजी मनीआर के वेश) में प्राप्त कथा पर आधारित है।

गुजरात के राजा रत्नदीप देव के पुत्र जगदीप देव का राज्य पर्वतराय ने हड़प लिया था। जगदीप अपनी माता अमृतदेवी को लेकर एक बगीचे में माली के रूप में रहने लगा। उसने अपना नाम राई (दे०) रखा तथा अमृतदेवी ने जालका नाम धारण किया। मालिन के रूप में जालका महल में आती-जाती थी। वृद्ध राजा पर्वतराय से उसने कायाकल्प करने के एक प्रयोग की बात की। बगीचे में रात्रि में दक्षिण द्वार से प्रवेश करते समय राई के बाण से पर्वतराय की मृत्यु हुई। राजा का विश्वस्त सामंत शीतलसिंह उनके साथ था। जालका तथा शीतलसिंह ने मिलकर योजना बनाई और यह घोषणा कराई कि राजा कायाकल्प के लिए एक तहखाने में 6 महीने तक उपचार करा रहे हैं। तब तक आमात्य ही राज्य-संचालन करेंगे।

6 महीने बाद राई पर्वतराय के रूप में प्रगट हुआ। महल में जाकर वह रानी लीलावती के सामने सारा रहस्य खोल देता है। सभा में भी यह प्रकट कर देता है कि मैं पर्वतराय नहीं हूँ किंतु 'राई' नामधारी माली के रूप में रहने वाला जगदीपदेव हूँ। 15 दिन के उपद्रव व संघर्ष के बाद जनता उसे अपना राजा स्वीकार कर लेती है।

संस्कृत नाट्य-परंपरा का पूर्ण अनुकरण कर लेखक ने इसे एक आदर्श नाटक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। नांदी, सूत्रधार, भरतवाक्य, विदूषक आदि की योजना, संवादों के बीच-बीच में संस्कृत वृत्तों में पद्य-रचना व अंकों व प्रवेशों की योजना पूर्णतः भारतीय नाट्य-सिद्धांतों की परिपाटी पर हुई है। 7 अंकों में रचित यह नाटक गुजराती के प्रारंभकालीन नाटकों के रूप का परिचय देता है।

राउतराय, बिनोद *(उ० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

श्री बिनोद राउतराय उड़िया-शिल्प-कला के मर्मज्ञ लेखक हैं। इनकी रचना 'ओड़िशी-चित्र' में उड़िया-शिल्प-कला पर इनके आलोचनात्मक निबंध संकलित हैं। यह एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इससे जहाँ लेखक का तत्संबंधी गंभीर अवबोध प्रकट होता है, वहीं उड़िया-शिल्प-कला की विशिष्टताएँ प्रकाश में आती हैं। इनकी कविताओं का मुख्य प्रतिपाद्य प्रणय है। आजकल ये खलीकोट स्कूल ऑफ़ आर्ट्स में अध्यापक हैं। इनकी कृतियाँ हैं—'शिल्प तीर्थ (दे०), 'रूगान्वेषीर स्वाख्यर', 'शिलालिपि' आदि।

राउतराय, सच्चिदानंद *(उ० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

पुरी ज़िलांतर्गत खोर्धा निकटवर्ती गुरुजंग ग्राम में राउतराय का जन्म हुआ था। प्रतिभावान कवि और समर्थ कहानीकार के रूप में ये प्रसिद्ध हैं। इनकी अब तक 22 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

पद्म-श्री राउतराय उत्कलीय मार्क्सवादी साहित्य के प्रवर्तकों में अन्यतम हैं। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार एवं निबंधकार राउतराय आधुनिक साहित्य के एक सशक्त लेखक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। वामपंथी लेखकों में राउतराय ही सर्वाधिक समर्थ लेखक हैं। अपने को 'टाणकवि' कहने की परंपरा इस गोष्ठी के कवियों में इनसे ही चली है। इनकी प्रगतिशील रचनाओं में श्रेणीहीन समाज की स्थापना, शोषण का अंत, उत्पीड़ित सर्वहारा वर्ग के अधिकारों की रक्षा आदि विषयों का निरूपण मिलता है।

राउतराय की 'पाथेय' और 'पूर्णिमा' काव्य-पुस्तकें सबुज-साहित्य (दे०) के आदर्श पर रची गयी हैं। 'पल्ली श्री' में इनकी काव्य-प्रतिभा का चरम विकास है। 'अभियान' काव्य और 'चित्रग्रीव' उपन्यास में इनकी विद्रोही मनोवृत्ति अभिव्यक्त हुई है। 'बाजीराउत' (दे०) काव्य में इनकी विप्लवी-चिंताधारा का सशक्त प्रकाशन है। 'भानुमतीर देश' प्रतीकात्मक रचना है और 'कविता 1962' नवीनतम रचनाओं का संकलन है। 'मशाणिर फुल' एवं 'माटिर ताज' उच्चकोटि के कहानी-संग्रह हैं। अपनी कहानियों में इन्होंने ग्रामीण जीवन को ग्रामीण जनभाषा में ही चित्रित किया है। यही कारण है कि परिवेश-चित्रण में एक सजीवता एवं भास्वरता है।

राओ, मधुसूदन *(उ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

उत्कल-साहित्य समाज के जन्मदाता, भक्त व रहस्यवादी कवि, मधुसूदन राओ, साहित्य में परिष्कृत रुचि के प्रवर्तक हैं। बीसवीं शती के प्रारंभ में साहित्य में जो परिष्कृत रुचि दिखाई पड़ती है, उसका श्रेय मधुसूदन जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को है। 'कवितावळी' (दे०) जिसमें अधिकांश कविताएँ मधुबाबू की हैं, आधुनिक युग की नवीन चेतना की प्रथम अभिव्यक्ति हैं।

इनका जन्म पुरी में एक हिंदू-परिवार में हुआ था। कटक में पढ़ते समय इन्होंने ब्राह्म धर्म स्वीकार कर लिया था, जिसका व्यापक प्रभाव इनके साहित्य में दिखाई पड़ता है। जीवनभर शिक्षा-विभाग में कार्य करने के कारण कवि की अपेक्षा, इनका शिक्षक रूप प्रधान रहा, जो इनकी रचित पाठ्य पुस्तकों से स्पष्ट है।

मधुबाबू मुख्यतः गीतकार हैं। इनके गीतों में इनकी दार्शनिक चिंतना व्यक्त हुई है। काव्य कृतियों में 'ऋषि प्राणे देवावतरण' मुख्य है। इसमें भक्त कवि की आध्यात्मिक अनुभूति, दिव्य अभिव्यंजना के माध्यम से प्रकट हुई है। 'कुसुमांजळी', 'उत्कल गाथा', 'ब्राह्म संगीत', 'बसंत गाथा' आदि इनकी अन्य काव्य-कृतियाँ हैं। मधुसूदन का काव्य-साहित्य इनके गद्य-साहित्य से श्रेष्ठ है। ये सफल अनुवादक भी हैं। 'निर्वासितर विलाप' और 'उत्तर रामचरित' इनकी सफल अनूदित रचनाएँ हैं।

राक्षसतागडीची बखर *(म० कृ०)*

विजयनगर के साम्राज्य की पराजय का वृत्तांत इसमें वर्णित है। 'राक्षसतागडी' नामक स्थान पर युद्ध हुआ था, अतः इस बखर की संज्ञा उसी के आधार पर रखी गई है। यह बखर मूलतः कानड़ी भाषा में रामजी तिरुमल ने 1565 ई० में लिखी थी। मूल लेखक विजयनगर के दरबार में रहता था और 'तालिकोट' अथवा 'राक्षसतागडी' के युद्ध को प्रत्यक्ष देख चुका था। इस मराठी बखर का आधार कानड़ी बखर है, अतः भाषा पर कानड़ी प्रभाव स्पष्ट है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस बखर का विशेष महत्व है। साहित्यिक गुणों का भी इसमें सहज अंतर्भाव है। इसमें व्यक्ति-चरित्र का सूक्ष्म चित्रण, घटनाओं का यथार्थ वस्तुनिष्ठ निरूपण है। अभिव्यक्ति-पद्धति सरल है किंतु हृदयस्पर्शी है। घटना-क्रम स्वाभाविक है। एक के बाद दूसरी घटना सहजसंभवी लगती है। इसमें राजनीतिक चर्चा, दूत-कर्म, युद्ध की तैयारी आदि का अत्यंत प्रत्यक्षदर्शी चित्रण है। यह मराठी में अनूदित कृति है, फिर भी नितांत मौलिक-सी प्रतीत होती है। तत्कालीन अनेक राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ इसमें यथार्थ रूप में प्रतिबिंबित हो उठी हैं।

रागणेकर, मो० ग० *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

चलचित्रों के जड़ीभूत प्रभाव से हत-तेज मराठी-रंगमंच को रागणेकर के नाटकों से जीवंत बल प्राप्त हुआ है। 'आशीर्वाद' (1941), 'कुलवधू' (1942), 'कन्यादान' (1943), 'अलंकार' (1944), माझेंघर' (1945), 'माहेर' आदि पूर्ण नाटक तथा 'माझंजमेना', 'सतरावर्षे', 'फरारी' (1947), 'बड़े बाप के बेटे', 'आजजे संसार' आदि इनकी प्रमुख एकांकी रचनाएँ हैं। इनके नाटक अधिकांशतः टूटते-जुड़ते मध्यवर्गीय परिवारों की जानी-पहचानी व्यथा-कथा हैं। सवाक् चित्रपटों की लोकप्रियता के समक्ष निष्प्रभ मराठी-नाटकों की प्रदीर्घ अभिनयावधि के साथ ही संगीत एवं गीतों की संख्या को सीमित करते हुए इन्होंने समसामयिक समस्याओं का मनोहारी अंकन किया है। संक्षिप्त किंतु तीखे कथा-विकास में सहायक संवाद, अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण भावानुरूपिणी सहज बोधगम्य भाषा प्रभान्विति की दृष्टि से इनके नाटकों की अनूठी विशेषता है। इब्सन के यथार्थवादी नाटकों का-सा कथाविन्यास—एक अंक में एक दृश्य की योजना—कथा का संघर्षमय विकास तथा विस्तृत रंग-संकेत इनके नाट्य-शिल्प पर पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के प्रभाव के द्योतक हैं। रंगमंच के व्यावहारिक परिज्ञान के कारण इनकी रचनाओं का साहित्य की अपेक्षा प्रायोगिक मूल्य है।

रागिणी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1915-1916 ई०]

समकालीन उपन्यासों में ही नहीं, आधुनिक मराठी-उपन्यास-साहित्य में भी वामन मल्हार जोशी (दे०)-रचित इस उपन्यास का अपने विशिष्ट गुणों के कारण पृथक् एवं महत्वपूर्ण स्थान है। इसने अपने तात्त्विक विवेचन, गंभीर प्रश्नों से संबद्ध विचारों के कारण साधारण पाठकों को ही नहीं अपितु बुद्धिनिष्ठ, अभिजात और उच्च शिक्षा-प्राप्त पाठक-वर्ग को भी आकृष्ट किया है। तत्कालीन उपन्यासों में नये विचारों का प्रतिपादन और नये आदर्शों की प्रतिष्ठा न थी, जबकि इस उपन्यास में वामन मल्हार जोशी ने नये विचारों और आदर्शों को पहली बार अभिव्यक्ति दी है जिसके कारण उन्हें 'तात्त्विक उपन्यास का जनक' कहा गया है। इसमें नवीन विचारों एवं प्राचीन शास्त्रीय विचारों का समन्वय है। स्त्री-स्वातंत्र्य पर तो विस्तृत चर्चा है ही, ब्रह्म निर्गुण है या सगुण, ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं—इन विषयों का भी विवेचन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर पाश्चात्य दार्शनिकों—स्पेन्सर, बर्गसां आदि के विचारों का, तो दूसरी ओर मनु, याज्ञवल्क्य आदि पौर्वात्य मनीषियों के सिद्धांतों का हवाला दिया गया है। महाराष्ट्र के सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में उस समय जो वैचारिक संघर्ष चल रहा था, उसमें जो नया मोड़ आ गया था, उसकी कथा-साहित्य में सर्वप्रथम अभिव्यक्ति प्रदान करने का श्रेय इसी उपन्यास को है।

इसका कथानक सुशिक्षित, सुसंस्कृत एवं स्वतंत्र विचारों की दो युवतियों के चारों ओर गुंफित है। ये दोनों युवतियाँ स्वभाव से एक-दूसरे के विपरीत हैं। रागिणी (दे०) यदि शांत, निःस्वार्थ एवं सहिष्णु है तो उत्तरा अधीर, अक्खड़, वाचाल, तर्कप्रिय एवं स्वतंत्र नारी है। इन दोनों के कौटुंबिक जीवन का चित्रण कर लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार नई शिक्षा का प्रभाव दो भिन्न स्वभावों वाली युवतियों पर भिन्न-भिन्न रूप में पड़ता है। रागिणी के आदर्श का अनुगमन करने की प्रेरणा देकर उन्होंने तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज का मार्ग-दर्शन किया है। सैद्धांतिक चर्चा, अद्भुत घटना और अस्वाभाविक एवं कृत्रिम वर्णनों के कारण इसका रचना-शिल्प शिथिल है, पर इसका ऐतिहासिक महत्व असंदिग्ध है।

रागिणी *(म० पा०)*

वामन मल्हार जोशी (दे०) के विचार-प्रधान उपन्यास 'रागिणी' (दे०) की नायिका रागिणी शांत, विनम्र, शालीन निःस्वार्थ और सहिष्णु स्वभाव की है। इसके विपरीत उत्तरा नामक युवती सफ्रेजेट है—अक्खड़, वाचाल, तर्कप्रिय और अधीर स्वभाव की है। इन दोनों विपरीत स्वभाव की युवतियों के चित्रण द्वारा लेखक एक ओर यह बताना चाहता है कि किस प्रकार नयी शिक्षा का प्रभाव दो भिन्न स्वभाव वाली युवतियों पर अलग-अलग पड़ता है और दूसरी ओर वह रागिणी के मार्ग का अनुगमन करने की प्रेरणा देता है। रागिणी के माध्यम से लेखक ने निष्ठावान, पतिव्रता आदर्श नारी की स्वरूप-रचना कर महाराष्ट्रीय स्त्री-जीवन को एक नया उन्मेष प्रदान किया है। 1920 ई० के लगभग सुशिक्षित घरों में रागिणी और उत्तरा के उदाहरण दिये जाते थे, इसी से इस पात्र की लोकप्रियता का पता चलता है। महत्व की बात यह है कि आंग्लविद्या-विभूषित होते हुए भी रागिणी अमहाराष्ट्रीय नहीं लगती, क्योंकि लेखक ने महाराष्ट्रीय स्त्री-जीवन के निकट परिचय के आधार पर उसकी चरित्र-सृष्टि की है।

राघवन, प्रो० वेंकटेश *(सं० ले०)* [जन्म –1908 ई०]

डा० वेंकट राघवन का जन्म मद्रास प्रांत के तंजौर ज़िले में, तिरुवरूर में, एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। डा० राघवन आरंभ से ही विशिष्ट प्रतिभाशाली थे। इन्होंने महामहोपाध्याय कुप्पूस्वामी शास्त्री के निर्देशन में भोज के 'शृंगार-प्रकाश' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इनके इस प्रबंध के परीक्षक सिल्वा लेवी, एफ० डब्ल्यू थॉमस तथा ए० बी० कीथ थे। इन्होंने 'The new Catalogus Catalogoram', 'भोज के शृंगार-प्रकाश' का शोधपूर्ण संपादन, 'The number of Rasas', 'Some concepts of Alamkarasendras', 'Love in the poems and plays of Kalidasa' तथा 'Modern Sanskrit Writings' आदि 50 से अधिक ग्रंथों की रचना की है। इनकी गणना विश्व के विशिष्ट काव्यशास्त्र विद्वान के रूप में की जाती थी।

डा० राघवन ने अपने कवित्व के उत्कर्ष के कारण 'कवि-कोकिल' की उपाधि प्राप्त की थी। 1962 ई० में इन्हें 'पद्म-भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। 1966 ई० में डा० राघवन को साहित्य अकादेमी के महनीय पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। डा० राघवन को देश-विदेश में अनेकविध सम्मान प्राप्त हुए। अत्यंत संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवित्व, काव्यशास्त्र एवं भाषाशास्त्र आदि क्षेत्रों में डा० राघवन का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। कुल मिलाकर भारत ही नहीं, विश्व भर में, संस्कृत के विशिष्ट विद्वान के रूप में डा० राघवन की प्रतिष्ठा रही है। डा० राघवन की प्रतिभा ने एक समीक्षक एवं साहित्यस्रष्टा के रूप में भारतीय वाङ्मय की जो श्रीवृद्धि की है, वह अतुलनीय है। संस्कृत-जगत् को डा० राघवन की देन चिरस्मरणीय रहेगी।

अभी कुछ समय पहले ही उनके निधन से संस्कृत-क्षेत्र की एक प्रखर प्रतिभा लुप्त हो गई।

राघवपांडवीयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1545 ई०]

यह पिंगळि सूरना (दे०); रचित चार सर्गों का द्वर्थि काव्य है जिसमें 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) की दोनों कथाएँ एक-साथ वर्णित हैं। अब तक उपलब्ध तेलुगु के श्लेषकाव्यों में यह सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ है। तेलुगु में श्लेपकाव्य की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यंत दुष्कर है। फिर भी इन दो असंबद्ध कथाओं का वर्णन एक-साथ अद्‌भुत दक्षता के साथ घटित करनेवाले इस कवि को संस्कृत और तेलुगु दोनों भाषाओं पर असाधारण अधिकार प्राप्त था तथा इनकी बुद्धि नवनवोन्मेषशालिनी थी। इसमें अधिकांश छंद नाना प्रकार के चित्र-विचित्र श्लेषालंकारों से भरे हुए हैं।

इसमें कवि ने दोनों कथाओं का संक्षेप में भी पूरा वर्णन नहीं किया है। क्योंकि दोनों में आरंभ से अंत तक मेल नहीं बैठाया जा सकता। अतः कवि ने एक कथा-प्रणाली का निर्माण कर लिया है। रामायण की कथा से, उसके विवरणों का परित्याग करके, केवल स्थूल रेखाओं की कल्पना कर, उन रेखाओं की छाया से मेल खाने वाले 'महाभारत' के कथांशों को ग्रहण करके, रामायण की स्थूल मूर्ति के अनुरूप 'महाभारत' की स्थूल मूर्ति का निर्माण करके, इन दोनों को कवि ने इस प्रकार जोड़ा है कि दोनों में सादृश्य का आविर्भाव हो गया है। इस प्रणाली में 'रामायण' मूल आधार के रूप में तथा 'महाभारत' उसकी प्रतिवृत्ति के रूप में दिखाई देने पर भी दोनों कथाओं को समान महत्व प्राप्त हुआ है।

यह दुस्साध्य कार्य कवि की प्रबल बुद्धि-चातुरी तथा प्रखर पांडित्य का प्रमाण है न कि उनकी कविता-शक्ति या शिल्प-रचना का। तेलुगु के परवर्ती श्लेषकाव्यों के लिए यह काव्य आदर्श बना रहा।

राघवांक (क० ले०)

कन्नड-साहित्य के स्वतंत्र युग के वीरशैव-कवियों में महाकवि राघवांक का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। ये हरिहर (दे०) के भानजे थे और उनसे ही इन्होंने शिक्षा-दीक्षा पाई थी। उनके शिष्य होकर ये पंडित हुए थे और भक्त भी। इन्होंने अपने गुरु का मार्गानुसरण किया, परंतु स्वतंत्र प्रतिभा भी प्रदर्शित की। कन्नड-साहित्य में हरिहर ने 'रगळे' (एक छंद) का सर्वाधिक प्रयोग कर क्रांति का सूत्रपात किया और 'रगळेय हरिहर' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की तो राघवांक ने कन्नड में 'षट्‌पदी' (दे०) छंद के द्वारा उस क्रांति को आगे बढ़ाया। हरिहर और राघवांक जैसे प्रभविष्णु कवियों के काव्यों से कन्नड-साहित्य श्रीसंपन्न हुआ है। राघवांक का षट्‌पदी-प्रयोग आगे के कवियों के लिए मार्गदर्शक बना और वह लोक-विश्रुत हुआ।

राघवांक की छः रचनाएँ हैं—(1) सोमनाथचरिते (दे०), (2) वीरेशचरित (दे०), (3) सिद्धरामपुराण (दे०), (4) हरिश्चंद्रचरित्र या हरिश्चंद्र काव्य (दे०), (5) शरभचारित्र और (6) हरिहर-महत्व।

'सोमनाथचरिते' में सौराष्ट्र के प्रसिद्ध शिव-भक्त आदय्या की कथा का वर्णन है। आदय्या ने सौराष्ट्र से सोमनाथ का लिंग लाकर कर्नाटक के पुलिगेरे में उसकी स्थापना की थी। उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाकर जैनों को वीरशैव बनाया था। हरिहर ने आदय्या पर 'रगळे' लिखा है, संभवतः उससे राघवांक को प्रेरणा मिली थी। 'सोमनाथचरिते' के वर्णनों में सजीवता है, संभाषणों में नाटकीय दीप्ति है और कल्पना तथा भाषा-शैली में स्वाभाविकता है।

'वीरेशचरित' एक छोटा काव्य है। फिर भी इसमें कवि की प्रतिभा अधिक मात्रा में प्रकट हुई है। इसमें दक्षयज्ञ के विध्वंस की कथा का वर्णन है। हरिहर के 'वीरभद्रदेव-रगळे' से प्रभावित होकर राघवांक ने इस काव्य का प्रणयन किया है, तथापि इसमें राघवांक की मौलिकता स्पष्ट है। 'सिद्धरामपुराण' नौ संधियों का बड़ा काव्य है। सोन्नलिगे के सिद्धराम का जीवनचरित इसका वर्ण्य विषय है। सिद्धराम को कवि ने मनुष्य नहीं, रुद्र का अवतार ही माना है। विश्वप्रेमी और कर्मयोगी के रूप में सिद्धराम का चित्रण अत्यंत मनोरम है।

'हरिश्चंद्र काव्य' राघवांक की यशोदीप्ति का प्रधान आधार है; कवि की चरम सिद्धि का सुंदर प्रमाण है। अन्य काव्यों में सांप्रदायिक प्रवृत्तियों के लिए जो स्थान था, वह 'हरिश्चंद्र काव्य' में नहीं है। इसमें 14 स्थल अथवा सर्ग हैं। 'हर ही सत्य है, सत्य ही हर है'—यह काव्य का महान् संदेश है। कवि ने पूर्व परंपरा से कथा-बीज लेकर उसे काव्यवृक्ष बनाया है और सचमुच नूतन सृष्टि की है। कथा-रचना में रमणीयता, पात्रों का चरित्र-चित्रण, रस-निरूपण, संभाषणों में नाटकीयता, सुंदर छंद और शैली की प्रभावशीलता आदि कितने ही गुण 'हरिश्चंद्र काव्य' को श्रेष्ठ महाकाव्य घोषित करते हैं। श्रव्य काव्य होते हुए भी उसमें सर्वत्र कवि की नाट्य-प्रतिभा विलसित हुई है। 'हरिश्चंद्र काव्य' जैसी अद्वितीय कृति देकर महाकवि राघवांक अमर हो गये हैं।

राघवांकचरित्र (क० कृ०)

चिक्कनंजेश अथवा सिद्ध नंजेश (समय—1650 ई०) की कृति 'राघवांकचरित्र' मध्यकाल के प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड कवि राघवांक (समय —1165 ई०) के चरित को चित्रित करने वाली एकमात्र रचना है। मध्य काल के उत्तरार्द्ध में कई वीरशैव चरित-काव्य लिखे गये, उनमें सिद्ध नंजेश के काव्य का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। उसमें राघवांक की जीवनी का विवरण इस प्रकार दिया गया है, 'कुंतलदेश में तुंगभद्रा के तट पर पंपापुर में इनका जन्म हुआ। इनके पिता महादेव भट्ट, माता रुद्राणी और मामा एवं गुरु हंपा के हरीश्वर थे। कविता-शक्ति प्राप्त होने पर पंपापुर के राजा देवराज के दरबार में इन्होंने 'हरिश्चंद्र-काव्य' रचकर पढ़ा जिससे सभी पंडित प्रसन्न हुए। नर-स्तुति करने के कारण हरीश्वर ने इनके दाँत तोड़ दिये तो हरीश्वर की इच्छानुसार 'सोमनाथ-चरित' आदि ग्रंथ लिखकर पुनः दाँत प्राप्त किये।' यह नहीं कहा जा सकता कि हरीश्वर से संबंधित इस घटना में कितना सत्यांश है। सिद्ध नंजेश के कथनानुसार राघवांक ने ओरुगल्लु (वरंगल) के रुद्रप्रताप (अथवा प्रताप रुद्र) की सभा में एकद्वित्रि-संधिग्राही नाम के कुकवियों को परास्त किया था। षट्पदी में उनके पूर्व किसी ने काव्य-रचना नहीं की थी। इस कारण वे षट्पदी के जन्मदाता हैं। सिद्ध नंजेश की भाषा-शैली सरल और प्रवाहपूर्ण है। राघवांक के चरित्र के निरूपण में उनको सफलता मिली है।

राघवैयंगार, मु० *(त० ले०)* [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

इस शती के पूर्व भाग में तमिल भाषा साहित्य एवं इतिहास के अध्ययन को गति प्रदान करनेवाले मार्गदर्शी विद्वानों में इनका अपना स्थान है। 1902 ई० में 'मदुरै' नगर में साहित्यानुशीलन-अनुसंधान के लिए 'चेंतमिल' नामक मासिक प्रकाशन आरंभ हुआ था जो उस नगर के नवोदित तमिल-संघ—का मुख-पत्र था और हिंदी प्रदेश के 'सरस्वती' पत्र के समकक्ष तत्कालीन विद्वत्समाज पर प्रभाव डालने वाला था। इस पत्र के उप-संपादक और संपादक के रूप में इन्होंने अपना साहित्यिक जीवन प्रारंभ किया था और तमिल-भाषियों के विस्मृत ग्रंथ-रत्नों का संपादन तथा मौलिक अनुसंधान आदि कार्यों में नये मान-दंड स्थापित किये थे। 1913 से 1938 ई० तक पच्चीस साल के लिए मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'तमिल लेक्सिकन' (बृहत् कोश) के संपादन कार्य में सहायक थे और सात जिल्दों में प्रकाशित इस कोश की विपुल सामग्री जुटाने तथा संशोधित करने में इनका योगदान विशेष महत्व का था। कोशकार्य संपन्न करने के पश्चात् सात वर्ष तक तिरुवनंतपुरम् स्थित केरल विश्वविद्यालय में तमिल के प्रोफ़ेसर के रूप में रहकर इन्होंने अविरल साहित्य-सेवा की थी। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ ये हैं—'वेळिर वरलारु' (तमिल संगमकालीन दानी प्रभुओं के बारे में प्राचीन साहित्य में उपलब्ध सामग्री का खोजपूर्ण प्रस्तुतीकरण), 'तोलकाप्पियम् पौरुळतिकार आरायच्चि' ('तोलकाप्पियम्' नामक प्राचीनतम तमिल व्याकरण-ग्रंथ के कविता-विषय-संबंधी अध्याय की समीक्षात्मक व्याख्या जो एक साहित्यिक प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुई), 'चेरन् चेंकुट्टुवन्' (तमिल साहित्य की खोज पर आधारित एक सम्राट का जीवन और समसामयिक परिस्थितियों का विवरण), 'आळवारकल् काल-निलै' ('आळवार' संतों का काल-निर्णय जो तमिल साहित्य और ऐतिहासिक सामग्री दोनों के संयुक्त उच्च अनुसंधान का रूप प्रस्तुत करता है), 'शासनत्तमिळ्क्कविचरितम्' (तमिल भाषा के पुराने शिला-लेखों की खोज द्वारा ज्ञात कवि-वृत्तांतों का उद्घाटन), 'आराय्च्चित्तोकुति' (लेखक की षष्टिपूर्ति पर प्रकाशित खोज-लेखों का संग्रह), 'कट्टुरै विरुंदु' (विशिष्ट निबंधों का संग्रह) इत्यादि। इनके द्वारा संपादित प्राचीन ग्रंथों में 'नरिविरुत्तम्' (जैन संप्रदाय का एक तमिल नीति-ग्रंथ), 'तिरुक्कुरल्' (प्रसिद्ध नीति-ग्रंथ), 'अरिच्चंतिरवेण्बा' (हरिश्चंद्रोपाख्यान का काव्य-रूप) इत्यादि हैं। खोजपूर्ण लेखन के लिए इनकी विशेष ख्याति है। तमिल साहित्य और भाषा के सभी क्षेत्र छू लेने वाले इनके निबंधों में सदैव मौलिक तथ्यों को ढूंढ़ निकालने की गहरी पैंठ, तर्कयुक्त प्रस्तुतीकरण, प्रतिद्वंद्वी के आग्रहों के उत्तर में केवल प्रामाणिक साक्ष्य और तथ्यों पर निष्ठा का प्रदर्शन तथा तेजस्वी शैली की प्रवाहमयी धारा विद्वज्जन-परितोषदायक है।

राघवैयंगार, रा० *(त० ले०)* [जन्म—1871 ई०; मृत्यु—1949 ई०]

ये मु० राघवैयंगार के फुफेरे भाई थे। अद्वितीय प्रभावशाली भाषणकर्ता, प्राचीन तमिल-साहित्य के संपादक और खोजकर्त्ता, परिष्कृत वाणीसंपन्न कवि तथा दर्शन-शास्त्र के मर्मज्ञ के रूप में इनका नाम विख्यात रहा है। 1902 ई० में चार साल तक ये 'मदुरै तमिल संगम्' के मुख-पत्र 'चेंतमिल्' के संपादक थे। अपने जीवन-काल में ये स्थायी रूप से रामनातपुरम् के 'सेतुपति' राजाओं के 'आस्थान-विद्वान' (राजसभा-विद्वान) रहे थे। *1934 ई०*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सात साल के लिए ये 'अण्णामलै' विश्वविद्यालय में तमिल अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष भी रहे थे। विभिन्न कार्य-कलापों के मध्य ये समय-समय पर तमिल प्रदेश में साहित्य, दर्शन आदि से संबंधित भाषण दिया करते थे जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा पुराने विद्या-प्रेमियों द्वारा आज भी की जाती है।

इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'पारिकातै' ('पारि' नामक तमिल के संघकालीन दानी प्रभु की गाथा), 'वेण्पा' (दे०) छंद में 'पुहलेंदि' (दे०) के बाद अन्यतम उपलब्धि है जो अण्णामलै विश्वविद्यालय के एक विशेष समारोह में विद्वानों के सामने प्रस्तुत होकर पुरस्कृत हुई थी। अन्य कृतियों में 'श्रीरामनामप्पाट्टु' (श्रीराम की स्तुति) तथा 'पुवियेलुपतु' (धरती का महिमा गान) उल्लेखनीय हैं। 'भगवद्गीता' तथा 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०) इन दोनों के सुंदर तमिल पद्यबद्ध रूपांतर इनके द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। 'चेंतमिल' पत्र में प्रकाशित शोध-लेखों के अलावा इनके 'वंजिमानकर्' (तमिल भूमि के चेरवंशीय राजाओं की प्रधान नगरी 'वंजि' की स्थिति का तर्कपूर्वक अभिनिर्धारण), 'नल्लिचैप्पुलमैमेल् लियलारकळ' (विदुषी तमिल महिलाएँ), 'तमिल् वरलारु' (साहित्य का इतिहास), 'अंटिकोलपेयप्पोरुळ' (एक कूटोक्तिपूर्ण पद्यात्मक संदेश के रहस्यार्थ की मौलिक व्याख्या), 'पेरुंपाणार्रुप्पटै आरायच्चि' (एक संगम रचना की समालोचना तथा संबद्ध ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण) इत्यादि अनेक ग्रंथों में शोध-क्षमता और बहुमुखी प्रतिभा दर्शनीय है। 'तोलकाप्पियम्' (दे०) का 'चेय्युळियल्' (छंद-अध्याय), 'तिरुनूर्रन्दादि' (जैन स्तुति-ग्रंथ), 'अकनानूरु' (दे०) (संगम पद्य-संग्रह) इत्यादि कई मूल्यवान तमिल रचनाएँ इनके द्वारा संपादित होकर सर्वप्रथम पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं। 'कुरुंतोकै किळक्कम्' नामक रचना में प्राचीन तमिल-साहित्य की अद्भुत अंतर्दृष्टि-संपन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत हैं।

राजकाहिनी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

'राजकाहिनी' ग्रंथ में शिशु-मन के लिए उपयोगी बनाकर अवनींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) ने राजस्थान के राजाओं के शौर्यवीर्य की कहानी की रचना की है। भाषा में ओजस्विता की अपेक्षा स्निग्धता अधिक प्रकट है। पद्मिनी-भीमसिंह की सरस वर्णना शिशुचित्त के निकट जिस प्रकार आकर्षणीय है, बड़ों के निकट भी उसका माधुर्य थोड़ा भी कम नहीं हुआ है। बच्चों के लिए रचित इस ग्रंथ में अवनींद्रनाथ ने सरस कहानीकार के स्वर का आश्रय लिया है। यह सहज ही लेखक-पाठक के अस्तित्व को 'एक' कर देता है और यही उसकी यथार्थ सार्थकता है।

राजकुमारी लतिका *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1948 ई०]

यह गुरुबख्शसिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) का प्रथम मौलिक नाटक है जिसकी रचना 1923 ई० में अमेरिका के एक नाट्यसंघ में प्रदर्शन के लिए की गई थी। इसके माध्यम से नाटककार ने समाजवादी सिद्धांतों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। और प्रेम व आदर्श के स्वर को मुखरित करते हुए 'प्रीत-सिद्धांतों' के अनुकूल उनका निरूपण किया गया है। राजकुमारी लतिका राजसी जीवन का परित्याग कर समाजसेवी मनधीर से प्रेम करने लगती है और अंत में महाराज बलराज की गोली से दोनों काल-कवलित हो जाते हैं। चार अंकों वाले इस नाटक में 12 दृश्यों की योजना हुई है। कथा में घटनाधिक्य तथा वर्णनात्मकता के प्रवाह नहीं है और पात्र आदर्शों के प्रतीक हैं जिनमें परिस्थितियों के अनुसार कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप काव्यमय प्रतीत होते हैं। यह नाटक अनुभूति और कला की दृष्टि से अधिक सफल नहीं है फिर भी आदर्श-प्रतिपादन की दृष्टि से इसका महत्व है। अभिनेयता की दृष्टि से भी यह सफल है। यह पंजाबी साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक दुःखांत नाटक है।

राजखोवा, बेणुधर *(अ० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1955 ई०]

इनकी शिक्षा एम० ए०, बी० एल० तक हुई। इन्होंने सब-डिप्टी कलेक्टर, एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर के पदों पर कार्य किया था। इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं—**काव्य :** 'पंच कविता' (1895), 'असमीया भाइ' (1901); 'सिपुरीर बातरि' (1919), 'देहार ग्रलय' (1929); **पौराणिक नाटक :** 'डेका गामरु' (1889), 'सेउति किरण' (1894), 'दुर्योधन उरुभंग' (1901), 'दक्षयज्ञ' (1808); **सामाजिक नाटक :** 'कुरि शतकार सभ्यता' (1908), 'लखिमी तिरोता' (1909), 'अशिक्षिता घैनी' (1912), 'यमपुरी' (1931); **हास्य नाटक :** 'दरबार' (1902), 'कलियुग' (1904),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निनि घैनी' (1928), 'चोरर सृष्टि' (1931), टोपनिर परिणाम' (1932)।

इन्हें पौराणिक नाटकों में सफलता नहीं मिली। सामाजिक नाटकों और प्रहसनों में इन्हें विशेष सफलता मिली है। इन्होंने स्त्री-शिक्षा के अभाव एवं बहुविवाह के दुष्परिणाम आदि विषयों को लेकर ही लिखा है।

असमीया प्रहसन-लेखकों में ये अमर हैं।

राजखोवा, शैलधर *(अ० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1969 ई०]

जन्मस्थान—डिब्रूगढ़।

इन्होंने काटन कालेज से बी० ए० परीक्षा 1914 ई० में उत्तीर्ण की थी। पहले ठेका व्यवसाय करते थे, फिर क्रमशः शिक्षक, सब-डिप्टी कलेक्टर, सब-डिप्टी मजिस्ट्रेट और एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर के पदों पर कार्य करते रहे थे। 1948 से 54 ई० तक ये गौहाटी विश्वविद्यालय के ट्रेज़रार रहे थे। इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं—**काव्य** : 'निजरा' (1935); **नाटक** : 'विद्यावती' (1918), 'स्वर्ग देओ प्रतापसिंह' (1953); **बहु अभिनीत किंतु अप्रकाशित नाटक** : रंजितसिंह' (1915), 'देवयानी' (1928)।

इनका एकमात्र कविता-संग्रह 'निजरा' है, इसकी कतिपय कविताओं के कारण ही इन्हें प्रसिद्धि मिल गयी थी। 'विद्यावती' नाटक किंवदंती के आधार पर लिखा गया है, जिसमें राजा विक्रमादित्य की पांडित्य-गर्विता कन्या विद्यावती से पराजित पंडित लोग षड्यंत्र कर उसे महामूर्ख कालिदास से पराजित कराते हैं। नाटक में ऐतिहासिक परिवेश का अभाव है, चरित्रों पर आधुनिक भावधारा का आरोप है। 'स्वर्ग देओ प्रतापसिंह' सत्रहवीं शती के आहोम-मुस्लिम संघर्ष पर आधारित है।

ये प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार थे।

राजगोपालन् कु० पा० *(त० ले०)* [जन्म—1901 ई०; मृत्यु—1944 ई०]

इनकी प्रसिद्धि लघु कथा-प्रणेता के रूप में है। कुछ समय तक सरकारी नौकरी करने के बाद ये स्वतंत्र लेखन और सामयिक पत्रकारिता में प्रवृत्त हुए। आर्थिक दृष्टि से इनकी स्थिति कभी अच्छी नहीं रही। मद्रास शहर में ये 'पिच्चमूर्ति' (दे०) के साथ रहते थे और दोनों 'इरट्टैयर' (युगल पुरुष) कहलाते थे।

मानवतावाद की भावार्द्र-भूमि पर इनकी कहानियाँ स्थित हैं। इनका संबंध विशेष रूप से टूटे स्वप्न, अपूर्णमनोरथ, असफल प्रेम-संबंध-जैसे विषयों से है। मनःस्थितियों का मार्मिक चित्रण इनकी लेखनी की विशेषता है: यथा अर्ध-रात्रि की नीरवता में अपने महल से निकलने के क्षण महात्मा बुद्ध के अंतर्द्वंद्व का शब्द चित्र। तात्त्विक विश्लेषण की प्रवृत्ति इनकी लघु-कथाओं में विद्यमान नहीं है और उनमें से अनेक को गद्य में रचित भावनापूर्ण गीति-काव्य कह सकते हैं। इनके तीन लघु कथा-संग्रह प्रसिद्ध हैं—'पुनर्जन्मम्', 'कनकांपरम्' (फूल-विशेष), 'कांचनमालै' (नारी-नाम)। आर० एल० स्टीवेंसन् के 'डा० जेकिल् अंड् मिस्टर हाइड' नामक उपन्यास और अन्य कई अँग्रेज़ी कृतियों के सफल तमिल अनुवाद भी इन्होंने प्रस्तुत किये हैं।

राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती *(त० ले०)* [जन्म—1878 ई०]

इनका जन्म सेलम ज़िले के तुरैप्पळ्ळी नामक स्थान में हुआ। राजा जी तमिल और अंग्रेज़ी के अच्छे विद्वान् थे। राजा जी की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'व्यासर विरुंदु', 'चक्रवर्ती तिरुमकन', 'कण्णन काट्टिय वलि', 'आत्मचिंतनै', 'राजा जी कदैहळ' आदि। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी अनेक कृतियों की रचना की है। बच्चों के लिए इन्होंने अनेक प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी हैं। वे 'कर्पनैक्काडु' में संगृहीत हैं। 'कर्पनैक्काडु' अँग्रेज़ी, तेलुगु, मलयाळम, कन्नड आदि भाषाओं में अनूदित हो चुकी है। 'व्यासर विरुंदु' और 'चक्रवर्ती तिरुमकन' का अनुवाद अँग्रेज़ी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो चुका है। इन्हें अपनी कृति 'चक्रवर्ती तिरुमकन' पर साहित्य अकादेमी का और 'श्रीरामकृष्ण उपनिषदम्' पर मद्रास सरकार का पुरस्कार मिला। राजा जी तमिल के प्रसिद्ध साहित्यकारों में गिने जाते हैं।

प्रायः अस्सी वर्ष की परिपक्वावस्था प्राप्त कर उनका स्वर्गवास हुआ।

राजतरंगिणी *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

'राजतरंगिणी' संस्कृत का ऐतिहासिक काव्य है। इसके कर्ता कल्हण (दे०) काश्मीर नरेश विजयसिंह (1100 के आसपास) के मंत्री चंपक के पुत्र थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राजतरंगिणी' में काश्मीर का डेढ़ हज़ार वर्ष का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विवरण प्रस्तुत हुआ है। इसमें 1151 ई० तक के काश्मीर के प्रत्येक राजा का कालक्रमानुसार वर्णन किया है। आठ तरंगों में विभक्त इस काव्य में प्रथम सात तरंग तो संक्षिप्त हैं। आठवीं तरंग में कवि ने साक्षात् देखी हुई घटनाओं का प्रामाणिक एवं विस्तृत वर्णन किया है। अपने समय से पूर्व घटित घटनाओं के लिए कल्हण ने राजकथाओं के ग्यारह संग्रहों और 'नीलमत पुराण' को स्रोत बताया है। इसके अतिरिक्त राजकीय अधिकारपत्रों, शिलालेखों, दानपत्रों तथा हस्तलिखित ग्रंथों एवं स्थानीय दंतकथाओं का उपयोग भी कल्हण ने किया है।

'राजतरंगिणी' संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक काव्य माना जाता है। इस काव्य का अंगी रस शांत है। इसमें वैराग्य भावना का स्वर स्थान-स्थान पर मुखरित हुआ है। कवि के राजनीतिक विचार कौटिल्य (दे०) के 'अर्थशास्त्र' (दे०) पर आधृत हैं। इसकी भाषा सरल, स्वाभाविक एवं सुंदर है। वर्णन में प्रवाह है। संवादों की सुंदर योजना से इस काव्य में नाटकीयता आ गई है। 'राजतरंगिणी' नीति तथा सूक्तियों से संपन्न काव्य है।

इस काव्य की गरिमा से मुग़ल सम्राट् अकबर इतना प्रभावित हुआ कि अपनी काश्मीर विजय के पश्चात् उसने अलबदाऊँनी से इसका फ़ारसी में अनुवाद करवाया। जहाँगीर के समय में काश्मीर के ही फ़ारसी विद्वान् हैदर मलिक ने इसका संक्षिप्त फ़ारसी-संस्करण निकाला।

राजनीति *(म० कृ०)*

'राजनीति' ग्रंथ के रचयिता श्री मल्हाररामराव चिटणीस हैं। आधुनिक दृष्टि से जिस अर्थ में राजनीति शब्द का प्रयोग प्रचलित है उस दृष्टि से यह राजनीतिशास्त्र का ग्रंथ नहीं है। इसमें राजाओं के लिए राज्य-शासन-भार के संचालन की नीति का विशद विवेचन किया गया है।

इसमें सात प्रकरण हैं। पहले प्रकरण में राजा के राज्याभिषेक की विधि बताई गई है, दूसरे में सिंहासनारूढ़ राजा का स्थान तथा दरबार की व्यवस्था कैसी हो, यह बताया गया है। तीसरे प्रकरण में राजा के गुण तथा आचार-व्यवहार का स्पष्टीकरण है। चौथे प्रकरण में यह बताया गया है कि राजा, पटरानी, राजपुत्र, अष्टप्रधान तथा दो लेखक इस प्रकार कुल तेरह लोगों से राजमंडल की रचना होगी तथा इसी प्रकरण में आमात्य एवं युवराज के गुणों का उल्लेख किया गया है। पाँचवें प्रकरण में राजा की दिनचर्या बताई गई है। छठे में द्रव्य-प्राप्ति के साधन तथा उसका रक्षण तथा सातवें में सैन्यबल, शूर के लक्षण एवं क्षात्र-धर्म का निरूपण किया गया है।

अंत में लेखक ने स्पष्ट किया है कि इस राजनीति का निरूपण धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति भीष्म ने किया है। जो राजा उक्त आधारों पर राज्य करेगा वह चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करेगा।

इस प्रकार इसमें आदर्श राजा के लक्षण तथा आदर्श राज्य-शासन-प्रबंध की नीति का विवेचन हुआ है।

राजन्, ओरवंकरा *(मल० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

ये वेण्मणि (दे०) शैली के पोषक कवियों में से एक हैं। इनका नाम नीलकंठन् नंपूतिरि है और 'राजन्' उपनाम है। 'कोटुङ्ङल्लूर' की कविसभा में इनका समुन्नत स्थान था। इनकी कृतियों में अधिकतर अपूर्ण हैं। उनमें 'बालोपदेशम्', 'कुचेलवृत्तम्', 'भैमीपरिणयम्' (नाटक) आदि सम्मिलित हैं। इनके कई मुक्तक आज भी लोगों को कंठस्थ हैं। हास्य रस के उन्मीलन में ये सभी समसामयिक कवियों में अग्रणी थे। मणिप्रवाळम् (दे०) शैली को आधुनिक रूप देने वालों में इनका नाम प्रमुख है।

राजम कृष्णन *(त० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

तमिलनाडु के तिरुच्चिरापल्लि में जन्म। कहानी एवं उपन्यास लेखिका के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त। साहित्यिक जीवन का आरंभ कहानी-लेखन से किया। विषय एवं शैली दोनों दृष्टियों से इनकी कहानियाँ पारंपरिक ढंग की हैं। अधिकांश कहानियाँ सामाजिक, पारिवारिक विषयों से संबद्ध हैं। प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं—'नित्तियमल्लिहै', 'अल्लि', 'अलैकडलिल', 'पवित्रा', 'ऊशीयुम उणर्वुम' आदि।

'पेण कुरल' नामक अपने प्रथम उपन्यास पर पुरस्कार प्राप्त करने के बाद इन्होंने उपन्यास-क्षेत्र में प्रवेश किया। आरंभिक उपन्यास सामाजिक समस्याओं— विशेषतः नारी जीवन की समस्याओं – से संबद्ध हैं। परवर्ती सामाजिक उपन्यासों में प्रदेश विशेष के जीवन का सांगोपांग वर्णन प्राप्त होता है। 'कुरिंजित्तेन' में नीलगिरि प्रदेश के आदिवासी, 'वळैक्करम' में गोआ-निवासी, 'वेरुक्कु' नीर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाराणसी और नीलगिरि के निवासी तथा 'मुल्लुम मलर्न्ददु' में मध्य प्रदेश के डाकुओं के जीवन का सजीव चित्र प्राप्त होता है। इनके द्वारा रचित डा० रंगाचारी नामक तमिलनाडु के प्रसिद्ध चिकित्सक की जीवनी का तमिल के जीवनी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। विविध स्रोतों से सामग्री का चयन कर इस जीवनी की रचना करने के बाद इनकी वृत्ति सूचना-प्रधान कहानी एवं उपन्यास-रचना की ओर हो गई। इन्होंने स्वतंत्रता के बाद विभिन्न क्षेत्रों में दीख पड़ने वाले परिवर्तनों को भी अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। इन्हें मलयाळम और अँग्रेज़ी का भी अच्छा ज्ञान है। इन्होंने मलयाळम के अनेक निबंधों और कहानियों को तमिल में अनूदित किया है। तमिल लेखिकाओं में इनका विशिष्ट स्थान है।

राजमन्नार, पी० वी० *(तं० ले०)* [रचना-काल—1901 ई०]

श्री राजमन्नार विद्वान समालोचक एवं विख्यात नाटककार हैं। इन्होंने कई कहानियाँ और लेख भी लिखे तथा 'कला' नामक चित्रकला-पत्रिका का संपादन भी किया। श्री राजमन्नार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी रह चुके हैं।

'एमि मगवाळ्ळु', 'मनोरमा' आदि इनकी रचनाएँ हैं। इतके प्राय: सभी एकांकी सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। एक जागरूक साहित्यकार की दृष्टि से इन्होंने इन समस्याओं का विश्लेषण किया है। 'एमि मगवाळ्ळु' (कैसे पुरुष हैं!) की नायिका एक पतिता स्त्री है। इसमें इन्होंने पुरुषों की स्वार्थपरता की ओर संकेत करते हुए यही बताने का प्रयत्न किया है कि स्त्रियों के त्याग एवं सदाशयता के प्रतिफल के रूप में उनको उपहास एवं निंदा ही प्राप्त होती है।

राजमल्लि *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

'राजमल्लि' एस० के० पोट्टेक्काट् (दे०) का प्रथम कहानी-संग्रह है। पोट्टेक्काट् मलयाळम में कहानी-साहित्य के अभ्युदय-काल के एक प्रमुख लेखक हैं और उनके इस प्रथम संग्रह ने ही उनको प्रतिष्ठित कर दिया था। इस युग के अन्य कहानीकारों की मुख्य प्रवृत्ति यथार्थवाद की ओर थी और पोट्टेक्काट् ने भी इस धारा को अपनाया था, परंतु स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्तियों से वे मुक्त नहीं हो सके हैं। पोट्टेक्काट् की कहानियाँ निजी अनुभूतियों के माधुर्य से संपन्न हैं। इस कृति की कहानियाँ प्राय: सुदीर्घ हैं और उनकी भाषा काव्यात्मक है। 'राजमल्लि' लेखक का एक प्रमुख कहानी-संग्रह है।

राजरत्नं *(क० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

श्री जी० पी० राजरत्नं जी का जन्म मैसूर में एक विख्यात घराने में हुआ। उनके बुजुर्ग गुंडलु पंडित लक्ष्मणाचार्य आयुर्वेद के यशस्वी विद्वान थे। राजरत्नं जी ने महाराजा कालेज मैसूर से कन्नड में एम० ए० किया। बी० एम० श्रीकंठय्या (दे०), ए० आर० कृष्णशास्त्री (दे०) आदि कन्नड के आचार्य पुरुषों के संसर्ग का सौभाग्य उन्हें मिला। शिशु-साहित्य, कविता, कहानी, नाटक, जीवनी, विडंबन, निबंध, आलोचना, आत्मकथा-साहित्य के समीक्षकों में वे सक्रिय रहे। अब तक उनकी करीब डेढ़ सौ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। बौद्ध-साहित्य के तो वे एकमात्र विद्वान हैं। उनकी बौद्ध-साहित्यिक कृतियों में मिलिंद जून, बुद्ध, कतेगळु, धम्मपद, भगवान् बुद्ध, धम्मपद, प्रवेशिका, 'धर्म दानि बुद्ध' आदि प्रमुख हैं। जैन साहित्य पर भी उन्होंने महत्वपूर्ण काम किया है। कविता में वे कन्नड के एकमात्र हालावादी कवि हैं। 'येंडकुडुक-रत्न' (पिपक्कड़ रत्न), 'रत्ननपदगळु' आदि में संगृहीत कविताओं ने कन्नड-साहित्य में एक नया तार छेड़ दिया। राजरत्नं की भाषा पियक्कड़ों की ही भाषा है जिसकी नस-नस में मस्ती होती है। 'पुरुषसरस्वती' आदि में वे एक सफल विडंबक के रूप में आते हैं। 'गंडुगोडली', 'संभवामि युगे-युगे', आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'हत्तुवर्ष' उनकी आत्मकथा है। शिशु-साहित्य में वे अद्वितीय हैं। कैलासम् (दे०), संस (दे०), गोविंद पै (दे०) आदि पर उनके लिखे आलोचनात्मक ग्रंथ हमारे गौरव ग्रंथ हैं।

राजरत्नं की भाषा विषयोपयोगी है, कभी सरल कभी ओजोमय। इस बहुमुखी प्रतिभासंपन्न लेखक की साधना से कोई भी भाषा गौरवान्वित हो सकती है। राजरत्नं प्रथम श्रेणी के वक्ता भी हैं। बेंगलूर के सेंट्रल कालेज में कन्नड प्राध्यापक के पद से अब वे अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

राजलक्ष्मी *(बँ० पा०)*

राजलक्ष्मी (श्रीकांत—दे०) की जीवन-चर्या के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यम से शरत्चंद्र (दे०) के प्रेम-संपृक्त जीवन दर्शन का परिचय मूर्त हुआ है। राजलक्ष्मी ने बालिकावस्था में बैंची की माला पहनाकर श्रीकांत का वरण किया था। उसके बाद अस्सी वर्ष के वृद्ध ब्राह्मण के साथ उसकी दोनों बहनों का विवाह होता है। विवाह की रात्रि में ही वह ब्राह्मण कन्यादाय से पिता का उद्धार कर चला जाता है। परवर्ती युग में इस विवाह को केंद्र बनाकर राजलक्ष्मी का नवपरिचय उद्घाटित हुआ है। वह तब 'बंकु की माँ' है। बाई जी बनकर जब राजलक्ष्मी जीविका-निर्वाह कर रही थी तब आकस्मिक रूप से श्रीकांत के साथ उसका पुनर्मिलन होता है। श्रीकांत एवं राजलक्ष्मी का प्रेम सामाजिक स्वीकृति से परे है। उनका परिपूर्ण मिलन भी लेखक ने चित्रित नहीं किया है परंतु दोनों आत्माओं की अभिन्नता को लेखक ने सयत्न चित्रित किया है। श्रीकांत के साथ राजलक्ष्मी के मिलन में बड़ी बाधा यह है कि राजलक्ष्मी 'बंकु की माँ' है—अर्थात् सामाजिक अनुशासन। शरत्चंद्र ने सामाजिक अनुशासन के साथ हृदयवृत्ति के इस द्वंद्व का स्वरूप निर्णय किया है। अश्रु के सरोवर में प्रेम-पद्म का यह महनीय विकास, अनन्य साधारण शिल्प-कर्म में परिणति प्राप्त करता है। महत् प्रेम का अतिविचित्र संवाद राजलक्ष्मी के चरित्र के आश्रय से आश्चर्य-सुंदर शिल्परूप में प्रकाशित हुआ है। राजलक्ष्मी का प्रेम शांत संध्या की सुस्निग्ध दीपशिखा है। उसने धूपबत्ती की तरह अपनी विलुप्ति के माध्यम से जीवन की सकल सुरभि को परिव्याप्त किया है। यहीं राजलक्ष्मी के चरित्र का समस्त माधुर्य, समस्त महनीयता पूर्ण हुई है।

राजलक्ष्मी *(मल० ले०)* [जन्म—1930 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

मलयाळम की इस प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका के कथापात्रों में कई लोगों को अपनी या अपने संबंधियों की छाया दिखाई दी थी। लेखिका ने आत्महत्या से इनकी शिकायतों का जवाब दिया। राजलक्ष्मी का प्रथम उपन्यास 'ओरु वषियुम् कुरे निषलुकळुम्' 1958 ई० में प्रकाशित हुआ। दूसरे उपन्यास का धारावाहिक प्रकाशन बीच में बंद करके लेखिका ने स्वयं उसकी पांडुलिपि नष्ट कर दी थी। और तीसरे उपन्यास के धारावाहिक प्रकाशन के बीच में ही उन्होंने आत्महत्या कर ली। उनकी कई कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं।

राजलक्ष्मी के उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है लक्ष्यहीन-निरुद्देश्य और 'अहम्' की भावना से पीड़ित पात्रों—विशेषतः स्त्री-पात्रों—का चरित्र-चित्रण। अपने चरित्र-निरूपण की सफलता ही उनके लिए घातक सिद्ध हुई।

राजलक्ष्मी ने अपने अनतिदीर्घ जीवन में ही अपने योगदान से मलयाळम के कथा-साहित्य को अभूतपूर्व संपन्नता प्रदान की है।

राजवाडे, विश्वनाथ काशीनाथ *(म० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

इतिहासाचार्य तथा पुरातत्त्ववेत्ता के रूप में विशेष प्रसिद्ध राजवाडे जी ने मराठी को जो अमूल्य एवं अगाध विचारधन दिया है उसका मूल्यांकन होना कठिन है। साहित्य के क्षेत्र में इनका योगदान कम है। ये मुख्य रूप से इतिहासाचार्य, समाजशास्त्रज्ञ तथा भाषाशास्त्रज्ञ के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

इनका जन्म कुलाबा ज़िले के वरसई गाँव में हुआ था। इनका मूल उपनाम जोशी था। किंवदंती है कि शिवाजी के शासन-काल में इनके पूर्वज शासन में उच्च पद पर आसीन थे, तभी से जोशी उपनाम के बदले राजवाडे लिखने लगे। महाविद्यालय में पढ़ते समय इतिहासाध्ययन में इनकी विशेष रुचि थी। हिंदुस्तान व विशेषकर महाराष्ट्र के इतिहास पर यूरोपियन लेखकों की पुस्तकें एकांगी दृष्टिकोण से लिखी गई थीं। उन पुस्तकों की गलतियों का निर्देशन इन्होंने किया है। भारत का प्रामाणिक इतिहास लिखने की प्रेरणा से ही इन्होंने इतिहास-लेखन का कार्य किया था। 'मराठयांच्या इतिहासचीं साधनें' नामक ग्रंथ के इन्होंने 23 खंड निकाले थे। इनमें इन्होंने भारत-भ्रमण कर अनेक उपलब्ध ऐतिहासिक पत्रों (दे० ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार) का उल्लेख कर उन्हें विश्वसनीय पृष्ठाधार प्रदान किया है। इन साधनों के प्रारंभ में इन्होंने विचारोत्तेजक गवेषणात्मक प्रस्तावनाएँ (दे० राजवाडे लेख-संग्रह) भी लिखी हैं।

राजवाडे मराठी-साहित्य के प्रौढ़ निबंधकार हैं। इनके निबंध स्थूलतः दो प्रकार के हैं—(1) ऐतिहासिक अन्वेषणात्मक, (2) भाषाशास्त्र, समाजशास्त्र तथा अन्य विषयों-संबंधी। 'श्री समर्थ रामदास' निबंध में इन्होंने 'दासबोध' (दे०) को इतिहास तत्त्व-निरूपण का प्रथम ग्रंथ कहा है। 'कादंबरी' निबंध में मराठी-उपन्यासों का ऐतिहासिक विकास बताते हुए उनका तात्त्विक विवेचन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी उपन्यासों से उनकी तुलना करते हुए अंत में उनका मूल्यांकन किया है। महानुभाव-संप्रदाय का मराठी-साहित्य मराठी का सर्वाधिक प्राचीन साहित्य माना जाता है। उस की सांकेतिक लिपि का अध्ययन तथा पूर्व की 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) कृति को खोजकर 'ज्ञानेश्वरी' का व्याकरण भी इन्होंने प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त 'मराठी धातु-कोश', 'नामादिशब्द-व्युत्पत्ति कोश' की रचना भी इन्होंने की है।

इनमें मराठी भाषा का अदम्य अभिमान था। इनकी भाषा विषयानुकूल तथा ओजस्वी है। विपक्षी पर प्रहार करते समय ये खंडनात्मक पद्धति तथा उपहास का आश्रय लेते हैं। ऐसे स्थलों पर भाषा अत्यंत भावावेशपूर्ण हो गई है।

राजवाडे लेख-संग्रह *(म० कृ०)*

इतिहासाचार्य श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (दे०) ने महाराष्ट्र का शुद्ध इतिहास प्रस्तुत करने के लिए अनेक ऐतिहासिक पत्रों की खोजबीन के आधार पर 'मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें' पुस्तक के 21 खंड लिखे थे और इन खंडों की विवेचक, विचारप्रवण प्रस्तावनाएँ भी लिखी थीं। ये प्रस्तावनाएँ 'राजवाडे लेख-संग्रह' (भाग-1) में संगृहीत हैं।

पहले खंड की 127 पृष्ठों की प्रस्तावना अद्वितीय है। उपलब्ध ऐतिहासिक पत्रों (दे० ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार) के आधार पर पानीपत की लड़ाई के कारणों एवं परिणामों का विवेचन किया गया है। तीसरे खंड की प्रस्तावना में उच्च पद पर आसीन ब्रह्मेंद्र स्वामी की पोल खोल-उन्हें सामान्य मानव घोषित किया गया है।

छठे तथा आठवें खंड की प्रस्तावनाएँ इनकी प्रतिभाशाली लेखन-शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, ये एक प्रकार से स्वतंत्र ऐतिहासिक प्रबंध ही हैं। जयराम पंड्ये-कृत 'राधामाधवविलास चंपू' तथा केशवाचार्य-कृत 'महिकावतीच्या बखरी' कृतियों का स्वयं संशोधन कर प्रारंभ में प्रस्तावनाएँ जोड़ी हैं। 'राधामाधवविलास चंपू' की प्रस्तावना में इन्होंने शहाजी राजा का गुणगान किया है। इनके अनुसार शिवाजी ने स्वराज्य-स्थापन का महत् कार्य किया तो उसकी भूमिका के निर्माता शहाजी थे। 'बखर' की प्रस्तावना में आत्मोद्धार के लिए भारतवासियों को प्रबुद्ध किया गया है।

राजवाडे जी के अनुसार अँग्रेज लेखकों द्वारा लिखा गया भारत का इतिहास पक्षपातपूर्ण है क्योंकि वह विजेता की लेखनी से विजित का लिखा गया इतिहास है। अतः निष्पक्ष शास्त्रशुद्ध इतिहास लिखने की प्रेरणा से ही इन्होंने अनेक प्रस्तावनाएँ लिखी हैं तथा पत्रों का शोध कर 'मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें' ग्रंथ लिखा था।

ये प्रस्तावनाएँ राजवाडे जी के देशप्रेम एवं देशोद्धार की प्रबल भावना का प्रतिफल हैं।

राजवेलु, कु० *(त० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

इन्होंने युवावस्था में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में भाग लिया था। तमिलनाडु शिक्षा-विभाग के महाविद्यालयों में तमिल प्राध्यापक का काम करने के बाद ये संप्रति सरकारी अनुवाद विभाग के निदेशक हैं।

इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में ये हैं—'कातल् तूङ्कुकिरतु' (प्रेम सोता है)—यह एक उपन्यास-प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुआ था; 'अळकु आट्टुकिरतु' (सुंदरता नाचती है); तथा 'चालै ओरम्' (सड़क का किनारा)। साहित्यानुशीलन-क्षेत्र में इन्होंने 'कोटैवळम्' (दान-श्रेष्ठता), 'वळ्ळल पारि' (एक संगम कालीन दानी प्रभु का वृत्तांत) आदि पुस्तकें लिखी हैं। 1971 में प्रकाशित इनकी 'वान्कुयिल्' नामक पुस्तक कविवर सुब्रह्मण्यम भारती (दे०) के 'कुयिल' नामक लघु काव्य की आलोचना-व्याख्या है। इस पुस्तक में इन्होंने सुलझे हुए चिंतक तथा अँग्रेज़ी एवं तमिल के अद्वितीय विद्वान स्व० रा० श्री देशिकन् का शिष्यत्व और प्रभाव स्वीकारा है। रा० श्री देशिकन् इन पंक्तियों के लेखक के भी पितु-तुल्य गुरुवर थे और इन्हीं की समीक्षा-पद्धति की सर्वांगीणता प्रस्तुत पुस्तक में भी दर्शनीय है।

राजशेखर *(सं० ले०)* [समय—लगभग 880-920 ई०]

संस्कृत के ख्यातनामा कवि एवं आलोचक राजशेखर महोदय (आधुनिक कन्नौज) के राजा निर्भय (महेंद्रपाल) के उपाध्याय थे। इनके पिता का नाम दुर्दुक द्रुहिक तथा माता का नाम शीलवती था। राजशेखर के स्वयं के विवरणों के अनुसार वे महाराष्ट्र चूडामणि विद्वान् अकालजलद के वंशज चतुर्थ पीढ़ी में थे। इन्होंने अपने को यायावरीय कहा है जिसका अर्थ है निरंतर विचरण करने वाले गोत्र में उत्पन्न। संभवतः इनके पूर्वज जीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहे हैं। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका मूल प्रदेश महाराष्ट्र था। इनका समय इन्हीं के उल्लेखों के अनुसार दशम शती का पूर्वार्द्ध ठहरता है।

राजशेखर की कृतियों में 'काव्यमीमांसा' (दे०) साहित्यशास्त्र-विषयक कृति है। इसके अठारह अधिकरणों में काव्यपुरुषोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक तथा काव्यपाक प्रभृति विषयों का विवेचन हुआ है। 'काव्यमीमांसा' साहित्यशास्त्र की कृतियों में अनूठा ग्रंथ है जिसमें काव्य के प्रसिद्ध तत्त्व गुण, अलंकार एवं रस का विवेचन नहीं है। इनकी काव्यात्मक कृतियों में —'बालरामायण', 'बालभारत' दो नाटक तथा 'विद्धशालभंजिका' एवं 'कर्पूरमंजरी' (दे०) नामक दो नाटिकाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'हरविलास' नामक महाकाव्य का उल्लेख हेमचंद्र (दे०) के 'काव्यानुशासन' (दे०) पर इनकी ही टीका 'विवेक' में उपलब्ध होता है, पर कृति अनुपलब्ध है।

राजशेखर की अपनी एक विशिष्ट काव्य-शैली है। 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) के कथानक को लेकर भी उनमें नवीनता का पुट देकर उसे चमत्कारपूर्ण बना देना इनके लिए सहज हो गया है। 'कर्पूरमंजरी' तो इनकी अनूठी कृति है। इसमें सर्वत्र मार्मिक अभिव्यक्तियों एवं चुभते हुए कटाक्षों की भरमार है। भाषा सभी कृतियों की सरल एवं स्वाभाविक है।

राजशेखर-चरित्र *(ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०]

यह तेलुगु का प्रथम उपन्यास माना जाता है। तेलुगु-साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तक कंदुकूरि वीरेशलिंगमु पंतुलु (दे०) इसके रचयिता हैं। इन्होंने इस उपन्यास को 1878 ई० की अपनी ही 'विवेकवर्द्धनी' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया था। 1880 ई० में इसका स्वतंत्र रूप से प्रकाशन हुआ।

उपन्यास की कथा इस प्रकार है—नायक राजशेखरुडु दूसरों की सहायता करते-करते इतना निर्धन हो जाता है कि उसे विवश हो अपना स्थान छोड़ दूसरे शहर में जाना पड़ता है। जितने लोग उसके संपर्क में आते हैं वे सब उसके सद्व्यवहार का अनुचित लाभ उठाते हैं। फलतः राजशेखरुडु तथा उसके परिवार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अंत में नायक के सच्चरित्र की विजय और दुष्टों की पराजय होती है।

यह रचना ओलिवर गोल्डस्मिथ-कृत 'विकार ऑफ वेकफ़ील्ड' नामक अंग्रेज़ी उपन्यास के आधार पर लिखी गई है। लेखक का कहना है कि तेलुगु में जनता के रहन-सहन आदि को अभिव्यक्त करने वाले गद्य-प्रबंधों के अभाव से प्रेरित होकर मैंने इसकी रचना की है। अपने देश की जनता के अंधविश्वासों और जर्जर रूढ़ियों को नष्ट करने की प्रेरणा देना इस उपन्यास का लक्ष्य है। शकुन, स्वर्णयोग आदि अंधविश्वासों, बालविवाह जैसी कुप्रथाओं तथा वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक कुरीतियों के दुष्परिणामों का इसमें सजीव निरूपण है। इसके लेखक सुधारक भी हैं और आधुनिक तेलुगु-साहित्य के उन्नायक भी। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ समाज-सुधार के उद्देश्य से प्रेरित हैं।

तेलुगु में उपन्यास-साहित्य की सर्वप्रथम रचना होने का गौरव 'राजशेखर-चरित्र' को प्राप्त है। यह तत्कालीन समाज का स्पष्ट तथा व्यापक चित्र प्रस्तुत करने वाला एक प्रशस्त उपन्यास है। इसका कई देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है।

राजशेखरविलास *(क० कृ०)*

मध्ययुग के विख्यात कन्नड कवि षडक्षरदेव (दे०) का 'राजशेखरविलास' कन्नड-साहित्य का एक उल्लेखनीय ग्रंथ है। कवि ने चम्पू शैली में उसकी रचना की है जिसमें चौदह आश्वास हैं। वीरशैव धर्म के अनुयायी होने के कारण उन्होंने हरिहर (दे०) के मार्ग का अनुसरण किया है। अपने काव्य के प्रारंभ में उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से कही है। काव्य की वस्तु के रूप में उन्होंने पंचाक्षरी मंत्र की महिमा प्रकट करने वाली एक शिवभक्त की कथा चुनी है। साधारण कथा को असीम मनोहारी बनाने की शक्ति उनमें है, अतएव पाठकों के मन को वे आकृष्ट कर सकते हैं। प्रारंभ में कथा मंदगति से चलती है, पर तेरहवें आश्वास से उसमें विशेष भव्यता का दर्शन होता है। तिरुकोळविनाचि का कथा-प्रसंग इसी संदर्भ में वर्णित है। यह स्थान करुण रस का आगार बन गया है। पुत्रशोक-कातरा तिरुकोळविनाचि का विलाप सहृदयों के हृदय को झकझोर देने वाला है। कल्पना और भावना के सुंदर मेल से उत्पन्न ऐसा रम्य चित्र अन्यत्र सुलभ नहीं है। मातृ-हृदय का स्वाभाविक वर्णन कर उन्होंने अपनी लेखनी का वैभव प्रदर्शित किया है।

'राजशेखरविलास' में श्रृंगार और भक्ति दोनों का पोषण हुआ है। श्रृंगार अंगी रस भले ही प्रतीत हो, परंतु काव्य की प्राणनाड़ी भक्ति ही है। अन्य रसों में करुण रस को ही विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। काव्य में प्रयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंदों में रमणीयता है और गद्य भी माधुर्यपूर्ण है। वस्तु, पात्र, वर्णन-नैपुण्य, रस-पोषण आदि सभी दृष्टियों से यह काव्य एक उत्तम काव्य प्रतीत होता है। कवि की प्रारंभिक कृति होने पर भी इसमें उनकी प्रतिभा प्रकाश में आयी है।

राजशेखरविलासमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक कूचिमंचि तिम्मकवि (दे०) हैं जिनकी गणना अठारहवीं शती ई० के प्रसिद्ध तेलुगु कवियों में की जाती है। इन्होंने अपनी रचनाएँ किसी राजा अथवा संपन्न व्यक्ति को समर्पित न करके भगवान को ही अर्पित की हैं। इनकी लिखी अनेक रचनाओं में 'राजशेखरविलासमु' प्रसिद्ध काव्य है। शिवभक्त लेखक का यह काव्य शिवभक्ति की भावना से ओतप्रोत है। तीन आश्वासों के इस काव्य में भल्लाण राजा का चरित्र वर्णित है। एक बार शिवजी 'जंगम' (दक्षिण भारत के वीरशैव-धर्म के अनुयायियों में एक प्रकार के शिवभक्तों को 'जंगम' कहा जाता है जो एक स्थान पर स्थिर न रह बराबर घूमते रहते हैं) के रूप में राजा के पास जाते हैं तो भल्लाण राजा उन्हें अपनी पट्ट महिषी समर्पित कर देता है। शिवजी तुरंत ही रानी के समक्ष शिशु बन जाते हैं और उन पर प्रसन्न होते हैं। यह अत्यंत सरस तथा मार्मिक काव्य-कृति है।

राजशेखर शतावधानी, दर्भाक *(ते० ले०)* [जन्म—1888; मृत्यु—1957 ई०]

इनका जन्म कड़पा ज़िले के जम्मुलमडुगु में हुआ था। वेंकटरामय्य और सुब्बम्म के ये पुत्र थे। इनका असली नाम कालहस्तय्य है। संस्कृत, आंध्र भाषा के साहित्य-ग्रंथ तथा नाटक-अलंकार शास्त्रों का इन्होंने ख़ूब अध्ययन किया। 1907 ई० में इन्होंने मैट्रिक पास की। मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में एम० ए० में पढ़ते हुए इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी थी। 1908 ई० में प्रोद्दुटूर के ज़िला मुंसिफ़ कोर्ट में ये गुमाश्ता नियुक्त हुए। 1921 ई० में इन्होंने नौकरी को त्याग दिया। उसके बाद ये वहीं म्युनिसिपल काउंसिलर, वाइस चेयरमैन, तालुका बोर्ड के उपाध्यक्ष, मद्रास सेनेट के सदस्य रहे। 1920-28 ई० के मध्य गडियारम् वेंकटशेष-शास्त्री के साथ इन्होंने कई बार शतावधान किया और इन अवधानों के आधार पर इन्होंने 'अवधान सार' नामक पुस्तक प्रकाशित की।

'वीर प्रबंध-परमेश्वरुडु' आदि विरुद नामों से समलंकृत इस महाकवि ने 'राणाप्रतापसिंहचरित्र' (दे०); अमरसिंह चरित्र', 'वीरमतीचरित्र', 'चंडनृपालचरित्र', 'पुष्पावती' आदि ऐतिहासिक काव्यों, 'सीताकल्याणमु', 'सीतापहरणमु', 'वृद्धिमूल संवादमु', 'पद्मावतीविजयमु' आदि पौराणिक पद्यकाव्यों, 'विलय-माधुर्यमु', 'स्वयंवरमु', 'अनघुडु, 'गोदानमु', 'शरन्नवरात्रमु' आदि नाटकों की तथा 'कामेश्वरीस्तोत्रमाला' (संस्कृत), 'द हिरोइन्स ऑफ़ हिंदुस्तान' (अँग्रेज़ी) की रचना की। कुछ रचनाएँ अप्रकाशित रह गई हैं। इनमें इनकी प्रौढ़-प्रांजल शैली का समुज्ज्वल उदाहरण 'राणाप्रतापसिंहचरित्र' है। इस प्रथम ऐतिहासिक चरित्र-प्रधान काव्य के कारण शतावधानी जी आंध्र साहित्याकाश में अमर बने हुए हैं।

राजांकणम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०]

'राजांकणण्' प्रसिद्ध समालोचक और साहित्य अकादेमी पुरस्कार-विजेता कुट्टिकृष्ण मारार (दे०) क बारह प्रौढ़ साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों में 'मेघदूत' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'लाइट ऑफ़ एशिया' आदि ग्रंथों का मूल्यांकन है। दो लेखों का विषय है 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) और 'ईनक आर्डन' तथा 'नलिनी और इवांजलिन' का तुलनात्मक अध्ययन। तीन अन्य लेखों के विषय हैं 'वाल्मीकि (दे०) के राम', 'हमारा सांस्कृतिक अपकर्ष' और 'साहित्य-सर्जना के लिए प्रसिद्ध कथानकों का प्रयोग'। कुछ लेखों में मलयाळम के प्रशस्त कृतियों का मूल्यांकन है।

मारार ने पाश्चात्य और भारतीय समालोचनाओं के समन्वय से एक नई समालोचना-शैली का प्रवर्तन किया था और 'राजांकणम्' इस दिशा में उनकी प्रमुख रचना है। इसमें उन्होंने नूतन मतों को विचारोत्तेजक और प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया है। उनके मत में वाल्मीकि ने राम के चरित्र में केवल मानवीय गुणों और अवगुणों का आरोप ही किया है। इस तथ्य को समझने के लिए तुलसीदास (दे०) आदि भक्त कवियों के प्रभाव-क्षेत्र से हटकर रामकाव्य का अध्ययन करना आवश्यक है। कालिदास (दे०), भवभूति (दे०), कुमारन् आशान् (दे०) जैसे कुछ कवियों ने ही वाल्मीकि का मंतव्य ठीक-ठीक समझा है। इस प्रकार के मौलिक चिंतनों को प्रकाश में लाने वाले इस ग्रंथ का मलयाळम के समालोचना साहित्य में विशेष महत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसिंह *(पं० कृ०)*

यह नानकसिंह (दे०) के 'आस्तक-नास्तक' उपन्यास का प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण पात्र है जो कि इश्वर, धर्म, आस्तिकता, नास्तिकता-संबंधी विचारों के युगीन परिवेश के अनुरूप प्रतिपादन का समर्थक है। इसके माध्यम से परंपरागत तथा अंधविश्वासी मान्यताओं के कारण समाज में व्याप्त ढोंग और पाखंड को निरर्थक सिद्ध करते हुए निःस्वार्थ-निस्पृह जन-सेवा और दीन-हीनों की सहायता को ही महत्व प्रदान किया गया है। नानकसिंह के आध्यात्मिक विचारों को प्रस्तुत करने वाला यह सबल पात्र है।

राजसिंह *(बँ० कृ०)*

राजसिंह बंकिम (दे० चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र) का एकमात्र प्रकृत ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास का समय है औरंगज़ेब का युग और संघर्ष का केंद्रबिंदु है चंचल कुमारी जिसको पाने के लिए औरंगज़ेब हिंदुओं के प्रति द्वेष-भावना और अत्याचार-वृत्ति से प्रेरित है। उधर हिंदुओं की स्वाधीनता और जातीय गौरव की रक्षा के राजसिंह तत्पर है। चंचल कुमारी का राजसिंह के प्रति आकर्षण एवं समर्पण वैयक्तिक से कहीं अधिक जातीय सम्मान और वीर-पूजा से अनुप्राणित है। ज़ेबउन्निसा और मुबारक की प्रेम-कथा में ताज़गी और प्राणतत्त्व हैं। इसके गठन-कौशल और कथा-निर्वाह में बंकिम को अद्वितीय सफलता मिली है।

पात्रों के ऐतिहासिक स्वरूप के साथ निजी मानवीय स्वरूप का उद्घाटन करने में बंकिम सफल रहे हैं। उपन्यास का उद्देश्य हिंदुओं की वीरता और बाहुबल का परिचय देना है। इसमें नए प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास का सूत्रपात्र किया गया है, इसलिए यह स्मरणीय रहेगा।

राजस्थानी *(भाषा० पारि०)*

सामान्यतः राजस्थान की बोली को राजस्थानी कहते हैं, किंतु वस्तुतः 'राजस्थानी' कोई एक निश्चित बोली न होकर कई बोलियों का एक सामूहिक नाम है। हिंदी की पाँच उपभाषाओं में एक 'राजस्थानी' भी है, (अन्य हैं पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, पहाड़ी, बिहारी) जिसमें पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी, पूर्वी राजस्थानी या जयपुरी, उत्तरी राजस्थानी या मेवाती तथा दक्षिणी राजस्थानी या मालवी आती हैं। इनमें लोक-साहित्य तो सभी में है किंतु साहित्य मुख्यतः केवल मारवाड़ी में है। 'डिंगल' को भी राजस्थानी के अंतर्गत ही रखते हैं। राजस्थानी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है।

राजा, के० के० *(मल० ले०)* [जन्म—1893 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

मलयाळम के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि। 'बाष्पांजली' उनका विलाप काव्य है जो अपने एक मित्र के देहांत के दुःख में लिखा गया है। उनकी कविताएँ 'तुलसीदासन्', 'वेळ्ळित्तोणी' आदि संग्रहों में संकलित हैं।

के० के० राजा की रचनाओं में शोक एवं विवाद की हल्की छाया आद्योपांत दर्शनीय है, परंतु वे उत्कट दुःख के उद्वेलन से अभिलक्षित नहीं हैं। उनकी कविताएँ दार्शनिक आत्मनियंत्रण से निबद्ध हैं। कवित्रय (दे०) के बाद मलयाळम-कविता को आगे बढ़ाने वाले कवियों में के० के० राजा का स्थान प्रमुख है।

राजा केशवदासन् *(म० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह ई० वी० कृष्ण (दे०) पिळ्ळा का ऐतिहासिक नाटक है। इसमें त्रावनकोर के देशभक्त मंत्री केशवदासन् के अंतिम दिनों की कथा प्रस्तुत की गई है जिसमें षड्यंत्रकारियों की सलाह पर उनके बंदी बनाए जाने और कारावास में उनकी मृत्यु की घटनाएँ वर्णित हैं। अंत में षड्यंत्रकारियों के दमन और दूसरे देशभक्त मंत्री वेलुत्तपि दळवा के उदय के साथ नाटक समाप्त होता है।

यह नाटक सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) के ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा के घटना-चक्रों को और आगे बढ़ाता है। इसके आविर्भाव-काल में नाटक को अभूतपूर्व स्वागत मिला था। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अवतरित करने में नाटककार को सफलता मिली है। मलयाळम के नाटक-साहित्य के विकास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

राजा प्रतापादित्य-चरित्र *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष — 1801 ई०]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के सहकारी अध्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं विलियम केरी के संस्कृत-भाषा शिक्षक रामराम बसु की पहली रचना 'राजा प्रतापादित्य-चरित्र' गद्य में लिखित पहली इतिहासाश्रित कहानी है। मूल रूप से ऐतिहासिक किंवदंती पर आश्रित इस कहानी के माध्यम से तीक्ष्ण बुद्धिसंपन्न लेखक ने पराधीन जाति के स्वदेश-प्रेम को परोक्ष रूप से उद्बुद्ध करने का प्रयत्न किया है। रामराम बसु संस्कृत की अपेक्षा फ़ारसी में अधिक पारदर्शी थे, उसका प्रमाण इस ग्रंथ की गद्य-रचना है। एक ही क्रिया-पद पर परस्पर विरोधी कर्ताओं की स्थापना की है। फ़ारसी शब्दों के मिश्रण से भाषा की एक अद्भूत अवस्था पैदा हुई है। उन्होंने किसी निर्दिष्ट रीति या पद्धति का अनुसरण नहीं किया है। फिर भी उस युग के गद्य का एक विचित्र निदर्शन एवं लेखक की मानसिकता के परिचयवाही इस ग्रंथ ने रामराम बसु को स्मरणीय बना दिया है।

राजा रसालू *(पं० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती का पूर्वार्द्ध]

क़ादरयार (दे०) के इस प्रबंधकाव्य में लोक कथा-नायक पूरन भगत दे०) के भाई राजा रसालू और रानी कोकिलां के कपट-प्रेम तथा उसके प्रेमी राजा होदी के साथ युद्ध की कथा का वर्णन है, इसीलिए इसे 'रानी कोकिलां दी वार' भी कहते हैं। यह कृति सामंतवादी समाज के पुरुषों की वासनांधता और नारियों की कपट प्रेम-लीला का उद्घाटन करती है। इसके साथ-साथ कवि ने तोता-मैना आदि पक्षियों के माध्यम से नैतिक उपदेशों की भी योजना की है। इस रचना में साहित्यिक गुणों की अपेक्षा घटनाओं के वर्णन को प्रमुखता मिली है। भाव, भाषा तथा छंदगत संगीत भी सामान्य कोटि के हैं। संपूर्ण रचना का प्रामाणिक पाठ उपलब्ध नहीं परंतु जन-भावना को सबल अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले अनेक लोकगायकों में प्रसिद्ध रहे हैं। 'राजारसाल' में चित्रित प्रेम का स्वरूप क़िस्सा-काव्य में अभिव्यक्त आदर्श-प्रधान निष्ठापूर्ण प्रेम से भिन्न है, प्रतिपाद्य की इस नवीनता के कारण यह रचना विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। बाबा बुधसिंह (दे०)-कृत 'बंबीहा बोले' (दे०) में उसका पाठ संकलित है।

राजाराव, कँवार *(क० ले०)*

नाटक-रचना के द्वारा समाज के नाना रूपों तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रण करने वाले नाटककारों में इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपने नाटकों में विशेष समस्याओं पर ही नहीं, साधारण समस्याओं पर भी विचार किया है। 'प्रेमपरीक्षे' नाटक इसका परिचायक है। इसमें इन्होंने प्रेम के नाम पर उत्पन्न समस्याओं और अस्थिर मानव-स्वभाव का निरूपण किया है। इनके नाटकों में संवाद अत्यंत रहस्य-पूर्ण होते हैं। 'गंडन जुलमाने', 'गळिसुव गृहिणी' और 'वधूपरीक्षे' इसके उदाहरण हैं। विदेशी नाटककारों से भी इन्होंने प्रेरणा ली है। 'संसार सत्याग्रह अथवा हेंगसर वडायि' इनका अत्यंत सुंदर सामाजिक नाटक है।

राजावळीकथे *(क० कृ०)* [रचना-काल—1838 ई०]

उन्नीसवीं शती के ग्रंथकारों में 'राजावळीकथे' (राजावली कथा) के लेखक देवचंद्र का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। उनकी रचना की विशेषता यह है कि उन्होंने कन्नड-साहित्य में प्रसिद्ध कई कवियों के जीवन-चरित तथा ग्रंथों से संबंधित घटनाओं का विवरण अपने ग्रंथ में दिया है। इस प्रकार उनका ग्रंथ एक संदर्भ-ग्रंथ बन गया है। उसमें अधिकतर गद्य का ही प्रयोग हुआ है। जैन धर्म, आश्रयदाता राजाओं तथा कवियों के विषय में उसमें ऐतिहासिक अंश कल्पना-विलास के साथ अंकित हुए हैं। कल्पना को त्याग कर ऐतिहासिकता को ही ग्रहण करने से ग्रंथ अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। उसमें उल्लिखित कुछ कवियों के नाम ये हैं—समंत भद्र (समय 400 ई०), पूज्यपाद (समय 600 ई०), श्रीवर्धदेव (समय 650 ई०), नागार्जुन (देवचंद्र के अनुसार ये पूज्यपाद के भानजे थे), नागचंद्र (समय 1100 ई०— इनकी 'जिनमुनितनय' और 'जिनाक्षरमाला' रचनाओं का उल्लेख देवचंद्र ने किया जो उपलब्ध नहीं हैं), कंति (समय 1100 ई०), नेमिचंद्र (दे०) (समय 1170 ई०), हस्तिमल्ल (समय 1290 ई०), केशववर्णि (समय 1359 ई०), वृत्तविलास (समय 1360 ई०) और रत्नाकरवर्णि (दे०) (समय 1560 ई०) आदि।

राजा विक्रम *(गु० पा०)*

मध्यकालीन गुजराती कथा-साहित्य में उज्जैन के राजा विक्रम की अनेक कथाएँ जैन एवं जैनेतर दोनों प्रकार के साहित्य में मिलती हैं। परदुखभंजन, प्रजाहित-परायण, साहसी राजा विक्रम साहित्य में एक आदर्श पात्र रहा है। विक्रम और वैताल की 25 कथाएँ (दे० वैताल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्चीसी) तो आज भी खूब प्रचलित हैं। विक्रम की कथाओं में वैताल कथाएँ, सिंहासन वत्तीशी, विक्रमरास, विक्रम-चरित्र, इत्यादि प्रचलित हैं। विक्रम-कथाएँ लोकसाहित्य में भी हैं, इसलिए गाँव का अनपढ़ आदमी भी विक्रम के नाम से सुपरिचित है।

राजा शिवाजी (म० कृ०)

इस काव्य की रचना श्री महादेव मोरेश्वर कुटें ने की थी। मराठी जनता के सामने इस रचना द्वारा राष्ट्र में एकात्मकता के संस्थापक राजा शिवाजी महाराज का आदर्श प्रस्तुत करना ही इनका उद्दृश्य था। इन्होंने बारह भागों में इस वृहद् काव्य की पूर्ति की योजना बनाई थी। 1869 ई० में इस काव्य के तीन भाग प्रकाशित हुए थे और अगले तीन 1871 ई० में। इन छः भागों के प्रकाशनोपरांत विद्वन्मंडली द्वारा हुई प्रतिकूल टीका-टिप्पणी के कारण यह काव्य अपूर्ण ही रह गया।

'राजा शिवाजी' काव्य के प्रारंभ में अँग्रेज़ी में लिखी दीर्घ प्रस्तावना मौलिक एवं महत्वपूर्ण है। इस प्रस्तावना में कुंटे ने अपनी काव्य विषयक मान्यताओं की स्थापना की है।

कुंटे ने अँग्रेज़ी 'एपिक' पद्धति पर 'राजा शिवाजी' काव्य-रचना की योजना बनाकर इस प्रकार का पहला अभिनय प्रयोग किया था। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति वाला यह मराठी का पहला दीर्घ कथाकाव्य है। इसके अनुकरण पर मराठी में ऐतिहासिक काव्य-रचना की परंपरा का सूत्रपात्र हुआ था। इसके सभी भागों में छंद का ही प्रयोग हुआ है।

'राजा शिवाजी' काव्य की भाषा शैली आलोचकों की वक्र दृष्टि का प्रमुख कारण थी। आभिजात्य कलात्मक संस्कृतप्रचुर लोकजीवन से विमुख काव्य-रचना के विरुद्ध होने के कारण कुंटे ने इसमें सर्वत्र-शुद्ध, सर्व-साधारण मराठी का प्रयोग किया है। काव्य-भाषा को सरल एवं अधिकाधिक जन-सुलभ बनाने के प्रयास में इनकी भाषा में ग्राम्यता आ गई है और निःसंदेह ग्राम्यता काव्य-दोष है। भाषा-विषयक इसी दृष्टिकोण की कटु-आलोचना हुई थी। वि० कृ० चिपळूणकर ने भी इनके भाषा-प्रयोग पर कटु-तिक्त प्रहार किए हैं। जनता को काव्याभिमुख बनाने की अपेक्षा, कविता को सर्वसाधारण की बनाते-बनाते इनका काव्य श्री और प्रवाह को खो बैठा है।

राजू (गु० पा०)

पन्नालाल पटेल (दे०) के प्रख्यात आंचलिक उपन्यास 'मानवीनी भवाई' (दे०) की नायिका राजू झालकिया गाँव के गलाभाई की पुत्री है। फूली बुढ़िया के महा-प्रयत्नों से राजू का, माँ के प्रसूतिकाल में ही, कल्लू के साथ संबंध घोषित कर दिया गया। फूली बुढ़िया ने कहा कि 'तुम यही समझ लो कि इस लड़की की सगाई वाला बुड्ढे के लड़के कालिया के साथ हो गई है। अंततः यही हुआ भी। छोटी किंतु नोकदार आँखों वाली, गोलमटोल मुँह, मोती से सफेद दाँतों और गेहुँए रंगवाली राजू का चरित्र कालू के पिता के मरने के बाद ही विकसित होता है। आरंभ में उसमें बाल-सुलभ चंचलता और करुणा दृष्टि-गत होती है। उपन्यास के 'गोटाला' नामक प्रकरण में वह जहाँ एक ओर छोटे से किसान कालू के माथे पर पसीने की दो बूंदें देखकर उससे पानी पी लेने का आग्रह करती है तो दूसरी ओर बैलों के बिदक जाने पर अपनी प्रसन्नता को तालियाँ बजाकर प्रकट करती हुई कहती है, "ले हाँक ले! मुझे नहीं हाँकने देता था न···ले अब ले!" फूली काकी और गलाभाई के न रहने पर जाति-पंचों की धूर्तता के कारण राजू का कालू से विवाह नहीं हो सका। राजू का विवाह जगा नरसी के भाई के साथ और कालू का विवाह जगा नरसी की लड़की के साथ हो गया। दोनों की एक ही ससुराल होते हुए भी दोनों के बीच एक गहरा मौन व्याप गया। राजू अपने चरित्र की उदात्तता के कारण उन लोगों की भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध कर देती है जो यह मानते थे कि 'राजुडी अगर घर बाँध कर रहे तो हम लिख देंगे।' ससुराल के युवकों को भी यह मानना पड़ता है कि राजू को छेड़ सकना संभव नहीं है और यह कि राजू जैसी कोई इधर तो एक भी दिखाई नहीं देती। वह तो बहुत ही होशियार और समझदार है। यह ठीक है कि राजू अपने इस दुर्भाग्य को—कालू के साथ विवाह न होकर एक बीमार आदमी के साथ विवाह हो जाने को—कभी नहीं भूल सकी। एक प्रसंग में वह कहती भी है—'जिसने मेरा जीवन बिगाड़ा है —उसके घर! ···यह दंश मैं आजीवन भूल नहीं सकूंगी?' फिर भी वह इसे 'करम का अधूरा लेख' मानकर संतोष कर लेती है। ससुराल की दरिद्रता और भूख को सहती हुई भी वह अपने परिवार को नहीं छोड़ती। भयंकर दुष्काल में भी वह कालू को साहस प्रदान करती है और एक ऐसे अवसर पर जबकि कालू मरने की स्थिति में आ जाता है अपना दूध पिलाकर जीवन-दान देने तक की तत्परता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरतती है। संपूर्ण उपन्यास में पराजित पात्रों के बीच वही अकेली है जो भाग्य और दुरवस्था के समक्ष पराजित नहीं होती। समग्रत: देखने पर यह कहा जा सकता है कि राजू उज्ज्वल एवं दृढ़ चरित्र की भारतीय नारी है जो सब-कुछ सहती है पर झुकती नहीं।

राजे *(गु० ले०)* [1730 ई० में विद्यमान]

मध्ययुगीन गुजराती के मुसलमान कृष्ण-भक्त कवि राजे भड़ौच के निकटवर्ती केरबाडा ग्राम के निवासी थे। समाज के अति निम्न व साधारण स्तरीय परिवार में उत्पन्न इस कवि का कृष्ण-प्रेम उतना ही सराहनीय है जितना रहीम (दे०), रसखान (दे०) आदि हिंदी कवियों का।

'रासपंचाध्यायी', 'गोकुल-लीला', 'विरहगीता', 'बारमासी' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनकी रचनाओं में गोपीभाव अर्थात् प्रेम-लक्षणा भक्ति (माधुर्यभाव) का प्राचुर्य है। पदों की रचना में कहीं-कहीं ये नरसिंह मेहता (दे०) व दयाराम (दे०) के से भावप्रवण व प्रभविष्णु हैं।

मध्ययुगीन गुजराती भक्ति-साहित्य में इनका मुसलमान कृष्णोपासक के रूप में विशेष उल्लेखनीय स्थान है।

राज्यव्यवहार कोश *(म० कृ०)*

शिवाजी ने प्रशासन के कार्य को अपनी ही भाषा के माध्यम से चलाने के लिए इस कोश की रचना कराई थी। मूल कोशकार के नाम के विषय में मतैक्य नहीं है, कोई रघुनाथ पंडित, कोई रघुनाथ हणमंते तो कोई धुंडिराज व्यास को इसका मूल रचयिता मानता है। इस संस्कृत-फ़ारसी-कोश में दस भाग हैं और कुल 384 श्लोक हैं। इसमें अनेक दरबारी फ़ारसी शब्दों के संस्कृत पर्याय दिये हैं, जैसे—कारखाना=कार्यस्थान, खजाना=कोषागार, जायदार=कोषरक्षक आदि।

राठौड़ धांधल *(गु० पा०)*

गुणवंतराय, आचार्य (1909-1968) के उपन्यास 'सक्कर बार' का नायक। गुजरात में बहुत विशाल समुद्र तट होने के कारण गुजरात की नौका द्वारा विदेशों से व्यापार किया जाता है। गुजरात के नाविक अपने साहस, शौर्य, देश-विदेश में प्रवास, समुद्री डाकुओं के साथ मुकाबला, इन सबके लिए मशहूर थे। राठौड़ धांधल नाविक है जो वर्ष में दस महीने समुद्र में ही घूमता रहता है। राठौड़ धांधल गुजरात के नाविकों के जीवन का प्रतिनिधि है।

राठौड़, पृथ्वीराज *(हिं० ले०)* [जन्म—1549 ई०; मृत्यु—1600 ई०]

ये बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के पुत्र थे। इनमें एक वीर सामंत तथा श्रेष्ठ कवि के गुण समान मात्रा में मिलते हैं। कर्नल टॉड ने इनकी बहुत प्रशंसा की है। नाभादास के 'भक्तमाल' में इनका उल्लेख है। मुग़ल सम्राट अकबर के दरबार में इनको पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। इन्होंने 'बेलि क्रिसन रुकमणीरी' (दे०), 'दसम भागवत रा दूहा', 'गंगालहरी', 'वसदेरावउत' तथा 'दसरथरावउत' नामक ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों में 'बेलि क्रिसन रुकमणीरी' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। पृथ्वीराज रस-सिद्ध कवि हैं। भाव-व्यंजना तथा भाषा दोनों पर इनका समान अधिकार है। अलंकार-योजना इनकी शब्दावली का सहज रूप में साथ देती है। अकबर के आश्रित होने पर भी इन्होंने महाराणा प्रताप को अपनी कविता से स्वतंत्रता की प्रेरणा दी थी। साहित्य-जगत् में ये 'पीथल' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

राणा प्रतापसिंह-चरित्र *(ते० कृ०)*

इसमें शतावधानी दर्भाका राजशेखर (दे०) ने स्वतंत्रता-आंदोलन के समय, सामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर जनता को उद्दीप्त करने के लिए, स्वतंत्रता के अमर सेनानी राणा प्रतापसिंहड्डु की कथा को काव्यमय रूप दिया है। स्वयं अपने-आपको प्रताप समझकर, काव्य के नायक से तादात्म्य करते हुए लिखने के कारण, यह काव्य अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। राणा प्रतापसिंहड्डु को अवतार पुरुष और पुराण पुरुष मानते हुए, स्वतंत्रता के लिए प्रताप द्वारा किए गए युद्ध को धर्मसमर के रूप में चित्रित किया गया है। प्रताप के साथ अकबर और मानसिंह के चरित्रों का भी उदात्तीकरण किया गया है। काव्य की शैली प्रवाहयुक्त, प्रभावशाली तथा वीररस के अत्यंत अनुकूल है।

तेलुगु के ऐतिहासिक चरित्र-प्रधान काव्यों में यह काव्य प्रथम तथा आदर्श है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणा सूरतसिंह (*पं० कृ०*)

भाई वीरसिंह (दे०) का यह प्रथम महाकाव्य है जो 1904 ई० में लिखा गया था। पहले 1905 से 1910 ई० तक यह छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में छपा, फिर पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। इसमें 35 कांड हैं जिनके नाम जीवन की विविध प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। यह मूलतः एक प्रेमकाव्य है जिसमें राणा सूरतसिंह के शत्रुओं से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाने के उपरांत उसका विधवा रानी राजकौर की विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण है। उसने राणा की समाधि बनवायी, उद्यान में उसकी प्रतिमा लगवाई। मन की शांति के लिए वह भटकती है, वन-उपवन घूमती है, कभी स्वप्नों में और कभी मूर्च्छा में खो जाती है। अंततः कवि-प्रेरित परिस्थितियाँ उसे सत्संग की ओर उन्मुख करती हैं और वह आध्यात्मिक शक्ति के प्रताप से सदेह मुक्ति-लाभ कर राणा का सान्निध्य प्राप्त करती है। विरहिणी रानी की यह पति-सान्निध्य-सिद्धि ही इस महाकाव्य का कथानक है। कथा-गठन की दृष्टि से कृति में पर्याप्त शिथिलता है क्योंकि इसमें घटनाओं के घात-प्रतिघात की अपेक्षा विचार-प्रवाह की अधिकता है, किंतु आध्यात्मिक प्रतीकों के माध्यम से इसे समझा जाये तो यह एक सफल महाकाव्य है। इसीलिए कई समीक्षक इसे एक 'रूपक-काव्य' या 'अन्योक्ति' भी मानते हैं। उनके विचार में रानी राजकौर की व्याकुलता, खालसा-राज्य के पतन से उत्पन्न सिक्ख-जाति की उस निराशा की प्रतीक है जिसे पुनः धार्मिक अभिरुचि और आध्यात्मिक चेतना जागृत करके दूर किया जा सकता है। भाषा परिमार्जित पंजाबी है। 'प्रेम', 'नींद', 'जाग' आदि अमूर्त प्रवृत्तियों का मानवीकरण इसके शैलीगत वैशिष्ट्य का परिचायक है।

राधावल्लभ-संप्रदाय (*हिं० प्र०*)

मध्ययुग के कृष्ण-भक्ति-संप्रदायों में राधावल्लभ-संप्रदाय एक प्रमुख संप्रदाय है। इसमें राधा को प्रधानता दी गई है, कृष्ण का ध्यान बाद में किया जाता है। हित-हरिवंश (दे०) इसके प्रवर्तक माने गये हैं। उनकी भजन की रीति बड़ी गूढ़ और रहस्यमयी कही गयी है। इस संप्रदाय की भक्ति का भाव अत्यंत विकट है। भगवत्कृपा ही इसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन है, इसमें विधि और निषेध उपेक्षणीय हैं। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण अभिन्न तत्त्व हैं, वे प्रेमरूप हैं, प्रेम के कारण भी हैं और कार्य भी। वे जल-तरंग की तरह एक-दूसरे में ओतप्रोत हैं। 'हित' शब्द को प्रमुखता देते हुए इन साधकों ने सभी जीवों और जड़ सृष्टि को उसी एक 'हित-मित्र' प्रेम-तत्त्व का चित्र मात्र माना है। हितहरिवंश-कृत 'हित चौरासी' और 'राधा-सुधानिधि' इसके सिद्धांत-प्रतिपादक ग्रंथ हैं। सेवक, हरिराम व्यास, ध्रुवदास (दे०), चाचा हितवृंदावनदास (दे०), श्रीहरि आदि इस संप्रदाय के प्रमुख भक्त कवि हैं। साधना-क्षेत्र में वल्लभ-संप्रदाय के बाद ही राधावल्लभ-संप्रदाय को स्थान मिलता है।

राधिकारमणप्रसादसिंह (*हिं० ले०*) [जन्म—1891 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के शाहबाद ज़िले के सूर्यपुरा नामक स्थान में हुआ था। यद्यपि इन्होंने कहानी उपन्यास, नाटक, कविता आदि विभिन्न विधाओं में साहित्य-सृजन किया है, किंतु इनका विशेष प्रदेय कथा-साहित्य के क्षेत्र में है। 1913 ई० में इनकी एक कहानी 'कानों में कंगना' काशी से निकलने वाली 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी जिसने अपनी भावुकतापूर्ण तथा सरस रचना-शैली के कारण हिंदी-प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। 'राम-रहीम', 'पुरुष और नारी', 'चुंबन और चाँटा' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं तथा 'कुसुमांजलि' और 'गांधी टोपी' में इनकी कहानियाँ संकलित हैं। आदर्शवाद इनकी कहानियों का मूल स्वर है तथा उपन्यासों में देश की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों को रूपायित किया गया है। काव्यात्मक तथा मुहावरेदार भाषा-शैली के माध्यम से पाठक के अंतस्तल को छू लेने में इनकी सफलता का रहस्य निहित है।

राधिकास्वांतनमु (*ते० कृ०*) [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसकी लेखिका का नाम मुद्दुपळनी (दे०) है। यह चार आश्वासों का शृंगार-काव्य है। इसकी कथा इस प्रकार है—कुंभक की पुत्री इला बचपन से ही राधा के पालन-पोषण में रहती है। राधा चाहती है कि कृष्ण के साथ इला की शादी की जाय। अंत में राधा स्वयं ही उन दोनों का विवाह संपन्न करा देती है। किंतु इस घटना के फलस्वरूप वह स्वयं कृष्ण के प्रेम से वंचित होकर विरहिणी बन जाती है। उक्त स्थिति में कृष्ण को राधिका का अनुनय करना पड़ता है। यह अंतिम भाग ही कथा में प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस काव्य की रचना कहावतों तथा मुहावरों के कारण सशक्त और मार्मिक है। चरित्र-चित्रण में प्राणवत्ता है। कहीं-कहीं सरस हास्य का भी प्रयोग किया गया है। पर इस काव्य के बारे में एक बात अवश्य कहनी पड़ती है कि इसमें शृंगार-संबंधी वर्णन तथा कथोपकथन औचित्य की सीमाओं के बाहर हैं। प्रधानतः एक स्त्री की रचना में इस प्रकार के वर्णन सहृदय पाठकों को और भी खटकते हैं। इस अवगुण को अलक्ष्य कर देखें तो इसकी कविता अनुपम ही कही जा सकती है।

राधेश्याम कथावाचक *(हिं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

इनका जन्म बरेली में हुआ था। इन्होंने लोक-नाट्य शैली पर, खड़ी बोली में जो पद्यबद्ध रामायण लिखी वह 'राधेश्याम रामायण' के नाम से विख्यात है। कथा कहने की इनकी शैली बड़ी रोचक थी, जो इनकी ख्याति का विशेष कारण रही। अतएव इनके कथांशों के ग्रामोफोन रिकार्ड भी प्रस्तुत हुए। एल्फ्रेड कंपनी के नाटककार के नाते, इन्होंने कई नाटकों की सर्जना की, जिनमें उल्लेखनीय हैं: 'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रह्लाद' और श्री कृष्णावतार'।

रानडे, श्रीधर बाळकृष्ण *(म० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये बंबई में जीवशास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। ये और इनकी पत्नी श्रीमती मनोरमाबाई रानडे दोनों मराठी-काव्य-जगत में प्रसिद्ध हैं।

श्री० बा० रानडे रविकिरण-मंडळ के सदस्य-कवि रहे हैं। इनकी 'काळाच्या दाढ़ेंतून' नामक रचना विशेष महत्वपूर्ण है। इसका आधार इनके जीवन में घटित घटना है। जब ये हैज़े के कारण बीमार थे, तब मृत्यु के भय से इनका संपूर्ण जीवन-चित्र इनके नेत्र-पटल के सामने मूर्तिमान हो उठा था। उस समय इनके मन में उठने वाली विचार-लहरियाँ इस ग्रंथ में अंकित हैं।

इनकी कुछ स्फुट रचनाएँ भी हैं।

रानी केतकी की कहानी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1800 तथा 1808 ई० के मध्य]

यह इंशा अल्ला खाँ की अत्यंत प्रसिद्ध गद्य-रचना है जिसमें राजा सूरजभान के पुत्र उदयभान तथा राजा जगतप्रकाश की कन्या केतकी की प्रेमकथा को सानुप्रास वाक्यावली तथा मुहावरेदार शैली में रूपायित किया गया है। पुस्तक के प्रारंभ में ही लेखक ने किसी अन्य बोली का पुट मिलाए बिना ठेठ हिंदी में ही अपनी कृति की रचना करने की घोषणा की है और इस दिशा में उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है—केवल वाक्य-रचना इसका अपवाद है जिस पर फ़ारसी का अत्यंत स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। समग्रतः लेखक के गहन ज्ञान तथा व्यापक जीवन-अनुभव की परिचायिका यह कृति खड़ी बोली-हिंदी-गद्य के विकास के अध्ययन की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व की रचना है।

राम *(सं० पा०)*

'राम' नाम के अनेक प्राचीन महापुरुष हुए हैं, किंतु इनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध दशरथ-पुत्र राम हैं। कुछ अन्य राम नामक व्यक्ति हैं—(1) ऋग्वेद (दे० संहिता) में उल्लिखित एक दानी राजा, (2) श्री कृष्ण (दे०) के ज्येष्ठ भ्राता बलराम को भी राम कहते हैं, (3) परशुराम (जमदग्नि का पुत्र) भी राम कहाता है। उपस्विन् के पुत्र (औपस्विनि) का नाम राम था, जो कि एक यज्ञवेत्ता आचार्य था, आदि। दशरथ-पुत्र (दाशरथि) राम अथवा रामचंद्र—यह अयोध्या के रघुवंशीय राजा दशरथ के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसकी माता का नाम कौशल्या था। इसका जन्म संभवतः ई० पू० 2000-1500 के बीच हुआ था। इसे श्री विष्णु का सातवाँ अवतार माना जाता है। इसने गुरु वसिष्ठ से शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। ऋषि विश्वामित्र के कहने पर उनके यज्ञ की राक्षसों से रक्षा करने के लिए राम को अपने भाई लक्ष्मण (दे०) सहित बाल्यावस्था में ही उनके साथ दंडकारण्य जाना पड़ा। मार्ग में इसने ताड़का नामक राक्षसी का वध किया तथा मारीच और सुबाहु नामक राक्षसों का संहार कर यज्ञ की सुरक्षा की। अयोध्या वापस लौटते समय मार्ग में अपने पाद-स्पर्श से अहल्या नामक एक शापित नारी का उद्धार किया तथा मिथिलाधीश जनक की कन्या सीता (दे०) के स्वयंवर में धनुष-भंग की शर्त जीतकर सीता से विवाह किया। इसी अवसर पर लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत के विवाह भी संपन्न हुए। विवाह के बाद इसका परशुराम के साथ संघर्ष हुआ। सत्ताईस वर्ष की आयु में दशरथ ने इसका यौवराज्याभिषेक करने की तैयारी की तो इसकी सौतेली माता कैकेयी (दे०) ने बाधा उपस्थित की। परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णामतः इसे लक्ष्मण और सीता के साथ 14 वर्ष के लिए वन में जाना पड़ा। ये लोग चित्रकूट पर्वत और फिर दंडकारण्य पहुँचे। वहीं पंचवटी में राम को शूर्पनखा की नाक तथा कान काटने पड़े। अपने द्वारा भेजे गये तथा स्वर्णमृग के रूप में आये हुए मारीच नामक राक्षस की सहायता से रावण (दे०) ने सीता का हरण किया। सीता को ढूँढ़ने के लिए निकले राम और लक्ष्मण को जटायु से सीता का सुराग मिला। ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर इसने सुग्रीव की रक्षा के लिए बालि का वध किया। सुग्रीव ने हनुमान (दे०) नामक बलवान् कपि तथा अन्य कपियों की सेना द्वारा राम को लंका पर चढ़ाई करने में सहायता दी। लंका पहुँचने से पूर्व इन्होंने समुद्र पर सेतु बाँधा। वहाँ राम को विभीषण (दे०) की पर्याप्त सहायता मिली। लंकापति रावण तथा उसके अन्य संबंधी मारे गये और सीता को लेकर दोनों भाई पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौट आये। यहाँ राम का राज्याभिषेक हुआ। कुछ समय बाद राम को अफ़वाहों के कारण सीता का परित्याग करना पड़ा। वाल्मीकि (दे०) ऋषि के आश्रम में पहुँचकर उसने लव और कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। कुछ कथाकारों के अनुसार कुछ वर्षों के बाद राम सीता को अपने पुत्रों के साथ अयोध्या वापस ले आये और कुछ कथाकारों के अनुसार सीता राम के साथ न आकर पृथ्वी में समा गयी।

राम की मृत्यु सरयू नदी के तट पर हुई। राम हर दृष्टि से एक आदर्श व्यक्ति थे। ये विष्णु के अवतार के रूप में पूजे जाते हैं। वाल्मीकि से लेकर आज तक सैकड़ों लेखकों ने काव्य और नाटक लिखे हैं। राम हिंदू-संस्कृति के अद्भुत प्रतीक हैं।

रामकथप्पाट्टु *(मल० क्र०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

अय्यिप्पिळ्ळ आशान् (दे०)-रचित एक 'तेक्कन पाट्टु'। तमिल-मिश्र शाखा के अंतर्गत 'पाट्टु (दे०) शैली के इस प्राचीन राम-काव्य का महत्व भाषा के विकास के विद्यार्थियों के लिए बहुत है। इसकी भाषा दक्षिण केरल की तत्कालीन जनभाषा मानी जाती है। यद्यपि 'रामकथप्पाट्टु' साहित्यिक दृष्टि से इस श्रेणी के प्रमुख काव्य 'रामचरित्रम्' के समकक्ष नहीं आता तथापि बोलचाल की भाषा में लिखित प्रथम रामायण के रूप में और समसामयिक भाषा के उदाहरण के रूप में इसका महत्व है।

राम अने कृष्ण *(गु० कृ०)*

स्व० किशोरलाल घनश्यामलाल मशरुवाला (दे०)-रचित 'राम अने कृष्ण' दो संक्षिप्त जीवनियाँ एक ही ग्रंथ में प्रकाशित हैं। पृ० 1 से 68 तक राम की जीवनी तथा पृ० 69 से 130 तक कृष्ण की जीवनी अंकित है। पृ० 131 से 140 तक उपासना-दृष्टि से इन जीवनियों की समालोचना है।

राम की जीवनी अंकित करने में लेखक ने अधिकांशतः वाल्मीकि 'रामायण' का आधार लिया है। उन चमत्कारपूर्ण, अद्भुत व असंभव प्रतीत होने वाले प्रसंगों को लेखक ने छोड़ दिया है जिनके आधार पर राम का अवतारी रूप प्रतिपादित किया जाता है, और जो आज के वैज्ञानिक युग में मानव-बुद्धि को असंगत व अग्राह्य प्रतीत होते हैं। बालि-वध, विभीषण को आश्रय, शंबूक-प्रसंग, आदि की लेखक ने औचित्य-अनौचित्यपरक व्याख्या की है। लेखक ने सत्यनिष्ठता, धर्मपरायणता, निःस्वार्थता, शूरता व स्नेहशीलता आदि राम के गुणों का प्रकाशन किया है।

कृष्ण के चरित्रांकन में भी महाभारत का आधार लिया गया है। कृष्ण के बाल्यकालीन अद्भुत व बुद्धि को असंगत प्रतीत होने वाले प्रसंग छोड़ दिये गये हैं। निःस्वार्थ लोक-सेवक रूप में कृष्ण का चरित्र अंकित हुआ है। पराक्रम, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, दांपत्य प्रेम, परिवार-प्रेम, भूतदया, मित्रता, सत्यनिष्ठा, धर्मप्रियता, जीवन की पवित्रता के प्रति आदर भाव कृष्ण में भी उतना ही है जितना राम में। मगर राम के लिए जीवन-यज्ञ एक कठिन व्रत है, कृष्ण के लिए मंगलोत्सव।

आर्य-संस्कृति, आर्य जीवन के गठन में इन दो चरित्रों के योगदान व महत्व को भी लेखक ने अंकित किया है।

भाषा-शैली व प्रस्तुतीकरण इतना सरल है कि गंभीर होते हुए भी जीवनियाँ गंभीरता से आक्रांत नहीं हुई हैं। बालक, किशोर, पंडित सब के लिए समान रूप से ये आस्वाद्य हैं।

गुजराती साहित्य में किशोरोपयोगी जीवनियों के रूप में इन जीवनियों का अपना महत्व है।

रामकथा *(पं० कृ०)*

रचयिता—व्रजलाल शास्त्री। यह रोचक कथा पद्य एवं गद्य में प्राप्त है परंतु इसका पद्यात्मक रूप ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्रसिद्ध हुआ है। यह 'राम-कथा' वाल्मीकि 'रामायण' एवं तुलसीदास (दे०)-कृत 'रामचरितमानस' (दे०) से प्रेरणा लेकर लिखी गई है। अनेक स्थल तो 'रामचरितमानस' के अनुवाद मात्र हैं। इस ग्रंथ को पंजाबी साहित्य के महाकाव्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। इसकी भाषा पंजाबी है। ग्रंथ गुरुमुखी तथा देवनागरी दोनों लिपियों में प्राप्त है। विषय-वर्णन में पंजाबी गीत-लय को अपनाया गया है। इस रामकथा के हनुमान के लंका-प्रवेश-प्रसंग की कतिपय पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

टीसी ते खलोता हनुमान सोभदा।
जिकें आसमान में बबान सोभदा॥
घरर घरा जिमें भौंरे डोलदा।
शेष नाग वांग सियाराम बोलदा॥
हरिहर विधि मन विच ध्यांवदा।
पवन पिता तों वारे वारे जांवदा॥
सागर दे वल्ल बुल चव तब कया।
फेर लंका वल्ल दिल दव्व तव कया॥

रामकवीचा कोश *(म० कृ०)*

रामकवी के कोश का नाम 'भाषाप्रकाश' है। 'भाषाप्रकाश' से पूर्व के प्राचीन मराठी कोश अर्थ-निर्णायक तथा गद्यात्मक थे। प्रस्तुत कोश सर्वथा निराला है। संस्कृत के 'अमरकोश' (दे०) के अनुवाद पर इसकी रचना हुई है। यह अनुष्टुप छंद में रचित पद्यबद्ध कोश है। इसकी रचना संभवतः अठारहवीं शती के अंत तथा उन्नीसवीं के आरंभ में हुई थी।

यह कोश तेईस वर्गों में विभाजित है। शिथिलता, अव्यवस्था, पुनरुक्ति आदि कुछ दोष इसमें हैं। लगभग साढ़े चार सौ मराठी शब्दों का विषयानुसार संग्रह करने वाला इस प्रकार का मराठी में दूसरा कोश नहीं है। इसकी हस्तलिखित प्रति तंजौर के सरस्वती महान ग्रंथालय में सुरक्षित है।

रामकाव्य *(पं० प्र०)*

पंजाबी साहित्य में रामकाव्य परंपरा देश के अन्य प्रदेशों के रामकाव्य की भाँति चलती रही। आदि ग्रंथ में राम-नाम संकीर्तन उपलब्ध है। 'हरिया जी का ग्रंथ' में रामावतार की चर्चा सर्वप्रम मिलती है। हृदयराम भल्ला (दे०)-कृत 'हनुमान नाटक' (दे०) रामकाव्य का उत्कर्ष ग्रंथ है। भाई सुक्खासिंह (दे०)-कृत 'गुरु विलास' (दे०), भाई सन्तोषसिंह-कृत 'गुरु प्रताप सूर्य' एवं निर्मला पंथी गुलाबसिंह के 'अध्यातम रामायण' एवं 'भाव रसामृत' में श्री रामचरित का उल्लेख है। गुरु गोविंदसिंह (दे०)-कृत चौबीस अवतार' कृति में 'रामावतार' रचना महत्वपूर्ण है।

आधुनिक काल में पं० मानसिंह कालिदास (दे०) ने 'रामायण' (दे०) तथा व्रजलाल शास्त्री ने 'रामकथा' (दे०) नामक काव्य-कृतियाँ लिखी हैं। इन पर वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) तथा तुलसीदास (दे०) के 'रामचरितमानस' (दे) का प्रभाव है। आधुनिक काल के पूर्ववर्ती रामकाव्य की भाषा व्रज है परंतु आधुनिक रामकाव्य की भाषा शुद्ध पंजाबी है।

'आदि ग्रंथ' (दे०) की एक पंक्ति में गुरुनानक (दे०) को रामचंद्र का तथा गुरु अंगददेव को जनक का अवतार कहा है।

(1) त्रेतै ते माणिओ राम रघुवंस कहाइओ।
(2) तू तां जनिक राजा अवतारु सवदु संसारिरु इहहि
आदि ग्रंथ, पृ० 1380

रामकृष्णकवि तेनालि *(ते० ले०)* [समय—1505-1575 ई०]

इनकी परंपरागत जीवनी के अनुसार ये श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के दरबारी कवि तथा 'अष्टदिग्गजों' (दे०) में से एक हैं। परंतु अब यह विषय विवादास्पद हो गया है। इनसे संबंधित अनेक हास्य कथाएँ तथा विभिन्न संदर्भों में इनके कहे हुए पद्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्हें 'विकट-कवि' कहा जाता है। कहा जाता है कि ये आरंभ में शैव थे और इनका नाम 'रामलिंग' था तथा बाद में वैष्णव होकर 'रामकृष्ण' कहलाने लगे। ये शैव और वैष्णव दोनों प्रकार के पुराणों के तत्त्वों का अच्छा ज्ञान रखते थे और इन्होंने अपने काव्यों की रचना पुराणों की शैली में की है। संस्कृत और तेलुगु दोनों भाषाओं के ये परम विद्वान् थे। इनकी रचनाएँ हैं : (1) 'पांडुरंग महात्म्यमु', (दे०) (2) 'उद्भटाराध्यचरित्रमु', (3) 'घटकाचलमहात्म्यमु' आदि। ये ग्रंथ मुख्य रूप से क्षेत्र-महिमा का वर्णन करने वाले हैं।

'पांडुरंगमहात्म्यमु' तेलुगु के प्रौढ़तम काव्यों में से है। यह एक वैष्णव ग्रंथ है जिसमें कवि ने अपनी गंभीर भक्ति को मधुर एवं सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उद्भटाराध्यचरित्रमु' एक शैव ग्रंथ है। इसमें शैवमत के आचार्य उद्भट के चरित्र का वर्णन किया गया है। 'घटकाचल महात्म्यमु' में उत्तर आर्काट के नृसिंह-क्षेत्र की महिमा का वर्णन पाया जाता है।

इस कवि की रचना संस्कृत-गर्भित तथा अत्यंत प्रौढ़ है। विद्वान् कवि की विद्वत्ता सर्वत्र दृष्टिगत होती रहती है। कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है। किंतु अधिकांशतः इनकी कविता प्रवाहमय, मधुर तथा रसपूर्ण है। इनके भाव अत्यंत स्वतंत्र रमणीय और गंभीर हैं तथा इन भावों को व्यक्त करने वाला इनका शब्द-जाल सशक्त और प्रौढ़। इनकी कविता का तो साधारण जनता में प्रसार नहीं हो सका किंतु इनसे संबंधित अनेक कथाओं के द्वारा आंध्र की समस्त जनता के लिए ये अत्यंत प्रिय कवि हैं।

रामकृष्ण कवि, मोचेर्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

रामकृष्ण 'कवि कविशेखररुडु', 'सरस कवि', 'प्रसन्न मधुकर कवि' आदि विरुद नामों से सम्मानित हैं। ये संस्कृत और आंध्र भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं। इन्होंने संस्कृत तथा तेलुगु में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'मारुति' 'गंगालहरी', 'रमणानंदलहरी', 'गिरजाकल्याणमु', 'आत्मबोधमु', 'हंससंदेशमु', 'अमृतकलशमु', 'अनर्गलभार्गवमु', 'प्रचंडभार्गवमु', 'गुरुदेवचरित्रमु', 'ध्रुवरूपकमु', 'छत्रपति शिवाजी', 'स्वात्मार्पणमु', 'शारदाप्रसादमु' उल्लेखनीय हैं। इनकी कविता प्रौढ़ तथा गंभीर होती है।

रामकृष्ण पिळ्ळा, के० *(मल० ले०)* [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

इनका नाम केरल के स्वतंत्रा-आंदोलन और पत्रकारिता के क्षेत्र में अविस्मरणीय है। 'स्वदेशाभिमानी' इनके द्वारा चलाये जाने वाले दैनिक पत्र का नाम था और देशप्रेमियों ने इन्हें यह उपाधि दी थी। अपने दैनिक में प्रकाशित लेखों में इन्होंने तत्कालीन त्रावनकोर-नरेश की नीतियों का विरोध किया था और जनता में स्वातंत्र्येच्छा जागृत की थी। 1910 ई० में ये त्रावनकोर से निष्कासित हुए थे। यह घटना स्वतंत्रता-आंदोलन में नये मोड़ का प्रतिनिधित्व करती है।

रामकृष्ण पिळ्ळा के लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे हुए हैं। इनकी कृतियों में सुकरात, मार्क्स आदि की जीवनियों और पत्रकारिता, कृषि आदि पर पुस्तकें सम्मिलित हैं।

इनका जीवन उस समय के साहित्यकारों के लिए आदर्श बन गया था। इनके निर्भीक विचारों ने बाद के कवियों में स्वातंत्र्य-तृष्णा जागृत की थी और इनके कृतित्व पर अमिट प्रभाव डाला था। इनका गद्य सरस और प्रभावशाली है और पत्रकारिता के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

इनका स्थान स्वतंत्रता-आंदोलन में जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण स्थान साहित्य में भी है।

रामकृष्णमाचार्युलु, धर्मवरं *(ते० ले०)* [समय—1853-1912 ई०]

ये बल्लारि नामक शहर के रहने वाले वकील थे। अब यह स्थान मैसूर प्रांत के अंतर्गत है। ये प्रसिद्ध कवि, नाटककार, निर्देशक तथा अभिनेता थे। इनका रचना कार्य केवल नाटक-क्षेत्र के अंतर्गत सीमित था। तेलुगु में स्वतंत्र नाटक-रचना 1860 ई० में आरंभ हुई। पर रंगमंचीय नाटक लिखने की परंपरा का श्रीगणेश रामकृष्णमाचार्युलु के नाटकों के द्वारा ही संपन्न हुआ। 1886 ई० में बल्लारि में 'सरसविनोदिनी' नामक नाटक-समाज की स्थापना हुई। ये इसके अध्यक्ष थे। उक्त नाटक-समाज के द्वारा इनके नाटक प्रदर्शित होते थे और उसी से प्रेरणा पाकर ये एक के बाद दूसरा नाटक लिखते थे। कुल मिलाकर इन्होंने 27 नाटकों की रचना की, जिनमें 14 प्रकाशित तथा 13 अप्रकाशित हैं। इनके कुछ प्रमुख नाटकों के नाम हैं—'चित्रनलीयमु', 'पादुका पट्टभिषेकमु', 'प्रह्लादो', 'सावित्रोचित्राश्वमु', 'मोहिनी रुकमांगदा', 'विषाद-सारंगधरा', 'बृहन्नला', 'प्रमीलार्जुनीयमु', 'पांचालीस्वयंवरमु', 'रोषनारा शिवाजी' (प्रकाशित) तथा 'उषापरिणयमु', 'अजामिलुडु', 'सीतास्वयंवरमु', 'घोषयात्रा', 'विभीषणपट्टभिषेकमु', 'हरिश्चंद्रा', 'गिरजाकल्याणमु' आदि (अप्रकाशित)।

रामकृष्णमाचार्युलु ने केवल लेखक के रूप में ही नहीं बल्कि एक समर्थ निर्देशक तथा अभिनेता के रूप में भी अपने नाटकों की रचना की है। इनके सभी नाटक प्रदर्शन के उद्देश्य से लिखे गए हैं। वे सभी प्रदर्शित हो चुके हैं तथा उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इनके नाटकों का कथानक प्रायः पुराणों तथा इतिहासों से लिया गया है। इनका 'रोषनारा शिवाजी' ऐतिहासिक नाटक है और शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः पौराणिक हैं। इन्होंने संस्कृत-नाटकों के कई नियमों का उल्लंघन किया है तथा अँग्रेज़ी-नाटकों के अनेक नियमों का अनुसरण किया है। नांदी-प्रस्तावना, भरतवाक्य (दे०) आदि का अभाव, अंक का दृश्यों में विभाजन, 'प्रोलोग' तथा 'एपिलोग' की तरह नाटक के आदि और अंत में क्रमशः 'पूर्वरंग' तथा 'उच्चरंग' (दोनों छंद-बद्ध) की रचना, जगह-जगह पर भाषण में भी गाने तथा छंदों का प्रयोग, हास्यरस का समावेश और कहीं-कहीं काव्योचित शैली आदि लक्षण इनके नाटकों में पाए जाते हैं। इन्होंने दुःखांत नाटकों की भी रचना की थी। इनके नाटकों में प्राच्य तथा पश्चिमी नाटक-संप्रदायों का समन्वित रूप पाया जाता है। इनके अंतर्गत जो गीत हैं वे फ़ारसी-नाटकों के प्रभाव से ही आये हैं।

फ़ारसी-नाटक-प्रदर्शनों के फलस्वरूप आंध्र की जनता में जो उत्साह उमड़ पड़ा उसको एक निर्दिष्ट दिशा दिखाने में तथा मौलिक रंगमंचीय नाटकों की रचना और असंख्य नाटक-समाजों की स्थापना करने में भी रामकृष्णमाचार्युलु का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1902 ई० में हैदराबाद में आयोजित एक विराट सभा में इनको 'आंध्र नाटक-पितामह' की उपाधि दी गई।

रामकृष्णैया, कोराड *(ते० ले०)* [जन्म—1891 ई०]

ये मुख्य रूप से भाषाशास्त्री एवं समालोचक हैं। इन्होंने तेलुगु एवं संस्कृत के क्रमिक विकास का गंभीर अध्ययन किया है। ये मद्रास विश्वविद्यालय के पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। 'आंध्र भारत कविता विमर्शनमु', 'कालिदासुनि कला प्रतिभलु', 'सारस्वत व्यासमुलु' आदि इनकी समालोचनात्मक कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कई प्रगीतों की रचना भी की है।

रामकृष्णराव, अब्बूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

ये तेलुगु की 'भाव कविता' (दे०)-धारा के प्रमुख कवियों में से हैं। 1914 ई० में ये कलकत्ता से बँगला-साहित्य की सुरभि का आस्वादन करके आये थे और तब से भावना-प्रधान प्रगीतों की रचना करते रहे हैं। भाव-गीतों के साथ-साथ इन्होंने कथात्मक रचनाएँ भी की हैं। कवि, नाटककार तथा समालोचक के रूप में ये विख्यात हैं। अभिव्यंजना की सूक्ष्मता, भावना की उदात्तता तथा मधुर प्रगीतात्मकता इनकी रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं। प्रगाढ़ भाव-प्रवणता इनकी समस्त रचनाओं को आप्लावित करती हुई सर्वत्र प्रकट होती है। 'नदी सुंदरी' (दे०), 'ऊहागानमु', 'पूर्वप्रेम', 'मल्लिकांबा' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। इनमें 'नदी सुंदरी' नाटिका सर्वाधिक विख्यात हुई है। यह पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रचित मधुर रचना है।

रामचंदर, मास्टर *(उर्दू०ले०)* [जन्म—लगभग 1817 ई०]

ये अपने समय के संसार के सुप्रसिद्ध गणित-विशेषज्ञों एवं मनीषियों में गिने जाते थे। अतः तत्कालीन अँग्रेज़ी शासन ने इन्हें दिल्ली कालेज में गणित का प्रोफ़ेसर नियुक्त कर दिया गया। ये बड़े प्रतिभाशाली थे। गणित का एक नया सिद्धांत खोजने के कारण इनकी परिगणना यूरोप के मूर्धन्य गणितज्ञों में होने लगी थी। मौलवी 'ज़काउल्ला' (दे०) गणित में अत्यधिक अभिरुचि रखते थे और इनके प्रिय शिष्यों में गिने जाते थे। मौलाना आज़ाद (दे०) और नज़ीर अहमद (दे०) साहब को भी इनके शिष्यत्व का गौरव प्राप्त हुआ था। ये अत्यंत निर्भीक, स्पष्टवक्ता, और दृढ़ संकल्प के व्यक्ति थे। प्रिंसिपल टेलर साहब के विचारों से प्रभावित होकर इन्होंने ईसाई धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली थी जिसके कारण इनकी जाति ने इनका पूर्ण बहिष्कार कर दिया था। परिणामस्वरूप इन्हें जीवन में अनेक आपत्तियों एवं विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। 1857 ई० के स्वाधीनता-संग्राम में इन्हें प्राणों के लाले पड़ गए थे। किंतु किसी शिष्य द्वारा समय पर चेतावनी मिलने के कारण ये बाल-बाल बच गए। कुछ दिनों तक एक मकान में छिपे रहे। फिर भेस बदलकर दिल्ली से बाहर चले गए थे। स्थिति के सामान्य होने पर ये वापिस दिल्ली आ गए। कुछ समय पश्चात् इनकी नियुक्ति रियासत पटियाला के शिक्षा-निदेशक के रूप में कर दीं गई थी। 'तज़करात-उल-कामिलीन' इनकी प्रसिद्ध कृति है; जिसमें रोम और यूनान के विख्यात कवियों तथा दार्शनिकों के जीवन-चरित प्रामाणिक अँग्रेज़ी और अरबी ग्रंथों के आधार पर उल्लिखित हैं। इसमें इन्होंने कतिपय भारतीय दार्शनिकों तथा वाल्मीकि (दे०), शंकराचार्य, भास्कर ज्योतिषी आदि के जीवन पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। इनकी अन्य कृतियों में 'अजाइब-ए-रोज़गार' और 'असूल-ए-इल्म-ए-हय्यत' उल्लेखनीय हैं। ये दोनों कृतियाँ अपनी उपादेयता के कारण आज भी अपना महत्व अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचंद्र उर्फ़ हाफ़िज़ कादरबेग (उ० पा०)

अष्टादश शती में खोर्धा भोइ राजवंश के राजा रामचंद्र देव 'श्री सुरेंद्रनाथ महांति' (दे०) के उपन्यास 'नील शैल' (दे०) के नायक हैं, जो परिस्थिति एवं तकी खाँ की कूटनीति का शिकार होकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर हाफ़िज़ कादरबेग बनते हैं। इसके साथ ही तकी खाँ की बहिन रज़िया बीबी से विवाह करते हैं; किंतु इसके द्वारा तकी खाँ अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफल नहीं होता। रामचंद्र देव की सुदृढ़ जातीय चेतना राजनीति के हाथों बंदी बनने को प्रस्तुत नहीं है। राजनीतिक शक्ति और धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध इनकी उन्मुक्त चेतना और निर्बंध आत्मा का संघर्ष होता है। उत्कल व उत्कल की महान संस्कृति के प्रतीक जगन्नाथ के लिए इनका सर्वस्व समर्पित है।

रामचंद्र देव जगन्नाथ के अनन्य उपासक ही नहीं, 'जगन्नाथ-संस्कृति' के मूर्त प्रतीक हैं। आदिवासी शबर जाति के देवता 'नील माधव' को जगन्नाथ के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले इंद्रद्युम्न अपने जीवन की अंतिम घड़ी में जगन्नाथ के आग्रह पर निरवंशता का वरदान माँगते हैं ताकि वे इंद्रद्युम्न के वंशजों के निजी देवता न बन जायें अथवा समस्त धर्म व संस्कृति के समन्वय के प्रतीक किसी एक के हाथों बंदी न हो जायें। इनका आत्मोद्गार भी इसी विराट् चेतना की अनुगूंज मात्र है।

उड़ीसा की यह विशेषता है कि राज्य का प्रमुख जगन्नाथ को माना जाता है। समस्त प्रशासक उनके प्रतिनिधि मात्र हैं; अत: राज्य-प्रमुख की रक्षा ही सर्वोपरि है। रामचंद्र देव विधर्मी बनकर इस कर्त्तव्य को पूरा करते हैं। ये यद्यपि अपनी प्रजा द्वारा अपमानित होते हैं, अंतिम समय में भी इन्हें यवनत्व का प्रायश्चित भी करना पड़ता है तथापि इन्हें दुःख नहीं है क्योंकि जगन्नाथ आज सुरक्षित हैं। इस महान् लक्ष्य की सिद्धि के बाद इन्हें और कुछ करना शेष नहीं रह जाता है। राज-वैभव के बीच भी ये यायावर हैं।

रामचंद्रविजयमु (ते० कृ०) [रचना-काल—1894 ई०]

यह चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु (दे०)-कृत उपन्यास है। 'चिंतामणि' नामक मासिक पत्रिका की ओर से आयोजित उपन्यास प्रतियोगिता में 1894 ई० का प्रथम पुरस्कार 'रामचंद्रविजयमु' को प्राप्त हुआ। लक्ष्मीनरसिंहम् ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त जो कुछ सामाजिक उपन्यास लिखे थे उनमें से यह भी एक है। इसकी कथा इस प्रकार है: बचपन में ही माता-पिता से वियुक्त रामचंद्र को अपने सद्स्वभाव के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसने अपनी सरल प्रकृति के अनुसार जो कुछ किया है वह उसके लिए घातक सिद्ध हुआ है। किंतु उसने न तो कभी अपनी सद्वृत्ति पर विश्वास खोया है और न अपने भविष्य के प्रति निराशा प्रकट की है। अंत में उसके सच्चरित्र की विजय होती है। शिक्षात्मकता की विशिष्टता के साथ-साथ इसमें स्थानीय प्रकृति का और सामाजिक जीवन का भी सुंदर स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

रामचंद्र शर्मा (क० ले०) [जन्म—1925 ई०]

श्री बी० सी० रामचंद्र शर्मा बैंगलूर के निवासी हैं। इन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। कवि, नाटककार एवं कहानीकार के रूप में इनकी विशेष ख्याति है। 'हृदयगीत' और 'एलु सुतिन कोटे' (सात घेरों का किला) इनकी कविताओं के संग्रह हैं। 'मुवि नीडिद स्फूर्ति' में संगृहीत इनकी कविताएँ उपलब्धि की दृष्टि से नवीन हैं। 'मंदार कुसुम' तथा 'एलनेय जीव' (सातवाँ जीव) इनकी कहानियाँ हैं। 'बाल संजे' इनका नाटक है।

रामचंद्र शास्त्री, कोराड (ते० ले०) [जन्म—1816 ई०; मृत्यु—1900 ई०]

तेलुगु और संस्कृत में कविता लिखने में समर्थ शास्त्रीजी का साधना-केंद्र बंदर नामक स्थान रहा। काव्यशास्त्र के अलावा मंत्रशास्त्र में भी शास्त्रीजी की गति थी। संस्कृत में इनके कई ग्रंथ मिलते हैं जिनमें कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) की शैली में रचित 'घनवृत्त' काफ़ी प्रसिद्ध है। 'कुमारोदयमु', 'श्रृंगार-सुधार्णवमु', 'रामचंद्र-विजयमु', 'धीसौधमु' आदि अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं। कई ग्रंथों की व्याख्याएँ भी इनकी लिखी मिलती हैं। कल्पित इतिवृत्त पर आधारित 'मंजरीमधुकरीयमु' (दे०) नामक नाटिका भी इन्होंने लिखी जिसका तेलुगु नाटक-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। कुछ लोग इसी को तेलुगु का पहला मौलिक नाटक मानते हैं। संस्कृत में इनकी रचना बहुत ही प्रौढ़ और प्रांजल है। 'उन्मत्तराघव', 'वेणीसंहार' (दे०), 'उत्तररामचरित' (दे०) आदि कई संस्कृत-ग्रंथों का इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेलुगु में अनुवाद भी किया था। 'रथांगदूतमु', 'नयप्रदीपमु', 'परशुरामविजयमु' आदि गद्य-रचनाओं के द्वारा शास्त्रीजी ने तेलुगु में गद्य-रचना का मार्ग भी प्रशस्त किया था।

रामचंद्रिका *(हिं० कृ०)*

इसे 'रामचंद्रचंद्रिका' भी कहते हैं, जिसे हिंदी साहित्याकाश के 'उड्गण' महाकवि केशवदास (दे०) ने 1601 ई० में रचा। समग्र ग्रंथ में उनतालीस प्रकाश हैं। इसका आधार है वाल्मीकि-'रामायण' (दे०), और इस पर छाया है 'प्रसन्नराघव' (दे०), 'हनुमन्नाटक' (दे०), और 'कादंबरी' (दे०) की। इस ग्रंथ की प्रस्तावना में श्रीगणेश, सरस्वती जी और श्रीराम की वंदनाएँ हैं; तदनंतर कवि-वंश-परिचय तथा ग्रंथ-रचना-काल और कारण दिए गए हैं। रामकथा का सूत्रपात विश्वामित्र ऋषि के अयोध्यागमन से होता है, और उसका समापन रामाश्वमेधोपरांत राम-सीता मिलन से; तथा पुत्रों और भतीजों को, राज्य-वितरण के पश्चात्, भगवान् राम का राजनीतिक उपदेश है। कवि ने अंत में राम-चरित्र और रामचंद्रिका-पाठ के माहात्म्य का निर्देश किया है।

उपदेशात्मक प्रवचन, नीतिकथन-छंदों की झटिति परिवृत्ति तथा भाषा एवं वर्णित छंदों के अधिक व्यवहार के कारण कथा-प्रवाह को ऐसी क्षति पहुँची है कि रामकथा से अनभिज्ञ पाठक उसके रसास्वाद से वंचित रह सकता है, ऐसी आशंका है। संस्कृत-शब्दों के अत्यधिक प्रयोग एवं आलंकारिक चमत्कार के आवर्त से ब्रजी क्लिष्ट अवश्य हो गयी है।

परंतु यदि गोस्वामी तुलसीदास (दे०) ने 'रामचरितमानस' (दे०) को जनहित के लिए तत्कालीन 'गिरा ग्राम्य' में लिखा, तो महाकवि केशव ने 'रामचंद्रिका' को विद्वानों के विनोद के लिए पांडित्यपूर्ण भाषा में प्रणीत किया। यदि 'मानस' में अवगाहन के द्वारा जनसाधारण की शारीरिक शुद्धि और शीतलता अपेक्षित है तो 'रामचंद्रिका' की ज्योत्स्ना में कलाविद् रसिकों को औद्यानिक क्यारियों की कलित-कलिकाओं का सौरभ-सौंदर्य अभीसिप्त है। अतएव 'रामचंद्रिका' की अपनी निजी विशेषता है। अवधपुरी, सरयू, पंचवटी, दंडक, वर्षा-कालिका, रावण-सीता-वार्ता, वानर-चमू-वर्णन, अंगद-रावण-संवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जहाँ कहीं रामलीला होती है, 'रामचंद्रिका' के संवादों का प्रायः उपयोग होता है; क्योंकि केशवदास ने संवाद-योजना का नाटकीय ढंग से उपयोग किया है जो बहुत रोचक प्रतीत होती है।

रामचरितम् *(मल० कृ०)*

रचनाकार श्रीराम वर्मा। रचना-काल अनुमानतः सन् तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्ष। रचनाकार और रचना-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अधिकतर मतों के अनुसार यह त्रावनकोर-नरेश श्रीराम वर्मा की रचना हो सकती है। मलयाळम के रामकाव्यों में 'रामचरितम्' भाषा, भाव आदि की दृष्टि से प्रशंसनीय रचना है।

'रामचरितम्' में बालकांड से लेकर संपूर्ण कथा का विस्तार नहीं है। इसमें मुख्यतः युद्धकांड ही वर्णित है। आनुषंगिक रूप में अन्य कांडों की कथा का संक्षिप्त संकेत है। इसके युद्ध-वर्णन बड़े ही सजीव तथा अलंकृत हैं। वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) की कथावस्तु ग्रहण करने पर भी रामचरितकार ने अपनी कल्पना का विलास खूब दिखाया है। साहित्य के इतिहास में इस काव्य का उल्लेख विशेषतः इसके छंद-वैशिष्ट्य और तमिल-मिश्रित मलयाळम भाषा के लिए किया गया है। यह काव्य कुल 164 वृत्तों में रचा गया है। प्रत्येक वृत्त में ग्यारह-बारह पाट्टु (दे०) होते हैं और कुल मिलाकर 1814 पाट्टु हैं। प्राचीन मलयाळम का तमिल-मिश्रित छंदविशेष ही पाट्टु है। तमिल-साहित्य के अन्यतम ग्रंथ 'कंब-रामायणम्' (दे०) के कई प्रसंगों से इसका साम्य है और इस दृष्टि से यह कृति उसकी ऋणी है।

रामचरितमानस *(हिं० कृ०)*

गोस्वामी तुलसीदास (दे०) ने इस महाकाव्य को मंगलवार 30 मार्च, 1574 ई० को प्रकाशित किया। बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर, लंका और उत्तर इन सातों कांडों में जन्म से लेकर लंका-विजयोपरांत राज्याभिषेक तक श्री रामचंद्र का वर्णन है। तुलसी के राम दशरथ के पुत्र, विष्णु जी के अवतार विधि-हरि-हर को नचाने वाले तथा परात्पर ब्रह्म हैं; अतएव पाठकों को इस इष्टदेव की महत्ता का स्मरण बार-बार कराया गया है। इस ग्रंथ में ज्ञानभक्ति की समन्वयात्मक चर्चा, उत्कृष्ट दर्शन की अभिव्यक्ति, मानवादर्शों की उपस्थिति तथा काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ श्लाघनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' के आधार 'नाना पुराण निगमागम' हैं। कुछ अन्य स्रोत भी हैं, यथा : वाल्मीकि'-रामायण' (दे०), श्रीमद्भागवत (दे०),'श्रीमद्भगवद् गीता'(दे०),'अध्यात्म रामायण'(दे०),'प्रसन्नराघव' (दे०), 'हनुमन्नाटक'(दे०), 'आनंद रामायण', 'गर्ग संहिता' आदि-आदि। 'मानस' का कथानक कहीं-कहीं वाल्मीकि-प्रदत्त आधार से भिन्न भी है। उदाहरणतः वाल्मीकि-'रामायण' में पुष्प वाटिका-प्रसंग, धनुर्यज्ञ-मंडप में परशुराम जी की उपस्थिति, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद की नाटकीयता का अभाव है। कदाचित् इन व्यक्तियों ने तुलसीकालीन काशीवासियों को रुष्ट कर दिया था। वाल्मीकि के कुछ प्रधान पात्रों की तीक्ष्णता को तुलसी की लेखनी ने मृदुल कर दिया। 'मानस' में अनेक ऐसी बातें हैं जो 'अध्यात्म रामायण' में भी नहीं हैं।

'मानस' के संवाद रोचक हैं, यथा : परशुराम-लक्ष्मण, कैकेयी-दशरथ, भरत-राम, अंगद-रावण के। 'रूपकों के बादशाह' तुलसी ने अनेक सुंदर सांग-रूपकों की सृष्टि की है, यथा : 'मानस' का मानसरोवर, काव्य-रूप, संत-समाज, प्रयाग-राज, रंगमंच पर राम-रवि, पिनाक-पोत, कैकेयी-सर्पिणी, विजयरथ-ज्ञानदीप, भक्ति-मणि, मानस-रोग। 'मानस' की भाषा सरल ब्रजावधी है जो प्रधानतः दोहा-चौपाई और कभी-कभी संस्कृत श्लोकों तथा विविध छंदों और अलंकारों से सुसज्जित है। क्या नर क्या नारी, क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध सभी को यह ग्रंथ परम रुचिकर प्रतीत होता है। इसमें पिता-पुत्र, पति-पत्नी, राजा-प्रजा, सेव्य-सेवक, सभी के लिए आदर्श उपस्थित किया गया है।

गांधी जी को और कोई वस्तु इतना आनंद नहीं देती थी जितना कि गीता का संगीत और तुलसीकृत रामायण। ग्रिफ़िथ का कथन है कि इंगलैंड में बाइबिल जितनी आदृत और लोकप्रिय है, उत्तरी भारत में रामायण उससे भी अधिक है। ए० ए० मैकडोनल (दे०) का मत है कि धर्म और पवित्रता के आदर्श मान से समन्वित 'रामचरितमानस' करोड़ों लोगों के लिए एक प्रकार की बाइबिल है। एफ़० ई० के समझते हैं कि 'मानस' ऐसा महाकाव्य है जिसकी गणना विश्व-साहित्य के महान् अभिजात परमोत्कृष्ट साहित्य में होने योग्य है।

'मानस' की जितनी टीकाएँ हैं उतनी, 'बिहारी-सतसई' (दे०) को छोड़, अन्य किसी हिंदी-ग्रंथ की नहीं। 'मानस' का एक अनुवाद रूसी भाषा में और कई अँग्रेज़ी में विद्यमान हैं।

रामजोशांच्या लावण्या (म० कृ०)

ये पंडित कवियों और शाहीरों को जोड़ने वाली शृंखला है। ये स्वयं को सभी शाहीरों का सिरमौर कहते हैं।

रामजोशी प्रसिद्ध लावणीकार हैं। इनकी लावणियों में मराठों के शासनकाल में समाज की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। विषय की दृष्टि से इनकी लावणियाँ चार प्रकार की हैं—

(1) देवता तथा तीर्थों के वर्णन-संबंधी।

(2) शृंगारिक—

(i) कृष्णकथा पर आधृत

(ii) लौकिक

(3) उपदेशात्मक एवं नीतिपरक।

(4) फुटकल—'महाभारत' (दे०) के प्रसंगों से संबद्ध।

(कौरव-पांडव-युद्ध, भीष्मार्जुन-युद्ध आदि पर लावणियाँ)।

इनकी कविता में संभोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार का प्राधान्य है। शृंगार-वर्णन गीर्वाण है, उसमें किसी प्रकार का उल्लंघन नहीं है। कीर्तनकार होने के नाते इन्होंने अनेक वैराग्यपरक लावणियाँ भी लिखी हैं।

इनकी लावणियों का वैशिष्ट्य सार्थक शब्द-संगुंफन, वर्णन-कौशल तथा लालित्यमयी पद-योजना में निहित है।

इनकी लावणियों में महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन की झाँकी मिलती है।

रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग-समाज (बँ० कृ०)
[रचना-काल—1903 ई०]

पंडित शिवनाथ शास्त्री (दे०)-रचित 'रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग-समाज' ग्रंथ में उन्नीसवीं शती के बंगाल का हृत-स्पंदन अनुभव किया जा सकता है। रामतनु लाहिड़ी का जन्म 1813 ख्रीष्टाब्द में हुआ था और मृत्यु हुई 1898 ई० में। ब्रह्मसमाज के प्रवक्ता देवेंद्रनाथ से रामतनु की उम्र अधिक थी। रामतनु उस युग की नवजागृति के इतिहास के एक अनन्य साधारण व्यक्तित्व थे। धर्म एवं सामाजिक इतिहास के जिस नव-आंदोलन ने उस युग के प्राण-तरंग को आदर्श से महिमान्वित किया था इस ग्रंथ में उसी की प्रतिष्ठा का इतिहास लिपिबद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामतनु के महाजीवन को केंद्र बनाकर शिवनाथ शास्त्री ने इस ग्रंथ में परोक्ष रूप से उन्नीसवीं शती के सांस्कृतिक इतिहास का एक अपरूप चित्र अंकित किया है। बहुत-से महान् पुरुषों के संपर्क में वे आए थे। पारिवारिक परिवेश की पटभूमिका में अंकित इस मर्मस्पर्शी चित्रण में उस युग का यथार्थ चरित्र प्रकट हुआ है। उन्नीसवीं शती के एक अंतरंग प्रलेख के रूप में इस ग्रंथ का मूल्य अपरिसीम है।

रामदास *(म० ले०)* [जन्म—1608 ई०; मृत्यु—1681 ई०]

इनका मूल नाम नारायण था। जब ये राम के उपासक बने तो नाम पड़ा—रामदास। पिता का नाम सूर्याजी पंत था और ये 'जांब' नामक स्थान के निवासी थे। रामदास ने नासिक के निकटस्थ 'टाकली' की गुफ़ा में बारह वर्ष तक तपस्या की और इसके बाद बारह वर्ष तक तीर्थों में भ्रमण किया। काशी, प्रयाग, रामेश्वर, गोकर्ण, पैठण आदि प्रदेशों की परिस्थितियाँ देखकर इनका मन खिन्न हो उठा और कृष्णा नदी के तट पर 'चाफल' की गुफ़ा में इन्होंने अपना निवास बना लिया। रामदास ने भारत में सैंकड़ों हनुमान-मंदिरों और मठों की स्थापना की और शिष्यों को संगठित कर प्रभावशाली उपदेशों के माध्यम से देशोद्धार का महत्वपूर्ण कार्य किया। ये शिवाजी के गुरु और प्रेरणास्रोत थे। 'दासबोध' (दे०) नामक ग्रंथ इनकी चिरस्थायी कीर्ति का आधार है। इसके अतिरिक्त 'सुंदर-रामायण', 'युद्ध-रामायण', 'लघु रामायण', 'मनोबोध' आदि अनेक इनकी स्फुट रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनके काव्य का बाह्य स्वरूप निरलंकृत, लालित्य-हीन किंतु अंतरंग भाव-विचारों की प्रखरता और दृढ़ता से ओत-प्रोत है। संसार के प्रति इनका दृष्टिकोण यथार्थवादी अर्थात् देश-समाजोद्धार की भावना से संभरित है। रामदास केवल पारलौकिक, धर्मोपदेशक संत कवि नहीं हैं—ये ऐहिक-पारमार्थिक दोनों दृष्टियों में संतुलन स्थापित करने में समर्थ हैं।

रामदासु, भक्त *(तें० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

इनका पहला नाम 'कंचर्ल गोपन्ना' था। किंतु रामभक्त के रूप में विख्यात होने से 'भक्त रामदासु' हो गये। ये भद्रादि के राम के परम भक्त थे। हैदराबाद के समीप भद्रादि तहसील में राज्याधिकारी के रूप में कार्य करते हुए राज्य के धन से इन्होंने राम के एक विराट् मंदिर का निर्माण करवाया था। फलस्वरूप इनको बारह वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। कहा जाता है कि बाद में भगवान् राम ने स्वयं आकर वह धन लौटाया था और रामदासु मुक्त हो गये थे।

इनकी दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—'दाशरथी शतकमु' (दे०) तथा 'रामदासु कीर्तनलु'। 'दाशरथी शतकमु' राम की महत्ता का गायन करने वाला स्तुतिपरक शतक-काव्य है। 'रामदासु कीर्तनलु' में उनके बंदी जीवन का दुःख एवं भक्ति का प्रबल आवेग प्रकट हुआ है। इसकी रचनाएँ पच्चीस विभिन्न रागों में निबद्ध हैं तथा इनमें संगीत या साहित्य से कहीं अधिक भक्ति की परवशता के दर्शन होते हैं। तेलुगु के शतककार एवं संगीतकार कवियों में इनका विशेष स्थान है।

रामधान्यचरित्रे *(क० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती का मध्यकाल]

कर्नाटक के वैष्णव भक्त कवियों में अग्रणी कनकदास (दे०) (समय—1550 ई०) की रचना 'रामधान्यचरित्रे' एक अनुपम काव्य है। भामिनी षट्पदी में रचित इस काव्य की कथावस्तु सर्वथा कवि की ही कल्पित है। इसमें भगवान् की महानता और बड़प्पन का सुंदर विश्लेषण हुआ है। भगवान् दोनों के सहायक, ग़रीबनिवाज़ और भक्तजनों के प्रति पक्षपात करने वाले हैं। कवि ने इसमें रागी (एक धान्य) तथा धान के बीच में वाद-विवाद उत्पन्न कर उसमें रानी की जीत दिखाई है और बताया है कि राम ने उसको 'राघव' अभिधान दिया। कवि की यह कल्पना बड़ी मनोरम है, इससे उनकी भक्ति तथा सार्वजनिक विचारधारा स्पष्ट हो जाती है। यह एक सरस और सुंदर काव्य है।

रामनवमी *(अ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1881 ई०]

गुणाभिराम बरुवा (दे०) का यह नाटक पहले 'अरुणोदय' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, फिर दस वर्ष के पश्चात् पुस्तकाकार में छपा था। यह बाल-विवाह और विधवा-समस्या लेकर रचित है। बाल-विधवा नवमी और रामचंद्र में प्रेम हो जाता है, नवमी गर्भवती हो जाती है। वह सामाजिक उत्पीड़न के कारण आत्महत्या करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचंद्र भी आत्महत्या कर लेता है। संपूर्ण समाज विधवा-विवाह की तर्कसंगत उपयोगिता स्वीकार करता है। नाटक पर विद्यासागर के 'विधवा-विवाह' का प्रभाव है। संस्कृत और पाश्चात्य नाट्य-शैलियों का इसमें मिश्रण है। नाटक अंकों और दृश्यों में विभक्त है, सूत्रधार को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। नायक-नायिका के चरित्रों में विसंगतियां हैं, किंतु अन्य चरित्रों में यथार्थता है। आधुनिक असमीया-साहित्य का यह प्रथम नाटक है।

रामनारायण तर्करत्न *(बँ० ले०)* [जन्म—1822 ई०; मृत्यु—1886 ई०]

इनके नाटक इस प्रकार हैं—**सामाजिक नाटक :** 'कुलीन कुलसर्वस्व' (1854), 'नव नाटक' (1866); **प्रहसन :** 'जेमन कर्म तेमनि फल', 'चक्षुदान' (1869), 'उभयसंकट' (1869); **पौराणिक नाटक :** 'रुक्मिणी हरण' (1871), 'कंसबध' (1875), 'धर्म-विजय' (1875); **संस्कृत नाटकों के अनुवाद :** 'वेणीसंहार' (1856), 'रत्नावली' (1858), 'अभिज्ञान शाकुंतल' (1860), 'मालती-माधव' (1861)।

रामनारायण की प्रसिद्धि का कारण इनका पहला नाटक 'कुलीन कुलसर्वस्व' (दे०) है। इसमें उन्होंने कुलीन प्रथा के दोष तथा असंगतियों को लिया है। 'नव नाटक' में बहु-विवाह की बुराइयां दिखाई गई हैं। 'जेमन कर्म तेमनि फल' में पर-स्त्री-प्रेम तथा उससे उत्पन्न विकट स्थिति का रेखांकन किया गया है। 'चक्षुदान' में पुरुष की लंपट-वृत्ति की निंदा की गई है। 'उभयसंकट' में सपत्नी के प्रश्न पर विचार किया गया है। पौराणिक नाटकों में तर्करत्न कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सके। उनके अनुवाद स्वच्छंद हैं अर्थात् नाटककार ने अनुवाद में पर्याप्त संशोधन-परिवर्धन किए। इनका दृष्टिकोण प्राचीन-पंथी होते हुए भी इनकी पकड़ और समझ यथार्थ-पुष्ट है।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से एक ओर नांदी-प्रस्तावना है, दूसरी ओर मृत्यु के दृश्य हैं। भाषा पात्रानुसार है। वस्तु-विन्यास साधारण है।

माइकेल (दे०) से पूर्व नाटक-जगत् में रामनारायण का महत्वपूर्ण स्थान है।

रामप्रसाद शुक्ल *(गु० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

श्री शुक्ल गुजराती के अध्यापक हैं। उन्होंने परंपरीण काव्य लिखे हैं। उनके दो काव्य-संग्रह प्रसिद्ध हुए हैं। मुक्तक काव्य-विधा को उन्होंने नया मोड़ दिया और सोनेट विधा के भी अनेक प्रयोग किये हैं। उनके काव्य-संग्रह 'बिंदु' में मुक्तक का नया स्वरूप मिलता है।

रामभद्रुडु, अय्यलराजु *(ते० ले०)* [समय—1510-1580 ई०]

इनका समय कृष्णदेवरायुलु (दे०) के बाद का है। इन्होंने कृष्णदेवरायलु के द्वारा संस्कृत में रचित 'सकलकथासारसंग्रहमु' (दे०) नामक षट् चक्रवर्तियों की कथाओं से युक्त काव्य का अनुवाद किया था। परंतु अब उस काव्य के कुछ अंश ही उपलब्ध हैं।

'रामाभ्युदयमु' (दे०) इनकी विशिष्ट रचना है। तेलुगु के संक्षेप काव्यों की परंपरा में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसमें राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन है। इनकी रचना संस्कृत के दीर्घ समासों तथा नाना प्रकार के शब्दालंकारों से युक्त होकर कहीं-कहीं जटिल भी प्रतीत होती है। अष्टादशवर्णन आदि प्रबंध-काव्य के लक्षणों को समाविष्ट करने के प्रति कवि जागरूक रहा है। इसके परवर्ती काव्यों में प्रचुरता से पाये जाने वाले कृत्रिम अलंकारों के लिए इनकी रचना मार्गदर्शक बनी रही। कहीं-कहीं औचित्य की दृष्टि से दोष भी इस कवि में पाये जाते हैं।

राममूर्ति, गिड्डुगु *(ते० ले०)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1940 ई०]

आधुनिक युग में तेलुगु-साहित्य के अंदर क्लिष्ट अव्यावहारिक ग्रांथिक भाषा के स्थान पर शिष्ट व्यावहारिक भाषा को प्रतिष्ठित करके साहित्य को जनता के अधिक समीप लाने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त हुआ है। इस दिशा में इनकी अडिग निष्ठा, अथक परिश्रम एवं अपूर्व साहस के कारण एक युग-प्रवर्तक के रूप में ये सम्मानित हुए हैं। व्यावहारिक भाषा के समर्थन में इनके अकाट्य तर्कों एवं उग्रवादिता के कारण ये वज्र के समान प्रबल तथा विध्वंसक माने जाते थे। इनके प्रयासों के फलस्वरूप ही आज तेलुगु-साहित्य में सरल, जीवंत एवं सशक्त भाषा का प्रयोग हो रहा है।

इन्होंने 'सबर' नामक एक जंगली जाति की भाषा, जीवन-पद्धति और उसके आचार-विचारों का गहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन किया था। इसके उपरांत इन्होंने तेलुगु-सबर तथा सबर-तेलुगु कोषों, उस जाति के लोक-गीतों और लोक-कथाओं से संबंधित पुस्तकों की रचना की थी। इस प्रकार तेलुगु में भाषाविज्ञान के अध्ययन का सूत्रपात हुआ था। प्राचीन शिलालेखों के अनुसंधान की दिशा में भी इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनका 'एंटिक्विटीज़ ऑफ़ मुख-लिंग', नामक ग्रंथ इसका प्रमाण है। उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने 'बालकवि शरण्यमु', 'व्यास-मंजरी', 'पंडित भिषक्कुल भाषा भेषजमु', 'गद्यचिंतामणि' आदि कई ग्रंथों की रचना की है।

राममोहन राय, राजा *(बँ० ले०)* [जन्म—1774 ई०; मृत्यु—1833 ई०]

राजा राममोहन राय जहाँ एक ओर ब्रह्मसमाज के प्रतिष्ठापक के रूप में विख्यात हैं वहीं बँगला-गद्य को एक व्यक्तित्व देने तथा उसे आधुनिक मन की अभिव्यक्ति के उपयुक्त बनाने में उनका कार्य सुपरिचित है। संस्कृत, हिंदी, अरबी, फ़ारसी के वे पंडित थे। उनकी पुस्तकों में विवेकवाद, व्यक्ति-स्वातंत्र्य-बोध, मानवाधिकारवाद तथा अंतर्राष्ट्रीय मैत्री का स्वर गुंजित है।

उनके 'वेदांतसार' तथा 'वेदांतग्रंथ' (दे०) (1815 ई०) शिक्षित बंगालियों के प्रति उद्दिष्ट गद्य-ग्रंथ हैं। सहमरण के विरोध में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रवर्तक ओ निवर्तकेर संवाद' 1818 ई० में प्रकाशित हुई थी। मृत्युंजय विद्यालंकार की 'वेदांत चंद्रिका' के उत्तर में 'भट्टाचार्येर सहित विचार' शीर्षक उनका ग्रंथ 1817 ई० में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त 1821 में 'ब्राह्मण सेवधि' तथा 'संबाद-कौमुदी' की रचना कर उन्होंने हिंदू धर्म बनाम मसीही धर्म पर अपने विचार प्रस्तुत किए। केनोपनिषद् तथा ईशोपनिषद् का अनुवाद भी उन्होंने किया। इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ी, संस्कृत, अरबी तथा फ़ारसी में भी उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। बँगला भाषा में उनके और भी कई ग्रंथ हैं।

राममोहन राय की भाषा में जहाँ बोलचाल की भाषा की सरलता दिखाई पड़ती है वहीं प्रतितर्कों के खंडन स्थिर बुद्धि से युक्त उनकी भाषा में प्रभविष्णुता भी लक्षित होती है। निश्चय ही वे बँगला गद्य के निर्माण की दिशा में सचेष्ट नहीं थे क्योंकि धर्म तथा समाज-संस्कारक के रूप में अपने प्रखर व्यक्तित्व का प्रसार ही उनका मूल उद्देश्य था परंतु उनकी अभिव्यक्ति से बँगला गद्य-शरीर को एक स्वतंत्र शैली प्राप्त हुई है—इसमें भी संदेह नहीं। साहित्यिक दृष्टि से यही उनकी प्रमुख उपलब्धि है, नहीं तो उनकी गद्य-शैली तथा अन्वय खंडित है, शब्द-प्रयोग क्लिष्ट और दुर्बोध हैं।

राममोहन रावु, महीधर *(ते० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

श्री राममोहन रावु वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों को परिप्रेक्ष्य में रखकर रचना करने वाले उपन्यासकार एवं नाटककार हैं। 'रथचक्रालु', 'दावानलमु' आदि इनके उपन्यास हैं और 'मब्बुतेरा' नाटक। इनके अतिरिक्त इन्होंने कई विदेशी साहित्य-कृतियों का अनुवाद भी किया है।

रामराजभूषणुडु [समय—सोलहवीं शती ई० का मध्य-काल]

इनका वास्तविक नाम प्रबंधांक भट्टुमूर्ति था। रामराजभूषणुडु इनका विरुद नाम है जो इन्हें विजयनगर साम्राज्य के अंतिम सम्राट अलिय रामरायलु की सभा के 'आभूषण'-कल्प कवि होने के नाते प्राप्त हुआ था। रामराजभूषणुडु की जीवनी से संबंधित अनेक जन-श्रुतियाँ हैं जिनमें वास्तविकता और कल्याण का सम्मिश्रण दिखाई देता है। जन्मतः वे भाटकुल के थे और कविता-पाठ आदि करके जीविका का निर्वाह करना इनके वंशधरों का पेशा था।

रामराजभूषणुडु तेलुगु तथा संस्कृत के चूड़ांत पंडित थे। तेलुगु की विभिन्न कविता शैलियों पर इनका आश्चर्यजनक अधिकार था। इन्हीं के कथानुसार ये 'दशविध कविता-पाटव' इनके अधीन थे। 1. शतावधान कुशलता, 2. घटिकाशतग्रंथकरण-शक्ति अर्थात् एक घड़ी में सौ अनुष्टुप छंद—रचने की क्षमता, 3. आशुप्रबंधबंधाभिज्ञता: आशुशैली में प्रबंधों का प्रणयन करना, 4. ओष्ठ्यनिरोष्ठ्यज्ञता—व्यंजनों तथा स्वरों के आधार पर ओठों को मिलाने या न मिलानेवाली कविता बनाना, 5. अचलजिह्वोक्ति-नैपुण्यः—ऐसे अक्षरों में कविता करना जिनमें जीभ हिलाने की आवश्यकता न पड़े। 6. तत्समभाषावितानज्ञता—पूर्णतः तत्सम शब्दों की सहायता से कविता करना, 7. बहुपद्य-साधित-व्यस्ताक्षरी-धुरीणता—व्यस्त अक्षरों को क्रमहीनता के साथ अलग-अलग संख्याओं में मिला देना और तदनंतर स्मरण-शक्ति के आधार पर पूरा छंद जबानी बता देना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे अनेक छंदों का निर्वाह एक-साथ करना, 8. एक संधाग्राहिकता—एक बार सुनकर अपरिचित छंद को शुद्ध रूप में सुनाना। 9. ओष्ठ्यबिरोष्ठ्य संकरज्ञता : ओठों को हिलाने और न हिलाने के क्रम में कविता करना, 10. अमित यमकाशुधी शक्ति—यमकानुप्राणित कविता आशुरूप में कह सकना। इनमें काव्यगत बौद्धिक व्यायाम और कमनीय काव्य-शिल्प दोनों की अनुपम क्षमता थी। व्युत्पत्ति तथा प्रतिभा की ऐसी युगपत् उपलब्धि अन्यत्र दुर्लभ है।

इनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं : (1) 'वसुचरित्रमु' (दे०), (2) 'नरसभूपालीयमु', (3) हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' (दे०)। तेलुगु-साहित्य में ये तीनों तीन विधाओं की उत्तम कृतियाँ हैं। 'वसुचरित्रमु' तेलुगु के पाँच महाकाव्यों में से एक है। 'नरसभूपालीयमु' रीतिग्रंथ है। तीसरी कृति 'हरिचंद्रनलोपाख्यानमु' द्वर्यथि काव्य है जिसमें हरिश्चंद्र तथा नल के उपाख्यानों का वर्णन युगपत् भाव से हुआ है।

रामलिंगम्पिळ्ळै, वी० नामक्कल *(त० ले०)* [जन्म—1888 ई०]

तमिल के आधुनिक कवियों में 'नामक्कल' निवासी वी० रामलिंगम पिळ्ळै का अग्रगण्य स्थान है। इनकी ख्याति का कारण है इनकी राष्ट्रीयता के भाव से परिपूर्ण सर्वजन-ग्राह्य सरल किंतु सरस कविताएँ तथा गेय पद। एक बार सुनने मात्र से मन में जम जाएँ—ऐसी रोचक पंक्तियाँ होती हैं इनकी कविताओं में। नमक-सत्याग्रह के दिनों में इनका विरचित एक गीत सभी लोगों, विशेषकर सत्याग्रहियों, की ज़बान पर था, जिसका भाव कुछ यों है : 'न खड्ग है, न रक्त है, युद्ध एक आया है, सत्य नित्य नित्य मानने वालो! सभी शरीक हो जाओ।' कदाचित् साहित्यिक गरिमा में इमसे भी श्रेष्ठतर कुछ अन्य समकालीन कवियों के रहते हुए इनकी ख्याति तथा लोकप्रियता उनसे भी अधिक होने का कारण जन-मानस को छूने वाली इनकी सरल पंक्तियाँ ही हैं।

स्कूली शिक्षा के बाद इन्होंने कालेज में उस समय की 'इंटर' (एफ० ए०) तक की पढ़ाई की थी। चित्रकला में निपुण थे और आजीविका का साधन चित्रकारिता ही था। स्वतंत्रता-संग्राम में इन्होंने कारावास भोगा था। देश स्वतंत्र होने के पश्चात् 'तमिल के प्रथम राजकवि' के रूप में इनकी नियुक्ति की गई थी। इनके दो उपन्यास, एक जीवनी, एक प्रबंध-काव्य तथा अनेक कविता-संकलन प्रकाशित हुए हैं। 'तिरुक्कुरल' (दे०) पर एक व्याख्या भी इन्होंने लिखी है।

रामलिंगारेड्डी कट्टमंचि (डा० सी० आर० रेड्डी) *(ते० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

इनका जन्म चित्तूर ज़िले के कट्टमंचि ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम सुब्रह्मण्य रेड्डी था। चित्तूर के हाईस्कूल तथा मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में अध्ययन करते हुए 1901 ई० में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसमें स्वर्णपदक प्राप्त किया। इसके बाद छात्रवृत्ति प्राप्त कर इंग्लैंड गए। 1903 ई० में राइट पुरस्कार प्राप्त कर ये इतिहास की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। वहाँ पढ़ते समय ये 'कैंब्रिज यूनियन' (छात्र-संघ) के उपाध्यक्ष रहे। 1907 ई० में अमरीका जाकर इन्होंने शिक्षाशास्त्र का अध्ययन किया। देश लौटने के बाद ये बड़ौदा कॉलेज के वाइस-प्रिंसिपल बने। 1909 ई० में ये मैसूर के शिक्षा-विभाग में असिस्टेंट इंस्पेक्टर जनरल नियुक्त हुए। मैसूर महाराजा कॉलेज में ये प्रोफ़ेसर भी रहे। यूरोप, कैनाडा, फ़िलिपाइन, जापान आदि देशों में भ्रमण कर लौटने के बाद ये मैसूर राज्य के शिक्षा-विभाग के इंस्पेक्टर जनरल बने। 1920 ई० में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और जस्टिक पार्टी के कार्यकर्ता बनकर, मद्रास विश्वविद्यालय की ओर से विधान सभा के दो बार सदस्य निर्वाचित हुए। 1926 ई० में स्थापित आंध्र विश्वविद्यालय के ये प्रथम कुलपति (वाइस-चांसलर) नियुक्त हुए। 1928 ई० में दुबारा उस पद के लिए चुने गए। 1930 ई० में ब्रिटिश सरकार की नीति के विरोध में इन्होंने त्यागपत्र दिया। 1935 ई० में ये मद्रास लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्य हुए। 1936 ई० में ये फिर से आंध्र विश्वविद्यालय के कुलपति चुने गए और 1951 ई० तक (मरण-पर्यंत) उसी पद पर रहे। 1937 ई० में ये 'कलाप्रपूर्णुडु' की उपाधि से विभूषित हुए। आंध्र विश्वविद्यालय के विकास तथा औन्नत्य में इनका योगदान अनुपम है। ये तेलुगु और अँग्रेज़ी के अनुपम वक्ता तथा शिक्षाशास्त्र एवं राजनीति में पारंगत विद्वान् थे।

'मुसलम्म मरणमु' (दे०) नूतन शैली में, नवीन विचारधारा के अनुकूल लिखा गया इनका खंडकाव्य है। प्राच्य और पाश्चात्य आलोचना-पद्धतियों का समन्वय करते हुए इन्होंने 'कवित्व तत्त्व विचारमु' (दे०) नामक आलोचना-ग्रंथ की रचना की थी। तेलुगु में आधुनिक आलोचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का श्रीगणेश इसी ग्रंथ द्वारा हुआ है। अन्य रचनाओं में 'नवयामिनी' (खंडकाव्य) तथा 'व्यासमंजरी' हैं।

आंध्र विश्वविद्यालय के संस्थापक तथा आधुनिक आलोचना के प्रवर्तक के रूप में रेड्डी जी चिरस्मरणीय हैं।

राम विजय-नाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1568 ई०]

शंकरदेव (दे०) के इस नाटक में 'रामायण' (दे०) के आदिकांड की कथावस्तु का वर्णन है। इसमें विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के गमन और विवाहोपरांत अयोध्याप्रत्यावर्तन तक की मुख्य कथा ग्रहण की गई है। नाटक में सीता-स्वयंवर और धनुर्भंग और परशुराम-दर्पभंग के दृश्य सजीव हैं। कथावस्तु पाँच अवस्थाओं—आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम में विभाजित है। नांदी, नांदी-गीत आदि का भी प्रयोग है। दशरथ की पुत्र-वत्सलता, राम की विनय और वीरता, सीता की राम के प्रति आसक्ति, उनका मन:संघर्ष और परशुराम का दर्प सुंदर शब्दों में चित्रित है। यह कृति भी ब्रजबुलि गद्य-युक्त अंकीया नाटकों में एक है।

रामसरस्वती *(अ० ले०)* [जीवन-काल—सोलहवीं-सत्रहवीं शती]

इनके आश्रयदाता कोचबिहार के नरनारायण आदि अनेक राजा थे। इनका मूल नाम अनिरुद्ध द्विज था; रामसरस्वती, कविचंद्र, भारतचंद्र और भारतभूषण इनके नामांतर अथवा उपाधियाँ थीं। ये नरनारायण ही नहीं उनके पुत्र-प्रपौत्रों तक के राजकवि रहे थे। इन्होंने नरनारायण की प्रेरणा से 'महाभारत' (दे०) की रचना की थी। इनकी रचनाएँ हैं—'महाभारत' (आदि पर्व, व्यंजन पर्व आदि), पंद्रह की संख्या में बध-काव्य और पाँच वीर-काव्य। ये पहले कवि थे तदनंतर भक्त। श्री शंकरदेव (दे०) से इनका परिचय हुआ था किंतु ये उनके अनुयायी नहीं थे। इन्होंने 'महाभारत' का अपनी शैली में अनुवाद किया था जिसमें अपनी ओर से जोड़-तोड़ भी की थी। इनके इस ग्रंथ का वज़न लगभग एक मन होगा। असम में जब युद्ध चल रहा था, तब इन्होंने बध-काव्यों की रचना कर लोगों में शौर्य का संचार किया था। इन काव्यों में आख्यान के साथ रूपक भी है। रूपक के द्वारा देव और आसुरी शक्तियों का निरूपण है। वीर रस के काव्यों में शृंगार आदि अन्य रस भी हैं। 'भीम-चरित' काव्य में हास्य रस है। इसमें असम के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र मिलता है। ये असमीया के वेदव्यास (दे०) हैं, शंकरदेव और माधवदेव (दे०) के पश्चात् प्राचीन कवियों में इन्हीं का नाम अग्रगण्य है।

रामसिंह (मुनि) *(अप० ले०)* [रचना-काल—1000 ई० के लगभग]

मुनि रामसिंह-कृत 'पाहुड़ दोहा' (दे०) नाम की ही एक कृति ही उपलब्ध है। लेखक ने कहीं भी अपने संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया है। इनके समय के विषय में भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते।

इनकी कृति में प्राप्त जैन-संप्रदाय-संबंधी अनेक प्रसंगों से प्रतीत होता है कि ये जैन थे।

रामसिंह राठौड़ *(गु० ले०)* [समय—1920 ई०]

श्री रामसिंह राठौड़ को अपने सांस्कृतिक इतिहास पर 1970 ई० का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। गुजरात में सांस्कृतिक इतिहास की यह प्रथम पुस्तक है। कच्छ की विशिष्ट संस्कृति का उसमें विस्तार से परिचय दिया गया है। कच्छी भाषा की—जिसे भाषा-वैज्ञानिकों ने सिंधी भाषा की एक बोली माना है—विशेषताएँ, कच्छ के संगीत और नृत्य, कच्छ की संस्कृति पर सिंध और सौराष्ट्र का प्रभाव—इन सबका परिचय अनेक विद्वानों के उद्धरणों के साथ दिया गया है।

रामानुजाचार्य *(सं० ले०)* [समय—1037-1137 ई०]

रामानुजाचार्य के पिता का नाम केशव पज्वन् अथवा आसुरी केशव था। इनकी जन्मभूमि भूतपुरी है। इन्होंने अपने मौसेरे भाई गोविंद भट्ट के साथ कांचीनिवासी यादव प्रकाश नामक उद्भट विद्वान से शिक्षा ग्रहण की थी। किंतु आगे चलकर अपने गुरु यादव प्रकाश से रामानुज का मतभेद हो गया। एक दिन प्रयाग जाते समय यादव प्रकाश ने रामानुज को गंगा में गिराने की योजना बनाई थी, परंतु रामानुज को गोविंद ने यादव प्रकाश की दुर्भावना पहले से ही बतला दी थी। इससे रामानुज के प्राण बच गए।

रामानुज-रचित ग्रंथों में 'श्रीभाष्य', 'वेदांतसार',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वेदार्थ-संग्रह', 'वेदांतदीप' तथा 'गीताभाष्य' प्रमुख हैं। 'श्रीभाष्य' की रचना इन्होंने अपने एक शिष्य की सहायता से की थी। सुदर्शन सूरि ने इनके 'श्रीभाष्य' पर 'श्रुति-प्रकाशिका' नामक प्रख्यात टीका लिखी है।

रामानुजाचार्य का दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद है। रामानुज-दर्शन के अनुसार विभिन्न जीव एवं जड़ जगत् ब्रह्म के शरीर, प्रकार एवं विशेषण कहे गए हैं। जीव चित् एवं जड़ जगत् अचित्। चित् एवं अचित् से विशिष्ट ब्रह्म ही रामानुज-दर्शन का विशिष्टाद्वैत तत्त्व है। इसीलिए रामानुज का दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रख्यात हुआ है। रामानुज दर्शन के अनुसार यद्यपि जीव तथा जगत् की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई है, तथापि परमेश्वर अंतर्यामी रूप से भोक्ता (=जीव) एवं भोग्य (=जगत्) में स्थित रहता है।

वैष्णव-दर्शन के सिद्धांतों में रामानुज का दार्शनिक सिद्धांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। डा० थीबो ने तो रामानुज के 'श्रीभाष्य' को ही 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) का समीचीन भाष्य माना है। इसके अतिरिक्त रामानुज ने ब्रह्म को चिर एवं अचिर से विशिष्ट सिद्ध कर दर्शन को व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया है।

रामाभ्युदयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1550 ई०]

अय्यलराजु रामभद्रुडु (दे०)-कृत 'रामाभ्युदयमु' तेलुगु के संक्षेप-काव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस काव्य में उत्तरकांड की कथा को छोड़कर राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन है। यह प्रबंध-काव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण एक सरस रचना है। इसकी शैली पूर्णतः आलंकारिक है। संस्कृत के दीर्घसमासों, श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों तथा चित्रकाव्य की रचना के प्रति कवि का विशेष अनुराग इसमें व्यक्त हुआ है। इनके परवर्ती काव्यों में अतिशय आलंकारिकता इन्हीं के अनुकरण के कारण प्रकट हुई है, इसमें कहीं-कहीं औचित्य की दृष्टि से दोष भी पाए जाते हैं जैसे—विश्वामित्र द्वारा सीता के सौंदर्य का वर्णन; ऋष्य शृंग की कहानी में वेश्याओं की माया तथा उनके विभ्रम का वर्णन आदि। अलंकारों के चमत्कार की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण माना जाता है।

रामामृदम्, ला० स० *(ते० ले०)*

निजी व्यवसाय में बैंक आफ़िसर होते हुए भी इन्होंने उपन्यासकार के रूप में ख्याति अर्जित की है। इस शती के तीसरे दशक से ही ये सृजनात्मक साहित्यिक लेखन में प्रवृत्त हुए थे। उस समय 'मणिक्कोटि' पत्रिका में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। तमिल-भाषी पाठकगण आज 'कलैमकळ्', 'अमृतचुरपि' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से इनके कई उपन्यासों से परिचित हो चुके हैं।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का लेखन इनका विशिष्ट क्षेत्र है। इस क्षेत्र का निर्वाह किसी भी लेखक के लिए एक चुनौती अवश्य है। फलतः इनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रयोगात्मकता की मुद्रा द्रष्टव्य है। इनकी 'तकनीक' में जेम्स जायस, वर्जीनिया वुल्फ़ आदि पाश्चात्य उपन्यासकारों की 'चेतना-प्रवाह' शैली का समानांतर रूप देखा जा सकता है। कथावस्तु-योजना का कोई अपना उपयोग नहीं है, वह पात्रों के व्यक्तित्वों के भीतर-ही-भीतर की झाँकियाँ प्रदर्शित करने के लिए एक उपाय-मात्र है। भाषा जक्खड़ और दुरूह है। अंतर्मन की प्रवृत्तियों तथा स्वप्नात्मक प्रक्रियाओं का चित्रण अत्यंत प्रभावोत्पादक है। यथा 'जननी' नामक लघु उपन्यास में कल्पना है कि काली देवी जी अपनी इच्छा-तृप्ति के लिए एक मानव-परिवार में पैदा होती हैं पर मानव-शरीर में घुस जाने के बाद उन्हें कितनी परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, नारी-जन्म में पुरुष के सामने कितने विचित्र लज्जाशील अनुभवों को भोगना पड़ा है—इनका मन:स्थितिप्रधान, वर्णन सूक्ष्म अंतर्दर्शिता से युक्त है। इनके 'गायत्री', 'पुत्र', 'अपिता' आदि उपन्यासों में मानसिक अवस्थाओं का, व्यक्तित्वनिष्ठ समस्याओं का प्रतिपादन चमत्कारिक एवं विचारोत्तेजक है।

रामायण *(पं० कृ०)*

रचयिता—पं० मानसिंह 'कालिदास'। यह पंजाबी-साहित्य का एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। यह वाल्मीकि (दे०) की 'रामायण' (दे०) एवं तुलसीदास (दे०)-कृत 'रामचरितमानस' (दे०) से प्रभावित दोहा छंद में लिखित कृति है। भाषा प्रधानतया पंजाबी परंतु हिंदी के तद्भव शब्दों से समन्वित। कथाक्रम में कहीं-कहीं अंतर। कल्पना का आश्रय। राम-लक्ष्मण-प्रसंग में से कतिपय पंक्तियाँ पठनीय हैं—

लच्छमन देख एकांत समय नू प्रश्न करे प्रभ आगे।
असल उपाव मुकल दा केहड़ा प्रभ चरनी चित लागे।
राम चंदर महाराज आखदे सुन्यो लच्छमन भाई।
ऐसा तू परसंग छेड़्या ए तेरी चतराई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस अलंकार की दृष्टि से भी महाकाव्य सुंदर बना है। सर्गांत में छंद-परिवर्तन की परिपाटी का निर्वाह नहीं किया गया है।

रामायण *(बँ० कृ०)*

शाश्वत भारतवर्ष का हृत्स्पन्दन आज भी 'रामायण' एवं 'महाभारत' के बीच नित्य-ध्वनित है। बँगला में रामायण महाकाव्य के अनुवाद के द्वारा महाकवि कृत्तिवास ओझा ने जिस काव्य-धारा को प्रवहमान किया था वह आज भी जीवन-जाह्नवी के रूप में विराजमान है। कृत्तिवास की 'आत्मविवरणी' के बारे में पंडितों में संदेह है। 'आत्मविवरणी' के अनुसार इनके पिता का नाम वनमाली और माँ का नाम मेनका था एवं ये फुलिया गाँव के निवासी थे। बहुतों की धारणा है कि इनका जन्म 1399 ई० में हुआ था।

श्रीरामपुर मिशन प्रेस 1803 ई० में पाँच खंडों में सर्वप्रथम कृत्तिवास की 'रामायण' प्रकाशित हुई थी। इसके उपरांत इसके विभिन्न संस्करण प्रकाशित हुए। कृत्तिवास के काव्य का मूलपाठ आज अतीत के अंधकार में है। इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन ही है। फिर भी कृत्तिवास की 'रामायण' बंगाल के ग्राम के निभृत निकुंज से लेकर राजप्रासाद तक प्रत्येक स्थान में समादृत है।

'रामायण' अनुवाद के द्वारा जिन्हें ख्याति मिली है, उनमें सर्वप्रथम स्मरण योग्य हैं नित्याननंद आचार्य (अद्भुताचार्य) जिनका ग्रंथ 'अद्भुत रामायण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। ये कदाचित् सत्रहवीं शती एवं रामप्रसाद राय (यथाक्रम पिता और पुत्र) ने एकत्र होकर 'अद्भुत आश्चर्य रामायण' की रचना की थी। पूर्व बंगाल की महिला-कवि चंद्रावती ने रामायण-रचना के माध्यम से अशेष ख्याति प्राप्त की थी। रघुनंदन गोस्वामी-कृत 'राम वसायण', कविचंद्र शंकर चक्रवर्ती-रचित 'विष्णुपुरी रामायण' के अतिरिक्त कैलास बसु, रामशंकर दत्तराय, द्विज लक्षण आदि कवियों ने भी रामायण का अनुवाद किया है।

रामायण (सं० कृ०) [रचना-काल—500 ई० पू०]

'रामायण' के रचयिता वाल्मीकि दे० हैं। वाल्मीकि आदि कवि एवं 'रामायण' आदि काव्य के रूप में प्रख्यात हैं। 'रामायण' में बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड, लंकाकांड तथा उत्तरकांड—ये 7 कांड हैं। 'रामायण' पर—'रामायण-तिलक', 'रामायणभूषण', 'तीर्थीय रामायणशिरोमणि' तथा 'मनोहरा' आदि अनेक टीकाएँ मिलती हैं।

'रामायण' में विशेष रूप से रामचरित का वर्णन है। दाशरथि राम 'रामायण' की समस्त कथा के नायक हैं। 'रामायण' में विशेष रूप से दो वर्गों के पात्र हैं—एक राम वर्ग के और दूसरे रावण वर्ग के। राम वर्ग के पात्रों में भरत, लक्ष्मण, सीता, हनुमान एवं सुग्रीव आदि तथा रावण वर्ग के पात्रों में कुंभकर्ण, मेघनाद तथा अंगद आदि हैं।

रावण असत् अर्थात् अधर्म का प्रतीक है और राम सत् अर्थात् धर्म के अवतार रूप हैं। अधर्म के अधिष्ठाता के रूप में रावण के कृत्य ऋषियों के यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करना एवं सीता-हरण आदि हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के धर्मकृत्य धर्मपोषक कृत्य हैं। इन कृत्यों में रावण-वध सर्वाधिक प्रमुख है।

मानव-धर्म का जैसा आदर्श रूप 'रामायण' में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं। इसके अतिरिक्त विश्व परिवार के विविध धर्मों की स्थिति भी 'रामायण' की अद्भुत देन है, उदाहरण के लिए, राम के द्वारा आदर्श राजधर्म, सीता के द्वारा पत्नीधर्म, भरत एवं लक्ष्मण के द्वारा भ्रातृधर्म, सुग्रीव द्वारा सुहृद्-धर्म एवं हनुमान के द्वारा आदर्श सेवक के धर्म की प्रतिष्ठा 'रामायण' के अंतर्गत की गई है।

मानवतावादी धर्म की स्थापना 'रामायण' का प्रमुख उद्देश्य है। 'रामायण के आदर्श धर्म की प्रतिष्ठा राम के आदर्श चरित द्वारा हुई है। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'रामायण' का धर्म जीवन-दर्शन के रूप में भी ग्राह्य है।

रामायण कल्पवृक्षमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1933-1961 ई०]

'रामायण कल्पवृक्षमु' (भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत) विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) की काव्य-प्रतिभा की उत्कृष्ट परिणति है। इसमें कवि की दीर्घ-कालीन साधना एवं संदेश का चरम रूप प्रतिफलित हुआ है। यह छह कांडों का विशालकाय काव्य है। प्रत्येक कांड में पाँच-पाँच खंड हैं। संपूर्ण ग्रंथ में लगभग तेरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजार छंद हैं।

अनेक कवियों द्वारा वर्णित रामायण की कहानी में श्री सत्यनारायण ने कई स्थानों पर अपनी नयी उद्भावनाओं को भी समाविष्ट किया है—जैसे कैकेयी-प्रसंग में, बाल लीलाओं के वर्णन तथा प्रकृति-वर्णन। इनकी कैकेयी राम की कार्यसाधिका है।

विविध वर्णन-शैलियों, अलंकारों, छंदों एवं लाक्षणिक प्रयोगों की अतिशयता के कारण रचना क्लिष्ट एवं दुरूह हो गई है। यह काव्य भाव-संपत्ति तथा युगानुकूल चेतना एवं संदेश को प्रदान करने की दृष्टि से अधिक संपन्न नहीं कहा जा सकता। इस काव्य का प्रसार केवल विद्वान पाठकों तक ही हुआ है।

रामायण महाकाव्य *(म० कृ०)*

'रामायण महाकाव्य' के रचयिता गोपाळ गोविंद मुजुमदार (1883-1949 ई०) अर्थात् कवि साधुदास हैं। इन्होंने चार खंडों में राम-जीवन पर आश्रित 'रामायण महाकाव्य' रचना की योजना बनाई थी। इनमें से तीन खंड तो पूर्ण हुए पर 'पुरविहार' नामक चौथा पूर्ण न हो सका। 'वनविहार' की रचना 1914 ई० में हुई थी। 'रणविहार' की 1916 ई० में तथा 'गृहविहार' की 1928 ई० में।

कवि साधुदास आधुनिक काल के संक्रांति काल के कवि हैं। परंतु इस महाकाव्य की रचना के लिए इन्होंने संस्कृत के पंचमहाकाव्यों के आदर्श को सामने रखा है। 'वनविहार' में कवि को प्रकृति-वर्णन करने का पर्याप्त अवकाश मिला है। तीनों खंडों में 'गृहविहार' खंड सर्वाधिक सरस बन पड़ा है।

इनकी रचना में उदात्तता नहीं है, सर्वत्र सौम्यता है। इन्होंने विविध प्रकार के वर्णिक वृत्तों का प्रयोग किया है तथा प्रत्येक छंद अलंकृत है। संस्कृत एवं मराठी पर इनका असामान्य प्रभुत्व था। 'रामायण महाकाव्य' की भाषा संस्कृत-गर्भित है—यहाँ तक कि कहीं-कहीं दुरूहता का स्पर्श कर गई है। कवि ने स्वयं टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ दे दिए हैं जिससे इस काव्य को पढ़ने में सहृदय को कठिनाई न हो।

इस रचना में काव्य की कवित्व-शक्ति की अपेक्षा पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही देखने को मिलती है।

रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

'रामायण' (दे०) की कथा को संकीर्तन शैली में चौबीस भिन्न-भिन्न छंदों में निबद्ध चौबीस भागों में विभक्त करके प्रस्तुत किए गए इस ग्रंथ के रचयिता तुंचन्त एषुत्तच्छन् (दे०) माने जाते थे। परंतु उळ्ळूर् (दे०) आदि इतिहासकार इस मत के विरुद्ध हैं। इसकी छंदयोजना के साथ पद्यों की टेक भी जुड़ी हुई है, अर्थात् प्रत्येक छंद के सभी पद्यों का अंत एक ही प्रकार होता है।

मलयाळम के प्राचीन काव्यों में रामायण-कथा पर आधारित भिन्न-भिन्न ग्रंथों में 'रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्' प्रचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

रामराजा बहादुर *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1918-1920 ई०]

यह सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) का ऐतिहासिक उपन्यास है। इस में धर्मराजा के नाम से विख्यात त्रावनकोर-नरेश रामवर्मा महाराजा के शासन-काल का इतिहास वर्णित है। मंत्री राजा केशवदास की राजभक्ति और कार्य-कुशलता कथा-वस्तु की मुख्य धारा है और दो भागों में दो मुख्य प्रणय-कथाओं का भी उन्मीलन हुआ है। पृष्ठभूमि टीपू सुलतान के साथ त्रावनकोर की लड़ाई की है और उस सिलसिले में भिन्न-भिन्न देशभक्तों और देशद्रोहियों के कार्यकलापों की कहानी भी अनावृत होती जाती है। 'मार्त्तांडवर्मा' (दे०) और 'धर्मराजा' (दे०) शीर्षक दो पिछले उपन्यासों के सिलसिले में यह तीसरा है।

ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-विकास में रामराजा बहादुर में प्रकट होने वाला पाटव अद्भुत है। उपन्यास के सापेक्षतः कम महत्व के पात्रों के चरित्र के विकास में लेखक को अत्यधिक सफलता मिली है। प्रत्येक पात्र के संभाषण की शैली का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न है और इस कारण से उपन्यास आकर्षक बना है।

रामिरेड्डी, दुव्वूरि *(तें० ले०)* [जन्म—1897; मृत्यु—1947 ई०]

ये आंध्र के नेल्लूर ज़िले के रहने वाले थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन से ही रचना में इनकी रुचि थी। भावुकता, ग्रामीण जीवन के प्रति सहज अनुराग, वैज्ञानिक अनुसंधान की जिज्ञासा आदि विशेषताओं ने इनकी रचना को रमणीय, हृदयहारी और ज्ञानवर्द्धक बनाया था। इनकी सबसे पहली रचना 'अग्नि-प्रवेश' इनकी बीस साल की अवस्था में प्रकाशित हुई। इसके बाद 'वनकुमारी' (1928 ई०) इनकी पुरस्कृत रचना थी। इनकी मौलिक रचनाओं में 'कृषीवलुडु' (1919 ई०) अर्थात् 'किसान' बहुचर्चित काव्य है। इसमें ग्राम्य जीवन का सजग और सहज चित्र प्रस्तुत हुआ है। फ़ारसी भाषा और साहित्य के साथ इनका प्रगाढ़ परिचय था। उमरख़य्याम की रुबाइयों का इन्होंने 'पानशाला' (दे०) के नाम से तेलुगु-रूपांतर प्रस्तुत किया था। इस अनुवाद की भूमिका इनकी भावयित्री प्रतिभा की परिचायक है। समय-समय पर प्रकाशित साहित्य-समीक्षा-संबंधी इनके लेख 'सारस्वत व्यासमुलु' के नाम से 1935 ई० में प्रकाशित हुए। अंतिम दिनों में 'पलितकेशमु', 'गुलाबि तोटा', 'कडपटि वीडकोलु' (आखिरी विदाई) जैसे काव्यों के अतिरिक्त रामिरेड्डि ने कुछ नाटक भी लिखे।

रामैया, वी० एस० *(त० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

तमिलनाडु के मदुरै ज़िले के वत्तलक्कुंडु में जन्म बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार। साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ अनेक ज्ञानवर्द्धक कृतियों की रचना की है। इन्होंने 1920 ई० के आसपास कहानीकार के रूप में अपना साहित्यिक जीवन प्रारंभ किया। शीघ्र ही इनकी गणना पुदुमैप्पित्तन (दे०), कु० पा० राजगोपालन (दे०) आदि प्रसिद्ध कहानीकारों के साथ होने लगी। रामैया ने कई उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं। इन क्षेत्रों में भी इन्हें अपूर्व सफलता मिली है। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'मलरुम मणमुम', 'ज्ञानोदयम', 'पुवुम पोन्नुम', 'कुंकुमप्पोट्टु कुमारस्वामी' (कहानी), 'नंदा विळक्कु', 'प्रेमहारम' (उपन्यास), 'प्रेसिडेंट पंजाट्शरम', 'तेरोट्टि महन', 'पुविलंगु मल्लियम मंगलम', 'पोलीसरकान महल', 'पदच्चोरु' (नाटक) आदि। इन्होंने कुछ सुंदर रेडियो नाटकों की रचना भी की है। इन्होंने भारती (दे०) के प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य 'पांचाली शपदम' (दे०) को रंगमंचीय नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है।

इनकी अधिकांश कहानियाँ भाव-प्रधान हैं, पारिवारिक एवं सामाजिक विषयों से संबद्ध हैं। सभी कहानियों में चरम सीमा की स्थिति की सुंदर नियोजना है। कारण रस-प्रधान इनकी कहानियों को पढ़कर पाठक अपने आँसुओं को रोक नहीं पाता है। कहानियों में नाटकीयता भी है। 'कुंकुमप्पोट्टु कुमारस्वामी' शीर्षक कहानी माला की कहानियों में एक आदर्श पुलिस वाले के चरित्र और क्रियाकलाप का अत्यंत सरस-सजीव चित्रण प्राप्त होता है। इन कहानियों में आंचलिकता का पुट भी है। इनके नाटक नाटकोचित सभी तत्त्वों से युक्त हैं। कथा-विन्यास और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यंत सफल हैं। इन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, हास्य-व्यंग्य-प्रधान सभी प्रकार के नाटकों की रचना की है। उपन्यासों में प्रायः सामाजिक घटनाओं को आधार बनाया गया है।

तमिल साहित्य में इनका सर्वाधिक योगदान कहानी और नाटक के क्षेत्र में है। 'मणिक्कोडि' पत्रिका के संपादक के रूप में इन्होंने स्वयं कहानी-रचना कर और विभिन्न लेखकों को कहानी रचने की प्रेरणा देकर कहानी-साहित्य को, और स्वतंत्रता-परवर्ती युग में विभिन्न विषयों को लेकर सफल अभिनेय नाटकों की रचना कर तमिल नाटक साहित्य को समृद्ध किया।

राय, अन्नदाशंकर *(बँ० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

अन्नदाशंकर राय उन अति-आधुनिक उपन्यासकारों में हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में आधुनिक मानव-मन को आच्छन्न करने वाली पृथ्वीव्यापी जटिल चिंतनधारा एवं समस्याओं की आलोचना करते हुए व्यक्ति-जीवन का विश्लेषण किया है। इनकी मननशक्ति अत्यंत तीक्ष्ण एवं सक्रिय है—कदाचित् इसीलिए ये उपन्यासकार की अपेक्षा चिंतनशील विचारक अधिक प्रतीत होते हैं। इनके प्रारंभिक उपन्यासों में 'असमापिका' (1930), 'आगुन निये खेला' (1930), 'पुतुल निये खेला' (1933) में निषिद्ध प्रेम तथा लेखक के विलायत के अनुभव लघु व्यंग्य-प्रहसनात्मक ढंग से व्यक्त हुए हैं जिनमें जीवन की गहरी आलोचना नहीं है।

'सत्यासत्य' (1932-42) इनका छह खंडों में रचित बृहत् उपन्यास है जिसमें आधुनिक युग की समस्त जटिल समस्याएँ, विभिन्न राजनीतिक एवं अर्थनीतिक मतवाद एवं मानव-कल्याण के परस्पर विरोधी आदर्शों की अत्यंत सूक्ष्म एवं कुशलता से आलोचना हुई है। इस उपन्यास में लेखक ने अपने चिंतन को चरित्रों का रूप प्रदान किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह महाकाव्यात्मक उपन्यास अन्नदाशंकर की प्रतिभा का श्रेष्ठ निदर्शन है। 'सत्यासत्य' के उपरांत ये और भी अधिक दार्शनिक भावापन्न हो उठे हैं। पाँचवें दशक में लिखित 'कन्या' उपन्यास में इन्होंने अपने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। अप्राप्य को पाने की साधना ही मनुष्य की चिरंतन साधना है—इसमें व्यर्थ होने पर भी मनुष्य का अनुसंधान खत्म नहीं होता। उपन्यास का यही वक्तव्य है। लेखक के दूसरे उपन्यास भी वक्तव्य-प्रधान हैं। सांप्रतिक काल में लिखे गए दो उपन्यास 'विशल्यकरणी' एवं 'तृष्णार जल' में मूल विषय प्रेम-तत्त्व है। बँगला साहित्य में अन्नदाशंकर राय तत्त्व-जिज्ञासु उपन्यासकार हैं। इनकी इस सार्थकता में ही इनकी दुर्बलता छिपी हुई है। नाना प्रकार की मनस्तात्त्विक, जटिलता, मानसिक गूढ़ैषणा एवं विशुद्ध चिंतनशील चेतना की अभिव्यंजना से इनके उपन्यासों में अतिकथन का दोष आ गया है।

रायकृष्णदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये वाराणसी में उत्पन्न हुए और इनका उपनाम 'नेही' है। प्रेमचंद (दे०) के समकालीन कहानीकार एवं गद्यगीतकार माने जाते हैं एवं प्रसाद (दे०) जी के अंतरंग मित्रों में इनकी गणना की जाती है। अब चित्रकला, मूर्तिकला एवं पुरातत्त्व में विशेष रुचि है तथा ललित कला अकादमी के सदस्य हैं। ये साहित्य-प्रकाशन संस्था, भारती भंडार के संस्थापक हैं और भारतीय कला-भवन की स्थापना भी इन्हीं के सदप्रयत्नों का परिणाम है।

भावुकता इनके गद्यगीतों का प्राण है। 'प्रवास' में इनके गद्यगीत संगृहीत हैं। 'साधना', 'आख्यान', 'सुधांशु' इनके कहानी-संग्रह है। इनकी कहानियों में भारतीय जीवन के सामाजिक व्यंग्य एवं सरसता दोनों विद्यमान हैं। 'भारतीय चित्रकला' और 'भारतीय मूर्तिकला' इनके खोजपरक अनथक परिश्रम व्यक्त करने वाले ग्रंथ हैं, यों तो पाश्चात्य विद्वानों ने इन विषयों पर काफी लिखा है, परंतु हिंदी में विस्तृत विश्लेषण के साथ इन विषयों पर इन्होंने पहली बार लिखा है। हिंदी के गद्य-गीतकारों में माखनलाल चतुर्वेदी (दे०) एवं रावी के साथ इनका भी नाम लिया जाता है।

रायचौधुरी, अंबिकागिरि *(अ०ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1967 ई०]

जन्मस्थान : कामरूप का बरपेटा गाँव।

इन्होंने बंगभंग आंदोलन के समय एनार्किस्ट सेवादल का गठन किया था। 1904 ई० में इनका नाटक 'बंदिनी भारत' ज़ब्त कर लिया गया था। 1918 ई० में इन्होंने प्रेस की स्थापना की थी। 1921 ई० के असहयोग आंदोलन में जब ये जेल चले गये थे तो किसी ने प्रेस में आग लगा दी थी जिससे सारी पुस्तकें नष्ट हो गई थीं। 1923 ई० में इन्होंने पुनः प्रेस की व्यवस्था की थी। ये कई संस्थाओं के जन्मदाता तथा पत्रिकाओं के संपादक थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'तुमि' (दे०) (1915 ई०), 'बीण' (1916 ई०), 'अनुभूति' (1954 ई०), 'बंदो कि छंदेरे' (1958 ई०), 'स्थापन कर' (1958 ई०), 'वेदनार उल्का' (साहित्य अकादमी पुरस्कार 1967 ई०)। **निबंध-संग्रह** : 'जगतर शेष आदर्श' (1916 ई०), 'डेका डेकरीर वेद' (1942 ई०), 'आहुति' (1953 ई०)।

इनकी प्रसिद्धि ज्वालामयी कविताओं के कारण है। इन्होंने जनता में कविताओं द्वारा क्रांति का प्रचार किया है। इनकी दो पुस्तकें अँग्रेज़ सरकार द्वारा ज़ब्त की गई थीं। 'तुमि' किसी प्रिया को संबोधित कर लिखा गया है। 'बीण' में भी प्रेम का वर्णन है किंतु यह प्रेम इंद्रियातीत अनुभूति से युक्त है। अन्य कविताओं में इनका विद्रोही स्वर मिलता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् इन्होंने भ्रष्टाचार, अनाचार और शोषण के विरोध में लेखनी उठाई थी। बँगला-मंच का प्रभाव कम करने के लिए नाटक लिखे थे। इन्होंने पूर्ण शैली में उग्र राष्ट्रीय भावना के निबंध लिखे हैं।

रायचौधुरी, उपेंद्रकिशोर *(बँ० ले०)* [जन्म—1863 ई० मृत्यु 1915 ई०]

भारतवर्ष में हाफ़टोन-ब्लाक शिल्प के प्रवर्तक चित्रशिल्पी उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी बँगला साहित्य के प्रधान उन्नायक हैं। इन्होंने एवं इनके परिवार के कतिपय सदस्यों ने शिशु-साहित्य के निर्माण की दिशा में जो कुछ भी काम किया है वह अतुलनीय है। उपेंद्र बाबू ने बच्चों के लिए 'संदेश' (1913) पत्रिका निकालकर शिशु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के स्वर्ण-युग की सूचना दी थी। इन्होंने 'छेलेदेर रामायण' (1896) एवं छेलेदेर महाभारत' की भी रचना की थी जिसका आकर्षण आज भी कम नहीं हुआ है। आज तक इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। बँगला देश में प्रचलित शिशु-कविताओं को गद्य-रूप देते हुए इन्होंने 'टुनटुनिर बई' (1910) प्रकाशित की थी। शिशुओं के लिए यह एक उल्लेखनीय कहानी-संग्रह है। चित्र-समेत यह कहानी-संग्रह चिरंतन है एवं इसकी वाचन-भंगी अत्यंत आकर्षक।

उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी शिशु-पुस्तकें कैशोर के विभृत अपराह्न में या प्रौढ़ता के विरल अवसर में समान रूप से आनंददायी हैं।

रायचौधुरी, सरोजकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

सरोजकुमार रायचौधुरी के उपन्यासों की विषयवस्तु एवं अभिव्यक्ति शैली लगभग ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे०) के अनुरूप होने के कारण इन्हें जन-प्रियता अधिक नहीं मिल पायी। तारा बाबू के उपन्यासों की आंचलिकता का आधार बीरभूम है, तो इनका पश्चिम मुर्शिदाबाद—यद्यपि सरोज बाबू के उपन्यासों में आंचलिकता का तत्त्व तारा बाबू की अपेक्षा कम ही है।

सरोज बाबू के उल्लेखनीय उपन्यास हैं: 'बंधनी' (1931), 'शृंखल' (1932), 'आकाश ओ मृत्तिका' (1933), 'पांथनिवास' (1935), 'मयुराक्षी, 'गृहकपोती' 'सोमलता' (1938), 'हंसबलाका'(1937), 'कालो घोड़ा' (1944) आदि। कहानियों की पुस्तकों में हैं 'देह यमुना' (1936), 'मनेर गहने' (1936), 'क्षुधा' (1944)आदि।

वैष्णव जीवन के यथार्थ चित्रांकन की दृष्टि से इनके तीन खंडों में संपूर्ण उपन्यास 'मयूराक्षी', 'गृह-कपोती' एवं 'सोमलता' उल्लेखनीय हैं। चरित्र-चित्रण एवं अपने वक्तव्य के प्रसार में ये कभी भी संयम नहीं खोते। इनका परिमिति-बोध ही इनका सर्वप्रधान गुण है। गल्प-विन्यास, चरित्र-सृष्टि एवं जीवन-तत्त्व की गंभीरता इनके उपन्यासों की प्रशंसनीय विशेषताएँ हैं।

राय, द्विजेंद्रलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1913 ई०]

इनके नाट्य-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है: (i) **प्रहसन**—'समाज बिभ्राट ओ कल्कि अवतार' 1895), 'बिरह' (1897), 'एह्य बा सुखी परिवार' (1900), 'प्रायश्चित्त' (1902), 'पुनर्जन्म' (1911), 'आनंद विदाय' (1912); (ii) **पौराणिक नाटक**: 'पाषाणी' (1900), 'सीता' (1908), 'भीष्म' (1914); (iii) **ऐतिहासिक नाटक**—'ताराबाई' (1903), 'प्रतापसिंह' (1905), 'दुर्गादास' (1906), 'नूरजहाँ' (1908), 'मेवाड़-पतन' (1908), 'साजाहन' (दे०) (1909), 'चंद्रगुप्त' (दे०) (1911), 'सिंहल-विजय' (1915); (iv) **सामाजिक नाटक**: 'परपारे' (1912), 'बंगनारी' (1916)। राय की नाट्य-प्रतिमा में वैविध्य है। इन्होंने हास्य-व्यंग्यपूर्वक लघु नाटक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक नाटक लिखे हैं। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इन्होंने प्रहसन, पाँच अंकीय नाटक तथा गीति-नाटक—सभी क्षेत्रों में सफल प्रयोग किए हैं।

राय की नाट्य-चेतना का उदय स्वदेशी आंदोलन के विकास से जुड़ा हुआ है। स्वदेशी भावनाओं से अनुप्रेरित होकर ही राय ने इतिहास की युगानुरूप व्याख्या की है। राय की राष्ट्रीयता के तीन सोपान हैं। पहला है—जातीय उत्थान। राणा प्रताप, दुर्गादास, गोविंदसिंह जैसे आदर्श पात्रों के द्वारा वे हिंदू-संस्कृति के उज्ज्वल-उदात्त स्वरूप को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। दूसरा सोपान है अंतर्जातीय अथवा सांप्रदायिक एकता। सांप्रदायिक वैमनस्य का विरोध 'प्रताप सिंह' की मेहरुन्निसा तथा 'दुर्गादास' दिलेर ख़ाँ के प्रयत्नों में मिलता है। तीसरा सोपान है विश्व-बंधुत्व। 'चंद्रगुप्त' की हेलेन पूर्व-पश्चिम के स्नेह-बंधन को बनाने के लिए चंद्रगुप्त से विवाह करती है। इस प्रकार लेखक के लिए इतिहास युग-धर्म तथा युग-चेतना का व्याख्यान है।

राय के साहित्य में नारी के प्रति नवीन स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण मिलता है। इनके नाटकों में नारी के दो चित्र उभरते हैं। एक में वह सरल, सुकुमार, संवेदनशील तथा भावुकता की मूर्ति है। मेहरुन्निसा, दौलत उन्निसा, रज़िया, मानसी, लैला, ख़दीजा, पियारा, छाया भावप्राण रोमानी पात्र हैं। कहीं-कहीं नारी पुरुष-पात्र के लिए प्रेरणा-स्रोत भी है। जैसे इरा, मेहर तथा सत्यवती। दूसरे चित्र में नारी सौंदर्य एवं यौवन के गर्व तथा मादक प्रभाव से अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण करना चाहती है। नूरजहाँ तथा गुलज़ार जहाँगीर और औरंगज़ेब के हृदय तथा साम्राज्य पर एकच्छत्र अधिकार कर लेती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राय ने बँगला में नवीन नाट्य-शिल्प का सूत्रपात किया है। इन पर पश्चिमी नाटककारों—विशेषतया शेक्सपियर—का गहरा प्रभाव पड़ा है। ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों की जिस परंपरा का उन्मेष उन्नीसवीं शती में हुआ था, उसको चरम उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय श्री राय को ही है। ये अपनी धारा के सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली नाटककार हैं और इनके नाटक अपने युग या प्रदेश के ही नहीं, अपितु भारतीय नाट्य साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि हैं।

राय, दीनेंद्रकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1869; मृत्यु—1943 ई०]

दीनेंद्रकुमार राय उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण के कहानी एवं रेखाचित्रकार थे। इन्होंने कविताएँ भी लिखीं और अँग्रेज़ी जासूसी उपन्यासों के अनुवाद भी किये तथा उनके अनुकरण पर उपन्यास लिखे भी। दीनेंद्रकुमार की प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण इनके द्वारा रचित ग्रामीण रेखाचित्र है। इनका 'पल्लीचित्र' (1904) बँगला साहित्य की स्थायी संपत्ति है। 'पल्ली-वैचित्र्य', 'पल्ली-चरित्र' एवं 'पल्लीकथा' भी विशेष आनंददायक रचनाएँ हैं।

रायबहादुर शेषाद्रि *(म० पा०)*

यह प्र० के० अत्रे (दे०) के 'साष्टांग नमस्कार' प्रहसन का नायक है। इसका यह विश्वास है कि जीवन में सफलता प्राप्त करने का एकमात्र अमोघ अस्त्र है साष्टांग नमस्कार। इसी से यह अपने संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को साष्टांग नमस्कार करने का सद्परामर्श देता है। इसकी यह दृढ़ धारणा है कि प्रत्येक रोग की एकमात्र रामबाण औषधि साष्टांग नमस्कार ही है। यह अपने इस साष्टांग नमस्कार के महद् अनुष्ठान प्रवासकाल में रेलगाड़ी के डिब्बे में ही करने लगता है और स्थानाभाव की विकट परिस्थितियों में मन-ही-मन साष्टांग नमस्कार की प्रक्रिया को दोहराता है। वस्तुतः रायबहादुर की इस प्रवृत्ति के मूल में महाराष्ट्र की मिरज रियासत के महाराज की 'साष्टांग नमस्कार' की आज्ञा पर कटाक्ष है। रायबहादुर अपने चारित्रिक वैशिष्ट्य के कारण दर्शकों को भी दूर तक प्रभावित अवश्य करता है, परंतु उसमें सूक्ष्म निरूपण-शक्ति का सर्वथा अभाव है। रायबहादुर शेषाद्रि के अतिरंजित चरित्र के माध्यम से हास्य के विधान द्वारा कतिपय सामाजिक दोषों की विडंबना दिखाकर उनको दूर करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

राय, राजकिशोर *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

छताबर, पुरी इनका जन्म-स्थान है। कई वर्षों तक इन्होंने उड़ीसा के शिक्षा-विभाग में काम किया है। ये सुदक्ष कलाकार और सजग शिल्पी हैं। इनका शिल्पी मन एक विदग्ध नागरिक का मन है। स्वतंत्रता-पूर्व की उड़िया कहानी और उपन्यास-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है। आरंभ में इनकी रचनाओं में कला और दर्शन का सुंदर समन्वय मिलता है किंतु बाद में क्रमशः अधिक विचार-बोझिल होती गई हैं। उनमें विविध सामाजिक, राजनीतिक, विश्व आर्थिक, वैयक्तिक तथा जीवन-समस्याओं का विवेचन किया गया है और आज के परिकल्पित जीवन पर एक गंभीर व्यंग्य मिलता है। यद्यपि अपनी कहानियों में इन्होंने कलापक्ष-संबंधी अनेक प्रयोग किये हैं, फिर भी वे क्रमशः आत्मकेंद्रित और दार्शनिकता से दुर्वह होती गई हैं। भाषा-शैली साहित्यिक गरिमा से युक्त है। 'एहि कि देवायचन' (क०), 'शोणित काव्य' (क०), 'नील लहरी' (क०), 'जीवन-संगीत' (क०) (दे०); 'जयश्री' (उप०), 'मन्नर मृणाल' (उप०), 'बिकच शतदल' (उप०), 'अशोक चक्र' (उप०), 'जयशंख' (उप०), 'कलिंग शिल्पी (एकांकी नाटक); 'साहित्य' और साहित्यर तत्त्व' (समालोचना) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

राय, राधानाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1948 ई०; मृत्यु—1908 ई०]

युगप्रवर्तक राधानाथ पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति के समन्वय के प्रतीक थे। कला व विषयवस्तु दोनों की दृष्टि से उनका साहित्य असाधारण एवं नवीन है। राधानाथ-मधुसूदन की सम्मिलित रचना, 'कवितावली' (दे०) से ही आधुनिक युग प्रारंभ होता है। प्रकृति के उपासक तथा भाषा के संस्कारक राधानाथ-जैसी रचनात्मक प्रतिभा, ललित सौंदर्य-बोध और उर्वर कल्पना उस युग की समृद्ध अन्य भारतीय भाषाओं में पाना दुर्लभ है। अँग्रेज़ी कवि स्कॉट की तरह इन्होंने उड़ीसा की रीति-नीति, किंवदंतियों तथा कहानियों को अमर बना दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधानाथ का जन्म बालेश्वर में हुआ था। इनकी शिक्षा केवल एफ० ए० तक थी; किंतु इनका अध्ययन व्यापक था। राधानाथ का अँग्रेज़ी, ग्रीक, बँगला, हिंदी, संस्कृत तथा मध्ययुगीन उड़ीसा पर अधिकार था। शिक्षा विभाग में काम करते हुए इन्होंने संपूर्ण उड़ीसा का भ्रमण किया था। जीवन की इस जीवंत अनुभूति व विशाल पर्यवेक्षण का व्यापक प्रभाव इनके साहित्य में दिखाई पड़ता है। उड़ीसा की मनोरम प्रकृति अपनी नैसर्गिक श्री-सुषमा के साथ इनके काव्य में उतर आयी है।

कलाकार एवं शिल्प-निपुण राधानाथ ने ग्रीक व अँग्रेज़ी कथावस्तु का इतना सफल आरोपण यहाँ के परिवेश, यहाँ के जीवन व कथावस्तु पर किया है कि इनके विदेशीपन का आभास ही नहीं होता। इनकी छः काव्य-कृतियों—'केदार गौरी', 'नंदिकेश्वरी', 'उषा', 'पार्वती', 'ययाति-केशरी' तथा 'महायात्रा' (दे०) पर ग्रीक व अँग्रेज़ी साहित्य की विषयवस्तु का प्रभाव है। 'चिलिका' इनकी सर्वोत्तम रचना है। इसमें प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। इनके प्रबंध-काव्य परंपरागत प्रबंध-काव्य से बहुत भिन्न हैं, और इसी व्यतिक्रम में राधानाथ की प्रतिभा का अक्षय सौंदर्य अंतर्निहित है। इनकी संस्कृत-रचना 'भारत-वंदना' भारत के प्रारंभिक राष्ट्रीय गीतों में से है। 'इतालीय युवा' और 'विवेकी' इनकी सशक्त गद्य-रचनाएँ हैं।

राय, रामशंकर *(उ० ले०)* [समय—1858 ई०]

आधुनिक उड़िया-नाट्य-साहित्य के प्रवर्तक श्री जगन्मोहन लाला (दे०) और उनकी नाट्य कृति, 'बाबा जी' (दे०) के बाद (जो आधुनिक उड़िया-साहित्य का प्रथम नाटक है), नाटक एवं उपन्यास दोनों ही क्षेत्रों में, अग्रदूत में श्री रामशंकर राय का आगमन हुआ है। यद्यपि नाटककार के रूप में ये अधिक प्रसिद्ध हैं, फिर भी इनका 'विवासिनी' उपन्यास, जो अपनी संस्कृतगर्भित भाषा-शैली के कारण उतना लोकप्रिय नहीं हो सका, उड़िया-साहित्य में आधुनिक शैली पर रचित प्रथम सफल उपन्यास है। 'प्रेमतरी' इनकी काव्य-रचना है।

किंवदंती पर आधारित 'कांची काबेरी' (दे०) नाटक इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसे जातीयता, भक्ति-भाव, आधुनिक सुरुचिबोध तथा मानसिक द्वंद्व ने अनुपम रमणीयता प्रदान की है। इसमें विषयवस्तु की परि-कल्पना तथा शिल्प अत्यंत परिमार्जित है। दक्षिण की राजकुमारी पद्मावती के प्रति गजपति महाराज पुरुषोत्तम देव का अगाध प्रेम, पद्मावती के पिता द्वारा अपमानित राजसी हृदय का आहत अहं, क्षत्रिय की अमोघ प्रतिज्ञा और उससे प्रेरित हृदय के संकल्प-विकल्प के माध्यम से पुरुषोत्तम देव का अंतःसौंदर्य और नाटक का कलावैभव निखर उठा है।

आधुनिक अभिरुचि उत्पन्न करने में इनके नाटकों व प्रहसनों का विशेष महत्व है। इन्होंने अपने नाटकों में भारतीय नाट्य-तत्त्वों का पूर्णतः पालन किया है। हिंदी की अनेक राग-रागिनियाँ भी इनकी नाटकीय संगीत-योजना में अंतर्भुक्त है। नाट्य-रचना-शैली पर संस्कृत व प्राचीन जात्रा-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं समस्यामूलक अनेक नाटकों की रचना कर इन्होंने उड़िया-नाट्य-साहित्य को परिपुष्ट व उन्नत बनाया है।

रायवाचकमु *(ते० कृ०)*

यह एक चारित्रिक गद्य-काव्य है। इसमें कृष्णरायलु के जीवन-चरित का वर्णन सरल व्यावहारिक भाषा में किया गया है। इसमें यह लिखा गया है कि यह विश्वनाथ नायकुडु के पास किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा भेजा गया एक निवेदन है। विश्वास किया जाता है कि विश्वनाथ नायकुडु मधुरा राज्य का संस्थापक नहीं है और वह दूसरे कृष्णप्पा (1595-1601 ई०) का छोटा भाई था। इस गद्य-काव्य में विजयनगर का वृत्तांत, कृष्णरायलु की विजय-यात्राएँ आदि विषय-वस्तु के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। बीच-बीच में फ़ारसी शब्दों का प्रयोग भी इसमें मिलता है। कई स्थानों पर इसके वाक्य बहुत लंबे हो गये हैं। फिर भी भाषा सरल, सशक्त एवं सार्थक है।

राय, शशिभूषण *(उ० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

लेखक के रूप में शशिभूषण अपने पिता राधानाथ राय (दे०) के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। शशि-भूषण की गद्य-सृष्टि राधानाथ की काव्य-सृष्टि की परि-पूरक है। इनका काव्यात्मक गद्य अपनी चित्रमय वर्णन-शैली के कारण विशेष रूप से आकर्षक बन गया है। व्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रमण के कारण उड़ीसा की प्रकृति, उसकी संस्कृति, उसके जीवन के विविध रूपों के साथ शशिभूषण का पिता के समान घनिष्ठ एवं प्रत्यक्ष परिचय था और प्रकृति के साथ तो इनका रागात्मक संबंध था। शहरी जीवन से दूर महानदी के वक्ष पर प्रसारित शांत, श्यामल, मनोरम द्वीप धवलेश्वर में ये अपना अधिकांश समय बिताते थे। 'उत्कल प्रकृति' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। उत्कल-ऋतु-चित्र, इनकी दूसरी उच्च कोटि की रचना है। 'कनिका' दर्शन' यात्रा-साहित्य संबंधी है।

राय, सुकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1923 ई०]

उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी (दे०) के पुत्र एवं सत्यजित राय के पिता सुकुमार राय (चौधुरी) बँगला शिशु-साहित्य के एक अविस्मरणीय लेखक हैं। आठ वर्ष की अवस्था में ही इनकी कविता उस समय की विख्यात शिशु-पत्रिका 'मुकुल' में प्रकाशित हुई थी। बाद में अपने पिता के द्वारा प्रकाशित 'संदेश' (1913) में इनकी शिशु-कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं। सुकुमार राय के कतिपय श्रेष्ठ ग्रंथ 'संदेश' के माध्यम से प्रकाशित हुए थे जिनमें 'आबोल-ताबोल' (दे०) की आश्चर्यजनक कविताएँ 'हयवरल', 'पागलादाश' की मज़ेदार कहानियाँ एवं 'लक्षणेर शक्ति शेल' तथा 'अवाक जलपान' नाटक उल्लेखनीय हैं।

सुकुमार राय की 'आबोल-ताबोल' काव्य-पुस्तक ने बँगला-साहित्य को एक नया काव्य-रूप प्रदान किया है। बच्चों के मनोविनोद के लिए 'बँगला छड़ा' (दे० सरकार, योगेंद्र नाथ) के अनुरूप 'आबोल-ताबोल' की रचना की जाती है। अंतर केवल इतना ही है कि छड़ा में जहाँ तर्क-वुद्धि का योग रहता है वहाँ आबोल-ताबोल असंबद्ध भाव एवं बुद्धिहीनता के आधार पर रचे गये अंत्यानुप्रास-युक्त ऐसे गीत होते हैं जिनकी एक विशेष लहजे में हास्यकारक आवृत्ति की जाती है। सुकुमार राय ने इस प्रकार की कविताओं की रचना कर शिशुओं के लिए ऐसे अपरूप स्वप्नलोक की सृष्टि की है जहाँ गीत में फूल 'ठास ठास द्रुम द्राम' जैसे पटाखे की आवाज़ में खिलते हैं और उसकी खुशबू तीर की तरह सनसन करती हुई भागती चलती है। इस प्रकार की असंभाव्य कल्पनाश्रित कविताओं की रचना कर इन्होंने शिशु के समान अकृत्रिम अर्थहीन हँसी बिखराई है।

राय, हेमेंद्रकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

कहानी-उपन्यास एवं कविताओं के रचयिता हेमेंद्रकुमार राय की प्रसिद्धि का बहुत बड़ा कारण इनके द्वारा रची गई बच्चों की रहस्य-रोमांचकारी कहानियाँ एवं उपन्यास हैं। इनकी कविताओं की पुस्तक 'यौवनेर गान' में सत्येंद्रनाथ दत्त का प्रभाव स्पष्ट है। कहानी-संग्रहों में 'पसरा' (1915), 'मधुपर्क' (1917), 'पद्म-काँटा' (1932), 'बेनोजल' (1924) आदि प्रसिद्ध हैं। उपन्यासों में 'जलेर आल्पना' (1919), 'कालवैशाखी' (1921), 'पद्मकाँटा' (1924) आदि उल्लेखनीय हैं। कथा-साहित्य की रचना में भावुकता का आतिशय्य स्पष्ट है। यथार्थ घटनाओं के आश्रय से ही इन्होंने 'झड़ेर यात्री' आदि उपन्यासों की रचना की है।

बच्चों के लिए रहस्य-रोमांचकारी उपन्यासों की रचना कर उन्होंने अपार जनप्रियता प्राप्त की थी। इन उपन्यासों के पात्र जयंत एवं मानिक हर बच्चे के लिए सर्वाधिक प्रिय पात्र हैं। लेखक बंगाल की बहुत-सी विख्यात पत्र-पत्रिकाओं के साथ संबंधित रहे थे एवं इनमें इनकी असंख्य कहानियाँ और कविताएँ आदि प्रकाशित होती रही थीं। शिशिर भादुड़ी द्वारा अभिनीत कालजयी 'सीता' नाटक के कुछ मनोरम गीतों की भी रचना इन्होंने की थी।

रायमंगल *(बँ० कृ०)*

दक्षिण राय का अर्थ है व्याघ्र देवता। दक्षिण बंगाल अर्थात् सुंदरवन के आस-पास के इलाके में ही व्याघ्रदेवता दक्षिणराय की पूजा का सर्वाधिक प्रचलन है। मोहेंजोदारो की सीलमोहर पर भी व्याघ्रचिह्न मिलता है। भारतवर्ष की कई-एक जातियों में व्याघ्र-पूजा का प्रचलन है। दक्षिण राय को वहुत-से विद्वान् ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। भाटि अंचल के राजा मुकुटमणि राय के सेनापति के रूप में दक्षिणराय का उल्लेख किया गया है।

रायमंगल कथा के दो अंश हैं। पूर्वार्द्ध में मुकुंदराम के अनुसरण पर वणिक पुष्पदत्त की आख्यायिका है एवं अंत में बड़े गाज़ी ख़ाँ की कहानी है। हिंदू-मुसलमानों का विरोध, मुसलमानों का औद्धत्य एवं हिंदू-देवता तथा मुसलमान पीर को एकत्र करने का प्रयत्न इस काव्य में विद्यमान है। रायमंगल के श्रेष्ठतम कवि कृष्णराम दास (दे०) हैं। कवि कृष्णराम का यह तीसरा ग्रंथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना-काल है 1686 ई०। 'रायमंगल' काव्य में कुंभीर देवता कालुराय एवं बड़े गाज़ी का माहात्म्य वर्णित हुआ है। अन्यान्य रायमंगल-काव्यकारों में रुद्रदेव एवं हरिदेव के काव्य उल्लेखनीय हैं।

रावण *(सं० पा०)*

यह लंका का राक्षस राजा था, इसके पिता का नाम विश्रवस् था और पितामह का नाम पुलस्त्य। इसके दश मुख थे, अतः इसे दशानन, दशशीर्ष, दशग्रीव आदि कहा जाता है। इसका शरीर सुदीर्घ और बलिष्ठ था। एक अत्याचारी राजा के रूप में इसने अनेक ऋषियों, यक्षों तथा गंधर्वों का वध किया। इसकी पत्नी का नाम मंदोदरी था। राम (दे०) द्वारा शूर्पणखा के विरूपित किये जाने के बाद शूर्पणखा ने सीता (दे०) के सौंदर्य का वर्णन रावण से किया, तो उसने मारीच की सहायता से सीता का हरण कर लिया। राम और लक्ष्मण (दे०) ने हनुमान (दे०) की सहायता से लंका पर विजय पायी और रावण तथा उसके संबंधियों का वध कर सीता का उद्धार किया। रावण को वेदों और शास्त्रों का महापंडित माना जाता है। इसके नाम पर अनेक ग्रंथ माने जाते हैं— 'ऋग्वेदभाष्य', 'कुमारतंत्र', 'प्राकृतलंकेश्वर' आदि। वाल्मीकि (दे०) से लेकर इस युग तक 'रामायण'-लेखकों ने राम के साथ-साथ रावण को भी स्थान देकर मानो पुण्य की पाप पर, धर्म की अधर्म पर विजय का हर्षघोष किया है।

रावण कावियम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1946 ई०]

'रावण कावियम्' पुलवर कुलंदं-कृत एक महाकाव्य है। इसमें 5 काण्ड, 56 पडलम् (अध्याय) और 2828 पद हैं। यह रूप-विधान की दृष्टि से 'कंबरामायणम्' (दे०) के समान ही है। इसकी मूल विशेषता यह है कि इसमें रावण को खलनायक नहीं अपितु असफल नायक के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें विभीषण देशद्रोही, परिवार-द्रोही के रूप में तथा सुग्रीव और अंगद राजद्रोही के रूप में चित्रित हैं। कवि ने राम और लक्ष्मण को राजनीति और युद्धकला-प्रवीण सामान्य मानवों के रूप में अंकित किया है। यह महाकाव्योचित नगर-वर्णन आदि से युक्त है। संपूर्ण कृति 'विरुत्तम्' छंद में रचित है। दक्षिण भारत में 1920 ई० के आसपास हुए आत्मगौरव-आंदोलन के फलस्वरूप इसकी रचना हुई थी। आंदोलनकर्त्ताओं ने इस बात का प्रचार किया था कि रामायण में दक्षिण भारतीयों की निंदा है। मूलतः प्रचार-काव्य होते हुए भी यह महाकाव्य अपने काव्य-सौंदर्य, चरित्र-चित्रण और विविध वर्णनों के लिए प्रसिद्ध है। कलात्मक सौंदर्य-युक्त इस विशालकाय महाकाव्य का तमिल साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

रावबहादुर ठोसर *(म० पा०)*

माधव जूलियन (दे०)-रचित 'सुधारक' नामक सामाजिक खंडकाव्य का एक पात्र है। 'सुधारक' की रचना 1928 ई० में हुई थी। इस खंडकाव्य में प्रमुख रूप से विधवा-समस्या को लिया गया है। इसमें विधवा-समस्या का चित्रण ही नहीं किया गया, वरन् समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

रावबहादुर ठोसर के व्यक्तित्व के माध्यम से कवि ने काँग्रेस के नरम दल के समर्थक व्यक्तियों का उपहास किया है। रावबहादुर ठोसर अत्यंत गरीबी में बाल्यकाल बिताता है; बाद में पढ़-लिखकर वह वकील बन जाता है। वकील के रूप में इसकी शोधक बुद्धि, भेदक दृष्टि, सच को झूठ तथा झूठ को सच करने की अपूर्व रसमयी वाक्शक्ति है। यह अपने आशीलों के खर्च से विलायत-भ्रमण करता है। यहाँ इसकी वेशभूषा अत्यंत व्यवस्थित रहती है। कभी-कभी रात को मद्यपान कर लेता है। लेखक ने एक ओर इसे धोये चावल-सा साफ़ तथा उज्ज्वल कहा है तथा दूसरी ओर बगुले जैसा ढोंगी। एक ओर यह हरिनाम का जप, गीता का पाठ और भूपाली गायन करता है तो दूसरी ओर क्लब में मद्यपान तथा स्वच्छंद आचरण।

चरित्र में अनेक परस्पर विरोधी विशेषताएँ होने पर यद्यपि ठोसर सदैव विद्यार्थी की मदद करता है, सार्वजनिक संस्थाओं को दान देता है तथा उसके घर पर उत्तम ग्रंथों का संग्रह रहता है तथापि किसी ग्रंथ का अध्ययन इसने नहीं किया। इसे पुस्तकें पढ़ने का शौक नहीं है पर दिखावे के लिए उन्हें एकत्र अवश्य करता है।

राजनीति के क्षेत्र में असफल रहने पर भी यह पहले दर्जे का समाजसुधारक है; कुशल एवं सफल वक्ता भी है। सरकार की ओर से रावबहादुरी प्राप्त करने की आशा से सरकार का कभी विरोध नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावळ, अनंतराय *(गु० ले०)*

दे० अनंतराय रावळ ।

राशिद-उल-ख़ैरी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जन्म-स्थान—दिल्ली । उर्दू गद्य-लेखकों में मौलाना राशिद-उल-ख़ैरी का अपना विशिष्ट स्थान है। करुण रस की गद्यात्मक अभिव्यक्ति इनके द्वारा अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी हुई है। इनकी इस विशेषता के कारण इन्हें 'मुसव्विर-ए-ग़म' (अर्थात् 'करुण रस के चित्र-कार') कहा जाता है। इनकी अनेक कृतियाँ उर्दू-साहित्य की अमूल्य निधि हैं, जिनमें 'सुबह-ए-ज़िंदगी', 'शाम-ए-ज़िंदगी' और 'शब-ए-ज़िंदगी' महत्वपूर्ण हैं। इन कृतियों में प्राचीन और नवीन दिल्ली के समाज का सजीव चित्रण किया गया है। नारी-भावना की सशक्त अभिव्यंजना में ये बेजोड़ हैं। बेगमों की भाषा पर इन्हें अद्भुत अधिकार प्राप्त है और अपनी इस विशेषता के माध्यम से वे नारी जाति के सुधार तथा उसकी शिक्षा के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे।

राष्ट्रगानमु *(तें० कृ०)*

'राष्ट्रगानमु' श्री तुम्मिल सीताराममूर्ति चौधरी (दे०) की राष्ट्रीय कविताओं का प्रसिद्ध संकलन है। इन कविताओं में देश के प्रति कवि का अनन्य अनुराग, उसकी वर्तमान स्थिति पर तीव्र क्षोभ एवं भविष्य की उन्नति के लिए कार्यरत होने एवं बलिदान करने का आवाहन आदि का परिचय मिलता है। तेलुगु की राष्ट्रीय कविताओं में इन कविताओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता *(हिं० प्र०)*

इस काव्य-प्रवृत्ति की 'मूल भावना है देश-भक्ति।' देशभक्ति में प्राधान्य तो निस्संदेह 'उत्साह' का ही है परंतु उसमें राग का आधार भी वर्तमान रहता है। 'इस प्रवृत्ति का प्रारंभ भारतेंदु-युग से ही माना जाता है। क्योंकि उसके पहले वीरगाथा-काल का उत्साह व्यक्तिकेंद्रित था और रीतिकालीन वीरकाव्य में राष्ट्र की अपेक्षा धर्म ही राग का अधिक शक्तिशाली आलंबन था। भारतेंदु-युग में राजनीतिक निराशा के कारण राष्ट्रीयता का स्वर प्रखर नहीं हो सका। कवियों ने या तो राष्ट्रभक्ति के साथ राजभक्ति का मिश्रण किया या प्राचीन गौरव, विदेशी सभ्यता से घृणा और वर्तमान अध:पतन के माध्यम से अपनी राष्ट्रभक्ति को परोक्षत: ध्वनित किया। गांधी के नेतृत्व ने उदात्त और प्रखर राष्ट्रीयता के द्वार खोल दिए। फलत: छायावादी (दे० छायावाद) कवियों की संयत और नवीन (दे०), माखनलाल चतुर्वेदी (दे०), दिनकर (दे०) आदि की उग्र राष्ट्रभक्तिपूर्ण कविताएँ प्रकाश में आईं। पराधीनता और दमन के विरुद्ध अपने असंतोष को इन कवियों ने अहिंसात्मक उत्साह द्वारा व्यक्त किया है। इस उत्साह में बलिदान की भावना भी है और भविष्य की कल्पना भी। राष्ट्र के साथ रागात्मक स्वरूप की व्यंजना के लिए मातृभूमि का मानवीकरण और प्राचीन गौरव का चित्रण किया गया है। 1947 ई० के पश्चात् स्वतंत्रता के अभिनंदन और विश्वशांति के जयगान में कविताएँ लिखी गईं। चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों ने भी कवियों के शौर्य को उद्बुद्ध किया और फलत: 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी रचनाओं का एक दौर फिर चला। राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य की रचनाएँ समसामयिक आंदोलन की उत्तेजना से उत्पन्न हुई हैं। उनमें आत्मा की गहन अनुभूति प्राय: दुर्लभ रहने से काव्यतत्त्व की मात्रा कम मिलती है। परंतु अपने उत्कर्ष में यह काव्य-प्रवृत्ति हिंदी-साहित्य में विशेष गौरव की अधिकारिणी है।

रास *(पं० पारि०)*

यह पंजाब का एक अतिप्रिय लोक-नाट्य है। औपचारिक रूप से पंजाब में साहित्यिक नाटक की परंपरा के अभाव के कारण शतियों तक यह लोक-नाट्य ही जनता की नाट्य-रुचि को परितृप्त करता रहा। रास में प्राय: कृष्ण-चरित को ही पेश किया जाता है। इस प्रकार यह जनता की धार्मिक रुचि को भी तृप्त करती रही है।

रासपंचाध्यायी *(हिं० कृ०)*

'भागवत (दे०) पुराण' के अंतर्गत उन्नीसवें अध्याय से तैंतीसवें अध्याय तक पाँच अध्याय 'रासपंचा-ध्यायी' कहलाते हैं। शरद-पूर्णिमा में ज्योत्स्ना-धवलित स्निग्ध वातावरण में कृष्ण गोपियों के साथ मिलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंडलाकार रास रचाते हैं, यही इन अध्यायों का मुख्य प्रतिपाद्य है। वैष्णव भक्तों ने इस रासलीला को ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति-मार्ग की सरणि माना है। इस लीला का मुख्य अभिप्रेत काम-विजय-रूप फल-प्राप्ति है।

'भागवत पुराण' के इन पाँच अध्यायों के आधार पर हिंदी के अनेक कवियों ने 'रासपंचाध्यायी' काव्य लिखे हैं। इन कवियों में सूरदास (दे०), नंददास (दे०), रहीम (दे०), हरिराम व्यास, नवलसिंह आदि प्रसिद्ध हैं। सूरदास ने इस प्रसंग का बहुत विस्तारपूर्वक मौलिक वर्णन किया है। हरिराम व्यास-कृत 'रासपंचाध्यायी' 'त्रिपदी' छंद में ग्रथित है, रहीम की पंचाध्यायी अप्राप्य है एवं नंददास की पंचाध्यायी रोला छंद में है तथा इसकी भाषा ब्रज है। रस और गुण की सृष्टि बड़ी सुंदरता के साथ हो गई है। करुण रस, माधुर्य गुण, पद-योजना तथा भावों की अभिव्यंजना की दृष्टि से नंददास की 'रासपंचाध्यायी' अद्वितीय है। इस प्रकार के काव्य-ग्रंथों में नंददास-कृत 'रासपंचाध्यायी' अद्वितीय है। इस प्रकार के काव्य-ग्रंथों में नंददास-कृत 'रासपंचाध्यायी' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

रास सहस्रपदी *(गु० कृ०)*

नरसिंह महेता की यह रचना पंद्रहवीं शती में लिखी गई थी। इस रचना का नाम सहस्रपदी है पर उसमें केवल 113 पद हैं। 'श्रीमद्भागवत' की 'रासपंचाध्यायी' (दे०) के आधार पर इस कृति की रचना हुई है। श्रीकृष्ण का वंशी-नाद सुनकर गोपियाँ अपने अस्तित्व को भूल जाती हैं और अपने गृहकार्य छोड़कर श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाती हैं। श्रीकृष्ण उनके साथ रासलीला करते हैं। गोपियों में अभिमान आ जाता है और उनका गर्व-खंडन करने के लिए श्रीकृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं। गोपियाँ विलाप और पश्चात्ताप करती हैं—तब श्रीकृष्ण पुनः प्रकट होकर उनके साथ रास रचाते हैं। इस काव्य में रासलीला के समय नरसिंह महेता (दे०) प्रत्यक्ष उपस्थित हो अपनी नज़रों से रासलीला देखते हैं। इस प्रकार रासलीला का वर्णन किया गया है। इस काव्य में नरसिंह ने कुछ नये तत्त्व जोड़े हैं। 'रास सहस्रपदी' में जब शृंगार का वर्णन आता है तब नरसिंह की काव्यकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। गोपियों के मनोभावों का भी रोचक चित्र खींचा गया है।

रासा *(पं० प्र०)*

रासा श्रीकृष्ण एवं गोपियों के स्वाँग धारण करके कृष्णलीला करने की विधि है। पंजाब के गाँवों में रासधारी मंडलियाँ घूमती थीं। इन रासों में राधा का रूप भी बालक ही धारण करते थे। रास का धार्मिक एवं पौराणिक महत्व है। रास में शृंगार-भावना को महत्व प्राप्त था। गुरु नानक देव (दे०) ने 'आसा दी वार' में अपने समय के रासधारियों का विरोध किया है।

पंजाब में प्रचलित 'रास' का संबंध हिंदी-साहित्य में प्रचलित रासो-साहित्य से कदाचित् नहीं है।

रासेलस *(म० कृ०)* [रचना-काल—1867 ई०]

डा० जॉनसन के इसी नाम के प्रसिद्ध अँग्रेज़ी उपदेश-प्रधान रोमांस का कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (दे०) द्वारा अनुवाद पुस्तकाकार प्रकाशन से पाँच वर्ष पूर्व 'शाळापत्रक' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उपन्यास समझकर पढ़ने वालों को इससे निराशा होगी क्योंकि इसमें काल्पनिक कथा जैसे चमत्कारपूर्ण प्रसंग न होकर कथा के माध्यम से जीवन का मार्मिक विवेचन है, जगत् की विविध स्थितियों के गुण-दोषों का प्रतिपादन है। अबीसीनिया का राजकुमार ऐश्वर्यपूर्ण जीवन से ऊबकर बहिन नेकया तथा दार्शनिक इमलक के साथ मिस्र देश को भाग जाता है और वहाँ जीवन की विविध अवस्थाओं का अध्ययन कर पुनः अबीसीनिया लौट आता है। उसे पता चलता है कि सुख कहीं किसी को नहीं है—न दार्शनिक को, न संन्यासी को और न धनवान को; केवल सद्गुणों से ही आत्मा को शांति मिलती है। पुस्तक का आकर्षण प्रसंगों एवं प्रबंधों में निहित मानवता, ज्ञान एवं विषाद में है। चिपळूणकर की इस कृति का महत्व दो दृष्टियों से है—प्रथम, यह अनुवाद पाठकों का मनोरंजन मात्र करने के लिए नहीं किया गया जैसाकि उस समय प्रचलन था; दूसरे, मराठी पाठकों की अभिरुचि परिष्कृत करने और अँग्रेज़ी पुस्तकों के विचारों को मराठी में रूपांतरित करने के लिए भी इसका ऐतिहासिक महत्व है।

राही, रहमान *(कश्० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इन्होंने फ़ारसी और अँग्रेज़ी में उच्च शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की। लड़कपन से ही ये होनहार और मेधावी छात्र थे। 1947 ई० के बाद ही इनकी कवित्व-प्रतिभा मुखरित हुई। सामाजिक कुरीतियों और राजनीतिक परिस्थितियों के अंतर्मन की सुप्त भावनाओं को वाणी प्रदान की। इनके कविता-संग्रह 'नवरोज़ सबा' (नववर्ष के प्रथम दिवस का समीर) पर इन्हें 1960 में साहित्य अकादमी-पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इनके दो अन्य संग्रह 'सनःवन्य साज़' (मनमोहक संगीत) और 'सुबहुक सोदाः' (प्रभात का आह्लाद) प्रकाशित हुए हैं। श्री गुलाम नबी फ़िराक़ के साथ मिलकर इन्होंने 'यिम सॉन्य आलव' (यह हमारी गुहार) नाम का संग्रह भी प्रकाशित किया है। इन्होंने तुकांत एवं अतुकांत छंदों में रचना की है। क्रमबद्ध गीत भी लिखे हैं और स्फुट छंद भी। एकालाप (Monologues) और संबोध-गीति (Odes) की भी रचना की है। इनकी भाषा फ़ारसी-मिश्रित है, और उर्दू छंदःशास्त्र की बहरों की तर्ज़ पर इन्होंने कश्मीरी छंदों की रचना की है। इनकी शैली बोझिल मालूम पड़ती है यद्यपि इनकी रचनाओं में भावों की गंभीरता है।

रिज़वी, शाह इनायत अल्लाह *(सिं० ले०)* [जन्म—1626 ई०; मृत्यु—1713 ई० के आसपास]

शाह इनायत अल्लाह रिज़वी का जन्म सिंध के नसरपुर नामक गाँव में रहने वाले रिज़वी ख़ानदान के सैयदों के घर में हुआ था। इनके शिष्य आदर और श्रद्धा से इन्हें 'मियें शाह इनात' भी कहते हैं। ये बचपन से ही स्वतंत्र विचारों वाले व्यक्ति थे और मज़हबी पाबंदियों का पालन करने की इन्हें चिंता न थी। लगभग चालीस वर्ष की उम्र में इनका झुकाव आत्मिक मार्ग की ओर हुआ था और ये सक्खर (सिंध) के सूफ़ी दरवेश सैयद ख़ैरुद्दीन के शिष्य बन गये थे। इन पर हिंदू संन्यासियों और नाथपंथी योगियों का भी प्रभाव पड़ा है।

सिंध यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक डा० नबी बख़्श ख़ान बलोच (दे०) ने इनके कलाम का संग्रह कर और आलोचनात्मक ढंग से उसका संपादन कर 1963 ई० में 'मियें शाह इनात जो कलाम' नाम से उसे प्रकाशित कराया है। ये सिंध के पहले सूफ़ी संत कवि हैं जिनके काव्य में चारण-काव्य और सूफ़ी-संत-काव्य की शैलियों का सुंदर संगम दृष्टिगत होता है। इस काव्य की प्राप्ति से शाह अब्दुल करीम (दे०) से लेकर शाह अब्दुल लतीफ़ (दे०) तक सिंधी-कविता के विकास की एक मुख्य कड़ी प्रकाश में आ गई है। ठेठ सिंधी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग, अर्थ की गंभीरता, वर्णन में प्रवाह, अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग, काव्य में संगीतात्मकता—ये शाह इनायत अल्लाह की कृति की मुख्य विशेषताएँ हैं।

रिट्ठणेमि चरिउ *(अप० कृ०)*

स्वयंभू (दे०)-रचित यह ग्रंथ 'महाभारत' (दे०) और कृष्ण-कथा से संबद्ध है। इसमें चार कांड हैं—यादवकांड, कुरुकांड, युद्धकांड और उत्तरकांड। यह पौराणिक शैली में लिखा हुआ महाकाव्य है। कृतिकार ने इसे 'हरिवंसकहा' और 'हरिवंसपुराण' कहा है।

यादवकांड में 13, कुरुकांड में 19, युद्धकांड 60 और उत्तर कांड में 20 संधियाँ हैं। इनमें से आदि की 92 संधियाँ स्वयंभू द्वारा रचित हैं। 93 से 99 तक की संधियाँ भी संभवतः स्वयंभू ने ही रची थीं। शेष संधियाँ उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित हैं। अंत की कुछ संधियों में मुनि जसकित्ति का भी हाथ है।

कृतिकार ने यादवकांड में कृष्ण के जन्म, उनकी बाल-लीला, उनके विवाह, प्रद्युम्न आदि की कथाएँ एवं नेमि की जन्म-कथा का वर्णन किया है। कुरुकांड की 19 संधियों में कौरव-पांडवों के जन्म, उनके बाल्यकाल, शिक्षा आदि, उनके पारस्परिक वैमनस्य, युधिष्ठिर के जुए में सब कुछ हारने एवं पांडवों के वनवास की कथा दी है। युद्धकांड में कौरव-पांडवों के युद्ध और कौरवों के पराभव की कथा प्रस्तुत की गई है। उत्तर कांड में जय-पराजय का विश्लेषण करते हुए कुछ आध्यात्मिक निष्कर्ष निकाले गये हैं।

जिस प्रकार स्वयंभू ने अपने 'पउमचरिउ' (दे०) में राम-कथा का जैनीकृत रूप अपनाया है उसी प्रकार 'रिट्ठणेमि चरिउ' में भी कृष्ण-कथा का जनमत-सम्मत रूप वर्णित है। जैन-मतानुसार राम और कृष्ण दोनों महामानव हैं। मानव के सद्गुण और उनकी दुर्बलताएँ उनमें भी दिखाई गई हैं। राम, लक्ष्मण और रावण 63 शलाका पुरुषों में से क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव माने गये हैं। कृष्ण और बलराम क्रमशः नवें बलदेव और वासुदेव हैं। जैन-कृष्ण-कथा का हिंदू-कृष्ण-कथा से पार्थक्य सूचित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण अंश नेमिचरित है। हिंदू-कथानुसार कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोपरि हैं, जैनकथा में जिनेंद्र नेमि सर्वोच्च हैं।

इस कृति में वर्ण्य-विषय का विस्तार है अतएव वर्णन की बहुलता स्वाभाविक है; किंतु वर्णन शुष्क इतिवृत्तात्मक नहीं अपितु काव्यानुकूल सरसता से संयुक्त हैं।

इस कृति में कवि की काव्य-प्रतिभा एवं कल्पना-चमत्कार को प्रदर्शित करने वाले अनेक स्थल हैं। स्वयंभू ने 'पउमचरिउ', 'रिट्ठणेमि चरिउ' दोनों ग्रंथों में कथा-प्रवाह के अंतर्गत आये मार्मिक प्रसंगों के विस्तृत वर्णन किये हैं। स्थान-स्थान पर रूप-वर्णन, प्रकृति-वर्णन और वस्तु-वर्णन सरस और चित्ताकर्षक बन पड़े हैं। रूप-वर्णन के अंतर्गत कवि ने नारी के अंग-प्रत्यंग का ही अधिकांश में वर्णन करते हुए प्रायः परंपरागत उपमानों का प्रयोग किया है। इतना होते हुए भी स्थान-स्थान पर मौलिक उद्भावनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं।

प्रकृति-वर्णन के प्रसंग में अनेक ऋतुओं के वर्णन मिलते हैं। ऋतुवर्णन के अतिरिक्त प्रकृति के अन्य अंगों जैसे स्वर, नदी, वन, पर्वत, समुद्र, संध्या, सूर्योदय, चंद्रोदय आदि के महाकाव्योचित वर्णन भी उपलब्ध होते हैं। कहीं-कहीं नामपरिगणन-शैली के भी दर्शन हो जाते हैं।

स्वयंभू ने जैन होते हुए भी युद्धों के वर्णनों में रुचि प्रकट की है; यही कारण है कि ये बड़े सजीव हो गये हैं।

'पउमचरिउ' की तरह इस कृति में भी, वीर, श्रृंगार, और शांत रस की ही प्रमुखता है। वीर और श्रृंगार दोनों का पर्यवसान शांत रस में होता है।

इस कृति की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है। यत्र-तत्र संस्कृत-पदावली प्रयुक्त हुई है। भाषा का भावानुकूल प्रयोग किया गया है। मुहावरों और लोकोक्तियों से यह सजीव हो उठी है। स्थान-स्थान पर सूक्तियों के प्रयोग से भाषा बलवती और भाव-प्रकाशन में सक्षम हो गई है।

कड़वकों के मुख्य भाग में पद्धड़िया, वदनर और पारणक प्रधान रूप से प्रयुक्त हुए हैं। कड़वकों के आरंभ और अंत में प्रसंगानुकूल विविध छंद प्रयुक्त हुए हैं।

रिपोर्ताज *(पारि०)*

रिपोर्ताज आधुनिक भारतीय भाषाओं की बहु-प्रचलित विधा नहीं है। फ्रेंच मूल के इस शब्द का अर्थ अँग्रेज़ी के 'रिपोर्ट' जैसा ही है, जिसका अर्थ है किसी विशिष्ट घटना या गतिविधि का व्यक्तिपरक सूचनांकन। यह निश्चय ही पत्रकारिता के संवाद-प्रेषण तथा तथ्यों की जाँच के पश्चात् दिए जाने वाले प्रतिवेदन से भिन्न होता है। लेखक की व्यक्ति-चेतना से निष्पन्न होने पर भी रिपोर्ताज की विषयवस्तु तथ्यपरक ही होती है। समाचार-पत्र के संवादों और साहित्यिक रिपोर्ताज में मूल अंतर यही है कि पहले में तथ्य का निरूपण नितांत वस्तुपरक शैली में होता है, दूसरे में रचनाकार की निजी दृष्टि का वैशिष्ट्य उसे सर्जनात्मक रूप देता है।

'रियाज़', ख़ैराबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म--1854 ई०; मृत्यु—1934 ई०]

नाम—रियाज़ अहमद, उपनाम—'रियाज़', जन्म-स्थान—ख़ैराबाद (ज़िला सीतापुर)। 'अमीर मीनाई' (दे०) के श्रेष्ठ शिष्यों में इनकी गणना होती है। ये समर्थ एवं कुशल कवि थे। इनका काव्य 'ख़मरियात-ए-रियाज़' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है जिसका कारण है मस्ती और मादकता का सजीव चित्रण। इन्होंने हालावादी भावना से ओतप्रोत यथेष्ट सशक्त कविताओं का प्रणयन किया है। कहीं-कहीं इनकी मदविह्वलता सीमोल्लंघन कर धृष्टता और अश्लीलता का स्पर्श करने लगती है। इनका प्रेम-व्यापार का चित्रण भी सचमुच अद्भुत है। इनकी भाषा शुद्ध-स्वच्छ तथा शैली सरल मुहावरेदार और भावानुकूल है।

रिसबूड, ना० स० *(म० ले०)*

ये ऐसे रम्याद्भुत उपन्यासकार हैं जिन पर एक ओर संस्कृत तथा दूसरी ओर अरबी-फ़ारसी के कथा-साहित्य का प्रभाव रहा है। इन्होंने तीन उपन्यास लिखे : (1) 'मंजुघोषा' (1866), (2) 'विश्वासराव' (1870) और (3) 'वसंतकोकिला' (1876)। तीसरा उपन्यास अपूर्ण था जिसे उनके भाई के० स० रिसबूड ने पूरा किया। 'विश्वासराव' को सामाजिक उपन्यास समझा गया पर वह है वस्तुतः अद्भुतरम्य उपन्यास ही। उनके उपन्यासों में अद्भुत तत्त्वों का समावेश है—जैसे नायिका की खिड़की पर उतरनेवाला वायुयान, भूचाल, तूफ़ान, बाढ़ आदि। संयोग के प्रयोग से घटना को सुखांत बनाया गया है—समुद्र में बहता बालक अपने शुभचिंतक के पास सुरक्षित पहुँच जाता है। नीत्युपदेश के लिए ये उपन्यास लिखे गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—शक्ति से बाहर काम नहीं करना चाहिए, सन्मार्ग पर चलने से अंततः सुख मिलता है। प्रकृति-चित्रण में संस्कृतावलंबी पंडित कवि की कृत्रिम, अनुप्रासमयी, श्लेषगर्भित शैली है, तो श्रृंगारवर्णन में फ़ारसी का भड़कीलापन और चटकीलापन। बीच-बीच में पद्यों का प्रयोग है। अन्य भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक उपन्यास-कारों के समान इनके उपन्यास भी मनोरंजन और उपदेश के उद्देश्य से ही लिखे गये हैं।

रीति *(पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र का एक मौलिक काव्य-सिद्धांत है—रीतिवाद। रीति-संप्रदाय की विधिवत् स्थापना नवीं शती में आचार्य वामन (दे०) ने की। उनके अनुसार काव्य-सौंदर्य का निर्माण करने वाले शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त विशेष प्रकार की पद-रचना का नाम रीति है। यह रीति उनके मत में काव्य का प्राणतत्त्व है—('विशिष्टा पद-रचना रीतिः++'विशेषोगुणात्मा'। ++'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः।' —काव्या-लंकार-सूत्रवृत्ति, 1।2।7; 1।2।8; 3।1।1।)

वामन से पूर्व रीति-विवेचन के इतिहास का आरंभ 'नाट्यशास्त्र' (दे०) से माना जा सकता है। भरत (दे०) ने 'रीति' अभिधान का प्रयोग तो नहीं किया, किंतु 'प्रवृत्ति' के चार प्रभेदों की चर्चा की है (ना०शा० 13।37-वृत्ति), जो स्वरूपतः रीति से भिन्न नहीं हैं। अग्निपुराणकार ने भी भरत-निरूपित प्रवृत्ति-भेदों को किंचित् भिन्न नाम से रीति के भेदों के रूप में स्वीकार किया है (अग्निपुराण 340।1)। वामन से पूर्व भामह (दे०) ने रीति के अर्थ में वैदर्भ और गौड़—काव्य के दो भेदों का उल्लेख किया है (काव्यालंकार 1।31-1।35)। दंडी (दे०) ने रीति के लिए 'मार्ग' शब्द का प्रयोग करते हुए उसे वैदर्भ मार्ग से सीमित कर दस गुणों को उसका प्राण माना है (काव्यादर्श 1।42)। वामन के परवर्ती आचार्यों ने रीति को काव्यात्मा के रूप में तो मान्यता नहीं दी, किंतु काव्य के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में उसका विवेचन किया। आनंदवर्द्धन (दे०) ने उसे पद-संघटना का अभिधान देते हुए रसाभिव्यक्ति का साधन माना है (ध्वन्यालोक 3।6)। राजशेखर (दे०) ने वचनों के विन्यासक्रम के रूप में रीति का निरूपण किया है। कुंतक (दे०) ने रीति के अर्थ में 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया तथा रीतियों के भौगोलिक वर्गीकरण को अमान्य सिद्ध करते हुए रीति को 'कवि-प्रस्थान-हेतु' की संज्ञा देकर कवि के वैयक्तिक दृष्टिकोण को रीति का आधार स्वीकार किया (वक्रोक्तिजीवित 1।24)। विश्व-नाथ (दे०) रीति को 'पद-संघटना' मानते हुए उसे रस की उपकर्त्री से अधिक महत्व नहीं देते। सामान्यतः रीति को भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यशिल्प के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में ही मान्यता प्राप्त हुई है।

रीति-काव्य *(हिं० प्र०)*

रीतिकाव्य से तात्पर्य है रीतिकाल में निर्मित काव्य, क्योंकि इसी काल में ही अधिकांशतः रीतिकाव्य का प्रणयन हुआ था। इसकी भाषा ब्रजभाषा है। इसके प्रणेता मूलतः कवि थे, जो कि अधिकतर राज्याश्रित थे, क्योंकि उन्होंने श्रृंगार रस को बहुविध रूपों में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से, और कदाचित् परिषदों और राजपुत्रों को 'कविशिक्षा'-विषयक ग्रंथ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से भी संस्कृत-काव्यशास्त्र के विभिन्न प्रकरणों—विशेषतः नायक-नायिका-भेद और अलंकार-विषयक प्रकरणों—के आधार पर, उन्होंने लगभग दो सौ वर्षों में शत-शत रीति-ग्रंथ लिखे, जो प्रमुखतः रीतिबद्ध और रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) इन दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। रीतिबद्ध ग्रंथ—जैसे चिंतामणि (दे०) का 'कविकुलकल्पतरु', 'बिहारी-सतसई' (दे०) आदि। रीति-मुक्त ग्रंथ—जैसे घनानंद (दे०) के मुक्तक पद, आदि। इन ग्रंथों का लक्षण-पक्ष तो निस्संदेह शिथिल है, कहीं-कहीं अपूर्ण, अस्पष्ट और अव्यवस्थित भी हैं, पर इनका लक्ष्यपक्ष (उदाहरण पक्ष) काव्यत्वपूर्ण है, जिसमें श्रृंगार रस के अनेक पक्ष अत्यंत मनोरम रूप में चित्रित हुए हैं। प्रिया और प्रियतम का प्रणय ही इसका प्रमुख, अपितु एकमात्र विषय है। दर्शन, मिलन की उत्सुकता, मिलन के उपाय, सखी और दूती, मिलन-प्रसंग, विरह, प्रतीक्षा, भूल, मन की गाँठ, कोप, आवेश, पश्चात्ताप, चिरौरियाँ, मनुहार, पुनर्मिलन, साज-सज्जा—आदि इस प्रकार के प्रसंगों से रीति-काव्य ओतप्रोत हैं। इनमें कवि-कल्पना का अद्भुत निदर्शन देखने को मिलता है, प्रणय-संबंध की अनेक रंगीनियाँ और अठखेलियाँ पाठक को लुभाती हैं, और साथ ही, इस प्रणय-संबंध के माध्यम से तत्कालीन पारिवारिक और सामाजिक दशा पर भी प्रकारांतर से प्रकाश पड़ता है। यह काव्य तत्कालीन हिंदू राजाओं की विलासिता का परिचायक है कि वे किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार से मुसलमान विलासी शासकों के समान अथवा उसके आतंक से घबराकर अलग-अलग अपने छोटे-छोटे राज्यों में बंटे बहुविध कलावंतों के साथ, जिनमें कवि भी सम्मिलित थे, एक प्रकार का 'क्लब-जीवन' व्यतीत कर रहे थे। यदि ये कविजन भूषण (दे०) कवि के समान रीति-काव्य लिखते हुए भी साथ-ही-साथ वीररस-विषयक सामग्री भी प्रस्तुत करते चलते तो देश का महान उपकार करते। अस्तु ! रीतिकाल के उपरांत भी इसी पद्धति पर रीतिकाव्य का निर्माण होता रहा है, किंतु वह संख्या में बहुत ही कम है।

रीतिमुक्त काव्य *(हिं० प्र०)*

रीतिकाल में प्रमुख वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने रस, अलंकार, नायिकाभेद, शब्दशक्ति, वृत्ति आदि काव्यांगों के भेदोपभेदों के लक्षण-उदाहरण रूप में काव्य की सर्जना की थी; परंतु इसी युग में ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होने स्वयं को रीति के प्रभावों से मुक्त रखकर काव्य की सच्ची आराधना की है। इस काव्यधारा के अंतर्गत लाल (दे०), सूदन, महाराज विश्वनाथ सबलसिंह, जोधराज (दे०), गिरिधरदास आदि कथात्मक प्रबंधकार, श्रीधर, नागरीदास, हंसराज, हितवृंदावनदास (दे०) आदि वर्णनात्मक प्रबंधकार, वृंद (दे०), वैताल, गिरिधरदास (दे० गिरिधर कविराय), दीनदयाल गिरि (दे० आदि नीति-काव्यकार, भगवत रसिक, गोपालदास आदि पुरानी परंपरा के भक्त कवि, आलम (दे०) घनानंद (दे०), बोधा (दे०), ठाकुर (दे०) आदि प्रेम-पद्धति का निरूपण करने वाले स्वच्छंद प्रेमोन्नत कवि के रूप में जाने जाते हैं। रीति के प्रभाव से मुक्त इन कवियों का काव्य किसी भी दृष्टि से नगण्य नहीं कहा जा सकता। कारण यही है कि ये कवि मन की सूझ-बूझ के कवि थे। मन में जब जो भाव तरंगायित होता था उसे सच्ची अनुभूति के 'जामे' में बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त कर देना ही इनका मुख्य अभिप्रेत था। इसके विपरीत जिन कवियों ने रीतिग्रंथ लिखे हैं उन्होंने काव्यांगों के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करने में स्वतंत्रता से काम न लेने के कारण मन की उमंग का पूरा तिरस्कार किया है। 'रीतिमुक्त काव्य' के अंतर्गत प्रेम का स्वच्छंद निरूपण करने वाले आलम, बोधा, ठाकुर एवं घनानंद शृंगार के सघन एवं रंगीन चित्रण एवं भाषा के सजीव प्रयोग के लिए हिंदी साहित्य में काफ़ी ख्यात हैं।

रुक्मांगदचरित्रमु *(तं० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम चेदशुवाड मल्लना (दे०) है। इन्होंने 'विप्रनारायणचरित्रमु' नामक पाँच आश्वासों का एक शृंगार-काव्य भी लिखा है। 'रुक्मांगद-चरित्रमु' 'द्विपद' नामक देशी छंद में लिखा गया है। यह ग्रंथ अब अनुपलब्ध है। तेलुगु में द्विपद-साहित्य अधिक पाया जाता है। पद्यबद्ध कथा द्विपदबद्ध दोनों प्रकार के काव्य लिखने में मल्लना की प्रतिभा समान ही है। यह रचना मनोरंजक है।

रुक्मिणी *(म० पा०)*

ग०त्र्यं० माडखोलकर (दे०)-कृत 'रुक्मिणी' उपन्यास की सबसे प्रभावशाली नारी-पात्र रुक्मिणी नारी में अपेक्षित सभी गुणों की प्रतिमूर्ति है। नागपुर के एक समृद्ध एवं कुलीन राजघराने की सबसे बड़ी रानी, ममता, उदारता, पातिव्रत्य एवं सदाशयता आदि गुणों से परिपूर्ण सहिष्णुता, सात्त्विकता एवं धर्म-निष्ठा की साकार प्रतिमा है। आभिजात्य संस्कारों वाली यह तेजस्वी, स्थितप्रज्ञ और गंभीर स्त्री यदि अपने पति के लिए सद्गृहिणी, मंत्री और सखा है तो अपनी प्रजा एवं सेवक-वर्ग के लिए ममतामयी माँ के समान आश्रयदात्री। सपत्नी को भी अपनी सगी बेटी के समान स्नेह करने वाली इस स्त्री के जीवन की दो ही आकांक्षाएँ हैं—सुहाग एवं वंश-वृद्धि। इसीलिए सारे दुर्गुणों के भंडार पति को अपने सद्परामर्श से वह संकटों से बचाती है और वंश-वृद्धि के लिए अपने पति के न केवल तीन-तीन विवाह रचाती है अपितु सबसे छोटी रानी के गर्भ पर संकट के समय उसके उपचार में तत्परता से काम ही नहीं करती है, नर्मदा की कठिन यात्रा करने का व्रत भी लेती है। ममता और निग्रह, निष्ठा और समर्पण-भाव की साकार मूर्ति होती हुई भी वह पातिव्रत्य को पति का दासत्व नहीं मानती। अपने पूर्वजों और घराने की प्रतिष्ठा के प्रति जागरूक यह तेजस्वी नारी अपना स्वातंत्र्य नहीं गंवाती, आत्मसम्मान की रक्षा करती है और निस्संकोच अपना निर्णय देती है। उसमें ऐसा अहंकार है जो केवल महान् विभूतियों में मिलता है और जिसके कारण उनका व्यक्तित्व और अधिक प्रभावशाली हो उठता है। कुल मिलाकर वह तेजस्वी सन्नारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुक्मिणीनाथ शास्त्री, जलसूत्रमु *(ते० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

इनका जन्म मछलीपट्टम में हुआ था। 1937 ई० में उभय-भाषाप्रवीण की परीक्षा पास करके ये कृष्णा ज़िले के तेलप्रोलु की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था 'उदयभारती' में आंध्र भाषा के अध्यापक बने। 1940-46 ई० के बीच वे 'आंध्र पत्रिका' (साप्ताहिक) में सहायक संपादक रहे। उसके बाद मृत्यु-पर्यंत आकाशवाणी में रहे। 1946 ई० में ये 'आंध्र राष्ट्र (प्रदेश) अभ्युदय (प्रगतिवादी) रचयितल संघ' के मंत्री रहे। ये पैरोडी-रचना में सिद्धहस्त थे। 'जरूक' के नाम से लिखते थे। इन्होंने लगभग 500 रेडियो नाटकों की रचना की है। प्रकाशित रचनाओं में 'अक्षितलु' (पैरोडी कविता-संग्रह); 'एर्रटिचीकटि' (लाल अंधकार); (कहानी-संग्रह), 'शबरी' (नाटक); 'देवठया आत्मकथा' (उपन्यास); 'तनलो तानु' (स्वगत) (स्केच) उल्लेखनीय हैं।

रुक्मिणीपरिणय *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध]

'रुक्मिणीपरिणय' संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार वत्सराज (दे०) की प्रयोगवादी प्रवृत्ति का एक अन्य निदर्शन है। यह संस्कृत का एक मात्र उपलब्ध ईहामृग है। तीन अंक के इस रूपक में कृष्ण के साथ शिशुपाल तथा रुक्मिणी का वर्णन है। यह रूपक काव्य की दृष्टि से अत्यंत सुंदर है तथा इसकी भाषा प्रांजल एवं सुबोध है।

रुक्मिणीस्वयंवर *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ का रचना-काल 1292 ई० है। इसमें बाईस प्रकरण हैं और विषयवस्तु 'भागवत' (दे०) के दशम स्कंध तथा पद्मपुराण से गृहीत है। चरित्र-चित्रण तथा प्रकृति-चित्रण का सौंदर्य दर्शनीय है और रुक्मिणी की विरहावस्था का वर्णन मार्मिक है। कवि को संगीतकला और वास्तुकला की अच्छी जानकारी थी। संपूर्ण काव्य कल्पना-वैभव, रसोत्कर्ष और रमणीय अलंकृति-योजना से सुशोभित है। राजा रामदेव राव यादव के दरबार में इस काव्य का पाठ हुआ था। मराठी के प्रबंध-काव्यों की शृंखला में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

रुक्मिणीहरण *(म० कृ०)*

सामराज (दे०)-कृत यह काव्य संस्कृत के महाकाव्य की शैली पर रचित है। इसमें आठ सर्ग हैं, धीरोदात्त नायक है, शृंगार और वीररस प्रमुख हैं, प्रकृति-चित्रण है, अंत में नायक-नायिका का मिलन और विवाह वर्णित है। कहीं-कहीं समसामयिक परिस्थितियों का भी उल्लेख है। कुल श्लोक संख्या 1140 हैं। भाषा में प्रौढ़ता तथा शैली में रमणीयता है। संक्षेप में महाकाव्य के परंपरित गुणों की इसमें सफल अवतारणा है।

रुक्मिणीहरण-नाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती]

शंकरदेव (दे०) के छहों अंकीयानाटों में यह सबसे बड़ा है। इसकी कथा, 'भागवत पुराण' (दे०) और 'हरिवंश पुराण' से ली गई है। अनेक परिवर्तन भी किए गए हैं। लेखक द्वारा प्रवर्तित भक्तिपंथ ही नाटक का मूल उद्देश्य है। घटना-वर्णन और चरित्र गौण हो गए हैं। श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का प्रेम-भाव उपास्य के प्रति उपासक का भाव है। इसमें पूर्वराग का भी थोड़ा वर्णन है; किंतु नाटक शृंगार-रसमूलक नहीं है। चरित्रों में नायिका का चरित्र ही अधिक आकर्षक है। रुक्मिणी धैर्यशीला, बुद्धिमती और गंभीर प्रेमिका है।

रुद्रट *(सं० ले०)* [समय—लगभग 900 ई०]

काश्मीर-निवासी रुद्रट के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इनका समय 900 ई० के लगभग है। ये संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अन्यतम आचार्य हैं। इनकी एकमात्र कृति का नाम 'काव्यालंकार' (दे०) है।

विवेच्य विषय की दृष्टि से 'काव्यालंकार' काव्यशास्त्र के प्रायः समस्त सिद्धांतों की विस्तृत समीक्षा करता है। 734 आर्या छंदों को सोलह अध्यायों में विभक्त कर उनमें काव्य के प्रायः सभी तत्त्वों का विवेचन मौलिक रूप से हुआ है। नमिसाधु (दे०) ने इस पर टीका की है जो अत्युत्तम है।

आचार्य रुद्रट अलंकार-संप्रदाय के ही अनुयायी हैं। अलंकारों का विवेचन इन्होंने अपने इस ग्रंथ में वैज्ञानिक रूप में किया है। वास्तव, औपम्य, अतिशय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं श्लेष को सभी अलंकारों का मूल बताकर इसी आधार पर अलंकारों का वर्गीकरण• इनकी अपनी मौलिकता है।

रुद्रट भारत (दे०) के रस-सिद्धांत से पूर्ण परिचित प्रतीत होते हैं और काव्य में भी उसकी अवस्थिति अनिवार्य मानते हैं—'तस्मात्तत्कर्त्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम् ।' 1212; पर ये रीति को बहुत महत्व नहीं देना चाहते। रुद्रट की देन है—(क) अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण, (ख) प्रेयस् नामक दशम रस की कल्पना; (ग) गुणों का बहिष्कार, (घ) भाव अलंकार के द्वारा व्यंग्य के सिद्धांत का स्पर्श।

रुद्रदत्त (गु० पा०)

रुद्रदत्त स्वर्गीय रमणलाल देसाई (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'भारेलो अग्नि' का भव्य पात्र है। इस उपन्यास की कथावस्तु 1857 की क्रांति पर आधृत है।

रुद्रदत्त एक महायोद्धा तथा कुशल राजनीतिज्ञ के साथ-साथ विद्वत्ता का भी धनी है। यह पेशवा सरकार की पुनःस्थापना तथा कंपनी सरकार के निष्कासन के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहता है। इसी निमित्त यह विदेश-यात्रा पर भी जाता है। अपने कुशल नेतृत्व में यह अनेक योद्धा एवं अफ़ग़ानिस्तान रूस, चीन, भारत आदि स्थलों में अनेक शस्त्रागार तैयार कराता है। युद्ध में अपने पुत्र के वीरगति को प्राप्त होने पर इसके मन में शत्रु की संतान के प्रति हिंसा की भावना जागती है किंतु अपने ही शिष्य के एक वाक्य द्वारा इसका हृदय-परिवर्तन होता है और अहिंसोन्मुख हो जाता है। परिणामतः गुजरात तथा विहार गाँव में आश्रम स्थापित करता है तथा अपने शिष्यों को शास्त्राध्ययन कराने लगता है। अपनी तपः-पूतता, ज्ञाति, जाति, वर्ण, धर्म आदि भेदों से परे शुद्ध मानवीय दृष्टि तथा तदनुकूल व्यवहार आदि के कारण यह अत्यंत सम्मानित होता है। 1857 ई० के क्रांतिकारी—तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मंगल पांडे इत्यादि—भी इसका सम्मान करते हैं। झाँसी की रानी के कहने से जब यह निःशस्त्र क्रांति का नेतृत्व करने जाता है तब मार्ग में मालवा में अँग्रेज़ पादरी तथा उसकी पत्नी को बचाने के प्रयत्न में अपने भूतपूर्व शिष्य के हाथों मारा जाता है। अंतिम इच्छा है कि जो व्यक्ति आजीवन शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा ले वही मेरा अग्नि-संस्कार करे। इस प्रकार जाते-जाते भी यह त्र्यंबक जैसे तेजस्वी विद्वान को अहिंसा की शिक्षा देता है।

समग्रतया प्राचीन ऋषित्व के आदर्श-रूप रुद्रदत्त के मन में दो भावनाएँ प्रमुख हैं—एक अहिंसा की और दूसरी प्रजाशासन की।

आलोच्य ग्रंथ का प्रकाशन 1935 ई० में उस समय हुआ था जब गांधीयुग का मध्याह्न चल रहा था। सहृदय तथा आलोचक वर्ग को रुद्रदत्त में गांधी जी की प्रतिच्छवि दिखाई दी थी। इसकी उपर्युक्त दोनों भावनाओं को यद्यपि आधुनिक माना गया है तथापि सबने यह स्वीकार किया है कि प्राचीनता तथा अर्वाचीनता का संगम-स्थल, विश्वव्यापी प्रताप से युक्त इस जैसा भव्य पात्र लेखक की लेखनी का गौरव-गान है।

रुद्रभट्ट (क० ले०)

रुद्रभट्ट नाम से ही स्पष्ट है कि वे ब्राह्मण थे। बाहरवीं शती के कवियों में इनका नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। इनके ग्रंथ 'जगन्नाथ-विजय' (दे०) से ज्ञात होता है कि वीरबल (1173-1220 ई०) के मंत्री चंद्रमौली से ये सम्मानित हुए थे। संभवतः चंद्रमौली इनके आश्रयदाता थे। इनको 'कृतिशारदाभ्रचंद्रातप' और 'कविराज' की उपाधियाँ प्राप्त थीं। इनकी दो रचनाएँ हैं-—'जगन्नाथ-विजय' और 'रसकलिका', जिनमें दूसरी रचना अप्राप्य है।

'जगन्नाथ-विजय' अठारह आश्वासों का बड़ा काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर श्रीकृष्ण-बाणासुर-युद्ध तक की कथा का वर्णन है। इस कथा का आधार विष्णुपुराण है। महाकाव्य के लक्षणों से संपन्न इस काव्य की यह विशेषता है कि इसमें श्रीकृष्ण के 'एकोत्तरशत कृत्यों' का वर्णन है जो श्रीकृष्ण के लौकिक और अलौकिक रूपों को स्पष्ट करता है। काव्य के प्रारंभ में कवि ने 'भू-भारच्छेददक्ष' कृष्ण हमको आनंद-संदोह प्रदान करें कहकर अपने काव्य-नायक की स्तुति की है। तत्पश्चात् इन्होंने ब्रह्म, रुद्र, सूर्य, गणपति और सरस्वती की स्तुति की है। स्मार्त ब्राह्मण होने के कारण इनमें शिव-विष्णु का भेद नहीं है। इन्होंने वाल्मीकि और कालिदास सरीखे संस्कृत कवियों की बड़ी प्रशंसा की है।

रुद्रभट्ट ने कथा मात्र कहने के उद्देश्य से नहीं, भक्ति से प्रेरित होकर काव्य की रचना की थी। इनका उद्देश्य इस वाक्य से स्पष्ट है—'काव्य-समाधि से परंज्योति मुकुंद मेरे हृदय में प्रतिष्ठित होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल तत्त्व का बोध हो, इस इच्छा से मैं यह प्रबंध कहने लगा हूँ ।' ये प्रतिभाशाली कवि हैं," अतएव इनका काव्य 'पुराण' नहीं है, वह 'सहृदय-हृदय-विजय' है । उसमें वर्णित अनेक प्रसंग अत्यंत आकर्षक और मर्मस्पर्शी हैं । बालकृष्ण की लीलाओं का इन्होंने मनोहारी वर्णन किया है । इस संदर्भ में भक्तिरस की धारा बही है । यह कवि की परिपक्व प्रतिभा का निदर्शन है । प्रकृति-चित्रण, युद्ध-वर्णन और कवि-समय के अनुसार वर्णन करने में ये सिद्धहस्त हैं । इनके वर्णनों में सजीवता है और संभाषणों में रसप्रवणता । इनका उपनिषद्-दर्शन और भक्तिरस का सुंदर संगम बन गया है । पंडित-कवि होने के कारण इनको संस्कृत शब्दों के प्रति अधिक प्रेम है, परंतु इस कारण ये अनौचित्य को स्थान नहीं देते । अलंकारों में इनको अनुप्रास अधिक प्रिय है । इनकी भाषा में प्रवाह और चुलबुलापन है, छंदों में लालित्य है ।

रुद्रमदेवी *(ते० ले०)* [रचना-काल—1950 ई०]

इस उपन्यास के लेखक 'कवि-सम्राट' नौरि नरसिंहशास्त्री (दे०) हैं । आंध्र के प्रख्यात राजवंशों के बीच काकतीयों का नाम भी गौरव और गर्व के साथ लिया जा सकता है । ओरुगल्लु (एकशिला नगर) को राजधानी बनाकर इन्होंने प्रधानतः ईसा की बारहवीं तथा तेरहवीं शतियों में आंध्र प्रांत पर शासन किया था । इनमें गणपति देव की पुत्री रुद्रमदेवी का शासन-काल 1262 ई० से लेकर 1296 ई० तक रहा । धार्मिक तथा नाजनीतिक परिस्थितियों से संबद्ध अनेक संघर्षों और अस्थिरताओं के बीच असाधारण सामर्थ्य के साथ रुद्रम-देवी ने राजकार्य का संचालन किया । इसी का विशद चित्रण इस उपन्यास में है । नेल्लूर के राजा मनुमसिद्धि के सभाकवि तिक्कना (दे०) का भी इस उपन्यास के कथानक से घनिष्ठ संबंध है ।

नरसिंहशास्त्री ने 'महाभारत' (दे०) के तेलुगु अनुवादकर्ता तीनों महाकवियों—नन्नय भट्टु (दे०) तिक्कना तथा एर्रना (दे० एर्राप्रगड) से संबद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है । उनमें तिक्कना से संबंध रखने वाला उपन्यास ही 'रुद्रमदेवी' है । ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर एक सरस उपन्यास लिखने की कला में नरसिंह-शास्त्री सिद्धहस्त हैं । समकालिक विभिन्न परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इसमें रुद्रमदेवी के वीर चरित्र का भी मार्मिक चित्रण है ।

तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में नरसिंह-शास्त्री का तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के अंतर्गत 'रुद्रम-देवी' का विशिष्ट स्थान है । केंद्रीय साहित्य अकादमी ने इसे सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित कराने का निश्चय किया है ।

रुद्रमदेवी *(ते० पा०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

ये आंध्र के काकतीय वंश के सम्राट् गणपति-देव की एकमात्र संतान थीं । अतः बचपन से पुरुष-वेश में रहकर राजनीति तथा युद्धनीति में इन्होंने प्रवीणता प्राप्त की थी । ये अल्पायु में ही विधवा हो गई थीं और पिता की मृत्यु के उपरांत 'रुद्रमदेव महाराज' नाम से असामान्य वीरता एवं साहस से काकतीयों के विशाल साम्राज्य का शासन करने लगी थीं । इस कार्य में इनको चोल, पल्लव आदि अनेक शत्रु राज्यों के आक्रमणों तथा एक स्त्री के अधीन रहने को अपने पुरुषत्व का अपमान समझने वाले अनेक सामंतों के विद्रोह का सामना करना पड़ा था । अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए ही नहीं, अपनी जनता की सुविधा के लिए भी इन्होंने अनेक कार्य किए थे ।

इनके जीवनवृत्त को लेकर तेलुगु के विख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार नौरि नरसिंहशास्त्री (दे०) ने 'रुद्रमदेवी' (दे०) नामक एक उपन्यास की रचना की है जो तेलुगु के उपन्यास-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

रुद्रसुधानिधि *(उ० कृ०)*

नारायण नंद अवधूत स्वामी (दे०)-कृत प्राचीन साहित्य में 'रुद्रसुधानिधि' एक महत्वपूर्ण गद्य-रचना है । इसमें शैवधर्म की महिमा वर्णित है । केवल प्राचीनता के कारण नहीं साहित्यिक गुणों—शिल्प, कल्पना, लेखक की स्वतंत्र एवं अभिनव दृष्टिभंगी, आदि के कारण भी इसका अत्यंत महत्व है । यद्यपि नारायण नंद अवधूत संन्यासी थे, किंतु आत्मिक दृष्टि से वे युगधर्मी कवि थे—बाह्य दृष्टि से सर्वत्यागी थे; किंतु भीतर से सौंदर्य-पिपासु प्रणयी थे । इस ग्रंथ में परस्पर विरोधी तत्त्वों—संयम एवं प्रणय, त्याग एवं भोग, शास्त्रीय शिष्टता एवं युगीन स्वाधीनता का सुंदर समावेश है । इसकी विशेषता यह है कि विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण में लेखक का युगबोध प्रकट होता जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें गद्य एवं पद्य का आत्मिक सम्मिश्रण हुआ है। काव्य की दृष्टि से यह जैसे सिद्धियुक्त गद्य-ग्रंथ है, उसी प्रकार गद्य-ग्रंथ के रूप में भी यह असाधारण रूप से प्रकाशनशील है। इसकी आलंकारिक पद्यात्मक शैली अत्यंत प्रवाहमयी है। वर्णन-चातुरी, कल्पना-विलास, पद्य-माधुरी, रचना-कौशल आदि की दृष्टि से यह एक अभिनव कृति है।

इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है। राजा अनंग पद्माकर संतानहीन हैं। उनकी प्रार्थना पर संतुष्ट होकर शिवजी अपने गणों में से एक को उनकी संतान बनाकर भेजने का विचार करते हैं। फलतः सुंदरी कन्या त्रैलोक्य मोहिनी की सृष्टि होती है। अभिनव चैतन्य नामक एक गण उस पर मुग्ध होता है। शिव उन्हें धरती पर अवतीर्ण होने की आज्ञा देते हैं। कारण, आकर्षण यौगिक पूर्णता की कमी का सूचक है। अभिनव चैतन्य अनुतप्त होते हैं तथा मनुष्य-जीवन न देने की प्रार्थना करते हैं। शिव उन्हें समझाते हैं तथा धरा पर उत्तम राजा के रूप में जीवन-यापन कर कैवल्य-धाम को लौट आने की बात कहते हैं।

रुबाई *(उर्दू० पा०)*

'रुबाई' अरबी भाषा के 'रुबअ्' शब्द से व्युत्पन्न है। 'रुबअ्' का अर्थ किसी पदार्थ का चौथा भाग है और रुबाई का अर्थ—'चार वाला' है। अतः चार पंक्तियों की कविता को उर्दू में रुबाई कहते हैं। यह 'क़तअ' से सर्वथा भिन्न काव्य-विधा है। इसे 24 प्रकार के विशिष्ट छंदों की परिसीमा में ही पद्यबद्ध किया जा सकता है। इसकी प्रथम दो पंक्तियों का परस्पर तुकांत होना अनिवार्य है। आरंभ में रुबाई की चारों पंक्तियों में अंत्यानुप्रास हुआ करता था परंतु कालांतर में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति को परस्पर तुकांत रखा गया और तृतीय पंक्ति को अतुकांत रहने दिया गया। आजकल रुबाई का यही रूप प्रचलित है। इसकी रचना अत्यंत श्रम और अभ्यास-साध्य है। रुबाई-लेखन में समर्थ कवि ही सफल होते हैं।

रुय्यक *(सं० ले०)* [समय—1150 ई०]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के कश्मीरी ग्रंथकारों में आचार्य रुय्यक का अपना विशिष्ट स्थान इसलिए है क्योंकि अलंकारों के विषय में जो कुछ भी अपेक्षित था उसका विवेचन इन्होंने अपनी कृति 'अलंकारसर्वस्व' (दे०) में कर दिया है।

रुय्यक का दूसरा नाम रुयक है जो तत्कालीन साहित्यकारों में अधिक प्रचलित प्रतीत होता है। ये कश्मीर नरेश जयसिंह के समय में सांधिविग्रहिक भी थे। अतः इनका समय निश्चितप्राय बारहवीं शती का मध्य भाग है। इनके पिता का नाम तिलक एवं गुरु का नाम मंखक (दे०) था। इनके कुल को भी कश्मीर की प्रसिद्ध उपाधि राजानक प्राप्त थी।

रुय्यक की अति प्रसिद्ध कृति 'अलंकारसर्वस्व' है। पर इसके अतिरिक्त भी उनकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। 'साहित्यशास्त्र पर भी सहृदयलीला' एवं 'साहित्य-मीमांसा' आदि कृतियाँ हैं जो प्रकाशित भी हैं। 'नाटक-मीमांसा' नामक कृति नाटकों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है। अलंकारों पर ही 'अलंकारानुसारिणी', 'अलंकार-मंजरी', 'अलंकारवार्तिक' एवं 'अलंकारसर्वस्व' नामक चार कृतियाँ हैं जिनमें केवल 'सर्वस्व' ही प्रकाशित है। 'श्रीकंठस्तव' नामक एक काव्य भी इनके द्वारा रचित है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' (दे०) पर 'संकेत' तथा 'व्यक्तिविवेक' (दे०) पर 'व्याख्यान' नाम की टीकाएँ भी की हैं।

आचार्य रुय्यक अपने समय के उद्भट विद्वान थे। इन्होंने अलंकारों की दार्शनिक भित्ति का निरूपण कर उनके पीछे व्यक्ति या समाज की मनोवृत्ति को परखने का द्वार खोल दिया है। अलंकारों का सूत्रात्मक लक्षण कर उनके यथार्थ स्वरूप का भी इन्होंने 'अलंकारसर्वस्व' में परिनिष्ठित किया है। ये अपने को ध्वनिवादी आचार्य कहते हैं। 'व्यक्तिविवेक' पर लिखी अपनी व्याख्या नामक टीका में महिमभट्ट (दे०) के अनुमिति पक्ष का इन्होंने खंडन किया है।

रुसवा *(उर्दू० ले०)*

नाम—मिर्ज़ा मुहम्मद हादी, उपनाम—रुसवा। मिर्ज़ा 'औज' इनके काव्य-गुरु थे। सर्वप्रथम ये ग़ालिब की शैली में काव्य-सृजन करते रहे थे परंतु बाद में सरस शैली की ओर प्रवृत्त हो गये थे। इनमें कवित्व-प्रतिभा भरपूर थी परंतु इनकी ख्याति का कारण इनका एक उपन्यास 'उमराव जान अदा' (दे०) है। इस अमर कृति में इन्होंने तत्कालीन समाज के रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति का यथार्थ चित्रण प्रभावशाली ढंग से किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस उपन्यास के अतिरिक्त 'मसनवी नौबहार', 'सुबह-ए-अमीद', 'ज़ात शरीफ़' (उपन्यास) और 'मुरक्का-ए-लैला-मजनूँ' (नाटक) मिर्ज़ा साहब की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। उच्च कोटि के गद्य-लेखकों में इनकी गणना की जाती है।

रूपक *(पारि०)*

भारतीय दृष्टि से नाट्य के दो भेदों में से प्रमुख। संस्कृत-आचार्यों ने दृश्य-काव्य के दो भेद निरूपित किए हैं : रूपक (दे०) और उपरूपक। रूपक में अवस्था के अनुकरण के साथ ही रूप का आरोप भी आवश्यक होता है। ('रूपारोपात्तु रूपकम्'।—साहित्य-दर्पण 611)। शास्त्र में रूपक के दस भेद किए गए हैं—'नाटक' (दे०), 'प्रकरण', 'भाण' (दे०), 'व्यायोग', 'समवकार', 'डिम', 'ईहामृग', 'अंक', 'वीथी', 'प्रहसन' (दे०)। इनमें 'नाटक' सर्वप्रमुख है।

रूपक (अलंकार) *(पारि०)*

यह एक महत्वपूर्ण सादृश्यमूलक अर्थालंकार है। सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप कर अभेद की स्थापना द्वारा रूपक काव्यसौंदर्य का उत्कर्ष करता है। दंडी (दे०) ने रूपक को उपमा (दे०) से इसी अर्थ में पृथक् किया है कि उसके द्वारा उपस्थित सादृश्य में उपमान और उपमेय का पारस्परिक भेद विलुप्त हो जाता है (काव्यादर्श : 2।14,66)। वामन (दे०) (काव्यलंकारसूत्रवृत्ति 4।3।6) और मम्मट (दे०) (काव्यप्रकाश 10।93) ने भी उपमान और उपमेय के अभेद को रूपक माना है। रुद्रट (दे०) ने गुणों के साम्य से उपमान और उपमेय के अविवक्षित सामान्य भेद को रूपक कहा है (काव्यालंकार 8।38)। रूपक के तीन प्रमुख भेद माने जाते हैं : परंपरित, सांग और निरंग।

रूपकथा *(बँ० प्र०)*

बँगला लोक-साहित्य के अंतर्गत 'रूपकथा' का महत्वपूर्ण स्थान है। रूप-कथा से तात्पर्य है बच्चों के मन बहलाने के लिए रचित राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी, राक्षस-डाइन-पक्षीराज घोड़ा एवं इंद्रजाल, जादू-टोना तथा विभिन्न जानवरों की कहानी जो इस दुनिया की कहानी न होकर एक और ही दुनिया की कहानी होती है।

लोक-समाज में प्रचलित नाना प्रकार की रूप-कथाओं को लाल बिहारी दे ने 'फोक टेल्स ऑफ़ बेंगाल' के नाम से संकलित किया है। इसके अतिरिक्त दक्षिणारंजन मित्र मजुमदार (दे०) के द्वारा संकलित 'ठाकुर-दादार झुलि' एवं 'ठाकुरमार झुलि' रूप कथा के सुष्ठु दृष्टांत हैं। इन पुस्तकों में रूपकथा के अंतर्गत गीतों का प्रयोग हुआ है। ऐसे भी रूपकथा का गद्य व्यावहारिक गद्य न होकर काव्यधर्मी गद्य होता है।

बँगला रूपकथा शिशु-मन का रोमांस है—रही इनके स्थायी आकर्षण का कारण है। रूपकथा में राजा-रानियों के अतिरिक्त पशु-पक्षी की चरित्रमूलक कहानियों का भी स्थान है। ये कहानियाँ अधिकतर नीतिमूलक होती हैं। कतिपय पशु-पक्षियों की कहानियाँ हास्यरसोद्दीपन के लिए प्रस्तुत की गई हैं। बँगला रूप-कथा-साहित्य बहुत ही समृद्ध है।

रूपगोस्वामी *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600 ई०]

रूपगोस्वामी का एक नाम दबिर खास था। कहते हैं कि ये मुसलमान हो गए थे और मुसलमान होने पर ही इनका नाम दबिर खास रखा गया था। किंतु मुसलमान होने पर जब इन्होंने रामकेली में चैतन्य महाप्रभु के दर्शन किए तो ये हिंदू हो गए और फिर रूपगोस्वामी के नाम से प्रख्यात हुए। वैसे, जन्मना ये ब्राह्मण ही थे। इनके बड़े भाई का नाम सनातन था। रूपगोस्वामी-रचित ग्रंथों में 'ललितमाधव', 'विदग्धमाधव', 'उज्ज्वल-नीलमणि' (दे०), 'उत्कलिकावल्लरी', 'उद्धवदूत', 'उपदेशामृतकार्यण्णपुंजिका', 'गंगाष्टक', 'गोविंदविरुदावलि', 'गौरांगकल्पतरु' तथा संक्षेप 'भागवतामृत' आदि ग्रंथ प्रमुख हैं।

रूपगोस्वामी कृष्ण के परम भक्त थे। इसलिए इनके लेखन का विषय भी विशेषकर भक्ति-संबंधी विचारधारा ही है। रूपगोस्वामी ने भक्ति की छः विशेषताएँ बतलाई हैं। इन विशेषताओं के अनुसार भक्ति पापनाशिनी तथा पापमूल अज्ञान की विनाशिका है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह भक्ति शुभदा है। इस भक्ति की तीसरी विशेषता यह है कि भक्त को भक्ति के आनंद की तुलना में मोक्ष भी हीन प्रतीत होता है। चौथी विशेषता यह है कि इस भक्ति को मनुष्य ईश्वर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा के बिना प्राप्त नहीं कर सकता। पाँचवीं विशेषता यह है कि यह भक्ति ब्रह्म-ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है। इस भक्ति की यह छठी विशेषता है कि इसमें भगवान स्वयं भक्त की सेवा के लिए उपस्थित हो जाते हैं। रूप-गोस्वामी की रचनाओं की संस्कृत सरल एवं सरस है।

रूप ज्योति *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1945 ई०]

अट्ठाईस वर्ष की अल्पायु में मृत्यु-कवलित हो जाने वाले गणेश गर्ग (दे०) का यह तृतीय एवं अंतिम कविता-संग्रह है। लेखक को एक उत्कृष्ट प्रेमी कवि माना जाता है। उसकी कविता में वेदना और रोदन है। रूप-ज्योति की कविताओं में एक नया सुर उपलब्ध होता है। इसमें उसकी उच्चस्तर की राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है।

रूपदर्शी *(अ० कृ०)*

श्री के० वी० अय्यर (दे०) कन्नड के विख्यात उपन्यासकार हैं। 'शांतला' (दे०) उनका प्रतिनिधि ऐतिहासिक उपन्यास है तो 'रूपदर्शी' को हम एक प्रकार का ऐतिहासिक मिथ कह सकते हैं। इसमें विश्वविख्यात चित्रकार माइकेल एंजेलो के जीवन से संबंधित एक मामिक कथा है। इटली का महान शिल्पी माइकेल एंजेलो बाल ईसा के चित्रण के लिए एक मॉडल ढूँढता रहता है। अंत में उसे पीसा में एक सुंदर बालक मिलता है जिसे बिठाकर वह ईसा का सुंदर चित्र बनाता है। यही बालक अर्नेस्ट इस उपन्यास का नायक है। देवदूत जैसा सुंदर एवं सुशील वही लड़का आगे चल कर जीवन के उतार-चढ़ावों के कारण गैरिबालडी नामक नीच व्यक्ति बनता है जो जूदा के चित्र के लिए मॉडल (रूपदर्शी) बनता है। एक ही व्यक्ति परिस्थिति-विशेष के कारण देव या दानव बन जाता है—यही इसका प्रतिपाद्य है। उपन्यास में इटली के सांस्कृतिक जीवन का इतना सूक्ष्म एवं व्यापक चित्रण है कि ऐसा चित्र अँग्रेज़ी में भी नहीं मिलता है। शिल्पी तथा उसका रूपदर्शी सिर्फ़ ये ही दो चरित्र मूल हैं। प्रमुख चरित्र की रेखाओं को उभारने के लिए लेखक ने बहुत से नये चरित्रों का निर्माण किया है। महात्मा ईसा के अंतिम दिन ईसाई संस्कृति आदि के वर्णन में लेखक ने कमाल कर दिया है। इसकी भाषा प्रसादगुण-युक्त तथा बहुत प्रभावशाली है। ईसाई समाज के प्रति एक गैर-ईसाई की यह सहानुभूति लेखक के व्यक्तित्व को और भी उन्नत भूमि पर स्थापित कर उसके गौरव की वृद्धि करती है। यह कन्नड के गौरव-ग्रंथों में एक है।

रूप-बसंत *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1903 ई०]

क़िस्सा-काव्य के अंतर्गत हिंदू कथाओं को प्रतिष्ठा दिलाने वाले कवि दौलतराम (दे०) की दशाधिक कृतियों में 'रूपबसंत' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इस प्रबंध-काव्य में राजा खड्गसेन के पुत्रों, रूप और बसंत के सदाचरण की' अलौकिक चमत्कारों से युक्त कथा है। बसंत के सौंदर्य पर मोहित, असफल-मनोरथ, विमाता चंद्रावती ने पुत्र को निर्वासित करवा दिया। दोनों भाई दीर्घकाल तक अनेक दैवी-दानवी प्रकोप से जूझकर अपने धैर्य एवं सदाचरण के परिणामस्वरूप पुनः पिता से आ मिलते हैं। विमाता चंद्रावती ग्लानि से आत्महत्या कर लेती है और पिता विरक्त होकर संन्यास ग्रहण कर वन को चले जाते हैं। कवि ने विविध कथानक-रूढ़ियों के प्रयोग से कथा को अनेक चमत्कारपूर्ण मोड़ दिए हैं। जगह-जगह नारी के लौकिक प्रेम, क्रोध, मोह आदि की निंदा तथा तप, त्याग, धर्म और योग की महिमा का वर्णन किवा है। इस कृति का मुख्य स्वर वैराग्य का है परंतु अन्य मानव-सुलभ भावों की भी सुंदर व्यंजना है। विविध छंदों और अलंकारों से समृद्ध इस कृति में बारहमासे, सतवारे (दे०), और सीहरफ़ियों (दे०) का भी प्रयोग कर लेखक ने एक नयी रचना-पद्धति अपनाई है। अपने विशाल, कथा-चमत्कार एवं छंद-वैविध्य के अतिरिक्त नैतिक स्वर के कारण भी यह कृति विशेष प्रसिद्ध हुई है।

रूपराम *(बँ० ले०)*

वर्द्धमान ज़िले के दक्षिण में काइति श्रीरामपुर में इनका जन्म हुआ था। इनके जन्म-काल के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके पिता का नाम अभिराम था।

इनकी कृति 'धर्ममंगल-काव्य' है। अनुमान से इस कृति का रचना-काल 1649-50 ई० के आसपास है। इन्होंने लोक-प्रचलित असंबद्ध गाथा-गीत (बैलेड) ही को वीररसात्मक आख्यान-काव्य का रूप दिया जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्माचरण और भक्ति-रस की अपेक्षा दुःसाहसिक घटना और वीरत्व-व्यंजक कहानी को प्रधानता मिली है। इन्होंने देव-महिमा को आच्छन्न न कर मनुष्य के महत्व को काव्य-रूप दिया है। इन्हें धर्मठाकुर की महिमा का आदि प्रवर्तक कहा जाता है। कवित्व-कौशल, चरित्र-सृष्टि, स्वच्छंद वर्णन, सहज आलंकारिकता तथा परिहास-सृष्टि में रूपराम अत्यंत कुशल हैं। सत्रहवीं शती के 'धर्ममंगल'-काव्यों में रूपराम की कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

रूपविज्ञान *(भाषा० पारि०)*

भाषाविज्ञान की इस शाखा में रूप-रचना का अध्ययन होता है। सामान्यतः रूपविज्ञान में शब्द-रचना को भी समाहित कर लिया जाता है, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से रूप और शब्द एक नहीं हैं; अतः रूप-रचना का अध्ययन रूपविज्ञान में होना चाहिए और शब्द-रचना का शब्दविज्ञान है। रूप या पद भाषा की वह इकाई है जिसमें अर्थ-तत्त्व और संबंध-तत्त्व (सुप्तिङन्तं पदम्) दोनों होते हैं, जबकि शब्द में केवल अर्थ-तत्त्व होता है। शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से वाक्य में रूप या पद का ही प्रयोग होता है, और शब्द शब्दकोश में होते हैं। रूप या पदविज्ञान में इस बात का अध्ययन होता है कि मूल शब्द से रूपों या पदों की रचना कैसे होती है, दूसरे शब्दों में वचन, लिंग, कारक, क्रिया के विभिन्न रूप मूल शब्द या धातु से कैसे बनते हैं। विश्व की विभिन्न भाषाओं में रूपों की रचना मोटे रूप से पूर्वसर्ग (prefix) मध्यसर्ग (infix), अंत्यसर्ग (suffix), शून्य रूपग्राम (zero morpheme), शब्दक्रम (word order), ध्वनि-प्रतिस्थानयन (replacing), ध्वनि-द्विरावृत्ति (reduplication), ध्वनि-वियोजन (subtracting), बलाघात (stress), सुर (tone), तथा स्वतंत्र शब्दों के प्रयोग से होती है। रूप-रचना का अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों प्रकार का हो सकता है; साथ ही यह सैद्धांतिक भी हो सकता है और प्रायोगिक भी। संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने रूपविज्ञान की रूपग्राम-विज्ञान (morphenics) नामक एक शाखा का विकास किया है, जिसमें रूप-रचना के घटकों के वितरण का अध्ययन किया जाता है।

रूपावती *(त० कृ०)* [रचना-काल—1957 ई०]

शूरिय नारायण शास्त्री (दे०)-कृत इस नाटक में रूपावती और उसके प्रेमी सुंदरानंदन की कथा वर्णित है। इस नाटक के पात्र काल्पनिक हैं परंतु वातावरण ऐतिहासिक है। कथानक सरल है, चरित्र-चित्रण सुंदर और सफल है। सुंदरानंदन के कुछ स्वगत-कथन अत्यंत प्रभावशाली हैं। संपूर्ण नाटक सरस और सरल शैली में रचित है। इसमें सरसता और उपदेशात्मकता का समन्वय हुआ है। तिरुवळ्ळुवर (दे०) के समान नाटककार कहता है कि उचित रीति से व्यतीत किया गया गृहस्थ जीवन संन्यासी-जीवन से बढ़कर है।

रूपचंद-कुँवर-रास *(गु० कृ०)*

मध्ययुगीन गुजराती के जैन कवि नयसुंदर-रचित 'रूपचंद-कुँवर-रास' सांसारिक प्रेम का निरूपण करने वाली विस्तृत पद्य-वार्ता है।

इस पद्य-वार्ता में उज्जयिनी के वणिक्-पुत्र रूपचंद और उज्जयिनी में ही रहने वाले (किंतु कन्नौज-राज के अधीन) गुणसेन की पुत्री सोहाग के प्रेम का वर्णन है। पहेलियों व समस्याओं को हल करने के चातुर्य के कारण नायक रूपचंद को सोहाग के अलावा विक्रम राजा की कन्या भी प्राप्त होती है।

रचयिता जैन कवि होने से कथा के अंत में नायक को जैन-साधु से दीक्षित कराया व राजा विक्रम को भी जैन बताया गया है। संस्कृत-काव्य-परंपरा का निर्वाह, आलंकारिक शैली, शब्द-वैभव, वर्णन-माधुर्य, वर्णन-प्रचुरता आदि विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं।

मध्ययुगीन लौकिक पद्यवार्ता के रूप में रचना ध्यान देने योग्य है।

रूहे-इक़बाल *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

उर्दू के महान कवि डा० सर मुहम्मद इक़बाल (दे०) के व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली यह एक सुंदर कृति है। इसके रचयिता डा० यूसुफ़ हुसैन खाँ हैं। इसमें डा० इक़बाल के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने के लिए उनके काव्य में से ही उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। डा० इक़बाल के विचारों के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति तीन भागों में विभक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है : (1) कवि-कला, (2) कवि की सम्भ्रता (3) कवि-धर्म। इन तीनों शीर्षकों के अंतर्गत इस कृति में उन सभी समस्याओं का उल्लेख है जिनका विवेचन कवि ने अपने काव्य में किया है। इसके लिए लेखक ने कवि के काव्य में से उदाहरण प्रस्तुत कर अपनी बात प्रमाणित करने का प्रयास किया है। डा० इक़बाल के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने वाली तथा कवि और उसके काव्य-विषयक ज्ञान में अभिवृद्धि करने वाली यह एक प्रामाणिक रचना है।

और निस्संदेह उसे 'रूहे-इक़बाल' (इक़बाल की आत्मा) की संज्ञा दी जा सकती है। भाषा सुबोध तथा विद्वत्तापूर्ण है। स्थान-स्थान पर कविवर इक़बाल की उर्दू तथा फ़ारसी कविताओं के उदाहरण पुस्तक को सरस एवं पठनीय बना देते हैं।

रेखता *(पं० पारि०)*

मध्ययुगीन पंजाब में दोहे जैसे छंद में प्रचलित एक काव्य-रूप-विशेष जिसमें उर्दू-फ़ारसी के शब्द भी प्रयुक्त होते हैं 'रेखता' कहलाया। गुरुग्रंथ साहिब में पाँचवें गुरु के कुछ रेखते संगृहीत हैं। पंजाबी में भगत बलीराम के रेखते भी प्रसिद्ध हैं।

रेखाचित्र *(हिं० पारि०)*

अँग्रज़ी के 'स्कैच' का समानार्थी रेखाचित्र गद्य की एक आधुनिक विधा है जिसमें क्रॉस के अनुसार वास्तविक जीवन का यथार्थवादी विधि से अंकन किया जाता है। जिस प्रकार चित्रकार चित्र में आड़ी-तिरछी पर अजीब रेखाओं का प्रयोग करता है, उसी प्रकार रेखा-विलक्षण व्यक्तित्व वाले अथवा संवेदना जगाने वाली विशेषताओं से युक्त, किसी व्यक्ति का ऐसा अजीब चित्र उपस्थित करता है कि वह व्यक्ति, स्थान, वातावरण या प्रसंग साकार ही उठता है। वह अपने मन में संकलित स्मृति-रेखाओं को कला (दे०) की तूलिका से स्वानुभूति के रंग में रँगकर अजीब बना देता है। शब्द-चित्र छोटे और जीवंत होते हैं, अतः उनकी तुलना स्नैप-शॉट से की गई है। सफल रेखाचित्र के लिए अपेक्षित गुण हैं—हृदय की संवेदनशीलता, कल्पना की समाहार-शक्ति, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति, चित्रोपम भाषा, चरित्र-व्यंजक वार्तालाप, विराम-चिह्नों का कुशल प्रयोग। इसमें मूर्त रूप और रंग नहीं होते, केवल रेखाएँ होती हैं, तथ्यों का संयोजन नहीं केवल उद्घाटन होता है। इसमें व्यक्ति या प्रसंग के केवल एक पक्ष पर तीव्र प्रकाश डाला जाता है जिससे यह सिनेमा के क्लोज़-अप की तरह भास्वर हो उठता है।

रेगे, पुरुषोत्तम शिवराम *(म० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये बंबई के एलफिंस्टन महाविद्यालय में प्राचार्य हैं। काव्य-रचना के प्रारंभिक चरण में ये 'सुहृच्चंपा' उपनाम से लेखन करते थे।

रेगे किसी काव्य-प्रवाह के अनुयायी न होकर स्वतंत्र व्यक्तिवादी कवि हैं।

इनके काव्य-संग्रह हैं : 'साधना आणि इतर कविता' (1931), 'फुलोरा' (1937), 'हिमसेक' (1943), 'दोला' (1950) आदि।

इनमें प्रेम-गीतों का प्राधान्य है जिसमें अल्लढ़, चंचल प्रेम की अभिव्यक्ति है, जो कहीं-कहीं मांसलता का स्पर्श भी करती है।

इनकी कविता लघु कविता है, जो मुक्तछंद (दे०) में लिखी गई है। कवि ने सूक्ष्म संवेदन की अभिव्यक्ति के लिए परिचित प्रतीकों तथा शब्दों का सामान्य संदर्भ से भिन्न, नवीन रूप में प्रयोग किया है।

रेणु, फणीश्वरनाथ *(हिं० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के पूर्णिया ज़िले के एक छोटे-से गाँव में मध्यवर्गीय किसान परिवार में हुआ। हिंदी के आंचलिक उपन्यासकारों में इनका अन्यतम स्थान है तथा 'मैला आँचल' (दे०), 'परती परिकथा' (दे०) इनकी उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं। अंचल-विशेष के समूचे जीवन—भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि—को डाक्युमेंट्री, चलचित्र, रिपोर्ताज आदि विविध शैलियों के माध्यम से शब्दबद्ध कर देने में इन्हें कमाल हासिल है। आंचलिक चित्रण के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण अनेक बार कथासूत्र बिखर गए हैं तथा चरित्रों का पूर्ण विकास लक्षित नहीं होता। लेकिन इसके लिए लेखक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि उसका अभीष्ट सुगठित कथावस्तु अथवा संपूर्ण चारित्रिक विकास न होकर अंचल-विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यथार्थ चित्रण करना रहा है, और इस दिशा में उसे पूरी सफलता मिली है। फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी-उपन्यास-साहित्य में एक नयी दिशा के प्रवर्तक हैं।

रेलवाणी, जयंत *(सिं० ले०)*

ये राजकोट में रहते हैं और रेल-विभाग में कार्य करते हैं। ये 'सिंधू भारती' नामक एक मासिक पत्रिका का संपादन भी करते हैं। सिंधी के साथ-साथ गुजराती और हिंदी के भी ये अच्छे विद्वान हैं। इन्होंने सिंधी की कई उत्तम रचनाओं को इन भाषाओं में अनूदित कर सिंधी-साहित्य को अन्य भाषा-भाषियों तक पहुँचाया है। सिंधी-साहित्य में इनकी कहानियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं: 'आल्यूँ पलकूँ उदास नेण', 'बंधननि जा पिंजरा' (दोनों कहानी-संग्रह); 'सफ़ेद-सफ़ेद ऊँदहिं' (उपन्यास), 'सिंधु अने गोदावरी' नामक सिंधी-कहानियों के गुजराती अनुवाद पर इनको शिक्षा-मंत्रालय, दिल्ली से पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

'रेह', वासुदेव *(कश्० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

जन्मांध होने के कारण ये औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके किंतु प्रकृति ने विलक्षण स्मरण-शक्ति का वरदान दिया जिसके फलस्वरूप फ़ारसी और संस्कृत के कई काव्य इन्हें कंठस्थ हो गये। ये बहुत भावुक एवं संवेदनशील कलाकार हैं। सांसारिक परिवेश के प्रति इनका दृष्टिकोण क्रांतिकारी का-सा है। मौलिक और श्रेष्ठ कविता के कारण कश्मीर-भर में सुप्रसिद्ध हैं। 'शवगर्द' इनका सुप्रसिद्ध कविता-संग्रह है। ये शब्दचित्र, पदलालित्य और भावगांभीर्य गुणों से युक्त ओजस्वी कविता रचते हैं। इनकी भावी संभावनाएँ पूर्णतः प्रतिफलित हुईं तो निश्चय ही ये एक दिन महान् कवि के रूप में प्रतिष्ठित होंगे।

रैणा, शंकर *(कश्० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

डा० शंकर रैणा शैशव से ही विचारशील थे और सामाजिक कुसंस्कारों-कुरीतियों के प्रति इनके मन में सहज आक्रोश रहा है। डाक्टरी शिक्षा प्राप्त की है और व्यवसाय से चिकित्सक हैं। मानव-शरीर की आधि-व्याधियों के ताने-बाने से इन्होंने अपनी कहानियों को सँवारा है। इनकी कहानियाँ और उनमें के चरित्र प्रायः औषधालयों और चिकित्सालयों के ही गिर्द घूमते हैं। ज़रा-ज़रा सी और छोटी-छोटी बातों को गहराई से देखने और उन पर बड़े-बड़े प्रयोग करने में डा० शंकर बड़े सिद्धहस्त हैं। इन्होंने ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया है और शैली मार्मिक है। 1964 ई० में 'ज़ितिनि ज़ूल' (चिनगारियों की रोशनी) नाम का इनका पहला कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ है।

रैस, बी० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1848 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

जिन पाश्चात्य पंडितों ने कन्नड सीखकर कन्नड भाषा और साहित्य की सेवा की, उनमें स्व० बी० एल० रैस का नाम आदर के साथ लिया जाता है। ये मैसूर सरकार के शिक्षा विभाग के प्रधान अधिकार और शासन-विभाग के प्रधान अधिकारी के रूप में कार्य कर चुके थे। कन्नड सीखने वाले बालकों तथा पंडितों के उपयोगार्थ इन्होंने कतिपय ग्रंथों का प्रकाशन कराया था जिनकी भूमिकाएँ अच्छी और सुंदर हैं। इनके प्रकाशित ग्रंथों के नाम हैं—'अमरकोश', 'पद्यसार', 'कर्णाटक भाषा-भूषण', 'पंपरामायण', 'पंपभारत' और 'कर्णाटक शब्दानुशासन'। कन्नड भाषा और साहित्य के प्रति इन्होंने जो प्रेम दिखाया था, वह कभी विस्मरण करने योग्य नहीं है। लगभग नब्बे वर्ष की दीर्घायु व्यतीत करने के बाद जुलाई 1928 में इनका स्वर्गवास हुआ।

रोग-शैयाय *(बँ० कृ०)*

अक्तूबर, नवंबर, दिसंबर, 1940 ई० में लिखित रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) की 40 कविताओं का संग्रह है। कवि ने रोग की यंत्रणा में कातरता न प्रकट कर अपने निकट सेवा-कार्य में नियुक्त लोगों का चित्त-विनोद, विभिन्न हास-परिहास निज की उपेक्षा करके किया था।

रोग की वेदना और यातना को वे व्यक्ति-सत्ता से अलग अनादि काल से सृष्टि के रहस्यों के मध्य अनुभव करते हैं। दारुण रोग-यंत्रणा को जय कर के अत्यंत गंभीर और अविचलित विश्वास से आत्मा की जय-घोषणा कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कविताओं में कल्पना, भाषा एवं छंद का स्थान ले लिया है। उनके वक्तव्य की महिमा, उपलब्धि की आंतरिकता एवं दृष्टि की स्वच्छंदता ने। रोग-कक्ष में विषाद का वातावरण न उत्पन्न हो—अतः वे बीच-बीच में 'छड़ा' (ग्राम्य कविता) कहकर सबको आनंदित रखने की चेष्टा करते थे। पार्श्व के सेवक-सेविकाएँ इन कविताओं को लिपिबद्ध कर लेते थे।

रोडंग बक्सि (उ० पा०)

रोडंग बक्सि अथवा बक्सि जगबंधु उड़ीसा के अनन्य स्वतंत्रता-सेनानी हैं। श्री चक्रधर महापात्र ने सर्वप्रथम इस ऐतिहासिक पात्र का सर्वांगपूर्ण जीवन-चित्र अपने उपन्यास 'रोडंग बक्सि' में दिया है।

खोर्धा भूमि के क्षत्रियों के वीरत्व से उत्कलीय इतिहास गौरवान्वित है। 1903 ई० में उड़ीसा अँग्रेज़ों के अधिकार में आ गया था। और उसके साथ ही सूत्रपात्र हुआ था स्वेच्छाचारी शासन का। उड़ीसा के वीर क्षत्रिय कब तक इस अत्याचार को सहन करते? शताब्दियों से खड्ग का जवाब खड्ग से देते आये हैं। अँग्रेज़ों के अत्याचार के विरुद्ध उत्कल सेनापति बक्सि जगबंधु विद्याधर ने तलवार उठा ली थी। घर का मोह त्यागकर, कन्या व पत्नी को भूलकर बक्सि ने देशमातृका की सेवा में जीवन का विसर्जन कर दिया था। रोडंग बक्सि की उत्सर्ग-कहानी से उस तिमिराच्छन्न युग की सीमाएँ आलोकित हो उठी थीं।

रोमांचक पंजाबी कवि (पं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

यह डा० गोपालसिंह (दे०)-कृत आलोचनात्मक कृति है। इस रचना में आधुनिक काल की पंजाबी रोमांचक कविता पर विस्तार से विचार हुआ है। इसमें आरंभ में कविता, कविता की परख, रोमांचवाद, पंजाबी कविता में रोमांचकता पर विचार करने के उपरांत पूर्णसिंह भाई वीरसिंह (दे०), प्रो० मोहन सिंह (दे०), धनीराम चातरिक (दे०), किरपासागर (दे० कृपासागर) की कविता के रोमांचक तत्त्वों पर विचार किया गया है। डा० गोपाल सिंह की यह आलोचना मूलतः अँग्रेज़ी की रोमांचक कविता की समीक्षा पर आधारित है।

रोला (हिं० परि०)

रोला छंद के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं। इनमें 11 और 13 मात्राओं पर विराम होता है। उदाहरण :

नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक-सी सोहति,
बिच-बिच छहरति बूंद, मध्य मुक्ता-मनि पोहति।
लोल लहर लहि पवन, एक पैं इक इमि आवत,
जिमि नर गन मन विविध, मनोरथ करत मिटावत॥
(भारतेंदु हरिश्चंद्र : 'सत्यहरिश्चंद्र')

प्रायः वीररस और वर्णनात्मक काव्य में इसका प्रयोग अधिक प्रभावी होता है।

रोहल (सिं० ले०) [जन्म—1734 ई० के आसपास; मृत्यु—1804 ई० के आसपास]

रोहल शाहू फ़कीर के पुत्र थे और थरपारकर ज़िले के अमरकोट नामक नगर के समीप एक गाँव में रहते थे। यौवनकाल में ये सिंध के हाकिम ग़ुलाम शाह कल्होड़ा और उनके पुत्र सरफ़राज़ ख़ान कल्होड़ा के दरबार में अच्छे पद पर थे, परंतु राजनीतिक छल-कपट को देखकर ये त्यागपत्र देकर अपने गाँव चले गये थे। तत्पश्चात् इन्होंने अपने जीवन का काफ़ी समय देशाटन में व्यतीत किया था। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर आदि प्रदेशों का भी इन्होंने भ्रमण किया था। इन्होंने जीवन का बाक़ी समय उत्तरी सिंध के रोहिड़ी नामक तालुका में एक वीरान भूभाग को आबाद कर वहीं बिताया था। यह स्थान बाद में 'कंडिड़ी' नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इनका काव्य सिंधी और फ़ारसी भाषाओं में मिलता है। सिंधी में इनका काव्य फुटकल पदों के रूप में हैं। हिंदी में इस संत कवि के काव्य-ग्रंथ 'मन-प्रबोध', 'अद्भुत ग्रंथ', 'सर्वज्ञान' और 'अगमवार्ता' नामों से प्रसिद्ध है। सिंध के सूफ़ी संत कवियों में इनका निराला स्थान है, क्योंकि इनकी रचनाओं में हिंदी के संत-काव्य और सिंधी के सूफ़ी-काव्य का अनोखा संगम है।

रोहिनी (बँ० पा०)

रोहिनी (कृष्णकांतेर उइल—दे०) बंकिमचंद्र (दे०) की सर्वाधिक आलोचित स्त्री पात्र है। इस भाग्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंचिता प्रौढ़ा विधवा का जिस प्रकार अपने रूप के अहंकार पर कोई आवरण नहीं है उसीं प्रकार मिलन-लिप्सा में उसकी मुखरता तथा चटुलता पाठक को बार-बार चौंका देती है एवं आहत भी करती है। वासनादीप्त इस रमणी की रूप-वह्नि में हरलाल, गोविंदलाल, निशाकर पतंगों की तरह जलने के लिए आ उपस्थित हुए हैं। परंतु भोगतृष्णा की दुर्निवार आकांक्षा के स्वरूप का यह महिला अनुधावन नहीं कर सकी है। इसीलिए गोविंदलाल को उसने प्यार किया है, यह बात उसे बार-बार याद आयी है।

रूपगर्विता, विलास-प्रिय, आसंग-लिप्सु रोहिनी को गोविंदलाल से विश्वासघात नहीं करने पर भी गोविंदलाल के पास से ही मृत्युदंड मिला है। यों इस पात्र में विश्वासहंत्री नहीं होने का दृढ़ संकल्प नहीं है, इसलिए उसकी मृत्यु से शिल्पपक्ष को कोई हानि नहीं पहुँची है। वस्तुतः इससे शिल्प एवं नीति का समन्वय सुदृढ़ हुआ है।

लक्कणदंडेश (क० ले०) [समय—पंद्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध]

विजयनगर के राजा प्रौढ़देवराय के महामात्य, महाशूर लक्कण दंडेश ने 'शिवतत्त्वचिंतामणि' नामक वीरशैव-सिद्धांत-प्रतिपादक ग्रंथ लिखा है। इनका ग्रंथ-रचना-काल 1924 ई० माना जाता है। इनका ग्रंथ बृहदाकार है। ग्रंथारंभ में ग्रंथकार ने बताया है—"वितत वेदागम पुरातनोक्तियों (प्राचीन वचनकारों की वाणियों) के सम्मत सार रूप 'शिवतत्त्वचिंतामणि' कृति की रचना करूँगा।"

इस ग्रंथ में 55 संधियाँ अथवा अंतर्भाग तथा दो हज़ार से भी अधिक पद्य हैं। इसमें वार्धक षट्पदी का प्रयोग हुआ है। यह वीरशैव धर्म-संबंधी एक विश्वकोश है। इसका 'शिवतत्त्वचिंतामणि' नाम भी सार्थक है क्योंकि इसमें नित्यानित्यवस्तुविवरण, सकल-निष्कल-विचार, भुवनकोश, शिवलीलाओं तथा शिवलोक वर्णन, शिव-नंदी-संवाद, बसवचरित, गण-प्रशंसा, धर्माधर्म-विवरण आदि के साथ-साथ लिंग-धारण, षट्स्थल आदि का भी वर्णन मिलता है। 'शिवतत्त्व' का समग्र निरूपण होने के कारण यह 'चिंतामणि' है। इसकी प्रतिपादन-शैली अच्छी है जो ग्रंथकार के गंभीर अध्ययन, चिंतन और प्रतिभा की निदर्शिका है।

लक्षणसारसंग्रहमु (तें० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक चित्रकवि पेद्दन्ना (दे०) हैं। इसमें कवि ने अपने को 'चित्रकाव्यघन' कहा है। हनुमान की स्तुति के रूप में इन्होंने मुक्तक-रचना (शतक) भी की थी। 'लक्षणसारसंग्रहमु' काव्य-लक्षण बताने वाला अलंकार-ग्रंथ है। इसमें तीन आश्वास हैं। साधारणतः लक्षणग्रंथों के लेखक उदाहरणों के रूप में अन्य कवियों की रचनाओं से उद्धरण देते हैं। किंतु इसमें लेखक ने अपने ही लिखे उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। लक्षणग्रंथ के अंतर्गत दिए गए इन उदाहरणों से विदित होता है कि पेद्दन्ना एक अच्छे चित्रकवि थे।

लक्षणा (पारि०)

'लक्षणा' वैयाकरणों तथा काव्यशास्त्रियों द्वारा समान रूप से मान्य शब्द की प्रमुख शक्ति है। शब्द के जिस विशिष्ट व्यापार द्वारा रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर शब्द के मुख्यार्थ से भिन्न, किंतु प्रकारांतर से या किसी-न-किसी रूप में उसी से संबद्ध अर्थ का बोध हो उसे 'लक्षणा'-शक्ति कहते हैं—('मुख्यार्थबाधे—तद्योगे रूढितो ऽथ प्रयोजनात्। अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणा रोपिता क्रिया।'—मम्मट, काव्यप्रकाश, 2।9)। इस प्रकार लक्षणा-व्यापार की तीन अनिवार्य स्थितियाँ हैं: मुख्यार्थ की बाधा, व्यक्त अर्थ का मुख्यार्थ से किसी प्रकार का संबंध तथा रूढ़ि अथवा प्रयोजन। रूढ़ि अथवा प्रयोजन की दृष्टि से लक्षणा के दो प्रमुख भेद किए गए हैं— 'रूढ़ि लक्षणा' और 'प्रयोजनवती लक्षणा'। गुण-साम्य तथा सादृश्येतर संबंधों के आधार पर 'प्रयोजनवती लक्षणा' के भी क्रमशः 'गौणी' और 'शुद्धा'—दो उपभेद माने गये हैं। इनमें से 'गौणी-लक्षणा' के 'सारोपा' और 'साध्यवसाना' तथा 'शुद्धा' के 'उपादान लक्षणा' और 'लक्षण-लक्षणा'—ये दो-दो प्रभेद सामान्य रूप से स्वीकृत हैं। परवर्ती आचार्यों ने उक्त भेदों का ही किंचित परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ विस्तार किया है जिसके कारण लक्षणा के अनेक भेदोपभेद हो गये हैं। शब्द की तीन शक्तियों में से 'लक्षणा'-शक्ति द्वारा काव्य में सजीवता, मूर्तिमत्ता तथा समृद्धि का समावेश होता है; अतः साहित्य में इसका विशेष महत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मण *(हिं०, सं० पा०)*

अयोध्यापति राजा दशरथ (दे०) के चार पुत्रों में से यह दूसरा पुत्र था। इसकी माता का नाम सुमित्रा तथा पत्नी का नाम उर्मिला था। सीता (दे०)-स्वयंवर में राम (दे०) द्वारा धनुष-भंग किये जाने पर परशुराम के साथ लक्ष्मण ने वाग्युद्ध किया था, जिस से इसके ओजस्वी तथा विनोदी स्वभाव का परिचय मिलता है। यह अपने भाई राम का अति भक्त था। विश्वामित्र के यज्ञ-रक्षार्थ राक्षसों का नाश करने के लिए इसने राम का साथ दिया था तथा राम को वनवास के समय अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर चौदह वर्ष के लिए उसके साथ चल दिया था। सीता को बीच में रख-कर राम आगे और लक्ष्मण पीछे वन-वन भटकते रहे। राम की आज्ञा से इसने शूर्पणखा की नाक और कान काटे थे। स्वर्ण-मृग की माया के कारण जब राम मृग का पीछा करने चले गये थे तो लक्ष्मण को भी सीता को छोड़कर उनके पीछे जाना पड़ा था किंतु साथ ही लक्ष्मण रेखा से आगे न बढ़ने का आदेश दे गया था। सीता-हरण के बाद सीता के आभूषणों को पहचानने के लिए जब इस से पूछा गया तो इसका उत्तर था कि मैं तो केवल सीता-माता के पाद-भूषणों को ही जानता हूँ उसके भुज-बंध और कुंडलों को नहीं जानता—इससे इसकी सच्चरित्रता का प्रमाण मिलता है। लंका में इसने रावण (दे०) के पुत्र मेघनाद (दे०) (इंद्रजित) के साथ छह बार युद्ध किया तथा अंतिम युद्ध में इसने उसका वध किया। रावण द्वारा फेंकी गई अमोघ शक्ति के छाती में लगने पर यह मूर्छित हो गया था तथा हनुमान (दे०) द्वारा लाई गई संजीवनी बूटी से इसकी मूर्च्छा हट गयी थी। राज्या-भिषेक के बाद राम द्वारा सीता का परित्याग करने के लिए यह सीता को रथ पर वाल्मीकि (दे०) के आश्रम तक छोड़ कर आया था। लक्ष्मण भ्रातृ-भक्ति का एक उज्ज्वल उदाहरण है।

लक्ष्मण कवि एनुगु *(तें० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

'सुभाषित रत्नावली' के यशस्वी लेखक एनुगु-लक्ष्मण कवि संस्कृत और तेलुगु के प्रौढ़ कवि थे। संस्कृत में इस कवि ने 'सूर्यशतक' की रचना की थी। तेलुगु में 'रामेश्वर माहात्म्यमु', 'गंगा महात्म्यमु', 'सुभाषित रत्नावली', 'विश्वेश्वरोदाहरणमु', 'नसिंह दंडकमु' और 'रामविलासमु' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'रामविलासमु' रामायण के इतिवृत्त पर आधारित पाँच सर्गों (आश्वासों) का प्रबंध-काव्य है। 'सुभाषित रत्नावली' में भर्तृहरि (दे०) के सुभाषितों का सरस, सुंदर और सुबोध अनुवाद है।

लक्ष्मण कवि पैडियारि *(तें० ले०)* [समय—अनुमानतः सत्रहवीं शती]

आंध्र के कोशकारों हमु में लक्ष्मण कवि का नाम महत्वपूर्ण है। 'आंध्रनामसंग्रह' नामक इनकी पद्यबद्ध रचना में तेलुगु के देशज शब्दों (संस्कृत से भिन्न) का वर्गीकृत संग्रह है। 'अमरकोश' की तरह इस रचना में भी देव वर्ग, मानव वर्ग, स्थावर वर्ग, तिर्यग्वर्ग आदि विभिन्न वर्गों में शब्दों का विभाजन मिलता है। इस शब्द-संग्रह के अतिरिक्त एक ही शब्द के विभिन्न अर्थों का संग्रह भी नानार्थक शब्द-सूची में दिया गया है। इसके संग्रह में जो शब्द घट गए थे, उनका संग्रह बाद में अडियमु सूरकवि नामक कोषकार ने अठारहवीं शती में 'आंध्रनामशेषमु' नाम से प्रस्तुत किया था।

लक्ष्मणरावु कोमराजु *(तें० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1923 ई०]

आंध्र में आधुनिक विज्ञान, स्वातंत्र्याकांक्षा, इतिहास, आदि अनेक विषयों से संबंधित ज्ञान का व्यापक प्रसार करने के लिए इन्होंने 1906 ई० में 'विज्ञान चंद्रिका ग्रंथमाला' की स्थापना की थी। इस ग्रंथमाला के अंतर्गत इन्होंने विज्ञान, साहित्य, कला आदि विषयों से संबद्ध अनेक ग्रंथों की रचना की थी। इसके उपरांत विश्व की संपूर्ण ज्ञान-राशि को तेलुगु में उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ये 'आंध्रविज्ञानसर्वस्वमु' (दे०) (विश्वकोश) के निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए थे। ऐतिहासिक अनुसंधान, कला, साहित्य आदि विषयों पर रचित इनके अनेक निबंध अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं। इस प्रकार आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के संचय एवं प्रचार-प्रसार की दिशा में इनका कार्य स्तुत्य रहा है।

लक्ष्मण सिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1826 ई०; मृत्यु—1896 ई०]

इनका जन्म आगरा के वजीरपुरा नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान में हुआ था। सरकारी सेवक होते हुए भी ये साहित्यानुरागी व्यक्ति थे। भारतेंदु-पूर्व हिंदी-गद्यकारों में इनका ऐतिहासिक महत्व है। ये विशुद्ध हिंदी के समर्थक थे तथा अरबी-फ़ारसी के सहज स्वीकृत शब्दों को भी ग्राह्य नहीं मानते थे। 1861 ई० में इन्होंने आगरे से 'प्रजा हितैषी' पत्र निकाला था। इसके माध्यम से इन्होंने हिंदी के आदर्श रूप का नमूना लोगों के सामने रखा था। कालिदास (दे०)-कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलमु' (दे०) के अनुवाद से इन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि मिली थी। हिंदी-प्रेमी पाश्चात्य विद्वान फ़्रेडरिक पिनकॉट ने इसे इंग्लैंड से प्रकाशित कराया था। इंडियन सिविल सर्विस की आई० सी० एस० की परीक्षा में इसे पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया था।

लक्ष्मीकांतमा, ऊट्कूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

ये तेलुगु-लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'आंध्रकवयित्रलु' नामक ग्रंथ पर इनको पुरस्कार भी मिला है। ये आंध्र साहित्य अकादमी की सदस्या भी हैं।

लक्ष्मीकांत कवि, वलिजेपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1881; मृत्यु—1953 ई०]

इनका जन्म बापट्ला तालुके के इटिकंपाडु में हुआ था। इनके पिता का नाम नरसिंह शास्त्री तथा माता का आदिलक्ष्मम्मा था। मामा और बुआ के पास रहकर इन्होंने प्राचीन काव्य-साहित्य का अध्ययन किया। बचपन से ही संगीत-साहित्य में अभिरुचि थी। आरंभ में वे कर्नूल के सब रजिस्ट्रार के दफ़्तर में हेड गुमाश्ता रहे; उसके बाद गुंटूर के हिंदू कॉलेज में तेलुगु-विभाग के प्रधान। 'अवधान'-प्रक्रिया के पीछे पड़ने के कारण इन्होंने नौकरी छोड़ दी और कुछ समय तक अवधान-विद्या का प्रदर्शन करते रहे। स्वराज्य-आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया और नमक-सत्याग्रह के संदर्भ में दो वर्ष तक जेल में रहे। चल्लपल्लि के ज़मींदार की सहायता से गुंटूर में 1926 ई० में इन्होंने चंद्रिका मुद्रणालय (प्रेस) की स्थापना की जो बाद में विख्यात बना। 1930 ई० रंगून (बर्मा) में भाषण देने तथा नाटकों को प्रदर्शित करने के कारण इन्हें 'कविता-कलानिधि' की उपाधि से समलंकृत किया गया।

तेलुगु-नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्र में इनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। जेल में रहते समय इन्होंने 'सत्य हरिश्चंद्रीयमु' नाटक (1912 ई०) की रचना की जो अति प्रसिद्ध हुआ। पद्य-रचना की विशिष्ट शैली के कारण यह नाटक 40-50 वर्ष तक निरंतर अभिनीत होता रहा। इन्होंने भी 1926 ई० में 'फस्ट कंपनी' के नाम से नाटक-मंडली की स्थापना की और कई नाटकों को अभिनीत कराया।

सुप्रसिद्ध सिनेमा-निदेशक सी० पुल्लय्या के प्रोत्साहन से इन्होंने सिनेमा-क्षेत्र में प्रवेश किया और कथा, संवाद, गीत आदि की रचना कर नाम कमाया। 1942 ई० में इस क्षेत्र भी 'पुंभाव-सरस्वती' के विरुद्ध से सम्मानित हुए। 'उत्तरराघवमु', 'बुद्धिमतीविलासमु', 'सात्राजितीयमु' (नाटक); 'ब्रह्मरथमु', 'मणिमंजूषा' (उपन्यास); 'शिवानंदलहरीशतकमु' (शंकराचार्य की कृति का अनुवाद), 'स्वराज्यसमस्या' (पद्यकृति) आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। इन्हें 'सत्यहरिश्चंद्रीयमु' नाटक के कारण अपार यश प्राप्त हुआ है।

लक्ष्मी देवी *(पं० कृ०)*

यह श्री किरपासागर-रचित महाकाव्य है। इसका आधार वाल्टर स्काट की प्रसिद्ध प्रति लेडी आफ़ द लेक' को माना जाता है। लक्ष्मी देवी महाराजा रणजीत सिंह के राज्य से निर्वासित एक सरदार बलवीर सिंह की कन्या है। सारा वृत्तांत इसी रमणी के चरित्र से संबद्ध है। लक्ष्मी देवी वन में महाराजा रणजीत सिंह की सहायता करती है। युद्ध में पकड़ गए सरदार जैमलसिंह और अपने पिता को लाहौर पहुँच कर महाराजा से मिल कर जेल से छुड़वा लेती है। इसका कथानक अधिकांशतः काल्पनिक है। इसे पंजाबी साहित्य का गौरवपूर्ण महाकाव्य माना जाता है। इसमें भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों का निर्वाह किया गया है। इसके युद्ध-वर्णन सजीव हैं और प्रकृति-चित्रण मोहक हैं। शृंगार-वीर-रौद्र आदि रसों की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। काव्य-भाषा खड़ी बोली के शब्दों से अलंकृत पंजाबी का प्रयोग भी कवि ने किया है। यह महाकाव्य पंजाबी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

लक्ष्मीधर *(म० पा०)*

यह प्र० खाडिलकर (दे०) के 'संगीत मानाप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान' नाटक का प्रतिनायक है। लक्ष्मी की कृपा-दृष्टि के कारण ही इसे अपनी धन-संपत्ति का अत्यधिक अभिमान है। यह धनवान है, परंतु निर्बुद्धि होने के कारण ही सभी पात्रों के उपहास का कारण बनता है। धन के बल पर ही यह नायिका भामिनी के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने के नानाविध उपाय करता है। नाना प्रकार के रत्न-आभूषणों को पहनकर अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करता घूमता है। रह-रहकर इसे ईश्वर की सृष्टि पर क्षोभ होता है कि उसने शरीर में और अधिक अंग-प्रत्यंग क्यों न बनाए जिससे यह और अधिक आभूषण पहन सकता। इसी से यह आभूषणों का संदूक अपने साथ रखता है। प्रणय-निवेदन के अवसर पर बढ़-चढ़कर बोलता है, परंतु चोरों को सामने देखकर ही इसके देवता कूच कर जाते हैं। यह अपनी जान बचाने के लिए गिड़गिड़ाकर प्राणों की भीख माँगते हुए कहता है कि मेरे सारे आभूषण जो मैंने पहने हुए हैं और जो मेरे संदूक में हैं, ले लो और मेरी जान बख्श दो। भामिनी का धैर्यधर के प्रति आकर्षण जानकर ही भामिनी को अपनी उपपत्नी (रखैल) होने का प्रवाद प्रचारित कर धैर्यधर को अपने मार्ग से हटाना चाहता है। किंतु अपने क्रियाकलापों से नाटकीय प्रभावान्विति में निरंतर हास्य को बनाए रखता है। मराठी के हास्य-चरित्रों का यह अमर पात्र है।

लक्ष्मीनरसिंहमु, चिलकमर्ति *(ते० ले०)* [जन्म—1867; मृत्यु—1946 ई०।]

ये राजमहेंद्रवरमु के रहने वाले थे। अध्यापन इनका मुख्य कार्य रहा है। ये अच्छे सुधारक तथा महान् साहित्यकार भी थे। इन्होंने समसामयिक महापुरुष कंदुकूरि वीरेशलिंगमु का अनुसरण किया और उनके समाज-सेवा तथा साहित्य-सेवा से संबद्ध मार्ग को पुष्ट किया। इनके ग्रंथ ये हैं—'कीचकवध', 'द्रौपदीपरिणयमु', 'गयोपाख्यानमु' (दे०) आदि नाटक; भास के नाटकों के तेलुगु अनुवाद, 'रामचंद्रविजयमु' (दे०), 'अहल्याबाई', 'कर्पूरमंजरी', 'सौंदर्यतिलका', 'गणपति' आदि उपन्यास; 'राजस्थान-कथावली' जैसी कथा-रचनाएँ; 'महापुरुषलु जीवितचरित्रलु' (जीवनियाँ) आदि। ये अच्छे प्रहसन-लेखक थे। इनके प्रहसनों की संख्या अस्सी से अधिक है। इन्होंने आत्मकथा लिखी तथा 'मनोरमा', 'देशमाता' और 'सरस्वती' नामक पत्रिकाओं का संपादन भी किया। रंगमंचीय नाटक लिखने में इन्हें पूर्ण सफलता मिली और प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखक के रूप में 'आंध्र-स्कॉट' के नाम से विख्यात हुए। समकालीन जीवन-परिस्थितियों को साहित्य के अंतर्गत प्रतिबिंबित करने में तथा सरस भावों को ललित शब्दों के द्वारा हास्यमय ढंग से अभिव्यक्त करने में इनकी क्षमता अद्वितीय है।

आंध्र-साहित्य के इतिहास में आधुनिक युग के प्रवर्तक महानुभावों में लक्ष्मीनरसिंहमु का भी प्रमुख स्थान है। 1943 ई० में इनको आंध्र विश्वविद्यालय ने 'कला-प्रपूर्ण' की उपाधि से सम्मानित किया था।

लक्ष्मीनरसिंहरावु, पानुगंटि *(ते० ले०)* [जन्म—1865 ई०; मृत्यु—1940 ई०]

ये आंध्र के राजमहेंद्रवरमु नामक शहर के रहने वाले थे। ये तेलुगु तथा संस्कृत के विद्वान् थे और अँग्रेज़ी-साहित्य से भी अच्छी तरह परिचित थे। ये निडर तथा हँसमुख स्वभाव के थे और प्राचीन संस्कृति तथा परंपरा के प्रति गौरवपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने वाले थे। इन्होंने एक सुधारक के रूप में अनेक रचनाएँ की थीं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण इन्होंने आनेगोंदि, उलाम् जैसी कुछ रियासतों में मंत्रि-पद का भी भार सँभाल लिया था। प्रधानतः इनको पिठापुरम् के राजाओं की ओर से अधिक प्रोत्साहन मिला था। इनकी रचनाएँ हैं: 'साक्षी' (दे०) (निबंध-संग्रह—6 भाग); 'कल्याणराघवमु', 'पुट्टभंगराघवमु', 'वनवासराघवमु' तथा 'विजयराघवमु' (ये चारों नाटक रामायण से संबद्ध हैं); 'राधाकृष्णुलु', 'विप्रनारायणा' जैसे पौराणिक नाटक; 'वृद्धविवाहमु', 'कंठाभरणमु' आदि कल्पित नाटक। इन्होंने भगवान बुद्ध से संबद्ध 'बुद्धबोधसुधा' नामक नाटक भी लिखा था। इनकी आत्मकथा अपूर्ण ही रह गई।

लक्ष्मीनरसिंहरावु प्रधानतः नाटककार और निबंधकार थे। इनके नाटक रंगमंच पर अत्यंत सफलतापूर्वक प्रदर्शित किए गए थे। इनके नाटकों के कथानक में वैविध्य है। रामायण की कथा ने इनकी लेखनी से नाटकों का रूप धारण कर लिया था। अनेक पौराणिक नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने 'प्रचंड-चाणक्य'-जैसे कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे थे। इनके 'राधा-कृष्ण' तथा 'कंठाभरण' नामक नाटक आंध्र-जनता के बीच अत्यंत प्रचलित हुए हैं।

सफलतम नाटक-रचना के अतिरिक्त इनके यश का कारण 'साक्षी' नामक निबंध-संग्रह भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँग्रेज़ी में एडिसन तथा स्टील के द्वारा लिखे गए 'स्पेक्टेटर' के अनुसरण पर इन्होंने इन निबंधों की रचना की थी। सरस हास्य से युक्त सुधारात्मक दृष्टि इनके निबंधों के अंतर्गत पग-पग पर परिलक्षित होती है। इनके विचारों की अभिव्यक्ति में निर्भीकता, स्पष्टता तथा प्रभावोत्पादकता है। इनके निबंधों में विचारों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उपयुक्त शब्दों का चयन और संयोजन भी मार्मिक है। वीरेशलिंगम् की तरह इन्होंने भी अपनी रचनाओं को समाज-सुधार के साधन बना दिया था।

सफल नाटककार तथा सफलतम निबंधकार के रूप में लक्ष्मीनरसिंहरावु का नाम तेलुगु-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

लक्ष्मीनारायण, उंनव *(ते० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

लक्ष्मीनारायण जी ने सत्तेनपल्लि तहसील में स्थित वेमुलुरुपाडु नामक ग्राम में जन्म लिया। इन्होंने एफ़० ए० तक गुंटूर के क्रिश्चियन कॉलिज में विद्याध्ययन किया। 1913 ई० में ये डबलिन गये। वहाँ बारिस्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उस समय प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डिवेलरा से परिचय प्राप्त किया। स्वदेश लौटने के अनंतर ये कुछ समय तक मद्रास और गुंटूर नगरों में वकालत का पेशा करते रहे।

गांधी जी के आदेशानुसार 1920 ई० में इन्होंने अपने पेशे को तिलांजलि दे दी। स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख नेता के रूप में ये जनता में आदर पाने लगे। राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेने के साथ ये समाज-सुधार के कार्यों में भी काफ़ी तत्पर रहते थे। 1920 ई० में विधवाओं के लिए इन्होंने एक सेवाश्रम की स्थापना की तथा 1922 ई० में स्त्री-शिक्षा के हित 'शारदा-निकेतनमु' नामक विद्यालय खोला जहाँ स्त्रियों को गांधी जी के सिद्धांतों के अनुसार सिलाई आदि औद्योगिक कलाओं का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। यह संस्था आजकल भी समाज-सेवा में तत्पर है।

लक्ष्मीनारायण जी का साहित्यिक व्यक्तित्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्राचीन कवियों में तिक्कना (दे०) इनका सर्वाधिक प्रेमपात्र कवि था। ये अपने युग के सफल उपन्यासकार थे। इनका उपन्यास 'मालपल्लि' (दे०) गांधीवाद से प्रभावित तेलुगु का उच्चकोटि का उपन्यास है। इसमें अभिव्यक्त विद्रोही भावों से भयभीत होकर तत्कालीन प्रशासन ने इसका निषेध किया। इनकी अन्य कृतियों में 'नायकुरालु' उल्लेखनीय है।

लक्ष्मीबाई *(हिं० पा०)*

यह वृंदावनलाल वर्मा (दे०) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी' (दे०) की नायिका है। प्रथम भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की अमर सेनानी लक्ष्मीबाई का शौर्य-पराक्रम से मंडित चरित्र भारतीय अध्येताओं के लिए सर्वथा अपरिचित नहीं है किंतु उपन्यासकार ने ज्ञातव्य सामग्री तथा अपनी कल्पना के रंग से एक ऐसी जीवंत चरित्र-सृष्टि की है जिसे हिंदी-साहित्य के लिए एक मूल्यवान निधि माना जा सकता है। उन्होंने अत्यंत पुष्ट ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्थापना की है कि रानी लक्ष्मीबाई का शौर्य परिस्थिति-जन्य न होकर जन्मजात था और वह स्वराज्य के लिए लड़ी थी। लेखक ने रानी को पत्नीत्व तथा मातृत्व के सभी कोमल गुणों से मंडित दिखाकर एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है।

लक्ष्मीरंजनमु, खंडवल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

ये ऐतिहासिक अनुसंधानकर्ता, समालोचक तथा निबंधकार हैं। आंध्र जनता के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास से संबंधित 'आंध्रुलचरित्र-संस्कृति' नामक इनकी रचना को विशेष ख्याति मिली है। इनका 'आंध्र-साहित्यचरित्र' तेलुगु-साहित्य के इतिहास पर रचा गया ग्रंथ है। 'तेलुगु दुक्कि' इनके निबंधों का संकलन है। 'आंध्रविज्ञानसर्वस्वमु' नाम से प्रकाशित तेलुगु-विश्वकोश का संपादन-कार्य भी इन्होंने किया है।

लक्ष्मीश *(क० ले०)*

'जैमिनि-भारत' (दे०) के कवि लक्ष्मीश कन्नड श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। इनका रचना-काल सोलहवीं शती (1550 ई०) माना जाता है। इनकी जीवनी के बारे में विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं। इनका निवास-स्थान देवनूरु या सुरपुर कहा जाता है। वहाँ भगवान् लक्ष्मीरमण का मंदिर है। लक्ष्मीश के इष्टदेव ये ही लक्ष्मीरमण हैं जिनका उल्लेख इनके काव्य में उपलब्ध होता है। लक्ष्मीश की जाति के विषय में पर्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चा हुई है। विद्वानों ने इनको भागवत-संप्रदायी माना है। इनके ग्रंथ में भक्ति की पावन गंगा बही है।

'कन्नड-जैमिनि-भारत, (दे०) संस्कृत-जैमिनी भारत का संक्षिप्त अनुवाद है, परंतु वह स्वतंत्र कृति के गुणों से भी परिपूर्ण है। इसमें कथा संक्षेप में कही गयी है, पर उससे प्रभाव किसी प्रकार घटा नहीं है। लक्ष्मीश ने कन्नड-कवियों की परंपरा के अनुसार मूल ग्रंथ का अनुसरण करते हुए भी अपनी स्वतंत्र प्रतिभा को प्रकाशित किया है। मूल के कुछ अनावश्यक वर्णन और उपदेश इन्होंने छोड़ दिये हैं, नवीन प्रसंग और वर्णन जोड़ दिये हैं। इन्होंने भक्ति, श्रृंगार और वीर रस के बड़े मनमोहक चित्र प्रस्तुत किये हैं। इनके कथानक का शिल्प काव्य-शिल्प है, पुराण-शिल्प नहीं है। कथानक में इन्होंने विशेष परिवर्तन नहीं किया है, तथापि उसमें महान् आकर्षण है। इसका कारण यह है कि उन्होंने अत्यंत तन्मयता के साथ कथानक का वर्णन किया है। सुधन्वा, बभ्रुवाहन, लव-कुश तथा चंद्रहास की कथाओं में इनका कला-नैपुण्य देखते ही बनता है। 'सीतापरित्याग' वाले प्रसंग में कारुण्य की अद्भुत सृष्टि है तो 'सुधन्वा' और 'वभ्रुवाहन' जैसे कथा-प्रसंगों में ओज का जादू है। 'चंद्रहास' की कथा इनकी सर्वश्रेष्ठ सरस रचना है। लक्ष्मीश ने अपने काव्य को 'श्रीकृष्णचरितामृत' कहा है। अनेक कथा-प्रसंगों के द्वारा इन्होंने श्रीकृष्ण की महिमा का ही वर्णन किया है। इनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण ही 'कथा के नायक' हैं। वे समस्त कार्य-व्यापार के सूत्रधार हैं। उनके बिना तृण भी नहीं चल सकता।

श्रीकृष्ण पर कवि का ध्यान केंद्रीभूत होते हुए भी अन्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में बड़ा कौशल दर्शाया गया है। अर्जुन, बभ्रुवाहन, सुधन्वा, यौवनाश्व, मयूरध्वज आदि पुरुष पात्र तथा सीता, प्रभावती, ज्वाला, चंडी, विषया आदि स्त्री पात्र इनके काव्य-मंदिर की सजीव प्रतिमाएँ हैं।

लक्ष्मीश ने 'वार्धक षट्पदी' छंद में काव्य लिखकर 'देसि' (दे०) और 'मार्ग' (दे०) का सुंदर समन्वय किया है। इनकी कविता में स्वाभाविकता है, संगीतात्मकता है तथा भाषा-प्रौढ़ और प्रभविष्णु है। वे पंडित और भक्त दोनों ही हैं।

लखिंदर *(बँ० पा०)*

चंद्रधर (दे०) एवं सनका के पुत्र लखिंदर की सर्पदंश से मृत्यु एवं पुनर्जीवन-प्राप्ति की कहानी ही 'मनसा मंगल, (दे०) काव्य-परंपरा की विषय-वस्तु है। चंद्रधर के साथ मनसा के विरोध के फलस्वरूप ही लखिंदर का जीवन-नाश होता है। चंद्रधर के छह पुत्रों का जीवन-नाश भी इसी एक कारण से हुआ था। वेहुला (दे०) के साथ लखिंदर के विवाह की रात्रि में ही सर्पदंश से लखिंदर की मृत्यु होती है। वेहुला की अश्रुधार की तरंगों पर बहती हुई लखिंदर की जीवन-नौका अमर्त्यलोक के द्वार पर पहुँचती है एवं बेहुला के जीवन-मथित कारुण्य के दिव्य आलोक के माध्यम से दैवी करुणा की धारा उतर आती है। मनसा की कृपा से लखिंदर पुनर्जीवन प्राप्त करता है। उसके वाद अपने भवन में उसका पुनरागमन होता है और तब कवियों ने चंद्रधर के द्वारा मनसा-पूजा का उल्लेख किया है। दैवी रोष का कारण लखिंदर फिर दैवी महिमा का आश्रय भी है। लखिंदर के चरित्र के विकास की संभावना अत्यंत सीमित है। वस्तुतः कहानी के लिए ही लखिंदर का चारित्रिक विकास नहीं हो पाया है।

लघुशब्देंदुशेखर *(सं० कृ०)* [रचना-काल—सं० 1787-1867 ई० के मध्य]

इस ग्रंथ के प्रणेता व्याकरणशास्त्र के उद्भट विद्वान् नागेश (दे०) हैं। लघुशब्देंदुशेखर 'सिद्धांत-कौमुदी' (दे०) का व्याख्या-रूप ग्रंथ है। इस ग्रंथ में सिद्धांत कौमुदीस्थ फिट्सूत्र-वृत्ति पर विशिष्ट व्याख्या वर्तमान है।

यह ग्रंथ व्याकरणशास्त्र का महनीय ग्रंथ है। स्वयं नागेश ने इसे पुत्र तथा 'मंजूषा' को कन्या कहा है—'शब्देंदुशेखरः पुत्रो मंजूषा चैत्र कन्याका। स्वमतौ सम्यगुत्पाद्य शिवयोरर्पितौ मया ।।'

व्याकरणशास्त्र के गहन शास्त्रीय पक्ष की दृष्टि से यह ग्रंथ विशिष्ट रूप से उपादेय है।

लटकमेलक *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

'लटकमेलक' संस्कृत का अत्यंत लोकप्रिय तथा प्रख्यात प्रहसन है। इसकी रचना कान्यकुब्जाधीश गोविंदचंद्र के सभाकवि शंखधर ने की थी।

'लटकमेलक' का अभिप्राय है धूर्तसम्मेलन। इसका कथानक बड़ा मनोरंजक है। दो अंकों के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहसन का कथानक शाक्त तथा जैन-साधुओं की प्रेम-कहानी से संबंधित है। कौलम्हावलंबी सभासलि की पत्नी का नाम कलहप्रिया था। सभासलिजी मदनमंजरी नामक वेश्या के घर जाया करते थे। वहाँ एक दिगंबर सूरिजी भी आते थे। पर उनका प्रेम, वेश्या की अंग-रक्षिका कुटनी 'दंतुरा' से हो गया। 'सभासलि जटाक्षुर' की दंतुरा से शादी करा देते हैं और स्वयं मदनमंजरी के साथ मस्त रहते हैं। इस प्रधान वृत्त के साथ धूर्त वैद्यों, बौद्ध भिक्षु, रूखे पंडित आदि को जोड़कर कथानक को और भी रोचक बना दिया गया है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण तो एक-दो पद्यों में अत्यंत कुशलता से किया गया है पर दर्शकों के मन पर उसकी अमिट छाप पड़ती है।

लता *(गु० पा०)*

लता श्री गुलाबदास ब्रोकर की प्रख्यात कहानी 'लता शुं बोले ?' की स्त्री-पात्र है। इस परिणीता नारी को अपने विज्ञान-रसिक पति सुरेश के प्रति प्रेम और निष्ठा है। परंतु पति के साहित्य-प्रेमी मित्र निरंजन के प्रति यह अधिक आत्मीय भाव की अनुभूति करती है। यही भाव आगे चलकर स्त्री और पुरुष के सनातन आकर्षण का रूप धारण कर लेता है। दोनों अपने को संयमित रखने की भरसक चेष्टा करते हैं किंतु एकांत प्राप्त होते ही आकर्षण के अधीन हो जाते हैं।

आधुनिक युग में समान शील-व्यसन भी किस प्रकार पारस्परिक आकर्षण का कारण बनता है, इसी की कथामय अभिव्यक्ति लेखक ने लता के माध्यम से की है। इस कहानी का गुजरात में इतना प्रबल आकर्षण हुआ है कि बाद के गुजराती के अनेकानेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने इसे आगे बढ़ाया है।

लभिता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

ज्योतिप्रसाद आगरवाला (दे०) के इस नाटक में द्वितीय महायुद्ध के समय गाँवों पर मिलिटरी के अत्याचारों का वर्णन है। लभिता आदर्शवादी नारी नहीं है, किंतु साधारण ग्रामकन्या का प्रतिरूप भी नहीं है। जापानी आक्रमण के समय उसके पिता आदि मारे जाते हैं। वह ताल्लुकेदार के घर आश्रय लेकर अनेक अत्याचार सहती है; कुछ दिन वह एक बूढ़े मुसलमान के आश्रय में भी रहती है। वह नर्स बनकर अँग्रेज़ी सेना के साथ कोहिमा जाती है, वहाँ बंदी होकर वह आज़ाद हिंद फ़ौज में भर्ती होती है। वह अँग्रेज़ी सेना से युद्ध करती हुई मारी जाती है। नाटक के चरित्र, घटना और संवाद यथार्थवादी हैं। प्रभाव की दृष्टि से इसे ट्रेजेडी कहा जा सकता है, किंतु ट्रेजेडी का सार्वभौम आवेदन इसमें नहीं है।

लय *(पारि०)*

'लय' छंदोबद्ध भाषा का एक अनिवार्य तत्त्व है। यह मूलतः संगीत का तत्त्व है और साहित्य के जिन रूपों में संगीतात्मकता अथवा गेयता का संस्पर्श रहता है वहाँ इसका अस्तित्त्व अनिवार्य है। इसका रूप हृदय की धड़कन, श्वास-प्रश्वास, ऋतु-परिवर्तन, ज्वार-भाटा, नदी-प्रवाह, पक्षियों के पंख फड़फड़ाने, वर्षा आदि प्रकृति के सभी रूपों में देखा जा सकता है : 'परमाणु के मिलन में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में लय है'···(जयशंकर 'प्रसाद' : 'स्कंदगुप्त')। प्रकृति से सीधे उद्‌भूत और प्रभावित होने के कारण संगीत में इसका स्थान सर्वप्रमुख है और काव्य के संगीत से संपृक्त होने के कारण उसमें भी इसकी स्थिति अनिवार्य है। यह अपने आप में एक इंद्रिय-संवेद्य और अमूर्त तत्त्व है कला (दे०) में इसकी भूमिका दोहरी है : संरचनात्मक दृष्टि से विविध अंतर्तत्त्वों में संश्लेषण और समंजन तथा तात्त्विक रूप से भावोद्‌बोधन के द्वारा रागदीप्ति। साहित्य में एक स्थान केवल कविता में ही नहीं है, गद्य में भी है। पद्य में इसकी स्थिति नियत और गद्य में अनियत मानी गई। अतुकांत और मुक्त छंदों की छांदसिकता लय के कारण ही है।

ललितललाम *(हिं० कृ०)* [रचना-काल---1659-1688 ई० के बीच]

मतिराम-प्रणीत यह एक अलंकार-विषयक ग्रंथ है। इसमें केवल अर्थालंकारों का प्रतिपादन किया गया है। जयदेव और अप्पय दीक्षित (दे०) के अतिरिक्त कहीं-कहीं मम्मट (दे०) तथा विश्वनाथ (दे०) के ग्रंथों से भी सहायता ली गई है। उदाहरणों को अलग से कवित्त-सवैया-दोहा छंदों में भी प्रस्तुत किया गया है, जो प्रायः सरस, मनोहर एवं ललित हैं। कुल मिलाकर यह रीतिकाल का प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललिता *(गु० पा०)*

गुजराती-नाट्य के जनक रणछोड़ भाई उदयराम (दे०)-रचित 'ललिता दुःख दर्शक' (दे०) नामक नाटक की प्रधान स्त्री पात्र ललिता, शराबी, व्यभिचारी व दुश्शील पति की पतिपरायणा, सहनशीला और पीड़िता पत्नी है। उस युग में प्रचलित अनमेल विवाह की समस्या का वह प्रतिनिधित्व करती है।

गुजराती की प्रथम सामाजिक त्रासदीय नाट्य-कृति के रूप में 'ललितादुःखदर्शक' का अपना महत्व है। तड़क-भड़क वाले पारसी रंगमंचीय नाटकों की तुलना में यह नाटक अत्यंत सरल है। 'ललिता' के अपार कष्टों को देखकर उस युग के दर्शकों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। समाज-सुधार की मूल वृत्ति पर आधृत यह नाट्य-कृति गुजराती नाट्य-साहित्य के उषःकाल की एक उल्लेखनीय रचना है।

ललिता *(मल० पा०)*

'पूतनामोक्षम्' नामक कथकळि काव्य-ग्रंथों की नायिका पूतना का एक रूप यह है। पहले वह एक सुंदरी तरुणी के वेश में रंगमंच पर आती है। यही ललिता है। तदनंतर वही पूतना के रूप में प्रत्यक्ष होती है।

ललितादुःखदर्शक नाटक *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1877 ई०]

रणछोड़भाई उदयराम (दे०) के इस नाटक का विषय है अनमेल विवाह। ललिता (दे०) नाटक की नायिका है और बचपन में उसका विवाह चरित्रहीन नंदकुमार से होता है जो सर्वदुर्गुण-संपन्न है। यह गुजराती का पहला करुणांत नाटक है और इस पर पश्चिम के त्रासदी-नाटकों का प्रभाव है। लेखक ने स्वयं ही एक एक नाट्य मंडल की रचना की थी और उसके द्वारा नाटक प्रस्तुत होता था।

लल्लूलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1763 ई०; मृत्यु—1835 ई०]

इनका जन्म आगरा में हुआ था। ये फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में हिंदी-गद्य में ग्रंथ-रचना के लिए नियुक्त किए गए थे। 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'प्रेम सागर', 'राजनीति' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। आनुप्रासिक किंतु आडंबरपूर्ण भाषा-प्रयोग तथा उर्दू के शब्दों का यथाशक्ति बहिष्कार इनके लेखन की प्रमुख विशेषताएँ हैं। हिंदी-गद्य के उन्नायकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

लल्लेश्वरी (ललद्यद) *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1335-1340 ई०]

इनका जन्म श्रीनगर से पांच मील दूर दक्षिण की ओर पांद्रेठन नाम के गाँव में हुआ था। परिपक्व वृद्धावस्था में समाधिस्थ होने का समय अज्ञात। अल्पायु में विवाह। ससुराल में इनका नाम पद्मावती रखा गया था। सास और पति के द्वारा इन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। ये सुल्तान अलाउद्दीन एवं शेख नूरुद्दीन वली (नुंद ऋषि) की समकालीन थीं। शैवमत और तसव्वुफ़ के जिस संसर्ग ने कश्मीर में ऋषिमत या ऋषि-परंपरा को जन्म दिया, ललद्यद या लल आरिफ़ा उसी ऋषि-परंपरा की प्रतीक-प्रवर्त्तिका हैं। श्रुति और स्मृति का मंथन करके योग और निर्गुण भक्ति मार्ग के सम्मिश्रण से, विशेषतः 'नाद-बिंदु साधना' द्वारा जीवन की सफलता एवं मोक्ष-प्राप्ति का संदेश देने वाली आदि-कवयित्री ललद्यद ने प्रथम बार जनसाधारण की भाषा कश्मीरी में अध्यात्मवाद और दैनिक जीवन के अनुभवों को 'वाखों' के ताने बाने में सँवारा। इन्हें सिद्ध मोल से दीक्षा प्राप्त हुई थी। 'लल' का अर्थ है 'लटकता मांस'। कदाचित् लटकते पेट के कारण 'लल' नाम पड़ा और शिरोधार्या होने के फलस्वरूप 'ललद्यद' कहलाईं। गागर में सागर भरने वाले इनके 'वाखों' की प्रामाणिक संख्या लगभग 171 है। अपने विचारों की गहनता एवं प्रौढ़ता कश्मीरी भाषा को प्रौढ़ता और परिपक्वता प्रदान करने का श्रेय ललद्यद को ही प्राप्त है। कश्मीरी भाषा एवं साहित्य में इनका वही स्थान है जो हिंदी में चंद्रबरदाई (दे०) का और अँग्रेज़ी में चॉसर का।

लहना *(बँ० पा०)*

ग्रामीण लोक-कथाओं के राज्य से व्रतकथाओं का मार्ग अतिक्रमण कर 'चंडीमंडल' (दे०) की लहना मध्ययुग के कविचित्त में आ उपस्थित हुई है। वह धन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति की प्रथम स्त्री है। खुल्लना के रूप से मुग्ध धनपति ने लहना को यह समझाया है कि अपनी सेवा-टहल के लिए उसने खुल्लना से शादी की है। मंगल-काव्य की लहना सरल है। उसने धनपति की चतुरता को स्वीकार किया है। शादी के उपरांत उसने खुल्ला को अपने स्नेह के अजस्र दाक्षिण्य से भर देना चाहा। मंथरा की तरह दुर्बल स्त्री ने उसे हिंसा का मंत्र पढ़ाया। धनपति के वाणिज्य-यात्रा पर चले जाने पर वह यथार्थ सौत के रूप में दिखाई दी है। ग्रामीण लोक-कथाओं की वह उस समय 'दुओरानी' है। धनपति के वापस आने पर धनपति को अपना बनाने के प्रयत्न में उसे यह समझने में देर नहीं लगी है कि गहना नहीं यौवन ही वास्तविक धन है और वह धन उसके पास नहीं है। लहना को कवि ने कहानी के प्रयोजन के अनुसार जहाँ प्रतिष्ठित किया है वहाँ जितनी कठोरता की आवश्यकता है उसके चरित्र में वह है; फिर भी गृहिणी के रूप में, आत्म-समीक्षा की चेष्टा एवं हताशा के अश्रु-निर्झर ने इस चरित्र को पाठक का ममत्व प्रदान किया है। समकालीन समाज़-जीवन से इस चरित्र की प्रतिष्ठा हुई है। इसीलिए लहना का दु:ख-आनंद, द्विधाद्वंद्व, गंभीर हताशा अथवा निष्फल आक्रोश पाठक को उदासीन नहीं बनाते वरन् उसका मन सहानुभूति-विह्वल हो उठता है।

लहर *(हिं० क्ृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1933 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) की उत्कर्षकालीन गीतियों और अतुकांत लंबी कविताओं का संग्रह इस कृति में हुआ है। गीतियों के विषय आत्मकथा, पूर्व-स्मृति प्रेम-व्यापार, प्रकृति, रहस्यानुभूति, सांस्कृतिक गौरव आदि हैं। लंबी कविताओं में प्राय: सांस्कृतिक पराजय के महत् क्षणों का दीप्त राग व्यंजित है। 'उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर', 'ले चल मुझे भुलावा देकर', 'बीती विभावरी जाग री' जैसी भाव-सघन गीतियों और 'प्रलय की छाया' जैसी नाट्यगुण-संपन्न कविता इस संग्रह में विद्यमान है। इन रचनाओं का शब्द-चयन और प्रतीक-विधान प्रसाद के प्रौढ़ सांस्कृतिक व्यक्तित्व की गहरी छाप लिए हुए हैं।

लहू-मिट्टी *(पं० क्ृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

संतसिंह सेखो (दे०) की एकमात्र उपन्यास-कृति है जिसमें पंजाब के कृषक-गृहस्थ का यथार्थवादी चित्र उपस्थित किया गया है। अर्थहीनता के जीवन में पिसते किसान को अपना घर-गृहस्थ छोड़ना पड़ता है। अपनी आशाओं-आकांक्षाओं और स्वप्नों को मिट्टी में मिलते देखना पड़ता है। लेखक ने इस त्रासदी को सहानुभूति और सूझ-बूझ के साथ चित्रित किया है। उपन्यास के मुख्य पात्र बिजे सिंह और दयाकौर हैं। इनके माध्यम से पंजाब के ग्रामीण जीवन के आर्थिक संकट को वास्तविक रूप में उपस्थित किया गया है।

कई आलोचकों का विचार है कि इस उपन्यास में सेखों ने अपने परिवार की कहानी प्रस्तुत की है। पंजाबी की उत्तम कथा-कृतियों में होने पर भी अपनी विलक्षणता के कारण यह रचना अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी।

लाउसेन *(बँ० पा०)*

लाउसेन 'धर्ममंगल' (दे०) काव्य का नायक है। धर्ममंगल के कथानक में प्रच्छन्न रूप से कृष्ण-लीला का संकेत है। लाउसेन को कृष्ण की तरह विचित्रकर्मा चरित्र के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

धर्ममंगल काव्य-परंपरा को मध्ययुग के काव्य-साहित्य में महाकाव्य के लक्षणों से युक्त काव्य के रूप में अभिहित किया जाता है। नायक लाउसेन के चरित्र में संस्कृत आलंकारिकों के द्वारा वर्णित नायक चरित्र का सारा वैशिष्ट्य उपलब्ध है। वे धीर एवं उदात्त-गुण-संपन्न हैं।

कर्तव्य-कर्म में उन्होंने कभी अवहेलना नहीं की है। यह सच है कि दैवानुग्रह से उनका जीवन नियंत्रित है फिर भी व्यक्तिगत संयम, उदारता, आत्मशक्ति में आस्था, माता-पिता के प्रति अविचल श्रद्धा एवं मानवीय गुणों ने इस चरित्र को नवीन महत्व प्रदान किया है। जीवन के क्षेत्र एवं साधना के क्षेत्र में भी एकाग्रता एवं सत्यनिष्ठा ने लाउसेन को आदर्श चरित्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

लाउसेन के जीवन-दर्शन में 'असंभव' शब्द अर्थ-हीन है। समसामयिक दुर्बल, नीतिहीन, समाज-व्यवस्था के ऊपर लाउसेन एक स्वस्थ आदर्श मौलिक रूपक मात्र है। लाउसेन बँगला मंगलकाव्य के इतिहास में अद्वितीय चरित्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाखू-लक्खण (लक्ष्मण) *(अप० ले०)* [रचना-काल—1218-1256 ई०]

लक्खण की दो कृतियाँ प्राप्त हुई हैं—'जिणदत्त चरिउ' (जिनदत्त-चरित) (दे०), और 'अणु वय रमण पईउ' (अणुव्रत रत्न-प्रदीप)। दूसरी कृति की रचना कवि ने 38 वर्ष बाद की थी। संभवतः इस बीच कवि ने अन्य रचनाएँ भी की हों जो अद्यावधि प्रकाश में नहीं आ सकीं। प्रथम कृति में जिनदत्त का चरित्र अंकित किया गया है और दूसरी में श्रावकों के पालन करने योग्य व्रतों और गृहस्थों के धर्मों का उल्लेख है।

लक्खण के पिता का नाम साहुल और माता का नाम जइना था। ये जायस वंश में उत्पन्न हुए थे। ये श्रीधर और अभयपाल के मंत्री कृष्णादित्य के आश्रम में रहे थे। ये पहले समृद्धिशाली त्रिभुवन गिरि नामक नगर में रहते थे किंतु कालांतर में विदेशी आक्रमण एवं राजनीतिक उथल-पुथल के कारण वहाँ से एटा ज़िले के अंतर्गत बिलरामपुर में जा बसे थे।

कवि की शैली अलंकृत और प्रसादगुण-युक्त है। कथात्मक प्रसंगों में विषय के अनुरूप शैली सरल है। जहाँ-तहाँ सामान्य जीवन के चित्र पर्याप्त आकर्षक हैं।

लाल *(हिं० ले०)* [जन्म —1658 ई०]

लाल कवि का पूरा नाम गोरे लाल। इनका जन्म बुंदेलखंड में हुआ था। इनके आश्रयदाता छत्रसाल थे, जिनकी स्तुति में इन्होंने 'छत्रप्रकाश' की रचना की थी। इसमें दोहे और चौपाइयों में छत्रसाल के जीवन की वीरतापूर्ण घटनाएँ वर्णित हैं। इनकी अन्य रचनाएँ भी छत्रसाल के जीवन से संबंधित हैं—'छत्रसाल शतक', 'छत्रकीर्ति', 'छत्रछंद' आदि। इन सब का वर्ण्य-विषय वीर रस है। इनकी शैली ओज-प्रधान है। रीतिकाल के उस श्रृंगार-प्रधान युग में भूषण (दे०) के समान लाल ने भी वीररस की रचनाओं के द्वारा राष्ट्र की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की थी।

लालन वैरागीण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1895 ई०]

भाऊसाहेबांची बखर के आधार पर लिखा गया यह ऐतिहासिक उपन्यास पानीपत के युद्ध की पृष्ठ-भूमि पर लिखा गया है। इसके लेखक हैं दिनकर गोंविद वझे (1848-1908 ई०)। अपने समय में यह उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुआ और 1895 से 1909 ई० तक इसके तीन संस्करण निकले।

लालसिंह 'कमला अकाली' *(पं० ले०)*

लालसिंह 'कमला अकाली' की गणना पंजावी के विशिष्ट गद्य-लेखकों में की जाती है। इन्हें विशेष प्रसिद्धि अपने यात्रा-वर्णनों के कारण मिली है। इस प्रकार के यात्रा-लेखों का पहला संग्रह 'मेरा विलैती सफरनामा' (दे०) पंजाबी में विशेष समादृत हुआ। 'कमला अकाली' ने विदेशों की काफ़ी यात्रा की है और वहाँ के जीवन, आचार-व्यवहार को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा-समझा है। इसलिए उनके यात्रा-प्रसंगों पर लिखे गए निबंध पंजावी में अपना मौलिक रंग लिये हुए हैं। भाषा की सरलता और स्पष्टता के कारण इनके निबंधों में कहानी की-सी रोचकता आ गई है।

'कमला अकाली' की हास्य-कहानियाँ, और निबंध भी बड़े लोकप्रिय हैं। 'सरब लोह दी बहुटी' और 'मौत राणी या घुंड' नामक संग्रहों में उनकी हास्य-व्यंग्य से भरी रचनाएँ संगृहीत हैं।

नित्य-प्रति जीवन के सामान्य विषयों पर लिखे गये इनके निबंधों का संग्रह है 'जीवन नीति'। इस संग्रह में दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातों पर सरल ढंग के हल्के-फुल्के लेख लिखे गये हैं जो जीवन को अधिक सुसंस्कृत और सुंदर बनाने की प्रेरणा देते हैं।

'कमला अकाली' की एक नयी पुस्तक 'देश-भगत सैलानी' शीर्षक से प्रकाशित हुई है। यह रचना भी लेखक द्वारा बर्मा, स्याम आदि देशों की यात्राओं से प्राप्त अनुभवों के आधार पर लिखी गई है, परंतु इसे उपन्यास का रूप दे दिया गया है।

लाला गणपतराय *(म० पा०)*

डा० श्री० व्यं० केतकर (दे०) के अमेरिका में बसे हिंदुओं पर लिखे उपन्यास 'परागंदा' का यह पात्र उन व्यक्तियों का प्रतिनिधि है जो अमेरिका जाकर भी वहाँ के जीवन से प्रभावित न होकर विशुद्ध भारतीय बने रहे। ऐसे पात्रों को विरोध में रखकर लेखक ने अमेरिका के जीवन से प्रभावित भारतीयों का चित्र अधिक स्पष्ट करने में सफलता प्राप्त की है। इस पात्र की रचना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार थे पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय। लेखक ने जहाँ एक ओर प्रस्तुत पात्र में लाला लाजपतराय के अनेक गुणों—पवित्र आचरण, हिंदू-निष्ठा, राष्ट्रीय भावना आदि का समावेश किया है वहाँ उनके कतिपय दोषों—अमरीकी जीवन एवं विचारधारा से अनभिज्ञता, वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव, पंजाब के प्रति अतिरिक्त अभिमान-भाव का भी उद्घाटन किया है। लाला लाजपतराय के प्रति लेखक की दृष्टि संतुलित है, पूर्वाग्रह-युक्त नहीं। अतः उनके प्रति उस प्रकार का अन्याय नहीं हो पाया है जिस प्रकार का श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (दे०) के साथ हुआ है। इस पात्र के माध्यम से लेखक ने कतिपय समाजशास्त्रीय विचारों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

लाला, जगन्मोहन *(उ०ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1913 ई०]

स्वर्गीय जगन्मोहन लाला उड़ीसा के आदि नाट्यकार हैं। ये माहंगा, कटक के निवासी थे। एंट्रेंस पास करने के बाद ही इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली थी और अवकाश लेते समय ये डेपुटी कलेक्टर थे।

तत्कालीन समाज में फैली विकृतियों, धर्म के नाम पर फैले अनाचार, अंधविश्वास आदि के विरोध में विभक्त इस नाटक ने उड़िया-नाट्य-साहित्य का मार्ग-निर्देशन किया है।

इसमें चरित्र-चित्रण की निपुणता, स्वाभाविक पात्रानुकूल कथोपकथन, नाटकीय औत्सुक्य आदि गुण मिलते हैं। गीतों की संख्या कुल तीन है, तीनों ही भजन हैं। इसमें संस्कृत-नाट्य-रीति का अनुकरण नहीं हुआ है, फलतः सूत्रधार, नट, नटी आदि की व्यवस्था नहीं है। कथावस्तु की उपस्थापना से ही नाटक का आरंभ हुआ है। ढोंगी साधु, पाखंडी महंतों का दोष-प्रकाशन, डायन, भूत, प्रेत-मंत्र आदि के संबंध में व्याप्त भ्रम तथा कुसंस्कारों का निराकरण इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। 20 मई 1876 को प्रथम बार इसका अभिनय हुआ था। स्वयं लाला एक कुशल अभिनेता थे। इनके अन्य नाटक हैं—'सती', 'वृद्ध विवाह' आदि।

लाहिड़ी, तुलसी *(बँ० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

नव्य नाट्य-आंदोलन के सूत्रधारों में प्रधान तुलसी लाहिड़ी नाट्यकार होने के साथ-साथ एक मँजे हुए अभिनेता भी थे। नव्य-नाट्य-आंदोलन के युग में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की सहायता से जो नाटक लिखे गए उन्हें व्यावसायिक रंगमंच पर अभिनय करना लगभग नामुमकिन ही था। परंतु इस गतिरोध को तोड़कर तुलसी लाहिड़ी ने अपने नाटक 'दुःखीर इमान' (1947) को मंचस्थ किया। साधारण रंगमंच पर अभिनीत नये युग का यही सर्वप्रथम नाटक था।

इनके दूसरे नाटक निम्नलिखित हैं: 'मायेर दाबी' (1941), 'छेंडा तार' (1950), 'पथिक' (1951)। इन नाटकों में लेखक ने मार्क्सवादी सिद्धांतों के प्रतिपादन में स्पष्टतः उद्देश्यमूलक मनोभाव की अभिव्यक्ति की है। परिणामतः नाट्यकार की अपेक्षा इनका जन-कल्याणमूलक उपदेशक का रूप ही अधिक उभर आया है। 'छेंडा तार' नाटक इनसे थोड़ा भिन्न है। इस नाटक में उपदेश के स्थान पर मानव-जीवन की दुःखभरी कहानी की तटस्थ विवृत्ति मात्र है। मानवीय कौतूहल को कहीं भी एक क्षण के लिए भी शिथिल नहीं होने दिया गया है। यह नाटक निस्संदेह बँगला नाट्य-साहित्य की एक अमूल्य कीर्ति है।

इनका अंतिम नाटक 'लक्ष्मीप्रियार संसार' 1957 ई० में प्रकाशित हुआ था और इसी में इन्होंने अपने जीवन का अंतिम अभिनय भी किया था। अपने नाटकों में ये उद्देश्यमूलक ही अधिक दिखाई पड़ते हैं; फिर भी समस्या-कंटकित जीवन में मनुष्यत्व की महिमा के संधान में ये बिल्कुल व्यर्थ नहीं हुए हैं।

लिंगण्णा, सिंपि *(क० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

सिंपि लिंगण्णा वर्तमान युग के प्रसिद्ध कन्नड लेखक हैं। इनकी चालीस से अधिक पुस्तकें प्रकाश में आई हैं। 'मुगिल जेनु' (आकाश की मधुमक्खी) में इनकी कविताएँ संगृहीत हैं। 'श्रीअरविंदरु' इनकी जीवन-चरित्र-संबंधी रचना है। 'सप्तपदी' इनका नाटक है। 'देशभक्तियकथेगळु' (देशभक्ति संबंधी कहानियाँ) जैसी पुस्तकों में इनकी कहानियाँ हैं। इन्होंने हिंदी में मिलन काव्य का अनुवाद किया है। इस प्रकार ये बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कलाकार हैं। इनकी लेखन-शैली आकर्षक और मनोहर होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लितिकाइ *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1896 ई०]

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०)-रचित यह जोनाकी-युग का प्रहसन है। बेजबरुवा को हास्य नाटकों की अपेक्षा अन्य नाटकों में अधिक सफलता मिली है, किंतु उनके हास्य-नाटकों में यह उल्लेख योग्य है।

लिपिविज्ञान *(भाषा० पारि०)*

जैसा कि नाम से स्पष्ट है भाषाविज्ञान की इस शाखा में लिपियों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत विश्व में लिपियों के विकास के सामान्य सिद्धांत, उनके विकासक्रम, आदर्श लिपि की कसौटी, लिपि की कमियों का विश्लेषण, उन्हें दूर करने के उपाय, किसी भाषा के लिए नयी लिपि बनाने की पद्धति आदि का अध्ययन आता है। लिपि का अध्ययन वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक तीनों प्रकार का हो सकता है। ऐतिहासिक में लिपि या लिपियों का इतिहास देखते हैं तो तुलनात्मक में दो या अधिक लिपियों की तुलना की जाती है। वर्णनात्मक अध्ययन के लिए लिपिविज्ञान की एक शाखा लिपिग्रामविज्ञान (Graphemics) का विकास हुआ है, जिसमें एक लिपिग्राम (जैसे नागरी लिपि में र) की विभिन्न संलिपियों (जैसे र की संलिपियाँ : ग्र, ्र, र्, र) के वितरण का अध्ययन किया जाता है। लिपिविज्ञान में आशुलिपि का अध्ययन भी समाहित है।

लिमये, गो० गं० *(म० ले०)* [जन्म—1891 ई०]

लिमये का जन्म पूना के एक संपन्न परिवार में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा बेलगाँव में और उच्च शिक्षा पूना में हुई। मेडिकल कॉलेज से एम० बी० बी० एस० करने के बाद 1917 ई० में इन्हें सेना में कमिशन मिला और इनकी नियुक्ति पूर्व अफ़्रीका में हुई। 1921 ई० में इस पद से त्यागपत्र देकर इन्होंने पूना में अपना निजी अस्पताल खोला और स्वतंत्र लेखन भी आरंभ किया। इनकी मुख्य रचनाएँ हैं—'जुना बाजार', 'विनोद-सागर' तथा 'हेलकावे'। यद्यपि अंतिम कृति करुण कथाओं का संग्रह है तथापि ये प्रधान रूप से विनोद-लेखक हैं। क्रीड़ांगण, कलांगण और रणांगण, इन तीनों क्षेत्रों में इन्होंने कीर्ति प्राप्त की है—ये क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी, कुशल सारंगी-वादक, अभिनेता तथा शल्य-चिकित्सक रहे हैं।

बंबई के जीवन, डॉक्टरी व्यवसाय और सैनिक वातावरण में प्राप्त अनुभवों का उपयोग इन्होंने अपने विनोदपूर्ण लेखों में ख़ूब किया है। इनका विनोद निर्मल और प्रसंगनिष्ठ है, साथ ही इन्होंने यथावसर समाज की स्थिति—स्त्री-परतंत्रता, वकीलों के कुतर्क एवं अधिकारी वर्ग की गफ़लत—पर भी प्रहार किया है। लोगों की स्वभावगत दुर्बलताएँ—मिथ्या अभिमान, विस्मृति, मूर्खता, व्यसन और सनक भी इनके विनोदपूर्ण लेखों के विषय बने हैं। विनोद-सृष्टि के लिए इन्होंने विरोधाभास, अतिशयोक्ति, श्लेष, शब्द-क्रीड़ा आदि युक्तियों का आश्रय लिया है। लघुता, विषय-वैविध्य और स्वाभाविकता इनके लेखों के प्रधान गुण हैं।

लिरिक *(गु० कृ०)*

इसमें श्री बलवंतराय ठाकोर (दे० ठाकोर) ने पश्चिमी काव्यविधा 'लिरिक' का सांगोपांग विवेचन किया है। पश्चिमी संपर्क के परिणामस्वरूप गुजराती-साहित्य में जिन नवीन काव्यविधाओं का जन्म हुआ है लिरिक (प्रगीत) भी उनमें से एक है। इस संबंध में सुप्रसिद्ध कवि तथा लेखक नरसिंहराव दिवेटिया (दे० दिवेटिया) ने 'वसंत मासिक' में एक लेखमाला लिखी थी तथा इस काव्य-विधा (लिरिक—हिं० प्रगीत) को 'संगीत काव्य' की संज्ञा दी थी। इसके विरोध में श्री ठाकोर ने 'कौमुदी त्रैमासिक' लिरिक नाम से जो लेखमाला लिखी थी, उसी का संग्रह-रूप यह पुस्तक है।

लेखक ने पश्चिमी तथा गुजराती साहित्यकारों की रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में इस मत की स्थापना की है कि अपनी प्रारंभिक स्थिति में लिरिक 'लायर' नामक वाद्ययंत्र से अनिवार्य रूप से संबद्ध था किंतु उसके वर्तमान रूप का गेयता अथवा संगीत से बिल्कुल संबंध नहीं है। लिरिक का संबंध feeling (जिसे वह 'ऊर्मि' की संज्ञा देते हैं) के साथ जोड़कर उन्होंने इसे 'ऊर्मिकाव्य' की संज्ञा दी है तथा पश्चिमी और गुजराती प्रगीतों के संदर्भ में इसके स्वरूप की विवेचना की है। इस संबंध में विभिन्न आलोचकों के मतों का उन्होंने तार्किक परीक्षण किया है।

गुजराती में किसी काव्य-विधा का सर्वांगीण विवेचन करने वाली यह प्रथम स्वतंत्र रचना है। अतः इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व भी है ।

लीला *(म० पा०)*

लीला रामगणेश गडकरी (दे०) के नाटक 'प्रेम संन्यास' की मुख्य पात्र है । यह बाल्यावस्था में जयंत से प्रेम करती है, परंतु वैवाहिक बंधन में दोनों सूत्रबद्ध नहीं हो पाते । वैधव्य की मार इसके सुखमय वैवाहिक जीवन पर करकाघन सदृश बरस जाती है । वैधव्य के असह्य दुःख में यह पुनः जयंत के प्रति आकृष्ट होती है, परंतु वह चाहकर भी अपनी पत्नी के भय के कारण इसके प्रति उपेक्षाभाव बनाये रखता है । कमलाकर इसकी असह्य अवस्था का लाभ उठाकर इससे विवाह-प्रस्ताव करता है और तिरस्कृत होकर वह जयंत से प्रतिशोध लेने का अवसर खोजता है । जयंत की पत्नी मनोरमा के मन में संदेह का बीज बोकर वह अपनी योजना को कार्यान्वित करता है । मनोरमा पति का त्याग कर कमलाकर के साथ अपने पिता के घर जाती है, परंतु कमलाकर द्वारा अपने सतीत्व की रक्षार्थ वह चलती गाड़ी से कूदकर आत्मघात कर लेती है । मनोरमा की हत्या के दोष में जयंत को मृत्यु-दंड मिलता है, परंतु विद्याधर के सद्प्रयत्नों से वह अभियोग-मुक्त होता है । कमलाकर से जयंत की मृत्यु का असत्य समाचार जानकर लीला विष-पान कर आत्महत्या कर लेती है । लीला की मृत्यु से संतप्त जयंत की हत्या डाकू कर देते हैं ।

लीला-जयंत के प्रणय-प्रसंगों पर आलोच्य नाटक की कथा आधारित है । लीला का चारित्रिक संघर्ष मर्मस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक है । दुःखों के झंझावात में डगमगाती तरणी को लीला प्रेम और विश्वास के सहारे किनारे लगा देना चाहती है, परंतु अपने प्यार की असमय मृत्यु से वह पूर्णतः टूट गई है, इसी से आत्मघात कर दर्शकों के मन पर दुःख की रेखा अंकित कर जाती है ।

लीला *(सिं० पा०)*

सिंधी-साहित्य में लीला-चनेसर की प्रेमगाथा प्रसिद्ध है । लीला सिंध के प्रसिद्ध राजा चनेसर की रानी थी । दोनों का आपस में बहुत प्रम था । कौंरू नामक एक राजकुमारी चनेसर के सौंदर्य पर आसक्त हो गई । विवाह का प्रस्ताव चनेसर को भेजा गया, परंतु वह उसे स्वीकृत न हुआ । दूसरा कोई चारा न देखकर कौंरू दासी के वेश में लीला के पास काम करने लगी । उसने लीला की आभूषणप्रियता का लाभ उठाकर उसे एक अतिसुंदर नौलखा हार दिया और उसके बदले में चनेसर के साथ एक रात बिताने की अनुमति माँगी । लीला को यह सौदा बहुत सस्ता लगा क्योंकि उसे अभिमान था कि चनेसर उसके वश में है । रात के समय जब चनेसर नशे में बेसुध था तव लीला ने कौंरू को अपने पति के पास भेज दिया । सुबह जब चनेसर होश में आया तब सारी बात जानने पर उसके मन में लीला के प्रति ग्लानि हो गई । कौंरू के अगाध प्रेम को देखकर चनेसर ने उसे अपना लिया और लीला को अपने महल से निकाल दिया । लीला अपने किए पर बहुत पछताने लगी और कोई चारा न देखकर वह अपने मायके चली गई । कई दिनों के पश्चात् और दुःखमय जीवन बिताने के बाद वह अपने पति को पाने में सफल हुई । सूफ़ी-संत कवियों ने लीला को सांसारिक वस्तुओं के मोह में फँसकर साधना के पथ पर भ्रष्ट आत्मा के रूप में चित्रित किया है । ऐसी दिग्भ्रांत आत्मा पश्चात्ताप के बाद फिर ठीक मार्ग पर चलकर प्रियतम को पा सकती है ।

लीलाचरित्र *(म० कृ०)*

इसके रचयिता हैं श्री महीम भट्ट । इसमें महानुभाव पंथ के प्रवर्तक श्री चक्रधर जी की लीलाओं का वर्णन है । चक्रधर जी के स्वर्गवास के उपरांत पाँच वर्ष के अंदर ही 1278 ई० में इसकी रचना हुई थी । महीम भट्ट लीला-चरित्र लिखने के उद्देश्य से गाँव-गाँव भ्रमण करते रहे । इसमें चक्रधर जी की कुल 1109 लीलाओं का संकलन है और इसे मराठी का आद्य गद्य-चरित्र-ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है । इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है क्योंकि चरित्र-लेखक को चक्रधर जी का सान्निध्य प्राप्त था । इससे मराठी भाषा के प्राचीन गद्य के स्वरूप का अच्छा परिचय मिलता है । चरित्रनायक की सजीव मूर्ति आँखों के सामने दिखाई देने लगती है और तत्कालीन सामाजिक जीवन की प्रामाणिक झाँकी भी सहज ही प्राप्त हो जाती है । लेखक की शैली अत्यंत रोचक है—भाषा में सरलता और प्रवाह है । एक आस्थावान लेखक किस प्रकार चरित्र से संबद्ध गद्य-ग्रंथ में भी अनोखी सरसता और सजीवता उत्पन्न कर सकता है इसका ज़्वलंत प्रमाण है 'लीलाचरित्र' ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीलातिलकम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः चौदहवीं शती का अंतिम चरण]

रचनाकार—अज्ञात, किंतु अनुमानतः दक्षिण केरल के कोई आचार्य ।

यह मणिप्रवाळ मलयाळम का संस्कृत-निबद्ध सूत्रवृत्त्यात्मक शास्त्र-ग्रंथ है । इसका प्रथम पूर्ण अनुवाद श्री आट्टूर कृष्णप्पिषारटि (दे०) ने प्रस्तुत किया । इस ग्रंथ का अनुवाद-टिप्पण रचने वालों में महाकवि उळ्ळूर (दे०), शूरनाड कुञ्ञनपिळ्ळा, इलंकुळम् कुञ्ञनपिळ्ळा (दे०) आदि प्रमुख हैं । आठ शिल्पों की इस रचना का प्रथम शिल्प 'मणिप्रवाळ' (दे०) और 'पाट्टु' (दे०) की व्याख्या करता है । अगले दो शिल्पों में व्याकरणिक चर्चा है । आगे दोष, गुण, अलंकार एवं रस का विधान भी वर्णित है । 'लीलातिलकम्' की सबसे बड़ी देन 'मणिप्रवाळम्' और 'पाट्टु' की व्याख्या है । 'भाषासंस्कृतयोगोमणिप्रवाळम्' तथा 'द्रमिडसंघाताक्षर-निबद्ध मेतुका मोनावृत्तविशेषबद्धं पाट्टु'—इसके दो प्राणभूत सूत्र हैं । 'संस्कृत' शब्द का मतलब विभक्तयंत तत्सम पदों से है और 'योग' शब्द का अर्थ है सहृदय-हृदयाह्लादकत्वेनसन्निवेश । पाट्टु के लक्षण में 'एतुका' और 'मोना' (दे०) दो द्राविडी अनुप्रास-विशेष हैं । इस ग्रंथ के रचयिता बड़े निर्भीक विचारक और सरस रहे हैं । 'लीलातिलकम्' के बाद उसकी टक्कर का दूसरा काव्य-शास्त्रीय सूत्रवृत्त्यात्मक ग्रंथ मलयाळम में नहीं लिखा गया ।

लीलावती *(क० कृ०)*

'सारस्वतपार' नेमिचंद्र (दे०) (समय—1170 ई० के आसपास) की रचना 'लीलावती' रट्टराजा लक्ष्मणदेव के आश्रय में रची गई । नेमिचंद्र प्रकांड पंडित और श्रृंगारप्रिय कवि हैं । 'लीलावती-प्रबंध' संभवतः उनकी प्रथम रचना है । वह चौदह आश्वासों का चंपू काव्य है । मंगरस (दे०) ने उसे 'श्रृंगार-काव्य' माना है । कवि ने भी उसमें कहा है, 'यह श्रृंगार को काव्य-बंध में निबद्ध करने वाला श्रृंगार-कारागृह है' (1-81) एक वर्ष में कवि ने उसे पूरा किया । उसका कथानक कुछ इस प्रकार है—'कदंब-राजधानी जयंतीपुर अथवा बनवासि में चूडामणि नामक राजा था । उसकी रानी पद्मावती थी और पुत्र कंदर्पदेव । मंत्री गुणगंध का पुत्र मकरंद राजकुमार का मित्र था । युवराज बनने के बाद एक दिन रात में कंदर्प ने एक रमणी को देखा । दूसरे दिन सवेरे मकरंद के साथ उस रमणी की खोज में निकल पड़ा । कुसुमपुर के राजा श्रृंगार-शेखर की पुत्री लीलावती को ही उसने स्वप्न में देखा था । उसने भी स्वप्न में राजकुमार को देखकर उसकी तलाश करने के लिए लोगों को भेजा । अंत में दोनों का विवाह हुआ । लीलावती को साथ लेकर कंदर्प, अपनी राजधानी में आया और सुख से राज्य करने लगा ।' हिंदी के सूफ़ी-काव्यों में भी इसी प्रकार की कथाएँ हैं । नेमिचंद्र सुबंधु की 'वासवदत्ता' से प्रभावित हुए थे, यह उनके काव्य को पढ़ने से स्पष्ट होता है । उनके वर्णनों में श्लेष, विरोधाभासादि अलंकारों का प्राचुर्य है, कल्पना-विलास में सुबंधु का अनुकरण है । यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने कथा में जैन-निष्ठा के लिए स्थान छोड़ रखा है । चारु वर्णन तथा सुंदर रस चित्रण में उनको विशेष सफलता मिली है । उनका काव्य अनुवाद अथवा अनुकरण न होकर स्वतंत्र काव्य बन गया है । कल्पना-चमत्कार तथा शब्द-संपत्ति की दृष्टि से वे गणनीय कवि हैं । उनके काव्य का प्रतिपाद्य यही है कि 'स्त्री रूप ही रूप है और श्रृंगार ही रस है ।' (12-8)

लीलूडी धरती *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

श्री चुनीलाल मडिया (दे०) ने सौराष्ट्र के जन-जीवन से संबंधित जो उपन्यास लिखे हैं 'लीलूडी धरती' का उसमें प्रमुख स्थान है । कृषक-जीवन से संबंधित यह उपन्यास दो भागों में विभक्त है जिसमें ग्राम-जीवन की खट-पट, षड्यंत्र तथा मानव-हृदय की सूक्ष्म संवेदनाओं का चित्रण अंचल विशेष की भाषा में किया गया है । इसके साथ ही संपृक्त संत नामक पति-निष्ठ स्त्री की करुण कहानी उपन्यास का प्रबल आकर्षण है । इस उपन्यास का फ़िल्मीकरण भी हो चुका है ।

आंचलिक गुणों से समृद्ध यह उपन्यास अपनी रोचक शैली, औपन्यासिक संघर्ष, प्रबल आवेग, सशक्त पात्र-चित्रण तथा संघर्षजन्य जीवंतता के कारण गुजराती के आंचलिक उपन्यासों में अग्रिम स्थान का अधिकारी है ।

लुब्धावधान्लु *(ते० पा०)*

यह गुरजाडा अप्पाराव (दे०) के 'कन्या-शुल्कमु' (दे०) नामक नाटक का प्रसिद्ध पात्र है । अतिवृद्ध होने पर भी पैसे देकर कन्या खरीदकर विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहता है। अपनी पुत्री का भी इसी प्रकार विवाह कर देता है और वह थोड़े ही समय के बाद विधवा एवं दुश्चरित्रा हो जाती है। यह अग्निहोत्रावधानी की कन्या के लिए शुल्क के अधिक होने के कारण पहले इनकार कर देता है। पर जब अग्निहोत्रावधानी पत्र द्वारा अपनी कन्या देने से इनकार करता है तो आगबबूला हो जाता है। अन्य दो पात्रों के षड्यंत्र से स्त्रीवेशधारिणी पुरुष से विवाह कर, धोखा खाकर, यह पश्चात्ताप करता है। इसके द्वारा ही अप्पाराव 'कन्याशुल्क' की कुप्रथा की बुराइयों को उजागर कर सके हैं।

लूणां *(पं० कृ०)*

पंजाबी कवि शिवकुमार की यह प्रसिद्ध काव्यकृति 1965 ई० में प्रकाशित हुई। शिवकुमार ने इसे महाकाव्य कहा है परंतु पंजाबी के आलोचक-वर्ग ने इसे काव्य-नाटक के रूप में स्वीकार किया है। कथानक का आधार पंजाब की सुप्रसिद्ध लोक-कथा 'पूर्णभक्त' (दे० पूरन भगत) है परंतु शिवकुमार की रचना में कथा का मुख्य केंद्र पूर्ण नहीं उसकी यौवनमत्त विमाता 'लूणां' है। इसी कारण अपने से पूर्व के अनेक किस्सा-लेखक कवियों की रचनाओं की अपेक्षा शिवकुमार की रचना में अद्भुत नवीनता और उद्देश्य की विलक्षणता आ गई है। वृद्ध सालवाहन से विवाहित लूणां किसी भी प्रकार उससे मानसिक समझौता नहीं कर सकती और स्वाभाविक रूप से अपने नौजवान सौतेले पुत्र पूर्ण की ओर आकृष्ट होती है परंतु पूर्ण उसके जाल में नहीं फंसता। इसी कारण लूणां का 'प्रमदाता' जागृत होता है और वह पूर्ण से अपने अपमान का बदला लेने की ठानती है। इस प्रकार यह समस्या लूणां के माध्यम से 'नारी' की महत्वपूर्ण समस्या बन जाती है। शिवकुमार ने 'असंतुष्ट' नारी के साथ सहानुभूतिपूर्वक उसके अंतर्मन के उतार-चढ़ाव को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। उन्हें इस काव्यकृति पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

लेंभेयांची कविता *(म० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1924 ई०]

इस काव्य-संग्रह के लेखक श्री विट्ठल भगवंत लेंभे हैं।

लेंभे जी ने मैट्रिक तक अँग्रेजी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन किया था, पर उनका साहित्य संस्कृतकाव्य से प्रभावित है। आधुनिक काल के कवि होते हुए भी ये प्रवृत्ति की दृष्टि से प्राचीन काव्य-परंपरा के कवि हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में आधुनिक काव्य-दृष्टि के अनुकूल प्राचीन पौराणिक विषयों के स्थान पर लौकिक विषयों को अपनाया है।

'लेंभेयांची कविता' इनका काव्य-संग्रह है। मुक्तक की अपेक्षा खंडकाव्य की रचना में इनका प्रतिभा-विलास दृष्टिगोचर होता है। 'मित्र दर्शन', 'विष्णुनिधन', 'कृतांतवैभव' तथा 'शोकावर्त' खंडकाव्य हैं। इनकी विलापिकाएँ अतिशय प्रसिद्ध हैं। ये मराठी-साहित्य के विलापिका काव्य-रूप के जनक माने जाते हैं।

साहित्य में इनका महत्व उनकी प्रलोभनीय लेखन-शैली के कारण है। इनकी कविताएँ सुबोध, प्रसन्न शैली में रचित हैं एवं रसार्द्र हैं। इनके समकालीन कवियों में इनकी जैसी सरस रचना करने वाला कोई अन्य कवि नहीं है। मराठी के सुप्रसिद्ध कवि चंद्रशेखर ने इन्हें लक्ष्य कर एक कविता लिखी थी जिसमें इनके काव्य के पद-लालित्य और अपूर्व भाषा-सौष्ठव की प्रशंसा है।

लेखन कल्पतरु *(म० कृ०)*

यह पंडित हेमाद्रि की रचना है। बारहवीं शती में यादव वंश के शासन में हेमाद्रि एक उच्चाधिकारी थे। इस ग्रंथ में लिखने की अनेक पद्धतियों का सोदाहरण निरूपण है और पत्र-लेखन की शुद्ध, सात्त्विक तथा ह्रस्व—ये तीन पद्धतियां निरूपित हैं। यह ग्रंथ पद्य-गद्य मिश्रित है। पत्र-लेखन भी एक कला है, इसमें सौंदर्य की अभिवृद्धि कैसे की जा सकती है, इसकी जानकारी प्रस्तुत ग्रंथ से मिल जाती है।

लेखा ओ लेखक *(उ० ले०)*

'लेखा ओ लेखक' गौरीकुमार ब्रह्मा (दे०) की समीक्षात्मक निबंध-पुस्तक है। इसमें राधानाथ (दे०), मधुसूदन (दे०), गंगाधर, गोपबंधु (दे०), उपेंद्र भंज (दे०), अभिमन्यु, दीन-कृष्ण (दे०) तथा 'मथुरा-मंगल' का विवेचत हुआ है। विवेचन सर्वांगीण एवं तुलनात्मक तथा शैली विश्लेषणात्मक है। लेखक एवं कृतियों के ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन युगीन पृष्ठभूमि पर किया गया है। लेखक की दृष्टि तलस्पर्शी है। उच्चस्तरीय अध्ययन की दृष्टि से यह एक उपयोगी पुस्तक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेचारी *(अ० पारि०)*

यह असमीया वर्णिक छंद 10-10-14 वर्णों की यति का होता है। इसमें दो चरण होते हैं। उदाहरण :

द्रुपद नंदिनी मने गुणि, स्वामी सक्लर बाक्य शुनि, राजहंस गति-चलि जात धीरे-धीरे।......

लैला *(उर्दू० पा०)*

'लैला' काज़ी अब्दुल ग़फ़्फ़ार (दे०) की कृति 'लैला के खतूत' (दे०) की नायिका है। यह 22 वर्षीया सजग तथा सुंदर नारी है। इसे भद्र-परिवार की लड़कियों के अनुरूप शिक्षा मिली है। किंतु एक कामुक पुरुष द्वारा शील-भंग होने पर यह वेश्या बन जाती है। समाज के सभी वर्गों के पुरुष अपनी वासना की तृप्ति के लिए इसके पास आते हैं और इसकी चिरौरियाँ करते हैं। वेश्या बनने के बाद इसका लक्ष्य किसी पुरुष-विशेष से प्रेम करने का नहीं रहता बल्कि उनसे धन ऐंठने का रहता है। इस के हृदय में समाज के प्रति घृणा तथा प्रतिशोध की भावना मचलती है। इसकी हँसी ख़ून का फ़व्वारा बन जाता है, इसकी वाक्पटुता एक कराह और हास्य-करुण पुकार। इसकी चपलताओं में इसके हृदय के घाव निहित रहते हैं। इसका जीवन-दर्शन उतना घृणाजनक नहीं रहता जितना करुणाजनक। इसे इसी बात का दुःख है कि जीवन में इसका कोई संगी नहीं जबकि शैया में इसके अनेक संगी हैं। यह एक समझदार, मेधावी तथा चतुर नारी है जिसे पुरुष ने कीचड़ में डाल दिया है।

लैला के ख़ुतूत *(उर्दू० कृ०)*

यह काज़ी अब्दुल ग़फ़्फ़ार (दे० अब्दुल ग़फ़्फ़ार 'काज़ी') की एक व्यंग्य-रचना है जिसमें उन्होंने पश्चिम की नीति और पूर्व की नैतिकता पर चोट की है। 'लैला के ख़ुतूत' में उन्होंने लैला नामी एक ऐसी तवायफ़ (वेश्या) की तसवीर खींची है जिसमें माँ, बहन तथा पत्नी बनने की पूरी क्षमता है। वह हमें 'यामा द पिट' की जैनी से अधिक विचारशील लगती है किंतु आचार की कसौटी पर फीकी उतरती है। 'लैला के ख़ुतूत' में लेखक के सम्मुख कोई सीमित सांस्कृतिक और आर्थिक हद नहीं। इसमें व्यंग्य तथा राजनीति है और वे अपने हैं जो गैरों से भी गए-गुज़रे हैं। काज़ी साहब के व्यंग्य में प्रचार कम और प्रेरणा अधिक है। व्यंग्य-लेखन की दृष्टि से इनका स्थान अब्दुल माजिद और मौलाना ज़फ़र अली ख़ाँ से ऊँचा है।

'लैला के ख़ुतूत' में वह सज्जाद अंसारी (दे०) और मेहदी इफ़ादी (दे०) के साथी बन जाते हैं। इस में वह नवीन प्रतिभा और चुभती हुई शैली का परिचय देते हैं, तथा सौंदर्यप्रिय एवं नफ़ासतपसंद दीखते हैं। इन्हें धर्म, विद्या, ज्ञान और धन के अभिमान से घृणा है। इस कृति में उन्होंने पाश्चात्य तथा प्राच्य सभ्यता के मिलाप की कामना की है।

लैला-मजनूँ *(उर्दू० कृ०)*

'क़िस्सा लैला-मजनूँ' सैयद हैदर बख़्श 'हैदरी' (दे०) द्वारा अनूदित कृति है। यह अमीर ख़ुसरो (दे०) की फ़ारसी-मसनवी 'लैला-ओ-मजनूँ' का उर्दू अनुवाद है। यह अनुवाद 1800 ई० में संपन्न हुआ था। इस समय यह अप्राप्य है।

लोक-रहस्य *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1874 ई०]

'बंगदर्शन' में प्रकाशित हास्य-कौतुकपूर्ण निबंध 'लोक-रहस्य' में संकलित है।

'लोक-रहस्य' का धरातल तत्कालीन बँगला समाज है। कहीं नये पढ़े-लिखे युवकों द्वारा अँग्रेज़ी रहन-सहन, व शिष्टाचार-वेशभूषा की भौंड़ी नकल पर कड़ी चोट की गई है, और कहीं भारतीयता की ओट में कुसंस्कार, अशिक्षा, कूपमंडूक वृत्ति पर प्रहार किया गया है। अँग्रेज़ स्तोत्र, गर्दभ, बाबू, गोरे-काले आदि में नये और बड़े कहलाने की झूठी शान का उपहास किया गया है। रूढ़िवादी दृष्टिकोण पर चोट तो स्थान-स्थान पर की गई है। इन निबंधों में बंकिम (दे० चट्टोपाध्याय) ने सामान्य रूप से पौराणिक प्रसंगों की पृष्ठभूमि में हास्य-व्यंग्य किया है। इससे प्रहार तीखा और पैना हो गया है परंतु कहीं भी उसमें ग्राम्यता नहीं आई।

इन निबंधों में प्रसंगानुसार जिन शैलियों का सफल प्रयोग मिला है वे हैं नाटकीय, स्तोत्र, आलोचनात्मक, विवरणात्मक। वाग्विदग्धता और चुटीली चुटकियों के कारण निबंधों में ताज़गी है। भाषा पर तो बंकिम का पूर्ण अधिकार है ही। इन निबंधों का लक्ष्य पश्चिम के नये प्रकाश में भारतीय संस्कृति को समझना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा बदलना है। वास्तव में 'लोक-रहस्य' ने बँगला गद्य को नयी गरिमा प्रदान की।

लोक-साहित्य *(पारि०)*

लोक-साहित्य सामान्य जीवन के सामूहिक रूप की छाया में अंकुरित होता है, अतः उसके अध्ययन द्वारा हम लोक-चेतना को पहचान सकते हैं। भूखंड-विशेष की संस्कृति, वहाँ के निवासियों के मनोविज्ञान, लोक-चेतना, और चिंताधारा का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। अतः उसका अध्ययन कई दृष्टियों—मानव-विज्ञान, सांस्कृतिक दृष्टि, ऐतिहासिक दृष्टि, साहित्यिक दृष्टि—से किया जा सकता है। लोक-साहित्य में आडंबरहीन, प्रकृत शैली के कारण सामूहिक प्रभाव डालने की प्रभूत शक्ति होती है। लोक-साहित्य के प्रमुख अंग हैं—लोक-नाट्य, लोक-गीत और लोक-गाथा। लोक-नाटक समूहगत अभिनय, आडंबरहीन रंगमंच, गतिमान, कथा-प्रवाह द्वारा लोक-रंजन करते हैं। 'भारत में इसके अनेक रूप हैं—हिंदी-प्रदेश में नौटंकी, रामलीला और रासलीला, गुजरात में भवई, बंगाल में यात्रा, महाराष्ट्र में तमाशा आदि। लोक-गीतों के प्रमुख विषय हैं—शिकार, प्रेम, ऋतु-उत्सव, सांस्कृतिक पर्व। इनकी भाषा जन-जीवन के निकट और भाव सरल होते हैं, अतः इनमें सहज-प्रकृत मार्मिक सौंदर्य प्रभूत मात्रा में होता है। लोक-कथा के दो प्रकार हैं: पौराणिक और लौकिक। इनका तुलनात्मक अध्ययन एक ओर मानव की मूलभूत एकता और दूसरी ओर भौगोलिक, सांस्कृतिक विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। लोक-साहित्य के इसी महत्व को देखकर उसके संकलन के प्रयत्न हुए। यूरोप में सर्वप्रथम प्रयत्न था पर्सी द्वारा 1865 ई० में लोक-कविता का संकलन 'रेलिक्स ऑफ़ ऐंशियेंट इंग्लिश पोएट्री'। इसके बाद यूरोप, अमरीका और भारत में इस दिशा में अनेक प्रयत्न हुए हैं।

लोक साहित्य नुं समालोचन *(गु० कृ०)*

बंबई विश्वविद्यालय की टक्कर वसनजी माकन जी व्याख्यान-माला के अंतर्गत 1941-42 ई० में स्व० झवेरचंद जी मेघाणी (दे०) द्वारा दिये गये लोक-साहित्य-संबंधी पाँच व्याख्यान इस ग्रंथ में संकलित हैं जो बाद में 1946 ई० में ग्रंथ-रूप में प्रकाशित हुए।

प्रथम व्याख्यान में लोक-साहित्य का सीमा-क्षेत्र निर्धारित किया गया है। प्रत्येक युग में शिष्ट-साहित्य-भाषा के समानांतर जनपदीय वाणी फूलती-फलती है और उसमें लोक-मन की अभिव्यक्तियाँ होती रहती हैं। ये जनपदीय वाणी-युक्त अभिव्यक्तियाँ ही लोक-साहित्य हैं। वैदिक संस्कृत से लेकर आज तक उसके सुश्रृंखलित रूप का मेघाणी जी ने इस व्याख्यान में परिचय दिया है। शिष्ट-साहित्य से उसकी भिन्नता व महत्व प्रतिपादित किए हैं। दूसरे व्याख्यान में लोक-साहित्य के निर्मायक संस्कार-तत्त्वों की विवेचना की गई है। गुजराती लोक-साहित्य को गति देने वाले तत्त्वों की चर्चा भी की गई है। नागरिक-ग्रामीण जीवन के भेद की अस्वीकृति, वर्णांतर विवाह, प्रेम-विवाह, रूढ़ियों की अवज्ञा, धार्मिक उदारता, सांप्रदायिक भेद-भाव का तिरस्कार, सोरठी वीरत्व व संस्कार, संतों का आदर, नारी के मातृत्व एवं गतिमान सौंदर्य की अभ्यर्थना आदि का लोक-साहित्य के प्रेरक तत्त्वों के रूप में मेघाणी जी ने विस्तृत विवेचन किया है। तीसरे व्याख्यान में गुजरात के लोक-साहित्य का अध्ययन करने वालों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अनेक विद्वानों द्वारा इस क्षेत्र में किये गये उद्योगों व प्रयत्नों का महत्व इस अध्याय में निरूपित है।

चौथे व्याख्यान में लोक-साहित्य के स्वतंत्र व जीवंत स्रोतों की चर्चा की गई है तथा लोक-साहित्य की अनुभूति व तत्सदृश अनुभूति पर रचित गीति-काव्यों की कवि-विशिष्ट अनुभूति का अंतर बताया गया है। काल्पनिक आरोपों या ग्रामीण शब्द-प्रयोगों के बल पर ही कोई कृति लोक-साहित्य नहीं बन जाती। प्रेमानंद, नर्मद, दलपतराम की ऐसी रचनाओं से लोक-साहित्य का भेद भी निर्दिष्ट किया गया है। इसी प्रकार कवि-परंपरागत विरह व श्रृंगार-निरूपण तथा लोक-साहित्य में निरूपित विरह एवं श्रृंगार तात्त्विक भेद भी निरूपित किया गया है। पाँचवें व्याख्यान में लोक-साहित्य के प्रमुख लक्षण—सर्वतोमुखी समुल्लास—का विस्तृत व सोदाहरण विवेचन है। लोक-साहित्य की सफलता व लोकप्रियता के कारणों में—रसोल्लास, अभिव्यक्ति में सहज अलंकृति, लोकोक्तियों का प्रयोग, भड्डरी वाक्य, पहेलियाँ व मुकरियाँ आदि का उल्लेख किया गया है। संस्कार के गीत, दोहद के गीत, लोरियाँ, व्रतादि के गीत, आदि की सोदाहरण चर्चा के उपरांत भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के लोकगीतों की भावभूमि पर तुलना कर यह प्रतिपादित किया गया है कि समुद्र के जल की भाँति संसार में सर्वत्र मानव-अनुभूति समान है, लोक-साहित्य के लिए देश-काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सीमाओं के बंधन नहीं होते हैं।

स्व० झवेरचंद मेघाणी लोक-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। उनके ये व्याख्यान लोक-साहित्य, विशेषत: गुजरात के लोक-साहित्य के विषय में अत्यंत महत्वपूर्ण व्याख्यान हैं। लोक-साहित्य के रसिकों व शोधकों के लिए यह एक अपूर्व पुस्तक है।

लोकहितवादी *(म० ले०)* [जन्म—1823 ई०; मृत्यु—1892 ई०]

इनका पूरा नाम रावबहादुर सरदार गोपाळ हरिदेशमुख था। ये स्मॉल कॉज़ कोर्ट के जज थे। इन्होंने सेवानिवृत्त होने पर देशहिताय अपने को अर्पित कर दिया था। इन्होंने छोटे-बड़े सभी मिलाकर लगभग 32 ग्रंथ लिखे थे। 'जाति-भेद', 'गीतातत्त्व', 'स्वाध्याय', 'आगम-निगमप्रकाश', 'राजस्थान चा इतिहास', 'पानिपत ची लड़ाई', 'शतपत्रें' (दे०) आदि इनकी प्रमुख महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। लोकहितवादी जी का ज्ञान विस्तृत था तथा ज्ञानप्रसार करने की इनमें उत्कट अभिलाषा थी। ये विज्ञापन कर ज्ञानसंपादनेच्छु बंधुओं को अपने ग्रंथ मुफ़्त बाँटा करते थे।

भारतीय दर्शन तथा इतिहास पर इनका अधिकार था। समाजोद्धार के लिए जहाँ-तहाँ जाते थे, वहीं लोकहितकारी संस्था की स्थापना कर आते थे। इसी कारण लोग इन्हें लोकहितवादी नाम से अभिहित करते थे। विद्यमान सामाजिक समस्याओं पर लिखे इनके निबंध 'प्रभाकर' में प्रकाशित हुए थे। इन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया था तथा 'विधवा-विवाह-मंडळ' की स्थापना की थी।

'शतपत्रें' इनके लघु निबंधों का संग्रह है। ये निबंध पत्रात्मक शैली में लिखित निबंधों का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इसमें इन्होंने भारतीयों से पश्चिमी यांत्रिक सभ्यता स्वीकार कर सनातनी विचार त्यागने का आग्रह किया है। निबंधों की भाषा कहीं-कहीं अत्यंत कठोर है। इसकी निंदा चिपळूणकर ने अपने निबंध में की थी।

मराठी-गद्य के आदि निर्माताओं में इनकी गणना की जाती है।

लोकायतन *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1964 ई०]

कवि सुमित्रानंदन पंत (दे०) की परिष्कृत सांस्कृतिक चेतना उत्तरोत्तर लोकोन्मुख होती गई थी। युगीन विभीषिकाओं के पूर्ण समाधान खोजने की व्याकुलता में उन्होंने 'पल्लव' (दे०) से लेकर जो अहिरंतर यात्राएँ की हैं, उनका महालेख ही 'लोकायतन' है। युग-जीवन की इस 'भागवत-कथा' में किसी महान् व्यक्ति, चरित्र या व्यक्तित्व की स्थापना इसलिए नहीं मिलती है कि यह एक सर्वांगीण चेतना का काव्य है। स्वभावत: ऐसी रचना से रूढ़ काव्य-दृष्टि का परितोष नहीं हो सकता। उसका मूल्यांकन करने के लिए चेतना की उन भूमियों का स्पर्श आवश्यक है जिन पर कवि की उदार आत्मा संचरण करती रही है। रूढ़ धारणाओं का त्याग किए बिना न तो कवि के स्वानुभूत सत्य से दीप्त सूक्ष्म सांस्कृतिक बिंबों का मर्म उद्घाटित हो सकता है और न उसके संवेद्य का गांभीर्य ही परखा जा सकता है। फिर भी ग्रामधरा के अंचल की प्राकृतिक संपदा और संक्रांति-कालीन जीवन की झाँकी तो निर्विवाद रूप से सभी काव्य-प्रेमियों के लिए आस्वाद्य हो सकती है।

लोकोक्ति *(हिं० पारि०)*

ऐतिहासिक, पौराणिक या लोककल्पित कथाओं, प्राकृतिक नियमों, प्रतीकों या अनुभवों आदि पर आधारित ऐसी सूत्रात्मक सारगर्भित, लोक-प्रचलित उक्तियाँ, वाक्य में प्रयोग के बाद भी पानी में तेल की बूँद की तरह जिन की स्वतंत्र सत्ता रहती है, लोकोक्ति कहलाती हैं। कभी-कभी लोकप्रिय कवियों के छंदांश भी लोकोक्ति बन जाते हैं। हिंदी में तुलसी के अनेक छंदांश इस स्थिति को पहुँच चुके हैं। लोकोक्तियाँ प्राय: अंत्यानुप्रास (माई का जी गाई जैसा, पूत का जी कसाई जैसा), विरोधाभास (मेहरी जस बैरी न मेहरी जस भीत), विषम (कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली), सम (जैसा देव तैसी पूजा) आदि अलंकारों से युक्त होती है। 'लोकोक्ति' शब्द पुराना है। इसका प्राचीन प्रयोग एक अलंकार के रूप में अप्पय दीक्षित (दे०) ने कुवलयानंद (दे०) में किया है : 'लोकप्रवादानुकृतिलोक्तिरीति'।

लोकोपकार (क० कृ०)

'लोकोपकार' चावुंडराय (समय—1150 ई० के लगभग) का ग्रंथ है। ग्रंथ के आश्वासांत-गद्य से ज्ञात होता है कि ये 'कविताविलास' नाम के कवि के पुत्र थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुत: उसमें श्रीमत्कविलासतनूजं' है जिसके संबंध में स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) ने लिखा है कि 'कविता-विलास' के बदले 'कविलास' लिखा गया होगा। आश्वासांत गद्य में 'हरवरप्रसादोत्पन्न वाग्विलासभ्' कहने से प्रतीत होता है कि चावुंडराय ब्राह्मण थे।

'लोकोपकार' की प्रति पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं हुई है। उसके पंचम और षष्ठ आश्वास मात्र प्राप्त हैं। पंचम आश्वास में उदकार्गल-वर्णन है तो षष्ठ में स्त्री-पुरुष के सामुद्रिक लक्षण बताये गये हैं। इन आश्वासों के आधार पर यह बताया जा सकता है कि यह एक शास्त्र-ग्रंथ है। इसमें वर्णित पद्यों में माधुर्य है।

लोचनदास *(बँ० ले०)* [जन्म—1523 ई०; मृत्यु—1598 ई०]

लोचनदास का जन्म वर्द्धमान के निकट कोग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम कमलाकरदास एवं माता का सदानंदी था। ये वैद्य वंश में (ब्राह्मण वंश में) उत्पन्न हुए थे। इनकी प्रमुख कृति 'चैतन्य-मंगल' (दे०) है जिसकी रचना इन्होंने अपने गुरु नरहरि सरकार के आदेश से की थी। मुरारिगुप्त के संस्कृत 'कड़छा' का इस ग्रंथ में अवलंबन किया गया है। लोचनदास ने अपने ग्रंथ में वृंदावनदास (दे०) का उल्लेख किया है अत: 'चैतन्य-मंगल' 'चैतन्य-भागवत' (दे०) (वृंदावनदास) की परवर्ती रचना है।

जीवनी की दृष्टि से नवीनता न होने पर भी काव्य की दृष्टि से 'चैतन्य-मंगल' अत्यंत उपादेय ग्रंथ है। काव्य में परिच्छेद नहीं है। मंगलाचरण में देवी-देवताओं की स्तुति है। पांचाली-गान के रूप में विशेष उपयोगी होने के कारण 'चैतन्य-मंगल' निरंतर आदर पाता चला आया है। वैष्णव संप्रदाय में लोचनदास के 'चैतन्य-मंगल' का स्थान 'चैतन्य-भागवत' एवं 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) के बाद आता है। इसका साहित्यिक मूल्य अनुपेक्षणीय है।

लोल्लट (सं० ले०)

नाट्यशास्त्र (दे०) के टीकाकारों में भट्ट लोल्लट प्राचीनतम माने जाते हैं। ये कश्मीर देश के वासी थे।

भट्ट लोल्लट की एकमात्र कृति 'नाट्यशास्त्र' की टीका अब उपलब्ध नहीं है। आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) की टीका में इनके मत से कुछ अंश उद्धृत किया गया है। रस-सूत्र की व्याख्या में ये कृतिवादी कहे जाते हैं। इनका अभिमत है कि विभावादि रस के कारण हैं तथा रस उनका कार्य। रस की उत्पत्ति तो मुख्यत: अनुकार्य अर्थात् दुष्यंत-शकुंतला (दे०) प्रभृति मूल पात्रों में ही होती है अभिनय के बल से वह अनुकर्ता में भी उपचरित होती है। उसी का अनुभव सामाजिक करता है। इस प्रकार रस की उत्पत्ति का आश्रय अनुकार्य, प्रतीति का आश्रय अनुकर्ता तथा अनुभूति का आश्रय सहृदय सामाजिक होता है। रस चूंकि एक अपूर्ण वस्तु है जिसका भोग होता है अत: इन्हें मीमांसा कहा जाता है। मीमांसा के अपूर्व के सिद्धांत के आधार पर ही इन्होंने रस की कृतिपरक व्याख्या की है। भट्ट लोल्लट के इस मत का श्री शंकुक (दे०) प्रभृति सभी टीकाकारों ने खंडन किया है, पर व्याख्या की प्रक्रिया सबने यही अपनायी है।

लोहगढ़ (पं० कृ०)

लोहगढ़ हरनामदास सहराई का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह लेखक की सर्वप्रथम औपन्यासिक रचना है। इसमें पंजाब के शौर्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। मध्यकालीन पंजाब के एक क्रांतिकारी संग्राम को बंदासिंह बहादुर की जीवन-कथा के प्रसंग से सफलता-पूर्वक चित्रित किया गया है।

इस उपन्यास में लेखक ने इतिहास तथा गल्प का बड़े सजीव रूप में समन्वय किया है। पात्र सजीव तथा गतिशील हैं। पंजाबी गल्प-साहित्य में इस उपन्यास का विशेष स्थान है।

लोहाकुट्ट (पं० कृ०) [रचना-काल—1944 ई०]

बलवंत गार्गी (दे० गार्गी) का पहला नाटक है और पंजाबी-साहित्य में इसके प्रकाशन का पर्याप्त स्वागत हुआ था। इस नाटक में प्रेम और विवाह की समस्या को लेखक ने आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया है। नारी अपने विवाहित जीवन में केवल भौतिक संतोष ही नहीं चाहती, वह प्रेम चाहती है। प्रेम की अतृप्ति, अन्य सभी सांसारिक सुविधाओं के होते हुए भी, उसे वर्षों के विवाहित जीवन में अशांत बनाए रखती है।

नाटक की नायिका संती का विवाह काकू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहार से हो जाता है। परंतु वह गजन को चाहती थी। बीस वर्ष पश्चात् संती की युवा लड़की नैनो अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध सूबेदार के लड़के के साथ विवाह कर लेती है। इस घटना से संती का गुप्त प्रेम पुनः जाग्रत हो जाता है और वह भी काकू को छोड़कर गजन के साथ जा बसती है। संती के मन की गहराइयों में अतृप्त प्रेम की भावना सुप्त पड़ी हुई थी। काकू ने उसे समझने का कभी प्रयास नहीं किया। वह हर समय अपने काम में लगा रहता है या दोस्तों से गपशप करता रहता है। संती की भावना को समझने में वह असमर्थ रहता है। पत्नी को दो समय का अच्छा भोजन प्राप्त करा देने में ही वह अपने पति-कर्म की इतिश्री समझता है। फलतः उनके बीच एक दरार रहती है और अवसर आते ही वह एक चौड़ी खाई का रूप ले लेती है।

वंचिप्पाट्टु *(मल० पारि०)*

वंचि=नौका; पाट्टु=गीत, अर्थात् अर्थ है नौका-गीत। केरल में कई झीलें, सरोवर तथा नदियाँ हैं। 'ओणम्' जैसे देशीय उत्सवों में लोग नौकाओं और किश्तियों पर बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। तब मनोरंजन के लिए जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'वंचिप्पाटु' कहते हैं। सुदामा के चरित्र पर रची रचना प्रस्तुत गान-शैली में है। मलयाळम भाषा के साहित्य में 'वंचिप्पाटु' का स्थान महत्वपूर्ण है। 'किरातम्', 'नल-चरितम्', 'व्यासोत्पत्ति' आदि कथाएँ इस गान-शैली में लिखी गयी हैं।

वंजि *(त० पारि०)*

यह 'पुरुम्' (दे० पुरुप्पोरुळ्) नामक काव्य-भेद का उप-भेद है और इसका स्थान 'वेट्चि' (दे०) के पश्चात् है। इसका उपभेद का मुख्य विषय किसी राजा द्वारा राज्य-विस्तार की महदाकांक्षा से शत्रु-राजा पर पर हमला और युद्ध करना है। इस विषय में संबंधित तेरह प्रकरण 'तोल्काप्पियम्' (दे०) में बताये गये हैं। इनमें से ये उल्लेखनीय हैं—युद्ध छेड़ने के उपलक्ष्य में दोनों सेनाओं का तुमुलनाद, शत्रु-भूमियों पर आग लगाना, बार-बार की गयी मुठभेड़ों के बाद शत्रु-पक्ष के प्रधान वीरों का पतन, बाढ़-सी आने वाली शत्रु-सेना के आघातों को पर्वत के समान दृढ़ता के साथ अकेले ही विफल बना देने का साहसिक कृत्य, राजाओं द्वारा अपने वीर योद्धाओं के लिए आयुध-दान, पदवी-दान, प्रीति-भोज, मिलन एवं सम्मान के समारोह इत्यादि कराना, तथा विजयी राजा द्वारा एक युद्ध वीर के पश्चात्ताप के रूप में पराजित पक्ष के शौर्य का गान करना। स्पष्ट है कि ये प्रकरण अंशतः तमिल सभ्यता की प्राचीन युद्ध-नीतियों के परिचायक हैं।

वंशभास्कर *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1840 ई०]

कविराजा सूर्यमल्ल (दे०) द्वारा रचित यह विशाल ग्रंथ राजस्थानी हिंदी का 'महाभारत' (दे०) माना जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ में मूलतः बूंदी राज्य का वर्णन है। इसकी रचना गद्य-पद्यात्मक चंपू-शैली में हुई है। इसकी काव्य-शैली अत्यंत गूढ़ तथा क्लिष्ट है और तदनुसार भाषा भी प्रौढ़ और क्लिष्ट हैं, जिसमें कई भाषाओं के शब्दों का मिश्रण है। ऐसे शब्द भी हैं, जो कवि ने स्वयं ही गढ़ लिये हैं। जीवन के विविध पक्षों का विस्तृत वर्णन होने के कारण यह ग्रंथ केवल ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टियों से ही महत्वपूर्ण नहीं है, सांस्कृतिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है।

वंशवृक्ष *(क० कृ०)*

यह श्री एस० एल० भैरप्पा (दे०) के श्रेष्ठ उपन्यासों में से है। इसका अनुवाद हिंदी में डा० वासु बी० पुत्रन ने किया है। नवीन विचारों की जागृति और शिल्प की दृष्टि से यह पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। इसमें प्राचीन संस्कारों का विश्लेषण आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें चित्रित श्रीनिवास श्रोत्रिय और कात्यायनी के चरित्र लेखक के विचारों को समझने के प्रमुख साधन हैं। पाठक का कौतूहल अंत तक बना रहता है। प्राचीन मान्यताओं और आधुनिक जीवन की जटिलताओं के संघर्ष से प्ररित कथा निरंतर पाठक की उत्सुकता को जगाये रखती है। श्रीनिवास श्रोत्रिय के स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व की परिणति नियति-चक्र के कारण बड़ी दयनीय-सी बनकर रह गई है। कहीं-कहीं लगता है, लेखक ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त मानो अपने पात्रों—श्रोत्रिय और कात्यायनी—की बलि दे दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्रतुंड *(म० पा०)*

शं० प० जोशी ने अपने 'खंडाष्टक' नाटक में हास्य-प्रसंगों के संयोजनार्थ वक्रतुंड के चरित्र की संयोजना की है। यह नायिका गौरी का घरेलू कर्मचारी है जो अपनी स्वामिनी की उदारता का अनुचित लाभ उठाता है। गौरी की माँ के पारिवारिक कार्यों के प्रति उदासीनता के कारण ही यह नित्यप्रति ख़र्च के लिए दिए गए पैसा बचा लेता है। पैसों के हिसाब में गड़बड़ कर यह स्वयं ठाठ से रहता है। प्रारंभ में यह नौकरानी गरगशा के प्रति आकृष्ट होकर उससे विवाह-संबंध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है परंतु शीघ्र ही नायिका गौरी से प्रणय-निवेदन कर विवाह का प्रत्याशी हो जाता है। रूढ़ संस्कृत-शब्दों से युक्त संवाद एवं क्रियाकलापों से नाटक में हास्य-प्रसंगों का निर्माण करता है। मराठी-प्रहसनों की अमर चरित्र-सृष्टि में वक्रतुंड का अनूठा स्थान है।

वक्रोक्ति *(पारि०)*

(1) वक्रोक्ति-सिद्धांत के प्रवर्तक कुंतक (दे०) के अनुसार 'वक्रोक्ति' से अभिप्राय है 'वैदग्ध्य-भंगीभणिति', अर्थात् कवि-कर्म-कौशल से उत्पन्न वैचित्र्यपूर्ण कथन। इसे इन्होंने 'विचित्रा अभिधा' भी कहा है जो कि प्रसिद्धार्थ (वाच्चार्थ) से अतिरिक्त अर्थ की द्योतक है। कुंतक ने इस सिद्धांत का प्रवर्तन आनंदवर्धन (दे०) के ध्वनि (दे०)-सिद्धांत की तुलना में प्रस्तुत किया था और उन्हीं के अनुरूप समस्त काव्य-सौंदर्य को ध्वनि में समाविष्ट करने के स्थान पर वक्रोक्ति में करने के उद्देश्य से वक्रोक्ति के पहले छह भेद प्रस्तुत किये और फिर उनके कुल 41 उपभेद। छह भेद ये हैं—वर्ण-विन्यास-वक्रता, पद-पूर्वार्द्ध (प्रातिपदिक)-वक्रता, पदपरार्द्ध (प्रत्यय)-वक्रता, वाक्य-वक्रता, प्रकरण-वक्रता और प्रबंध-वक्रता। वक्रोक्ति-सिद्धांत का आगे अनुकरण नहीं हुआ, विश्वनाथ (दे०) ने साहित्य-दर्पण (दे०) में और महिमभट्ट (दे०) 'व्यक्तिविवेक' में इसका खंडन प्रस्तुत किया। (2) वक्रोक्ति को वामन (दे०) ने एक अर्थालंकार के रूप में स्वीकार किया था—सादृश्य पर आधारित (गौणी) लक्षणा को वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं—'सादृश्यालक्षणा वक्रोक्तिः।' आनंदवर्धन ने भी इसे अर्थालंकार माना किंतु रुद्रट (दे०) ने इसे सर्वप्रथम शब्दालंकार माना और इसके दो भेद प्रस्तुत किये—श्लेष वक्रोक्ति और काकुवक्रोक्ति। जहाँ वक्ता के एक विशिष्ट अभिप्राय से कहे हुए वचन को (सुनकर) उत्तरदाता जान-बूझकर उस वचन के पदों को भंग करके अन्य रूप में उत्तर देता है वहाँ श्लेष-वक्रोक्ति अलंकार होता है, और जहाँ अत्यंत स्पष्ट रूप से किये गये उच्चारण से नितांत सरल रूप में अन्य अर्थ की प्रतीति हो जाती है, वहाँ 'काकु वक्रोक्ति' अलंकार होता है। वक्रोक्ति को इसी रूप में मम्मट (दे०) और विश्वनाथ आदि ने भी स्वीकृत किया।

वक्रोक्तिजीवित *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवीं-ग्यारहवीं शती]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में कुंतक (दे०) कृत 'वक्रोक्तिजीवितम्' का अपना विशिष्ट महत्व है। इस ग्रंथ के तीन अंश हैं—कारिका, वृत्ति और उदाहरण। चार उन्मेषों में विभाजित उक्त रचना 'ध्वनि' (दे०) के स्थान पर 'वक्रोक्ति' (दे०) नामक तत्त्व को एक महनीय सिद्धांत के रूप में स्थापित करती है। कुंतक ने 'वक्रोक्ति' को ही काव्य के 'जीवित' के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यही नहीं, अलंकारादि काव्य के अन्य अंगों का विवेचन भी उसी के आधार पर हुआ है।

यह ग्रंथ इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि काव्य का वैशिष्ट्य उसके विवेच्य विषय में नहीं अपितु वैदग्ध्य-भंगीभणितिप्रद अभिव्यक्ति के प्रकार में है और वह प्रकार ही 'वक्रोक्ति' है। उसी से काव्य में अलौकिक चमत्कार (वैचित्र्य) की सृष्टि होती है। इस प्रकार इस ग्रंथ में जिस 'वक्रोक्ति' का विवेचन हुआ है, वह काव्य का एक ऐसा विलक्षण तत्त्व है जिसका निरूपण कुंतक-पूर्ववर्ती या परवर्ती कोई भी आचार्य नहीं कर सका था।

अभिनवगुप्त (दे०) के समसामयिक होने के कारण इनका समय भी दसवीं शती का अंत अथवा ग्यारहवीं शती का आरंभ मानना उचित है।

वगदे पाणी *(पं० कृ०)*

'वगदे पाणी' डाक्टर दीवानसिंह कालेपाणी (दे०) की कविताओं का संग्रह है। डाक्टर दीवानसिंह की कविताओं में प्रगतिवादी और क्रांतिकारी विचारधारा का प्राधान्य है। विचारों की क्रांति के साथ-साथ लेखक ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंदोबंध में भी क्रांति का श्रीगणेश किया और परंपरावादी छंद-नियमों अथवा काव्य-बंधनों का परित्याग कर स्वच्छंद कविता का आरंभ किया। इनकी कविताओं का स्वर अत्यंत प्रभावशाली था। इसीलिए अँग्रेज़ी सरकार ने इन्हें जनता से दूर काला पानी द्वीप-समूह (अंडमान-निकोबार) में रहने के लिए बाध्य किया। 'हनेरी' (आँधी) इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविता है। इसमें शीघ्र ही आ रहे इनकलाब का संदेश है जो स्थापित मूल्यों और सामाजिक रीति-नीतियों को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। धर्म, सदाचार, परंपरागत जीवन-व्यवहार आदि विषयों पर इस रचना में कठोर व्यंग्यात्मक प्रहार है।

वचनभारत (क० कृ०)

प्रो० ए० आर० कृष्णशास्त्री (दे०) जी की कृति 'वचनभारत' कन्नड का महर्षि व्यास (दे०) के आधार पर लिखित गद्यकाव्य है।

इस ग्रंथ के प्रारंभ में लेखक ने जो भूमिका लिखी है, वह उसके मूल्य को और बढ़ाने में समर्थ है। इस भूमिका को पढ़ने से कोई भी की लेखक की गंभीर विद्वत्ता और अध्यनशीलता का प्रमाण पा सकता है। इसमें संस्कृत और कन्नड महाभारत ग्रंथों, महाभारत की अनुक्रमणिका, पर्व-संग्रह, पौष्य पर्व, पौलोम पर्व आदि 12 अध्यायों का सार, महाभारत की रचना और उसके विकास, समय, कवि, इतिहास-पुराण-स्वरूप, उसमें प्रतिपादित धर्म-नीति, उसके काव्यगुण, उसमें प्रतिपादित तत्त्व का दर्शन एवं आज के युग के लिए उससे मिलने वाले संदेश पर विचार किया गया है। लेखक ने महाभारत के संदेश को कितने सुंदर रूप में प्रकट किया है, इसके लिए निम्नांकित पंक्तियाँ उदाहरण हो सकती हैं— 'कुछ लोग बता रहे हैं कि संसार को शांति मिल सकती है तो नैतिक-धार्मिक मार्ग से ही, भारतवर्ष में ही यह शांतिमार्ग दिखाई देना चाहिए। कह रहे हैं कि उसकी संस्कृति ही संबल हो सकती है। पंचम वेद, दो हज़ार वर्ष से प्राचीन 'भारत' सदा हाथ उठाकर इसी शांति की पुकार कर रहा है—पर उसको कौन सुनेंगे, मालूम नहीं —'धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते'। दुर्योधन अधार्मिक हुआ, उसने न्याय को नहीं माना, शांति को नहीं माना, संधि को नहीं स्वीकारा, युद्ध अनिवार्य हो गया। वह विनष्ट हुआ, सहस्रों राजाओं की, अठारह अक्षौहिणी सेना की उसने बलि दी, संसार में सर्वत्र स्त्रियों, बालकों और अनाथों का हाहाकार व रुदन भर गया। उसे और पांडवों को वीरस्वर्ग मिल गया, पर जिन लोगों ने उन पर विश्वास किया था उनको नरक ही मिला।'

'वचन भारत' को इस महाभारत का निचोड़ कह सकते हैं। महाभारत के अठारह पर्वों की कथा का वर्णन सरल, सुंदर, आधुनिक गद्य-शैली में यहाँ उपलब्ध होता है। इसकी भाषा-शैली मानो जादू है, पाठक पढ़ना शुरू कर देता है तो पूरा पढ़े बिना नहीं छोड़ता।

वचन साहित्य (क० पारि०)

'वचन' शब्द संस्कृत 'वच्' (बोलना) धातु से बना है। 'वचन' कन्नड की एक विशिष्ट साहित्य-विधा है। अन्य भाषाओं में शायद ही इसका रूप दृष्टिगत हो। गीतिकाव्य के लक्षणों से संपन्न अनुभूतिजन्य गद्य ही 'वचन' के नाम से प्रसिद्ध है। मध्यकाल में इस विधा का जो वैभव दिखाई पड़ा, वह कन्नड-साहित्य की एक अत्यंत स्मरणीय घटना है।

वचनों की विशेषताओं का निर्देश इस प्रकार किया जा सकता है: (1) वचनों में अनुभूति की प्रधानता होती है। उनमें स्वाभाविक सरलता और रमणीयता होती है। (2) उनकी भाषा क्लिष्ट नहीं होती। उनमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का ऐसा सहज प्रयोग देखा जाता है कि सब लोग उन्हें समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ, बसवेश्वर के एक वचन की यह पंक्ति देखिए—'केसरिनल्लिबिद्द पशुविनंते देसे देसेगे बायि बिडुत्तिद्देनेय्या', अर्थात् कीचड़ में फँसे पशु की भाँति मैं हाय-हाय करता रहा। (3) वचनों में वचनकार के इष्टदेव के नाम की छाप रहती है। (4) उनमें उपदेश की रीति मनोहर होती है। लौकिक जीवन से संबंधित दृष्टांत देकर परमार्थ तक पहुँचने का मार्ग प्रस्तुत किया जाता है। (5) उनमें स्वाभाविक माधुर्य होता है। जहाँ वचनकार समाज की आलोचता करता है वहाँ उसकी वाणी में कटुता दिखाई पड़ती है। (6) मध्यकालीन कन्नड-भाषा के स्वरूप के (जिसे नडुगन्नड कहते हैं) अध्ययन में वचन अत्यंत सहायक होते हैं।

वचनों को दो वर्गों में रख सकते हैं: (1) वीरशैव-धर्म से संबंधित, (2) आध्यात्मिक तत्त्वों को सरल-सुबोध शैली में प्रतिपादित करने वाले वचन। प्रथम प्रकार के वचनों में शक्तिविशिष्टाद्वैत के सिद्धांत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार पक्ष का वर्णन होता है। साधक के लिए षट्-स्थल—भक्तस्थल, महेशस्थल, प्रसादस्थल, प्राणलिंगस्थल, शरणस्थल तथा ऐक्यस्थल कहे गये हैं। इन स्थलों को क्रमशः प्राप्त करना पड़ता है। पाँच आचार भी साधक के लिए आवश्यक बताये गये हैं, वे हैं: सदाचार, गणाचार, नित्याचार, शिवाचार और लिंगाचार।

द्वितीय प्रकार के वचनों में भक्ति, ज्ञान, धर्म, कर्म, ध्यान आदि सभी विषय आ जाते हैं।

शिवाद्वैत अथवा शिवसर्वोत्तमत्व ही वचनों का मुख्य प्रयोजन है। वचनकार प्रायः वीरशैव धर्म के ही अनुयायी हैं। आधुनिक काल में अन्य धर्म के लेखकों ने भी वचनों की रचना की है। ऐसे लेखकों में डा० एस० बी० रंगण्णा (दे०) जी का नाम लिया जा सकता है जिसकी रचना 'रंगबिन्नप' (दे०) (रंग की विनय) साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत है। मध्यकालीन वचनकारों में जेडरदासिमय्या, शंकरदासिमय्या, मेरेमिंडय्या, सकलेश मादरस, प्रभुदेव, बसवेश्वर (दे०), अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का), चेन्नबसव (दे०) और सिद्धराम (दे०) के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

वचनिका *(हिं० पारि०)*

वचनिका गद्य-पद्य मिश्रित रचना को कहते हैं। इसमें प्रत्येक वचन या वाक्य तुकांत होता है, इसलिए इस रचना-शैली को 'वचनिका' कहा जाता है। डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) के रीति-ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक गीता रो' में वचनिका के 'पद्यबंध' और 'गद्यबंध' नामक दो भेद बताए गए हैं। गद्यबंध में कई जोटे या युग्म वचनिका रूप में जोड़े जाते हैं। वचनिका शैली के कई ग्रंथ राजस्थानी में लिखे गए हैं। 'पृथ्वीराजरासो' में भी 'वचनिका' शैली का प्रयोग मिलता है।

वछाहरण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1278 ई०]

इसके रचयिता श्री रामोदर कवि महानुभाव-पंथ में दीक्षित थे। कृष्ण-भक्तिपरक इस काव्य में ब्रह्म द्वारा अपहृत बछड़ों को पुनः गोपालों को दिलाने में किए गए कृष्ण के पराक्रमों का वर्णन है। इसमें अघासुरवध का भी सरस वर्णन है। यह मराठी का पहला प्रबंध-काव्य है वत्सहरण-प्रसंग पर लिखा गया यह एकमात्र उपलब्ध काव्य है। इसमें प्रकृति-वर्णन भी सरस-सजीव है।

वजही *(उर्दू० ले०)*

वजही इब्राहीम कुतबशाह के समय में पैदा हुए थे। कुतबशाह का राज्य काल 1535 से 1565 ई० तक है। बाल्यावस्था में ही इन्होंने काव्य-रचना आरंभ कर दी थी और एक सफल कवि माने जाने लगे थे। इन्होंने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया।

वजही की दो रचनाएँ 'कुतब मुशतरी' और 'सबरस' (दे०) प्रसिद्ध है। 'कुतब मुशतरी' एक मसनवी (दे०) है जिसमें बादशाह कुतब की प्रशंसा की गई है तथा उनकी प्रेम-गाथा का सुंदर वर्णन है। यह मसनवी 1603 ई० में लिखी गई थी। 'अंजुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू' ने इसे प्रकाशित किया है। चूँकि इस में बादशाह कुतुब की प्रेम-गाथा का वर्णन है, इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्व है। इससे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और सभ्यता पर प्रकाश पड़ा है। इस मसनवी में दो हज़ार पद हैं। इसके अतिरिक्त वजही ने 'ग़ज़ल' और 'रुबाई' आदि काव्य-रूपों का भी अभ्यास किया है।

'सबरस' वजही की दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें सूफ़ी मत के सिद्धांतों का हृदयग्राही प्रतिपादन एक सुंदर कथा के माध्यम से हुआ है। उर्दू काव्य में इस प्रकार का यह एकमात्र ग्रंथ है। इसमें मानवीय भावों के अंतर्द्वंद्व का बड़ा सफल चित्रण हुआ है।

वजीद *(पं० ले०)* [समय—सोलहवीं शती का मध्यभाग]

ये पंजाबी में समस्या-पूर्ति-काव्य के रचयिता और अपने ढंग के अनोखे कवि हुए हैं। इनका जन्म-समय और स्थान निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। भाई काहनसिंह ने 'गुरु-शब्द-रत्नाकर-कोश' में इन्हें सोलहवीं शती के मध्य विद्यमान बतलाया है। पहले ये इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे, बाद में वेदांतियों की संगति के प्रभाव से उदार सूफ़ी-संत बन गए। इनके शिष्य 'रोशनी' कहलाते हैं। पंजाबी में इनके द्वारा रचित अनेक पद्य मिलते हैं जिनमें ईश्वर-लीला का गुणानुवाद व्याजस्तुति के माध्यम से हुआ है। प्रत्येक पद्य इस पंक्ति से समाप्त होता है—'वजीदा! कौन साहब नूँ आखे, ऐं नहीं इउं कर?' (ईश्वर से कौन कहे—ऐसे नहीं, ऐसे करो?) उदाहरण:

मूरखनूं असवारी हाथी घोड़यां,
पंडित पीर प्यादे, पाटे जोड़यां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करदे सुघड़ मजूरी मूरख दे जाय घर,
वजीदा कौण साहिब नूं आखे, ऐं नहीं इउं कर।

वज्रयान *(पा० पारि०)*

यह 'महायान' शाखा (दे०) का एक विकृत रूप है। मध्यकाल में 'महायान' शाखा दो भागों में विभाजित हो गई थी—'मंत्रयान' और 'वज्रयान'। इस शाखा का जन्म कब हुआ यह तो निश्चित नहीं है किंतु इसकी प्रारंभिक सत्ता आसाम में पाई जाती है तथा बिहार से लेकर असम तक इसका प्रसार था। वहीं से काश्मीर, मध्य एशिया, तिब्बत तथा दूसरे राज्यों में इसका प्रवर्तन हुआ।

'वज्र' शब्द के अनेक अर्थ हैं—रत्न, इंद्रायुध, विरोधी शक्तियों के लड़ने के लिए बौद्ध भिक्षुओं का आयुध इत्यादि। 'शून्यता' और 'विज्ञान' भी जो माध्यमिक तथा योगाचार के सिद्धांत हैं, अविनश्वर होने के कारण 'वज्र' शब्द से अभिहित किए गए हैं। इन सबके अतिरिक्त जिस प्रकार 'पद्म' शब्द स्त्री-योनि का वाचक है उसी प्रकार 'वज्र' शब्द पुरुष-लिंग का वाचक है। निर्वाण (दे०)-प्राप्ति के लिए अबाध स्त्री-सेवन अनिवार्य माना जाता है इसीलिए इस शाखा का नाम 'वज्रयान' पड़ा है। यह तांत्रिकों का एक संप्रदाय है जिसमें बुद्ध की त्रिकाल कल्पना के अतिरिक्त शाक्तों द्वारा परिकल्पित सुखकाय को भी मान्यता दी गई है जिसके द्वारा नित्य बुद्ध अपनी महाशक्ति तारा के संभोग का महासुख प्राप्त करते हैं। बौद्ध शाक्तबुद्ध की उसी क्रिया का अनुसत्य कर महासुख की प्राप्ति करते हैं। इसके लिए चक्र बनाये जाते हैं और अनेक प्रकार की दूसरी विधियों का संपादन किया जाता है।

स्त्री-सेवन के साथ-साथ इसमें मछली, मांस, मद्य इत्यादि का भी पूरा विधान है और उसका भी अबाध सेवन निर्वाण-साधना का एक अनिवार्य अंग माना जाता है। इसमें उच्च जाति की स्त्रियों के अतिरिक्त डोमिनी, रजकी इत्यादि निम्न कोटि की स्त्रियों का सेवन भी विहित है तथा इस बात का समर्थन किया गया है कि अबाध स्त्री-सेवन के अभाव में मोक्ष मिल ही नहीं सकता। इसमें युगनद्ध (बुद्ध और शक्ति का आलिंगनबद्ध रूप) उपास्य है। यह शाखा बौद्ध-दर्शन तंत्रविद्या शृंगार-भावना और कुछ-कुछ बुद्ध-विचारों का अद्भुत सम्मिश्रण है।

वटक्कन पाट्टुकल् *(मल० पारि०)*

यह उत्तर केरल के कई वीर पुरुषों और वीरांगनाओं को प्रकीर्तित करने वाले लोकगीतों का व्यापक नाम है। इनकी रचना सोलहवीं शती ई० में अथवा बाद में हुई मानी जाती है। ये लोकगीत यद्यपि श्रेष्ठ साहित्यिक गुणों से विभूषित नहीं हैं तो भी सहज-सरल जन-भाषाओं में लिखे गए। ये गीत सीधे हृदय में प्रवेश पाते हैं और वीररस की निष्पत्ति करके श्रोताओं को पुलकित कर देते हैं। आरोमल् चेकवर, आरोमुण्णि, तच्चोळि ओतेनन्, तच्चोळि चंतु आदि वीरों और उण्णियार्चा जैसी वीरांगनाओं के नाम इन गीतों द्वारा अमर हुए हैं। तत्कालीन सामाजिक स्थिति के बारे में जितनी सूचना इन गीतों में प्राप्त है उतनी अन्यत्र सुलभ नहीं है। हमारे साहित्य में जहाँ पुराण और इतिहास की कथाओं को ही भिन्न-भिन्न रूपों में आवर्तित करने की परंपरा को ही मान्यता मिलती आई है, इस प्रकार के लोकगीतों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वडवानल *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1962 ई०]

धीरूबहन पटेल (दे०) का यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है। नायिका रेखा माता-पिता के अनमेल विवाह की संतान है। पिता उससे प्रेम करता है, उसके प्रतिकार में माँ उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करती है। इस व्यवहार के परिणामस्वरूप रेखा गुनहगार बनती है। यहाँ रेखा के मानस-चित्रण द्वारा लेखिका ने संतान के प्रति माँ-बाप के व्यवहार के कारण संतान की की प्रतिक्रिया भली भाँति दिखाई है।

वड्डाराधने *(क० कृ०)*

'वड्डाराधने' 'रूप' 'वृद्धाराधना' से सिद्ध होता है जिसका अर्थ है 'वड़ी आराधना'। जैन लोगों में प्रचलित सल्लेखन व्रत अथवा समाधिमरण से इस आराधना का संबंध है। जैन संन्यासी ज्ञान, दर्शन, चरित्र तथा तप के द्वारा जो साधना करते हैं, उसे आराधना कहते हैं। धर्म-संबंधी चर्चाओं अथवा धार्मिक कथाओं को भी 'आराधना' ही कहा जाता है।

'वड्डाराधने' कन्नड में उपलब्ध दूसरा प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ है। प्रथम ग्रंथ 'कविराजमार्ग' (दे०) शास्त्र-विषयक ग्रंथ है और यह कथाओं का संग्रह है। इस कारण इसे प्रथम गद्य-ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है। इसके लेखक तथा रचना-काल के संबंध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। इसके लेखक शिवकोट्याचार्य हैं अथवा रेवाकोट्याचार्य—इस संबंध में पर्याप्त चर्चा हुई है। एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में शिवकोट्याचार्य का नाम स्पष्टतया विद्यमान होने के कारण कई विद्वान् शिवकोट्याचार्य को ही ग्रंथ-लेखक स्वीकार करते हैं। 'कन्नड-कवि-चरिते' (दे०) के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) जी ने रेवाकोट्याचार्य को इस ग्रंथ का लेखक बताया है। इसके रचना-काल के संबंध में तीन मत प्रकट हैं—(1) इसकी भाषा-शैली में अत्यंत प्राचीन रूप दर्शित होते हैं, अतः यह छठी शती की रचना स्वीकार की गई है। (2) 'अवतरणिका' में विद्यमान पद्यों के आधार पर यह नवीं शती की रचना मानी गई जिसका लिपिकाल ग्यारहवीं शती कहा गया। (2) ग्यारहवीं शती से पूर्व ही इसकी रचना हुई थी। प्रायः 920 ई० के आसपास इसकी रचना हुई होगी। अधिकतर विद्वान् तीसरे मत को समीचीन कहते हैं।

'वड्डाराधने' में उन्नीस धार्मिक कथाएँ हैं। संस्कृत और प्राकृत में 'आराधना'-विषयक ग्रंथ हैं। कन्नड का यह ग्रंथ प्राकृत के एक मूल ग्रंथ के आधार पर बनाया गया प्रतीत होता है। हरिषेण के संस्कृत में रचित 'कथाकोश' के साथ 'वड्डाराधने' की तुलना की गई है और बताया गया है कि इन दोनों का मूल कोई प्राकृत ग्रंथ होगा। 'वड्डाराधने' में 'कथाकोश' की अपेक्षा कथाएँ प्रायः लंबी हैं और उनमें विवरण भी अधिक हैं। इसकी गद्य-शैली अत्यंत सुंदर और अपूर्व है। इसकी कथाओं में सांप्रदायिकता, नीति तथा वैराग्य का वर्णन मिलता है, परंतु सरसता, सुंदर वातावरण-निर्माण, आकर्षक संभाषण इत्यादि गुणों के कारण ये कथाएँ पाठक के मन को मोल लेती हैं। इन कथाओं में मानवता का सुंदर निरूपण हुआ है।

वणप्पु (त० पारि०)

तमिल व्याकरण-परंपरा के शीर्षस्थानीय ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) के 'चेय्युळियल्' (छंद-परिच्छेद) के प्रथम सूत्र में सामूहिक रूप से तमिल पद्यों के चौंतीस लक्षणों का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के व्याख्याताओं का कहना है कि प्रथमतः उल्लिखित छब्बीस लक्षण स्फुट गीतों के हैं तथा शेष आठ लक्षण श्रृंखलाबद्ध रचनाओं के हैं। ये आठ लक्षण 'वणप्पु' के सामूहिक नाम के अंतर्गत रखे जाते हैं। स्मरण रखने की बात यह है कि उपलब्ध 'संगम्' साहित्य मुख्य रूप से स्फुट गीतों का है तथा तमिल भाषा के प्राचीनतम काल में श्रृंखलाबद्ध रचनाओं का प्रचलन 'वणप्पु' से संबंधित 'तोल्काप्पियम्' के सूत्र द्वारा ही प्रमाणित किया जा सकता है।

'वणप्पु' के आठ भेदों में 'अम्मै' का संबंध ऐसे नीति-प्रतिपादक पद्य से है, जो लक्षण एवं लक्ष्य के रूप में सँजोये हुए हों और अधिक-से-अधिक छह पादों से युक्त छंद में प्रस्तुत हों। 'अळकु' ऐसी रचनाओं का नाम है जिनमें कविता-परंपरा के अनुरूप सुग्राह्य शब्दों का उपयोग सुंदरता बढ़ाने वाला हो। 'तोन्मै' से पुराने इतिवृत्त पर आधारित और संस्कृत 'चंपू'-काव्य के समान गद्यांशों से युक्त रचना सूचित है। 'तोल्' भी ऐसा पुराना इतिवृत्तकथन है जो विषय और अभिव्यक्ति दोनों में उदात्तता एवं विस्तार से युक्त हो। 'विरुंदु' (दे०) का अर्थ ऐसी पद्य-रचना है जो विषय एवं छंद में नये क्षेत्र का स्पर्श करने वाली हो। 'इयैपु' ऐसी रचना है जो अनुनासिक व्यंजनों से अथवा य् र् ल् व् ळ् ऴ्—इन अंतस्थ व्यंजनों से अवसान करने वाली हो। 'पुलन्' एक ऐसी पद्य-नाटक-विधा है जिसमें साधारण बोलचाल का प्रयोग हो और सुलभ बोधगम्यता हो। 'इऴैपु' तमिल संगीत के अनुकूल निबद्ध ऐसी रचना है जिसमें पुरुष व्यंजनों का वर्णन हो तथा चरणों की संख्या दो से पाँच तक हो।

स्पष्ट है कि 'वणप्पु' के उपर्युक्त भेदों मे प्रथम सात ही कविता से संबद्ध हैं। इन भेदों के उदाहरण के रूप में कतिपय ग्रंथों के नाम 'नच्चिनार्क्किनियर' आदि टीकाकारों द्वारा उल्लिखित हैं पर ये आजकल अप्राप्य हैं अथवा उनमें से केवल आंशिक उद्धरण कहीं-कहीं मिलते हैं।

वत्सभट्टि (सं० ले०) [समय—पाँचवीं शती]

वत्सभट्टि द्वारा लिखित 472 ई० का एक संस्कृत-शिलालेख प्राप्त होता है। उसमें वत्सभट्टि ने जिस पद्य की रचना की है उस पर कालिदास (दे०) का प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः कालिदास के काल-निर्णय के प्रसंग में प्रायः वत्सभट्टि की चर्चा की जाती है। वत्सभट्टि द्वारा रचित मंदसौर की प्रशस्ति वैदर्भी रीति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आबद्ध एक उच्चकोटि के कवि की कृति प्रतीत होती है। इस प्रशस्ति में 44 पद्य हैं। दशपुर का वर्णन अत्यंत कवित्वपूर्ण है और काव्यकला के विकास का परिचायक है। मैक्समूलर (दे०) ईसा की पाँच शतियों को संस्कृत-काव्य-रचना का ह्रास-काल माना था। पर वत्सभट्टि की यह रचना इस बात को निर्मूल सिद्ध कर देती है।

वत्सराज *(सं० ले०)* [समय—बारहवीं शती का उत्तरार्द्ध व तेरहवीं का पूर्वार्द्ध]

वत्सराज कालिंजर के राजा 'परमर्दिदेव' के अमात्य थे तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव के समय में भी उसी पद्य पर विद्यमान रहे। इनके जीवन-वृत्त के विषय में हमें विशेष ज्ञान नहीं।

इनके 6 रूपक उपलब्ध होते हैं। इनका 'रूपकषट्क' गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़ में 1918 ई० में प्रकाशित हुआ। इनके रूपकों के नाम हैं—(1) 'कपूर्ररचरित' (भाण), (2) 'हास्यचूडामणि' (दे०) (प्रहसन), (3) 'त्रिपुरदाहे' (दे०) (डिभ), (4) 'किरातार्जुनीय' (व्यायोग), (5) 'समुद्रमंथन' (दे०) (समवकार) तथा (6) 'रुक्मिणीपरिणय' (दे०) (ईहामृग)।

इन रूपकों को देखने से पता चलता है कि भास (दे०) के अनंतर वत्सराज ही एक ऐसे नाटककार हुए हैं जिन्होंने विविध प्रकार के रूपकों की रचना की है। उनकी शैली सरल, सशक्त और ललित है। उसमें दीर्घ समासों तथा दुरूह वाक्य-विन्यास का प्रयोग नहीं किया गया है। उनके छोटे-छोटे रूपकों में नाटकीय क्रियाशीलता, रोचकता तथा घटनाओं की प्रधानता देखने को मिलती है।

वरदराजन, मु० *(त० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

इनकी ख्याति उपन्यासकार, निबंधकार, साहित्यान्वेषी आदि नाना रूपों में है। इनकी प्रबुद्ध विवेचन-शक्ति के कारण कुछ लोगों ने इन्हें 'तमिलनाडु के बर्नार्ड शा' कहा है। ये मद्रास विश्वविद्यालय से संबद्ध 'पच्चैयप्पन्' कालेज में लंबे अरसे तक तमिल के प्रोफ़ेसर रहे थे और उसी विश्वविद्यालय के विभागीय तमिल प्रोफ़ेसर भी हो गये थे। संप्रति ये 'मदुरै' विश्वविद्यालय के कुलपति-पद पर प्रतिष्ठित हैं।

साहित्यानुशीलन एवं अन्वेषण के क्षेत्र में इनकी मुख्य रचताएँ ये हैं—'चङ्क इलक्कियत्तिलु इयर्कै' ('संगम' साहित्य में प्रकृति का स्वरूप—'डाक्टर' उपाधि के निमित्त निबंध), 'ओवच्चेय्ति', 'नेट्टुन्तोकै विळक्कम्', 'कुरुन्तोक विळक्कम्' (तीनों 'संगम' कविताओं की व्याख्याएँ), 'इलक्किय त्तिरन्' (साहित्य-समीक्षा के सिद्धांत) इत्यादि। इनके बीसों उपन्यास निकल चुके हैं। अधिकांश उपन्यासों में इनकी व्यतिरेकी पात्र-सृष्टि तथा कथावस्तु-योजना की मूल प्ररणा एक आडंबरविहीन और उन्नत लक्ष्यों से संचालित जीवन के मूल्य एवं मान्यताओं का प्रतिपादन करना है। 'अकल् विळक्कु' (छोटा दिया) 1961 ई० में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है जो आडंबररहित लक्ष्यनिष्ठ जीवन की वांछनीयता की भावभूमि पर आधारित है। 'करित्तुंटु' (कोयले का टुकड़ा), 'नेंचिल् ओरुमुल्' (हृदय का काँटा), 'पेर्र मनम्' (मातृ-हृदय), 'चेंतामरै' (प्रेमी नारी का जीवन) इनके कुछ प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम हैं। इनका 'डाक्टर अल्लि' नामक उपन्यास नाटक में रूपांतरित करके रंगमंच पर खेला गया है। 'पेर्र मनम्' उपन्यास फ़िल्माया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्य विविध क्षेत्रों में तथा विषयों पर इन्होंने अपनी सशक्त लेखनी चलायी है। इनकी शैली ठेठ तमिल की है जिसमें संस्कृत शब्दों के लिए स्थान अत्यल्प है। वस्तुतः इतने विपुल और बहुमुखी साहित्य की रचना का गौरव विरले ही लेखकों को प्राप्त है।

वरदाचार्युलु, वानमामलै *(ते० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

हैदराबाद-स्थित 'मडिकोंड' इनका जन्म-स्थान है। ये वृत्ति से अध्यापक हैं और अच्छे कवि तथा विद्वान भी हैं। ग्रामीण जीवन में इनकी अधिक रुचि है। संगीत तथा नृत्यकला में भी इनकी गति है। इनके ग्रंथ हैं—'मणिमाला' (खंडकाव्य-संग्रह); 'आह्वान', 'विप्रलब्धा' (प्रगीत); 'वैशालिनी' (नाटक); 'पोतनचरितमु' (दे०) (महाकाव्य) और अन्य कई नाटक, एकांकी आदि। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। मार्मिक प्रगीत में इन्हें जैसी सफलता मिली है वैसी ही महाकाव्य-रचना में भी मिली है। 'पोतनचरित्र' के लेखक के रूप में आधुनिक कवियों में इन्होंने विशेष ख्याति अर्जित की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरलक्ष्मंमा, कनुर्पात *(ते० ले०)*

ये आधुनिक कहानी-लेखिकाओं में से हैं। मानव हृदय का सहज-स्वाभाविक चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। 'वसुमति' नामक एक उपन्यास की भी रचना इन्होंने की है जिसको पर्याप्त समादर प्राप्त हुआ है। 'पिंछनु पुच्छुकुंन मर्नाडु' इनकी प्रसिद्ध कहानी है।

वरविक्रयमु *(ते० कृ०)*

यह काळ्ळकूरि नारायणराव् (दे०) का लोकप्रिय सामाजिक नाटक है। वरशुल्क (दहेज) की कुप्रथा के विरोध में लिखा गया यह नाटक अत्यंत सशक्त है। मुख्य कथा के सुखांत होने पर भी पहली कन्या के बलिदान के कारण इस नाटक में त्रासदी का भाव भी प्रभावशाली बन पड़ा है। कथा-निर्माण, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि की दृष्टि से यह सफल तथा अभिनय-योग्य नाटक है। इसके पद्य भी अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं। सामयिक सामाजिक कुप्रथाओं, व्यक्तियों तथा संस्थाओं पर नाटकीय शैली में कटुव्यंग्य करने वाले नाटकों में 'वरविक्रयमु' विशिष्ट रचना है।

वराहमिहिर *(सं० ले०)* [समय—500 ई०]

ज्योतिष के विद्वान् वराहमिहिर आर्यभट (ज्योतिष के विद्वान्) के समकालीन थे।

वराहमिहिर-रचित ग्रंथों में 'पंचसिद्धांतिका', 'वृहत्संहिता', 'वृहज्जातक' तथा 'लघुजातक' प्रमुख हैं।

'पंचसिद्धांतिका' के अंतर्गत वराहमिहिर ने पूर्ववर्ती तथा समकालीन ज्योतिष की पद्धतियों तथा प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। यह ग्रंथ प्रमुख रूप से सिद्धांत-ग्रंथ नहीं है, अपितु इसमें यत्रतत्र ही सिद्धांतों का समावेश है। वराहमिहिर ने पंचसिद्धांतों के अंतर्गत पैतामह, वासिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर-सिद्धांत का वर्णन किया है। वराहमिहिर का सौर-सिद्धांत ही सूर्य-सिद्धांत के नाम से प्रख्यात है। सूर्य-सिद्धांत का दसवीं शती तक बहुत कुछ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हो चुका था। परिवर्द्धित सूर्य-सिद्धांत के 14 अधिक्रम अथवा अध्याय हैं। ये अध्याय—मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, परिलेख, ग्रहपति, नक्षत्रग्रहयुति, उदयास्त, शृंगोन्नति, पात, भूगोल, ज्योतिषोपनिषद् तथा मान हैं। सूर्यसिद्धांत के अनुसार विषुव की वार्षिक गति 54 विकला है। यह गणना वास्तविक अयन से केवल 4 विकला भिन्न है। परंतु ग्रीक-ज्योतिषियों का अयन 18 विकला भिन्न है।

वराहमिहिर के ज्योतिष-संबंधी साहित्य से भारतीय गणित की सूक्ष्मता सिद्ध होती है। वर्तमान में भी अनेक ज्योतिष विद्या के जिज्ञासु वराहमिहिर की पद्धति का अनुशीलन कर रहे हैं।

वरूधिनी *(ते० पा०)*

यह तेलुगु के महान कवि अल्लसानि पेद्दन्ना (दे०) द्वारा रचित 'मनुचरित्रमु' (दे०) नामक विख्यात प्रबंध-काव्य की नायिका है। वरूधिनी कवि की एक अमर सृष्टि है। वह एक परम सुंदरी, मुग्धा अप्सरा है। तड़ित या स्वर्ण-केतकी-कुसुम के समान उसकी देहयष्टि की दीप्ति है। वह हिमालय में रहती है और नृत्य, संगीत, साहित्य, वाक्चातुरी एवं प्रणय-रहस्यों में उसकी अच्छी गति है। संयम को वह जानती ही नहीं। अतः हिमालय में रास्ता भूलकर भटकने वाले, नयनाभिराम सौंदर्य से उद्दीप्त प्रवरुडु (दे०) नामक युवक को देखकर वह तत्काल उसके प्रति दुर्वार प्रेम एवं कामना से विह्वल हो जाती है तथा निस्संकोच भाव से अपनी मनोगत भावनाओं एवं अपने विरह-ताप को उसके सम्मुख व्यक्त कर देती है।

संयमी एवं धर्मनिरत प्रवरुडु जब उसके प्रस्ताव को बार-बार अस्वीकार कर देता है तब वह नाना प्रकार के तर्कों द्वारा जीवन में कामोपयोग के महत्व को अनुनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न करती है। वह परम काम्य स्वर्गीय सुख उसको पृथ्वी पर अनायास ही मिल रहा है। अतः उसे ठुकराना उचित नहीं। अंत में वह भाव-विमूढ़ एवं कामोत्कंठिता होकर प्रवरुडु को अपने प्रगाढ़ आलिंगन में बाँधने का प्रयत्न करती है। परंतु प्रवरुडु उसको शोकातुर एवं अपमानित स्थिति में ही छोड़कर चला जाता है।

वरुधिनी आंध्र-जनता के लिए अविस्मरणीय चरित्र है। उसने अपनी संभाषण-पटुता, प्रेम की विह्वलता, कमनीय सौंदर्य तथा तीव्र वेदना से सभी के हृदयों में घर कर लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्कि, पोन्कुन्नम् *(मल० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये मलयाळम के कहानी-साहित्य को नवीन रूप में प्रतिष्ठित करने वालों में प्रमुख हैं। अपने प्रगतिशील विचारों के फलस्वरूप इनको अध्यापक की नौकरी छोड़नी पड़ी थी और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर जेल-वास भी करना पड़ा था। अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर साहित्यकारों के एक सहकारी संघ 'साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघम्' की स्थापना करने में इनको सफलता मिली है।

इनके 18 कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं और इन्हीं कहानियों से सर्वश्रेष्ठ कृतियों का चयन करके दो बृहत संग्रह और प्रकाशित हुए हैं। 'तिरुमुल्काष् च', और 'नीरावि' गद्य-कविताओं के संग्रह हैं। इनके 14 नाटकों में 'जेताक्कळ्', 'पूजा', 'विशरिक्कुकाट्टुवेंटा' आदि प्रमुख हैं। इन्होंने अपनी आत्मकथा और एक रेखाचित्र-संग्रह भी लिखा है।

इन्होंने अपनी कहानियों में अत्याचार-पीड़ित किसानों और मज़दूरों के वेदनापूर्ण जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। पुरोहित वर्ग—विशेषकर कैथलिक पौरोहित्य के धृष्टतापूर्ण व्यवहारों का इन्होंने डटकर मुकाबला किया है। नाटक के विकास में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

वर्णक *(क० पारि०)*

'वर्णक' संस्कृत शब्द है। कन्नड काव्यशास्त्र में यह पारिभाषिक शब्द के रूप में गृहीत हुआ है। कन्नड के आचार्यों ने काव्य के दो भेद बताये हैं—वस्तुक (दे०) और वर्णक। वस्तुक को 'मार्ग' अथवा चंपू काव्य भी कहते हैं। वर्णक को देसिकाव्य अथवा पाडुगब्बा कहते हैं। किसी विशेष काव्य-लक्षण को मानना अथवा संस्कृत के लक्षणों के अनुसार काव्य-रचना न करना इस काव्य-भेद का वैशिष्ट्य है। यह स्वभावतः गेयगुण से युक्त होता है, अतः इसे 'पाडुगब्बा' कहते हैं।

वर्तक, श्री० वि० *(म० ले०)*

मराठी नाट्य-तंत्र को शेक्सपियर तथा मौलियर के जड़ीभूत प्रभाव से मुक्त कर इब्सन की यथार्थवादी शैली के निकट लाने का श्रेय वर्तक की नाट्य-रचनाओं को प्राप्त होता है। 'आंधळ्यांची शाळा', 'लपंडाव' और 'तक्षशिला' इनकी नाट्य कृतियाँ हैं। इनमें 'तक्षशिला' इब्सन की नाट्य कृति का अनुवाद है तो 'आंधळ्यांची शाळा' नार्वेजियन नाटककार ब्यर्नसन के 'ए गांटलेट' की कथा पर आधारित नाटक है। 'लपंडाव' में अपनी प्रिया को अप्राप्य जान दिग्भ्रमित हो अन्य युवती से प्रणय-संबंध की प्रत्याशा करने वाले युवक का चित्रण है जिसे बाद में अपनी भूल पर पश्चात्ताप होता है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इनकी नाट्य कथाएँ सुसंगठित हैं। प्रधान कथा के साथ जिन अन्यान्य घटना-प्रसंगों की संयोजना हुई है वे मूल कथा के विकास में सहायक हैं। पात्रों का चरित्र-निरूपण सहज स्वाभाविक रूप में हुआ है। संक्षिप्त किंतु मार्मिक संवादों की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है।

वर्तमानप्पुस्तकम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1787 ई०]

यह कैथोलिक पुरोहित पारेम्माक्कल् तोमा कत्तनार्-रचित बृहद् यात्रा-वृत्त ग्रंथ है। इसमें ग्रंथकार द्वारा आशा अंतरीप के रास्ते ब्राज़ील, पुर्तगाल आदि का भ्रमण करके रोम पहुँचने और वापस आने का वर्णन-विवरण है।

'वर्तमानप्पुस्तकम्' शायद किसी भी भारतीय भाषा का प्रथम यात्रा-विवरण-ग्रंथ है। इसमें यूरोप के तत्कालीन जन-जीवन का सरस और ज्ञानवर्द्धक वर्णन है। इसका गद्य पाश्चात्य लेखन-शैली पर आधारित था और मलयाळम के आने वाले गद्य-लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शक था। गद्य-साहित्य के विकास में नये मोड़ का प्रतिनिधित्व करने वाले इस ग्रंथ का स्थान साहित्य-जगत में बहुत महत्वपूर्ण है।

वर्धमानपुराण *(क० कृ०)*

'वर्धमानपुराण' के कवि आचण्णा (समय—लगभग 1195 ई०) जैन धर्मानुयायी थे। वे भारद्वाज गोत्र के थे। उनके पिता केशवराज और गुरु नंदयोगीश्वर थे। 'वसुधैकबांधव' उपाधिधारी रेचणचंप की इच्छानुसार आचण्णा के पिता और तिक्कणचावण ने 'वर्धमानपुराण' लिखना शुरू किया था, परंतु दैवयोग से जब वह कार्य संपन्न नहीं हुआ तो आचण्णा ने उसे संपन्न किया। उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को 'वाणीवल्लभ' और 'पंचपरमगुरुपदविनत' उपाधियाँ प्राप्त थीं।

'वर्धमानपुराण' में चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान अथवा महावीर का चरित वर्णित है। कथा सोलह आश्वासों में व्याप्त है। काव्य की उत्कृष्टता का प्रमाण यह है कि वह सदलंकारों का आगार, वाणी का भूषण, वर शब्दार्थ-युत मृदु संदर्भपूर्ण तथा सहृदयों के अंतःकरण को सौख्यामृतसार प्रदान करने वाला है। उसमें अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का अच्छा प्रयोग हुआ है। नवरसों में शांत रस की प्रधानता है। पांडित्यपूर्ण काव्य होने के कारण विद्वानों ने उसकी खूब प्रशंसा की है। उसके कवि की विदग्धता सहृदयों के हृदय को सदा आनंद प्रदान करने वाली है।

वर्मा, ए० आर०, राजराज *(म० ले०)* [जन्म—1863 ई० ; मृत्यु—1918 ई०]

केरलपाणिनि की उपाधि से विभूषित ये मलयाळम के कवि, समालोचक और भाषाविद् हैं। ये प्रसिद्ध कवि केरल वर्मा वलिय कोयित्तंपुरान (दे०) के भानजे और शिष्य थे। इन्होंने त्रावनकोर सरकार के अधीन अनेक शैक्षिक संस्थाओं में उच्च पदों पर कार्य किया है।

'केरलपाणिनीयम्' (दे०), 'मणिदीपिका' और 'शब्दशोधिनी' इनके व्याकरण-ग्रंथों में मुख्य हैं। 'भाषाभूषणम्', 'वृत्तमंजरी' (दे०) और 'साहित्यसाह्यम्' इनके काव्यशास्त्रीय ग्रंथ हैं। इन्होंने 'मेघदूत' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'शाकुंतल' (दे०), 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) और 'चारुदत्त' (दे०) का अनुवाद मलयाळम में किया है। 'मलयविलासम्' (दे०) और 'प्रसादमाला' इनके मौलिक काव्य हैं। 'नलचरितम्', 'मयूरसंदेशम्', आदि की व्याख्याएँ भी इन्होंने लिखी हैं। संस्कृत में भी इन्होंने बीसियों पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'आंग्लसाम्राज्यम्' मुख्य हैं।

राजराज वर्मा की बहुमुखी प्रतिभा ने मलयाळम भाषा और साहित्य के विकास के प्रत्येक चरण में योगदान दिया है। 'केरलपाणिनीयम्' आज भी मलयाळम का सबसे प्रामाणिक व्याकरण-ग्रंथ है। छंदःशास्त्र में 'वृत्तमंजरी' के और काव्यशास्त्र में 'भाषाभूषणम्' के स्थान की भी यही स्थिति है। मलयाळम के कुछ कवियों द्वारा अनिवार्य माने गए 'द्वितीयाक्षर-प्रास नियम' को सभी कवियों पर थोपने के ये विरोधी थे। इस पर एक तीव्र वाद-विवाद का भी इन्होंने नेतृत्व किया था। के० सी० केशव पिळ्ळा (दे०), कुमारन् आशान् (दे०) आदि कवियों को उन्होंने प्रोत्साहित किया था। अपने काव्य 'मलयविलासम्' में इन्होंने स्वच्छंदतावाद की नींव रखी थी जो आगे चलकर कवित्रय (दे०) द्वारा परिपुष्ट किया गया था।

इस प्रकार मलयाळम के लिए इस महापुरुष का योगदान अनन्य साधारण है। भाषा-प्रेमियों द्वारा इन को दी गई उपाधि सार्थक है।

वर्मा, के० गोद *(मल० ले०)* [जन्म—1902 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

ये प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक और मलयाळम के शोधकर्ता हैं। ये मलयाळम भाषा के संबंध में शोध करके पी-एच० डी० लेने वालों में प्रथम हैं। त्रावनकोर विश्वविद्यालय के अधीन कॉलेजों में ये मलयाळम के आचार्य रहे हैं।

गोदवर्मा की मुख्य कृति 'केरल भाषावज्ञानीयम्' (दे०) है। मलयाळम के विकास और तमिल भाषा से उसके संबंध पर इन्होंने अपना नूतन मत स्थापित किया है। इन्होंने इस पूर्व-प्रचलित मत का खंडन किया है कि मलयाळम की उत्पत्ति तमिल से हुई है। इन्होंने स्थापित किया है कि तमिल और मलयाळम दोनों आदि द्राविड़ भाषा से स्वतंत्र रूप से विकसित हुई थीं। आजकल इसी मत पर अधिकतर विद्वानों की आस्था है।

वर्मा, धीरेंद्र *(हिं० ले०)*

डा० वर्मा मूलतः संस्कृत के विद्वान् थे किंतु इनका कार्यक्षेत्र हिंदी में भाषाविज्ञान रहा। प्रसिद्ध यूरोपीय भाषाशास्त्री जूल ब्लाख के ये शिष्य थे। उन्हीं के निर्देशन में फ़ांसीसी भाषा में लिखित 'ला लांग ब्रज' पर इन्हें पेरिस से डी० लिट्० की उपाधि मिली थी। डा० वर्मा के मुख्य ग्रंथ हैं : 'ब्रजभाषा व्याकरण', 'ब्रजभाषा' (फ़ांसीसी में लिखित थीसिस का हिंदी रूपांतर), 'हिंदी भाषा का इतिहास', 'ग्रामीण हिंदी', 'हिंदी साहित्य कोश' (संपादित), हिंदी भाषा का विकास' (संपादित)। इस तरह डा० वर्मा का मुख्य क्षेत्र व्यावहारिक भाषाविज्ञान था। वर्मा जी के लगभग दो दर्जन बहुत महत्वपूर्ण शोध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख भी प्रकाशित हुए थे जिनमें मुख्य 'हिंदी में नई ध्वनियाँ और उनके लिए नये चिह्न', 'अवध के ज़िलों के नाम' तथा 'संयुक्त प्रांत के हिंदू पुरुषों के नाम' हैं। हिंदी प्रदेश में भाषावैज्ञानिक अध्ययन को सबसे पहले व्यवस्थित रूप देने का श्रेय डा० वर्मा को है। आपने 'हिंदी साहित्य' नाम से हिंदी साहित्य का एक इतिहास भी संपादित किया है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भाषाशास्त्रीय दृष्टि से हिंदी, उर्दू, दक्खिनी आदि सभी शैलियों का साहित्य भी इसमें समाहित कर लिया गया है।

वर्मा जी काफ़ी दिनों तक प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। बाद में नागरी प्रचारिणी सभा में 'हिंदी विश्वकोश' के संपादक, जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति आदि कई पदों पर भी रहे।

वर्मा, पी० के०, राजराज *(मल० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इस प्रसिद्ध हास्य-लेखक ने भारत और बर्मा में अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य किया है। इनका कृतित्व विपुल है। 'पंचुमेनवनुम् कुंचियम्मयुम्' (पाँच भाग), 'प्रसिडंट कुंचि', 'कुंचियम्मयुटे चिंतकळ', 'कर्षटिसंहारी', 'गुरुत्वक्केटु' आदि इनकी हास्य-कथाओं और उपन्यासों में मुख्य हैं।

राजराजवर्मा के पात्र पंचुमेनन (दे०) और कुंचियम्मा (दे०) मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले दंपति हैं जिनके जीवन के विचित्र संदर्भों के सरस हास्य-चित्रण इनकी अनेक कृतियों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। इस माध्यम से उन्होंने जो हास्य-साहित्य प्रस्तुत किया है वह शुद्ध विनोद की सामग्री ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु अपने आप में विचारोत्तेजक भी है। इन्होंने 'शुप्पु' जैसे अन्य पात्रों की भी सृष्टि की है। साहित्य-समालोचक प्रायः इनकी तुलना पी० जी० वुडहाउस से करते हैं।

वर्मा, भगवतीचरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

इनकी गणना हिंदी के मूर्धन्य उपन्यासकारों में होती है। यद्यपि यह सत्य है कि इन्होंने अपना साहित्यिक जीवन छायावादी (दे० छायावाद) काव्य-रचना से प्रारंभ किया था और तदनंतर 'भैंसागाड़ी' सदृश कविताओं में प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) कविता का मूल स्वर मानववाद भी उभर कर आया है किंतु इनकी प्रसिद्धि मुख्यतः उपन्यास-क्षेत्र में ही है। 'चित्रलेखा' (दे०), 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'भूले-बिसरे चित्र' (दे०), 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'सबहि नचावत राम गुसाईं' इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'चित्रलेखा' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है तथा 'भूले-बिसरे चित्र' साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत रचना है। इनके विचारानुसार मनुष्य न पाप करता है, न पुण्य। वह तो परिस्थितियों का दास है और ये उस पर इतनी हावी रहती हैं कि उससे चाहे जो करवा लेती हैं। वर्मा जी की धारणा है कि नैतिकता केवल छल है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए चुस्त तथा सजीव संवादों एवं वर्णनात्मक शैली द्वारा भारतीय समाज के मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन, टूटती हुई आस्थाओं, सामाजिक विकृतियों एवं विषमताओं का यथार्थ चित्रण इनके लेखक की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। चरित्रांकन उनके उपन्यासकार की सबसे बड़ी शक्ति है। समग्रतः भगवतीचरण वर्मा हिंदी-उपन्यास-साहित्य के मूल्यवान हस्ताक्षर हैं।

वर्मा, महादेवी *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्मस्थान फर्रुखाबाद (उ० प्र०) है। इनका शैशव इंदौर में बीता। पिता कॉलिज के प्राध्यापक थे। प्रयाग विश्वविद्यालय से इन्होंने संस्कृत में एम० ए० किया। प्रारंभ में इन्होंने कुछ समय तक 'चाँद' का संपादन किया। आजकल ये प्रयाग के महिला विद्यापीठ की उप-कुलपति हैं। इन्होंने दर्शनशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया है। चित्रकला में इनकी विशेद रुचि है। इनके कविता-संग्रह प्रायः चित्रों की रम्य पीठिका के साथ छपे हैं।

'यामा' (दे०) और 'दीपशिखा' (दे०) इनके प्रसिद्ध कविता-संग्रह हैं। यामा में 'नीहार', 'नीरजा', 'रश्मि' और 'सांध्यगीत' नामक छायावाद (दे०)-कालीन रचनाओं का एकत्र संग्रथन है। 'दीपशिखा' का प्रकाशन प्रगतिवाद (दे०) के प्रारंभ होने के पश्चात् 1942 ई० में हुआ। इसलिए लेखिका ने भूमिका में छायावादी भावभूमि के समर्थन में सशक्त विचार देते हुए यथार्थवाद की आलोचना की है। इस रचना के गीतों में आत्मविश्वास से उद्भूत दृढ़ता का स्वर सर्वत्र सुनाई देता है।

इनके गद्य-साहित्य का साहित्यिक महत्व निर्विवाद रूप से स्थापित हो चुका है। इनके निबंधों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों का गांभीर्य, शैली की कसावट और भाषा की चित्रात्मकता उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। इनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र हिंदी-साहित्य में अद्वितीय स्थान के अधिकारी हैं। इन रेखाचित्रों में महापुरुषों, साधारण व्यक्तियों और पशुओं के शील-स्वभाव का कलात्मक अंकन हुआ है। चित्रात्मक कल्पना के साथ काव्यात्मक भाषा का गुंफन इनका प्रमुख गुण है।

इनके काव्य में आत्म-निवेदन का स्वर प्रधान है। रहस्य के छायालोक में चरण रखकर निरंतर अग्रसर होने का दृढ़ संकल्प इनके गीतों में ही व्यंजित हुआ है। उनमें प्राकृतिक दृश्यावलियों का अंकन रागात्मक सहानुभूति के साथ किया गया है। और विरह की पीड़ा तथा मिलन के सपनों की अनेक मार्मिक अनुभूतियाँ इनके कलात्मक संयम के साथ व्यक्त हुई हैं। भाव-लोक की सीमा के कारण इनके अप्रस्तुत-विधान में वैचित्र्य कम मिलता है परंतु इस अभाव की पूर्ति ये चिर नवीन संयोजनाओं से करती हैं। महादेवी का साहित्यिक व्यक्तित्व मंदिर के उस पवित्र दीपक की भाँति है जो प्रिय का पथ आलोकित करने के लिए नीरव परंतु निष्कंप जलता रहा है।

वर्मा, रामकुमार *(हिं० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

इनका जन्म मध्यप्रदेश के सागर ज़िले में हुआ। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिंदी) और नागपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी-भाषा में अध्यक्ष पद पर रहकर ये सेवा-निवृत्त हुए। काव्य, एकांकी आलोचना के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान है। कवि के रूप में इन्होंने द्विवेदी (दे० द्विवेदी, महावीरप्रसाद) युगीन इतिवृत्तात्मकता से आरंभ कर छायावादी (दे० छायावाद) सौंदर्य-लोक में प्रवेश किया। 'अभिशाप', 'चित्ररेखा', 'चंद्रकिरण', 'आकाश-गंगा' आदि रचनाओं के प्रगीतों में दुःखवाद, रहस्यवाद प्रकृति-चित्रण, लाक्षणिकता, कोमल पदावली आदि छायावादी प्रचुर तत्त्व मात्रा में हैं।

इनकी काव्य-प्रतिभा का उत्कर्ष गीतिकाव्य की दृष्टि से 'चित्ररेखा' में और प्रबंधकाव्य की दृष्टि से 'एकलव्य' में हुआ है। इनका 'हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' साहित्यिक अध्ययन के क्षेत्र में एक में लोकप्रिय संदर्भ-ग्रंथ है।

वर्मा, वटक्कम्कूर, राजराज *(मल० ले०)* [समय—1822 से 1970 ई०]

मध्य केरल में 'वटक्कम्कूर' राजघराने में पैदा होने के कारण 'वटक्कम्कूर' नाम से ये सुख्यात हैं। सरस्वती देवी की पूजा करने वाले आधुनिक काल के साहित्यकारों में राजराजवर्मा का स्थान अन्यतम माना जाता है।

'कन्याकुमारीस्तवम्' नामक संस्कृत-रचना इनके पांडित्य और पद्य-रचना-कौशल का प्रमाण है। राघावाम्युदयम्', 'रघुवीर विजयम', इन दोनों महाकाव्यों के अतिरिक्त इनका लिखा 'उत्तर भारतम्' काव्य-ग्रंथ कैरली भाषा के महाकाव्यों में सबसे बृहत् कृति मानी जाती है।

'द्रौणी प्रभावम्' 'महाभारत' (दे०) के सौप्तिक पर्व के आधार पर इनका खंड-काव्य है। आध्यात्मिक कार्यों की महत्ता पर इन्होंने खंडकाव्य 'वैराग्य दर्प्पण' की रचना की। 'शैली प्रदीपम्', 'साहिती सर्वस्वम्' आदि इनके गद्य-ग्रंथ हैं। उण्णिनीली संदेशम्, (दे०), तुंचत्त् एष् ुत्तच्छन् (दे०) की कृतियाँ, चंपू-ग्रंथ कृष्ण-गाथा आदि का गहरा अध्ययन करके उन पर आलोचनात्मक कृतियाँ भी इनकी हैं। 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इनका एक अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ है। उळ्ळूर (दे०) पर लिखा हुआ इनका 'साहित्यकार का चरित्र' ग्रंथ कैरली की विशिष्ट रचनाओं में से है। इनकी 'भारत प्रवेशिका' पढ़ने के बाद यदि मूल-भारतम् का अध्ययन किया जाय तो उस ग्रंथ की महिमा का पता कुछ-कुछ लग सकता है। इनका जीवन एक अनंत-अनवरत साहित्य-साधना थी। इनका दृढ़ विश्वास था कि आर्ष-संस्कृति से ही केरल की उन्नति हो सकती है। अतः सारे केरलीयों के लिए संस्कृत का अध्ययन करना अनिवार्य है।

वर्मा, वयलार, राम *(म० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

मलयाळम के प्रसिद्ध कवि-रूप के साथ फ़िल्मी गीतों के रचयिता के रूप में भी ये लोकप्रिय हैं। विविध राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में कार्य करने के बाद आजकल इन्होंने फ़िल्म उद्योग से अपना संबंध जोड़ा हुआ है। इनके मुख्य खंडकाव्य और कविता-संग्रह 'आयिषा', 'कत्रीना', 'कोंतयुम् पूणूलुम्', 'मुळंकाट्टु', 'सर्गसंगीतम्' आदि हैं। इनके चित्रपट-गीतों के भी अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह प्रकाशित हैं।

'रामवर्मा प्रगतिवादी कवि हैं। कृषकों और मज़दूरों का अभिशप्त दुःखी जीवन और उन पर होने वाला अत्याचार, विज्ञान और अंधश्रद्धा का परस्पर संघर्ष आदि इनके काव्य के स्वीकृत विषय हैं। चङ्ङपुषा के तुरंत बाद के मलयाळम कवियों में वयलार् रामवर्मा का स्थान प्रमुख है।

वर्मा, वृंदावनलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी ज़िले के मऊरानीपुर गाँव में हुआ था। लेखन की प्रवृत्ति इनमें विद्यार्थी-जीवन से ही थी। जब ये नवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तभी इन्होंने तीन छोटे-छोटे नाटक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद को भेज दिये थ जिन पर इन्हें पुरस्कारस्वरूप 50 रुपए भी मिले थे। तदनंतर इन्होंने एक मौलिक ग्रंथ 'महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित' लिखा था तथा शेक्सपियर की नाट्य-कृति 'टैंपेस्ट' का हिंदी-अनुवाद किया था। 1909 ई० में इनके नाटक 'सेनापति ऊदल' का प्रकाशन हुआ था जिसे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। फिर ये कहानियों तथा निबंधों की रचना तथा स्कॉट के उपन्यासों के अध्ययन-अनुशीलन में प्रवृत्त रहे जिसके फलस्वरूप इनके मन में ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन की प्रवृत्ति जन्मी। 1927 ई० में इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़ कुंडार' प्रकाशित हुआ और इसके बाद इन्होंने 'झाँसी की रानी' (दे०), 'कचनार', 'मृगनयनी' (दे०), 'टूटे काँटे', 'अहल्याबाई', 'भुवन-विक्रम' आदि अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हिंदी-संसार को भेंट किए थे। इनमें 'मृगनयनी' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त ये 'लगन', 'संगम', 'अचल मेरा कोई', 'अमरबेल' आदि सामाजिक उपन्यास, 'झाँसी की रानी', 'हंस मयूर', 'पूर्व की ओर' आदि ऐतिहासिक तथा 'धीरे-धीरे, 'राखी की लाज', 'पीले हाथ' आदि सामाजिक नाटक लिखते रहे। इसके अतिरिक्त इनके सात कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'शरणागत' तथा 'कलाकार का दंड' मुख्य हैं। किंतु यह निर्विवाद है कि ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में इनका कृतित्व विरोधरूपेण स्मरणीय है। बुंदेलखंड के जीवन को आधार बनाकर सामाजिक कुरीतियों की ओर संकेत करते हुए राष्ट्र का पुनर्निर्माण इनके उपन्यासों का मूल लक्ष्य है। इनकी दृष्टि में प्रेम का मानव-जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक प्रकार की साधना है जिसकी सहायता से मनुष्य का ऊर्ध्वमुखी विकास होता है। स्वयं तटस्थ रहकर घटनाओं के घात-प्रतिघात, कथोपकन आदि के द्वारा चरित्र-सृष्टि, बुंदेलखंडी का पुट देते हुए पात्रानुकूल भाषा तथा उपमा प्रधान, धाराप्रवाह और रोचक शैली का प्रयोग इनके लेखन की अन्य विशेषताएँ हैं। समग्रतः ये हिंदी-साहित्य के अत्यंत मूल्यवान हस्ताक्षर हैं।

बलाका *(बं० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) की 1914-16 ई० में लिखित 46 कविताओं का संग्रह है। 1916 ई० में यह प्रकाशित हुआ था। इसकी कविताओं में चित्रित संसार प्रकृति और मानव-सत्य के गंभीर रहस्य और उनके रूप-रस के प्रकृत तत्त्वानुभूति के जगत का—विशेषकर काव्य-दर्शन के जगत् का—चित्रण है। सृष्टि ने कवि-हृदय में जो चिंतन दिया है और उस चिंतन से उसमें जो आलोड़न-मंथन हुआ वह इसकी कविताओं में मिलता है।

इसके कवि की कल्पना, भाव, अनुभूति ने पूर्वनिर्दिष्ट मार्ग छोड़ नवीन पथ ग्रहण किया है। कवि ने समालोचक और दार्शनिक के दृष्टिकोण से संसार को देखा है। मानव-शक्ति के प्रति अटूट विश्वास एवं मानवता में अखंड आस्था ही इसका मूल स्वर है। समस्त विश्व में अविराम गतिवेग की अनुभूति तथा गति के प्रतीक यौवन का जयगान एवं लीला-रहस्य की अनुभूति इन कविताओं में मिलती है। यौवन का अभिनंदन है, शक्ति है, वासना नहीं।

रवींद्र काव्य में इससे नवीन युग का सूत्रपात हुआ है। कवि ने नवीन दृष्टि-भंगिमा से संसार, प्रकृति एवं परमेश्वर को देखा है। इसी का चित्रण इस संग्रह की कविताओं का विषय है।

वली (उर्दू ०ले०) [जन्म—1668 ई०; मृत्यु—1744 ई०]

वली का उर्दू साहित्य में वही स्थान है जो अँग्रेज़ी साहित्य में 'चौसर' का है। उर्दू कविता की नींव रखने वाले वली ही समझे जाते हैं। मीर तकी 'मीर' (दे०) के 'मुक़ात-उल-शोअरा' के अनुसार वली का जन्म औरंगाबाद में हुआ, और बीस वर्ष तक ये वहीं रहे। बाद में अहमदाबाद चले गए जो उस समय विद्या तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला का केंद्र था। इन्होंने शाह वजीहुद्दीन के विद्यालय में कुछ समय तक शिक्षा पाई, फिर स्वदेश लौट कर ये काव्य-रचना में रत हो गए।

इनके काव्य में ग़ज़ल (दे०), मसनवी (दे०), क़सीदा (दे०), रुबाई (दे०) आदि सभी रूप मिलते हैं। कहा जाता है कि वली का एक हिंदी काव्य-ग्रंथ भी है। मौलाना आज़ाद (दे० आज़ाद, अबुलकलाम) तथा 'गुल-ए-रअ्ना' के रचयिता के अनुसार वली के सूफ़ी काव्य में एक रिसाला 'नूर-उल-मअ्र्फ़त' भी सम्मिलित है जो अब उपलब्ध नहीं है।

वली सूफ़ी थे। इन्हें किसी संप्रदाय-विशेष से द्वेष अथवा राग नहीं था। ये साधु स्वभाव थे। इनकी रचनाएँ भाषा की दृष्टि से बहुत रोचक हैं। भाषा सरल तथा सुबोध है। इन्हीं की काव्य-साधना से उत्तरी भारत में कविता की नींव सुदृढ़ हुई। सरलता, स्वाभाविकता तथा संगीतात्मकता इनके काव्य के विशेष गुण हैं। काव्य-शैली में प्रवाह तथा नैसर्गिकता पाई जाती है। यहाँ अलंकारों की भी भरमार नहीं है।

वळ्ळत्तोळ् *(मल० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

पूरा नाम वळ्ळत्तोळ् नारायण मेनन।

केरल प्रांत की वळ्ळुवनाट् नामक तहसील में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने संस्कृत का गहरा ज्ञान अर्जित करके भक्ति-गीतों और स्तुतियों से अपना कवि-जीवन आरंभ किया था। बाल्यकाल की रचनाओं में 'किरातशतकम्', 'व्यासावतारम्', 'ऋतुविलासम्', 'पंचतंत्रम्', 'तपती-संवरणम्', 'बधिर-विलापम्' आदि प्रमुख मानी जाती हैं।

1920 ई० में भीषण सर्दी के प्रकोप से ये एकदम बहरे हो गये। इससे ये अत्यंत निराश हुए। किंतु इन्होंने अपने काव्य-स्वरों को नैराश्य की भावना से आक्रांत नहीं होने दिया। 'बधिर-विलापम्' (दे०) में अपने इस अभिशाप को काव्य की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में ढालकर एक अमर कृति से मलयाळम-साहित्य को गौरवान्वित किया।

'दंडकारण्यम्' उनका एक प्रसिद्ध खंड-काव्य है। महाकाव्यों में 'चित्रयोगम्' का स्थान महत्वपूर्ण है। 'गणपति' 'विकासलतिका','बंधनस्थानाय अनिरुद्धन्' (दे०) 'एक पत्र अथवा रुक्म का पश्चात्ताप', 'शिष्य और पुत्र', 'मग्दलन् मरियम्' (मगदल की मरियम), कोच्चु सीता', 'साहित्य मंजरी' (दे०) (नौ भाग) पिता और पुत्री (अच्छनुम् मकळुम) (दे०) आदि उत्कृष्ट कृतियों का योग देकर इन्होंने मलयाळम-साहित्य और भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति की श्रीवृद्धि की। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'भारत-मंजरी', 'उन्मत्तराघव', 'रामायण (दे०) 'मार्कंडेय पुराण', 'अभिषेक नाटक', 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) आदि का रूपांतर भी कवि ने मलयाळम में किया है। सतत प्रयत्न के फलस्वरूप ये ऋग्वेद (दे० संहिता) का भी सुंदर अनुवाद करने में सफल हुए। इस पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। केरली कथकलि-साहित्य को देश-देशांतर में प्रचलित करने में कवि का प्रयत्न स्तुत्य रहा है। वळ्ळत्तोळ् के समान सर्वतोमुखी प्रतिभा-संपन्न स्रष्टा और भारतमाता के सच्चे पुत्र बहुत कम हुए हैं।

वल्लभ मेवाडो *(गु० ले०)* [समय—1700 ई० के आस-पास]

ये प्रसिद्ध देवी-भक्त थे और अहमदाबाद के निवासी थे। इन्होंने गुजराती-साहित्य को अपनी अनेक 'गरबा' रचनाओं से समृद्ध किया है। इनके लिखे 'गरबे' बड़े लोकप्रिय हुए। इनके गरबों में 'आनंद नो गरबो', 'महाकाली नो गरबो', 'आरासुर नो गरबो', 'शणगार नो गरबो', 'कलिकाल नो गरबो', 'कजोडां नो गरबो', 'व्रज वियोग नो गरबो', 'धनुषधारी नो गरबो', 'सत्यभामा ना रुसणा नो गरबो' आदि उल्लेखनीय हैं। ('गरबा' शब्द 'गर्भदीप' से व्युत्पन्न माना जाता है।) यह गुजरात का एक विशेष लोक-नृत्य है, जिसमें बीच में घड़े के अंदर दीप रखकर चारों तरफ घूम-घूम कर नृत्य व गान किया जाता है।

इन गरबों के विषय धार्मिक, पौराणिक व सामाजिक हुआ करते हैं। 'आनंद नो गरबो' में बहुचराजी (शक्ति का एक रूप) की स्तुति की गई है। 'आरासुर नो गरबो' में अंबाजी (आबू पहाड़ पर जिनका स्थान है) की स्तुति की गई है। 'महाकाली नो गरबो' में पावागढ़ के राजपूत राजा के दुर्व्यवहार की कथा अंकित है। 'कलिकाल नो गरबो' में कलियुग के प्रभाव का वर्णन है। 'कजोडां नो गरबो' में अनमेल विवाह की समस्या निरूपित है। 'शणगार नो गरबो' उनकी श्रेष्ठ रचना है जिसमें माता जी (शक्ति) के सर्वांग की शोभा, आभूषण, वस्त्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिधान आदि का विस्तृत व सूक्ष्म निरूपण है।

गुजराती गरबा साहित्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। एक देवीभक्त व समाज-सुधारक के रूप में भी ये अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

वल्लभरायडु, विनुकोंड *(ते० ले०)* [समय—अनुमानतः 1380-1430 ई०]

कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०) के मित्र होने के नाते और 'क्रीडाभिराममु' (दे०) नामक प्रसिद्ध काव्य के प्रणेता माने जाने के कारण विनुकोंड वल्लभरायडु का नाम तेलुगु-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। कुछ लोगों का विचार है कि 'क्रीडाभिराममु' की रचना श्रीनाथुडु ने ही करके उसे अपने मित्र वल्लभरायडु के नाम से प्रसिद्ध कर दिया था। काव्य की रचना-शैली से भी इसी बात की पुष्टि हो जाती है। फिर भी वल्लभ-रायडु का इस काव्य से संबंध बताया जाता है। हो सकता है कि इस काव्य की रचना में वल्लभरायडु को श्रीनाथुडु का सहयोग प्रचुर मात्रा में मिल गया हो। ये विनुकोंड के निवासी बताये जाते हैं और चौदहवीं शती के अंतिम चरण या पंद्रहवीं शती के आरंभ में विद्यमान रहे होंगे।

वल्लभाख्यान *(गु० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती]

कवि गोपालदास-रचित 'वल्लभाख्यान' वल्लभाचार्य की पद्य-जीवनी है। इसमें विट्ठलनाथ जी का चरित्र भी गाया गया है। 'भक्ति-पीयूष' इनकी अन्य रचना है। वल्लभाख्यान में गेय राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। मुख्य राग हैं—केदारो, रामकली, धनाश्री, बिलावल, भूप, कल्याण, आदि।

ये कृष्णोपासक कवि थे और इनका 'वल्लभा-ख्यान' पुष्टिमार्गियों में समादृत रचना है।

वल्लभाचार्य *(सं० ले०)* [समय—1481-1533 ई०]

वल्लभाचार्य का जन्म दक्षिण भारत के कमकर खंल्ह ग्राम के एक तेलुगु ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट तथा माता का नाम जल्लमगरु था। दक्षिण में विद्यानगर के राजा के दरबार में सगुण ब्रह्म-संबंधी विवाद सुनकर वल्लभाचार्य भागवत (दे०) पुराण और शालग्राम को लेकर वहाँ गए तथा सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन करके इन्होंने विजय प्राप्त की। इन्होंने बनारस के दवन्नभट्ट की पुत्री से विवाह किया। किंतु कुछ दिनों बाद ये संन्यासी हो गए। 1533 ई० में ये परलोकवासी हो गए थे। कहते हैं, वल्लभाचार्य के 84 प्रमुख शिष्य थे।

'अणुभाष्य', 'भागवतपुराण' (द० भागवत) की टीका 'सुबोधिनी', 'तत्त्वदीप' की 'प्रकाश टीका' तथा 'पुष्टिप्रवाह-मर्यादाभेद' वल्लभाचार्य की प्रमुख कृतियाँ हैं।

वल्लभाचार्य का दार्शनिक सिद्धात 'शुद्धाद्वैत-वाद' है। 'शुद्धाद्वैतवाद' के अनुसार ब्रह्मगाथा से अलिप्त है। इसीलिए इस सिद्धांत का नाम 'शुद्धाद्वैतवाद' पड़ा है। वल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म निर्गुण तथा सगुण दोनों है। शुद्ध अद्वैत तत्त्व के रूप में ब्रह्म निर्गुण है और वही अनंत ऐश्वर्य-गुणों ये युक्त होने के कारण सगुण है। निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन आचार्य ने अहिकुंडल दृष्टांत के आधार पर किया है। वल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म एवं जगत् में भेद है। जीव अणु है तथा ईश्वर का अंश है। वैसे, जीवों के शुद्ध, संसारी तथा मुक्त ये तीन भेद हैं। वल्लभाचार्य भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हैं। इनका भक्तिमार्ग 'पुष्टिमार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। पुष्टि का अर्थ है—भगवान् का अनुग्रह (पोषणं तदनुग्रहः, श्रीमद्भागवत 2।110) इस प्रकार भगवद्नुग्रह ही भक्ति का प्रधान कारण है।

ब्रह्म एवं जगत् में अभेद मानकर इस वष्णव आचार्य ने जगत् की सत्यता का प्रतिपादन किया है। वल्लभाचार्य का दर्शन जीव, जगत् एवं ब्रह्म की दृष्टि से एक समवन्यात्मक दर्शन है।

वळ्ळलार *(त० ले०)* [जन्म—1823 ई०; मृत्यु—1884 ई०]

तमिल समाज में वळ्ळलार नाम से विख्यात रामलिंगस्वामी एक महान संत और कवि थे। इनका जन्म दक्षिणी आर्काट में स्थित मरुदूर में हुआ था। अल्पायु में ही इन्होंने विविध शास्त्रों का अध्ययन कर तत्त्वज्ञान का उपदेश देना आरंभ कर दिया था। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं—'तिरुअरुट्पा, शिवनेश वेण्बा', 'महादेवमालै', 'इंगिदमालै' आदि। ये अरुळ (दया) और अहिंसा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का सर्वोपरि धर्म मानते थे। इनकी दयालुता को देखते हुए जनता ने इन्हें वळ्ळलार (दयालु) कहना आरंभ कर दिया था। वळ्ळलार प्रभु को अरुट्पेरुंजोति—तनिप्पेंरुकरुणै अर्थात् विश्वप्रेम की महान ज्योति, विश्वकरुणा का परम रूप कहते थे। इन्होंने शिव और सुब्रह्मण्य के भक्त के रूप में जीवनारंभ किया था। कालांतर में इन मतों को त्याग कर इन्होंने 'समरस-शुद्ध-सन्मार्गम्' नामक नवीन पंथ का प्रवर्त्तन किया। इसमें इन्होंने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना पर बल दिया है। 'मनुमुरैकंड वाशगम्' और 'जीवकारुण्य ओळुक्कम्' इनकी प्रसिद्ध गद्य-कृतियाँ हैं। प्रथम में 'पेरिय पुराणम्' (दे०) के एक प्रसंग के आधार पर चोल राजा मनुनीति का जीवन-वृत्त दिया गया है। द्वितीय में अहिंसा और समरस सन्मार्गनम् के सिद्धांतों का विवेचन है। ये दोनों कृतियाँ संक्षिप्तता और शैली की सरलता एवं स्पष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं। वळ्ळलार के भक्तिमय पद—विशेषकर तिरु-अरुट्पा में संगृहीत पद—तमिल प्रांत में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने पदों में सरस-सरल शैली में अपने भावों की निश्चल अभिव्यक्ति की है। वळ्ळलार प्रथम तमिल कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्य-कृतियों में ऐसी सरल शैली का प्रयोग किया जो कि लोगों की बोलचाल की भाषा के अति निकट थी। भाषा की सरलता-विषयक इस क्रांति का चरम विकास भारती (दे०) के गीतों में दीख पड़ता है। रामलिंगस्वामी को तमिल के संत कवियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

वल्लिक्कण्णन *(त० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

मूल नाम रा० शु० कृष्णस्वामी। तमिलनाडु के तिरुनेलवेली ज़िले के राजवल्लिपुरम नामक स्थान में जन्म। विविध रचनाएँ—'मुत्तुक्कुळिप्पु' (निबंध); 'वसंदम मलंदेदु', 'शकुंतला', 'विडि वेळ्ळि', 'अन्नक्किळि' (उपन्यास); 'अणिशिगम' (कहानी) आदि। इन्होंने टालस्टाय तथा गोर्की की कहानियों एवं निबंधों को तमिल में अनूदित किया है तथा अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक रहे हैं।

वल्लिक्कण्णन तमिल के उन गिने-चुने साहित्यकारों में हैं जिन्होंने प्रेम-संबंधी एवं भावनात्मक विषयों को अपनी रचनाओं का आधार नहीं बनाया। इनकी रचनाओं में एक प्रकार की रुक्षता एवं नीरसता है। उनमें उत्तेजक विचार एवं गंभीरता पर्याप्त मात्रा में है। कहानी एवं उपन्यासों में विषयवस्तु के प्रतिपादन में तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में निजी स्वतंत्र शैली का प्रयोग किया है। इनके चरित्र प्रायः दार्शनिक के रूप में दीख पड़ते हैं। चरित्रों एवं घटनाओं को दार्शनिक रूप दिये जाने के कारण इनके उपन्यास गद्यवत् नीरस लगते हैं। इसे इनकी रचना का दोष न कहकर इनका वैयक्तिक गुण कहना अधिक उपयुक्त होगा। वल्लिक्कण्णन अपनी चरित्र-प्रधान कहानियों के लिए तमिल-साहित्य में विख्यात हैं।

वळ्ळियप्पा, अल *(त० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

तमिलनाडु के तिरुच्चिरापळ्ळि के रायवरम नामक स्थान में जन्म। तमिल के बाल-साहित्यकारों में अग्रगण्य। 1950 ई० में बाल-साहित्यकारों की एक सभा की स्थापना की। तमिल में बाल-साहित्य का प्रकाशन करने वाली नाना संस्थाओं से संबद्ध। पूंच्चोलै नामक बाल पत्रिका का संपादन भी किया है।

वळ्ळियप्पा मूलतः कवि हैं। इनकी काव्य-कृतियाँ तमिलनाडु सरकार और केंद्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई हैं। इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं—'मलरूम उळ्ळम' (2 भाग), 'पाट्टिले गांधी कदै', 'कदैप्पाडलहळ्' (कथाकाव्य—2 भाग), 'वेडिक्कै पाडलहळ्' (हास्य-कविताएँ), 'चिन्नं शिरु पाडलहळ्', 'पाप्पावुक्कुप्पाट्टु' आदि। इन्होंने ईशाब के कथा-काव्यों का तमिल में अनुवाद किया है। वळ्ळियप्पा ने भिन्न-भिन्न आयु वाले बच्चों की रुचि एवं बुद्धि का ध्यान रखते हुए कविताओं की रचना की है। इन्होंने कुछ कहानियों एवं उपन्यासों की भी रचना की है, जैसे—'मणिक्कुमणि' (उपन्यास); 'एंगळ् पाट्टि', 'वेट्टै नाय', 'निमिष कदैहळ्' (कहानियाँ), 'कदै शोन्नवर कदै' (3 भाग), 'पेरियोर वालविले' (2 भाग), पिळ्ळै परुवत्तिल', 'चिन्नं शिरुवयदिल' आदि इनके प्रसिद्ध निबंध-संग्रह हैं जिनमें इन्होंने महापुरुषों के जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है। तमिल साहित्य-जगत् में वळ्ळियप्पा 'कुलंदैक्कवित्जर' (बाल-कवि) के रूप में विख्यात हैं। इनकी कविताएँ बाल-जगत में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

वसंत, तीर्थ बेढ़ोमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म-स्थान ख़ैरपुर मीरस (सिंध) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक जीवन की अनुभूतियाँ, विभिन्न देशों का भ्रमण और भिन्न-भिन्न भाषाओं के अध्ययन इनकी ज्ञान-प्राप्ति के मुख्य साधन रहे हैं। इनकी ज्ञान-गरिमा और विचारों की गंभीरता का प्रतिबिंब इनकी रचनाओं में स्पष्टतः दिखाई देता है। आधुनिक सिंधी के गद्य-लेखकों में इनका प्रमुख स्थान है। इन्होंने गद्य की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की हैं। परंतु इन्हें विशेष ख्याति सफल निबंधकार और आलोचक के रूप में ही प्राप्त हुई है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'चिणिगूं' (निबंध); 'जवाहर जीवनी' (जीवन-चरित्र), 'कँवर' (जीवन-चरित्र) (दे०), 'साहित्य सार', 'वसंत वर्खा', 'कल्चर प्रगति', 'जीवन जोति' (सभी निबंध हैं)। 'कँवर' पुस्तक में इन्होंने सिंध के प्रसिद्ध भक्त संत कँवर का जीवन-चरित्र बहुत सुंदर ढंग से लिखा है, जिस पर इन्हें साहित्य अकादमी से 1959 ई० में पाँच हज़ार रुपयों का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। सिंधी-गद्य के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

वसंतराव वेंकटरावु *(ते० ले०)*

इन्होंने मुख्य रूप से आधुनिक विज्ञान-संबंधी रचनाएँ की हैं। आंध्र में आधुनिक विज्ञान को सुबोध तथा लोकप्रिय बनाने के लिए इन्होंने सरल तथा रोचक पद्धति का अनुसरण करके रचनाएँ की हैं। विज्ञान-संबंधी रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने कई कविताएँ भी लिखी हैं।

वसंतविलास *(गु० कृ०)*

यह प्राचीन गुजराती भाषा का एक सुंदर ऋतु-काव्य और शृंगारकाव्य है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इसमें मध्यकालीन 'फागुकाव्य' के सभी लक्षण विद्यमान हैं। केवल जैन फागुओं के अंत का 'उपशय' इसमें नहीं है। इस जैनेतर फागु-काव्य की यह विशेषता मानी जाती है कि इसके नायक-नायिका देवी-देवता नहीं हैं, लौकिक जन हैं, जिनका नामोल्लेख कवि ने नहीं किया है। उनके प्रसन्न, मुक्त, वसंतविहार का चित्रण कवि ने अलंकृत भाषा में उल्लासपूर्वक किया है। आम्र-मंजरी, मलय-समीर, अलिगुंजन, कोकिल-गान, हरित लता-कुंज, पुष्पावली आदि के साथ वसंत ऋतु की श्री और समृद्धि का जो हृदयहारी वर्णन 'वसंतविलास' में पाया जाता है वह वास्तव में अद्‌भुत है। इसी प्रकृति-वर्णन के कारण यह ग्रंथ 'ऋतु-काव्य' कहा जाता है। वसंतागमन से रसिकों और प्रणयाकांक्षिणी ललनाओं के मनःप्रदेश पर जो मादकता छा जाती है, संयोग-वियोग के जो शृंगारी भाव उभरते-डूबते हैं और मदनदेव की लीलाएँ कामाहतों को जो पीड़ा देती हैं, उस सबका आलंकारिक वर्णन इस कृति में हुआ है। शृंगार के सांगोपांग निरूपण के कारण 'वसंतविलास' उत्तम शृंगार-प्रधान फागुकाव्य है।

इसकी भाषा मधुर और भावप्रवण है। पदावली कोमल-कांत है। 'रंग सागर नेमिफागु' की भाँति इस फागु में संस्कृत और प्राकृत श्लोकों का भी प्रयोग हुआ है। 'वसंतविलास' का हृदयराग, पदलालित्य, सब कुछ मनोहर है।

वसंतसेना *(सं० पा०)*

'वसंतसेना' मूलतः भास (दे०) की कृति 'चारुदत्त' (दे०) की प्रधान नायिका है। 'मृच्छकटिक' (दे०) में वह और भी निखर कर आई है।

वसंतसेना उज्जयिनी की एक नवयौवना गणिका है जो अपने व्यवसाय के प्रतिकूल एक ऐसे ब्राह्मण युवा से प्रेम करती है जो पहले संपन्न था पर अब धनहीन हो चुका है, परंतु फिर भी मानवीय गुणों से ओतप्रोत है। इस कारण वह अनेक राजकीय पुरुषों के प्रणय-प्रस्ताव को ठुकरा देती है। परिणामतः उसे राजकीय श्याल शकार (दे०) के कोप का भाजन बनना पड़ता है। लेकिन अपने प्रणय के प्रति उसमें एक विलक्षण निष्ठा है जो उसका मार्ग-दर्शन करती है और अंत में वह उसे पाकर ही रहती है।

वसंतसेना स्त्री-सुलभ सभी क्षुद्रताओं से बहुत ऊपर उठी हुई महिला है जिसे अपने कृत्याकृत्य के सत् या असत् होने का सम्यक् विवेक है। वह चारुदत्त की परवशताओं से भली भाँति परिचित है; इसीलिए यथावसर वह अभिसार भी करती है। उसे चारुदत्त के पुत्र से अत्यधिक प्यार तथा उसकी पत्नी से बेहद सहानुभूति है। वह अपनी सीमाओं को भी पहचानती है तथा चारुदत्त के जीवन में ही केवल आने को आतुर है; घर में दखल न देना उचित नहीं समझती। पर विधि की विडंबना क्या किसी के कूतने की बात है। वह चारुदत्त से मिलने एक उद्यान में जाती हुई सवारी के परिवर्तन के कारण उसी दुष्ट शकार के हाथ लग जाती है जो इसको पाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कुछ करने को तैयार है पर जिससे वह घृणा करती है। उसके लिए प्राणों से हाथ धोने की नौबत आ जाती है। पर एक बौद्ध-भिक्षु के द्वारा प्राण-रक्षा होने पर जब वह अपने प्रियतम चारुदत्त से मिलने के लिए उतावली होकर चलती है तो सुनती है कि उसे तो वसंतसेना की हत्या करने के अभियोग में फाँसी की सज़ा हो गई है और वह वध्य-शिला पर भी पहुँच चुका है। जिस किसी प्रकार रोते-रोते वहाँ पहुँचती है तो पाती है कि जिस सर्वलिक को उसने अपनी दासी मदनिका को उससे प्रेम करने के कारण दे दिया था उसी के मित्र गषेपालक ने वर्तमान राजा का निग्रह कर शासन अपने हाथ में ले लिया है और चारुदत्त को छोड़कर वह शकार पकड़ लिया गया है जिसने उसकी हत्या का प्रयास किया था। अंत में सभी उसे स्वीकार कर लेते हैं और वह चारुदत्त की द्वितीय पत्नी हो जाती है।

वसंतसेना एक उच्च कोटि की प्रणयिनी नायिका है जो अपने प्रणय पर निष्ठापूर्वक सर्वस्व न्यौछावर कर देती है।

वसुंधरा नी बीजी वातो *(गु० ले०)* [प्रकाशन-वर्ष—1940]

यह गुलाबदास ब्रोकर का कहानी-संग्रह है। गुजराती में इन कहानियों के द्वारा प्रथम बार 'नीलीनु भूत' जैसी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ सामने आईं। विषय और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कहानी-साहित्य को इन कहानियों के द्वारा एक नया मोड़ दिया गया है। इन कहानियों के द्वारा गुजराती कहानीकार के रूप में ब्रोकर को निश्चित प्रतिष्ठा मिली।

वसुंधरा, मल्लादि *(तें० ले०)* [जन्म—1930 ई० के लगभग]

ये विजयवाड़ा की रहने वाली हैं और ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रसिद्ध लेखिका हैं। 'तंजावूरपतन' तथा 'सप्तपर्णी' इनके प्रसिद्ध पुरस्कृत उपन्यास हैं। 'तंजावूर-पतन' दक्षिण की तंजौर रियासत के राजा विजयराघव-नायक के शासन-काल से संबद्ध है। दूसरा उपन्यास 'सप्तपर्णी' ओरुगल्लु के काकतीय नरेशों के शासन-काल से संबद्ध है। इनका 'रामप्पगुडि' नामक उपन्यास वरंगल ज़िले के प्रसिद्ध रामप्प मंदिर से संबद्ध है जिसमें उक्त मंदिर के उच्चकोटि के शिल्प-सौंदर्य का रोचक आलेख है। तेलुगु में ऐतिहासिक उपन्यास-लेखिकाओं में वसुंधरा का स्थान सर्वोपरि है।

वसुचरित्रमुः *(तें० कृ०)*

संभवतः सोलहवीं शती की यह रचना तेलुगु के पाँच सर्वोत्तम प्रबंधकाव्यों में से एक है। इसके प्रणेता रामराजभूषणुडु (दे०) कवि थे। यह छह आश्वासों में निबद्ध अत्यंत प्रौढ़ प्रबंध-काव्य है। काव्य के आरंभिक छंदों से स्पष्ट है कि रामराजभूषणुडु न केवल कुशल काव्यशिल्पि थे अपितु 'संगीतकला-रहस्य-निधि' भी थे। इनके इष्ट देव श्रीरामचंद्र थे और ये अपनी काव्य-शक्ति का सारा श्रेय हनुमानजी को समर्पित करते थे।

'वसुचरित्रमु' की मूलकथा 'महाभारत' (दे०) में मिलती है। चेदि देश पर राजा बसु, राज करता था। एक बार विरक्त होकर वह तप करने लगा। उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर इंद्र ने राजा को विमान आदि पुरस्कार में दिये जिस पर बैठकर वह उपरिलोकों का परिभ्रमण किया करता था। अतः उसका नाम उपरिचरवसु पड़ा। उसके राज्य में शुक्तिमती नामक नदी बहती थी। उसके प्रवाह-मार्ग में कोलाहल नामक पर्वत ने गतिरोध उत्पन्न किया। राजा ने उस पहाड़ को अपनी चरणांगुलि के नख से हटाया। शुक्तिमती ने प्रत्युपकार की भावना से राजा को वसुपद नामक पुत्र तथा गिरिका नामक कन्या भेंट में दी। राजा ने गिरिका से विवाह किया तथा वसुपद को अपना सेनानी बनाया। जब राजा दूसरी बार शिकार पर गया तो गिरिका-विरह में उसे रेतस्खलन हुआ था। उस रेत को उसने एक श्येन के द्वारा गिरिका के पास भेजा। मार्ग में एक दूसरा श्येन उससे लड़ा। तब रेत की संपुटि नदी में गिरी। उसे एक मछली ने निगल लिया। परिणाम में मत्स्यगंधा का जन्म हुआ जिसने कालांतर में महर्षि व्यास को जन्म दिया।

इस कथा में से राम राजभूषणुडु ने केवल गिरिका-मंगल तक की कथा ली और लगभग 800 छंदों में चंपूशैली में अपने प्रबंध का निर्माण किया।

रामराजभूषणुडु की काव्यशैली निरुपम है। यदि प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास के सम्यक् परिपाक का स्वाद लेना हो तो तेलुगु का 'वसुचरित्रमु' पढ़ना चाहिए। तेलुगु साहित्य के इतिहास में रायलु-युग स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग के अंत में प्रज्वलित रत्नदीपिका है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वसुचरित्रमु' काव्य 'वसुचरित्रमु' में संगीतकला के अनेक रहस्य काव्यात्मक ढंग से निक्षिप्त हैं।

कालांतर में इसकी देखादेखी अनेक काव्यों का निर्माण हुआ और इन्हें 'पिल्ल वसुचरित्रमु' नाम दिया गया। 'पिल्ल वसुचरित्रमु' का अर्थ है 'मिनि-वसुचरित्र'।

वसुदेव हिंडी (प्रा० कृ०)

यह महाराष्ट्री प्राकृत का गद्य-ग्रंथ है जिसमें बीच-बीच में गद्यों का समावेश है। इसमें वसुदेव के हिंडन (भ्रमण) के प्रसंग में वृष्णिवंश और कौरव-पांडवों की कथा के साथ अनेक अवांतर कथाएँ कही गई हैं। 100 लंभकों में विभक्त इस विशाल ग्रंथ के दो भाग हैं। प्रथम खंड की रचना संघदास गणि ने ईसा की पाँचवीं शती में की थी। इसमें वसुदेव-भ्रमण आत्मकथा-रूप है। दूसरे खंड की रचना धर्मसेन गणि ने की थी। इसमें नरवाहनदत्त की शृंगार-प्रधान कथा है। कथा-भाग के साथ जैन धर्म-तत्त्व यथेष्ट मात्रा में इसमें आ गये हैं।

वसुधा (गु० कृ०)

गुजरात के अर्वाचीन कवियों में सुंदरम् (दे०) (त्रिभुवनदास लुहार) का स्थान शीर्षस्थ कवियों में हैं। 'काव्य मंगला' (1933) के पश्चात् सुंदरम् का यह कविता-संग्रह 'वसुधा' 1949 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की रचना-शक्ति की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इसकी प्रणय-कविताएँ ऊँचे स्तर की और गंभीर हैं। संयोग और वियोग-शृंगार के जो मधुर चित्र चित्रित हैं उनमें प्रेम की उत्कटता, हृदय की अकुलाहट, विरह और मिलन की अनुभूतियों की तीव्रता पाई जाती है। 'ते रम्य राये', 'कोकिल अने डाळी', 'जावा पूर्वे', 'सांजने समे', 'सळंग सळिया परे' इत्यादि रचनाएँ इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। 'सळंग सळिया परे' में तो उत्तम कविता के सभी गुण विद्यमान हैं। इसमें सुंदरम् का कला-प्रकर्ष दृष्टिगोचर होता है। 'वसुधा' के प्रणय-काव्यों में संयम, स्वस्थता, उदात्तता आदि गुण पाये जाते हैं। शैली-शिल्प की दृष्टि से भी वे उत्कृष्ट हैं।

इस संकलन का दूसरा भाग यथार्थवादी कविताओं का है। 'फूटपाथ अने तळाइ', 'पूलना थांभलाओ', 'ईटांळा', 'धनयुगनो स्थितप्रज्ञ', '13-7नी लोकल' आदि कविताएँ मानव-जीवन की विवशता और विरूपता से संबद्ध हैं। इनमें दोनों और दलितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक अन्याय के प्रति आक्रोश और समता-संस्थापन की आकांक्षा प्रकट हुई है। '13-7नी लोकल' में वर्ग-भेद का वेदनाजन्य निरूपण विशेष मर्मस्पर्शी है। 'द्रौपदी' और 'कर्ण' महाभारत के सुप्रसिद्ध उपाख्यानों पर आधृत कविताएँ हैं। इनमें कवि ने पुनरुत्थान की भावना और आधुनिक जीवन को आदर्शोन्मुख बनाने की कल्पना शब्दबद्ध की है। 'वसुधा' की कुछ कविताएँ भगवद्भक्ति से भी संबंधित हैं। सार-रूप में यह कहा जा सकता है कि 'वसुधा' कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से सफल कृति है।

वसुबंधु (सं० ले०) [स्थिति-काल—400 ई०]

वसुबंधु असंग के छोटे भाई थे। इन्होंने अयोध्या के किसी संघाराम में 'महायान' (दे०) धर्म स्कीकार किया था। वसुबंधु का प्रधान ग्रंथ वैभाषिक-नय पर है, किंतु 'महायान'-धर्म स्वीकार करने के पश्चात् इन्होंने विज्ञानवाद पर कई ग्रंथ लिखे थे। वसुबंधु के प्रमुख ग्रंथों में 'विंशतिका' तथा 'त्रिंशिका' है। 'विंशतिका' पर वसुबंधु ने ही भाष्य भी लिखा है। 'विंशतिका' को सिल्वाँ लेवी ने 1925 ई० में प्रकाशित किया था। पुसें ने 1912 ई० में फ्रेंच भाषा में इसका अनुवाद प्रकाशित किया था।

विज्ञानवादी के रूप में वसुबंधु बाह्यार्थ का अपलाप करते हैं। समस्त बाह्य अर्थों का मूल वसुबंधु की दृष्टि में विज्ञप्ति मात्र है। वसुबंधु का विचार है कि असद् रूप बाह्यार्थों का दर्शन उसी प्रकार संभव है जिस प्रकार कि तिमिर का रोगी असत् कल्प केशचंद्रादि का दर्शन करता है। अतः बाह्य अर्थों की सत्ता अवास्तविक है। अपने दृष्टिकोण के समर्थन में वसुबंधु का तर्क है कि अर्थ के अभाव में भी स्वाप्निक वस्तुओं के विषय में देशादि नियम-सिद्ध है। स्वप्न में अर्थ के बिना ही किसी देश-विशेष में आराम, स्त्री-पुरुषादि देखे जाते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि अर्थ के अभाव में भी देश-काल का नियम चरितार्थ होता है। आत्मा के संबंध में वसुबंधु का कथन है कि आत्मा का अस्तित्व नहीं है। आत्मा तो केवल सद्हेतुक धर्म है। वसुबंधु नागार्जुन (दे०) के धर्म नैरात्म्यवाद से विज्ञानवाद का प्रतिपादन करते हैं। वसुबंधु ने विज्ञानवाद का प्रतिपादन बड़े मौलिक एवं वैज्ञानिक ढंग से किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु (कथावस्तु) *(पारि०)*

'वस्तु' भारतीय नाट्यशास्त्र में निरूपित रूपक (दे०) के तीन अंतर्तत्वों में से प्रथम है। अन्य दो तत्त्व हैं नेता (दे०) और रस (दे०) : 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः'। 'वस्तु' वस्तुतः नाटक का मेरुदंड है। प्रकृत्या यह तीन प्रकार की—प्रख्यात, उत्पाद्य (कल्पित) और मिश्र तथा संरचनात्मक दृष्टि से आधिकारिक और प्रासंगिक दो प्रकार की होती है। आचार्यों ने नाटक में फल को मूल उद्दिष्ट मानकर उसके आधार पर 'वस्तु' की अंतःरचना के कई अंतर्वर्ती बिंदु स्थिर किए हैं। फलप्राप्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले कार्यों की शृंखला को पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया गया है : आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम (दे०) कार्यावस्थाएँ। फल की सिद्धि के हेतुओं को पाँच अर्थप्रकृतियों में विभाजित किया गया है : बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य (दे० अर्थप्रकृतियाँ)। नाटक के कथाविकास की आवश्यकताओं के अनुरूप इन कार्यावस्थाओं और अर्थप्रकृतियों के योजक तत्त्वों को 'संधि' का अभिधान दिया गया है। ये संधियाँ इस प्रकार हैं : मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण (दे० नाट्य-संधियाँ)। ये क्रमशः आरंभ और बीज, प्रयत्न और बिंदु, प्राप्त्याशा और पताका-नियताप्ति और प्रकरी तथा फलागम और कार्य को परस्पर संपृक्त करती हैं।

रूपक की कथावस्तु को उसके प्रकारों के अनुरूप विभिन्न अंकों में विभाजित किया गया है। दो प्रमुख रूपकों 'नाटक' और 'प्रकरण' में पाँच से दस तक अंक होते हैं। 'भाण' (दे०), 'प्रहसन' (दे०), 'बीथी', 'अंक' और 'व्यायोग' रूपकों में एक ही अंक होता है'। 'समवकार' तीन अंकों का रूपक है। 'डिम' और 'ईहामृग' में चार अंक होते हैं। उपरूपकों के दस भेदों में एकमात्र उल्लेखनीय 'नाटिका' (दे०) में चार अंक होते हैं। कथा-स्रोतों की प्रकृति की दृष्टि से प्रख्यात कथानकों पर आधृत रूपक हैं—'नाटक', 'डिम', 'समवकार', 'व्यायोग' और 'अंक'। 'प्रकरण', 'भाण', 'प्रहसन' और 'वीथी' उत्पाद्य कथानकों पर रचित होते हैं। 'ईहामृग' रूपक और 'नाटिका' उपरूपक मिश्र कथानकों की नाट्य रचनाएँ हैं।

वस्तु-विषयक उपर्युक्त विवेचन अतिशास्त्रीय एवं अतियांत्रिक होने के कारण केवल इतिहास की वस्तु होकर रह गया है। आधुनिक नाटककारों की सर्जनात्मक प्रतिभा युग और विषय के अनुरूप नये-से-नये वस्तु-तंत्र का स्वतंत्र आविष्कार करने लगी है।

वस्तुक *(क० पारि०)*

कन्नड के आचार्यों ने काव्य के भेदों का उल्लेख करते हुए उसके 'वस्तुक' और 'वर्णक' भेद बताये हैं। यद्यपि ये दोनों शब्द संस्कृत के हैं तथापि संस्कृत के किसी आचार्य ने इन भेदों का उल्लेख नहीं किया है। साधारणतया प्रचलित परिभाषा के अनुसार 'वस्तुक' को 'मार्ग-काव्य' कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में संस्कृत का गद्य-पद्यात्मक चंपू शैली में लिखित काव्य 'वस्तुक' कहलाता है। प्राचीन कवियों ने जिन विशेष लक्षणों के अनुसार काव्य-रचना की थी, उनको मानते हुए लिखे गये काव्य 'वस्तुक'-काव्य का अभिधान पाते हैं।

वही जती पाछल रथघोषा *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

पिछले दशक के प्रतिष्ठित गुजराती कवि लाभशंकर (दे० ठाकर, लाभशंकर) की यह कृति उनकी परंपरागत तथा आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति का अच्छा दिग्दर्शन कराती है।

संग्रह की 'चांदरणु', 'रवि', 'स्मृति', 'चक्रपथ' 'लीलो-लीलो डूंगर' प्रभृति सुंदर परंपराश्रित रचनाएँ हैं। शैशव के अनुभव का माधुर्य, कोमल-मधुर शब्दावली, छंदोसिद्धि तथा प्रतीकात्मकता इनकी विशेषताएँ हैं।

कृति के उत्तरार्ध में संगृहीत रचनाएँ लाभशंकर को आधुनिक कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। 'तडको-1' तथा 'तडको-2' तथा 'जन्माष्टमी' प्रभृति कविताएँ अनुभूति तथा पदावली दोनों दृष्टियों से परंपरा से दूर हटने का एक सचेष्ट प्रयत्न है।

वह्नि रंहरु *(क० पा०)*

महाकवि कुवेंपु (दे०) की महाकाव्य कृति 'श्री रामायणदर्शनम्' (दे०) के गौण चरित्रों में 'वह्नि' तथा 'रहं' नामक दो वानरवीर अविस्मरणीय हैं। वे रणव्रती हैं। राम वानर-सेना के साथ सागर तीर पर आये हैं जहाँ वे सेनानी नील के साथ मंत्रणा कर रहे हैं। वहाँ दो सामान्य सैनिक आते और कहते हैं कि नील उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलाते हैं। दोनों आकर राम तथा अपने सेनानी को नमस्कार करते हैं। राम ने पूछा कि किसकी सेना के वीर हैं। दोनों में एक नाटा था, दूसरा लंबा। राम का प्रश्न सुनकर नाटे ने लंबे का चेहरा देखा। लंबे ने यों उत्तर दिया, "देव, हम कपिकुलोत्तम दधिमुख के धीर दल के हैं।" राम ने पूछा: "तुम्हारा नाम ?" "यह मेरा दोस्त रंह है, मुझे वह्नि कहते हैं।" राम ने पूछा कि वे किस युद्ध में प्रवीण हैं ? तब वह्नि कहता है, "यह मेरा मित्र मल्लयुद्ध में प्रवीण है। परसों यहाँ आते समय एक जंगली पशु के दोनों सींगों को इसने ऐसा उखाड़ा कि उसका कुंभस्थल ही फट गया।" इस तरह वह दूसरों के पराक्रम का वर्णन करने में पटु है। किंतु अपना वर्णन करने में लज्जित होता है। राम पूछते हैं कि उसका पराक्रम कैसा है। किंतु आजानुबाहु वह्नि अपने पराक्रम-वर्णन में हिच-किचाता है। रंह सरलहृदय है, रूक्षजिह्व है। किंतु उसका उत्साह अदम्य है; वह कहता है—'प्रभु, गगन गमन में इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, यह महामायावी है, इच्छा रूपधारी है। यदि यह चट्टानों को उठाकर फेंके तो कोई भी दुर्ग चूर-चूर हो जायेगा। खड्ग-कला में यह निस्सीम है। गदा-युद्ध में यह भैरव भयंकर है।"

तब वह्नि से नहीं रहा गया। उसने रंह को रोककर कहा, "राजेंद्र, इस उत्साही की बातों पर विश्वास न करो।" "किंतु तुमको देखने पर लगता है कि उस ने जो कुछ कहा सो थोड़ा ही है, "राम ने कहा तब वह्नि सिर झुकाकर कहता है कि "दधिमुख की सेना में वह सच-मुच अलग है। ऐसे महान् योद्धाओं को पाने वाला दधिमुख सचमुच धन्य है परस्पर स्नेह में ही नहीं, शौर्य में भी ये दोनों महान हैं।" राम पूछते हैं कि क्या वह्नि को सह-धर्मिणी का संग प्राप्त है। वह कहता है कि वह तब था जब वह गाँव में था। तब राम दुःखी होकर कहते हैं कि उनके कारण उसे वियोग-दुःख सहना पड़ा। वे पूछते हैं कि उसका कोई बच्चा भी है। "एक है किंतु वह छोटा है। इसलिए आपकी सेवा करने के सौभाग्य से वंचित रह गया।" तब राम ने कहा कि रण में मरण ध्रुव है। तब वह्नि ने कहा कि जिस धर्म के पीछे वे मृत्यु का भी स्वागत कर रहे हैं वही धर्म लोक की रक्षा करक्षा है। हम अपनी सेना सहित सुरक्षित लौटेंगे, पर यदि विधि की इच्छा दूसरी है तो मरण ही वरेण्य है। रावण ने सिर्फ़ एक सीता का हरण नहीं किया है, वरन् सतीत्व का ही अपहरण किया है। जब तक पुरुष जाति रहती है तब तक स्त्रीत्व की रक्षा करती है। रघुवर राम इन महान वीरों की वीरता, संस्कृति, सरलता आदि देख कर दंग रह जाते हैं।

इस प्रकार सेना के दो मामूली वीरों का परि-चय देकर उनके गुणों द्वारा कुवेंपु ने वानर-संस्कृति की महानता एवं उदात्तता पर प्रकाश डाला है। क्षणभर ही वे यहाँ हमारे सामने प्रकट होते हैं किंतु वे अपनी मधुर एवं चिरंतन स्मृति छोड़कर जाते हैं।

वांसनो अंकुर *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

यह धीरु बहन पटेल (दे०) लघु उपन्यास है। लखपति रमणीकलाल कड़े अनुशासन में विश्वास करता है और प्रत्येक व्यक्ति उसके आदेश के अनुसार व्यवहार करे—यह अपेक्षा करता है। उसकी लड़की का एक मध्यवित्त व्यक्ति से विवाह होता है और लड़की का केशव नाम का लड़का है। लड़की की मृत्यु के बाद रमणीकलाल केशव को अपने पास रखता है और उसे पिता से भी मिलने नहीं देता। रमणीकलाल केशव को अपनी इच्छानुसार पालना-पोलना चाहता है लेकिन केशव मन से नाना का विरोध करता है। इस प्रकार नयी पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी के प्रति विद्रोह इस लघु उपन्यास का विषय है।

वाईकर भटजी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1898 ई०]

रामचंद्र विनायक टिकेकर उर्फ़ धनुर्धारी के इस सामाजिक उपन्यास का विषय है—उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध के महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार के रहन-सहन, सामाजिक रीति-रिवाज, पिता-पुत्र, सास-बहू आदि के परस्पर संबंधों, विचारधारा आदि का चित्र प्रस्तुत करना। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में वाई गाँव का एक ब्राह्मण आपबीती के माध्यम से उस समय के रीति-रिवाजों—आतिथ्य-सत्कार, दान-दक्षिणा, विवाह-संबंध निश्चित करने की पद्धति, गाँव के लोगों के परस्पर व्यवहार, दिखावे, ढोंग, स्त्रियों के आभूषण-प्रेम, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि पर प्रकाश डालता है। लेखक इस बात के लिए विशेष प्रयत्नशील है कि लोगों में अपने धर्म के प्रति निष्ठा हो, अतः उसने ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले नवयुवक का करुण प्रसंग देकर पाठकों में "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" के प्रति आस्था उत्पन्न की है। नयी पीढ़ी में धीरे-धीरे होने वाली जागृति का भी संकेत दिया गया है। बीच-बीच में सुख-दुःख,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋण, दांपत्य-जीवन आदि पर भी तात्त्विक विचार प्रकट किये गये हैं। भाषा साधारण है, संस्कृत एवं हिंदी कहावतों के प्रयोग ने शैली को प्रभावशाली बनाने में सहायता की है।

वाक्य *(पारि०)*

ऐसा पद-समूह जो पूर्ण अर्थ का वाचक है वाच्य कहाता है : पदसमूहों वाक्यमर्थसमाप्तौ। (मंजूषा, नागेश भट्ट, पृष्ठ 1)। सार्थक पद-समूह में तीन क्षमताएँ अनिवार्य हैं, तभी वह वाक्य कहाता है, अन्यथा नहीं। ये हैं—आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति (सन्निधि)। परस्पर अन्विति को आकांक्षा कहते हैं। 'वह पुस्तक गृह'—यह पद-समूह तो है, पर साकांक्ष नहीं है। योग्यता बौद्धिक अथवा संभव संगति को कहते हैं। 'वह आग से सींचता है'—इस सार्थक पद-समूह में योग्यता का अभाव है। आसत्ति (सन्निधि) काल-व्यवधान के अभाव को कहते हैं। 'मैं......अपने......घर......गया' इस प्रकार प्रत्येक पद में काल का व्यवधान हो तो इसे भी वाक्य नहीं कहेंगे। निष्कर्षतः उस सार्थक पद-समूह को वाक्य कहते हैं जो आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति—इन तीन क्षमताओं से युक्त हो—वाक्यं स्याद् योग्यता कांक्षासत्ति पदोच्चयः। (सा० द० 2 य पारि०)।

वाक्यपदीय *(पं० कृ०)* [रचना-काल—लगभग 650 ई०]

बौद्ध-दर्शन के अनुयायी चीनी यात्री इत्सिंग का, जिसने भारत की यात्रा सातवीं शती में की थी, कथन है कि लगभग 40 वर्ष पहले भारतवर्ष में भर्तृहरि नाम के एक महान् वैयाकरण की मृत्यु हुई थी। मैक्स-मुलर का भी यही मत है।

'वाक्यपदीय' शब्द ब्रह्मवाद का प्रतिपादक ग्रंथ है। 'वाक्यपदीय' का प्रमुख सिद्धांत शब्दाद्वयवाद है। किसी-किसी आचार्य का यह मत भी है कि शब्दाद्वयवाद का आधार ग्रहण करके ही मंडन मिश्र (दे०) ने 'ब्रह्म-सिद्धि' नामक ग्रंथ की रचना की है। शब्दब्रह्मवाद के अनुसार भर्तृहरि 'पश्यंती' वाक् को ही शब्दब्रह्म-रूप मानते थे। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि इस मत में 'पश्यंती' वाक् ही परा वाक् के रूप में व्यवहृत होती थी।

यदि विचार कर देखा जाए तो यह कथन अनुचित न होगा कि शब्दब्रह्मवाद के आधार पर भर्तृहरि भी अद्वैतवादी ही हैं। जिस प्रकार शांकर (दे० शंकराचार्य) अद्वैत के अनुसार अविद्या के कारण जगत् की अनेकरूपता है, उसी शब्दब्रह्मवाद के अनुसार भी परा-वाक् ब्रह्म-रूप है और वही परावाक् अविद्या के कारण अनेकरूपता को प्राप्त होती है। इस प्रकार 'वाक्यपदीय' का दार्शनिक दृष्टिकोण भी अद्वैतवाद का ही पोषक है। निष्कर्ष-रूप में यह कहा जा सकता है कि 'वाक्यपदीय' व्याकरण-दर्शन का मूल ग्रंथ है। अतः कतिपय विद्वानों का यह विचार सर्वथा असंगत प्रतीत होता है कि भर्तृहरि बौद्ध थे।

वाक्यविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषाविज्ञान की वह शाखा जिसमें वाक्यों का अध्ययन किया जाता है। परंपरागत भाषाशास्त्री वाक्य-विज्ञान में वाययों का अध्ययन, पदक्रम, अन्वय, लोप, रचना के आधार पर वाक्य-भेद—साधारण वाक्य, संयुक्त वाक्य, मिश्रित वाक्य, प्रधान वाक्य, उपवाक्य (संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य, क्रियाविशेषण उपवाक्य); अर्थ के आधार पर वाक्य भेद—सामान्य वाक्य, प्रश्नसूचक, आश्चर्यसूचक वाक्य—आदि आधारों पर करते रहे हैं। संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने निकटतम अवयव (Immediate Constituent), अंतःकेंद्रिक (endocentric), बहिष्केंद्रिक (exocentric), आदि कुछ नये आधारों पर भी भाषा के वाक्यों तथा उनके खंडों का अध्ययन प्रारंभ किया है। इधर वंधिमविज्ञान (tagmemics), व्यवस्था-परक व्याकरण (Systematic Grammar), रूपांतरक व्युत्पादक व्याकरण (Transformational Generative Grammar) तथा कारकीय व्याकरण (Case Grammar) अपने-अपने नये ढंगों से वाक्य का अध्ययन कर रहे हैं।

इनमें रूपांतरक व्युत्पादक पद्धति सबसे प्रमुख है जिसमें एक प्रकार के वाक्य का दूसरे प्रकार के वाक्य में परिवर्तन, कई वाक्यों से एक वाक्य तथा एक वाक्य से कई वाक्यों की रचना तथा विभिन्न घटकों से किसी भाषा के प्रयुक्त और संभाव्य वाक्यों की रचना के नियम निकालने पर बल दिया जाता है। वाक्य का अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक तीनों प्रकार का हो सकता है; साथ ही वह सैद्धांतिक भी हो सकता है और प्रायोगिक भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वागीश्वरीनां कर्णफूलो (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

यह प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री मनुभाई राजाराम पंचोली 'दर्शक' (दे० दर्शक) का आलोचना संग्रह है। संग्रह में संकलित 'युद्ध अने शांति' (टालस्टाय), 'मीरा नी साधना', 'घरे बाहरे' (टैगोर—दे० ठाकुर), गुजरात के तीन महान उपन्यास', 'डेलफ़ीनी देवदर्शिनी' (ग्रीक), 'आख्य' (बँगला), 'डा० ज़िवागो' (रूसी) आदि में उनके सर्जक का चिंतक रूप देखा जा सकता है। 'दर्शक' में जो विश्वव्यापी रुचि रखने वाला सहृदय भावक है वह यहाँ रसिक, मर्मज्ञ आलोचक के रूप में प्रकट हुआ है।

वाग्भटालंकार (सं० कृ०)

बारहवीं शती के पूर्वार्ध में वाग्भट प्रथम द्वारा रचित 'वाग्भटालंकार' आकार में लघु होते हुए भी संस्कृत-साहित्यशास्त्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। पाँच परिच्छेदों के इस ग्रंथ में काव्योपयोगी विविध विषयों का संक्षेप में विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ में काव्य के प्रयोजन तथा काव्यहेतु—प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं आभास काव्य-भेद, काव्य-गुण, अलंकार-रीति तथा रस अर्थात् काव्य के सभी आवश्यक अंगों पर विचार किया गया है। अतः यह केवल अलंकार-ग्रंथ नहीं अपितु काव्यशास्त्र का एक पूर्ण प्रामाणिक ग्रंथ है।

उक्त ग्रंथ पर लिखी गई पाँच टीकाएँ प्रसिद्ध हैं : क्षेमहंसगणि-कृत टीका, जिन वर्धनसूरि-प्रणीत टीका, सिंहदेवगणि-प्रणीत टीका, अनंतभट्टसुतगणेश-प्रणीत टीका, राजहंसोपाध्याय-प्रणीत टीका। इन टीकाओं से वाग्भटालंकार के समसामयिक प्रचलन का स्वतः बोध हो जाता है।

'वाङ्मय विमर्श' (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

'वाङ्मय विमर्श' रामप्रसाद बक्षी (दे०) के साहित्य-तत्त्व की मीमांसा करने वाले लेखों का प्रथम संग्रह है। इस संग्रह के सभी लेख तीन भागों में बँटे हुए हैं। प्रथम विभाग में काव्य-तत्त्व की चर्चा करने वाले 18 लेख, दूसरे और तीसरे विभागों में क्रमशः रस और अलंकार पर तथा फुटकर निबंध संगृहीत हैं जिनकी संख्या 9 और 17 है। इस प्रकार इसमें कुल 44 लेख संकलित हैं और इनकी व्याप्ति 419 पृष्ठों में हैं। प्रथम विभाग में 'काव्य के स्वरूप', 'काव्य में अलंकार और छंद', 'आधुनिक काव्य और रससिद्धांत', 'काव्य का प्रयोजन', 'काव्य में प्रतिभा', 'प्रतीक अर्थात् शब्दार्थ की चर्चा', 'कवि की निरंकुशता' आदि विषयों पर विचार किया गया है। रस और अलंकार वाले प्रकरण में 'काव्य-नाटक में रसनिष्पत्ति, 'हास्य रस', 'अलंकार' और काव्यालंकार की विशिष्टता' आदि चर्चा के विषय रहे हैं। तीसरे विभाग में संस्कृत एकांकी का स्वरूप, अभिनेता का मन, नाटक का मूल तत्त्व, नाट्य-प्रयोगों में लय-संवाद, नाटक में परकीयकरण—तादात्म्यनिवारण, नाट्यकृति के मुख्य तत्त्व, नाटक में सामाजिक तत्त्व, रस और नाट्य, लघु कहानी का स्वरूप आदि पर लेखक ने गंभीरता से विचार किया है। बक्षी जी ने अपने इस ग्रंथ में स्वतंत्र भाव-सत्ता को प्रतिष्ठित करने का उपक्रम किया है : काव्य-निर्माण में भाव-महत्वपूर्ण हैं; उत्तम काव्य में भी भाव की सत्ता रहती है; वास्तविक कवित्व वही है जो गीतस्वर की अनुपस्थिति में भी रमणीय व भाव-समर्पक बना रहे; काव्य में भाव-व्यंजक काव्य-कोटि के अतिरिक्त भी अन्य कोटियाँ हो सकती हैं पर वे होती निम्न स्तर की ही हैं। काव्यानंद उत्पन्न करना काव्य का सबसे बड़ा प्रयोजन है। व्युत्पत्ति अथवा बहुज्ञता किसी स्तर पर आवश्यक होते हुए भी प्रतिभा ही काव्य का कारण-तत्त्व है। इसी प्रकार 'प्रतीक' पर चर्चा करते हुए बक्षी जी कहते हैं कि 'प्रतीक' शब्द के प्रयोग मात्र से आलोचक का दायित्व पूरा नहीं हो जाता पर उसे कवि-मन के व्यापार को विवेचित करना चाहिए इनकी दृष्टि में संगीत से भी साहित्य-कला उच्च है; लय काव्य के लिए अनिवार्य तो नहीं है पर कवि उसके प्रयोग के लिए प्रेरित अवश्य होते हुए देखे जाते हैं। इन सब पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीति हुए बिना नहीं रहती कि बक्षी जी के ये निबंध उनका भाववादी आलोचक होना सिद्ध करते हैं। इनके लेख वैचारिकता लिये हुए हैं—सभी स्थानों पर बातें प्रमाणपुष्ट हैं। इनकी भाषा समर्थ है। ये लेख बक्षी जी को आधुनिक युग के समर्थ रसवादी आलोचकों में स्थान दिलाने की पर्याप्त क्षमता रखते हैं।

वाचस्पति मिश्र (सं० ले०) [स्थिति-काल—840 ई०]

वाचस्पति मिश्र के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने अपनी पत्नी मामती के नाम के आधार पर ही ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य की टीका का नाम 'मामती' रखा था।

वाचस्पति मिश्र-रचित ग्रंथों में मामती, 'ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा', 'तत्त्वकौमुदी', 'तत्त्ववैशारदी', 'न्यायवार्तिकतात्पर्य', 'न्यायसूचीनिबंध', 'तत्त्वबिंदु' तथा 'न्यायकारिका' प्रमुख हैं।

वाचस्पति मिश्र की कृतियों की भाषा प्रायः क्लिष्ट है, परंतु अभिव्यक्ति की कुशलता सर्वत्र वर्तमान है। वाचस्पति मिश्र का प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत 'अवच्छेदवाद' है। अवच्छेदवाद के अनुसार असीम एवं अनवच्छिन्न ब्रह्म भी समीप एवं अवच्छिन्न हो जाता है। इन्होंने जीव एवं अविद्या में आश्रयाश्रयिभाव एवं ईश्वर तथा अविद्या में विषय-विषयिभाव माना है। वाचस्पति मिश्र ने ही सर्वप्रथम अविद्या एवं माया के मौलिक् भेद को स्पष्ट किया था। इन्होंने सांख्य योग, न्याय एवं वेदांत पर टीका-ग्रंथ लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया था।

वाजपेयी, किशोरीदास *(हिं० ले०)*

वाजपेयी जी मूलतः संस्कृत के विद्वान् हैं किंतु आपका कार्य-क्षेत्र भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा रहा है। हिंदी व्याकरण, हिंदी वर्तनी, हिंदी की शैली तथा हिंदी प्रयोग-संबंधी विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर आपने मौलिक ढंग से चिंतन किया है। आपकी मुख्य कृतियाँ हैं: 'ब्रजभाषा का व्याकरण', 'हिंदी निरुक्त', 'अच्छी हिंदी', 'हिंदी शब्दानुशासन', 'भारतीय भाषाविज्ञान', 'हिंदी वर्तनी' तथा 'शब्द-विश्लेषण'।

वाजपेयी, नंददुलारे *(हिं० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

इनका जन्म उन्नाव ज़िले के मगरैल गाँव में हुआ था। ये हिंदी आलोचना के आधार-स्तंभों में से एक हैं। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ छायावादी (दे० छायावाद) काव्य के समर्थ समीक्षक के रूप में किया था। ये पहले आलोचक थे जिन्होंने छायावाद के अंतःसौंदर्य को उद्‌घाटित करते हुए उसकी उपलब्धियों तथा संभावनाओं का निरूपण किया। 'प्रेमचंद' को छोड़ कर इन्होंने कोई स्वतंत्र आलोचना-ग्रंथ नहीं लिखा। इनकी कृतियाँ—'हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी', 'जयशंकर प्रसाद', 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य: नये प्रश्न' आदि समय-समय पर लिखे गए निबंधों के संकलन हैं। वाजपेयी जी की यह मान्यता है कि साहित्यकार को—चाहे वह स्रष्टा साहित्यकार हो या फिर आलोचक—वादमुक्त रहकर साहित्य-सृजन करना चाहिए। इनकी एक अन्य मान्यता यह है कि युग-चेतना के अभाव में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन संभव नहीं है। तत्समप्रधान किंतु स्पष्ट एवं बोधगम्य भाषा-प्रयोग तथा तीखेपन की सीमा तक निःसंकोच भावाभिव्यक्ति इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। समग्रतः ये हिंदी के मूर्धन्य आलोचक हैं।

वाजपेयी, भगवतीप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म कानपुर ज़िले के मंगलपुर गाँव में हुआ था। 1920 ई० के आसपास काव्य-रचना से अपना साहित्यिक जीवन आरंभ करने के बाद कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विविध विधाओं में लिखना शुरू किया था तथा कथा-साहित्य के क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अब तक इनके ग्यारह कहानी-संग्रह तथा दो दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'दो बहनें', 'चलते-चलते', 'विश्वास का बल' आदि इनके लोकप्रिय उपन्यास हैं तथा 'मधुपर्क', 'हिलोर', 'खाली बोतल' आदि प्रतिनिधि कहानी-संग्रह प्रसंगगर्भित, प्रवाहपूर्ण तथा चित्रात्मक भाषा-शैली के माध्यम से मध्यवर्गीय व्यक्ति के अंतर्मन का व्यावहारिक मनोविश्लेषण इनके लेखन की ऐसी प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके लिए ये हिंदी कथा-साहित्य में स्मरण किए जाते हैं।

वाजिद अली शाह 'अख़्तर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1888 ई०]

नाम—वाजिद अली, उपनाम—'अख़्तर', लक़ब—'जान आलम' और 'सुलतान आलम'। ये अवध के अंतिम नरेश थे। बड़े रसिक और सहृदय थे। अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा काव्य-कला से इन्हें अत्यधिक प्रेम था। इनकी काव्य-कृतियों की संख्या 28 बताई जाती है, जिनमें से केवल दो-एक ही उपलब्ध हैं। मसनवी 'हिज़्न-ए-अख़्तर' में इन्होंने लखनऊ से कलकत्ता तक की यात्रा का वर्णन कलात्मक रीति से किया है। इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य अत्यधिक विलासिता-व्यंजक और इतिवृत्तात्मक है। भाषा-माधुर्य, प्रसाद गुण और प्रवाह इनकी रचनाओं की विशेषता है।

वाडिवाशल (त० कृ०) [रचना-काल—1959 ई०]

सी० सु० चेल्लप्पा-कृत एक आंचलिक उपन्यास। इसमें मदुरै ज़िले की मखर जाति के लोगों के जीवन का एक पक्ष चित्रित है। संपूर्ण उपन्यास सांकेतिक शैली में रचित है। उपन्यास में वर्णित मूल कथा का संबंध वाडिवाशल में होने वाले 'जल्लिक्कट्टु' (साँड़ों की भिड़ंत) से है। इसके माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन सामंतीय व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। उपन्यास में ज़मींदार सामंतीय समाज का प्रतिनिधि है। वह खेत को अपनी प्रतिष्ठा का आधार मानता है। किसी भी परिस्थिति में अपनी पराजय स्वीकार करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता है। 'जल्लिक्कट्टु' में जब उसका साँड़ हार जाता है तो उसकी मर्यादा को गहरा आघात पहुँचता है और वह उसे जीवित जला देता है। संपूर्ण उपन्यास सरल, व्यावहारिक शैली में रचित है। स्थानीय भाषा के प्रयोग से उपन्यास अधिक सजीव एवं प्रभावशाली हो गया है। 'वाडिवाशल' का तमिल के आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट स्थान है।

वाणीदासन (त० ले०) [जन्म—1915 ई०]

वाणीदासन उपनाम से प्रसिद्ध अरंगसामी का जन्म विल्लियनूर में हुआ। कवि वाणीदासन की प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं—'एलिलोवियम्', 'कोडि मुल्लै', 'तमिलच्चि', 'तोडु वानम्' आदि। प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण और गेयता इनकी कविताओं की मूल विशेषता है। इनकी कुछ कविताएँ अँग्रेज़ी, रूसी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। वाणीदासन का आधुनिक तमिल कवियों में विशिष्ट स्थान है।

वात्तियार वडिवेलू (त० पा०)

यह ति० जानकीरामन (दे०) के प्रसिद्ध नाटक 'वात्तियार वडिवेलू' का नायक है। यह मानवतावाद में अत्यधिक विश्वास रखने वाले आदर्श व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। इस पात्र का संबंध स्वतंत्रता परवर्ती उस युग से है जबकि प्रत्येक क्षेत्र में—विशेषकर राजनीतिक क्षेत्र में—अनेक परिवर्तन हो रहे थे। पुराने सामाजिक मूल्य टूट चुके थे परंतु नये मूल्यों की स्थापना नहीं हुई थी। उस समय राजनीतिक क्रियाकलाप सामाजिक क्रियाकलाप की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो उठे थे। राजनीतिक नेताओं की नीति में कोई आस्था नहीं थी। ऐसा ही एक राजनीतिक नेता वडिवेलू जैसे आदर्श अध्यापक को दबाने का यत्न करता है परंतु वे उस नेता और उसके साथियों द्वारा दिये गये कष्टों को चुपचाप सह लेते हैं। वे अंततः यह सिद्ध कर देते हैं कि दृढ़संकल्प व्यक्ति ही समाज को अनीतिपूर्ण, चरित्रहीन व्यक्तियों के हाथों विनष्ट होने से बचा सकते हैं।

वडिवेलू आदर्श अध्यापक थे। उनके छात्रों में अनेक ऐसे थे जो कि उनके लिए लड़ने-झगड़ने और आत्म-बलिदान करने के लिए तैयार थे। नाटक का खल पात्र, स्कूल के हेड मास्टर वडिवेलू को सताता है, उनके प्रति निर्दयता का व्यवहार करता है। इतने पर भी आदर्श अध्यापक होने के नाते वे अपने छात्रों को अपनी सहायता के लिए नहीं बुलाते। वे बड़े धैर्य के साथ सभी कष्टों को सहते चलते हैं और अंत में यह सिद्ध कर देते हैं कि सज्जनों को अपनी महानता सिद्ध करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

इस पात्र के माध्यम से नाटककार ने जहाँ अध्यापक की आंतरिक (आत्मिक) शक्ति का परिचय दिया है वहाँ इसे तमिलनाडु के तंजाऊर ज़िले के दीन किंतु अत्यंत महान अध्यापक का प्रतिनिधि बनाया है। उसके आचरण, स्वभाव, भाषा आदि से पाठक जान जाता है कि उसका संबंध तंजाऊर ज़िले से है। वात्तियार वडिवेलू जानकीरामन की अमर सृष्टि है।

वात्स्यायन (सं० ले०) [समय—अनुमानतः 300 ई०]

वात्स्यायन के स्थिति-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इनका स्थिति-काल 300 ई०, कतिपय विद्वान् 400 ई० तथा कतिपय अन्य विद्वान् ई० पू० प्रथम शती मानते हैं। इन मतों में 300 ई० वाला यह मत ही अधिक संगत प्रतीत होता है। वात्स्यायन-रचित दो प्रमुख ग्रंथ हैं—(1) 'न्यायभाष्य', (2) 'कामसूत्र'। गौतम (दे०) के 'न्यायसूत्र' पर वात्स्यायन का प्रथम प्रामाणिक भाष्य है। वात्स्यायन ने 'न्यायभाष्य' के अंतर्गत न्याय-दर्शन के सिद्धांतों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्लेषण वैज्ञानिक एवं सरल पद्धति से किया है। तार्किक शैली ने 'न्यायभाष्य' को और भी रोचक बना दिया है। वात्स्यायन का दूसरा प्रमुख ग्रंथ 'कामसूत्र' है। कामसूत्र पर यशोधर ने 'जयमंगला' नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त ज्योतिरीश्वर, कोक्कन तथा जयदेव ने 'कामसूत्र' के आधार पर स्वतंत्र कृतियों का निर्माण किया था। वात्स्यायन ने कामसूत्र के अंतर्गत काम, धर्म एवं अर्थ को जीवन का प्रमुख साध्य माना है। इन तीनों के समन्वित रूप को ही 'कामसूत्र' में उत्कृष्टतम सुख कहा गया है। उक्त त्रिवर्ग में से किसी एक की भी न्यूनता वात्स्यायन को अभीष्ट नहीं है। परंतु इस 'त्रिवर्ग' में भी वात्स्यायन की दृष्टि से 'अर्थ' का प्रथम स्थान है, 'काम' का दूसरा तथा 'धर्म' का तीसरा। वात्स्यायन का कथन है कि विषम परिस्थिति होने पर उक्त क्रम के आधार पर ही प्राथमिकता देनी चाहिए। वात्स्यायन द्वारा किया गया चौंसठ कलाओं का निरूपण भी मानव-समाज के लिए एक महत्वपूर्ण देन है। 'कामसूत्र' के अंतर्गत वात्स्यायन की भाषा तथा शैली रोचक एवं सरल है।

वामन *(सं० ले०)*

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अन्यतम आचार्य वामन कश्मीर नरेश जयापीड के मंत्री थे। इनका समय 800 ई० के लगभग निश्चितप्राय है।

वामन के नाम से एकमात्र 'काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति' नामक ग्रंथ ही उपलब्ध होता है। इनके पाँच परिच्छेदों के 319 सूत्रों में काव्यशास्त्र के दोष-गुण, अलंकार, रीति एवं पद-प्रयोग प्रभृति तत्त्वों का विवेचन हुआ है। वामन के इस ग्रंथ में रीति-सिद्धांत को सबसे अधिक महत्व मिला है। रीति को ही काव्य की आत्मा तक कहा गया है। वामन ने रीति की आत्मा के रूप में भी गुणों का निरूपण विशेष रूप से किया है। शब्द और अर्थ के अलग-अलग दस-दस गुणों का अलंकारों से पृथक् रूप में निरूपण कर इन्हें ही काव्य-सौंदर्य का कर्ता तथा काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व माना है। अलंकारों को उत्कर्षाधायक मात्र कहकर काव्य में उनकी महत्ता को कम कर दिया गया है। गुण-अदलित रीति का सिद्धांत वामन की देन है। इसके अतिरिक्त गुण और अलंकार का भेद, वक्रोक्ति का विशिष्ट लक्षण तथा सभी अलंकारों को उपमा का ही प्रपंच मानना आदि वामन के अपने मत हैं जिनकी मीमांसा काव्य के आचार्यों ने विशेष रूप से की है।

वामन पंडित *(म० ले०)* [जन्म—1608 ई०; मृत्यु—1695 ई०]

इनका जन्म दक्षिण भारत के बिजापुर प्रदेश में, विद्याध्ययन काशी में हुआ और आयु का उत्तरार्द्ध महाराष्ट्र में बीता। इन्होंने संस्कृत के काव्यों और दर्शनों का गहन अध्ययन किया, और आत्मज्ञानोपलब्धि के लिए मलय पर्वत पर तपस्या की। श्री सच्चिदानंद स्वामी से उपदेश ग्रहण कर वामन पंडित ने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की भावना का प्रसार करने के लिए मराठी में काव्य-रचना आरंभ की। इनकी चालीस हज़ार कविताओं में से आधे से अधिक वेदांतपरक हैं—शेष का आधार 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०), तथा 'भागवत' (दे०), (दशम स्कंध) हैं। रामजन्म, अहल्योद्धार, सीता-स्वयंवर, भरतभाव आदि प्रकरण 'रामायण' पर तथा वनसुधा, वेणुसुधा, रासक्रीडा, कात्यायनीव्रत, राधा-विलास, द्वारका-विजय, मृत्तिकाभक्षण, ऊखलबंधन, गोर-सहरण आदि 'भागवत' पर आधारित हैं। कृष्ण ही वामन पंडित के उपास्य देवता हैं। इन्हीं की लीलाओं के गान से इनका काव्य सरस हो उठा है जिससे भक्ति, वात्सल्य, श्रृंगार, हास्य आदि कोमल रसों की परिपुष्टि हुई है। ज्ञानयुक्त भक्ति ही इनका प्रतिपाद्य है, अतः आख्यान-काव्यों में प्रसंगानुसार आध्यात्मिक रूपकों का सुंदर समावेश भी हुआ है। वामन के वास्तविक पांडित्य का दर्शन 'यथार्थ दीपिका' (दे०) में होता है। यह 22 हज़ार ओवी छंदों में लिखित 'गीता' (दे०)की टीका है। इसमें काव्य-गुण नहीं है। किंतु इससे कवि की तार्किक दृष्टि, निर्भीक प्रतिपादन-शक्ति, दृढ़ आत्मविश्वास, स्मृति-पुराण-दर्शनों के गंभीर अध्ययन का परिचय मिलता है।

वायु.रै वालत्तु *(त० पारि०)*

यह 'पु.रम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) नामक काव्य-भेद के 'पाटाण्' नामक उपभेद के बीस प्रकरणों में से एक है। 'पाटाण्' (दे०) नामक उपभेद विशेष रूप से दानी राजा एवं प्रभुओं की प्रशंसा से संबंधित है। दानी प्रभुओं की प्रशंसा के साथ लोभियों की निंदा भी वर्जित नहीं थी। किसी प्रभु की अनिच्छा पर भी उनके समक्ष कटु सत्यों को हितैषी कवि-गण अपने गीतों में रखा करते थे। प्रथमतः कविगण प्रभु की मंगलकामना करते थे और तत्पश्चात् अपने औषध रूपी कटु पर शुभाकांक्षी शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखते थे। यह प्रकरण 'वायु.रै वाल्त्तु···' अर्थात् 'स्थायी शुभदायक' कहलाता है और 'पु.रनानूरु' नामक गीत-संग्रह में इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।

वार *(पं० पारि०)*

पंजाबी-काव्य में 'वार' शब्द दो रूपों में प्रचलित है। एक—प्रशस्ति-काव्य के रूप में, जैसे—वार श्री भगौती की, वार श्री गोविंदसिंह जी की, वार नादिरशाह (दे०) आदि। इस काव्य के अंतर्गत किसी के शौर्य, महिमा, यश आदि का वर्णन रहता है। (दे० 'वारकाव्य')। दूसरे, 'वार' शब्द का प्रयोग 'पौड़ी' (दे०) छंद के पर्याय के रूप में भी हुआ है क्योंकि पंजाबी-काव्य में योद्धाओं के शौर्य का वर्णन अधिकतर इसी छंद में हुआ है। 'गुरु ग्रंथ साहब' के अंतर्गत 'आसा दी वार' शीर्षक का आधार 'वार'—अर्थात् 'पौड़ी' छंद ही है। (दे० 'पौड़ी')

वार-काव्य *(पं० प्र०)*

यह 'वीर-काव्य' का पंजाबी में प्रचलित एक रूप है। 'वार' से अभिप्राय ऐसे काव्य का है जिसमें शौर्यपूर्ण वीरगाथा अंकित हो; जैसे—गुरु गोविंदसिंह-कृत (दे०), 'वार श्री भगौती जी की'। अधिकांश कवियों द्वारा विभिन्न योद्धाओं और महापुरुषों की वीरता का वर्णन। 'पौड़ी' (दे०) छंद में होने के कारण, इसके छंद का नाम भी 'वार' छंद ही पड़ गया है। उदाहरण के लिए—'आसा दी वार' का प्रारंभिक पाठ है—'वारसलोकां नालिठ'। यहाँ 'वार' का अभिप्राय पौड़ी छंद से ही है।

'वार-काव्य' के अंतर्गत केवल युद्ध-वीरों का ही गुण-गान नहीं हुआ, वरन् अन्य महापुरुषों और ईश्वर की महिमा में भी वार-काव्य की रचना हुई है। 'आदिग्रंथ' (दे०) में प्रभु-महिमा से मुक्त वाणी 'वार' नाम से प्रसिद्ध है।

युद्ध-वीरता पर आधारित वार-काव्यों में 'वार श्री भगौती जी की', 'वार नादरशाह' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वारधि *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1967 ई०]

इसकी लेखिका द्विवेदुला विशालाक्षी (दे०) हैं। इन्होंने अनेक उपन्यास तथा कहानियाँ लिखी हैं। 'वारधि' एक सामाजिक उपन्यास है। मानवता की दृष्टि से सब के एक होते हुए भी वास्तविकता की दृष्टि से स्पष्ट होता है कि समाज में धनवानों और निर्धनों के दो वर्ग हैं। किसी-न-किसी प्रकार दोनों को मिलाने के लिए कोई पुल बांध भी दे तो वह अधिक समय तक टिकेगा नहीं। एक सामान्य परिवार का सदस्य वरदराजु एक अमीर की पुत्री के साथ शादी करता है। परंतु ससुराल के अत्यंत संपन्न तथा अपने परिवार के अत्यंत निर्धन होने के कारण वरदराजु की स्थिति बहुत दुःखद हो जाती है। एक दिन पत्नी के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य का समाचार पाकर रात ही रात वह अपने गांव से अपनी ससुराल के शहर में जाने के लिए निकलता है। बीच में एक नदी पड़ती है जिसमें ज़ोरों की बाढ़ आई है। अतः वरदराजु को रुक जाना पड़ता है। इसी बीच में उसकी पत्नी का देहांत हो जाता है। इसके अनंतर वरदराजु के गांव तथा उसकी ससुराल क शहर के बीच का पुल भी टूट जाता है और उन दोनों अमीर और ग़रीब परिवारों का संबंध भी विच्छिन्न हो जाता है। संक्षेप में यही इसकी कथा है। कथानक रोचक है। इसमें एक सामाजिक सत्य को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है।

वार नादरशाह *(पं० कृ०)*

कवि नजाबत (दे०)-कृत यह युद्ध-काव्य पंजाबी 'वार-काव्य' परंपरा की एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें नादिरशाह और मुग़ल-सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले के उस युद्ध का वर्णन है जो 1739 ई० में करनाल के मैदान में हुआ था। कवि ने युद्ध क राजनीतिक कारणों का विश्लेषण नहीं किया वरन्, उसका सूत्रपात एक नितांत कल्पित रोचक घटना से कराया है। 'नारद' और 'कल' (काली) नामक पति-पत्नी एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। उनका पारस्परिक कलह ही बढ़कर नादिरशाह और मुहम्मदशाह क युद्ध का रूप ले लेता है। स्पष्टतः कवि का उद्देश्य युद्ध-वर्णन मात्र है, उसके कारणों और परिणामों की व्याख्या करना नहीं; और 'वर्णन-कला' में वह पूर्णतः सफल रहा है। समर-यात्रा, सेना-अभियान, शस्त्र-संचालन एवं द्वंद्व-युद्ध आदि का इस 'वार' में बहुत ही सजीव वर्णन हुआ है। वीर, रौद्र, भयानक एवं बीभत्स रस की अभिव्यंजना में कवि की लेखनी पूर्णतः समर्थ है।

प्रसंगतः कहीं-कहीं हास्य और देशभक्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुट भी मिल जाता है। विषयानुकूल ओजगुण-प्रधानता इस रचना की भाषा की प्रमुख विशेषता है। 'वार नादर-शाह' में ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से अनेक दोष भी हैं जैसे काबुल को ईरान का प्रांत बताना। किंतु इससे शुद्ध वीरकाव्य के रूप में इस कृति का महत्व कम नहीं होता।

वारियर, उण्णायि *(मल० ले०)* [जीवन-काल—अठारहवीं शती ई० का आरंभ]

आट्टक्कथाकारों में इनका नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ये कुंचन नंपियार (दे०) के समसामयिक और त्रावनकोर राज्य के स्थापक मार्त्तांड वर्मा के दरबार में राजकवि माने जाते हैं। उण्णायि वारियर की अमर कृति 'नलचरितम् आट्टक्कथा' (दे०) है। यह साहित्य-जगत् में विवाद का विषय है कि 'गिरिजाकल्याणम्' गीत-प्रबंध के रचयिता उण्णायि वारियर हैं अथवा नहीं।

वारियर ने कथकलि को साहित्य में शाश्वत प्रतिष्ठा प्रदान की थी। आट्टक्कथाओं में 'नलचरितम्' का स्थान सर्वप्रमुख है। इस काव्य के प्रणयन के बाद आज तक कथकलि के अभिनेता और दर्शक उसी को सर्वश्रेष्ठ मानते आए हैं। वारियर नाटक-शिल्प एवं संगीत-विद्या के मर्मज्ञ थे। उनके काव्य के प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व उज्ज्वल है। वारियर की काव्य-भाषा वैचित्र्यपूर्ण है। उनके पद-प्रयोग-स्वातंत्र्य को ध्यान में रखकर कुछ विद्वान् उनको निरंकुश कवि कहते हैं।

उण्णायि वारियर ने न केवल कथकलि-साहित्य को चिरप्रतिष्ठा प्रदान की है, अपितु मलयाळम को एक अत्युत्तम दृश्य-काव्य भी प्रदान किया है।

वारियर, एन० वी० कृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

मलयाळम के कवि, समालोचक और पत्रकार श्री कृष्ण वारियर (दे०) संस्कृत और हिंदी के विद्वान तथा करल भाषा-संस्थान के निदेशक रहे हैं। 'नींटकवितकळ्' (दे०) 'कुरेक्कूटि नींटकवितकळ्', 'कोच्चुतोम्मन्' आदि उनके कविता-संग्रह हैं। 'परिप्रेक्ष्यम्', 'कलोत्सवम्' आदि समालोचना-ग्रंथ हैं और 'उणरुन्न उत्तरेंत्या' यात्रा-वृत्त।

श्री वारियर ने मलयाळम-कविता को नये परीक्षणों का विषय बनाया। उनकी लंबी कविताओं में प्रगीत-शैली की अपेक्षा कथा-कथन की रीति अधिक अपनाई गई है। वारियर अच्छे व्यंग्यकार भी हैं। उनकी कविता 'मोहनदास गांधी और नाथूराम गोडसे' इस तथ्य का उदाहरण है।

चङ्ङंपुषा (दे०) के बाद मलयाळम-कविता में अतिभावुकता और एकस्वरता का जो गाढ़ा पुट समन्वित हो गया था उसका निवारण ही वारियर का सबसे महत्वपूर्ण योगदान हैं।

वारियर, कैक्कुलङ्ङरा, राम *(मल० ले०)* [समय—1933 से 1958 ई०]

केरल के तलप्पिळ्ळ तहसील के कटङ्ङोट्टु में इनका जन्म हुआ। इनका घर का नाम है कैक्कुलङ्ङरा। ये संस्कृत के बड़े पंडित थे। 'अष्टांग हृदय' का अनुवाद कैरली में करके इन्होंने विद्वानों की बड़ी सहायता की। इन्होंने 'अमरकोशम्' (दे०), 'सिद्धरूपम्', 'श्री रामोदतम्' आदि पर सुंदर टीकाएँ और टिप्पणियाँ लिखीं। चालीस के लगभग ग्रंथ इनके रचे हुए हैं।

वारियर, पि० वि०, कृष्ण *(मल० ले०)*

'कवनकौमुदि' नामक पद्य-मासिक में संपादक के रूप में इन्होंने कैरली की महत्वपूर्ण सेवा की है। युवा-कवियों को इनसे निरंतर बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा है। कुञ्ञिक्कुट्टन् (दे०) तंपुरान्, वि० सि० बालकृष्ण पणिक्कर (दे०) जैसे महान व्यक्तियों की कविताओं का संग्रह करके लोगों का ध्यान भाषा की ओर आकृष्ट करने में श्री वारियर ने बड़ा यत्न किया और सफल भी हुए। 1919 ई० से लेकर ये साहित्य-नभोमंडल में ध्रुवतारे के समान चमक रहे हैं। 'कवनकौमुदि' का विशेषांक सुंदर ढंग से निकालकर इन्होंने 'भाषा-विलासम्' शीर्षक पर नौ उत्तम कृतियों का प्रकाशन किया। सबसे पहले इन्होंने ही कैरली में विशेषांक निकाला है। 'कवि केसरि' में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं।

वारियर, रामपुरत्तु *(मल० ले०)* [जीवन-काल—अठारहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध कवि हैं। किंवदंती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ये सुदामा की तरह दरिद्र थे। त्रावनकोर के महाराजा मार्तांड वर्मा की नौका-यात्रा के दौरान इन्होंने उनको 'कुचेलवृत्तम् वंचिप्पाट्टु' (दे०) (नौका-गीत) की रचना करके सुनाया था और महाराजा ने सुदामा की तरह अनजाने ही कवि को ऐश्वर्यदान दिया था।

इनकी सर्वप्रमुख कृति 'कुचेलवृत्तम्' है। 'भाषाष्टपदी', 'व्यासोत्पत्ति' आदि भी इनकी रचनाएँ हैं।

इनकी कविता अनुभूति की गहनता के कारण हृदयस्पर्शी है। काव्य की तकनीकों को ध्यान में रखकर पद्य-रचना करने के बजाय ये जो मन में आया, कहते गए। रोमांटिक युग के उदय के पहले इनके अलावा और किसी ने इस प्रकार की काव्य-सरणि को नहीं अपनाया था। वंचिप्पाट्टु (दे०) शैली के मुख्य कवि के रूप में भी इनका महत्व है।

वारिसशाह *(पं० ले०)* [जन्म---लगभग 1720-25 ई०; मृत्यु—1798-99 ई०]

प्रामाणिक सामग्री के अभाव में पंजाबी किस्सा-काव्य के इस मूर्द्धन्य लेखक की जीवन-संबंधी अनेक मान्यताएँ अनुमान पर ही आधारित हैं। इनका जन्म जंडियाला शेरखां (ज़िला शेखुपुरा, पाकिस्तान) में सैयद गुलशेरशाह अथवा कुतबशाह के घर हुआ। प्रारंभिक शिक्षा के अनंतर इन्होंने पाकपटन में बाबा फ़रीदशकरगंज की दरगाह में दीक्षा ग्रहण की। कुछ समय पश्चात् वहाँ से थोड़ी दूर एक अन्य गाँव मल्काहास (ज़िला मिंटगुमरी) में रहने लगे और वहीं पर अपने प्रसिद्ध प्रेम-काव्य 'हीर' की रचना की। भागमरी नामक एक हिंदू महिला से इनके प्रेम-संबंध की कथा भी प्रसिद्ध है। इनकी मृत्यु अपने गाँव में ही हुई। आज भी वहाँ कवि की क़ब्र पर श्रद्धालु लोग फूल चढ़ाते हैं। प्रसिद्ध पंजाबी आलोचक मौलाबख़्श कुश्ता (दे० मौलाबख़्श) ने 'हीर' के अतिरिक्त वारिस द्वारा रचित कुछ अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया है परंतु उनका यह मत अन्य इतिहासकारों को स्वीकार्य नहीं है। प्रस्तुत कवि भाषा की सरलता, वातावरण की स्वाभाविकता, पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, संवादों की नाटकीयता और अद्भुत वर्णन-विस्तार के लिए प्रसिद्ध है। सुललित शब्द-प्रयोग, अद्भुत संगीत और अपूर्व प्रवाह के सन्निवेश से 'बेंत' (दे०) को पंजाबी का प्रसिद्ध और लोकप्रिय छंद बनाने का श्रेय भी वारिस को ही है। इनमें संकीर्णता नाम मात्र को भी नहीं है। 'हीर वारिस' (दे०) में हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के संश्लिष्ट स्वरूप को उभार कर इन्होंने पंजाब के ग्रामीण जीवन को पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किया है। पंजाब के अनेक कवियों ने हीर-राँझा की कथा को काव्य का विषय बनाकर इनकी अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का यत्न किया है परंतु इस क्षेत्र में आज तक वारिस अप्रतिम माने जाते हैं।

वार्त्ता विमर्श *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

प्रस्तुत कृति में श्री चुनीलाल मडिया (दे०) के कहानी-शिल्प तथा गुजराती एवं पश्चिमी कहानी-विषयक विविध समीक्षात्मक लेख संगृहीत हैं। कहानी श्री मडिया की प्रिय साहित्य-विधा थी तथा इस विधा में उन्हें असाधारण सिद्धहस्तता प्राप्त थी। इससे कहानी-विषयक उनकी मर्मज्ञता का अनुमान सहज ही हो जाता है।

आलोच्य संग्रह में उन्होंने 'टूंकी वार्ता' तथा 'घाट अने घडतर' नामक लेख में एडगर एलन पो, नैथेलियन और रूसी कहानीकार गोगोल से लेकर अर्नेस्ट हेमिंग्वे और सारोयन तक के विदेशी, तथा 'गुजराती वार्तानी गयी काल' शीर्षक के अंतर्गत धूमकेतु (दे०) से लेकर पुष्कर चंदरवाकर तक के कहानीकारों की तथा 'गुजराती टुंकी वार्ता; कालनी अने आजनी' में अधुनातन गुजराती कहानियों की मौलिक समीक्षा की है।

संग्रह के 'कहानी और प्रगीत', 'कहानी और टेलीविज़न', 'कहानी और एकांकी', 'कहानी और उपन्यास', 'कहानी और सिनेमा की कला' प्रभृति लेखों में उन्होंने कहानी-कला का वैशिष्ट्य स्पष्ट किया है।

वालक्कै अलकिरदु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1957 ई०]

यह डी० जयकांतन् (दे०) का प्रथम उपन्यास है। इसमें कथा की अपेक्षा पात्रों के चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक हैं परंतु उनमें सजीवता है। इनमें कुछ पात्र ऐसे हैं जिनसे हमारा घनिष्ठ संबंध है, कुछ ऐसे हैं जिन्हें हम अपने से दूर रखने का यत्न करते हैं और कुछ ऐसे हैं जिनसे हम दूर रहना चाहते हैं। परंतु प्रत्येक का अपना एक जीवन है। उपन्यास का नायक राजा तरह-तरह के काम करता है—जैसे चावल, दाल तोलना, कपड़ा नापना, चप्पल सीना आदि; परंतु किसी में उसका मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं लगता। सर्वत्र उसे बेईमानी दीख पड़ती है। आदर्शवादी राजा को देखकर लोग घोषित कर देते हैं कि उसे जीना नहीं आता और न वह जी ही सकता है। निरुद्देश्य भटकते हुए राजा के ऊपर तंगम् की मान-रक्षा का उत्तरदायित्व आ पड़ता है। वह उपन्यास की नायिका तंगम् को सारंगन् आदि गुंडों के चंगुल से मुक्त करता है, उसका जीना सार्थक हो जाता है। 'वालक्कै अलकिरदु' में लेखक ने यही बताना चाहा है कि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक मनुष्य किसी विशिष्ट लक्ष्य को लेकर चले। समाज के अभिन्न अंग के रूप में रहते हुए स्वयंमेव उसके एक जीवन का निर्माण हो जाता है।

वालक्कै-क्-कुरिप्पुकळ (त० कृ०) [रचना-काल—1944 ई०]

इसके रचयिता वी० कल्याणसुंदर मुदलियार (1883 ई०-1953 ई०) हैं। इनका जन्म अत्यंत सामान्य परिवार में हुआ था। अपने जीवन-काल में इन्हें विविध क्षेत्रों में कार्य करने का अवसर मिला। ये डायरी लिखने के आदी नहीं थे। इन्होंने अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर और 'देशभक्तन', 'नव शक्ति' आदि पत्रिकाओं मे प्रकाशिन अपने लेखों के आधार पर लगभग एक सहस्र पृष्ठों में अपनी जीवनी लिखी और उसे 'वालक्कै-क्-कुरिप्पुकळ' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित किया। यह कृति लेखक की तीक्ष्ण स्मरण-शक्ति की परिचायक है। इसके माध्यम से वस्तुतः तिरु वी० क० ने तमिलनाडु के चालीस वर्षों का इतिहास प्रस्तुत किया है, तमिलनाडु की धार्मिक-राजनीतिक परिस्थितियों का, मज़दूर संगठनों की गतिविधियों का, सजीव रूप से अंकन किया है।

तिरु वी० क० धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके मत में मानव-जीवन स्वयं अपने लिए एवं समाज के लिए उपयोगी होना चाहिए। वे कहते हैं कि 'समाज की सेवा के लिए मैं बारंबार इस संसार में जन्म लेना चाहता हूं।' तिरु वी० के० की दृष्टि अत्यंत व्यापक थी। वे कहते थे कि 'मैं सर्वप्रथम विश्व का प्राणी हूँ, फिर भारतीय और अंत में तमिल नागरिक हूँ।' उनका जीवन गांधीवाद और मार्क्सवादी दर्शनों पर आधृत एक प्रयोग था। उनका विश्वास था कि इन दोनों दर्शनों के समन्वय से ही एक नवीन जीवन-दर्शन का उदय होगा। इस कृति के अध्ययन से स्पष्ट है कि वैचारिक धरातल पर इनके अनेक विरोधी थे परंतु सामाजिक धरातल पर इनका कोई शत्रु नहीं था।

संपूर्ण कृति अत्यंत सरल, प्रवाहपूर्ण शैली में रचित है। इसका रूप बहुत-कुछ गांधी जी के 'सत्य के प्रयोग' के समान ही है। इसका तमिल के जीवनी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इस कृति का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से महत्व है।

वालक्या (म० पा०)

यह रामगणेश गडकरी (दे०) के 'वेड्यांचा बाज़ार' (पागलों का बाज़ार) अपूर्ण प्रहसन का पात्र है जो नाटकों के प्रति अत्यधिक आकृष्ट है। नाटकों के प्रति इसकी आसक्ति पागलपन के छोरों तक पहुँच गई है और यही कारण है कि अभिनय का 'क ख ग' न जानते हुए भी यह मंच पर अभिनय के लिए अत्यधिक उत्सुक है। नाटकों में यह स्त्री-भूमिकाओं को ही अभिनीत करना चाहता है, परंतु अभिनय-कला का इसमें सर्वथा अभाव है। प्रसिद्ध नाट्य-वृत्तियों के उद्धरण यह समय-कुसमय बोलता रहता है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध नाट्य-गीतों की 'पैरोडी' बनाकर गाने में भी यह सिद्धहस्त है परंतु संगीत-ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण अपने क्रिया-कलापों से जनता के उपहास का पात्र बनता है किंतु इसकी उसे कोई चिंता नहीं। अपने धन-बल से ही नाट्य-मंडली के सदस्यों को एकत्र किए रहता है जिनकी दृष्टि केवल इसकी धन-संपत्ति पर केंद्रित है। अपने असंगत व्यवहार तथा संवादों के द्वारा हास्य की मनोहारी स्थिति उत्पन्न करने में यह पूर्णरूपेण सक्षम रहा है।

वाळिंबे, रा० शं० (म० ले०)

ये आधुनिक काल के सुप्रसिद्ध आलोचक हैं। इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विस्तृत अध्ययन किया है। इन्होंने 1925-1950 ई० तक पश्चिम में प्रचलित विभिन्न साहित्य-धाराओं का विस्तृत परिचय अँग्रेज़ी उद्धरणों के साथ कराया है। 'साहित्यचा ध्रुवतारा', 'वाङ्‌मयीन टीका-शास्त्र आणि पद्धति', 'साहित्यांतील संप्रदाय' आदि आलोचनात्मक ग्रंथों में पाश्चात्य साहित्य-मूल्यों के आधार पर आधुनिक मराठी-काव्य का परीक्षण कैसे किया जाए, यह बताया गया है। इनका मत है कि मराठी का अपना काव्यशास्त्र नहीं है, अतः स्वभावतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह संस्कृत अथवा अँग्रेज़ी काव्यशास्त्र पर निर्भर करता है। चूँकि आधुनिक साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव है अतः आधुनिक मराठी-साहित्य का परीक्षण पश्चिमी साहित्य के मानदंडों के आधार पर करना समीचीन होगा।

'बालकवि' नामक इनके आलोचनात्मक ग्रंथ का साहित्य-जगत में स्वागत हुआ है। ये कविता में कवि के व्यक्तित्व का शोध करते हैं; फिर कवि के व्यक्तित्व के प्रकाश में उसके काव्य-सौंदर्य का उद्घाटन करते हैं। इनके अनुसार स्वानुभूतिपरक कविता का मर्म जानने में रचनाकार के निजी जीवन का परिचय प्राप्त करने से लाभ होगा।

ये 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के समर्थक हैं। अँग्रेज़ी-साहित्य के कई पारिभाषिक शब्दों के मराठी-पर्याय भी इन्होंने सुझाये हैं।

वाल्मीकि *(सं० ले०)* [समय—500 ई० पू०]

'रामायण' (दे०) हमारा आदि काव्य है और वाल्मीकि आदिकवि। 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्' के द्वारा ही भारतीय काव्य का उदय माना जाता है। वाल्मीकि तथा 'रामायण' के रचना-काल के विषय में विद्वानों में बहुत विवाद है। कुछ लोग उसका रचना-काल 'महाभारत' (दे०) के बाद बताते हैं। कुछ के अनुसार यह 'पाणिनि' (दे०) के बाद लिखी गई। याकोबी के अनुसार 'रामायण' की रचना ईसा से 800-600 वर्ष पूर्व हुई होगी। भारतीय परंपरा के अनुसार वाल्मीकि राम के समकालीन थे तथा उसी समय 'रामायण' की रचना हुई।

क्रौंच पक्षी के जोड़े में से बहेलिये द्वारा नर का वध वाल्मीकि न देख सके और उसके कारण उत्पन्न शोक से श्लोक का जन्म हो गया। वाल्मीकि का हृदय स्वतः राम के पावन चरित्र की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसे ही अपने काव्य का उपजीव्य बनाया। उनके वर्णन में सहज प्रवाह है तथा भाषा में सरलता। अलंकारों का इन्होंने जहाँ कहीं प्रयोग किया है वहाँ रस की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। वे अलंकारों का प्रयोग बड़ी चतुराई से करते हैं। मूर्त पदार्थ के लिए अमूर्त वस्तु का उपमान प्रस्तुत करने में वाल्मीकि बड़े निपुण हैं। बाह्य प्रकृति का वर्णन 'रामायण' में बहुत सुंदर बन पड़ा है। उनके प्राकृतिक वर्णन में सर्वत्र बिंब-ग्रहण का प्राधान्य है।

वाल्मीकि ने 'रामायण' में कुछ ऐसी मर्यादाएँ एवं आदर्श प्रस्तुत किये हैं जो समाज के लिए सदा अनुकरणीय हैं। राम का चरित्र उसका स्वयं एक निदर्शन है। अन्य चरित्र भी हमारे सामने कोई-न-कोई आदर्श लेकर आते हैं।

वाल्मीकि समूचे कवि-समाज के लिए उपजीव्य हैं। कालिदास (दे०) तथा भवभूति (दे०) पर तो इनका इतना अधिक प्रभाव है कि इनको हम तभी समझ सकते हैं जब वाल्मीकि को भली भाँति समझ लें। काव्य के अतिरिक्त वाल्मीकि ने हमको रामकथा का रिक्थ दिया जो भारत के कोने-कोने में फैल गया। इस कथा ने भारतीय समाज को जीने का संबल दिया है।

वासवदत्ता *(सं० पा०)*

भास (दे०) के भास्वर पात्रों में एक विशिष्ट पात्र वासवदत्ता भी है जिसके चरित्र के अनेक चित्रण उपलब्ध होते हैं। भास के 'प्रतिज्ञा-यौगंधरायण' एवं 'स्वप्न-वासवदत्तम्' में वासवदत्ता साक्षात् या परोक्ष रूप से चित्रित हुई है। श्रीहर्ष की 'रत्नावली' तथा सोमदेव सूरि के 'कथा-सरित्सागर' में भी वही वासवदत्ता चित्रित है।

वासवदत्ता अवंती के प्रचंड राजा प्रद्योत की पुत्री थी। रूप एवं गुणों में अद्वितीय वह कुमारी के रूप में अनिंद्य सुंदरी है। पिता के कारागार में अवस्थित वत्सराज उदयन (दे०) से वीणा सीखने जाती है और उसके रूप एवं गुणों पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लगती है। अंततः वह उसे कारागार से छुड़ाने में सहायक होती है और स्वयं भी उसकी पत्नी बनकर चली जाती है।

बाद में वासवदत्ता के प्रेम की परीक्षा का अवसर आता है। उदयन का दूसरा विवाह हो जाने पर भी वह विचलित नहीं होती, अपने को सँभाल लेती है। कालिदास (दे०) की उक्ति 'प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने' (अभिज्ञानशांकुतलम्) की चरितार्थता वासवदत्ता में पूर्ण रूप से हुई है। अंत में प्रद्योत एवं उसकी माता उसके प्रेम-विवाह को मान्यता दे देते हैं। वासवदत्ता एक प्रिय पुत्री, परम प्रेमिका, विश्वसनीय मित्र तथा आदर्श पतिपरायणा पत्नी है।

वासिष्ठ रामायणमु (ते० कृ०) [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक मर्डिकि सिंगना हैं। इनके अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ हैं—'पद्मपुराणमु', 'भागवत दशमस्कंधमु' और 'सकल-नीतिसम्मतमु'। एक बार रामचंद्र संसार को अनित्य तथा सुखरहित मानकर बहुत उदास हुए। उस समय गुरु वशिष्ठ ने उन्हें तत्त्व का उपदेश दिया। यही कथा संस्कृत में 'वासिष्ठ रामायणमु' के नाम से प्रसिद्ध है। सिंगना ने पाँच आश्वासों के इस ग्रंथ में इसका तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं अनुवाद संक्षिप्त है। तत्त्व-संबंधी नीरस विषय भी इस रचना में सरस ढंग से प्रतिपादित किया गया है। लेखक का कहना है कि छोटे-से झरने में हाथी के प्रतिबिंब की तरह इस छोटे-से ग्रंथ में सभी शास्त्रों का सार देखा जा सकता है।

वासुदेवन् नायर, एम० टी० *(मल० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

नयी पीढ़ी के मूर्धन्य उपन्यासकार आजकल मलयाळम के लोकप्रिय साप्ताहिक 'मातृभूमि' के संपादक हैं। इनका उपन्यास 'कालम्' केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। 'नालुकेट्टु' (दे०), 'असुर-वित्तु' (दे०), 'मंजु' आदि अन्य प्रसिद्ध उपन्यास हैं और 'अरबिप्पोन्नु' (दे०) लेखक और एन० पी० मुहम्मद का संयुक्त प्रयास है। 'ओळवुम् तीरवुम्', 'कुट्येटत्ती' 'इरुटिंटंटे आत्मावु' आदि कहानी-संग्रह हैं। दो साहित्यिक निबंध-संग्रह और दो यात्रा-विवरण भी प्रकाशित हुए हैं। इनकी विभिन्न कहानियों और उपन्यासों का फ़िल्मीकरण हुआ है। इन फ़िल्मों को विभिन्न पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। इनमें 'निर्माल्यम्' को राष्ट्रपति-स्वर्णपदक प्राप्त है।

वासुदेवन् नायर के सामाजिक उपन्यासों में आर्थिक और सांस्कृतिक अधःपतन से श्लथ-विश्लथ परिवारों की दारुण कथा है। इनकी कृतियाँ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं में गहरी उतरती हैं। 'इरुटिंटंटे आत्मावु' जैसी कहानियाँ इनके मनोवैज्ञानिक अंतर्दर्शन के प्रमाण हैं। पात्र-सृष्टि में और आख्यान-शिल्प में वासुदेवन् नायर की कुशलता सर्वतोस्वीकृत है। मलयाळम कथा-साहित्य के उत्कर्ष में जिन लेखकों का योगदान है उनमें एम० टी० वासुदेवन् नायर प्रमुख हैं।

वास्वाणी, थांवरदास लीलाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

ये साधु वास्वाणी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। बचपन से ही इनकी विलक्षण प्रतिभा और असाधारण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने लगी थी। कॉलेज में अध्यापन कार्य के साथ-साथ इन्होंने समाज-सेवा को भी अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। 1933 ई० में इन्होंने हैदराबाद (सिंध) में 'सेंट मीरा हाईस्कूल' का आरंभ किया था जो विभाजन के पश्चात् पूना में चल रहा है। पूना में इनकी संस्था के द्वारा सेंट मीरा कॉलेज का भी आरंभ किया गया है। धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर सिंधी में इनकी लगभग 300 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'नूरी ग्रंथ' नाम से इनकी पद्यात्मक रचनाओं का बृहत् संकलन भी प्रकाशित हो चुका है। गद्य तथा पद्य में इनकी शैली निराली है।

वास्वाणी, हरीश *(सिं० ले०)*

हरीश वास्वाणी आदिपुर (कच्छ) में तोलाणी कॉलेज में प्राध्यापक हैं। इन्होंने लगभग 1960 ई० से सिंधी-साहित्य में प्रवेश किया है, परंतु शीघ्र ही इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग देने में सफल हुए हैं। इन्होंने लगभग बीस कहानियाँ और सौ से अधिक कविताएँ लिखी हैं, जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। सिंधी-साहित्य की भिन्न-भिन्न रचनाओं पर इनके अलोचनात्मक निबंध सिंधी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्होंने नयी कहानी और नयी कविता के क्षेत्र में भी सफल रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। आधुनिक सिंधी-साहित्य में इन्होंने कवि, कहानीकार और आलोचक के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त की है।

वाहै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) नामक काव्य-विभाग का वह उपविभाग है, जो 'तुंपै' के पश्चात् आता है। इसका समानांतर 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) उपभेद 'पालै' है। राजाओं द्वारा रणक्षेत्र से शत्रु-निरसन करना तथा विजय के उपलक्ष्य में 'वाहै' फूल पहनना इस उपभेद का एक महत्वपूर्ण प्रकरण है। केवल रणक्षेत्र ही में नहीं बल्कि कर्तव्य-पालन में भी विजय-प्राप्ति की विलक्षण व्यवस्था 'तोलकाप्पियम्' (दे०) में द्रष्टव्य है। समाज के विभिन्न वर्गों तथा योगी एवं तपस्वी लोगों द्वारा अपने-अपने धर्म का कुशल पालन भी 'विजय' की कोटि में रखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। 'तोलकाप्पियम्' के 'पुरत्तिणै इयल्' नामक परिच्छेद के 15 एवं 16 संख्यक सूत्रों में ब्राह्मण, राजा, वणिक एवं कृषक, योगी, तपस्वी, नर्तक-गायक, तथा शेष संकर जातियाँ—इन सात भेदों के लोगों की अपनी-अपनी 'विजय' के अनुसार 'वाहै' के सात किये गये हैं और फिर इन सातों भागों से संवंधित अट्ठारह सामान्य प्रकरणों की सूची दी गई है। इनमें से दो प्रसिद्ध प्रकरण 'पाच.रै' (युद्ध-शिविर) तथा 'कळवळि' (शुद्ध-क्षेत्र पर प्राप्त शत्रु-संपत्तियों के वितरण पर विजयी राजा का यशोगान) है। इनसे संबंधित दो बृहत् गीत 'नेटुनल वाटै' तथा 'कळवळि नार्पतु' हैं।

विंटरनिट्ज़ *(सं० ले०)*

एम० विंटरनिट्ज़ 'जर्मन यूनिवर्सिटी ऑफ़ प्राग' (चैकोस्लोवाकिया) में प्राच्यविद्या और नृवंशविज्ञान विभाग में प्रोफ़ेसर पद पर कार्य करते रहे। इन्होंने तीन खंडों में 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' जर्मन भाषा में लिखा था, जिसका अँग्रेज़ी में अनुवाद भंडारकर रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना में मराठी-विश्वकोश के संपादक डॉ० एस० वी० केतकर की धर्मपत्नी (जिनकी मातृभाषा जर्मन थी) ने किया था। इस वृहद् इतिहास में निम्नोक्त विषयों का विवेचन है—प्रथम भाग में वैदिक साहित्य और 'रामायण', 'महाभारत' तथा 'पुराण' का, द्वितीय भाग में जैन धर्म और बौद्ध धर्म का तथा तृतीय भाग में अलंकृत काव्य का।

विंदन *(त० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका मूल नाम वी० गोविंदन है। इनका जन्म तमिलनाडु की राजधानी मद्रास में हुआ। स्वतंत्रता के बाद तमिल-साहित्य को समृद्ध करने वाले साहित्यकारों में विंदन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये तमिल के प्रसिद्ध कथाकारों में से हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'मुल्लक्कोडियाळ्', 'ओरेउरिमै', 'विंदन कदैहळ्', 'समुदाय विरोधीहळ्' (कहानी); पालुम पावैयुम' (दे०), 'कण् तिरवकुमा' (उपन्यास)।

विंदन ने तमिल की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'कल्कि' के उपसंपादक के रूप में अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ किया। वहाँ से निकलकर इन्होंने 'मनिदन' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका का संपादन किया। कुछ समय तक तमिल-चलचित्रों से संबद्ध रहे। इन्होंने चलचित्रों के लिए संवाद और गीत लिखे हैं। विंदन सामाजिक विषयों को लेकर कहानी लिखने वालों में प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में निम्नमध्य वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के जीवन का सजीव चित्रण है। ये लोग समाज में क्रांति लाना चाहते हैं परंतु ऐसा नहीं कर पाते। उनकी दयनीय स्थिति पाठकों के हृदय में उनके प्रति सहानुभूति जगाती है।

विंदन ने अपनी कहानियों में मार्क्सवादी सिद्धांतों का सफल प्रतिपादन किया है। अर्थ को ही सभी समस्याओं का मूल मानते हुए आर्थिक वैषम्य के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है। विंदन ने प्रायः चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। इन चरित्रों का युगीन समाज से घनिष्ठ संबंध है। कथ्य की सत्यता इनकी रचनाओं की शक्ति है। विंदन स्वयं श्रमिकों एवं निर्धनों के मध्य रहे, अतः उनके जीवन का चित्रण करने में इन्हें विशेष सफलता मिली। इनकी रचनाओं में आधुनिक समाज का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। अपनी रचनाओं द्वारा विंदन ने मनुष्य के सोये हुए आत्म-गौरव को जगाने का सफल प्रयास किया है। इनमें खोखली सभ्यता और झूठे प्रेम का उपहास किया गया है। उपन्यासों एवं कहानियों में शिष्ट हास्य एवं तीक्ष्ण व्यंग्य की प्रधानता है। इनकी कहानियों में निंदा-स्तुति अलंकार का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इनमें कलात्मकता कम है किंतु चरित्रों की सजीवता, प्रभावशालिता, विचारों की गंभीरता के कारण इनका तमिल कहानी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

तमिल के सामाजिक कथाकारों में विंदन का विशिष्ट स्थान है। ये तमिल के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने साम्यवादी दल से संबंध न रखते हुए भी अपनी रचनाओं में मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया है।

विकारविलसित *(म० कृ०)*

यह रचना प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के 'हेम्लेट' का मराठी भाषांतर है। भाषांतरकार हैं—गोपाल गणेश आगरकर (दे०)। मराठी के युग-प्रवर्तक साहित्यकार आगरकर ने इसकी उद्बोधक प्रस्तावना भी लिखी है, जिसमें अनुवाद की कठिनाइयों की चर्चा है। इनके मत से नाटक में 'पात्रों के अनुरूप उत्कृष्ट-निकृष्ट भाषा का प्रयोग लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक करता है। इस प्रस्तावना के उत्तरार्द्ध में मूल 'हेम्लेट' नाटक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण-दोषों का भी विस्तार से विवेचन किया गया है। इस अनूदित नाटक में भाषागत लालित्य और सौंदर्य का अभाव है, फिर भी शेक्सपियर की मूलभूत कल्पनाओं की मराठी भाषा में अवतारणा करने में यह सफल हुआ है।

विक्रमांकदेवचरितम् *(सं० कृ०)* [समय—1085 ई० के आसपास]

विल्हण (दे०)-कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' संस्कृत-साहित्य की प्रसिद्ध काव्यकृति है। इसकी रचना विल्हण ने चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य षष्ठ के राज्य-काल में उन्हीं की महिमा का बखान करने के लिए दक्षिण के कल्याण नामक नगर में की।

18 सर्गों के इस महाकाव्य में आदवमल्ल की मृत्यु, राजकुमारी, चंद्रलेखा के साथ विक्रमादित्य का परिणय, चोलों की पराजय तथा विक्रमादित्य के जीवन की अन्य घटनाओं का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ की प्रायः सभी घटनाओं की पुष्टि चालुक्य राजाओं के शिलालेखों से हो जाती है, पर ऐतिहासिक घटनाओं को काव्योचित बनाने के लिए विल्हण इसमें पद्य-स्थान-परिवर्तन कर लेते हैं।

इस काव्य में विल्हण ने दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति तथा तत्कालीन भारतीय समाज का बड़ा ही सुंदर चित्रण किया है। विल्हण यायावर थे। इसका परिचय उनके काव्य में पदे-पदे मिलता है। कवित्व की दृष्टि से भी यह अत्यंत प्रौढ़ रचना है। यद्यपि वीर इसका प्रधान रस है परंतु शृंगार तथा करुण का पुट भी कम मनोरंजक नहीं है। विल्हण के काव्य में कुछ विलक्षण प्रौढ़ि है जिससे विदग्ध हृदय सदा से इनकी कविता पर रीझता आया है। 'राजतरंगिणीकार' कल्हण (दे०) इस काव्य से पर्याप्त प्रभावित प्रतीत होते हैं।

विक्रमार्कचरित्रमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवीं-पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक जक्कना (दे०) हैं। ये उत्तम कवि तथा विद्वान् थे और 'अवधान विद्या' में भी निपुण थे। राजा विक्रमार्क के शौर्य, औदार्य आदि से संबद्ध अत्यंत लोकप्रिय कहानियों को इन्होंने उक्त काव्य में निबद्ध किया है। यह आठ आश्वासों में लिखा गया है। वर्णन-पद्धति रोचक है। इसमें दक्षिण के श्रीशैल तथा कुछ अन्य क्षेत्रों के वर्णन भी हैं। शैली प्रौढ़ तथा आलंकारिक है।

विक्रमार्जुनविजय अथवा पंपभारत *(क० कृ०)* [रचना-काल—941 ई०]

कन्नड के आदि महाकवि पंप (दे०) की रचना 'विक्रमार्जुनविजय' कन्नड का एक कृतिरत्न है। महर्षि व्यास (दे०) के 'महाभारत' (दे०) के आधार पर लौकिक काव्य के रूप में पंप ने अपने आश्रय-दाता नरेश अरिकेसरी की कथा का संगुंफन करते हुए इस काव्य की रचना की है। पंप द्वारा रचित 'महाभारत' होने के कारण यह 'पंपभारत' भी कहलाता है। पंप जैन थे; उनका उद्देश्य महर्षि व्यास के उद्देश्यों से भिन्न था। तदनुसार उन्होंने कथानक में जो मुख्य परिवर्तन किये हैं, वे इस प्रकार हैं—(1) उन्होंने पांडव तथा कौरवों की कथा का आद्योपांत वर्णन किया है, 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसे प्रसंग इसमें नहीं हैं। (2) द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी नहीं है, अर्जुन की धर्मपत्नी है। (3) अर्जुन संन्यासी-वेश में सुभद्रा का अपहरण नहीं करता। अर्जुन-सुभद्रा परस्पर अनुराग में बद्ध रहते हैं, श्रीकृष्ण की सहायता से इंद्रप्रस्थ चले जाते हैं। बलराम को यह ज्ञात नहीं होता। (4) शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण को अर्घ्य में दी गई थाली से होता है, चक्र से नहीं। (5) भीष्म से जल-मंत्रोपदेश ग्रहण कर दुर्योधन के वैशंपायन सरोवर में छिपने का वर्णन है। (6) अंत में युधिष्ठिर और द्रौपदी का राज्याभिषेक नहीं होता, अर्जुन और सुभद्रा का राज्याभिषेक होता है। इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण कथानक में जहाँ नवीनता का प्रकाश दिखाई पड़ता है वहीं कवि की कठिनाई भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने जान-बूझकर ही ऐसा परिवर्तन किया है। वे हित-मित-वचन-रचना-चतुर हैं। "कथा के प्रवाह में कोई बाधा न पहुँचाकर समस्त 'भारत' की कथा को संक्षेप में कहना" उनका उद्देश्य था। इस उद्देश्य में उन्हें सफलता मिली है। यह ध्यान देने की बात है कि 'समस्त भारत' का अर्थ अट्ठारह पर्वों का भारत नहीं है, उन्होंने कथानायक अर्जुन के राज्याभिषेक तक की कथा को ही 'समस्त भारत' माना।

'पंपभारत' की यह विशेषता है कि उसमें नायक अर्जुन (दे०) के चरित्र का जितना उत्कर्ष दिखाया गया है उतना ही उत्कर्ष प्रतिनायक कर्ण (दे०) का भी दिखाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। पंप के कर्ण के कारण ही 'भारत', 'कर्णरसायन' हो गया है। कर्ण की सचाई, कर्ण का त्याग और कर्ण की वीरता अन्यत्र कहाँ ? (12-217) दुर्योधन के पात्र-चित्रण में भी पंप ने उदार हृदय का परिचय दिया है।

'पंपभारत' की भाषा-शैली अत्यंत प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। उसके कवि में बिंदु में सिंधु भरने की शक्ति है। जागरूक पाठक कवि के वाग्वैदग्ध्य को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाता है।

विक्रमोर्वशीयम् *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः प्रथम शती ई० पू०]

यह कालिदास (दे०) का दूसरा नाटक है। इस समय तक कवि की प्रतिभा काफ़ी विकसित हो चुकी थी और उसके व्यक्तित्व में प्रौढ़ता आ चुकी थी। अतः इसमें उसके रचना-कौशल तथा नाट्यकला का निखरा हुआ स्वरूप दृष्टिगत होता है।

इसमें कवि ने 'ऋग्वेद' (दे० वेद, संहिता) तथा 'शतपथ ब्राह्मण' (दे० ब्राह्मण) में निर्दिष्ट पुरूरवा और उर्वशी के प्रेमाख्यान को बड़ी सफलतापूर्वक निबद्ध किया है। पुरूरवा नितांत उपकारपरायण राजा है। वह राक्षस से उर्वशी का उद्धार कराता है। उर्वशी उसके शौर्य तथा गुणों पर रीझ कर कुछ शर्तों के साथ उसकी रानी बनना स्वीकार कर लेती है। बाद में उर्वशी के वियोग में पुरूरवा पागलों जैसा जंगल में मारा-मारा फिरता है। इसमें कवि ने पुरूरवा के उद्दाम प्रेम का चित्रण बड़ी मार्मिकता से किया है। इसकी भाषा प्रसाद-गुण-युक्त और अलंकृत है तथा संभोग तथा विप्रलंभ दोनों श्रृंगारों का बड़ा सफल परिपोष हुआ है। इस नाटक में कालिदास की नाट्यप्रतिभा की अपेक्षा उनकी काव्य-प्रतिभा अधिक प्रधान रही है।

विगडविक्रमराय *(क० पा०)*

'संस' कवि के 'विगडविक्रमराय' नाटक का प्रधान पात्र है विगडविक्रमराय। 'विगड' 'विकृत' शब्द का रूपांतर है। मानवता के मार्दव से रहित होने और स्वामिद्रोही होने के कारण यह विगड अर्थात् विकृत पात्र है। विक्रमराय मैसूर के महाराजा द्वितीय राजओडेयर का महाबलाधिकृत है। उसमें अधिकार-दर्प है, वह चाहता है कि सब लोग उसकी आज्ञा के अनुसार चलें। उसमें विरोधी गुणों की प्रतिष्ठा कर लेखक ने बड़ी मार्मिकता के साथ उसकी चित्तवृत्ति का विश्लेषण किया है। उसके जीवन में भयंकर काले बादल मँडराते हैं जिनके बीच में क्षण भर के लिए चमकने वाली बिजली दानवता में उसकी मानवता की साक्षी है। उसकी असहनशीलता का पर्यवसान महारोष में—हत्या में—ही होता है। उसके सामने कोई भी बाधा उपस्थित हो जाये, वह उसे हटाने का दृढ़ निश्चय कर लेता है, यह उसका स्वभाव है। उसके निष्ठुर हृदय और आत्मकाठिन्य के चित्रण में लेखक को पूरी सफलता मिली है। नाटक में उसके प्राधान्य को देखकर यह भ्रम हो सकता है कि वही नाटक का नायक है—उद्धत नायक। परंतु, विचार करने पर स्पष्ट होगा कि वह नायक नहीं है, प्रतिनायक है। प्रतिनायक के नाम से ही नाटक का नामकरण हुआ है।

विजयदास *(क० ले०)*

भक्तश्रेष्ठ पुरंदरदास (दे०) जी की परंपरा में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म रायचूर ज़िले में चीकल परिवि ग्राम में शक वर्ष 1604 रुधिरोद्गारी संवत्सर में हुआ था। दरिद्र परिवार में उत्पन्न होने के कारण इन्होंने जीवन में बहुत दुःख सहे। परंतु भगवान की कृपा से विद्यापारंगत ही नहीं, साधक और भक्त हुए। इन्होंने तीन बार काशी की यात्रा की थी। दूसरी बार की यात्रा के समय स्वप्न में इन्हें पुरंदरदास जी के दर्शन हुए थे और उनसे दीक्षित होकर दासकूट अर्थात् भक्तों की मंडली में सम्मिलित हुए थे। इन्होंने अपने इष्टदेव विट्ठल की महिमा और महानता का प्रचार करते हुए भारत में सर्वत्र भक्ति की तरंगें तरंगायित की थीं। इन्होंने पदों के अतिरिक्त 'सुळादि' छंद में भी रचना की है। कन्नड-साहित्य में इनके 'सुळादि' का निश्चित रूप से विशिष्ट स्थान है। इनके पदों में 'विजय विट्ठल' की छाप मिलती है। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का प्रतिपादन इनके पदों की विशेषता है।

विजयन्, ओ० वी० *(मल० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

श्री विजयन् मलयाळम के प्रतिभाशाली उपन्यासकार और कहानीकार हैं। वे राजधानी के सुप्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार और पत्रकार भी हैं।

इनका बहुचर्चित उपन्यास 'खसाक्किटे इति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासम्' कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत है। इसमें उत्तर केरल के एक गाँव के स्त्री-पुरुषों की बहुरंगी कहानी और उस जीवन में घुल-मिल जाने वाले एक पुरुष-नागरिक का सुंदर चित्रण है। इसकी आख्यान-शैली नूतन है और पात्रों के चरित्रों का विकास स्वाभाविक। विजयन की कहानियाँ परंपरागत कथाकथन-शैली के लिए चुनौती हैं।

आधुनिक कथा-साहित्य में एक नवीन धारा के प्रवर्तक के रूप में विजयन् का स्थान महत्वपूर्ण है।

विजयपाल रासो *(हिं० ले०)*

इस प्रबंधकाव्य का रचयिता नल्हसिंह भाट है। विजयपाल 1050 ई० के आसपास विजयगढ़ (करौली) के यदुवंशी शासक थे। नल्हसिंह इन्हीं के आश्रित कवि थे। उक्त रचना पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं है, उसके केवल 42 छंद प्राप्त हैं जिनमें विजयपाल के युद्धों का ओजस्वी भाषा में वर्णन किया गया है। काव्यत्व की दृष्टि से यह साधारण कोटि की रचना है। मिश्रबंधुओं (दे०) ने इसका रचना-काल 1298 ई० बताया है, किंतु डा० माताप्रसाद के कथनानुसार भाषा की दृष्टि से यह रचना सोलहवीं-सत्रहवीं शती ई० से पूर्व की नहीं हो सकती।

वैद्य विजयराय *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

विजयराय कल्याणराय वैद्य सौराष्ट्र के नागर हैं। बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् ये बंबई जाकर कन्हैयालाल मुंशी (दे०) की साहित्य-संसद् में सम्मिलित हुए और 'गुजरात' के संपादक-मंडल के सदस्य बने। फिर क्रमशः 'कौमुदी' और 'मानसी' के संपादक बने। ये त्रैमासिक पत्रिकाएँ गुजराती की उत्कृष्ट कोटि की साहित्यिक पत्रिकाएँ रही हैं। विजयराज के जीवन का अधिकांश समय सूरत के एम० टी० बी० कालेज में गुजराती अध्यापन में बीता। पिछले कुछ वर्षों से निवृत्त होकर ये भावनगर में विवेचनात्मक एवं चिंतनात्मक साहित्य के अनुशीलन-प्रणयन में संलग्न हैं।

विजयराय समीक्षक और इतिहास-लेखक हैं। अत्यंत गहन-गंभीर अध्ययन के पश्चात् उन्होंने 'गुजराती साहित्यनी रूपरेखा' नामक विद्वत्तापूर्ण इतिहास लिखा है जो साहित्य के उत्कृष्ट इतिहास के रूप में सर्वमान्य है। 'साहित्य-दर्शन' और 'जूई अने केतकी' समीक्षा-ग्रंथ हैं। विजयराय गुजराती के चोटी के आलोचकों में हैं जिनके पास विस्तृत अध्ययन, सुरुचि, सूक्ष्म चिंतन और रसलक्षी दृष्टि है। वे निर्भीक, स्पष्टवादी और तटस्थ विचारक हैं। 'लीला सूकांपान', 'शुक्र तारक', 'ऋग्वेद कालनी संस्कृति' वगैरह पुस्तकों में विजयराय की अनुसंधान-अनुशीलन की शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

विजयविलासमु *(ते० कृ०)*

यह चेमकूर वेंकटकवि (दे०) की रचना है। वेंकटकवि 1600 ई० से 1633 ई० तक तंजौर पर शासन करने वाले रघुनाथ नायक की सभा में थे।

चमत्कार से युक्त प्रत्येक पद्य वाले इस काव्य में प्रतिज्ञापालन के लिए देश-भ्रमण करने वाले विजय (अर्जुन) का उलूची, चित्रांगदा और सुभद्रा के साथ विवाह वर्णित हैं। तीनों नायिकाओं के प्रसंग में कवि ने अद्‌भुत चातुरी का प्रदर्शन किया है। पाताल-लोक की कन्या, देवलोक की कन्या और मर्त्यलोक की कन्या के शृंगार के वर्णन में कवि ने अद्वितीय कौशल दरशाया है।

वेंकटकवि उपमा, श्लेष और लोकोक्तियों के प्रयोग-कौशल में अतिप्रतिभा-संपन्न कवि थे। अर्थगौरव के साथ रस-योजना में भी कुशल थे। कथा-संयोजन, वर्णन-कौशल तथा शब्द-चमत्कार के कारण दक्षिणांध्र-युग में (रीतिकाल के समकक्ष) वेंकटकवि का विशिष्ट स्थान है।

विज्ञानभिक्षु *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600 ई०]

अनेक विद्वानों का कथन है कि वर्तमान 'सांख्य-सूत्र' और 'सांख्यप्रवचन-भाष्य'—ये दोनों विज्ञान-भिक्षु द्वारा रचित हैं। इसके अतिरिक्त 'योगवार्त्तिक', 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) पर 'विज्ञानामृतभाष्य', 'सांख्यसार' एवं 'योगसार' आदि इनके अनेक ग्रंथ हैं।

विज्ञानभिक्षु एक स्वतंत्र मत के विद्वान् थे। इन्होंने अपनी दार्शनिक प्रतिभा से सांख्य एवं वेदांत का समन्वय स्थापित किया था। इसीलिए इनके सिद्धांतों में सांख्य एवं वेदांत के सिद्धांतों का मिश्रण मिलता है। विज्ञानभिक्षु मुक्तावस्था में दुःख का अंत न मानकर दुःखानुभूति का अंत मानते थे। मुक्तावस्था की आनंद-रूपता के विषय में इनका कहना था कि आनंद दुःख-निवृत्ति का ही नाम है। विज्ञानभिक्षु के मतानुसार ब्रह्म, जिसमें मूलरूप से पुरुष एवं प्रकृति अद्वैत भाव से वर्तमान हैं, जगत् का कारण है। इस प्रकार विज्ञानभिक्षु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतानुसार ब्रह्म उपादान कारण एवं अधिष्ठान दोनों हैं।

समन्वयवादिता की दृष्टि से विज्ञानभिक्षु का दार्शनिक सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्होंने ब्रह्म में पुरुष एवं प्रकृति की शक्ति को मानकर कार्यकारणवाद का सरल एवं मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

विज्ञानेश्वरीयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई०]

इसके लेखक मूलघटिक केतना (दे०) हैं। ये तिक्कना के समसामयिक थे। यह धर्मशास्त्र से संबद्ध ग्रंथ है। याज्ञवल्क्य ने आचार-कांड, प्रायश्चित-कांड तथा व्यवहार-कांड में विभक्त एक स्मृति-ग्रंथ लिखा था जिसकी विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरी नामक व्याख्या की थी। उक्त ग्रंथ का व्याख्या-सहित तेलुगु-अनुवाद ही 'विज्ञानेश्वरीयमु' है। यह तेलुगु में अनूदित धर्मशास्त्र संबंधी पहली रचना है।

विट्ठल *(म० ले०)* [जन्म—1628 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

'वीड' के निकटस्थ गौरीपुर ग्राम के निवासी इस कवि का पूरा नाम था विट्ठल अनंत क्षीरसागर। पंढरपुर के 'विट्ठल' इनके कुल-देवता थे। इन्होंने संस्कृत-काव्यशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था। इनकी रचनाएँ हैं—'रुक्मिणीविलास', 'सीतास्वयंवर', 'विद्वज्जीवन', 'पांचाली-स्तवन', 'द्रौपदीवस्त्रहरण', 'रसमंजरी' और 'विल्हणचरित्र'। 'सौंदर्यलहरी' और 'रसमंजरी' इनके भाषांतरित काव्य हैं। चित्रकाव्य-रचना-चातुर्य छंदःशास्त्र-नैपुण्य का इनकी रचनाओं में सम्यक् प्रदर्शन है।

विडंबन (पैरोडी) *(पारि०)*

ऐसी नवीन रचना को विडंबन (पैरोडी) कहा जाता है जो शैली, भाव अथवा चरित्रांकन-शैली आदि के यथावत् अनुकरण द्वारा हास्य-व्यंग्य की सृष्टि अथवा इनके माध्यम से गंभीरतर मर्म-कथन के उद्देश्य से लिखी गई हो। इसका मूल उद्देश्य सर्वत्र आलोचना अथवा टीका-टिप्पणी करना ही होता है जिसमें उसके रचयिता की कल्पना और सृजन-शक्ति का निश्चय ही योग रहता है।

'पैरोडी' के रूप और माध्यम के क्षेत्र अनंत हैं। वह एक छोटी कविता से लेकर संपूर्ण महाकाव्य और उपन्यास तक की, मूल लेखक की रचना-शैली से लेकर उसके जीवन-दर्शन तक की तथा इससे भी अधिक व्यापक आयाम में पूरे-के-पूरे युगीन परिदृश्य की हो सकती है। इस प्रकार 'पैरोडी' मूल कृति के बाह्य रूपाकार के प्रति निष्ठावान रहते हुए उसके अंतर्तत्त्व के साथ खिलवाड़ करती है, जिससे छिछले व्यक्तिगत हास्य से लेकर गंभीरतम विद्रूप की निष्पत्ति हो सकती है।

'पैरोडी' मूलतः पाश्चात्य साहित्य-विधा है जिसके इतिहास का आरंभ विद्वानों ने होमर और अरिस्तोफ्लेस से माना है। यों अरस्तू के अनुसार हैगमन ('बैटल ऑफ़ द जायन्ट्स'—पांचवीं शती ई० पू०) प्रथम पैरोडीकार हैं। पश्चिम के अन्य अत्यंत उल्लेखनीय पैरोडी-लेखकों में बकिंघम, फ़ील्डिंग, ए० सी० हिल्टन, जेम्स ऑस्टिन, एंड्र्यू लैंग का नाम लिया जाता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी 'पैरोडी' की विधा अत्यंत लोकप्रिय है।

विदूषक *(सं० पारि०)*

यह नायक का सहायक होता है। इसका नाम किसी फूल अथवा वसंत आदि पर होता है, और यह अपनी क्रिया, देह, वेश, भाषा आदि से हँसाने वाला होता है। यह दूसरों को लड़ाने में प्रसन्न रहता है और अपने खाने-पीने की बात को कभी नहीं भूलता।

विदेशी (शब्द) *(हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में बाँटा जाता है: तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। 'विदेशी' का अर्थ है वे शब्द जो देश के बाहर की भाषाओं से आए हों। जैसे हिंदी में पश्तो, तुर्की, फ़ारसी, पुर्तगाली, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं से शब्द आए हैं। अब 'विदेशी' शब्द का अर्थ 'दूसरे देश का शब्द' न लेकर भाषाशास्त्री प्रायः किसी भी अन्य भाषा से आया हुआ शब्द लेने लगे हैं। अर्थात् वह अँग्रेज़ी 'फ़ॉरेन' का समानार्थी है। इसीलिए कुछ लोग 'विदेशी' शब्द के स्थान पर ऐसे शब्दों को 'आगत शब्द' या 'गृहीत शब्द' कहना अधिक उचित समझते हैं। इस दृष्टि से हिंदी में लिये गए संस्कृत शब्द भी उतने ही विदेशी हैं, जितने तुर्की या अँग्रेज़ी आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या, चक्रवर्ती *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1300-1350 ई०]

श्री विद्या, चक्रवर्ती दक्षिण भारतीय लेखक थे। ये शैव-संप्रदाय के थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये वीर वल्लाल तृतीय (होयसल) के दरबार में थे। इनका समय चौदहवीं शती ई० का पूर्वार्ध है।

विद्याचक्रवर्ती ने मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) पर 'संप्रदायप्रकाशिनी' नामक एक टीका लिखी जिसे 'बृहती टीका' भी कहते हैं। इससे पूर्व इन्होंने 'काव्यप्रकाश' पर एक लघु टीका भी लिखी थी। इन्होंने रुय्यक (दे०) के 'अलंकारसर्वस्व' (दे०) पर भी 'संजीवनी' या 'अलंकार-संजीवनी' नामक एक टीका लिखी है। ये 'रस-मीमांसा' और 'भरतसंग्रह' के भी लेखक वताए जाते हैं।

विद्याधर *(सं० ले०)*

इनका समय तेरहवीं शती है। इन्होंने 'एकावली' (दे०) नामक एक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) के आधार पर लिखा। इस ग्रंथ के उदाहरण लेखक ने उत्कल के राजा नरसिंह की प्रशस्ति में लिखे हैं। इस ग्रंथ की टीका मल्लिनाथ (दे०) ने 'तरल' नाम से लिखी।

विद्यापति *(हिं० ले०)* [जन्म—1368 ई०; मृत्यु—1475 ई०]

विद्यापति कृष्णकाव्य के प्रारंभिक कवि हैं। ये संस्कृत के महान पंडित थे। इन्होंने अपनी अधिकांश रचनाएँ संस्कृत में ही लिखी हैं। इनके पदों का रूपांतर बँगला में भी पाया जाता है। विद्यापति शैव थे, अतः शिव-संबंधी जितने भी पद मिलते हैं वे भक्ति से ओतप्रोत हैं किंतु राधा-कृष्ण-संबंधी पद वासनापरक हैं। इस रूप में जयदेव (दे०) का इन पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।

विद्यापति का काव्य गीति-काव्य है। इनकी कविता में व्यक्तिगत विचार, भावोन्माद, आशा-निराशा अवाध रूप से बहे हैं। इनके काव्य में शृंगार रस की प्रचुरता है। इनकी 'पदावली' (दे० विद्यापति की पदावली) में भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का दिग्दर्शन सुंदर रीति से हुआ है। अब तक पदावली के तीन महत्वपूर्ण संस्करण प्रकाशित हुए हैं। बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा विद्यापति के पदों का अत्यधिक प्रचार हुआ था। इन्होंने संस्कृत के साथ-साथ अवहट्ट में भी ग्रंथ और अनेक पद लिखे हैं। 'कीर्तिलता' (दे०) और कीर्तिपताका इनके अवहट्ट के ग्रंथ हैं।

विद्यापति अपने समय के बहुत बड़े कवि एवं बहुज्ञ व्यक्ति थे। ये श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाण विद्या, समय विद्या और राज्य-सिद्धांत-त्रयी के विशेषज्ञ थे। कामशास्त्र और सामुद्रिक विद्या का भी इन्हें व्यापक ज्ञान था। निश्चय ही ये सौंदर्य के स्रष्टा थे और उसके उपभोक्ता भी। इस रूप में सौंदर्य इनका दर्शन है और वही इनकी जीवन-दृष्टि है। रूप के चित्रण में कहीं-कहीं ये अधिक स्थूल हो गये हैं। उपमा के प्रयोग में ये बे-मिसाल हैं और कालिदास (दे०) के बाद इनके नाम का परिगणन इस रूप में किसी भी दृष्टि से अत्युक्तिपरक नहीं है।

विद्यापति की पदावली *(हिं० ले०)* [रचना-काल—1410-1414 ई० के बीच]

'पदावली' में संगृहीत पदों की प्रामाणिकता, संख्या तथा पाठ के बारे में काफ़ी विवाद है। विद्यापति (दे०) के पदों को संगृहीत करने का कार्य सर्वप्रथम शारदाचरण मित्र ने किया था और बाद में 1881-82 ई० में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (दे०) ने लोगों से सुनकर उनके 82 पद एकत्र किए थे। इस तरह बीसवीं शती से पूर्व कवि के समस्त पदों को एकत्र उपस्थित करने वाला कोई संग्रह या संकलन-ग्रंथ नहीं था। यह आश्चर्य की बात है कि चौदहवीं शती में जन्मे और सोलहवीं शती तक पूर्ण ख्याति-प्राप्त कवि को लेकर वे हिंदी-कवि हैं अथवा बंगाली, वे भक्त हैं अथवा शृंगारिक, वे शैव हैं या वैष्णव आदि अटकलें तो लगती रहीं, पर उन पर कोई ठोस कार्य आधुनिक युग के पहले न हो सका। विद्यापति के पदों का संग्रह करने वालों में नगेंद्रनाथ गुप्त, अमूल्य विद्याभूषण, खगेंद्रनाथ मित्र, रामवृक्ष बेनीपुरी (दे०), विमान विहारी मजूमदार प्रभृति विद्वानों का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है।

विषय की दृष्टि से 'पदावली' के अंतर्गत राधा-कृष्ण के प्रेम का पसारा देखने को मिलता है। इस तरह के पदों में राधा का नख-शिख-वर्णन, रूपमाधुरी का चित्रण, आकर्षण और कृष्ण के हृदय में प्रेम-वैचित्र्य का उदय दिखाया गया है। रूपमाधुरी का यह अपरूप स्रष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपसी राधा के रूप को यद्यपि 'जनम-जनम' निहारता रहा था, तो भी 'नयन न तिरिपत मेल' की रट लगाता रहा था। क्या किया जाय, सौंदर्य ही कवि की जीवन दृष्टि है और सौंदर्य ही उसका जीवन-दर्शन है, सौंदर्य का ही वह अव्याज चारण है। सौंदर्य का उपासक यह कवि युगधर्म में इतना बँधा है कि रूप-चित्रण में नख-शिख-वर्णन की परिपाटी का त्याग नहीं कर सका है।

विद्यापति के गीत अपनी रागात्मकता और मार्मिकता के लिए काफ़ी प्रसिद्ध हैं। लोकचेतना से संपृक्त मात्रिक छंद लिखने वालों में विद्यापति का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता रहेगा। पदावली की भाषा ब्रजभाषा के प्रभाव से युक्त प्राचीन मैथिली है। इसे हम शिथिल रूप में 'ब्रजबुलि' का प्राचीन रूप ही कह सकते हैं।

विद्यापरिणयन *(सं० कृ०)* [समय—अठारहवीं शती का पूर्वार्ध]

यह नाटक आनंदराय मखी (दे०) द्वारा रचित प्रतीक नाटक है। इसमें सात अंक हैं जिनमें वेदांत के साथ श्रृंगार रस के सामंजस्य का निरूपण किया गया है। नाटककार यह दिखलाना चाहता है कि मोक्ष की प्राप्ति मात्र शिवभक्ति द्वारा होती है। जैन-मत, सोम-सिद्धांत, चार्वाक, सौगत आदि पात्रों का समावेश ठीक 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) की शैली पर किया गया है। नाटक की भाषा सरल तथा सुबोध है और यह अभिनय के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

विधवा कुमारी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

यह हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यासों की परंपरा में लिखा गया प्रसिद्ध उपन्यास है जिसके प्रतिपाद्य और शिल्प दोनों पर आपटे की छाप दिखाई पड़ती है और जिसे पढ़ते हुए उनके 'पण लक्षांत कोण घेतो' (दे०) का सहज ही स्मरण हो आता है। एक दरिद्र भिक्षुक की बाल-विधवा पुत्री किस प्रकार दृढ़-निश्चय, कर्मठता और तेजस्विता से अपने जीवन को सफल बनाती है, यह इस उपन्यास का विषय है। साथ ही लेखक ने गाँव के लोगों—विशेषतः स्त्रियों की रूढ़िवादी विचारधारा, संकुचित दृष्टिकोण और नवीन प्रतिक्रियावादी विचारों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया का बड़ा प्रभावशाली चित्रण किया है। प्रसंगों के चित्रण में ही नहीं, नायिका के उत्कट भावों से तादात्म्य स्थापित कर अपने सिद्धांतों के प्रचार में भी लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। परंतु लेखक के अन्य उपन्यासों के समान इस उपन्यास का भी उत्तरार्ध विश्रृंखलित हो गया है और पात्रों के चरित्रांकन में अतिरंजना तथा अस्वाभाविकता आ गई है। लघुलिपि में लिखा गया प्रथम मराठी उपन्यास होने का श्रेय भी इस उपन्यास को है।

विनयचंद्र *(गु० ले०)* [समय—1269 ई० के आसपास]

प्राचीन गुजराती के जैन कवि विनयचंद्र को कहीं-कहीं विनयसुंदर के नाम से भी परिचित कराया गया है।

'नेमिनाथ चतुष्पादिका' (दे०) तथा 'उएस-मालकहाणय छप्पय' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

'नेमिनाथ चतुष्पादिका' गुजराती का प्रथम बारहमासा काव्य है। (दे०) इनकी दूसरी रचना भी उपदेश-प्रधान है तथा 'छप्पय' छंद में रची गई है।

प्रकृति-वर्णन, बारहमासा, वियोग-श्रृंगार व अंत में निर्वेदात्मक परिणति आदि के विचार से 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' गुजराती की महत्वपूर्ण कृति है और विनयचंद्र महत्वपूर्ण कृतिकार हैं।

विनयचंद्र (मुनि) *(अप० ले०)* [रचना-काल—1150-1196 ई०]

भट्टारक विनयचंद्र मुनि माथुर संघीय भट्टारक बालचंद्र के शिष्य थे। इनकी तीन कृतियों का उल्लेख मिलता है—'चूनड़ी' (दे०), 'कल्याणक रासु' और 'णिज्झर पंचमी विहाण कहा'। 'चूनड़ी' में धार्मिक भावनाओं और आवरणों से रँगी चूनड़ी पहनने का उपदेश दिया गया है। 'णिज्झर पंचमी विहाण कहा' में निर्झर पंचमी के पुण्य-विधान की कथा का वर्णन है। इनमें काव्य-चमत्कार का अभाव है।

विनयपत्रिका *(हिं० कृ०)*

यह रामभक्तिपरक अनुपम कृति 279 संगीतात्मक पदों का संग्रह है, जिसे गोस्वामी तुलसीदास (दे०) ने अनुमानतः 1579 से 1581 ई० के मध्य रचा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक आवेदन-पत्र है जिसे काशी की कुछ जनता से उत्पीड़ित तुलसी ने भगवान् राम के सम्मुख उपस्थित किया। राम जगन्नियंता हैं, उनके दरबार में सीधी पहुँच दुष्कर है; अतएव गणेश, सूर्य, शिव, देवी, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान्, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, श्रीरंग, नरनारायण, बिंदुमाधव, सीता और राम की अनेक स्तुतियाँ हैं। अर्ज़ी पेश करने के लिए कवि ने भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान् से सहायता के लिए तथा भगवती सीता से पुरुषकारिता के लिए प्रार्थना की है। लक्ष्मण जी भरत और हनुमान् की रुचि और संकेत पाकर तथा अन्य दरबारियों का रुख देखकर अर्ज़ी को पेश करते हैं, जिसे राम स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में खंडकाव्य का आभास मिलता है; किंतु प्रथम त्रेसठ एवं अंतिम पदों के अतिरिक्त शेष में कोई क्रम लक्षित नहीं होता, अतएव इसे प्रगीत-काव्य ही मानना ठीक होगा। पदों में तुलसी की अनुभूति निजी एवं हार्दिक है। इनमें संसार को असार एवं असत् बताया गया है तथा दैन्य, पश्चात्ताप, वैराग्य एवं सारल्य की अभिव्यक्ति हुई है।

इसकी भाषा प्रांजल ब्रज है, यद्यपि कहीं-कहीं अवधि, बुंदेलखंडी तथा राजस्थानी के रूप भी लक्षित होते हैं। इसके लगभग प्रथम साठ पदों में संस्कृतनिष्ठ भाषा एवं समास-संकुल पदावली का प्रयोग है, फिर भी तद्भव शब्दों की संख्या कहीं अधिक है। संस्कृतनिष्ठ पदावली की अपेक्षा, सरल पदावली में प्रसादगुण अधिक है। भाषा मुहावरेदार और लोकोक्तियों तथा छेकोक्तियों से पूर्ण है। तेईस रागों में पद लिखे गये हैं। अलंकारों, भावों और रसों का अभाव नहीं। 22, 23, 58, 59, 102, 108, 111, 125, 189वें पदों के सांगरूपक विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। कुछ पद तुलसी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं।

इस ग्रंथ की अनेक टीकाएँ हैं, जिनमें श्री अंजनीशरण तथा श्री वियोगी (दे०) हरि की टीकाएँ उत्तम हैं। ऑलशिन ने इसका अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है।

विनयपिटक (पा० कृ०)

यह 'त्रिपिटक' (दे०) का एक (संभवतः प्रथम और सर्वप्राचीन) भाग है जिसका सार है 'पातिमोक्ख' (दे०) अर्थात् बौद्ध भिक्षुओं द्वारा अनिवार्यतः पालनीय आचार-संहिता। यह तीन भागों में विभाजित है—सुत्तविभंग, खंधक और परिवार। सुत्तविभंग के दो उपविभाग हैं—महाविभंग और भिक्खुनीविभंग। खंधक के भी दो उपविभाग हैं—महावग्ग और चुल्लवग्ग। 'पातिमोक्ख' भगवान बुद्ध का सच्चा उत्तराधिकारी कहा जाता है। भगवान् के परिनिर्वाण के बाद बौद्ध भिक्षु उसी से निर्देश लेने के लिए बाध्य था। सर्वप्रथम 'पातिमोक्ख' में 152 नियमों का संग्रह था, किंतु 'त्रिपिटिक' के संकलन के अवसर पर उसमें 227 नियम हो गये। 'पातिमोक्ख' की व्याख्या (विभंग) में नियम-व्यतिक्रम-जन्य पापों तथा उनके प्रायश्चित्तों का वर्णन है। प्रत्येक सुत्त की शब्दशः व्याख्या के अतिरिक्त इसमें यह बतलाया गया है कि भगवान् ने किस अवसर पर अमुक आदेश दिया था।

'महाविभंग' में 8 अध्याय हैं। प्रत्येक में भिक्षुओं के एक अपराध का वर्णन है। इसी के आधार पर भिक्षुणियों के निमित्त पृथक् आचार-संहिता तैयार की गई जो 'भिक्खुनीविभंग' कहलाई। 'खंधक' उन्हीं का परिशिष्ट है जिसके प्रथम भाग 'महावग्ग' में भिक्षुओं के रहन-सहन के सामान्य निर्देश हैं। दूसरे भाग 'चुल्लवग्ग' में 12 अध्याय हैं। प्रथम 9 अध्यायों में छोटे अपराध और उनके दंड या प्रायश्चित्त दिए गए हैं। 10वें अध्याय में भिक्षुणियों के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं। ग्यारहवें और बारहवें अध्यायों में राजगृह और वैशाली की संगीतियों का वर्णन है जो स्पष्टतः बाद की रचना है। 'परिवार' में छोटे-छोटे 19 खंड हैं जो प्रश्नोत्तर अनुक्रमणी, परिशिष्ट इत्यादि रूप में हैं। षाण्मासिक उपोसथ व्रत में इन नियमों को पढ़ा जाता था। 'विनयपिटक' में कुछ काल्पनिक और कुछ ऐतिहासिक कहानियों का समावेश नियमों की रुक्षता को भंग करने के लिए किया गया है।

विनायकाची कविता (म० कृ०) [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1909 ई०]

आधुनिक काल के प्रथमोत्थान (1885-1905 ई०) के कवि श्री विनायक जनार्दन करंदीकर का काव्य-संग्रह है 'विनायकांची कविता'। कवि की मृत्यु के पश्चात् 1920 ई० में इसका प्रकाशन हुआ था।

विनायक जनार्दन करंदीकर समसामयिक राष्ट्रीय जीवन के प्रतिनिधि कवि हैं। 1905-1909 ई० में भारत में राजनीतिक दृष्टि से अशांत वातावरण था। स्वराज्य, स्वदेश का नारा लगाने वाले देशद्रोही कहलाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। क्रांतिकारियों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जा रहा था। ऐसे समय में उद्बोधक काव्य की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति विनायक ने की। विनायक की राष्ट्रीय कविताएँ सामयिक राजनीतिक आंदोलनों पर ही हैं। तिलक को हुई कैद, चाफ़ेकर को फाँसी, शिवाजी तथा गणेशोत्सव जैसे राष्ट्रीय पर्व, रूस-जापान-युद्ध आदि घटनाओं का चलता-फिरता इतिहास है। इनकी 'शिव-राजदर्शन', 'हतभागिनी' आदि अन्य रचनाओं में मुखर रूप से परतंत्रता का विरोध है। नष्ट पूर्ववैभव का स्मरण तथा परतंत्रता के कारण हुई भारत की अवनत अवस्था पर शोक इन कविताओं में प्रकट हुआ है। इसी कारण इनमें कहीं-कहीं निराशा की छाया है। इनका काव्य राजनीतिक स्वातंत्र्य की माँग करता है।

अशिक्षित स्त्री-वर्ग को प्राचीन इतिहास से परिचित कराने के लिए इन्होंने ऐतिहासिक स्त्री-चरित्रों पर गीत लिखे हैं। 'पन्ना', 'पद्मिनी', 'दुर्गावती', 'संयोगिता' नामक दीर्घ कविताओं में स्त्री-चरित्रों का गौरव-गान है।

इनके काव्य में भाव का प्राधान्य है और कला गौण है। फिर भी 'वीरमति', 'गणिकोद्धार', 'मोहानंतर' आदि कविताओं में इनके कलाकार रूप के दर्शन होते हैं।

विनोद-रस-मंजरी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1876 ई०]

रचयिता—वीरासामि चेट्टियार (दे०)।

'विनोद-रस-मंजरी' एक गद्य-कृति है। इसमें कुछ निबंध और कहानियाँ संगृहीत हैं। निबंध विविध विषयों से संबद्ध हैं। कहानियों में कुछ सत्य हैं, कुछ काल्पनिक। इनसे किसी विषय के अनुशीलन की रीति का ज्ञान होता है। तमिल की अधिकांश श्रेष्ठ कृतियाँ पद्यबद्ध हैं, अतः कुछ व्यक्ति ही उनका अध्ययन कर पाते हैं। यह जानकर तथा सामान्य जनता को उन कृतियों से परिचित कराने की दृष्टि से वीरासामि चेट्टियार ने इस कृति की रचना की थी। इस कृति में प्राप्त विभिन्न प्रसिद्ध निबंधों एवं कहानियों के शीर्षक तथा उनके वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं: 'दैवंकोळ्है' में लेखक ने ईश्वर-विषयक अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है; 'कर्पुविलैमै' में नारी-शिक्षा के महत्व तथा नारी के दायित्वों का, 'गीतवात्तिय विनोदम्' में वाद्य-वृंद का, 'कटु अयिंदु ओलुकल' में अच्छी शिक्षा के स्वरूप तथा उसके अनुरूप आचरण की रीति का, 'पयनिल उलवु' अँग्रेज़ी शासन में कृषकों की दीन दशा का, 'कालपेदवियल में अँग्रेज़ों के आगमन के पूर्व देश के कष्टों का तथा अँग्रेज़ों द्वारा उनको दूर किए जाने का वर्णन है तथा 'नन्त्रि मखामै' में लेखक ने पाठकों को उपदेश दिया है कि उन्हें ईश्वर तथा सांसारिक पूज्य व्यक्तियों द्वारा किए गए उपकार को कभी भी नहीं भूलना चाहिए। कंबर (दे०), ओट्टकूत्तर (दे०), पुहलेंदि (दे०), काळमेळम (दे०), औवैयार आदि कवियों से संबंधित निबंधों में लेखक ने इन कवियों का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करने के साथ-साथ इनके कुछ पदों की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। इन कवियों के पदों का आश्रय लेते हुए लेखक ने काव्य-रचना के नियमों की ओर संकेत किया है। इस कृति में प्राप्त विभिन्न निबंध मूलतः 'दिनवर्तमानी' नामक साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। इनमें निबंध के लिए आवश्यक सभी तत्त्व हैं। निबंध सरस, मधुर, शैली में रचित हैं। स्थान-स्थान पर कहावतों का प्रयोग है। 'विनोद-रस-मंजरी' मनोरंजक एवं ज्ञान-वर्धक कृति है। इनका तमिल-गद्य-साहित्य में भी महत्व-पूर्ण स्थान है।

विपीन *(गु० पा०)*

श्री ज्योतींद्र दवे (दे० दवे) और धनसुखलाल महेता (दे० महेता) रचित 'अमेवधां' (दे०) उपन्यास का नायक। विपीन व्यक्ति नहीं है, शती के आरंभ में जन्मे व्यक्ति के रूप में सूरत शहर के जीवन का प्रतीक है। विपीन अपने जन्म के पूर्व से लेकर अपने विवाह तक की बातें आत्मकथन के रूप में कहता है। उसके विवरण-वर्णन में अनायास सूरत शहर का सामाजिक मुखरित हो उठा है।

विपुलानंदर *(त० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1949 ई०]

ये मूलतः लंका-निवासी थे और इनका निजी नाम 'मयिलवाकनन्' था। रामकृष्ण मिशन में शामिल होकर इन्होंने 'विपुलानंद' के नाम से विरक्त जीवन बिताया था। संन्यासाश्रम पालन करते हुए ये लंका और अण्णामलै विश्वविद्यालयों में कुछ वर्ष तमिल के आचार्य रहे थे। रामकृष्ण मिशन के अँग्रेज़ी मुख-पत्र 'प्रबुद्ध भारत' के संपादक के रूप में भी इन्होंने कुछ समय काम किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका महत् कार्य तमिल संगीत के नष्ट 'याल्' नामक वीणा के समकक्ष उपकरण के स्वरूपों एवं लक्षणों का साहित्य एवं अन्य साक्ष्य के आधार पर निरूपण है। इनकी एक और कृति 'मतंग चूळामणि' नाटक है जो पाश्चात्य एवं संस्कृत नाटक-परंपराओं के प्रभाव के साथ तमिल नाटक के अभ्युत्थान की दिशा दिखाती है।

विप्रदास पिप्लाइ *(बँ० ले०)*

कलकत्ता के निकट बादुड़ा के पास वटग्राम-निवासी विप्रदास के पिता का नाम मुकुंद पंडित था। ये सामवेदी ब्राह्मण थे। 'मनसा-विजय' अथवा 'मनसा-मंगल' (दे०) इनकी कृति है। इसका रचना-काल 1495 ई० है।

इनके द्वारा पयार छंद में लिखित 'मनसा-विजय' में कितना अंश प्रक्षिप्त है—यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। चरित्रों एवं घटनाओं में परिवर्तन हुआ है—इसके अनेक प्रमाण हैं। इनका कवित्व-कौशल अद्भुत था। इनका छंद प्राणवान है। ये पश्चिम बंग के लोकप्रिय कवि थे।

विप्रनारायणुडु *(ते० पा०)*

ये वैष्णव ब्रह्मचारी थे जो आलवारों में दोंडरिप्पोडि आलवार (भक्तांघ्रिरेणु) नाम से भी जाने जाते हैं। इस भक्त-श्रेष्ठ की कथा को तेलुगु में सारंगु तम्मय्या ने 'वैजयंतीविलासमु' (दे०) नाम से तथा चेदलुवाड मल्लना (दे०) ने 'विप्रनारायण चरित्रमु' नाम से मधुर काव्य-रूप दिया है। ये निष्ठावान् ब्रह्मचारी कावेरी के किनारे श्रीरंगमु में तुलसी-मालाओं से नित्य विष्णु की अर्चना करते हुए जीवन व्यतीत करते थे। देवदेवी नामक एक वेश्या इनके ब्रह्मचर्य का मंत्र करके अपने सौंदर्य की सम्मोहक शक्ति को प्रमाणित करने तथा अपनी सखी मधुरवाणी से शर्त जीतने के लिए विप्रनारायणुडु की शिष्या वनती है और अपनी श्रृंगारिक चेष्टाओं से उसे डिगा देती है। वहुत समय तक यह देवदेवी का दास वना रहता है और अंत में विष्णु की कृपा से मोह-जाल से मुक्ति पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विभंग *(पा० क्र०)*

यह 'अभिधम्मपिटक' (दे०) का दूसरा खंड है। प्रथम खंड 'धम्मसंगनी' में धर्म का वर्गीकरण और परिभाषाएँ दी गई हैं। उसी परंपरा को इस खंड में भी जारी रखा गया है। यह खंड इस बात को मानकर चलता है कि प्रथम खंड के अध्ययन के बाद ही पाठक इसमें प्रवृत्त होगा। प्रथम खंड के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्व भी इसमें जोड़ दिये गये हैं। इसमें चार उपखंड हैं—प्रथम में बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धांतों और सच्चाइयों का विवेचन किया गया है; दूसरे में इंद्रिय-जन्य ज्ञान से लेकर बुद्ध-दशा तक के ज्ञान का वर्णन है, तीसरे में ज्ञान के विरोधी तत्त्वों का कथन किया गया है और चौथे में जड़-चेतन, मानव-अमानव जगत् की विभिन्न दशाओं का विवेचन है। इस उपखंड में पौराणिक तत्त्व अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। यह व्याख्यापरक ग्रंथ है जो धर्म के गूढ़ रहस्य को समझाने में महत्वपूर्ण योगदान करता है। इस पर बुद्धघोष (दे०) की 'सम्मोहविनोदिनी' टीका भी है।

विभाव *(पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र में आश्रयगत स्थायी भाव (दे०) के उद्बोधक कारणों को 'विभाव' कहा गया है। ('रत्याद्युद्बोधकाः लेके विभावाः काव्यनाट्यमोः'—विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, 3।29)। आश्रयस्थित भाव को उद्बुद्ध कर उद्दीप्त करना भी विभाव का ही कार्य है, अतः दृष्टि से विभाव दो प्रकार के होते हैं : आलंबन और उद्दीपन। संक्षेप में विभाव काव्य तथा नाटक आदि में रसाभिव्यक्ति के मूलभूत कारण माने गए हैं। इनके अभाव में रस-प्रतीति संभव नहीं है। संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के काव्यशास्त्र तक विभाव के स्वरूप में कोई परिवर्तन उपस्थित नहीं हुआ। ये अब तक अपने उसी परंपरागत अर्थ में ही ग्रहण किए जाते हैं।

विभीषण *(सं० पा०)*

यह लंका के राजा रावण (दे०) का छोटा भाई था। इसने ब्रह्मा की घोर तपस्या करने के बाद धर्म-बुद्धि होने का वर माँगा था। अपने दुराग्रही भाई रावण से स्वभाव-विरोध के कारण इनकी आपस में खटपट रहती थी। इसने उसे सीता (दे०) को वापिस करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी बार-बार उपदेश दिया था। दूत-रूप में आये हनुमान (दे०) का वध नहीं करना चाहिए, यह उपदेश भी इसने उसे दिया था। राम (दे०) के लंका में प्रवेश करने पर इसने उसकी शरण ली और रावण की युद्ध-व्यवस्था का पूरा परिचय उसे दे दिया। राम-रावण-युद्ध में स्वयं इसने अनेक राक्षसों का वध किया। इस प्रकार इसने राम की विजय में पर्याप्त सहायता की।

विमलसूरी *(प्रा० ले०)*

ये प्राकृत-साहित्य के प्रसिद्ध रामचरितकार हैं। इन्होंने स्वयं अपना समय महावीर-निर्वाण के 530 वर्ष पश्चात् बतलाया है। इससे ईसा की प्रथम शती में इनका होना सिद्ध होता है। ये नागिलवंशीय राहु के प्रशिष्य थे। इनका 'पउमचरिउ' (दे०) काव्य जैन महाराष्ट्री प्राकृत में आर्याछंद में लिखा है। रामचरित के अतिरिक्त इसमें सृष्टि-वर्णन इत्यादि पुराण-शैली की विशेषताएँ पाई जाती हैं।

'वियोगी', मोहनलाल महतो *(हिं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म-स्थान उपरिडीह (गया) है। शैशव में मातृहीन होकर ये वात्सल्यमयी और विदुषी विमाता के हाथों में पले। काव्य-सृजन की प्रेरणा इन्हें 'रत्नाकर' (दे०) जी के संपर्क और व्यक्तिगत जीवन के किसी आघात से मिली। 'निर्माल्य', 'एकतारा' आदि कविता-संग्रह और 'आर्यावर्त' शीर्षक महाकाव्य इनकी ख्याति के आधार हैं। काव्य के अतिरिक्त इन्होंने गद्य-काव्य, संस्मरण, निबंध, कहानी, उपन्यास और विवेचनात्मक प्रबंध भी लिखे हैं। इनकी काव्यचेतना छायावादी (दे० छायावाद) है। इनके गीत प्रेम, प्रकृति, रहस्य, राष्ट्र-भक्ति और दलितोद्धार की अनुभूतियों से अनुप्राणित हैं। इनकी प्रेमानुभूति मार्मिक है और प्रकृति-चित्र मनोरम हैं। इनके महाकाव्यों में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गौरव को व्यक्त करने की प्रेरणा मिलती है। कवि की राष्ट्रीय भावना युगानुकूल उदार है; अतः विदेशी-विधर्मी आक्रांताओं का चित्रण भी पूरी सहानुभूति के साथ किया गया है। इनकी शैली में सहजता और वक्रता का तथा पद-योजना में परिष्कार और प्रवाह का दुर्लभ योग है। पृथ्वीराज जैसे चरित्रों की सृष्टि इनकी असाधारण प्रबंध-प्रतिभा की प्रतीक है।

वियोगी हरि *(हिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

इनका जन्म छतरपुर राज्य के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। प्रारंभ में ये अद्वैतवादी थे परंतु छतरपुर राज्य की महारानी कमलाकुमारी 'युगलप्रिया' के संपर्क से द्वैतवादी कृष्णभक्त हो गये। ये टंडन जी के संपर्क से साहित्यिक और गांधी जी के संपर्क से समाज-सुधारक बने। हरिजन-सेवक-संघ से इनका घनिष्ठ संबंध रहा है। इनकी संपादित, संकलित और मौलिक रचनाओं की संख्या 50 के लगभग है जिनमें से 'वीर सतसई' का ब्रजभाषा-काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी-गद्यकाव्य के विकास में भी वियोगी जी ने विशेष योगदान दिया है। इनकी भाषा हृदय की माधुरी में पगी स्निग्ध और सरस है।

विराट टपकुं *(गु० कृ०)*

'विराट टपकुं' सरोज पाठक (दे० पाठक, सरोज) की कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह में लेखिका की 22 कहानियाँ संगृहीत हैं जिनमें 'विराट टपकुं', 'स्वयंवर', 'नायक-नायिका', 'संजीवनी', 'अनएक्स्पेक्टेड', 'न कौंसमां, न कौंस बहार', 'ए क्षण' तथा 'सन्मान' कहानियाँ सुंदर कही जा सकती हैं। शेष साधारण कोटि की हैं। कहानियों में जिस घटना-लोप की चर्चा आजकल चल रही है उसका स्वरूप इन कहानियों में दृष्टिगत होता है। 'विराट ठपकुं' एक ओर तो घटनाविहीन है और दूसरी ओर चेतना-प्रवाह शैली का उत्तम उदाहरण भी। शेष उक्त कहानियाँ मानसिक संवेदना को बड़े ही सूक्ष्म स्तर पर पकड़ने की क्षमता रखती हैं। 'न कौंसमां, न कौंस बहार' कहानी शैली की दृष्टि से उल्लेखनीय है: एक ही साथ चेतना के दोनों धरातल स्पर्श करती चलती है। अतिवास्तविकता के स्तर-बिंदु कहानियों में अनेक स्थलों पर आते-आते रह गए हैं; या यों कहें कि लेखिका ने बड़े ही सांकेतिक भाव से उन्हें व्यक्त कर दिया है और स्थूलता से मुक्ति पा ली है। इस प्रकार निराकारिता से पूर्ण किंतु संवेदनामयी कहानियाँ गुजराती में कम ही मिलती हैं। यदि भूमिका-लेखक जयंत खत्री के शब्दों में कहें तो सरोज पाठक की कहानियाँ अपने समय से आगे की हैं--भावी कहानी के लक्षण प्रस्तुत करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराटा की पद्‌मिनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष — 1936 ई०]

वृंदावनलाल वर्मा का यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास न होकर एक ऐतिहासिक रोमांस है जिसमें लेखक ने विभिन्न कालों में घटित घटनाओं को एक सूत्र में पिरो दिया है। उपन्यास के पात्रों के नाम भी काल्पनिक हैं; किंतु लेखक ने जिस युग को आधार बनाया है उसके साथ कथानक और पात्रों की संगति पूर्णतः बनी रहती है। दुर्गावतार के रूप में चित्रित अनिंद्य सुंदरी कुमुद इस उपन्यास की धुरी है जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने सामंती राजाओं की स्वेच्छाचारिता, दरबारियों की चालबाज़ी तथा राजपूत रमणियों के उत्सर्ग को साकार किया है। मुग़ल-साम्राज्य की निर्बलता तथा नवाबों की लोलुपता भी यथास्थान पूरी तरह उभर कर आई है। कुमुद तथा कुंजरसिंह का आदर्श प्रेम तथा उसका करुण अंत इस उपन्यास का मुख्य आकर्षण है। कुमुद की रक्षा के लिए कुंजर अपना सर्वस्व होम देता है और कुमुद भी कुंजर के लिए स्वयं को बेतवा में विलीन कर देती है। क्षणभर में ही रुष्ट तथा क्षणभर में ही प्रसन्न हो उठने वाला राजा नायकसिंह, कुटिल राजनीतिज्ञ मंत्री जनार्दन शर्मा, अपनी आन पर प्राणोत्सर्ग करने वाला तथा उतावले स्वभाव का सेनापति लोचन सिंह, अवसरवादी तथा कपटी नौकर रामदयाल, वीर, चतुर किंतु निःसहाय छोटी रानी आदि अन्य अनेक पात्र भी अपने वैशिष्ट्यों के कारण पाठक के स्मृति-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। शैली-शिल्प की दृष्टि से इसमें वर्णनात्मकता के प्रति ही अधिक आग्रह रहा है; केवल प्रेम-संबंधी प्रसंगों में ही भावात्मकता परिलक्षित होती है। आंचलिक शब्दों का प्रयोग करते हुए बुंदेलखंडी जीवन की समूची विशेषताओं को सहज रीति से रूपायित करना वर्मा जी की लेखन-शैली की निजी विशेषता है और प्रस्तुत उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है।

विराम-चिह्न *(हिं० पारि०)*

विराम-चिह्न पूर्णविराम, अर्द्धविराम, अल्पविराम आदि उन चिह्नों को कहते हैं जिनका लिखने में प्रयोग किया जाता है। विराम-चिह्न नाम से यह स्पष्ट है कि इनका मुख्य काम है किसी लिखित सामग्री के पाठक को यह बताना कि उस सामग्री को पढ़ने में वह कहाँ-कहाँ रुके, और कितनी देर तक रुके। उदाहरण के लिए जहाँ पूर्णविराम हो वहाँ पाठक अधिक देर तक रुकता है, जहाँ अर्धविराम हो, उससे कम देर तक रुकता है और जहाँ अल्पविराम हो, वहाँ और भी कम देर तक। किंतु वस्तुतः विराम-चिह्नों का कार्य मात्र यही नहीं है। विराम-चिह्न समवेततः निम्नांकित कार्य करते हैं: (क) पढ़ने या बोलने में रुकने का संकेत, (ख) रुकने के लिए अपेक्षित समय का संकेत, (ग) पढ़ने में सुरलहर (intonation) का संकेत। उदाहरण के लिए पूर्णविराम तीन प्रकार का होता है: सामान्य पूर्णविराम, प्रश्नवाचक पूर्णविराम, आश्चर्यसूचक पूर्णविराम। कहना न होगा कि मूलतः तीनों ही पूर्णविराम हैं। तीनों का अंतर यह है कि एक संकेत करता है कि कथन सामान्य है, अतः वाक्य की सुरलहर सामान्य होगी, दूसरा प्रश्नवाचक है अतः सुरलहर प्रश्नवाचक होगी और तीसरा आश्चर्यसूचक है अतः सुरलहर आश्चर्यात्मक होगी। (घ) 'क' और 'ग' का घनिष्ठ संबंध अर्थ से है, अतः विराम-चिह्नों से अर्थ का भी स्पष्टीकरण होता है। 'जाओ मत रुको' का कोई अर्थ नहीं है। यदि 'जाओ' के बाद विराम-चिह्न है तो एक अर्थ होगा और 'मत' के बाद है तो दूसरा। इसी तरह 'सुंदर लड़के और लड़कियाँ' का एक अर्थ है और 'सुंदर लड़के' और 'लड़कियाँ' का दूसरा। वाक्य में अर्थ-वर्ग को अलगाने का काम भी विराम-चिह्न करते हैं। प्रत्यक्ष (Direct) कथन में उद्धरण-चिह्न का मुख्य काम यही होता है। (ङ) कभी-कभी केवल स्पष्टता के लिए भी विराम-चिह्नों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए जब किसी एक शब्द के दोनों ओर इकहरा या दुहरा उद्धरण-चिह्न लगाते हैं तो यही उद्देश्य होता है। उदाहरणार्थः 'अ' स्वर का प्रयोग हिंदी में 'ए' स्वर की तुलना में अधिक होता है। एक पंक्ति के अंत में आने वाले शब्द को जब तोड़ा जाता है तो योजक-चिह्न का प्रयोग भी स्पष्टता के लिए ही होता है ताकि पाठक समझ जाये कि उसका शेषांश भी है, और वह दूसरी पंक्ति के प्रारंभ में है।

विरुतन् शंकु *(मल० पा०)*

कारोट् अच्युत मेनन द्वारा रचित इसी नाम के उपन्यास का यह प्रमुख पात्र है। अपने परिवार के बुजुर्गों के दुर्व्यवहार से तंग आकर घर छोड़ने वाला विक्रमन विरुतन् शंकु के नाम से डाकुओं का सरदार बन जाता है और अनेक चमत्कारपूर्ण कार्य करने के बाद दुबारा अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघ के सदस्यों-सहित दस्यु-वृत्ति छोड़कर अच्छा नागरिक बनता है।

इसके चरित्र का विकास लेखक ने पाठकों के कुतूहल को विकसित करने और आश्चर्य की भावना को बढ़ाने की दृष्टि से ही किया है। तीन दिन की अवधि में यह चालाकी और होशियारी से कई लोगों को धोखा देता है। इन घटनाओं का वर्णन इतनी सरसता के साथ किया गया है कि मलयाळम भाषा में 'विरुतन् शंकु' एक मुहावरा बन गया है जो किसी भी चालाक व्यक्ति को संबोधित करने के लिए प्रयुक्त होता है।

विरेचन *(पारि०)*

यह अरस्तू द्वारा निरूपित यूनानी काव्यशास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसने देश और काल के बृहद् आयामों में संपूर्ण पाश्चात्य साहित्य-चिंतन को प्रभावित किया है। चिकित्साशास्त्र से गृहीत 'कथार्सिस' (विरेचन) शब्द का प्रयोग अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में 'त्रासदी' (दे०) के विवेचन के संदर्भ में इस प्रकार किया है : '++त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है+++ जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है। 'यूनानी चिकित्सा-शास्त्र में उदर-विकारों के उपचार के लिए रेचक औषधियों का प्रयोग बहुत प्रचलित था। इसी के आधार पर साहित्य के संदर्भ में विरेचन का लाक्षणिक अर्थ है कि त्रासदी के प्रेक्षण से प्रेक्षक के अंतःसंस्कारों में स्थित कटु, गर्हित एवं दुःखद मनोविकार उद्रिक्त और उत्तेजित होकर निराकृत हो जाते हैं। विरेचन की अंतिम प्रक्रिया में उद्वेगों के शमन द्वारा प्रेक्षक की चेतना शुद्ध और शांत हो जाती है। इस प्रकार विरेचन के इस रूपक में 'त्रासदी' का अर्थ है—रेचक औषधि 'रेचन-प्रक्रिया' का अर्थ है—त्रास और 'करुणा के उद्रेक' द्वारा मनोविकारों के उत्तेजन और उद्वेगों के शमन द्वारा मानसिक वैशद्य की प्राप्ति। साहित्य में त्रासद और कारुणिक स्थितियों के चित्रण से निष्पन्न कलास्वाद अथवा काव्यानंद किस प्रकार संभव होता है, पश्चिम में इसका प्रतिनिधि समाधान 'विरेचन-सिद्धांत' ही है। इसी सिद्धांत के आधार पर पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समर्थ आधुनिक आलोचक आई० ए० रिचर्ड्स ने 'अंतर्वृत्तियों के समंजन' का अपना प्रसिद्ध सिद्धांत प्रतिपादित किया।

विरोधाभास *(पारि०)*

अलंकारशास्त्र में निरूपित एक प्रमुख वैषम्य-मूलक अर्थालंकार है 'विरोधाभास'। विरोधाभास' का द्रव्य क्रिया, गुण, जाति आदि विषयक यह विरोध जैसाकि इसके शाब्दिक अर्थ से स्वतः स्पष्ट है वास्तविक विरोध न होकर केवल प्रतीयमान विरोध होता है। मम्मट (दे०) ने विरोध की सत्ता न होने पर भी विरोध की प्रतीति हो, ऐसी उक्ति में विरोधाभास की स्थिति स्वीकार की है (काव्यप्रकाश 10।110)। आचार्य विश्वनाथ (दे०) और अप्पयदीक्षित (दे०) के अभिमत को स्वीकार करते हुए हिंदी के रीतिकालीन और आधुनिक आचार्यों ने 'विरोधाभास' और 'विरोध' को अभिन्न माना है। विश्व के काव्य में इस वैषम्यमूलक अलंकार के अनेक सुंदर और मार्मिक प्रयोग प्राप्य हैं।

विर्क, कुलवंतसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

कुलवंतसिंह विर्क पंजाबी के प्रथम पंक्ति के कथाकारों में से हैं। विर्क ने पंजाब के ग्रामीण जीवन के क्रूर यथार्थ को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। इन्हें नागरिक जीवन की विषमताओं और विसंगतियों का भी गहरा परिचय है और मध्यवर्गीय समाज की यौन-कुंठाओं पर इन्होंने बड़ी सफल कहानियाँ लिखी हैं।

कुलवंतसिंह विर्क को अपने कहानी-संग्रह के लिए साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

प्रमुख रचनाएँ —'छाह वेला', 'धरती ते आकाश', 'तूड़ी दी पंड' (दे०), 'एकस के हम बारक', 'दुध दा छप्पड़' (कहानी-संग्रह)।

विलासवती-कथा *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1066 ई०]

विलासवती-कथा के रचयिता श्वेतांबर संप्रदाय के मुनि सिद्धसेन सूरि हैं। उनका जन्म-स्थान गुजरात में अहमदाबाद के समीप धंधुका नगर था। वे यशोदेव सूरि के शिष्य थे।

यह कृति ग्यारह संधियों की रचना है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है। श्वेतांबी नामक नगरी में यशोवर्मा नामक राजा का पुत्र सनत्कुमार अत्यंत सुंदर और गुणवान् था। कोतवाल से चोरों को छुड़वाने के कारण राजा के उस पर क्रुद्ध होने के कारण वह रूठ कर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र वसुभूति के साथ राजा ईशानचंद्र की नगरी ताम्रलिप्ति में चला गया। वहाँ राजकुमारी विलासवती पर अनुरक्त हो गया। वसुभूति को विलासवती की सेविका अनंगसुंदरी से ज्ञान हुआ कि राजकुमारी भी सनत्कुमार के वियोग से व्याकुल रहती है। इसी बीच राजकन्या की माता राजरानी अनंगवती ने सनत्कुमार पर मुग्ध हो उससे काम प्रस्ताव रखा। कुमार के अस्वीकार करने पर अनंगवती ने उस पर दोषारोपण किया जिससे राजा ने क्रुद्ध हो उसके वध का आदेश दिया। किंतु कोतवाल विनयंधर की सहायता से जहाज़ पर सवार हो वसुभूति के साथ स्वर्णभूमि में पहुँच गया। वहाँ उसकी भेंट बाल्यमित्र मनोरथदत्त से हुई। कुमार ने अपने मामा के पास सिंहलद्वीप जाना चाहा। मनोहरदत्त ने विदाई के समय कुमार को नयनमोहन नामक ऐसी रत्न-जटित चादर भेंट की जिसे ओढ़ने वाला सबको देख सकता था किंतु उसे कोई नहीं देख सकता था। मार्ग में तूफ़ान तथा ज्वार-भाटे से जहाज़ छिन्न-भिन्न हो गया। तीन दिन-रात समुद्र में बिताकर एक काष्ठफलक की सहायता से वह समुद्र-तट पर जा लगा। वहीं मदनमंजारी नामक तापसी विद्याधरी से कुमार को विलासवती का पता चला और दोनों का विवाह हो गया।

कुछ दिनों के बाद सानुदेव सार्थवाह के पुत्र ने विलासवती के रूप के लोभ से सनत्कुमार को समुद्र में धकेल दिया। भाग्य से सनत्कुमार और विलासवती का मिलन हो गया किंतु फिर दोनों वियुक्त हो गये। विद्याधरों की सहायता से सनत्कुमार ने पुनः विलासवती को प्राप्त कर लिया। विद्याधरपति से सनत्कुमार ने अजितवला नाम की महाविद्या प्राप्त की। तापस वेशधारी मित्र वसुभूति से उसका मिलन हुआ। इस विद्या के बल से उसने अनंगरति नामक विद्याधर द्वारा विलासवती के अपहरण कर लिये जाने का पता लगा लिया। वह अनंगरति को युद्ध में पराजित करके राजा बन गया। कुछ दिनों के बाद सनत्कुमार विलासवती और विद्याधरों के साथ अपने माता-पिता से मिलने गया। वापिस आने पर उन दोनों के अजितवल नामक एक पुत्र हुआ। पुत्र के युवा होने पर युवराज पद पर उसका अभिषेक किया गया। इसी बीच विद्याधर श्रमण से पूर्वभवों का वृत्तांत सुनकर सनत्कुमार को विरक्ति हुई और घर-बार छोड़कर कठोर तपस्या द्वारा निर्वाण प्राप्त करने चला गया।

इस कृति के कथानक में धार्मिक वातावरण की प्रधानता न होकर लोक-जीवन की भी सत्ता है। कथानक सुगठित और सरल है। इसमें प्रवाह और गतिशीलता है। बीच-बीच में नाना वस्तुओं के सरस वर्णनों से रोचकता और काव्यात्मक सौंदर्य उत्पन्न हो गया है। वस्तु-वर्णन अलंकृत शैली में न होकर लोक-प्रचलित शैली में है। अन्य अपभ्रंश-काव्यों के समान दैव-संयोग और आकस्मिक घटनाओं की योजना से कथा में कुतूहल और उत्सुकता का समावेश किया गया है।

रूप-वर्णन रीतिशास्त्र से प्रभावित न होकर स्वतंत्र रूप से छवियों का अंकन है; वस्तु का यथार्थ संश्लिष्ट वर्णन है।

विभिन्न परिस्थितियों में मानव-मन में उत्पन्न विविध भावों का वर्णन स्वाभाविक है।

यह कृति विप्रलंभ-प्रधान प्रेम-काव्य है। यथावसर श्रृंगार, वीर, वीभत्स, भयानक, रौद्र रसों की व्यंजना हुई है। समाप्ति शांत रस में होने पर भी प्रधानता विप्रलंभ श्रृंगार की ही है।

इस कृति में स्थान-स्थान पर प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र अंकित हुए हैं।

इसकी भाषा अपभ्रंश है किंतु संस्कृत और प्राकृत-पदावली से प्रभावित है। बीच-बीच में लोकोक्ति, मुहावरे, सूक्ति और नाना अलंकारों से अलंकृत है।

विलासिनी *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

प्रतिभा-संपन्न उपन्यासकार एम० के० मेनन 'विलासिनी' के छद्म नाम से साहित्य-रचना करते हैं। विदेशों में अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने के बाद आजकल अंतर्राष्ट्रीय समाचार-संस्था ए० एफ० पी० में दक्षिण-पूर्व एशिया के निदेशक हैं। इनके उपन्यास 'इणङ्ङत्ति कण्णिकळ्', 'निरमुळ्ळ निष्लुकळ्', 'ऊञ्ञाल्' और 'चुंटेली' हैं। एक कविता-संग्रह 'कैत्तिर' भी प्रकाशित हुआ है।

विश्व की साहित्यिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक धाराओं से पूर्णतः अभिज्ञ 'विलासिनी' के उपन्यासों में अपने इस विपुल-व्यापक ज्ञान का प्रभावपूर्ण प्रयोग दर्शनीय है। 'इणङ्ङत्ति कण्णिकळ्' मलयाळम का प्रथम दार्शनिक उपन्यास है।

थोड़े ही समय में इन्होंने उपन्यासकारों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। मलयाळम-साहित्य को इनसे अभी बहुत-कुछ प्रत्याशाएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलोम (*हिं० पारि०*)

विलोम, विलोमार्थी या विपर्याय शब्द उन्हें कहते हैं जिनके अर्थ आपस में उल्टे हों, जैसे अच्छा-बुरा, बड़ा-छोटा, ऊपर-नीचे, भारी-हलका। बहुत-से ऐसे शब्द हैं जिन्हें सामान्यतः 'विलोम' समझा जाता है, किंतु जो वास्तविक रूप में विलोम होते नहीं। उदाहरण के लिए 'फूल' का विलोम यदि 'काँटा' है तो 'पत्ती' क्यों नहीं हैं, या 'जल' का विलोम 'थल' है तो 'आकाश' क्यों नहीं हैं। वस्तुतः ऐसे विलोम सीमित दृष्टि से ही विलोम कहलाने के अधिकारी हैं। इस प्रकार देखें तो एक शब्द के एकाधिक विलोम भी हो सकते हैं : लंबा-गोल (उसका मुँह लंबा है किंतु उसका गोल है); लंबा-नाटा (राम लंबा है, किंतु मोहन नाटा है); राजा-रंक, राजा-प्रजा। यह आवश्यक नहीं कि भाषा के सभी शब्दों के विलोम हों ही। उदाहरण के लिए गमला, तीसरा, अँगूठी, बिजली, पत्ती आदि के विलोम नहीं।

विल्लिभारतम् (*त० कृ०*) [समय—ई० चौदहवीं शती]

इसकी गणना तमिल के उत्कृष्ट महाकाव्यों में होती है। यह 'विल्लिपुत्तुराळ्वार्' नामक परम वैष्णव भक्तकवि द्वारा रचित महाभारत इतिहास का तमिल रूप है। महर्षि व्यास (दे० वेदव्यास) प्रणीत 'महाभारत' (दे०) पर आधारित होने पर भी यह कृति-तमिल प्रदेश की अपनी वस्तु है और इसके विभिन्न कथा-भाग तमिल भूमि की परंपरा एवं संस्कृति के रंगों से रँगे मिलते हैं। उदाहरण के लिए अर्जुन (दे०) की तीर्थ-यात्रा का वर्णन तमिल भू-खंड के प्रसिद्ध मंदिरों को समेटे हुए चलता है।

इस काव्य में मूल महाभारत के प्रथम दस पर्व तक की कथा का निर्वाह हुआ है। शेष पर्वों को छोड़ देने का कारण यह कहा जाता है कि कृष्ण और पांडवों की जीवन-समाप्ति तक कथा ले जाना काव्य-प्रणेता को अप्रिय था। उपलब्ध पद्यों की संख्या (मतुरै तमिल 'लङ्कम्' संस्करण के अनुसार) 4330 है। इस बृहत् पद्यराशि-निबद्ध महाकाव्य की विशेषताएँ हैं—विविध चययुक्त 'विरुत्तम्' छंदों का प्रयोग, संस्कृत तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का सुरुचिपूर्ण मिश्रण, उदात्त शैली, सजीव पात्र-सृष्टि एवं कथोपकथन तथा कथा-प्रसंगों का नाटकीकरण। रचनाकार का उद्देश्य केवल कथा-निर्वाह नहीं वरन् कथा के प्रस्तुतीकरण में स्फूर्ति एवं नाटकोचित आस्वाद लाना है। अतः उन्होंने इस काव्य का श्रीगणेश करने वाले देश, राजधानी आदि के परंपरागत वर्णनों को छोड़ दिया है तथा बीच से कथा का आरंभ कर दिया है जिससे पाठक को पूर्वापर संबंध जोड़ने में कष्ट होता है। पात्र-चित्रण विलक्षण प्रभाव से युक्त है; कर्ण (दे०), दुर्योधन तथा सहदेव—ये तीनों पात्र अविस्मरणीय रूप से उभर कर आये हैं। कर्ण की मृत्यु के प्रसंग का प्रस्तुतीकरण इस महाकाव्य में विशिष्ट कथोपकथन एवं तदनुकूल छंद-निर्वाह के लिए प्रसिद्ध है। हृदय-भेदी तीर निकालकर, बहते हुए रक्त में कर्ण अपने संचित पुण्य-फल का दान विप्रवेशधारी कृष्ण को करता है और उस विप्र से बस यही वर माँगता है कि जन्मजन्मांतर में भी दानार्थियों से कभी 'नास्ति' कहने का मन उनका न हो। प्रस्तुत रचना पर 'चङ्कम्' पद्य-संग्रह, 'कुरळ्', आळ्वार संतों के गीत 'कंबरामायणम्' (दे०) इत्यादि पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव द्रष्टव्य है। कंबर (दे०) के समान अनन्य विष्णुभक्त होने से रचनाकार ने इसमें भी यत्र-तत्र विष्णु भगवान के प्रति अतिशय भक्ति प्रकट की है पर साथ ही अन्य देवताओं के प्रति भी उचित आस्था दर्शायी है।

विल्लिपुत्तूरर् (*त० ले०*) [समय—चौदहवीं शती]

ये रामानुज संप्रदाय के वैष्णव ब्राह्मण थे। इनका जन्मस्थान तमिल प्रदेश के मध्यवर्ती भू-भाग में स्थित 'चनियूर' है और इनके आश्रयदाता 'वरपतियाट् कोंटान्' नामक प्रभु माने जाते हैं। तमिल पद्यबद्ध 'महाभारत' की रचना ने इन्हें अमर यश प्रदान कर दिया है। अपनी इस बृहत् काव्य-कृति में इन्होंने मूल ग्रंथ के प्रथम दस पर्वों तक की कथा का निर्वाह किया है फिर भी कुल 4339 पद्यों से युक्त होकर यह काव्य विपुलाकार बन गया है। महाकाव्योचित सरस वर्णन, लयबद्ध छंद-योजना, भाव-वैविध्य, नाटक-दृश्यो के समान कथा-प्रसंगों का संगठन—ये इस काव्य को विलक्षण बनाने वाले हैं। (दे० 'विल्लि पारतम्')। तमिल भाषा में दो और पद्यात्मक 'महाभारत' रचनाएँ उपलब्ध हैं पर ये 'विल्लिपुत्तुरर्' की कृति की-सी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकीं।

विल्हण (*सं० ले०*) [समय—ग्यारहवीं शती का उत्तरार्ध]

कश्मीर की समृद्ध साहित्य-परंपरा में विल्हण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं। इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश तथा माता का नाम नागदेवी था। इष्टराय तथा आनंद इनके दो भाई थे। विल्हण पर्यटनशील स्वभाव के थे। कश्मीर से निकलकर घूमते-घूमते मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी, होते हुए ये दक्षिण भारत के कल्याण नगर जा पहुँचे। वहाँ के चालुक्यवंशीय राजा विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1127 ई०) ने इनका बड़ा स्वागत किया। इन्हीं के यश एवं गुणों से प्रभावित होकर इन्होंने 'विक्रमांकदेवचरितम्' (दे०) नामक महाकाव्य की रचना की।

उक्त काव्य कें आधार पर ही विल्हण संस्कृत-साहित्य में अमर हैं। इसमें इन्होंने अपने आश्रयदाता नरेश विक्रमादित्य षष्ठ तथा उनके वंश का विशद विवरण प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के निर्देश करने में कवि ने इतनी तत्परता दिखाई है कि यह काव्य कल्याण के चालुक्यवंशी नरेशों का इतिहास जानने के लिए परम उपयोगी बन गया है। वैदर्भी रीति में निबद्ध इस काव्य में माधुर्य तथा प्रसाद का पर्याप्त पुट है। वीर रसप्रधान इस काव्य की सूक्तियाँ विदग्धों की जिह्वा पर नाचा करती हैं और वे इनकी कविता पर रीझ उठते हैं।

ये राजदरबार में कविजनों के रखने तथा प्रतिष्ठा देने के प्रबल पक्षधर हैं। ये कहते हैं कि राम का यश फैलाने तथा रावण के यश के संकुचित होने के एकमात्र कारण वाल्मीकि (दे०) हैं।

विवेक अने साधना *(गु० कृ०)*

स्वामी केदारनाथ जी द्वारा रचित तथा श्री किशोरलाल मशरुवाला (दे०) एवं श्री रमणीकलाल मोदी द्वारा अनूदित तथा संपादित 'विवेक अने साधना' नामक ग्रंथ आध्यात्मिक चिंतन-मनन व अनुभव का ग्रंथ है।

ग्रंथकार ने 1904 ई० में इक्कीस वर्ष की आयु में संसार से विरक्त होकर गृहत्याग किया और पैदल यात्रा कर देश-दर्शन भ्रमण किया। इन्होंने हिमालय में कई वर्ष बिताये व योग-साधना भी की। मानव-सेवा का व्रत लेकर संसार के बीच वैरागी बनकर रहना तथा देश-सेवा करना इनका संकल्प था। 'नाथजी' के संक्षिप्त संबोधन से परिचित इनके शिष्य व भक्तों का एक छोटा समुदाय था। गांधीजी से भी इनकी घनिष्ठता थी। सिद्ध योगी व ब्रह्मनिष्ठ पुरुष के रूप में ख्यात 'नाथजी' को युवावस्था में व्यायाम का शौक था। तब ये बड़े क्रांतिकारी थे।

ग्रंथ का प्रथम खंड विवेक दर्शन से संबद्ध है। सामूहिक ध्येय, मानवता का गौरव, स्तुति की सामर्थ्य, भक्ति, तत्त्वज्ञान, साध्य-साधन विवेक, व्यक्त-अव्यक्त विचार, सामुदायिक कर्म, कर्मफल, संतों का उपकार आदि विषयों पर इस खंड में विचार किया गया है। साधना-विषयक दूसरे खंड में प्रथम भाग में विवेक, निंदा-त्याग, निश्चय-शक्ति, समय का सदुपयोग, दृढ़ शरीर और पवित्र मन की आवश्यकता, आदि गुणों का महत्व व उनकी प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। दूसरे भाग में धर्म्य-व्यवहार, विद्यार्थी अवस्था, ब्रह्मचर्य पालन, गृहस्थाश्रम की दीक्षा, प्रजावृद्धि की मर्यादा, प्राकृतिक प्रेरणा व संयम, परिश्रम सुख के विषय में धर्म्य विचार आदि का चिंतन किया गया है। तीसरा विभाग चित्त के अभ्यास ले संबद्ध है। इसमें ध्यान, लय, चित्तशोधन, संकल्प ज्ञानमय जाग्रत अवस्था, आदि योग संबंधी विषयों का अनुचिंतन किया गया है। 386 पृष्ठों का यह ग्रंथ पहली बार नवजीवन प्रकाशन से 1951 ई० में प्रकाशित हुआ था।

अनुवाद की भाषा बड़ी सरल है। अनुवादकद्वय विषय के भी ज्ञाता हैं। गुजराती में धार्मिक-आध्यात्मिक विषयों पर रचित ग्रंथों में इस अनूदित ग्रंथ का अपना विशिष्ट महत्व है। चिंतन की प्रक्रिया सुलझी हुई और विषय-निरूपण भी बड़ा सरल है। गंभीरता का बोझ कहीं प्रतीत नहीं होता।

विवेकचिंतामणि *(क० कृ०)*

निजगुणशिवयोगी (दे०) समय लगभग 1500 ई०) एक पहुँचे हुए साधक, लेखक और ज्ञानी थे। इस वीरशैव-लेखक ने 'विवेकचिंतामणि' के अतिरिक्त' और छह ग्रंथ लिखे हैं जिनका प्रतिपाद्य भी दार्शनिक तत्त्व है। इनके ग्रंथों में 'विवेकचिंतामणि' का निश्चय ही शीर्ष-स्थान है। यह ज्ञान का भंडार है जो कन्नड-जनता को एक ज्ञानी की अनुपम देन है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें तत्कालीन दार्शनिक, भौगोलिक और साहित्यिक ज्ञान का संग्रह है। इसमें दस प्रकरण और 765 विषय हैं। यद्यपि कवि ने प्रारंभ में यह बताया है कि 'यह महाकविता-प्रवंध है' तथापि यह महाकाव्य की कोटि में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आता। यह सच है कि इसमें 'वेद-पुराण-शास्त्रों के विश्व-विषय' आ गये हैं। शास्त्रविषयक ग्रंथ होने के कारण इसमें संस्कृत-पद-प्रयोग आवश्यक हो गया है, परंतु इस कारण ग्रंथ दुरूह नहीं है, सर्वजनवेद्य है। दार्शनिक विषय में आसक्ति रखने वालों के लिए यह एक विश्व-कोश है। 'तत्त्व' का प्रतिपादन करने में इसके लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। इसकी शैली में रम्यता और प्रांजलता है। कन्नड के ज्ञानियों और कवियों में इसके लेखक का अन्यतम स्थान है।

विवेकसिंधु *(म० कृ०)*

यह मराठी के आद्य कवि मुकुंदराज (दे०) की कृति है। इसकी रचना 1190 ई० में राजा सारंगधर को आध्यात्मिक उपदेश देने के लिए की गई थी। इसकी शैली गुरु-शिष्य-संवादात्मक है और छंद है—ओवी। यहाँ कवि ने शंकराचार्य (दे०) के मायावाद का विवेचन किया है, और दृष्टांतों के माध्यम से अपना मंतव्य स्पष्ट किया है। इस ग्रंथ के पूर्वार्ध में सात और उत्तरार्ध में ग्यारह प्रकरण हैं। सांसारिक जीवन बिताते हुए आध्यात्मिक साधना में रत रहना राजयोग है। सगुणोपासना का महत्व भी इसमें प्रतिपादित है। ग्रंथ में जीव, ब्रह्म, माया, पंचमहाभूत, सूक्ष्म शरीर, उसके 25 सूक्ष्म तत्त्व, सगुण, निर्गुण आदि अनेक आध्यात्मिक तत्त्वों की मीमांसा की गई है।

विवेकानंद *(बँ० ले०)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1902 ई०]

बँगला गद्य-साहित्य के निर्माण-युग में स्वामी विवेकानंद ने धर्म साधना, देशप्रेम, भक्ति, आवेग, मनन तथा भावुकता से युक्त असंख्य प्रबंधों की रचना कर बँगला गद्य को शिल्प-सौंदर्य से विभूषित किया। अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने वेदांत धर्म और स्वदेश-प्रेम के प्रति लोगों का उत्साह बढ़ाने में विशेष सफलता प्राप्त की थी। 'भक्ति-योग', 'ज्ञान-योग', 'कर्म-योग' इनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में अन्यतम हैं। 'वीरवाणी' के नाम से उनकी कविताओं का एक संकलन भी प्रकाशित हुआ है।

विशालाक्षी, द्विवेदुला *(ते० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

विशाखापट्टणमु ज़िले में विजयनगर नामक शहर इनका जन्मस्थान है। आजकल ये मद्रास में रहती हैं। 1956 ई० से इन्होंने अपना लेखन-कार्य आरंभ किया। प्रधानतः ये उपन्यास-लेखिका हैं। 'आंध्र प्रभा' नामक तेलुगु-साप्ताहिक की ओर से 1956 ई० में आयोजित उपन्यास-प्रतियोगिता में इनकी 'वैकुंठपाली' नामक उपन्यास पुरस्कृत हुआ था। 'मारिन विलुवलु', 'वारधि' (दे०), 'आमे कोरिका', 'गोथति', 'कोव्वोत्ति' आदि इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों की पृष्ठभूमि प्रायः सामाजिक होती है और कथानक तथा शैली में सहज रोचकता रहती है।

विशेषण *(हिं० पारि०)*

व्याकरण में 'विशेषण' उस शब्द को कहते हैं जो किसी संज्ञा की कोई विशेषता बतलाता है। जैसे 'अच्छा लड़का' और 'छोटा मकान' में 'अच्छा' और 'छोटा'। व्यक्तिवाचक संज्ञा को छोड़ दें तो विशेषण शब्द संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करता है। 'लड़का' की व्याप्ति अधिक है किंतु 'अच्छा लड़का' या 'छोटा लड़का' या 'काला लड़का' में 'अच्छा' या 'छोटा' या 'काला' के कारण 'लड़का' की व्याप्ति मर्यादित हो गई है। व्यक्तिवाचक को अलग इसलिए रखा गया है कि 'दयालु अशोक' या 'आततायी रावण' में 'अशोक' और 'रावण' की व्याप्ति मर्यादित नहीं हो रही है। विशेषण तीन प्रकार के होते हैं: गुणवाचक, परिमाणवाचक, संख्यावाचक। विशेषण जिस संज्ञा की विशेषता बतलाता है, उसे विशेष्य कहते हैं।

विशेषण-विपर्यय *(पारि०)*

यह अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध काव्यालंकार 'ट्रांसफ़र्ड एपिथॅट' का हिंदी-पर्याय है। विशेष्य से उसके विशेषण को हटाकर उसी (विशेष्य) से संबद्ध किसी अन्य संज्ञा से संयुक्त कर देना विशेषण-विपर्यय है। मूलतः कवि-कल्पना से उद्भूत विशेषणों के विपर्यस्त विन्यास से अर्थ-गांभीर्य में संवृद्धि तथा अभिव्यंजना में वैचित्र्य का समावेश होता है। कुछ पाश्चात्य आलोचक 'ट्रांसफ़र्ड एपिथॅट' को भाषा-दोष में परिगणित 'कॅटेक्रेसिस' का एक प्रकार मानते हैं, जिसका अर्थ है किसी निश्चित संदर्भ में ग़लत या असंबद्ध शब्द का प्रयोग करना। भारतीय काव्यशास्त्र में विशेषण के इस चमत्कारपूर्ण प्रयोग का निरूपण कुंतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने 'विशेषण-वक्रता' के अंतर्गत किया है। विशेषण-विपर्यय के कुछ उदाहरण : (1) 'निज अपलक डर के स्वप्नों से' (2) जग के निभृत स्वप्न सजनि ! (सुमित्रानंदन पंत)।

विशिष्टाद्वैत *(हि० पा०)*

रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थ नित्य एवं स्वतंत्र हैं : (1) ईश्वर (ब्रह्म अथवा परमात्मा) सत्, चित्, आनंद, अपाप, सुंदर, तथा ज्ञान है, जो चिदचित् का आधार है। (2) जीव चित्, नित्य, अणु, निरवयव, और ज्ञानाश्रय है। (3) अचित् अर्थात् जड़ प्रकृति ज्ञान-रहित, किंतु त्रिविध है : (क) शुद्ध सत्त्व (नित्य-विभूति); मुक्तावस्था में जीव-देह इसी तत्त्व का होता है। (ख) मिश्रसत्व रजोगुण और तमोगुण से युक्त होने के कारण जगत् का उपादान है, जिसे माया अथवा अविद्या भी कहते हैं। निष्काम कर्म, भक्ति अथवा मर्कट-मार्जारी प्रपत्ति के द्वारा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य अथवा सायुज्य मोक्ष प्राप्य है। किंतु मुक्तावस्था में भी ईश्वर से जीव की भिन्नता रहती है; क्योंकि जीव ईश्वर की सृष्टि का कर्त्ता-नियंता नहीं हो सकता। ईश्वर का ध्यान लक्ष्मी-नारायण, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा मूर्ति—इन पाँच रूपों में से प्रत्येक में हो सकता है।

विश्वनाथ *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1350 ई० के आसपास]

उत्कलवासी कवि चंद्रशेखर के पुत्र विश्वनाथ संस्कृत-साहित्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य हैं। तत्कालीन उत्कल-सम्राट् के सांधिविग्रहिक आचार्य विश्वनाथ कवि एवं आलोचक दोनों थे। 'साहित्यदर्पण' (दे०) में उद्धृत एक श्लोक के अनुसार ये अलाउद्दीन खिलजी के परवर्ती ही ठहरते हैं। इस प्रकार इनका समय चौदहवीं शती का मध्य मानना ही उचित है।

विश्वनाथ कविराज अलंकारशास्त्र के आचार्य हैं। इनकी कृतियों में 'साहित्यदर्पण' स्वतंत्र ग्रंथ है तथा 'काव्यप्रकाश' (दे०) के ऊपर इनके द्वारा कृत एक टीका है जिसका नाम भी 'दर्पण' ही है। 'साहित्यदर्पण' मम्मट के 'काव्यप्रकाश' की सरणि पर रचित एक ऐसा ग्रंथ है जिसे सर्वथा मौलिक तो नहीं कहा जा सकता परंतु जिसमें अनेक मौलिक उद्भावनाएँ हुई हैं। रस को काव्य का असाधारण धर्म एवं उसकी प्रवृत्ति का निमित्त मानना विश्वनाथ कविराज को विशेष रूप से अभीष्ट है। ये चित्र को काव्य की कोटि में नहीं रखते। रस के विषय में इनका दृढ़ मत है कि यह मात्र सुखात्मक ही होता है क्योंकि वह विषयीगत अनुभव है, वर्ण्य विषय का नहीं। दोष, गुण एवं अलंकारों के विषय में इन्होंने पूर्वाचार्यों के वर्णनों का पिष्टपेषण ही किया है।

विश्वनाथ कविराजु *(ते० ले०)*

श्री विश्वनाथ कविराजु ने अनेक हास्यरस-प्रधान एकांकियों की रचना की है। हास्यजनक संवादों एवं प्रसंगों की सृष्टि में ये सिद्धहस्त हैं। 'दोंगाटकमु', 'किर्रु-गानुगा', 'डोंकलो षराबु' आदि इनके एकांकी हैं।

विश्वनाथ शास्त्री, राचकोंडा *(ते० ले०)*

ये तेलुगु के प्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार हैं। इनकी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक अध्ययन को प्रमुख स्थान मिलता रहा है। मनुष्य के अवचेतन मन की गह-राइयों में प्रवेश करके, उसमें उत्पन्न होने वाली नाना प्रकार की भाव-तरंगों एवं उसके बाह्य आचरण पर उनके प्रभाव का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण इनकी रचनाओं में प्रायः सर्वत्र मिलता है। मानव-मस्तिष्क के चेतन-प्रवाह के चित्रण की इनकी पद्धति अनूठी है।

'अल्पजीवि' (दे०) इनका प्रमुख उपन्यास है। इसमें सदा अकारण ही भयग्रस्त रहने वाले एक भीरु प्रकृति के व्यक्ति का प्रभोवात्पादक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वह सभी से, यहाँ तक कि अपनी पत्नी से भी डरता रहता है और अंत तक सभी के द्वारा ठुकराये जाने पर भी उसमें किसी प्रकार के आत्म-सम्मान की भावना या संघर्ष करने का साहस उत्पन्न नहीं होता। मनोवैज्ञा-निक उपन्यासकारों तथा कथाकारों में इनका स्थान पर्याप्त ऊँचा है।

विश्वनाथ सत्यनारायण *(ते० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

कविसम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक, गेय कविता, कहानी, समालोचना आदि सभी साहि-त्यिक विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध करते हुए अब तक सौ से अधिक रचनाएँ दी हैं। इनकी बहुचर्चित रच-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाओं में 'रामायण कल्पवृक्षमु' (दे०) 1971 ई० में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत) 'विश्वनाथ मध्याक्करलु, 'मा बाबु' (ग्रामीण वातावरण में एक अनाथ बालक की कहानी); 'वेयिपडगलु' (दे०) पुरानी एवं नयी पीढ़ियों के बीच संघर्ष, पुरातन जीवन-प्रणाली की श्रेष्ठता का निरूपण), 'चेलियलिकट्टा' (दे०) (भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधाराओं में संघर्ष), 'एकवीरा' (दे०); 'किन्नेरिसानि पाट्लु' (दे०) (प्रगीत काव्य); 'ऋतु संहारमु' (दे०), 'काव्यहरिश्चंद्र' (दे०) (रेडियो-नाटक); 'वेनराजु' (दे०) (नाटक); 'बद्देन्ना सेनानी' (दे०), 'हा हा हू हू' (दे०) (उपन्यास); आदि प्रमुख हैं। ये मुख्य रूप से परंपरावादी एवं ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण के साहित्यकार हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास एवं साहित्य का इन पर गहरा प्रभाव है। इनका गद्य-साहित्य भी परिमाण में विशाल अवश्य है पर ये मूलतः कवि हैं और इनका यह गुण इनके संपूर्ण साहित्य में स्पष्टतः लक्षित होता है।

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण अपने विचारों एवं विश्वासों में अडिग हैं और किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहते। आधुनिक जीवन की विषमताओं एवं विकारों से वे खिन्न रहते हैं तथा एक जागरूक एवं दायित्वपूर्ण साहित्यकार के नाते उनके निवारण के लिए लेखनी उठाते हैं। इनकी प्रतिभा एवं पांडित्य अपार है तथा जिस क्षेत्र में भी इन्होंने पदार्पण किया है उसमें इनको पूरी सफलता मिली है।

इनकी काव्य-शैली संस्कृत-बहुल और कहीं-कहीं क्लिष्ट और दुरूह है। अतः भाव-पक्ष कई स्थानों पर कुंठित हो जाता है। इनका गद्य भी सहज-सरल न होकर जटिल होता है। इस कारण साधारण जनता में इनके साहित्य का प्रचार-प्रसार नहीं हो सका।

विश्वनाथसिंह, महाराज *(हिं० ले०)* [जन्म---1789 ई०; मृत्यु—1856 ई०]

इनका जन्म रीवाँ के साहित्यानुरागी राजपरिवार में हुआ था। इनके पिता महाराजा जयसिंह न केवल साहित्य-प्रेमी थे अपितु एक अच्छे कवि भी थे। रसिक भाव से राम की भक्ति करने वालों में इनका प्रमुख स्थान है। ये 46 ग्रंथों के रचयिता माने जाते हैं—यद्यपि कतिपय विद्वानों का विचार है कि कुछ ग्रंथ दरबारी कवियों द्वारा इनके नाम से लिखे गए प्रतीत होते हैं। 'रामगीता टीका', 'विनयपत्रिका टीका', 'विश्वनाथ प्रकाश', 'आनंद रघुनंदन नाटक' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र ने 'आनंद रघुनंदन नाटक' को हिंदी का पहला दृश्य-काव्य माना है। 'कबीर-बीजक' पर लिखी गई 'पाखंड-खंडिनी' टीका से इनके पांडित्य का परिचय प्राप्त होता है जिसमें इन्होंने निर्गुण वाणी को सगुण पर घटा दिया है।

विश्वरूपम् *(मल० कृ०)* [समय—1889-1914 ई०]

इसके रचनाकार बी० सी० बालकृष्ण पणिक्कर (दे०) हैं। श्री बालकृष्ण पणिक्कर आधुनिक मलयाळम काव्य-नभ के ज्योतिर्मय पुंज थे, जो एकाएक उदित हुए, ज्योति फैलाई और अचानक विदा हो गए। अल्पायु में ही मलयाळम-काव्य, संस्कृत-काव्य एवं शास्त्र तथा अँग्रेज़ी का यत्किंचित अध्ययन कर इन्होंने तीन-तीन पत्रिकाओं का संपादन-कार्य सँभाला। अवकाश के समय ये गद्य-लेख व कविताएँ भी लिखते रहे। इनकी रचनाओं में हर प्रकार से 'उत्तम विश्वरूपम्' है। अरबसागर के तट पर खड़ा कवि सूर्यास्त के समय से लेकर चंद्रोदय, चंद्र-विकास और पूरी रात की शोभा के बाद सूर्यास्त तक के नभ का पट-परिवर्तन चित्रित करता है। इस वर्णन के विविध बिंब वर्णोज्ज्वल हैं तथा भावपूर्ण भी। संस्कृत, वृत्त में रचे 54 श्लोकों का संग्रह 'विश्वरूपम्' मलयाळम के स्वच्छंदतावादी काव्य का सर्वप्रथम उदाहरण माना जाता है।

विश्वेवर, आचार्य *(सं० ले०)*

इनका जन्म मकतुल नामक ग्राम (ज़िला पीलीभीत, उ० प्र०) में हुआ। इन्होंने गुरुकुल वृंदावन से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की तथा इन्हें विद्यामार्तंड की उपाधि से विभूषित किया गया। इन्होंने उक्त गुरुकुल के आचार्य-रूप में अनेक वर्षों तक कार्य किया। इन्होंने निम्नोक्त काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की हिंदी-व्याख्या अति सरल किंतु विद्वत्तापूर्ण रूप से प्रस्तुत की—'अभिनव भारती' (1, 6, 7 अध्याय), 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' (दे०), 'ध्वन्यालोक' (दे०), 'वक्रोक्ति-जीवित' (दे०), 'काव्यप्रकाश' (दे०), 'नाट्यदर्पण' (दे०) और 'भक्तिरसामृतसिंधु' (दे०)। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'तर्कभाषा', 'न्यायकुसुमांजलि' (दे०) तथा 'निरुक्त' (दे०) का भी भाष्य प्रस्तुत किया। इनके द्वारा रचित ग्रंथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं : 'दर्शनमीमांसा', 'नीतिशास्त्रम्', 'मनोविज्ञानमीमांसा', 'पाश्चात्य तर्कशास्त्र', 'साहित्यमीमांसा' और 'वैदिक-साहित्य-कौमुदी'। इनका निधन 1962 ई० में हुआ था।

विश्वेसर रावु, मल्लवरपु *(ते० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

ये सरल मधुर गीतों के कवि एवं उपन्यासकार हैं। भाव-तीव्रता इनका प्रमुख गुण है और भावों की उत्तप्तता ने ही इन्हें कवि बना दिया है।

'मधुकील' और 'कल्याणकिंकिणी' इनके कविता-संकलन हैं। इन्होंने रवींद्रनाथ (दे०) की कविताओं का अनुवाद भी किया है। 'कोल्लायि गट्टितेनेमि' इनका प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें 1920 ई० के स्वतंत्रता-आंदोलन के समय में आंध्र में पाई जाने वाली राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। इसमें आंचलिकता की छाया भी देखने को मिलती है।

विषवृक्ष *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1873 ई०]

समसामयिक बंगीय समाज को आधार बनाकर बंकिम (दे० चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र) 'विषवृक्ष' तथा 'कृष्णकांतेर उइल' (दे०)। नाव-दुर्घटना में नगेंद्र का परिचय कुंदनंदिनी से हुआ। कुंदनंदिनी विधवा है पर उसके प्रति नगेंद्र का आकर्षण कम नहीं। सूर्यमुखी अपने पति के प्रति संपूर्ण निष्ठा रखते हुए यह अन्याय और अपमान कैसे सह सकती है। नगेंद्र ने कलकत्ता जाकर नंदिनी से विवाह किया। कुछ देर बाद मोह भंग हुआ। उसे स्पष्ट पता लग गया कि नंदिनी के प्रति उसका केवल भौतिक आकर्षण भी रूप की पूजा थी। स्नेह-समर्पण से युक्त आत्मिक प्रेम सूर्यमुखी में ही था। आकस्मिकता और रोमांच के साथ कथा-रस उत्पन्न करने में बंकिम सिद्धहस्त हैं।

'विषवृक्ष' नाम से लेखक अपने मंतव्य को प्रकट कर रहा है। परनारी के रूप मोह में पड़ना 'विषवृक्ष' बोना है। इसका फल नगेंद्र को भोगना पड़ा, सूर्यमुखी को भी पातिव्रत का मूल्य चुकाना पड़ा। अंत में सती नारी का त्याग विष समाप्त कर सका।

वास्तव में यह एक रोमांटिक उपन्यास है—घटना बहुल तथा रस-वैचित्र्य से पूर्ण। इसका नैतिक और सामाजिक पहलू गौण है।

विष्णुदास *(गु० ले०)* [समय—1620 ई० के आसपास]

विष्णुदास खंभात के नागर ब्राह्मण थे। 'मामेरूं' 'हुंडी' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। कहते हैं इन्होंने 39 कृतियों की रचना की थी; जिनमें अधिकांश आख्यान-काव्य थे किंतु आज केवल तीन-चार रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

ये प्राचीन युग के इतने महत्वपूर्ण कवि थे कि इनके नाम से विष्णुदास-युग भी चल सकता था। नरसिंह-युग (दे० नरसिंह मेहता) के बाद के ये दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं।

भालण (दे०) के पुत्र विष्णुदास से ये भिन्न प्रतीत होते हैं।

विष्णुदास आचार्य *(बँ० ले०)*

विष्णुदास आचार्य कुलियाग्रामवासी माधवेंद्र आचार्य के पुत्र और अद्वैताचार्य की पत्नी सीतादेवी के शिष्य थे।

'सीतागुण कदंब' काव्य का इन्होंने प्रणयन किया था। अनुमान है कि 1521-22 ई० में यह ग्रंथ लिखा गया था। यह एक सामान्य जीवनी-काव्य है। इसमें अद्वैताचार्य एवं सीतादेवी के संबंध में उद्घाटित तथ्य अधिक विश्वसनीय हैं। लोचनदास और कृष्णदास कविराज का प्रभाव इस ग्रंथ में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

विष्णुदासनामा *(म० ले०)*

ये भक्तकवि थे। इनकी रचना 'शुकाख्यान' में दी गई तिथि के अनुसार 1595 ई० इनका जीवनकाल प्रमाणित होता है। 'महाभारत' (दे०) पर आधारित 'आदिपर्व' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसके अतिरिक्त 'उपमन्युआख्यान', 'एकादशी माहात्म्य', 'हरिश्चंद्रआख्यान', 'लवकुशकथा' आदि अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनके आधार ग्रंथ हैं—'भागवत' (दे०), 'देवीभागवत', 'भविष्योत्तर पुराण', 'गणेशपुराण', 'आनंदरामायण' आदि। इनकी मराठी पर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव है। चरित्र-चित्रणों में मौलिकता है।

विष्णुपुराण *(क० कृ०)*

यह मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज (शासन-काल—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1672-1705 ई०) के मंत्री चिक्कुपाध्याय (दे०) की रचना है। छह भागों और 32 सर्गों के इस ग्रंथ में 6255 पद्य हैं। इसके प्रारंभ में भगवान रंगनाथ की स्तुति है। रंगनायकि, भूदेवी, नीलादेवी, अनंत, गरुड, रामानुज, शंख, चक्र, नंदक, शाङ्र्ग, गदा, सरस्वती तथा पराशर की स्तुति भी उसमें क्रमशः मिल जाती है। सर्ग अथवा आश्वास के अंत में पुष्पिका इस प्रकार है—

"नारायण पदसारसमरंद नित्याभिषिक्त—चिक्कदेव महाराज करुणाकटाक्ष रुचिसांद्रचंद्रिकालोलध-कोर सचिवतिलक श्रीचिक्कुपाध्याय विरचित श्रीविष्णु-पुराणाख्य महाप्रबंध" इससे स्पष्ट है कि कवि ने अपने काव्य को महाकाव्य माना है। प्रकृति के चित्रण में कवि ने पर्याप्त कौशल दिखाया है। भाषा-शैली सुंदर और प्रवाहपूर्ण है। इसमें विष्णु की महिमा का अच्छा उद्‌घाटन किया गया है।

इसके लेखक ने चंपूकाव्य के अतिरिक्त गद्य-काव्य भी इस विषय पर लिखा है।

विष्णुशास्त्री चिपळूणकर यांचे चरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1884 ई०]

इसकी रचना श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (दे०) के अनुज लक्ष्मण कृष्ण चिपळूणकर ने की थी। इस ग्रंथ से पूर्व चिपळूणकर के जीवन पर तीन लेखकों ने लिखा था। इनमें से दो जीवन-परिचय तो पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे एवं तीसरा पुस्तक के रूप में। इस तीसरे चरित्र के लेखक श्री रा० बेलझरे थे। लक्ष्मणशास्त्री चिप-ळूणकर के द्वारा लिखा चरित्र इसकी तुलना में अधिक मनोहर है। चिपळूणकर की विश्वसनीय, विस्तृत जीवनी लिखने तथा उनके द्वारा की गई महाराष्ट्र-निवासियों की सेवा एवं मराठी भाषा के उन्नयन का मूल्यांकन करने के लिए यह चरित्र लिखा गया था।

इस ग्रंथ में नौ प्रकरण हैं। पहले सात में चिपळूणकर जी के जीवन के बत्तीस वर्षों का जीवन-वृत्त है। आठवें भाग में शेष महीनों का विवरण है तथा नवें में साहित्य-जगत तथा समाज में उनके महत्वपूर्ण स्थान का निर्धारण है। पहले सात भागों में चिपळूणकर के बाल्यकाल, डेक्कन कॉलेज में शिक्षा, अध्यापन, 'निबंध-माला' (दे०) पत्रिका का प्रारंभ, रत्नगिरी में स्थानांतरण, न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना, भाषासेवा, देशसेवा, विचार-स्वातंत्र्य आदि के आधार पर उनके स्वभाव तथा जीवन का यथार्थ रेखांकन किया गया है।

इसमें लेखक का दृष्टिकोण विभूतिपूजक का नहीं रहा, वरन् चरित्र-नायक के गुणावगुणों का संतुलित विवेचन करने का रहा है। यथार्थ एवं प्रभावकारी चित्रण की दृष्टि से इस चरित्र का महत्व है। चिपळूणकर जी के कटु आलोचक बा० ना० देव ने भी इस ग्रंथ की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है—"इस जीवनी का मराठी के चरित्र-ग्रंथों में ऊँचा स्थान है। व्यक्ति-चित्रण की दृष्टि से इसकी बराबरी करने वाला ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं है।"

विसर्जन *(बँ० कृ०)*

हिंसा और बलि के जिस विरोध का सूत्रपात 'वाल्मीकि-प्रतिभा' से हुआ, उसका संपूर्ण विकास 'विसर्जन' में मिला है। गोविंद माणिक्य का ध्रुवराय के प्रति सहज स्नेह-वात्सल्य है परंतु उसकी पुत्रहीना पत्नी गुणवती पुत्र-प्राप्ति के लिए इतनी उत्तेजित है कि बलि के औचित्य एवं चुनाव में सारा विवेक भूलकर अबोध ध्रुवराम और अपर्णा को लक्ष्य बनाती है। उसकी प्रेरणा का स्रोत है पुरोहित रघुपति जो शास्त्र-संस्कार पोषित धर्माचार का प्रतीक है। गोविंद पत्नी के प्रति सहृदय अवश्य है परंतु वह इस अंतर-संघर्ष में विचलित नहीं होता। वास्तव में दो शक्तियों में तीव्र द्वंद्व है; रघुपति अपने रुद्र तेज तथा प्रभुत्वपूर्ण वक्रता से गुणवती, जयसिंह आदि को धर्म के नाम पर लक्ष्यभ्रष्ट करना चाहता है। गोविंद अचल, तथा मनोबल से सभी आघातों को सहता है। रघुपति का प्रिय शिष्ट ऐसी मोहावस्था में अपने जीवन की बलि देता है। भाग्य का यह क्रूर प्रहार रघुपति को इस कुप्रथा की वास्तविकता का ज्ञान कराता है। जयसिंह के 'विसर्जन' से ही रघुपति में हिंसा-वृत्ति का 'विसर्जन' होता है। नाटक का वस्तु-संगठन कौशलपूर्ण तथा चरित्र-चित्रण पर्याप्त सजीव एवं रंगमंच की दृष्टि से प्रभावशाली है। लेखक की उपलब्धि तीव्र संघर्ष को निभाए रखने में है। यह रवींद्र (दे० ठाकुर) की सफल एवं लोकप्रिय रचना है।

विसुद्धिमग्ग (पा० कृ०)

यह बुद्धघोष (दे०) की रचना है। इन्होंने लंका में अनुराधापुर के महाविहार में सुरक्षित 'अट्टकथा' (दे०) के अनुवाद का अधिकार प्राप्त करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा के रूप में इस पुस्तक की रचना की थी। इसमें प्रथम बार 'त्रिपिटक' (दे०), के साथ शतियों में विकसित बौद्ध विचारधारा को व्यवस्थित रूप देने की सफल चेष्टा की गई है। बुद्धघोष के गहन अध्ययन का यह प्रथम फल है। स्वयं ग्रंथकार के मत में 'विसुद्धि' का अर्थ है ऐसी पूर्ण पवित्रीकृत निर्वाण-पदवी जिसमें किसी भी दोष का अवसर न हो। उस निर्वाण-पदवी तक ले जाने वाले मार्ग का इस रचना में विवेचन किया गया है। 'सुमंगल-विलासिनी' में बुद्धघोष ने स्वयं इस रचना की विषय-वस्तु का भी निर्देश किया है। इसमें शील का विवेचन है, कर्म के स्थान तथा चर्या के विधान बतलाए गए हैं; ज्ञान का विवेचन है, सभापत्ति के समस्त विस्तार का निरूपण है, अभिधम्म, पञ्ञा (प्रज्ञा), खंड (स्कंध), धातु, आयतन, चार आर्यसत्य, शुद्ध तथा पूर्णनय, इंद्रियगण इत्वादि के विषय में इसमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें बौद्ध धर्म का दार्शनिक तथा पदार्थवाद की दृष्टि से परिपूर्ण निरूपण किया गबा है। यह ग्रंथ इतना महत्वपूर्ण बन पड़ा है कि यह बौद्धों में प्रमाण-पदवी पर आरूढ़ माना जाता है। बौद्ध धर्म का कोई अकेला ही ग्रंथ इतना महत्वपूर्ण नहीं है जो सभी तत्त्वों की एकसाथ जानकारी दे सके। ज्ञात होता है कि इस रचना में ये अपनी भविष्य में लिखी जाने वाली टीकाओं की भूमिका तैयार कर रहे थे, क्योंकि उन टीकाओं में इन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जिन विषयों का समावेश 'विसुद्धिमग्ग' में हो चुका है उन पर प्रकाश नहीं डाला जायेगा। ब्रह्मा के बौद्धों में यह रचना युग-प्रवर्तक के रूप में स्वीकार की जाती है।

इस ग्रंथ की शैली बहुत ही स्पष्ट तथा प्रसाद-गुणपूर्ण है। धर्म तथा दर्शन जैसे शुष्क विषय को लेखक ने बीच-बीच में कथाओं का समावेश कर अत्यंत सरस बना दिया है। इसके कथा-साहित्य में बुद्ध के समय से लेकर उस समय तक के तत्त्व सम्मिलित हैं जब 'महायान' (दे०) के समान 'हीनयान' (दे०) में भी बौद्ध पूजा के पात्र बन गए थे।

विसू राजे *(म० पा०)*

श्री ना० पेंडसे (दे०) के उपन्यास 'हद्दपार' का नायक विश्वनाथ उर्फ़ विसू परंपरा-विरोधी, क्रांतिकारी विचारों का गाँव का आदर्श अध्यापक है। आरंभ से ही उसके विचार क्रांतिकारी हैं। वह उस शस्त्र को, जिसके द्वारा उसके पूर्वजों ने बाघ मारा था, कुएँ में फेंक देता है, मिश्र विवाह करता है। लेखक ने इस पात्र के अंतरंग में प्रवेश कर उसके सामाजिक महत्व पर प्रकाश डाला है, इसीलिए इसकी चरित्ररेखा शुद्ध और सूक्ष्म बन सकी है। यह सत्य है कि ग्राम जीवन, विद्यार्थियों की शिक्षा, व्यवसाय के प्रति निष्ठा आदि के संबंध में विसू के विचार सर्वसामान्य नहीं हैं, परंतु उसके चरित्र में नये जीवन-मूल्यों, मानवता की प्रतिष्ठा कर उसे निष्ठावान, परिश्रमी श्रम की पूजा करने वाला तथा ईमानदार चित्रित कर लेखक ने एक ऐसे ग्रामीण आदर्श अध्यापक की मूर्ति प्रस्तुत की है जो अन्य मराठी उपन्यासों—'उल्का', 'वैष्णव' आदि में भी उपलब्ध होती है। पेंडसे के अन्य पात्रों के समान विसू की चरित्ररेखा भी अत्यंत प्रत्ययकारी और यथार्थ है। उसके अंतर्जीवन के चित्रण में अनुभूति की सचाई है। कुल मिलाकर वह आदर्शोन्मुख यथार्थ पात्र है।

वी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1966 ई०]

'वी' एस० पोन्नुदुर (दे०) की 13 कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में प्रसिद्ध हैं—'वी', 'तेर्', 'ईरा', 'वेली', 'मरु' और 'मुळ्'। 'वी' शीर्षक कहानी में आत्मकथात्मक अंशों की अधिकता है। 'तेर' इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी में अभिव्यक्त विचार ही शेष कहानियों में व्यक्त किए गए हैं। यह कहानी एक वृद्ध के अतीत स्मरण के रूप में रचित है। वह अपने परिवार को मंदिर का रथ (तेर्) मानता है जिसमें सौंदर्य भी है और गंभीरता भी। वृद्ध के परिवार के अन्य सभी सदस्य जहाँ प्राचीन रीति-रिवाजों को अपना लेते हैं वहाँ उनका एक पुत्र उनका विरोध करता है। अंत में वह अपने सद्व्यवहार द्वारा संपूर्ण परिवार को बदल देता है। उस पात्र के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि प्राचीन सामाजिक संगठन में ही नवीन विचारों और विचारधाराओं का उदय हो रहा है। हमें उदारतापूर्वक उन्हें स्वीकार करना चाहिए। यह कहानी चेतना-प्रवाह शैली में रचित है। इन कहानियों की मूल विशेषता यह है कि इनमें लेखक की यथार्थवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। अधिकांश कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं। कहानियों के पात्र विभिन्न वर्ग, संप्रदाय एवं धर्म से संबंधित हैं। लेखक ने अपने पात्रों को भावाभिव्यक्ति का, विचाराभिव्यक्ति का अवसर दिया है। उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति पात्रों के माध्यम से की है। अपने पात्रों में प्राण-प्रतिष्ठा कर एस०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोन्नुदुरै ने तमिल कहानी के क्षेत्र में नयी टेकनीक को जन्म दिया है। 'वी' नामक कहानी-संग्रह की कहानियों में लेखक ने समाज की उन रूढ़ियों और प्रथाओं की ओर संकेत किया है जो कि समाज की उन्नति में बाधक हैं। अपनी इन कहानियों द्वारा वह इन रूढ़ियों को समाप्त करना चाहता है।

वीण पूवु *(मल० कृ०)* [रचना-काल--1909 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) की कविता है। इसमें मुरझाकर गिरे हुए पुष्प के प्रति कवि का आत्म-निवेदन प्रस्तुत किया गया है। पुष्प सभी सौभाग्यों के साथ विकसित हुआ और चंद ही क्षणों के मोहक विलास के बाद लता से अलग होकर गिर गया तथा शीघ्र ही मिट्टी में मिलने वाला है। आसपास के सभी चराचर इस दुर्गति पर दुःखित हो रहे हैं। इस विधि-विपर्यय के रहस्य का अन्वेषण कवि करते हैं, परंतु उनका केवल यही समाधान है कि अपने जन्म-कृत्य को साधित करके क्षणभर में विलुप्त हो जाना ही दीर्घ जीवन की अपेक्षा अभिकाम्य है।

आशान् की इस कविता के साथ मलयाळम-साहित्य के स्वच्छंदतावादी आंदोलन ने अपना विकसित रूप प्राप्त कर लिया था। इससे प्रेरणा ग्रहण करके ही कवियों ने उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण रचना-कौशल के स्थान पर मानसिक उद्गारों के प्रकाशन को काव्य-वस्तु बनाना आरंभ किया था। आशान् द्वारा पुष्ट किए गए मार्ग पर वळ्ळत्तोळ (दे०) और उळ्ळूर (दे०) की रोमांटिक रचनाओं का भी उदय हुआ और साहित्य की काव्य-शाखा परिपुष्ट हुई। इन परिवर्तनों के मार्गदर्शक के रूप में 'वीण पूवु' का स्थान मलयाळम में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

वीथिनाटक *(ते० पारि०)*

यह आंध्र प्रांत की नाटक-रचना का प्राचीन रूप है। उत्पत्ति में संस्कृत-नाटक से कोई संबंध न रखने वाला एक देशी रूपक ही 'वीथिनाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आरंभ में यह अभिनय-प्रधान ही रहा। किंतु यह देशी रूपक क्रमशः गीतों तथा कथोपकथन से युक्त होकर परिवर्तित रूप और नाम के साथ राजदरबारों में भी प्रतिष्ठित हो गया। तंजौर में अत्यंत प्रचलित 'यक्षगानमु' (दे०) इसी वर्ग के हैं। 'वीथि' शब्द का अर्थ है—मार्ग। सुव्यवस्थित रंगमंच तथा नाटकशाला के बिना मार्ग पर ही यह प्रदर्शित होने योग्य है। इसीलिए यह 'वीथिनाटक' के नाम से प्रचलित हुआ। संस्कृत के दस प्रकार के रूपकों के अंतर्गत 'वीथी' (दे०) भी एक है। किंतु तेलुगु-—'वीथिनाटक' का उससे कोई संबंध नहीं है। अलंकृत रंगमंच के अभाव के कारण 'वीथिनाटक' अधिकांशतः नाचना-गाना और सरस तथा हास्यपूर्ण संभाषण आदि पर ही अपनी सफलता के लिए निर्भर रहता है। इसमें भाषा लोकव्यवहार के निकट की होती है तथा पात्रों की संख्या भी सीमित रहती है। आरंभ में 'वीथिनाटक' का लक्ष्य लिखित साहित्यिक रचना के रूप में अवतरित होना था, बल्कि आम जनता के बीच प्रदर्शित होकर उसे आनंदित करना ही था। क्रमशः इसके स्वरूप तथा प्रयोजन—दोनों में परिवर्तन आया। आधुनिक नाटक-साहित्य को पुष्ट करने में योग न देने पर भी तेलुगु-नाटक-साहित्य के इतिहास में 'वीथिनाटक' का स्थान कम महत्व का नहीं है।

वीर *(अप० ले०)* [रचना-काल—ग्यारहवीं शती ई०]

कवि वीर का जन्म मालवा देश के गुलखेड नामक ग्राम में हुआ था। इसके पिता का नाम देवदत्त और माता का नाम श्री संतुवा था। वीर का गोत्र लाडवर्ग था। इनके पिता स्वयं एक अच्छे कवि थे। वीर ने अपने पिता को कवि स्वयंभू और पुष्पदंत के पश्चात् तीसरा स्थान दिया है। वीर के तीन छोटे भाई और चार पत्नियाँ थीं। यद्यपि वीर संस्कृत-काव्य-रचना में निपुण थे किंतु पिता के मित्रों की प्रेरणा एवं आग्रह से ये सर्वजन-प्रिय अपभ्रंश में 'जंबू सामि चरिउ' (दे०) की रचना में प्रवृत्त हुए थे। इस काव्य की रचना इन्होंने 1019 ई० में की थी। अनेक राजकार्य, धर्म, अर्थ, काम गोष्ठियों में समय विभक्त करते हुए इनको इस काव्य की रचना में एक वर्ष लगा। इन्होंने अपने से पूर्ववर्ती स्वयंभू, त्रिभुवन, पुष्पदंत प्रभृति कई कवियों का उल्लेख किया है।

कवि द्वारा उल्लिखित संदर्भों से प्रतीत होता है कि वह शब्दशास्त्र, छंदःशास्त्र, निघंटु, तर्कशास्त्र तथा प्राकृत-काव्य 'सेतुबंध' (दे०) इन सब का गहन रूप से अध्ययन करने के उपरांत काव्य-रचना में उद्यत हुआ था। जैन-साहित्य के चारों अनुयोगों का उसे गंभीर ज्ञान था। जैन-पुराण (दे०), हिंदू-पुराण (दे०), रामायण (दे०) महाभारत (दे०), कालिदास (दे०) और बाण (दे०) के काव्य-ग्रंथों, भरत-'नाट्यशास्त्र' (दे०) आदि से भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पूर्णरूपेण परिचित था। शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त वह लौकिक शिक्षा में भी निष्णात था।

वीर कवि केवल अपभ्रंश-रचना में ही सिद्ध-हस्त नहीं थे, संस्कृत एवं प्राकृत में भी इनकी निर्बाध गति थी। तत्कालीन अपभ्रंश कवियों में इनका प्रमुख स्थान था।

वीर (आल्हा) *(हिं० छं०)*

वीर छंद के प्रत्येक चरण में इकतीस मात्राएँ होती हैं तथा सोलह और पंद्रह पर विराम होता है। प्रत्येक चरण के अंत में गुरु, लघु का होना आवश्यक है। उदाहरण :

उस असीम नीले अंचल में, देख किसी की मृदु मुस्कान,
मानो हँसी हिमालय की है, फूट चली करती कलगान।
शिला संधियों से टकराकर, पवन भर रहा था गुंजार,
उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का, करता चारण सदृश प्रचार॥
(प्रसाद : कामायनी)

वीरकाव्य *(हिं० प्र०)*

'वीरकाव्य' से आशय है हिंदी-साहित्य के आदिकाल में रचित वीरकाव्य से है इसे चारण-काव्य भी कहते हैं, क्योंकि इसके सभी प्रणेता दरबारी चारण अथवा भाट थे। वीरकाव्यों में से केवल चार ग्रंथ उपलब्ध हैं—'खुमाणरासो' (दे०), 'वीसलदेवरासो' (दे०), 'पृथ्वीराजरासो' (दे०), और 'परमाल रासो', किंतु ये भी सभी पूर्णतः अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं। इनमें जिन चरित-नायकों का वर्णन किया गया है वह अधिकांशतः कल्पना पर आधारित है। अतः इन काव्यों से इतिहास के जिज्ञासुओं को कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। फिर भी, इनका काव्यत्व की दृष्टि से निजी महत्व है। इनमें वीर रस का प्रौढ़ परिपाक हुआ है। चतुरंगिणी सेना की साज-सज्जा, दोनों एक-समान प्रबल दलों का घमासान युद्ध एवं दर्पपूर्ण शब्दावली, सेना-प्रस्थान, असि-प्रहार एवं शस्त्रों की झंकार, और शत्रुपक्ष के पलायन का प्रभावपूर्ण चित्रण आदि इस काव्य की प्रमुख विशिष्टता है। इसका सजीव शब्द-गुंफ ओज गुण और गौड़ी रीति का पोषक है। वीर रस के साथ-साथ इस काव्य में गौण रूप से रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रसों का भी स्वाभाविक समावेश है। इन ग्रंथों का कथानक शृंगार रस की पृष्ठभूमि पर आधारित है, अतः इस रस के वर्णन के द्वारा भी ये काव्य-ग्रंथ अति मनोमोहक बन पड़े हैं। यह वीर-काव्य दो रूपों में उपलब्ध है—प्रबंध-काव्य के साहित्यिक रूप में—जैसे, पृथ्वीराजरासो, और वीर गीतों के रूप में—जैसे, वीसलदेवरासो। इसकी इसकी भाषा को विद्वानों ने डिंगल (दे०) कहा है, अर्थात् साहित्यिक राजस्थानी मिश्रित पुरानी हिंदी। वीरकाव्य की यह परंपरा आदिकाल के बाद भी चलती रही। भक्तिकाल में पृथ्वीराज, दुरसा जी, बाँकीदास (दे०), सूर्यमल्ल (दे०) आदि ने तथा रीतिकाल में भूषण (दे०), लाल (दे०), सूदन (दे०) आदि ने वीर काव्य लिखे थे। इधर आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त (दे०) और रामधारीसिंह 'दिनकर' (दे०) ने भी अनेक वीरकाव्य लिखे हैं।

वीरब्रह्मयोगी *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

इनका पूरा नाम पोतुलूरि वीरब्रह्मम् है। ये प्रतिभावान् सिद्धपुरुष थे। बचपन में ही माता से वियुक्त वीरब्रह्मम् कुछ साल बाद देशाटन करने लगे थे। ये बनगानअल्ले नामक स्थान पर एक पहाड़ की गुफ़ा के अंदर अक्सर एकांत में बैठते थे तथा वहीं उपनिषदों के भाष्य के रूप में 'कालज्ञानवचनों' की रचना करते थे। अत्यंत सरल पद्धति के द्वारा साधारण जनता के लिए जीवनोपयोगी धर्मपथ दिखाना ही इनका प्रमुख लक्ष्य था। 'कंद' तथा 'कंदार्ध' जैसे देशी छंदों में इनका उपदेश अभिव्यक्त हुआ है। इनके द्वारा प्रतिपादित धर्म 'अचल-धर्म' या 'शिवाद्वैत धर्म' कहा जाता है। इनके अनुसार लोगों का अपना-अपना आचरण ही उनकी जाति का निर्णायक होता है, न कि जन्म। हिंदुओं और मुसलमानों तथा समाज के विविध वर्गों के बीच समरसता स्थापित करने के लिए अपने उपदेशों के द्वारा वीरब्रह्मयोगी ने ओ कुछ किया वह एक महान् कार्य कहा जा सकता है। तेलुगु में धर्म तथा दर्शन से संबद्ध गीतो या पदों का जो साहित्य उपलब्ध होता है उसमें इनके 'कालज्ञान-वचन' अत्यंत प्रचलित तथा प्रभावशाली हैं।

वीर मामुनिवर *(त० ले०)* [जन्म—1680 ई०; मृत्यु—1747 ई०]

तमिल-साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले यूरो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीय विद्वानों में 'वीर मामुनि' अथवा 'वीर महामुनि' अग्रगण्य हैं। इनका जन्म इटली के वेनिस प्रांत में हुआ था। अठारह वर्ष की आयु तक फ़्रेंच, ग्रीक, हीब्रू, पोर्चगीस आदि भाषाओं का पर्याप्त अध्ययन करके इन्होंने ईसाई धर्म-प्रचारक की दीक्षा ली थी। यूरोप में जहाँ-तहाँ ईसाई धर्म-प्रचार का कुछ कार्य करने के पश्चात् 1710 ई० में ये भारत आये थे। गोवा, कोच्चिन, अंबलक्काडु आदि प्रांतों में धर्म-प्रचार करते हुए ये तमिलनाडु के मदुरै प्रांत के 'कामनायंक्कन् पट्टि' नामक गाँव में आ बसे थे। फिर अंतिम समय तक ये वहीं रहे। इस ग्राम को अपना मुख्य केंद्र बनाकर दक्षिण के विभिन्न स्थानों में, विशेषकर तमिलनाडु में, ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए इन्होंने अनेक उपाय किए थे। यहाँ उन्होंने संस्कृत और तमिल सीखने के साथ भारतीय दर्शन-ग्रंथों का भी अध्ययन किया। यहाँ के अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ भी किया। हिंदू-धर्मावलंबियों के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कराने के लिए ये स्वयं काषायवस्त्र, खड़ाऊँ, कमंडल, कानों में (रुद्राक्षमणि के स्थान पर) क्रूस-चिह्न आदि धारण करते थे; तथा अन्न-पान की आदतें भी इन्होंने भारत की जैसी अपना ली थीं। इस प्रकार के कार्यों में कभी-कभी इन्हें रोमन-कैथलिक संप्रदाय के नेतागण का कोप-भाजन बनना पड़ा था। किंतु बाद में इन लोगों को भी इनके साहस, धैर्य तथा दूरदर्शिता को स्वीकार करना पड़ा। ऐसे साहसपूर्ण कार्यों के कारण ही ये 'वीर महामुनि' नाम से विख्यात हुए। इनका वास्तविक नाम कांटेंटाइन जोसेफ़ बेस्ची था।

भारत में आने के पश्चात् इन्होंने संस्कृत, हिंदी, तेलुगु, कन्नड़ और तमिल भाषाएँ सीखीं। 'पलनि' नामक स्थान में स्थित 'सुप्पिरतीय-क्-कविराय' से इन्होंने तमिल के लक्षण-लक्ष्य ग्रंथों का विधिवत् अध्ययन किया। तमिल में शैव और वैष्णव-भक्तिपरक रसमय काव्य-ग्रंथों, 'रामायण' (दे०) जैसे महाकाव्यों को देखकर इन्होंने ईसाई धर्म से संबद्ध वैसी ही सुंदर कृतियों का निर्माण करने का सफल यत्न किया था। तमिल काव्य 'कलंबकम्' (दे०) 'अंदादि' (दे०) लघु-प्रबंध-विधाओं का सफल प्रयोग इन्होंने किया है। 'तिरु-क्-कावलूर कलंबकम्', 'अडैक्कलनायकि वेण्-कलिप्पा', 'अडैक्कलमालै', 'अन्नै अऴुङ्गल् अंदादि', 'करुणांबर-प्-पदिकम्', 'इत्तेरियम्मन अम्मानै', इत्यादि कृतियाँ उत्तम कोटि के साहित्यिक नमूने हैं। 'तेमपावणि' (दे०) नामक प्रबंध-काव्य इनके पद्य-ग्रंथों में सर्वोत्कृष्ट है। इसकी रचना 'कंबरामायणम्' (दे०) 'पेरियपुराण' (दे०) आदि प्राचीन महाकाव्यों की पद्धति पर हुई है। इसमें तीन कांड और उनमें कुल 36 'पटल' या सर्ग हैं। इसका इतिवृत्त मातामेरी तथा ईसा के जन्म-वृत्त से संबद्ध है। कहते हैं कि 'पोर्चुगीस' भाषा में विख्यात एक काव्य की कथावस्तु पर यह इतिवृत्त आधारित है। इस काव्य में वर्णित देश-काल की परिस्थितियाँ, जन-जीवन की झाँकी इत्यादि भारतीय वातावरण को प्रतिबिंबित करती हैं। इसमें भारतीय पुराण-इतिहासों की तथा काव्य-परंपरा की बहुत-सी बातें यत्र-तत्र उल्लिखित हैं। 'तेमपावणि' अपनी काव्यगरिमा के कारण तमिल-वाङ्मय में अमर स्थान प्राप्त कर चुकी है।

ये अच्छे गद्यकार भी थे। तमिल में इनकी विरचित अनेक कहानियाँ, निबंध, दर्शन-ग्रंथ आदि प्रसिद्ध हैं। 'परमार्थ गुरु' अथवा 'परमानंद गुरु और उनके शिष्य' नामक कहानियाँ तो भारत के अन्य भाषा-प्रदेशों में भी लोककथावत् प्रचारित हो गई हैं। 'वेद-विवेचन', 'वैदिक मार्ग', 'ज्ञान-बोधन' इत्यादि ईसाई धर्म-विवेचन-विषयक हैं। 1732 ई० में 'चतुरकरादि' नाम से इन्होंने तमिल का प्रथम शब्दकोश प्रकाशित किया था। यह तमिल, लेटिन और पोर्चुगीज़ भाषाओं का कोश है। 'तोन्नूल विलक्कम्' इनका तमिल-व्याकरण है।

इन्होंने तमिल-लिपि में कुछ सुधार किए थे जो अब प्रचलित हो गए हैं। गद्य-शैली को भी इन्होंने आधुनिक रूप दिया था तथा तमिल में अनेक नये शब्द प्रचारित किए थे। ईसाई धर्म का प्रतिपादन करते हुए, वेद-उपनिषदों की शैली में इन्होंने अनेक शब्दों का नये संदर्भों में प्रयोग स्थिर कर दिया था।

इनसे प्रेरणा प्राप्त करके तमिल प्रदेश के अनेक विद्वानों ने ईसाई धर्म की दीक्षा ग्रहण कर तत्संबंधी साहित्य का निर्माण किया था।

वीरासामि चेट्टियार *(त० ले०)* [समय—ईसा की उन्नीसवीं शती]

इनका जन्म उन्नीसवीं शती के आरंभ में मद्रास में हुआ। इन्होंने तमिल के लिए सर्वथा नवीन शैली में निबंधों की रचना की जिनका प्रकाशन 'दिनवर्त्तमानी' नामक साप्ताहिक में हुआ। इन्होंने प्रगीतों की भी रचना की है। अपने साहित्यिक वक्तव्यों से लिए ये प्रसिद्ध हैं। कोश-संपादन का कार्य भी किया है। 1876 ई० में प्रकाशित 'विनोद-रस-मंजरी' (दे०) में संगृहीत इनके निबंधों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तमिल निबंध का तमिल निबंध-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

वीर राघवाचार्य *(सं० लें०)*

इसका समय चौदहवीं शती ई० है। इसने श्रीमद्भागवत् (दे० भागवत) पुराण की टीका 'भागवत-चंद्र चंद्रिका' नाम से लिखी। यह वैष्णवों में आदरणीय स्थान रखती है।

वीरशैवामृतपुराण *(क० कृ०)*

गुब्बि मल्लणार्य की रचना 'वीरशैवामृतपुराण' वीरशैव-सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाली शास्त्रकृति है। परंतु, वह लक्कण्ण (दे०) की 'शिवतत्त्वचिंतामणि' के समान पूर्णतः सैद्धांतिक ग्रंथ नहीं है। उसमें अनेक विषय, गाथाएँ, शिव की पच्चीस लीलाएँ, पुरातन तथा नूतन शरणों (भक्तों) की कथाएँ तथा वेदागम के वाक्य वर्णित हैं। संभवतः इसलिए उसे 'पुराण' कहा गया है। वह 'वीरशैव-कोश' बन गया है। उसमें 136 संधियों अथवा सर्गों में लगभग सात हज़ार वार्धक षट्पदी छंद हैं। आकार में वह काफ़ी बड़ा ग्रंथ है और प्रकार में भी महत्वपूर्ण है। मल्लणार्य को 'क्रियासार' (ब्रह्मसूत्र की व्याख्या जो संस्कृत में है) के कर्त्ता नीलकंठ शिवाचार्य से अधिक प्रेरणा मिली है। दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन में उनका प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। शिवलीलाओं और भक्तों की कथाओं में मल्लणार्य ने भक्ति की वेगपूर्ण धारा बहाई है। उनकी कवित्व-शक्ति और भाषा-शैली उनको एक श्रेष्ठ कवि घोषित करती है। 'वीरशैवामृत-पुराण' कन्नड़ वीर-शैव-साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

वीरसिंह, भाई *(पं० लें०)*

भाई वीरसिंह आधुनिक पंजाबी-साहित्य के प्रमुख स्तंभों में माने जाते हैं। इनका जन्म 1872 ई० में पंजाबी के महान् साहित्यकार डा० चरणसिंह (दे०) के घर, अमृतसर में हुआ। इनके नाना ज्ञानी हज़ारासिंह धार्मिक वृत्ति के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। नाना और पिता के धार्मिक और साहित्यिक जीवन का वीरसिंह जी के व्यक्तित्व पर पूरा प्रभाव पड़ा। ये कुशाग्र-बुद्धि, अध्यव-सायी, धर्म-प्रेमी और साहित्य-साधक होने के साथ-साथ कुशल पत्रकार और कर्मठ जाति-संगठक भी थे। 1892 ई० में इन्होंने भाई वज़ीर सिंह के साथ मिलकर 'वज़ीर हिंद प्रेस' खोली, 1894 ई० में 'खालसा-ट्रैक्ट सोसाइटी' की स्थापना की और पाँच वर्ष पश्चात् 'खालसा-समाचार' नामक पंजाबी साप्ताहिक पत्र प्रारंभ किया। इन्होंने 'खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी' के निमित्त अनेक छोटी-बड़ी पुस्तिकाएँ लिखने के अतिरिक्त पंजाबी-साहित्य को कई महत्वपूर्ण ग्रंथ भेंट किए हैं। उल्लेखनीय नाम हैं—**काव्य :** 'राणा सूरतसिंह' (दे०), 'लहरा दे हार', 'मटक हुलारे' (दे०), 'बिजलियां दे हार', 'कंबदी कलाई', 'प्रीत वीणा', 'मेरे साइआं जीउ' (दे०)। **उपन्यास :** 'सुंदरी' (दे०), 'बिजैसिंघ', 'सतवंत कौर', 'बाबा नौधसिंघ'। **नाटक :** 'राजा लखदाता सिंह'। **धार्मिक** और **ऐतिहासिक :** 'गुरु नानक चमत्कार' (दे०), 'कलगीधर चमत्कार', 'पुरातन जनमसाखी', 'श्री गुरु ग्रंथ कोश', 'सूरजप्रकाश', 'संत-गाथा' आदि।

इनकी साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में 1949 ई० पंजाब विश्वविद्यालय ने इन्हें 'डॉक्टरेट' की सम्मानार्थ उपाधि प्रदान की। 1955 ई० में साहित्य अकादेमी की ओर से इनकी रचना 'मेरे साईआं जीउ' पर पुरस्कार दिया गया। पंथ-दृष्टि उदार मानवतावाद और उदात्त जीवन-मूल्यों से संपृक्त है।

वीरेशचरिते *(क० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

राघवांक (दे०) का 'वीरेशचरिते' उद्दंड षट्-पदी में रचित एक छोटा काव्य है जिसमें दो संधियाँ (अथवा सर्ग) और 127 पद्य हैं। दक्ष-यज्ञ का कथानक इसमें वर्णित हुआ है। शिवजी के क्रोध से वीरभद्र का जन्म होता है और दक्ष के यज्ञ का नाश होता है। वीर-भद्र की कथा प्रधान रूप से वर्णित होने के कारण इस काव्य का नाम 'वीरेशचरिते' रखा गया है। इसका अंगी रस 'रौद्र' है। दक्ष, दधीचि, शिव और पार्वती इन सबका क्रोध रौद्र रस को पुष्ट करता है। राघवांक के पूर्व उनके गुरु और मामा हरिहर (दे०) ने 'वीरभद्र देवर रगळे' की रचना की थी। राघवांक के काव्य पर इसका प्रभाव पड़ा है, परंतु इस कारण उसकी मौलिकता नष्ट नहीं हुई है। राघवांक ने औचित्य के अनुसार कथानक में परिवर्तन भी किए हैं। रौद्र रस की तीव्रगामिता के लिए इस तरह कथानक पोषक होता है। कवि की छंद-योजना और ओज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण शैली भी इसमें सहायक होती हैं। आलोचकों ने बताया है कि राघवांक के इस काव्य में चित्रित वातावरण भव्य है, पात्र भव्य हैं, उनकी वाणी भव्य है, उनकी गति भव्य है और कवि की शैली भी भव्य है। ऐसी भव्यता के कारण पाठकों को पूर्ण रसानंद प्राप्त होता है। यह काव्य की श्रेष्ठता का प्रमाण है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक उत्कृष्ट खंडकाव्य है।

वीरेशलिंगमु पंतुलु, कंदुकूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1948 ई०; मृत्यु—1818 ई०]

ये आंध्र के राजमहेंद्रवरमु नामक शहर के रहने वाले थे। ये बड़े समाज-सुधारक तथा महान साहित्य-सुधारक थे। ये तेलुगु, संस्कृत तथा अँग्रेज़ी के विद्वान थे। वृत्ति से ये अध्यापक थे और अच्छे वक्ता, लेखक तथा पत्रकार भी। ये ब्राह्मधर्म के सिद्धांतों से प्रभावित थे। समाज-सेवा और साहित्य-सेवा में इन्होंने अपना तन, मन, धन सब कुछ अर्पित कर दिया था। इनकी रचनाएँ हैं: 'शुद्धांध्रनिरोष्ठ्यनिर्वचन नैषधमु' (स्वच्छ-तेलुगु में लिखा गया पद्य-काव्य); 'संधि-विग्रहमु' [पंचतंत्र (दे०) के आधार पर लिखा गया गद्य-काव्य]; 'रत्नावली' (दे०), 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) आदि संस्कृत से अनूदित नाटक; 'प्रह्लाद', 'हरिश्चंद्र' जैसे मौलिक नाटक; 'बलात्कार गान-विनोद' और 'ब्राह्मविनोद' जैसे प्रहसन; 'राजशेखरचरित्र' (दे०) (अँग्रेज़ी उपन्यास का अनुसरण); 'नीतिकथलु', 'सत्यराजा पूर्वदेशयात्रलु' आदि कथात्मक रचनाएँ; 'विक्टोरिया महाराज्ञि-चरित्र', 'जीसस-चरित्र' आदि जीवनी-रचनाएँ; 'स्वदेश संस्थानाधीशुलु' (ऐतिहासिक); कवि-जीवनियाँ; 'आत्मकथा', 'जंतुशास्त्र', 'वृक्षशास्त्र' जैसी ज्ञान-विज्ञान-संबंधी रचनाएँ, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित 'देशाभिमानमु', 'देशभाषलु', 'आंध्र भाषाभिवृद्धि', 'स्त्री-विद्या' आदि सैकड़ों लेख तथा निबंध; 'विवेकवर्धिनी', 'हास्यसंजीवनी', 'सती हितबोधिनी', 'चिंतामणि' (पत्र-पत्रिकाएँ)। 1900 ई० तक 10 खंडों में प्रकाशित इनकी रचनाओं में विस्तार और वैविध्य दोनों हैं। इन्होंने आत्म-कथा में लिखा है कि तेलुगु-साहित्य के गद्य-क्षेत्र के अंतर्गत उपर्युक्त कई विधाओं का इन्होंने ही श्रीगणेश किया था। इनकी रचनाओं में साहित्यिक तथा ज्ञान-विज्ञान-संबंधी दोनों प्रकार के ग्रंथ पाए जाते हैं। अँग्रेज़ी-साहित्य के अनुवाद, अनुकरण तथा अनुसरण भी इनमें पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं। भाषा तथा शैली की सुगमता और गद्यबद्धता इनकी रचनाओं की कुछ विशेषताएं हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें तत्कालीन समाज का स्पष्ट तथा बहुमुखी चित्र पाया जाता है।

इन्होंने तेलुगु-साहित्य-क्षेत्र में पद्य के साथ गद्य को भी समान तथा सुस्थिर स्थान प्रदान किया; सरल तथा स्वस्थ गद्य-शैली का आदर्श प्रस्तुत किया और अँग्रेज़ी-साहित्य के परिचय से विविध गद्य-विधाओं का आरंभ किया। गद्यक्षेत्र में अपनी प्रतिभा के कारण इन्होंने 'गद्य-तिक्कन' की उपाधि प्राप्त की है। इनको दक्षिण का विद्यासागर कहा जाता है। हिंदी-साहित्य के इतिहास में भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र की तरह तेलुगु में कंदुकूरि वीरेश-लिंगमु आधुनिक युग के प्रवर्तक माने जाते हैं।

वीरविनोद *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1871 ई० से 1892 ई० तक]

इसके रचयिता कविराजा श्यामलदास थे। 'वीरविनोद' नाम से राजस्थान में कई रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें बाँकीदास (दे०) का 'वीरविनोद' भी प्रसिद्ध है। किंतु, सबसे अधिक प्रसिद्ध 'वीरविनोद' श्यामलदास की यह कृति ही है। यह एक बृहत् इतिहास-ग्रंथ है, जो 2700 पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इसमें मेवाड़ के राजाओं का प्रामाणिक इतिहास विस्तार से वर्णित है तथा प्रासंगिक रूप में राजस्थान के अन्य राज्यों का भी इतिहास आया है। इसकी भाषा अरबी-फ़ारसी-मिश्रित खड़ी बोली हिंदी है।

वी० वी० *(मल० ले०)*

वळ्ळत्तोळ् वासुदेव मेनन वळ्ळत्तोळ् परिवार के सदस्य और प्रसिद्ध कवि कुट्टिप्पुरत्तु केशवन् नायर (दे०) के सुपुत्र थे। वी० वी० के नाम से प्रकाशित पुस्तकों में रेखाचित्रों का संग्रह 'मारारुम् कूट्टुकारुम्' और कहानी-संग्रह 'संध्या' प्रमुख है। महाकवि जी० शंकर कुरुप्प (दे०) की कुछ कविताओं का इन्होंने अँग्रेज़ी में अनुवाद भी किया है।

वी० वी० का सबसे महत्वपूर्ण योगदान इनके रेखाचित्र ही हैं। कुट्टिकृष्ण मारार् (दे०), जी० शंकर कुरुप्प आदि साहित्यकारों और अनेक अन्य महापुरुषों के व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन करने में इन्हें सफलता मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीसलदेवरासो *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—संभवतः 1215 ई०]

इस ग्रंथ क कर्ता नरपति (दे०) नाल्ह हैं। इसका चरितनायक विग्रहराज तृतीय अथवा चतुर्थ है। अधिक संभावना यही है कि विग्रहराज तृतीय (शासन-काल 973-999 ई०) ही इसका चरित-नायक है, किंतु स्वयं नरपति नाल्ह विग्रहराज चतुर्थ के समकालीन एवं सभा-कवि थे।

यह ग्रंथ अपूर्ण रूप में प्राप्त है। इसका कथानक प्रमुखतः वीसलदेव की नवोढा प्रोषितपतिका की विरह-व्यंजना पर आधारित है जो चार भागों में विभाजित है। इस प्रकार यह ग्रंथ वीर रस का नहीं है, अपितु इसमें एक वीर पुरुष की शृंगारिक चर्चा है। कहीं-कहीं काव्य-सौंदर्य मोहक तथा अनूठा है। यह काव्य-गीत के रूप में लिखा गया है, क्योंकि इसकी वर्णन-शैली घटनात्मक नहीं है, वर्णनात्मक है।

यह ग्रंथ भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कह सकते हैं, क्योंकि इसकी भाषा में एक ओर अपभ्रंश का प्रभाव मिलता है और दूसरी ओर हिंदी-रूपों का समावेश है। इस स्थिति में ऐसा आभासित होता है कि शिष्ट काव्य-भाषा में ब्रज और खड़ीबोली के प्राचीन रूप का ही राजस्थान में भी व्यवहार होता था। साहित्य की सामान्य भाषा हिंदी ही थी जो 'पिंगल' (दे० डिंगल-पिंगल) भाषा कहलाती थी। 'वीसलदेवरासो' में बीच-बीच में बराबर इस साहित्यिक भाषा (हिंदी) को मिलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।

वृंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1643 ई०]

वृंद कवि का जन्म 'मेड़ता' (राजस्थान) में हुआ था। ये जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह (दे०) के दरबारी कवि थे। इनके बनाये अनेक ग्रंथ कहे जाते हैं—'वृंद सतसई', 'शृंगार-शिक्षा', 'भाव-पंचाशिका', 'रूपक-वचनिका', 'अलंकार-सतसई' और 'हितोपदेशाष्टक'। इनकी ख्याति 'वृंदसतसई' के कारण है। इसमें दृष्टांत, उदाहरण, अर्थांतरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों के सुंदर उदाहरण हैं। इनका यह ग्रंथ लोकनीति का सुंदर संग्रह है। रीतिकालीन सूक्तिकार कवियों में वृंद का विशिष्ट स्थान है।

वृंदावनदास *(बं० ले०)*

अनुमान है कि सोलहवीं शती के प्रथम दशक के अंत में अथवा द्वितीय दशक के आरंभ में इनका जन्म हुआ और सोलहवीं शती के आठवें दशक में इनका देहांत हुआ था। इनकी माता का नाम नारायणी था। पिता के नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनके जन्म-स्थान के संबंध में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

ये नित्यानंद प्रभु के शिष्य थे। उन्हीं के आदेश से ये महाप्रभु चैतन्य की जीवनी लिखने में प्रवृत्त हुए। उन्हीं से इन्होंने महाप्रभु का जीवन-वृत्त प्राप्त किया था। इनका प्रमुख ग्रंथ 'श्री चैतन्य भागवत' (दे०) है। अनुमानतः यह ग्रंथ 1541-45 ई० के आसपास पूर्ण हुआ था। 'श्री चैतन्य भागवत' आदि, मध्य तथा अंत तीन खंडों में विभक्त है। इसमें महाप्रभु को नारायण-रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। चैतन्य देव के लोकोत्तर चरित्र ने इनको अत्यंत जनप्रियता दिलाई। ग्रंथ की समाप्ति आकस्मिक रूप से हुई है, अतः कुछ विद्वानों का कहना है कि यह वृद्धावस्था में लिखा गया था और इसके पूर्ण होनें से पूर्व ही इनकी मृत्यु हो गई थी।

'श्री चैतन्य भागवत' अत्यंत ललित भाषा में लिखा गया ग्रंथ है। इसमें भाषा को अलंकृत करने का प्रयास नहीं है। भक्ति-रस का यह सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। 'श्री चैतन्य भागवत' में इतिहास के तत्त्व हैं। पंद्रहवीं शती के अंत एवं सोलहवीं शती के प्रारंभ के पश्चिम बंग के सामाजिक जीवन के संबंध में इस ग्रंथ में अत्यंत मूल्यवान सामग्री मिलती है।

'श्री चैतन्य भागवत' स्वतःस्फूर्त कृति है। इसमें अपरिसीम माधुर्य एवं स्वतःउत्सारित अजस्र भक्ति रस ने काव्य को श्रेष्ठ स्थान दिलाया है। चैतन्य की बाल और युवावस्था की लीलाओं का सहज और सरल भाषा में चित्ताकर्षक भाव से इसमें वर्णन हुआ है। अनेक राग-रागिनियों का उल्लेख भी इसमें मिलता है। यह पयार छंद में है। दो-एक स्थानों पर त्रिपदी का व्यवहार भी है।

इस समय भी इस ग्रंथ का गौरव एवं जन-प्रियता अक्षुण्ण है।

वृत्तमंजरी *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1911 ई०]

यह ए० आर० राजराजवर्मा (दे०) का छंदः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र-ग्रंथ है। इसमें संस्कृत और मलयाळम के छंद लक्षण-उदाहरण सहित स्पष्ट किए गए हैं। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी भाषा में लिखी गई है।

'वृत्तमंजरी' मलयाळम का प्रामाणिक छंद:-शास्त्र-ग्रंथ है। इसमें संस्कृत की परंपरा के अनुसार संस्कृत-छंदों के लक्षण उसी छंद के पद्य-भागों में दिए गए हैं। साथ ही गद्य में व्याख्या भी है। कई द्राविड़ छंदों को ग्रंथकार ने नये नाम दिए हैं और उनको साहित्य में प्रतिष्ठित किया है। आज भी 'वृत्तमंजरी' जैसी कृति इस क्षेत्र में नहीं है। 'केरलपाणिनीयम्' (दे०) और 'भाषा-भूषणम्' की तरह 'वृत्तमंजरी' भी ए० आर० राजराज-वर्मा की अमर कृति है।

वृत्तशिल्पम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

यह छंदःशास्त्र पर कुट्टिकृष्ण मारार (दे०) का शोधपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में लेखक ने अपने इस मत का समर्थन किया है कि छंदों का आधार ताल है और ताल पर आधारित मात्रा-गणों के समूह के रूप में प्रत्येक छंद का विश्लेषण किया जा सकता है। उन्होंने दिखाया हैं कि अक्षर-गणों पर आधारित संस्कृत छंदों को भी इस विश्लेषण के अधीन लाया जा सकता है। छंदःशास्त्र पर मलयाळम में उपस्थित पुस्तकों में 'वृत्तशिल्पम्' का स्थान अग्रगण्य है।

वृत्ति (नाट्यवृत्ति) *(पारि०)*

'वृत्ति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र में उप-नागरिका (वैदर्भी) आदि रीतियों (दे० रीति), अभिधा आदि शब्दशक्तियों तथा भारती आदि वृत्तियों (नाट्य-वृत्तियों) के अर्थ में हुआ है। नाटक में विभिन्न पात्र जो एक-दूसरे के प्रति, अथवा किसी उद्देश्य-प्राप्ति के लिए विभिन्न व्यापार (व्यवहार) करते हैं उसे 'वृत्ति' (नाट्य-वृत्ति) कहते हैं। अभिनय करते समय पात्र तीन प्रकार की चेष्टाएँ करता है—वाचिक, आंगिक और मानसिक। इन्हीं चेष्टाओं का वैचित्र्यपूर्ण संगम 'वृत्ति' कहाता है—कायवाङ्मनसा चेष्टा एकसह वैचित्र्येण वृत्तयः। राजशेखर (दे०) ने 'विलास-विन्यास-क्रम' को वृत्ति कहा है और इसकी तुलना में 'वेश-विन्यास-क्रम' को प्रवृत्ति। 'विलास' से अभिप्राय है—पात्र द्वारा बोले गए वचन और की गई चेष्टा का भंगिमायुक्त व्यापार। भोज (दे०) के अनुसार वृत्ति उस व्यापार (व्यवहार) को कहते हैं जो किसी पात्र द्वारा चित्त की निम्नोक्त अवस्थाओं में किया जाता है—विकास, विक्षेप, संकोच और विस्तार। वृत्ति को भरत (दे०) ने 'नाट्यमाता' अर्थात् अभिनेय (दृश्य) काव्य की जननी कहा है। वृत्ति (नाट्यवृत्ति) के चार भेद हैं—(1) 'भारती', अर्थात् पात्रों का वाग्व्यापार भारती वाग्वृत्तिः, पाठ्यप्रधानो भारती।—अभिनव गुप्त। (2) 'आरभटी' अर्थात् उत्साहपूर्ण तथा उद्धत वचन और युद्ध तथा रौद्र प्रदर्शक चेष्टाएँ। यह अरों (भरों) की वृत्ति मानी गई है—इर्यति इति अरा भराः सोत्साहाः अनलसाः, तेषाभियम् आरभटी।—अभिनव गुप्त (दे०)। इसके चार अंग माने गए हैं—संक्षिप्तका, संफेट, वस्तू-त्थापन और अवपातन। —दशरूपक 2.57-59। (3) 'सात्वती' 'अर्थात् सत्य अथवा मन से संबंध रखने वाली वृत्ति—मनोव्यापाररूपता सात्वकी सात्त्विती। इसके भी चार अंग हैं—संलाप, उत्थापक, सांघात्य और परि-वर्तक (दशरूपक 2.53) (4) 'कैशिकी'—केशों के समान कोमलवृत्ति जिसका प्रयोग नारी-पात्र करते हैं। लालित्य और सौकुमार्य के प्रयोग को 'कैशिकी' वृत्ति कहते हैं। इसके चार अंग हैं—नर्म, नर्मस्फिज, नर्मस्फोट और नर्म-गर्म। — दशरूपक 2.47।

वृषभेंद्रविजय *(क० कृ०)*

'वृषभेंद्रविजय' के कवि षडक्षरदेव (दे०) (रचना-काल 1655-77 ई०) मध्यकाल के अत्यंत प्रसिद्ध वीरशैव कवि हैं। उन्होंने तीन चंपू-काव्य लिखकर अपार यश प्राप्त किया है जिनमें एक 'वृषभेंद्रविजय' है। वह बसवेश्वर के चरित को प्रकाशित करने वाला एक बृहद् काव्य है। उसमें 42 आश्वास अथवा सर्ग तथा लगभग चार हज़ार पद्य हैं। चंपू-काव्य होने के कारण गद्य का प्रयोग भी उसमें हुआ है, परंतु वे दीर्घ नहीं हैं और अधिक भी नहीं हैं। कन्नड़ में बसवेश्वर के चरित को महाकवि हरिहर (दे०) ने काव्य का विषय बनाया था जिसका प्रभाव कई वीरशैव-कवियों पर पड़ा। उनमें षडक्षरदेव भी एक हैं। उन्होंने कहा है—'मैंने हरिहर के मार्ग का अनुसरण किया है।' यह उनकी सांप्रदायिक निष्ठा का ही द्योतक है।

चरित-काव्यों में कथावस्तु के परिवर्तन के लिए विशेष स्थान नहीं रहता क्योंकि, ऐसे परिवर्तनों से चरित-नायक के चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविक अंश समाविष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाने की संभावना रहती है। अतएव, प्रतिभावान् कवि जहाँ कथा में परिवर्तन करना संभव होता है, वहाँ इस प्रकार परिवर्तन लाता है कि औचित्य-भंग न हो। षडक्षरदेव ने वैसा ही किया है। उनके औचित्य-ज्ञान का सबसे बड़ा निदर्शन यही है कि उनके वर्णनों में परिमितता है और उनका बाहुल्य भी नहीं है। रसपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करने तथा रमणीय भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली में कल्पना की शालीनता दिखाने में उनको अद्भुत सफलता मिली है। उनका 'वृषभेंद्रविजय' महाकाव्य है, कन्नड़ की श्रेष्ठ कृतियों की पंक्ति में निश्चित रूप से उसका स्थान है।

वृषभेश्वरशतकमु *(ने० कृ०)* [रचना-काल--तेरहवीं-चौदहवीं शती]

तेलुगु के वीरशैव कवियों में पाल्कुरिकि सोमनाथुडु (दे०) सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनकी रचनाएँ तेलुगु, संस्कृत और कन्नड़ तीनों भाषाओं में मिलती हैं।

अब तक तेलुगु में उपलब्ध मुकुट, संख्या आदि नियमों से युक्त शतकों में यह सर्वप्रथम शतक है। 'वसवा वसवा वृषाधिपा' इस मुकुट से इसकी रचना की गई है। यह शतक परम भक्ति से पूर्ण है। बसवेश्वर की लीलाओं के साथ-साथ अन्य शिवभक्तों के चरितों का वर्णन तथा उनकी स्तुति इस काव्य में की गई है। 'अष्टभाषा विशारद' सोमनाथुडु ने बीच-बीच में तमिल, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं में भी कुछ छंद इस शतक में लिखे हैं। इससे उनका बहु-भाषा-ज्ञान प्रकट होता है।

वृहत्कथा *(सं० कृ०)*

इसका लेखक गुणाढ्य है, जिसका समय ईसा की प्रथम शती (78 ई०) माना गया है। जनश्रुति है कि पैशाची भाषा में लिखे गए इस ग्रंथ में 7 लाख श्लोक थे, जिसे कथाकार ने तत्कालीन सातवाहन राजा हाल (दे०) [गाहासत्तसई (दे०) के लेखक] के पास भेजा था, किंतु उसके द्वारा इसे अस्वीकार किए जाने पर गुणाढ्य ने रो-रोकर पढ़ते हुए इसका एक-एक पन्ना अग्नि-कुंड में जलाते-जलाते इसके 6 लाख पन्ने जला दिए। शेष एक लाख श्लोकों में नरवाहनदत्त के चरित वाली कथा बच रही है जिसमें इसके पराक्रमों का वर्णन है। यह कौशांबी के राजा उदयन का पुत्र था। एक बार यह अपने मित्र गोमुख के साथ वन में गया। वहाँ उसने विद्याधर-राजकुमारी मदनमंजुका (मदनमंचुका) से विवाह कर लिया, किंतु उसे एक विद्याधर मानसवेग उड़ा ले गया। मानसवेग की बहिन वेगवती ने मदनमंजुका का पता लगाने में नरवाहनदत्त की सहायता की। अंततः वह सफल हुआ और विद्याधरों का राजा बन गया।

उक्त मूलकृति पद्यबद्ध थी अथवा गद्यबद्ध, इसमें मतभेद है। कश्मीर की जनश्रुति के अनुसार यह पद्यबद्ध थी, किंतु दंडी (दे०) ने 'काव्यादर्श' (दे०) में इसे गद्यबद्ध कहा है। जो हो, पैशाची भाषा में लिखित मूल ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। अब इसके तीन संक्षिप्त संस्कृत-रूपांतर मात्र मिलते हैं। अपनी सरसता तथा रोचक वर्णन-शैली के कारण लोक-कथाओं में बृहत्कथा का उस प्रकार सर्वोपरि स्थान है, जिस प्रकार 'पंचतंत्र' (दे०) का स्थान नीति-कथाओं में सर्वोपरि है। तीन संस्कृत-रूपांतर इस प्रकार हैं—(1) नैपाल के बुद्धस्वामी-कृत 'वृहत्काश्लोक-संग्रह' (समय आठवीं या नवीं शती)। (2) क्षेमेंद्र (दे०) द्वारा रचित 'वृहत्कथामंजरी' (दे०), तथा (3) सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर'। इन दोनों का समय 1037 ई० है। वृहत्कथा के दो तमिल-संस्करण भी पाये जाते हैं।

वृहत्कथामंजरी *(सं० कृ०)*

'वृहत्कथामंजरी' पैशाची भाषा में रचित वृहत्कथा का संस्कृत-पद्य-रूपांतर है। विविध प्रतिभा के धनी क्षेमेंद्र (दे०) की सशक्त लेखनी से प्रसूत यह कथा संस्कृत-साहित्य की अनुपम निधि है।

अट्ठारह लंबकों (अध्यायों) के इस कथाकाव्य में प्रधान कथा के साथ अनेक अवांतर कथाएँ भी कही गई हैं। मुख्य कथा का नायक वत्सराज उदयन (दे०) का पुत्र नरवाहनदत्त है जो गंधर्वों का चक्रवर्तित्व प्राप्त करता है। वह अनेक गंधर्व-सुंदरियों से प्रणय एवं परिणय करता है। उनमें से मदनमंचुका उसकी पटरानी बनती है।

इस ग्रंथ में क्षेमेंद्र ने देवी-देवताओं की भव्य स्तुतियों के साथ ही प्रकृति के रम्य दृश्य उपस्थित किए हैं। क्षेमेंद्र की कथा-प्रणाली में अनेक वैशिष्ट्य विद्यमान हैं। इनमें कुछ तो मूलकथा की विशेषता के कारण हैं और कुछ कवि की निजी उद्भावनाएँ हैं। इसमें प्रधान कथा में से अवांतर कथाएँ स्वतः निकलती रहती हैं। बाण (दे०) तथा दंडी (दे०) ने इन कथाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यह संस्कृत के कथा-साहित्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला एक नितांत रोचक, सरस तथा उपदेशप्रद काव्य है।

वृहस्पति *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 200-400 ई० के बीच]

'महाभारत' (दे०) में वृहस्पति को देवगुरु कहा गया है। वृहस्पति-रचित महत्वपूर्ण ग्रंथ 'वार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का प्रकाशन एफ़० डब्ल्यु टॉमस ने 1921 ई० में किया था। 'वार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' में 6 अध्याय हैं।

वृहस्पति का अर्थशास्त्र कौटिल्य (दे०) के 'अर्थशास्त्र' (दे०) का प्रमुख आधार कहा जा सकता है। कौटिल्य ने जिन पाँच अर्थशास्त्रीय संप्रदायों का उल्लेख किया है, उनमें वार्हस्पत्य प्रमुख है। वात्स्यायन (दे०) ने 'कामसूत्र' में 'वृहस्पतिरर्थाधिकारिकम्' कहकर वृहस्पति के अर्थशास्त्री होने का उल्लेख किया है।

वृहस्पति ने युवा जन को मंत्री-पद के लिए अयोग्य बतलाया है। राजा के कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हुए वृहस्पति ने कहा है कि राजा को पथिकों के लिए धर्मशाला-निर्माण, मंदिर-निर्माण आदि कार्य करवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा को प्रजा के चारित्रिक विकास के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

निश्चय ही, 'वार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' प्राचीन भारतीय राजनीति का एक अद्भुत प्रामाणिक ग्रंथ है।

वेंकट अप्पारावु, बसवराजु *(ते० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1933 ई०]

अप्पारावु जी का जन्म विजयवाड़ा के समीप 'पटमटा' नामक ग्राम में हुआ। बचपन में ही इनकी माता स्वर्ग सिधार गई थीं। अतः इनका पालन-पोषण इनके मामा के यहाँ हुआ। 1912 ई० में ये हाईस्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। 1916 ई० में बी० ए० तथा 1936 ई० में वकालत की परीक्षा इन्होंने मद्रास से पास की।

अप्पारावु जी प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति थे। इनकी गति साहित्य तथा संगीत दोनों में समान रूप से थी। कविता के क्षेत्र में ये सब से अधिक गुरुजाडा अप्पाराव (दे०) जी की कविता-शैली से प्रभावित हुए। अतः इनकी वाणी लोक-जीवन के निकट तथा सुबोध थी। यद्यपि इन पर कुछ कविताओं में स्वच्छंदतावाद की वैयक्तिक अनुभूतियों के उद्गार मिलते हैं तथापि कुल मिलाकर यही कहना पड़ता है कि इन्होंने अपने जीवन को तथा विचारधाराओं एवं अभिव्यक्ति-शैलियों को समाज और देश की समष्टिगत समस्याओं का सक्षम माध्यम वना दिया। फलतः अपने व्यक्तिगत जीवन में इन्हें वहुत कुछ त्याग और बलिदान करना पड़ा। गांधीवाद का प्रभाव भी इन पर बहुत था।

इनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं: (1) 'सेलयेटिगानमु', (2) 'बसवराजु अप्पारावु गीतमुलु', (3) 'आंध्रकवित्वचरित्रमु' आदि।

गीतकार कवि के रूप में इनका यश चिरस्थायी है।

वेंकटपति, शेषं *(ते० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई० का पूर्वार्ध]

वेंकटपति कवि मदुरै पर प्रशासन करने वाले विजयरंगचोक्कनाथ के समकालीन थे। इनके मित्रों में समुखं वेंकटकृष्णप्पनायक तथा वंगल शीनय्या उल्लेखनीय थे। कृष्णप्पनायक तथा शीनय्या, दोनों तत्कालीन राजा चोक्कनाथ को प्रभावित करते थे। अतः उनके मित्र होने के कारण कवि वेंकटपति सुखमय जीवन बिताते थे।

वेंकटपति-रचित कृतियों में आजकल एकमात्र कृति 'शशांकविजयमु' उपलब्ध हुई है। 'शशांकविजयमु' की प्रशस्ति तेलुगु-साहित्य के गिने-चुने श्रृंगार-काव्यों में की जाती है। यह पाँच आश्वासों में निबद्ध काव्य है जिसमें तारा एवं चंद्र की प्रणयगाथा अभिवर्णित है। चंद्र गुरुकलु वास का क्लेश उठाते हुए वृहस्पति के यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। सुंदर यौवन से भूषित चंद्र को गुरु-पत्नी तारा प्रेम करने लगी। एक बार वृहस्पति को किसी यज्ञ में भाग लेने के लिए इंद्र से निमंत्रण मिला। तारा की सहायता के लिए शिष्य चंद्र को आदिष्ट किया। वसंत के आगमन से सारी प्रकृति पुलकित थी। मौके से न चूकने वाली तारा ने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया। चंद्र सहज ही आरंभ में गुरुद्रोह के लिए प्रस्तुत नहीं था। मनोविज्ञान के आधार पर दोनों में तर्क-वितर्क बहुत देर चला। इस प्रसंग में कवि ने अपनी नाटकीय प्रतिभा का परिचय दिया। अंत में तारा जीत गई और उसकी मनोकामना की सिद्धि हुई। याग से निवृत्त वृहस्पति को इस घटना का पता चला। दंपती में वाद-विवाद चला। अंत में गुरु ने शिष्य चंद्र को निकाल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेंकट-पार्वतीश्वर कवुलु *(ते० ले०)* [वेंकटरावु : जन्म—1880 ई० तथा पार्वतीशमु : जन्म—1882 ई०]

दोनों ने मिलकर इस नाम से संयुक्त रचनाएँ की हैं। आधुनिक युग के प्रवर्तक साहित्यकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। बीसवीं शती के आरंभ में तेलुगु-साहित्य को नयी दिशा, नयी प्रेरणा एवं नयी शक्ति प्रदान करके इन्होंने उसके भंडार को और अधिक संपन्न किया है। 'काव्यकुसुमावली', 'बृंदावनमु', 'एकांतसेवा' (दे०), आदि इनके काव्य-ग्रंथ हैं और 'ताराशशांकमु' इनका नाटक। इसके अतिरिक्त बँगला एवं अँग्रेज़ी से अनेक ग्रंथों का अनुवाद करके इन्होंने तत्कालीन तेलुगु-साहित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की है।

आधुनिक तेलुगु-कविता में प्रगीत-शैली का आरंभ इनकी 'एकांतसेवी' एवं 'काव्यकुसुमावली' से ही आरंभ हुआ था। इनकी रचनाओं में सहज स्वाभाविक भाषा तथा नूतन एवं विलक्षण गति दर्शनीय होती है। कविता में शब्दों की 'पुनरावृत्ति इन को प्रिय लगती है। तेलुगु के शब्द-गुंफ को इतनी मृदुता, स्वच्छंदता एवं माधुर्य के साथ किसी ने भी प्रयुक्त नहीं किया है। इनकी भाषा अत्यंत सरल है किंतु भाव अति गंभीर।

वेंकटरत्नमु पंतुलु, कोक्कोंड *(ते० ले०)* [जन्म—1842 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

श्री वेंकटरत्नम् पंतुलु आधुनिक तेलुगु-साहित्य के प्रवर्त्तक कंदुकूरि वीरेशलिंगमु पंतुलु (दे०) के पथ-प्रदर्शकों में माने जाते हैं। साहित्य, समाज और धर्म—तीनों क्षेत्रों में इनका प्रवेश था। इनको तेलुगु का 'जॉनसन' कहा जाता है। संस्कृत की 'कादंबरी' (दे०) पर आधारित इनके 'महाश्वेता' नामक उपन्यास का तेलुगु के प्रारंभिक उपन्यासों में प्रमुख स्थान है। संस्कृत से 'नरकासुर विजय व्यायोगमु' का तेलुगु में रूपांतर कर पंतुलु ने नाटक-रचना की एक नयी दिशा का उद्‌घाटन किया।

कई तीर्थस्थलों के माहात्म्य का वर्णन करने वाली इनकी कई काव्यकृतियाँ मिलती हैं। अध्यापन श्री पंतुलु का व्यवसाय रहा और पत्रकारिता में भी इनको काफ़ी सफलता प्राप्त हुई। 'गीतगोविंद' (दे०) के अनुकरण पर इन्होंने संस्कृत में 'गीतमहानटनमु' की रचना की।

वेंकट रमणय्या, नेलटूरि *(ते० ले०)*

सुब्बय्या और पापम्मा के पुत्र वेंकटरमणय्या का जन्म नेल्लूरू ज़िले के नेलटूर ग्राम में हुआ। 1919 ई० में मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से बी० ए० ऑनर्स (इतिहास) करने के बाद ये बैंगलूर, मद्रास आदि नगरों में इतिहास तथा तेलुगु का अध्यापन कार्य करते रहे। 1928-29 ई० में इन्होंने 'दक्षिण भारत के मंदिरों के स्रोत' शीर्षक विषय पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। 1930 से 1946 ई० तक मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास तथा पुरातत्त्व विभाग में ये रीडर के पद पर रहे और वहाँ से अवकाश ग्रहण करने के बाद 'स्वतंत्रता-आंदोलन के इतिहास' की रचना में मद्रास तथा आंध्र में शोध-अधिकारी के रूप में काम किया। स्टेट गज़ेटीयर कार्यालय (आंध्र) में भी इन्होंने उच्च अधिकारी के पद को सुशोभित किया। 1964 से 1971 ई० तक पुरातत्त्व-विभाग में एपिग्राफ़ी शाखा के असिस्टेंट डायरेक्टर के कार्यभार को सँभालने के बाद, आजकल ये घर पर ही लेखन कार्य कर रहे हैं।

दक्षिण भारत के और विशेषकर आंध्र प्रदेश के इतिहास के जाने-माने विद्वान् हैं। दक्षिण के अनेक राजवंशों के इतिहास को प्रकाश में लाने वालों में इनका विशिष्ट स्थान है। इन्होंने दक्षिण भारत के इतिहास से संबद्ध लगभग दस महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना अँग्रेज़ी में की है। 'ए कांप्रेहेंसिव हिस्टरी ऑफ़ इंडिया' की रचना में इन्होंने प्रो० नीलकंठ शास्त्री को सहयोग प्रदान किया था। इन्होने 'एपिग्राफ़ी अंध्रिका' (भाग 1 और 2) का संपादन किया तथा रुद्रशिव और विष्णु कुंडिन राजाओं के इतिहास पर मद्रास विश्वविद्यालय में 'ऐक्सटैंशन' भाषण दिए हैं। इनके इतिहास से संबंधित सौ से अधिक लेख प्रकाशित हुए हैं।

इन्होंने दक्षिण भारत से संबद्ध 6-7 पुस्तकें तेलुगु भाषा में भी लिखी हैं। तंजौर और मदुरै के नायक राजाओं के समय के तेलुगु-साहित्य पर इन्होंने पर्याप्त शोध किया है और एक आधिकारिक पुस्तक लिखी है।

ये अच्छे कहानीकार भी हैं। इनका 'मधुमावती और अन्य कहानियाँ' नाम से कहानियों का संकलन प्रकाशित हुआ है। श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के अंतिम दिनों के इतिहास को लेकर लिखी गई इनकी 'पश्चातापमु' नामक कहानी अत्यंत प्रसिद्ध है।

इन्होंने विजयनगर के इतिहास की पृष्ठभूमि पर, अँग्रेज़ी में भी चार श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेंकटरमणय्या, बुलुसु *(ते० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

वेंकटरमणय्या जी 'उभयभाषाप्रवीण' तथा 'साहित्यविद्याप्रवीण' हैं। मद्रास की टिल्लेट पाठशाला में अध्यापक का कार्य कर, इन्होंने अवकाश ग्रहण किया है। काशी विश्वविद्यालय में कुछ वर्षों तक अलंकारशास्त्र (दे०) पर भी इन्होंने शोधकार्य किया है। 'विजयविलासमु' (दे०), 'मनुचरित्र' (दे०), 'पांडुरंगमहात्म्यमु' (दे०), 'आंध्रमहाभागवतमु' (दे० 'महाभागवतमु'), 'प्रौढ़ व्याकरणमु', 'नरसभूपालीयमु', 'बालव्याकरणमु' आदि ग्रंथों पर इनकी छोटी टीकाएँ पर्याप्त लोकप्रिय हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'निर्मलानंदम्' (नाटक), 'पदहारु रात्रुलु' (सोलह रातें) (कहानी-संग्रह); 'चित्तूरुदुर्गमु' (उपन्यास); 'इनुपमेडलु', 'पोगडदंडा', 'कलिंगदेशमु', 'मायालोकमु', 'कुंजरयूथमु' आदि गवेषणापूर्ण लेख भी लिखे हैं। संप्रति मद्रास में 'आंध्र-पत्रिका' (साप्ताहिक) में 'धर्मपथमु' नामक स्तंभ के लिए लिख रहे हैं।

वेंकटरामैया, के० *(के० ले०)*

ये कन्नड, अँग्रेज़ी, संस्कृत और तेलुगु के अच्छे विद्वान हैं। ये मैसूर विश्वविद्यालय में कन्नड प्राध्यापक थे। आप बड़े अच्छे वक्ता हैं। इन्होंने 'कन्नड भागवत' का संपादन किया है जिसका दशम स्कंध ही प्रकाशित हुआ है। इनकी 'कन्नड साहित्य' नामक कृशकाय रचना अत्यंत उपयोगी है। गत वर्ष इनकी पुस्तक 'पंप-नन्नय—ओदु समीक्षे' (पंप और नन्नय—एक समीक्षा) प्रकाश में आए हैं जो कन्नड और तेलुगु भाषाओं पर इनके समान अधिकार की परिचायक है। इसमें कन्नड और तेलुगु के आदि महाकवियों के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'पंपभारत समीक्षे' और 'काव्यमंथन' इनकी अन्य आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

वेंकटरामैया, सी० के० *(क० ले०)*

ये आधुनिक कन्नड-साहित्य में उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और आलोचक के रूप मे पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। छात्र-जीवन में ही इन्होंने मिसेज़ हेनरी वुड के उपन्यासों के आधार पर 'हरियाणाक्षी' और 'विनयचंद्र' नाम से दो उपन्यास लिखे थे। इनका 'अर्गलकुमारी' नामक उपन्यास मैसूर विश्वविद्यालय से पुरस्कृत हुआ था, किंतु उसकी हस्तलिखित प्रति खो जाने से प्रकाश में न आ सका। इनके 'संयुक्तापहरण' नामक उपन्यास का थोड़ा अंश प्रबुद्ध कर्णाटक में धारावाहिक रूप से प्रकट हुआ था। कहानियों में इनकी 'नीने मुद्दुकृष्ण' बहुत लोकप्रिय हुई है। इनके नाटकों में 'मंडोदरी', 'ब्रह्मवादिनी' और 'तेनालि रामकृष्ण' प्रसिद्ध हैं। 'नम्म समाज' (हमारा समाज) और 'सुंदरी' इनके सामाजिक नाटक हैं। 'हल्लिय कथेगलु' और 'तुरायि' इनके कथा-संग्रह हैं। 'पैग़ंबर महम्मद', 'बुद्ध', 'हर्षवर्धन', 'एब्रहाम लिंकन' और 'गुरुदेव' इनके द्वारा रचे गए जीवनचरित-ग्रंथ हैं। इनके आलोचनात्मक लेखों की संख्या भी कम नहीं है। 'भास' पर इन्होंने सुदीर्घ अध्ययन के बाद एक बृहदाकार, सुंदर और महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है।

वेंकटराय शास्त्री, वेदं *(ते० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में तेलुगु-साहित्य में नाटककार, समालोचक, भाषामर्मज्ञ और दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध श्री वेंकटराय शास्त्री का जन्म मद्रास में हुआ। प्राचीन परंपरा के पारंगत विद्वान् होते हुए भी आधुनिक विचारधारा से अनुप्राणित इनकी साहित्य-साधना ने इनको महामहोपाध्याय, सर्वतंत्र स्वतंत्र, कलाप्रपूर्ण आदि विरुदावलियों से विभूषित किया था। इनका 'प्रतापरुद्रीयमु' (दे०) (1897 ई०) नामक नाटक तेलुगु का पहला मौलिक नाटक माना जाता है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग, पात्र-सृष्टि में सजीवता, कथासंविधान में रस-दृष्टि आदि कई विशेषताओं के कारण इस नाटक का काफ़ी प्रचार और प्रदर्शन हुआ। 'उषा-परिणयमु' (1901 ई०) और 'बोब्बिलि युद्धमु' (1916 ई०) भी इनके मौलिक नाटक हैं। शास्त्री जी ने 'नागानंद' (दे०), 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०), 'प्रियदर्शिका' (दे०), 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०), 'उत्तररामचरितम्' (दे०), 'रत्नावली' (दे०), 'विक्रमोर्वशीयम्' (दे०) आदि कई संस्कृत-नाटकों के सुंदर तेलुगु-रूपांतर प्रस्तुत किए। शास्त्री जी केवल नाटककार के रूप में ही नहीं, नाटकों के प्रयोक्ता के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। शास्त्री जी उच्च कोटि के समालोचक थे। 'मेघसंदेश', 'नैषध' (दे०), 'आमुक्त मालयदा' (दे०) आदि काव्यों की इन्होंने सुंदर व्याख्याएँ लिखीं। तेलुगु भाषा के समयोचित प्रयोग में भी इनका काफ़ी योगदान है। साहित्यिक और व्यावहारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के बीच में जो असंगति और अंतर विद्यमान था उसमें सामंजस्य स्थापित करने के लिए इन्होंने 'विसंधि-विवेके' जैसी पुस्तकें लिखीं। शास्त्री जी व्यावहारिक भाषा के समर्थक नहीं थे, फिर भी उनकी धारणा थी कि गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग होनी चाहिए।

वेंकट शेषशास्त्री, गडियारमु *(तं० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

नरसंभावा और रामय्य के पुत्र श्री शेषशास्त्री का जन्म कडया ज़िले के 'नेमलिदिन्ने' में हुआ था। प्रोछ्टूरु में इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। 1920 से 1926 ई० के बीच इन्होंने श्री दर्भाक राजशेखर कवि के साथ कई बार अष्टावधान और शतावधान कर, 'अवधानि-पंचानन' का विरुद प्राप्त किया। इस अवधि में दोनों ने मिलकर 'वीरमती चरित्रमु' (काव्य), 'सीतापहरणमु', 'कीचक वध' (नाटक) की रचना की थी। तत्पश्चात् दोनों अलग हो गए। [राजशेखर दर्भाक (दे०) का 'राणा प्रतापसिंह चरित्र' (दे०) भी प्रसिद्ध महाकाव्य है।] ये 1932 ई० से प्रोछुटूरु के म्युनिसिपल हाई स्कूल में तेलुगु-पंडित के पद पर रहे। यहाँ से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आजकल वहीं काव्य-चर्चा में निरत हैं। ये आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष भी रहे हैं।

शास्त्री जी की प्रकाशित रचनाओं में 'शिवभारतमु' (दे०) सर्वप्रसिद्ध है। आठ आश्वासों के इस महाकाव्य में शिवजी के जीवनवृत्त को प्रभालशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य में स्वतंत्रताप्रिय शिवजी, जिजियाबाई, समर्थ रामदास आदि का चरित्र-चित्रण तथा शिवाजी, नाना जी आदि के साहस-कृत्यों का मनोहारी चित्रण किया गया है। इस काव्य की शैली प्रौढ़, प्रवाहयुक्त एवं सरस है। कुछ विद्वान् कवित्रय के 'महाभारत' (दे० आंध्र महाभारत) से 'शिवभारत' की तुलना करते हैं। अकेले इसी काव्य से ये तेलुगु-साहित्य-क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ हुए हैं।

'शिवभारतमु' के अतिरिक्त इन्होंने 'मुरारी', 'पुष्पबाणविलासमु', 'मल्लिकामारुतमु', 'वाल्मीकि', 'श्रीकृष्णदेवरायचरित्रमु' की रचना भी की है।

वेंकट सीतापति गिडुगु *(तं० ले०)* [जन्म—1885 ई०]

तेलुगु बाल-साहित्य में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। बाल-साहित्य की रचना के अतिरिक्त इन्होंने 1948 ई० से तेलुगु भाषा समिति की ओर से प्रकाशित होने वाले 'तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु' (विश्वकोश) के प्रधान संपादक के रूप में भी कार्य किया है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में भी इन्होंने महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है। 'भारती-शतकमु', 'बालानंदमु', 'कुवलयावली' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

वेंकट सुब्बारावु कोडालि *(तं० ले०)* [जन्म—1904 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

देश के अतीत-वैभव के वर्णन में इनकी बड़ी रुचि थी। इनकी रचनाएँ हैं—'हंपी क्षेत्र' और 'गुरु दक्षिणा'। राजा श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) ने विजयनगर राज्य का विस्तार किया तथा ललित कलाओं को आश्रय दिया। उनके शासन-काल (1509-1530 ई०) में 'हंपी' नामक क्षेत्र में मंदिरों, मंडपों तथा मूर्तियों के रूप में शिल्प-कला का आश्चर्यजनक विकास-विस्तार हुआ। दुर्भाग्य-वश कृष्णदेवरायलु के अस्तंगत होते ही उसका सारा वैभव मुसलमानी आक्रमण से ध्वस्त हो गया। हंपी की इस दयनीय स्थिति पर, क्षुब्धहृदय कवि ने उसके प्राचीन वैभव का जो गुणगान किया वही 'हंपीक्षेत्र' नामक काव्य-रचना में उपलब्ध है। इनकी शैली सरस तथा प्रभावोत्पादक है। अपनी अद्भुत वर्णन-शक्ति के द्वारा अतीत-वैभव को जगाकर उसे पाठक की दृष्टि के सम्मुख मूर्त कर देने में इनकी प्रतिभा अद्वितीय है।

वेंकटाचलमु, गुडिपाटि *(तं० ले०)*

श्री वेंकटाचलमु प्राचीन रूढ़ियों, परंपराओं एवं मर्यादाओं के कट्टर विरोधी गद्यकार हैं। इन पर आधुनिक पाश्चात्य एवं विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा है। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबंधों के विषय में इनके विचार क्रांतिकारी हैं। इन्होंने स्त्री को, पुरानी रूढ़ियों तथा मर्यादाओं से मुक्त करके, पुरुष के समान ही निर्बाध एवं स्वच्छंद रीति से लैंगिक उपभोग एवं आत्म-तुष्टि प्राप्त करने के अधिकार दिलाने के लिए अपने साहित्य द्वारा एक तीव्र आंदोलन चलाया और इस विचारधारा के अनेक लेखकों के नेता एवं मार्गदर्शक बने रहे। इन्होंने 'जीवितादर्शमु', 'प्रमलेखलु', 'म्यूजिगंस', 'मैदानमु', 'स्त्री' आदि उपन्यासों के अतिरिक्त, 'शशिरेखा', 'चित्रांगि',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भानुमति' आदि नाटकों की भी रचना की है।

श्री वेंकटाचलम् ने पुराणों के प्रसिद्ध प्रसंगों को ग्रहण करके उत्तम पात्रों की सृष्टि भी की है। अपने 'भानुमती' नामक नाटक में इन्होंने दुर्योधन की पत्नी भानुमती को एक महान् साम्राज्ञी और द्रौपदी से अधिक उदात्त चरित्र वाली नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। सशक्त भाषा, अपूर्व वातावरण की सृष्टि, उग्र एवं आक्रामक विचारधारा, विशिष्ट चरित्रों का निर्माण, सूक्ष्म मानसिक स्थितियों के अनावरण में दक्षता, इनके प्रमुख गुण हैं। आजकल ये तिरुवन्नामलै के रमणाश्रम में आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वेंकटाचार, बी० *(क० ले०)* [जन्म—1845 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

वेंकटाचार के पूर्वज चित्रदुर्ग में आकर बस गये थे। वेंकटाचार जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। तत्पश्चात् इन्होंने तुमकूर के स्कूल में अँग्रेज़ी का अध्ययन किया था। छोटी आयु में ही ये सरकारी कर्मचारी हो गये थे। एकाउंटेंट, हेड मुंशी, अदालत में 'शिरस्तेदार' और 'पब्लिक प्रॉसिक्यूटर की हैसियत से इन्होंने सरकार की सेवा की थी। बँगाल के ईश्वरचंद्र विद्यासागर (दे०) के साथ इनकी मैत्री थी। इन्होंने बँगला-साहित्य का अध्ययन किया था। बंगला से इन्होंने ईश्वरचंद्र विद्यासागर के 'भ्रांतिविलास' उपन्यास का कन्नड में अनुवाद किया था। स्वामी विवेकानंद (दे०) जब दक्षिण भारत आये थे तब ये स्वामी जी से मिले थे। इन्होंने ही यहाँ की जनता को स्वामी जी का परिचय कराया था। स्वामी जी बँगला भाषा और साहित्य के प्रति इनके विशेष प्रेम को देखकर बहुत चकित हुए थे।

वेंकटाचार जी की रचनाएँ विशेषत: बँगला से अनूदित हैं। 'आनंदमठ' (दे०), 'अमृतपुलिन', 'उन्मादिनी', 'इंदिरा', 'कपालकुंडला' (दे०), 'कमलाकांत' (दे०), आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। उनकी 'दुर्गेशनंदिनी', 'देवीचौधुरानी', 'भ्रांतिविला', 'मृण्मयी', 'मृणालिनी', 'माधवीलता' जैसी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं। इनकी अन्य रचनाओं में 'स्त्रीशिक्षेय रहस्य' (स्त्री-शिक्षा का रहस्य), 'सुशिक्षित सभ्यराद हिंदुग' (सुशिक्षित सभ्य हिंदू), 'गीतोक्त धर्म' और शारदास्तोत्रकदंबकर' प्रसिद्ध हैं। इनके 56 से अधिक ग्रंथ इनकी सुदीर्घ साहित्य-सेवा के प्रमाण हैं।

कन्नड-साहित्य में वेंकटाचार जी 'कन्नड-उपन्यासों के पितामह' के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे। इन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर जन-मन को अनुरंजित ही नहीं किया अपितु अपनी सरल शैली के द्वारा कन्नड-उपन्यासों की पक्की नींव भी डाली। ये सफल पत्रिका-संपादक भी थे। बेंगलूर से 'अवकाश तोषिणी' नाम की जो पत्रिका निकलती थी, उसके ये संपादक भी रहे थे।

वेंकटाचार्युलु, माडभूषि *(ते० ले०)* [जन्म—1835 ई०; मृत्यु—1895 ई०]

इनका जन्म-स्थान नूजिवीडु था। प्रसिद्ध विद्वान् नरसिंहाचार्य इनके पिता थे। नूजिवीडु के राजा शोभनाद्रि अप्पाराव के ये आस्थान के विद्वत्कवि रहे।

इनकी बौद्धिक प्रतिभा अनन्य सामान्य थी। ये एकसंधाग्रहण के लिए बहुत ही विश्रुत थे। संस्कृत तथा तेलुगु के पारंगत विद्वान् एवं कवि थे। दूसरी भाषाओं के छंद भी एक बार सुनकर स्वयं उनको निर्दुष्ट रूप से सुनाते थे। आशुकविता एवं अवधानकविता के लिए भी ये विख्यात हुए। इनकी निपुणता-संबंधी कई जनश्रुतियाँ जनता में प्रचलित हैं।

इनकी कृतियों में मुख्य हैं—(1) 'भरताभ्युदयमु', (2) 'वामन नाटकमु', (3) 'पुष्पबाणविलासमु', (4) 'रामावधूटी नक्षत्रमाला', (5) हंससंदेशमु' आदि।

इनमें आज केवल 'भरताभ्युदयमु' प्राप्त हो हो रहा है। यह विद्वत्तापूर्ण महाकाव्य है। 'पुष्पबाणविलासमु' संस्कृत-काव्य का अनुवाद है। कहा जाता है कि राजा के आदेशानुसार कवि ने इसकी रचना धारावाही रूप में आशुकविता के आधार पर की थी। इन कृतियों के अतिरिक्त इनकी कई आशुकविताएँ पंडितों में प्रचलित हैं। ये अपने समय में अभिनवपंडितराज माने जाते थे। 'रामावधूटी' पर रचे गये इनके प्रासंगिक छंदों से इनकी शृंगारी मनोवृत्ति का सुखद परिचय मिलता है।

विशेषत: वेंकटाचार्य के आगमन से तेलुगु-साहित्य के इतिहास में एक नवीन विधा के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। यद्यपि आशुकविता तथा अवधानकविता को साहित्यिक क्षेत्र में इनसे पहले ही प्रवेश मिल चुका था। इन विधाओं को अपनी कुशलता के आधार पर सम्यक् प्रचार करने का श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिए।

इन दोनों विधाओं का पूर्ण विकास परवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में तिरुपति कविद्वय के द्वारा हुआ था। इस प्रकार इन विधाओं को पल्लवित करने में आचार्य जी का बड़ा योगदान रहा।

वेंकटावधानी, दिवाकर्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

ये उस्मानिया विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष एवं आंध्र साहित्य अकादेमी के सदस्य हैं। ये पुरानी पीढ़ी के कवि तथा समालोचक हैं। तेलुगु-साहित्य के आदिकाल के संबंध में इनका अध्ययन अत्यंत व्यापक है। 'आंध वाङ्मय चरित्र' तेलुगु-साहित्य के इतिहास से संबंधित इनकी प्रसिद्ध रचना है। 'परिवर्तनमु' इनका काव्य-संग्रह है। इनके अतिरिक्त इन्होंने तेलुगु-साहित्य से संबंधित अनेक समालोचनात्मक निबंधों की रचना की है।

वेंकटेश्वर रावु, नार्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

ये तेलुगु के प्रमुख निबंधकार, नाटककार एवं पत्रकार हैं। इन्होंने 'आंध्र प्रभा' नामक दैनिक समाचार-पत्र का संपादन अनेक वर्षों तक बड़ी सफलता के साथ किया था। आजकल ये 'आंध्र ज्योति' नामक दैनिक पत्र के संपादक हैं। 'कोत्तगड्ड' (ग्रामीण जीवन से संबद्ध एकांकियों का संकलन) 'नार्लवारिमाटा' (नीति एवं व्यंग्यात्मक मुक्तकों का संग्रह), 'रष्यन् कथलु' (रूसी कहानियों का अनुवाद), 'माटामंती' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी रचना की है।

ग्रामीण जीवन के चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। ग्रामीण जनता की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों, उनके जीवन की आशा-आकांक्षाओं, विवशताओं-यातनाओं तथा नाना प्रकार की अनुभूतियों का चित्रण इनकी रचनाओं में सहज-स्वाभाविक रूप में हुआ है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग भी इनकी एक विशेषता है। 'नार्लवारिमाटा' में इनकी सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अनुभूति तथा सुधार के प्रति इसका उत्कट आग्रह प्रकट हुआ है।

वेंकण्णया, टी० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

इनका जन्म चित्रदुर्ग ज़िले के लळुकु ग्राम में हुआ था। ये सन् 1914 में एम० ए० करके मैसूर विश्वविद्यालय में कन्नड के प्राध्यापक हो गये थे। यद्यपि इन्होंने कम लिखा है, तथापि कन्नड के विकास के लिए बहुत ही स्तुत्य कार्य किए हैं। इनके ग्रंथों में 'कन्नड कैपिडि' (कन्नड का व्याकरण और भाषा का इतिहास), 'श्रीरामकृष्ण परमहंसचरित्रे', 'श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग' (अनूदित) और 'प्राचीन साहित्य' (रवींद्र की कृति का अनुवाद) प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'कादंबरी संग्रह', 'बसवराजदेवररगळे' (दे०), 'हरिश्चंद्रकाव्य-संग्रह' और 'सिद्धरामपुराण' (दे०) का संपादन किया है। इन ग्रंथों की भूमिकाएँ इनकी विद्वत्ता की साक्षी हैं।

वेट्चि *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) काव्य-विभाग के अंतर्गत प्रथमतः उल्लेख किया जाने वाला उपविभाग है। 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) काव्य-विभाग का प्रथम उपविभाग 'कुरिंजि' (दे०) इसका समानांतर विभाजन माना जाता है। 'वेट्चि' की विषय-वस्तु किसी राजा के सेनापति द्वारा शत्रु-देश के गाय-समूहों का अपहरण कर अपने में लाकर सुरक्षित रखना है। यह गाय-चोरी युद्धारंभसूचक घटना मानी जाती है। इससे संबंधित चौदह 'तुरै' (प्रकरण) तमिल भाषा के अतिप्राचीन व्याकरण 'तोल्काप्पियम्' (दे०) में उल्लिखित हैं। इन प्रकरणों में से कुछ ये हैं—गायों के अपहरण के प्रतिकार के लिए जाने वाली सेना द्वारा प्रस्थान के पहले शुभशकुन-रूपी अशरीरी उक्तियाँ सुनना, गुप्तचरों द्वारा शत्रु की गाय-मंडलियों के ठिकानों का पता लगाना, आक्रामक पक्ष द्वारा शत्रु के विशेष गोरक्षक सैनिक एवं अन्य प्रतिद्वंद्वियों को मारकर गायें ले जाना तथा अपहृत गायों का अपने लोगों के बीच वितरण करना। 'महाभारत' (दे०) का प्रसिद्ध कथा-प्रसंग जिसमें विराट् के देश की गायों का अपहरण युद्ध का कारण है, स्पष्टतः तमिल प्रदेश के युद्ध-आचरणों का प्रभाव दर्शाता है।

'तोल्काप्पियम्' में उक्त चौदह 'तुरै' आक्रमणकारी तथा आत्मरक्षाकारी, दोनों पक्षों पर लागू माने गए हैं। एक परवर्ती व्याकरण-ग्रंथ 'पुरप्पोरुळ् वेण्पामालै' ने आत्म-रक्षाकारी पक्ष-संबंधी प्रकरणों को 'करंदै' (दे०) नामक पृथक् उप-विभाग में समाविष्ट किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेट्टत्तु राजा *(मल० पा०)*

यह टी० रामन् नंपीशन्-रचित ऐतिहासिक उपन्यास 'केरलेश्वरन्' का मुख्य पात्र है। केरल के एक छोटे राज्य के इस शासक ने अठारहवीं सती के अपने प्रबल पड़ोसी राजा सामूतिरि के आक्रमण को अपने सफल शासन-तंत्र और युद्धनीति से विफल कर दिया था। उपन्यास में अपनी प्रेमिका से विवाह न करके दूसरे विवाह-संबंध से राज्य की सुरक्षा को बढ़ाने और अनेक वर्षों के बाद 'केरलेश्वर' के स्थान पर अभिषिक्त होने के बाद दूसरा विवाह उस प्रेमिका से विधिवत् करने की कथा भी उपन्यास में संग्रथित है।

इसके चरित्र-चित्रण में तत्कालीन राजनीति में अपेक्षित सभी शासकीय गुणों का समावेश है— यथा वीरता, शासनकुशलता, न्याय-दीक्षा, सहानुभूति, कर्तव्य-बोध आदि। इसकी प्रणय-कथा भी इसकी महानता को ही प्रकट करती है। मलयाळम के ऐतिहासिक कथापात्रों में मार्त्तांड वर्मा (दे० क्र०), धर्मराजा (दे० क्र०) आदि के साथ इसका भी प्रमुख स्थान है।

वेणीसंहार (सं० ले०) [समय—सातवीं शती का उत्तरार्ध]

'वेणीसंहार' भट्ट (दे०) नारायण की प्रसिद्ध नाट्यकृति है।

इसका कथानक 'महाभारत' के (दे०) के द्रौपदी-अपमान-प्रसंग से लिया गया है। जुए में हारने पर दुःशासन द्वारा द्रौपदी का भरी सभा में अपमान और उसका वेणी न बाँधना तथा भीमसेन की दुर्योधन को मारकर उसके रक्त में स्नान करके द्रौपद्री की वेणी का संहार करने की प्रतिज्ञा और उसकी पूर्ति इस नाटक का प्रतिपाद्य है।

'वेणीसंहार' एक आदर्श एवं शास्त्रीय गुण-संपन्न नाटक है। संस्कृत-नाट्यशास्त्र के अनेक ग्रंथों में इसके पद्य उद्धृत किए गए हैं।

इस नाटक में भट्टनारायण को वस्तुविन्यास में पर्याप्त सफलता मिली है। इसमें 'महाभारत' का समग्र चित्र अपने असली रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। चरित्र-चित्रण में भी नाटककार खूब सफल हुआ है। यह वीर रस-प्रधान नाटक है, साथ ही इसमें अद्भुत तथा करुण रस की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। प्रसादपूर्ण शैली में उपनिबद्ध इस नाटक में ओज एवं गरिमा है। द्रौपदी की वेणी के संहार की मार्मिक घटना के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। रस के परिपाक की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट नाटक है।

वेणुगोपाल स्वामी, कूर्मा *(तें० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

वेणुगोपाल स्वामी का जन्म राजमहेंद्रवरमु में हुआ। इनके पिता सर कूर्मावेंकट रेड्डि नायुडु थे जो अपने विधिज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। वे कुछ वर्ष तक मद्रास के गवर्नर भी रहे। वेणुगोपाल की आरंभिक शिक्षा एलूरू में तथा उच्च शिक्षा मद्रास, पेरिस तथा लंदन में संपन्न हुई। शैक्षिक योग्यता इनकी एम० ए० (आक्सन) तथा बार-एट-लॉ थी। इन्होंने कई पदों को सँभाला और एक प्रकार से इनका अभिन्न संबंध आंध्र-विश्वविद्यालय के साथ है। 1942 से 1963 ई० तक ये आंध्र वि० वि० के कुलसचिव रहे। साथ ही न्यायशाखा के अध्यक्ष रहे। इनके काल में आंध्र वि० वि० ने अभूतपूर्व उन्नति की।

वेणुगोपाल की अभिरुचि बचपन से ही नाट्य-कला की ओर थी। केवल अभिरुचि नहीं अपितु इस कला के सैद्धांतिक पक्ष तथा प्रयोगपक्ष के मर्मों को ये भली भाँति जानते थे। इन्होंने अँग्रेज़ी तथा तेलुगु दोनों में रचना-व्यापार किया। कई पुरस्कार भी प्राप्त किए। अँग्रेज़ी में इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ 'तेलुगु ड्रामा', 'इब्सन ए सेंटिनरी एस्टिमेट' आदि उल्लेखनीय हैं। तेलुगु में इन्होंने दक्षिण भाषा पुस्तक-संस्था के लिए 'प्रसिद्ध नाटिकलु' का संपादन किया। इनके अलावा अपनी श्रीमती शेषुबाई के सहयोग में कई लघुकथाओं को तथा नाटिकाओं को तेलुगु के प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया।

सार्वजनीन संस्थाओं में और उनके कार्यकलापों में ये बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। आंध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, आंध्रप्रदेश संगीत नाटक अकादमी, आदि के सदस्य हैं। आंध्र नाटक-कला-परिषद् के सदस्य 1951 ई० में रह चुके हैं। 'दि लिटिल थियेटर' की स्थापना भी इन्होंने की। आंध्र वि० वि० प्रयोगात्मक रंगमंच के उद्भावक ये ही थे। इनके अथक परिश्रम के कारण ही तेलुगु के नवयुवकों में नाटक-प्रदर्शनियों के प्रति रुचि जागृत हुई। फलतः आज जी कई युवक कलाकार एमेच्योर संस्थाओं के द्वारा कई जगहों में नाटकों का अभिनय करके जनता में नाटकीय अभिरुचि में परिष्कार आदि लाते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंध्र वि० वि० के कुलसचिव पद से निवृत्त होने पर भी इनका संबंध आंध्र वि० वि० से अद्यावधि बना हुआ है। वेणुगोपाल विश्व० वि० के रंगमंच कला-निकाय के सम्मानार्थ आचार्य हैं।

आजकल वेणुगोपाल हैदराबाद में नाट्य-विद्यालत के अध्यक्ष हैं, और वहाँ की विविध कलात्मक सस्थाओं से इनका गहरा संबंध है।

वेण्मणि, अच्छन नंपूतिरिप्पाड् *(मल० ले०)* [जन्म—1817 ई०; मृत्यु—1891 ई०]

इनका जन्म आलुवा के पास के एक गाँव में हुआ। वेण्मणि इनके परिवार का नाम है और अब सिर्फ़ वेण्मणि शब्द ही इनका उल्लेख करने के लिए पर्याप्त होता है। वैसे इनका असली नाम परमेश्वरन् है। ये वहुश्रुत थे, शास्त्रज्ञ नहीं। मलयाळम में मधुर कविता रचने में ये अद्वितीय आचार्य प्रमाणित हुए। कोटुङ्ङल्लूर् राज-महल की विद्वत्सभा में ये विशेष सम्मानित आचार्य थे। ये 74 वर्ष तक जीवित रहे। इनके थोड़े से शृंगारिक छंद ही अब उपलब्ध हैं।

इनके पुत्र वेण्मणि महन् नंपूतिरिप्पाड् इनसे भी अधिक कुशल और रसिक कवि थे। इनका जन्म 1844 ई० में हुआ तथा स्वर्गवास 1893 ई० में। मलया-ळम-साहित्य में वेण्मणि नंपूतिरिप्पाड् शब्द दोनों के संयुक्त योगदान की चर्चा के लिए ही व्यवहृत होता है। श्री महन् नंपूतिरिप्पाड् की कई विधाओं की रचनाएँ प्राप्त हैं। तथापि इनकी शृंगार रसपूर्ण कविताएँ ही विशेष प्रसिद्ध हो सकी हैं। 'पूरप्रबंधम्' (दे०), 'अंबोपदेशम्' और 'कामतिलकम्' में इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं। श्री महन् का युग संस्कृत भाषा के अतिशय प्रभाव का युग था। पर इस प्रवृत्ति का तिरस्कार कर इन्होंने प्रकृत द्रविड़ शब्दावली का मधुर प्रयोग किया। ये इस धारा के प्रवर्तक तक कहलाये हैं। मधुर नर्म वचन वेण्मणियों की देन है परंतु इनकी कविताओं के अतिरिक्त शृंगाराभि-व्यक्ति का उत्कट रूप भी प्रस्तुत हुआ है।

वेंणिकुळम् (मल० ले०) [जन्म—1902 ई०]

मलयाळम के इस प्रख्यात कवि का पूरा नाम वेणिक्कुळम् गोपाल कुरुप्प है। ये कुशल अध्यापक थे। सेवानिवृत्ति से पहले पांडुलिपि ग्रंथालय और कोशनिर्माण-विभाग में भी इन्होंने कार्य किया।

इनकी कविताएँ 'सौंदर्यपूजा', 'पुष्पवृष्टि', माणिक्यवीणा' आदि एक दर्जन से अधिक पुस्तकों में संगृ-हीत हैं। 'रामचरितमानस' (दे०) का मलयाळम अनुवाद साहित्य की अनमोल संपत्ति है। सुब्रह्मण्य भारती (दे०) की कविताओं और 'तिरुक्कुरल्' (दे०) का भी इन्होंने अनुवाद किया है।

इनकी कविता में मानवीय संबंधों के शांत-सुंदर पक्षों का चित्रण मुख्यतः हुआ है। इनकी काव्य-शैली प्रसन्न एवं सुस्पष्ट है। महाकवि वळ्ळत्तोळ (दे०) द्वारा स्थापित काव्य-सरणी को संपुष्ट करने वालों में ये सर्वप्रमुख हैं। 'रामचरितमानस' के अनुवादक के रूप में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

वेतालपंचविंशतिका *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

इस कथा-संग्रह के लेखक का ठीक पता नही चलता। इसके कई संस्करण उपलब्ध हैं। उनमें बारहवीं शती का संस्करण शिवदास द्वारा लिखित है।

इनकी कहानियाँ बड़ी रोचक एवं लोकप्रिय हैं। इन कहानियों का वक्ता वेताल तथा श्रोता राजा त्रिविक्रम सेन है। कोई सिद्धराजा त्रिविक्रम सेन को रत्नगर्भित फल लाकर देता है। उसकी सिद्धि के सहायतार्थ राजा एक वृक्ष पर लटकते हुए शव को लाना चाहता है। शव पहले से ही किसी वेताल के आधिपत्य में है। वह राजा के चुप रहने पर ही उस शव को देना चाहता है, परंतु साथ ही इतनी विचित्र कहानियाँ सुनाता है कि राजा को मौन भंग करना ही पड़ता है।

कहानियाँ बड़ी हृदयावर्जक एवं कौतूहलजनक हैं। राजा का उत्तर भी बड़ा ही सुंदर होता है। इसकी भाषा सरल, स्वच्छ एवं आकर्षक तथा शैली सुबोध है। यह संग्रह गद्य-प्रधान है जिसमें पद्य उद्धृत किए गए हैं। इसका एक संस्करण जंभलदत्त का भी है, किंतु यह बिल-कुल गद्यात्मक है। शिवदास का संस्करण साहित्यिक दृष्टि से सुंदर, रोचक एवं आकर्षक है। बीच-बीच में अनुप्रास की मनोहर छटा से युक्त नीति-पद्य हैं जो रचना को मनो-हर बना देते हैं।

वैत्तिप्पट्टर *(मल० पा०)*

ओय्यारत्तु चंतु मेनन (दे०) के उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शारदा' (दे०) का पात्र। 'काली स्याही का रंग, पकी छोटी-सी चोटी, बदसूरत चेहरा, बुढ़ापे के कारण पोपले मुँह से बाहर की तरफ़ हमेशा झाँकने वाले बचे हुए दो-चार दाँत, आँखें भीतर धँसी और धुँधली—किंतु बीच-बीच में सर्पदृष्टि डालने वाली, शरीर कमज़ोर और भीतर की ओर झुका हुआ—जली लकड़ी का कुंदा-सा—कुल मिलाकर पिशाच-सा, यही वैत्तिप्पट्टर का चित्र है। धन कमाना उसके जीवन का व्रत है और उसकी यह प्यास कभी नहीं बुझती। पैसे के लिए वह कोई भी शैतानी करने को तैयार रहता है। छोटा-सा कपड़ों का व्यापार छोड़-कर वह कल्याणि अम्मा के साथ परदेश गया तो इसी आशा से कि कल्याणि के पास खज़ाना होगा। पर उसके हाथ कुछ नहीं लगा। रामेश्वरम् में रामन् मेनन के रहने की सूचना मिलने से उसका धन-लाभ फिर से जाग उठा। उसने मेनन और पुत्री शारदा के दुःख पर अपने दुःखी होने का अभिनय किया। उसने उन्हें अपने घर में ठहराकर शारदा की माँ कल्याणि अम्मा के प्रतिष्ठित घरवालों से पत्र-व्यवहार शुरू कराया। दोनों तरफ़ से कमाने की आशा थी। सब उसका छल-कपट पहचान गये। फिर भी वैत्ति ने यथासंभव दोनों से धन ऐंठा। पर रामन् मेनन के कुशल शिष्य शंकरन् की होशियारी के कारण वे अधिक नहीं लुटे। कल्याणि के मामा से कुछ रुपये पाने के लालच में शारदा को पठान लड़की और रामन् मेनन को ढकोसलाबाज़ घोषित करने में भी संकोच नहीं किया। यह खलपात्र अँग्रेज़ी उपन्यासों के खलपात्रों के ढाँचे में ढला है परंतु व्यक्तित्व और केरलीय वातावरण इसमें सुरक्षित है।

वेद *(सं० कृ०)* [रचना-काल—मैक्समुलर के मतानुसार 1200 ई० पू० से 1000 ई० पूर्व तक]

भारतीयों का एक वर्ग वेदों को अपौरुषेय भी मानता है। वेद शब्द का अर्थ ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत ज्ञान है। वेद चार हैं—'ऋग्वेद', 'सामवेद', 'यजुर्वेद' तथा 'अथर्ववेद'।

'ऋग्वेद' ऋचाओं अर्थात् मंत्रों का संग्रह है। 'ऋग्वेद' के वर्ण्य के अंतर्गत काव्यात्मक गीत, यज्ञीय स्तोत्र, दार्शनिक सूक्त, ऐंद्रजालिक मंत्र, धर्मनिरपेक्ष सूक्त, दान-स्तुतियाँ एवं ब्रह्मोद्य सूक्त प्रधान हैं। 'ऋग्वेद' में सर्वोच्च-देववाद एवं सर्वेश्वरवाद की दार्शनिक विचारधाराएँ भी वर्तमान हैं। 'सामवेद' के मंत्र गेय हैं। सामों का प्रयोग सोमयज्ञ के अवसर पर किया जाता था। यह प्रयोग उद्गाता ऋत्विक् द्वारा संपन्न होता था। 'यजुर्वेद' अध्वर्यु के लिए स्रोतों या प्रार्थनाओं का संग्रह है। 'यजुर्वेद' के 'कृष्ण-यजुर्वेद' और 'शुक्लयजुर्वेद' दो रूप हैं। 'यजुर्वेद' का प्रमुख विषय यज्ञ है। अथर्ववेद के मंत्र रोग-निवारण, प्रायश्चित्त, विवाह, शांति-स्थापना एवं विविध इंद्रजाल से संबंधित हैं।

वेदों की भाषा लौकिक संस्कृत की अपेक्षा स्वभावतः क्लिष्ट है। परंतु वेदों की साहित्यिकता निस्संदेह सिद्ध है। 'ऋग्वेद' के धार्मिक गीतों में कवित्व का चमत्कार स्पष्टतः वर्तमान है। 'ऋग्वेद' के कवि की इच्छा उन मनोभावों को अभिव्यक्त करने की है, जो उसकी आत्मा में किसी देवता ने उद्‌बुद्ध किए हैं। इस प्रकार वैदिक कवि का हृदय कवित्वमय था और उद्देश्य यज्ञपरक। प्रकृति का मानवीकरण, देवों में मानवीयता का आरोप एवं देव वर्णन-शैली आदि भी वैदिक कवित्व के परिचायक हैं। ऋग्वेद के संवादात्मक सूक्तों में नाटकीयता का स्पष्ट आधार मिलता है। 'अथर्ववेद' के वर्णन भी स्पष्ट ही काव्यमय हैं—'रसानाथर्वणादपि'।

भारतीय वाङ्मय को वेदों की देन अमर एवं अप्रतिम है। धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक दृष्टि से वेदों का महत्व संसार भर में विदित है।

वेदहरिश्चंद्रुडु *(ते० पा०)*

ये श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) के 'काव्य हरिश्चंद्रमु' (दे०) नामक नाटक के नायक हैं। सामान्य रूप से काव्यों में वर्णित हरिश्चंद्र से ये भिन्न हैं। वेदों की कथा के अनुसार इस पात्र की सृष्टि की गई है।

हरिश्चंद्रुडु अगति की स्थिति से बचने के लिए वरुण से पुत्र-प्राप्ति का वरदान माँगते हैं और यह वचन देते हैं कि ये अपने पुत्र को यज्ञ में बलि-पशु के रूप में वरुण को ही समर्पित कर देंगे। वरुण के वरदान से पुत्र पाने के बाद जब भी वरुण वादा पूरा करने को कहते तब पुत्र-मोह के कारण हरिश्चंद्रुडु कोई-न-कोई बहाना करके टाल देते हैं। कभी कहते हैं कि पुत्र का नाम या आकार अभी स्थिर नहीं हुआ है। कभी कहते हैं कि यज्ञोपवीत धारण किए बिना वह किसी यज्ञ के लिए योग्य पात्र नहीं होता; किसी अन्य अवसर पर कहते हैं कि पुत्र की सम्मति ले लेना अनिवार्य है क्योंकि उसकी सम्मति के बिना बलि-पशु सार्थक नहीं होता। हरिश्चंद्रुडु का पुत्र यह सब जानकर घर से भाग जाता है और शुनश्शेप नामक ग़रीब ब्राह्मण बालक को उसके स्थान पर पशु-बलि बनने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए तैयार कर लेता है। शुनश्शेष यज्ञ में विश्वामित्रुड द्वारा प्राप्त करुण-मंत्र से वरुण देव को संतुष्ट करके स्वयं मुक्त हो जाता है। अंत में हरिश्चंद्रुड यज्ञ का फल पाता है और असत्य-दोष से मुक्त हो जाता है।

वेदांत ग्रंथ *(बँ० कृ०)*

वेदांत-प्रतिपाद्य परब्रह्म की उपासना की प्रतिष्ठा ही 'वेदांत ग्रंथ' (1815 ई०) का मूल वक्तव्य है। राममोहनराय के धर्म-संबंधी मतवाद की सुस्पष्ट व्याख्या इस ग्रंथ में की गई है। इस ग्रंथ से पहले उनका 'वेदांतसार' ग्रंथ (1815 ई०) प्रकाशित हुआ था। 'वेदांतसार' एवं 'वेदांत ग्रंथ' का हिंदी में अनुवाद कर राममोहन ने निःशुल्क वितरण किया था। 'वेदांत ग्रंथ' 1816 ई० में अँग्रेज़ी में एवं 1817 ई० में जर्मन भाषा में अनूदित हुआ था।

वेदांतदेशिक *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1300 ई०]

इनके अन्य नाम वेंकटनाथ, वेदांताचार्य तथा कवि तार्किक सिंह हैं। वेदांतदेशिक के पिता का नाम अनंतसूरि तथा पितामह का नाम पुंडरीकाक्ष था। यह परिवार कांजीवरम् में रहता था। इनकी माता का नाम तोतारंबा था। वेदांत देशिक ने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। इनमें 'तत्त्वटीका', 'यादवाभ्युदय', 'हंससंदेश', 'सुभाषितनीवी', 'संकल्पसूर्योदय', 'यज्ञोपवीत-प्रतिष्ठा', 'आराधनाक्रम', 'वैश्वदेवकारिका', 'श्रीपंचरात्ररक्षा', 'वादित्रयखंडन' तथा 'मुक्ताकलाप' आदि अत्यंत प्रख्यात हैं। वेदांतदेशिक विशिष्टाद्वैतवाद के समर्थक आचार्य थे। 'तत्त्वटीका' में इन्होंने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया है। प्रपत्ति का अर्थ वेदांतदेशिक के अनुसार भक्त का सर्वात्मना भगवान् के चरणों में आत्म-समर्पण है। आत्मसमर्पण के भी इन्होंने फल-समर्पण, भार-समर्पण तथा स्वरूप-समर्पण, ये तीन भेद क़िए हैं। फल-समर्पण भक्त के फलत्याग, भार-समर्पण से अपनी रक्षा के भारत्याग तथा स्वरूप-समर्पण से भक्त के अपने स्वरूप-त्याग का आशय है।

वेदांतदेशिक के द्वारा विशिष्टाद्वैत मत के सिद्धांतों का विवेचन सरल पद्धति में किया गया है। इस दार्शनिक विद्वान् की काव्यमयी शैली अतिशय मोहक है।

वेदांतसार *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई०]

सदानंद-विरचित 'वेदांतसार' अद्वैत वेदांत का लघुकाय ग्रंथ है। 'वेदांतसार' पर 'विद्वन्मनोरंजनी' आदि अनेक टीकाएँ मिलती हैं। 'वेदांतसार' के अंतर्गत अनुबंध-चतुष्टयविवेक, ईश्वरप्राज्ञविवेक, समष्टि एवं व्यष्टिरूप अज्ञान के भेद-द्वय, ईश्वर तथा प्राज्ञ के स्वात्मानंदानुभव, तुरीय चैतन्य, अज्ञान की आवरण एवं विक्षेप शक्तियों, आत्मा की संसारकारणता, सृष्टि के क्रम, सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति, सूक्ष्म प्रपंच के निरूपण, पंचीकरण, स्थूल प्रपंचोत्पत्ति, महाप्रपंचनिरूपण, अपवाद, तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मि तथा जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति के संबंध में अत्यंत स्पष्ट निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शांकर (दे० शंकराचार्य) वेदांत पर आधारित होने पर भी 'वेदांतसार' का विषय-विवेचन मौलिक एवं नवीन उद्भावनाओं से समन्वित है। माया का आवरण तथा विक्षेप शक्तियों का विवेचन भी सदानंद का अद्वितीय प्रयत्न है। 'वेदांतसार' के अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नहीं। इसके अतिरिक्त ब्रह्म जगत का अधिष्ठान है एवं जगत अध्यास। अध्यास का अर्थ अविद्या है। जहाँ तक अज्ञान के स्वरूप का प्रश्न है, 'वेदांतसार' में उसे अभावरूप न मानकर, भावरूप तथा यत्किंचित् रूप से स्वीकार किया गया है। ईश्वर की जगत्कारणता के संबंध में 'वेदांतसार' में ईश्वर को उपादान कारण एवं निमित्त कारण दोनों ही स्वीकार किया गया है। ईश्वर मायाशक्ति के कारण उपादान कारण है तथा ईश्वरता के कारण निमित्त कारण।

विषय की क्रमबद्धता एवं संक्षिप्तता की दृष्टि से 'वेदांतसार' का योगदान अनुपम है। इस लघु पुस्तिका के द्वारा वेदांत के सिद्धांतों को सरलता से हृदयंगम किया जा सकता है।

वेदी, डा० सोहिन्दरसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1925 ई०[

डा० वेदी का जन्म 29 नवंबर, 1925 स्यालकोट (अब पाकिस्तान) में हुआ। 1959 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से पंजाबी में एम० ए०। 'पंजाबी लोकोक्तियों का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर 1965 ई० में पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की। आजीविका-उपार्जन बैंक कर्मचारी के रूप में 1946 ई० में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावलपिंडी में आरंभ किया। 'प्रीतम' पंजाबी मासिक पत्रिका तथा 'फतेह' पंजाबी साप्ताहिक का संपादन 1949-1953 ई० तक किया। पंजाब विश्वविद्यालय (कैंप) कालेज में 1959 ई० में अध्यापन आरंभ। तदनंतर 1959 ई० में ही दयाल सिंह कालेज, नयी दिल्ली में पंजाबी विभागाध्यक्ष पद पर नियुक्त।

1943 ई० में 'खुशबूआं' पुस्तक प्रकाशित हुई। अन्य प्रकाशित रचनाएँ हैं—(1) 'पंजाब दीयां लोककहानियाँ' (1955 ई०), (2) 'पंजाब दीयां जनौर कहानियां' (1956 ई०), (3) 'लोक आखदे हन' (1957 ई०), (4) 'इक घुट रस दा' (1966 ई०), (5) 'पंजाव दा लोक साहित्य' (1968 ई०), (6) 'फोकलोर ऑफ़ पंजाब' (अँग्रेज़ी, 1971 ई०)। **कविता-संग्रह**—(1) 'खुशबूआं', (2) 'कमल पत्तियाँ', (3) 'पानी अंदर लीक'। विशेष रुचि : कहानी एवं पंजाबी में लोक-वार्ता-साहित्य का पठन-लेखन।

वेदोक्त धर्मप्रकाश *(म० कृ०)*

ईसाई तथा मुसलमानों ने हिंदू धर्म पर समय-समय पर जो आक्षेप किए थे उन आक्षेपों के निराकरण तथा 'वेदोक्त' हिंदू धर्म के स्वरूप स्पष्टीकरण के लिए विष्णुबुवा ब्रह्मचारी ने यह ग्रंथ 1859 ई० में लिखा था। यह ग्रंथ गंभीर, विचारोत्तेजक एवं समाज-सुधार का समर्थक है। इस ग्रंथ को देखते हुए कहना पड़ता है कि लेखक जिस युग में रहता था, उस युग की दृष्टि से वह विचारों में अतिशय प्रगतिशील है। लेखक मुसलमान एवं ईसाइयों को वेदोक्त धर्म में लेने में कोई आपत्ति नहीं समझता। उसने विधवा के पुनर्विवाह का समर्थन किया है और वर्णभेद का आधार जन्म न मानकर व्यक्ति के गुण एवं कर्म को माना है।

इस ग्रंथ के पचीसवें अध्याय में लेखक ने पाँच-छः पृष्ठों में अपनी आत्मकथा का विवेदन किया है। यह निवेदन आधुनिक आत्मचरित्र की तरह नहीं, वरन् प्राचीन संतों के आत्माविष्कार की पद्धति पर है।

सनातनी विचारों के प्रचलन के युग में प्रगतिशील विचारों के निवेदन एवं वेदविहित हिंदू धर्म के स्वरूप के निरूपण के कारण ही इस ग्रंथ का महत्व है।

वेनराजु *(तं० कृ०)* [रचना-काल—1926 ई०]

'वेनराजु' विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का दस अंकों का विलक्षण नाटक है। इसमें अंगराज के पुत्र वेन के धरती पर शासन करने की कथा है। इसके अंत में वेन की मृत्यु और भूदेवी के पृथु को वरण करने की घटना भी वर्णित है। इस नाटक में सनातन और आधुनिक विचारधारा का संघर्ष मुख्य है। गौतम प्रथम पक्ष का प्रतिनिधि है, वेन द्वितीय पक्ष का। नाटक के अंत में वेन के साथ नूतन धर्म तथा सिद्धांत नष्ट हो जाते हैं और सनातन धर्म तथा सिद्धांतों को विजय प्राप्त होती है। इस नाटक में करुणरस मिश्रित वीर प्रधान है। 1934 ई० में जब यह नाटक पहली बार अभिनीत हुआ तो दर्शकों में काफ़ी हलचल मची थी कि यह वैदिक धर्म का समर्थन करने वाला नाटक है।

वेमना *(तं० ले०)* [समय—सोलहवीं-सत्रहवीं शती ई०]

ये आंध्र के रेड्डी राजाओं के वंशज थे। इनके समय तथा जन्मस्थान के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। कहा जाता है कि ये आरंभ में अत्यंत विषयी थे तथा वाद में विरक्त होकर ज्ञानी बन गए। इनकी यह सूक्ति अत्यंत प्रसिद्ध है कि 'कामी' हुए विना मोक्षकामी कोई हो नहीं सकता।' इन्होंने सहस्रों छंदों में नीति, दर्शन, समाज-सुधार आदि का उपदेश दिया है, जिनमें से केवल 4000 छंद ही उपलब्ध हुए हैं। तेलुगु के शतक वाङ्मय को पहली बार साहित्यिक प्रतिष्ठा इन्हीं से प्राप्त हुई। ये ही तेलुगु के सर्वश्रेष्ठ ज्ञानमार्गी संत कवि हैं। इन्होंने समस्त कुरीतियों का खंडन ऋजुता, स्पष्टता तथा तीव्रता से स्वच्छ तेलुगु में किया है। इसमें कोमल और निर्मल हास्य का उपयोग मनोरम है।

विभिन्न समयों में तथा विभिन्न परिस्थितियों में इनके मुँह से निकलने वाले छंदों को इनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया है। अतः भावों की पुनरावृत्ति तथा विरोधी भावों की अभिव्यक्ति इनकी रचना में कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है। यह प्रक्षेपों के कारण भी हो सकती हैं। इनकी रचना शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों को प्रभावित करती है। इनके विचार उपनिषदों के अद्वैतवाद के अनुरूप हैं।

यह एक विचित्र संयोग है कि अनुरक्त तथा विरक्त दोनों अवस्थाओं में इनका मन 'आटवेलदि' [(1) वेश्या, (2) तेलुगु का एक छंद विशेष] में ही रमता रहा। प्रायः इनकी संपूर्ण रचना इसी छंद में की गई है। मकुट के रूप में 'वेमा' या 'विश्वदाभिराम' विनुर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेमा' का प्रयोग किया गया है। छंदों के नियमों के पालन का आग्रह या पांडित्य-प्रदर्शन इनकी रचना में नहीं मिलता। अपने जीवन के समान ही अपनी कविता में भी इन्होंने अंतरंग को बाह्याकार से कहीं अधिक महत्व दिया है। तेलुगु-साहित्य में इनका अपना विशिष्ट स्थान है तथा समस्त आंध्र में इनकी सूक्तियाँ सर्वाधिक लोकप्रिय हुई हैं।

वेयिपडगलु (सहस्रफण) *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

'वेयिपडगलु' (आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत) विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का सामाजिक-सांस्कृतिक उपन्यास है। तेलुगु के उपन्यास-साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है। "अतीत ही महान् है, आर्ष-विज्ञान ही विश्व का शिरोभूषण है, हिंदुओं की वर्णाश्रम-व्यवस्था विश्व की एक अद्भुत वस्तु है। प्राचीन भारतीय संस्कृति ही विश्व-कल्याण के लिए, विशेषकर, भारतीयों के आत्मोद्धार के लिए एकमात्र साधन हैं"—अपने इन्हीं विचारों को श्री सत्यनारायण ने इस कृति में प्रतिपादित किया है। वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजत्व, ज़मींदारी-प्रथा, देवदासी-प्रथा, आदि प्राचीन व्यवस्थाओं को ये भारतीय संस्कृति के जीवन-स्रोत के रूप में मानते हैं। अतः इस रचना में उन्होंने यही संदेश दिया है कि आज के समाज-सुधारक पथभ्रष्ट हो गए हैं और हमारे उद्धार के लिए उस प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

इस विशालकाय उपन्यास की कहानी उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की भूमिका पर आधारित है। इसकी कहानी मूलतः अन्यापदेशी और प्राचीन हिंदू-जीवन-पद्धति का समर्थन करती है। इसमें तीन पीढ़ियों की कहानी है और तत्कालीन आंध्र देश के जीवन में स्पंदित होने वाले आर्थिक, नैतिक, शैक्षिक वैज्ञानिक एवं कला-संबंधी विषयों का विस्तार से चित्रण किया गया है। इस कारण इसकी कथा-वस्तु में एकसूत्रता की कमी हो गई है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर किसी समालोचक ने कहा था, "इसमें सहस्र फण ही हैं। साँप कहीं नहीं है।" इस उपन्यास का हिंदी-अनुवाद 'सहस्रफण' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

वेरि़याट्टू *(त० पारि०)*

तमिल की 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) काव्य-परंपरा में नायक-नायिका का प्रेमी जीवन गुप्त मिलन से आरंभ होकर तब तक रहस्य बना रहता है जब तक प्रियतम से अनिवार्य विच्छेद के कारण नायिका अपनी व्याकुलता को छिपाये रखने में समर्थ रहती है। परंतु शीघ्र ही उसका शरीर कृश हो जाता है और उसके गुरुजन इस विकार का कारण जानने के लिए 'मुरुग देव' (सुब्रह्मण्य) के पुजारी का सहारा लेते हैं। पुजारी अपने उपास्य 'मुरुग-देव' के समक्ष बलि चढ़ाकर दैवी आवेश-नृत्य करते हुए नायिका की रोग-समस्या का अपना हल प्रस्तुत करता है। इस भविष्यवाणी-सहित आवेश-नृत्य का नाम 'वेरि़याट्टु' है। मुरुगदेव के पुजारी लोगों के अतिरिक्त 'कुरिंजि' (दे०) (पर्वत-प्रांत) की स्त्रियाँ भी आंशिक रूप से इस प्रकार के नृत्य की अधिकारिणी थीं। नृत्य से संबद्ध भविष्यवाणी करने की प्रथा कुछ गुटके फैलाकर उनमें से संकेत निकालना था।

'अहम्' के उपर्युक्त प्रकरण के अलावा 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) विभाग में भी युद्ध के विविध संदर्भों में इस 'वेरियाट्टु' द्वारा ज्योतिषी की वाणी का सहारा लिया जाता था।

विरुंदु *(त० पारि०)*

तमिल के अत्यंत प्राचीन लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) 'चेय्युलियल्' (छंद-परिच्छेद) में पद्य-लक्षण विस्तार से प्रस्तुत किए गए हैं। छंद-विधान के सत्ताईस लक्षणों के साथ आठ लक्षणों का उल्लेख है। ये अतिरिक्त लक्षण कविता की शैली, उद्देश्य आदि बहिरंग अंशों का विवरण देते हैं और 'तोल्काप्पियम्' के व्याख्याताओं ने श्रृंखलाबद्ध पद्य-रचना से इनका संबंध माना है। इनका सामूहिक नाम 'वणप्पु' (दे०) है।

आठ अतिरिक्त लक्षणों में से एक 'विरुंदु' है जो परंपरा से हटकर नये ढंग से रचित कविता होती है। 'तोल्काप्पियम्' के टीकाकारों ने 'विरुंदु' के उदाहरणस्वरूप 'अंदादि' (दे०), 'कलंबकम्' (दे०) नामक नयी छंद-विधाओं का उल्लेख किया है। ये विधाएँ 'संगम्' साहित्य के परवर्ती काल में प्रचलित हो गई थीं पर 'संगम्' काल में उपयोग किए गए छंदों से ही इनका विकास हुआ।

वेलाना वछूट्या *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

गुजरात राज्य और गुजराती साहित्य परिषद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा पुरस्कृत महमद मांकड (दे०) का मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास के नायक डा० वोरा के दो पुत्र हैं। बड़े बेटे सुधीर के प्रति उसका बहुत प्रेम है। पत्नी की मृत्यु के बाद नौकर के द्वारा उसकी पत्नी को लिखे गए प्रेमपत्रों का बक्सा उसे मिलता है जिन्हें पढ़ने से उसको मालूम होता है कि सुधीर उसका नहीं, उसके नौकर कांति का पुत्र है। तब उसके मन पर जो प्रतिक्रिया होती है उसका मर्मस्पर्शी चित्रण लेखक ने किया है। वह सुधीर की दवाई में ज़हर मिलाकर उसकी हत्या करता है पर पुलिस केस नहीं होता। डा० वोरा की मनोव्यथा और बढ़ जाती है। उसका दूसरा जो पुत्र है वह आत्महत्या करता है। सारे उपन्यास में नायक की मानसिक व्यथा का कुशल चित्रण हुआ है।

वेलि क्रिसन रुक्मणी री *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1580 ई०]

इसके रचयिता पृथ्वीराज राठौड़ (दे०) थे। यह डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) की एक अत्यंत प्रसिद्ध तथा उत्कृष्ट कृति है जिसकी रचना 'वेलियो गीत' में हुई है। इसमें श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के दशम स्कंध के आधार पर किया गया है। कवि ने वर्णन में पूर्णतः मौलिकता का नियोजन किया है। इसमें प्रायः सभी रसों की सुंदर व्यंजना मिलती है, किंतु प्रधानता श्रृंगार रस की ही है। भाषा सरल, अलंकृत तथा बिंब-प्रधान है। डिंगल के 'वैण सगाई' (दे०) नामक शब्दालंकार का प्रयोग इसकी विशेषता है।

वेलैयन् *(त० पा०)*

वेलैयन् डा० मु० वरदराजन् (दे०)-कृत 'अगल् विळक्कु' (दे०) नामक सामाजिक उपन्यास के प्रमुख पात्रों में से है। इस चरित्र-प्रधान उपन्यास में लेखक ने वेलैयन् को आदर्श पात्र के रूप में चित्रित किया है। निर्धन एवं अल्पशिक्षित होने पर भी यह अपने सद्‌गुणों के कारण सभी को मोह लेता है। यह यथाशक्ति सभी की सहायता करता है। उपन्यास का शीर्षक 'अगल् विलक्कु' (मिट्टी का दीया) उसी की ओर संकेत करता है। 'मिट्टी का दीया' सदा जलते रहने पर भी निष्कलंक बना रहता है। इसी प्रकार यद्यपि वेलैयन् सदा दूसरों की सेवा करता रहता है तथापि इसके मन में कपट-भावनाओं का जन्म कभी नहीं होता।

वेळि्ळ पादचरम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

'वेळि्ळ पादचरम्' लंका के प्रसिद्ध तमिल कहानीकार इलंगैयरकोन की कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह की सोलह कहानियों में प्रसिद्ध हैं—'वेळि्ळ पादचरम्', 'अनुला', 'अनादै', 'मनिद कुरंगु', 'अमीना', 'मरिया मदलेना', 'ताय' और 'शिकरिया'। 'वेळि्ळ पादचरम्' इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इसमें लेखक ने नल्लमां और शेल्लैया की कहानी के माध्यम से पति-पत्नी के पारस्परिक संबंध की चर्चा करते हुए पारिवारिक जीवन के रहस्य का उद्‌घाटन किया है। 'अनूला' में एक कामुक रानी के नीच कर्मों का विवरण है। 'अनादै' में वृद्धा और नवयुवती की कथा के माध्यम में लेखक ने बताया है कि प्रेम की शक्ति न्याय की शक्ति से बढ़कर है। 'मनिद कुरंगु' में कंदसामी नामक नादान व्यक्ति का जीवन अंकित है। 'अमीना' शीर्षक कहानी में अमीना नामक सुंदर नवयुवती की कथा कही गई है। इसमें लेखक ने पुरुषों की आसुरी वृत्ति और नारियों की दीन दशा पर प्रकाश डाला है। 'मरिया मदलेना' में एक वेश्या का जीवन अंकित है जो ईसा के करुणा-भरे शब्दों को सुनकर पूर्णतः परिवर्तित हो गई थी। 'ताय' कहानी में ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने पर उनकी माँ की प्रतिक्रिया वर्णित है। 'शिकरिया' में मुकालन और काशप्पन नामक राजाओं की कथा कहते हुए लेखक ने लंका के प्राकृतिक सौंदर्य और वहाँ के कुछ प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन किया है। इन सभी कहानियों में लेखक ने मानव-मन में उठने वाले सूक्ष्माति-सूक्ष्म भावों का विश्लेषण करते हुए मानव-जीवन और मानव-व्यवहार का सजीव चित्रण किया है। विभिन्न कहानियों में इलंगैयरकोन् ने प्राचीन इतिहास और साहित्य में प्राप्त विवरणों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। इनमें मानव-जीवन एवं प्रकृति के रहस्यों का उद्‌घाटन है। ये कहानियाँ लंका में प्रचलित तमिल भाषा में रचित हैं। तमिल कहानी-साहित्य में इलंगैयरकोन् की कहानियों का अपना महत्व है।

वेळि्ळवीदि *(त० पा०)*

वेळि्ळवीदि संघकालीन तमिल कवयित्रियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हैं। ये एक ऐतिहासिक पात्र है। तमिल के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) के व्याख्याकार नच्चिनार किनियर् (दे०) ने वेळि्ळवीदि को आदिमंदियार् नामक अन्य संघकालीन कवयित्री का समकालीन बताया है। अव्वैयार् (संघकाल) (दे०) के पदों में वेळि्ळवीदि से संबंधित विवरणों को देखते हुए विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि ये अव्वैयार् की समकालीन अथवा उनसे तनिक पूर्वकाल में स्थित कवयित्रियों में से हैं। इनके आठ पद 'कुरुंतोगै' (दे०), दो पद 'अकनानूरू' (दे०) तीन पद 'नट्रिणै' (दे०) और एक पद 'तिरुवळ्ळुवमालै' नामक कृतियों में संगृहीत हैं। वेळि्ळवीदि ने अपने पदों में आत्मानुभवों की अभिव्यक्ति की है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने युवावस्था में किसी युवक से प्रेम किया था। उसे ढूँढ़ते हुए ये वनों और जंगलों में एवं विभिन्न नगरों में भटकती फिरीं परंतु पति-रूप में उसे न पा सकीं। यही कारण है कि इनके पदों में वेदना का स्वर प्रधान हो गया है। इन्होंने अपने विभिन्न पदों में युवती कन्या की मनोदशा का सजीव चित्रण किया है। इनके पदों से तथा इनसे संबंधित अन्य कवयित्रियों के पदों से तत्कालीन समाज में नारी की दशा तथा नारी की विचारधारा का तथा युगीन तमिल परंपराओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। इनके पदों से स्पष्ट है कि उस युग की कन्याएँ किसी एक व्यक्ति के प्रति प्रेम के उदय के पश्चात् दूसरे व्यक्ति से विवाह करना अनुचित समझती थीं। कन्याएँ सामाजिक मर्यादाओं के बंधन को स्वीकार करती थीं। परंतु प्रेम-मार्ग की बाधक सामाजिक मर्यादाओं के त्याग को अनुचित नहीं समझती थीं। परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति मिलकर लड़के या लड़की का विवाह तय करते थे। मांगलिक अवसरों पर पुरुष पगड़ी धारण किया करते थे आदि। वेळि्ळवीदि के पदों में भाव-सौंदर्य के साथ-साथ कला-सौंदर्य भी दृष्टिगत होता है। इनका और इनके पदों का तमिल साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

वैंजनाथ शास्त्री *(म० पा०)*

डा० श्री० व्यं० केतकर (दे०) के उपन्यास 'गोंडवनांतील प्रियंवदा' के इस अद्भुत पात्र का चरित्रांकन सर्वांगपूर्ण और उत्कृष्ट है। एक ओर लेखक उसकी वेशभूषा, भाषा और उसके व्यवहार की कतिपय विशिष्टताओं—बड़े-बड़े लोगों को अबे-तबे कहकर नाम लेने, बोलते-बोलते बीच-बीच में बीड़ी पीने तथा सोचते समय आँखें बंद कर लेने का चित्रण कर उसे पाठक की कल्पना के सम्मुख मूर्तिमान कर देता है, तो दूसरी ओर उसके स्वभाव, जीवनक्रम और विचारों का परिचय दे इस पात्र को सजीव बना देता है। उसके संशोधक, चिंतक, प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्तित्व एवं 'ज्वलन्निव वह्निमयेन तेजसा' जैसे स्वभाव को सम्मुख रख लेखक ने वस्तुतः उसके चरित्र को अमर बना दिया है। जगत् को तुच्छ मानने वाले अहंभाव से युक्त इस व्यक्ति के विचार भी इतने विलक्षण हैं कि वह पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (दे०) के सनातनी विचारों का मज़ाक उड़ाने तथा लेखक के समाजशास्त्रीय विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए इस पात्र की सृष्टि की गई थी।

वैजयंतीविलासमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक सारंगु तम्मय्या हैं। 'वैजयंतीविलासमु' चार आश्वासों का काव्य है। तमिल-साहित्य में प्रसिद्ध बारह विष्णुभक्तों में से एक की कथा इसमें वर्णित है। अपनी बहन के साथ उपवन में विहार करती हुई देवदेवी नामक वेश्या भक्तप्रवर विप्रनारायण (दे०) को देखती है। मधुरवाणी अपनी बहन देवदेवी से कहती है कि विप्रनारायण एक महान भक्त है, वह प्रेम-प्रपंच में नहीं फँस सकता। पर देवदेवी मधुरवाणी के साथ बाज़ी लगाकर अंत में विप्रनारायण को अपने वश में कर लेती है। तब भूल से विपत में फँसे हुए भक्त को भगवान विष्णु बचा लेते हैं। यही कथा इस काव्य में वर्णित है। इसमें भक्ति के साथ श्रृंगार का भी प्रचुर वर्णन है। कहीं-कहीं औचित्य का उल्लंघन भी हुआ है। इनकी शैली तथा चरित्र-चित्रण दोनों ही आकर्षक हैं।

वैण सगाई *(हिं० पारि०)*

'वैण सगाई' डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) का एक विशेष शब्दालंकार है। इस अलंकार में चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उसके अंतिम शब्द के प्रारंभिक अक्षर के साथ मिलता है। डिंगल के कवियों की ऐसी मान्यता है कि जब अक्षरों की 'वैण सगाई' मिल जाती है, तब दग्धाक्षरों, अशुभ गणों तथा अशुभ द्विगणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दोष नहीं रहता। डिंगल के कुछ कवि केवल प्रथम अक्षरों में ही नहीं, मध्य एवं अंत के अक्षरों में भी 'वैण सगाई' अलंकार मानते हैं।

वैंताल पच्चीसी *(गु० कृ०)*

'वैंताल पच्चीसी' (शामळ ग्रंथावली, भाग 2) कवि व वार्ताकार शामळ (दे०)-रचित व अंबालाल स० पटेल-संपादित पद्य-कथाएँ हैं, जिन्हें भारतीय विद्याभवन, बंबई ने 1962 ई० में डा० हरिवल्ल भायाणी के प्रधान संपादकत्व में प्रकाशित किया है। रचना के मूल उपजीव्य ग्रंथ हैं—क्षेमेंद्र (दे०) की संस्कृत पद्य में रचित-संपादित 'बृहत्कथामंजरी' तथा सोमदेव की 'कथासरित्सागर' (दे०)। एक भिक्षु राजा त्रिविक्रमसेन को प्रतिदिन एक फल दे देता था। राजा वह फल कोषाध्यक्ष को देता था। एक बार राजा ने बंदर को वह फल दिया। भीतर से मोती टपक पड़ा। सारे फलों से बहुत से मोती भंडार में भर गए। राजा ने भिक्षु से पूछा। भिक्षु ने उत्तर दिया कि मंत्र-साधना में तुम्हारे जैसे वीर की सहायता मैं चाहता हूँ। काली चांदस (नरक चतुर्दशी) की रात्रि को राजा भिक्षुक से मिला। उसकी सूचना के मुताबिक दूर-दूर दक्षिण दिशा में एक पेड़ से लटकते शव को राजा ने नीचे गिराया। शव हँसने लगा। राजा शव को कंधे पर उठाकर चलने लगा। शव में पैठे वैंताळ ने रास्ता काटने के लिए एक-एक कर कथा कहना शुरू किया। उसने पच्चीस कथाएँ कहीं। ये कथाएँ ही 'वैंताल पच्चीसी' कहलाईं।

शामळ की 'वैंताल पच्चीसी' की कहानियों में विषय, शीर्षक, क्रम, वस्तु आदि वैसे ही हैं जैसे मूल 'वृहत्कथा' व 'कथा सरित्सागर' में हैं। प्रारंभ में भूमिका, फिर पच्चीस कथाएँ, पश्चात् पाठांतर व अंत में शब्द-कोश देकर पुस्तक को उपयोगी बनाया गया है। प्रणय, पराक्रम व अद्भुत-चमत्कारपूर्ण घटनाओं के निरूपण से कथाएँ बहुत लोकप्रिय बनी हैं। कथानक-रूढ़ियाँ, जन-मानस-निरूपण, जनमन-रंजन से कृति संपन्न है। भाषा सीधी-सरल किंतु लोकोक्तियों व मुहावरों से समृद्ध है।

मध्यकालीन पद्य-वार्ताओं में 'वैंताल पच्चीसी' बहुत प्रसिद्ध, महत्वपूर्ण व लोकप्रिय कृति है।

वैदेही वनवास *(हिं० कृ०)*

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिओध' (दे०)-कृत अठारह सर्गों की यह रचना यदि महाकाव्य नहीं तो खड़ी बोली का उत्तम प्रबंधकाव्य अवश्य है। यह 18 दिसंबर 1937 ई० को प्रारंभ होकर 14 जनवरी, 1939 ई० को समाप्त तथा 5 फरवरी 1940 ई० को प्रकाशित हुआ। इसके मुख्य आधार हैं: वाल्मीकि-'रामायण' (दे०), 'अध्यात्म रामायण' (दे०), 'रघुवंश' (दे०) और 'उत्तर-रामचरित' (दे०)। इसके अनेक प्रसंगों में मौलिकता है। किंतु उससे ऐतिहासिकता में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। प्रकृति-चित्रण अपेक्षा से अधिक है; किंतु राम और सीता के चरित्र में मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण सुंदर है। इस काव्य में 'आदर्शवाद' (दे०), 'छायावाद' (दे०) और 'प्रगतिवाद' (दे०) का समन्वित आभास है।

वैंभाषिक *(पा० पारि०)*

यह 'हीनयान' (दे०) के अनुयायी सर्वास्तिवादियों की एक शाखा है। ईसा पूर्व पहली या दूसरी शती में कात्यायनीपुत्र ने 'ज्ञान प्रस्थान' लिखा था जिसका सार 'अभिधर्म कोश' के रूप में सामने आया। इस पर कनिष्क की अध्यक्षता में एक परिषद् में 'महा-विभाषा' नाम की एक टीका लिखी गई। लेखकों का नेतृत्व वसुमित्र ने किया। इस टीका में विरोधी मतावलंबियों का खंडन किया गया है; इसीलिए इसका नामकरण 'विभाषा' (विरोधियों की विगड़ी हुई भाषा) रखा गया। इस टीका को धर्म-ग्रंथ के रूप में मानकर चलने वाले वैंभाषिक कहलाये।

वैंभाषिक मतानुयायी पदार्थों की बाह्य सत्ता सत्य मानकर चलते हैं, उनके मत में यदि पदार्थों की बाह्य सत्ता स्वीकार की जाय तो संसार का कोई भी क्रियाकलाप संपन्न नहीं हो सकता। हमारा अनुभव प्रत्यक्ष रूप में बाह्य सत्ता को प्रमाणित करता है। यदि इस प्रकार की सत्ता न हो तो अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। धुएँ को देखकर आग की प्रतीति इसलिए होती है कि पहले कभी आग और धुएँ के साहचर्य को प्रत्यक्ष कर दोनों के साहचर्य के आधार पर व्याप्ति ग्रहण किया जा चुका है। इस प्रकार इस मत में प्रत्यक्ष जगत् और अनुमित जगत् दोनों की सत्ता है, साथ ही भौतिक और मानसिक जगत् को भी ये लोग सत्य ही मानते हैं। बाह्य सत्ता के चार तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। इनकी रचना परमाणुओं से होती है। परमाणु पृथक्शः इंद्रियगोचर नहीं हो सकते। इनका सामूहिक रूप ही प्रत्यक्ष होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलतत्त्व का विनाश कभी नहीं होता। विश्व के पदार्थ मध्यवर्ती स्थिति-रूप हैं जिसमें अणुओं के संघात एवं विघटन से उत्पत्ति, स्थिति, क्षण और मृत्यु—ये चार स्थितियाँ आती रहती हैं। विनाश के बाद परमाणु-रूप में मूलतः तत्त्व बना रहता है। इन पदार्थों के अतिरिक्त न तो आकाश की सत्ता है और न प्रद्गल (जीव) की ही सत्ता स्वीकार की जा सकती है। पाँच स्कंधों—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार—से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। पदार्थों का प्रत्यक्ष इंद्रियार्थ सन्निकर्ष से होता है। पृथ्वी इत्यादि परमाणु वर्ण, गंध, स्वाद और स्पर्श-गुण-युक्त हैं जिनमें परस्पर भेद नहीं।

वैयापुरिप्पिळै, एस० *(त० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

तमिल भाषा के कोशकार तथा प्राचीन ग्रंथों के संपादक, एवं अन्वेषक के रूप में एस० वैयापुरिप्पिळै का नाम अमर है। प्रारंभिक जीवन में वकील के व्यवसाय में संलग्न होने पर भी इनकी प्रवृत्ति साहित्यिक चर्चा, आस्वादन और खोज की ओर रही थी। 1926 ई० से मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल 'लेक्सिकन्' (तमिल बृहत् कोश) का संपादक-पद इन्हें मिलने के बाद इनकी साहित्यिक सेवाएँ व्यापक एवं तीव्र बन गई थीं। 1936 से 1947 ई० तक ये मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल अनुसंधान-विभागाध्यक्ष रहे थे। 1950 से 1954 ई० तक ये मु० राकवैयंकार् के पश्चात् 'तिरुवनंतपुरम्' स्थित विश्वविद्यालय में तमिल प्रोफ़ेसर के पद पर रहे।

कोश-संपादक के रूप में इनकी महान् उपलब्धि 'तमिल लेक्सिकन' के कार्य को समाप्ति तक ले जाना था जिसमें इन्हें तदर्थ नियुक्त विद्वत्मंडली की सहायता पूरी मात्रा में मिली थी। इन्होंने इस कोश के मूलाधार प्राचीन तमिल 'निघंटुओं' और अन्य स्रोत-ग्रंथों का संपादन एवं प्रकाशन भी किया था। ऐसे ग्रंथों में 'अरुंपोरुळ् निगंटु', 'नामतीपनिगंटु' तथा 'नानार्थ दीपिकै' उल्लेखनीव हैं। समस्त संगमकालीन पद्य-रचनाओं का एक संस्करण इन्होंने निकाला था जो पाठ-शोध का उत्तम कार्य है। ये तमिल के श्रेष्ठतम महाकाव्य 'कंबरामायणम्' (दे०) के पुजारी थे और वैज्ञानिक पाठ-शोध के अनुकूल उसका एक संस्करण निकालने के लिए इन्होंने सारी सामग्री इकट्ठी भी की थी पर अपने जीवन में इसे पूर्ण नहीं कर पाये थे। 'पुरत्तिरट्टु', 'कळवियरकारिकै', 'पोरुळत्तिकारम् इलंपूरणर्उरै' इत्यादि अनेक प्राचीन ग्रंथ मूल ताड़-पत्रों के परिश्रमपूर्वक शोध के पश्चात् इनके द्वारा संपादित और प्रकाशित हुए हैं। ये संस्कृत भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे। निष्पक्ष तथा सर्वांगीण स्वतंत्र चिंतन इनके अन्वेषणात्मक एवं विविध विषयक निबंधों की विशेषता है। इनके गद्य-लेखन के कुछ उदाहरण हैं—'कंबन-कावियम्' (कंबन का काव्य), 'तमिल्च्चुटरमणिकळ्' (तमिल के प्रकाशमान रत्न-जीवनियाँ और परिचय), 'तमिलर् पण्पाटु' (तमिल लोगों का संस्कार), 'काविय कालम्' (तमिल साहित्य के काव्य-काल' का खोज और इतिहास), 'चिरुकतै मंजरि' (लघु-कथाएँ), 'इलक्किय उतयम्' (विभिन्न देशों में साहित्य का उदय) इत्यादि।

वैराग्य सार *(अप० कृ०)*

'वैराग्य सार' 77 पद्यों की लघुकाय कृति है। इसके रचयिता सुप्रभाचार्य (दे०) हैं। कवि की विचारधारा, शैली और भाषा की दृष्टि से यह कृति बारहवीं-तेरहवीं शती के बीच की रचना प्रतीत होती है।

इस ग्रंथ के नाम से ही इसके विषय का आभास मिल जाता है। कवि ने सांसारिक विषयों की अस्थिरता तथा संसार में दुःखबहुलता का इस ग्रंथ के अनेक दोहों में उल्लेख किया है: पुण्य-संचय, परोपकार, दान, इंद्रिय-निग्रह और मन को वश में करने का उपदेश दिया है। कवि ने अनेक पद्यों में धन-वैभव की क्षणिकता, विषयों की निंदा, मानव-देह की नश्वरता और सांसारिक संबंधों के मिथ्यात्व का उल्लेख किया है और बताया है कि माया-निशा में मन-चोर से आत्म-रक्षा करने वाला साधक निर्मल ज्ञान-प्रभात के दर्शन करता है।

'वैराग्य सार' में सुप्रभाचार्य ने सरल और सुबोध भाषा में मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। इस ग्रंथ के 77 पद्यों में से 72 दोहा छंद में हैं। भाषा में यत्र-तत्र अनेक सुभाषित मिलते हैं। कवि ने प्रत्येक पद्य में अपने नाम का प्रयोग किया है।

वैशाली की नगरवधू *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1948 ई०]

यह आचार्य चतुरसेन (दे०) शास्त्री का सर्व-श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका कथानक बौद्धकाल से संबंधित है तथा लेखक ने तद्युगीन लिच्छवी संघ की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधानी वैशाली की गणिका 'आम्रपाली' को केंद्रबिंदु बनाकर उस परंपरा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिसके अनुसार उस युग में नगरवधू को पूरे गण में सम्मानित किया जाता था और समाज की सर्वाधिक सम्मानित एवं ऐश्वर्यशालिनी महिला होती थी। घटनाप्रधान इस उपन्यास में आम्रपाली के चरित्र को अत्यंत कुशलतापूर्वक उरेहा गया है। आम्रपाली नगरवधू बन जाने तथा विलासप्रिय नवयुवकों की कामवासना को उत्तेजित करने पर भी अपने शरीर को सर्वथा अछूता रखती है तथा वैशाली की इस परंपरा की घोर निंदा करती है। पुराकालीन शब्दों का प्रयोग करते हुए वेश-विन्यास, रीति-नीति तथा विभिन्न स्थानों के चित्रोपम प्रत्यंकन द्वारा लेखक ने न केवल ऐतिहासिक वातावरण की सफल सृष्टि की है अपितु इसे अत्यंत रोचक भी बना दिया है।

वैशिकतंत्रम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः ग्यारहवीं शती के पूर्व]

कोई अनुभवी वेश्या अपनी पुत्री को वेश्यावृत्ति के सारे मर्म सिखाती है। यह ग्रंथ शायद इसी भाव की किसी संस्कृत-रचना का अनुवाद है। जिस गंभीरता एवं आत्मीयता से माता पुत्री को वेश्यावृत्ति का उपदेश देती है वह दर्शनीय है—'बेटी! यौवन युवतियों का कामास्त्र है और वह इंद्रधनुष-सा क्षणिक है। यौवन में अर्जित संपत्ति से ही वार्धक्य का विशाल सागर पार करना पड़ता है। इस काव्य की भाषा में मधुर मलयाळम तथा ललित संस्कृत का मणिप्रवाल-प्रयोग है।

वैष्णवचरित्रकाव्य *(बँ० प्र०)*

श्री चैतन्य महाप्रभु (दे०) के आविर्भाव के पूर्व से ही बड़ुचंडीदास (दे०), मालाधर बसु (दे०) आदि वैष्णव कवि राधाकृष्ण के प्रेम-वर्णन और वैष्णव भक्ति के प्रसार में संलग्न थे। मालाधर बसु का 'श्रीकृष्ण विजय' (दे०) प्राक्चैतन्य युग का प्रथम उत्कृष्ट चरितकाव्य समझा जाता है। इसमें भागवत पुराण के दशम स्कंध का भावानुवाद किया गया है। यह कहा जाता है कि चैतन्यदेव ने इस पुस्तक में अभिव्यंजितत कृष्णलीला के लिए ग्रंथकार की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी और स्वयं इससे प्रभावित भी हुए थे। चरितकाव्य की वास्तविक परंपरा श्री चैतन्यदेव के आविर्भाव एवं तिरोभाव के उपरांत शुरू हुई। वस्तुतः मध्य युग में चैतन्यदेव के जीवन के आधार पर ही चरितकाव्य की रचना की प्रथा प्रारंभ हुई थी। चैतन्यप्रभु की लोकोत्तर जीवन-कथा के आधार पर गोविंददास (दे०) ने 'कड़चा', जयानंद (दे०) ने 'चैतन्य मंगल' (दे०), वृंदावनदास (दे०) ने 'चैतन्य भागवत' (दे०) एवं कविराज गोस्वामी ने 'चैतन्य चरितामृत' (दे०) की रचना कर मध्ययुगीन बँगला-साहित्य की अपूर्व श्रीवृद्धि की। इन चरित-काव्यों में चैतन्य की जीवन-महिमा के साथ ही गौड़ीय वैष्णव भक्ति और उसकी दार्शनिकता की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। इन ग्रंथों में 'चैतन्य चरितामृत' को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है। पांडित्य, भक्ति और काव्य-कुशलता का अपूर्व परिचय देते हुए कविराज गोस्वामी ने अपने इस काव्य को चैतन्य के वाङ्मय-विग्रह का रूप दिया है।

वैष्णव पदावली साहित्य *(बँ० प्र०)*

जयदेव (दे०) के 'गीत गोविंद' (दे०) तथा बड़ु चंडीदास (चौदहवीं शती) के 'श्रीकृष्ण कीर्तन (दे०) एवं मैथिली कवि विद्यापति (दे०) की पदावली के प्रभावस्वरूप मध्ययुगीन बंगला साहित्य में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला और वैष्णव भक्ति-भावना का अत्यधिक प्रसार हुआ। विशेषकर विद्यापति की पदावली से संपूर्ण बंगाल इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि मैथिली और अवहट्ट के साथ बँगला भाषा का सम्मिश्रण कर वैष्णव गीति-कविता के माध्यम के रूप में बंगाली कवि-मानस में 'ब्रजबुलि' के नाम से एक नवीन भाषा की सृष्टि कर डाली और गेय पदावली में वैष्णव रस-धारा की उत्कृष्ट अभिव्यंजना शुरू की। पंद्रहवीं शती में श्री चैतन्य महाप्रभु (दे०) के आविर्भाव के उपरांत कृष्ण-लीला की भूमिका के रूप में कवियों ने चैतन्य लीला के पदों की भी रचना प्रारंभ की। इन पदों को 'गौरचंद्रिका' नाम दिया गया। इस वैष्णव पदावली में प्रकृति का समस्त सौंदर्य, मानवीय प्रेम के सारे सुकुमार भाव-विलास एवं अतींद्रिय रस की अलौकिकता लौकिक रूप में प्रकट हुई। इन पदावलियों में कविता सुगंभीर, स्वतःस्फूर्त अनुभूति की सहज रसधारा में प्रभावित हुई है। पदावली साहित्य बंगाल का अन्यतम काव्यकृतित्व है। यह बंगाली जीवन की विशुद्धतम काव्यमय अभिव्यक्ति है। बंगाल की समस्त मधुर और कोमल अनुभूति, उसकी भावमुग्धता, जीवन-दर्शन, प्रेमाभक्ति की कोमलता सब कुछ इन पदों की सीमित परिधि में प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। गोबिंददास (दे०), ज्ञानदास (दे०) और चंडीदास (दे०) पदावली साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। गोबिंददास के पदों में गंभीर भावावेग के साथ युक्ति-शृंखला का अनुवर्तन हुआ है और अलंकार-बहुल, झंकार-प्रधान, मर्यादापूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है। वैष्णव पदावली का बंगाल के जन-मानस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अनंतदास, बलरामदास, बासुदेव घोष आदि हिंदू पदकर्त्ताओं के अतिरिक्त दौलत-काज़ी (दे०), सैयद आलाओल (दे०) जैसे मुसलमान रचयिताओं ने भी अपनी वैष्णव भावानुभूति को काव्यरूप दिया है।

व्यंग्य (व्यंग्यार्थ) *(पारि०)*

व्यंजना (दे०) के शब्दशक्ति द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। यह अर्थ वाच्यार्थ (मुख्यार्थ, अभिधेयार्थ) से नितांत भिन्न होता है। यह भिन्नता निम्नोक्त नौ तत्त्वों पर आधारित है—निमित्त कारण, आश्रय, कार्य, काल, बोद्धा, संख्या, विषय, प्रतीति और स्वरूप (सा० द० 5.2)। व्यंग्यार्थ को प्रतीतार्थ, प्रतीयमानार्थ, ध्वन्यर्थ (अथवा ध्वनि (दे०) आदि भी कहते हैं। 'व्यंग्यार्थ' की प्रतीति शब्द और अर्थ के शासन (व्याकरण-संगत शब्दज्ञान और मीमांसा-संगत अर्थ-ज्ञान) से नहीं हो जाती, अपितु यह तो काव्य के मर्मज्ञ सहृदयों को ही होती है। (ध्वन्या० 1.7) व्यंग्यार्थ (ध्वनि) के ही तारतम्य के आधार पर समस्त काव्य तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया गया है—ध्वनि-काव्य, गुणीभूतव्यंग्य (दे०) काव्य और चित्रकाव्य (दे०)। इन तीनों में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ (ध्वनि, ध्वन्यर्थ) क्रमशः प्रधान, गौण और अस्फुट से रहता है।

व्यंजना *(पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र एवं व्याकरण में निरूपित शब्दशक्तियों—अभिधा (दे०), लक्षणा (दे०)और व्यंजना में से अंतिम, किंतु सर्वाधिक सशक्त। अभिधा और लक्षणा का बाध होने पर शब्द की जिस शक्ति के द्वारा किसी शब्द अथवा वाक्य के किसी अन्य विशिष्ट अर्थ का अवबोध होता है वही शक्ति व्यंजना है। अभिधा शब्द के संकेतार्थ का वाचन करती है, लक्षणा मुख्यार्थ के बाधित होने पर उसी से संबंधित किसी अन्य अर्थ का बोध कराती है, किंतु व्यंजना से प्राप्त अर्थ इन दोनों शक्तियों के पूर्णतया असमर्थ होने पर ही प्राप्त होता है जो अनिवार्यतः अधिक गूढ़, कमनीय अद्भुत और मार्मिक होता है। व्यंजना की इस अर्थावबोधन-प्रक्रिया को शास्त्र में 'ध्वनन' कहा गया है।

व्यंजना-शक्ति के दो भेद किए गए हैं: 'शाब्दी व्यंजना' और 'आर्थी व्यंजना।'। 'शाब्दी व्यंजना' अभिधा-मूला और लक्षणामूला दो प्रकार की होती है। 'आर्थी व्यंजना के वक्तृ, बोधव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्य-सन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल तथा चेष्टा के आधार पर दस भेद माने गए हैं।

व्यक्तिविवेक *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती का मध्य-काल]

ग्यारहवीं शती के मध्यकाल में रचित 'व्यक्ति-विवेक' ही संस्कृत-साहित्य की एक ऐसी उल्लेख्य कृति है जिसने अनंदवर्धन (दे०) के ध्वनिसिद्धांत का प्रबल विरोध किया। इस ग्रंथ के रचनाकार महिमभट्ट (दे०) स्वयं कहते हैं कि उनकी कृति की रचना का एकमात्र कारण 'ध्वनि' का सांगोपांग खंडन कर उसका अनुमान में अंतर्भाव करना है। इसलिए वे अनुमान की प्रक्रिया के आधार पर ध्वनि को उसके भेदोपभेदों सहित अनुमानगम्य सिद्ध करते हैं। इस ग्रंथ में काव्य के दोष, गुण, अलंकार एवं रसादि तत्त्वों की मीमांसा दर्शन और व्याकरण की पृष्ठभूमि में हुई है। यह भी इस ग्रंथ का एक वैशिष्ट्य है।

इस ग्रंथ के विवेचन की प्रणाली प्रायः इस प्रकार रही है—वृत्ति, उदाहरण तथा अंत में कारिकाएँ। 'व्यक्तिविवेक' की अब तक कुल दो टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं—रुय्यक (दे०)-कृत 'व्यक्तिविवेक-व्याख्यान तथा 'मधु-सूदन-विवृति'।

व्यभिचारिभाव *(पारि०)*

भरत (दे०) के निम्नोक्त सूत्र में 'व्यभिचारी' शब्द का प्रयोग मिलता है—'विभावानुभाव-व्यभिचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्तिः' (ना० शा० षष्ठ अध्याय)। 'व्यभि-चारी' को ही व्यभिचारिभाव' तथा 'संचारिभाव' कहा जाता है। 'व्यभिचारिभाव' इसलिए कि ये भाव प्रत्येक स्थायिभाव के साथ विशेष रूप से अभिमुख होकर—उसके अनुकूल (सहायक) बनकर—चलते हैं: विशेषादाभि-मुख्येन चरणाद् व्यभिचारिणः (सा० द० 3.140)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचारिभाव इसलिए कि ये भाव स्थायिभावों को रसावस्था तक ले चलते हुए भी स्वयं बोच में जलतरंगवत् आविर्भूत और तिरोभूत होते रहते हैं—स्थोयिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः। (सा० द० 3.140)। ये तेतीस माने गए हैं—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिंता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चापल्य, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अवमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क। किंतु 33 संख्या तो कम-से-कम संख्या की ही द्योतक है, 'संचारीभाव' तो अनंत हो सकते हैं—'त्रयस्त्रिंशदिति न्यूनसंख्याया व्यवच्छेदकं न त्वधिकसंख्यायाः।' इनके अतिरिक्त अनियत रस में—उस रस में जिसकी स्थिति अंत तक न बनी रह सके—'स्थायिभाव' भी 'संचारिभाव' बन जाते हैं।

व्यर्थंतार दान *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1938 ई०]

यह यौन-समस्याओं को लेकर लक्ष्मीधर शर्मा (दे०) द्वारा लिखी गई कहानियों का संग्रह है। इसमें यौन-प्रवृत्ति की प्रचंडता और मादकता का वर्णन है। किसी-किसी कहानी में नग्न वर्णन हो गए हैं किंतु उन्हें कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। कहानियों में कहीं-कहीं आदर्शवादी स्पर्श भी हैं।

व्याकरण *(हिं० पारि०)*

व्याकरण शब्द 'वि+आ+कृ+ल्युट्' से बना है और इसका अर्थ है 'विश्लेषण करने की क्रिया' या 'वह जो विश्लेषण का साधन हो'। भाषा के प्रसंग में व्याकरण वह शास्त्र है जो भाषा का विश्लेषण करता है तथा शुद्ध और अशुद्ध प्रयोगों का ज्ञान कराता है। परंपरागत व्याकरण सभी देशों में निर्देशात्मक (prescriptive) रहे हैं, जो प्रयोग-अप्रयोग का निर्देश करते रहे हैं। अब ऐसे व्याकरण अच्छे नहीं माने जाते। नये व्याकरण मुख्यतः निम्नांकित प्रकार के लिखे जा रहे हैं: वर्णनात्मक (descriptive), ऐतिहासिक (historical), तुलनात्मक (comparative), व्यवस्थापरक (systematic), रूपांतरक-व्युत्पादक (transformational generative) तथा स्तरीकृत (stratificational)। आजकल सबसे अधिक प्रचार रूपांतरक-व्युत्पादक व्याकरण का है, जिसके आदि व्याख्याता 'चोम्स्की हैं तथा जिसमें न केवल उसका विवेचन-विश्लेषण होता है जो किसी भाषा में प्रयुक्त हो रहा है, अपितु उसका भी विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है, जो प्रयुक्त हो सकता है। इधर फ़िल्मोर ने व्याकरण का एक नया रूप कारकीय व्याकरण (case grammar) नाम से विकसित किया है।

व्यायाम-ज्ञान कोश *(म० कृ०)*

यह कोश 1940 ई० में बड़ौदा से प्रकाशित हुआ था। इसके मुख्य संपादक श्री द० चि० मजुमदार हैं। इसके उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए भूमिका में कहा गया है कि बौद्धिक ज्ञान-संवर्धन पर बल देने के कारण आधुनिक काल में शारीरिक शिक्षण प्रायः उपेक्षित रहा है। अतः यह कोश संपूर्ण महाराष्ट्र को आरोग्य-संपन्न बनाने के उद्देश्य से तैयार किया गया है।

यह एक अनूठी कृति है। इसके पाँच भाग हैं, जिनमें प्राचीन तथा नवीन व्यायामों का संग्रह है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक के ऐसे अनेक व्यायाम हैं जिनमें अधिक साधनों की आवश्यकता नहीं। कोश में उनका सचित्र एवं शास्त्रयुक्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें खेल ही नहीं खेल खेलने की विधियाँ भी बताई गई हैं। इस प्रकार यह व्यायाम-संबंधी विश्वकोश है।

व्याष्वट्टस्मरणकळ् *(मल० कृ०)*

मलयाळम-साहित्य की आत्मकथा-धारा के प्रारंभिक एवं प्रमुख ग्रंथों में स्व० बी० कल्याणि अम्मा द्वारा लिखित इस ग्रंथ का नाम उल्लेखनीय है। मलयाळम में व्याष्वट्टम् शब्द का अर्थ है 'द्वादशवर्षीय युग'। श्रीमती कल्याणि अम्मा ने अपने प्रिय पति स्वदेशाभिमानी रामकृष्ण पिळ्ळा के साथ बिताये बारह वर्षों की मीठी-तीखी स्मृतियाँ परम आत्मीयता से इस ग्रंथ में शब्दबद्ध की हैं।

इनके पति रामकृष्ण पिळ्ळा त्रावनकोर रियासत के सजग पत्रकार और सशक्त साहित्यकार थे। समाज के प्रति न्याय-दृष्टि का निर्वाह उनका लक्ष्य था। एक तरफ़ ये सरकारी अफ़सरों की रिश्वतखोरी और अन्य अत्याचारों की खबरें निःसंकोच छापने से प्रसिद्ध हुए तो दूसरी तरफ़ त्रावनकोर-नरेश के क्रोध-पात्र बने। फलतः रियासत से निर्वासित कर दिए गए। श्रीमती कल्याणि अम्मा ने इसके भीतर स्पष्ट शब्दों में उनके संघर्षमय जीवन का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह के पहले पिळ्ळा से वार्तालाप तथा पिळ्ळा के अंतिम दिनों के दृश्य आदि अत्यंत हृदयहारी चित्रण के उदाहरण हैं। यह ग्रंथ समसामयिक राजनीति पर प्रकाश डालता है और अतिरंजना से दूर है।

व्यास, कांतिलाल बलदेवराम *(गु० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

श्री कांतिलाल व्यास का जन्म ध्रांगध्रा तहसील के हामपुर गाँव में हुआ था। ये मूलतः विरमगाम के निवासी थे। सूरत के एम० टी० बी० कॉलेज से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा पास की। इनका विद्यार्थी जीवन भी बड़ा तेजस्वी रहा हैं। बंबई विश्वविद्यालय तथा भारतीय विद्याभवन ने इसकी शोधपरक रचनाओं पर इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किए थे। ये पहले गुजराती थे जिन्हें रायल एशियाटिक सोसाइटी के फ़ेलो होने का सम्मान प्राप्त हुआ था। इनकी रचनाएँ हैं : 'निबंधगुच्छ', 'गुजराती भाषानुं व्याकरण अने शुद्ध लेखन', 'गुजराती भाषाशास्त्रना विकासनी रूपरेखा', 'आपणा भारतनो सरल इतिहास', 'वसंतविलास : एन ओल्ड गुजराती फागु', 'वसंतविलास : ए फर्दर स्टडी', 'द विक्रमादित्य प्रोब्लम : ए फ्रेश स्टडी', 'दशावतारचित्र : गुजराती पेंटिंग इन द सेविंटींथ सेंचुरी'। 'कान्हड़दे प्रबंधम्' (दे०) का इन्होंने संपादन भी कर रखा है। श्री कांतिलाल व्यास की प्रसिद्धि अपने भाषाशास्त्र के गंभीर ज्ञान और उसके पुरानी कृतियों पर समायोग के कारण हुई है। ये सर्जनात्मक साहित्य कम और शास्त्रीय पुस्तकें अधिक रुचि के साथ पढ़ते हैं जिसकी छाया उनकी रचनाओं पर भी मिलती है।

व्यास, बादरायण *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—200 ई०]

बादरायण एवं वेदव्यास अभिन्न हैं। बदरिकाश्रम में रहने के कारण इनका नाम बादरायण पड़ गया था। अपांतरतमा एवं कृष्ण द्वैपायन इनके अपर नामधेय हैं। इनका प्रधान ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) है। ज्ञानसूत्र को ही 'वेदांतसूत्र', 'शारीरिकसूत्र' एवं 'भिक्षासूत्र' भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने शिष्यों—पैक्त, वैशंपायन, जैमिनि एवं सुमंतु के सहयोग से वैदिक संहिताओं का संपादन किया था। 'महाभारत' (दे०) श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) एवं अन्य पुराणों की रचना भी इन्हीं के द्वारा की गई थी।

भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यास की देन सर्वथा अक्षुण्ण रहेगी। ये प्रत्येक युग के महापुरुष के रूप में सदा श्रद्धेय रहेंगे। जहाँ इन्होंने वेदों के संपादन द्वारा एक विस्तृत एवं सर्वांगीण दिशा दी है, वहाँ ब्रह्मसूत्र की रचना के द्वारा औपनिषद दर्शन का दृढ़ एवं शाश्वत शिलान्यास किया है। इसी प्रकार पुराणों की रचना के द्वारा व्यास ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति का जो ऐतिहासिक काव्यमय विश्लेषण किया है, वह उनकी अनुपम देन कही जाएगी।

व्युत्पत्ति *(काव्य० /भाषा पारि०)*

1. 'व्युत्पत्ति' काव्य-रचना के तीन हेतुओं में से दूसरा हेतु है। इसका नाम 'निपुणता' भी है। लोक, काव्य, काव्यशास्त्र आदि के अवेक्षण द्वारा (प्राप्त ज्ञान) 'व्युत्पत्ति' अथवा 'निपुणता' कहाता है—'निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्' (का० प्र० 1.3)। दंडी (दे०) ने इसे अति निर्मल श्रुत (शास्त्र-ज्ञान) कहा है। काव्य को रचना के लिए मम्मट (दे०) के अनुसार 'शक्ति' (प्रतिभा), 'निपुणता' (व्युत्पत्ति) और 'अभ्यास' ये तीनों समन्वित रूप से अभीष्ट हैं; किंतु इनसे पूर्व दंडी के अनुसार यद्यपि काव्य-रचना के लिए 'प्रतिभा' (दे०) अपेक्षित है, तथापि 'प्रतिभा' के अभाव में श्रुत (व्युत्पत्ति (दे०) और यत्न (अभ्यास) के बल पर किसी-किसी व्यक्ति पर वाग्देवी कृपा कर ही देती है, अर्थात् 'व्युत्पत्ति' और 'अभ्यास' द्वारा भी कोई-कोई व्यक्ति काव्य-रचना करने में समर्थ हो जाते हैं (का० आ० 1.104)। किंतु आनंदवर्धन (दे०) 'प्रतिभा' का विवेचन प्रकारांतर से नहीं करते (देखिए ध्वन्या० 3.6 वृत्ति) हेमचंद्र (दे०) के अनुसार काव्य-रचना का एकमात्र हेतु है—'प्रतिभा'; और 'व्युत्पत्ति' तथा 'अभ्यास' इसके परिष्कारक हेतु हैं—'प्रतिभाऽस्यहेतुः व्युत्पत्यभ्यासाभ्यां संस्कार्या' (का० अनु० पृष्ठ 6)।

व्युत्पत्ति

2. यह शब्द 'वि+उत्पत्ति' से बना है। भाषाविज्ञान में किसी शब्द के मूल रूप से उसके संबंध का द्योतन 'व्युत्पत्ति' कहलाता है। संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति में उनका प्रकृति-प्रत्यय विश्लेषण करते हैं जैसे व्याकरण= वि+आ+कृ+ल्युट्। हिंदी शब्दों की व्युत्पत्ति में मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द से उसका संबंध-द्योतन करते हैं। जैसे कि घोड़ा व्युत्पत्ति संस्कृत घोटक से, तथा ओझा की संस्कृत उपाध्यय से है। व्युत्पत्ति का एक रूप भ्रामक व्युत्पत्ति या लौकिक व्युत्पत्ति कहलाता है। कभी-कभी भ्रमवश लोग एक शब्द का संबंध किसी दूसरे शब्द से मान बैठते हैं, जबकि वास्तविक रूप में उनका संबंध होता नहीं। उदाहरण के लिए कुछ संस्कृतज्ञ अफ़गानिस्तान का संबंध 'आवागमन-स्थान' से जोड़ते हैं। यह भ्रामक व्युत्पत्ति है। वस्तुतः अफ़गानिस्तान 'अफ़गान+ह+स्तान' से है। इसी तरह एक अंग्रेज़ कोशकार ने 'बनर्जी' को 'बानरजी' से जोड़ा है, किंतु वस्तुतः यह 'वंद्योपाध्याय' से संबद्ध है।

ब्रजलाल शास्त्री *(पं० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

इसका जन्म बड़ापिंड लोपटया, ज़िला गुरुदासपुर में 14 नवंबर, 1894 ई० को हुआ। 1919 ई० में संस्कृत में एम० ए० परीक्षा में सफलता प्राप्त की। कई वर्ष तक पंजाब बुक सोसाइटी लाहौर में पुस्तक-संपादक के पद पर कार्य करते रहे। तदनंतर पंजाब सरकार के शिक्षाविभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। पश्चिमी पाकिस्तान के झंग नगर के गवर्नमेंट कालेज में प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे। विभाजन के उपरांत पंजाब के सरकारी शिक्षा विभाग से 1952 ई० में सेवा-निवृत्त हुए। आरंभ में गद्य रचनाएँ लिखीं। 'सावित्री-सुकन्या', 'प्रतिज्ञा' और 'वासवदत्ता' नाटकों की रचना की। 1933 ई० में कविताएँ लिखना आरंभ किया। 1937-38 ई० में 'कुणाल' और 'संध्या संगीत' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। 1952 ई० में राम-कथा गद्य में छपी। परंतु आपकी कोरड़ा छंद में लिखी 'रामकथा' (दे०) पंजाबी साहित्य में अधिक प्रसिद्ध हुई है। साहित्यिक कार्यों के फलस्वरूप पंजाबी भाषा-विभाग ने आपको 'पंजाबी-रत्न' उपाधि से विभूषित किया है।

शंकरदास स्वामिगळ *(त० ले०)* [जन्म—1867 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

जन्म तमिलनाडु के तूतिकोरन नामक स्थान में हुआ। शिक्षित परिवार में उत्पन्न होने के कारण उच्च शिक्षा का अच्छा अवसर मिला। इन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर तमिल नाटक-साहित्य की प्राणपण से सेवा की। 25 वर्ष की आयु में ये नाटक की ओर आकृष्ट हुए। पहले ये मात्र अभिनेता रहे, बाद में नाटक-लेखन और निर्देशन का कार्य भी करने लगे।

इन्होंने संस्कृत के 'मृच्छकटिक' (दे०) और शेक्सपियर के 'रोमियो एंड जूलियट' और 'सिंबलिन' का तमिल में अनुवाद करने के साथ-साथ लगभग 40 मौलिक नाटकों की रचना की जिनमें प्रसिद्ध हैं—'पवळक्कोड़ि', 'प्रह्लादन', 'सत्यवान-सावित्री', 'अभिमन्यु सुंदरी', 'सती सुलोचना', 'सती अनुसूया', 'सीमंदनी' आदि। इनमें अंतिम चार प्रकाशित हैं।

तमिलनाडु में रहते हुए इन्होंने 'समरस सन्मार्ग नाटक-सभा' की स्थापना की। 1900 ई० में ये लंका गये। वहाँ की 'वण्णै इंदु विनोद सभा' के लेखक और सलाहकार के रूप में इन्होंने दो नाटक लिखे। इनके नाटक लोकप्रिय, ऐतिहासिक, पौराणिक कथाओं पर आधृत हैं। शंकरदास स्वामिगळ पहले तमिल नाटककार हैं जिन्होंने गद्य में कथोपकथनों की रचना की। नाटकों में अनेक गीत हैं जो विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। ये गीत भाषानुकूल एवं प्रसंगानुकूल हैं। नाटकों में समसामयिक रीति-रिवाजों का वर्णन है। इनकी शैली अत्यंत समृद्ध और प्रभावशाली है। इन्होंने संस्कृत शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। जीवन-मूल्यों की दृष्टि से ये परंपरावादी हैं। इन पर संस्कृत, अँग्रेज़ी और कुछ सीमा तक पारसी रंगमंच का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इन्होंने तमिल नाटक एवं रंगमंच तथा कविता के क्षेत्र में मौलिकता का समावेश किया। नाटक एवं रंगमंच के क्षेत्र में इनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने ही प्रथम बार नाटक में कथा की सुसंगत योजना की।

शंकरदिग्विजय *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1400 ई०]

'शंकरदिग्विजय' के लेखक माधवाचार्य प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायण के ज्येष्ठ भ्राता थे। माधवाचार्य के संन्यास-आश्रम का नाम धेय विद्यारण्य है।

'शंकरदिग्विजय' में शंकराचार्य (दे०) का जीवन-चरित वर्णित है। 'शंकरदिग्विजय' 16 सर्गों में विभक्त है। इस ग्रंथ में शंकराचार्य के शास्त्रार्थों एवं दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है। 'शंकरदिग्विजय' की शैली सरल हृदयग्राहिणी है। इस ग्रंथ का कवित्व अत्यंत सरस एवं प्रौढ़ है। 'शंकरदिग्विजय' के अनुसार शंकराचार्य का शास्त्रार्थ श्रीहर्ष (दे०), अभिनवगुप्त (दे०), बाण (दे०), मयूर (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के साथ दिखाया गया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता। कुल मिलाकर, 'शंकर-दिग्विजय' शंकराचार्य की विभिन्न यात्राओं एवं दार्शनिक सिद्धांतों के संबंध में एक सरल दिग्विजय प्रस्तुत करता है।

शंकरदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1449 ई०; मृत्यु—1568 ई०]

जन्म-स्थान—नौगाँव का आलिपुखुरी नामक स्थान।

शैशव में ही इनके माता-पिता का देहांत हो गया था, नानी ने इन्हें पाला-पोसा था। इन्होंने 13 वर्ष की आयु में अध्ययन आरंभ किया था और अत्यल्प काल में ही व्याकरण, पुराण, रामायण आदि का अध्ययन कर डाला था। एक-एक कर इनके दो विवाह हुए थे, परंतु दोनों ही पत्नियों की मृत्यु हो गई थी। इन्हें पिता बनने का सौभाग्य मिला था। इन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। इनके समय में विकृत बौद्ध धर्म और शाक्तों की उपासना का प्रचार था। इन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार कर चांडाल से लेकर ब्राह्मणों तक का संगठन किया था। कई मुसलमान और पर्वतीय जन इनके शिष्य बन गए थे। अहिंसा, अस्पृश्यता, मादक द्रव्य-वर्जन और प्राणिमात्र पर दया आदि इनके धर्म की मूल नीति थी। इनकी उपासना में राधा-तत्त्व की उपेक्षा है। शंकरदेव असमीया-साहित्य-जगत के सूर्य हैं। असम के धर्म, ललित कला और साहित्य के क्षेत्र में इनका दान अतुलनीय है। ये कवि, समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक, नाट्यकार, अभिनेता, संगीतज्ञ और भक्त एक-साथ थे। ये जाति के कायस्थ थे।

रचनाएँ : काव्य : 'रुक्मिणीहरण', 'उद्धवसंवाद', 'पाषंडमर्दन', 'कुरुक्षेत्र', 'बलिछलन', 'अजामिल उपाख्यान', 'भक्ति-प्रदीप', 'अनादिपातन', 'निमिनवसिष्ठ संवाद', 'गुण-माला', 'कीर्तन' (दे०), 'उत्तरकांड रामायण', 'बरगीत', 'भटिमा'। **नाटक :** 'चिह्नयात्रा', 'पत्नीप्रसाद' (दे०), 'कालियदमन', 'केलिगोपाल', 'रुक्मिणीहरणनाट' (दे०), 'पारिजात-हरण', 'रामविजयनाट (दे०)। इनका सबसे उत्तम ग्रंथ 'कीर्तन' है। असम के जन-जीवन में इसका प्रचार गोस्वामी (दे० तुलसीदास) जी के 'मानस' (दे० रामचरितमानस) के समान है। यह ग्रंथ कृष्ण-विषयक 27 काव्यों का एक महाकाव्य है। बरगीतों (दे०) में इनके स्फुट गीतों का संकलन है। इसकी भाषा ब्रजबुलि नामक कृत्रिम भाषा है। शंकरदेव भारतीय आधुनिक भाषाओं के प्रथम नाट्यकार हैं। इन्होंने संस्कृत-नाट्य-परंपरा और स्थानीय लोक-शैली ओजापाली (दे०) का मिश्रण कर अंकीयानाटों (दे०) की रचना की थी। नाटकों की भाषा भी ब्रजबुलि थी। इन्होंने भागवत (दे०) के कुछ स्कंधों का अनुवाद किया था। श्री शंकरदेव असमीया और समाज के महान् व्यक्ति थे।

शंकर, नाथूराम शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु—1935 ई०]

इनका जन्म हरदुआगंज (ज़िला अलीगढ़) में हुआ। इन्होंने हिंदी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत का अध्ययन किया। जीविका के लिए इन्होंने पहले नक्शानवीसी की और फिर आयुर्वेद का काम सीखा। ये पहले उर्दू में लिखते थे, आर्यसमाज के प्रभाव और पं० प्रतापनारायण मिश्र (दे०) के संपर्क से हिंदी में आये। 'शंकर-सर्वस्व' (मुक्तक) और 'गर्भगंडारहस्य' (प्रबंध) इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं।

परंपरागत काव्य-शैली पर इन्हें अनुपम अधिकार प्राप्त था। खड़ीबोली में ब्रजभाषा के कवित्त-सवैया की लय बहुत समय तक इन्हीं की प्रेरणा में गूँजती रही। समस्या-पूर्ति करने और फ़बतियाँ कसने में ये सिद्धहस्त थे। सुधारवादी दृष्टि से सामाजिक विषयों पर लिखी गई रचनाओं में इनकी शब्दावली परुष और ओजपूर्ण है परंतु अन्यत्र 'उक्तियाँ बड़ी मनोहर भाषा में हैं।' संक्रांति-युग का यह कवि पुराने शंख में समय की साँस फूँकने के लिए सदैव आदरपूर्वक स्मरण किया जायेगा।

शंकर मामंजी *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यास 'पक्ष लक्षांत कोण घेतो' (दे०) (ध्यान कौन देता है) का यह खल पात्र तिलक-छापा लगाने वाले ढोंगी, स्वार्थी, दंभी, कठोरहृदय, स्वाभिमानशून्य प्राचीन पीढ़ी के पुरुषों का प्रतिनिधि है जो ऊपर से धर्म के ठेकेदार बने रहते थे, पर छिपकर मादक द्रव्यों का सेवन ही नहीं, वेश्या-गमन तक से संकोच नहीं करते थे। पत्नी को गाली देना, मारना-पीटना और मतलब पड़ने पर उसके पैरों पर लोटना, धन के लिए छल-कपट और विश्वासघात करना, पुत्रवधू को अंध रूढ़ि की बलि चढ़ाने में तनिक भी संकोच न करना आदि चारित्रिक दोषों के कारण मराठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासों का यह अमर खल-पात्र चिरस्मरणीय बन गया है।

शंकराचार्य *(सं० ले०)* [समय—788 से 820 ई०]

शंकराचार्य का जन्म केरल के कालरी ग्राम में हुआ था। इनकी माता का नाम सती तथा पिता का नाम शिवगुरु था। तीन वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता का देहांत हो गया था। 8 वर्ष की अवस्था में ये वेद-वेदांग में पारंगत हो गए थे और 32 वर्ष की अवस्था में ही परलोक सिधार गए।

शंकराचार्य के ग्रंथ चार प्रकार के हैं—(1) भाष्य-ग्रंथ, (2) स्तोत्र-ग्रंथ, (3) प्रकरण-ग्रंथ और (4) तंत्र-ग्रंथ। भाष्य-ग्रंथों में 'ब्रह्मसूत्र-भाष्य', 'दशोपनिषद्भाष्य', 'विष्णुसहस्रनामभाष्य' आदि हैं। स्तोत्रों की संख्या 240 है। शंकराचार्य-रचित 39 प्रकरण ग्रंथ हैं। तंत्र-ग्रंथों में 'सौंदर्यलहरी' (दे०) तथा 'प्रपंचसार' प्रमुख हैं।

शंकराचार्य के ग्रंथों की भाषा प्रायः सरल एवं प्रांजल है। इनका दार्शनिक सिद्धांत केवलाद्वैतवाद है। शंकराचार्य ने केवलाद्वैतवाद का प्रतिपादन मायावाद के आधार पर किया है। माया मिथ्या होने के कारण अनिर्वचनीय है। माया के सत् तथा असत् से विलक्षण होने के कारण मायिक जगत् भी सर्वथा असत् न होकर, सत् तथा असत् से विलक्षण है। जगत् पारमार्थिक दृष्टि से असत् परंतु व्यावहारिक दृष्टि से सत् है। इसीलिए शंकराचार्य ने पारमार्थिक, व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक—इन तीन सत्ताओं को स्वीकार किया है।

दार्शनिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टि से शंकराचार्य का योगदान बहुमूल्य है। अद्वैतमत का प्रतिपादन, बौद्धमत का निराकरण एवं आचार-संबंधी महत्व की स्थापना ही इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

शंगुदेवन् *(त० पा०)*

शंगुदेवन् पुदुमैप्पित्तन् (दे०)-कृत 'शंगुदेवनिन् धर्मम्' नामक कहानी का नायक है। शंगुदेवन् राह चलते व्यक्तियों को लूटकर जीविका चलाता है। एक दिन इसकी भेंट एक अनजान बुढ़िया से होती है। बुढ़िया की इकलौती बेटी के विवाह की इच्छा और उसके आर्थिक संकट के विषय में जानकर शंगुदेवन् झटपट अपनी रुपयों की पोटली उसे पकड़ा देता है। 'शंगुदेवनिन् धर्मम्' एक चरित्र-प्रधान कहानी है। इस कहानी में लेखक ने शंगुदेवन् नामक पात्र के माध्यम से यह बताना चाहा है कि क्रूर से क्रूर कर्म करने वाले व्यक्ति के हृदय में भी कोमल भावनाओं का निवास होता है। मनुष्य में बाह्य रूपाकार, स्वभाव-विरोधी गुण हो सकते हैं। नीच से नीच व्यक्ति भी सद्गुणों से पूर्णतः रहित नहीं होता है।

शकार *(सं० पा०)*

अवंती के राजा का साला शकार भी भास (दे०) की प्रतिभा की उपज है। उनके 'चारुदत्त' नाटक में तथा शूद्रक-कृत 'मृच्छकटिक' (दे०) में शकार वसंतसेना (दे०) नामक गणिका का पीछा करते हुए प्रवेश करता है। चारुदत्त (दे०) के वयस्क मैत्रेय (दे०) के द्वारा डाँटने-डपटने पर धमकाकर जाता है कि इसका बदला लूँगा। दुर्भाग्यवश प्रवहण-परिवर्तन से वसंतसेना उसके हाथ लग जाती है और वह अपनी वासना की तृप्ति का अवसर न पाकर उसका गला ही घोंट देता है तथा उसकी हत्या का भी अभियोग चारुदत्त पर लगाता है। न्यायालय में भी कोई व्यक्ति उसे पसंद नहीं करता फिर भी धमकी देकर वह सबको विश्वास के अनुरूप करा लेता है। वह चारुदत्त का अंत देखने के लिए कटिबद्ध है पर इसी बीच राज्य-विद्रोह हो जाता है। उसके बहनोई से राजगद्दी छिन जाती है और वह पकड़ लिया जाता है।

यह 'श' का उच्चारण बहुत अधिक करता है। इसलिए उसे शकार कहा गया है। भारतीय इतिहास से अनभिज्ञ वह दुःशासन के द्वारा सीता के हरण की बात करता है एवं वासुदेव को कुंती-सुत कहता है। विलासी राजा को अपनी बहिन देकर उसके राज्य में मनमानी करने वालों में शकार का स्थान सर्वोपरि है।

शकुंतला *(पं० कृ०)*

विश्वविख्यात कवि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का प्रथम पंजाबी अनुवाद 1900 ई० में भाई वीरसिंह (दे०) के पिता डा० चरणसिंह ने 'शकुंतला' नाम से किया।

नाटक के प्रति सिख-धर्म में विशेष आदरणीय स्थान न होने के कारण अपने आपमें यह उनका विशेष साहसिक कार्य था और पंजाबी भाषाविदों को विश्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विख्यात रचना से परिचित कराने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण कार्य था। लेखक ने स्वाभाविक सरल भाषा को अपनाकर उसमें मौलिक रचना के भाव एवं प्रवृत्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने का श्लाघनीय यत्न किया है। भाव-परिवर्तन के लिए विभिन्न छंदों का उपयोग किया गया है। मूल नाटक के समान ही रसपरिपाक के प्रति पंजाबी कवि भी यत्नवान् रहा है।

शकुंतला *(सं० पा०)*

शकुंतला कालिदास (दे०) की सर्वोत्कृष्ट नाट्य-कृति 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) की नायिका है।

शकुंतला मूलतः व्यास (दे० व्यास, बादरायण) की लेखनी की सृष्टि है। पर 'महाभारत' (दे०) की शकुंतला जहाँ एक मानवीय दुर्बलता का शिकार होकर जिस किसी प्रकार उसे व्यवस्थित कर पाती है वहाँ कालिदास की शकुंतला हृदय की कोमलता एवं चरित्र की ऊर्जस्विता का साक्षात् निदर्शन है।

प्रखर तपस्वी विश्वामित्र की यत्किंचित् अवशिष्ट वासना की आविर्भूति शकुंतला में सामाजिक विधानों के प्रति सहज आस्था है किंतु फिर भी वह दुष्यंत (दे०) के प्रणय का शिकार हो जाती है। इसका रहस्य कवि-कुल गुरु ने नियति का नियम ही माना है, न कि राजरानी बनकर अमित सुख भोगने की इच्छा। सौभाग्य एवं दुर्भाग्य दोनों ही उसके जीवन में अनाहूत और लगभग एकसाथ ही आते हैं। सौभाग्य का प्रतीक अँगूठी है तो दुर्भाग्य का दुर्वासा का शाप। दुर्भाग्य की प्रबलता सौभाग्य का विलोप कर लेती है और शकुंतला कहीं की नहीं रहती। पर अप्सरा-पुत्री होते हुए भी वह मानुषी की तरह अपने व्रत पर दृढ़ रहती है और विरहिणी नायिका का जीवन व्यतीत करती है। उसके चरित्र की इसी निष्ठा में असंभव को संभव कर देने की शक्ति है। अँगूठी मिल जाती है और शकुंतला का सौभाग्य प्रबल हो उठता है। उसका प्रेमी अनायास ही उसके पास पहुँच जाता है और वह मानविगलित होकर आत्मविभोर हो उठती है।

शकुंतला में मानवीय मूल्य बहुत उच्चकोटि के हैं। वह अपनी परवशता को भूल मानकर पछताती नहीं। वह जानती है कि ऐसी बातें अनायास नहीं होती। हमें अपने प्रारब्ध को भी तो भोगना होता। प्रणय और परिणय तो उसके निमित्त मात्र हैं। सुख और दुःख में जो एकरूप बना रहता है संसार उसी के गुण गाकर अपनी जीवन-नौका चलाता रहता है।

√ **शडंगु** *(त० कृ०)* [रचना-काल—1966 ई०]

शडंगु से० गणेशलिंगन (दे०)-कृत एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने लंका के ग्रामों में रहने वाले मध्यवर्गीय व्यक्तियों के जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ उनकी विभिन्न समस्याओं का अंकन किया है। लेखक के मत में मध्यवर्गीय व्यक्ति सांप्रदायिक और जातिगत बंधनों में बँधे हुए हैं। शिक्षा के प्रचार के कारण आज इस वर्ग के लोगों की स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य आ गया है परंतु वे अपने बंधनों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाये हैं—उदाहरणतया वे विवाह को नर-नारी के मध्य का पावन संबंध-सूत्र न मानकर एक सामाजिक परंपरा मात्र मानते हैं। उपन्यास की नायिका पद्मा बहुत चाहते हुए भी अपने प्रेमी राजरत्नम् से विवाह नहीं कर पाती है और उसके भाई परमनादन् को अपनी बहिन पद्मा की भलाई के लिए उसके पति की बहिन ईश्वरी से विवाह करना पड़ता है। लेखक पर मार्क्सवादी विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वह आर्थिक वैषम्य को समाज की सभी समस्याओं का कारण मानता है। तमिल के सामाजिक उपन्यासों में 'शडंगु' का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

शतकमु *(ते० पारि०)*

'शतकमु' तेलुगु की अत्यंत प्रचलित साहित्यिक विधाओं में से एक है। प्रायः सभी श्रेणियों के तेलुगु-कवियों ने शतक-रचना में अपनी रुचि प्रकट की है। 'सतसई' की तरह 'शतक' भी मुक्तकों का संग्रह है। इसमें प्रायः एक सौ आठ छंद रहते हैं। रुद्राक्षमाला की तरह इसमें छंदों की संख्या विष्णुस्तुति की नामावली से संबद्ध मानी जा सकती है। शतक-रचना अधिकांशतः आत्मनिष्ठ या आत्माश्रयी (सब्जैक्टिव) होती है। अनेक तेलुगु-शतक भक्ति अथवा नीत्युपदेश से संबद्ध हैं। बहुत से तेलुगु-शतक दर्शन, लोकरीति तथा शृंगार आदि से भी संबद्ध हैं। 'सुमतीशतकमु', 'भास्कर-शतकमु', 'वेमनशतकमु', 'दाशरथी शतकमु' और 'कृष्ण-शतकमु' आदि शतक विशेष प्रसिद्ध हैं। संस्कृत की अपेक्षा तेलुगु में शतक-रचना अधिक हुई है और आज करीब 500 से अधिक तेलुगु शतक उपलब्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतक साहित्य *(क० प्र०)*

कन्नड और तेलुगु में संस्कृत जैसे शतक ग्रंथों की रचना हुई है और एक स्वतंत्र साहित्य-विधा के रूप में इसका विकास हुआ है। शतकों की यह विशेषता है कि उनमें प्रायः एक सौ पद्य होते हैं और कभी-कभी एक सौ आठ भी होते हैं। उनमें कवि के इष्टदेव की छाप होती है। नीति, भक्ति, वैराग्य, दर्शन आदि बातों का प्रतिपादन उनमें भली भाँति हो सकता है। मुक्तक रचना होने के कारण उनमें अच्छी अभिव्यंजना हो सकती है। पाठक प्रत्येक छंद को आसानी से याद रख सकता है।

कन्नड के शतकों में सर्वप्रथम नागवर्माचार्य (दे० नागवर्मा द्वितीय) का 'चंद्रचूडामणिशतक' उल्लेखनीय है। उसमें वैराग्य का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। नागवर्माचार्य चालुक्य भुवनैकमल्ल (1069-76) के समकालीन थे। महाकवि हरिहर (दे०) (1200 ई० के आसपास) के दो शतक प्राप्त हुए हैं—पंपाशतक और रक्षाशतक। हरिहर हंपे के विरूपाक्ष के बड़े भक्त थे। उनके शतकों में उनकी भक्ति का आवेग और एकांत निष्ठा प्रकट हुई है। इन शतकों ने कन्नड वीरशैव साहित्य को नयी दिशा प्रदान की है। पाल्कुरिके सोमनाथ (दे०) (1200 ई० के लगभग) के नाम से प्रचलित 'सोमेश्वर शतक' (दे०) संभवतः उनकी रचना नहीं है। पुलिगेरे सोमनाथ इसके कवि होंगे। इसमें 'हरहरा श्री चेन्न सोमेश्वरा' की छाप मिलती है। बारहवीं शती के ही कवि, 'शृंगाररत्नाकर' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के प्रणेता कविकाम ने 'स्तनशतक' की रचना की है। मग्गिय-मायिदेव (1430 ई०) के 'शतकत्रय' और चंद्रकवि के गुरुमूर्ति शंकर शतक' वृत्तों में रचित हैं। रत्नाकरवर्णि (दे०) (1560 ई०) के 'त्रिलोकशतक' और 'अपराजितेश्वरशतक' तथा तिरुमलार्य (1700 ई०) का 'चिक्कदेवराजशतक' कन्नड-शतक-साहित्य के उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

शतपत्रें *(म० क्र०)*

यह लोकहितवादी (दे०) के पत्र-शैली में रचित निबंधों का संग्रह है। 1848 ई० से 1850 ई० तक की दो वर्षों की अवधि में ये पत्र 'प्रभाकर' पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। युवावस्था में लिखित होने के कारण ये अत्यंत आवेशपूर्ण, कटु तथा उग्र हैं।

लोकहितवादी ने लोकहिताय अपना जीवन अर्पित किया था। अतः समाज में व्याप्त बाह्याडंबर तथा भ्रष्टाचार को देख इनका जी तिलमिला उठता था। सभी सभी वर्णों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाने वाले ब्राह्मण वर्ग के नीच, निर्दयी कृत्य इनका खून खौलाते थे। ढोंगी नेताओं के नेतृत्व में पिसती दीन-हीन जनता के प्रति हार्दिक सहानुभूति थी। यही आक्रोश तथा सहानुभूति 'शतपत्रें' में व्यक्त हुई है। ये स्त्री को समानाधिकार देने के पक्षपाती, स्त्री-शिक्षा के समर्थक तथा विधवा-विवाह के पुरस्कर्ता सुधारक रहे हैं।

'शतपत्रें' में विषय-विवेचन अत्यंत आत्मीयता से हुआ है। इसे पढ़कर हृदय भर आता है। इसमें विशिष्ट आचार-विचारों की इष्टता या अनिष्टता का निर्धारण बुद्धि के आधार पर किया गया है। इनके राजनीतिक तथा आर्थिक विचार अत्यंत प्रगतिशील हैं। गदर होने से आठ वर्ष पूर्व लिखे इन निबंधों में स्वदेशी, स्वराज्य तथा विदेशी-बहिष्कार का उल्लेख हुआ है।

लोकहितवादी ने लोकशिक्षक की भूमिका में यद्यपि ये निबंध लिखे हैं तथापि सहानुभूतिपूर्ण होने के बदले इनमें उग्रता अधिक है। यही इन पर आक्षेप किया जाता है। 'शतपत्रें' में साहित्यिक गुणों का अभाव खटकता है। इसमें समाज का आदर करने की व्याकुलता तो है, परंतु प्रतिभा को रम्य विलास का अवकाश नहीं। फिर भी, पाठक के हृदय को दहलाकर उसे कर्तव्योन्मुख बनाने की दृष्टि से ये निबंध सशक्त हैं।

शतपथी, नंदिनी *(उ० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

श्रीमती नंदिनी शतपथी उड़ीसा की मुख्यमंत्री रही हैं तथा सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री कालिंदी चरण पाणिग्राही (दे०) की सुयोग्य पुत्री हैं। क्रांतिकारी चाचा भगवतीचरण पाणिग्राही का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इन्होंने पिता से साहित्यिक अभिरुचि पाई तो चाचा से सजग राजनीतिक चेतना। अतः मूल रूप से इनके साहित्यिक व्यक्तित्व में बौद्धिकता, प्रगतिशील दृष्टिकोण, समुन्नत साहित्यिक अवबोध एवं नारी-सुलभ मानवीय संवेदना का सम्मिश्रण मिलता है। इनकी भाषा और शैली परिष्कृत एवं सुरुचिसंपन्न हैं। आधुनिक जीवन की बहुविध समस्याएँ इनकी रचनाओं में उभरी हैं; किंतु प्रधानता आधुनिक नारी की समस्याओं को ही मिली है। 'केतोटि कथा' (दे०) इनका प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतपथी, नित्यानंद *(उ० ले०)* [जन्म—1937 ई०]

श्री नित्यानंद शतपथी ने अपना साहित्यिक जीवन कवि के रूप में प्रारंभ किया था। किंतु बाद में इन्होंने अपनी दिशा बदल ली और गद्य-लेखन की ओर अधिकाधिक झुकते चले गये। इनकी गद्य-शैली सरल, तशक्त एवं प्रभावात्मक है। उत्कलमणि गोपबंधु (दे०) पर रचित इनकी रचना 'हे साथी, हे सारथी' (दे०) एक महत्वपूर्ण कृति है। 'युगे-युगे ओड़िआ साहित्य' में इनके विवेचनात्मक निबंधों का संकलन है। संप्रति उड़िया-साहित्य के अध्यापक हैं। इनका जन्म गराइ शासन, कटक में हुआ था।

शतवर्ष *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1879 ई०]

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) के अनुरोध पर रमेशचंद्र दत्त (दे०) ने इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना प्रारंभ की। रमेशचंद्र का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'बंगबिजेता' (1874) अकबरी युग की पटभूमिका में रचित उपन्यास है। कहानी की अतिरिक्त जटिलता के कारण उपन्यास की गति धीमी हो गई है। दूसरा उपन्यास 'जीवन-प्रभात' (1876) है। यह औरंगज़ेब के समय की ऐतिहासिक कहानी है। स्वदेश प्रीति की महिमा की अभिव्यक्ति के फलस्वरूप ग्रंथ को एक स्वतंत्र मर्यादा प्राप्त हुई है। रमेशचंद्र ने इसके उपरांत शाहजहाँ के युग को केंद्र बनाकर 'माधवी-कंकण' (दे०) (1877) की रचना की। यह कवि टेनीसन के 'एनकार्डेन' के भावानुसार रचित एक प्रणयमूलक उपन्यास है। चौथा उपन्यास 'जीवन-संध्या' (1879) है। जहाँगीर के युग की आधारभूमि इसमें ग्रहण की गई है। उपर्युक्त चारों उपन्यासों का संकलन ही 'शतवर्ष' है जो 1879 ई० में प्रकाशित हुआ। इसी संकलन में रमेशचंद्र के ऐतिहासिक उपन्यासों का संपूर्ण संभार विद्यमान है। इसी ग्रंथ में उनकी औपन्यासिक प्रतिभा के एक अंश-विशेष का प्रस्फुटन हुआ है।

शतिकंठ *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1200-1210 ई०; मृत्युकाल—अज्ञात]

इनके जीवन के संबंध में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं। शैव दर्शन के संबंध में 'महानय प्रकाश' नाम की एकमात्र रचना उपलब्ध है जिससे इनके पांडित्य पर प्रकाश पड़ता है। भारत-आर्य कुल में भारत-ईरानी उपकुल की दर्द भाषा-परिवार की पैशाचिक भाषाओं में प्रमुख कश्मीरी भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं फ़ारसी का अद्भुत सम्मिश्रण होते हुए भी एक मौलिकता है, और इसी भाषा के आदि-कवि हैं शतिकंठ। महायान-बौद्ध धर्म और उपनिषद्-दर्शन के अद्भुत संगम की झलक शतिकंठ की रचना में देखने को मिलती है और छंदोबद्ध करने की शैली भी मौलिक है। इनके काव्य का ऐतिहासिक महत्व है।

शब्द *(पं० पारि०)*

'शब्द', शब्द का रूपांतर है। सिख धर्म में इसका व्यवहार दैवी शब्द, ईश्वर से प्राप्त शब्द के अर्थ में होता है। गुरवाणी में यह शब्द आध्यात्मिक शब्दावली के रूप में संतवाणी अथवा नाथवाणी की परंपरा से ग्रहण किया गया है। नाथवाणी में इसका प्रयोग 'अनहत' या 'अनहद' के साथ जोड़कर किया गया है जिसे 'नीरव नाद' भी कहा जाता है। कबीर (दे०) के अनुसार 'शब्द' से अभिप्राय गुरु-मुख से निकले शब्द हैं। परंतु गुरु नानक (दे०) ने इसके मूल रूप को पहचानने पर बल दिया है। इसके माध्यम से दैवी संदेश का प्रकाश होता है। शब्द को धारण कर इसके संयम में अपने आपको डालकर मनुष्य ईश्वर के समीप्य को प्राप्त होता है। शब्द के अभाव में मनुष्य अनंत काल तक भटकता रहता है।

शबबाहक माने *(उ० कृ०)*

'शबबाहक माने' विजयकुमार मिश्र (दे०) का नाटक है। इसे उद्भट नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) की संज्ञा दी गई है। इसमें विश्व की प्रहेलिका, कर्कशता और निस्संग-बोध रूपायित हैं। यह नाटक आज के शत्रुमनोभावापन्न विश्व के वास्तव-नैराश्य, भय, एकाकीपन और स्वार्थ का जीवंत चित्र है। अपने-अपने स्वार्थ, दर्शन और द्वेष के भीतर मनुष्य अकेला है। मनुष्य की अशांत दौड़, अशांत लोभ तथा अनिर्वाचित स्वार्थ और अनिश्चित जीवनादर्श ने इस नाटक की कथावस्तु की संरचना की है। शव और किसी का नहीं हम सबों का है। छल, कपट, अविश्वास से रुद्धश्वास हो हम आज की यांत्रिक सभ्यता की इस भागदौड़ में पहुँच गए हैं—एक ऐसी कब्र के पास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ हमने अपने आपको, अपने ही हाथों से दफ़ना दिया है। जैसे अतीत दफ़ना दिया गया है वैसे ही भविष्य को हम दफ़ना देंगे।

यह सूचना-धर्मी नाटक परंपरागत नाट्य-रीति से सर्वथा भिन्न है। 1968 ई० में संगीत नाटक अकादेमी द्वारा यह राज्य के सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में पुरस्कृत हुआ था।

शबरशंकरविलास (*क० कृ०*)

सत्रहवीं शती के प्रसिद्ध वीरशैव कवि षडक्षर-देव (दे०) (रचना-काल 1655-77 ई०) की रचना 'शबरशंकरविलास' पाँच आश्वासों का एक चंपू काव्य है। उसे एक सफल खंडकाव्य कह सकते हैं। उसमें महाभारत (दे०) में वर्णित अर्जुन (दे०) के पाशुपतास्त्रलाभ अथवा 'किरातार्जुनीय' (दे०) की कथा का वर्णन है। कन्नड में इस कथा का षडक्षरदेव के पूर्व पंप (दे०), कुमारव्यास (दे०) और विरूपाक्ष पंडित ने अपने-अपने काव्यों में प्रसंगतः वर्णन किया था। शायद षडक्षरदेव ने उन ग्रंथों को देखा हो; परंतु उन्होंने शैव संप्रदाय के आकर से विशेष प्रभाव ग्रहण किया है। तदनुसार उनके काव्य में अर्जुन की अपेक्षा शंकर जी का ही प्राधान्य है जो काव्य के शीर्षक 'शबरशंकरविलास' से ही स्पष्ट है। इस दृष्टिकोण के कारण उनका कल्प मुख्यतः शिव-लीलाओं को चित्रित करने वाला काव्य बन गया है। 'कुमारव्यास-भारत' (दे०) में वर्णित उक्त प्रसंग से षडक्षरदेव के काव्य की तुलना कर सकते हैं। बाह्यदृष्टि से दोनों में समानताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, परंतु यह स्पष्ट है कि दोनों की भाषा-शैली और उद्देश्य में अंतर है। दोनों के काव्यमार्ग भी भिन्न हैं। दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार संस्कृत का सौंदर्य कन्नड में करने का प्रयत्न किया है।

'शबरशंकरविलास' वर्णन-प्रधान काव्य है। उसमें कवि का कल्पना-विलास तथा वर्णन-नैपुण्य देखने योग्य है। उसमें शब्द-श्लेष और संस्कृतनिष्ठ पद-प्रयोग का बाहुल्य है। पात्रों के चरित्र-चित्रण की अपेक्षा उसमें संवाद-कौशल और वीर रस की अभिव्यंजना का विशेष महत्व है। उसमें ऐसे अनेक वर्णन मिलेंगे जो एक कुशल चित्रकार की तूली से रमणीय चित्र के रूप प्राप्त कर सकते हैं। उसकी भाषा-शैली उसको एक उत्तम काव्य घोषित करती है।

शब्द (*हिं० पारि०*)

अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई 'शब्द' है। इस परिभाषा में निम्नांकित बातें ध्यान में देने की हैं: (क) शब्द भाषा की एक इकाई है। (ख) यह इकाई अर्थ के स्तर पर होती है। हर शब्द का अर्थ होता है। (ग) यह इकाई स्वतंत्र होती है अर्थात् शब्द स्वतंत्र होता है। वाक्य में अन्य शब्दों से संबद्ध होने पर भी उसकी स्वतंत्र सत्ता होती है तथा वाक्य में प्रयुक्त न होने पर भी एक भाषिक इकाई के रूप में वह स्वतंत्र रहता है। उपसर्ग या प्रत्यय भी भाषिक इकाइयाँ हैं, उनका भी अर्थ होता है किंतु वे स्वतंत्र नहीं होते। किसी शब्द के आदि या अंत में जुड़कर ही वे भाषा में आ सकते हैं। (घ) शब्द, अर्थ के स्तर पर, भाषा की लघुतम इकाई हैं। अर्थ के स्तर पर उससे छोटी इकाई कोई नहीं है। उपसर्ग, प्रत्यय उससे छोटे हो सकते हैं, किंतु वे स्वतंत्र नहीं होते। वाक्य, उपवाक्य, पदबंध आदि भी अर्थ के स्तर पर स्वतंत्र इकाई हो सकते हैं, किंतु वे लघुतम नहीं होते। उन्हें और भी छोटी सार्थक इकाइयों में तोड़ा जा सकता है। इस तरह अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई 'शब्द' ही है, और कुछ नहीं। शब्द के कई भेद हो सकते हैं जैसे रचना के आधार पर रूढ़ (दे०), यौगिक (दे०), योगरूढ़ (दे०) प्रयोग के आधार पर सामान्य, अर्धपारिभाषिक पारिभाषिक अथवा आधारभूत तथा इतिहास के आधार पर तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी।

शब्दमणिदर्पण (*क० कृ०*)

कन्नड के व्याकरणकारों में सर्वप्रथम 'कवि-राजमार्ग' (दे०) के लेखक का नाम लिया जाता है। परंतु, 'कविराजमार्ग' में व्याकरण की अपेक्षा अलंकारों का विवरण ही अधिक है। 'शब्दस्मृति' और 'कर्णाटक भाषा-भूषण' (दे०) के लेखक नागवर्मा (दे०) दूसरे व्या-करण ग्रंथकार हैं जिन्होंने प्राचीन कन्नड का व्याकरण संस्कृत-सूत्रों में निबद्ध किया है। नागवर्मा के बाद केशि-राज (दे०) का नाम लिया जाता है जिनका व्याकरण-ग्रंथ 'शब्दमणिदर्पण' एक अनूठा ग्रंथ है। उसमें कन्नड-व्याकरणशास्त्र का सविस्तर वर्णन है। केशिराज के संबंध में इतिहासकारों ने लिखा है कि वे जैन थे, 'सूक्तिसुधार्णव' (दे०) (भिन्न-भिन्न कवियों की कविताओं का संग्रह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संपादक मल्लिकार्जुन उनके पिता थे। उनका समय 1260 ई० के आसपास माना जाता है।

केशिराज ने अपने पूर्व के कन्नड-व्याकरण-ग्रंथों का अवलोकन किया था। अतएव उनका 'शब्दमणिदर्पण' एक 'समग्र ग्रंथ' बन पड़ा है। कन्नड के व्याकरण-ग्रंथों में निश्चय ही उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रंथ की 'पीठिका' में दस 'कंद' पद्य हैं जिनमें लेखक ने अपना नाम, वंश-परिचय तथा व्याकरण की उपयोगिता का उल्लेख किया है। आठ अध्यायों में ग्रंथ का विस्तार है। शास्त्र-ग्रंथ होने पर भी 'शब्दमणिदर्पण' नीरस नहीं है, उसमें केशिराज की सरस कविता शैली के उदाहरण मिल जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उसमें विषय का अच्छा प्रतिपादन हुआ है और व्याकरण को हृदयग्राही बनाने का प्रयास किया है। उसके लेखक ने सूत्रों का प्रस्तुतीकरण 'कंद' छंद में किया गया है और उनकी वृत्ति गद्य में लिखी है। यह संस्कृत के शास्त्र-ग्रंथों की पद्धति का ही अनुकरण है।

शब्द, योगरूढ़ *(हिं० पारि०)*

ऐसे शब्द जो रचना की दृष्टि से यौगिक होते हैं, किंतु अर्थ की दृष्टि से रूढ़ होते हैं। जैसे जलज। रचना की दृष्टि से यह जल+ज है, किंतु इसका रूढ़ अर्थ है 'कमल'। जल में जन्मी अन्य चीज़ें या जीव आदि इसके अर्थ नहीं हैं। हाथी, पंकज, पक्षी आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। हाथी किसी भी हाथयुक्त जीव का नाम नहीं है, न पंक में जनमी हर चीज़ पंकज है और न हर पक्षयुक्त पक्षी ही है।

शब्द, यौगिक *(हिं० पारि०)*

ऐसे शब्द जिनमें एक से अधिक सार्थक इकाइयाँ हों, अर्थात् जिनके सार्थक खंड हो सकें। जैसे डाकखाना (डाक+खाना), मानवता (मानव+ता), प्रबल (प्र+बल)। यौगिक तीन प्रकार के होते हैं : **समस्त-पद**—जो एकाधिक शब्दों को समास द्वारा एक में मिलाकर बने हों। जैसे घुड़दौड़, रसोईघर, जेलखाना। **प्रत्यययुक्त**—जिसकी रचना प्रत्यय के योग से हुई हो। जैसे जापानी (जापान+ई), सुंदरता (सुंदर+ता), चालू (चाल्+ऊ)। **उपसर्गयुक्त**—जिसकी रचना उपसर्ग के योग से हुई हो। जैसे प्रयत्न (प्र+यत्न), अनुमति (अनु+मति), सपूत (स+पूत)। कुछ यौगिक शब्द ऐसे भी होते हैं जिनमें कई भाषिक इकाइयों का योग होता है। जैसे अनबोलता (अन्+बोल+त्+आ)।

शब्दरसायन *(हिं० कृ०)*

इस ग्रंथ के कर्त्ता रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य देव (दे०) कवि हैं। इस ग्रंथ में निम्नोक्त काव्यांगों का निरूपण किया गया है—काव्यस्वरूप, पदार्थनिर्णय (शब्द-शक्ति), नौ रस, नायक-नायिका-भेद, रस, रीति (गुण), वृत्ति, अलंकार, दोष तथा पिंगल। इन काव्यांगों का निरूपण संस्कृत के प्रख्यात ग्रंथों 'काव्यप्रकाश' (दे०), 'साहित्यदर्पण' (दे०), 'रसतरंगिणी' (दे०) और 'रसमंजरी' (दे०) के आधार पर हुआ है। कुछ-एक नवीन प्रसंग भी इधर-उधर लक्षित हो जाते हैं, जिनमें से कुछ मान्य हैं और कुछ अमान्य। कुछ धारणाएँ परस्पर विरोधी हैं। उदाहरणार्थ एक स्थान पर छंद को काव्य का तन, रस को जीव तथा अलंकार को भूषण कहा गया है, तो अन्यत्र शब्द को जीव, अर्थ को मन तथा रसमय सौंदर्य को काव्य का शरीर माना है—

(क) अलंकार भूषण सुरस जीव छंद तन भाख।
(ख) सब्द जीव तिहि अरथ मन रसमय सुजस शरीर।
चलत वहै जुग छंद अति गति अलंकार गंभीर।।

इस ग्रंथ का उदाहरण-पक्ष श्रृंगार की ऐसी अनेक मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करता है, जो कवि की अभिनव कल्पना-शक्ति और सजीव अभिव्यक्ति-कला की परिचायक हैं। कहीं-कहीं व्याकरण और काव्य-विषयक दोष भी इस ग्रंथ में हैं, किंतु काव्य-वैभव को देखते हुए वे नगण्य एवं क्षम्य हैं।

शब्द, रूढ़ *(हिं० पारि०)*

ऐसे शब्द, जिनमें एक से अधिक सार्थक भाषिक इकाइयाँ न हों, अर्थात् जिनके सार्थक खंड न हो सकें। जल, मेज़, पहाड़, सड़क, आदि ऐसे ही शब्द हैं। ये शब्द एकाधिक शब्दों, उपसर्ग या प्रत्यय के योग से नहीं बने हैं। जल के 'ज' तथा 'ल' या 'मेज़' के 'मे', 'ज़' आदि खंड करें भी, तो अर्थ के स्तर पर इन खंडों का जल या मेज़ से कोई संबंध नहीं है। इस तरह रूढ़ शब्द भाषा के मूल-भूत या अखंड शब्द होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषाविज्ञान के परंपरागत ग्रंथों में भाषा के अध्ययन को प्रायः चार ही शाखाओं में बाँटा गया है : ध्वनिविज्ञान (दे०) (Phonetics), रूपविज्ञान (दे०) (Morphology), वाक्यविज्ञान (दे०) (Syntax) तथा अर्थविज्ञान (दे०) (Semantics)। किंतु वास्तविकता यह है कि शब्दों के अध्ययन को सुविधापूर्वक इन चारों में किसी में भी नहीं रखा जा सकता। इसी कारण शब्द-विज्ञान को भाषा के अध्ययन की एक नयी शाखा मानना उचित प्रतीत होता है। इसके अंतर्गत शब्द-विषयक सारा अध्ययन आता है, जिसे दो वर्गों में बाँटा जा सकता है : सैद्धांतिक, प्रायोगिक। सैद्धांतिक शब्दविज्ञान में सामान्य रूप से शब्द-रचना (रूप-रचना से अलग) के नियम तथा भाषाओं के शब्द-समूह के अध्ययन के सामान्य सिद्धांत आते हैं। प्रायोगिक में इन सिद्धांतों के आधार पर किसी एक भाषा के शब्दों का, या एकाधिक भाषाओं के शब्दों का, तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। शब्द-रचना में दो बातें आती हैं : मूल शब्द कैसे बनते हैं तथा मूल शब्दों के आधार पर यौगिक शब्दों की रचना किस प्रकार से उपसर्ग (prefix), मध्यसर्ग (infix), अंत्यसर्ग या प्रत्यय (suffix) जोड़कर, कुछ ध्वनि-परिवर्तन करके या एकाधिक शब्द जोड़कर या मिश्रित रूप से की जाती है। ये अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक या तुलनात्मक तीनों प्रकार के हो सकते हैं। शब्द-समूह का अध्ययन भी इन तीनों ही प्रकारों (वर्णन, इतिहास, तुलना) का हो सकता है। वर्णनात्मक में किसी भाषा के शब्द-समूह का वर्णन वर्गीकरण (आधारभूत शब्दावली, माध्यमिक शब्दावली, उच्च शब्दावली, सामान्य शब्दावली, अर्द्धपारिभाषिक शब्दावली, पारिभाषिक शब्दावली), विभिन्न प्रकार के शब्दों की आवृत्ति एवं उनका अनुपात, तत्कालीन शब्द-समूह की आवश्यकताएँ आदि आती हैं तो ऐतिहासिक में किसी भाषा के शब्द-समूह का बिकास (पुराने शब्दों का लोप, नये शब्दों का आगम), तथा उसके कारण आदि पर विचार किया जाता है। इनमें किसी भी बात को लेकर एक याअ धिकभाषाओं की तुलना भी की जासकती है।

शरत्चंद्र (चट्टोपाध्याय) *(बँ० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

शरत् का जीवन आरंभ से ही विस्मय एवं वैचित्र्य से भरा पड़ा है। पहले वे वर्मा में नौकरी करते थे। साहित्यिक जीवन में उदय के साथ ही उनका कलकत्ता-वास शुरू हुआ। शरत् ने लगभग एक दर्जन उपन्यास तथा इतनी ही लंबी कहानियाँ लिखीं परंतु उनकी ख्याति का श्रेय 'चरित्रहीन' (दे०), 'गृहदाह' (दे०), 'श्रीकांत' (दे०), 'शेष-प्रश्न', 'पथ के दावेदार' को है। इन उपन्यासों का आधार है नारी जिसके परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक, सामाजिक एवं नैतिक समस्यासों की असंगति एवं निरर्थकता दिखाई गई है। समाज-सम्मत तथा समाज-निषिद्ध प्रेम की लक्ष्मण रेखाओं से टकराती-सम्हलती उपेक्षिता नारी (जो सामान्य रूप से विधवा है) के चित्रांकन में शरत् ने अद्वितीय कौशल एवं प्रतिभा का परिचय दिया है। सावित्री राजलक्ष्मी में त्याग भी निष्ठा है परंतु अचला, किरणमयी (दे०), कमल जैसे पात्र मुखर एवं प्रखर हैं। शरत् के सभी उपन्यासों में पापी के प्रति करुणा का भाव जगाया गया है। पतिता नारी पात्र मानवीय दृष्टि से उदात्त पात्र हैं। शरत् के नायक आत्मलीन, गंभीर तथा नैतिक दृष्टि से कम साहसी हैं। शरत् के उपन्यास भावनिष्ठ एवं यथार्थवादी हैं परंतु आश्चर्य है कि अंततः परंपरागत मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। रवींद्र (दे०) की कविधर्मी प्रवृत्ति ने कथा-साहित्य की परिधि सीमित कर दी थी, शरत् ने सबसे पहले बँगला कथा-साहित्य को बँगला जीवन से जोड़ा और इस तरह उसे नयी गरिमा प्रदान की।

'शरर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

जन्म-स्थान : लखनऊ; नाम : मौलवी अब्दुल हलीम, उपनाम : 'शरर'। उर्दू में ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का श्रेय सबसे पहले इन्हें प्राप्त है। इन्होंने अशिष्ट, अनगढ़ और भदेस शब्दों से असंपृक्त रखते हुए शिष्ट, सभ्य और गंभीर भाषा-शैली में अपने उपन्यास प्रस्तुत किये। इनका पहला प्रकाशित उपन्यास 'दिलचस्प' था जो उर्दू में अपने ढंग की निराली चीज़ थी। इन्होंने इसके दो वर्ष पश्चात् बंकिमचंद्र चटर्जी (दे० चट्टोपाध्याय) के 'दुर्गेशनंदिनी' (दे०) का उर्दू अनुवाद किया था। 1918 ई० में निज़ाम दकन के आदेशानुसार इन्होंने तारीख़-ए-इस्लाम' (इस्लाम का इतिहास) लिखना प्रारंभ किया जो तीन भागों में पूरा हुआ। इनकी कृतियों की संख्या देखकर इनकी लेखन-क्षमता पर विस्मय होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने अट्ठाईस ऐतिहासिक उपन्यास, चौदह इतर उपन्यास, इक्कीस जीवन-चरित, पंद्रह ऐतिहासिक पुस्तकें, छः नाटक और अन्य अठारह विविध कृतियों का प्रणयन किया। इनकी समस्त कृतियों की संख्या एक सौ आठ है। और विभिन्न विषयों पर अगणित स्वतंत्र लेख इसके अतिरिक्त हैं। इन्होंने अपने जीवन-काल में नौ साप्ताहिक पत्रिकाएँ निकाली थीं। इनकी भाषा लखनऊ की टकसाली भाषा है। पं० ब्रजनारायण चकबस्त (दे० चकबस्त) के साथ इनका मसनवी 'गुलज़ार-ए-नसीम' (दे०) से संबद्ध साहित्यिक शास्त्रार्थ बड़ा रोचक और उल्लेखनीय है।

शरीफ़ज़ादा *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1968 ई०]

यह पुस्तक एक शरीफ़ज़ादे का जीवनवृत्त है जिसे लेखक ने एक उपन्यास का रूप दे दिया है। शरीफ़ज़ादा मिर्ज़ा आबिद अली हैं और उनके पिता मिर्ज़ा वाक़र हुसैन हज़रत अब्बास की दरगाह के पास कहीं रहते थे। लेखक मिर्ज़ा रुसवा (दे०) ने शरीफ़ज़ादा के जीवन को एक आदर्श जीवन माना है और इस उपन्यास के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि उनके अनुसार एक आदर्श जीवन क्या हो सकता है। शरीफ़ज़ादे के जीवन में जीवन में जो कठिनाइयाँ आईं और जिनका सामना शरीफ़ज़ादे ने साहस और वीरता से किया, उन सबका चित्रण ही लेखक का एकमात्र उद्देश्य है। उपन्यास रोचक है। शरीफ़ज़ादे के जीवन के उतार-चढ़ाव इसकी रोचकता को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। भाषा मधुर, टकसाली तथा प्रवाहमयी है।

पुस्तक के अंत में कुछ पत्र दिए गए हैं जो उपन्यास के नायक शरीफ़ज़ादा अर्थात् मिर्ज़ा आबिद हुसैन के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

शर्मा, उमाकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

ये असमीया के नये कथाकारों में से एक हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**कहानी** : 'घूरणीया पृथिवीर बेंका पथ' (दे०); **आलोचना** : 'काव्यभूमि' (1948)।

शर्मा जी की कहानियों की गठन में शिथिलता है। कहीं-कहीं कहानियों की परिणति दुर्बल हो जाती है। रचनाओं में दार्शनिकता की छाप रहती है। इनके नारी-पात्रों पर भी दार्शनिकता का प्रभाव दिखाई पड़ता है। विशेषता यह है कि भाव-विश्लेषण एवं भाषा-प्रयोग में संयम दृष्टिगत होता है। 'काव्यभूमि' रस-विचार और साहित्य का मौलिक विवेचनात्मक ग्रंथ है। इसमें कला के दार्शनिक आधार और पृष्ठभूमि का अध्ययन है।

कहानी के क्षेत्र में अभी शर्मा जी से बहुत संभावनाएँ हैं।

शर्मा, ए० डी०, हरि *(मल० ले०)* [जन्म—1893 ई०]

जन्म-स्थान—चेर्त्तला के पास पळिळप्पुरम् गाँव। मामूली स्तर के आर्थिक जीवन में अपने पुरुषार्थ से उन्नति करते-करते इन्होंने पर्याप्त यशोपार्जन किया। इन्होंने मामूली संस्कृत-अध्यापक के तौर पर सेवा प्रारंभ की। परीक्षाएँ पास करने और पदोन्नति करते-करते अंत में ये सेंट अलबर्ट्स कॉलेज में प्राध्यापक बने और उसी पद से सेवानिवृत्त हुए। केरल-साहित्य परिषद् के प्राणाधार सेवकों में शर्मा जी अन्यतम थे। परिषद् के कार्य-कलाप में—विशेषतः पत्रिका के संचालन में—ये तन-मन से संलग्न रहे।

हरि शर्मा जी एक प्रकार से मसिजीवी ही रहे हैं। इनकी लिखी छात्रोपयोगी जीवनियाँ सरल हैं। मगर यशस्वी साहित्यकारों की जो जीवनियाँ इन्होंने लिखीं वे प्रौढ़, ज्ञानवर्धक और साहित्यिक तत्त्वों से ओतप्रोत हैं। 'रंडु साहित्य नायकन्मार्', 'के० सी० केशवपिळ्ळा' (दे०) आदि इसी कोटि की जीवनियाँ हैं। साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में इन्होंने कई परिचयात्मक एवं छात्रोपयोगी ग्रंथ लिखे। पाठानुसंधान और प्राचीन काव्य की विशद व्याख्या इनके प्रिय विषय हैं। शर्मा जी शैलीकार अथवा सिद्धांत-वाद के संस्थापक तो नहीं, तो भी पंडितों में उनके ग्रंथ सम्मानित हैं। कोंकणी भाषा-भाषी शर्मा जी मलयाळम-साहित्य के उच्चतम पद पर जो पहुँच सके वह उनकी दुर्लभ प्रतिभा व परिश्रम का ही प्रमाण है।

शर्मा, देवदत्त कुंदाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1970 ई०]

ये सिंध में राष्ट्रभाषा हिंदी के अध्यापक और मुख्य प्रचारक थे। इन्होंने गांधी जी के सिद्धांतों से प्रेरित होकर भारत के स्वातंत्र्यांदोलन में सक्रिय भाग लिया था। विभाजन के पश्चात् इन्होंने अममेर को अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया था और वहाँ भी ये हिंदी का अध्यापन तथा प्रचार करते रहे थे। इनके हिंदी-प्रचार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य को देखकर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा ने इन्हें 'राष्ट्रभाषा गौरव' की उपाधि प्रदान की थो । ये सिंधी, हिंदी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। पुस्तक रूप में इनकी मौलिक रचनाएँ हैं—**काव्य** : 'देव दोहावली'। 'उद्‌रोलाल साहिब'; 'हेमूँ शतक'; 'गांधी दांडी मार्च, शतक'। **संस्मरण** : 'बापूअ जा प्रसंग'। आलोचना के क्षेत्र में शाह लतीफ़ (दे०) और संत कबीर (दे०) पर इनके लिखे हुए तुलनात्मक निबंध बहुत प्रसिद्ध हैं। देहांत से कुछ समय पूर्व इन्होंने कालिदास (दे०) की प्रसिद्ध रचना 'मेघदूत' (दे०) का सिंधी में कुंडली छंद में अनुवाद किया था जिसका सिंधी-कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

शर्मा, द्वारकाप्रसाद रोचीराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1898 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

इनका जन्म-स्थान दादू (सिंध) है। ये युवावस्था में ही भारत के स्वातंत्र्यांदोलन में सक्रिय भाग लेने लगे थे और अपनी लेखनी से सिंधी-साहित्य में देशभक्ति तथा राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत रचनाओं की सृष्टि करने लगे थे। इन्होंने लगभग तीस पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से कुछ कृतियों के नाम हैं—'राजपूती तलवार', 'वीर कुमारी', 'सिंधी तलवार', 'वीर अभिमन्यु', 'शरणार्थी'। सिंध के इतिहास पर इन्होंने अनुसंधान कर सिंधी-साहित्य को अमर कृतियाँ दी हैं, जिनके नाम हैं—'सिंध जो प्राचीन इतिहास' (तीन भागों में) और 'प्राचीन सिंधु सभ्यता'। इनकी रचनाएँ भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति अटूट श्रद्धा और प्रेम से ओतप्रोत हैं। इनकी रचनाओं की भाषा सरल और स्वाभाविक है। सिंधी-गद्य-लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

शर्मा, नरेंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्मस्थान जहाँगीरपुर, ज़िला बुलंदशहर है। इलाहाबाद में उच्च शिक्षा प्राप्त करके ये कुछ दिन फ़िल्मों से संबद्ध रहे और फिर आकाशवाणी में विविध भारती कार्यक्रम के प्रधान हो गए। इनका काव्य-सृजन छायावादी (दे० छायावाद) संस्कारों में प्रारंभ हुआ इसलिए भाषा-शैली में छायावादी रंग है। अभिव्यक्ति (दे० प्रगतिवाद) की प्रत्यक्षता इन्हें उत्तर छायावादी गीतकारों के निकट ले गई है। इनके प्रगतियुगीन गीतों में सामाजिक चेतना का प्रभाव होने पर भी आत्मनिष्ठ रूमानी प्रवृत्ति लुप्त नहीं हुई। वस्तुतः इनकी रचनाएँ व्यक्ति और समाज, भाव और बुद्धि, ज्ञात और अज्ञात के अंतःसंघर्ष में लिखी जाती रही हैं और उन्हें किसी एक श्रेणी में बाँध सकना कठिन है। इनकी प्रतिभा मूलतः गीतात्मक है, इसीलिए 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' में प्रबंध-विधान उतना सफल नहीं हो सका। उत्तरछायावादी कवियों में इनका विशेष स्थान है।

शर्मा, निगम *(ते० पा०)*

यह महाकवि तेनालिरामकृष्ण (दे०) (1500-1570 ई०) द्वारा रचित प्रौढ़ प्रबंध-काव्य 'पांडुरंग-महात्म्यमु' (दे०) के अंतर्गत प्राप्य 'निगमशर्मोपाख्यानमु' का प्रधान पात्र है। इस प्रबंध-काव्य में अनेक भक्तों एवं पवित्र तीर्थों की महिमा का वर्णन हुआ है।

निगम शर्मा एक सदाचारी एवं निष्ठावान ब्राह्मण का पुत्र था। अनेक दुर्व्यसनों में पड़कर वह स्वेच्छाचारी हो गया है। एक दिन रात को घर से सोने आदि की चोरी करके, माता-पिता, पत्नी आदि सबको छोड़कर वह जंगल के मार्ग से भागा। रास्ते में चोरों ने उसको पीटकर उसका सारा धन छीन लिया। एक किसान ने दयावश उसकी चिकित्सा करके उसे अपने घर में रख लिया। कुछ समय पश्चात् उस स्त्री की मृत्यु हो जाने पर एक चंडाल स्त्री से विवाह करके उसने संतान प्राप्त की। एक दिन उसका घर जल गया और उसमें उसकी पत्नी तथा बच्चे नष्ट हो गए। तदुपरांत दुःख से वह मतिभ्रष्ट होकर भटकता हुआ पुंडरीक क्षेत्र में आया और नृसिंह का दर्शन करके उसने मोक्ष की प्राप्ति की।

निगम शर्मा दुराचारी होकर भी भगवत् कृपा से मुक्ति पानेवाले भाग्यशाली व्यक्तियों में से है। उसका चरित परमात्मा की महती कृपा एवं नृसिंह-क्षेत्र की महिमा प्रकट करता है।

शर्मा, नीलिमा *(अ० ले०)* [जन्म—1938 ई०]

ये असम की लोकप्रिय कहानी लेखिका हैं। संप्रति गौहाटी विश्वविद्यालय में दर्शन की प्राध्यापिका के रूप में कार्य कर रही हैं।

प्रकाशित रचना—'येन डालिमर गुटि' तथा 'अन्य सुति' (काव्य-संग्रह)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्मा, पद्मसिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

इनका मुख्य प्रदेय हिंदी-आलोचना तथा निबंध-साहित्य के क्षेत्र में है। हिंदी में तुलनात्मक समीक्षा का श्रीगणेश करने वालों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। 'बिहारी-सतसई' (दे०) के भाष्य की भूमिका के रूप में लिखी गई 'बिहारी की सतसई' इनकी एतद्विषयक सर्वश्रेष्ठ रचना है जिसमें 'गाथा सप्तसती', 'आर्या सप्तशती', 'अमरुक शतक' (दे०) आदि ग्रंथों के उन स्थलों का बिहारी के दोहों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है जिन पर विद्वानों ने भावापहरण का आरोप लगाया है और इस प्रकार बिहारी की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। निबंधों के क्षेत्र में इनके दो संग्रह 'पद्म-पराग' तथा 'प्रबंध-मंजरी' उल्लेखनीय हैं जिनमें भावात्मक, संस्मरणात्मक, विचारात्मक, आलोचनात्मक आदि विविध प्रकार के निबंध संकलित हैं। इन्होंने 'साहित्य', 'भारतोदय', 'समालोचक' आदि पत्रों का संपादन भी किया था। हिंदी-गद्य के क्षेत्र में ये शब्द तथा अर्थगत बारीकियों की अचूक पकड़ तथा हास्य-व्यंग्य से भरपूर मुहावरेदार एवं प्रवाहपूर्ण शैली के लिए भी विख्यात हैं।

शर्मा, फणी *(अ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

ये लेखक होने के साथ-साथ सफल अभिनेता भी हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक :** 'भोगजरा' (1957), 'किय' (1960)।

'भोगजरा' ऐतिहासिक नाटक में लेखक ने श्री सूर्यकुमार भुञा (दे०) के 'कुँवर विद्रोह' से प्रेरणा ली है। इसमें आहोम राजवंश के संघर्ष-संग्राम और हत्या आदि का चित्रण है।

अभी असमीया नाट्य-जगत को श्री शर्मा से अनेक अपेक्षाएँ हैं।

शर्मा, वेणुधर *(अ० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर।

प्रकाशित रचनाएँ—**निबंध :** 'दूरबीण' (1961), 'सत्तावन साल', 'दूणरि', 'फुलचंदन', 'चताइ परेबत', 'कांग्रेछर', 'कांचियलि रदं' (1959 ई०)। **जीवनी :** 'गंगा गोविंद फुकन' (1948), 'मणिराम देवान' (1950)।

ये जीवित निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। असमीया जाति, संस्कृति और इतिहास पर इन्होंने रमणीय भाषा में निबंध लिखे हैं। इनकी भाषा मुहावरेदार है। 'दूरबीण' में ऐतिहासिक खोजपूर्ण निबंध हैं। 'मणिराम देवान' में जीवनी नहीं, मानो एक युग अथवा क्रांति का इतिहास प्रस्तुत कर दिया गया है। ये जीवनी-साहित्य में नवीनता के प्रवर्तक तथा ऐतिहासिक निबंधकार हैं।

शर्मा, रामविलास *(हिं० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

हिंदी की प्रगतिवादी आलोचना के उन्नायकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रगतिवाद के सैद्धांतिक निरूपण तथा हिंदी के समूचे साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से परीक्षण एवं मूल्यांकन करने में इन्होंने अपनी अपूर्व मेधा का परिचय दिया है। इनके विवेचन में गांभीर्य के साथ-साथ प्रचार का स्वर भी मिश्रित है। उर्दू के लोकप्रिय शब्दों से आपूर्ण किंतु जनसाधारण द्वारा ग्राह्य विषयानुरूप भाषा के साथ-साथ व्यंग्य-शैली का प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। 'संस्कृति और साहित्य', 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'भाषा, साहित्य और संस्कृति', 'भाषा और समय', 'निराला की साहित्य-साधना' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। 'निराला की साहित्य-साधना' पर इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है।

शर्मा, लक्ष्मीधर *(अ० ले०)* [जन्म—1898 ई०; मृत्यु—1935 ई०]

ये गांधीवादी समाजवादी नेता थे। ये अधिक दिन जीवित न रह सके। प्रकाशित रचनाएँ—**'व्यर्थतारदान'** (दे०) (कहानी-संग्रह) (1938 ई०), 'निर्मला' (नाटक) (रचना-काल—1926, प्रकाशन बहुत बाद में हुआ)। 'प्रजापतिर भूल' (एकांकी-संग्रह)।

इनकी अनेक कहानियाँ पत्रिकाओं में छपी हैं, किंतु वे संकलित होकर पुस्तकाकार नहीं छप सकीं। 'सिराज' कहानी में सांप्रदायिक सद्भाव का चित्रण है। 'निर्मला' नाटक में विधवा की आत्महत्या दिखाई गई है। इसमें रक्षणशील ब्राह्मणों पर चोट है। 'प्रजापतिर भूल' एकांकी नाटकों का प्रथम पथ-प्रदर्शक बताया जाता है। ये गांधीवादी थे, किंतु पाश्चात्य समाज-दर्शन—विशेषतः हॉब्स और लॉके से प्रभावित थे। मोपासाँ से इन्होंने शिल्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रेरणा ली थी किंतु कहीं भी इनकी कहानियों में अश्लीलता नहीं आने पायी। ये एक ऐसे कहानीकार थे जिन्हें विकास का पूर्ण अवसर नहीं मिल पाया।

शर्मा, विन् उयिल् *(त० कृ०)*

यह तमिल के विख्यात कथाकार श्री क० ना० सुब्रमणियम् विरचित उपन्यास है। इसमें इसी शती के चौथे दशक में स्थित एक मध्यवर्ग परिवार का चित्रण है। सारी घटनाएँ 'सामिमलै' नामक गाँव को केंद्र बनाकर घटती हैं, वैसे मद्रास और कलकत्ते की कुछ घटनाएँ भी है। सारे परिवार का आधार-स्तंभ है बूढ़ी दादी। उसके तीन बेटों में से बड़ा 'पट्टाभिरामन्' सामिमलै में है जहाँ उसकी विधवा बहन की बेटियाँ भी रहती हैं। इनमें से एक बाल विधवा भवानी है जो मद्रास में कालेज की शिक्षा प्राप्त कर रही है और जिसे कहानी लिखने की रुचि है। पट्टाभि के दो भाई हैं: कृष्णास्वामिशर्मा—जिसके नाम पर उपन्यास का नाम दिया है, दूसरे हैं वेंकटरामन्। शर्मा और वेंकटरामन् कलकत्ते में नौकरी कर रहे हैं। शर्मा देश-विदेश में भ्रमण कर चुका है; वह पुत्रहीन विधुर है; कला-रसिक, उदार, चिंतनशील, ईमानदार तथा मिलनसार। पट्टाभि का इकलौता बेटा है शिवराम जो शिक्षित नवयुवक है। वह नौकरी छोड़ देता है और कथाकार बनने का यत्न करता है। अपनी पत्नी राजम के साथ मद्रास में रहकर साहित्य-सर्जन का असफल यत्न करता है; कमाई कम; खर्च ज़्यादा—घर से पैसा मँगवाकर खर्च करने की नौबत आ जाती है। राजम आधुनिक जीवन के आनंद का अनुभव करने की इच्छुक है; पति के साहित्यिक आदर्शों को समझ नहीं पाती है; राजम और शिवराम के जीवन में अतृप्ति तथा असामंजस्य-सा आ जाता है। शिवराम की फूफी बेटी भवानी शिवराम के यहाँ आती-जाती रहती है। वह शिवराम की मनोवृत्ति तथा आदर्शों के प्रति सचेत है और शिवराम के परिवार में शांति लाने का यत्न करती है। घटनाओं का चक्र घूमता है। शर्मा का देहावसान हो जाता है, देहावसान के पूर्व वह एक वसीयतनामा लिखकर भवानी के पास इस निर्देश के साथ भेज देता है कि उसके मरने के ठीक एक वर्ष बाद उसे खोला जाए और तब तक उस वसीयतनामे की बात गुप्त रखी जाए। इधर दादी का देहांत होता है। सामिमलै में परिवार के विभिन्न व्यक्तियों का आगमन होता है। उसी समय शर्मा का वसीयतनामा प्रकट कर दिया जाता है। उसके अनुसार शिवराम भवानी को अपनी दूसरी पत्नी स्वीकार करता है और शर्मा की जायदाद का स्वामी बनता है। इस घटना में शिवराम की प्रथम पत्नी राजम भी योग देती है।

उपन्यास के घटना-चक्र में 'सस्पेंस' है। तत्कालीन तमिल-समाज की परिस्थितियों का मार्मिक संकेत इसमें प्राप्त होता है। कहानी रोचक ढंग से कही गई है।

शर्मा, सत्येन्द्रनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जन्म-स्थान—जोरहाट।

इनकी शिक्षा एम० ए०, डी० फिल० तक हुई थी। आजकल गौहाटी विश्वविद्यालय में असमीया के रीडर पद पर हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**आलोचना :** 'असमीया साहित्यर इतिबृत्त' (1959), 'असमीया नाट्य साहित्य' (1962), 'असमीया उपन्यास साहित्यत भुमुकि', 'साहित्यर आभास' (1963)। **संपादन :** 'कथारामायण' (1950), 'उषापरिणय' (1951), 'गीतगोविंद' (1955), 'मधुमालती' (1958)।

'असमीया साहित्यर इतिबृत्त' में इन्होंने साहित्य के इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या की है। 'असमीया नाट्य साहित्य' में अंकीयानाट (दे०) तथा पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों का विवेचन कर प्रसिद्ध कृतियों की समीक्षाएँ भी की हैं। इन्होंने पुरानी पोथियों का संपादन दक्षतापूर्वक किया है। गद्य-लेखकों में इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

शलोक *(पं० पारि०)*

'शलोक' पंजाबी के मध्यकालीन काव्य में एक बहुप्रयुक्त छंद है जो संस्कृत के 'श्लोक' (अनुष्टुप् छंद) के ही समानांतर है। गुरु ग्रंथ साहब में 'शलोक' शीर्षक के अंतर्गत असंख्य पद्य संगृहीत हैं जिनमें छंद-विधान की दृष्टि से बहुत वैविध्य है। 'गुरुछंद-दिवाकर' में 'शलोक' नामांतर्गत प्रयुक्त इन विविध छंदों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

संस्कृत में श्लोक अनुष्टुप् एक अष्टाक्षर छंद है (पिंगल सूत्र 3 : 23) जो 16 वर्णों के द्विपाद छंद के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। गुरु ग्रंथ साहब में संकलित बाबा फ़रीद (दे० शेख़ फ़रीद) के अधिकांश 'शलोक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूलतः विधान के अनुकूल हैं। उदाहरणतः 'इकना आटा अग्गला, इकना नाहीं लउणु। अगै गए सिंजापसनि, चोटां खासी कउणु ॥44॥' दूसरी ओर ये 'शलोक' दोहा छंद के भी स्थूल विधान का अनुसरण करते हैं। उक्त उदाहरण के दोनों चरणों में 13, 11 की यति पर 24-24 मात्राएँ हैं। किंतु इन 'शलोकों' में आदि, मध्य अथवा अंत-संबंधी छंदःशास्त्रीय नियमों का सम्यक् परिपालन नहीं मिलता। इन शलोकों में कहीं-कहीं रचयिता का नाम अधिक रूप से जुड़ जाने के कारण भी छंद के नियमों में व्यवधान पड़ गया है। इसके अतिरिक्त 15, 17, 18 या इससे भी अधिक वर्णों के 'शलोक' भी गुरु ग्रंथ साहब में हैं। अतः 'श्लोक' के छंदःशास्त्रीय बहिरंग रूप का पर्याय मानना संभव नहीं।

'श्लोक' का अंतरंग स्वरूप उसके अभिधार्थ—'प्रशंसा', 'स्तुति', 'यशगान' आदि द्वारा समझा जा सकता है। गुरु ग्रंथ साहब में संकलित 'शलोक' इस दृष्टि से सर्वथा सार्थक हैं। 'सुखमनी' (दे०) की उक्ति 'उत्तम शलोक साध के वचन' इस बात की द्योतक है कि गुरु ग्रंथ साहब में विभिन्न पद्यों का 'शलोक' शीर्षक उनके शैलीगत स्वरूप के साथ-साथ वस्तुगत स्वरूप की ओर भी इंगित करता है।

'शलोक'-फ़रीद *(पं० कृ०)*

गुरु ग्रंथ साहब में संकलित बाबा फ़रीद (दे० शेख फ़रीद) की वाणी का अधिकांश भाग 'शलोकों' के रूप में है। इन शलोकों की संख्या 112 है। ये 'शलोक' पंजाबी-मुक्तक काव्य का प्राचीनतम एवं प्रौढ़ नमूना हैं जिनमें कवि के जीवन-संबंधी अनुभव सिद्ध विचार व्यक्त हुए हैं। इन 'शलोकों' का प्रमुख प्रतिपाद्य निस्संदेह अलौकिक आध्यात्मिक प्रेम है, यह प्रेम जिसमें संयोग की मादक और उत्तेजक क्रीड़ाओं की अपेक्षा वियोग की मार्मिक, करुणात्मक अनुभूति की अभिव्यंजना हुई है। प्रेम के अतिरिक्त कवि ने लोक-नीति, सदाचार, मानव-प्रेम, स्वावलंबन, क्षमाशीलता आदि भावों का प्रतिपादन भी बड़ी सजग दृष्टि से किया है। पूरी एक शती की जीवन-यात्रा के उसके विविध अनुभव उसकी बुद्धि की छलनी से छन-छन कर लोकवाणी में आकर समा गए हैं। जीवनगत मूल्यों का इन शलोकों में सम्यक् संरक्षण होने के कारण ही ये सूक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

फ़रीद-कृत शलोकों की भाषा लोक-व्यवहार के इतनी निकट है और उसकी अभिव्यंजना-शैली इतनी सुकर और सुबोध है कि उसमें कला के ऊँचे आदर्शों की खोज करना ही व्यर्थ है। जन-जीवन की यथार्थ भावनाओं का जन-वाणी में ही सजीव चित्रण फ़रीद-कृत शलोकों का सार-तत्त्व है।

शवरस्वामी *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—400 ई० के आसपास]

विद्वानों का एक वर्ग मीमांसक शबरस्वामी का स्थिति-काल 200 ई० भी मानता है। इसके अतिरिक्त विद्वानों की एक परंपरा शवर का संबंध सम्राट् विक्रमादित्य के साथ भी जोड़ती है, किंतु यह असंगत है। शवरस्वामी का वास्तविक नाम आदित्य देव था। जैन-साधुओं से डरकर शवरस्वामी जंगल में चले गए थे और वहाँ जाकर इन्होंने अपना नाम शवर रख लिया था। शवरस्वामी ने 'मीमांसासूत्र' पर महत्वपूर्ण भाष्य की रचना की थी, जो 'शावरभाष्य' के नाम से प्रख्यात है। यह भाष्य मीमांसा-दर्शन का प्रमुख ग्रंथ माना जाता है।

'शावरभाष्य' की व्याख्या करते हुए कुमारिल-भट्ट (दे०), प्रभाकर (दे०), मिश्र तथा मुरारि मिश्र ने भाट्टमत, प्रभाकर-मत तथा गुरुमत की प्रतिष्ठा की थी। शवरस्वामी ने 'शावरभाष्य' में मीमांसा के विभिन्न पक्षों के संबंध में अत्यंत मूल्यवान विवेचन प्रस्तुत किया है। शवरस्वामी ने यज्ञमीमांसा एवं विविध धार्मिक कृत्यों के संबंध में तो अपनी दृष्टि दी ही है, साथ ही अनुमान आदि दार्शनिक सिद्धांतों के संबंध में भी अपना मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। 'शावरभाष्य' की शैली भी रोचक एवं परिमार्जित है।

शशांकविजयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम शेषं वेंकटपति (दे०) हैं। ये दक्षिण की मधुरा नामक रियासत के शासक विजय-रंग चोक्कनाथ (शासन-काल—1794-1731 ई०) के सभाकवि थे। यह पाँच आश्वासों का एक श्रृंगार-काव्य है। गुरुपत्नी तारा के साथ चंद्र का प्रणय इसमें वर्णित है। यहाँ श्रृंगार रस के वर्णन में औचित्य की सीमा का उल्लंघन किया गया है। पर इसकी शैली मधुरिमा अनुपम है। शुद्ध काव्य की दृष्टि से साहित्य-क्षेत्र में इसका विशेष स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशि *(बँ० पा०)*

'पुतुलनाचेर इतिकथा' (दे०) मानिक बंद्योपाध्याय (दे०) की विचित्र यथार्थवादी अभिज्ञता को अन्यतम सृष्टि है। इस उपन्यास का नायक है शशि। लेखक का अपना दृष्टिकोण फ्रायडीय मतवाद से प्रभावित है। क्षुधा एवं यौनविकृति को इनकी रचना में प्राधान्य मिला है। शशि के चरित्र में भी यह समस्या ही प्रधान समस्या है। अपने जीवन की सर्वाधिक रिक्तता के चरम मुहूर्त में उसने प्रतिवेशी की स्त्री कुसुम के प्रति दुर्वह आकर्षण का अनुभव किया है। पूर्वजीवन की वेदनाविक्षुब्ध स्मृति-तरंग की ताड़ना के फलस्वरूप उसने गृहत्यागी होना चाहा परंतु पारिपार्श्विकता के प्रभावस्वरूप ऐसा संभव नहीं हो सका। अंतर्दहन की निविड़ता मानवीय आवेदन की प्रगाढ़ता एवं जीवन-यौवन के दाह ने शशि के चरित्र में व्यर्थता-वंचना-रिक्तता के अतिरिक्त और कुछ नहीं छोड़ा। लांछित-पराजित इस चरित्र का अंत में सामाजिक अनुशासन के अश्रुतीर्थ में निर्वासन दिखाया गया है। जीवन की निभृत-नीरव अवलुप्ति में शशि का अंतिम चित्र यौन वेदनामय है। शशि जीवन-यौवन के प्रचंड संग्राम की पराजय का प्रतीक है। उसके जीवन-संग्राम का विचित्र इतिहास लेखक के विशेष जीवनदर्शन के आलोक से जुड़ा है।

शशिसेना *(म० क्रु०)*

इस काव्य की रचना सत्रहवीं शती के अंत में पं० जगन्नाथ कवि ने की थी। यह एक विशाल कथानक-काव्य है। इसमें कुल 581 श्लोक हैं। कथावस्तु सर्वथा मौलिक—कवि-कल्पना से निर्मित है। अमरावती नगरी के प्रधानमंत्री का पुत्र था—अहिमाणिक, राजकन्या थी—शशिसेना। दोनों का विद्याभ्यास एक ही गुरु के सान्निध्य में हुआ। सहपाठियों का प्रेम दांपत्य-प्रेम का रूप लेना चाहता था परंतु माता-पिता ने विरोध किया। शशिसेना ने पुरुष-वेश धारण कर लिया और प्रेमी-युगल अपनी नगरी त्याग कर भटकने लगे। अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए अंत में अपने पराक्रम से दोनों ने अनेक संकटों पर विजय प्राप्त की और सुखमय दांपत्य-सूत्र में बँध गए। यह श्रृंगार रस-प्रधान काव्य है जिसमें प्रेम की संयोगावस्था तथा वियोगावस्थाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। छंदःपूर्ति के लिए शब्दों की तोड़-मरोड़ हुई है अतः कुल मिलाकर यह अधिक प्रौढ़ रचना नहीं है। फिर भी, कल्पना-वैभव स्वाभाविक प्रसंग-वर्णन, और सुगम शैली के कारण इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

शहर-आशोब *(उर्दू० पारि०)*

'शहर-आशोब' उर्दू कविता की वह व्यंग्य-प्रधान विधा है जिसमें किसी नगर, प्रदेश अथवा देश के उजड़ने, सामाजिक तथा राजनीतिक विप्लवों आदि का मार्मिक वर्णन किया जाता है। 'कमतरीन', 'शाकिर नाज़ी' (दे०) 'मीर तक़ी 'मीर' (दे०) और 'सौदा' (दे०) की शहर-आशोबों का उर्दू साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। 'मीर' और 'सौदा' के पश्चात् इस विधा में जो कुछ लिखा गया वह अनुकृति मात्र है। इन दोनों शायरों ने अपने युग के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संकट को अपने काव्य-व्यंग्य का विषय बनाया है।

शहीद एस० एस० चरणसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1891 ई०]

शहीद के साहित्य का मुख्य स्तर समाज-सुधार है। अन्य समाज-सुधारकों से इनकी विलक्षणता इस बात में है कि ये अपनी बात को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। इसीलिए पंजाबी के पाठक इन्हें हास्य-व्यंग्य-शैली का आचार्य मानते हैं। कविता एवं गद्य दोनों के माध्यम से इन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। काव्य एवं गद्य के क्षेत्र में हास्य-व्यंग्य से भरपूर अनेक कृतियों के अतिरिक्त 'बाबा वरयामा' नाम का पात्र इनकी विशेष देन है। 'बाबा वरयामा' पंजाबी जीवन एवं सभ्यता का अंग बन गया है। सामाजिक कुरीतियों के ऊपर व्यंग्य करने में लेखक प्रायः उसी की सहायता लेता है, इसलिए वह पाठक का भी जाना-पहचाना पात्र बन गया है। 'मौजी' नाम से इन्होंने एक पत्र भी आरंभ किया था। इसमें व्यंग्यात्मक पद्धति से सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर सामाजिक चेतना उद्‌बुद्ध करने का प्रयत्न रहता था।

पंजाबी कवि-सम्मेलनों के आंदोलन को भी नति देने में 'शहीद' महोदय ने विशेष योग दिया। प्रसिद्ध रचनाएँ—**कविता** : 'बादशाहियां अरशी किंगरे', 'इश्क मुश्क', 'राजसी हुलारे'। **कहानी-संग्रह** : 'हंसदे हंझू'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांडिल्यन् *(त० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

आधुनिक उपन्यासकारों में शांडिल्यन् का एक विशिष्ट स्थान है। कहा जाता है कि वर्तमान तमिल-कथाकारों में इनकी पुस्तकों की खपत सर्वाधिक है और एक लेखक के रूप में इनकी आय अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक है। तंजौर के 'तिरुइंदळुर' के ये निवासी हैं; वैसे अब मद्रास में ही रहते हैं। इन्होंने कालेज की शिक्षा तो प्राप्तकी थी किंतु असहयोग आंदोलन के कारण बीच में ही शिक्षा छोड़ दी थी। 'दिराविड्न', 'सुदेशमित्तिरन्', 'आनंद विकटनु' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं के ये संपादक रह चुके हैं। लगभग 21 वर्ष पर्यंत इस प्रकार कार्य करने के पश्चात् अब ये स्वतंत्र लेखन में संलग्न हैं। अब तक इनके 23 उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं। अपनी रचना में इन्होंने अनेक शिलालेखों, शोध-ग्रंथों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है जिससे उनमें काफ़ी सजीवता तथा स्वाभाविक वातावरण का निर्माण दिखाई पड़ता है। इनके उपन्यासों में से 'कडलपुरा' (समुद्री कपोत) वृहदाकार है और बहुत विख्यात हुआ है। इसके अतिरिक्त 'नाग-दीप', 'वल्लवतिलक', 'राजमुद्रिका', 'राणी का स्वप्न', 'बाँस का किला', 'कन्या-अंतःपुर', 'यवनरानी', 'उदयभानु' आदि उपन्यासों की भी एक लंबी सूची है। इनकी शैली आलंकारिक होती है, चित्रण बिंबात्मक, घटना-वर्णन कुतूहल-वर्धक तथा वातावरण की सृष्टि स्वाभाविक एवं प्रभावशाली। आधुनिक कथा-साहित्य पर इनका अक्षुण्ण प्रभाव है।

शांतकवि *(क० ले०)*

कन्नड साहित्य के प्रथम उत्थान-काल (1900-1920 ई० तक) के कवियों में इनका नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। ये आधुनिक कविता को रूप प्रदान करने वालों में से हैं। उत्तर कर्नाटक में इनकी कविताओं ने उस समय लोगों को अत्यधिक प्रभावित किया था। इनकी कविताओं में 'भवगीते' अर्थात् गीति-काव्य का रूप दृष्टिगत होता है। इनकी 'कन्नड दासय्या' (कन्नड का भिखारी) और 'रक्षिसु कर्नाटक' (रक्षा करो कर्नाटक की) कविताएँ अत्यंत प्रसिद्ध हैं। उनका वास्तविक नाम बाळाचार्य सक्करी था। इन्होंने लगमग सत्तर ग्रंथ लिखे हैं जिनमें इनकी कविताएँ और यक्षगान विशेष प्रसिद्ध हैं।

शांतरक्षित *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—लगभग 740-840 ई०]

शांतरक्षित ने नालंदा से तिब्बत जाकर सामये नामक संघाराम की स्थापना 749 ई० में की थी। शांतरक्षित की मृत्यु तिब्बत में हुई थी। शांतरक्षित का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'तत्त्वसंग्रह' है। 'तत्त्वसंग्रह' कमलशील की टीका के साथ बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

'तत्त्वसंग्रह' के अंतर्गत शांतरक्षित ने योगाचार विज्ञानवाद का प्रतिपादन किया है। जगत् के बाह्य विषयों की सत्ता न मानकर शांतरक्षित समस्त जागतिक वस्तुओं के ज्ञान को स्वसंवेदन-रूप मानते हैं। शांतरक्षित न आत्मवाद को स्वीकार करते हैं और न बाह्य विषयवाद को। ये केवल विज्ञान की सत्यता को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इनके मत में नील एवं पीत का ज्ञान बाह्य विषयों से संबंधित न होकर स्वसंवेदन-रूप ही है। विज्ञान का बाह्य विषयों से कोई संबंध नहीं है। विज्ञान तो केवल चित्तगत है।

शांतरक्षित ने अनेक बौद्ध-सिद्धांतों एवं अन्य मतवादों का खंडन करके स्वतंत्र रूप से योगाचार विज्ञानवाद की स्थापना की है।

शांतला *(क० कृ० पा०)*

'शांतला' के० वी० अय्यर (दे०) के अमर ऐतिहासिक उपन्यास 'शांतला' की नायिका है। यह चालुक्य सम्राट् विष्णुवर्धन की पत्नी है और विष्णुवर्धन के सेनापति की पुत्री। सर्वधर्म-समन्वय की प्रवृत्ति तो इसे विरासत में मिली है। इसके पिता शैव हैं, माता जैन और पति वैष्णव। इन सभी धर्मों के संस्कारों ने इसके हृदय को अत्यंत मधुर बनाया है। बचपन से ही यह वीणा-वादन-पटु है। नृत्य में भी यह निष्णात है। नाट्यसरस्वती इसका विरुद है। उसी के नाट्य को देखकर इसकी प्रेरणा से शिल्पियों ने वेलूर के विख्यात मंदिर के मदनिका विग्रहों का निर्माण किया है। इसकी कोई संतान नहीं है। इसकी सौत लक्ष्मी, जो इसकी बाल सहचरी है, संतानवती बनती है। यह एक सफल शासिका भी है। उसने अपनी सौतों के आपसी झगड़े तथा षड्यंत्रों को सफलता के साथ रोका और शांत किया है। धार्मिक झगड़ों से निबटने में भी इसने अपने पति की सहायता की है। कलाप्रेम, धार्मिकता एवं सात्विकता के कारण इसका नाम कर्नाटक के इति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्रास में अजर-अमर रहेगा । श्री के० वी० अय्यर ने इसके चरित्र को अत्यंत गंभीर दृष्टि से देखा है ।

शाँतिनिकेतन *(बँ० कृ०)*

'शांतिनिकेतन' छोटी-छोटी 17 पुस्तिकाओं में प्रकाशित रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) के संक्षिप्त भाषणों का संकलन है । शांतिनिकेतन में मंदिर में उपासना के समय रविबाबू ने ये सारे भाषण दिये थे । पहली आठ पुस्तिकाएँ 1909 ई० में प्रकाशित हुई थीं । उसके उपरांत 1910 ई० में नवम् से एकादश खंड तक, 1911 ई० में द्वादश से त्रयोदश तक एवं 1916 ई० तक शेष पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं । 1935 ई० में इन सत्रह खंडों को दो खंडों में संयोजित कर प्रकाशित कराया गया ।

रवींद्रनाथ के धर्म-चिंतन से संबंधित इन उपदेशमालाओं का विशेष महत्व है । इन निबंधों में महर्षि देवेंद्रनाथ (दे० ठाकुर) की सूक्ष्म अनुभूति तथा आवेग-धर्मी विश्लेषण का प्रभाव सुस्पष्ट है परंतु रवींद्रनाथ की कवि-प्रकृति एवं प्रगाढ़ अध्यात्म-अनुभव के फलस्वरूप इनमें साहित्य का पूर्ण आस्वाद प्राप्त होता है । केवल धर्म ही नहीं, जीवन और नैतिकता, सत्यबोध और मानवता, नीति-नियम, बंधन-मुक्ति, विश्वबोध, जीवन और प्रकृति, मृत्यु और अमृत, सृष्टि और आत्मबोध आदि बिषयों को अपनी अंतर्दृष्टि तथा काव्य-सौंदर्यमय प्रकाश-रीति के द्वारा अभिव्यक्त कर उन्होंने पाठकों के मन को जीत लिया है । विशेष रूप से लक्षणीय है इसकी भाषा । इन स्वगत चिंतनमय छोटे-छोटे निबंधों में कथ्यभाषा का प्रयोग कर उन्होंने बँगला-गद्य के क्षेत्र में एक नयी प्रकाश-रीति के प्रवर्तन में विशेष सफलता प्राप्त की है ।

शांति पा *(अप० ले०)* [रचना-काल—1000 ई० के लगभग]

चौरासी सिद्धों में शांति पा एक प्रसिद्ध सिद्ध थे । इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था । विद्वान् सिद्धों में इनकी भी गणना की जाती है । ज्ञान-प्राप्ति के लिए इन्होंने विक्रमशिला, मालवा सिंहल आदि स्थानों के विहारों का भ्रमण किया था । ज्ञानार्जन के साथ-साथ ये धर्म-प्रचार भी किया करते थे । ये तत्कालीन गौड़ राज के राजगुरु और विक्रमशिला के प्रधान थे ।

अन्य सिद्धों की तरह इन्होंने भी वज्रयान, सहजयान की प्रशंसा की है । संसार की अविद्या से मुक्त होकर अपने ही अंदर रहने वाले सहजानंद की प्राप्ति को अन्य सिद्धों के समान इन्होंने भी सर्वश्रेष्ठ बताया है । सहजानंद या सहज सुख की प्राप्ति का मार्ग कठिन है । इसलिए मार्गदर्शन के लिए गुरु का होना अत्यावश्यक है । अन्य सिद्धों की तरह ये भी मानते हैं कि मानव का परम उद्देश्य महासुख परमानंद की प्राप्ति है । यह सुख अनिर्वचनीय है । इस आनंद की प्राप्ति से संसार का भय, जन्म-मरण आदि सब विस्मृत हो जाते हैं । इस सहज सुख की प्राप्ति के लिए मंत्र, तंत्र, आगमादि शास्त्र-ज्ञान की आवश्यकता नहीं है ।

हिंदी-साहित्य की संत-विचारधारा को समझने के लिए शांति पा प्रभृति सिद्धों की विचारधारा का समझना अत्यावश्यक है ।

शांतिपुराण *(क० कृ०)*

'कन्नड रत्नत्रय' में प्रसिद्ध कविवर पोन्न (दे०) की कृति 'शांतिपुराण' सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ के चरित का वर्णन करने वाला जैन-पुराण-काव्य है । कवि के कथनानुसार वह 'पुराण-चूडामणि' है । कवि ने गर्व के साथ इस बात का उल्लेख कई वार किया है । उनको 'कविचक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त थी । 'कविचक्रवर्ती' द्वारा लिखित जैन-पुराण के समस्त लक्षणों से युक्त 'शांतिपुराण' जैन-पुराणों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है, अतएव उसे निस्संदेह 'पुराण चूडामणि' मान सकते हैं । उसमें कवि-कर्म और धार्मिक दृष्टिकोण का समन्वय हुआ है, परंतु कविकर्म की अपेक्षा धार्मिक दृष्टि का ही प्राधान्य है ।

'शांतिपुराण' बारह आश्वासों का चंपू-काव्य है । प्रथम नौ आश्वासों में शांतिनाथ के ग्यारह पूर्वजन्मों की कथा का तथा शेष तीन आश्वासों में उनके वर्तमान जन्म के चरित का वर्णन है । जैन-पुराणों में भवावलि (पूर्वजन्म) के वर्णन का महत्व रहता है, यह वैशिष्ट्य 'शांतिपुराण' में भी द्रष्टव्य है । भवावली का वर्णन छठे भव (जन्म) से प्रारंभ कर शेष का तदनुसार वर्णन करने में कवि ने कौशल प्रदर्शित किया है और आकर्षक वातावरण-निर्माण तथा घटनाओं के वर्णन में विशेष सफलता प्राप्त की है । परंतु 'रसनिष्पत्ति' की दृष्टि से उनको 'आदिपुराण' (दे०) के कवि पंप (दे०) के समान सफलता नहीं मिली है । उदाहरणार्थ, शांतिनाथ के वीतरागी होने के प्रसंग का वर्णन अधिक आकर्षक और हृदयस्पर्शी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन पड़ा है। पर शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन करने पर कवि की दृष्टि असफल नहीं कही जा सकती क्योंकि अलंकार, छंद, नवरस-वर्णन तथा उत्तम भाषा-शैली के कारण वह एक प्रौढ़ काव्य सिद्ध होता है। कल्पनाशीलता, मृदुबंध तथा प्रांजलता के कारण पोन्न की रचना महाकाव्य की कोटि में आती है।

शांतीश्वर पुराण *(क० कृ०)*

यह कमलभव नामक जैन कवि का चंपू-ग्रंथ है। कमलभव का समय 1225 ई० के क़रीब माना जाता है। इसमें सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ की कथा वर्णित है। इसी विषय-वस्तु को लेकर पोन्न (दे०) ने 'शांतिपुराण' (दे०) लिखा था। इसमें 16 आश्वास हैं। इसका विस्तार उससे अधिक है और यह पोन्न के ग्रंथ से सचमुच श्रेष्ठ है। यहां आनेवाली अश्वग्रीव तथा त्रिविष्ट की कहानी अत्यंत सरस एवं रोचक है। यही कहानी पोन्न में भी है किंतु नीरस। 'शांतीश्वर पुराण' पुराणकाव्य के सभी लक्षणों से अभिमंडित है। उसमें पांडित्य है, कवि-समय है, सुंदर कल्पना है, उक्ति-वैचित्र्य है किंतु मुगळि जी (दे०) के अनुसार रस-परिपाक नहीं है।

शाइकीया, चंद्रप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'मंदाक्रांता' (दे०) (1960), 'मेघमल्लार' (1963)। **कहानी** : 'मायामृग'।

इन्होंने नागरिक मध्यवर्ग पर कहानियाँ लिखी हैं। कहानी के पात्रों में चरित्र की दृढ़ता है, नारी-पात्र सुंदर और स्नेहशील हैं। कहानी की सरल वाक्य-रीति में भी ध्वनि रहती है। 'मंदाक्रांता' नामक रोमांसवादी और आदर्शवादी उपन्यास में नागरिक-जीवन का चित्रण है। इनका द्वितीय उपन्यास अधिक अच्छा है।

असमीया कथा-क्षेत्र में इनका अपना स्थान बनता जा रहा है।

शाइकीया, भवेंद्रनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

जन्म-स्थान : फौजदारी पट्टी। इन्होंने गौहाटी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी।

प्रकाशित रचनाएँ—'आतंकर शेषत' (ज़ासूसी-उपन्यास) (1948)। प्रहरी' (कहानी-संग्रह) (1963 ई०)।

ये शब्दों के आडंबर की सृष्टि न कर अभिनव रूपायन द्वारा पाठक के अंतर में करुण प्रभाव की सृष्टि कर सकने में सक्षम हैं। एकांकी नाटक के क्षेत्र में भी इनसे प्रभूत संभावनाएँ हैं। इनके 'भगा डेउकार आँरत', 'तिनिबंधु', 'अलंकार' आदि एकांकी महत्वपूर्ण हैं।

शाइरु *(सिं० कृ०)*

'शाइरु' (कवि) उपन्यास 1941 ई० में आशा साहित मंडल, कराची से प्रकाशित हुआ था। इसके लेखक सिंधी के प्रसिद्ध लेखक आसानंद मामतोरा हैं। ये विभाजन के पश्चात् बंबई में रहते हैं और एक सिंधी स्कूल के मुख्याध्यापक हैं। मामतोरा जी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से पूर्ण कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं जो सिंधी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'शाइर' उपन्यास में लेखक ने कश्मीर के वातावरण में एक हिंदू नवयुवक और मुसलमान कुमारी के पवित्र प्रेम का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म ढंग से नायक-नायिका के मनोभावों का विश्लेषण किया है। सिंधी-साहित्य में यह पहला उपन्यास है जिसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रधानता दी गई है। सिंधी-उपन्यासों के विकास में 'शाइर' का महत्वपूर्ण स्थान है।

शाकिर 'नाजी' *(उर्दू० ले०)*

नाम—सैयद मुहम्मद शाकिर, उपनाम—'नाजी'। ये मुहम्मद शाह के एक सचिव के नौकर थे। क़लम के भी धनी थे और तलवार के भी। नादिरशाह ने जब भारत पर आक्रमण किया था तो इन्होंने सेना की सामरिक गतिविधियों में सक्रिय योग दिया था। इन्होंने अपने काव्य में तत्कालीन शोचनीय राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थवादी चित्रण किया है। इनके काव्य में ओज गुण का प्राधान्य है। मीर तक़ी 'मीर' (दे०) के अनुसार ये हास्य रस के भी समर्थ कवि थे। इनकी जो कविताएँ आज उपलब्ध हैं उनमें शब्दालंकारों के प्रति इनका अत्यधिक मोह परिलक्षित होता है।

शाक्त पदावली *(बँ० प्र०)*

मध्ययुग की सत्रहवीं शती में वैष्णव पदावली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की धारा के क्षीण हो जाने पर कालीदेवी के स्तुति-गान के लिए शाक्त पदावली की रचना शुरू हुई। आख्यान-मूलक मंगलकाव्य के रचनाक्रम की समाप्ति पर वैष्णव गीति-कविता के द्वारा परिपुष्ट शाक्त गीतिकाव्य में राधा-कृष्ण अर्थात् नायक-नायिका की प्रेमलीला के स्थान पर माता और पुत्र के स्नेह-प्रेम अर्थात् मातृप्रधान भक्ति-भावना का प्रचार शुरू हुआ। मातृनिर्भर इस अध्यात्म-साधना में कालीमूर्ति के भयावह रूप को प्रधानता मिली है। कदाचित् इस भयावह रूप की आराधना से पीछे उस युग की यथार्थ समाज-चेतना, देश की दुरवस्था एवं विपदसंकुल अवस्था क्रियाशील थी। रामप्रसाद सेन (दे०) 'शाक्त पदावली' के प्रतिष्ठाता हैं। रामप्रसाद के द्वारा प्रवर्तित शाक्त गीतों या श्यामा-संगीत का प्रचार आज भी अक्षुण्ण है। रामप्रसाद के अतिरिक्त कमलाकांत आदि नाना कवियों ने श्यामा संगीत की रचना की है।

शाद अज़ीमाबादी *(उर्दू० ले०)*

'शाद' का जन्म 1846 ई० में पटना में हुआ। इन्हें भाषा की शिक्षा सर सैयद अहमद खाँ (दे०) से मिली थी। इनकी भाषा इतनी लोचदार है कि ये अपने समय के 'मीर' (दे० मीर तकी 'मीर') समझे जाते हैं। इन्होंने उर्दू के अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी का भी थोड़ा बहुत ज्ञान अर्जित किया था। इन्होंने इस्लामी शास्त्र के अतिरिक्त ईसाइयों की बाइबिल, पारसियों की जेंदअवेस्ता और हिंदुओं की रामायण, गीता आदि का भी अध्ययन किया था। साहित्य-सेवा के कारण सरकार ने 1891 ई० में इन्हें 'ख़ान बहादुर' की उपाधि दी थी। सरकार की ओर से इनको जीवन भर 1000 रु० वज़ीफ़ा मिलता रहा।

भाषा की सादगी, सफ़ाई और सरसता इनके काव्य की विशेषता है। इनके काव्य में नीति, आचार, दर्शन, एकेश्वरवाद-संबंधी विषय प्रायः मिलते हैं। इनके कलाम में प्रौढ़ता तथा परिपक्वता के दर्शन होते हैं। मर्सिये (दे०) और ग़ज़ल (दे०) के क्षेत्र में शाद ने विशेष जौहर दिखाए हैं। मर्सिया लिखने में 'शाद' ने मीर अनीस (दे० अनीस) का अनुकरण किया है। 'नग़्म-ए-इल्हाम' के नाम से इनका दीवान प्रकाशित हो चुका है। दीवान तैयार करते समय सब अच्छा-बुरा कलाम एक-साथ संकलित कर दिया गया है जिससे कुल मिलाकर असर उतना अच्छा नहीं पड़ता जितना कि एक अच्छे चुनाव का पड़ सकता था।

शामराय, त० सु० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

वर्तमान समय के बुज़ुर्ग साहित्यकारों में इनका नाम लिया जाता है। इनके पूर्वज चित्रदुर्ग ज़िले के तलुकु के निवासी थे। ये कन्नड के प्रसिद्ध विद्वान् तलुकिन वेंकण्णय्या (दे०) के छोटे भाई हैं। ये मैसूर विश्वविद्यालय में कन्नड के प्राध्यापक रहे थे। ये श्रेष्ठ गद्य लेखक और आलोचक हैं। इनकी रचनाओं में 'कन्नड नाटक' अत्यंत प्रसिद्ध है। 'जनप्रिय-कन्नड-साहित्य-चरित्रे' इनकी अन्य प्रसिद्ध कृति है। हाल ही में इनकी 'कन्नड-साहित्य-समीक्षे' नामक रचना भी प्रकाश में आई है। 'वचन भागवत' और 'श्रीकृष्णन कडेय संदेश' (श्रीकृष्ण का आखिरी संदेश) इनकी गद्यशैली का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं। इनकी 'जनप्रिय रामायण' वयस्क नौसिखियों के लिए लिखी गई है। इन्होंने वीरशैव-साहित्य-संबंधी कोश का निर्माण भी किया है।

शामळ *(गु० ले०)* [समय—1636-1714 ई०]

मध्ययुगीन वार्ताकारों में अति प्रसिद्ध कवि शामळ मूलतः अहमदाबाद के निवासी थे। वार्ता कहने की इनकी रोचक शैली से आकृष्ट होकर खेड़ा के सिंहुज ग्राम के ज़मींदार रखीदास ने इन्हें अपने यहाँ बुलाकर बसाया था। चालीस वर्ष तक ये सिंहुज में रहे और इन्होंने जनता को वार्ता रस का पान कराया।

शामळ की कृतियाँ इस प्रकार हैं—'पद्मावती नी वार्ता', 'सिंहासन बत्रिशी', 'नंद बत्रिशी', 'वैताल पच्चीसी' (दे०), 'मदन मोहना', 'विनेचर नी वार्ता', 'रखीदास चरित्र', 'शिवपुराण खंड', 'अंगद विष्टि', 'रावण-मंदोदरी-संवाद' तथा 'सुडा बहोतेरी'।

इनकी रचनाओं में गुजरात का लोक-जीवन अपनी पूर्ण यथार्थता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। भक्ति की रूढ़ परंपरा से हटाकर काव्य को ये लोक-जीवन की प्राणवान् धरती पर उतार लाए। अपनी प्रायः सभी रचनाओं का केंद्रीय विषय इन्होंने सामाजिक जीवन को ही रखा। संस्कृत, हिंदी (ब्रजभाषा) का इन्हें पर्याप्त ज्ञान था।

एक वार्ता से दूसरी वार्ता में सरक जाने की कला, निरंतर कुतूहल जगाए रखने की क्षमता, सजीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्र-सृष्टि, बहुविध प्रतिभापूर्ण चरित्रों का निर्माण—ये इनकी रचनागत विशेषताएँ हैं। कहीं-कहीं इनमें शृंगारातिरेक भी पाया जाता है। इनका कवित्व सहज था, उपार्जित नहीं।

मध्ययुगीन गुजराती साहित्य में वार्ताकार के रूप में शामळ अविस्मरणीय रहेंगे।

शारदा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1892 ई०]

यह ओय्यारत्तु चंतुमेनन (दे०) की अधूरी कृति है।

अनमेल विवाह से दुःखी कल्याणि अम्मा अपने प्रतिष्ठित परिवार पूंचोलक्करा इटम् से किसी को सूचित किए बिना दो सेवकों को साथ लेकर भाग गई। उस वक्त उसकी अवस्था सिर्फ पंद्रह वर्ष की थी। इस यात्रा में काशी में उसकी भेंट एक अच्छे केरलीय चित्रकार और सुशील सुंदर युवक रामन् मेनन से हुई। वे प्रेम में बँधे, और फिर विवाह-सूत्र में बँधे। वर्षों तक आनंदमय जीवन के बाद दुर्भाग्य के मारे हुए मेनन जी की दृष्टि अत्यंत क्षीण हो गई। केरल की यात्रा में रामेश्वरम् पर पत्नी कल्याणि का स्वर्गवास हो गया। प्यारी इकलौती बेटी शारदा, प्रिय शिष्य शंकरन् और सेवक कृष्णन् उनके साथ थे। श्री मेनन ने शारदा को उसके प्रतिष्ठित परिवार में पहुँचाकर उसका भविष्य सुखी बनाने का प्रयत्न किया। कल्याणि अम्मा के साथ चलकर कुछ धन ऐंठने में असफलता के कारण लौटे हुए धूर्त 'वेत्तिपट्टर' (दे०) ने श्री मेनन को सहायता देना प्रारंभ किया। यह महाधनी मेनन की संपत्ति लूटने पर तुला था।

केरल पहुँचने और अपना प्रयत्न जारी रखने पर मेनन को शारदा के परिवार का अनुकूल उत्तर नहीं मिला। पर उसी गाँव के दूसरे गृहस्थ ने उनका सेवा-सत्कार किया। शारदा के हक की बाद अदालत तक पहुँच गई। यहीं आकर अपूर्ण कृति का सूत्र विच्छिन्न हो जाता है।

शारदा *(ते० ले०)* [समय—बीसवीं शती ई०]

इनका वास्तविक नाम नटराजन है और मातृ-भाषा तमिल। इनका जीवन बड़ी कठिनाइयों में से गुज़रा और अल्पायु में ही इनका निधन हो गया। तेनालि शहर के एक होटल में ये कार्य करते थे। ग़रीबी में एक स्वाभिमानी व्यक्ति की कैसी दयनीय स्थिति होती है, इसका इन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया था। इनके उपन्यासों में ऐसे पात्रों का चित्रण है जो कुलीन होते हुए भी आर्थिक दुर्व्यवस्था में पड़कर निकृष्ट जीवन बिताते हैं। ऐसे व्यक्तियों की विभिन्न स्थितियों और मानसिक दशाओं का इन्होंने मार्मिक चित्रण किया है। इनके उपन्यास हैं—'मंचिचेड्डु', 'अपस्वरालु', 'एदिसत्यं'। पत्रिकाओं में प्रकाशित इन थोड़े-से उपन्यासों से ही लेखक ने पर्याप्त यशोपार्जन किया—यह इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है।

शारिपुत्रप्रकरण *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शती ई० का पूर्वार्ध]

'शारिपुत्रप्रकरण' बौद्ध कवि अश्वघोष (दे०) की नाट्यकृति मानी जाती है। इसकी एक खंडित प्रति प्रो० ल्यूडर्स को तुर्फ़ान में तालपत्रों पर अंकित मिली है। इससे पता चलता है कि यह नव अंकों का प्रकरण था।

प्रकरण में मध्यवर्गीय जीवन के साथ चोर, शराबी, जुआरी, वेश्या आदि चरित्रों का समावेश किया गया है। इस प्रकरण में बुद्ध के द्वारा मौद्गल्यायन तथा शारिपुत्र के शिष्य बनाये जाने की कथा वर्णित है। इस प्रकरण की कथा शृंगार से शांत रस की ओर बहती बताई गई है। इसकी प्राकृत साहित्यिक प्राकृत से प्राचीन मानी गई है। शैली की दृष्टि से 'शारिपुत्रप्रकरण' तथा 'बुद्धचरित' एवं 'सौंदरनंद' (दे०) में पर्याप्त साम्य है। अतः इन तीनों को एक ही व्यक्ति की कृति मानने में मदद मिलती है।

शार्दूलविक्रीडित *(सं० हिं० छं०)*

शार्दूलविक्रीडित उन्नीस वर्णों का वृत्त होता है और बारह और सात वर्णों पर यति होती है। इसके अंतर्गत क्रमशः मगण, सगण, जगण, दो तगण के बाद एक गुरु होता है। उदाहरण—

जंबू अंब कदंब निंब फलसा जंबीर औ आँवला,
लीची दाड़िम नारिकेल इमली और शिंशप इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी,
श्रेणीबद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।
(हरिऔध : प्रियप्रवास)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालीनुडु *(ते० पा०)*

यह पिंगळि सूरना (दे०) (सोलहवीं शती) के प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) का एक महत्वपूर्ण पात्र है। वह ससुराल में घर जँवाई के रूप में रहकर भी आदर पाता है। यह प्रकृति का महान् प्रेमी और सहज सौंदर्य का उपासक है। उपवन में अपने साथ कठिन परिश्रम करते समय श्रांति एवं अस्तव्यस्त वेशभूषा के कारण रक्तिम हो उठने वाली पत्नी की देह के सहज सौंदर्य के प्रति तीव्रता से आकृष्ट होकर यह अपनी पुरानी विरक्ति को भूलकर पत्नी के साथ सुख भोगता है। यह इसके हृदय की कोमलता है। किंतु साथ ही यह ऐसा क्रोधी भी है कि इसकी सम्मति के बिना ही सरस्वती से वरदान प्राप्त करने के कारण सुगात्री (दे०) पर क्रोध करके जल में डूब जाता है।

शालै इळतिरैयन *(त० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

इनका वास्तविक नाम महालिंगम है। इनके अन्य उपनाम हैं—शालै, कांजि तलैवन आदि। इनका जन्म नेल्लै ज़िले के शालैनयिनार पळ्ळिवासल में हुआ। शालै मुख्य रूप से कवि हैं परंतु साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 'इळंदिरैयन कवि-दैहळ', 'पुत्तदु मानुडम' आदि इनके कविता-संग्रह हैं। 'शिलंबिन शिरुनहै' और 'कोट्टियुम आंबलुम', 'नैयदलुम पोलवे' क्रमशः शिलप्पदिकारम् (दे०) और रामायण के प्रसंगों पर आधृत खंडकाव्य हैं। 'कालनदि तीरत्तिलै' कथाकाव्य है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—'पुरट्शिक्कविलर कविदै वळम्', 'तमिलिल शिरुकदै', 'पुदिय तमिल कविदै' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ। निबंध तमिल में अपेक्षाकृत नवीन साहित्य-विधा है। डा० महालिंगम ने 'उल्हम् ओरु कुडुंबळम्' (दे०), 'तमिलुक्काह', 'चिदनैक्कु' आदि निबंध-संग्रहों की रचना कर तमिल निबंधों की समृद्धि में विशेष योग दिया है। इनका दृष्टिकोण बौद्धिक अधिक है। इनकी मानवतावादी विचारधारा पर मार्क्सवाद का प्रभाव है। शालै आजकल दिल्ली विश्वविद्यालय में तमिल भाषा और साहित्य का अध्यापन करते हैं।

शास्ति *(उ० कृ०)*

'शास्ति कान्हूचरण महांति (दे०) का उपन्यास है। यह एक प्रकार से उड़ीसा के दुर्भिक्षोत्तर समय का इतिहास है। इसका नायक—अकाल पीड़ित सनिआ (दे०) साम्यवादी बन जाता है और शोषण, उत्पीड़न, धूर्त्तता आदि से समाज को मुक्त कर उसकी पुनः प्रतिष्ठा करना चाहता है। वह अंधविश्वास, अंधपरंपरा एवं सर्व-ग्रासी नीति से दूर एक नवीन समाज की कल्पना करता है। किंतु उसका यह विद्रोह निष्फल जाता है। क्योंकि अकाल के बाद भी ज़मींदार, महाजन, पाखंडी एवं वंशाभिजात्य आदि शोषक शक्तियाँ समाज की नियामिका रहती हैं। व्यभिचारी समाज के नैतिक, धार्मिक एवं न्यायिक जीवन के ठेकेदार होते हैं। समाज में चारों ओर विकृतियाँ एवं दूषण व्याप्त हैं, संवेदनशील व्यक्ति के लिए स्थान नहीं है। सनेइ विश्वजातीय एवं जाति-धर्म-निरपेक्ष समाज-गठन का पक्षपाती है, फलतः उसे मिलता है दंड 'शास्ति'।

खरसुओं नई के दोनों ओर दो गांव हैं—विष्णु-पुर एवं दुर्गापुर। विष्णुपुर के बनेइ परिड़ा का लड़का सनेइ परिड़ा चितइ सोइँ की लड़की धोबी से प्रेम करता है, किंतु उसके पिता द्वारा चिंतेइ द्वारा प्रस्तावित विवाह-प्रस्ताव इसलिए ठुकरा दिया जाता है कि धोबी के परि-वार में किसी ने कभी गुलाम की लड़की से विवाह किया था। धोबी का विवाह दुर्गापुर निवासी चिंतेइ नायक के पुत्र नितेर नायक से हो जाता है।

अकाल पड़ता है। बनेइ परिड़ा का परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। चिंतेइ और धनी हो जाता है। दुर्भिक्ष के साथ हैज़ा फैलता है। जितेइ और नितेई समाज-सेवा का कार्य करते हैं, किंतु दोनों की मृत्यु हो जाती है। धोबी विधवा के रूप में पितृगृह वापस आ जाती है। सनेइ कंकाल लेकर गाँव वापस आता है, किंतु वह जाति-च्युत अथवा समाज-बहिष्कृत है। अनुष्ठान पूरा किए बिना पुनः समाज-प्रवेश निषिद्ध है। धोबी गुप्त रूप से उसकी रक्षा करती है। इस कार्य में चाचा निधेइ नोइ की सहा-यता उसे मिलती है। इनकी सहायता से सामाजिक अनु-ष्ठान पूरा कर वह पुनः समाज में प्रवेश करता है और अपने अकथ परिश्रम से वह समृद्ध हो जाता है।

चिंतेइ धोबी की श्वसुराल की सारी संपत्ति हड़प लेता है। धोबी विधवा का जीवन बिताती है। धोबी की माँ और चाचा सनेइ के साथ उसका पुर्नविवाह चाहते हैं, किंतु चिंतेइ को यह मंजूर नहीं। सनेइ स्वयं धोबी से आग्रह करता है। किंतु सामाजिक बंधनों में जकड़ी धोबी अपने को विवश पाती है। सनेइ पगली कुइं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विवाह कर लेता है और विजातियों को साग्रह अपनाकर खेती करता है। सनेइ की बहन पुनी, अछूत मधु मोइ के घर में पत्नी के रूप में रहती है क्योंकि हैज़े से उसने पुनी की रक्षा की थी। सनेइ समाज-तिरस्कृत अपनी बहन को पुनः अपना लेता है। धोबी की माँ की अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिए चितेइ सनेइ के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचता है। किंतु सनेइ कुइँ को छोड़ नहीं सकता। इसी अंतर्द्वंद्व में घर व गाँव छोड़कर वह चला जाता है। वह घर के दरवाज़े पर लिख जाता है—'यह घर, यह संपत्ति धोबी के धन से निर्मित है।'

कथा का आरंभ एवं अंत दोनों ही नाटकीय एवं करुण हैं। कंगाल सनेइ एवं विधवा धोबी से उपन्यास का प्रारंभ होता है। अनेक उत्थान-पतन के बाद पुनः कंगाल सनेइ एवं विधवा धोबी पाठक से विदाई लेते हैं। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक एवं जीवंत है। सूक्ष्म मनोवृत्तियों एवं उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को अंकित करने का प्रयास किया गया है। नाम भी अत्यंत व्यंजनात्मक है। सनेइ प्रेम व सामाजिक विद्रोह में असफल होकर पाता है 'शास्ति'। पारस्परिक रीति-नीति को सर्वस्व मानने वाली धोबी भी दंडित होती है। अंत में वह बनती है पाषाणी, मूक, बधिर। धन-लोलुप चितेइ भी रिक्त, शून्यहस्त दिखाई पड़ता है। आत्मा का सौदा वह कर नहीं पाता। बनेइ परिड़ा वंशाभाजित्य के लिए दंडित होता है। यह उपन्यास अपने नाटकीय संलाप, सुस्पष्ट, स्वाभाविक वर्णन, सहज-सरल भाषा की दृष्टि से एकांत उपभोग्य वन गया है।

शास्त्रीय मराठी व्याकरण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1900 ई०]

यह मराठी व्याकरण-ग्रंथों में अतिशय प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण व्याकरण है। इसके लेखक श्री मो० के० दामले हैं। यह व्यापक, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन करने वाला व्याकरण-ग्रंथ है। इसमें दामले जी ने अपने पूर्ववर्ती व्याकरण-ग्रंथों से भी समस्त सामग्री का संकलन कर यथास्थान खंडन-मंडनात्मक शैली का आश्रय लेते हुए अपने निर्णय दिए हैं। पूर्वकालीन व्याकरणों को दृष्टि में रखकर, पूर्ववर्ती ग्रंथों के दोषों से अछूते रहकर लिखा गया यह वृहद् व्याकरण है।

लेखक की न्यायशास्त्र में विशेष गति होने के कारण इसकी विवेचना-शैली संतुलित, तटस्थ एवं तर्कपूर्ण है। शब्दों के प्रकार, नाम-प्रकार, सर्वनाम, धातु-वर्गीकरण, सामान्य लिंग, नाम-विभक्ति, कारक-चिह्न तथा संयुक्त क्रियाओं आदि के लेखन से उसके भाषाधिकार का परिचय तथा विज्ञाननिष्ठ विवेचन-शैली का परिचय मिलता है।

मराठी भाषा का शास्त्रीय व्याकरण होते हुए भी यह ग्रंथ मराठी भाषा की प्राक्‌दशा से आधुनिक काल तक भाषा-विकास में आए परिवर्तनों का दिग्दर्शन नहीं कराता है; भाषा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन प्रस्तुत नहीं करता—केवल सुसंस्कृत, परिष्कृत वर्तमान मराठी भाषा के स्वरूप को प्रस्तुत करता है। इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं; परंतु फिर भी यह एक उच्चकोटि का मराठी भाषा के अध्ययन-संबंधी अमूल्य ग्रंथ है।

शाह अब्दुल करीम *(सिं० ले०)* [जन्म—1537 ई०; मृत्यु—1626 ई०]

शाह अब्दुल करीम बुलड़ी नामक गाँव के निवासी थे और वहीं इनकी दरगाह भी है। ये जब छोटे थे तब इनके पिता का देहांत हो गया था अतः इनका पालन-पोषण इनके बड़े भाई जलाल शाह ने किया था। बचपन से ही अब्दुल करीम का संबंध सूफ़ी दरवेशों से हो गया था। घर-गृहस्थी, खेती-बारी आदि का भार सँभालते रहने पर भी ये हमेशा परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते थे।

शाह अब्दुल करीम के केवल 93 बैत प्राप्त हो सके हैं जो इनकी मृत्यु के छह वर्ष पश्चात् इनके प्रिय शिष्य मियाँ मुहम्मद रज़ा ने 'बयान-अल्-आरिफ़ीन् व तंबीह-अल्-गाफ़िलीन' नामक फ़ारसी किताब में दिए हैं। इस किताब में इनका जीवन-चरित्र और इनके प्रवचन भी दिए गए हैं। इनके बैंत तसव्वुफ़ के गहन सिद्धांतों से ओतप्रोत हैं। इन पर फ़ारसी के प्रसिद्ध सूफ़ी शायर रूमी की मसनवी का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। कुछ बैंतों में इन्होंने सिंध की प्रसिद्ध प्रेम-गाथाओं की ओर संकेत कर उनके आधार पर अपने दार्शनिक विचारों को प्रकट किया है। इनके बैंतों की कई पंक्तियाँ जीवन की अनुभूतियों से पूर्ण होने के कारण सिंधी-जनता में कहावतों की तरह प्रसिद्ध हो चुकी हैं। भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से इनकी रचना का सिंध के परवर्ती सूफ़ी-कवियों पर पर्याप्त मात्रा में प्रभाव पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाह अब्दुल लतीफ़ *(सिं० ले०)* [जन्म—1689 ई०; मृत्यु—1752 ई०]

शाह अब्दुल लतीफ़ सिंध के सूफ़ी संत कवियों के शिरोमणि हैं। इनका जन्म हैदराबाद ज़िले के हाला हवेली नामक गाँव में हुआ था। विद्वानों का मत है कि इन्होंने किसी मकतब में नियमपूर्वक जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं की थी।

इन्होंने सूफ़ी-दरवेशों, साधु-संन्यासियों और योगी-महात्माओं के संग से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। सिंध और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के भ्रमण से भी इन्हें काफ़ी अनुभूति प्राप्त हुई थी जिसका वर्णन इनके काव्य में मिलता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् जीवन के अंतिम वर्षों में ये कुटुंब और शिष्यों के साथ एक 'भिट' (टीले) पर निवास-स्थान बनाकर रहने लगे थे और वहीं इनकी मृत्यु हुई थी। इनकी दरगाह उसी भिट पर बनी हुई है जहाँ हर साल मेला लगता है। भिट पर जाकर रहने के कारण इस सूफ़ी संत कवि को 'शाह लतीफ़ भिटाई' भी कहते हैं।

इनका कलाम जिस ग्रंथ में संग्रह किया गया है, उसे 'शाह जो रिसालो' (दे०) कहते हैं। संपूर्ण काव्य अलग-अलग अध्यायों में विभाजित है जिसे 'सुर' कहा गया है। इनके काव्य के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस कवि पर जितने आलोचनात्मक ग्रंथ मिलते हैं उतने और किसी भी सिंधी-कवि अथवा लेखक पर नहीं मिलते।

इन्होंने अपनी कृति में प्रायः सिंध की प्रसिद्ध प्रेमगाथाओं से पात्रों और घटनाओं को चुनकर उनके आधार पर आध्यात्मिक रहस्यों की ओर संकेत किया है। इस काव्य-ग्रंथ में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, प्रादेशिक दृश्यों और रीति-रिवाजों का यथार्थ और प्रभावपूर्ण चित्रण, सिंध-देश के लिए प्रेम की अभिव्यक्ति, दलित और पीड़ित मनुष्यों के साथ सहानुभूति, विश्व-कल्याण के उद्गार आदि भी यथास्थान सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किए गए हैं। इनकी भाषा और काव्यशैली का परवर्ती सिंधी-साहित्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। न केवल पढ़े-लिखे और विद्वान् लोग इनसे प्रभावित हैं, अपितु ग्रामीण और अशिक्षित लोग भी इनकी काव्य-कृति से प्रभावित हैं। 'शाप जो रिसालो' सिंधी-साहित्य की सर्वोत्तम कृति मानी गई है।

शाह, चुन्नीलाल वर्धमान *(गु० ले०)* [जन्म—1887; मृत्यु—1966 ई०]

ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासकार के रूप में ख्यातिप्राप्त क० मा० मुंशी (दे०) के समवयस्क चुन्नीलाल शाह ने अपने जीवन का अधिकांश भाग (लगभग 35 वर्ष) 'प्रजाबंधु' का संपादन करते हुए बिताया। 'प्रजाबंधु' के बंद होने पर ही ये 1955 ई० में सेवा-निवृत्त हुए। गुजराती पत्रकारिता के इतिहास में ये सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'साहित्यप्रिय' उपनाम धारण कर वर्षों तक ग्रंथ विवेचन और साहित्य-चर्चाएँ प्रस्तुत कीं। गुजराती पत्रकारिता के क्षेत्र में तो वस्तुतः साहित्य-चर्चा के ये ही आदि संस्थापक थे। साहित्य-सृजन के क्षेत्र में भी एक लंबे अर्से तक अनवरत रूप से क्रियाशील रह कर इन्होंने अनेक उपन्यास लिखे। ऐतिहासिक उपन्यासों में 'कर्मयोगी', 'नीलकंठनूं वाण' तथा 'रूपमती' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। 'विषचक्र', 'तपोवन' व 'कंटक छायो पंथ' इनके प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास हैं। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध व पठित उपन्यास 'जिगर अने अमी' है जिसमें इन्होंने बड़ी चतुराई से प्रेतविद्या की चमत्कारपूर्ण अर्द्ध-आध्यात्मिकता और अर्द्ध-वास्तविकता को संग्रथित किया है। स्व० चुन्नीलाल शाह की भाषा-शैली सरल, स्वस्थ व रोचक है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्र-कल्पना और वातावरण-सृजन सदा यथार्थ के निकट रहे हैं। इनके आदर्शवादी उपन्यासों में वस्तु-संगठन शिथिल होने पर भी शैली की प्रवाहात्मकता व सरलता विशेष आकर्षण का विषय रही है।

शाह जो रिसालो *(सिं० कृ०)*

यह सिंधु के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि शाह अब्दुल लतीफ़ (दे०) (1689-1752 ई०) का काव्य है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। पाकिस्तान के प्रसिद्ध सिंधी-कवि शेख अयाज़ (दे०) ने इस काव्य का अनुवाद उर्दू पद्य में किया है। इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ी और हिंदी में भी इस ग्रंथ के चुने हुए अंशों के अनुवाद उपलब्ध हैं। शाह अब्दुल लतीफ़ ने इस काव्यकृति में प्रायः सिंधु प्रदेश की प्रेमगाथाओं से पात्रों को चुनकर उनका चरित्र-चित्रण करते हुए सूफ़ीमत के अनुसार आध्यात्मिक रहस्यों की व्याख्या की है। प्रासंगिक रूप से सिंधु-प्रदेश के विभिन्न स्थानों का प्रकृति-चित्रण और साधारण जनता के जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आभास भी इस काव्य में द्रष्टव्य है। वर्ण्यविषय को विभिन्न सुरों में विभाजित किया गया है। 'शाह जो रिसालो' सिंधी-साहित्य की अमूल्य निधि है। परवर्ती सिंधी-काव्य पर इस कृति की छाप स्पष्टतः दृष्टिगत होती है। सिंधु के पढ़े-लिखे व अनपढ़ लोग इस पीयूषवाणी से हमेशा प्रेरणा पाते रहें हैं।

शाह बहराम हुस्नबानो *(पं० कृ०)*

लेखक—इमामबख़्श। यह रचना फ़िरदौसी के 'शाहनामा' की एक कथा पर आधारित कवि इमामबख़्श (दे०) के यश का मूलाधार है। इसमें इराक के राजकुमार बहराम ज़ोर, उसकी प्रेमिका हुस्नबानो और सफ़ेद देव तथा उसके मित्र-देवों की चमत्कारपूर्ण कथा है। वातावरण अत्यंत समृद्ध है। देव, दानव और मानव-पात्रों से युक्त इस कथा में अनेक अलौकिक और असंभव घटनाएँ हैं जिनके कारण औत्युक्य उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। रचना में भाव अथवा विचार-पक्ष का अभाव है, केवल घटना-वैविध्य की ही योजना प्रमुख है। 'दवैया' छंद में निबद्ध यह रचना शिल्प और भाव की दृष्टि से सर्वथा सामान्य स्तर की है। लेखक का उद्देश्य जनमनरंजन द्वारा लोक-ख्याति प्राप्त करना है और उसमें वह निश्चय ही सफल हुआ है।

शाह मुहम्मद *(पं० ले०)* [जन्म—1782 ई०; मृत्यु—1862 ई०]

पंजाबी शौर्य के अमर गायक शाह मुहम्मद का जन्म ज़िला अमृतसर के वडाला नामक स्थान पर हुआ था। ये जाति के कुरेशी थे। काव्य-रचना की प्रवृत्ति इन्हें पैतृक परंपरा से प्राप्त हुई थी। इनके पुत्र हाशम शाह (दे०) भी अच्छे कवि हुए हैं। इनके अनेक संबंधी महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी और सैनिक थे। ये महाराजा की उदार नीतियों के प्रशंसक और स्वयं बड़े उदार-हृदय एवं सहज मानव-प्रेमी व्यक्ति थे। ये मातृभूमि-भक्ति, नीतिज्ञ और व्यवहार-कुशल थे। इनके इस बहुमुखी व्यक्तित्व की झलक इनकी कविता में स्पष्ट मिल जाती है।

शाह मुहम्मद की प्रसिद्ध रचना 'जंगनामा सिंघा ते फिरंगियां दा' (दे०) है जो पंजाबी-साहित्य में 'किस्सा शाह मुहम्मद' के नाम से भी विख्यात है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित क़िस्सा 'सस्सी-पुन्नू' एवं कुछ स्फुट पद्य भी मिलते हैं किंतु इनकी ख्याति का मुख्य आधार उपर्युक्त वीर-काव्य ही है।

शाह, राजेंद्र *(गु० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

राजेंद्र शाह मूलतः खेड़ा ज़िले के कपडवंज नामक स्थान के निवासी हैं और आजकल बंबई में रह कर एक प्रिंटरी चला रहे हैं। व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में ये घूम आए हैं। कभी शिक्षक हुए, ज्योतिसंघ में नौकरी की और कभी छोटा-मोटा व्यापार किया; अब मुद्रक बन गए हैं। देशभक्ति, संवेदनशीलता और साहसिकता इनके चरित्र के प्रमुख लक्षण हैं। विविध व्यावसायिक स्रोतों का अनुभव लेते हुए भी कवि-कर्म से कभी भी विरत नहीं हुए। अब तक इनके चार कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं: 'ध्वनि' (दे०), 'आंदोलन', 'श्रुति' और 'शांत कोलाहल'। 'ध्वनि' नामक संग्रह में प्रकृति, प्रणय और आत्मसंवेदना से युक्त कविताएँ दृष्टिगत होती हैं। यों तो कवि संसार की भाँति ही कविता में भी निरुद्देश्य भ्रमण को स्वीकार करता है पर इसके द्वारा 'मैं' की अभिव्यक्ति कर 'मैं' को प्राप्त करने की क्रिया में लीन हो जाता है। इसका पारमार्थिक संदर्भ महत्वपूर्ण है। इनकी कविता में मनोहर भावप्रतीक प्रेम का कोमल स्पंदन प्रस्तुत करते हैं। राजेंद्र की शैली ऐंद्रियता का स्पर्श करती चलती है। 'शांत कोलाहल' में नाजुकख्याली और गतिशील चित्र प्रस्तुत करने की कवि-क्षमता का अद्भुत परिचय मिलता है। राजेंद्र शाह की कविता का सबसे आकर्षक बिंदु है उनके गीत। कहा जाता है कि न्हानालाल (दे०) और कांत की 'लयहिल्लोल' वाली शैली नवीन अवतार धारण कर राजेन्द्र के गीतों में उतर आई है। इनमें मौलिक कल्पना और उच्चकोटि की भाषा के दर्शन होते हैं। इन्होंने भजनों की शैली में भी गीत-रचना की है; इनकी भाषा में बँगला, मराठी, हिंदी और उसकी बोलियों व उपभाषाओं के अनेक प्रयोग दर्शनीय हैं। इनका 'छलनिर्मल' भावोष्म और परंपरित संवादशैली में लिखा गया प्रणयकाव्य है। 'शांत कोलाहल' में आकर इनकी शैली काफ़ी परिपक्व और प्रौढ़ हो गई है। नवीनतर गुजराती कवियों में राजेंद्र शाह का अपना एक अनूठा स्थान है।

शाह, श्रीकांत *(गु० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

इनका जन्म बाँटवा (सौराष्ट्र) में हुआ तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं पर हुई थी। इसके बाद एम० ए० तक इन्होंने अध्ययन किया था। संप्रति ये विवेकानंद आर्ट्स कालेज में मनोविज्ञान के प्राध्यापक हैं। साहित्य-जगत् में इनका प्रवेश 'अस्ती' नामक उपन्यास से हुआ था। 'श्रीकांत शाह' (काव्य-संग्रह), 'त्रिजोमाणस' (उपन्यास) तथा 'तिराड़ अने एकांकिओ' इनकी अन्य साहित्यिक कृतियाँ हैं जिनसे इन्होंने क्रमशः कवि, उपन्यासकार तथा नाटककार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, फ़िल्म तथा शिल्प-स्थापत्य में भी इनकी रुचि है।

ये बुद्धिवादी हैं किंतु बौद्धिकता के प्रति अनन्य आस्था होने पर भी इन्होंने भावना का विरोध नहीं किया। हाँ, एकांतिक भावनावाद अथवा बुद्धिवाद की स्थिति इन्हें स्वीकार्य नहीं है।

शाह, साबित अली *(सिं० ले०)* [जन्म—1740 ई; मृत्यु—1810 ई०]

सैयद साबित अली शाह मूलतः मुलतान के निवासी थे। बाद में ये सिंध के सेव्हण नामक नगर में आकर रहे थे। ये सिंधी, उर्दू, अरबी और फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे। इन्हें बचपन से ही मंदाहें, कसीदे आदि रचकर गाने का शौक था। उर्दू और फ़ारसी-शायरों के लिखे हुए मरसिये पढ़ने के पश्चात् ये सिंधी में मरसिये लिखने लगे थे। इन्होंने सिंधी, उर्दू और फ़ारसी भाषाओं में काव्य-रचना की है जो 'कुलयात' या 'गंज' नाम से प्रसिद्ध है। इनके काव्य की भाषा बोलचाल वाली, मुहावरेदार और प्रभावपूर्ण है। ये पहले सिंधी कवि हैं जिन्होंने फ़ारसी छंदों के आधार पर सिंधी में मरसिये और कसीदे लिखे हैं। अपने समकालीन कुछ सिंधी कवियों और विद्वानों पर व्यंग्यपूर्ण कविताएँ लिखने वाले भी ये प्रथम कवि हैं। इनकी इस प्रकार की कविताएँ 'चिण्णि' (चिनगारी) नाम से संग्रह की गई हैं। सिंधी-काव्य-जगत् में ये प्रभावपूर्ण मरसिये लिखने के कारण ही प्रसिद्ध हैं। इनके मरसिये आज भी अनेक सिंधी मुसलमानों को कंठस्थ हैं।

शाह हुसैन *(पं० ले०)* [समय—1539-1599 ई०]

ये लाहौर के प्रसिद्ध सूफ़ी संत थे। इनके पिता का नाम शेख उसमान था जो जुलाहे का कार्य करते थे। आरंभ में शाह हुसैन इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी थे किंतु बाद में इनका झुकाव सूफ़ी-मत की ओर हो गया। पहले इन्होंने शाह अबूबकर को अपना धर्मगुरु बनाया किंतु कालांतर में सूफ़ी-संत बहलोल के शिष्य हो गए। एक प्रचलित किंवदंती के अनुसार इन्हें माधोलाल नामक एक हिंदू बालक से बहुत प्रेम था अतः इनका नाम 'माधोलाल हुसैन' प्रसिद्ध हो गया। किंतु डॉ० मोहनसिंह ने 'हिस्टरी आफ दि सिख लिट्रेचर' में इसका खंडन किया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार ये सदा लाल वस्त्र धारण करते थे, इसी कारण लोग इन्हें लाल हुसैन कहा करते थे।

पंजाबी में शाह हुसैन द्वारा रचित काफ़ियाँ, राग, सबद तथा दोहे प्रसिद्ध हैं। विशेषतः 'काफ़ियाँ' ही इनकी ख्याति का प्रमुख आधार हैं। इनके काव्य का एकमात्र विषय अलौकिक प्रेम है। भावावेश में आकर जब ये प्रभु-प्रेम का गान करते थे तो इनकी चेतना आनंद-लोक में विलीन हो जाती थी। इनकी कविता रागात्मक लालित्य के अतिरिक्त भाषागत माधुर्य एवं संगीतात्मक गुणों से भी युक्त है। उदाहरण—

मन अटकिआ बेपरवाह दे नाल।
उस दीन दुनी दे शाह दे नाल॥
काजी मुआं मत्तों देंदे, खरे सिआने राह दसेंदे।
इश्क नूं की लग्गे राह दे नाल। मन अटकिआ···

शाहाणी, दयाराम गिदूमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

दयाराम का जन्म सिंध के एक धनाढ्य ज़मींदार वंश में हुआ था। ये बचपन से ही असाधारण प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। विद्यार्थी-जीवन में ही इन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दिया था। बंबई विश्वविद्यालय से बी० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् ये न्याय-विभाग में कार्य करने लगे थे और 1911 ई० में न्यायाधीश के पद से निवृत्त हुए थे। ये अपने समय के महान् समाज-सुधारक थे। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों को नष्ट करने तथा स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए कमर कस ली थी। साहित्य के क्षेत्र में ये सिंधी के आरंभिक गद्य-लेखकों में से एक हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ आध्यात्मिक विषयों पर हैं। 'मन लाइ चाबुक सें रिहाण' दयाराम जी की आत्मिक भावों से पूर्ण पद्यात्मक गद्य में लिखित प्रसिद्ध कृति है। इसके अतिरिक्त इन्होंने श्रीमद्भगवतगीता (दे० गीता), 'जप जी साहिब', 'सुखमणी साहिब' और 'पतंजलि-योग-दर्शन' पर भी सुंदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यात्मक ग्रंथ लिखे हैं, जो प्रांजलता और गंभीरता से पूर्ण गद्य-शैली के सुंदर उदाहरण हैं। दयाराम की भाषा मँजी हुई और प्रसादगुण से पूर्ण है जिसमें मुहावरों का यथोचित प्रयोग मिलता है।

शिखरिणी *(हिं० छं०)*

शिखरिणी छंद में सत्रह वर्ण होते हैं। इनमें 6 और 11 वर्णों पर यति होती है। वर्णों का विन्यास यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु के क्रम से होता है। उदाहरण—

अनूठी आभा से, सरस सुषमा से सुरस से,
बना जो देती थी, बहु गुणमयी भू विपिन को।
निराले फूलों की, विविध दलवाली अनुपमा,
जड़ी बूटी हो हो, बहु फलवती थीं विलसती।
(हरिऔध : प्रियप्रवास)

शिट्रिलक्कियम *(त० पारि०)*

शिट्रिलक्कियम तमिल साहित्य की एक विधा है। इसमें प्रबंध काव्य तथा प्रगीत-काव्य के कुछ तत्त्व होते हैं। इसका आकार प्रगीत से विस्तृत होता है। इसमें धारावाहिक कथा नहीं होती है। इसे वर्णनात्मक काव्य का एक रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार की कृतियों में किसी व्यक्ति, स्थान या घटना का वर्णन होता है। उदाहरणतया 'किळिप्पत्तु' नामक कृति के दस पदों में तोते के बाह्य सौंदर्य और उसके जीवन का वर्णन है। तमिल में शिट्रिलक्कियम के अनेक रूप प्राप्त होते हैं जैसे—उला, मडल, भरणी, पळ्ळु, कुरवंजि (दे०), पिळ्ळैत्तमिल (दे०), मेयकीर्त्ति, वरलाट्र, वंजि, किलिक्कण्णी, नोंडि नाटकम् (दे०) आदि।

शितू *(म० पा०)*

गो० नी० दांडेकर (दे०) के उपन्यास और उन्हीं के नाटक 'शितू' की नायिका का वास्तविक नाम है सीता। इस अनाथ मातृविहीन आदिवासी लड़की को, जो अपने घरवालों से बिछुड़ जाती है। समुद्र के किनारे से नायक विश्वनाथ का पिता अप्पा उठा लाता है, उसका पालन-पोषण करता है। यहाँ आने से पूर्व ही वह अकाल विधवा हो जाती है क्योंकि उसकी वय के सातवें वर्ष में ही उसका पति मर जाता है। इस घर में वह दासी के समान अथक परिश्रम करती है, सबकी सेवा करती है। नायक के साथ रहने और समवयस्क होने के कारण दोनों का परस्पर प्रेम हो जाता है पर वह जानती है कि सामाजिक रूढ़ियों, जातिभेद एवं विधवा होने के कारण उनका विवाह नहीं हो सकेगा। दोनों के पिता भी इस विवाह के विरुद्ध हैं, अतः प्रेमी को अपमान से बचाने, सामाजिक मर्यादा का पालन करने के लिए वह स्वयं आत्मघात कर लेती है और विश्वनाथ इस आघात को न सह सकने के कारण पागल हो जाता है। यह युवती प्रेमी के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाली आदर्श युवतियों की परंपरा में आती है।

शिथिल बलगा *(उ० कृ०)*

'शिथिल बलगा' रबिसिंह (दे०) का कविता-संग्रह है। इसमें विप्लवी का विद्रोही स्वर मिलता है। इसमें 'युद्धं देहि' का आह्वान नहीं; वरन् कहीं-कहीं एक प्रकार का क्रंदन सुनाई पड़ता है। इसके आक्रोश के तार-तार में अभिमान है, किंतु अपने अतिरिक्त किसी के ध्वंस की कामना नहीं है। दारुण दुःख का चित्रण इसमें है, किंतु समाधान नहीं है। इसकी शिथिलता चिरंतन न होकर नूतन साहस और शक्ति-संचय के लिए है।

इस रचना में आधुनिक कविता की दुर्बोधता नहीं है और न नवीन प्रयोग के नाम पर अनर्गलता ही है। स्वाभाविक छंदोमयता से प्रत्येक कविता परिपुष्ट है। इन कविताओं का रंग कल्पना-प्रसूत नहीं, जीवन की प्रत्यक्षानुभूति से उद्भूत है। भाषा नितांत स्वाभाविक है। इसमें भाव और अभिव्यक्ति एक है।

शिबली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

मौलाना शिबली निअमानी आज़मगढ़ में पैदा हुए। आरंभिक शिक्षा समाप्त कर इन्होंने मौलवी फ़ारुक़ से साहित्य तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने कुछ समय वकालत की और उसके बाद अलीगढ़ में प्राध्यापक रहे। यहाँ पर इन्होंने फ़्रेंच भाषा का अध्ययन किया। बाद में इन्होंने टर्की, मिस्र, शाम आदि देशों की यात्रा की। सरकार ने इन्हें 'शम्मुलउलमा' की उपाधि प्रधान की। कुछ समय तक हैदराबाद में निवास करने बाद ये लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए और यहाँ 'दारुल-अलूम' की दशा सुधारने में लग गए। अपनी आयु के अंतिम भाग में इन्होंने 'सीरत-उल-नबी' (दे०) के संकलन का दायित्व स्वीकार किया किंतु उसके समाप्त होने से पूर्व ही इनका देहांत हो गया।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'शरुल अज्मू', 'इल्मुल-कलाम', 'अल्मामून', 'अल्फ़ारूक़', 'अल्फ़ज़ाली', 'स्वानिअ उम्री', 'मौलाना रूम' और 'रसायिल-ए-शिबली'। इनकी ख्याति अधिकतर दार्शनिक आलोचना तथा शोध-कार्य के कारण हैं। भाषा में प्रसाद गुण और अर्थगांभीर्य दोनों विद्यमान हैं। शैली में कवित्व कूट-कूट कर भरा है। 'मुवाज़नए-अनीस-ओ-दबीर इनकी वास्तविक रुचि का परिचायक है। इन्होंने उर्दू, फ़ारसी दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है। भाषा शैली सबल, आकर्षक तथा काव्य-गुण से परिपूर्ण है।

शिरस्तेदार *(म० कृ०)* [रचना-काल—1881 ई०]

विनायक कोंडदेव ओक के इस लघु सामाजिक उपन्यास का विषय है उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में महाराष्ट्र के कर्मचारी वर्ग में फैली हुई रिश्वतखोरी। पुस्तक का विषय सीमित है। यदि लेखक ने आधारभूमि तनिक विस्तृत बनाई होती तो तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अधिक प्रत्ययकारी हो सकता था। फिर भी रिश्वतखोरी के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालने में उपन्यासकार सफल रहा है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से यह रचना सामान्य है।

शिरुकाप्पियम् *(त० पारि०)*

'शिरुकाप्पियम्' का शाब्दिक अर्थ है लघु महाकाव्य। महाकाव्य की तुलना में शिरुकाप्पियम् का वर्ण्य विषय अपूर्ण प्रतीत होता है। महाकाव्य में पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन होता है जबकि इसमें दो या तीन पुरषार्थों का वर्णन किया जाता है। आकार की लघुता एवं विषय के सीमित होने के कारण इसमें महाकाव्य के समान विविध वस्तु-वर्णन के विस्तार का अवकाश नहीं रहता। यद्यपि इसमें महाकाव्य के अनेक तत्त्व प्राप्त होते हैं तथापि वह महाकाव्य का लघु रूप नहीं है, एक स्वतंत्र काव्य-विधा है। इसका रूप बहुत कुछ वर्तमान कथा-काव्यों का-सा है। इस विधा में रचित कृतियों में एक सहस्र से अधिक पद भी हो सकते हैं। ईसा की पाँचवीं से आठवीं शती तक इस विधा को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली थी। अनेक उच्चकोटि के कवियों ने शिरुकाप्पियम् की रचना की थी। आज इस विधा में काव्य-रचना करने वाले कवि वहुत कम हैं। वर्तमान समय में इसका स्थान कथाकाव्यों ने ले लिया है।

शिरूरकर, विभावरी, *(म० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

विभावरी शिरूरकर नाम से साहित्य की रचना करने वाली श्रीमती मालतीबाई बेडेकर का जन्म कुलावा ज़िले के आवास नामक गाँव में एक साधारण परिवार में हुआ था। सुधारक पिता एवं कर्मठ माता की पुत्री ने 1923 ई० में बी० ए० तथा 1928 ई० में एम० ए० कर कुछ समय तक पूना में अध्यापन किया और फिर सोलापुर के क्रिमिनल सेंट्लमेंट (अपराधी जाति की बस्ती) के निरीक्षक रूप में कार्य किया। भारत-सेवक-समाज की सदस्या बन कर इन्होंने यह कार्य बड़ी लगन से किया। तीन कथा-संग्रह, दो नाटक और चित्रपट-कथाओं के अतिरिक्त इन्होंने अब तक पाँच उपन्यास लिखे हैं। सामाजिक क्रांति की विचारधारा को कलापूर्ण शैली में निर्भीकतापूर्वक व्यक्त करने, यथार्थवाद से गंदगी और अश्लीलता को अलग रखने, मानव-जीवन का मार्मिक तथा सहानुभूतिपूर्ण अवलोकन करने, बाह्य संघर्ष के स्थान पर मानसिक द्वंद्व का चित्रण करने, स्त्री हृदय की आशा-आकांक्षा, पीड़ा आदि को आत्मीयतापूर्वक चित्रित करने के लिए इनका कथा-साहित्य विख्यात है। इनकी भाषा-शैली सुकुमार, मधुर और रसभीनी है। कला का पूर्ण विकास होते हुए भी इनकी कृतियाँ पलायनवादी नहीं हैं। मुख्य रचनाएँ हैं—'हिंदोळ्यावर' (झूले पर), 'विरलेलें स्वप्न' (नष्ट स्वप्न), 'बळी', 'जाई', 'दोघांचें विश्व' (दोनों का संसार), 'कळ्यांचे निःश्वास' (कलियों के निःश्वास)।

शिलप्पदिकारम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः ईसा की दूसरी-तीसरी शती]

'शिलप्पदिकारम्' तमिल का प्रथम महाकाव्य है और इसके रचयिता हैं इळंगोवडिहळ। तमिल 'शिलंबु' का अर्थ है 'नूपुर'। इस महाकाव्य की संपूर्ण कथा नूपुर के चारों ओर घूमती है, अतः इसे 'शिलप्पदिकारम्' (नूपुर-कथा) कहा गया। इस महाकाव्य के नायक-नायिका हैं कोवलन और कण्णकि। कुछ विद्वान कोवलन-कण्णकि की कथा को तत्कालीन समाज में प्रचलित लोक-कथाओं से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहीत मानते हैं तो कुछ उसे कवि-कल्पना-प्रसूत मानते हैं। यह महाकाव्य 'पुहारक्कांड्म', 'मदुरैक्कांडम', वंजिक्कांडम' नामक तीन कांडों में विभाजित है जिनमें क्रमशः चोल, पांड्य और चेर राज्यों का वर्णन है। इसमें कवि ने तत्कालीन तमिल समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ समाज में प्रचलित नृत्यों, व्यवसायों आदि का परिचय भी दिया है। नृत्य एवं संगीत की चर्चा करते समय कवि ने रंगमंच औरु राग-रागिनियों का सूक्ष्म विवेचन किया है। इस महाकाव्य के विभिन्न कांडों में क्रमशः श्रृंगार, करुण और वीर रस की अभिव्यंजना है। तमिल विद्वानों द्वारा मान्य साहित्य के तीन अंग 'इयल' (काव्य), 'इशै' (संगीत) और 'नाडहम्' (नाटक-नृत्य) इस महाकाव्य में प्राप्त हो जाते हैं। संघ-साहित्य में उल्लिखित पाँच भू-भागों का वर्णन भी इस महाकाव्य में मिल जाता है। संघकाल में प्रगीत-काव्यों की प्रचुरता रही। परवर्ती काल में वर्णनात्मक काव्य लिखे जाने लगे। 'शिलप्पदिकारम् मूलतः वर्णनात्मक काव्य है परंतु इसके कुछ अंश प्रगीत-काव्य के समान प्रतीत होते हैं। इस महाकाव्य की भाषा अत्यंत सरस, सरल और परिष्कृत है। शैली प्रवाहमयी है। कही-कहीं कवि ने लोकगीतों की शैली का प्रयोग किया है। इस कृति पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी चा चुकी हैं।

शिला तीर्थ *(उ० कृ०)*

'शिलातीर्थ' चित्तरंजनदास (दे०) की यात्रा-संबंधी रचना है। लेखक ने हिमालय के सान्निध्य में जो कुछ अनुभव किया है वही इसमें शब्दबद्ध है। इसमें तीर्थ-दर्शन नहीं, हिमालय-दर्शन प्रमुख है। केदारनाथ, तुंगनाथ एवं बदरीनाथ इन तीन तीर्थों का इसमें वर्णन है। केवल प्रकृति-वर्णन या तीर्थ-वर्णन रचनाकार को अभीष्ट नहीं अतः सुख-दुःख से परिपूर्ण, मलिनता व उज्ज्वलता के छाया-प्रकाश से आकर्षक इस धरती के जीवन की झाँकियाँ भी दिखाई गई हैं। हिमालय की गोद में अवस्थित छोटे-छोटे रमणीय गाँवों की अबाध जीवनधारा इसमें रूपायित है। चल-अचल, प्रकृत सौंदर्य की अपेक्षा अनंत जीवन-धारा का चिर सौंदर्य लेखक को अधिक मुग्ध करता है। सर्वत्र वैचारिक, गांभीर्य की व्याप्ति इसमें मिलती है।

विषयवस्तु के अनुरूप भाषा व शैली सशक्त है। उसमें विचारों के भार-वहन की शक्ति के साथ दृश्यांकन की चित्र-विधायिनी शक्ति भी है। प्रत्यक्षानुभूति के कारण इसमें एक भास्वरता है। संक्षेप में यह एक सशक्त रचना है।

शिलपतीर्थ *(उ० कृ०)*

'शिलपतीर्थ' सौंदर्य-आराधक, कलाप्राण चित्रकार विनोद राउतराय (दे०) के तीर्थाटन का स्मारक है। इस भ्रमण-साहित्य में शिल्पी विनोद राउतराय के दस यात्रा संस्मरण संकलित हैं। शांतिनिकेतन में पढ़ते समय कलाकार ने इन सांस्कृतिक कलात्मक गौरवस्थलों की यात्रा की थी जो चित्रकार के लिए तीर्थाटन सदृश पुण्यावह है। कवि हत-गौरव उन अवशेषों में पहुँचकर अतीत की न जाने किन उजली-धुँधली वीथियों में खो जाता है। वर्तमान का कठोर यथार्थ आत्महारा शिल्पी को झकझोर देता है—किंतु फिर भी जैसे शिल्पी की विकल चेतना कहीं कुछ पा लेना चाहती हो। वह उज्ज्वल अतीत, मलिन, वर्तमान, अज्ञात भविष्य की उलझी रेखाओं में स्वयं उलझ जाता है। अनजाने में लेखक ने अनेक प्रश्न उठाये हैं—सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों पर। चित्रकार की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति तथा कला-संबंधी गंभीर अवबोध, सर्वत्र स्पष्ट है। भाषा अपनी रमणीयता, मूर्ति-विधायिनी शक्ति एवं उड़िया सुषमा से प्राणवंत है। इन स्मृति-चिह्नों के अंकन में कवि की आवेगमयी भावनाएँ तरल होकर काव्यमयी हो गई हैं; फलतः अंतिम तीन कविताओं की सृष्टि हुई है। वस्तुतः अपने ढंग की यह अनूठी रचना है।

शिव (रुद्र) *(सं० पा०)*

शिव (रुद्र) को सृष्टि-संहार का देवता माना गया है। इसका निवास-स्थान मूजवत् (मूंजवान्) पर्वत अथवा मेरुपर्वत बताया गया है और इसका प्रिय निवास-स्थान काशी में स्थित श्मशान कहा जाता है। इसका वाहन नंदिकेश्वर नामक वृषभ है। प्रमुख अस्त्र विद्युत् (विद्युत्-शर) है। वेदों में इसे हिंसक पशु के रूप में वर्णित किया गया है तथा इसे व्याधियों का उपशामक एवं प्राणियों का रक्षक भी कहा गया है। जटा और पशु-चर्म धारण करता है। यह निषाद आदि वन्य श्रेणियों का गणपति है। रुद्र के विविध रूप प्रतीत होते हैं—ईशान, भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र और महादेव। 'महाभारत' (दे०) के अनुसार इसकी पत्नी के ये नाम हैं—उमा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वती (दे०), दुर्गा, कराली आदि। रुद्र के संबंध में अनेक चमत्कारपूर्ण बातें प्रसिद्ध हैं। इसने गंधमादन पर्वत पर अवतीर्ण होने वाली गंगा को अपनी जटाओं में धारण कर लिया। ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर इसने अपने दाहिने अँगूठे के नाखून से काट डाला। इसने समुद्र-मंथन से निकला हलाहल (विष)-प्राशन किया जिससे इसकी ग्रीवा नीली हो गई। समुद्र-मंथन से निकला चंद्र इसने अपनी जटाओं में धारण कर लिया। एक दैत्य, जो हाथी का रूप धारण कर काशी नगरी में ब्राह्मणों का विनाश करने में प्रविष्ट हो गया था, इसने उसका वध किया और उसके चर्म का वस्त्र बनाया। इसने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस किया तथा त्रिपुरासुर का वध किया। इसे भूत-पिशाचों का अधिपति माना जाता है। इसने भक्तों की रक्षा और शत्रुओं के संहार के लिए विभिन्न कल्पों में विभिन्न अवतार लिए। शिवलिंग की उपासना का निर्देश 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' तथा 'महाभारत' (दे०) से मिलता है। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा में शिव की अत्यधिक प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं।

शिव की उपासना के निम्नोक्त तीन प्रमुख संप्रदाय माने जाते हैं—कापालिक, पाशुपत और शैव। शिव (रुद्र) भारतीय संस्कृति का अनेक दृष्टियों से एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है।

शिवकामियिन शपदम् *(त० कृ०)*

'शिवकामियिन शपदम्' कृष्णमूर्ति 'कल्कि' (दे०) के ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। पल्लव-सम्राट् महेंद्रवर्मन् और उसके पुत्र नरसिंहवर्मन् के शासन-काल से संबंधित कुछ घटनाओं, कुछ ऐतिहासिक तथा विभिन्न काल्पनिक पात्रों की सहायता से लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। इस उपन्नास में घटनाओं के वर्णन की अपेक्षा पात्रों के चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है। काल्पनिक पात्रों में प्रमुख हैं आयन शिर्पी, शिवकामी और नाहनंदी। ऐतिहासिक पात्रों में प्रमुख हैं महेंद्रवर्मन् और नरसिंहवर्मन्। इसमें इतिहास के काल विशेष में कलाओं और धर्मों की स्थिति का अंकन बड़े मनोयोगपूर्वक किया गया है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा 'कल्कि' ने तमिल में ऐतिहासिक उपन्यासों का मार्ग प्रशस्त किया है। यह उनके ऐतिहासिक उपन्यासो में सर्वश्रेष्ठ है।

शिवक्कोषुंदु, देसिहर *(त० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती के पूर्व भाग तक]

तंजौर शहर के मराठा शासकों में सुप्रसिद्ध राजा शरफोजी इस कवि के आश्रयदाता थे। इनके सम्मान में इन्होंने 'चरपेंतिरप्पाल कुरवंजि' (शरभेंद्र भूपालक पर एक विशिष्ट छंदोबद्ध रचना) नामक गेय पद्य-कृति की रचना की थी। ये निपुण वैद्य भी थे।

इनकी काव्यकृति उपर्युक्त 'कुरवंजि' (दे०) की पद्य-विधा एक विशिष्ट परंपरा से संबंधित है। प्रेम-विह्वल नायिका के गुरुजन उसकी पीड़ा-निवारण के लिए एक भविष्यवक्ता पहाड़िन को घर में बुला लेते हैं जो अपना परिचय, नायिका की पीड़ा का अनुमानित कारण तथा उसके परिहार के तरीके इत्यादि बातें उन्हें समझा देती है। पहाड़िन की यह भविष्यवाणी 'कुरवंजि' की आधारभूत कथा-वस्तु है। प्रस्तुत कृति में पहाड़िन द्वारा नायिका के प्रेम के आलंबन रूप राजा शरभेंद्र का बहुमुखी गौरव-गान प्रकट किया गया है। एक विशेषता और है कि इसके पद्य तमिल संगीत के रागों के अनुकूल गाने योग्य लयबद्ध रूप से रचित हुए हैं।

लेखक की अन्य रचनाएँ 'कोटीच्चुरक्कोवै' तथा 'पेरुयुटैयारउला' जो मंदिरों की शिवमूर्तियों पर परंपराबद्ध स्तुति-गीत हैं। 'चिक्नैरिप्पिकाचम्' नामक शैव सिद्धांत प्रतिपादक ग्रंथ भी इनके द्वारा रचा हुआ माना जाता है।

शिवगणप्रसादि महादेवय्या *(क० ले०)*

दे० महादेवय्या।

शिवतत्त्वसारमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई०]

इसके लेखक मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य (दे०) हैं। ये शैवधर्म की एक शाखा के प्रवर्त्तक थे। 'शिवतत्त्वसारमु' एक शतक है। इसमें शिवदीक्षा तथा पाशुपत शैव-संबंधी सिद्धांतों का विवरण है। वीरशैव-धर्म के अनुयायियों के लिए यह रचना आचार-संहिता के समान है। शिवभक्ति की गरिमा के प्रतिपादन के साथ-साथ अन्य धर्मों का तिरस्कार भी इसमें पाया जाता है। एक सौ आठ मुक्तकों की रचना को तेलुगु में 'शतक' कहा जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर 'शिवतत्त्वसार' में शिवा, अजा, रुद्रा आदि संबोधनों के साथ समाप्त होने वाले 'कंद' नामक देशी छंद करीब पाँच सौ तक पाए जाते हैं। तेलुगु में उपलब्ध 'शतक' (दे० शतकमु) रचनाओं में यही प्रथम माना जाता है।

शिवतांडवमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1946 ई०]

'शिवतांडवमु' पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु (दे०) की प्रसिद्ध गेय रचना है। इसमें संगीत, साहित्य एवं नाट्य के सभी संकेतों का सरस सम्मिश्रण करके शिव के तांडवनृत्य का वर्णन किया गया है। इस सम्मिश्रण एवं शब्दार्थों की गंभीरता एवं प्रौढ़ता के कारण इस रचना को सुनते समय ऐसा अनुभव होने लगता है मानो साक्षात् शिव के नृत्य को हम देख रहे हों। नृत्य की मंद एवं त्वरित गतियाँ, लय, ताल तथा नाद सभी का आभास इस रचना के पाठक को हो जाता है। अर्थ की गंभीरता; संस्कृत-निष्ठा एवं सशक्त शैली तथा उदात्त भावना के कारण यह कृति नटराज शिव का मानसिक साक्षात्कार कराने में समर्थ हो जाती है। इसमें एक गेयवृत्ति ने नाटक का रूप धारण कर लिया है।

शिवनाथ शास्त्री *(बँ० ले०)* [जन्म—1847 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

बंकिमचंद्र (दे० चट्टोपाध्याय) के परवर्ती प्रबंधकारों में सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं शिवनाथ शास्त्री। तत्कालीन बँगला देश के प्राण-स्पंदन का यदि अनुभव करना हो तो शिवनाथ शास्त्री के हृदय-देश के यथार्थ अनुसंधान में प्रवृत्त होना होगा। इनकी 'रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग समाज' (दे०), 'आत्मचरित', 'महान् पुरुषदेर सान्निध्ये' आदि रचनाओं में उस युग की सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक एवं साहित्यिक चिंतनधारा का परिचय मिलता है। केवल प्रबंधकार के रूप में ही नहीं, कवि तथा उपन्यासकार के रूप में इन्हें प्रतिष्ठा मिली थी। इनका पहला काव्य है 'निर्वासितेक आत्मविलास' (1881 ई०), दूसरा काव्य 'पुष्पमाला' (1975 ई०) एक सौ कविताओं का संकलन है। 'पुष्पांजलि' (1888 ई०) एवं 'छायामयी परिणय' (1889 ई०) उस युग में विशेष समादृत हुई थीं। 'मेजवां' (1980 ई०) इनका पहला उपन्यास है। 'युगांतर' (1895 ई०), 'नयनतारा' (1899 ई०) से इन्हें विशेष औपन्यासिक ख्याति मिली थी।

शिवपादसुंदरम्, सो० *(त० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

इनका जन्म लंका में हुआ। अँग्रेज़ी, संस्कृत, लातीनी और सिंहली भाषा का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। 'कुडि इयल', ओलिपरप्पु कलै', 'माणिक्कवाशगर आडिच्चुवट्टिल', 'गौतम बुद्धर अडिच्चुवट्टिल' इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। ओलिपरप्पुकलै प्रसारण-कला-संबंधी साहित्यिक कृति है जिस पर इन्हें मद्रास सरकार का पुरस्कार मिला। अंतिम दो कृतियों में उन स्थानों का वर्णन है जहाँ क्रमशः माणिक्कवाशगर (दे०) और गौतम बुद्ध हो गए थे। ये वर्णन अत्यंत सजीव हैं क्योंकि लेखक ने स्वयं संबद्ध स्थानों का भ्रमण करके इन कृतियों की रचना की थी। शिवपादसुंदरम् लंका-निवासी तमिल साहित्यकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

शिवप्रसाद सितारेहिंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1823 ई०; मृत्यु—1895 ई०]

इनका जन्म काशी में हुआ था। ये बहुभाषाविज्ञ थे तथा इन्हें हिंदी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, बँगला, अँग्रेज़ी आदि कई भाषाओं का समुचित ज्ञान था। प्रारंभ में ये हिंदी के सच्चे हितैषी थे और इसी निमित्त इन्होंने 1845 ई० में काशी से 'बनारस अखबार' निकाला था। सरकारी शिक्षा-विभाग में इंस्पेक्टर नियुक्त होने पर इन्होंने न केवल स्वयं विभिन्न विषयों पर सरल तथा परिष्कृत हिंदी में अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखी थीं अपितु अन्य व्यक्तियों से भी हिंदी में पाठ्य पुस्तकें तैयार कराई थीं। लेकिन सरकारी नौकर होने के कारण इन्हें अपने अधिकारियों की मर्जी का ध्यान रखना पड़ा था और परिणामतः उर्दू या उर्दू-मिश्रित हिंदी की ओर इनका इतना अधिक झुकाव हो गया था कि ये हिंदी के नाम पर देवनागरी लिपि में उर्दू ही लिखने लगे थे। 'मानव धर्मसार', 'भूगोल हस्तामलक', 'इतिहास तिमिरनाशक', 'राजा भोज का सपना' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

शिवभारतमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1943 ई०]

इसके लेखक का नाम गडियारमु वेंकटशेषशास्त्री (दे०) है। 'शिवभारतमु' आठ अध्यायों का वीर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य है। मुसलमानी आक्रमण तथा अत्याचारों के विरुद्ध अपने देश तथा धर्म की रक्षा के लिए राजपूत लोगों ने बहुत कुछ प्रयास किया था। उनके बाद इस महान कार्य के लिए महाराष्ट्र के वीर पुरुष कटिबद्ध होकर खड़े हो गए थे। इनमें शिवाजी का नाम सबसे आगे है। 'महा-भारत' (दे०) की लड़ाई में अर्जुन की तरह मुसलमानी शासकों के विरुद्ध लड़ने में शिवाजी ने भी अनुपम साहस तथा पराक्रम दिखाया था। इसीलिए इस काव्य का नाम 'शिवभारतमु' रखा गया है। इस काव्य में शिवाजी के जन्म से लेकर मुसलमानी शासन पर उनकी विजय-प्राप्ति तक की कहानी वर्णित है। इसमें उस समय की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का विशद चित्रण पाया जाता है। इन ऐतिहासिक परिस्थितियों के विवरण को सरस काव्य-रूप देने में लेखक ने अनुपम प्रतिभा दिखाई है। यह केवल काव्य ही नहीं है, बल्कि काव्य-रूपी इतिहास है। उस समय की नाना प्रकार की विषम परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करना तथा उक्त परिस्थितियों में देश और धर्म की रक्षा करने में शिवाजी की निष्ठा और विजय की रूपरेखा प्रस्तुत करना ही 'शिवभारत' का लक्ष्य है। इस काव्य के अंतर्गत इन सभी बातों का बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है। इस तरह यह अष्टादश वर्णन वाले काव्य से भिन्न है। इसकी भाषा प्रौढ़ है और शैली प्रवाहयुक्त है।

शिवाजी केवल वीर ही नहीं बल्कि एक महान् देशभक्त भी थे। उनमें वीरता के साथ-साथ परम शांत स्वभाव भी विद्यमान था। अतः शिवाजी की जीवनी वीरता, देशभक्ति तथा शांत स्वभाव की 'त्रिवेणी' कही जा सकती है। इसका सरस, सशक्त तथा विशद वर्णन प्रस्तुत करने में इस काव्य ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

तेलुगु-साहित्य के अंतर्गत वीरकाव्य और ऐति-हासिक काव्य बहुत कम पाए जाते हैं। एक सफल ऐति-हासिक वीर-काव्य के रूप में इस कमी को पूरा करने में 'शिवभारतमु' का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

शिवमूर्ति शास्त्री *(क० ले०)*

पद्मश्री, पंडितरत्न श्री बी० शिवमूर्ति शास्त्री जी वर्तमान कर्नाटक के प्रसिद्ध पुरुषों में हैं। कन्नड के प्रचार-प्रसार-कार्य में एवं कर्नाटक के एकीकरण के आंदो-लन में इन्होंने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। आप अच्छे वक्ता हैं। साहित्य के अतिरिक्त संगीत में भी इनकी विशेष अभिरुचि है। पत्रकारिता के क्षेत्र में इनका कार्य महत्वपूर्ण है। कन्नड के 'वीरशैव-साहित्य' का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया है। आपके कई ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की संख्या भी कम नहीं है। 'राघवांकन काल' (राघवांक समय), 'राघवांकन गुरु-परंपरे' (राघवांक की गुरुपरंपरा), 'राघवांक काव्यगळु' (राघवांक के काव्य), 'निजगुण शिवयोगी', 'महाकवि षडक्षरदेव', 'सर्वज्ञ कवि', 'साहित्यदल्लि नाटकद स्थान' (साहित्य में नाटक का स्थान) आदि इनके लेख प्रसिद्ध हैं।

शिवराजभूषण *(हिं० कृ०)*

इस ग्रंथ के कर्ता भूषण (दे०) कवि हैं। इस ग्रंथ में काव्य-भूषण अर्थात अलंकारों का निरूपण किया गया है और उदाहरण शिवराज (भूषण के आश्रयदाता शिवाजी की स्तुति में रचे गए हैं। ग्रंथ में कुल 384 पद्य हैं। अलंकारों के लक्षण दोहा, छंद में और उदाहरण प्रायः वीररस के अनुकूल सवैया और कवित्त छंदों में हैं। इसमें एक सौ अर्थालंकार, चार शब्दालंकार और एक उभयालंकार का वर्णन है। भूषण ने दो नये अलंकार भी माने हैं : सामान्य-विशेष और भाविक छवि, तथा विरोध और विरोधाभास को इन्होंने परस्पर भिन्न अलंकार माना उदाहरणों के माध्यम से कवि ने शिवाजी के संवत् 1713-1730 वि० के बीच के जीवन की राजनीतिक तथा सामरिक घटनाओं को प्रस्तुत किया है। इनमें उसने विजयोल्लास, आतंक, प्रभुत्व, यश तथा दान की अमर गाथा ओजपूर्ण और फड़कती हुई सशक्त वाणी में गाई है। निस्संदेह ये सभी घटनाएँ कवि-कल्पना और अतिशयोक्ति के कारण ऐतिहासिक महत्व की नहीं हैं, फिर भी व्यक्तियों, नगरों और दुर्गों के नाम अवश्य ऐतिहासिक और सत्य हैं, जिनसे इतिहास-लेखकों को सहायता मिल सकती है। इनके द्वारा तत्कालीन आतंकित जनता को नवीन स्फूर्ति और उल्लास का संदेश मिला होगा, इसमें तनिक संदेह नहीं है। रीतिकाल जैसे श्रृंगाररस-प्रधान युग में वीररस की सफल अभिव्यक्ति के कारण भूषण की गणना राष्ट्र-कवियों में होती है।

शिवराजविजय *(सं० कृ०)* [समय—उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध]

संस्कृत के अर्वाचीन गद्य-लेखकों में श्री अंबिका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्त व्यास का विशेष महत्व है। इनका 'शिवराजविजय' आधुनिक संस्कृत-गद्य-साहित्य की अमूल्य निधि है। व्यास जी का समय 1858 से 1900 ई० तक माना जाता है। 'शिवराज विजय' का प्रकाशन 1901 ई० में काशी में हुआ।

'शिवराजविजय' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु तीन विरामों में विभक्त है और प्रत्येक विराम चार विश्वासों में। इसमें छत्रपति शिवाजी के उत्कर्ष एवं मुगलों से संवर्ष का वर्णन है। इसमें शिवाजी का कथानक आधिकारिक है तथा रघुवीरसिंह, गौरसिंह, वीरेंद्रसिंह आदि की प्रासंगिक कथाएँ उसे पुष्ट करती हैं।

रोचकता की दृष्टि से 'शिवराजविजय' आधुनिक उपन्यासों से किसी भी मात्रा में कम नहीं है। उसमें विशद वर्णनों के साथ घटनाओं में तीव्रता भी है। उनकी शैली प्रौढ़ तथा प्रसाद गुण से युक्त है। उसमें दंडी (दे०) तथा बाण (दे०) की शैलियों का प्रभाव पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। उनकी भाषा भावों के अनुकूल तथा कहीं-कहीं बड़े-बड़े समासों से युक्त है। अनुप्रासों के प्रयोग ने भाषा को मधुर बना दिया है। वीररस प्रधान होते हुए भी इसमें शृंगारादि अन्य रसों का अंग-रूप में प्रयोग हुआ है। इसके संवाद भी बड़े सबल तथा मार्मिक हैं। पात्रों का चरित्रचित्रण व्यास जी ने बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है। उनके भाव एवं विचार उनके मानसिक स्तर के अनुरूप हैं। इस ग्रंथ में तत्कालीन भौगोलिक, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का बड़ा यथार्थ चित्रण हुआ है। सब कुछ मिलाकर यह एक सफल उपन्यास है।

शिवरात्रि महात्म्यमु *(ते० कृ०)*

यह कविसार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०) की रचना है। इस काव्य का इतिवृत्त 'स्कंद पुराण' की 'ईशान-संहिता से लिया गया है। 'ईशानसंहिता' की संक्षिप्त कथा को महाकवि श्रीनाथ ने पाँच आश्वासों के रमणीय प्रबंध-काव्य का रूप दिया है। यह शिवपारम्य को प्रतिपादित करने वाला काव्य है। प्रथम आश्वास में ब्रह्मा और विष्णु की अपेक्षा शिव के उत्कृष्ट माहात्म्य के वर्णन के बाद स्वयं शिवजी शिवरात्रि के माहात्म्य का वर्णन करते हैं। शेष चार आश्वासों में रत्नपुरी के महामंत्री यज्ञदत्त के पुत्र सुकुमार की कथा है। उसके जन्म, विद्याभ्यास, दुष्ट आचरण, चांडालकन्या से विवाह, संतानोत्पत्ति, अनेक दुष्ट कार्य करने के बाद सुकमार का नागेश्वरालय पहुँच शिवरात्रि के दिन भगवान के दर्शन कर, कुछ समय के बाद मर जाना, उसकी आत्मा को यमकिंकरों के हाथ से बचाकर शिवकिंकरों का शिवलोक ले जाना, शिव का यम को शिवरात्रि-माहात्म्य का वर्णन करना आदि विषय हैं। इस काव्य का प्रधान पात्र सुकुमार है अतः इसका दूसरा नाम 'सुकुमार चरित्रमु' भी है। श्रीनाथुडु ने सुकुमार की कथा को प्रबंध-काव्य के अनुरूप वर्णनों से युक्त कर, शिवरात्रि के माहात्म्य की काव्योचित रूप में स्थापना की है।

शिवरामशास्त्री, वेलूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

जन्म-स्थान : चिरिवाडा, ज़िला कृष्णा। इनके पिता वेंकटेश्वरावधानी थे। शिवरामशास्त्री बाल्यकाल से ही बड़े प्रतिभावान रहे। संस्कृत-व्याकरण का आभाष्यांत अध्ययन इन्होंने प्रसिद्ध वैयाकरण जयंति भगीरथशास्त्री के चरणों में किया। तेलुगु-कविता के गुरु तिरुपति कवि-द्वय रहे। उन्नीस वर्ष की वय में इन्होंने शतावधान जैसे दुष्कर कविकर्म का प्रदर्शन बड़ी सफलता के साथ किया। आशु तथा अवधानकविताओं (दे०) के अतिरिक्त इनकी रुचि अधिकाधिक भाषाओं का अध्ययन करने की ओर थी। फलतः इन्होंने अँग्रेज़ी, फ़्रेंच, बँगला आदि भाषाओं का गहरा अध्ययन था। यौवन में 'मणिमेखला' नामक एक मौलिक काव्य के साथ 'रसगंगाधर' (दे०), 'ध्वन्यालोक' (दे०), 'साहित्य-दर्पण' (दे०) आदि संस्कृत-लक्षण-ग्रंथों का अनुवाद कर चुके थे। परंतु दुर्भाग्य की बात थी कि एक बार पांडुलिपियों से भरी इनकी पेटी को चोर धन की अपेक्षा से चुरा ले गए। दूसरी बार 'पद्मपुराण' आदि इनकी अन्य रचनाएँ इनके आवास में आग लगने से अग्नि-समर्पित हो गईं। इस प्रकार अक्षय साहित्यिक संपदा का नाश हो गया। अनंतर काल में यदा-कदा शास्त्री जी साहित्यिक सर्जना करते रहे। फलतः इनकी उपलब्ध कृतियों में शरच्चंद्र (दे०) के बँगला उपन्यासों का अनुवाद, रवींद्रनाथ (दे०) की 'कथा' का तेलुगु अनुवाद तथा महात्मा गांधी की आत्मकथा का अनुवाद उल्लेखनीय है। इनकी निजी कृति 'एकावली' में सुंदर मौलिक कविता का स्वाद मिलता है।

प्राचीन परंपरा के उद्भट विद्वान होते हुए भी हृदय इनका आधुनिक विचारों को आत्मसात् करने वाला था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवरुद्रप्पा, जी० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

नयी पीढ़ी के समर्थ आलोचकों में इनका नाम गिना जाता है। संप्रति ये बैंगलूर विश्वविद्यालय में कन्नड प्रोफ़ेसर के पद पर विराजमान हैं। ये कवि भी हैं। इनके कविता-संग्रहों में 'सामगान', 'चेलुवु ओलवु' (सौंदर्य-प्रेम), 'संजे दारि' (साँझ की राह) और 'देवशिल्प' के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने प्रकृति के सौंदर्य और स्वरूप का विशद वर्णन किया है। इनकी कल्पना में नवीनता और सूक्ष्मता विद्यमान है। 'विमर्शेय पूर्व पश्चिम' और 'सौंदर्य-समीक्षे' जैसी रचनाओं में इनकी भावयित्री प्रतिभा का विकास हुआ है। 'कर्मयोगी' आपका उपन्यास है। 'शबर-शंकरविलास' (दे०) जैसे काव्यों का संक्षिप्त संग्रह भी इन्होंने प्रकाशित कराया है। कन्नड की साहित्यिक पत्रिकाओं में इनके लेख बराबर प्रकाशित होते रहते हैं।

शिवशंकर स्वामी *(तें० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये अनेक भाषाओं के पंडित एवं प्रणय के भाव-प्रवण कवि हैं। तेलुगु में रसमय गीति-नाट्यों को प्रचार में लाने का श्रेय मुख्यतः इन्हीं को दिया जाता है। इन्होंने 'पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती' (दे०), 'दीक्षित दुहिता' जैसे उत्तम गीति-नाट्यों एवं एकांकियों की रचना की है। कहानीकार के रूप में इन्होंने 'मुरारि कथलु' में आंध्र के बाल-जीवन के सहज-स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किए हैं। तेलुगु के कथा-साहित्य में उत्तम-पुरुष का विधान भी पहली बार इन्हीं की रचनाओं में प्रकट हुआ है। 'भाव-कविता' (दे०) के लेखक के रूप में इनकी ख्याति का आधार हृदयेश्वरी नामक कविता-संकलन है। इन्होंने अनेक बँगला उपन्यासों का अनुवाद भी किया है। सर्वत्र इनकी रचना सरल एवं स्वच्छ है। आजकल के भाव-कवियों में ये वरिष्ठ हैं। इन्होंने 'साहिती समिति', 'नव्य-साहित्य-परिषद्' आदि संस्थाओं की स्थापना करके भी तेलुगु-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। प्राचीनता का परित्याग न करके, नवीनता का स्वागत कर, दोनों के सुंदर समन्वय को इन्होंने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। राजनीति में सक्रिय रहने के कारण ये जेल भी गए थे। सदा नवकवियों की रचनाओं का परिमार्जन करके उनको प्रोत्साहित करते रहने के कारण इनको लोग प्रेम से 'धोभीघाट' भी कहा करते हैं।

शिवशंभु के चिट्ठे *(हिं० कृ०)*

बाबू बालमुकुंद गुप्त (दे०) के इस निबंध-संग्रह में लार्ड कर्जन के निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध शिवशंभु शर्मा उपनाम से व्यंग्यात्मक शैली में लिखे गए उन आठ खुले चिट्ठों का संकलन है जो 'भारत-मित्र' तथा 'जमाना' पत्र-पत्रिकाओं में 1904 से 1905 ई० तक धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए थे। ये चिट्ठे अपने समय में कितने लोकप्रिय थे इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब इनके मित्र ज्योतींद्रनाथ बैनर्जी ने इन्हें अँग्रेज़ी में अनूदित करके प्रकाशित किया तो पूरा संस्करण हाथोंहाथ बिक गया। ये रचनाएँ तद्-युगीन राजनीतिक चेतना से अवगत कराने के साथ-साथ हिंदी भाषा की व्यंजनाशक्ति एवं संप्रेषणीयता का भी अत्यंत पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। व्यंग्य-विनोद मिश्रित नितांत वैयक्तिक शैली में तथ्यात्मक विश्लेषण तथा कल्पना की ऊँची उड़ान इस निबंध-संग्रह की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। समग्रतः यह निबंध-संग्रह लेखक के निर्भीक व्यक्तित्व तथा चुस्त एवं चुटीले अभिव्यंजना-शिल्प के कारण सदैव स्मरणीय रहेगा।

शिवाबावनी *(हिं० कृ०)*

भूषण (दे०)-प्रणीत यह ग्रंथ कोई स्वतंत्र ग्रंथ न होकर 52 स्फुट पद्यों का संग्रह है। ये पद्य भूषण के प्रसिद्ध आश्रयदाता शिवाजी के शौर्य से संबंधित हैं, जिनमें उनके आतंक, पराक्रम, विजय के गौरव-गान के अतिरिक्त शत्रुओं की दुर्दशा का भी चित्रण है। वीर रस एवं ओज-पूर्ण शैली में लिखा यह ग्रंथ शिवाजी को राष्ट्र और धर्म का उन्नायक सिद्ध करता है। तत्कालीन पराधीन हिंदुओं को इससे अवश्य नवस्फूर्ति प्राप्त हुई होगी। इस ग्रंथ में ऐतिहासिक घटनाओं का यत्र-तत्र उल्लेख अवश्य है, पर वे इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक नहीं हैं।

शिशु *(बँ० कृ०)*

'शिशु' रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की इकसठ कविताओं का संग्रह है। इसमें से प्रारंभ की इकत्तीस कविताएँ 1903 में अल्मोड़ा में लिखी गई थीं, शेष कवि के अन्य काव्य-संग्रहों से ली गई हैं। जैसाकि नाम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट है इस संग्रह में कवि ने शिशु-मन के भावों को अभिव्यक्त किया है और उसके रहस्यों को खोला है। पृथ्वी, आकाश सबसे शिशु का परिचय है। प्रकृति के आह्वान से उसके प्राण स्पंदित होते हैं किंतु माँ से विलग होने पर उसके निकट कुछ भी सत्य नहीं। शिशु माँ की निर्मित मूर्ति है। माँ ही शिशु के लिए विश्व है। शिशु की समस्त आंतरिक सहानुभूति माँ के प्रति है।

शिशु-हृदय में प्रवेश कर उनके हृदय की अभिव्यक्ति का प्रयास वर्तमान में किसी कवि ने नहीं किया। शिशु-मन की विचित्रता को विभिन्न स्तरों पर विविध रूपों में सहज छंदों में कवि ने चित्रित किया है। विश्व-साहित्य में ये कविताएँ बेजोड़ हैं। इस संग्रह की 'नदी' कविता विद्वानों की सम्मति में रवींद्रनाथ की श्रेष्ठ कविताओं में से है।

शिशुपाल-वध *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ का रचना-काल 1306 ई० है। भास्करभट्ट (दे०) ने संस्कृत-कवि माघ (दे०) की छाया ग्रहण कर मराठी में इस प्रबंध-काव्य की रचना की है। 'नारदागमन', 'द्वारकावर्णन', 'ऋतु-वर्णन', 'जल-क्रीड़ा-वर्णन', 'युद्ध-वर्णन' आदि प्रसंग माघ के 'शिशुपाल-वध' के अनुकरण पर हैं। कवि की मौलिकता चरित्र-चित्रण में दर्शनीय है। नारद-उद्भव-विनोद, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का प्रेम-कलह, गोपियों की मार्मिक विरहावस्था आदि के वर्णनों में कवि ने अपनी कवित्व शक्ति का सुंदर प्रमाण दिया है। यह काव्य भावों की मार्मिकता की दृष्टि से उत्कृष्ट है और कलात्मकता तथा अलंकृति-सौष्ठव के क्षेत्र में भी अद्वितीय है।

शिशुपाल-वध *(सं० कृ०)* [समय—सातवीं शती का उत्तरार्ध]

माघ (दे०) का 'शिशुपाल-वध' वृहत्त्रयी में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। माघ का जन्म एक प्रतिष्ठित तथा प्रबुद्ध ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पितामह सुश्रभदेव गुजरात के किसी भूभाग के राजा वर्मलात के मंत्री थे। इनके पिता दत्तक बड़े विद्वान् तथा दानी थे।

'शिशुपाल-वध' माघ की एकमात्र रचना है। बीस सर्ग के इस महाकाव्य में कृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदि-नरेश शिशुपाल के वध की महाभारतीय कथा को शब्दबद्ध किया गया है।

यों तो माघ कालिदास (दे०) से कम प्रभावित नहीं किंतु भारवि (दे०) इनके मूल प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। यही कारण है कि 'किरात' तथा 'शिशुपाल-वध' में बहुत समानता है। कहीं-कहीं माघ भारवि से कुछ आगे भी बढ़ गए हैं। 'शिशुपाल-वध' में उपमा, अर्थगौरव तथा पद-लालित्य तीनों गुणों का एकसाथ दर्शन होता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। माघ अलंकृत-शैली के प्रमुख आचार्य हैं। इनका 'शिशुपाल-वध' इस शैली की सर्वोत्कृष्ट कृति है। माघ में व्युत्पत्ति तथा शक्ति समान रूप से विद्यमान है अतः जहाँ उन्होंने इस काव्य में अपनी कलात्मक दृष्टि का परिचय दिया है वहीं अपार वैदुष्य का भी। 'नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते'—इससे इनके शब्द-वैभव का अनुमान लगाया जा सकता है। इस महाकाव्य में चरित्रों का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है। महर्षि नारद के रूपचित्रण में कवि जितना सफल हुआ है उतना ही उनके संदेश-कथन में भी। माघ-वर्णित कृष्ण का रूप तथा उनका सहिष्णु चरित्र बड़ा ही सुंदर है। 'शिशुपाल-वध' के प्रकृति-वर्णन भी बड़े ही मनोहारी हैं। कवि नितांत परिचित वस्तुओं में भी नवीनता पैदा कर देता है। भाषा, भाव, शब्द-चमत्कार—सभी दृष्टियों से 'शिशुपाल-वध' अत्यंत उच्चकोटि का महाकाव्य है।

शिशुबेद *(उ० कृ०)*

'शिशुबेद' गोरखनाथ (दे०) की रचना है तथा उड़िया भाषा का आदि गद्य-ग्रंथ कहा जाता है। 'सारळा-महाभारत' (दे०) तथा 'पंच सखा' (दे०)-साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है। 'शिशुबेद' पूर्वगामी बौद्ध-कवितावली तथा परवर्ती मार्कंडदास (दे०) की कोइलि (दे०) एवं सारळादास (दे०) की रचनाओं के बीच एक मूल्यवान योगसूत्र के रूप में विराजमान है। इसमें अपभ्रंश की अंतिम प्रतिध्वनि मिलती है। ई० पू० प्रथम शती में खारवेल की शिलालिपियों में भाषा का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, उसका क्रमिक एवं स्वाभाविक विवर्तन आधुनिक उड़िया में किस प्रकार हुआ, उसे समझने में आज यह ग्रंथ अत्यंत सहायक सिद्ध हो रहा है।

'शिशुबेद' में गूढ़ तांत्रिक तत्त्वों का प्रतिपादन हुआ है। इसमें टीका में प्रयुक्त गद्य प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतंकन् तुळ्ळल् *(मल० पारि०)*

यह कुंचन (दे०) नंपियार की तुळ्ळल् (दे०)-कथाओं के तीन प्रकारों में एक है। 'कल्याणसौगंधिकम' कथा जो नंपियार की प्रथम तुळ्ळल्-कथा मानी गई है, इसी विधा में रचित है। इसमें प्रयुक्त छंद कृशमध्या, काकली, कलकांची और पर्यस्तकांची हैं। इसका आख्याता नर्तक मुख पर श्याम वर्णसज्जा करता है और नारियल के पत्ते से वेश-सज्जा करता है। साहित्येतिहासकार महाकवि उळ्ळूर् (दे०) अनुमान करते हैं कि 'शीतंकन्' शब्द का मूल 'चेतुंकन्' होगा और इसका संबंध देशिंगनाड्-प्रदेश के किसी नाट्याचार्य से होगा।

शीराप्पुराणम् *(त० कृ०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

इस्लाम से संबद्ध तमिल-कृतियों में यह ग्रंथ अग्रगण्य है। यह एक प्रबंध-काव्य है। इसमें इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैग़ंबर मुहम्मद की जीवनी का काव्यात्मक चित्रण किया गया है। मुहम्मद का जन्म, विवाह, विविध कार्य, धर्म-प्रचार इत्यादि घटनाएँ विस्तार से चित्रित हैं। अरबी भाषा का शब्द है 'शीरत्' जिसका अर्थ है इतिहास। उसी का तमिल रूप 'शीरा' है। तमिल काव्य-परंपरा के अनुसार, 'पुराण' एक प्रकार का प्रबंध-काव्य होता है। 'शीराप्पुराणम्' वैसा ही एक काव्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन 'पुरुषार्थों' को लक्ष्य बनाकर यह रचा गया है। काव्य के अन्य सभी लक्षण इसमें हैं। इसमें तीन कांड हैं जिन्हें क्रमशः 'विलादत् कांड', 'नुबुव्वत् कांड' और 'हिजरत् कांड' का नाम दिया गया है। प्रथम कांड में जन्म तथा बाल्य, द्वितीय में मुहम्मद को जिब्रील द्वारा धर्म-तत्त्व का ज्ञान, तृतीय में मुहम्मद साहब का मक्का छोड़कर मदीना जा पहुँचना—मुख्य रूप से वर्णित है। पूरे काव्य में 5026 वृत्त हैं। तृतीय कांड में ही ढाई हज़ार से अधिक वृत्त हैं जिनमें 'पदुर', 'उहुदु' नामक स्थानों में हुए युद्धों का वर्णन भी है। मुहम्मद साहब की पत्नी तथा उनकी पुत्री 'फ़ातिमा' आदि पात्रों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली है। अरब के जन-जीवन के चित्रण में तमिल-प्रदेश की झाँकी आ गई है।

कवि ने कहा है कि अरब के विविध कर्म करने वाले (पेशेवर) लोग अपना-अपना कार्य आरंभ करने के पूर्व सूर्य की वंदना करते थे। वे अपने-अपने कुलदेवों की पूजा करते थे। कुछ विद्वानों ने इन बातों पर यह कहकर कि ये इस्लाम के अनुकूल नहीं हैं, आपत्ति उठाई है। किंतु कवि ने मुहम्मद साहब की उपासना के वर्णन के प्रसंग में एक देवोपासना का तथा इस्लाम के प्रधान सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इसमें यद्यपि अरबी के अनेक शब्द प्रयुक्त हैं तथापि कवि ने तमिल प्रबंध-काव्य की परंपरा का पालन करके तमिल भाषा और छंद के उत्तम रूप प्रस्तुत किए हैं। यह तमिल-प्रबंधों में एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

शील *(पा० पारि०)*

बौद्ध धर्म में प्रत्येक व्यक्ति को पाँच शीलों के पालन का व्रत लेना पड़ता है—(1) प्राणिहिंसा से दूर रहना, (2) न दी हुई वस्तु को लेने से विरत रहना, (3) निषिद्ध विषयों के उपभोग से दूर रहना, (4) झूठ न बोलना और (5) सुरा इत्यादि से पृथक् रहना। उपोसथ-व्रत में पंचशील के स्थान पर अष्टशील हो जाते हैं। अतिरिक्त 3 ये हैं—(6) असमय भोजन न करना, (7) नृत्य तथा माला इत्यादि से दूर रहना और (8) ऊँचे स्थान पर न बैठना। श्रमणों के लिए दस शील होते हैं—सातवें के दो भाग और सोना चाँदी न लेने का व्रत। इन शीलों में कुछ का पालन कुछ समय के लिए भी किया जा सकता है।

शीलवती रास *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1694 ई०]

जैन कवि नेमिविजय-प्रणीत 'शीलवती रास' अंत में धर्माभिनिवेश में उपशमित व परिणत होने वाली एक ऐसी रसात्मक सांसारिक कथा है जिसमें धर्म से अधिक कला-निरूपण पाया जाता है। इस कथा-काव्य में चंद्रगुप्त व शीलवती का प्रेम-वृत्तांत निरूपित है। अब तक की रास-कथाएँ धार्मिक अधिक थीं, परंतु यह लौकिक अधिक है। 'शीलवती रास' में करुण एवं अद्भुत रसों की सुंदर योजना है।

नायक चंद्रगुप्त व नायिका शीलवती दोनों वणिक् कुल के हैं। नायिका शीलवती को पतिवियोग का कष्ट झेलना पड़ता है। आकस्मिक रूप से एक रात्रि के लिए पति-मिलन का सुख मिलता है। पश्चात् वह सगर्भा होती है और व्यभिचारिणी के रूप में कलंकित भी होती है। एक वेश्या के जाल में फँसती है, पुत्र भी खोती है। अंत में पुत्र व पति दोनों से मिलन होता है। दोनों पति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी जैन-दीक्षा ग्रहण करते हैं।

संयम, शील, सत्य व भूत दया के गुणों का निरूपण इस कृति में हुआ है। बीच-बीच में भूत, पिशाच व हिंस्र पशुओं के वर्णन से कथा में रोचकता, अद्भुतता की भी वृद्धि हुई है। सत्रहवीं शती की भाषा का स्वरूप ठीक-ठीक समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। भाषा पर प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी का मिश्रित प्रभाव है। परवर्ती वार्ताकार शामळ (दे०) भट्ट की 'भद्रा भामिनी नी वात' पर इस रचना का पर्याप्त प्रभाव है। मध्ययुगीन पद्यवार्ता-साहित्य में इस कृति का अपना विशेष स्थान है।

शीला वीर्राजुन *(ते० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

सूर्यनारायण और वीरभद्रम्मा के पुत्र वीर्राजुन का जन्म राजमहेंद्री में हुआ था। बी० ए० करने के बाद इन्होंने कुछ दिनों के लिए 'कृष्णपत्रिका' में सहसंपादक का काम किया। आजकल ये आंध्र प्रदेश-सरकार के सूचना और जनसंपर्क-विभाग में सहअनुवादक के रूप में कार्यरत हैं। बचपन से ही इनकी लेखन में रुचि थी। जब ये इंटर में थे तब 'वेलुगु रेखलु' (प्रकाश की किरणें) शीर्षक उपन्यास 'प्रजामत' में तथा जब बी० ए० में थे तब 'सहृदयुलु' शीर्षक उपन्यास 'आंध्रप्रभा' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए। अब तक इनकी पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके उपन्यासों में 'मैना', 'करुणिंचनि देवता' उल्लेखनीय हैं। 'मैना' को आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से श्रेष्ठ उपन्यास का पुरस्कार (1969 ई० में) मिला था। इनके अतिरिक्त इनके कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हैं। इन संग्रहों में 'मुब्बुतेरलु' (बादलों की परतें या परदे), 'समाधि', 'वीर्राजुन की कहानियाँ', 'ह्लादिनी', 'रंगुटद्दालु' (रंगीन शीशे), 'वाल्लमध्य वंतेना' (उनके बीच पुल), 'मनसुलोनिकुंचे' (मन की कूँची), 'पगा मैनस द्वेषमु' (प्रतीकार मैनस द्वेष) आदि उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने यद्यपि, प्रारंभ में कुछ प्रेम-प्रधान कहानियाँ लिखी थीं तथापि ये प्रधान रूप से प्रयोगवादी ही हैं। विषय की अपेक्षा ये शैली और शिल्प को अधिक महत्व देते हैं।

'वचन' कविता में भी इन्होंने नये प्रयोग किए हैं। 'कोडिगट्टिन सूर्युडु', 'हृदयं दोरिकिंदि' (हृदय मिल गया) में क्रमशः तीन-तीन कहानियाँ लिखी हैं। 'मळ्ळी वेलुगु' (पुनः प्रकाश) नामक गद्य-काव्य में उषःकाल से लेकर आधी रात तक के नगर-जीवन का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। इस ध्वनि-प्रधान काव्य में एक-एक समय को एक-एक सामाजिक अवस्था का प्रतीक मानकर, द्वंद्वपूर्ण नगर-जीवन का वर्णन कर, कवि ने आशावाद प्रकट किया है।

ये सफल चित्रकार भी हैं। दामेर्ल रामाराव आर्ट गैलरी में इन्होंने चित्रकला का अभ्यास किया है। हैदराबाद में दो बार और बैंगलूर में एक बार इनके चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया जा चुका है। पश्चिम जर्मनी में भी इनके 'लेपाक्षी चित्रों को प्रदर्शित किया जा चुका है। आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में इनके प्रयोगवादी चित्रों (पेंटिंग्स) का विशिष्ट स्थान है।

'स्वाति' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी इन्होंने सफलता के साथ किया है।

वचन-कविता में इतिवृत्तात्मक कथाएँ लिखने का प्रारंभ इन्होंने ही किया और इस विधा को सफल तथा अनुकरणीय बनाया। उपन्यास हो, कहानी हो अथवा काव्य—सभी विधाओं में प्रयोग करना इन्हें प्रिय है। इस दृष्टि से आधुनिक तेलुगु-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।

शुकनास *(सं० पा०)*

शुकनास बाण (दे०) भट्ट की कल्पना-सृष्टि है जो उसकी सुप्रसिद्ध कृति 'कादंबरी' (दे०) का एक पात्र है। शुकनास उज्जयिनी के राजा तारापीड का मुख्य अमात्य है। वह चंद्रापीड के राजकुमार के पद पर अभिषिक्त होने पर उसे कुछ उपदेश देता है जो राजपरिवार के ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी है। इन आदेशों के माध्यम से बाणभट्ट ने भारतीय सांस्कृतिक निधि का निरूपण किया है। इसकी अभिव्यक्ति के उचित लिए पात्र की आवश्यकता थी, अतः शुकनास की रचना हुई।

शुकनास का व्यक्तित्व बड़ा भव्य है। वह केवल नीति-निपुण मंत्री ही नहीं है अपितु एक ऐसा महापुरुष है जिसने अपनी इंद्रियों का पूर्ण-रूप से निग्रह कर लिया है। सभी शास्त्रों का मर्म उसे हस्तामलकवत् है। शासन के संचालन तथा लोकप्रिय होने की कुंजी वह जितेंद्रियता को मानता है। उसका कहना है : यौवन, धन-संपत्ति और प्रभुता भी अनर्थ के उतने ही बड़े कारण हैं जितना मूर्खता। जो व्यक्ति इन दुर्बलताओं से ऊपर उठ सकता है, वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अच्छा कर पाता है। शुकनास भारतीय परंपरा में अमात्य का सच्चा प्रतीक है।

शुक सप्तति *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती से पूर्व]

'शुकसप्तति' कहानियों का संग्रह है। इसकी दो वाचनिकाओं का पता चलता है। एक तो विस्तृत तथा दूसरी संक्षिप्त। विस्तृत वाचनिका के लेखक कोई चिंतामणि हैं जिन्होंने पूर्णभद्र के 'पंचतंत्र' (दे०) का उपयोग इस ग्रंथ में किया है। संक्षिप्त वाचनिका का कर्त्ता किसी जैन लेखक को माना जाता है।

'शुकसप्तति' की कथाएँ बड़ी रोचक हैं जो एक तोता अपने स्वामी के परदेश चले जाने पर अन्य पुरुषों के प्रति अनुरक्त अपनी स्वामिनी को सुनाकर उसे इस ओर से विरत करने के लिए सुनाता है। ये कहानियाँ अतीव मनोरंजक तथा आकर्षक हैं। इसमें स्त्रियों के चरित्र का विवेचन सरल एवं रोचक शैली में किया गया है। कहा जाता है कि यह ग्रंथ मूलतः प्राकृत में लिखा गया था; बाद में इसका संस्कृत-गद्य में रूपांतर हुआ पर बीच-बीच में संस्कृत-पद्यों के साथ प्राकृत पद्य भी बने रहे।

शुकि सुब्रह्मण्यन *(त० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

तमिलनाडु के तिरुनेलवेली ज़िले के मदवक्कुरिच्चि नामक स्थान में जन्म। हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त कर इन्होंने आकाशवाणी में प्रवेश किया। इस समय ये आकाशवाणी के मद्रास केंद्र में तमिल नाटकों के दिग्दर्शक के रूप में कार्यरत हैं। इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा तमिल साहित्य के विविध अंगों को समृद्ध किया। इनके अनेक नाटक एवं कहानियाँ पुरस्कृत हो चुकी हैं। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'पुदुमैप्पुलवन भारती', 'आयिरम काल मंडपम' [क्रमशः महाकवि भारती (दे०) एवं कल्कि (दे०) पुदुमैप्पित्तन (दे०), कु० पा० राजगोपालन (दे०) आदि आधुनिक साहित्यकारों के कृतित्व से संबंधित अलोचनात्मक लेखों का संग्रह], 'युद्धकाल इलक्कियम (निबंध), 'काट्शि कण काट्शिये' (एकांकी-संग्रह), 'उलक्कुम करंगळ', 'गीदम इनिय कुयिले' (उपन्यास), 'सांभर शादम', 'कर्पक कनिहळ' (कहानी) आदि।

इन्होंने प्रायः उच्च-मध्य वर्ग के लिए साहित्य-रचना की है। यथार्थवाद में विश्वास रखते हुए भी आदर्शवाद का अंकन किया है। अधिकांश रचनाओं में तिरुनेलवेली की ग्रामीण जनता के जीवन का चित्रण है। इनमें प्रायः पारंपरिक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति हुई है। तमिल साहित्य में इनकी प्रसिद्धि रेडियो-रूपकों के रचयिता के रूप में विशेष है।

शुक्तिमति *(ते० पा०)*

शुक्तिमति रामराजभूषणुडु (भट्टुमूर्ति) (दे०) के 'वसुचरित्रमु' (दे०) नामक श्लेषकाव्य की प्रधान पात्र है। यह एक नदी है। ब्रह्मा की सभा से लौटते हुए इसे देखकर, 'कोलाहल' नामक पर्वत-श्रेष्ठ मोहित हो जाता है और इसे रोककर इसके साथ बलात्कार करता है। यह राजा वसु से निवेदन करती है। राजा वसु 'कोलाहल' को लात मारता है। इस पदताड़न से बने रंध्र से इसका निर्गमन होता है। अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने के लिए यह उक्त बलात्कार के कारण उत्पन्न अपनी पुत्री गिरिका को राजा की पत्नी के रूप में तथा पुत्र वसुपद को सेनापति के रूप में सौंप देती है।

शुक्र *(सं० ले०)*

शुक्र का स्थिति-काल विक्रमपूर्व प्रथम शती के लगभग है। शुक्राचार्य का दूसरा नाम 'उशनस्' है। पौराणिक परंपरा के अनुसार शुक्राचार्य असुरों के गुरु हैं। अलबेरूनी ने व्यास (दे०) के 6 स्मृतिकार शिष्यों में शुक्र का भी संकेत किया है। वार्हस्पत्यशास्त्र के आधार पर शुक्र ने एक सहस्र अध्याय वाले 'औशनमी-नीति' नामक ग्रंथ की रचना की थी। विद्वानों का विचार है कि 'शुक्र-नीति' 'औशनसशास्त्र' का ही संस्करण है।

'औशनस-अर्थशास्त्र' का अर्थशास्त्र-संबंधी ग्रंथों में विशिष्ट स्थान है। कौटिल्य (दे०) ने 'अर्थशास्त्र' (दे०) के अंतर्गत 'दंडनीतिरेव विद्या इतिऔशनसा:' कहकर 'औशनस-अर्थशास्त्र' की ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता की पुष्टि की है। शुक्र-कृत 'शुक्रनीति' के आधार पर ही आचार्य कामंदक ने 'नीतिसार' नामक ग्रंथ की रचना की थी। 'शुक्रनीति' के अंतर्गत अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र के विविध पक्षों का स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ की लेखन-शैली सरल एवं रोचक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ल, रामचंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

इनका जन्म अगोना ग्राम (ज़िला बस्ती, उत्तर प्रदेश) में हुआ और जीवन के अंतिम चरण में ये काशी-विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग के अध्यक्ष रहे। इन्होंने निम्नोक्त बहुविध ग्रंथों का प्रणयन किया, जिनसे इनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है—(1) 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (दे०) जो कि अपने विषय का एक बहुमूल्य ग्रंथ है। (2—4) 'जायसी-ग्रंथावली' (दे० जायसी ग्रंथावली की भूमिका), 'तुलसी-ग्रंथावली', 'भ्रमर गीत-सार'—इन तीनों ग्रंथों की भूमिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। (5) 'चिंतामणि' (दे०) (दो भाग) इसमें मनोविज्ञान तथा काव्यशास्त्र से संबद्ध अनुपम निबंध हैं। (6) 'रस-मीमांसा' (मृत्यु के उपरांत संपादित एवं प्रकाशित), रस-विषयक निबंध-संग्रह है। (7) 'साहित्य', 'प्राचीन भारतीयों का पहरावा' तथा अन्य फुटकर निबंध। (8) 'बुद्धचरित', 'लाइट ऑफ़ एशिया' पर आधारित ब्रजभाषा काव्य। (9) मनोहर छटा तथा प्रकृति-संबंधी कविताएँ। (10-11) 'हिंदी शब्द-सागर' (दे०) तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०) का संपादन। (12—17) निम्नोक्त अनूदित सात ग्रंथ, जिनमें से पहला बँगला से है और शेष छः अँग्रेज़ी से। (क) 'शशांक' (उपन्यास), (ख) 'विश्वप्रपंच' (अँग्रेज़ी से), (ग) 'आदर्श जीवन', (घ) 'राज्य-प्रबंध शिक्षा', (ङ) 'मेगस्थनीज़ का भारतवर्षीय वर्णन', (च) 'कल्पना का आनंद', (छ) कतिपय स्फुट लेख। जायसी (दे०), तुलसी (दे०) और सूरदास (दे०) विषयक भूमिकाओं में कवियों की अंतःप्रवृत्तियों के उद्घाटन तथा काव्य के मार्मिक स्थलों की व्याख्या द्वारा हिंदी साहित्य में नूतन समीक्षा पद्धति का सूत्रपात किया गया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तुलसी और जायसी तथा तुलसी और सूरदास के काव्य की तुलना द्वारा तुलनात्मक एवं निर्णयात्मक आलोचना का मानदंड भी स्थिर किया गया है। शुक्ल जी के मनोविज्ञान-विषयक निबंध हिंदी-साहित्य की ही नहीं वरन् विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। इनसे पूर्व हिंदी की समीक्षा-पद्धति प्रायः संस्कृत-काव्य-शास्त्र के पुराने ढर्रे पर अवलंवित रहकर अलंकार, रस, नायिक-नायिका-भेद के भेदोपभेद-चयन तक सीमित थी, पर इनके शास्त्रीय समीक्षात्मक लेखों में भारतीय के अतिरिक्त पाश्चात्य एवं मनोवैज्ञानिक समीक्षण-पद्धति का अद्भुत मिश्रण है, और इसी कारण ये लेख अपनी गुरु-गंभीर और प्रौढ़ शैली के कारण समीक्षा-क्षेत्र के आदर्श बन गए हैं। इनके निबंधों में आगमन और निगमन दोनों शैलियों का प्रयोग हुआ है तथा इनमें निबंध के दोनों प्रमुख तत्वों—'विषय-प्रधानता' और 'व्यक्तित्व-प्रधानता' का सुगठित एवं सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। इन निबंधों में हास्य तथा तीखा व्यंग्य भी यत्र-तत्र मिलता है जो विषय का सुगम अवबोध करने में सहायक सिद्ध होता है। आचार्य शुक्ल अपनी अद्भुत समीक्षण-प्रतिभा तथा प्रौढ़ एवं विवेचनात्मक अभिव्यक्ति-कला के कारण वर्तमान काल के निबंधकारों एवं समालोचकों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। ये आधुनिक हिंदी-समीक्षा के प्रवर्तक हैं। इन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समीक्षा-पद्धति को नूतन पथ पर मोड़कर हिंदी को विश्व की भाषाओं में समादरणीय पद पर प्रतिष्ठित किया है।

शुद्धाद्वैत *(हिं० पा०)*

वल्लभाचार्य के अनुसार वैदिक साहित्य, ब्रह्म-सूत्र (दे०), गीता (दे०) और श्रीमद् भागवत (दे०) ज्ञान के आधार हैं। ब्रह्म अद्वैत हैं, और माया-रहित होने के कारण शुद्ध तथा विरुद्ध धर्मों (गुणों) का आश्रय है। ब्रह्म से जगत् आविर्भूत होता है; किंतु ब्रह्म अविकृत ही रहता है; अतएव कार्य-कारण का अविकृत परिणाम है। जगत् का उत्पादन और नाश नहीं होता; उसका तो केवल आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है। जगत् और संसार में यह भेद है कि जगत् तो ब्रह्म के 'सत्' अंश से आविर्भूत होता है और संसार जीव की अविद्या से। ज्ञान-प्राप्ति से संसार का नाश होता है, जगत् का नहीं। ब्रह्म के तीन रूप हैं—पुरुषोत्तम (परब्रह्म अथवा परमात्मा), अंतर्यामी तथा अक्षर ब्रह्म। अक्षर ब्रह्म से अनेक जीव और जगत् निकलते हैं, जैसे अग्नि से चिनगारियाँ (स्फुलिंग)। जीव अणु, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता तथा अनंत हैं। मुक्ति में जीव और ब्रह्म का ऐक्य होता है; और इसका साधन है पुष्टि अर्थात् भगवदनुग्रह जो चतुर्विद है : प्रवाह-पुष्टि, मर्यादा-पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि और शुद्ध-पुष्टि भक्ति। शुद्ध-पुष्टि भक्ति के तीन सोपान हैं : प्रेम, आसक्ति और व्यसन। ज्ञान-कर्म मार्गों की कठिनता के कारण, भक्ति-मार्ग सुलभ है। श्री-कृष्ण परब्रह्म हैं, बालकृष्ण और राधा की उपासना का विधान तथा रासलीला का महत्व है। सूरदास (दे०) और नंद-दास (दे०) की रचनाएँ शुद्धाद्वैत की हैं, जिसका प्रचार-प्रसार वल्लभाचार्य के विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ आदि पुत्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौत्रों के द्वारा किया गया।

शूद्रक *(सं० पा०)*

संस्कृत-साहित्य में शूद्रक नाम के राजा का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। प्रसिद्ध सामाजिक प्रकरण 'मृच्छकटिक' (दे०) के कर्त्ता को शूद्रक कहा गया है। परंतु पात्र के रूप में शूद्रक की रचना बाण (दे०) भट्ट की है जिन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'कादंबरी' (दे०)-में शूद्रक नाम के एक राजकुमार का वर्णन किया है। कालिदास (दे०) के पूर्ववर्ती कवि परिमल एवं सोमिल ने मिलकर 'शूद्रक-कथा' नामक ग्रंथ का भी प्रणयन किया था। 'स्कंदपुराण' के अनुसार शूद्रक राजा विक्रमादित्य से सत्ताईस वर्ष पूर्व हो चके थे। इस प्रकार अनेक छोटी-मोटी कृतियों में शूद्रक का वर्णन उपलब्ध होता है पर सब जगह वे एक राजा के रूप में ही चित्रित किए गए हैं।

'कादंबरी' के शूद्रक की राजधानी विदिशा थी। वह एक राजकुमार है तथा उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष के लगभग ही है। विदिशापति शूद्रक यद्यपि राजा है पर अभी तक उसने विवाह नहीं किया है। प्रमदाजनों के प्रति उनकी रुचि किसी प्राक्तन संस्कार के कारण नहीं है। वह मृगया का शौकीन है तथा मित्रों की गोष्ठियों से ही उसका मनोविनोद हो जाता है। वह एक आदर्श नृपति है। उसके समय में प्रजा में न कोई दुर्गुण है न कोई कमी। उसके शासन में प्रतिबंध नहीं के बराबर है।

इसी राजा शूद्रक के दरबार में चांडाल-कन्यका वैशंपायन नामक शुक को लेकर पहुँचती है जो उज्जयिनी के राजा तारापीड़ के पुत्र चंद्रापीड और गांधर्वकन्या महाश्वेता की सखी कादंबरी (दे०) के प्रेम की कहानी के व्याज से उसकी पूर्व-जन्म की कहानी सुनाता है। कहानी सुनकर शूद्रक का शरीर छूट जाता है और मृत चंद्रापीड जी उठता है; तदनंतर 'कादंबरी' से उसका विवाह हो जाता है।

शून्यता *(पारि०)*

यह तत्त्व-विषयक सिद्धांत है जो 'हीनयान' (दे०) और 'महायान' (दे०) दोनों में माना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार न कोई आत्मा है और न पदार्थों के धर्म (तत्त्व) ही सार पदार्थ हैं। नागार्जुन और अश्वघोष ने 'महायान' की माध्यमिक शाखा के अंतर्गत शून्यवाद (दे० शून्यता) कौ सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया तथा ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों को शून्य के रूप में स्वीकार किया तथा उसे अठारह वर्गों में विभाजित किया। किंतु इनका शून्ययाद भौतिक तथा मानसिक दृश्य-जगत तक ही सीमित है; इनके मत में परम सत्य अनिर्वाच्य है।

शून्य-पुराण *(बँ० कृ०)*

मध्ययुगीन धर्म-साहित्य में जहाँ धर्म-पूजापद्धति का विवरण है वहाँ धर्ममंगल काव्य का समाहार भी है। लुइचंद्र कहानी के सूत्रधार तथा सांजात पद्धति की सृष्टि-कर्त्ता रामाइ पंडित को धर्मकाव्य का पहला रचयिता स्वीकार किया जाता है। रामाइ पंडित ऐतिहासिक व्यक्ति हैं या नहीं—इस संबंध में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। फिर भी 'शून्यपुराण' के रचनाकार रामाइ पंडित एवं आदि धर्मकाव्य के रचयिता रामाइ पंडित अभिन्न हैं या नहीं—यह कहना दुष्कर है। और फिर 'शून्यपुराण' की रचना किसी एक व्यक्ति की है या नहीं—यह कहना भी कठिन है। 'निरंजनेरुष्मा' अंश सहदेव चक्रवर्ती-रचित 'अनिलपुराण' में भी प्राप्त है। 'शून्य-पुराण' के सृष्टि-तत्त्व पर महायान बौद्ध धर्म एवं नाथ-पंथियों का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। रामाइ पंडित-भाषित 'अनिलपुराण' के नाम से एक पोथी बंगीय साहित्य परिषद् के पुस्तकालय में है। इस काव्य में केवल सहदेव चक्रवर्ती की ही नहीं, परवर्ती युग के चंडीमंगल काव्यकारों के रचनांश भी विद्यमान हैं। इस काव्य में चैतन्य का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'शून्यपुराण' एवं 'अनिलपुराण' यदि एक ही कवि के काव्य हैं तो निस्संदेह ये कवि सप्तदश शतक के अंतिम भाग के कवि हैं। भाषाविचार की दृष्टि से भी यही प्रमाणित होता है। 'अनिलपुराण' के कवि की कथा के अनुसार कवि उड़ीसा के जाजपुर के निवासी थे। जाजपुर के साथ धर्म-साहित्य का काफ़ी पुराना संबंध है। जाजपुर में रामाइ पंडित के निवास-स्थान का कोई चिह्न नहीं है परंतु वैतरणी नदी एवं उसकी तटवर्ती श्मशान-भूमि एवं धर्मठाकुर के मंदिरादि आज भी विद्यमान हैं।

शून्य-संपादने *(क० कृ०)*

'शून्य-संपादने' वीरशैव धर्म का एक अत्यंत मुख्य ग्रंथ है। इसका अर्थ है 'शून्य' का 'संपादन' अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्य की प्राप्ति। 'शून्य' क्या है? 'शून्य' वीरशैव धर्म का पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ है 'अष्टावतरण' का मूल्य समझकर 'षट्स्थलों' के अनुसार उपासना करके साधक को प्राप्त ब्रह्मसाक्षात्कार। इस ब्रह्मसाक्षात्कार के विधानों के संबंध में 'शून्य-संपादने' में बताया गया है, अतएव वह शास्त्र-ग्रंथ है। संप्रति प्रसिद्ध 'शून्य-संपादने' गूळूर सिद्धवीरण्णोडेय से संगृहीत है। इसके संपादन का कार्य कम-से-कम चार बार हुआ होगा, ऐसा विद्वानों का अभिमत है। अब तक प्राप्त 'शून्य-संपादने' ग्रंथों की संख्या पाँच है। वे इस प्रकार हैं—(1) शिवगणप्रसादि महादेवय्या (दे० महादेवय्या) द्वारा संपादित (संगृहीत) 'शून्य-संपादने'। यह अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है। अन्य संपादकों ने महादेवय्या का नामोल्लेख किया है, परंतु दुर्भाग्य यह है कि इनके समय तथा जीवनी के विषय में विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। (2) गुम्माळपुर के सिद्धलिंग यति के कथनानुसार द्वितीय 'शून्य-संपादने' के संपादक केंचवीरण्णोडेय हैं। इनका ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इनके नाम का उल्लेख भी अन्य लोगों ने नहीं किया है, अतएव कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ऐसा कोई ग्रंथ नहीं रहा होगा। इसके बाद जिस ग्रंथ का उल्लेख होगा, उसके साथ ही इसका मिलान हो सकता है। (3) हलगेय देवरु (समय पंद्रहवीं शती) द्वारा संपादित ग्रंथ 'तृतीय शून्य-संपादने' है। (4) चौथा ग्रंथ गुम्मळापुर के सिद्धलिंग यति द्वारा संपादित है। स्व० एम० आर० श्रीनिवासमूर्ति (दे०) जी के कथनानुसार यति का यह ग्रंथ केंचवीरण्णोडेय के ग्रंथ का संक्षिप्त रूप है। यति का समय 1480-1500 ई० के बीच में माना जाता है। (5) गुळूर सिद्धवीरण्णोडेय द्वारा संपादित ग्रंथ पाँचवाँ है। इनका समय 1500 ई० के आसपास माना जा सकता है। ये विविध संस्करण क्यों निकले, इनमें पाठभेद भी क्यों है, इसके संबंध में विद्वानों ने विचार किया है। अल्लमप्रभु (दे०) 'शून्य-संपादने' के केंद्रबिंदु हैं। वीरशैव वचनकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उनके वचनों की उपलब्धि और प्रभाव के अनुसार तथा सिद्धराम (दे०) जैसे भक्त के वीरशैव-धर्म में दीक्षित होने के कारण ऐसे संस्करण निकले होंगे, ऐसा कुछ लोग अनुमान लगाते हैं।

'शून्य-संपादने' की विशेषता उसकी नाटकीयता में है। उसमें प्रभुदेव अथवा अल्लम प्रभु तथा अन्य वचनकारों के वचन संवाद-पद्धति में पिरोए गए हैं। प्लेटो के संभाषणों के समान ये संवाद महत्वपूर्ण हैं। ऊपर उल्लिखित पाँच संस्करणों गुळूर में सिद्धवीरण्णोडेय के ग्रंथ को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उसमें संपादक की प्रतिभा और नवीनता प्रकट हुई है। 'शून्य-संपादने' के सभी संस्करणों पर विचार करने से ज्ञात होगा कि उनमें प्रभुदेव के चरित के अतिरिक्त सिद्धराम और अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का) के व्यक्तित्व का भी अच्छा परिचय मिलता है। कन्नड के संपादित ग्रंथों में 'शून्य-संपादने' का विशिष्ट स्थान है, वह वीरशैव-धर्म का सुंदर पाठ्यग्रंथ भी है।

शूरिय (सूर्य) नारायण शास्त्री *(त० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1903 ई०]

इनका जन्म मदुरै में हुआ था। वहीं इन्होंने आरंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। अँग्रेज़ी में बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद भी तमिल के प्रति इनका अटूट अनुराग बना रहा था। ये अनेक वर्षों तक तमिल प्राध्यापक के रूप में कार्य करते रहे। शुद्ध तमिल बोलने और लिखने पर विशेष बल देते थे। कालांतर में इन्होंने अपने नाम शूरियनारायण शास्त्री को भी शुद्ध तमिल में अनूदित कर डाला था। ये परिदिमाल कलैत्ज्जन कहलाने लगे। शूरियनारायण शास्त्री बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार थे। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं—'रूपावती' (दे०), 'कलावती' (दे०) और 'मान विजयम्' (दे०)। पद्यबद्ध नाटक 'मानविजयम्' का आधार है संघकालीन कृति 'कळवलि' नार्पदु' और 'पुरनानूरु' (दे०) की एक कविता। इस नाटक का नायक उस कविता का रचयिता कणैक्काल इरुंपोरै है। 'पावलर विरुंदु' में नाना विषयों से संबद्ध पद हैं। 'तनिप्पशुरत्तोकै' के पद अँग्रेज़ी सॉनेट की शैली में रचित हैं। इस कृति को सर जी० यू० पोप ने अँग्रेज़ी में अनूदित किया था। 'मदिवाणन' इनका श्रेष्ठ उपन्यास है। 'नाडह इयल' में नाटक रचना संबंधी विवेचन है। 'तमिल मोलि वरलारु' में इन्होंने तमिल भाषा का इतिहास प्रस्तुत किया है। इन्होंने कुछ वर्षों तक 'ज्ञानबोधिनी' नामक दैनिक पत्र के सह-संपादक के रूप में कार्य किया था। इन्हें तमिल के प्रसिद्ध साहित्यकारों में गिना जाता है। 'तमिल मोलि वरलारु' को तमिल भाषा का प्रामाणिक इतिहास माना जाता है।

श्रृंगार नैषधमु *(ते० कृ०)*

यह तेलुगु महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) की विख्यात कृति है। यह श्रीहर्ष (दे०) के 'नैषधीयचरित्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) का छायानुवाद है। इस काव्य की रचना से पहले तेलुगु में केवल पुराणों का ही अनुवाद होता था। तेलुगु के काव्यानुवादों की परंपरा में यह पहली कृति है। यह काव्य चित्र-विचित्र, उदात्त एवं उज्ज्वल कल्पनाओं तथा शब्दचित्रों से परिपूर्ण है। इसमें कवि ने मूल का अनुसरण करते हुए भी, इससे पूरी तरह बँधे न रहकर अनुचित लगने वाले प्रसंगों का त्याग करते हुए आवश्यक नये प्रसंगों का भावन करके—विभिन्न शैलियों के प्रयोग किए हैं। इसकी काव्य-शैली अत्यंत प्रौढ़ एवं गंभीर है तथा 'नैषधम् विद्वदौषधम्' की सूक्ति को तेलुगु में सार्थक करती है।

इसकी भाषा संस्कृत-शब्दों से धीर-गंभीर नाद-सौंदर्य से युक्त होने के कारण पाठक एवं श्रोता को आनंदित करती है। तेलुगु के परवर्ती काव्यानुवादकों के लिए यह कृति मार्गदर्शक बनी।

श्रृंगारप्रकाश *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती]

ग्यारहवीं शती के भोजराज (दे० भोज) की दूसरी कृति 'श्रृंगारप्रकाश है। यह ग्रंथ हस्तलिखित रूप में संपूर्णतया प्राप्त है। परंतु पूर्णरूपेण अभी तक कभी भी प्रकाशित नहीं हुआ। डा० राघवन ने इसके ऊपर जो थीसिस (निबंध) लिखा है उसी से इस ग्रंथ का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। यह ग्रंथ अलंकारशास्त्र के ग्रंथों में सबसे बड़ा, विस्तृत तथा विपुलकाय है। इसमें 36 अध्याय हैं जिनमें शब्दार्थ-विषयक वैयाकरण-सिद्धांतों का विवेचन, गुणदोष-विवेचन किया गया है तथा महाकाव्य, नाटक तथा रसादि पर भी प्रकाश डाला गया है। श्रृंगार को एकमात्र रस मानने के लिए ही इन्होंने 'श्रृंगारप्रकाश' लिखा है। 'श्रृंगारप्रकाश' को अलंकारशास्त्र का विश्वकोष कहना अनुचित न होगा क्योंकि इसमें प्राचीन आलंकारिकों के मतों के साथ नवीन मतों का समन्वय कर एक बड़ा ही भव्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

श्रृंगारम्मा *(क० ले०)*

मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (1672 से 1704 ई० तक) के आश्रय में जिन कवि-लेखकों को प्रोत्साहन मिला था, उनमें से एक ये भी हैं। ये श्रीवैष्णव संप्रदाय को मानने वाली थीं। इनके पिता चिंतामणि देशिकेंद्र और गुरु श्रीनिवासदेशिक थे। इन्होंने 'पद्मिनी-कल्याण' नामक काव्य लिखा है। उसमें 189 सांगत्य छंद हैं और तिरुपति के भगवान श्रीनिवास पद्मावती के साथ विवाह का वर्णन है। इनका काव्य लालित्यपूर्ण है, उसकी भाषा-शैली में मनोहरता है, और उसमें अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है।

श्रृंगारशाकुंतलम् *(ते० कृ०)*

पिल्ललमर्रि पिनवीर भद्रुडु (दे०) (समय—पंद्रहवीं-सोलहवीं शती) का 'श्रृंगारशाकुंतलम्' चार सर्गों का प्रबंध-काव्य है। व्यास (दे०) एवं कालिदास (दे०) से गृहीत मुख्य कथावस्तु में अपनी कुछ नूतन उद्भावनाएँ जोड़कर इन्होंने इसकी रचना की है। इस काव्य में हस्तिनापुर के सौंदर्य-वर्णन, दुष्यंत के आखेट का वर्णन, शकुंतला के जन्म-वृत्तांत का वर्णन आदि विषयों पर इनका विशेष ध्यान रहा है और इन अवसरों पर कवि ने अपनी साहित्यिक पटुता को निखारने का प्रयत्न किया है। परंतु कथा-निर्वाह में औचित्य-भंग भी पाया जाता है। जैसे—कण्व के आश्रम में निष्ठा-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले अबोध बटु द्वारा मेनका एवं विश्वामित्र की श्रृंगार-चेष्टाओं का वर्णन किया जाना। कथा-संयोजन में कवि ने कालिदास की विप्रलंभपरक उत्तरार्ध-कथा को ग्रहण न करके, व्यास के समान संयोगात्मक कथानक ही ग्रहण किया है।

शेख अयाज *(सिं० ले०)*

ये सिंध के प्रसिद्ध नगर सक्खर में रहते हैं। विद्यार्थी-जीवन से ही इनकी रुचि साहित्य के प्रति अधिक रही है। 1940 ई० के आसपास इन्होंने सिंधी-साहित्य के क्षेत्र के प्रवेश किया था और शीघ्र ही अपनी कविताओं से साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। विभाजन के पश्चात् सिंध में सिंधी मुसलमानों को अधिकार दिलाने के लिए इन्होंने पाकिस्तान की सरकार को ललकारा और 'जीए सिंध' का नारा लगाया। इस कारण इनको कई बार जेल यात्राएँ करनी पड़ीं। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'भँवरु भिरे आकास', 'ही गीत सुनहरी सिंधुअ जा', 'जलु जलु मशाल जलु' (तीनों ही कविता-संग्रह हैं); 'जे काक ककोर्या कापिड़ी' (पत्र-साहित्य); 'दोदे जो मौतु' (संगीत-नाटक)। भारत के प्रसिद्ध सिंधी-कवि नारायण 'श्याम' (दे०) के समान इन्होंने भी भावाभिव्यक्ति तथा कला की दृष्टि से सिंधी-कविता में नये-नये प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए हैं। ये प्रधानतया प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक हैं। कवि होने के साथ-साथ ये सफल गद्य-लेखक भी हैं। इनकी रचनाएँ ओजपूर्ण शैली का सुंदर उदाहरण हैं।

शेख़ फ़रीद *(पं० ले०)* [जन्म—1173 ई०; मृत्यु—1266 ई०]

शेख़ फ़रीद सूफ़ी-मत के चिश्ती-संप्रदाय के प्रसिद्ध संत थे। ये 'शेख़ फ़रीदुद्दीन शकरगंज' के नाम से भी विख्यात हैं। इनका जन्म ज़िला मुलतान (पश्चिमी पंजाब) के खोतवाल नामक गाँव में शेख़ जमालुद्दीन सुलेमान के घर हुआ था। शेख़ फ़रीद को शिक्षा-दीक्षा के लिए मुलतान के एक इस्लामी मक़तब में भेजा गया। वहाँ जब एक बार अजमेर के चिश्ती संप्रदाय के प्रसिद्ध संत ख़्वाजा क़ुतुबद्दीन बख़्तियार 'काकी' का आगमन हुआ तो शेख़ फ़रीद उनके शिष्य बन गए। बाद में इन्होंने अयोधन (पाक पटन) नामक स्थान को अपनी साधना का केंद्र बनाया और अंत तक वहीं रहे।

शेख़ फ़रीद की गणना पंजाबी-काव्य के आदि उन्नायकों में की जा सकती है। इनसे पहले लोक-गीतों के बिना पंजाबी की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। इनकी लोकप्रियता के प्रमाण इनकी वाणी के अनेक अंश आज भी पंजाबी परिवारों में सूक्तियों के रूप में प्रचलित हैं। ये अपने समय के सच्चे लोक-कवि थे, इसी कारण गुरु अर्जुन देव ने गुरु ग्रंथ साहब में इनकी वाणी को भी स्थान दिया।

गुरु ग्रंथ साहब में शेख़ फ़रीद की रचना तीन स्थलों पर संकलित है—(1) 'राग आसा' में (2 शबद), (2) 'राग सूही' में (2 शबद) तथा (3) 'शलोको' में (112 शलोक)। काव्य-क्षेत्र में इनकी प्रतिष्ठा 'शलोकों' के कारण ही है।

शेख़ फ़रीद की कविता का मुख्य स्वर आध्यात्मिक प्रेम, सदाचार और लोक-नीति का है। शांत और करुण रस की अजस्र धारा इनके काव्य में प्रवाहित है। विशेषता यह है कि इनकी वाणी फ़ारसी-रंग से सर्वथा मुक्त और भारतीय परिवेश से पूर्णतः संपृक्त है। भाव, भाषा, प्रतीक, उपमान, दृष्टांत—सभी का चयन इन्होंने यहाँ के लोक-जीवन से किया है। पंजाबी समाज में ये 'बाबा फ़रीद' के नाम से समादृत हैं।

शेखर *(हिं० पा०)*

'शेखर : एक जीवनी' (दे०) के नायक शेखर द्वारा अज्ञेय (दे०) अपनी इस मान्यता की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं कि व्यक्ति निरा पुतला, निरा जीव नहीं है, वह बुद्धि-विवेक-संपन्न प्राणी है जो परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए उन्हें बनाता और बदलता चलता है। बाल-मनोविज्ञान प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास शिशु शेखर को अहं, भय और सेक्स की मूल वृत्तियों से परिचालित दिखाता है। शैशव और किशोरावस्था की स्थितियों से गुज़रते हुए शेखर की मनःस्थितियों का अध्ययन इतने विस्तार और गहराई के साथ किया गया है कि कहीं-कहीं वह मनोविज्ञान की पाठ्य पुस्तकों का उदाहरण प्रतीत होने लगता है।

असामान्य प्रतिभा, लगन, कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी से युक्त कल्पनाशील शेखर स्वातंत्र्य की खोज में लगे विद्रोही के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रारंभ में उसका विद्रोह स्कूली शिक्षा, परंपरागत मान्यताओं और उनके कारण दलितों के प्रति अन्याय के विरुद्ध है तो बाद में वह सामाजिक रूढ़ियों, नैतिक मूल्यों और राजनीतिक बंधनों के विरुद्ध विद्रोह करता है, बचपन से ही अंतर्मुखी और चिंतनशील शेखर घोर स्वाभिमानी है; अपमान, चाहे वह किसी के द्वारा और किसी भी दशा में हो, उसे सह्य नहीं। दलित मानवता के प्रति सहानुभूति और उच्च वर्णों के दयनीय दंभ के विरुद्ध आक्रोश फूलाँ के प्रसंग से आरंभ हो मलाबार-यात्रा में अछूतों के साथ नृशंस व्यवहार तक में दृष्टिगत होता है। क्रांतिकारी होने के साथ-साथ वह सौंदर्यद्रष्टा कलाकार और लेखक भी है। अपने चेतन मन में वह समाज के प्रचलित मूल्यों को ठुकराकर संतोष पाता है पर उसके भीतर निरंतर एक उथल-पुथल मची रहती है जो उसे चैन से नहीं बैठने देती, उसके अचेतन में यौन-प्रवृत्ति तथा विवेक-बुद्धि में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। जीवन में होने वाली यातनापूर्ण घटनाओं ने इसे बौद्धिक सात्त्विक घृणा से भर दिया, अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का भाव जगाया तो रागात्मक घटनाओं—सरस्वती, शारदा, शांति और विशेषतः शशि के स्नेहिल संपर्क ने उसे व्यापक प्रेम की सामर्थ्य प्रदान की और इन दोनों के योग से बना अहंवादी, घोर क्रांतिकारी पर साथ ही अंतर्मुख, आत्मचिंतक, कल्पनाप्रवण कलाद्रष्टा संवेदनशील लेखक।

'शेखर : एक जीवनी' मनोवैज्ञानिक उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके लेखक की रुचि शेखर के मन में पैठ उसकी गहराइयों को उद्घाटित करने में है अतः यहाँ चरित्रांकन के लिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रयुक्त शिल्प अपनाया गया है। पात्र मुख से एक भी शब्द कहे बिना मुख-मुद्राओं की भाषा में भावों का आदान-प्रदान करते हैं, सहस्मृतियों के आधार पर आत्म-विश्लेषण करते हैं। प्रत्यावलोकन-प्रणाली, अंतरालाप, चेतना-प्रवाह, उद्धरण-शैली आदि के द्वारा चरित्र का उद्घाटन और क्रमिक विकास दिखाया गया है।

शेखर निर्दोष सृष्टि नहीं है। अज्ञेय ने शेखर से कहीं-कहीं इतने ऊँचे स्तर का चिंतन कराया है, घटनाओं के प्रति ऐसी प्रतिक्रिया दिखाई है जो उसकी वय को देखते हुए संगत प्रतीत नहीं होती। उसकी सौंदर्यानुभूति इतनी रहस्यपूर्ण और अव्याख्येय है कि उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता कदाचित् इन्हीं दोषों के कारण नंददुलारे वाजपेयी (दे०) ने कहा था कि 'शेखर मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का पुतला है, जीवन के अनुभव और आस्थाएँ वहाँ स्थान ही नहीं पातीं।'

कुछ आलोचकों का मत है कि अज्ञेय ने इस उपन्यास के कलेवर में अपनी अधूरी जीवनी और शेखर के रूप में स्वयं को ही प्रक्षेपित किया है। अज्ञेय और शेखर के डीलडौल, अभिरुचियों, जीवन-प्रसंगों विशेषतः बाल्यकाल की घटनाओं में पर्याप्त समानता है। उनके और शेखर के जीवन-दर्शन में भी साम्य है। वस्तुतः शेखर के निर्माण में लेखक ने अपने समस्त अनुभवों, अनुभूतियों और विचार-मंथन की पूँजी लगा दी है फिर भी हमें याद रखना चाहिए कि उपन्यास का पात्र कल्पना की उपज होता है। अतः शेखर लेखक का प्रतिनिधि होते हुए भी अपना निजी अस्तित्व रखता है; वह अज्ञेय का छद्म नाम न होकर जीता-जागता औपन्यासिक पात्र है, हिंदी-उपन्यास के उन थोड़े से पात्रों में से है जो अमर हैं, जिन्हें हम भूल नहीं सकते।

शेखर : एक जीवनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—प्रथम भाग : 1944 ई०; द्वितीय भाग : 1944 ई०]

दो भागों में रचित यह उपन्यास यद्यपि अज्ञेय (दे०) की पहली औपन्यासिक कृति है किंतु अपने सर्वथा नये अभिव्यंजना-शिल्प के कारण यह हिंदी की बहुचर्चित रचना रही है। भारत को अँग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त करने के लिए किए गए विभिन्न आंदोलनों में से क्रांतिकारी आंदोलन को पृष्ठाधार के रूप में चुनते हुए लेखक ने इस उपन्यास में शेखर (दे०) के माध्यम से एक क्रांतिकारी के व्यक्तित्व के विकास-क्रम को रूपायित किया है। उपन्यास के प्रथम भाग में शेखर के बचपन से लेकर कॉलेज-जीवन तक के घटना-प्रसंगों को रूपायित किया गया है तथा भाग दो में शेखर की कॉलेज-कालीन स्मृतियों, जेल-जीवन तथा मौसेरी बहिन शशि से संबद्ध प्रकरणों को पिरोया गया है।

आत्मकथात्मक शैली में निबद्ध यह एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है जिसमें लेखक ने मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से विभिन्न सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं तथा हिंसा-अहिंसा, घृणा-प्रेम, पाप-पुण्य आदि के संबंध में बहुमूल्य विचार व्यक्त किए हैं। इसीलिए कतिपय आलोचकों ने इसे बदलते हुए जीवन-मूल्यों का रूपांकन करने वाला उपन्यास कहा है।

यद्यपि शेखर का अभिव्यंजना-शिल्प अत्यंत उच्च कोटि का है तथा लेखक ने फ़्लैशबैक की टेकनीक का प्रश्रय लेते हुए काव्यात्मक भाषा एवं लघुकथा, यात्रा-वृत्त तथा रेखाचित्रों की शैली का समन्वय करते हुए पूरे कथाक्रम को उजागर किया है किंतु फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इसमें शेखर तथा शशि के अतिरिक्त अन्य चरित्र पूरी तरह से उभर कर नहीं आ सके हैं। सच तो यह है कि पाठक को प्रत्येक चरित्र अपनी दृष्टि से नहीं अपितु शेखर की दृष्टि से देखना पड़ता है। समग्रतः यह उपन्यास शेखर के माध्यम से एक असाधारण व्यक्ति के जीवन-क्रम तथा युग-संघर्ष को सशक्त अभिव्यक्ति देने वाला एक निजी किंतु महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

शेर *(उर्दू० पारि०)*

शब्दकोश में 'शेर' का अर्थ 'जानना' या 'मालूम करना' है। 'शेर' पारिभाषिक दृष्टि से उस कलाम को कहते हैं जो छंदोबद्ध हो और जिसमें तुक मौजूद हो तथा शेर कहने वाले ने इसे इच्छापूर्वक कहा हो। इसे दो चरणों में बाँटा जा सकता है। प्रत्येक चरण को 'मिसरह' कहते हैं और दो मिसरे मिलकर शेर बनते हैं। यों तो शेर को 'बैत' भी कहा जाता है। किंतु वास्तव में मसनवी का शेर ही बैत कहलाता है।

मौलाना शिबली (दे० शिबली) के अनुसार 'वह उक्ति जो भावनाओं को उत्तेजित करे और उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिशील बनाए, शेर है।' इसी प्रकार एक अन्य जगह वह कहते हैं कि 'भावनाएँ जब शब्दों का परिधान धारण कर लेती हैं तो शेर बन जाती हैं।'

शेर-उल-अज़म *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1906-7 ई०]

'शेर-उल-अज़म' अल्लामा शिवली निअमानी की रचना है। इसमें फ़ारसी काव्य और कवियों का समीक्षात्मक वृत्तांत है। इस कृति के पाँच भाग हैं और इसका विस्तार ग्यारह सौ पृष्ठों में है। इसमें फ़ारसी के कवियों के अच्छे शेरों का चयन अधिक और कवियों के जीवन-वृत्त का उल्लेख कम है। अल्लामा शिवली का मुख्य लक्ष्य काव्य-समीक्षा प्रस्तुत करना था, काव्य का इतिहास नहीं।

इसके पहले तीन भागों में नौवीं से सत्रहवीं शती ई० तक 24 मुख्य कवियों का वृत्तांत है। लगभग एक पूरे भाग में फ़िरदौसी और उनके शाहनामे का वर्णन है। चौथे भाग में फ़ारसी शायरी के गुण-दोषों का विवेचन है। अंतिम भाग में प्रेम, सौंदर्य, नीति, दर्शन और स्तुति आदि की समीक्षात्मक चर्चा है।

यह फ़ारसी भाषा का समीक्षा-शास्त्र है और अपनी तरह की नूतन रचना है। यह फ़ारसी के श्रेष्ठ कवियों का समीक्षात्मक संग्रह है। इसमें 'शेख' सादी और 'हाफ़िज़' शीराज़ी जैसे ईरानी कवियों के साथ-साथ अमीर खुसरो (दे०) जैसे भारतीय कवियों का भी उल्लेख किया गया है।

शेर-उल-हिंद *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

लेखक : मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी। मआ-रिफ़ आज़मगढ़ प्रेस द्वारा प्रकाशित इस कृति में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक उर्दू काव्य के समग्र ऐतिहासिक परिवर्तनों और क्रांतियों का उल्लेख विस्तृत व्याख्या के साथ किया गया है। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध लेखकों, समर्थ कवियों और काव्य-गुरुओं का विशद विवेचन भी किया गया है। अनेक प्रख्यात कवियों के काव्य का पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर इस कृति को लेखक द्वारा अधिकाधिक उपयोगी बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। इस कृति में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी उर्दू साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण किया गया है। उर्दू काव्य की समस्त विधाओं—ग़ज़ल (दे०), क़सीदा (दे०), मसनवी (दे०) और मर्सिया (दे०) आदि पर साहित्यिक स्तर की आलोचना की गई है। इसके अतिरिक्त इसमें उर्दू शायरी का स्तर, उर्दू साहित्य के प्राचीन संरक्षक काव्य-गुण, उर्दू शायरी के साथ हिंदुओं का संबंध और उर्दू साहित्य में राष्ट्रीयता आदि विषयों पर भी खोजपूर्ण लेख सम्मिलित हैं। अनेक भागों में लिखित यह कृति उर्दू साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

शेळके, उ० ज० *(म० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

अमरावती के रहने वाले श्री शेळके पहले मुद्रण-व्यवसाय में थे। वहाँ से त्यागपत्र देने के उपरांत अब स्वतंत्र लेखन-कार्य में संलग्न हैं। पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के अतिरिक्त अब तक इनके सौ के लगभग कथा-संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से दो उपन्यासों और एक कहानी-संग्रह को महाराष्ट्र-शासन का पुरस्कार भी मिल चुका है।

शेळके, शांता *(म० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

ये आधुनिक काल की प्रथितयश उपन्यास-लेखिका एवं कवयित्री हैं। इन्होंने 'नवयुग' साप्ताहिक पत्र की संपादिका होने पर गद्य-लेखन प्रारंभ किया था। इनके ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हैं, जिनमें प्रमुख हैं—'भूवरील स्वर्ग', 'सुखाची सीमा', 'भायेचा पाझर', 'विझती ज्योत' आदि। इनमें स्त्री-पुरुषों के संबंधों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है।

इनका काव्य-संग्रह 'वर्षा' नाम से प्रकाशित है। इनके काव्य के प्रसंग मुख्यत: प्रेम, प्रकृति तथा ईश्वर हैं। इनमें कवि की आकांक्षाओं एवं अनुभूतियों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति मिलती है। काव्य में सर्वत्र स्वप्निल वातावरण है। ये विरह को जीवन का चिरंतन सत्य और मिलने को क्षणिक सुख मानती हैं। इसी कारण इनको प्रेमभाव की अभिव्यक्ति में एकाकीपन मिलता है।

शांता शेळके का काव्य छंद-प्रयोग की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण है। भाषा सहज है, कहीं भी उसमें अतिशयोक्ति या ऊहा नहीं है।

शेवकाणी, हीरो *(सिं० ले०)*

ये उल्लासनगर (महाराष्ट्र) के तलरेजा कॉलेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सिंधी-विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक हैं। सिंधी-साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने पिछले दस-बारह वर्षों में काफ़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। इन्होंने सिंधी-साहित्य को सफल और प्रभावशाली कहानियाँ दी हैं। ये कहानीकार की अपेक्षा सफल आलोचक के रूप में सिंधी-साहित्य-जगत् में अधिक प्रसिद्ध हो चुके हैं। सिंधी की विभिन्न साहित्यिक कृतियों पर इनके आलोचनात्मक निबंध पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। इन्होंने अपनी विशेष शैली के कारण सिंधी-आलोचना को एक नया मोड़ दिया है।

शेवालि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1932 ई०]

रत्नकांत बरकाकती (दे०) की इस रचना की कविताओं का मूल स्वर प्रेम और सौंदर्य है। कवि ने प्रेमिका के पूर्वराग, मिलन और विरह का वर्णन किया है। इसमें लौकिक प्रेम अलौकिकता में परिणत होता हुआ दिखाया गया है। इस संग्रह की 'सुंदर' और 'मोर पूजा' नामक कविताओं में दार्शनिकता का आभास मिलता है। रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर से प्रभावित होकर कवि ने 'ताज-महल' कविता लिखी थी। उसकी कविता का प्रधान आकर्षण इसकी ओजपूर्ण भाषा और श्वासाघात-प्रधान छंद है। उसने कुछ छंद अपने और अपनी कविता के ऊपर भी लिखे हैं।

शेषय्या, चागंटि *(ते० ले०)*

साहित्यिक इतिहासकार एवं अनुवादक के रूप में इनको विशेष ख्याति मिली है। तेलुगु के शतशत कवियों में इनका शोध-कार्य इसका प्रमाण है। 'आंध्र कवि तरंगणि' नामक विशालकाय रचना में तेलुगु-साहित्य एवं साहित्यकारों पर इतने विस्तार से पहली बार इन्होंने ही लिखा था। अतः परवर्ती साहित्यिक अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए यह ग्रंथ मार्गदर्शक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'दुर्गेशनंदिनी' आदि अनेक उपन्यासों का अनुवाद करके तेलुगु के उपन्यास-साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

शेष सप्तक *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की कविताओं का संग्रह है तथा उनके चौहत्तरवें जन्मदिन पर 1935 ई० में प्रकाशित हुआ था। ये कविताएँ दो मास में लिखित हैं।

समस्त अहंकार, नाम एवं ख्याति त्याग निर्मल-निरासक्त चित्त से कवि आत्म-चिंतन में मग्न होना चाहता है। सृष्टि, ध्वंस, जन्म, मृत्यु के अंतराल में जहाँ महाकाल निरासक्त अवस्था में अविचलित आनंद में विराज रहा है वहाँ कवि आश्रय पाना चाहता है। यही इन कविताओं का विषय है।

यह गद्य छंद में नूतन रूप में प्रस्तुत है। इसको गद्य-काव्य की संज्ञा दी जाती है। इससे कवि के भाव-जीवन में उपनिषद्-युग का प्रारंभ माना जाता है। इसकी भाषा अत्यंत कलापूर्ण है। इन कविताओं में अत्यंत गंभीर चिंतन को सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शेषेर कविता *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का अन्य प्रसिद्ध लघु उपन्यास है। बैरिस्टर अमित अभिजात वर्ग की अति आधुनिक युवतियों के व्यक्तित्वहीन आचरण से ऊब कर शिलांग में शांति एवं एकांत पाने के लिए जाता है। यहाँ एक दुर्घटना में उसका परिचय लावण्य से होता है जो उसके जीवन की सबसे मधुर घटना बन जाती है। प्रकृति के मोहक वातावरण में दोनों की प्रेम-भावना इंद्रधनुषी रंगों में खिलने लगती है। दोनों एक-दूसरे के समीप आते हैं दूर होने के लिए। उपन्यास का केंद्र-बिंदु है नूतनता का प्रेमी, कल्पनाशील, रोमानी अमित। एक सजग युवती और सहज नारी होने के नाते अमित लावण्य के विशिष्ट व्यक्तित्व पर मुग्ध ही नहीं होता, उसे जीवन-साथी बनाने के लिए व्यग्र भी है। अमित अपने भावलोक की नयी सृष्टि से प्रसन्न एवं मुखर है परंतु लावण्य को सुरक्षा की आशंका है। केरी-प्रसंग से वह समझ जाती है कि इस व्यक्ति को विवाह के नीड़ में बाँध रखना असंभव है। ऐसी विवश स्थिति में दोनों का अपने-अपने किशोर साथी से विवाह करना स्वाभाविक है। प्रेम और विवाह की चिरंतन समस्या के परिप्रेक्ष्य में रवींद्र ने नर-नारी की मूल प्रकृति का विश्लेषण किया है। पुरुष भाव-प्राण एवं स्वच्छंद वृत्ति का हो सकता है, पर नारी सुरक्षाबोध से बच नहीं सकती। काव्यात्मकता और रोमांटिकता से व्याप्त यह उपन्यास रवींद्र की श्रेष्ठ उपलब्धि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैवालिनी *(बँ पा०)*

(चंद्रशेखर में) शैवालिनी की नियति बंकिम-चंद्र (दे० चट्टोपाध्याय) के सामाजिक अनुशासन में बँधी पड़ी है। नीतिविद् बंकिम ने शैवालिनी के नारी-हृदय की आशा-आकांक्षा को समाज की नीति-शृंखला में बाँधना चाहा था एवं वहीं तथाकथित नीति के साथ हृदय का द्वंद्व स्पष्ट हो उठा है। प्रेम की पहली परीक्षा में प्रताप की जहाँ जीत हुई है. शैवालिनी वहाँ पराजिता है। इस पराजय की ग्लानि से प्रेरित शैवालिनी की अग्निशुद्ध मूर्ति ने प्रताप को अपना बनाना चाहा है परंतु तब तक वह चंद्रशेखर की परिणीता हो चुकी है। इसीलिए प्रेम के जगत् ने वहाँ अभिशाप का रूप धारण किया है एवं प्रायश्चित्त की लीक वाले रास्ते से पति के साथ मिलन होता है परंतु वहाँ भी शंका बिलकुल समाप्त नहीं हुई है। इसीलिए प्रताप की आत्माहुति के माध्यम से उपन्यास की परि-समाप्ति हुई है। शैवालिनी की नियति विजयी हुई है परंतु पराजय के ग्लानिभार से वह नतशिर है। शैवालिनी चतुर एवं साहसी है। प्रत्युत्पन्नमतित्व में उसकी तुलना नहीं है। प्रणय-तृष्णा उसके अंतर की गहराई में दुर्निवार है। शैवालिनी का अहंकार उसके लिए गौरव का विषय है, प्रणय उसकी प्राण-तरंग है। इसीलिए शैवालिनी निंदिता होते हुए भी हृदय-राज्य में निस्संदेह अनिंदिता, अपरूपा है।

शैली *(पारि०)*

'शैली' पाश्चात्य साहित्यालोचन में विवेचित 'स्टाइल' का हिंदी-पर्याय है। 'स्टाइल' शब्द लेटिन 'स्टाइ-लस्' से निष्पन्न है। 'स्टाइलस्' एक प्रकार की धातु-निर्मित लेखनी होती थी जिससे मोम की पट्टियों पर शब्द अंकित किए जाते थे। इस शब्द का प्रयोग क्रमशः लेखन-कार्य के कौशल और नैपुण्य के अर्थ में होने लगा। पाश्चात्य साहित्यालोचन में प्लेटो-अरस्तू-युग से ही 'स्टाइल' की दो भिन्न अर्थों में गृहीत किए जाने की परं-परा रही है। प्लेटोवादी विवेचकों के अनुसार प्रत्येक उक्ति में 'शैली'-तत्त्व की स्थिति अनिवार्य नहीं है, जबकि अरस्तूवादियों की दृष्टि में 'शैली' अभिव्यक्ति मात्र का अनिवार्य अंग है; यह और बात है कि वह सबल या दुर्बल अथवा अच्छी या बुरी किसी भी प्रकार की हो।

'शैली' का शब्दार्थ है किसी भी कार्य के संपादन का ढंग, प्रकार, प्रणाली, तरीका, रीति अथवा पद्धति। जब कार्य-संपादन में कोई वैशिष्ट्य हो तो उसे कौशल कहा जाता है। इससे एक ओर तो कर्त्ता के निजी व्यक्तित्व की पृथक्ता प्रकट होती है तथा दूसरी ओर उसमें प्रभविष्णुता के गुण का संवर्द्धन होता है। प्रभविष्णुता के संवर्द्धन के और भी अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे—युग, स्थान, वंश, भाषा, छंद आदि की विशेषता। साहित्य के संदर्भ में शैली का अर्थ हुआ अभिव्यक्ति का वह धर्म जो उसे सौंदर्य और प्रभविष्णुता का वैशिष्ट्य प्रदान करता है। शैली का गुण मात्र अभिव्यंजना-शिल्प में निहित नहीं रहता; उसकी उद्भूति में विषय-वस्तु की प्रेरणा का अनिवार्य योग होता है। उत्कृष्ट शैली का मूल आधार है कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए सर्वोपयुक्त, एकमात्र, अपरिहार्य एवं अद्वितीय शब्दों का चयन।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समय-समय पर शैली के अनेक गुणों का विवेचन हुआ है जिनमें प्रमुख हैं प्रांज-लता, औचित्य, औदात्य, शक्तिमत्ता, मार्मिकता और अलं-करण। शैली के दोषों में शब्दाडंबर, अनावश्यक वाग्विस्तार, पुनरावृत्ति, अत्युक्ति, अनुपयुक्त, शब्द-प्रयोग, दूरारूढ़ रूपक-याजना और शिथिल पदावली आदि का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। पश्चिम में विभिन्न दृष्टियों से शैली के अनेक भेदों का निरूपण भी किया गया है, जैसे प्रसिद्ध यूनानी आलंकारिक डिमैट्रियस के अनुसार उत्कृष्ट शैलियाँ हैं : उदात्त, सहज और ओजस्वी। इन्होंने निकृष्ट शैलियों के भी चार प्रकार माने हैं : शिथिल, कृत्रिम, नीरस और सामंजस्यहीन। किंतु इस प्रकार का वर्गीकरण और भेद-निरूपण सार्थक नहीं हो सकता, क्योंकि शैली वस्तुतः रचना और रचनाकार के वैशिष्ट्य से इतने घनिष्ठ रूप से संपृक्त होती है कि प्रत्येक रचना की अपनी अलग शैली होती है, यहाँ तक कि एक ही लेखक की एक ही विधा में रचित विभिन्न कृतियों की शैलियाँ भी अलग-अलग होती हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली का विवे-चन 'रीति' (दे०) के अंतर्गत हुआ है। किंतु 'रीति' को तत्त्वतः शैली का पर्याय नहीं माना जा सकता, क्योंकि रीति-मीमांसा केवल पदरचनागत वैशिष्ट्य तक ही सीमित है : अभिव्यंजना-पद्धति के अन्य तत्त्व इसमें समाविष्ट नहीं हैं।

शैलीविज्ञान *(हिं० पारि०)*

हर व्यक्ति की, चाहे वह कवि हो या लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या ऐसा जो कुछ न लिखता हो, अपनी शैली होती है। यदि किसी व्यक्ति ने प्रसाद, प्रेमचंद और अज्ञेय को अच्छी तरह पढ़ा हो, और उसे बिना बताए तीन पैराग्राफ़ दें तो वह प्रायः जान जाएगा कि अमुक पैरा प्रसाद का है, अमुक प्रेमचंद का और अमुक अज्ञेय का। प्रश्न उठता है कि वह कैसे जान जाता है? इसका एकमात्र उत्तर है: शैली के आधार पर। हर भाषा में सामान्य अभिव्यक्ति का ढंग होता है। व्यक्ति अपनी शैली के अनुसार उस सामान्य ढंग से अलग हटता है। सामान्य से अलगाव ही व्यक्ति की शैली होती है। जो व्यक्ति सामान्य ढंग से जितना अधिक अलग हटता है, वह उतना ही बड़ा शैलीकार होता है। इस तरह, भाषा में व्यक्ति की शैली उसके कथन के ढंग के उस अंश को कहते हैं जो सामान्य ढंग से अलग होती है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि शैली का संबंध मात्र अभिव्यक्ति से है। उसका बहुत-कुछ संबंध कथ्य से भी होता है, क्योंकि एक सीमा तक दोनों ही एक दूसरे के साथ अनुस्यूत होते हैं, अतः एक को क्षति पहुँचाए बिना दूसरे को अलगाया नहीं जा सकता। शैलीविज्ञान इस शैली का ही अध्ययन है। अपनी परंपरा में इसके लिए पुराना शब्द 'रीति' था। इसी आधार पर कुछ लोग इसे 'रीतिविज्ञान' भी कहते हैं। यह विज्ञान भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र दोनों की सहायता से शैली का विवेचन करता है। किसी कवि या लेखक की कृति के शैलीवैज्ञानिक विवेचन में भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र दोनों की सहायता लेते हुए ध्वनिविज्ञान, शब्दविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान, अलंकारशास्त्र, शब्द-शक्ति, गुण, रीति, ध्वनि, दोष तथा छंदःशास्त्र आदि की दृष्टि से विश्लेषण करके निष्कर्ष-स्वरूप उसकी रचना की वैयक्तिकता का पता लगाने का प्रयास करते हैं। सातान्य भाषा में शैलीय अलगाव की गुंजाइश जितनी ही कम होती है, काव्यभाषा में उतनी ही अधिक होती है। इसीलिए ऐसी रचना, जिसमें काव्य-भाषा का प्रयोग हो, शैलीवैज्ञानिक अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त है।

शोकगीति (एलेजी) *(पारि०)*

अँग्रेज़ी के 'एलेजी' शब्द का विकास यद्यपि यूनानी भाषा के 'इलीजिया' से हुआ है तथापि किसी आत्मीय के मृत्युजन्य विषाद की अपेक्षा युद्ध और प्रेम-विषयक इन यूनानी शोकगीतियों का अँग्रेज़ी 'एलेजी' के आधुनिक रूप से कोई सीधा संबंध नहीं है। वस्तुतः यह शब्द किसी भाव, अनुभूति अथवा किसी अन्य प्रकार के वर्ण्य-विषय का व्यंजक न होकर छंद-विशेष का द्योतक है। सामान्य रूम से 'एलिजिआक' छंद में विरचित सभी प्रकार की प्रगीतात्मक रचनाएँ 'एलेजी' के नाम से अभिहित की जाती थीं। इस छंद की रचना षट्पदी (हैक्सामीटर) और पंचपदी (पैंटामीटर) के मिश्रण से की जाती थी, किंतु सोलहवीं शती के आरंभ से ही अँग्रेज़ी-साहित्य में 'एलेजी' शब्द का संबंध इस विशिष्ट छंद से विछिन्न हो गया और इस शब्द का प्रयोग अंत्येष्टि-गीत अथवा मृत्युजन्य शोकोद्‌गार को व्यक्त करने वाली प्रगीत-रचना के लिए किया जाने लगा। पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में संक्षिप्त आकार, संयत भाववेगपूर्ण चिंतनप्रधान शैली, कारुणिकथा, गांभीर्य तथा सहज एवं निश्छल अभिव्यक्ति शोकगीति के प्रमुख शिल्प-उपकरण माने गए हैं।

शोणित कुँवरी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1925 ई०]

नाट्यकार ज्योतिप्रसाद आगरवाला (दे०) में कवित्वशक्ति के साथ-साथ सूक्ष्म नाट्य-बोध भी है, इसका पता इस कृति में लगता है। इस पौराणिक नाटक में उषा-अनिरुद्ध के प्रेम पर अधिक जोर दिया गया है, बाण-युद्ध पर नहीं। प्रेमिका के हावभाव, मानसिक अवस्था आदि का अधिक चित्रण है। अल्पवयस में रचना करने से इस कृति में भावों की गंभीरता नहीं है, पर कल्पना का विलास अवश्य है। चरित्रों का अंतर्द्वंद्व नहीं है; किंतु सरल माधुर्य है। कहीं-कहीं हास्य की भी सृष्टि है। इस नाटक की विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने प्रत्येक दृश्य के लिए रंगमंचीय निर्देश दिए हैं—असमीया नाटकों में पहले नाटकीय साज-सज्जा के प्रति ध्यान नहीं दिया जाता था। नाटक की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें असमीया संगीत का समावेश कर इसके अभिनय को अधिक आकर्षक बनाया गया है।

शोला-ए-तूर (उर्दू० कृ०)

'जिगर' मुरादाबादी (दे०) ने इस काव्य-कृति में 'दाग़' देहलवी (दे०) की शैली का अनुकरण कर श्रृंगार रस की अपनी ग़ज़लों को संगृहीत किया है। लौकिक सौंदर्य और लौकिक प्रेम की अनुभूतियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस कृति में सर्वत्र स्वर दिया गया है। प्रेम, सौंदर्य, यौवन और श्रृंगार के कवि 'जिगर' मुरादाबादी की ग़ज़लों के इस संकलन में मादकता ही मादकता उमड़ी पड़ती है। कवि को प्रेम से अत्यधिक प्रेम है। इस प्रेम-सुरा में वह इतना खो जाता है कि कभी-कभी स्वयं को प्रेमी के स्थान पर प्रेमिका समझने लगता है। कहीं-कहीं वह अपनी प्रेमिका को व्यंग्यपूर्ण शैली में संबोधन कर उसे छेड़ने में भी आनंद का अनुभव करता हुआ देखा जा सकता है। ग़ज़ल का यह कवि इस कृति में अपनी प्रबल भावुकता और आत्मविभोरता के साथ दिखाई देता है। इस काव्य की मुख्य विशेषता सरलता और तरलता है। दुर्बोध और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। मुहावरों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ किया गया है। शब्दालंकारों से भी यथेष्ट लाभ उठाया गया है परंतु इनकी अतिशयता कहीं-कहीं अखरने भी लगती है। 'दाग़-ए-जिगर' के बाद लिखित कवि का यह दूसरा काव्य-संग्रह अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़, गंभीर और प्रभावशाली है। इसमें गहन विषयों की खोज में भरसक प्रयास किए गए हैं किंतु किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर कवि की भाषा भावानुकूल नहीं है। इस कृति की रचनाओं का वर्गीकरण चार शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है। ये शीर्षक हैं— 'वारदात-ए-जिगर', 'जज़्बात-ए-जिगर', 'तखय्युलात-ए-जिगर' और 'नग़मात-ए-जिगर'। 'लमआते-तूर' शीर्षक के अंतर्गत नज़्में भी संकलित की गई हैं और अंत में 'बादा-ए-शीराज़' शीर्षक से रचयिता की फ़ारसी-ग़ज़लों का संग्रह भी प्रस्तुत किया गया है। इस कृति का मुख्य विषय श्रृंगार ही है।

शोला-ओ-शबनम (उर्दू० कृ०)

'जोश' मलीहाबादी (दे०) की इस काव्य कृति में उल्लिखित कविताएँ तीन अध्यायों में विभक्त हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्यायों को क्रमशः 'आतिशकदा', 'रंग-ओ-बू', तथा 'इस्लामियात' शीर्षकों से सज्जित किया गया है। 'आतिशकदा' में राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिवादी दृष्टिकोण, क्रांतिकारी विचारधारा और दासता की श्रृंखलाओं को काट फेंकने की प्रेरणा-दायक कविताओं का संग्रह है। 'रंग-ओ-बू' में कवि की श्रृंगारिक कविताएँ हैं और 'इस्लामियात के अंतर्गत धार्मिक और इस्लाम-संबंधी कविताओं का नियोजन किया गया है। कृति के अंत में जदीद 'रंग-ए-तग़ज़्ज़ुल' और 'क़दीम रंग-ए-तग़ज़्ज़ुल' शीर्षकों के अंतर्गत कवि ने अपनी नयी और पुरानी प्रतिनिधि ग़ज़लों का संग्रह प्रस्तुत किया है। संपूर्ण कृति उत्कृष्ट काव्य का सजीव उदाहरण है। भावानुकूल भाषा तथा भाव और शैली का औदात्त्य इसमें सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। 'जोश' साहब का कल्पना-जगत भी बड़ा भव्य और मनोमुग्धकारी है। कवित्व से भरपूर उनकी यह कृति उर्दू साहित्य की अमूल्य निधि है। 1920 ई० से 1926 ई० तक की श्रेष्ठ कविताओं और ग़ज़लों का संकलन इसमें हुआ है।

'शौक़' क़िदवाई (उर्दू० ले०) [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

नाम—शेख़ अहमदअली, उपनाम—शौक़; जन्म-स्थान—कसबा जगोर (ज़ि० बाराबंकी)। ये 'असीर' (दे०) लखनवी के शिष्य थे। मसनवी-लेखन तथा नाटक-रचना में इनकी विशेष रुचि थी। 'कासिम-ओ-जोहरा' नाटक तथा मसखवी 'तराना-ए-शौक़' इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। अनुभूतियों की सजीव अभिव्यंजना इनकी कला की विशेषता है। नारी-मनोभाव के सफल चित्रण इनकी रचनाओं में विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। इस संदर्भ में इनकी एक कविता —'आलम-ए-ख़याल' बहुत प्रसिद्ध है। इनकी मसनवियों में सर्वत्र यथार्थ चित्रण के तत्त्व मिलते हैं। इनकी भाषा सरल, सरस, स्पष्ट और मुहावरेदार है।

शौकत थानवी (उर्दू० ले०)

'शौकत' साहब की गणना उर्दू के प्रसिद्ध हास्य तथा व्यंग्य-लेखकों में होती है। इनके द्वारा लिखित उपन्यासों में कथानक की पेचदगियाँ नहीं हैं। प्रसाद गुण-संपन्न शैली में दैनिक जीवन और उसकी सामान्य घटनाओं का असामान्य तथा असाधारण निरूपण इनकी सशक्त कला की मुख्य विशेषता है। सजीव बिंब-विधान के बल पर ये हास्य का वातावरण जुटाने में सर्वत्र सफल रहे हैं। उपन्यास-संबंधी अनेक दोषों के रहते हुए भी इनकी कृति 'स्वदेशी रेल' को आशातीत लोकप्रियता प्राप्त हुई। इनकी अन्य पाँच कृतियाँ—'दुनिया-ए-तबस्सुम', 'मौज-ए-तबस्सुम', 'बहर-ए-तबस्सुम', 'सैलाब-ए-तबस्सुम' और 'तूफ़ान-ए-तबस्सुम' भी बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। एक अन्य कृति 'शीशमहल' में इन्होंने अपने विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचितों एवं मित्रों का दोष-गुण-निरूपण अत्यंत सजीव एवं कलात्मक ढंग स किया है। हास्य-चित्रण के रूप में इनका साहित्य चिरस्मरणीय बना रहेगा। उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त दस-पंद्रह अन्य कृतियाँ भी हैं जिनके लेखन का गौरव इन्हें प्राप्त है।

श्मशान-कुरुक्षेत्र *(क० कृ०)*

यह कुवेंपु (दे०) (डा० के० वी० पुट्टप्पा) का 'महाभारत' (दे०) की कथा पर आधृत नाटक है। नाटककार ने अपने उद्देश्य की सफलता के लिए कल्पना का सुंदर प्रयोग किया है। गीर्वाण, नीलाक्ष द चाणूर दुर्योधन के निष्ठावान स्वामिभक्त सेवक हैं। श्मशान के एक भाग में हम उनका दर्शन करते हैं। दूसरे भाग में पति को ढूँढ़ती हुई अपने वच्चे के साथ आने वाली अभागिन माता का दर्शन करते हैं। अंतिम समय में अनजाने ही पांडवों के हाथ का पानी पीने से संतप्त और 'कौरव प्रभु के प्रति अपराध हो गया, अंतिम समय में पांडवों के हाथ का पानी पानी से'। क्षमा करो प्रभो ! क्षमा करो। क्षमा करो।' कहकर प्राण त्यागने वाले योद्धा का दर्शन अन्यत्र होता है। कुंती (दे०) भी उस श्मशान में सहदेव के साथ आती है, कर्ण के शरीर को ढूँढ़ने के लिए। भीम (दे०), द्रौपदी (दे०) और धर्मराज को भी वहाँ देख सकते हैं। स्थितप्रज्ञ धर्मराज की बातें उदात्त और मनोहर हैं। श्रीकृष्ण-कौरव-भेंट का संदर्भ-चित्रण नाटक का मर्मस्पर्शी स्थल है। दुर्योधन अपने प्रति किए गए अन्यायों का स्मरण कर सुख का नाश करने वाले श्रीकृष्ण को तिरस्कारसूचक शब्दों से ज्यों ही पुकारता है त्यों ही वे वहाँ दर्शन देते हैं। वे दुर्योधन (दे०) को मुक्तिश्री प्रदान करते हैं। तब वह समझता है कि भगवान के लीला-नाटक का वह एक पात्र है। परंतु, उस समय भी वह कर्ण को नहीं भूलता। यह दुर्योधन-कर्ण के लोकोत्तर स्नेह का निदर्शक है। इस नाटक में दुर्योधन और श्रीकृष्ण के चरित्र की सृष्टि कलात्मक ढंग से की गई है। वेदांत के तत्त्वों का प्रतिपादन श्रीकृष्ण के द्वारा कराके अथवा तत्त्वों के रूप में ही श्रीकृष्ण के चरित्र का नाटककार ने अद्भुत संदेश दिया है।

'श्याम', नारायण नागवाणी *(सिं० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

नारायण 'श्याम' ने कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करते समय सिंधी-साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया था। 'सिंधू' और 'कहाणी' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी कविताओं ने सिंधी-साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया था। 1947 ई० से कुछ समय पूर्व इनकी कविताओं के एक हस्तलिखित संग्रह पर इन्हें सिंध के शिक्षा-विभाग से पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। देश-विभाजन के पश्चात् ये दिल्ली में स्थायी रूप से रहने लगे थे और आजकल वहीं एक सरकारी विभाग में कार्य कर रहे हैं। विभाजन के पश्चात् इनके छः कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'माकफुड़ा' (हरी दिलगीर की कविताओं के संग्रह के साथ) 'पंखुंड्यूं', 'रंगरतीलहर', 'रोशन छाँवरो', 'माकभिना रावेल', 'वारीभ भर्यो पलाँदु'। इनकी आरंभिक कविताएँ प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित हैं। बाद में इन पर हिंदी के छायावादी (दे० छायावाद) कवियों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। इन्होंने जीवन में प्राप्त अनुभूतियों को यथार्थ रूप में अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। कला की दृष्टि से इन्होंने भाषा-शैली और छंदों के नये-नये प्रयोग अपनी रचनाओं में किए हैं। इसके साथ-साथ इन्होंने सिंधी-काव्य के प्राचीन छंदों को भी अपनी रचनाओं के द्वारा पुनर्जीवित किया है। स्वातंत्र्योत्तर सिंधी-कविता के विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

श्यामलिक *(सं० ले०)* [समय—800-900 ई०]

श्यामलिक की चर्चा अभिनवगुप्त (दे०) ने की है। क्षेमेंद्र (दे०) ने भी अपने 'औचित्य-विचार चर्चा' (दे०) में इनका एक पद्य उद्धृत किया है। इनके जीवन-वृत्त के विषय में विशेष जानकारी नहीं; पर इन्होंने अपने को उदीच्य लिखा है। अतः संभवतः इनका जन्म काश्मीर में हुआ था। कुछ लोग इनको महिमभट्ट (दे०) का गुरु मानते हैं।

इनके द्वारा रचित केवल 'पादताडितक' नामक भाण का नामोल्लेख मिलता है। पर यह कृति आज तक प्राप्त नहीं हो सकी।

श्यामसुंदरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

ये हिंदी के अनन्य भक्त थे तथा इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन में ही दो मित्रों—रामनारायण मिश्र तथा ठाकुर शिवकुमार सिंह—के सहयोग से नागरी (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारिणी सभा की स्थापना कर डाली थी। ये जीवन-पर्यंत कोश, इतिहास, काव्यशास्त्र, भाषा-विज्ञान, शोध-कार्य पाठ्य-पुस्तकों के लेखन-संपादन द्वारा पूरी निष्ठा के साथ हिंदी के अभावों को दृष्टिपथ में रखकर उसे समर्थ बनाने का अनवरत प्रयत्न करते रहे थे। इनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग तथा काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने क्रमशः 'साहित्य-वाचस्पति' एवं डी० लिट्० की मानार्थ उपाधियाँ देकर इन्हें सम्मानित किया था। 'हिंदी-हस्तलिखित ग्रंथों का वार्षिक खोज विवरण', 'हिंदी भाषा और साहित्य', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'रूपक-रहस्य', 'भाषा-रहस्य', 'भाषा-विज्ञान', 'साहित्यालोचन' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

श्रद्धा *(हिं०पा०)*

श्रद्धा जयशंकर प्रसाद (दे०) के महाकाव्य 'कामायनी' (दे०) की नायिका है। उसका चित्रण तीन रूपों में हुआ है—ऐतिहासिक रूप में, आदर्श नारी के रूप में और प्रतीक रूप में। ऐतिहासिक रूप में वह कामगोत्रजा, मनु (दे०)-पत्नी और मानव-जननी है। इस ऐतिहासिक सूत्र को ग्रहण कर प्रसाद ने उसके आदर्श मानवी रूप का निर्माण किया है। इस निर्माण में थोड़ा-बहुत कल्पना से भी काम लेने का अधिकार वे नहीं छोड़ सके हैं। बौद्ध-करुणा से चिरपरिचित होने के कारण उनकी कल्पना ने वैदिक 'कामायनी' को भी तद्नुरूप चित्रित कर दिया है। उसकी परदुःखकातरता, विश्वमैत्री और कर्मप्रेरणा आदि विशेषताएँ इस तथ्य की पोषक हैं। श्रद्धा की इन विशेषताओं ने उसे पूर्ण नारी रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

श्रद्धा का मानवी रूप मानो उसके आंतरिक गुणों की ही बाह्य आकृति है। उसका स्निग्ध दर्शन शांतिदायक है। प्रथम दर्शन में ही वह मनु को आकृष्ट कर लेती है और सृष्टि के विकास की प्रेरणा देती है। गर्भवती होने पर उसमें मातृभाव का उदय होता है। जीवमात्र के प्रति वात्सल्य-भाव के उद्रेक से वह मनु को हिंसा-वृत्ति छोड़ने का उपदेश देती है। ईर्ष्यालु पति द्वारा परित्यक्त होकर भी वह उसके ध्यान में मग्न रहती है। उसकी निर्मल आत्मा को पति के संकट का पूर्वाभास स्वप्न में मिल जाता है और वह उसकी खोज में निकल पड़ती है। पति को आहत पाकर भी उसकी कारण-रूप इड़ा (दे०) को क्षमा कर देती है। इतना ही नहीं, पुनः मनु की खोज में निकलने पर इड़ा की कल्याण-कामना से अपना पुत्र भी उसें सौंप देती है। अंत में, श्रद्धा की प्रेरणा से ही मनु को सामरस्य-लाभ होता है। इस प्रकार प्रेम, वात्सल्य, दया, क्षमा और त्याग जैसे उत्तम गुणों को आत्मसात् कर लेने के कारण उसका व्यक्तित्व प्रसाद के नारी-पात्रों में ही नहीं, हिंदी-काव्य के नारी-पात्रों में काफ़ी प्रभावशाली बन गया है।

उसका महिमामय चरित्र प्रतीक-रूप में प्रसाद की आनंदमयी आस्था को सफलता के साथ व्यंजित करता है। मनु या मन को सामरस्य की स्थिति में पहुँचने के लिए श्रद्धा या आस्तिक भावना की अंगुलि पकड़कर चलना चाहिए। इड़ा या बिवेकवाद भी उसी के अनुशासन में रहकर कल्याणकारी हो सकता है।

श्रीकंठैया, ती० नं० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

वर्तमान युग के कन्नड के ख्यातनामा विद्वान् श्रीकंठैया जी का जन्म तुमकूर ज़िले के तीर्थपुरा ग्राम में हुआ था। बचपन से ही इनमें ज्ञान की पिपासा थी। परीक्षाओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण इनको अनेक पुरस्कार और स्वर्णपदक प्राप्त हुए थे। उन दिनों मैसूर सिविल सर्विस परीक्षा पास करना बहुत कठिन माना जाता था। कन्नड और अँग्रेज़ी दो विषयों में एम० ए० पास करने के बाद उसमें सफलता प्राप्त कर ये मैसूर सरकार के वित्त-विभाग में अमलदार हुए थे। परंतु, कुछ ही दिनों में उस पद को छोड़कर ये मैसूर के महाराजा कालेज में कन्नड के प्राध्यापक हो गए थे। ये बी० एम० श्रीकंठैया (दे०) जी के शिष्य थे जिनके आकर्षण ने इनको कन्नड-साहित्य-क्षेत्र में आकृष्ट किया था।

आचार्य श्रीकंठैया जी ती० नं० श्री० के नाम से साहित्य-क्षत्र में अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ गए हैं। ये एक सफल अध्यापक, अच्छे वक्ता, सहृदय कवि, यशस्वी आलोचक, प्रतिभासंपन्न भाषा-विज्ञानी और मिलनसार व्यक्ति थे। इन्होंने कविताएँ बहुत कम लिखीं, पर जो लिखीं, वे सुंदर और उत्तम हैं। 'किरिय काणिके' (छोटा उपहार) और 'तलिस' (नवपल्लव) में इनकी प्रारंभिक कविताएँ संगृहीत हैं। 'ओलुमे' में पवित्र दांपत्य और जीवन के ललित-मधुर श्रृंगार का चित्रण है। मर्यादापूर्ण श्रृंगार को सरल भाषा-शैली में अभिव्यंजित करने में इन्हें अपूर्व सफलता मिली है। ती० नं० श्री० संस्कृत, कन्नड और अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित थे। इन्होंने कतिपय अँग्रेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संस्कृत कविताओं का अच्छा अनुवाद किया है। इनकी कविताओं में 'पारिजात', 'दंतद बाचणिगे' (हाथी-दाँत की कंघी), 'हालकायुन चदुर' (खेत का चतुर रक्षक) जैसी कविताएँ अधिक प्रसिद्ध हुई हैं। इनकी कविताओं में यथार्थ और कल्पना का सुंदर सामंजस्य है।

कवि से बढ़कर आलोचक के रूप में ती० नं० श्री० को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इनका ग्रंथ 'भारतीय काव्य-मीमांसे' (भारतीय साहित्यशास्त्र) कन्नड का उत्कृष्ट कोटि का सैद्धांतिक आलोचना-ग्रंथ है। संस्कृत और कन्नड के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का गंभीर अध्ययन कर यह लिखा गया है। 'पंप' (दे०) 'काव्य-समीक्षे' (काव्य-समीक्षा) और 'समालोचन' जैसे ग्रंथों में इनकी व्यावहारिक आलोचना का दर्शन किया जा सकता है। उनको 'कवि-हृदय के आलोचक' और 'आलोचक मनवाले कवि' कहा गया है। कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का ऐसा मिलन कम लोगों में देखा जाता है।

ती० नं० श्री० प्रख्यात भाषाविज्ञानी भी थे। मैसूर विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के अध्ययन का बीजारोपण इन्होंने ही किया था। भाषाविज्ञान-संबंधी इनके प्रकाशित लेखों को देखने से ज्ञात हो सकता है कि ये कितने गंभीर चिंतक थे। इनका एकमात्र नाटक 'राक्षसन मुद्रिके' (राक्षस की मुद्रिका), जो विशाखदत्त के नाटक पर आधृत है, कन्नड का एक लोकप्रिय नाटक है। इन्होंने रन्न (दे०) के 'गदायुद्ध' (दे०) और हरिहर (दे०) के 'नंबियण्णनरगळे' का संपादन कर पाठानुसंधान का महत्वपूर्ण कार्य किया है। 'कन्नड-कन्नड-कोश' की संपादक-समिति के अध्यक्ष के पद पर रहकर भी इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया था।

श्रीकंठैया, बी० एम० *(क० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जिन महापुरुषों ने आधुनिक कन्नड-साहित्य में जागृति का शंखनाद किया था, उनमें आचार्य श्रीकंठैया जी अग्रगण्य थे। ये बेळूरु के रहने वाले थे। मैसूर के महाराजा कालेज तथा बेंगलोर सेंट्रल कालेज में इन्होंने शिक्षा पाई थी। 1906 ई० में बी० एल० तथा 1909 ई० में एम० ए० उपाधि प्राप्त की थी। 1926-30 ई० तक ये मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के पद पर रहे। 1927 ई० में ये कन्नड के मानसेवी प्रोफ़ेसर हुए थे। 1942 ई० में विश्वविद्यालय की सेवा से निवृत्त होने के बाद के० ई० बोर्ड आर्ट्स कालेज के ये प्रिंसिपल रहे। इनको 'राजसेवासक्त' विरुद प्राप्त था। ये कन्नड, तमिल, संस्कृत, अँग्रेज़ी और ग्रीक के प्रकांड विद्वान् थे। कर्नाटक के एकीकरण के लिए इन्होंने अग्रणी रहकर अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया था। ये पंडित और रसज्ञ ही नहीं, अच्छे वक्ता भी थे। 1938 ई० से '42 ई० तक ये कन्नड-साहित्य-परिषद् के उपाध्यक्ष थे।

'श्री' उपनाम से कर्नाटक में सर्वत्र इनकी ख्याति है। इनकी कुछ रचनाएँ ये हैं—(1) 'अश्वत्थामन्' (नाटक), (2) 'इंग्लिष गीतग' (अँग्रेज़ी गीत) (काव्य), (3) 'इस्लां संस्कृति', (4) 'कन्नड मातु तलेयेत्तुन बगे (कन्नड भाषा के विकास का विधान), (5) 'कन्नड-कैपिडि', (6) 'पारशिकरु' और (7) 'होंगनसुग' (सुनहरे सपने)। इनके अतिरिक्त इनके द्वारा संपादित 'कन्नड बावुट' (कन्नड-ध्वज) अत्यंत प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है जिसमें प्राचीन तथा आधुनिक काल के अनेक गण्यमान्य कवियों की ऐसी कविताएँ संगृहीत हैं जिनसे भाषा-प्रेम और देश-प्रेम जागृत होता है। 'श्री' जी ने रन्न (दे०) के 'गदा-युद्ध' (दे०) का भी नाटक-रूप में परिवर्तन किया था। यह कई बार कर्नाटक के रंगमंचों पर खेला जा चुका है।

'श्री' जी की रचनाओं में 'इंग्लिष गीतग' का सर्वाधिक महत्व है। उसमें तीन मौलिक कविताएँ और साठ अनूदित कविताएँ हैं। अँग्रेज़ी-साहित्य में प्रसिद्ध वर्ड्सवर्थ, शेली, बर्न्स, ब्राउनिंग प्रभृति रोमांटिक कवियो की कविताओं का इन्होंने इस प्रकार अनुवाद किया है कि वे स्वतंत्र रचना-सी प्रतीत होती हैं। इन्होंने नवकवियों को नवीन काव्य-निर्माण के लिए प्रेरणा दी थी, नये छंदों का रूप और माधुर्य प्रदर्शित किया था, नयी शैली का प्रांजल रूप सामने रखा था। इस प्रकार इन्होंने कन्नड के नवोदय की पक्की नींव डाली थी। अतएव ये आधुनिक कन्नड के आचार्यों में थे। इनकी कृति 'होंगनसुग' में इनकी स्वतंत्र कविताएँ हैं जिनमें 'कन्नड-दर्शन' के साथ-साथ भारत-भक्ति भी प्रकट हुई है। इनकी 'कन्नड-बावुट' (कन्नड-ध्वज) और 'कन्नड ताय नोट' (कन्नड माता का दर्शन) जैसी उत्तम कविताएँ अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं।

श्रीकंठ शास्त्री, नंजनगुडु *(क० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

ये कन्नड के नाटककार और कथाकार के रूप में विख्यात हैं। ये प्रकांड पंडित थे और मैसूर के महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा द्वारा सम्मानित हुए थे। इनके बड़े भाई अनंत-नारायण शास्त्री जी भी प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इन्होंने अनेक अँग्रेज़ों को कन्नड भाषा सिखाई थी। 'निरुपमा', 'ध्रुव विजय', 'विष्णुलीला' और 'सीता-परिणय' नाटक बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं जिनकी रचना इन्होंने अभिनय-विशारद वरदाचार्य की नाटक-मंडली में खेले जाने के लिए की थी। इन्होंने लगभग सत्तर कृतियाँ कन्नड साहित्य को प्रदान की हैं। इनकी रचनाओं में वैविध्य और गहराई दोनों हैं।

श्रीकांत *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—प्रथम पर्व : 1917 ई०; द्वितीय पर्व : 1918 ई०; तृतीय पर्व : 1927 ई०; चतुर्थ पर्व : 1933 ई०]

'श्रीकांत' के बारे में कुछ विद्वानों का विश्वास है कि इस उपन्यास की आधार-भूमि शरत् का अपना जीवन है। चारों पर्वों की अंतर्व्याप्त एकसूत्रता का केंद्र है श्रीकांत जिसकी बाल्यावस्था से लेकर शेष जीवन का इतिहास इन पर्वों में लिपिबद्ध है। प्रथम पर्व में इंद्रनाथ का अनुराग, कर्तव्यनिष्ठा, तथा दुःसाहसपूर्ण सबल व्यक्तित्व अविस्मरणीय प्रभाव छोड़ जाता है परंतु श्रीकांत की वास्तविक जीवन-गाथा अन्नदा, अभया, कमललता और विशेष रूप से राजलक्ष्मी (दे०) के परि-प्रेक्ष्य में उभरती है। आत्मलीन, निर्लिप्त, उदार तथा सहृय श्रीकांत के जीवन में ये पात्र आते हैं और अपनी-अपनी प्रकृति और स्वभाव की सीमा में अपने व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं। अन्नदा मूक एवं सहनशील है, अभया मुखर एवं स्वच्छंद प्रकृति की है, कमललता संस्कारों में बँधी तथा राजलक्ष्मी बालसहचरी होते हुए भी कई कड़वे-मीठे अनुभवों के मानसिक संघर्ष में बह रही है। इसी संदर्भ में शरत् ने नारी के धार्मिक एवं नैतिक संस्कार, समाज का अन्यायपूर्ण कठोर आचरण तथा मुक्तिकामना के लिए व्याकुल नारी की समस्याओं को उठाया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण 'श्रीकांत' को सर्वश्रेष्ठ उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है।

श्रीकांत *(बँ० पा०)*

शरत्चंद्र (दे०) का श्रीकांत ('श्रीकांत' उपन्यास का प्रमुख पात्र—दे०) एवं इंद्रनाथ (दे०) हमारे ही हृदय के दो रूप हैं। हमारा जो मन सुप्त है उसी मन का क्षेत्र है श्रीकांत की जीवनभूमि। और जाग्रत मन का प्रतिरूप है इंद्रनाथ। इसीलिए इंद्रनाथ की दृप्त चेतना के रश्मिपात से श्रीकांत का सुप्त मन धीरे-धीरे जग उठा है। समाज-संस्कार का वास्तविक रूप श्रीकांत के अंतरपट पर प्रस्फुटित हुआ है। समाज के अनुशासन से निपीड़ित मानवात्मा की क्रंदन-ध्वनि ने उसे व्यथित किया है। श्रीकांत के हृदय के साथ पाठक-हृदय का इसलिए सहज ही तादात्म्य संभव हुआ है। शरत्चंद्र का ज़ीवन-दर्शन ही श्रीकांत का जीवन-दर्शन है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक मनुष्य को हृदय की कसौटी में कसकर उसको सही मूल्य प्रदान करने का प्रयत्न ही श्रीकांत का प्रयत्न रहा है। श्रीकांत की दृष्टि में इसीलिए अन्नदा दीदी महिमामयी तथा अग्निशिखा-रूपिणी है। राजलक्ष्मी (दे०) प्रेम की मणिदीप है और कमललता है परिपूर्ण माधुर्य एवं प्रशांति-मय संध्यातारा। समाज की दृष्टि में इनमें से कोई भी मर्यादा के आसन में प्रतिष्ठित नहीं हो सका है परंतु हृदय के सत्य-बोध के आलोक में ये चिरउज्ज्वल हैं। श्रीकांत की जीवनदृष्टि अखंड जीवन के सत्यबोध पर आश्रित मर्म-संचारी चिरसुंदर स्वरूप-दर्शन का ही नामांतर है। इसी-लिए महत् प्रेम उसे बाँधता नहीं, दूर ले जाता है। अश्रु-समुद्र के अनंत रसतीर्थ में जीवन-जाह्नवी का यह अविराम प्रवाहित होने का मंत्र श्रीकांत की प्राणतरंग का महिमामय नित्य-स्पंदन है।

श्रीकृष्ण कीर्तन *(बँ० कृ०)*

1908 ई० में पंडित बसंतरंजन राय ने आद्यंत खंडित एक पांडुलिपि का संग्रह किया। 1915 ई० में बंगीय साहित्य परिषद् ने 'श्रीकृष्ण कीर्तन' के नाम से इस पांडुलिपि को प्रकाशित किया। प्रकाशित होते ही यह ग्रंथ आदि-मध्य युग की बँगला भाषा एवं साहित्य के निदर्शन रूप में अभिनंदित हुआ यद्यपि संदेह आज भी बना हुआ है। इस ग्रंथ की पुष्पिका में सर्वत्र 'बडुचंडीदास' अथवा 'अनंत बडुचंडीदास' का नाम मिलता है। विशाल पदावली साहित्य में चंडीदास (दे०) प्राक्-चैतन्य युग के अन्यतम श्रेष्ठ कवि के रूप में विख्यात थे किंतु उनके पदसमुद्र में कहीं भी इस प्रकार का नामोल्लेख नहीं हुआ है। 'द्विज', 'दीन' आदि नामों का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ। इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण कीर्तन की भाषा को आदि-मध्ययुग की बँगला भाषा के रूप में ग्रहण करने के पक्ष में बहुत-से प्रमाण मिल जाते हैं। दूसरी ओर पदावली की भाषा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ श्रीकृष्ण कीर्तन की भाषा का पार्थक्य अत्यंत स्पष्ट है। फिर, पदावली के क्षेत्र में चंडीदास के सूक्ष्म-अतींद्रिय प्रेम का जो अपरूप साक्षात्कार होता है, वह श्रीकृष्ण-कीर्तन की आदि-रसात्मक स्थूल वर्णना में नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप पंडितगण चंडीदास के बारे में संशयी हैं। पांडुलिपि के लिपि-विचार के आधार पर इतिहासज्ञ राखालदास बंद्योपाध्याय इसे 1350 ई० का पूर्ववर्ती मानते हैं। दूसरी ओर लिपि, कागज़ एवं स्याही की वैज्ञानिक परीक्षा के आधार पर आचार्य सुकुमार सेन (दे०) इसे अष्टादशशती से पहले का ग्रंथ मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

इस पांडुलिपि के संपादक ने इसका नाम दिया है 'श्रीकृष्ण कीर्तन' परंतु पांडुलिपि में वर्णित दूसरे सूत्रों के आधार पर इस काव्य को 'श्रीकृष्ण संदर्भ' कहना अधिक संगत प्रतीत होता है।

'श्रीकृष्ण-कीर्तन' की कहानी में एक संपूर्णता स्पष्ट है। जन्म खंड, तांबूल खंड, दान, नौका, भार, छत्र, वृंदावन, यमुना, बाण, वंशी एवं विरह खंड में वर्णित इस कहानी की धारा पदावली की स्वर-मूर्च्छना से निश्चय ही भिन्न है। चरित्र केवल तीन हैं—श्रीकृष्ण, श्रीराधिका एवं बड़ाइ बुड़ि। मधुर के स्थान पर ऐश्वर्य-रस ही यहाँ प्रधान है। कहानी की गति में ये तीनों चरित्र ही नाटकीय उत्कर्ष की अभिव्यक्ति में सहायक हुए हैं। गीतिनाट्य के ऐश्वर्य से यह अनुप्राणित है। जीवन-रस ही इस काव्य की यथार्थ प्राण-तरंग है।

श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम् (मल० कृ०)

मलयाळम के प्रसिद्ध काव्यों में इसका प्रमुख स्थान है। इसका रचना-काल अठारहवीं शती है। बारह सर्गों के इस काव्य में श्रीकृष्ण-अवतार का वर्णन पहले सर्ग में; पूतना-मोक्ष की कथा हास्यरसात्मक शैली में दूसरे सर्ग में; नलकूबर आदि की कथा तथा कृष्ण-बाल-लीलाओं का वर्णन तीसरे सर्ग में हुआ है। वन-वर्णन और कालिय नाग के अहंकार का दमन चौथे सर्ग में चित्रित है। पंचम और षष्ठ सर्ग का विषय रास-क्रीड़ा है। कंस-कथा, रुक्मिणी-परिणय, जांबवान के साथ युद्ध करके विजयी होना, उनकी पुत्री को पत्नी के रूप में स्वीकार करना, कौरव-पांडव-युद्ध और संतान-गोपलम् आदि कथाएँ शेष सर्गों में कवि ने मंजुल शैली में लिखी हैं।

श्रीकृष्ण-मंगल (बँ० कृ०)

'माधव' नाम की ओट में कृष्ण-मंगल काव्य के एकाधिक कवि आत्मगोपन किए हुए हैं। 'गौर गणोद्देश-दीपिका' एवं 'चैतन्यचरितामृत' (दे०) काव्य के अनुसार माधवाचार्य नित्यानंद प्रभु के जामाता थे। 'प्रेमविलास' ग्रंथ के अनुसार कालिदास मिश्र के पुत्र एवं देवी विष्णु-प्रिया के भ्रातुष्पुत्र तथा अद्वैताचार्य के शिष्य माधव आचार्य या माधव मिश्र ने ही 'श्रीकृष्ण-मंगल' काव्य की रचना की है। 'श्रीकृष्ण-मंगल'-काव्यकार चैतन्य (दे०) के किसी परिचर के शिष्य थे, यह संकेत इस ग्रंथ से मिलता है।

'श्रीकृष्ण-मंगल' काव्य में भागवत के अंतिम तीन स्कंधों का भावानुवाद हुआ है। भागवत बहिर्भूत कई कहानियों का इस ग्रंथ में वर्णन हुआ है। 'विष्णुपुराण', 'हरिवंश आदि' कवि ने उपकरणों का संग्रह किया है। बँगला देश में बहुप्रचलित दान-लीला एवं नौका-लीला का कवि ने साग्रह वर्णन किया है यद्यपि पुराणों में इसका उल्लेख नहीं है। इस ग्रंथ में श्रीराधिका, बड़ाइ एवं चंद्रावली का उल्लेख है परंतु ललिता-विशाखा अनुपस्थित हैं। दूसरे जिन माधव के 'श्रीकृष्ण-मंगल' का उल्लेख मिलता है वे 'चंडीमंगल' या 'गंगामंगल' के रचयिता माधव भी हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण-विजय (बँ० कृ०)

महाप्रभु श्री चैतन्य (दे०)-प्रशंसित मालाधर बसु का 'श्रीकृष्ण विजय' काव्य 'भागवत पुराण' अनुवाद-धारा का अतिविशिष्ट ग्रंथ है। कवि को 'गुणराजखाँ' की उपाधि मिली हुई थी एवं यह ग्रंथ 'गोविंद विजय', 'गोविंद-मंगल' अथवा 'श्रीकृष्ण-विक्रम' के नाम से भी परिचित था। इस ग्रंथ को मूल का भावानुवाद कहना ही श्रेयस्कर है। कवि ने भागवत के दशम तथा एकादश स्कंधों का ही अनुवाद किया था। तुर्की आक्रमण से विध्वस्त विदेशी शासन के युग में बंगाली समाज में भगवान श्रीकृष्ण के पुरुषोत्तम-रूप की प्रतिष्ठा के लिए अन्यान्य स्कंधों से भी उपादान का संग्रह कर उन्होंने काव्य को संपूर्णता प्रदान की है। भागवत-बहिर्भूत श्रीराधिका का उल्लेख इस ग्रंथ में है। प्राक्-चैतन्य वैष्णव धर्म का परिचय भी इस ग्रंथ में विद्यमान हैं।

काव्यकार मालाधर बसु (दे० बसु) ने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ में ग्रंथारंभ तथा ग्रंथ-समाप्ति का समय क्रमशः 1473 ई० तथा 1480 ई० बताया है। गौड़ाधिय स्कनुद्दिन युसुफ़शाह (1460-1474 ई०) के राज्यकाल में उन्होंने ग्रंथारंभ किया था एवं शामसुद्दिन युसुफ़ शाह (1474-1481 ई०) के राज्य-काल में यह समाप्त हुआ था। इन दोनों राजाओं में से किसी एक ने उन्हें 'गुणराज ख़ाँ' की उपाधि से विभूषित किया था।

भागवत् के दूसरे अनुवादकारों में रघुनाथ पंडित भागवताचार्य के 'श्रीकृष्ण-प्रेमतरंगिणी' काव्य में भागवत् के प्रथम नौ स्कंधों का सारानुवाद एवं अंतिम तीन स्कंधों का अक्षरशः अनुवाद किया गया है। बराहनगर-निवासी कवि ने कदाचित् सोलहवीं शती के अंतिम भाग में इस काव्य की रचना की थी।

श्रीधर *(गु० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती]

प्राचीन गुजराती के जैनेतर कवियों में श्रीधर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका पूरा नाम श्रीधर व्यास था। ये जाति के ब्राह्मण थे।

'रणमल्ल छंद' (द०), 'ईश्वरीछंद', 'सप्तशती' ये तीन इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'भागवत-दशम स्कंध' नामक एक अन्य रचना भी इनके नाम पाई जाती है।

'रणमल्ल छंद' ऐतिहासिक वीरकाव्य है। इनकी एक कृति 'कवित्त भागवत' भी है।

'सप्तशती' में संस्कृत सप्तशती की कथा का गुजराती में छंदोबद्ध निरूपण है।

श्रीधर *(म० ले०)* [जन्म—1658 ई०; मृत्यु—1729 ई०]

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध तीर्थस्थान पंढरपुर के समीपस्थ ग्राम 'नाझरे' में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम ब्रह्माजी पंत और माता का सावित्री था। भगवत्भक्त और विद्वत्कुल में जन्म लेने के कारण विद्याभ्यास का इन्हें अनुकूल वातावरण मिला था। संस्कृत के व्याकरण, न्याय, धर्म, ज्योतिष,-वेदांत, योग, इतिहास-पुराण, काव्य-नाटक, काव्य-नाटक, काव्य शास्त्र-कला इत्यादि विषयों से इनका सम्यक् परिचय हो गया था। काव्य-रचना की प्रेरणा इन्हें अपने विद्वान् पिता से मिली थी। श्रीधर का अधिकांश जीवन अध्ययन-मनन, ग्रंथ-रचना, ईश्वरोपासना, कीर्तन, सत्संगति और विद्वानों से शास्त्रकाव्य-चर्चा में ही अत्यंत सुखपूर्वक व्यतीत हुआ था। इनका ग्रंथ-रचना-काल 15-16 वर्षों का ही है, परंतु छंदों की संख्या साठ हज़ार के आसपास है। स्फुट प्रकरण ही लगभग सौ हैं। 'रामचंद्रध्यानम्', 'राघवाष्टकम', 'महावाक्यविवरणम्' आदि नौ प्रकरण संस्कृत में तथा शेष मराठी पद्यों में लिखे गए हैं। श्रीधर की कीर्ति और लोकप्रियता के आधार-ग्रंथ हैं—'हरिविजय', 'रामविजय', 'पांडव-प्रताप' (दे०), 'जैमिनी-अश्वमेध', और शिवलीलामृत'। 'हरिविजय' में 36 अध्याय हैं, इसमें अनेक दैत्यों का संहार कर कृष्ण द्वारा प्राप्त विजयों का वर्णन है। 'राम-विजय' में 40 अध्याय हैं। 'रामायण' के सातों कांडों की कथा इसमें अंतर्भूत है। 'पांडव-प्रताप' में 64 अध्याय हैं। 'महाभारत' पर यह आधारित है, परंतु संपूर्ण' महाभारत' इसमें अंतर्भूत करने का प्रयत्न नहीं है। जैमिनी-कृत 'अश्वमेध कथा' का आधार ही 'जैमिनी-अश्वमेध' है; इसमें पांडवों द्वारा किए गए 'अश्वमेध' का वर्णन है। संस्कृत के 'स्कंद-पुराण—ब्रह्मोत्तर खंड' के आधार पर 'शिवलीलामृत' लिखा गया है।

श्रीधराणी, कृष्णलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

कृष्णलाल श्रीधराणी का जन्म सौराष्ट्र में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा दक्षिणापूर्ति, भावनगर और गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में हुई थी। बचपन से ही इनमें काव्य-सर्जन की शक्ति प्रकट हुई थी। पंद्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'अभिलाष' कविता की रचना की थी। इनकी प्रारंभिक कविताओं में गांधी जी की भावनाएँ पाई जाती हैं और कतिपय रचनाएँ समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

श्रीधराणी कुछ वर्ष शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के सान्निध्य में रहे थे। उनके महान् व्यक्तित्व और कृतित्व से ये बहुत प्रभावित हुए थे। इसी के फलस्वरूप इस काल की इनकी कविता में रवींद्रनाथ की बँगला कविता का लालित्य, माधुर्य और लय उपलब्ध है। श्रीधराणी की इन रचनाओं में रहस्योत्मकता, भावना एवं कल्पना की प्रचुरता और रमणीयता पाई जाती है। इनमें इनका जीवन-दर्शन स्वस्थ, प्रसन्न, विस्तृत और ऊर्ध्वलक्षी है। 'कोडियाँ' (दे०), (कविता-संग्रह) और 'मोरना इंडा' (नाटक) इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। श्रीधराणी ने सॉनेट भी रचे हैं, पर उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।

पत्रकार के रूप में श्रीधराणी बारह वर्ष तक अमरीका रहे। वहाँ इन्होंने काफ़ी कीर्ति और समृद्धि अर्जित की। पत्रकार के रूप में वे भारत लौटे। दिल्ली में स्थायी निवास करने के पश्चात् पुनः श्रीधराणी की कवि-प्रतिभा प्रकाश में आई। 'पुनरपि' काव्य-संग्रह की सभी कविताएँ इसी अवधि की हैं। इन कविताओं में यथार्थ-बोध है और अभिव्यक्ति में रुक्षता एवं वक्रता पाई जाती है। 'पुनरपि' का कथ्य और रूप नवीन होते हुए भी 'कोडियाँ' की तुलना में साधारण है।

श्रीनाथुडु *(ते० ले०)* [समय—चौदहवी-पंद्रहवीं शती ई०]

तेलुगु-साहित्य में 1400 ई० से लेकर 1500 ई० तक का समय श्रीनाथ-युग के नाम से प्रसिद्ध है। नन्नयभट्ट (दे०), तिक्कना सोमयाजी (दे०) और एर्रा-प्रगड (दे०) के द्वारा प्रतिष्ठित तेलुगु-साहित्य का संवर्द्धन कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु के हाथों संपन्न हुआ। यही कारण है कि श्रीनाथुडु को आंध्रजगत् का श्रीनाथ (पालनहार—भगवान विष्णु) माना जाता है। मारय्या और भीमांबा के पुत्र श्रीनाथुडु जन्म से ही प्रतिभाशील थे और वाणी का वरदान उनको सहज ही प्राप्त हुआ था। संस्कृत, तेलुगु और कन्नड के प्रकांड विद्वान होने के नाते इनकी रचना में प्रौढ़ता, प्रांजलता और पटुता दिखाई देती है। बचपन से ही इन्होंने काव्यरचना आरंभ की। इनके द्वारा रचित 'मरुत्तराट्-चरित्रमु', 'शालिवाहन-सप्तशती', 'श्रृंगारनैषधमु' (दे०), 'हरविलासमु' (दे०), 'भीमेश्वर पुराणमु', 'काशीखंडमु' (दे०), 'पलनाटिवीर-चरित्र' (दे०), 'क्रीडाभिराममु' (दे०), 'शिवरात्रि-महात्म्यमु' (दे०), 'पंडिताराध्यचरित्र' आदि कई ग्रंथों के नाम मिलते हैं। इनमें कुछ अप्राप्य हैं। उपलब्ध रच-नाओं में 'श्रृंगारनैषधमु' श्रीहर्ष (दे०) के 'नैषधीयचरित्र' (दे०) का स्वच्छंद अनुवाद है। 'हरविलासमु' कालिदास (दे०) के 'कुमारसंभव' (दे०) और भारवि (दे०) के 'किरातार्जुनीय' (दे०) पर आधारित रचना है। 'काशी-खंडमु', 'भीमेश्वर पुराण' और 'शिवरात्रिमहात्म्यमु' पौराणिक रचना-शैली के नमूने हैं। 'पलनाटिवीरचरित्र' वीरगाथा से संबंधित मौलिक रचना है। श्रीनाथुडु स्वतंत्र चेता कवि थे। कोंडवीडु के नरेशों के दरबार में इन्हें विद्याधिकारी का पद मिला था और स्वर्णमुद्राओं से इनका अभिषेक किया गया था। परंतु जीवन के अंतिम भाग में इन्हें दुर्दशा का सामना करना पड़ा। तेलुगु-साहित्य में अगर श्रीनाथुडु जैसे कवि पैदा न होते तो बाद में कृष्ण-देवरायलु (दे०) का दरबार सूना ही पड़ा रहता। सच्चे अर्थों में श्रीनाथुडु तेलुगु-साहित्य के उन्नायक राष्ट्रकवि माने जा सकते हैं।

श्रीनिवास *(क० ले०)*

दे० मास्ति वेंकटेश आय्यंगार।

श्रीनिवासदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1850 ई०; मृत्यु—1887 ई०]

हिंदी-गद्य के प्रारंभिक लेखकों में इनका महत्व-पूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने अल्पकालीन जीवन में 'प्रह्लाद-चरित्र', 'तप्ता संवण', 'रणधीर प्रेममोहिनी', 'संयोगिता स्वयंवर' नामक चार नाटकों तथा 'परीक्षा गुरु' (दे०) उपन्यास की रचना की थी। हिंदी के अनेक आलोचकों ने 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है। इनके समय तक खड़ी बोली का कोई निश्चित रूप निर्मित नहीं हो पाया था तथा भिन्न-भिन्न लेखक इसमें स्थानीय प्रयोग मिश्रित कर रहे थे। लेकिन इन्होंने अपनी भाषा में स्था-नीय प्रयोगों को यथाशक्ति बचाकर खड़ी बोली का मानक रूप तैयार करने में सहायता दी थी।

श्रीनिवासन, टी० के० *(त० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

तिरुच्चिरापल्लि में जन्म। दक्षिण रेलवे के कार्यालय में कार्य करते हुए राजनीति की ओर उन्मुख हुए। राज्यसभा के सदस्य भी रहे। इन्होंने लगभग पचास कहानियों, तीन उपन्यासों और अनेक निबंधों की रचना की है। अपनी एक कृति में स्वर्गीय अण्णादुरै (दे०) के जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। कई पत्रों का संपादन भी किया है। इन्होंने प्रायः रूपक-शैली में रचना की है। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'आडुम माडुम' इसी शैली में रचित है। कहानियों एवं उपन्यासों में इनका आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। उनमें व्यंग्य की प्रधानता है।

तमिल साहित्य जगत में टी० के० श्रीवासन तत्त्वज्ञानी के रूप में विख्यात हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनिवासमूर्ति, एम०आर० *(क०ले०)* [जन्म—1892ई०; मृत्यु—1953 ई०]

ये कन्नड के उच्चकोटि के विद्वानों में से हैं। अध्यापक, स्कूल इंस्पेक्टर आदि कई पदों पर रहकर इन्होंने सेवा-कार्य किया था। मैसूर स्कॉट संघ की मासिक पत्रिका के संपादक, 'प्रबुद्ध कर्णाटक' के संपादक-मंडल के सदस्य तथा मैसूर विश्वविद्यालय से प्रकाशित अँग्रेज़ी-कन्नड-कोश के सहसंपादक और संपादक के रूप में इनकी सेवाएँ अमूल्य हैं। इनके ग्रंथों में 'नागरिक' गीतनाटक की विशेष ख्याति है। 'कविय सोलु' (कवि की हार) इनका काव्य-संग्रह है। 'धर्मदुरंत', 'कंठीरवविजय' और 'रूल्स मेष्ट्र' (रूल्स मास्टर) इनके नाटक हैं। 'वचनधर्मसार' इनकी सुंदर आलोचनात्मक कृति है। 'यदुविजय' और 'वीरशैव-साहित्य' इनके दो और ग्रंथ हैं जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुए।

श्रीनिवासरावु, कोलाचलं *(तें० ले०)* [जन्म—1854 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

ये वर्तमान मैसूर-राज्य के बल्लारि नामक शहर के रहने वाले थे और व्यवसाय से वकील थे। ये एकसाथ कवि, आलोचक तथा नाटककार थे और तेलुगु के अतिरिक्त संस्कृत तथा अँग्रेज़ी के भी अच्छे विद्वान थे। इन्होंने 1894 ई० से नाटक लिखना आरंभ किया। इनके सभी नाटक प्रदर्शन करने के उद्देश्य से ही लिखे गए थे। बल्लारि में 'सुमनोरमा सभा' नाटक समाज की स्थापना की गई थी और उसके द्वारा इनके नाटक प्रदर्शित होते थे। 1902 ई० में ये इस समाज के अध्यक्ष भी बन गए। इनकी रचनाएँ हैं—'रामराजु', 'मैसूरुराज्यमु', 'प्रतापाकबरीयमु', 'सुल्ताना चाँदबीबी' आदि ऐतिहासिक नाटक; 'गिरिजा-कल्याणमु', 'सत्यहरिश्चंद्रीयमु', 'प्रह्लाद-नाटकमु' आदि पौराणिक नाटक; 'द्रौपदीवस्त्रापहरणमु', 'बभ्रुवाहनुडु', 'कीचकवध' जैसे महाभारत (दे०) से संबद्ध नाटक; 'सीताकल्याणमु', 'पादुकापट्टाभिषेकमु', 'लंका-दहनमु' आदि रामकथा-संबंधी नाटक; 'युवतीविवाहमु', मानवपिशाचमु' जैसे सामाजिक नाटक; 'अन्याय धर्मपुरी-महिमा' जैसे कुछ प्रहसन; 'अगस्त्य भारत' का तेलुगु-पद्यानुवाद तथा इसके अतिरिक्त अनेक अलोचनात्मक लेख। इन्होंने अँग्रेज़ी में संसार भर के नाटक-साहित्य का इतिहास भी लिखा।

इनके सभी नाटक मौलिक तथा प्रदर्शन-योग्य हैं। इनके ऐतिहासिक नाटकों में 'रामराजु' बहुत प्रसिद्ध है। इनके नाटकों में अनेक गीतों तथा छंदों का समावेश, अंकों का दृश्यों में विभाजन, संस्कृत-नाटकों के अनेक नियमों का उल्लंघन तथा अँग्रेज़ी नाटक-नियमों का अनुसरण ये सभी बातें पाई जाती हैं। अँग्रेज़ी-नाटकों के 'एपिलॉग' की तरह ये भी अपने नाटकों के अंत में 'उत्तरंग' के नाम से कुछ छंद लिखते थे। इनमें कई बातों में इन्होंने धर्मवरं रामकृष्णमाचार्युलु (दे०) का अनुसरण किया।

बहुमुखी प्रतिभा से युक्त होते हुए भी श्रीनिवासरावु प्रधानतः श्रेष्ठ रंगमंचीय नाटकों के लेखक के रूप में ही प्रसिद्ध हुए हैं। इनमें भी इनके ऐतिहासिक नाटकों का विशेष महत्व है। इसीलिए इनको 'आंध्रचारित्रिक (ऐतिहासिक) नाटक पितामह' कहा जाता है। आंध्र-प्रांत के अंगर्गत रंगशालाओं तथा रंगमंचीय नाटकों की व्याप्ति के संबंध में धर्मवरं रामकृष्णमाचार्युलु के साथ श्रीनिवासरावु का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्री नेमिनाथ फागु *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1313 ई०]

श्री नेमिनाथ फागु राजशेखर सूरि द्वारा रचित एक सरस कृति है। इसमें नेमिनाथ और राजमती की कथा वर्णित है। यह कथा जैन-कवियों की प्रिय कथा रही है। इस कथा को लेकर जैन-कवियों ने 'नेमिनाथचरित', 'नेमिरास', 'नेमिनाथ फागु' की रचना की है। प्रस्तुत फाग में राजमती या राजुल का विवाह तीर्थंकर नेमिनाथ से निश्चित हुआ था किंतु वे उस अवसर पर अनेक बलि पशुओं को देखकर दयार्द्र हो वधू-गृह के तोरण द्वार से ही लौट गए और गिरिनार पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। इस कृति में राजमती के नख-शिख का सुंदरता से वर्णन किया गया है। नेमिनाथ की विरक्ति के कारण इसमें राजमती का वियोग-वर्णन और नेमिनाथ की चारित्रिक दृढ़ता प्रदर्शित की गई है।

श्रीपादरायरु *(क० ले०)*

इनका समय अनुमानतः 1500 ई० ठहरता है। ये कोलार ज़िले के 'मुळबागिलु' में स्थित माध्व मठ के पीठाधिपति थे। विजयनगर-सम्राट साल्वनरसिंह इनके शिष्य थे। संस्कृत के प्रकांड पंडित होने पर भी देश भाषा में धार्मिक साहित्य-रचना की उत्कट अभिलाषा उनमें थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उन दिनों सचमुच क्रांतिकारी घटना थी। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए इन्होंने भागवतों की एक मंडली ही संघटित की और उनसे अपने मठ में 'देवरनाम' या भक्ति-पूर्ण गेय पद गवाते थे। 'रंगविट्ठल' अंकित उपनाम से इन्होंने स्वयं गेय पदों की रचना की है। संस्कृत में इन्होंने 'वाग्वज्र' नामक ग्रंथ की रचना की है तो कन्नड में 'भ्रमरगीत', 'वेणुगीते', 'गोपीगीते' आदि छोटे-छोटे ग्रंथों की रचना की है। इनके गीत राग-रागिनियों में ताल-बद्ध हैं। 'भ्रमरगीत' इनकी एक सुंदर रचना है जिसमें चौबीस गेय पद हैं। इन गीतों में गेयता है, प्रास एवं अनु-प्रास की छटा है। पदलालित्य, अलंकार-प्रौढ़ि के साथ भक्ति एवं माधुर्यरस-निरूपण है। उपलब्ध कृतियों में श्रीपादरायरु जी की व्यक्तिगत महिमा की विशिष्ट छाप है। कीर्तनों के प्रारंभिक बोल बहुत ही मनोज्ञ हैं। हरि-दास साहित्य में श्रीपादरायरु जी के कीर्तनों का विशेष महत्व है।

श्रीमंत *(बँ० पा०)*

'चंडीमंगल काव्य' (दे० चंडीमंगल) के धन-पति सौदागर उपाख्यान का अन्यतम चरित्र श्रीमंत है। वह धनपति सौदागर का पुत्र है। धनपति उसके जन्म से पहले ही व्यापार के लिए समुद्र-यात्रा में निकल चुका था और उसके उपरांत पुत्र के साथ सिंहल में उसका परिचय हुआ। श्रीमंत का बाल्य-जीवन खुल्लना (दे०) के स्नेहां-चल में बीता है। इसके उपरांत पितृ-अन्वेषण ने श्रीमंत को उद्यमशील, साहसी युवक की भूमिका में ला प्रतिष्ठित किया है। श्रीमंत ही चंडीमंगल काव्य में वणिक्-समाज का पहला व्यक्ति है जिसने चंडी को सहज स्वीकार किया एवं पूजा की। इस चरित्र में द्विधा-द्वंद्व के लिए अवकाश नहीं है। श्रीमंत का चरित्र कहानी के उद्देश्य के अनुसार विकसित हुआ है। मातृस्नेह एवं दैवी शक्ति से वह परि-चालित है एवं इसके साथ वह मानवीय आवेदन से भी युक्त है। सिंहल में ठीक मृत्यु के समय देवी चंडी के स्मरणमात्र से उसे विपत्ति से मुक्ति मिली है एवं राजा का अनुग्रह प्राप्त हुआ है। यह सब कुछ दैवी कृपा से संभव है। स्वदेश में वह अपनी स्त्री एवं पिता को लेकर महासमारोह में प्रत्यावर्तन करता है। दैवी सत्ता का खिलौना होने पर भी कवि ने श्रीमंत में स्वाभाविक मनुष्यत्व के उपादानों को उभारा है, और वही इस चरित्र की सार्थकता है।

श्रीरंग आद्य, रंगाचार *(क० ले०)*

विलक्षण प्रतिभा-संपन्न नाटककार आद्य रंगा-चार, उपनाम 'श्रीरंग', वर्तमान समय के अग्रगण्य साहित्य-कार हैं। संप्रति ये मैसूर प्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष हैं। इनके नाटकों का विषय प्रायः सामाजिक है। सामा-जिक नाटक-रचना के द्वारा इन्होंने समाज की कटु आलो-चना की है। 'हास्य' और 'व्यंग्य' इनके नाटकों का प्रधान गुण है। कन्नड में हास्यरस-प्रधान नाटकों की रचना करने वालों में कैलासम् (दे०) के बाद श्रीरंग जी का ही नाम आता है। कैलासम् जी ने अपने नाटकों में हास्य रस का संचार कर समाज के खोखलेपन का दिग्दर्शन कराया था। श्रीरंग जी ने भी यही किया है, परंतु इनकी आलोचना कैलासम् जी की आलोचना से अधिक तीव्र होती है। दांभिक समाज के प्रति इनकी व्यंग्यपूर्ण कठोर उक्तियों का प्रहार अत्यंत परिणामकारी होता है।

श्रीरंग जी ने एक दर्जन से भी अधिक सामा-जिक नाटक लिखे हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व प्रकाशित इनके सामाजिक नाटकों में 'उदरवैराग्य', 'वैद्यराज', 'दरिद्रनारायण', 'हरिजन्वार', 'मुक्कण्ण विराट पुरुष', 'संध्याकाल', 'प्रपंच-पाणिपत्तु' और 'नरकदल्लि नरसिंह', के नाम उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में इन्होंने समाज पर जहाँ तीखे व्यंग्य-बाण छोड़े हैं, वहीं सामाजिक समस्या को नाटक के पात्रों द्वारा हल करने का प्रयत्न भी किया है। तीखा व्यंग्य, कल्पना-चमत्कार, संवाद-चातुर्य तथा प्रवाहमयी भाषा-शैली का वैलक्षण्य इनके सभी नाटकों के गुण हैं। 'हरिजन्वार' नामक नाटक में ये गुण बहुत ही सुंदर रूप में दिखाई पड़ते हैं। 'हरिजन्वार' शीर्षक ही अत्यंत चमत्कारपूर्ण है। यहाँ श्लेष से काम लिया गया है। इसका अर्थ होता है 'हरिजन वार' अथवा 'हरि यज्ञो-पवीत। इसमें चित्रित दोड्डराय, जो पारिवारिक तथा सामाजिक कीर्ति की लालसा से मन में कुछ रखकर बाहर एक प्रकार से व्यवहार करने वाला है, और उसकी पत्नी वेणक्का, जो पुराने विचारों की है, हमारे ध्यान को सहसा आकृष्ट करती है। दोड्डराय चुनाव में हार जाता है तो यह कहकर शोर मचाता है कि वेणक्का इसका कारण है, क्योंकि उसने नाली में गिरे हुए अछूत बालक को अपने हाथ से छूकर उठा दिया था। इस प्रकार के वातावरण-निर्माण में श्रीरंग जी बड़े सिद्धहस्त हैं।

श्रीरंग जी के स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक नाटकों में 'जरासंधि', 'शोकचक्र', 'कर्त्तारन कम्मट' (कर्त्ता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टकसाल) तथा 'जीवन-जोकालि' (जीवन का भूला) के नाम विशेष रूप से ग्राह्य हैं। 'जीवन-जोकालि' में आधुनिक नाटकों की टेकनीक अपनाई गई है जहाँ एक ही दृश्य में दो संदर्भों का निरूपण है।

श्रीरंगजी ने सामाजिक नाटकों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक नाटक तथा अनेक एकांकी नाटक भी लिखे हैं। पौराणिक पात्रों को वर्तमान युग के अनुकूल प्रस्तुत कर चमत्कार उत्पन्न करने की कला श्रीरंग जी को मालूम है। 'यमन सोलु' (यम की हार), 'अश्वमेध' आदि इसके उदाहरण हैं। 'संपुष्ट रामायण' में व्यंग्य की प्रधानता है तो 'निराहार' में वातावरण और पात्रों का मार्मिक चित्रण है। श्रीरंग जी के विषय में यह कहा जा सकता है कि ये अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पात्रों का निर्माण करते हैं। यथार्थ निरूपण इनका प्रधान उद्देश्य होते हुए भी कहीं-कहीं मात्र चमत्कार के लिए पात्र निर्मित हुए-से दिखाई पड़ते हैं। फिर भी, यह सच है कि ये सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्र सफलतापूर्वक उपस्थित कर सकते हैं। इनके नाटकों में जैसे मार्मिक संभाषण हैं वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। निश्चित रूप से ये कन्नड के प्रबुद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं।

श्रीराधार क्रमविकास (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1954 ई०]

आधुनिक बँगला आलोचना-साहित्य के प्रख्यात लेखक शशिभूषण दासगुप्त ने भारतीय दर्शन और साहित्य के संदर्भ में 'श्री राधा के क्रम-विकास' के विवेचन के लिए 'श्रीराधार क्रमविकास' पुस्तक की रचना की है। राधावाद के भीतर हमारे जातीय मनन-वैशिष्ट्य का जो परिचय मिलता है—वह वैशिष्ट्य केवल राधावाद में ही नहीं है, वही वैशिष्ट्य व्यापक रूप से भारतीय शक्तिवाद में भी है। लेखक ने इसी दृष्टि से इस ग्रंथ में भारतीय वैष्णव-शास्त्र और आनुषंगिक शैव-शाक्त-शास्त्र का नए रूप में अध्ययन किया है।

ग्रंथ में लेखक महोदय ने प्राचीन भारतीय शक्ति-तत्त्व के आश्रय से राधातत्त्व का विवेचन किया है एवं श्रीराधा के आविर्भाव का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया है। धर्म एवं दर्शन में राधा के स्थान का उल्लेख करते हुए 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) में वर्णित राधातत्त्व एवं वैष्णव-सहजिया मन में राधा-तत्त्व की तुलना की गई है। अंत में राधावल्लभ एवं वल्लभ-संप्रदाय के हिंदी साहित्यकारों की राधा का विश्लेषण है। शशि बाबू ने राधा को 'कमलिनी' कहा है और यह स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार अनेक स्तरों के भीतर कमलिनी के क्रमविकास का एक इतिहास है, उसी प्रकार भारतीय दर्शन और साहित्य के विभिन्न स्तरों में व्याप्त श्रीराधा के क्रमविकास के इतिहास की धारा विद्यमान है। ग्रंथ में लेखक की तत्त्वाभिनिवेषी मेधा का सुंदर परिचय मिलता है। लेखक का भारतीय धर्मशास्त्र एवं दर्शन का गहन अध्ययन है एवं उनकी बुद्धि सूक्ष्म विश्लेषणात्मक है।

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत (*बँ० कृ०*)

श्रीयुत महेंद्र मास्टर युगदेवता श्री श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के पदपंकज के लुब्ध एवं मुग्ध मधुकर थे जिन्हें ठाकुर रामकृष्ण मास्टर नाम से ही पुकारा करते थे। उन्होंने रामकृष्ण जी से जो कुछ सुना था एवं परमहंसदेव के अंतरंग पार्षदों के निकट सान्निध्य से जो कुछ संग्रह किया था तथा भक्तजन परमहंसदेव जी से जो कुछ सुनते-जानते थे उन सबका संग्रह कर अपनी डायरी में लिख लिया था। इस डायरी के कुछ अंश स्वयं रामकृष्ण जी ने सुने थे। श्री श्री माँ सारदामणि ने मास्टर साहब के निकट संरक्षित इस कथामृत को परमहंसदेव जी का संपद् कहकर अभिहित किया है। इस डायरी का ही 'श्री श्रीरामकृष्णकथामृत' के नाम से पाँच खंडों में प्रकाशन हुआ है। पहला खंड 1902 ई० में प्रकाशित हुआ था। श्री श्रीरामकृष्ण देव के दिव्य जीवन का जहाँ अंतरंग परिचय इस ग्रंथ में मिलता है वहीं श्रीरामकृष्ण-दर्शन का प्रकृत भाष्य भी इस ग्रंथ में अत्यंत सहज एवं सुंदर रूप में वर्णित हुआ है। 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) जिस प्रकार वैष्णव साहित्य एवं दर्शन के इतिहास का दिक्-निदेशक उत्स-ग्रंथ है, उसी प्रकार 'श्री श्रीरामकृष्ण-कथामृत' रामकृष्ण-जीवन-दर्शन का स्रोत-ग्रंथ है।

श्रीराममूर्ति धूलिपाळ्ळ (*तें० ले०*)

धूलिपाळ्ळ श्रीराममूर्ति 'भुवनविजयमु' और 'गृहराजुमेडा' नामक अपने उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं। अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना के लिए आंध्र विश्वविद्यालय की ओर से प्रतिवर्ष जो पुरस्कार दिया जाता है उससे इनके उपर्युक्त दोनों उपन्यास सम्मानित हो चुके हैं। 'भुवनविजयमु' नामक उपन्यास में विजयनगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शासक श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) की विजययात्रा तथा 'भुवनविजयमु' (दे०) नामक साहित्य-सभा की स्थापना की कथा है। इन्होंने 'सौंदरनंद' (दे०) (काव्य) का गद्यानुवाद भी प्रस्तुत किया और पोतन नामक विख्यात तेलुगु-कवि पर शोध-प्रबंध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। इनमें एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास-कार की क्षमता विद्यमान है—यह इनके उक्त दोनों उपन्यासों से स्पष्ट है।

श्रीरामायणदर्शनम् (क० कृ०)

वर्तमान कर्नाटक के लब्धप्रतिष्ठ कवि कुवेंपु (दे०) (डा० के० वी० पुट्टप्पा) की कृति 'श्रीरामायण-दर्शनम्' उनकी ऋषि-प्रज्ञा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। आधुनिक युग में, जबकि यह कहा जाता है कि महाकाव्यों का समय समाप्त हो गया, यह महाकाव्य एक चुनौती के रूप में साहित्यलोक में अवतरित हुआ। इस महाकाव्य का भव्य शिल्प महाकवि कुवेंपु की सुदीर्घ काव्य-साधना अथवा तपस्या का फल है।

पचास सर्गों (प्रत्येक सर्ग के नाम हैं), चार भागों (जिन्हें संपुट कहा गया है, यथा अयोध्या संपुट, किष्किधा संपुट, लंकासंपुट और श्रीसंपुट) तथा लगभग तेईस सहस्र पंक्तियों का यह विशालकाय महाकाव्य बहिर्घटना को प्रतिबिंबित करने वाला लौकिक चरित्र नहीं है, अलौकिक नित्य सत्यों को प्रतिबिंबित करने वाला 'सत्यस्य सत्य कथन' है। महाकवि की दार्शनिक दृष्टि के उद्घाटन के लिए श्रीरामचरित वैसा ही बाह्य आवरण है जैसाकि आत्म के लिए शरीर का आवरण होता है। 'श्रीरामायणदर्शनम्' शीर्षक से यह दार्शनिक दृष्टि स्पष्ट हो जाती है। वेदांत में पंचकोशों द्वारा आत्मा के विकास की परिपूर्ण स्थिति का वर्णन किया जाता है। इसी के आधार पर इस काव्य में प्रतीक-योजना के द्वारा दार्शनिक विचार प्रतिपादित हुए हैं। अयोध्या संपुट मनोमय कोश का, किष्किधा संपुट प्राणमय कोश का, लंकासंपुट अन्नमयकोश का तथा श्री संपुट विज्ञानमय एवं आनंदमय कोशों का प्रतीक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार ही इसके पात्रों के रूप भी स्पष्ट होते हैं। साधक-वरेण्य परम पुरुषोत्तम राम विविध कोशों में विचरण करते हुए अन्नमयकोश में स्थित अविद्या-रूपी रावण के पास बंधन में पड़ी चित्कला सीता को मुक्त करता है। मृच्छक्ति पर चिच्छक्ति की विजय अथवा मर्त्य प्रज्ञा पर दैवी प्रज्ञा का प्रसार एक महत्वपूर्ण विषय है। इसमें चित्रित तपस्विनी उर्मिला, भरत-माता कैकेयी, ममता की भँवर मंथरा, कनकलंकाधिपति रावण, रणव्रती वह्नि-रंह आदि पात्र कवि-प्रतिभा के सुंदर निदर्शन हैं। अंत में यह कहा जा सकता है कि इस काव्य में प्राचीनता का मणि-कांचन संयोग हुआ है। भारतीय साहित्य में इसका अन्यतम स्थान है।

श्रीरामाश्वमेध (क० कृ०)

नंदळि के लक्ष्मीनारायणप्पा, उपनाम मुद्दण (दे०) (समय—1870-1901 ई०) की कृति 'श्रीरामाश्वमेध' प्राचीन और नवीन साहसिक प्रवृत्तियों का सुंदर संगम है। अपने तीस वर्ष के संघर्षमय जीवनकाल में मुद्दण ने साहिसदेवी की जो आराधना की और 'अद्भुत-रामायण', 'रामपट्टाभिषेक' तथा 'रामाश्वमेध' सरीखे जो उत्कृष्ट काव्य रचे, उनको निस्संदेह साहित्य-जगत की अद्भुत घटना कह सकते हैं।

'श्रीरामाश्वमेध' मुद्दण की अंतिम और परिपक्व रचना है। 'अद्भुत रामायण' चारु और निर्मल प्राचीन कन्नड गद्य-शैली के लिए उदाहरण है तो 'रामपट्टाभिषेक' अच्छा पद्यकाव्य है। 'श्रीरामाश्वमेध' में मुद्दण की प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ है, इसकी गद्य-शैली इतनी सुंदर और व्यवस्थित है कि पाठक सहज ही इसकी ओर खिंच जाता है। इसकी कथावस्तु का आधार पद्मपुराणांतर्गत 'शेष रामायण' है। परंतु इस कारण से इसकी मौलिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसकी कथन-शैली और वर्णन-वैचित्र्य इसे 'शेष रामायण' से सर्वथा पृथक् कर देते हैं। साहिसलोक में मुद्दण-मनोरमा जैसे दंपति की सृष्टि कर लेखक शाश्वत यश का अधिकारी हो गया है।

'रामाश्वमेध' की कथा 16 आश्वासों में परिव्याप्त है, जो इस प्रकार है—कथामुख, अगस्त्यागमन, यज्ञोपदेश, गर्भधारण, सीता-परित्याग, वाल्मीकि-दर्शन, विजययात्रा, कामाक्षी-दर्शन, च्यवनाश्रमवर्णन, नीलाचलदर्शन, सुबाहु-युद्ध, तेजःपुरवर्णन, अरण्यकमुनिदर्शन, देवपुरवर्णन, हनूमत्पराजय तथा कथा का उपसंहार। काव्य का प्रारंभ मंगलाचरण गुरुस्तुति आदि से नहीं होता, कालपुरुष—वर्षा—के वर्णन से होता है जो स्पष्ट रूप से प्राचीन परंपरा के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित करता है। नवरस-पूर्ण यह काव्य उत्तम गद्य-शैली का ही नहीं, अपितु मनो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारी वर्णन, उक्ति-वैचित्र्य और रमणीय पात्र-निर्मिति का भी निलयण है। इस कृति ने मुद्दण को अमर कर दिया है।

श्रीवत्स चिंता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1927 ई०]

इंद्रेश्वर बरठाकुर (दे०) द्वारा रचित पाँच अंक के इस बृहत् नाटक में दृश्य और गर्भांक इतने अधिक हैं कि यह रंगमंच के अनुपयुक्त है। इसमें संस्कृत-शैली के अनुसार काव्य-गुण और नाट्य-गुण का मणिकांचन संयोग है। पाश्चात्य नाट्य-कला का भी इस पर प्रभाव है। इसमें विदूषक, कंचुकी आदि पात्रों की अवतारणा है। उच्च श्रेणी के पात्रों से छंदोबद्ध परिमार्जित संवाद एवं निम्न श्रेणी के पात्रों से कथित भाषा के संवाद कराए गए हैं। इसमें देव-मानव-संघात का चित्रण है। राजा श्रीवत्स ने लक्ष्मी और शनि के झगड़े में लक्ष्मी को श्रेष्ठ बताया था। शनि तामसिकता की प्रतिमूर्ति है और लक्ष्मी श्री-शांति-आनंद की। लेखक ने श्रीवत्स का अत्यंत उज्ज्वल चरित्र अंकित किया है।

श्रीवास्तव *(ते० ले०)*

कविता, नाटक एवं समालोचना के क्षेत्रों में इनका योगदान है। 'उषःकिरणालु' इनका समालोचनात्मक ग्रंथ है। 'तीरनिकोरिकलु' इनका प्रमुख नाटक है जिसमें अपने दैनिक जीवन में अनेक सपने देखते हुए सभी प्रकार की यातनाओं एवं विशेषताओं के लिए अभ्यस्त होकर कारुणिक जीवन व्यतीत करने वाले मध्यवर्ग का चित्रण किया गया है। तेलुगु-साहित्य की वार्षिक प्रगति का मूल्यांकन ये हर वर्ष प्रकाशित करते रहे हैं। समालोचना के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

श्रीवास्तव, जी० पी० *(हिं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

इनका पूरा नाम गंगाप्रसाद श्रीवास्तव है। ये बिहार प्रांत के सारन जिले के छपरा नामक स्थान में पैदा हुए थे। हिंदी-समाज में इनकी प्रतिष्ठा हास्य-व्यंग्य-प्रधान रचनाओं के कारण है। यद्यपि इनकी यह प्रतिभा कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में समानरूपेण व्यक्त हुई है किंतु इनका मुख्य प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र में है। 'दुमदार आदमी', 'उलट-फेर', 'मर्दानी औरत', 'गड़बड़झाला', 'साहित्य का सपूत' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

श्री शंकुक *(सं० ले०)* [समय—लगभग 800 ई०]

भरत-'नाट्यशास्त्र (दे०) के अन्यतम टीकाकार श्री शंकुक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनका समय अभिनव गुप्त (दे०) एवं आनंदवर्धन (दे०) से पूर्व लगभग 800 ई० है।

श्री शंकुक की कृतियों के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है। 'अभिनव भारती' के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि 'नाट्यशास्त्र' के ऊपर इनकी भी एक टीका थी। मम्मट (दे०) तथा हेमचंद्र (दे०) प्रभृति परवर्ती आचार्यों की कृतियों में भी इनकी टीका के उद्धरण मिलते हैं।

श्री शंकुक ने रस की अनुमितिपरक व्याख्या की है। इन्होंने लोल्लट (दे०) के कृतिवाद का खंडन कर रस को अनुमेय कहा है। इनके अनुसार जैसे कुहरा-व्याप्त प्रदेश में अवास्तविक धूम्र से वहाँ अविद्यमान भी वह्नि का अनुमान हो जाता है इसी प्रकार नट-रूपी पक्ष में उसके द्वारा प्रकाशित विभावादि को देखकर उसके अविद्यमान भी रत्यादि स्थायी भावों का सामाजिक को अनुमान के द्वारा आस्वाद होने लगता है। वर्ण्य-वस्तु की यह विशेषता है जिसका आस्वाद सामाजिकों की वासना से होता है। रस अन्य अनुमीयमान पदार्थों से विलक्षण होता है।

कुछ लोग श्री शंकुक को बौद्ध-मतानुयायी भी कहने लगे हैं। इनकी व्याख्या का आधार न्यायदर्शन माना जाता है।

श्री श्री (श्रीरंगम् श्रीनिवासरावु) *(ते० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये तेलुगु की प्रगतिवादी काव्यधारा के वैतालिक तथा उसके आधारस्तंभ माने जाते हैं। तेलुगु की 'भावकविता' (दे०) की आत्मरति, कुंठा, विषाद एवं स्वप्नप्रियता को विध्वस्त करते हुए, ये आधुनिक तेलुगु-कविता के प्रांगण में क्रांति एवं विप्लव का शंखनाद करते हुए अवतरित हुए थे। इन्होंने अतीत को भुलाकर और वर्तमान के प्रति जागरूक होकर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने का उद्बोधन किया। इनकी दृष्टि में मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समस्त इतिहास में परपीड़न-पराणयता तथा वर्ग-संघर्ष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उसमें गर्व का कोई कारण उनको दिखाई नहीं देता। इस महाक्रांति के नांदिपाठ के रूप में इनका 'महाप्रस्थानमु' (दे०) प्रकाशित हुआ। यही इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना भी है। इसमें तीक्ष्ण स्फूर्ति तथा पौरुष-प्रधान भाव तेलुगु भाषा के अतिनव्य परिधान में प्रकट हुए थे।

इस रचना के अतिरिक्त श्री श्री ने 'प्रभवा', 'वारंवारं', 'खड्गसृष्टि', 'मारुम्रोतलु' आदि काव्य-ग्रंथों, कई कहानियों, नाटकों तथा समालोचनात्मक निबंधों की रचना भी की है। इन्होंने साहित्य को क्रांति का साधन माना और केले के छिलके, दियासलाई और आरती के थाल को भी काव्य-विषय बनाकर अपने क्रांति-संदेश के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया। इनकी नव्यता केवल वस्तु-चयन में ही नहीं, भाव, भाषा छंद सभी में प्रकट होती है। 1940 ई० के बाद ये अतिवास्तविकतावाद की ओर आकृष्ट हुए और इस क्षेत्र में भी इनकी प्रतिभा ने इनको सफलता प्रदान की है। कथाकार के रूप में भी कई यथार्थ चरित्रों की सृष्टि करके इन्होंने तेलुगु-कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। ये रेडियो-नाटककार तथा चलचित्रों में गीत एवं संवाद-लेखक के रूप में भी विख्यात हैं।

श्रीहर्ष *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1075 ई० के लगभग]

संस्कृत-साहित्य में श्रीहर्ष नाम के एकाधिक विद्वान् मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'रत्नावली', 'नागानंद' (दे०) तथा 'प्रियदर्शिका' के लेखक श्रीहर्ष, श्रीहर्षदेव एवं हर्ष के नाम से प्रचलित हैं। प्रस्तुत श्रीहर्ष 'नैषधीय चरित' (दे०), 'खंडनखंडखाद्य', 'शिवशक्तिसिद्धि', 'स्थैर्यविचारण', 'नवसाहसांकचरित', 'अर्णव-वर्णन', 'गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति', 'श्रीविजयप्रशस्ति' तथा 'छिंदप्रशस्ति' नामक ग्रंथों के प्रणेता हैं।

श्रीहर्ष का निवास-स्थान विद्वानों ने कन्नौज प्रांत निश्चित किया है। श्रीहर्ष की माता का नाम मामल्लदेवी तथा पिता का नाम श्रीहरि था। श्रीहर्ष के सम्मान में कान्यकुब्जेश्वर से दो तांबूल तथा आसन प्राप्त किया करते थे। ये भगवती वागीश्वरी के उपासक थे तथा इन्हें चिंतामणि-मंत्र सिद्ध था। चिंतामणि-मंत्र की उपासना के फलस्वरूप ही इन्होंने 'नैषधीय चरित' की रचना की थी, जो इनका अत्यंत प्रख्यात काव्य-ग्रंथ है।

श्रीहर्ष की समस्त रचनाओं में 'नैषधीय चरित' एवं 'खंडनखंडखाद्य' सर्वाधिक प्रख्यात एवं महत्वपूर्ण हैं। 'नैषध' को तो विद्वानों की औषधि ही कहा गया है—'नैषधविद्वदौषधम्'। 'नैषध' नल (दे०)-दमयंती (दे०) के प्रधान कथानक पर आधारित 22 सर्गों का महाकाव्य है। वस्तुतः 'नैषधीय चरित' के अंतर्गत उत्प्रेक्षा एवं श्लेष आदि अलंकारों तथा शृंगार एवं करुण आदि रसों का जैसा सुंदर सुयोग दिखाई पड़ता है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसलिए कहा गया है—'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः'। 'नैषधीय चरित' की यह अद्वितीय विशेषता है कि उसमें काव्यात्मकता के साथ-साथ दार्शनिकता का भी समुचित पुट मिलता है। 'खंडनखंडखाद्य' अद्वैत-वेदांत का प्रतिपादक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अंतर्गत श्रीहर्ष ने अद्वैत-विरोधी मत-मतांतरों का निराकरण करके अद्वैत-मत का सबल तर्कों के आधार पर प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रीहर्ष कवि एवं दार्शनिक दोनों थे। इसीलिए उनकी कृतियों में जो गांभीर्य एवं सौंदर्य मिलता है वह बेजोड़ है। विषयोपयुक्त शैली ने श्रीहर्ष के काव्यत्व को और चमत्कारक कर दिया है, यह कथन भी असमीचीन न होगा।

श्रेयार्थी नी साधना *(गु० कृ०)*

श्री नरहरिभाई द्वारकादास परीख-रचित 'श्रेयार्थी नी साधना' स्व० किशोरीलाल घनश्यामदास मशरूवाला (दे०) की जीवनी है। इस जीवनी में स्व० किशोरीलाल मशरूवाला जी के जन्म, बचपन, शिक्षा-काल, अध्यापन कार्य व गांधी जी के अंतेवासी के रूप में जीवन भर जो कुछ सेवा-कार्य उन्होंने किया, उसका प्रामाणिक, नपा-तुला, अनतिरंजित निरूपण है। एक शिक्षाशास्त्री, गांधीवादी चिंतक, राष्ट्रीय सेवक दृढ़-चरित्र व्यक्ति के रूप में जीवनी-नायक का व्यक्तित्व ठीक-ठीक उभर कर आया है। लेखक ने जगह-जगह किशोरीलाल जी की लेखनी से स्वयं निरूपित वृत्तांतों, आत्मकथनों को उद्धृत कर इसे यथासंभव प्रामाणिक बनाया है। किशोरीलाल जी के मित्रों, परिवार-जनों व अन्य व्यक्तियों द्वारा अंकित संस्मरणों व लेखों से भी पर्याप्त उद्धरण दिए गए हैं।

346 पृष्ठों की सीमा में जीवनी-लेखक ने जीवनी-नायक के चरित्र को पूरी ईमानदारी तथा निष्ठा के साथ अंकित किया है। इसका आमुख स्वामी आनंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दे०) ने लिखा है। धर्म-चिंतक, सत्य के उपासक, गांधीवादी विचारक तेजस्वी छात्र, पितृभक्त पुत्र, सफल व सहिष्णु अध्यापक, अनुकूल व समझदार गृह-स्वामी, परिश्रमी वकील, सार्वजनिक कार्यों में रसपूर्वक भाग लेने वाले, परिश्रमी सेवक, कुशल महाभाव, दृढ़ आंदोलनकारी, 'हरिजन' पत्र के संपादक, दमे के रोग से ग्रस्त किंतु प्रखर आत्मबल-संपन्न किशोरीलाल जी मशरूवाला के जीवन के विविध पहलुओं का स्वच्छ-सहज दर्शन उनके इस जीवन-चरित्र में दिखाई देता है।

अगस्त 1953 ई० में इस जीवनी का प्रथम संस्करण नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से निकला था। गुजराती के जीवनी-साहित्य में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

श्रेष्ठ कुलां दी चाल *(पं० कृ०)*

भाई मोहनसिंह वेद (दे०) द्वारा लिखित अच्छे वंशों की रीति-नीति एवं आचार-विचार से संबंधित पुस्तक। सदाचार की शिक्षा एवं लोक-व्यवहार के लिए उपयोगी, उपदेशपूर्ण रचना है। भाषा ठेठ पंजाबी है। इस कृति को अमृतसर क्षेत्र की पंजाबी भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

श्लेष *(पारि०)*

उक्ति में चमत्कार की सृष्टि करने वाला एक प्रमुख अलंकार (दे०) है 'श्लेष'। जैसाकि श्लेष शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ (चिपकना, सम्मिलन, संभोग आदि) से स्वतः व्यक्त है, यह अलंकार अभिधा (दे०) आश्रय से शब्द के एकाधिक अर्थों का बोध कराता है। अर्थात् केवल एक ही वार प्रयुक्त शब्द के प्रसंगानुरूप अर्थ विभिन्न होते हैं, उदाहरणार्थ—'चरन धरत चिंता करत, चितवत चारहुँ ओर। सुवरन को ढूँढ़त फिरत कवि, व्यभिचारी, चोर॥' इस दोहे में प्रयुक्त 'चरन' और 'सुबरन' शब्द श्लिष्ट हैं जिनके कवि, व्यभिचारी तथा चोर के संदर्भ में भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। कवि के प्रसंग में 'चरन' शब्द कविता का चरण तथा व्यभिचारी और चोर के प्रसंग में पैर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'सुवरन' शब्द का अर्थ कवि के लिए सुंदर वर्ण, व्यभिचारी के लिए सुंदर वर्ण वाली स्त्री तथा चोर के लिए सोना है। संस्कृत के आचार्य श्लेष के भेदों के विषय में एकमत नहीं हैं। श्लेष के प्रचलित भेद-विभाजन 'शब्दश्लेष' और अर्थश्लेष' के अतिरिक्त श्लिष्ट पदों के भंग होने या न होने की दृष्टि से 'सभंगश्लेष' और 'अभंगश्लेष'—शब्दश्लेष के ये दो भेद और किए गए हैं। चमत्कृतिप्रधान अलंकार होने के कारण ऐसे कवियों को यह अधिक प्रिय रहा है जिनकी प्रवृत्ति चमत्कारप्रदर्शन की ओर है। आधुनिक काव्य में भी श्लेष के कुछ अत्यंत सुंदर और मार्मिक प्रयोग मिलते हैं। दंडी (दे०) ने इसे अलंकार-योजना का मूल तत्त्व माना है—श्लेषः पुष्णाति सर्वासु प्रायः वक्रोक्तिषु श्रियम्।

श्लोकवार्तिक *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600-700 ई०]

इस ग्रंथ के लेखक कुमारिलभट्ट (दे०) हैं। कुमारिल आस्तिक एवं नास्तिक दोनों ही दर्शन-पद्धतियों के अपने समय के विशिष्ट विद्वान् थे।

'श्लोकवार्तिक' के ऊपर 'बृहद्वार्तिक' ग्रंथ है। इस ग्रंथ में दार्शनिक सिद्धांतों का विश्लेषण सूक्ष्मधिया किया गया है। इस ग्रंथ की यह महनीय देन है कि इसमें नास्तिकवाद से बचने का सफल प्रयास वर्तमान है।

श्वेतपद्मा *(उ० कृ०)*

'श्वेतपद्मा' मूल रूप में कहानी है, बाद में प्राण बंधुकर (दे०) ने ही उसे एकांकी का रूप दिया है। इसमें नारी के रहस्यमय अंतर को समझ लेने का प्रयास है। श्वेतपद्मा अपने स्वामी हेमकांत के दुर्बल स्वास्थ्य के प्रति भयभीत एवं चिंतित रहती है तथा सजग प्रहरी के समान उनकी देखरेख करती है। इसके अतिरिक्त आर्थिक बोझ को उठाने के लिए अनेक प्रकार का कष्ट उठाती एवं त्याग करती है। किंतु स्वामी उसकी इस अतिरिक्त सतर्कता से विरक्त हो उठते हैं तथा इसे उसकी आत्महीनता की प्रतिक्रिया मानते हैं। धीरे-धीरे संबंध में तनाव आता जाता है, नाना प्रकार की शंकाएँ जन्म लेती हैं। श्वेता चुपचाप पति का हर आघात सहती जाती है। एक दिन विवश हो पति की भ्रांति दूर करने के लिए श्वेता को बताना ही पड़ता है कि 'सुहागरात के दिन उसने अपनी सहेलियों को यह कहते हुए सुना था कि यदि श्वेता अपने पति के दुर्बल स्वास्थ्य की ओर अत्यधिक सावधानी नहीं बरतेगी, तो इस कमज़ोर आदमी को टी० बी० हो जाने की अधिक संभावना है'। पत्नी के भयभीत नारी-हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सजल परिचय पाकर हेमकांत स्तब्ध रह जाते हैं। अभिनय की दृष्टि से यह एक सफल एकांकी है।

षटिक्काचुप्पुलवर् *(तं० ले०)* [जन्म—1686 ई०; मृत्यु—1723 ई०]

ये 'तोॅण्है महण्लम्' नामक तमिल प्रांत के उत्तरी भाग के रहनेवाले थे। इसी भू-भाग में इन्होंने कवि और आश्रयदाता—दोनों पर प्रचलित लोक-वार्ताओं को 'तोॅण्टैमण्हल चतकम्' नामक 'शतक' पद्य-रचना में प्रस्तुत किया है। सौ पद्यों वाला यह ग्रंथ तत्कालीन स्थितियों की जानकारी के लिए अधिक उपयोगी है। इनके अपने आश्रय-दाताओं में 'मांट्टूर् कत्तूरिमुत्तलियार्' रामनातपुरम् के सेतुपति राजा तथा इस्लामी प्रभु 'चीतक्काति' थे। इनके बारे में इन्होंने अनेक स्फुट पद्य रचे हैं। विशेष रूप से 'चीतक्काति' के देहावसान पर इनकी शोकाकुल उक्ति कि 'मरकर स्वर्ग पर शासन करने वाले चीतक्काति के लौटे बिना कविगण जीवन चलाने में असमर्थ होंगे' प्रसिद्ध है। इनकी पद्य-रचना की विशेषता 'छंदम्' की योजना है यानी प्रास और गेयता-युक्त लय के विशिष्ट विधान की उपलब्धि है। इनका एक प्रचलित नीतिग्रंथ 'तण्टलैयार् चतकम्' है जिसके सौ पद्य नीतिपरक तथ्यों को अनुभव के संदर्भ में काव्योचित ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

षट्खंडणम *(प्रा० कृ०)*

दिगंबर-संप्रदाय में जैन-आगम (दे०) पूर्ण प्रामाणिक नहीं माने जाते। इनके अनुसार गोयम इंदभूति नामक गणधर ने महावीर से उपदेश ग्रहण कर जिस द्वादशांक की रचना की थी वह काल-क्रम से महावीर निर्वाण के 683 वर्ष बाद लुप्त हो गया। इसका ज्ञान गिरनार के धर्मसेन को था जिन्होंने पुष्पदंत और भूतवलि नामक दो शिष्यों को दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग के अंतर्गत पूर्वों और वियाहपन्नहि की शिक्षा दी। उसके आधार पर इन दोनों शिष्यों ने 'महाकर्म प्रकृति' नामक पाहुड़ का भी आश्रय लेकर 'षट्खंडागम' की रचना की जो दिगंबर-संप्रदाय का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसके 6 खंड ये हैं—(1) जीवट्ठाण, जिसमें गुणस्थानों और मार्गणाओं का वर्णन है। इसमें 8 अनुयोग द्वार और 9 चूलिकाएँ हैं। (2) खुद्दकबंध (क्षुद्रकबंध)—इसमें 11 अधिकारों में कर्मबंध के भेदों और उसमें प्रवृत्त जीवों का वर्णन है। (3) बंध स्वामित्व—इसमें कर्मबंध के विषयों का वर्णन किया गया है। (5) वेदना—इसमें वेदना का कथन किया गया है। (5) वर्गणा—इसमें बंधनीय तत्त्वों का विवेचन किया गया है और (6) महाबंध—इसमें 30000 श्लोक हैं और इस महाग्रंथ में बहुत विस्तार से प्रकृति, स्थिति, प्रदेश-बंध इत्यादि का वर्णन किया गया है। इस पर समय-समय पर अनेक टीकाएँ भी लिखी जाती रहीं। दिगंबर-संप्रदाय के मान्य ग्रंथों को भी 'षट्खंडागम' नाम से अभिहित कर दिया जाता है। इन समस्त ग्रंथों के चार खंड हैं—(1) प्रथमानुयोग—इसमें पद्म, हरिवंश, त्रिषष्टिलक्षण, महा और उत्तर ये सब पुराण आ जाते हैं। (2) करणानुयोग—इसमें सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति और जयधवला का समावेश है। इन सब ग्रंथों का विषय भूगोल-खगोल है। (3) द्रव्यानुयोग—यह खंड दर्शनपरक है। इसमें कुंडकुंड (दे० कुंदकुंद) की रचनाएँ, उमास्वाति का 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' समंतभद्र की 'आप्तमीमांसा तथा कतिपय टीकाएँ सम्मिलित हैं और (4) चरणानुयोग—जिसमें वहकेर का मूलाचार और त्रिवर्णाचार तथा समंतभद्र का 'रत्नकप्पडश्रावकाचार' ये आचरण-संबंधी ग्रंथ आते हैं। 'षट्खंडागम' को अतिरिक्त आगम कहा जा सकता है।

षट्पदी *(क० पारि०)*

छह पाद अथवा चरणों के कन्नड वृत्त का नाम षट्पदी है। इसके प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पंचम चरण समान होते हैं तो तृतीय और और षष्ठ चरण अन्य चरणों से डेढ़ गुना अधिक मात्रा वाले होते हैं। उनके अंत में 'गुरु' का होना आवश्यक है। षट्पदी के छह प्रकार हैं—शर, कुसुम, भोग, भामिनी, परिवर्धिनी और वार्धक। कन्नड-साहित्य में षट्पदी में ही काव्य-रचना करने वाले कई कवि हुए हैं, इस कारण काव्य-शैली के रूप में इसको विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। इस शैली में काव्य-रचना करने वालों में सर्वप्रथम राघवांक (दे०) (1225 ई०) का नाम लिया जाता है। उनके 'हरिश्चंद्रकाव्य' (दे०) और 'सिद्धरामपुराण' (दे०) वार्धक षट्पदी में हैं। कहा जाता है कि राघवांक षट्पदी के जनक हैं। उनके पूर्व कन्नड-साहित्य में षट्पदी का प्रयोग नहीं दीखता। 'कविचरिते' में कहा गया है कि उन्होंने शर-षट्पदी में भी रचना की थी। उनकी 'वीरेशचरिते' (दे०), 'शरभचारित्र' और 'हरिहर-महत्व' जैसी कृतियों में उद्दंड षट्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदी का प्रयोग हुआ है। नागवर्मा (990 ई०) (दे०) ने अपनी 'छंदोंबुधि' (दे०) में षट्पदी का जो लक्षण बताया है, उससे विदित होता है कि उनके समय में षट्पदी का एक ही भेद—शर-षट्पदी—था। राघवांक ने अपनी प्रतिभा से कुछ भेदों को जन्म दिया होगा। 'हरिश्चंद्र काव्य' के काव्यात्मक सौंदर्य का एक कारण उसका सफल छंद-प्रयोग भी है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि राघवांक को षट्पदी के प्रयोग में, विशेषत: 'वार्धक' में अपूर्व सफलता मिली है। यह कहना आवश्यक है कि कन्नड के कन्नडपन को दिखाने में षट्पदी का विशेष महत्व रहा है।

षंड़गी, उदयनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

आधुनिक उड़िया बाल-साहित्य के संवर्धन में उदयनाथ षंड़गी का प्रदेय महत्वपूर्ण है। प्रकृति, पशु-पक्षी, जलचर—सभी पर इन्होंने शिशु-साहित्य की रचना की है। इनका 'अंकिल टाम्स केबिन' का अनुवाद 'टमक्कांक कुटीर' एक सफल कृति है जो मौलिक रचना-सी जान पड़ती है। इनकी बाल-कविता और बाल-कहानियाँ जितनी ज्ञानवर्धिनी हैं, उतनी ही सहज और आनंदप्रद भी। शैली रोचक और सरल है। निस्संदेह इस क्षेत्र के ये एक समर्थ कलाकार हैं।

'पिलांक जीवनी ग्रंथमाळा', 'जातक गळ्प', 'इसप कथा', 'आदिवासी कथा', 'बण जंगलर जीबजंतु', 'बौद्धजातक', 'चकाचका भऊँरी', 'आमग्रह उपग्रह', 'बिचित्र जळजीव', 'उपनिषद कथा', 'अरण्यकहानी', 'टुउकू मूषि' आदि इनकी रचनाएँ हैं। संप्रति ये उड़िया की प्रमुख दैनिक पत्रिका 'समाज' के मुद्रक हैं।

षडक्षरदेव, षडक्षरी *(क० ले०)*

षडक्षरी अथवा षडक्षरदेव वीरशैव कवि थे। इनका रचना-काल 1650-1677 ई० के मध्य माना जाता है। षडक्षरदेव मठाधिपति यति थे। बाल्यावस्था से ही कविता-रचना की ओर इनकी अभिरुचि थी। इनको जीवन का मार्मिक अनुभव हुआ था, इस कारण इनकी रचनाओं में इनके जीवन-दर्शन का सुंदर वर्णन प्राप्त होता है। संस्कृत और कन्नड दोनों भाषाओं पर अधिकार होने के कारण इन्होंने दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है।

चंपू-काव्य-परंपरा में षडक्षरदेव के काव्यों का विशेष महत्व है। इनकी चार रचनाएँ हैं—(1) राजशेखर-विलास (दे०), (2) शबरशंकरविलास (दे०), (3) बसवराजविजय अथवा वृषभेंद्रविजय (दे०) तथा (4) वीरभद्रदंडक।

'राजशेखरविलास' में एक शिवभक्त की कथा का वर्णन है जिसके माध्यम से 'पंचाक्षरी' मंत्रशक्ति का प्रभाव स्पष्ट किया गया है। वह एक सरस काव्य है। उसमें निर्मित वर्णनों का लतामंडप अत्यंत मनोहारी है। उसमें चौदह आश्वास हैं। तेरहवें आश्वास तक की कथा मंथर गति से चलती है। चौदहवें आश्वास में 'तिरुकोविनाची' का कथा-प्रसंग अत्यंत रसपूर्ण है। उसमें करुण-रस की धारा बही है। अन्य आश्वासों में शिव की महिमा का वर्णन है। काव्य में वर्जित उत्प्रेक्षालंकार, शृंगार, करुण और भक्ति के चित्र भव्य और हृदयस्पर्शी हैं। उसमें कवि की कमनीय कल्पना के भी अच्छे उदाहरण हैं और उसके पांडित्य की स्पष्ट छाप है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि 'राजशेखरविलास' कन्नड का एक श्रेष्ठ चंपूकाव्य है। षडक्षरी ने काव्य के प्रारंभ में कहा है कि मैंने हरिहर (दे०) का मार्गानुसरण किया है। इसका अर्थ यह है कि इन्होंने हरिहर के समान ही विषय का चुनाव किया है।

पाँच आश्वासों का 'शबरशंकरविलास' एक छोटा काव्य है। 'राजशेखरविलास' में महाकाव्यत्व है तो 'शबरशंकरविलास' में खंडकाव्यत्व है। इसमें शिवजी से अर्जुन को पाशुपतास्त्र-लाभ की कथा का वर्णन है। शैव कवि होने के कारण षडक्षरी ने शंकर जी को विशेष महत्व दिया है। इसमें वर्णित शिव और अर्जुन के संवाद और संग्राम पर्याप्त मनोहारी और सरस हैं।

'बसवराजविजय' या 'वृषभेंद्रविजय' एक बड़ा चंपूकाव्य है जिसमें बसवेश्वर के चरित का वर्णन है।

षडक्षरी कन्नड के प्रतिभासंपन्न और पंडित कवियों की पंक्ति में अन्यतम स्थान रखते हैं।

षड्ऋतु वर्णन *(म० कृ०)*

यह पांडुरंग गोविंद शास्त्री पारखी की विशुद्ध प्रकृति-वर्णन-संबंधी रचना है।

दक्षिण प्राईझ कमेटी के प्रोत्साहन से इस वस्तुनिष्ठ प्रकृति-वर्णनात्मक दीर्घ काव्य की रचना हुई थी। यह कमेटी लेखकों को स्वयं विषय सुझाती थी तथा तदुपरांत लेखक काव्य-लेखन करते थे। कालिदास (दे०) के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति वर्णनात्मक काव्य 'ऋतुसंहार' (दे०) के आदर्श को सामने रख पारखी ने इस काव्य की रचना की। यह काव्य वास्तव तथा विस्तृत है। इसमें पूरे साल में आने वाली छः ऋतुओं में आने वाले प्रकृति-सौंदर्य का आलेखन हुआ। वर्णनात्मक होने के कारण इसमें प्रकृति का भावपूर्ण चित्रण होने पर भी किसी रस का आस्वादन नहीं हो पाता है।

पारखी संक्रांति-काल के कवि हैं। इस ग्रंथ की रचना करने में यद्यपि इन्होंने संस्कृत-काव्य के आदर्श को सामने रखा है तथापि इनकी लेखन-शैली पंडित कवियों की नहीं रही। वह सरल, ऋजु एवं धाराप्रवाही है।

षण्मुख सुंदरम्, आर० *(त० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

इन्होंने पंद्रह से अधिक उपन्यास लिखकर ख्याति प्राप्त की है। प्रसिद्ध उपन्यासों में 'नाकम्माळ्' (1941), 'पुवुम् पिन्चुम्' (1944), 'चट्टि चुट्टतु' (1965), 'तनिवळि' (1967) इत्यादि हैं। इनमें इन्होंने अपने ज़िले के प्रांतीय वातावरण तथा बोली-विशेष का अच्छा उपयोग किया है। तमिल उपन्यासों में आंचलिकता के सफल उपयोग में पुदुमैप्पित्तन् (दे०) के बाद इनका नंबर आ सकता है। इनकी 'चट्टि चुट्टतु' (मटका गरम हुआ) में ग्राम-जीवन में व्याप्त दरिद्रता तथा भोले कृषक लोगों के शोषण का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। इस उपन्यास के नायक 'चामिक् कवुंटर्' का मानवतापूर्ण चरित्र, जो स्वार्थी शक्तियों का शिकार बनता है, कुछ अंशों में प्रेमचंद (दे०) के प्रसिद्ध पात्र 'होरी' (दे०) का स्मरण दिला सकता है। ग्रामों में पले सीधे लोग शहरी जीवन में आकर किन-किन प्रकारों से परिवर्तित या प्रतिबंधित होते हैं—इसका सुंदर प्रस्तुतीकरण इनकी 'तनिवळि' (पृथक मार्ग) में द्रष्टव्य है। इन्होंने बँगला के कतिपय उपन्यासों के तमिल अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं।

षोडषा *(उ० पारि०)*

यह चउतिशा (दे०)-वर्ग की रचना-शैली है। इसमें व्यंजनवर्णों के स्थान पर स्वर, वर्ण, अनुस्वार और विसर्ग (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रु, रू, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, ं, ँ, ଃ) का प्रयोग होता है। उपेंद्र भंज (दे०) ने इसे 'षोडषेंदु' नाम से अभिहित किया है। यह रीति चउतिशा के समान लोकप्रिय नहीं है। 'षोडषा' एवं चउतिशा के समन्वय से पचास वर्णों की एक नवीन रचना-पद्धति अभिमन्यु सामंतसिंहार (दे०) की रचना 'विदग्ध चिंतामणि' (दे०) के प्रथम छंद में प्रयुक्त हुई है।

संकलन-त्रय *(हिं० पारि०)*

पश्चिम में कला-कृति में आंगिक अन्विति (आर्गेनिक यूनिटी) को प्रारंभ से ही महत्व दिया जाता रहा है। प्लेटो, अरस्तू, होरेस और लोंजाइनस सभी ने उस पर बल दिया है। अरस्तू ने त्रासदी (दे०) के लिए कार्य को स्वतःपूर्ण तथा अन्विति से युक्त होना आवश्यक बताया है, 'त्रासदी के कथानक की धुरी ऐसा कार्य-व्यापार होना चाहिए जिसके विभिन्न अंग परस्पर संबद्ध होने के साथ-साथ मूल कार्य से भी संबद्ध हों, जिसमें इतनी सुसंबद्धता हो कि एक अंग को भी इधर-उधर करने से सर्वांग छिन्न-भिन्न हो जाय। उद्देश्य और प्रभाव की समता की दृष्टि से कृति पूर्ण होनी चाहिए।' अरस्तू ने कालगत अन्विति का भी संकेत किया है—'त्रासदी को यथासंभव सूर्य की एक परिक्रमा या इससे कुछ अधिक समय तक सीमित रखने का प्रयत्न किया जाता है। 'स्थानगत अन्विति का प्रत्यक्ष उल्लेख उसने कहीं नहीं किया है। केवल महाकाव्य (दे०) और त्रासदी की तुलना करते समय उसके निम्न कथन से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह स्थान की अन्विति के पक्ष में था…'सीमित परिधि में ही कला (दे०) यहाँ अपनी सिद्धि कर लेती है।' स्पष्ट है कि अरस्तू ने कार्य की अन्विति पर ही बल दिया था, अन्य दो अन्वितियों का उल्लेख केवल ऐतिहासिक तथ्य के रूप में हुआ है—अनिवार्य नियम के रूप में नहीं। पर पुनर्जागरण युग में कास्तेलवेत्रो तथा अन्य इतालवी और फ्रांसीसी विद्वानों ने कहा कि अरस्तू ने तीनों अन्वितियों का प्रयोग आवश्यक बताया था। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस में नाट्य-रचना में अन्वितियों का पालन नियम बना दिया गया और 250 वर्ष तक नाटककार उसका पालन करते रहे। डा० जॉनसन ने इसका विरोध किया। आज के नाटककार तीनों अन्वितियों के पालन की चिंता नहीं करते; केवल प्रभावान्विति का ध्यान रखते हैं।

संकल्पसूर्योदय *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

'संकल्पसूर्योदय' प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैतवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदांतदेशिक (दे०) द्वारा रचित प्रतीक नाटक है।

इस नाटक में मोह की पराजय तथा विवेक के उदय को विषय बनाया गया है। वेदांतदेशिक के विचार में शांत रस ही चित्त के खेद का अपनयन करने वाला, वास्तविक आनंद देने वाला एकमात्र रस है। श्रृंगार रस तो असभ्य की कोटि में आता है। वीर रस भी एक-दूसरे के अपमान तथा अवहेलना के लिए प्रेरित करता है। अद्भुत रस की गति स्वभावतः विरुद्ध है। अतः शांत रस ही निःसंदिग्ध वास्तविक रस है।

वेदांतदेशिक प्रथम कोटि के विद्वान् थे अतः 'संकल्पसूर्योदय' की कविता में पांडित्य का महान् प्रकर्ष आ गया है।

संक्रमण *(म० कृ०)*

यह ल० ग० देव (दे०) का नाटक है। इसमें राजनीतिक अवस्थाओं के संक्रमण की कथा को उरेहा गया है। मुख्यतः तीन जीवन दृष्टियों को अभिव्यक्त करने वाले इस नाटक के प्रथम अंक में उपनिवेशवादी सरकारी तंत्र तथा कांग्रेस के सिद्धांतादर्शों के संघर्ष का चित्रण हुआ है। इसमें अँग्रेज सरकार की सेवा में रत पिता उच्चपदाधिकारी आई० सी० एस० है किंतु उसका पुत्र कांग्रेस का सक्रिय सदस्य है। प्रथम अंक का यह कांग्रेसी पुत्र द्वितीय अंक में मंत्री के उच्च पद को सुशोभित करता है परंतु साम्यवादी विचारों के प्रबल समर्थक अपने ही पुत्र से उसका तीव्र मतभेद होता है। कालचक्र की प्रबलता से तृतीय अंक में साम्यवादी सरकार की संस्थापना की नाटककार द्वारा परिकल्पना की गई है। इस अंक में साम्यवादी सरकार में मंत्री पद को सुशोभित करने वाला द्वितीय अंक का यह मंत्री स्वयं अपने पिता के विरुद्ध न्यायिक जाँच का आदेश देकर कर्त्तव्य की महत्ता का प्रतिपादन करता है। विभिन्न राजनीतिक विचार-परंपराओं के संवहन के कारण पात्र नाटककार के द्वारा ही दौड़ाए-भगाए गए हैं। उनमें निजी व्यक्तित्व का अभाव है। भाषा पात्र एवं प्रसंगानुकूल हैं। सिद्धांत-निरूपण की दृष्टि से नाटक स्तुत्य है।

संगीत एकच प्याला (म०कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1917 ई०]

यह मद्य-निषेध पर आधारित राम गणेश गडकरी (दे०) का दुःखांत सामाजिक नाटक है। सुप्रसिद्ध वकील सुधाकर न्यायालय में अपने मान-भंग के दुःख को भुलाने के लिए तुळीराम (दे०) कलर्क के परामर्शानुसार शराब की शरण लेता है। धीरे-धीरे पूर्णतः वासनाधीन होने पर वह न केवल अपनी साध्वी पत्नी सिंधु एवं एकमात्र पुत्र की उपेक्षा करता है, बल्कि अपनी धन-संपत्ति एवं प्रतिष्ठा से भी हाथ धो बैठता है। क्रोधाभिभूत सुधाकर के हाथों अपने पुत्र की हत्या का दोष सिंधु पति की सुरक्षा हेतु अपने ऊपर ले लेती है। अंत में सिंधु के दुःखद निधन के साथ नाटक की परिसमाप्ति हुई है। तुळीराम और आर्य-मदिरा-मंडल के प्रासंगिक हास्य-प्रसंग कथा की एकरसता को भंग करने के लिए संयोजित किए गए हैं, परंतु वे मूलकथा से एकात्म नहीं हो सके हैं। रसवादी परंपरा में ढले प्रमुख चरित्र सुधाकर, सिंधु, रामलाल, भगीरथ, शरद, गीता, तुळीराम, आदि आत्म-विश्लेषणात्मक पद्धति के कारण सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। कथा-विकास पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है। अंतः एवं बाह्य द्वंद्व के अनेकानेक भव्य चित्र सिंधु एवं सुधाकर के संवादों में परिलक्षित होते हैं। पात्रानुकूल काव्यमयी भाषा से युक्त संवाद प्रभावान्विति की दृष्टि से सजीव एवं सटीक हैं।

मराठी के दुःखांत नाटकों की समृद्ध परंपरा में 'एकच प्याला' कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से मानक कृति कही जाती है।

संगीत सौभद्र *(म० कृ०)*

मराठी के पौराणिक नाटकों में अन्ना साहब किर्लोस्कर के 'संगीत सौभद्र' का अद्वितीय स्थान है। सुभद्राहरण के ख्यात वृत्त पर आधारित इस रचना में पौराणिक पात्रों को मानवीय रूप से प्रस्तुत किया गया है। 'महाभारत' (दे०) में वर्णित सुभद्राहरण की कथा के परिवर्तित प्रारूप को स्वीकार करने के कारण ही कथा में यादव-पांडव-संघर्ष को सर्वथा छोड़ दिया गया है। इस नाटक के रचना-तंत्र पर संस्कृत-नाटक-शिल्प का प्रभूत प्रभाव है। पौराणिक चरित्रों को मानवीय रूप में चित्रित करने के कारण पारिवारिक जीवन की अनेक भव्य झाँकियों का सहज समावेश इस नाटक में हो गया है। सफल संगीतात्मक प्रहसन के रूप में मराठी नाटक-साहित्य की यह अद्वितीय कृति है। आज भी रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के अवसर पर दर्शकों की अपार भीड़ इसके स्वागतार्थ सहर्ष प्रस्तुत रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्राम *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

दीननाथ शर्मा के इस उपन्यास पर नार्वेजियन लेखक हैमसन के 'हंगर' नामक उपन्यास का प्रभाव स्पष्ट है। इसका नायक बुधिनाथ आदर्शवादी है। वह कई नौकरियाँ करता है किंतु आदर्शवाद और आत्मसम्मान की रक्षा न हो सकने से छोड़ देता है। वर्तमान युग में सफलता के लिए जो विवेकहीनता, निर्दय स्वार्थपरता और आत्मसम्मान-हीनता चाहिए वह बुधिनाथ में नहीं है। इसमें परंपरागत शैली नहीं है; कहानी में ऐसी घटनाएँ रखने का प्रयास नहीं है जो पाठकों के हृदय को आलोड़ित करें।

संघरक्षित *(पा० ले०)*

ये बारहवीं शती में श्रीलंका के पराक्रमबाहु प्रथम तथा विजयवाहु तृतीय के शासन-काल में सारिपुत्र के शिष्य और बौद्ध-विहार उदुंबरगिरि के संघमहाथेरा थे। कुछ लोग इन्हें मोग्गलाना और मेघंकर से अभिन्न मानते हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'सुबोधालंकार', 'वुत्तोदय', 'संबंधचिंता', 'सुसद्दसिद्धि', 'योगविनिच्चय' और 'खुद्दकसिक्खा' की टीका। इनमें 'सुबोधालंकार' सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसमें 371 कारिकाओं और 5 परिच्छेदों में काव्यलक्षण, दोष, गुण, अलंकार आदि दिए हुए हैं। अन्य ग्रंथों में छंदःशास्त्र, व्याकरण और बौद्ध धर्म आदि विषय आए हैं।

संजयन् *(मल० ले०)* [जन्म—1903 ई०; मृत्यु—1944 ई०]

जन्म-स्थान—तलश्शेरी। संजयन् इनका उपनाम है और असली नाम है एम० रामुण्णि नायर, जिसका संक्षिप्त रूप है एम० आर० नायर। अँग्रेज़ी में इन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। संस्कृत साहित्य पर इनका प्रबल अधिकार था तथा फ्रेंच एवं जर्मन के व्यावहारिक ज्ञान से भी संपन्न थे। प्रारंभ में ये सरकारी नौकर रहे; बाद में क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापक हो गए। शारीरिक अस्वस्थता के कारण ये केवल आठ वर्ष तक ठोस साहित्य-सेवा कर सके। इनका वैयक्तिक जीवन अत्यंत संघर्षमय रहा किंतु दुःखरूपी हलाहल को ये शिव के सदृश पी गए।

श्री संजयन् ने अपना मौलिक साहित्य-सृजन पद्य-रचना से प्रारंभ किया। केरल पत्रिका, 'संजयन्' तथा 'विश्वरूपम्' के लेखों के ज़रिये संजयन् यशस्वी हुए। संजयन् जी इन पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न उपनामों से चुटीले व्यंग्यपूर्ण लघुलेख, संपादक के नाम व्यंग्यपूर्ण पत्र आदि लिखते थे। 'एमरिगीता', 'मोहितन्', 'हास्यांजलि', (दे०) आदि हास्यभरी रचनाएँ तथा शेक्सपीयर के 'ओथेल्लो' नाटक का सरस अनुवाद इनकी देन हैं। इनकी विनोद-प्रियता इससे भी प्रकट है कि इन्होंने 'पी० एस०' उर्फ़ 'पारप्पुरत्तु संजयन्' (दे०) उपनाम स्वीकार किया। पारप्पुरत्तु का अर्थ है चट्टान का। मलयाळम-साहित्य में संजयन् का यश अमिट है।

संज्ञा *(हिं० पारि०)*

'संज्ञा' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु से बना है अर्थात् संज्ञा वह है जिससे किसी का सम्यक् ज्ञान हो। व्याकरण में संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे प्रकृत अथवा कल्पित सृष्टि की किसी भी वस्तु या क्रिया का ज्ञान हो या उसका नाम सूचित हो। संज्ञा शब्दों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है : गणनीय संज्ञा जैसे आदमी; अगणनीय संज्ञा जैसे पानी; जातिवाचक संज्ञा जैसे मनुष्य, नगर, पर्वत; व्यक्तिवाचक संज्ञा जैसे राम, दिल्ली, हिमालय; भाववाचक संज्ञा जैसे वीरता, सुख, मैत्री आदि। संज्ञा शब्दों से विशेषण (भारत-भारतीय, हवा-हवाई), क्रिया (शर्म-शर्माना, खर्च-खर्चना), क्रियाविशेषण (राम किनारे बैठा है) तथा विस्मयादिबोधक (राम ! राम ! यह क्या किया) शब्द आदि भी बन जाते हैं।

संत, इंदिरा *(म० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

ये बेळगाँव प्रशिक्षण महाविद्यालय की प्राचार्या हैं।

इनकी रचनाएँ हैं—**काव्य-संग्रह** : 'सहवास', 'शेला', 'मेंदी' तथा 'मृगजळ'।

कथा-संग्रह—'श्यामली' और 'कदली'।

आधुनिक मराठी कवयित्रियों में इंदिरा संत का अपना स्थान है। पति की अकाल मृत्यु के कारण इनके जीवन में जो शून्यता आ गई थी, उसी का कारुणिक अंकन इनकी कविताएँ हैं। इनका संपूर्ण काव्य प्रेमभाव से पूरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह प्रेमभाव द्विविधा रूपा है—पति-प्रेम और अपत्य-प्रेम। अतीत काल के गह्वर में निहित वासंती रात्रि एवं स्वर्णिम दिवस की स्मृति में डूबे मन की उदासीन और कुछ-कुछ शून्य मनःस्थिति का अंकन करने वाली कविताएँ अत्यंत भाव-तरल हैं।

अधिकांश गीतों के लिए इन्होंने आठ अक्षर-गण वाले गेय ओवी छंद का प्रयोग किया है।

संतकाव्य *(हिं० प्र०)*

संतकाव्य का विभाजन तीन गुणों में हो सकता सकता है—(1) आदि युग, ईसा की बारहवीं से सोलहवीं शती तक; (2) मध्ययुग, ईसा की सोलहवीं से अठारहवीं शती तक; और (3) आधुनिक युग, ईसा की उन्नीसवीं शती से। संत-परंपरा के सर्वप्रथम पथ-प्रदर्शक भक्तकवि जयदेव ने कुछ ऐसे पदों की रचना की जो 'आदिग्रंथ' में संगृहीत हैं। संत काव्य भाव-प्रधान है, क्योंकि इसमें भाव-सौंदर्य की अपेक्षा शब्द-शैली के चमत्कार की ओर कम ध्यान दिया गया है। भाषा मुहावरेदार सर्वसाधारण की है, किंतु विचार उच्चातिउच्च, गंभीरतम हैं। इसका वर्ण्यविषय धार्मिक एवं दार्शनिक है; क्योंकि इसमें निर्गुण के प्रति भक्ति, प्रेम तथा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है; और व्यापक जीवन की ओर संकेत है। उलटबाँसियाँ रहस्यात्मक उक्तियों से ओत-प्रोत हैं, और साखियाँ तथा शब्द (गेय-पद) भी उनसे परिपूर्ण हैं। दोहा, सोरठा, तार, हरिपद, चौपाई, छप्पय के दर्शन कतिपय संतों की रमैनियों में उपलब्ध हैं। रमैनियों में विवरण है किंतु प्रबंध-रचना का प्रयास नहीं; क्योंकि उनमें, दो-चार को छोड़कर प्रेमगाथा का निर्माण नहीं हुआ—बानी अथवा शब्द गेय-पद हैं जिनका प्रयोग सभी प्रकार की रचना के लिए हुआ है, जबकि पदों और साखियों की रचना प्रायः फुटकर पदों के रूप में हुई है। कुछ संतकाव्य ऐसे भी हैं जो लोक-गीतों का महत्वपूर्ण अवशेष हैं, यथा : चाँचर, वसंत, फाग, हिंडोला, बेलि, ककहरा, वणजारा, व्याहलो, बिरहुली। 'ग्रंथ बावनी' में नागरी लिपि के बावन अक्षरों से क्रमशः आरंभ है। नामदेव (दे०), कबीर (दे०), रैदास, सधना, वेणी, त्रिलोचन, सोना नाई, पीपा, कमाल, धन्ना भगत आदि अनेक संत उल्लेखनीय हैं। किंतु कबीर की रचना का बृहत् अंश ऐसा है जिसकी गणना श्रेष्ठ काव्य में हो सकती है।

संतरेण *(पं० ले०)* [समय—1741-1871 ई०]

उदासी संप्रदाय के संत कवि संतरेण जा जन्म श्रीनगर, कश्मीर प्रदेश में हुआ था। इनके पिता का नाम हरिवल्लभ एवं माता का सावित्री देवी था और ये गौड ब्राह्मण थे। इन्होंने लाहौर एवं अमृतसर में रहने के बाद बालापुर पी०, मद्रास, नेपाल, सिंध, बलोचिस्तान आदि प्रदेशों का भ्रमण किया और पंजाब के मलेरकोटला नगर के भूदत स्थान में अपना एक आश्रम स्थापित किया जो अभी तक विद्यमान है। 1871 ई० में भूदत में इनका देहांत हुआ। साहिब दास उदासी संत की शिष्य-परंपरा को इन्होंने विधिवत् चलाया। इनकी रचनाएँ हैं—'मनः-प्रबोध', 'नानक-विजय' (दे०), 'नानक-बोध', 'वचन-संग्रह' एवं 'उदासी बोध'। इन कृतियों में 'नानक-विजय' एक विशाल ग्रंथ है। इस रचना में धार्मिक एवं सांस्कृतिक तत्त्व की अपेक्षा काव्य-गौरव अधिक है। भाषा पर ब्रज एवं खड़ी बोली का प्रभाव भी है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। संत कवि संतरेण इतने प्रभावशाली थे कि आसपास के क्षेत्र के लोग उन्हें ज्योतिष, आयुर्वेद एवं अन्य विद्याओं का पहुँचा हुआ संत मानते थे। इस विद्या-वैचक्षण्य के साथ ही संतरेण की काव्य-प्रतिभा अद्भुत थी। संत कवि के रूप में साहित्य-क्षेत्र में इनका उत्कृष्ट स्थान है। ये पंजाबी तथा हिंदी (ब्रजभाषा)-साहित्य में समान रूप से मान्य हैं।

संतसिंह सेखों *(पं० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

संतसिंह सेखों पंजाबी में प्रगतिवादी विचार-धारा के अग्रणी लेखकों में हैं। समाजवादी यथार्थवाद से प्रेरित सेखों ने पंजाबी में आलोचना, नाटक, उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं और आज इनकी गणना पंजाबी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में की जाती है।

आलोचना के क्षेत्र में सेखों की दो पुस्तकें विशेष महत्वपूर्ण हैं—'प्रसिद्ध पंजाबी कवि' और साहित्तारथ (दे०)। 'प्रसिद्ध पंजाबी कवि' में पंजाबी के प्राचीन कवियों की रचनाओं का आकलन किया गया है। 'साहित्तारथ' इनके विशिष्ट साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। सेखों का नाटक 'कलाकार' जैसे उनकी साहित्यिक मान्यताओं का घोषणापत्र है। लेखक का अपना मत भी है कि इस नाटक में अभिव्यक्त विचार साहित्य और कला के संबंध में समाजवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानीकार के रूप में लेखों की सफलता कदाचित् अन्य विधाओं से अधिक है। पश्चिमी कहानी का कलात्मक संस्पर्श सेखों की कहानियों के माध्यम से पंजाबी में विशेष रूप से आया। विषय की दृष्टि से भी सेखों की कहानियों में व्यापकता है। इनकी अधिकांश कहानियाँ सामंतवादी और पूँजीवादी समाज के खोखलेपन को चित्रित करती हैं अथवा स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों की स्वच्छंदता का समर्थन करती हैं।

सेखों की रचनाएँ अपने विशिष्ट बौद्धिक स्तर के कारण भी उल्लेखनीय हैं। समाजवादी विचारधारा होते हुए भी इनकी कृतियों का बौद्धिक स्तर और कलात्मक सूझ-बूझ इन्हें अपनी पूर्व पीढ़ी [गुरबख्शसिंह (दे०)-नानकसिंह (दे०) युग] से पूरी तरह अलग कर देती है। अन्य कृतियाँ—'लहू मिट्टी' (दे०) (उपन्यास); 'समाचार' (दे०), 'कामे ते योधे', 'अधीवार', 'बारादरी', 'तीजा पहिर' (कहानी-संग्रह); 'बाबा बोहड़', 'मोइआं सार न काई' (नाटक); 'छे घर' (दे०) (एकांकी-संग्रह)।

संतू (गु० पा०)

चुनीलाल मडिया (दे०) के 'लीलूडी धरती' (दे०) नामक उपन्यास की नायिका 'संतू' गुंदासर गाँव के टीकावागडिया की संतान है। न बहुत गोरी और न बहुत काली। गाँव में वह 'संतू रंगीली' के नाम से प्रसिद्ध है। पतले सोटे-सी सरल और सिंहिनी जैसी पतली कमर वाली इस सोलह वर्षीय लड़की पर शादूलभा की आँखें टिक जाती हैं और मांडण उससे विवाह करने के स्वप्न देखता है। गोबर के साथ उसका विवाह होता है। सगर्भा संतू अपने गर्भ के विषय में केवल गोबर को ही बताती है और गोबर के दुर्घटना में मर जाने पर यह रहस्य कोई नहीं जान पाता। परिणामतः संतू को सभी दुराचारिणी मान बैठते हैं। उसका श्वसुर इसमें अपवाद है। गाँव में अकाल पड़ता है। पाखंडी ओझा 'संतू' को ही इसका कारण बताता है। गाँववाले संतू को गाँव से निकाल देने पर तुले हैं और संतू यह सोचकर कि 'मुझे जीना तो कम है फिर यह सब वैर क्यों बाँधा जाय', आत्महत्या करने निकल पड़ती है पर इस भय से कि सभी संतू को अंतिम रूप से पापी मान बैठेंगे, वह मर भी नहीं पाती। स्वभाव से निर्भीक, आग्रही और परिश्रमी होने के कारण तथा अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए वह खौलते तेल में अपने हाथ जला बैठती है। इससे एक लाभ अवश्य होता है कि गाँव का युवक-वर्ग और अन्य सहृदयी लोग संतू के पक्ष में हो जाते हैं। नियति उसकी रक्षा करती है; उसके मृत संतान पैदा होती है और माँ के कथित कलंक से बच जाती है। मृत संतान भी संतू को एक आघात दे जाती है। उसे लगता है कि उसकी संतान को कहीं छिपा दिया गया है। वह पागल हो जाती है। इसी के चरित्र को ध्यान में रखकर रघु कहता है, 'स्त्री का अवतार तो हरी-भरी धरती जैसा है···इस पर पाला पड़े, भले ही चौमासे के सभी बादल बरस जायें, भले ही भयंकर ग्रीष्म की जला देने वाली धूप तपे और देखने वाले की आँखों में लहू उतर आए पर अंत में तो यह धरती पुनः हरी-भरी हो लहरा उठती है।' 'मलेलाजीव' (दे०) की प्रेम दिवानी 'जीवी' से भी आगे बढ़कर संतू जीवन की वास्तविकताओं व कटुताओं को भोगती हुई अंधविश्वासों से टकराती हुई अपने सतीत्व व पवित्रता की रक्षा और उसके सम्मान के लिए सभी कुछ सहन करती है—साहस से करती है। लेखक को इस प्रकार के चरित्र-सृजन की प्रेरणा स्वरचित 'कंकुना थापा' नामक एकांकी से मिली है।

संतोख सिंह धीर (पं० ले०) [जन्म—1920 ई०]

संतोख सिंह धीर नयी पीढ़ी के कवि एवं कथाकार दोनों रूपों में प्रतिष्ठित हैं। पंजाब का ग्रामीण जीवन इनके सर्जनात्मक अनुभव का क्षेत्र है और प्रगतिशील विचारधारा से इनका गहरा संबंध है।

संतोखसिंह धीर की रचनाओं में सामंतवादी व्यवस्था में टूटे हुए पंजाबी ग्रामीण जन की बेबसी मुखर हो उठी है। आधुनिक युग के यंत्रीकरण ने समाज के कितने ही वर्गों को उनकी परंपरागत जीविका से वंचित कर दिया है—इसका मार्मिक चित्रण भी धीर की कहानियों में उपलब्ध है।

प्रमुख रचनाएँ—'सिट्टियाँ दी छां', 'सवेर होण तक' (कहानी-संग्रह); 'गुडीआं पटोले', 'मंगदी मींह वे', 'बिरछड़े' (कविता-संग्रह)।

संदिकै, कृष्णकांत (अ० ले०) [जन्म—1895 ई०]

महान् प्राच्यविद् श्री संदिकै संस्कृत और अँग्रेजी के धुरंधर विद्वान् हैं। इन्होंने अनेक साहित्यिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाओं को दान दिया है। इन्होंने आज तक कोई पुस्तक नहीं लिखी, किंतु कुछ पांडित्यपूर्ण निबंध लिखकर इन्होंने असमीया समालोचना-साहित्य को समृद्ध किया है। इनके ये निबंध उल्लेख योग्य हैं—'बाँही' में प्रकाशित 'रुच अभिनय'; 'चेतना' में प्रकाशित 'अनुवादर कथा', 'यूरोपर भाषा आरु साहित्य'; 'आवाहन' में प्रकाशित 'स्पेनिश साहित्यिर रमिओ जूलियेट', 'जाम्मनि साहित्यर सपोन नाटक', 'ग्रीक नाटकर गान'; 'असम साहित्य सभा पत्रिका' में 'सक्रेटिसर मतेकबिर प्रकृति' और असम-साहित्य-सभा का अभिभाषण। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'नैषध' (दे०) का टीका-सहित अँग्रेज़ी अनुवाद किया है।

गहन पांडित्यपूर्ण, संयत सुंदर गद्य-शैली के लिए संदिकै जी की विशेष ख्याति है।

संदिग्ध मृगया *(उ० कृ०)*

यह प्रतिष्ठित आधुनिक कवि श्री रमाकांत रथ (दे०) का तृतीय कविता-संकलन है। कवि ने नूतन धर्मी इन कविताओं में स्व-प्रज्ञा का परिचय दिया। कविताएँ विशेष रूप से आधुनिक समाज एवं जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। इस संकलन की बहु प्रशंसित दो कविताएँ हैं—'अनंतशयन' एवं 'अतिथि सत्कार'।

संदोलो, अब्दुल करीम *(सिं० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

ये लाड़काणा (सिंध) के गवर्नमेंट कॉलेज में सिंधी-विभाग के अध्यक्ष एवं प्राध्यापक हैं। इन्होंने सिंधी के साथ-साथ हिंदी और संस्कृत का भी अच्छा अध्ययन किया है। इनकी रुचि सिंधी भाषा और लोक-साहित्य के अनुसंधान में अधिक है। सिंधी-लोक-साहित्य के क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'सिंध जो सींगार', 'बींझारु' और 'दहसनामो'। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'तहक़ीक लुगात सिंधी' नाम से सिंधी भाषा का व्युत्पत्ति-कोश भी तैयार कर प्रकाशित कराया है। इनका सिंधी-लोक-साहित्य के अन्वेषण और सिंधी-भाषाविज्ञान में योगदान हमेशा याद रहेगा।

संदेश-काव्य *(पारि०)*

वियोगियों के संदेश के रूप में विरह-भावना की अभिव्यक्ति उसी समय से आरंभ होने लगी थी जिस समय से मानव में प्रेम की उत्पत्ति हुई थी। संस्कृत-साहित्य में इस अभिव्यंजना-प्रणाली का आरंभ कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) से होता है। इसमें कुबेर के शाप द्वारा अलकापुरी से निर्वासित एक यक्ष मेघ द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अपना प्रणय-संदेश भेजता है।

'मेघदूत' में विरह की गहन अनुभूति और मार्मिक अभिव्यक्ति से प्रभावित होकर इसके अनुकरण पर अनेक काव्य लिखे गए। किसी ने स्वतंत्र दूत-काव्य लिखा और किसी ने 'मेघदूत' के छंदों के किसी चरण को आधार बनाकर काव्य-रचना की, जैसे 'पवन दूत', 'टेस दूत' इत्यादि। ऐसे काव्यों में संदेश किसी माध्यम द्वारा या दूत द्वारा दिया जाता है, इसलिए ऐसे संदेश-काव्य को दूत-काव्य भी कहते हैं।

दूत-काव्यों में विप्रलंभ शृंगार की प्रधानता रहती है। संस्कृत-साहित्य के कवियों को इस प्रकार के काव्यों की रचना की प्रेरणा संभवतः प्रचलित लोक-गीतों से मिली होगी। इनमें उड़कर या बहकर या चलकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने वाले हंस, शुक, कोकिल, चातक, पपीहा, कौआ आदि पक्षियों द्वारा, निःश्वास, पवन, मेघ, नदी आदि प्रवाहशील वस्तुओं द्वारा या गतिशील मानव द्वारा संदेश भिजवाया जाता है।

अपभ्रंश-साहित्य में अद्दहमाण (दे०) द्वारा रचित 'संदेशरासक' (दे०) इसी प्रकार का संदेश-काव्य है। इसमें एक विरहिणी एक पथिक के द्वारा अपने प्रियतम को संदेश भेजती है।

राम-कथा-संबंधी काव्यों में राम हनुमान् द्वारा सीता के पास संदेश भेजते हैं। कृष्ण-कथा-संबंधी काव्यों में कृष्ण उद्धव द्वारा विरहिणी गोपियों के पास संदेश भिजवाते हैं। इस प्रसंग को लेकर रचे काव्यों में सूर का 'भ्रमरगीत' (दे०) अत्यंत प्रसिद्ध है। नंददास-विरचित 'भँवरगीत' (दे०) भी इसी परंपरा का संदेश-काव्य है।

आधुनिक काल की एतद् विषयक रचनाओं में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (दे०) का ब्रजभाषा में रचित 'उद्धव शतक' (दे०), सत्यनारायण 'कविरत्न' (दे०) का 'भ्रमरदूत' (दे०) प्रसिद्ध हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०) ने अपने खड़ी बोली के प्रसिद्ध काव्य 'प्रिय प्रवास' (दे०) में पवन को दूती बनाकर संदेश भिजवाया है। आधुनिक काल में संदेश-काव्य की प्रवृत्ति 'पत्रकाव्य' या 'पत्रगीति' रूप में व्यक्त हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदेशरासक *(अप० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई० के लगभग]

'संदेशरासक' अपभ्रंश भाषा का 223 पद्यों का एक प्रसिद्ध खंडकाव्य है। इसके रचयिता अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) (दे०) हैं। अद्यावधि उपलब्ध अपभ्रंश-काव्यों में से यही एक काव्य है जो मुसलमान कवि द्वारा रचित है। धर्मनिरपेक्ष लौकिक प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति इस काव्य की विशेषता है।

'संदेशरासक' एक संदेश काव्य है। इसकी कथा अन्य अपभ्रंश-काव्यों की तरह संधियों में विभक्त न होकर तीन भागों—प्रक्रमों—में विभक्त हैं। प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना रूप में है जिसमें कवि अपनी रचना का औचित्य प्रदर्शित करता है। द्वितीय प्रक्रम से मुख्य कथा आरंभ होती है—विजयनगर की एक विरहिणी नायिका एक पथिक द्वारा जो सामोस मूलस्थान (मुलतान) से आया था और खंभात जा रहा था, अपने पति को संदेश भेजना चाहती है। खंभात में ही उस नायिका का पति रहता था, अतः उस नगर का नाम सुनते ही वह भावविह्वल हो उठती है और पथिक को अपना करुण संदेश देना चाहती है। विरहिणी कभी एक छंद में, कभी दूसरे छंद में, कभी तीसरे छंद में कुछ संदेश देती है। किंतु अपने भावों को व्यक्त करने में असमर्थ पाकर वह पथिक से अपनी दशा का वर्णन करने को कहती है। इसी प्रसंग में (तीसरे प्रक्रम में) कवि ने षड्ऋतु-वर्णन प्रस्तुत किया है। अंत में जब अवसरानुकूल प्रिय संदेश देने की प्रार्थना करती हुई पथिक को आशीर्वाद देकर विदा करती है, उसी समय वह दक्षिण दिशा से अपने पति को आते हुए देखती है। वह हर्षविह्वल हो उठती है। पाठकों की मंगलकामना करते हुए कि नायिका की अकस्मात् कार्य-सिद्धि के समान वे भी सफलता प्राप्त करें, कवि अपनी कृति को समाप्त करता है।

'संदेशरासक' के खंडकाव्य होने के कारण इसमें विस्तृत वस्तु-वर्णन की अपेक्षा विरहिणी नायिका के हृदय की व्यथा का चित्रण अधिक है। इस काव्य में विप्रलंभ शृंगार की मुख्य रूप से व्यंजना हुई है। कवि का विरह-वर्णन संवेदनात्मक है। विरहिणी नायिका 'कुसुम सराउह रूवणिहि' (कुसुम शरायुध रूपनिधि) है। उसके अंग-वर्णनों में प्रयुक्त उपमान प्रायः परंपरागत हैं। ऋतु-वर्णन उद्दीपन-रूप में प्रयुक्त होता हुआ भी स्वाभाविक और आकर्षक है। परंपरागत ऋतु-वर्णन की शैली से भिन्न इस वर्णन में कहीं अधिक सरसता और साहित्यिकता है। प्रकृति-चित्रण में जीवन से संबंध रखने वाले व्यापारों का भी उल्लेख है।

इस काव्य की भाषा में भाषानुकूल शब्द-योजना हुई है। यत्र-तत्र ध्वन्यात्मक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा में शब्दचित्र अंकित करने की क्षमता है। स्थान-स्थान पर लोकोक्ति और मुहावरे के प्रयोग से भाषा सजीव हो गई है।

इस कृति में नाना छंदों का प्रयोग मिलता है, किंतु 'रासा' छंद की बहुलता है। अधिकांश छंद मात्रिक हैं।

संदेशरासक *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1420 ई०]

'संदेशरासक' अथवा 'संदेशक रास' पंद्रहवीं शती के मुसलमान कवि अद्दहमाण अर्थात् अब्दुर्रहमान (दे०)-रचित दूत-काव्य है, जो अपने वर्ण्य विषय—गहरी विरह-वेदना की अभिव्यक्ति—के कारण अत्यंत लोकप्रिय है। प्राचीन गुजराती का यह एक उत्तम विप्रलंभ-काव्य है।

कवि अब्दुर्रहमान संभवतः मुलतान के निवासी थे। इस कृति में विजयनगर स्थित नायिका खंभात स्थित नायक को एक पथिक के हाथों संदेश भेजती है।

भाषा की जटिलता होते हुए भी नगर-वर्णन, ऋतु-वर्णन, समसामयिक जीवन का यथार्थ निरूपण एवं विरह की समुचित अभिव्यक्ति के कारण गुजराती साहित्य में इस कृति का विशेष आदर है।

मुनि जिनविजय जी तथा डा० हरिवल्लभ (चुनीलाल) भायाणी (दे०) ने इसे संपादित किया है। हिंदी में पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने इसका संपादन किया है।

पंद्रहवीं शती के गुजराती भाषा के स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। भाषा में अवहट्ट की ओर झुकाव पाया जाता है।

संधानी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1953 ई०]

इस संग्रह की कविताओं में कवि नीलमणि फुकन (दे०) ने सत्य और सौंदर्य की खोज का प्रयास करते हुए जीवन के अनेक प्रश्नों पर भी विचार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संधि *(हिं० पारि०)*

'संधि' शब्द का अर्थ है 'मिलना'। व्याकरण में दो शब्दों तथा ध्वनियों के मिलने को, और मिलने पर हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को, संधि कहते हैं। उदाहरण के लिए राम+अवतार=रामावतार। संस्कृत में संधियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं : (क) **स्वर-संधि**—जिसमें दो स्वरों की संधि हो, जैसे—अति+अंत=अत्यंत, ज़िला+अधीश=ज़िलाधीश; (ख) **व्यंजन संधि**—दो व्यंजनों अथवा एक व्यंजन और एक स्वर की संधि व्यंजन-संधि है; जैसे जगत्+जननी=जगज्जननी, वाक्+ईश=वागीश; (ग) **विसर्ग-संधि**—जिसमें विसर्ग की स्वर या व्यंजन के साथ संधि हो, जैसे अंतः+गत=अंतर्गत; अंतः+साक्ष्य=अंतस्साक्ष्य। दो शब्दों या भाषिक इकाइयों के मिलने पर कभी तो उनकी संधि पर ध्वन्यात्मक परिवर्तन होते हैं, और कभी शब्दों के भीतर। संधि पर हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को **बाह्य संधि** तथा भीतर हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को **आंतरिक संधि** कह सकते हैं। उपर्युक्त उदाहरण बाह्य संधियों के थे। रात+जगा=रतजगा में 'रात' का 'रत' हो गया है अतः यह आंतरिक संधि (आ का अ) है। कुछ शब्दों में ये दोनों संधियाँ साथ-साथ मिलती हैं, जैसे : घोड़ा+दौड़=घुड़दौड़ (ओ=उ; ड़ा=ड़), पानी+घाट=पनघट (पा=प; नी=न)।

संध्याकरनंदी *(सं० ले०)* [समय—1084-1130 ई०]

इनका जन्म उत्तरी बंगाल में पुंड्रवर्द्धन नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम प्रजापति नंदी तथा पितामह का नाम पिनाकनंदी था।

इनकी दो काव्यकृतियाँ उपलब्ध हैं—'रामपालचरित' तथा 'रामचरित'। 'रामपालचरित' पाल वंशीय नरेश रामपाल की जीवनी श्लिष्ट पद्यों द्वारा प्रस्तुत करता है; किंतु ऐतिहासिक घटनाओं की विशेष जानकारी के अभाव में हम उन घटनाओं का सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। 'रामचरित' के पालनरेश रामपाल तथा रामचंद्र का वर्णन श्लेष के माध्यम से किया गया है। इसमें पाँच सर्ग तथा दो सौ आर्याएँ हैं। लेकिन तत्कालीन इतिहास की जानकारी न होने के कारण इनका समझना बड़ा कठिन है।

संध्या-नाटक *(मल० कृ०)*

यह श्री जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) की एक प्रतीकवादी नाट्यकृति है जिसमें प्रतीकों के माध्यम से जीवन-सत्यों को उभारने का प्रयत्न किया गया है।

संध्याराग *(क० कृ०)*

यह अ० न० कृ० (कृष्णराय) (दे०) का उपन्यास है। यद्यपि यह उपन्यास उनकी प्रारंभिक रचनाओं में है तथापि यह उपन्यास-कला की दृष्टि से उनके श्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाता है। इसमें वातावरण, संभाषण और पात्रों का निर्माण उत्तम रूप से हुआ है। इसका नायक लक्ष्मण असाधारण प्रतिभा-संपन्न संगीतकार है जो अपना जीवन ही उसके लिए न्योछावर कर देता है। वह जीवन में नाना कष्ट भोगता है, फिर भी अपनी कला-प्रज्ञा का विकास करता है। इसमें चित्रित स्त्री पात्रों में मीनम्मा का चरित्र बड़ा ही आकर्षक है। वह प्राचीन आदर्श और सद्गुणों की प्रतिमा है।

संबंद मुदलियार, पम्मल *(त० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

संबंद मुदलियार तमिल में नाडह ताता (नाटकों के पितामह) कहे जाते हैं। शिक्षा समाप्त करने के बाद इन्होंने वकालत करना आरंभ कर दिया था। 1891 ई० में श्री कृष्णमाचारुलु की 'सरस विनोदिनी सभा' द्वारा प्रस्तुत तेलुगु नाटकों को देखकर इन्हें नाट्य मंडली स्थापित करने की प्रेरणा मिली थी और इन्होंने अपने मित्रों और छात्रों के सहयोग से 'सुगुणविलास' नामक नाट्य सभा की स्थापना भी की थी। अभिनयोचित सुंदर नाटकों के न मिलने पर इन्होंने स्वयं नाटकों की रचना की। इनके नाटकों की संख्या 100 के लगभग है जिनमें कुछ एकांकी और रेडियो नाटक भी हैं। इनके कुछ नाटक चलचित्र के रूप में प्रदर्शित किए जा चुके हैं। इनकी प्रमुख नाट्य-कृतियाँ हैं—'मनोहरन्', 'वेदाल उलगम्', 'संगीत पयित्तियम्', 'अमलादित्यन्', 'सभापति नाडहंगळ्' आदि। इन्होंने कुछ निबंधों की भी रचना की है। 'नाडह तमिल' में इनके नाटक संबंधी भाषण संगृहीत हैं। 'नाडह मेड निनैवुहळ्' और 'यान् कंड पुलवरकळ्' संस्मरणात्मक कृतियाँ हैं। इन्होंने 'यन् शुयचरिदै'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीर्षक से आत्मकथा लिखी है । 1959 ई० में भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण की उपाधि प्रदान की थी। यद्यपि इन्हें सभी क्षेत्रों में अपार सफलता मिली है, तथापि तमिल-नाटक और तमिल रंगमंच की समृद्धि में उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

संबंदर *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवीं शती]

संबंदर का दक्षिण के शैव संतों में महत्वपूर्ण स्थान है । प्रसिद्ध है कि तीन वर्ष की अल्पायु में ही इन्हें दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी और ये भक्तिरसपूर्ण पद गाने लगे थे । इनकी भक्ति वात्सल्य-भाव की थी । सोलह वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ था और ये अपनी पत्नी सहित प्रभु में लीन हो गए थे । अपने अल्पकालिक जीवन में ही इन्होंने लगभग 200 शिव-मंदिरों का भ्रमण कर लिया था । इनके 384 पद 'देवारम्' (दे०) में संगृहीत हैं । इन पदों में प्रकृति के अनेक सुंदर चित्र हैं । इनके पदों से तत्कालीन समाज में प्रचलित शिवोपासना का परिचय मिलता है । इन्होंने शैव दर्शन के मूल सिद्धांतों का विवेचन किया है परंतु इनके पदों में दर्शन की वह गंभीरता नहीं है जो कि अन्य शैव-संतों के पदों में है । इन्हें अपने पांडित्य पर गर्व था इसी से ये अपने को 'वेदियन-ज्ञान-सम्बंदन्' (वेदज्ञ-ज्ञान-संबंदन्), 'नल् तमिल ज्ञान संबंदन्' (उत्तम तमिल कवि-ज्ञान-संबंदन्), 'नान् मरै वळ्ळ ज्ञान-संबंदन्' (चार वेदों का ज्ञाता ज्ञान-संबंदन्) कहते हैं ।

संबोध-गीति (ओड) *(पारि०)*

अँग्रेज़ी का 'ओड' शब्द यूनानी 'ओदे' का वंशज है । मूल रूप में इस शब्द का व्यवहार यूनान में वाद्य-यंत्र के साथ गाई जाने वाली छंदोबद्ध रचनाओं के लिए किया जाता था । यूनानी भाषा के ये प्रारंभिक गीत कालांतर में दो विपरीत धाराओं में प्रवाहित हुए थे—प्रगीत तथा नाट्य-रचना में व्यवहृत वृंदगान की एक विशिष्ट पद्धति । 'ओड' दूसरी धारा का विकसित रूप है । अँग्रेज़ी की शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, टेनीसन, स्विन्बर्न आदि रोमानी कवियों की संबोध-गीतियों से प्राचीन यूनानी 'ओड' का कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से स्पष्ट पार्थक्य है । इन कवियों की संबोध-गीतियों के विषय केवल भगवद्-स्तुति तक ही सीमित नहीं हैं । इनकी रचना सभी प्रकार के चिंतन, विचार एवं तर्क-प्रधान विषयों को लेकर हुई है । इस प्रकार स्पष्ट ही 'ओड' का विषय सामान्य सहज एवं अंतःस्फूर्त प्रगीत की अपेक्षा गंभीर एवं प्रकृत्या चिंतन-प्रधान होता है । शिल्प और रूपाकार की दृष्टि से विशदाकार संबंध-गीति अनिवार्यतः संबोधनात्मक शैली में रचित होती है । इसकी शैली भव्य, उत्कृष्ट तथा गरिमापूर्ण होती है, किंतु छंद-विधान प्रायः जटिल—कहीं-कहीं अत्यंत जटिल तथा अनियत होता है । यों सामान्यतः छंद प्रायः अंत्यानुप्रास-युक्त ही होता है, फिर भी अँग्रेज़ी-काव्य में भिन्नतुकांत और अंतमुक्त संबोध-गीतियाँ भी उपलब्ध हैं । संगीत-तत्त्व आज की संबोध-गीति के लिए अनिवार्य नहीं समझा जाता । वर्तमान युग में लिखित संबोध-गीतियों में आकार के परिसीमन पर बहुत अधिक आग्रह है । वह केवल 50 और 200 पंक्तियों के बीच ही समाप्त हो जाना चाहिए। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में संबोध-गीति का विभाजन दो दृष्टियों से किया गया है : छंद-रचना और संबोधन की शैली । छंद की दृष्टि से इसके दो रूप हैं—नियमित और अनियमित । इसके अतिरिक्त इस विधा के प्रसिद्ध रचनाकारों पिंडार और होरेस के नामों पर इसके दो उपवर्ग किए गए : पिंडारक, होरेशियन । वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और बायरन आदि रोमानी कवियों की शैली के आधार पर आधुनिक नियमित 'संबोध-गीति' (मॉडर्न रैग्यूलर ओड) नामक इसका एक तीसरा उपसर्ग भी माना गया है ।

संयममंजरी *(अप० कृ०)*

संयममंजरी महेश्वर (दे०) सूरि द्वारा रचित 35 दोहों की एक छोटी-सी कृति है । जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है, इसमें संयम से रहने का उपदेश दिया गया है । संयम ही सर्वोत्तम साधना है । इसी के द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है, ऐसी कवि की बद्धमूल धारणा थी । कृति में संयम के 17 प्रकारों का निर्देश करते हुए कुकर्म-त्याग और इंद्रिय-निग्रह पर बल दिया है । जीव-हिंसा, असत्य, अदत्तदान (चोरी), मैथुन और परिग्रह ये पाँच पाप बताए हैं । मनोदंड, वागदंड या जिह्वा-दंड और कायदंड इन तीनों दंडों से बचने का आदेश दिया है । कृतिकार ने इस छोटी-सी कृति में प्रतिपाद्य विषय का क्रमबद्ध विवेचन किया है और इसे शास्त्रीय शुष्कता से बचाने का प्रयत्न किया है । भाषा उपदेशानुकूल सरल लोकप्रिय शौरसेनी अपभ्रंश है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवर *(सि०)*

जिन कर्मों के प्रभाव से क्रोध, मान इत्यादि के कारण पुद्गलों (दे०) का पुंजीभाव होता है उन्हें रोक देना 'संवर' कहलाता है। कर्मों के प्रभाव से बंधन उत्पन्न होते हैं। अतः कैवल्य-पद प्राप्त करने के लिए उन बंधनों का संचय रोकना पहली आवश्यकता है। यह संचय दो प्रकार से रोका जा सकता है—नवीन संचय को रोकना 'संवर' कहलाता है और पुराने संचित कर्मों को क्षय करना 'निर्जरा' कहलाता है जिससे कैवल्य-पद प्राप्त होता है।

संस *(क० ले०)* [जन्म—1898 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

कन्नड के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार संस का वास्तविक नाम ए० एन० सामि वेंकटाद्रि अय्यर था। ये अपना नाम 'ए० एन० सामि', 'वेंकटाद्रि', 'वेंकटाद्रि पंडित' व 'सामि वेंकटाद्रि अय्यर'—इस प्रकार लिखा करते थे। 'संस' इनका उपनाम था। 'संस' का क्या अर्थ है, यह तो स्पष्ट नहीं है और यह भी ज्ञात नहीं है कि उन्होंने 'संस' उपनाम क्यों स्वीकार किया। कुछ विद्वान् अनुमान करते हैं कि कन्नड के आदिकवि 'पंप' (दे०) के नाम का अनुकरण इसमें विद्यमान है। 'पंप' के नाम के समान ही 'संस' नाम को भी उलटाकर पढ़ने से अक्षरों की स्थिति में कोई भिन्नता नहीं आती।

संस का जन्मस्थान मैसूर ज़िले में अगरंग्राम है। पंडित और विद्वानों के कुल में इनका जन्म हुआ था। इनके पूर्वज आयुर्वेद विद्या के लिए प्रसिद्ध थे। संस मैसूर के मरिमल्लप्पा हाईस्कूल के विद्यार्थी रहे थे। ये घुमक्कड़ थे। इन्होंने मैसूर के राजवंश के इतिहास का गंभीर अध्ययन किया था जिसके आधार पर इन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे थे। भारत में सर्वत्र भ्रमण कर 1936 ई० में मैसूर पुलिस के व्यवहार से असंतुष्ट होकर, अधिक विष-पान करके, इन्होंने आत्महत्या कर ली थी।

संस नाटककार ही नहीं, कवि और कहानीकार भी थे। इनके काव्य 'श्रीमंतोद्यानवर्णनम्' और 'संस-पद्य' तथा कहानी 'कौशल' का प्रकाशन हुआ है। इनके ही एक विवरण के अनुसार इनके ऐतिहासिक नाटकों की संख्या 23 है। परंतु आज इनके केवल छह नाटक प्राप्त होते हैं। ये हैं—(1) सुगुणगंभीर, (2) बिरुदंतेंबर गंड, (3) बेहद अरसु (पहाड़ी राजा), (4) विगड-विक्रमराय (दे०) (5) मंत्रशक्ति और (6) विजय नारसिंह। विनष्ट नाटकों में 'महाप्रभु', 'शरणागत परि-पालक', 'रत्नसिंहासनारोहण', 'मुत्तिन मूगति' (मोती का नथ), 'अमंग वाप' और 'मुस्ताफविजय' नामक नाटकों तथा 'दृष्टिदान' और 'जगजट्टि' नामक एकांकियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके विनष्ट नाटकों के संबंध में कहा जाता है कि कुछ नाटक उनके जीवन-काल में ही खो गए थे और कुछ नाटकों को इन्होंने ही किसी या किन्हीं व्यक्तियों से मनोमालिन्य होने के कारण आक्रोश में आकर जला दिया था।

उन्होंने ऐतिहासिक ग्रंथों और शिलालेखों के गंभीर अध्ययन के आधार पर कल्पना का पुट देकर अपने नाटकों का निर्माण किया है। रंगमंच की दृष्टि से ये नाटक अत्यंत सफल हैं। वीर रस उनके नाटकों का अंगी-रस है, शेष रस संदर्भोचित रूप में ही आए हैं। इन नाटकों में जैसी ओजपूर्ण भाषा देखी जाती है, वैसी अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलती है। 'विगडविक्रमराय' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है।

संस्कृत *(भाषा० पारि०)*

भारोपीय परिवार की एक अत्यंत महत्वपूर्व भाषा जो भारत में मोटे रूप से 1500 ई० पूर्व से 500 ई० पूर्व तक बोली जाती रही है। संस्कृत के दो रूप मिलते हैं: वैदिक संस्कृत या वैदिकी तथा लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत में वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों की रचना हुई है तो लौकिक में महाभारत, रामायण, पुराण तथा कालिदास, अश्वघोष, माघ, श्रीहर्ष, भास, शूद्रक, भवभूति, आदि संस्कृत के कृती साहित्यकारों की रचनाएँ हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा नहीं थी किंतु ऐसी धारणा निराधार है। संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, किंतु हर भाषा की तरह उसके भी बोलचाल के तथा साहित्यिक रूप में अंतर था। 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है 'संस्कार किया हुआ'। इससे स्पष्ट है कि सामान्य, असंस्कृत या प्राकृत भाषा की तुलना में भाषा के परिष्कृत रूप को ही संस्कृत की संज्ञा दी गई होगी। संस्कृत को मानक रूप देने का श्रेय पाणिनि को है। समृद्ध वाङ्मय तथा भाषा की अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टि से विश्व की बहुत कम प्राचीन भाषाएँ संस्कृत के समकक्ष खड़ी हो सकती हैं। बोलचाल की भाषा के रूप में संस्कृत का क्षेत्र मुख्यतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी भारत ही रहा है, किंतु दक्षिणी भारत की द्रविड़ परिवार की भाषाओं पर भी शब्द-भांडार के क्षेत्र में इस का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। संस्कृत ने भारत के बाहर की भी अनेक भाषाओं को प्रभावित किया है। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते हुए हिंदी, मराठी, गुजराती, बँगला आदि आधुनिक आर्य-भाषाओं का विकास संस्कृत से ही हुआ है, भारत, पाकिस्तान तथा बाँगला देश के बाहर की नेपाली, सिंहली, जिप्सी आदि भाषाएँ इसी से संबद्ध हैं।

संस्मरण *(हिं० पारि०)*

भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में से कुछ को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत-शैली में रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं। उसमें अनुभूति और लेखक के व्यक्तित्व की विशेषता समाविष्ट रहती हैं। इसके दो प्रकार हैं—जब लेखक अपने विषय में लिखता है तो उसे 'रेमिनिसेंस' कहते हैं और यदि दूसरों के बारे में लिखे तो वह 'मेयोयर' कहलाता है। संस्मरण प्रायः किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा लिखे जाते हैं, उसमें रेखाचित्र (दे०) की अपेक्षा विवरणात्मकता अधिक होती है क्योंकि वह घटना से संबद्ध होता है, यद्यपि घटना चरित्र की परिचायक होती है। उसमें कल्पना का पुट कम तथा इतिहास-तत्त्व अधिक होता है; उसका लेखक उन्हीं बातों को प्रस्तुत करता है जिनका उसे अनुभव हो चुका होता है। साथ ही वह इतिहासकार के समान विवरण देकर संतुष्ट नहीं हो जाता, अपितु पाठक पर एक छाप छोड़ना चाहता है।

संहिता *(उ० पारि०)*

संहिता का अर्थ है संग्रथन। इसमें वैदिक सूक्तों का धारावाहिक रूप से संकलन रहता है। भारत की विभिन्न भाषाओं में मनु, गर्ग, पराशर आदि की संहिताओं का अनुवाद मिलता है, किंतु उड़ीसा में मौलिक संहिताओं की रचना हुई है। इन संहिताओं में लेखकों ने जहाँ विभिन्न मतवादों का संकलन, खंडन एवं मंडन किया है वहाँ वैयक्तिक धर्म-दर्शन के मौलिक नीति-नियमों का प्रतिपादन भी किया है। अच्युतानंददास (दे०) ने 36 संहिताओं की रचना की है। इनकी 'शून्यसंहिता', 'शब्द-ब्रह्मसंहिता', 'अणाकारसंहिता' उड़िया-वैष्णव धर्म के प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे वैष्णव कवियों ने भी संहिताओं की रचना की है।

संहिता *(सं० पारि०)* [रचना-काल—2500 ई० पूर्व]

संहितावर्ती मंत्रों के द्रष्टा विभिन्न ऋषि हैं—'ऋषियो मंत्रद्रष्टारः'। विद्वानों का एक वर्ग संहिता-साहित्य को अपौरुषेय मानता है। व्यास (दे० व्यास बादरायण) ने संहिताओं का संपादन किया था। इसीलिए वे वेदव्यास कहलाए हैं। 'संहिता' शब्द का अर्थ संग्रह है। संहिताएँ चार हैं—'ऋग्वेदसंहिता' (दे० वेद, संहिता) 'यजुर्वेदसंहिता' (दे० वेद, संहिता), 'सामवेदसंहिता' (दे० वेद, संहिता) तथा 'अथर्वसंहिता' (दे० वेद, संहिता)। 'ऋग्वेदसंहिता' में प्रमुख रूप से स्तुतियों, 'यजुर्वेदसंहिता' में याज्ञिक विषय, 'सामवेदसंहिता' में संगीत तथा 'अथर्वसंहिता' में जादू-टोना आदि का भव्य स्वरूप उपलब्ध होता है।

भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की दृष्टि से वैदिक संहिताओं का योगदान अक्षुण्ण है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल भारतवर्ष ही नहीं, अपितु विश्व में संहिताओं को बड़े सम्मान एवं श्रद्धा के साथ देखा-पढ़ा जाता है।

सकलकथासंग्रहमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इस काव्य के लेखक अय्यलराजु रामभद्रुडु (दे०) हैं। ये कृष्णदेवरायलु (दे०) के 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ सभाकवियों में से एक हैं। कृष्णदेयरायलु के इसी नाम से लिखे गए एक संस्कृत-काव्य का उल्लेख मिलता है। किंतु वह अनुपलब्ध है। 'सकल-कथासारसंग्रहमु' में हरिश्चंद्र तथा नल आदि प्रसिद्ध पुराने राजाओं की कथाएँ वर्णित हैं। कृष्णदेवरायलु की कामना थी कि भक्ति-संपन्न कुछ प्रसिद्ध पुराने राजाओं की कथाएँ निबद्ध कर एक सरस काव्य का निर्माण हो। इसी के अनुसार इस काव्य की रचना हुई।

सक्सेना, बाबूराम *(हिं० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

डा० सक्सेना मूलतः संस्कृत के विद्वान हैं किंतु इनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः हिंदी भाषाविज्ञान रहा है। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ़ी दिनों तक प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे। बाद में सागर विश्वविद्यालय में भाषा-विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष, रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर के कुलपति, पारिभाषिक शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, के अध्यक्ष, प्रयाग, विश्वविद्यालय के कुलपति आदि कई पदों पर रहे। आपका शोध प्रबंध अँग्रेज़ी में लिखित 'अवधी का विकास' (Evolution of Avadhi) हिंदी से संबद्ध पहला शोध-ग्रंथ माना जाता है। हिंदी साहित्य सम्मेलन, लिंग्विस्टिक सोसायटी आफ़ इंडिया आदि कई संस्थाओं से आपका घनिष्ठ संबंध रहा है। आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं 'अर्थविज्ञान', 'सामान्य भाषाविज्ञान', 'दक्खिनी हिंदी', 'कीर्तिलता' (संपादित), 'अवधी का विकास', 'संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका'। डा० सक्सेना के क्षेत्र भाषाविज्ञान के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रहे हैं।

सकल विधिविधान-काव्य *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1043 ई० के लगभग]

इस कृति के रचयिता नयनंदी (दे०) हैं। इसमें 58 संधियाँ हैं। इसमें अनेक विधि-विधानों और आराधनाओं का उल्लेख एवं विवेचन होते हुए भी इसकी पुष्पिकाओं में इसे काव्य कहा गया है।

ग्रंथकार ने इसमें अपनी धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए प्राचीन कथाओं और उपाख्यानों का आश्रय लिया है। इसमें 'रामायण' (दे०) और महाभारत (दे०) के युद्धों का वर्णन भी इसी उद्देश्य से किया गया है कि स्त्री में आसक्ति से अनिष्ट की उत्पत्ति होती है।

इसकी भाषा सरस अनुप्रासमयी है एवं भावानुरूप है। अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए इसमें स्थान-स्थान पर अनुरणनात्मक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। ग्रंथकार ने 'सुदंसण चरिउ' (दे०) के समान इसमें भी अनेक वर्णिक और मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। स्थान-स्थान पर छंद का नामोल्लेख भी कर दिया है—कहीं-कहीं तो छंद-विशेष के दूसरे नाम का भी उल्लेख है।

सक्करबार *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1952 ई०]

'सक्करबार' नामक उपन्यास गुणवंत आचार्य की सामुद्रिक व साहसिक कथाओं की परंपरा में सर्वप्रथम लिखित उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1952 ई० में हुआ था। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में मानव के क्रय-विक्रय का जो व्यापार चलता था उसी पर इसकी कथा आधारित है जिसमें ऐसी असहाय भारतीय ललनाओं को बचाने के लिए अमुलख देसाई (कथानायक सक्करबार) अपनी कुशलता, चतुराई और ग़रीबों की अर्जित सहानुभूति के बल पर समुद्रों की तूफ़ानी गति की चुनौती देता हुआ भयंकर युद्ध करता है; ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में फलने-फूलने वाले विषधर व्यापारियों की नींद हराम कर देता है और अंत में विजयी होता है। भाषा सरल व प्रवाहमयी है। कहीं-कहीं लंबे विवरण ऊब पैदा करते हैं। यों समस्त उपन्यास घटना-प्रधान व रोचक हैं और सागरीय साहसिकता की दृष्टि से तो संभवतः यह गुजराती का प्रथम उपन्यास ही है।

सखीसंप्रदाय *(हिं० प्र०)*

सखीसंप्रदाय निंबार्क-मत की एक अवांतर शाखा है। इस संप्रदाय के संस्थापक स्वामी हरिदास थे। हरिदास जी पहले निंबार्क मत के अनुयायी थे पर बाद में भगवद्-भक्ति में गोपी-भाव को उन्नत करने के लिए उन्होंने पृथक् रूप से इस संप्रदाय की स्थापना की। कृष्ण की सखी-भावना से उपासना करना ही इस संप्रदाय के अनुवर्त्तियों का एकमात्र ध्येय और लक्ष्य है। सखी-संप्रदाय में प्रेम की गंभीरता और निर्मलता दर्शनीय है। हरिदास की विहार-विषयक पदावली 'केलिमाला' के नाम से प्रसिद्ध है, भगवतरसिक की 'अनन्यरासिकाभरण', 'श्री नित्यविहारी युगलधाम', 'अनन्य निश्चयात्मक', 'निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध' तथा 'निर्बोधमनरंजन' ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। सहचरिशरण और सखिशरण के 'ललितप्रकाश' और 'सरसमजावली' सिद्धांत-प्रतिपादक ग्रंथ हैं। संप्रदाय के अन्य कवियों में विट्ठल विपुल, विहारनिदेव, सरसदेव, नरहरिदेव, रसिकदेव, ललिताकिशोरी जी, ललितमोहिनी जी, चतुरदास, ठाकुरदास, राधिकादास, राधाप्रसाद, भगवानदास, बख़्शी हंसराज आदि प्रमुख हैं।

सगुणभक्तिकाव्य *(हिं० प्र०)*

मध्ययुग की संपूर्ण काव्यधारा सगुण और निर्गुण नाम से दो मुख्य भागों में विभाजित हो गई है। राम और कृष्ण को काव्य का आलंबन बनाकर अनेकानेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों ने जिस लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया है उसे 'सगुण भक्तिकाव्य' नाम से अभिहित किया जाता है। राम-काव्य का संघटित प्रचार रामानंद के श्री वैष्णव संप्रदाय द्वारा किया गया था। इसके अनुवर्ती कवियों में गोस्वामी तुलसीदास (दे०) के साथ-साथ स्वामी अग्रदास, नाभादास (दे०), प्राणचंद चौहान, हृदयराम, रसिक रामचरणदास, रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंह, आचार्य कृपानिवास, हरिऔध (दे०), बलदेवप्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त (दे०) आदि कवि प्रमुख हैं। कृष्ण-भक्ति के संप्रदायों में निंबार्क, माध्व के सनकादि और ब्रह्म नामक प्राचीन संप्रदायों के अतिरिक्त 'पुष्टिमार्ग' (दे०) या वल्लभ-संप्रदाय, राधावल्लभ-संप्रदाय (दे०), 'सखी-संप्रदाय' (दे०), गौडीय संप्रदाय और हरिदासी-संप्रदाय प्रमुख हैं। सूरदास (दे०) एवं अष्टछाप (दे०) के अन्य कवि, हित-हरिवंश (दे०), ध्रुवदास (दे०), विद्यापति (दे०), गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, मीरां (दे० मीरांबाई), रसखान (दे०), चाचा हितवृंदावनदास (दे०), हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न (दे०), भारतेंदु (दे०), रत्नाकर (दे०) आदि कृष्णभक्ति काव्य के उल्लेखनीय कवि हैं।

इन सभी कवियों ने भक्ति के रसावेश में जिस काव्य की सर्जना की है उसी के परिणाम-रूप में राम-चरितमानस' (दे०) और 'सूरसागर' (दे०) जैसे प्रबंध काव्य हिंदी-साहित्य को उपलब्ध हुए। रामभक्ति-शाखा की अपेक्षा कहीं अधिक कृष्णभक्ति-शाखा के अनेकानेक कवियों ने ब्रज, ब्रजभाषा और ब्रज-संस्कृति के त्रिकोणात्मक संगम में कृष्ण के माध्यम से जिस लोक-संस्कृति की अबाध धारा बहाई है उसका स्रोत कभी सूखने न पाएगा। इन कवियों ने कृष्ण के गोपाल-रूप का इस चातुर्य से वर्णन किया है कि वे सदैव के लिए जनता के मध्य में आकर बस गए हैं, शक्ति और सौंदर्य से समन्वित इस आदर्श ने चिर-काल से जनता को अपने मंगल-विधायक रूप के माध्यम से अन्याय के ऊपर न्याय की विजय के लिए प्रोत्साहित किया है। यही आदर्श 'रामचरितमानस' का है। हिंदू जनता चिरकाल से आदर्श और मर्यादा के प्रस्थापक इस चरित-काव्य में अपने जीवन की सारी संभावनाएँ खोजती है और भविष्य के लिए सँजोती रही है एक सुनहली आशा। रावण पर राम की विजय हमारे संपूर्ण आदर्शों की विजय है और इसी ने संभवतः 'अलख' की आवाज़ लगाने वाले एवं गृहत्याग की शिक्षा देने वाले निर्गुणिये साधुओं का स्वर सदैव के लिए बंद कर दिया काव्य था। और संस्कृति को सगुण-काव्य की देन अविस्मरणीय है।

सचल सरमस्त *(सिं० ले०)* [जन्म—1739 ई०; मृत्यु—1829 ई०]

सचल का पूरा नाम अब्दुलवहाब है। सचल इनका उपनाम है जिसका अर्थ है 'सत्य का जिज्ञासु'। इनके श्रद्धालु इन्हें 'सचल सरमस्त' भी कहा करते हैं क्योंकि ये प्रायः खुदाई मस्ती की स्थिति में रहते थे। इनका जन्म खैरपुर रियासत के 'दराज़' नामक गाँव में हुआ था और इसी गाँव में इनकी दरगाह भी है। इनके शिष्य इस गाँव के नाम की व्युत्पत्ति 'दर-राज़' बताते हैं जिसका अर्थ है 'रहस्य का द्वार'।

इनका काव्य सिंधी, उर्दू, फ़ारसी और सिराइ की भाषाओं में है। इनके काव्य के 10-12 अलग-अलग संस्करण मिलते हैं जिनमें सिंधी अदबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) द्वारा प्रकाशित 'सचल जो कलामु' अधिक विस्तृत और प्रामाणिक है। इन्होंने वहदत और अनलहक की आवाज़ जिस प्रकार प्रभावपूर्ण और ओजस्विनी भाषा में अभिव्यक्त की है उस प्रकार सिंध के और किसी सूफ़ी संत-कवि ने नहीं की है। इनका शरियत के बंधनों में विश्वास नहीं है। इन्होंने खुले आम मुल्ला और मौल-वियों के पाखंडपूर्ण व्यवहार की निंदा की है, इसलिए ये कट्टर इस्लाम पंथियों की नज़र में हमेशा खटकते रहे हैं। इनका अधिकतर काव्य ग़ज़ल और काफ़ियों के रूप में है। इनके काव्य की दो मुख्य विशेषताएँ हैं—ओज-स्विनी और माधुर्यपूर्ण भाषा में मज़हबी पाबंदियों की निंदा और स्पष्ट शब्दों में हक (सत्य) की अनुभूति की अभिव्यक्ति।

सज्जाद अंसारी *(उर्दू० ले०)*

सज्जाद अंसारी एक प्रभाववादी उर्दू समीक्षक हैं। इनकी पुस्तक 'महशरे ख्याल' को प्रभाववादी समीक्षा (तासराती तनकीद) की दृष्टि से समकालीन महत्व मिला। इन्होंने काव्य के संबंध में कई लेख लिखे जिनमें पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

सज्जाद हुसैन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1856 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

जन्म-स्थान—काकोरी। पिता का नाम—मुंशी मंसूर अली। उर्दू की सुप्रसिद्ध प्राचीन पत्रिका—'अवध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंच' के संचालन का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। यह पत्रिका 1877 ई० में निकाली गई थी। इसके लिए तत्कालीन समर्थ लेखकों—मुंशी ज्वाला प्रसाद 'बर्क़', सैयद अकबर हुसैन 'अकबर', मुंशी अहमद अली 'शौक़', मिर्ज़ा मच्छू-बेग सितमज़रीफ़, पं० त्रिभुवननाथ 'हिज्र' और नवाब सैयद मुहम्मद 'खाँ आज़ाद' आदि का सहयोग प्राप्त करने में ये सफल हुए थे। उर्दू उपन्यास-लेखन की कला को इन्होंने उत्कर्ष पर पहुँचाने का सक्रिय प्रयत्न किया था। चरित्र-चित्रण, कथोपकथन तथा भाषा-शैली को स्वाभाविक बनाने की दिशा में इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया था। 'हाजी बग़लोल' (दे०) नामक प्रसिद्ध उपन्यास इनका कीर्ति-स्तंभ है। रतननाथ 'सरशार' (दे०) के 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) की तरह यह उपन्यास भी बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ था। 'अवधपंच' के द्वारा उर्दू के प्रचार और प्रसार का जो स्तुत्य कार्य इन्होंने किया वह ऐतिहासिक महत्व का है। इनके लेखों में स्वतंत्र चिंतन और निर्भीकता के स्वर अत्यंत मुखर हैं। अपने विचारों की अभिव्यक्ति में इन्होंने कहीं भी अश्लीलत्व दोष नहीं आने दिया। भाषा और भाव का औदात्य इनकी रचनाओं में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। ये 1887 ई० में कांग्रेस में शामिल हुए थे और आजीवन इसके समर्थक रहे। अपने राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने किसी प्रकार के सांप्रदायिक भावों की छाया नहीं पड़ने दी।

सज्जाद हैदर पलदरम *(उर्दू० ले०)*

तुर्की, अँग्रेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओं के प्रसिद्ध उपन्यासों को सशक्त उर्दू-अनुवाद के रूप में प्रस्तुत करने वालों में सज्जाद हैदर पलदरम का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैसे मौलिक उपन्यासों की ओर भी इन्होंने यथेष्ट ध्यान दिया था। इनके उपन्यानों का संग्रह—'ख़्यालिस्तान' (दे०) उर्दू साहित्य में पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। इस संग्रह का एक उपन्यास—'ज़ोहरा' लेखक की कलात्मकता, विद्वत्ता और प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह एक तुर्की उपन्यास का अविकल अनुवाद है, परंतु मौलिक-सा जान पड़ता है। तुर्की कल्पना को उर्दू शैली में साकार करने का लेखक ने सफल प्रयास किया है। इनकी श्रृंगार-भावना पर भी तुर्की उपन्यासों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनके मौलिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का सहज समावेश हुआ है और इनमें दार्शनिकों के दक्ष एवं नीरस वाद-विवादों का वितंडावाद कहीं नहीं है। मानव-स्वभाव को हास्य-व्यंग्यात्मक यथार्थवादी शैली में अभिव्यक्त करने में ये सफल हुए हैं। भावानुकूल भाषा और यथातथ्यता की दृष्टि से इनके सभी अनुवाद उर्दू, साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

सण्ण कतेगळु (लघु कथाएँ) *(क० कृ०)*

यह मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) (उपनाम 'श्रीनिवास') की लघुकथाओं का संग्रह है। यह छह भागों में है। इसमें साठ से अधिक कहानियाँ हैं। मास्ति जी जीवन-द्रष्टा कलाकार हैं। उनकी कहानियों में उनकी पैनी दृष्टि और जीवन के अनुभवों की मार्मिक अभिव्यंजना है। लोक-कथाओं के प्रति उनमें तीव्र कौतूहल है और कर्नाटक संस्कृति के प्रति आदर है। परंतु भारतीय साहित्य और संस्कृति के प्रति उनका दृष्टिकोण सीमित नहीं है।

1920-21 ई० में उनकी दस कहानियाँ 'केलवु सण्ण कतेगुलु' (कतिपय लघु कथाएँ) नाम से प्रकाश में आईं। तब से उनके कहानी-संग्रह बराबर प्रकाशित हो रहे हैं और इनके कई संस्करण भी निकल चुके हैं जो इनकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं। उनकी कहानियाँ छोटी हैं और लंबी भी।

सतवारा *(पं० पारि०)*

सतवारा या अठवारा पंजाबी की प्रसिद्ध लोककाव्य-शैली है जिसमें विषय का निरूपण बहुत-कुछ बारहमासा-पद्धति के अनुरूप होता है। इनमें सप्ताह के सात वारों के आधार पर वियोग अथवा प्रियतम से मिलन की आकांक्षा का वर्णन किया जाता है। अठवारा में रविवार, आरंभ और अंत में, दो बार आता है। अनेक भक्त, सूफ़ी और शृंगारी कवियों ने इनकी रचना की है। 'आदि ग्रंथ' में कबीर (दे०) और गुरु रामदास के आध्यात्मिक सतवारे संकलित हैं। वर्ण्य की मार्मिकता के लिए बुल्लेशाह-कृत 'सतवारा' विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काव्य-विधा की लोकप्रियता को देखकर दौलतराम (दे०), कालिदास आदि आधुनिक कवियों ने इसे अपनी किस्सा-कृतियों में अंग-रूप में प्रयुक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सती *(उ० पा०)*

उपेंद्र किशोर दास (दे०) के उपन्यास 'मला-जन्ह' (दे०) की नायिका है सती। सरल ग्राम्य परिवेश में यह ब्राह्मण-कन्या सामाजिक अनुष्ठान, कुसंस्कार और अपने पिता के स्वार्थ की शिकार होती है।

सती का विवाह अल्पायु में एक वृद्ध के साथ हो जाता है। कारण, वह ज़मींदार है। सती का युवा-हृदय रो उठता है, किंतु प्रतिवाद असंभव है। वह तो नारी नहीं है; केवल एक तुच्छ वस्तु है। यह स्थिति आज भी ग्राम्यांचल में दिखाई पड़ती है।

काल की अप्रतिहत गति में अचानक सती का परिवार निश्चिह्न हो जाता है। घटनाचक्र में सती भी होती है श्वसुराल से बहिष्कृता। पृथ्वी पर अब उसका एकमात्र आश्रय है नाथनना। किंतु समाज की लोलुप दृष्टि के समक्ष सती का उपाय भी क्या है? नाथनना कौन से तर्क, किस साहस से सती को समाज में जीने की शक्ति दे सकेगा? खड़े होने की शक्ति कहाँ है सती में? वह विवाहिता है। साथ ही है सामाजिक अनुष्ठान का अविच्छेद्य अंग। क्या वह इस बंधन से अपने को मुक्त कर सकेगी? किंतु सती पूर्णरूपेण केवल इसी समाज की है, ऐसा तो नहीं है। उसका यदि विद्रोही स्वर नहीं होता तो इतनी दुर्दशा ही क्यों होती? नारी-जागरण में अपने व्यक्तित्व को पहचानने का प्रथम पदक्षेप इसी का है।

सत्य ना प्रयोगो *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1927 ई०]

महात्मा गांधी (दे०) जी की आत्मकथा 'सत्यना प्रयोगो' गुजराती में 1927 ई० में नवजीवन प्रकाशन से प्रकाशित हुई। जयरामदास (दे० जयरामदास दौलतराम), स्वामी आनंद (दे०) वग़ैरह के अनुरोध पर बापू जी ने इसे लिखने का संकल्प किया और दो भागों में लिखा।

बापू ने जीवन में सत्य की प्राप्ति के लिए निरंतर 30 वर्ष तक जो प्रयत्न व आत्म-निरीक्षण किया, आत्मकथा उसका लिपिबद्ध स्वरूप है। 'सत्य ना प्रयोगो' न केवल भारतीय साहित्य में अपितु विश्व-साहित्य में 'आत्मकथा' का एक आदर्श मानदंड प्रस्तुत करता है।

बापू का जीवन खुली किताब की तरह खुला और सबके लिए सहजगम्य बन चुका था। अतः बापू के ये प्रयोग भी व्यक्तिगत या गोपनीय न रहकर सार्वजनिक हो गए थे। बापू ने 'सत्य' को ही ईश्वर का स्वरूप माना है। जीवन भर इसी सत्य की उपासना वे करते रहे। जिन-जिन रूपों में 'सत्य'—'आत्मदर्शन'—उन्हें प्राप्त हुआ उसे उसी रूप में भाषा में प्रकट कर दिया। अपनी सीमाओं का स्मरण वे पद-पद पर करते रहे और जीवन के लिए निरंतर उस मार्ग को खोजते रहे जो सबको सुख दे सके।

502 पृष्ठों में मुद्रित दोनों भागों की सामग्री में बापू के जन्म, बाल्यकाल, विवाह आदि से प्रारंभ कर ठठ नागपुर सत्याग्रह तक की घटनाएँ निरूपित हैं। अपनी पहाड़ जैसी भूलों की भी स्पष्ट स्वीकृति वे कर लेते हैं। इस प्रकार 1869 से 1920 ई० तक की घटनाएँ इन दो भागों में निरूपित हुई हैं। भाषा अत्यंत सरल, सीधी-सादी किंतु प्रभावी व सटीक है। निरूपण में व्यक्तित्व का अहं कहीं भी मुखर नहीं है। 'मैं' को सदैव दूर बचाकर ही वे चले हैं।

गुजराती आत्मकथा-साहित्य में तथा विश्व में अपनी साफ़गोई के कारण, यह एक अमर कृति के रूप में विख्यात व चिरस्थायी है।

सत्यनारायण, वेदुल *(ते० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

आंध्र के मुद्राचलम् नामक क्षेत्र में इनका जन्म हुआ था। ये तेलुगु और संस्कृत के बड़े विद्वान हैं। इन्होंने कन्नड तथा बँगला भाषाओं का भी अध्ययन किया है। वृत्ति से ये अध्यापक हैं। इनकी सरस कविता से मुग्ध होकर आंध्र की जनता ने इनको महाकवि, गौतमी कोकिल आदि उपाधियों से विभूषित किया है। ये शतावधानी भी हैं। इनकी रचनाएँ ये हैं—'दीपावली' (संग्रह), 'विमुक्ति', 'आराधना', 'मुक्तावली' आदि कविताएँ; 'राणाप्रताप', 'कॉलेजगर्ल' आदि नाटक; 'अपराधिनी', 'धर्मपाल' आदि उपन्यास; 'वेसवि मब्बुलु' जैसी कथा-रचनाएँ तथा कुछ निबंध। इन्होंने भास (दे०) के नाटकों के तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किए हैं तथा बँगला से भी कुछ अनुवाद किए हैं। इनकी कविता में शब्द नाद-सौंदर्य से तथा भाव रस-सौंदर्य से भरे रहते हैं। इनकी रचनाओं में परंपरा का आदर तथा नवीनता के प्रति सहानुभूति—दोनों अभिव्यक्त होते हैं। विविध साहित्यिक विधाओं में अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलाते हुए भी सत्यनारायण ने सरस खंडकाव्यों के निर्माता के रूप में अनुपम प्रशस्ति पाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यनारायणशास्त्री, मधुनापंतुल *(तं० ले०)*

म० सत्यनारायणशास्त्री जी का जन्म पूर्वी गोदावरी जनपद के पल्लिपालेमु नामक ग्राम में वैदिकाचार-संपन्न ब्राह्मण-परिवार में हुआ। लक्ष्मीदेवी एवं सत्यनारायण, इनके माता-पिता हैं। शास्त्री जी की शिक्षा-दीक्षा कुशल शास्त्रविद् पंडितों के सान्निध्य में संपन्न हुई। इन गुरुओं में महेंद्रवाड़ सुब्बरावु शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। शास्त्री जी के कविता-गुरु स्वनामधन्य ओलेटिवेंकटरामशास्त्री थे। 1946 ई० से ये श्री वीरेशलिंगम् हाईस्कूल राजमहेंद्रवरमु में प्रधान आंध्राध्यापक पद पर काम कर रहे हैं।

श्री शास्त्री जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को आधुनिक तेलुगु-साहित्य के इतिहास में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'आंध्रि' नामक साहित्यिक मासिक का संपादन इन्होंने बड़ी कुशलता के साथ किया। इसके माध्यम से आधुनिक तेलुगु-साहित्य के मूर्धन्य स्रष्टाओं का वर्णन बड़ी रोचक शैली में करते आए जो परवर्तीकाल में 'आंध्ररचयितलु' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हो गया। यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है जो न केवल साहित्यिक इतिहास की रूपरेखा के लिए अपितु तेलुगु-गद्य की अपनी अनुपम शैली के लिए भी प्रसिद्ध है। शास्त्री केवल सफल संपादक तथा गद्य-लेखक ही नहीं, कुशल कवि भी हैं। इनके द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक काव्य 'आंध्रपुराणमु' (दे०) बहुत ही यशोलब्ध गौरवग्रंथ है। इस पर शास्त्री जी को आंध्रप्रदेश साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। अनूदित साहित्य का योगदान भी इनका अनुपम है। ये कुछ समय तक 'सूर्यरायांध्रनिघंटु' का संपादन भी करते रहे।

सत्यभामास्वांतनमु *(तं० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक लिंगनमखि कामेश्वर कवि हैं जो मधुरा रियासत के राजा मुद्दलगिरि के सभाकवि थे। 'सत्यभामास्वांतनमु' चार आश्वासों का एक श्रृंगार-काव्य है। 'महाभागवत' (दे०) से नरकासुरसंहार की कथा ग्रहण कर कुछ परिवर्तनों के साथ इन्होंने इस काव्य की रचना की थी। नरकासुर के वध के लिए कृष्ण जाते हैं। इसमें कुछ समय बीत जाता है और उनकी पत्नी सत्यभामा विरहदग्ध होने लगती है। सत्यभामा के इस विरहदुःख का कवि ने विस्तारपूर्वक मार्मिक वर्णन किया है। नरक के संहार के बाद उसके बंदीगृह से मुक्त सोलह हज़ार स्त्रियों के साथ कृष्ण अपना विवाह कर लेते हैं। उससे उनकी पत्नी सत्यभामा अत्यंत क्रुद्ध होती है। कृष्ण अनुनय-विनयपूर्वक उसे मनाते हैं। यही कथा इस काव्य में वर्णित है। इसकी सर्वोपरि विशेषता सत्यभामा का मार्मिक विरह-वर्णन है।

सत्यवादी साहित्य *(उ० पारि०)*

'सत्यवादी साहित्य' उड़िया भाषा का जातीयतावादी साहित्य है। उन्नीसवीं शती के अंतिम तीन दशकों में इस काव्यधारा के प्रारंभिक सूत्र मिलते हैं और स्वाधीनता-प्राप्ति तक इसकी निरवच्छिन्न व्याप्ति दिखाई पड़ती है।

उत्कल सम्मिलनी (1903 ई०) की स्थापना, बंग-विच्छेद-आंदोलन (1905 ई०), बिहार-उड़ीसा-प्रदेश-गठन (1912 ई०) आदि की घटनाओं ने बीसवीं शती के प्रथम चरण में उड़िया शिक्षित नवयुवकों में नवोत्साह और सशक्त जातीय भाव का संचार किया। यद्यपि उत्कल-सम्मिलनी के संस्थापक श्री मधुसूदन दास इस नवजागरण के जन्मदाता हैं, फिर भी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा का श्रेय उत्कलमणि गोपबंधु (दे०) को है। गोपबंधु ने पुरी से 11 मील दूर उत्तर की ओर साक्षी गोपाल के वकुल वन में एक विहार की स्थापना की। यह हाईस्कूल संपूर्ण उड़िया जाति का सांस्कृतिक केंद्र था। सत्यवादी-पत्रिका का सर्वप्रथम प्रकाशन साक्षी-गोपाल से हुआ था। उड़िया-गद्य के विकास में इस पत्रिका का योगदान महत्वपूर्ण है।

समाज-सुधार, देशभक्ति तथा जनसेवा, उनकी कार्य-विधि और साहित्य के लक्ष्य थे। गोपबंधु इन तीन महत् उद्देश्यों के प्राण-केंद्र थे। सत्यवादी स्कूल के कार्यकर्ता, नीलकंठ दास (दे०), गोदाबरीश मिश्र (दे०), कृपासिंधु, लिंगराज तथा हरिहर ने जातीय चेतना के जागरण के लिए प्रबंध, नाटक, निबंध, कविता आदि के रूप में विपुल साहित्य की सृष्टि की है। गांधी-आंदोलन से सत्यवादी स्कूल निष्प्रभ हो गया। उधर गोपबंधु की भी अकाल मृत्यु हो गई, किंतु इस अल्पावधि में निर्मित यह 'सत्यवादी साहित्य' उड़िया जातीय जीवन में अमर रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य हरिश्चंद्र *(हि० कृ०)*

भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र-विरचित इस नाटक में सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र की लोकप्रिय कथा को कथ्य के रूप में ग्रहण किया गया है। यद्यपि इसके कथानक पर क्षेमेश्वर कृत 'चंडकौशिक' का प्रभाव देखा जा सकता है किंतु रचना-विधान की दृष्टि से यह एक सर्वथा मौलिक कृति ठहरती है। चार अंकों में विभक्त इस नाटक का अंगी रस वीर है और इसमें रूपक के सभी तत्वों का समुचित निर्वाह हुआ है।

सत्यार्थी, देवेंद्र *(पं०/हि० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

लोकगीतों के संग्रहकर्ता के रूप में श्री देवेंद्र सत्यार्थी की प्रतिष्ठा पंजाब और पंजावी की सीमाओं से अधिक व्यापक है। इन्होंने भारत की लगभग 40 भाषाओं-विभाषाओं के तीन लाख से अधिक लोक-गीतों का संग्रह किया है और इस संबंध में इनकी पंजाबी, हिंदी, उर्दू और अँग्रेज़ी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सत्यार्थी की मातृभाषा पंजाबी है परंतु हिंदी और उर्दू पर भी इनका समान अधिकार है। सत्यार्थी बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न स्रष्टा कलाकार हैं। कविता, कहानी, उपन्यास और ललित-निबंध विधाओं में इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वातावरण-प्रधान कहानियों और उपन्यासों में भारत के विभिन्न प्रांतों में निरंतर भ्रमण से प्राप्त अनुभव की व्याप्ति है और उनमें अनेक प्रकार के पात्रों से भरे हुए कथानकों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया गया है। स्थानीय रंग और लोक-जीवन की गहरी पहचान इनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है।

सत्यार्थी के पंजाबी में चार कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'धरती-दीआं वाजां', 'मुड़का ते कणके', 'बुड्ढी नहीं धरती' और 'लक टुणूंटुणूं'। सत्यार्थी की कविता में जहाँ एक ओर प्राचीन भारतीय काव्य का रंग है, वहीं दूसरी ओर उसमें आधुनिक लीवन-दृष्टि का आग्रह है।

अन्य प्रमुख रचनाएँ—'गिद्धा' (दे०), 'दीवा बले सारी रात' (लोक-गीत); 'कुंग पोश', 'सोना गाची', 'पेरिस दा आदमी' (कहानी-संग्रह); 'घोड़ा बादशाह' (उपन्यास)।

हिंदी में—'धरती गाती है', 'धीरे बहो गंगा', 'बेला फूले आधी रात' (लोक-गीत); 'बंदनवार' (कविता-संग्रह); 'चट्टान से पहले' (कहानी-संग्रह); 'एक युग, एक प्रतीक', 'रेखाएँ बोल उठीं' (निबंध-संग्रह); 'ब्रह्मपुत्र', 'दूध गाछ', 'रथ के पहिए' (उपन्यास)।

उर्दू में—'मैं हूँ ख़ानाबदोश', 'गाये जा हिंदुस्तान' (लोक-गीत); 'नये देवता', 'बाँसुरी बजती रही' (कहानी-संग्रह)।

सदल मिश्र *(हि० ले०)*

इनका जन्म बिहार प्रांत के शाहबाद ज़िले के ध्रुवडीहा गाँव में हुआ था। ये फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में हिंदुस्तानी के अध्यापक थे। 'नासिकेतोपाख्यान' (दे०) या 'चंद्रावती' तथा 'रामचरित' इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इनकी भाषा पर ब्रजभाषा, पूरवी बोली और बँगला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक स्थलों पर व्याकरणिक त्रुटियाँ भी अत्यंत स्पष्ट हैं, लेकिन इन दुर्बलताओं के होते हुए भी खड़ी बोली-गद्य के विकास में इनके योग को भुलाया नहीं जा सकता।

सदासुखलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1746 ई०; मृत्यु—1824 ई०]

हिंदी-गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लेखकों में इनका स्थान उल्लेखनीय है। फ़ारसी तथा उर्दू के अच्छे लेखक और शायर होते हुए भी इन्होंने हिंदी-गद्य का उर्दू से स्वतंत्र, निजी रूप प्रस्तुत किया था। 'सुखसागर' इनकी प्रसिद्ध कृति है जिसमें विष्णुपुराण के कतिपय नैतिक एवं उपदेशात्मक प्रसंगों को आधार-रूप में ग्रहण किया गया है। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है।

सदुक्ति कर्णामृत *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती ई० का प्रारंभ]

सुभाषित-संग्रह की परंपरा संस्कृत में अत्यंत पुरानी है। 'सदुक्ति कर्णामृत' इस परंपरा का एक प्रमुख ग्रंथ है। इसका संकलन बंगाल के प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष वटुदास के पुत्र श्रीधरदास ने 1205 ई० में किया था। इसमें उस समय के पूर्वांचलीय प्रदेशों के ज्ञात तथा अज्ञात कवियों की उक्तियों का संग्रह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें 485 कवि तथा काव्यों के 2370 पद्य संगृहीत हैं। इसको पाँच प्रवाहों में विभक्त किया गया है—देव, श्रृंगार, चाटु, अपदेश तथा उच्चविच। इस संकलन को देखकर पता चलता है कि संग्रहकर्ता की प्रवृत्ति वैष्णव धर्म की ओर है।

सद्द *(पं० पारि०)*

यह एक विशेष सुर में गाए जाने वाला लोक-गीत-प्रकार है। इसमें प्रायः अति गंभीर हृदयवेधी विचार को अभिव्यक्त किया जाता है। इसे गाते समय गायक कान पर हाथ रख कर लंबा सुर निकालता है। 'गुरु ग्रंथ साहित्य में भक्त कवि सुंदर-रचित मृत्यु-संबंधी सद्द मिलती है। उदाहरण :

मिरजा चलिआ नानकिओं, कच्छे मार कुरान।
ना तुसीं मेरे नानके, ना मैं दुहतर वान।
मैंनू गिल्लीं करवीं ना साड़िओ मैं मिरजा मुसलमान।
मैंनू कबरां विच न दब्बिओ, मेरा देहुरे विच मकान।
मेरे कोल खल्हालिओ साहिबां, मेरी सौखी निकले जान।

सधबार एकादशी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1866 ई०]

दीनबंधु (दे०) के प्रहसनों में 'सधबार एका-दशी' सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली रचना है। उन्नीसवीं शती के मध्य में नयी शिक्षा-दीक्षा के माध्यम से पश्चिमी सभ्यता से संपर्क हो गया था और एक ऐसा युवक-वर्ग उभर रहा था जो नवीनता और आधुनिकता के नाम पर पश्चिम की भद्दी नकल कर रहा था। सदाचार और सुनीति की एकांत उपेक्षा कर वह मद्यपान, वेश्या-गमन तथा नारी के प्रति असंयत व्यवहार कर अपने आपको ऊँचा दिखाने का पाखंड कर रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में ब्रह्मसमाज का उदय हुआ। 'सधबार एकादशी' की यही सामाजिक एवं नैतिक पृष्ठभूमि है। इसमें पाश्चात्य सभ्यता के समस्त दोष दिखाए गए हैं। इस नाटक का केंद्रबिंदु है निमचाँद (ये०) का प्रबल व्यक्तित्व। वह सभी कुकर्म करता है परंतु उनसे निर्लिप्त होकर उन पर व्यंग्य-कटाक्ष करता है; यही उसके सशक्त व्यक्तित्व का प्रमाण है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि निमचाँद का व्यक्तित्व-निर्माण माइकेल मधु-सूदन दत्त (दे०) के आचार-विचार को ध्यान में रखकर किया गया है। दीनबंधु का हास्य-व्यंग्य कहीं-कहीं असंयत एवं अश्लील हो गया है। कुछ पात्रों के संवाद अशिष्ट लगते हैं। रंगमंच की दृष्टि से यह प्रहसन अपने युग का बहुत लोकप्रिय एवं ख्याति-प्राप्त प्रहसन है। इसमें हास-परिहास का आधार है व्यंग्य-श्लेषपूर्ण संवाद। यहाँ कथा-निर्वाह तथा पात्र-चरित्रांकन में नाटककार विशेष रूप से विफल रहा है। तीन-अंकीय इस प्रहसन की दृश्य-योजना में न असंगति है और न अस्वाभाविकता।

सधरा जेसंग *(गु० पा०)*

चुनीलाल मडिया (दे०) (1922-1965 ई०] के 'सधरा जेसंग नो शालो' (दे०) उपन्यास का नायक है। वह सब्ज़ी बेचने वाला एक अनपढ़ गँवार है। चुनाव में अनुसूचित जाति का कोई उम्मीदवार नहीं मिलता, इस-लिए सधरा को टिकट दिया जाता है और वह विजयी होता है। उसे मंत्री-पद भी दिया जाता है मंत्री बनने पर अपने सब रिश्तेदारों की सहायता करता हैं और इस तरह भ्रष्टाचार का साम्राज्य फैलता है। सधरा जेसंग राज-नीतिक भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गया है। सारा उपन्यास हास्य और व्यंग्य-प्रधान होने के कारण सधरा जेसंग हास्य के उपादान के रूप में स्थायी बन गया है।

सधरा जेसंगनो शालो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

यह चुनीलाल मडिया (दे०) का राजनीतिक उपन्यास है। समसामयिक राजनीति में जो भ्रष्टाचार अनैतिकता है, काला बाजार और रिश्वतखोरी है—उसका यथार्थ चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है। पूरा उपन्यास हास्य और व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है। सधरा जेसंग, जो सब्ज़ी बेचने वाला है, उसे राजनीतिक दृष्टि से टिकट दिया जाता है क्योंकि अनुसूचित जाति का कोई उम्मीरवार मिलता नहीं। वह चुनाव जीत जाता है और मंत्री भी बनता है। उसका साला उसके मंत्री-पद का लाभ उठाता है और अंत में दोनों में टकराव होता है। साला दलबदल करता है और दूसरे चुनाव में बहनोई के विरुद्ध खड़ा होकर उसे हराता है। मंत्री और उसके साले के भ्रष्टाचार का रोचक वर्णन उपन्यास में है। गुजराती हास्य उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनत्कुमारचरित (*अप० कृ०*) [रचना-काल—1159 ई०]

हरिभद्र (दे०)-रचित 'नेमिनाथचरित' का 443 से 785 तक का पद्यात्मक अंश 'सनत्कुमारचरित' है। दूसरी कृति का अंग होते हुए भी यह एक स्वतंत्र कृति-सा प्रतीत होता है। इसमें सनत्कुमार का जन्मकाल से लेकर स्वर्ग-प्राप्ति तक का चरित अलंकृत शैली में वर्णित है। अपभ्रंश के अन्य चरित-काव्यों की कथा के समान इसमें भी नायक के शौर्य और सौंदर्य पर अनेक युवतियाँ मुग्ध हो जाती हैं। युवावस्था में वह भोगमय जीवन व्यतीत कर समस्त पृथ्वी को जीतकर चक्रवर्ति-पद प्राप्त करता है। इंद्रादि देवता उसका अभिषेक करते हैं। अंत में वह विरक्त होकर चिरकाल तक तपस्या करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त करता है।

इस कृति का कथानक अपभ्रंश के अन्य चरित-काव्यों के समान वीर और शृंगार के वर्णनों से युक्त है। दोनों का पर्यवसान शांत रस में होता है। इस कृति में अन्य चरित-काव्यों की अपेक्षा प्रेम-तत्त्व कुछ अधिक प्रस्फुरित हुआ है। प्रेम के शृंगार-पक्ष के अतिरिक्त वियोग का भी वर्णन मिलता है। कृति के काव्यमय अलंकृत वर्णनों में विभिन्न ऋतुओं के वर्णन विशेष आकर्षक हैं।

समस्त कृति में रड्डा छंद प्रयुक्त हुआ है। इसकी भाषा प्राचीन गुजराती के चिह्नों से युक्त गुर्जर अपभ्रंश (पश्चिमी शौरसेनी) है।

सनातन शर्मा (*त० पा०*)

सनातन शर्मा सी० एन् अण्णादुरै (दे०) की प्रसिद्ध कहानी 'उण्णाव्रतम् ओरु दंडनै' का नायक है। इस कहानी में कुल तीन पात्र हैं—सनातन शर्मा, उसकी पत्नी और उसका मित्र कुप्पुशास्त्री। तीनों का निजी व्यक्तित्व है। लेखक कहानी के पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्ण सफल हुआ है। अवसरानुकूल उसने पात्रों के गुण-दोषों को स्पष्ट किया है। संक्षेप में कहानी इस प्रकार है—केंद्रीय सरकार द्वारा यह बिल पास किया जाता है कि पिता की संपत्ति पर पुत्र के साथ-साथ पुत्री का भी अधिकार होना चाहिए। इस बिल के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए सनातन शर्मा और कुप्पुशास्त्री भूख हड़ताल करने का निश्चय करते हैं। कुछ समय के बाद कुप्पुशास्त्री चुपचाप भोजन कर लेता है परंतु शर्मा भूखा पड़ा रहता है। जब इसे यह ज्ञात होता है कि शास्त्री ने अपना प्रण तोड़ दिया है तो अत्यंत कुपित हो उठता है। इसके विचारों में आमूल परिवर्तन आ जाता है। शर्मा डरपोक होने के साथ-साथ सदाचारी भी है। यह परंपरा-प्रेमी है; प्राचीन संप्रदायों एवं प्रथाओं की रक्षा के लिए भूख हड़ताल करता है। पत्नी द्वारा बारंबार भोजन करने की प्रार्थना किए जाने पर कुपित हो उठता है। शास्त्री द्वारा धोखा दिए जाने पर यह कुपित नहीं होता अपितु उसका अपमान करने की धमकी देता है। इससे इसकी सज्जनता व्यक्त होती है। शर्मा अबोध है। लोगों द्वारा भड़काये जाने पर भूख हड़ताल करता है। अंत में अपनी पत्नी के कहने से अपना हठ छोड़ देता है। सनातन शर्मा एक वर्ग-पात्र है। यह ऐसे व्यक्तियों का प्रतीक है जो सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों की रक्षा के लिए, किसी सदुद्देश्य से प्रेरित होकर घोर त्याग करने के लिए तैयार हो जाते हैं परंतु ऐसा करते समय अन्य व्यक्तियों द्वारा धोखा दिए जाने पर उनकी विचारधारा में आमूल परिवर्तन आ जाता है। सनातन शर्मा अण्णादुरै की अमर कल्पना-सृष्टि है।

सनिआ (*उ० पा०*)

'सनिआ' श्री कान्हुचरण महांति (दे०) के उपन्यास 'शास्ति' (दे०) का धर्मभीरु पात्र है। सामाजिक व्यवस्था पर इसकी पूर्ण आस्था है। उसका हर विधान इसके लिए शिरोधार्य है। परंतु अपने व्यक्तित्व की समाज द्वारा निर्मम उपेक्षा इसे सहन नहीं है। जीवन में एक मोड़ ऐसा भी आता है, जब इसके विश्वास की नींव हिल जाती है, और समाज के शोषण-उत्पीड़न की संगठित शक्ति इसे प्रतीत होती है। इसका अहं विद्रोह कर उठता है। समाज के न्याय-विधान के प्रति विद्रोह हो जाता है। किंतु समाज की सामूहिक शक्ति यह सहन नहीं कर पाती। फलतः समाज का दमन-चक्र चल पड़ता है। व्यक्ति-चेतना सामूहिक चेतना के समक्ष मिट तो सकती है, किंतु झुक नहीं सकती। सनिआ का जीवन इसका ज्वलंत प्रमाण है।

अकाल के विकराल मुख से बचकर अस्थि-कंकाल हुआ जब सनिआ अपने गाँव लौटता है तो धोबी उसे पुनर्जीवन देती है। सनिआ और धोबी परस्पर प्रेम करने लगते हैं। पहले कभी सनिआ के पिता ने धोबी से उसके विवाह का प्रस्ताव इसलिए ठुकरा दिया था क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोबी के यहाँ कभी किसी ने नीच जाति की स्त्री से विवाह किया था। आज जब यह अपने बारे में निर्णय लेने को स्वतंत्र है तब धोबी गाँव के सबसे बड़े धनी की कन्या है और यह कंगाल।

धोबी का विवाह एक ज़मींदार से हो जाता हैं, किंतु स्वामी, सास, श्वसुर की मृत्यु के बाद वह नितांत अकेली रह जाती है। इसी बीच सनिआ कठिन परिश्रम से अपनी आर्थिक स्थिति सुधारता है, धोबी से बिवाह प्रस्ताव करता है। किंतु धोबी अपने को नाना प्रकार के धार्मिक व सामाजिक बंधनों में जकड़ी पाती है।

निश्छल व एकनिष्ठ प्रेम के इस तिरस्कार से सनिआ का निष्कपट मन तिक्तता से भर उठता है और समस्त सामाजिक परंपराओं को तिलांजलि देकर असामाजिक कार्य करने लगता है। विजातीय लोगों को अपने घर में स्थान देता है। निम्नजाति के व्यक्ति से विवाह करने के कारण जिस बहिन का इसने त्याग कर दिया था उसे पुनः अपनाता है और अंत में पगली से विवाह कर लेता है।

समाज इसके समाज-विरोधी कार्यों के प्रतिकार के लिए कटिबद्ध हो जाता है। धोबी के पिता इसे अपने वश में कर धोबी से इसका विवाह करना चाहते हैं किंतु अब इसे यह मंजूर नहीं है। असामाजिक जीवन ही इसे प्रिय हो जाता है। यह घर-ज़मीन इसलिए छोड़ देता है क्योंकि उस संपत्ति में धोबी का योगदान ही है। आज यह पूर्ण मुक्त है।

'सनेही', गयाप्रसाद शुक्ल *(हिं०ले०)* (जन्म—1883 ई०]

इनका जन्म हड़हा (ज़िला उन्नाव) में हुआ था। 16 वर्ष की अल्पायु में ही ये अध्यापक हो गए। 1918 से 1950 ई० तक इन्होंने 'सुकवि' का संपादन किया। 'त्रिशुल' उपनाम से भी इन्होंने राष्ट्रभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू में इन्होंने अनुमानतः बीस सहस्र से ऊपर छंद लिखे हैं, जिनमें से कुछ 'प्रेमपचीसी', 'कृषक-क्रंदन', 'त्रिशूल-तरंग', करुणाकादंबिनी आदि में संगृहीत हैं। कवि-सम्मेलनों में इनकी धूम रही है और 'सुकवि' के संपादक-रूप में इन्होंने अनेक नये कवियो को दीक्षा देकर आचार्यत्व का पद प्राप्त किया है।

सन् १८५७ *(म० कृ०)*—[रचना-काल—1930 ई०]

प्रो० नारायण केशव वेहरे की यह कृति प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम पर लिखी गई एक प्रामाणिक रचना है। लेखक का उद्देश्य था अँग्रेज़ी इतिहासकारों द्वारा इस घटना के संबंध में फैलाए भ्रमजाल को दूर कर पाठकों को वस्तुस्थिति से अवगत कराना। पुस्तक को प्रामाणिक बनाने के लिए लेखक ने अनेक अँग्रेज़ी, मराठी, बँगला एवं हिंदी-ग्रंथों, पत्र-व्यवहार, जीवन-चरित्र बखरी-साहित्य तथा उस समय के जीवित व्यक्तियों से भेंट-वार्ता का आश्रय लिया है। मेयर इन्हांसबेल, टॉरेंस, लडलो, वूलविच लॉर्ड रॉबर्ट्स, फारेस्ट आदि इतिहासकारों तथा तत्कालीन अधिकारियों का हवाला देकर उसने अपने वक्तव्य को पुष्ट किया है। उसने अँग्रेज़ी राज्य-विस्तार के लिए कंपनी के डायरेक्टरों को उत्तरदायी न मानकर भारत-स्थित अधिकारियों को उत्तरदायी बताते हुए उनकी कूटनीति (गोद न लेने देना, तैनाती सेना, भेद की नीति) एवं विचक्षण बुद्धि की सराहना की है। लेखक ने निष्पक्ष होकर विद्रोह के कारणों—राजाओं, ज़मींदारों, साधारण जनता एवं सिपाहियों के असंतोष, ग्राम-पंचायतों के अधिकार-वंचित किए जाने तथा झूठी अफवाहों और ज्योतिषियों की भविष्यवाणी—पर प्रकाश डाला है। उसने विद्रोह की असफलता के कारणों की भी निष्पक्ष जाँच की हैं और बताया है कि विद्रोहियों का दिल्ली में जमाव, देश के अन्य भागों में विदेशी सत्ता का बने रहना, दिल्ली के मुसलमान बादशाह के प्रति सिक्खों, मराठों एवं राजपूतों का द्वेष-भाव, सामान्य जनता की सहानुभूति की कमी, योग्य नेता का अभाव, लूट-मार की प्रवृत्ति, राजनीतिक ध्येय न होने के कारण विद्रोह सफल नहीं हुआ। कृति की सबसे बड़ी विशेषता है निष्पक्षता—लेखक ने लॉर्ड कैनिंग की शांत प्रकृति एवं दूरदर्शिता, फ़ौजी अधिकारियों के शौर्य तथा कैप्टेन डैली, ह्यूवेट जैसे कतिपय अँग्रेज़ों की न्यायप्रियता, उदारता की प्रशंसा की है। कुल मिलाकर 1957 ई० के विद्रोह पर यह मराठी में लिखी गई एक प्रामाणिक पुस्तक है।

सपारण *(गु० पा०)*

स्व० झवेरचंद मेघाणी (दे०)-रचित 'सोरठ तारां वहेतां पाणी' (दे०) की एक मुख्य स्त्री पात्र 'सपारण' है के वास्तविक जीवन-तत्त्व का इसमें दर्शन होता। सोरठ की खुमारी, सोरठ का सत्व, सोरठ की ओजस्विता इसमें साकार हुई है। सोरठी जीवन की हूबहू प्रतिच्छवि इसमें देखी जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरड़ा प्रदेश की 'ढेली' मेर जाति में उत्पन्न कन्या है जिसका माता-पिता ने एक सत्वहीन व्यक्ति से विवाह करने का विचार किया है। कन्या घर छोड़कर भाग जाती है और सपारण का वेश (मुसलमान स्त्री) धारण कर घूमने लगती है। डफ़ेर जाति के एक झगड़े में फँसने पर देवकीगढ़ का बहादुर वणिक रूखड़ सेठ उसे बचाता है। तब से यह रूखड़ को अपना प्राणप्रिय मान लेती है और उसकी विवाहिता की तरह उसके साथ रहने लगी। किसी झगड़े में रूखड़ सेठ को फाँसी हो जाती है। तब यह रूखड़ की विधवा के रूप में जीवन बिताना शुरू करती है। रूखड़ की संपत्ति के विषय में झगड़ा होता है। यह गाँव छोड़कर चली जाती है और डाकू बन जाती है। घेलुया के रूप में पुरुष वेश में रहती है, डाका डालती एवं ग़रीब जनता की सहायता करती है। एक बार वह साथियों सहित पकड़ी जाती है। अदालत में मुकदमा चलता है। उसे सात वर्ष की सख्त क़ैद की सज़ा होती है।

सोरठी लोक-जीवन में शक्ति के अवतार सदृश आदर-प्राप्त ढेला-सपारण पतिव्रता, वीर, साहसी, रोमांचक, नारी है। वह मर्दानी औरत है। इस वीरांगना को परम वीर व्यक्ति की खोज है। वैसा व्यक्ति प्राप्त कर उसने अपना नारीत्व, पत्नीत्व, रूखड़ सेठ में कृतार्थ किया है।

मेघाणी का यह अति ओजस्वी नारी पात्र वर्षों तक मानवता, सतीत्व व चरित्रशीलता की प्रेरणा देता रहेगा।

सपोनर सुर *(अ० कृ०)* [**रचना-काल**—1943 ई०]

यह नलिनीबालादेवी (दे०) की कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं में जीवन के दुःख-संघर्ष से पीड़ित हृदय की गंभीर अनुभूति है। कवयित्री प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व में सौंदर्य खोजती है। यह सौंदर्य विश्व-स्रष्टा का है। अनेक कविताओं में आत्मा और विश्वात्मा के मिलन का भी वर्णन है। कविताओं में निराशावाद न होकर मानव के असीम भविष्य के प्रति आस्था है। लेखिका ने शैशव से ही अनेक आघात सहे थे। ये आघात उन्हें उच्च स्तर की कवयित्री बना गए हैं।

✓ **सप्तस्वरी** *(उ० कृ०)*

यह सुरेन महांति (दे०) द्वारा रचित सात एकांकियों का संग्रह है। इन एकांकियों में समाज की विभिन्न समस्याओं का विवेचन हुआ है; फलतः एक बौद्धिक परिवेश मिलता है। वैचारिक गुरुता, विवेचन की सुस्पष्टता, सशक्त शैली, बोलचाल की भाषा का अत्यंत सफल प्रयोग आदि विशेषताएँ इन एकांकियों में मिलती हैं।

'सफ़ीर', प्रीतम सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

प्रीतम सिंह 'सफ़ीर' पंजाबी के कुछेक चुने हुए कवियों में से हैं जिन्होंने पंजाबी कविता को नयी युग-चेतना और बौद्धिकता से संयुक्त किया है।

'सफ़ीर' की प्रारंभिक कविताओं का कोई संग्रह उपलब्ध नहीं है। इनकी वास्तविक काव्य-यात्रा 1938 ई० से ही शुरू होती है। तब से लेकर अब तक इनके पाँच काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ये हैं: 'राग रशमां', 'रक्त बूंदा', 'पाप दे सोहिले', 'कत्तक कुजां' और 'आदि जुगादि' (दे०)। 'कत्तक कुजां' कवि का एक महत्वपूर्ण कविता-संग्रह है। इसकी 'कत्तक कुजां' 'नील', 'हीरोशीमा नागासाकी', प्रगतिशील और क्रांतिकारी कविताएँ हैं। 'कत्तक्कूजां' कविता में कवि ने 'कत्तक कूजां' को समय का प्रतीक बना कर क्रांति का संदेश दिया है। 'इक मिट्टी की मुट्ठ वरगीआं' जैसी श्रेष्ठ कविताओं में व्यंग्य का तेवर बड़ी सफलतापूर्वक व्यक्त हुआ है।

'सफ़ीर' की कविता में अनुभव की तीव्रता है, वैयक्तिकता है, क्रांतिकारी विचारधारा है, राष्ट्रीय चेतना है और व्यंग्य की पैनी धार है। इन्होंने पंजाबी कविता में एक नए काव्य-मुहावरे का सूत्रपात किया है।

'सफ़ी' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

नाम : अली नेकी, उपनाम : 'सफ़ी', जन्म-स्थान : लखनऊ।

इनकी गणना उन इने-गिने साहित्यसेवियों में की जाती है जिन्होंने लखनऊ स्कूल की शायरी को अपयश और अपकीर्ति के कलंक से मुक्ति दिलाई और उसे शुद्ध और पवित्र रूप देकर प्रस्तुत किया। उर्दू ग़ज़ल-लेखन में इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी ग़ज़लों में प्रेम-तत्व का निरूपण अत्यंत मार्मिक और कलात्मक शैली में हुआ है। संगीतात्मकता के साथ-साथ सरसता और सूक्ष्मता का गुण भी इनके काव्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथेष्ट मिलता है। भाषा की शुद्धता और अभिव्यक्ति की प्रभविष्णुता के प्रति ये सर्वत्र जागरूक दिखाई देते हैं। शब्दाडंबर और अतिशयोक्ति से इन्होंने अपनी ग़ज़लों को सदा अछूता रखा है। अश्लीलत्व दोष से इनकी कला कभी दूषित नहीं होने पाई।

ग़ज़लों के अतिरिक्त इन्होंने नज़्में भी कही हैं, जो कवित्व-गुण-संपन्न और औदात्व-तत्त्व-संवलित हैं। इनकी उपमाओं में नवीनता और अभिव्यक्ति में सजीवता तथा सरलता देखते ही बनती है। इनकी अधिकतर कविताएँ शीआ़ कान्फ्रेंस के वार्षिकोत्सव के लिए लिखी गई हैं जिनका संकलन 'लख्त-ए-जिगर' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनकी ग़ज़लों का एक चयन 'सहीफ़ातुल ग़ज़ल' के नाम से भी प्रकाशित हो चुका है। परंतु इनके काव्य का समग्र संकलन अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है।

सबरस *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1635 ई०]

'सबरस' के लेखक मुल्ला वजही (दे० वजही) हैं जो अब्दुल्लाह कुतुब शाह के शासनकाल में विद्यमान थे। इसमें इश्क-ओ-अ़मल और हुस्न-ओ-दिल के वृत्तांत गल्प-कथा के रूप में लिखे गए हैं। इस कथा का दूसरा नाम 'किस्सा हुस्न-ओ-दिल' भी है। इस काल्पनिक कथा के पात्रों के नाम मिह्र, वफ़ा, नाज़, ग़मज़ा, नामूस, जुहद, तौबा आदि सब प्रतीकात्मक हैं। इन भावनाओं तथा चेष्टाओं का इसमें मानवीकरण किया गया है।

'सबरस' आकार एवं विस्तार की दृष्टि से दकन की प्राचीन उर्दू पुस्तकों में सबसे बड़ी है। 'वजही' ने यह कथा फ़ारसी कवि 'फत्ताही' के अनुकरण पर लिखी है। मुहम्मद हसन कादरी साहब लिखते हैं—'अगरचे वजही ने कहीं इस अम्र (तथ्य) का इज़हार नहीं किया लेकिन···अस्ल किस्सा उसके दिमाग़ का नतीजा नहीं है बल्कि सबसे पहले 'फ़त्ताही' नेशापुरी (1448 ई०) ने फ़ारसी नज़्म में 'दस्तूर-ए-उश्शाक' के नाम से लिखा था। 'फ़त्ताही' ने इस किस्से को मुख्तसर तौर पर फ़ारसी नस्र (गद्य) में भी लिखा था और उसका नाम 'हुस्न-ओ-दिल' रखा था।

'वजही' ने संभवतः इसी 'हुस्न-ओ-दिल' को थोड़े से फेर-बदल के साथ उर्दू में लिखा। 'हुस्न-ओ-दिल' और 'सबरस' दोनों 'मुकफ़्फ़ा-नस्र' (तुकांत गद्य शैली) में लिखी गई हैं।

सबुजपत्र *(बँ० प्र०)*

वर्तमान शतक में बंगाल की एक साहित्यिक पत्रिका 'सबुजपत्र' (1914-18) को केंद्र बनाकर एक प्रगतिशील साहित्य-आंदोलन का सूत्रपात हुआ था। सबुजपत्र-मंडल के लेखकों ने साहित्य में तारुण्य एवं नवीनता का प्रवर्तन किया एवं रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) ने इस मंडल को अपना नेतृत्व प्रदान किया। 1914 ई० में प्रमथ चौधुरी के संपादन में 'सबुजपत्र' का प्रकाशन शुरू हुआ। 'सबुजपत्र' की पहले अंक में प्रमथ चौधरी के द्वारा रचित 'सबुजपत्र' एवं 'सबुजपत्रेर मुखपत्र' नामक दो निबंधों में लेखक ने सबुजपत्र-मंडल के मन की बात प्रकट की है। यूरोपीय नवीन प्राण को स्वीकार कर उसकी स्वधर्म व्याख्या को ही संपादक ने 'सबुजपत्र' का मूल उद्देश्य कहा है। रवींद्रनाथ के द्वारा रचित बँगला काव्य की प्रारंभिक कविताएँ इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं।

'सबुजपत्र' केवल 4 वर्ष तक प्रकाशित हुई परंतु इतने अल्प समय में ही इस पत्रिका ने साहित्य के विचार-क्षेत्र में नवीन युग को प्रतिष्ठित कर दिया। 'सबुजपत्र' में प्रकाशित रवींद्रनाथ के उपन्यास 'घरे बाइरे' में नारी-स्वातंत्र्य एवं संस्कारांधता की व्यर्थता का उल्लेख किया गया है। गद्य-चर्चा के क्षेत्र में भी सबुजपत्र की देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। साहित्य-क्षेत्र में 'साधु गद्य-रीति' के स्थान पर 'चलित भाषा' का प्रयोग इसी पत्रिका से शुरू हुआ था। बँगला साहित्य-क्षेत्र में आधुनिक काल के उदय का सर्वप्रथम प्रमाण 'सबुजपत्र' है।

सबुज साहित्य *(उ० पारि०)*

'सबुज साहित्य' उड़िया स्वच्छंदतावादी साहित्य का अर्थबोधक है। यद्यपि सबुज गोष्ठी के साहित्यकारों पर बंग-साहित्य का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है, फिर भी इसे ऐकांतिक रूप से बंग-देश से गृहीत साहित्य-धारा मानना उचित नहीं होगा। इन लेखकों से पूर्व उड़िया-साहित्य में स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रारंभ हो चुका था।

सबुज हरे रंग, नूतन स्पंदन एवं सशक्त जीवन का द्योतक है। सबुज दल का सबुज नाम प्रमथ चौधुरी (बँगला) की 'सबुज पत्रिका' से गृहीत है। जातीय मानसिक जड़ता की नवोत्साह में परिणति के प्रतीक के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बंगाल में 'सबुज' शब्द का प्रयोग हुआ था।

1920 ई० के वाद भारतीय साहित्यिक रवींद्र (दे० रवींद्रनाथ ठाकुर) साहित्य विशेषकर 'गीतांजली' (दे०) के साहित्यिक गौरव तथा 'रहस्यवाद' (दे०) की ओर आकृष्ट हुए। उड़िया के कई कॉलेज छात्रों ने भी इसी समय रवींद्र-साहित्य से अनुप्राणित होकर एक स्वतंत्र साहित्यिक धारा का सूत्रपात किया, जिनमें श्री अन्नदा-शंकर राय अग्रगण्य हैं। इनके अतिरिक्त सबुज गोष्ठी के अन्य लेखक हैं कालिंदीचरण पाणिग्राही (दे०), बैकुंठ-नाथ पटनायक (दे०), हरिहर महापात्र तथा शरत्‌चंद्र (दे०) मुखर्जी। इनकी कविताओं का संकलन सर्वप्रथम 1931 ई० में 'सबुज कविता' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

सबुज गोष्ठी के लेखकों ने जिस नूतन वाता-वरण रूढ़िहीन चिंतन और जिस बौद्धिक परिवेश की सृष्टि की तथा अपनी नूतन अनुभूति को जिस नवीन रीति से वाणी दी, उससे अवश्य ही काव्य को एक नयी दिशा मिली। ये प्रकृति और मनुष्य दोनों के प्रति समान रूप से आग्रहशील थे। इनकी रचनाओं में सामाजिक संस्था के प्रति विद्रोह की घोषणा, ज्ञानमूलक एवं सौंदर्यमूलक प्रेम के प्रति निष्ठा, पार्थिव जगत् से दूर जाने की लालसा, छंदवैचित्र्य, अभिव्यक्ति की नवीन भंगिमा, विभिन्न साहित्यिक रूपों के प्रति एक स्वच्छंद-नवीन दृष्टिकोण आदि विशेषताएँ मिलती हैं। इन लोगों ने साहित्य के सभी रूपों का स्पर्श किया है। 1921 से 1935 ई० के बीच 'सबुज साहित्य'-समिति ने कतिपय काव्य, नाटक, उपन्यास, क़हानी आदि का प्रकाशन किया था जिनमें 'वासंती', 'मुक्तागढ़रक्षुधा', 'अमर चिता', 'द्वादशी', 'सौम्या', 'मुक्ति पथे', 'वुजारिणी', 'पूर्णिमा', 'देशर डाक' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

सब्ज़परी *(उर्दू० पा०)*

सब्ज़परी 'अमानत' (दे०) की इंदर-सभा (दे०) की एक प्रमुख पात्र है। यह काफ़पर्वत की परियों की नायिका है। इंद्र के अखाड़े की परियों में इसका सर्वोच्च स्थान है और यह राजा की विशेष कृपा-पात्र है। यह सिंहलद्वीप-नरेश इंद्र की सभा में पहुंच अपने मादक रूप-लावण्य तथा मोहक नृत्य-संगीत से उसका मन बहलाती है।

एक बार काफ़ से इंद्र-सभा में आती हुई यह मार्ग में हिंद के एक सुंदर राजकुमार (शहज़ादा) गुलफ़ाम को अख्तर नगर में लाल महल की छत पर सोया देख उस पर आसक्त हो जाती है और अपने तख्त से उतर कर उसे हरे नगों का एक छल्ला निशानी के रूप में देती है। इंद्र (दे० इंद्र, राजा) के अखाड़े में पहुँचने पर इसे प्रियतम की याद सताती है। यह काले देव द्वारा उसे उठवा लेती है। गुलफ़ाम अपरिचित स्थान पर पहुँचकर घवराता है तो सब्ज़परी इसे सांत्वना देती है। गुलफ़ाम के अनुरोध पर यह उसे इंद्र की सभा में ले जाकर परियों का नाच दिखाती है। मानव के इंद्र-सभा में पहुँचने का रहस्योद्-घाटन होने पर गुलफ़ाम को दंड दिया जाता है और सब्ज़परी को सभा से निष्कासित कर दिया जाता है। अंत में यह अपने संगीत के जादू से गुलफ़ाम को क्षमादान दिलाती है।

सभापति *(त० पा०)*

सभापति संबंद मुदलियार् (दे०) 'सभापति' शीर्षक हास्य-प्रधान नाटकों में विदूषक के रूप में आता है। यह अपनी हास्य-प्रधान बातों और कर्मों से दर्शकों का मनोरंजन करता है। बीसवीं शती में वडवूर दुरैसामी अय्यंगार्, आरणी कुप्पुस्वामी मुदलियार् आदि तमिल उपन्यासकारों ने पाश्चात्य साहित्य में प्राप्त आर्थर कौनेन डायल-कृत 'शेरलाक होम्स', इयान् फ़्लेमिंग-कृत 'जेम्स बांड', आदि धारावाहिक जासूसी उपन्यासों के अनुकरण पर अनेक हास्य-व्यंग्य-प्रधान उपन्यासों की सर्जना की है। इन उपन्यासकारों ने हास्य-व्यंग्य की सृष्टि के लिए अपने उपन्यासों में एक ही पात्र को अपनाया है। ठीक इसी प्रकार संबंद मुदलियार् ने 'सभापति' नामक पात्र की सहायता से हास्य के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करने के लिए सभापति शीर्षक अनेक नाटकों की रचना की है। इस पात्र के माध्यम से शिष्ट हास्य की अभिव्यक्ति में संबंद मुदलियार् पूर्ण सफल हुए हैं।

सभासदी बखर *(म० कृ०)* [रचना-काल—1697 ई०]

इसके लेखक का नाम है कृष्णा जी अनंत सभासद। इसमें शिवाजी के जीवन-चरित्र से संबद्ध घट-नाओं का वर्णन है। आरंभ में शिवाजी के पूर्वजों का परिचय है। तदनंतर शिवाजी के जीवन में घटित 71 प्रसंगों का प्रामाणिक वर्णन है। इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवाजी का संपूर्ण चरित्र-वर्णन नहीं आ पाया है, फिर भी इनके जीवन से संबद्ध अधिकांश महत्वपूर्ण घटनाएँ अंतर्भूत हो गई हैं। जिन प्रसंगों का विस्तार से निरूपण है, वे हैं—अफ़ज़लखान का वध, शिवाजी का दिल्ली की ओर प्रयाण, राज्याभिषेक, शिवाजी का भागानगर पहुँचना, शिवाजी-व्यंकोजी भेंट आदि। शिवाजी के राज्याभिषेक और मृत्यु की तिथियों का मात्र उल्लेख है, अन्यत्र काल-निर्देश नहीं है। व्यक्ति-निर्देश और स्थल-निर्देश प्रचुर मात्रा में हैं जिससे इसके प्रसंग-वर्णनों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। शिवाजी की मृत्यु के 12-14 वर्षों के बाद ही इस बखर की रचना हुई थी, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है। प्रसंग-वर्णन की पटुता, प्रवाहमयी भाषा-शैली, चरित्र-चित्रण का कौशल आदि गुणों के कारण प्रस्तुत रचना मराठी-साहित्य के इतिहास में भी अपना सुदृढ़ स्थान रखती है।

समय परीक्षे *(क० कृ०)* [समय—लगभग 1150 ई०]

इसके रचयिता ब्रह्मशिव नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय 1150 ई० के करीब स्थिर किया गया है। यह ग्रंथ कंद एवं वृत्तों में लिखा 15 अधिकारों वाला एक काव्य है। बारहवीं शती के कर्णाटक के धार्मिक जीवन का परिचय प्राप्त करने के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। अन्य मतों, तथा उनके पुराणों व लोकाचारों के दोष दिखाकर जैनमत को ही यहाँ सर्वश्रेष्ठ साबित किया गया है। ग्रंथ में कथानक नहीं है, पात्र-सृष्टि नहीं है, नवरसों का निरूपण भी नहीं, अष्टादश वर्णन भी नहीं है। कथा जैनमत की है, जनसामान्य ही इसके पात्र हैं, विडंबन ही इसका रस है, अपहास्य ही इसका स्थायी है। अन्य मतों के अंधविश्वासों का वर्णन ही इसके अष्टादश वर्णन हैं। इस प्रकार यह कन्नड साहित्य में ही एक अपूर्व तात्त्विक विडंबक काव्य है। इसकी विषयानुक्रमणिका यों है—परमात्म-स्वरूप, अनाद्यनिधनजिन धर्म-वर्णन, परमागम वर्णन, सम्यक्त्व निरूपण, परमहित व्रत-व्यावर्णन, शौचव्रत-वर्णन, तपोधनस्वरूप-वर्णन, आप्तस्वरूप-वर्णन, देवतामूढस्वरूप, आगमस्वरूपवर्णन, वैदिक विडंबन, लोक-मूढस्वरूप, कुदृष्टि लक्षण कुलांगचारित्र-निरूपण तथा जैन-धर्म-व्यावर्णन। यहाँ की विडंबना अत्यंत कटु बनी है, मतीय पक्षपात तथा परधर्म-असहिष्णुता इसमें बहुत अधिक है। किंतु जहाँ कहीं हास्य का लघु-लेपन है, वहाँ सुंदर बन पड़ा है। अंत में, कवि प्रतिपादन करता है कि जहाँ उत्तम चारित्र्य है, वहीं धर्म है। कन्नड में प्रत्यक्ष लोक-जीवन का चित्रण करने वाले काव्य बहुत ही कम है, और यह उनमें से एक है।

समरतरंग *(उ० कृ०)*

रीतिकालीन अनैसर्गिक काव्य-व्यापार एवं गतानुगतिकता के बीच कवि जगन्नाथ बड़जेना (दे०) ने 'समरतरंग' के द्वारा उड़िया-साहित्य में नवीन चेतना तरंगायित कर दी थी। समसामयिक घटना को लेकर साहित्य-निर्माण करने का वह प्रथम प्रयास था। यह जातीय उद्‌बोधन से परिपूर्ण समर-काव्य है जो कवि के जागरूक यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। 'समरतरंग' में कवि ने रणभेरी बजाई है। इसमें ढेंकानाल-नरेश त्रिलोचन महेंद्रबहादुर के मुख से उत्कलीय सेना को जो जागृति-संदेश दिया गया है, वह हमारी जातीयता के प्रति ब्रजनाथ की चेतावनी है।

'समरतरंग' में 1781 ई० में मरहठा एवं ढेंकानाल की सेनाओं के बीच हुए 18 दिन के तुमुल युद्ध का वर्णन हुआ है। कवि स्वयं उस समय ढेंकानाल में थे। प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण उन्होंने हर छोटी-बड़ी बात का वर्णन किया है। अतः उनके युद्धवर्णन में, सामरिक साज-सज्जा के चित्रण में, लोगों के उत्साह-उत्तेजना, आशा-निराशा के चित्रण में जीवंत अनुभूति की मर्मस्पर्शिता है। उनके आह्वान में युग-युग तक शिथिल रक्त में उष्णता का संचार करने की शक्ति है; उत्साहहीन प्राणों में उन्माद उत्पन्न करने की क्षमता हैं। यह उत्कलीय जातीयता का युगांतरकारी अध्याय है।

'समरतरंग' की भाषा ओजपूर्ण, फड़कती हुई, सुललित एवं उत्तेजक है। देशज एवं विदेशी शब्दों के प्रयोग से उसमें स्वाभाविकता आ गई है। भाषा में स्वच्छंद प्रवाह मिलता है। भाषाविन्यास, अलंकार-प्रयोग, वर्णन-शैली में रीतियुग की क्रमिकता की रक्षा करते हुए प्रतिपाद्य की सत्यता एवं उत्कर्ष की अक्षुण्णता का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो 'समरतरंग' के आह्वान की अभिव्यक्ति की ही एकमात्र पद्धति है, इसके बिना उस आह्वान का प्रतिपादन नहीं हो सकता।

चरित्र-चित्रण में यथार्थवादी दृष्टिकोण मिलता है। गुणों के साथ दोषों का भी निरूपण हुआ है। त्रिलोचन-बहादुर व चिमना भोंसला दो ही प्रधान पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिलोचन महेंद्र बहादुर वीर, कुशल, शासक, धैर्यवान, सफल सेनानी एवं देशभक्त हैं। उनके देदीप्यमान व्यक्तित्व एवं ज्वालामयी वाणी में निष्प्राण में प्राण फूँकने की शक्ति है। चिमना जी युवक हैं फिर भी कुशल योद्धा हैं। उनमें अद्भुत संगठन-शक्ति, साहस व धैर्य है।

इसमें बड़जेना अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति को सजीव एवं साकार कर गए हैं। तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का भी परिचय मिल जाता है। इस प्रकार 'समरतरंग' एक ऐतिहासिक, समसामयिक, घटना के प्रत्यक्षदर्शी का कवित्वपूर्ण विवरण होने के कारण उड़िया-साहित्य में विशिष्ट गौरव का अधिकारी है।

समरसवे जीवन *(क० कृ०)*

'समरसवे जीवन' (समरस ही जीवन है) डा० वि० कृ० गोकाक (दे०) का उपन्यास है। इसमें काव्य की मनोहरता, अंतःप्रज्ञा और जीवन का मार्मिक विश्लेषण मिलता है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं के संबंध में भी इसमें विचार किया गया है। उत्तर कर्नाटक के जन-जीवन के सर्वतोमुखी विकास का निरूपण करने वाला यह उपन्यास शिल्प, वातावरण, पात्र-सृष्टि और भाषा-शैली की दृष्टि से नवीनता लिए हुए हैं। इसमें पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का रमणीय स्वरूप-विश्लेषण है। इसकी कथा चार पीढ़ियों के जीवन-चित्र उपस्थित करती है। कथा का प्रारंभ मोग्गावि गाँव से होता है। उसका विस्तार देश के अन्य भागों से होता हुआ विदेश तक होता है। तिरुकाचार्य और हंग्रीवाचार्य प्रथम पीढ़ी के; गोविंदराय, सुवर्णाचार्थ, मोडक, केशवराय, जानकीबाई, रमाबाई, सरस्वतीबाई, रमातायि, रंगासानि, और वैंकम्मा जैसे पात्र दूसरी पीढ़ी के; नरहरि, कुसुमा, शीनू, पद्मावती, केशव, मेनकि, कुडचि, तिप्पा, भीमू, कुमारी बर्वे, एलिस आदि तीसरी पीढ़ी के एवं अरुण, उषा, आदि नवीन पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं। स्वामिदास यद्यपि दूसरी पीढ़ी के ही हैं तथापि उनके व्यक्तित्व का प्रभाव अन्य पीढ़ियों में स्पष्टतः लक्षित होता है। यहाँ का प्रधान पात्र नरहरि आदर्श जीवन का स्वप्नद्रष्टा है। नरहरि का मित्र शीनू आदर्श और सुसंस्कृत जीवन का पक्षपाती होकर भी पाश्चात्य संस्कृति की ओर झुक जाता है। नरहरि-कुसुमा, शीनू-सुशीला, और विष्णु-प्रमीला की जोड़ी प्रेमसूत्र में बद्ध होती है। कुसुमा को पाने की तीव्रेच्छा रखने वाला शीनू पहले दैववादी हो जाता है, पीछे बदल जाता है। चित्रांगदा प्रमीला नरहरि को पति के रूप में नहीं पा सकती, वह विष्णु की आराधिका बन जाती है। शीनू स्व-निर्मित स्वप्न को 'प्रेम' कहता है। समुद्रयात्रा को जीवन-यात्रा के रूप में दिखाकर अंतर्राष्ट्रीय जीवन का सूक्ष्म दर्शन इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय आंदोलन, पाश्चात्य संस्कृति के गुण-दोष तथा धर्म और जीवन के नाना रूपों का वर्णन भी इसमें आकर्षक बन पड़ा है। भौतिक जीवन और कामलालसा से जीवन का कैसे अधःपतन होता है, इसका अच्छा निरूपण यहाँ किया गया है। स्वामिदास सरीखे पात्र की सृष्टि कर लेखक ने ऊर्ध्वगामी सामाजिक कल्पना को मूर्त रूप प्रदान किया है। लेखक ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुकूल नाना पात्रों की सृष्टि कर अपने उद्देश्य और दर्शन का सुंदर प्रतिपादन इस उपन्यास में किया है। युग-संस्कृति को दिखाने वाला यह उपन्यास साहित्य की मंगल-सिद्धि है।

समराइच्चकहा *(प्रा० कृ०)*

यह जैन-महाराष्ट्री प्राकृत का एक गद्य कथा काव्य है जिसकी रचना चित्तौड़ के हरिभद्रसूरि (दे०) ने सातवीं-आठवीं शती में की थी। इसमें उज्जैन के राजा समरादित्य और शत्रु अग्निशर्मा के नौ जन्मों के विरोधों का वर्णन है। अग्निशर्मा अपने पूर्वजन्म के विरोध का बदला बार-बार जन्म-धारण करके लेता है। इसमें अवांतर कथाएँ बहुत हैं। जैन-महाराष्ट्री में यह उच्चकोटि की गद्य-रचना है जिसमें बीच-बीच में पद्य (विशेषतः) आर्या छंद मिले हुए हैं। इसकी रचना 'कादंबरी' (दे०) जैसी लगती है। लेखक काव्यशास्त्र तथा दूसरे शास्त्रों में निष्णात है।

समस्या-नाटक *(हिं० पारि०)*

विक्टोरियन युग के अंत में इंग्लैंड में जो बौद्धिक क्रांति हुई थी उसके कारण परंपरागत मूल्य और मान्यताएँ ढहने लगी थीं, सेक्स, अर्थ, दांपत्य-जीवन, कानून की पवित्रता, देशभक्ति, प्रेम, ग़रीबी आदि के संबंध में नयी विचारधारा ने जन्म लिया था जिससे तत्कालीन नाटक-कार अलिप्त न रह सके थे और एक नये प्रकार के नाटक का जन्म हुआ था जिसे समस्या-नाटक (प्रोबलम-प्ले)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं। एलबर्ट ग्वार्ड ने इसकी परिभाषा यों की है—समस्या-नाटक में समसामयिक प्रश्नों को यथार्थवादी (दे०) शिल्प में प्रस्तुत किया जाता है। यथार्थवादी आंदोलन से प्रभावित समस्या-नाटककारों—इब्सन, शॉ, गॉल्सवर्दी आदि—ने अपनी रचनाओं में जीवन और समाज के कठोर सत्यों का चित्रण किया। सामाजिक क्रूरता और दंभ का विरोध किया, झूठे आदर्शों को चुनौती दी। इसीलिए उसे मोह-भंग का नाटक कहा गया। आरंभ में इसे 'संवाद-श्रृंखला', 'समाजशास्त्रीय निबंध', 'पुलपिट का व्याख्यान' कहकर इसका उपहास किया गया, इसके पात्रों को कठपुतली या लेखक के प्रवक्ता कहा गया। पर विवाद की धूल बैठ जाने पर इसका स्वरूप स्वच्छ हो गया। समसामयिक समस्याओं को विषय बनाने और मध्यवर्गीय पात्रों के अतिरिक्त उसमें शिल्प-संबंधी नये प्रयोग—विश्वसनीय कथानक, संवाद-दृश्य, पात्रों के अंतर्द्वंद्व, उनकी साधारण भंगिमा से उनके मनोभावों का अंकन, दैनंदिन की बोलचाल की भाषा—भी किए गए हैं। संक्षेप में 'समस्य-नाटक' सामाजिक परिवेश में सामयिक समस्याओं का चित्रण करने वाले (न कि उनका समाधान देने वाले) नाटक हैं।

समाचार *(पं० क्र०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

'समाचार' संतसिंह सेखों (दे०) की पंद्रह कहानियों का प्रथम संग्रह है। पंजाबी कथा-साहित्य के प्रारंभिक काल में इन कहानियों का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना थी। पंजाबी कहानी के कई रूप—जैसे कि फ़्रायड से प्रभावित मनोवैज्ञानिक कहानी, समाजवादी चिंतन से प्रभावित प्रगतिवादी कहानी—सुचिंतित रूप से प्रथम बार इसी संग्रह में सामने आए। 'समाचार' की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि कलात्मक पंजाबी कहानी ने अपने प्रारंभिक काल से ही उस शिल्प को पहचानना आरंभ कर दिया था जिस पर उसे पश्चिम के गल्प-लेखकों ने विकसित करने का उपक्रम किया था। यद्यपि कुछ कहानियों में सेखों पत्रकारिता के स्तर पर आ जाते हैं परंतु इनमें से अधिकतर यथार्थवादी कहानी का सुंदर उदाहरण हैं। सेखों की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ 'आस दा जन्म', पाताल दा बंदा', 'अनोखसिंह दी वहुटी', 'पेमी दे नि आणे', 'मुड़ विधवा' इसी संग्रह में हैं।

समाज-चित्रे *(म० क्र०)*

यह एक कहानी-संग्रह है जिसकी लेखिका हैं श्रीमती गिरिजाबाई केळकर।

सामाजिक समस्याओं का कलात्मक विवेचन करना ही इन कहानियों का प्रतिपाद्य है। लेखिका स्वयं भारतीय संस्कृति पर अभिमान करने वाली एवं सर्वांशतः आदर्श भारतीय महिला हैं। वे पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण की कट्टर विरोधी हैं, अतः उन्होंने शिक्षित महिलाओं की विचित्र वेशभूषा तथा गार्हस्थ्य-धर्म की उपेक्षा की कड़ी निंदा की है। आदर्शवादी भारतीय नारी होने के कारण इन्हें पश्चिम का स्वच्छंद आचरण बिल्कुल नापसंद है।

इनकी कहानियों में व्यंग्य एवं उपदेश का मनोहर संगम मिलता है। कला-दृष्टि से ये कहानियाँ सामान्य हैं।

समास *(हिं० पारि०)*

'सम्+अस्+घञ्' से बने इस शब्द का अर्थ है 'समीप फेंकना' या 'दो अथवा अधिक शब्दों को समीप फेंकना। ऐसा करने से भिन्नार्थी शब्दों का अर्थ एक में मिल जाता है। 'पृथगर्थानामेकार्थीभावः समासः'। समास मूलतः संक्षेप के लिए होता है। इसमें संबंधसूचक शब्दों या प्रत्ययों आदि का लोप करके बड़ी अभिव्यक्ति को छोटी कर लेते हैं। जैसे 'रसोई के लिए घर'=रसोईघर या 'सभा का पति' सभापति। दो या अधिक शब्द मिलकर जब एक शब्द बन जाते हैं तो उसकी संज्ञा सामासिक पद या समस्त पद होती है। समस्त पद को तोड़कर उसके पूरे रूप (जैसे रसोईघर=रसोई के लिए घर) को दिखाना विग्रह कहलाता है। सामासिक पद बनाने की परंपरा तो अनेक भाषाओं में है किंतु समास का सबसे गंभीर विवेचन संस्कृत में ही हुआ है। संस्कृत में एक या दोनों शब्दों की प्रधानता के आधार पर समास के मुख्यतः चार भेद (अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वंद्व, बहुव्रीहि) माने गए हैं। कर्मधारय तत्पुरुष का ही एक भेद है तथा द्विगु कर्मधारय का। यों समास का कदाचित् अधिक उपयोगी विवेचन इस आधार पर हो सकता है कि किन-किन शब्द-भेदों (संज्ञा, विशेषण आदि) से ये बनते हैं तथा इनका प्रयोग किन-किन शब्द-भेदों के रूप में होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीरकुमारविजयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम पुष्पगिरि तिम्मना (दे०) है। ये हनुमान के भक्त थे। कहा जाता है कि इन्होंने स्वप्न में प्राप्त रामचंद्र की आज्ञा से 'समीरकुमार-विजयमु' की रचना की तथा रामचंद्र ही को उसे समर्पित भी किया था। हनुमान की भक्ति तथा शक्ति को प्रकट करने वाला यह ग्रंथ सात आश्वासों का एक काव्य है। इसकी भाषा प्रौढ़ है।

समुद्रबंध *(सं० ले०)* [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती]

'समुद्रबंध' रुय्यक (दे०) के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अलंकारसर्वस्व' (दे०) के टीकाकार हैं। ये केरल-देश के राजा रविवर्मा के राज्यकाल में विद्यमान थे। इस राजा का जन्म तेरहवीं शती का अंत या चौदहवीं का आरंभ-काल है। जयरथ की टीका के समान पांडित्यपूर्ण न होने पर भी यह व्याख्या मूल को समझने के लिए बहुत उपयोगी है। समुद्रबंध साहित्यशास्त्र के मान्य आचार्यों से पूर्णपरि-चित थे। यह बात उनके उद्धरणों से स्पष्ट है।

समुद्रमंथन *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती]

यह रूपक प्रयोगप्रवण वत्सराज (दे०) द्वारा रचित समवकार है। तीन अंक के इस रूपक में वत्सराज ने समुद्रमंथन का वृत्तांत बड़े विस्तार के साथ दिया है। भरत (दे०) ने समुद्रमंथन को समवकार का आदर्श माना है। यही संकेत लेकर वत्सराज ने इस रूपक का निर्माण किया है। यह संस्कृत-साहित्य की एकमात्र समवकार-रचना है।

समूची क्रांति *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1948 ई०]

गांधीवादी विचारक किशोरीलाल पं० मशरू-वाला (दे०) द्वारा 1947 में लिखी गई। 141 पृष्ठीय यह पुस्तक धर्म और समाज, आर्थिक क्रांति से संबद्ध प्रश्न, राजनीतिक क्रांति और शिक्षा आदि पर लेखक के विचार प्रस्तुत करती है। इस ग्रंथ में कुल मिला कर उनतीस अध्याय हैं। लेखक जातिवाद की स्वीकृति अथवा उसका विनाश—इस प्रकार के दो विकल्पों के साथ अपने विचारों को प्रस्तुत करना आरंभ करता है। उसका निश्चित मत है कि धर्म आज की समस्याओं का समाधान नहीं है अतः वह पाँच सूत्र पाठक को देता चलता है—(1) एक ही ईश्वर में विश्वास रखा जाय, (2) सभी ईश्वर वाणियों को अस्वीकृत कर दिया जाय, (3) मनुष्य को ईश्वर या देवदूत मानने की प्रथा का चलन बंद कर दिया जाय, (4) मनुष्य निरालसी और संयमी हो और (5) ईश्वर का आश्रय (विश्वास), धर्म का आश्रय (सेवन) और सदाचार का आश्रय (आधार-प्रमाण) लिया जाना चाहिए। सामान्यतः लेखक यह स्वीकार कर चला है कि प्रचलित सभी धर्मों में परमेश्वर की भक्ति, सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा तथा संयम आदि पर समान रूप से भार दिया गया है। पर कुछ ऐसे भी तत्त्व हैं (यथा—परलोक पर आस्था, आदि) जो मनुष्य को समाज-धर्म की अवगणना करना सिखाते हैं। भाषाओं को माध्यम बनाकर प्राचीनता के पुनरुद्धार करने के उपक्रम का लेखक विरोधी है। लेखक ने राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों को चरित्रकेंद्री बनाकर उन पर विचार किया है। सभी वादों से मुक्त होकर खेती करने वाले श्रमिकों को सबसे अधिक मजदूरी देने की संस्तुति भी इस ग्रंथ में की गई है। लेखक की यह स्पष्ट घोषणा है कि फ़ुर्सत में संस्कृति का विकास नहीं होता। लेखक सुराज्य का प्रबल समर्थक है। शिक्षा पर चर्चा करते हुए लेखक ने कुछ विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं: शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे ममता का क्षेत्र विस्तृत हो और उसकी पकड़ शिथिल हो जाय; भूतकाल का पुनरुद्धार न किया जाय; पुरुषार्थ को उत्ते-जन दिया जाय, पुस्तकीय ज्ञान और अनुभूत ज्ञान के अंतर को समझने लायक आदमी को बनाया जाय; वक्ता की भाषा श्रोता के अनुकूल होनी चाहिए और पुस्तकों की भाषा-व्याकरण शुद्ध होना चाहिए, शिक्षा की भाषा प्रांतीय होनी चाहिए और अपवाद रूप में हिंदुस्तानी का प्रयोग किया जाना चाहिए; अंतर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होना चाहिए; प्रांतीय भाषाओं को रोमन और प्रांतीय लिपियों में लिखा जाना चाहिए तथा हिंदुस्तानी देवनागरी और उर्दू में लिखी जानी चाहिए। शिक्षा में इतिहास का ज्ञान कल्पनाओं और दंतकथाओं के समान ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। 'समूची क्रांति' में भाषा सरल और विचार अनाविल रूप से व्यक्त किए गए हैं। सभी स्थानों पर गांधीवादी विचारधारा ही प्रकट हुई है। युग के बदलते परिप्रेक्ष्य में मशरूवाला जी की सभी बातों से सहमत होना कठिन है। फिर भी इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कहना ही पड़ेगा कि गुजराती साहित्य में इस प्रकार के समाज-सुधार से संबंधित साहित्य के लिखने वालों में मशरूवाला महत्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने गांधी जी की धारणाओं को वाणी देने का सफल प्रयास किया है।

सम्यक्त्व कौमुदी *(क० क्रु०)*

'सम्यक्त्वकौमुदी' मंगराज तृतीब (समय—1510 ई०) की रचना है। सोलहवीं शती के जिन कवियों ने कन्नड-साहित्य को संपन्न किया, उनमें जैन कवि मंगराज का विशिष्ट स्थान है। ये कल्लहल्लि के राजा थे, इनका राजवंश मैसूर राजवंश से संबंधित होकर वर्तमान समय तक विद्यमान रहा है। 'सम्यक्त्वकौमुदी' वार्धक षट्पदी में रचित एक उत्तम काव्य है। इसमें जैन धर्म से संबंधित कथाओं का संग्रह है, जो संस्कृत से कन्नड में लाई गई हैं। इसमें राजा उदितोदय के वैराग्य का वर्णन है। राजा उदितोदय अर्हद्दास नामक वैश्य की पत्नियों के मुँह से 'सम्यक्त्व' की कथाएँ सुनकर वीतराग हो जैन-दीक्षा ग्रहण करता है और स्वर्गलोक में अर्हमिंद्र बनता है। इस कथानक का वर्णन कवि ने संस्कृत और कन्नड के शब्दों से युक्त सुंदर सामरस्यपूर्ण शैली में, मृदु-मधुर पाक में किया है। कवि की कल्पना की कमनीयता तथा वार्धक षट्पदी की रम्यता इस काव्य में प्रकट हुई हैं।

सरकार, उमेशचंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

उड़ीसा के प्रथम उपन्यासकार के रूप में उमेशचंद्र सरकार स्वतंत्र स्थान के अधिकारी हैं। कुछ विद्वान यह सम्मान रामशंकर राय (दे०) को देने के पक्षपाती हैं, उमेशचंद्र का आधुनिक शैली में लिखित 'पद्ममाळी' (दे०) (1888 ई०) सर्वप्रथम पूर्णांग उड़िया उपन्यास है। इससे पूर्व रामशंकर राय का उपन्यास 'सौदामिनी' धारावाहिक रूप में 'उत्कल मधुप' में कुछ समय तक प्रकाशित हुआ था; किंतु पत्रिका बंद हो जाने के कारण वह अधूरा रह गया।

'पद्ममाळी' ऐतिहासिक घटना-प्रधान उपन्यास है। इसकी कथावस्तु 1835 ई० में नीलगिरि में घटित एक सत्य घटना पर आधारित है जिसमें कल्पना का अत्यल्प प्रयोग हुआ है। अँग्रेज़ी और बँगला-उपन्यास-साहित्य से अनुप्रेरित होते हुए भी 'पद्ममाळी' में कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएँ हैं जो एकांत रूप से उत्कलीय परंपरा और परिवेश से उद्भूत हैं। प्रारंभिक कृति की सीमाएँ इसमें स्पष्ट हैं, फिर भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह उमेशचंद्र का एक अत्यंत सफल प्रयास है।

जब ये दो वर्ष के थे, तभी इनके पिता श्री ईश्वरचंद्र की मृत्यु हो गई थी। कटक में संबंधियों की सहायता से इन्होंने बी० ए० किया और कई राज्यों एवं ज़मींदारियों में मैनेजर रहे। 'यतो धर्मस्ततो जयः' (नाटक), 'केंदुझर विद्रोह' (अधूरा उपन्यास) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

सरकार, बादल *(बँ० ले०)*

अत्याधुनिक बँगला नाट्यकारों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित बादल सरकार ने नव-नाट्य-आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर बँगला नाटकों को नया आयाम प्रदान किया है। अ-नाटक के इस युग में, यंत्रणा, पीड़ा, विघटन और विश्रृंखलता में, लेखक की आस्था का स्वर धूमिल होता दिखाई नहीं पड़ता—यही लेखक की सबसे बड़ी विशेषता है। 'एवं इंद्रजित', 'बाकी इतिहास', 'बल्लभगढ़ेर रूपकथा', 'पागला घोड़ा' आदि लेखक की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। 'एवं इंद्रजित' में लेखक ने नायक की निदारुण व्यर्थता का निरूपण किया है जिसके परिणामस्वरूप नायक का नायकत्व नष्ट हो जाता है और वह भी अपार भीड़ का अंग बन जाता है। 'बाकी इतिहास' में राजनीतिक वक्तव्य के एक हल्के संकेत के पीछे एक अध्यापक की चेतना के विविधस्तरीय मनोभावों को नाट्यरूप प्रदान किया गया है। 'पागला घोड़ा' में पुरुष एवं नारी की व्यर्थता की यंत्रणा को निष्ठा के साथ प्रस्तुत किया गया है जिसमें सामाजिक निवृत्ति की कोई चेष्टा नहीं की गई है।

बादल सरकार ने नाटक की रूप-कला को लेकर नाना प्रकार के सफल परीक्षण किए हैं। नाटक के संवादों में काव्य-संवादों की संयोजना एवं एक ही पात्र को नाना रूपों में प्रस्तुत करने की कला निश्चय ही अभिनव एवं प्रशंसनीय है। अभिनय-कला की दृष्टि से इनके नाटक बहुत ही सफल हैं। रंगसज्जा एवं आलोक-छाया का निर्देश लेखक की रंगमंचीय ज्ञान-बुद्धि का सुंदर परिचय देते हैं। बादल सरकार के नाटकों में हास्य और व्यंग्य का स्वर मुखरित है परंतु इस स्वर के पीछे आज की दुनिया की हताशा के करुण स्वर की गूंज है और इन्हीं स्वरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुंजरित है जीवन के प्रति लेखक की आस्था एवं विश्वास। नाट्य-वस्तु की सफल अभिव्यक्ति एवं रंगमंचीय व्याप्ति के प्रभावस्वरूप बादल सरकार के नाटक आज अखिल भारतीय स्तर पर प्रसिद्धि पा रहे हैं।

सरकार, योगींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यृ – 1937 ई०]

शिशुओं के मन वहलाने के लिए जो तुकबंदी की जाती है उसे बँगला में 'छड़ा' (दे०) कहते हैं और इस प्रकार की छड़ा-कविताओं की रचना कर योगींद्रनाथ सरकार ने बच्चों के मन में हमेशा के लिए स्थान बना लिया है। इनकी 'हासिखुसि' (1897), 'खुकुमणिर छड़ा' (1899), खेलार साथी' (1898) आदि शिशु-पुस्तकों की कविताएँ इतनी अधिक चित्रात्मक हैं कि पढ़ते ही स्वप्न के समान हमारी आँखों के सामने दृश्य पर दृश्य खिचते चले जाते है। 'हासिखुसि' की कौतुक स्निग्घ चिरस्मरणीय कविताएँ केवल शिशुओं को ही नहीं, परिणति-यौवन बंगाली मात्र को ही कंठस्थ हैं।

योगींद्रनाथ सरकार ने मौलिक एवं संपादित कुल मिलाकर 44 शिशु-पुस्तकों की रचना की है। इनमें से लगभग प्रत्येक का प्रचार समान रूप से चला आ रहा है। इतनी अधिसंख्यक पुस्तकों की सुदीर्घ काल से इस प्रकार की अविच्छिन्न जनप्रियता कदाचित् ही विश्व के और किसी शिशु-साहित्यिक को मिली हो। इनकी कविताओं में एक आदि सुकुमारता विद्यमान है जो न तीव्र है, न प्रगाढ़ ही प्रत्युत अत्यंत स्निग्ध, सरस एवं युक्ति-संगतिहीन हैं। पाँच या दस साल के बच्चों के लिए शिशु-साहित्य की सृष्टि में योगींद्रनाथ आज मी अप्रतिम हैं।

सरदार जाफ़री, अली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

अली सरदार जाफ़री बलरामपुर, ज़िला गौंडा में पैदा हुए थे। इनकी शिक्षा अधिकतर लखनऊ में हुई। इसी विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० पास किया। ये प्रगतिशील लेखकों में विशेष प्रतिष्ठित हैं। उर्दू साहित्य के अतिरिक्त अँग्रेज़ी साहित्य की गहरी जानकारी रखते हैं तथा उसके गुणों से प्रभावित हैं। भाव, कल्पना तथा शैली की न्यूनता इनके काव्य के गुण हैं। 'परवाज़' के नाम से इनका पहला संग्रह छपा है। जीवन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को जिस सुंदरता से इन्होंने अपने काव्य में व्यक्त किया है उस तरह संभवतः उर्दू के किसी अन्य कवि ने नहीं किया। ये जिस तरह सोचते हैं उसी तरह जीवन बिताने का भी प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि इनके काव्य में असीम प्रभावशक्ति है। जिस बेलाग साहस तथा ओज के साथ ये अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं उसमें विशेष मोहकता होती है।

'परवाज़' के अतिरिक्त 'ख़ून की लकीर', 'नयी दुनिया को सलाम', 'अम्ल का सितारा', 'एशिया जाग उठा', और 'पत्थर की दीवार' नाम से इनके अन्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

सरदेइ *(उ० पा०)*

सरदेइ श्री सुरेंद्र महांति (दे०) के उपन्यास 'नीलशैल' (दे०) की एक सामान्य नारी पात्र है; जिसके अभिशप्त जीवन की सजल कहानी इस उपन्यास के करुण स्वर को और भी मार्मिक, और भी गंभीर बना देती है। भाग्यहीन उड़ीसा की विडंबनाओं ने ही 'सरदेइ' में रूप पाया है। सरदेइ के समान उड़ीसा भी आज निराश्रित एवं अनुरक्षित है। सभी की लोलुप दृष्टि इस पर केंद्रित है, फिर इसके धर्म की रक्षा कौन करे? यवन सैनिक सरदेइ को ही हताहत नहीं करते; वरन् उड़ीसा को क्षत-विक्षत कर उसका सर्वस्व लूट लेना चाहते हैं। सरदेइ के साथ उड़ीसा का करुण अस्तित्व हमारी समस्त धार्मिक, नैतिक, सामाजिक व्यवस्था पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है।

सरदेइ से हमारा सर्वप्रथम परिचय होता है अनुपम सुंदरी होते हुए भी काले मुँह वाली डायन बहू के रूप में। विवाह के बाद पति, श्वसुर, जेठ, देवर, जिठानी देवरानी सभी की एक-एक करके मृत्यु होती जाती है। इस प्रकार यह सास के समस्त क्रोध व घृणा का केंद्र बनती है। इसका मादक सौंदर्य इसके वैधव्य को और भी दुर्भाग्यपूर्ण बनाता है। इसकी नीरव आँखों में वेदना-विह्वलता और असहायता की छाया तैरती रहती है।

महाराज रामचंद्र देव भटकते हुए अपनी तृष्णा बुझाने इसी सरदेइ के घर पहुँचते हैं। तृष्णा मिट जाती है, किंतु उसी समय मुग़ल सैनिक उन्हें घेर कर बंदी बना लेते हैं। उनकी रक्षा के प्रयास में सरदेइ का रक्त-स्नात शरीर धराशायी हो जाता है। परंतु इसकी मृत्यु नहीं होती। चतुर्थ परिच्छेद में यह जीवन-पथ पर बहुत आगे बढ़ी हुई दृष्टिगत होती है। क्षत्रिय-कुलवधू का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन इससे छूट चुका है। आज यह छोटे से 'चटी घर' की स्वामिनी है। यही इसकी आजीविका का एकमात्र अवलंब है। इसका बंधु जगुनि इसका रक्षक है जिसने इसे बड़ी बहिन का सम्मान दिया है। किंतु गृहविहीना इस असहाय के जीवन को जगुनि नहीं बचा पाता। इसका सर्वस्व समाज की लंपटता के हाथों छीन लिया जाता है। यह आत्मग्लानि इसे जीवन भर दग्ध करती रहती है।

जीवन की सांध्य-वेला में, अर्धचेतनावस्था में इसे प्रतीत होता है कि पतिता के उद्धार के लिए स्वयं पतित-पावन जगन्नाथ इसकी कुटिया में पधारे हैं। तब दिव्यानंद में पूर्ण तृप्त, पतित-पावन की प्रतीक्षारत इसकी व्याकुल आँखें कभी न खुलने के लिए मुँद जाती हैं।

सरना, महेंद्रसिंह (पं० ले०) [जन्म—1925 ई०]

महेंद्रसिंह सरना पंजाबी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार तथा कथाकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग की मनोवैज्ञानिक कुंठाओं को विशेष रूप से चित्रित किया है। सरना की कहानियों की भाषा काव्यमयी है जो इन्हें पंजाबी के अधिकांश कथाकारों से अलग कर देती है जिनकी पृष्ठभूमि पंजाब का ग्रामीण जीवन है और भाषा उसी के अनुरूप अनगढ़।

प्रमुख रचनाएँ—'पीड़ा मल्ले राह', 'कांगा ते कंडे' (उपन्यास), 'पत्थर दे आदमी', 'शगनां भरी सवेर', 'सुपनिआं दी सीमा' (कहानी संग्रह)।

सरमाय-ए-ज़ुबान-ए-उर्दू (उर्दू० ले०)

हकीम सैय्यद ज़ामिन अली 'जलाल' लखनवी के 416 पृष्ठों के इस संक्षिप्त उर्दू-शब्दकोश में शब्दों के अतिरिक्त वाक्यांशों, मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों की भी व्याख्या की गई है। अठारहवीं शती में लिखित इस कोश में ऐसी शब्दावलियों का वर्णन भी किया गया है, जो अब प्रयोग में नहीं आतीं अथवा जिनका विषय में तत्कालीन विद्वानों में मतभेद था। भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा शब्दों के भिन्न-भिन्न उच्चारण अपनाए जाने के संकेत भी यथावसर इसमें दिए गए हैं। पारिभाषिक शब्दों और लोकोक्तियों के अर्थ-लेलक के साथ-साथ उन्हें सटीक और प्रामाणिक पंक्तियों में प्रयुक्त करके भी दिखाया गया है। इस संदर्भ में प्राचीन विख्यात कवियों और साहित्यकारों के कृतित्व का प्रश्रय किया गया है। मुहावरों और प्रतीकों के पर्यायवाची कहीं-कहीं फ़ारसी और अरबी में भी उनके प्रयोग सहित दे दिए गए हैं। महिलाओं में प्रयुक्त शब्दों और मुहावरों की दृष्टि से भी इस कृति का अपना एक ऐतिहासिक महत्व है।

सरलादेवी (म० कृ०)

वा० वा० भोळे का नाटक 'सरलादेवी' समसामयिक जीवन की 'कटुतिक्त' कुंठाओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करता है। नायिका सरला के वैयक्तिक जीवन की आशा-आकांक्षाओं का राग-विराग, सुख-दुःख एवं पाप-पुण्य का मनोहारी निरूपण इस नाटक में हुआ है। कुमारी सरला के अविवाहित मातृत्व की की पीठिका पर नाटककार ने समाज के भीतर व्याप्त नासूर के रहस्य का उद्घाटन किया है। अपने कौमार्य-मातृत्व के कारण ही सरला हीन-भावना से ग्रस्त है। सभीत सरला के मनोवेगों को नाटककार ने अत्यधिक सशक्त-रूप में प्रस्तुत किया है। नायक सत्यपति का चरित्र-निरूपण मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। पाश्चात्य समस्या-प्रधान नाटकों की पद्धति पर आधारित इस नाटक के विषय में स्वयं नाटककार का यह कथन है कि 'सरलादेवी का नाट्य-शिल्प इब्सन के समस्या-नाटकों के समान है परंतु नाटक लिखते हुए इब्सन-पद्धति से मेरा परिचय नहीं था। इसका नाट्य-शिल्प कुछ परिस्थितिवश तथा कुछ मेरी मनःस्थिति का ही परिणाम है।' यद्यपि इस नाटक का शिल्प-विधान पूर्णरूपेण इब्सन के समस्या-नाटकों का-सा नहीं है तथापि कथा-विकास पर उक्ति-प्रभाव न्यूनाधिक रूप में अवश्य उपस्थित हुआ है। व्यक्ति वैचित्र्यवादी सिद्धांतादर्शों के अनुरूप विकसित चरित्रों में जहाँ विविधता एवं विदग्धता है वहाँ कथा-विकास संघर्ष के द्वारा हुआ है। अंतः एवं बाह्य द्वंद्व के अनेक मनोहारी घटना प्रसंगों की संयोजना इसमें हुई है।

'सरशार', रतननाथ (उर्दू० ले०) [जन्म—1847 ई०; मृत्यु—1920 ई०]

जन्म-स्थान—लखनऊ। 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) नामक सुप्रसिद्ध उपन्यास इनका कीर्तिस्तंभ है। इसमें तत्कालीन सामाजिक वातावरण और राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति तथा परंपराओं का यथार्थवादी चित्रण बड़ी सफलता के साथ किया गया है। लखनऊ के समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चित्रण इसमें समग्र रूप से हुआ है। प्राचीन रंग-ढंग के नवाबों, रईसों और उनके मित्रमंडल के रीति-रिवाज़, प्रकृति और स्वभाव का सप्राण चित्रण यथार्थ के धरातल पर जितना इन्होंने किया है उतना अन्य कोई उर्दू-लेखक नहीं कर सका। इन्हें विभिन्न व्यवसायियों के विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों, बेगमों और उनकी मुग़लानियों तथा मामाओं की विशिष्ट बोलियों, ग्रामीण रीति-रिवाज़ों, अफ़ीमचियों, चंडूबाज़ों, भटियारिनों, चोर-उचक्कों, बनियों और ठाकुरों की विशिष्ट अभिव्यंजना-शैली पर अद्भुत अधिकार प्राप्त था। 'फ़साना-ए-आज़ाद' में प्राचीन लखनवी जीवन का प्रत्येक पहलू उजागर हो जाता है। उपन्यास की भाषा ऐसी अनूठी, यथार्थ, मनोरंजक और टकसाली है कि लेखक की प्रतिभा से अभिभूत हुए बिना नहीं रहा जा सकता। अन्य कृतियों में 'सैर-ए-कुहसार', 'जाम-ए-सरशार' कामिनी और 'खुदाई फ़ौजदार' उल्लेखनीय हैं। खुदाई फ़ौजदार' एक अँग्रेज़ी उपन्यास का उर्दू अनुवाद है। 'सरशार' साहब काव्य-रचना भी करते थे। 'अमीर' (दे०) लखनवी इनके काव्यगुरु थे। ये बड़े प्रसन्न स्वभाव और स्वतंत्र विचारधारा के व्यक्ति थे तथा सांप्रदायिकता से कोसों दूर थे।

सरसगीता *(गु० कृ०)*

अठारहवीं शती के अंत में इसकी रचना हुई। प्रीतमदास (दे०) कृष्णभक्त कवि थे और 'सरसगीता' भागवत के कथानक पर आधारित भ्रमरकाव्य है। मथुरा आने के बाद कृष्ण उद्धव का गर्व खंडन करने के लिए उन्हें गोपियों और नंद-यशोदा के पास भेजते हैं—ज्ञान देकर उन्हें समझाने के लिए। उद्धव जब जाकर गोपियों से योग की बातें करते हैं तब गोपियाँ उद्धव को अपनी कृष्णभक्ति का परिचय देती हैं जिससे उद्धव का अभिमान गल जाता है और वे ब्रजभूमि की धूल अपने सिर पर चढ़ाते हैं। कोमल भावों का निरूपण, माधुर्य, पात्र के स्वभाव को यथार्थ रूप में व्यक्त करने वाली उक्ति—इन सब दृष्टियों से यह गुजराती का उत्तम भ्रमर-काव्य माना गया है।

√**सरस्वतियम्मा, के०** *(मल० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

मलयाळम की इस सिद्धहस्त कथालेखिका का जन्म एक रूढ़िवादी नायर परिवार हुआ शिक्षा के बाद दो वर्ष वे अध्यापिका रहीं और बाद में केरल सरकार के लेखा-परीक्षा-विभाग में इनकी नियुक्ति हुई जहाँ वे अब भी कार्य कर रही हैं। 'स्त्रीजन्मम्', 'पोन्नूम्कुटम्', 'क्रीष्जीवनक्कारी' आदि इनके कहानी-संग्रह हैं। इनका एक लघु उपन्यास, एक नाटक और एक निबंध-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

सरस्वतियम्मा मलयाळम-कहानी के नवोत्थान-काल की प्रमुख लेखिका हैं। वर्तमान समाज में नारी की भावनाओं एवं कष्टों की करुण कथा इनकी कहानियों की मुख्य विषय-वस्तु है। मलयाळम की प्रमुख कथाकर्त्रियों में ललितांबिका अंतर्जनम् (दे०) के बाद सरस्वतिमम्मा का ही नाम लिया जाता है।

सरस्वती *(हिं० पत्रिका)*

हिंदी-पत्रकारिता का दुर्भाग्य है कि उसके पत्र-पत्रिकाएँ दीर्घ-जीवी नहीं रहे। दो-एक पत्रिकाओं जैसे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०), 'सरस्वती' आदि को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि वे अपने प्रकाशन से आज तक जीवित हैं और उनकी कीर्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ी है। 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन 1900 ई० को प्रयाग से आरंभ हुआ। उस समय वह क्राउन आकार के 32 पृष्ठों की थी और उसका मूल्य था चार आना। सौभाग्य से आरंभ में ही उसे काशी के हिंदी-हितैषियों का सहयोग और इंडियन प्रेस के संस्थापक, हिंदी-पुस्तकों के प्रकाशक और हिंदी के उन्नायक श्री चिंतामणि घोष का संरक्षण प्राप्त हो गया है। बाबू रामानंद चटर्जी के परामर्श से उन्होंने इसके संपादन का कार्यभार काशी नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) पर डाला। सभा ने पाँच व्यक्तियों का संपादन-मंडल बनाया। ये थे—सर्वश्री राधाकृष्ण दास, कार्तिकप्रसाद खत्री, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (दे०) किशोरीलाल गोस्वामी और श्यामसुंदर दास (दे०)। ये सब काशी-निवासी थे अतः 'सरस्वती' का संपादन-कार्य होता था काशी में और वह मुद्रित तथा प्रकाशित होती थी प्रयाग में। आरंभ से ही वह पत्रिका थी और अपने रूप तथा गुण दोनों से पाठकों को आकर्षित करने में सफल रही। उसके प्रकाशन के मुख्य उद्देश्य बताते हुए कहा गया था, 'हिंदी-रसिकों को मनोरंजन, सरस्वती के भंडार की अंग-पुष्टि और सुलेखों को प्रोत्साहन।'

इस संपादन-मंडल के अधीन यह पत्रिका केवल एक वर्ष तक चली। इस बीच इसमें सबसे अधिक लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कविताएँ लिखने का श्रेय पं० किशोरीलाल गोस्वामी को है। संयुक्त प्रांत की (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की कचहरियों में नागरी लिपि को स्थान मिलने पर 'सरस्वती' में जो संपादकीय लेख प्रकाशित हुआ उसके लेखक भी किशोरीलाल गोस्वामी थे। एक वर्ष बाद संपादक बने बाबू श्यामसुंदरदास, पर वे भी दिसंबर 1902 ई० तक ही उस कार्य को सँभाल सके। जनवरी 1903 ई० में उसका संपादन-कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने सँभाला। द्विवेदी जी अपनी रेलवे-नौकरी के सिलसिले में उस समय झाँसी रहते थे। अतः पहले उसका संपादन झाँसी से और तदनंतर जूही (कानपुर) से होता रहा। द्विवेदी जी अँग्रेज़ी-कवि वर्ड्स्वर्थ के समान मानते थे कि गद्य और पद्य की भी भाषा एक ही हो। वह भाषा को शुद्ध और व्याकरण-सम्मत बनाने पर भी बहुत बल देते थे। अतः भाषा की अनस्थिरता को लेकर पहले उनका विवाद बाबू बालमुकुंद गुप्त (दे०) से हुआ और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'खोज रिपोर्ट' की आलोचना करने के कारण सभा से मतभेद हुआ। फलतः 'सरस्वती' के मुखपृष्ठ से 'सभा द्वारा अनुमोदित' शब्द हटा दिए गए। द्विवेदी जी ने, जिनके जीवन का ध्रुवतारा था 'न्याय-पथ विचलित न होना', इस विरोध की चिंता न कर अपने कठिन परिश्रम और अध्यवसाय से तीन वर्ष में ही 'सरस्वती' को प्रतिष्ठित पद पर आसीन कर दिया। भय और प्रलोभन दोनों से ऊपर उठकर केवल पाठकों का हित और रुचि ध्यान में रखते हुए वे 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा करते रहे। वे 'सरस्वती' के लिए स्वयं लेख लिखते, उसमें प्रकाशित होने योग्य प्रत्येक रचना को पढ़ते, उसका व्याकरण और भाषा की दृष्टि से संशोधन करते। संपादन के रूप में उनका सबसे बड़ा कृतित्व है—विविध विषयों के विशेषज्ञ लेखकों का मंडल बनाना और साहित्यकारों को प्रोत्साहन देकर उन्हें साहित्य के प्रांगण में उतारना। इन साहित्यकारों में उल्लेखनीय हैं—मैथिलीशरण गुप्त (दे०), देवीप्रसाद 'पूर्ण' (दे०), लक्ष्मीधर वाजपेयी, स्वामी सत्यदेव, आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०), विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', रूपनारायण पांडे (दे०), प्रेमचंद (दे०), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (दे०), वृंदावनलाल वर्मा (दे०) और सियारामशरण गुप्त (दे०)।

इस प्रकार द्विवेदी जी के संपादन-काल में 'सरस्वती' ने भाषा के परिष्कार और भाषा की एकरूपता, खड़ी बोली की कविता को प्रतिष्ठित करने, नियमित रूप संपादकीय टिप्पणियाँ लिखने की परंपरा डालने, 'विविध विषय' के अंतर्गत इधर-उधर की जानकारी पाठकों को सुलभ करने तथा संस्कृत, द्विवेदी और अन्य भाषाओं के साहित्य का परिचय देने के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान किया। हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी 'दुलाईवाली' के प्रकाशन का श्रेय भी उसी को है। 1903 से 1920 ई० तक द्विवेदी जी बड़ी दक्षता और निष्ठा से उसका संपादन करते रहे। द्विवेदी-युग का पूरा लेखा-जोखा जानने के लिए सबसे सरल और उत्तम साधन 'सरस्वती' के अंक ही हैं।

द्विवेदी जी के बाद 'सरस्वती' के संपादक-क्रम में रहे—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (दे०) (1921-1925), देवीदत्त शुक्ल (1926), बख्शी (1927-29), शुक्ल जी (1929-46), उमेशचंद्र मिश्र, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' (जून 1955 अंक), श्रीनारायण चतुर्वेदी।

'सरस्वती' में साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर भी लेख लिखे जाते रहे हैं। 1934-35 ई० में भाई परमानंद और जवाहरलाल नेहरू आदि प्रसिद्ध राजनीतिक नेताओं के लेख प्रकाशित हुए। दिसंबर 1961 ई० में इसने हीरक-जयंती-समारोह मनाया। हिंदी-प्रेमी भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद के सौजन्य से यह समारोह राष्ट्रपति भवन (दिल्ली) में मनाया गया और उस अवसर पर इसका वृहद् हीरक-जयंती-अंक उन्हें भेंट किया गया।

सरस्वतीकंठाभरण (*सं० कृ०*) [रचना-काल—ग्यारहवीं शती का आरंभ]

भोजराज (दे० भोज) द्वारा विरचित 'सरस्वतीकंठाभरण' अलंकारशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पाँच परिच्छेद एवं 643 कारिकाएँ हैं जिनमें मुख्यतः काव्यदोष, काव्यगुण, अलंकार, रस, भाव, संधि-चतुष्टय आदि का प्राचीन आलंकारिकों के मतों-सहित युक्तियुक्त पूर्णतः नवीन विधान प्रस्तुत किया गया है।

भोज ने अपने 'सरस्वतीकंठाभरण' में प्राचीन ग्रंथकारों के लगभग 1500 श्लोक उद्धृत किए हैं। अतः ग्रंथ में आए उद्धरणों की सहायता से अनेक कवियों का समय-निरूपण सरलता से किया जा सकता है। 'सरस्वतीकंठाभरण' रत्नेश्वर की ठीका के साथ काव्यमाला से प्रकाशित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वतीचंद्र *(गु० कृ०/पा०)*

गोवर्द्धनराम त्रिपाठी द्वारा प्रणीत 'सरस्वतीचंद्र' उपन्यास का मुख्य पात्र 'सरस्वतीचंद्र' ही है। लेखक ने समकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवेश में इस नायक की जीवन-यात्रा अंकित की है। सरस्वतीचंद्र धीरोदात्त, धीर-गंभीर और धीर-ललित पात्र है जो आदर्शानुरागी है। बंबई के धनपति लक्ष्मीनंदन सेठ का वह मातृहीन पुत्र है। विद्याप्रेमी होने के कारण वह एम० ए० की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण कर पारितोषिक और पदक जीतता है। विद्वत्ता के साथ सरस्वतीचंद्र में सर्जनशीलता भी है। वह काव्य-रचना करता है। उसमें सुरुचि है। रसिकता और सहृदयता के गुण विशेष मात्रा में विद्यमान हैं। रत्ननगरी के प्रधान विद्याचतुर की सुंदर और सुशील पुत्री कुमुदसुंदरी के साथ सरस्वतीचंद्र का विवाह होना तय हुआ है। गोवर्द्धनराम ने 'सरस्वतीचंद्र' उपन्यास में इस प्रणयी युगल की प्रणय-चेष्टाओं का बड़ा ही रोचक तथा सरल वर्णन किया है। इनका प्रेम विमाता गुमान की ईर्ष्या और रोष का कारण बनता है। वह दुर्व्यवहार करती है। इससे संत्रस्त सरस्वतीचंद्र गृहत्याग कर अभावों का जीवन जीने लगता है, अपनी प्रियतमा कुमुद का परित्याग करता है और अभिन्न चंद्रकांत की अवहेलना करता है। उसमें विवेक-बुद्धि और व्यावहारिक अनुभव का अभाव है। उसी के कारण सर्वगुण-संपन्न कुमुदसुंदरी को प्रमादधन से विवाह करना पड़ता हैं जो मंदबुद्धि, शराबी, वेश्यागामी और प्रमादी है। कुमुद के दुःखमय जीवन का पूरा दायित्व सरस्वतीचंद्र की विवेकहीनता और आदर्शवाद पर है। वह स्वयं भी गृह-त्याग के पश्चात् अपमान, उपेक्षा और असह्य पीड़ाओं से घिरा हुआ जीवन जीता है। परंतु सरस्वतीचंद्र के पात्र में हृदय की निश्छलता और उदारता है। वह शुद्ध बुद्धि, आंतरिक शुभ्रता और निर्मल चरिक का नवयुवक है और उसके ये गुण ही सबको आर्कषित करते हैं। इसीलिए वह सबका प्रीतिभाजन और प्रशंसापात्र बना रहता है। लेखक ने आदर्श-साधक सरस्वतीचंद्र को उपन्यास के उत्तरार्ध में सुंदर गिरि पर आदर्श सेवक के रूप में प्रस्तुत किया है जो कुमुदसुंदरी से विवाह कर 'कल्याण ग्राम' की रचना का संकल्प करता है। इस अंतिम अंक को छोड़कर उपन्यास के शेष भाग में गोवर्द्धनराम ने सरस्वतीचंद्र का बहुत सुंदर और स्वाभाविक चरित्र-चित्रण किया है। गुजराती उपन्यास-साहित्य में सरस्वतीचंद्र का चरित्र अविस्मरणीय और बेजोड़ है। वह जितना भव्य है, उतना ही दिव्य है। गोवर्द्धनराम त्रिपाठी की वह अमर सृष्टि है।

सरहपा *(अप० ले०)*

चौरासी सिद्धों में सर्वप्रथम सरह का नाम है। सिद्धों के नाम के पीछे लगा 'पा' 'पाद' का विकृत रूप है। 'पाद' शब्द सम्मान का द्योतक है। सरहपा के अन्य नाम राहुल भद्र और सरोजवज्र भी हैं। ये जन्म से ब्राह्मण थे, पीछे से भिक्षु हो गए थे। ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। जब इनका ध्यान मंत्र-तंत्र की ओर आकृष्ट हुआ तब ये एक बाण (=शर/सर) बनाने वाले की कन्या को महामुद्रा बना कर अरण्य में रहने लगे। वहाँ ये स्वयं भी बाण बनाने लगे। इसी कारण इनका सरह नाम पड़ा। शबर पाद इनके प्रधान शिष्य थे। विद्वानों ने सिद्धों का समय 633 ई० से 1200 ई० तक भिन्न-भिन्न कालों में माना है।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'कायाकोश', 'अमृत-वज्रगीति', 'चित्रकोष', 'अज-वज्रगीति', 'डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति', 'दोहाकोश उपदेशगीति', 'दोहाकोष', 'तत्त्वोपदेश-शिखर-दोहाकोश', 'वसनातिलक दोहाकोश', 'चर्या-गीति दोहाकोश', 'सरहपादगीतिका' इत्यादि। ये ग्रंथ 'वज्रयान' के विवेचन से संबंधित हैं।

इनकी कविता के विषय हैं—रहस्यवाद (दे०), पाखंड-खंडन, मंत्र देवतादि की व्यर्थता, सहज मार्ग, योग से निर्वाण-प्राप्ति, गुरु की महत्ता का गान आदि। सरह ने काया को ही सर्वोत्तम तीर्थ माना है और इसी से परम सुख-प्राप्ति का निर्देश किया है।

इन्होंने चित्त-शुद्धि और चित्त से मुक्ति को निर्वाण-प्राप्ति का साधन माना है। मन को स्थिर करने का भी उपदेश दिया है।

इनके 'चर्या गीतों' की भाषा पूर्वी अपभ्रंश है और 'दोहा-कोश' के पद्यों की भाषा पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी) है।

सरिसृप *(उ० कृ०)*

1970 ई० में साहित्य अकादेमी पुरस्कार-प्राप्त इस कविता-संकलन के कवि हैं विनोदचंद्र नायक (दे०)। इस शती के चतुर्थ दशक में सच्चिदानंद राउतराय (दे०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जिस नूतन कविता की परंपरा उड़िया साहित्य को दी थी, उसी परंपरा में दीक्षित इस कवि की कविता की नूतनता, सतेजता सुस्पष्ट है। भाषा-प्रयोग में वैसा कुछ वैशिष्ट्य न होते हुए भी बिंब एवं परिवेश में कवि का निजत्व प्रकट हुआ है। उड़ीसा के ग्राम्यांचल एवं ग्राम्य-जीवन को त्याग कर आधुनिक कवि होने का प्रयास उन्होंने नहीं किया है।

'सरूर' (उर्दू० ले०)

दे० आले अहमद 'सरूर'।

सरूर (उर्दू० ले०) [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1910 ई०]

इनका पूरा नाम मुंशी दुर्गा सहाय, उपनाम 'सरूर', पिता का नाम हकीम प्यारेलाल, जन्म-स्थान जहानाबाद है। इनकी गणना उर्दू के समर्थ कवियों में होती है। शुद्ध भारतीय तत्त्वों से ओत-प्रोत इनका काव्य भाव और कला दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। पद्मिनी, सीता की गिरिया-ओ-ज़ारी, सती, बुलबुल-ओ-परवाना, बीरबहूटी, कोयल, मुर्ग़ाबी, गंगा, यमुना, तथा लाजपतराय विषयक इनकी कविताएँ बड़े मार्के की हैं। कल्पना का औदात्त्य, अनुभूति की तीव्रता तथा अभिव्यंजना की उत्कृष्टता इनके काव्य के विशेष गुण हैं। उर्दू काव्य में हिंदी शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति को इनके द्वारा बड़ा बल मिला। इनके दो काव्य-संग्रह हैं—'खुमखाना-ए-सरूर' और 'जाम-ए-सरूर' जो मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुए।

'सरूर', रजब अली बेग (उर्दू० ले०) [जन्म—1823 ई०; मृत्यु—1860 ई०]

नाम—मिर्ज़ा रजब अली; उपनाम—'सरूर'। जन्म-स्थान—लखनऊ। पिता का नाम—मिर्ज़ा असग़र अली। मिर्ज़ा ग़ालिब इनके मित्रों में से थे। इनकी दो कृतियों की भूमिका भी मिर्ज़ा ग़ालिब ने लिखी है। 'फ़साना-ए-अजायब' (दे०) इनकी प्रसिद्ध कृति है। 'सरूरखानी' (शमशीरखानी का अनुवाद) और 'गुलज़ार-ए-सरूर' (हदायक—'उल उश्शाक' का अनुवाद) के अतिरिक्त 'इंशा-ए-सरूर' और 'शगूफ़ा-ए-मुहब्बत' का प्रणयन भी इन्होंने किया था। 'फ़साना-ए-अजायब (दे०) इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। यह प्रेमाख्यान है। इसकी भाषा शब्दाडंबर और वाक्याडंबर से ओतप्रोत है। इस प्रकार की शैली के लेखक के लिए वस्तुतः अद्भुत विद्वत्ता और भाषा पर अपूर्व 'अधिकार' अपेक्षित है। इस कसौटी पर सरूर साहब पूरे उतरते हैं। इनकी इस कृति के अध्ययन से पाठक पर यह वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है कि एक अच्छा गद्य-लेखक साधारण से कथानक को भी कितना भावमय, रोचक और कौतूहलपूर्ण बना सकता है।

सरोज (पं० कृ०)

सरोज नानकसिंह के उपन्यास 'अधखिड़िया फुल्ल' की नायिका है। इसके माध्यम से बाल-विधवा की अतृप्त भावनाओं एवं अभावग्रस्त जीवन का यथार्थ निरूपण किया गया है। कुलदीप के प्रति असफल प्रेम की प्रतिक्रियास्वरूप यह वरियामसिंह के सहयोग से समाज-सेवा में प्रवृत्त हो जाती है। परंतु मानसिक अस्थिरता के कारण विक्षिप्तावस्था में काल-कवलित होती है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चरित्र-चित्रण करते हुए नारी-संबंधी परंपरावादी दृष्टिकोण का प्रभावशाली ढंग से अंकन किया है। सरोज का प्रेम शारीरिक न होकर आंतरिक है, जिस पर 'प्रीत आदर्शों' की छाप है।

सर्बहरा (उ० कृ०)

'सर्बहरा' श्री लक्ष्मीधर नायक (दे०) का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। जहाँ इसमें प्रेम, आर्थिक विषमता, सामाजिक व्यवस्था-संबंधी अनेक सामाजिक प्रश्न उठाए गए हैं, वहाँ सुरमा (दे०) के माध्यम से नारी के अंतर को उद्घाटित करने का प्रयास भी मिलता है। नारी कर्तव्य की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है, यहाँ तक कि अपने को भी, किंतु केवल एक वस्तु को छोड़कर···और वह है प्रेम। इसकी उपेक्षा वह नहीं कर सकती। यही कारण है कि कर्तव्य की भावना के वशीभूत होकर सुरमा प्रार्थी किशोर को द्वार से रिक्तहस्त लौटा देती है, किंतु क्या वह सचमुच किशोर की प्रार्थना ठुकरा सकती है? नहीं! नहीं!! कर्तव्य के नाम पर यदि प्रेम निछावर है तो प्रेम की पावन वेदी पर स्वयं उसका जीवन उत्सर्गित है। वह आत्महत्या कर लेती है। न जाने यह उसकी हार है या जीत, किंतु जो कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है वह अनुपम है; श्री-मंडित है—नारीत्व का गौरव है।

सर्वज्ञ (क० ले०)

जनकवि सर्वज्ञ का आविर्भाव सोलहवीं-सत्रहवीं शती के मध्य में हुआ था। इनको 'राष्ट्रकवि' कह सकते हैं। हिंदी-साहित्य में महात्मा कबीर (दे०) को जो स्थान प्राप्त हुआ है, कन्नड-साहित्य में सर्वज्ञ को वही स्थान मिला है। विशाल जीवन-दृष्टि और निर्भीकता सर्वज्ञ की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सर्वज्ञ के माता-पिता और देश-काल के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इनकी रचना को कन्नड में 'सर्वज्ञन वचनगळु' (सर्वज्ञ की वाणी) कहते हैं। इन्होंने अपने विचार व्यक्त करने के लिए त्रिपदी छंद को चुना जो कन्नड का अपना छंद है और जिसमें महत्तर विषयों को भी सुबोध शैली में व्यक्त करने की शक्ति है।

सर्वज्ञ के वचनों में यह कहा गया है कि शिवजी के गण पुष्पदत्त के अवतार हैं। जिन वचनों में इनके माता-पिता के संबंध में कहा गया है उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। सर्वज्ञ का जन्मस्थान धारवाड़ ज़िले का अंबलूर है। कहा जाता है कि इनके पिता आराध्य ब्राह्मण मल्लरस थे और माता कुम्हारिन थी। सर्वज्ञ के विषय में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं जिनमें सत्यांश कितना है, यह कहना कठिन है।

'सर्वज्ञ' नाम के विषय में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। 'सर्वज्ञ' संभवतः कवि की उपाधि थी। यह उपाधि इन्हें कैसे प्राप्त हुई, यह ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि 'सर्वज्ञ' इनके इष्ट-देव का नाम है। संसार में कोई सर्वज्ञ नहीं है, भगवान् ही सर्वज्ञ हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सतत अभ्यास के द्वारा और बहुश्रुत होने कारण कवि सर्वज्ञ हुए थे। इन का एक त्रिपदी छंद है जिसका अभिप्राय है कि सर्वज्ञ नाम का व्यक्ति क्या गर्व के कारण वैसा हुआ है ? सभी लोगों से एक-एक बात सीखकर (वह) विद्या का ही पर्वत बन गया'। इससे स्पष्ट है कि इनमें अहंकार नहीं था, अपनी सारग्राही बुद्धि के कारण से सर्वज्ञ कहलाए। इन्होंने 'पर-दैव' के रूप में शिवजी स्तुति मनोहर शब्दों में की है। परंतु, ध्यान रखना चाहिए कि इनके शिव कैलासाधिपति शंकर नहीं हैं, वे निराकार, निर्गुण, निरंजन हैं। वे सृष्टि-कर्त्ता अनादि और अनंत हैं। वे सभी प्राणियों में भी व्याप्त हैं। उनके समान श्रेष्ठ कलाकार या चित्रकार कोई दूसरा नहीं है।

कवि, भक्त और समाज-सुधारक के रूप में सर्वज्ञ के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जा सकता है। इनकी कविता में ओज है, तेज है। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार है। भावों के पीछे भाषा दौड़ती हुई-सी प्रतीत होती है। इनकी वाणी का कर्नाटक में इतना अधिक प्रभाव हुआ है कि पंडित-पामर सबकी जिह्वा पर वह विद्यमान रहती है। इनके छंद प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति के रूप में सर्वत्र प्रचलित हैं।

क्रांतिकारी के रूप में सर्वज्ञ के व्यक्तित्व पर विचार करने पर ज्ञात होगा कि इन्होंने सर्वत्र 'सत्' का मंडन और 'असत्' का खंडन किया है। ये मानव धर्म के उपासक थे, इन्होंने सभी मानवों को अपना ही समझा था।

सर्वदर्शनसंग्रह (सं० कृ०) [रचना-काल—1400 ई०]

इसके रचयिता माधवाचार्य हैं। ये माधवाचार्य 'शंकरदिग्विजय' (दे०) के लेखक ही हैं। किंतु आर० नृसिंहाचार्य आदि कतिपय विद्वानों का विचार है कि 'सर्वदर्शनसंग्रह' के रचयिता सायणमाधव अर्थात् सायण (दे०) के पुत्र माधव हैं, सायण के भाई माधव नहीं। दक्षिण की परंपरा के अनुसार पहले पिता का नाम ग्रहण किया जाता है और फिर पुत्र का। इसी तर्क के आधार पर 'सर्वदर्शनसंग्रह' के रचयिता माधव सायण के पुत्र बतलाए जाते हैं।

'सर्वदर्शनसंग्रह' के अंतर्गत माधवाचार्य की दृष्टि प्रमुख दर्शन-पद्धतियों के संग्रहात्मक वर्णन की रही है। फलतः इस ग्रंथ में चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, रामानुज, पूर्णप्रज्ञ (माध्व), नकुलीशपाशुपत, शैव, रसेश्वर, औलूक्य, अक्षपाद, जैमिनि, पाणिनि, सांख्य, पातंजल और शंकर-दर्शन के संबंध में विचार किया गया है। इन दार्शनिक सिद्धांतों का विश्लेषण 'सर्वदर्शनसंग्रह' में प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार संग्रह एवं संक्षेप की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत उपादेय है।

सर्वनाम (हिं० पारि०)

'सर्वनाम' व्याकरण में उस विकारी शब्द को कहते हैं जो किसी संज्ञा शब्द के स्थान पर (पूर्वापर संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से) आता है। 'सर्वनाम' शब्द में भी यही संकेत है कि जो सभी (सर्व) संज्ञाओं (नाम) के स्थान पर आ सके। निरुक्त (दे०) या अथर्ववेद प्रातिशाख्य आदि संस्कृत के ग्रंथों में भी 'सर्वनाम' शब्द इसी अर्थ में मिलता है, किंतु पाणिनि (दे०) ने अपनी अष्टाध्यायी (दे०) में 'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र में सर्व, विश्व, उभ, उभय, एक, द्वि आदि 35 शब्दों को ही सर्वनाम माना है अर्थात् पाणिनि में सर्वनाम कोई सामान्य शब्द न होकर इन 35 शब्दों के वर्ग का नाम मात्र है। सर्वनाम के भेद सभी भाषाओं में पूर्णतः समान नहीं होते। हिंदी में पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, निजवाचक, प्रश्नवाचक, संवंधवाचक, नित्यसंबंधी आदि मुख्य भेद हैं।

सर्वास्तिवाद *(पा० पारि०)*

इस वाद को यथार्थवाद और हेतुवाद भी कहा जा सकता है। इसमें अयथार्थवाद तथा क्षणिकता के प्रतिकूल बाह्य पदार्थों की सत्ता भी स्वीकार की जाती है। इसीलिए इसे सर्व+अस्ति+वाद (सभी कुछ विद्यमान है) का सिद्धांत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में हम इसे द्वैतवाद की संज्ञा भी दे सकते हैं।

भगवान् बुद्ध ने ईश्वर आदि ऐसे 10 विषयों पर बात करने का निषेध किया था जिनका निश्चयात्मक उत्तर इस विश्व में नहीं मिल सकता। किंतु इन्होंने धर्म को स्वानुभूति और तर्क पर आधारित मानकर वैमत्य को अवसर दे दिया था। फलतः उन्हीं विषयों पर चर्चा चल दी जिनका निषेध भगवान् पहले ही कर चुके थे। भगवान् के निषेध की संगति भी जैसे-तैसे लगा ली गई। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म संप्रदायों में विभाजित होने लगा। सबसे पहले वैशाली की महासंगीति में महासांधिक मूल थेरवादी (दे० थेरवाद) धारा से पृथक् हो गए और उन्होंने अपनी महासभा की योजना पृथक् रूप में की। बाद में महासांधिक भी अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त हो गए जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा सर्वास्तिवाद है। यह विचारधारा अशोक के समय से ही पक रही थी; किंतु कनिष्क के समय में इसने व्यवस्थित रूप धारण कर लिया। वैसे इस वाद के अनुयायी इस वाद को 'हीनयान' में ही अंतर्भुक्त करते हैं। किंतु इनके 'त्रिपिटक' (दे०) कुछ भिन्न हैं और पाली की कथावत्थु में इनकी भी आलोचना की गई है। इसके अनुयायी पहले काश्मीर और गंधार में थे तथा वहाँ से मध्य एशिया, तिब्बत और चीन में फैले।

सर्वास्तिवादियों के मत में यह सारा विश्व तथा उसके विभिन्न पदार्थ यथार्थ हैं और देश-काल से नियंत्रित हैं। किंतु जो तत्त्व संस्कृत हैं उनमें संस्कार धर्म-विपरिवर्तनशील है; अतः शाश्वत नहीं हो सकते। संस्कृत-धर्म चार प्रकार के होते हैं—उत्पाद, स्थिति, व्यय, एवं निरोध। इन धर्मों के कारण वस्तु में परिवर्तन होते रहते हैं किंतु मूलवस्तु सर्वदा बनी रहती है। भूत, भविष्य और वर्तमान का भेद वस्तु-भेद नहीं है, केवल भावभेद है। कटक, कुंडल इत्यादि में संस्थान-भेद है, वस्तु-भेद नहीं। इस प्रकार इन लोगों के मत में समस्त अतीत अनागत तथा वर्तमान तत्त्व द्रव्यसत् हैं, यही इस मत का सार है। इसके दो महत्वपूर्ण उपविभाग हैं : वैभाषिक (दे०) और सौत्रांतिक (दे०)।

सवाई माधवराय *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०)-कृत 'सवाई माधवरावचा मृत्यु' ऐतिहासिक नाटक का नायक है। इसका चरित्र-निरूपण पूर्णतः इतिहासानुमोदित तथ्यों पर हुआ है। केशवशास्त्री के षड्यंत्रों से अनभिज्ञ सरलहृदय माधवराव शिवनेरी के किले में नाना द्वारा कैद किए हुए रघुनाथराव और आनंदीवाई के परिवार-जन से पत्र-व्यवहार करता है। नाना की सेवाओं के प्रति कृतज्ञ होते हुए भी उसके कठोर नियंत्रण के प्रति कभी-कभी उसका मौन आक्रोश फूटता तो है, परंतु नाना के समक्ष कुछ कहने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। यही कारण है कि नाना के पद-त्याग के विचारों से अवगत होने पर त्रस्त हो वह कह उठता है—'नाना मैं कभी आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सकता हूँ!' केशवशास्त्री की बातों पर सहज विश्वास कर लेने के कारण ही वह अपनी माँ, पत्नी और सास के चरित्र पर संदेह करने लगता है—'मेरी माँ व्यभिचारिणी और सास छिनाल हैं', अथवा 'बाई, विवाह से पूर्व क्या नाना तेरे घर आते थे?' संदेह के इस विष-वृक्ष के कारण ही मानसिक विक्षिप्तता के उन्माद में वह महल की छत से गिर कर मृत्यु को प्राप्त होता है।

सवाई माधवराव का चरित्र-विकास पंत-प्रधान नाना के कठोर नियंत्रण एवं संशयग्रस्त प्रवृत्ति का परिणाम है। नाना के जड़ीभूत प्रभाव के कारण ही उसके चरित्र का यथेष्ट विकास नहीं हो सका है। फलतः वह सदा ही परमुखापेक्षी बना रहता है। दूसरे शब्दों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधवराव का चरित्र नाटककार द्वारा ही परिचालित है। उसमें अपना कहने जैसी कोई चीज़ नहीं है। मानसिक दौर्बल्य, नाना का कठोर नियंत्रण एवं स्वयं की शंकालुता उसकी चरित्र-विधायक प्रवृत्तियाँ रही हैं।

सवेर सार *(सं० क्र०)*

'सवेर सार' करतार सिंह दुग्गल (दे०) की कहानियों का प्रथम संग्रह है। इनमें पोठोहार (रावलपिंडी और आसपास) के जीवन का बड़े विस्तार से प्रभावशाली निरूपण किया गया है। 'सवेर सार' नामक कहानी में सूर्योदय के साथ जीवन में आने वाली ताज़गी तथा नये सिरे से कार्यरत होने की लग्न का अत्यंत प्रभावशाली चित्र अंकित हुआ है। दिन निकलते ही एक व्यक्ति के मन में किस प्रकार विभिन्न भावों की फ़िल्म चलने लगती है—इसका बड़ा ही सुंदर वर्णन है। इसी कहानी के आधार पर 'संग्रह' का नामकरण हुआ है।

'त्रेल तुपके', 'कुदरत दा कानून', 'पंजगीटड़ा' इस संग्रह की अन्य प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। आधुनिक कहानी-शिल्प की दृष्टि से इस संग्रह में कई नये प्रयोग किए गए हैं। 'सवेर सार' शीर्षक कहानी चेतना-प्रवाह की शैली में लिखी गई है। आधे से अधिक कहानियों में रुचि का केंद्रबिंदु घटना-विकास नहीं अपितु भावों का सूक्ष्म तथा अर्थपूर्ण चित्रण है।

सवैया *(पं० पारि०)*

सवैया एक छंद है जो वार्णिक भी होता है और मात्रिक भी। वार्णिक सवैया चार चरणों का होता है। प्रत्येक चरण का प्रथमार्द्ध 12 वर्णों का होता है और दूसरे में कभी ग्यारह और कभी बारह वर्ण होते हैं। उदाहरणतः—

उस सावंल बाझ उदास होई,
अखिआं विच नींद न आए सखी।
कंडिआं वांगर फुल सेज चुभे,
बेले जिउं महल उराए सखी।
दिन रैण सुदैणां दे हाल फिरां,
मैनूं खाण ते पीण ना भाए सखी।
नीं मैं घोल घतां जिंदड़ी उस तों,
जेड़ा रांझण नाल मिलाए सखी।

(मोहनसिंह—दे०)

मात्रिक सवैया भी चार चरणों का होता है। परंतु पंजाबी के कवियों ने चार से अधिक चरणों के सवैये भी लिखे हैं। इसमें प्रत्येक चरण में 31 मात्राएँ होती हैं और 16 तथा 15 मात्राओं पर यति होती है।

सवैया *(हिं० पारि०)*

बाईस से लेकर छब्बीस वर्णों तक के वृत्त 'सवैया' कहलाते हैं। इस छंद के मुख्य भेद मदिरा, चकोर, मत्तगयंद, अरसात, किरीट, दुर्मिल, सुंदरी आदि होते हैं। ये सवैया छंद प्रायः सात या आठ गणों से बनते हैं। यहाँ पर दुर्मिल सवैया का उदाहरण दिया जा रहा है, जिसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं। इसका दूसरा नाम 'चंद्रकला' भी है। उदाहरण इस प्रकार है—

तड़पै तड़िता चहुँ ओरन ते, छिति छाइ समीरन की लहरैं,
मदमाते महागिरि-शृंगन पै, गन मंजु मयूरन के कहरैं।
इनकी करनी बरनी न परै, मगरूर गुमानन सों गहरैं,
घन ये नभ मंडल में छहरैं घहरैं कहुँ जाय कहूँ ठहरैं॥

ससुई-पुन्हूँ *(सिं० पा०)*

ससुई और पुन्हूँ एक प्रसिद्ध सिंधी-प्रेमगाथा के पात्र हैं। ससुई का जन्म एक ब्राह्मण के घर में हुआ था, परंतु भाग्य-चक्र के कारण उसका पालन-पोषण भँभोर के मुहम्मद नामक एक धोबी के यहाँ हुआ। यौवनावस्था में पदार्पण करने पर ससुई के सौंदर्य की प्रशंसा चारों ओर होने लगी। कच-मकरान (बलोचिस्तान) का शाहज़ादा पुन्हूँ भी सुंदरता में अद्वितीय था। भाग्य ने ससुई और पुन्हूँ को मिलाया, दोनों का विवाह हुआ। परंतु पुन्हूँ के पिता को यह स्वीकृत न था कि उसका पुत्र एक धोबिन के प्रेमपाश में फँस कर उसके पास ही रहने लगे। इसके फलस्वरूप पुन्हूँ के भाई एक रात पुन्हूँ को भँभोर से भगाकर उसे अपने देश वापिस ले गए। ससुई अपने प्रियतम के वियोग में विह्वल होकर उसे पाने के लिए घर को त्याग कर निकल पड़ी और पहाड़ों और जंगलों में भटकते-भटकते मर गई। इसी बीच पुन्हूँ भी ससुई से मिलने के लिए अपने पिता की क़ैद से भाग निकला। रास्ते में जहाँ ससुई की मृत्यु हुई थी वहाँ पहुँचने पर जब उसे अपनी प्रियतमा के देहावसान की जानकारी हुई तो उसके प्राण-पखेरू एकदम उड़ गए। सूफ़ी-संत कवियों ने ससुई को भक्त, और पुन्हूँ को परमात्मा के रूप में वर्णित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सिंधी-साहित्य में कई स्थानों पर इन अमर प्रेमियों के संदर्भ मिलते हैं।

सस्सी-पुन्नूं *(पं० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती का पूर्वार्ध]

प्रसिद्ध सूफ़ी कवि हाशम (दे०) की चार क़िस्सा-कृतियों में 'सस्सी-पुन्नूं' को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। अट्ठाईस मात्राओं वाले चार-चार चरणों के केवल 126 छंदों की इस लघु रचना में आदम जान की पुत्री सस्सी और अली होत के पुत्र पुन्नूं के प्रेम की दुःखांत कथा है। अनिष्ट घड़ी में जन्म लेने के कारण सस्सी को अपार धन-राशि सहित एक संदूक़ में बंद कर नदी में प्रवाहित कर दिया गया। वह निःसंतान धोबी अत्ता के हाथ लगी जिसने बड़े लाड़-प्यार से उसका लालन-पालन किया। स्वच्छंद विहारिणी सस्सी-पुन्नूं की एक प्रस्तर-प्रतिमा पर मुग्ध हो गई और परिवार तथा समाज के विरोध की उपेक्षा कर अपने प्रेमी से विवाह कर लिया। नायक के परिवार को यह बुरा लगा और वे लोग विवाह क दूसरे ही दिन छलपूर्वक पुन्नूं को लौटा ले गए। वियोग संतप्ता सस्सी प्रियतम की खोज में घर से निकल पड़ी और तप्त मरुस्थल में भटकते-भटकते मर गई। उसे खोजता हुआ पुन्नूं भी उसी मरुस्थल में खो गया। इस संपूर्ण रचना पर नायिका का चरित्र छाया हुआ है। नायक सहित अन्य सभी पात्र मौन दर्शक मात्र प्रतीत होते हैं। सरल एवं प्रचलित फ़ारसी शब्दों से मिश्रित केंद्रीय पंजाबी में लिखित इस रचना में भारतीय परंपरा का उपमान-विधान है। हाशम की रचना में वारिसशाह (दे०) जैसा विस्तार नहीं है परंतु अपनी कसी हुई संहित शैली के द्वारा पाठक के हृदय में उनकी पैठ कहीं अधिक गहरी है।

सहजानुभूति *(पारि०)*

सहजानुभूति (इंट्यूशन) को, जिसके लिए हिंदी में 'प्रातिभज्ञान' और 'स्वप्रकाशज्ञान' शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, सृजनात्मक शक्ति मानने वालों में बर्गसाँ, क्रोचे और ज़्याक मारितें प्रमुख हैं। बुद्धि और ऐंद्रिय बोध से भिन्न इसे प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि कहा गया है जिसके द्वारा कलाकार अपने अंतर्मन में वस्तु का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण कर लेता है। क्रोचे ने इसे आंतरिक अभिव्यंजना माना है जो बिंब (दे०) रूप होती है तथा सौंदर्य-तत्त्व को जन्म देती है। इसी पर इसका प्रसिद्ध समीकरण स्थित है: कला (दे०) = सहजानुभूति (दे०) = अभिव्यंजना = सौंदर्य। पर सहजानुभूति को ही कला मानना संगत नहीं, क्योंकि कला मूलतः कृतित्व है जिसमें सहजानुभूति को कलाकृति के रूप में रूपायित किया जाता है। संस्कृत-काव्य-शास्त्र में निरूपित 'प्रतिभा' और सहजानुभूति में पर्याप्त साम्य है—दोनों बुद्धि एवं ऐंद्रिय संवेदनों से परे हैं, दोनों का संबंध प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि से है, जो कवि-मानस में सहसा त्वरित वेग से काव्य-विषय को प्रकाशित कर देती है।

सह्रुलबयान, मसनवी *(उर्दू० कृ०)*

दे० मसनवी सह्रुलबयान।

सहस्रबुद्धे, पु० ग० *(म० ले०)*

ये वैज्ञानिक दृष्टि वाले निबंधकार एवं आलोचक हैं। इन्होंने नवीन मानव-मूल्यों की युक्तिसंगत विवेचना 'विज्ञानप्रणीत समाज-रचना' नामक निबंध-संग्रह में की है। बहुतों को बहुत सुख मिले इस व्यापक मानवीय मूल्य के ये समर्थक हैं। कतिपय निबंधों में इन्होंने प्रायोगिकता, बुद्धिवाद, समता, व्यक्ति-स्वातंत्र्य आदि आधुनिक सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन किया है। आध्यात्मिक, मानसिकता और शारीरिक सुख की श्रेष्ठता का क्रम इन्हें मान्य नहीं है। इनके अनुसार आध्यात्मिक सुख हीन कोटि का है; मानसिकसुख शारीरिक सुख से अवश्य ही श्रेष्ठ है। 'स्वभावलेखन' शीर्षक शोध-प्रबंध पर इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। 'साहित्यातीत जीवनभाष्य' इनका साहित्यशास्त्र-संबंधी ग्रंथ है जिसमें ऑर्नल्ड द्वारा दी गई साहित्य की परिभाषा 'काव्य-जीवन की आलोचना है' के समर्थन के लिए अनेक उदाहरण दिए गए हैं।

इन्होंने 'सत्याचे वाली' नामक नाटक तथा कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। कहानियों में सामाजिकता का तत्त्व उभरा है। 'पतिहत्या', 'लपलेले खडक' आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

सह्याद्रि वर्णन *(म० कृ०)* [रचना-काल—1332 ई०]

इस काव्य के रचयिता हैं श्री खलोव्यास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर के पाँच अवतारों में 'दत्तात्रेय' की गणना है। महानुभाव पंथ के मान्य अवतार श्री दत्तात्रेय का यह 'लीलाचरित्र' है। 'सह्याद्रि' इनका लीलास्थान है। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर इस काव्य की रचना की गई है।

सांकृत्यायन, राहुल *(हिं० ले०)* [जन्म—1893 ई०, मृत्यु—1963 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ ज़िले के पनदहा ग्राम में हुआ। ये श्री गोवर्द्धन पांडेय की संतान थे जिन्होंने इनका नाम केदारनाथ रखा था। राहुल नाम तो 1920 ई० में उस समय पड़ा जब इन्होंने बौद्ध धर्म अपनाया। इससे पूर्व ये रामोदर स्वामी के नाम से भी जाने जाते थे। सांकृत्य गोत्री होने के कारण ये सांकृत्यायन कहलाए। ये बहुभाषाविद् और महापंडित थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तिब्बती, चीनी, जापानी, सिंहली, रूसी, अँग्रेज़ी, हिंदी आदि विविध भाषाओं पर इन्हें अद्भुत अधिकार था। इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, धर्म, साहित्य आदि विविध विषयों पर 150 से अधिक पांडित्यपूर्ण ग्रंथों की रचना करके इन्होंने हिंदी भाषा तथा साहित्य की श्रीवृद्धि करने के साथ-साथ अपनी अपूर्व मेधा का भी परिचय दिया है। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' (उपन्यास); 'वोल्गा से गंगा' (कहानी-संग्रह); 'घुमक्कड़शास्त्र' तथा 'एशिया के दुर्गम भूखंडों' में (यात्रा-साहित्य); पाँच भागों में निबद्ध 'मेरी जीवन यात्रा' (आत्मकथा साहित्य); 'दर्शन-दिग्दर्शन' (धर्म तथा दर्शन); 'मध्य एशिया का इतिहास' (इतिहास); 'तिब्बती व्याकरण' (व्याकरण), आदि इनकी कतिपय उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। लेखों, निबंधों तथा वक्तृताओं की संख्या तो हज़ारों तक पहुँचती है। राहुल जी का साहित्य उनके व्यापक एवं गंभीर अध्ययन, विस्तृत जीवन-अनुभव तथा तीक्ष्ण बुद्धि का फल है। प्राचीन इतिहास तथा वर्तमान जीवन के अछूते प्रसंगों का ममस्पर्शी उद्घाटन, असाधारण के स्थान पर साधारण को प्रश्रय तथा विषयानुकूल सीधी, सरल एवं अनलंकृत भाषाशैली का प्रयोग इनके लेखन की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

सांख्यकारिका *(सं० कृ०)* [रचना-काल—200 ई० पू०]

'सांख्यकारिका' के लेखक ईश्वर कृष्ण हैं। 'सांख्यकारिका' में 73 कारिकाएँ हैं। 'सांख्यकारिका' पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं, जिनमें 'माठरवृत्ति', 'गौड़पादभाष्य', 'जयमंगला', 'चंद्रिका', 'तत्त्वकौमुदी', 'युक्तिदीपिका' तथा 'सुवर्णसप्ततिशास्त्र' प्रमुख हैं।

'सांख्यकारिका' के अंतर्गत मूलतया तीन तत्त्व स्वीकार किए गए हैं। ये तत्त्व—'व्यक्त', 'अव्यक्त' एवं 'ज्ञ' हैं। इनमें 'ज्ञ' चेतन, 'अव्यक्त' मूला प्रकृति एवं 'व्यक्त' प्रकृति का व्यक्त रूप है। व्यक्त प्रकृति के महत्, अहंकार, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गंधतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रा, पृथिव्यादि पंचमहाभूत, पंचज्ञानेंद्रियाँ, पंच कर्मेंद्रियाँ तथा मन आदि 23 रूप हैं। इस प्रकार सांख्य में उक्त 23 तत्त्वों के साथ अव्यक्त प्रकृति एवं 'ज्ञ' को मिला कर 25 तत्त्व स्वीकार किए गए हैं।

सांख्यदर्शन में आत्मा के स्थान पर 'पुरुष' को स्वीकार किया गया है। सांख्यदर्शन वेदांत दर्शन की तरह एकात्मवादी न होकर पुरुषबहुलवाद सिद्धांत का प्रतिपादक है। इसमें पुरुषबहुलवाद के अनुसार अनेकविध विषयों के भोक्ता पुरुषों की अनेकता स्वीकार की गई है। कार्य-कारणवाद की दृष्टि से सांख्य सत्कार्यवाद का समर्थक है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्यरूप जगत् कारणरूप प्रधान (प्रकृति) में अव्यक्त रूप से वर्तमान रहता है। यह भी उल्लेखनीय है कि सांख्य में प्रकृति वेदांत की तरह मिथ्या न होकर सद्रूपा है। इसीलिए सांख्य यथार्थवादी दर्शन कहा जाता है।

यदि विचार कर देखा जाए तो 'सांख्यकारिका' समस्त सांख्य दर्शन का अनुपम ग्रंथ है। इस लघुकाय ग्रंथ के अंतर्गत सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है।

सांगत्य *(क० पारि०)*

सांगत्य कन्नड का एक प्रसिद्ध वृत्त है। इसके बहुल प्रयोग तथा व्याप्ति को दृष्टि में रखकर इसे 'लोक-छंद' भी कहा जा सकता है। इसके प्रथम और तृतीय चरणों में चार विष्णु गण होते हैं एवं द्वितीय और चतुर्थ चरणों में दो विष्णु गण तथा अंत में एक ब्रह्म गण होता है। विष्णु गण के बदले यत्र-तत्र ब्रह्म गण भी हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सांगत्य छंद में लिखित काव्यों में स्वाभाविक माधुर्य और गीतात्मकता होती है। कवियों ने इसके प्रयोग में 'नैपुण्य' और वैविध्य का प्रदर्शन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवराज (1600 ई०) के 'सोबगिन सोवे' में सांगत्य छंद सर्वप्रथम प्रयोग दिखाई पड़ता है। स्व०आर० नरसिंहाचार्य (दे०) जी ने शिशुमायण को इसका प्रथम प्रयोगकर्ता बताया था और कहा था कि शिशुमायण का समय 1223 ई० है। परंतु आज के विद्वान् उनको बाद का कवि मानते हैं, अतः देवराज का काव्य ही इस छंद में लिखित प्रथम काव्य प्रतीत होता है। इसके बाद कन्नड के अनेक कवियों ने सांगत्य छंद का प्रयोग किया है। इनमें तेरकगांबिबोम्मरस, शिशुमायण, निजगुणशिव-योगी (दे०), कनकदास (दे०), रत्नाकरवर्णि (दे०), वादिराज, हेलवनकट्टेगिरियम्मा (दे०), होनम्मा (दे०), का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

'सांगी', अब्दुल हुसैन ख़ान *(सिं० ले०)* [जन्म—1851 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

ये सिंध के अंतिम मीर अथवा टालपुर हाकिमों के वंशज थे। इनके पिता मीर अब्बास अली ख़ान और दादा मुहम्मद नसीर ख़ान को अँग्रेज़ों ने सिंध पर विजय पाने के पश्चात् क़ैद कर कलकत्ता भेज दिया था और वहीं इनका जन्म हुआ था। 1862 ई० में ये सिंध लौटे थे और वहाँ अपने चाचा की निगरानी में ही इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। ये बाद में फ़र्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किए गए थे। अब्दुल हुसैन ख़ान का काव्य 'दीवान सांगी' नाम से दो भागों में प्रकाशित हुआ है। उसमें सिंध के प्राकृतिक और सामाजिक चित्रों के साथ-साथ कवि के जीवन की घटनाओं के भी कई चित्र मिलते हैं। सांगी साहिब के काव्य में शृंगार रस की अधिकता है। इन्होंने कई-नयी उपमाएँ और रूपक अपने काव्य में प्रयुक्त किए हैं जो कवि के दैनिक जीवन की अनुभूतियों पर आधारित हैं। कहीं-कहीं ये अलंकारों के मोह में इतने फँस जाते हैं कि भाव की दृष्टि से इनकी कविता निर्जीव-सी बन जाती है। सांगी की कविताओं में फ़ारसी-शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है, जो भाषा की स्वाभाविकता को नष्ट कर देता है।

साँडेसरा भोगीलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

डा० साँडेसरा बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में गुजराती विभाग के अध्यक्ष हैं। इनकी रुचि अनुसंधान के प्रति रही है और इन्होंने अनेक प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथों का संपादन किया है। नरसिंह (दे० नरसिंह मेहता) से पूर्व के साहित्य की खोज करके उन्होंने उस युग के साहित्य पर प्रकाश डाला है। इनकी प्राचीन साहित्य की 30 संपादित पुस्तकें हैं और अनु-संधान-विषयक लेखों की चार। इनकी शोध-पुस्तकें हैं: 'इतिहासनी केडी', 'वस्तुपालनु विद्यामंडल अने बीजा लेखो', 'संशोधनी केडी' और 'इतिहास अने साहित्य'। गुजरात के शोध साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

सांबशिव रावु, पोतुकूचि *(ते० ले०)* [जन्म—1938 ई०]

श्री सांबशिव रावु समसामयिक जीवन के मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकार एवं कथाकार हैं।

'उदयकिरणालु', 'अन्वेक्षणा', 'एडुरोजुल मजिली' आदि इनके उपन्यास हैं। इनकी रचनाओं में मध्यवर्ग के सामान्य परिवारों से संबंधित अनेक समस्याओं का चित्रण मिलता है। मध्यवर्ग के आर्थिक पतन, पुराने आचार-विचारों तथा मर्यादाओं के बंधनों में पिसकर अपने आपको समय के अनुकूल ढालने में असमर्थ घुट-घुट कर नष्ट होने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न पाने की विव-शता आदि का मार्मिक चित्रण इनकी रचनाओं में मिलता है।

सांवता माली *(म० ले०)* [जन्म—1250 ई०; मृत्यु—1295 ई०]

इनका निवासस्थान था—अरणमेंडी और ये माली का व्यवसाय करते थे। भक्ति-भावना से ओतप्रोत इनके अनेक अभंग मिलते हैं। कहा जाता है कि संत ज्ञानेश्वर (दे०) भी इनसे मिलने गए थे। इन्होंने अपने जीवन में भक्ति और कर्मयोग का अद्‌भुत समन्वय किया था।

साकेत *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (दे०) ने 'साकेत' को अपना कवि-धन स्वीकार किया है। खड़ी बोली के निर्माता कवि का प्रौढ़ कौशल रस महाकाव्य में प्रकट हुआ है। फलतः उसमें काव्यत्व का 'पूरा विकास दिखाई पड़ता है। उसके सृजन की मूल प्रेरणा तो है रामकाव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उपेक्षिता उर्मिला (दे०) का उद्धार परंतु प्रबुद्ध कवि की पंद्रह-सोलह वर्षों की अविचल साधना के कारण' 'साकेत' भारतीय जीवन का भव्य चित्र बन गया है।

द्वादश सर्गात्मक इस महाकाव्य का मूल आधार 'रामायण' (दे०) की प्रख्यात कथा है परंतु 'कवि ने उपेक्षित स्थलों में भावना का रंग भर कर, अप्राकृतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या करके और अस्वाभाविक प्रसंगों के मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित कर कथा के कलेवर को ही बदल दिया है। 'उर्मिला-विरह', 'कैकेयी-पश्चाताप' आदि मार्मिक स्थलों में उसकी असाधारण कारयित्री प्रतिभा के दर्शन किए जा सकते हैं।

'साकेत' का अंगी रस विप्रलंभ शृंगार है परंतु जीवन की विविधता का समावेश होने से अन्य रस भी अंग-रूप में विद्यमान हैं। लंकायुद्ध का वर्णन वीर रस का श्रेष्ठ उदाहरण है। अश्रु-हासमय गार्हस्थ्य जीवन के विविध पक्षों का चित्रण करने में तो कवि को अपूर्व सफलता मिली है। वैचारिक,धरातल पर उसका सांस्कृतिक पक्ष अत्यंत प्रबल है। उसमें जीवन का जो आदर्श चित्रित हुआ है वह त्यागमय भोग का चिरंतन भारतीय आदर्श है। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के चित्रण में सारग्राहिणी कवि-दृष्टि ने भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों की प्रतिष्ठा के साथ ही स्वस्थ विदेशी प्रभावों का भी समन्वय किया है।

'साकेत' का कला-पक्ष भी अपने ढंग से काफ़ी आकर्षक है। कथा-वर्णन में रोचकता, नाटकीयता और मनोविज्ञानिकता का समावेश है, और दृश्य-विधान में कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है। संवाद रोचक और प्रभावशाली हैं और भाषा समृद्ध एवं प्रौढ़ है। संक्षेप में 'साकेत' भारतीय जीवन के चिरंतन आदर्शों का प्रतिनिधि महाकाव्य है। उसकी कथा प्रख्यात होते हुए भी मौलिक उद्भावनाओं से मंडित है। उद्देश्य महत् और शैली गरिमामयी है। सांस्कृतिक आदर्श और काव्य-वैभव के इस दुर्लभ समन्वय ने मैथिलीशरण गुप्त को तुलसी (दे० तुलसीदास) और प्रसाद (दे०) जैसे मनस्वी कवियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया है।

साक्षी *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1913-1930 ई० के लगभग]

इसके लेखक का नाम पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहरावु (दे०) है। ये प्रधानतः एक सफल नाटककार तथा निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके निबंध-संग्रह 'साक्षी' के नाम से 6 भागों में प्रकाशित हुए हैं। समय-समय पर लिखित इन निबंधों की रचना का आरंभ 1913 ई० में हुआ था। उस समय के निबंध 'सुवर्णलेखा' नामक पत्रिका में प्रकाशित होते थे। बीच में कुछ समय तक इनकी रचना रुक गई थी। फिर 1920 ई० से आरंभ होकर 'आंध्र पत्रिका' में इनका प्रकाशन होने लगा था। बाद में स्वतंत्र रूप से इनके संग्रह प्रकाशित हुए।

अँग्रेज़ी में एडिसन और स्टील ने 'स्पेक्टेटर' के नाम से इसी प्रकार के निबंध लिखकर प्रकाशित कराए थे। तत्कालीन समाज की कुरीतियों की हास्य-व्यंग्यपूर्वक आलोचना करना ही इनका लक्ष्य था। निबंध संग्रह का नाम, निबंधों का विषय, इनके अंतर्गत विषय-प्रतिपादन की पद्धति तथा इनका लक्ष्य—सभी दृष्टियों से 'साक्षी' में 'स्पेक्टेटर' का अनुसरण पाया जाता है। लेखक ने एक समाज की कल्पना की है जिसमें 'साक्षी' के अतिरिक्त जंघाल शास्त्री, वाणीदास और बोर्रय्य सेट्टि नामक तीन अन्य सदस्य हैं। उक्त समाज के माध्यम से 'साक्षी' के द्वारा दिए गए भाषणों के रूप में इन निबंधों की रचना की गई है। निबंधों का विषय किसी एक क्षेत्र में सीमित नहीं है। इनमें धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों से संबद्ध विषयों को ग्रहण किया गया है। लेखक का कहना है कि समाज के अंतर्गत पाए जाने वाले सभी प्रकार के अपराध केवल सरकारी कानून के अनुसार दी जाने वाली सज़ा के द्वारा ठीक नहीं किए जा सकते। ऐसे अपराधों के स्वरूप-स्वभाव आदि का विश्लेषण करना, उनसे उत्पन्न होने वाले अनर्थों को स्पष्ट करना तथा उनके प्रति समाज में घृणा पैदा करना ही इन निबंधों का लक्ष्य रहा है। कुरीतियों की आलोचना के अतिरिक्त कविता जैसी कलाएँ, स्वास्थ्य, राजभक्ति आदि अन्य विषय भी इन निबंधों की परिधि के अंतर्गत संगृहीत हैं। इनकी आलोचना-पद्धति तथा व्यंग्य तीक्ष्ण हैं पर कटु नहीं है; हास्य की मात्रा अधिक है पर संयमरहित नहीं है; शैली प्रौढ़ है पर दुर्बोध नहीं है।

तेलुगु के निबंध-साहित्य तथा गद्य-शैली के विकास में लक्ष्मीनरसिंहरावु-कृत 'साक्षी' का योगदान किसी भी दृष्टि से कम महत्त्व का नहीं कहा जा सकता।

सागर देखिछा *(अ० कृ)* [रचना-काल—1945 ई०]

देवकांत बरुवा (दे०) के 'सागर देखिछा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ही लिखी जा चुकी थीं। कविताओं में मानव के शौर्य और प्रकृति पर उसकी जय का वर्णन है। जीवन की नश्वरता और असहायता तथा संग्राम के काले बादल को चीर कर प्रेम की जो क्षणिक प्रभा जीवन को उज्ज्वल कर देती है उसी को स्थायी करने का प्रयास देवकांत जी की कविताओं में देखा जाता है। रौबर्ट ब्राउनिंग की तरह इनकी कविताएँ नाटकीय मोनोलॉग की तरह किसी काल्पनिक व्यक्ति को संबोधित कर कही गई हैं।

साजाहान *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) के 'साजाहान' की कथावस्तु में विस्तार भी है और वैविध्य भी। नाटक का नामकरण अवश्य शाहजहाँ पर है परंतु वह तेज़ी से बदल रही परिस्थितियों एवं परिवर्तनों का निरुपाय द्रष्टा मात्र है। घटनाओं के नियमन का केंद्रबिंदु औरंगज़ेब है। नाटककार नाटक के गठन-कौशल में अवश्य सफल रहा है परंतु उसकी नाट्य-प्रतिभा परिचय-पात्र के चरित्रांकन में व्यक्त हुई है। 'साजाहान' का सशक्त रेखांकन इसका प्रमाण है। पिता के नाते वह अपने बिना माँ के बेटों के प्रति इतना स्नेहातुर एवं द्रवणशील है कि बादशाह शाहजहाँ का न्याय और दंड निष्क्रिय हो जाता है। इसके विपरीत कूटनीति एवं कुटिलता में सिद्धहस्त औरंगज़ेब वारी-बारी सबको परास्त कर देता है। भाइयों को निष्क्रिय करने के बाद अपने पुत्र तक पर भरोसा नहीं करता। वह हृदयहीन, कठोर एवं निष्ठुर है परंतु अंत में उसके मानसिक संघर्ष एवं करुण निवेदन में मानवीय पक्ष उभारने का प्रयास किया गया है। दारा की रुचि एवं निष्ठा जीवन के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मूल्यों पर रही है, इसीलिए वह दुःख-दुर्भाग्य में उलझा रहा है। दिलदार जीवंत पात्र है। वह ऊपर से अनजान-मूर्ख सा लगता है परंतु उसकी तात्त्विक एवं सच्ची वातें उसकी सूक्ष्म बुद्धि की परिचायक हैं। नारी पात्रों में जहाँनारा में पिता के प्रति त्याग एवं स्नेह है। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि औरंगज़ेब के छद्म-छल को पकड़ने एवं समझने में तेज़ रही है। पियारा एक कोमल-भावुक स्त्री है जो जीवन को किसी पूर्वग्रह-द्वेष से नहीं विगाड़ना चाहती।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से 'साजाहान' एक दुःखांत नाटक है। भावातिरेक का होना स्वाभाविक है। है। इस पर शेक्सपियर के 'किंगलीअर' का प्रभाव पड़ा है। यह नाटक राय की सर्वोत्कृष्ट रचना ही नहीं, विशिष्ट उपलब्धि भी है।

साजाहान *(बँ० पा०)*

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) का 'साजाहान' (दे०—बँ० कृ०) अदृष्ट विडंबित मानव-जीवन का मर्मंतुद प्रतिवेदन है। मुग़ल सम्राट शाहजहाँ, शिल्पी शाहजहाँ के जीवन के कष्ट-कंटकित अंतिम कतिपय वर्षों को लेकर यह नाटक रचा गया है। शाहजहाँ के पितृहृदय के अपार ममत्वबोध एवं असीम क्षमा-भाव ने उसे चरम लांछना के आवर्त में निक्षेपित किया है। इस लांछना एवं निर्वासन के बीच जो महती सांत्वना की शांत दीपशिखा शाहजहाँ के हृदय में प्रोज्वलित है, वही उसकी सार्थकता है। हृदय के राज्य में अश्रु के संगीत में यह चरित्र नित्य-अभिनंदित है। वहिर्द्वंद्व एवं अंतर्द्वंद्व की अपरूप अभिव्यक्तिमय यह नायक चरित्र प्रतिमुहूर्त जिस करुण रंगीन-पथ का अतिक्रमण करता है वह जीवन को महाजीवन की पूर्णता प्रदान करता है।

सात्त्विक भाव *(सं० पारि०)*

रस (दे०) के चार अंग माने गए हैं—विभाव (दे०), अनुभाव (दे०), व्यभिचारिभाव (दे०) और स्थायिभाव (दे०)। इनमें से अनुभाव के चार रूप माने गए हैं—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। सत्त्व के योग से उत्पन्न कायिक चेष्टाएँ 'सात्त्विक अनुभाव' कहाती हैं—इन्हें 'सात्त्विक भाव' भी कहते हैं। सत्त्व कहते हैं रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन को, और ऐसे मन में उत्पन्न विकारों से स्वतः अर्थात् आयास के बिना-प्रादुर्भूत कायिक प्रक्रिया को 'सात्त्विक अनुभाव' कहते हैं। ये आठ माने गए हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, विवर्णता, अश्रु और प्रलय। यहाँ यह उल्लेख्य है कि स्तंभ और प्रलय की स्थितियों में आश्रय चेष्टाशून्य हो जाता है, किंतु दोनों में अंतर यह है कि स्तंभ की स्थिति में उसे चेष्टा न कर सकने का ज्ञान बना रहता है, और प्रलय की स्थिति में उसे यह ज्ञान नहीं रहता।

साधना *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

दंडिनाथ कलिता (दे०) का यह द्वितीय किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। धूर्त्त प्रतिक्रियावादी और स्वार्थी लोगों के साथ सच्चरित्र आदर्शवादियों का संघर्ष इसमें दिखाया गया है। आदर्शवादी युवक दीनबंधु निर्भीक और निष्ठावान् है। उसके द्वारा स्थापित स्कूल की अध्यापिका प्रभा उसके गुणों पर मुग्ध है। धूर्त्त लोग दीनबंधु को प्रबंध-समिति से हटाकर प्रभा को वशीभूत करना चाहते हैं। प्रभा प्रलोभनों में नहीं फँसती तो उसकी कुत्सा प्रचारित की जाती है। दीनबंधु साहस के साथ षड्यंत्र विफल करता है। उषा नामक एक अन्य लड़की भी दीनबंधु पर गुणासक्त है। माता-पिता द्वारा निश्चित विवाह ठुकराकर उषा दीनबंधु के पथ का अनुसरण करती है। प्रभा स्वयं चेष्टा कर दीनबंधु का विवाह उषा से कराके स्वयं चिरकुमारी-व्रत धारण कर दीनबंधु के आदर्शों को पूरा करने में लग जाती है। कथा की यह परिणति कुछ कृत्रिम रह गई है। एक अन्य स्त्री पात्र रंभा के द्वारा यह बताने की चेष्टा की गई है कि आधुनिक शिक्षा और अबाध स्त्री-स्वतंत्रता हमारे समाज के अनुकूल नहीं है। दीनबंधु को छोड़ अन्य सभी पुरुष-पात्र लंपट दिखाए गए हैं। इस उपन्यास पर गांधीवाद का पूरा प्रभाव है। प्रेमचंद (दे०) के 'प्रेमाश्रम' से इसकी तुलना की जा सकती है। यह तत्कालीन असमीया-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है।

साधारणीकरण *(पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र में विवेचित काव्यस्वरूप की प्रक्रिया से संबद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत। 'साधारणीकरण' का सामान्य अर्थ है साधारण बनाना। काव्य के संदर्भ में इसका अर्थ हुआ—काव्य में वर्णित पात्रों तथा काव्य-निबद्ध कवि-भाव का अपना वैशिष्ट्य खोकर देश-काल-व्यक्ति, आदि की चेतना से मुक्त सहृदय मात्र के स्तर पर सामान्यीकृत होना। यह एक प्रकार से कवि-भाव के प्रमाता की चेतना तक संप्रेषण की प्रक्रिया है जिसमें एक ओर कवि द्वारा भाषा के विशिष्ट प्रयोग तथा दूसरी ओर प्रमाता की अपनी सांस्कृतिक ग्राहिका शक्ति द्वारा सभी प्रकार की परिबद्धताएँ और विशिष्टताएँ नष्ट होकर प्रमाता के लिए उसके अपने साधारण स्तर पर आस्वाद का विषय बन जाती हैं।

सिद्धांत-रूप में 'साधारणीकरण' के प्रवर्तन का श्रेय भट्टनायक (दे०) को दिया जाता है जिन्होंने रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया के विवेचन के क्रम में अपनी मौलिक प्रकल्पना—'भावकत्व'-व्यापार की स्थापना के साथ ही प्रथम बार 'साधारणीकरण' शब्द का प्रयोग किया। उनके अनुसार 'विभावादि का साधारणीकरण' होता है; यह वस्तुतः 'भावकत्व'-व्यापार ही है जिसके द्वारा रस (दे०) के विभिन्न अंग अपनी विशिष्टता खोकर आस्वाद का विषय बन जाते हैं। अभिनवगुप्त (दे०) ने विभावादि से आगे बढ़कर 'स्थायिभाव' (दे०) के 'साधारणीकरण' को रेखांकित किया। उनके अनुसार 'विभाव आदि के साधारणीकरण' के फलस्वरूप स्थायिभाव देशकाल के बंधनों और व्यक्ति-संसर्गों से मुक्त हो जाता है। यह प्रक्रिया, अभिनवगुप्त के अनुसार, काव्य की व्यंजना-शक्ति द्वारा संपन्न होती है। कविराज विश्वनाथ (दे०) का मत उपर्युक्त दो मतों से कुछ भिन्न है। उन्होंने यों तो सभी रसांगों—विभावादि और स्थायी का साधारणीकरण माना है, किंतु वे इस संपूर्ण प्रक्रिया में आश्रय के साथ प्रमाता के तादात्म्य को अनिवार्य मानते हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र के अंतिम समर्थ आचार्य जगन्नाथ (दे०) ने 'साधारणीकरण'-सिद्धांत को तो यद्यपि यथावत् स्वीकृति प्रदान नहीं की, तथापि उन्होंने दार्शनिक शब्दावली में एक प्रकार के 'भ्रम' अथवा 'भावना के दोष के कारण प्रमाता द्वारा काव्य में वर्णित आश्रय के साथ तादात्म्य स्थापित किए जाने का उल्लेख अवश्य किया है। इस प्रकार संस्कृत-काव्यशास्त्र में स्थूलतः तीन प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं: 'विभावादि का साधारणीकरण', 'स्थायिभाव का साधारणीकरण' और 'प्रमाता द्वारा आश्रय के साथ तादात्म्य'। इसके अतिरिक्त भट्टतौत का मत भी उल्लेख्य है: 'नायकस्य कवेः श्रोतुः समानोऽनुभवस्ततः', अर्थात् 'कवि, नायक और प्रमाता—तीनों के भावतादात्म्य द्वारा साधारणीकरण।' हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) के 'साधारणीकरण-सिद्धांत' में भट्टतौत के उपर्युक्त मत की छाया स्पष्टतः विद्यमान है। शुक्ल जी ने 'आलंबन अथवा आलंबनत्व-धर्म के साधारणीकरण को स्वीकार किया है। उनके अनुसार कवि द्वारा आलंबन के वर्णन की विशिष्ट रीति उसके रूप की विशिष्टता को अक्षुण्ण रखते हुए भी शीलचारित्र्य आदि की उत्कृष्टता के कारण प्रमाता के मन में भी वैसा ही भाव उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार शुक्ल जी ने नैतिकतावादी अपने विशिष्ट जीवन-दर्शन के अनुरूप आश्रय से आगे बढ़कर आलंबन और उससे भी आगे 'आलंबनत्व-धर्म के साधारणीकरण' की प्रकल्पना की जो काव्य के क्षेत्र को अत्यंत सीमित कर देती है। आलंबन के व्यक्तित्व के अक्षुण्ण रहते 'साधारणीकरण' संभव ही नहीं है, दूसरे लोक-प्रच-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लित अथवा धर्मादर्श में स्थापित आश्रय-आलंबन से भिन्न 'चरित्र का साधारणीकरण' भी प्रमाता के विशिष्ट संस्कारों के कारण नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो कवि की निजी दृष्टि पात्रों के स्वरूप में मौलिक उद्‌भावना नहीं कर सकती, या यदि वह ऐसा करती है तो वह साधारणीकरण शक्ति से संपन्न कवि ही नहीं है।

डा० नगेंद्र (दे०) ने शुक्ल जी के सिद्धांतें की इन सीमाओं का उल्लेख करते हुए केवल 'विभावादि के साधारणीकरण' को अमान्य ठहराया है। उनके अनुसार 'कवि की अपनी अनुभूति का साधारणीकरण' होता है। इस मत के अंतर्गत विभावादि के विशिष्ट आदर्श अथवा पारंपरिक रूप के होने या न होने से 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया में कोई भी व्याघात उपस्थित नहीं होता। डा० नगेंद्र के अनुसार 'साधारणीकरण' का आधार है 'भाषा का भावमय प्रयोग'। इस प्रकार की भाषा का प्रयोक्ता संवेदनशील कवि 'मानव-सुलभ सहानुभूति' के द्वारा प्रमाता मात्र में अपने काव्य में अभिव्यक्त अनुभूति को पुनः उद्‌बुद्ध कर सकता है।

साधुकथा *(अ० पारि०)*

असमीया में लोककथा को 'साधुकथा' कहते हैं। आधुनिक कहानी से पार्थक्य यह है कि ये कथाएँ सदा ही यथार्थवादी नहीं होतीं, इनमें कहीं-कहीं अलौकिकता रहती है। कल्पना की मात्रा भी यथेष्ट हो जाती है। इसकी मुख्य विशेषता है मानव का सरल विश्वास और अनुभूति का प्रकाश। 'तेजीमला', 'तुला आरुतेजा', 'पाणेशै' और 'चंपावती' करुण साधुकथाएँ हैं। 'बूढ़ा आरु बूंढ़ी', 'वामुन आरु लिटिंकाइ', 'रजा (अर्थात् राजा जो कि सर्वदा विक्रमादित्य होता है) आरु मंत्री' आदि साधारण साधु-कथाएँ हैं। किसी-किसी में भूत-प्रेतों का वर्णन होता है, किसी-किसी में पशु-पक्षी मानववत आचरण करते हुए दिखाए जाते हैं। कोई-कोई साधु-कथा प्राकृतिक दृश्यों का कारण बताने का प्रयास करती है। जैसे कि आकाश ऊँचा क्यों है? किसी कथा का प्रेरणा-स्रोत पुराण हैं, किसी का जन-जाति का आख्यान। ऐसी भी कथाएँ हैं जो दूर-दूर देशों में प्रचलित कथाओं से साम्य रखती हैं।

साधु, प्रो० श्यामलाल *(कश्० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

मेधावी छात्र, अँग्रेज़ी में एम० ए० पास किया। अँग्रेज़ी पत्रकार-संपादक भी रहे। कालेजों में अँग्रेज़ी के प्राचार्य रहे और अब प्रधानाचार्य हैं। इनकी अँग्रेज़ी की पुस्तक 'फ़ोक टेल्ज़ फ़्रॉम कश्मीर' पर इन्हें 1965 में राज्य की अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ। कश्मीरी में इनका 'बीरबल' नाम का नाटक और 'वुच्छ प्रंग' नाम की विज्ञान-संबंधी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन दोनों प्रकाशनों पर इन्हें क्रमशः राज्य के कल्चरल विभाग तथा यूनेस्को से पुरस्कार प्राप्त हुए। इनकी कश्मीरी कहानियों का 'क़सास' नाम का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा ठेठ कश्मीरी है, और शैली ऋजु। इनकी कहानियों में जहाँ मनोवैज्ञानिक अध्ययन की झलक मिलती है वहीं उनमें मनुष्य-स्वभाव की बारीकियों का विश्लेषण भी मौजूद है।

साने, गीता *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

मराठी उपन्यास को सामाजिकता की ओर मोड़ने के लिए प्रसिद्ध श्रीमती साने की रचनाओं में विभावरी शिरूरकर (दे०) की रचनाओं के समान न तो भावोत्कटता है और न उनका कला-पक्ष ही समृद्ध है, परंतु विचार-पक्ष निश्चय ही अधिक प्रगतिशील है। स्त्री की समस्याओं एवं करुण स्थिति का मार्मिक चित्रण करने के साथ इन्होंने स्त्री-स्वातंत्र्य पर बल दिया है। स्त्री-जीवन से संबद्ध इनके उपन्यास राजनीति और आर्थिक विश्लेषण की ओर मुड़ जाते हैं। कहीं कामुक पुरुष द्वारा स्त्री पर किए गए अत्याचार का चित्रण है तो कहीं प्रेमी और पति के बीच मानसिक द्वंद्व में झूलती युवती का अंकन और मनोविश्लेषण है। 'धुकें' उपन्यास में इन्होंने स्पष्ट कहा है कि अछूतों का उद्धार आर्थिक स्वतंत्रता के बिना नहीं हो सकता, केवल मानवतावादी दृष्टिकोण से इस समस्या का हल नहीं हो पाएगा। इस प्रकार इनके उपन्यासों में पारिवारिक जीवन पर राजनीतिक और सामाजिक स्थिति के प्रभाव का चित्रण प्रमुख है।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'निखळलेली हिरकणी' (निखरी हीरकणी), 'वठलेला वृक्ष' (सूखा वृक्ष), 'लतिका'. 'दीपस्तंभ'।

साने गुरुजी *(म० ले०)* [जन्म—1899; मृत्यु—1950 ई०]

त्याग, सेवा, श्रद्धा, परोपकार आदि के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपूर्ण जीवन अर्पित करने के कारण 'आधुनिक संत' कहे जानेवाले पांडुरंग सदाशिव साने का जीवन माता की छत्र-छाया में बीता और घोर दारिद्र्य में भी माँ के शिक्षा-संबल ने उन्हें लड़खड़ाने नहीं दिया। 1930 ई० के राजनीतिक आंदोलन में ही नहीं, बाद के सभी आंदोलनों में भाग लेने के कारण इन्हें कई बार कारावास की यंत्रणाएँ सहनी पड़ीं, वहीं इन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखीं और गांधी के समान उपवास भी किए। बच्चों के लिए कथाएँ और उपन्यास लिखने के अतिरिक्त इन्होंने भारतीय संस्कृति, समाजवाद आदि पर पुस्तकें लिखीं और कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों का संपादन किया। अनेक अँग्रेज़ी-ग्रंथों का अनुवाद करने का भी श्रेय इन्हें प्राप्त है। कुल मिला कर इन्होंने 80 पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 20 अनुवाद हैं।

इनके उपन्यासों की विशेषताएँ हैं—सात्त्विक वातावरण, उदात्त विचार, संस्कृति के रम्य चित्र, करुण रस का उत्कर्ष, कला का अकृत्रिम सौंदर्य, गद्य-काव्य जैसी शैली, राष्ट्रीय एकता का संदेश, समाज की रूढ़ियों का विरोध। कला के सौंदर्य पर इनकी दृष्टि नहीं है अतः उपदेशमयता-जन्य शुष्कता, पुनरुक्ति, अतिशयोक्ति, अनावश्यक विस्तार, भाव-विविधता एवं गंभीरता का अभाव, व्याख्यान देने की प्रवृत्ति और लंबे-लंबे संवाद, सुभाषितों की लड़ी आदि अनेक दोष आ गए हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त इन्होंने कविताएँ तथा जीवनी-ग्रंथ भी लिखे हैं।

'श्यामची आई', 'श्याम', 'आस्तिक', 'रामाचा शेला', 'संध्या' इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

सॉनेट *(बँ० प्र०)*

सॉनेट या चतुर्दशपदी गीत की रचना सर्वप्रथम भारत में बँगला भाषा में हुई। चौदह पंक्तियों में लिखा जाना ही सॉनेट की एकमात्र विशेषता नहीं है। चरण-संख्या की तरह उसका छंद भी सुनिर्दिष्ट है जिसमें तुक का बंधन अर्थात् अंत्यानुप्रास की एक विशेष विधि है जो इस प्रकार है: कखखक, कखखक, गघड, गघड। अंतिम छह पंक्तियों में कभी-कभी गघग घगघ या गघगघ अथवा गघघघगघ या गघड उघड—यह तुक-बंधन भी ग्रहण किया जाता है। बँगला में चतुर्दशपदी के प्रवर्तन का उल्लेख करते हुए प्रमथ बाबू ने कहा है कि कलियुग के धर्म की तरह अर्थात् बगुले की तरह कविता एक चरण में खड़ी नहीं हो सकती, उसे द्विपदी, त्रिपदी या चतुष्पदी बनना पड़ता है। सामान्यतः कविता की यह तीन प्रचलित मूर्तियाँ हैं और इन तीन मूर्तियों के समन्वय से एक स्वतंत्र मूर्ति के निर्माण के लिए ही सॉनेट की सृष्टि हुई है। इसीलिए सॉनेट की आकृति में समग्रता, एकाग्रता तथा संपूर्णता है। त्रिपदी के साथ चतुष्पदी के योग से सप्त-पद प्राप्त होते हैं एवं सप्तपद का द्विगुणित रूप ही सॉनेट है। गीत में जिस भाव की अवतारणा की जाती है उस पर आठ पदों के उपरांत एक विराम पड़ता है एवं यहाँ से कवि दूसरे भाव को, जो प्रथम भाव से संश्लिष्ट होता है, प्रकट करने लगता है। इस तरह सात-सात के स्थान पर आठ-छह पद को ही ग्रहण किया जाता है। अँग्रेज़ी सॉनेट-रचयिताओं ने, इसके विपरीत बारह के उपरांत विराम दिया है और अंतिम दो पदों में भाव परिवर्तित हो गये हैं तो किसी ने चार-चार-दो पद का आधार लिया है यद्यपि यह सब कविता को समग्रता प्रदान करने के लिए ही किया जाता रहा है। बँगला में माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने इसका प्रवर्तन किया और उन्होंने अँग्रेज़ी कवियों की प्रणाली को ही स्वीकार किया है।

सान्याल, प्रबोधकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

प्रबोधकुमार सान्याल बंगाल के उन आधुनिक गिने-चुने उपन्यासकारों में से हैं जिन्होंने कहानी-उपन्यास के अतिरिक्त भ्रमण-कथा लिखकर अभूतपूर्व जनप्रियता प्राप्त की है। इनकी दृष्टि पथिकों की दृष्टि रही है। दुर्गम हिमालय-भ्रमण के अनुभवों को रोमानी विरह का रूप देकर इन्होंने 'महाप्रस्थानेर पथे' (1937) की रचना की थी और यही इनकी सर्वाधिक जनप्रिय कृति है। इनकी दूसरी प्रसिद्ध भ्रमण-कहानी है 'देवतात्मा हिमालय'। पथिकों की दृष्टि रहने के कारण इन्होंने अपने उपन्यासों में पात्रों के सर्वांगीण चित्रण की अपेक्षा बहु-चरित्रों के क्षणिक निरूपण एवं घात-प्रतिघात की वर्णना में ही दक्षता का परिचय दिया है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास निम्नलिखित हैं: 'प्रियबांधबी' (1933), 'आलोआर आगुन' (1937), 'नद ओ नदी' (1940), 'वनहंसी', 'पुष्पधनु', 'बंदी विहंग', 'हासुबानु' आदि।

इनके प्रारंभिक उपन्यासों में रोमानी प्रेम के अनुकूल परिवेश की रचना की गई है। परिणति में समझौतावाद के आधार पर यथार्थ के स्थान पर आदर्श की स्थापना है। 'कलरव', 'नवीन युवक' आदि उपन्यासों में इन्होंने विशिष्ट मनोभंगी की सहायता से सामाजिक नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अतःसार-शून्यता का उद्घाटन किया है। इनके उपन्यासों में सबसे प्रसिद्ध है 'हासुबानु' 1947 ई० के देश-विभाजन एवं सांप्रदायिक दंगों की पटभूमिका में इन्होंने हिंदू-मुसलमान के पारस्परिक मतभेद को महत्वहीन करार देते हुए मानवतावाद की जयघोषणा की है—इनके इस सिद्धांत की अभिव्यक्ति नहीं, व्यंजना ही हुई है। 'हासुबानु' का चरित्र बँगला उपन्यास की स्थायी संपदा है।

इनके कहानी-संग्रहों में 'चेना ओजाना' (1931), 'निशिपद्म' (1933), 'अविकल' (1933), 'कयेक घंटा मात्र' आदि प्रसिद्ध हैं। कहानियों में प्रबोध-बाबू ने व्यंग्यात्मक मनोभाव एवं शिल्पोत्कर्ष का सुंदर परिचय दिया है। भाषा पर इनका असामान्य अधिकार है और अपनी प्रत्येक कृति में इन्होंने अपने इस अधिकार का सदुपयोग किया है।

सापना भारा *(गु० कृ०)*

गुजराती एकांकी का कलात्मक रूप कवि उमाशंकर जोशी (दे०) के यथार्थवादी एकांकी संग्रह 'सापना भारा' (1932) में दृष्टिगोचर होता है। इसमें ग्रामीण सामाजिक जीवन की विकृतियों और विरूपताओं के सर्वथा वास्तविक चित्र हैं। 'सापना भारा', 'बारणे टकोरा', 'खेतरने खोले', 'केडलां' इत्यादि एकांकियों में जोशी जी की पैनी दृष्टि, वैयक्तिक अनुभूति, मौलिक चिंतन एवं उत्कृष्ट सर्जन-शक्ति के दर्शन होते हैं। लेखक ने प्रसंगों और पात्रों को पूरे समभाव और सहानुभूति से प्रस्तुत किया है तथा देहातों, समाज की कमज़ोरियों को बड़ी ईमानदारी से उजागर किया है। इस एकांकी-संग्रह के सभी एकांकियों में सुश्लिष्ट वस्तु-विन्यास, सूक्ष्म, द्वंद्वयुक्त चरित्रांकन, विषयानुकूल वातावरण, भाषा-शैली, और संवादयोजना है। नाट्योचित संघर्ष और काव्य-व्यापार का भी इसमें अभाव नहीं है। ग्राम-जीवन के वास्तविक करुण चित्र अंकित करने में लेखक ने ग्रामीण बोली का सहज-स्वाभाविक प्रयोग किया है। गुजराती एकांकी साहित्य में ग्रामीण समाज और उसकी जनपदीय बोली का यह सर्वप्रथम सफल और स्वाभाविक प्रयोग है। इस दृष्टि से यह कृति गुजराती एकांकी-साहित्य में एक सीमा-चिह्न है।

साप्ताहिक हिंदुस्तान *(हिं० पत्र)*

यद्यपि हिंदुस्तान टाइम्स प्रेस के व्यवस्थापक 1936 ई० में ही एक साप्ताहिक हिंदी-पत्र निकालना चाहते थे पर उस समय गलती से उन्हें दैनिक पत्र निकालने की आज्ञा मिली और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का जन्म 2 अक्टूबर 1950 ई० तक टल गया। इसके प्रथम संपादक थे मुकुट बिहारी वर्मा; तीन वर्ष बाद उसका संपादन-भार बाँकेबिहारी भटनागर को सौंपा गया जिन्होंने 15 वर्षों तक अपनी सूझबूझ एवं पत्रकारिता-कौशल से इसका संपादन किया। विचारपूर्ण लेख, कविता, कहानी, धारावाहिक उपन्यास और सामयिक लेखों के साथ-साथ चित्रमय समाचार देकर पाठकों का ज्ञानवर्धन और मनोरंजन करना इसका लक्ष्य रहा है। 'धर्मयुग' (दे०) से इसकी स्पर्धा रही है क्योंकि यह परंपरागत मूल्यों, सुधारवादी नैतिक-सामाजिक दृष्टि का अधिक समर्थक रहा है। बीच में यह कुछ 'डल' हो गया था पर रामानंद दोषी तथा मनोहरश्याम जोशी के प्रयत्नों से अब इसमें पुनः ताज़गी आई है। कुछ-कुछ 'धर्मयुग' के अनुकरण की प्रवृत्ति होने पर भी इसकी अपनी छाप है। महत्वपूर्ण रिपोर्ताज प्रकाशित कर रिपोर्ताज को नये आयाम देने तथा प्रश्नोत्तर-रूप में भेंट-वार्ताओं का संयोजन करने के कारण पत्र-साहित्य के विकास में भी इसका योगदान उल्लेखनीय है।

साबत, डा० कुंतळा कुमारी *(उ० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1935 ई०]

उत्कल-भारती कुंतळा कुमारी साबत के प्रखर व्यक्तित्व, महिमामय नारीत्व, अद्भुत प्रतिभा एवं नैसर्गिक कवित्व से आज भी उत्कल-साहित्य स्पंदित है। गोपबंधु (दे०) के आग्नेय व्यक्तित्व से अनुप्राणित कुंतळा शक्ति और ज्वाला की कवयित्री हैं। डाक्टरी व्यवसाय एवं कवित्वमय अंतर लिये दो भिन्न दिशाओं में परिचालित अपने जीवन की अल्पावधि में इन्होंने जो साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह स्वयं में एक महान उपलब्धि है। इनकी उमड़ती हुई देशभक्ति और आवेगमयी अभिव्यक्ति में तरुणों के लिए आह्वान है, नारी-जागरण का संदेश है।

पिता जी की नौकरी के कारण कुंतळा कुमारी का शैशव बर्मा में बीता। कटक में डॉक्टरी की शिक्षा पूरी कर इन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन दिल्ली में प्रारंभ किया। 28 वर्ष की आयु में ही ये उड़िया-साहित्य में एक सुलेखिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

35 वर्ष की अल्पायु लेकर कुंतळा कुमारी पृथ्वी पर आई थीं फिर भी, इनकी अम्लान प्रतिभा ने उड़िया-साहित्य की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की है।

कुंतळा कुमारी मुख्यतः गीति-कवयित्री हैं। यद्यपि इनकी गीति-कविताओं की अपनी परिसीमा है तथापि सरल आवेगमयी अनुभूति की निर्व्याज अभिव्यक्ति की दृष्टि से इनके गीत अत्यंत सुंदर हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में कुंतळा कुमारी का स्थान नंदकिशोर बळ (दे०) और गोदाबरीश मिश्र (दे०) के बाद आता है। इनके गीतों में अनुभूति की गहराई, भक्ति की सरलता, भावों की व्यापकता, देशभक्ति का उत्साह, पीड़ितों के प्रति करुणा, उन्नत मन की उदात्त भावनाएँ, तथा सर्वोपरि एक निर्मल आत्मा की उज्ज्वल अनुभूति है। 'स्फुलिंग', 'अंजळी', 'अर्चना', 'प्रेम-चिंतामणि' इनकी गीति-रचनाएँ हैं। उपन्यास के क्षेत्र में मध्यम वर्ग का चित्रण कर इन्होंने फकीर मोहन सेनापति (दे०) की परंपरा निभाई है। 'नअतुंडी', 'भ्रांति', 'रघु अरक्षित' (दे०), 'काळी बोहू' इनके उपन्यास हैं।

सामंत सिंहार अभिमन्यु *(उ० ले०)* [समय—1757-1806 ई०]

इंद्रजित के पुत्र अभिमन्यु का जन्म कटक जिले के बाळिआ ग्राम में, एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। सदानंद कविसूर्य ब्रह्मा इनके शिक्षा व दीक्षा गुरु थे। नौ वर्ष की आयु से ही इन्होंने काव्य-रचना प्रारंभ कर दी थी और प्रारंभिक रचनाओं ने ही इनके उज्ज्वल भविष्य की संभावना को स्पष्ट कर दिया था। वेद, दर्शन, पुराण, इतिहास, व काव्य-शास्त्र का इन्हें गहन अध्ययन था। सदानंद व उपेंद्र के काव्यादर्श से ये अनुप्राणित थे।

मध्ययुगीन उड़िया-काव्य-साहित्य को जिन कतिपय साहित्य-महारथियों ने समृद्ध किया है, उनमें विदग्ध कवि अभिमन्यु अन्यतम हैं। इनका काव्य 'विदग्ध चिंतामणि' (दे०) इनके असामान्य पांडित्य, अपूर्व प्रतिभा व बहुशास्त्रदर्शिता का परिचायक है। अनेक विशेषताओं से यह गौरवान्वित है। यद्यपि यह काव्य अपूर्ण है, फिर भी अपनी रसात्मकता व काव्य-वैभव में यह संस्कृत-ग्रंथ 'ललित-माधव' व 'बिदग्ध माधब' की समकक्षता कर सकता है। इसमें कृष्ण व राधा के स्वर्गिक प्रेम का चित्रण हुआ है। यह ग्रंथ अपने वैष्णवीय भाव-तारल्य, छंदों के कमनीय संगीत व व्यापक पांडित्य के कारण रीतिकालीन साहित्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

काल्पनिक कथाओं पर आधारित इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'सुलख्यणा', 'रसवती', 'प्रेमकळा' व 'रसकळा'। प्रथम कवि-जीवन का भावोच्छ्वास इनमें मिलता है।

सामताणी, गुनो *(सिं० ले०)*

गुनो सामताणी बंबई में रहते हैं। इनकी लगभग तीस कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियों के दो संग्रह 'अभिमान' और और 'अपराजिता' नाम से प्रकाशित हुए हैं। 'वापस' नाम से इन्होंने एक उपन्यास भी लिखा है। इनकी आरंभिक कहानियाँ प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित हैं। कुछ समय से रोमानवाद की ओर झुक गए हैं। इनकी कई कहानिवों में मनुष्य के सूक्ष्म मनोभावों का बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रण मिलता है। आधुनिक सिंधी-कहानीकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

सामराज *(म० ले०)* [जन्म—1613 ई०; मृत्यु—1700 ई०]

शिवाजी और उनके पुत्र राजाराम का इन्हें आश्रय प्राप्त था। इन्होंने दो प्रमुख काव्य रचे हैं—'रुक्मिणीहरण' (दे०) और 'मुद्गलाख्यान'। प्रथम रचना में 1140 श्लोक हैं तो दूसरी में 261। इनकी शैली संस्कृत-महाकाव्यों की सर्गात्मक शैली है और भाषा में संस्कृत की प्रचुरता है। काव्यों में श्रृंगार, वीर, भक्ति तथा शांत की धारा प्रवाहित और सरसता के साथ प्रौढ़ता का भी समावेश है।

सामल, प्राणकृष्ण *(उ० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

प्राणकृष्ण सामल बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी सभी में इनकी एक-सी क्षमता प्रकट हुई है। प्रणय के द्वारा सामाजिक, आर्थिक समस्याओं एवं मानसिक घात-प्रतिघात तथा अंतर्द्वंद्व का चित्रण कर ये व्यक्ति और समाज के बीच एक संतुलन लाने की चेष्टा करते हैं। इनके उपन्यास एवं कहानियों में चरित्र और परिवेश-चित्रण प्रमुख होता है। काव्य-नाटिका के क्षेत्र में इनका योगदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्वपूर्ण है। 'हाती का दाँत', 'सहयात्रिणी', 'नीलकमल' (दे०) आदि (उप०); 'सात् दीप' (काव्य); आदि इनकी रचनाएँ हैं।

सामिनाथ शर्मा, वें० *(त० ले०)*

इनका नाम संस्कृत तत्सम शैली में स्वामिनाथ शर्मा तथा ठेठ तमिल में चामिनात चर्मा है। तमिल भाषा की पत्रकारिता, गद्य-लेखन तथा सृजनात्मक साहित्य-रचना इन सभी क्षेत्रों में इस वयोवृद्ध लेखक ने पर्याप्त यश प्राप्त किया है। प्रारंभिक जीवन में ये 'नबचक्ति' (नव शक्ति), 'तेचपक्तन्' (देशभक्त) आदि बीसवीं शती के प्रथम चरण की नामी राष्ट्रवादी पत्रिकाओं में उपसंपादक रहे थे और बाद में समुद्रपार 'रंगून' चले गए थे जहाँ फिर इनके सिद्धहस्त संपादकत्व में 'जोति' नामक तमिल पत्रिका फूली-फली थी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान ये स्वदेश लौटे थे और स्वतंत्र लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

राजनीति, इतिहास, तथा इनसे संबंधित दार्शनिक विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने वाले लेखक के रूप में इनका विशेष नाम है। इस क़िस्म की इनकी रचनाओं में 'चीनाविन् वरलारु' (चीन का इतिहास), 'कांतियार्' (गांधी जी) तथा 'रूसी', 'प्लेटो', 'इङ्गर् सालू' आदि प्रौढ़ विचारकों की 'सोशल कंट्रैक्ट', 'रिपब्लिक' आदि अमर कृतियों के प्रवाहमयी शैली में तमिल रूपांतरों का उल्लेख किया जा सकता है। इनकी मौलिक कृतियों में 'अभिमन्यु' (नाटक) 'ओरङ्क नाटकङ्कल्' (एकांकी), 'कौरिमणि' (लघु कथाएँ) 'अक्ल् पिरिवु' (जीवनी) इत्यादि हैं।

सामिनाद अय्यर, उ० वे० *(त० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

कुंभकोणम के समीप स्थित उत्तमदानपुरम में जन्म। बचपन से ही इनके हृदय में अपनी मातृभाषा तमिल के प्रति अटूट अनुराग था। इन्होंने तमिल प्राध्यापक के रूप में अपनी जीविका प्रारंभ की। तमिल साहित्य के प्रकांड पंडित महाविद्वान मीनाक्षिसुंदरम पिळ्ळै (दे० मीनाक्षि) के शिष्य के रूप में इनका तमिल प्रेम निरंतर विकसित होता रहा और इन्होंने विविध प्रकार से तमिल भाषा और साहित्य की सेवा की।

'पुदियदुम पलैयदुम', 'नल्लुरैक्कोवै', 'निनैवु-मंजरी', 'संघ तमिलुमपिर्काल तमिलुम' आदि गद्य-कृतियों की रचना के साथ-साथ सामिनाद अय्यर ने 'पत्तुप्पाट्टु (दे०), 'ऐंकुरुनूरु' (दे०), 'कुरुंतोगै' (दे०), 'परिपाडल' (दे०), 'पदिट्टुप्पत्तु' (दे०), 'पुरनानूरु' (दे०) आदि संघकालीन कृतियों का संपादन और प्रकाशन किया। तमिल के पंच महाकाव्यों में 'शिलप्पदिकारम्' (दे०), 'मणिमेखलै' (दे०), और 'जीवकचिंतामणि' (दे०) का तथा पंच लघु काव्यों में उपलब्ध तीन—'शूलमणि', 'नील केशी' और 'यशोधर कावियम' का संपादन और प्रकाशन किया। अन्य अनेक साहितियक कृतियों, व्याकरण-ग्रंथों एवं पुराणों का संपादन कर उनके प्रकाशन की व्यवस्था की। हस्तलिपियों के रूप में प्राप्त नाना कृतियों का संपादन-प्रकाशन कर जहाँ उन्होंने कृतियों को नष्ट होने से बचाया वहाँ उन्हें जनता तक पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य भी किया है।

सामिनाद अय्यर ने संघकालीन कृति 'कुरुंत्तोगै' पर सुंदर टीका लिखी है। इनके द्वारा रचित त्यागराज चेट्टियार, कवि गोपालकृष्ण भारती और इनके गुरु महाविद्वान मीनाक्षिसुंदरम. पिल्लै की जीवनी का तमिल के जीवनी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इन्होंने अपने गुरु की जीवनी अत्यंत विस्तार से और विद्वत्तापूर्ण शैली में लिखी है। यह जीवनी दो भागों में क्रमशः 1933 और 1934 ई० में प्रकाशित हुई। इन्होंने 'एन्-चरित्तिरम' (दे०) शीर्षक से आत्मचरित लिखना प्रारंभ किया जो कि तमिल के खोकप्रिय साप्ताहिक 'आनंद विक्टन' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। आकस्मिक मृत्यु के कारण इनका यह आत्मचरित अधूरा रह गया। इसमें उन्होंने अपने 87 वर्ष के जीवन-काल में से आरंभिक 44 वर्षों का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। उस समय तमिल में आत्मचरितों का अभाव था, अत: अपूर्ण होते हुए भी इसका तमिल के आत्मचरित-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इनकी तमिल साहित्य-विषयक सेवाओं से प्रभावित होकर तत्कालीन अँग्रेज़ी सरकार ने इन्हें 'महामहोपाध्याय' और 'दाक्षिणात्य कलानिधि' की उपाधियों से विभूषित किया।

सामी *(सिं० ले०)* [जन्म—1743 ई०; मृत्यु—1850 ई०]

सामी का पूरा नाम भाई चैनराइ बचोमल डतारणी लुंड है। उनका जन्म उत्तर सिंध के प्रसिद्ध नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकारपुर में हुआ था। कुछ विद्वानों ने साभी का जन्म-काल 1730 ई० को माना है। भाई चैनराइ ने अपने गुरु स्वामी मेघराज के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए अपने रचित श्लोकों में सामी (स्वामी) उपनाम का प्रयोग किया है। 'सामीअ जा सलोक' (सामी के श्लोक) नाम से इस संत कवि के श्लोकों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उपलब्ध श्लोकों की संख्या लगभग 3500 है। भाई चैनराइ के श्लोकों पर शंकराचार्य के वेदांत-दर्शन का प्रभाव अधिक दृष्टिगत होता है। सरल सिंधी भाषा में रचित ये श्लोक माधुर्य गुण से ओतप्रोत हैं। सामी सिंधी भक्तिकाव्य में वेदांत-धारा के प्रवर्तक हैं। मध्यकालीन महान् सिंधी-भक्तकवियों में शाह (दे० शाह अब्दुल करीम), सचल (दे० सचल सरमस्त) और सामी की त्रिमूर्ति प्रसिद्ध है।

सामीअ जा सलोक *(सिं० कृ०)*

सिंध के प्रसिद्ध संत कवि सामी (दे०) (1743-1850 ई०) के श्लोकों के 10-12 संस्करण सिंधी में मिलते हैं। ये श्लोक कवि ने गुरुमुखी लिपि में लिखे थे जिन्हें पहले-पहले कौड़ीमल चंदनमल खिलनाणी (दे०) ने अदबी-सिंधी अक्षरों में 1885-1890 ई० में चार भागों में प्रकाशित कराया था। इसके पश्चात् इन श्लोकों के और भी संस्करण निकले हैं। 1947 ई० में शांती शहाणी ने सामी के चुने हुए श्लोकों को अँग्रेज़ी में अनूदित कर उन्हें 'सांग ऑफ़ दी स्प्रिट' नाम से प्रकाशित किया था। विभाजन के पश्चात् परसराम पारुमल ने देवनागरी लिपि में सामी के श्लोक तीन भागों में प्रकाशित किए थे। इन श्लोकों का आलोचनात्मक और अधिक प्रामाणिक संस्करण बंबई के प्राध्यापक भोजराज होतचंद नागराणी ने तीन भागों में प्रकाशित किया। उन्होंने अपने संस्करण में लगभग तीन हज़ार श्लोक विषय के अनुसार विभाजित कर दिए हैं।

साम्य *(बँ० कृ०)*

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) ने जब अपनी पत्रिका 'बंगदर्शन' का प्रकाशन शुरू किया तब बंगाल के अँग्रेज़ी-शिक्षित समाज में मिल के हितवाद एवं कांट के मानवतावाद का बड़ा प्रभाव था एवं उसी के फलस्वरूप बंकिम बाबू ने अपनी पत्रिका में 'साम्य' (1873-75) नामक एक दीर्घ निबंध की रचना की थी। इस निबंध में लेखक ने साम्य की प्रयोजनीयता पर अपना मत दिया है। प्राचीन भारत में वर्ण-वैषम्य के फलस्वरूप सामाजिक वैषम्य का जन्म हुआ था। जातिगत वैषम्य से लेखक का तात्पर्य है जेता एवं विजेता के बीच का वैषम्य। जो जाति राजा (अँग्रेज़) है एवं जो प्रजा है उनमें अधिकारगत वैषम्य है। उपसंहार में बंकिम बाबू ने साम्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि साम्य-नीति से तात्पर्य यह है कि मनुष्य को समानावस्थापन्न होना चाहिए क्योंकि मनुष्यों की आपसी बुद्धि, मानसिक शक्ति, शिक्षा, बल आदि में सदा भेद बना रहेगा, और फलस्वरूप उनकी अवस्थाओं के तारतम्य को कोई रोक नहीं सकेगा। लेखक का कहना है कि आवश्यकता अधिकारगत साम्य की है। किसी में शक्ति है मगर अधिकार नहीं है, इसीलिए वह कुछ कर नहीं सका, ऐसा नहीं होना चाहिए। हरेक की उन्नति का पथ मुक्त और प्रशस्त रहना चाहिए।

सायण *(सं० ले०)* [जन्म—1315 ई०; मृत्यु—1387 ई०]

सायण का उक्त स्थिति-काल डॉक्टर आफ़ेक्ट के मतानुसार है। सायण की माता का नाम श्रीमती तथा पिता का नाम मायण मिलता है। सायण का कर्मक्षेत्र विजयनगर तथा उससे संबंधित प्रदेश है। सायण के तीन गुरु थे : विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ तथा श्रीकंठाचार्य। सायण की प्रमुख रचना वेद(दे०)भाष्य है। इसके अतिरिक्त 'सुभाषित-सुधानिधि', 'प्रायश्चित्त-सुधानिधि,' 'आयुर्वेदसुधानिधि', 'अलंकारसुधानिधि', 'धातुवृत्ति', 'पुरुषार्थसुधानिधि' तथा 'यज्ञतंत्रसुधानिधि' भी सायण द्वारा रचित हैं। सायण का वेदभाष्य समस्त वैदिक साहित्य के अनुशीलन की कुंजिका है। सायण की पद्धति वैज्ञानिक एवं सरल है। सायण के वेदभाष्य की यह विशेषता है कि उन्होंने महत्वपूर्ण शब्दों के एक से अधिक संभव अर्थ देने का प्रयत्न किया है। इससे वेद के अध्येता को वे स्वतंत्र दृष्टि से विचार करने का अवसर प्रदान करते हैं। किंतु कतिपय संकीर्ण दृष्टि वाले समालोचकों ने सायण की उपर्युक्त पद्धति को संदिग्धतापूर्ण कह कर दोषयुक्त माना है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। सायण-भाष्य के बिना वेदों का तात्पर्यबोध कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव है। धर्मशास्त्र एवं अलंकारशास्त्र आदि की दृष्टि से सायण के वेदभाष्येतर ग्रंथ भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारंगधरचरित्रमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक चेमकूर वेंकटकवि (दे०) हैं। ये तंजौर के राजा रघुनायक के सभाकवि थे। इनका काव्य 'विजयविलास' तेलुगु में अत्यंत प्रसिद्ध है। इनका 'सारंगधरचरित्रमु' तीन आश्वासों का एक श्रृंगार-प्रबंध है। कथा इस प्रकार है—सारंगधरुडु (दे०) महाराज नरेंद्रुडु का पुत्र है। उसका विवाह चित्रांगी (दे०) के साथ होने को है पर परिस्थितिवश चित्रांगी राजराजनरेंद्रुडु की पत्नी बन जाती है। फिर भी उसका प्रेम सारंगधरुडु से बना रहता है। इस प्रकार के अनुचित प्रेम तथा चरित्रवान् सारंगधरुडु की करुणामय स्थिति का वर्णन ही प्रस्तुत काव्य का उद्देश्य है। तेलुगु के रंगमंचीय नाटक-साहित्य में, कुछ परिवर्तनों के साथ, यह कहानी अत्यंत प्रचलित है।

सारंगधरुडु *(ते० पा०)*

तेलुगु के 'नवनाथचरित्रमु' नामक द्विपद काव्य में सर्वप्रथम चौरंगी नामक सिद्ध की कथा अभिवर्णित है जिसमें राजनरेंद्रुडु नामक राजा मालव राज्य पर शासन करता था। उनका पुत्र चौरंगी था। वही आगे चलकर ते० सा० में सारंगधर नामक व्यक्ति के रूप में विकसित हुआ है। सारंगधरुडु इस प्रकार एक निजंधरी व्यक्ति है। राजराजनरेंद्रुडु पूर्वी चालुक्य नरेशों में अत्यंत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने राजमहेंद्रवरमु को राजधानी बनाकर वेंगी देश पर राज किया था। कोनेरुनाथकवि, काकुनूरि अप्पकवि (दे० अप्पकवीयमु), चेमकूर वेंकट कवि (दे०), आदि प्राचीन कवियों के द्वारा राजनरेंद्रुडु सारंगधरुडु तथा चित्रांगीवाली त्रिकोणात्मक कथा प्रचार हो चला। लोक-साहित्य में भी यक्षगान आदि में इस कथा का प्रचलन हुआ। आधुनिक काल में सारंगधर तथा चित्रांगी (दे०) के विषम श्रृंगार का अच्छा वर्णन कृष्णमाचार्य-कृत 'विषादसारंगधर' नामक प्रथम तेलुगु-दुःखांत नाटक में किया गया है।

इस प्रकार की कथाएँ अन्य प्रदेशों में भी प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ अशोक, तिष्यरक्षिता तथा कुणाल से संबंधित कथा एवं पूरन भगत की कथा आदि। सारंगधरुडु अपनी विमाता चित्रांगी के अनुचित प्रेमजाल में नहीं फँसा। शील के निभाने में इसने कड़ी यातनाएँ भोगीं। राजा ने अपनी विमाता के विरुद्ध एक शब्द तक नहीं बोला। अपने चरित्रबल के लिए वे अत्यंत विश्रुत हुए।

सारदामंगल *(बँ० ले०)* [रचना-काल—1879 ई०]

सारदामंगल गीतिकाव्यकार बिहारीलाल चक्रवर्ती (दे० चक्रवर्ती) की अन्यतम रचना है। अंतरवासिनी काव्यश्री के प्रति कवि के भावोद्गार की अभिव्यक्ति हुई है इस काव्य में। पाँच सर्गों में बद्ध इस काव्य के पहले सर्ग में काव्य-सरस्वती के आविर्भाव का उल्लेख है। दूसरे सर्ग में खोई हुई काव्य-सरस्वती के लिए कविचित्त का अभिसार वर्णित है। तृतीय सर्ग में कविचित्त का संशय एवं चौथे सर्ग में हिमालय की उदार प्रशांति में कविचित्त का आश्वास-अन्वेषण है। पंचम सर्ग में उसी पुण्य-भूमि में अभिलक्षित आनंदोपलब्धि है। इस प्रकार बिहारीलाल ने इस काव्य में काव्य-सरस्वती के माहात्म्य का गान किया है। बिहारीलाल की सरस्वती सौंदर्यमयी हैं एवं सौंदर्यजगत् में विराजमान हैं। सरस्वती का चित्र कभी देवी तो कभी जननी तो कभी प्रेयसी या फिर कल्याणी के रूप में अंकित किया गया है। अपने मानसलोक में एक आदर्श सौंदर्यजगत् की सृष्टि करते हुए कवि ने अपनी सौंदर्य-लक्ष्मी की पूजा की है। प्राचीन बँगला काव्य-रीति का अनुसरण करते हुए कवि ने इस काव्य का नाम 'सारदामंगल' रखा है और गीत-बहुल एवं गीत-अनुप्राणित होने के कारण यह आधुनिक संदर्भ में गीतिकाव्य है।

'सारदामंगल' में प्रेम की व्याकुलता, अभिमान, विरह, आनंद, वेदना, भर्त्सना आदि विभिन्न अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है। इन्हीं के माध्यम से काव्य के मूल तत्त्वों—सौंदर्य-पिपासा एवं भाव-विभोरता की अभिव्यंजना हुई है। बिहारीलाल ने अपने सौंदर्यध्यान में यथार्थ जगत् एवं जीवन को स्वीकार कर आधुनिक बँगला साहित्य में सर्वप्रथम गीतिकाव्य-रचना की एक रीति का सफलतापूर्वक प्रवर्तन किया।

सारळादास *(उ० ले०)* [समय—अनुमानतः पंद्रहवीं शती ई०]

शूद्रमुनि सारळादास कटक ज़िले के झंकड़ ग्राम के निवासी थे। इनका पहला नाम सिद्धेश्वर माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। देवी 'सारला' के उपासक होने के कारण जन-साधारण में वे सारळादास के नाम से परिचित हुए। ऐसा माना जाता है कि सारळादास सूर्यवंशी राजा कपिलेंद्र देव (पंद्रहवीं शती ई०) के समकालीन थे।

उड़ीसा के व्यास (दे०) आदिकवि के सारळादास का उड़िया-साहित्य में वही स्थान है, जो स्थान ग्रीक साहित्य में होमर तथा अँग्रेज़ी-साहित्य में चौसर का है। सारळादास से उड़िया-साहित्य का विराट् युग प्रारंभ होता है। इनकी रचना का मौलिक प्रभाव उन्नीसवीं शती तक देखा जा सकता है। संस्कृत-ग्रंथों तक सीमित पुराण को सर्वजन सुलभ बनाने, उड़ीसा के जातीय जीवन को अमिट बना देने तथा उड़िया भाषा को बृहद् प्रबंधकाव्य के अनुरूप अभिव्यंजना-शक्ति प्रदान करने का श्रेय सारळादास को है। जिस समय सारळादास ने उड़िया में 'महाभारत' (दे०) लिखा था उस समय भारतीय भाषाओं में 'महाभारत' की रचना नहीं हुई थी।

इन्होंने उड़िया में 'महाभारत' (दे० सारळा-महाभारत) के अतिरिक्त 'बिलंका-रामायण' एवं 'चंडी-पुराण' भी लिखा है। 'महाभारत' वीररस-पूर्ण प्रबंध-काव्य तथा जातीय संस्कृति का एक परिपूर्ण विराट् इति-हास है। कथावस्तु मूल 'महाभारत' पर आधारित होते हुए भी यह एक स्वतंत्र रचना है। इसमें ऐसे अनेक चरित्रों एवं किंवदंतियों की सृष्टि हुई है, जो मूल 'महा-भारत' में नहीं हैं। तत्कालीन उड़िया जन-जीवन को ध्यान में रखते हुए इन्होंने 'महाभारत' के चरित्रों का चित्रण किया है। 'बिलंका-रामायण' में वीर नारी की प्रच्छन्न शक्ति को पुरुष की कर्कश शक्ति से श्रेष्ठ बताया गया है। 'चंडीपुराण' में शाक्त-धर्म का प्रतिपादन हुआ है।

सारळा-महाभारत *(उ० कृ०)*

सरळादास (दे०)-विरचित सारळा-महाभारत का रचना-काल अनुमानतः चौदहवीं-पंद्रहवीं शती है। इससे पूर्व उड़िया-साहित्य के उन्मेष के परिचय के रूप में बौद्ध-चर्यापद (दे० चर्या) की कतिपय गीति-कविताएँ ही मिलती हैं किंतु इसके परवर्ती युग में साहित्य की विकास-धारा के प्रमाणस्वरूप बच्छादास (दे०)-कृत संक्षिप्त रचना 'कळसा चउतिशा' (दे०) के अतिरिक्त अन्य कोई प्रामा-णिक उपादान आज उपलब्ध नहीं है। फिर भी 'सारळा-महाभारत' के पूर्व उड़िया-साहित्य में काव्य-सृजन हो रहा था, यह सुनिश्चित है; अन्यथा एकाएक, 'महाभारत' जैसे विराट् प्रबंधकाव्य की रचना संभव नहीं होती।

'सारळा-महाभारत' संस्कृत-'महाभारत' (दे०) का अनुवाद नहीं है, यहाँ तक कि उसका अनुकरण भी नहीं है। 'संस्कृत-'महाभारत' सभ्यता एवं संस्कृति की एक अत्यंत विकसित स्थिति की परिणति है; जबकि 'सारळा-महाभारत' एक ग्रामीण उन्नत संस्कृत-साहित्य से अनभिज्ञ, जन-लेखक की जातीय-सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है। अतः दोनों में मूलभूत पार्थक्य स्वयंसिद्ध है। संस्कृत महाभारत में अर्जुन अथवा कर्ण को यदि मुख्य चरित्र के रूप में स्वीकार करें तो 'सारळा-महाभारत' का नायक भीम है। संस्कृत-'महाभारत' में 'गीता' (दे०) के प्रवक्ता योगेश्वर कृष्ण का एक महत्वपूर्ण स्थान है, वे युग-नायक हैं, महानायक हैं, किंतु 'सारळा-महाभारत' में कृष्ण का स्थान नगण्य है। 'सारळा-महाभारत' के पर्वों का नामकरण भी संस्कृत-'महाभारत' के पर्वों के अनुसार नहीं हुआ है। इसकी मौलिकता असंदिग्ध है। 'सारळा-महाभारत' का एक अन्य वैशिष्ट्य यह है कि चौदहवीं और पंद्रहवीं शती तक अन्य भारतीय भाषाओं में पूर्णांग (18 खंड) 'महाभारत' की रचना नहीं हुई थी।

'सारळा-महाभारत' के पात्र उड़िया-नर-नारियों के आधार पर परिकल्पित हैं। 'महाभारत' की सामाजिक साज-सज्जा के मिस कवि ने तत्कालीन उड़िया की साम-रिक स्थिति का चित्रण किया है। उड़िया-जीवन की एक अक्षुण्ण प्रतिच्छवि इसमें मिलती है। भाषा की दृष्टि से यह एक गंभीर एवं महत्वपूर्ण रचना है। इस कृति में अनेक प्राचीन उड़िया-शब्दों का प्रयोग हुआ है जो आज-कल लुप्त हो चुका है। यह दांडीवृत्त (दे०) में विरचित है।

यह एक गुरु-गंभीर रचना है तथा उड़िया-साहित्य के समुन्नत रूप की स्थापना करती है और एक विकासमान साहित्य की परिणति प्रतीत होती है।

साल्व *(क० ले०)*

इनका समय अनुमानतः 1550 ई० माना गया है। यह साल्व मल्ल नामक राजा के आश्रित थे। 'भारत', 'रस-रत्नाकर', 'शारदाविलास' आदि इनकी कृतियाँ हैं। इनका 'भारत' जैन संप्रदाय का महाभारत है जो षट्पदी छंद में है। 'रस-रत्नाकर', 'श्रृंगार-प्रपंच विवरण', 'नव-रस-प्रपंच विवरण', 'नायक-नायिका-विवरण', 'व्यभि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारि-भाव-विवरण' शीर्षक से चार प्रकरण हैं। सभी रसों का निरूपण करने पर भी श्रृंगार को विशेष महत्व दिया गया है। श्रृंगार के आलंबन गुण, चेष्टा, अलंकार तटस्थ इस प्रकार के उद्दीपन-चतुष्टय का ब्योरेवार वर्णन है। मान, ईर्ष्या आदि विप्रलंभ प्रकार भी दिए गए हैं। रस-निष्पत्ति, स्थायी, व्यभिचारि, विवेक आदि की सम्यक् विवेचना भी यहाँ है। यहाँ इन्होंने हेमचंद्र, विद्यानाथ, अमृतानंदि, रुद्रभट्ट (दे०) आदि का अनुसरण किया है। लक्ष्यपद्यों को स्वयं न लिखकर प्राचीन कवियों से लिया है।

'शारदाविलास' का केबल एक ही प्रकरण 'ध्वनिव्यंग्य-प्रकरण' अब उपलब्ध है। कन्नड में ध्वनि-प्रतिपादन करनेवालों में साल्व ही सर्वप्रथम हैं। 'ध्वनि-व्यंग्य-प्रकरण' में लेखक ने उत्तम, मध्यम एवं अधम—इस तरह काव्यों का वर्गीकरण कर वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्यार्थ का निरूपण कर शब्द शक्तियों की चर्चा की है। व्यंजना के शब्दमूला, अर्थमूला, अर्थांतर-संक्रमित वाच्य, अत्यंत तिरस्कृत वाच्य आदि प्रकारों का विवरण भी है। साथ ही वाच्य-व्यंग्य-विवेक, वाच्य एवं लक्ष्य से व्यंग्य की प्रतीति, व्यंग्य से व्यंग्य की प्रतीति, वस्तु-व्यंग्य, अलंकार-व्यंग्य आदि का ब्योरेवार वर्णन है। 'रस-ध्वनि' की चर्चा इस प्रकरण में नहीं है। साल्व कन्नड में शास्त्र-कवि के रूप में विख्यात हैं। वह कन्नड के श्रेष्ठ गीतिकारों में हैं।

सावयधम्म दोहा (अप० कृ०) [रचना-काल—933 ई०]

'सावयधम्म दोहा' के रचयिता देवसेन (दे०) हैं। इस कृति में किसी एक निश्चित विषय का प्रतिपादन नहीं है। इसमें लेखक ने श्रावकों-गृहस्थों के योग्य कर्त्तव्यों का उपदेश दिया है। श्रावक-धर्म के भेद बताते हुए सम्यक्त्व प्राप्ति के साधनों का निर्देश किया गया है। नाना दोषों का परित्याग, रात्रि-भोजन-निषेध, अहिंसा-व्रत-पालन आदि का विधान किया गया है। दान की महत्ता सम-झाते हुए धर्म-पालन, इंद्रिय-निग्रह, मन-वचन और शरीर की शुद्धि का आदेश दिया गया है। उपवास-व्रतादि-पालन करते हुए पाप-पुण्य के बंधन से छुटकारा पाकर कर्म-नाश द्वारा सुख प्राप्त करने की चर्चा की गई है। लेखक ने एक आदर्श-चरित्र गृहस्थ के लिए सभी करणीय, सामाजिक, धार्मिक कर्मों का पालन आवश्यक बताया है।

लेखक ने सरल और चलती हुई भाषा में हृदयस्पर्शी दृष्टांतों द्वारा भाव को व्यक्त किया है। विषय को स्पष्ट करने के लिए, बैल, कुआँ, वृक्ष, दीपक, पतंग इत्यादि दैनिक जीवन से संबद्ध पदार्थों का अप्रस्तुत-विधान के लिए प्रयोग किया है।

सावरकर चरित्र (म० कृ०) [रचना-काल—1947 ई०]

वीर सावरकर पर रचित चरित्र-ग्रंथों में सर्वाधिक रसोत्कर्षक चरित्र श्री शि० ल० करंदीकर-रचित है।

यह परिश्रमपूर्वक लिखा गया चरित्र है। इसमें सावरकर की जीवन-संबंधी सामग्री विपुल है तथा उसकी प्राप्ति के अनेक स्रोत रहे हैं। करंदीकर जी ने समस्त उप-लब्ध सामग्री का मंथत कर उसमें से कुछ का विवेकपूर्ण कौशलयुक्त चयन कर उसकी कलात्मक नियोजना की है। यह ग्रंथ आकार में विशाल है।

लेखक ने प्रस्तावना में इसे साधन-ग्रंथ कहते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ प्रचारात्मक नहीं है। एक स्थान पर इन्होंने सत्यनिष्ठ काँग्रेस-अनुयायियों की आलोचना की थी। यह अंश बाद में सावरकर जी के अनुरोध पर निकाल दिया गया था। इससे स्पष्ट है कि लेखक तटस्थ वृत्ति का हामी होते हुए भी किन्हीं बातों में सावरकर जी का पक्षपाती है।

इस चरित्र-ग्रंथ से सावरकर के जाज्वल्यमान, कर्तव्यनिष्ठ त्यागमय-जीवन की आकृति साकार हो जाती है। सावरकर के जीवन के विभिन्न प्रसंगों का उल्लेख करते हुए, उनकी पुष्टि में उनके द्वारा रचित कविताओं को उद्धृत कर इसमें कवि सावरकर के भी दर्शन कराए गए हैं। यह इस चरित्र का एक अन्य वैशिष्ट्यपूर्ण पक्ष है।

सावरकर, विनायक दामोदर (म० ले०) [जन्म—1883 ई०]

सावरकर वृत्ति से कवि एवं कलाकार थे परंतु परिस्थितिवश उन्हें राजनीति में भाग लेना पड़ा था। इनके व्यक्तित्व में असामान्य कवित्व एवं अनन्य देशभक्ति का मनोज्ञ संगम देखने को मिलता है।

इन्होंने विपुल एवं विविध साहित्य-रचना की है। 'सावरकरांची स्फुट कविता', 'रानफुलें' इनकी स्फुट कविताओं के संग्रह हैं। 'सप्तर्षि' और 'गोमांतक' इनके खंडकाव्य हैं। पानीपत की लड़ाई पर इन्होंने जिस ऐति-हासिक महाकाव्य की रचना प्रारंभ की थी उसके 'कमला' तथा 'विरहोच्छ्वास' नामक दो सर्ग आज खंडकाव्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में उपलब्ध हैं। 1910 ई० में अँग्रेज़ सरकार द्वारा राजद्रोही घोषित किए जाने पर इन्हें काले पानी की सज़ा हुई थी और अंडमान द्वीप जाना पड़ा था। वहीं 'कमला' और 'विरहोच्छ्वास' की रचना की थी।

राष्ट्रीयता इनके काव्य की आत्मा है। इनकी राष्ट्रीयता मानवता की पर्याय है। पतित, विधवा, दलित, अस्पृश्य, देशी अथवा विदेशी बंधु किसी पर भी होते अन्याय का प्रतिकार करने को सावरकर कटिबद्ध हैं। इनकी रचनाओं में महाकाव्योचित उदात्तता, भव्यता एवं ओजस्विता है। इसी कारण आधुनिक मराठी-आलोचक इन्हें महाकाव्य की रचना करने वाला महाकवि कहते हैं। इन्हें हिंदू होने पर अभिमान है। इनकी देशभक्ति की कविताएँ प्रत्यक्षानुभूत हैं, जिनमें प्रखरता एवं तेजस्विता है। विदेशी शासकों द्वारा किए गए अत्याचारों को सहते हुए भी इनके उद्गार अदम्य निष्ठा से युक्त हैं—'मैं अनादि हूँ, अनंत हूँ, अवध्य हूँ।' भारत को उन्नत बनाने के लिए ये शास्त्रीय अनुसंधान पर बल देने को कहते हैं।

अँग्रेज़ी (ब्लैंक वर्स) मुक्तछंदों (दे०) का मराठी रूपांतर कर इन्होंने उसे 'वैनायकवृत्त' नाम दिया था।

'विज्ञाननिष्ठ निबंधसंग्रह भाग 1, 2 तथा 'जात्युछेदक निबंध-संग्रह' में इनके निबंध हैं। 'उःशाप', 'संन्यस्त खंग', 'उत्तरक्रिवा' इनके नाटक हैं, जिनमें लोकजागरण की दृष्टि प्रतिफलित हुई है। 'काळेपाणी' इनका लिखा उपन्यास है। 'माँझिनीचें चरित्र' (दे०) नामक चरित्र-ग्रंथ है जिसकी महत्ता उसकी दीर्घ, विचारोत्तेजक प्रस्तावना के कारण है।

'माँझी जन्मठेप' (दे०) और 'माँझ्या आठवणी' आत्मचरित्र वर्णनात्मक ग्रंथ हैं, जो मराठी-साहित्य के लिए बहुमूल्य हैं।

टंकण-लेखन की दृष्टि से भी मराठी-लिपि-सुधार तथा भाषा-शुद्धि के कारण इनका महत्व है। इन्होंने साहित्य-रचना में भाषा-शुद्धि पर बल दिया था और यथासंभव विदेशी शब्द-विरहित शुद्ध मराठी भाषा का प्रयोग किया था। कवि, आत्मचरित्र लेखक एवं निबंधकार, तीनों दृष्टियों से ये श्रेष्ठ साहित्यकार हैं।

सावळया (*म० पा०*)

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'उषःकाल' (दे०) का यह पात्र अत्यंत चतुर, जिज्ञासुवृत्ति और तुरतवुद्धि का किशोर है। राष्ट्रवादी भावनाओं से युक्त यह किशोर अनेक रूपों में शिवाजी की सहायता करता है। उपन्यास में इसका महत्व इसलिए है कि एक ओर यह हास्यरस का परिपोष करने में सहायक है तो दूसरी ओर अपने भोलेपन, जिज्ञासु वृत्ति, वालकोचित आचरण द्वारा पाठक के हृदय में वात्सल्य-भाव की सृष्टि करता है। हरिनारायण आपटे के अगले उपन्यासों में यही किशोर बड़ा होकर, पराक्रमी, वीर सेनानी बन जाता है पर पाठक को जितना अभिभूत करने की शक्ति किशोर सावळया में है उतनी युवक सेनापति में नहीं। इसका एक कारण यह भी है कि आपटे बालमन तथा किशोरों के चित्रण में अत्यंत पटु थे।

सावे पत्तर (*पं० कृ०*)

यह मोहनसिंह का प्रथम कविता-संग्रह है जिसमें तेतालीस कविताएँ हैं। इसे कवि के काव्य-विकास का प्रथम चरण कह सकते हैं। ये कविताएँ कथ्य और संरचना की दृष्टि से परंपरावादी ही हैं। इसमें अधिकतर रोमानी या रोमानी रंगत वाली आदर्शवादी कविताएँ हैं। इस संग्रह की कुछेक कविताएँ सामाजिक वर्ग-भेद की ओर भी संकेत करती हैं। 'मैं नहीं रहना तेरे गिरां' ऐसी ही एक कविता है। इस तरह की कविताएँ धारणा के स्तर पर ही रह गई हैं, इनमें अनुभूति का ताप नहीं है। इस संग्रह की एक कविता है—'देश प्यार' जो बैलेड की गीतिशैली में लिखी गई है। यह कविता लेखक की तत्कालीन दृष्टि का काफ़ी हद तक प्रतिनिधित्व करती है।

इस संग्रह की कविताएँ कवि के हृदय के किशोर प्रेम-गीत हैं। कवि की प्रेम-संबंधी आकांक्षा है—

रंबा प्यार मेरे दी मंजिल
पूरी कदे न होवे

ये पंक्तियां कवि के छायावादी अंतस् को उजागर करती हैं।

साहनी, बलराज (*पं० ले०*) [जन्म—1913 ई०]

भारतीय रजतपट के लोकप्रिय अभिनेता होने के साथ ही साथ श्री बलराज साहनी पंजाबी के प्रतिष्ठित लेखक भी थे। श्री साहनी अपनी मातृभाषा के उन प्रेमियों में थे जिन्होंने उसे और उसके साहित्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप्रदायिकता के संकुचित घेरे से निकालने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

श्री साहनी ने पंजाबी में कहानियाँ, कविताएँ और यात्रा-विवरण मुख्य रूप से लिखे हैं। उन्हें अपनी कृति 'मेरा रूसी सफ़रनामा' पर 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' प्राप्त हो चुका है। अभी कुछ वर्ष पूर्व उनका स्वर्गवास हो गया।

साहसभीमविजय अथवा गदायुद्ध *(क० कृ०)* [रचना-काल—982 ई०]

'साहसभीमविजय' अथवा 'गदायुद्ध' के कवि रन्न (दे०) 'रत्नत्रय' में तीसरे हैं। (अन्य दो कवि हैं पंप (दे०) तथा पोन्नू (दे०)। उनकी आत्मस्तुति— 'रन्न की कृति और फणिपति के फन में विद्यमान रत्न की परीक्षा करने की सामर्थ्य किसमें है?'—निस्सार नहीं है। 'गदायुद्ध' उनकी श्रेष्ठ रचना है। उसे देखने से उन की आत्मस्तुति का सार्थक्य ज्ञात हो जाता।

'महाभारत' (दे०) के गदा पर्व और सौप्तिक पर्व का कथानक 'गदायुद्ध' की वस्तु है। वस्तुतः रन्न को व्यास-कृत महाभारत से सीधे प्रेरणा नहीं मिली है, पंप-भारत के तेरहवें आश्वास को पढ़कर उसके आधार पर उन्होंने एक स्वतंत्र काव्य की रचना की है। पंप की शैली का अनुकरण इस बात का साक्षी है। परंतु, उनकी प्रतिभा कहीं भी मंद नहीं पड़ी है। भास (दे०) के 'उरुभंग' (दे०) तथा भट्ट नारायण (दे०) के 'वेणीसंहार' से भी प्रेरणा प्राप्त करके उन्होंने अपनी कृति को श्रव्य काव्य के ही नहीं, दृश्य काव्य के गुणों से भी विभूषित कर दिया है।

बाह्यरूप से देखने पर 'गदायुद्ध' की कथा महाभारत के दो पर्वों तक सीमित है, पर आंतरिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि सिंहावलोकन-क्रम से उसमें संपूर्ण महाभारत की कथा कही गई है, एक घटना को लेकर एक अपूर्व 'रसार्णव' प्रस्तुत किया गया है।

'गदायुद्ध' की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नाटकीयता है। आचार्य बी० एम० श्रीकंठैया (दे०) जी का अनुमान था कि वह पहले नाटक के रूप में लिखा गया था, बाद में उसको चंपू-काव्य का जामा पहनाया गया। उन्होंने किंचित् परिवर्तन के साथ 'गदायुद्ध' को नाटक का रूप दिया है जिसमें दस दृश्य हैं। उन्होंने रन्न को महा-कवि ही नहीं, वर-कवि और चिर-कवि भी माना जिसका हेतु 'गदायुद्ध' ही है।

जैन होने कारण रन्न की दृष्टि में उनका 'गदायुद्ध' लौकिक काव्य ही है। पंप ने जिस प्रकार अपने काव्य में कथानायक अर्जुन (दे०) एवं अपने आश्रयदाता अरिकेसरी में अभेद स्थापित किया है, उसी प्रकार रन्न ने भी अपने काव्य के नायक भीम (दे०) और अपने आश्रय-दाता सत्याश्रय में अभेद स्थापित किया है।

'गदायुद्ध' के नायक और अंगी रस के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग दुर्योधन (दे०) को नायक और 'वीर' को अंगी रस मानते हैं तो अन्य लोग भीम को नायक और 'रौद्र' को अंगी रस मानते हैं। दूसरा मत ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। दुर्योधन प्रति-नायक है जिसके चित्रण में कवि ने पूर्ण सहानुभूति दिखाई है, उसको 'महानुभाव' बनाया है। उन्होंने भीम का महत्व दिखाया है, पर दुर्योधन का महत्व घटाया नहीं है।

आकार में 'गदायुद्ध' 'पंपभारत' (दे०) से छोटा है, पर प्रकार में नहीं। रस-निरूपण, चरित्र-चित्रण, औचित्यपूर्ण वर्णन, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से 'गदायुद्ध' अद्वितीय काव्य है, कन्नड-साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

साहित्तारथ *(पं० कृ०)*

संतसिंह सेखों (दे०) की यह कृति पंजाबी आलोचना के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें साहित्यिक आलोचना को पहली बार संयत एवं नियमबद्ध रीति से प्रस्तुत करने का यत्न हुआ है। इससे पूर्व पंजाबी आलोचक इस क्षेत्र में इच्छानुसार इतिहास, समाज, प्रकृति, संस्कृति और व्यक्तिगत रुचि का आरोप कर आलोचना के स्वरूप को गडमड करते रहे और वैसी कृतियाँ एक अनुशासनहीन अध्ययन का ही आभास देती थीं। अतः उसे एक निश्चित अनुशासन में आबद्ध करने का यह प्रथम प्रयास था। इस रचना से पंजाबी में समाज-वादी आलोचना-प्रणाली का श्रीगणेश हुआ। साहित्य को समाज के अधीन रखकर परखना इस दृष्टिकोण की अनिवार्यता है। क्रमबद्ध एवं तर्कपूर्ण आलोचना-शैली के रूप में प्रस्तुत होने वाली इस प्रथम रचना ने पंजाबी अध्ययन-अध्यापन को बहुत प्रभावित किया, और इसी के प्रभावस्वरूप काफ़ी समय तक उस क्षेत्र में समाजवादी आलोचना हावी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य (बँ० कृ०) [रचना-काल—1907 ई०]

'साहित्य' (1907) में 'भारती', 'साधना', तथा 'बंगदर्शन' पत्रिकाओं में प्रकाशित रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) के साहित्य-विषयक नाना निबंधों का संकलन है। इसमें साहित्य तत्त्व, रसविचार तथा समालोचना एवं सौंदर्यतत्व की आलोचना की गई है। रवींद्रनाथ का कहना है कि साहित्य का अच्छा लगना या ख़राब लगना ही साहित्य की अंतिम बात है परंतु साथ में यह भी स्वीकार किया है कि साहित्य-विवेचन की भी आवश्यकता है। उनके अनुसार साहित्य-विवेचन में दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—(1) विश्व पर साहित्यकार के हृदय का अधिकार कितना है? और (2) स्थायी रूप में वह व्यक्त कितना हुआ है? हर समय इन दोनों में सामंजस्य नहीं रहता—जहाँ रहता है वहाँ सोने में सुहागा होता है। रवींद्र के अनुसार 'साहित्य' शब्द की उत्पत्ति 'सहित' शब्द से हुई है। धातुगत अर्थ के आधार पर इस में मिलन का संकेत मिल जाता है यह केवल भाव से भाव का, भाषा से भाषा का या ग्रंथ से ग्रंथ का मिलन नहीं, बल्कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूरी के साथ निकटता का अत्यंत अंतरंग योग-मिलन है जो साहित्य के अतिरिक्त और कहीं भी संभव नहीं है। रवींद्रनाथ ने सौंदर्यवाद तथा रसवाद के अतिरिक्त औपनिषदिक अथवा वेदांतिक ब्रह्मवाद की सहायता से साहित्य-तत्त्व का विवेचन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने रस, सौंदर्य और बृहत् जीवनदर्शन—इन तीन मानदंडों की सहायता से अपनी काव्यशास्त्रीय विचारधारा को प्रकट किया है। आधुनिक युग की वास्तविकता तथा समाजशास्त्रीय भावधारा उन्हें प्रभावित नहीं कर सकी थी और इसीलिए उन्हें जीवन में विद्वानों का विरोध सहना पड़ा था परंतु इससे उनके स्थायी साहित्यिक मानदंडों के मूल्य की अवमानना नहीं हुई। यह सत्य है कि साहित्य-तत्त्व-विषयक उन्होंने कोई अभिनव मतवाद अथवा संप्रदाय की प्रतिष्ठा नहीं की परंतु यह निश्चित है कि उन्हीं के कारण बँगला काव्यशास्त्र तत्त्व, व्याख्या तथा विश्लेषण की दृष्टि से सुदृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित हो सका।

साहित्य (पारि०)

साहित्यस्य भावः साहित्यम्, अर्थात् शब्द और अर्थ के संहित-भाव (परस्पर सान्निध्य) को 'साहित्य' कहते हैं। अथवा इसमें शब्द और अर्थ दो सुहृदों के समान एक-दूसरे की शोभा को बढ़ाते हुए एक-दूसरे के हित में लगे रहते हैं—किसी अर्थ के वाचक अनेक पर्याय-शब्दों में से कवि अपने विवेक से जिस शब्द का चयन करता है वही शब्द युग-युगांतर तक कवि के अभीष्ट अर्थ का वाचक होता है और सहृदय की आह्लाद-प्राप्ति में सहायक बनता है (वक्रोक्तिजीवित 1. 8, 9) काव्यशास्त्र में 'साहित्य' शब्द काव्य का पर्याय है, इसी कारण काव्यशास्त्र को 'साहित्य विद्या', 'साहित्य-मीमांसा' कहा जाता रहा है किंतु आज यह शब्द अँग्रेज़ी के 'लिट्रेचर' शब्द का पर्याय बन गया है जैसे कानून का साहित्य, चिकित्सा का साहित्य, आदि।

साहित्यकौतुकम् (मल० कृ०)

महाकवि जी० शंकर कुरुप्प (दे०) की आरंभिक कविताओं का संकलन 'साहित्यकौतुकम्' नाम से प्रकाशित हुआ। इसके चार भाग हैं। 1928 ई० में इसका प्रथम प्रकाशन हुआ। इसकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति-प्रेम तथा देश-भक्ति से ओतप्रोत हैं।

साहित्यदर्पण (सं० कृ०) [समय—चौदहवीं शती का मध्य]

चौदहवीं शती के लेखक विश्वनाथ (दे०) कविराज के 'साहित्यदर्पण' का अलंकारशास्त्र में प्रमुख स्थान है। दश परिच्छेदों के इस ग्रंथ में विश्वनाथ ने 'काव्यप्रकाश' (दे०) तथा ध्वन्यालोक (दे०) का विशेष अनुसरण किया है यद्यपि काव्यलक्षण आदि अनेक स्थलों पर 'काव्य-प्रकाश' की कटु आलोचना भी की गई है। इस ग्रंथ के विवेच्य विषय काव्यप्रयोजन, काव्यस्वरूप, शब्दार्थ-निर्णय, रस, भाव, काव्यभेद, ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य, व्यंजनावृत्ति, नाट्य, दोष, गुण, रीति तथा अलंकार क्रमशः हैं। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें ग्रंथकार ने काव्य के दोनों भेदों—श्रव्य तथा दृश्य—का वर्णन कर इसे पूर्ण ग्रंथ बना दिया है। व्यंजना-वृत्ति को न मानने वाले विद्वानों के मतों का खंडन कर इन्होंने व्यंजना की पुनः स्थापना की है।

'साहित्यदर्पण' पर चार टीकाएँ लिखी गई हैं जिनमें मथुरानाथ शुक्ल-कृत 'टिप्पण' तथा गोपीनाथ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत 'प्रभा' अभी तक अप्रकाशित हैं। इसकी प्राचीनतम ठीका 'लोचन' को इनके सुपुत्र अनंतदास ने लिखा है। किंतु रामायण तर्कवागीश-कृत 'विवृति' नामक टीका ही अत्यंत लोकप्रिय एवं उपादेय है।

साहित्य निकषम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

यह प्रसिद्ध हास्य-लेखक और समालोचक एम० आर० नायर (दे० संजयन्) के साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। इस संग्रह के निबंधों में साहित्यिक कृतियों का आस्वादनात्मक विवेचन किया गया है। इन आस्वादनों की एक विशेषता यह है कि इनमें अन्य कृतियों के महत्व और लघुत्व से निरपेक्ष होकर शुद्ध समालोचना की गई है। 'संजयन्' (दे०) के नाम से इस प्रतिभाशाली व्यंग्य-कार द्वारा लिखे गए तीक्ष्ण व्यंग्य की तुलना में इन निबंधों का संयम और संतुलन दर्शनीय है। साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में एक मार्गदर्शक कृति के रूप में इस ग्रंथ का योगदान महत्वपूर्ण है।

साहित्य बीख्या *(उ० कृ०)*

'साहित्य वीख्या' डा० देवीप्रसन्न पटनायक (दे०) के समीक्षात्मक निबंधों का संग्रह है। लेखक के विशाल अध्ययन की स्पष्ट झलक इन पांडित्यपूर्ण साहित्यिक निबंधों में देखी जा सकती है। इसमें भाव और विचारों की गूढ़ एवं गुंफित परंपरा मिलती है। लेखक के चिंतन में खुलापन और विवेचना में उन्मुक्तता है। उसकी दृष्टि प्राचीन, नवीन, पूर्व, पश्चिमी सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त है। लेखक में समस्या के अंतर में पैठने की पैनी तलस्पर्शी अंतर्दृष्टि है, फलतः विवेचना में तार्किकता, सूक्ष्मता और सटीकता मिलती है। भाषा में विचारों और विश्लेषण का भार वहन करने की क्षमता एवं प्रचंड अभिव्यंजना-शक्ति है। शैली विश्लेषणात्मक और गंभीर है। इसमें कहीं भी दुर्बोधता नहीं है।

साहित्यभारती *(क० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1971 ई०]

यह श्रीमान् अनंतरंगाचार्य की वृहदाकार रचना है जिसमें भारत की समस्त प्रमुख भाषाओं का साहित्येतिहास दिया गया है। मैसूर विश्वविद्यालय की त्रैमासिक साहित्य-पत्रिका 'प्रबुद्ध कर्णाटक' में उन्होंने पहले प्रत्येक भाषा के साहित्य का परिचय कराया था। उन लेखों का संशोधन और परिवर्धन कर उन्होंने 1971 में इस ग्रंथ का प्रकाशन कराया था। इसमें संस्कृत (आधुनिक संस्कृत साहित्य को भी मिलाकर), कन्नड, तेलुगु, तमिल, हिंदी आदि भाषाओं के साहित्य का सुंदर परिचय उपलब्ध होता है। कन्नड में तो इस विषय का यह सर्वप्रथम और अद्वितीय ग्रंथ है।

साहित्यमंजरी *(मल० कृ०)*

इसके लेखक श्री वळ्ळतोळ् (दे०) अनेक खंडकाव्यों तथा एक महाकाव्य के यशस्वी रचयिता हैं। उन्होंने कितनी ही स्फुट कविताएँ भी रची हैं। इन मुक्तकों का संकलन 'साहित्य-मंजरी' शीर्षक के ग्यारह खंडों में किया गया है। सबसे प्रथम कविता का रचना-काल 1903 ई० और सबसे अंतिम कविता का रचना-काल 1957 ई० है। 50 वर्ष की अवधि तक अथक सृजनरत इनकी कलम ने अनेक भावपूर्ण मुक्तक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें कुछ देशप्रेम से संबंधित हैं, कुछ प्रकृति-वर्णन से। पुराण, इतिहास आदि में प्रसिद्ध थोड़ी-सी घटनाएँ भी कुछ स्फुट रचनाओं का विषय हैं। छोटे-छोटे विषयों और छोटी-छोटी घटनाओं ने इनके कवि-मानस को तरंगित किया है।

'साहित्यमंजरी' की राष्ट्रीय कविताओं में 'एंटेगुरुनाथन्', 'एंटे भाषा', 'नम्मुटे मरुपटि' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। पौराणिक विषय-वस्तु वाली रचनाओं में 'अंपाटियिल् चेन्न अक्रूरन', 'किलिक्कोंचल', 'पुराणङ्ङळ्' आदि सफल हैं। लघु विषय की रचनाओं में 'कोषि' और विनोद-प्रधान दुर्लभ कविताओं में 'कुल्लुम् सम्मानम्' कवि की प्रतिभा का विशेष परिचय देती हैं। दार्शनिकता के पुट से युक्त प्रकृतिवर्णनपरक रचनाओं में 'सत्यगाथा' 'प्रभातकीर्तनम्' आदि भावपूर्णता के लिए प्रसिद्ध हैं। वळ्ळत्तोळ् की कविता में शिल्पगत विशेषता, सहज शब्द-गठन, प्रवाह और रोमांटिक भाव के लायक लय-युक्त छंदों का व्यवहार है।

साहित्यलहरी *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1550 ई० से 1743 ई० तक के बीच]

इसकी प्रामाणिकता के बारे में बिद्वानों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण संदेह है। बनारस लाइट प्रेस, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, लहेरिया सराय पुस्तक भंडार से इसका मुद्रण क्रमशः 1869, 1890 1892 तथा 1939 ई० में हुआ था। इस ग्रंथ पर काशी नरेश के आश्रित कवि सरदार, भारतेंदु (दे०) बाबू और डा० मनमोहन गौतम की टीकाएँ मिलती हैं। इसमें सूर, सूरदास और सूरज आदि प्रयुक्त कवि-छापें इसे सूरदास (दे०) की कृति घोषित करती हैं। परंतु कुछ विद्वान् इसके वर्ण्य-विषय, दृष्टिकोण और भाषा-शैली के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह रचना किसी अन्य सूर कवि की है, जिसका अस्तित्व अठारहवीं शती के पहले नहीं माना जा सकता।

'साहित्यलहरी' का मुख्य प्रतिपाद्य नायिका-भेद (दे०), अलंकार (दे०) अथवा किसी-न-किसी काव्यांग का लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करना है। अतः यह रचना भक्तिपरक न होकर पूर्णतः साहित्यिक रचना है। परंतु फिर भी लक्षण और उदाहरण, भाषाशैली और काव्य-कला की अप्रकृष्टता के कारण रीति और अलंकार-ग्रंथों में इसे विशेष स्थान नहीं मिला है। इसमें 'सूरसागर' के दृष्टिकूट पदों की शैली का अनुकरण किया गया है, परंतु 'सूरसागर' के दृष्टिकूट पदों की उच्च भावात्मकता और उत्कृष्ट काव्य-कला इसके पदों को छू भी नहीं गई है—सारी विषयवस्तु एक भाव या विचार की बार-बार की पुनरावृत्ति से बोझिल हो गई है। महात्मा सूरदास से संबंधित से संबंधित यह रचना अभी शोध का विषय बननी चाहिए। इस पर प्रामाणिक संस्करण की आवश्यकता भी निरंतर बनी हुई है।

साहित्य-संग्रह *(म० कृ०)*

'काल' पत्रिका में तेजस्वी प्रखर निबंध लिखने वाले शिवराम महादेव परांजपे (1864-1929 ई०) के 'साहित्य-संग्रह' में साहित्य विषयक विविध प्रकार के निबंध संकलित हैं। 'साहित्य-संग्रह दो भागों में है।

इस संग्रह के निबंधों से परांजपे जी के संस्कृत साहित्य के गहन, मूलग्राही अध्ययन का परिचय मिलता है। 'भासाची भवितव्यता' निबंध प्रतीकात्मक शैली में रचित उत्कृष्ट गद्यकाव्य का नमूना है। किंवदंती है कि भास (दे०) के नाटक अग्नि में डाल जलाए गए थे। परांजपे जी के भी निबंध ज़ब्त किए गए तो उन्हें मर्मांतक पीड़ा पहुँची थी। अतः भास एवं स्वयं को सम शोकार्त जान इसमें स्वानुभूत व्यथा की करुण अभिव्यक्ति की गई है।

'मेघदूतावरून कालिदासाविषयी' निबंध परिचयात्मक है; इससे इनकी शोध-बुद्धि का पता चलता है। इसमें 'मेघदूत' (दे०) के आधार पर कालिदास (दे०) के स्थान का निर्धारण तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) के आधार पर काल-निर्धारण कर, दोनों निष्कर्षों की असंगति को सामने रखा गया है। 'चारुदत्त आणि मृच्छकटिक', 'भगवद्गीतेंतील एक शंकास्थान', 'शाकुंतल नाटकाचा चौथा अंक', 'विष्णुसहस्रनाम' आदि इनके गवेषणात्मक निबंध हैं। 'सूर्याच्या गैरसोयी' कवित्वपूर्ण निबंध है। इसमें अमावस्या के दिन सूर्य की चंद्र से हुई भेंट का वर्णन है तथा तदुपरांत चंद्र द्वारा निवेदित उसकी करुण जीवन-कथा है। 'मनाची मीमांसा', 'श्रद्धा', 'कर्म', 'माया', 'पूर्वजन्म' और 'पुनर्जन्म' जैसे सूक्ष्म गंभीर विषयों पर भी पूरे अधिकार के साथ लिखा गया है।

श्री परांजपे ने निबंध-लेखन के अनेक रूपों को अपनाकर मराठी निबंध का क्षेत्र व्यापक ही नहीं बनाया, मराठी साहित्य को संपन्न भी किया है। इनकी निबंध-शैली लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक है। भाषा संस्कृत-प्रचुर, परिष्कृत तथा प्रवाहमयी है। आधुनिक मराठी-साहित्य में कलात्मक कवित्वपूर्ण रचनात्मक आलोचना का नमूना प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनके निबंध अनूठे हैं।

साहित्यालोचन *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1927 ई०]

इस ग्रंथ के लेखक डा० श्यामसुंदरदास (दे०) हैं। इसमें सात अध्याय हैं जिनमें निम्नोक्त विषयों का विवेचन किया गया है—(1) कला, (2) साहित्य, (3) काव्य, (4) कविता, (5) गद्यकाव्य, (6) रसशैली, (7) साहित्य की आलोचना। हिंदी में लिखित काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों में संभवतः यह प्रथम ग्रंथ है जिसमें पाश्चात्य आलोचना-पद्धति पर आधारित मान्यताओं को भी यथावत् स्थान मिला है। कहीं-कहीं दोनों दिशाओं के सिद्धांतों एवं उपसिद्धांतों का तर्कसंगत रूप में तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रभाव-स्वरूप इन्होंने अनेक धारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं। उदाहरणार्थ—साहित्य (काव्य) को कला के अंतर्गत परिगणित करना (न कि भारतीय दृष्टि के अनुसार 'विद्या' के अंतर्गत), काव्य में 'नैतिकता' को एक आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार न करना, 'कला कला के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए' सिद्धांत मानने वालों के साथ सहमति, आदि। इधर 'साधारणीकरण' (दे०) सिद्धांत में इन्होंने पंडित केशवप्रसाद मिश्र-सम्मत 'मधुमँती-भूमिका' को उद्धृत करके इस बिषय को दर्शन की भावभूमि पर अवस्थित कर दिया है। ग्रंथ की भाषा एवं शैली सुगम तथा स्वच्छ है। लेखक में जटिल विषयों को सरल-सुबोध एवं स्पष्ट बनाने की अद्भुत क्षमता है।

साहिर लुधियानवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1921 ई०; मृत्यु—1980 ई०]

जन्म-स्थान : लुधियाना। पिता का नाम : चौधरी फ़ज़ल मुहम्मद। इन्होंने दयालसिंह कालेज लुधियाना से बी० ए० किया, सन् 1940 ई० में इनका कवि-रूप सामने आया था और शीघ्र ही इस क्षेत्र में उन्नति प्राप्त कर ये उर्दू-काव्य-जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लेने में सफल हो गए। लाहौर में इन्होंने उर्दू साहित्य की मासिक पत्रिकाओं—'सवेरा' और 'अदब-ए-लतीफ़' का संपादन काफ़ी समय तक किया था। तदुपरांत दिल्ली की उर्दू मासिक पत्रिकाओं—'शाहराह' और 'प्रीतलड़ी' के संपादक के रूप में भी ये कार्य करते रहे थे। इनकी दो काव्य-कृतियाँ—'परछाइयाँ' और 'तलखियाँ' छप कर यथेष्ट लोकप्रिय हो चुकी हैं। गद्य-लेखक के रूप में भी इन्होंने कुछ कार्य किया है। 'कार्ल-मार्क्स' और 'साम्राज्य' इनकी गद्य कृतियाँ हैं। विचारों और मान्यताओं की दृष्टि से ये प्रगतिवादी थे। इनका कवि-रूप ही इनके व्यक्तित्व का प्राण है। अनुभूति की तीव्रता, कल्पना का औदात्त्य, भाषा का लालित्य, भावुकता की प्रभविष्णुता और कला की प्रौढ़ता इनकी काव्य-कृतियों की विशेषता है। बंबई में रहकर ये चित्रपट के लिए इन्होंने वर्षों तक लोकप्रिय गीत लिखे।

साहेब बिबि गुलाम *(बँ० कृ०)*

विमल मित्र (दे०)-विरचित अन्यतम औपन्यासिक कृति 'साहेब विबि गुलाम' में कलकत्ते के उन्नीसवीं शती के एक संभ्रांत परिवार की जीवन-यात्रा एवं जीवन-दर्शन के तिरोभाव की कहानी है। कहानी के मूल अंश में छोटी बहूरानी अपने लंपट शराबी पति को वापिस लाने की कोशिश करती है एवं कहानी के वक्ता के साथ जवा का विशुद्ध रोमांस इस कथा का गौण अंश है। छोटी-छोटी कतिपय विच्छिन्न घटनाओं के माध्यम से ढहती हुई ज़मींदारी-प्रथा के अहंकार, गंदगी एवं कामुकता को इसमें यथार्थ ढंग से प्रकट किया गया है। इसी के साथ उन्नीसवीं शती के पहले चरण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतर का इतिहास कथा के रूप में रचित हुआ है और वस्तुतः इसी की पटभूमिका में नायक, नायिकाओं एवं नौकरों के चरित्र-चित्रण के द्वारा एक संपूर्ण युग को उपन्यास में रूपांतरित किया गया है। इस उपन्यास में गिरते हुए ज़मींदार महल का चित्र है। इसमें पति-परित्यक्ता छोटी बहू के जीवन की सबसे बड़ी समस्या की करुण गाथा है; ज़मींदार-तंत्र के क्रमावसान एवं पूँजीवाद के क्रम-प्रसार के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का रूपांतरण है एवं जबा तथा भूतनाथ के जीवन में आवेग-प्रधान रोमांस की सृष्टि है।

इस उपन्यास में मनुष्य कोई महत् आदर्श प्राप्त नहीं करता परंतु उसे प्रतिकूल अवस्था में कतिपय भावावेगों एवं मूल्य-बोध के लिए सतत संग्राम करता हुआ दिखाया गया है। पाठकों के लिए इस संग्राम की निस्सारता तीव्र वेदनामय है। एक समग्र जीवन-यात्रा एवं जीवन-दर्शन का तिरोभाव हमारे मन में एक अव्यक्त शून्यताबोध एवं वेदना का उद्रेक करता है।

सिंगरार्य *(क० ले०)*

सिंगरार्य (समय—1700 ई० के लगभग) मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (दे०) के आश्रय में रहते थे। ये तिरुमलार्य के छोटे भाई थे। इनका एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ 'मित्रविंदा गोविंद' (दे०) नामक नाटक है। कन्नड के उपलब्ध नाटकों में इसी का नाम सर्वप्रथम उल्लेख्य है। यह श्रीहर्ष (दे०) के 'रत्नावली' नाटक की छाया अथवा अनुकृति है क्योंकि यहाँ के पात्रों के नाम बदल लिए गए हैं। 'रत्नावली' का नायक श्रृंगार-नायक है तो इसका नायक 'पुरुषोत्तम' है। श्रीकृष्ण ही इसके नायक हैं। इससे स्पष्ट है कि सिंगरार्य का दृष्टिकोण 'रत्नावलीकार' के दृष्टिकोण से भिन्न है। इसकी भाषा-शैली में प्राचीन कन्नड का गांभीर्य और तेज है।

सिंदूर की होली *(हिं० कृ०)*

यह लक्ष्मीनारायण मिश्र (दे०) का अत्यंत प्रसिद्ध समस्या नाटक है जिसमें लेखक ने बुद्धिवादी दृष्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोण को अपनाते हुए भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों तथा स्त्री-पुरुष की समस्याओं का अत्यंत जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। मनोरमा, चंद्रकला, मुरारीलाल, मनोजशंकर इसके प्रमुख पात्र हैं जिनके माध्यम से नाटककार ने बाल-विवाह, विधवा-विवाह, घूसखोरी, स्वच्छंद प्रेम आदि का अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। चंद्रकला आधुनिक युग की उन नारियों के प्रतीक-रूप में चित्रित हुई है जो शारीरिक स्वाधीनता के साथ-साथ मानसिक स्वाधीनता भी चाहती है। मुरारीलाल घूस के सहारे जीवन व्यतीत करने वाले अफ़सर-वर्ग का प्रतीक है तो मनोजशंकर आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करने वाला ऐसा युवक है जो स्वच्छंद प्रेम में विश्वास रखता है। शिल्प-विधान की दृष्टि से नाटककार ने विषयानुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए दृश्य-परिवर्तन के बिना अंकों का ऐसा विभाजन किया है कि अभिनेयता में किसी प्रकार की कठिनाई न पड़े। कुल मिलाकर यह हिंदी की एक अत्यंत सफल एवं प्रभावपूर्ण नाट्यकृति है।

सिंधी नसुर जी तारीख़ *(सिं० कृ०)*

'सिंधी नसुर जी तारीख़' (सिंधी गद्य का इतिहास) के लेखक मंघाराम उधाराम मल्काणी (दे०) हैं। यह पुस्तक 1968 ई० में कूंज पब्लिकेशन बंबई से प्रकाशित हुई है। मल्काणी जी को इस पुस्तक पर साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली से पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। मल्काणी जी ने इस पुस्तक में आरंभिक सिंधी-गद्य की रचनाओं का वर्णन करके उसके पश्चात् अलग-अलग अध्यायों में सिंधी-कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध और आलोचना के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया है। लेखक ने यद्यपि गद्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण इस पुस्तक में नहीं किया है, फिर भी इस विषय पर उन्होंने अधिक से अधिक सामग्री एक स्थान पर इकट्ठी कर देने का प्रशंसनीय किया है। सिंधी में यह प्रथम रचना है जिसमें सिंधी-गद्य के विकास का आरंभ से लेकर 1947 ई० तक विस्तार से विवेचन किया गया है।

सिंधी बोलीअ जी तारीख़ *(सिं० कृ०)*

इस पुस्तक के लेखक भेरुमल महिरचंद आदवाणी (दे०) हैं। यह 1941 ई० में कराची से प्रकाशित हुई थी। विभाजन के पश्चात् 1962 ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय से इसका देवनागरी लिपि में संस्करण भी प्रका-हुआ था। सिंधी में यह पहली पुस्तक है जिसमें सिंधी भाषा के इतिहास का विस्तार से वर्णन किया गया है। लेखक ने इसमें सिंध के इतिहास और सिंधी साहित्य का भी संक्षेप में वर्णन किया है। सिंधी की मुख्य उपभाषाओं की विशेषताएँ भी इस पुस्तक में दी हुई हैं। लेखक ने अपनी मुहावरेदार और रोचक शैली से इस शुष्क विषय को काफ़ी मनोरंजक बना दिया है। जब तक सिंधी भाषा के विकास पर आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई और पुस्तक लिखी जाए तब तक यह कृति सिंधी साहित्य में इस कमी को पूरा करने के लिए अंशतः पर्याप्त है।

सिंधी-लोक-साहित्य *(सिं० कृ०)*

सिंधी अदबी बोर्ड हैदराबाद की ओर से 1957 ई० में सिंधी-लोक-साहित्य का संग्रह कर उसे प्रकाशित कराने की योजना का आरंभ किया गया था, जिसके अंतर्गत लगभग 25 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सिंधी-लोक-कथाओं को सात भागों में प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त सिंधी-पहेलियाँ, लोकगीत, विवाहगीत, किस्से, मदाहूं (दे०), मुनाजातूं (दे०), मालूद (दे०), मुनाकिबा (दे०), मुअजज़ा (दे०), मुनाज़िरा (दे०), टीह-अखियूं (दे०), हफ़्ता-दींह-रात्यूं-महीना (दे०) शीर्षकों से भी सिंधी-लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों का संग्रह कर उन्हें प्रकाशित किया गया है। इस योजना के निर्देशक और निरीक्षक सिंधी युनिवर्सिटी के प्राध्यापक डा० नबी बख़्श ख़ान बलोच (दे०) हैं। कुछ साहित्यकार व्यक्तिगत रूप से भी लोक-साहित्य के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। लाड़काणों (सिंध) के गवर्नमेंट कालेज के सिंधी विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक अब्दुलकरीम संदीलो तथा भारत में उल्हासनगर (महाराष्ट्र) के साहित्यकार नारायण 'भारती' (दे०) ने इस क्षेत्र में अनुसंधान कर प्रशंसनीय पुस्तकें प्रकाशित की हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के सिंधी विभाग के अध्यक्ष मुरलीधर जैतली (दे०) ने सिंधी कहावतों का बृहत् कोश तैयार किया है जिसमें लगभग पाँच हजार कहावतें हिंदी-अर्थ सहित दी गई हैं। सिंधी-लोक-साहित्य बहुत समृद्ध है। भारत में उसके संग्रह और संरक्षण का कार्य भी शीघ्रातिशीघ्र सरकार की ओर से होना चाहिए, नहीं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ वर्षों में पुरानी पीढ़ी के चल बसने के पश्चात उसका अधिक भाग लुप्त हो जाने की संभावना है।

सिंधी साहित्य जो इतिहास *(सिं० कृ०)*

इस पुस्तक के लेखक मुरलीधर कृष्णचंद्र जैतली (दे०) हैं। 1972 ई० में सिंधू समाज, नयी दिल्ली ने इसे प्रकाशित किया है। सिंधी में यह पहली पुस्तक है जिसमें आठवीं ई० शती से 1970 ई० तक विभिन्न प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर सिंधी-साहित्य के विकास का संक्षेप में विवेचन किया गया है और साहित्यक प्रवृत्तियों के आधार पर सिंधी-साहित्य के काल-विभाजन का भी निर्णय किया गया है। लेखक ने इसमें पहले सिंधी भाषा के विकास का संक्षेप में विवेचन कर उसके पश्चात् आदि और मध्यकालीन सिंधी-काव्य की धाराओं का विश्लेषण किया है तथा प्रतिनिधि कवियों और उनकी रचनाओं का भी संक्षेप में परिचय दिया है। आधुनिक काल के अंतर्गत सिंधी भाषा की लिपि का संक्षिप्त इतिहास देने कें पश्चात् सिंधी-कविता तथा गद्य के विकास का विश्लेषण किया गया है। गद्य के अंतर्गत कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और आलोचना के विकास का विवेचन किया गया है। सिंधी-साहित्य के इतिहास पर इसके पूर्व जो भी पुस्तकें मिलती हैं, उन सब से यह निराले ढंग की कृति है।

सिंह, जी० बी० *(पं० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु 1950 ई०]

आप परंपरा-प्राप्त रचनाओं को पैनी आलोचनात्मक दृष्टि से देखने वाले विद्वान लेखक हैं। 'प्राचीन बीड़ा वारें' आपकी प्रसिद्ध कृति है। इस रचना के कारण आप पंजाबी के विद्वानों और सिखधर्म के अग्रणी विद्वानों में भी बहुत प्रसिद्ध हो गए। इसके अतिरिक्त आपकी दूसरी प्रमुख कृति 'गुरुमुखी लिपि वारें' है। इस विषय पर आज भी इस कृति की प्रामाणिकता निर्विवाद है।

सिंहल द्वीप *(अप० पारि०)*

प्रभूत धन-संपत्ति अर्जित करने के लिए नायक के सिंहल द्वीप की यात्रा से संबद्ध कथानक का उपयोग अनेक कवियों ने अपने काव्यों में किया है। अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए सिंहल द्वीप पहुँचने में नायक की वीरता प्रदर्शित करने का भी कवि को समुचित अवसर मिल जाता है। वहाँ से लौटते हुए समुद्र में नायक-नायिका की नौका या जहाज़ के ध्वस्त हो जाने पर दोनों वियुक्त हो जाते हैं और फिर संयोग से या किसी अदृश्य शक्ति की सहायता से दोनों का मिलन हो जाता है। इस कथानक रूढ़ि का प्रयोग अनेक अपभ्रंश-कवियों ने किया है। धनपाल की 'भविसयत्त कहा' (दे०), कनकामर के 'करकंडुचरिउ' (दे०), लाखू के 'जिणदत्त चरिउ' (दे०), नरसेन-कृत 'श्रीपाल-चरित' आदि अपभ्रंश-ग्रंथों में इस कथानक का रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। सिंहल द्वीप के स्थान पर कहीं कंचनद्वीप, कहीं रत्नद्वीप, कहीं हंस-द्वीप का उल्लेख है।

संस्कृत और प्राकृत-ग्रंथों में भी सिंहल द्वीप के वर्णन मिलते हैं। हर्ष (सातवीं शती ई०) ने अपनी संस्कृत कृति 'रत्नावली' नाटिका' (दे०) में कौतूहल (1000 ई० के पूर्व) ने अपनी प्राकृत कृति 'लीलावती कथा' (दे०) में भी सिंहल द्वीप के संकेत दिए हैं।

उत्तर काल में जायसी के 'पद्मावत' (दे०) में रत्नसेन (दे०) पद्मावती (दे०) की प्राप्ति के लिए सिंहल द्वीप की यात्रा करता है। जायसी के पहले तथा समकालीन और पीछे के समस्त प्रेमकथा-लेखकों ने किसी-न-किसी रूप में इसी प्रकार सिंहल-संबंधी कथा को अपनाया है।

इस प्रकार हर्ष के समय (सातवीं शती ई०) से लेकर सोलहवीं शती तक संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश-कवियों ने विविध रूपों में सिंहल को अपनी कृतियों का विषय बनाया है। सिंहल-संबंधी इस कथानक रूढ़ि का प्रयोग बाद में हिंदी-कवियों ने भी अपने काव्यों में किया। इस प्रकार की कथा का मूल संभवतः लोक-साहित्य हो सकता है।

सिंह सभा आंदोलन *(पं० प्र०)*

पंजाब में कूका आंदोलन दबा दिए जाने से पश्चात् सिंह-सभा-आंदोलन का जन्म हुआ। उन्नीसवीं शती के अंत और बीसवीं के प्रारंभ में देश के सभी भागों में पुनर्जागरणवादी आंदोलन उभरे। सिंह-सभा-आंदोलन पंजाब में सिखों का इसी प्रकार का आंदोलन था, जिसका उद्देश्य सिख-समाज में व्याप्त धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों को दूर कर उनमें नवजागरण की भावना उत्पन्न करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। 1973 ई० में सरदार ठाकुर सिंह व सिंधालिए के प्रयत्नों से सिंह-सभा की स्थापना हुई थी। धीरे-धीरे इस प्रकार की सभाएँ पंजाब के सभी भागों में स्थापित हो गईं। इसी आंदोलन के फलस्वरूप 1877 ई० में ओरिएंटल कालेज, लाहौर में पंजाबी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई और 1892 ई० में खालसा कालेज, अमृतसर की स्थापना हुई तो आगे चलकर पंजाबी साहित्य की सभी प्रकार की गतिविधियों का सर्वप्रमुख केंद्र बना।

सिट्ठणी *(पं० पारि०)*

विवाह के समय दूल्हा-वर्ग और उसके परिवार को लक्ष्य कर की जाने वाली छेड़छाड़, नोक-झोंक को 'सिट्ठणी' की संज्ञा दी गई है। जिस समय कन्या ससुराल जाती है तब उस वर्ग के लोग कन्या-पक्ष से जो नोक-झोंक करते हैं उसे भी 'सिट्ठणी' ही कहते हैं। शहरी जीवन के विकास के साथ-साथ यह रिवाज दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है।

सिठ *(पं० पारि०)*

पंजाबी जनजीवन में हास्य-व्यंग्य नोक-झोंक के लिए स्वीकृत विधि को 'सिठ' कहते हैं। इसके माध्यम से जीवन पर चढ़ते खोट और मुलम्मे को उतारने का यत्न किया जाता है। सिठ और व्यंग्य पंजाबी जन-जीवन में विशेष महत्व रखते हैं।

सिद्ध गोष्ठी *(पं० कृ०)*

गुरु नानक देव (दे०) द्वारा विरचित इस कृति में गुरु नानक एवं सिद्धों-योगियों के मध्य विचार-विमर्श के फलस्वरूप रचा गया दार्शनिक साहित्य 'सिद्ध गोष्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह रचना गुरु नानक देव के जीवन के अंतिम दिनों में लिखी गई थी। सिद्ध गोष्ठी-साहित्य में गुरुमत और योगमत का अंतर भी स्पष्ट किया गया है। गुरु नानक प्रभु-भक्ति पर बल देते थे जबकि योगी त्याग-साधना एवं रहस्यवाद पर। यही इस कृति का मूल विषय है। फलतः इसमें नाथ-सिद्धों की मान्यताओं का खंडन किया गया है। ग्रंथ का विवेच्य विषय सूक्ष्म-गंभीर दार्शनिक चिंतन से समन्वित है। भाषा में ब्रज शब्दों की बहुलता है।

सिद्ध-साहित्य

सिद्ध-साहित्य अपभ्रंश-दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है और जिसमें बौद्ध यांत्रिक सिद्धांतों को मान्यता दी गई है। बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचनाएँ प्रमुखतः दो काव्य रूपों में उपलब्ध हैं—'दोहा कोष' तथा 'चर्या पद' (दे० चर्या)। 'दोहा कोष' (दे०) दोहों से युक्त चतुष्पदियों की कड़वक शैली (दे०) में मिलते हैं। कुछ दोहे टीकाओं में उद्धृत हैं और कुछ दोहा-गीतियाँ बौद्ध तंत्रों और साधनाओं में मिली हैं। चर्यापद बौद्ध-तांत्रिक चर्या के समय लिखे गए हैं, किंतु एकसाथ संगृहीत कर दिए गए हैं।

सिद्धांतकौमुदी *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई०]

'सिद्धांतकौमुदी' के लेखक भट्टोजिदीक्षित (दे०) व्याकरण के विशिष्ट विद्वान् थे। 'सिद्धांतकौमुदी व्याकरण का अद्भुत ग्रंथ है। इसकी रचना रामचंद्र की 'प्रक्रियाकौमुदी' के आधार पर की गई है। व्याकरण के क्षेत्र में 'सिद्धांतकौमुदी' का महत्व मौलिकता एवं उपयोगिता की दृष्टि से विशिष्ट है। 'सिद्धांतकौमुदी' पर भट्टोजिदीक्षित ने 'प्रौढ़ मनोरमा' नामक प्रसिद्ध टीका लिखी थी। आफ्रेक्ट के सूची-पत्र में 'सिद्धांतकौमुदी' की 'रत्नाकर' नाम की टीका का उल्लेख किया गया है। इस टीका के रचयिता शिवरामेंद्र सरस्वती बतलाए जाते हैं। भट्टोजिदीक्षित के शिष्य वरदराज ने 'सिद्धांतकौमुदी' के संक्षिप्त संस्करणों के रूप में 'मध्यसिद्धांतकौमुदी' तथा 'लघुसिद्धांतकौमुदी' की रचना की थी।

'सिद्धांतकौमुदी' के अंतर्गत पाणिनीय (दे० पाणिनि) व्याकरण के नियमों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ में स्थल-स्थल पर व्याकरण के नियमों से संबंधित गूढ़ ग्रंथियाँ वर्तमान हैं जो शास्त्रार्थ-पद्धति से व्याख्यात हुई हैं।

सिद्धांत-सार *(गु० कृ०)*

आधुनिक गुजराती के प्रारंभकालीन प्रखर समीक्षक एवं पंडित तथा 'सुदर्शन', 'प्रियंवदा' मासिक पत्रों के संपादक मणिलाल नभुभाई द्विवेदी (दे०) के 'सिद्धांतसार' में वेदांत की परिपाटी के आधार पर हिंदू धर्म व आर्य-संस्कृति के प्रमुख सिद्धांतों का तर्कशुद्ध शैली में निरूपण किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथा हिंदू धर्म और आर्य-संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। लगभग 200 पृष्ठों के इस ग्रंथ में 'भारतीय दर्शन' का विकास तथा विश्व के सभी धर्मों में श्रेष्ठ आर्य धर्म का गौरव निरूपित किया गया है।

विषय गांभीर्य के कारण विषय-निरूपण में भाषा की गरिमा, किंचित् क्लिष्ट होने पर भी बनी रही है। लेखक अपने दार्शनिक गहन अध्ययन-चिंतन-मनन के कारण यूरोप, अमरीका में भी प्रसिद्ध हुए थे।

सिद्धय्या पुराणिक *(क० ले०)*

'काव्यानंद' उपनामधारी श्री सिद्धय्या पुराणिक नयी पीढ़ी के कवियों में गिने जाते हैं। 'कर्नाटक राज्य' के अवतरण के पूर्व ये हैदराबाद में रहते थे। संप्रति अवर सचिव के पद पर मैसूर सरकार की सेवा कर रहे हैं। ये कन्नड और अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान हैं और अच्छे वक्ता भी हैं। इनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'जलपोत' कन्नड के सुप्रसिद्ध कवि बेंद्रेजी (दे०) की भूमिका के साथ 1953 ई० में प्रकाश में आया था। उसमें संगृहीत कविताओं में सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव इनके मन पर क्या पड़ा है—यह स्पष्ट हो जाता है। 'मानवसमाज', 'बरुतिदे बडवर युग' [आ रहा है ग़रीबों का युग], 'सौंदर्य-प्रेम' और 'राजा-रानी' जैसी कविताएँ काफ़ी सुंदर बन पड़ी हैं। 'काश्मीरदल्लि कागलि' [काश्मीर में वर्षाकाल] और 'करुणाश्रावण' जैसी कविताओं में इनका ध्येयवाद तथा सौंदर्य-दृष्टि प्रकट हुई है।

यह राघवांक (दे०)-कृत 'सिद्धरामचरिते' (दे०) नामक चरितकाव्य का नायक है। यह कर्णाटक के वीरशैव संत-पंचक में एक है। इसके जीवन के निरूपण में कवि को अद्वितीय सफलता मिली है। इसका जन्म बारहवीं शती के तृतीय चरण में वर्तमान शोलापुर में सुग्गव्वे तथा मुद्दुगौड नामक सात्विक वृद्ध दंपतियों के घर में हुआ था। बालपन में इसमें मुग्धता की प्रधीनता थी। कवि ने इसे एक कारण-पुरुष कर्मयोगी के रूप में चित्रित किया है। इसका जन्म ही सिद्ध-कृपा से होता है। बाद में यह तड़ाग-निर्माण, मंदिर-निर्माण आदि लोकसेवा-कार्यों में लगा रहता है। प्रभुदेव आकर इसे समझाते हैं कि कर्मयोग की अपेक्षा ज्ञानयोग बड़ा है। शुरू-शुरू में यह उसे नहीं मानता है और दोनों में संघर्ष होता है। अंत में प्रभुदेव की कृपा से यह ज्ञानयोगी बनकर तत्कालीन संत-भूमि कल्याण पहुँचता है। वहाँ के अनुभव-मंडप की विचार-गोष्ठी में यह भाग लेता है। इसके नाथकौल आदि मतानुयायियों का संघर्ष इसकी मुग्ध-भक्ति, लोकानुकंपा आदि का अतीव मनोहर वर्णन राघवांक ने किया है। पोवाड़ों व अतिरंजनाओं से युक्त होते हुए भी सिद्धराम का मानवीय रूप धूमिल नहीं बना है।

सिद्धरामपुराण, सिद्धरामचारित्र्य *(क० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

'सिद्धरामपुराण' को 'सिद्धरामचारित्र्य' भी कहते हैं। इसके कवि राघवांक (समय—1165 ई०) कन्नड के एक श्रेष्ठ कवि हैं। 'सिद्धरामपुराण' एक कड़ा काव्य है जिसमें नौ संधियाँ (सर्ग) और 549 पद्य हैं। इसमें सोन्नलिगे अथवा सोन्नलापुर के प्रसिद्ध शिवभक्त सिद्धराम के चरित का वर्णन किया गया है। प्रथम संधि में कवि ने उनके संबंध में बताया है—'जगत के गुरु सिद्धरामनाथ मनुष्य नहीं हैं, कारण रुद्र (अर्थात् रुद्र के अवतार) हैं।' (1-7) वे जितेंद्रिय और शिवज्ञानी हैं। (1-26) उनके जन्म, बाल्यकाल, सिद्धि और महान् व्यक्तित्व का वर्णन कवि ने किया है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' को मानने वाले सिद्धराम के द्वारा अनेकों कार्य संपन्न होते हैं, जैसे—बावड़ी, तड़ाक आदि का निर्माण; पतितों, दीनों आदि का उद्धार। इन सबके कारण वे अवतार पुरुष सिद्ध होते हैं। वे विश्वप्रेमी और कर्मयोगी हैं। उनके चरित्र क उद्‌घाटन में कवि ने पूर्ण कौशल दिखाया है। उन्होंने रसपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हुए इस 'पुण्य-काव्य की कथा-रस से तरंगायित किया है। इसमें कल्पना की कमनीयता भी यत्र-तत्र असाधारण रूप में प्रकट हुई है। यह 'मानवता के मंदार कुसुम को प्रफुल्लित करने वाला महाकाव्य' है। वस्तु, रूप और गुण सभी दृष्टियों से यह एक स्वतंत्र काव्य है जो कन्नड-साहित्य में उन्नत स्थान पाने के योग्य है। राघवांक की काव्य-सिद्धि का यह एक ज्वलंत प्रमाण है।

सियेन नदीर ढो *(अ० कृ०)*

उमा बरुवा के इस उपन्यास की पृष्ठभूमि फ़्रांस है। अतएव उस देश की समाज-व्यवस्था का भी वर्णन मिल जाता है। इसमें रोमांस के चित्रण के साथ-साथ मानव की संवेदनशील अनुभूति का भी वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरखंडी *(पं० पारि०)*

यह प्रतिचरण उन्नीस से तेईस मात्राओं का सममात्रिक अतुकांत छंद है जिसमें 12 अथवा 14 मात्राओं पर यति का विधान है। श्रवण-सुख के लिए चरणों में मध्य तुकांत की योजना आवश्यक मानी जाती है। 'आदि ग्रंथ' में संकलित अनेक वारों के अतिरिक्त गुरु गोविंद-सिंह (दे०)-कृत 'चंडी दी वार' (दे०), 'कल्कि-अवतार' आदि में तथा कवि नजाबत (दे०)-रचित सुप्रसिद्ध 'नादिरशाह दी वार' (दे०) में इसी छंद का प्रयोग हुआ है।

'सिराज' औरंगाबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1714 ई०; मृत्यु—1764 ई०]

जन्मस्थान : औरंगाबाद (दक्षिण भारत)। पूरा नाम : शाह सिराजुद्दीन, उपनाम : 'सिराज', पिता का नाम : सैयद दुरवेश। इन्हें बचपन से ही वैराग्य हो गया था। इनकी आध्यात्मिक मादकता और भक्ति-भावना की यह स्थिति थी कि प्रायः नग्नावस्था में जंगलों में फिरा करते थे और ऐसी परिस्थितियों में बड़ी मार्मिक कविताओं का सृजन कर उन्हें गुनगुनाते रहते थे। इनका काव्य उर्दू में शांत रस का सुंदर उदाहरण है। परम सत्ता के प्रति दृढ़ विश्वास, प्रेम भावना, श्रद्धा, अनुराग और विरह-वेदना का वर्णन इनके काव्य की विशेषता है। अनुभूति की तीव्रता देखते ही बनती है। कलात्मक प्रौढ़ता के कारण इन्हें अनेक उर्दू कवियों के काव्य-गुरु होने का श्रेय भी प्राप्त था। इनकी मसनवियों, ग़ज़लों, फ़ारसी-काव्य और फ़ारसी-पत्रों का एक संकलन प्रकाशित हो चुका है। इनके मुर्शिद अब्दुलरहमान ने इनकी आध्यात्मिकता के प्रति अत्यधिक रुचि देखकर इन्हें काव्य-सृजन के त्याग का आदेश दे दिया था। परिणामस्वरूप, इन्होंने अपने जीवन का शेष भाग सूफ़ी और संन्यासी के रूप में ईश्वरोपासना में व्यतीत किया।

सिरि थूलि भद्द फागु *(अप०/गु० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवीं शती]

'सिरि थूलि भद्द फागु' जैनाचार्य जिनपद्म सूरि-रचित एक ऋतु काव्य है। 'फागु' काव्यों में इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। यद्यपि कवि ने इसे 'चैत' में गाने के लिए लिखा है, किंतु इसका वर्ण्य विषय वसंत न होकर वर्षा है।

साधु स्थूलि भद्र गुरु की आज्ञा पाकर अपनी पूर्वाश्रम की प्रेयसी कोषा के घर वर्षा के चार मास बिताने आते हैं। गणिका कोषा इन्हें आकृष्ट करने के लिए अनेक प्रयत्न करती है, किंतु स्थूलि भद्र विचलित नहीं होते। आलंबन के रूप में गणिका कोषा का एवं उद्दीपन के रूप में वर्षा का वर्णन सुंदर बन पड़ा है। इस कृति में कवि का भाषा-प्रभुत्व, रसिकता, अलंकार-योजना, सौंदर्य-वर्णन की क्षमता आदि द्रष्टव्य हैं। गुजराती के प्राचीनतम 'फागु' काव्य के रूप में इस कृति का विशेष महत्व है।

सिरियालुडु *(ते० पा०)*

सिरियालुडु का काव्यात्मक वर्णन हमें कवि सार्वभौम श्रीनायुडु (दे०)-कृत 'हरिविलासमु' (दे०) नामक काव्य के द्वितीय आश्वास में पाया जाता है। अपनी काव्यकुशलता के द्वारा कवि ने सिरियालुडु की शिवभक्ति का उज्ज्वल वर्णन किया है।

सिरियालुडु चिरुतोंडडु नामक वैश्य का पुत्र था। माता तिरुवेंगनांचि थी। माता-पिता परम शैवाचार संपन्न थे। पार्वती तथा परमेश्वर एक बार इन दंपत्तियों की परीक्षा लेना चाहते थे। वृद्ध अतिथियों के रूप में आकर दंपतियों से पुत्रमांस की कामना की। उधर दूसरी ओर सिरियालुडु को कुहना के रूप में ही भेंट कर उसे अपने माता-पिता की बात न सुनने का अनुरोध किया। परंतु बहुत ही तर्कपूर्ण उक्तियों से बालक ने अपने माता-पिता का वचन न टालने की अपनी प्रतिज्ञा सुनाई। अतिथि की इच्छानुसार कदलीपत्र में मांस परोसा गया। तब कुहना अतिथि-ईश्वर ने कहा कि जब तक आप और आपका पुत्र भी हमारे साथ भोजन नहीं करते तब तक हम भी भोजन नहीं करेंगे। तब ईश्वर का ध्यान करके पिता ने जोरों से बालक को पुकारा। अवढर दानी आशु-तोष शंकर भगवान की कृपा से बालक सजीव हो उठा। गौरीशंकर दोनों अपने भक्तों की अनुपम भक्ति से आनंद-विभोर हुए तथा अनेकानेक वर दिए और अंततः कैलास-वास का आश्वासन भी दिया।

'हरविलासमु' काव्य का रचना-काल 1430 ई० के आसपास था। इस पात्र की विशेषता इस बात में है कि सिरियालुडु ने श्रीनाथुडु कवि के द्वारा, वैष्णव-साहित्य में उपलब्ध ध्रुव का समानांतर स्थान तेलुगु के शैव-साहित्य में प्राप्त किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता *(सं० पा०)*

यह विदेहराज जनक की कन्या थी। इसे अत्यंत रूपवती चित्रित किया गया है। इसके जन्म की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इसे अग्निजा, रक्तजा और जनकात्मजा कहा गया है। जनक द्वारा आयोजित स्वयंवर में धनुषभंग की शर्त जीत जाने पर सीता का विवाह इक्ष्वाकुवंशी राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचंद्र (राम—दे०) से हुआ था। राम को वनवास दिए जाने पर सीता ने भी उनके साथ जाकर पति-भक्ति का प्रमाण दिया। रावण (दे०) द्वारा धोखे से इसका हरण किए जाने पर मार्ग में इसने ऋष्यमूक पर्वत पर अपने अलंकार फेंक दिए थे, जिससे इसे ढूंढ़ने में राम-लक्ष्मण (दे०) को पर्याप्त सहायता मिली। पर-स्त्री पर पाप-दृष्टि रखने के लिए रावण जैसे महाबली व्यक्ति की अत्यंत भर्त्सना करके इसने अपने साहस, धैर्य और सच्चरित्रता का अद्भुत परिचय दिया। राम द्वारा लंका-विजय के बाद अग्नि-परीक्षा में सफलता भी इसकी सच्चरित्रता और सतीत्व का चमत्कारपूर्ण प्रमाण बनी। राम के राज्यासन ग्रहण करने पर सीता ने 'राज्ञी-पद' को सुशोभित किया, किंतु कुछ समय बाद लोकापवाद के कारण राम को गर्भवती सीता को वन में छोड़ आने का आयोजन करना पड़ा। वाल्मीकि (दे०) के आश्रम में इसने लव-कुश नामक पुत्र-युगल को इकट्ठे जन्म दिया। राम द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ में राम की भेंट कुश-लव से हुई तथा उन्होंने सीता को इन दोनों के साथ अयोध्या बुला भेजा। कुछ कथाकारों के अनुसार अयोध्या पहुँचकर सीता पृथ्वी में समा गई। सीता पतिव्रता, सती, सच्चरित्रवती भारतीय नारी का प्रतीक है। वाल्मीकि से लेकर इस युग तक सैकड़ों लेखकों ने 'रामायण' (दे०)-कथा के माध्यम से राम-महिमा के साथ-साथ सीता का भी गौरवगान किया है।

सीतार बनवास *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1860 ई०]

संस्कृत साहित्य के अनुवाद के प्रसंग में विद्यासागर (दे० ईश्वरचंद्र विद्यासागर) की 'शकुंतला' (1854 ई०)तथा 'सीतार बनवास'(1860 ई०)सर्वाधिक उल्लेखनीय ग्रंथ है। 'सीतार बनवास' में 'उत्तररामचरित' से जिन अंशों का अनुवाद किया गया है उनमें दीर्घ समासबद्ध पदों का प्रयोग नहीं है। विद्यासागर ने अपनी भाषा के माध्यम से छंद-स्पंदन तथा संगीतमयता का संचार कर भाषा को शिल्प-गुणान्वित किया है। इस ग्रंथ में विषयानुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है।

सीताराम *(हिं० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

इनका जन्म अयोध्या में हुआ था। संस्कृत तथा अँग्रेज़ी-साहित्य के अनेक अनमोल ग्रंथों का हिंदी में प्रामाणिक अनुवाद करने वालों में इनका उल्लेखनीय स्थान है। इन्होंने अँग्रेज़ी से शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद किए तथा संस्कृत से कालिदास (दे०) की रचनाओं के अतिरिक्त 'मृच्छकटिक' (दे०), 'उत्तररामचरित' (दे०), 'मालती-माधव' (दे०), 'नागानंद' (दे०) आदि के। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने 'हिंदी-कालिदास की आलोचना' शीर्षक लेख में इनके कालिदास-विषयक अनुवाद-कार्य की अत्यंत कटु आलोचना की है। किंतु फिर भी यह निर्विवाद है कि इन्होंने विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं के हिंदी-अनुवाद द्वारा परवर्ती लेखकों को भी वैसा ही श्रेष्ठ रचनाओं के प्रणयन की प्रेरणा देने का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया था।

सीतारामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

'सीतारामन्' प्रसिद्ध हास्य-साहित्यकार पी० श्रीधरन पिळ्ळा का उपनाम है। 'हास्यलहरी', 'कार्ट्टिटे चोल्लु', 'एतानुम् कथकळ्', 'कळियुम् कार्यवुम्', 'हास्यरेखकळ्' आदि इनकी प्रमुख हास्य-रचनाएँ हैं।

सीतारामन् की विशेषता है मलयाळम के किसी भी कवि की शैली का हास्यानुकरण कर प्रभावशाली व्यंग्य की सर्जना करना। उळ्ळूर वळ्ळत्तोळ् (दे०) आदि कवियों की कुछ प्रसिद्ध रचनाओं पर इन्होंने विडंबन-कविताएँ (पैरोडी) लिखी हैं। इस क्षेत्र में सीतारामन् निश्चय ही बेजोड़ हैं।

सीतारामर्मूति चौधरी, तुम्मल *(ते० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

श्री चौधरी तेलुगु के प्रमुख राष्ट्रवादी कवि हैं। इन्होंने स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लिया था तथा इनकी अनेक रचनाओं में राष्ट्र-प्रेम एवं आंध्रत्व के प्रति अनुराग व्यक्त होता है। ये जनता को ही अपना धर्म मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राष्ट्रगानमु' (दे०), 'उदयगानमु', 'बापूजी आत्मकथा' (दे०), 'परिगपंटा' आदि इनकी रचनाएँ हैं। देश की जनता में कर्मठता के प्रति उत्साह एवं निष्ठा जागृत करने के लिए इन्होंने कविता को साधन बनाया। प्राचीनता का समुचित आदर करते हुए, अपनी धर्मनिष्ठा के अनुरूप इतिवृत्तों को ग्रहण करके इन्होंने सरल एवं सुंदर रचनाएँ की हैं। 'राष्ट्रगानमु' इनकी राष्ट्रीय चेतना को प्रखर रूप में व्यक्त करने वाली कृति है। इनकी 'बापूजी आत्मकथा' गांधी जी की आत्मकथा का पद्यानुवाद है। इस कृति की सफलता एवं लोकप्रियता के कारण ही इनको 'गांधी के दरबारी कवि' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त चरखा, अस्पृश्यता, भारत-माता, भारत का ग्रामीण जीवन आदि अनेक विषयों पर इन्होंने रचनाएँ की हैं।

इनमें आंध्रत्व के प्रति प्रेम भी घनीभूत रूप में पाया जाता है। अतः इनकी भाषा एवं भाव दोनों में आंध्रत्व का प्रतिफलन हुआ है। ये अपने आपको 'तेलुगु लेंका' (तेलुगु का सेवक) कहते हैं। गंभीर भावों को सहज सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में ये सिद्धहस्त हैं।

सीतारामचार्युलु बहुजनपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1891 ई०]

इनका जन्म-स्थान मद्रास के निकट नागपट्टन था। इनका वास-स्थान मद्रास था। तेलुगु के वैयाकरणों में आचार्य जी का स्थान द्वितीय था। प्रथम स्थान इनके गुरुकल्प परवस्तु चिन्नय्यसूरि (दे०) का था। चिन्नय्यसूरि के संपर्क में रहकर आचार्य जी अत्यंत लाभान्वित हुए। वैसे साहित्यिक जीवन के आरंभ-काल में इन्होंने कविता लिखी परंतु इनकी सहज रुचि लक्ष्यलक्षण-संबंधी व्याकरण की ओर अधिक थी। मद्रास में प्रशिक्षण पाठशाला के तेलुगु-पंडित के रूप में इन्होंने अपनी जीविका व्यतीत की। इसी समय तत्कालीन तत्रस्थ पंडितपुराणम् हयग्रीव शास्त्री, चदलवाड सीताराम शास्त्री, कोक्कोंड वेंकटरत्नमु पंतुलु (दे०) आदि महानुभावों की मैत्री इनको प्राप्त हुई।

इनके द्वारा प्रणीत व्याकरण की कृतियाँ हैं—'बालचंद्रोदयमु', 'अलघुकौमुदि' आदि। ये कृतियाँ छात्रोपयोगी हैं। इनके अतिरिक्त इनकी व्याकृति ग्रंथ 'त्रिलिंगलक्षण शेषमु' अत्यंत प्रसिद्ध है। यह चिन्नय्यसूरि-कृत 'बालव्याकरणमु' का परिशिष्ट ग्रंथ माना जाता है। इसकी प्रशस्ति विद्वानों में अद्यावधि बनी हुई है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सूरि के व्याकरण में प्रश्रय न पाने वाले सैकड़ों लक्ष्यों को सूत्रबद्ध किया गया है।

आचार्य जी के कीर्तिसौध का दूसरा आधार-स्तंभ है इनकी कृति 'शब्दरत्नाकरमु'। यह तेलुगु की कोश-परंपरा में सर्वप्रथम सफल कोश-ग्रंथ है। इसमें न केवल तत्सम और तद्भव शब्दों का संकलन देशजों के साथ हुआ है अपितु प्रामाणिक ग्रंथों से विभिन्न प्रयोगों के उदाहरण भी दिए गए हैं। इसके संकलन में इन्हें तेईस वर्ष लगे थे। आज भी पंडितों की दृष्टि में यही सर्वाधिक प्रामाणिक कोश-ग्रंथ है। इसका प्रकाशन 1855 ई० में हुआ था। अनंतर काल में इसके कई संस्करण निकले। प्रसिद्ध विद्वान श्री निडदवोलु वेंकटरावु ने इसका संवर्धन किया है।

सीतारामारावु, द्रोणंराजु *(ते० ले०)*

ये तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध नाटककार हैं। इन्होंने बंदर (मछलीपट्टणम) की नाटक-मंडली तथा राजमहेंद्री के गुन्नेश्वरराव की नाटक-मंडली के लिए 1913 ई० के आसपास तीस नाटकों की रचना की थी। 'रामायण' (दे०) की कथावस्तु को ग्रहण कर, इन्होंने 'श्रीरामजननमु', 'श्रीरामप्रवासमु' (1914), 'श्रीरामोद्योगमु', 'श्रीरामविजयमु', 'श्रीरामेश्वमेधमु' नामक पाँच नाटकों की रचना की है। इनके अतिरिक्त इनके 'विजय बोब्बिलि' (1912), 'पीश्वा नारायणरावुवध' (1912), 'चतुर चंद्रहासमु', 'सारंगधरा' नामक नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके नाटक उन दिनों के व्यावसायिक रंगमंच के लिए लिखे गए थे। अतः इन नाटकों का अभिनय बड़ी सफलता के साथ किया गया था।

सीतारामैया, एम० वी *(क० ले०)*

वर्तमान समय के उपन्यासकार तथा गद्यलेखकों में इसका अन्यतम स्थान है। ये अच्छे आलोचक भी हैं। 'कुमारव्यसन वर्णन' [कुमारव्यास (दे०) का वर्णन], 'श्री पुरंदरदासर परिचय' (श्री पुरंदरदास (दे०) का परिचय) आदि इनके आलोनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। समाज की विविध समस्याओं पर प्रकाश डालने और उन्हें सुलझाने के उद्देश्य से इन्होंने उपन्यासों का निर्माण किया है। इनके उपन्यासों की भाषा-शैली में प्रसाद गुण की प्रधानता है। इनके द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादित ग्रंथों में बेंगलूर कन्नड साहित्य परिषद् से प्रकाशित 'परिषत्' के स्वर्ण जयंती विशेषांक 'चिन्नद वेव्वसु' (सोने की फसल) का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सीतारामैया, वि० *(क० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

आधुनिक कन्नड-कविता के जन्मदाता स्व० बी० एस० श्रीकंठैया (दे०) के शिष्यों में वि० सीतारामैया जी भी एक है। संस्कृत-प्रेम, अनुभूति की तीव्रता, तात्त्विक अतृप्ति तथा वैचारिकता-इनकी शैली की विशेषताएँ हैं। 'गीतगळु', 'नेळ्ळु बेळकु' (धूप-छाँह), 'द्राक्षिदाळिबे' आदि इनके प्रसिद्ध कविता-संकलन हैं। दैंव-भक्ति तथा शरणागति इनके स्थायी भाव हैं तो कभी-कभी नास्तिकता संचारी के रूप में आ धमकती है। अचल जीवननिष्ठा, श्रद्धा तथा अंतस्सत्त्व इनकी कविता के विशेष गुण है। 'कस्मै देवाय', 'अनदी, शतंजीवेमशरदः शतं', 'गडिदाटु' आदि अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्चकोटि की कविताएँ हैं। 'कस्मै देवाय' में हमारे असंख्य देवताओं के विकास की कहानी तथा वर्तमान की निरीश्वरवादिता का चित्रण हैं। 'भनेतुंबिसुवुदु' इनकी अत्यंत लोकप्रिय कविता है जिसमें नवपरिणीता वधू को पिता विदा देते हुए आँसू बहाता है, 'मृगालयसिंह' में पराधीन भारत का अन्योक्ति द्वारा चित्रण है। ये एक सफल नाटककार, निबंधकार तथा आलोचक भी हैं। 'सोह्राबरुस्तमु' 'आग्रह' तथा 'श्रीशैल' इनके सुंदर नाटक हैं। 'आग्रह' में अश्वत्थामा' के दुराग्रह का चित्रण है। 'पंपायात्रे' इनका सर्वश्रेष्ठ प्रवास-साहित्य है। 'बेळदिंगळु' इनके सुंदर निबंधों का संकलन है। 'विमर्शय मौलयगळु', 'कादंबरी', 'अश्वत्थामन्' आदि में इनके सैद्धांतिक तथा आलोचनात्मक निबंध हैं।

सीतारामशास्त्री, वीरकेसरी *(क० ले०)*।

मैसूर राज्य के पुराने राष्ट्रसेवियों में स्व० वीरकेसरी सीतारामशास्त्री जी का नाम उल्लेखनीय है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व इन्होंने राष्ट्र के उत्थान के कार्यों सक्रिय भाग लिया था। उन दिनों में राष्ट्रहित की दृष्टि में रखकर इन्होंने 'वीरकेसरी' पत्रिका चलाई थी, उसी नाम से ये प्रख्यात भी हुए हैं। ये कन्नड, संस्कृत, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं के विद्वान् थे। इन्होंने 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) जैसे ग्रंथों पर काम किया था। वृद्धावस्था में यद्यपि इन्हें आँखों से नहीं दिखाई देता था तथापि इन्होंने लेखन-कार्य छोड़ा नहीं था। इन्होंने ऐतिहासिक परिवेश को लेकर उपन्यास लिखे हैं। 'दौलत' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें मैसूर का इतिहास सुंदर रूप में प्रकट हुआ है।

सीतास्वयंवर *(म० कृ०)*

यह कवयित्री वेणाबाई की रचना है। हिंदी की मीरां (दे० मीरांबाई) ने जैसे अपने जीवन को सर्मपित किया था वैसे ही मराठी की वेणाबाई ने अपने को रामर्पित कर दिया था। यह ओवी छंद में रचित है और इसमें कुल 14 'समास' (अध्याय) हैं। इस काव्य का सौंदर्य कवयित्री की निजी भावाभिव्यक्ति के कारण एकदम निराला रूप धारण लेता है। स्वयंवर के अवसर पर विवाह-पद्धति में प्रचलित समकालीन अनेक विधियों का आकर्षक वर्णन मिलता है। रामभक्ति की उत्कृष्ट भावना ने काव्य में अद्‌भुत सरसता उत्पन्न कर दी है और भाव और शैली दोनों में कवयित्री का निजी व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हुआ है।

सीताहरण काव्य *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1902 ई०]

भोलानाथ दास (दे०) द्वारा अतुकांत छंदों में लिखा यह असमीया का प्रथम महाकाव्य है। इस पर माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव है। लेखक ने संस्कृत शब्दावली के साथ-साथ मध्यकालीन असमीया-शब्दों का भी प्रयोग किया है। शूर्पणखा का वर्णन करते हुए सामान्यतः नारी की आलोचना की गई है।

सीरत-उल-नबी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1906-1912 ई०]

'सीरत-उल-नबी' अल्लामा शिबली (दे० शिबली निअ़मानी) की रचना है। इसका प्रकाशन 1918 ई० में हुआ था। इसमें इस्लाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद का जीवन-चरित लिखा गया है। यह गंभीर चिंतन-अनुसंधान का परिणाम है। कहा जाता है कि ऐसी 'सर्वांगीण एवं संपूर्ण जीवनी संसार की किसी भी भाषा में विद्यमान नहीं है। 'सीरत-उल-नबी' के पाँच भाग किए गए हैं जिनमें से पहले दो भाग तो अल्लामा शिबली ने स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे थे और शेष तीन भाग उनके निधन के पश्चात् अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी ने पूरे किए थे। पहले दो भागों में मक्का पर विजय, मदीना को हिजरत, निधन, स्वभाव और वैवाहिक जीवन के वृत्तांत हैं। शेष तीन भागों में उनके चमत्कारों का, धर्म-प्रवर्तन और भक्ति-साधना का वर्णन है।

अल्लामा ने हज़रत मुहम्मद के जीवन की विवादास्पद घटनाओं पर शोधपूर्ण विवेचन और निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। जीवनी-लेखन तथा धार्मिक दृष्टि से ग्रह अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। अल्लामा शिबली की अंतिम किंतु श्रेष्ठ देन है।

सीहरफी *(पं० पारि०)*

पंजाबी की एक प्रसिद्ध काव्य-रूप है। इसमें अरबी-फ़ारसी वर्णमाला के तीस शब्दों में से प्रत्येक से आरंभ कर छंद लिखे जाते हैं। 'सी' का अर्थ तीस है। इस प्रकार प्रत्येक 'सीहरफी' तीस-तीस छंदों की होती है। इस काव्य-रूप की परंपरा पुरानी है। पंजाबी में बावन अखरी, पैंती अखरी, पट्टी इसके अन्य रूपांतर हैं। यदि देवँनागरी लिपि की वर्णमाला से आधार हर लिखा जाए तो 'बावन अखरी', यदि गुरमुखी वर्णमाला को आधार बनाया जाय तो पैंतीस अक्षर होने के कारण उसे 'पैंती अखरी' कहते हैं। पंजाबी भाषा इन तीनों ही लिपियों में लिखी जाती है, अत: इनके आधार पर छंद लिखने की परंपरा प्रचलित हैं। गुरु नानक (दे०) की एक वाणी का नाम 'पट्टी' है जिसमें गुरुमुखी वर्णमाला को आधार बनाया गया है। इस काव्य का विषय प्राय: विप्रलंभ श्रृंगार है। परंतु नैतिक शिक्षा-दीक्षा, आध्यात्मिक विचारों के अतिरिक्त कुछ कवियों ने इस काव्य-रूप में कुछ कथाएँ भी हैं। इनमें नादरयार की सीहरफी 'पूरन भगत' (दे०) अत्यंत प्रसिद्ध है। उदाहरण :

अलिफ आसखी सिआल कोट अंदर।
पूरन भगत सलवान दे जाइआ ऐ।
जदों जंमिआं राजे नूं खबर होई।
सद पंडितां भेद पढ़ाइयां ई।

सुंकापुर *(क० ले०)*

डा० एम० एस० सुंकापुर कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ में कन्नड के प्राध्यापक हैं। इनका शोध-ग्रंथ 'कन्नड साहित्यदल्लि हास्य' (कन्नड साहित्य में हास्य) अत्यंत लोकप्रिय हुआ है। उसमें इन्होंने अपनी शोध-प्रज्ञा का अच्छा परिचय दिया है। पांठानुसंधान के क्षेत्र में भी इन्होंने स्तुत्य कार्य किया है। 'जीवन जोकालि', 'वैराग्यदलरु' (डा० नंदिमल के साथ संपादित), 'सोमनाथचरित्ते', 'शांतलिंगदेशिखर भैरवेश्वर काव्यद कथामणिसूत्ररत्नाकर', 'राजशेलरविलास', 'समरदुंदुभि' (ये सब ग्रंथ ना० आर० सी० हिरेमठ (दे०) के साथ संपादित) और 'हम्मीर काव्य' इस बात के प्रमाण हैं। ईनका 'नम्म नाटकगळु' (हमारे नाटक) भी सुंदर ग्रंथ हैं।

सुंदर *(बँ० पा०)*

विह्लण (दे०) के 'चौरपंचाशिका' (दे०) वररुचि के 'विद्यासुंदरम्' आदि संस्कृत काव्य के आधार पर बँगला में 'विद्यासुंदर' की रचना हुई है। कृष्णराम (दे०), भरतचंद्र, रामप्रसाद, राधाकांत आदि कवियों ने विद्यासुंदर-काव्य की रचना की है एवं प्रत्येक के काव्य में चरित्र-चित्रण की धारा लगभग एक जैसी है। सुंदर के चरित्र में भी इनका कोई व्यतिक्रम नहीं है। सुंदर को कवियों ने निर्भीक, योद्धा, प्रेमी, भक्त आदि बहुगुणान्वित चरित्र के रूप में चित्रित किया है यद्यपि चरित्र को कृत्रिमता से मुक्त नहीं कर पाए हैं। परिणामस्वरूप एक ओर यह चरित्र सजीव नहीं बन पाया है और दूसरी ओर लेखक के हाथों की कठपुतली बनकर उनके उद्देश्यों का अनुसरण करता है यद्यपि चरित्र में कहीं भी दबदवा या प्रदर्शन की कमी नहीं है। सुंदर समकालीन युगरुचि का पोषक मात्र है और वहीं उसकी सार्थकता एवं व्यर्थता दोनों ही समरूप में प्रकट हुई हैं।

सुंदरजी बेटाई *(गु० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

ये सुप्रसिद्ध कवि नर्रासिह राव के शिष्य और नाथीबाई ठाकरशी विद्यापीठ में आजीवन गुजराती के प्राध्यापक रहे। इनके 'ज्योतिरेखा', 'इंद्रधनु', तुलसी दल', विशेषांजलि', 'स्वर्गस्थ चंद्रशीलाने' प्रभृति काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। खंडकाव्यों के प्रणयन में इन्हें विशेष सफलता मिली है।

'स्वर्णमेघ' नाम से इनका आलोचनात्मक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। आलोच्य कृति के लेखों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी अध्ययनशीलता और कलात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है।

सुंदरत्तण्णि *(त० पा०)*

यह उन्नीसवीं शती में वेदनायकम् पिळ्ळै (दे०) द्वारा लिखित तमिल के प्रथम उपन्यास प्रताप-मुदलियार चरित्तिरम् (दे०) का एक स्त्री पात्र है। यह कथानायक 'प्रताप' की माँ है। इस उपन्यास के आदर्श स्त्री पात्रों में 'ज्ञानांबाल' (दे०) के बाद इसका स्थान है। इस पात्र का बहुत कम विवरण उपन्यास में आया है किंतु उससे इसकी विनयशीलता, ज्ञानवत्ता, व्यवहारकुशलता तथा अन्य आदर्श स्त्री गुणों का परिचय मिलता है। प्रताप, यह सोचकर कि धनी व्यक्ति को पढ़-लिखकर नौकरी नहीं करनी है, पढ़ाई से मन मोड़ लेता है, उसकी दादी का भी ऐसा ही विचार है। किंतु यह उसे पढ़ने को विवश कर देती है। दादी के कथनानुसार अध्यापक प्रताप की ग़लती पर उसे दंड न देकर उसके बदले अपने ही पुत्र को दंड देता रहता है, जिसे देखकर प्रताप अपनी ग़लती को महसूस करे। इसे जब यह बात विदित होती है तब यह प्रताप तथा उसके सहपाठी 'कनकसमै' को एक साथ भोजन देते समय कनकसमै को ही सारा भोजन परोस देती है और प्रताप से कहती है कि इसे खाते हुए देखो और खुश हो जाओ। इस प्रकार यह अध्यापक की दंड-नीति में परिवर्तन लाती है। इसके प्रति इसकी सास (प्रताप की दादी) ने मन में अत्यंत प्रेम तथा आदर है। वह बड़े गर्व के साथ अपनी बहू के बचपन के बारे में बच्चों को सुनाती है। इसके साथ विवाह करने की इच्छा के धोखे से इसे हरण कर ले जाने से यह बच निकलती है। इस घटना से इसके धैर्य तथा साहस का पता लगता है।

सुंदरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1596 ई०; मृत्यु—1689 ई०]

सुंदरदास का आविर्भाव जयपुर के घौसा नगर में हुआ था। ये बहुत सुंदर थे अतएव इनके गुरु दादूदयाल ने इनका नाम सुंदरदास रख दिया। ये खंडेलवाल वैश्य थे और हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत तथा फ़ारसी पर इनका अच्छा अधिकार था। गुरु की मृत्यु के पश्चात् ये डीडवाणे; और वहाँ से काशी चले गए, जहाँ इन्हें विद्या और सत्संग का लाभ हुआ। शेखावटी लौटकर इन्होंने योगाभ्यास किया।

इनकी कुल रचनाएँ 42 हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं : 'ज्ञानसमुद्र', 'सुंदर-विलास', 'सर्वांगयोगप्रदीपिका', 'पंचेंद्रियचरित्र', 'सुख-समाधि', 'अद्‌भुत उपदेश', 'स्वप्न-प्रबोध', 'वेदविचार', 'पंचप्रभाव', 'ज्ञानझूलना'। इनकी रचनाएँ काव्यशास्त्र और व्याकरण-सम्मत तथा छंद, अलंकार और रस-निरूपण से पूर्ण हैं। इनका चित्रकाव्य भी है। इनके ग्रंथ मुख्यतः संतकाव्य की शास्त्रीय व्याख्या के लिए उपयोगी हैं, जो नारी और शृंगार के विरुद्ध, किंतु अद्वैतवाद और आत्मानुभव पर आधृत हैं।

सुंदरम् *(गु० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

त्रिभुवनभाई पुरुषोत्तम 'सुंदरम्' के उपनाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म भरूच ज़िले के मातर नामक गाँव में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश भरूच की राष्ट्रीय शाला में हुआ और यहाँ से विनीत होकर सुंदरम् गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, में उच्च शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। 'भाषाविशारद' की पदवी प्राप्त करते-करते इनमें अध्यापक रामनारायण वि० पाठक (दे०) के श्रम और उनकी सत्कृपा के परिणामस्वरूप गुजराती कविता के उत्तम संस्कार गहराई तक उतर गए और इन्हें गुजराती पिंगल का पूर्णज्ञान प्राप्त हो गया। गांधी जी की आत्मकथा में उल्लिखित 'बालसुंदरम्' गिरमीटिया के नाम के आधार पर इन्होंने अपना नाम 'सुंदरम्' रख लिया। स्नातक होने के बाद इन्होंने सर्वप्रथम अध्यापन-कार्य किया। इसके पश्चात् कुछ समय तक ज्योतिसंघ, अहमदाबाद, को अपनी सेवाएँ प्रदान कर पिछले दो-एक दशकों से अरविंद आश्रम में रहते हुए 'दक्षिणा' का संपादन-कार्य सँभाले हुए हैं।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान काल में सुंदरम् का निर्माण हुआ था। इनके साहित्य का मुख्य स्वर गुलामी, ग़रीबी, अज्ञानता और व्याप्त विषमता को दूर करने के लिए प्रजा में जागृति लाने के हेतु मुखरित हुआ था। 'कोया भगतनी कडवी वाणी अने गरीबोनां गीतो' में यथार्थ-चित्रण, 'काव्यमंगला' में प्रभुश्रद्धा, देश के प्रति बलि देने की भावना, दार्शनिक चिंतन, मानव-सेवा, आदि, 'वसुधा' (दे०) में प्रणय का उत्कृष्ट आवेग और 'यात्रा' (दे०) में अध्यात्म (अरविंद-दर्शन से प्रभावित) के दर्शन होते हैं। 'रंगमंच वादलिया' की सभी रचनाएँ बाल-साहित्य को समृद्ध करती हैं। कविता-संग्रहों के अतिरिक्त सुंदरम् के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी-संग्रह हैं—'खोलकी अने नागरिका', 'हीराकणी अने बीजी वातो', 'पियासी' और 'उन्नयन' (दे०)। 'दक्षिणायन' इनका दक्षिण की यात्रा से संबंधित यात्रा-साहित्य है। आलोचना के क्षेत्र में 'अर्वाचीन कविता' (दे०), अनुवादों में संस्कृत के नाटक 'मृच्छकटिकम्' (दे०) और 'भगवदज्जुकीयम्' तथा अँग्रेज़ी के 'ट्रांस्फ़ीग्यूरेशन' नामक नाटक से 'कायापलट' नामक अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में, 'सुदरम्' सुकवि, यथार्थ के चितेरे, निर्भीक आलोचक, देशभक्त और अब अध्यात्म के क्षेत्र में विचरण करने वाले साहित्यकार के रूप में गुजराती साहित्य में प्रसिद्ध हैं।

सुंदरम् पिळ्ळै, पी० *(त० ले०)* [समय—1855 ई० से 1897 ई० तक]

ठेठ तमिल में इनका नाम है चुंतरम् पिळ्ळै। केवल 42 साल जीवित रहने पर भी, दर्शन, साहित्य एवं इतिहास तीनों क्षेत्रों पर इनका प्रभाव अमिट है। ये 'तिरुवनंतपुरम्' के आर्ट्स कालेज में रहे थे। अपनी मातृभाषा तमिल के लिए इनकी विशिष्ट देन 'मनोन्मणीयम्' (दे०) नामक नाटक-कृति है। तमिल नाटक की प्राचीन परंपरा बहुत पहले नष्ट हो गई थी और कई शतियों से नाटक के क्षेत्र में शून्यावस्था चल रही थी। अँग्रेज़ी पद्य-नाटकों का अनुकरण करते हुए इन्होंने एक अपूर्व कलाकृति प्रस्तुत की जो आधुनिक बोध, दार्शनिक चर्चा, आकर्षक अभिव्यक्ति, सजीव कथोपकथन इत्यादि से संपन्न होकर तमिल नाटक-विधा के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुई। ये तमिल के अत्यंत प्राचीन व इतिहास के सफल खोजकर्त्ता थे। इन्होंने ही 'तिरुवनंतपुरम्' में शिलालेखों की खोज एवं अनुसंधान का एक पृथक् विभाग खुलवाया था। इनकी पुस्तक 'तमिल साहित्येतिहास की कुछ मार्गशिलाएँ शैव संतों के समय का तर्कपूर्वक निर्णय प्रस्तुत करती है। 'नूर्रोकै विळक्कम्' ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषणात्मक परिचय देने वाले व्याख्यानों का संग्रह है।

सुंदरर् *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवीं शती का अंतिम चरण]

सुंदरर् तमिल प्रांत के प्रसिद्ध शैव संतों में से हैं। ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनकी दो पत्नियाँ थीं: शंगिनी और परवै। इनका पारिवारिक जीवन बहुत सुखद था। सोलह वर्ष की आयु में ये शिव के परम भक्त बन गए थे। इनकी भक्ति सखा-भाव की थी। भक्त होते हुए भी इनके मन में लौकिक सुखों के प्रति प्रबल आकर्षण था। इनके भक्तिमय पद 'देवारम्' (दे०) नामक कृति में संगृहीत हैं। इनके पदों में प्रकृति के जनेक सुंदर चित्र प्राप्त होते हैं। प्रसिद्ध है कि इनके 'तिरुत्तोंडत्तोगै' के आधार पर ही परवर्ती काल में शेक्किलार ने 'पेरियपुराणम्' (दे०) की रचना की थी जिसमें तमिल प्रांत में आविर्भूत 63 शैव संतों की जीवनियाँ दी गई हैं।

सुंदरिकळुम् सुंदरन्मारुम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह उरूब (दे०) का साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है। इस बृहत् उपन्यास में मलाबार के ग्रामीण और नगरीय जीवन के विविध स्तरों के अंतर्गत जनता की दो पीढ़ियों तक की कथा बताई गई है। उपन्यास के प्रथम भाग की पृष्ठभूमि ग्रामीण है। उत्तरार्ध में सारे पात्र नगर के कर्मक्षेत्र में आ जाते हैं और स्वतंत्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि में उनके चरित्र का विकास दिखाया गया है। घटनाओं के विकास-क्रम में प्रणय-कथाएँ भी अंतर्ग्रथित हैं।

उरूब के इस उपन्यास में अनेक पात्रों के भिन्न-भिन्न चरित्रों का चित्रण कुशलतापूर्वक किया गया है। इन सभी पात्रों के रंग-बिरंगे जीवन के रूप में केरलीय जन-जीवन का चित्र समुज्ज्वल और भास्वर हुआ है। उपन्यास की भाषा काव्यात्मक और प्रभावशाली है। मलयाळम के उपन्यासों में 'सुंदरिकळुम् सुंदरन्मारुम्' का प्रमुख स्थान है।

सुंदरी *(पं० पा०)*

सुंदरी नानकसिंह (दे०) के सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'चिट्टालहू' (दे०) की नायिका है। अवैध संतान के रूप में जन्मी, रोडू कलंदर द्वारा पालित-पोषित एवं समाजसुधारक बचनसिंह के सहयोग से शिक्षित होकर समाज-सेवा तथा सुधार-कार्यों में प्रवृत्त होती है। नाम के अनुरूप सुंदर तथा स्वभाव से कोमल सुंदरी अपने निर्दोष पति को दंड दिलाने वाले व्यक्तियों से तथा अपनी माँ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए अत्याचारों का प्रतिशोध लेती हुई समस्त दुष्ट पात्रों को मार कर आत्महत्या कर लेती है। यह नानकसिंह का आदर्शवादी चरित्र है, जो कि नारी-संबंधी सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

सुंदरी *(पं० कृ०)*

'सुंदरी' भाई वीरसिंह (दे०) का एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी प्रेरणा उन्हें एक लोकगीत से मिली। लोकगीत में मुग़लों के अत्याचारों से त्रस्त पंजाबी नारी की अंतर्व्यथा थी। महाराज रणजीतसिंह द्वारा खालसा-दरबार की स्थापना से पूर्व पंजाब में सिख मुग़लों की कोपाग्नि से बचने के लिए जंगलों और बेहड़ों में छिपकर छापामार-युद्ध के लिए सन्नद्ध रहते थे। उनके परिवारों, विशेषतः स्त्रियों, को घोर कष्ट सहन करने पड़ते थे। उस संकट काल में भी पंजाबी नारियों ने सतीत्व, मर्यादा, और आदर्श जीवन-मूल्यों की रक्षा किस साहस से की, सुंदरी में इसी का चित्रण है। सुंदरी का पूर्वनाम 'सरस्वती' है। वह शामदास की पुत्री और बलवंतसिंह की बहन है। गौने के दिन उसे लुटेरे अपहृत कर शासक के पास ले जाते हैं। शासक पिता, भाई, पति की फ़रियाद ठुकरा देता है। सरस्वती जल मरने का प्रयास करती हुई भाई द्वारा बचा ली जाती है जो उसे वन में ले जाता है क्योंकि शासकों के भय से परिवार वाले उसकी निंदा करते हैं। सरस्वती वहाँ सिख-मत स्वीकार कर सुंदरी नाम से वीर योद्धाओं की सेवा में लग जाती है। यहाँ वह अपने दयाभाव के कारण कई बार शासकीय प्रतिनिधियों के चंगुल में फंसती है किंतु बिजला सिंह नामक युवक की नीति-कुशलता से बार-बार मुक्त करा ली जाती है। अंत में आततायियों के साथ सिखों के संघर्ष में घायल होकर, 'गुरु ग्रंथ साहब' का पाठ सुनते-सुनते, प्राण त्याग देती है। 'सुंदरी' उपन्यास का कथानक पर्याप्त रोचक और नाटकीयता-समन्वित है। इसके प्रेरणाप्रद संदेश ने एक समय पंजाबी-पाठकों को बेहद प्रभावित किया था।

सुक्खा सिंह *(पं० लें०)*

इनके माता-पिता का बाल्यावस्था में ही देहांत हो गया था। ये चार भाई थे। इन्हें अग्रज ने पाला-पोसा एवं शिक्षित किया। इनकी कृतियों में 'गुर विलास छठी पातपाही दा' तथा 'गुर विलास दशम पातशाही दा' प्रसिद्ध हैं। इनमें भी 'गुरविलास छठी पातशाही दा' इनके द्वारा संपादित ग्रंथ माना जाता है। दूसरा 'गुर विलास दशम पातशाही दा' ग्रंथ इनका स्वलिखित है। इस ग्रंथ का पौराणिक महत्व है। कवि रूप में सुक्खा सिंह सफल हैं। गुर विलास में चरितनायक गुरु गोविंद सिंह के अनुरूप वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। युद्ध के वर्णनों में रौद्र एवं भयानक रस का परिपाक भी हुआ है। प्रकृति-चित्रण में भी कवि सुक्खासिंह की प्रतिभा सफल रही है। कवित एवं सवैया के प्रयोग में कवि-प्रतिभा का कौशल प्रखर है। काव्य में ब्रजभाषा के प्रचलित शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया गया है। खड़ी बोली के व्यावहारिक शब्द भी इनकी इस कृति में मिलते हैं। इसकी 'बारा मांह' नाम की एक काव्य-रचना भी प्राप्त है। इस रचना में बारहमासा वर्णित है। सिक्ख मत के गुरु द्वारा केसरगढ़ साहिब के ग्रंथी कवि सुक्खा सिंह ने साहित्यिक के रूप में 'गुरविलास दशम पातशाही दा' कृति का निर्माण कर पंजाबी काव्य में उत्कृष्ट प्रबंधकाव्य-परंपरा की स्थापना की है। इसी लिए आज तक यह ग्रंथ अपना ऐतिहासिक-पौराणिक एवं साहित्यिक महत्व स्थिर रखे हुए है।

सुख़नदान-ए-फ़ार्स *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1872 ई० के लगभग]

'सुख़नदान-ए-फ़ार्स' मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (दे०) के निबंधों का संग्रह है। इसके प्रथम भाग में फ़ारसी-भाषा की उत्पत्ति एवं विकास का विवेचन द्वितीय भाग में वे बारह निबंध हैं जो कालेज के विद्यार्थियों के सम्मुख पढ़े जाने के लिए लिखे गए थे और जिनमें पहला निबंध 9 फरवरी, 1972 को प्रस्तुत किया गया था। इस दूसरे भाग में ईरान की प्राचीन भाषा, उसमें होने वाले परिवर्तन, उस पर समाज एवं संस्कृति का प्रभाव, राजनीतिक परिवर्तनों का फ़ारसी साहित्य पर प्रभाव, लेखकों, कवियों और उनकी रचनाओं का तथा भारत में फ़ारसी भाषा एवं साहित्य का स्थान आदि विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से इस पुस्तक का बहुत महत्व है। इससे पहले इस विषय पर उर्दू में तो क्या फ़ारसी में भी कोई रचना नहीं थी। मौलाना आज़ाद की विख्यात गद्य शैली की छवि इस पुस्तक में भी विद्यमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखवीर *(पं० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

पंजाबी साहित्य में आधुनिक और महानगरीय यांत्रिक जीवन-बोध को जिन थोड़े से कलाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से रूपायित किया है उनमें सुखबीर का नाम सबसे पहले आता है। बंबई जैसे महानगर में स्थायी निवास के कारण सुखबीर को उस जटिल और तनावपूर्ण जीवन का गहरा अनुभव है जो आधुनिक वोध की पृष्ठभूमि है। सुखबीर पंजाबी के नये कवियों में अग्रगण्य हैं। उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

प्रमुख रचनाएँ—'पैंड़ां' (कविता-संग्रह); 'डुबदा चढदा सूरज' (कहानी-संग्रह); 'पाणी ते पुल', 'सड़कां ते कमरे' (उपन्यास)।

सुखमनी *(पं० प्र०)*

सुखमनी का एक अर्थ है मन को सुख प्रदान करने वाली वाणी। यह गौड़ी राग में गुरु अर्जुनदेव द्वारा रचित है। इसमें 24 अष्टपदियाँ हैं। उदाहरण—

जन्म मरण ताका दुख निवारै,
दुलभ देह ततकाल उधारै,
बुख रोग विनसे भै भरम,
साफ नाम निरमल ता के करम,
सम ते ऊँच ताकी सोभा बनी,
नानक इह गुणि नामु सुखमनी।

(सुखमनी)

सुखमनी का दूसरा अर्थ है—सुषुम्णा नाड़ी; योगियों द्वारा परिकल्पित एक नाड़ी जो नासिका-मूल से लेकर मस्तिष्क तक पहुँचती है। इसके दाहिनी ओर पिंगल और बाईं ओर इड़ा नाड़ियाँ हैं। यह नाड़ी चंद्र, सूर्य और अग्नि-रूपा है। साधक सतत आभास द्वारा जब अपने प्राणों की गति इसमें सीमित कर लेता है तो उसे अनहद शब्द सुनाई देता है और अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। इसे ब्रह्ममार्ग अथवा महापथ भी कहा गया है।

सुखलाल जी संघजी संघवी, *(गु० ले०)* [जन्म—1880 ई०]

पंडित सुखलाल जी का जन्म वढवाण के पास लीमली (सौराष्ट्र) नामक छोटे से गाँव में हुआ था। केवल वर्नाक्यूलर की सातवीं कक्षा तक पढ़े हुए श्री सुखलालजी सोलह वर्ष की आयु में शीतला के रोग से ग्रस्त हुए और अपनी दोनों आँखें खो बैठे। प्रज्ञात्रक्षु बन जाने पर इन्होंने संस्कृत साहित्य और दर्शन में अपनी रुचि जाग्रत की। परिणामस्वरूप ये काशी और मिथिता गए जहाँ इन्होंने न्यायशास्त्र वेदांत आदि का गहन अध्ययन किया। पंडितजी के लेखन का कार्य आगरा से आरंभ हुआ। गांधी जी के द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ में ये दर्शन-शास्त्र के अध्यापक के रूप में नियुक्त होकर आए। तत्पश्चात जैन-दर्शन के अध्यापक के रूप में इन्होंने अपनी सेवाएँ काशी हिंदू विश्वविद्यालय को अर्पित कीं। इनकी रचनाएँ हैं: 'योगदर्शन' (हिंदी), 'चारकर्मपथ', 'पंचप्रतिक्रमण', 'दंडक', 'प्रमाणमीमांसा', 'जैनतर्कभाषा', 'ज्ञानबिंदु', 'तत्त्वोप्पलव', 'न्यायावतार', 'सन्मतिलक'—छह भाग, 'वेदवादत्रिशिका', 'हेतुबिंदु' (सभी अनुवाद अथवा संपादन), 'जैन दृष्टिए ब्रह्मचर्य विचार', 'तत्त्वायाधिगम' तथा 'दर्शन और चिंतन' (मौलिक कृतियाँ)। इन कृतियों को देखने से पंडित जी के वैविध्यपूर्ण ज्ञान की सहज ही प्रतीति हो जाती है। फिर भी पंडित जी की रुचि जहाँ पर सर्वाधिक रमी है वे जैन और बौद्ध दर्शन हैं। इसके अलावा इनके लेखन के विषय साहित्य और समाज भी रहे हैं। पंडित जी का संबंध बंबई (भारतीय विद्याभवन), अहमदाबाद (गुजरात विद्यासभा) तथा आगरा (आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल) की संस्थाओं के साथ प्रगाढ़ रूप से है। सभी रचनाओं में पंडित जी का अभिगम संतुलित व असांप्रदायिक है। दर्शनों की पारस्परिक तुलना के द्वारा इन्होंने तत्त्व को ग्रहण करने-कराने का प्रयत्न किया है। हृदय और बुद्धि से संतुलित, सुसंस्कृत, चिंतनशील प्रतिभायुक्त पंडित जी के व्यक्तित्व की झलक इनकी प्रत्येक रचना में मिल जाती है। हिंदी और गुजराती के क्षेत्र में पंडित जी के समान विद्वान् और विनयी कम ही देखने को मिलेंगे।

सुगतकुमारी *(मल० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

मलयाळम की यह प्रतिभाशाली कवयित्री प्रसिद्ध कवि बोधेश्वरन् की पुत्री है। 'मुत्तुच्चिप्पि', 'स्वप्नभूमि', 'पातिराप्पूक्कळ्' और 'पावम् मानवहृदयम्' में उनकी कविताएँ संगृहीत हैं।

सुगतकुमारी की कविता रोमानी काव्य-धारा और अत्याधुनिक कविता के बीच की एक कड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमांटिक कवियों के रचना-सौष्ठव के साथ उन्होंने वैज्ञानिक नागरिकता के युग की कुंठाओं और संत्रासों को स्वर दिया है। नयी पीढ़ी के कवियों में सुगतकुमारी का नाम अग्रणी है।

सुगात्री *(तें० पा०)*

यह पिंगळि सूरना (दे०) (सोलहवीं शती) के विख्यात प्रबंध-काव्य 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) की एक महत्वपूर्ण पात्र है। यह काश्मीर के शारदा पीठ के पुजारी की प्रिय पुत्री है। शालीनुडु (दे०) नामक एक कला-प्रेमी युवक के साथ उसका विवाह होता है और वह घर जँवाई के रूप में वहीं रह उठता है। सहज सौंदर्य का उपासक होने के कारण शालीन अनेक आभरणों से लदी हुई पत्नी के प्रति सदा विरक्त रहता है। फिर भी पति की विरक्ति का कारण न जानने वाली सुगात्री पति के प्रति अनुराग एवं अपनी सेवा-भावना में कोई अंतर नहीं आने देती। श्रम-जल-बिंदुओं से विभूषित एवं श्रांति से रक्तिम देहवाली होकर सुगात्री पति के अनुराग को पाने के लिए उसके साथ उपवन में कठोर परिश्रम करती है। इस प्रकार यह क्षमा, निश्चल अनुराग एवं सेवा-भावना से पति के प्रेम को पाने में सफल होने वाली साध्वी है। यह सदा पति की कुशलता एवं सुख को ही लक्ष्य करके अपना जीवन व्यतीत करती है। आंध्र में यह एक पतिपरायण सती-साध्वी के उदाहरण के रूप में जानी जाती है।

सुजानचरित *(हिं० कृ०)* रचना-काल—1753 ई० के आसपास]

वीररस के प्रसिद्ध कवि सूदन (दे०) ने अपने आश्रयदाता सूरजमल की प्रशंसा में इस ग्रंथ का निर्माण किया था। यह ग्रंथ राधाकृष्णदास के संपादकत्व में 1923 ई० में काशी नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

सूफ़ी-कवियों की भाँति सूदन ने भी ग्रंथ के प्रारंभ में लगभग 175 कवियों का नामोल्लेख किया है। सूरजमल द्वारा लड़ी गई सात लड़ाइयों एवं उनके वंश का गौरव कवि ने बड़े मनोयोग से वर्णित किया है। ग्रंथ में राजा का समग्र जीवन बखूबी चित्रित किया गया है। वीररस के साथ श्रृंगार और बीभत्स का प्रतिपादन भी किया गया है। ग्रंथ में 103 प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है और इस तरह कवि ने पल-पल में छंद बदल कर अपने पांडित्य का प्रदर्शन किया है। नाम और विविध वस्तुओं के परिगणन में नीरसता आ गई है। सूदन की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है, उसमें पूर्वी, बैसवाड़ी, मारवाड़ी, पंजाबी, फ़ारसी, आदि के शब्दों का भी समावेश पाया जाता है। वीर-काव्य में भूषण (दे०) और लाल (दे०) के बाद सूदन का ही नाम आता है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

सुजानसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

सुजानसिंह की गणना पंजाबी के शीर्षस्थ लेखकों में की जाती है। इनकी प्रारंभिक कहानियाँ सुधारवादी और रोमांटिक यथार्थतावादी दृष्टि से प्रभावित रहीं परंतु धीरे-धीरे उनकी दृष्टि सामाजिक यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुई और बाद में पंजाबी के प्रगतिशील आंदोलन से इनका गहरा संबंध स्थापित हुआ।

कथ्य के साथ ही शिल्प की दृष्टि से भी सुजानसिंह ने पंजाबी कहानी को बहुत समृद्ध किया है। लेखक के अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें प्रमुख हैं—'दुख सुख', 'दुख सुख तो विच्छों', 'सम रंग', 'पशु ते आदमी' तथा 'नवां रंग'।

सुजानहित *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती का उत्तरार्ध]

अठारहवीं शती में घनानंद (दे०) सम्राट मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। एक दिन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह को बताया कि मुंशी जी बहुत अच्छा गाते हैं। बादशाह के बार-बार आग्रह करने पर ये गाना सुनाएँगे। हुआ भी यही। सुजान के कहने पर मुंशी जी ने बहुत अच्छा गाया। किंतु इस बेअदबी के कारण इन्हें बादशाह का कोप भाजन बनना पड़ा और राज्य से निष्कासन का दंड मिला) सुजान ने इनका साथ देने से मना कर दिया और अंत में ये वृंदावन चले गए, पर 'सुजान' शब्द का अंत तक त्याग न कर सके। यहाँ तक कि इन्होंने अपनी रचनाओं में भी राधा के लिए 'सुजाने' शब्द का प्रयोग किया है।

'सुजानहित', 'आनंदघनजू के कवित्त', 'सुजानहित-प्रबंध', 'कृपाकंद', 'वियोगबेलि', 'इश्कलता', 'जमुनाजस', 'प्रीतिपावस', 'सुजानविनोद', 'रसकेलिवल्ली',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वृंदावनसत', आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' कोई स्वतंत्र ग्रंथ न होकर कवि के 500 छंदों का संग्रह-ग्रंथ है। 'घनानंद कवित्त' को 'सुजानसागर' नाम से भी जाना जाता है। 'सुजानविनोद' परवर्ती रचना है जिसके कुछ पद 'सुजानहित' से भिन्न हैं; अधिकांश पद 'सुजानहित' के अनुरूप हैं।

'सुजानहित' में सुजान के स्थूल और सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण किया गया है। 'सुजान' के रूप-सौंदर्य, नृत्य और नाट्य की भंगिमाओं, उसके वीणा बजाने, साँवली साड़ी में उसके नयनाभिराम सौंदर्य, घनानंद को निशानी का छल्ला देने, उसके मेंहदी लगाने, कटाक्षपात आदि का चित्रण किया गया है। सुजान स्वयं भी कविता करती थी। 'सुजानहित' में ब्रजभाषा के अतिरिक्त पूरबी, पंजाब और राजस्थानी के शब्द भी पाए जाते हैं। ग्रंथ की भाषा में श्रृंगार रस के आधिक्य के कारण सर्वत्र एक प्रकार की मसृणता पाई जाती है। भाषा का लचीलापन दर्शनीय है—

तेरी निकाई निहारि छकें छविबहू को
अनूपम रूप कढ्यौ है॥
इठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि
आय मनोज को चोज पढ्यौ है।

निश्चय ही हिंदी-साहित्य में स्थूल और सूक्ष्म श्रृंगार के समवाय तथा नायिका के विविध हाव-भावों के चित्रण की दृष्टि से 'सुजानहित' अपूर्व रचना है और इसके प्रणेता घनानंद भक्ति और श्रृंगार की समन्वित धारा के निर्व्याज चारण कवि माने जाते रहेंगे।

सुत्तनिपात (पा० कृ०)

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के अंतर्गत 'खुद्दक-निकाय' का एक भाग है। 'निपात' शब्द की कई रूपों में व्याख्या की गई है। कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं सार-संग्रह; दूसरे लोगों के मत में इसका अर्थ है विशाल संग्रह का छोटा—सा भाग; न्यूमैन ने इसका अर्थ किया है खंड और ओल्डेनबर्ग ने इसका अर्थ किया है—सामयिक वक्तव्य का पृथक्कृत भाग। वस्तुतः इस संकलन में आई हुई अनेक गाथाएँ तथा अनेक अंश सुत्त 'त्रिपिटक' (दे०) के अन्य भागों में आए हैं जिससे प्रमाणित होता है कि इसमें अनेक तत्त्व विभिन्न भागों से लेकर संकलित किए गए हैं। एक बात समस्त 'त्रिपिटक' के विषय में कही जा सकती है कि इसमें नवीन रचनाओं के साथ प्राचीन तत्त्व सम्मिलित अवश्य हैं; किंतु यह बात 'सुत्तनिपात' के विषय में विशेष रूप से लागू होती है। इसकी वस्तु और भाषा की परीक्षा से यह बात असंदिग्ध रूप में प्रमाणित हो जाती है कि इस खंड में बौद्ध धर्म के आंदोलन के प्रारंभिक चरण के भी तत्त्व मौजूद हैं और उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो बुद्ध के परिनिर्वाण के तत्काल बाद के लिखे हुए ज्ञात होते हैं।

'सुत्तनिपात' 5 वर्गों में विभाजित किया गया है—उरगवग्ग, चुल्लवग्ग, महावग्ग, अट्ठकवग्ग और पारायण। इनमें प्रारंभिक 4 वर्गों में 54 छोटी-छोटी धार्मिक कविताएँ हैं, किंतु पाँचवाँ खंड 'पारायण' स्वतंत्र रचना-जैसा ज्ञात होता है जिसके 16 छोटे-छोटे खंड हैं। इनमें अट्ठकवग्ग और पारायण का नाम दूसरी रचनाओं में भी आता है और उसके उद्धरण भी दिए गए हैं। इन दोनों की व्याख्या 'निद्देस' नाम से 'त्रिपिटक' में सन्निविष्ट की गई है।

'धम्मपद' के बाद इस खंड का सर्वाधिक महत्व है और बौद्ध धर्म के प्राचीन रूप को समझने के लिए तो इसकी महत्ता स्वीकार ही की जाती है। कवित्व की दृष्टि से भी इसकी महत्ता निर्विवाद है। पद्यात्मक सुत्त अधिक हैं किंतु गद्य-सुत्त या मिश्रित सुत्त भी पर्याप्त हैं। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त इसमें कहीं-कहीं ब्राह्मण धर्म के तत्त्व भी हैं।

सुत्तपिटक (पा० कृ०)

यह 'त्रिपिटक' (दे०) का वह भाग है जिसमें बौद्ध धर्म का विवेचन किया गया है। जब बुद्ध अपने किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त किए बिना महानिर्वाण पदवी पर आरूढ़ हुए तब आनंद के निर्देश पर बुद्ध-वचनों को ही बुद्ध का उत्तराधिकारी माना गया और उनका प्रथम संकलन राजगृह की प्रथम संगीति में किया गया। उस समय उस संकलन के दो भाग थे—संघ के आचार-व्यवहार की शिक्षा के लिए 'विनयपिटक' (दे०) और धर्मनिरूपण के लिए 'सुत्तपिटक'। प्रथम का निर्देशन उपालि ने किया और द्वितीय का आनंद ने। बाद में वैशाली की द्वितीय संगीति और पाटलिपुत्र की तीसरी संगीति में उनका संशोधित और परिवर्धित रूप सामने आया। आज का 'सुत्तपिटक' तृतीय संगीति का संकलित रूप ही है जिससे यह निर्णय करना कठिन है कि उसका कितना भाग बुद्ध-कृत है और कितना परवर्ती मिश्रण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें गद्य, पद्य, संवाद, गीत इत्यादि सभी साहित्यिक तत्त्व विद्यमान हैं। अधिकांश भाग गद्य में है किंतु उसमें भी बीच में गाथाएँ आ जाती हैं।

'सुत्त' शब्द सूत्र या सूक्त का पालि रूप है। संभवतः 'ऋग्वेद' के सूक्तों के अनुकरण पर यह नामकरण हुआ है। इसको सूक्तों के विस्तार के आधार पर 5 निकायों में विभाजित किया गया है: (1) दीघनिकाय—इसमें 34 दीर्घ सुत्तों का संग्रह है; (2) मज्झिम-निकाय—इसमें विभिन्न विषयों के 252 सुत्तों का संग्रह है; (3)—संजुत्तनिकाय—यह 56 वर्गों में सुत्तों का संग्रह है जिसमें प्रत्येक में कई-कई सुत्त हैं; (4) अंगुत्तर-निकाय—यह 11 निपातों में 2308 सुत्तों का संग्रह है जिसमें संख्या के आधार पर धर्मोपदेश दिया गया है और (5) खुद्दक निकाय—जिसमें छोटे-छोटे सुत्तों वाले 15 ग्रंथों का समावेश है—'खुद्दकपाठ', 'धम्मपद', 'उदान', 'इतिवुत्तक', 'सुत्तनिपात', 'विमानवत्थु', 'पेतवत्थु', 'थेरगाथा', 'जातक', 'निदेस', 'पतिसंभिदामग्ग', 'अपदान', 'बुद्धवंश' और 'चरियापिटक'।

'सुत्तपिटक' केवल बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए ही नहीं, समस्त धर्म-संप्रदायों का परिचय देने के लिए उपयोगी ग्रंथ है। विरोधी के रूप में वैदिक धर्म पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और तत्कालीन रीति-नीति के अध्ययन का भी उत्तम साधन है।

सुथरा *(पं०ले०)* [जन्म—1615 ई०; मृत्यु—1755 ई०]

सुथरा पंजाबी के हास्य और नीति-कवि के रूप में विख्यात हैं। इनका जन्म अडियाला गाँव (ज़िला पटियाला) में हुआ था। कहते हैं, जन्म से ही इनके मुखमें पूरे वत्तीस दाँत थे। यह अशुभ लक्षण देखकर माता-पिता ने इन्हें वन में फेंक दिया जहाँ संयोगवश कुछ समय पश्चात सिख-पंथ के छठे गुरु श्री हरगोविंद जी आए और इन्हें साथ ले गए। इन्हें दसवें गुरु तक अर्थात् पाँच पीढ़ियों तक गुरु-सेवा में रहने का अवसर मिला। इनके अनुयायी 'सुथरापंथी' या 'सुथरेशाही' कहलाते हैं।

ये बड़े हँसमुख और विनोदी स्वभाव के थे। इनकी बातें सटीक व्यंग्यपूर्ण और अनायास हँसा देनेवाली होती थीं। इनकी कविता में व्यंग्योक्तियों की बहुलता है और उसमें विवाह, संतति-मोह, विलासिता, मिथ्याचार और बाह्याडंबरों के प्रति बड़ी सरल किंतु चुटीली भाषा में छींटाकशी एवं व्यंग्य-प्रहार किए गए हैं।

सुदंसण चरिउ *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1043 ई०]

नयनंदी (दे०) ने इस काव्य की रचना की थी। इसमें 12 संधियाँ हैं। अर्हंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय एवं साधुजनों के नमस्कार—पंच नमस्कार—के माहात्म्य-स्वरूप एक गोप सेठ सुदर्शन नाम से जन्म लेकर किस प्रकार मोक्ष प्राप्त करता है, उसी के चरित्र का इस काव्य में वर्णन किया गया है।

इसका नायक शास्त्रीय परंपरा के विपरीत एक श्रेष्ठी-पुत्र है। प्रबंध-काव्यों की परंपरा के अनुरूप इसमें कवि ने नाना नर, नारी, भौगोलिक प्रदेश, प्राकृतिक दृश्य आदि का अलंकृत भाषा में वर्णन दिया है।

इसका कथानक प्रबंधात्मकता की दृष्टि से सुगठित नहीं। कतिपय घटनाओं का अनावश्यक विस्तार किया गया है। स्त्री-प्रकृति-वर्णन में कवि ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है—विशेष इंगित, वर्ग, प्रांत इत्यादि के आधार पर स्त्रियों का वर्गीकरण किया है। इस प्रकार इस कृति में नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, उद्दीपन-रूप में प्रकृति-वर्णन, षड्ऋतु-वर्णन आदि को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इस रचना में रीतिकाल की प्रवृत्तियों के बीज की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। अपभ्रंश के अन्य प्रबंध-काव्यों की भाँति इस काव्य में भी शृंगार, वीर और शांत रस की व्यंजना दृष्टिगत होती है। किंतु सब रसों का पर्यवसान शांत रस रस में किया गया है।

नाना वर्णनों में संस्कृत के साहित्यिक ग्रंथों की झलक दृष्टिगत होती है। अलंकार-योजना में उपमान परंपरागत प्रयुक्त होने पर भी नवीनता लिये हुए हैं।

इस काव्य की भाषा भावों के अनुकूल, सजीव एवं सप्राण है। बीच-बीच में मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सुभाषितों के प्रयोग से वह गतिशील एवं प्रवाहमय हो गई है। पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस काव्य की विशेषता है।

प्रस्तुत रचना में छंदों की विपुलता एवं विविधता दृष्टिगत होती है। कवि ने इसे 'पद्धड़िया 'बंध' कहा है। किंतु प्रतीत होता है कि उसने अपना छंद-कौशल प्रकट करने का प्रयत्न किया है। अनेक अपरिचित छंदों का कहीं-कहीं नामोल्लेख भी मिलता है; कहीं-कहीं तो छंदों के लक्षण भी दिए हैं। छंदों एवं अलंकारों की प्रचुरता के कारण काव्य को छंद और अलंकार-प्रधान कहा जा सकता है। अपभ्रंश-कवियों में संभवतः नयनंदी ने सबसे अधिक छंदों का प्रयोग किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदर्शन (*हिं० ले०*) [जन्म—1896 ई०]

इनका वास्तविक नाम बदरीनाथ था तथा ये पंजाब के सियालकोट नामक स्थान में (अब पाकिस्तान) पैदा हुए थे। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ उर्दू-लेखन से किया था तथा बाद में हिंदी में आए थे। ये हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार हैं, यद्यपि इन्होंने नाटक तथा उपन्यास के क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोड़ा है। 'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'तीर्थयात्रा', 'पनघट', 'अँगूठी का मुकदमा' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं तथा 'हार की जीत', 'न्याय मंत्री', 'एथेंस का सत्यार्थी' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। घटनाओं के उत्सुकतापूर्ण नियोजन, परिमार्जित और प्रवाहपूर्ण भाषा, सरल वाक्य-विन्यास एवं लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से पाठक के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ देने में इन्हें कमाल हासिल है।

सुदामा, पांडूतात्या और बंडूनाना (*म० पा०*)

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (दे०) की विनोद-पुस्तक 'सुदाम्याचे पोहे' (दे०) के इन तीन पात्रों के चारों ओर विनोदी लेखों के ताने-बाने बुन गए हैं। इनमें सुदामा प्रमुख हैं और बंडूनाना तथा पांडूतात्या उसके साथी। सुदामा प्रच्छन्न सुधारक है और लेखक ने स्वयं पुरानी पीढ़ी के आक्रोश से बचने के लिए इस मानसपुत्र की सृष्टि की है। सुदामा की नकली मूर्खता की आड़ में लेखक ने सनातनी रूढ़ियों पर व्यंग्य किया है। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य करने के अतिरिक्त साहित्यकारों के दंभ, व्यसन आदि पर भी इन पात्रों के माध्यम से प्रहार किया गया है। सुदामा का काव्य-यंत्र जिसमें कोश के शब्द डालने और फिर डंडा फेरने से कविता बन जाती थी, इसका उदाहरण है। संगीत, चित्र-कला, टेनिस, शतरंज, खटमल आदि से संबद्ध लेखों में ये पात्र निर्मल हास्य की सृष्टि करते हैं, मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हैं—'खर्राटे की आवाज़ के कारण आस-पास के लोगों की नींद नहीं आती थी, उसमें घड़ियाल के गजर की आवाज़, कुत्तों के भौंकने की आवाज़ सभी लुप्त हो जाती थीं।' खटमलों से तंग आकर यदि सुदामा परिवार सहित काशी की यात्रा करता है तो बंडूनाना आत्महत्या की सोचता है पर डूबने से पूर्व पानी में हाथ डालने पर उसके शीत से डर कर आत्महत्या का संकल्प स्थगित कर देता है। बंडूनाना द्वारा बच्चों की होली के त्यौहार के लिए कवायद कराते दिखाकर लेखक ने होली मनाए जाने की पद्धति पर व्यंग्य किया है। अछूतों को दिए ऋण का हिसाब-किताब रखने के लिए बंडूनाना द्वारा अलग से दवात-कलम रखने की बात कहकर सनातनी अस्पृश्यता का पालन करने वालों का उपहास भी किया है। इन तीनों पात्रों को परलोक जाते और वहाँ चित्रगुप्त के खाते में जप-तप, उत्सव-व्रत आदि धार्मिक कृत्यों का कोई महत्व न दिखाकर और अनाथाश्रम आदि के दान को पुण्य दिखाकर लेखक ने सद्धर्म की व्याख्या की है। तीनों किस प्रकार साहित्यकार बनते हैं इसका भी विवरण बड़ा मज़ेदार है; साथ ही प्रतिभाहीन व्यक्तियों के लेखक बनने की चेष्टा पर व्यंग्य किया गया है। सुदामा ने एक अँग्रेज़ी उपन्यास का अनुवाद किया और उसे मौलिक रचना कहकर प्रकाशित किया; बंडूनाना ने विदेशी भाषा के ग्रंथ को उल्टा-सुल्टा छपवाकर और उसमें शुद्धिपत्र जोड़कर मौलिक रचनाकार का नाम पाया तो पांडूतात्या पुराने साल की डायरी छपवाकर ग्रंथकार बन गए। इस प्रकार कोल्हटकर ने इस त्रिकूट के माध्यम से एक ओर तत्कालीन समाज के दोषों और कुरीतियों पर व्यंग्य किया है तो दूसरी ओर निर्मल हास्य की सृष्टि भी की है।

सुदाम्याचे पोहे (*म० कृ०*)

यह श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (दे०) का लेख-संग्रह है—जिसमें उनके 1902 से 1922 ई० तक लिखे बत्तीस विनोदी लेख हैं। इन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—शुद्ध हास्यमय लेख, समाज की कुरीतियों पर व्यंग्य करने वाले लेख और गंभीर लेख। इन सभी में सुदामा (दे०), पांडुतात्या (दे० सुदामा) और बंडूनाना (दे० सुदामा) की ऊटपटांग, मूर्खतापूर्ण, भौंड़ी और सीधी-सादी लीलाओं के वर्णन द्वारा हास्य उत्पन्न किया गया है। साथ ही विनोद द्वारा समाज-सुधार करने का प्रयत्न है। इन्हें पढ़ते समय एक ओर पाठक हँसी से लोट-पोट हो जाता है तो दूसरी ओर सामाजिक दोष व धार्मिक कुरीतियों—शवयात्रा-शकुन, जादू-टोना, वशीकरण, सत्यनारायण की कथा, नज़र आदि के प्रति उसका आक्रोश भी उमड़ता है, और इन रूढ़ियों के शिकार प्राणियों के प्रति वह द्रवित भी होता है। अपने धर्म में कौन-सी बातें बुद्धिग्राह्य हैं और कौन-सी मूर्खतापूर्ण इसका सहानुभूतिपूर्वक विचार न करने के फलस्वरूप कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखों में कटुता आ गई है। हास्य उत्पन्न करने के लिए उन्होंने प्रमुखतः शब्द-क्रीड़ा, वक्रोक्ति, श्लेष, व्याजस्तुति विरोधाभास आदि का आश्रय लिया है यद्यपि प्रसंगनिष्ठ और स्वभावनिष्ठ विनोद का भी अभाव नहीं है। अतिशयोक्ति और अपेक्षाभंग उनके अन्य दो साधन हैं। 'पांडुतात्या ने सुपारी समझ कर एक हाथी मुँह में डाल लिया और वह दाँतों से नहीं टूटा, अतः दूसरा हाथी सरौते से काटकर डाल लिया।' कोल्हटकर की भाषा विनोद-सृष्टि के अनुरूप सहज सुंदर और प्रसन्न न होकर आलंकारिक—अतः क्लिष्ट है और कहीं-कहीं तात्त्विक चर्चा के कारण भी उनके लेख रुक्ष हो गए हैं। अनेक लेखों—जैसे 'चोरों का सम्मेलन' या 'साहित्य परिषद् की तैयारी' में विनोद का निर्मल रूप भी मिलता है। कोल्हटकर को 'मराठी का विनोदाचार्य' कहा गया है। उनके लेखों को पढ़कर पहले भले ही क्रोध उत्पन्न हो पर बाद में पाठक को स्वीकार करना पड़ता है कि लेखक हमारा हितैषी है जो हँसाकर हमारा मार्गदर्शन करता है।

सुधांशु, लक्ष्मीनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के पूर्णिया ज़िले के रूपसपुर नामक गाँव में हुआ था। इनका मुख्य प्रदेय हिंदी-आलोचना के क्षेत्र में है, यद्यपि इनके दो कहानी-संग्रह, एक निबंध-संग्रह एवं एक उपन्यास भी प्रकाशित हो चुके हैं। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', 'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत' इनके प्रतिनिधि समीक्षा-ग्रंथ हैं। मनोविज्ञान, सौंदर्यशास्त्र तथा प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र को आधार बनाकर समीक्षा-संबंधी प्रतिमानों को प्रस्तुत करना इनकी सर्वप्रमुख विशेषता है। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' ग्रंथ में इन्होंने 'अभिव्यंजनावाद' शब्द की ऐतिहासिक रूपरेखा देते हुए वक्रोक्तिवाद (दे० वक्रोक्ति) से उसके पार्थक्य को स्पष्ट करके शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) जी के इस मत का सप्रमाण खंडन किया है कि यह भारतीय वक्रोक्तिवाद का ही विलायती उत्थान है। 'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत' नामक ग्रंथ में काव्य-सिद्धांतों को मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से परखा गया है।

'अवंतिका' पत्रिका के संपादक तथा बिहार-विधान-परिषद् के अध्यक्ष के रूप में इन्होंने क्रमशः पत्रकारिता एवं राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी सक्रियता का परिचय दिया है।

सुनीता *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रतिनिधि उपन्यास है जिसमें सुनीता (दे०), श्रीकांत तथा हरिप्रसन्न नामक पात्र-पात्रियों को आधार बनाकर समूचे उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। सुनीता तथा श्रीकांत पति-पत्नी हैं तथा राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हरिप्रसन्न श्रीकांत के मित्र हैं। एक दिन सहसा हरिप्रसन्न की भेंट श्रीकांत से हो जाती है और वह उसके जीवन को संयमित करने के लिए उसे अपने घर ले जाता है। सुनीता भी उसे समझाने का प्रयत्न करती है। धीरे-धीरे हरिप्रसन्न सुनीता की ओर न केवल आर्कषित होने लगता है अपितु उसका यह आकर्षण आसक्ति में बदल जाता है। श्रीकांत हरिप्रसन्न को बाँधकर रखना चाहता है और इसी निमित्त एक बार वह इन दोनों को अकेला छोड़कर चला जाता है। श्रीकांत की अनुपस्थिति में हरिप्रसन्न सुनीता से क्रांतिकारी दल का नेतृत्व करने का निवेदन करता है और एक दिन इसी निमित्त वह उसे आधी रात के समय निर्जन जंगल में ले जाता है। वहाँ पहुँचकर यह पता चलता है कि पुलिस को सूचना मिल जाने के कारण क्रांतिकारी दल की बैठक नहीं होगी। इस वातावरण में हरिप्रसन्न की कामुकता भड़क उठती है और वह सुनीता को समूची पा लेना चाहता है। सुनीता सर्वथा निर्वस्त्र हो जाती है। ऐसी स्थिति में हरिप्रसन्न लज्जित हो उठता है और वह सुनीता को घर लौटाकर सदैव के लिए चला जाता है। इन दोनों के रात्रि-प्रवास की बात श्रीकांत को भी मालूम पड़ जाती है। सुनीता उसे हरिप्रसन्न की दुविधाग्रस्त मनःस्थिति से परिचित करती है। इस घटना के बाद श्रीकांत तथा सुनीता एक-दूसरे के और निकट आ जाते हैं। यह उपन्यास अपने कथानक के लिए प्रसिद्ध न होकर असाधारण पात्रों की सृष्टि के लिए प्रसिद्ध है। हरिप्रसन्न शिल्पी, कलाकार, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी होने के साथ-साथ एक ऐसा रहस्यमय व्यक्तित्व लिये हुए है कि पूरा उपन्यास पढ़ने के बाद भी हम उसके वास्तविक रूप को नहीं जान पाते। श्रीकांत एक ऐसा विचित्र पात्र है जो अपने मित्र के जीवन को व्यवस्थित करने के लिए अपनी पत्नी को ही माध्यम बनाता है। इसी प्रकार सुनीता भी असाधारण व्यक्तित्व वाली ऐसी रहस्यमयी पात्रा है जो हमें भुलावा देने में पूर्णतः समर्थ है। वस्तुतः इस उपन्यास में ऐसे पात्रों की सृष्टि की गई है जो इस लोक में नहीं मिलते। उपन्यासकार ने इस कृति में यथास्थान दार्श-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकता का पुट भी दे दिया है, लेकिन इससे औपन्यासिकता को क्षति नहीं पहुँची है। यही जैनेंद्र की उपन्यास-कला की विशेषता है। कुल मिलाकर यह हिंदी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

सुनीता *(हिं० पा०)*

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'सुनीता' (दे०) की नायिका एवं प्रमुख स्त्री-पात्र है। उच्च शिक्षा तथा कलात्मक अभिरुचि से संपन्न, घर के सभी काम-काज अपने हाथ से करने वाली अनिंद्य यौवना सुनीता एक ऐसी नारी है जो रूढ़िवादी संस्कारों में पली होने पर भी अपने व्यक्तित्व को घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं रख पाती तथा क्रांतिकारी हरिप्रसन्न की प्रेरणा के फलस्वरूप घर से बाहर निकल कर राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए सहमत हो जाती है। उपन्यासकार ने इसके माध्यम से नर-नारी के सहज आकर्षण का भी अत्यंत मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है। अपने रूढ़िवादी संस्कारों के फलस्वरूप यद्यपि वह प्रारंभ में यह स्वीकार करना नहीं चाहती कि एक की पत्नी होते हुए वह किसी अन्य पुरुष के प्रति आकृष्ट है किंतु वस्तु-स्थिति के दबाव के फलस्वरूप पति एवं प्रेमी को लेकर उसके मन में एक भीषण द्वंद्व छिड़ जाता है। वह जहाँ एक ओर अपने पति के साथ निश्छल व्यवहार करती है वहाँ दूसरी ओर अपने प्रेमी के व्यक्तित्व के समुचित विकास के निमित्त उसकी काम-बुभुक्षा मिटाने के लिए सर्वथा निरावृत तक हो जाती है। अपने प्रेमी द्वारा इस रूप के स्वीकार न किए जाने तथा उसके अत्यंत लज्जित हो उठने पर वह अपने पति को सब कुछ बतला देती है। अपने प्रेमी के समक्ष सर्वथा अनावृत होने के प्रसंग को लेकर अनेक आलोचकों ने जैनेंद्रकुमार पर अश्लीलता का आरोप लगाया है, लेकिन ज्ञातव्य है कि लेखक ने ऐसी परिस्थिति की अवतारणा सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करने के लिए न करके अहिंसा द्वारा वासना पर विजय पाने का मार्ग बतलाने के लिए की है और इस दिशा में उसे पूर्ण सफलता मिली है।

सुनेहड़े *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

अमृता प्रीतम (दे०) का यह काव्य-संग्रह 1955 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसे कवयित्री की काव्य-चेतना के विकास का चौथा सोपान कहा जा सकता है। इस संग्रह की कविताएँ कवयित्री की अंतर्मुखी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री जाति की पीड़ा ही नहीं, मनुष्य मात्र की पीड़ा को वाणी दी है। इस संग्रह की एक कविता 'इक ख़त' में उन्होंने लिखा है:

बहुत उच्चियां हन दीवारां
रोशनी दिसदी नहीं

इस संग्रह की कविताओं में कवयित्री ने जटिल अनुभवों को भी सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। प्रेम के अनुभव की भी अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कविता 'सुनेहड़े' में हुई है।

इस संग्रह में आकर कवयित्री एक बार फिर छंद-संरचना की ओर मुड़ी है। भाषा, शैली और शिल्प की दृष्टि से भी ये कविताएँ श्रेष्ठ और विशिष्ट हैं। इस कविता-संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है।

सुप्पिरदीप कविरायर् *(त० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

तमिल प्रदेश के एक वैष्णव स्वर्णकार परिवार में इनका जन्म हुआ था पर ये प्रसिद्ध ईसाई पादरी एवं तमिल कवि 'बेस्की' ['वीरमा मुनिवर' (दे०) इनका तमिल उपनाम था] के प्रभाव में आकर ईसाई हो गए थे। इनकी दो पद्य रचनाएँ मिलती हैं—एक, विरलि-विटुत्तु' (एक वेश्या के प्रेम-व्यापारों का वृत्तांत); दूसरा, 'कूळप्पनायक्कन् कातल्' (सामंतीय व्यवस्था के एक प्रभु के शृंगार प्रसंगों का वर्णन)। दोनों चमत्कारपूर्ण उक्तियों तथा रूढ़िगत वर्णनों से युक्त उत्तरकालीन तमिल काव्य-रूपों के नमूने हैं।

सुप्रभ *(अप० ले०)*

सुप्रभाचार्य ने 'वैराग्यसार' (दे०) नामक ग्रंथ की रचना की थी। ये दिगंबर जैन थे। इनके काल और देश के विषय में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। ये उदार-हृदय साधक थे। जैन धर्मावलंबी होते हुए भी इनका संप्रदाय-विशेष के प्रति पक्षपात न था। इन्होंने परोपकार, सदाचरण, दान, विरक्ति, आत्मज्ञान आदि धर्म के सामान्य तत्त्वों का ही 'वैराग्यसार' में व्याख्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। भाषा-शैली और विचारधारा की दृष्टि से कवि का रचना-काल तेरहवीं शती के लगभग माना जा सकता है।

सुबंधु *(सं० ले०)* [समय—सातवीं शती]

गद्यकाव्य-लेखकों में सुबधु का नाम सर्वप्रथम आता है। इनके समय के बारे में कुछ निश्चित तथ्य अब तक प्राप्त नहीं हो सका। अपने ग्रंथ के उपोद्घात में इन्होंने किसी विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने की चर्चा की है पर वह विक्रमादित्य कौन थे इस विषय में कुछ भी कहना कठिन है। 'न्यायवार्तिक'कार उद्योतकर से सुबंधु परिचित हैं। उद्योतकर का समय छठी शती माना जाता है। अतः सुबंधु का समय हम सातवीं शती मान सकते हैं।

सुबंधु द्वारा रचित एकमात्र कृति 'वासवदत्ता' उनकी कल्पना की देन है। यह पूर्वप्रचलित उदयन (दे०) तथा वासवदत्ता (दे०) के आख्यान से पूर्णतः भिन्न है। इसमें राजा चिंतामणि के पुत्र राजकुमार कंदर्पकेतु और शृंगार शेखर की पुत्री राजकुमारी वासवदत्ता की प्रणय-कथा वर्णित है। अनेक लोककथा रूढ़ियों से संयुक्त अत्यंत लघु कथानक वाली यह रचना प्रकृति-वर्णन, सौंदर्य-चित्रण तथा पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से विपुलतर होती गई है। श्लेषों के आधिक्य ने इसे बड़ा बोझिल बना दिया है।

अलंकारों के बाहुल्य के बावजूद सुबंधु के समासों में माधुर्य तथा अनुप्रासों में संगीत है। उनकी शैली बड़ी रोचक है तथा सहृदयों का पर्याप्त मनोरंजन करती है।

सुबाला *(अ० कृ०)*

प्रसिद्ध कहानीकार श्री होमेन बरगोहाञि (दे०) की यह अमर कृति है। सुबाला इस उपन्यास की नायिका है। यह भद्र महिला परिस्थितियों से बाध्य होकर वेश्या बनती है। पुस्तक का अंत अत्यंत मार्मिक है। प्राचीन कथावस्तु लेकर लिखा गया यह सफल उपन्यास है।

सुबोध रामराव *(क० ले०)* [समय—1890-1970 ई०]

कन्नड के हरिदास साहित्य के मर्मज्ञ रामराव जी का जन्म चिक्कमगलूर में एक संभ्रांत माधव-ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बेंगलूर में उन्होंने अपनी हाई स्कूल शिक्षा समाप्त की, सरकारी नौकरी से ऊबकर अध्यापक बने और अंत में साहित्य-सर्जना में लग गए। उन्होंने 1915 ई० में सुबोध ग्रंथमाला का आरंभ कर उसके अंतर्गत जन-सामान्य के लिए बोधगम्य भाषा में विश्व के महापुरुषों की स्फूर्तिदायक जीवनियाँ लिखीं। ये एक सौ चालीस हैं। ये ग्रंथ इतने सरल व सुंदर हैं कि युवा-मन के निर्माण में इनका अपूर्व योगदान है। दूसरी माला में उन्होंने कन्नड के वैष्णव भक्त हरिदासों के गेयपदों का संपादन कर प्रकाशन किया। कर्नाटक-हरिदास-कीर्तन-तरंगिणी के अंतर्गत पुरंदरदास (दे०), कनकदास (दे०) आदि के कीर्तनों के प्रामाणिक संस्करण तैयार किए गए। 'हरि-कथामृतसार', 'हनुमद्विलास', 'कुचेलोपाख्यान' आदि काव्यों का संपादन भी उन्होंने किया। तीसरी माला में राजस्थान कथावली के अंतर्गत टॉड के ग्रंथ की मदद से राजस्थान के वीरों के गौरवमय चित्र प्रस्तुत किए। 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) तथा 'भागवत' (दे०)—इन तीनों का सरल तथा सुंदर गद्यानुवाद भी आपने प्रस्तुत किया। इनकी शैली सरल व प्रभावी है। 'जीवनक्के बेलकु' में अनेक महापुरुषों के जीवन की महद घटनाओं व सूक्तियों का संग्रह है। आपने 1925 में कर्नाटक संस्कृति के पुनरुज्जीवन के उद्देश्य से 'सुबोध' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्र चलाया जो आज भी जीवित है।

सुब्बण्णा *(क० कृ०/पा०)*

यह डा० मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) के उपन्यास 'सुब्बण्णा' का प्रधान पात्र है। यह मैसूर के महाराजा कृष्णराज ओडेयर तृतीय के राजपंडित नारायण शास्त्री का बेटा था। शास्त्री जी के समान यदि यह पुराण-निपुण और कथावाचक बनता तो सुब्बण्णा कहलाने के बदले सुब्रह्मण्य शास्त्री कहला सकता था। परंतु ऐसा नहीं हुआ। एक बार जब यह अपने पिता के साथ महाराजा के दरबार में गया तो उनके सामने इसने एक पद गाया। पद को सुनकर महाराज ने इसने कहा था कि तुम इस विद्या के निष्णात बन जाओ तो हम तुमको पुरस्कार और विरुद प्रदान करेंगे। परंतु जब यह संगीत में निष्णात हुआ तब वे न रहे। प्राचीन आचार-विचारों को मानने वाले नारायण शास्त्री जी अपने पुत्र को संगीतज्ञ होना नहीं देना चाहते थे। कहाँ पुराणवाचकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वंश, कहाँ संगीतज्ञों की परंपरा ! इस कारण इसको स्वेच्छा से संगीत सीखने का मौक़ा नहीं मिला। यह माता-पिता से छिपकर नीलसानी वेश्या के यहाँ संगीत का अभ्यास करने लगा। यदि यह बड़ा संगीतज्ञ हुआ तो उसका श्रेय नीलसानी को मिलना चाहिए। यह इस बात को जानता है। अपनी पत्नी के साथ जब यह उत्तर भारत चला जाता है तब नीलसानी के नाम से कुछ पैसे भेजता है जो कृतज्ञता के सूचक हैं। पर, नीलसानी इससे मन में बहुत खिन्न होती है क्योंकि उसने प्रत्युपकार की तुलना में इसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था।

छुटपन में ही इसका विवाह हो गया था। उसकी पत्नी ललिता सुशीला नारी थी। जब इसे मालूम हुआ कि यह और एक बच्चे का पिता बनने वाला है तब माता-पिता से कहे बिना आधी रात में पत्नी को साथ लेकर घर से निकल गया। किसी प्रकार यह उत्तर भारत पहुँचा। संगीत सिखाकर आजीविका कमाता था। एक दिन इसकी बच्ची गंगा में बह गई। इसकी पत्नी भी इस शोक से संतप्त होकर चल बसी। उन्मन होकर यह अपने गाँव लौटा। तब तक इसके माता-पिता स्वर्गवासी हो चुके थे अतएव माया-मोह से दूर रहने लगा। फिर भी लोग उसको नहीं छोड़ सके। विद्यादान कर इसने जीवन के कटु अनुभव प्राप्त किए थे। यह अपनी पत्नी को बहुत चाहता था, पर पारिवारिक झंझट के कारण कभी-कभी रूखा व्यवहार भी करता था। माता-पिता का यह आदर करता था, पर अपने मनोबल को त्याग नहीं सकता था। इसकी साधना, इसकी तपस्या और इसका दुरंत-दुःखांत जीवन मानव-जीवन के रहस्य के अनुरूप ही हैं।

सुब्बरायडु, वड्डादि *(ते० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

गोदावरी ज़िले में राजमहेंद्री नामक स्थान से अध्यापक, कवि और नाटककार के रूप में प्रसिद्ध श्री वड्डादि सुब्बरायडु तेलुगु और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। इनके जीवन में पाँच बार पत्नी-वियोग हुआ और पचास साल की अवस्था में इन्होंने इकलौते पुत्र को भी खो दिया। वेदनामय जीवन ने कवि में वैराग्य की भावना जगाई। और 'भक्तजनचिंतामणि', 'सुत्तस्मृति', 'सूक्ति-वसुप्रकाशमु' जैसी अनर्घ रचनाओं का सूत्रपात किया। इन स्वतंत्र रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने शाकुंतल (दे० अभिज्ञानशाकुंतलम्), 'मल्लिकामारुत', 'चंडकौशिक' (दे०), 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०), 'कुंदमाला', 'मेघसंदेश', 'भामिनीविलास' (दे०), 'सूर्यशतक' (दे०), 'वेणीसंहार' (दे०) आदि कई संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद भी किया। नाटक लिखने के अलावा ये इनमें विविध भूमिकाओं का भी सफल निर्वाह करते थे।

सुब्बाराव, त० रा० *(क० ले०)*

त० रा० सु० (त० रा० सुब्बाराव) कन्नड के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। ये मैसूर में रहते है। कन्नड-कथा-साहित्य के लिए इनकी देन अनुपम है। इन्होंने ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का बड़ा रम्य चित्रण प्राप्त होता है। मैसूर राज्य के चित्रदुर्ग के छोटे-छोटे सामंत राजाओं की अंतःकलह का इन्होंने अपने 'कंबनियकुयिलु' (आँसुओं की फसल), 'तिरुगुबाण' (प्रतिक्रिया बाण) और 'रक्तरात्रि' उपन्यासों में अच्छा वर्णन किया है। कन्नड साहित्य में प्रसिद्ध राष्ट्रकूट नरेश नृपतुंग पर इन्होंने चित्ताकर्षक उपन्यास लिखा है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण-निर्माण और संभाषण-सरसता की विशेषता होती है। उनमें चित्रित पात्र हमारे मन को अपनी ओर खींच लेते हैं। 'हंसगीते' इनका सुंदर उपन्यास है जिसमें वेंकटसुब्बय्या नाम के एक प्रतिभावान और आत्माभिमान रखने वाले संगीतज्ञ का हृदयस्पर्शी चित्रण है। वह राजा के लिए गीत नहीं गाता, भगवान के सामने गीत गाकर अंत में अपने ही हाथ से अपनी जीभ काट लेता है। 'पुरुषावतार' इनका सामाजिक उपन्यास है। 'बिडुगडेय बेडि' (मुक्ति की बेडी), 'चंदल्लिय लोट' (चंदवल्लि का बाग), 'परडु हेण्णु, ओंदु गंडु' (दो स्त्रियाँ, एक पुरुष), 'नागर हावु' (नाग साँप), 'सर्पमत्सर' आदि इनके लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास हैं। इनके कुछ उपन्यासों पर फ़िल्में भी बनी हैं। 'गिरिमल्लेगेय नंदनदल्लि' इनकी कहानियों का संग्रह है। इनके उपन्यासों की भाषा प्रसाद गुण-संपन्न है।

सुब्बारावु, नंडूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

व्यवसाय से ये वकील थे। किंतु साहित्य में इनकी गहरी रुचि थी। ये आधुनिक तेलुगु-साहित्य में एक क्रांति को जन्म देने वाले कवि थे। उन दिनों साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र में सम्मानित पांडित्य-प्रदर्शन, अष्टावधान, शतावधान, आदि ऐंद्रजालिक प्रक्रियाओं को छोड़कर अपने लिए इन्होंने एक सर्वथा नूतन मार्ग का अन्वेषण कर लिया था। शिष्ट साहित्य के लिए अनिवार्य मानी जाने वाली ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओं, संस्कृतनिष्ठ भाषा, छंदों के नियम आदि का पूर्णतः परित्याग करके, इन्होंने अत्यंत स्निग्ध और रमणीय लोकगीतों की रचना की है। लोक-साहित्य को शिष्ट साहित्य के समान आदर दिलाने का इनका महान् कार्य असाधारण प्रतिभा एवं साहस का प्रतीक है। अशिक्षित और श्रमजीवी ग्रामीण जनता में भी निष्कलंक शृंगार और उत्तम नायक-नायिकाओं का दर्शन करने तथा कराने में समर्थ यह कवि एक युगांतरकारी माना जाता है। अपने एकमात्र 'एंकिपाटलु' (दे०) द्वारा इन्होंने समस्त तेलुगु-साहित्य को एक नूतन तेज एवं प्रतिष्ठा प्रदान की है। इनके गीतों की नायिका 'एंकि' (दे०) सरल, अबोध और प्रेमैकमयी है। इसका मर्मस्पर्शी व्यक्तित्व पाठक के मन को अनायास अभिभूत कर लेता है। 'एंकि' आंध्र के सभी गाँवों के स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करती है। नंडूरि सुब्बाराव ने 'एंकि' की अमर सृष्टि की और उसके द्वारा वे स्वयं भी अमर हो गए। सुब्बाराव का रसमय हृदय अंत तक मात्र एंकि के व्यक्तित्व से भरा रहा। इनकी भाषा भी विषय के अनुकूल सहज-सुबोध ग्रामीण है। लोकगीतों की शैली में रचना करने वालों में इनका कोई प्रतिद्वंद्वी तेलुगु-साहित्य में नहीं है। सुब्बाराव ने अपनी इस रचना द्वारा सरल और सहज तेलुगु को साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सुब्बाराव, नायनि *(तं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

आंध्र के नेल्लूर ज़िले में इनका जन्म हुआ। अध्यापन इनकी मुख्य वृत्ति रही है। इन्होंने अँग्रेज़ी-साहित्य का भी अध्ययन किया और उसका प्रभाव इनकी रचनाओं पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ये आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के सम्मानित सदस्य हैं। इनकी रचनाएँ ये हैं—'सौभद्रुनिप्रणययात्रा' (दे०), 'फलश्रुति', 'मातृगीतालु', 'वेदनावासुदेवमु' आदि कविताएँ; कुछ जीवनियाँ तथा इतिहास-संबंधी पुस्तकें। इन्होंने कुछ उपन्यास भी अँग्रेज़ी से अनूदित किए हैं। इनकी कविता अधिकतर आत्मपरक (सब्जैक्टिव) है। अपनी ही जीवनानुभूतियों को कमनीय कविता-रूप देने की कला में ये सिद्धहस्त हैं। सरसता तथा स्पष्टता इनकी रचना की विशेषताएँ हैं। इनके मातृगीत देशभक्ति से ओत-प्रोत हैं। इनकी 'सौभद्रुनिप्रणययात्रा' आदर्श प्रेम के मार्मिक चित्रण का ज्वलंत उदाहरण है तथा लेखक की ही जीवनानुभूतियों का काव्यरूप है। अँग्रेज़ी साहित्य की 'रोमांटिक' कविता के प्रभाव से तेलुगु में जिस 'भावकविता' (दे०) का अवतरण हुआ, उसके विख्यात लेखकों में सुब्बाराव् एक हैं। अखिल भारतीय तेलुगु-लेखकों के प्रथम अधिवेशन (1961) में ये सम्मानित किए गए थे।

सुब्बाराव, रायप्रोलु *(तं० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

श्री सुब्बाराव हैदराबाद के निवासी हैं। इनके मातुल स्व० अव्वारि सुब्रह्मण्य शास्त्री संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के उद्भट विद्वान थे। वे आशुकविता तथा अवधानकविता में निपुण थे। श्री सुब्बाराव पर अपने मातुल के साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रभाव जीवन के आरंभ में ही पड़ा। दोनों मिलकर आशुकविता किया करते थे। कुछ दिन बाद सुब्बाराव का मन आशु तथा अवधान-कविता-शैलियों से पूर्णतः हट गया क्योंकि उस समय तक वे जान गए थे कि कविता का भव्य एवं उपादेय रूप आशु आदि कविता शैलियों में उपलब्ध नहीं हो सकता। 'सकलार्थ शून्य मगु नी वेगातिवेगोदित दुर्व्यसनंबेटिकि त्रिप्पुमिक जननी! रम्याक्षर क्षोणिकिन्।" (काव्य के कला-विलसित अर्थों से वंचित, केवल वेगप्रधान इस आशुकविता रूपी दुर्व्यसन से हटाकर मेरे मन को रम्याक्षर-वाणी की दिशा में प्रवृत्त करो, हे अम्बे!) तेलुगु आदि कवि नन्नय भट्टु (दे०) अक्षररम्यता के कायल थे तथा संस्कृत के अंतिम महान् लाक्षणिक आचार्य पंडितराज जगन्नाथ (दे०) रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द के पक्षधर थे। सुब्बाराव पर इन्हीं विचार-परंपराओं का प्रभाव पड़ा है।

श्री सुब्बाराव ने शांतिनिकेतन के आम्रकुंजों की छायाओं में रवींद्रनाथ (दे०) के चरणों में बैठे-बैठे अपनी कविता के आयामों को विस्तृत कर विश्वव्यापी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया। वे कई वर्ष हैदराबाद में उस्मानिया विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग के अध्यक्षपीठ पर भी रहे। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनकी मान्यता तेलुगु की आधुनिक कविता के आद्यप्रवर्तक के रूप में है। इनकी कविता पर पश्चिम की स्वच्छंदतावादी धारा, रवींद्र के विश्वमानवतापरक आध्यात्मिक रहस्यवाद तथा गांधीवाद से अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणित राष्ट्रीयता की रम्य भावना का प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त इनकी कविता की अपनी भी एक अनुपम मौलिक विशेषता है—काव्यों में अमलिन श्रृंगार की प्रतिष्ठा। इन्होंने श्रृंगार को शारीरिक परिवेश और परिधि से उठाकर उसे अमलिन और उदात्त स्वरूप दिया है। इनके स्वच्छंदतावादी प्रेमप्रधान काव्यों में उल्लेखनीय हैं—(1) 'तृणकंकणमु', (2) 'ललिता', (3) 'स्नेहलतादेवि', (4) 'स्वप्नकुमारमु', (5) 'जड़कुच्चलु' (कविता-संग्रह) (दे०) इत्यादि।

राष्ट्रीय भावना की कृतियाँ हैं—(1) 'आंध्रावलि', (2) 'तेलुगु तोटा' आदि।

इनके अनुवाद काव्यों में मुख्य हैं: (1) 'मधुकलशमु' (उमर ख़ैयाम का), (2) 'मिश्रमंजरी (कवि इक़बाल (दे०) का)। मिश्रमंजरी पर कवि को केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

सुब्बाराव, वंगूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1886 ई०; मृत्यु—1923 ई०]

इन्होंने बीस साल से भी कम उम्र में साबुन तथा मोमबत्तियों के निर्माता एवं व्यापारी के रूप में अपना जीवन आरंभ किया था परंतु आगे चलकर साहित्य-क्षेत्र में आए और 'वसुंधरा' नामक पत्रिका के संचालन तथा तेलुगु के पुराने ग्रंथों को प्रकाश में लाने के कार्य में यत्नशील रहे। इनका तेलुगु-साहित्य के इतिहास से संबंधित अध्ययन अत्यंत व्यापक एवं गंभीर है। 'आंध्र वाङ्मय चरित्र', 'शतक्कवुलु चरित्र', 'प्रभातमु', 'रायल राजनीति', 'वेमन जीवित चरित्र' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

सुब्बाराव, वाविलिकोलनु *(ते० ले०)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

'आंध्र-वाल्मीकि' के रूप में ख्याति-प्राप्त वाविकोलनु सुब्बाराव पहले मालगुजारी-विभाग में काम करते थे और बाद में मद्रास के किसी कालिज में अध्यापन-कार्य में लगे रहे। 'श्रीकुमाराभ्युदयमु' शीर्षक के प्रबंध-काव्य ने इनको पहली बार तेलुगु-साहित्य में आदरणीय पद पर प्रतिष्ठित किया। इस काव्य की व्याख्या भी इन्हीं के समय में निकली। संपूर्ण वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) का तेलुगु-रूपाँतर सुब्बाराव जी की प्रतिष्ठा का प्रमुख आधार है। कवि के जीवन-काल में ही इस विशालकाय रचना के चार संस्करण निकल चुके थे। बाद में कवि ने स्वयं 'मंथर' के नाम से इसकी व्याख्या भी लिखी। सुब्बाराव जी प्रकृत्या राम के भक्त थे। इनके काव्य का पंडितों में जितना आदर हुआ उससे भी अधिक लोकप्रियता उन्हें भक्तों की मंडली में मिली। 'भक्तिसंजीवनी' नाम की पत्रिका का इन्होंने संपादन भी किया था। 'आर्यकथानिधि' और 'कृष्णावतारमु' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'कौशल्या-परिणयमु' नामक खंडकाव्य और 'सुभद्राविजयमु' नाटक भी प्रसिद्ध हैं।

सुब्बाशास्त्री, नंजनगूडु *(क० ले०)* [जन्म—1834 ई०; मृत्यु—1906 ई०]

संस्कृत तथा कन्नड भाषा के प्रकांड पंडित के रूप में ये अधिक प्रसिद्ध हैं। तत्कालीन मैसूर-राजकुमारी के ये विद्या-गुरु थे। ये मैसूर के महाराजा तथा श्रृंगेरी के जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा सम्मानित हुए थे। इन्होंने संस्कृत में 'विद्वच्चकोरचंद्रिका' और 'शारदाष्टक स्तोत्र' जैसे ग्रंथ रचे हैं। कन्नड में इनके 'उत्तरसीताचरित्रे' और 'सीताचरित्रे' काव्य एवं 'मृच्छकटिके' और 'मालविकाग्निमित्र' नाटक प्रसिद्ध हैं।

सुब्बिशेट्टि *(ते० पा०)*

यह काळ्ळकूरि नारायणराव (दे०) के 'चिंतामणि' (दे०) नाटक का प्रसिद्ध हास्यपात्र है। यह जन्म से वैश्य है। इसका हास्य शरीर की बनावट, हाव-भाव तथा वाक्-संबंधी है। बोलचाल की (ग्राम्य) भाषा का प्रयोग करते हुए, उसी भाषा शैली में पद्य भी पढ़ता है। कोयला जैसा रंग, बड़ी तोंद, गधे जैसा कंठस्वर लेकर, यह पात्र दर्शकों को लोटपोट कर देता था।

पानुंगटि लक्ष्मीनरसिंहाराव (दे०) (1865-1940) के 'कंठाभरणमु' (1917) नामक व्यंग्यप्रधान सामाजिक नाटक में भी इसी नाम का एक अन्य हास्य पात्र है। यह नाटक सामाजिक दुराचारों की निंदा करने वाला कमैडी ऑफ़ मैनर्स है। सुब्बिशेट्टि लुब्धाग्रेसर वैश्य है। उसकी षष्टिपूर्ति का दृश्य इस नाटक की परम हास्यप्रद घटना है। उसके मन में वेश्या के प्रति व्यामोह का हास्यप्रद चित्रण किया गया है।

तेलुगु-रंगमंच के क्षेत्र में सुब्बिशेट्टि अद्वितीय हास्यजनक पात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुब्रह्मण्य शास्त्री, मोदगानहळ्ळि *(क० ले०)*

'गुहा' उपनामधारी मोदगानहळ्ळि सुब्रह्मण्य शास्त्री कन्नड और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनके 'संस्कृत नाटक कथेगलु' तथा 'मालविकाग्निमित्र नाटक' (कालिदास का अनुवाद) ग्रंथ इनकी गंभीर विद्वत्ता तथा अध्ययनशीलता के प्रमाण हैं। कन्नड में कई महानुभावों ने कालिदास के ग्रंथों का अनुवाद किया है। इनका अनुवाद उनमें विशिष्टता रखता है। इस अनुवाद की भाषा में प्रवाहशीलता और शैली में तेज है।

सुब्रह्मण्य शास्त्री, श्रीपाद *(ते० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

ये आंध्र के गोदावरी ज़िले के अंतर्गत राजमहेंद्रवरमु के रहने वाले थे। इन्होंने संस्कृत-साहित्य का गहरा अध्ययन किया था इसीलिए इनकी रचनाएँ प्रायः उसी साहित्य से प्रभावित हैं। देश की प्राचीन संस्कृति पर आस्था दिखाते हुए सुब्रह्मण्य शास्त्री चाहते थे कि अपनी रचनाओं के द्वारा समाज का ध्यान भी उस ओर आकृष्ट किया जाय। इन्होंने 1916 ई० में 'कलाभिवर्द्धनी नाटक समाज' की स्थापना की। कभी-कभी रंगमंच पर अभिनय भी करते थे। ये प्रधानतः कहानीकार तथा उपन्यासकार थे। 1921 ई० से ये 'प्रबुद्धांध्र' नामक पत्र के संपादक भी रहे। इनकी रचनाएँ ये हैं—'मिथुनानुरागमु', 'श्मशानवाटिका', 'अनाथबालिका', 'रक्षाबंधमु', 'धर्मचक्रमु', आदि उपन्यास; 'वड्ल गिंजलु', 'मार्गदर्शी' आदि कहानियाँ; 'प्रेमपाशमु', 'निगलबंधमु', 'राजराजु' आदि नाटक; 'अलंकृति', 'अभिसारिका' आदि खंडकाव्य; 'पाणिगृहीताश्रवणानंद-शृंखला' जैसे कुछ आलोचनात्मक लेख। इनकी भाषा सरल तथा चरित्र-चित्रण सजीव हैं। सुब्रह्मण्य शास्त्री जीवन के अत्यंत निकट की घटनाओं को लेकर कहानी तथा उपन्यास लिखने की कला में सिद्धहस्त हैं। प्रधानतः तेलुगु-कहानीकारों में इनका विशिष्ट स्थान है। इसी विशिष्टता के कारण इनको स्वर्णाभिषेक का सम्मान भी प्राप्त हुआ था।

सुभद्रा (पं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1928 ई०]

नाट्य-लेखक ईश्वरचंद्र नंदा (दे०) का यह प्रथम पूर्ण नाटक है। इसमें दो पीढ़ियों के टकराव के संदर्भ से विधवा-विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के रचना-काल के समय पंजाब में समाज-सुधार का आंदोलन तेज़ी से चल रहा था और इस कृति ने उस आंदोलन में योग दिया। वैसे इसका वातावरण अधिकतर घरेलू ही रहा है और समाज की विस्तृत पृष्ठभूमि प्रदान करने में लेखक को पूर्ण सफलता नहीं मिली। लेखक ने इसके प्रणयन में शेक्सपियर की कामदी जैसी रूप-विधि अपनाई है। प्रायः करुणा और वेदना के प्रत्येक दृश्य के अनंतर कोई (कॉमिक रिलीफ़) 'कामद घटना' आ जाती है जिससे दर्शक का मन कुछ हल्का हो जाता है। इसमें पंजाबी लोक-जीवन के आचार-विचार, रीति-रिवाज का सुंदर उपयोग हुआ है। नाटक की सशक्त संवाद-योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेखक की प्रारंभिक रचनाओं में अपनी सशक्त संरचना तथा प्रभावपूर्ण संवादों के कारण यह नाट्यकृति विशेष प्रसिद्ध हुई थी।

सुभद्रा *(मल० पा०)*

ऐतिहासिक उपन्यास 'मार्त्तंडवर्मा' (दे०) की एक नारी-पात्र है सुभद्रा। आलोचकों की राय है 'मार्त्तंडवर्मा' में लेखक एक काल्पनिक प्रेम-कथा की नायिका सुभद्रा का चित्रण करके उपन्यास को रसपूर्ण बनाने में सफल हुआ है। सुभद्रा की कथा शोकपूर्ण होते हुए भी मधुर है।

सुभद्रा धनंजय *(सं० कृ०)* [समय—दसवीं शती ई०]

'सुभद्रा धनंजय' कुलशेखर वर्मा की नाट्यकृति है। यह ट्रावनकोर रियासत के महोदय नामक राज्य के राजा थे।

यह पाँच अंकों का नाटक है। इसमें 'महाभारत' (दे०) के प्रसिद्ध उपाख्यान सुभद्राहरण को बड़े सुंदर ढंग से नाट्यायित किया गया है। इसका अंगीरस वीर है।

सुरंग कवि (क० ले०) [जन्म—1500 ई० के लगभग विद्यमान]

ये वीरशैव धर्म के अनुयायी थे। इनका एकमात्र प्राप्त ग्रंथ—'त्रिषष्टिपुरातन चरित्रे' है। यह चंपू शैली में लिखा गया है। शैव भक्त-कवियों में तिरेसठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तों के नाम प्रसिद्ध हैं। तमिल में इनसे संबंधित साहित्य मिलता है। बारहवीं शती में महाकवि हरिहर (दे०) ने उन भक्तों पर कविता 'रगळे' लिखे थे। हरिहर के बाद इस विषय पर लिखने वालों में इन्हीं का नाम लिया जाता है। इनका चंपू ग्रंथ बृहदाकार है। उसे महाकाव्य कह सकते हैं। वस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली आदि दृष्टियों से यह एक उत्तम काव्य माना जाता है। उसमें कवि की निर्मल भक्ति प्रकट हुई है।

सुरजीत हांस *(पं० ले०)*

पंजाबी के आधुनिकतम लेखकों में सुरजीत हांस का नाम उभर रहा है। यद्यपि उन्होंने परिमाण की दृष्टि से अधिक नहीं लिखा परंतु जो कुछ भी लिखा है वह रूपात्मक नवीनता एवं दृष्टिकोण की ताज़गी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उनका एकमात्र उपन्यास 'मिट्टी की ढेरी' आज के जीवन की समस्याओं को नवीन मानवीय परिप्रेक्ष्य में देखने का सुंदर प्रयास है। उनका काव्य-नाटक 'पुश्तां' भी इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

आजकल हांस गुरु नानक विश्वविद्यालय अमृतसर में गुरुनानक अध्ययन विभाग में प्राध्यापक हैं।

सुरदा *(त० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

'सुरदा' उपनाम से प्रसिद्ध श्री राजगोपाल का जन्म तंजौर में हुआ। इन्होंने साधारण अध्यापक के रूप में अपनी जीविका आरंभ की। पांडिचेरी में भारतीदासन (दे०) के संपर्क में आने पर उनकी 'कुयिल' पत्रिका में कुछ समय कार्य करने के उपरांत चलचित्र के लिए संवाद एवं गीत लिखने मद्रास आ गए। इन्होंने कुछ समय के लिए 'इलक्कियम्' नामक काव्य-पत्रिका का संपादन भी किया और स्वमर्यादा-आंदोलन एवं द्रविड कषगम के कार्यकलापों में सोत्साह भाग लिया। आरंभ में इन्होंने समाज-सुधार-विषयक मुक्तकों की रचना की। 'पट्टत्त अरशि', 'उदट्टिल उदडु' आदि रचनाओं द्वारा वे कवि-रूप में विख्यात हुए। उनकी 'तेनमलै' (कविता-संग्रह) को तमिलवर्द्धिनी सभा ने पुरस्कृत किया। परवर्ती काल में सुरदा समाज-सुधार और साम्यवादी विचारधाराओं से मुक्त एक विशिष्ट प्रकार की अलंकार-प्रधान कविताएँ लिखने लगे। आजकल वे 'सुरदा' नामक कविता-पत्रिका का संपादन कर रहे हैं।

सुरमा *(उ० पा०)*

लक्ष्मीधर नायक (दे०) के उपन्यास 'सर्वहरा' (दे०) का नारी-चरित्र है 'सुरमा'। यह एक सर्वहरा शिल्पी की कन्या है—तन्वी, रूपसी एवं उपन्यास की विदग्ध नायिका। यह किशोर को प्यार करती है—मन, प्राण और जीवन देकर। यही प्यार विघटन का कारण बनता है। परिस्थितियाँ इसे लखपती की बेटी मंजु से विवाह करने को बाध्य करती हैं। वह विरोध करता है, किंतु समाज की उपेक्षा करने की शक्ति उसमें नहीं है। रात के निबिड़ अंधकार में किशोर सुरमा को बाध्य करता है घर छोड़कर चले जाने के लिए। सुरमा का द्वंद्व है—एक ओर निस्सहाय वृद्ध पिता तथा दूसरी ओर प्रेम तथा पलायन। कर्तव्य इसके लिए अधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक निंदा व अपमान सहने को यह प्रस्तुत है। किशोर लौट जाता है।...किंतु क्या कर्तव्य के नाम पर सुरमा अपना प्यार त्याग पाती है? नहीं...उसके दूसरे ही क्षण सुरमा अपनी विचारबुद्धि का संतुलन खोकर आत्महत्या कर लेती है।

सुरीली बाँसुरी *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यूनाइटिड इंडिया प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित यह काव्य-कृति आरज़ू लखनवी की उर्दू शायरी की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें 'आरज़ू' लखनवी की 126 ग़ज़लें, 5 क़तआत और दो रुबाइयां संगृहीत हैं। 'कछार की लड़ाई' शीर्षक से 8 पृष्ठों की एक लंबी नज़्म भी इस कृति में सम्मिलित है। इसी के अंत में लेखक की दो संक्षिप्त कहानियाँ—'एक कठिन रात' और 'सुहागिन सती'—भी जोड़ दी गई हैं जो करुण भाव से परिपूर्ण हैं। संगृहीत ग़ज़लों की भाषा-शैली हिंदुस्तानी है—फ़ारसी और अरबी के शब्दों के प्रयोग का प्रायः अभाव ही है। काव्य में भावात्मकता, सूक्ष्मता और वैयक्तिकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं संगीतात्मकता भी भरपूर है। माधुर्य गुण और प्रसाद गुण-संपन्न शैली में लिखित यह कृति पाठक को आत्मविभोर करने में पूर्णतः समर्थ है।

सुरीले बोल *(उर्दू० कृ०)*

'सुरीले बोल' जनाब मुहम्मद अज़मतुल्लाह ख़ाँ का काव्य-संग्रह है। 1940 ई० में हैदराबाद दकन से इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहं का प्रकाशन हुआ था। इस पुस्तक में पहले एक भूमिका तथा कवि का जीवन-परिचय दिया गया है। इसके पश्चात् पुस्तक के दो भाग हैं—पहला गद्य-भाग तथा दूसरा पद्य-भाग। गद्य-भाग में उर्दू-काव्य तथा काव्य-कला-संबंधी एक महत्वपूर्ण सारगर्भित लेख है और पद्य-भाग में सैंतीस कविताएँ संगृहीत हैं।

'सुरीले बोल की कविताएँ इस नाम को सार्थक सिद्ध करती हैं। सरल, सुबोध भाषा में हल्की-फुल्की पदावली से युक्त कविताओं एवं गीतों का यह एक सुंदर संग्रह है। पहली कविता 'कोयल' वर्ड्सवर्थ की 'टु द कक्कू' का भावानुवाद है। इसी तरह 'यूनान के ज़ंजीरे' बायरन की कविता 'आइल्स ऑफ़ ग्रीस' का अनुवाद है। 'मूँछ औ चोटी दो भागों में लिखित एक काव्य-नाटक है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'सुरीले बोल' एक महत्वपूर्ण कृति है।

सुरेंद्रन्, के० *(मल० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

ये मलयाळम के लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। ये पहले डाक-तार विभाग में सेवा करते थे; बाद में पूर्णकालिक साहित्य-सेवा करने के लिए इन्होंने नौकरी छोड़ दी थी।

सुरेंद्रन् ने गद्य की सभी शाखाओं में महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की है। 'वलि' समस्या-नाटक है। 'ताळम्' (दे०), 'माया', काट्टुकुरङ्ङ्' (दे०), 'शक्ति', 'मरणम् दुर्बलम्' आदि इनके उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हैं। 'नॉवल् स्वरूपङ्ङळ्, तूवलुम् चङ्ङलयुम' आदि समालोचनात्मक ग्रंथ और कुमारन् आशान् (दे०) और टॉल्स्टाय की जीवनियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। इनके अनेक उपन्यासों का फ़िल्मीकरण भी हुआ है।

सुरेंद्रन ने समालोचक के रूप में लब्ध-प्रतिष्ठ होने के बाद उपन्यास-जगत में पदार्पण किया था जहाँ इन्हें अभूतपूर्व यश प्राप्त हुआ। इनके उपन्यासों में मानवीय संबंधों, विशेषकर पारिवारिक संबंधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कुशलतापूर्वक हुआ है। नाटककारों में भी इनका स्थान समुन्नत है। आधुनिक गद्य-साहित्य में सुरेंद्रन् का योगदान महत्वपूर्ण है।

सुश्रुत *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—300 ई० के लगभग]

'महाभारत' (दे०) के अनुसार सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र हैं। सुश्रुत-रचित 'सुश्रुत-संहिता' आयुर्वेद का अत्यंत प्रामाणिक ग्रंथ है। डा० दासगुप्त के मतानुसार नागार्जुन (दे०) ने सुश्रुत का संस्करण किया था। सुश्रुत में 6 भाग हैं—(1) निदान-स्थान, (2) सूत्रस्थान, (3) शरीरस्थान, (4) चिकित्सास्थान, (5) कल्पस्थान तथा उत्तरतंत्र हैं।

सुश्रुत ने 'सुश्रुतसंहिता' के अंतर्गत शल्य-चिकित्सा एवं शरीर-विज्ञान का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। सुश्रुत शल्यचिकित्सा का सर्वोच्च उपयोग युद्धभूमि में मानते थे। सुश्रुत ने 'सुश्रुतसंहिता' (सु० सं० 34, 12, 13) के अंतर्गत युद्धभूमि में वैद्यों के महत्वपूर्ण कार्य का वर्णन किया है। सुश्रुत के संबंध में यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वे शास्त्रज्ञान और कार्यकुशलता दोनों को ही महत्वपूर्ण मानते थे। सुश्रुत के अनुसार शिष्य को कार्यकुशल बनाने के लिए उसे अभ्यास-संबंधी शिक्षा दी जाती थी।

सुहरा *(मल० पा०)*

यह मुहमद (दे०) बशीर वैकम के लघु उपन्यास 'बाल्यकालसखी' (दे०) की नायिका है। यह अपने अत्याचारी पति को छोड़कर अपने बचपन के साथी मजीद (दे०) के भग्न जीवन में नवचेतना जगाने की कोशिश करती है। मजीद दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है और राजयक्ष्मा से इसका भी अंत हो जाता है।

यह दुःख-संकुल नारी-जीवन का प्रतीक है। मजीद से इसका प्रेम प्रबल है और अनेक शारीरिक मानसिक और आर्थिक कष्टों के मध्य भी यह अपने प्रेमी के जीवन को सार्थकता प्रदान करती रहती है। यह जीवन की वास्तविकताओं की ओर होने वाले कथाकारों के आकर्षण का भी प्रतिनिधित्व करती है।

सुहाग के नूपुर *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1960 ई०]

तमिल कवि इंलगोकन् के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' के कथानक पर आधृत अमृतलाल नागर (दे०) के इस उपन्यास में वेश्या-समस्या को आधार बना कर युग-युगांतर से उत्पीड़ित एवं भोग्या समझी जाने वाली नारी की अंतर्वेदना तथा पुरुष की उच्छृंखल वृत्ति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। सती-साध्वी आदर्श पत्नी कन्नगी के मूक समर्पण तथा सामा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिक परंपराओं से टकराने के लिए व्याकुल माधवी के मादक तथा मायावी प्रेम के मध्य भटकते कथानायक कोवलन के दुविधाग्रस्त मन का अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए लेखक ने सुहाग के नूपुरों तथा नर्तकी के घुंघरुओं के चिर प्राचीन संघर्ष को अपनी मौलिक प्रतिभा के माध्यम से अत्यंत कलात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। मन, वचन तथा कर्म से कन्नरी के ही समान कोवलन के प्रति पूरी तरह समर्पित माधवी सुहाग के नूपुर पहनने के लिए आजीवन वेश्या-पुत्री होने के कारण ही क्यों तरसती रहे—यह एक ऐसा प्रश्न है जो हमें समाज के नैतिक मूल्यों के संबंध में पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करता है। समग्रतः कथ्य तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

सुहिणी *(सिं० पा०)*

सुहिणी-मेहार की प्रेमगाथा सिंध में प्रसिद्ध है। कुछ परिवर्तन के साथ यह कथा 'सोहनी-मेहवाल' नाम से पंजाब में भी प्रचलित है। सुहणी इसी प्रेमगाथा की नायिका है। सिंधी प्रेमगाथा के अनुसार सुहिणी तुला कुम्हार की बेटी थी और अनुपम सुंदरी थी। इसका प्रेम एक नवयुवक से हो गया था जो इसके पिता के पास गाय-भैंस चराया करता था। कहा जाता है कि वह वास्तव में बोख़ारा का शाहज़ादा इज़्ज़त बेग था जो इसे पाने के लिए इसके पिता के पास नौकरी करने लगा था। तुला को जब यह रहस्य मालूम हुआ तब उसने बदनामी के भय से इज़्ज़त बेग को नौकरी से हटा दिया और अपनी बेटी की शादी 'दम' नामक अपनी जाति के एक नवयुवक से कर दी। इज़्जत बेग सिंधू नदी के पार किनारे पर झोंपड़ी बनाकर रहने लगा। विवाह हो जाने के पश्चात् भी इसके हृदय में अपने प्रियतम के लिए प्रेम कम नहीं हुआ। यह हर रात चुपके से घड़े के सहारे सिंधू नदी पार कर प्रियतम से मिलने लगी। एक रात इसकी ननद ने यह रहस्य जान लिया और पक्का घड़ा उठा कर उसके स्थान पर कच्चा घड़ा रख दिया। अँधेरी रात में वह घड़ा उठाकर जब प्रियतम से मिलने चली तो मँझधार में घड़े के गल जाने पर डूबने लगी और ज़ोर-ज़ोर से प्रियतम को पुकारने लगी। इज़्ज़त बेग प्रेयसी की पुकार सुनकर नदी में कूद पड़ा और जाकर उससे मिला, परंतु नदी के तीव्र प्रवाह से दोनों बच न सके और हमेशा के लिए सिंधू की गोद में समा गए। सूफ़ी संत-कवियों ने सुहिणी का साधक के रूप में वर्णन किया है, जो परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल है। सुहिणी का उल्लेख सिंधी-साहित्य में कई स्थानों पर मिलता है।

सूक्तिसुधार्णव *(क० कु०)*

यह मल्लिकार्जुन नामक कवि का संकलन ग्रंथ है। कवि ने इसे होयसळ राजा वीरसोमेश्वर के विनोद के लिए लिखा था, अतः इस कवि का समय 1245 ई० के लगभग माना जाता है। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'काव्यसार' भी है। महाकाव्य में अष्टादश वर्णन हो, यह लाक्षणिक नियम है। कंद तथा वृत्त छंदों के इस ग्रंथ में प्रत्येक वर्णन के लिए एक-एक आश्वास नियोजित है। कवि ने प्रत्येक वर्णन के लिए प्राचीन काव्यों से सामग्री चुनी है। पीठिका-संधि को मिलाकर इसमें 19 आश्वास हैं। अब केवल 17 आश्वास प्राप्त हैं। मल्लिकार्जुन की अभिरुचि उतनी उत्कृष्ट तो नहीं पर फिर भी उसके चुने हुए पद्यों में किसी न किसी प्रकार का सौंदर्य है। कभी वे शब्दालंकारों पर रीझते हैं तो कभी अर्थालंकार उन्हें भाते हैं। अच्छे भाव-रस-युक्त पद्य उन्हें अत्यंत प्रिय हैं। साहित्य के इतिहास के निर्माण में इस ग्रंथ का विशेष महत्व है। करीब ढाई हज़ार पद्य इसमें मिलते हैं। इससे कन्नड साहित्य की समृद्धि का पता चलता है। किंतु इनमें से केवल आधे भाग के आकार-ग्रंथ मिले हैं, बाक़ी का पता अभी नहीं लगा है।

सूत्रधार *(पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की मंच-प्रस्तुति के प्रायः सभी सूत्रों का संचालन एवं नाट्य-प्रदर्शन का प्रबंधक-नियामक। भरतमुनि (दे०) ने वास्तविक नाट्यरंग से पूर्व के पूर्वरंग का सविस्तर विवेचन किया है। सूत्रधार पूर्वरंग की समस्त विधियों का संचालक और प्रस्तुतिकर्ता होता है। वादकों द्वारा नेपथ्य (दे०) से प्रस्तुत किए जाने वाले संगीत के स्वरों के साथ श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पों से सज्जित सूत्रधार अपने दो सहयोगियों—पारिपार्श्विक और विदूषक के साथ मंच पर प्रस्तुत होकर मुख्यतया नांदी-पाठ एवं अन्य पूर्वरंग की विधियों को संपादित करता है। ये विधियाँ हैं उत्थापना, परिवर्तन, नांदी, शुष्कापकृष्टा, रंगद्वार, चारी और महाचारी। पारिपार्श्विक और विदुषक के साथ किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए सूत्रधार के वार्त्तालाप को 'त्रिगत' कहा जाता है। नाटक के पूर्व की प्रस्तावना के अंतर्गत वीथी (दे०) के तेरह अंगों उद्घात्यक, अवगलित, प्रपंच, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गंड, अवस्यंदित, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार और मृख की प्रस्तुति भी सूत्रधार ही का कर्तव्य-कर्म है। नाट्यशास्त्र में सूत्रधार से भिन्न 'स्थापक' का उल्लेख भी है जो मुक्य नाटक के बीज एवं मुख्य पात्र आदि की सूचना द्वारा नाटक का आस्थापन करता है। उसके अभाव में 'प्ररोचना' का यह कार्य भी सूत्रधार ही संपन्न करता है। आधुनिक भारतीय नाटक में सूत्रधार जैसे नट की भूमिका प्रायः समाप्त हो गई है।

सूदन *(हिं० ले०)*

सूदन कवि संभवतः मथुरा-निवासी थे और भरतपुर के प्रसिद्ध जाट-नरेश सूरजमल (सुजानसिंह) के आश्रय में रहे थे। इनकी एक प्रसिद्ध रचना है 'सुजान-चरित्र' (दे०) अथवा 'सुजानविलास'। इसमें सुजानसिंह का वीरचरित्र वर्णित है। घटनाएँ प्रायः सत्य पर आधारित हैं। ग्रंथ की शैली वीररसोचित है। रीतिकाल के उस शृंगार-प्रधान युग में इन्होंने भूषण (दे०) और लाल (दे०) के समान वीर-रस-प्रधान ग्रंथ लिखकर राष्ट्र की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की थी।

सूफ़ी काव्य *(पं० प्र०)*

सूफ़ी काव्य पंजाबी साहित्य की प्राचीनतम धारा है। इसके प्रथम ज्ञात कवि फ़रीद शंकरगंज (1173-1266 ई०) के चार 'शब्द' और एक सौ बारह 'श्लोक' आदि ग्रंथ में संकलित हैं। परंतु यह काव्य-धारा अविच्छिन्न रूप से इसके चार सौ वर्ष पश्चात् शाह हुसैन (1539-1593 ई०) से प्रवाहित होती है। इन कवियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—शरीयत के पाबंद रहकर ईश्वरीय प्रेम का गान करने वाले तथा बंधनों की उपेक्षा कर, जीव मात्र की एकता को स्वीकार करते हुए आध्यात्मिक उल्लास में काव्य-सर्जना करने वाले। फ़रीद (दे०), अलीहैदर, सुल्तान बाहू, शाहशरफ, मौ० गुलाम रसूल, मियाँ मुहम्मद बख़्श (दे०) प्रभृति पहले खेमे के सूफ़ी हैं और शाह हुसैन, बुल्लेशाह (दे०), हाशम (दे०), ख़्वाजा गुलाम फ़रीद दूसरी कोटि के। आरंभ में ही शेख़ फ़रीद ने इस धारा को विदेशी तत्वों से मुक्त कर ग्रामीण बिंबों के प्रयोग से उसे लोक-ग्राह्य रूप दिया और इस प्रकार उसे एक विशिष्ट दिशा दी जिसे स्वीकार करते हुए परवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में शुद्ध आचरण, अहं-त्याग, जीव और ब्रह्म के अभेद, पीड़ा में संतोष आदि के साथ-साथ 'इश्क़' की श्रेष्ठता, विरह की वरेण्यता को अभिव्यक्ति का विषय बनाया। दूसरे वर्ग के कवियों ने समाज, धर्म और राज-सत्ता पर भी तीक्ष्ण प्रहार किए। पंजाबी सूफ़ी-काव्य में पंजाब की लोक-प्रसिद्ध कथाएँ, पर्व और आचार-विचार अनुस्यूत हैं, सुरा और साकी यहाँ कदाचित् ही मिलते हैं। ये रचनाएँ अधिकांशतः मुक्तक शैली में हैं। जीव और ब्रह्म के मिलन और विरह को अभिव्यक्त करने के लिए कवियों ने भारतीय परंपरा के अनुसार अपने-आप को नारी और ब्रह्म को पुरुष मानकर अनेक बारहमासा तथा सतवारा लिखे हैं। कई कृतियों में सीहरफ़ी शैली भी अपनाई गई है। इस काव्यधारा में शांत और शृंगार के भाव विस्तार और तीव्रता से अभिव्यंजित हुए हैं। इस काव्य की भाषा प्रायः सरल है, लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण उसमें अद्भुत प्रवाह दिखाई देता है। अपने उदात्त वर्ण्य और सहज काव्य-माधुर्य के अति परिमाण की दृष्टि से भी यह काव्य-प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है।

सूफ़ीकाव्य *(हिं० प्र०)*

सूफ़ीकाव्य में पत्नी-रूप परमात्मा को पाने के लिए पति-रूप साधक प्रेम का आश्रय ग्रहण करता है। सूफ़ी कवि आत्मा-परमात्मा से मधुर संबंध की अभिव्यक्ति आत्मविभार होकर करता है। इस परंपरा के समग्र कवि अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए जागतिक शब्दावली को निरर्थक समझते हुए भी लौकिक प्रेम-कहानियों का सहारा लेते हैं। तभी तो सूफ़ी-साधक अपने प्रेम की तीव्रता, हृदय की बेचैनी और आतुरता को अभिव्यक्त करने के लिए लौकिक प्रेम की अनेकानेक मनोदशाओं का वर्णन करता है।

फ़ारसी के सूफ़ी कवियों ने मसनवी, रुबाई तथा ग़ज़ल जैसे भिन्न-भिन्न काव्य-रूपों को अपनाया है। मसनवी में पहले तो धार्मिक और आध्यात्मिक चर्चा होती थी, पर धीरे-धीरे प्रेमाख्यानों ने उसमें प्रवेश पा लिया। मसनवी-शैली के अंतर्गत ईश्वर, पैगंबर तथा 'मीराज' की स्तुति, शाहेवक्त की प्रशंसा, काव्य-सृजन की प्रेरणा का उल्लेख, कथा का खंडों में विभाजन एवं बीच-बीच में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक द्वारा ग़ज़लें गाने का रिवाज पाया जाता है। हिंदी के सूफ़ी कवियों ने मसनवी-शैली की बहुत-सी बातों को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है। हिंदी-सूफ़ी कवियों में कुतबन (दे०), मंझन (दे०), जायसी (दे०), उसमान (दे०), शेख़ नबी, कासिमशाह, नूरमुहम्मद (दे०) आदि इस शाखा के प्रमुख कवि हैं। इन कवियों ने हिंदुओं की चर्चित प्रेम-कहानियों को उन्हीं की भाषा में लिखकर अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन जिस ढंग से किया है वह सर्वथा स्तुत्य है। सूफ़ी कवियों ने अपनी उदारवादी नीति को लेकर भारतीय-अभारतीय वैचारिक स्थिति में एवं शैली की दृष्टि से ईरानी एवं फ़ारसी शिल्प में सुंदर समन्वय प्रस्थापित किया है।

सूरकवि, अडिदमु *(ते० ले०)* [समय—1720-1785 ई०]

अडिदमु सूरकवि का जन्म खड्ग और कलम दोनों को समान चातुरी से धारण करने वाले वंश में हुआ था। इनके पूर्वज 23 पीढ़ियों से कविता करते आए थे। 'कविजनरंजनमु' (दे०), 'कविसंशय विच्छेदमु', 'चंद्रालोकमु', 'रामलिंगेश्वर शतकमु' आदि इनकी रचनाएँ हैं। कविजनरंजनमु में हरिश्चंद्र तथा चंद्रमती के विवाह की कथा वर्णित है। 'रामलिंगेश्वरशतकमु' में इस समय के राजाओं के दुराचरणों का वर्णन किया गया है। अन्य ग्रंथ साहित्य-शास्त्र से संबंधित हैं।

इन काव्यों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक दूषणात्मक पद्य लिखे हैं जो बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके संबंध में कहा जाता है कि 'सूरकवि की गाली और लोहार की थपेड़ एक से हैं।' इनकी शैली लाक्षणिक तथा समासगर्भित है और मुख्य रूप से लक्षण-ग्रंथ लेखक के रूप में ही इनकी ख्याति है।

सूरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1478 ई०; मृत्यु—1583 ई०]

इनका जन्म दिल्ली के निकट सीही ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। बाद में ये मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित गऊघाट नामक स्थान पर आकर बस गए थे। पुष्टिमार्ग (दे०) के प्रवर्तक वल्लभाचार्य से जब इनकी भेंट हुई थी तब इन्होंने विनय और दीनता के पद गाए थे, जिन्हें सुनकर महाप्रभु इस अंध कवि के हाथों बिक से गए थे और प्यार भरे शब्दों में कहने लगे थे— 'सूर ह्वै कै ऐसौ घिघयात काहे को है कछु भगवत लीला बरनन कर।' तभी से कृष्ण की विविध लीलाओं का गान करना सूर का मुख्य अभिप्रेत बन गया था।

इनकी 'सूरसागर' (दे०), 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' (दे०) नामक तीन प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'सूरसारावली' सूरसागर की विषय-सूची-सी है और साहित्यलहरी' 'सूरसागर' के रस-रीति के दृष्टकूट पदों का संग्रह-मात्र है। नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित 'सूरसागर' में 12 स्कंध हैं और प्रत्येक में किसी-न-किसी देवता के अवतार की कथा वर्णित है। दशम स्कंध में कृष्ण-कथा का सविस्तर उल्लेख किया गया है।

सूर का वास्तविक परिचय उनके काव्य में ही है। सूर रूप या सौंदर्य के कवि हैं। इनके संयोग के चित्र बड़े कोमल और प्रभावक हैं, परंतु विरह की जैसी तीव्र अभिव्यंजना इन्होंने की है वैसी किसी अन्य के द्वारा संभव नहीं हुई। वात्सल्य का तो कवि कोना-कोना झाँक आया है। बालक के मन की कोई भी ऐसी मूक अंतर्दशा एवं तोतली भावना शेष नहीं रही जिसका अध्ययन इस गृह-विहीन कवि ने न किया हो। ब्रजभाषा को साहित्यिक गौरव प्रदान करने का बहुत कुछ श्रेय सूर को ही है। 'सूरसागर' में इन्होंने जीवन की पूर्णता को समेटने की चेष्टा की है। इन्होंने ब्रज के सभी संस्कारों का, तात्कालिक सभी विश्वासों का, रहन-सहन का, अनेक व्यवसायों का, परंपरागत रूढ़ियों का, पर्वों और उत्सवों का, सम्मोहन, जादू-टोना, ताबीज़, भाग्य एवं डिठौना आदि का आकलन जिस पटुता से किया है वह सर्वथा स्तुत्य है। संपूर्ण हिंदी-साहित्य में तुलसीदास (दे०) ही इनके समकक्ष बैठते हैं।

सूरदास *(हिं० पा०)*

यह प्रेमचंद (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' (दे०) का प्रसिद्ध पात्र एवं नायक है। इसमें नेत्र-विहीन भारतीय भिक्षुओं की सभी विशेषताएँ—यथा गायन-वादन में रुचि, अध्यात्म तथा भक्ति की ओर झुकाव, बाह्य दृष्टि के बंद होते हुए भी आंतरिक दृष्टि का खुला होना आदि पाई जाती हैं। यद्यपि इसके चरित्र में मानवोचित दुर्बलताओं का सर्वथा अभाव नहीं है फिर भी यह सच्चे अर्थों में वैरागी है। दीन-दुखियों की सहायता, शत्रु व मित्र के साथ एक समान व्यवहार, शरणागत की रक्षा आदि गुण इसमें कूट-कूटकर भरे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरक्षर होते हुए भी अत्यंत दूरदर्शी तथा निष्कपट हृदय वाला यह पात्र गीता के निष्काम-कर्म का साक्षात् व्यावहारिक रूप है। यह अनीति और अन्याय का विरोधी, अत्यंत निर्भीक एवं धुन का पक्का है। गांधीवादी विचार-धारा तथा आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने वाले इस पात्र के चरित्र में सत्य, अहिंसा, त्याग, धर्म, क्षमा आदि गुणों का विलक्षण समन्वय पाया जाता है। इसमें शोषण करने वाले पूंजीवादियों के विरुद्ध संघर्ष करने की अद्भुत नैतिक शक्ति है। यह न किसी के प्रति वैमनस्य रखता है और न विरोध की भावना। यद्यपि यह एक सामान्य प्राणी है किंतु इसके व्यक्तित्व के समक्ष राजा-महाराजाओं, ठाकुर-ज़मींदारों तथा पूंजीपतियों का व्यक्तित्व भी अत्यंत नगण्य ठहरता है। इसके विरोधी भी इसकी महानता के कायल एवं प्रशंसक हैं। ज़िलाधीश मि० क्लार्क, म्यूनिसिपल कमेटी के प्रधान राजा महेंद्रसिंह, मिल-मालिक जान सेवक, पड़ौसी नायकराम, बजरंगी, जगधर, भैरों, आदि सभी इसके प्रति वैर-भाव रखते हुए भी यथावसर इसके चारित्रिक गुणों की प्रशंसा करते हैं। समग्रतः प्रेमचंद का यह पात्र भिक्षुक होते हुए भी एक सच्चे मनुष्य के रूप में हमारे सामने आता है। इसका चरित्र एक मानव का चरित्र न होकर किसी देवता का चरित्र प्रतीत होता है।

सूरना पिंगळि *(तें० ले०)* [समय—सोलहवीं शती का उत्तरार्ध]

लक्ष्मी तथा सरस्वती के आगार कवियों के वंश में इनका जन्म हुआ था। विजयनगर के श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के आश्रित होकर 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात कवियों में इनकी गणना की जाती है। ये अत्यंत प्रतिभावान् तथा विद्वान् कलाकार थे। नव्यता का उन्मेष इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण गुण है। प्राप्त रचनाएँ—(1) 'कलापूर्णोदयमु' (दे०), (2) 'प्रभावती-प्रद्युम्नमु' (दे०) और (3) 'राघव पांडवीयमु' (दे०)। कथा-निर्माण तथा रसपोषण में इनकी जैसी प्रतिभा विरल है। प्रौढ़ रचना, मृदु-मधुर पदावली, लोकोक्तियों तथा प्रवाहमयता के कारण सुंदर संवादों, पात्रों के अंतरंग चित्रण तथा श्लेष-रचना के कारण इनकी कविता को असारधाण लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

'कलापूर्णोदयमु' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें अत्यंत मनोरम काल्पनिक कथा के आधार पर श्रृंगार रस के विभिन्न रूपों का उद्घाटन किया गया है। इसकी रचना आधुनिक उपन्यास के समान कार्य-कारण-संबंध के निर्वाह को दृष्टि में रखकर की गई है। 'प्रभावती-प्रद्युम्नमु' दृश्य-काव्य की पद्धति से 'हरिवंश' की कथा के आधार पर लिखा गया है। 'राघवपांडवीयमु' एक ही साथ 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) की कथाओं का वर्णन करने वाले द्वि-अर्थी काव्य हैं तथा अब तक उपलब्ध तेलुगु श्लेष-काव्यों में सर्वप्रथम हैं।

सूरना में जितनी प्रतिभा कथा-निर्माण में पाई जाती है, उतनी ही प्रतिभा उसके प्रस्तुतीकरण में भी दृष्टिगत होती है। भाषा पर इनका अधिकार अपरिमित है। निस्संदेह ये तेलुगु-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में से एक हैं।

सूरसागर *(हिं० कृ०)*

'सूरसागर' श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन के समय सूरदास (दे०) द्वारा गाए गए पदों का संग्रह-काव्य है। 'सूरसागर' की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं, परंतु काशी नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित दो खंडों में प्राप्य द्वादश स्कंधात्मक प्रति सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रथम स्कंध में विनय और दीनता के पद हैं, द्वितीय से अष्टम स्कंध तक अनेक देवताओं के अवतार की कथा है, नवम स्कंध में रामकथा, दशम स्कंध में कृष्ण-जन्म से लेकर विविध संस्कारों, शैशवोचित क्रीड़ाओं, अनेक लीलाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, लौकिक विश्वासों, कंस द्वारा भेजे गए विविध राक्षसों का विनाश मथुरा-द्वारिकागमन एवं कुरुक्षेत्र-आगमन का वर्णन है। एकादश एवं द्वादश स्कंध में पुनः देवी-देवताओं के अवतारों की कथा है। कुछ विद्वान 'सूरसागर' को 'भागवत' (दे०) का उल्था मात्र मानते हैं, परंतु सूर के कथन में आत्मानुभूति की जो गहराई, परमाराध्य के प्रति प्रेम की सांद्रता, कल्पना की सशक्त उड़ान, भक्ति के परिवेश में भावनाओं की निश्छल अभिव्यक्ति एवं विस्तृति देखने को मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आत्माभिव्यंजन के रूप में लिखा गया 'सूरसागर' अद्वितीय ग्रंथ है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि सूर एक बहुज्ञ, चिंतनशील एवं अनुभूति-वैभव से संपन्न कवि थे। कवि ने समाज के बीच कृष्ण के स्वरूप का विकास करके जिस लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया है उसका स्रोत कभी सूखने न पाएगा। यह ग्रंथ सचमुच ही ब्रज-जीवन की संपूर्ण विशेषताओं को लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल के पट पर एक अमिट चिह्न बन गया है ।

'सूरसागर' सूर की समग्र भाव-राशि का संकलन है । विनय के पदों में उपदेश, दैन्य, वैराग्य और लोक-चित्त को मूर्त रूप दिया गया है, रामकथा-संबंधी अधिकांश पदों में राम-वन-गमन, सीता-हरण और राम-विलाप, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम-विलाप एवं वानरों की खिन्नता, रावण-वध, मंदोदरी-विलाप, सीता की अग्नि-परीक्षा आदि दृश्यों में मार्मिकता की सघन समाहृति उल्लेखनीय है एवं दशम स्कंध की संहारपरक लीलाओं में कृष्ण-चरित्र की अतिलौकिकता तथा प्रेम-लीलाओं में कृष्ण के शुद्ध परमानंद-रूप की अभिव्यक्ति हुई है । कृष्ण की प्रेम-लीलाओं के प्रति नंद, यशोदा तथा ब्रज के अन्य वयस्क नर-नारियों के हृदय में अनुकंपारति, सखाओं के हृदय में प्रेम-रति एवं ब्रज की कुमारी, किशोरी तथा नवोढा गोपियों के मन में मधुर अथवा कांता-रति का उदय जहाँ एक ओर सूर की उच्च भक्ति-भावना को प्रमाणित करता है, वहाँ दूसरी ओर उनके उत्कृष्ट काव्य-कौशल का भी परिज्ञान कराता है । सूर ने संयोग में क्रीड़ा-विनोद और वियोग में दारुण दुःख की की अभिव्यंजना करने के साथ-साथ अनेक मौलिक प्रसंगों की उद्भावना करके मानव-मन में उदित होने वाले अगणित मनोरागों का बिंबात्मक चित्रण प्रस्तुत करके अपनी सृजनात्मक शक्ति का परिचय दिया है । अगर महाकाव्य के स्थूल लक्षणों पर ध्यान न दिया जाय तो नायक, नायिका, प्रतिनायक, सखा, सखी आदि अनेक पात्रों, प्रमुख एवं प्रासंगिक कथाओं, कथा की एकसूत्रता, कथा-विकास की आदि, मध्य, अंत तीनों स्थितियों तथा समाज की विशद अभिव्यक्ति के कारण यह गीति-प्रधान रचना सहज ही महाकाव्यों की कोटि में परिगणित की जा सकती है । इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसके विभिन्न कथानक पृथक् अस्तित्व रखते हुए भी एक-दूसरे के पूरक हैं—एक-दूसरे के साथ गुँथे हुए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'सूरसागर' एकसाथ ही गीति-तत्त्वों थौर प्रबंध-तत्त्वों का अद्भुत मिलन-स्थल है ।

सूरुजमुखीर स्वप्न *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

अब्दुलमालिक (दे०) के इस उपन्यास में धनश्री के तट के मुस्लिम गाँव की परिवार-कथा है । नदी और मनुष्य में चिरंतन संघर्ष चलता रहता है । मानव-पराजय में भी आशा नहीं छोड़ता है । इसमें रोमांसवादी कहानी भी है । एक युवक तारा नामक युवती से प्रेम करता है; तारा की माँ कपाही धोखा देकर स्वयं युवक से विवाह कर लेती है । प्रेम की कथा में डूबी तारा सूर्य-मुखी के फूल-सी है । लेखक का यह सफल उपन्यास है ।

सूर्यकरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1902 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

इनका जन्म पारीक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था । ये हिंदी के विद्वान् थे, किंतु राजस्थानी के भी प्रवल समर्थक थे । इन्होंने राजस्थानी भाषा की मान्यता के लिए जीवन-भर कार्य किया । एतदर्थ इन्होंने 'ढोला मारूरादूहा' (दे०), 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' (दे०), 'छंद राव जैतसी रौ', 'राजस्थानी वार्ता', 'राजस्थान के लोक-गीत' आदि कई ग्रंथों का संपादन किया तथा कतिपय मौलिक ग्रंथ भी लिखे, जिनमें 'बोलवण', 'मेघमाला' आदि महत्वपूर्ण हैं । ये सहृदय साहित्यकार और गंभीर समीक्षक थे ।

सूर्यनारायण शास्त्री, सन्निधानमु *(ते० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

ये प्राचीन परंपरा के श्रेष्ठ विद्वान्, समालोचक एवं कवि हैं । इन्होंने व्याकरण एवं अलंकारशास्त्र के क्षेत्रों में भी विशेष कार्य किया है ।

'नंडुमंत्रपुसिरि', 'वासवदत्ता', 'विवेकानंदमु', 'तत्समचंद्रिका' आदि इनकी रचनाएँ हैं । गोवर्धनाचार्य (दे०) की 'सप्तशती' को इन्होंने प्रांजल एवं शिष्ट भाषा में अनूदित किया है । इनकी कविता मृदु-मधुर होती है ।

सूर्यमल्ल *(हिं० ले०)* [जन्म—1815 ई०; मृत्यु—1863 ई०]

इनका जन्म बूंदी में हुआ था । इनके पिता का नाम चंडीदान था । ये बहुत स्पष्टभाषी तथा स्वतंत्रता-प्रिय व्यक्ति थे । इन्हें छह भाषाओं तथा व्याकरण, न्याय, इतिहास, काव्यशास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान था । इन्होंने 'वंशभास्कर' (दे०), 'वीरसतसई' (अपूर्ण), 'बलवंत-विलास' एवं छंदोमयूष' नामक चार ग्रंथों तथा अनेक फुटकर कविताओं की रचना की थी । ये डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) तथा पिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैलियों में काव्य-रचना करते थे। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। राजस्थान में आधुनिक काल की प्रमुख चेतना—राष्ट्रीयता—का सूत्रपात इनकी वीररसपूर्ण कविताओं से होता है। इनका पांडित्य अद्‌भुत तथा वर्णन-शक्ति असाधारण थी। राजस्थास में अभी तक इनकी टक्कर का कवि उत्पन्न नहीं हुआ।

सूर्यमुखी *(बँ० पा०)*

सूर्य की अनुक्षण वंदना में ही सूर्यमुखी (विष-वृक्ष—दे०) के उत्सर्जित प्राणचित्र की सारी सार्थकता है। 'विषवृक्ष' की सूर्यमुखी ने भी अपने पति नगेंद्रनाथ के प्रति सब कुछ उत्सर्ग कर दिया है, पति की वंदना ही उसकी नित्य-तपस्या है। इसीलिए सूर्य-दहन की तरह उसके जीवन में भी प्रेम का अंतर्दहन अलक्षित नहीं रह सका है। कामनाहीन चिरयुवती कुंदनंदिनी के प्रति नगेंद्र-नाथ मुग्ध है। सूर्यमुखी हृदय-वंचना के खरताप से दग्ध हुई है किंतु पति के सुख की आशा से कुंदननंदिनी के साथ पति का विवाह रचाया है। पति का सुख ही उसका सुख है। यह सुख समुद्र की लोल छोटी तरंगों की तरह ही हास्य-चंचल है परंतु वेदना का जो विपुल आलोड़न उस मन की गहराई में विद्यमान है उसका पता लगाना लगभग दुष्कर ही है। बंकिमचंद्र (दे० चट्टोपाध्याय) की सुगंभीर सहानुभूति की धारा में सूर्यमुखी नित्य-अभिसिंचित है। यह अभिसिंचन केवल लेखक का ही नहीं पाठक के हृदय-देश से भी यह नित्य-उत्साहित है एवं वहीं सूर्यमुखी के साथ लेखक की सहानुभूति की सार्थकता प्रतिष्ठित हुई है।

+**सूळे** *(क० पा०)*

कन्नड शब्द 'सूळे' का अर्थ है 'वेश्या'। कन्नड के प्रख्यात नाटककार कैलासम् (दे०) जी ने अपने नाटक 'सूळे' में एक वेश्या के जीवन का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। सामाजिक धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति नाम की जो बुरी पद्धति प्रचलित हुई है, उसने स्त्रीत्व के गौरव पर बड़ा भारी आघात किया है। समाज के कृत्यों से यह मुग्धा बाला वेश्या वन कर यद्यपि नारकीय वेदना की पात्र वन जाती है। तथापि अपनी स्त्री-सुलभ कोमलता को नहीं छोड़ती। स्वयं मरने के पूर्व अपनी बेटी को विष देकर उसे नारकीय जीवन का कीड़ा होने से बचा देती है। इसका यह व्यवहार समाज के प्रति इसके आक्रोश, समाज के अत्याचार और पुत्री के प्रति अपने प्रेम का निदर्शन है।

सूसम्मा *(मल० पा०)*

पारप्पुरत्तु (दे०) के उपन्यास 'अन्वेषिच्चु कंटेत्तियिल्ला' की मुख्य स्त्री-पात्र। सूसम्मा बाल्यकाल और कौमार्य में अनेक कष्ट सहने के बाद नर्स का समर्पित जीवन अपना लेती है। सैनिक अस्पताल में क्षत-विक्षत सैनिकों को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करने में वह सफल होती है। परंतु सेवा-निवृत्त होकर अपने घर वापस आने पर सुसम्मा देखती है कि भूतपूर्व नर्स होने के नाते वह समाज में अवज्ञा की पात्र है। जब अपने भूतकाल को गुप्त रखने की शर्त पर एक युवक उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखता है तो उस प्रस्ताव को ठुकराकर वह अपने पवित्र व्यवसाय की महत्ता को आँच नहीं आने देती।

सूसम्मा पारप्पुरत्तु की सर्वप्रमुख स्त्री-पात्र है। नर्सों के संबंध में समाज में फैली हुई धारणाओं के लिए उसका चरित्र एक प्रभावशाली प्रत्युत्तर है। सूसम्मा के सामने ऐसे कई संदर्भ उपस्थित होते हैं जो उसके चारित्रिक अधःपतन के कारण हो सकते हैं। पर उन सबसे बचने का मनोवल उसके चरित्र की विशेषता है। इतना सब होने पर भी समाज ने उसका तिरस्कार ही किया। इस पर वह विचलित नहीं हुई। परंतु जब अपने भूतकाल की गोपनीयता को विवाह के लिए शर्त के रूप में रखा गया तब वह उस स्थिति को सहन न कर सकी। यही कथा-संदर्भ उसके चरित्र-विकास की चरम सीमा है।

केरल की हज़ारों युवतियाँ संसार के प्रत्येक कोने में नर्स का काम करती हैं। उनके कंटकाकीर्ण और कर्तव्यरत जीवन को आलोकित करने वाले इस पात्र की सृष्टि में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।

सेंगर, शिवसिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1833 ई०; मृत्यु—1878 ई०]

ये काँथा-निवासी थे और इन्हें साहित्य के प्रथम इतिहास-लेखक के रूप में स्मरण किया जाता है। इनकी कृति 'सरोज' में लगभग एक हज़ार कवियों के वृत्त विद्यमान हैं। रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इसकी निर्मिति 1883 ई०, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 1877 ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा डा० माताप्रसाद गुप्त ने 1878 ई० में मानी है। नलिन विलोचन शर्मा के मतानुसार इनका 'सरोज' न तो सर्व-वृत्तसंग्रह है और न साहित्यिक इतिहास, क्योंकि इसमें कवियों के जन्म-काल तथा अन्य विवरण अनुमान पर आश्रित हैं, लेकिन फिर भी ग्रियर्सन (दे०) के 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑव नार्दर्न हिंदुस्तान' तथा मिश्र-बंधुओं (दे० मिश्रबंधु) के 'विनोद' के लिए यह ग्रंथ एक तरह से आधार-ग्रंथ रहा है। कुल मिलाकर 'सरोज' की प्राचीनता और इसके तात्कालिक महत्व को किसी भी दृष्टि से नहीं नकारा जा सकता।

सेउजी पातर काहिनी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

बिरिंचिकुमार बरुवा (दे०) के इस उपन्यास में परंपरागत शिल्प नहीं है; इसमें त्रिभुजाकार अथवा चतुर्भुजाकार रेखांकन नहीं है। एक कल्पित चाय-बगीचे को आधार मानकर उसके जीवन की विचित्र भंगिमाओं एवं मानवीय प्रवृत्तियों की सरल और तिर्यक अभिव्यक्ति इसमें हुई है। नरेश्वर नामक युवक घर से भागकर एक चाय-बगीचे में नौकरी करता है। यहाँ वह विभिन्न स्तरों के नर-नारियों के संपर्क में आकर उनके आचार-विचार दुःख-सुख से परिचित होता है। नरेश्वर-सोनिया की कहानी के साथ-साथ कई छोटी-बड़ी कहानियों की शाखा-प्रशाखाएँ चलती हैं। चाय-बगीचे के चित्र सामने आते जाते हैं। कहानी धीमी गति से आगे बढ़ती है, इसे आवश्यकता से अधिक विस्तार दिया गया है। इसके पुरुष-पात्रों की अपेक्षा नारी-पात्र अधिक चटुल, विनोदी एवं हास्यमुखर हैं। उनके मौन जीवन में शिथिलता है।

सेठ बाँकेमल *(हिं० पा०)*

यह अमृतलाल नागर (दे०) के प्रसिद्ध हास्यरसात्मक उपन्यास 'सेठ बाँकेमल' के प्रमुख पात्र तथा नायक हैं। बेफ़िक्र, ज़िंदादिल, व्यापारिक दाँव-पेचों से परिपूर्ण तथा कुल-मर्यादा और बीते हुए युग की दुहाई देने वाले इस पात्र के माध्यम से लेखक ने जर्जर सामाजिक रूढ़ियों तथा मोहग्रस्त परंपरा-प्रेम पर चुटीला व्यंग्य किया है। सेठ बाँकेमल अपनी जवानी के दिनों की मस्ती तथा ज़िंदादिली की कहानियों को ऐसे लोच तथा लहजे से सुनाते हैं कि पाठक के मन में अनायास ही गुदगुदी होने लगती है, वह हँसी से लोटपोट हो जाता है और फिर उन्हें आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता।

सेतु *(उ० कृ०)*

'सेतु' विभूतिभूषण त्रिपाठी (दे०) की कतिपय श्रेष्ठ कहानियों का संकलन है। इन कहानियों में यौन-चित्रण प्रायः नहीं है। 'मिथ्यार सत्य' या 'सेतु' आदि कहानियों में नर-नारी-संबंध जितना सूचित होना यथेष्ट होगा, केवल उतना ही संकेतित है। लेखक की मानवीय संवेदना का द्वार सबके लिए उन्मुक्त है—'बड़ा साहब' और 'छोटे कर्मचारी' दोनों के लिए समान रूप से। लेखक ने 'भस्मसाथी', 'मिशाणार भूल' आदि में सांप्रतिक युग के भाग्य-नियंता बड़े साहब पर उसके प्रतारणापूर्ण व्यवहार के लिए, करारा आघात किया है। सर्वोपरि 'हेडमास्टर' एवं 'राय' कहानियों की मानवीय मर्यादा, सदाचार, निर्विकार चित्त की कर्तव्य-परायणता अविस्मरणीय है।

सेतु-पिळ्ळै, रा० पी० *(त० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

ज़िला तिरुनेलवेली में इनका जन्म हुआ था। पालयकोट्टै, तिरुनेलवेली और मद्रास में इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी। यहीं पर इन्होंने कानून में बी० एल० की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय तक ये मद्रास की पच्चैयप्पन कालेज में तमिल प्राध्यापक रहे थे, फिर तिरुनेलवेली में जाकर वकालत करते रहे। ये इस नगर की नगरपालिका के अध्यक्ष भी रहे थे। तमिल-साहित्य में अभिरुचि के कारण ये पुनः शोध तथा अध्यापन के क्षेत्र में आ गए थे। अण्णामलै विश्वविद्यालय में ये छह वर्ष तक और मद्रास विश्वविद्यालय में पच्चीस वर्ष पर्यंत तमिल विभाग के अध्यक्ष-आचार्य के रूप में रहे। मद्रास-विश्वविद्यालय में ये ही प्रथम तमिल-प्राचार्य थे। ये अच्छे वक्ता भी थे। इनकी भाषण-शैली सरल किंतु काव्यात्मक, साथ ही एक विलक्षण अनुप्रास-अलंकृत होती थी। प्राचीन परंपराओं के ज्ञाता होने के साथ ही ये भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीनता लाने के पक्ष में थे। इन्होंने भाषा तथा साहित्य—दोनों से संबद्ध अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। इनके लगभग पच्चीस ग्रंथ प्रकाशित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें 'तमिल-माधुर्य' पर साहित्य अकादमी का और 'गान और नाम' पर मद्रास सरकार का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय के शताब्दी-समारोह के अवसर पर इनको डी० लिट्० उपाधि दी गई थी। ये यद्यपि शैव भक्त थे किंतु सर्व-धर्म-समन्वय की भावना रखते थे। 'कंबरामायण',-(दे०), 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) और 'तिरुक्कुरळ' (दे०) के ये बड़े प्रेमी थे।

सेतुबंध *(प्रा० कृ०)*

यह पाँचवीं शती के श्री प्रवर सेन द्वारा लिखित महाराष्ट्री-प्राकृत का एक सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। इसमें 15 आश्वास हैं जिनमें वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) के युद्धकांड का आश्रय लेकर राम के लंका-प्रस्थान, सेतु-बंधन, युद्ध, सीता की निर्मुक्ति, राम के अयोध्यागमन और सिंहासनासीन होने का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अलंकार-गर्भित है और समास तथा श्लेष का प्रयोग इसे तत्कालीन संस्कृत-महाकाव्य की परंपरा में ला देता है। 'शिशुपालवध' (दे०) जैसे महाकाव्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है।

सेतुबंध *(सं० कृ०)* [समय—छठी शती ई०]

संस्कृत-महाकाव्यों की शैली पर प्राकृत में भी समय-समय पर महाकाव्यों की रचना हुई है। प्रवरसेन-कृत 'सेतुबंध' इस प्रवृत्ति की प्रतिनिधि कृति है। प्रवरसेन किसी प्रदेश के राजा थे। किंतु ये काश्मीर के राजा थे या वाकाटकवंशीय, इस बारे में अभी विवाद है।

'सेतु' 15 आश्वासों में विभक्त है। इसमें सेतुबंध से आरंभ कर राम-कथा का सुंदर चमत्कारपूर्ण वर्णन है। प्रसादगुण इस काव्य में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। नितांत नवीन अर्थों की कल्पना तो यहाँ नहीं मिलती, पर जो कुछ है वह सरस भाषा में निबद्ध है।

'सेतुबंध' का दूसरा नाम 'रावणवध' या 'दशमुखवध' है। महाराष्ट्री-प्राकृत में लिखित इस महाकाव्य को दंडी (दे०) ने 'सुक्तिरत्नों का सागर' कहा है। बाण (दे०) भट्ट ने भी इस महाकाव्य की सराहना की है। अपने विषय-संयोजन, भाषा तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह अत्यंत सफल काव्यकृति है।

सेन, क्षितिमोहन *(बँ० ले०)*

दे० क्षितिमोहन सेन।

सेनगुप्त, अचिंत्यकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

अचिंत्यकुमार सेनगुप्त बँगला उपन्यास के क्षेत्र में आधुनिकता के प्रवर्तकों में से हैं। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में 'बेदे' (1928) में पाठकों को लेखक की प्रतिभा का पहला परिचय मिला था। इनके उपन्यास 'विवाहेर चेये बड़' (1931) पर अश्लीलता के कारण प्रतिबंध लगा तो इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'ऊर्णनाभ' (1933), 'आसमुद्र' (1934), 'प्रच्छदपट' (1934), 'काकज्योत्स्ना', 'प्राचीर ओ प्रांतर, 'नवनीता', 'रूपसी रात्रि' (1959) आदि उल्लेखनीय हैं।

अचिंत्य बाबू के उपन्यासों में रोमानी गीति-काव्यमयता के साथ यथार्थ का मणि-कांचन योग है। रोमांटिक उल्लास के साथ-साथ देह-संपर्क की निस्संकोच अभिव्यक्ति इनकी अपनी विशेषता है। इनके उपन्यासों में गतानुगतिकतामुक्त बंधनहीन जीवन-यात्रा के प्रति तीव्र आग्रह है, यद्यपि प्रारंभिक उपन्यासों में जीवन के कुत्सित, वीभत्स, पापयुक्त रूप के प्रति लेखक की रुग्ण प्रवणता दिखाई पड़ती है। जीवन की विचित्र अभिज्ञताओं से इनके उपन्यास इतने प्राणवंत नहीं हो पाए हैं जितना कि इनकी कहानियों के अभिनव वैचित्र्य का औज्ज्वल्य मन को बरबस आकर्षित कर लेता है। अचिंत्य बाबू की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनमें कथा की एक पूर्णता विद्यमान रहती है। परवर्ती युग में लेखक ने श्रीरामकृष्ण परमहंस की चरितकथा के आश्रय से एक प्रकार की अभिनव भागवत् कथा की रचना कर जीवन में ज्योतिर्मय लोक का संधान दिया है। अचिंत्यकुमार के सांप्रतिक युग के उपन्यासों में पूर्व-बंग एवं ब्रह्म-सीमांत के निम्न श्रेणी के मनुष्यों की जीवन-यात्रा के चित्र अंकित हैं।

भाषा एवं शैली से संबंधित नाना परीक्षणों में लेखक के कृतित्व का विशेष परिचय मिलता है। विभिन्न उपमानों एवं अलंकारादि के प्रयोग के द्वारा भाषा को अर्थमय बनाने की दिशा में लेखक के प्रयास स्तुत्य हैं—यद्यपि अधिकतर विद्वानों ने इसका विरोध किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनगुप्त, यतींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

रवींद्र (दे० ठाकुर) के समसामयिक कवि यतींद्रनाथ सेनगुप्त अपरिसीम विस्मय के आधार हैं। पेशे से इंजीनियर सेनगुप्त ने बँगला काव्य में जिस प्रकार के नये गीतों का स्वर अनुगुंजित किया था वह और जो कुछ भी हो पुरातन का अनुसरण नहीं था, उसमें संपूर्ण नये भाव एवं विचारों की प्रतिध्वनि थी। बँगला देश की प्रकृति नवरूप के अनुसंधान में ही वे दत्तचित्त रहे। केवल इतना ही नहीं, बंगभूमि के नायक और साधारण मानव की मर्मवेदना ही इनके काव्य की भाव एवं भाषा है। इनके काव्यग्रंथ हैं—'मरीचिका' (1923), 'मरु-शिखा' (1927), 'मरुमाया' (1930), 'सायम्' (1940), 'त्रियामा' (1948), 'गांधी-वाणी-कणिका' (1948)। इनके अतिरिक्त 'कुमार संभव', 'गीता' (1928) तथा 'मैकबेथ', 'हैमलेट और 'ऑथेलो' का काव्यानुवाद (रथी और सारथि 1950) तथा काव्य-परिमिति (1939) इनके काव्य-विचार-विषयक ग्रंथ हैं। निर्वाचित कविता का संकलन 'अनुपूर्वा' (1947) एवं मृत्यु के उपरांत प्रकाशित 'निशांतिका' (1957) उल्लेख योग्य काव्य-ग्रंथ हैं।

यतींद्रनाथ के वेदनाविक्षुब्ध कवि-हृदय ने जगत् और जीवन के जिस रूप की वंदना की है उसके साथ बंगाली पाठक का इससे पूर्व कोई परिचय नहीं था। यतींद्रनाथ मूलतः स्वच्छंदतावाद के उपासक रहे हैं। फिर भी, काव्य के क्षेत्र में इन्होंने अपनी विप्लवात्मक चेतना प्रकट की है। प्रकृति, जीवन एवं जगत्—सभी वेदना-विक्षुब्ध कवि की तीक्ष्ण दृष्टि के सम्मुख नतशिर दिखाई पड़ते हैं। दुःखवादी वैरागी का रूप इनकी कविता में सर्वत्र प्रस्फुटित है।

सेन, जलधर *(बँ० ले०)*

दे० जलधर सेन।

सेन, दीनेशचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

आधुनिक बँगला साहित्य की इतिहास-रचना के क्षेत्र में आचार्य दीनेशचंद्र एक नवयुग के स्रष्टा हैं। यह सच है कि प्राग्-दीनेशचंद्र युग में बँगला-साहित्य के इतिहास की रचना हुई थी परंतु प्राचीन एवं मध्ययुगीन बँगला साहित्य का प्रामाणिक एवं पूर्णांग विश्लेषणात्मक इतिहास रचने का गौरव सर्वप्रथम दीनेशचंद्र को ही प्राप्त है।

दीनेशचंद्र का पहला परिचय यही है कि ये कवि हैं। परंतु इनका प्रधान परिचय यह है कि ये बँगला-साहित्य के सार्थक इतिहासकार हैं। इनका औपन्यासिक परिचय प्रायः अप्रत्यक्ष ही रह गया है। 1892 ई० में 'पीस एसोसियेशन' ने 'बँगला भाषा की उत्पत्ति एवं क्रम-विकास' विषय पर निबंध-प्रतियोगिता का आयोजन किया था। इस प्रतियोगिता में दीनेशचंद्र ने भाग लेकर प्रथम पुरस्कार 'विद्यासागर पदक' प्राप्त किया था। 1896 ई० में इनके ग्रंथ 'बंगभाषा ओ साहित्य' का पहला भाग प्रकाशित हुआ था। 1901 ई० में ग्रंथ संपूर्ण आकार में प्रकाशित हुआ था। अँग्रेज़ी में 'हिस्ट्री आफ़ बँगाली लैंग्वेज एंड लिट्रेचर' ग्रंथ रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का नोबेल पुरस्कार-प्राप्ति से पहले 1911 ई० में प्रकाशित हुआ था। नोबेल कमेटी रवींद्रनाथ को पुरस्कृत करने से पहले इस ग्रंथ के माध्यम से बँगला भाषा और साहित्य के बारे में परिचित हुई थी। दीनेशचंद्र ने लगभग 50 ग्रंथों की रचना की एवं बहुत-से ग्रंथों का संपादन भी। इनके प्राचीन 'बगला साहित्य' मुसलमानेर अवदान' (1940), 'द वैष्णव लिट्रेचर आफ़ मिडियेवल बेंगाल' (1917), 'द फ़ोक लिट्रेचर आफ़ बेंगाल' (1920), 'बेंगाली प्रोज़ स्टाइल' (1921) आदि स्वरचित एवं मयमनसिंह-गीतिका', (दे०) 'गोपीचंदेर गान' (दे०), 'गोविंददासेर कडचा' आदि संपादित ग्रंथों का इस प्रसंग में उल्लेख किया जा सकता है। इनका उपन्यास 'श्यामल ओ कज्जल' (1938) भी समादृत हुआ था। इनका पहला काव्य ग्रंथ है 'कुमार भूपेंद्रसिंह' (1890)। दीनेशचंद्र की साहित्य-साधना तथा जीवन-साधना बँगाल के सांस्कृतिक इतिहास में अन्नहीन गौरव की समुन्नत महिमा में स्वप्रतिष्ठित है।

सेन, देवेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1854 ई०]

इनका जन्म गाजीपुर (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। इनके पिता लक्ष्मीनारायण सेन हुगली जिला, बलागढ़ ग्राम के मजुमदार वैद्य थे किंतु इन्होंने बाद में सेन उपाधि ग्रहण कर ली थी। देवेंद्रनाथ सेन ने इलाहाबाद में वकालत की और फिर शेष जीवन देहरादून में बिताते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए वहीं शरीर त्यागा ।

इनके काव्य-संग्रह हैं 'अशोक गुच्छई' पारिजात गुच्छ', 'शेफाली गुच्छ', 'अपूर्व ब्रजांगना', 'अपूर्व वीरांगना'। आधुनिक गीतकारों में देवेंद्रनाथ सेन का ऊँचा स्थान है। इनके गीत अमिट रूप-पिपासा से ओत-प्रोत हैं। भाषा, भाव एवं छंद सभी की दृष्टि से इनके गीत अत्यंत प्राणवान् हैं।

सेन, नवीनचंद्र (*बँ० ले०*) [जन्म—1847; मृत्यु—1909 ई०]

चटगाँव ज़िला के नयापाड़ा ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम गोपीमोहन एवं माता का राजराजेश्वरी था। ये जाति के वैद्य थे। इन्होंने बी० ए० करके, डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप में जीवन प्रारंभ किया था।

इनके रचे ग्रंथ हैं : 'अवकाश रंजिनी' भाग 1, 2, 'रंगमती', 'खृष्ट', 'अमिताभ', 'पलाशी युद्ध', 'भानुमति', (उपन्यास); 'अमृतराय', 'कुरुक्षेत्र', 'रैवतक', प्रभास' आदि। इनमें 'पलाशी युद्ध' की रचना देश-प्रेम की प्रेरणा से हुई है। इसके कवित्व एवं नूतन भंगिमा ने सभी को मुग्ध किया था। 'कुरुक्षेत्र', 'रैवतक' एवं 'प्रभास' में इनके कवित्व का पूर्ण विकास हुआ है। विराट् कवि-कल्पना के साथ दार्शनिकता एवं नैपुण्य का अपूर्व समन्वय विस्मयकर है। इनकी कविता के दो मूल स्वर हैं : स्वदेश-प्रेम एवं आध्यात्मिकता। पराधीनता की वेदना को इन्होंने अनुभव किया था।

अनेक कविताओं में इन्होंने देश की दुर्दशा पर आँसू बहाये हैं। इनके हृदय में गंभीर देश-प्रेम था। एक समय इनकी कविता ने शिक्षित बंगालियों के हृदय में देश-प्रेम जगाया था। इसीलिए ये सदैव स्मरण किए जाएँगे। नवीन युग के कवियों में ये अन्यतम हैं। इनके काव्य में भावोच्छ्वास प्रांजल भाषा, छंद-माधुर्य एवं गांभीर्य का सुंदर समन्वय है।

सेन, रामप्रसाद (*बँ० ले०*)

अनुमानतः इनका नाम अठारहवीं शती के तीसरे दशक में एवं मृत्यु आठवें दशक में हुई। इनके पिता का नाम रायराम (अथवा रामदुलाल) था। ये कुमारहट्ट ग्राम में पैदा हुए थे और वैद्य ज़ाति के थे।

रामप्रसाद सेन की कृतियाँ हैं : 'विद्यासुंदर' (किन्हीं के मतानुसार मूल नाम 'कालिका मंगल कीर्तन' (दे०) एवं 'कृष्ण-कीर्तन'। 'विद्यासुंदर' के चरित्र-चित्रण सुंदर एवं स्वाभाविक हैं। इनकी उक्तियाँ कहीं-कहीं अत्यंत हृदयग्राही हैं; छंदवैचित्र्य प्रदर्शन भी यत्रतत्र मिलता है परंतु संपूर्ण ग्रंथ सरस नहीं है। 'काली-कीर्तन' सामान्य कृति है। 'कृष्ण-कीर्तन' के दो-एक पद ही मिलते हैं। रामप्रसाद सेन की प्रसिद्धि का मूल कारण है 'श्याम संगीत' अर्थात् इनके आध्यात्मिक पद। ये साधक कवि हैं और शाक्त-पद-रचयिताओं में अप्रतिम हैं। इनके गीत अत्यंत सरस मधुर, लोकप्रिय एवं चित्ताकर्षक हैं और उनमें हृदय के सच्चे उद्गार व्यक्त हुए हैं। कहा जाता है कि इन्हें सिद्धि प्राप्त थी, अतः मातृमंत्र के प्रथम उद्गाता न होकर भी ये श्रेष्ठ पुजारी हैं।

ये बंगाल के अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं और अनेक गीत इनके नाम से प्रचलित हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें कितने गीतों का मिश्रण हुआ है क्योंकि इनके गीतों का कोई संकलन नहीं। 'रामप्रसादी गान' नाम से इनके गीतों की प्रसिद्धि है।

सेन, समर (*बँ० ले०*) [जन्म—1926 ई०]

समर सेन स्वल्पवाक् कवि हैं। इन्होंने अपनी कविता में बारबार नगर-जीवन की क्लांति, विकार तथा विक्षोभ का उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी कविता में सामाजिक विरोध एवं श्रेणी-संघर्ष के समय प्रकृति के शांत परिवेश के माधुर्य को भी प्रकट किया।

इनके द्वारा रचित तनुकाय कविता-ग्रंथों में 'कयेकटि कविता' (1937), 'ग्रहण ओ अन्याय कविता' (1940), 'नाना कथा' (1942), तथा 'तिन पुरुष (1944) उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने विदेशी शासकों के शोषण पर तीव्र कशाघात किया है। मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में आस्थावान इनका कवि मुक्ति की आशा में आगामी दिनों की प्रतीक्षा कर रहा है। वैसे यह ध्वंस के आह्वान को स्वीकार नहीं कर पाता है इसीलिए अतीत के प्रति एक विषण्ण व्यथा को व्यक्त कर गया है।

सेन, सुकुमार (*बँ० ले०*)

बॉगला साहित्य के इतिहासकारों में श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकुमार सेन का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। साहित्य के इतिहासकार के लिए आवश्यक वस्तु-निष्ठता, पैनी तथा तलस्पर्शी दृष्टि, तथ्यों के शोध की अपूर्व क्षमता तथा बौद्धिक निस्संगता के कारण इतिहास-कार के रूप में उन्हें भरपूर सफलता मिली है। दे० 'बॉगला साहित्येर इतिहास।

सेनावरैयर् *(त० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

तमिल-लक्षण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) के व्याख्याकारों में 'सेनावरैयर्' भी एक हैं; किंतु इनके द्वारा रचित पूरी व्याख्या उपलब्ध नहीं है; लेवल 'तोल्-काप्पियम्' के द्वितीय भाग 'शब्द-लक्षण' की व्याख्या पूरी मिली है। तमिल वाङ्मय में इस लेखक का नाम अमर करने के लिए यह व्याख्या ही पर्याप्त है। इस व्याख्या से लेखक की अनुपम विद्वत्ता, संस्कृत-व्याकरण-परिचय तथा तर्क-शक्ति प्रकट होती है। इस व्याख्या की भाषा-शैली तमिल में शास्त्रीय विवेचन करने के लिए उपयुक्त शैली सिद्ध हुई है। कारण-कार्य या हेतु-साध्य का संकेत करते हुए पूर्वपक्ष और समाधान या खंडन के साथ संक्षिप्त किंतु सारगर्भित ढंग से प्रतिपादन करने का यह अच्छा आदर्श है। संस्कृत के न्याय-व्याकरण शास्त्रों के अनेक पारि-भाषिक शब्दों के समकक्ष शुद्ध तमिल-शब्दों का प्रयोग इस में हुआ है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि 'सेनावरैयर्' के पश्चात् ऐसी शैली में विषय-प्रतिपादन करने वाले लेखक विरले ही हुए हैं।

सेनापति *(हिं० ले०)*

सेनापति का जन्म-स्थान अनूपशहर था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'कवित्तरत्नाकर' (दे०) है, जिसका रचना-काल 1649 ई० है। ग्रंथ में पाँच तरंगें हैं। इनमें श्लेष, श्रृंगार रस, ऋतु-वर्णन और शब्दालंकारों का प्रतिपादन है। ग्रंथ में उपलब्ध श्लेष-वर्णन इनके शब्द-कौशल का प्रमाण है। श्रृंगार-वर्णन के अंतर्गत इन्होंने नखशिख-सौंदर्य, उद्दीपनविभाव और वयः-संधि का निरूपण किया है। यमक, श्लेष, अनुप्रास और चित्र नामक शब्दालंकारों के माध्यम से इन्होंने रामचरित के कतिपय प्रसंगों का वर्णन भी किया है। इस ग्रंथ का ऋतु-वर्णन अत्यंत मनोरम है। इस वर्णन की प्रधान विशेषता है—मानव-मन से उठने वाले भावों का विभिन्न ऋतुओं से सहज-संबंध का स्थापन। सेनापति मध्ययुग के प्रसिद्ध कवि हैं।

सेयकुतंबि पावलर *(त० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

ये 'कन्याकुमारि' ज़िले के इसलामी तमिल विद्वान थे। इनके नाम का प्रथमांश, 'शेख' का तमिल रूप है। 'तंपि' और 'पावला' के अर्थ 'छोटा भाई' एवं 'कवि' हैं। ये 'शतावधानी' (अर्थात् एकसाथ सौ कार्यों को सफलतापूर्वक निभा सकने के अद्भुत सामर्थ्य वाले) थे। इनकी प्रसिद्धि भाषणकर्त्ता, लेखक एवं कवि के रूप में है। मुहम्मद नबी के वृत्तांत को 'नायकमान्मियम्चरि' नामक इनकी पद्य-रचना प्रस्तुत करती है। उमरुप्पुलवर्-कृत मुहम्मद नबी की जीवनी-संबंधी महाकाव्य 'श्रीराप्पुराणम्' की एक सुबोध टीका इनके द्वारा रची गई है। इनकी अन्य रचनाएँ 'षम्चुत्ताचीन् कोवै', 'कल्वत्तुनायकम् इन्निचैप्पामालै', 'तिरुनाकुर्त्तिरुवंताति', तथा 'तिरुक्को-ट्टारुंप् पतिरुंप्पत्तंताति' हैं जो तमिल साहित्य में प्रचलित उत्तरकालीन काव्य-विधाओं के अंतर्गत आती हैं।

सेरमान् पेरुमाळ् *(त० ले०)* [समय—नवीं शती ई०]

ये चेरदेश (आजकल के केरल का एक भाग) के राजा थे तथा 'तिरुवंजिक्कुलय' को राजधानी बनाकर राज्य करते थे। ये शैव भक्त संत थे। कहा जाता है कि ये प्रतिदिन भगवान का ध्यान तब तक करते थे जब तक नटराज के नूपुरों की ध्वनि ध्यान में न सुनाई दे। किसी वक्ता के कथन का एक अंश सुनने मात्र से उसके सारे मंतव्य को झट समझने की शक्ति इनमें थी; अतएव तमिल में ये 'कलिरटरु-अरिवार' (कथन-वेदी) नाम से विख्यात हैं। इनका वास्तविक नाम पेरुमाळ्-कोदैयार था। इनके जीवन की अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ प्रामा-णिक रूप से ज्ञात हुई हैं। पांड्यदेश की मदुरै नगरी से 'बाणभद्र' नामक शैव भक्त गायक जब इनके दरबार में पहुँचा और शिवजी का आदेश कहकर उसने इन्हें सूक्ति सुनाई; तो इन्होंने अपना सारा राज्य उसे दान में दे दिया। किंतु वह भक्त अपना अपेक्षित कुछ द्रव्य लेकर लौट गया। इनकी तीन ही रचनाएं अब उपलब्ध हैं और ये तीनों शैव भक्ति के प्रतिपादक सुंदर काव्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेल्व केशवराय मुदलियार *(त० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1921 ई०]

इनका जन्म मद्रास के समीप तिरुमणम् नामक स्थान में हुआ था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत इन्होंने अँग्रेज़ी के प्राध्यापक के रूप में जीविका आरंभ की थी। तमिल के प्रति अटूट प्रेम होने के कारण इन्होंने स्वयं तमिल साहित्य की सेवा करने के साथ-साथ जनता के मध्य तमिल साहित्य के प्रचार-प्रसार का कार्य भी किया था। तमिल गद्य के विकास में इनका योगदान उल्लेखनीय है। इनकी प्रसिद्ध गद्य-रचनाएँ हैं—कंबनाड्र, 'तमिल व्यासंगल्', 'तिरुवल्लुवर' आदि। इन्होंने 'आचारक्कोवै', 'पलमोलि' 'मृदुमोलिक्काजि', 'अरिच्चंदिर-पुराणम्' (दे०) आदि प्राचीन तमिल कृतियों का गहन अध्ययन कर उनके महत्व को स्पष्ट करने के साथ-साथ उनके प्रामाणिक रूपों का प्रकाशन भी किया है। इन्होंने काव्य, गद्य, साहित्यिक शैली आदि के स्वरूप का वर्णन किया है और कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक सिद्धांतों की स्थापना भी की है। अँग्रेजी एवं तमिल में प्राप्त समान मुहावरों की चर्चा की है। तमिल साहित्य विशेषकर आलोचना के विकास के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सेल्व केशवराय आधुनिक तमिल आलोचना के जन्मदाता कहे जाते हैं।

सेवाराम, भाई *(पं० ले०)*

इनका जन्म सिंध प्रदेश के एक धार्मिक परिवार में हुआ था। ये अठारहवीं शती ई० में विद्यमान थे। इन्होंने बारह वर्ष की आयु में गृह त्याग दिया था। पहले एक पाखंडी साधु से भेंट हुई, पर शीघ्र ही उसे छोड़कर ये गुरु तेगबहादुर के दीक्षित शिष्य भाई कन्हैया से मिले। भाई सेवाराम का प्रमुख कार्य था मरु-प्रदेश में कुएँ खुदवाना। सेवामार्ग पर चलते हुए इनकी अड्डणशाह (दे०) से भेंट हुई और ये अड्डणशाह के दीक्षा-गुरु बने। इसके पश्चात् महात्मा भाई सेवाराम के जीवन से संबंधित अनेक सेवा-कथाएँ प्रचलित हो गईं। 'परिचर्या सेवाराम' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में भाई कन्हैया, भाई सेवाराम का तथा भाई अड्डणशाह के जीवन से संबंधित कथाएँ संकलित हैं। कवि सहजरास ने भाई सेवाराम के संबंध में लिखा है—

नीके मनि नीके वचन नीके सब गुण अंग।
संत अउतार अउतार प्रभु जनमु लियो सरवंग॥

स्वयं भाई सेवाराम भी 'परिचयां' के रचनाकार हैं। 'परिचयां' की भाषा ब्रज है।

सेवासदन *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1916 ई०]

यह प्रेमचंद (दे०) का प्रसिद्ध सुधारवादी उपन्यास है जिसमें लेखक का मूल लक्ष्य दारोगा कृष्णचंद्र के परिवार की कहानी के माध्यम से दहेजप्रथा, अनमेल विवाह तथा वेश्यागमन की बुराइयों का चित्रण करना रहा है। इनके साथ-साथ लेखक ने पुलिस की घूसखोरी, हिंदू-मुस्लिम-सांप्रदायिकता, हिंदू-समाज के दोहरे मानदंडों तथा भारतीय नारी की निःसहाय स्थिति का भी अत्यंत सशक्त चित्रण किया है। इस उपन्यास में महंतों-मठाधीशों, समाज-सुधारकों, नेताओं की भी अच्छी पोल खोली गई है। यह उपन्यास तत्कालीन भारतीय समाज का अत्यंत जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है।

सैफ़-ओ-सबू *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

कुतुबख़ाना ताज आफ़िस, मुहम्मद अली-रोड, बंबई से प्रकाशित यह 'जोश' मलीहाबादी (दे०) की एक काव्य-कृति है। इस कृति में कवि द्वारा रचित पूर्व की सभी कृतियों की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। इसमें संगृहीत अनेक कविताओं को नौ शीर्षकों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न रूप से प्रस्तुत किया गया है। ये शीर्षक हैं—आतिशकदा, अफ़कार, रंग-ओ-बू, मुतालिआ-ए-नजर, तास्सुरात, निगारख़ाना, वारदातें, बादा-ए-सरजोश, और रुबाइयात। इस संकलन की कविताएँ शृंगार रस और वीर रस के अत्यंत सुंदर उदाहरण हैं। कहीं-कहीं सुधारवादी स्वर भी प्रतिध्वनित हुए हैं। अछूती और निराली उपमाएँ तथा उत्कृष्ट शब्द-विन्यास इस कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'जोश' साहब की नज़्मों (कविताओं) की आशातीश सफलता के कारण इन्हें आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ नज्म-लेखक ही नहीं समझा जाता है अपितु इन्हें 'नम का बादशाह' भी कहा जाता है।

सैफ़ुल मुलुक *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1864 ई०]

सैफ़ुल और बदीउलजमाल की सुखांत प्रेमकथा पर आधारित मियाँ मुहम्मद बख़्श की यह कृति पंजाबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बृहत्तम प्रबंध-काव्य-रचना है। इसमें मानव-जीवन के विबिध पक्षों के अतिरिक्त देवों और परियों के चमत्कार-पूर्ण अलौकिक कृत्यों का भी वर्णन है। इससे पूर्व हिंदी में कवि जान, दक्खनी में गव्वासी तथा पंजाबी में मौ० लुत्फ़अली ने भी इस कथा को काव्यवद्ध किया था परंतु इसमें विस्तार में कोई नहीं गया। यह विस्ताराधिक्य प्राय: अस्वाभाविक है और अनेक स्थलों पर प्रबंध-कल्पना की दृष्टि से भी कृति सदोष प्रतीक होती है। इस कृति में कवि की दृष्टि तसव्वुफ़ के विवेचन पर है। श्रृंगार अंगी रस है और अन्य सभी रस गौण रूप में अभिव्यंजित हुई हैं। फ़ारसी मसनवी-पद्धति के अनुकरण पर लिखी गई इस रचना की भाषा में फ़ारसी शब्दावली का मिश्रण खलता नहीं। पोठोहार के क्षेत्र में यह रचना बहुत प्रसिद्ध थी। भाषा-विभाग, पटियाला ने इसको गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित किया है।

सैफ़ुल मुलुक-ओ-बदी-उज्जमाल (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1624 ई०]

इसका लेखक है ग़ब्बासी, कुतुबशाही युग का एक प्रमुख कवि, जिसका जीवनवृत्त उपलब्ध नहीं है। केवल इतना ज्ञात है कि प्रारंभिक जीवन कठिनाई में बीता किंतु राजदरबार से संबंध होने चे बाद उसकी मान-प्रतिष्ठा वढ़ गई और वह अपने युग का सबसे बड़ा कवि माना जाने लगा। 1624 ई० में लिखा गया यह एक प्रेमाख्यान है जो 'अलिफ़ लैला' पर आधारित है। इसमें मिस्र राजकपांट सैफ़ुल मुलुक और चीन की राजकुमादी वदीय चयाल' ने प्रेम का वर्णन है। कवि ने मनसवी में आत्मश्लाघा की है जो अनुचित नहीं। उसकी कविता सरस एवं भावप्राण है। भाषा में फ़ारसी-अरबी के शब्द कम हैं, शैली सरल और प्रभाहपूर्ण है।

सैयद अहमद-खाँ, सर (*उर्दू ले०*) [जन्म—1817 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

इनका पूरा नाम सैयद अहमद खाँ था। इन के पूर्वज शाहजहाँ के समय में हरात से भारत आए थे। इनके पिता मीर मुत्तकी को अकबर शाह सानी ने मंत्री-पद पेश किया था किंतु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया था। इनका जन्म दिल्ली में हुआ था और अपनी माँ की देखभाल में ये बड़े हुए।

1838 ई० में ये दिल्ली में सरिश्तेदार नियुक्त हुए और फिर सब-जज भी बने। 1846 से 1854 ई० तक ये दिल्ली के सद्रे-अमीन रहे। इन्हीं दिनों इन्होंने 'आसारूल सनावीद' नामक पुस्तक लिखी जिसमें दिल्ली के प्रसिद्ध स्थानों, पुरातन भवनों, कवियों तथा विद्वानों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'जला-उल-कलूब', 'तुहफ़ा-ए-हुस्न', 'फ़वायदुल-अफ़कार', 'कौले-मतीन', 'कलमातुल हक़', 'राहे सुन्नत' आदि पुस्तकें भी लिखीं। एक अन्य पुस्तक 'सिलसिला-ए-मलूके-हिंद' में महाराज युधिष्ठिर के समय से लेकर बाद के सभी राजाओं का वृत्तांत है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त 'वफ़ादार-मुसलमानाने हिंद' और 'तीरेखे-फ़िरोजशाही' नामक पुस्तकों में संशोधन किया तथा बाइबिल तथा कुरान की व्याख्या करने के लिए पुस्तकें लिखीं।

इन्होंने 'तहज़ीबुल-इखलाक़' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ किया। मुसलमानों में जागृति उत्पन्न करने में सर सैयद का बहुत बड़ा हाथ है। शिक्षा के क्षेत्र में इनका कार्य प्रशंसनीय है। अलीगढ़ विश्व-विद्यालय इन्हीं के प्रयत्नों का स्मारक है। सर सैयद कवि भी थे। उर्दू गद्य-लेखन में इनका विशेष स्थान है। इनकी गद्य-शैली सादा तथा गंभीर है।

सैयद सुलतान (*बँ० ले०*) [जन्म—अनुमानतः सत्रहवीं शती का आरंभ; मृत्यु—लगभग 1666 ई०]

मध्ययुगीन बंगाली मुसलमान कवियों में सैयद सुलतान का नाम काफ़ी प्रसिद्ध है। उनके जन्म या मृत्यु की सन्-तारीख का ठीक पता नहीं लगता परंतु उनके काव्य ग्रंथ 'नबीवंश' (1658-55) के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका जन्म ईसा की सत्रहवीं शती के प्रारंभ में और मृत्यु 1660 ई० के आस-पास हुई थी।

सैयद सुलतान ने राधाकृष्ण-प्रेमात्मक लोक-संगीत की रचना के अतिरिक्त 'ज्ञान-प्रदीप' अथवा 'ज्ञान चांतिशा' नामक एक तंत्र-योग-विषयक ग्रंथ की रचना की। संस्कृत के 'हरिवंश' नाम के अनुकरण पर मुम्हमद ख़ान की पुस्तक 'मुम्ताल हुसैन' में निबद्ध अरबी करवला युद्ध का अनुवाद 'नवीवंश' के नाम से प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ में मुसलमान शास्त्र-मतानुसार सृष्टि-तत्त्व एवं नबियों के आविर्भाव का वर्णन है। हिंदू शास्त्र से प्रभावित लेखक की उदार दृष्टि ने ब्रह्मा-विष्णु-शिव-कृष्ण को भी नबी स्वीकार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलतान का यथार्थ कवि-परिचय एवं सूफ़ियों की आध्यात्मिक व्याकुलता उनके द्वारा रचित राधाकृष्ण विषयक पदावलियों में उपलब्ध है। वास्तव में वे राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम-रूपक के ही कवि थे।

सैरंध्री *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) के नाटक 'कीचक-वध' की स्त्री-पात्र है। समसामयिक परिस्थितियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति सैरंध्री के चरित्र के माध्यम से हुई है। कीचक (लॉर्ड कर्जन) के अत्याचारों से त्रस्त होकर यह महाराज़ विराट् (ब्रिटिश-साम्राज्य) के समक्ष दुहाई देती है, परंतु इसकी दुहाई नक्कार-खाने में तूती की आवाज़ बनकर रह जाती है। दुखों की लंबायमान छाया को धैर्यपूर्वक सहने संबंधी कंक (दे०) भट्ट के उपदेश इसके संयम को हिला देने को पर्याप्त हैं। रह-रहकर इसका आहत नारी-स्वाभिमान कंक भट्ट की कायरता को कोसने लगता है। अभेद्य नैराश्य के विकट क्षणों में बल्लभ (दे०) (भीम) के सांत्वना भरे शब्द इसके थके-हारे मन का किनारा बनते हैं। विराट द्वारा अपनी असमर्थता प्रकट करने पर इसका नारी-हृदय कराह उठता है। नीरव-निर्जन देवालय में कीचक द्वारा बल-प्रयोग के क्षणों में इसके मन की दुविधा-मयी स्थिति इसके चरित्र को द्विगुणित कर देती है। संक्षेप में, सैरंध्री की दैन्य असमर्थता उस युग के व्यक्तित्व की ही असमर्थता जान पड़ती है। दूसरे शब्दों में, हम इसे राजनीतिक प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।

सैरु कोहिस्तान *(सिं० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

इस पुस्तक के लेखक हैं अल्लाह-बचायो यार-मुहम्मद समों। प्रकाशन 1942 ई० में 'सिंधी अदब लाइ मर्कज़ी सलाहकार बोर्ड' कराची ने किया थी। यह एक यात्रा-संस्मरण है जिसमें लेखक ने बलोचिस्तान के एक भाग कोहिस्तान में की हुई अपनी यात्रा का वर्णन किया है। उस प्रदेश के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज आदि का लेखक ने अति रोचक ढंग से मुहावरेदार भाषा में वर्णन किया है। लेखक ने प्रादेशिक उपभाषा के शब्दों और मुहावरों का भी सुंदर ढंग से प्रयोग किया है। सिंधी में यात्रा-वर्णन पर जो भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उन सबमें भाषा और शैली की दृष्टि से यह उत्तम पुस्तक है। सिंध-सरकार से इस पर लेखक को पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

सैलानी छंद *(पं० पारि०)*

अतुकांत द्वंद्वमुक्त कविता (ब्लैंक वर्स) के लिए इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अध्यापक पूर्णसिंह (दे०) ने किया था। यद्यपि गुरु अर्जुनदेव की रचनाओं में भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति लक्षित होती है, फिर भी आधुनिक पंजाबी काव्य में इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय पूर्णसिंह को ही है। छंद-बंध के प्रति आधुनिक कवियों की उपेक्षा के कारण इस प्रवृत्ति का प्रचार क्रमशः बढ़ता गया और वर्तमान पंजाबी काव्य में इसी का साम्राज्य है परंतु पूर्णसिंह के छंदों का नैपुण्य किसी अन्य पंजाबी कवि में नहीं मिलता।

सोणर सोलेड *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

पार्वती प्रसाद बरुवा (दे०) द्वारा लिखित इस प्रतीकात्मक गीति-नाट्य में कई सुरीले प्रतीकात्मक गीतों का समावेश है। 'सोणर सोलेड' का भावार्थ है शाश्वत आनंद। नाटक का मुख्य पात्र बीन बरागी शाश्वत आनंद की खोज में व्यस्त रहता है, कोई उसकी जिज्ञासा का समाधान नहीं करता। अंत में उसे उपलब्धि होती है कि शाश्वत आनंद बाहर से नहीं जीवन के भीतर से प्राप्त होता है। मेटरलिंक के 'ब्लू बर्ड' के समान यह नाटक प्रतीकात्मक है। इसके गीत असमीया-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। असमीया के प्रतीकात्मक नाटकों में इसका विशेष स्थान है।

सोनार तरी *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1893 ई०]

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की 1891-93 ई० के मध्य लिखी 43 कविताओं का संग्रह है। पुस्तक का नाम इस ग्रंथ की प्रथम कविता के आधार पर रखा गया है। 1893 ई० में इसका प्रकाशन हुआ था। जिस विस्मित भाव से रवि ठाकुर ने प्रकृति और मानव के रूप तथा रस का पान किया है, वही इन कविताओं में प्रस्फुटित हुआ है। सीमा के साथ असीम की मिलन-कथा, प्रकृति-प्रेम, प्रकृति के साथ आत्मा का अविच्छिन्न संबंध आदि इन कविताओं का विषय है। इसमें कवि-प्रतिभा का पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मेष है। उसने इस काव्य के साथ नयी दिशा ग्रहण की है। इन कविताओं में प्रकृति के साथ गंभीर आत्मीयता का परिचय पाया जाता है।

भाषा का ऐश्वर्य एवं छंद-वैचित्र्य इसका वैशिष्ट्य है। इसमें दो भाव-धाराएँ मिलती हैं—(अ) जीवन के प्रति लगाव, और सुख-दुःख, विरह-मिलन के प्रति अनुराग, तथा, (आ) सौंदर्य के प्रति निरुद्देश्य यात्रा। इसी आदर्श सौंदर्य की आकांक्षा के कारण जगत एवं जीवन में कवि ने सौंदर्य की प्रतिष्ठा करनी चाही है।

सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

विद्याविहार, अहमदाबाद, द्वारा 1967 ई० में प्रकाशित 'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज', 'झीणाभाई देसाई', 'स्नेहरश्मि' (दे०) का सबसे पहला हाइकू-संग्रह है। इस पुस्तक में कवि ने आरंभ में 'थोडुंक अंगत' कह कर अपनी उस भावभूमि को स्पष्ट किया है जिसने हाइकू नामक काव्य-रूप ग्रहण करने की तत्परता जानी और इस प्रकार इसमें संकलित हाइकुओं में नए भाव-बोध के साथ नया काव्य-रूप-बोध भी समाविष्ट हो गया है। इसमें 365 हाइकू संगृहीत हैं जिसमें 260-61, 267-68 और 270-71 ताका की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। अंत में परि-शिष्ट के रूप में काका कालेलकर जी के दो पत्र, हाइकू के रूप-विधान, उसकी लाक्षणिकताओं आदि की चर्चा तथा ग्रंथसूची प्रस्तुत है। हाइकू 17 वर्णवाला जापानी काव्यरूप है। इसमें 5-7-5 के वर्णक्रमानुसार तीन पंक्तियाँ होती हैं। 'स्नेहरश्मि' ने सर्वत्र ईसी क्रम का आग्रह रखा है। यद्यपि यह ठीक है कि हाइकू के चित्र कवि-मन में उभरते हुए बिंबों की ही अभिव्यक्ति है तथापि इन चित्रों में कवि मौन और चित्र मुखर रहते हैं। इनमें प्राण-तत्त्व-रूप स्थित व्यंग्य ही प्रमुख होता है। प्रस्तुत संग्रह में कवि द्वारा अनुभूत आकाश की अनिर्वचनीय सुंदरता, धरती की अनवद्य सुषमा तथा प्रकृति की रहस्यमयी अनिंद्य सौंदर्य-युक्त मुखरता के भिन्न-भिन्न मनोहारी चित्र वर्तमान हैं। कवि ने स्वयं हाइकू की चर्चा करते समय जिन ऊर्ध्वधर, समतल और विकर्ण चित्रों की बात उठाई है, उसके नमूने भी इन्हीं रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन रचनाओं में बाशो की सी विचार-गंभीरता नहीं है; भाव भी प्रकृति के अनुपम चित्रों में अंगरूप स्थित हैं। उनका पृथक् अस्तित्व नहीं है। 'स्नेह-रश्मि' के इस संग्रह से दो बातों की सिद्धि हुई है: (1) गुजराती साहित्य में एक काव्य-रूप निश्चित हुआ है, (2) हाइकू के सफल समायोग के लिए मार्ग उन्मुक्त हुआ है। जापानी भाषा की चित्रात्मकता और शब्द-प्रयोग के कारण अनेकार्थता को देखते हुए भारतीय भाषाओं में हाइकू का प्रयोग जितना कठिन लगता था, 'स्नेहरश्मि' के इन प्रयोगों के बाद वह कठिनता तो दूर हुई ही है, साथ ही, नए काव्य-रूप के लिए—जो शुद्ध कला के अधिक निकट है—पथ प्रशस्त हुआ है। यही इस संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

सोन्याच्या कळस *(म० कृ०)*

यह औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न वर्ग-भेद की विषम समस्या पर मामा वरेरकर (दे०) का समस्या नाटक है। धन के बल से बड़ी-बड़ी मिलों की स्थापना के उपरांत पूँजीपति वर्ग श्रमिकों का मनचाहा शोषण करते हैं। नाटककार का अभिमत है कि मिलों के स्थायित्व पर श्रमिकों का भी अधिकार होना चाहिए। यदि ऐसा संभव हो सके तो महाराष्ट्र की श्रमिक-शक्ति तथा पूँजी-पति—गुजराती समुदाय के सतत सहयोग के बल पर मिलों पर सोने के कलश निश्चित रूप से संस्थापित हो सकेंगे। आलोच्य नाटक के कथा-विधान में नाटक कार ने अतिशय कल्पना का अवलंब लिया है। धनाढ्य नायक के सामान्य मजदूर की तरह मिल में कार्य करने संबंधी परिकल्पना द्वारा वर्गभेद की गहरी खाई को पाटने का नाटककार का प्रयास स्तुत्य है। संक्षिप्त पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद कथा-विकास में सहायक हैं। बाबा शिगवण तथा बिजली के चरित्र का अंकन मनोहारी हैं। साम्यवादी महद् विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि को लेकर लिखे इस नाटक में प्रभावान्विति की दृष्टि से एक वैचारिक बोझिलता है जिसके कारण संवादों में अभिनयोचित चांचल्य का अभाव है। हाँ! समसामयिक वैचारिक आंदोलनों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इस नाटक का महत्व असंदिग्ध है।

सोपानम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1929 ई०]

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत यशस्वी कव-यित्री बालामणिअम्मा के तीन दशकों के साहित्यिक प्रयासों में से चयन करके प्रस्तुत बृहत् कविता-संग्रह प्रका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शित किया गया है। इस ग्रंथ को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में मातृप्रेम पर आधारित मधुर पारिवारिक संबंधों के शुद्ध भावों को स्वर देने वाली कविताएँ संगृहीत हैं। दूसरे भाग की कविताओं में इन्हीं भावों की दार्शनिक अंतर्दृष्टि प्रकट है। तीसरे भाग की कविताएँ दार्शनिक रहस्यवाद की हैं और कवयित्री की अंतः प्रवृत्ति को सूचित करती हैं।

'सोपानम्' बालामणिअम्मा के काव्य-जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। मातृ-पुत्र-संबंध के ईश्वरीय महत्व का उसके दार्शनिक मूल्यों के प्रकाशन और विश्लेषण करने में इस कवयित्री का काव्य-कौशल अनन्य है। इनकी कविता में कला और दर्शन-शास्त्र का समुचित सम्मिलन है। उनकी इन सभी साहित्यिक विशेषताओं के दर्पण के रूप में 'सोपानम्' की कविताओं का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

सोबगिन सोने *(क० कृ०)*

यह बुक्कराय के पौत्र देपराज नामक कवि का काव्य है। इसमें सात कथाओं का संग्रह है। यह कन्नड के लोक छंद 'सांगत्य' (दे०) में रचा गया है। इसका कवि काव्य के अष्टादश वर्णन के व्यामोह से मुक्त नहीं है। इसका कारण यह है कि कवि अपने काव्य को परंपरागत काव्यबंध में रखना चाहता है। इसमें अलंकारों का, विशेषतः शब्दश्लेष का, अच्छा प्रयोग हुआ है। इसकी शैली में सरसता है और भाषा प्राचीन कन्नड़ है। इसके पद्यों में यत्र-तत्र लय ठीक नहीं है, पर इतने मात्र से कवि की कल्पनाशक्ति अनभिव्यक्त नहीं है।

सोमनाथ *(हिं० ले०)*

सोमनाथ माथुर भरतपुर के महाराज बदनसिंह के कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के आश्रय में रहते थे। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—'रसपीयुषनिधि', (रचना-काल 1737 ई०), श्रृंगारविलास', 'कृष्णलीलावती', 'पंचाध्यायी', 'सुजानविलास' और 'माधव-विनोद'। प्रथम दो ग्रंथ काव्यशास्त्र से संबद्ध हैं। 'मानव-विनोद' एक पद्यात्मक नाटक है जिसमें भवभूति (दे०) 'मालती-माधव' नाटक को रूपांतरित करने का असफल प्रयास है। 'रसपीयुषनिधि' में काव्य के विविध अंगों का निरूपण 22 तरंगों में किया गया है। निरूपण के आधार-ग्रंथ संस्कृत के 'काव्यप्रकाश' (दे०), 'साहित्यदर्पण' (दे०) और 'रसतरंगिणी' (दे०) के अतिरिक्त हिंदी के रसरहस्य (कुलपति—दे०) और 'भाषाभूषण' (दे०) (जसवंतसिंह) आदि ग्रंथ भी हैं। यह ग्रंथ अति सरल, सुबोध और संक्षिप्त शैली में रचित है। शास्त्रीय प्रसंगों के निर्वाचन में भी ग्रंथकार ने सरल मार्ग का अवलंबन किया है। यही कारण है कि दुरूह प्रसंगों को इस ग्रंथ में स्थान नहीं मिला। 'श्रृंगारविलास' वस्तुतः स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। 'रसपीयूषनिधि' में निरूपित श्रृंगार रस और उसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद-विषयक सामग्री को नाममात्र के परिवर्तन के साथ प्रस्तुत कर ग्रंथ को स्वतंत्र गाम दे दिया गया है। उक्त दोनों ग्रंथों में प्रस्तुत उदाहरणों में कवि का कवित्व-कौशल और कल्पना-वैभव मोहक है, शब्दावली सरल और ऋजु है।

सोमनाथचरिते *(क० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

महाकवि राघवांक (दे०) की रचनाओं में 'सोमनाथचरिते' (सोमनाथ-चरित) का विशेष महत्व है। सौराष्ट्र में आदय्या नाम के एक शिव-भक्त थे। उन्होंने पुलिगेरे में आकर सौराष्ट्र-सोमनाथ की स्थापना की और अनेक जैनों को शिवभक्त (वीरशैव) बनाया। उनके इस चरित का वर्णन 'सोमनाथचरिते' में है। वार्धक षट्पदी में रचित इस काव्य में पाँच आश्वास या सर्ग तथा 500 पद्य हैं। हरिहर के 'आदय्यन रगळे' से प्रेरणा ग्रहण कर राघवांक (दे०) ने इस काव्य का प्रणयन किया है, तथापि इसमें प्रतिभा के अच्छे निदर्शन मिलते हैं। 'हरिश्चंद्रकाव्य' (दे०) जैसा प्रौढ़ काव्य लिखने के बाद इसकी रचना होने के कारण इसमें कवि की प्रतिभा और कल्पना का पूर्ण विकास दृष्टिगत होता है। कथारंभ से ही कई अद्भुत सन्निवेश इस काव्य में देखे जा सकते हैं। इसमें कवि ने अष्टादश-वर्णन का व्यामोह त्यागा नहीं है, अतएव कतिपय आलोचकों के कथनानुसार कथानक के साथ इनका समन्वय नहीं हुआ, औचित्य का भंग हुआ है। परंतु, इनका सत्य है कि आदय्या के चरित्र-चित्रण में कवि ने निष्ठा दिखाई है। आदय्या अनजान में जैन धर्म को मानने वाली पद्मावती के प्रणय-बंधन में पड़ जाता है। उसकी शिव-भक्ति, ऐकांतिकता और कष्टसहनशीलता का कवि ने अच्छा चित्रण किया है। काव्य के वर्णनों में सांप्रदायिकता और शैली में विषमता होते हुए भी अपनी नाटकीयता के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह रम्य और आस्वाद्य हो गया है। वर्णनों में कवि की कल्पनाशक्ति प्रकट हुई है।

सोमनाथविजयमु (*ते० कृ०*) [रचना-काल—1924 ई०]

इसके लेखक कविसम्राट नोरि नरसिंहशास्त्री (दे०) हैं। यह छः दृश्यों का एक छोटा ऐतिहासिक नाटक है। महमूद गज़नवी के द्वारा प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर के नष्ट किए जाने की ऐतिहासिक घटना ही इस नाटक के कथानक का आधार है। उक्त ऐतिहासिक तथ्य को लेते हुए भी लेखक ने उसमें कुछ परिवर्तन किया है। इस घटना का व्याख्यात्मक चित्रण करते हुए शास्त्री जी ने अपनी यह राय प्रतिपादित की है कि उस विध्वंस का कारण मंदिर के रक्षकों की दुर्बलता अथवा गज़नवी की शक्ति नहीं है, बल्कि आकाशलिंग के रूप में अपने को बंदी बना देने से असंतुष्ट भगवान का क्रोध ही है। प्रस्तुत व्याख्या समाज के बदलते हुए मूल्यों के अनुसार ही है। इसमें घटनाओं का संयोजन-क्रम, कथोपकथन की सरलता तथा पात्रों की सजीवता आदि अनेक गुण देखने को मिलते हैं। इस नाटक में अंक-विभाजन नहीं है। एक ऐतिहासिक घटना का विवरण मात्र देने की अपेक्षा उसके द्वारा अपना ही एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना लेखक का ध्येय है। तेलुगु के ऐतिहासिक नाटकों में 'सोमनाथविजयमु' कुछ अपनी ही विशेषता रखने वाली सफल रचना है।

सोमनाथुडु, पाल्कुरिकि [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०]

ये द्वितीय प्रतापरुद्र के समकालीन कवि थे। जन्म से ब्राह्मण होने पर भी वीरशैव-संप्रदाय में दीक्षित होने के उपरांत इन्होंने ब्राह्मणत्व का त्याग कर दिया। इनकी रचनाएँ संस्कृत, तेलुगु तथा कन्नड तीनों भाषाओं में प्राप्त होती हैं। अतः आंध्र एवं कर्नाटक दोनों प्रांतों में इन्हें विशेष ख्याति मिली। इन्होंने तेलुगु में 'वसवपुराणमु' (दे०), पंडिताराध्यचरित्रमु' (दे०), 'वृषभेश्वर शतकमु' (दे०), 'येन्नमल्लु सीसमुलु' आदि की रचना की है। ये सभी रचनाएँ शैवमत-प्रतिपादक होकर भी, उदात्त काव्य-गुण से युक्त हैं।

इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है 'वसवपुराणमु', जो शैवों का वेद माना जाता है। इसमें वीरशैव-संप्रदाय' के प्रवर्तक बसव का जीवन-चरित्र वर्णित है। बसव का बचपन से ही पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण भक्त बन जाना, यज्ञोपवीत आदि श्रेष्ठता के बाह्य चिह्नों व वर्णव्यवस्था का परित्याग, कठोर तपस्या, शिव-साक्षात्कार ज्ञान-प्राप्ति के उपरांत भक्ति-प्रधान, वर्ण-व्यवस्थाहीन तथा सर्वजनसुलभ नूतन शैवसंप्रदाय का प्रचार आदि घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। वसव के जीवन-चरित्र के साथ-साथ इस काव्य में इनके शिष्यों की जीवन-गाथाएँ भी सम्मिलित की गई हैं। कवि ने वेद, स्मृति, आगम आदि अनेक आर्ष-ग्रंथों से शिव के स्वरूप के संबंध में प्रमाण एकत्र कर, उनके विराट् स्वरूप का चित्रण किया है। शैव इन्हें अपना गुरु, तथा 'शृंगि' का अवतार मानते हैं। तेलुगु का अधिकांश वीरशैव-वाङ्मय इनसे प्रभावित हैं। इनका 'वृषाधिपशतकमु' तेलुगु का प्रथम शतक माना जाता है और 'पंडिताराध्यचरित्रमु' मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य के जीवन-चरित पर आधारित है।

इस कवि ने साहित्य-रचना में स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण किया है। इनकी भाषा सामान्यतः शिष्ट व्यावहारिक तथा सशक्त चेतना एवं व्यंजनापूर्ण लोकोक्तियों से परिपूर्ण है। किंतु भक्ति के आवेग के कारण कहीं-कहीं संस्कृत-गर्भित क्लिष्ट पदावली का भी प्रयोग मिलता है। इन्होंने 'द्विपद' नामक तेलुगु छंद को काव्य में प्रतिष्ठित किया; आगे चलकर द्विपद शैली के कवियों ने इन्हीं का अनुसरण किया है।

इनकी समस्त रचनाओं में एकमात्र शिव के स्वरूप का ही विस्तार होने के कारण इस कवि को प्रतिभा के अनुरूप ख्याति नहीं मिल सकी।

सोमन्ना, नाचन [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०]

ये अष्टभाषा-विशारद तथा सभी आर्य-ग्रंथों के पंडित थे। 'साहित्य रसपोषकुडु', 'संविधान चक्रवर्ती', 'सर्वज्ञुडु', 'सकल भाषा भूषणुडु, 'नवीन गुण सनाथुडु', आदि इनकी उपाधियाँ थीं। इनका 'उत्तरहरिवंशमु', (दे०) काव्य लघु होकर भी इनकी व्यापक ख्याति का कारण बना है। संस्कृत-मूल के केवल कुछ प्रमुख अंशों के आधार पर स्वतंत्र गीति से इसकी रचना की गई है। इसमें नरकासुर-वध, कृष्ण द्वारा ब्राह्मण-पुत्र का पुनर्जीवित होना, वाणासुर की कथा आदि प्रमुख प्रसंग हैं। इसमें कवि ने यह प्रमाणित करने का यत्न किया है कि कृष्ण साक्षात् विष्णु हैं तथा विष्णु ही परम देव हैं। समस्त ब्रह्मांड के अधिनायक के रूप में कृष्ण का परमोत्कृष्ट स्वरूप इसमें प्रकट किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी-नरकासुर-संवाद तथा उषा-अनिरुद्ध की कथा शृंगार-रस-पोषण में इनकी प्रतिभा के उत्तम उदाहरण हैं। कथा-सृष्टि तथा वस्तु-वर्णन में पुराण-पद्धति का अनुसरण न करके, इन्होंने प्रबंध-पद्धति का ही अनुसरण किया है। शब्दालंकारों तथा दीर्घ समासों की अतिशयता के होने पर भी इनकी कविता प्रवाहमयी है तथा ओजगुण के आदर्श के रूप में ग्राह्य हो सकती है। कुछ स्थानों पर तेलुगु लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग भी मिलता है। कहीं-कहीं अत्यधिक दीर्घ समासों तथा यमक, अनुप्रास आदि अलंकारों के कारण इनकी कविता में क्लिष्टता आ गई है तथा भावावेश के असंयम के कारण औचित्य-भंग भी पाया जाता है।

सोमप्रभाचार्य *(अप० ले०)* [रचना-काल—1184 ई०]

सोमप्रभाचार्य अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनका जन्म प्राग्वाट-कुल के वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सर्वदेव था। इन्होंने कुमारावस्था में ही जिन-दीक्षा ले ली। ये तर्कशास्त्र, काव्य-शास्त्रादि के पंडित और कुशल धर्मोपदेष्टा थे।

इन्होंने 'सुमतिनाथ चरित्र' और 'कुमार पाल प्रतिबोइ' नामक प्राकृत ग्रंथ लिखे थे। 'कुमारवालप्रतिबोइ' (दे०) के अंतर्गत कई प्रकरण अपभ्रंश में भी लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'सूक्तिमुक्तावली', 'शतार्थ काव्य' इत्यादि ग्रंथ संस्कृत में भी लिखे थे। 'शतार्थ काव्य' में एक संस्कृत छंद की सौ प्रकार से व्याख्या की गई है। इससे इनकी अगाध विद्वत्ता का आभास मिलता है। इसी ग्रंथ के कारण इनका नाम शतार्थिक भी पड़ गया था।

सोमयाजी, गंटिजोगि *(ते० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये आंध्र एवं मद्रास विश्वविद्यालयों में दीर्घ काल तक अध्यापन-कार्य के उपरांत केंद्रीय वैज्ञानिक शब्द निर्माण-समिति के सदस्य के रूप में कार्य कर रहे हैं। कविता, भाषाविज्ञान एवं समालोचना के स्रोतों में इनकी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। आंध्र भाषा के इतिहास से संबंधित इनका गवेषणात्मक ग्रंथ इस विषय पर अत्यंत उत्तम माना जाता है। इनकी 'द्राविड भाषलु' नामक रचना द्राविड भाषाओं के उद्भव एवं विकास से संबंधित है। 'रामचंद्रुनि हंपीयात्रा' इनकी काव्य रचनाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमें विजयनगर के पुरातन वैभव का वर्णन करके, उसके पतन पर कवि ने तीव्र क्षोभ व्यक्त किया है।' 'आंध्रभाषाविकासमु' (दे०) नामक इनकी अन्य पुस्तक भी अत्यंत प्रसिद्ध है।

सोमले *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

वास्तविक नाम इलक्कुमण चेट्टियार। जन्म तमिलनाडु के रामनादपुरम ज़िले के नेर्कुप्पै नामक स्थान में हुआ। आयात-निर्यात-व्यापार के सिलसिले में कुछ वर्ष बर्मा में व्यतीत किए। अन्नामलै विश्वविद्यालय में संपर्क-अधिकारी के रूप में रहे। सोमले स्वतंत्र लेखक हैं। प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'आस्ट्रेलियाविल ओरु मादम', 'अमेरिकावै पार' (यात्रा-साहित्य), 'वळरुम तमिल' (तमिल गद्य-साहित्य का इतिहास), 'नेयवेली' (व्यवसाय-संबंधी), 'पंडित मणी' (जीवनी), 'चेट्टि नाडुम तमिलुम, (भाषा-विषयक शोध) आदि। 'मावट्ट वरिशै' शीर्षक से प्रकाशित तमिलनाडु के विभिन्न भूभागों से संबंधित इनकी पुस्तकों में उस भूभाग के जीवन का सांगोपांग चित्र प्राप्त होता है। सोमले को सूचना-प्रधान साहित्य एवं यात्रा-साहित्य की रचना में विशेष सफलता मिली है। यात्रा-कृतियों में भी सूचना का आधिक्य दीख पड़ता है।

सोमशेखर शर्मा, मल्लंपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

इनका जन्म मिनुमिंचुलपाडु अग्रहार में हुआ था। बचपन में इन्होंने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया था। मैट्रिक परीक्षा पास कर ये मद्रास पहुँचे और डा० चिलुकूरि वीरभद्रराव के संपर्क में आए तथा कैनिमर्रा पुस्तकालय में हस्तलिखित प्रतियों के लिपिक (कौपीइस्ट) के पद पर नियुक्त हुए। श्री कोमर्राजुलक्ष्मणराव को विज्ञानसर्वस्व (विश्वकोश) के निर्माण में इन्होंने सहयोग प्रदान किया।

1914 से 1918 ई० तक इन्होंने चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहमु (दे०) के 'देशमाता' नामक पत्र का संपादन किया; 'आंध्राभ्युदय-ग्रंथमाला' की स्थापना की तथा कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। 1923 ई० के बाद ये आंध्र विश्वविद्यालय में इतिहास-विभाग के शोध-विभाग के अधिकारी बने। प्राचीन दक्षिण भारत का इतिहास, दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बौद्ध युग, आंध्र रेड्डी युग आदि विषयों के ये अधिकारी विद्वान् थे। प्रारंभ से शोध-कार्य ही इनके जीवन का लक्ष्य रहा। शिलालेख, ताम्रपत्र आदि की लिपियों के ये अच्छे ज्ञाता थे।

'ए फौरगौटन चैप्टर ऑफ़ आंध्रा हिस्ट्री' और 'ए हिस्ट्री ऑफ़ द रेड्डी किंगडम' जैसी रचनाएँ शर्मा जी, की प्रकांड विद्वत्ता के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इनके अतिरिक्त 'आंध्र वीरुलु', 'अमरावती स्तूपमु', 'चरित्र लेखलु' (संकलन), 'आंध्र-देश चरित्र-सर्वस्वमु', 'रोहिणी चंद्रगुप्तमु' (उपन्यास) इनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इन्होंने इतिहास से संबद्ध सैकड़ों लेख लिखे हैं।

आंध्र-देश के इतिहास के इने-गिने विद्वानों में शर्मा जी का महत्वपूर्ण स्थान है।

सोमसुंदर पुलवर *(त० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

इनका जन्म श्रीलंका में हुआ। इन्होंने तमिल अध्यापक के रूप में अपनी जीविका आरंभ की। 1930 ई० से 1950 ई० तक साहित्य-सेवा में लगे रहे। इन्होंने मुख्य रूप से बच्चों के लिए कविताएँ लिखीं। इनकी 'आडिपिरप्पु' और 'कत्तरिवरुळि' से इस क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ। 'इलंगे वळमुम् ताल विलासमुम्' (यात्रा विवरण-पद्य में) दक्षिणी लंका की उपजाऊ भूमि और उत्तरी लंका के तालवन के सौंदर्य का वर्णन है। इस कृति की विभिन्न कविताओं में रामायण, महाभारत और पुराण के प्रसंग भरे पड़े हैं। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं— 'नामळ् पुहळ्मालै', 'उयिर इळंग कुमरन्', 'तंदैयार पदिट्रुप्पत्तु' आदि। 'तंदैयार पदिट्रुप्पत्तु' कवि की आत्मचरितात्मक कृति है। इसमें इन्होंने पिता की दयालुता, कर्तव्यपरायणता आदि गुणों का वर्णन किया है। इसे इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना कहा जा सकता है। सोमसुंदर पुलवर के प्रगीत भी अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। ये श्रीलंका के तमिल कवियों में पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।

सोमसुंदर भारती *(त० ले०)*

बीसवीं शती में तमिलनाडु में तमिल राष्ट्रीयता का प्रचार करने वालों में सोमसुंदर भारती का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने अपने जीवन का आरंभ वकील के रूप में किया। इन्हें अपने समय के विभिन्न तमिल विद्वानों से तमिल साहित्य के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। साहित्यिक विषयों पर इनके व्याख्यान अत्यंत प्रभावशाली हुआ करते थे। इन्होंने कुछ समय के लिए अन्नामलै विश्वविद्यालय में तमिल आचार्य के रूप में भी कार्य किया। सोमसुंदर भारती की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कवि, आलोचक, निबंधकार और टीकाकार थे। तमिल एवं अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान थे।

'मारिवायिल' (मेघदूत) और 'मंगल कुरिच्चिपोंगल निकलच्चि' इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। 'मारिवायिल' में पांड्य राजकुमारी चित्रांगदा द्वारा स्वयं को और अपने पुत्र बभ्रुवाहन को छोड़ इंद्रपुरी गए हुए पति अर्जुन के पास मेघ को दूत बनाकर भेजे जाने का वर्णन है। इसे बीसवीं शती में रचित तमिल-दूत काव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'मंगल कुरिच्चिपोंगल निकलच्चि' एक सामाजिक कथाकाव्य है। इसमें तमिल लोगों के प्रधान त्यौहार पोंगल की पृष्ठभूमि में उच्च-मध्यवर्गीय लोगों के जीवनोद्देश्य और भावनाओं का विश्लेषण किया गया है। तमिल के प्राचीनतम व्याकरण ग्रंथ 'तोल्काप्पियम' (दे०) के 'पोरुळदिकारम' खंड पर इनकी टीका पर्याप्त प्रसिद्ध है। 'दशरपन निरैवुम कैकेयी कुरैवुम' में दशरथ और कैकेयी के चरित्र का विश्लेषण नूतन दृष्टिकोण से किया गया है। 'चेरर् ताय मुरै', 'तिरुवळ्ळुवर', 'पलैत्तमिलनाडु' आदि इनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। अँग्रेज़ी में भी इन्होंने कुछ कृतियों की रचना की है। इन्होंने अपनी कृतियों में प्रायः क्लिष्ट एवं पांडित्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। बीसवीं शती के तमिल साहित्यकारों में इनका विशिष्ट स्थान है।

सोमसुंदरम, मी० प० *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म तिरुनेलवेली ज़िले के मीनाक्षीपुरम् नामक स्थान में हुआ। इनका उपनाम है सोमु। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'इळवेनिल' (कविता-संग्रह); 'केळाद गानम' (कहानी-संग्रह); 'रविचंद्रिका' (सामाजिक उपन्यास); 'कडल कंड कनवु' (ऐतिहासिक उपन्यास); 'अक्करै शीमैयिल' (यात्रा-साहित्य) आदि। इनकी 'इळवेनिल' और 'केळाद गानम' मद्रास सरकार से पुरस्कृत हुई हैं। 1963 ई० में इन्हें अपनी अक्करै शीमैयिल' नामक कृति पर साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला। इन्होंने राजा जी (दे० चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) के साथ मिल कर 'तिरुमूलर तवमोलि' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मृदल मूवर तोहुप्पु' नामक कृतियों की रचना की। श्री सोमु पिछले तीस वर्षों से प्रसारण-संबंधी कार्यों में लगे हुए हैं। वे आजकल आकाशवाणी के दक्षिणी क्षेत्र के प्रमुख प्रोग्राम संयोजक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

सोमानंद *(सं० ले०)* [समय—नवीं शती]

सोमानंद प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के जनक हैं। इनके पिता का नाम आनंद तथा पितामह का नाम अरुणादित्य था। अपनी 'शिवदृष्टि' के अंतिम भाग में सोमनाथ ने सिद्धों की एक परंपरा का उल्लेख किया है। वस्तुतः इन्हीं सिद्धों द्वारा ही लुप्तप्राय शैवागमशास्त्र का पुनरुद्धार हुआ।

सोमानंद के इन तीन ग्रंथों की चर्चा की जाती है—(1) 'शिवदृष्टि', (2) 'विवृति', (3) 'परात्रिंशिका' विवृति। इनमें से अंतिम दो के उद्धरण मात्र प्राप्त होते हैं।

'शिवदृष्टि' प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का आदि ग्रंथ है। इसमें 700 श्लोक हैं। वास्तव में सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में यह शास्त्र दर्शन की भूमि पर प्रतिष्ठापित हुआ। आगे चलकर उत्पलदेव (दे० उत्पल) ने इसका विकास किया। उत्पल ने 'शिवदृष्टि' पर एक टीका भी लिखी थी जो अब प्राप्त नहीं है। सोमानंद एक बहुज्ञ आचार्य थे। उन्होंने सभी दर्शनों की प्रायः सभी शाखाओं का सम्यक् अध्ययन कर रखा था। वे 'शब्दब्रह्मवाद' तथा 'सत्कार्य-वाद' के कटु आलोचक हैं। वे 'अद्वैतवाद' के प्रबल समर्थक हैं तथा इसके लिए वेदों तथा उपनिषदों का सहारा भी लेते हैं।

सोमेश्वर शतक *(क० कृ०)* [रचना-काल—1299 ई०]

इसके रचयिता पाल्कुरिके सोमनाथ (दे०) माने जाते थे किंतु अब यह सिद्ध हुआ है कि इसके रचयिता पुलिगेरे के सोमनाथ हैं। ये वीरशैव कवि थे। इस ग्रंथ का रचना-काल 1299 ई० माना जाता है। कन्नड में शतकों की एक विशिष्ट परंपरा है। इसमें 'सोमेश्वर-शतक का विशिष्ट स्थान है। नीति की इसमें प्रधानता है। इसमें 107 मत्तेभविक्रीडित वृत्त हैं। प्रत्येक पद के अंत में 'हरराश्री चेन्नसोमेश्वर' का मुकुट है। कवि ने घोषणा की है कि नीति ही सकल लोक का साधन है। अतः उसने उसका निरूपण यहाँ किया है। इसकी भाषा काफ़ी अशुद्ध है, कई व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग मिलते हैं। काव्य-गुण इसमें हैं। इसमें लोक-जीवन की अनेक घटनाओं के वर्णन के द्वारा नीति का प्रतिपादन अत्यंत सरल किंतु प्रभावी शैली में हुआ है। कर्नाटक में यह कृति लोकप्रिय है और प्रायः लोग इसे उद्धृत भी करते हैं।

सोरठ, तारा वहेतां पाणी *(गु० कृ०)*

झवेरचंद मेघाणी (दे०) का यह उपन्यास सोरठी जीवन की जन-कथा है। इसमें न कोई नायक है, न नायिका। न इसमें किसी तरह का प्रणय-त्रिकोण ही है। इसमें तो समस्त सौराष्ट्र की जनता की उन घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है जिनका प्रत्यक्ष संबंध जीवन में होता है। इसमें लोक-जीवन का तरल प्रवाह दृष्टिगत होता है, व्यक्ति-विशेष की जीवनलीला नहीं। 'सोरठ तारां वहेता पाणी' एक ऐसा यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें सारे जनसमूह को नेतृत्व प्रदान किया गया है। इसीलिए स्वयं मेघाणी ने इसे अपने कथा-साहित्य में विशिष्ट प्रकार का निराला निरूपण' माना है। इस उपन्यास की विषय-वस्तु 1895 से 1919 ई० तक की कालावधि को समेटे हुए है और प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व के दो दशकों की सौराष्ट्री शौर्य-गाथाएँ इसमें रूपायित हैं। सौराष्ट्र की पुलिस के सिपाही, जमादार, फ़ौजदार, बहादुर काठी, अहीर इत्यादि के पराक्रमों के साथ-साथ उपन्यासकार ने काठियावाड़ी वीरांगनाओं के साहसिक प्रसंगों को भी इसमें अनुस्यूत किया है। डकैती, हिंसा, आतंक और अत्याचारों के लिए मशहूर सोरठी डाकुओं की मानवता से अनुप्राणित शौर्य-गाथाओं का बड़ी ही कुशलता और ममता से कृतिकार ने निरूपण किया है जो वस्तुतः मर्म-स्पर्शी है। इसमें व्यक्तियों का इतिहास है भी और नहीं भी है; पर यह समष्टि का इतिहास, महीपत, रूखड सेठ, सुरेंद्रदेव, सपारण देहलवा इत्यादि की वीरता और उत्सर्ग के प्रसंगों को युगीन वातावरण के संदर्भ में प्रस्तुत करने से कृति विशेष सफल बनी है। 'वहेतां पाणी' की औपन्यासिक शिल्प-विधि शिथिल और वस्तु-संकलना विशृंखलित है। कार्यान्विति का इसमें अभाव है। किंतु गद्य-शैली बहुत ही प्रभावोत्पादक और अभिव्यक्ति सशक्त होने के कारण कृति के ये दोष अखरते नहीं। मधुर सोरठी भाषा, प्रचलित मुहावरे और कहावतें, विशिष्ट शब्द-प्रयोग, गद्य की लय, इत्यादि के कारण 'वहेतां पाणी' गुजराती की विशिष्ट कृति मानी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोहणी-महींवाल *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1849 ई०]

फ़ज़ल शाह (दे०) की सर्वाधिक लोकप्रिय क़िस्सा-कृति 'सोहणी-महींवाल' इसी कथा पर आधारित लगभग सत्तर पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमें तुल्ला कुम्हार की सुंदर कन्या सोहणी और बलख के युवक व्यापारी इज़्ज़त बेग के प्रेम की दुःखांत कथा है। सौंदर्य-मुग्ध इज़्ज़त बेग का सर्वस्व त्याग, चरवाहे के रूप में नायिका की चाकरी, प्रेमियों का गुप्त मिलन, नायिका की तुष्टि के लिए रान का मांस अर्पण करना तथा मिलन के लिए कृतनिश्चय सोहणी का कच्चे घड़े के सहारे नदी पार जाने के प्रयत्न में प्राण-त्याग कथा की मुख्य घटनाएँ हैं। सोहणी के विलाप एवं मृत्यु से संबंधित अंतिम दृश्य में करुण रस की हृदयद्रावक व्यंजना है। अपनी मार्मिकता तथा कल्पना-वैभव के लिए यह दृश्य संपूर्ण पंजाबी काव्य में अनुपम माना जाता है। छंदों में चरणांशों की आवृत्ति के द्वारा कवि ने अद्भुत माधुर्य और तारल्य का सन्निवेश कर दिया है। इनमें बार-बार यमक और अनुप्रास का प्रयोग भी ध्यान आकृष्ट करता है।

सोहिला *(पं० पारि०)*

'सोहिला का एक अर्थ है—आनंद का गीत अथवा मंगली-गीत। उदा० 'मंगल गावहु, ता प्रभु भावहु, सोहिलड़ा जुग चारे।' (गु० ग्र० सा०, सूही छंद, म०1) तथा 'कहै नाटक सबद सोहिला सतगुरु सुनाइआ।' (अनंदु)।

'सोहिला' का दूसरा अर्थ है—'सु' (उत्तम); 'हेला' (खेल) जिसमें—ऐसा काव्य अर्थात् श्रेष्ठ विचारों से समन्वित काव्य।

'गुरु ग्रंथसाहब' में 'सोहिला' शीर्षक के अंतर्गत कतिपय विशेष पद्य संकलित हैं जिन्हें शयन-समय में गाने का विधान हैं। यथा—'तितु घर गावहु सोहिला।'

सौंदरनंद *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शती ई० का पूर्वार्ध]

'सौंदरनंद' अश्वघोष (दे०)-कृत महाकाव्य है। अठारह सर्गों के इस महाकाव्य में यौवन-सुलभ उद्दाम काम तथा धर्म के प्रति जागरित प्रेम के संघर्ष का वर्णन किया गया है। इस काव्य की कथा बुद्ध के सौतेले भाई, सौंदर्य की पूर्ण प्रतिमा सुंदरनंद के गृह-त्याग, अपनी प्रियतमा सुंदरी के मोह-भंग तथा प्रव्रज्याग्रहण से संबंधित है।

'सौंदरनंद' अश्वघोष के दूसरे महाकाव्य 'बुद्ध-चरित' की अपेक्षा अधिक सरस तथा सफल काव्य है। इसमें भोग में लीन नंद को बुद्ध द्वारा उससे विरत करने के प्रयास तथा उसके हृदय के द्वंद्व एवं संघर्ष की सफल अभिव्यक्ति की गई है। नंद तथा सुंदरी की मूक-वेदना के चित्रण में अश्वघोष को जितनी सफलता मिली है उतनी ही बौद्ध धर्म के उपदेशों को अंकित करने में भी मिली है। 'सौंदरनंद' में अश्वघोष का काव्य-कौशल सर्वथा सराहनीय है। यह अश्वघोष की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

सौंदरनंदमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह 'सौंदरनंद' बुद्ध के सौतेले भाई नंद तथा उनकी युवा पत्नी सुंदरी द्वारा संसार के सुखों को त्याग करके भिक्षुक-वृत्ति अंगीकार करने के वृत्तांत को कथावस्तु के रूप में ग्रहण करके पिंगळि-काटूरि (दे०) द्वारा रचा गया एक सुंदर प्रबंध-काव्य है। बौद्ध धर्म की लोकोपकारक दृष्टि, अहिंसा एवं विश्व-करुणा के पावन सिद्धांत, आदि के सम्यक् निरूपण के साथ साथ इस कृति में पत्थर के हृदय को भी विदीर्ण करने वाले विश्व-दैन्य का निवारण करने तथा दुःखांतों का पाप-कूपों से उद्धार करके, उनके अश्रु पोंछने, उनके दुःख दूर करने, उनकी भ्रांति को मिटाने तथा पीठ थपथपाने के लिए आवाहन भी इन कवियों ने किया है। इस संदेश में स्वतंत्रता-आंदोलन के समाजोद्धार एवं देशोद्धार के उद्बोधन की छाया भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। प्राचीन एवं नवीन के नमन्वय तथा रस-परिपाक की दृष्टि से भी यह काव्य अत्यंत सफल है।

सौंदर्यलहरी *(सं० कृ०)* [रचना-काल—800 ई० का उत्तरार्ध]

'सौंदर्यलहरी' शंकराचार्य (दे०) रचित स्तोत्र-ग्रंथ है। इसमें महाशक्ति की स्तुति की गई है। यह ग्रंथ श्रीविद्या का अत्यंत मूल्यवान ग्रंथ है। 'सौंदर्यलहरी' के अंतर्गत 103 श्लोक मिलते हैं। इन श्लोकों की रचना शिखरिणी छंद में की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सौंदर्यलहरी' में शिव तथा शक्ति के योग एवं मिलन का वर्णन तांत्रिक पद्धति से किया गया है। शक्ति के स्वरूप एवं महत्ता के संबंध में 'सौंदर्यलहरी' में कहा गया है कि 'शिव' शब्द में (इ) शक्ति की सूचक है, जिस के अभाव में शिव शव मात्र शेष रह जाता है। अतः शिव तथा शक्ति में अविभाव संबंध है।

'सौंदर्यलहरी' की भाषा तथा शैली सरल, सरस एवं साहित्यिक है। यह कथन अनुचित न होगा कि दार्शनिक, तांत्रिक, एवं साहित्यिक दृष्टि से 'सौंदर्यलहरी' एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। शंकराचार्य की कवित्वपूर्ण लेखनी ने इस ग्रंथ को अद्भुत सौंदर्य प्रदान किया है।

सौंदर्यशास्त्र *(पारि०)*

'सौंदर्यशास्त्र' पाश्चात्य दर्शन और साहित्यालोचन की बहुप्रयुक्त अध्ययन-प्रणाली 'एस्थैटिक्स' के हिंदी-पर्याय के रूप में प्रचलित है। इस शास्त्र का उपयोग पश्चिम में अब मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी होने लगा है। यद्यपि सौंदर्य के शास्त्रीय विवेचन की परंपरा पश्चिम में ईसा से चौथी शती पूर्व से चली रही है, तथापि एक सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध, स्वतंत्र, पूर्ण एवं सांगोपांग शास्त्र के रूप में इसका विकास अठारहवीं शती में ही हुआ। 'एस्थैटिक्स' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन लेखक अलेक्ज़ेंडर बाऊम गार्टन (1714-1962 ई०) ने किया इस के कुछ ही पश्चात् बर्क (1729-1797 ई०) ने कलानुभूति, ऐंद्रिय बोध, कल्पना (दे०) और मन की निर्णायिका शक्ति आदि का विवेचन किया जिसका उपयोग उस युग के साहित्य-लोचन में भी किया जाने लगा। 1790 ई० में कांट की प्रसिद्ध पुस्तक 'क्रिटीक ऑफ़ जजमैंट' प्रकाशित हुई जिसके प्रभावस्वरूप कलात्मक मूल्यांकन—बाद में साहित्यिक मूल्यांकन में भी सौंदर्यानुभूति की व्यक्तिनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता को लेकर काफ़ी चर्चा होने लगी। इस के पश्चात् शेलिंग और हीगेल के विवेचन गे वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद की भूमि सुदृढ़ हुई। इनके समसामयिक श्लेगल ने 1808 ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'नाट्कला' तथा 'साहित्यिक भाषण' में प्रत्यक्ष रूप से साहित्यिक संदर्भ में आभिजात्यवाद (दे०) के विरुद्ध स्वच्छंदतावाद (दे०) का समर्थन किया। बीसवीं शती में सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से 'कलावाद' ने प्रत्ययवाद और 'अनुभाववाद' जैसे विशुद्ध दार्शनिक मतों का स्थान ले लिया जिसके प्रमुख प्रवक्ता क्रोचे ने सहजानुभूति (दे०) और अभिव्यंजना के महत्व की प्रतिष्ठा की। सौंदर्यशास्त्र निश्चय ही पश्चिम की देन है, किंतु अब वहाँ टॉमस मुनरो आदि उसके अंतर्राष्ट्रीय रूप की चर्चा करने लगे हैं।

सौंदर्यशास्त्र समस्त जीवनानुभूति को सौंदर्य में केंद्रित मानकर उसके स्वरूप और तत्त्वों का विधिपूर्वक अध्ययन करता है। यह वस्तुतः कला (दे०) का संपूर्ण शास्त्र है जिसमें उसके सृजन की प्रक्रिया तथा मूल्यों की गंभीर मीमांसा की जाती है। इसे 'एस्थैटिक्स' का अभिधान देने वाले आचार्य बाऊम गार्टन के अनुसार सौंदर्यशास्त्र प्रकृति और कला के सौंदर्य, उसके स्वरूप एवं अवस्थाओं तथा उसकी नियमानुरूपता का अध्ययन है। रस (दे०)-सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र का प्रसिद्ध कला-सिद्धांत है। आधुनिक भारतीय साहित्यालोचन में अब रसानुभूति के लिए कहीं-कहीं 'सौंदर्यानुभूति' शब्द का प्रयोग होने लगा है, किंतु सौंदर्यानुभूति कलास्वाद के केवल एक ही पक्ष—सौंदर्य-संवेदन अथवा प्रसादन तक सीमित है, इससे रसानुभूति की आत्मविश्रांतिमयी स्थिति का द्योतन नहीं होता।

सौत्रांतिक *(पा० पारि०)*

यह 'हीनयान' का एक दार्शनिक पक्ष है जो वैभाषिक (दे०) के समान सर्वास्तिवाद के अंतर्गत आता है। इस संप्रदाय के मानने वाले सूत्र या सूत्रपिटक को अंतिम लक्ष्य मानते हैं; शेष दो पिटकों को उतना महत्व नहीं देते। इसीलिए इन्हें सौत्रांतिक कहा जाता है। इस विचारधारा का प्रवर्तन दूसरी शती में 'कल्पनामंदतिका'-कार कुमारलब्ध ने किया था। धर्मोत्तर और यशोमित्र इसके अन्यतम उन्नायक हैं। इस मत में बाह्य जगत् की सत्ता स्वीकार की जाती है; किंतु उसकी प्रतीति प्रत्यक्ष रूप में न होकर अंतर्जगत् को हेतु मान कर अनुमिति-होती है; इसीलिए इन्हें बाह्यार्थानुमेयवादी भी कहा जाता है।

यह मत 'महायान' (दे०) संप्रदाय के इस मत का प्रतिषेध करता है कि बाह्यजगत् भ्रममात्र तथा स्वप्नवत् मिथ्या है। बाह्य जगत् की सत्ता के लिए इनके तर्क हैं— मानसबिंब का निर्माण बाह्यसत्ता के अभाव में नहीं हो सकता। चेतनागत पदार्थ की प्रतीति बाह्य रूप में तब तक नहीं हो सकती जब तक बाहर भी काफ़ी सत्ता न हो। चेतना सर्वत्र एकसमान है। अतः यदि पदार्थ केवल चेतनागत ही होते तो सभी पदार्थों की प्रतीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रूप में ही होती। पदार्थों में जो पारस्परिक भेद है उसकी प्रतीति नहीं हो सकती। चेतना निष्ठ होने के कारण घड़ा और कपड़ा इत्यादि पदार्थों को भी भेद-प्रतीति नहीं हो सकती। यदि बाह्य पदार्थ विद्यमान होते तो कोई भी पदार्थ कहीं भी देख लिया जाता; कोई पदार्थ दुःख-दायक और सुखदायक सिद्ध न होता।

सौत्रांतिक-संप्रदाय के लोग आणविक विश्व में विश्वास करते हैं। इनकी दृष्टि में सभी पदार्थ क्षणिक हैं; प्रशिक्षण बदलने वाले पदार्थों की निरंतरता का प्रति-भास फ़िल्म-जगत् के चित्रों की निरंतरता के समान होता है। ये लोग ईश्वर को जगत् का एकमात्र कारण नहीं मानते किंतु कारण-शृंखला स्वीकार करते हैं। पदार्थ-प्रतीति या उसके अनुमान के लिए ये लोग चार उपबंध स्वीकार करते हैं—पदार्थ, प्राक्तन समवर्ती अनुभाव, प्रकाश आदि माध्यम और इंद्रिय। ये ही प्रतीति के साधन हैं।

सौदा *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1710 ई०; मृत्यु—1781 ई०]

इनका पूरा नाम मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी था, 'सौदा' इनका उपनाम था। इनके पिता का नाम मिर्ज़ा मुहम्मद शफ़ी था। वे व्यापार करने भारत आए थे और फिर यहीं के निवासी बन गए। इनकी शिक्षा दिल्ली में हुई। पिता के मरने के बाद ये आर्थिक कठिनाइयों के कारण सेना में भरती हो गए। आरंभ में फ़ारसी में काव्य-रचना की और इसमें दक्षता प्राप्त की। कुछ समय बाद इन्हें दिल्ली त्यागनी पड़ी। ये कुछ दिन फ़ैज़ाबाद में भी रहे और शेष आयु लखनऊ में बिताई।

उर्दू के सभी काव्य-रूपों में इन्होंने काव्य-रचना की किंतु क़सीदे (दे०) और 'हिज्व' (दे०) लिखने में तो इन्होंने नाम पैदा किया। ग़ज़ल में इनका अपना विशेष रंग है। ये शब्दों का ऐसा औचित्यपूर्ण प्रयोग करते हैं कि उनमें एक भी इधर से उधर हो जाए तो पद्य की सरसता जाती रहती है। ग़ज़ल के लिए प्रभावोत्पादकता और प्रसाद गुण की जो अनिवार्यता स्वीकार की गई है, वह सौदा को प्रथम कोटि का कवि होने का अधिकारी बना देती है। इनके काव्य में भारतीय रीतियों तथा वाता-वरण का विशेष वर्णन मिलता है।

सौदा के मर्सिये (दे०) भी उल्लेखनीय हैं। इस काव्य-कला में भी इनका एक विशिष्ट स्थान है। इनको सौदा ने केवल धार्मिक महापुरुषों की मृत्यु पर विलाप करने तक ही सीमित नहीं रखा अपितु इनमें प्राकृतिक दृश्यों तथा भाव-चित्रण का समावेश कर इन्हें साहित्य की अमूल्य निधि बना दिया है। मुसद्दस के रूप में मर्सिये लिखने का गौरव सबसे पहले इन्हें ही प्राप्त हुआ।

इनके काव्य-ग्रंथों में उर्दू काव्य का एक दीवान, चौबीस मसनवियाँ सलाम तथा मर्सिये सम्मिलित हैं।

सौदामिनी *(मल० पा०)*

सौदामिनी के० सुरेंद्रन (दे०) के दो उपन्यासों 'ताळम' (दे०) और 'काट्टुकुरङ्ङु' (दे०) की मुख्य स्त्री-पात्र है। सौदामिनी के भावी प्रति प्रभाकरन् का मूक प्रणय उसे संतुष्ट नहीं करता और वह चक्रपाणि की ओर आकृष्ट होती है। चक्रपाणि से धोखा खाकर वह फिर प्रभाकरन् के आश्रय में आ जाती है। दांपत्य-जीवन के अनेक संघर्षों के अंत में वह आत्महत्या के समीप पहुँच जाती है, परंतु प्रभाकरन् अपने अन्य आकर्षणों से मुक्त होकर यथासमय उसके पास पहुँच जाता है और उनका जीवन सही रास्ते पर आ जाता है।

सौदामिनी साधारण परिस्थितियों में पली एक युवती और गृहिणी का प्रतिनिधित्व करती है। कौमार्य-जन्य चंचलताओं से मुक्ति पाकर विवाह के बंधन में नया जीवन प्रारंभ करने की इच्छा से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने पर फिर उसे नए संघर्षों का सामना करना पड़ता है। पति की विवाहेतर कामुकता को वह सहन नहीं कर पाती। इस प्रकार की मानसिक स्थिति के चित्रण में सुरेंद्रन् सफल हुए हैं। सौदामिनी उनके पात्रों में प्रमुख है।

सौभद्रुनि प्रणययात्रा *(ते० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती ई० का द्वितीय चरण]

'सौभद्रुनि प्रणययात्रा' के लेखक का नाम नायनि सुब्बाराव (दे०) है। यह शृंगारपरक खंडकाव्य है। इसका कथानक इस प्रकार है—सुभद्रा का पुत्र अभि-मन्यु अपने मामा की पुत्री शशिरेखा से प्रेम करता है। किंतु बलराम यह नहीं चाहता कि अपनी लड़की जंगलों में भटकने वाले पांडवों के परिवार में दी जाय। वह चाहता है कि अपनी पुत्री की शादी राजा दुर्योधन के पुत्र से हो। इन कठिनाइयों के रहते हुए भी अभिमन्यु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा शशिरेखा का प्रेम सफल होता है और वे पति-पत्नी बन जाते हैं। इस छोटे से काव्य में स्वच्छ प्रेम का क्रमिक विकास तथा शुभ परिणाम अच्छे ढंग से चित्रित किया गया है। इस काव्य में वर्णित शृंगार में पवित्रता तथा पूर्णता है। लेखक के जीवन से इसके कथानक तथा प्रेम-चित्रण का घनिष्ठ संबंध है। लेखक ने भी अपने मामा की लड़की से प्रेम किया था पर मामा सहमत नहीं हुए थे। अंत में इन दोनों का विवाह संपन्न हुआ था।

तेलुगु 'रोमांटिक' कविता की शृंगारपरक रचनाओं के अंतर्गत 'सौभद्रुनि प्रणययात्रा' का प्रमुख स्थान है।

स्कंदगुप्त *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) के इस नाटक की कथा-वस्तु का निर्माण गुप्तवंश की ह्रासोन्मुखी स्थिति में हूणों के लूटपाट-संबंधी आक्रमणों की छाया में किया गया है। अनंतदेवी राज्य की आंतरिक कलह की धुरी है और वह स्वयं महेंद्रादित्य की मृत्यु सपत्नी देवकी को बंदी बनाने स्कंदगुप्त (दे०) की जगह अपने बेटे पुरगुप्त को युवराज बनवाने में कारण बनती है। भटार्क के और प्रपंचबुद्धि उस के विकास-गगन की सीढ़ियाँ हैं। बंधुवर्मा और भीमवर्मा पताका नायक के रूप में स्कंदगुप्त को योग देते हुए अपना राज्य एक महान राष्ट्र की निर्मिति के उत्सर्ग कर देते हैं। इस नये राष्ट्र की ज़िम्मेदारी कुमार गोविंदगुप्त, पर्णदत्त, मातृगुप्त आदि स्कंदगुप्त नेतृत्व में सँभालते हैं। हूणों के बर्बर आक्रमणों को रोकना और प्रबल राष्ट्र की प्रस्थापना इस नये राष्ट्र के दो मुख्य उद्देश्य हैं। प्रसाद जी राष्ट्रवादी विचारधारा के नाटककार होने के कारण अनंतदेवी, पुर-गुप्त, भटार्क, प्रपंचबुद्धि, विजया आदि पात्रों के अराष्ट्र-वादी स्वर और कार्यों की तीव्र भर्त्सना करते हैं। सभी छोटे-बड़े राजा हूणों को प्रताड़ित करने के लिए स्कंद-गुप्त के नेतृत्व में सम्मिलित होते हैं। भटार्क मगध की सेना का संचालन करता है, हूणों का सेनापति रत्नों की मंजूषा अनंददेवी को देकर भटार्क से कुंभा का बाँध तुड़-वाकर स्कंद को उसकी चंचल लहरों में प्रवाहित करवा देता है, सारा आयोजन निष्फल हो जाता है, देश पर पुनः हूणों का आतंक छा जाता है। पर्णदत्त और देवसेना (दे०) गाकर और भीख माँगकर राष्ट्र के बचे रत्नों की रक्षा में लगते हैं। इसी बीच भटार्क का हृदय-परिवर्तन होता है, वह अपनी पत्नी विजया की रत्न-मंजूषाओं से स्कंदगुप्त के लिए सेना एकत्र करता है और स्कंद हूण-सेनापति खिंगिल को पराजित करके सिंधु के इस पार न आने को कहकर उसे मुक्त कर देता है।

'स्कंदगुप्त' की रचना में प्रसाद जी के दो मुख्य उद्देश्य स्पष्ट हैं—एक उनकी राष्ट्रवादी विचार-धारा और दूसरी उनकी सांस्कृतिक विजय। शक एवं हूणों पर स्कंद की विजय भारतीयता की विजय है, एक तरह से यह सांस्कृतिक विजय है। आर्यावर्त्त की स्थापना में पतनोन्मुख हिंदू जाति के उत्थान की कामना उनके राष्ट्रप्रेम की परिचायक है। देवसेना और स्कंदगुप्त के चरित्र की निर्मिति में जहाँ एक ओर पात्र प्रसाद जी की विचारधारा का भार वहन करते हैं, वहाँ दूसरी ओर अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का संरक्षण भी करते हैं। अंतर्द्वंद्व सारे नाटक में विद्यमान है। देवसेना में संगीत और कवित्व की प्रधानता प्रसाद जी के अपने व्यक्तित्व की छाप हैं। इस नाटक में घटना-व्यापार बड़ी तेज़ी से बढ़ता है, राज-नीतिक अंधड़ और उथल-पुथल सारे नाटक को अस्थिर रखता है। इस नाटक का अंत सुख और दुःख के मिश्रित प्रभाव में हुआ है। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों में इस नाटक का स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण है।

स्कंदगुप्त *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'स्कंद-गुप्त' (दे०) का नायक है। इसका काल अतीत भारत का स्वर्णिम काल माना गया है। गुप्तकाल (275 ई०-540 ई०) में आर्य-साम्राज्य मध्य एशिया से जावा-सुमात्रा तक फैला हुआ था। स्कंदगुप्त इसी गुप्तवंश का देदीप्यमान नक्षत्र था। नाटककार ने इसका निर्माण इति-हास और कल्पना के योग से किया है।

स्कंदगुप्त नाटक का सबसे अधिक प्रभावशाली चरित्र है। नाटक की प्रत्येक घटना स्कंदगुप्त के साथ अनुस्यूत है; वही प्रत्येक घटना का केंद्रबिंदु है। नाटक के आरंभ में राज-सुख को सारहीन और मुकुट को श्रम-जीवी की टोकरी से तुच्छ बतलाकर वह मन के अंतर्द्वंद्व को प्रकट करता है। राजकुमार होते हुए भी उदासीनता के वृत्त में मन के पराजय की बात पर्णदत्त को कहता है और बूढ़ा पर्णदत्त उसे उसके अधिकारों के प्रति जागरूक रहने का सत्परामर्श देता है। तभी तो मालव-दूत से स्कंदगुप्त जैसे ही यह कहता है कि "दूत संधि के नियमों में ही हम नहीं बँधे हैं, शरणागत की रक्षा करना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा धर्म है। जाओ! निर्भय निद्रा का सुख लो, स्कंद के रहते मालव का कुछ न बिगड़ सकेगा,' वैसे ही पर्णदत्त कहता है कि 'तात! आज यह वृद्ध तुष्ट हुआ।' इस तरह स्कंद और पर्णदत्त या स्कंद और गोविंदगुप्त का संबंध बहुत कुछ देशाभिमान और राष्ट्र-प्रेम की भावना से बँधा है; स्कंद पर देश को अभिमान है और पर्णदत्त तथा गोविंदगुप्त दोनों ही स्कंदगुप्त के विनीत भाव एवं शिष्टाचार के कायल हैं। स्कंदगुप्त का अनासक्त कर्मठ व्यक्तित्व संपूर्ण उपन्यास का मुख्याधार है। नाटककार ने अंतर्द्वंद्व और व्यक्ति-वैचित्र्य पश्चिम की और बड़ों के प्रति सम्मान, छोटों के प्रति दया एवं कातर के प्रति करुणा पूर्व की विचारधारा के अनुरूप उसके व्यक्तित्व में समाहित किए हैं।

स्कंदगुप्त कोरा आदर्शवादी ही नहीं है प्रत्युत विजया के प्रति सहज आकर्षण, देवसेना (दे०) के प्रति कोरे कर्तव्य का भाव एवं अपने कहे जाने वाले लोगों के ममत्व ये सभी गुण उसके व्यक्तित्व में यथार्थ की अन्विति सिद्ध करते हैं। तभी तो विजया द्वारा भटार्क के वरण पर क्षुब्ध होकर वह कह उठता है--'परंतु विजया तुमने यह क्या किया?' नाटक के अंत में जब वह देवसेना को दोबारा मिलता है और कहता है कि उसे राज्य नहीं चाहिए और वह देवसेना के साथ कहीं भी अपने दिन काट लेगा, पुनः उसके व्यक्तित्व में उदासीनता के वातायन से एक प्रकार की दुर्बलता झाँकने लगती है। मातृगुप्त उसे प्रवीर, उदार-हृदय रामा उसे रमणियों का रक्षक, गोविंद गुप्त उसे गुप्तकुल का तिलक, यहाँ तक कि विरोधी भटार्क उसे देवत्व पद पर अधिष्ठित करके उसके महान व्यक्तित्व को अभिव्यंजित करते हैं।

समग्रतः देश-प्रेम के निर्भीक में नाटककार ने स्वयं से विरक्त और प्रत्येक सामाजिक की जटिलता से संपृक्त जिस चरित्र का निर्माण किया है वह उनके नाट्य-जगत में स्कंदगुप्त के नाम से जाना जाता है और इस प्रकार के चरित्र की अवधारणा उन्होंने बहुत ही मनोयोग से की है।

स्तुतिकुसुमांजलि (स० कृ०) [समय—चौदहवीं शती ई०]

स्तुतिकुसुमांजलि' का शैव-स्तोत्रों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रणेता श्री जगद्धर भट्ट के पिता रत्नधर काश्मीर-निवासी तथा शैव कवि थे। इन्हीं से इनको यह रिक्थ प्राप्त हुआ था।

'स्तुयिकुसुमांजलि' में 38 स्तोत्र तथा 1425 श्लोक हैं। जगद्धर अपने पिता की भाँति भगवान शंकर के अनन्य भक्त थे। बाल्यकाल से इनका हृदय भगवान भूतभावन की ओर अनुरक्त हो गया। अतः शंभुस्तवन को छोड़कर अन्य ग्रंथ लिखने की इनकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई। इसमें कवि ने ऐसे आकर्षक तथा हृदयस्पर्शी ढंग से आत्मनिवेदन किया है कि कठोरहृदय व्यक्ति का हृदय भी भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हो जाता है। इस काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष का समुचित सामंजस्य उपस्थित हुआ है। जगद्धर ने त्रिकदर्शन के सिद्धांतों का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया है; परंतु वह 'शिवस्त्रोत्रावली' की समता नहीं प्राप्त कर सकता।

Tamil

स्तुतिचिंतामणि (उ० कृ०)

'स्तुतिचिंतामणि' भीमा (दे०) भोई की प्रधान रचना है। भक्त-हृदय की उच्छल तरंगें ही कविता में ही परिणत हो गई हैं, अतः तन्मय अंतर की आवेगमयी पुष्कल भावनाएँ जन-मानस को रस-सिक्त एवं उर्वर बना देती हैं। उड़ीसा की जनवाणी इन भजनों को गाकर सार्थक हो जाती है। 'स्तुतिचिंतामणि' के भीतर सर्वजन-बोध्य भाषा में निराकार ब्रह्म की उपासना प्रतिपादित है। इसमें सहजात शक्ति है, किंतु शिल्प नहीं। व्यावहारिक भाषा में कहीं-कहीं शाब्दिक विशृंखलता मिलती है, किंतु कवि की आत्मोपलब्धि असाधारणा रूप से संकीर्णता-मुक्त एवं मानवीय है। संसार की निष्ठुरता के प्रतिपादन में साधु-अंतर की असीम करुणा उमड़ पड़ी है—'मेरा जीवन भले ही नरक में पड़ा रहे, किंतु जगत् का उद्धार हो।'

'स्तुतिचिंतामणि' में महिमाधर्म की व्याख्या मिलती है। कवि का आत्म-दर्शन भी अभिव्यक्त हुआ है। महिमा गुसाईं एवं निराकार ब्रह्म एकाकार होकर कहीं-कहीं अस्पष्टता की सृष्टि करते हैं। महिमाधर्मावलंबियों का यह प्रिय ग्रंथ है।

नृतत्व, धर्म एवं संस्कृति के अनुसंधाताओं के लिए ऐतिहासिक उड़ीसा-राज्य एक आदर्श क्षेत्र है। यहाँ वे परस्पर विरोधी सामाजिक शक्तियों की ऐसी सुसामंजस्यपूर्ण अवस्थिति पाएँगे। जो अन्यत्र चिर-वर्तमान शत्रुता में या पारस्परिक वर्जना में परिणत हुई है। भारतवर्ष में, उड़ीसा के अतिरिक्त, ऐसा कोई राज्य नहीं जहाँ आदिवासी जीवनधारा इस प्रकार मिलकर जातीय जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अंश हो उटी हो। उड़ीसा के इष्टदेव जगन्नाथ आदिवासी देवता हैं। धर्म ही नहीं साहित्य में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। उड़ीसा ने भारतीय संस्कृति को गणदेवता के साथ गण-साहित्य भी दिया है। भीमा भोई उड़ीसा के प्रमुख आदिवासी कवि हैं।

स्थल-पुराणम् *(त० पारि०)*

मंदिरों एवं विभिन्न देवी-देवताओं से संबद्ध स्थानों की महिमा का गान करने वाली कृतियाँ 'स्थल-पुराणम्' कहलाती हैं। कुछ प्रसिद्ध स्थल पुराणम् हैं— 'चिदंबर पुराणम्', 'सेतु पुराणम्', 'तिरुक्कलुकुनर पुराणम्' 'अरुणाचल पुराणम्', आदि। 'स्थलपुराणम्' के रचयिताओं में मीनाक्षिसुंदरम् पिळ्ळै (दे०) सर्वप्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित 22 स्थल पुराणों में सर्वप्रसिद्ध हैं 'तिरुनाई कारोण पुराणम्'। इन स्थल-पुराणों के प्रभावस्वरूप परवर्ती काल में लोगों ने अपने ग्राम को महत्वपूर्ण सिद्ध करने के लिए अनेक कपोल कथाओं और प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध विचारों को जन्म दिया। तमिल में स्थल-पुराणों की रचना मुख्य रूप से सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में हुई थी।

स्थानपोथी *(म० कृ०)*

मुनि व्यास ने 1353 ई० के आसपास इसकी रचना की थी। महानुभाव-पंथ के पूज्य श्री चक्रधर ने जिन-जिन गाँवों में भ्रमण कर मत-प्रचार किया था उन दो-ढाई सौ स्थानों का इसमें वर्णन है। स्थान-निर्देश के साथ-साथ इसमें चक्रधर की लीला-प्रसंगों का भी विवरण है। तत्कालीन महाराष्ट्र की सांस्कृतिक परिस्थितियों की सही-सही झलक भी इसमें मिल जाती है।

स्थायी भाव *(सं० पारि०)*

सहृदय के अंतःकरण में जो मनोविकार वासना-रूप से सदा विद्यमान रहते हैं तथा जिन्हें अन्य कोई भी अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव दबा नहीं सकता, उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। यही 'स्थायी भाव' रस-रूप आस्वादाकु का अंकुर-कंद अर्थात् मूलभूत है—

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादांकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति सम्मतः॥

'स्थायी भावों' की संख्या सामान्यतः नौ मानी जाती है—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। ये क्रमशः निम्नोक्त रसों के रूप में निष्पन्न (अभिव्यक्त) होते हैं—श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत। कुछ आचार्य वत्सल रस भी मानते हैं, जिसका 'स्थायिभाव' वात्सल्य है।

स्थावर *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1951 ई०]

'स्थावर' महाकाव्य की विशाल पटभूमिका में रचित बनफुल (दे०) का यह एक आश्चर्यजनक परीक्षा-मूलक उपन्यास है। आदि मानस की पशु-सुलभ जीवन-यात्रा से शुरू करके नैतिक बोध-संपन्न मनुष्य के विवर्तन के इतिहास के प्रत्येक स्तर की कहानी इसमें लिपिबद्ध है। मानव-समाज की क्रमोन्नति के साथ-साथ उसके जीवन में जटिलता का जो विस्तार है उसी के साथ मानव के अध्यात्म-बोध की नाना विकृतियों की अभिव्यक्ति हुई है। नाना रहस्यमय क्रियाकलापों के बीच थे मनुष्य दैव-शक्ति से परिचित होने का प्रयत्न करता है। क्रमशः विभिन्न मानव-गोष्ठियों में परस्पर शत्रुता एवं मित्रता बढ़ने लगी है और इस प्रकार आपसी युद्ध शुरू हो जाता है। नाना कौतूहलपूर्ण कहानियों को सूत्रबद्ध करके कल्पना के सार्थक प्रयोग के द्वारा आदिम मनुष्य के विवर्तन के इतिहास में लेखक ने उपन्यास का रस भर दिया है अंधकारमय आदिम युग की जीवन-यात्रा पर उसने आधुनिक उपन्यास-रीति एवं तथ्यानुयायी विशेषण-कुशलता का विस्मयकर प्रयोग किया है। उस युग में भाषा का प्रयोग बहुत ही सीमित था इसीलिए संलापों का कम-से-कम प्रयोग हुआ है। प्रारंभ में ये केवल संकेतों के द्वारा कहानी कही गई है। विवरणात्मक होने पर भी औपन्यासिक उत्कंठा एवं नाटकीयता की सृष्टि में बनफुल ने अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। कहानी उत्तम पुरुष में लिखी गई है: 'मैं कोई विशेष मानव नहीं, मानव जाति हूँ', आदि।

स्नेह देवी *(अ० ले०)*

ये असम की वयोवृद्ध कहानी-लेखिका हैं। इनके लेखन में ईमानदारी और सादगी है। इनकी अनेक कहानियाँ असमीया-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। प्रकाशित रचना—'कृष्ण द्वितीयार जोन' (कहानी-संग्रह)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहरश्मि *(गु० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

गांधी युग के अग्रगण्य कवियों में 'स्नेहरश्मि' का स्थान महत्वपूर्ण है। इनका पूरा नाम है झीणाभाई रतनजी देसाई। ये गुजरात विद्यापीठ के स्नातक हैं और अहमदाबाद की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था चिमनलाल नगीनदास विद्याविहार के आचार्य हैं। स्नेहरश्मि कवि, उपन्यासकार और कहानीकार हैं। इन्होंने प्रगीतकाव्य गीतों, 'हाइकू' कविता की सृष्टि की है। इनके गीतों और कविताओं पर बँगला कविता की लय और मधुरता का प्रभाव पाया जाता है। 'एकोऽहं बहुस्याम्' इस कवि की श्रेष्ठ छंदोबद्ध रचना है। प्रेम और सौंदर्य-विषयक कविताओं के अतिरिक्त स्नेहरश्मि ने कतिपय चिंतनात्मक रचनाएँ भी की हैं। 'पनघट' और 'अर्घ्य' इनके प्रसिद्ध कविता-संग्रह है जिनका भाव-माधुर्य और लयात्मक सौंदर्य द्रष्टव्य है।

जापानी कविता-विद्या 'हाइकू' का गुजराती में सर्वप्रथम सफल प्रयोग स्नेहरश्मि ने किया है। उसे कविप्रिय बनाने का श्रेय इन्हें ही हैं। 'सोनेरी चाँदरूपेरी सूरज' (दे०) शीर्षक इनके हाइकू-संग्रह में चंद्र, सूरज, पतंगा, मकड़ी, मक्खी, सरोवर इत्यादि कई विषयों पर तीन पंक्तियों के गंभीर विचारमूलक हाइकू संगृहीत हैं। इनके हाइकू में प्रतीकों और बिंबों का बड़ा प्रयोग होता है। 'तूटेला तार', 'गाता आसोपालव', 'स्वर्ण अने पृथ्वी', 'हीराना लटकणिया' इनके उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं। 'अंतरपट' (दे०) सुप्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें 1930 ई० के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का चित्रण हुआ है।

स्पंदकारिका *(सं० कृ०)* [समय—नवीं शती ई०]

'स्पंदकारिका' त्रिकशास्त्र का एक प्रमुख ग्रंथ है। इसका कर्तृव्य विवादास्पद है। उत्पल वैष्णव इसे कल्लट की कृति मानते हैं। कल्लट त्रिकशास्त्र के प्रथम आचार्य वसुगुप्त के शिष्य थे। पर क्षेमराज इसे स्वयं वसुगुप्त की रचना बताते हैं। क्षेमराज की धारणा अधिक समीचीन प्रतीत होती है। महेश्वरानंद ने अपनी 'महार्थमंजरी' की टीका में इसी मत का समर्थन किया है।

'स्पंदकारिका' में शिवसूत्रों में प्राप्त, शैव-मत का विस्तार किया गया है। इसे 'स्पंदसूत्र' भी कहा जाता था। किंतु इस कृति को 'स्पंदसूत्र' से अलग मानना पड़ेगा क्योंकि डा० ह्वूलर नें इस पद का प्रयोग शिवसूत्रों के लिए किया है। इनके अनुसार यह विश्व की स्वतंत्र इच्छा का 'स्पंद' अर्थात् स्फुरण है। इस ग्रंथ का मुख्य प्रतिपाद्य हैं—दैवी शक्ति को प्राप्त करने के तीन उपाय। वे उपाय हैं—शांभव, शाक्त, तथा आणव। इन्हीं उपायों द्वारा ही पशु (जीवात्मा) शिवत्व प्राप्त करता है।

स्मर गरल *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1936 ई०]

मोहितलाल मजुमदार (दे० मजुमदार) ने कवि एवं साहित्य-समालोचक दोनों ही रूपों में विशिष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त की है। उनका काव्य-ग्रंथ 'स्मर गरल' (1936) उनकी प्रारंभिक कविताओं का संकलन है। लेखक ने अपने संपूर्ण जीवन में बहुत अधिक कविताएँ नहीं लिखीं परंतु जो लिखी हैं उनमें मनन की गंभीरता सर्वत्र परिलक्षित होती है। 'स्मर गरल' काव्य-ग्रंथ की भूमिका में कवि ने ने लिखा है कि 'स्मर गरल' की कविताओं में जो स्वर सर्वाधिक ध्वनित हुआ है वह स्वर बंगाल के पानी या मिट्टी में निहित है—यह स्वर वैष्णव नहीं है, अपर साधना का स्वर है। इस अपर साधना से तात्पर्य है—शाक्त-साधना।

शक्ति-साधना सबल स्वस्थ देहधर्म से अनुप्राणित है। देह के बिना प्रेम या जीवन का योग संभव नहीं। देह के माध्यम से ही जीवन का आस्वादन संभव है। कवि देहवादी है और इसी देहवाद में निहित है कवि का जीवन दर्शन या जीवनासक्ति का उदात्त स्वर। करोड़ों प्राणियों से कल्लोलित व्यथा-वेदना से परिपूर्ण इस पृथ्वी के प्रति कवि के मन में अपार ममता है। मोहित बाबू के अनुसार प्रवृत्तिमार्ग ही वास्तविक मार्ग है और देहेंद्रिय ही एकमात्र सत्य है परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वे इंद्रिय-सर्वस्व के कवि हैं। देह के भीतर देहातीत की उपलब्धि की कामना से ही 'स्मर गरल' की कविताओं की रचना हुई है। देह से हटकर रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) ने जिस अतींद्रिय प्रेम-सौंदर्य की साधना की थी, मोहित बाबू ने उसकी दुर्बलता को प्रकट करते हुए देहाश्रयी प्रेम-सौंदर्य को एक नवरूप प्रदान किया है। 'स्मर गरल' की कविताओं के अभिव्यंजना-पक्ष में आभिजात्यवादी भंगिमा स्पष्ट है। शब्द-प्रयोग के बारे में कवि अत्यंत संयत एवं सचेतन है। उनकी अभिव्यंजना बलिष्ठ भी है और सुललित भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरणसंहिता *(गु० क्र०)*

'स्मरणसंहिता : एकरुण प्रशस्ति' नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया (दे०) द्वारा रचित एलिजी है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 1925 ई० ई० में हुआ था। प्रस्तुत काव्य तीन खंडों में बँटा हुआ है। इन तीन खंडों में क्रमशः 64, 40 और 59 छंद हैं जो मुख्यतः खंड हरगीत में रचित हैं; कुछ वसंततलिका, उपजाति वसंततलिका में और एक-एक भैरवी रागिनी और गरबी की धुन पर रचित हैं। प्रो० आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव (दे०) ने इसका उपोद्घात और अंत में एक विस्तृत 33 पृष्ठीय टीका दी है। हाजी महमद अलारखिया शिवजी ने इसमें निहित दस चित्रों का दिग्दर्शन करवाया है। पुत्र के मरण पर लिखे इस शोकपरक काव्य में केवल करुण रस ही उभर कर नहीं आया है, बल्कि इसमें तत्त्वचिंता, परमात्मा की सर्वसत्ताधारी के रूप में स्वीकृति तथा उसकी क्रियाओं में कल्याण-भावना का दृष्टि-स्वीकार, अवयवों की एकान्वित संघटना, भक्ति का अद्भुत परिपाक, संस्कृतनिष्ठ भाषा तथा बीच-बीच में आख्यान देकर काव्य की एकरूपता को नष्ट करने के प्रयत्न आदि के भी दर्शन होते हैं। स्वयं कवि ने इसे खंडकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। गुजराती में लिखित शोकपरक काव्यों में इस 'स्मरणसंहिता' का पर्याप्त महत्व है।

स्मृतिचित्रें *(म० कृ०)*

यह लक्ष्मीबाई टिळक-रचित चार खंडों में प्रकाशित बृहद् आत्मकथा है। आलोचकों के मतानुसार यह एक बेजोड़ कलाकृति है। इस आत्मकथा के चारों खंडों का प्रकाशन 1934-1936 ई० के बीच हुआ था।

यह आत्मचरित अत्यंत परिष्कृत भाषा-शैली में लिखा गया है। यह अपूर्व कांति से मंडित हैं। इसे पढ़ते हुए पाठक इसकी भाषा-शैली के सामर्थ्य तथा निवेदन की पटुता के कारण मंत्रमुग्ध हो जाता है। आत्मचरित्र पढ़ते हुए श्री ना० वा० टिळक तथा लक्ष्मीबाई टिळक का व्यक्तित्व तथा जीवन-चित्र नेत्रों के सामने साकार हो जाता है। लेखिका ने कौटुंबिक जीवन का चित्रण अत्यंत तटस्थ दृष्टि से किया है। कहीं भी मोहाविष्ट हो अतिशयोक्तिपूर्ण कथन नहीं किया है। अपने पति ना० वा० टिळक के दोषों का उद्‌घाटन विनोदपूर्ण पद्धति से किया है। कहीं-कहीं लगता है कि इस आत्मचरित्र-लेखन का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना है।

नासिक में श्री ल० रा० पांगारकर के सभापतित्व में हुए विराट् समारोह में लक्ष्मीबाई टिळक को 'साहित्यलक्ष्मी' की उपाधि से विभूषित कर उनका अभिनंदन किया गया था।

स्याद्वाद *(सि०)*

उदार दृष्टिकोण का परिचायक यह सिद्धांत जैन-मतावलंबियों का अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसका सार यह है—संसार के प्रत्येक तत्त्व की हज़ारों-लाखों विशेषताएँ होती हैं और प्रत्येक दृष्टिकोण के हज़ारों पक्ष हो सकते हैं। उन समस्त विशेषताओं और पक्षों को समझना और जानना केवली (दे० केवलज्ञान) का ही काम है। सामान्य व्यक्ति किसी तत्व की केबल एक विशेषता को और किसी सिद्धांत के किसी एक पक्ष को समझ सकते हैं। शेष तत्त्व उसकी आँखों से ओझल रहते हैं। इस एकदेशीय ज्ञान को 'नय' की संज्ञा दी जाती है। सभी दार्शनिक, धार्मिक इत्यादि मतमतांतर इसी 'नय' का अंग हैं। इस तत्त्व को न समझने के कारण ही मतमतांतरों के झगड़े होते हैं। इस दिशा में छः अंधों द्वारा किसी हाथी को देखे जाने की कथा बहुत प्रसिद्ध है। पूँछ को स्पर्श करने वाला अंधा उसे रस्सी के समान, टाँग को स्पर्श करने वाला खंभे के समान समझता है और अपने ही ज्ञान को सत्य तथा दूसरे के ज्ञान को असत्य कहकर झगड़ने लगता है। उसी प्रकार का झगड़ा सभी मतमतांतरों में हुआ करता है। इसके लिए इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक मान्यता के साथ 'स्यात्' जोड़ दिया जाना चाहिए; अर्थात् यह कहना चाहिए कि कोई बात किसी विशेष दृष्टिकोण से ही सही है। उहाहरण के लिए 'कमरे में घड़ा है' इस वाक्य को विषय में समझा जाना चाहिए कि यह बात विशेष दृष्टिकोण से ही (समय-विशेष के लिए ही) सही है। स्याद्वाद' में सात प्रकार से स्यात् का प्रयोग किया जाता है, इसलिए इसे 'सप्तभंगीन्याय' कहा जाता है। वे सात वाक्य ये हैं—(1) किसी विशेष दृष्टिकोण से अमुक बात है (स्यादस्ति), (2) एक दृष्टिकोण से नहीं है (स्यान्नास्ति), (3) एक दृष्टिकोण से है भी और नहीं भी है। (स्यादस्ति च नास्ति च), (4) एक दृष्टिकोण से अवर्णनीय है (स्यात् अवक्तव्यम्), (5) एक दृष्टिकोण से है भी और अवर्णनीय भी है (स्यादस्तित्व च अवक्तव्यं च), (6) एक दृष्टिकोण से नहीं है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवर्णनीय है (स्यान्नास्ति च अवक्तव्यं च) (7) एक दृष्टिकोण से ऐसा है भी, नहीं भी है और अवर्णनीय भी है (स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च)। विरोधियों के प्रति इतना उदार और इतना समझौतापूर्ण दृष्टिकोण संभवतः और कहीं नहीं मिलता।

स्वच्छंदतावाद *(पारि०)*

स्वच्छंदतावाद अठारहवीं शती के अंत और उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में पश्चिम में प्रादुर्भूत प्रसिद्ध साहित्यिक, कलात्मक एवं दार्शनिक वाद और 'रोमांटिसिज़्म' नामक आंदोलन का हिंदी-पर्याय है। 'रोमांटिसिज़्म' का मूल शब्द 'रोमांटिक' पुरानी फ़्रेंच भाषा के 'रोमांज़' से निष्पन्न है जिसका प्रयोग उस समय लेटिन से इतर 'देसी' भाषाओं के घटियापन को उभारने के लिए किया जाता था—यद्यपि शास्त्रीय औपचारिकता की जकड़बंदी से मुक्त स्वच्छंदता का भाव उसमें निश्चय ही विद्यमान था। बाद में कोमलता, कल्पनाशीलता, भावुकता और वायवीयता आदि के लिए फ़्रेंच में 'रोमांटिक' शब्द का शब्द का व्यवहार होने लगा। अठारहवीं शती के मध्य तक योरोप की प्रायः प्रत्येक भाषा में कुछ परिवर्तन के साथ यह शब्द व्यापक रूप से प्रचलित हो चुका था। साहित्यिक विवेचना के क्षेत्र में आभिजात्यवाद (दे०) की विरोधी प्रवृत्ति के रूप में इसका सर्वप्रथम सार्थक प्रयोग जर्मन-साहित्यकार फ़्रीडरिक श्लेगल ने 1798 ई० में किया। फ़्रांस में इसके प्रचार का श्रेय मुख्य रूप से मैडम दि स्ताल को है। एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में स्वच्छंदतावाद का प्रमुख केंद्र इंग्लैंड बना।

स्वच्छंदतावाद वस्तुतः एक जीवन-दर्शन है जिसमें साहित्यिक, कलात्मक और सामाजिक रूढ़िवाद, जड़ शास्त्रीयता ओर समष्टिगत वस्तुनिष्ठता के विरुद्ध कल्पना-वैभव, वैयक्तिकता और अभिनव भावोन्मेष के विद्रोह के तत्त्व प्रमुख हैं। इसका जन्म ऐतिहासिक दृष्टि से 'नव्य-शास्त्रवाद' के तुरंत पश्चात् उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतएव उससे संबद्ध प्राचीन आदर्शों और पारंपरिक जीवन-दृष्टि से भिन्न स्वच्छंदता के मुक्त आयामों में उच्छ्वासपूर्ण भावुकता, रहस्योन्मुख सौंदर्यप्रियता, भावनात्मक आदर्शवाद, अतिशय संवेदनशीलता, अवसादपूर्ण मनःस्थिति, प्रकृति-मोह, अतीत-मोह, अंतर्मुखी दृष्टि आदि का उन्मेष इसके लिए स्वाभाविक ही था। इसमें 'मुक्ति' पर इतना ज़ोर था कि उसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा देना संभव नहीं है। फिर भी लेसिलस एबरक्रांबी के ये शब्द इसकी मूल प्रकृति का अच्छा विश्लेषण करते हैं: 'स्वच्छंदतावाद बाह्य अनुभूतियों से पलायन है, जिससे आंतरिक अनुभूतियों में रमा जा सके।' ल्यूकस के अनुसार 'स्वच्छंद साहित्य जीवन का वह स्वप्न-चित्र है जो समाज अथवा यथार्थ परिस्थितियों द्वारा दमित इच्छाओं को प्रश्रय और परितोष प्रदान करता है।

इंग्लैंड में स्वच्छंदतावाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मुख्यतः वर्ड्सवर्थ, शैले, कीट्स, बायरन, कॉलरिज और ब्लेक आदि के द्वारा हुई। वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य-भाषा-विषयक सिद्धांत और कॉलरिज ने कल्पना-सिद्धांत के प्रतिपादन द्वारा साहित्यिक मीमांसा के क्षेत्र में स्वच्छंदतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा की। वॉल्टर पेटर और ब्रैडले ने स्वच्छंदतावाद की कला-दृष्टि प्रस्तुत की। फ़्रांस में स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तन रूसो ने और व्यापक आंदोलनात्मक प्रचार मैडम दि स्ताल ने किया। विक्टर ह्यूगो के काव्य एवं नाटकों तथा वाल्टर स्कॉट से प्रभावित कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा भी फ़्रांसीसी स्वच्छंदतावाद का संवर्द्धन हुआ। जर्मनी में स्वच्छंदतावाद सर्जनात्मक साहित्य की अपेक्षा विवेचनात्मक साहित्य, मुख्यतः दर्शन के क्षेत्र में अधिक मुखर हुआ। साहित्यिक विवेचन की दृष्टि से फ़्रीडरिक श्लेगल और ए० डब्ल्यू० श्लेगल का योगदान प्रमुख है। दर्शन के क्षेत्र में जर्मन स्वच्छंदतावाद की उपलब्धि अत्यंत महत्वपूर्ण है। कांट और हीगेल के नाम इस संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं, यों नीत्शे का चिंतन भी स्वच्छंदतावाद से निश्चय ही प्रभावित था। थॉमसन, परसी, गेटे और और शिलर ने सर्जनात्मक साहित्य को समृद्ध किया। इटली और स्पेन भी इस आंदोलन से अछूते न रहे।

स्वच्छंदतावाद ने अनेक परवर्ती कलात्मक और साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया जिनमें प्रतीकवाद (दे०), अतियथार्थवाद, प्रकृतवाद (दे०) और अस्तित्ववाद (दे०) प्रमुख हैं। बर्गसाँ आदि चिंतकों पर भी स्वच्छदतावाद का प्रभाव असंदिग्ध है। बीसवीं शती के प्रारंभ के कुछ दशकों में आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य पर भी स्वच्छंदतावाद का व्यापक प्रभाव पड़ा जिसमें हिंदी की छायावादी (दे० छायावाद) कविता और बँगला के रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर एवं उनके सहयोगी कवियों की रचनाएँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। कथा-साहित्य के क्षेत्र में बँगला-उपन्यासकार शरच्चंद्र (दे०) चट्टोपाध्याय, स्वच्छंदतावाद के अग्रदूत बन गए। उनका प्रसिद्ध पात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देवदास' (दे०) रोमानी भावुकता का प्रतीक बन गया। शरच्चंद्र से प्रभावित साहित्य की एक पूरी पीढ़ी ने उच्छ्वासपूर्ण भावुकता और आत्मक्षयी अवसाद को अतिरंजित रूप में अपने साहित्य में व्यक्त किया। भारतीय साहित्यकारों की वर्तमान पीढ़ी ने इस 'शरच्चंद्री' दृष्टि के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

स्वदेशी कविता (अग्नि युग) *(बँ०प्र०)*

बंगाल में आधुनिक युग के सूत्रपात से ही राष्ट्रवादी साहित्य-रचना की दिशा में साहित्यकारों ने विशेष उत्साह दिखाया। स्वदेशी आंदोलन के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण और ऐक्य के लिए साहित्यकारों की रचनाएँ आग फैलाने लगीं। बँगला साहित्य के इतिहास में इसे 'अग्नि-युग' कहा गया। इस भावधारा का सूत्रपात करने वाले थे राममोहन राय (दे०)। राममोहन राय के उपरांत 'यंग बेंगाल' युग में तरुण अँग्रेज़ी शिक्षक डेविड हेयर, डिरोजी एवं उनके छात्रों ने भारत की दुर्दशा एवं राष्ट्रीय एकता के संबंध में सक्रिय होकर काम किया। 1857 ई० के सिपाही-विद्रोह एवं बंगाल के नील-विद्रोह के फलस्वरूप भारतवासियों के हृदय में जातीय बोध की भावना क्रमशः संघबद्ध रूप धारण करती गई और 1867 ई० में बंगाल में 'हिंदूमेला' की प्रतिष्ठा से इस भावना को विशेष बल प्राप्त हुआ। इस मेले का लक्ष्य था भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं सर्व-भारतीय ऐक्य-प्रतिष्ठा। इस मेले के साथ उस समय के साहित्यिक राजनारायण बसु (दे०), नवगोपाल मित्र, मनमोहन बसु (दे०), सत्येंद्रनाथ ठाकुर सक्रिय रूप से जुड़े थे।

हिंदूमेला' के तत्त्वावधान में ज्योतिरिंद्रनाथ ने 1876 ई० में 'जातीय संगीत' के नाम से एक पुस्तक का संपादन किया जिसमें द्विजेंद्रलाल (दे०), सत्येंद्रनाथ, ज्योतिरिंद्रनाथ, गोविंदचंद्र राय की स्वदेशी कविताएँ संकलित हुईं। इस भावधारा से प्रभावित नवीनचंद्र (दे० सेन), हेमचंद्र, बंकिमचंद्र (दे० चट्टोपाध्याय), रमेशचंद्र (दे० दत्त) ने अपनी रचनाओं में तीव्र स्वदेश-प्रेम और जातीयतावादी भावधारा की अभिव्यक्ति की। 1905 ई० में 'बंगभंग' बिल पास हो जाने पर बंगाली जन-मानस में तीव्र विद्रोह की भावना जाग उठी और 'स्वदेशी आंदोलन' का सूत्रपात हुआ जिसे वाणी मिली उस समय की साप्ताहिक पत्रिका 'युगांतर' में। बंग-भंग के विरुद्ध अग्निविप्लव-दाह से उस समय का सारा बँगला-साहित्य भरा पड़ा है जिनमें भूदेव मुखोपाध्याय, शरत्चंद्र (दे०), रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर), नज़रुल इसलाम (दे०) उल्लेखनीय हैं।

√**स्वप्नदीप** *(उ०कृ०)*

श्रीमती बिद्युत्प्रभादेबी (दे०) की यह उल्लेखनीय काव्य-कृति है।

नारी-हृदय न जाने कितनी जानी-अनजानी स्वप्निल भावनाओं, अधखुलीं, अधमुँदी इच्छाओं की क्रीड़ा-भूमि है; यहीं जीवनदायिनी कामनाओं का स्नेह-नीड़ है। इस काव्य में नारी-जीवन की मधुर-मदिर सजल-कथा अपनी सरलता व तरलता में हमें मुग्ध कर लेती हैं। चंचल बालिका से विरह-विदग्धा मुग्धा-वधू तक अनेक मनोरम-करुण छवियाँ तरंगायित दिखाई पड़ती हैं। ललित-मधुर भाषा, भावभीनी-सरस-शैली, मृदुमंथर छंद ने इन तरल रेखा-चित्रों में एक सजल कांति ला दी है। छोटा-सा यह जीवन दुकूल इन्हीं नन्हे सुख-दुःख के हीरे-मोती से जगमगा रहा है—कितना प्राण-भरा, कितना सार्थक। ममता की हल्की हिलोर से जब वह नीलगगन के नीचे लहरा उठता है, तब किसके प्राण झूम नहीं उठते? उड़िया जातीय जीवन, उड़िया संस्कृति का यह अक्षुण्ण शब्दचित्र है।

शैशव की चंचलता और भोलापन, विवाह-वेला की व्यथा, संशय, भय, वधू-जीवन की सुकुमार अभिलाषाएँ, प्रवासी-जीवन की विवश आहें, सभी इस काव्य के अलंकरण हैं।

स्वप्न-प्रयाण *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

हरिश्चंद्र मर (समय—1906 से 1950 ई०)-विरचित इस काव्य-संग्रह के माध्यम से गुजराती काव्य में पहली वार पश्चिम के कवि और काव्यविचारकों—जैसे टी० एस० इलियट, वालेरी, एजरा पाउंड इत्यादि—का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ और काव्य की एक नयी धारा प्रवाहित हुई।

स्वप्न-भंग *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1934 ई०]

यह गणेश गगै (दे०) का द्वितीय कविता-संग्रह है। किसी नारी ने इनके प्रेम को अस्वीकार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। अतएव पीड़ा ने इन्हें उच्चस्तर का प्रेमी कवि बना दिया था। इनकी कविताओं में प्रेम की गहन व्यथा है।

स्वप्नवासवदत्तम् *(सं० क०)* [समय—ईसा की तीसरी शती]

भास (दे०) की नाट्यकला की पूर्ण अभिव्यक्ति 'स्वप्नवासवदत्तम्' में होती है। यह उनके शिल्प-कौशल का चूडांत निदर्शन है।

इस नाटक में 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' (दे०) के वृत्त का उत्तरार्ध भाग प्रदर्शित किया गया है। राजा उदयन (दे०) विरोधियों को परास्त करना चाहता है। उसके लिए मगध के राजा दर्शक की सहायता लेना आवश्यक है। अतः यौगंधरायण (दे०) वासवदत्ता (दे०) के जल मरने की बात फैलाकर वासवदत्ता को अवंतिका के रूप में दर्शक की बहन पद्मावती के पास धरोहर रख देता है। बाद में उदयन और पद्मावती का विवाह हो जाता है। समुद्रगृह में पद्मावती के बिस्तर पर सोता हुआ उदयन वासवदत्ता को स्वप्न में देखता है और उससे मिलने के लिए आतुर हो उठता है। अंत में वत्स-विजय के अनंतर वासवदत्ता उदयन के सामने लाई जाती है और दोनों का पुर्नमिलन होता है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' भास की नाट्यकला० के विकास की चरम परणति है। इसमें महाकवि की लेखनी अपने प्रौढ़ रूप में हमारे सामने आती है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तो यह नाटक बेजोड़ है। प्रेम का इतना शुद्ध एवं निष्कपट स्वरूप इस नाटक में प्रदर्शित किया गया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी यह नाटक अत्यंत उच्चकोटि का ठहरता है। नाटकीय संविधान तथा मंचीय गुणों की दृष्टि से यह नाटक परवर्ती नाटककारों के लिए आदर्श बन गया है।

स्वयंभू *(अप० ले०)* [रचना-काल—आठवीं-नौवीं शती ई०]

स्वयंभू अद्यावधि ज्ञात अपभ्रंश-कवियों में से सबसे प्राचीन हैं। इनके पिता का नाम मारुतदेव और माता का नाम पद्मिनी था। इनके पिता कवि थे और पुत्र त्रिभुवन भी। इनकी दो पत्नियाँ थीं और कुछ विद्वान तीसरी पत्नी का भी अनुमान करते हैं।

इनका शरीर सुंदर नहीं था, नाक चपटी और दाँत विरल-विरल थे। अपने विषय में ऐसी सूचना देने से प्रतीत होता है कि ये स्पष्टवादी थे।

इनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं—'पउमचरिउ' (दे०) 'रिट्ठणेमिचरिउ' (दे०) और 'स्वयंभूछंदस्'। अनुमान है कि इन्होंने तीन और रचनाएँ लिखी थीं—'सुद्धयचरिउ', 'पंचमीचरिउ' और 'स्वयंभूव्याकरण'। ये तीनों ग्रंथ अप्राप्य हैं। स्वयंभू ने अपने समय और जन्म-स्थान के विषय में कोई सूचना नहीं दी। विद्वानों का अनुमान है कि कर्नाटक इनकी काव्य-साधना की स्थली थी। उत्तर भारत में जन्म लेकर ये दक्षिण में जा बसे थे।

त्रिभुवन ने स्वयंभू को 'छंदचूड़ामणि', 'कविराज', 'चक्रवर्ती', आदि उपाधियों से संबोधित किया है। स्वयंभू के ग्रंथों और इनकी ख्याति से सिद्ध होता है कि ये विद्वान् कवि थे। अपनी प्रतिभा और कवित्व-शक्ति के कारण इन्होंने उपरिनिर्दिष्ट उपाधियाँ प्राप्त की थीं। 'रिट्ठणेमि चरिउ' (1.2) में उल्लिखित कवियों एवं आलंकारिकों के निर्देशों से ज्ञात होता है कि ये छंदःशास्त्र, अलंकारशास्त्र, नाट्यशास्त्र, संगीत, व्याकरण, काव्य, नाटकादि से पूर्ण अभिज्ञ थे। अपने 'स्वयंभूछंदस्' में इन्होंने लगभग 60 प्राकृत और अपभ्रंश के उद्धरण दिए हैं जिससे सिद्ध होता है कि वे इन दोनों भाषाओं के पंडित थे। यही कारण है कि इनके परवर्ती कवियों ने इनका अति आदर के साथ स्मरण किया है। नम्रतावश स्वयंभू ने अपने को कालिदास (दे०) और बाण (दे०) प्रभृति संस्कृत-कवियों से अनभिज्ञ कहा हो किंतु कवि निस्संदेह संस्कृत की काव्य-परंपरा से प्रभावित है। 'संस्कृत की जलविहार, वन-वर्णन, सूर्योदय, सूर्यास्त, नदी आदि के वर्णन की रूढ़िगत शैली का स्पष्ट प्रतिबिंब स्वयंभू में मिलता है।'

स्वर्णकिरण *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

सुमित्रानंदन पंत (दे०) के इस काव्य-संग्रह में भी 'स्वर्णधूलि' के समान आत्मवाद और भूतवाद के समन्वय का स्वर प्रधान है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इस संग्रह की रचनाएँ दार्शनिक, प्रकृतिपरक, प्रशस्तिमूलक तथा व्यंग्यात्मक हैं। दार्शनिक रचनाओं में 'श्रीअरविंद-दर्शन' और प्रकृतिपरक रचनाओं में 'हिमाद्रि' सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रशस्तिमूलक रचनाओं में गांधी-नेहरू जैसे राष्ट्र-नेताओं का स्तवन है। 'कौवे के प्रति' शीर्षक रचना व्यंग्यात्मक है। स्वरूप की दृष्टि से स्वर्णोदय' शीर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना अपनी गुरुता के कारण पृथक् स्थान रखती है। मानव की जीवन-यात्रा के गंभीर विवेचन ने उसे महाकाव्य-गरिमा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त 'अशोकवन', 'हिमाद्रि' आदि रचनाएँ भी गरिमामयी शैली से मंडित हैं। इन रचनाओं में पंतजी की विकासशील कला अपनी चरम प्रौढ़ि पर पहुँच गई है। अप्रस्तुत-सामग्री की समृद्धि, प्रयोग-कौशल की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की परिपक्वता में इस प्रौढ़ि के दर्शन किए जा सकते हैं।

स्वर्णकुमारी देवी *(बँ० ले०)*

प्रथम प्रसिद्ध महिला-उपन्यासकार के रूप में स्वर्णकुमारी देवी ने मुख्य रूप से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इस दिशा में वे रमेशचंद्र दत्त (दे०) से अनुप्रेरित हैं। 'दीप निर्वाण' (दे०) प्रारंभिक रचना है परंतु 'मिबार राजविद्रोह' उनकी सफल एवं सशक्त रचना है। यहाँ लेखिका ने ऐतिहासिक प्रसंगों की पृष्ठभूमि में मानव-हृदय का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। स्वर्णकुमारी देवी के सामाजिक एवं पारिवारिक उपन्यासों में 'काहाके' नारी-जीवन के संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। विचारों की दृष्टि से लेखिका का मत परंपरागत विधि-निषेधों का समर्थक तथा प्राचीन आदर्शों का पोषक है। यह मताग्रह सभी उपन्यासों में है।

स्वर्णधूलि *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

वैयक्तिक धरातल पर रुग्णता और वैश्विक धरातल पर महायुद्ध की विभीषिका ने सुमित्रानंदन पंत (दे०) को भौतिकवाद के प्रति अनाश्वस्त कर दिया। फलतः वे 'स्वर्णधूलि' में भूतवाद और आत्मवाद के समन्वय की तीव्र आकांक्षा से प्रेरित दिखाई देते हैं। विषय चाहे प्राकृतिक हो या सामाजिक-राजनीतिक, उनकी परिष्कृत आध्यात्मिक चेतना सर्वत्र अनुस्यूत है। इस चेतना के विकास में श्रीअरविंद के दर्शन का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट हैं। कहीं आर्षवाणी के उद्धरण या अनुवाद है, कहीं लक्ष्मण जैसे पात्र के प्रति ममत्व का भाव है और कहीं सांस्कृतिक उपमानों को ग्रहण किया गया है। कलात्मक दृष्टि से इस संग्रह की अनेक कविताएँ शुद्ध गीतिकाव्य के सुंदर उदाहरण हैं। परिष्कृत आत्मा के सहज द्रवण से ओतप्रोत इन गीतियों में एक शांत स्निग्धता मिलती है।

स्वर्णलता *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1874 ई०]

बंकिम (दे०) बाबू के समसामयिक तारकनाथ गंगोपाध्याय (दे०) ने पारिवारिक उपन्यासों में मध्यवित्त का चित्रांकन कर उस युग में ख्याति अर्जित की थी। अनाडंबर आंतरिकता के आश्रय से उन्होंने 'स्वर्णलता' की रचना कर सामाजिक उपन्यास को एक नयी दिशा दी। चरित्र को किसी एक व्यावहारिक लक्षण के द्वारा चिह्नित कर चरित्र-सृष्टि करने में तारकनाथ की दक्षता उल्लेखनीय है।

'स्वर्णलता' में संयुक्त परिवार की विभिन्न समस्याओं का गंभीर चित्रण हुआ है। किस प्रकार तुच्छ कारणों से भाइयों में लड़ाई हो जाती है एवं इसके पीछे स्त्रियों की क्या भूमिका रहती है—लेखक ने इसका उल्लेख करते हुए गोपाल एवं स्वर्णलता के प्रेम और विवाह को कथारूप प्रदान किया है। उपन्यास के दो पात्रों—गदाधर एवं नीलकमल—ने कथा में हास्यरस का संचार किया है। कथावस्तु के मूलरूप से तीन अंग हैं: नीलकमल का जीवन, शशिभूषण-विधुभूषण का द्वंद्व एवं स्वर्णलता का विवाह। नीलकमल का जीवन बंगाली-मन की पथिकवृत्ति का परिचायक है। शशि एवं विधु का द्वंद्व यथार्थ के धरातल पर चित्रित है एवं स्वर्णलता का विवीह रोमांसमूलक मनोभाव का प्रभाव है। उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में बंगाली मानस में यथार्थ दुःखोपलब्धि एवं दैवनिर्भरता का जो वैपरीत्य विद्यमान था, स्वर्णलता' उसी का सार्थक प्रतिफलन है।

स्वाति तिरुलाल, महाराजा *(मल० ले०)* [जन्म—1813 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

ये देशी राज्य त्रावनकोर राजा थे। त्रावनकोर राज्य के शासकों में काव्य-नायक सर्वकला-संपन्न, प्रतिभाशाली कई भाषाओं के प्रकांड पंडित, संगीत और साहित्य के सच्चे उपासक आदि के रूप में सुख्यात हैं। वे कवियों तथा शिल्पियों के उदार आश्रयदाता थे। वे कलाविज्ञ गुणी भी थे और गुणग्राहक भी। 'राघव चरितम् काव्यम्', 'कुमारसंभवम् चंपु', 'मुद्राराक्षस छाया' आदि उनके उत्कृष्ट ग्रंथ हैं। हिंदी में उन्होंने कृष्ण पर कई गीत रचे हैं जो मीरा (दे०) और सूरदास (दे०) के प्रसिद्ध पदों की परिपाटी में आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

रणजित रामचंद्र देसाई (दे०)-कृत यह उपन्यास उनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास है जो थोरले (बड़े) माधवराव पेशवा के जीवन पर आधारित है तथा जिसके प्रणयन के लिए लेखक ने अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ तथा बखरी-साहित्य का अध्ययन किया। अत: मराठी उपन्यास-साहित्य में यह इतिहास से सर्वाधिक प्रामाणिक कहा जाने वाला ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है। माधवाराव पेशवा केवल 11 वर्ष तक पेशवा रहे; 28 वर्ष में उनकी राजयक्ष्मा से अकाल मृत्यु हो गई। परंतु इस अल्पकाल में भी उन्होंने राज्य-निष्ठा, प्रजा-वत्सलता, शौर्य, पराक्रम, अनुशासन-प्रियता, न्याय-दृष्टि और परिश्रम से मराठा-इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया। उपन्यासकार ने उनके इन्हीं चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालते हुए उनके जीवन-काल की अनेक घटनाओं—राघोबा दादा तथा भोंसले से संघर्ष, हैदर, निज़ाम तथा कर्नाटक के युद्ध, अँग्रेज़ी दूत मार्टिन से भेंट आदि को उपन्यास के कथानक में कलापूर्ण ढंग से गुंफित किया है। माधवराव का कृतित्व—टीपू का पराभव, निज़ाम से मित्रता, दिल्लीपति को सिंहासन पर बैठाने में सहायता, उत्तर में विजय पाकर पानीपत की पराजय का कलंक धोना आदि—उपन्यास का केंद्रबिंदु है। इन राजनीतिक घटनाओं के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति का चित्रण कर लेखक ने उस युग को साकार कर दिया है। ऐतिहासिक उपन्यासकार की सफलता का रहस्य है युग-विशेष के वातावरण को इस तन्मयता एवं निष्ठा से प्रस्तुत करना कि पाठक उस युग से तादात्म्य स्थापित कर सके, उससे एकरस हो सके। इस दृष्टि से भी यह उपन्यास पूर्ण सफल है। पेशवा और निज़ाम के दरबार, महलों की व्यवस्था, मंदिरों में होने वाली पूजा-अर्चना, बाज़ार-हाट, वेशभूषा, युद्ध, संगीत-सभा, प्रीति-भोज, सती-प्रथा आदि के चित्र उस युग को पाठक के सम्मुख साकार कर देते हैं। काव्यमय प्रकृति-चित्रों, सजीव संवादों एवं प्रसंगानुरूप भाषा-शैली ने उपन्यास को कलात्मक दृष्टि से भी महान् रचना बना दिया है।

स्वामी *(म० पा०)*

डा० श्री० व्यं० केतकर (दे०) के उपन्यास 'आशावादी' के इस पात्र का वास्तविक नाम है देवीदास पंत जो विदेश से अपनी पत्नी की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर संन्यास धारण कर लेता है और अपना नाम बदलकर स्वामी ब्रह्मगिरि रख लेता है। भारतवासियों में आशा की किरण उत्पन्न करने के लिए वह पुनः भारत आता है और अपने भाषणों से लोगों को उत्कर्ष की प्रेरणा देता है। उसके समाजशास्त्रीय विचार डॉ० केतकर के अन्य पात्रों के समान ही क्रांतिकारी हैं। वस्तुतः यह पात्र मराठी उपन्यासों में पाये जाने वाले उन स्वामियों की परंपरा में है जो हरिनारायण आपटे (दे०) के श्रीधर स्वामी से आरंभ होती है। ये स्वामी एक ओर हिंदुओं के सामाजिक संगठन में प्रवृत्त होते हैं और दूसरी ओर देशवासियों में राजनीतिक चेतना जागृत करने का प्रयास करते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह पात्र-रचना सफल नहीं है। लेखक ने उसे केवल आशावाद की तरंगों में मग्न, काम-भावना से पीड़ित होते हुए भी पाप के गढ़े में गिरने से बचते हुए दिखाया है। उसके अद्भुत सनकी विचारों और भटकते मन का भी परिचय दिया गया है। पर कुल मिलाकर ब्रह्मगिरि का चित्र अपूर्ण लगता है।

हंस *(हिं० पत्र०)*

अकबर इलाहाबादी की मज़ाक में कही बात 'जब तोप मुकाबिल हो अख़बार निकालो' को गंभीरता से लेकर मुंशी प्रेमचंद (दे०) ने फरवरी 1980 ई० में 'हंस' नामक हिंदी-रिसाला निकालने का विचार किया और गांधी जी की डांडी-यात्रा से पंद्रह दिन पूर्व ही 'हंस' का मार्च-अंक लेकर राजनीतिक युद्धक्षेत्र में आ डटे। उन का उद्देश्य था 64 पृष्ठों का एक ऐसा पत्र निकालना जिसका 'ज़्यादातर अफ़सानों से ताल्लुक' हो। 'हंस' की नीति की घोषणा करते हुए कहा गया था—'आज़ादी की जंग में योग देने चला है।' पत्र निकालना उन दिनों दर्द-सर और हानि का काम था, यह जानते हुए भीं मुंशी प्रेमचंद्र ने यह 'हिमाक़त की'। वस्तुतः जीवन-भर 'प्रेस' की तरह 'हंस' भी उनके लिए सिर-दर्द बना रहा। पाँचवाँ अंक भी न निकला था कि 'प्रेस' से ज़मानत माँगी गई और प्रेमचंद को पत्र बंद करने के विषय में सोचना पड़ा पर उनकी निष्ठा के कारण वह चलता रहा। 1932 ई० में स्वयं 'हंस' से ज़मानत माँगी गई; कई हज़ार का घाटा उठाते हुए, बार-बार ज़मानत भरते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच-बीच में बंद करते हुए भी प्रेमचंद उसे निकालते रहे, भयंकर में रुग्णावस्था में भी उसके लिए संपादकीय लेख लिखते रहे। गांधी जी के परामर्श से उन्होंने उसे कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (दे०) को सौंपने जा विचार किया और 'हंस' भारतीय साहित्य-परिषद् के मुखपत्र के रूप में निकलने लगा है।

प्रेमचंद के समय में 'हंस' में राजनीतिक विषयों—सरकारी दमन, सरकार की विच्छेद-नीति, साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा जनपद पर प्रहार, चीन पर जापानी साम्राज्यवाद का आक्रमण, हिंदू-मुसलमान-मैत्री आदि पर लेख और टिप्पणियाँ निकलती रहीं। आरंभ से ही 'हंस' को 'प्रसाद' (दे०) जैसे महान कवि, उषादेवी मित्रा जैसी बँगला-भाषी लेखिका आदि का सहयोग मिला, तो जैनेंद्रकुमार (दे०) जैसे उदीयमान लेखकों को प्रोत्साहन देने का श्रेय भी उसे है। 'हंस' के आत्मकथांक में महापुरुषों के स्थान पर साधारण जनों—साहित्यकारों और समाज-सेवकों की आत्मकथाएँ देकर उन्होंने अपार साहस और जन-प्रेम का परिचय दिया। हिंदी-उर्दू को पास लाने की दिशा में भी 'हंस' कार्य करता रहा; पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उसका योगदान महत्वपूर्ण है—एक ओर उसने उन संपादकों की आलोचना की जो कला के नाम पर अर्धनग्न चित्र देकर, भंडाफोड़ की धमकी देकर, चौंकाने वाली चीज़ें छापकर रक़म कमाते थे और दूसरी ओर पत्र-पत्रिकाओं के मालिकों की निंदा कर संपादकों के प्रति सहानुभूति जगाई। दिसंबर 1934 ई० के 'हंस' में लेखक संघ पर टिप्पणी भी उनकी साहित्यिक गतिविधियों में रुचि की परिचायक है। हिंदी की प्रगति में 'हंस' का योगदान महत्वपूर्ण है। 1933 ई० में विशेषांकों की जो परंपरा 'काशी विशेषांक' से आरंभ हुई, उसे बाद के विशेषांकों—प्रेमचंद-स्मृति-अंक, एकांकी-नाटक-विशेषांक, रेखाचित्र-विशेषांक, कहानी-विशेषांक, प्रगति-विशेषांक, शांति-विशेषांक, आदि ने समृद्ध बनाया। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद उसके संपादन का भार जैनेंद्र एवं शिवरानी देवी ने सँभाला। उनके उपरांत शिवदानसिंह चौहान (दे०), श्रीपत राय, अमृतराय, नरोत्तम नागर उसके संपादक हुए।

'हंस' के इतिहास में उसका 1959 ई० का वृहत् संकलन उल्लेखनीय है जिसमें बालकृष्णराव और अमृतराय के संपादकत्व में आधुनिक साहित्य और उससे संबंधित नवीन मूल्यों पर विचार किया गया।

हंसदमयंति (क० कृ०)

कर्नाटक के अत्यंत ख्याति-प्राप्त आधुनिक कवि पु० ति० न० (डा० पु० ति० नरसिंहाचार्य—दे०) की कृति 'हंसदमयंति मत्तु इतर रूपकगळु' (हंसदमयंती तथा अन्य रूपक) 1966 ई० में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कन्नड की एक श्रेष्ठ रचना है। पु० ति० न० चिंतक, दार्शनिक, गीतिकार एवं भावुक कवि हैं। वे प्राचीन वस्तु को नवीन रीति में अपने चिंतन के रसलेप के साथ प्रस्तुत करने में सर्वथा समर्थ हैं। प्रस्तुत रचना 'हंसदमयंति मत्तु इतर रूपकगळु' में उन्होंने ऐसा प्रयोग किया है कि साहित्यकार तथा संगीतकार दोनों की दृष्टि सहसा उस पर स्थिर हो जाती हैं। उसमें संगीत और साहित्य का मणिकांचन संयोग हुआ है। उनकी कृति में गीतों के लिए जो स्वर-संयोजना दी गई है एवं कानड़ा, बेगड़े, तोड़ी आदि राग-रागिनियों की जो स्वतंत्र कल्पना की गई है, वह संगीत में उनकी विशेष अभिरुचि और परिणति का ही प्रमाण है।

'हंसदमयंति' में आठ रूपकों का संकलन है। उनमें 'हंसदमयंति' और 'हरिणामिसरण' को छोड़कर शेष रूपक आकार की दृष्टि से छोटे हैं। 'हंसदमयंति' में दमयंती के पूर्व-राग का बड़ा भव्य और मृदुल चित्र प्राप्त होता है। कवि की कोमल भावनाओं का वह आधान है। 'रामोदयम्' और 'सीता-परिणयम्' रूपक 'रामायण' (दे०) की कथा पर ही आधृत हैं। 'वसंत-चंदन', 'वर्ष-हर्ष' और 'शरद्विलास' कवि के प्रकृति-प्रेम के सूचक हैं। वे ऋतु-गीतरूपक हैं जिनमें कवि का राष्ट्र-प्रेम दिव्य रूप में प्रकट हुआ है। 'दीपावली' के उल्लास-पूर्ण वातावरण का चित्रण 'दीपलक्ष्मी' रूपक में प्राप्त होता है। उक्त रूपकों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कवि में पाठकों (अथवा दर्शकों) को मंत्रमुग्ध करने की शक्ति है। उनकी शैली में माधुर्य, कोमलता और प्रभावशीलता के गुण विद्यमान हैं।

हकीकतराय दी वार (पं० कृ०) [रचना-काल—1792 ई०]

अगरा कवि द्वारा रची गई इस पद्यबद्ध रचना में हकीकतराय के बलिदान की कथा कही गई है। इसमें कुल 213 पद हैं। प्रत्येक पद चार पंक्तियों का है। वीर रस के चार भेदों में से धर्मवीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्वाह इस कृति में सुंदर ढंग से हुआ है। ऐतिहासिक घटना को 'वार' (दे०) नामक काव्य-रूप में बाँधा गया है। रचना हकीकत के हृदय की दृढ़ता के वर्णन में इतनी प्रभावशालिनी है कि पाठक अनायास प्रभावित हो जाता है। भाषा में पंजाबी शब्दों का प्रयोग प्रधान है। खड़ी बोली—और उर्दू के शब्दों का भी—प्रयोग कदाचित् ही किया गया है। इसे पंजावी साहित्य में ठेठ पंजाबी की कृति माना जाता है। वार साहित्य में यह प्रथम कृति मानी जाती है। संगीतात्मकता इसका प्रधान गुण है।

हज्व *(उर्दू० पारि०)*

'हज्व' 'क़सीदा' का विलोम शब्द है। 'क़सीदा' (दे०) में तो किसी शासक या आश्रयदाता की प्रशंसा की जाती है किंतु हज्व में किसी व्यक्ति, शासन-पद्धति, परिस्थिति-विशेष अथवा वस्तु-विशेष की निंदा रहती है। मीर तक़ी 'मीर' (दे०) ने अपने घर की हज्व बहुत अच्छी कही है। 'मसहफ़ी' ने खटमलों की हज्व बहुत-खूब कही है।

हडप, वि० वा० *(म० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक हडप का कृतित्व विपुल भी है और वैविध्य-पूर्ण भी। ऐतिहासिक उपन्यासमाला तथा अनेक सामाजिक उपन्यासों से इनके विस्तारपूर्ण लेखन-कार्य का सहज ही अनुमान होता है। पर संस्था की दृष्टि से विपुल होते हुए भी स्तर की दृष्टि से इनका कृतित्व महान नहीं है। स्वधर्माभिमान एवं स्वदेशाभिमान जागृत करने के उद्देश्य से रचित ऐतिहासिक उपन्यासों को यदि काल-विसंगति, अस्वाभाविक कल्पना, कृत्रिम भाषण, अद्‌भुत रोमांचकारी प्रसंगों की योजना ने विकृत बना दिया है, तो सामाजिक उपन्यास समाज के कुकृत्यों—पतित विधवा, प्रवंचिता युवती, लंपट पुरुष के व्यभिचार-विलास आदि का वर्णन कर सनातन मूल्यों की रक्षा पर बल देने के कारण कलात्मक स्तर से गिर गए हैं। उनमें जीवन-विषयक जिज्ञासा की अपेक्षा मनोविनोद पर दृष्टि अधिक है। इधर के राजनीतिक उपन्यासों में लेखक ने साम्यवादी दृष्टि अपनाते हुए वर्गसंघर्ष और अर्थ के समविभाजन की बात कही है और साहूकारों के अत्याचार और किसानों की सहनशीलता का द्रावक वर्णन किया है। उपन्यास-कला की दृष्टि से ये रचनाएँ भी दोषपूर्ण हैं—उनका कथानक वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक है तथा संवाद राजनीतिक चर्चा से बोझिल हैं। भाषा भी स्वाभाविक न होकर अलंकृत है। इनको केवल एक बात का श्रेय दिया जा सकता है और वह यह कि इन्होंने मराठी कथा-साहित्य में यथार्थवादिता और सामाजिक प्रवृत्ति का उन्मेष किया है। प्रमुख रचनाएँ—'झांकली मूठ', 'वहकलेली तरुणी', 'इष्काचा प्याला', 'मस्तरीण काकू', 'विभावरी', 'दुलारी' आदि सामाजिक उपन्यास; 'आजचा प्रश्न', 'गोदाराणी' आदि साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यास; तथा 'भारतमाते ऊठ' और 'भारतमातेची हांक' नामक ऐतिहासिक उपन्यास।

हदिबदेय धर्म *(क० कृ०)*

'हदिबदेय धर्म' (पतिव्रत-धर्म) की कवयित्री होन्नम्मा (दे०) का कन्नड कवयित्रियों में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने 'हदिबदेय धर्म' जैसे काव्य का प्रणयन कर कन्नड-साहित्य को नया विषय दिया है। उनके काव्य में कथा नहीं, नीति का प्राधान्य है। रामायण (दे०), महाभारत (दे०), मनुस्मृति आदि ग्रंथों में कथित पातिव्रत-धर्म का प्रतिपादन करना ही इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है। इसमें कई छोटी-छोटी कथाएँ विषय-प्रतिपादन के संदर्भ में बताई गई हैं। उनमें सरसता है, आकर्षण है। उनकी अभिव्यक्ति में मार्मिकता है और शैली स्तुत्य प्रभाव है। स्त्री के विषय में उनका कथन बड़ा सत्य और मार्मिक है। उदाहरणार्थ, "हम लोगों को जन्म देने वाली माँ क्या स्त्री नहीं है? स्त्री ने ही सबका पालन-पोषण नहीं किया है? 'स्त्री', 'स्त्री' ऐसा कहकर स्त्री को नीची दृष्टि से क्यों देखते हैं? आँखों के होते हुए भी ये अंधे हैं!" यह कितना कठोर सत्य है। ठेठ कन्नड की काव्यमय शैली में सांगत्य (दे०) छंद में लिखित उनके ग्रंथ में अनुप्रासादि अलंकारों का सहज रूप प्रयोग हुआ है। उनका ग्रंथ निश्चय ही एक सत्काव्य है।

हनुमान नाटक *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1623 ई०]

यह हृदयराम भल्ला (दे०) द्वारा विरचित पंजाबी साहित्य का प्रसिद्ध नाटक है। इसका आधार-ग्रंथ संस्कृत भाषा का 'हनुमन्नाटक' है। पंजावी की इस कृति का वास्तविक नाम 'राम गीत' है। ग्रंथकार की यह उक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण है—

संवत विक्रम नृपति सहस षट सत असीह पर।
चैत्र - चाँदनी दूज छत्र जहाँगीर सुभट पर ॥

कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कहीं-कहीं संस्कृत 'हनुमन्नाटक' के कई पदों का अविकल अनुवाद किया गया है, कहीं छायानुवाद है और कहीं-कहीं एक श्लोक के लिए चार-पाँच कवित्त-सवैयों का प्रयोग किया गया है। कथावस्तु, छंद, रस एवं अलंकारादि की दृष्टि से कवि-प्रतिभा का कौशल यहाँ द्रष्टव्य है। पुत्रस्नेही राजा दशरथ, वीर रसमय राम-लक्ष्मण एवं मेघनाद तथा उद्धत रावण का चरित्र-चित्रण सुंदर है। कृति की भाषा संस्कृत एवं तद्भव शब्दों से युक्त ब्रज है। पंजाबी भाषा के शब्द कम ही प्रयुक्त हुए हैं।

हनुमंतरावु, धनिकोंडा *(ते० ले०)*

ये तेलुगु के सफल कहानीकारों में से हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवाद एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रधानता पाई जाती है। अतः स्त्री एवं पुरुष के यौन-संबंधों का स्वच्छंद एवं मुक्त वर्णन इन्होंने अपनी कहानियों में किया है। समाज में व्याप्त यौन-संबंधी रहस्यात्मकता और हेय भावना को हटाकर उसके संबंध में स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की दिशा में ये यत्नशील रहे हैं।

हनुमच्छास्त्री, इंद्रकंटि *(ते० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इंद्रकंटि हनुमच्छास्त्री का जन्म विशाखपट्टनम् ज़िले के माड्गुल नामक ग्राम में हुआ। आंध्र विश्वविद्यालय से उभयभाषाप्रवीण नामक प्राच्य परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। कई वर्ष रामचंद्रपुरमु हाईस्कूल में आंध्रभाषा के अध्यापक रहे। आजकल नेल्लूर ज़िले के कावलि नामक नगर में जवाहर भारती नामक विद्यालय में तेलुगु के प्राध्यापक हैं। तेलुगु तथा संस्कृत के जाने-माने पंडितों में से हैं।

इनकी प्रतिभा द्विमुखी है। स्वयं कुशल कवि के रूप में ये विख्यात हैं। आधुनिक कविता तथा संस्कृत-काव्यों के मर्मज्ञ समालोचक के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त है। इनकी काव्यकृतियों में 'दक्षाराममु' तथा 'तेलुगु-वीणा' उल्लेखनीय हैं। 'दक्षाराममु' की विशेषता यह है कि आधुनिक काव्यशैली में दक्षाराम की प्राचीन यशोगरिमा का अभिवर्णन हुआ है। इनका स्थान कहानीकारों में भी है। 'हनुमच्छास्त्रीकथलु' एक अच्छा कहानी-संग्रह है।

हनुमन्नाटक *(सं० कृ०)*

'हनुमन्नाटक' या 'महानाटक' संस्कृत-नाट्य-साहित्य की एक विशिष्ट रचना है। इसके लेखक के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग इसे हनुमान की कृति मानते हैं। डॉ० सुशीलकुमार डे इसके निर्माता की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि यह केवल वर्णनात्मक है तथा अनेक पूर्ववर्ती नाटककारों के पद्यों का संग्रह मात्र है।

इसके दो पाठ उपलब्ध हैं—पहला पश्चिम भारतीय पाठ जिसका संकलन दामोदर मिश्र ने किया है और दूसरा पूर्वभारतीय या बंगाली पाठ जिसके संकलन-कर्त्ता मधुसूदन मिश्र हैं। पहले का शीर्षक 'हनुमन्नाटक' है जिसमें चौदह अंक तथा पाँच सौ अड़तालीस पद्य हैं; दूसरे का 'महानाटक', जिसमें नौ अंक तथा सात सौ बीस पद्य हैं। कुछ भी हो, दोनों का कथानक एक है। दोनों में रामकथा अपने समग्र रूप में वर्णित है।

इस नाटक में अधिकांशतः पद्यों का प्रयोग हुआ है। गद्य का प्रयोग बहुत कम हुआ है। इसका विषय तथा पद्य अनेक ज्ञात तथा अज्ञात कवियों से लिए गए हैं। संवादों का प्रयोग भी इसमें बहुत कम हुआ है। अतः यह कृति नाट्य होने की अपेक्षा काव्य अधिक है और अनेक विद्वानों में से किसी ने इसे नाट्य-कृति माना है, किसी ने काव्यकृति। काव्य की दृष्टि से इस नाटक का अनेक संदर्भों में बड़ा महत्व है। आनंदवर्धन (दे०) ने अपने 'ध्वन्यालोक' (दे०) में इसमें से पद्य उद्धृत किए हैं।

हनुमन्नाटक *(हिं० कृ०)*

संस्कृत में इस नाम के दो नाटक मिलते हैं। एक है दामोदर मिश्र का जो ईसा की ग्यारहवीं शती में लिखा गया और जिसमें चौदह अंक हैं। दूसरा है मधुसूदनदास का, जिसमें नौ अंक हैं। हिंदी में तीन 'हनुमन्नाटक' उपलब्ध हैं। प्रथम है पंजाबी हृदयराम भल्ला-कृत 'भाषा हनुमन्नाटक' जिसकी रचना 1626 ई० में हुई और जो संस्कृत-नाटक का छायानुवाद मात्र है। द्वितीय है ओरछा के पंडित काशीनाथ के पुत्र एवं महाकवि केशवदास (दे०) के बड़े भाई बलभद्र मिश्र-कृत 'हनुमन्नाटक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो 1543 ई० के लगभग लिखा गया। तृतीय है रीतिकालीन किन्हीं रामकवि की 'हनुमान नाटक' नाम की रचना। सूर (दे०) और तुलसी (दे० तुलसीदास) का कुछ काव्यांश संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' से प्रभावित है।

हनुमान *(सं० पा०)*

यह किष्किधा के वानरराज सुग्रीव का अमात्य तथा सुमेरु के केसरिन् नामक वानर राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम अंजना था। इसके जन्म के संबंध में अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ कही जाती हैं। इसे वज्रांग, वायुपुत्र, मारुति आदि भी कहते हैं। यह ब्रह्मचारी, महाबली और पराक्रमी था। सूर्य द्वारा इसे व्याकरण का ज्ञान मिला। सीता (दे०) को खोजते-खोजते राम (दे०) सुग्रीव के यहाँ पहुँचे तो हनुमान ने वानर-दल के प्रमुख के रूप में उनकी हर प्रकार से सहायता की। लंका जाने से पूर्व इसने समुद्र का लंघन छलाँग मारकर किया तथा लंका पहुँचकर अपनी पूँछ में आग लगाकर लंका-दहन किया। रावण (दे०) की अमोघ शक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण (दे०) के लिए यह हिमालय के वृष-शिखर पर से संजीवनी बूटी लाने गया तो बूटी को पहचान न सकने पर अपने बायें हाथ में सारा शिखर ही ले आया। यह राम का अनन्य भक्त था। अतः राम के भक्तगण इसकी भी भक्ति अत्यंत श्रद्धा एवं निष्ठा से करते हैं।

'हफ़ीज़' जालंधरी *(उर्दू० ले०)*

जन्म-स्थान—जालंधर। 1901 ई० में जन्म। इन्होंने आरंभिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की थी। अंग्रेज़ी शिक्षा की प्राप्ति के लिए इन्हें स्कूल में प्रविष्ट कराया गया था। परंतु इस प्रकार की शिक्षा में अरुचि के कारण ये सातवीं कक्षा से आगे न बढ़ सके। कवित्व-प्रतिभा के बल पर समग्र देश में इन्हें आशातीत लोकप्रियता और यश की प्राप्ति हुई। फ़िरदौसी के 'शाहनामा-ए-ईरान' की शैली में लिखित 'शाहनामा-ए-इस्लाम' इनका कीर्तिस्तंभ कहा जा सकता है। इस पद्यात्मक ऐतिहासिक ग्रंथ के चार भाग प्रकाशित हो चुके हैं। इस वर्णनात्मक काव्य में कलात्मकता का निर्वाह बड़ी सफलता के साथ हुआ है। इसमें प्राचीन इस्लामी इतिहास का गौरवगान वीर रस से ओतप्रोत शैली में बड़े मार्मिक रूप में हुआ है। 'शाहनामा-ए-इस्लाम' के अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियों में 'नग़्मा-ए-ज़ार' और 'सोज़-ओ-साज़' अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनमें कवि की प्रतिनिधि ग़ज़लें, नज़्में और गीत संगृहीत हैं। गीतों के क्षेत्र में इनका योगदान उर्दू साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगा। सरल हिंदुस्तानी भाषा में लिखित इनके गीत अत्यंत सजीव, सरस और सुमधुर बन पड़े हैं। इनके पढ़ने की शैली भी इतनी माधुर्यपूर्ण और चित्ताकर्षक है कि श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। इस शैली के कारण भी इनकी लोकप्रियता में अभिवृद्धि हुई।

हफ़्ता-दींह-रात्यूं-महीना *(सिं० पारि०)*

भारतीय शृंगार-काव्य में जिस प्रकार नायक अथवा नायिका की वियोगावस्था को अभिव्यक्त करने के लिए षड्-ऋतुओं अथवा बारह महीनों का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार सिंधी में हफ़्ता (सप्ताह), दींह (दिन), रात्यूं (रातें) और महीना (महीने) शीर्षक से कविताओं में नायक अथवा नायिका के विप्रलंभ शृंगार का वर्णन किया जाता है। 'हफ़्ता' नामक कविता में सप्ताह के सात दिनों में से एक-एक दिन को लेकर वियोग-दशा का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। दींह (दिन) कविता में प्रायः छह, सात, चौदह अथवा तीस दिन होते हैं और रात्यूं (रातें) कविता के भीतर बहुधा नौ, दस, ग्यारह, पंद्रह अथवा तीस रातों का वर्णन होता है। 'महीना' (महीने) के भीतर छह अथवा बारह महीनों को लेकर प्रत्येक मास में नायक अथवा नायिका के वियोग का चित्रण किया जाता है। इस प्रकार की सिंधी-कविताओं पर भारतीय शृंगार-काव्य का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। इसके साथ-साथ इन रचनाओं में सिंध-प्रदेश की विशेषताओं का भी सुंदर चित्र मिलता है। ये कविताएँ सिंधी-शृंगार-काव्य की अमूल्य निधि हैं।

हब्बा ख़ातून *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1550-1951 ई०]

श्रीनगर से 8 मील दक्षिण की ओर 'चंदहार' नाम के गाँव में एक किसान परिवार में इनका जन्म हुआ। मृत्यु-काल अज्ञात है किंतु बहिर्साक्ष्य के आधार पर 1597-1603 ई० के बीच रहा होगा। इनके पिता का नाम अब्दुल राथर था। ये अद्भुत सौंदर्य, प्रखर बुद्धि और तीव्र स्मरण-शक्ति की स्वामिनी थीं। मक़तब में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें कुरान-ए-शरीफ़ की शिक्षा मिली और घर पर इन्होंने पिता से शेख सादी की गुलिस्तान, बोस्तान, करीमा आदि का अध्ययन किया। शैशव से ही ये भावुक थीं। अल्पायु में एक अपढ़ किसान युवक से विवाह हुआ और ससुराल की यातनाएँ और तरह-तरह के बंधन सहे। इनका व्यक्तित्व विलक्षण प्रतिभा-संपन्न था। इनकी अंतरात्मा की पुकार प्रेम और भावुकता से अभिसिक्त गीतों की रचना में व्यक्त हुई। प्रसिद्ध सूफ़ी फ़कीर ख़्वाजा मसूद की शरण में गई। उन्होंने इनका नाम 'ज़ूनी' (चंद्रमा) रखा और रानी बनने की भविष्यवाणी की। अंततः यूसुफ़ शाह चक से विवाह हुआ और यह भविष्यवाणी चरितार्थ हुई। इनकी स्वच्छंद स्वरलहरी मुखरित हो उठी। कश्मीरी साहित्य में पहली बार लोल-प्रगीतों या लोल-गीतिकाव्य की रचना की। हब्बा उच्च कोटि की संगीतकार भी थीं। इन्होंने नये-नये राग-रागिनियों को जन्म दिया और कश्मीरी-ईरानी संगीत के सम्मिश्रण से 'रस्त' राग का आविष्कार किया। कश्मीरी काव्य में प्रेम और प्रेम में अप्राप्य लालसा और ललक का प्रथम और अद्वितीय नमूना हब्बा ख़ातून का गीतिकाव्य ही है। इस प्रतिभा-संपन्न कवयित्री के कष्टमय जीवन का अंत श्रीनगर से साढ़े तीन मील दूर दक्षिण की ओर 'पांतछोख' नाम के गाँव में हुआ। प्रेम-सुधि परंपरा (लोल काल) की इस प्रवर्त्तिका के गीतों-ग़ज़लों में टीस, कसक, प्रेमोन्माद और दीवानगी है। शैली अनुपम, और शब्दचयन, भाव-गांभीर्य, और भाषा-सौष्ठव अद्वितीय।

हम्मीर रासो (*हि० कृ०*)

इस प्रबंधकाव्य का रचयिता शार्ङ्गधर कवि माना जाता है, यद्यपि राहुल सांकृत्यायन (दे०) ने इसका रचयिता जज्जल को माना है। किंतु जज्जल संभवतः हम्मीर का मंत्री था, जिसका उल्लेख ग्रंथ के उपलब्ध भाग में कई बार हुआ है। अतः परंपरा-ख्यात शार्ङ्गधर को ही इस ग्रंथ का रचयिता मानना चाहिए। साहित्य के इतिहासों में यद्यपि इस ग्रंथ का उल्लेख मिलता है, किंतु यह रचना उपलब्ध नहीं है। केवल 'प्राकृतपैंगलम्' में हम्मीर-विषयक आठ पद्य मिलते हैं जो किसी एक काव्यग्रंथ से लिये गए प्रतीत होते हैं। यह तत्कालीन देशी भाषा में रचित कोई वीरगाथात्मक महाकाव्य रहा होगा। ये पद्य आठ भिन्न छंदों में हैं। अतः अनुमानतः मूल 'हम्मीर-रासो में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ होगा। इन उपलब्ध अंशों की वर्ण्य-सामग्री और भाषा को देखते हुए तथा 'प्राकृतपैंगलम्' के संकलन-काल को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त हम्मीर-विषयक छंदों की रचना 1368 ई० के बाद नहीं होनी चाहिए। उपलब्ध पद्यों की भाषा उत्तरकालीन साहित्यिक अपभ्रंश है। वर्ण्य-विषय युद्ध है और भाषा में उसी के अनुरूप शब्द-प्रवाह एवं ओज है।

हयात-ए-जावेद (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1901 ई०]

'हयात-ए-जावेद' मौलाना अल्ताफ़ हुस्सैन 'हाली' (दे०) द्वारा लिखित सर सैयद अहमद ख़ां (दे०) की जीवनी है। इसकी भूमिका में मौलाना 'हाली' लिखते हैं—'अभी वह वक्त नहीं आया कि किसी की बायोग्राफ़ी 'क्रिटीकल' तरीके से लिखी जाए, उसकी ख़ूबियों के साथ कमज़ोरियाँ भी दिखाई जाएँ और उसके आली ख़यालात के साथ उसकी लग़ज़िशें (स्खलन) भी ज़ाहिर की जाएँ··· वह हममें पहला शख़्स है जिसने मज़हबी लिट्रेचर (धार्मिक साहित्य) में नुक़्ताचीनी की बुनियाद (नींव) डाली है, इसलिए मुनासिब है कि सबसे पहले उसी की 'लाइफ़' में उसकी पैरवी (अनुकरण) की जाए।'

इस पुस्तक में मौलाना 'हाली' ने सर सैयद के प्रत्येक कार्य पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है। मौलाना की राय में सर सैयद की तमाम मुल्की-ओ-कौमी ख़िदमतों (देश एवं समाज की सेवाओं) का मुहर्रक (प्रेरक) मज़हब (धर्म) है और दूसरा कोई तत्त्व नहीं।

इस ग्रंथ के प्रथम भाग में सर सैयद के जीवन का वृत्तांत और दूसरे भाग में उनकी देश एवं समाज-सेवा का वर्णन है। इसमें सर सैयद की सच्चाई और नैतिक बल पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक की भाषा सरल एवं सुबोध है। कहीं-कहीं अँग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। उर्दू के जीवनी-साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

हरचरण सिंह (*पं० ले०*)

डा० हरचरण सिंह पंजाबी के प्रतिष्ठित नाटककार हैं। इन्होंने अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे हैं। हरचरण सिंह मूलतः सुधारवादी लेखक हैं और अपने नाटकों के माध्यम से वे सामाजिक रूढ़ियों और समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की कुरीतियों का यथार्थ चित्रण करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरचरण सिंह के नाटक रंगमंच की दृष्टि से बहुत सफल हैं। इनके नाटकों में चित्रित पात्र सामान्य जनता की सामान्य भावनाओं और सामान्य समस्याओं का चित्रण करते हैं, इसलिए रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से वे बहुत उपयोगी हैं। विषय की दृष्टि से इनके अधिकांश नाटक सामाजिक सुखांत नाटक हैं, जिनमें कोई गहरा जीवन-दर्शन तो व्याप्त नहीं है, परंतु दर्शकों को प्रभावित करने की शक्ति पूरी तरह विद्यमान है। पंजाबी नाटक को लोकप्रिय बनाने में हरचरण सिंह के नाटकों का विशेष योगदान है।

हरचरण सिंह के नाटक सोद्देश्य नाटक हैं। 'राजा पोरस', 'पुनिआ दा चन्न' और 'सांझा राज' जैसे ऐतिहासिक नाटक पोरस, गुरु नानक (दे०) और महाराजा रणजीत सिंह के समय की समस्याओं को उभारते हैं तो 'अनजोड़' जैसे नाटक पाखंडी साधुओं का पर्दाफ़ाश करते हैं। 'दूर दुराडे शहिरो' नाटक में गाँवों की अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। इनके अनेक एकांकी संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

हरप्रसाद शास्त्री *(बँ० ले०)* [जन्म—1852 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

पंडित हरप्रसाद शास्त्री का परिचय केवल एक विशेष परिचय में निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। ये पंडित, अन्वेषक, ऐतिहासिक, साहित्य-समालोचक एवं औपन्यासिक थे। अतीत के बंगाल तथा समग्र भारतवर्ष के ऐतिह्य के प्रति इनके हृदय में अकृत्रिम श्रद्धा एवं अनुराग था। बँगला साहित्य का प्राचीनतम निदर्शन, 'चर्यापद' के 'समूह के आविष्कर्ता का गौरव इन्हें प्राप्त हुआ था। इनकी 'भारत-महिला' (1878 ई०), 'वाल्मीकि-जय' (1879 ई०), 'मेघदूत' एवं 'कांचन-माला' (1912 ई०) तथा 'बनेर मेये' (1917 ई०) रचनाएँ उस युग में विशेष समादृत हुई थीं। बौद्ध धर्म के प्रति इनका अनुराग इनके बहुत-से निबंधों में ऐतिहासिक निष्ठा, पांडित्य एवं मनीषा की अनन्य साधारण दीप्ति से चिर-भास्वर है।

हरविलासमु *(ते० कृ०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) का उत्कृष्ट प्रबंध-काव्य है। यह शिव-लीलाओं का विस्तृत वर्णन करने वाली काव्य-कृति है। इसमें पार्वती का विवाह, चिरुतोंडनंबि (दे०) की कहानी, दारुकावन का प्रसंग, शिव द्वारा हालाहल-पान, 'किरातार्जुनीय' (दे०) की कथा आदि कथावस्तु के रूप में वर्णित है। इन कथा-प्रसंगों में 'चिरुतोंडनंबि' की कथा तेलुगु के विख्यात वीरशैव कवि पाल्कुरिकि सोमनाथुडु (दे०) के 'बसवपुराणमु' (दे०) से तथा शिव-पार्वती-विवाह के प्रसंग को कालिदास (दे०) के 'कुमार-संभवम्' (दे०) से ग्रहण की गई है। आशुतोष शिव के विराट् स्वरूप एवं इनके माहात्म्य से प्रभावित होने के कारण श्रीनाथुडु ने अपने कई काव्यों में शिव-संबंधी इतिवृत्तों को ग्रहण किया है। कवि की कवित्व-सामर्थ्य तथा शैली-सौष्ठव आदि इस कृति में दर्शनीय हैं।

'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय *(हिं० ले०)* [जन्म—1865 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

इन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) से काव्यसृजन की प्रेरणा प्राप्त की थी और जीवन काल में ही इन्हें काफ़ी ख्याति मिल चुकी थी। 1924 ई० में इन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' (दे०) के प्रधान-पद को सुशोभित किया। इनकी सेवाओं से प्रभावित होकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने इन्हें अवैतनिक प्राध्यापक-रूप में नियुक्त किया। एक अमरीकी विद्वान ने 'एनसाइक्लोपीडिया' में इनका परिचय प्रकाशित कर इन्हें विश्व के साहित्यकारों की श्रेणी में परिगणित किया है।

इनका कार्यक्षेत्र अधिकांशतः काव्य ही रहा है। 'प्रियप्रवास' (दे०), 'रसकलश' (दे०), 'वैदेही बनवास' (दे०), 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'कर्मवीर', 'काव्योपवन', 'उद्बोधन', 'प्रेमांप्रपंच', 'प्रेमांबुप्रश्रवण' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' एवं 'अधखिला फूल' भाषा-संबंधी प्रयोगों से संपृक्त इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'कबीर-वचनावली' संपादित कृति है। 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' इनके पांडित्य और आलोचना-शैली को उद्घाटित करने वाली श्रेष्ठ पुस्तक है।

इन्हें सर्वाधिक ख्याति 'प्रियप्रवास' के कारण मिली है। कवि ने राधा-कृष्ण के व्यक्तित्व का अंकन मध्ययुगीन रेखाओं के अनुकूल प्रेमी-युगल के रूप में न करके क्रमशः समाजसेविका एवं देशोद्धारक के रूप में किया है। कवि ने पौराणिक आख्यान को सर्वत्र नये ढंग से प्रस्तुत किया है। गोपियों के विरहोद्गारों की मार्मिक अभिव्यंजना में इन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही संस्कृत की समस्त तथा कोमलकांत पदावली से अलंकृत एवं संस्कृत-वर्णवृत्तों में लिखित इस अतुकांत रचना के कारण 'हरिऔध' का खड़ी बोली के उन्नायकों में अग्रणी स्थान है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने कवि-कर्म का शुभारंभ 'रसकलश' नामक ब्रजभाषा की रचना से किया, परंतु शीघ्र ही समय की गति को परखकर इन्होंने खड़ी बोली का परिमार्जन और संस्कार करके उसमें काव्य-रचना प्रारंभ कर दी। 'प्रिय प्रवास' के रूप में इन्होंने संस्कृत-गर्भित कोमलकांत पदावली-युक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया एवं 'चोखे-चौपदे' तथा 'चुभते-चौपदे' द्वारा खड़ी बोली के मुहावरा-सौदर्य एवं उसके लौकिक स्वरूप की झाँकी दी। इन्होंने 'प्रियप्रवास' में श्रीकृष्ण के मानवीय रूप की झाँकी प्रस्तुत करके स्वयं को मानववादी के रूप में प्रस्थापित किया है। यदि 'प्रिय-प्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' जी खड़ी बोली के प्रथम महाकवि हैं।

हरिकथा *(ते० पारि०)*

यह आंध्र में बहुत प्रचलित पौराणिक कथा-कथन का कार्यक्रम होता है। कथा सुनाने वाले को 'हरिदासु' कहा जाता है। वह कथा-प्रसंग के अनुरूप अभिनय करता हुआ, हाथ में किसी एक संगीत-उपकरण को लेकर अत्यंत रोचक पद्धति से किसी एक पौराणिक कथा को सुनाता है। यह कार्यक्रम रात में कई घंटों तक चलना रहता है। विषय को एकरसता से बचाने के लिए हरिदासु बीच-बीच में छोटी-छोटी हास्य कथाएँ तथा चुटकुले सुनाता रहता है। कई लोग कथा सुनाते समय उसके अनुरूप नृत्य भी करते हैं। इस कला में अत्यधिक ख्याति श्री आदि भट्ल नारायणदासु तथा बालाजीदासु को प्राप्त हुई है। इसमें एक ही व्यक्ति नृत्य, संगीत अभिनय एवं व्याख्या द्वारा परिचित कथा को जन-सामान्य के सम्मुख अत्यंत रोचक रीति से प्रस्तुत करता है।

हरिचरणदास *(बँ० ले०)*

इनके जन्म स्थान, समय आदि के संबंध में विशेष ज्ञात नहीं। ये अद्वैताचार्य के पुत्र एवं अच्युतानंद के शिष्य थे। इन्होंने 'अद्वैत मंगल ग्रंथ' का प्रणयन किया था। अनुमान है कि यह ग्रंथ 'चैतन्य-चंद्रोदय' (दे०) (रचना-काल 1568 ई०) के बाद में लिखा गया था। हरिचरण दास ने सीतादेवी एवं अच्युतानंद से अद्वैताचार्य के जीवन की कहानियाँ सुनी थीं। बाल्यावस्था की कथाएँ विजयपुरी से ज्ञात की थीं। इसमें अद्वैत के बाल जीवन के संबंध में नूतन तथ्य मिलते हैं। यह ग्रंथ 5 अवस्थाओं एवं 23 अध्यायों में विभक्त है। इसकी भाषा अत्यंत नीरस वैशिष्ट्य-रहित है। छंद और अलंकार-योजना में कोई कौशल परिलक्षित नहीं होता।

हरिनामकीर्तनम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

यह मलयाळम का एक कीर्तन-ग्रंथ है। परंपरा से यह तुंचत्त् एष़ुतच्छन् (दे०)-रचित माना जाता है; परंतु अधिकतर विद्वान इस मत को नहीं मानते। अक्षर-माला के प्रत्येक अक्षर से से आरंभ होने वाले कीर्तन अकारादि-क्रम में नियोजित हैं और प्रत्येक पद्य 'नारायणाय नमः' में समाप्त होता है।

'हरिनामकीर्तनम्' में उच्च कोटि के आध्यात्मिक विचार प्रकट किए गए हैं और भक्ति-रस को उजागर किया गया है। केरल के हिंदू परिवारों में प्रतिदिन पढ़े जाने वाले संकीर्तनों में इसका प्रमुख स्थान है। एष़ुत्तच्छन् की कृति हो या न हो, 'हरिनामकीर्तनम्' मलयाळम के कीर्तन-ग्रंथों में अद्वितीय है।

हरिपंचानन योगीश्वरन् *(मल० पा०)*

'धर्मराजा' (दे०) और 'रामराज बहदूर' (दे०) दोनों उपन्यासों में प्रस्तुत कथा-पात्र राजकुल के मूलोच्छेदन का प्रयत्न करना दृष्टिगोचर होता है। कई षड्यंत्र रचे गए। राजा 'धर्मराजा' के प्रधान दीवान केशव पिळ्ळा के अथक और सजग प्रयत्न तथा कौशल से हरिपंचानन के सारे यत्न विफल हो जाते हैं। इन दोनों उपन्यासों के रचयिता सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) हैं। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में हरिपंचानन का चित्रण बड़ा सजीव हो उठा है।

हरिभद्र *(अप० ले०)* [रचना-काल—1159 ई०]

हरिभद्र श्वेतांबर थे। ये जिनचंद्रसूरि के शिष्य श्रीचंद्र के शिष्य थे। इन्होंने 'नेमिनाथ-चरित' की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना चालुक्यवंशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के अमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय में रह कर की थी। इन्होंने प्राकृत में 'मल्लिनाथ-चरित' की रचना की थी। इन कृतियों के अतिरिक्त इनकी 'चंद्रप्रभा-चरित' नामक एक अन्य कृति का भी उल्लेख मिलता है।

हरिभद्रसूरि *(प्रा० ले०)*

आठवीं शती में प्राकृत-साहित्य के अत्यंत प्रतिष्ठित तथा परंपरा-प्रवर्तक आचार्य कवि हरिभद्र चित्तौड़ में ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे और विद्याधर कुल के जिनभद्र के शिष्य थे। कहा जाता है कि ये ज्ञान के कारण पेट फट जाने के भय से पेट के ऊपर स्वर्णपत्र लपेटे रहते थे। एक पद्य का अर्थ न कर सकने से अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ये याकिनी के शिष्य बन गए थे और उन्हीं के निर्देश पर जिनभद्र से शिक्षा लेने गए थे। इसलिए ये अपने को याकिनी-पुत्र (मानसपुत्र) कहा करते थे। इनका कार्य-क्षेत्र गुजरात और राजस्थान ही रहा। परंपरा-प्रसिद्धि के अनुसार इन्होंने 1444 से अधिक पुस्तकें लिखी थीं। किंतु अब इनमें केवल 88 प्राप्त होती हैं जिनमें 20 के ऊपर प्रकाशित हो चुकी हैं। इन पुस्तकों में अधिकांश आगम-ग्रंथों (दे० जैन-आगम) की टीकाएँ हैं। जैन धर्म से संबद्ध अनेक परंपराओं और कथानकों को संरक्षित रखने का इन्हें गौरव प्राप्त है। प्राकृत-ग्रंथों की संस्कृत टीकाएँ लिखने की परंपरा इन्हीं ने डाली थी। इनकी कुछ रचनाएँ मौलिक भी हैं और उनमें लौकिक तत्त्व को भी स्थान दिया गया है। किंतु इनकी कीर्ति का आधार-स्तंभ 'समराइच्चकहा' (दे०) ही है।

हरिलीला षोडश कला *(गु० कृ०)*

'हरिलीला षोडश कला' मध्ययुगीन गुजराती का एक भक्ति-काव्य है। इसके रचयिता हैं कवि विष्णुदास भीम। रचना के उपजीव्य ग्रंथ हैं, 'श्रीमद्-भागवत' तथा श्री बोपदेव-रचित 'हरिलीला'। इस ग्रंथ का संपादन श्री अंबालाल बुलाखीराम जानी ने किया है तथा उसे प्रकाशित किया है—गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी ने।

'हरिलीला षोडश कला' श्रीकृष्ण के संपूर्ण चरित्र की सोलहों कला की स्तुति करने वाला पद्यबंद है। विष्णुदास भीम (दे०) सोलहवीं शती में हुए जैनेतर भक्तकवि थे।

ग्रंथ चार पाद (पाये) और सोलह कलाओं में रचित है। चार पाये (पाद) हैं—(1) भक्ति, (2) विराग, (3) विवेक, (4) विचार। भक्ति के अंतर्गत चार कलाएँ हैं। भागवत के तृतीय स्कंध की कथा इसमें अंतर्भुक्त है। 5 से 8 तक की कलाएँ दूसरे पाद के अंतर्गत हैं। विराग' में सप्तम स्कंध की कथा समाविष्ट है। तीसरे पाद 'विवेक' में नौ से बारहवीं कला तक का समावेश है। इसमें दशम स्कंध के 42वें अध्याय तक की कथा है। चौथे पाद 'विचार' में 13 से 16 तक की कलाएँ हैं जिनके अंतर्गत द्वादश स्कंध तक की कथा समाविष्ट है।

मध्ययुगीन गुजराती वैष्णव भक्ति-साहित्य में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

हरिवंशमु *(ते० ले०)* [रचना-काल—चौदहवीं शती ई०]

इसके लेखक एर्रन हैं जिन्हें एर्राप्रगड (दे०) भी कहते हैं। इन्होंने इसके अतिरिक्त 'रामायणमु' और 'नृसिंहपुराणमु' की रचना भी की थी। नन्नय भट्टु (दे०) तथा तिक्कना (दे०) के द्वारा तेलुगु में अनूदित (दे० आंध्रमहाभारतमु) में अरण्यपर्व का एक अंश अनूदित न होने से रह गया था। एर्रन ने उसे पूरा करने की इच्छा अरण्य पर्व के शेषांश को अनूदित कर दिया। पर 'हरिवंश' के भी अनुवाद के बिना 'महाभारत' (दे०) का अनुवाद संपूर्ण नहीं था। क्योंकि 'हरिवंश' 'भारत' का उत्तर भाग माना जाता है। कहा जाता है कि अठारह पर्वों तक का अंश 'भारत' है और वह 'हरिवंश' के साथ 'महाभारत' है। अतः एर्रन ने 'महाभारत' के तेलुगु-अनुवाद को पूरा करने के लिए 'हरिवंश' को भी अनूदित किया था।

'हरिवंश' में यदुवंश की कथा वर्णित है। 'भारत' (कुरुवंश) की कथा सुनने के बाद जनमेजय से प्रार्थित होकर वैशंपायन ने यदुवंश की कथा भी उन्हें सुनाई थी। भारत-कथा से कृष्ण का घनिष्ठ संबंध है और कृष्ण यदुवंश के हैं। अतः 'हरिवंश' को भारत का परांश मानना समीचीन ही है।

हरिवंश दो भागों में विभक्त है। पूर्वभाग में नौ आश्वास तथा उत्तर भारत में दस आश्वास हैं। 'महाभारत' तथा हरिवंश की शैली वस्तुतः पौराणिक है। तिक्कन ने 'महाभारत' के अपने अनुवाद में अधिकतर काव्यशैली अपनाई थी। एर्रन ने 'हरिवंश' के अनुवाद में पौराणिक शैली अपनाने पर भी उसमें काव्योचित वर्णनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी प्रमुख स्थान दिया है। वर्णनों की दृष्टि से तेलुगु के अनुवाद-साहित्य को पौराणिक शैली से काव्योचित शैली की ओर ले जाने का प्रथम गौरव एर्रन को प्राप्त होता है। हरिवंशानुवाद की भाषा में प्रसन्नता है और भाव में माधुर्य है। इसमें मुहावरों तथा कहावतों का प्रचुर तथा मार्मिक प्रयोग किया गया है।

तेलुगु में भारतानुवाद को पूरा करने वाली उत्तम रचना के रूप में तथा आंध्र-साहित्य के विकास-क्रम में पौराणिक और काव्यशैलियों के बीच की कड़ी के रूप में एर्रन-कृत 'हरिवंश' अपना विशेष स्थान रखता है।

हरिवरदा (म० कृ०)

यह कवि कृष्णदयार्णव (दे०) की रचना है। प्रस्तुत रचना के समय कवि का शरीर भयंकर व्याधि से जर्जरित हो गया था। इसमें प्रयुक्त ओवी छंदों की संख्या है—42,000। ग्रंथ के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हैं। महामहोपाध्याय भीमाचार्य झलकीकर के मत से यह यह ग्रंथ श्रीमत् शंकराचार्य (दे०) के मायावाद के सिद्धांत का अनुसरण करता है और रचना की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। उत्तरार्ध के चार अध्यायों की रचना इनके शिष्य 'उत्तमश्लोक' ने की है। गुरु-शिष्य मिलकर इस ग्रंथ-रचना में सोलह वर्ष तक लगे रहे। इसके चरित-नायक हैं श्रीकृष्ण और आधार-ग्रंथ हैं—'भागवत' (दे०) आध्यात्मिक भावों तथा काव्यत्व दोनों की दृष्टि से इस ग्रंथ का स्थान महत्वपूर्ण है।

हरिश्चंद्रकाव्य (क० कृ०)

'हरिश्चंद्रकाव्य' महाकवि राघवांक (दे०) (जिनका समय 1165-1280 ई० के बीच में माना जाता है) की कवि-प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उसमें राघवांक की काव्य-साधना पूर्णरूपेण सफल हुई है। काव्य के प्रारंभ में उन्होंने कहा है कि 'यह कृति अद्वितीय है।' काव्य पढ़ने के बाद उनकी यह उक्ति असत्य प्रतीत नहीं होती। वीर-शैव कवि की रचना होने पर भी 'हरिश्चंद्र-काव्य' सांप्रदायिकता से दूर है।

हरिश्चंद्र की कथा हमारे प्राचीन साहित्य में भिन्न-भिन्न रूपों में उपलब्ध होती है। राघवांक ने प्राचीन कथाबीज को लेकर नवीन काव्यवृक्ष का निर्माण किया है, और यह नवीनता इस बात में है कि उन्होंने अपूर्ण रीति से कथा का निरूपण किया है। सत्य के लिए हरिश्चंद्र का राज्य-त्याग और तत्कारण उत्पन्न हुई उनकी दुर्दशा का अत्यंत स्वाभाविकता के साथ वर्णन कर राघवांक ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'सत्य ही हर है, हर ही सत्य है'—इस चिरंतन संदेश के द्वारा काव्य को अमर बना दिया है। विश्वामित्र ने इंद्र के दरबार में हरिश्चंद्र की सत्यनिष्ठा की परीक्षा करने की प्रतिज्ञा की, केवल इसी लिए कि इंद्र की सभा में सर्वप्रथम वसिष्ठ ने सत्यवादी नरेश हरिश्चंद्र का नाम ले लिया था! विश्वामित्र की कठोर से कठोर परीक्षा में भी वह उत्तीर्ण हो गया, उसने कष्ट-परंपरा और दुःख के पहाड़ों का ख्याल नहीं किया। उसकी और उसके परिवार की धीर वृत्ति का मार्मिक चित्रांकन कर कवि ने कमाल कर दिया। कथानक, वातावरण-निर्माण, चरित्र-चित्रण, रस-पोषण और संभाषण-सौंदर्य की दृष्टि से 'हरिश्चंद्रकाव्य' एक अत्यंत श्रेष्ठ महाकाव्य है। उसकी सर्वाधिक विशेषता उसकी नाटकीयता में निहित है। उसमें कवि की नाट्य-प्रतिभा स्थान-स्थान पर प्रकट होती है। इस गुण के कारण वह कन्नड के ग्रंथ-रत्नों में विशेष रूप से आदरणीय हो गया है।

हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु (ते० कृ०) [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक भट्टुमूर्ति हैं जो रामराजभूषणुडु (दे०) के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ हरिश्चंद्र तथा नल की कथाओं को जोड़कर लिखा गया द्व्यर्थि-काव्य है। इन से पहले ही उसी शती के अंतर्गत पिंगलि सूरना (दे०) ने 'रामायण' (दे०) तथा 'महाभारत' (दे०) की कथाओं को जोड़कर 'राघवपांडवीयमु' (दे०) नामक सर्वप्रथम तेलुगु-द्व्यर्थि-काव्य की रचना कर दी थी। उनके बाद उक्त दिशा में भट्टुमूर्ति का प्रयास उल्लेखनीय है। हरिश्चंद्र तथा नल—दोनों की कथाएँ अत्यंत प्रचलित हैं। पर इन दोनों को जोड़कर आदि से लेकर अंत तक श्लिष्ट रचना के द्वारा एक ही काव्य के रूप में प्रस्तुत करना इसकी विशेषता है। घटनाओं के बीच बिल्कुल समानता न रखने वाली भिन्न कथाएँ लेकर द्व्यर्थि-काव्य लिखना दुस्साध्य है। कुछ घटनाओं के बीच समानता रखते हुए भी एक से अधिक स्वतंत्र कथाओं को आदि से अंत तक साथ-साथ ले जाना अवश्य ही कठिन है। काव्यों के अंतर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं-कहीं अलंकार के रूप में श्लेष का दर्शन मिल जाता है। पर विशेष-शैलीगत। निबंध के रूप में उसे आद्यंत निभाया द्वयर्थि-काव्य में अपेक्षित है। इस प्रकार के काव्य के निर्माण के लिए आवश्यक पांडित्य, प्रतिभा, घटनाओं के चयन तथा संयोजन की निपुणता आदि सभी गुण 'हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' के लेखक में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं।

कथागति, भावोन्मीलन, रस-पोषण और चरित्र-चित्रण आदि प्रमुख विषयों में साधारण काव्य की तुलना में द्वयर्थि-काव्य की रचना अत्यंत संकुचित तथा बंधनयुक्त रहती है। पर लेखक ने अपनी अनुपम प्रतिभा, पांडित्य और सहज कविता-शक्ति के द्वारा उक्त काव्य की रचना में कृत्रिमता अथवा त्रुटि आने नहीं दी। इस काव्य में मुनियों तथा जलपक्षियों और माया-कुरंग तथा हंस को जोड़कर किए गए वर्णन अत्यंत सहज तथा मार्मिक हैं। इसके बाद अनेक द्वयर्थि और त्र्यर्थि काव्यों का निर्मित होना, तथा इन सबके लिए नमूने के रूप में इसी का अनुकृत होना भी 'हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' की विशेषता के द्योतक हैं।

हरिश्चंद्रोपाख्यानमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक गौरना (दे०) हैं। 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' द्विपदा नामक देशी छंद में लिखा गया है। इसे 'हरिश्चंद्र' भी कहा जाता है। संपूर्ण काव्य दो भागों में विभक्त हुआ है जिसके पूवार्ध में द्विपदा की 2448 पंक्तियाँ हैं और उत्तरार्ध में 3024 हैं। हरिश्चंद्र की कथा ऋग्वेद, 'देवीभागवत', 'स्कंद-पुराण' तथा 'मार्कंडेय-पुराण' में पाई जाती जाती है।

गौरना ने 'मार्कंडेय-पुराण' की कथा के आधार पर ही अपना काव्य लिखा है। आधार-ग्रंथ का अनुसरण करते समय कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं। इसका कथानक प्रसिद्ध है। सरस भावों तथा कोमल शब्दों से युक्त प्रस्तुत रचना अत्यंत लोकप्रिय बन गई है। इस काव्य के पात्र सजीव हैं तथा इसकी भाषा में प्रवाह हैं। हरिश्चंद्र की कथा से संबद्ध तेलुगु-रचनाओं में गौरन की कृति प्रशस्त है। इनकी इस रचना के कारण तेलुगु में द्विपदा-छंद की तथा द्विपदा-साहित्य की भी प्रतिष्ठा में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

हरिषेण *(सं० ले०)* [समय—350 ई० पू०]

हरिषेण का परिचय हमें प्रयाग के समुद्रगुप्त के विजयस्तंभ की प्रशस्ति से होता है। इनके जीवनवृत्त के संबंध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

'प्रयाग-प्रशस्ति' में हरिषेण ने पद्य तथा गद्य दोनों का प्रयोग किया है। वाक्य इतने लंबे-लंबे हैं कि कभी-कभी गद्य तथा पद्य दोनों में एक ही वाक्य चलता रहता है। गद्य प्रौढ़, समास-बहुल तथा उदात्त हैं। इसमें चार छंदों का प्रयोग किया गया हैं स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मंदाक्रांता तथा पृथ्वी। पूरी प्रशस्ति में वैदर्भी-रीति का प्रयोग हुआ हैं समुद्रगुप्त की कीर्ति का वर्णन करने के लिए रूपकों का खूब प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में अनुप्रास प्रधान हैं। प्रशस्ति की विशेषता यह हैं कि इसे समझने में कहीं भी कठिनाई नहींहो ती।

हरिहर *(क० ले०)* [समय—1200 ई० के लगभग]

हरिहर के जीवन के विषय में वहुत कम तथ्य उपलब्ध हैं। इनके नाम से प्रतीत होता है कि ये आरंभ में ब्राह्मण रहे होंगे, वाद में वीरशैव बने होंगे। कहा जाता है कि ये होयसल-नरेश नरसिंह के यहाँ लेखक थे। किंतु वहाँ से विरक्त होकर चले गए थे। अपना शेष जीवन इन्होंने भक्ति में बिता दिया था। पंपाक्षेत्र के विरूपाक्ष इनके आराध्य थे।

शिवकवि, भक्तकवि आदि नामों से विख्यात हरिहर कन्नड के महाकवियों में से हैं। इनके ग्रंथ ये हैं—पंपाशतक, रक्षाशतक, मुडिगेय अष्टक, 'गिरिजाकल्याण (दे०) तथा रगळे छंद में लिखी शिवभक्तों की जीवनियाँ। ये क्रांतिकारी कवि थे। इन्होंने कन्नड साहित्य में एक नवीन संप्रदाय की स्थापना कर नया काव्यादर्श प्रस्तुत किया है। पंपाशतक में इन्होंने घोषणा की है कि हर तथा उसकी शरण को छोड़कर अन्य मर्त्य मानवों का गुणगान करना महान् पाप है। आगे चलकर सभी वीरशैव कवियों ने मानो प्रतिज्ञा ही कर ली थी कि वे किसी राजा या मर्त्य की स्तुति नहीं करेंगे। हरिहर ने प्राकृत के रघटा (रगळे) छंद का पुनरुज्जीवन कर उसमें वीरशैव तथा शैवसंतों की काव्यात्मक जीवनियाँ लिखी थीं।

इनके दोनों शतक तुलसी (दे०) की 'विनय-पत्रिका' (दे०) की भाँति इनकी आत्मगीतांजलियाँ हैं। भक्ति की अनन्य तन्मयता, दैन्य, मनोराज्य आदि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही मार्मिक व्यंजना इन शतकों में हैं। ये मुक्तक विभिन्न संस्कृत वृत्तों में हैं। 'गिरिजाकल्याण' इनका चंपूकाव्य है जिसमें पार्वती-विवाह की कथा है। पार्वती के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसमें है। वर्णन-प्रिय इस कवि ने इसमें तारकासुर का प्रताप, कामकोलाहल, शिव वैराग्य, पार्वती का दृढ़ संकल्प आदि का प्रभावी चित्रण प्रस्तुत किया है। वर्णनों के पीछे पड़ने के कारण कहीं-कहीं असंगतियाँ आ गई हैं। फिर भी, यह सशक्त काव्य है। शिवभक्तों पर लिखी इनकी काव्यात्मक जीवनियाँ इनकी व्यक्तित्व सिद्धि की पताका हैं। एक सौ दो पुरातन तथा नूतन शिवभक्तों की इन जीवनियों में कवि की प्रतिभा खुलकर खेली है। 'बसवराजदेवरगळे' (दे०) 'नंबियण्णनरगळे','अक्कमहादेविरगळे','पुष्यरगळे', 'प्रभुदेवरगळे' आदि इनमें प्रमुख हैं। भक्ति की भगवल्लीनता इनका मूल स्वर है। समकालीन संतों की जीवनियाँ तो स्वानुभूति से परमोज्ज्वल बन गई हैं। गद्य-पद्य दोनों में कवि सव्यसाची है। 'हरिहरमार्ग' नामक नवीन मार्ग के प्रवर्तक हरिहर कन्नड के युग-प्रवर्तक कवि हैं।

हरिहरन बसवण्णा (हरिहर के० बसवण्णा) *(क० पा०)*

महाकवि हरिहर (दे०) (समय—1200 ई० के आसपास) ने एक सौ से भी अधिक 'रगळों' की रचना की है जिनमें शिवभक्त कवियों के चरितों का वर्णन हुआ है। ऐसे चरितों में 'बसवराजदेवर रगळे' (दे०) भी एक है। उसमें हरिहर ने भक्तश्रेष्ठ बसवण्णा का सुंदर चरितगान किया है। उनके द्वारा चित्रित बसवण्णा एक अनुपम पात्र हैं। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उस युग में ही शिवभक्त-समाज ने बसवण्णा को अवतार-पुरुष माना था। उनके महान् व्यक्तित्व का ही प्रभाव समझिए कि कई कवियों ने उनके चरित का वर्णन चरितकाव्यों के रूप में किया। हरिहर ने उनके बाह्य तथा आंतरिक जीवन का बड़ा मार्मिक विश्लेषण किया है। कुछ आलोचकों के कथनानुसार उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ही उसमें स्थापित किया है। यद्यपि उन्होंने बसवण्णा के अलौकिक जीवन का अधिक वर्णन किया है, तथापि उनके आंतरिक व्यक्तित्व के विश्लेषण में उन्हें कम सफलता नहीं मिली है।

स्पष्ट है कि हरिहर के बसवण्णा अवतार पुरुष हैं। उनके अवतार का कारण प्रथम (सर्ग) में बताया गया है। बागेवाडी अग्रहार में शिव ब्राह्मण मादिराज और उनकी पत्नी मादांबा के पुत्र के रूप में अवतरित बसवण्णा बालपन में ही माता-पिता को खो देते हैं। शिवभक्ति-रूपिणी दादी उनका पालन-पोषण करती है। सोलहवें वर्ष की यौवनागम बेला में उनका मन पूर्णतः शिवभक्ति में लग जाता है। वीतरागी हो वे कूडम संगम में पहुँचकर शिव की आराधना में तल्लीन रहते हैं। यह उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचायक है। कुछ दिन उस पुण्यक्षेत्र में रहने के बाद भगवान् की प्रेरणा से वे बिज्जल की राजधानी मंगलवाडा में जाते हैं, सिद्धदंडाधिप उनसे प्रभावित होते हैं, उन्हें आश्रय देते हैं, उनकी बुद्धिमत्ता से आकर्षित होकर बिज्जल उन्हें उन्नत पद पर आसीन करते हैं। उनका प्रभाव देखकर असूया के प्राचीन संप्रदायवादी उनका विरोध करते हैं। परंतु उनके अलौकिक माहात्म्य के सामने वे सब परास्त हो जाते हैं। बिज्जल उनके 'भक्तिभंडारी' रूप को पहचान कर उनके शरणागत होते हैं।

बसवण्णा के मानव-हृदय और भक्त-हृदय का उद्घाटन करने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। बसवण्णा ऊँच-नीच का भेद नहीं मानते। भक्ति के क्षेत्र में हृदय की पवित्रता ही सब कुछ है। उनकी दृढ़ भक्ति से शिवजी प्रसन्न होते हैं और परीक्षा में विफल होकर अंतर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार हरिहर ने एक आदर्श भक्त के रूप में बसवण्णा का चित्रण कर अपने भक्त-हृदय का ही परिचय दिया है।

हरिहरन रगळेगळु (हरिहर के रगळे) *(क० कृ०)*

'रगळे' कन्नड के एक छंद का नाम है। मध्यकाल के कन्नड कवि हरिहर (दे०) (तेरहवीं शती का पूर्वार्ध) 'रगळे' छंद में पर्याप्त मात्रा में कविता करने के कारण कन्नड साहित्य में 'रगळेय हरिहर' नाम से प्रख्यात हुए हैं। कन्नड में 'रगळे' शब्द 'झंझट', 'झगड़ा' और 'रोना' के अर्थ में भी प्रयुक्त होने के कारण 'रगळेय हरिहर' कथन परिहास का भी सूचक है। इस संबंध में दंतकथा यह है कि हरिहर ने रगळे छंद में शिवभक्तों के चरित लिखे तो लोगों ने 'रगळे हरिहर' कहकर उनका परिहास किया, तब उन्होने 'गिरिजाकल्याण' (दे०) नामक चंपूकाव्य का प्रणयत किया। यह ध्यान देने की बात है कि 'रगळेय हरिहर' कहकर परिहास करना जितना सहज है, 'रगळे' में कविता लिखना, प्रबंध का निर्वाह करना उतना सहज नहीं है। प्रतिभा-संपन्न कवि ही ऐसा कह सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिहर ने कितने शिवभक्तों के चरित 'रगळे' में लिखे हैं—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग इनकी संख्या एक सौ एक बताते हैं, कुछ अन्य लोग एक सौ बीस। उपलब्ध रगळों की संख्या लगभग एक सौ है। शिवभक्तों के चरितों के वर्णन में 'रगळे' छंद को जैसे उन्होंने उपयुक्त पाया, वैसे ही उन्होंने औचित्य के अनुसार गद्य का प्रयोग भी आवश्यक माना। इस कारण उनके चरित-काव्यों में प्रवाहशीलता और रमणीयता पग-पग पर दिखाई पड़ती है। उक्त चरितकाव्यों के लिए उन्होंने वस्तु कहाँ से चुनी, यह कहना कठिन है। यह कहा जा सकता है कि उनको तमिल के 'पेरियपुराणम्' (दे०) का परिचय रहा होगा जिसमें तिरेसठ शिवभक्तों के चरितों का वर्णन है। उन्होंने संस्कृत के ग्रंथों की अपेक्षा तमिल के ग्रंथों से अधिक सामग्री ग्रहण की होगी।

हरिहर भक्तकवि हैं। भक्तों के चरितों का वर्णन करते समय उन्होंने बड़ी तन्मयता दिखाई है, भक्ति का प्रवाह ला दिया है। सख्यभाव, वात्सल्यभाव, सेव्य-सेवक भाव, पशुपतिभाव आदि नाना रूपों में भक्ति का वर्णन कर उन्होंने अपने भक्त-हृदय का ही परिचय दिया है। उनकी दृष्टि में दर्शन, स्पर्श, क्षेत्र-सेवा (तीर्थ यात्रा), धूप-दीप-नैवेद्य, नृत्य-गान-अभिनय, कीर्तन, जप, अभिषेक, देवालय-निर्माण आदि शारीरिक तथा मानसिक सेवा-क्रियाएँ भगवान् की अनुकंपा प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होती हैं। उनके रगळों में 'तिरुनीलकंठर रगळे', 'नंबियण्णन रगळे', 'बसवराजदेवर रगळे' (दे०) और 'गुंडय्यन रगळे' बहुत प्रसिद्ध हैं।

हरी घास पर क्षण भर *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

यह कृति अज्ञेय (दे०) की प्रयोगवादी (दे०) रचनाओं का प्रथम संकलन है। समाजोन्मुख व्यक्तिवाद और बौद्धिक ठंडापन सभी रचनाओं में व्याप्त है। प्रेमानुभूतियाँ आवेगरहित हैं और प्रकृति-चित्रण तद्वत्ता के आग्रह से अनुशासित हैं। 1943 ई० के प्रयोगी का हाथ इसमें आकर काफ़ी सध गया है। सांकेतिक और बिंबात्मक चित्रण, नये शब्दों के सर्जनात्मक प्रयोग और सूक्ष्म बौद्धिक व्यंग्य के अनेक उदाहरण इस कृति में अनायास मिल जाते हैं। नवबोध से संपन्न और परंपरा से संपृक्त कवि की सर्जनात्मक संभावनाओं का आभास इस कृति में स्थान-स्थान पर मिलता है।

हर्फ़-ओ-हिकायत *(उर्दू० कृ०)*

लेखक—'जोश' मलीहाबादी (दे०)। इस काव्य-कृति में रचयिता की एक सौ छियालीस कविताएँ संगृहीत हैं। इन कविताओं की अभिव्यंजना-शैली में नवीनता, सजीवता और सरसता के गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। उपमाओं की दृष्टि से यह अत्यंत समृद्ध हैं। कल्पना की भव्यता और कला का औदात्य पाठक को प्रत्येक स्थल पर भावविभोर कर देता है। नवजागरण और नवचेतना का संदेश इसकी अनेक कविताओं में बड़ी तेजस्विता के साथ मुखर है। भारत माता की दासता की श्रृंखलाओं को तोड़ देने की प्रेरणा और यौवन के स्वाभिमान का स्वर पग-पग पर रस-संचार करता हुआ चलता है। प्रगतिवादी विचारधारा को कलात्मक शैली में अभिव्यक्त कर उसे अधिकाधिक प्रभावशाली रूप देकर प्रस्तुत किया गया है। किन्हीं कविताओं में प्रकृति-चित्रण भी अत्यंत सशक्त और सजीव हुआ है। अनुभूति-प्रवण कवि की लेखनी इस कृति में कवित्व के चमत्कार दिखाती हुई प्रतीत होती है। स्पष्टवादिता और अभिव्यक्ति की प्रबलता इसके प्राण हैं। 1925 ई० से 1941 ई० तक की काव्य-साधना के इस संग्रह में 'जोश' साहब सर्वत्र जीवन की आलोचना करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी ऐसी कविताएँ अत्यंत आकर्षक और मनोमुग्धकारी हैं, जिनमें सौंदर्य और प्रेम की अनुभूतियों को स्वर दिया गया है। उनमें निरूपित यथार्थवादी तत्त्व यथेष्ट मनोरम एवं हृदयस्पर्शी हैं। आशावादिता, साहस, स्वावलंबन, स्वाभिमान, देशभक्ति और स्वतंत्र चिंतन की पोषक और अनेक कविताएँ इस कृति में संगृहीत हैं।

हसरत मोहानी, फ़ज़्लुल हसन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

ये मोहान, ज़िला उन्नाव के रहने वाले थे। अलीगढ़ से बी० ए० पास किया और भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम में सम्मिलित हो गए। प्रारंभ में साहित्य में रुचि रही, बाद में राजनीति में जाकर साहित्य से दूर हट गए किंतु ग़ज़ल कहना जारी रहा। अनेक बार जेल गए और अधिकतर कविताएँ जेल में ही लिखीं। ये आलोचक भी थे और इनकी ग़ालिब के काव्य की टीका विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

आधुनिक ग़ज़ल की नीरसता दूर करके उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निखारने और सुधारने में हसरत का योगदान स्मरणीय है। प्रेम-सौंदर्य तथा मानवीय भावनाओं का चित्रण इन्होंने बड़े सुंदर ढंग से किया है। शब्द-प्रयोग में संयम, विचारों में औदात्त्य और प्रभावशीलता इनकी विशेषताएँ हैं। इनके काव्य में न केवल निराशा और विषाद है और न मात्र सुख की अभिव्यक्ति ही। भाषा प्रवाहमयी है किंतु बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इन्होंने ग़ज़ल को केवल प्रेम-प्रणय के विषयों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि ऐसे हर विषय को जिसने उनके मन को प्रभावित किया है, ग़ज़ल में स्थान दिया गया है। इनकी सबसे प्रमुख विशेषता यह थी राजनीतिक क्षेत्र में रहते हुए भी अपने काव्य को उससे प्रभावित नहीं होने दिया। इनका शब्द-संग्रह 'कुलियात-ए-हसरत' के नाम से भी प्रकाशित हो चुका है और तेरह छोटे-छोटे भागों में अलग से छप चुका है।

हर्षचरित *(सं० कृ०)* [समय—सातवीं शती का पूर्वार्ध]

यह महाकवि बाण (दे०) द्वारा रचित आख्यायिका है। यह 'कादंबरी' (दे०) से पूर्व की रचना है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम उच्छ्वास के आरंभ में 21 श्लोकों में कवि ने अनेक ग्रंथों एवं ग्रंथकारों की वंदना है। तीन उच्छ्वासों में बाण ने अपनी संक्षिप्त वंशावली प्रस्तुत की है। चतुर्थ उच्छ्वास में प्रभाकरवर्धन का वंशपरिचय तथा महारानी यशोवती का वर्णन है। तदनंतर राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन और राज्यश्री के जन्म का वर्णन है। पाँचवें उच्छ्वास में राजकुमारों की विजय-गाथा प्रभाकरवर्धन की अस्वस्थता तदनंतर मृत्यु, और रानी यशोवती का सती होना आदि वर्णित है। छठे उच्छ्वास में राज्यवर्धन द्वारा हर्षवर्धन को राज्य सौंपना, राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा की मृत्यु, राज्यश्री का बंदिनी बनाया जाना, राज्यवर्धन की शशांक द्वारा हत्या, हर्ष का उससे बदला लेने की प्रतिज्ञा आदि का समावेश है। सातवें उच्छ्वास में हर्ष की दिग्विजय तथा आठवें उच्छ्वास में एक शबर युवक की सहायता से राज्यश्री को खोजने का प्रयास, अंत में उसको आत्मदाह से बचाना, आश्वासन आदि बातें वर्णित हैं। 'हर्षचरित' बाण की प्रथम रचना है। ऐतिहासिक काव्य की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषताएँ हैं। बाण की अलौकिक वर्णना-शक्ति का परिचय यहीं से होने लगता है। हर्ष के जन्म-काल का वर्णन आनंद तथा उल्लास से भरा हुआ है। प्रभाकरवर्धन के अंतिम क्षणों का दृश्य करुणा तथा विषाद से परिपूर्ण है। हर्ष एक ओजस्वी प्रजापालक तथा वदान्य नरपति के रूप में वर्णित हैं। बाणभट्ट द्वारा आयोजित घटनाओं की सत्यता इधर उपलब्ध होने वाले ऐतिहासिक ग्रंथों तथा शिलालेखों के द्वारा उद्घोषित की जा रही है।

हलकट्टी, फ० गुरुबसप्पा *(क० ले०)* [समय—1880-1964 ई०]

स्व० रावबहादुर फकीरप्पा हलकट्टी जी वीरशैव वचन-साहित्य (दे०) के क्षेत्र में की गई अपनी विशिष्ट सेवाओं के कारण 'वचन-पितामह' के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म एक प्रसिद्ध वीरशैव परिवार में हुआ। बी० ए० एल०-एल० बी० पास कर वकालत चलाने के लिए वे बिजापुर चले आए। कन्नड, संस्कृत एवं मराठी के वे बहुत बड़े पंडित थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। किंतु कन्नड साहित्य में इनका इस बात के लिए सदैव आदर रहेगा कि इन्होंने वीरशैव संतों की बानियों को काल का ग्रास बनने से बचाया और उनका उचित मूल्यांकन किया। आप ही के परिश्रम से आज विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि वचन-साहित्य विश्वसाहित्य के लिए कन्नड की विशिष्ट देन है। वचन कन्नड के उपनिषद् हैं, वचनकार कर्नाटक के रस-ऋषि हैं। बसवेश्वर (दे०) आदि संतों ने बारहवीं शती में कर्नाटक में एक बहुत बड़ी क्रांति की थी। उन्होंने अपनी बानी को सरल व सुंदर वचन में अभिव्यक्त किया। इन वचनों को हम गद्य-काव्य भी कह सकते हैं। ऐसे वचनकारों की संख्या तीन सौ से भी अधिक है। गाँव-गाँव घूमकर इन्होंने पांडुलिपि-संग्रह किया जिनके अन्यथा दीमक का आहार बन जाने की पूरी संभावना थी, उनका प्रगाढ़ अध्ययन किया और शास्त्रीय रीति से उनका वर्गीकरण तथा प्रकाशन किया। इनके साथ ही पुराने शिलालेखों का भी उद्धार किया। ऐसे ग्रंथों की संख्या अब शताधिक है। 'शिवानुभव' नाम से इन्होंने एक त्रैमासिक पत्रिका की स्थापना और प्रकाशन भी किया जो उन्हीं के उद्देश्यों के प्रति समर्पित थी। और अपने उद्देश्यों में श्री हलकट्टी को अभूतपूर्व सफलता मिली। 'शिवनुभव शब्द-कोश' वीरशैव मत के अध्ययन के लिए इनकी एक अनुपम देन है। इनके अतिरिक्त आपने बसव प्रभुदेव आदि संतों के जीवन की आधारभूत सामग्री भी प्रकाशित की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1928 ई० में शिवानुभव के साथ-साथ उन्होंने 'नवकर्नाटक' नामक' साप्ताहिक भी निकाला। 1956 ई० में कर्नाटक विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट० पदवी देकर सम्मानित किया। 1964 में आपका देहावसान हुआ। अपनी सारस्वत तपस्या से आपने कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि में अभूतपूर्व कार्य किया था।

हळवें, भिग *(म० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1951 ई०]

यह श्री य० द० भावे की नव कविता का संकलन है। **'आर्द्रा'** के पश्चात् प्रकाशित यह इनका दूसरा काव्य-संग्रह है। इसमें 47 कविताएँ समाविष्ट हैं। कवि ने निवेदन में कहा है कि अतिसंस्कारक्षम मन पर अंकित बाह्य संसार के विविध चित्र 'हळवें भिग में अंकित हैं।

इस काव्य-संकलन के प्रारंभ में कवि ने नव कविता का स्वरूप-विवेचन किया है। दीर्घ रचना एवं आकार की अनियमितता इस संग्रह की कविताओं का वैशिष्ट्य है। इनमें क्लर्क, चपरासी, मिल में काम करने वाली स्त्री के कारुण्य को कवि ने साकार किया है; राशन के लिए पंक्ति में खड़े लोगों के दुःखोद्गारों की अभिव्यक्ति प्रचंड शब्दों में की है। परंतु आज के मानव की हीन दशा पर कवि को सहानुभूति नहीं है, वरन् वह वितृष्णा से भर उठा है। इसी कारण उसने विक्षुब्ध विचारों के चित्र भयंकरता से खींचे हैं। आर्थिक विषमता तथा यांत्रिक सभ्यता के कारण होने वाले मानव के शोषण पर कवि ने गंभीरता से विचार किया है। कवि का दृष्टिकोण सर्वत्र निराशावादी नहीं है वरन् निराशा के मेघ से उसे आशा की धूमिल किरण फूटती दिखाई देती है। स्वरूपतः इनकी कविता रौद्र एवं बीभत्स है।

इनकी काव्य-रचना पर बा० सी० मर्ढेकर (दे०) का प्रभाव स्पष्ट है। मर्ढेकर की तरह अति यथार्थता उपमानों तथा सम्मिश्र प्रतीकों के प्रयोग के कारण इनकी कविता अर्थबोध की दृष्टि से दुर्बोध हो गई है। इन्होंने नवीन प्रतिमानों तथा बिंबों का प्रयोग किया है। 'जसाक्रूसावर' बहुचर्चित कविता है। इस कविता में तथा 'विजेच्या चापल्याने' जैसी कविता में रसायनशास्त्र का निर्देश किया गया है। इनकी कुछ कविता मुक्त-छंदात्मक है तो कुछ गद्यात्मक। ये काव्य-रचना के लिए छंद तथा तुक का बंधन नहीं मानते। इनके अनुसार अंतः-संगीत ही कविता का प्राण है। जब गद्यात्मकभाव भावावेश की स्थिति में व्यक्त होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति निस्संदेह लयात्मक ही होती है।

हळवे, लक्ष्मण शास्त्री *(म० ले०)* [जन्म—1831 ई०; मृत्यु—1905 ई०]

'अव्वल इंग्रजी-काल' के प्रतिनिधि कथा-लेखक। महाराजा गायकवाड़ ने इनके साहित्यिक कृतित्व पर प्रसन्न होकर इन्हें राज्याश्रय प्रदान किया था—जिसके अंतर्गत इन्हें वर्षासन मिलता था। पहले 'इंदुप्रकाश' पत्रिका से इनका संबंध रहा और बाद में 'चंद्रिका' नामक पत्रिका के संपादक रहे। ये 'परमहंस सभा' के सदस्य थे।

ग्रंथ—'मुक्तामाला' (दे०) (1861 ई०), 'रत्नप्रभा' (1878 ई०) (दोनों उपन्यास)।

मराठी में मनोरंजक कथा-साहित्य के प्रवर्तकों में इनका स्थान अमर है। इनके उपन्यास घटनाप्रधान और रम्याद्भुत तत्त्वों से युक्त हैं, जिनमें विचित्र घटनाएँ घटित होती हैं और संयोग का प्रयोग कृति को अंत में सुखांत बना देता है। मनोरंजन के साथ-साथ नीत्युपदेश देना भी इनका लक्ष्य था अतः इनमें सर्वत्र काव्य-न्याय के सिद्धांत का पालन किया गया है और प्रत्येक परिच्छेद के आरंभ में एक सुभाषित भी दे दिया गया है। संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करने के कारण प्रकृति का वर्णन प्रायः पारंपरिक वर्णन है, पात्रों का नामकरण उनके गुण-दोषों पर आधारित है और वे स्थिर हैं, भाषा संस्कृत-निष्ठ है, वाक्य-रचना सुंदर है, पद-रचना में माधुर्य है और वह कृत्रिम या बोझिल नहीं हो पाई है। अरबी-फ़ारसी का प्रभाव श्रृंगार-चित्रों तथा पात्रों के वेश-परिवर्तन में परिलक्षित होता है।

मराठी उपन्यास-साहित्य को इनकी विशेष देन है। इन्होंने यथार्थ, इतिहास-समस्त वातावरण की सृष्टि कर, अपने समय के समाज की समस्याओं—विधवा की दयनीय स्थिति, पुनर्विवाह, आदि—का समावेश करने का प्रयत्न किया है। इनके स्त्री-पात्र बड़े सजीव हैं जो प्रौढ़ पाठक के मन में करुणा-भाव एवं सहानुभूति उत्पन्न करने में पूर्णतः सफल हैं। मराठी भाषा के प्रति प्रेम जगाने का श्रेय भी इनके उपन्यासों को है और उधर विचारों तथा भावों का चित्ताकर्षक वर्णन पहली बार इनके ही उपन्यासों में मिलता है। अतः इनका कृतित्व निश्चय ही ऐतिहासिक माना जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलीम, संभुनाथभट्ट (*कश्० ले०*) [जन्म—1921 ई०]

औपचारिक रूप से कश्मीर और लाहौर में शिक्षा प्राप्त की। अच्छे वक्ता के रूप में लोगों के सामने आए; फिर जीवन का आरंभ अध्यापन से किया। संप्रति आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र के कश्मीरी यूनिट में हैं। इनके कई लेख और कविताएँ श्रीनगर से प्रकाशित 'क्वंग पोश', 'गुलरेज़', 'वतन', 'बीसवीं सदी' और 'सोन अदब' में तथा दिल्ली से 1956-58 ई० में प्रकाशित होने वाले 'पंपोश' में प्रकाशित होती रहीं, और अब 1969 ई० से कश्मीरी समिति, दिल्ली के मासिक पत्र 'काशुर समाचार' में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। हलीम साहब शुद्धिवादी हैं और ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया करते हैं। इनकी भाषा में ग्रामीम मुहावरे का पुट रहता है। इनकी कविताओं का क्षेत्र विशाल है—गीत, ग़ज़ल से लेकर संबोध-गीति तक। आशावादी और प्रगतिवादी पृष्ठ-भूमि में इनकी ग़ज़लें प्रभावोत्पादक और विचारोत्ते-जक रही हैं। इनकी कहानियों में जहाँ गंभीरता है वहाँ उनमें एक सुप्त व्यंग्य भी है जो उन्हें आकर्षक बनाता है।

हसन (*त० ले०*) [जन्म—1918 ई०]

एम० सैयद मुहम्मद 'हसन' का जन्म तंजौर ज़िले के नागपट्टिनम नामक स्थान में हुआ। हसन तमिल, अँग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। 'महज़बीन' और 'सिंधु नदीक्करैयिनिले' इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'महज़बीन में पालिस्टन में मुसलमानों और ईसाइयों के बीच हुए धर्म-युद्ध का और 'सिंधु नदीक्करैयिनिले' में मुसलमानों के भारत-आगमन का वर्णन है। इनके उपन्यासों का तमिल उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

हाँसुलि बाँकेर उपकथा (*बँ० कृ०*)

ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे० बंद्योपाध्याय) की यह दूसरी युगांतरकारी रचना है। कथापटल का आधार है कहार जाति के सामंतयुगीन रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कार-विश्वास पर यंत्र सभ्यता के संघात से उत्पन्न परिवर्तन एवं विघटन का इतिहास। इस सुगठित उपन्यास का प्रारंभ जितना तरल एवं भावपूर्ण है, इसका अंत उतना ही विषाद-मिश्रित करुणा से आप्ला-वित है। कहार-कुल के रीति-नीति का प्रतीक है बनो-यारि जिसमें जातिगत निष्ठा तथा परंपरागत मूल्यों पर श्रद्धा है। उसमें अध्यात्म-बोध है, व्यष्टि और समष्टि का एकात्म भाव है। इधर महायुद्ध तथा यांत्रिक सभ्यता ने आर्थिक परिस्थितियों तथा जीविका के साधनों में परिवर्तन ला दिया। आगामी युग की संभावनाओं का प्रतीक है कराली जिसमें यंत्र-युग की चेतना, निर्भीकता, स्वेच्छा-चारिता और कौशल है। वह प्रयोजन के कर्म-पथ पर बढ़ रहा है और ऐश्वर्य की नयी लीला-भूमि की तलाश कर रहा है। इस प्रकार संचित संस्कारों से पोषित बनो-यारि की पराजय से लेखक इस कुल में नए युग के सूत्रपात की सूचना देता है। उपन्यास के अन्य जीवंत पहलू हैं निम्न वर्ग में प्रेम-भावना की आदिम, अनगढ़ परंतु सशक्त अभिव्यक्ति तथा उच्च एवं निम्न वर्ग का संघर्ष। कुछ विद्वान तो ताराशंकर के इस महाकाव्योचित उपन्यास को उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं।

हाजरिका, अतुल (*अ० ले०*) [जन्म—1906 ई०]

जन्म-स्थान—कानपुर।

इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से असमीया एम० ए० (प्रायवेट) की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इन्होंने कई संस्थाओं – काटन कॉलेज, गौहाटी विश्वविद्यालय आदि में अध्यापन कार्य किया था। ये 1953-56 ई० तक असम साहित्य सभा के संपादक रहे थे। इन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'दीपाली' (1940), 'मुकुतामाला' (1941) 'मणिमाला' (1941-42) 'पांचजन्य', 'माणिकी मधुरी', 'रुणुक जुनुक' (1953), 'रक़्तजबा' और 'तपोवन'—(1955)।

पौराणिक नाटक—'नंददुलाल' (दे०) (1930), 'कुरुक्षेत्र' (1936), 'बेउला' (1933), 'नरकासुर' (1928), 'चंपावती' (1930), 'श्रीरामचंद्र' (1938), 'निर्यातिता' (1952)। **ऐतिहासिक नाटक** : 'कनौजकुँवरी' (1933), 'छत्रपति शिवाजी' (1947), 'आहुति' (1952)। **अनूदित** : 'बनिजकोंवर' (मर्चेंट ऑफ़ वेनिस) (1950), 'अश्रुतीर्थ' (किंग लियर) (1950), 'शकुंतला' (1940)। इनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण वर्ड्सवर्थ जैसा है। देशभक्ति-पूर्ण कविताओं का सृजन इन्होंने अधिक किया है। ये मुख्यतः नाटककार हैं। इन्होंने मंचोपयोगी नाटक लिखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला का प्रभाव कम किया है। 'नरकासुर' और शिवाजी इनके श्रेष्ठ नाटक हैं। 'कनौजकुँवरी' मंच पर अधिक समादृत हुआ।

ऐतिहासिक और पौराणिक नाटककार के रूप में इनकी ख्याति है।

हाजरिका, मफ़िजुद्दिन आहमद *(अ० ले०)* [जन्म—18?0 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

इन्होंने डिब्रूगढ़ से ही शिक्षा प्राप्त कर वहाँ की कचहरी में पेशकार और सिरस्तेदार के रूप में कार्य किया था। 1929 ई० में ये असम-साहित्य-सभा के सभापति निर्वाचित हुए थे। इन्हें सरकारी साहित्य-पेंशन भी मिली थी।

प्रकाशित रचनाएँ—'ज्ञानमालिनी' (मुक्तक काव्य) (?897 ई०), अप्रकाशित रचनाएँ—'मालिनीर बींण' और 'तत्त्वपराजित'।

डॉ० महेश्वर नेओगे (दे०) के शब्दों में श्री हाजरिका की कविता का उत्स प्राण न होकर ज्ञान है। इन्होंने कविताओं में नैतिक आदर्श को स्थान दिया है। इनकी 'दिनकणा' कविता प्राणवंत एवं स्थायी महत्व की है। कविता की भाषा सरस और प्रांजल है, नित्य व्यवहार के शब्दों का प्रयोग हुआ है। कविता के छंद परिष्कृत हैं। श्री हाजरिका ने लिखा कम है किंतु ख्याति अधिक पाई है।

'हाजिनी', गुलाम मुहीउद्दीन *(कश्० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

जन्म-स्थान—कश्मीर स्थित हाजिन गाँव। उर्दू, अरबी, फ़ारसी और अँग्रेज़ी के विद्वान्। उच्च शिक्षा प्राप्त करके अध्यापन-कार्य आरंभ किया। इस समय प्राचार्य हैं और बुद्धिवादी मंडल में इनका श्रेष्ठ स्थान है। अपनी कट्टर विचारधारा तथा शासन-विरोधी उद्गारों के कारण 1966 ई० में इन्हें कई महीने नज़रबंद रहना पड़ा। 'काशिरि नसरचि 'किताब' (कश्मीरी गद्य की पुस्तक) पर इन्हें 1961 में कल्चरल अकादमी-पुरस्कार मिला। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'काशिर' शायिरी (कश्मीरी काव्य-रचना) नाम की पुस्तक का संकलन-संपादन भी किया है। इन्होंने 'मुसद्दस हाली' (दे०) का कश्मीरी में पद्यानुवाद तथा 'अलिफ़ लैला' का भी अनुवाद किया है। 'गामव मंजु फीरि-भीरि' (गाँवों में घूम-घूमकर) नाम की पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। प्रोफ़ेसर हाजिनी कश्मीरी भाषा के एक प्रसिद्ध लेखक एवं आलोचक हैं। इनकी शैली मौलिक होते हुए भी बहुत बोझिल है और इन्होंने जी खोलकर फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया है। कश्मीरी गद्य में इनकी रचनाएँ बहुत उच्च कोटि की हैं और हाजिनी साहब की विद्वत्ता एवं पैनी शोधक दृष्टि का प्रमाण हैं।

हाजी बग़लोल *(उर्दू० कृ०)*

सामाजिक कुरीतियों पर सज्जाद हुसैन द्वारा रचित यह एक व्यंग्य रचना है। इसका नायक हाजी बग़लोल एक काल्पनिक पात्र है जो है तो मूर्ख किंतु अपने आपको समझता बुद्धिमान है। उसकी मूर्खतापूर्ण बातों में भी काम की बातें निहित हैं।

यह पुस्तक राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक बुराइयों पर एक तीखा व्यंग्य है। इसमें कई कटु तथ्य अनावृत हुए हैं।

यह चार्ल्स डिकेंस के 'पिकविक पेपर्स' का रूपांतर मात्र है। डिकेंस की परिधि विस्तृत है किंतु सज्जाद हुसैन सीमित परिधि में रहते हैं। 'डिकेंस' का हर छोटे से छोटा पात्र सजीव और स्पष्ट है किंतु यह बात सज्जाद हुसैन के संबंध में नहीं कही जा सकती। फिर भी इसमें खिलखिलाती हँसी अवश्य है। वह मुहावरों से हँसी पैदा कर देते हैं जो घटनाओं और विचारों से भी पैदा नहीं हो सकती। इनकी स्वाभाविक प्रसन्नता व्यंग्य में वह निखार तथा नवीनता उत्पन्न कर देती है मानो धूप में बूँदें पड़ने लगें।

'हातिम' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1708 ई०; मृत्यु—1792 ई०]

नाम ज़हूरुद्दीन; उपनाम 'हातिम'। ये मूलतः फ़ारसी के कवि थे। 1730 ई० में जब 'वली' के काव्य-संग्रह से दिल्ली परिचित हुई थी तो इन्होंने अपनी तीव्रानुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम उर्दू को बना लिया था। इनका संपूर्ण काव्य-संग्रह दिल्ली पर नादिरशाही आक्रमण के फलस्वरूप नष्ट हो गया था। बाद का संग्रह 'दीवानज़ादा' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इन्हें भाषा और भाव पर अद्भुत अधिकार प्राप्त था। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समसामयिक साहित्यिक विद्वानों में इनका स्थान बहुत ऊँचा था। मियाँ रंगी मुहम्मद अमान 'निसार', अकबर अली अकबर और लाला मुकुंदलाल 'फ़ारिग' के अतिरिक्त मिर्ज़ा सौदा (दे०) जैसे समर्थ कवियों को इनके शिष्यत्व का गौरव प्राप्त था। उर्दू भाषा के मानकीकरण में इन्होंने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी वह ऐतिहासिक महत्व की है। दकनी उर्दू में प्रयुक्त होने वाले अनेक प्राचीन शब्दों को निष्कासित कर इन्होंने, परिनिष्ठित, सुसंस्कृत और परिमार्जित भाषा का प्रचार तथा प्रसार किया था। बाद में 'सौदा', 'ज़ौक' (दे०) तथा 'नासिख' (दे०) जैसे उच्च कोटि के कवियों ने इनकी भाषा-शैली का अनुकरण किया था।

हाफ़िज़ बरखुरदार *(पं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1625 और 1700 ई० के मध्य]

कुरान के मर्मज्ञ हाफ़िज़ बरखुरदार के जीवन का अधिक भाग लाहौर और सियालकोट में व्यतीत हुआ। ये आजीवन क़ुरान का अध्ययन-अध्यापन करते रहे। 'मिरज़ा साहिबाँ' (दे०), 'सस्सी-पुन्नूँ' (दे०) और 'यूसफ़ ज़ुलेखा' इनकी मुख्य रचना हैं। इनके अतिरिक्त कुछ धार्मिक रचनाएँ भी इन्होंने की हैं। हाफ़िज़ अरबी-फ़ारसी के विद्वान थे इन्होंने लोक-परंपरा में उभरते पंजाबी क़िस्सा-साहित्य को फ़ारसी की मसनवियों की ओर मोड़ने का उपक्रम किया।

हाफ़िज़र सुर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

फ़ारस के सूफी कवि हाफ़िज़ की कविता का अनुवाद कर श्री आनंद बरुवा (दे०) ने काव्य-जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा से इसे और भी सौंदर्य-मंडित कर दिया है।

हामद शाह *(पं० ले०)* [जन्म—1748 ई०; मृत्यु-तिथि—अज्ञात]

अब्बासी सैयद हामद शाह, ज़िला गुरदासपुर के निवासी थे। इनकी छह कृतियाँ उपलब्ध हैं, परंतु साहित्यिक दृष्टि से 'जंगहामद' और 'हीरहामद' ही उल्लेखनीय हैं 'जंगहामद' (र० का० 1776 ई०) में करबला की घटनाओं का करुण वर्णन है। हीर-राँझा की कथा पर आधारित 'हीरहामद' (1805 ई०) में कवि ने स्वीकार किया है कि यह रचना मुक़बल (दे०) अहमद (दे० अहमदशाह गुज्जर) और गुरदास (दे०) के अनुकरण पर लिखी गई है। क़िस्सा-काव्य की फ़ारसी-प्रधान प्रकृति के विरुद्ध इस कृति में हिंदी के शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है।

हार्नले *(भाषा० ले०)* [जन्म—1841 ई०]

पूरा नाम ऑगुस्टस फ़्रेडरिक रुडल्फ़ हार्नले। राष्ट्रीयता जर्मन। जन्म भारत (सिकंदरा, आगरा) में। पिता यहीं जर्मन पादरी थे। शिक्षा जर्मनी तथा इंग्लैंड में हुई। 1865 ई० में जयनारायण मिशनरी कालेज, बनारस में प्राध्यापक, नियुक्त हुए; 1873 ई० में इंग्लैंड चले गए तथा अपना गाडियन व्याकरण लिखते रहे, 1878 से 1881 तक कैथेड्रल मिशन कालिज, कलकत्ता के प्रिंसिपल; फिर भारतीय शिक्षा सेवा में, फिर प्रेसिडेंसी कालिज, मद्रास में अध्यापक तथा बाद में प्रिंसिपल रहे। 1892 ई० में सरकार ने आपको चौथी-पाँचवीं शती की एक पांडुलिपि (ओषधि, पिशाचविद्या तथा ज्योतिष की) पर काम करने के लिए नियुक्त किया। 1898 ई० में आपने रॉयल एशियाटिक सोसायटी के अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। ये रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के संपादक भी रहे। 1872-73 ई० में इनका प्रथम भाषावैज्ञानिक निबंध (लगभग 100 पृष्ठों का), जो गौड़ीय भाषा-समुदाय से संबद्ध था, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के जर्नल में प्रकाशित हुआ। 1880 ई० में इन का प्रसिद्ध ग्रंथ 'ए कंपैरेटिव ग्रामर ऑफ़ गाडियन लैंग्वेजिज' प्रकाशित हुआ जिसमें भोजपुरी का विस्तृत व्याकरण देने के साथ आधुनिक आर्य-भाषाओं की काफ़ी तुलनात्मक सामग्री दी गई है। इसमें हिंदी क्रिया-रूपों में लिंग-परिवर्तन, प्राकृत से हिंदी में ध्वनि-परिवर्तन के नियम, विभिन्न रूपों का विकास, भाषायी मानचित्र तथा लिपियों के विकास के चित्र आदि भी हैं। 1880 ई० में ही उपर्युक्त जर्नल में इनका हिंदी धातुओं पर एक विस्तृत निबंध प्रकाशित हुआ जिसमें हिंदी धातुओं का संग्रह, इतिहास तथा वर्गीकरण आदि हैं। ग्रियर्सन (दे०) के साथ इन्होंने बिहारी भाषाओं का तुलनात्मक कोष तथा बीम्स (दे०) के साथ पृथ्वीराज रासो के आदि पर्व का संपादन किया। प्राचीन लिपियों के विकास पर भी आपने काम किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल *(प्रा० ले०)*

प्राकृत भाषा के मूर्धन्य लेखकों में इनकी गणना की जाती है। इनकी 'गाहासत्तसई' (दे०) के आधार पर ही यह प्रवाह चल पड़ा कि श्रृंगार रस की मनोरम कविता प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृत में संभव ही नहीं है। हाल का समय ईसा की प्रथम शती है। 'गाथासप्तशती' के अनुसार आंध्र नरेश शातवाहन अथवा शालिवाहन ने लगभग 1 करोड़ गाथाओं से छाँट कर 700 गाथाओं का हाल के नाम से संकलन किया था। किंतु ग्रंथ की अनेक गाथाओं में शातवाहन की प्रशस्ति गाई गई है जिससे सिद्ध होता है कि स्वयं शातवाहन ने इन गाथाओं का संकलन नहीं किया होगा अपितु इनके दरबारी किसी कवि ने यह कार्य किया होगा। वैसे तो ये गाथाएँ संकलित हैं किंतु संभावना यह भी है कि इनमें कुछ गाथाएँ स्वयं हाल कवि की लिखी हुई हों। राजा शातवाहन की लिखी भी कुछ गाथाएँ हो सकती हैं। प्राकृत भाषा के आश्रयदाताओं में शातवाहन का नाम सर्वाग्रणी है। गुणाढ्य (दे०) जैसे कवियों के आश्रयदाता होने के अतिरिक्त इन्होंने अपने अंतःपुर को प्राकृतमय बना रखा था t

हाल मुरीदां दा *(पं० कृ०)*

करतार सिंह दुग्गल (दे०) की इस बृहद् औपन्यासिक रचना का पंजावी साहित्य में प्रमुख स्थान है। इस उपन्यास के तीन भाग है—'दिल दरिया', 'इक दिल बिकाऊ है', 'मेरा दिल मोड़ दे'। ये तीनों भाग अपने में संपूर्ण लघु उपन्यास भी हैं और संयुक्त रूप से एक उपन्यास-श्रृंखला की रचना भी करते हैं। तीनों भाग उपन्यास के नायक कँवलजीत के बचपन और युवावस्था का चित्रण होने के साथ ही साथ दोनों महायुद्धों और भारत-विभाजन के साथ आई स्वतंत्रता का अनेक हिंदू, मुसलमान, सिख पात्रों के माध्यम से कलात्मक चित्रण करते हैं।

प्रथम भाग 'दिल दरिया' की कहानी कँवलजीत के जन्म से भी पहले पश्चिमी पंजाब के पोठोहार अंचल के सलेटी गाँव से शुरू होती है। लेखक ने कँवलजीत के संवेदनशील व्यक्तित्व, उसके बचपन के खट्टे-मीठे अनुभवों और किशोरावस्था का बड़ा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'इक दिलू बिकाऊ है' भाग में मुख्य रूप से नायिका मलिका और उसकी बेटी सुवीरा की कहानी वर्णित है और यह अंश देश के विभाजन तक को अपने में समाहित करता है। तीसरे भाग 'मेरा दिल मोड़ दे' में आज़ादी के बाद कँवलजीत के विवाहित जीवन की तस्वीर है। कँवलजीत की शादी मुस्लिम डाक्टर हुस्ना से होती है। परंतु देश के विभाजन के दिनों में सांप्रदायिक विद्वेष अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। सांप्रदायिकता का विद्वेष कँवलजीत और हुस्ना की ज़िंदगी में अनेक समस्याएँ पैदा कर देता है।

दुग्गल का यह उपन्यास पंजाब के जीवन का उसकी परंपराओं और उसकी धरती की धड़कन का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

हालाँ झालाँ रा कुंडलियाँ *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई० के लगभग]

इसकी रचना ईसरदास (दे०) ने की थी। वीर रस के इस अत्यंत उत्कृष्ट ग्रंथ को 'सूरसतसई' भी कहते हैं, किंतु इसमें केवल 42 कुंडलिया छंद ही हैं। कुछ विद्वान इस ग्रंथ का रचयिता 'काका आशानंद को मानते हैं। यह काव्य डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) में लिखा गया है और 'हालाँ झालाँ' क्षत्रियों के बीच युद्ध का वीर रसपूर्ण वर्णन इसका मुख्य वर्ण्य-विषय है।

हाली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1837 ई; मृत्यु—1914 ई०]

पूरा नाम अल्ताफ़ हुसैन, उपनाम 'हाली'। इनका जन्म पानीगत में हुआ। शैशव काल में ही इनके पिता का देहावसान हो गया था। इन्होंने दिल्ली जाकर ग़ालिब का शिष्यत्व ग्रहण किया। फिर कुछ समय लाहौर में पंजाब बुक डिपो में अँग्रेज़ी से उर्दू में अनुवाद-कार्य किया और इस तरह पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आए। हाली ने सर सैयद अहमद ख़ाँ (दे०)के आदेश पर 'मद्दो-जज़र ए-इसलाम' नामक पुस्तक लिखी। गद्य-साहित्य में भी इनका अपना स्थान है। 'यादगार-ए-ग़ालिब' (दे०), 'हयात-ए-सादी' जीवनी-साहित्य के अच्छे नमूने हैं। उर्दू में ये इस गद्य-विधा के प्रवर्तक मान जाते हैं।

इनकी कविता में सर्वत्र सहज सरलता पाई जाती है। हाली ने नए-नए शीर्षकों के अंतर्गत जैसे 'उम्मीद से खिताब', 'बरखा रुत' तथा 'हुब्ब-ए-वतन' आदि कविताएँ लिख कर उर्दू कविता में सुधारवाद का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलन किया और आलोचना में नए मानदंड स्थापित किए। 'मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' (दे०) इनकी अमूल्य कृति है जिसकी भाषा दिल्ली की टकसाली भाषा है। विचारों की स्वच्छता, गंभीरता तथा सरलता इनके विशेष गुण हैं। ये सदा अतिशयोक्ति से बचने का प्रयास करते हैं और प्रकृति के पुजारी हैं। कुल मिलाकर, हाली उर्दू साहित्य के निर्माताओं में से हैं।

हाशम शाह *(पं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1753-1843 ई०]

अपने समय के समादृत संत, प्रसिद्ध हकीम और लोकप्रिय कवि हाशम शाह, जगदेवकलां (ज़िला अमृतसर)। निवासी हाजी मुहम्मद शरीफ़ क़ुरेशी के पुत्र थे। बढ़ईगीरी, वैद्यक और सूफ़ी-विचार इन्हें पैतृक संस्कारों के रूप में प्राप्त हुए थे। इन्होंने तीन विवाह किए जिनमें से एक किसी ब्राह्मण महिला के साथ बताया जाता है, इसके फलस्वरूप इनको राजकोप भी सहना पड़ा। पंजाबी के अतिरिक्त हिंदी और फ़ारसी में भी इन की अच्छी गति थी। पंजाबी में 'सोहणी-महींवाल', 'सस्सी-पुन्नूँ', 'शीरीं-फ़रहाद' और 'हीर-राँझे दी बिरती' नामक प्रेम-प्रबंधों के अतिरिक्त सूफ़ी विचारों पर आधारित 'गंजे असरार', 'मादने फ़ैज़', 'दरियाए हक़ीक़त' तथा कुछ फुटकर दोहे, ड्योढ़े और सीहरफियाँ भी उपलब्ध होती हैं। हिंदी रचनाओं में 'ज्ञान प्रकाश', 'चिंताहर', 'राज-नीति' आदि तथा फ़ारसी में 'दीवान हाशम', 'मसनवी हाशम', 'चहार बहार हाशम' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। हाशम का काव्य धार्मिक संकीर्णताओं से मुक्त है और उसमें विद्वत्ता की अपेक्षा विवेक की सुगंध है। इनके काव्य पर मुग्ध होकर महाराजा रणजीत सिंह ने अनेक अवसरों पर जागीरें प्रदान कर इन्हें सम्मानित किया। मुक्तक रचनाओं में विचारों को लोकगृहीत दृष्टांतों से पुष्ट कर अपने वर्ण्य को अधिक ग्राह्य बनाने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। उनमें विरह की तीव्रता, इश्क़ की महत्ता और आचरण की शुद्धता का प्रतिपादन है। लौकिक प्रेम को भी अलौकिक गरिमा से समन्वित कर प्रस्तुत करने वाले ये एकमात्र क़िस्सा-लेखक हैं। इनके प्रेमाख्यानों में चित्रित प्रेम आकर्षक परंतु वासनामुक्त है, उसका आदर्श भोग नहीं त्याग है। कथावर्णन अति संक्षिप्त परंतु रोचक और प्रवाहपूर्ण है और उसके माध्यम से वियोग श्रृंगार की मार्मिक व्यंजना हुई है। कला-पक्ष की दृष्टि से भी इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। उनमें भाषा की सहज ग्राह्यता, अलंकारों की सहजता और संगीत की मधुरता है।

हास्यचूडामणि *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती]

वत्सराज (दे०) संस्कृत के प्रयोगवादी नाटक-कार हैं। इन्होंने लगभग सभी प्रकार के रूपों की रचना की है। प्रस्तुत रूपक इनका प्रसिद्ध प्रहसन है।

इस प्रहसन में एक अंक है। इसमें एक आचार्य 'ज्ञानराशि' का ख़ूब मज़ाक उड़ाया गया है। इस आचार्य को केवलीविद्या आती थी जिसकी मदद से वह गड़े हुए धन तथा भूली हुई वस्तुओं का पता लगा दिया करता था। इस रूपक की रचना धार्मिक कृत्य को छोड़कर लौकिक कार्यों की अनुरक्ति को लक्ष्य कर की गई। इस में नाटककार काफ़ी सफल रहा है।

हास्यविनोदमीमांसा *(म० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

श्री नं० चिं० केळकर (दे०) ने 1908 ई० में 'सुभाषित आणि विनोद' नामक एक पुस्तक लिखी थी, उसी को संवर्द्धित करके उन्होंने 1937 ई० में 'हास्य-विनोद-मीमांसा' की रचना की गई है। यहाँ संस्कृत-काव्य-शास्त्र की परंपरा से भिन्न नयी दृष्टि से हास्य रस के महत्व-वैशिष्ट्य पर चिंतन किया गया है। रचनाकार ने श्रृंगार को रसराज मानने की अपेक्षा हास्य को ही रसराज मानने पर बल दिया है और अपनी मान्यता की पुष्टि में अनेक तर्क-प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। हास्य का स्वरूप, भेदोपभेद तथा साहित्य में वर्णित उसकी विशेष-ताओं का व्यापक रूप में मूल्यांकन किया गया है और संस्कृत, मराठी तथा अँग्रेज़ी के काव्य-नाटकों से उदाहरण दिए गए हैं। विद्वान लेखक ने जीवन और साहित्य का अभिन्न संबंध दर्शाकर हास्य रस की महत्व-मीमांसा की है। मराठी-काव्यशास्त्र के विकास में इस रचना का योगदान असंदिग्ध है।

हास्यांजली *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1945 ई०]

'हास्यांजली' संजयन् (दे०) के नाम से प्रसिद्ध एम० आर० नायर के व्यंग्य-लेखों का संग्रह है। समय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पर प्रकाशित इन लेखों के संग्रह को लेखक की मृत्यु के बाद पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था। इसके लेखों में लेखक ने अपनी दृष्टि में आई हुई बुराइयों की तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक आलोचना की है। उनकी आलोचना का विषय कभी किसी दुष्कवि की रचना है तो कभी कालिकट नगरपालिका है। कोई भी समसामयिक विषय उनसे बच नहीं पाया है।

संजयन् के हास्य की एक विशेषता यह है कि वे किसी के हृदय को दुःख पहुँचाने के उद्देश्य से नहीं लिखते। जिस प्रकार टैगोर ने गीतों की अंजलि से भगवान की पूजा की थी उसी प्रकार यह 'हास्यांजली' भी भगवान के प्रति समर्पित थी। वे हँसी को परिहास-रूपी गुलाब के पौधे का पुष्प और भर्त्सना को उसका काँटा समझते थे। समाज-सुधार उनका एकमात्र लक्ष्य था और उन्होंने व्यक्तियों पर कभी कीचड़ नहीं उछाली है। संतुलित व्यंग्य की यह कृति मलयाळम की एक अमूल्य निधि है।

हा हा हू हू *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1932 ई०]

'हा हा हू हू' श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का एक सांस्कृतिक उपन्यास है। श्री सत्यनारायण आधुनिक शिक्षा विज्ञान, विचारधारा एवं जीवन-पद्धतियों के विरोधी तथा प्राचीन भारतीय जीवन की सहजता एवं सरलता के पक्षपाती हैं। उनका विचार है कि मनुष्य कृत्रिम ज्ञान की वृद्धि से नष्ट हो रहा है। इन्हीं विचारों को इस ऊहात्मक अन्यापदेशी के लघु उपन्यास में उपन्यासकार ने व्यक्त किया है। लंदन के ट्राफ़ल्गर स्ववेयर में एक अश्वमुख गंधर्व के उतरने के बाद से इसकी कहानी आरंभ होती है। भाषा एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर भी इसमें व्यंग्य है।

हिंद स्वराज्य *(गु० कृ०)*

महात्मा गांधी (दे०) द्वारा 1908 ई० में रचित तथा नवजीवन प्रकाशन द्वारा 1922 ई० में प्रथम बार प्रकाशित 'हिंद स्वराज्य' गांधी जी की रचनाओं में महत्व पूर्ण है।

भारत के स्वराज्य की बापू ने उन दिनों जो कल्पना की थी, उसका इस में पूर्ण चित्र है। बापू स्वतंत्र भारत को जिस रूप में सुखी, समृद्ध व स्वावलंबी देखना चाहते थे, इस रचना में वह कल्पना ठीक-ठीक प्रस्तुत है। यही कारण है कि उन दिनों बापू ने यंत्रों से असहयोग करने का विचार प्रकट किया था तथा तथाकथित सुधारवादियों, वकीलों, डाक्टरों, वैज्ञानिक साधनों—रेलगाड़ी आदि—के प्रति तिरस्कार दिखाया था। भारत को परावलंबी बनाने वाली प्रत्येक वस्तु से बापू घृणा करते थे। 110 पृष्ठों की इस लघु कृति में अधिपति तथा वाचक के संवाद (प्रश्नोत्तर) के माध्यम से भारत, भारत की परतंत्रता, भारत की आर्थिक समस्याओं आदि पर चर्चा है।

इस पुस्तक ने उन दिनों देशी-विदेशी विद्वानों, अर्थशास्त्रियों, चिंतकों को खूब प्रभावित किया था। इस के अँग्रेज़ी संस्करण ने विश्व के सभी देशों के विद्वानों को भारत की स्वतंत्रता के विषय में सोचने को विवश किया था।

इसके वर्ण्य विषय हैं: कांग्रेस, उसके कर्णधार, बंग-भंग, अशांति और असंतोष, स्वराज्य क्या है? इंगलैंड की स्थिति, सुधार का चिंतन हिंदुस्तान की दशा, वास्तविक सुधार, हिंद कैसे मुक्त हो? इटली और भारत, बारूद, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, यंत्र-काम-मुक्ति आदि।

यंत्रों के विरोध में गांधी जी का विचार है कि भारत जैसे देश में यंत्र उपकारक नहीं, अपकारक हैं। यंत्र श्रम की बचत का नहीं, धन-लोभ का प्रतीक बन गया हैं। इसी प्रकार ऐसी सुधारवादिता भी उन्हें अग्राह्य है जो हमारे आदरणीयों का अनादर करे। वकीलों ने मनुष्य को झगड़े में डालकर नष्ट किया है और रेल ने मनुष्य की शक्ति क्षीण कर डाली है। डाक्टरों ने उसे अस्वस्थ कर दिया है।

हिंदी *(भाषा० पारि०)*

भारोपीय परिवार की एक महत्वपूर्ण भाषा जो राजस्थान, हरियाणा, पंजाब के कुछ भाग, हिमाचल, प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तया बिहार में बोली जाती है तथा जो भारतीय गणराज्य की राजभाषा है। बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से इसका स्थान विश्व में तीसरा हे। केवल चीनी और अँग्रेज़ी बोलने वाले इससे अधिक हैं। हिंदी के अंतर्गत राजस्थानी (दे०) पश्चिमी हिंदी (दे०), पूर्वी हिंदी (दे०), पहाड़ी तथा बिहारी (दे०) पाँच उपभाषाएँ हैं जिनकी मुख्य बोलियाँ मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, कौरवी, हरियाणी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नौजी ब्रज, बुंदेली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, कुमायूँनी गढ़वाली, भोजपुरी, मगही तथा मैथिली हैं। आज हिंदी का जो मानक रूप है उसे हिंदी या खड़ी बोली (दे०) हिंदी कहते हैं। उर्दू हिंदी की ही एक शैली है जिसका व्याकरण प्रायः हिंदी के समान है। अंतर केवल शब्द-समूह का है। उर्दू में अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों की संख्या काफ़ी है जबकि हिंदी में ऐसे शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं। हिंदी की एक शैली हिंदुस्तानी (दे०) भी है जिसमें संस्कृत या अरबी-फ़ारसी आदि के कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं होता। यह बोलचाल की भाषा है। हिंदी क्षेत्र में दैनिक जीवन में इसी का प्रयोग होता है। हिंदी भाषा का उद्भव अपभ्रंश से 1000 ई० के आस-पास हुआ। 1000 ई० से 1500 ई० तक की आदिकालीन हिंदी में अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप भी मिलते हैं। 1500 से 1800 ई० तक मध्यकालीन हिंदी है। इस काल में हिंदी में मुग़ल साम्राज्य की स्थापना के परिणाम-स्वरूप लगभग छह हज़ार अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्द आए। 1800 ई० से हिंदी भाषा के आधुनिक काल का प्रारंभ होता है। आधुनिक काल में यूरोप के संपर्क के कारण हिंदी में अँग्रेज़ी तथा कुछ अन्य यूरोपीय देशों की भाषाओं से शब्द आए हैं। व्याकरण के क्षेत्र में भी इस काल में भी हिंदी-अँग्रेज़ी से—मुख्यतः वाक्य-रचना तथा मुहावरेदार प्रयोगों में—काफ़ी प्रभावित हुई है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी का शब्द-भंडार पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से काफ़ी संपन्न हुआ है और दिनों-दिन होता जा रहा है। इस तरह हिंदी भाषा अब सभी दृष्टियों से आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप समर्थ होती जा रही है।

हिंदी, पश्चिमी *(हिं० भाषा०)*

ग्रियर्सन (दे०) ने हरियाणी, खड़ी बोली या कौरवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी-भाषी प्रदेश को ही भाषा-शास्त्रीय दृष्टि से हिंदी प्रदेश कहा था इस क्षेत्र को उन्होंने पश्चिमी तथा पूर्वी दो उपक्षेत्रों में विभाजित करके उन्हें क्रमशः पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी (दे० हिंदी, पूर्वी) नाम दिया था। पश्चिमी हिंदी में पाँच बोलियाँ आती हैं : ब्रज, खड़ी बोली, हरियाणी, बुंदेली, कन्नौजी। इसी रूप में पाँच बोलियों के वर्ग को पश्चिमी हिंदी कहा जाता है। इस तरह हिंदी भाषा की पाँच उपभाषाओं में एक पश्चिमी हिंदी है (अन्य हैं : पूर्वी हिंदी—दे०), राजस्थानी (दे०), पहाड़ी, बिहारी (दे०) जिसमें पाँच बोलियाँ हैं। यह ध्यान देने की बात है कि पश्चिमी हिंदी हिंदी का कोई एक निश्चित रूप न होकर पाँच बोलियों का सामूहिक नाम है। कुछ लोग पश्चिमी हिंदी में इन पाँच के अतिरिक्त कुछ अन्य बोलियाँ भी मानते हैं। पश्चिमी हिंदी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है।

हिंदी, पूर्वी *(हिं० भाषा०)*

ऐतिहासिक और भौगोलिक आधार पर ग्रियर्सन (दे०) ने हिंदी भाषा के पश्चिमी हिंदी (दे०) और पूर्वी हिंदी दो भेद किए थे। पूर्वी हिंदी में उन्होंने अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी—इन तीन बोलियों को रखा था। इस तरह इन तीन बोलियों के वर्ग का ही नाम पूर्वी हिंदी है। यह ध्यान देने की बात है कि पूर्वी हिंदी, हिंदी भाषा का कोई एक निश्चित रूप नहीं है, बल्कि वह इन तीन बोलियों का सामूहिक नाम मात्र है। कुछ लोग बघेली को अवधी का एक क्षेत्रीय भेद मानकर पूर्वी हिंदी में केवल दो ही बोलियाँ—अवधी और छत्तीसगढ़ी—मानते हैं। पूर्वी हिंदी का उद्भव किस अपभ्रंश से हुआ है, यह विवाद का विषय है। ग्रियर्सन ने इसका संबंध अर्धमागधी से माना था, किंतु अर्धमागधी नाम से जो भाषा जैन धर्म के साहित्य में प्राप्त हुई है, उसे इससे पूरी तरह नहीं जोड़ा जा सकता। डा० सक्सेना (दे० सक्सेना बाबूराम) के अनुसार पूर्वी हिंदी तथा पालि में काफ़ी बातें समान हैं। वस्तुतः पूर्वी हिंदी या अवधी का संबंध किस अपभ्रंश और प्राकृत से है, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। सामान्य प्रयोग में पूर्वी हिंदी या पूर्वी का प्रयोग कभी-कभी भोसपुरी या मगही-मैथिली के लिए भी होता है। वस्तुतः अपने क्षेत्र से पूरब की भाषा के लिए 'पूरबी' नाम का प्रयोग प्रायः होता रहा है। इस रूप में ब्रज-भाषियों के लिए अवधी पूरबी है तो अवधी वालों के लिए भोजपुरी और भोजपुरी वालों के लिए मगही-मैथिली।

हिंदी साहित्य का इतिहास *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०)

नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) द्वारा प्रकाशित 'हिंदी-शब्दसागर' की भूमिका आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी-साहित्य का विकास' नाम से लिखी थी जो जनवरी 1929 ई० में प्रकाशित हुई थी। पुनः इसी भूमिका को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकाकार रूप में 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' नाम से बहुविध परिवर्धनों के साथ प्रकाशित कराया गया। फिर इस ग्रंथ का संशोधित और परिवर्धित संस्करण लगभग 11 वर्ष पश्चात् 1940 ई० में प्रकाशित हुआ; तत्पश्चात् लेखक के मरणोपरांत 1942 ई० में इसमें कतिपय नये कवियों का संक्षिप्त विवेचन जोड़ दिया गया, जो कि स्वयं लेखक ने इस ग्रंथ के 'पंजाब-संस्करण' के लिए लिखा था।

इस इतिहास-ग्रंथ से पूर्व ठाकुर शिवसिंह सेंगर (दे०) ने हिंदी-कवियों का एक वृत्त-संग्रह 1883 ई० में प्रस्तुत किया था, और डा० ग्रियर्सन (दे०) ने 'ए माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ़ नार्दर्न हिंदुस्तान' नाम से 1889 ई० में एक वैसा ही कवि-वृत्त-संग्रह निकाला था। इसके उपरांत नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की आठ खोज रिपोर्टों (1900-1911 ई०) के आधार पर मिश्र बंधुओं (दे०) द्वारा तैयार किया एक बड़ा भारी कवि-वृत्त 'मिश्रबंधु-विनोद' नाम से तीन भागों में 1913 ई० में प्रकाशित हुआ। आचार्य शुक्ल का यह 'इतिहास' उक्त तीन कवि वृत्त-संग्रहों की अपेक्षा इस दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि इसमें विवेच्य काल और कवि तथा कवि और उसकी कृति की पारस्परिक संगति किसी विशिष्ट प्रवृत्ति के आधार पर स्थिर की गई है, जो कि इस दिशा में एक मौलिक एवं सफल प्रयास था। आचार्य शुक्ल ने इस ग्रंथ की रचना में उक्त खोज रिपोर्टों, कविवृत्त-संग्रहों के अतिरिक्त एतद्विषयक निम्नोक्त ग्रंथों से भी सहायता ली है—'हिंदी कोविद-रत्नमाला' (श्यामसुंदर दास), 'कविता-कौमुदी' (रामनरेश त्रिपाठी—दे०), 'ब्रज-माधुरी-सार' (वियोगी हरि (दे०)।

यह इतिहास चार कालों में विभक्त है—वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल (अथवा गद्यकाल), और इनके नामकरण का आधार है—एक काल-खंड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता तथा उस काल में उपलब्ध ग्रंथों की प्रसिद्धि। इसी आधार पर विषय-विशेष से संबंधित उपलब्ध कृतियों के रचयिताओं तथा उनकी कृतियों का समीक्षात्मक परिचय देने के उपरांत उस काल के उन कवियों और अनेक उनकी कृतियों का परिचय 'फुटकल रचनाएँ' शीर्षक के अंतर्गत दिया गया है, जिन्होंने उस विषय से इतर विषयों से संबद्ध ग्रंथों की रचना की है। यों, उन्होंने ग्रंथ को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल नाम से भी साथ-ही-साथ विभक्त किया है। मध्यकाल पुनः दो कालखंडों में विभाजित है—पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। आदिकाल (वीरगाथ.काल : लगभग 1000-1300 ई०) चार प्रकरणों में विभक्त है—(1) सामान्य परिचय (2) अपभ्रंशकाल (3) देशभाषा काव्य और (4) फुटकल रचनाएँ मध्यकाल (भक्तिकाल : लगभग 1300-1650 ई०) में छह प्रकरण हैं—(1) सामान्य परिचय (2) निर्गुणधारा : ज्ञानाश्रयी शाखा, (3) निर्गुण धारा : प्रेममार्गी (सूफ़ी शाखा), (4) सगुण धारा : रामभक्ति-शाखा, (5) सगुण धारा, कृष्णभक्ति-शाखा, (6) भक्तिकाल की फुटकल रचनाएँ। उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल : लगभग 1650-1850 ई०) में तीन प्रकरण हैं—(1) सामान्य परिचय, (2) रीतिग्रंथकार कवि-परिचय, (3) रीतिकाल के अन्य कवि। आधुनिक काल (लगभग 1850-1925 ई०) दो खंडों में विभाजित है—गद्यखंड और काव्यखंड। गद्य-खंड में तीन प्रकरण हैं—(1) गद्य का विकास, (2) गद्य-साहित्य का आविर्भाव तथा आधुनिक गद्य-साहित्य-परंपरा का प्रवर्तन, (3) गद्य-साहित्य का प्रसार : सामान्य परिचय तथा गद्य-साहित्य की वर्तमान गति। इन तीनों प्रकरणों में आचार्य शुक्ल ने धार्मिक ग्रंथों, काव्यों की पुरानी प्रणाली की टीकाओं, धार्मिक आंदोलनों और इन से संबद्ध पुस्तकों तथा समाचारपत्रों से बहुविध उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, तथा साथ ही प्रचार-सभाओं एवं भाषा-सुधारक आचार्यों के प्रयासों पर भी प्रकाश डाला है। इस सब प्रकार की सामग्री से हिंदी-गद्य-साहित्य के उद्भव और विकास की गाथा प्रस्तुत करने के उपरांत गद्य-साहित्य के निम्नोक्त काव्यरूपों का भी आचार्य शुक्ल ने यथेष्ट विवेचन किया है—निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी और समालोचना। काव्यखंड में दो प्रकरण हैं—(क) पुरानी धारा और (ख) नयी धारा। नयी धारा को पुनः पच्चीस-पच्चीस वर्ष के कालखंडों के आधार पर तीन उत्थानों में विभाजित किया गया है।

इस इतिहास-ग्रंथ के बहुमूल्य स्थल हैं—चारों कालों के 'सामान्य परिचय'। इनमें देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का परिचय इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है कि इन्हीं के आधार पर ही तत्कालीन प्रमुख एवं विशिष्ट रचनाएँ प्रकाश में आ सकी हैं, तथा साथ ही उन्होंने यत्र-तत्र इस तथ्य पर भी संकेत दिए हैं कि हिंदी की रचनाओं पर भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के किस प्रकार के साहित्य का प्रभाव कितना और कैसा पड़ा है। इस प्रकार की विवेचना-शैली हिंदी-साहित्य इतिहास-लेखन में एक अभूतपूर्व घटना थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस इतिहास-ग्रंथ की अनुक्रमणिका (1) ग्रंथकार और (2) ग्रंथ से ज्ञात होता है कि इसमें लगभग 800 ग्रंथकारों और लगभग 1600 ग्रंथों का नामोल्लेख अथवा परिचय प्रस्तुत किया गया है। आचार्य शुक्ल ने निम्नोक्त लेखकों पर विशिष्ट प्रकाश डाला है और वस्तुतः यही लेखक ही अपने विशिष्ट कालखंड की किसी प्रमुख प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति-कला का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं—सरहपा, हेमचंद (दे०) चंदबरदाई (दे०), विद्यापति (दे०), कबीर (दे०), मलिक मुहम्मद जायसी (दे०), तुलसीदास (दे०), वल्लभाचार्य, सूरदास (दे०), केशव दास (दे०), चिंतामणि (दे०), बिहारी (दे०), भूषण (दे०), दास (दे०), देव (दे०), घनानंद (दे०) लल्लूलाल (दे०), भारतेंदु (दे०), हरिश्चंद्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०), देवकीनंदन खत्री (दे०), प्रेमचंद (दे०), अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०), सुमित्रानंदन पंत (दे०), जयशंकर प्रसाद (दे०), सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (दे०), और महादेवी वर्मा (दे०)।

लेखकों के परिचय में आचार्य शुक्ल ने सर्वप्रथम उनका यथासंभव प्रामाणिक जीवन-चरित प्रस्तुत किया है—आधुनिक लेखकों का जीवन-चरित नहीं दिया गया। फिर उनके ग्रंथ की सूची एवं आलोचनात्मक समीक्षा के उपरांत यथावश्यक रूप में विषय से संबद्ध ग्रंथकारों के साथ तुलना प्रस्तुत की गई है और अंत में उनकी विषय-सामग्री तथा प्रतिपादन-शैली के आधार पर उनका मूल्यांकन किया गया है। आचार्य शुक्ल की इस दिशा में उल्लेख्य विशेषता है कि इन्होंने प्रायः प्रत्येक लेखक अथवा ग्रंथ के विषय में एक ऐसा सार-वाक्य कह दिया है जो कि व्यावर्तक धर्म बन गया है और यही सार-काव्य लगभग पिछले चालीस वर्षों से परवर्ती लेखकों के आदर्श बन गए हैं—यद्यपि ऐसे किन्हीं वाक्यों से समय-समय पर असहमति भी प्रकट की जाती रही है। निष्कर्षतः यह इतिहास-ग्रंथ अपने समय का तो सर्वाधिक शोधपूर्ण, प्रांजल समर्थ एवं प्रामाणिक ग्रंथ था ही, आज भी इसका महत्व हर दृष्टि से अक्षुण्ण बना हुआ है तथा सभी इतिहासकारों ने इसका यथावत् अनुकरण किया है।

हिंदी-साहित्य का बृहद् इतिहास (हिं० क्र०)

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा (दे०) द्वारा 1953 ई० में 'हिंदी-साहित्य का बृहद्-इतिहास' सोलह भागों में प्रकाशित करने की योजना स्वीकृत हुई थी, जिसमें हिंदी-साहित्य के व्यापक तथा सर्वांगीण इतिहास को प्रस्तुत करने का ध्येय निश्चित हुआ था। इन भागों के नाम इस प्रकार हैं—(1) हिंदी-साहित्य की पीठिका : संपादक डा० राजबली पांडेय, (2) हिंदी भाषा का विकास : सं० डा० धीरेंद्र वर्मा (दे०), (3) हिंदी-साहित्य का उदय और विकास (1400 वि० तक) : सं० करुणापति त्रिपाठी, डा० शिवप्रसादसिंह, (4) भक्तिकाल 1400-1700 वि० : सं०—डा० दीनदयालु गुप्त, डा० देवेंद्रनाथ शर्मा, डा० विजयेंद्र स्नातक, (6) शृंगारकाल (रीतिबद्ध) 1700-1900 वि० : सं०—डा० नगेंद्र (दे०), (7) शृंगारकाल (रीतिमुक्त) 1700-1900 वि० : सं० डा० भगीरथ मिश्र, (8) हिंदी-साहित्य का अभ्युत्थान (भारतेंदुकाल) 1900-1950 वि० : सं०—श्री विनयमोहन शर्मा, (9) हिंदी-साहित्य का परिष्कार (द्विवेदी काल) 1950-75 वि० : सं०—पं० कमलापति त्रिपाठी, पं० सुधाकर पांडेय (10) हिंदी-साहित्य का उत्कर्ष-काल (काव्य) 1975-95 वि० : सं०—डा० नगेंद्र, डा० राशेश्वर शुक्ल अंचल (दे०), पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' काशिकेय (11) हिंदी-साहित्य का उत्कर्ष-काल (नाटक) 1975-90 वि० : सं० डा० सावित्री सिन्हा, डा० दशरथ ओझा, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, (12) हिंदी साहित्य का उत्कर्षकाल (उपन्यास, कथा, आख्यायिका) 1975-95 वि० : सं० डा० कल्याणमल लोहड़ा, श्री अमृतलाल नागर (दे०), (13) हिंदी-साहित्य का उत्कर्ष काल : निबंध, पत्रकारिता, आलोचना, 1975-95 : सं० श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' (दे०), (14) हिंदी-साहित्य का अद्यतनकाल 1995-2010 : सं० डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० कैलाशचंद्र भाटिया, (15) हिंदी में शास्त्र तथा विज्ञान : सं० श्री रामधारीसिंह दिनकर (दे०), श्री गोपालनारायण शर्मा, (16) हिंदी का लोक-साहित्य : सं० पं० राहुल सांकृत्यायन (दे०)। इस योजना के अंतर्गत दस भाग अब तक (दिसंबर 1974 तक) प्रकाशित हो चुके हैं, और शेष निर्माणाधीन हैं। देश भर के दो सौ से अधिक अधिकारी विद्वानों को इस इतिहास-लेखन का सहयोग प्राप्त हुआ है अथवा मिल रहा है। इतिहास-लेखन में निम्नोक्त प्रमुख नियमों के परिपालन का यथासंभव प्रयत्न किया गया है—(1) विभिन्न कालों का विभाजन युग की मुख्य सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाए। (2) साहित्य के उदय और विकास, उत्कर्ष और अपकर्ष का वर्णन और विवेचन करते समग्र ऐतिहासिक दृष्टिकोण का पूरा ध्यान रखा जाए। (3) साहित्य के सभी पक्षों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर संतुलित तथा प्रामाणिक रूप से विचार किया जाए। (4) विभिन्न कृतियों का मूल्यांकन विशेषतः साहित्य-शास्त्रीय आधार पर और सामान्यतः दार्शनिक, सांस्कृतिक, समाजशास्त्रीय तथा मानववादी आधारों पर किया जाए। (5) भाषा और शैली सुबोध एवं सुरुचिपूर्ण हो।

हिंदी-साहित्य की भूमिका *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

इस ग्रंथ के लेखक हैं डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०)। ग्रंथ में दस अध्याय हैं—(1-2) हिंदी साहित्य : भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास, (3) संतमत, (4) भक्तों की परंपरा, (5) योग-मार्ग और संत-मत, (6) सगुण-मतवाद, (7) मध्ययुग के संतों का सामान्य विश्वास, (8) भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का व्यक्तित्व, (9) रीतिकाव्य, (10) उपसंहार। इनके अतिरिक्त 'उपसंहार' के अंतर्गत संस्कृत-साहित्य का संक्षिप्त परिचय, 'महाभारत' (दे०) क्या है, 'रामायण' (दे०) और 'पुराण', बौद्ध-साहित्य, बौद्ध-संस्कृत-साहित्य, जैन-साहित्य, कवि-प्रसिद्धियाँ और स्त्रीरूप—इन विषयों पर भी सम्यक् प्रकाश डाला गया है। जैसा कि ग्रंथ के नाम और उपर्युक्त शीर्षकों से स्पष्ट है, ग्रंथकार को हिंदी-साहित्य के निर्माण से पूर्व की ऐसी सामग्री का विवेचन एवं संकलन करना अभीष्ट है, जिससे यह प्रमाणित किया जा सके कि इस सामग्री की अजस्र धारा के प्रवाह-रूप में हिंदी-साहित्य का विकास हुआ है। इस प्रकार ग्रंथकार भारतीय संस्कृति एवं विचारधारा की शाश्वतता में विश्वास रखते हैं। यह ग्रंथ लेखक की विद्वत्ता, बहुज्ञता एवं पांडित्य के अतिरिक्त उसकी विश्लेषणात्मक, गंभीर, प्रौढ़ एवं सशक्त शैली का परिचायक है। हिंदी-साहित्य के आधार-स्रोतों के अध्येता के लिए यह एक संदर्भ-ग्रंथ का काम करता है।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) की प्रेरणा से इस संस्था की स्थापना प्रयाग में 1910 ई० में हुई। इस के उद्देश्य और कार्य थे—हिंदी-साहित्य के विभिन्न अंगों की सृष्टि और उनका विकास करना, देशव्यापी कार्यों एवं व्यवहार को सुलभ बनाने के लिए राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी भाषा तथा राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी लिपि का प्रचार करना, उसे अंतर्प्रांतीय भाषा बनाने, सरकारी कार्यालयों, कचहरियों और सरकारी कामों में उसका प्रवेश कराने की दिशा में सतत प्रयास करना। विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का माध्यम हिंदी हो इसके लिए आंदोलन करने के आंदोलन करने के साथ-साथ उसने हिंदी की उच्च परीक्षाओं की जगह-जगह व्यवस्था की और उन्हें विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा-बोर्डों से मान्यता प्राप्त कराई हिंदी-साहित्य के विकास और उदीयमान हिंदी-लेखकों को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न पुरस्कार और पदक देने की व्यवस्था करने का श्रेय भी इसे है। नागरी प्रचारिणी सभा के साथ इसने भी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और प्रकाशन के कार्य में सक्रिय सहयोग दिया। इसके मुख्य विभाग हैं—परीक्षा-विभाग, प्रचार-विभाग, पुस्तकालय-विभाग और प्रकाशन-विभाग। इसके संग्रहालय भवन में एकत्र साहित्यकारों के एलबम तथा मल्लों के चित्र इसकी एक अन्य विशेषता है। इसके अधिवेशनों का सभापतित्व महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों द्वारा किया गया और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे कर्मठ व्यक्तियों की प्रेरणा इसे मिली। आज भी यह हिंदी भाषा और साहित्य की प्रगति में सक्रिय कार्य कर रहा है। इसकी प्रमुख पत्रिका है 'सम्मेलन पत्रिका'।

हिंदुस्तानी *(हिं० भाषा)*

'हिंदुस्तानी' शब्द का संबंध तो स्पष्ट ही पूरे 'हिंदुस्तान से है किंतु भाषा के अर्थ में इसका अर्थ काफ़ी सीमित है। कभी हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग हिंदी-उर्दू के सम्मिलित रूप के लिए होता था। उर्दू के पर्याय के रूप में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। आजकल 'हिंदुस्तानी' उस बोलचाल की हिंदी को कहते हैं जिसमें न तो संस्कृत के वे कठिन शब्द हैं जो साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त होते हैं, और न अरबी-फ़ारसी-तुर्की के वे मुश्किल अलफ़ाज हैं जो उर्दू में इस्तेमाल होते हैं। इस तरह हिंदुस्तानी वह आधार-भाषा है जो एक तरफ़ अरबी-फ़ारसी-तुर्की के कठिन शब्दों को ग्रहण करके 'उर्दू' नाम की अधिकारिणी बन जाती है तो दूसरी तरफ़ संस्कृत के कठिन शब्दों को ग्रहण करके साहित्यिक हिंदी कहलाने लगती है। गांधीजी ने इसी अर्थ में 'हिंदुस्तानी' नाम का प्रयोग किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिड़माटी *(उ० कृ०)*

'हिड़माटी' नित्यानंद महापात्र (दे०) का उपन्यास है। इसमें ग्रामीण समाज का चित्रण अकृत्रिम रूप से हुआ है। शीर्षक के अनुरूप आर्थिक समस्या इसका मुख्य प्रतिपाद्य है, यद्यपि सामाजिक जीवन के सर्वांगीण चित्रण के कारण अन्य गौण समस्याएँ भी स्वतः उभर कर आ गई हैं। वैचारिक गांभीर्य इसमें आद्यंत मिलता है। वर्ग-संघर्ष का चित्रण अवश्य हुआ है, किंतु लेखक ने इसका समाधान गांधीवाद में देखा है। उपन्यास के अंतिम भाग में लेखक ने गांव के किसान, मजदूर एवं हिड़माटी का प्राधान्य दिखाया है और उसी के माध्यम से भारत जैसे निर्धन, कृषि-प्रधान, अधिक जनसंख्या वाले विकसनशील राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था का स्वरूप कैसे हो, इसका संकेत किया है।

'हिड़माटी' एक पूर्णांग उपन्यास नहीं है। यह 'कालनेमि' नामक बृहत् उपन्यास का प्रथम खंड है। उसके दूसरे भाग का नान 'भंगाहाड़' है और तृतीय भाग का 'घर ढ़िअ'। अतः 'हिड़माटी' के चरित्रों का पूरा विकास नहीं हो पाया है। इसमें एक निर्धन कृषक अपनी युवती स्त्री और शिशु पुत्र को गाँव में छोड़कर कलकत्ता जाता है। और यहीं से शहरीकरण, औद्योगीकरण, पूंजीवाद, टूटती परंपरागत अर्थव्यवस्था, विखरता सामाजिक जीवन आदि बातें एक साथ उद्भावित हो उठती हैं।

इस प्रकार यह एक समस्यामूलक गंभीर कृति है।

हिततरंगिणी *(हिं० कृ०)* [रचना-काल— 1541 ई०]

इस ग्रंथ के प्रणेता कृपाराम (दे०) हैं। इसमें नायिकाभेद का निरूपण भानुमिश्र-रचित 'रसमंजरी' (दे०) के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यिषय का प्रतिपादन दोहा (दे०) जैसे छोटे छंदों में किया गया है। भक्तिकाल में रचित नायिका-भेद-विषयक जो चार ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, कालक्रमानुसार 'हितरंगिणी' उनमें से प्रथम है। शेष तीन ग्रंथ हैं सूरदास (दे०)-कृत 'साहित्य लहरी' (दे०), नंददास (दे०)-कृत 'रसमंजरी' और रहीम (दे०)-कृत 'बरवै नायिका' भेद। ग्रंथ-विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से 'हिततरंगिणी' यद्यपि अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्व अवश्य है— परवर्ती रीतिकालीन, रीतिग्रंथों, विशेषतः नायिका-भेद-विषयक ग्रंथों, की परंपरा का प्रारंभ एक दृष्टि से इसी से माना जा सकता है।

हितवृंदावनदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1695-1710; मृत्यु—1793 ई०]

कृष्णगढ़ के राजा बहादुरसिंह से घनिष्ठता होने के कारण कुछ लोग पुष्कर को इनकी जन्मभूमि मानते हैं, पर काव्य में ब्रज-जीवन का सांगोपांग विवेचन इन्हें ब्रजवासी सिद्ध करता है। तत्कालीन गोस्वामी जी के गुरुभ्राता होने के कारण ये चाचा जी कहलाए। 'लाड़सागर', 'ब्रजप्रेमानंदसागर', 'वृंदावनजसप्रकाशवेली', 'विवेकपत्रिकावेली', 'कृपाअभिलाष-वेली' 'रसिकपथ-चंद्रिका', जुगलसनेहपत्रिका', 'हरिवंशसहस्रनाम' आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। छतरपुर, भरतपुर, कृष्णगढ़ और वृंदावन मे इनके लगभग 80 हस्तलिखित ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। 'भक्तमाल' (दे०) की तरह इन्होंने 'हरिवंशसहस्रनाम' में राधावल्लभीय (दे० राधावल्लभ-संप्रदाय) भक्तों का परिचय प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा-साहित्य को व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से इन्हें ब्रजभाषा का व्यास (दे० व्यास, बादरायण) कहना असंगत न होगा।

हितहरिवंश *(हिं० ले०)* [जन्म—1502 ई०; मृत्यु—1552 ई०]

ये 'राधावल्लभ-संप्रदाय' (दे०) के प्रवर्तक एवं राधा के अनन्य उपासक थे। सांप्रदायिक दृष्टि से इन्हें कृष्ण की वंशी का अवतार कहा जाता है। सोलह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह रुक्मिणी देवी से हुआ; ब्रज-यात्रा करते हुए कृष्णदासी और मनोहरदासी नामक दो ब्राह्मण-कन्याओं से इन्होंने और विवाह किया। इनके विचारानुसार दांपत्य-जीवन के अनुभवों को प्रेम की कसौटी बना कर, उसमें पूर्ण पवित्रता का आरोप करके प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति भगवत्-प्रेम की प्राप्ति कर सकता है। इनके द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय में शृंगार का प्राधान्य है, वियोग का नहीं। कृष्ण राधा से अलग नहीं रह सकते, नित्य उनके साथ विहार करते हैं। राधा की उपासना और प्रसन्नता के द्वारा ही कृष्णभक्ति का आनंद प्राप्त किया जा सकता है—यही ईनकी विज्ञप्ति है। इन्होंने 'राधासुधानिधि' तथा 'यमुनाष्टक' दो संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के एवं 'हितचौरासी' और 'स्फुट वाणी' दो हिंदी के ग्रंथ लिखे। 'हितचौरासी' में व्रजभाषा के चौरासी पद हैं, जिनमें भाषा का अपूर्व मार्दव और माधुर्य है। 'स्फुट वाणी' सिद्धांत-ग्रंथ है एवं 'राधासुधानिधि में नित्य उपास्या राधा के सौंदर्य का समाकलन किया गया है। सब मिलाकर कृष्ण-भक्ति-काव्य में हितहरिवंश जी का स्थान काफ़ी ऊँचा और महत्वपूर्ण है।

हितोपदेश *(सं० कृ०)* [समय—1300 ई० के आसपास]

नीतिकथाओं में 'पंचतंत्र' (दे०) के बाद 'हितोपदेश' का स्थान है। इसके रचयिता नारायण पंडित बंगाल के राजा धवलचंद्र के दरबार में थे।

'हितोपदेश' का मूलस्रोत 'पंचतंत्र' है। इसकी 43 कथाओं में से 25 'पंचतंत्र' से ली गई हैं। यह ग्रंथ चार परिच्छेदों में विभक्त है—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि। प्रथम दो परिच्छेदों की कथाएँ 'पंचतंत्र' से ली गई हैं। किंतु नारायण पंडित ने इनमें कुछ और पद्य जोड़ दिए हैं। इसमें कुल 679 नीतिपरक पद्य हैं जो स्मृतियों तथा पुराणों से लिये गए हैं। इसकी कहानियां पशुओं के बीच चलती हैं।

'हितोपदेश' के पद्य उपदेशपूर्ण होने के साथ-साथ मार्मिक भी हैं। इसकी रचना-शैली अत्यंत सरल तथा रोचक है। इस ग्रंथ की रचना का उद्देश्य बालकों को सरल तथा सुबोध संस्कृत में नीति के उपदेश देना है।

'हितोपदेश', 'पंचतंत्र' संस्कृत-नीति-कथा के प्रतिनिधि ग्रंथ हैं। 'हितोपदेश' 'पंचतंत्र' के पुनर्निर्माण का दूसरा प्रयत्न है। इसमें 'पंचतंत्र' की कहानियों के साथ ही नये विषय एवं वृत्त भी सम्मिलित कर दिए गए हैं। इनको आधार बनाकर बौद्ध तथा जैनों ने कुछ नीति-ग्रंथों की रचना की जिनमें बहुत से बाद में नष्ट हो गए।

हिमबिंदु *(ते० क०)* [रचना-काल—1922 ई०]

'हिमबिंदु' अडवि बापिराजु (दे०) का श्रेष्ठतम ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी रचना उन्होंने सत्याग्रही के रूप में कारागार में रहते समय की थी। इस उपन्यास में आंध्र-शातवाहनों के समय में पाए जाने वाले ब्राह्मण-बौद्ध-धर्मों के संघर्ष, शातवाहनों के साम्राज्य की व्याप्ति, तत्कालीन आचार-विचार, खान-पान, युद्धनीति, अर्थनीति, वाणिज्य भाषा एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की गंभीर तथा मनोमुग्धकारी भूमिका के आधार पर तीन प्रणय-कथाओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह ईस ऐतिहासिक भूमिका पर कल्पित कथा के आधार पर रचा गया उपन्यास है। उपन्यासकार चित्रों, शिल्पों और संगीत की राग-रागिनियों का वर्णन करते समय परवश हो जाता है। इन सभी कलाओं में इनकी प्रौढ़ अभिज्ञता एवं अनुराग ही ईसका कारण है। धर्म-संबंधी विषयों के वर्णन में धर्मविद्, युद्ध-वर्णन में समरशास्त्र-पारंगत, प्रेमियों के संलापों के अंकन में शृंगार रस-रूप होकर उपन्यासकार इसमें अपने व्यक्तित्व को प्रकट करता रहा है। उसकी बहुलता के कारण यह उपन्यास एक अनुपम कृति बन गया है और ईसके सभी पात्र जीवंत हो उठे हैं। सभी बाधाओं का अतिक्रमण कर अंत में विजयी होने वाला पवित्र प्रेम इसकी तीनों प्रणय-गाथाओं के द्वारा चित्रित किया गया है।

'विषकन्या' की चर्चा 'मुद्राराक्षस' (दे०) नाटक आदि में की गयी है। किंतु उसके निर्माण के संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती। 'हिमबिंदु' में बापिराजु ने विषकन्या के निर्माण की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करके उसको यथार्थ धरातल पर अवतरित किया है। 'विषकन्या' इनकी एक विलक्षण सृष्टि है।

हिमालयनो प्रवास *(गु० क०)*

'हिमालयनो प्रवास' दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (काका कालेलकर—दे०) की हिमालय-यात्रा का लिपिबद्ध इतिहास है। अपनी भूमिका में लेखक जीवन को जंगम मानकर उसकी ताज़गी बनाए रखने के लिए भाषा के महत्व को स्वीकार करता है। अतीत में वानप्रस्थ, परिव्राजकावस्था आदि को सामाजिक व्यवस्था और वणिग्वृत्ति तथा धर्मप्रचार आदि की आवश्यकता ने मनुष्य से यात्राएँ कराईं। जब मनुष्य अज्ञान से भय नहीं खाता और उसे विस्मय की दृष्टि से देखता है तो प्रकृति के निमंत्रण को ठुकरा नहीं सकता और यात्राओं के माध्यम से उसे जानने का उपक्रम करता है। लेखक ने अन्य स्थानों की यात्रा के साथ हिमालय की यात्रा का भी निश्चय किया। वाराणसी, गया, बोधिगया आदि होते हुए अलमोड़ा, भीमताल, देवप्रयाग, गंगोत्री आदि की यात्राएँ लेखक ने संपन्न कीं। लखी बाबा जैसे साधुओं का स्वभाव, अँग्रेज़ी बोलने वाले साधुओं की प्रतिष्ठा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा-भक्ति के अनुभव, टेहरी के लोगों की गंगा-यमुना के प्रति विचित्र श्रद्धा आदि का लेखक ने सुंदर निरूपण किया है। अपने वर्णनों में लेखक प्रकृति के अनुपम सौंदर्य को पूर्णतः उद्घाटित करने में सफल हुआ है। भाषा सरल किंतु प्रवाहमयी है। इतना निर्व्याज प्रकृति-सान्निध्य और उसका इतना सशक्त वर्णन आज भी बहुत अधिक नहीं मिलता। यात्रा-साहित्य की यह अनुपम कृति है।

हिरण्मयीदेवी *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर काल की नवोदित लेखिका हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'जीवन संग्राम', 'युगर यात्री'। **कहानी** : 'नियर् टोपाल' (1958)।

इनके उपन्यासों में गतानुगतिक समाज का चित्रण मिलता है। कहानी के क्षेत्र में इनसे बहुत अपेक्षाएँ हैं।

हिरेमळ, आर० सी० *(क० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

ये प्रसिद्ध साहित्यकार तथा भाषाविज्ञानी हैं तथा कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ में कन्नड-अध्ययन-संस्था के निदेशक के पद पर विराजमान हैं। इनकी भाषा-शास्त्र विषयक पुस्तक 'स्ट्रक्चर ऑफ़ कन्नड' कन्नड भाषा-शास्त्र को एक महत्वपूर्ण देन है। पाठानुसंधान के क्षेत्र में इन्होंने अच्छा कार्य किया है। इनके द्वारा संपादित पुस्तकों की संख्या कम नहीं है। सुरंग (दे०), राघवांक (दे०) आदि कवियों के काव्यों का संपादन कार्य इन्होंने बड़ी सफलता से किया है। इनकी विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाएँ महत्वपूर्ण हैं। कन्नड के वीरशैव साहित्य का विशेष अध्ययन करने के कारण ये उसके अधिकारी विद्वान माने जाते हैं। 'महाकवि राघवांक' (दे० राघवांक) इनकी सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति है। सुमनांजलि' इनकी कविताओं का संग्रह है। 'हरिश्चंद्र नाटकम्' इनका नाटक है। इनके 'साहित्य-संबंधी' लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

हिस्ट्री ऑफ़ पंजाबी लिट्रेचर *(पं० कृ०)*

यह पंजाबी साहित्य के संबंध में डा० मोहनसिंह (दे०) द्वारा लिखा गया शोध-प्रबंध है। इसमें पंजाबी साहित्य के आरंभ से लेकर 1932 ई० तक के साहित्य का विवेचन है। कुल पृष्ठ-संख्या 139 है। 107 पृष्ठ तक शोध-विषय का विवेचन हैं। 108 से 136 तक पुरानी पंजाबी कविता के पद्यबद्ध उदाहरण है। 137 से 139 पृष्ठ तक पंजाबी कवियों एवं अन्य लेखकों की नाम-ग्रंथ सूची दी गई है। शोध-प्रबंध के अध्याय-क्रम में (1) पंजाब-पंजाबी-संस्कृति, (2) पूर्व-गुरु नानक काल, (4) गुरु नानक-काल, (5) उत्तर मुग़ल-काल, (6) रणजीतसिंह काल, एवं (7) अँग्रेज़ी काल का वर्गीकरण दिया गया है। विवेचन प्रौढ़ एवं संक्षिप्त है। यह ऐतिहासिक गौरव की कृति है।

हीरदमोदर *(पं० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती का उत्तरार्ध]

पंजाबी क़िस्सा-काव्य की यह प्रथम ज्ञात रचना पंजाबी का आदि प्रबंध-काव्य भी है। ग्रंथ के अंत में कवि ने अकबर के शासन की समृद्धि की कामना की है, इस आधार पर यह अकबरकालीन रचना मानी जाती है। इसमें सियाल की पुत्री हीर और हज़ारा-निवासी मौजू चौधरी के पुत्र राँझा के प्रेम की सुखांत कथा का वर्णन है। दवैया छंद (28 मात्राएँ, 16-12 पर यति) में लिखित इस कृति की भाषा अति साधारण, अनगढ़ और साहित्यिक सौष्ठव से रहित है। इसका मूल स्वर लहँदा (पश्चिमी पंजाबी) का है। कृति में यद्यपि रस-व्यंजना की अपेक्षा आक्रोश तथा द्वंद्व मुख्य हो गए हैं तथापि कुछ अंश निश्चय ही आकर्षक बन पड़े हैं। समग्रतः अभिव्यक्ति की मार्मिकता की अपेक्षा घटना-वर्णन की ओर कवि का झुकाव अधिक है; कथा में अति प्राकृतिक तत्वों का समावेश भी किया गया है। इसमें समकालीन ग्रामीण रहन-सहन, विवाह-संबंधी रीति-रिवाज का विस्तार से अंकन हुआ है। परवर्ती मुसलमान कवियों ने कहानी की दमोदर (दे०) द्वारा निर्धारित रूपरेखा स्वीकार नहीं की, उन्होंने कुछ नाम भी बदल दिए हैं। पंजाबी में एक नयी विधा की प्रवर्तक होने के कारण ही मुख्यतः 'हीरदमोदर' को प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इस रचना के अनेक मुद्रित संस्करण उपलब्ध हैं।

हीर-राँझा *(पं० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती का मध्य भाग]

'हीर-राँझा' की लोकप्रसिद्ध प्रेमकथा को मुक़बल ने चार-चार पंक्तियों के चार सौ तेतीस बैंतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में काव्यबद्ध किया है। अहमदशाह गुज्जर (दे०) द्वारा निर्धारित रूपरेखा स्वीकारते हुए कवि ने रचना को सुखांत बनाया है परंतु संपूर्ण कृति में विप्रलंभ का भाव मुख्य है। फ़ारसी की सरल शब्दावली से युक्त मध्य पंजाबी में निबद्ध मुक़बल के छंदों में सरलता, आकर्षण और अद्भुत प्रभाव है। दैनिक जीवन से गृहीत उपमानों, मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग से काव्य के कलागत सौंदर्य में वृद्धि हुई है। इस कृति के अनेक मुद्रित संस्करण उपलब्ध हैं।

हीर-राँझा (पं०कृ०) [रचना-काल—अनुमानतः 1878 ई०]

'कवीश्वर' भगवानसिंह (दे०) के यश की अभिवृद्धि करने वाली इस रचना में 531 कवित्तों में हीर-राँझा की सुप्रसिद्ध कथा कही गई है। यद्यपि इनसे पूर्व जोगसिंह और लालसिंह ने भी कवित्तों में हीर की कथा लिखी परंतु लोकप्रियता इन्हीं को मिली। यह रचना 1886 ई० में पहली बार निरंकारी छापाखाना, लुधियाना से छपी। अतः अनुमान है कि छपने से सात-आठ वर्ष पूर्व लिखी गई होगी। भगवानसिंह के अनेक छंदों के भाव और शब्द मुक़बल (दे०) और वारिस (दे०) की रचनाओं से मिलते हैं। कवि ने कई स्थानों पर धन, नारी, गुरु, योग, संसार की नश्वरता के संबंध में लोक-प्रचलित मध्यकालीन विचारों की अभिव्यक्ति की है। रचना में काव्य-कला की सूक्ष्मता या विचार-प्रांजलता का अभाव है। अन्य क़िस्सा-कृतियों के ही समान अपने सरल वर्णन, सपाट कथा तथा जनरंजक व्यंग्योक्तियों के कारण यह कृति भी प्रसिद्ध है। वियोग शृंगार की दृष्टि से हीर का 'बारहमासा' अवश्य उल्लेखनीय है। पूर्वी पंजाब में इसे वारिस की 'हीर' जैसी ही ख्याति प्राप्त हुई।

हीर वारिस (पं० कृ०) [रचना-काल—1766 ई०]

हीर और राँझा की प्रेमकथा के आधार पर पंजाबी में पचास से भी अधिक रचनाएँ लिखी गई हैं परंतु 'हीर वारिस' जैसी लोकप्रियता अन्य किसी कृति को प्राप्त नहीं हो सकी। फ़ारसी मसनवियों जैसी एकछंदात्मकता होते हुए भी इस प्रेम-काव्य में उनकी रचना-पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया। इसमें न लंबे-चौड़े स्तुतिखंड हैं, न शाहेवक्त की प्रशंसा है। आरंभ की केवल बीस पंक्तियों में ख़ुदा, रसूल, चार यार, पीर और फ़क़ीर शकरगंज की स्तुति है। 'हीर-वारिस' में आभिजात्य के संरक्षक सामंती समाज, शासन और धर्म के प्रति तीव्र आक्रोश और विगर्हणा व्यक्त हुई है, अनेक स्थलों पर अश्लीलतापूर्ण संकेत हैं और अंत में इसे आध्यात्मिक रूपक घोषित किया गया है। आध्यात्मिकता का यह क्षीणतर स्वर अत्यंत आरोपित अथवा प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। अतः, अधिकांश विद्वान इसे लौकिक प्रेम-प्रधान काव्य मानने के पक्ष में हैं। किसी प्रकार की आध्यात्मिकता की अपेक्षा, यह कृति पंजाब के ग्रामीण जीवन की सजीव पृष्ठभूमि पर स्वच्छंद प्रेम और विद्रोह के स्वर को मुखरित करने के कारण ही साहित्य में प्रसिद्ध है। इसमें फ़ारसी शब्दावली का उन्मुक्त प्रयोग हुआ है, परंतु उनके तद्भव और लोक-प्रचलित रूप ही स्वीकृत हुए हैं। संपूर्ण काव्य मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों से समृद्ध है।

हीरा (*मल० पा०*)

महाकवि उळ्ळूर (दे०) परमेश्वरय्यर के मुक्तक-संग्रह 'किरणावली' में 'हीरा' शीर्षक की एक लंबी कविता है। इस कविता का विषय है इसी नाम की स्त्री के बलिदान की कथा। 'हीरा' कहानी राजस्थान के इतिहास से ली हुई है। यह हीरा वस्तुतः मेवाड़ की धाय पन्ना है।

हीरा के भाग्य में सुहाग नहीं बदा था और वह अपनी नन्ही संतान के लिए रानी की सेवा करतीं थी। उसकी स्वामिनी विधवा राजमाता भी अपने प्यारे लाल के लिए जी रही थीं। हीरा रानी के लिए दासी ही नहीं, बहुत कुछ थी। उस अमावस्या की भीषण रात्रि के समय रानी के मुखमंडल पर भयाकुलता देखकर हीरा चिंतित हो गई। रानी ने अपनी विश्वासपात्र हीरा को समझा दिया कि सत्ता-लोभी देवर उनकी प्यारी संतान और राज्य के भावी अधिपति के प्राण हरने के लिए आया ही चाहते हैं। हीरा जिस संतान को पाल-पोसकर राजा की सेवा में समर्पित कर देना चाहती थी, वह राजा के प्राणों की रक्षा के लिए उसका तत्काल समर्पण करने का महान् संकल्प कर लेती है। हीरा अपना वचन पालती है। कवि ने इस प्रसंग के वर्णन में बड़े ही भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है—संसार का स्वर्णमय मंगल-दीपक, त्याग-साम्राज्य की सम्राज्ञी, भूगर्भ के पूर्व-पुण्य की शुक्तिका-मुक्तामणि आदि। रानी को उनकी अमानत सौंप देने के बाद हीरा अपने पुत्र से पुनः तादात्म्य करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना भी उत्सर्ग कर देती है। इस प्रकार उळ्ळूर इस काव्य के माध्यम से केरल-साहित्य को उसकी भौगोलिक सीमाओं के पार ले गए हैं और उसे व्यापकता दी है।

हीरामालिनी (*बँ० पा०*)

हीरामालिनी (दे० बिद्यासुंदर)के ठाट्बाट की ओर सहज ही दुष्टि आकृष्ट होती है किंतु आँखें चौंधिया नहीं जातीं। वस्तुतः एक उच्छल कौतुक के सरस प्रवाह से यह चरित्र यथार्थ एवं सजीव हो उठा है। बिद्यासुंदर के अधिकांश चरित्र ही कवि के हाथ के खिलौने हैं किंतु हीरा उनसे अलग है। हीरा के शब्दों में हीरा की तेज धार की तरह उसमें औज्ज्वल्य है। इस वृद्धा कुट्टनी के ठाठ भी कम नहीं। वह दूसरे के धन तक को छीन लेती है। बाज़ार में व्यापारी उसे देखकर घबरा जाते हैं। खोटे सिक्के के बदले एवं नाज़-यखरे, बातचीत, हँसी-कौतुक तथा रसालाप के द्वारा वह लगभग बिना मूल्य सौदा करती है। कवि ने जनजीवन के साथ हीरा के स्वच्छंद मिलन को सहज रूप में चित्रित किया है। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) की दुर्बला एवं कृष्णराम (दे०) की बिमला को हीरा-मालिनी की अग्रवर्तिनी कहा जा सकता है परंतु हीरा की परिणति अंकुर से पल्लवित तरु की तरह ही सार्थक है।

हुकम (*पं० प्र०*)

'हुकम' शब्द मूलतः फ़ारसी भाषा का है जिसका अर्थ है 'आदेश'। गुरु नानक (दे०) ने इस शब्द को आध्यात्मिक रूप में प्रयुक्त किया है। इस नानारूप सृष्टि के सभी कर्म एवं व्यापार किसी नियंता के हुकम से नियं-त्रित हैं। इस सिद्धांत ने मानव को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। यह निर्धनता के लिए महामंत्र या औषध है। मानव तो केवल हुकम का बंदा है।

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि बोभ हुकमी मिले बडिआई।
ढकना हुकमी वखसीस इकि हुकमी सदा भवाई आहि।
हुक्मै अंदरि सभ को बाहरि न हुक्म न कोइ।
नानक हुक्मै जो बुझै त हउमै कहै न कोइ।

गुरु नानक देव ने 'हुक्म रजाई कर्म' की चर्चा की है। इसका अर्थ परमात्मा की प्रेरणा से होने वाले कर्म हैं। ये कर्म सिद्धावस्था में शुद्ध अंतःकरण से ही संभव हैं। गुरु अर्जुनदेव ने भी 'हुक्म' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त किया है। उनकी उक्ति है—

'जो जो हुकमु भइ ओ साहिब का सो माथै लै मानिओ'

हुतोम प्यांचार नक्शा (*बँ० कृ०*)

कालीप्रसन्नसिंह (दे०) ने बँगला भाषा में अष्टादश पर्व महाभारत का गद्य अनुवाद किया है। इस अनन्यसाधारण कार्य के लिए उन्हें बंगाली-समाज से सकृतज्ञ श्रद्धा मिली है। अपने युग के कलकत्ते के सामा-जिक जीवन का उन्होंने बहुत ही सुंदर व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए कथ्य भाषा में 'हुतोम प्याँचार नक्शा' (1862 ई०) की रचना की। इस रचना को बँगला-प्रहसन का अग्रदूत स्वीकार किया जा सकता है। आज-कल के बहुत से विद्वानों ने 'हुतोम प्याँचार नक्शा' को कालीप्रसन्नसिंह के आश्रित भुवनचंद्र मुखोपाध्याय की रचना के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। परंतु निश्चित प्रमाण के अभाव में इसे अनुमान-मात्र ही कहा जाएगा।

हुसैन, जे० एम० (*त० ले०*) [जन्म—1928 ई०; मृत्यु 1968 ई०]

इनका जन्म तंजौर ज़िले के इरवाचिरी नामक स्थान में हुआ था। 1950 ई० से इन्होंने कहानियों और निबंधों की रचना आरंभ की थी। इनकी प्रथम कृति है 'इक़बाल यार'। इसमें महाकवि इक़बाल के व्यक्तित्व और कृतित्व का बिवेचन है। 'इसलामिय कदैहळ' नाम से संगृहीत इनकी कहानियों में तमिलनाडु के मुसलमानों के जीवन का सजीव चित्रण है। इन्होंने रेडियो मलेशिया से कुछ वार्ताओं और एकांकियों का भी प्रसारण किया था। इन्होंने लगभग 50 सुंदर कहानियों की रचना करके तमिल कहानियों के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान पा लिया है।

हुस्न-आरा (*उर्दू० पा०*)

'हुस्न-आरा' पं० रतन नाथ 'सरशार' (दे०) की सुप्रसिद्ध कृति 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) की नायिका है। यथा नाम तथा गुण—हुस्न आरा हद दर्जे की हसीन है। यह प्रगतिशील विचारों की एक सुशिक्षिता नारी है। इस प्रगतिशीलता के कारण यह अपने युग की साधारण नारी से बहुत भिन्न प्रतीत होती है। यह समाज की प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूढ़ि के विरुद्ध विद्रोह करती है। आत्मविश्वास इसके चरित्र का विशेष गुण है। प्रेम के विषय में यह उदात्त भावना से युक्त है। प्रगतिशील होते हुए भी यह प्रेम के विषय में पाश्चात्य दृष्टिकोण नहीं अपनाती। प्रेम की परीक्षा यह अपने प्यारे 'आज़ाद' को युद्ध में भेजकर करती है। आज़ाद इस कठिन परीक्षा में खरा उतर कर इसका प्रेम जीत लेता है। सादा जीवन, उच्च विचार इसके जीवन का आदर्श है। यह नारी को घर की चारदीवारी से बाहर निकाल समाज की गतिविधियों से परिचित कराना चाहती है ताकि भावी संतानें जागरूक एवं सुसभ्य बन सकें।

हृदयराम (*हिं० ले०*)

हृदयराम भल्ला पंजाब के थे। ये कृष्णदास के पुत्र थे। 1623 ई० में इन्होंने 'भाषा हनुमन्नाटक' कवित्त-सवैयों में लिखा। इनकी दो कृतियाँ और हैं — 'सुदामा-चरित' और 'रुक्मिणी-मंगल'। इनका उपनाम था—राम। इनका उक्त नाटक संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' (दे०) पर आधृत है; किंतु वह छायानुवाद मात्र है क्योंकि दोनों में साम्य कम, वैषम्य अधिक है। इसमें नाट्य-तत्त्वों का अभाव है, यद्यपि प्रौढ़ और प्रांजल भाषा में नाटकीय शैली को अपनाया गया है।

हृदयराम भल्ला (*पं० ले०*)

जहाँगीर के युग में विद्यमान् प्रसिद्ध कवि। इनके पिता का नाम कृष्णदास था। प्रमाण के लिए इनकी यह उक्ति ही प्रसिद्ध है—'कृष्णदास तनुकुल प्रकाश जस दीपक रच्छन'। इनकी कृति का मूल नाम 'रामगीत' है परंतु वह 'हनुमन्नाटक' (दे०) के नाम से प्रसिद्ध हो गई है। इसका कारण कवि हृदयराम भल्ला का हनुमान-भक्त होना ही लगता है। 'रामगीत' की रचना कवि ने जेल में की थी जबकि उसे मुग़ल बादशाह जहाँगीर ने खुसरो का पक्षपाती होने के कारण पकड़ लिया था। जहाँगीर ने इस कृति को फ़ारसी लिपि में लिखवा कर अपने पोथीख़ाने में रखवा लिया था। कृति की समाप्ति का काल कवि ने स्वयं दिया है। 'संवत विक्रम नृपति सहसषट सत असीह पर' (संवत 1680—1737 ई०) 'चैत्र चाँदनी दूज छत्र जहाँगीर सुभट वीर' ॥ 'शुभ लच्छन सुदस कविराय विचच्छन। कृस्नदास तनुकुल प्रकाश जस दीप रच्छन'। भक्ति भाव से परिपूर्ण हृदय वाले इस कवि ने अपनी कृति में 'श्रृंगार हास्य' शांत आदि रसों का उत्कृष्ट रूप से निर्वाह किया है। विषय-वस्तु, भक्ति-भाव, काव्यरूप और भाषा-छंद आदि के कारण इनका यह ग्रंथ उत्कृष्ट है। पंजाबी भाषा की राम-काव्य-परंपरा में हृदयराम भल्ला का अन्यतम स्थान है।

हेमचंद्र (*सं० प्रा०, अप० ले०*) [जन्म—1089 ई०; मृत्यु—1173 ई०]

हेमचंद्र का जन्म गुजरात के धंधका ग्राम में एक वैश्य परिवार में हुआ था। इनका जन्म का नाम चांगा था। आठ वर्ष की अवस्था में ही इस बालक की भक्त माता ने देवचंद्र नामक विद्वान जैन-साधु को सौंप दिया था। साधु-रूप में दीक्षा लेने पर इनका नाम सोमचंद्र रखा गया। 21 वर्ष की अवस्था में ये गुरु की गद्दी पर बैठे और इन्होंने सूरि आचार्य की उपाधि प्राप्त की। तदनंतर ये हेमचंद्र सूरि नाम से प्रख्यात हुए।

जयसिंह सिद्धराज एक महान् शूरवीर योद्धा ही नहीं थे, कला-प्रेमी और विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। हेमचंद्र पहले इनके आश्रय में रहे और फिर कुमारपाल के। इनके राज्य-काल में गुजरात राजनीतिक, कलात्मक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध हुआ। गुर्जर भूमि की साहित्यिक समृद्धि का श्रेय हेमचंद्र को है। ये संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश — तीनों भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। पाटण इनके समय विद्या का केंद्र था। ये सिद्धराज के सभा-कवि थे।

हेमचंद्र ने अनेक विषयों पर रचनाएँ की थीं। जयसिंह सिद्धराज की प्रेरणा से इन्होंने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश का व्याकरण लिखा था। यह कृति सिद्धराज के नाम से 'सिद्धहेम अथवा सिद्ध हेम-शब्दानुशासन' कहलाती है। इनकी अन्य कृतियों का निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण किया जा सकता है:

कोश — 'अभिधान चिंतामणि' (अपूर्ण)
'अनेकार्थ-संग्रह' —अनेकार्थ - सूचक शब्दों का कोश (अपूर्ण)
'निघंटुशिक्षा' —वनस्पति विज्ञान-संबंधी शब्दों का कोश
'देशी नाममाला'—(प्राकृत)
छन्दःशास्त्र—छंदोनुशासन—संस्कृत, प्राकृत और अभ्रंश छंदों का विवेचन
काव्यशास्त्र—'काव्यानुशासन' (दे०)
तर्कशास्त्र —'प्रमाण मीमांसा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य — 'द्वयाश्रय महाकाव्य', 'कुमारबालचरिय' (दे०)। प्रारंभ के 20 सर्ग संस्कृत में, अंतिम 8 प्राकृत और अपभ्रंश में

पौराणिक चरित—'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित','परिशिष्ट-पर्वन्', 'महावीरचरित'

विविध — 'योगशास्त्र', 'स्तोत्र'

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेमचंद्र (दे०) ने विविध विषयों पर ग्रंथ रचना की थी। अपनी प्रतिभा और पांडित्य के प्रभाव से इन्होंने जैन धर्म को गुजरात में राजधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया था। जैन-संप्रदाय में इन्हें 'कलिकालसर्वज्ञ' उपाधि से विभूषित किया गया है।

प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में शोधकर्त्ताओं के लिए हेमचंद के प्राकृत-ग्रंथ तथा अपभ्रंश-व्याकरण एवं छंदों का विवेचन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार उत्तर भारत की आधुनिक भाषाओं और प्राचीन भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले भाषाविज्ञान के छात्र के लिए हेमचंद्र के 'देशी नाममाला' में संकलित देशी शब्द और इनके कोश अत्यंत उपादेय हैं।

हेमसरस्वती (अ० ले०) [जन्म—तेरहवीं शती का अंत अथवा चौदहवीं का आरंभिक काल]

इन्होंने कमलानगर के राजा दुर्लभ नारायण के आश्रय में राजधानी गड़ियानगर में रहकर रचना की थी।

रचनाएँ—'प्रह्लादचरित', 'हरगौरीसंवाद'।

'प्रह्लादचरित' असमीया भाषा का प्रथम काव्य है। इस काव्य की रचना 'वामन पुराण' के आधार पर हुई है। इसमें नवरसों का प्रयोग है, भाषा संस्कृत-प्रधान है, प्राकृत भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ में सामाजिक वैषम्य की ओर भी संकेत है। कवि का कथन है कि यदि नारायण सभी शरीरों में विद्यमान है तो कोई हाथी पर चढ़ता और सुख से सोता है जबकि किसी अन्य को तिनका तक नहीं मिलता। यदि सचमुच भगवान् सब में है तो एक का दुःख सभी का और एक का सुख सभी का सुख होना चाहिए। 'हरगौरीसंवाद' अधिक अच्छा ग्रंथ है। इसमें 899 पद हैं। प्रथम अध्याय में 'नृसिंह पुराण' से हिरण्यकश्यपु-वध की कथा ली गई है। शेष छह अध्यायों में हर-गौरी-संवाद है, इसमें शिव-परिवार की कथा है। इस पर 'कालिका-पुराण' और 'कुमार-संभव' (दे०) का प्रभाव पड़ा है। अंतिम अध्याय में योग-साधना का भी वर्णन है।

हेमसरस्वती असमीया-साहित्य के प्रथम कवि हैं। कोई-कोई इन्हें प्रथम वैष्णव-कवि भी मानता है, किंतु यह निश्चय करना कठिन है कि ये शैव-शाक्त अधिक हैं अथवा वैष्णव।

हेरोवा स्वर्ग (अ० कृ०) [रचना-काल—1935 ई०]

मुहम्मद पियार (दे०) के इस उपन्यास में मुस्लिम समाज के दोषों का चित्रण है। चरित्र निर्भीक मानव हैं; इनमें अंतर्द्वंद्व नहीं है। पियार साहब ने राज-नीतिक दुराग्रह से हटकर लिखा, अतः कृति में पूर्वग्रह एवं विद्वेष की भावना नहीं है। भाषा चित्रात्मक है।

हेलवनकट्टे गिरियम्मा (क० ले०) [समय—अनुमानतः 1750 ई०]

बल्लारी ज़िले के हेलवनकट्टे नामक ग्राम में एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ था और आरंभ से ही ये कृष्ण-प्रेम की भावना से अभिभूत थीं। उन्होंने कृष्ण को बाल-रूप में देखा है। उनकी वाणी में वात्सल्य रस मानो छलकता है। बालपन से ही वह मीरा की भाँति दिव्योन्माद में थीं। उनका विवाह हुआ था किंतु प्रथम रात्रि को शय्यागार में एक साँप देख कर पति डरकर चला गया। इस प्रकार गिरियम्मा विवा-हित होने पर भी विरक्त हो गईं। उनका जीवन भक्ति के प्रति समर्पित जीवन था। उनके ग्रंथ ये हैं—'चंद्रहासनकथे', 'सीताकल्याण', 'उद्दालककथे', तथा कुछ भक्ति-गीत। 'ब्रह्मकोरतथि' नाम की एक और कृति उन्हीं की मानी जाती है। 'चंद्रहासनकथे' में प्रसिद्ध वैष्णव भक्त चंद्रहास की कथा सांगत्य-शैली में है, 'सीताकल्याण' में सीता-राम के विवाह का सुंदर वर्णन है। उनकी भाषा शुद्ध देसी भाषा है—प्रसादगुण-परिपूर्ण, निर्व्याज भावना, शक्ति से ओतप्रोत।

हे साथी हे सारथी (उ० कृ०)

नित्यानंद शतपथी (दे०)-कृत 'हे साथी हे सारथी' में उत्कलमणि दीनबंधु गोपबंधु (दे०) का जीवन-चरित है। उत्कलमणि गोपबंधु उड़िया जाति के नमस्य हैं; उड़ीसा की एक विपुल पौराणिक संपत्ति हैं। उनका जीवन इस जाति का जीवंत इतिहास है। जन्मभूमि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति पर गोपबंधु मुग्ध थे। जन्मभूमि की दुर्दशा ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया था। इस दुर्दशा का मोचन ही उनका पुण्यव्रत था। लोकसेवा ही उनका एकनिष्ठ धर्म था।

उड़िया में गोपबंधु पर इससे विस्तृत रचना नहीं है। उनके जीवन की अनेक घटनाओं पर लेखक ने प्रकाश डाला है। गोपबंधु ने अपनी आत्मजीवनी नहीं लिखी है, किंतु यह प्राणस्पर्शी रचना किसी सीमा तक उस कमी की पूर्ति कर देती है।

हैदरी (*उर्दू० ले०*)

इनका नाम सैयद हैदर बख़्श तथा तख़ल्लुस 'हैदरी' था। ये दिल्ली में सैयद हैदर बख़्श के यहाँ पैदा हुए थे। इनके पूर्वज अरब से आए थे। हैदरी ने शिक्षा बनारस में पाई थी। हैदरी ने फ़ोर्ट विलियम कालेज में डा० गिलक्राइस्ट के अधीन सराहनीय कार्य किया था। 'किस्सा लैला-मजनूँ', 'तोता कहानी', 'आराइशे महफ़िल', 'तारीखें-नादरी', 'गुले-मग़फ़रत', 'गुल्ज़ारे दानिश', 'क़िस्स-ए-महरो-माह', 'गुलदस्त-ए-हैदरी' तथा 'गुलशने-हिंदी' इनकी विभिन्न पुस्तकें हैं। इनमें फ़ारसी पुस्तकों के अनुवाद भी हैं तथा मौलिक रचनाएँ भी। 'गुलशने-हिंद' उर्दू के कवियों का इतिहास है।

हैना कैथरिन म्यालेंस (*बँ० ले०*)

मसीही धर्मावलंबी विदेशी महिला हैना कैथरिन म्यालेंस के जन्मादि की सन्-तारीख का ठीक पता नहीं लगता है। इन्होंने 1852 ई० में 'करुणा ओ फुलमणि विवरण' उपन्यास की रचना की और यही इनकी प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण है क्योंकि बँगला साहित्य के इतिहास में इसे ही सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास होने का श्रेय प्रदान किया जाता है।

ईसाई धर्म की श्रेष्ठता के प्रतिपादन के उद्देश्य से इस उपन्यास में कतिपय 'धर्मांतरित बंगाली परिवारों की जीवनयात्रा की कहानी लिपिबद्ध की गई है। आख्यानसूत्र में धारावाहिकता का अभाव है, और चरित्र-चित्रण प्रायः निर्जीव तथा निष्प्राण है। यह अवश्य है कि बँगला साहित्य में यह पहला उपन्यास है। जीवन की समस्या, पारिवारिक जीवन की सुख-शांति को लेकर कहानी लिखी गई है परंतु सामाजिक दुर्नीति तथा अनाचार को दूर करने के लिए ईसाई धर्म को ही एकमात्र उपचार मानने के कारण लेखिका अपने साहित्यिक गौरव को अक्षुण्ण नहीं रख सकीं।

होनाजी बाळा (*म० ले०*)

'होनाजी बाळा' का समय निश्चित नहीं है। इनकी रचनाओं में प्राप्त संकेतों के अनुसार ये सवाई माधवराव तथा बाजीराव पेशवा द्वितीय के काल में विद्यमान थे। अतः इनका जीवन-काल उन्नीसवीं शती के प्रथम चार दशकों के बीच का समय कहा जा सकता है।

ये जाति से ग्वाले थे। इनका उपनाम 'शेलारखने' था। मराठी-साहित्य के ये ख्यातनाम शाहीर कवि हैं।

कृष्णाख्यान के विविध प्रसंगों पर होनाजी बाला ने लावणियाँ लिखी हैं। 'घनश्याम सुंदरा श्रीधरा, अरुणोदय झाला' नामक भूपाली तो इनकी अजरामर कीर्ति का आधार-स्तंभ है। यह एक जागरण-गीत है, जिसमें प्रसन्न-ललित-मधुर शैली में प्रातःकालीन सुषमा का रूपांकन है।

होनाजी बाला ने पाँच वीरगाथात्मक ऐतिहासिक पोवाडे भी लिखे हैं, जिनमें से तीन बाजीराव पेशवा, द्वितीय पर हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इनकी बाजीराव के प्रति अटूट श्रद्धा थी।

इन्होंने संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। इनके काव्य में भाव-वैचित्र्य के साथ वर्णन-विलास, प्रसादत्व और अर्थगांभीर्य का अपूर्व योग है।

होन्नम्मा (*क० ले०*) [समय—1680 ई० के आसपास]

होन्नम्मा मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के अंतःपुर में एक दासी थी। सिंगरार्य (दे०) की शिष्या थी, राजा की प्रेरणा से उसने सिंगरार्य से शिक्षा ग्रहण की और 'काव्यदेवी' का पद पाया। 'हरिबदेय धर्म' (दे०) (पातिव्रत धर्म) इसका प्रसिद्ध नीति-काव्य है। सांगत्य छंद में लिखे इस ग्रंथ में पातिव्रत धर्म का अत्यंत सरस निरूपण है। इसकी बातों में अद्भुत शक्ति है। नारी के अधिकारों के लिए यदि उसने कहीं-कहीं समाज को चुनौती दी है तो साथ ही साथ आदर्श गृहिणी के कर्त्तव्यों पर सुंदर ढंग से प्रकाश डाला है। नारी-जीवन के गरिमामय पक्ष को मंडित करने में यह ग्रंथ अत्यंत सफल है।

□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73564
गुरुकुल कांगड़ी

Accession 20-11-83
Class on 20-12-83
Cat on 21-12-83
Tag etc
Checked
Any Other

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar